महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास प्रणीत

श्रीमद्भागवत महापुराण

(पदच्छेद, अन्वय, हिन्दी शब्दार्थ व टीका सहित)

सम्पूर्ण

सम्पादक: सुदर्शन सिंह चक्र

सत् शास्त्र-प्रकाशन—

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास-प्रणीत—

श्रीमद्भागवत-महापुराण

[पदच्छेद, अन्वय, हिन्दी शब्दार्थ टीका सहित]

सम्पादक—

सुदर्शनसिंह 'चक्र'

प्रकाशक—

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान

मथुरा—२८१ ००१

श्री हित हरिवंश

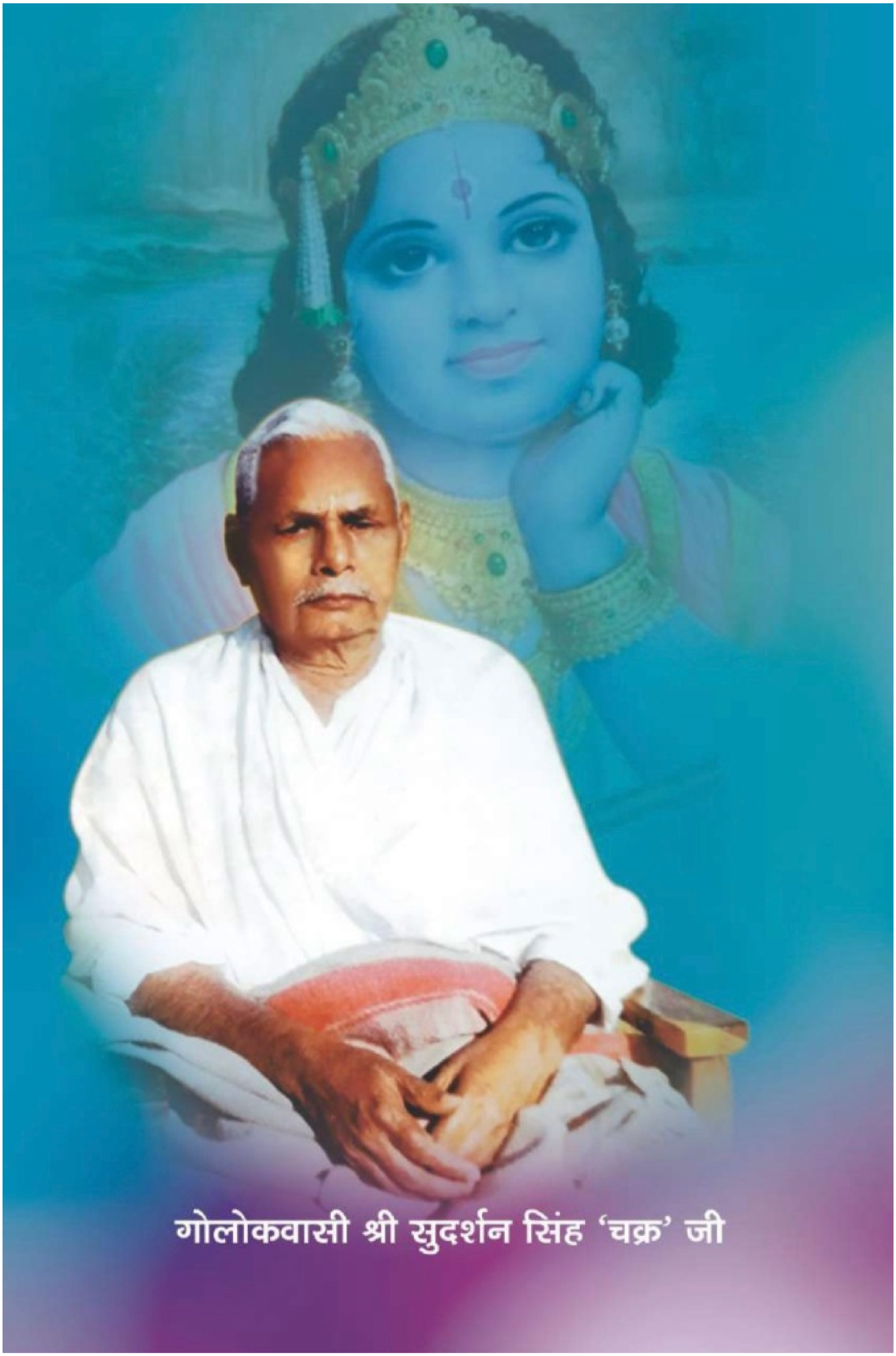
वृन्दावन के परम पूज्य संत श्री प्रेमानंद जी के प्रवचन से प्रेरणा पाकर हमने मूल संस्कृत की श्रीमद्भागवत का पाठ स्वयं करने का निश्चय किया. अंग्रेजी भाषा में शिक्षा ग्रहण करने और संस्कृत भाषा का अधिक ज्ञान न होने के कारण हमारे लिए मूल श्लोक को पढ़ना थोड़ा कठिन है | इसीलिए हमारे गुरु श्री के. एन. राव जी ने हमें श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ गीता प्रेस से प्रकाशित पदच्छेद, अन्वय और टीका वाली पुस्तक संख्या 17 से कराया है | पदच्छेद से संस्कृत श्लोक का अध्ययन सुगम हो गया और कुछ समय बाद मूल श्लोक भी सहजता से पढ़ा गया। इसी उद्देश्य से हमने भागवत की एक ऐसी प्रति को खोजना प्रारम्भ किया जिसमें मूल श्लोक, पदच्छेद और साथ ही हिंदी टीका हो | इंटरनेट पर खोजने से ऐसी कई प्रति मिलीं किन्तु श्री सुदर्शन सिंह चक्र जी द्वारा किया अन्वय उन सभी में सबसे सहज और सुगम है। किन्तु ग्रन्थ के अब प्रकाशित न होने के कारण उपलब्ध नहीं है। इस अमूल्य ग्रन्थ को दोबारा साधकों तक लाने के लिए इसके सभी खंडों को स्कैन करके उपलब्ध कराने का यह हमारा छोटा सा प्रयास है।

श्री जी की कृपा से इस यात्रा में पद पद पर हमें वृन्दावन के संतों और धर्मप्रेमी मित्रों का सहयोग मिलता रहा जिसके बिना इस कार्य को पूर्ण करना असंभव था | सभी संतो और मित्रों का आभार प्रकट किये बिना इस ग्रन्थ को पुनः जन जन तक पहुँचाना संभव ही नहीं है | सबसे पहले इस ग्रन्थ की खोज में हमारे मार्गदर्शक आगरा के स्वपनिल जी बने और हमारा परिचय प्रभात जी से कराया | तत्पश्चात पूज्य राजमाता सौभाग्य कुँवर राणावत जी और पूज्य डॉ. बालचंद्रिका पाठक जी (मुन्नी जीजी) के मार्गदर्शन में हमने वृन्दावन के आश्रमों में इसकी खोज प्रारम्भ की | अन्ततः इस ग्रन्थ के सभी खंड हमें अखंडानंद आश्रम लाइब्रेरी से श्री सेवानंद जी और मलूक पीठ ग्रंथालय से श्री श्यामसुंदर जी के आशीर्वाद से प्राप्त हुए। पहला खंड अत्यधिक पुराना होने के कारण बहुत ही जीर्ण अवस्था में था और खंड के बहुत से पृष्ठ गुम हो चुके थे। तभी हमारी इस यात्रा को पूर्ण करने में सहयोगी बने बक्सर वाले मामाजी के बक्सर आश्रम से श्याम जी जिन्होंने कोसी आश्रम के नवल जी से परिचय करवाया। और नवल जी ने प्रथम खंड की बहुत ही सहज कर रखी गयी प्रति स्कैन करने के लिए उपलब्ध करवाई।

श्री जी के आशीर्वाद, संतों के मार्गदर्शन और धर्मप्रेमी मित्रों के सहयोग के बिना यह यात्रा असफल ही होती | हम आशा करेंगे कि इस नए प्रिंट से सभी भागवत प्रेमी और विद्यार्थी लाभ उठा सकेंगे | इस पूरे ग्रन्थ का पीडीऍफ़ ऑनलाइन भी अपलोड किया गया है। नीचे दिए लिंक से सभी खंडों का पीडीऍफ़ डाउनलोड किया जा सकता है।

https://archive.org/details/shrimad-bhagvat-anvaya-teeka

मकर संक्रांति, जनवरी 15, 2024 राधे राधे ...


गोलोकवासी श्री सुदर्शन सिंह 'चक्र' जी

इस संस्करणके सम्बन्धमें—

अनेक बार भाई जयदयाल डालमियाने तथा दो-चार बार दूसरोंने भी श्रीमद्भागवतकी इस प्रकार पदच्छेद-अन्वय सहित टीका तैयार करनेकी बात कही। मैं प्रायः कह देता था—'श्रीमद्भागवत छोटा ग्रन्थ नहीं है। उसकी इस प्रकारकी टीका बहुत बड़ी होगी। फलतः बहुत महँगी होगी। उसका प्रचार-प्रसार संदिग्ध होगा।'

यह बात अपने स्थानपर ठीक है। संस्कृतके—विशेषतः भागवतके विद्यार्थी सम्पन्न कम ही होंगे। अतः बहुत उपयोगी हो तो भी कई खण्डोंका कई सौ रुपयोंका ग्रन्थ ले लेना उनके लिए बहुत ही कठिन होगा।

दूसरी ओर यह बात भी ठीक है कि देशमें श्रीमद्भागवतके प्रति बहुत श्रद्धा है। बहुत लोग, जो संस्कृत नहीं जानते, श्रीमद्भागवत पढ़ने-समझनेको उत्सुक हैं।

गीताप्रेस (गोरखपुर) ने गीताकी अन्वय-पदच्छेद सहित टीका प्रकाशित की। गीताके अध्ययनमें उसने बहुत लोगोंकी सहायता की। उससे संस्कृत न जाननेवाले भी गीता पढ़ने-समझनेमें सफल हुए—इसमें दो मत सम्भव नहीं हैं।

मैं तो इस काममें केवल दो कारणोंसे लगा—

१. इस बहाने मेरा अपना श्रीमद्भागवतका अध्ययन हो जायगा।

२. भाई श्रीजयदयाल डालमियाका आग्रह।

गीताप्रेससे अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज द्वारा की गयी श्रीमद्भागवतकी टीका प्रकाशित है। यह टीका बहुत उत्तम है। इसमें श्रीमद्भागवतके शब्द प्रायः छोड़े नहीं गये हैं। अतः संस्कृत न जाननेवालोंको उससे श्रीमद्भागवतका ठीक-ठीक अर्थ ज्ञात हो जाता है। मैंने भी इस टीकामें उसीके अर्थका आश्रय लिया है।

इतना होनेपर भी वह टीका शब्दार्थ नहीं है, भावार्थ है। फलतः उसके माध्यमसे श्रीमद्भागवतका ठीक-ठीक अध्ययन सम्भव नहीं है।

अनुवादकी समस्या—

सच बात यह है कि प्रत्येक भाषाकी अपनी एक शैली, प्रकृति होती है। उसके प्रत्येक शब्दका दूसरी किसी भाषामें अनुवाद सम्भव नहीं होता। जैसे हम हिन्दीमें मजेसे बोलते-लिखते हैं—

आलतू-फालतू बातें नहीं सुननी।

अब इस वाक्यका किसी दूसरी भाषामें अनुवाद करते समय 'आलतू' शब्द छोड़े बिना उपाय नहीं है; क्योंकि यह व्यर्थ शब्द है।

श्रीमद्भागवतमें आया—

'प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि।'—१.११.२७

इसमें 'प्रसूनवर्षैः अभिवर्षितः' यह संस्कृतकी विशेष शैली है। ठीक-ठीक शब्दानुवाद करें तो होगा—'पुष्पोंकी वर्षा मार्गमें बरसाये जाते हुए।' ऐसा प्रयोग हिन्दीको बिगाड़ता ही है। अतः हिन्दीके अनुवादकको तो 'मार्गमें पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी।' यही कहना पड़ेगा।

इसी प्रकारकी विवशता अनेक स्थानोंपर एकाध शब्द छोड़नेको बाध्य करती है।

अनेक स्थानोंपर शब्दका ठीक अर्थ देना सम्भव ही नहीं होता। वहाँ लाक्षणिक अर्थ ही देना पड़ता है। जैसे—

आजहारोल्बणं क्रोधं (३.१८.१३)

'आजहार' का ठीक अर्थ है झपटकर; किन्तु क्रोध तो किसीसे झपटा या छीना नहीं जा सकता। संस्कृतमें बोलनेकी यह शैली होनेपर भी हिन्दीमें तो लाक्षणिक अर्थ ही करना होगा 'उग्र क्रोधमें भरकर'। यह विवशता बहुत स्थानोंपर है; किन्तु जहाँ विवशता नहीं है, ठीक शब्दार्थ ही देनेका प्रयत्न किया गया है।

'हि' 'ह' 'वै' 'न्व' 'तु' 'त' जैसे शब्दोंका अनुवाद भी किया तो गया है; किन्तु इनका कोई एक निश्चित अर्थ नहीं होता। प्रसंगके अनुसार इनका अर्थ करना पड़ता है। जैसे 'रामश्च' का अर्थ 'राम और' तथा 'राम भी' दोनों ठीक हैं।

उवाचोंकी समस्या—

श्रीमद्भागवतमें 'उवाच' किस नियमसे, किस क्रमसे दिये गये हैं, इसका कोई क्रम नहीं है। जैसे—प्रथम स्कन्धके अध्याय १७ में श्लोक २० के पश्चात् 'सूत उवाच' का केवल एक श्लोक है। उसके पश्चात् 'राजोवाच' है। इस उवाचके चलते हुए ही पुनः श्लोक ३० के आगे 'राजोवाच' है। ऐसा क्यों है ?

क्योंकि श्लोक २८, २९, ३० सूतके हैं; किन्तु श्लोक २७ के पश्चात् 'सूत उवाच' नहीं है। आगे फिर श्लोक ३४ के पश्चात् 'सूत उवाच' केवल एक श्लोकका है।

एक ही श्लोकके लिए 'सूत उवाच' आया और ३ श्लोक होनेपर भी नहीं आया, इसका कोई समाधान नहीं है।

ऐसे अनेक स्थान पूरे ग्रन्थमें और प्रथम स्कन्धमें भी हैं।

पता नहीं इसपर विद्वान टीकाकारोंने अबतक क्यों ध्यान नहीं दिया था।

अनेक विद्वान श्रीमद्भागवतकी श्लोक-गणनामें उवाचोंको सम्मिलित करते हैं। अतः कोई उवाच बढ़ानेपर गणनाकी उनकी पद्धतिमें अन्तर अवश्य आवेगा। यह जानते हुए भी मैंने आवश्यक स्थलोंपर 'उवाच' बढ़ाये हैं और टिप्पणीमें ऐसे सब स्थलोंपर सूचित कर दिया है कि 'यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।'

उवाचोंके सम्बन्धकी दूसरी समस्या उनकी अनेकरूपता है। उदाहरणके लिए सनकादि कुमारोंके लिए 'मुनय ऊचुः' (३.१५.३१ के बाद) उसी अध्यायमें 'कुमारा ऊचुः' (३.१५.४५ के बाद) 'ऋषय ऊचुः (३.१६.१५ के बाद) आया है। ऐसे ही तृतीय स्कन्धमें प्रायः 'मैत्रेय उवाच' है, लेकिन इसी तृतीय स्कन्धके षष्ठ अध्यायके प्रारम्भमें 'मैत्रेय उवाच' के स्थानपर 'ऋषिरुवाच' है। 'राजोवाच' कहीं परीक्षितके लिए और कहीं युधिष्ठिर आदि अन्य किसीके लिए है। इस सम्बन्धमें कोई नियम नहीं माना गया है। अतः मुझे इसमें भी परिवर्तन करना उचित लगा। जहाँ भी ऐसा परिवर्तन मैंने किया है, नीचे टिप्पणीमें सूचित कर दिया है कि दूसरी प्रतियोंमें (विशेषतः गीताप्रेससे छपी प्रतिमें) उस उवाचका क्या रूप है।

पूरे ग्रंथमें उवाचोंमें एकरूपता लानेका प्रयत्न मैंने किया है। फलतः 'राजोवाच' केवल परीक्षितके लिए रहने दिया है। दूसरे राजाओंके लिए जहाँ 'राजोवाच' था, वहाँ उन राजाओंका नाम कर दिया है। ऐसे ही 'शौनक उवाच' 'मैत्रेय उवाच' आदिके लिए भी एक ही रूपके 'उवाच' सर्वत्र कर देनेकी धृष्टता की है।

उवाचोंको बढ़ानेकी परम्परा मैंने नवीन नहीं डाली है। गीताप्रेससे छपी श्रीमद्भागवतकी प्रतिमें भी कई स्थानोंपर टिप्पणीमें यह सूचना है कि वह उवाच प्राचीन प्रतियोंमें नहीं है। गीताप्रेसवालोंने अपनी ओरसे तो नहीं बढ़ाया होगा; किन्तु उनसे पूर्वके किसी टीकाकारने बढ़ाया होगा, जिसे वे आधार मानकर चले हैं। लेकिन सब आवश्यक स्थलोंपर 'उवाच' दे देनेका (जहाँ वे नहीं हैं) यह प्रथम प्रयास है।

उवाचोंमें किञ्चित् परिवर्तन भी हुआ है, यह गीताप्रेसकी प्रतिसे स्पष्ट हो जाता है। कहीं 'शुक उवाच' था, उसे 'श्रीशुक उवाच' किया गया है। ऐसे छोटे परिवर्तन और भी हैं; किन्तु उवाचोंकी पूरे ग्रन्थमें एकरूपता किसीने आवश्यक नहीं मानी है।

ऐसा परिवर्तन विद्वान लोकमान्य आचार्यों तथा दूसरे टीकाकारोंने अकारण नहीं छोड़ा है। उनका ध्यान इधर नहीं गया, ऐसा कहना भी अज्ञता होगी। उन्होंने सकारण जान-बूझकर ऐसे परिवर्तनोंको अनुचित माना है। यह जानते हुए भी मैंने ये परिवर्तन इस दृष्टिसे किये हैं कि अब समाजके विद्वानोंका भी बड़ा भाग सूक्ष्म महत्ताओंके स्थानपर ऊपरी बातोंपर बहुत अधिक ध्यान देता है। उसे ये परिवर्तन सम्भवतः ठीक लगेंगे और पूर्व रूपका पता तो टिप्पणियोंसे लग ही जाता है।

श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें—

'श्रीमद्भागवतं पुराण तिलकं' यह भागवतकी ही उक्ति अक्षरशः सत्य है। यह पुराणोंमें सर्वश्रेष्ठ है। दर्शन, साहित्य, शैली सब दृष्टिसे अद्वितीय है।

इतना होनेपर भी नीति है—

रिपोरपि गुणावाच्यं दोषाः वाच्यं गुरोरपि ।

—शत्रुके भी सद्गुणोंको और गुरुके भी दोषोंको कहना चाहिये। मेरे लिए भागवतके सम्बन्धमें किसी त्रुटिकी चर्चा गुरुके दोषोंकी चर्चा जैसी ही है।

यदि बस्तीके प्रज्ञाचक्षु श्रीधनराज शास्त्रीकी चर्चा छोड़ भी दें, जिनकी लिखायी कई ग्रंथोंकी विषय-सूची अपने ग्रंथ 'हिन्दुत्व' में स्व० प्रो० रामदास गौड़ने दी है—तो भी वर्तमानमें ही डा० गोपीनाथ कविराज, श्री सी० वाई० चिन्तामणि, सर भूलाभाई देसाई अद्भुत स्मरण शक्तिशाली पुरुष हुए हैं। इन्हें जीवित विश्वकोष कहा जाता था। यह देखते कुछ अटपटा नहीं लगता कि सूतजी या वैशम्पायनको कितने बड़े-बड़े ग्रन्थ कण्ठस्थ थे।

महाभारतमें ही चर्चा है कि व्यासजीने महाभारतकी रचना की और गणेशजीने उसे लिखा; किन्तु दूसरे पुराणोंको भी व्यासजीके ही सम्मुख लिखा गया, इसकी कोई चर्चा नहीं है।

श्रीमद्भागवत व्यासजीने शुकदेवजीको पढ़ाया। वर्णनसे लगता है, कण्ठस्थ ही पढ़ाया। शुकदेवजीने तो परीक्षितको सुनाया। सूतजी स्वयं कहते हैं कि जब शुकदेवजीने परीक्षितको सुनाया, तब वे वहाँ थे। वहीं उन्होंने सुना (१.३.४५)।

सूतजीने भी शौनकादि ऋषियोंको कण्ठस्थ ही सुनाया। इस प्रकार व्यासजीसे सूततक श्रीमद्भागवत कण्ठस्थ परम्परासे आया। इसे कब किसने लिपिवद्ध किया, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

श्रीमद्भागवतकी रचना भी पुरानी परम्पराके अनुसार श्लोकोंमें ही हुई होगी—इसमें सन्देह करनेका कारण नहीं है।

स्कन्धोंका विभाजन विषय-दृष्टिसे भी ऐसा है कि उसमें कोई परिवर्तन हुआ हो—ऐसा नहीं लगता।

बात रह जाती है 'उवाच' तथा अध्यायोंके विभाजन की। ग्रन्थमें अनेक स्थलोंपर 'उवाच' होने चाहिये, जो नहीं है। उन्हें मैंने बढ़ाया है। कण्ठ-परम्परासे लेखनतक आनेमें इनका छूटना सहज सम्भाव्य है।

अध्यायोंका विभाजन जैसा है—ऐसा लगता है कि इस विभाजनमें कोई नियम नहीं रखा गया है। कण्ठस्थकी परम्परामें या तो अध्याय-

विभाजन था ही नहीं और तब अध्यायान्तकी पुष्पिका भी नहीं होगी; और यदि था तो वह वक्ताकी इच्छापर ही रहा होगा।

अध्याय समान होने आवश्यक नहीं हैं। बहुत छोटे और बहुत बड़े अध्याय एक ही ग्रंथमें मिलना असामान्य बात नहीं है; किन्तु एक ही विषय जब कई अध्यायोंमें जाता हो तो अध्याय-समाप्ति तथा अध्याय-प्रारम्भ होनेका कुछ कारण, कोई संकेत वर्णनमें चाहिये। श्रीमद्भागवतमें ऐसा कुछ नहीं है। उदाहरणके लिए द्वितीय स्कन्धके पञ्चम-षष्ठ अध्यायको ले लें।

केवल इतना कह सकते हैं कि पञ्चम अध्यायके अन्तमें 'लोक-कल्पना' समाप्त हुई और षष्ठ अध्यायमें विराट् पुरुषके अङ्गोंमें तत्त्वोंका वर्णन हुआ; किन्तु षष्ठ अध्यायका आरम्भ ऐसा है जैसे अधूरेपनसे प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भमें विराट् पुरुषके लिए नाम तो दूर, सर्वनाम भी नहीं है।

ठीक इसके विपरीत ऐसा भी हुआ है कि एक ही अध्यायमें दो विषय ले लिये गये हैं। उदाहरणके लिए—दशम स्कन्ध, अध्याय १५ में श्लोक ४६ पर उस दिनका वर्णन समाप्त हो जाता है। अध्यायकी स्वाभाविक समाप्ति यहाँ होनी चाहिये। श्लोक ४७ से ५१ पर्यन्तकी कथा दूसरे दिनकी है और आगे अध्याय १६ इसी प्रसङ्गका है। अतः श्लोक ४७ से ५१ पर्यन्तके ५ श्लोक अगले अध्यायमें जाने उचित लगते हैं। ऐसा करनेसे कालिय नागका प्रसङ्ग दो अध्यायोंमें पूरा हो जाता।

श्रीमद्भागवतकी एक शैली ही है कि किसी कथाकी भूमिका पहिले अध्यायमें ही प्रारम्भ कर दी जाती है। जैसे श्रीशुकदेवजीका आगमन तथा राजा परीक्षितका प्रश्न प्रथम स्कन्धके अन्तिम अध्यायमें दिया गया और प्रश्नोंका उत्तर द्वितीय स्कन्धके प्रारम्भसे चला। इस प्रकार प्रथम स्कन्धकी समाप्ति अधूरेपनमें प्रतीत होती है।

ऐसे ही चीर-हरणके पश्चात् १०.२२.३७ पर अध्यायकी स्वाभाविक समाप्ति हो गयी थी। श्लोक ३८—केवल एक श्लोक यदि अगले तेईसवें अध्यायमें जाता तो यज्ञपत्नियोंपर अनुग्रहकी यह कथा एक ही अध्यायमें आ जाती; किन्तु उस कथाकी प्रस्तावना इस बाईसवें अध्यायमें ही एक श्लोकमें दे दी गयी है। इसे ग्रंथकी शैली ही कहना पड़ेगा।

लेकिन यही बात ऊपर कहे गये अध्याय १०.१५ के सम्बन्धमें नहीं कही जा सकती।

यही अवस्था स्कन्ध १२ में अध्याय ६-७ की है। अध्याय ६ में श्लोक ३५ तक प्रसङ्ग पूरा हो जाता है। श्लोक ३६ से वेदशाखा प्रणयन प्रसङ्ग है, जो इस अध्यायमें पूरा नहीं होता। या तो इस अध्यायको पृथक सातवें अध्याय सहित होना चाहिये था या कम-से-कम सातवें अध्यायके श्लोक ४ तक, जहाँतक अथर्वेदकी शाखाओंका वर्णन है, इसमें होना चाहिये था।

आधुनिकतासे—पाश्चात्य पाण्डित्य एवं तर्कसे भ्रान्त अनेक विद्वन्मन्य लोग 'वेदत्रयी' शब्दको ठीक न समझनेके कारण अथर्ववेदको पीछेकी रचना मानते हैं। वे समझते ही नहीं कि त्रयीका अर्थ कर्म,ज्ञान, उपासना प्रतिपादक है। अथर्ववेद यज्ञमें ब्रह्माके लिए है। उसके बिना यज्ञ होगा ही कैसे। लेकिन ऐसे दिग्भ्रमित लोगोंके भ्रमको पोषणका आधार मिल जाता है १२.६.८० तक ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेदका वर्णन एक साथ करके अथर्ववेदका वर्णन अगले सप्तम अध्यायमें ले जाकर पुराणोंके साथ कर देनेसे। इसलिए यहाँ अध्याय ६ श्लोक ३५ पर पूरा हो जाना चाहिये था और सप्तम अध्याय छठवें अध्यायके 'शौनक उवाच' से प्रारम्भ होकर यदि सप्तम अध्यायके अन्ततक एक साथ रहता तो वेद-पुराणादिका वर्णन एक साथ एक अध्यायमें हो जाता और किसी भ्रमको भी अवकाश नहीं होता।

अध्यायोंके सम्बन्धमें यह बात भागवतके विद्वानों द्वारा विचारणीय है। अपनी ओरसे ऐसे बड़े परिवर्तनका दुःसाहस मैंने नहीं किया है।

दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध) अध्याय ६० का श्लोक ५६ मुझे प्रक्षिप्त लगता है। इस एक श्लोकके कारण पूरा अध्याय ही असङ्गत हो गया है। इसमें 'तद्वधमक्षगोष्ठ्याम्' कहता है कि यह रुक्मिणी-परिहास अनिरुद्ध-विवाहके भी पश्चात् हुआ। पौत्रके भी विवाहित हो जानेके पश्चात् ऐसा परिहास सङ्गत नहीं हो सकता। फिर महाभारत युद्धके समय रुक्मी जीवित था। इस परिहासमें श्रीकृष्ण रुक्मिणीको जिन नरेशोंमें-से किसीके पास जानेको कहते हैं, वे सब बहुत पहिले मारे जा चुके हैं। यह बात रुक्मिणीसे अज्ञात नहीं होगी। तब उन्हें इस परिहाससे हँसी आती या वे मूर्छित होतीं? इस एक श्लोकको छोड़ देनेसे परिहास सङ्गत हो जाता है।

इस संस्करणमें मेरी अल्पज्ञताके कारण अनेक त्रुटियाँ होंगी। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि जान-बूझकर मैंने ऐसा नहीं किया है। सूचना मिलनेपर आगामी संस्करणमें उसे सुधारा जा सकता है।

—सुदर्शनसिंह

॥ प्रथम स्कन्ध ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

व्यास उवाच* —

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥१॥

जन्म आदि अस्य यतः अन्वयात् इतरतः च अर्थेषु अभिज्ञः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः तेजः वारि मृदां यथा विनिमयः यत्र त्रिसर्गः अमृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ १ ॥

अस्य	इस (जगतकी)	**आदिकवये**	ब्रह्माके
जन्म	उत्पत्ति	**हृदा**	हृदयमें
आदि	स्थिति, प्रलय	**ब्रह्म**	वेदोंको
यतः	जिस (परमात्मा) से होती है,	**तेने**	प्रकाश किया ।
		यत्	ज़िन(वेदोंके विषयमें)
अर्थेषु	(घट घटादि समस्त) पदार्थोंमें	**सूरयः**	बड़े विद्वान (ऋषिगण) भी
अन्वयात्	प्रविष्ट होनेसे	**मुह्यन्ति**	मोह (भ्रम) में पड़ जाते हैं।
च	और		
इतरतः	व्यतिरिक्त भी होनेसे (सिद्ध है ।)	**तेजः**	अग्नि
		वारि	जल
अभिज्ञः	ज्ञानस्वरूप (सर्वज्ञ) है।	**मृदा**	मिट्टी (पृथ्वी) का
		यथा	जैसे
स्वराट्	स्वयं प्रकाश है ।	**विनिमयः**	परस्पर (भ्रान्त) प्रतीति होती है ।
य	जिस (नारायण स्वरूप) ने	**यत्र**	(वैसे ही) जिसमें

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

त्रिसर्गः	(सत्त्व,रजस, तमस) तीन गुणवाला संसार	**कुहकं**	मायाको
अमृषा	सत्य (प्रतीत हो रहा) है ।	**निरस्त**	दूर हटाये
स्वेन	अपने	**परं**	(उस) परम
धाम्ना	स्वरूपसे	**सत्यं**	सत्यका
सदा	नित्य	**धीमहि**	(हम) ध्यान करते हैं ॥ १ ॥

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥२॥

धर्मः प्रोज्झित कैतवः अत्र परमः निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवं अत्र वस्तु शिवदं ताप त्रयः उन्मूलनं श्रीमद्भागवते महामुनि कृते किं वा परैः ईश्वरः सद्यः हृदि अवरुध्यते अत्र कृतिभिः शुश्रूभिः तत्क्षणात् ॥ २ ॥

महामुनि	भगवान व्यास (अथवा श्रीनारायण)	**उन्मूलनम्**	समूल नष्ट करनेवाला है ।
कृते	द्वारा बनाये	**निर्मत्सरांणां**	गुणमें दोष न देखने वाले
अत्र	इस	**सतां**	सत्पुरुषोंके लिए
श्रीमद्भागवते	श्रीमद्भागवतमें	**शिवदं**	परम कल्याणकारी
प्रोज्झित	त्यागा हुआ	**वास्तवं**	नित्य-तथ्यरूप
कैतवः	कपट (सकाम धर्म, अर्थवादादि)	**वस्तु**	परमार्थ सत्ता
परमः	(मोक्ष रूप) आत्यन्तिक	**अत्र**	इस (श्रीमद्भागवतमें)
धर्मः	धर्म (निरूपित) है ।	**वेद्यं**	जानने योग्य है ।
तापत्रयः	(जो दैहिक, आधिदैविक, आधि-भौतिक) तीनों तापोंको	**किं वा**	अथवा क्या
		परैः	दूसरे किसी (साधन) से
		ईश्वरः	परमात्मा
		सद्यः	तुरन्त

हृदि	हृदयमें		रखनेवाले
अवरुध्यते	निरुद्ध होता है ? (नहीं होता)	**कृतिभिः**	पुण्यात्माओंका
		तत् क्षणात्	उसी क्षणमें (परमात्मामें हृदय) निरुद्ध होता है ॥२॥
अत्र	इस (श्रीमद्भागवत) को		
शुश्रूषिभिः	सुननेकी इच्छा		

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥३॥

निगम कल्पतरोः गलितं फलं शुकमुखात् अमृत द्रव संयुतं पिबत भागवतं रसं आलयं मुहुः अहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ३ ॥

भागवतं	(यह) श्रीमद्भागवत	**रसिकाः**	रसज्ञ लोगों
निगम	वेद (रूपी)	**भावुका;**	भक्त हृदयजनो
कल्पतरोः	कल्पवृक्षका	**भुवि**	पृथ्वीपर(जन्म लेकर)
गलितं	(पक कर) टपका	**आलयं**	मृत्यु पर्यन्त अथवा बार-बार जन्म लेते हुए प्रलय पर्यन्त
फलं	फल है ।	**रसं**	(इस श्रीमद्भागवत रूपी) रसको
शुकमुखात्	तोतेका मुख लगनेसे (शुकदेवजीके मुखसे निकलनेके कारण)	**पिवत**	(बार-बार) पीते रहो ॥ ३ ॥
अमृत द्रव	अमृत रससे		
संयुतं	युक्त हो गया है ।		
अहो	हे		

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ।
सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥४॥

नैमिषे अनिमिष क्षेत्रे ऋषयः शौनक आदयः सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्र समं आसत ॥ ४ ॥

अनिमिष क्षेत्रे	वैष्णव क्षेत्र	**शौनकादयः**	शौनक आदि
नैमिषे	नैमिषारण्यमें	**ऋषयः**	ऋषिगण

स्वर्गाय लोकाय	स्वर्ग लोक(भगवद्धाम या महः, जनः, तपः, सत्यादि ऋषि लोक)[1] की कामनासे	**सहस्र**	एक सहस्र
		समं	वर्षका(संकल्प करके)
		आसत	स्थित हुए थे ॥ ४ ॥

त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः ।
सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥५॥

त एकदा तु मुनयः प्रातः हुत हुताग्नयः सत्कृतं सूतं आसीनं प्रपच्छुः इदं आदरात् ॥ ५ ॥

त	वे (शौनकादि)	**आसीनं**	बैठे हुए
मुनयः	मुनिगण	**सूतं**	रोमहर्षणके पुत्र सूत उग्रश्रवासे
एकदा तु	एकबार तो	**आदरात्**	आदरपूर्वक
प्रातः	सवेरे	**इदं**	यह
हुताग्नयः	हवनीय अग्निमें	**प्रपच्छुः**	पूछने लगे ॥ ५ ॥
हुतः	हवन करके		
सत्कृतं	सत्कार पाये हुए		

शौनक उवाच[2]—

त्वया खलु पुराणानि सेतिहासानि चानघ ।
आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ॥६॥

त्वया खलु पुराणानि स इतिहासानि च अनघ आख्यातानि अपि अधीतानि धर्मशास्त्राणि यानि उत ॥ ६ ॥

---

[1] श्रीधर स्वामीने और दूसरे भी अधिकांश टीकाकारोंने 'स्वर्गाय लोकाय' का अर्थ 'भगवद्धाम प्राप्तिके लिए' किया है; किन्तु भगवद्धाम पानेके लिए यज्ञ करनेका न कहीं विधान है, न कोई उल्लेख है। इसी स्कन्धके अध्याय १८ का श्लोक १२ देखना चाहिये। उसमें यही ऋषि लोग अपने यज्ञीय कर्मको आश्वासनहीन तथा चित्तको धूम्र कलुषित करनेवाला कहते हैं।

[2] अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषय ऊचुः' पाठ है।

अनघ	निष्पाप (सूतजी)
खलु	निश्चय ही
त्वया	आपने
पुराणानि	सब पुराण
स इतिहासानि	(महाभारत, रामायणादि) इतिहास ग्रंथोंके सहित
च	और
धर्मशास्त्राणि	धर्मशास्त्र (स्मृति आदि)
यानि	जितने हैं
उत	उन सबको
अधीतानि	पढ़ा है,
आख्यातानि	(उनका) प्रवचन
अपि	भी किया है ॥६॥

यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवान् बादरायणः ।
अन्ये च मुनयः सूत परावरविदो विदुः ॥७॥

यानि वेद विदां श्रेष्ठः भगवान् बादरायणः अन्ये च मुनयः सूत परावर विदः विदुः ॥ ७ ॥

सूत	सूतजी !
वेद विदां	वेद वेत्ताओंमें
श्रेष्ठः	उत्तम
भगवान्	अवतारस्वरूप
बादरायणः	श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी
च	और
अन्ये	दूसरे भी
परावरविदः	लोक-परलोकका तत्त्व जाननेवाले
मुनयः	मुनिगण
यानि	जो कुछ
विदुः	जानते हैं ॥ ७ ॥

वेत्थ त्वं सौम्य तत्सर्वं तत्त्वतस्तदनुग्रहात् ।
ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यत्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥८॥

वेत्थ त्वं सौम्य तत् सर्वं तत्त्वतः तत् अनुग्रहात् ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवः गुह्यं अपि उत ॥ ८ ॥

तत्	उनके
अनुग्रहात्	अनुग्रहसे
सौम्य	सौम्य !
त्वं	आप
तत्	वह
सर्वं	सब
तत्त्वतः	तत्त्वसे
वेत्थ	जानते हैं ।

स्निग्धस्य	स्नेह (श्रद्धा) करनेवाले	गुह्यं	छिपाने योग्य
शिष्यस्य	शिष्यके लिए	अपि उत	होनेपर भी
गुरवः	गुरुजन	ब्रूयुः	बतला देते हैं ॥ ८ ॥

तत्र तत्राञ्जसाऽऽयुष्मन् भवता यद्विनिश्चितम् ।
पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि ॥९॥

तत्र तत्र अञ्जसा आयुष्मन् भवता यत् विनिश्चितं पुंसां एकान्ततः श्रेयः तत् नः शंसितुं अर्हसि ॥ ९ ॥

आयुष्मन्	आयुष्मन्	श्रेयः	कल्याणकारी
तत्र तत्र	उन-उन (पुराणादि) में	विनिश्चितं	विशेष रूपसे निश्चय किया है,
भवता	आपने	तत्	वह
यत्	जो	नः	हम लोगोंसे
पुंसां	पुरुषोंके लिए	शंसितुं	कहनेके
अञ्जसा	सरलतापूर्वक पाने योग्य	अर्हसि	योग्य हैं (कहनेकी कृपा करें) ॥ ९ ॥
एकान्तः	आत्यन्तिक		

प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन् युगे जनाः ।
मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ॥१०॥

प्रायेण अल्प आयुषः सभ्य कलौ अस्मिन् युगे जनाः मन्दाः सुमन्द मतयः मन्द भाग्या हि उपद्रुताः ॥ १० ॥

सभ्य	सभ्य	सुमन्द	अत्यन्त अल्प
प्रायेण	प्रायः	मतयः	बुद्धिवाले
जनाः	लोग	मन्द	अल्प
अस्मिन्	इस	भाग्या	भाग्यवाले
कलौ	कलि	हि	निश्चय ही
युगे	युगमें	उपद्रुताः	उपद्रवोंसे ग्रस्त (होंगे) ॥ १० ॥
मन्दाः	अल्पशक्ति		

भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः ।
अतः साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां येनात्मा सम्प्रसीदति ॥११॥

भूरीणि भूरि कर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः अतः साधो अत्र यत् सारं समुद्धृत्य मनीषया ब्रूहि नः श्रद्दधानानां येन आत्मा सं प्रसीदति ॥ ११ ॥

भूरीणि	बहुत-से (शास्त्र) हैं	**येन**	जिससे
भूरि	बहुत-से	**आत्मा**	अन्तःकरण
कर्माणि	कर्म हैं,	**सं**	भली प्रकार
विभागशः	अनेक विभागवाले	**प्रसीदति**	निर्मल होता है
श्रोतव्यानि	सुननेके विषय हैं;	**मनीषया**	बुद्धिसे
अतः	अतएव	**समुद्धृत्य**	(उसका) निश्चय करके
साधो	साधु स्वभाव सूतजी !	**नः**	हम
अत्र	इस विषयमें	**श्रद्दधानानां**	श्रद्धा करनेवालोंसे
यत्	जो	**ब्रूहि**	कहिये ॥ ११ ॥
सारं	सार हो,		

सूत जानासि भद्रं ते भगवान् सात्वतां पतिः ।
देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया ॥१२॥

सूत जानासि भद्रं ते भगवान् सात्वतां पतिः देवक्यां वसुदेवस्य जातः यस्य चिकीर्षया ॥ १२ ॥

सूत	सूतजी !	**वसुदेवस्य**	वसुदेवकी (पत्नी)
ते	आपका	**देवक्यां**	देवकीसे
भद्रं	कल्याण हो ।	**यस्य**	जिस (कार्य) की
सात्वतां	सात्वत वंशवाले या भक्तोंके	**चिकीर्षया**	करनेकी इच्छासे
पतिः	स्वामी	**जातः**	उत्पन्न हुए
भगवान	भगवान श्रीकृष्ण	**जानासि**	(वह आप) जानते हैं ॥ १२ ॥

तन्नः शुश्रूषमाणानामर्हस्यङ्गानुवर्णितुम् ।
यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय च ॥१३॥

तत् नः शुश्रूषमाणानां अर्हस्य अङ्ग अनुवर्णितुम् यस्य अवतारः भूतानां क्षेमाय च भवाय च ॥ १३ ॥

अङ्ग	प्रिय सूतजी !	**च**	भी (हुआ है)
यस्य	जिन (भगवान) का	**ततः**	वह
अवतारः	अवतार	**नः**	हम
भूतानां	प्राणियोंके	**शुश्रूषमाणानां**	सुननेकी इच्छा वालोंसे (आपको)
क्षेमाय	कल्याणके लिए	**अनुवर्णितुं**	वर्णन करना
च	और	**अर्हस्य**	चाहिये ॥ १३ ॥
भवाय	समृद्धि (उन्नति) के लिए		

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ।
ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम् ॥१४॥

आपन्नः ससृतिं घोरां यत् नाम विवशः गृणन् ततः सद्यः विमुच्येत यत् विभेति स्वयं भयम् ॥ १४ ॥

यत्	जिन भगवानसे	**नाम**	नाम
स्वयं	स्वयं	**विवशः**	विवशतासे भी
भयं	भय भी	**गृणन्**	उच्चारण करके
विभेति	डरता है,	**ततः**	उस (नामोच्चारण) के प्रभावसे (जन्म-मरणके चक्रसे)
घोरां	अत्यन्त दारुण		
संसृतिं	जन्म-मरणके चक्रमें		
आपन्नः	पड़ा हुआ (जीव)	**सद्यः**	तत्काल
यत्	जिनका	**विमुच्येत**	छूट जाता है ॥१४॥

यत्पादसंश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः ।
सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया ॥१५॥

यत् पाद संश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः सद्यः पुनन्ति उपस्पृष्टाः स्वर्धुनी आपः अनुसेवया ॥ १५ ॥

सूत	सूतजी !	**सद्यः**	तत्काल
यत्	जिनके	**पुनन्ति**	पवित्र कर देते हैं ।
पाद	चरणोंका	**स्वर्धुनी**	गंगाजीका
संश्रयाः	आश्रय लेनेवाले	**आपः**	जल तो
प्रशमायनाः	परम शान्तिके निवास	**अनुसेवया**	बार-बार सेवन
मुनयः	मुनिगण		करनेपर (पवित्र)
उपस्पृष्टाः	सम्पर्कमें आये हुएको		करता है ॥ १५ ॥

को वा भगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेड्यकर्मणः ।
शुद्धिकामो न शृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ॥१६॥

कः वा भगवतः तस्य पुण्यश्लोक ईड्य कर्मणः शुद्धिकामः न शृणुयात् यशः कलिमलापहम् ॥ १६ ॥

शुद्धिकामः	अपनी शुद्धि चाहने वाला	**कर्मणः**	कर्म करनेवाले
वा	भला	**भगवतः**	भगवानके
कः	कौन	**कलिमलापहं**	कलियुगके दोषको नष्ट करनेवाले
तस्य	उन	**यशः**	सुयशको
पुण्य-श्लोक	पवित्र कीर्ति	**न**	नहीं
ईड्य	स्तुति करने योग्य	**शृणुयात्**	श्रवण करेगा ॥१६॥

तस्य कर्माण्युदाराणि परिगीतानि सूरिभिः ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः कलाः ॥१७॥

तस्य कर्माणि उदाराणि परिगीतानि सूरिभिः ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः कलाः ॥ १७ ॥

लीलया	लीलासे	**दधतः**	धारण करते हुए
कलाः	कलाओंको (अवतारोंको)	**तस्य**	उन (भगवान)के
		उदाराणि	उदार

कर्माणि	चरितोंका	**नः**	हम
सूरिभिः	बहुत बड़े(नारदादि) विद्वानोंने	**श्रद्दधानानां**	श्रद्धा करनेवालोंके प्रति
परिगीतानि	बार-बार गान किया है ।	**ब्रूहि**	(उनका) वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः ।
लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया ॥१८॥

अथ आख्याहि हरेः धीमन् अवतार कथाः शुभाः लीला विदधतः स्वैरं ईश्वरस्य आत्ममायया ॥ १८ ॥

धीमन्	बुद्धिमान (सूतजी) !	**हरेः**	श्रीहरिकी
आत्ममायया	अपनी योगमायासे	**शुभाः**	परम मंगलमयी
स्वैरं	स्वच्छन्द रूपसे	**अवतार**	अवतार
लीला	लीलाका	**कथा**	कथाका
विदधतः	विशेष रूपसे धारण करनेवाले	**अथ**	अब
		आख्याहि	वर्णन कीजिये ॥१८॥
ईश्वरस्य	(उन) सर्वसमर्थ		

वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे ।
यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ॥१९॥

वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोक विक्रमे यत् शृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ॥ १९ ॥

उत्तमश्लोक	उत्तम यशवाले (भगवानके)	**तत्**	जिन
		रसज्ञानां	रसज्ञ
विक्रमे	पराक्रम (सुनने) में	**शृण्वतां**	श्रोताओंको
वयं तु	हम लोग तो	**पदे पदे**	प्रत्येक पदमें
वितृप्याम	विशेष तृप्त होते	**स्वादु स्वादु**	अत्यन्त स्वाद प्रतीत होता है ॥१९॥
न	नहीं हैं ।		

कृतवान् किल वीर्याणि सह रामेण केशवः ।
अतिमर्त्यानि भगवान् गूढः कपटमानुषः ॥२०॥

कृतवान् किल वीर्याणि सह रामेण केशवः अतिमर्त्यानि भगवान् गूढः कपट मानुषः ॥ २० ॥

गूढः	छिपे हुए	**सह**	साथ
कपट	मायासे	**किल**	आश्चर्यजनक
मानुषः	मनुष्य बने	**अतिमर्त्यानि**	मनुष्यकी शक्ति-
भगवान	सर्वसमर्थ		सीमासे बाहरके
केशवः	श्रीकृष्णने	**वीर्याणि**	पराक्रम
रामेण	श्रीबलरामके	**कृतवान्**	किये हैं ॥२०॥

कलिमागतमाज्ञाय क्षेत्रेऽस्मिन् वैष्णवे वयम् ।
आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणा हरेः ॥२१॥

कलिं आगतं आज्ञाय क्षेत्रे अस्मिन् वैष्णवे वयं आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणाः हरेः ॥ २१ ॥

कलिं	कलियुगको	**दीर्घसत्रेण**	दीर्घकालीन सत्रके
आगतं	आया		लिए
आज्ञाय	जानकर	**आसीना**	बैठ गये हैं ।
वयं	हम लोग	**हरेः**	श्रीहरिकी
अस्मिन्	इस	**कथायां**	कथा (सुनने)के लिए
वैष्णवे	वैष्णव	**सक्षणाः**	(हमारे पास) बहुत
क्षेत्रे	तीर्थमें		अवकाश है ॥ २१ ॥

त्वं नः संदर्शितो धात्रा दुस्तरं निस्तितीर्षताम् ।
कलिं सत्त्वहरं पुंसां कर्णधार इवार्णवम् ॥२२॥

त्वं नः संदर्शितः धात्रा दुस्तरं निस्तितीर्षताम् कलिं सत्त्वहरं पुंसां कर्णधार इव अर्णवम् ॥ २२ ॥

पुंसां	पुरुषोंकी	**दुस्तरं**	दुस्तर
सत्त्वहरं	सत्व (शक्ति) को हरण कर लेनेवाले	**कलि**	कलियुग रूपी
		अर्णवं	समुद्रको

निस्तितीर्षतां	पार करनेकी इच्छावाले	**कर्णधार**	कर्णधारके
नः	हम सबको	**इव**	समान
धात्रा	ब्रह्माजीने	**संदर्शितः**	दिखलाया (मिलाया) है ॥२२॥
त्वं	आपको		

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि ।
स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥२३॥

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि स्वां काष्ठां अधुना उपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥ २३ ॥

योगेश्वरे	योगेश्वर,	**उपेते**	चले जानेपर
ब्रह्मण्ये	ब्राह्मणोंके भक्त,	**धर्मः**	धर्म
धर्मवर्मणि	धर्मके रक्षक	**कं**	किसकी
कृष्णे	श्रीकृष्णके	**शरणं**	शरणमें
अधुना	इस समय	**गतः**	गया है—
स्वां	अपने	**ब्रूहि**	यह बतलाइये ॥२३॥
काष्ठां	धाममें		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः

अथ द्वितीयोऽध्यायः

व्यास उवाच–

इति सम्प्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः ।
प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१॥

इति सम्प्रश्न संहृष्टः विप्राणां रौमहर्षणिः प्रतिपूज्य वचः तेषां प्रवक्तुं उपचक्रमे ॥ १ ॥

इति	इस प्रकार	**वचः**	वाणी (प्रश्न) का
विप्राणां	शौनकादि ऋषियोंके	**प्रतिपूज्य**	भली प्रकार आदर करके
सम्प्रश्न	भली प्रकार पूछनेसे		
संहृष्टः	अत्यन्त प्रसन्न होकर	**प्रवक्तुं**	बोलने(प्रवचन करने) को
रौमहर्षणिः	रोमहर्षणजीके पुत्र उग्रश्रवा सूत	**उपचक्रमे**	उपक्रम करने लगे ॥ १ ॥
तेषां	उन (ऋषियों) के		

सूत उवाच–

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥२॥

यं प्रव्रजन्तं अनुपेतं अपेत कृत्यं द्वैपायन· विरह-कात्रः आजुहाव पुत्रेति तन्मय तया तरवः अभिनेदुः तं सर्वभूत हृदयं मुनिं आनतः अस्मि ॥२॥

मङ्गलाचरण करते सूतजी कहते हैं—

अनुपेतं	यज्ञोपवीत (संस्कार) नहीं हुआ था, तभी	**कृत्यं**	(कोई वैदिक) कर्म
		अपेत	किये बिना

प्रव्रजन्तं	परिव्राजक बनकर जाते हुए	**तरवः**	वृक्ष समूह
यं	जिन (शुकदेवजी)को	**अभिनेदुः**	चारों ओरसे(जिनकी ओरसे) उत्तर देने लगे,
विरह-	वियोगमें		
कातरः	व्याकुल होकर	**तं**	उन
द्वैपायनः	भगवान श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजी	**सर्वभूत**	सब प्राणियोंके
		हृदयं	हृदयमें स्थित अन्तर्यामी स्वरूप
पुत्रेति	हे पुत्र ! हे पुत्र !!		
आजुहाव	पुकारने लगे	**मुनिं**	मुनि श्रीशुकदेवजीको
तन्मयतया	(सर्व व्यापक भगवानसे)तन्मय होनेके कारण	**अस्मि**	हम
		आनतः	प्रणाम करते हैं ॥२॥

यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेकम्
अध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम् ।
संसारिणां करुणयाऽऽह पुराणगुह्यं
तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥३॥

यः स्वानुभावं अखिल श्रुतिसारं एकं अध्यात्म दीपं अतितितीर्षतां तमः अन्धं संसारिणां करुणया आह पुराणं गुह्यं तं व्याससूनुं उपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥ ३ ॥

तमः	(अज्ञान रूपी) घोर	**श्रुतिसारं**	श्रुतियों (वेदशास्त्रों) का तात्पर्य रूप
अन्धं	अन्धकारसे		
अतितितीर्षतां	आत्यन्तिक पार जानेकी इच्छावाले	**एकं**	एकमात्र
		अध्यात्म	अध्यात्म तत्त्वको
संसारिणां	सांसारिक लोगोंपर	**दीपं**	प्रकाशित करनेवाले दीपकके समान
करुणया	करुणा करके		
यः	जिन्होंने	**गुह्यं**	(अत्यन्त) गोपनीय
स्वानुमावं	अपने अनुभवस्वरूप	**पुराण**	पुराण श्रीमद्भागवत को
अखिल	समस्त		

आह	सुनाया	**व्याससुनुं**	व्यास-नन्दन (शुकदेव) जी की
त	उन		
मुनीनां	मुनियोंके भी	**उपयाम**	(मैं) शरण-ग्रहण
गुरु	गुरु (सर्वश्रेष्ठ)		करता हूँ ॥ ३ ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥४॥

नारायणं नमः कृत्य नरं च एव नरोत्तमं देवीं सरस्वतीं व्यासं ततः जयं उदीरयेत् ॥ ४ ॥

नारायणं	(ऋषि रूपमें अवतीर्ण) भगवान नारायणको,	**च**	और
		व्यासं	(भागवतके कर्ता) भगवान व्यासको
नरोत्तमं	मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ (नारायणके सखा)	**एव**	भी
		नमः	नमस्कार
नरं	नरको,	**कृत्य**	करके
देवीं	देवी	**ततः**	तब
सरस्वतीं	(विद्या एवं वाणीकी अधिदेवता)सरस्वती	**जयं**	जय
		उदीरयेत्	बोले (जयकार करे ।)* ॥ ४ ॥

मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम् ।
यत्कृतः कृष्णसंप्रश्नो येनात्मा सुप्रसीदति ॥५॥

मुनयः साधु पृष्टः अहं भवद्भिः लोक-मङ्गलं यत् कृतः कृष्ण-सम्प्रश्नः येन आत्मा सुप्रसीदति ॥ ५ ॥

मुनयः	मुनियों !	**अहं**	मैं
भवद्भिः	आप लोगों द्वारा	**लोक-मंगलं**	लोक-मंगलकारी

---

* टीकाकारोंने 'जयमुदीरयेत्' का अर्थ 'भागवतका पाठ करे' किया है; किन्तु यह श्लोक महाभारतमें तथा सब पुराणोंमें है । अतः इसका अर्थ यह कि नारायण, नर, सरस्वती तथा व्यासजीको नमस्कारके बाद उनका जयकार करे ।

साधु	उत्तम ढंगसे	**कृतः**	(आपने) किया है।
पृष्टः	पूछा गया हूँ।	**येन**	जिससे
यत्	क्योंकि	**आत्मा**	अन्तःकरण
कृष्ण-सम्प्रश्नः	श्रीकृष्णके सम्बन्धमें सम्यक् प्रश्न	**सुप्रसीदति**	भली प्रकार निर्मल हो जाता है ॥५॥

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ॥६॥

स वै पुंसां परः धर्मः यतः भक्तिः अधोक्षजे अहैतुकी अप्रतिहता यया आत्मा सम्प्रसीदति ॥ ६ ॥

पुंसा	पुरुषोंका	**अप्रतिहता**	कभी खण्डित न होनेवाली
वै	निश्चय ही	**भक्तिः**	भक्ति हो,
स	वही	**यया**	जिसके द्वारा
परः	परम	**आत्मा**	अन्तःकरण
धर्मः	धर्म है,	**सम्प्रसीदति**	भली प्रकार निर्मल हो जाता है ॥ ६ ॥
यतः	जिससे		
अधोक्षजे	अन्तर्यामी भगवानमें		
अहैतुकी	निष्काम		

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम् ॥७॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः जनयति आशु वैराग्यं ज्ञानं च यत् अहैतुकम् ॥ ७ ॥

भगवति	भगवान्	**च**	और
वासुदेवे	वासुदेवमें	**यत्**	जो
प्रयोजितः	करने (लगाने) पर	**अहैतुकं**	कर्म-कारण रहित
भक्तियोगः	भक्तियोग	**ज्ञानं**	ज्ञान है (उसको)
आशु	शीघ्र	**जनयति**	उत्पन्न कर देता है ॥ ७ ॥
वैराग्यं	वैराग्यको		

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥८॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः न उत्पादयेत् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥ ८ ॥

यदि	यदि	**रतिं**	प्रीति
पुंसां	पुरुषोंके द्वारा	**उत्पादयेत्**	उत्पन्न
स्वनुष्ठितः	विधिवत् आचरित	**न**	नहीं करे,
यः	जो	**हि**	निश्चय ही
धर्मः	धर्म	**केवलं**	(यह) केवल
विष्वक्सेन	भगवान् श्रीहरिकी	**श्रम**	परिश्रम
कथासु	कथामें	**एव**	मात्र है ॥८॥

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥९॥

धर्मस्य हि आपवर्ग्यस्य न अर्थः अर्थाय उपकल्पते न अर्थस्य धर्म-एकान्तस्य कामः लाभाय हि स्मृतः ॥ ९ ॥

हि	निश्चय ही	**अर्थस्य**	धनका प्रयोजन
धर्मस्य	धर्मका	**हि**	निश्चय ही
आपवर्ग्यस्य	(फल) मोक्ष है,	**धर्म-एकान्तस्य**	एकमात्र धर्म (बतलाया गया) है
अर्थः	(उसका) प्रयोजन		
अर्थाय	धन पानेके लिए	**कामः**	भोगोंकी
न	नहीं	**लाभाय**	प्राप्ति
उपकल्पते	माना गया है ।	**न**	नहीं ॥ ९ ॥
स्मृतः	शास्त्रोंमें		

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥१०॥

कामस्य न इन्द्रिय प्रीतिः लाभः जीवेत यावता जीवस्य तत्त्व-जिज्ञासा न अर्थः यश्च इह कर्मभिः ॥ १० ॥

कामस्य	भोगोंका (प्रयोजन)
इन्द्रिय	इन्द्रियोंको
प्रीतिः	प्रसन्न करना
न	नहीं है।
लाभः	इन (भोगोंका) लाभ (प्रयोजन)
जीवेत	जीवन धारण हो—
यावता	उतना ही है।
जीवस्य	जीवन धारणका (प्रयोजन)
तत्त्व-जिज्ञासा	परमतत्त्वको जाननेकी इच्छा होना है।
इह	इस संसारमें
कर्मभिः	कर्मोंके द्वारा
यश्च	जो कुछ होता या जो स्वर्गादि मिलता है
अर्थः	(वह) प्रयोजन
न	नहीं है ॥ १० ॥

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥११॥

वदन्ति तत् तत्त्वविदः तत्त्वं यत् ज्ञानं अद्वयं ब्रह्म इति परमात्मा इति भगवान् इति शब्द्यते ॥ ११ ॥

तत्त्वविदः	तत्त्ववेत्ता लोग
यत्	जो
अद्वयं	अद्वितीय
ज्ञानं	ज्ञान है
तत्	उसे
तत्त्वं	तत्त्व
वदन्ति	कहते हैं
ब्रह्म इति	(वही) ब्रह्मके नामसे
परमात्मा इति	परमात्माके नामसे
भगवान् इति	भगवान्‌के नामसे
शब्द्यते	कहा जाता है ॥११॥

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया ।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ॥१२॥

तत् श्रद्दधाना मुनयः ज्ञान वैराग्य युक्तया पश्यन्ति आत्मनि च आत्मानं भक्त्या श्रुत गृहीतया ॥ १२ ॥

श्रद्दधाना	श्रद्धावान
मुनयः	मुनिगण
ज्ञान	ज्ञान
वैराग्य	वैराग्यसे
युक्तया	संयुक्त
श्रुत	(वेद-पुराणादि)श्रवणसे
गृहीतया	ग्रहण (उत्पन्न) हुई
भक्त्या	भक्तिके द्वारा

तत्	उस	**आत्मनि च**	अपने अन्तःकरणमें ही
आत्मानं	आत्माको	**पश्यन्ति**	देखते हैं ॥१२॥

अतः पुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः ।
स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥१३॥

अतः पुंभिः द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रम विभागशः स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिः हरि तोषणम् ॥ १३ ॥

द्विजश्रेष्ठाः	ब्राह्मणोत्तमो !	**स्वनुष्ठितस्य**	विधिवत् आचरण (पालन) करनेकी
अतः	इसलिए	**संसिद्धिः**	परम सफलता
पुंभिः	पुरुषोंके द्वारा	**हरि**	श्रीहरिको
वर्णाश्रम	वर्णों और आश्रमोंके	**तोषणम्**	सन्तुष्ट करना ही है ॥ १३ ॥
विभागशः	विभागके अनुसार		
धर्मस्य	धर्मके		

तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥१४॥

तस्मात् एकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः श्रोतव्यः कीर्तितव्यः च ध्येयः पूज्यः च नित्यदा ॥ १४ ॥

तस्मात्	इसलिए	**कीर्तितव्यः**	कीर्तन करने योग्य हैं
एकेन	एकाग्र	**च**	और
मनसा	मनके द्वारा	**ध्येयः**	ध्यान करने योग्य हैं
सात्वतां	भक्तोंके	**च**	और
पतिः	स्वामी	**नित्यदा**	सदा
भगवान	भगवान् ही	**पूज्यः**	पूजन करने योग्य हैं ॥ १४ ॥
श्रोतव्यः	सुनने योग्य है,		

यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम् ।
छिन्दन्ति कोविदास्तस्य को न कुर्यात्कथारतिम् ॥१५॥

यत् अनुध्या असिना युक्ताः कर्मग्रन्थि निबन्धनं छिन्दन्ति कोविदाः तस्य कः न कुर्यात् कथा रतिम् ॥ १५ ॥

युक्ताः	(भगवानमें) चित्त लगाये लोग	**कर्मग्रन्थि**	कर्मोंकी गाँठको
यत्	जिनके	**छिन्दन्ति**	काट देते हैं,
अनुध्या	बराबर चिन्तन (ध्यान) रूपी	**कः**	(तब भला) कौन
असिना	तलवारसे	**कोविदाः**	चतुर (बुद्धिमान्)
निबन्धनं	बहुत कठोरतासे बँधी	**तस्य**	उन (भगवान्) की
		कथा	कथामें
		रतिं	प्रीति
		न कुर्यात्	नहीं करेगा ॥१५॥

शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः ।
स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥१६॥

शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेव कथा रुचिः स्यात् महत् सेवया विप्राः पुण्य तीर्थ निषेवणात् ॥ १६ ॥

विप्राः	ब्राह्मणो !	**श्रद्धया**	श्रद्धा होनेपर,
पुण्य	पवित्र	**महत्**	महापुरुषोंकी
तीर्थ	तीर्थका	**सेवया**	सेवासे
निषेवणात्	भली प्रकार सेवन करनेसे,	**वासुदेव**	भगवान श्रीकृष्णकी
		कथा	कथामें
शुश्रूषोः	सुननेकी इच्छा होनेसे,	**रुचि**	रुचि
		स्यात्	होती है ॥ १६ ॥

शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥१७॥

शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्य श्रवण कीर्तनः हृदि अन्तःस्थः हि अभद्राणि विधुनोति सुहृत् सताम् ॥ १७ ॥

श्रवण	(जिनकी लीला, गुण) सुनना,	**कीर्तनः**	कीर्तन करना
		पुण्य	पवित्र करनेवाला है

सतां	सज्जनोंके	**अन्तस्थः**	भीतर स्थित होकर
सुहृत्	अकारण हितैषी	**हि**	निश्चय ही
कृष्णः	श्रीकृष्ण	**अभद्राणि**	अमंलकारी
स्वकथां	अपनी कथाको		संस्कारोंको
शृण्वतां	सुननेवालोंके	**विधुनोति**	विशेषतः (समूल)
हृदि	हृदयके		नष्ट कर देते हैं ।१७।

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया ।
भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥१८॥

नष्टप्रायेषु अभद्रेषु नित्यं भागवत सेवया भगवति उत्तमश्लोके भवितः भवति नैष्ठिकी ॥ १८ ॥

अभद्रेषु	अमंगल संस्कारोंके	**सेवया**	सेवनसे
नष्टप्रायेषु	प्रायः (बहुत कुछ) नष्ट हो जानेपर	**उत्तमश्लोके**	पवित्र कीर्ति
		भगवति	भगवानमें
नित्यं	सदा	**नैष्ठिकी**	निष्ठायुक्त
भागवत	श्रीमद्भागवत या भगवद्-भक्तोंके	**भवितः**	भक्ति
		भवात	होती है ॥ १८ ॥

तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये ।
चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ॥१९॥

तदा रजः तमः भावाः काम लोभ आदयः च ये चेत एतैः अनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ॥ १९ ॥

तदा	तब	**आदयः**	आदि (क्रोध, मोह, मद, मत्सर) हैं ।
रजः	रजोगुणके		
च	और	**एतैः**	इन सबसे
तमः	तमोगुणके	**चेत**	चित्त
ये	जो	**अन्नाविद्धं**	अप्रभावित होकर
भावाः	मनोभाव	**सत्त्वे**	सत्वगुणमें
काम	वासना,	**स्थितं**	स्थित होकर
लोभ	लोभ,	**प्रसीदति**	निर्मल हो जाता है ॥ १९ ॥

एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः ।
भगवत्तत्त्वविज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते ॥२०॥

एवं प्रसन्न मनसः भगवत् भक्तियोगतः भगवत् तत्त्व-विज्ञानं मुक्त-सङ्गस्य जायते ॥ २० ॥

एवं	इस प्रकार	**भगवत्**	भगवानके
भगवत्	भगवानके	**तत्त्व-विज्ञानं**	तत्त्व (स्वरूप) का विज्ञान
भक्तियोगतः	भक्तियोगसे		
प्रसन्न	निर्मल	**जायते**	उत्पन्न हो जाता है ॥ २० ॥
मनसः	चित्तवाले		
मुक्तसङ्गस्य	आसक्ति हीनको		

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥२१॥

भिद्यते हृदय ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्व संशयाः क्षीयन्ते च अस्य कर्माणि दृष्ट एव आत्मनि ईश्वरे ॥ २१ ॥

अस्य	इस (भवावतत्त्व ज्ञानी) के	**छिद्यन्ते**	कट जाते हैं,
हृदय	हृदयकी	**च**	और
ग्रन्थि	गाँठ (अविद्या)	**आत्मनि**	अपने (हृदयमें)
भिद्यते	नष्ट हो जाती है,	**एव**	ही
		ईश्वरे	परमात्माका
सर्व	सब	**दृष्टे**	साक्षात्कार होनेपर
संशयाः	सन्देह	**कर्माणि**	सब कर्म-संस्कार
		क्षीयन्ते	नष्ट हो जातेहैं ॥२१॥

अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा ।
वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादनीम् ॥२२॥

अतः वै कवयः नित्यं भक्तिं परमया मुदा वासुदेवे भगवति कुर्वन्ति आत्म प्रसादनीम् ॥ २२ ॥

अतः	अतः
वै	निश्चयपूर्वक
कवयः	बुद्धिमान लोग
नित्यं	सदा
मुदा	प्रसन्नतापूर्वक
भगवति	भगवान
वासुदेवे	वासुदेवमें
आत्म	अन्तःकरणको
प्रसादनीम्	निर्मल करनेवाली
परमया	परमा (साध्यरूपा)
भक्ति	भक्ति
कुर्वन्ति	करते हैं ॥-२॥

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तै-
र्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते ।
स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञाः
श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः ॥२३॥

सत्त्वं रजः तम इति प्रकृतेः गुणाः तैः युक्तः परः पुरुष एक इह अस्य धत्ते स्थिति आदये हरि विरिञ्च हर इति संज्ञाः श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्व तनोः नृणां स्युः ॥ २३ ॥

सत्त्वं	सत्त्व,
रजः	रज,
तम	तम ।
इति	ये
प्रकृतेः	प्रकृतिके
गुणाः	गुण हैं ।
तैः	उनसे
युक्तः	युक्त होकर
एकः	एक ही
परः	परम
पुरुष	पुरुष
इह	इस (संसार) में
अस्य	इस (सृष्टि) की
स्थिति	स्थिति
आदये	आदि (उत्पत्ति, संहार) के लिए
हरि	नारायण,
विरिञ्चि	ब्रह्मा,
हर	शिव
इति	ये
संज्ञाः	नाम
धत्ते	धारण करते हैं ।
तत्र	इनमें
नृणां	मनुष्योंके लिए
श्रेयांसि	परम कल्याणकारी
खलु	निश्चय ही
सत्त्व	सत्त्व गुणवाले
तनोः	स्वरूप (श्रीहरि)
स्युः	हैं ॥२३॥.

पार्थिवाद्दारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः ।
तमसस्तु रजस्तस्मात्सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥२४॥

पार्थिवात्, दारुणः धूमः तस्मात् अग्निः त्रयीमयः तमसः तु रजसः तस्मात् सत्त्व यत् ब्रह्म दर्शनम् ॥ २४ ॥

पार्थिवात्	पृथ्वीसे उत्पन्न काष्ठसे
धूमः	धुआँ
दारुणः	प्रबल है,
तस्मात्	उससे
त्रयीमयः	(कर्म, उपासना, ज्ञानात्मक) वेदोंका आधार
अग्निः	अग्नि (प्रबल) है, (वैसे ही)
तमसः	तमोगुण
तु	से
रजसः	रजोगुण
तस्मात्	उससे
सत्त्वं	सत्त्वगुण (प्रबल है)
यत्	जिससे
ब्रह्म	परमात्माका
दर्शनम्	साक्षात्कार होता है ॥२४॥

भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवन्तमधोक्षजम् ।
सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते येऽनु तानिह ॥२५॥

भेजिरे मुनयः अथ अग्रे भगवन्तं अधोक्षजं सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते ये अनु तान् इह ॥ २५ ॥

अग्रे	प्राचीनकालमें
मुनयः	मुनिगण
क्षेमाय	(अपने) कल्याणके लिए
विशुद्धं	अत्यन्त शुद्ध
सत्त्वं	सत्त्व स्वरूप
भगवन्तं	भगवान्
अधोक्षजं	हृषीकेषका
भेजिरे	भजन करते थे
इह	संसारमें
अथ	अतः
ये	जो लोग
तान्	उन (प्राचीन मुनिगणोंका)
अनु	अनुसरण करनेवाले
कल्पन्ते	(वैसी ही) भावना करते हैं ॥२५॥

मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।
नारायणकलाः शान्ता भजन्ति हि नसूयवः ॥२६॥

मुमुक्षवः घोररूपान् हित्वा भूतपतीन् अथ नारायण कलाः शान्ताः भजन्ति हि अनसूयवः ॥ २६ ॥

अथ	अतः	**अनसूयवः**	किसीके भी गुणोंमें
मुमुक्षवः	जन्म-मरणसे छूटनेकी		दोष न देखते हुए
	इच्छावाले,	**नारायण**	विष्णु भगवान
घोररूपान्	उग्र स्वरूपवाले	**कलाः**	(और) उनके अंश
भूतपतीन्	भूत-प्रेतोंके	**शान्ताः**	शान्त स्वरूपोंका
	स्वामियोंको	**हि**	निश्चयपूर्वक
हित्वा	छोड़कर	**भजन्ति**	भजन करते हैं ।२६।

रजस्तमः प्रकृतयः समशीला भजन्ति वै ।
पितृभूतप्रजेशादीन् श्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः ॥२७॥

रजः तमः प्रकृतयः समशीलाः भजन्ति व पितृ भूत प्रजेश आदीन् श्रियः ऐश्वर्य प्रजा इप्सवः ॥ २७ ॥

श्रियः	लक्ष्मी,	**समशीलाः**	अपने शीलके
ऐश्वर्य	ऐश्वर्य,		समानवाले
प्रजा	सन्तानकी	**पितृ**	पितर
ईप्सवः	चाहनेवाले	**भूत**	प्रेत
रजः	रजोगुण	**प्रजेश**	प्रजापति
तमः	तमोगुणके	**आदीन्**	आदि (देवता,
प्रकृतयः	स्वभाववाले		गन्धर्व) का
वै	तो	**भजन्ति**	भजन करते हैं ।२७।

वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः ।
वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः ॥२८॥

वासुदेव पराः वेदा वासुदेव पराः मखाः वासुदेव परा योगाः वासुदेव पराः क्रियाः ॥ २८ ॥

वेदाः	सब वेद	**वासुदेव**	श्रीहरिके ही
वासुदेव	श्रीकृष्णके	**पराः**	लिए होते हैं,
पराः	प्रतिपादक हैं,	**योगाः**	सब योग-साधनाएँ
मखाः	सब यज्ञ	**वासुदेव**	भगवान हृषीकेशकी

पराः	प्राप्तिके लिए ही हैं,	**वासुदेव**	पुरुषोत्तमके
क्रियाः	सब (श्रेष्ठ) कर्म	**पराः**	लिए ही होते हैं ।२८।

वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः ।
वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥२९॥

वासुदेव परं ज्ञानं वासुदेव परं तपः वासुदेव परः धर्मः वासुदेव परा गतिः ॥ २९ ॥

वासुदेव	श्रीहरि ही	**वासुदेव**	वासुदेव ही
परं ज्ञानं	परम ज्ञान स्वरूप हैं,	**परः धर्मः**	परम धर्म हैं,
वासुदेव	वे जनार्दन ही	**वासुदेव**	अच्युत ही
परं तपः	तपस्याके परम प्राप्य हैं,	**परा गतिः**	परम गति हैं ॥२९॥

स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया ।
सदसद्रूपया चासौ गुणमय्यागुणो विभुः ॥३०॥

स एव इदं ससर्ज अग्रे भगवान् आत्ममायया सत्-असत् रूपया च असौ गुणमय्या अगुणः विभुः ॥ ३० ॥

स एव	उन्हीं	**च**	और
अगुणः	निर्गुण	**गुणमय्या**	(सत्व, रज, तम) गुणमयी
विभुः	सर्वव्यापक		
भगवान्	भगवानने	**असौ**	इस
अग्रे	पहिले	**आत्ममायया**	अपनी मायाके द्वारा
सत्-असत्	कार्य रूपसे सत्,वस्तुतः असत्	**इदं**	इस (संसार) की
		ससर्ज	सृष्टिकी ॥३०॥
रूपया	रूपवाली		

तया विलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव ।
अन्तःप्रविष्ट आभाति विज्ञानेन विजृम्भितः ॥३१॥

तया विलसितेषु एषु गुणेषु गुणवान् इव अन्तः प्रविष्टः आभाति विज्ञानेन विजृम्भितः ॥ ३१ ॥

विज्ञानेन	अपने परम ज्ञान स्वरूपमें	**गुणेषु**	(सत्त्व, रज, तम) गुणोंमें
विजृम्भितः	विशेष रूपसे प्रकाशित (स्थित होनेपर भी)	**अन्तः**	भीतर
		प्रविष्टः	प्रवेश किये (होनेसे)
		गुणवान	गुणवाले
तया	उस (मायाके)	**इव**	जैसे
विलसितेषु	विलास रूप	**आभाति**	प्रतीत होते हैं ॥३१॥
एषु	इन		

यथा ह्यवहितो वह्निदारुष्वेकः स्वयोनिषु ।
नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥३२॥

यथा हि अवहितः वह्निः दारुषु एकः स्व योनिषु नाना इव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥ ३२ ॥

यथा	जैसे	**इव**	की भाँति
वह्निः	अग्नि	**भाति**	प्रतीत होता है
एकः	एक ही है	**तथा**	वैसे ही
हि	लेकिन	**भूतेषु**	प्राणियोंमें
दारुषु	लकड़ियोंमें	**च**	भी
अवहितः	प्रकट होकर	**पुमान्**	पुरुष (जीव रूपसे स्थित)
स्व	अपने	**विश्वात्मा**	विश्वरूप परमात्मा (नाना प्रतीत होता है) ॥३२॥
योनिषु	प्रकट होनेके आधारके कारण		
नाना	अनेक		

असौ गुणमयैर्भावैर्भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मभिः ।
स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुङ्क्ते भूतेषु तद्गुणान् ॥३३॥

असौ गुणमयैः भावैः भूतसूक्ष्म इन्द्रियादिभिः स्व निर्मितेषु निर्विष्टः भुङ्क्ते भूतेषु तद् गुणान् ॥ ३३ ॥

असौ	यह परमात्मा ही	**निर्मितेषु**	बनाये हुए
स्व	अपने	**गुणमयैः**	(सत्व, रज, तम)

	गुणमय	**इन्द्रियादिभिः**	(तथा) इन्द्रियोंके
भावैः	स्वरूपोंसे		द्वारा
भूतेषु	सब प्राणि-पदार्थोंमें	**तद्**	उनके
निविष्टः	प्रविष्ट होकर	**गुणान्**	गुणोंको
भूत सूक्ष्म	(शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध) तन्मात्राओं	**भुङ्क्ते**	भोग करता है ॥३३॥

भावयत्येष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावनः ।
लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु ॥३४॥

भावयति एष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावनः लीला अवतार अनुरतः देव तिर्यङ् नर आदिषु ॥ ३४ ॥

एष	यही		राम, कृष्णादि)
लोकभावनः	लोकोंकी सृष्टि करनेवाले	**आदिषु**	आदिमें
देव	देवता (वामन, नारदादि)	**लीला अवतार**	लीलापूर्वक अवतार
निर्यङ्	पशु-पक्षी (मत्स्य, कच्छप, हंस, वाराहादि)	**अनुरतः**	धारण करके
		सत्त्वेन	सत्त्वगुणको स्वीकार करके
नर	मनुष्य परशुराम	**लोकान्**	लोकों
		वै	को
		भावयति	पालन करते हैं ।३४।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टदशशतसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः

अथ तृतीयोऽध्यायः

सूत उवाच—

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ।
सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥१॥

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महत् आदिभिः सम्भूतं षोडशकलं आदौ लोक सिसृक्षया ॥ १ ॥

आदौ	(सृष्टिकी) आदिमें
लोक	लोकोंकी
सिसृक्षया	सृष्टि करनेकी इच्छासे
महत्	महत्तत्त्व
आदिभिः	(अहंकार) के द्वारा
भगवान्	भगवान्‌ने
षोडशकलं	सोलहकला (पंच महाभूत, दस इन्द्रियाँ और एक मन) से
सम्भूतं	युक्त
पौरुषं	पुरुष (विराट्)
रूपं	रूपको
जगृहे	धारण किया ॥१॥

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ।
नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥२॥

यस्य अम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः नाभिह्रदः अम्बुजात् आसीत् ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥ २ ॥

यस्य	जिन (विराट् पुरुष) के
अम्भसि	(कारण) वारिमें
शयानस्य	सोते रहनेपर
योगनिद्रां	योगनिद्राका
वितन्वतः	विस्तार करनेपर
नाभिह्रदः	नाभि रूपी सरोवरसे
अम्बुजात्	(उत्पन्न) कमलसे
विश्वसृजां	विश्वकी सृष्टि करनेवाले (प्रजापतिके)
पतिः	अधिपति
ब्रह्मा	ब्रह्माजी
आसीत्	उत्पन्न हुए ॥२॥

यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लोकविस्तरः ।
तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वमूर्जितम् ॥३॥

यस्य अवयव संस्थानैः कल्पितः लोक विस्तरः तत् वै भगवतः रूपं विशुद्ध सत्त्वं ऊर्जितम् ॥ ३ ॥

यस्य	जिस (विराट् पुरुष)के	**तत् वै**	वह ही (विराट् ही)
अवयव	अंग	**भगवतः**	भगवान्‌का
संस्थानैः	(रूपी) आधारमें	**विशुद्धं**	अत्यन्त शुद्ध
लोक	लोकोंका	**सत्त्वं**	सत्त्वात्मक
विस्तरः	विस्तार	**ऊर्जितम्**	परमश्रेष्ठ
कल्पितः	कल्पित (भावित) किया गया है,	**रूपं**	रूप है ॥३॥

पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ।
सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोल्लसत् ॥४॥

पश्यन्ति अदः रूपं अदभ्र चक्षुषा सहस्र पाद उरु भुजा आननं अद्भुतं सहस्र मूर्ध श्रवण अक्षि नासिकं सहस्र मौलि अम्बर कुण्डल उल्लसत् ॥ ४ ॥

सहस्र	हजारों	**अम्बर**	वस्त्र
पादः	पैर,	**कुण्डलः**	कर्णाभरणोंसे
उरुः	जाँघें,	**उल्लसत**	शोभायमान्
भुजाः	भुजाएँ और	**अदः**	(विराट् भगवान्‌के) इस
आननं	मुखों वाले		
सहस्र	हजारों	**अद्भुतं**	अद्भुत
मूर्धः	मस्तक,	**रूपं**	रूपको
श्रवणः	कान,	**अदभ्र**	प्रतिहत न होनेवाली (योगकी)
अक्षिः	नेत्रों,		
नासिकं	नाकों और	**चक्षुषा**	दृष्टिसे
मौलिः	सिरवाले	**पश्यन्ति**	(योगी लोग)
सहस्र	हजारों		देखते हैं ॥४॥

एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ।
यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः ॥५॥

एतत् नाना अवताराणां निधानं बीजं अव्ययं यस्य अंशांशेन सृज्यन्ते देव तिर्यङ् नरादयः ॥ ५ ॥

एतत्	यही (विराट्रूप)	**यस्य**	जिसके
नाना	अनेकों	**अंशांशेन**	अत्यन्त छुद्र अंशसे
अवताराणां	अवतारोंका	**देव**	देवता
निधानं	मूल उत्पत्ति स्थान (तथा)	**तिर्यङ्**	पशु-पक्षी-कीटादि और
अव्ययं	अक्षय	**नरादयः**	मनुष्यादि
बीजं	बीज है;	**सृज्यन्ते**	उत्पन्न होते हैं ॥५॥

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः ।
चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥६॥

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गं आस्थितः चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यं अखण्डितम् ॥ ६ ॥

स एव	उन्हीं	**आस्थितः**	धारण किया तथा
देवः	परम पुरुषने	**ब्रह्मा**	ब्रह्मा (रूपमें)
प्रथमं	पहिलेवाले	**दुश्चरं**	अत्यन्त कठिन
कौमारं	कुमार (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) रूपी	**अखण्डितं**	अखण्ड
		ब्रह्मचर्यं	ब्रह्मचर्य व्रतका
		चचार	पालन किया* ॥६॥
सर्गं	सृष्टि (अवतार)		

द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् ।
उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥७॥

---

* सपत्नीक होते भी ब्रह्माजी नित्य ब्रह्मचारी हैं। उन्होंने मानसिक सृष्टि ही की है।

द्वितीयं तु भवाय अस्य रसातल गतां महीं उद्धरिष्यन् उपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥ ७ ॥

द्वितीयं तु	दूसरी बार तो	**उद्धरिष्यन्**	उद्धार करनेके लिए
अस्य	इस (संसार) के	**यज्ञेशः**	यज्ञोंके स्वामी उन श्रीहरिने
भवाय	कल्याणके लिए		
रसातल	रसातल लोकमें	**सौकरं**	वाराहका
गतां	पहुँची	**वपुः**	शरीर
महीं	पृथ्वीका	**उपादत्त**	धारण किया ॥७॥

तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः ।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ॥८॥

तृतीयं ऋषि सर्गं च देवर्षित्वं उपेत्य सः तन्त्रं सात्वतं आचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणा यतः ॥ ८ ॥

तृतीयं	तीसरी	**तन्त्रं**	पाञ्चरात्रागमका
च	बारमें	**आचष्ट**	उपदेश किया
ऋषि	ऋषि	**यतः**	जिनमें
सर्गं	सृष्टि (अवतार) में	**कर्मणा**	कर्मके द्वारा
देवर्षित्वं	देवर्षि नारद	**नैष्कर्म्यं**	कर्मातीत स्थिति
उपेत्य	बनकर		प्राप्त होना बतलाया
सः	उन्हीं भगवानने		गया है ॥८॥
सात्वतं	सात्वत कहे जानेवाले		

तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी ।
भूत्वाऽऽत्मोपशमोपेतमकरोद् दुश्चरं तपः ॥९॥

तुर्ये धर्म कला सर्गे नर-नारायणः ऋषी भूत्वा आत्म उपशमः उपेतं अकरोत् दुश्चरं तपः ॥ ९ ॥

तुर्ये	चौथे	**नर-नारायणः**	नर-नारायण
कला सर्गे	कलासे अवतारमें	**ऋषि**	ऋषि
धर्म	धर्मके यहाँ (उनकी पत्नी मूर्तिसे)	**भूत्वा**	बनकर
		आत्म	मन-इन्द्रिय

उपशमः	संयम	**तपः**	तपस्या
उपेतं	स्वरूप	**अकरोत्**	की ॥९॥
दुश्चरं	अत्यन्त कठिन		

पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ।
प्रोवाचासुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥१०॥

पञ्चमः कपिलः नाम सिद्धेशः काल-विप्लुतं प्रोवाच असुरये सांख्यं तत्त्वग्राम विनिर्णयं ॥ १० ॥

पञ्चमः	पाँचवें (अवतारमें)	**विनिर्णयं**	ठीक-ठीक निर्णय (करनेवाला)
सिद्धेशः	सिद्धोंके अधीश्वर	**सांख्यं**	सांख्य शास्त्र
कपिलः नाम	कपिल नामवाले (हुए)	**असुरये**	आसुरि नामक मुनिको
काल-विप्लुतं	दीर्घकालमें लुप्त हुए	**प्रोवाच**	उपदेश किया ॥१०॥
तत्त्वग्राम	तत्त्वोंके समूहका		

षष्ठे अत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया ।
आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥११॥

षष्ठं अत्रेः अपत्यत्वं वृतः प्राप्तः अनुसूयया आन्वीक्षिकीं अलर्काय प्रह्लादिभ्यः ऊचिवान् ॥ ११ ॥

अनुसूयया	अनुसूयाजी द्वारा	**अलर्काय**	अलर्कको
वृतः	वरदान माँगे जानेपर	**प्रह्लादिभ्य**	(तथा) प्रह्लाद आदिको
षष्ठं	छठे अवतारमें	**आन्विक्षिकीं**	तत्त्व-दर्शन करानेवाली विद्याका
अत्रेः	महर्षि अत्रिके	**ऊचिवान**	उपदेश किया ॥११॥
अपत्यत्वं	पुत्र होकर (दत्त रूपमें)		
प्राप्तः	अवतीर्ण हुए ।		

ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ।
स यामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायम्भुवान्तरम् ॥१२॥

ततः सप्तम आकूत्यां रुचेः यज्ञः अभ्यजायत स याम आद्यैः सुरगणैः अपात्, स्वायम्भुव अन्तरम् ॥ १२ ॥

ततः	फिर	**याम आद्यैः**	याम प्रथम (ज्येष्ठ) हैं जिनमें
सप्तम	सातवें (अवतार) में	**सुरगणैः**	(उन) देवगणोंके साथ
रुचेः	प्रजापति रुचिकी	**स्वायम्भुव**	स्वायम्भुव
आकूत्यां	(पत्नी) आकूतिसे	**अन्तरं**	मन्वन्तरका
यज्ञः	यज्ञ नामसे	**अपात्**	पालन किया*॥१२॥
अभ्यजायत	प्रकट हुए		

अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ।
दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥१३॥

अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेः जातः उरुक्रमः दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्व आश्रम नमस्कृतम् ॥ १३ ॥

अष्टमे तु	आठवें अवतारमें तो	**आश्रम**	आश्रमों-से
उरुक्रमः	अनन्त पराक्रम भगवान्	**नमस्कृतं**	नमस्कार प्राप्त
नाभेः	राजा नाभिकी	**धीराणां**	धैर्यशाली पुरुषोंका
मेरुदेव्यां	(पत्नी) मेरु देवीसे (ऋषभ रूपमें)	**वर्त्म**	मार्ग (परमहंस चर्या)
जातः	उत्पन्न हुए ।	**दर्शयन्**	(परमहंसको कैसे रहना चाहिए, यह आदर्श दिखलाया
सर्व	सब		

ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः ।
दुग्धेगामोषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः ॥१४॥

---

* स्वायम्भुव मन्वन्तरमें कोई जीव इन्द्र नहीं हुआ। भगवानने ही यज्ञ रूपमें अवतार लेकर इस मन्वन्तरमें इन्द्रत्व किया।

ऋषिभिः याचितः भेजे नवमं पार्थिवं वपुः दुग्धेगां* औषधिः विप्राः तेन अयं स उशत्तमः ॥ १४ ॥

ऋषिभिः	ऋषियों द्वारा	**औषधीः**	औषधियों (अन्न आदि सब वस्तुओं) के लिए
याचितः	प्रार्थना किये जानेपर	**दुग्धे**	दोहन किया ।
नवमं	नवें अवतारमें	**विप्राः**	हे विप्रगण (शौनकादि ऋषियो)
पार्थिवं	पृथु राजाका	**तेन**	इस कारण
वपुः	शरीर	**अयं**	यह अवसर
भेजे	धारण किया ।	**उशत्तमः**	परम कल्याणकारी हुआ ॥१४॥
स	उनने		
इमां	इस गायरूपी पृथ्वीको अथवा इस पृथ्वीरूपी गायको		

रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसम्प्लवे ।
नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥१५॥

रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुष उदधि सम्प्लवे नावि आरोप्य महीमय्यां अपात् वैवस्वतं मनुम् ॥१५॥

स	उन भगवान्ने		करनेके अवसरपर
मात्स्यं	मत्स्य	**महीमय्यां**	सम्पूर्ण पृथ्वीमयी
रूपं	रूप	**नावि**	नौकामें
जगृहे	ग्रहण करके	**आरोप्य**	बैठाकर
चाक्षुष	चाक्षुष मन्वन्तर (के अन्त) में	**वैवस्वतं मनुं**	वैवस्वत मनुकी
उदधि सम्प्लवे	समुद्र बढ़कर प्रलय	**अपान्**	रक्षा की ॥१५॥

सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम् ।
दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥१६॥

---

* यहाँ मूलमें माम् पाठ ठीक नहीं है । सब टीकाकारोंने गां पाठ ही माना है ।

सुर असुराणां उदधिं मथ्नतां मन्दराचलं दध्रे कमठरूपेण पृष्ठः एकादशे विभु ॥ १६ ॥

सुर	देवता (और)	**विभुः**	सर्व व्यापक
असुराणां	असुरोंके द्वारा		भगवानने
उदधिं	(क्षीर) सागरका	**कमठरूपेण**	कच्छप रूपसे
मथ्नतां	मन्थन करते समय	**मन्दराचलं**	मन्दराचलको
एकादशे	ग्यारहवें अवतारमें	**पृष्ठः**	(अपनी) पीठपर
		दध्रे	धारण किया ॥१६॥

धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च ।
अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया ॥१७॥

धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशमं एव च अपाययत् सुरान् अन्यान् मोहिन्या मोहयन् स्त्रियाः ॥ १७ ॥

द्वादशमं	बारहवाँ अवतार	**अन्यान्**	(उसने) दूसरे
धान्वन्तरं	धन्वन्तरिका हुआ		(असुरों) को
च	और	**मोहयन्**	मोहित करते हुए
त्रयोदशमं	तेरहवाँ अवतार	**सुरान्**	देवताओंको
स्त्रियाः	स्त्री	**अपाययत्**	(अमृत)
एव	का ही		पिलाया ॥१७॥
मोहिन्या	मोहिनी रूपमें हुआ ।		

चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रद्दैत्येन्द्रमूर्जितम् ।
ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा ॥१८॥

चतुर्दशं नारसिंहं विभ्रत् दैत्येन्द्रं ऊर्जितं ददार करजैः वक्षः एरकां कटकृत् यथां ॥ १८ ॥

चतुर्दशं	चौदहवें (अवतार)में*	**विभ्रत्**	धारण करके
नारसिंह	नृसिंह रूप	**ऊर्जितं**	अत्यन्त बलवान

---

* ग्यारहवें अवतारमें कच्छपका वर्णन है। समुद्र-मन्थनके लिए मन्दराचल धारणार्थ यह अवतार हुआ। भागवतके ही अष्टम स्कन्धके■

दैत्येन्द्रं	दैत्योंके अधिपति हिरण्यकशिपुकी	**कटकृत्**	चटाई बनानेवाले
वक्षः	छाती	**एरकां**	एरका नाम (चौड़े लम्बे पत्तेवाली) घासको (चीर देते हैं) ॥१८॥
करजैः	नखोंसे		
ददार	फाड़ डाली		
यथा	जैसे		

पञ्चदशं वामनकं कृत्वागादध्वरं बलेः ।
पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥१९॥

पञ्चदशं वामनकं कृत्वा अगात् अध्वरं बलेः पदत्रयं याचमानः प्रति आदित्सुः त्रिविष्टपम् ॥ १९ ॥

पञ्चदशं	पन्दहवें अवतारमें	**त्रिविष्टपं**	स्वर्गको
वामनकं	वामन स्वरूप	**प्रति**	वापस
कृत्वा	बनाकर	**आदित्सुः**	ले लेनेकी इच्छा करके
बलेः	(दैत्यराज) बलिके	**पदत्रयं**	तीन पद (पृथ्वी)
अध्वरं	यज्ञमें	**याचमानः**	माँग रहे थे ॥१९॥
अगात्	गये ।		

अवतारे षोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृपान् ।
त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥२०॥

अवतारे षोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहः नृपान् त्रिःसप्त कृत्वः कुपितः निःक्षत्रां अकरोत् महीम् ॥ २० ॥

षोडशमे	सोलहवें	**ब्रह्मद्रुहः**	ब्राह्मण द्रोही
अवतारे	अवतारमें	**पश्यन्**	देखकर
नृपान्	राजाओंको	**कुपितः**	क्रुद्ध होकर

■अनुसार समुन्द्र-मन्थनके समय असुरोंके अधिपति बलि थे जो प्रह्लादके पौत्र हैं । अतः प्रह्लादको रक्षाको होनेवाला नृसिंह अवतार कच्छपसे पहिले हुआ । यहाँकी संख्यामें कालक्रम नहीं है ।

त्रिःसप्तः	इक्कीसबार	निःक्षत्रां	क्षत्रियोंसे रहित
कृत्वः	करके	अकरोत्	बना दिया ॥२०॥
महीं	पृथ्वीको		

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ।
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥२१॥

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसः अल्प मेधसः ॥ २१ ॥

ततः	इसके बाद	मेधसः	मेधा (बुद्धि-प्रतिभा)
सप्तदशे	सत्रहवें (अवतार)में		वाले
पराशरात्	(महर्षि) पराशरसे	दृष्ट्वा	देखकर
सत्यवत्यां	सत्यवतीमें	वेदतरोः	वेदरूपी वृक्षकी
जातः	उत्पन्न होकर	शाखाः	शाखाएँ
पुंसः	पुरुषोंको	चक्रे	निर्मितकीं ॥२१॥
अल्प	थोड़ी		

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ।
समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥२२॥

नरदेवत्वं आपन्नः मुरकार्य चिकीर्षया समुद्र निग्रहः आदीनि चक्रे वीर्याणि अतः परम् ॥ २२ ॥

अतः	इसके	आपन्नः	अवतरित हुए और
परं	पश्चात्	समुद्र	सागर
सुरकार्यं	देवताओंका काम	निग्रहः	बाँधना तथा
चिकीर्षया	सम्पन्न करनेकी इच्छासे	आदीनि	रावणादि राक्षस वधका
नरदेवत्वं	राजाके रूपमें (रामावतारमें)	वीर्याणि	पराक्रम
		चक्रे	किया ॥२२॥

एकोनविंशेविंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।
रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥२३॥

एकोनविंशे विंशतिमें वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी रामकृष्णौ इति भुवा भगवान् अहरत् भरम् ॥ २३ ॥

एकोनविंशे	उन्नीसवें (और)	**इति**	इन नामोंसे
विंशतिमें	वीसवें अवतारमें	**भगवान्**	भगवान्ने
वृष्णिषु	वृष्णि वंशमें	**भुवः**	पृथ्वीके
जन्मनि	जन्म	**भरं**	भारको
प्राप्य	प्राप्त करके	**अहरत्**	दूर किया ॥२३॥
रामकृष्णौ	बलराम और श्रीकृष्ण		

ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
बुद्धो नाम्नाजनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥२४॥

ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषां बुद्धः नाम्ना अजनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥ २४ ॥

ततः	उसके पश्चात्	**सम्मोहाय**	सम्मोहित करनेके लिए
कलौ	कलियुगके	**कीकटेषु**	मगध प्रदेशमें
सम्प्रवृत्ते	आ जाने (भली प्रकार सक्रिय होने) पर	**अजनसुतः**	अजनके पुत्र
		बुद्धः	बुद्ध
सुरद्विषां	देव-द्वेषियोंको	**नाम्ना**	नामसे
		भविष्यति	उत्पन्न होंगे ॥२४॥

अथासौ युगसंध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु ।
जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥२५॥

अथ असौ युगसन्ध्यायां दस्युप्रायेसु राजासु जनिता विष्णुयशसः नाम्ना कल्किः जगत्पतिः ॥ २५ ॥

अथ	इसके पीछे	**राजसु**	राजाओंके
युगसन्ध्यायां	(कलियुग-सतयुगके) सन्धिकालमें	**दस्युप्रायेसु**	प्रायः लुटेरे हो जानेपर

असौ	येही	**कल्किः**	कल्किके
जगत्पतिः	श्रीजगन्नाथ	**नाम्ना**	नामसे
विष्णुयशसः	विष्णुयश (ब्राह्मण) के यहाँ	**जनिता**	उत्पन्न होंगे ॥२५॥

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ।
यथाविदासिनः कुल्या सरसः स्युः सहस्रशः ॥२६॥

अवतारा हि असंख्येयाः हरेः सत्त्वनिधेः द्विजाः यथा अविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ २६ ॥

द्विजाः	ब्राह्मणो ! (शौनकादिक ऋषियो !)	**यथा**	जैसे
हि	निश्चय ही	**अविदासिनः**	अगाध
सत्त्वनिधेः	सत्त्वनिधि	**सरसः**	सरोवर (झील)से
हरेः	श्रीहरिके	**सहस्रशः**	हजारों
अवतारः	अवतार	**कुल्याः**	छोटे स्रोत (नाले)
असंख्येयः	असंख्य हैं ।	**स्युः**	निकलते हैं ॥२५॥

ऋषयो मनयो देवा मनुपुत्रा महोजसः ।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥२७॥

ऋषयः मनवः देवाः मनुपुत्राः महौजसः कलाः सर्वे हरेः एव सप्रजापतयः तथा ॥ २७ ॥

ऋषयः	ऋषिगण	**सप्रजापतयः**	प्रजापतियोंके सहित
मनवः	सब मनु,	**सर्वे**	सब
देवाः	देवगण,	**हरेः**	श्रीहरिकी
महौजसः	महान् तेजस्वी	**एव**	ही
तथा	और	**कलाः**	कला हैं ॥२७॥
मनुपुत्राः	मनुओंके पुत्र		

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥२८॥

एते च अंश कलाः पुंसः कृष्णः तु भगवान् स्वयं इन्द्र-अरि व्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥ २८ ॥

पुंसः	परम पुरुषकी	**भगवान्**	परम पुरुष हैं ।
एते	ये सब	**इन्द्र-अरि**	इन्द्रके शत्रु (असुरों)
अंश	अंश हैं		द्वारा
च	अथवा	**व्याकुलं**	व्याकुल हुए
कलाः	कला हैं	**लोकं**	लोकोंकी
तु	किन्तु	**युगे युगे**	प्रत्येक युगमें
कृष्णः	श्रीकृष्ण	**मृडयन्ति**	रक्षा करते हैं ॥२८॥
स्वयं	स्वयं		

जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः ।
सायं प्रातर्गृणन् भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते ॥२९॥

जन्म गुह्यं भगवतः यः एतत् प्रयतः नरः सायं प्रातः गृणन् भक्त्या दुःखग्रामात् विमुच्यते ॥ २९ ॥

भगवतः	श्रीभगवानके	**सायं**	शामको
एतत्	इन	**प्रातः**	सवेरे
गुह्यं	गोपनीय	**भक्त्या**	भक्तिपूर्वक
जन्म	अवतारोंका	**गृणन्**	गान (पाठ) करता
यः	जो		है (वह)
नरः	मनुष्य	**दुःखग्रामात्**	दुःखोंके समूहसे
प्रयतः	एकाग्र चित्तसे	**विमुच्यते**	छूट जाता है ॥२९॥

एतद्रूपं भगवतो ह्यरूपस्य चिदात्मनः ।
मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥३०॥

एतत् रूपं भगवतः हि अरूपस्य चिदात्मनः मायागुणैः विरचितं महदादिभिः आत्मनि ॥ ३० ॥

अरूपस्य	निराकार	**भगवतः**	भगवानके
चिदात्मनः	ज्ञानस्वरूप	**एतत्**	ये सब

रूपं	रूप		(सात्त्विक अहंकार)
आत्मनि	उनके अपनेमें ही		से
हि	निश्चय ही	**विरचितं**	बनाये (प्रकट किये
मायागुणैः	मायाके गुणोंसे		गये) हैं ॥३०॥
महदादिभिः	महत्तत्त्वादि		

यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनिले ।
एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः ॥३१॥

यथा नभसि मेघ ओघः रेणुः वा पार्थिवः अनिले एवं द्रष्टरि दृश्यत्वं आरोपितं अबुद्धिभिः ॥ ३१ ॥

यथा	जैसे	**रेणुः**	धूलि है,
नभसि	आकाशमें	**एवं**	इसी प्रकार
मेघ	बादलोंका	**अबुद्धिभिः**	अज्ञानीजनों द्वारा
ओघः	उमड़ना है	**द्रष्टरि**	दृष्टा (परमात्मा)में
वा	अथवा	**दृश्यत्वं**	दृश्यपना
अनिले	वायुमें	**आरोपितं**	आरोपित किया गया
पार्थिवः	पृथ्विकी		है ॥३१॥

अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम् ।
अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्भवः ॥३२॥

अतः परं यत् अव्यक्तं अव्यूढ गुण व्यूहितं अदृष्ट अश्रुतः वस्तुत्वात् स जीवः यत् पुनर्भवः ॥ ३२ ॥

अतः	इस (स्थूल रूप) से	**गुण**	गुणों (सत्त्व, रज,
परं	परे		तम) से
यत्	जो	**व्यूहितं**	घेरा हुआ है
अव्यक्तं	व्यक्त न होनेवाला	**अदृष्ट**	अनदेखी
अव्यूढ	बिना व्यूह (किसी घेरे) वाला	**अश्रुतः**	अनसुनी
		वस्तुत्वात्	वस्तु होनेसे

स	वही	**यत्**	जिसका
जीवः	जीव (कही जाती) है ।	**पुनर्भवः**	पुनर्जन्म होता है ॥३२॥

यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा ।
अविद्ययाऽऽत्मनि कृते इति तद् ब्रह्मदर्शनम् ॥३३॥

यत्र इमे सत् असत् रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा अविद्यया आत्मनि कृते इति तत् ब्रह्मदर्शनम् ॥ ३३ ॥

यत्र	जिसमें	**कृते**	निश्चय करनेपर
इमे	ये दोनों	**आत्मनि**	अपने स्वरूपमें
सत्	सूक्ष्म	**प्रतिषिद्धे**	(इनका) निषेध (बाध) होजाने पर
असत्	स्थूल		
रूपे	रूप	**तत्**	वही स्थिति
अविद्यया	अविद्याके द्वारा हैं	**ब्रह्मदर्शनं**	ब्रह्म साक्षात्कार है ॥३३॥
इति	ऐसा		
स्वसंविदाः	अपने बोधसे		

यद्येषोपरता देवी माया वैशारदी मतिः ।
सम्पन्न एवेति विदुर्महिम्नि स्वे महीयते ॥३४॥

यदा एषा उपरता देवी माया वैशारदी मतिः सम्पन्न एव इति विदुः महिम्नि स्वे महीयते ॥ ३४ ॥

यदा	जब	**एव**	ही है
एषा	यह	**इति**	ऐसा
वैशारदी	अत्यन्त निपुणा	**विदुः**	जानते हैं (समझते हैं तत्त्वज्ञ लोग)
देवी माया	मायादेवी रूपा		
मतिः	बुद्धि	**स्वे**	(तव) अपनी
उपरता	निवृत्त हो जाती है (तब अपना आत्मा)	**महिम्नि**	महिमामें
		महीयते	स्थित हो जाता है ॥३४॥
सम्पन्नः	सब अभावोंसे रहित		

एवं जन्मानि कर्माणि ह्यकर्तुरजनस्य च ।
वर्णयन्ति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्पतेः ॥३५॥

एवं जन्मानि कर्माणि हि अकर्तुः अजनस्य च वर्णयन्ति स्म कवयः वेद गुह्यानि हृत्पतेः ॥ ३५ ॥

एवं	इस प्रकार	**वेदगुह्यानि**	वेदोंमें रहस्य रूपमें वर्णित
हि	निश्चय ही	**जन्मानि**	जन्मों (अवतारों)
अकर्तुः	(जो) अकर्ता हैं	**कर्माणि**	लीलाओंका
च	और	**कवयः**	बुद्धिमान (ज्ञानी) लोग
अजनस्य	अजन्मा है (उन)	**वर्णयन्ति स्म**	वर्णन करते हैं ।३५।
हृत्पतेः	हृदयेश्वर (हृषीकेष) के		

स वा इदं विश्वममोघलीलः
सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् ।
भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः
षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः ॥३६॥

स वा इदं विश्वं अमोघ लीलः सृजति अवति अत्ति न सज्जते अस्मिन् भूतेषु च अन्तर्हितः आत्मतन्त्रः षाड्वर्गिकं जिघ्रति षडगुणेशः ॥३६॥

स	वे		करते) हैं
वा	ही	**अस्मिन्**	(फिर भी) इनमें
अमोघ	अव्यर्थ	**न**	नहीं
लीलः	लीला करनेवाले	**सज्जते**	आसक्त होते,
इदं	इस	**भूतेषु**	प्राणियोंमें
विश्वं	विश्वंकी	**अन्तर्हितः**	अन्तर्हित (व्यापक होकर)
सृजति	सृष्टि करते हैं	**षड्गुणेशः**	(मन तथा शब्द, स्पर्श, रूप,रस, गंध)
अवति	रक्षा करते हैं		
अत्ति	खा लेते (संहार		

	६ गुणोंके स्वामी (रहते)	जिघ्रति	सूँघते (उपभोग करते) हैं।
षाड्वर्गिकं	६ गुण (मन-ज्ञानेन्द्रियों) के विषयोंको	च	और
		आत्मतन्त्रः	परम स्वतन्त्र हैं।३६।

न चास्य कश्चिन्निपुणेन धातु-
रवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः।
नामानि रूपाणि मनोवचोभिः
सन्तन्वतो नटचर्यामिवाज्ञः ॥३७॥

न च अस्य कश्चित् निपुणेन धातुः अवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः नामानि रूपणि मनः वचोभिः सन्तन्वतः नटचर्या इव अज्ञः ॥ ३७ ॥

अस्य	इन	कश्चित्	कोई
धातुः	धाता (भगवान) के	कुमनीषः	कुबुद्धिवाला (अज्ञ)
नामानि	नामोंसे	जन्तुः	प्राणी
च	और	निपुणेन	भली प्रकार
रूपाणि	रूपोंको	नटचर्या	वाजीगरके खेलोंको
मनः	संकल्पसे	अज्ञं	अज्ञानी
वचोभिः	अपनी वेदरूप वाणीसे	इव	की भाँति
सन्तन्वतः	विस्तार करते हुए	न	नहीं जानते ॥३७॥
ऊतीः	वैभवको		

स वेद धातुः पदवीं परस्य
दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः।
योऽमायया संततयानुवृत्त्या
भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ॥३८॥

स वेद धातुः पदवीं परस्य दुरन्त वीर्यस्य रथाङ्गपाणेः यः अमायया संततया अनुवृत्त्या भजेत तत् पादसरोज गन्धम् ॥ ३८ ॥

धातुः	सबके रक्षक	दुरन्त	अनन्त
रथाङ्गपाणेः	चक्रपाणि	वीर्यस्य	पराक्रमवाले प्रभु

परस्य	परमात्माके
पदवीं	स्वरूपको
स	वह
वेद	जानता है
यः	जो
अमायया	निष्कपट भावसे
संततया	निरन्तर बनी रहनेवाली
अनुवृत्त्या	वृत्तिको उन्हींमें लगाये हुए
तत्	उनके
पादसरोज	चरण कमलोंकी
गन्धं	सुगन्धका
भजेत्	सेवन करता है ।३८।

अथेह धन्या भगवन्त इत्थं
यद्वासुदेवेऽखिललोकनाथे ।
कुर्वन्ति सर्वात्मकमात्मभावं
न यत्र भूयः परिवर्त उग्रः ॥३९॥

अथ इह धन्याः भगवन्तः इत्थं यत् वासुदेवे अखिल लोकनाथे कुर्वन्ति सर्वात्मकं आत्मभावं न यत्र भूयः परिवर्तः उग्रः ॥ ३९ ॥

अथ	अहो
इह	इस संसारमें
भगवन्तः	भगवत्स्वरूप आप लोग ही
धन्याः	धन्य हैं
यत्	जो
इत्थं	इस प्रकार
अखिल	सम्पूर्ण
लोकनाथे	लोकोंके स्वामी
वासुदेवे	वासुदेवमें
सर्वात्मकं	सर्वात्मा रूपसे
आत्मभावं	आत्मभाव
कुर्वन्ति	करते हैं
यत्र	जहाँ (उस आत्म-भावमें)
भूयः	पुनः
उग्रः	भयानक
परिवर्तः	पुनर्जन्म
न	नहीं होता ॥३९॥

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः ॥४०॥

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म सम्मितं उत्तमश्लोक चरितं चकार भगवान् ऋषिः ॥ ४० ॥

इदं	यह
भागवतं	भागवत
नाम	नामवाला
पुराणं	पुराण
ब्रह्म	वेद
सम्मितं	सम्मत
उत्तमश्लोक	पवित्र कीर्ति (भगवानका)
चरितं	चरितवाला
भगवान् ऋषिः	ऋषि रूपमें अवतीर्ण भगवान् व्यासने
चकार	निर्मित किया ॥४०॥

निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् ।
तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ॥४१॥

निश्रेःयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्यमनं महत् तत् इदं ग्राहयामास सुतं आत्मवतां वरम् ॥ ४१ ॥

लोकस्य	लोकके
निःश्रेयसाय	परमकल्याणके लिए (व्यासजी ने)
धन्यं	धन्य
महत्	महान्
स्वस्त्ययनं	मंगलकारी
तत्	उस
इदं	इस (भागवत) को
आत्मवतां	आत्मज्ञानियोंमें
वरं	श्रेष्ठ
सुतं	अपने पुत्र (शुकदेवजी) को
ग्राहयामास	पढ़ाया ॥४१॥

सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम् ।
स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ॥४२॥

सर्व वेद इतिहासानां सारं सारं समुद्धृतं सतु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ॥ ४२ ॥

सर्वं	सभी
वेद	वेदों
इतिहासानं	(महाभारतादि) इतिहासोंका
सारं सारं	तथ्यांश
समुद्धृतं	(इस भागवतमें) भली प्रकार ले लिया है ।
स तु	उन (शुकदेवजीने) तो
महाराजं	महाराज
परीक्षितं	परीक्षितको
संश्रावयामास	भली प्रकार सुनाया ॥४२॥

प्रायोपविष्टं गङ्गायां परीतं परमर्षिभिः ।
कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ॥४३॥

प्रायोपविष्टं गङ्गायां परीतं परमर्षिभिः कृष्णे स्वधाम उपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ॥ ४३ ॥

कृष्णे	श्रीकृष्णके	**गंगायां**	गंगा किनारे
धर्मज्ञानादिभिः	धर्मज्ञान (ऐश्वर्यादि) आदि	**परमर्षिभिः**	परमर्षियोंसे
सह	के साथ	**परीतं**	घिरे हुए
स्वधाम	अपने धाम	**प्रायोपविष्टं**	अनशन करनेका व्रत लेकर बैठे ।४३।
उपगते	चले जानेपर (राजा परीक्षित)		

कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ।
तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षेर्भूरितेजसः ॥४४॥

कलौ नष्ट दृशां एष पुराण अर्कः अधुना उदितः तत्र कीर्तयतः विप्रा विप्रर्षे भूरि तेजसः ॥ ४४ ॥

कलौ	कलियुगके (प्रभाव)से	**विप्रा**	ब्राह्मणो ! (शौनकादि ऋषियो)
नष्ट दृशां	जिनकी दृष्टि (विवेक) नष्ट हो गया है	**तत्र**	वहाँ (गंगा किनारे)
एष	(उनके लिए) यह	**भूरि**	बहुत अधिक
पुराण	पुराण रूपी	**तेजसः**	तेजस्वी
अर्क	सूर्य	**विप्रर्षे**	श्रीशुकदेवजीके
अधुना	इस समय	**कीर्तयतः**	(इस पुराणका) उपदेश करते समय ।।४४।।
उदितः	उदय हुआ है ।		

अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात् ।
सोऽहं वः श्रावयिष्यामि यथाधीतं यथामति ॥४५॥

अहं च अध्यगमं तत्र निविष्टः तद् अनुग्रहात् स अहं वः श्रावयिष्यामि यथा अधीतं यथा मति ॥ ४५ ॥

अहं	मैं	**स**	वह (श्रीमद्भागवत)
च	भी	**यथा**	जैसा
तत्र	वहाँ	**अधीतं**	मैंने अध्ययन किया
अध्यगमं	पहुँचा	**यथा**	जैसी-जितनी (मुझमें)
तद्	उन (शुकदेवजी) के	**मति**	बुद्धि है
अनुग्रहात्	अनुग्रहसे	**वः**	आप लोगोंको
निविष्टः	भली प्रकार बैठा।	**श्रावयिष्यामि**	श्रवण कराऊँगा।४५।
अहं	मैं		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

व्यास उवाच–

इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् ।
वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ॥१॥

इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घ सत्रिणां वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकः अब्रवीत् ॥ १ ॥

दीर्घ	लम्बे (समय तकके)	**इति**	ऐसा
सत्रिणां	यज्ञमें लगे	**ब्रुवाणं**	बोलनेवाले
मुनीनां	मुनियोंके	**सूतं**	सूतजीकी
कुलपतिः	कुलपति	**संस्तूय**	भली प्रकार प्रशंसा करके
वृद्धः	वृद्ध (बड़े)	**अब्रवीत्**	बोले ॥१॥
बह्वृचः	ऋग्वेदी		
शौनकः	शौनकजी		

शौनक उवाच–

सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर ।
कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवाञ्छुकः ॥२॥

सूत सूत महाभाग वद नः वदतां वर कथां भागवतीं पुण्यां यत् आह भगवान् शुकः ॥ २ ॥

महाभाग	परम सौभाग्यशाली	**कथां**	कथा
वदतां	प्रवचन करनेवालोंमें	**भगवान्**	भगवान्
वर	श्रेष्ठ	**शुकः**	शुकदेवजीने
सूत सूत	हे सूतजी !	**आह**	सुनाया था
यत्	जो	**नः**	हम लोगोंको (वह कथा)
पुण्यां	पवित्र	**वद**	सुनाइये ॥२॥
भागवतीं	भागवतकी		

कस्मिन् युगे प्रवृत्तेयं स्थाने वा केन हेतुना ।
कुतः सञ्चोदितः कृष्णः कृतवान् संहितां मुनिः ॥३॥

कस्मिन् युगे प्रवृत्ता इयं स्थाने वा केन हेतुना कुतः सञ्चोदितः कृष्णः कृतवान् सहितां मुनिः ॥ ३ ॥

इयं	यह (कथा)	**केन**	किसके द्वारा
कस्मिन्	किस	**सञ्चोदितः**	प्रेरित किये जानेपर
युगे	युगमें	**मुनिः**	मुनि
स्थाने	(किस) स्थानमें	**कृष्णः**	श्रीकृष्ण द्वैपायन
वा	अथवा		व्यासजीने
केन	किस	**संहितां**	(इस) परमहंस
हेतुना	कारणसे		संहिताकी
प्रवृत्ता	हुई थी ?	**कृतवान्**	रचनाकी ? ॥३॥

तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ् निर्विकल्पकः ।
एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते ॥४॥

तस्य पुत्रः महायोगी समदृक् निर्विकल्पकः एकान्त मति उन्निद्रः गूढः मूढ इव ईयते ॥ ४ ॥

तस्य	उन (व्यासजीके)	**उन्निद्रः**	जागरूक
पुत्रः	पुत्र (शुकदेवजी)	**गूढः**	छिपे रहनेवाले हैं
महायोगीः	महायोगी	**मूढ**	अज्ञ
समदृक्	समदर्शी	**इव**	जैसे
निर्विकल्पकः	भेदभाव रहित	**ईयते**	प्रतीत होते हैं ॥४॥
एकान्त मतिः	व्यवसायात्मिका (स्थिर) बुद्धिवाले		

दृष्ट्वानुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नं
देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम् ।
तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति
स्त्रीपुम्भिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः ॥५॥

दृष्ट्वा अनुयान्तं ऋषिं आत्मजं अपि नग्नं देव्यः ह्रिया परिदधुः न सुतस्य चित्रं तद् वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुः तवः अस्ति स्त्री-पुं भिदा न तु सुतस्य विविक्त दृष्टेः ॥ ५ ॥

आत्मजं	पुत्रके	**मुनौ**	व्यासजीके
अनुयान्तं	पीछे जाते हुए	**पृच्छति**	पूछनेपर
दृष्ट्वा	(व्यासजीको) देखकर	**जगदुः**	(देवियोंने) कहा
ह्रिया	लज्जासे	**तव**	आपमें
देव्यः	देवियोंने	**स्त्री-पुं**	स्त्री-पुरुषका
परिदधुः	वस्त्र पहिन लिए।	**भिदा**	भेद-ज्ञान
नग्नं	दिगम्बर	**अस्ति**	है
अपि	होनेपर भी	**विविक्त**	अत्यन्त एकाग्र
सुतस्य	पुत्रको (देखकर)	**दृष्टेः**	दृष्टिवाले
न	नहीं पहिने।	**सुतस्य तु**	(आपके) पुत्रमें तो
तत्	ऐसी	**न**	(यह भेद ज्ञान) नहीं
चित्रं	विचित्र बात		है ॥५॥
वीक्ष्य	देखकर		

कथमालक्षितः पौरैः सम्प्राप्तः कुरुजाङ्गलान् ।
उन्मत्तमूकजडवद्विचरन् गजसाह्वये ॥६॥

कथं आलक्षितः पौरैः सम्प्राप्तः करुजाङ्गलान् उन्मत्त मूक जड़वत् विचरन् गजसाह्वये ॥ ६ ॥

कुरुजाङ्गलान्	कुरुजाङ्गल देशमें	**विचरन्**	विचरण करते हुए
गजसाह्वये	हस्तिनापुरमें	**सम्प्राप्तः**	पहुँचनेपर
उन्मत्त	पागल	**पौरैः**	नागरिक लोगों द्वारा
मूक	गूँगे	**कथं**	(वे) कैसे
जड़वत्	मूर्खके समान	**आलक्षितः**	पहिचाने गये ॥६॥

कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेर्मुनिना सह ।
संवादः समभूत्तात यत्रैषा सात्वती श्रुतिः ॥७॥

कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेः मुनिना सह संवादः समभूत तात यत्र एषाः सात्वतीः श्रुतीः ॥ ७ ॥

तात	प्रिय सूतजी	**संवादः**	संवाद
वा	अथवा	**समभूत**	हुआ
पाण्डवेयस्य	पाण्डव वंशमें उत्पन्न	**यत्र**	जिसमें
राजर्षेः	राजर्षि (परीक्षित) का	**एषाः**	यह
		सात्वतीः	सात्वत
मुनिना	मुनि (शुकदेवजी)के	**श्रुतिः**	संहिता (कही
सह	साथ		गयी) ॥७॥
कथं	कैसे		

स गोदोहनमात्रं हि गुहेषु गृहमेधिनाम् ।
अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमंम् ॥८॥

स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनां अवेक्षते महाभागः तीर्थी कुर्वं तत् आश्रमम् ॥ ८ ॥

महाभागः	महाभाग	**तीर्थी**	पवित्र
सः	शुकदेवजी	**कुर्वन्**	करते हुए
हि	क्योंकि	**गोदोहनमात्रं**	गाय दुही जाय केवल
गृहमेधिनां	गृहस्थोंके		इतनी देर वे
गृहेषु	घरोंमें	**अवेक्षते**	प्रतीक्षा करते
तत्	उस		(ठहरते) हैं ॥८॥
आश्रमं	आश्रम (घर) को		

अभिमन्युसुतं सूत प्राहुर्भागवतोत्तमम् ।
तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीहि नः ॥९॥

अभिमन्यु सुतं सूत प्राहुः भागवतोत्तमं तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीहि नः ॥ ९ ॥

सूत	सूतजी !	**प्राहुः**	कहा गया है ।
अभिमन्यु सुतं	अभिमन्युके पुत्र (परीक्षित) को	**तस्य**	उनके
		महाश्चर्यं	महान् आश्चर्यजनक
भागवतोत्तमं	भगवद् भक्तोंमें उत्तम	**जन्म**	जन्मको

च	और	**नः**	हम लोगोंसे
कर्माणि	कर्मोंको	**गृणीहि**	कहिये ॥९॥

स सम्राट् कस्य वा हेतोः पाण्डूनां मानवर्धनः ।
प्रायोपविष्टो गङ्गायामनादृत्याधिराट्श्रियम् ॥१०॥

स सम्राट् कस्य वा हेतोः पाण्डूनां मानवर्द्धनः प्रायोपविष्टः गङ्गायां अनादृत्य अधिराट् श्रियम् ॥ १० ॥

वा	अथवा	**अधिराट्**	सम्राट्पदीय
सः	वे	**श्रियं**	लक्ष्मीकी
सम्राट्	सम्राट् जो	**अनादृत्य**	उपेक्षा करके
पाण्डूनां	पाण्डवोंकी	**गङ्गायां**	गंगा किनारे
मानवर्द्धनः	कीर्ति बढ़ानेवाले थे	**प्रायोपविष्टः**	अनशन करने बैठे ॥१०॥
कस्य	किस		
हेतोः	कारणसे		

नमन्ति यत्पादनिकेतमात्मनः
शिवाय हानीय धनानि शत्रवः ।
कथं स वीरः श्रियमङ्ग दुस्त्यजां
युवैषतोत्स्रष्टुमहो सहासुभिः ॥११॥

नमन्ति यत् पादनिकेतं आत्मनः शिवाय ह आनीय धनानि शत्रवः कथं स वीरः अंग दुस्त्यजां श्रियं युवैषतः उत्स्रष्टुं अहो सह असुभिः ॥ ११ ॥

अंग	सूतजी !	**धनांनि**	बहुत-सा धन
यत्	जिनके	**आनीय**	(साथ) लाकर
पादनिकेतं	पादपीठकां	**नमन्ति**	प्रणाम करते हैं
शत्रवः	शत्रुगण	**स**	वह
ह	निश्चय	**वीरः**	वीर (परिक्षित्)
आत्मनः	अपने	**दुस्त्यजां**	जिसे छोड़ना बहुत कठिन है
शिवाय	भले (रक्षा) के लिए		

श्रियं	(उस) लक्ष्मीको	**सह**	साथ
युवैषतः	युवावस्थामें	**कथं**	कैसे
अहो	आश्चर्यकी बात है	**उत्सष्टुं**	त्यागनेको (प्रस्तुत
असुभिः	प्राणोंके		हुए) ॥११॥

शिवाय लोकस्य भवाय भूतये
य उत्तमश्लोकपरायणा जनाः ।
जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रयं
मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् ॥१२॥

शिवाय लोकस्य भवाय भूतये यः उत्तमश्लोक परायणाः जनाः जीवन्ति न आत्मार्थं असौ पराश्रयं मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् ॥ १२ ॥

यः	जो	**आत्मार्थं**	अपने स्वार्थके लिए
उत्तमश्लोक	पुण्ययशा (भगवान)के	**न**	नहीं ।
परायणाः	परायण	**असौ**	इन (राजा
जनाः	लोग हैं		परिक्षित) ने
लोकस्य	(वे) लोकोंके	**निर्विद्य**	विरक्त होकर
शिवाय	कल्याणके लिए	**पराश्रयं**	दूसरोंको आश्रय
भूतये	प्राणियोंके		देनेवाला
भवाय	अभ्युदयके लिए	**कलेवरं**	(अपना) शरीर
जीवन्ति	जीवन धारण करते	**कुतः**	क्यों
	हैं,	**मुमोच**	त्याग दिया ?॥१२॥

तत्सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टो यदिह किञ्चन ।
मन्ये त्वां विषये वाचां स्नातमन्यत्र छान्दसात् ॥१३॥

तत् सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टः यत् इह किञ्चन मन्ये त्वां विषये वाचां स्नातं अन्यत्र छान्दसात् ॥ १३ ॥

छान्दसात्	वेद वाणीको	**स्नातं**	उसमें अत्यन्त निपुण
अन्यत्र	छोड़कर अन्य	**त्वां**	आपको
वाचां विषये	वाणीका जितना	**मन्ये**	हम मानते हैं ।
	विषय है		(अतः)

इह	यहाँ	**तत्**	वह
यत्	जो	**सर्वं**	सब
किञ्चन	कुछ	**नः**	हम लोगोंको
पृष्टः	(आपसे) पूछा गया है	**समाचक्ष्व**	भली प्रकार बतलाइये ॥१३॥

सूत उवाच-

द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये ।
जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः ॥१४॥

द्वापरे सम् अनुप्राप्ते तृतीये युग पर्यये जातः पराशरात् योगीः वासव्यां कलया हरेः ॥ १४ ॥

युग	युगोंके	**पराशरात्**	महर्षि पराशरसे
पर्यये	क्रममें	**वासव्यां**	वसुपुत्री(सत्यवती)में
तृतीये	तीसरे (युग)	**हरेः**	श्रीहरिकी
द्वापरे	द्वापरके	**कलया**	कलासे
सम्	भली प्रकार	**योगीः**	योगी (व्यासजी)
अनुप्राप्ते	प्रभावमें आ जानेपर	**जातः**	उत्पन्न हुए ॥१४॥

स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचि ।
विविक्तदेश आसीन उदिते रविमण्डले ॥१५॥

सः कदाचित् सरस्वत्यां उपस्पृश्य जलं शुचि विविक्त देश आसीनः उदिते रविमण्डले ॥ १५ ॥

सः	वे (व्यासजी)	**सरस्वत्यां**	सरस्वती नदीके किनारे (उसके)
कदाचित्	किसी समय	**शुचि**	पवित्र
रविमण्डले	सूर्य मण्डलके	**जलं**	जलको
उदिते	उदय हो जानेपर	**उपसृश्य**	आचमन करके
विविक्त	एकान्त	**आसीनः**	बैठे थे ॥१५॥
देश	स्थानमें		

परावरज्ञः स ऋषिः कालेनाव्यक्तरंहसा ।
युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे ॥१६॥

परावरज्ञः सः ऋषिः कालेन अव्यक्त रंहसा युगधर्म व्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे ॥ १६ ॥

सः	उन
परावरज्ञः	लोक-परलोकको जाननेवाले
ऋषिः	ऋषिने
अव्यक्त	अव्यक्त
रंहसा	वेगवाले
कालेन	कालके द्वारा
भुवि	पृथ्वीपर
युगे युगे	प्रत्येक युगमें
प्राप्तं	होनेवाले
युगधर्म	युगके धर्मको
व्यतिकरं	विकृत करने-वाला ॥१६॥

भौतिकानां च भावानां शक्तिह्रासं च तत्कृतम् ।
अश्रद्दधानान्निःसत्त्वान्दुर्मेधान् ह्रसितायुषः ॥१७॥

भौतिकानां च भावानां शक्ति ह्रासं च तत् कृतं अश्रद्दधानान् निःसत्त्वान् दुर्मेधान् ह्रसितायुषः ॥ १७ ॥

च	और
भौतिकानां	भौतिक
भावानां	पदार्थोंका
तत्	उस (कालके)
कृतं	करने (प्रभाव) से
शक्तिह्रासं	शक्तिका ह्रास
च	भी (और)
अश्रद्दधानान्	श्रद्धाहीन
निःसत्त्वान्	सत्त्वहीन
दुर्मेधान	दुर्बुद्धिवाले
ह्रसित	क्षीण हुई
आयुषः	आयुवाले ॥१७॥

दुर्भगांश्च जनान् वीक्ष्य मुनिर्दिव्येन चक्षुषा ।
सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक् ॥१८॥

दुर्भगान् च जनान् वीक्ष्य मुनिः दिव्येन चक्षुषा सर्व वर्ण आश्रमाणां यत् दध्यौ हितं अमोघदृक् ॥ १८ ॥

च	और
दुर्भगान्	भाग्यहीन
जनान्	लोगोंको
दिव्येन	दिव्य

चक्षुषा	दृष्टिसे	**सर्व**	सब
वीक्ष्य	देखकर	**वर्ण**	वर्णों
यत्	क्योंकि	**आश्रमाणां**	आश्रमोंका
अमोघ	अव्यर्थ	**हितं**	भला (हो, इसका)
दृक्	दृष्टिवाले थे,	**दध्यौ**	विचार किया ॥१८॥
मुनिः	मुनि (व्यासजी) ने		

चातुर्होत्रं कर्म शुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम् ।
व्यदधाद्यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम् ॥१९॥

चातुर्होत्रं कर्म शुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकं व्यदधात् यज्ञ संतत्यै वेदं एकं चतुर्विधम् ॥ १९ ॥

वैदिकं	वेद प्रतिपादित	**एकं**	एक ही
चातुर्होत्रं	चार (होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा) के द्वारा होनेवाला	**वेदं**	वेदको
		यज्ञ	यज्ञ (की)
		संतत्यैः	परम्परा बनाये रखनेके लिए
कर्म	यज्ञ कर्म		
प्रजानां	प्रजाको	**चतुर्विधं**	चार प्रकारसे
शुद्धं	शुद्ध करनेवाला है	**व्यदधात्**	विभाजित किया ॥१९॥
वीक्ष्य	(यह) देखकर		

ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदाश्चत्दार उद्धृताः ।
इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ॥२०॥

ऋग् यजुः साम अथर्व आख्याः वेदः चत्वारः उद्धृताः इतिहासं पुराणं च पञ्चमः वेदः उच्यते ॥ २० ॥

ऋग्	ऋग्वेद	**आख्याः**	नामवाले
यजुः	यजुर्वेद	**चत्वारः**	चार
साम	सामवेद	**वेदाः**	वेदोंका
अथर्व	अथर्ववेद	**उद्धृताः**	सम्पादन किया ।

च	और	**पञ्चमः**	पाँचवाँ
इतिहासं	इतिहास (महा-	**वेदः**	वेद
	भारतादि)	**उच्यते**	कहा जाता है ॥२०॥
पुराणं	पुराणोंको		

तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः ।
वैशम्पायन एवैको निष्णातो यजुषामुत ॥२१॥

तत्र ऋग्वेद धरः पैलः सामगः जैमिनिः कविः वैशम्पायन एव एकः निष्णातः यजुषां उत ॥ २१ ॥

तत्र	उन (चारों वेदों) में		(हुए)
ऋग्वेद	ऋग्वेद	**उत**	और
धरः	धारण करनेवाले	**वैशाम्पायन**	वैशम्पायन
पैलः	पैल हुए,	**एव**	ही
कविः	बुद्धिमान	**एकः**	अकेले
जैमिनिः	जैमिनी ऋषि	**यजुषां**	यजुर्वेदके
सामगः	सामवेदके ज्ञाता	**निष्णातः**	विद्वान बने ॥२१॥

अथर्वाङ्गिरसामासीत्सुमन्तुर्दारुणो मुनिः ।
इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ॥२२॥

अथर्व आंगिरसां आसीत् सुमन्तुः दारुणः मुनिः इतिहास पुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ॥ २२ ॥

अथर्व	अथर्ववेदमें	**इतिहास**	इतिहास (महा-
आंगिरसां	अंगिरा गोत्रीयोंमें		भारतादि)
दारुणः	दरुण पुत्र	**पुराणानां**	पुराणोंके (ज्ञाता)
मुनिः	मुनि	**मे**	मेरे
सुमन्तुः	सुमन्त (प्रवीण)	**पिता**	पिता
आसीत्	हुए,	**रोमहर्षणः**	रोमहर्षण
			(हुए) ॥२२॥

त एत ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्यन्ननेकधा ।
शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शाखिनोऽभवन् ॥२३॥

त एत ऋषयः वेदं स्वं स्वं व्यस्यन् अनेकधा शिष्यैः प्रशिष्यैः तत् शिष्यैः वेदाः ते शाखिनः अभवन् ॥ २३ ॥

त	ऊपर बताये गये	**प्रशिष्यैः**	शिष्योंके शिष्यों,
एत	इन	**तत्**	उनके भी
ऋषयः	ऋषयोंने	**शिष्यैः**	शिष्योंने (यही क्रम रखा)
स्वं स्वं	अपने अपने		
वेदं	वेदको	**ते**	(अतः) वे
अनेकधाः	अनेक प्रकारसे	**वेदाः**	वेद
व्यस्यन्	व्यवस्थित(सम्पादित) किया ।	**शाखिनः**	अनेक शाखाओंवाले
		अभवन्	हो गये ॥२३॥
शिष्यैः	उनके शिष्यों,		

त एव वेदा दुर्मेधैर्धार्यन्ते पुरुषैर्यथा ।
एवं चकार भगवान् व्यासः कृपणवत्सलः ॥२४॥

त एव वेदाः दुर्मेधैः धार्यन्ते पुरुषैः यथा एवं चकार भगवान् व्यासः कृपण वत्सलः ॥ २४ ॥

दुर्मेधैः	दुष्ट या कम बुद्धिवाले	**एवं**	इस प्रकार
पुरुषैः	पुरुषोंके द्वारा	**कृपण**	दुर्बलजनोंपर
यथा	जैसे	**वत्सलः**	स्नेह रखनेवाले
त एव	उन्हीं	**भगवान् व्यासः**	भगवान् व्यासने
वेदाः	वेदोंका	**चकार**	(विभाजन) कर दिया ॥२४॥
धार्यन्ते	धारण (याद रखना) सम्भव बने		

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।
कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥२५॥

स्त्रीः शूद्रः द्विज बन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा कर्म श्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेत् इह इति भारतं आख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥२५॥

स्त्रीः	स्त्रियों	**मूढानां**	अनजानोंका
शूद्रः	शूद्रों	**एवं**	इस प्रकार
द्विजबन्धूनां	पतित द्विजातियों (के लिए)	**इह**	संसारमें
		श्रेयः	कल्याण
त्रयी	(कर्म, ज्ञान,उपासना प्रतिपादक) वेद	**भवेत्**	होगा
		इति	ऐसा (सोचकर)
श्रुतिगोचरा	श्रवण-गोचर	**कृपया**	कृपा करके
न	नहीं है (इनका वेदाध्यनमें अधिकार नहीं है ।)	**मुनिना**	मुनि व्यासजीने
		भारतं	महाभारत रूप
		आख्यानं	कथात्मक ग्रंथ
श्रेयसि	कल्याणकारी	**कृतं**	बनाया ॥२५॥
कर्म	कर्मोंके (विषयमें)		

एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः ।
सर्वात्मकेनापि यदा नातुष्यद्धृदयं ततः ॥२६॥

एदं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः सर्वात्मकेन अपि यदा न अतुष्यत् हृदयं ततः ॥ २६ ॥

द्विजाः	ब्राह्मणो (शौनकादि ऋषियो) !	**प्रवृत्तस्य**	लगे रहनेपर
		अपि	भी
सदा	सर्वदा	**यदाहृदयं**	जब हृदय
सर्वात्मकेन	सम्पूर्ण शक्तिसे	**अतुष्यत्**	सन्तुष्ट
एवं	इस प्रकार	**न**	नहीं हुआ,
भूतानां	प्राणियोंके	**ततः**	तब ॥२६॥
श्रेयसि	कल्याणमें		

नातिप्रसीदद्धृदयः सरस्वत्यास्तटे शुचौ ।
वितर्कयन् विविक्तस्थ इदं प्रोवाच धर्मवित् ॥२७॥

नाति प्रसीदत् हृदयः सरस्वत्याः तटे शुचौ वितर्कयन् विविक्तस्थः इदं प्रोवाच धर्मवित् ॥ ७ ॥

शुचौ	पवित्र	**प्रसीदत्**	निर्मल होता है (यह देखकर)*
सरस्वत्याः	सरस्वतीके		
तटे	किनारेपर	**धर्मवित्**	धर्मज्ञ (व्यासजी)
विविक्तस्थः	एकान्तमें बैठनेपर भी	**वितर्कयन्**	विचार करते हुए (मन-ही-मन)
हृदयः	हृदय	**इदं**	यह
नाति	बहुत नहीं	**प्रोवाच**	बोले ॥२७॥

धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि गुरवोऽग्नयः ।
मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम् ॥२८॥

धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि गुरवः अग्नयः मानिताः निर्व्यलीकेन गृहीतं च अनुशासनम् ॥ २८ ॥

मया	मैंने	**मानिताः**	सम्मान किया है
निर्व्यलीकेन	निष्कपट भावसे	**च**	और
धृतव्रतेन हि	व्रत धारण करके ही	**अनुशासनं**	(उनकी) आज्ञाका
छन्दांसि	वेदोंका,	**गृहीतं**	(ग्रहण) पालन किया है ॥२८॥
गुरवः	गुरुजनोंका,		
अग्नयः	हवनीय अग्नियोंका		

भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः ।
दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ॥२९॥

भारत व्यपदेशेन हि आम्नाय अर्थः च दर्शितः दृश्यते यत्र धर्म आदि स्त्री शूद्र आदिभिः अपि उत ॥ २९ ॥

भारत	महाभारत (की)	**च**	भी
व्यपदेशेन	(रचनाके) बहानेसे	**दर्शितः**	बतला दिया है ।
हि	निश्चय ही	**यत्र**	जिसमें
आम्नाय	वेदोंका	**स्त्री**	स्त्री
अर्थः	अर्थ	**शूद्र**	शूद्र

---

* स्थान पवित्र है, एकान्त है तब भी हृदय बहुत सन्तुष्ट नहीं ?

आदिभिः	आदिके द्वारा भी	**उत**	निश्चयपूर्वक
धर्मः	धर्म,	**दृश्यते**	देखे (जाने) जाते
आदि	आदि		हैं ॥२९॥
अपि	भी		

तथापि बत मे देह्यो ह्यात्मा चैवात्मना विभुः ।
असम्पन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ॥३०॥

तथापि बत मे दैह्यः हि आत्मा च एव आत्मना विभुः असम्पन्न इव आभाति ब्रह्मवर्चस्य सत्तमः ॥ ३० ॥

ब्रह्मवर्चस्य	ब्रह्मचर्यके तेजसे	**विभुः**	सर्वव्यापक
सत्तमः	भली प्रकार पूर्ण हूँ	**आत्मना**	अपने स्वरूप
तथापि	फिर भी	**च एव**	से ही
बत	आश्चर्य हैं कि	**असम्पन्न**	अपूर्णकी
मेहि	मेरा तो	**इव**	भाँति
दैह्यः	देहस्थ	**आभाति**	प्रतीत होता है ।३०।
आत्मा	चित्त		

किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः ।
प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः ॥३१॥

किं वा भागवताः धर्मा न प्रायेण निरूपिताः प्रियाः पारमहंसानां त एव हि अच्युतः प्रियाः ॥ ३१ ॥

वा	अथवा	**निरूपिताः**	निरूपण
किं	क्या	**न**	नहीं किया है
पारमहंसानां	परमहंसोंको	**हि**	क्योंकि
प्रियाः	प्रिय लगनेवाले	**त**	वही
भागवताः	भक्ति सम्बन्धी	**एव**	तो
धर्माः	धर्मोंका	**अच्युतः**	भगवानको भी
प्रायेण	प्रधानतापूर्वक	**प्रियाः**	प्रिय हैं ॥३१॥

तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः ।
कृष्णस्य नारदोऽभ्यागादाश्रमं प्रागुदाहृतम् ॥३२॥

तस्य एवं खिलं आत्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः कृष्णस्य नारदः अभि आगत् आश्रमं प्राक् उदाहृतम् ॥ ३२ ॥

एवं	इस प्रकार		व्यासके
आत्मानं	अपनेको	**प्राग्**	पहिले
खिलं	अपूर्ण	**उदाहृतं**	बतलाये गये
मन्यमानस्य	मानते हुए	**आश्रमं**	आश्रमपर
तस्य	उनके	**नारदः**	देवर्षि नारद
खिद्यतः	खेद करते हुए	**अभि**	अचानक
कृष्णस्य	श्रीकृष्ण द्वैपायन	**आगात्**	आगये ॥३२॥

तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः ।
पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ॥३३॥

तं अभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थाय आगतं मुनिः पूजयामास विधिवत् नारदं सुरपूजितम् ॥ ३३ ॥

मुनिः	मुनि व्यासने	**सुरपूजितं**	देवताओंसे भी पूजित
सहसा	अचानक	**तं**	उन
आगतं	आये हुए	**नारदं**	नारदजीकी
अभिज्ञाय	जानकर	**विधिवत्**	विधिपूर्वक
प्रत्युत्थाम	उठकर खड़े हुए	**पूजयामास**	पूजाकी ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः

अथ पञ्चमोऽध्यायः

सूत उवाच-

अथ तं सुखमासीन उपासीनं बृहच्छ्रवाः ।
देवर्षिः प्राह विप्रर्षि वीणापाणिः स्मयन्निव ॥१॥

अथ तं सुखं आसीनं उपासीनं वृहत् श्रवाः देवर्षिः प्राह विप्रर्षि वीणापाणिः स्मयन् इव ॥ १ ॥

अथ	तदनन्तर	**स्मयन् इव**	मुस्कराते हुए से
सुखं	सुखपूर्वक	**तं**	उन
आसीनं	बैठे हुए	**उपासीनं**	समीप बैठे
वृहत् श्रवाः	बहुश्रुत	**विप्रर्षि**	व्यासजीसे
वीणापाणिः	हाथमें वीणा लिए	**प्राह**	कहा ॥१॥
देवर्षिः	नारदजीने		

नारद उवाच-

पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना ।
परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा ॥२॥

पाराशर्य महाभाग भवतः कञ्चित् आत्मना परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा ॥ २ ॥

महाभाग	महान् भाग्यशाली	**आत्मा वा**	बुद्धि और
पाराशर्य	पराशर-नन्दनजी !	**मानस**	मन
भवतः	आपके	**एव**	भी
आत्मना	अपने प्रयत्नसे	**कञ्चित्**	निश्चित
शारीर	शरीरका	**परितुष्यति**	सन्तुष्ट तो है ? ॥२॥

जिज्ञासितं सुसम्पन्नमपि ते महदद्भुतम् ।
कृतवान् भारतं यस्त्वं सर्वार्थपरिबृंहितम् ॥३॥

जिज्ञासितं सुसम्पन्नं अपि ते महत् अद्भुतं कृतवान् भारतं यः त्वं सर्व अर्थ परिवृंहितम् ॥ ३ ॥

ते	आपकी	**अद्भुतं**	अद्भुत
जिज्ञासितं	जिज्ञासा	**सर्व**	सब
अपि	तो	**अर्थ**	पुरुषार्थोंके
सुसम्पनं	भली प्रकार पूर्ण हो चुकी है		(प्रतिपादनसे)
		परिवृंहितं	परिपूर्ण
यः	जो	**भारतं**	महाभारतकी
त्वं	आपने	**कृतवान्**	रचना की ॥३॥
महत्	महान्		

जिज्ञासितमधीतं च यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ।
अथापि शोचस्यात्मानकृतार्थ इव प्रभो ॥४॥

जिज्ञासितं अधीतं च यत् तत् ब्रह्म सनातनं अथ अपि शोचसि आत्मानं अकृतार्थ इव प्रभो ॥ ४ ॥

यत्	जो	**अथ**	अब
सनातनं	नित्य	**प्रभो**	समर्थ होते हुए
ब्रह्म	परमब्रह्म है	**अपि**	भी
तत्	उसकी भी	**आत्मानं**	अपनेको
जिज्ञासितं	जिज्ञासाकी	**अकृतार्थ**	कृतार्थ न हुएकी
च	और	**इव**	भाँति
अधीतं	(उसका) अधिगम किया है	**शोचसि**	चिन्ता करते हो ॥४॥

व्यास उवाच–

अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं
तथापि नात्मा परितुष्यते मे ।
तन्मूलमव्यक्तमगाधबोधं
पृच्छामहे त्वाऽऽत्मभवात्मभूतम् ॥५॥

अस्ति एव मे सर्वं इदं त्वया उक्तं तथापि न आत्मा परितुष्यते मे तत् मूलं अव्यक्तं अगाध बोधं पृच्छामहे त्वां आत्मभव आत्मभूतं ॥ ५ ॥

त्वया	आपके द्वारा	**न**	नहीं होता है।
उक्तं	बतलाया गया	**आत्मभव**	स्वयंभू ब्रह्माजीके
इदं	यह	**आत्मभूतं**	मानसपुत्र
सर्वं	सब	**अगाधं**	अगाध
मे	मुझमें	**बोधं**	ज्ञानवाले
अस्ति	है	**त्वां**	आपसे
एव	ही	**तत्**	उसका
तथापि	फिर भी	**अव्यक्तं**	प्रकट न होनेवाला
मे	मेरा	**मूलं**	कारण
आत्मा	चित्त	**पृच्छामहे**	पूछता हूँ ॥५॥
परितुष्यते	सन्तुष्ट		

स वै भवान् वेद समस्तगुह्य-
मुपासितो यत्पुरुषः पुराणः ।
परावरेशो मनसैव विश्वं
सृजत्यवत्यत्ति गुणैरसङ्गः ॥६॥

स वै भवान् वेद समस्त गुह्यं उपासितः यत् पुरुषः पुराणः परावर ईशः मनसा एव विश्वं सृजति अवति अत्ति गुणैः असंगः ॥ ६ ॥

स	वह	**मनसा**	मनसे
वै	निश्चय	**एव**	ही
भवान्	आप	**गुणैः**	(प्रकृतिके) गुणोंसे
समस्त	सम्पूर्ण	**असंगः**	अलिप्त रहते हुए
गुह्यं	रहस्योंको	**विश्वं**	विश्वकी
वेद	जानते हैं	**सृजति**	सृष्टि करते हैं
यत्	क्योंकि	**अवति**	रक्षा करते हैं
परावर	लोक-परलोकके	**अत्ति**	खा लेते (प्रलय
ईशः	स्वामी (जो)		करते) हैं

पुराणः	(उन) सनातन	**उपासितः**	(आपने)उपासनाकी
पुरुषः	पुरुषकी		है ॥६॥

त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकी-
मन्तश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी ।
परावरे ब्रह्मणि धर्मतो व्रतैः
स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व ॥७॥

त्वं परि अटन अर्क इव त्रिलोकीं अन्तः चरः वायुः इव आत्म साक्षी परावरे ब्रह्मणि धर्मतः व्रतैः स्नातस्य मे न्यूनं अलं विचक्ष्व ॥ ७ ॥

त्वं	आप	**साक्षी**	देखनेवाले हैं,
अर्क	सूर्यकी	**धर्मतः**	धर्मपूर्वक
इव	भाँति	**व्रतैः**	नियमोंका पालन
त्रिलोकीं	तीनों लोकोंमें		करके
परि	चारों ओर	**परावरे**	परमब्रह्म और
अटन	घूमते हुए	**ब्रह्मणि**	अवर ब्रह्म (वेदों)में
वायुः	वायुकी	**स्नातस्य**	पूर्णत्व प्राप्त
इव	भाँति	**मे**	मेरी
अन्तः	भीतर भी	**अलं**	भारी
चरः	विचरण करके	**न्यूनं**	न्यूनताको
आत्म	(सबके) चित्तके	**विचक्ष्व**	बतलाइये ॥७॥

नारद उवाच–

भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् ।
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ॥८॥

भवता अनुदितं प्रायं यशः भगवतः अमलं येन एव असौ न तुष्येत मन्ये तत् दर्शनं खिलम् ॥ ८ ॥

भवता	आपने	**यशः**	यशका
भगवतः	भगवान्के	**प्रायः**	प्रायः
अमलं	निर्मल	**अनुदितः**	वर्णन नहीं किया है।

येन	जिससे	**तत्**	वह
असौ	ये (भगवान)	**दर्शनं**	शास्त्र या ज्ञान
एव	ही	**खिलं**	अपूर्ण
न	नहीं	**मन्ये**	(मैं) मानता
तुष्येत	सन्तुष्ट होते		हूँ ॥८॥

यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः ।
न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ॥९॥

यथा धर्म आदयः च अर्थाः मुनिवर्यः अनुकीर्तिताः न तथा वासुदेवस्य महिमा हि अनुवर्णितः ॥ ९ ॥

मुनिवर्यः	मुनि श्रेष्ठ !	**कीर्तिताः**	वर्णन किया है
यथा	जैसे (आपने)	**हि**	क्योंकि
धर्म	धर्म	**तथा**	वैसे
आदयः	आदि अर्थ,काम,मोक्ष	**वासुदेवस्य**	भगवान् वासुदेवकी
च	और	**महिमा**	महिमाका
अर्थाः	पुरुषार्थोंका	**अनुवर्णितः**	बार बार वर्णन
अनु	बार बार	**न**	नहीं किया है ॥९॥

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा
न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः ॥१०॥

न यत् वचः चित्रपदं हरेः यशः जगत् पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् तत् वायसं तीर्थं उशन्ति मानसाः न यत्र हंसाः निरमन्ति उशिक्षयाः ॥ १० ॥

यत्	जिस	**पवित्रं**	पवित्र करनेवाला
चित्रपदं	विचित्र(अलंकारादि युक्त) पदवाली	**हरेः**	श्रीहरिका
		यशः	सुयश
वचः	वाणीमें	**न प्रगृणीत**	भली प्रकार नहीं गाया गया है
जगत्	जगतको		

तत्	तो वह	**मानसाः**	मानसरोवर
उशन्ति	उच्छिष्ट फेंकनेके		निवासी
वायसं	कौओंके	**उशिक्षयाः**	उत्तम शिक्षावाले
तीर्थं	स्थान (के समान) है	**हंसाः**	हंसगण
यत्र	जहाँ	**न**	नहीं
कर्हिचित्	कभी भी	**निरमन्ति**	भली प्रकार रमण करते ॥१०॥

तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत्
शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥११॥

तत् वाक् विसर्गः जनताः अघ विप्लवाः यस्मिन् प्रतिश्लोकं अबद्ध वत् अपि नामानि अनन्तस्य यशः अंकितानि यत् शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ ११ ॥

अबद्ध	ठीक (छन्द अलंकार रहित)	**प्रतिश्लोकं**	प्रत्येक श्लोक (पद) में
वत्	होनेपर	**अनन्तस्य**	भगवानके
अपि	भी	**यशः**	सुयशसे
तत्	उस	**अंकितानि**	अंकित
वाक्	वाणीका	**नामानि**	नाम हैं,
विसर्गः	बोलना	**यत्**	क्योंकि
जनताः	लोगोंके	**साधवः**	साधु (महात्मा) गण
अघ	पापोंका	**शृण्वन्ति**	उसे सुनते हैं
विप्लवः	विनाशक है	**गायन्ति**	गाते हैं
यस्मिन्	जिसमें	**गृणन्ति**	कीर्तन करते हैं ।११।

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥१२॥

नैष्कर्म्यं अपि अच्युत भाव वर्जितं न शोभते ज्ञानं अलं निरञ्जनं कुतः पुनः शश्वत् अभद्रं इश्वरे न च अर्पितं कर्म यदपि अकारणम् ॥ १२ ॥

अच्युत	भगवत्
भाव	भावसे
वर्जितं	रहित
निरञ्जनं	निर्मल
नैष्कर्म्यं	मोक्षदायी
ज्ञानं	ज्ञान
अपि	भी
अलं	पूर्णतः
न शोभते	शोभा नहीं देता
पुनः	फिर
ईश्वरे	भगवानको
न	नहीं
अर्पितं	अर्पण हुआ
कर्म च	(सकाम) कर्म तो
शश्वत्	सदा ही
अभद्रं	अमंगल रूप (है)
यद्यपि	यद्यपि
अकारणं	निष्काम हो (तो भी)
कुतः	कहाँ (शोभित हो सकते हैं) ॥१२॥

अथो महाभाग भवानमोघदृक् शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः ।
उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम् ॥१३॥

अथो महाभाग भवान् अमोघ दृक् शुचि श्रवाः सत्यरतः धृतव्रतः उरुक्रमस्य अखिल बन्ध मुक्तये समाधिना अनुस्मर तत् विचेष्टितम् ॥ १३ ॥

महाभाग	महाभाग्यवान् व्यासजी !
भवान्	आप
अमोघ	अव्यर्थ
दृक्	दृष्टि (ज्ञान) वाले हैं,
शुचि	पवित्र (शास्त्रों) का
श्रवाः	श्रवण करनेवाले हैं,
सत्यरतः	सत्यनिष्ठ हैं,
धृतव्रतः	व्रतधारी हैं,
अथो	अतः अब
अखिल	सब लोगोंको
बन्ध	बन्धन (जन्म-मरण) से
मुक्तये	मुक्त करनेके लिए
तत्	उन
उरुक्रमस्य	अनन्त पराक्रमके
विचेष्टितं	लीलाओंको
समाधिना	समाधि (एकाग्रता) के द्वारा
अनुस्मर	भली प्रकार स्मरण कीजिये ॥१३॥

ततोऽन्यथा किंचन यद्विवक्षतः
पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः ।
न कुत्रचित्क्वापि च दुःस्थिता मति-
र्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम् ॥१४॥

ततः अन्यथा किंचन यत् विवक्षतः पृथक् दृशः तत् कृत रूप नामभिः न कुत्रचित् क्वापि च दुःस्थिता मतिः लभेत वात आहतः नौः इव आस्पदम् ॥ १४ ॥

ततः	उस (भगवतलीला)से	**दुःस्थिता**	भटकती हुई
अन्यथा	पृथक	**मतिः**	(उसकी) बुद्धि
यत्	जो	**कुत्रचित्**	कहीं भी
किंचन	कुछ भी	**क्वापि**	कभी
विवक्षतः	बोलना चाहता है	**च**	भी
पृथक्	(भगवानसे) अलग	**वात**	वायु (अन्धड़) से
दृशः	दृष्टिवाला (हो जाता) है	**आहतः**	मारी गयी
तत्	उस (पृथक दृष्टि)	**नौः**	नौकाके
कृत	बनाये	**इव**	समान
रूप	रूपों	**आस्पदं**	स्थिर होनेका आधार
नामभिः	नामोंमें	**न**	नहीं
		लभेत	प्राप्त कर पाती ।१४।

जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः
स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रमः ।
यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो
न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥१५॥

जुगुप्सितं धर्मकृते अनुशासनः स्वभाव-रक्तस्य महान् व्यतिक्रमः यत् वाक्यतः धर्म इति इतरः स्थितः न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥ १५ ॥

स्वभाव-रक्तस्य	स्वभावसे ही आसक्तोंके लिए	**जुगुप्सितं**	निन्दित कर्मोंका
		धर्मकृते	धर्मके लिए

अनुशासतः	एक सीमामें आज्ञा देनेसे	**इति**	ऐसा ही है (मानकर)
महान्	बहुत बड़ा	**इतरः**	अधर्ममें
व्यतिक्रमः	उलट-पुलट हुआ है ।	**स्थितः**	स्थित
यत्	क्योंकि	**जनः**	लोग
वाक्यतः	(आपकी उस) आज्ञाको ही	**तस्य**	उसका
धर्म	धर्म	**निवारणं**	मना करना
		न	नहीं
		मन्यते	मानते ॥१५॥*

विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभो-
रनन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम् ।
प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मन-
स्ततो भवान्दर्शय चेष्टितं विभोः ॥१६॥

विचक्षणः अस्य अर्हति वेदितुं विभोः अनन्त पारस्य निवृत्तितः सुखं प्रवर्तमानस्य गुणैः अनात्मनः ततः भवान् दर्शय चेष्टितं विभोः ॥ १६ ॥

विचक्षणः	विशेष विचारवान्	**वेदितुं**	जाननेमें
निवृत्तितः	(संसारसे) विरक्त होनेके कारण	**अर्हति**	समर्थ होता है ।
अस्य	इन	**ततः**	इसलिए
अनन्त पारस्य	अनन्तअपार	**गुणैः**	(सत्त्वादि) गुणोंके द्वारा
विभोः	सर्वव्यापक (परमात्मा) के	**अनात्मनः**	अनात्मा (जड़ जगत) में
सुखं	आनन्दको		

---

* आपने तो मांसाहारादिको रोकनेके लिए अमुक विधिसे ही उसको करनेकी आज्ञा दी; किन्तु लोगोंने उस आज्ञाको ही धर्म मान लिया और उसके निवारण 'अहिंसा परमोधर्मः' आदिको नहीं मानते । यह धर्ममें महान् व्यतिक्रम होगया ।

प्रवर्तमानस्य	प्रवृत्तिमें लगे लोगोंके लिए	**चेष्टितं**	लीलाओंका
विभोः	भगवानकी	**दर्शय**	दर्शन कराइये (वर्णन कीजिये)।१६।

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे-
र्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं
को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥१७॥

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेः भजन् अपक्वः अथ पतेत् ततः यदि यत्र क्व वा अभद्रं अभूत् अमुष्य किं क्वः वा अर्थ आप्तः अभजतां स्वधर्मतः ॥ १७ ॥

स्व	अपने (वर्णाश्रम विहित)	**क्व**	कहीं
धर्मं	धर्मको	**वा**	होवे
त्यक्त्वा	छोड़कर	**अमुष्य**	उसका
हरेः	श्रीहरिके	**किं**	क्या
चरणाम्बुजं	चरण-कमलोंका	**अभद्रं**	अमंगल
भजन्	भजन करते हुए	**अभूत**	हुआ (या हो सकता है) ?
अपक्वः	दृढ़निष्ठा रहित	**स्वधर्मतः**	अपने धर्मपूर्वक रहते
अथ	कहीं	**अभजतां**	भजन न करने वालोंको
यदि	यदि	**कः वा**	कौनसा
ततः	उस (भजन) से	**अर्थ**	पुरुषार्थ
पतेत्	गिर जाय (भजन छोड़ दे)	**आप्तः**	प्राप्त हुआ है ? ।१७।
यत्र	चाहे जहाँ		

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा ॥१८॥

तस्य एव हेतोः प्रयतेत कोविदः न लभ्यते यत् भ्रमतां उपरि अधः तत् लभ्यते दुःखवत् अन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीर रंहसा ॥ १८ ॥

कोविदः	चतुरव्यक्ति
तस्य	उसके
एव	ही
हेतोः	लिए
प्रयतेत	पूरा प्रयत्न करे
यत्	जो
उपरि	ऊपर (स्वर्गादि)
अधः	(नरकादि) नीचे
भ्रमतां	भटकते (जन्म लेते) रहनेपर भी
न	नहीं
लभ्यते	मिलता
तत्	वह
सुखं	(सांसारिक) सुख
दुःखवत्	दुःखकी भाँति
सर्वत्र	सब कहीं (सब योनियोंमें)
गभीर	गंभीर
रंहसा	वेगवाले
कालेन	कालके द्वारा (समय पाकर)
अन्यतः	अप्रयास (स्वतः)
लभ्यते	प्राप्त होता ही है ॥।८॥

न वै जनो जातु कथंचनाव्रजेन्
मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम् ।
स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहनं पुनर
विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो यतः ॥१९॥

न वै जनः जातु कथंचन आव्रजेत् मुकुन्द सेवा अन्यत् अंग संसृतिं स्मरन् मुकुन्द अंघ्रि उपगूहनं पुनः विहातुं इच्छेत् न रसग्रहः यतः ॥ १९ ॥

अंग	प्रिय व्यासजी !
मुकुन्द	भगवानकी
सेवा	सेवा (करनेवाला)
जनः	भक्त
कथंचन	किसी प्रकार
जातु	जन्म लेनेपर भी
वै	निश्चय ही
अन्यत्	(दूसरोंके समान) दूसरी योनियोंमें
संसृतिं	जन्म-मरणके चक्रमें
न आव्रजेत्	पूरी तरह नहीं पड़ता ।
मुकुन्द	भगवानके
अंघ्रि	श्रीचरणोंके
उपगूहनं	आलिंगनका
स्मरन्	स्मरण करके
पुनः	फिर
बिहातुं	(उनको) छोड़नेकी
न इच्छेत्	इच्छा नहीं करता

यतः	क्योंकि		चस्का पड़ चुका
रसग्रहः	(उस) रसका		है ॥१९॥

इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत्स्थाननिरोधसम्भवाः ।
तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथापि वै प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥२०॥

इदं हि विश्वं भगवान् इव इतरः यतः जगत् स्थान निरोध सम्भवाः तत् हि स्वयं वेद भवान् तथापि वै प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥ २० ॥

यतः	जिनसे	इतरः	(पर इससे) पृथक
जगत्	संसारकी		भी वे हैं ।
स्थान	स्थिति	तत्	इसको
निरोध	प्रलय	हि	क्योंकि
सम्भवाः	उत्पत्ति होती है	भवान्	आप
हि	निश्चय ही	स्वयं	स्वयं
इदं	यह	वेद	जानते हैं
विश्वं	विश्व	तथापि	फिर भी
भगवान्	भगवान्‌की	वै	निश्चय ही
इव	ही भाँति हैं (भगवान ही हैं) ।	भवतः	आपके लिए
		प्रादेशमात्रं	संकेतमात्र
		प्रदर्शितम्	दिखलाया है ॥२०॥

त्वमात्मनाऽऽत्मानमवेह्यमोघदृक्
परस्य पुंसः परमात्मनः कलाम् ।
अजं प्रजातं जगतः शिवाय तन्
महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यताम् ॥२१॥

त्वं आत्मना आत्मानं अवेहि अमोघ दृक् परस्य पुंसः परमात्मनः कलां अजं प्रजातं जगतः शिवाय तत् महानुभावः अभ्युदयः अधिगण्यताम् ।२१।

त्वं	आप	दृक्	दृष्टिवाले हैं (अतः)
अमोघ	अव्यर्थ	आत्मानं	अपने आपको

आत्मना	अपने द्वारा ही	**शिवाय**	कल्याणके लिए
अवेहि	जानिये (कि आप स्वयं)	**प्रजातं**	अवतीर्ण हुए हैं
परस्य	परम	**तत्**	इसलिए
पुंसः	पुरुषकी	**महानुभावः**	महान् प्रभाववाले भगवान्‌की
परमात्मनः	परमात्माकी	**अभ्युदयः**	उत्कर्ष (लीलाओं)
कलां	कला हैं		का
अजं	अजन्मा (होनेपर भी)	**अधिगण्यताम्**	भली प्रकार वर्णन कीजिये ॥२१॥
जगतः	संसारके		

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥२२॥

इदं हि पुंसः तपसः श्रुतस्य वा सु इष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः अविच्युतः अर्थः कविभिः निरूपितः यत् उत्तमश्लोक गुणान् अनुवर्णनम् ॥२२॥

पुंसः	मनुष्योंकी	**हि**	ही (है) ।
तपसः	तपस्या,	**कविभिः**	बुद्धिमानों द्वारा (इसीका)
श्रुतस्य	वेदाध्ययन,	**निरूपितः**	निरूपण किया गया है
वा	और	**यत्**	कि
सु इष्टस्ट	उत्तम यज्ञानुष्ठान	**उत्तमश्लोक**	उत्तम यशवाले (भगवान) के
सूक्तस्य	स्वाध्याय,	**गुणान्**	गुणोंका
बुद्धि	ज्ञान,	**अनुवर्णनम्**	बार बार वर्णन किया जाय ॥२२॥
च	और		
दत्तयोः	दानका		
अविच्युतः	अविचल		
अर्थः	प्रयोजन		
इदं	यह		

अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने
दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम् ।
निरूपितो बालक एव योगिनां
शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ॥२३॥

अहं पुरा अतीत भवे अभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनां निरूपितः बालकः एव योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ॥ २३ ॥

मुने	मुनि व्यासजी !	**बालकः**	बालक (अवस्थामें)
अहं	मैं	**एव**	ही
पुरा	पहिले	**प्रावृषि**	वर्षा ऋतुमें
अतीत	बीते हुए	**निर्विविक्षतां**	(चातुर्मास्य) निवास करनेवाले
भवे	जन्ममें	**योगिनां**	योगियोंकी
कस्याश्चन	किसी	**शुश्रूषणे**	सेवामें
वेदवादिनां	वेदवादीकी	**निरूपितः**	नियुक्त किया गया था ॥२३॥
दास्यास्तु	दासीमें		
अभवं	उत्पन्न हुआ था ।		

ते मय्यपेताखिलचापलेऽर्भके दान्तेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि ।
चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्यदर्शनाः शुश्रूषमाणे मुनयोऽल्पभाषिणि ॥२४॥

ते मयि अपेते अखिल चापले अर्भके दान्ते अधृतः क्रीडनके अनुवर्तिनि चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्य दर्शनाः शुश्रूषमाणेः मुनयः अल्पभाषिणि ॥ २४ ॥

अर्भके	छोटे बालक(होनेपर भी)	**शुश्रूषमाणे**	सेवापरायण,
		अल्पभाषिणि	कम बोलनेवाले
अखिल	सब	**मयि**	मुझपर
चापले	चपलताओंको	**ते**	उन
अपेते	छोड़े हुए,	**मुनयः**	मुनियोंने
दान्ते	इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले,	**यद्यपि**	यद्यपि
		तुल्यदर्शनाः	समदर्शी थे (फिर भी)
क्रीडनके	खिलौनोंको		
अधृतः	न लेनेवाले,	**कृपां**	कृपा
अनुवर्तिनि	आज्ञापालक,	**चक्रुः**	की ॥२४॥

उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः
सकृत्स्म भुञ्जे तदपास्तकिल्बिषः ।
एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतस-
स्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते ॥२५॥

उच्छिष्ट लेपान् अनुमोदितः द्विजैः सकृत् स्म भुञ्जे तत् अपास्त किल्बिषः एवं प्रवृत्तस्य विशुद्ध चेतसः तत् धर्म एव आत्म रुचिः प्रजायते ॥ २५ ॥

द्विजैः	उन ब्राह्मणोंसे	**अपास्त**	मिट गये ।
अनुमोदितः	अनुमति पाकर*	**एवं**	इस प्रकार
उच्छिष्ट	जूठा,	**प्रवृत्तस्य**	व्यवहार करते हुए
लेपान्	(बर्तनोंमें) लगा हुआ लेप	**विशुद्ध**	अत्यन्त शुद्ध
		तेजसः	चित्तवाले
सकृत्	एक बार	**आत्म**	मेरी अपनी
स्म	ही	**रुचिः**	रुचि
भुञ्जे	खा लेता था ।	**तत्**	उन (योगियों) के
तत्	उससे	**धर्म एव**	धर्ममें ही
किल्बिषः	पाप	**प्रजायते**	उत्पन्न हो गयी ।२५।

तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायताम्
अनुग्रहेणाशृणवं मनोहराः ।
ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विशृण्वतः
प्रियश्रवस्यङ्ग ममाभवद्रुचिः ॥२६॥

तत्र अन्वहं कृष्णकथाः प्रगायतां अनुग्रहेण अशृणवं मनोहराः ताः श्रद्धया मे अनुपदं विशृण्वतः प्रियश्रवस्य अङ्ग मम अभवत् रुचिः ॥ २६ ॥

अङ्ग	प्रिय (व्यासजी) !	**अन्वहं**	प्रतिदिन
तत्र	वहाँ	**मनोहराः**	मनोहर

---

* क्योंकि स्मृतिमें आज्ञा है कि ब्राह्मण शूद्रको अपना उच्छिष्ट न दे ।

कृष्ण कथाः	श्रीकृष्ण की कथा	**श्रद्धया**	श्रद्धापूर्वक
प्रगायतां	(उन महात्माओंके द्वारा) भली प्रकार गायन की जाती हुई	**मे**	मेरे
		विशृण्वतः	ध्यानपूर्वक सुनते हुए
		प्रिय श्रवस्य	प्रियकीर्ति
अनुग्रहेण	(उन महापुरुषोंकी) कृपासे		(भगवान) में
		मम	मेरी
अशृणवं	सुनता था।	**रुचिः**	रुचि
तः	उस (कथा) का	**अभवत्**	होगयी ॥२६॥
अनुपदं	एक-एक पद		

तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने
प्रियश्रवस्यस्खलिता मतिर्मम ।
ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया
पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥२७॥

तस्मिन्ः तदा लब्ध रुचेः महामुने प्रियश्रवस्य अस्खलिता मतिः मम यया अहं एतत् सदसत् स्वमायया पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥२७॥

महामुने	महामुनि व्यासजी !	**यया**	जिस (बुद्धि)के द्वारा
तदा	तब	**अहं**	मैं
तस्मिन्	उन (भगवान) में	**स्वमायया**	अपनी मायासे
रुचेः	रुचिके	**एतत्**	यह
लब्धः	प्राप्त होनेपर	**सदसत्**	सत् असत् (जगत्)
प्रियश्रवस्य	प्रिय कीर्ति (भगवान) के विषयमें	**मयि**	मुझ
		परे	परम
मम	मेरी	**ब्रह्मणि**	ब्रह्ममें
मतिः	बुद्धि	**कल्पितं**	कल्पित
अस्खलिता	निश्चल होगयी,	**पश्ये**	देखने लगा ॥२७॥

इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू हरे-
र्विशृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलम् ।
संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभिर्
भक्तिः प्रवृत्ताऽऽत्मरजस्तमोपहा ॥२८॥

इत्थं शरत् प्रावृषिकाः ऋतू हरेः विशृण्वतः मे अनुसवं यशः अमलं संकीर्त्यमानं मुनिभिः महात्मभिः भक्तिः प्रवृत्ताः आत्म रजः तमः अपहा ॥२८॥

इत्थं	इस प्रकार	**मे**	मेरे द्वारा
शरत्	शरद	**विशृण्वतः**	बहुत ध्यानपूर्वक (बराबर) श्रवण करनेसे
प्रावृषिकाः	प्रावृट्*		
ऋतू	ऋतुओंमें	**आत्म**	अपने चित्तका
महात्मभिः	महात्मा	**रजः**	रजोगुण (चंचलता)
मुनिभिः	मुनियोंके द्वारा	**तमः**	तमोगुण (लय हो जाना) को
अनुसवं	तीनों समय		
हरेः	श्रीहरिके	**अपहा**	मिटा देनेवाली
अमलं	निर्मल	**भक्तिः**	भक्ति
यशः	यशका	**प्रवृत्ताः**	सक्रिय हो गयी ।२८।
संकीर्त्यमानं	संकीर्तन किये जानेसे		

तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हतैनसः ।
श्रद्दधानस्य बालस्य दान्तस्यानुचरस्य च ॥२९॥

तस्य एवं मे अनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हत एनसः श्रद्दधानस्य बालस्य दान्तस्य अनुचरस्य च ॥ २९ ॥

एवं	इस प्रकार	**श्रद्दधानस्य**	श्रद्धा करनेवाले,
तस्य	उस	**दान्तस्य**	इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले
मे	मुझ		
अनुरक्तस्य	प्रेम (भक्ति) करनेवाले	**च**	और
		अनुचरस्य	आज्ञापालक सेवक
प्रश्रितस्य	विनीतके	**बालस्य**	बालकको ॥२९॥
हत एनसः	निष्पाप हुए,		

---

* आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें ऋतुओंका नाम थोड़ा भिन्न है। उनके अनुसार ज्येष्ठ-आषाढ़ मास वर्षाऋतु और श्रावण-भाद्र प्रावृट् ऋतुके हैं। चातुर्मास प्रावृट् (आषाढ़ शु० ११) से प्रारम्भ होता है।

ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत्साक्षाद्भगवतोदितम् ।
अन्ववोचन् गमिष्यन्तः कृपया दीनवत्सलाः ॥३०॥

ज्ञानं गुह्यतमं यत् तत् साक्षात् भागवता उदितं अन्वोचन् गमिष्यन्तः कृपया दीनवत्सलाः ॥ ३० ॥

यत्	जो	**दीनवत्सलाः**	दीनोंपर वात्सल्य रखनेवाले (उन मुनियोंने)
साक्षात्	स्वयं	**गमिष्यन्तः**	जानेके समय
भगवता	भगवानके द्वारा	**कृपया**	कृपापूर्वक
उदितं	प्रकट हुआ (उपदिष्ट)	**अन्वोचन्**	उपदेश किया ॥३०॥
गुह्यतमं	अत्यन्त रहस्यात्मक		
ज्ञानं	ज्ञान है		
तत्	वह		

येनैवाहं भगवतो वासुदेवस्य वेधसः ।
मायानुभावमविदं येन गच्छन्ति तत्पदम् ॥३१॥

येन एव अहं भगवतः वासुदेवस्य वेधसः माया अनुभावं अविदं येन गच्छन्ति तत् पदम् ॥ ३१ ॥

येन	जिसके द्वारा	**अनुभावं**	प्रभावको
एव	ही	**अविदं**	जान सका
अहं	मैंने	**येन**	जिसके जाननेपर
वेधसः	सृष्टिकर्ता	**तत्**	उन (भगवानके)
भगवतः	भगवान्	**पदं**	पदको
वासुदेवस्य	वासुदेवकी	**गच्छन्ति**	जाते (पाते) हैं ।३१।
माया	मायाके		

एतत्संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सितम् ।
यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम् ॥३२॥

एतत् संसूचितं ब्रह्मन् तापत्रय चिकित्सितं यत् ईश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम् ॥ ३२ ॥

ब्रह्मन्	व्यासजी !
एतत्	यह
तापत्रय	तीनों तापोंकी
चिकित्सितं	चिकित्सा
संसूचितं	भली प्रकार (मैंने) सूचित कर दी ।
यत्	कि वह
ईश्वरे	सर्व नियन्ता
ब्रह्मणि	परमात्मा
भगवति	सर्वेश्वर्ययुक्तमें
कर्म	कर्मका
भावितं	भावनासे समर्पण है ॥३२॥

आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत ।
तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ॥३३॥

आमयः यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत तत् एव हि आमयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ॥ ३३ ॥

सुव्रत	उत्तम व्रतनिष्ठ (व्यासजी) !
भूतानां	प्राणियोंको
येन	जिसके द्वारा (जिस वस्तुके सेवनसे)
यश्च	जो
आमयः	रोग
जायते	उत्पन्न हो जाता है
तत्	वह
एव	ही
आमयं	रोगकारी
द्रव्यं	पदार्थ
हि	क्या
चिकित्सितं	चिकित्सामें प्रयुक्त होनेपर*
पुनाति	पवित्र (आरोग्य)
न	नहीं करता ?॥३३॥

एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः ।
त एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे ॥३४॥

एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृति हेतवः त एव आत्म विनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे ॥ ३४ ॥

---

* होम्योपैथीका मूल सिद्धान्त ही है कि जिस पदार्थके सेवनसे जो रोग होते हैं, उसी पदार्थ के द्वारा (उसकी सूक्ष्म मात्रासे) वे रोग दूर हो जाते हैं । इस नियम को यहाँ बतलाया गया है । अतः होम्योपैथी नवीन आविष्कार नहीं है ।

एवं	इसी प्रकार
सर्वे	सब
क्रियायोगाः	क्रियायोग
नृणां	मनुष्योंके
ससृति	जन्म-मरणके
हेतवः	कारण हैं ।
त	वे
एव	ही
परे	परमात्मामें
कल्पिताः	भावित (समर्पित) करनेपर
आत्म	अपने (कर्म परम्पराके ही)
विनाशाय	नष्ट करनेके
कल्पन्ते	कारण बन जाते हैं ॥३४॥

यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम् ।
ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम् ॥३५॥

यत् अत्र क्रियते कर्म भगवत् परितोषणं ज्ञानं यत् तत् अधीनं हि भक्तियोगः समन्वितम् ॥ ३५ ॥

हि	क्योंकि
अत्र	इस लोकमें
यत्	जो
कर्म	कर्म
भगवत्	भगवान्‌को
परितोषणं	सन्तुष्ट करनेके लिए
क्रियते	किया जाता है
तत्	उसके
अधीनं	आधीन (उसके द्वारा ही)
यत्	जो
भक्तियोगः	भक्तियोगसे
सम्वन्वितं	समन्वित
ज्ञानं	ज्ञान है (वह है) ॥३५॥

कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिक्षयासकृत् ।
गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरन्ति च ॥३६॥

कुर्वाणाः यत्र कर्माणि भगवत् इच्छया असकृत् गृणन्ति गुण नामानि कृष्णस्य अनुस्मरन्ति च ॥ ३६ ॥

यत्र	जिस (भगवदर्थ कर्मके मार्गमें)
भगवत	भगवानकी
इच्छया	इच्छानुसार
असकृत्	बराबर
कर्माणि	कर्मोंको
कुर्वाणाः	करते हुए (लोग)
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके

गुण	गुणोंको	च	और
नामानि	(और) नामोंको	अनुस्मरन्ति	बराबर स्मरण
गृणन्ति	गाते हैं		करते हैं ॥३६॥

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥३७॥

नमः भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥ ३७ ॥

तुभ्यं	आप	प्रद्युम्नाय	प्रद्युम्नको,
भगवते	भगवान्	अनिरुद्धाय	अनिरुद्धको
वासुदेवाय	वासुदेवको	च	और
नमः	नमस्कार है ।	सङ्कर्षणाय	सङ्कर्षण (बलराम)
धीमहि	(आपका हम)		जी को
	ध्यान करते हैं ।	नमः	नमस्कार है ॥३७॥

इति मूर्त्यभिधानेन मन्त्रमूर्तिममूर्तिकम् ।
यजते यज्ञपुरुषं स सम्यग्दर्शनः पुमान् ॥३८॥

इति मूर्ति अभिधानेन मन्त्रमूर्ति अमूर्तिकं यजते यज्ञपुरुषं स सम्यक् दर्शनः पुमान् ॥ ३८ ॥

इति	इस प्रकार (जो)	यजते	यजन करता है
मूर्ति	(चतुर्व्यूहात्मक)	स	वह
	मूर्तियोंके	पुमान्	पुरुष
अधिधानेन	नामोंसे	सम्यक्	ठीक
अमूर्तिकं	निराकार	दर्शनः	देखने (जानने)
मन्त्रमूर्ति	मन्त्रस्वरूप		वाला है ॥३८॥
यज्ञपुरुषं	यज्ञ पुरुषका		

इमं स्वनिगमं ब्रह्मन्नवेत्य मदनुष्ठितम् ।
अदान्मे ज्ञानमैश्वर्यं स्वस्मिन् भावं च केशवः ॥३९॥

इमं स्व निगमं ब्रह्मन् अवेत्य मत् अनुष्ठितं अदात् मे ज्ञानं ऐश्वर्यं स्वस्मिन् भावं च केशवः ॥ ३९ ॥

ब्रह्मन्	व्यासजी !	**केशवः**	भगवान् केशवने
इमं	इस	**मे**	मुझे
स्व	अपने द्वारा	**ज्ञानं**	ज्ञान,
निगमं	उपदिष्टका	**ऐश्वर्यं**	ऐश्वर्य
मत्	मेरे द्वारा	**च**	और
अनुष्ठितं	अनुष्ठान किया गया है,	**स्वस्मिन्**	अपनेमें
		भावं	भक्ति
अवेत्य	(ऐसा) जानकर	**अदात्**	प्रदान की ॥३९॥

त्वमप्यदभ्रश्रुत विश्रुतं विभोः
समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम् ।
आख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां
संक्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा ॥४०॥

त्वं अपि अदभ्र श्रुत विश्रुतं विभोः समाप्यते येन विदां बुभुत्सितं आख्याहि दुःखैः मुहुः अर्दित आत्मनां संक्लेश निर्वाणं उशन्ति न अन्यथा ॥४०॥

त्वं	आप	**समाप्यते**	परितुष्ट होती है ।
अपि	भी	**दुःखैः**	दुःखोंसे
अदभ्र	परिपूर्ण	**मुहुः**	बार बार
श्रुतः	ज्ञानवाले हैं	**अर्दित**	रौंदे
विभोः	सर्वव्यापक भगवानकी	**आत्मनां**	चित्तवालोंके
		संक्लेशः	क्लेशोंकी
विश्रुतं	कीर्तिका	**निर्वाणं**	समाप्तिका
आख्याहि	वर्णन कीजिये,	**अन्यथा**	दूसरा कोई
येन	जिसके द्वारा	**उशन्ति**	उपाय
विदां	विद्वानोंकी (भी)	**न**	नहीं है ॥४०॥
बुभुत्सितं	जिज्ञासा		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः

अथ षष्ठोऽध्यायः

सूत उवाच–

एवं निशम्य भगवान्देवर्षेर्जन्म कर्म च ।
भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन् व्यासः सत्यवतीसुतः ॥१॥

एवं निशम्य भगवान् देवर्षेः जन्म कर्म च भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन् व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥

ब्रह्मन्	शौनकादि ऋषियो !	**भूयः**	फिर
एवं	इस प्रकार	**सत्यवतीसुतः**	सत्यवती नन्दन
देवर्षेः	देवर्षि नारदके	**भगवान्**	भगवान्
जन्म	पूर्व जन्म	**व्यासः**	व्यासने
च	और	**तं**	उन (नारदजी) से
कर्म	कर्म (साधना) को	**पप्रच्छ**	पूछा ॥१॥
निशम्य	सुनकर		

व्यास उवाच–

भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टभिस्तव ।
वर्तमानो वयस्याद्ये ततः किमकरोद्भवान् ॥२॥

विक्षुभिः विप्रवसिते विज्ञान आदेष्टभिः तव वर्तमानः वयसि आद्ये ततः किं अकरोत् भवान् ॥ २ ॥

तव	आपको	**विप्रवसिते**	प्रवासमें चले जानेपर
विज्ञान	ज्ञानका	**आद्ये**	आदिकी (बचपनकी)
आदेष्टभिः	(आदेश) उपदेश करनेवाले	**वयसि**	अवस्थामें
भिक्षुभिः	भिक्षुओं (महात्माओं) के	**वर्तमानः**	होनेपर

भवान्	आपने	**किं**	क्या
ततः	तब	**अकरोत्**	किया ? ॥२॥

स्वायम्भुव कया वृत्त्या वर्तितं ते परं वयः ।
कथं चेदमुदस्राक्षीः काले प्राप्ते कलेवरम् ॥३॥

स्वायम्भुव कया वृत्त्याः वर्तितं ते परं वयः कथं च इदं उदस्राक्षीः काले प्राप्ते कलेवरम् ॥ ३ ॥

स्वायम्भुव	ब्रह्माजीके पुत्र !	**काले**	काल (मृत्यु) के
ते	आपकी	**प्राप्ते**	आनेपर
परं	शेष	**इदं**	इस (उस जन्मके)
वयः	आयु	**कलेवरं**	शरीरको
कया	किस	**कथं**	कैसे
वृत्त्याः	वृत्ति (प्रकार) से	**उदस्राक्षीः**	उत्सर्जित किया (छोड़ा) ? ॥३॥
वर्तितं	व्यतीत हुई		
च	और		

प्राक्कल्पविषयामेतां स्मृतिं ते सुरसत्तम ।
न ह्येष व्यवधात्काल एष सर्वनिराकृतिः ॥४॥

प्राक् कल्प विषयां एतां स्मृतिं ते सुर सत्तम न हि एष व्यवधात् कालः एष सर्वः निराकृतिः ॥ ४ ॥

सुर	देवताओंमें	**एष**	यह
सत्तम	श्रेष्ठ (नारदजी)	**कालः**	काल
ते	आपकी	**व्यवधात्**	बाधित (कैसे)
प्राक्	पहिले	**न**	नहीं कर सका
कल्प	जन्म	**हि**	क्योंकि
विषयां	सम्बन्धी	**एष**	यह (काल)
एतां	इस	**सर्वः**	सब कुछ
स्मृतिं	स्मृतिको	**निराकृतिः**	नष्ट कर देता है ।४।

नारद उवाच-

भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिर्मम ।
वर्तमानो वयस्याद्ये तत एतदकारषम् ॥५॥

भिक्षुभिः विप्रवसिते विज्ञान आदेष्टृभिः मम वर्तमानः वयसि आद्ये तत एतत् अकारषम् ॥ ५ ॥

मम	मुझे	**वयसि**	आयुमें
विज्ञान	ज्ञानके	**वर्तमानः**	होनेपर भी
आदेष्टृभिः	उपदेश करनेवाले	**तत्**	तब (मैंने)
भिक्षुभिः	महात्माओंके	**एतत्**	यह
विप्रवसिते	प्रवासमें चले जानेपर	**अकारषम्**	किया ॥५॥
आद्ये	पहिली		

एकात्मजा मे जननी योषिन्मूढा च किंकरी ।
मय्यात्मजेऽनन्यगतौ चक्रे स्नेहानुबन्धनम् ॥६॥

एक आत्मजा मे जननी योषित् मूढ़ा च किंकरी मयि आत्मजे अनन्यगतौ चक्रे स्नेह अनुबन्धनम् ॥ ६ ॥

मे	मेरी	**च**	तथा
जननी	माता	**किंकरी**	दासी थी ।
एक	एक ही	**अनन्यगतौ**	अनन्यगति
आत्मजा	पुत्रवाली थी ।	**मयि आत्मजे**	मुझ पुत्रमें
मूढ़ा	(वह) नादान,	**स्नेह अनुबन्धनं**	अत्यधिक स्नेह
योषित्	स्त्री	**चक्रे**	करती थी ॥६॥

सास्वतन्त्रा न कल्पाऽऽसीद्योगक्षेमं ममेच्छती ।
ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा ॥७॥

सा अस्वतन्त्रा न कल्प आसीत् योगक्षेमं मम इच्छती ईशस्य हि वशे लोकः योषा दारुमयी यथा ॥ ७ ॥

सा	वह	**कल्प**	समर्थ
अस्वतन्त्रा	पराधीन (होनेसे)	**न**	नहीं

आसीत्	थी,
मम	मेरा
योगक्षेमं	योगक्षेम (तो)
इच्छती	चाहती थी;
हि	क्योंकि
लोकः	सब लोग
दारुमयी	लकड़ी थी
योषा	पुतलीकी
यथा	तरह
ईशस्य	ईश्वरके
वशे	वशमें हैं ॥७॥

अहं च तद्ब्रह्मकुले ऊषिवांस्तदपेक्षया ।
दिग्देशकालाव्युत्पन्नो बालकः पञ्चहायनः ॥८॥

अहं च तत् ब्रह्मकुले ऊषिवांः तत् अपेक्षया दिक् देशकाल अव्युत्पन्नः बालकः पञ्चहायनः ॥ ८ ॥

तत्	उस (माँ की)
अपेक्षया	अपेक्षा होनेसे
अहं	मैं
च	भी
तत्	उसी
ब्रह्मकुले	ब्राह्मणके घर
ऊषिवान्	रहता रहा (क्योंकि)
पञ्च	पाँच
हायनः	वर्षका
बालकः	बालक (होनेसे)
दिक्	दिशाओं
देश	स्थानों
काल	समयसे
अव्युत्पन्नः	अनजान था ॥८॥

एकदा निर्गतां गेहाद्दुहन्तीं निशि गां पथि ।
सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टः कृपणां कालचोदितः ॥९॥

एकदा निर्गतां गेहात् दुहन्तीं निशि गां पथि सर्पः अदशत् पदा स्पृष्टः कृपणां कालः चोदितः ॥ ९ ॥

एकदा	एक बार
गां	गायको
दुहन्तीं	दुहनेके लिए
निशि	रातको
गेहात्	घरसे
निर्गतां	निकली हुई
कृपणां	बेचारीको
सर्पः	सर्पने
पथि	मार्गमें
पदा	पैरसे
स्पृष्टः	छू जानेपर
काल	कालकेद्वारा
चोदितः	प्रेरित
अदशत्	दंशन कर लिया ॥९॥

तदा तदहमीशस्य भक्तानां शमभीप्सतः ।
अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम् ॥१०॥

तदा तत् अहं ईशस्य भक्तानां शं अभीप्सतः अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशं उत्तराम् ॥ १० ॥

तदा	तब	**तत्**	वह
अहं	मैं	**अनुग्रहं**	अनुग्रह
भक्तानां	भक्तोंका	**मन्यमानः**	मानता हुआ
शं	कल्याण	**उत्तरां**	उत्तरकी
अभीप्सतः	चाहते हुए	**दिशं**	दिशामें
ईशस्य	ईश्वरका	**प्रातिष्ठं**	चल पड़ा ॥१०॥

स्फीताञ्जनपदांस्तत्र पुरग्रामव्रजाकरान् ।
खेटखर्वटवाटीश्च वनान्युपवनानि च ॥११॥

स्फीतान् जनपदान् तत्र पुरः ग्रामः व्रजः आकरान् खेटः खर्वटः वाटीः च वनानि उपवनानि च ॥ ११ ॥

तत्र	उस मार्गमें	**खेटः**	खेड़े-छोटे ग्राम थे,
स्फीतान्	सम्पन्न	**खर्वटः**	खलिहान थे,
जनपदान्	मनुष्योंकी बस्तियाँ थीं (जिनमें)	**च**	और
		वाटीः	अकेली (खेतोंपर) झोपड़ियाँ थीं,
पुरः	नगर थे,	**वनानि**	वन थे
ग्रामः	गाँव (कस्बे) थे,	**च**	और
व्रजः	स्थानन्तरण होते रहनेवाले गाँव थे,	**उपवनानि**	उपवन-बगीचे थे ॥११॥
आकरान्	खदाने थीं,		

चित्रधातुविचित्राद्रीनिभभग्नभुजद्रुमान् ।
जलाशयाञ्छिवजलान्नलिनीः सुरसेविताः ॥१२॥

चित्र धातु विचित्र अद्रीन् इभ भग्न भुजः द्रुमान् जलाशययान् शिव जलान् नलिनीः सुर सेविताः ॥ १२ ॥

चित्र	अनेक रंगोंकी	**शिव**	कल्याणकारी
धातु	धातुएँ (गेरू,रामरज		(निर्मल)
	आदि),	**जलान्**	जलवाले
विचित्र	अनेक आकारवाले	**जलाशयान्**	जलाशयोंको,
अद्रीन्	पर्वतोंको,		(जिनमें)
इभ	हाथीके द्वारा	**सुर**	देवताओंकी
भग्न	तोड़ी हुई	**सेविताः**	सेवामें लगनेवाली
भुज	शाखाओंवाले	**नलिनीः**	कमलिनी थीं ।१२।
द्रुमान्	वृक्षोंको,		

चित्रस्वनैः पत्ररथैर्विभ्रमद् भ्रमरश्रियः ।
नलवेणुशरस्तम्बकुशकीचकगह्वरम् ॥१३॥

चित्र स्वनैः पत्ररथैः विभ्रमत् भ्रमर श्रियः नल वेणु शरस्तम्ब कुश कीचक गह्वरम् ॥ १३ ॥

चित्र	अनेक प्रकारके	**वेणु**	बांस,
स्वनैः	बोली बोलनेवाले	**शरस्तम्ब**	काँसके झुरमुट,
पत्ररथैः	पक्षी थे,	**कुश**	कुश,
भ्रमर	भौंरों	**कीचक**	टेढ़े उलझे बाँसोंसे
श्रियः	की शोभा	**गह्वरं**	बहुत घना (वन)
विभ्रमत्	फैल रही थी,		था ॥१३॥
नल	नरकुल		

एक एवातियातोऽहमद्राक्षं विपिनं महत् ।
घोरं प्रतिभयाकारं व्यालोलूकशिवाजिरम् ॥१४॥

एकः एव अतियातः अहं अद्राक्षं विपिनं महत् घोरं प्रति भयाकारं व्यालः उलूकः शिवाः अजिरम् ॥ १४ ॥

एकः	अकेला	**अहं**	मैंने
एव	ही	**व्यालः**	सर्पों,
अतियातः	बहुत चलकर	**उलूकः**	उल्लू,

शिवाः	शृगालोंके	**भयाकारं**	भयका स्वरूप हो
अजिरम्	घूमनेके आँगन जैसा		(ऐसा)
महत्	बड़ा भारी	**विपिनं**	वन
घोरं	भयानक	**अद्राक्षं**	देखा ॥१४॥
प्रति	जैसे		

परिश्रान्तेन्द्रियात्माहं तृट्परीतो बुभुक्षितः ।
स्नात्वा पीत्वा ह्रदे नद्या उपस्पृष्टो गतश्रमः ॥१५॥

परिश्रान्तः इन्द्रियः आत्माः अहं तृट परीतः बुभुक्षितः स्नात्वा पीत्वा ह्रदे नद्याः उपसृष्टः गतः श्रमः ॥ १५ ॥

अहं	मैं	**नद्याः**	नदीके
इन्द्रियः	इन्द्रियोंसे	**ह्रदे**	ह्रद (कुण्ड) के
आत्माः	मनसे	**उपसृष्टः**	पास पहुँचकर
परिश्रान्तः	बहुत थक गया था,	**स्नात्वा**	स्नान करके
तृट्	प्याससे	**पीत्वा**	जल पीकर
परीतः	घिरा था,	**श्रमः**	थकान
बुभुक्षितः	भूखा था,	**गतः**	दूर हुई ॥१५॥

तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये पिप्पलोपस्थ आस्थितः ।
आत्मनाऽऽत्मानमात्मस्थं यथाश्रुतमचिन्तयम् ॥१६॥

तस्मिन् निर्मनुजे अरण्ये पिप्पल उपस्थः आस्थितः आत्मना आत्मानं आत्मस्थं यथा श्रुतं अचिन्तयम् ॥ १६ ॥

तस्मिन्	उस	**आत्मना**	अपने मनमें
निर्मनुजे	मनुष्य रहित	**आत्मानं**	अपने आत्माका
अरण्ये	वनमें	**आत्मस्थं**	अपने भीतर ही
पिप्पल	पीपल वृक्षकी	**यथाश्रुतं**	जैसा सुना था वैसा
उपस्थः	जड़के समीप	**अचिन्तयम्**	चिन्तन करने
आस्थितः	बैठकर		लगा ॥१६॥

ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा ।
औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ॥१७॥

ध्यायतः चरणाम्भोजं भाव निर्जितः चेतसा औत्कण्ठ्य अश्रुः कलाक्षस्य हृदि आसीत् मे शनैः हरिः ॥ १७ ॥

भाव	भावनासे	**कलाक्षस्य**	भरे नेत्रवाले
निर्जितः	भली प्रकार जीते	**मे**	मेरे
चेतसा	चित्तके द्वारा	**हृदि**	हृदयमें
चरणाम्भोजं	चरणकमलका	**हरिः**	श्रीहरि
ध्यायतः	ध्यान करते हुए	**शनैः**	धीरेसे
औत्कण्ठ्य	उत्कण्ठासे	**आसीत्**	प्रकट होगये ॥१७॥
अश्रुः	आँसू		

प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः ।
आनन्दसम्प्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने ॥१८॥

प्रेम अति भरः निर्भिन्नः पुलकः अंगः अति निर्वृतः आनन्द सम्प्लवे लीनः न अपश्यं उभयं मुने ॥ १८ ॥

मुने	व्यासजी !	**आनन्द**	आनन्दकी
अति	अत्यन्त	**सम्प्लवे**	बाढ़में
प्रेम	प्रेमके	**लीनः**	डूब गया
भरः	उभाड़से	**उभयं**	दोनों (अपने और ध्येय) को
निर्भिन्नः	उठ खड़े हुए	**अपश्यं**	देखता
पुलकः	रोमोंसे	**न**	नहीं था । (भूल गया ।) ॥१८॥
अङ्गः	शरीर भर गया ।		
अति	बहुत अधिक		
निर्वृतः	आनन्दमग्न होकर		

रूपं भगवतो यत्तन्मनःकान्तं शुचापहम् ।
अपश्यन् सहसोत्तस्थे वैक्लव्याद्दुर्मना इव ॥१९॥

रूपं भगवता, यत् तत् मनः कान्तं शुचाः अपहं अपश्यन् सहसा उत्तस्थे वैकल्यात् दुर्मना इव ॥ १९ ॥

मनः	मनको	**रूपं**	रूप था (उसको)
कान्तं	अत्यन्त प्रिय,	**अपश्यन्**	न देखकर
शुचाः	शोकको	**सहसाः**	अचानक
अपहं	दूर करनेवाला	**वैकल्यात्**	व्याकुलतासे
भगवता	भगवान्‌का	**दुर्मना**	खिन्न
तत्	वह	**इव**	की भाँति
यत्	जो	**उत्तस्थे**	उठ खड़ा हुआ ॥१९॥

दिदृक्षुस्तदहं भूयः प्रणिधाय मनो हृदि ।
वीक्षमाणोऽपि नापश्यमवितृप्त इवातुरः ॥२०॥

दिदृक्षुः तत् अहं भूयः प्रणिधाय मनः हृदि वीक्षमाणः अपि न अपश्यं अवितृप्तः इव आतुरः ॥ २० ॥

हृदि	हृदयमें	**अपि**	पर भी
तत्	उस (रूप) को	**अहं**	मैं
भूयः	फिरसे	**अपश्यं**	देख
दिदृक्षुः	देखनेकी इच्छासे,	**न**	नहीं सका,
मनः	मनको	**अवितृप्तः**	अतृप्त
प्रणिधाय	भली प्रकार एकाग्र करके	**इव**	के समान
वीक्षमाणः	देखनेका प्रयत्न करने	**आतुरः**	व्याकुल होगया।२०।

एवं यतन्तं विजने मामाहागोचरो गिराम् ।
गम्भीरश्लक्ष्णया वाचा शुचः प्रशमयन्निव ॥२१॥

एवं यतन्तं विजने मां आह अगोचरः गिरां गम्भीरं श्लक्ष्णया वाचाः शुचः प्रशमयन् इव ॥ २१ ॥

विजने	निर्जन वनमें	**गिरां**	वाणीके
एवं	इस प्रकार	**अगोचरः**	अगोचर (भगवान्)
यतन्तं	प्रयत्न करते हुए	**गम्भीरं**	गम्भीर
मां	मुझसे	**श्लक्ष्णया**	मधुर

वाचाः	वाणीसे	**इव**	से
शुचः	शोकको	**आह**	बोले ॥२१॥
प्रशमयन्	शान्त करते हुए		

*श्रीभगवानुवाच–

हन्तास्मिञ्जन्मनि भवान्मा मां द्रष्टुमिहार्हति ।
अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम् ॥२२॥

हन्त अस्मिन् जन्मनि भवान् मा मां द्रष्टुं इह अर्हति अविपक्वः कषायाणां दुर्दर्शः अहं कुयोगिनाम् ॥ २२ ॥

हन्त	खेद है कि	**मा**	नहीं हो ।
अस्मिन्	इस	**अविपक्वः**	पूर्ण शुद्ध नहीं हुई
जन्मनि	जन्ममें	**कषायाणां**	वासनाओंवाले
भवान्	तुम	**कुयोगिनां**	अधकचरे योगियोंके लिए
इह	यहाँ (पृथ्वीपर)		
मां	मुझे	**अहं**	मैं
द्रष्टुं	देखनेके	**दुर्दर्शः**	दुर्लभ दर्शनवाला हूँ ॥२२॥
अर्हति	योग्य (अधिकारी)		

सकृद् यद् दर्शितं रूपमेतत्कामाय तेऽनघ ।
मत्कामः शनकैः साधु सर्वान्मुञ्चति हृच्छयान् ॥२३॥

सकृत् यत् दर्शितं रूपं एतत् कामाय ते अनघ मत् कामः शनकैः साधुः सर्वान् मुञ्चति हृच्छयान् ॥ २३ ॥

अनघ	निष्पाप !	**दर्शितं**	दिखलाया है (वह)
सकृत्	एक बार	**ते**	तुम्हारी
यत्	जो	**कामाय**	लालसा बढ़ानेको (दिखलाया है) ।
एतत्	यह		
रूपं	रूप	**मत्**	मेरी (प्राप्ति की)

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

कामः	कामनावाला	**सर्वान्**	सब
साधुः	सज्जन पुरुष	**हृच्छयान्**	वासनाओंको
शनकैः	धीरे-धीरे	**मुञ्चति**	त्याग देता है ॥२३॥

सत्सेवया दीर्घया ते जाता मयि दृढा मतिः ।
हित्वावद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जनतामसि ॥२४॥

सत् सेवया अदीर्घया ते जाताः मयि दृढाः मतिः हित्वा अवद्यं इमं लोकं गन्ताः मत् जनतां असि ॥ २४ ॥

सत्	संतोंकी	**इमं**	इस
सेवया	सेवा	**अवद्यं**	मलिन
अदीर्घया	थोड़े कालकी	**लोकं**	लोक (देह) को
ते	(होनेपर भी) तुम्हारी	**हित्वा**	त्यागकर
मयि	मुझमें	**मत्**	मेरे
दृढाः	दृढ	**जनतां**	पार्षदत्वको
मतिः	बुद्धि	**गन्ताः**	जानेवाले
जाता	(तुम्हारी) उत्पन्न होगयी है।	**असि**	हो ॥२४॥

मतिर्मयि निबद्धेयं न विपद्येत कर्हिचित् ।
प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात् ॥२५॥

मतिः मयि निबद्धा इयं न विपद्येत कर्हिचित् प्रजाः सर्ग निरोधे अपि स्मृतिः च मत् अनुग्रहात् ॥ २५ ॥

मयि	मुझमें	**सर्ग**	सृष्टि
निबद्धा	बँधी हुई	**निरोधे**	प्रलयमें
इयं	यह (तुम्हारी)	**अपि**	भी
मतिः	बुद्धि	**मत्**	मेरे
कर्हिचित्	कभी भी	**अनुग्रहात्**	अनुग्रहसे
विपद्येत	टूटेगी	**स्मृतिः**	स्मृति
न	नहीं।	**च**	भी (बनी)
प्रजाः	प्रजाओंकी		रहेगी ॥२५॥

नारद उवाच*-

एतावदुक्त्वोपरराम तन्महद्
भूतं नभोलिङ्गमलिङ्गमीश्वरम् ।
अहं च तस्मै महतां महीयसे
शीर्ष्णावनामं विदधेऽनुकम्पितः ॥२६॥

एतावत् उक्त्वा उपरराम तत् महत् भूतं नभोलिङ्गं अलिङ्गं ईश्वरं अहं च तस्मै महतां महीयसे शीर्ष्णा: अवनामं विदधे अनुकम्पितः ॥२६॥

एतावत्	इतना ही	**अहं**	मैंने
उक्त्वा	कहकर	**च**	भी
तत्	वह	**अनुकम्पितः**	(उनका) अनुगृहीत होकर
महत्	महान		
भूतं	स्वरूप	**तस्मै**	उन
नभो	आकाश	**महतां**	महानोंसे भी
लिङ्गं	चिह्नवाले (निराकार)	**महीयसे**	महत्तमको
		शीर्ष्णा:	सिरसे
अलिङ्गं	अव्यक्त	**अवनामं**	प्रणाम
ईश्वरं	ईश्वर	**विदधे**	किया ॥२६॥
उपरराम	चुप होगये ।		

नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन्
गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन् ।
गां पर्यटस्तुष्टमना गतस्पृहः
कालं प्रतीक्षन् विमदो विमत्सरः ॥२७॥

नामानि अनन्तस्य हतत्रपः पठन् गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन् गां पर्यटन् तुष्ट मनाः गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन् विमदः विमत्सरः ॥ २७ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अनन्तस्य	भगवान् अनन्तके	**विमदः**	मदरहित
नामानि	नामोंको	**विमत्सरः**	मत्सररहित
हतत्रपः	लज्जा छोड़कर	**गतस्पृहः**	स्पृहा (कामनाओं) को छोड़कर
पठन्	पढ़ते (गाते) हुए		
च	और	**तुष्टमनाः**	सन्तुष्ट मनसे
गुह्यानि	रहस्यमय	**कालं**	कालकी
भद्राणि	मंगलकारी	**प्रतीक्षन**	प्रतीक्षा करते हुए
कृतानि	लीलाओंको	**गां**	पृथ्वीपर
स्मरन्	स्मरण (चन्तन) करते हुए	**पर्यटन्**	(मैं) घूमता रहा ॥२७॥

एवं कृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः ।
कालः प्रादुरभूत्काले तडित्सौदामनी यथा ॥२८॥

एवं कृष्ण मतेः ब्रह्मन् असक्तस्य अमलात्मनः कालः प्रादुरभूत् काले तडित् सौदामिनी यथा ॥ २८ ॥

ब्रह्मन्	व्यासजी !	**काले**	समयपर
एवं	इस प्रकार	**कालः**	मृत्यु
कृष्ण	श्रीकृष्णमें	**प्रादुरभूत्**	प्रकट हुई
मतेः	लगी बुद्धिवाले	**यथा**	जैसे
असक्तस्य	अनासक्त	**सौदामिनी**	घटाओंमें
अमलात्मनः	निर्मल चित्तवाले (मेरे लिए)	**तडित्**	बिजली (अचानक) प्रकट होती है ।२८।

प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम् ।
आरब्धकर्मनिर्वाणो न्यपतत् पाञ्चभौतिकः ॥२९॥

प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुं आरब्ध कर्म निर्वाणः न्यपतत् पाञ्चभौतिकः ॥ २९ ॥

मयि	मुझे	**भागवतीं**	भगवत्पार्षदका
तां	वह	**तनुं**	शरीर
शुद्धां	शुद्ध		

प्रयुज्यमाने	प्राप्त होनेके अवसरपर	**निर्वाणः**	समाप्त होजानेपर
आरब्ध	प्रारब्ध	**पाञ्चभौतिकः**	पञ्च महाभूतोंसे बना शरीर
कर्म	कर्मके	**न्यपतत्**	नष्ट होगया ॥२८॥

कल्पान्त इदमादाय शयानेऽम्भस्युदन्वतः ।
शिशयिषोरनुप्राणं विविशेऽन्तरहं विभोः ॥३०॥

कल्पान्ते इदं आदाय शयाने अम्भसि उदन्वतः शिशयिषोः अनुप्राणं विविशे अन्तः अहं विभोः ॥ ३० ॥

कल्पान्ते	कल्पके अन्तमें	**शिशयिषोः**	सोनेकी इच्छावाले ब्रह्माजीके साथ
इदं	इस सृष्टिको	**अनुप्राणं**	श्वास वायुके साथ
आदाय	समेटकर	**अहं**	मैं
उदन्वतः	कारणार्णवके	**अन्तः**	भीतर
अम्भसि	जलमें	**विविशे**	प्रविष्ट होगया ।३०।
शयाने	सोते हुए		
विभोः	भगवान विष्णुमें		

सहस्रयुगपर्यन्ते उत्थायेदं सिसृक्षतः ।
मरीचिमिश्रा ऋषयः प्राणेभ्योऽहं च जज्ञिरे ॥३१॥

सहस्र युग पर्यन्ते उत्थाय इदं सिसृक्षतः मरीचि मिश्राः ऋषयः प्राणेभ्यः अहं च जज्ञिरे ॥ ३१ ॥

सहस्र	सहस्र	**प्राणेभ्यः**	प्राणसे
युग	युग	**मरीचि**	मरीचि
पर्यन्ते	जितना समय (ब्राह्मी रात्रि) बीत जानेपर	**मिश्राः**	आदि
		ऋषयः	ऋषिगण
		च	और
उत्थाय	उठकर	**अहं**	मैं
इदं	इस संसारकी	**जज्ञिरे**	उत्पन्न हुआ ॥३१॥
सिसृक्षतः	सृष्टि करनेकी इच्छा वाले (ब्रह्माजी) के		

अन्तर्बहिश्च लोकांस्त्रीन् पर्येम्यस्कन्दितव्रतः ।
अनुग्रहान्महाविष्णोरविघातगतिः क्वचित् ॥३२॥

अन्तः वहिः च लोकान् त्रीन् पर्येमि अस्कन्दितः व्रतः अनुग्रहात् महाविष्णोः अविघात गतिः क्वचित् ॥ ३ ॥

त्रीन्	तीनों	**अनुग्रहात्**	अनुग्रहसे
लोकान्	लोकोंके	**क्वचित्**	कहीं भी
अन्तः	भीतर	**गतिः**	मेरी गति
वहिः	बाहर	**अविघात**	रोकी नहीं जाती
च	भी	**व्रतः**	मेरा व्रत (भक्ति)
पर्येमि	मैं पर्यटन करता हूँ,	**अस्कन्दितः**	कभी स्खलित नहीं होता ॥३२॥
महाविष्णोः	महाविष्णुके		

देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् :
मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम् ॥३३॥

देवदत्तां इमां वीणां स्वर ब्रह्म विभूषितां मूर्छयित्वा हरिकथां गायमानः चरामि अहम् ॥ ३३ ॥

इमां	इस	**मूर्छयित्वा**	बजाते हुए
देवदत्तां	भगवानकी दी हुई	**हरिकथां**	श्रीहरिकी कथा
स्वर ब्रह्म	स्वर ब्रह्म (भगवन्नामयश) से	**गायमानः**	गायन करते हुए
		अहं	मैं
विभूषितां	विशेषतः अलंकृत	**चरामि**	विचरण करता हूँ ॥३३॥
वीणां	वीणाको		

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥३४॥

प्रगायतः स्व वीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥ ३४ ॥

तीर्थपादः	जिनके चरण तीर्थ हैं	**प्रियश्रवाः**	जिनका यश सुननेमें प्रिय लगता है (वे भगवान)

स्व	अपने	**आहूत**	बुलाये गये
वीर्याणि	पराक्रमों (लीलाओं) को	**इव**	के समान
		शीघ्रं	झटपट
प्रगायतः	गाते हुए	**दर्शनं**	दर्शन
मे	मेरे	**याति**	देने लगते हैं ॥३४॥
चेतसि	चित्तमें		

एतद्ध्यातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया मुहुः ।
भवसिन्धुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम् ॥३५॥

एतत् हि ध्यातुः अचित्तानां मात्रा स्पर्श इच्छयाः मुहुः भवसिन्धु प्लवः दृष्टः हरिचर्याः अनुवर्णनम् ॥ ३५ ॥

हि	क्योंकि		वालोंके लिए
अचित्तानां	अस्थिर चित्तवाले	**एतत्**	यही
मात्रा	तन्मात्राओं (शब्द, स्पर्श,रूप, रस, गंध) के	**हरिचर्याः**	भगवानकी लीलाओंका
		अनुवर्णनं	बार-बार वर्णन
स्पर्श	भोग	**भवसिन्धु**	संसार सागरसे पार होनेको
इच्छयाः	इच्छासे		
मुहुः	बार-बार	**प्लवः**	जहाज
ध्यातुः	(विषयोंमें) जाने	**दृष्टः**	बतलाया गया है।३५।

यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः ।
मुकुन्दसेवया यद्वत्तथाऽऽत्माद्धा न शाम्यति ॥३६॥

यम आदिभिः योगपथैः काम लोभ हतः मुहुः मुकुन्द सेवया यद्वत् तथा आत्मा अद्धा न शाम्यति ॥ ३६ ॥

काम	काम	**मुकुन्द**	भगवान् मुकुन्द
लोभ	लोभसे	**सेवया**	सेवासे
मुहुः	बार-बार	**यद्वत्**	जैसा
हतः	आहत	**अद्धा**	प्रत्यक्ष
आत्मा	चित्त	**शाम्यति**	शान्त (शुद्ध)होता है

तथा	वैसा	**योगपथैः**	योगके मार्गसे
यम	यम	**न**	नहीं
आदि	नियम,धारणा ध्यान आदि		(शुद्ध होता) ॥३६॥

सर्वं तदिदमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ।
जन्मकर्मरहस्यं मे भवतश्चात्मतोषणम् ॥३७॥

सर्वं तत् इदं आख्यातं यत् पृष्टः अहं त्वया अनघ जन्म कर्म रहस्यं मे भवता च आत्म तोषणम् ॥ ३७ ॥

अनघ	निष्पाप व्यासजी !	**जन्म**	जन्म
यत्	जो	**कर्म**	कर्म (तथा)
त्वया	आपके द्वारा	**भवता**	आपके
अहं	मुझसे	**आत्म**	चित्तको
पृष्टः	पूछा गया	**तोषणं**	सन्तुष्ट करनेवाला
इदं	यह	**रहस्यं**	रहस्य
सर्वं	सब	**च**	भी
तत्	वह	**आख्यातं**	बतला दिया ॥३७॥
मे	मेरा		

सूत उवाच–

एवं सम्भाष्य भगवान्नारदो वासवीसुतम् ।
आमन्त्र्य वीणां रणयन् ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥३८॥

एवं सम्भाष्य भगवान् नारदः वासवीसुतं आमन्त्र्य वीणां रणयन् ययौ यादृच्छिकः मुनिः ॥ ३८ ॥

एवं	इस प्रकार	**यादृच्छिकः**	इच्छानुसार घूमनेवाले
सम्भाष्य	कहकर	**भगवान्**	भगवान् (ऐश्वर्यवान्)
वासवीसुतं	व्यासजीसे	**नारदः**	नारद
आमन्त्र्य	अनुमति लेकर		

मुनिः	मुनि	रणयन्	बजाते हुए
वीणां	वीणाको	ययौ	चले गये ॥३८॥

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः ।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥३९॥

अहो देवर्षिः धन्यः अयं यत् कीर्तिं शारङ्ग धन्वनः गायन् माद्यन् इदं तन्त्र्याः रमयति आतुरं जगत् ॥ ३९ ॥

अहो	अहा	माद्यन्	आनन्द मग्न हुए
अयं	ये	तन्त्र्याः	वीणाके द्वारा
देवर्षिः	देवर्षि नारदजी	इदं	इस
धन्यः	धन्य हैं	आतुरं	आतुर (त्रिताप
यत्	जो		व्याकुल)
शारङ्ग धन्वनः	शारङ्ग धन्वा भगवानकी	जगत्	संसारको
		रमयति	आनन्दित करते
कीर्तिं	सुयशको		रहते हैं ॥३९॥
गायन्	गाते हुए		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः

अथ सप्तमोऽध्यायः

शौनक उवाच-

निर्गते नारदे सूत भगवान् बादरायणः ।
श्रुतवांस्तदभिप्रेतं ततः किमकरोद्विभुः ॥१॥

निर्गते नारदे सूत भगवान् बादरायणः श्रुतवान् तत् अभिप्रेतं ततः किं अकरोत् विभुः ॥ १ ॥

सूत	सूतजी !	**तत्**	वह
नारदे	देवर्षि नारदके	**अभिप्रेतं**	अपना अभीष्ट
निर्गते	चले जानेपर	**श्रुतवान्**	सुन लिया था
भगवान्	शक्तियुक्त	**ततः**	तब फिर
विभुः	सर्वज्ञ	**किं**	क्या
बादरायणः	व्यासजीने	**अकरोत्**	किया ॥१॥

सूत उवाच-

ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः पश्चिमे तटे ।
शम्याप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्धनः ॥२॥

ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यां आश्रमः पश्चिमे तटे शम्याप्रास इति प्रोक्तः ऋषीणां सत्र वर्द्धनः ॥ २ ॥

ब्रह्मनद्यां	ब्रह्मनदी	**वर्द्धनः**	बढ़ानेवाला
सरस्वत्यां	सरस्वतीके	**शम्याप्रास**	शम्याप्रास
पश्चिमे	पश्चिमी	**इति**	इस
तटे	किनारेपर	**प्रोक्तः**	नामका
ऋषीणां	ऋषियोंके	**आश्रमः**	आश्रम है ॥२॥
सत्र	यज्ञोंको		

तस्मिन् स्व आश्रमे व्यासो बदरीखण्डमण्डिते ।
आसीनोऽप उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनः स्वयम् ॥३॥

तस्मिन् स्व आश्रमे व्यासः बदरीखण्डमण्डिते आसीनः अपः उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनः स्वयं ॥ ३ ॥

तस्मिन्	उस	**व्यासः**	व्यासजीने
बदरीखण्डमण्डिते	वेरोंके झुंडसे शोभित	**अपः**	जलसे
		उपस्पृश्य	आचमन करके
स्व	अपने	**मनः**	मनको
आश्रमे	आश्रममें	**स्वयं**	मनके ही द्वारा
आसीनः	बैठकर	**प्रणिदध्यौ**	एकाग्र किया ॥३॥

भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले ।
अपश्यत्पुरुषं पूर्वं मायां च तदपाश्रयाम् ॥४॥

भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणहिते अमले अपश्यत् पुरुषं पूर्वं मायां च तत् अपाश्रयाम् ॥ ४ ॥

भक्तियोगेन	भक्तियोगके द्वारा	**पुरुषं**	पुरुष परमात्माको
सम्यक्	भली प्रकार	**च**	और
प्रणिहिते	एकाग्र हुए	**तत्**	उनके
अमले	निर्मल	**अपाश्रयां**	आश्रयमें रहनेवाली
मनसि	अन्तःकरणमें	**मायां**	मायाको
पूर्वं	आदि	**अपश्यत्**	देखा ॥४॥

यया सम्मोहितोजीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् ।
परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ॥५॥

यया सम्मोहितः जीवः आत्मानं त्रिगुणात्मकं परः अपि मनुते अनर्थं तत् कृतं च अभिपद्यते ॥ ५ ॥

यया	जिस (माया) से	**परः**	पर होनेपर
सम्मोहितः	सम्मोहित	**अपि**	भी
जीवः	जीव	**आत्मानं**	अपने आपको

त्रिगुणात्मकं	तीनों गुणोंसे युक्त	**कृतं**	किये हुए
मनुते	मानता है	**अनर्थं**	अनर्थोंको
च	और	**अभिपद्यते**	भोगता है ॥५॥
तत्	मायाके द्वारा		

अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे ।
लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ॥६॥

अनर्थः उपशमं साक्षात् भक्तियोगं अधोक्षजे लोकस्य अजानतः विद्वान् चक्रे सात्वत संहिताम् ॥ ६ ॥

अनर्थ	अनर्थोंकी	**अजानतः**	यह अज्ञात है,
उपशमं	शान्तिका	**विद्वान्**	ऐसा जानकर
साक्षात्	प्रत्यक्ष साधन	**सात्वत**	परमहंस
अधोक्षजे	हृषीकेशमें	**संहितां**	संहिता (श्रीमद्भागवत) का
भक्तियोगं	भक्तियोग है ।		
लोकस्य	लोगोंको	**चक्रे**	निर्माण किया ॥६॥

यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे ।
भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा ॥७॥

यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे भक्तिः उत्पद्यते पुंसः शोक मोह भय अपहा ॥ ७ ॥

यस्यां	जिसके	**अपहा**	दूर करनेवाली
श्रूयमाणायां	श्रवणमें लगे	**परमपूरुषे**	परमपुरुष
पुंसः	पुरुषोंमें	**कृष्णे**	श्रीकृष्ण में
वै	निश्चय ही	**भक्तिः**	भक्ति
शोक	शोक,	**उत्पद्यते**	उत्पन्न हो जाती है ॥७॥
मोह	मोह,		
भय	भयको		

स संहितां भागवतीं कृत्वानुक्रम्य चात्मजम् ।
शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनिः ॥८॥

स संहितां भागवतीं कृत्वा अनुक्रम्य च आत्मज शुकं अध्यापयामास निवृत्ति निरतं मुनिः ॥ ८ ॥

स	उन	**अनुक्रम्य**	दुबारा देखकर
मुनिः	मुनि व्यासजीने	**निवृत्ति**	निवृत्ति
भागवतीं	श्रीमद्भागवतको	**निरतं**	निरत
संहितां	संहिता	**आत्मजं**	अपने पुत्र
कृत्वा	बनाकर	**शुकं**	शुकदेवजीको
च	और	**अध्यापयामास**	पढ़ाया ॥८॥

शौनक उवाच-

स वै निवृत्तिनिरतः सर्वत्रोपेक्षको मुनि ।
कस्य वा बृहतीमेतामात्मारामः समभ्यसत् ॥९॥

स वै निवृत्ति निरतः सर्वत्र उपेक्षकः मुनिः कस्य वा वृहतीं एतां आत्मारामः समभ्यसत ॥ ९ ॥

स	वे		आनन्द करनेवाले हैं ।
मुनिः	मुनि शुकदेवजी		
वै	तो	**कस्य वा**	किस कारणसे
निवृत्ति	निवृत्तिमें	**एतां**	इस
निरतः	अत्यन्त परायण हैं,	**वृहतीं**	बड़ी संहिताको
सर्वत्र	सब कहीं (सबकी)	**समभ्यसत**	भली प्रकार अभ्यास (अध्ययन) किया ? ॥९॥
उपेक्षकः	उपेक्षा करनेवाले हैं,		
आत्मारामः	अपनी आत्मामें ही		

सूत उवाच-

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्यम्भूतगुणो हरिः ॥१०॥

आत्मारामाः च मुनयः निर्ग्रन्थाः अपि उरुक्रमे कुर्वन्ति अहैतुकीं भक्ति इत्थं भूत गुणः हरिः ॥ १० ॥

आत्मारामाः	आत्मामें ही आनन्द करनेवाले	**उरुक्रमे**	अनन्त लीलामयकी
च	और	**अहैतुकीं**	निष्काम
निर्ग्रन्थाः	अविद्या ग्रन्थिसे रहित	**भक्तिं**	भक्ति
अपि	होनेपर भी	**कुर्वन्ति**	करते हैं ।
मुनयः	मुनि (मननशील) लोग	**हरिः**	भगवान्
		इत्थंभूत	इस प्रकारके
		गुणः	गुणवाले ही हैं ॥१०॥

हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः ।
अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ॥११॥

हरेः गुण आक्षिप्त मतिः भगवान् बादरायणिः अध्यगान् महत् आख्यानं नित्यं विष्णुजनः प्रियः ॥ ११ ॥

भगवान्	भगवान्	**नित्यं**	सदा
बादरायणिः	श्रीव्यासनन्दनजीने	**विष्णुजनः**	भगवद् भक्तोंको
हरेः	श्रीहरिके	**प्रियः**	प्रिय
गुण	गुणोंसे	**महत्**	बड़े
आक्षिप्त	आकर्षित	**आख्यानं**	आख्यान भागवतको
मतिः	बुद्धि होकर	**अध्यगात्**	अध्ययन किया ॥११॥

परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्मकर्मविलापनम् ।
संस्थां च पाण्डुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ॥१२॥

परीक्षितः अथः राजर्षेः जन्म कर्म विलापनं संस्थां च पाण्डुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्ण कथा उदयम् ॥ १२ ॥

अथ	अब	**कर्म**	कर्म,
कृष्ण	श्रीकृष्णकी	**विलापनं**	मोक्ष
कथा	कथाकी	**च**	और
उदयम्	उद्गम रूप	**पाण्डुपुत्राणां**	पाण्डवोंके
राजर्षेः	राजर्षि	**संस्थां**	महाप्रयाणको
परीक्षितः	परिक्षितकी	**वक्ष्ये**	बतलाऊँगा ॥१२॥
जन्म	उत्पत्ति,		

यदा मृधे कौरवसृञ्जयानां
वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु ।
वृकोदराविद्धगदाभिमर्श-
भग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे ॥१३॥

यदा मृधे कौरव पाण्डवानां वीरेषु अथ वीरगतिं गतेषु वृकोदर आविद्ध गदा अभिमर्ष भग्न उरुदण्डे धृतराष्ट्र पुत्रे ॥ १३ ॥

यदा	जब	**अथ**	तदनन्तर
मृधे	युद्धमें	**वृकोदरआविद्ध**	भीमसेनकी चलायी
कौरव	कौरव	**गदा**	गदाके
पाण्डवानां	पाण्डव पक्षके	**अभिमर्ष**	आघातसे
वीरेषु	वीरोंके	**धृतराष्ट्र**	धृतराष्ट्रके
वीरगतिं	वीरगति	**पुत्रे**	पुत्र (दुर्योधन) के
गतेषु	जानेपर (मारे जानेपर)	**उरुदण्डे**	जाघोंके
		भग्न	टूट जानेपर ॥१३॥

भर्तुः प्रियं द्रौणिरिति स्म पश्यन्
कृष्णासुतानां स्वपतां शिरांसि ।
उपाहरद् **विप्रियमेव** **तस्य**
जुगुप्सितं कर्म विगर्हयन्ति ॥१४॥

भर्तुः प्रियं द्रोणिः इति स्म पश्यन् कृष्णा सुतानां स्वपतां शिरांसि उपाहरत् विप्रियं एव तस्य जुगुप्सितं कर्म विगर्हयन्ति ॥ १४ ॥

द्रोणिः	द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने	**कृष्णा**	द्रौपदीके
भर्तुः	अपने स्वामी दुर्योधनका	**सुताणां**	पुत्रोंके
		शिरांसि	सिरोंको
प्रियं	प्रिय	**उपाहरत्**	(काटकर) ले आना
इति स्म	इतना ही		(यह कार्य)
पश्यन्	देखा कि	**तस्य**	उस (दुर्योधन)
स्वपतां	सोते हुए		को भी

विप्रियं	अप्रिय	**कर्म**	कर्मकी
एव	ही लगा; क्योंकि	**विगर्हयन्ति**	(सब) निन्दा करते
जुगुप्सितं	निन्दित		हैं ॥१४॥

माता शिशूनां निधनं सुतानां
निशम्य घोरं परितप्यमाना ।
तदारुदद्वाष्पकलाकुलाक्षी
तां सान्त्वयन्नाह किरीटमाली ॥१५॥

मातः शिशूनां निधनं सुतानां निशम्य घोरं परितप्यमाना तदा अरुदत् वाष्पकलाः आकुलाक्षी तां सान्त्वयन् आह किरीटमाली ॥ १५ ॥

माताः	माता द्रौपदी	**आकुलाक्षी**	व्याकुल नेत्रोंवाली
शिशूनां	शिशु	**अरुदत्**	रोने लगी,
सुतानां	पुत्रोंकी	**तदा**	उस समय
घोरं	भयानक	**तां**	उसको
निधनं	मृत्यु	**सान्त्वयन्**	सान्त्वना देते हुए
निशम्य	सुनकर	**किरीटमाली**	अर्जुन
परितप्यमाना	दुःखी हुई	**आह**	बोले ॥१५॥
वाष्पकलाः	आँसुओंसे		

अर्जुन उवाच*–

तदा शुचस्ते प्रमृजामि भद्रे
यद्ब्रह्मबन्धोः शिर आततायिनः ।
गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरे
त्वाऽऽक्रम्य यत्स्नास्यसि दग्धपुत्रा ॥१६॥

तदा शुचः ते प्रमृजामि भद्रे यत् ब्रह्मबन्धोः शिर आततायिनः गाण्डीव मुक्तैः विशिखैः उपाहरे तु आक्रम्य यत् स्नास्यसि दग्धपुत्रा ॥ १६ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भद्रे	कल्याणी !
तदा	उस समय
ते	तुम्हारे
शुचः	आँसुओंको
प्रमृजामि	पोंछूंगा
यत्	जब
आततायिनः	आततायी
ब्रह्मबन्धोः	अधम ब्राह्मणका
शिर	मस्तक
गाण्डीव	गाण्डीव धनुषसे
मुक्तैः	छूटे हुए
विशिखैः	वाणोंसे
उपाहरे	काट लाऊँगा
तु यत्	और जब
दग्धपुत्रा	पुत्रोंके दाहके
	पश्चात् तुम
आक्रम्य	उसपर पैर रखकर
स्नास्यसि	स्नान करोगी ॥१६॥

सूत उवाच-*

इति प्रियां वल्गुविचित्रजल्पैः
स सान्त्वयित्वाच्युतमित्रसूतः ।
अन्वाद्रवद्दंशित उग्रधन्वा
कपिध्वजो गुरुपुत्रं रथेन ॥१७॥

इति प्रियां वल्गु विचित्र जल्पैः स सान्त्वयित्वा अच्युत मित्र सूतः अनु अद्रवत् दंशितः उग्रधन्वा कपिध्वजः गुरुपुत्रं रथेन ॥ २७ ॥

इति	इस प्रकार
वल्गु	मीठी
विचित्र	विचित्र
जल्पैः	बातोंसे
प्रियां	पत्नी द्रौपदीको
सान्त्वयित्वा	सान्त्वना देकर
स	उन
उग्रधन्वा	भयानक धनुषवाले
कपिध्वजः	कपिध्वज अर्जुनने
अच्युतमित्र	अपने मित्र श्रीकृष्णको
सूतः	सारथी बनाकर
दंशितः	कवच धारण करके
रथेन	रथपर बैठकर
गुरुपुत्रं	गुरु द्रोणाचार्यके पुत्रके
अनु	पीछे
अद्रवत्	दौड़े ॥१७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तमापतन्तं स विलक्ष्य दूरात्
कुमारहोद्विग्नमना रथेन ।
पराद्रवत्प्राणपरीप्सुरुर्व्यां
यावद्गमं रुद्रभयाद्यथार्कः ॥१८॥

तं आपतन्तं स विलक्ष्य दूरात् कुमारहा उद्विग्न मनाः रथेन पराद्रवत् प्राण परीप्सुः उर्व्यां यावत् गमं रुद्रभयात् यथा अर्कः ॥ १८ ॥

कुमारहा	बच्चोंकी हत्यासे	**रथेन**	रथपर बैठकर
उद्विग्नमनाः	उद्विग्न चित्तवाले	**उर्व्यां**	पृथ्वीपर
स	उस (अश्वत्थामा)ने	**यावत्**	जहाँतक
दूरात्	दूरसे	**गमं**	जा सकता था
तं	उन (अर्जुन) को	**पराद्रवत्**	भागता गया
आपतन्तं	झपटे आते	**यथा**	जैसे
विलक्ष्य	देखकर	**रुद्रभयात्**	शंकरजीके भयसे
प्राण	प्राण	**अर्कः**	सूर्य (भागे थे)॥१८॥
परीप्सुः	बचानेकी इच्छासे		

यदाशरणमात्मानमैक्षत श्रान्तवाजिनम् ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरो मेने आत्मत्राणं द्विजात्मजः ॥१९॥

यदा अशरणं आत्मानं ऐक्षत श्रान्त वाजिनं अस्त्रं ब्रह्मशिरः मेने आत्मत्राणं द्विजात्मजः ॥ १९ ॥

यदा	जब	**अशरणं**	सहायक रहित
द्विजात्मजः	ब्राह्मणपुत्र (अश्वत्थामा) ने	**ऐक्षत**	देखा (तब)
		ब्रह्मशिरः	ब्रह्मशिर नामक
श्रान्त	थके हुए	**अस्त्रं**	अस्त्रको
वाजिनं	घोड़ोंको (और)	**आत्मत्राणं**	अपना रक्षक
आत्मानं	अपनेको	**मेने**	माना ॥१९॥

अथोपस्पृश्य सलिलं संदधे तत्समाहितः ।
अजानन्नुपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपस्थिते ॥२०॥

अथ उपस्पृश्य सलिलं सन्दधे तत् समाहितः अजानन् उपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपस्थिते ॥ २० ॥

उपसंहारं	शान्त करना	**सलिलं**	जलसे
अजानन्	न जानते हुए भी	**उपस्पृश्य**	आचमन करके
प्राणकृच्छ्र	प्राणोंपर संकट	**समाहितः**	एकाग्र होकर
उपस्थिते	उपस्थित होजानेसे	**तत्**	उस अस्त्रका
अथ	तब	**सन्दधे**	सन्धान किया ॥२० ॥

ततः प्रादुष्कृतं तेज, प्रचण्डं सर्वतोदिशम् ।
प्राणापदमभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुरुवाच ह ॥२१॥

ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचण्डं सर्वतः दिशं प्राणः आपदं अभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुः उवाच ह ॥ २१ ॥

ततः	तब	**ह**	निश्चित
सर्वतः	सभी	**आपदं**	आपत्ति
दिशं	दिशाओंमें	**अभिप्रेक्ष्य**	आयी देखकर
प्रचण्डं	प्रचण्ड	**जिष्णुः**	अर्जुन
तेजः	तेज	**विष्णुं**	श्रीकृष्णसे
प्रादुष्कृतं	प्रकट हुआ,	**उवाच**	बोला ॥२१॥
प्राणः	प्राणोंपर		

अर्जुन उवाच-

कृष्ण कृष्ण महाभाग भक्तानामभयंकर ।
त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः ॥२२॥

कृष्ण कृष्ण महाभाग भक्तानां अभयंकर त्वं एकः दह्यमानानां अपवर्गः असि संसृतेः ॥ २२ ॥

महाभाग	परम सौभाग्य रूप	**अभयंकर**	अभय देनेवाले
कृष्ण कृष्ण	हे श्रीकृष्ण !	**संसृतेः**	संसार चक्रमें
भक्तानां	भक्तोंको	**दह्यमानानां**	जलते हुओंके लिए

त्वं	तुम	**अपवर्गः**	मोक्ष देनेवाले
एकः	एकमात्र	**असि**	हो ॥२२॥

त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः ।
मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि ॥२३॥

त्वं आद्यः पुरुषः साक्षात् ईश्वरः प्रकृतेः परः मायां व्युदस्य चित् शक्त्या कैवल्ये स्थितः आत्मनि ॥ २३ ॥

त्वं	तुम	**चित्**	ज्ञानमयी
आद्यः	आदि	**शक्त्या**	शक्तिसे
पुरुषः	पुरुष	**मायां**	मायाको
प्रकृतेः	प्रकृतिसे	**व्युदस्य**	हटाकर
परः	परे	**कैवल्ये**	अद्वितीय
साक्षात्	साक्षात्	**आत्मनि**	आत्मस्वरूपमें
ईश्वरः	ईश्वर हो,	**स्थितः**	स्थित हो ॥२३॥

स एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः ।
विधत्से स्वेन वीर्येण श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥२४॥

स एव जीवलोकस्य माया मोहित चेतसः विधत्से स्वेन वीर्येण श्रेयः धर्मादि लक्षणम् ॥ २४ ॥

स	वही तुम	**वीर्येण**	पराक्रमसे
एव	ही	**धर्मादि**	धर्म, मोक्ष आदि
माया	मायासे	**लक्षणं**	लक्षणवाले
मोहित	मोहित	**श्रेयः**	कल्याणकारी
चेतसः	चित्तवाले		कर्मोंका
जीवलोकस्य	जीवोंके लिए	**विधत्से**	विधान करते
स्वेन	अपने ही		हो ॥२४॥

तथायं चावतारस्ते भुवो भारजिहीर्षया ।
स्वानां चानन्यभावानामनुध्यानाय चासकृत् ॥२५॥

तथा अयं च अवतारः ते भुवि भार जिहीर्षया स्वानां च अनन्य भावानां अनुध्यानाय च असकृत् ॥ २५ ॥

तथा	इसी प्रकार
ते	आपका
अयं	यह
अवतारः	अवतार
च	भी
भुवि	पृथ्वीका
भार	भार
जिहीर्षया	दूर करनेके लिए
च	और
स्वानां	अपने
अनन्य	अनन्य
भावानां	भाववालोंके लिए
असकृत्	निरन्तर
च	तथा
अनु	बार-बार
ध्यानाय	ध्यान करनेके लिए है ॥२५॥

किमिदं स्वित्कुतो वेति देवदेव न वेद्म्यहम् ।
सर्वतोमुखमायाति तेजः परमदारुणम् ॥२६॥

किं इदं स्वित् कुतः वा एति देवदेव न वेद्मि अहं सर्वतोमुखं आयाति तेजः परम दारुणम् ॥ २६ ॥

देवदेव	देवदेव !
परम	अत्यन्त
दारुणं	भयानक
तेजः	तेज
सर्वतोमुखं	सव ओरसे
आयाति	आ रहा है
इदं	यह
किं	क्या
स्वित्	है,
कुतः	कहाँसे
वा एति	तो आ रहा है—
अहं	मैं
न	नहीं
वेद्मि	जानता ॥२६॥

श्रीभगवानुवाच-

वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं प्रदर्शितम् ।
नैवासो वेद संहारं प्राणबाध उपस्थिते ॥२७॥

वेत्थ इदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्मं अस्त्रं प्रदर्शितं नैव असौ वेद संहारं प्राणबाधः उपस्थिते ॥ २७ ॥

प्राणबाधः	प्राणोंका संकट
उपस्थिते	आ जानेपर
द्रोणपुत्रेण	द्रोणचार्यके पुत्र अश्वत्थामा द्वारा

प्रदर्शितं	प्रदर्शन (प्रयोग) हुआ	**असौ**	यह (अश्वत्थामा)
इदं	यह	**संहारं**	इसे लौटाना
ब्राह्मं अस्त्रं	ब्रह्मास्त्र	**नैव**	नहीं ही
वेत्थ	जानो	**वेद**	जानता ॥२७॥

न ह्यस्यान्यतमं किञ्चिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् ।
जह्यस्त्रतेज उन्नद्धमस्त्रज्ञो ह्यस्त्रतेजसा ॥२८॥

न हि अस्य अन्यतमं किंचित् अस्त्रं प्रति अवकर्शनं जहि अस्त्रतेजः उन्नद्धं अस्त्रज्ञः हि अस्त्रतेजसा ॥ २८ ॥

हि	क्योंकि	**हि**	क्योंकि
अस्य	इस (ब्रह्मास्त्र) का	**अस्त्रज्ञः**	तुम अस्त्रके ज्ञाता हो,
प्रति	उलटे	**उन्नद्धं**	बढ़े हुए
अवकर्शनं	खींच लेनेवाला	**अस्त्रतेजः**	अस्त्रके तेजको
अन्यतमं	दूसरा	**अस्त्रतेजसा**	ब्रह्मास्त्रके तेजसे
किंचित्	कोई भी	**जहि**	मार दो ॥२८॥
अस्त्रं	अस्त्र		
न	नहीं है,		

सूत उवाच-

श्रुत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः परवीरहा ।
स्पृष्ट्वापस्तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे ॥२९॥

श्रुत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः परवीरहा स्पृष्ट्वा अपः तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे ॥ २९ ॥

भगवता	भगवानकी	**फाल्गुनः**	अर्जुनने
प्रोक्तं	कही बातको	**अपः**	जलसे
श्रुत्वा	सुनकर	**स्पृष्ट्वा**	आचमन करके
परवीरहा	शत्रु पक्षके वीरोंके नाशक	**तं**	उन (श्रीकृष्ण) की
		परिक्रम्य	परिक्रमा करके

ब्राह्मय	ब्रह्मास्त्रपर	संदधे	संधान किया ॥२९॥
ब्राह्मं	ब्रह्मास्त्रका		

संहत्यान्योन्यमुभयोस्तेजसी शरसंवृते ।
आवृत्य रोदसी खं च ववृधातेऽर्कवह्निवत् ॥३०॥

संहत्य अन्योन्यं उभयोः तेजसी शर संवृते आवृत्य रोदसीः खं च ववृधाते अर्कः वह्निवत् ॥ ३० ॥

शर	वाणोंसे	च	और
संवृते	भली प्रकार घिरे	खं	आकाशको
उभयोः	दोनों	आवृत्य	घेरकर
तेजसी	तेजोमय (ब्रह्मास्त्र)	अर्कः	सूर्य एवं
अन्योन्यं	एक दूसरेसे	वह्नि	अग्नि
संहत्य	टकराकर	वत्	की भाँति
रोदसीः	दिशाओंको	ववृधाते	बढ़ने लगे ॥३०॥

दृष्ट्वास्त्रतेजस्तु तयोस्त्रील्लोकान् प्रदहन्महत् ।
दह्यमानाः प्रजाः सर्वाः सांवर्तकममंसत ॥३१॥

दृष्टवा अस्त्र तेजः तु तयोः त्रीन् लोकान् प्रदहन् महत् दह्यमानाः प्रजाः सर्वाः सांवर्तकं अमंसत ॥ ३१ ॥

तयोः	उन दोनों	दृष्टवा	देखकर
महत्	महान	दह्यमानाः	दग्ध हो रहे
अस्त्र	अस्त्रोंके	सर्वाः	सभी
तेजः	तेजको	प्रजाः	प्रजाने (उसको)
त्रीन्	तीनों	तु	निश्चित
लोकान्	लोकोंको	सांवर्तकं	प्रलयाग्नि
प्रदहन्	भस्म करते	अमंसत	मान लिया ॥३१॥

प्रजोपप्लवमालक्ष्य लोकव्यतिकरं च तम् ।
मतं च वासुदेवस्य संजहारार्जुनो द्वयम् ॥३२॥

प्रजा उपप्लवं आलक्ष्य लोक व्यतिकरं च तं मतं च वासुदेवस्य संजहार अर्जुनः द्वयम् ॥ ३२ ॥

प्रजा	प्रजाका	**च**	तथा
उपप्लवं	विनाश	**वासुदेवस्य**	श्रीकृष्णकी
च	और	**मतं**	सम्मतिसे
लोक	लोकमें	**अर्जुनः**	अर्जुनने
व्यतिक्रमं	अव्यवस्था करनेवाले	**द्वय**	दोनों (ब्रह्मास्त्रों)को
तं	उन (तेजों) को	**संजहार**	खींच लिया ॥३२॥
आलक्ष्य	देखकर		

तत आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतम् ।
बबन्धामर्षताम्राक्षः पशुं रशनया यथा ॥३३॥

तत आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतं बबन्ध अमर्ष ताम्राक्षः पशुं रशनया यथा ॥ ३३ ॥

तत	इसके पश्चात् (अर्जुनने)	**ताम्राक्षः**	लाल-लाल नेत्र करके
दारुणं	क्रूर	**रशनया**	रस्सीसे
गौतमीसुनं	अश्वत्थामाको	**पशुं**	पशुकी
तरसा	वेगपूर्वक	**यथा**	भाँति
आसाद्य	पकड़कर	**बबन्ध**	बांध दिया ॥३३॥
अमर्ष	क्रोधसे		

शिबिराय निनीषन्तं दाम्ना बद्ध्वारिपुं बलात् ।
प्राहार्जुनं प्रकुपितो भगवानम्बुजेक्षणः ॥३४॥

शिबिराय निनीषन्तं दाम्नां बद्ध्वा रिपुं बलात् प्राह अर्जुनं प्रकुपितः भगवान् अम्बुजेक्षणः ॥ ३४ ॥

दाम्ना	रस्सीसे	**निनीषन्तं**	ले जाते हुए
बद्ध्वा	बाँधकर	**अर्जुनं**	अर्जुनसे
रिपुं	शत्रु (अश्वत्थामा) को	**प्रकुपितः**	अत्यन्त क्रुद्ध होकर
		अम्बुजेक्षणः	कमललोचन
बलात्	बलपूर्वक	**भगवान्**	श्रीकृष्ण
शिबिराय	अपने शिविर	**प्राह**	बोले ॥३४॥

*श्रीभगवानुवाच**

मैनं पार्थार्हसि त्रातुं ब्रह्मबन्धुमिमं जहि ।
योऽसावनागसः सुप्तानवधीन्निशि बालकान् ॥३५॥

मा एनं पार्थ अर्हसि त्रातुं ब्रह्मबन्धुं इमं जहि यः असौ अनागसः सुप्तान् अवधीत् निशि बालकान् ॥ ३५ ॥

पार्थ	अर्जुन !	**यः**	जो
एनं	इसको	**असौ**	इसने
त्रातुं	बचाना	**अनागसः**	निरपराध
अर्हसि	उचित	**सुप्तान्**	सोते हुए
मा	नहीं है,	**बालकान्**	बालकोंका
इमं	इस	**निशि**	रात्रिमें
ब्रह्मबन्धुं	अधम ब्राह्मणको	**अवधीत्**	वध किया है ॥३५॥
जहि	मारदो		

मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम् ।
प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित् ॥३६॥

मत्तं प्रमत्तं उन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडं प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित् ॥ ३६ ॥

मत्तं	असावधान	**प्रपन्नं**	शरणागत,
प्रमत्तं	(नशादिसे) मतवाले	**विरथं**	रथहीन,
उन्मत्तं	पागल,	**भीतं**	भयभीत
सुप्तं	सोते	**रिपुं**	शत्रुको
बालं	बालक,	**धर्मवित्**	धर्मज्ञ पुरुष
स्त्रियं	स्त्री,	**न**	नहीं
जडं	मूर्ख,	**हन्ति**	मारते ॥३६॥

स्वप्राणान् यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः ।
तद्वधस्तस्य हि श्रेयो यद्दोषाद्याात्यधः पुमान् ॥३७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

स्व प्राणान् यः परः प्राणैः प्रपुष्णाति अधृणः खलः तत् वधः तस्य हि श्रेयः यत् दोषात् याति अधः पुमान् ॥ ३७ ॥

यः	जो	**वधः**	मार देना
अधृणः	क्रूर	**तस्य**	उसीके लिए
खलः	दुष्ट	**श्रेयः**	कल्याणकारी है,
स्व	अपने	**हि**	क्योंकि
प्राणान्	प्राणोंको	**यत्**	ऐसे
परः	दूसरेके	**दोषात्**	दोषोंसे
प्राणैः	प्राण लेकर	**पुमान्**	पुरुष
प्रपुष्णाति	पोषित करता है,	**अधः**	नीचे (नरकोंको)
तत्	उसको	**याति**	जाता है ॥३७॥

प्रतिश्रुतं च भवता पाञ्चाल्यै शृण्वतो मम ।
आहरिष्ये शिरस्तस्य यस्ते मानिनि पुत्रहा ॥३८॥

प्रतिश्रुतं च भवता पाञ्चाल्यैः शृण्वतः मम आहरिष्ये शिरः तस्य यः ते मानिनि पुत्रहा ॥ ३८ ॥

च	और	**यः**	जो
मम	मेरे	**ते**	तुम्हारे
शृण्वतः	सुनते हुए	**पुत्रहा**	पुत्रोंको मारनेवाला है,
भवता	तुमने		
पाञ्चाल्यैः	द्रौपदीसे	**तस्य**	उसका
प्रतिश्रुतं	प्रतिज्ञाकी है—	**शिरः**	मस्तक
मानिनि	मानिनी !	**आहरिष्ये**	काट लाऊँगा ॥३८॥

तदसौ वध्यतां पाप आततायात्मबन्धुहा ।
भर्तुश्च विप्रियं वीर कृतवान् कुलपांसनः ॥३९॥

तत् असौ बध्यतां पापः आततायि आत्म बन्धुहा भर्तुः च विप्रियं वीर कृतवान् कुलपांसनः ॥ ३९ ॥

वीर	अर्जुन !	**असौ**	इस
तत्	इसलिए	**पापः**	पापी,

आततायि	आततायी,	**कुलपांसनः**	(इस) कुलाङ्गारने तो
आत्म	अपने	**भर्तुः**	अपने स्वामी (दुर्योधन) का भी
बन्धुहा	सम्बन्धियोंको मारने वालेको	**विप्रियं**	अप्रिय
वध्यतां	मारदो,	**कृतवान्**	किया है ॥३९॥
च	और		

सूत उवाच-*

एवं परीक्षता धर्मं पार्थः कृष्णेन चोदितः ।
नैच्छद्धन्तुं गुरुसुतं यद्यप्यात्महनं महान् ॥४०॥

एवं परीक्षता धर्मं पार्थः कृष्णेन चोदितः न इच्छत हन्तुं गुरुसुतं यद्यपि आत्महनं महान् ॥ ४० ॥

एवं	इस प्रकार	**आत्महनं**	अपनेको ही मारने वाला अपराधी था (फिर भी)
कृष्णेन	श्रीकृष्णके द्वारा	**पार्थः**	अर्जुनने
धर्मं	धर्मकी	**गुरुसुतं**	गुरुपुत्रको
परीक्षता	परीक्षा लेते हुए	**हन्तुं**	मारनेकी
चोदितः	प्रेरित किये जानेपर (भी),	**इच्छत्**	इच्छा
यद्यपि	यद्यपि (वह)	**न**	नहीं की ॥४०॥
महान्	बड़ा भारी		

अथोपेत्य स्वशिबिरं गोविन्दप्रियसारथिः ।
न्यवेदयत्तं प्रियायै शोचन्त्या आत्मजान् हतान् ॥४१॥

अथ उपेत्य स्व शिविरं गोविन्द प्रिय सारथिः न्यवेदयत् तं प्रियायैः शोचन्त्या आत्मजान् हतान् ॥ ४१ ॥

अथ	इसके अनन्तर	**सारथिः**	सारथी (हैं वह अर्जुन)
गोविन्द	श्रीकृष्ण (जिसके)	**स्व**	अपने
प्रिय	प्रिय (और)		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

शिविरं	शिविरमें	**शोचन्त्या**	शोक करती हुई
उपेत्य	पहुँचकर	**प्रियायैः**	प्रिया द्रौपदीको
तं	उसे (अश्वत्थामा)को	**न्यवेदयत्**	निवेदित किया
हतान्	मारे गये		(सामने खड़ा कर
आत्मजान्	पुत्रोंका		दिया) ॥४१॥

तथाऽऽहृतं पशुवत् पाशबद्ध-
मवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन ।
निरीक्ष्य कृष्णापकृतं गुरोः सुतं
वामस्वभावा कृपया ननाम च ॥४२॥

तथा आहृतं पशुवत् पाश वद्धं अवाङ् मुखं कर्म जुगुप्सितेन निरीक्ष्य कृष्णाः अपकृतं गुरोः सुतं वाम स्वभावा कृपया ननाम च ॥ ४२ ॥

तथा	इस प्रकार	**गुरोः**	गुरुके
पशुवत्	पशुकी भाँति	**सुतं**	पुत्रको
पाश	रस्सीसे	**निरीक्ष्य**	देखकर
बद्धं	बाँधकर	**कृष्णाः**	द्रौपदीने
आहृतं	लाये गये	**वाम**	दयालु
जुगुप्सितेन	निन्दित	**स्वभावा**	स्वभाववाली होनेसे
कर्म	कर्म (करनेसे)	**च**	और
अवाङ्	नीचे	**कृपया**	कृपावश
मुखं	मुख झुकाये	**ननाम**	(अश्वत्थामाको)
अपकृतं	अपमानित		प्रणाम किया ॥४२॥

उवाच चासहन्त्यस्य बन्धनानयनं सती ।

उवाच च असहन्ती अस्य बन्धन आनयनं सती ।

च	और	**आनयनं**	ले आया जाना
अस्य	इस (अश्वत्थामाका)	**असहन्ती**	सहन न करके
बन्धन	बाँधकर		
सती	द्रौपदी	**उवाच**	बोली

द्रौपद्युवाच-*

मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ॥४३॥

मुच्यतां मुच्यतां एष ब्राह्मणः नितरां गुरुः ॥ ४३ ॥

एष	इन्हें
मुच्यतां	छोड़ दो
मुच्यतां	छोड़ दो (ये)
नितरां	अत्यन्त
गुरुः	माननीय हैं
ब्राह्मणः	ब्राह्मण हैं ॥४३॥

सरहस्यो धनुर्वेदः सविसर्गोपसंयमः ।
अस्त्रग्रामश्च भवता शिक्षितो यदनुग्रहात् ॥४४॥

स रहस्यः धनुर्वेदः सविसर्गः उपसंयमः अस्त्रग्रामाः च भवता शिक्षितः यत् अनुग्रहात् ॥ ४४ ॥

यत्	जिनके
अनुग्रहात्	अनुग्रहसे
भवता	आप लोगोंने
सरहस्यः	रहस्योंके साथ
धनुर्वेदः	धनुर्वेद
च	और
अस्त्रग्रामाः	अस्त्रोंके समूह
सविसर्गः	छोड़नेकी विधि,
उपसंयमः	लौटा लेने (शान्त कर देने) की विधि
शिक्षितः	सीखी है ॥४४॥

स एष भगवान् द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते ।
तस्यात्मनोऽर्धं पत्न्यास्ते नान्वगाद्वीरसूः कृपी ॥४५॥

स एष भगवान् द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते तस्य आत्मनः अर्धं पत्न्याः ते न अन्वगात् वीरसूः कृपी ॥ ४५ ॥

स	वही
एष	ये
भगवान्	भगवान्
द्रोण	द्रोणाचार्य
प्रजारूपेण	पुत्र रूपमें
वर्तते	उपस्थित हैं,
तस्य	उन (द्रोणाचार्य) की
आत्मनः अर्धं	अर्धाङ्गिनी
पत्न्याः	पत्नी
कृपी	कृपी

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

वीरसूः	वीर प्रसविनी (होनेसे—पुत्रस्नेह वश)	**न अन्वगात्**	पीछे नहीं गयीं (सती नहीं हुईं) ॥४५॥
ते	उन (आचार्यके)		

तद् धर्मज्ञ महाभाग भवद्भिर्गौरवं कुलम् ।
वृजिनं नार्हति प्राप्तुं पूज्यं वन्द्यमभीक्ष्णशः ॥४६॥

तत् धर्मज्ञ महाभागाः भवद्भिः गौरवं कुलं वृजिनं न अर्हति प्राप्तुं पूज्यं वन्द्यं अभीक्ष्णशः ॥ ४६ ॥

तत्	अतः	**वन्द्यं**	वन्दनीय
महाभागाः	महाभागो !	**गौरवं**	गुरुका
धर्मज्ञ	(आप) धर्मको जाननेवाले हैं	**कुलं**	कुल
		वृजिनं	व्यथा
भवद्भिः	आप लोगों द्वारा	**प्राप्तुं**	पानेके
अभीक्ष्णशः	नित्य	**अर्हति**	योग्य
पूज्यं	पूजनीय	**न**	नहीं है ॥४६॥

मा रोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता ।
यथाहं मृतवत्साऽऽर्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः ॥४७॥

मा रोदीत् अस्य जननी गौतमीः पतिदेवताः यथा अहं मृत वत्साः आर्ता रोदिमि अश्रुमुखीः मुहुः ॥ ४७ ॥

यथा	जैसे	**पतिदेवताः**	पतिव्रता
मृतवत्साः	पुत्रोंके मर जानेपर	**अस्य**	इनकी
अहं	मैं	**जननी**	माता
मुहुः	बार-बार	**गौतमीः**	कृपी (उस प्रकार)
अश्रुमुखीः	मुखपर आँसू बहाती	**मा**	न
आर्ता	आर्त होकर	**रोदीत्**	रोवे ॥४७॥
रोदिमि	रो रही हूँ,		

यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरजितात्मभिः ।
तत् कुलं प्रदहत्याशु सानुबन्धं शुचार्पितम् ॥४८॥

यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैः अजितात्मभिः तत् कुलं प्रदहति आशु स अनुबन्धं शुचाः अर्पितम् ॥ ४८ ॥

यैः	जिन	**आशु**	शीघ्र ही
अजिताभिः	असंयत चित्तवाले	**शुचाः**	शोकमें
राजन्यैः	राजाओं द्वारा	**अर्पितं**	डालकर
ब्रह्मकुलं	ब्राह्मणोंका कुल	**अनुवन्धं**	संबन्धियोंके
कोपितं	क्रुद्ध किया गया है, (वह)	**स**	साथ
		प्रदहति	भस्म कर देता है ॥४८॥
तत्	उनके		
कुलं	कुलको		

सूत उवाच–

धर्म्यं न्याय्यं सकरुणं निर्व्यलीकं समं महत् ।
राजा धर्मसुतो राज्याः प्रत्यनन्दद्वचो द्विजाः ॥४९॥

धर्म्यं न्याय्यं सकरुणं निर्व्यलीकं समं महत् राजाः धर्मसुतः राज्ञ्याः प्रत्यनन्दत् वचः द्विजाः ॥ ४९ ॥

द्विजाः	शौनकादि विप्रो !	**निर्व्यलीकं**	अनिन्दित,
राज्ञ्याः	महारानी द्रौपदीकी	**महत्**	महान्,
वचः	बात	**समं**	समतायुक्त थी ।
धर्म्मं	धर्म सम्मत,	**राजाः**	राजा
न्याय्यं	न्याययुक्त,	**धर्मसुतः**	युधिष्ठिरने (उसका)
सकरुणं	कृपापूर्ण	**प्रत्यनन्दत्**	समर्थन किया ॥४९॥

नकुलः सहदेवश्च युयुधानो धनंजयः ।
भगवान् देवकीपुत्रो ये चान्ये याश्च योषितः ॥५०॥

नकुलः सहदेवः च युयुधानः धनंजयः भगवान् देवकीपुत्रः ये च अन्ये याः च योषितः ॥ ५० ॥

नकुलः	नकुल	**च**	और
सहदेवः	सहदेव	**युयुधानः**	सात्यकि

धनंजय	अर्जुन
भगवान्	भगवान्
देवकीपुत्रः	देवकीनन्दन
च	तथा
ये	जो
अन्ये	दूसरे थे
याः	जो
योषितः	स्त्रियाँ थीं
च	उन्होंने भी (अभिनन्दन किया) ॥५०॥

तत्राहामर्षितो भीमस्तस्य श्रेयान् वधः स्मृतः ।
न भर्तुर्नात्मनश्चार्थे योऽहन् सुप्तान् शिशून् वृथा ॥५१॥

तत्र आह अमर्षितः भीमः तस्य श्रेयान् वधः स्मृतः न भर्तुः न आत्मनः च अर्थे यः अहन् सुप्तान् शिशून् वृथा ॥ ५१ ॥

तत्र	वहाँ
अमर्षितः	अमर्ष (क्रोध) में भरे
भीमः	भीमसेन
आह	बोले—
यः	जिसने
न	नहीं
भर्तः	स्वामीके लिए
च	और
न	नहीं
आत्मनः	अपने
अर्थे	लिए (बल्कि)
वृथा	व्यर्थ ही
सुप्तान्	सोते हुए
शिशून्	शिशुओंको
अहन्	मार दिया
तस्य	उसका
वधः	वध
श्रेयान्	कल्याणकारी
स्मृतः	कहा गया (धर्म सम्मत) है ॥५१॥

निशम्य भीमगदितं द्रौपद्याश्च चतुर्भुजः ।
आलोक्य वदनं सख्युरिदमाह हसन्निव ॥५२॥

निशम्य भीम गदितं द्रौपद्याः च चतुर्भुजः आलोक्य वदनं सख्युः इदं आह हसन् इव ॥ ५२ ॥

चतुर्भुजः	भगवान श्रीकृष्णने
भीम	भीमसेनकी
च	और
द्रौपद्याः	द्रौपदीकी
गदितं	कही बातको
निशम्य	सुनकर
सख्युः	सखा अर्जुनके
वदनं	मुखको

आलोक्य	देखकर	इदं	यह
हसन्	हँसते हुए	आह	कहा ॥५२॥
इव	जैसे		

*श्रीभगवानुवाच**–

ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः ।
मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्यनुशासनम् ॥५३॥

ब्रह्मबन्धुः न हन्तव्यः आततायी वध अर्हणः मया एव उभयं आम्नातं परिपाहि अनुशासनम् ॥ ५३ ॥

ब्रह्मबन्धुः	ब्राह्मणाधम भी	एव	ही
हन्तव्यः	मारने योग्य	उभयं	दोनों (बातें)
न	नहीं है,	आम्नातं	शास्त्रमें कही गयी हैं
आततायी	आततायी	अनुशासनं	(अतः) शास्त्राज्ञाका
वध	मार देने	परिपाहि	ठीक पालन
अर्हणः	योग्य है,		करो ॥५३॥
मया	मेरे द्वारा		

कुरु प्रतिश्रुतं सत्यं यत्तत्सान्त्वयता प्रियाम् ।
प्रियं च भीमसेनस्य पाञ्चाल्या मह्यमेव च ॥५४॥

कुरु प्रतिश्रुतं सत्यं यत् तत् सान्त्वयता प्रियां प्रियं च भीमसेनस्य पाञ्चाल्याः मह्यं एव च ॥ ५४ ॥

यत्	जो	च	और
प्रियां	पत्नी (द्रौपदी) को	भीमसेनस्य	भीमसेनका
सान्त्वयता	सान्त्वना देते समय	पाञ्चाल्याः	द्रौपदीका
प्रतिश्रुतं	(तुमने) प्रतिज्ञाकी है	च	और
तत्	वह	मह्यं	मेरा
सत्यं	सच	एव	भी
कुरु	करो	प्रियं	प्रिय करो ॥५४॥

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ श्रीकृष्ण उवाच है ।

सूत उवाच-

अर्जुनः सहसाऽऽज्ञाय हरेर्हार्दमथासिना ।
मणिं जहार मूर्धन्यं द्विजस्य सहमूर्धजम् ॥५५॥

अर्जुनः सहसा आज्ञाय हरेः हार्दं अथ असिना मणिं जहार मूर्धन्यं द्विजस्य सह मूर्धजम् ॥ ५५ ॥

अर्जुनः	अर्जुनने	**द्विजस्य**	ब्राह्मण अश्वत्थामाके
सहसा	अचानक	**मूर्धन्यं**	केशोंमें लगी
हरेः	श्रीकृष्णकी	**मणिं**	मणिको
हार्दं	आन्तरिक इच्छाको	**मूर्धजम्**	जटाके
आज्ञाय	जानकर	**सह**	साथ
अथ	उस समय	**जहार**	छीन (काट)
असिना	तलवारसे		लिया ॥५५॥

विमुच्य रशनाबद्धं बालहत्याहतप्रभम् ।
तेजसा मणिना हीनं शिबिरान्निरयापयत् ॥५६॥

विमुच्य रशना बद्धं बालहत्याः हतप्रभं तेजसा मणिना हीनं शिविरात् निरयापयत् ॥ ५६ ॥

रशना	रस्सीसे	**मणिना**	मणिसे
बद्धं	बँधेको	**हीनं**	रहित (अश्वत्थामा) को
विमुच्य	खोलकर		
बालहत्याः	बालकोंकी हत्यासे	**शिविरात्**	शिविरसे
हतप्रभं	श्रीहीन,	**निरयापयत्**	निकाल दिया ॥५६॥
तेजसा	तेजसे (और)		

वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा ।
एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ॥५७॥

वपनं द्रविण आदानं स्थानात् निर्यापणं तथा एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधः न अन्यः अस्ति दैहिकः ॥ ५७ ॥

वपनं	बाल मूंड़ देना,	**ब्रह्मवन्धूनां**	ब्राह्मणाधमोंका
द्रविण	धन	**वधः**	वध है ।
आदानं	छीन लेना	**हि**	क्योंकि
तथा	और	**अन्यः**	दूसरा
स्थानात्	स्थानसे	**दैहिकः**	शरीर वधका
निर्यापणं	निकाल देना—	**न**	(विधान) नहीं
एष	यही	**अस्ति**	है ॥५७॥

पुत्रशोकातुराः सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया ।
स्वानां मृतानां यत्कृत्यं चक्रुर्निर्हरणादिकम् ॥५८॥

पुत्रशोक आतुराः सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया स्वानां मृतानां यत् कृत्यं चक्रुः निर्हरण आदिकम् ॥ ५८ ॥

पुत्रशोक	पुत्रोंकेशोकसे	**स्वानां**	अपने सम्बन्धियोंके
आतुराः	व्याकुल		लिए
कृष्णया	द्रौपदी	**यत्**	जो
सह	सहित	**निर्हरण**	दाह
सर्वे	सब	**आदिकं**	आदिक
पाण्डवाः	पाण्डव	**कृत्यं**	कर्म था (वह)
मृतानां	मरे हुए	**चक्रुः**	किया ॥५८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः

अथाष्टमोऽध्यायः

सूत उवाच-

अथ ते सम्परेतानां स्वानामुदकमिच्छताम् ।
दातुं सकृष्णा गङ्गायां पुरस्कृत्य ययुः स्त्रियः ॥१॥

अथ ते सम्परेतानां स्वानां उदकं इच्छतां दातुं सकृष्णाः गङ्गायां पुरस्कृत्य ययुः स्त्रियः ॥ १ ॥

अथ	इसके बाद	**इच्छतां**	इच्छुक
ते	वे (पाण्डव)	**स्वानां**	स्वजनोंको
सकृष्णाः	द्रौपदीके साथ		(जलाञ्जली)
स्त्रियः	स्त्रियोंको	**दातुं**	देने
पुरस्कृत्य	आगे करके	**गङ्गायां**	गंगा किनारे
सम्परेतानां	मरे हुए	**ययुः**	गये ॥१॥
उदकं	पानीके		

ते निनीयोदकं सर्वे विलप्य च भृशं पुनः ।
आप्लुता हरिपादाब्जरजःपूतसरिज्जले ॥२॥

ते निनीय उदकं सर्वे विलप्य च भृशं पुनः आप्लुताः हरिपादाब्ज रजः पूत सरित् जले ॥ २ ॥

ते	उन	**पुनः**	फिर दुबारा
सर्वे	सबने	**हरिपादाब्ज**	श्रीहरिके
उदकं	जल		चरण-कमलोंकी
निनीय	दिया	**रजः**	धूलिसे
च	और	**पूत**	पवित्र
भृशं	बहुत अधिक	**सरितजले**	गङ्गाजलमें
विलप्य	विलाप किया	**आप्लुताः**	स्नान किया ॥२॥

तत्रासीनं कुरुपतिं धृतराष्ट्रं सहानुजम् ।
गान्धारीं पुत्रशोकार्तां पृथां कृष्णां च माधवः ॥३॥

तत्र आसीनं कुरुपतिं धृतराष्ट्रं सह अनुजं गान्धारीं पुत्र शोक आर्तां पृथां कृष्णां च माधवः ॥ ३ ॥

तत्र	वहाँ	**शोक**	शोकसे
आसीनं	बैठे हुए	**आर्तां**	व्याकुल
अनुजं	छोटे भाई विदुरके	**गान्धारीं**	गान्धारीको
सह	साथ	**पृथां**	कुन्तीको
कुरुपतिं	कुरुकुलके स्वामी	**च**	और
धृतराष्ट्रं	धृतराष्ट्रको	**कृष्णां**	द्रौपदीको
पुत्र	पुत्रोंके	**माधवः**	श्रीकृष्णने

सान्त्वयामास मुनिभिर्हतबन्धूञ्छुचार्पितान् ।
भूतेषु कालस्य गतिं दर्शयन्नप्रतिक्रियाम् ॥४॥

सान्त्वयामास मुनिभिः हत बन्धून् शुचा अर्पितान् भूतेषु कालस्य गतिं दर्शयन् अप्रतिक्रियाम् ॥ ४ ॥

हतबन्धून्	जिनके सम्बन्धी मारे गये थे	**कालस्य**	कालकी
		गतिं	गति
शुचा	(उन) शोक	**दर्शयन्**	दिखला (समझा) कर
अर्पितान्	ग्रस्त (लोगोंको)		
भूतेषु	प्राणियोंके प्रति	**मुनिभिः**	मुनियोंके साथ
अप्रतिक्रियां	प्रतिकार विवर्जित	**सान्त्वयामास**	सान्त्वना दी ॥४॥

साधयित्वाजातशत्रोः स्वं राज्यं कितवैर्हृतम् ।
घातयित्वासतो राज्ञः कचस्पर्शक्षतायुषः ॥५॥

साधयित्वा अजातशत्रोः स्वं राज्यं कितवैः हृतं घातयित्वा असतः राज्ञः कच स्पर्श क्षत आयुषः ॥ ५ ॥

कितवैः	धूर्तोंके द्वारा	**स्वं**	अपना
हृतं	हरण किया हुआ	**राज्यं**	राज्य

अजातशत्रोः	युधिष्ठिरको	**क्षत**	नष्ट प्राय हुई
साधयित्वा	वापस दिलवाकर	**आयुषः**	आयुवाले
राज्ञः	महारानी द्रौपदीके	**असतः**	दुर्जनों (कौरवों) को
कच	बालोंको	**घातयित्वा**	मरवाकर ॥५॥
स्पर्श	छूने (खींचने) से		

याजयित्वाश्वमेधैस्तं त्रिभिरुत्तमकल्पकैः ।
तद्यशः पावनं दिक्षु शतमन्योरिवातनोत् ॥६॥

याजयित्वा अश्वमेधैः तं त्रिभिः उत्तम कल्पकैः तत् यशः पावनं दिक्षुः शतमन्योः इव आतनोत् ॥ ६ ॥

तं	उन (राजा युधिष्ठिर) से	**तत्**	उनका
उत्तम कल्पकैः	उत्तम सामग्री एवं विधिसे	**पावनं**	पवित्र
त्रिभिः	तीन	**यशः**	सुयश
अश्वमेधैः	अश्वमेध	**शतमन्योः**	शतक्रतु इन्द्रके
याजयित्वा	यज्ञोंको कराकर	**इव**	समान
		दिक्षुः	सब दिशाओंमें
		आतनोत्	फैला दिया ॥६॥

आमन्त्र्य पाण्डुपुत्रांश्च शैनेयोद्धवसंयुतः ।
द्वैपायनादिभिर्विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः ॥७॥

आमन्त्र्य पाण्डुपुत्रांः च शैनेय उद्धव संयुतः द्वैपायन आदिभिः विप्रैः पूजितः प्रतिपूजितः ॥ ७ ॥

पाण्डुपुत्रांः	पाण्डवोंसे	**पूजितः**	सत्कृत होकर
आमन्त्र्य	अनुमति (विदा) लेकर	**प्रतिपूजितः**	बदलेमें उनका सत्कार करके
च	और	**शैनेय**	सात्यकि
द्वैपायन	व्यासजी	**उद्धव**	उद्धवके
आदिभिः विप्रैः	आदि (धौम्पादि) ब्राह्मणोंसे	**संयुतः**	के साथ ॥७॥

गन्तुं कृतमतिर्ब्रह्मन् द्वारकां रथमास्थितः ।
उपलेभेऽभिधावन्तीमुत्तरां भयविह्वलाम् ॥८॥

गन्तुं कृतमतिः ब्रह्मन् द्वारकां रथं आस्थितः उपलेभे अभिधावन्तीं उत्तरां भयविह्वलाम् ॥ ८ ॥

ब्रह्मन्	शौनकजी ! (भगवान)	**आस्थितः**	बैठ गये (उस समय)
द्वारकां	द्वारिका	**अभिधावन्तीं**	अपनी ओर दौड़ती
गन्तुं	जानेका	**भय विह्वलां**	भयसे व्याकुल
कृतमतिः	निश्चय करके	**उत्तरां**	(अभिमन्यु पत्नी) उत्तराको
रथं	रथपर	**उपलेभे**	देखा ॥८॥

उत्तरोवाच–

पाहि पाहि महायोगिन्देवदेव जगत्पते ।
नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥९॥

पाहि पाहि महायोगिन् देवदेव जगत्पतेः न अन्यं त्वत् अभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥ ९ ॥

महायोगिन्	महायोगी	**अभयं**	अभय देनेवाला
देवदेव	देवदेव	**न**	नहीं
जगत्पतेः	जगन्नाथ	**पश्ये**	देखती हूँ
पाहि	रक्षा करो	**यत्र**	जहाँ (संसारमें)
पाहि	रक्षा करो ।	**परस्परं**	एक दूसरेसे
त्वत्	आपसे	**मृत्युः**	मौत होती है ॥९॥
अन्यं	भिन्न (किसीको)		

अभिद्रवति मामीश शरस्तप्तायसो विभो ।
कामं दहतु मा नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम् ॥१०॥

अभि द्रवति मां ईश शरः तप्त आयसः विभो कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भः निपात्यताम् ॥ १० ॥

ईश	सर्व समर्थ !	**कामं**	भले
विभो	सर्वव्यापक !	**दहतु**	जलादे, (परन्तु)
मां	मेरी ओर	**नाथ**	प्रभो !
अभिद्रवति	दौड़ा आता	**मे**	मेरे
आयसः	लोहेका	**गर्भः**	गर्भको
तप्त	जलता	**मा**	नहीं
शरः	वाण	**निपात्यतां**	नष्ट करे ॥१०॥
मां	मुझे		

सूत उवाच-

उपधार्य वचस्तस्या भगवान् भक्तवत्सलः ।
अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥११॥

उपधार्य वचः तस्याः भगवान् भक्तवत्सलः अपाण्डवं इदं कर्तुं द्रौणेः अस्त्रं अबुध्यत ॥ ११ ॥

तस्याः	उस उत्तराकी	**अपाण्डवं**	पाण्डुवंश रहित
वचः	बातको	**कर्तुं**	करनेके लिए
उपधार्य	सुनकर	**द्रौणेः**	अश्वत्थामाका
भक्तवत्सलः	भक्तवत्सल	**अस्त्रं**	अस्त्र है
भगवान्	भगवान्ने	**अबुध्यत**	(यह) जान
इदं	इस (पृथ्वी) को		लिया ॥११॥

तर्ह्येवाथ मुनिश्रेष्ठ पाण्डवाः पञ्च सायकान् ।
आत्मनोऽभिमुखान्दीप्तानालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥१२॥

तर्हि एव अथ मुनिश्रेष्ठ पाण्डवाः पञ्च सायकान् आत्मनः अभिमुखान् दीप्तान् आलक्ष्य अस्त्राणि उपाददुः ॥ १२ ॥

मुनिश्रेष्ठ	मुनियोंमें श्रेष्ठ शौनकजी !	**पाण्डवाः**	पाण्डवोंने
		पञ्च	पाँच
अथ	तदनन्तर	**दीप्तान्**	प्रज्वलित
तर्हि एव	उसी समय ही	**सायकान्**	वाणोंको

आत्मनः	अपने	**अस्त्राणि**	(अपने) अस्त्रोंको
अभिमुखान्	सम्मुख आते	**उपाददुः**	उठा लिया ॥१२॥
आलक्ष्य	देखकर		

व्यसनं वीक्ष्य तत्तेषामनन्यविषयात्मनाम् ।
सुदर्शनेन स्वास्त्रेण स्वानां रक्षां व्यधाद्विभुः ॥१३॥

व्यसनं वीक्ष्य तत् तेषां अनन्य विषया आत्मनां सुदर्शनेन स्व अस्त्रेण स्वानां रक्षां व्यधात् विभुः ॥ १३ ॥

अनन्य	अन्य विषयमें—	**विभुः**	सर्वसमर्थ (श्रीकृष्ण)ने
	जिनका	**स्व**	अपने
विषयात्मनां	चित्त नहीं जाता	**अस्त्रेण**	अस्त्र
तेषां	उन पाण्डवोंका	**सुदर्शनेन**	सुदर्शनचक्रसे
तत्	वह	**स्वानां**	अपने भक्तोंकी
व्यसनं	संकट	**रक्षा**	रक्षा
वीक्ष्य	देखकर	**व्यधात्**	कर दी ॥१३॥

अन्तःस्थ सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः ।
स्वमायया ऽऽवृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतन्तवे ॥१४॥

अन्तःस्थः सर्वभूतानां आत्मा योगेश्वरः हरिः स्व मायया आवृणोत् गर्भं वैराट्याः कुरु तन्तवे ॥ १४ ॥

सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके	**कुरु**	कुरुकुलकी
अन्तःस्थः	भीतर स्थित	**तन्तवे**	परम्परा बनाये
आत्मा	आत्मा		रखनेके लिए
योगेश्वरः	योगेश्वर	**वैराट्याः**	विराट्-नन्दिनी
हरिः	श्रीकृष्णने		(उत्तरा) के
स्व	अपनी	**गर्भं**	गर्भको
मायया	मायाके द्वारा	**आवृणोत्**	ढक दिया ॥१४॥

यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम् ।
वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यद् भृगूद्वह ॥१५॥

यद्यपि अस्त्रं ब्रह्मशिरः तु अमोघं च अप्रतिक्रियं वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यत् भृगूद्वह ॥ १५ ॥

भृगूद्वह	मृगु श्रेष्ठ शौनकजी !	**अप्रतिक्रियं**	उसका कोई प्रतिकार नहीं,
यद्यपि	यद्यपि	**वैष्णवं**	(लेकिन वह) वैष्णव
ब्रह्मशिरः	ब्रह्मशिर	**तेज**	तेज (सुदर्शन चक्र)के
अस्त्रं	अस्त्र	**आसाद्य**	सामने पड़कर
तु	तो	**समशाम्यत्**	पूर्णतः शान्त
अमोघं	अव्यर्थ है		हो गया ॥१५॥
च	और		

मा मंस्था ह्येतदाश्चर्यं सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते ।
य इदं मायया देव्या सृजत्यवति हन्त्यजः ॥१६॥

मां मंस्था हि एतत् आश्चर्यं सर्व आश्चर्यमये अच्युते य इदं मायया देव्याः सृजति अवति हन्ति अजः ॥ १६ ॥

सर्व	सब	**य**	जो
आश्चर्यमये	आश्चर्यमय	**अजः**	अजन्मा होते भी
अच्युते	अच्युतके लिए	**इदं**	इस (विश्व) का
एतत्	यह	**देव्याः**	देवी
आश्चर्यं	आश्चर्यजनक	**मायया**	मायाके द्वारा
मां	मत	**सृजति**	सृजन,
मंस्था	मानना (चाहिये),	**अवति**	पालन, और
हि	क्योंकि	**हन्ति**	संहार करते हैं ॥१६॥

ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तैरात्मजैः सह कृष्णया ।
प्रयाणाभिमुखं कृष्णमिदमाह पृथा सती ॥१७॥

ब्रह्मतेजः विनिर्मुक्तैः आत्मजैः सह कृष्णया प्रयाण अभिमुखं कृष्णं इदं आह पृथा सती ॥ १७ ॥

ब्रह्मतेजः	ब्रह्मास्त्रके तेजसे	**आत्मजैः**	अपने पुत्रों(पाण्डवों)
विनिर्मुक्तैः	भली प्रकार मुक्त हुए		एवं
		कृष्णया	द्रौपदीके

सह	साथ	**अभिमुखं**	उद्यत
सती	सती	**कृष्णं**	श्रीकृष्णसे
पृथा	कुन्तीने	**इदं**	यह
प्रयाण	जानेको	**आह**	कहा ॥१७॥

कुन्त्युवाच–

नमस्ये पुरुषं त्वाऽऽद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् ।
अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम् ॥१८॥

नमस्ये पुरुषं तु आद्यं ईश्वरं प्रकृतेः परं अलक्ष्यं सर्वभूतानां अन्तः बहिः अवस्थितम् ॥ १८ ॥

आद्यं	आदि	**वहिः**	बाहर
पुरुषं	पुरुष	**अवस्थितं**	स्थित,
ईश्वरं	ईश्वर,	**तु**	किन्तु
प्रकृतेः	प्रकृतिसे	**अलक्ष्यं**	लक्षित न होनेवाले
परं	परे,	**नमस्ये**	(आपको) नमस्कार
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके		करती हूँ ॥१८॥
अन्तः	भीतर (एवं)		

मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम् ।
न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा ॥१९॥

माया जवनिकाः आच्छन्नं अज्ञा अधोक्षजं अव्ययं न लक्ष्यसे मूढदृशाः नटः नाट्यधरः यथा ॥ १९ ॥

माया	मायाके	**मूढदृशा**	मूढ़ दृष्टिवालीसे
जवनिकाः	पर्देसे	**न लक्ष्यसे**	लक्षित नहीं होते हो
आच्छन्नं	ढके (छिपे) हुए	**यथा**	जैसे
अधोक्षजं	इन्द्रियोंके पीछे	**नाट्यधरः**	नाटक करनेवाला
	रहनेवाले	**नटः**	नट (पहिचाना नहीं
अव्ययं	अव्यय (आप)		जाता) ॥१९॥
अज्ञा	(मुझ) अज्ञानी		

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येमहि स्त्रियः ॥२०॥

तथा परमहंसानां मुनीनां अमल आत्मनां भक्तियोग विधानार्थं कथं पश्येमहि स्त्रियः ॥ २० ॥

तथा	ऐसे ही	**विधानार्थं**	विधान करनेके लिए (आपका यह लीला रूप है)
अमल	निर्मल		
आत्मनां	चित्तवाले		
परमहंसानां	परमहंस	**स्त्रियः**	(मैं) स्त्री
मुनीनां	मुनियोंको	**कथं**	कैसे
भक्तियोग	भक्तियोगका	**पश्येमहि**	(ठीक) देख सकती हूँ ॥२०॥

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥२१॥

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥ २१ ॥

वासुदेवाय	वसुदेवपुत्र	**नन्दगोपकुमाराय**	नन्दनन्दन
कृष्णाय	श्रीकृष्ण (आप)	**गोविन्दाय**	गोविन्दको
देवकीनन्दनाय	देवकीनन्दन	**नमो नमः**	बार-बार नमस्कार ॥२१॥
च	और		

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥ २॥

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने नमः पङ्कजनेत्राय नमः ते पङ्कजअंघ्रये ॥ २२ ॥

पङ्कजनाभाय	कमलनाभिको	**नमः**	नमस्कार,
नमः	नमस्कार,	**ते**	आपके
पङ्कजमालिने	कमलमालाधारीको	**पङ्कजअंघ्रये**	चरणकमलको
नमः	नमस्कार,	**नमः**	नमस्कार ॥२२॥
पङ्कजनेत्राय	कमललोचनको		

यथा हृषीकेश खलेन देवकी
कंसेन रुद्धातिचिरं शुचार्पिता ।
विमोचिताहं च सहात्मजा विभो
त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥२३॥

यथा हृषीकेश खलेन देवकीः कंसेन रुद्धा अतिचिरं शुचा अर्पिताः विमोचिताः अहं च सह आत्मजाः विभो त्वयि एव नाथेन मुहुः विपद्गणात् ॥ २३ ॥

हृषीकेश	हृषीकेश !	**विभो**	प्रभो !
यथा	जैसे (तुमने)	**त्वयि**	तुम
खलेन	दुष्ट	**नाथेन**	स्वामीके द्वारा
कंसेन	कंसके द्वारा	**एव**	ही
रुद्धा	बंदी बनायी गयी	**मुहुः**	बार-बार
अति चिरं	बहुत कालतक	**विपद्गणात्**	विपत्तियोंसे
शुचा	शोक	**अहं**	मैं
अर्पिताः	ग्रस्त रही	**च**	भी
देवकीः	देवकीको	**सह आत्मजाः**	पुत्रोंके साथ
विमोचिताः	छुड़ाया		(छुड़ायी गयी)॥२३॥

विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शना-
दसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः ।
मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो
द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः ॥२४॥

विषात् महाग्नेः पुरुषात् अदर्शनात् असत् सभायाः वनवास कृच्छ्रतः मृधे मृधे अनेक महारथाः अस्त्रतः द्रोणि अस्त्रतः च अस्म हरे अभिरक्षिताः ॥ २४ ॥

विषात्	विषसे (भीमसेनकी),	**अदर्शनात्**	अदृश्य रहनेवाले
महाग्नेः	(लाक्षागृहकी) भयानक अग्निसे,	**पुरुषात्**	पुरुष (यक्ष) से,
		असत्	दुष्टोंकी
		सभायाः	सभा (धूर्तसभा) से,

वनवास	वनवासके
कृच्छ्रतः	कष्टोंसे,
अनेक	अनेक
मृधे मृधे	युद्धोंमें
महारथाः	महारथियोंके
अस्त्रतः	दिव्यास्त्रोंसे
च	और
द्रोणि	अश्वत्थामाके
अस्त्रतः	अस्त्र (ब्रह्मास्त्र) से
हरेः	श्रीहरि (आपके द्वारा)
अभिरक्षिताः	भली प्रकार (हम) रक्षित
अस्म	हुए हैं ॥२४॥

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥२५॥

विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो भवतः दर्शनं यत् स्यात् अपुनः भव दर्शनम् ॥ २५ ॥

जगद्गुरो	हे जगद्गुरो !
नः	हम लोग
तत्र तत्र	जहाँ जहाँ रहें, वहीं
शश्वत्	बराबर
विपदः	विपत्तियाँ
सन्तु	आवें, (क्योंकि)
यत्	इससे
भवतः	आपके
दर्शनं	दर्शन
स्यात्	होते हैं (जिससे)
भव	संसारका
दशनं	दर्शन
अपुनः	फिर नहीं होता ॥२५॥

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम् ॥२६॥

जन्म ऐश्वर्य श्रुतः श्रीभिः एधमान मदः पुमान् न एव अर्हति अभिधातुं वै त्वां अकिञ्चन गोचरम् ॥ २६ ॥

वै	निश्चय ही
जन्म	(उच्च कुलमें) जन्म होनेसे,
ऐश्वर्य	ऐश्वर्य पाकर,
श्रुतः	(शास्त्रोंका) विद्वान होनेसे (एवं)
श्रीभिः	लक्ष्मीके द्वारा
एधमान	बढ़े हुए
मदः	अभिमानवाले
पुमान्	पुरुष
अकिञ्चन	अकिंचन
गोचरं	को दर्शन देनेवाले

त्वां	आपका	अर्हति	योग्य
अभिधातुं	नाम लेनेके	न एव	नहीं ही है ॥२६॥

नमोऽकिंचनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये ।
आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ॥२७॥

नमः अकिञ्चन वित्ताय निवृत्त गुणवृत्तये आत्मारामाय शान्ताय कैवल्य पतये नमः ॥ २७ ॥

अकिंचन	अकिंचनोंके	**आत्मारामाय**	आत्माराम
वित्ताय	धन	**शान्ताय**	शान्त (स्वरूप)
नमः	आपको नमस्कार	**कैवल्य**	मोक्षके
गुणवृत्तये	त्रिगुणमयी (माया) की वृत्तियोंसे	**पतये**	स्वामी
		नमः	आपको नमस्कार ॥२७॥
निवृत्त	परे		

मन्ये त्वां कालमीशानमनादिनिधनं विभुम् ।
समं चरन्तं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ॥२८॥

मन्ये त्वां कालं ईशानं अनादि निधनं विभुं समं चरन्तं सर्वत्र भूतानां यत् मिथः कलिः ॥ २८ ॥

त्वां	आपको	**चरन्तं**	विचरण करते हुए भी
अनादि निधनं	अनादि, अनन्त	**यत्**	जिस (आपकी) प्रेरणासे
विभुं	सर्वव्यापक	**भूतानां**	प्राणियोंमें
ईशानं	सर्वनियन्ता	**मिथः**	परस्पर
कालं	काल	**कलिः**	कलह (होता रहता) है ॥२८॥
मन्ये	मानती हूँ ।		
सर्वत्र	सर्वत्र		
समं	समान		

न वेद कश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितं
तवेहमानस्य नृणां विडम्बनम् ।
न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद्
द्वेष्यश्च यस्मिन् विषमा मतिर्नृणाम् ॥२९॥

न वेद कश्चित् भगवन् चिकीर्षितं तव ईहमानस्य नृणां विडम्बनं न यस्य कश्चित् दयितः अस्ति कर्हिचित् द्वेष्यः च यस्मिन् विषमा मतिः नृणाम् ॥ २९ ॥

भगवन्	भगवन् !	**दयितः**	प्रिय
नृणां	मनुष्योंके समान	**न**	नहीं
विडम्बनं	लीला	**अस्ति**	है
ईहमानस्य	करते हुए की	**च**	और
तव	आपकी	**कर्हिचित्**	कोई भी
चिकीर्षितं	करनेकी इच्छा (क्या है यह)	**द्वेष्यः**	द्वेष करने योग्य (भी नहीं है)
कश्चित्	कोई भी	**यस्मिन्**	जिस (आप) में
न	नहीं	**नृणां**	मनुष्योंकी
वेद	जानता, (क्योंकि)	**मतिः**	बुद्धि ही
यस्य	जिसका	**विषमाः**	विषम है ॥२९॥
कश्चित्	कोई भी		

जन्म कर्म च विश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः ।
तिर्यङ्नृषिषु यादःसु तदत्यन्तविडम्बनम् ॥३०॥

जन्म कर्म च विश्वात्मन् अजस्य अकर्तुः आत्मनः तिर्यङ् नृ ऋषिषु यादःसु तत् अत्यन्त विडम्बनम् ॥ ३० ॥

विश्वात्मन्	विश्वात्मा !	**यादःसु**	जलचरोंमें
अजस्य	अजन्मा,	**जन्म**	अवतार लेना
अकर्तुः	अकर्ता,	**च**	और
आत्मनः	आत्मस्वरूप आपका	**कर्म**	कर्म करना—
तिर्यङ्	पशु-पक्षियोंमें,	**तत्**	वह
नृ	मनुष्य रूपमें	**अत्यन्त**	अत्यन्त
ऋषिषु	ऋषियोंमें,	**विडम्बनं**	लीला ही है ॥३०॥

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्
या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्षम् ।
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य
सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥३१॥

गोप्यः आददे त्वयि कृतः आगसि दाम तावत् या ते दशा अश्रु कलिल अञ्जन सम्भ्रम अक्षं वक्त्रं निनीय भय भावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीः अपि यत् विभेति ॥ ३१ ॥

यत्	जिससे	**सम्भ्रम**	चञ्चल
भीः	भय	**अक्षं**	नेत्र (और)
अपि	भी	**वक्त्रं**	मुख
विभेति	डरता है,	**निनीय**	नीचे लटकाये,
त्वयि	(वही) आप—	**भय**	भयकी
आगसि	(दधि भाण्ड फोड़नेका) अपराध	**भावनया**	भावनासे
		स्थितस्य	अवस्थित
कृतः	करनेपर,	**ते**	तुम्हारी
गोप्यः	गोपी यशोदाने	**या**	जैसी
दाम	रस्सी	**दशा**	अवस्था हुई,
आददे	उठायी,	**सा**	वह
तावत्	तब—	**मां**	मुझे
अञ्जन	अञ्जनकी	**विमोहयति**	बहुत मोहमें
कलिल	कालिमा मिश्रित		डालती है ॥३१॥
अश्रु	आँसुओंसे		

केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये ।
यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चन्दनम् ॥३२॥

केचित् आहुः अजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये यदोः प्रियस्य अन्ववाये मलयस्य इव चन्दनम् ॥ ३२ ॥

केचित्	कोई कोई	**यदोः**	राजा यदुकी
आहुः	कहते हैं	**कीर्तये**	कीर्तिके लिए (उनके)
मलयस्य	मलयाचलपर	**अन्ववाये**	वंशमें
चन्दनं इव	चन्दनकी भाँति	**अजं**	अजन्मा (होकर भी)
प्रियस्य	(अपने) प्रिय	**जातं**	(आपने) जन्म लिया
पुण्यश्लोकस्य	पवित्र कीर्ति		है ॥३२॥

अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात् ।
अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥३३॥

अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितः अभ्यगात् अजः त्वं अस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥ ३३ ॥

अपरे	दूसरे (कहते हैं कि)	**क्षेमाय**	कल्याणके लिए
वसुदेस्य	वसुदेवसे	**च**	और
देवक्यां	देवकीमें	**सुरद्विषां**	देवताओंसे द्वेष करनेवालोंके
याचितः	उनकी प्रार्थनासे	**वधाय**	वधके लिए
त्वं	आप	**अभ्यगात्**	अवतीर्ण हुए ॥३३॥
अजः	अजन्मा होनेपर भी		
अस्य	इस जगतके		

भारावतारणायान्ये भुवो नाव इवोदधौ ।
सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवार्थितः ॥३४॥

भारः अवताराणाय अन्ये भुवः नाव इव उदधौः सीदन्त्याः भूरि भारेण जातः हि आत्मभुवाः अर्थितः ॥ ३४ ॥

अन्ये	कोई दूसरे (कहते हैं कि)	**भारः**	भार
उदधौः	समुद्रमें	**अवतारणाय**	उतारनेके लिए
भूरि	(दैत्योंके) बहुत	**हि**	क्योंकि
भारेण	भारसे	**आत्मभुवाः**	स्वयंभू ब्रह्माजीके द्वारा
सीदन्त्याः	कष्ट पाती हुई	**अर्थितः**	प्रार्थित होकर (आप)
नाव	नौका	**जातः**	प्रकट हुए हैं ॥३४॥
इव	के समान		
भुवः	पृथ्वीका		

भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः ।
श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥३५॥

भवे अस्मिन् क्लिश्यमानानां अविद्या काम कर्मभिः श्रवण स्मरण अर्हाणि करिष्यन् इति केचन ॥ ३५ ॥

अस्मिन्	इस
भवे	संसारमें
अविद्या	अविद्या (जन्य)
काम	कामनाओं
कर्मभिः	कर्मोंके द्वारा
क्लिश्यमाणानां	क्लेश पाते लोगोंके (कल्याणार्थ उनके)
श्रवण	श्रवण (और)
स्मरण	स्मरण (करने)
अर्हणि	योग्य (लीला)
करिष्यन्	करनेके लिए (आपने अवतार लिया है)
इति	ऐसा
केचन	कोई कोई कहते हैं ॥३६॥

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं
भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥३६॥

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति अभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तव ईहितं जनाः त एव पश्यन्ति अचिरेण तावकं भव प्रवाह उपरमं पदाम्बुजम् ॥३६॥

तव	आपकी
ईहितं	चेष्टाओं (लीलाओं) को
जनाः	(जो) लोग
अभीक्ष्णशः	बराबर
शृण्वन्ति	सुनते हैं,
गायन्ति	गाते हैं,
गृणन्ति	कीर्तन (वर्णन) करते हैं,
स्मरन्ति	स्मरण करते हैं,
नन्दन्ति	उससे आनन्दित होते हैं
त	वे
एव	ही
अचिरेण	शीघ्र
भव	संसार
प्रवाह	प्रवाह (जन्म-मरण) से
उपरमं	उपराम (समाप्त) करनेवाले
तावकं	आपके
पदाम्बुजं	चरण-कमलोंका
पश्यन्ति	दर्शन करते हैं ॥३६॥

अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहित प्रभो
जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ।
येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात्
परायणं राजसु योजितांहसाम् ॥३७॥

अपि अद्य नः त्व स्वकृते हित प्रभो जिहासिस स्वित् सुहृदः अनुजीविनः येषां न च अन्यत् भवतः पदाम्बुजात् परायणं राजसु योजितः अंहसाम् ॥ ३७ ॥

प्रभो	हे प्रभो !	**अनुजीविनः**	(जो) आपके अनुजीवी (आश्रित) हैं,
राजसु	राजाओंसे		
अंहसां	शत्रुता		
योजितः	कर लेनेवाले	**सुहृदः**	सम्बन्धी हैं,
नः	हम लोगोंको,	**स्वकृते**	आपने स्वयं
येषां	जिनका	**हित**	जिनका हित किया है,
भवतः	आपके		
पदाम्बुजात्	चरण-कमलोंसे	**अद्य**	आज
अन्यत्	पृथक	**त्वं**	आप
परायणं	आश्रय	**अपि**	भी
न	नहीं है	**स्वित्**	क्या (उनको)
च	और	**जिहासिस**	त्याग देंगे ? ॥३७॥

के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः ।
भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणामिवेशितुः ॥३८॥

के वयं नाम रूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः भवतः अदर्शनं यर्हि हृषीकाणां इव ईशितुः ॥ ३८ ॥

ईशितुः	इन्द्रियोंके ईश जीव (के बिना)	**यदुभिः**	यदुवंशियोंके
		सह	साथ
हृषीकाणां	इन्द्रियोंकी	**वयं**	हम
इव	भाँति	**पाण्डवाः**	पाण्डव,
यर्हि	जब	**नाम**	नाम–
भवतः	आपका	**रूपाभ्यां**	रूपसे
अदर्शनं	दर्शन नहीं होता (तब)	**के**	किस गणनामें रह जाते हैं ॥३८॥

नेयं शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाधर ।
त्वत्पदैरङ्किता भाति स्वलक्षणविलक्षितैः ॥३९॥

न इयं शोभिष्यते तत्र यथा इदानीं गदाधर त्वत् पदैः अङ्किता भाति स्वलक्षण विलक्षितैः ॥ ३९ ॥

गदाधर	हे गदाधर !	**त्वत्**	आपके
यथा	जैसे	**पदैः**	पदोंसे
इदानीं	इस समय	**अङ्किता**	चिह्नित होकर
इयं	यह भूमि (हस्तिनापुरी)	**भाति**	शोभित हो रही है,
		तत्र	(आपके) वहाँ जानेपर
स्वलक्षण	अपने लक्षणोंसे		
विलक्षितैः	विशेष रूपसे पहचानी जानेवाले	**न**	नहीं
		शोभिष्यते	शोभित होगी ॥३९॥

इमे जनपदाः स्वृद्धाः सुपक्वौषधिवीरुधः ।
वनाद्रिनद्युदन्वन्तो ह्येधन्ते तव वीक्षितैः ॥४०॥

इमे जनपदाः स्वृद्धाः सुपक्व औषधिः वीरुधः वनः अद्रिः नदीः उदन्वन्तः हि एधन्ते तव वीक्षितैः ॥ ४० ॥

तव	आपकी	**सुपक्व**	भली प्रकार फलते पकते हैं,
वीक्षितैः	दृष्टि पड़ने		
हि	के कारण	**वनः**	वन,
इमे	ये	**अद्रिः**	पर्वत,
जनपदाः	जनपद	**नदीः**	नदियाँ,
स्वृद्धाः	सम्पन्न हैं,	**उदन्वतः**	समुद्र,
औषधिः	(अन्नादि)औषधियाँ,	**एधन्ते**	बढ़ते हैं ॥४०॥
वीरुधः	वृक्ष,		

अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते स्वकेषु मे ।
स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु ॥४१॥

अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्तेः स्वकेषु मे स्नेहपाशं इमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु ॥ ४१ ॥

विश्वेश	विश्वेश !	**विवश्मूर्तेः**	विश्वमूर्ति !
विश्वात्मन्	विश्वात्मा !	**अथ**	अब

स्वकेषु	अपने सम्बन्धी	**इमं**	यह
पाण्डुषु	पाण्डवों और	**स्नेहपाशं**	मोहका पाश (बन्धन)
वृष्णिषु	यदुवंशियोंमें		
दृढं	दृढ़तासे बँधा	**छिन्धि**	काट दीजिये ॥४१॥
मे	मेरा		

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ।
रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ॥४२॥

त्वयि मे अनन्य विषया मतिः मधुपतेः असकृत् रतिं उद्वहतात् अद्धा गङ्गा इव ओघं उदन्वति ॥ ४२ ॥

मधुपतेः	हे श्रीकृष्ण !	**विषयाः**	विषयवाली
उदन्वति	समुद्रकी ओर	**मतिः**	बुद्धि
गङ्गा	गंगाके	**त्वयि**	तुममें
ओघं	प्रवाहकी	**असकृत**	निरन्तर
इव	भाँति	**अद्धा**	अपने आप
मे	मेरी	**रतिं**	प्रीति
अनन्य	अनन्य (दूसरे किसीमें न जानेवाली)	**उद्वहतात्**	वहन करती रहे ॥४२॥

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्
राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार
योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥४३॥

श्रीकृष्ण कृष्ण सखः वृष्णि ऋषभः अवनि धुक् राजन्यवंश दहनात् अपवर्ग वीर्यः गोविन्द गोः द्विज सुर आर्ति हर अवतारः योगेश्वरः अखिलगुरो भगवन् नमः ते ॥ ४३ ॥

श्रीकृष्ण	श्रीकृष्ण !	**वृष्णि**	वृष्णिवंश
कृष्ण	अर्जुनके	**ऋषभः**	शिरोमणि !
सखः	सखा !	**अवनि**	पृथ्वीके

धुक्	रक्षक !	**सुर**	देवताओंके
राजन्यवंश	राजाओंके वंशके लिए	**आर्ति**	संकटको
		हर	हरण करनेके लिए
दहनात्	अग्नि स्वरूप !	**अवतारः**	अवतार लेनेवाले
अपवर्ग	मोक्ष (देनेवाले) !	**योगेश्वरः**	योगेश्वर !
वीर्यः	पराक्रमशील !	**अखिलगुरो**	सब चराचरके गुरु !
गोविन्द	गोविन्द !	**भगवन्**	भगवान् !
गोः	गौ,	**ते**	आपको
द्विज	ब्राह्मण (और)	**नमः**	नमस्कार है ॥४३॥

सूत उवाच-

पृथयेत्थं कलपदैः परिणूताखिलोदयः ।
मन्दं जहास वैकुण्ठो मोहयन्निव मायया ॥४४॥

पृथया इत्थं कलपदैः परिणूताः अखिल उदयः मन्दं जहास वैकुण्ठः मोहयन् इव मायया ॥ ४४ ॥

इत्थं	इस प्रकार	**वैकुण्ठः**	श्रीकृष्ण
पृथया	कुन्तीजी द्वारा	**मायया**	मायासे
कलपदैः	मधुर शब्दोंसे	**मोहयन्**	मोहित करते
अखिल	सब	**इव**	हुए-से
उदयः	लीलाओंका	**मन्दं**	मन्द-मन्द
परिणूताः	वर्णन करनेपर	**जहास**	मुसकराये ॥४४॥

तां बाढमित्युपामन्त्र्य प्रविश्य गजसाह्वयम् ।
स्त्रियश्च स्वपुरं यास्यन् प्रेम्णा राज्ञा निवारितः ॥४५॥

तां बाढं इति उपामन्त्र्य प्रविश्य गजसा आह्वयं स्त्रियः च स्वपुरं मास्यन् प्रेम्णा राज्ञाः निवारितः ॥ ४५ ॥

तां	उन (कुन्ती) को	**उपामन्त्र्य**	कहकर,
बाढं	ठीक है,	**गजसाह्वयं**	हस्तिनापुरमें
इति	ऐसा—	**प्रविश्य**	जाकर

च	और	**राज्ञः**	राजा युधिष्ठिरके
स्त्रियः	रानियोंके साथ		द्वारा
स्वपुरं	अपने नगर द्वारिका	**प्रेमणा**	प्रेमसे
यास्यन्	जाने लगे (तब)	**निवारितः**	रोक लिये गये ॥४५॥

व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।
प्रबोधितोऽप्योतिहासैर्नाबुध्यत शुचार्पितः ॥४६॥

व्यास आद्यैः ईश्वर ईहाज्ञैः कृष्णेन अद्भुत कर्मणा प्रबोधितः अपि इतिहासैः न अबुध्यत शुचार्पितः ॥ ४६ ॥

ईश्वर	ईश्वरकी	**इतिहासैः**	इतिहासके
ईहाज्ञैः	इच्छाको जाननेवाले		उदाहरणोंसे
व्यास	व्यास (नारद धौम्य)	**प्रबोधितः**	समझाये जानेपर
आद्यैः	आदिक (महर्षियों)	**अपि**	भी
	द्वारा	**शुचार्पितः**	शोकग्रस्त (राजा
अद्भुत कर्मणा	(और) अद्भुतकर्मा		युधिष्ठिर)
कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा	**न**	नहीं
		अबुध्यत	समझ सके ॥४६॥

आह राजा धर्मसुतश्चिन्तयन् सुहृदां वधम् ।
प्राकृतेनात्मना विप्राः स्नेहमोहवशं गतः ॥४७॥

आह राजाः धर्मसुतः चिन्तयन् सुहृदां वधं प्राकृतेन आत्मना विप्राः स्नेह मोह वशं गतः ॥ ४७ ॥

विप्राः	शौनकादि ऋषियो !	**मोह**	मोहके
सुहृदां	सम्बन्धियोंके	**वशं**	वशमें
वधं	वधको	**गतः**	होकर
चिन्तयन्	सोचते हुए	**राजाः**	राजा
प्राकृतेन	अविवेक युक्त	**धर्मसुतः**	युधिष्ठिर
आत्मना	चित्तसे	**आह**	बोले ॥४७॥
स्नेह	स्नेह एवं		

*युधिष्ठिर उवाच-**

अहो मे पश्यताज्ञानं हृदि रूढं दुरात्मनः ।
पारक्यस्यैव देहस्य बह्वचो मेऽक्षौहिणीर्हताः ॥४८॥

अहो मे पश्यत अज्ञानं हृदि रूढं दुरात्मनः पारक्यस्य एव देहस्य बह्वचः मे अक्षौहिणीः हताः ॥ ४८ ॥

अहो	भला	**एव**	ही जो है
मे	मुझ	**देहस्य**	उस देहके लिए
दुरात्मनः	दुरात्माके	**मे**	मैंने
हृदि	हृदयमें	**बह्वचः**	बहुत-सी
रूढं	बद्धमूल	**अक्षौहिणीः**	अक्षौहिणी (सेनाको)
अज्ञानं	अज्ञानको		
पश्यत	देखो	**हताः**	मार दिया ॥४८॥
पारक्यस्य	दूसरों (गीध, अग्नि आदि) के लिए		

बालद्विजसुहृन्मित्रपितृभ्रातृगुरुद्रुहः ।
न मे स्यान्निरयान्मोक्षो ह्यपि वर्षायुतायुतैः ॥४९॥

बाल द्विज सुहृत् मित्र पितृ भातृ गुरु द्रुहः न मे स्यात् निरयात् मोक्षः हि अपि वर्ष अयुता युतैः ॥ ४९ ॥

हि	क्योंकि	**मे**	मेरा
बाल	बालक,	**अयुतायुतैः**	करोड़ों
द्विज	ब्राह्मण,	**वर्षैः**	वर्षोंमें
सुहृत	सम्बन्धी,	**अपि**	भी
मित्र	मित्र	**निरयात्**	नरकसे
पितृ	चाचा-ताऊ,	**मोक्षः**	छुटकारा
भ्रातृ	भाई (और)	**न**	नहीं
गुरु	गुरुसे	**स्यात्**	होगा ॥४९॥
द्रुहः	द्रोह करनेवाले		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् ।
इति मे न तु बोधाय कल्पते शासनं वचः ॥५०॥

न एनः राज्ञः प्रजाभर्तुः धर्मयुद्धे वधः द्विषां इति मे न तु बोधाय कल्पते शासनं वचः ॥ ५० ॥

प्रजाभर्तुः	प्रजाके पालन करनेवाले	**शासनं**	शास्त्राज्ञा
राज्ञः	राजाके लिए	**वचः**	वाणी
धर्मयुद्धे	धर्मयुद्धमें	**तु**	निश्चय ही
द्विषां	शत्रुओंका	**मे**	मेरे
वधः	वध	**बोधाय**	बोध (समझा देने) को
एनः	पाप	**कल्पते**	समर्थ
न	नहीं है—	**न**	नहीं है ॥५०॥
इति	इस प्रकारकी		

स्त्रीणां मद्धतबन्धूनां द्रोहो योऽसाविहोत्थितः ।
कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाहं कल्पो व्यपोहितुम् ॥५१॥

स्त्रीणां मत् हत बन्धूनां द्रोहः यः असा इह उत्थितः कर्मभिः गृहमेधीयैः न अहं कल्पः व्यपोहितम् ॥ ५१ ॥

मत्	मेरे द्वारा		(वह)
हत	मारे गये	**गृहमेधीयैः**	गृहस्थोचित
बन्धूनां	सम्बन्धियोंके कारण	**कर्मभिः**	(यज्ञादि) कर्मों द्वारा
यः	जो	**अहं**	मैं
असा	यह	**व्यपोहितुं**	दूर करनेमें
द्रोहः	द्रोह	**कल्पः**	समर्थ
स्त्रीणां	स्त्रियोंमें	**न**	नहीं हूँ ॥५१॥
इह	यहाँ		
उत्थितः	उपस्थित हुआ है		

यथा पङ्केन पङ्काम्भः सुरया वा सुराकृतम् ।
भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥५२॥

यथा पङ्केन पङ्क अम्भः सुरया वा सुराकृतं भूत हत्यां तथा एव एकां न यज्ञैः मार्ष्टुं अर्हति ॥ ५२ ॥

यथा	जैसे	**तथा**	वैसे
पङ्केन	कीचड़से	**एव**	ही
पङ्क	कीचड़ भरा	**एकां**	एक भी
अम्भः	जल (स्वच्छ नहीं हो सकता)	**भूतहत्यां**	प्राणीकी हत्या
		यज्ञैः	यज्ञोंके द्वारा
वा	अथवा	**मार्ष्टुं**	मिटाई
सुरया	शराबसे	**न**	नहीं
सुराकृतं	शराबका (नशा नहीं उतर सकता)	**अर्हति**	जा सकती ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे अथाष्टमोऽध्यायः

अथ नवमोऽध्यायः

सूत उवाच–

इति भीतः प्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविवित्सया ।
ततो विनशनं प्रागाद् यत्र देवव्रतोऽपतत् ॥१॥

इति भीतः प्रजा दोहात् सर्व धर्म विवित्सया ततः विनशनं प्रागात् यत्र देवव्रतः अपतत् ॥ १ ॥

इति	इस प्रकार	**ततः**	वहाँसे
प्रजा	प्रजाके	**विनशनं**	युद्ध स्थलमें
द्रोहात्	द्रोहसे	**प्रागात्**	गये
भीतः	डरे हुए (युधिष्ठर)	**यत्र**	जहाँ
सर्व	सब	**देवव्रतः**	भीष्मजी
धर्म	धर्मोंको	**अपतत्**	(शरशय्यापर)
विवित्सया	जाननेकी इच्छासे		गिरे थे ॥१॥

तदा ते भ्रातरः सर्वे सदश्वैः स्वर्णभूषितैः ।
अन्वगच्छन् रथैर्विप्रा व्यासधौम्यादयस्तथा ॥२॥

तदा ते भ्रातरः सर्वे सदश्वैः स्वर्णभूषितैः अन्वगच्छन् रथैः विप्राः व्यासः धौम्य आदयः तथा ॥ २ ॥

तदा	तब	**तथा**	और
स्वर्णभूषितैः	स्वर्णा भरणोंसे अलंकृत	**व्यास**	व्यास
		धौम्य	धौम्य
सदश्वैः	उत्तम घोड़ोंवाले	**आदयः**	आदि
रथैः	रथोंसे	**विप्राः**	ब्राह्मणोंने (भी उनका)
ते	उनके		
सर्वे	सब	**अन्वगच्छन्**	अनुगमन किया ॥२॥
भ्रातरः	भाई		

भगवानपि विप्रर्षे रथेन सधनञ्जयः ।
स तैर्व्यरोचत नृपः कुवेर इव गुह्यकैः ॥३॥

भगवान् अपि विप्रर्षे रथेन सधनञ्जयः स तैः व्यरोचत् नृपः कुबेर इव गुह्यकैः ॥ ३ ॥

विप्रर्षे	शौनकजी !	**स**	वे
सधनञ्जयः	अर्जुनके साथ	**नृपः**	राजा युधिष्ठिर
भगवान्	भगवान श्रीकृष्ण	**गुह्यकैः**	यक्षोंके साथ
अपि	भी	**कुबेर**	कुबेर
रथेन	रथपर बैठकर (गये)	**इव**	के समान
		व्यरोचत्	शोभित हुए ॥३॥
तैः	उन सब लोगोंके (साथ)		

दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवश्च्युतमिवामरम् ।
प्रणेमुः पाण्डवा भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा ॥४॥

दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवः च्युतं इव अमरं प्रणेमुः पाण्डवाः भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा ॥ ४ ॥

भूमौ	पृथ्वीपर	**दृष्ट्वा**	देखकर
दिवः	स्वर्गसे	**सानुगाः**	साथ आये लोगों सहित
च्युतं	गिरे हुए		
अमरं	देवता	**पाण्डवाः**	पाण्डवोंने
इव	के समान	**चक्रिणाः**	चक्रपाणि श्रीकृष्णके
निपतितं	(शरशय्यापर) गिरे हुए	**सह**	साथ
		प्रणेमुः	प्रणाम किया ॥४॥
भीष्मं	भीष्मको		

तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षयश्च सत्तम ।
राजर्षयश्च तत्रासन् द्रष्टुं भरतपुङ्गवम् ॥५॥

तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षयः च सत्तम राजर्षयः च तत्र आसन् द्रष्टं भरत पुंगवम ॥ ५ ॥

सत्तम	सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ शौनकजी !	**च**	तथा
तत्र	वहाँ	**तत्र**	वहाँ
सर्वे	सब	**राजर्षयः**	राजर्षि लोग भी
ब्रह्मर्षयः	ब्रह्मर्षिगण	**भरतपुंगवं**	भरतकुलमें श्रेष्ठ भीष्मको
च	और	**द्रष्टुं**	देखनेके लिए
देवर्षयः	देवर्षिगण	**आसन्**	आये थे ॥५॥

पर्वतो नारदो धौम्यो भगवान् बादरायणः ।
बृहदश्वो भरद्वाजः सशिष्यो रेणुकासुतः ॥६॥

पर्वतः नारदः धौम्यः भगवान् बादरायणः वृहदश्वः भरद्वाजः सशिष्यः रेणुकासुतः ॥ ६ ॥*

वसिष्ठ इन्द्रप्रमदस्त्रितो गृत्समदोऽसितः ।
कक्षीवान् गौतमोऽत्रिश्च कौशिकोऽथ सुदर्शनः ॥७॥

वशिष्ठ इन्द्रप्रमदः त्रितः गृत्समदः असितः कक्षीवान् गौतमः अत्रिः च कौशिकः अथ सुदर्शनः ॥ ७ ॥

अन्ये च मुनयो ब्रह्मन् ब्रह्मरातादयोऽमलाः ।
शिष्यैरुपेता आजग्मुः कश्यपाङ्गिरसादयः ॥८॥

अन्ये च मुनयः ब्रह्मन् ब्रह्मरात आदयः अमलाः शिष्यैः उपेता आजग्मुः कश्यप, आङ्गिरस आदयः ॥ ८ ॥

ब्रह्मन्	शौनकजी !	**उपेता**	साथ
अन्ये	दूसरे	**कश्यप**	कश्यप,
ब्रह्मरात	शुकदेवजी	**आङ्गिरस**	अंगिरा पुत्र वृहस्पति
आदयः	आदि	**आदयः**	आदिक
मुनयः	मुनिगण,	**च**	भी
अमलाः	पवित्र	**आजग्मुः**	आये ॥८॥
शिष्यैः	शिष्योंके		

* केवल नाम हैं दो श्लोकोंमें। इनका अन्वय, अर्थ देना व्यर्थ विस्तार है।

तान् समेतान् महाभागानुपलभ्य वसूत्तमः ।
पूजयामास धर्मज्ञो देशकालविभागवित् ॥९॥

तान् समेतान् महाभागान् उपलभ्य वसु उत्तमः पूजयामास धर्मज्ञः देशकाल विभागवित् ॥ ९ ॥

तान्	उन
महाभागान्	महाभागोंको
समेतान्	चारों ओरसे आये
उपलभ्य	देखकर
देशकाल	देशकालके
विभागवित्	विभागको जाननेवाले
धर्मज्ञः	धर्मज्ञ
वसु उत्तमः	वसु श्रेष्ठ भीष्मजीने (उनका)
पूजयामास	सत्कार किया ॥९॥

कृष्णं च तत्प्रभावज्ञ आसीनं जगदीश्वरम् ।
हृदिस्थं पूजयामास माययोपात्तविग्रहम् ॥१०॥

कृष्णं च तत् प्रभावज्ञ आसीनं जगदीश्वरं हृदिस्थं पूजयामास मायया उपात्त विग्रहम् ॥ १० ॥

मायया	मायासे
विग्रहं	लीला-विग्रह
उपात्त	धारण किये
आसीनं	वहाँ विराजमान
कृष्णं	श्रीकृष्णको
च	भी
हृदिस्थं	हृदयमें स्थित
जगदीश्वरं	जगदीश्वरको
तत्	उनके
प्रभावज्ञ	प्रभावको जाननेवाले (भीष्मने)
पूजयामास	सत्कृत किया ॥१०॥

पाण्डुपुत्रानुपासीनान् प्रश्रयप्रेमसङ्गतान् ।
अभ्याचष्टानुरागास्रै रन्धीभूतेन चक्षुषा ॥११॥

पाण्डुपुत्रान् उपासीनान् प्रश्रयः प्रेम संगतान् अभ्याचष्ट अनुराग अस्रैः अन्धीभूतेन चक्षुषा ॥ ११ ॥

प्रश्रयः	विनम्रता (और)
प्रेम	प्रेम
संगतान्	सहित आकर
उपासीनान्	समीप बैठे
पाण्डुपुत्रान्	पाण्डवोंको
अनुराग	स्नेहके

अस्रैः	आँसुओंसे	**अभ्याचष्ट**	देखकर (उनसे भीष्म) बोले ॥११॥
अन्धीभूतेन	धुंधली पड़ी		
चक्षुषा	आँखोंसे		

भीष्म उवाच-*

अहो कष्टमहोऽन्याय्यं यद्यूयं धर्मनन्दनाः ।
जीवितुं नार्हथ क्लिष्टं विप्रधर्माच्युताश्रयाः ॥१२॥

अहो कष्टं अहो अन्याय्यं यत् यूयं धर्मनन्दनाः जीवितुं न अर्हथ क्लिष्टं विप्र धर्म अच्युत आश्रयाः ॥ १२ ॥

धर्मनन्दनाः	धर्म पुत्रो !	**धर्म**	धर्म (और)
अहो	बड़े	**अच्युत**	भगवानके
कष्टं	कष्टकी,	**आश्रयाः**	आश्रित होकर
अहो	बड़े	**क्लिष्टं**	कष्टपूर्वक
अन्याय्यं	अन्यायकी बात है	**जीवितं**	जीवन बितानेके
यत्	क्योंकि	**अर्हथ**	योग्य
यूयं	तुम लोग	**न**	नहीं हो ॥१२॥
विप्र	ब्राह्मण,		

संस्थितेऽतिरथे पाण्डौ पृथा बालप्रजा वधूः ।
युष्मत्कृते बहून् क्लेशान् प्राप्ता तोकवती मुहुः ॥१३॥

संस्थिते अतिरथे पाण्डौ पृथाः बालप्रजाः वधूः युष्मत्कृते बहून् क्लेशान् प्राप्ता तोकवती मुहुः ॥ १३ ॥

अतिरथे	अतिरथी	**तोकवती**	शिशु सन्तान होनेसे
पाण्डौ	पाण्डुके	**युष्मत्कृते**	तुम लोगोंके लिए
संस्थिते	मर जानेपर	**मुहुः**	बार-बार
बालप्रजाः	छोटे बच्चोंवाली	**बहून्**	बहुत
वधूः	कुलवधू	**क्लेशान्**	दुःखोंको
पृथाः	कुन्ती	**प्राप्ता**	भोगती रही ॥१३॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सवं कालकृतं मन्ये भवतां च यदप्रियम् ।
सपालो यद्वशे लोको वायोरिव घनावलिः ॥१४॥

सवं कालकृतं मन्ये भवतां यत् अप्रियं सपालः यत् वशे लोकः वायोः इव घनावलिः ॥ १४ ॥

भवतां	तुम लोगोंका	**वशे**	वशमें
यत्	जो	**सपालः**	लोकपालों सहित
अप्रियं	अप्रिय हुआ है	**लोकः**	सब लोक हैं,
सवं	वह सब (मैं)	**इव**	जैसे
कालकृतं	कालका किया	**वायोः**	वायुके वशमें
मन्ये	मानता हूँ,	**घनावलिः**	मेघोंका समूह
यत्	जिस कालके		होता है ॥१४॥

यत्र धर्मसुतो राजा गदापाणिर्वृकोदरः ।
कृष्णोऽस्त्री गाण्डिवं चापं सुहृत्कृष्णस्ततो विपत् ॥१५॥

यत्र धर्मसुतः राजाः गदापाणिः वृकोदरः कृष्णः अस्त्री गाण्डिवं चापं सुहृत् कृष्णः ततः विपत् ॥ १५ ॥

यत्र	(नहीं तो) जहाँ	**गाण्डिवं**	गाण्डीव जैसा
धर्मसुतः	धर्मपुत्र युधिष्ठिर		(अछेद्य)
राजाः	राजा हों,	**चापं**	धनुष हो,
वृकोदरः	भीमसेन	**कृष्णः**	श्रीकृष्ण जैसे
	(जैसे बलवान)		(सर्वसमर्थ)
गदापाणिः	हाथमें गदा लिए	**सुहृत्**	मित्र हों,
	(तत्पर) हों,	**ततः**	वहाँ भी
कृष्णः	अर्जुन जैसे	**विपत्**	विपत्ति आवे ॥१५॥
अस्त्री	अस्त्रज्ञ हों,		

न ह्यस्य कर्हिचिद्राजन् पुमान् वेद विधित्सितम् ।
यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यन्ति कवयोऽपि हि ॥१६॥

न हि अस्य कर्हिचित् राजन् पुमान् वेद विधित्सितं यत् विजिज्ञासया युक्ताः मुह्यन्ति कवयः अपि हि ॥ १६ ॥

हि	क्योंकि
राजन्	राजन् !
अस्य	इन (कालरूप) श्रीकृष्णका
विधित्सितं	विधान
कर्हिचित्	कभी भी
पुमान्	कोई व्यक्ति
न	नहीं
वेद	जानता
हि	क्योंकि
यत्	जिसे
विजिज्ञासया	जाननेकी इच्छा करके
कवयः	बुद्धिमान
युक्ताः	योगी
अपि	भी
मुह्यन्ति	मोहित हो जाते हैं ॥१६॥

तस्मादिदं दैवतन्त्रं व्यवस्य भरतर्षभ ।
तस्यानुविहितोऽनाथा नाथ पाहि प्रजाः प्रभो ॥१७॥

तस्मात् इदं दैवतन्त्रं व्यस्य भरतर्षभ तस्य अनु विहितः अनाथा नाथ पाहि प्रजाः प्रभो ॥ १७ ॥

तस्मात्	इसलिए
इदं	इन सब घटनाओंको
दैवतन्त्रं	ईश्वराधीन
व्यवस्य	समझकर
भरतर्षभ	भरतवंशमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर !
प्रभो	तुम समर्थ हो
नाथ	स्वामी हो (अतः)
तस्य	उस ईश्वरके
विहितः	विधानको
अनु	अनुसरण करते हुए
अनाथा	अनाथ हुई
प्रजाः	प्रजाकी
पाहि	रक्षा करो ॥१७॥

एष वै भगवान् साक्षादाद्यो नारायणः पुमान् ।
मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु ॥१८॥

एष वै भगवान् साक्षात् आद्यः नारायणः पुमान् मोहयन् मायया लोकं गूढः चरति वृष्णिषु ॥ १८ ॥

वै	निश्चय ही
एष	ये श्रीकृष्ण
साक्षात्	प्रत्यक्ष
आद्यः	आदि
पुमान्	पुरुष
भगवान्	भगवान्
नारायणः	नारायण हैं,
मायया	(अपनी) मायासे

लोकं	लोगोंको	**गूढः**	छिपे हुए
मोहयन्	मोहित करते हुए	**चरति**	विचरण करते हैं ॥१८॥
वृष्णिषु	यदुवंशमें		

अस्यानुभावं भगवान् वेद गुह्यतमं शिवः ।
देवर्षिर्नारदः साक्षाद्भगवान् कपिलो नृप ॥१९॥

अस्य अनुभावं भगवान् वेद गुह्यतमं शिवः देवर्षि नारदः साक्षात् भगवान् कपिलः नृप ॥ १९ ॥

नृप	राजन् !	**देवर्षिनारदः**	देवर्षिनारद (और)
अस्य	इन श्रीकृष्णके	**साक्षात्**	साक्षात्
गुह्यतमं	अत्यन्त गोपनीय	**भगवान्**	भगवान
अनुभावं	प्रभावको	**कपिलः**	कपिल
भगवान्	भगवान	**वेद**	जानते हैं ॥१९॥
शिवः	शंकरजी,		

यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहृत्तमम् ।
अकरोः सचिवं दूतं सौहृदादथ सारथिम् ॥२०॥

यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहृत्तमं अकरोः सचिवं दूतं सौहृदात् अथ सारथिम् ॥ २० ॥

यं	जिनको (तुम लोग)	**सचिवं**	मन्त्री,
मातुलेयं	अपने मामाका पुत्र,	**दूतं**	दूत
प्रियं	प्रिय	**अथ**	तथा
मित्रं	मित्र,	**सौहृदात्**	प्रेमवश
सुहृत्तमं	श्रेष्ठतम सम्बन्धी	**सारथिं**	सारथीतक
मन्यसे	मानते हो (और)	**अकरोः**	बनाया है ॥२०॥

सर्वात्मनः समदृशो ह्यद्वयस्यानहङ्कृतेः ।
तत्कृतं मतिवैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित् ॥२१॥

सर्वात्मनः समदृशः हि अद्वयस्य अनहंकृतेः तत् कृतं मति वैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित् ॥ २१ ॥

हि	क्योंकि	**क्वचित्**	कभी भी
सर्वात्मनः	सर्वात्मा,	**तत्**	उस अहंकार
समदृशः	समदर्शी,	**कृतं**	से उत्पन्न
अद्वयस्य	अद्वितीय,	**मति**	बुद्धिकी
अनहंकृतेः	अहंकार रहित,	**वैषम्यं**	विषमता
निरवद्यस्य	निष्पाप श्रीकृष्णमें	**न**	नहीं होती ॥२१॥

तथाप्येकान्तभक्तेषु पश्य भूपानुकम्पितम् ।
यन्मेऽसूंस्त्यजतः साक्षात्कृष्णो दर्शनमागतः ॥२२॥

तथा अपि एकान्त भक्तेषु पश्य भूप अनुकम्पितं यत् मे असूंः त्यजतः साक्षात् कृष्णः दर्शनं आगतः ॥ २२ ॥

भूप	राजन् !	**मे**	मुझ
तथा	ऐसा होनेपर	**असूंः**	प्राण
अपि	भी	**त्यजतः**	छोड़ते हुएके
एकान्त	अनन्य	**साक्षात्**	सामने
भक्तेषु	भक्तपर (इनका)	**कृष्णः**	श्रीकृष्णने
अनुकम्पितं	अनुग्रह	**दर्शनं**	दर्शन
पश्य	देखो	**आगतः**	दिया ॥२२॥
यत्	जो		

भक्त्याऽऽवेश्य मनो यस्मिन् वाचा यन्नाम कीर्तयन् ।
त्यजन् कलेवरं योगी मुच्यते कामकर्मभिः ॥२३॥

भक्त्या आवेश्य मनः यस्मिन् वाचा यत् नाम कीर्तयन् त्यजन् कलेवरं योगी मुच्यते काम कर्मभिः ॥ २३ ॥

यस्मिन्	जिनमें	**नाम**	नाम
भक्त्या	भक्तिसे	**कीर्तयन्**	कीर्तन करते हुए,
मनः	मनको	**कलेवरं**	शरीरको
आवेश्य	लगाकर,	**त्यजन्**	छोड़कर
वाचा	वाणीसे	**योगी**	योगी
यत्	जिनका		

काम कर्मभिः	कामनाओं तथा कर्मोंके (बन्धन) से	**मुच्यते**	मुक्त हो जाता है ॥२३॥

स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां
कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम् ।
प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लस-
न्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥२४॥

स देवदेवः भगवान् प्रतीक्षतां कलेवरं यावत् इदं हिनोमि अहं प्रसन्न हास अरुण लोचन उल्लसत् मुखाम्बुजः ध्यानपथः चतुर्भजः ॥ २४ ॥

स	वे	**चतुर्भजः**	चतुर्भुज रूपसे
देवदेवः	देवदेव	**ध्यानपथः**	(केवल) ध्यानमें आनेवाले,
भगवान्	भगवान्,	**इदं**	इस
प्रसन्न	प्रसन्न	**कलेवरं**	शरीरको
हास	हास्य (और)	**यावत्**	जबतक
अरुण	अरुण	**अहं**	मैं
लोचन	लोचनोंसे	**हिनोमि**	छोड़ू (तबतक)
उल्लसत	उल्लसित	**प्रतीक्षतां**	प्रतीक्षा करें ॥२४॥
मुखाम्बुजः	कमल मुखवाले,		

सूत उवाच–

युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्य शंयानं शरपञ्जरे ।
अपृच्छद्विविधान्धर्मानृषीणां चानुशृण्वताम् ॥२५॥

युधिष्ठिरः तत् आकर्ण्य शयानं शर पञ्जरे अपृच्छत् विविधान् धर्मान् ऋषीणां च अनुशृण्वताम् ॥ २५ ॥

युधिष्ठिरः	राजा युधिष्ठिरने	**च**	भी
तत्	वह (भीष्मकी बात)	**अनुशृण्वतां**	सुनते हुए
आकर्ण्य	सुनकर	**शर**	वाणोंकी
ऋषीणां	ऋषियोंके	**पञ्जरे**	शय्यापर

शयानं	सोये हुए (भीष्म पितामह) से	**धर्मान्**	धर्मोंको
विविधान्	विविध	**अपृच्छत्**	पूछा ॥२५॥

पुरुषस्वभावविहितान् यथावर्णं यथाश्रमम् ।
वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातोभयलक्षणान् ॥२६॥

पुरुष स्वभाव विहितान् यथावर्ण यथाश्रमं वैराग्य राग उपधिभ्यां आम्नातः उभय लक्षणान् ॥ २६ ॥

यथावर्ण	(तब भीष्मजीने) वर्णके अनुसार,	**राग**	राग (आसक्ति)
यथाश्रमं	आश्रमके अनुसार,	**उपाधिभ्यां**	की उपाधियोंसे
पुरुष	पुरुषोंके	**उभय**	दोनों (प्रवृत्ति एवं निवृत्ति)
स्वभाव	स्वभावके अनुसार	**लक्षणान्**	लक्षणवाले
विहितान्	विहित	**आम्नातः**	शास्त्र वर्णित ॥२६॥
वैराग्य	वैराग्य		

दानधर्मान् राजधर्मान् मोक्षधर्मान् विभागशः ।
स्त्रीधर्मान् भगवद्धर्मान् समासव्यासयोगतः ॥२७॥

दानधर्मान् राजधर्मान् मोक्षधर्मान् विभागशः स्त्रीधर्मान् भगवत् धर्मान् समास व्यास योगतः ॥ २७ ॥

दानधर्मान्	दान करनेके धर्म,	**विभागशः**	पृथक-पृथक
राजधर्मान्	राजाओंके धर्म,	**समास**	संक्षिप्त एवं
मोक्षधर्मान्	मोक्षदायी धर्म,	**व्यास**	विस्तार
स्त्रीधर्मान्	स्त्रियोंके धर्म,	**योगतः**	पूर्वक वर्णन किया ॥२७॥
भगवत्	भगवानको पानेके		
धर्मान्	धर्मोंको		

धर्मार्थकाममोक्षांश्च सहोपायान् यथा मुने ।
नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास तत्त्ववित् ॥२८॥

धर्म अर्थ काम मोक्षांः च सहोपायान् यथा मुने नाना आख्यान इतिहासेषु वर्णयामास तत्त्ववित् ॥ २८ ॥

मुने	शौनकजी !	**सहोपायान्**	उपायों (साधनों) के साथ
तत्त्ववित्	तत्त्वज्ञानी (भीष्मजी) ने	**इतिहासेषु**	इतिहासोंमें
धर्म	धर्म,	**यथा**	जैसा
अर्थ	अर्थ,	**नाना**	अनेकों
काम	काम	**आख्यान**	कथाएँ हैं वैसा
च	और	**वर्णयामास**	वर्णन किया ॥२८॥
मोक्षांः	मोक्षोंका		

धर्मं प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः ।
यो योगिनश्छन्दमृत्योर्वाञ्छितस्तूत्तरायणः ॥२९॥

धर्मं प्रवदतः तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः यः योगिनः छन्द मृत्योः वाञ्छितः तु उत्तरायणः ॥ २९ ॥

तस्य	उन (भीष्म) के	**छन्द**	इच्छानुसार*
धर्मं	धर्मका	**मृत्योः**	मृत्युका
प्रवदतः	प्रवचन करते	**स**	वह
यः	जो	**उत्तरायणः**	उत्तरायणका
योगिनः	योगियोंको	**कालः**	समय■
तु	भी	**प्रत्युपस्थितः**	आगया ॥२९॥
वाञ्छितः	अभीष्ट है (ऐसा)		

तदोपसंहृत्य गिरः सहस्रणी-
विमुक्तङ्गं मन आदिपूरुषे ।
कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे
पुरःस्थितेऽमीलितदृग्व्यधारयत् ॥३०॥

---

* गीतामें और भागवतमें भी अमुक कालमें मृत्यु, इच्छानुसार मरनेमें समर्थके लिए ही है ।

■ भागवतमें आगे 'देशे च कालेच मनो न सञ्जयेत्' कहेंगे ।

तदा उपसंहृत्य गिरः ससत्रणीः विमुक्त संगं मनः आदिपूरुषे, कृष्णें लसत् पीतपटे चतुर्भुजे पुरःस्थिते अमीलित दृक् व्यधारयत् ॥ ३० ॥

तदा	तब
सहस्रणीः	सहस्रों रथियोंके नेता (भीष्मने)
गिरः	वाणीका
उपसंहृत्य	उपसंहार करके (मौन होकर)
विमुक्त संगं	आसक्ति रहित
मनः	मनको
पीतपटे	पीताम्बरसे
लसत्	सुशोभित,
चतुर्भुजे	चतुर्भुज,
पुरःस्थिते	सामने खड़े
आदिपूरुषे	आदि पुरुष
कृष्णे	श्रीकृष्णमें
अमीलित दृक्	खुले नेत्रोंसे (देखते हुए)
व्यधारयत्	लगा दिया ॥३०॥

विशुद्धया धारणया हताशुभ-
स्तदीक्षयैवाशु गतायुधव्यथः ।
निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रम-
स्तुष्टाव जन्यं विसृजञ्जनार्दनम् ॥३१॥

विशुद्धया धारणया हताः अशुभः तत् ईक्षया एव आशु गतः आयुध व्यथः निवृत्तः सर्व इन्द्रिय वृत्ति विभ्रमः तुष्टावजन्यं विसृजत् जनार्दनम् ॥३१॥

विशुद्धया	(भगवानकी) अत्यन्त शुद्ध
धारणया	धारणासे
अशुभः	(उनके) पाप
हताः	नष्ट होगये थे,
तत्	उन श्रीकृष्णकी
ईक्षया	दृष्टि पड़ते
एव	ही
आयुध	शस्त्रोंके चोटकी
व्यथः	पीड़ा
आशु	शीघ्र ही
गतः	दूर होगयी थी,
सर्व	सब
इन्द्रिय	इन्द्रियोंकी
वृत्ति	वृत्तियोंकी
विभ्रमः	चञ्चलता
निवृत्तः	मिट चुकी थी, (वे)
जनार्दनं	श्रीकृष्णकी
तुष्टावजन्यं	स्तुति करने
विसृजत्	लगे ॥३१॥

भीष्म उवाच–

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा
भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं
प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥३२॥

इति मतिः उपकल्पिताः वितृष्णाः भगवति सात्वतपुंगवे विभूम्नि स्वसुखं उपगते क्वचित् विहर्तुं प्रकृतिं उपेयुषि यत् भव प्रवाहः ॥३२॥

इति	अब (मैं)	**क्वचित्**	(जो) कभी
वितृष्णाः	कामनाहीन	**विहर्तुं**	विहार (लीला) करनेके लिए
उपकल्पिताः	बनायी गयी	**प्रकृतिं**	प्रकृतिको
मतिः	(अपनी) बुद्धिको	**उपेयुषि**	स्वीकार करते हैं
सात्वतपुंगवे	यदुवंशशिरोमणि	**यत्**	जिससे
विभूम्नि	सर्वव्यापक	**भव**	संसारका
स्वसुखं	अपने आनन्दमें	**प्रवाहः**	प्रवाह चलता है ॥३२॥
उपगते	स्थित		
भगवति	भगवानमें (लगाताहूँ)		

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं
रविकरगौरवराम्बरं दधाने ।
वपुरलककुलावृताननाब्जं
विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥३३॥

त्रिभुवन कमनं तमालवर्णं रविकर गौर वर अम्बरं दधाने वपुः अलक्ककुल आवृतः आननाम्बजं विजय सखे रतिः अस्तु मे अनवद्या ॥३३॥

त्रिभुवन	त्रिलोकीमें	**रविकर**	सूर्यकी किरणोंके समान
कमनं	सुन्दर,	**गौर**	उज्ज्वल,
तमालवर्णं	तमाल वृक्षके समान वर्णवाला	**वर**	श्रेष्ठ
वपुः	शरीर,	**अम्बरं**	पीताम्बर

दधाने	पहिने हुए,	**सखे**	सखामें
अलककुल	अलकोंके समूहसे	**मे**	मेरी
आवृतः	घिरे	**अनवद्या**	निष्पाप (निष्काम)
आननाब्जं	कमल मुखवाले,	**रतिः**	प्रीति
विजय	अर्जुनके	**अस्तु**	हो ॥३३॥

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्-
कचलुलितश्रमवार्यलङ्कृतास्ये ।
मम निशितशरैर्विभिद्यमान-
त्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥३४॥

युधि तुरगरजः विधूम्र विष्वक् कचः लुलितः श्रमवारि अलंकृतः आस्ये मम निशित शरैः विभिद्यमानः त्वचि विलसत् कवचे अस्तु कृष्णः आत्मा ॥ ३४ ॥

युधिः	युद्धमें	**मम**	मेरे
तुरगरजः	घोड़ोंके खुरोंसे उड़ी धूलिसे	**निशित**	तीक्ष्ण
		शरैः	वाणोंके लगनेसे
विष्वक्	चारों ओरसे	**विभिद्यमानः**	छिदते हुए
विधूम्र	धूसर हुए	**त्वचि**	त्वचावाले,
कचः	बालोंसे	**कवचे**	कवचसे
लुलितः	घिरा हुआ (और)	**विलसत्**	शोभायमान
श्रमवारि	पसीनेसे	**कृष्णः**	श्रीकृष्णमें
अलंकृतः	सुशोभित	**आत्मा**	(मेरा) चित्त
आस्ये	मुखवाले,	**अस्तु**	लगा रहे ॥३४॥

सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये
निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य ।
स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा
हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥३५॥

सपदि सखि वचः निशम्य मध्ये निज परयोः बलयोः रथं निवेश्य स्थितवति पर सैनिक आयु अक्ष्णाः हृतवति पार्थ सखे रतिः मम अस्तु ॥३५॥

सखि	सखा (अर्जुन) के
वचः	वचनको
निशम्य	सुनकर
सपदि	झटपट
निज	अपनी (और)
परयोः	शत्रुओंकी
बलयोः	सेनाके
मध्ये	बीचमें
रथं	रथको
निवेश्य	प्रवेश कराके (एवं वहाँ)
स्थितवति	ठहरे हुए
पर	शत्रुके
सैनिक	सैनिकोंकी
आयुः	आयुको
अक्ष्णाः	अपने नेत्रोंसे
हृतवति	हरण करते हुए
पार्थसखे	अर्जुनके सखामें
मम	मेरी
रतिः	प्रीति
अस्तु	हो ॥३५॥

व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य
स्वजनवधाद्विमुखस्य दोष बुद्धचा ।
कुमतिमहरदात्मविद्यया य-
श्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥३६॥

व्यवहित पृतना मुखं नीरीक्ष्य स्वजन वधात् विमुखस्य दोषबुध्या कुमतिं अहरत् आत्मविद्यया यः चरणरतिः परमस्य तस्य मे अस्तु ॥३६॥

पृतना	सेनाके
मुखं	अगले भागमें
व्यवहित	व्यवस्थित खड़े
स्वजन	सम्बन्धियोंको
निरीक्ष्य	देखकर
दोषबुध्या	इसमें दोष है ऐसी समझसे
वधात्	उनको मारनेसे
विमुखस्य	विमुख हुए (अर्जुन) की
कुमतिं	दुर्बुद्धिको
आत्मविद्यया	अध्यात्म ज्ञानकी शिक्षा द्वारा
यः	जिन्होंने
अहरत्	हरण कर लिया,
तस्य	उन
परमस्य	परमपुरुषके
चरणरतिः	चरणोंमें प्रीति
मे	मेरी
अस्तु	हो ॥३६॥

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा-
मृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गु-
र्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ॥३७॥

स्व निगमं अपहाय मत् प्रतिज्ञां ऋतं अधिकर्तुं अवप्लुतः रथस्थः धृत रथचरणः अभ्यात् चलत् गुः हरि इव हन्तुं इभं गतः उत्तरीयः ॥ ३७ ॥

स्व	अपनी
निगमं	प्रतिज्ञाको
अपहाय	छोड़कर
मत्	मेरी
प्रतिज्ञां	प्रतिज्ञाको
ऋतं	सच्ची
अधिकर्तुं	कर देनेके लिए
रथस्थः	रथपरसे
अवप्लुतः	नीचे कूदकर,
रथचरणः	रथ चक्र
धृत	लिए हुए
इभं	हाथीको
हन्तुं	मारनेके लिए
हरि	सिंहके
इव	समान
अभ्यात्	मेरी ओर दौड़े, (जिससे)
गुः	पृथ्वी
चलत्	काँपने लगी (और)
उत्तरीयः	ऊपरी पटुका
गतः	गिर गया था ॥३७॥

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः
क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ।
प्रसभमभिससार मद्वधार्थं
स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः ॥३८॥

शित विशिख हतः विशीर्ण दंशः क्षतज परिप्लुतः आततायिनः मे प्रसभं अभिससार मत् वधार्थं स भवतु मे भगवान् गतिः मुकुन्दः ॥३८॥

शित	तीक्ष्ण
विशिख	बाणोंसे
हतः	मारे जानेके कारण
दंशः	(जिनका) कवच
विशीर्ण	कट गया था,
क्षतज	(वे) घावोंसे
परिप्लुतः	भरे हुए
मे	मुझ

आततायिनः	आततायीकी ओर	**भगवान्**	भगवान
मत्	मेरे	**मुकुन्दः**	मुकुन्द
वधार्थं	वधके लिए	**मे**	मेरी
प्रसभं	वेगपूर्वक	**गतिः**	गति
अभिससार	दौड़ते चले,	**भवतु**	होवें ॥३८॥
स	वे		

विजयरथकुटुम्ब आत्ततोत्रे
धृतहयरश्मनि तच्छ्रियेक्षणीये ।
भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षो-
र्यमिह निरीक्ष्य हता गताः सरूपम् ॥३९॥

विजय रथ कुटुम्ब आत्त तोत्रे धृत हय रश्मनि तत् श्रिये ईक्षणीये भगवति रतिः अस्तु मे मुमूर्षोः यं इह नीरीक्ष्य हताः गताः सरूपम् ॥३९॥

विजय	अर्जुनके	**यं**	जिसे
रथ	रथके	**श्रिये**	शोभाको
कुटुम्ब	परिकर (सारथी) बने,	**निरीक्ष्य**	देखकर
		हताः	मारे गये लोग
तोत्रे	चाबुक	**सरूपं**	सारूप्य मोक्षको
आत्त	पकड़े,	**गताः**	प्राप्त हुए
हयरश्मनि	घोड़ोंकी लगाम	**भगवति**	(उन) भगवानमें
धृत	लिए हुए,	**मे**	मुझ
इह	यहाँ युद्ध भूमिमें	**मुमूर्षोः**	मरनेवालेकी
तत्	उस	**रति**	प्रीति
ईक्षणीये	देखने ही योग्य	**अस्तु**	हो ॥३९॥

ललितगतिविलासवल्गुहास-
प्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः
प्रकृतिमगन् किल यस्य गोपवध्वः ॥४०॥

ललित गति विलास वल्गु हास प्रणय निरीक्षण कल्पितः उरु माना: कृतं अनुकृत वत्य उन्मदान्धाः प्रकृति अगन् किल यस्य गोपवध्वः ॥ ४० ॥

ललित	सुन्दर	**कृतं**	श्रीकृष्ण लीलाओंका
गति	चाल,	**अनुकृतवत्य**	अनुकरणकारिणी
विलास	विलास,	**उन्मदान्धाः**	प्रेमोन्मत्ता
वल्गु	मनोहर	**गोपवध्वः**	गोप वधुगण
हास	हँसी,	**किल**	अहो
प्रणय	युक्त	**यस्य**	जिन श्रीकृष्णके
निरीक्षण	दृष्टिसे,	**प्रकृति**	स्वभावको
उरु	बहुत	**अगन्**	प्राप्त हो (तन्मय हो)
मानाः	सम्मान		गयीं ॥४०॥
कल्पितः	प्राप्ता,		

मुनिगणनृपवर्यसंकुलेऽन्तः-
सदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम् ।
अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो
मम दृशिगोचर एष आविरात्मा ॥४१॥

मुनिगण नृपवर्य संकुले अन्तः सदसि युधिष्ठिर राजसूयः एषां अर्हणं उपपेद ईक्षणीयः मम दृशिगोचरः एष आविः आत्मा ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिर	राजा युधिष्ठिरके	**एषां**	इन (श्रीकृष्ण) का
राजसूयः	राजसूय यज्ञमें	**अर्हणं**	(प्रथम) पूजन
मुनिगण	मुनियों (तथा)	**उपपेद**	सम्पन्न हुआ
नृपवर्य	श्रेष्ठ राजाओंसे	**एष**	यह वही
संकुले	भरी हुई	**आत्मा**	परमात्मा
सदसि	सभाके	**मम**	मेरी
अन्तः	भीतर	**दृशिगोचरः**	आँखोंके सामने
ईक्षणीयः	दर्शनीय	**आविः**	प्रगट हैं ॥४१॥

तमिममहमजं शरीरभाजां
हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम् ।
प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं
समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥४२॥

तं इमं अहं अजं शरीरभाजां हृदि हृदि धिष्ठितं आत्म कल्पितानां प्रतिदृशं इव न एकधा अर्कं एकं सम अधिगतः अस्मि विधूतः भेद मोहः ॥ ४ ॥

एकं	एक ही
अर्कं	सूर्यके
प्रतिदृशं	प्रत्येककी दृष्टिमें (अधिदेवता रूपसे)
न एकधा	पृथक-पृथक लगने
इव	के समान
आत्म	अपने द्वारा ही
कल्पितानां	कल्पित किये गये
शरीरभाजां	सब शरीरधारियोंमें
हृदि हृदि	प्रत्येक के हृदयमें
धिष्ठितं	(अन्तर्यामी रूपसे) अधिष्ठित (विराजमान)
तं	उन
इमं	(सम्मुख खड़े) इन
अजं	अजन्माको
अहं	मैं
भेद	भेदका
मोहः	भ्रम
विधूतः	छोड़कर
सम	भली प्रकार
अधिगतः	प्राप्त होगया हूँ ॥४२॥

सूत उवाच–

कृष्ण एवं भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः ।
आत्मन्यात्मानमावेश्य सोऽन्तःश्वास उपारमत् ॥४३॥

कृष्णं एवं भगवति मनः वाक् दृष्टि वृत्तिभिः आत्मनि आत्मानं आवेश्य स अन्तः श्वास उपारमत् ॥ ४३ ॥

एवं	इस प्रकार
मनः	मन
वाक्	वाणी
दृष्टि	दृष्टि (और)

वृत्तिभिः	वृत्तियोंसे	**स**	वे (भीष्मजी)
भगवति	भगवान	**अन्तःश्वास**	प्राण भीतर ही रहे
कृष्णं	श्रीकृष्णमें		(कहीं गये नहीं)
आत्मनि	अपने आपसे	**उपारमत्**	उपराम होगये
आत्मानं	चित्तको		(निर्वाण प्राप्त
आवेश्य	आविष्ट करके		हुए ॥४३॥

सम्पद्यमानमाज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले ।
सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं वयांसीव दिनात्यये ॥४४॥

सम्पद्यमानं आज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले सर्वे बभूवुः ते तूष्णीं वयांसि इव दिन अत्यये ॥ ४४ ॥

भीष्मं	भीष्मको	**अत्यये**	बीत जानेपर
निष्कले	निष्कल	**वयांसि इव**	पक्षियोंके समान
ब्रह्मणि	ब्रह्ममें	**ते**	वे
संपद्यमानं	भली प्रकार लीन हुए	**सर्वे**	सब लोग
आज्ञाय	जानकर,	**तूष्णीं**	मौन
दिन	दिनके	**बभुवुः**	होगये ॥४४॥

तत्र दुन्दुभयो नेदुर्देवमानववादिताः ।
शशंसुः साधवो राज्ञां खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः ॥४५॥

तत्र दुन्दुभयः नेदुः देव मानव वादिताः शशंसुः साधवः राज्ञां खात् पेतुः पुष्प वृष्टयः ॥ ४५ ॥

तत्र	वहाँ	**राज्ञा**	राजा
देव	देवताओं (और)	**शशंसुः**	(उनकी) प्रशंसा
मानव	मनुष्यों द्वारा		करने लगे ।
वादिताः	बजाये	**खात्**	आकाशसे
दुन्दभयः	नगाड़े	**पुष्प**	फूलोंकी
नेदुः	बजने लगे ।	**वृष्टयः**	वर्षा
साधवः	साधु स्वभाव	**पेतुः**	होने लगी ॥४५॥

तस्य निर्हरणादीनि सम्परेतस्य भार्गव ।
युधिष्ठिरः कारयित्वा मुहूर्तं दुःखितोऽभवत् ॥४६॥

तस्य निर्हरण आदीनि सम्परेतस्य भार्गव युधिष्ठिरः कारयित्वा मुहूर्तं दुःखितः अभवत् ॥ ४६ ॥

भार्गव	शौनकजी !	**कारयित्वा**	करवाकर
तस्य	उन भीष्मजीके	**युधिष्ठिरः**	युधिष्ठिर
सम्परेतस्य	मृत शरीरकी	**मुहूर्तं**	एक मुहूर्तके लिए
निर्हरण	दाह	**दुःखितः**	दुःखी
आदीनि	आदि अन्त्येष्टि क्रियाएँ	**अभवत्**	होगये ॥४६॥

तुष्टुवुर्मुनयो हृष्टाः कृष्णं तद्गुह्यनामभिः ।
ततस्ते कृष्णहृदयाः स्वाश्रमान् प्रययुः पुनः ॥४७॥

तुष्टुवुः मुनयः हृष्टाः कृष्णं तत् गुह्य नामभिः ततः ते कृष्णहृदयाः स्व आश्रमान् प्रययुः पुनः ॥ ४७ ॥

हृष्टाः	हर्षित होकर	**ततः**	तदन्तर
मुनयः	मुनियोंने	**ते**	वे (मुनिगण)
कृष्णं	श्रीकृष्णकी	**पुनः**	फिर
तत्	उनके	**कृष्णहृदयाः**	कृष्णमय हृदय सहित
गुह्य	गुप्त	**स्व**	अपने
नामभिः	नामोंके द्वारा	**आश्रामान्**	आश्रमोंको
तुष्टवुः	स्तुति करके उनको प्रसन्न किया ।	**प्रययुः**	चले गये ॥४७॥

ततो युधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णो गजाह्वयम् ।
पितरं सान्त्वयामास गान्धारीं च तपस्विनीम् ॥४८॥

ततः युधिष्ठिरः गत्वा सहकृष्णः गजाह्वयं पितरं सान्त्वयामास गान्धारीं च तपस्विनीम् ॥ ४८ ॥

ततः	तदनन्तर	**युधिष्ठिरः**	राजा युधिष्ठिरने
सहकृष्णः	श्रीकृष्णके साथ	**गजाह्वयं**	हस्तिनापुर

गत्वा	जाकर	**तपस्विनीं**	तपस्विनी
पितरं	ताऊ धृतराष्ट्र	**गान्धारीं**	गान्धारीको
च	और	**सान्त्वयामास**	सान्त्वना दी ॥४८॥

पित्रा चानुमतो राजा वासुदेवानुमोदितः ।
चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभुः ॥४९॥

पित्रा च अनुमतः राजा वासुदेव अनुमोदितः चकार राज्यं धर्मेण पितृ पैतामहं विभुः ॥ ४९ ॥

च	और	**विभुः**	समर्थ
पित्रा	धृतराष्ट्रकी	**राजा**	राजा युधिष्ठिरने
अनुमतः	अनुमतिसे	**पितृ पैतामहं**	पिता-पितामहका
वासुदेव	श्रीकृष्णके द्वारा	**राज्यं**	राज्य
अनुमोदितः	अनुमोदन किये जानेपर	**धर्मेण**	धर्मपूर्वक
		चकार	किया ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे नवमोऽध्यायः

अथ दशमोऽध्यायः

शौनक उवाच-

हत्वा स्वरिक्थस्पृध आततायिनो
युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ।
सहानुजैः प्रत्यवरुद्धभोजनः
कथं प्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ॥१॥

हत्वा स्व रिक्थ स्पृधः आततायिनः युधिष्ठिरः धर्मभृतां वरिष्ठः सह अनुजै प्रत्यवरुद्धः भोजनः कथं प्रवृत्तः किं अकारषीत् ततः ॥ १ ॥

स्व	अपने	**वरिष्ठः**	श्रेष्ठ
रिक्थ	पैतृक स्वत्वकी	**युधिष्ठिरः**	युधिष्ठिरजीने
स्पृधः	स्पृहा करनेवाले	**अनुजैः सह**	भाइयोंके साथ
आततायिनः	आततायियोंको	**कथं**	कैसे
हत्वा	मारकर	**प्रवृत्तः**	(शासनमें) प्रवृत्त हुए (तथा)
भोजनः	भोगोंसे		
प्रत्यवरुद्धः	प्रत्यवरोध (संयम) करनेवाले	**ततः**	तब (शासक होकर)
		किं	क्या
धर्मभृतां	धर्मात्माओंमें	**अकारषीत्**	किया ॥१॥

सूत उवाच-

वंशं कुरोर्वंशदवाग्निनिर्हृतं
संरोहयित्वा भवभावनो हरिः ।
निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरो
युधिष्ठिरं प्रीतमना बभूव ह ॥२॥

वंशं कुरोर्वंश दवाग्नि निर्हृतं संरोहयित्वा भवभावनः हरिः निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरः युधिष्ठिरं प्रीतमनाः बभूव ह ॥ २ ॥

कुरोर्वंश	कुरुवंशकी (कलह रूपी)
दवाग्नि	दावाग्निमें
निर्हृतं	भस्मप्राय
वंशं	वंशको
संरोहयित्वा	पुनः आरोपित करके
भवभावनः	संसारका पालन करनेवाले
ईश्वरः	ईश्वर
हरिः	श्रीकृष्ण
युधिष्ठिरं	युधिष्ठिरको
निजराज्य	अपने राज्यपर
निवेशयित्वा	स्थापित करके
ह	पूर्ण
प्रीतमनाः	प्रसन्न
बभूव	हुए ॥२॥

निशम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं
प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रमः ।
शशास गामिन्द्र इवाजिताश्रयः
परिध्युपान्तामनुजानुवर्तिनः ॥३॥

निशम्य भीष्मोक्तं अथ अच्युतोक्तं प्रवृत्तः विज्ञानः विधूतः विभ्रमः शशास गां इन्द्र इव अजित आश्रयः परिधि उपान्तां अनुजाः अनुवर्तिनः ॥३॥

भीष्मोक्तं	भीष्मके कहे हुए
अथ	और
अच्युतोक्तं	श्रीकृष्णके कहे हुए वचनोंको
निशम्य	सुनकर
विज्ञानः	ज्ञान
प्रवृत्तः	होगया
विभ्रमः	भ्रम
विधूतः	सर्वथा मिट गया
अनुजाः	सब छोटे भाई
अनुवर्तिनः	आज्ञापालक थे ही
परिधि	समुद्रतक
उपान्तां	सीमावाली
गां	पृथ्वीका
अजित	भगवानके
आश्रयः	आश्रयमें रहते
इन्द्र	इन्द्र
इव	की भाँति
शशास	शासन करने लगे ॥३॥

कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही ।
सिषिचुः स्म व्रजान् गावः पयसोधस्वतीर्मुदा ॥४॥

कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकाम दुधाः मही सिषिचुः स्म व्रजान् गावः पयसा ओधस्वतीः मुदा ॥ ४ ॥

पर्जन्यः	मेघ	**ओधस्वतीः**	बड़े-बड़े थनोंवाली
कामं	आवश्यकतानुसार पर्याप्त	**गावः**	गायें
		मुदा	प्रसन्नतापूर्वक
ववर्ष	वर्षा करते थे	**व्रजान्**	गोशालाओंको
महीं	पृथ्वी	**पयसा**	दूधसे
सर्वकाम	सब अभीष्ट वस्तुयें	**सिषिचुः स्म**	सींचती रहती थीं
दुघाः	देनेवाली होगयीं		

नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुधः ।
फलन्त्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै ॥५॥

नद्यः समुद्राः गिरयः स वनस्पतिः वीरुधः फलन्ति ओषधयः सर्वाः कामं अनुऋतु तस्य वै ॥ ५ ॥

तस्य	(युधिष्ठिरके राजा होनेपर)	**वीरुधः**	वृक्ष
		ओषधयः	अन्नादि*
वै	निश्चित रूपसे	**सर्वाः**	सब
नद्यः	नदियाँ	**अनुऋतु**	ऋतुओंके अनुसार
समुद्राः	समुद्र	**कामं**	पर्याप्त
गिरयः	पर्वत	**फलन्ति**	फलती थीं ॥५॥
स वनस्पतिः	वनस्पतियोंके साथ		

नाधयो व्याधयः क्लेशा दैवभूतात्महेतवः ।
अजातशत्रावभवन् जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित् ॥६॥

न आधयः व्याधयः क्लेशाः दैव भूत आत्महेतवः अजातशत्राः अभवन् जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित् ॥ ६ ॥

अजातशत्राः	अजातशत्रु युधिष्ठिरके	**जन्तूनां**	प्राणियोंको
		कर्हिचित्	कभी भी
राज्ञि	राजा होनेपर	**आधयः**	चिन्तायें

---

* 'ओषधयः फलपाकान्ताः' एक बार फलकर जो सूख जाती हैं उन्हें ओषधि कहते हैं। सब अन्न ओषधि हैं।

व्याधयः	रोग	हेतवः	कारणसे होनेवाले
दैव	देवताओं	क्लेशाः	क्लेश
भूत	प्राणियों तथा	न	नहीं
आत्म	मनके	अभवन्	हुए ॥६॥

उषित्वा हास्तिनपुरे मासान् कतिपयान् हरिः ।
सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च प्रियकाम्यया ॥७॥

उषित्वा हास्तिनपुरे मासान् कतिपयान् हरिः सुहृदां च विशोकाय स्वसुः च प्रिय काम्यया ॥ ७ ॥

हरिः	श्रीकृष्ण	प्रियकाम्यया	प्रसन्न करनेकी इच्छासे
च	भी	हास्तिनपुरे	हस्तिनापुरमें
सुहृदां	प्रिय सम्बन्धियोंको	कतिपयान	कुछ
विशोकाय	शोक रहित करनेके लिए	मासान्	महीने
च	और	उषित्वा	रहकर ॥७॥
स्वसुः	बहिन सुभद्राको		

आमन्त्र्य चाभ्यनुज्ञातः परिष्वज्याभिवाद्य तम् ।
आरुरोह रथं कैश्चित्परिष्वक्तोऽभिवादितः ॥८॥

आमन्त्र्य च अभ्यनुज्ञातः परिष्वज्य अभिवाद्य तं आरुरोह रथं कैश्चित् परिष्वक्तः अभिवादितः ॥ ८ ॥

तं	उन (राजा युधिष्ठिर) से	अभिवाद्य	अभिवादन करके
आमन्त्र्य	आज्ञा माँगकर	कैश्चित्	कुछ लोगों द्वारा
अभ्यनुज्ञातः	प्रसन्नतापूर्वक अनुमति लेकर	परिष्वक्तः	आलिंगित एवं
परिष्वज्य	अंकमाल देकर	अभिवादितः	अभिवादित होकर
		रथं	रथपर
		आरुरोह	आरोहण किया ॥८॥

सुभद्रा द्रौपदी कुन्ती विराटतनया तथा ।
गान्धारी धृतराष्ट्रश्च युयुत्सुर्गौतमो यमौ ॥९॥

सुभद्राः द्रौपदीः कुन्ती विराटतनयाः तथा गान्धारी धृतराष्ट्र च युयुत्सुः गौतमः यमौ ॥ ९ ॥

सुभद्राः	सुभद्रा
द्रौपदीः	द्रौपदी
कुन्तीः	कुन्ती
तथा	तथा
विराटतनयाः	उत्तरा
गान्धारी	गान्धारी
धृतराष्ट्रः	धृतराष्ट्र
च	और
युयुत्सुः	युयुत्सु
गौतमः	कृपाचार्य
यमौ	नकुल-सहदेव ॥९॥

बृकोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो मत्स्यसुतादयः ।
न सेहिरे विमुह्यन्तो विरहं शार्ङ्गधन्वनः ॥१०॥

वृकोदरः च धौम्यः च स्त्रियः मत्स्यसुताः आदयः न सेहिरे विमुह्यन्तः विरहं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १० ॥

च	एवं
वृकोदरः	भीमसेन
च	और
धौम्यः	धौम्य
मत्स्यसुताः	सत्यवती
आदयः	आदि
स्त्रियः	स्त्रियां
शार्ङ्गधन्वनः	श्रीकृष्णके
विरहं	वियोगको
न	नहीं
सेहिरे	सह सकीं
विमुह्यन्तः	मूर्छित होगयीं ॥१०॥

सत्सङ्गान्मुक्तदुःसङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः ।
कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥११॥

सत्सङ्गत् मुक्तः दुःसङ्गः हातुं न उत्सहते बुधः कीर्त्यमानं यशः यस्य सकृत् आकर्ण्य रोचनम् ॥ ११ ॥

सत्सङ्गात्	सत्संगसे
दुःसंगः	कुसंग
मुक्तः	जिसका छूट गया है
बुधः	वह बुद्धिमान
यस्य	जिनके
रोचनं	रुचिकर
कीर्त्यमानं	वर्णन होते
यशः	सुयशको
सकृत्	एक बार भी
आकर्ण्य	सुनकर
हातुं	उसे छोड़नेका
उत्सहते	उत्साह
न	नहीं करता ॥११॥

तस्मिन्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन् विरहं कथम् ।
दर्शनस्पर्शसंलापशयनासनभोजनैः ॥१२॥

तस्मिन् न्यस्त धियः पार्थाः सहेरन् विरहं कथं दर्शनः स्पर्शः संलाप शयनः आसनः भोजनैः ॥ १२ ॥

दर्शनः	दर्शन	**न्यस्त**	लगी हुई
स्पर्शः	स्पर्श	**धियः**	बुद्धिवाले
संलापः	बातचीत	**पार्थाः**	पाण्डव
शयनः	एक साथ सोने	**विरहं**	उनके वियोगको
आसनः	साथ बैठने	**कथं**	कैसे
भोजनैः	साथ भोजनके द्वारा	**सहेरन्**	सहन कर
तस्मिन्	उन श्रीकृष्णमें		पाते ॥१२॥

सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्रुतचेतसः ।
वीक्षन्तः स्नेहसम्बद्धा विचेलुस्तत्र तत्र ह ॥१३॥

सर्वे ते अनिमिषैः अक्षैः तं अनुद्रुत चेतसः वीक्षन्तः स्नेह सम्बद्धाः विचेलुः तत्र तत्र ह ॥ १३ ॥

ते	वे	**वीक्षन्तः**	देखते हुए
सर्वे	सब	**स्नेह**	प्रेमसे
अनुद्रुत	द्रवित	**सम्बद्धाः**	बँधे हुए
चेतसः	चित्तवाले	**ह**	ही
अनिमिषैः	बिना पलक झपकाये	**तत्र तत्र**	जहाँ थे वहाँसे
अक्षैः	एकटक आँखोंसे	**विचेलुः**	(रथकी ओर)
तं	उन (श्रीकृष्ण) को		दौड़ने लगे ॥१३॥

न्यरुन्धन्नुद्गलद्बाष्पमौत्कण्ठ्याद्देवकीसुते ।
निर्यात्यगारान्नोऽभद्रमिति स्याद्बान्धवस्त्रियः ॥१४॥

न्यरुन्धन् उद्गलत् वाष्पं औत्कण्ठ्यात् देवकीसुते निर्याति अगारात् नो अभद्रं इति स्यात् वान्धवः स्त्रियः ॥ १४ ॥

देवकीसुते	श्रीकृष्णके	**निर्याति**	निकलते समय
अगारात्	घरसे	**वान्धवः**	सम्बन्धियोंकी

स्त्रियः	स्त्रियोंने
अभद्रं	अशुभ
नो	न
स्यात्	होवे
इति	यह समझकर
औत्कण्ठ्यात्	उत्कण्ठाके मारे
उद्गलत्	निकलनेको आये
वाष्पं	आसुओंको
न्यरुन्धन्	बलात् रोका ॥१४॥

मृदङ्गशङ्खभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः ।
धुन्धुर्यानकघण्टाद्या नेदुर्दुन्दुभयस्तथा ॥१५॥

मृदङ्गः शङ्खः भेर्यः च वीणाः पणवः गोमुखाः धुन्धुर्यः आनकः घण्टाः आद्याः नेदुः दुन्दुभयः तथा ॥ १५ ॥

मृदङ्गः	मृदङ्ग
शंखः	शंख
भेर्यः	भेरियाँ (बड़ा नगाड़ा)
च	और
वीणाः	वीणा
पणवः	ढोलक
गोमुखाः	नरसिंगे
धुन्धुर्यः	छोटी नगाड़ियाँ
आनकः	नगाड़े
घण्टाः	घण्टा
आद्याः	आदि (झांझ)
तथा	तथा
दुःदुभयः	दुन्दुभियाँ
नेदुः	बजने लगीं ॥१५॥

प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदृक्षया ।
ववृषुः कुसुमैः कृष्णं प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः ॥१६॥

प्रासाद शिखर आरूढाः कुरुनार्याः दिदृक्षया ववृषुः कुसुमैः कृष्णं प्रेमव्रीडा स्मित ईक्षणाः ॥ १६ ॥

दिदृक्षया	दर्शन करनेकी इच्छासे
कुरुनार्याः	कुरुवंशकी स्त्रियाँ
प्रासाद	भवनोंके
शिखर	शिखरोंपर
आरूढाः	चढ़ी हुई
कृष्णं	श्रीकृष्णको
प्रेमव्रीडा	प्रेमपूर्ण लज्जासे
स्मित	मुस्कराहटके साथ
ईक्षणाः	देखती हुई
कुसुमैः	पुष्पोंकी
ववृषुः	वर्षा करती थीं ॥१६॥

सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् ।
रत्नदण्डं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ॥१७॥

सित आतपत्रं जग्राह मुक्तादाम विभूषितं रत्नदण्डं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ॥ १७ ॥

प्रियतमस्य	अपने प्रियतम श्रीकृष्णके	**मुक्तादाम**	मोतियोंकी झालरोंसे
ह	निश्चित (अत्यन्त)	**विभूषितं**	भूषित
प्रियः	प्रिय	**सित**	श्वेत
गुडाकेशः	अर्जुनने	**आतपत्रं**	छत्र
रत्नदण्डं	रत्न जड़े दण्डवाला	**जग्राह**	पकड़ा ॥१७॥

उद्धवः सात्यकिश्चैव व्यजने परमाद्भुते ।
विकीर्यमाणः कुसुमै रेजे मधुपतिः पथि ॥१८॥

उद्धवः सात्यकिः च एव व्यजने परम अद्भुते विकीर्यमाणः कुसुमैः रेजे मधुपतिः पथि ॥ १८ ॥

उद्धवः	उद्धव	**पथि**	मार्गमें
च	और	**कुसुमैः**	पुष्पोंकी
सात्यकिः	सात्यकि	**विकीर्यमाणः**	वर्षा हो रही थी
एव	ने ही	**मधुपतिः**	श्रीकृष्ण
परम	अत्यन्त	**रेजे**	अत्यन्त शोभित हुए ॥१८॥
अद्भुते	अद्भुत		
व्यजने	पंखे (लिए)		

अश्रूयन्ताशिषः सत्यास्तत्र तत्र द्विजेरिताः ।
नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥१९॥

अश्रूयन्तः आशिषः सत्याः तत्र तत्र द्विजईरिताः न अनुरूपा अनुरूपाः च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १९ ॥

तत्र तत्र	स्थान स्थानपर	**ईरिताः**	दिये गये
द्विज	ब्राह्मणों द्वारा	**सत्याः**	सच्चे

आशिषः	आशीर्वाद	**न**	नहीं थे
अश्रृयन्तः	सुनाई पड़ रहे थे	**गुणात्मनः**	गुणात्माके
निर्गुणस्य	(उन) निर्गुणके	**अनुरूपाः**	अनुरूप थे ॥१९॥
अनुरूपा	अनुरूप		

अन्योन्यमासीत्संजल्प उत्तमश्लोकचेतसाम् ।
कौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः ॥२०॥

अन्योन्यं आसीत् संजल्पः उत्तमश्लोक चेतसां कौरवेन्द्र पुरस्त्रीणां सर्व श्रुति मनोहरः ॥ २० ॥

कौरवेन्द्र	कुरुकुलोत्तम (युधिष्ठिर) के	**स्त्रीणां**	स्त्रियोंमें
पुरः	नगर (हस्तिनापुर) की	**अन्योन्यं**	परस्पर
उत्तमश्लोक	पवित्र कीर्ति श्रीकृष्णमें	**सर्व**	सबके
		श्रुति	कानोंको
चेतसां	लगे चित्तवाली	**मनोहरः**	प्रिय लगेवाली
		संजल्पं	चर्चा
		आसीत्	हो रही थी ॥२०॥

*स्त्रियाऊचुः**

स वै किलायं पुरुषः पुरातनो
य एक आसीदविशेष आत्मनि ।
अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे
निमीलितात्मन्निशि सुप्तशक्तिषु ॥२१॥

स वै किल अयं पुरुषः पुरातनः य एक आसीत अविशेष आत्मनि अग्रे गुणेभ्यः जगत् आत्मनि ईश्वरे निमीलिताः आत्मनि निशि सुप्त शक्तिषु ॥ २१ ॥

निशि	ब्राह्मीरात्रि (प्रलयकाल) में	**आत्मनि**	अपनेमें ही
		ईश्वरे	सर्व समर्थमें

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सुप्त	सोई
शक्तिषु	सब शक्तियाँ होनेपर
निमीलताः	पलकें बन्द करके
य	जो
एक	अकेले
आत्मनि	अपनेमें
जगत	विश्वको (लीन करके)
गुणेभ्यः	गुणोंसे
अग्रे	पूर्व
अविशेष	निर्विशेष
आत्मनि	आत्मस्वरूप
पुरातनः	सनातन
पुरुषः	पुरुष
आसीत्	थे
स	वही
वै किल	निश्चय ही
अयं	यही हैं ॥२१॥

स एव भूयो निजवीर्यचोदितां
स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम् ।
अनामरूपात्मनि रूपनामनी
विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत् ॥२२॥

स एव भूयः निजवीर्य चोदितां स्वजीव मायां प्रकृतिं सिसृक्षतीं अनामरूप आत्मनि रूपनामनि विधित्सुमानः अनुससार शास्त्रकृत् ॥२२॥

स	उन्होंने
एव	ही
भयः	फिरसे
अनामरूप	नामरूप रहित
आत्मनि	अपने स्वरूपमें
रूपनामनि	रूप और नामका
विधित्सुमानः	विधान करनेकी इच्छासे
निजवीर्य	अपने पराक्रमसे
चोदितां	प्रेरिता
स्व	अपनी
जीवमायां	जीवरूप माया और
सिसृक्षतीं	सृष्टि करनेमें प्रवृत्त
प्रकृतिं	प्रकृतिका
अनुससार	अनुसरण किया (तथा)
शास्त्रकृत्	शास्त्रोंका निर्माण किया ॥२२॥

स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो
जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वनः ।
पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना
नन्वेष सत्त्वं परिमाष्टुमर्हति ॥२३॥

स वा अयं यत् पदं अत्र सूरयः जितइन्द्रिया निर्जित मातरिश्वनः पश्यन्ति भक्ति उत्कलित अमलात्मना ननु एष सत्त्वं परिमार्ष्टुं अर्हति ॥२३॥

वा स अयं	निश्चय ये वही हैं	**यत् पदं**	जिनके स्वरूपका
अत्र सूरयः	यहाँ ज्ञानी लोग	**पश्यन्ति**	दर्शन करते हैं
जितइन्द्रिय	इन्द्रियोंको जीतकर	**ननु एष**	निश्चय यही
मातरिश्वनः	प्राणवायुको	**सत्त्वं**	अन्तःकरणको
निर्जित	वशमें करके	**परिमार्ष्टुं**	परिमार्जित
भक्ति उत्कलित	भक्तिसे खिले	**अर्हति**	कर सकते हैं ॥२३॥
अमल आत्मना	निर्मल हृदयसे		

स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो
वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः ।
य एक ईशो जगदात्मलीलया
सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते ॥२४॥

स वा अयं सखि अनुगीतः सत्कथः वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः य एकः ईशः जगत् आत्मलीलया सृजति अवति अत्ति न तत्र सज्जते ॥२४॥

वेदेषु	वेदोंमें	**य**	जो
गुह्येषु	गोपनीय भागोंमें	**एकः**	अकेले ही
गुह्यवादिषु	गोपनीय बतलाने वालों द्वारा	**आत्मलीलया**	अपनी लीलासे
		जगत्	संसारकी
अनुगीतः	बार-बार गायी गयी (जिनकी)	**सृजति**	सृष्टि करते हैं
		अवति	पालन करते हैं
सत्कथः	पवित्र कथा है	**अत्ति**	लीन कर लेते हैं
सखिः	सखि	**तत्र**	इस (सृष्टि आदिमें)
स वा	निश्चय वे	**सज्जते**	आसक्त होते
अयं	यही हैं	**न**	नहीं ॥२४॥

यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा
जीवन्ति तत्रैष हि सत्त्वतः किल ।
धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो
भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे ॥२५॥

यदा हि अधर्मेण तमोधियाः नृपाः जीवन्ति तत्र एष हि सत्त्वतः किल धत्ते भग सत्यं ऋतं दयां यशः भवाय रूपाणि दधत् युगे युगे ॥ २५ ॥

हि	क्योंकि
यदा	जब
तमोधियाः	तामसी बुद्धिवाले
नृपाः	राजा लोग
अधर्मेण	अधर्मपूर्वक
जीवन्ति	जीवन चलाते हैं
तत्र	तब
किल	निश्चय
एष	यही
सत्त्वतः	सत्त्व गुणका आश्रय लेकर
भवाय	(जगत्के) कल्याणके लिए
युगे युगे	प्रत्येक युगमें
हि	निश्चित
रूपाणि	रूपों (अवतार) को
दधत्	धारण करके
भगं	ऐश्वर्यको
सत्यं	सत्यको
ऋतं	ऋतको
दयां	दयाको (और)
यशः	यशको
धत्ते	धारण करते (बचाते) हैं ॥२५॥

अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुल-
महो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम् ।
यदेष पुंसामृषभः श्रियः पतिः
स्वजन्मना चङ्क्रमणेन चाञ्चति ॥२६॥

अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुलं अहो अलं पुण्यतमं मधोः वनं यत् एष पुंसां ऋषभः श्रियः पतिः स्वजन्मना चङ्क्रमेण च अञ्चति ॥ २६ ॥

अहो	अहो
यदोःकुलं	यदुकुल
श्लाघ्यतमं	परमप्रशंसनीय है
अहो	अहो
मधोर्वनं	मथुरा
पुण्यतमं	पवित्रतम है
यत्	क्योंकि
एष	ये
पुंसां ऋषभः	पुरुष शिरोमणि
श्रियः पतिः	श्रीपति
स्वजन्मना	अपने अवतारसे
च	और
चङ्क्रमेणेन	घूम फिरकर
अञ्चति	(इन्हें) शोभित करते हैं ॥२६॥

अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी
कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः ।
पश्यन्ति नित्यं यदनुग्रहेषितं
स्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः ॥२७॥

अहो बत स्वः यशसः तिरस्करीः कुशस्थलीः पुण्य यशस्करीः भुवः
पश्यन्ति नित्यं यत् अनुग्रह ईषितं स्मित अवलोकं स्वपतिं स्म यत् प्रजाः॥२७॥

अहो	अहो	**यत्**	जिसकी
वत	निश्चय	**प्रजाः**	प्रजा
स्वः	स्वर्गके	**नित्यं**	नित्य
यशसः	सुयशका	**अनुग्रह**	अनुग्रहपूर्वक
तिरस्करीः	तिरस्कार करनेवाली (और)	**ईषितं**	चेष्टा करते
		स्मित	मन्द मुस्कराहट भरी
भुवः	पृथ्वीके	**अवलोकं**	दृष्टिसे देखते
पुण्य	पवित्र	**स्वपन्ति**	अपने (इन) स्वामीको
यशस्करीः	यश देनेवाली		
कुशस्थलीः	द्वारिका है	**पश्यन्ति**	देखती है ॥२७॥
यत्	क्योंकि		

नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः
समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः ।
पिबन्ति याः सख्यधरामृतं मुहु-
र्व्रजस्त्रियः सम्मुमुहुर्यदाशयाः ॥२८॥

नूनं व्रत स्नान हुता दिनेश्वरः समर्चितः हि यस्य गृहीत पाणिभिः
पिबन्ति यः सखि अधरामृतं मुहुः व्रजस्त्रियः सम्मुमुहुः यत् आशयाः ॥ २८॥

सखि	सखि !	**दिनेश्वरः**	सूर्य भगवानका (अथवा अपने जीवनके इन स्वामीका)
नूनं	निश्चय ही		
व्रत	व्रत		
स्नान	(तीर्थ) स्नान		
हुत	यज्ञोंके द्वारा		

सर्माचतः	भली प्रकार पूजन किया होगा (उन्होंने)
यस्य	जिनका
गृहीत पाणिभिः	(इन्होंने) पाणिग्रहण किया
हि	क्योंकि
व्रजस्त्रियः	गोपियां
यत्	जिसकी
आशयाः	चाहसे
सम्मुमुहुः	सम्मोहित होती रहीं
याः	वे
मुहुः	बार-बार (उस)
अधरामृतं	अधरामृतको
पिबन्ति	पीती हैं ॥२८॥

या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे

प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिणः ।

प्रद्युम्नसाम्बाम्बसुतादयोऽपरा

याश्चाहृता भौमवधे सहस्त्रशः ॥२९॥

या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे प्रमथ्य चैद्य प्रमुखान् हि शुष्मिणः प्रद्युम्नः साम्बः आम्बः सुतआदयः अपराः याः च आहृताः भौमवधे सहस्त्रशः ॥ २९ ॥

या	जो
वीर्यशुल्केन	पराक्रमका मूल्य देकर
चैद्य प्रमुखान्	शिशुपाल जिनमें मुख्य था उन
शुष्मिणः	मतवाले राजाओंको
प्रमथ्य	मथ (पराजित) करके
स्वयंवरे	स्वयंवरमें
हृताः	हरण कर लाये
हि	जिनके
सुतः	पुत्र
प्रद्युम्नः	प्रद्युम्न
साम्बः	साम्ब
आम्बः	आम्ब
आदयः	आदि हैं
च	और
याः	जो
अपराः	दूसरी
सहस्त्रशः	हजारों
भौमवधे	नरकासुरको मारनेपर
आहृताः	ले आये ॥२९॥

एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं
निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते ।
यासां गृहात्पुष्करलोचनः पति-
र्नजात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ॥३०॥

एताः परं स्त्रीत्वं अपास्त पेशलं निरस्त शौचं बत साधु कुर्वते यासां गृहात् पुष्करलोचनः पतिः न जातु अपैति आहृतिभिः हृदिस्पृशन् ॥३०॥

पेशलं	स्वतन्त्रता	**गृहात्**	घरोंसे
अपास्त	रहित	**पुष्कर लोचनः**	(ये) कमललोचन
शौचं	पवित्रता	**पतिः**	पति
निरस्तं	रहित	**जातु**	कभी
स्त्रीत्वं	स्त्री जीवनको	**न**	नहीं
बत	निश्चय	**अपैति**	जाते
साधु	उत्तम	**आहृतिभिः**	उपहारों द्वारा
कुर्वते	कर देनेवाली	**हृदि**	हृदयको
एताः	ये सब	**स्पृशन्**	स्पर्श करते रहते
परं	श्रेष्ठतम हैं		हैं ॥३०॥
यासां	जिनके		

*सूत उवाच**–

एवंविधा गदन्तीनां स गिरः पुरयोषिताम् ।
निरीक्षणेनाभिनन्दन् सस्मितेन ययौ हरिः ॥३१॥

एवं विधा गदन्तीनां स गिरः पुरयोषितां निरीक्षणेन अभिनन्दन् सस्मितेन ययौ हरि ॥ ३१ ॥

एवं	इस	**गदन्तीनां**	कही हुई
विधा	प्रकार	**स**	उस
पुरयोषितां	नगरकी स्त्रियोंकी	**गिरः**	वाणीका

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सस्मितेन	मुस्कराहट युक्त	**हरिः**	श्रीकृष्ण
निरीक्षणेन	दृष्टिपातसे	**ययौ**	गये ॥३१॥
अभिनन्दन	अभिनन्दन करते		

अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः ।
परेभ्यः शङ्कितः स्नेहात्प्रायुङ्क्त चतुरङ्गिणीम् ॥३२॥

अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः परेभ्यः शङ्कितः स्नेहात् प्रायुङ्क्त चतुरङ्गिणीम् ॥ ३ ॥

अजातशत्रुः	युधिष्ठिरने	**चतुरङ्गिणीं**	(चार अंग–पैदल, घुड़सवार, हाथी और रथवाली) चतुरंगिणी
स्नेहात्	स्नेहवश		
परेभ्यः	शत्रुओंकी ओरसे		
शङ्कितः	शङ्कित होकर		
मधुद्विषः	मधुसूदनकी	**पृतनां**	सेना
गोपीथाय	सुरक्षाके लिए	**प्रायुङ्क्त**	नियुक्त किया ॥३२॥

अथ दूरागतान् शौरिः कौरवान् विरहातुरान् ।
संनिवर्त्य दृढं स्निग्धान् प्रायात्स्वनगरीं प्रियैः ॥३३॥

अथ दूर आगतान् शौरिः कौरवान् विरह आतुरान् संनिवर्त्य दृढं स्निग्धान् प्रायात् स्वनगरीं प्रियैः ॥ ३३ ॥

अथ	तदनन्तर	**शौरिः**	श्रीकृष्णने
दृढं	दृढ	**संनिवर्त्य**	लौटाकर
स्निग्धान्	स्नेह रखनेवाले	**प्रियैः**	(उद्धव, सात्यकि आदि) प्रियजनोंके साथ
विरह	वियोगसे		
आतुरान्	व्याकुल		
दूर	दूरतक	**स्वनगरीं**	अपने नगर (द्वारिका) को
आगतान्	आये		
कौरवान्	कुरुवंशी लोगोंको	**प्रायात्**	चले ॥३३॥

कुरुजाङ्गलपाञ्चालान् शूरसेनान् सयामुनान् ।
ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान् सारस्वतानथ ॥३४॥

कुरु जाङ्गल पञ्चालान् शूरसेनान् सयामुनान् ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान् सारस्वतान् अथ ॥ ३४ ॥

मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान् ।
आनर्तान् भार्गवोपागाच्छ्रान्तवाहो मनाग्विभुः ॥३५॥

मरु धन्वं अतिक्रम्य सौवीर आभीरयोः परान् आनर्तात् भार्गव उपागच्छत् श्रान्तः वाहः मनाक् विभुः ॥ ३५ ॥

मरुधन्वं	मरुधन्व	विभुः	समर्थ श्रीकृष्ण
सौवीर	सौवीर	आनर्तान्	आनर्त प्रदेशके
आभीरयोः	आभीर आदि	उपागच्छत्	समीप पहुँच गये
परान्	दूसरे प्रदेशोंको	वाहः	वाहन (घोड़े)
अतिक्रम्य	पार करके	मनाक्	थोड़े
भार्गव	शौनकजी !	श्रान्तः	थक गये थे ॥३५॥

तत्र तत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यतार्हणः ।
सायं भेजे दिशं पश्चाद्गविष्ठो गां गतस्तदा ॥३६॥

तत्र तत्र ह तत्रत्यैः हरिः प्रति उद्यत अर्हणः सायं भेजे दिशं पश्चात् गविष्ठः गां गतः तदा ॥ ३६ ॥

तत्र तत्र	स्थान स्थानपर	गां	पृथ्वीपर
ह	बार बार	गतः	उतरकर
तत्रत्यैः	वहाँ रहनेवालों द्वारा	तदा	तब
हरिः	श्रीकृष्णके	पश्चात्	पश्चिम
प्रति	प्रति	दिशं	दिशाकी ओर (मुख करके)
अर्हणः	पूजा (उपहार)	गविष्ठः	सूर्याराधन (सन्ध्या) किया ॥३६॥
उद्यतः	उपस्थित किया गया		
सायं	सन्ध्याकाल		
भेजे	होनेपर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे दशमोऽध्यायः

अथ एकादशोऽध्यायः

सूत उवाच-

आनर्तान् स उपव्रज्य स्वृद्धाञ्जनपदान् स्वकान् ।
दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव ॥१॥

आनर्तान् स उपव्रज्य स्वृद्धान् जनपदान् स्वकान् दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन् इव ॥ १ ॥

स	उन श्रीकृष्णने	**विषादं**	(वियोग्य जन्य) विषादको
स्वृद्धान्	समृद्ध	**शमयन्**	शान्त करते हुए
स्वकान्	अपनी (प्रजाकी)	**इव**	से
जनपदान्	बस्तियोंवाले	**दरवरं**	(अपना) श्रेष्ठ शंख
आनत न्	आनर्तमें	**दध्मौ**	बजाया ॥१॥
उपव्रज्य	पहुँचकर		
तेषां	उन (प्रजाजनों) के		

स उच्चकाशे धवलोदरो दरो-
ऽप्युरुक्रमस्याधरशोणशोणिमा ।
दाध्मायमानः करकञ्जसम्पुटे
यथाब्जखण्डे कलहंस उत्स्वनः ॥२॥

स उच्चकाशे धवलोदर दरः अपि उरुक्रमस्य अधरशोण शोणिमा दाध्मायमानः करकञ्ज सम्पुटे यथा अब्जखण्डे कलहंस उत्स्वनः ॥२॥

स	वह	**अधरशोण**	लाल लाल ओष्ठोंकी
धवलोदर	श्वेत पेटवाला	**शोणिमा**	लालीसे
दरः	शंख	**करकञ्ज**	हस्तकमलके
अपि	भी	**सम्पुटे**	सम्पुटमें
उरु क्रमस्य	अनन्त पराक्रम श्रीकृष्णके	**दाध्मायमानः**	बजाया जाता
		उच्चकाशे	अत्यन्त शोभित हुआ

यथा	जैसे	**कलहंस**	राजहंस
अब्जखण्डे	कमलके ऊपर (बैठा)	**उत्स्वनः**	कूज रहा हो ॥२॥

तमुपश्रुत्य निनदं जगद्भयभयावहम् ।
प्रत्ययुः प्रजाः सर्वा भर्तृदर्शनलालसाः ॥३॥

तं उपश्रुत्य निनदं जगत् भय भयावहं प्रति उद्ययुः प्रजाः सर्वाः भर्तृ दर्शन लालसाः ॥ ३ ॥

तं	उस	**प्रजाः**	प्रजा
जगत	जगतके	**भर्तृ**	स्वामीके
भय	भयको	**दर्शन**	दर्शनकी
भयावहं	भयभीत करनेवाले	**लालसाः**	लालसासे
निनदं	शंखनादको	**प्रति**	उनकी ओर
उपश्रुत्य	सुनकर	**उद्ययुः**	आने लगी ॥३॥
सर्वाः	सब		

तत्रोपनीतबलयो रवेर्दीपमिवादृताः ।
आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा ॥४॥

तत्र उपनीतः बलयोः रवेः दीपं इव आदृताः आत्माराम पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा ॥ ४ ॥

तत्र	वहाँ	**रवेः**	सूर्यके लिए
नित्यदा	सर्वदा	**दीपं**	दीपदान
निजलाभेन	अपने स्वरूपकी उपलब्धिसे	**इव**	के समान
		बलयोः	उपहार
पूर्णकामं	पूर्णकाम	**उपनीतः**	लाकर
आत्मारामं	आत्माराम श्रीकृष्णके लिए	**आदृताः**	आदर किया ॥४॥

प्रीत्युत्फुल्लमुखाः प्रोचुर्हर्षगद्गदया गिरा ।
पितरं सर्वसुहृदमवितारमिवार्भकाः ॥५॥

प्रीति उत्फुल्ल मुखाः प्रोचुः हर्ष गद्गदया गिरा पितरं सर्व सुहृदं अवितारं इव अर्भकाः ॥ ५ ॥

प्रीति	प्रीतिसे
उत्फुल्ल	प्रफुल्ल
मुखाः	मुखवाले (वे प्रजाजन)
हर्ष	हर्षसे
गद्गदया	गद्गद
गिरा	वाणीसे
सर्व सुहृदं	सबके सुहृद
अवितारं	रक्षक श्रीकृष्णसे
अर्भकाः	बालक जैसे
पितरं	पितासे
इव	उस समान
प्रोचुः	बोले ॥५॥

*पौराः ऊचुः—**

नताः स्म ते नाथ सदाङ्घ्रिपङ्कजं
विरिञ्चवैरिञ्च्यसुरेन्द्रवन्दितम् ।
परायणं क्षेममिहेच्छतां परं
न यत्र कालः प्रभवेत् परः प्रभुः ॥६॥

नताः स्म ते नाथ सदा अङ्घ्रिपंकजं विरञ्चि वैरिञ्चि सुरेन्द्रवन्दितं परायणं क्षेमं इह इच्छतां परं न यत्र कालः प्रभवेत् परं प्रभुः ॥ ६ ॥

नाथ	प्रभो !
ते	आपके
अंघ्रिपङ्कजं	चरणकमलोंको
सदा	सदा
नताः स्म	हम नमस्कार करते हैं ।
विरञ्चि	ब्रह्माजी
वैरिञ्च	शंकर
सुरेन्द्र	इन्द्रसे
वन्दितं	(वे) वन्दित हैं ।
इह	इस संसारमें
परं	परम
क्षेमं	कल्याण
इच्छतां	चाहनेवालोंके लिए
परायणं	आश्रय हैं ।
परं	परम
प्रभुः	प्रभु
कालः	काल

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

यत्र	जहाँ (आपके चरणोंके समीप)	**न**	समर्थ नहीं होता ॥६॥
प्रभवेत	प्रभाव डालनेमें		

भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन
त्वमेव माताथ सुहृत्पतिः पिता ।
त्वं सद्गुरुर्नः परमं च दैवतं
यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम ॥७॥

भवाय नः त्वं भव विश्वभावन त्वं एव माता अथ सुहृत् पतिः पिताः त्वं सद्गुरुः नः परमं च दैवतं यस्य अनुवृत्त्याः कृतिनः बभूव इमः ॥ ७ ॥

विश्वभावन	विश्व रक्षक !	**त्वं**	आप
नः	हमारे	**नः**	हमारे
भवाय	अभ्युदयके लिए	**सद्गुरुः**	सद्गुरु
त्वं	आप	**च**	तथा
भव	होवें	**परमं**	परं
त्वं	आप	**दैवतं**	आराध्यदेव हैं
एव	ही	**यस्य**	जिनकी
माता	(हमारे) माता	**अनुवृत्त्याः**	आज्ञापालनसे
अथ	और	**इमः**	हम सब
सुहृत्	हितैषी	**कृतिनः**	कृतार्थ
पतिः	स्वामी	**बभूव**	होते हैं ॥७॥
पिताः	पिता हैं		

अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं
त्रैविष्टपानामपि दूरदर्शनम् ।
प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं
पश्येम रूपं तव सर्वसौभगम् ॥८॥

अहो सनाथाः भवताः स्म यत् वयं त्रैविष्टपानां अपि दूरदर्शनं प्रेमस्मित स्निग्ध निरीक्षण आननं पश्येम रूपं तव सर्व सौभगम् ॥ ८ ॥

अहो	अहो
भवताः	आपके द्वारा
सनाथाः	(हम) सनाथ
स्म	हैं
यत्	क्योंकि
त्रैविष्टपानां	देवताओंके लिए
अपि	भी
दूरदर्शनं	आपका दर्शन दुर्लभ है
वयं	हम सब
तव	आपके
प्रेमस्मित	प्रेम भरी मुस्कान (एवं)
स्निग्धनिरीक्षणं	स्नेह सहित अवलोकन युक्त
आननं	मुखको (तथा)
सर्व	समस्त
सौभगं	सौभाग्यमय
रूपं	रूपको
पश्येम	देखते हैं ॥८॥

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान्
कुरून् मधून् वाथ सुहृद्दिदृक्षया ।
तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद्
रवि विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत ॥९॥

यर्हि अम्बुजाक्ष अपससार भो भवान् कुरून् मधून् वा अथ सुहृत् दिदृक्षया तत्र अब्द कोटि प्रतिमः क्षणः भवेत् रवि विनाः अक्ष्णोः इव नः तव अच्युत ॥ ९ ॥

भो	हे
अम्बुजाक्ष	कमललोचन
यर्हि	जब
भवान्	आप
कुरून्	कुरुवंशियों
वा	अथवा
मधून्	मधुवंशियो (मथुराके लोगों) को*
सुहृत्	सम्बन्धियोंको
दिदृक्षया	देखनेकी इच्छासे
तत्र	वहां
अपससार	चले जाते हो
अथ	तब
अच्युत	अच्युत !
तव	तुम्हारे
विना	विना
नः	हमारे
क्षणः	प्रत्येक क्षण
कोटि	करोड़ों
अब्द	वर्षोंके

* इससे सिद्ध है कि श्रीकृष्ण द्वारिकासे मथुरा भी आते थे

समं	समान	**विनाः**	विना
भवेत्	हो जाते हैं	**अक्ष्णोः**	आँखोंके
रविं	सूर्यके	**इव**	समान ॥९॥

सूत उवाच*–

इति चोदीरिता वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः ।
शृण्वानोऽनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन् प्राविशत्पुरीम् ॥१०॥

इति च उदीरताः वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः शृण्वानः अनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन् प्राविशत् पुरीम् ॥ १० ॥

इति च	इस प्रकारकी	**दृष्ट्या**	दृष्टिसे
उदीरताः	कही गयी	**अनुग्रहं**	अनुग्रह
प्रजानां	प्रजाकी	**वितन्वन्**	वितरित करते
वाचः	बात	**पुरीं**	(द्वारिका) पुरीमें
शृण्वानः	सुनते हुए	**प्राविशत्**	प्रविष्ट हुए ॥१०॥
भक्तवत्सलः	भक्त वत्सल		

मधुभोजदशार्हार्हकुकुरान्धकवृष्णिभिः ।
आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैर्भोगवतीमिव ॥११॥

मधु भोज दशार्ह अर्ह कुकुर अन्धक वृष्णिभिः आत्मतुल्यैः बलैः गुप्तां नागैः भौगवतीं इव ॥ ११ ॥

नागैः	नागोंसे (रक्षित)	**कुकुर**	कुकुरवंशी
भोगवतीं	भोगवतीपुरी	**अन्धक**	अन्धकवंशी (और)
इव	की भाँति	**वृष्णिभिः**	वृष्णिवंशी
अर्ह	आदरणीय	**आत्मतुल्यैः**	अपने समान
मधु	मधुवंशी	**बलैः**	बलवानोंसे
भोज	भोजवंशी	**गुप्तां**	रक्षित थी ॥११॥
दशार्ह	दशार्हवंशी		

---

* यह उवाच अन्य किसी प्रतिमें नहीं है ।

सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः ।
उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्रियम् ॥१२॥

सर्व ऋतु सर्व विभव पुण्य वृक्ष लता आश्रमैः उद्यान उपवन आरामैः वृत पद्माकर श्रियम् ॥ १२ ॥

सर्व	सब	**उद्यान**	फलोंके बगीचे
ऋतु	ऋतुओंमें	**उपवन**	पुष्पोंके बड़े वृक्षोंके बगीचों
सर्व	सब		
विभव	वैभवों (से युक्त)	**आरामैः**	फुलवारीसे
पुण्य	पवित्र	**वृत**	घिरी
वृक्ष	वृक्षों	**पद्माकर**	कमलयुक्त (सरोवरों) से
लता	लताओंवाले		
आश्रमैः	आश्रमों	**श्रियं**	सुशोभित ॥१२॥

गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम् ।
चित्रध्वजपताकाग्रैरन्तः प्रतिहतातपाम् ॥१३॥

गोपुर द्वार मार्गेषु कृत कौतुक तोरणां चित्रध्वज पताका अग्रैः प्रतिहत आतपम् ॥ १३ ॥

मार्गेषु	पथोंमें	**चित्रध्वज**	चित्रित ध्वजा (डंडे)
गोपुरद्वार	गोपुर बने द्वारोंपर	**अग्रैः**	(जिनके) ऊपर
कौतुक	शोभाके लिए	**पताका**	झण्डे लगनेसे
कृत	लगाये गये	**अन्तः**	पुरीके भीतर
तोरणां	बन्दनवारवाली (द्वारिका)	**आतपां**	धूप
		प्रतिहत	रुक गयी थी ॥१३॥

सम्मार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम् ।
सिक्तां गन्धजलैरुप्तां फलपुष्पाक्षताङ्कुरैः ॥१४॥

सम्मार्जित महामार्ग रथ्या आपण चत्वरां सिक्तां गन्धजलैः उप्तां फल पुष्प अक्षत अङ्कुरैः ॥ १४ ॥

महामार्ग	राजपथ	**सिक्तां**	(पथा) सींचे गये थे
रथ्या	गलियाँ	**फल**	फल
आपण	बाजार	**पुष्प**	पुष्प
चत्वरां	चबूतरे	**अक्षत**	अक्षत
सम्मार्जित	स्वच्छ कर दिये गये थे ।	**अङ्कुरैः**	दूर्वाङ्कुर
		उप्तां	बिखरे थे ॥१४॥
गन्धजलैः	सुगन्धित जलसे		

द्वारि द्वारि गृहाणां च दध्यक्षतफलेक्षुभिः ।
अलंकृतां पूर्णकुम्भैर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥१५॥

द्वारि द्वारि गृहांणा च दधि अक्षत फल इक्षुभिः अलंकृतां पूर्णकुम्भैः वलिभिः धूप दीपकैः ॥ १५ ॥

च	और	**दधि**	दही
गृहाणां	घरोंके	**अक्षत**	अक्षत
द्वारि द्वारि	प्रत्येक द्वार	**फल**	फल
पूर्णकुम्भैः	भरे हुए कलशोंसे (जो)	**ईक्षुभिः**	गन्ने आदि
		वलिभिः	उपहारोंसे पूजित थे
धूप	धूप	**अलंकृतां**	सुशोभित थे ॥१६॥
दीपकैः	दीपकोंसे		

निशम्य प्रेष्ठमायान्तं वसुदेवो महामनाः ।
अक्रूरश्चोग्रसेनश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः ॥१६॥

निशम्य प्रेष्ठं आयान्तं वसुदेवः महामनाः अक्रूरः च उग्रसेनः च रामः च अद्भुत विकमः ॥ १६ ॥

प्रेष्ठं	अपने प्रिय (श्रीकृष्ण) को	**अक्रूरः**	अक्रूरजी
		च	तथा
आयान्तं	आते हुए	**उग्रसेनः**	राजा उग्रसेन
निशम्य	सुनकर	**च**	एवं
महामनाः	महामना	**अद्भुत विक्रमः**	अद्भुत पराक्रमी
वसुदेवः	वसुदेवजी	**रामः**	श्रीबलरामजी॥१६॥
च	और		

प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः ।
प्रहर्षवेगोच्छशितशयनासनभोजनाः ॥१७॥

प्रद्युम्नः चारुदेष्णः च साम्बः जाम्बवती सुतः प्रहर्षवेग उच्छशित शयन आसन भोजनाः ॥ १७ ॥

प्रद्युम्नः	प्रद्युम्न	**शयन**	शय्या
चारुदेष्णः	चारुदेष्ण	**आसन**	आसन
च	और	**भोजनाः**	भोजन
जाम्ववतीसुतः	जाम्बवतीके पुत्र	**उच्छशित**	त्यागकर
साम्बः	साम्ब		झटपट ॥१७॥
प्रहर्षवेगः	अत्यन्त हर्षके वेगसे		

वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य ब्राह्मणैः ससुमङ्गलैः ।
शङ्खतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषेण चाहृताः ।
प्रत्युज्जग्मू रथैर्हृष्टाः प्रणयागतसाध्वसाः ॥१८॥

वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य ब्राह्मणैः ससुमङ्गलैः शङ्खतूर्य निनादेन ब्रह्मघोषेण च आहृताः प्रत्यजग्मुः रथैः हृष्टाः प्रणय आगत साध्वसाः ॥ १८ ॥

वारणेन्द्रं	गजराजको	**प्रणय**	प्रेमके कारण
पुरस्कृत्य	आगे करके	**साध्वसाः**	हड़बड़ी
ससुमंगलैः	मंगल द्रव्योंके साथ	**आगत**	में आये
ब्राह्मणैः	ब्राह्मणों (सहित)	**रथैः**	रथोंपर बैठकर
आहृताः	आदरपूर्वक	**हृष्टाः**	हर्षमें भरे
शङ्ख	शंख	**प्रत्यजग्मुः**	(अगवानी करने)
तूय	तुरही		भगवानको ओर
निनादेन	बजाते हुए		चले ॥१८॥
च	और		
ब्रह्मघोषेण	वेदमन्त्रोंका पाठ		
	करते हुए		

वारमुख्याश्च शतशो यानैस्तद्दर्शनोत्सुकाः ।
लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनश्रियः ॥१९॥

वारमुख्याः च शतशः यानैः तत् दर्शनोत्सुकाः लसत् कुण्डल निर्भात कपोल वदन श्रियः ॥ १९ ॥

च	और	**तत्**	उन (श्रीकृष्ण) के
कुण्डल	कुण्डलोंसे	**दर्शनोत्सुकाः**	दर्शनोंको उत्सुका
लसत्	सुशोभित	**शतशः**	सैकड़ों
कपोल	कपोल	**वारमुख्याः**	वाराङ्गनायें
वदन	मुखकी	**यानैः**	वाहनोंपर बैठकर
श्रियः	शोभा		(चलीं) ॥१९॥
निर्भातः	से शोभित		

नटनर्तकगन्धर्वाः सूतमागधवन्दिनः ।
गायन्ति चोत्तमश्लोकचरितान्यद्भुतानि च ॥२०॥

नट नर्तक गन्धर्वाः सूत मागधवन्दिनः गायन्ति च उत्तमश्लोक चरितानि अद्भुतानि च ॥ २० ॥

नट	नट	**वन्दिनः**	वन्दी (यशोगायक)
नर्तक	नर्तक	**उत्तमश्लोक**	पवित्र कीर्ति
गन्धर्वाः	गन्धर्व (गायक)		(भगवान) के
सूत	सूत (चरित वर्णन करनेवाले)	**अद्भुतानि**	अद्भुत
		चरितानि	चरितोंको
मागध	मागध (वंशावली गायक)	**च**	भी
		गायन्ति	गारहे थे ॥२०॥
च	और		

भगवांस्तत्र बन्धूनां पौराणामनुवर्तिनाम् ।
यथाविध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे ॥२१॥

भगवान् तत्र बन्धूनां पौराणां अनुवर्तिनां यथाविधि उपसंगम्य सर्वेषां मानं आदधे ॥ २१ ॥

तत्र	वहां	**बन्धूनां**	सम्बन्धिसे
भगवान्	भगवानने	**पौराणां**	नगरवासियोंसे

अनुवर्तिनां	सेवकोंसे	**सर्वेषां**	सबका
यथा विधि	विधि (सामाजिक रीति) के अनुसार	**मानं**	सम्मान
		आदधे	किया ॥२१॥
उपसंगम्य	मिलकर		

प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः ।
आश्वास्य चाश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः ॥२२॥

प्रह्व अभिवादन आश्लेष करस्पर्श स्मितेक्षणैः आश्वास्य च आश्वपाकेभ्यः वरैः च अभिमतैः विभुः ॥ २२ ॥

प्रह्व	मस्तक झुकाकर प्रणाम (किसीको तथा)	**आश्वास्य**	आश्वासन देकर
		च	और
		आश्वपाकेभ्यः	चाण्डालादि पर्यन्तको
अभिवादन	बोलकर प्रणाम (या)	**अभिमतैः**	अभीष्ट
		वरैः	मांग पूरी करके
आश्लेष	आलिंगन (करके अथवा)	**च**	च
		विभुः	समर्थ (भगवानने सबको सत्कृत किया) ॥२२॥
करस्पर्श	हाथ मिलाकर (या)		
स्मितेक्षणैः	मुस्कराकर देखकर,		

स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि ।
आशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्वन्दिभिश्चाविशत्पुरम् ॥२३॥

स्वयं च गुरुभिः विप्रैः सदारैः स्थविरैः अपि आशीभिः युज्यमानः अन्यैः वन्दिभिः च आविशत् पुरम् ॥ २३ ॥

स्वयं	स्वयं	**युज्यमानः**	प्राप्त करते हुए
च	भी	**च**	और
सदारैः	पत्नियों सहित	**अन्यैः**	दूसरों (अपनेसे छोटों) से
विप्रैः	ब्राह्मणों द्वारा		
स्थविरैः	वृद्धोंसे	**वन्दिभिः**	वन्दित होते
अपि	भी	**पुरं**	नगरमें
आशीभिः	आशीर्वाद	**आविशत्**	प्रविष्ट हुए ॥२३॥

राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः ।
हर्म्याण्यारुरुहुर्विप्र तदीक्षणमहोत्सवाः ॥२४॥

राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः हर्म्याणि आरुरुहुः विप्र तत् ईक्षण महोत्सवाः ॥ २४ ॥

विप्र	शौनकजी !	**तत्**	उनके
कृष्णे	श्रीकृष्णके	**ईक्षण**	दर्शनकी
राजमार्गं	राजपथपर	**महोत्सवाः**	भारी उत्सुकतासे
गते	पहुँचनेपर	**हर्म्याणि**	अटारियोंपर
द्वारकायाः	द्वारिकाकी	**आरुरुहुः**	चढ़ गयीं ॥२४॥
कुलस्त्रियः	कुलीन स्त्रियां		

नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारकौकसाम् ।
न वितृप्यन्ति हि दृशः श्रियोधामाङ्गमच्युतम् ॥२५॥

नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारका ओकसां न एव तृप्यन्ति हि दृशः श्रियो धामं अंग अच्युतम् ॥ २५ ॥

द्वारका	द्वारिका	**न**	नहीं
ओकसां	निवासियों द्वारा	**एव**	ही है
नित्यं	सदा	**हि**	क्योंकि
निरीक्षमाणानां	देखे जानेवाले	**अच्युतं**	श्रीकृष्णका
यदपि	यद्यपि (भगवान हैं फिर भी)	**अंग**	श्रीअंग
		श्रियोधाम	शोभाका धाम है ॥२५॥
दृशः	दृष्टि		
तृप्यन्ति	तृप्ति होती		

श्रियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दृशाम् ।
बाहवो लोकपालानां सारङ्गाणां पदाम्बुजम् ॥२६॥

श्रियः निवासः यस्य उरः पानपात्रं मुखं दृशां बाहवः लोकपालानां सारंगाणां पदाम्बुजम् ॥ २६ ॥

यस्य	जिनका	**श्रियः**	लक्ष्मीका
उरः	वक्षस्थल	**निवासः**	निवास है,

मुखं	मुख	**लोकपालानां**	लोकपालोंकी (और)
दृशां	नेत्रोंका	**पदाम्बुजं**	चरणकमल
पानपात्रं	पीनेका पात्र है,	**सारंगाणां**	भक्तोंके (आश्रय)
बाहवः	भुजायें		हैं ॥२६॥

सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः
प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि ।
पिशङ्गवासा वनमालया बभौ
घनो यथार्कोडुपचापवैद्युतैः ॥२७॥

सित आतपत्र व्यजनैः उपस्कृतः प्रसूनवर्षैः अभिवर्षितः पथि पिशङ्गवासा वनमालया बभौ घनः यथा अर्क उडुचाप वैद्युतैः ॥ २७ ॥

सित	श्वेत	**वनमालया**	वनमालाधारी श्रीकृष्ण
आतपत्र	छत्र (तथा)	**बभौ**	(ऐसे) शोभित हुए
व्यजनः	पंखोंसे	**यथा**	जैसे
उपस्कृतः	सुशोभित	**घनः**	मेघ (एक साथ)
प्रसूनवर्षैः	पुष्पवर्षा	**अर्क**	सूर्य
अभि	चारों ओरसे	**उडु**	चन्द्रमा
वर्षितः	होती	**चाप**	इन्द्रधनुष (एवं)
पथि	मार्गमें	**वैद्युतैः**	विद्युतसे ॥२७॥
पिशङ्गवासा	पीताम्बर पहिने		

प्रविष्टस्तु गृहं पित्रोः परिष्वक्तः स्वमातृभिः ।
ववन्दे शिरसा सप्त देवकीप्रमुखा मुदा ॥२८॥

प्रविष्टः तु गृहं पित्रोः परिष्वक्तः स्व मातृभिः ववन्दे शिरसा सप्त देवकी प्रमुखा मुदा ॥ २८ ॥

तु	तब	**स्व**	अपनी
पित्रोः	पिताके	**मातृभिः**	माताओं द्वारा
गृहं	भवनमें	**परिष्वक्तः**	आलिंगित होकर
प्रविष्टः	प्रवेश किया		

देवकी प्रमुखा	जिनमें देवकी मुख्य हैं उन	**मुदा**	हर्षित होकर
सप्त	सातों (माताओं) को	**शिरसा**	मस्तकसे (पृथ्वीपर सिर रखकर)
		ववन्दे	प्रणाम किया ॥२८॥

ताः पुत्रमङ्कमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः ।
हर्षविह्वलितात्मानः सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ॥२९॥

ताः पुत्रं अङ्कं आरोप्य स्नेह स्तुत पयोधराः हर्ष विह्वलित आत्मानः सिषुचुः नेत्रजैः जलैः ॥ २९ ॥

ताः	उन (माताओं) ने	**पुत्रं**	पुत्र (श्रीकृष्ण) को
स्नेह	स्नेहके कारण	**अङ्कं**	गोदमें
स्तुत	टपकते	**आरोप्य**	लेकर
पयोधराः	पयोधरवाली	**नेत्रजैः**	नेत्रोंके
हर्ष	हर्षसे	**जलैः**	(हर्ष) अश्रुसे
विह्वलित	विह्वल	**सिषुचुः**	सींच दिया ॥२९॥
आत्मानः	चित्त		

अथाविशत् स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमम् ।
प्रासादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश ॥३०॥

अथ आविशत् स्वभवनं सर्वं कामं अनुत्तमं प्रासादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश ॥ ३० ॥

अथ	तदनन्तर	**यत्र**	जिसमें
सर्व	सब	**पत्नीनां**	पत्नियोंके
कामं	भोगोंसे सम्पन्न	**षोडशसहस्राणि**	सोलह हजार
अनुत्तमं	अत्यन्त श्रेष्ठ	**प्रासादा**	महल
स्वभवनं	अपने भवनमें	**च**	थे ॥३०॥
आविशत्	प्रविष्ट हुए		

पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागतं
विलोक्य संजातमनोमहोत्सवाः ।
उत्तस्थुरारात् सहसाऽऽसनाशयात्
साकं व्रतैर्व्रीडितलोचनाननाः ॥३१॥

पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहान् उपागतं विलोक्य संजात मनः महोत्सवाः उत्तस्थुः आरात् सहसा आसन् आशयात् साकं व्रतैः व्रीडित लोचन आननाः ॥ ३१ ॥

पत्न्यः	पत्नियोंने
प्रोष्य	प्रवाससे लौटे
पतिं	पतिको
गृहान्	अपने घरोंमें
आरात्	निकट
उपागतं	पहुँचा
विलोक्य	देखकर
मनः	मनमें
महोत्सवाः	अत्यन्त उल्लास
संजात	उत्पन्न हुआ
सहसा	सहसा
आसन	आसन छोड़कर
आशयात्	चित्तसे
व्रतैः	व्रतोंको (जो पतिके प्रवासमें जानेसे कर रही थीं)
साकं	साथ (छोड़कर)
व्रीडित	लज्जा भरे
लोचन	नेत्र
आननाः	मुखवाली
उत्तस्थुः	उठ खड़ी हुईं ॥३१॥

तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना
दुरन्तभावाः परिरेभिरे पतिम् ।
निरुद्धमप्यास्रवदम्बु नेत्रयो-
र्विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात् ॥३२॥

तं आत्मजैः दृष्टिभिः अन्तरात्मना दुरन्तभावाः परिरेभिरे पतिं निरुद्धं अपि आस्रवत् अम्बुः नेत्रयोः विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात् ॥३२॥

भृगुवर्य	भृगुश्रेष्ठ शौनकजी !
तं	उन
पतिं	अपने पति (श्रीकृष्ण) का
आत्मजैः	पुत्रोंके माध्यमसे
दृष्टिभिः	नेत्रोंसे
अन्तरात्मना	हृदयसे
परिरेभिरे	आलिंगत किया
दुरन्तभावाः	असीम प्रेमसे
विलज्जतीनां	बहुत लज्जित होती थीं, पर
वैक्लवात्	व्याकुलताके कारण
निरुद्धं	रोकनेपर
अपि	भी
नेत्रयोः	नेत्रोंसे
अम्बुः	आंसू
आस्रवत्	निकलने लगे ॥३२॥

यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगत-
स्तथापि तस्याङ्घ्रियुगं नवं नवम् ।
पदे पदे का विरमेत तत्पदा-
च्चलापि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित् ॥३३॥

यदपि असौ पार्श्वगतः रहोगतः तथापि तस्य अंघ्रि युगं नवं नवं पदे पदे का विरमेत तत् पदात् चला अपि यत् श्रीः न जहाति कर्हिचित् ॥ ३३ ॥

यदपि	यद्यपि	**श्रीः**	लक्ष्मी
असौ	ये (श्रीकृष्ण)	**यत्**	जिनको
रहोजुषः	एकान्तमें	**कर्हिचित्**	कभी भी
पार्श्वगतः	बगलमें ही रहते थे	**न**	नहीं
तथापि	फिर भी	**जहाति**	छोड़ती
अस्य	इनके	**तत्**	उनके
अंघ्रि	चरण	**पदात्**	चरणोंका
युगं	द्वय	**पदा पदा**	नित्य प्राप्त
नवं नवं	नित्य नवीन लगते हैं	**का**	कौन
चला	चञ्चला	**विरमेत्**	पृथक होना
अपि	होनेपर भी		चाहेगी ॥३३॥

एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मना-
मक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् ।
विधाय वैरं श्वसनो यथानलं
मिथो वधेनोपरतो निरायुधः ॥३४॥

एवं नृपाणां क्षितिभार जन्मनां अक्षौहिणीभिः परिवृत्त तेजसां विधाय वैरं श्वसनः यथा अनलं मिथः वधेन उपरतः निरायुधः ॥ ३४ ॥

एवं	इस प्रकार	**अक्षौहिणीभिः**	अक्षौहिणी (सेनाओं) से
क्षितिभार	पृथ्वीके भार रूप		
जन्मनां	उत्पन्न	**परिवृत्त**	घिरे होनेसे

तेजसां	तेजस्वी बने	**अनलं**	अग्निको बढ़ा देता है
नृपाणां	राजाओंमें	**निरायुधः**	(स्वयं) निरायुध रहते
मिथः	परस्पर	**वधेन**	(अनेक) वधसे
वैरं	शत्रुता	**उपरतः**	उपराम होगये ॥३४॥
विधाय	उत्पन्न करके,		
यथा	जैसे		
श्वसनः	फूंक मारना		

स एष नरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया ।
रेमे स्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान् प्राकृतो यथा ॥३५॥

स एष नरलोके अस्मिन् अवतीर्णः स्व मायया रेमे स्त्रीरत्न कूटस्थः भगवान् प्राकृतः यथा ॥ ३५ ॥

स	वही	**मायया**	मायासे
कूटस्थः	कूटस्थ	**अवतीर्णः**	अवतरित हुए हैं ।
भगवान्	भगवान	**यथा**	जैसे
एष	ये	**प्राकृतः**	साधारण पुरुष हों
अस्मिन्	इस	**स्त्रीरत्न**	उत्तम स्त्रियोंके साथ
नरलोके	मनुष्य लोकमें	**रेमे**	विहार करते रहे ॥३५॥
स्व	अपनी		

उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहास-
व्रीडावलोकनिहतो मदनोऽपि यासाम् ।
सम्मुह्य चापमजहात्प्रददोत्तमास्ता
यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः ॥३६॥

उद्दाम भाव पिशुन अमल वल्गुहासः क्रीडा अवलोक निहतः मदनः अपि यासां संमुह्य चापं अजहात् प्रमदोत्तमाः ताः यस्य इन्द्रियं विमथितुं कुहकैः न शेकुः ॥ ३६ ॥

उद्दाम	प्रबलतम	**अमल**	निर्मल
भाव	प्रेमसे	**वल्गु**	मधुर
पिशुन	भरी	**यांसां**	जिनकी

हास	हँसी (और)	**प्रमदोत्तमाः**	श्रेष्ठ नारियाँ
व्रीडा	लज्जापूर्वक	**कुहकैः**	अपने विलास
अवलोक	देखनेसे		प्रयत्नोंसे
निहतः	आहत	**यस्य**	जिनकी
मदनः	कामदेवने	**इन्द्रियं**	इन्द्रियोंको
अपि	भी	**विमथितुं**	मथित (असंयत)
सम्मुह्य	मूर्छित होकर		करनेमें
चापं	(अपना) धनुष	**न**	नहीं
अजहात्	फेंक दिया	**शेकुः**	समर्थ हुईं ॥३६॥
ताः	वे		

तमयं मन्यते लोको ह्यसङ्गमपि सङ्गिनम् ।
आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः ॥३७॥

तं अयं मन्यते लोकः हि असङ्ग अपि संगिनं आत्मः उपमन्येनं मनुंजं व्यापृण्वानं यतः अवुधः ॥ ३७ ॥

तं	उन (भगवान श्रीकृष्ण) को	**व्यापृण्वानं**	सर्वत्र व्यापक नियम बनाकर
असंगं	असंग होने	**संगिनं**	आसक्त
अपि	पर भी	**मनुजं**	(सामान्य) मनुष्य
अयं	यह	**मन्यते**	मानते हैं
लोकः	(संसारके) लोग	**हि**	क्योंकि
आत्मः	अपने	**अवुधाः**	अज्ञानी
उपमन्येन	समान	**यतः**	जो हैं ॥३७॥

एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः ।
न युज्यते सदाऽऽत्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥३८॥

एतत् ईशनं ईशस्य प्रकृतिस्थः अपि तद् गुणैः न युज्यते सदा आत्मस्थैः यथा बुद्धिः तत् आश्रयाः ॥ ३८ ॥

एतत्	यही	**ईशनं**	ईश्वरता है
ईशस्य	ईश्वरकी	**प्रकृतिस्थः**	प्रकृतिमें रहकर

अपि	भी	**आत्मस्थैः**	अपने स्वरूपमें ही
तद्	उसके		स्थित रहते हैं ।
गुणैः	गुणोंसे	**यथा**	जैसे
युज्यते	संसक्त होते	**तत्**	उनके
न	नहीं	**आश्रया**	आश्रयमें रहनेवाली
सदा	नित्य	**बुद्धिः**	बुद्धि ॥३८॥

तं मेनिरेऽबला मूढाः स्त्रैणं चानुव्रतं रहः ।
अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ॥३९॥

तं मेनिरे अबला मूढाः स्त्रैणं च अनुव्रतं रहः अप्रमाण विदः भर्तुः ईश्वरं मतयः यथा ॥ ३९ ॥

यथा	जैसे	**अबला**	उनकी रानियोंने
मतयः	बुद्धियाँ	**तं**	उनको
ईश्वरं	ईश्वरको (नहीं जान	**रहः**	एकान्तमें
	पातीं वैसे)	**अनुव्रतं**	अपना अनुयायी
भर्तुः	अपने स्वामीके	**च**	और
प्रमाण	प्रमाण (प्रभाव) को	**स्त्रैणं**	स्त्रीजित
अविदः	न जाननेवाली	**मेनिरे**	मान लिया ॥३९॥
मूढाः	अज्ञानी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः

अथ द्वादशोऽध्यायः

शौनक उवाच-

अश्वत्थाम्नोपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा ।
उत्तराया हतो गर्भ ईशेनाजीवितः पुनः ॥१॥

अश्वत्थाम्ना उपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णः उरु तेजसा उत्तरायाः हतः गर्भः ईशेन आजीवितः पुनः ॥ १ ॥

अश्वत्थाम्ना	अश्वत्थामाके द्वारा	**हतः**	मार दिया गया था
उपसृष्टेन	प्रयोग किए गये	**पुनः**	फिर
उरु तेजसा	अत्यन्त तेजस्वी	**ईशेन**	श्रीकृष्ण द्वारा
ब्रह्मशीर्ष्णः	ब्रह्मशिरास्त्र द्वारा	**आजीवितः**	जिला दिया
उत्तरायाः	उत्तराका		गया ॥१॥
गर्भः	गर्भस्थ शिशु		

तस्य जन्म महाबुद्धेः कर्माणि च महात्मनः ।
निधनं च यथैवासीत्स प्रेत्य गतवान् यथा ॥२॥

तस्य जन्म महाबुद्धेः कर्माणि च महात्मनः निधनं च यथा एव आसीत् स प्रेत्य गतवान् यथा ॥ २ ॥

महाबुद्धेः	महान् बुद्धिमान सूतजी !	**यथा**	जैसे
तस्य	उस	**एव**	भी
महात्मनः	महात्माका	**निधनं**	मृत्यु हुई
जन्म	जन्म	**यथा**	जैसे
च	और	**प्रेत्य**	मरकर
कर्माणि	कर्म	**गतवान्**	जिस गतिको गये ॥२॥
च	एवं		

तदिदं श्रोतुमिच्छामो गदितुं यदि मन्यसे ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां यस्य ज्ञानमदाच्छुकः ॥३॥

तत् इदं श्रोतुं इच्छामः गदितुं यदि मन्यसे ब्रूहि नः श्रद्दधानानां यस्य ज्ञानं अदात् शुकः ॥ ३ ॥

यस्य	जिनको	**इच्छामः**	हम सबको इच्छा है
शुकः	शुकदेवजीने	**यदि**	यदि
ज्ञानं	ज्ञान	**गदितुं**	कहने योग्य
अदात्	प्रदान किया	**मन्यसे**	आप मानते हों तो
तत्	वह	**नः**	हम
इदं	यह	**श्रद्दधानां**	श्रद्धालुओंको
श्रोतुं	सुननेकी	**ब्रूहि**	बतलाइये ॥३॥

सूत उवाच–

अपीपलद्धर्मराजः पितृवद् रञ्जयन् प्रजाः ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः कृष्णपादाब्जसेवया ॥४॥

अपीपलत् धर्मराजः पितृवत् रञ्जयन् प्रजाः निस्पृहः सर्व कामेभ्यः कृष्ण पादाब्ज सेवया ॥ ४ ॥

कृष्ण	श्रीकृष्णके	**धर्मराजः**	युधिष्ठिर
पादाब्ज	चरणकमलोंकी	**पितृवत्**	पिताके समान
सेवया	सेवा (के प्रभाव) से	**प्रजाः**	प्रजाको
सर्व	सब	**रञ्जयन्**	प्रसन्न करते हुए
कामेभ्यः	कामनाओं (भोगों)से	**अपीपलत्**	उसका पालन करते थे ॥४॥
निस्पृहः	निस्पृह		

सम्पदः क्रतवो लोका महिषी भ्रातरो मही ।
जम्बूद्वीपाधिपत्यं च यशश्च त्रिदिवं गतम् ॥५॥

सम्पदः क्रतवः लोकाः महिषीः भ्रातरः मही जम्बूद्वीप आधिपत्यं च यशः च त्रिदिवं गतम् ॥५॥

सम्पदः	सम्पत्ति
क्रतवः	यज्ञ
लोकाः	उत्तम लोकोंको पानेका अधिकार
महिषीः	पत्नी
भ्रातरः	भाई
मही	पृथ्वी
जम्बूद्वीप	जम्बूद्वीपका
आधिपत्यं	स्वामित्व
च	और
त्रिदिवं	स्वर्गतक
गतं	पहुँचा
यशः	सुयश
च	भी ॥५॥

किं ते कामाः सुरस्पार्हा मुकुन्दमनसो द्विजाः ।
अधिजह्रुर्मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथेतरे ॥६॥

किं ते कामाः सुरस्पार्हाः मुकुन्द मनसः द्विजाः अधिजह्रुः मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथा इतरे ॥ ६ ॥

द्विजाः	ब्राह्मणो ! (शौनकादि)
सुरस्पार्हाः	देवता भी जिनकी स्पृहा करते थे
ते	वे
कामाः	भोग
मुकुन्द मनसः	मुकुन्दमें लगे मनवाले
राज्ञः	राजा युधिष्ठिरको
क्षुधितस्य	भूखके लिए
यथा	जैसे
इतरे	(भोजनके अतिरिक्त) दूसरे पदार्थ
किं	क्या
मुदं	प्रसन्नता
अधिजह्रुः	दे सकते थे ? ॥६॥

मातुर्गर्भगतो वीरः स तदा भृगुनन्दन ।
ददर्श पुरुषं कञ्चिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा ॥७॥

मातुः गर्भगतः वीरः स तदा भृगुनन्दन ददर्श पुरुषं कंचित् दह्यमानः अस्त्र तेजसा ॥ ७ ॥

भृगुनन्दन	शौनकजी !
मातुः	माताके
गर्भ गतः	गर्भमें पहुँचा
स	उस
वीरः	वीर परीक्षितने
अस्त्रतेजसा	ब्रह्मास्त्रके तेजसे
दह्यमानः	जलते हुए
कंचित्	किसी
पुरुषं	पुरुषको
ददर्श	देखा ॥७॥

अङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम् ।
अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम् ॥८॥

अंगुष्ठमात्रं अमलं स्फुरत् पुरट मौलिनं अपीच्य दर्शनं श्यामं तडित् वास समं अच्युतम् ॥ ८ ॥

अंगुष्ठमात्रं	केवल अंगूठेके बराबर	**श्यामं**	श्याम वर्ण
अमलं	निर्मल	**तडित**	बिजलीके
स्फुरत्	चमकते	**समं**	समान
पुरट	सोनेका	**वास**	वस्त्रधारी
मौलिनं	मुकुटवाला	**अच्युतं**	निर्विकार (अभय) ॥८॥
अपीच्य दर्शनं	अत्यन्त सुन्दर		

श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुं तप्तकाञ्चनकुण्डलम् ।
क्षतजाक्षं गदापाणिमात्मनः सर्वतोदिशम् ।
परिभ्रमन्तमुल्काभं भ्रामयन्तं गदां मुहुः ॥९॥

श्रीमत् दीर्घ चतुर्बाहुं तप्त काञ्चन कुंडलं क्षतजाक्षं गदा पार्णि आत्मनः सर्वतः दिशं परिभ्रमन्तं उल्काभां भ्रामयन्त गदां मुहुः ॥ ९ ॥

श्रीमत्	शोभाशाली	**आत्मनः**	अपने
दीर्घ	लम्बी	**सर्वतः दिशं**	सब दिशाओंमें
चतुबाहुं	चार भुजाओंवाला	**उल्काभां**	उल्काके समान प्रज्वलित
तप्त	तपाये हुए	**परिभ्रमन्तं**	घूमता हुआ
काञ्चन	स्वर्णके	**मुहुः**	बार-बार
कुंडलं	कुण्डल पहिने	**गदां**	गदाको
क्षतजाक्षं	घावके समान लाल नेत्रवाला	**भ्रामयन्तं**	घुमाता हुआ ॥९॥
गदापार्णि	हाथमें गदा लिए		

अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः ।
विधमन्तं संनिकर्षे पर्यैक्षत क इत्यसौ ॥१०॥

अस्त्र तेजः स्वगदया नीहारं इव गोपतिः विधमन्तं सन्निकर्षे परिऐक्षत् कः इति असौ । ।१० ॥

अस्त्र तेजः	ब्रह्मास्त्रके तेजको	**सन्निकर्षे**	अत्तन्त समीप
स्वगदया	अपनी गदासे	**परि**	चारों ओर
नीहारं	कुहरे	**ऐक्षत**	देखा
गोपतिः	सूर्यके	**असौ**	यह
इव	समान	**कः**	कौन
विधमन्तं	कष्ट करते हुए	**इति**	है ? ॥१०॥

विधूय तदमेयात्मा भगवान्धर्मगुब् विभुः ।
मिषतो दशमासस्य तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥११॥

विधूय तत् अमेय आत्मा भगवान धर्म गुव् विभुः मिषतः दशमासस्य तत्र एव अन्तर्दधे हरिः ॥ ११ ॥

तत्	वे	**दशमासस्य**	दस महीनेके (गर्भस्थ शिशुके)
अमेय	अप्रमेय	**मिषतः**	देखते देखते
आत्मा	स्वरूप	**हरिः**	(वे) श्रीहरि
धर्म	धर्म	**तत्र**	वहाँ
गुव्	रक्षक	**एव**	ही
भगवान्	भगवान	**अन्तर्दधे**	अन्तर्धान होगये ॥११॥
विभुः	सर्वव्यापक		
विधूय	(ब्रह्मास्त्रके तेजको) नष्ट करके		

ततः सर्वगुणोदर्के सानुकूलग्रहोदये ।
जज्ञे वंशधरः पाण्डोर्भूयः पाण्डुरिवौजसा ॥१२॥

व्रतः सर्वगुणः उदर्के सानुकूलः ग्रह उदये जज्ञे वंशधरः पाण्डोः भूयः पाण्डुः इव ओजसा ॥ १२ ॥

ततः	तदनन्तर	**सानुकूलः**	सानुकूल
सर्वगुण	सर्वगुण युक्त	**ग्रह**	ग्रहोंके
उदर्के	कालमें	**उदये**	उदय होनेपर

भूयः	फिर	**पाण्डोः**	पाण्डुका
ओजसा	ओजसे	**वंशधरः**	वंश चलानेवाला
पाण्डुः	पाण्डुके	**जज्ञे**	उत्पन्न हुआ ॥१२॥
इव	समान		

तस्य प्रीतमना राजा विप्रैर्धौम्यकृपादिभिः ।
जातकं कारयामास वाचयित्वा च मङ्गलम् ॥१३॥

तस्य प्रीतमनाः राजाः विप्रैः धौम्य कृप आदिभिः जातकं कारयामास वाचयित्वा च मङ्गलम् ॥ १३ ॥

राजाः	राजा युधिष्ठिरने	**मङ्गलं**	स्वस्ति
प्रीतमना	प्रसन्न चित्त होकर	**वाचयित्वा**	पाठ कराके
विप्रैः	ब्राह्मण	**तस्य**	उस (परिक्षित) का
धौम्य	धौम्य	**जातकं**	जातकर्म संस्कार
कृप	कृपाचार्य	**च**	भी
आदिभिः	आदिकों द्वारा	**कारयामास**	करवाया ॥१३॥

हिरण्यं गां महीं ग्रामान् हस्त्यश्वान्नृपतिर्वरान् ।
प्रादात्स्वन्नं च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे सतीर्थवित् ॥१४॥

हिरण्यं गां महीं ग्रामान् हस्ति अश्वान् नृपतिः वरान् प्रादात् सुअन्नं च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे स तीर्थवित् ॥ १४ ॥

स	उन	**महीं**	भूमि
तीर्थवित्	तीर्थका मर्म जाननेवाले	**ग्रामान्**	गाँव
नृपतिः	राजाने	**हस्ति**	हाथी
प्रजातीर्थे	सन्तति जन्म रूप तीर्थ कालमें	**वरान्**	श्रेष्ठ
		अश्वान्	घोड़े
		च	और
विप्रेभ्यः	ब्राह्मणोंको	**सुअन्नं**	उत्तम भोजन
हिरण्यं	सोना	**प्रादात्**	प्रदान किया ॥१४॥
गां	गौयें		

तमूचुर्ब्राह्मणास्तुष्टा राजानं प्रश्रयान्वितम् ।
एष ह्यस्मिन् प्रजातन्तौ पुरूणां पौरवर्षभ ॥१५॥

तं उचूः ब्राह्मणाः तुष्टा राजानं प्रश्रय अन्वितं एष हि अस्मिन् प्रजातन्तौ पुरूणां पौरव ऋषभ ॥ १५ ॥

तं	उन	**ऋषभ**	शिरोमणि !
प्रश्रय	विनय	**एष**	यह
अन्वितं	युक्त	**हि**	क्योंकि
राजानं	राजासे	**अस्मिन्**	इस
तुष्टा	सन्तुष्ट	**पुरूणां**	पुरुवंशकी
ब्राह्मणाः	ब्राह्मण	**प्रजातन्तु**	सन्तति
उचूः	बोले		परम्पराको ॥१५॥
पौरव	पुरुवंश		

दैवेनाप्रतिघातेन शुक्ले संस्थामुपेयुषि ।
रातो वोऽनुग्रहार्थाय विष्णुना प्रभविष्णुना ॥१६॥

दैवेन अप्रतिघातेन शुक्ले संस्थां उपेयुषि रातः वः अनुग्रहार्थं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १६ ॥

अप्रतिघातेन	दुर्निवार	**अनुग्रहार्थाय**	अनुग्रह करनेके लिए
दैवेन	कालके द्वारा	**प्रभविष्णुना**	सर्व समर्थ
शुक्ले	(इस) पवित्र वंशको	**विष्णुना**	श्रीकृष्णने
संस्थां	समाप्तप्राय	**रातः**	(इस शिशुकी)
उपेयुषि	कर देनेपर		रक्षाकी ॥१६॥
वः	आप लोगोंपर		

तस्मान्नाम्ना विष्णुरात इति लोके बृहच्छ्रवाः ।
भविष्यति न संदेहो महाभागवतो महान् ॥१७॥

तस्मात् नाम्ना विष्णु रातः इति लोके वृहत् श्रवाः भविष्यति न संदेह महाभागवतः महान् ॥ १७ ॥

तस्मात्	इसलिए
लोके	संसारमें
विष्णुरातः	विष्णुरात
इति	इस
नाम्ना	नामसे
वृहत्	बड़े
श्रवाः	सुयशवाला
भविष्यति	होगा
सन्देहः	(इसमें) सन्देह
न	नहीं
महान्	महान्
महाभागवतः	महाभागवत (होगा) ॥१७॥

युधिष्ठिर उवाच-

अप्येष वंश्यान् राजर्षीन् पुण्यश्लोकान् महात्मनः ।
अनुवर्तिता स्विद्यशसा साधुवादेन सत्तमाः ॥१८॥

अपि एष वंश्यान् राजर्षीन् पुण्यश्लोकान् महात्मनः अनुवर्तितः स्वित् यशसाः साधुवादेन सत्तमाः ॥ १८ ॥

सत्तमाः	महापुरुषो !
अपि	क्या
एष	यह शिशु
यशसाः	अपने सुयशसे
साधुवादेन	अच्छाइयोंसे
पुण्यश्लोकान्	पवित्र कीर्ति
महात्मनः	महात्मा
राजर्षीन्	राजर्षियोंके
वंश्यान्	वंशोंका
अनुवर्तिताः	अनुकरण करनेवाला
स्वित्	होगा ? ॥१८॥

ब्राह्मणा ऊचुः

पार्थ प्रजाविता साक्षादिक्ष्वाकुरिव मानवः ।
ब्रह्मण्यः सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यथा ॥१९॥

पार्थ प्रजा अविताः साक्षात् इक्ष्वाकुः इव मानवः ब्रह्मण्यः सत्यसंधः च रामः दाशरथिः यथा ॥ १९ ॥

पार्थ	युधिष्ठिर !
साक्षात्	साक्षात्
मानवः	मनुपुत्र
इक्ष्वाकुः	इक्ष्वाकु
इव	के समान
प्रजा	प्रजाका

अविता	रक्षक होगा ।	**रामः**	राम थे
च	और	**ब्रह्मण्यः**	ब्राह्मण भक्त (तथा)
यथा	जैसे	**सत्यसंधः**	सत्यपरायण
दाशरथिः	दशरथ नन्दन		होगा ॥१९॥

एष दाता शरण्यश्च यथा ह्यौशीनरः शिबिः ।
यशो वितनिता स्वानां दौष्यन्तिरिव यज्वनाम् ॥२०॥

एष दाता शरण्यः च यथा हि औशीनरः शिविः यशः वितन्विता स्वानां दौष्यन्तिः इव यज्वनाम् ॥ २० ॥

एष	यह	**यज्वनां**	यज्ञकर्ताओंमें
हि	निश्चय	**दौष्यन्तिः**	दुष्यन्त पुत्र भरतके
यथा	जैसे	**इव**	समान
औशीनरः	उशीनर देशके नरेश	**स्वानां**	अपने स्वजनोंका
शिविः	शिवि थे	**यशः**	सुयश
दाता	दानी	**वितन्विता**	फैलानेवाला
च	और		होगा ॥२०॥
शरण्यः	शरण देनेवाला होगा ।		

धन्विनानग्रणीरेष तुल्यश्चार्जुनयोर्द्वयोः ।
हुताश इव दुर्धर्षः समुद्र इव दुस्तरः ॥२१॥

धन्विनां अग्रणीः एष तुल्यः च अर्जुनयोः द्वयोः हुताश इव दुर्धर्षः समुद्र इव दुस्तरः ॥ १ ॥

एष	यह	**तुल्यः**	समान
धन्विनां	धनुर्धारियोंमें	**अग्रणीः**	अग्रणी होगा ।
द्वयोः	दोनों*	**च**	और
अर्जुनयोः	अर्जुनोंके	**हुताश**	अग्निके

* सहस्रार्जुन और परीक्षितके पितामह अर्जुन ।

इव	समान	**इव**	समान
दुर्धर्ष	दुर्धर्ष	**दुःस्तरः**	दुस्तर होगा ॥२१॥
समुद्र	समुद्रके		

मृगेन्द्र इव विक्रान्तो निषेव्यो हिमवानिव ।
तितिक्षुर्वसुधेवासौ सहिष्णुः पितराविव ॥२२॥

मृगेन्द्र इव विक्रान्तः निषेव्यः हिमवान् इव तितीक्षुः वसुधा इव असौ सहिष्णुः पितराः इव ॥ २२ ॥

असौ	यह	**वसुधा**	पृथ्वीके
मृगेन्द्र	सिंहके	**इव**	समान
इव	समान	**तितीक्षुः**	तितीक्षु,
विक्रान्तः	पराक्रमी,	**पितराः**	माता-पिताके
हिमवान्	हिमालयके	**इव**	समान
इव	समान	**सहिष्णुः**	सहनशील
निषेव्यः	सेवन करने योग्य,		होगा ॥२२॥

पितामहसमः साम्ये प्रसादे गिरिशोपमः ।
आश्रयः सर्वभूतानां यथा देवो रमाश्रयः ॥२३॥

पितामह समः साम्ये प्रसादे गिरिश उपमः आश्रयः सर्वभूतानां यथा देवः रमाश्रयः ॥ २३ ॥

साम्ये	समतामें	**रमाश्रयः**	भगवान विष्णु
पितामह	ब्रह्माजीके	**देवः**	देव
समः	समान,	**यथा**	जैसे
प्रसादे	कृपा करनेमें	**सर्वभूतानां**	सब प्राणियोंका
गिरिश	शंकरजीके	**आश्रयः**	आश्रय होगा ॥२३॥
उपमः	समान,		

सर्वसद्गुणमाहात्म्ये एष कृष्णमनुव्रतः ।
रन्तिदेव इवोदारो ययातिरिव धार्मिकः ॥२४॥

सर्व सद्गुण माहात्म्ये एष कृष्णं अनुव्रतः रन्तिदेव इव उदारः ययाति इव धार्मिकः ॥ २४ ॥

एष	यह	**उदारः**	उदार
सर्व	सब	**रन्तिदेव**	रन्तिदेवके
सद्गुण	सद्गुणोंके	**इव**	समान,
माहात्म्ये	माहात्म्यधारणमें	**धार्मिकः**	धर्मात्मा
कृष्णं	श्रीकृष्णका	**ययाति**	ययातिके
अनुव्रतः	अनुयायी होगा,	**इव**	समान होगा ॥२४॥

धृत्या बलिसमः कृष्णे प्रह्लाद इव सद्ग्रहः ।
आहर्तैषोऽश्वमेधानां वृद्धानां पर्युपासकः ॥२५॥

धृत्याः बलि समः कृष्णे प्रह्लाद इव सद्ग्रहः आहर्ता एष अश्वमेधानां वृद्धानां पर्युपासकः ॥ २५ ॥

एष	यह	**प्रह्लाद**	प्रह्लादके
धृत्या	धैर्यमें	**इव**	समान होगा ।
बलि	बलिके	**अश्वमेधानां**	अश्वमेध यज्ञोंका
समः	समान,	**आहर्ता**	करनेवाला,
कृष्णे	श्रीकृष्णके प्रति	**वृद्धानां**	बड़ोंका
सत् आग्रहः	दृढ़ निष्ठामें	**पर्युपासकः**	सेवक होगा ॥२५॥

राजर्षीणां जनयिता शास्ता चोत्पथगामिनाम् ।
निग्रहीता कलेरेष भुवो धर्मस्य कारणात् ॥२६॥

राजर्षिणां जनयिता शास्ता च उत्पथ गामिनां निगृहीता कलेः एष भुवः धर्मस्य कारणात् ॥ २६ ॥

राजर्षीणां	राजर्षियोंको	**एष**	यह
जनयिता	जन्म देनेवाला	**भुवः**	पृथ्वी (एवं)
च	और	**धर्मस्य**	धर्मके
उत्पथ	कुमार्गसे	**कारणात्**	कारणसे
गामिनां	चलनेवालोंका	**कलेः**	कलियुगका
शास्ता	शासन करनेवाला होगा ।	**निगृहीता**	नियन्त्रीण करनेवाला होगा ॥२६॥

तक्षकादात्मनो मृत्युं द्विजपुत्रोपसर्जितात् ।
प्रपत्स्यत उपश्रुत्य मुक्तसङ्गः पदं हरेः ॥२७॥

तक्षकात् आत्मनः मृत्युं द्विजपुत्रः उपसर्जितात् प्रपत्स्यत् उपश्रुत्य मुक्तसंगः पदं हरेः ॥ २७ ॥

द्विजपुत्र	ब्राह्मणकुमार द्वारा	**उपश्रुत्य**	सुनकर
उपसर्जितात्	(शाप देकर) उत्पन्नकी गयी	**मुक्तसंगः**	आसक्ति त्यागकर
		हरेः	श्रीहरिके
तक्षकात्	तक्षक द्वारा	**पदं**	चरणोंकी
आत्मनः	अपनी	**प्रपत्स्यत्**	शरण लेगा ॥२ ॥
मृत्युं	मृत्यु होना		

जिज्ञासितात्मयाथात्म्यो मुनेर्व्यासिसुतादसौ ।
हित्वेदं नृप गङ्गायां यास्यत्यद्धाकुतोभयम् ॥२८॥

जिज्ञासितं आत्म याथात्मः मुनेः व्याससुतात् असौ हित्वा इदं नृप गंगायां यास्यति अद्धा अकुतः भयम् ॥ २८ ॥

नृप	राजन् !	**इदं**	इस देहको
असौ	यह	**गंगायां**	गंगा किनारे
मुनेः	मुनि	**हित्वा**	त्यागकर
व्याससुतात्	शुकदेवजीसे	**अद्धा**	प्रत्यक्ष
आत्म	आत्माकी	**अकुतः भयं**	परमनिर्भय पदको
याथात्म्यः	यथार्थताकी	**यास्यति**	जायगा ॥२८॥
जिज्ञासितं	जिज्ञासा करके		

सूत उवाच*-

इति राज्ञ उपादिश्य विप्रा जातककोविदाः ।
लब्धापचितयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान् गृहान् ॥२९॥

इति राज्ञः उपादिश्य विप्रा जातक कोविदाः लब्धा अपचितयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान् गृहान् ॥ २९ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इति	इस प्रकार	अपचितयः	दक्षिणा
राज्ञः	राजा युधिष्ठिरको	लब्धा	प्राप्त करके
उपादिश्य	बतलाकर	सर्वे	सब
जातक	ज्योतिष शास्त्रके	स्वकान	अपने
कोविदा	विद्वान्	गृहान्	घरोंको
विप्राः	ब्राह्मण	प्रतिजग्मुः	लौट गये ॥२९॥

स एष लोके विख्यातः परीक्षिदिति यत्प्रभुः ।
गर्भे दृष्टमनुध्यायन् परीक्षेत नरेष्विह ॥३०॥

स एष लोके विख्यातः परीक्षित् इति यत् प्रभुः गर्भे दृष्टं अनुध्यायन् परीक्षेत् नरेषु इह ॥ ३० ॥

स	वही	गर्भे	गर्भमें
एष	यह (बालक)	दृष्टं	देखे हुए (भगवान) को
लोके	संसारमें	अनुध्यायन्	बार बार ध्यान करते हुए
परीक्षित	परीक्षित	इह	यहाँ संसारमें
इति	इस नामसे	नरेषु	मनुष्योंमें
विख्यातः	प्रसिद्ध हुआ	परीक्षेत्	ढूंढ़ता रहता है ॥३०॥
यत्	क्योंकि		
प्रभुः	इस समर्थने		

स राजपुत्रो ववृधे आशु शुक्ल इवोडुपः ।
आपूर्यमाणः पितृभिः काष्ठाभिरिव सोऽन्वहम् ॥३१॥

स राजपुत्रः ववृधे आशु शुक्ल इव उडुपः आपूर्यमाणः पितृभिः काष्ठाभिः इव सः अन्वहम् ॥ ३१ ॥

शुक्ल	शुक्ल पक्षमें	पितृभिः	पितमहों द्वारा
काष्ठाभिः इव	कलाओंसे युक्तकी भाँति	आपूर्यमाणः	लालित–पालित होता
उडुपः	चन्द्रमाके	सः	वह
इव	समान	आशु	जल्दी
स	वह	अन्वहं	प्रतिदिन
राजपुत्रः	राजकुमार	ववृधे	बढ़ने लगा ॥३१॥

यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेन ज्ञातिद्रोहजिहासया ।
राजालब्धधनो दध्यावन्यत्र करदण्डयोः ॥३२॥

यक्ष्यमाणः अश्वमेधेन ज्ञातिद्रोह जिहासया राजा अलब्ध धनः दध्या अन्यत्र कर दण्डयोः ॥ ३२ ॥

ज्ञातिद्रोह	जाति सम्बन्धियोंके द्रोह (वध) का	**दण्डयोः**	अर्थ दण्डसे
जिहासया	प्रायश्चित करनेके लिए	**अन्यत्र**	पृथक
अश्वमेधेन	अश्वमेध यज्ञ	**धनः**	धन
यक्षमाणः	करनेकी इच्छा करनेपर	**अलब्ध**	न मिलनेसे
कर	कर (तथा)	**राजः**	राजा युधिष्ठिर
		दध्या	चिन्ता करने लगे ॥३२॥

तदभिप्रेतमालक्ष्य भ्रातरोऽच्युतचोदिताः ।
धनं प्रहीणमाजह्रुरुदीच्यां दिशि भूरिशः ॥३३॥

तत् अभिप्रेतं आलक्ष्य भ्रातरः अच्युत चोदिताः धनं प्रहीणं आजह्रुः उदीच्यां दिशि भूरिशिः ॥ ३३ ॥

तत्	उनके	**उदीच्यां**	उत्तर
अभिप्रेतं	अभीष्टको	**दिशि**	दिशामें
आलक्ष्य	जानकर	**प्रहीणं**	छोड़ा हुआ
अच्युत	श्रीकृष्ण द्वारा	**भूरिशः**	बहुत अधिक
चोदिताः	प्रेरित	**धनं**	धनको
भ्रातरः	उनके भाई	**आजह्रुः**	ले आये ॥३३॥

तेन सम्भृतसम्भारो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
वाजिमेधैस्त्रिभिर्भीतो यज्ञैः समयजद्धरिम् ॥३४॥

तेन सम्भृत सम्भारः धर्मपुत्रः युधिष्ठिरः वाजिमेधैः त्रिभिः भीतः यज्ञैः समयजत् हरिम् ॥ ३४ ॥

तेन	उस धनसे	**सम्भृत**	प्रस्तुत करके
सम्भारः	सब सामग्री	**धर्मपुत्रः**	धर्मके पुत्र

युधिष्ठिरः	युधिष्ठिरने	**वाजिमेधैः यज्ञैः**	अश्वमेध यज्ञोंसे
भीतः	(युद्धमें हुई हिंसासे) डरकर	**हरिं**	श्रीहरिकी
त्रिभिः	तीन	**समयजत्**	भली प्रकार पूजाकी ॥३४॥

आहूतो भगवान् राज्ञा याजयित्वा द्विजैर्नृपम् ।
उवास कतिचिन्मासान् सुहृदां प्रियकाम्यया ॥३५॥

आहूतः भगवान् राज्ञा याजयित्वा द्विजैः नृपं उवास कतिचित् मासान् सुहृदां प्रिय काम्यया ॥ ३५ ॥

राज्ञा	राजा युधिष्ठिर द्वारा	**सुहृदां**	सुहृदोंको
आहूतः	बुलाये जानेपर	**प्रियकाम्यया**	प्रसन्न करनेके लिए
भगवान्	श्रीकृष्ण	**कतिचिन्**	कुछ
द्विजैः	ब्राह्मणों द्वारा	**मासान्**	महीने
नृपं	राजासे	**उवास**	वहाँ रहे ॥३५॥
याजयित्वा	यज्ञ कराके		

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातः कृष्णया सह बन्धुभिः ।
ययौ द्वारवतीं ब्रह्मन् सार्जुनो यदुभिर्वृतः ॥३६॥

ततः राज्ञा अभ्यनुज्ञातः कृष्णया सह वन्धुभिः ययौ द्वारवतीं ब्रह्मन् सार्जुनः यदुभिः वृतैः ॥ ३६ ॥

ब्रह्मन्	शौनकजी !	**सार्जुनः**	अर्जुनके साथ
ततः	तदनन्तर	**यदुभिः**	यदुवंशियोंसे
राज्ञा	राजा युधिष्ठिरसे,	**वृतैः**	घिरे हुए (भगवन् श्रीकृष्ण)
कृष्णया	द्रौपदीके	**द्वारवतीं**	द्वारिका
सह	सहित	**ययौ**	गये ॥३६॥
वन्धुभिः	वन्धु-वान्धवोंसे		
अभ्यनुज्ञातः	अनुमति लेकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

सूत उवाच-

विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम् ।
ज्ञात्वागाद्धास्तिनपुरं तयावाप्तविविक्तितः ॥१॥

विदुरः तीर्थयात्रायां मैत्रेयात् आत्मनः गतिं ज्ञात्वा अगात् हास्तिनपुरं तया वाप्त विविक्तितः ॥ १ ॥

विदुरः	विदुरजी	**तया**	उससे
तीर्थयात्रायां	तीर्थयात्रामें	**विविक्तितः**	जिज्ञासाकी
मैत्रेयात्	मैत्रेयजीसे	**वाप्त**	शान्ति होजाने पर
आत्मनः	आत्माका	**हास्तिनपुरं**	हस्तिनापुर
गतिं	स्वरूप	**अगात्**	आये ॥१॥
ज्ञात्वा	जानकर,		

यावतः कृतवान् प्रश्नान् क्षत्ता कौषारवाग्रतः ।
जातैकभक्तिर्गोविन्दे तेभ्यश्चोपरराम ह ॥२॥

यावतः कृतवान् प्रश्नान् क्षत्ता कौषारव अग्रतः जातः एक भक्तिः गोविन्दे तेभ्यः च उपरराम ह ॥ २ ॥

क्षत्ता	विदुरने	**भक्तिः**	भक्ति
यावतः	जितने	**जातः**	उत्पन्न हो जानेपर
प्रश्नान्	प्रश्न	**ह**	निश्चित रूपसे
कौषारव	मैत्रेयके	**तेभ्यः**	उन (प्रश्नोंके उत्तर) के प्रति
अग्रतः	सामने		
कृतवान्	किये थे	**च**	भी
गोविन्दे	गोविन्दमें	**उपरराम**	उपराम होगये ॥२॥
एक	अनन्य		

तं बन्धुमागतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः सहानुजः ।
धृतराष्ट्रो युयुत्सुश्च सूतः शारद्वतः पृथा ॥३॥

तं बन्धुं आगतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः सह अनुजः धृतराष्ट्रः युयुत्सुः च सूतः शारद्वतः पृथा ॥ ३ ॥

तं	उन	**धर्मपुत्रः**	युधिष्ठिर,
बन्धुं	अपने बन्धु (चचा) को	**धृतराष्ट्रः**	धृतराष्ट्र
		च	और
आगतं	आया	**युयुत्सुः**	युयुत्सु,
दृष्ट्वा	देखकर	**सूतः**	संजय,
अनुजः	भाइयोंके	**शारद्वतः**	कृपाचार्य,
सह	सहित	**पृथा**	कुन्ती ॥३॥

गान्धारी द्रौपदी ब्रह्मन् सुभद्रा चोत्तरा कृपी ।
अन्याश्च जामयः पाण्डोर्ज्ञातयः ससुताः स्त्रियः ॥४॥

गान्धारी द्रौपदी ब्रह्मन् सुभद्रा च उत्तरा कृपी अन्याः च जामयः पाण्डोः ज्ञातयः ससुताः स्त्रियः ॥ ४ ॥

ब्रह्मन्	शौनकजी !	**च**	एवं
गान्धारी	गान्धारी,	**अन्याः**	दूसरे
द्रौपदी	द्रौपदी,	**पाण्डोः**	पाण्डुके
सुभद्रा	सुभद्रा,	**जामयः**	परिवारके
च	और	**ज्ञातयः**	जातिवाले
उत्तरा	उत्तरा,	**ससुताः**	पुत्रोंके साथ
कृपी	कृपी,	**स्त्रियः**	स्त्रियोंके साथ ॥४॥

प्रत्युज्जग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्व इवागतम् ।
अभिसंगम्य विधिवत् परिष्वङ्गाभिवादनैः ॥५॥

प्रतिजग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्व इव आगतं अभिसंगम्य विधिवत् परिष्वंग अभिवादनैः ॥ ५ ॥

प्रहर्षेण	अत्यन्त हर्षसे	**विधिवत्**	विधिके अनुसार
तन्वः	शरीरमें	**परिष्वंग**	आलिंगन
प्राणं	प्राण	**अभिवादनैः**	अभिवादन आदिसे
आगतं	आगये	**अभिसंगम्य**	भली प्रकार
इव	के समान		मिलकर ॥५॥
प्रतिजग्मुः	(अगवानी करने) उनकी ओर गये,		

मुमुचुः प्रेमबाष्पौघं विरहौत्कण्ठ्यकातराः ।
राजा तमर्हयाञ्चक्रे कृतासनपरिग्रहम् ॥६॥

मुमुचुः प्रेम वाष्प ओघं विरह उत्कण्ठ्य कातराः राजा तं अर्हयां चक्रे कृत आसन परिग्रहम् ॥ ६ ॥

विरह	वियोग जन्म	**आसन**	आसन
उत्कण्ठ्य	उत्कण्ठासे	**परिग्रहं**	स्वीकार
कातराः	आकुल	**कृत**	करके (बैठ जानेपर)
प्रेम	प्रेमके	**राजा**	युधिष्ठिरने
वाष्प	आंसुओंके	**तं**	उनकी
ओघं	प्रवाह	**अर्हयां**	पूजा
मुमुचुः	बहाने लगे ।	**चक्रे**	की ॥६॥

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तमासीनं सुखमासने ।
प्रश्रयावनतो राजा प्राह तेषां च शृण्वताम् ॥७॥

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तं आसीनं सुखं आसने प्रश्रय अवनतः राजा प्राह तेषां च शृण्वताम् ॥ ७ ॥

तं	उन विदुरजीके	**तेषां**	उन सबके
भुक्तवन्तं	भोजन करके,	**च**	भी
विश्रान्तं	विश्राम करके,	**शृण्वतां**	सुनते हुए
आसनं	आसनपर	**प्रश्रय**	विनयसे
सुखं	सुखपूर्वक	**अवनतः**	विनम्र होकर
आसने	बैठ जानेपर	**प्राह**	पूछा ॥७॥
राजा	युधिष्ठिरने		

युधिष्ठिर उवाच-

अपि स्मरथ नो युष्मत्पक्षच्छायासमेधितान् ।
विपद्गणाद्विषाग्न्यादेर्मोचिता यत्समातृकाः ॥८॥

अपि स्मरथ नः युष्मत् पक्षच्छाया समेधितान् विपद् गणात् विष अग्न्यादेः मोचिता यत् समातृकाः ॥ ८ ॥

नः	हम सब
युष्मत्	आपकी
पक्षच्छाया	(पक्षी शावकोंकी भाँति) पंखोंकी छायासे
समेधितान्	पाले-पोषे गये हैं,
समातृकाः	माताके साथ
विष	विष
अग्न्यादेः	अग्नि आदि
विपद् गणात्	विपत्तियोंसे
यत्	क्योंकि
मोचिता	(आप द्वारा) छुड़ाये गये हैं
अपि	(अतः) क्या
स्मरथ	(कभी आप हमारा) स्मरण करते थे ? ॥१८॥

कया वृत्त्या वर्तितं वश्चरद्भिः क्षितिमण्डलम् ।
तीर्थानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानीह भूतले ॥९॥

कया वृत्त्या वर्तितं वः चरद्भिः क्षितिमण्डलं तीर्थानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानि इह भूतले ॥ ९ ॥

वः	आपने
क्षितिमण्डलं	पृथ्वीपर
चरद्भिः	विचरण करते हुए
कया	किस
वृत्त्या	वृत्तिसे
वर्तितं	वर्ताव (जीवन निर्वाह) किया ?
इह	इस
भूतले	पृथ्वीपर
तीर्थानि	तीर्थोंमें
क्षेत्रमुख्यानि	मुख्य मुख्य स्थानोंमें (किनका)
सेवितानि	सेवन किया ॥८॥

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो ।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता ॥१०॥

भवत् विधा भागवताः तीर्थीभूता स्वयं विभो तीर्थीं कुर्वन्ति तीर्थानि स्व अन्तस्थेन गदाभृताः ॥ १० ॥

विभो	प्रभो !
भवत्	आपके
विधा	समान
भागवताः	भगवद् भक्त
स्वयं	स्वयं ही
तीर्थीभूताः	तीर्थ स्वरूप होकर
स्व	अपने
अन्तस्थेन	हृदयमें
गदाभृताः	भगवान गदाधरके होनेसे
तीर्थानि	तीर्थोंको
तीर्थीं कुर्वन्ति	तीर्थ बनातेहैं ॥१०॥

अपि नः सुहृदस्तात बान्धवाः कृष्णदेवताः ।
दृष्टाः श्रुता वा यदवः स्वपुर्या सुखमासते ॥११॥

अपि नः सुहृदः तात बान्धवाः कृष्णदेवताः दृष्टाः श्रुता वा यदवः स्व पुर्यां सुखं आसते ॥ ११ ॥

तात	चाचाजी !
नः	हमारे
सुहृदः	सुहृद
बान्धवाः	सन्बन्धी
कृष्णदेवताः	श्रीकृष्ण ही जिनके देवता हैं वे
यदवः	यदुवंशी
अपि	क्या
दृष्टाः	(आपको) दीखे
वा	अथवा
श्रुता	उनका समाचार (आपने) सुना ?
स्व	(वे) अपनी
पुर्यां	पुरीमें
सुखं	सुखपूर्वक
आसते	हैं ? ॥११॥

सूत उवाच*–

इत्युक्तो धर्मराजेन सर्वं तत् समवर्णयत् ।
यथानुभूतं क्रमशो विना यदुकुलक्षयम् ॥१२॥

इति उक्तः धर्मराजेन सर्वं तत् समवर्णयत् यथा अनुभूतं क्रमशः विना यदुकुल क्षयम् ॥ १२ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इति	इस प्रकार	**सर्वं**	सब
धर्मराजेन	युधिष्ठिर द्वारा	**यदुकुल**	यदुकुलके
उक्तः	कहे (पूछे) जानेपर	**क्षयं**	संहारको
यथा	जैसा	**विना**	छोड़कर
अनुभूतं	अनुभव किया था	**समवर्णयत्**	भली प्रकार वर्णन
क्रमशः	क्रमशः		किया ॥१२॥
तत्	वह		

नन्वप्रियं दुर्विषहं नृणां स्वयमुपस्थितम् ।
नावेदयत् सकरुणो दुःखितान् द्रष्टुमक्षमः ॥१३॥

ननु अप्रियं दुर्विषहं नृणां स्वयं उपस्थितं न आवेदयत् स करुणः दुःखितान् द्रष्टुं अक्षमः ॥ १३ ॥

ननु	सम्भवतः	**दुःखितान्**	दुःखियोंको
नृणां	मनुष्योंके लिए	**द्रष्टुं**	देखनेमें
अप्रियं	अप्रिय,	**अक्षमः**	असमर्थ
दुर्विषहं	असह्य,	**स करुणः**	उन करुण हृदय
स्वयं	स्वयं		(विदुरजी) ने
उपस्थितं	प्रकट होनेवाली (घटनाको)	**न**	नहीं
		आवेदयेत्	बतलाया ॥१३॥

कञ्चित्कालमथावात्सीत्सत्कृतो देववत्सुखम् ।
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य श्रेयस्कृत्सर्वेषां प्रीतिमावहन् ॥१४॥

कंचित् कालं अथ अवात्सीत् सत्कृतः देववत् सुखं भ्रातुः ज्येष्ठस्य श्रेयः कृत् सर्वेषां प्रीतिं आवहन् ॥ १४ ॥

अथ	फिर (विदुरजी)	**सर्वेषां**	सबकी
देववत्	देवताओंके समान	**प्रीतिं**	प्रसन्नता
सत्कृतः	सत्कार पाते हुए	**आवहन्**	सम्पन्न करते हुए
ज्येष्ठस्य	बड़े	**कञ्चित्**	कुछ
भ्रातुः	भाई (धृतराष्ट्र) का	**कालं**	समयतक
श्रेयः	कल्याण	**सुखं**	सुखपूर्वक (वहाँ)
कृत	करनेके लिए,	**अवात्सीत**	बसे रहे ॥१४॥

अबिभ्रदर्यमा दण्डं यथावदघकारिषु ।
यावद्दधार शूद्रत्वं शापाद्वर्षशतं यमः ॥१५॥

अविभ्रत् अर्यमा दण्डं यथावत् अघकारिषु यावत् दधार शूद्रत्वं शापात् वर्षशतं यमः ॥ १५ ॥

वर्षशतं	सौ वर्ष	**अघकारिषु**	पापियोंके लिए
यावत्	पर्यन्त	**यथावत्**	ठीक ठीक
शापात्	शापके कारण	**दण्डं**	दण्ड-विधान
यमः	यमराज	**अर्यमा**	अर्यमा
शूद्रत्वं	शूद्रत्व (विदुर रूप)	**अविभ्रत्**	करते रहे ॥१५॥
दधार	धारण किये रहे, (तब तक)		

युधिष्ठिरो लब्धराज्यो दृष्ट्वा पौत्रं कुलंधरम् ।
भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्मुमुदे परया श्रिया ॥१६॥

युधिष्ठिरः लब्ध राज्यः दृष्ट्वा पौत्रं कुलंधरं भ्रातृभिः लोकपालाभैः मुमुदे परया श्रिया ॥ १६ ॥

युधिष्ठिरः	युधिष्ठिर	**लोकपालाभैः**	लोकपालोंके समान तेजस्वी
राज्यः	राज्य	**भ्रातृभिः**	भाइयोंके साथ
लब्ध	पाकर,	**परया**	परम
कुलन्धरं	कुल चलानेवाला	**श्रिया**	सम्पत्तिसे
पौत्रं	पौत्र	**मुमुदे**	आनन्दित हुए ॥१६॥
दृष्ट्वा	देखकर,		

एवं गृहेषु सक्तानां प्रमत्तानां तदीहया ।
अत्यक्रामदविज्ञातः कालः परमदुस्तरः ॥१७॥

एवं गृहेषु सक्तानां प्रमत्तानां तत् ईहया अत्यक्रामत् अविज्ञातः कालः परम दुस्तरः ॥ १७ ॥

एवं	इस प्रकार	**सक्तानां**	आसक्त
गृहेषु	घरमें	**तत्**	उसी (गृह सुख) की

ईहया	इच्छासे	**परमदुस्तरः**	अत्यन्त दुस्तर
प्रमत्तानां	असावधान (पाण्डवों) का	**कालः**	समय (जीवन)
अविज्ञातः	अनजानमें ही	**अत्यक्रामत्**	बीत गया ॥१७॥

विदुरस्तदभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत ।
राजन्निर्गम्यतां शीघ्रं पश्येदं भयमागतम् ॥१८॥

विदुरः तत् अभिप्रेत्य धृतराष्ट्रं अभाषत राजन् निर्गम्यता शीघ्रं पश्य इदं भयं आगतम् ॥ १८ ॥

तत्	उस (काल) को	**शीघ्रं**	शीघ्र
अभिप्रेत्य	पहचानकर	**निर्गम्यतां**	निकल चलिये,
विदुरः	विदुरजीने	**इदं**	इस
धृतराष्ट्रं	धृतराष्ट्रको	**आगतं**	आते हुए
अभाषत	कहा—	**भयं**	भयको
राजन्	राजन् !	**पश्य**	देखिये ॥१८॥

प्रतिक्रिया न यस्येह कुतश्चित्कर्हिचित्प्रभो ।
स एव भगवान् कालः सर्वेषां नः समागतः ॥१९॥

प्रतिक्रिया न यस्य इह कुतश्चित् कर्हिचित् प्रभो स एव भगवान् कालः सर्वेषां न समाँगतः ॥ १९ ॥

प्रभो	स्वामी !	**स एव**	वही
इह	इस संसारमें	**भगवान्**	भगवान
यस्य	जिसकी	**कालः**	काल
प्रतिक्रियाः	प्रतिकार	**नः**	हम
कुतश्चित्	कहीं भी	**सर्वेषां**	सबके लिए
कर्हिचित्	कभी भी	**समागतः**	आगये हैं ॥१९॥
न	नहीं है,		

येन चैवाभिपन्नोऽयं प्राणैः प्रियतमैरपि ।
जनः सद्यो वियुज्येत किमुतान्यैर्धनादिभिः ॥२०॥

येन च एव अभिपन्नः अयं प्राणैः प्रियतमैः अपि जनः सद्यः वियुज्येत किं उत अन्यैः धनादिभिः ॥ २० ॥

येन	जिन (काल) के	**सद्यः**	तत्काल
अभिपन्नः	वशीभूत होकर	**च**	ही
अयं	यह	**वियुज्येत एव**	वियुक्त हो जाता ही है,
जनः	मनुष्य	**अन्यैः**	दूसरे
प्रियतमैः	प्रियतम	**धनादिभिः**	धन-पदार्थोंकी
प्राणैः	प्राणोंसे	**किंउत**	चर्चा ही क्या ॥२०॥
अपि	भी		

पितृभ्रातृसुहृत्पुत्रा हतास्ते विगतं वयः ।
आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहमुपाससे ॥२१॥

पितृ भ्रातृ सुहृत् पुत्रा हताः ते विगतं वयः आत्मा च जरया ग्रस्तं परगेहं उपाससे ॥ २१ ॥

ते	आपके	**च**	और
पितृ	पिता (चाचा भीष्म)	**आत्मा**	शरीर
भ्रातृ	भाई	**जरया**	बुढ़ापेसे
सुहृत्	सम्बन्धी	**ग्रस्तं**	ग्रस्त है
पुत्रा	पुत्र	**पर**	शत्रुओंके
हताः	मारे गये	**गेहं**	घरमें
वयः	आयु	**उपाससे**	रह रहे हो ॥२१॥
विगतं	बीत चुकी		

अहो महीयसी जन्तोर्जीविताशा यया भवान् ।
भीमापवर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालवत् ॥२२॥

अहो महीयसी जन्तोः जीवित आशा यया भवाम् भीम अपवर्जितं पिण्डं आदत्ते गृहपाल वत् ॥ २२ ॥

अहो	अहो	**जीवित**	जीवित रहनेकी
जन्तोः	प्राणीकी	**आशा**	आशा

महीयसी	बलवान है	**पिण्डं**	टुकड़ा
यया	(क्योंकि) उसीके कारण	**गृहपाल**	कुत्ते
		वत्	के समान
भवान्	आप	**आदत्ते**	स्वीकार करते
भीम	भीमसेनके द्वारा		हैं ॥२२॥
अपवर्जितं	फेंका गया		

अग्निर्निसृष्टो दत्तश्च गरो दाराश्च दूषिताः ।
हृतं क्षेत्रं धनं येषां तद्दत्तैरसुभिः कियत् ॥२३॥

अग्निः निसृष्टः दत्तः च गरः दाराः च दूषिताः हृतं क्षेत्रं धनं येषां तत् दत्तैः असुभिः कियत् ॥ २३ ॥

येषां	जिनके लिए	**दूषिताः**	अपमानित किया
अग्नि	अग्निमें	**क्षेत्रं**	(जिनकी) भूमि
निसृष्टः	जलानेका प्रयत्न किया	**धनं**	धन
		हृतं	छीन लिया
च	और	**तत्**	उनके
गरः	विष	**दत्तैः**	दिये हुए
दत्तः	दिया	**असुभिः**	प्राण (जीवन) में
च	एवं	**कियत्**	कितना
दाराः	(जिनकी) पत्नीको		(गौरव है) ॥२३॥

तस्यापि तव देहोऽयं कृपणस्य जिजीविषोः ।
परैत्यनिच्छतो जीर्णो जरया वाससी इव ॥२४॥

तस्य अपि तव देहः अयं कृपणस्य जिजीविषोः परैति अनिच्छतः जीर्णः जरया वाससी इव ॥ २४ ॥

तस्य	ऐसे	**तव**	आपका
अपि	होनेपर भी	**अयं**	यह
जिजीविषोः	जीवित रहनेकी इच्छावाले	**देहः**	शरीर
		वाससीः	वस्त्रके
कृपणस्य	कृपण	**इव**	समान

जरया	बुढ़ापेसे	**अनिच्छतः**	(आपको) न
जीर्णः	गल गया है		चाहनेपर भी
		परैति	मरेगा ही ॥२४॥

गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः ।
अविज्ञातगतिर्जह्यात् स वै धीर उदाहृतः ॥२५॥

गत स्वार्थं इमं देहं विरक्तः मुक्त वन्धनः अविज्ञात गतिः जह्यात् स वै धीर उदाहृतः ॥ २५ ॥

स्वार्थं	स्वार्थ	**अविज्ञात**	जिसका पता न हो
गत	जब बीत गया हो	**गतिः**	ऐसी दशामें
	तब	**जह्यात्**	त्याग दे
विरक्तः	विरक्त होकर	**वै**	निश्चय
बन्धनः	मोहादिके बन्धन	**स**	वह
मुक्त	त्यागकर	**धीर**	धैर्यशाली
इमं	इस	**उदाहृतः**	कहा गया है ॥२५॥
देहं	शरीरको		

यः स्वकात्परतो वेह जातनिर्वेद आत्मवान् ।
हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स नरोत्तमः ॥२६॥

यः स्वकात् परतः वा इह जात निर्वेद आत्मवान् हृदि कृत्वा हरिं गेहात् प्रव्रजेत् स नरोत्तमः ॥ २६ ॥

यः	जो	**हरिं**	श्रीहरिको
स्वकात्	स्वयंकी (समझसे)	**हृदि**	हृदयमें
वा	अथवा	**कृत्वा**	धारण करके
परतः	दूसरेके द्वारा	**गेहात्**	घरसे
	(समझानेसे)	**प्रव्रजेत्**	प्रव्रजन करले
इह	इस संसारसे		(घर छोड़कर
निर्वेद	वैराग्य		चल दे)
जात	उत्पन्न होकर	**स**	वह
आत्मवान्	धैर्यशाली	**नरोत्तमः**	श्रेष्ठ पुरुष है ॥२६॥

अथोदीचीं दिशं यातु स्वैरज्ञातगतिर्भवान् ।
इतोऽर्वाक्प्रायशः कालः पुंसां गुणविकर्षणः ॥२७॥

अथ उदीचीं दिशं यातु स्वैः अज्ञात गतिः भवान् इतः अर्वाक् प्रायशः कालः पुंसां गुण विकर्षणः ॥ २७ ॥

इतः	अबसे	**अथ**	अतएव
अर्वाक्	पीछे	**स्वैः**	अपने सम्बन्धियोंसे
प्रायशः	प्रायः	**अज्ञात**	अज्ञात
कालः	(ऐसा) काल (आनेवाला है, जो)	**गतिः**	गति (होकर)
		भवान्	आप
पुंसां	पुरुषोंके	**उदीचीं**	उत्तर
गुण	सद्गुणोंको	**दिशं**	दिशामें
विकर्षणः	हरण कर लेगा	**यातु**	चले जाइये ॥२७॥

सूत उवाच*–

एवं राजा विदुरेणानुजेन
प्रज्ञाचक्षुर्बोधित आजमीढः ।
छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान्द्रढिम्नो
निश्चक्राम भ्रातृसंदर्शिताध्वा ॥२८॥

एवं राजा विदुरेण अनुजेन प्रज्ञाचक्षुः वोधित आजमीढः छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान् द्रढिम्नः निश्चक्राम भ्रातृ सन्दर्शित अध्वा ॥ २८ ॥

एवं	इस प्रकार	**प्रज्ञाचक्षुः**	बुद्धिरूप नेत्र पाकर
अनुजेन	छोटे भाई	**स्वेषु**	अपनोंमें
विदुरेण	विदुर द्वारा	**द्रढिम्नः**	सुदृढ़
बोधित	समझाये जानेपर	**स्नेहपाशान्**	स्नेकके बन्धन
राजा	राजा	**छित्त्वा**	काटकर
आजमीढः	धृतराष्ट्र		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भात्	भाई द्वारा	**अध्वा**	मार्गसे
सन्दर्शित	दिखलाये गये	**निश्चक्राम**	निकल गये ॥२८॥

पतिं प्रयान्तं सुबलस्य पुत्री
पतिव्रता चानुजगाम साध्वी ।
हिमालयं न्यस्तदण्डप्रहर्षं
मनस्विनामिव सत्सम्प्रहारः ॥२९॥

पतिं प्रयान्तं सुबलस्य पुत्री पतिव्रता च अनुजगाम साध्वी हिमालयं न्यस्त दण्ड प्रहर्षं मनस्विनां इव सत् सम्प्रहारः ॥ २९ ॥

मनस्विनां	मनस्वियों (वीर पुरुषों) पर	**हिमालयं**	हिमालयको
सत्	न्यायोचित	**प्रयान्तं**	जाते
सम्प्रहारः	भरपूर आघातके	**पतिं**	पतिके पीछे
इव	समान	**साध्वी**	पवित्र
दण्ड	दण्ड देना	**पतिव्रता**	पतिव्रता
न्यस्त	छोड़े हुए (संन्यासियों) को	**सुबलस्य**	सुबलकी
प्रहर्षं	उत्तम प्रसन्नता देनेवाले	**पुत्री**	पुत्री (गान्धारी)
		च	भी
		अनुजगाम	गयी ॥२९॥

अजातशत्रुः कृतमैत्रो हुताग्नि-
र्विप्रान् नत्वा तिलगोभूमिरुक्मैः ।
गृहं प्रविष्टो गुरुवन्दनाय
न चापश्यत्पितरौ सौबलीं च ॥३०॥

अजातशत्रुः कृत मैत्रः हुताग्निः विप्रान् नत्वा तिल गो भूमि रुक्मैः गृहं प्रविष्टः गुरु वन्दनाय न च अपश्यत् पितरौ सौबलीं च ॥ ३० ॥

अजातशत्रुः	युधिष्ठिर	**कृत**	करके
मैत्र	सूर्य सम्बन्धी कर्म (सन्ध्यादि)	**हुताग्निः**	अग्निहोत्र सम्पन्न करके

तिल	तिल
गो	गौ
भूमि	पृथ्वी
रुक्मैः	स्वर्ण दानपूर्वक
विप्रान्	ब्राह्मणोंको
नत्वा	नमस्कार करके
गुरु	गुरुजनोंकी
वन्दनाय	वन्दनाके लिए
गृहं	भवनमें
प्रविष्टः	प्रविष्ट हुए
च	किन्तु
पितरौ	धृतराष्ट्र एवं विदुरको
च	और
सौबलीं	गान्धारीको
न	नहीं
अपश्यत	देखा ॥३०॥

तत्र सञ्जयमासीनं पप्रच्छोद्विग्नमानसः ।

तत्र संजयं आसीनं पप्रच्छ उद्विग्न मानसः ।

तत्र	वहाँ
आसीनं	बैठे हुए
संजयं	संजयसे
उद्विग्न	उद्विग्न
मानसः	चित्त
पप्रच्छ	पूछा

*युधिष्ठिर उवाच**-

गावल्गणे क्व नस्तातो वृद्धो हीनश्च नेत्रयोः ॥३१॥

गावल्गणे क्व नः तातः वृद्धः हीनः च नेत्रयोः ॥ ३१ ॥

गावल्गणे	संजय !
वृद्धः	वृद्ध
च	और
नेत्रयोः	नेत्रोंसे
हीनः	रहित
नः	हमारे
तातः	ताऊजी
क्व	कहाँ है ? ॥३१॥

अम्बा च हतपुत्राऽऽर्ता पितृव्यःक्व गतः सुहृत् ।
अपि मय्यकृतप्रज्ञे हतबन्धुः स भार्यया ।
आशंसमानः शमलं गङ्गायां दुःखितोऽपतत् ॥३२॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अम्बा च हतपुत्र आर्ता पितृव्यः क्व गतः सुहृत् अपि मयि अकृत प्रज्ञे हत बन्धुः स भार्यया आशंसमानः शमलं गङ्गायां दुःखितः अपतत् ॥३ ॥

च	और	**अपि**	कहीं
हतपुत्र	पुत्रोंके मारे जानेसे	**मयि**	मुझ
आर्ता	दुःखिनी	**अकृतप्रज्ञे**	अज्ञानीसे (किसी)
अम्बा	अम्बा गान्धारी	**शमलं**	अपराधकी
सुहृत्	हितैषी	**आशंसमानः**	आशङ्का करके
पितृव्यः	चाचा विदुर	**दुःखितः**	दुःखी होकर
क्व	कहाँ	**गङ्गायां**	गङ्गामें (तो नहीं)
गतः	गए	**अपतत्**	कूद पड़े ? ॥३२॥

पितर्युपरते पाण्डौ सर्वान्नः सुहृदः शिशून् ।
अरक्षतां व्यसनतः पितृव्यौ क्व गतावितः ॥३३॥

पितरि उपरते पाण्डौ सर्वान् नः सुहृदः शिशून् अरक्षतां व्यसनतः पितृव्यौ क्व गता इत ॥ ३३ ॥

पितरि	पिता	**अरक्षतां**	रक्षा करनेवाले
पाण्डौ	पाण्डुके	**सुहृदः**	स्नेहशील
उपरते	मर जानेपर	**पितृव्यौ**	दोनों ताऊ-चाचा
नः	हम	**इतः**	यहाँसे
सर्वान्	सब	**क्व**	कहां
शिशून्	शिशुओंकी	**गता**	गये ॥३३॥
व्यसनतः	विपत्तियोंसे		

सूत उवाच-

कृपया स्नेहवैक्लव्यात्सूतो विरहकर्शितः ।
आत्मेश्वरमचक्षाणो न प्रत्याहातिपीडितः ॥३४॥

कृपया स्नेह वैक्लव्यात् सूतः विरहकर्शितः आत्म ईश्वरं अचक्षाणः न प्रत्याह पीडितः ॥ ३४ ॥

सूतः	संजय	**वैक्लव्यात्**	व्याकुलतासे
आत्म	अपने	**विरह**	वियोग
ईश्वरं	स्वामीको	**कर्शितः**	चिन्तित
अचक्षाणः	न देखकर	**पीडितः**	दुःखी
कृपया	कृपासे	**न**	नहीं
स्नेह	स्नेहकी	**प्रत्याह**	उत्तर दे सका ॥३४॥

विमृज्याश्रूणि पाणिभ्यां विष्टभ्यात्मानमात्मना ।
अजातशत्रुं प्रत्यूचे प्रभोः पादावनुस्मरन् ॥३५॥

विमृज्य अश्रूणि पाणिभ्यां विष्टभ्य आत्मानं आत्मना अजातशत्रुं प्रत्यूचे प्रभोः पादाः अनुस्मरन् ॥ ३५ ॥

अश्रूणि	आँसुओंको	**प्रभोः**	स्वामीके
पाणिभ्यां	हाथोंसे	**पादाः**	चरणोंको
विमृज्य	पोंछकर	**अनुस्मरन्**	बार बार स्मरण
आत्मना	अपने आपसे		करते हुए
आत्मानं	चित्तको	**अजातशत्रुं**	युधिष्ठिरको
विष्टभ्य	सम्हालकर	**प्रत्यूचे**	उत्तर दिया ॥३६॥

सञ्जय उवाच-

नाहं वेद व्यवसितं पित्रोर्वः कुलनन्दन ।
गान्धार्या वा महाबाहो मुषितोऽस्मि महात्मभिः ॥३६॥

न अहं वेद व्यवसितं पित्रोः वः कुलनन्दन गान्धार्न्या वा महाबाहो मुषितः अस्मि महात्मभिः ॥ ३७ ॥

कुलनन्दन	कुरुकुलनन्दन	**अहं**	मैं
महाबाहो	महाबाहो !	**न**	नहीं
वः	आपके	**वेद**	जानता
पित्रोः	ताऊ-चाचा	**महात्मभिः**	उन महात्माओं द्वारा
वा	अथवा	**मुषितः**	ठगा हुआ
गान्धार्या	गान्धारीका	**अस्मि**	हूँ ॥३६॥
व्यबसितं	निश्चय		

सूत उवाच*-

अथाजगाम भगवान् नारदः सहतुम्बुरुः ।
प्रत्युत्थायाभिवाद्याह सानुजोऽभ्यर्चयन्निव ॥३७॥

अथ आजगाम भगवान् नारदः सह तुम्बुरुः प्रतिउत्थाय अभिवाद्य आह सानुजः अभ्यर्चयन् इव ॥ ३७ ॥

अथ	तदन्तर	**प्रति**	स्वागतमें
भगवान्	भगवान	**उत्थाय**	उठकर
नारदः	नारदजी	**अभिवाद्य**	प्रणाम करके
तुम्बुरुः	तुम्बुरूके	**अभ्यर्चयन्**	पूजा करते
सह	साथ	**इव**	से
आजगाम	आये	**आह**	(युधिष्ठिर)
सानुजः	भाइयोंके साथ		बोले ॥३७॥

युधिष्ठिर उवाच-

नाहं वेद गतिं पित्रोर्भगवन् क्व गतावितः ।
अम्बा वा हतपुत्राऽऽर्ता क्व गता च तपस्विनी ॥३८॥

न अहं वेद गतिं पित्रोः भगवन् क्व गताः इतः अम्बाः वा हतपुत्र आर्ता क्व गता च तपस्विनी ॥ ३८ ॥

भगवन्	भगवन्	**गताः**	गये ?
पित्रोः	ताऊ-चाचाकी	**वा**	अथवा
गतिं	अवस्था	**हतपुत्र**	पुत्रोंके मारे जानेसे
अहं	मैं	**आर्ता**	दुःखी
न	नहीं	**तपस्विनी**	तपस्विनी
वेद	जानता	**अम्बा**	गान्धारी
इतः	यहांसे	**क्व**	कहाँ
क्व	कहाँ	**गता**	गयीं ? ॥३८॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है; किन्तु इसे 'संजय उवाच' में लिया नहीं जा सकता ।

कर्णधार इवापारे भगवान् पारदर्शकः ।

कर्णधार इव अपारे भगवान् पार दर्शकः ।

अपारे	अपारमें	**इव**	समान
भगवान्	भगवन् आप ही	**पार**	पार
कर्णधार	कर्णधारके	**दर्शकः**	दिखलानेवाले हैं ।

*सूत उवाच**–

अथाबभाषे भगवान् नारदो मुनिसत्तमः ॥३९॥

अथ आबभाषे भगवान् नारदः मुनि सत्तमः ॥ ३९ ॥

अथ	तब	**सत्तमः**	श्रेष्ठ
भगवान्	भगवान्	**नारदः**	नारद
मुनि	मुनि	**आवभाषे**	बोले ॥३९॥

*नारद उवाच**–

मा कंचन शुचो राजन् यदीश्वरवशं जगत् ।
लोकाः सपाला यस्येमे वहन्ति बलिमीशितुः ।
स संयुनक्ति भूतानि स एव वियुनक्ति च ॥४०॥

मा कंचन शुचः राज्ञन् यत् ईश्वर वशं जगत् लोकाः सपाला यस्य इमे वहन्ति बलिं ईशितुः स संयुनक्ति भूतानि स एव विनयुक्ति च ॥ ४० ॥

राजन्	राजन्	**वशं**	वशमें है
कंचन	किसीके लिए	**लोकाः**	सब लोक
शुचः	शोक	**सपाला**	अपने पालकोंके साथ
मा	मत करो	**यस्य**	जिस
यत्	क्योंकि	**ईशितुः**	संचालकको
जगत्	संसार	**बलि**	उपहार
ईश्वर	ईश्वरके	**वहन्ति**	देते हैं

* यह 'उवाच' अन्य किसी प्रतिमें नहीं हैं ।

स	वही	**एव**	ही
भूतानि	प्राणियोंको	**प्रियुनक्ति**	वियुक्त
संयुनक्ति	मिलाता है,	**च**	भी करता है ॥४०॥
स	वह		

यथा गावो नसि प्रोतास्तन्त्यां बद्धाः स्वदामभिः ।
वाक्तन्त्यां नामभिर्बद्धा वहन्ति बलिमीशितुः ॥४१॥

यथा गावः नसि प्रोताः तन्त्यां बद्धाः स्वदामभिः वाक् तन्त्यां नामभिः बद्धाः वहन्ति बलिं ईशितुः ॥ ४१ ॥

यथा	जैसे	**वाक्**	वेदवाणी रूप
गावः	बैल	**नामभिः**	अनेक नामों
स्व	अपनी		(की मर्यादा) की
दामभिः	रस्सियोंसे	**तन्त्यां**	रस्सीसे
नसि	नाकमें	**बद्धाः**	बँधे (मनुष्य)
प्रोताः	नाथे	**ईशुतुः**	ईश्वरके
तन्त्यां	बड़ी रस्सीसे	**बलि**	उपहार
बद्धाः	बँधे होते हैं	**वहन्ति**	ढोते हैं ॥४१॥

यथा क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह ।
इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम् ॥४२॥

यथा क्रीडा उपस्कराणां संयोग विगमः इह इच्छया क्रीडुतः स्यातां तथा एव ईशेच्छया नृणाम् ॥ ४२ ॥

इह	संसारमें	**इच्छया**	ईच्छानुसार
यथा	जैसे	**स्यातां**	होता है
क्रीडा	खेलके	**तथा**	वैसे
उपस्कराणां	खिलौनोंका	**एव**	ही
संयोग	परस्पर मिलना	**नृणां**	मनुष्योंका
वा	अथवा	**ईशेच्छया**	ईश्वरकी
विगमः	वियोग		इच्छानुसार ॥४२॥
क्रीडुतुः	खेलनेवालेकी		

यन्मन्यसे ध्रुवं लोकमध्रुवं वा न चोभयम् ।
सर्वथा न हि शोच्यास्ते स्नेहादन्यत्र मोहजात् ॥४३॥

यत् मन्यसे ध्रुवं लोकं अध्रुवं वा न च उभयं सर्वथा न हि शोच्याः ते स्नेहात् अन्यत्र मोहजात् ॥ ४२ ॥

यत्	जो	**च**	ही है।
लोकं	लोगोंको	**हि**	क्योंकि
ध्रुवं	नित्य	**मोहजात्**	अज्ञानसे उत्पन्न
मन्यसे	मानते हो	**स्नेहात्**	स्नेहको छोड़कर
वा	अथवा	**ते**	वे
अध्रुवं	अनित्य	**सर्वथा**	सर्वथा
उभयं	दोनों	**शोच्याः**	शोचनीय
न	नहीं	**न**	नहीं हैं ॥४३॥

तस्माज्जह्यङ्ग वैक्लव्यमज्ञानकृतमात्मनः ।
कथं त्वनाथाः कृपणा वर्तेरंस्ते च मां विना ॥४४॥

तस्माम् जहि अंग वैक्यव्यं अज्ञान कृतः आत्मनः कथ तु अनाथाः कृपणा वर्तेरन् ते मां विना ॥ ४४ ॥

तस्मात्	इसलिए	**ते**	वे
अंग	प्रिय युधिष्ठिर	**अनाथाः**	अनाथ
आत्मनः	अपने	**कृपणाः**	असहाय
अज्ञान	अज्ञानसे	**मां**	मेरे
कृतः	उत्पन्न	**विना**	विना
वैक्लव्यं	व्याकुलताको	**कथं**	कैसे
जहि	त्याग दो	**वर्तेरन्**	रहेंगे ॥४४॥
तु	कि		

कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः ।
कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथा परम् ॥४५॥

काल कर्म गुण आधीनः देहः अयं पाञ्चभौतिकः कथं अन्यान् तु गोपायेत् सर्पग्रस्तः यथा परम् ॥ ४५ ॥

काल	काल
कर्म	कर्म
गुण	गुण
आधीनः	के परतन्त्र
अयं	यह
पाञ्चभौतिकः	पाञ्चभौतिक
देहः	देह
अन्यान्	दूसरोंकी
तु	तो
कथं	कैसे
गोपायेत्	रक्षा करेगा
यथा	जैसे
सर्पग्रस्तः	सर्पसे पकड़ा
परं	दूसरेकी ॥४५॥

अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् ।
फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ॥४६॥

अहस्तानि सहस्तानां अपदानि चतुष्पदां फल्गूनि तत्र महतां जीवः जीवस्य जीवनम् ॥ ४६ ॥

अहस्तानि	बिना हाथवाले
सहस्तानां	हाथवालोंके,
अपदानि	बिना पैरवाले (तृणादि)
चतुष्पदां	चौपायोंके
तत्र	उसमें भी
फल्गूनि	छोटे
महतां	बड़ोंके (इस प्रकार)
जीवः	जीव ही
जीवस्य	जीवोंके
जीवनं	जीवन-निर्वाहके साधन हैं ॥४६॥

तदिदं भगवान् राजन्नेक आत्माऽऽत्मनां स्वदृक् ।
अन्तरोऽनन्तरो भाति पश्य तं माययोरुधा ॥४७॥

तत् इदं भगवान् राजन् एकः आत्मा आत्मनां स्वदृक् अन्तरः अनन्तरः भाति पश्य तं मायया उरुधा ॥ ४७ ॥

तत्	अतः
राजन्	राजन् !
इदं	ये
भगवान्	भगवान
एकः	अद्वितीय
स्वदृक्	स्वयं प्रकाश
आत्मा	अपने आप
आत्मनां	सब देहधारियोंके
अन्तरः	भीतर
अनन्तर	बाहर
भाति	प्रकाशित हो रहे हैं
तं	उनको
मायया	अपनी मायासे
उरुधा	बहुत हुए
पश्य	देखो ॥४७॥

सोऽयमद्य महाराज भगवान् भूतभावनः ।
कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभावाय सुरद्विषाम् ॥४८॥

सः अयं अद्य महाराज भगवान् भूतभावनः कालरूपः अवतीर्णः अस्यां अभावाय सुरद्विषाम् ॥ ४८ ॥

महाराज	महाराज	**अस्यां**	इस पृथ्वीपर
सः	वही	**सुरद्विषां**	देवद्रोहियोंके
अयं	ये	**अभावाय**	विनाशके लिए
भूतभावनः	प्राणियोंको जीवन देनेवाले	**कालरूपः**	कालरूपसे
		अवतीर्णः	अवतार लिए हैं ॥४८॥
भगवान्	भगवानने		
अद्य	इस समय		

निष्पादितं देवकृत्यमवशेषं प्रतीक्षते ।
तावद् यूयमवेक्षध्वं भवेद् यावदिहेश्वरः ॥४९॥

निष्पादितं देवकृत्यं अवशेषं प्रतीक्षते तावत् यूयं अवेक्षध्वं भवेत् यावत् इह ईश्वरः ॥ ४९ ॥

देवकृत्यं	देवताओंका काम (उन्होंने)	**ईश्वरः**	ईश्वरः
		इह	इस पृथ्वीपर
निष्पादितं	पूरा कर दिया है,	**भवेत्**	रहते हैं
अवशेषं	कुछ थोड़े बचेकी	**तावत्**	तबतक
प्रतीक्षते	प्रतीक्षा कर रहे हैं,	**अवेक्षध्वं**	(उनकी) प्रतीक्षा करो ॥४९॥
यूयं	तुम लोग		
यावत्	जबतक		

धृतराष्ट्रः सह भ्रात्रा गान्धार्या च स्वभार्यया ।
दक्षिणेन हिमवत ऋषीणामाश्रमं गतः ॥५०॥

धृतराष्ट्रः सह भ्रात्रा गान्धार्या च स्वभार्यया दक्षिणेन हिमवत ऋषीणां आश्रमं गतः ॥ ५० ॥

धृतराष्ट्रः	धृतराष्ट्र	**स्वभार्यया**	अपनी पत्नी
भ्रात्रा	भाई	**गान्धार्या**	गान्धारीके

सह	साथ	**ऋषीणां**	ऋषियोंके
हिमवता	हिमालयके	**आश्रमं**	आश्रममें
दक्षिणेन	दक्षिणी भागमें	**गतः**	गये हैं ॥५०॥

स्रोतोभिः सप्तभिर्या वै स्वर्धुनी सप्तधा व्यधात् ।
सप्तानां प्रीतये नाना सप्तस्रोतः प्रचक्षते ॥५१॥

स्रोतोभिः सप्तभिः या वै स्वर्धुनी सप्तधा व्यधात् सप्तानां प्रीतये नाना सप्तस्रोतः प्रचक्षते ॥ ५१ ॥

या	जिस स्थानको	**सप्तधा**	सात भागोंमें
वै	निश्चय	**व्यधात्**	विभक्त कर दिया है
सप्तानां	सप्तर्षियोंको	**नाना**	उस अनेक विभक्त
प्रीतये	प्रसन्न करनेके लिए		स्थानको
स्वर्धुनी	सुरसरिने	**सप्तस्रोतः**	सप्तस्रोत
सप्तभिः	सात	**प्रचक्षते**	कहा जाता है ॥५१॥
स्रोतोभिः	धाराओंसे		

स्नात्वानुसवनं तस्मिन्हुत्वा चाग्नीन्यथाविधि ।
अब्भक्ष उपशान्तात्मा स आस्ते विगतैषणः ॥५२॥

स्नात्वा अनुसवनं तस्मिन् हुत्वा च अग्नीन् यथाविधि अप्भक्ष उपशान्त आत्मा स आस्ते विगत ईषणः ॥ ५२ ॥

तस्मिन्	उन गंगाजीमें	**स**	वे
अनुसवनं	तीनों समय	**अप्**	जल (मात्र)
स्नात्वा	स्नान करके	**भक्षः**	पीकर
च	और	**ईषणः**	इच्छाओंको
यथाविधि	विधिपूर्वक	**विगत**	त्यागकर
अग्नीन	अग्नियोंमें	**आस्ते**	हैं ॥५२॥
हुत्वा	हवन करके		

जितासनो जितश्वासः प्रत्याहृतषडिन्द्रियः ।
हरिभावनया ध्वस्तरजःसत्त्वतमोमलः ॥५३॥

जित आसनः जित श्वासः प्रत्याहृत षडिन्द्रियः हरिभावनया ध्वस्त रजः सत्त्व तमः मलः ॥ ५३ ॥

आसनः	आसन		लिया) है
जित	जीत लिया है	**हरिभावनया**	भगवानकी भावना
श्वासः	श्वासपर		(धारणा) से
जित	जय कर लिया है	**रजः**	रजोगुण
षडिन्द्रियः	छहो इन्द्रियों (पाँच	**सत्त्व**	सतोगुण
	ज्ञानेन्द्रिय और एक	**तमः**	तमोगुणके
	मन) को	**मलः**	मल
प्रत्याहृतः	भीतर खींच लिया	**ध्वस्त**	नष्ट होगये हैं ॥५३॥
	(प्रत्याहार कर		

विज्ञानात्मनि संयोज्य क्षेत्रज्ञे प्रविलाप्य तम् ।
ब्रह्मण्यात्मानमाधारे घटाम्बरमिवाम्बरे ॥५४॥

विज्ञान आत्मनि संयोज्य क्षेत्रज्ञे प्रविलाप्यतं ब्रह्मणि आत्मानं आधारे घटाम्बरं इव अम्बरे ॥ ५४ ॥

विज्ञान	बुद्धिको	**अम्बरे**	आकाशमें
आत्मनि	अहंकारसे	**घटाम्बर**	घटाकाशके
संयोज्य	संयुक्त करके	**इव**	समान
तं	उसे	**आत्मानं**	ब्रह्मके
क्षेत्रज्ञे	क्षेत्रज्ञमें	**आधारे**	आधरसे (ब्रह्ममात्र)
प्रविलाप्य	विलीन कर दिया		होगये ॥५४॥

ध्वस्तमायागुणोदर्को निरुद्धकरणाशयः ।
निर्वर्तिताखिलाहार आस्ते स्थाणुरिवाचलः ।
तस्यान्तरायो मैवाभूः संन्यस्ताखिलकर्मणः ॥५५॥

ध्वस्त माया गुण उदर्कः निरुद्ध करण आशयः निर्वर्तित अखिल आहार आस्ते स्थाणुः इव अचलः तस्यः अन्तरायः मैवं अभूः संन्यस्त अखिल कर्मणः ॥ ५५ ॥

आशयः	अन्तःकरणका	**इव**	के समान
निरुद्ध	निरोध करके	**अचलः**	अचल
माया	मायाके	**आस्ते**	होगये हैं
गुण	गुणोंके	**तस्य**	उन
उदर्कः	विकारोंको	**अखिल**	सब
ध्वस्त	समाप्त कर दिया है	**कर्मणः**	कर्मोंको
अखिल	सब (रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द)	**संन्यस्त**	छोड़े हुएके लिए
		अन्तरायः	विघ्न
आहार	आहार	**मैवं**	मत
निर्वर्तित	छोड़कर	**अभूः**	होओ ॥५५॥
स्थाणुः	ठूंठ		

स वा अद्यतनाद् राजन् परतः पञ्चमेऽहनि ।
कलेवरं हास्यति स्वं तच्च भस्मीभविष्यति ॥५६॥

स वा अद्यतनात् राजन् परतः पञ्चमे अहनि कलेवरं हास्यति स्वं तत् च भस्मीभविष्यति ॥ ५६ ॥

राजन्	राजन्	**स्वं**	अपने
स	वह	**कलेवरं**	शरीरको
वा	भी	**हास्यतिस्म**	छोड़ देंगे
अद्यतनात्	आजसे	**तत्**	वह
परतः	बादके	**च**	भी
पंचमे	पाँचवें	**भस्मीभविष्यति**	भस्म हो जायगा ॥५६॥
अहनि	दिन		

दह्यमानेऽग्निभिर्देहे पत्युः पत्नी सहोटजे ।
बहिः स्थिता पतिं साध्वी तमग्निमनु वेक्ष्यति ॥५७॥

दह्यमाने अग्निभिः देहे पत्युः सह उटजे बहिः स्थिता पतिं साध्वी तमग्निं अनुवेक्ष्यति ॥ ५७ ॥

अग्निभिः	अग्निसे	**सह**	साथ
उटजे	झोपड़ीके	**पत्युः**	पतिके

देहे	शरीरके	**पतिं**	पतिके
दह्यमाने	जलते हुए	**अनु**	पीछे
बहिः	बाहर	**तमग्निं**	उसी अग्निमें
स्थिता	स्थित	**वेक्ष्यति**	प्रवेश कर
साध्वी	पतिव्रता गान्धारी		जायगी ॥५७॥

विदुरस्तु तदाश्चर्यं निशाम्य कुरुनन्दन ।
हर्षशोकयुतस्तस्माद् गन्ता तीर्थनिषेवकः ॥५८॥

विदुरः तु तत् आश्चर्यं निशाम्य कुरुनन्दन हर्ष शोक युतः तस्मात् गन्ता तीर्थ निषेवकः ॥ ५८ ॥

कुरुनन्दन	कुरुनन्दन !	**शोक**	शोक (उनके वियोगसे)
तत्	वह	**युतः**	युक्त होकर
आश्चर्यं	आश्चर्य	**तीर्थं**	तीर्थोंके
निशाम्य	देखकर	**निषेवकः**	सेवनकी इच्छावाले
विदुरः	विदुर	**गन्ता**	चले जानेवाले हैं ॥५८॥
तु	तो		
तस्मात्	उससे		
हर्षं	हर्ष (बड़े भाईकी सद्गतिसे)		

*सूत उवाच**–

इत्युक्त्वाथारुहत् स्वर्गं नारदः सहतुम्बुरुः ।
युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाजहाच्छुचः ॥५९॥

इति उक्त्वा अथ आरुहत् स्वर्गं नारदः सह तुम्बुरुः युधिष्ठिरः वचः तस्य हृदि कृत्वा जहात् शुचः ॥ ५९ ॥

---

* यह उवाच अन्य किसी प्रतिमें नहीं हैं ।

इति	ऐसा
उक्त्वा	कहकर
अथ	तदनन्तर
नारदः	देवर्षि नारद
तुम्बुरुः	तुम्बुरूके
सह	साथ
स्वर्गं	स्वर्ग
आरुहत्	चले गये।
युधिष्ठिरः	युधिष्ठिरने
तस्य	उनके
वचः	वचनोंको
हृदि	हृदयमें
कृत्वा	धारण करके
शुचः	शोकको
जहात्	छोड़ दिया ॥५८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

सूत उवाच-

सम्प्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बन्धुदिदृक्षया ।
ज्ञातुं' च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥१॥

सम्प्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ वन्धु दिदृक्षया ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ १ ॥

जिष्णौ	अर्जुनके	**च**	भी
बन्धु	सम्बन्धियोंको	**विचेष्टितं**	विशेष चेष्टा (इच्छा)
दिदृक्षया	देखनेकी इच्छासे		
च	और	**ज्ञातुं**	जाननेके लिए
पुण्यश्लोकस्य	पवित्र कीर्ति	**द्वारकायां**	द्वारिकाको
कृष्णस्य	श्रीकृष्णकी	**सम्प्रस्थिते**	चले जानेपर ॥१॥

व्यतीताः कतिचिन्मासास्तदा नायात्ततोऽर्जुनः ।
ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वहः ॥२॥

व्यतीताः कतचित् मासाः तदा न आयात् ततः अर्जुनः ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वहः ॥ २ ॥

तदा	जब	**न**	नहीं
कतचित्	कुछ	**आयात्**	लौटे
मासाः	महीने	**कुरूद्वहः**	युधिष्ठिरने
व्यतीताः	बीत गये	**घोररूपाणि**	घोर रूपवाले
ततः	वहाँ (द्वारिका) से	**निमितानि**	अपशकुनोंको
अर्जुनः	अर्जुन	**ददर्श**	देखा ॥२॥

कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिणः ।
पापीयसीं नृणां वार्तां क्रोधलोभानृतात्मनाम् ॥३॥

कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्ययः तु ऋतु धर्मिणः पापीयसीं नृणां वार्तां क्रोध लोभ अनृत आत्मनाम् ॥ ३ ॥

च	और
कालस्य	समयकी
रौद्रां	उग्र
गतिं	गतिको (देखा)
ऋतुर्धर्मिणां	ऋतु धर्मियों (जो पुष्प,फल, पशु आदि निश्चित समय पुष्प-फल देते या बच्चे देते हैं उन) का
विपर्ययः	अनियमित होजाना
तु	भी (देखा)
क्रोध	क्रोध
लोभ	लोभ
अनृत	झूठ
आत्मनां	युक्त चित्तवाले
नृणां	मनुष्योंकी
पापीयसीं	पापयुक्त
वार्तां	आजीविका (देखा) ॥३॥

जिह्मप्रायं व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदम् ।
पितृमातृसुहृद्भ्रातृदम्पतीनां च कल्कनम् ॥४॥

जिह्मप्रायं व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदं पितृ मातृ सुहृत् भ्रातृ दम्पतीनां च कल्कनम् ॥ ४ ॥

व्यवहृतं	व्यवहार
जिह्मप्रायं	प्रायः कपटपूर्ण (होता था)
च	और
सौहृद	मित्रता
शाठ्यमिश्रं	शठता (स्वार्थ) से मिली हुई
च	तथा
पितृ	पिता
मातृ	माता
सुहृत	मित्र-सम्बन्धी
भ्रातृ	भाई
दम्पतीनां	पति-पत्नीमें
कल्कनं	परस्पर कलह होता था ॥४॥

निमित्तान्यत्यरिष्टानि काले त्वनुगते नृणाम् ।
लोभाद्यधर्मप्रकृतिं दृष्ट्वोवाचानुजं नृपः ॥५॥

निमित्तानि अति अरिष्टानि काले तु अनुगते नृणां लोभात् अधर्म प्रकृतिं दृष्ट्वा उवाच अनुजं नृपः ॥ ५ ॥

अति	अत्यन्त	**अधर्म**	अधर्म करनेका
अरिष्टानि	अमंगलजनक	**प्रकृतिं**	स्वभाव
निमित्तानि	अपशकुनोंको,	**दृष्ट्वा**	देखकर
काले	कलिकालके	**अनुजं**	छोटे भाई (भीमसेन) से
तु	निश्चित		
अनुगते	आ जानेसे	**नृपः**	राजा युधिष्ठिर
नृणां	मनुष्योंको	**उवाच**	बोले ॥५॥
लोभात्	लोभके कारण		

युधिष्ठिर उवाच-

सम्प्रेषितो द्वारकायां निष्णुर्बन्धुदिदृक्षया ।
ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥६॥

सम्प्रेषितः द्वारकायां जिष्णुः बन्धु दिदृक्षया ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ ६ ॥

जिष्णुः	अर्जुनको	**च**	भी
बन्धु	सम्बन्धियोंको	**विचेष्टितं**	विशेष प्रयत्नको
दिदृक्षया	देखनेकी इच्छासे	**ज्ञातुं**	जाननेकी इच्छासे
च	और	**द्वारकायां**	द्वारिका
पुण्यश्लोकस्य	पवित्र कीर्ति	**सम्प्रेषितः**	भेजा था ॥६॥
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके		

गताः सप्ताधुना मासा भीमसेन तवानुजः ।
नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमञ्जसा ॥७॥

गताः सप्त अधुना मासा भीमसेन तव अनुजः न आयाति कस्य वा हेतोः न अहं वेद इदं अञ्जसा ॥ ७ ॥

अधुना	अबतक	**भीमसेन**	भीमसेन !
सप्त	सात	**तव**	तुम्हारे
मासा	महीने	**अनुजः**	छोटे भाई
गताः	बीत चुके	**कस्य**	किस

वा	प्रकारके
हेतोः	कारणसे
न	नहीं
आयाति	लौटे
इदं	यह
अहं	मैं
अञ्जसा	ठीक ठीक
न	नहीं
वेद	जानता ॥७॥

अपि देवर्षिणाऽऽदिष्टः स कालोऽयमुपस्थितः ।
यदाऽऽत्मनोऽङ्गमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति ॥८॥

अपि देवर्षिणा आदिष्टः स कालः अयं उपस्थितः यदा आत्मनः अङ्गं आक्रीडं अगवान् उत्सिसृक्षति ॥ ८ ॥

अपि	कहीं
देवर्षिणा	नारदजी द्वारा
आदिष्टः	सूचित
स	वह
कालः	समय
अय	यह
उपस्थितः	आगया है
यदा	जब
भगवान्	श्रीकृष्ण
आत्मनः	अपना
आक्रीडं	लीला
अङ्गं	विग्रह
उत्सिसृक्षति	छोड़ देंगे ? ॥८॥

यस्मान्नः सम्पदो राज्यं दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः ।
आसन् सपत्नविजयो लोकाश्च यदनुग्रहात् ॥९॥

यस्मात् नः सम्पदः राज्यं दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः आसन् सपत्न विजयः लोकाः च यत् अनुग्रहात् ॥ ९ ॥

यस्मात्	जिनके द्वारा
नः	हमारी
सम्पदः	सम्पत्ति
राज्यं	राज्य
दाराः	स्त्रियां
कुलं	कुल
प्रजाः	प्रजा
आसन्	हैं
यत्	जिनके
अनुग्रहात्	अनुग्रहसे
सपत्न	सौतेले (चचेरे) भाइयोंपर
विजयः	विजय प्राप्त हुई
लोकाः	स्वर्गादि लोकोंका (अधिकार)
च	भी (मिला) ॥९॥

पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्यान् भौमान् सदैहिकान् ।
दारुणान् शंसतोऽदूराद्भयं नो बुद्धिमोहनम् ॥१०॥

पश्य उत्पानान् नरव्याघ्र दिव्यान् भौमान स दैहिकान् दारुणान् शंसतः अदूरात् भयं नः बुद्धि मोहनम् ॥ १० ॥

नरव्याघ्र	पुरुषसिंह !	**नः**	हमारी
दिव्यान्	आकाशमें होनेवाले	**बुद्धि**	बुद्धिको
भौमान्	पृथ्वीपर होनेवाले	**मोहनं**	मोहमें डालनेवाला
दैहिकान्	शरीरमें होनेवाले	**अदूरात्**	समीप ही
स	एक साथ	**भयं**	भय
दारुणान्	भयानक	**शंसतः**	(ये) सूचित करते हैं ॥१०॥
उत्पातान्	अपशकुनोंको		
पश्य	देखो		

ऊर्वक्षिबाहवो मह्यं स्फुरन्त्यङ्ग पुनः पुनः ।
वेपथुश्चापि हृदये आराद्दास्यन्ति विप्रियम् ॥११॥

उरु अक्षि बाहवः मह्यं स्फुरन्ति अंग पुनः पुनः वेपथुः च अपि हृदये आरात् दास्यन्ति विप्रियम् ॥ ११ ॥

मह्यं	मेरी	**हृदये**	हृदयमें
उरु	जांघें	**अपि**	भी
अक्षि	नेत्र	**वेपथुः**	कम्पन है
बाहवः	भुजायें	**अङ्ग**	प्रिय (भीमसेन)
पुनः पुनः	बार बार	**आरात्**	शीघ्र ही (ये)
स्फुरन्ति	फड़कती हैं,	**विप्रियं**	अप्रिय
च	और	**दास्यन्ति**	देंगे ॥११॥

शिवैषोद्यन्तमादित्यमभि रौत्यनलानना ।
मामङ्ग सारमेयोऽयमभिरेभत्यभीरुवत् ॥१२॥

शिवा एषा उद्यन्तं आदित्यं अभिरौति अनलानना मां अङ्ग सारमेयः अयं अभिरेभति अभीरुवत् ॥ १२ ॥

अंग	प्रिय
एषा	यह
अनलानना	मुखसे अग्नि निकालती
शिवा	शृगाली
उद्यन्तं	उदित होते
आदित्यं	सूर्यकी ओर
अभिरौति	मुख करेके रोती है।
अयं	यह
सारमेयः	कुत्ता
अभीरुवत्	निर्भयके समान
मां	मेरी ओर
अभिरेभति	मुख करके चिल्ला रहा है ॥१२॥

शस्ताः कुर्वन्ति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे ।
वाहांश्च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदतो मम ॥१३॥

शस्ताः कुर्वन्ति मां सव्वं दक्षिणं पशवः अपरे बाहान् च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदितः मम ॥ १३ ॥

पुरुषव्याघ्र	पुरुषसिंह !
शस्ताः	प्रशंसित (गाय, अश्व, गजादि)
पशवः	पशु
मां	मुझे
सव्यं	अपने बायें (और)
अपरे	दूसरे (गधे, कुत्ते आदि)
दक्षिणं	दाहिने
कुर्वन्ति	करते हैं।
मम	अपने
वाहान्	वाहनोंको
रुदतः	रोते
लक्षये	देखता हूँ ॥१३॥

मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कम्पयन् मनः ।
प्रत्युलूकश्च कुह्वानैरनिद्रौ शून्यमिच्छतः ॥१४॥

मृत्युदूतः कपोतः अयं उलूकः कम्पयन् मनः प्रतिउलूकः च कुह्वानैः अनिद्रः शून्यं इच्छतः ॥ १४ ॥

अयं	यह
कपोतः	पण्डुक*
मृत्युदूतः	मृत्युका दूत है (यह और)

---

* वैकुण्ठके वर्णनमें तृतीयस्कन्धमें पारावतका वर्णन है। कबूतर शुभ पक्षी है; किन्तु उसी जातिके पंडुकका बोलना अशुभ है।

उलूकः	उल्लू (अपने शब्दसे)	**कुह्वानैः**	बुरी तरह बोलता
मनःकम्पयन्	मनको कम्पित करते हैं।		हुआ
		अनिद्रः	रातको जागता
प्रतिउलूकः	उल्लूका शत्रु कौआ	**शून्यं**	(संसारको) सूना
च	भी	**इच्छतः**	कर देना चाहते हैं ॥१४॥

धूम्रा दिशः परिधयः कम्पते भूः सहाद्रिभिः ।
निर्घातश्च महांस्तात साकं च स्तनयित्नुभिः ॥१५॥

धूम्रा दिशः परिधयः कम्पते भूः सह अद्रिभिः निर्घातः च महान् तात साकं च स्तनयित्नुभिः ॥ १५ ॥

दिशः	दिशायें	**तात**	प्रिय भीमसेन
धूम्रा	धुंधली (होगयी हैं)	**च**	और
परिधयः	(सूर्य-चन्द्रपर) मण्डल बैठते हैं,	**स्तनयत्नुभिः**	मेघोंसे
		महान्	भारी (गड़गड़ाहट)
अद्रिभिः	पर्वतोंके	**साकं**	के साथ
सह	साथ	**निर्घातः**	बिजली
भूः	पृथ्वी	**च**	भी गिरती है ॥१५॥
कम्पते	काँपती है (भूकम्प होते हैं।)		

वायुर्वाति खरस्पर्शो रजसा विसृजंस्तमः ।
असृग् वर्षन्ति जलदा बीभत्समिव सर्वतः ॥१६॥

वायुः वाति खरस्पर्शः रजसा विसृजन् तमः असृक् वर्षन्ति जलदाः वीभत्सं इव सर्वतः ॥ १६ ॥

वायुः	हवा	**जलदाः**	बादल
खरस्पर्शः	रूक्ष स्पर्शवाली	**सर्वतः**	सब कही
रजसा	धूलिसे	**वीभत्सं**	घिनौने ढंग
तमः	अन्धकार	**इव**	जैसे
विसृजन्	फैलाती	**असृक्**	रक्तकी
वाति	चलती है	**वर्षन्ति**	वर्षा करते हैं ॥१६॥

सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथो दिवि ।
ससंकुलैर्भूतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ॥१७॥

सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथः दिवि ससंकुलैः भूतगणैः ज्वलिते इव रोदसीः ॥ १७ ॥

सूर्यं	सूर्यको	**भूतगणैः**	भूतोंकी*
हतप्रभं	मन्द प्रकाशवाला	**ससंकुलैः**	भीड़से
पश्य	देखो	**रोदसी**	आकाश
दिवि	आकाशमें	**ज्वलिते**	जलता
मिथः	परस्पर	**इव**	सा लगता है ॥१७॥
ग्रहमर्दं	ग्रहोंका युद्ध होता है,		

नद्यो नदाश्च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च ।
न ज्वलत्यग्निराज्येन कालोऽयं किं विधास्यति ॥१८॥

नद्यः नदाः च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च न ज्वलति अग्निः आज्येन कालः अयं किं विधास्यति ॥ १८ ॥

नद्यः	नदियाँ	**अग्निः**	अग्नि
नदाः	महानद	**आज्येन**	घी (डालने) से भी
च	भी	**न**	नहीं
सरांसि	सरोवर	**ज्वलति**	प्रज्वलित होता
च	भी एवं	**अयं**	यह
मनांसि	(लोगोंके) मन	**कालः**	काल
च	भी	**किं**	क्या
क्षुभिताः	क्षुब्ध हो रहे हैं ।	**विधास्यति**	करनेवाला है ॥१८॥

न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यन्ति च मातरः ।
रुदन्त्यश्रुमुखा गावो न हृष्यन्त्यृषभा व्रजे ॥१९॥

न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यन्ति च मातरः रुदन्ति अश्रुमुखा गावः न हृष्यन्ति वृषभा व्रजे ॥ १९ ॥

---

* भूतोंके मुखसे लपट निकलती रहती है, यह लोकधारणा है ।

वत्सा	बछड़े
पिबन्ति	(दूध) पीते
न	नहीं हैं,
मातरः	(उनकी) मातायें
दुह्यन्ति	दुहने देती
न	नहीं हैं,
च	और
गादः	गायें
अश्रुमुखा	मुखपर आंसू बहाती
रुदन्ति	रोती हैं,
व्रजे	गोष्ठोंमें
वृषभा	सांड़
न	नहीं
हृष्यन्ति	हर्षित होते ॥१९॥

दैवतानि रुदन्तीव स्विद्यन्ति ह्युच्चलन्ति च ।
इमे जनपदा ग्रामाः पुरोद्यानाकराश्रमाः ।
भ्रष्टश्रियो निरानन्दाः किमघं दर्शयन्ति नः ॥२०॥

दैवतानि रुदन्ति इव स्विद्यन्ति हि उच्चलन्ति च इमे जनपदा ग्रामाः पुर उद्यान आकर आश्रमाः भ्रष्ट श्रियः निः आनन्दाः किं अघं दर्शयन्ति नः ॥ २० ॥

दैवतानि	देवमूर्तियां
रुदन्ति	रोती
इव	सी हैं,
स्विद्यन्ति	पसीजती हैं
हि	ठीक पाते हैं कि
उच्चलन्ति	हिलती
च	भी हैं,
इमे	ये
जनपदा	बस्तियां
ग्रामाः	गाँव
पुर	नगर
उद्यान	बगीचे
आकर	खदानें
आश्रमाः	आश्रम
श्रियः	शोभासे
भ्रष्ट	रहित हैं
निः	बिना
आनन्दाः	आनन्दके हैं
नः	हम लोगोंको
किं	क्या
अघं	दुःख
दर्शयन्ति	दिखलानेवाले हैं ॥२०॥

मन्य एतैर्महोत्पातैर्नूनं भगवतः पदैः ।
अनन्यपुरुषश्रीभिर्हीना भूर्हतसौभगा ॥२१॥

मन्य एतैः महाउत्पातैः नूनं भगवतः पदैः अनन्य पुरुषः श्रीभिः हीना भूः हत सौभगा ॥ २१ ॥

एतैः	इन	**भगवतः**	भगवानके
महा	भारी	**पदैः**	चरणोंसे
उत्पातैः	उत्पातोंसे	**नूनं**	निश्चय
मन्य	मानता हूँ कि	**हीनाः**	रहित होकर
अनन्य	जो दूसरे किसी	**भूः**	पृथ्वी
पुरुष	पुरुषमें नहीं होते ऐसी	**सौभगा**	सौभाग्य
श्रीभिः	शोभासे सम्पन्न	**हत**	रहित होगयी है ॥२१॥

सूत उवाच*–

इति चिन्तयतस्तस्य दृष्टारिष्टेन चेतसा ।
राज्ञः प्रत्यागमद् ब्रह्मन् यदुपुर्याः कपिध्वजः ॥२२॥

इति चिन्तयतः तस्य दृष्टा अरिष्टेन चेतसा राज्ञः प्रति आगमत् ब्रह्मन् यदुपुर्याः कपिध्वजः ॥ २२ ॥

अरिष्टेन	अपशकुनोंको	**राज्ञः**	राजा युधिष्ठिरके
दृष्टा	देखकर	**प्रति**	समीप
चेतसा	मनसे	**ब्रह्मन्**	शौनकजी !
इति	इस प्रकार	**यदुपुर्याः**	द्वारिकासे
चिन्तयतः	चिन्ता करते हुए	**कपिध्वजः**	अर्जुन
तस्य	उन	**आगमत्**	आये ॥२२॥

तं पादयोर्निपतितमयथापूर्वमातुरम् ।
अधोवदनमब्बिन्दून् सृजन्तं नयनाब्जयोः ॥२३॥

तं पादयोः निपतितं अयथा पूर्वं आतुरं अधः बदन अप् बिन्दून् सृजन्तं नयन अब्जयोः ॥ २३ ॥

तं	उन (अर्जुन) को	**निपतिन्तं**	गिरे हुए
पादयोः	पैरोंपर	**पूर्वं**	पहिले

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अयथा	जैसे कभी नहीं हुए थे	**नयनाब्जयोः**	कमल लोचनोंसे
आतुरं	वैसे व्याकुल	**अप्**	आँसूकी
वदन	मुख	**बिन्दून्**	बूँदें
अधः	नीचे झुकाये	**सृजन्तं**	टपकाते ॥२३॥

विलोक्योद्विग्नहृदयो विच्छायमनुजं नृपः ।
पृच्छति स्म सुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितम् ॥२४॥

विलोक्य उद्विग्न हृदयः विच्छायं अनुजं नृपः पृच्छति स्म सुहृन् मध्ये संस्मन् नारद ईरितम् ॥ २४ ॥

विच्छायं	कान्तिहीन	**संस्मरन्**	स्मरण करते हुए
अनुजं	छोटे भाई अर्जुनको	**नृपः**	राजा युधिष्ठिर
विलोक्य	देखकर	**सुहृन्**	सम्बन्धियोंके
उद्विग्न	उद्विग्न	**मध्ये**	बीचमें
हृदयः	हृदय	**पृच्छति**	पूछने
नारद	देवर्षिनारदका	**स्म**	लगे ॥२४॥
ईरितं	कहा		

युधिष्ठिर उवाच–

कच्चिदानर्तपुर्यां नः स्वजनाः सुखमासते ।
मधुभोजदशार्हार्हसात्वतान्धकवृष्णयः ॥२५॥

कच्चित् आनर्तपुर्यां नः स्वजनाः सुखं आसते मधु भोज दशार्ह अर्ह सात्वत अन्धक वृष्णयः ॥ २५ ॥

आनर्तपुर्यां	द्वारिकामें	**सात्वत**	सात्वत
नः	हमारे	**अन्धक**	अन्धक
स्वजनाः	स्वजन	**वृष्णयः**	वृष्णि वंशीलोग
मधु	मधु	**कच्चित्**	क्या
भोज	भोज	**सुखं**	सुखपूर्वक
दशार्ह	दशार्ह	**आसते**	हैं ? ॥२५॥
अर्ह	अर्ह		

शूरो मातामहः कच्चित्स्वस्त्यास्ते वाथ मारिषः ।
मातुलः सानुजः कच्चित्कुशल्यानकदुन्दुभिः ॥२६॥

शूरः मातामहः कच्चित् स्वस्ति आस्ते वा अथ मारिषः मातुलः सानुजः कच्चित् कुशली आनक दुन्दुभिः ॥ ६ ॥

कच्चित्	क्या	**आस्ते**	हैं,
मारिषः	सम्मान्य	**कच्चित्**	क्या
मातामहः	नानाजी	**मातुलः**	मामा
शूरः	शूरजी	**आनक दुन्दुभिः**	वसुदेवजी
अथ	अव	**सानुजः**	भाइयोंके साथ
स्वस्ति	कुशलपूर्वक	**कुशली**	सकुशल हैं ? ॥२६॥
वा	तो		

सप्त स्वसारस्तत्पत्न्यो मातुलान्यः सहात्मजाः ।
आसते स स्नुषाः क्षेमं देवकी प्रमुखाः स्वयम् ॥२७॥

सप्त स्वसारः तत् पत्न्योः मातुलान्यः सह आत्मजाः आसते स स्नुषाः क्षेमं देवकी प्रमुखाः स्वयम् ॥ २७ ॥

तत्	उनकी	**आत्मजाः**	पुत्रोंके
पत्न्योः	पत्नियां	**सह**	साथ
देवकी प्रमुखाः	जिनमें देवकीजी मुख्य हैं वे	**स स्नुषाः**	पुत्र वधुओंके साथ
		स्वयं	अपने आपमें
सप्त	सातों	**क्षेमं**	कुशलपूर्वक हैं ? ॥२७॥
स्वसारः	बहिनें		
मातुलान्यः	(हमारी) मामियाँ		

कच्चिद्राजाऽऽहुको जीवत्यसत्पुत्रोऽस्य चानुजः ।
हृदीकः ससुतोऽक्रूरो जयन्तगदसारणाः ॥२८॥

कच्चित् राजा आहुकः जीवति असत् पुत्रः अस्य च अनुजः हृदीकः ससुतः अक्रूरः जयन्त गद सारणाः ॥ २८ ॥

कच्चित्	क्या
असत्	असत्
पुत्रः	पुत्र (कंसके पिता)
राजा	उग्रसेन
च	और
अस्य	इनके
अनुजः	छोटे भाई (देवक)
जीवति	जीवित हैं ?
हृदीकः	हृदीक
ससुतः	अपने पुत्र (कृतवर्मा) के साथ
अक्रूरः	अक्रूर
जयन्त	जयन्त
गद	गद
सारणाः	सारणादि ॥२८॥

आसते कुशलं कच्चिद्ये च शत्रुजिदादयः ।
कच्चिदास्ते सुखं रामो भगवान् सात्वतां प्रभुः ॥२९॥

आसते कुशलं कच्चित् ये च शत्रुजित आदयः कच्चित् आस्ते सुखं रामः भगवान् सात्वतां प्रभुः ॥ २९ ॥

च	और
ये	जो
शत्रुजित	शत्रुजित
आदयः	आदि हैं
कच्चित्	क्या
कुशलं	कुशलपूर्वक
आसते	हैं ?
कच्चित्	क्या
सात्वतां	भक्तोंके (यादवोंके)
प्रभुः	स्वामी
भगवान्	भगवान्
रामः	बलरामजी
सुखं	सुखपूर्वक
आसते	हैं ? ॥२९॥

प्रद्युम्नः सर्ववृष्णीनां सुखमास्ते महारथः ।
गम्भीररयोऽनिरुद्धो वर्धते भगवानुत ॥३०॥

प्रद्युम्नः सर्व वृष्णीनां सुखं आस्ते महारथः गम्भीररयः अनिरुद्धः वर्धते भगवान् उत ॥ ३० ॥

सर्व	सब
वृष्णीनां	वृष्णिवंशियोंमें
महारथः	महारथी
प्रद्युम्नः	प्रद्युम्न
सुखं	सुखसे
आसते	हैं
गम्भीर	गम्भीर
रयः	वेगवाले
भगवान्	भगवान
अनिरुद्धः	अनिरुद्ध
वर्धते	उन्नति तो कर रहे
उत	हैं ॥ ३० ॥

सुषेणश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः ।
अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः सपुत्रा ऋषभादयः ॥३१॥

सुषेणः चारुदेष्णः च साम्बः जाम्बवती सुतः अन्ये च कार्ष्णि प्रवराः सपुत्रा ऋषभ आदयः ॥ ३१ ॥

सुषेणः	सुषेण
चारुदेष्णः	चारुदेष्ण
च	और
जाम्बवती	जाम्बवतीके
सुतः	पुत्र
साम्बः	साम्ब
अन्ये	दूसरे
च	भी
कार्ष्णि	श्रीकृष्ण पुत्रोंमें
प्रवराः	श्रेष्ठ
ऋषभ	ऋषभ
आदयः	आदि
सपुत्रा	पुत्रोंके साथ ॥३१॥

तथैवानुचराः शौरेः श्रुतदेवोद्धवादयः ।
सुनन्दनन्दशीर्षण्या ये चान्ये सात्वतर्षभाः ॥३२॥

तथा एव अनुचराः शौरेः श्रुतदेव उद्धव आदयः सुनन्द नन्द शीर्षण्या ये च अन्ये सात्वत ऋषभाः ॥ ३२ ॥

तथा	ऐसे
एव	ही
शौरेः	श्रीकृष्णके
अनुचराः	अनुचर
श्रुतदेव	श्रुतदेव
उद्धव	उद्धव
आदयः	आदि
च	और
ये	जो
अन्ये	दूसरे
सुनन्द	सुनन्द
नन्द	नन्द
शीर्षण्या	प्रमुख
सात्वत	यदुवंशमें
ऋषभाः	श्रेष्ठ हैं ॥३२॥

अपि स्वस्त्यासते सर्वे रामकृष्णभुजाश्रयाः ।
अपि स्मरन्ति कुशलमस्माकं बद्धसौहृदाः ॥३३॥

अपि स्वस्ति आसते सर्वे राम कृष्ण धुजा आश्रयाः अपि स्मरन्ति कुशलं अस्माकं बद्ध सौहृदाः ॥ ३३ ॥

अपि	क्या	**अस्माकं**	हम लोगोंके
सर्वे	सब	**सौहृदाः**	सौहार्द्रसे
राम	बलराम	**बद्ध**	बँधे हुए
कृष्ण	श्रीकृष्णकी	**कुशलं**	(हम लोगोंके)
भुजा	भुजाओं (बल) के		कुशलको
आश्रयाः	आश्रयमें रहनेवाले	**स्मरन्ति**	स्मरण
स्वस्ति	कुशलपूर्वक	**अपि**	तो करते हैं ॥३३॥
आसते	हैं		

भगवानपि गोविन्दो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ।
कचित्पुरे सुधर्मायां सुखमास्ते सुहृद्वृतः ॥३४॥

भगवान् अपि गोविन्दः ब्रह्मण्यः भक्तवत्सलः कच्चित् पुरे सुधर्मायां सुखं आसते सुहृत् वृतः ॥ ३४ ॥

कच्चित्	क्या	**पुरे**	अपने नगरमें
ब्रह्मण्यः	ब्राह्मण भक्त	**सुधर्मायां**	सुधर्मा सभामें
भक्तवत्सलः	भक्तवत्सल	**सुहृत्**	सम्बन्धियोंसे
भगवान्	भगवान	**वृतः**	घिरे
गोविन्दः	गोविन्द	**सुखं**	सुखपूर्वक
अपि	भी	**आसते**	हैं ॥३४॥

मङ्गलाय च लोकानां क्षेमाय च भवाय च ।
आस्ते यदुकुलाम्भोधावाद्योऽनन्तसखः पुमान् ॥३५॥

मङ्गलाय च लोकानां श्रेमाय च भवाय च आस्ते यदुकुल अम्भोधः आद्यः अनन्तसखः पुमान् ॥ ३५ ॥

लोकानां	सब लोकोंके	**च**	भी
मङ्गलाय	मंगलके लिए	**आद्यः**	आदि
च	और	**पुमान्**	पुरुष
क्षेमाय	कल्याणके लिए	**अनन्त**	बलरामजीके
च	एवं	**सखः**	साथ
भवाय	अभ्युदयके लिए	**यदुकुल**	यदुकुलरूपी

अम्भोधः	समुद्रमें	**आस्ते**	विराजमान हैं ॥३५॥

यद्बाहुदण्डगुप्तायां स्वपुर्यां यदवोऽर्चिताः ।
क्रीडन्ति परमानन्दं महापौरुषिका इव ॥३६॥

यत् बाहुदण्ड गुप्तायां स्वपुर्यां यदवः अर्चिताः क्रीडन्ति परमानन्दं महापौरुषिका इव ॥ ३६ ॥

यत्	जिनके	**महापौरुषिका**	विष्णु भगवानके पार्षदोंके
बाहुदण्ड	भुजाओंसे		
गुप्तायां	सुरक्षित	**इव**	समान
स्वपुर्यां	अपनी पुरी (द्वारिका) में	**परमानन्दं**	परमानन्दसे
		क्रीडन्ति	विहार करते हैं ॥३६॥
अर्चिताः	(सबसे) सम्मानित		
यदवः	यदुवंशी		

यत्पादशुश्रूषणमुख्यकर्मणा
सत्यादयो द्व्यष्टसहस्रयोषितः ।
निर्जित्य संख्ये त्रिदशांस्तदाशिषो
हरन्ति वज्रायुधवल्लभोचिताः ॥३७॥

यत् पाद शुश्रूण मुख्य कर्मणा सत्या आदयः द्वय अष्ट सहस्र योषितः निर्जित्य संख्ये त्रिदशान् तत् आशिषः हरन्ति वज्रायुध वल्लभा उचिताः ॥ ३७ ॥

सत्या	सत्यभामा	**शुश्रूषण**	सेवारूपी
आदयोः	आदि	**मुख्य**	मुख्य
द्व	दो	**कर्मणा**	कर्मसे
अष्ट	आठ (सोलह)	**संख्ये**	युद्धमें
सहस्र	सहस्र	**त्रिदशान्**	देवताओंको
योषितः	स्त्रियाँ	**निर्जित्य**	जीतकर
यत्	जिनके	**तत्**	उन (देवताओं) को
पाद	चरणोंकी	**आशिषः**	अभीष्ट

वज्रायुध	इन्द्र	**हरन्ति**	उपभोग करती
वल्लभा	पत्नीके		हैं ॥३७॥
उचिताः	योग्य (कल्पवृक्षका)		

यद्बाहुदण्डाभ्युदयानुजीविनो
यदुप्रवीरा ह्यकुतोभया मुहुः ।
अधिक्रमन्त्यङ्घ्रिभिराहृतां बलात्
सभां सुधर्मां सुरसत्तमोचिताम् ॥३८॥

यत् वाहुदण्ड अभ्युदय अनुजीविनः यदु प्रवीरा हि अकुतोभया मुहुः अधिक्रमन्ति अङ्घ्रिभिः आहृतां बलात् सभां सुधर्मां सुरसत्तम उचिताम् ॥ ३८ ॥

यत्	जिनके	**उचितां**	उचित
बाहुदण्ड	भुजदण्ड	**सुधर्मा**	सुधर्मा
अभ्युदय	पराक्रमके	**सभां**	सभां
अनुजीविनः	अनुजीवी	**बलात्**	बलपूर्वक
यदु	यदुवंशके	**आहृतां**	छीन लायी गयीको
प्रवीरा	श्रेष्ठ वीर	**मुहुः**	बार बार
हि	निश्चित रूपसे	**अङ्घ्रिभिः**	अपने पदोंसे
अकुतोभया	सब ओरसे निर्भय	**अधिक्रमन्ति**	रौंदते हैं ॥३८॥
सुरसत्तम	श्रेष्ठ देवताओंके लिए		

कच्चित्तेऽनामयं तात भ्रष्टतेजा विभासि मे ।
अलब्धमानोऽवज्ञातः किं वा तात चिरोषितः ॥३९॥

कच्चित् ते अनामयं तात भ्रष्ट तेजा विभासि मे अलब्ध मानः अवज्ञातः किं वा तात चिर ऊषितः ॥ ३९ ॥

तात	भाई !	**मे**	मुझे
कच्चित्	क्या	**तेजा**	तेजसे
ते	तुम्हारा	**भ्रष्ट**	रहित
अनामयं	(शरीर) निरोग है ?	**विभासि**	लगते हो,

मानः	सम्मान	**किं**	क्या
अलब्ध	नहीं मिला ?	**चिर**	देरसे
अवज्ञातः	अपमान हुआ ?	**ऊषितः**	उपवास किये
वा	अथवा		हो ? ॥३९॥
तात	भाई		

कच्चिन्नाभिहतोऽभावैः शब्दादिभिरमङ्गलैः ।
न दत्तमुक्तमर्थिभ्य आशया यत्प्रतिश्रुतम् ॥४०॥

कच्चित् न अभिहितः अभावैः शब्द आदिभिः अमंगलैः न दत्तं उक्तं अर्थिभ्य आशया यत् प्रतिश्रुतम् ॥ ४० ॥

कच्चित्	क्या	**आशया**	आशापूर्वक (आये)
अमंगलैः	अमंगल	**अर्थिभ्य**	मांगने आयेको
शब्दादिभिः	शब्द (संकेत) आदिसे	**यत्**	जो
		प्रतिश्रुतं	देनेको
अभावैः	अभाव सूचक (बातोंसे)	**उक्तं**	कह चुके थे
		न	नहीं
अभिहतः	पुकारे तो गये	**दत्तं**	दिया ? ॥४०॥
न	नहीं हो ?		

कच्चित्त्वं ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियम् ।
शरणोपसृतं सत्त्वं नात्याक्षीः शरणप्रदः ॥४१॥

कच्चित् त्वं ब्राह्मण बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियं शरण उपसृतं सत्त्वं न अत्याक्षीः शरणप्रदः ॥ ४१ ॥

कच्चित्	क्या	**रोगिणं**	रोगीको
त्वं	तुम	**स्त्रियं**	स्त्रीको
शरणप्रदः	शरण देनेवाले हो (फिर भी)	**शरण**	शरणमें
		उपसृतं	आये
ब्राह्मणं	ब्राह्मणको	**सत्त्वं**	किसी प्राणीको
बालं	बालकको	**अत्याक्षीः**	त्यागा तो
गां	गायको	**न**	नहीं ? ॥४१॥
वृद्धं	वृद्धको		

क्वचित्त्वं नागमोऽगम्यां गम्यां वासत्कृतां स्त्रियम् ।
पराजितो वाथ भवान्नोत्तमैर्नासमैः पथि ॥४२॥

कच्चित् त्वं न अगमः अगम्यां गम्यां वा असत्कृतां स्त्रियं पराजितः वा अथ भवान् न उत्तमैः न असमैः पथि ॥ ४२ ॥

कच्चित्	क्या
त्वं	तुम
अगम्यां	गमन न करने योग्य स्त्रीसे
अगमः	गमन तो
न	नहीं किया,
वा	अथवा
गम्यां	गमन करने योग्य
स्त्रियं	स्त्रीका
असत्कृतं	सत्कार नहीं किया ?
वा	अथवा
अथ	क्या
पथि	मार्गमें
भवान्	तुम
न उत्तमैः	जो अपनेसे श्रेष्ठ नहीं है
न असमैः	जो अपनेसे विषम भी नहीं है (सम है)
पराजितः	(उससे) पराजित होगये ॥४२॥

अपि स्वित्पर्य भुङ्क्थास्त्वं सम्भोज्यान् वृद्धबालकान् ।
जुगुप्सितं कर्म किंचित्कृतवान्न यदक्षमम् ॥४३॥

अपि स्वित् पर्यभुङ्क्षा त्वं सम्भोज्यान् वृद्ध बालकान् जुगुप्सितं कर्म किञ्चित् कृतवान् यत् अक्षमं ॥ ४३ ॥

अपि	क्या
त्वं	तुमने
संभोज्यान्	पहिले भोजन कराने योग्य
वृद्ध	वृद्ध
बालकान्	बालकोंसे
पर्यभुंक्ष	पहिले भोजनकर
स्वित्	लिया
किंचित्	कुछ
यत्	जो
अक्षमं	नहीं करना चाहिए था
जुगुप्सितं	निन्दित
कर्म	कर्म
कृतवान्	किया ? ॥४३॥

कच्चित् प्रेष्ठतमेनाथ हृदयेनात्मबन्धुना ।
शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक् ॥४४॥

कच्चित् प्रेष्ठतमेन अथ हृदयेन आत्म बन्धुना शून्यः अस्मि रहितः नित्यं मन्यसे ते अन्यथा न रुक् ॥ ४४ ॥

कच्चित	क्या	**नित्यं**	सदाको
प्रेष्ठतमेन	प्रियतमसे	**रहितः**	(उनसे)रहित होगया
हृदयेन	हृदयसे	**मन्यसे**	मानते हो ?
आत्म बन्धुना	अपने अभिन्न सखासे	**अन्यथा**	दूसरा कोई
अथ	अब	**ते**	तुम्हारा
शून्यः	सूना	**रुक्**	रोग (दुःख)
अस्मि	हूँ	**न**	नहीं है ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

सूत उवाच-

एवं कृष्णसखः कृष्णो भ्रात्रा राज्ञाऽऽविकल्पितः ।
नानाशङ्कास्पदं रूपं कृष्णविश्लेषकर्शितः ॥१॥

एवं कृष्णसखः कृष्णः भ्रात्रा राज्ञा अविकल्पितः नाना शङ्कास्पदं रूपं कृष्ण विश्लेष कर्शितः ॥ १ ॥

एवं	इस प्रकार	**राज्ञा**	राजा युधिष्ठिर द्वारा
कृष्णसखः	श्रीकृष्णके सखा	**नाना**	अनेक प्रकारकी
कृष्णः	अर्जुन	**शंकास्पदं**	शंकाओंके आधार
कृष्ण	श्रीकृष्णके	**रूपं**	रूपसे
विश्लेष	वियोगसे	**अविकल्पितः**	विकल्पपूर्वक पूछे
कर्शितः	कृश हुए		जानेपर ॥१॥
भ्रात्रा	बड़े भाई		

शोकेन शुष्यद्वदनहृत्सरोजो हतप्रभः ।
विभुं तमेवानुध्यायन्नाशक्नोत्प्रतिभाषितुम् ॥२॥

शोकेन शुष्यत् वदन हृत् सरोज हत प्रभः विभुं तं एव अनुध्यायन् न शक्नोत् प्रतिभाषितुम् ॥ २ ॥

शोकेन	शोकसे	**एव**	ही
वदन	मुख	**विभुं**	सर्वव्यापकका
शुष्यत्	सूख रहा था	**अनुध्यायन्**	बार बार चिन्तन
हृत्सरोज	हृदय कमल		करते
प्रभः	कान्ति	**प्रतिभाषितुं**	उत्तर देनेमें
हत	हीन होगया था	**शक्नोत्**	समर्थ
तं	उन	**न**	नहीं हुए ॥२॥

कृच्छ्रेण संस्तभ्य शुचः पाणिनाऽऽमृज्य नेत्रयोः ।
परोक्षेण समुन्नद्धप्रणयौत्कण्ठ्यकातरः ॥३॥

कृच्छ्रेण संस्तभ्य शुचः पाणिना आमृज्य नेत्रयोः परोक्षेण समुन्नद्ध प्रणय औत्कण्ठ्य कातरः ॥ ३ ॥

परोक्षेण	(श्रीकृष्णके) परोक्ष हो जानेसे	**कृच्छ्रेण**	कठिनाईसे
समुन्नद्ध	अत्यन्त बढ़े हुए	**शुचः**	शोकको
प्रणय	प्रेमकी	**संस्तभ्य**	रोककर
उत्कण्ठ्य	उत्कण्ठासे	**पाणिना**	हाथोंसे
कातरः	व्याकुल	**नेत्रयोः**	नेत्रोंको
		आमृज्य	पोंछकर ॥३॥

सख्यं मैत्रीं सौहृदं च सारथ्यादिषु संस्मरन् ।
नृपमग्रजमित्याह बाष्पगद्गदया गिरा ॥४॥

सख्यं मैत्रीं सौहृदं च सारथ्यादि संस्मरन् नृपं अग्रजं इति आह वाष्प गद्गदया गिरा ॥ ४ ॥

सख्यं	(श्रीकृष्णके) सखा भाव	**संस्मरन्**	बार बार स्मरण करते हुए
मैत्रीं	मित्रता	**अग्रजं**	बड़े भाई
सौहृदं	सौहार्द्र	**नृपं**	राजा युधिष्ठिरसे
च	तथा	**वाष्प गद्गदया**	आंसूसे गद्गद हुई
सारथ्यादि	सारथीपने आदि (टहने-घूमने) को	**गिरा**	वाणीसे
		इति	इस प्रकार
		आह	बोले ॥४॥

अर्जुन उवाच-

वञ्चितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा ।
येन मेऽपहृतं तेजो देवविस्मापनं महत् ॥५॥

वञ्चितः अहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा येन मे अपहृतं तेजः देव विस्मापनं महत् ॥ ५ ॥

महाराज	महाराज	**देव**	देवताओंको भी
बन्धुरूपिणा	बन्धु (मित्र) रूपी	**विस्मापनं**	विस्मयमें डाल
हरिणा	श्रीकृष्ण द्वारा		देनेवाला
अहं	मैं	**महत्**	महान
वञ्चितः	ठग लिया गया	**तेजः**	तेज
येन	जिन्होंने	**अपहृतं**	हरण कर लिया ॥५॥
मे	मेरा		

यस्य क्षणवियोगेन लोको ह्यप्रियदर्शनः ।
उक्थेन रहितो ह्येष मृतकः प्रोच्यते यथा ॥६॥

यस्य क्षण वियोगेन लोकः हि अप्रिय दर्शनः उक्थेन रहितः हि एष मृतकः प्रोच्यते यथा ॥ ६ ॥

हि	क्योंकि	**हि**	क्योंकि
यथा	जैसे	**यस्य**	जिनके
एष	यह (शरीर)	**क्षण**	क्षणभरके
उक्थेन	जीवसे	**वियोगेन**	वियोगसे
रहितः	रहित	**लोकः**	संसार
मृतकः	मृतक	**अप्रिय**	अप्रिय
प्रोच्यते	कहा जाता है (वैसे ही)	**दर्शनः**	दीखने लगता है ॥६॥

यत्संश्रयाद् द्रुपदगेहमुपागतानां
राज्ञां स्वयंवरमुखे स्मरदुर्मदानाम् ।
तेजो हृतं खलु मयाभिहतश्च मत्स्यः
सज्जीकृतेन धनुषाधिगता च कृष्णा ॥७॥

यत् संश्रयात् द्रुपदगेह उपागतानां राज्ञां स्वयम्वर मुखे स्मर दुर्मदानां तेज. हृतं खलु मया अभिहितः च मत्स्यः सज्जीकृतेन धनुषा अधिगता च कृष्णा ॥ ७ ॥

यत्	जिनके	**स्वयम्वर**	स्वयंवरके
संश्रयात्	आश्रयसे	**मुखे**	प्रारम्भमें

द्रुपदगेह	राजा द्रुपदके घर	**मया**	मेरे द्वारा
उपागतानां	आये हुए	**धनुषा**	धनुषकी
स्मर	कामसे	**सज्जीकृतेन**	प्रत्यंत्वा चढ़ाकर
दुर्मदानां	उन्मत्त	**मत्स्यः**	मत्स्य
राज्ञां	राजाओंका	**अभिहतः**	वेध कर दिया गया
तेजः	तेज	**च**	और
हृतं	हरण करके	**कृष्णा**	द्रौपदी
खलु	निश्चय	**अधिगता**	प्राप्तकी गयी ॥७॥

यत्संनिधावहमु खाण्डवमग्नयेऽदा-
मिन्द्रं च सामरगणं तरसा विजित्य ।
लब्धा सभा मयकृताद्भुतशिल्पमाया
दिग्भ्योऽहरन्नृपतयो बलिमध्वरे ते ॥८॥

यः सन्निधाः अहं खाण्डवं अग्नये अदां इन्द्रं च सामर गणं तरसा विजित्य लब्धा सभा मयकृता अद्भुत शिल्प माया दिग्भ्यः आहरन् नृपतयः बलिं अध्वरे ते ॥ ८ ॥

यत्	जिनके	**अद्भुतशिल्प**	अद्भुत शिल्प एवं
सन्निधाः	सान्निध्यसे	**माया**	मायावाली
अहं	मैंने	**सभा**	सभा
तरसा	वेगपूर्वक	**लब्धा**	प्राप्त किया (एवं)
सामरगणं	देवताओंके समूहके साथ	**ते**	आपके
		अध्वरे	राजसूय यज्ञमें
इन्द्रं	इन्द्रको	**दिग्भ्यः**	दिशाओंसे
च	भी	**नृपतयः**	राजा लोग
विजित्य	जीतकर	**बलिं**	उपहार
मयकृता	मय दानवकी बनायी	**आहरन्**	लेकर आये ॥८॥

यत्तेजसा नृपशिरोऽङ्घ्रिमहन्मखार्थे
आर्योऽनुजस्तव गजायुतसत्त्ववीर्यः ।
तेनाहृताः प्रमथनाथमखाय भूपा
यन्मोचितास्तदनयन् बलिमध्वरे ते ॥९॥

यत् तेजसा नृपशिरः अङ्घ्रि अहन् मखार्थे आर्यः अनुजः तव गज अयुत सत्त्ववीर्यः तेन आहृताः प्रमथनाथ मखाय भूपा यत् मोचिताः तत् अनयन् बलिं अध्वरे ते ॥ ९ ॥

यत्	जिनके	**अहन्**	मार दिया
तेजसा	तेजसे	**प्रमथनाथ**	महाभैरवकी
अयुत	दस हजार	**मखाय**	बलि देकर यज्ञ करनेके लिए
गज	हाथीकी	**तेन**	उस (जरासन्ध) के द्वारा
सत्त्व	शक्ति (एवं)	**आहृताः**	पकड़कर लाए गये
वीर्यः	पराक्रमवाले	**भूपा**	राजाओंको
तव	आपके	**यत्**	क्योंकि
अनुजः	छोटे भाई	**मोचिताः**	(बन्दीगृहसे) छुड़ा दिया
आर्यः	आर्य भीमसेनजीने	**तत्**	अतः
नृप	राजाओंके	**ते**	(वे) आपके
शिरः	सिरोंपर	**अध्वरे**	राजसूय यज्ञमें
अङ्घ्रि	पैर रखनेवाले (जरासन्ध) को	**बलिं**	उपहार
मखार्थे	राजसूय यज्ञ (की दिग्विजय) के लिए	**अनयन्**	ले आये ॥९॥

पत्न्यास्तवाधिमखक्लृप्तमहाभिषेक-
श्लाघिष्ठचारुकबरं कितवैः सभायाम् ।
स्पृष्टं विकीर्य पदयोः पतिताश्रुमुख्या
यस्तत्स्त्रियोऽकृत हतेशविमुक्तकेशाः ॥१०॥

पत्न्याः तव अधिमख क्लृप्त महाभिषेक श्लाघिष्ठ चारु कवरं कितवैः सभायां स्पृष्टं विकीर्य पदयोः पतित अश्रुमुख्या यः तत् स्त्रियः अकृत हत ईश विमुक्त केशाः ॥ १० ॥

अधिमख	राजसूय यज्ञके	**क्लृप्त**	पवित्र
महाभिषेक	महाभिषेकसे	**श्लाघिष्ठ**	प्रशंसनीय

चारु	सुन्दर
कवरं	जूड़ेको
कितवैः	धूर्तोंने जब
सभायां	सभामें
स्पृष्टं	छू (पकड़) लिया
विकीर्य	(उन केशोंको) फैलाकर
अश्रुमुख्या	मुखपर आँसू बहाती
पदयोः	चरणोंपर
पतिता	गिरी
तव	आपकी
पत्न्याः	पत्नी द्रौपदीके लिए
यः	जिन्होंने
तत्	उन (धूर्तों) की
स्त्रियः	स्त्रियोंको
हतेश	पतिके मारे जानेसे
विमुक्त	खुले हुए
केशाः	केशोंवाली
अकृत	बना दिया ॥१०॥

यो नो जुगोप वन एत्य दुरन्तकृच्छ्राद्
दुर्वाससोऽरिरचितादयुताग्रभुग् यः ।
शाकान्नशिष्टमुपयुज्य यतस्त्रिलोकीं
तृप्तामंमंस्त सलिले विनिमग्नसङ्घः ॥११॥

यः नः जुगोप वन एत्य दुरन्त कृच्छ्रात् दुर्वाससः अरि रचितात् अयुत अग्र भुक् यः शाकात् अशिष्टं उपयुज्य यतः त्रिलोकीं तृप्तां अमंस्त सलिले विनिम प्रसंघः ॥ ११ ॥

यः	जिन्होंने
वन	वनमें
एत्य	आकर
नः	हम लोगोंकी
अरि	शत्रु (दुर्योधन) द्वारा
रचितात्	उत्पन्न किए गए
दुरन्त	जिसका अन्त शक्य नहीं था उस
कृच्छ्रात्	संकटसे
जुगोप	रक्षाकी,
अयुत	दस हजार (शिष्योंको साथ बैठाकर)
अग्र	(उनसे) पहिले
भुक्	भोजन करनेवाले
दुर्वाससः	दुर्वासाजीको
सलिले	(स्नान करते समय) जलमें
प्रसङ्घः	(उनका वह) संघ
विनिम	विलय होगया (भाग गया)
यः	(क्योंकि) जिन्होंने
शाकात्	शाक भोजनसे
अशिष्ट	बचे हुए (पत्ते) को
उपयुज्य	उपयोग (भोजन) करके

त्रिलोकीं	त्रिलोकीको	अमंस्त	मान लिया ॥११॥
तृप्तां	तृप्त		

यत्तेजसाथ भगवान् युधि शूलपाणि-
र्विस्मापितः सगिरिजोऽस्त्रमदान्निजं मे ।
अन्येऽपि चाहममुनैव कलेवरेण
प्राप्तो महेन्द्रभवने महदासनार्धम् ॥१२॥

यत् तेजसा अथ भगवान् युधि शूलपाणिः विस्मापितः स गिरिजः अस्त्रं अदात् निजं मे अन्ये अपि च अहं अमुनैव कलेवरेण प्राप्तः महेन्द्र भवने महत् आसनार्धम् ॥ १२ ॥

अथ	तदन्तर	च	और
यत्	जिनके	अन्ये	दूसरोंने
तेजसा	तेजसे	अपि	भी (अपने अस्त्र दिये)
युधि	युद्धमें	अहं	मैं
भगवान्	भगवान	अमुनैव	इसी
शूलपाणिः	त्रिशूलहस्त शंकरजी	कलेवरेण	शरीरसे
स गिरिजः	पार्वतीजीके साथ	महेन्द्रभवनं	इन्द्रके भवनमें
विस्मापितः	विस्मयमें डाल दिये जानेपर	महत्	महान
		आसनार्धं	इन्द्रासनके आधे भागको
मे	मुझे	प्राप्तः	प्राप्त कर सका ॥१२॥
निजं	निजी		
अस्त्रं	अस्त्र पाशुपत		
अदात्	दिये		

तत्रैव मे विहरतो भुजदण्डयुग्मं
गाण्डीवलक्षणमरातिवधाय देवाः ।
सेन्द्राः श्रिता यदनुभावितमाजमीढ
तेनाहमद्य मुषितः पुरुषेण भूम्ना ॥१३॥

तत्रैव मे विहरतः भुजदण्डं युग्मं गाण्डीव लक्षणं अराति वधाय देवाः सेन्द्राः श्रिता यत् आनुभावितं आजमीढ तेन अहं अद्य मुषितः पुरुषेण भूम्ना ॥ १३ ॥

यत्	जिनकी
आनुभावितं	कृपासे प्रभावित
मे	मुझसे
तत्रैव	वहीं (स्वर्गमें)
विहरतः	विहार करते समय
युग्मं	दो
भुजदण्डं	भुजाओंवाले
गाण्डीव लक्षणं	गाण्डीवधारीका
अराति	शत्रुओंके
वधाय	वधके लिए
सेन्द्राः	इन्द्रके साथ
देवाः	देवताओंने
श्रिता	आश्रय लिया
आजमीढ	महाराज (युधिष्ठिर)
तेन	उन
भूम्ना	सर्वव्यापक
पुरुषेण	पुरुषके द्वारा
अहं	मैं
मुषितः	ठगा गया हूँ ॥१३॥

यद्बान्धवः कुरुबलाब्धिमनन्तपार-
मेको रथेन ततरेऽहमतार्यसत्त्वम् ।
प्रत्याहृतं बहु धनं च मया परेषां
तेजास्पदं मणिमयं च हृतं शिरोभ्यः ॥१४॥

यत् वान्धवः कुरु बल अब्धि अनन्तपारं एकः रथेन ततरे अहं अतार्य सत्त्वं प्रत्याहृतं बहुधनं च मया परेषां तेज आस्पदं मणिं अयं च हृतं शिरोभ्यः ॥ १४ ॥

यत्	जिनके
वान्धवः	सहायक (सारथि) होनेसे
कुरु	कौरवोंकी
बल	सेनारूप
अनन्तपारं	अनन्त पारवाले
अतार्यसत्त्वं	जिसमें पार न करने देनेवाले पराक्रमी थे
अब्धि	(ऐसे) समुद्रको
एकः	अकेले
रथेन	रथके द्वारा
अहं	मैंने
ततरे	पार कर लिया,
च	तथा
मया	मेरे द्वारा
परेषां	शत्रुओंका
बहुधनं	बहुत-सा धन
प्रत्याहृतं	छीन लाया गया,
च	एवं
अयं	यह
मणिं	मणि
तेजस्पदं	तेजस्वी (अश्वत्थामा) के
शिरोभ्यः	सिरमेंसे
हृतं	छीना ॥१४॥

यो भीष्मकर्णगुरुशल्यचमूष्वदभ्र-
राजन्यवर्यरथमण्डलमण्डितासु ।
अग्रेचरो मम विभो रथयूथपाना-
मायुर्मनांसि च दृशा सह ओज आर्च्छत् ॥१५॥

यः भीष्म कर्ण गुरु शल्य चमूषु अदभ्र राजन्यवर्य रथमंडल मंडितासु अग्रेचरः मम विभो रथयूथपानां आयुः मनांसि च दृशा सह ओज आर्च्छत् ॥ १५ ॥

विभो	प्रभो !	**अग्रेचरः**	आगे चलने
अदभ्र	अदम्य	**रथ यूथपानां**	रथ सेनाके यूथपतियोंकी
भीष्म	भीष्म	**आयुः**	आयु
कर्ण	कर्ण	**मनांसि**	मन
गुरु	द्रोणाचार्य	**च**	और
शल्य	शल्यादि	**दृशा**	दृष्टिको
राजन्यवर्य	श्रेष्ठ राजाओंके	**ओजः**	ओज
रथमंडल	रथ समूहोंसे	**सह**	के साथ
मंडितासु	सुशोभित	**आर्च्छत**	छीन लिया करते थे ॥१५॥
चमूषु	सेनामें		
यः	जो		
मम	मेरे		

यद्दोष्षु मा प्रणिहितं गुरुभीष्मकर्ण-
नप्तृत्रिगर्तशलसैन्धवबाह्लिकाद्यैः ।
अस्त्राण्यमोघमहिमानि निरूपितानि
नो पस्पृशुर्हरिदासमिवासुराणि ॥१६॥

यत् दोःषु मां प्रणिहितं गुरु भीष्म कर्ण नप्तृ त्रिगर्तशल सैन्धव बाह्लिकाद्यैः अस्त्राणि अमोघ महिमानि निरूपितानि न उपस्पृशुः नृहरिदासं इव असुराणि ॥ १६ ॥

यत्	जिनकी
दोःषु	भुजाओंके
प्रणिहितं	आश्रयमें स्थित
मां	मुझे
गुरु	द्रोणाचार्य
भीष्म	भीष्म
कर्ण	कर्ण
नप्तृ	भूरिश्रवा
त्रिगर्त	सुशर्मा
शल	शल्य
सैन्धव	जयद्रथ
वाह्लिकाद्यैः	वाह्लीक आदि (अश्वत्थामा) के
अमोघ	अव्यर्थ
महिमानि	महिमावाले
निरूपितानि	वर्णित
अस्त्राणि	दिव्यास्त्र
उपस्पृशुः	छूतक सके
न	नहीं
नृहरि	नृसिंह भगवानके
दास	दास प्रह्लादको
असुराणि	असुरों
इव	के समान ॥१६॥

सौत्ये वृतः कुमतिनाऽऽत्मद ईश्वरो मे
यत्पादपद्ममभवाय भजन्ति भव्याः ।
मां श्रान्तवाहमरयो रथिनो भुविष्ठं
न प्राहरन् यदनुभावनिरस्तचित्ताः ॥१७॥

सौत्ये वृतः कुमतिना आत्मद ईश्वरः मे यत् पादपद्म अभवाय भजन्ति भव्याः मां श्रान्तवाहं रथिनः भुविष्ठं न प्राहरन् यत् अनुभाव निरस्त चित्ताः ॥ १७ ॥

यत्	जिनके
पादपद्म	चरणकमलोंका
भव्यः	महापुरुष
अभवाय	आवागमनसे छूटनेके लिए
भजन्ति	भजन करते हैं
मे	मुझ
कुमतिना	दुर्बुद्धिने
आत्मद	अपने आपको दे देनेवाले
ईश्वरः	उन ईश्वरको
सौत्ये	सारथि
वृतः	बनाया
यत्	जिनके
अनुभाव	प्रभावसे
निरस्त	निरस्त
चित्ताः	चित्तवाले
रथिनः	रथियोंने
श्रान्तवाहं	थके अश्वोंवाले

भुविष्ठं	पृथ्वीपर खड़े	न प्राहरन्	प्रहार नहीं
मां	मुझपर		किया ॥१७॥

नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि
हे पार्थहेऽर्जुन सखे कुरुनन्दनेति ।
संजल्पितानि नरदेव हृदिस्पृशानि
स्मर्तुर्लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य ॥१८॥

नर्माणि उदार रुचिर स्मित शोभितानि हे पार्थ हे अर्जुन सखे कुरुनन्दन इति संजल्पितानि नरदेव हृदि स्पृशानि स्मर्तुः लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य ॥ १८ ॥

नरदेव	राजन्	**कुरुनन्दन**	कुरुनन्दन
माधवस्य	माधवके	**इति**	इस प्रकार
उदार	उदार	**संजल्पितानि**	कहकर बातचीतके ढंगको
रुचिर	सुन्दर	**स्मर्तुः**	स्मरण करनेवाला
स्मित	मुस्कराहटसे	**मम**	मेरा
शोभितानि	शोभित	**हृदयं**	हृदय
नर्माणि	परिहास तथा	**लुठन्ति**	जैसे लुढ़का (मूर्छित हुआ) जा रहा है ॥१८॥
हे पार्थ	हे पार्थ		
हे अर्जुन	हे अर्जुन		
सखे	सखा		

शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादि-
ष्वैक्याद्वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्धः ।
सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं
सेहे महान्महितया कुमतेरघं मे ॥१९॥

शय्या आसन अटन विकत्थन भोजनादिषु ऐक्यात् वयस्य ऋतवान् इति विप्रलब्धः सख्युः सखेव पितृवत् तनयस्य सर्वं सेहे महान् महितया कुमतेः अघं मे ॥ १९ ॥

शय्या	शयन करतेमें	**अटन**	घूमनेमें
आसन	बैठनेमें	**विकत्थन**	गप्प लड़ानेमें

भोजनादिषु	भोजनादिमें
ऐक्यात्	एक साथ रहनेके कारण
वयस्य	मित्र !
ऋतवान्	तुम सच्चे हो ?
इति	इस प्रकार
विप्रलब्धः	ब्यंग किए जानेपर भी
सखेव	सखाकी भांति
सख्युः	सखाका
पितृवत्	पिताकी भांति
तनयस्य	पुत्रका
मे	मुझ
कुमतेः	कुबुद्धिका
सर्वं	सब
अघं	अपराध
महान्	उन महान्ने
महितया	अपनी महानतासे
सेहे	सहन किया ॥१९॥

सोऽहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन
सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः ।
अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमङ्ग रक्षन्
गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि ॥२०॥

सः अहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः अध्वनि उरुक्रम परिग्रहं अङ्ग रक्षन् गोपैः असद्भिः अबलेव विनिर्जितः अस्मि ॥ २० ॥

नृपेन्द्र	नृपेन्द्र !
सः	वही
अहं	मैं
पुरुषोत्तमेन	पुरुषोत्तम
प्रियेण	प्रिय
सख्याः	सखा
सुहृदेन	सुहृदसे
रहितः	रहित होकर
हृदयेन	हृदयसे
शून्यः	सूना होगया हूँ
अध्वनि	मार्गमें
अङ्ग	उन प्रियकी
परिग्रहं	पत्नियोंकी
रक्षन्	रक्षा करता हुआ
असद्भिः	दुष्ट
गोपैः	गोपों द्वारा
अबलेव	स्त्रीकी भांति
विनिर्जितः	जीत लिया गया
अस्मि	हूँ ॥२०॥

तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते
सोऽहंरथी नृपतयो यत आनमन्ति ।
सर्वं क्षणेन तदभूदसदीशरिक्तं
भस्मन् हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ॥२१॥

तत् वै धनुः त इषवः स रथः हयाः ते सः अहंरथी नृपतयः यत आनमन्ति सर्वं क्षणेन तत् असत् ईश रिक्तं भस्मन् हुतं कुहक राद्धं इव उप्तं उष्याम् ॥२१॥

वै	निश्चय	**ईश**	उन समर्थसे
तत्	वही	**रिक्तं**	रहित होनेपर
धनुः	धनुष (गाण्डीव) है	**तत्**	वह
त	वही	**सर्वं**	सब
इषवः	वाण हैं	**क्षणेन**	एक क्षणमें
स	वही	**असत्**	असत् (सारहीन)
रथः	रथ (नन्दिघोष) है	**अभूत्**	होगया
हयाः	घोड़े भी	**भस्मन्**	राखमें
ते	वही हैं	**हुतं**	आहुतिके समान,
सः	वही	**कुहक**	कपटपूर्वक
रथी	रथी	**राद्धं**	सेवाके समान,
अहं	मैं हूँ	**उष्यां**	ऊसरमें
नृपतयः	राजा लोग	**उप्तं**	बीज बोनेके
यत	जिसे	**इव**	समान ॥२१॥
आनमन्ति	नमस्कार करते थे		

राजंस्त्वयाभिपृष्टानां सुहृदां नः सुहृत्पुरे ।
विप्रशापविमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिर्मिथः ॥२२॥

राजन् त्वया अभिपृष्टानां सुहृदां नः सुहृत् पुरे विप्रशाप विमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिः मिथः ॥२२॥

राजन्	राजन्	**सुहृदां**	सुहृदोंमें
नः	हमारे	**विप्रशाप**	ब्राह्मणोंके शापसे
सुहृत्	सुहृदोंके	**विमूढानां**	मोहग्रस्त हुए
पुरे	नगरमें	**मिथः**	परस्पर एक दूसरेको
त्वया	आपके द्वारा	**मुष्टिभिः**	घूसोंसे
अभिपृष्टानां	पूछे गये	**निघ्नतां**	मारते हुए ॥२२॥

वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथितचेतसाम् ।
अजानतामिवान्योन्यं चतुःपञ्चावशेषिताः ॥२३॥

वारुणीं मदिरां पीत्वा मदा उन्मथित चेतसां अजानतां इव अन्योन्यं चतुः पञ्च अवशेषिताः ॥२३॥

वारुणीं:	वारुणी	**अन्योन्यं**	एक दूसरेको
मदिरां	मदिरा	**अजानता**	अपरिचित
पीत्वा	पीवर	**इव**	के समान
मदा	नशेसे	**चतुः**	चार
उन्मथित	मनवाले हुए	**पञ्च**	पाँच
चेतसां	चित्तवाले	**अवशेषिताः**	बच गये हैं ॥२३॥

प्रायेणैतद् भगवत ईश्वरस्य विचेष्टितम् ।
मिथो निघ्नन्ति भूतानि भावयन्ति च यन्मिथः ॥२४॥

प्रायेण एतद् भगवतः ईश्वरस्य विचेष्टितं मिथः निघ्नन्ति भूतानि भावयन्ति च यन् मिथः ॥२४॥

प्रायेण	प्रायः	**यन्**	जिनकी
एतद्	यह	**मिथः**	परस्पर
ईश्वरस्य	सर्व संचालक	**भावयन्ति**	रक्षा करते हैं
भगवतः	भगवानकी	**च**	उन्हींको
विचेष्टितं	विशेष क्रीड़ा है कि	**मिथः**	परस्पर
भूतानि	प्राणी	**निघ्नन्ति**	मारते हैं ॥२४॥

जलौकसां जले यद्वन्महान्तोऽदन्त्यणीयसः ।
दुर्बलान्बलिनो राजन्महान्तो बलिनो मिथोः ॥ ५॥

जल ओकसां जले यद्वत् महान्तः अदन्ति अणीयसः दुर्बलान् बलिनः राजन् महान्तः बलिनः मिथ ॥२५॥

राजन्	राजन्	**ओकसां**	रहनेवालोंमें
यद्वत	जैसे	**महान्तः**	बड़े (जलचर)
जल	जलमें	**अणीयसः**	छोटोंको

अदन्ति	खा लेते हैं (ऐसे ही)	**बलिनः**	बलवान
बलिनः	बलवान	**मिथः**	परस्पर(लड़ते मरते
दुर्बलान्	दुर्बलोंको (और)		हैं ॥२५॥
महान्तः	महान्		

एवं बलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान् विभुः ।
यदून् यदुभिरन्योन्यं भूभारान् संजहार ह ॥२६॥

एवं बलिष्ठैः यदुभिः महद्भिः इतरान् विभुः यदून् यदुभिः अन्योन्यं भूभारान् संजहार ह ॥२६॥

एवं	इसी प्रकार	**ह**	और
विभुः	समर्थ (श्रीकृष्ण)ने	**यदून्**	यदुवंशियोंको
महद्भिः	महान बलवान	**यदुभिः**	यदुवंशियों द्वारा
यदुभिः	यदुवंशियों द्वारा	**अन्योन्यं**	एक दूसरे द्वारा ही
इतरान्	दूसरे	**संजहार**	विनाश करवा दिया
भूभारान्	पृथ्वीके भार रूप (राजाओं)को		॥२६॥

देशकालार्थयुक्तानि हृत्तापोपशमानि च ।
हरन्ति स्मरतश्चित्तं गोविन्दाभिहितानि मे ॥२७॥

देश काल अर्थ युक्तानि हृत् ताप उपशमानि च हरन्ति स्मरः चित्तं गोविन्द अभिहितानि मे ॥२७॥

देश	स्थान	**गोविन्द**	गोविन्दके
काल	समय	**अभिहितानि**	उपदेश
अर्थ	प्रयोजनसे	**स्मरतः**	स्मरण करनेपर
युक्तानि	संयुक्त	**मे**	मेरा
च	तथा	**चित्तं**	चित्त
हृत्ताप	हृदयके तापको	**हरन्ति**	खींच लेते हैं ॥२७॥
उपशमानि	शान्त कर देनेवाला		

सूत उवाच-

एवं चिन्तयतो जिष्णोः कृष्णपादसरोरुहम् ।
सौहार्देनातिगाढेन शान्ताऽऽसीद्विमला मतिः ॥२८॥

एवं चिन्तयतः जिष्णोः कृष्ण पाद सरोरुहं सौहार्द्रेन अति गाढेन शान्ता आसीत् विमला मतिः ॥ २८ ॥

एव	इस प्रकार	**जिष्णोः**	अर्जुनकी
अति गाढेन	अत्यन्त प्रगाढ़	**मतिः**	बुद्धि
सौहार्द्रेन	सुहृदतापूर्वक	**शान्ता**	शान्त
कृष्ण	श्रीकृष्णके	**विमला**	निर्मल
पादसरोरुहं	चरणकमलोंका	**आसीत्**	होगयी ॥२८॥
चिन्तयतः	चिन्तन करते हुए		

वासुदेवाङ्घ्र्यनुध्यानपरिबृंहितरंहसा ।
भक्त्या निर्मथिताशेषकषायधिषणोऽर्जुनः ॥२९॥

वासुदेव अंघ्रि अनुध्यान परिबृंहित रंहसा भक्त्या निर्मथित अशेष कषाव धिषणः अर्जुनः ॥ २९ ॥

वासुदेव	वासुदेवके	**अर्जुन**	अर्जुनकी
अंघ्रि	चरणोंकों	**धिषणः**	बुद्धिका
अनुध्यान	बार बार ध्यानके	**अशेष**	सम्पूर्ण
रंहसा	वेगसे	**कषाय**	मल
परिबृंहित	संयुक्त	**निर्मथितं**	(रगड़कर)स्वच्छ कर
भक्त्या	भक्तिके द्वारा		दिया गया ॥२९॥

गीतं भगवता ज्ञानं यत् तत् सङ्ग्राममूर्धनि ।
कालकर्मतमोरुद्धं पुनरध्यगमद्विभुः ॥३०॥

गीतं भगवता ज्ञानं यत् तत् संग्राम मूर्धनि काल कर्म तमः रुद्धं पुनः अध्यगमत् विभुः ॥ ३० ॥

भगवता	भगवान श्रीकृष्ण द्वारा
संग्राम	महाभारत युद्धके
मूर्धनि	प्रारम्भमें
यत्	जो
ज्ञानं	ज्ञान
गीतं	गाया (सुनाया) था
तत्	वह
काल	समय (अनुकूल न होने) से
कर्म	(युद्ध जैसे) कर्म (में लगने) से
तमः	प्रमादसे
रुद्धं	रुक (विस्मृत) होगया था
विभुः	(वह) प्रबल (ज्ञान)
पुनः	फिर
अध्यगमत्	स्मरण आगया ॥३०॥

विशोको ब्रह्मसम्पत्त्या संछिन्नद्वैतसंशयः ।
लीनप्रकृतिनैर्गुण्यादलिङ्गत्वादसम्भवः ॥३१॥

विशोकः ब्रह्म सम्पत्त्या संछिन्न द्वैत संशयः लीन प्रकृति नैर्गुण्यात् अलिंगत्वात् असम्भवः ॥ ३१ ॥

ब्रह्म	ब्रह्म
सम्त्या	सम्पत्ति (ब्रह्मावस्थान)होनेसे
विशोकः	शोकरहित होगये
द्वैत	द्वैतजन्य
संशयः	संशय
संच्छिन्नः	कट गया ।
प्रकृतिः	अविद्या
लीनः	विलीन होगयी ।
नैर्गुण्यात्	गुणातीत होनेसे
अलिंगत्वात्	कारण शरीर भंग हो जानेसे
असंभवः	जन्म-मरणसे छूट गये ॥३१॥

निशम्य भगवन्मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च ।
स्वःपथाय मतिं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ॥३२॥

निशम्य भगवन् मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च स्वः पथाय मतिं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ॥ ३२ ॥

भगवन्	भगवान श्रीकृष्णके
मार्गं	मार्ग (स्वधाम गमन) को
च	और
यदुकुलस्य	यदुकुलके
संस्थां	विनाशको
निशम्य	सुनकर
निभृतात्मा	निश्चल बुद्धि

युधिष्ठिरः	युधिष्ठिरने	मतिं	निश्चय
स्वःपथाय	स्वर्गारोहणका	चक्रे	किया ॥३२॥

पृथाप्यनुश्रुत्य धनञ्जयोदितं
नाशं यदूनां भगवद्गतिं च ताम् ।
एकान्तभक्त्या भगवत्यधोक्षजे
निवेशितात्मोपरराम संसृतेः ॥३३॥

पृथा अपि अनुश्रुत्य धनंजय उदितं नाशं यदूनां भगवत् गतिं च तां एकान्त भक्त्या भगवति अधोक्षजे निवेशित आत्मा उपरराम संसृते ॥३३॥

पृथा	कुन्तीदेवी	एकान्त	अनन्य
अपि	ने भी	भक्त्या	भक्तिसे
धनञ्जय	अर्जुन द्वारा	भगवति	भगवान
उदितं	कहा गया	अधोक्षजे	हृषीकेशमें
यदूनां	यदुवंशियोंका	आत्मा	चित्त
नाशं	विनाश	निवेशित	लगाकर
च	और	संसृतेः	जन्म-मृत्यु रूप संसारसे
भगवत्	भगवानकी		
तां	उस	उपरराम	उपरत (मुक्त) होगयीं ॥३३॥
गतिं	गतिको		
अनुश्रुत्य	सुनकर		

ययाहरद् भुवो भारं तां तनुं विजहावजः ।
कण्टकं कण्टकेनेव द्वयं चापीशितुः समम् ॥३४॥

ययाहरत् भुवः भारं तां तनुं विजहाव अजः कण्टकं कण्टकेन इव द्वय च अपि ईशुतिः समम् ॥ ३४ ॥

कण्टकं	काँटेको	भुवः	पृथ्वीका
कण्टकेन	काँटेसे (निकालने)के	भारं	भार
इव	समान	अहरत्	हरण किया
ययाहरत्	जिसके द्वारा	अजः	अजन्मा भगवानने

तां	उस	द्वय	दोनों ही*
तनुं	शरीरको*	ईशुतः	सर्वेश्वरके लिए
अपि	भी	समं	समान हैं ॥३४॥
विजहाव	छोड़ दिया		

यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्याद् यथा नटः ।
भूभारः क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरम् ॥३५॥

यथा मत्स्यादि रूपाणि धत्ते जह्यात् यथा नटः भूभारः क्षपितः येन जहौ तत् च कलेवरम् ॥ ३५ ॥

यथा	जैसे	येन	जिस रूपसे
मत्स्यादि	मत्स्य आदि (कूर्म, वाराह, वामनादि)	भूभारः	पृथ्वीका भार
		क्षपितः	दूर किया
रूपाणि	रूप	तत्	वह
धत्ते	धारण करते हैं और	कलेवरं	कलेवर■
जह्यात्	छोड़ देते हैं	च	भी
यथा	जैसे	जहौ	छोड़ दिया ॥३५॥
नटः	नट (अनेक वेश बनाता छोड़ता है)		

यदा मुकुन्दो भगवानिमां महीं
जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः ।
तदाहरेवाप्रतिबुद्धचेतसा-
मधर्महेतुः कलिरन्ववर्तत ॥३६॥

---

* आचार्यगण यहाँ 'तनुं' का अर्थ यदुवंशियोंका शरीर करते हैं। दोनोंका अर्थ करते हैं—भू भार भूत राजागण तथा यदुवंशी ये दोनों ईश्वरके लिए समान ही हैं। यह अर्थ इसलिए करना पड़ता है; क्योंकि श्रीकृष्णका श्रीविग्रह नित्य है। उसे छोड़ना सम्भव नहीं है।

■ श्रीकृष्ण भक्ति सम्प्रदायोंमें श्रीकृष्णका नन्दनन्दन रूप नित्य माना जाता है और चतुर्भुज वासुदेव रूप भूमा पुरुषका अंशा भूभार इस चतुर्भुज रूपसे दूर करके इस रूपको छोड़ दिया।

यदा मुकुन्दः भगवान् इमां महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीयः सत्कथः तदा अहः एव अतिप्रतिबुद्ध चेतसां अधर्म हेतुः कलिः अन्ववर्तत ॥३६॥

यदा	जब	**तदा**	उस
सत्कथः	जिनकी सत् कथा	**अहः एव**	दिनसे ही
श्रवणीयः	सुनने योग्य हैं (उन)	**अप्रतिबुद्ध**	विचारहीन
भगवान्	भगवान	**चेतसां**	चित्तवालोंको
मुकुन्दः	मुकुन्दने	**अधर्म**	अधर्ममें
स्व	अपने	**हेतुः**	(लगनेका) कारण
तन्वा	शरीरसे	**कलिः**	कलियुग
इमां	इस	**अन्ववर्तत**	प्रभावमें आगया ॥३६॥
महीं	पृथ्वीको		
जहौ	छोड़ा		

युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणं बुधः
पुरे च राष्ट्रे च गृहे तथाऽऽत्मनि ।
विभाव्य लोभानृतजिह्महिंसना-
द्यधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ॥३७॥

युधिष्ठिरः तत् परिसर्पणं बुधः पुरे च राष्ट्रे च गृहे तथा आत्मनि विभाव्य लोभ अनृत जिह्म हिंसनात् हि अधर्म चक्रं गमनाय पर्यधात् ॥३७॥

युधिष्ठिरः	राजा युधिष्ठिरने	**च**	एवं
हि	क्योंकि	**गृहे**	घरमें
तत्	उस (कलियुग) का	**तथा**	तथा
परिसर्पणं	फैलाव	**आत्मनि**	अपने लोगोंमें
लोभ	लोभ	**बुधः**	जान लिया
अनृत	झूठ	**अधर्म**	अधर्मका
जिह्म	कपट	**चक्रं**	चक्र (चल पड़ा) था
हिंसनात्	हिंसासे	**गमनाय**	(उससे) निकल चलनेका
विभाव्य	अनुमान कर लिया	**पर्यधात्**	दृढ़ निश्चय किया ॥३७॥
पुरे	नगरमें		
च	तथा		
राष्ट्रे	राज्यमें		

स्वराट् पौत्रं विनयिनमात्मनः सुसमं गुणैः ।
तोयनीव्या पतिं भूमेरभ्यषिञ्चद्गजाह्वये ॥३८॥

स्वराट् पौत्रं विनयिनं आत्मनः सुसमं गुणैः तोयनीव्याः पतिं भूमेः अभ्यसिञ्चत् गजाह्वये ॥ ३८ ॥

विनयिनं	विनयी	**भूमेः**	पृथ्वीका
गुणैः	गुणोंमें	**पतिं**	स्वामी (बनाते)
आत्मनः	अपने	**स्वराट्**	सम्राट् पदपर
सुसमं	भली प्रकार समान	**गजाह्वये**	हस्तिनापुरमें
पौत्रं	पौत्र परीक्षित्को	**अभ्यसिञ्चत्**	अभिषेक कर दिया ॥३८॥
तोयनीव्या	समुद्र पर्यन्त		

मथुरायां तथा वज्रं शूरसेनपतिं ततः ।
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमग्नीनपिबदीश्वरः ॥३९॥

मथुरायां तथा वज्रं शूरसेन पतिं ततः प्राजापत्यं निरूप्य ईष्टिं अग्नीन् अपिबत् ईश्वरः ॥ ३९ ॥

तथा	इसी प्रकार	**ईश्वरः**	समर्थ (युधिष्ठिर) ने
मथुरायां	मथुरामें	**प्राजापत्य**	प्राजापत्य
शूरसेन	शूरसेनदेशके	**ईष्टिं**	यज्ञ
पतिं	स्वामीके रूपमें	**निरूप्य**	करके
वज्रं	(प्रद्युम्नके पौत्र) वज्रनाभका (अभिषेक किया)	**अग्नीन्**	अग्नियोंको
		अपिवत्	* पीलिया (अपनेमें ही न्यास कर लिया) ३९॥
ततः	तदनन्तर		

विसृज्य तत्र तत् सर्वं दुकूलवलयादिकम् ।
निर्ममो निरहंकारः संछिन्नाशेषबन्धनः ॥४०॥

---

* गृहस्थको सदा अग्निहोत्र करना चाहिए । गृहस्थ धर्म त्यागकर संन्यास या वीरसंन्यास लेते समय अग्निका त्याग करनेकी यह विशेष विधि है ।

विसृज्य तत्र तत् सव दुकूल वलय आदिकं निर्ममः निरहंकार संछिन्नः अशेष बन्धनः ॥ ४० ॥

तत्र	वहीं	**विसृज्य**	छोड़कर
तत्	वह	**निर्ममः**	ममता रहित
सव	सब	**निरहंकारः**	अहंकार हीन
दुकूल	उत्तरीय (बहुमूल्य वस्त्रादि)	**अशेष**	सम्पूर्ण
		बन्धनः	बन्धनोंको
वलय	कंकण	**संछिन्नः**	काटकर ॥४०॥
आदिकं	आदि आभूषण		

वाचं जुहाव मनसि तत्प्राण इतरे च तम् ।
मृत्यावपानं सोत्सर्गं तं पञ्चत्वे ह्यजोहवीत् ॥४१॥

वाचं जुहाव मनसि तत् प्राण इतरे च तं मृत्याः अपानं स उत्सर्गं तं पञ्चत्वे हि अजः हवीत् ॥ ४१ ॥

वाचं	वाणीका	**मृत्याः**	मृत्युमें (मृत्यु पर्यन्त इनका भी त्याग कर दिया)
मनसि	मनमें		
जुहाव	लय कर लिया (मौन होगये)	**तं**	उस (मृत्युको)
		पञ्चत्वे	(पंचभूतात्मक देहकी मृत्यु होती है–इस निश्चयसे) पञ्चत्वमें
तत्	उसे		
प्राण	प्राणमें (प्राण संयम करके मनको स्थिर कर दिया)		
		हि	क्योंकि
		अजः	आत्मा अजन्मा है
इतरे	दूसरी इन्द्रियोंको	**हवीत्**	(मृत्युका भी) हवन (त्याग) कर दिया ॥४१॥
च	भी		
तं	उसी प्राणमें		
अपानं	अपान वायुको		
स उत्सर्गं	मल-मूत्रोत्सर्गके साथ		

त्रित्वे हुत्वाथ पञ्चत्वं तच्चैकत्वेऽजुहोन्मुनिः ।
सर्वमात्मन्यजुहवीद्ब्रह्मण्यात्मानमव्यये ॥४२॥

त्रित्वे हुत्वा अथ पञ्चत्वं तत् च एकत्वे अजुहोत् मुनिः सर्वात्मनि ब्रह्मणि आत्मानं आत्मनि अव्यये ॥ ४२ ॥

मुनिः	मननशील (युधिष्ठिर) ने	**अजुहोत्**	हवन किया।
त्रित्वे	त्रिगुणात्मक प्रकृतिमें	**सर्वात्मनि**	सर्वात्मा
पञ्चत्वं	(महाभूतोंकी) पंचात्मकताको	**ब्रह्मणि**	ब्रह्म रूप
तत्	उस (त्रिगुणत्व) को	**आत्मानं**	अपने आप
च	भी	**अव्यये**	निर्विकार
एकत्वे	एकत्वमें	**आत्मनि**	परमात्मासे
		अजुहोत्	हवन कर (मिला) दिया ॥४२॥

चीरवासा निराहारो बद्धवाङ् मुक्तमूर्धजः ।
दर्शयन्नात्मनो रूपं जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥४३॥

चीरवासा निराहारः बद्धवाङ् मुक्तमूर्धजः दर्शयन् आत्मनः रूपं जड उन्मत्त पिशाचवत् ॥ ४३ ॥

चीरवासा	कौपीनधारी	**रूपं**	रूप
निराहारः	निराहार	**जड**	मूर्ख
बद्धवाङ्	मौन	**उन्मत्त**	पागल
मूर्धजः	सिरके केश	**पिशाचवत्**	प्रेत लगेके समान
मुक्त	खोले	**दर्शयन्**	दिखलाते ॥४३॥
आत्मनः	अपना		

अनपेक्षमाणो निरगादशृण्वन्बधिरो यथा ।
उदीचीं प्रविवेशाशां गतपूर्वां महात्मभिः ।
हृदि ब्रह्म परं ध्यायन्नावर्तेत यतो गतः ॥४४॥

अन अपेक्षमाणः निरगात् अशृण्वन् वधिरः यथा उदीचीं प्रविवेश आशां गत पूर्वां महात्मभिः हृदि ब्रह्म परं ध्यायन् न आवर्तेत यतः गतः ॥ ४४ ॥

अन	बिना (किसीकी)	**यथा**	जैसे
अपेक्षमाणः	अपेक्षा किए	**वधिरः**	बहिरे हों

अशृण्वन्	(किसीकी भी बात) न सुनते हुए
हृदि	हृदयमें
परं	परम
ब्रह्म	ब्रह्मका
ध्यायन्	ध्यान करते
पूर्वां	पहिलेके
महात्मभिः	महात्माओं द्वारा
गत	गये हुए
उदीचीं	उत्तर
दिशां	दिशामें
प्रविवेश	प्रवेश किया (गये)
यतः	जहाँ
गतः	जाकर (कोई)
न	नहीं
आवर्तेत	लौटता ॥४४॥

सर्वे तमनु निर्जग्मुर्भ्रातरः कृतनिश्चयाः ।
कलिनाधर्ममित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ॥४५॥

सर्वे तं अनु निर्जग्मुः भ्रातरः कृत निश्चयाः कलिना अधर्म मित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ॥ ४५ ॥

अधर्म	अधर्मके
मित्रेण	मित्र
कलिना	कलियुगके द्वारा
भुवि	पृथ्वीपर
प्रजा	प्रजाका
स्पृष्टाः	स्पर्श (प्रभावित) करली गयी है
दृष्ट्वा	(यह) देखकर
सर्वे	सब
भ्रातरः	भाई
कृतनिश्चयाः	निश्चय करके
तं	उन (युधिष्ठिर) के
अनु	पीछे
निर्जग्मुः	निकल पड़े ॥४५॥

तेसाधुकृतसर्वार्था ज्ञात्वाऽऽत्यन्तिकमात्मनः ।
मनसा धारयामासुर्वैकुण्ठचरणाम्बुजम् ॥४६॥

ते साधु कृत सर्वार्था ज्ञात्वा आत्यन्तिकं आत्मनः मनसा धारयामासुः वैकुण्ठ चरणाम्बुजम् ॥ ४६ ॥

ते	वे
सर्वार्था	सब पुरुषार्थ
साधु	भली प्रकार
कृत	प्राप्त कर लिए थे
आत्मनः	अपना
आत्यन्तिकं	अन्तिम (लक्ष्य)
वैकुण्ठ	श्रीकृष्णके
चरणाम्बुजं	चरणकमलोंको
ज्ञात्वा	जानकर
मनसा	चित्तमें (उन्हें)
धारयामासुः	धारण किया ॥४६॥

तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या विशुद्धधिषणाः परे ।
तस्मिन् नारायणपदे एकान्तमतयो गतिम् ॥४७॥

तत् ध्यान उद्रिक्तया भक्त्या विशुद्ध धिषणाः परे तस्मिन् नारायण पदे एकान्त मतयः गतिं ॥ ४७ ॥

तत्	उन (श्रीकृष्ण) के	**मतयः**	मति (भाव) वाले (वे)
ध्यान	ध्यानसे		
उद्रिक्तया	प्रवृद्ध	**तस्मिन्**	उन
भक्त्या	भक्ति द्वारा	**परे**	परम पुरुष
धिषणाः	बुद्धि	**नारायण**	नारायणके
विशुद्ध	विशुद्ध होगयी	**पदे**	पद (स्थान) में
एकान्त	अनन्य	**गतिं**	गति प्राप्त हुए ॥४७॥

अवापुर्दुरवापां ते असद्भिर्विषयात्मभिः ।
विधूतकल्मषास्थाने विरजेनात्मनैव हि ॥४८॥

अवापुः दुः अवापां असद्भिः विषयात्मभिः विधूत कल्मष आस्थाने विरजेन आत्मना एव हि ॥ ४८ ॥

विषयात्मभिः	विषयोंमें लगे चित्तवाले	**विधूत**	रहितोंके
		आस्थाने	पदको
असद्भिः	असंयत लोगोंके लिए	**हि**	क्योंकि
दुः	बड़े कष्टसे	**विरजेन**	निर्मल होनेसे
अवापां	मिलनेवाली (गतिको)	**आत्मना**	अपने आप
		एव	ही
कल्मष	मलिनता	**अवापुः**	प्राप्त हुए ॥४८॥

विदुरोऽपि परित्यज्य प्रभासे देहमात्मवान् ।
कृष्णावेशेन तच्चित्तः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ॥४९॥

विदुरः अपि परित्यज्य प्रभासे देह आत्मवान् कृष्ण आवेशेन तत् चित्तः पितृभिः स्व क्षयं ययौ ॥ ४९ ॥

आत्मवान्	संयमी	**प्रभासे**	प्रभासमें
कृष्ण	श्रीकृष्णके	**देह**	शरीर
आवेशेन	आवेशसे	**परित्यज्य**	छोड़कर
तत्	उनमें	**पितृभिः**	पितरोंके साथ
चित्तः	चित्त लगाये	**स्व**	अपने
विदुरः	विदुर	**क्षयं**	धाम (यमलोक)
अपि	भी	**ययौ**	गए ॥४६॥

द्रौपदी च तदाऽऽज्ञाय पतीनामनपेक्षताम् ।
वासुदेवे भगवति ह्येकान्तमतिराप तम् ॥५०॥

द्रौपदी च तत् आज्ञाय पतीनां अनपेक्षतां वासुदेवे भगवति हि एकान्त मतिः अवाप तम् ॥ ५० ॥

द्रौपदी	द्रौपदीने	**भगवति**	भगवान
च	भी	**वासुदेवे**	वासुदेवमें
तत्	वह	**एकान्त**	अनन्य
पतीनां	पतियोंकी	**मतिः**	बुद्धि थी
अनपेक्षतां	अपेक्षा हीनता	**तं**	उनको
आज्ञाय	जानकर	**अवाप**	प्राप्त होगयी ॥५०॥
हि	क्योंकि		

यः श्रद्धयैतद् भगवत्प्रियाणां
पाण्डोः सुतानामिति सम्प्रयाणम् ।
शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं
लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम् ॥५१॥

यः श्रद्धयति एतत् भगवत् प्रियाणां पाण्डोः सुतानां इति सम्प्रयाणं शृणोति अलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्ति उपैति सिद्धिम् ॥ ५१ ॥

अलं	पूर्ण	**पवित्रं**	पवित्र
स्वस्त्ययनं	कल्याणकारी	**भगवत्**	भगवानके

प्रियाणां	प्रिय
पाण्डोः	पाण्डुके
सुतानां	पुत्रोंका
इति	इस प्रकारका
एतत्	यह
सम्प्रयाणं	परमगति पा लेना
यः	जो
शृणोति	सुनता है
श्रद्धयति	(इस पर) श्रद्धा करता है
हरौ	श्रीहरिमें
भक्ति	भक्ति
लब्ध्वा	प्राप्त करके
सिद्धिं	अन्तःकरणकी शुद्धि
उपैति	पाता है ॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः

अथ षोडशोऽध्यायः

सूत उवाच-

ततः परीक्षित् द्विजवर्यशिक्षया
महीं महाभागवतः शशास ह ।
यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः
समादिशन् विप्र महद्गुणस्तथा ॥१॥

ततः परीक्षित् द्विजवर्य शिक्षया महीं महाभागवतः शशास ह यथा हि सूत्यां अभिजात कोविदाः समादिशन् विप्र महद्गुणाः तथा ॥ १ ॥

ततः	तदनन्तर	**अभिजात**	जातक (ज्योतिष शास्त्र) के
विप्र	शौनकजी !	**कोविदाः**	विद्वानोंने
महाभागवतः	महाभागवत	**यथा**	जैसा
परीक्षित्	परीक्षित्	**हि**	कि
द्विजवर्य	उत्तम ब्राह्मणोंकी	**समादिशन्**	बतलाया था
शिक्षया	शिक्षाके अनुसार	**तथा**	वैसे ही
ह	ही	**महद्गुणाः**	महापुरुषोंके गुण (उनमें थे) ॥१॥
महीं	पृथ्वीका		
शशास	शासन करने लगे		
सूत्यां	सूतिका गृहमें		

स उत्तरस्य तनयामुपयेम इरावतीम् ।
जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयत् सुतान् ॥२॥

स उत्तरस्य तनयां उपयेम इरावतीं जनमेयः आदींन् चतुरान् तस्यां उत्पादयत् सुतान् ॥ २ ॥

स	उन्होंने	**तनयां**	पुत्री
उत्तरस्य	उत्तरकी	**इरावतीं**	इरावतीसे

उपयेम	विवाह किया	**चतरान्**	चार
तस्यां	उसमें	**सुतान्**	पुत्रोंको
जनमेजः	जनमेजय	**उत्पादयत्**	उत्पन्न किया ॥२।
आदींन्	आदि		

आजहाराश्वमेधांस्त्रीन् गङ्गायां भूरिदक्षिणान् ।
शारद्वतं गुरुं कृत्वा देवा यत्राक्षिगोचराः ॥३॥

आजहार अश्वमेधान् त्रीन् गंगायां भूरि दक्षिणान् शारद्वतं गुरूं कृत्वा देवा यत्र अक्षिगोचराः ॥ ३ ॥

शारद्वतं	कृपाचार्यको	**गङ्गायां**	गंगा किनारे
गुरुं	गुरु	**आजहार**	किये
कृत्वा	बनाकर	**यत्र**	जिनमें
भूरि	बहुत	**देवा**	देवता
दक्षिणान्	दक्षिणावाले	**अक्षिगोचरा**	प्रत्यक्ष दर्शन देते
त्रीन्	तीन		थे ॥३॥
अश्वमेधान्	अश्वमेध यज्ञ		

निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित् ।
नृपलिङ्गधरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा ॥४॥

निजग्राह ओजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित् नृपलिङ्ग धरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा ॥ ४ ॥

वीरः	वीर (परीक्षित) ने	**गोमिथुनं**	गाय-बैलकी जोड़ीको
क्वचित्	कभी	**पदा**	पैरसे
नृपलिङ्ग धरं	राजाओंके चिह्न धारण करनेवाले	**घ्नन्तं**	मारते
		ओजसा	तेजपूर्वक
शूद्रं	शूद्र	**निजग्राह**	नियन्त्रित
कलिं	कलियुगको		किया ॥४॥

शौनक उवाच–

कस्य हेतोर्निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः ।

नृदेवचिह्नधृक् शूद्रकोऽसौ गां यः पदाहनत् ।
तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम् ॥५॥

कस्य हेतोः निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः नृदेव चिह्न धृक् शूद्र कः असौ गां यः पदाहनत् तत् कथ्यतां महाभाग यदि कृष्ण कथा आश्रयम् ॥५॥

नृपः	राजा परीक्षितने	**कः**	कौन था
दिग्विजये	दिग्विजयेके समय	**यः**	जो
कस्य	किस	**गां**	गायको
हेतोः	कारणसे	**पदाहनत्**	पैरसे मार रहा था ?
कलिं	कलियुगका	**महाभाग**	महाभाग सूतजी
निजग्राह	नियन्त्रण किया ?	**यदि**	यदि
नृदेव	राजाका	**कृष्ण कथा**	श्रीकृष्णकी कथाका
चिह्नधृक्	चिह्न (मुकुटादि) धारण करनेवाला	**आश्रयं**	अंग (हो तो)
		तत्	वह
शूद्र	शूद्र	**कथ्यतां**	कहिए ॥५॥
असौ	यह		

अथवास्य पदाम्भोजमकरन्दलिहां सताम् ।
किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः ॥६॥

अथवा अस्य पदाम्भोज मकरन्द लिहां सतां किं अन्यैः असत् आलापैः आयुषः यत् असत् व्ययः ॥ ६ ॥

अथवा	अथवा	**असत्**	ब्यर्थ
अस्य	इन (श्रीकृष्ण) के	**आलापैः**	चर्चाओंसे
पदाम्भोज	चरणकमलोंके	**किं**	क्या लाभ
मकरन्द	मकरन्दका	**यत्**	जिनमें
लिहां	पान करनेवाले	**आयुषः**	आयुका
सतां	सत्पुरुषोंकी(कथा हो)	**असत्**	व्यर्थ
अन्यैः	दूसरी	**व्यय**	व्यय होता है ॥६॥

क्षुद्रायुषां नृणामङ्ग मर्त्यानामृतमिच्छताम् ।
इहोपहूतो भगवान् मृत्युः शामित्रकर्मणि ॥७॥

क्षुद्र आयुषां नृणां अङ्ग मर्त्यानां अमृतं इच्छतां इह उपहूतः भगवान् मृत्युः शामित्रः कर्मणि ॥ ७ ॥

अङ्ग	प्रिय सूतजी	**भगवान्**	भगवान
क्षुद्र	छोटी	**मृत्युः**	मृत्युको
आयुषां	आयुवाले	**शामित्र**	शान्ति
अमृतं	अमृतत्त्वकी	**कर्मणि**	कर्मके लिए
इच्छतां	इच्छा करनेवाले	**उपहूतः**	बुला लिया गया है ॥७॥
नृणां	मनुष्योंके लिए		
इह	यहाँ		

न कश्चिन्म्रियते तावद् यावदास्त इहान्तकः ।
एतदर्थं हि भगवानाहूतः परमर्षिभिः ।
अहो नृलोके पीवेत हरिलीलामृतं वचः ॥८॥

न कश्चित् म्रियते तावत् यावत् आस्त इह अन्तकः एतत् अर्थं हि भगवान् आहूतः परमर्षिभिः अहो नृलोके पीवेत हरिलीला अमृतं वचः ॥ ८ ॥

कश्चित्	कोई भी	**परमर्षिभिः**	परमर्षियों द्वारा
तावत्	तबतक	**भगवान्**	भगवान (मृत्यु)
न	नहीं	**आहूतः**	बुलाये गये हैं
म्रियेत	मरेगा	**अहो**	अहो
यावत्	जबतक	**नृलोके**	मनुष्यलोकमें
अन्तकः	मृत्युदेव	**हरिलीला**	भगवानकी लीलाओंका
इह	यहाँ	**वचः**	वर्णन
आस्त	हैं	**पीबेत**	पान (श्रवण) करे ॥८॥
हि	क्योंकि		
एतत्	इसी		
अर्थं	प्रयोजनसे		

मन्दस्य मन्दप्रज्ञस्य वयो मन्दायुषश्च वै ।
निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः ॥९॥

मन्दस्य मन्द प्रज्ञस्य वयः मन्द आयुषःस्य च वै निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थ कर्मभिः ॥ ९ ॥

वै	निश्चय	**नक्तं**	रात
मन्दस्य	पौरुषहीन	**निद्रया**	नींदमें
मन्द	मन्द	**च**	और
प्रज्ञस्य	बुद्धिवाले	**दिवा**	दिन
च	और	**व्यर्थं**	व्यर्थ
मन्द	थोड़ी	**कर्मभिः**	कर्मोंमें
आयुषस्य	आयुवाले (लोगों)की	**ह्रियते**	बीत जाता है ॥९॥
वयः	आयु		

सूत उवाच–

यदा परीक्षित् कुरुजाङ्गलेवसन्
कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिते ।
निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः
शरासनं संयुगशौण्डिराददे ॥१०॥

यदा परीक्षित कुरुजाङ्गले अवसन् कलिं प्रविष्टं निज चक्रवर्तिते निशम्य वार्तां अनति प्रियां ततः शरासनं संयुग शौण्डः आददे ॥ १० ॥

यदा	जब	**अनति**	कुछ कम
परीक्षित	परीक्षितने	**प्रियां**	प्रिय
कुरुजाङ्गले	कुरुजाङ्गल देशमें	**वार्तां**	समाचार
अवसन्	निवास करते हुए	**निशम्य**	सुनकर
निज	अपने	**संयुग**	युद्धके लिए
चक्रवर्तिते	चक्रवर्ती राज्यमें	**शरासनं**	धनुष
कलि	कलिका	**शौण्डः**	हाथमें
प्रविष्टं	प्रवेश	**आददे**	उठा लिया ॥१०॥

स्वलंकृतं श्यामतुरङ्गयोजितं
रथं मृगेन्द्रध्वजमाश्रितः पुरात् ।

वृतो रथाश्वद्विपपत्तियुक्तया
स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ॥११॥

स्व अलंकृतं श्यामतुरङ्ग योजितं रथं मृगेन्द्र ध्वज आश्रितः पुरात् वृतः रथ अश्व द्विप पत्ति युक्तया स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ॥ ११ ॥

स्व	अपने	**अश्व**	घोड़े
अलंकृतं	आभूषणोंसे भूषित होकर	**द्विप**	हाथी
		पत्ति	पैदल
श्यामतुरङ्ग	काले घोड़ोंसे	**युक्तया**	युक्त (चतुरंगिणी)
योजितं	जुड़े	**स्वसेनया**	अपनी सेनासे
मृगेन्द्रध्वज	सिंह चिह्नवाली ध्वजायुक्त	**वृतः**	घिरे
		पुरात्	नगरसे
रथं	रथपर	**दिग्विजयाय**	दिग्विजयके लिए
आश्रितः	बैठकर	**निर्गतः**	निकल पड़े ॥११॥

भद्राश्वं केतुमालं च भारतं चोत्तरान् कुरून् ।
किम्पुरुषादीनि वर्षाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥१२॥

भद्राश्वं केतुमालं च भारतं च उत्तरान् कुरून् किम्पुरुषादीनि वर्षाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥ १२ ॥

भद्राश्वं	भद्राश्ववर्ष	**किम्पुरुष**	किम्पुरुष
केतुमालं	केतुमालवर्ष	**आदीनि**	आदि
च	और	**वर्षाणि**	देशोंको
भारतं	भारतवर्ष	**विजित्य**	जीतकर
च	तथा	**बलिं**	उपहार
उत्तरान् कुरून्	उत्तर कुरुवर्ष	**जगृहे**	लिया ॥१२॥

तत्र तत्रोपशृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम् ।
प्रगीयमाणं च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम् ॥१३॥

तत्र तत्र उप शृण्वानः स्व पूर्वेषां महात्मनां प्रगीयमाणं च यशः कृष्ण माहात्म्य सूचकम् ॥ १३ ॥

तत्र तत्र	उन उन स्थानोंमें	**यशः**	सुयश
कृष्णमाहात्म्य	श्रीकृष्णकी महिमाको	**प्रगीयमाणं**	गाये जाते हुए
सूचकं	सूचित करनेवाले	**च**	ही
स्वपूर्वेषां	अपने पूर्वज	**उपशृण्वानः**	समीपसे सुनते हुए (चलते गये) ॥१३॥
महात्मना	महात्माओंका		

आत्मानं च परित्रातमश्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः ।
स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे ॥१४॥

आत्मानं च परित्रातं अश्वत्थाम्नः अस्त्र तेजसः स्नेहं च वृष्णि पार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे ॥ १४ ॥

आत्मानं	अपनेको	**पार्थानां**	पाण्डवोंका
च	भी	**स्नेहं**	(परस्पर) प्रेम
अश्वत्थाम्नः	अश्वत्थामाके	**च**	एवं
अस्त्र	ब्रह्मास्त्रके	**तेषां**	उन (यादव-पाण्डवों) की
तेजसः	तेज (ज्वाला) से		
परित्रातं	बचाया हुआ,	**केशवे**	श्रीकृष्णमें
च	तथा	**भक्तिं**	भक्ति (का वर्णन सुनकर) ॥१४॥
वृष्णि	यदुवंशियों		

तेभ्यः परमसंतुष्टः प्रीत्युज्जृम्भितलोचनः ।
महाधनानि वासांसि ददौ हारान् महामनाः ॥१५॥

तेभ्यः परम संन्तुष्टः प्रीति उज्जृम्भित लोचनः महाधनानि वासांसि ददौ हारान् महामनाः ॥ १५ ॥

तेभ्यः	उन (वर्णन करने वालों) पर	**महामनाः**	उदार चित्तसे
परमसंन्तुष्टः	अत्यन्त सन्तुष्ट होकर	**महाधनानि**	बहुमूल्य
प्रीति	प्रीतिसे	**वासांसि**	वस्त्र (एवं)
उज्जृम्भित	खिले हुए	**हारान्**	हार
लोचनः	नेत्रवाले (राजाने)	**ददौ**	दिये ॥१५॥

सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्य-
वीरासनानुगमनस्तवनप्रणामान् ।
स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत्प्रणतिं च विष्णो-
र्भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविन्दे ॥१६॥

सारथ्य पारषद सेवन सख्य दौत्य वीरासन अनुगमन स्तवन प्रणामान् स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत् प्रणतिं च विष्णोः भक्तिं करोति नृपतिः चरणारविन्दे ॥ १६ ॥

सारथ्य	(परीक्षित सुनते थे कि भगवान श्रीकृष्ण पाण्डवोंके) सारथी बने	**प्रणामान्**	(युधिष्ठिरको) प्रणाम करते
		पाण्डुषु	पाण्डवोंपर
		स्निग्धेषु	स्नेहके कारण
पार्षद	सभासद बनकर	**जगत्**	पूरे संसारसे
सेवन	(उनकी) सेवाकी	**प्रणतिं**	प्रणाम
सख्य	(उनके) सखा थे	**च**	भी (करवा दिया)
दौत्य	दूत बने (उनके)	**नृपतिः**	राजा परीक्षित् (यह सुनकर)
वीरासन	(युद्ध कालमें) वीरासनसे बैठकर (पहरा देते)	**विष्णोः**	श्रीकृष्णके
		चरणारविन्दो	चरणकमलोंमें
अनुगमन	पीछे पीछे चलते	**भक्तिं**	भक्ति
स्तवन	प्रशंसा करते	**करोति**	करते थे ॥१६॥

तस्यैवं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्वहम् ।
नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासीत् तन्निबोध मे ॥१७॥

तस्य एवं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिं अन्वहं न अतिदूरे किल आश्चर्यं यत् आसीत् तत् निबोध मे ॥ १७ ॥

तस्य	उन (राजा परीक्षित) के	**एवं**	इस प्रकार
		पूर्वेषां	अपने पूर्वजोंके
अन्वहं	प्रतिदिन	**वृत्तिं**	व्यवहारका

वर्तमानस्य	पालन करते हुए	**आश्चर्यं**	आश्चर्य
अतिदूरे	बहुत दूर	**आसीत्**	हुआ
न	नहीं (पास ही)	**तत्**	वह
किल	अहो	**मे**	मुझसे
यत्	जो	**निबोध**	सुनें ॥१७॥

धर्मः पदैकेन चरन् विच्छायामुपलभ्य गाम् ।
पृच्छति स्माश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ॥१८॥

धर्मः पद एकेन चरन् विच्छायां उपलभ्य गां पृच्छति स्म अश्रुवदनां विवत्सां इव मातरम् ॥ १८ ॥

धर्मः	धर्म	**अश्रुवदनां**	अश्रुमुखी
एकेन	एक ही	**विवत्सां**	बछड़े हीनकी
पदेन	पैरसे	**इव**	भांति
चरन्	चलता हुआ	**मातरं**	मातासे
विच्छायां	उदास	**पृच्छति**	पूछता
गां	गौ (पृथ्वी) को	**स्म**	है ॥१८॥
उपलभ्य	पाकर		

धर्म उवाच-

कच्चिद्भद्रेऽनामयमात्मनस्ते
विच्छायासि म्लायतेषन्मुखेन ।
आलक्षये भवतीमन्तरार्धिं
दूरे बन्धुं शोचसि कञ्चनाम्ब ॥१९॥

कच्चित् भद्रे अनामयं आत्मनः ते विच्छायासि म्लायता इषत् मुखेन आलक्षये भवतीं अन्तर आर्धि दूरे बन्धुं शोचसि कंचन अम्ब ॥ १९ ॥

भद्रे	कल्याणी !	**अनामयं**	रोगरहित (स्वस्थ) तो है ?
कच्चित्	क्या		
ते	आपका	**इषत्**	थोड़े
आत्मनः	शरीर	**म्लायता**	मलीन हुए

मुखेन	मुखसे
विच्छायासि	श्रीहीन हो,
भवतीं	आपको
अन्तर	चित्तमें
आर्धि	चिन्तावाली
आलक्षये	लक्षित करता हूँ,
अम्ब	मां !
कंचन	किसी
दूरे	दूर गये
बन्धुं	बन्धुकी
शोचसि	चिन्ता कर रही हो ? ॥१९॥

पादैर्न्यूनं शोचसि मैकपाद-
मात्मानं वा वृषलैर्भोक्ष्यमाणम् ।
आहो सुरादीन् हृतयज्ञभागान्
प्रजा उत स्विन्मघवत्यवर्षति ॥२०॥

पादैः न्यूनं शोचसि मां एकपादं आत्मानं वा वृषलैः भोक्ष्यमाणं आहो सुरादीन् हृत यज्ञ भागान् प्रजाः उत स्वित् मघवति अवर्षति ॥ २० ॥

पादैः	पैरोंकी
न्यूनं	कमीसे
एकपादं	एक ही पैरवाले
मां	मेरे लिए
वा	अथवा
वृषलैः	शूद्रों द्वारा
भोक्ष्यमाणं	भोगी जाती हुई
आत्मानं	अपने लिए
आहो	अथवा
यज्ञभागान्	यज्ञका भाग (जिनका)
हृत	हरण हो चुका है (उन)
सुरआदीन	देवता आदि (पितर, लोकपालादि)
उत	या
मघवति	इन्द्रके
अवर्षति	वर्षा न करनेसे
प्रजाः	प्रजाके सिए
शोचसि	चिन्ता कर रही हैं ॥२०॥

अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालान्
शोचस्यथो पुरुषादैरिवार्तान् ।
वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्म-
ण्यब्रह्मण्ये राजकुले कुलाग्र्यान् ॥२१॥

अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालान् शोचसि अथ पुरुषादैः इव आर्तन् वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्मणि अब्रह्मण्ये राजकुले कुलग्र्यान् ॥ २१ ॥

पुरुषादैः	राक्षसों
इव	जैसे (लोगों) से
आर्तन्	व्याकुल
अरक्ष्यमाणाः	अरक्षित
स्त्रिय	स्त्रियों (एवं)
बालान्	बालकोंके लिए
अथ	अथवा
उर्वि	पृथ्वीदेवी !
वाचं	वाणी (विद्या)
देवीं	देवी
कुकर्मणि	कुकर्म करनेवाले
ब्रह्मकुले	ब्राह्मणोंके कुलमें (चली गयी) हैं या
कुलाग्र्यान्	ब्राह्मण
अब्रह्मण्ये	ब्राह्मणद्रोही
राजकुले	राजकुलोंके (सेवक) होगये हैं
शोचसि	(इसलिए) चिन्ता कर रही हो ?॥२१॥

किं क्षत्रबन्धून् कलिनोपसृष्टान्
राष्ट्राणि वा तैरवरोपितानि ।
इतस्ततो वाशनपानवासः-
स्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ॥२२॥

किं क्षत्रबन्धून् कलिना उपसृष्टान् राष्ट्राणि वा तैः अवरोपितानि इतः ततः वा अशन पान वासः स्नान व्यवाय उन्मुख जीवलोकम् ॥ २२ ॥

कलिना	कलियुग द्वारा
उपसृष्टान्	उत्पन्न किए (कलियुगी)
क्षत्रबन्धून्	क्षत्रियाधमोंकी
वा	अथवा
तैः	उनके द्वारा
अवरोपितानि	उजाड़ कर दिए गये
राष्ट्राणि	राज्योंकी
वा	अथवा
इतः ततः	जहाँ तहाँ
अशन	भोजन
पान	पान
वासः	निवास
व्यवाय	स्त्री सहवासमें
उन्मुख	लगे (मर्यादाहीन)
जीवलोकं	जीवोंकी
किं	क्या (तुम चिन्ता कर रही) ॥२२॥

यद्वाम्ब ते भूरिभरावतार-
कृतावतारस्य हरेर्धरित्रि ।

अन्तर्हितस्य स्मरती विसृष्टा
कर्माणि निर्वाणविलम्बितानि ॥२३॥

यत् वा अम्ब ते भूरि भरावतार कृत अवतारस्य हरेः धरित्रि अन्तर्हितस्य स्मरती विसृष्टा कर्मणि निर्वाण विलम्बितानि ॥ २३ ॥

अम्ब	मां	**हरेः**	श्रीहरिके
धरित्रि	पृथिवी	**अन्तर्हितस्य**	अन्तर्धान होजानेपर
वा	अथवा	**यत्**	जो
ते	तुम्हारे	**विसृष्टा**	छोड़ दिये गये
भूरि	बहुत	**निर्वाण**	मोक्षके भी
भरावतार	भारको उतारनेके लिए	**विलम्बितानि**	आश्रयभूत
		कर्माणि	(उनके) कर्मोंको
अवतारस्य	अवतार	**स्मरती**	स्मरण कर रही
कृत	धारण किये		हो ॥२३॥

इदं ममाचक्ष्व तवाधिमूलं
वसुन्धरे येन विकर्शितासि ।
कालेन वा ते बलिनां बलीयसा
सुरार्चितं किं हृतमम्ब सौभगम् ॥२४॥

इदं मम आचक्ष्व तव आधि मूलं वसुन्धरे येन विकर्शिता असि कालेन वा ते बलिना बलीतसा सुर अर्चितं ते हृतं अम्ब सौभगम् ॥ २४ ॥

वसुन्धरे	पृथ्विीदेवी !	**विकर्शिता**	दुबली हो रही
इदं	यह	**असि**	हो
तव	तुम्हारी	**वा**	अथवा
आधि	चिन्ताका	**अम्ब**	माता !
मूलं	कारण	**बलिना**	बलवानोंमें भी
मम	मुझसे	**बलीयसा**	परम बलवान
आचक्ष्व	बतलाओ	**कालेन**	कालके द्वारा
येन	जिससे	**ते**	तुम्हारा

सुर	देवताओंसे	**हृतं**	हरण कर लिया
अर्चितं	पूजित (सत्कृत)		गया ? ॥२४॥
सौभगं	सौभाग्य		

धरण्युवाच-

भवान् हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपृच्छसि ।
चतुर्भिर्वर्तसे येन पादैर्लोकसुखावहैः ॥२५॥

भवान् हि वेद तत् सर्वं यत् मां धर्म अनुपृच्छसि चतुर्भिः वर्तसे येन पादैः लोकसुख आवहैः ॥ २५ ॥

भवान्	आप	**येन**	जिनके द्वारा
तत्	वह	**लोक**	लोगोंको
सर्वं	सब	**सुख**	सुख
वेद	जानते हैं	**आवहैः**	देनेवाले
यत्	जो	**चतुर्भिः**	चारों ही
मां	मुझसे	**पादैः**	चरणोंसे
अनुपृच्छसि	पूछ रहे हैं	**वर्तसे**	व्यवहार करते
हि	क्योंकि		थे ॥२५॥
धर्म	धर्म !		

सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः सन्तोष आर्जवम् ।
शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम् ॥२६॥

सत्यं शौचं दया क्षान्तिः त्यागः सन्तोष आर्जवं शमः दमः तपः साम्यं तितीक्षा उपरतिः श्रुतम् ॥ २६ ॥

सत्यं	सत्य	**आर्जवं**	सरलता
शौचं	पवित्रता	**शमः**	शम (मनकी शान्ति)
दया	दया	**दमः**	दम (इन्द्रियोंको
क्षान्तिः	क्षमा		वशमें रखना)
त्यागः	त्याग	**तपः**	तपस्या
सन्तोष	संतोष	**साम्यं**	समता

तितीक्षा	तितीक्षा (आये दुःखोंको चुपचाप सह लेना)	**उपरतिः**	भोगोंसे उपरामता
		श्रुतं	वेदाध्ययन ॥२६॥

ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यं तेजो बलं स्मृतिः ।
स्वातन्त्र्यं कौशलं कान्तिर्धैर्यं मार्दवमेव च ॥२७॥

ज्ञानं विरक्तिः ऐश्वर्यं शौर्यं तेजः बलं स्मृतिः स्वातन्त्र्यं कौशलं कान्तिः धैर्यं मार्दवं एव च ॥ २७ ॥

ज्ञानं	ज्ञान	**स्वातन्त्र्यं**	स्वतन्त्रता
विरक्तिः	वैराग्य	**कौशलं**	कुशलता
ऐश्वर्यं	ऐश्वर्य	**कान्तिः**	कान्ति
शौर्यं	शौर्य	**धैर्यं**	धैर्य
तेजः	तेज	**च**	और
बलं	बल	**मार्दवं**	मृदुलता
स्मृतिः	स्मरश शक्ति	**एव**	भी ॥२७॥

प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः ।
गाम्भीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मानोऽनहंकृतिः ॥२८॥

प्रागल्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजः बलं भगः गाभीर्यं स्थैर्यं आस्तिक्यं कीर्तिः मानः अनहं कृतिः ॥ २८ ॥

प्रागल्भ्यं	प्रगल्भता	**गाम्भीर्यं**	गम्भीरता
प्रश्रयः	नम्रता	**स्थैर्यं**	स्थिरता
शीलं	शील	**आस्तिक्यं**	आस्तिकता (वेदोंपर विश्वास)
सह	सहन शक्ति		
ओजः	ओजस्विता	**कीर्तिः**	यश
बलं	बल	**मानः**	सम्मान
भगः	भग (ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्रीकी पूर्णता)	**अनहंकृतिः**	अहंकार हीनता ॥२८॥

एते चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणाः ।
प्रार्थ्या महत्त्वमिच्छद्भिर्न वियन्ति स्म कर्हिचित् ॥ ३९॥

एते च अन्ये च भगवन् नित्याः यत्र महागुणाः प्रार्थ्या महत्त्वं इच्छद्भिः न वियन्ति स्म कर्हिचित् ॥ २९ ॥

भगवन्	भगवान ! (धर्म !)	**महागुणाः**	महान् गुण
एते	ये	**यत्र**	जिनमें
च	और	**नित्याः**	नित्य (रहते) थे
अन्ये	दूसरे	**कर्हिचित्**	कभी भी
च	भी	**न**	नहीं
महत्त्वं	महानता	**वियन्ति**	वियुक्त होते
इच्छद्भिः	चाहनेवालोंके लिए	**स्म**	थे ॥२९॥
प्रार्थ्याः	अभिलषित		

तेनाहं गुणापात्रेण श्रीनिवासेन साम्प्रतम् ।
शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलिनेक्षितम् ॥३०॥

तेन अहं गुण पात्रेण श्रीनिवासेन साम्प्रतं शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलिना इक्षितम् ॥ ३० ॥

अहं	मैं	**रहितं**	रहित
तेन	उस	**पाप्मना**	पापी
गुण	गुणोंके	**कलिना**	कलियुग द्वारा
पात्रेण	आश्रय	**ईक्षितं**	देखे गये (प्रभावित)
श्रीनिवासेन	श्रीनिवास (श्रीकृष्ण) द्वारा	**लोकं**	लोगोंके लिए
		शोचामि	चिन्ता कर रही हूँ ॥३०॥
साम्प्रतं	इस समय		

आत्मानं चानुशोचामि भवन्तं चामरोत्तमम् ।
देवान् पितॄनृषीन् साधून् वर्णांस्तथाऽऽश्रमान् ॥३१॥

आत्मानं च अनुशोचामि भवन्तं च अमरोत्तमं देवान् पितॄन् ऋषीन् साधून् सर्वान् वर्णान् तथा आश्रमान् ॥ ३१ ॥

आत्मानं	अपने लिए	**भवन्तं**	आपके लिए
च	भी	**च**	भी
अमरोत्तमं	देव श्रेष्ठ	**देवान्**	देवताओं

पितॄन्	पितरों	तथा	तथा
ऋषीन्	ऋषियों	आश्रमान्	आश्रमोंके लिए
साधून्	सत्पुरुषों	अनुशोचामि	चिन्ता कर रही
सर्वान्	सब		हूँ ॥३१॥
वर्णान्	वर्णों		

ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपाङ्गमोक्ष-
कामास्तपः समचरन् भगवत्प्रपन्नाः ।
सा श्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय
यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता ॥३२॥

ब्रह्मा आदयः बहुतिथं यत् अपाङ्गमोक्ष कामाः तपः समचरन् भगवत् प्रपन्नाः सा श्रीः स्ववासं अरविन्दवनं विहाय यत् पाद सौभगं अलं भजते अनुरक्ता ॥ ३२ ॥

ब्रह्मा	ब्रह्मा	सा	वही
आदयः	आदि (इन्द्र, वरुण प्रभृति)	श्रीः	लक्ष्मी
		स्ववासं	अपने निवास
यत्	जिनके	अरविन्दवनं	कमलवनको
अपाङ्गमोक्ष	कृपाकटाक्ष	विहाय	छोड़कर
कामाः	पानेकी इच्छासे	यत्	जिनके
भगवत्	भगवानकी	पादसौभगं	चरणोंकी सुभगता
प्रपन्नाः	शरण लेकर		(छाया) को
बहुतिथं	बहुत समयतक	अलं	दृढ़तासे
तपः	तपस्या	अनुरक्ता	अनुरक्त होकर
समचरन्	करते रहे	भजते	सेवन करती हैं ॥३२॥

तस्याहमब्जकुलिशाङ्कुशकेतुकेतैः
श्रीमत्पदैर्भगवतः समलंकृताङ्घ्री ।
त्रीनत्यरोच उपलभ्य ततोविभूतिं
लोकान् स मां व्यसृजदुत्स्मयतीं तदन्ते ॥३३॥

तस्य अहं अब्जकुलिश अंकुश केतु केतैः श्रीमत् पदैः भगवतः समलंकृता अङ्गी त्रीन् अत्यरोच उपलभ्य ततः विभूतीं लोकान् स मां व्यसृजत् उत्स्मयन्तीं तत् अन्ते ॥ ३३ ॥

अहं	मैं	**लोकान्**	लोकोंमें
तस्य	उन (भगवान्) के	**अत्यरोच**	अत्यन्त शोभित हुई थी
अब्ज	कमल		
कुलिश	वज्र	**ततः**	उनसे
अंकुश	अंकुश	**विभूतीं**	(यह) ऐश्वर्य
केतु	पताका	**उपलभ्य**	पाकर
केतैः	चिह्नोंवाले	**उत्स्मयन्तीं**	अभिमान करने लगी थी
भगवतः	भगवानके		
श्रीमत्	शोभाशाली	**स**	उन्होंने
पदैः	चरणचिह्नोंसे	**ततः**	इसलिए
समलंकृता	भली प्रकार आभूषित	**मां**	मुझे
अङ्गी	शरीरवाली (होकर)	**अन्ते**	अन्तमें
त्रीन्	तीनों	**व्यसृजत्**	छोड़ दिया ॥३३॥

यो वै ममातिभरमासुरवंशराज्ञा-
मक्षौहिणीशतमपानुददात्मतन्त्रः ।
त्वां दुःस्थमूनपदमात्मनि पौरुषेण
सम्पादयन् यदुषु रम्यमबिभ्रदङ्गम् ॥३४॥

यः वै मम अति भरं आसुरवंश राज्ञां अक्षौहिणी शतं अपानुदत् आत्मतन्त्रः त्वां दुस्थं ऊनपदं आत्मनि पौरुषेण सम्पादयन् यदुषु रम्यं अबिभ्रत् अंगम् ॥ ३४ ॥

वै	अहो		सेनाको
मम	मेरे	**यः**	जिन
अतिभरं	अत्यन्त भार बने	**आत्मतन्त्र**	परम स्वतन्त्रने
आसुरवंश	असुरवंशके	**अपानुदत्**	दूर कर दिया
राज्ञां	राजाओंकी	**दुःस्थं**	कुढ़ते हुए
अक्षौहिणी शतं	सौ अक्षौहिणी	**ऊनपदं**	कम पैरवाले

त्वां	तुमको	**यदुषु**	यदुवंशमें
पौरुषेण	पुरुषार्थसे	**रम्यं**	रमणीय
आत्मनि	अपने ही भीतर	**अङ्गं**	शरीर
सम्पादयन्	परिपूर्ण (पदवाला) बनाते	**अविभ्रत्**	धारण किया ॥३४॥

का वा सहेत विरहं पुरुषोत्तमस्य
प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः ।
स्थैर्यं समानमहरन्मधुमानिनीनां
रोमोत्सवो मम यदङ्घ्रिविटङ्कितायाः ॥३५॥

का वा सहेत बिरहं पुरुषोत्तमस्य प्रेम अवलोक रुचिर स्मित वल्गु जल्पैः स्थैर्यं स मानं अहरन् मधुमानिनीनां रोमोत्सवः मम यत् अङ्घ्रि विटङ्किता याः ॥ ३५ ॥

प्रेम	प्रेमपूर्ण	**यत्**	जिनके
अवलोक	निरीक्षण	**अङ्घ्रि**	चरणोंसे
रुचिर	मनोहर	**विटङ्कितायाः**	चिह्नित
स्मित	मुसुकान	**मम**	मुझे
वल्गु	मधुर	**रोमोत्सवः**	रोमाञ्च होता रहता था
जल्पैः	वचनोंसे		
स	उन्होंने	**पुरुषत्तमस्य**	(उन) पुरुषोत्तमका
मधुमानीनां	मधुमयी मानिनियों (सत्यभामादि) की	**विरहं**	वियोग
		का	कौन
मान	मान (एवं)	**वा**	ऐसी है जो
स्थैर्यं	स्थिरता	**सहेत**	सह सकती है ॥३५॥
अहरन्	छीन लिया था		

*सूत उवाच**–

तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा ।
परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥३६॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तयोः एवं कथयतोः पृथिवी धर्मयोः तदा परीक्षित् नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥ ३६ ॥

तयोः	उन	**परीक्षित्**	परीक्षित
पृथिवी	पृथ्वी (और)	**नाम**	नामके (प्रसिद्ध)
धर्मयोः	धर्मके	**राजर्षिः**	राजर्षिः
एवं	इस प्रकार	**प्राची**	पूर्वकी*
कथयतोः	बात करते	**सरस्वतीं**	सरस्वती (के समीप)
तदा	समय ही	**प्राप्तः**	पहुँचे ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः

---

* सरस्वती नामकी पाँच नदियाँ हैं। उनमें १. उदीची (उत्तरी) सरस्वती बदरीनाथसे आगे है। २. प्रतीची (पश्चिमी) सरस्वती सिद्धपुर गुजरातके पास है। ३. (प्राची) सरस्वती (पूर्वी) कुरुक्षेत्रके पास है। ४. गुप्ता सरस्वती (प्रयागमें भूमिके नीचे है)। ५. एक सरस्वती ब्रजमें है।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

सूत उवाच-

तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् ।
दण्डहस्तं च वृषलं ददृशे नृपलाञ्छनम् ॥१॥

तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानं अनाथवत् दण्ड हस्तं च वृषलं ददृशे नृप लांछनम् ॥ १ ॥

तत्र	वहाँ	**दण्डहस्तं**	हाथमें डण्डा लिए
राजा	राजा (परीक्षित) ने	**नृप**	राजाके
अनाथवत्	अनाथकी भांति	**लांछनं**	चिह्न (मुकुटादि)
हन्यमानं	पीटे जाते हुए		वाले
गोमिथुन	गाय बैलके जोड़ेको	**वृषलं**	शूद्रको
च	और	**ददृशे**	देखा ॥१॥

वृषं मृणालधवलं मेहन्तमिव बिभ्यतम् ।
वेपमानं पदैकेन सीदन्तं शूद्रताडितम् ॥२॥

वृषं मृडाल धवलं मेहन्तं इव विभ्यन्तं वेपमानं पदा एकेन सीदन्तं शूद्र ताडितम् ॥ २ ॥

शूद्र	शूद (के द्वारा)	**वेपमानं**	काँपता हुआ
ताडितं	पीटा जाता	**विभ्यन्तं**	डरे हुएके
मृडाल	कमलतन्तुके समान	**इव**	समान
धवलं	श्वेत	**मेहन्तं**	मूत्र त्याग करता
वृषं	बैल	**सीदन्तं**	कष्ट पाते
एकेन	एक		(देखा) ॥२॥
पदा	पैरसे (खड़ा)		

गां च धर्मदुघां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम् ।
विवत्सां साश्रुवदनां क्षामां यवसमिच्छतीम् ॥३॥

गां च धर्म दुघां दीना भृशं शूद्र पद आहतां विवत्सां स अश्रुवदनां क्षामां यवसं इच्छतीम् ॥ ३ ॥

धर्म	धर्मके (उपयोगका)
दुघां	(दूध घी आदि) देनेवाली
भृशं	बार बार
शूद्र	शूद्रके
पद	पैरकी
आहतां	(ठोकर) चोट (सहने) से
दीनां	दीन हुई
गां	गायको
च	भी
विवत्सां	बछड़ेसे रहित
साश्रुवदनां	अश्रुमुखी
क्षामां	दुबली
यवसं	चारा
इच्छतीं	चाहती (भूखी देखा) ॥३॥

पप्रच्छ रथमारूढः कार्तस्वरपरिच्छदम् ।
मेघगम्भीरया वाचा समारोपितकार्मुकः ॥४॥

पप्रच्छ रथ आरूढः कार्तस्बर परिच्छदं मेघगम्भीरया वाचा समारोपित कार्मुकः ॥ ४ ॥

कार्तस्वर	स्वर्ण
परिच्छदं	मण्डित
रथ	रथपर
आरूढः	बैठे हुए
कार्मुकः	धनुष
समारोपित	चढ़ाकर
मेघगम्भीरया	मेघ गर्जनके समान गम्भीर
वाचा	वाणीसे
पप्रच्छ	पूछा (ललकारा) ॥४॥

*राजोवाच**–

कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यबलान् बली ।
नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणाद्विजः ॥५॥

कः त्वं मत् शरणे लोके नटवत् बलात् हंसि अबलान् बली नरदेवः असि वेषेण कर्मणा अद्विजः ॥ ५ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

त्वं	तू	**हंसि**	मारता है ?
कः	कौन है ?	**वेषेण**	वेषसे
मत्	मेरी	**नटवत्**	नटके समान
शरणे	शरणमें रहनेवाले	**नरदेवः**	राजा (और)
लोके	लोगोंमें-से	**कर्मणा**	कर्मसे
बली	बलवान होकर	**अद्विजः**	शूद्र
अबलान्	निर्बलोंको	**असि**	है ॥५॥
बलात्	जबरदस्ती		

यस्त्वं कृष्णे गते दूरं सह गाण्डीवधन्वना ।
शोच्योऽस्यशोच्यान् रहसि प्रहरन् वधमर्हसि ॥६॥

यः त्वं कृष्णे गते दूरं सह गाण्डीव धन्वना शोच्यः अशोच्यान् रहसि प्रहरन् वधं अर्हसि ॥ ६ ॥

गाण्डीवधन्वना	गाण्डीव धन्वा (हमारे दादा) अर्जुन	**त्वं**	तू
सह	के साथ	**रहसि**	एकान्तमें
कृष्णे	भगवान श्रीकृष्णके	**अशोच्यान्**	निरपराधोंको
दूरं	दूर (दूसरे लोकमें)	**प्रहरन्**	मार रहा है (अतः)
गते	चले जानेपर	**शोच्यः**	अपराधी है
यः	क्योंकि	**वधं**	मार देने
		अर्हसि	योग्य है ॥६॥

त्वं वा मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् ।
वृषरूपेण किं कश्चिद् देवो नः परिखेदयन् ॥७॥

त्वं वा मृडाल धवलः पादैः न्यूनं पदा चरन् वृष रूपेण किं कश्चित् देवः नः परिखेदयन् ॥ ७ ॥

मृडाल धवलः	कमलनालके समान श्वेत	**न्यूनं**	कम होनेपर भी
त्वं	आप	**पदा**	(एक ही) पैरसे
पादैः	(तीन) पैरोंके	**चरन्**	चलते हैं
		वा	अथवा

किं	क्या	नः	हमको (आपके इस रूपसे)
वृषरूपेण	बैलके रूपमें	परिखेदयन्	बहुत खेद (दुःख) हो रहा है ॥७॥
कश्चित्	कोई		
देवः	देवता हैं ?		

न जातु पौरवेन्द्राणां दोर्दण्डपरिरम्भिते ।
भूतलेऽनुपतन्त्यस्मिन् विना ते प्राणिनां शुचः ॥८॥

न जातु पौरवेन्द्राणां दोर्दण्ड परिरम्भिते भूतले अनुपतन्ति अस्मिन् विना ते प्राणिनां शुचः ॥ ८ ॥

पौरवेन्द्राणां	पुरुवंशी राजाओंके	विना	छोड़कर
दोदण्ड	भुजदण्डोंसे	जातु	किसी भी
परिरम्भिते	रक्षित	प्राणिनां	प्राणीके
अस्मिन्	इस	शुचः	अश्रु
भूतले	पृथ्वीपर	न	नहीं
ते	आपको	अनुपतन्ति	गिरते ॥८॥

मा सौरभेयानुशुचो व्येतु ते वृषलाद् भयम् ।
मा रोदीरम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ॥९॥

मा सौरभेय अनुशुचः व्येतु ते वृषलात भयं मा रोदीः अम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ॥ ९ ॥

खलानां	दुष्टोंको	वृषलात्	(इस) शूद्रसे
शास्तरि	शासन करने (दण्ड देने) वाले	भयं	भय
		व्येतु	दूर हो ।
मयि	मेरे रहते	अम्ब	गो माता !
सौरभेय	वृषभदेव !	मा	मत
मा	मत	रोदीः	रोइये
अनुशुचः	आँसू बहाइये	ते	आपका
ते	आपका	भद्रं	कल्याण हो ॥९॥

यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यन्ते साध्व्यसाधुभिः ।
तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगो गतिः ॥१०॥

यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वाः त्रस्यन्ते साध्वि असाधुभिः तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिः आयुः भगः गतिः ॥ १० ॥

साध्वि	साध्वी !	**मत्तस्य**	प्रमादी (राजा) का
यस्य	जिसके	**कीर्तिः**	सुयश
राष्ट्रे	राज्यमें	**आयुः**	आयु
सर्वाः	सब	**भगः**	ऐश्वर्य
प्रजाः	प्रजा	**गतिः**	सद्गति
असाधुभिः	दुष्टों द्वारा	**नश्यन्ति**	नष्ट हो जाती हैं ॥१०॥
त्रस्यन्ते	भयभीतकी जाती है		
तस्य	उस		

एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः ।
अत एनं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥११॥

एष राज्ञां परः धर्मः हि आर्तानां आर्ति निग्रहः अतः एनं वधिष्यामि भूत द्रुह असत्तमम् ॥ ११ ॥

हि	क्योंकि	**निग्रहः**	दूर करना
राज्ञां	राजाओंका	**अतः**	अतएव
एष	यह	**एनं**	इस
परः	परम	**भूतद्रुहं**	प्राणियोंसे द्वेष करनेवाले
धर्मः	धर्महै	**असत्तमं**	अत्यन्त दुष्टको
आर्तानां	दुःखियोंका	**वधिष्यामि**	मार दूंगा ॥११॥
आर्ति	दुःख		

कोऽवृश्चत् तव पादास्त्रीन् सौरभेय चतुष्पद ।
मा भूवंस्त्वादृशा राष्ट्रे राज्ञां कृष्णानुवर्तिनाम् ॥१२॥

कः अवृश्चत् तव पादान् त्रीन् सौरभेय चतुष्पद मा भूवं त्वादृशाः राष्ट्रे राज्ञां कृष्ण अनुवर्तिनाम् ॥ १२ ॥

सौरभेय	सुरभिनन्दन !	**तव**	आपके
चतुष्पद	(आप तो) चतुष्पद हैं	**त्रीन्**	तीन

पादान्	पैरोंको	**राष्ट्रे**	राज्यमें
कः	किसने	**त्वादृशाः**	आपके समान (पीड़ित कोई)
अवृश्चत्	काटा		
कृष्ण	श्रीकृष्णके	**मा**	मत
अनुवर्तिनां	अनुयायी	**भूवन्**	होवें ॥१२॥
राज्ञां	राजाओंके		

आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनामकृतागसाम् ।
आत्मवैरूप्यकर्तारं पार्थानां कीर्तिदूषणम् ॥१३॥

आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनां अकृत आगसां आत्म वैरूप्य कर्तारं पार्थानां कीर्ति दूषणम् ॥ १३ ॥

वृष	वृषभदेव	**वैरूप्य**	कुरूप
वः	आप दोनोंका	**कर्तारं**	करनेवालेको
भद्रं	कल्याण हो	**पार्थानां**	(जिसने) पाण्डवोंकी
साधूनां	सत्स्वभाववाले	**कीर्ति**	कीर्तिको
आगसां	अपराध	**दूषणं**	कलंकित किया है (उसे)
अकृत	न करनेवाले (निरपराध)	**आख्याहि**	बतलाइये ॥१३॥
आत्म	अपनेका		

जनेनागस्यघं युञ्जन् सर्वतोऽस्य च मद्भयम् ।
साधूनां भद्रमेव स्यादसाधुदमने कृते ॥१४॥

जने अनागसि अघं युञ्जन् सर्वतः अस्य च मत् भयं साधूनां भद्रं एव स्यात् असाधु दमने कृते ॥ १४ ॥

अनागसि	निरपराध	**मत्**	मुझसे
जने	लोगोंका	**भयं**	भय रहेगा
अघं	अपराध	**च**	ही
युञ्जन्	करनेवालेको	**असाधु**	दुष्टोंका
सर्वतः	सब कहीं	**दमने**	दमन
अस्य	उसे	**कृते**	कर देनेसे

साधूनां	सज्जनोंका	**स्यात्**	होगा
भद्रं	कल्याण	**एव**	ही ॥१४॥

अनागस्विह भूतेषु य आगस्कृन्निरङ्कुशः ।
आहर्तास्मि भुजं साक्षादमर्त्यस्यापि साङ्गदम् ॥१५॥

अनागःसु इह भूतेषु य आगः कृत् निरङ्कुशः आहर्ता अस्मि भुजं साक्षात् अमर्तस्य अपि साङ्गदम् ॥ १५ ॥

य	जो	**साक्षात्**	(वह) प्रत्यक्ष
इह	इस मेरे राज्यमें	**अमर्तस्य**	देवता हो
अनागःसु	निरपराध	**अपि**	तो भी
भूतेषु	प्राणियोंका	**साङ्गदं**	अङ्गद सहित
निरङ्कुशः	उच्छृंखल होकर	**भुजं**	(उसकी) भुजा
आगः	अपराध	**आहर्ता**	(मैं) काट देनेवाला
कृत्	करनेवाला है	**अस्मि**	हूँ ॥१५॥

राज्ञो हि परमो धर्मः स्वधर्मस्थानुपालनम् ।
शासतोऽन्यान् यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ॥१६॥

राज्ञः हि परमः धर्मः स्वधर्म स्थान् अनुपालनं शासतः अन्यान् यथा शास्त्रं अनापत् उत्पथान् इह ॥ १६ ॥

अनापत्	बिना आपत्तिकालके	**स्वधर्मस्थान**	अपने (वर्णाश्रम विहित) धर्मका पालन करनेवालोंकी
इह	इस लोकमें		
अन्यान्	दूसरे		
उत्पथान	शास्त्रमर्यादा छोड़कर चलनेवालोंको	**अनुपालनं**	बराबर रक्षा करना
		राज्ञः	राजाओंका
शास्त्रं	शास्त्रकी विधिके	**हि**	क्योंकि
यथा	अनुसार	**परमः**	परम
शासतः	दण्ड देना (और)	**धर्मः**	धर्म है ॥१६॥

धर्म उवाच–

एतद् वः पाण्डवेयानां युक्तमार्ताभयं वचः ।
येषां गुणगणैः कृष्णो दौत्यादौ भगवान् कृतः ॥१७॥

एतद् वः पाण्डवेयानां युक्तं आर्त अभयं वचः येषां गुणगणैः कृष्णः दौत्य आदौ भगवान् कृतः ॥ १७ ॥

येषां	जिनके	**पाण्डवेयानां**	(उन) पाण्डवोंके वंशमें उत्पन्न
गुणगणैः	सद्गुणोंके कारण	**वः**	आपकी
भगवान्	(षडैश्वर्य सम्पन्न) भगवान	**एतत्**	यह
कृष्णः	श्रीष्कृणने	**आर्तं**	दुःखीको
दौत्य	(उनका)दूत बनकर	**अभय**	निर्भय (करनेवाली)
आदौ	दूसरी भी अनेक (सेवायें)	**वचः**	वाणी
कृतः	कीं	**युक्तं**	उपयुक्त ही है ॥१७॥

न वयं क्लेशबीजानि यतः स्युः पुरुषर्षभ ।
पुरुषं तं विजानीमो वाक्यभेदविमोहिताः ॥१८॥

न वयं क्लेश बीजानि यतः स्युः पुरुषर्षभ पुरुषं तं विजानीमः वाक्य भेद विमोहिताः ॥ १८ ॥

पुरुषर्षभ	पुरुष श्रेष्ठ !	**न**	नहीं
वाक्यभेद	(शास्त्रोंके) वाक्योंमें अनेक रूपताके कारण	**विजानीमः**	जानते
विमोहिताः	मोह (भ्रम) में पड़े	**यतः**	जिससे
वयं	हम	**क्लेश**	दुःखोंका
तं	उस	**बीजानि**	कारण
पुरुषं	पुरुषको	**स्युः**	(उत्पन्न होता) है ॥१८॥

केचिद् विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः ।
दैवमन्ये परे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम् ॥१९॥

केचित् विकल्प वसनाः आहुः आत्मनं आत्मना दैवं अन्ये परे कर्म स्वभावं अपरे प्रभुम् ॥ १९ ॥

विकल्प	द्वैतको	**केचित्**	कोई
वसनाः	स्वीकार न करनेवाले	**आत्मानं**	अपने आपको ही

आत्मना	अपने कष्टका कारण	**कर्म**	कर्मको
आहुः	कहते हैं	**अपरे**	दूसरे
अन्ये	दूसरे	**स्वभावं**	प्रकृतिको (इसमें)
दैवं	भाग्यको	**प्रभुं**	समर्थ (बतलाते)
परे	अन्य (कोई)		हैं ॥१८॥

अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति केष्वपि निश्चयः ।
अत्रानुरूपं राजर्षे विमृश स्वमनीषया ॥२०॥

अप्रतर्क्यात् अनिर्देश्यात् इति केषु अपि निश्चयः अत्र अनुरूपं राजर्षे विमृश स्व मनीषया ॥ २० ॥

केषु	किन्हींका	**राजर्षे**	राजर्षि !
इति	ऐसा	**स्व**	अपनी
अपि	भी	**मनीषया**	बुद्धिसे
निश्चयः	निश्चय है कि	**अत्र**	इस विषयमें
अप्रतर्क्यात्	(दुःखका कारण) तर्कसे नहीं जाना जा सकता	**अनुरूपं**	जो उचित हो
		विमृश	(उसका) विचार करें ॥२०॥
अनिर्देश्यात्	(उसे) बतलाया भी नहीं जा सकता		

सूत उवाच–

एवं धर्मे प्रवदति स सम्राट् द्विजसत्तम ।
समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्ट तम् ॥२१॥

एवं धर्मे प्रवदति स सम्राट् द्विजसत्तम समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्ट तम् ॥ १ ॥

द्विजसत्तम	ब्राह्मण श्रेष्ठ शौनकजी !	**धर्मे**	धर्मके
		प्रवदति	प्रवचन देनेपर
एवं	इस प्रकार	**स**	वे

सम्राट्	राजा परीक्षित्	**मनसा**	चित्तसे
विखेदः	खेद रहित होगये	**तं**	उस (धर्म) से
समाहितेन	एकाग्र	**पर्यचष्ट**	बोले ॥२१॥

राजोवाच-

धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोऽसि वृषरूपधृक् ।
यत् अधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥२२॥

धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मः असि वृषरूप धृक् यत् अधर्म कृतः स्थानं सूचकस्य अपि तत् भवेत् ॥ २२ ॥

धर्मज्ञ	धर्मको जाननेवाले (आप)	**स्थानं**	स्थान (नरकादि मिलते हैं)
धर्मं	धर्मका	**सूचकस्य**	चुगली करनेवालेको
ब्रवीषि	उपदेश कर रहे हैं,	**अपि**	भी
वृषरूप	बैलका रूप	**तत्**	वही (नरकादि)
धृक्	धारण किये (आप)	**भवेत्**	मिलते हैं । (इसीसे आपने अपनेको कष्ट देनेवालेका नाम नहीं बतलाया) ॥२३॥
धर्मः	धर्म		
असि	हैं !		
अधर्मकृतः	अधर्म करनेवालेको		
यत्	जो		

अथवा देवमायाया नूनं गतिरगोचरा ।
चेतसो वचसश्चापि भूतानामिति निश्चयः ॥२३॥

अथवा देव मायायाः नूनं गतिः अगोचरा चेतसः वचसः च अपि भूतानां इति निश्चयः ॥ २३ ॥

अथवा	अथवा	**मायायाः**	मायाकी
इति	यही	**गति**	गति
निश्चयः	सिद्धान्त	**भूतानां**	प्राणियोंके लिए
नूनं	निश्चित है कि	**चेतसः**	मनसे
देव	परमात्माकी	**वचसः**	वाणी

च	से	**अगोचरा**	जानी नहीं जा
अपि	भी		सकती ॥२३॥

तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्तिताः ।
अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसङ्गमदैस्तव ॥२४॥

तपः शौचं दया सत्यं इति पादाः प्रकीर्तिताः अधर्म अंशैः त्रयः भग्नाः स्मयः सङ्ग मदैः तव ॥ २४ ॥

तव	आप (धर्म) के	**अधर्म**	अधर्मके
तपः	तपस्या,	**अंशैः**	अंश
शौचं	पवित्रता,	**स्मय**	अभिमान (से तप)
दया	दया,	**सङ्ग**	आसक्ति (से शौच)
सत्यं	सत्य—	**मदैः**	मद (से दया)
इति	इस प्रकार	**त्रयः**	तीन (पद)
पादाः	(चार) पैर	**भग्नाः**	टूट गये हैं ॥२४॥
प्रकीर्तिताः	(शास्त्रने)वतलाये हैं		

इदानीं धर्म पादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः ।
तं जिघृक्षत्यधर्मोऽयमनृतेनैधितः कलिः ॥२५॥

इदानीं धर्म पादः ते सत्यं निर्वर्तयेत् यतः तं जिघृक्षति अधर्मः अयं अनृतेन एधितः कलिः ॥ २५ ॥

धर्म	धर्मदेव !	**तं**	उसे
इदानीं	इस समय	**अयं**	यह
ते	आपका	**अनृतेन**	झूठसे
सत्यं	सत्यरूप	**एधितः**	बलवान बनाया गया
पादः	चरण	**अधर्मः**	अधर्म रूप
यतः	क्योंकि	**कलिः**	कलियुग
निर्वर्तयेत्	बचा हुआ है	**जिघृक्षति**	नष्ट कर देना चाहता

इयं च भूर्भगवता न्यासितोरुभरा सती ।
श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ॥२६॥

इयं च भूः भगवता न्यासिता उरुभरा सती श्रीमद्भिः तत् पदन्यासैः सर्वतः कृत कौतुका ॥ २६ ॥

इयं	ये	**न्यासिता**	(भारहीन करके) स्थापितकी गयीं
च	भी		(और)
भूः	पृथ्वीदेवी हैं	**तत्**	उन (भगवान) के
उरुभरा	बहुत भार (पीड़िता)	**पदन्यासैः**	चरण रखनेसे
सती	होनेपर	**सर्वतः**	सब ओर
श्रीमद्भिः	श्रीमान्	**कौतुका**	अलंकृत
भगवता	भगवान (श्रीकृष्ण) के द्वारा	**कृत**	हुई ॥२६॥

शोचत्यश्रुकला साध्वी दुर्भगेवोज्झिताधुना ।
अब्रह्मण्या नृपव्याजा शूद्रा भोक्ष्यन्ति मामिति ॥२७॥

शोचति अश्रुकला साध्वी दुर्भगा इव उज्झिता अधुनां अब्रह्मण्या नृपव्याजा शूद्रा भोक्ष्यन्ति मां इति ॥ २७ ॥

साध्वी	ये सती	**शोचति**	चिन्ता कर रही हैं कि
अधुना	इस समय	**अब्रह्मण्या**	ब्राह्मणद्वेषी
उज्झिता	(भगवान द्वारा) छोड़ी हुई	**शूद्रा**	शूद्र
दुर्भगा	भाग्यहीनाके	**नृपव्याजा**	राजा बननेके बहाने
इव	समान	**मां**	मेरा
अश्रुकला	आँसू बहाती	**भोक्ष्यन्ति**	उपभोग करेंगे ॥२७॥
इति	इस प्रकार		

सूत उवाच*-

इति धर्मं महीं चैव सान्त्वयित्वा महारथः ।
निशातमाददे खड्गं कलयेऽधर्महेतवे ॥२८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इति धर्मं महीं च एव सान्त्वयिता महारथः निशातं आददे खड्गं कलये अधर्म हेतवे ॥ २८ ॥

इति	इस प्रकार	**अधर्म**	अधर्मके
धर्मं	धर्मको,	**हेतवे**	कारण
महीं	पृथ्वी	**कलये**	कलियुगके (मारनेके) लिए
च	को		
एव	भी	**निशातं**	तीक्ष्ण धारवाली
सान्त्वयित्वा	आश्वासन देकर	**खड्गं**	तलवार
महारथः	महारथी (परीक्षित) ने	**आददे**	खींचली ॥२८॥

तं जिघांसुमभिप्रेत्य विहाय नृपलाञ्छनम् ।
तत्पादमूलं शिरसा समगाद् भयविह्वलः ॥२९॥

तं जिघांसुं अभिप्रेत्य विहाय नृप लाञ्छनं तत् पादमूलं शिरसा सम अगात् भय विह्वलः ॥ २९ ॥

तं	उन (राजा परीक्षित्) का	**भय**	भयसे
		विह्वलः	ब्याकुल होकर (कलियुग)
जिघांसुं	मार देनेका		
अभिप्रेत्य	अभिप्राय जानकर	**तत्**	उनके
नृप	राजाका	**पादमूलं**	चरणोंपर
लाञ्छनं	चिह्न (मुकुट)	**शिरसा**	शिरसा:
विहाय	उतारकर	**सम अगात्**	गिर पड़ा ॥२९॥

पतितं पादयोर्वीक्ष्य कृपया दीनवत्सलः ।
शरण्यो नावधीच्छ्लोक्य आह चेदं हसन्निव ॥३०॥

पतितं पादयोः वीक्ष्य कृपया दीनवत्सलः शरण्यः न अवधीत् श्लोक्य आह च इदं हसन् इव ॥ ३० ॥

पादयोः	पैरोंपर	**वीक्ष्य**	देखकर
पतितं	गिरे हुएको		

दीनवत्सलः	दीनोंपर स्नेह करनेवाले	**अवधीत्**	मारा
शरण्यः	शरणदाता	**कृपया**	कृपावश
श्लोक्यः	प्रशंसनीय (परीक्षितने)	**इदं**	यह
		हसन्	हँसते हुए
न	(उसे) नहीं	**इव**	से
		आह	बोले ॥३०॥

राजोवाच-

न ते गुडाकेशयशोधराणां
बद्धाञ्जलेर्वै भयमस्ति किंचित् ।
न वर्तितव्यं भवता कथंचन
क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबन्धुः ॥३१॥

न ते गुडाकेश यशोधराणां बद्धाञ्जलेः वै भयं अस्ति किञ्चित् न वर्तितव्यं भवता कथञ्चन क्षेत्रे मदीये त्वं अधर्मबन्धुः ॥ ३१ ॥

गुडाकेश	अर्जुनके	**अस्ति**	है (किन्तु)
यशोधराणां	यशको धारण करनेवाले (उनके वंशजों)	**त्व**	तुम
		अधर्मबन्धुः	अधर्मके मित्र हो (अतः)
बद्धाञ्जलेः	के सम्मुख हाथ जोड़ लेनेपर	**भवता**	तुमको
		मदीये	मेरे
ते	तुम्हें	**क्षेत्रे**	राज्यमें
किञ्चित्	थोड़ा	**कथञ्चन**	कभी भी
वै	भी	**न**	नहीं
भयं	भय	**वर्तितव्यं**	(अपना) बर्ताव करना चाहिए ॥३१॥
न	नहीं		

त्वां वर्तमानं नरदेवदेहे-
ष्वनु प्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः ।
लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो
ज्येष्ठा च माया कलहश्च दम्भः ॥३२॥

त्वां वर्तमानं नरदेव देहेषु अनु प्रवृत्तः अयं अधर्म पूगः लोभः अनृतं चौर्यं अनार्यं अंहो ज्येष्ठा च माया कलहः च दम्भः ॥ ३२ ॥

नरदेव	राजाओंके	**च**	तथा
देहेषु	शरीरमें	**माया**	कपट,
त्वां	तुम्हारे	**कलहः**	झगड़ा
वर्तमानं	उपस्थित रहनेपर	**च**	एवं
लोभः	लोभ,	**दम्भः**	दम्भ
अनृतं	झूठ,	**अयं**	यह
चौर्यं	चोरी,	**अधर्म**	अधर्म
अनार्यं	असभ्यता,	**पूगः**	राशिमें
अंहो	पाप,	**अनु प्रवृत्तः**	प्रवृत्ति हो जाती है ॥३२॥
ज्येष्ठा	दरिद्रता		

न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो
धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ।
ब्रह्मावर्ते यत्र यजन्ति यज्ञै-
र्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ॥३३॥

न वर्तितव्यं तत् अधर्मबन्धो धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ब्रह्मावर्ते यत्र यजन्ति यज्ञैः यज्ञेश्वरं यज्ञ वितान विज्ञाः ॥ ३३ ॥

धर्मेण	धर्मपूर्वक	**यज्ञैः**	यज्ञोंके द्वारा
च	और	**यज्ञेश्वरं**	भगवान् यज्ञेश्वर (विष्णु) का
सत्येन	सत्यसे	**यजन्ति**	यजन करते हैं,
वर्तितव्ये	व्यवहार करने योग्य	**तत्**	वहाँ
ब्रह्मावर्ते	ब्रह्मावर्त (भारत) में	**अधर्मवन्धो**	अधर्मके मित्र तुमको
यत्र	जहाँ	**न**	नहीं
यज्ञ वितान	यज्ञविधिके विस्तारको	**वर्तितव्यं**	व्यवहार करना चाहिए
विज्ञाः	जाननेवाले		

यस्मिन् हरिर्भगवानिज्यमान
इज्यामूर्तिर्यजतां शं तनोति ।

कामानमोघान् स्थिरजङ्गमाना-
मन्तर्बहिर्वायुरिवैष आत्मा ॥३४॥

यस्मिन् हरिः भगवान् इज्यमान इज्यामूर्तिः यजतां शं तनोति कामान् अमोघान् स्थिर जङ्गमानां अन्तः बहिः वायुः इव एष आत्मा ॥३४॥

स्थिर	अचर
जङ्गमानां	चर (सबके)
अन्तः	भीतर
बहिः	बाहर
वायुः	वायुके
इव	समान (व्याप्त)
एष	ये
आत्मा	आत्मा
इज्यामूर्तिः	यज्ञमूर्ति
भगवान्	भगवान
हरिः	श्रीहरि
यस्मिन्	जिन (यज्ञों) में
इज्यमानः	यज्ञसे सन्तुष्ट किये जानेपर
यजतां	यज्ञ करनेवालोंकी
अमोघान्	अव्यर्थ
कामान्	कामनाएँ (पूर्ण करते हैं और)
शं	कल्याण
तनोति	करते हैं ॥३४॥

सूत उवाच-

परीक्षितैवमादिष्टः स कलिर्जातवेपथुः ।
तमुद्यतासिमाहेदं दण्डपाणिमिवोद्यतम् ॥३५॥

परीक्षिता एवं आदिष्टः स कलिः जातवेपथुः तं उद्यतः असिं आह इदं दण्डपाणि इव उद्यतम् ॥ ३५ ॥

परीक्षिता	परीक्षितके द्वारा
एवं	इस प्रकार
आदिष्टः	आदेश दिये जानेपर
असिं	तलवार
उद्यत	उठाये
दण्डपाणि	(काल) दण्ड लिए यमराजके
इव	समान
तं	उनको
उद्यतं	प्रस्तुत (देखकर)
स	वह
कलिः	कलियुग
जातदेपथुः	काँपता हुआ
इदं	यह
आह	बोला ॥३५॥

कलिरुवाच-

यत्र क्वचन वत्स्यामि सार्वभौम तवाज्ञया ।
लक्षये तत्र तत्रापि त्वामात्तेषुशरासनम् ॥३६॥

यत्र क्वचन वत्स्यामि सार्वभौम तव आज्ञया लक्षये तत्र तत्र अपि त्वां आत्त इषु शरासनम् ॥ ३६ ॥

सार्वभौम	(आपतो) सम्पूर्ण पृथ्वीके सम्राट् हैं (अतः)	**त्वां**	आपको
तव	आपकी	**शरासनं**	धनुषपर
आज्ञया	आज्ञासे	**इषु**	वाण
यत्र	जहाँ	**आत्त**	चढ़ाये
क्वचन	कहीं	**लक्षये**	देखता हूँ ॥३६॥ (सर्वत्र ही तो आपका राज्य है। मैं जहाँ रहूँगा, वहीं आप धनुष चढ़ाये पहुँच जायँगे।)
वत्स्यामि	बसूँगा		
तत्र तत्र	वहाँ वहाँ		
अपि	भी		

तन्मे धर्मभृतां श्रेष्ठ स्थानं निर्देष्टुमर्हसि ।
यत्रैव नियतो वत्स्य आतिष्ठंस्तेऽनुशासनम् ॥३७॥

तत् मे धर्मभृतां श्रेष्ठ स्थानं निर्देष्टुं अर्हसि यत्र एव नियतः वत्स्य आतिष्ठन् ते अनुशासनम् ॥ ३७ ॥

धर्मभृतां	धर्मका पालन करने वालोंमें	**ते**	आपकी
श्रेष्ठ	श्रेष्ठ ! (आपको)	**अनुशासनं**	आज्ञाका
तत्	अतः	**आतिष्ठन्**	पालन करते हुए
मे	मुझे	**यत्र**	जहाँ
स्थानं	स्थान	**एव**	ही
निर्देष्टुं	बतलाना	**नियतः**	निश्चित रूपसे
अर्हसि	चाहिये,	**वत्स्य**	(मैं) निवास करूँ ॥३७॥

सूत उवाच-

अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ ।
द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ॥३८॥

अभ्यर्थितः तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्र अधर्मः चतुर्विधः ॥ ३८ ॥

अभ्यर्थितः	प्रार्थना किए जानेपर	**सूना**	हिंसामें
तदा	तब	**स्थानानि**	(निवास) स्थान
तस्मै	उस	**ददौ**	दिया
कलये	कलियुगको	**यत्र**	जिनमें (असत्य,मद,
द्यूतं	जुएमें		आसक्ति और
पानं	मदिरापानमें		निर्दयता)
स्त्रियः	(व्यभिचारिणी) स्त्रियोंमें	**चतुर्विधः**	चार प्रकारके
		अधमः	अधर्म रहते हैं ॥३८॥

पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः ।
ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ॥३९॥

पुनः च याचमानाय जातरूपं अदात् प्रभुः ततः अनृतं मदं कामं रजः वैरं च पञ्चमं ॥ ३९ ॥

पुनः	फिर	**अनृतं**	झूठ,
च	भी	**मदं**	मद,
याचमानाय	याचना करनेपर	**कामं**	कामना,
प्रभुः	समर्थ (परीक्षित) ने	**रजः**	राजसिकता
जातरूपं	स्वर्ण	**च**	और
अदात्	दिया	**पञ्चमं**	पाँचवाँ
ततः	उस (स्वर्णमें कलिके निवास) से	**वैरं**	शत्रुता (का निवास होगया) ॥३९॥

अमूनि पञ्च स्थानानि ह्यधर्मप्रभवः कलिः ।
औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत् तन्निदेशकृत् ॥४०॥

अमूनि पञ्च स्थानानि हि अधर्म प्रभवः कलिः औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत् तत् निदेश कृत ॥ ४० ॥

हि	क्योंकि	**प्रभवः**	उत्पन्न करनेवाला
औत्तरेयेण	राजा परीक्षितके	**कलिः**	कलियुग
दत्तानि	दिये हुए	**तत्**	उनकी
अमूनि	इन	**निदेश**	आज्ञाका
पञ्च	पाँच	**कृत**	पालन करता हुआ
स्थानानि	स्थानोंमें	**न्यवसत्**	निवास करने लगा ॥४०॥
अधर्म	अधर्मको		

अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित् ।
विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ॥४१॥

अथ एतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुष क्वचित् विशेषतः धर्मशीलः राजा लोकपतिः गुरुः ॥ ४१ ॥

अथ	अतएव	**लोकपतिः**	लोगोंका स्वामी,
बुभूषुः	उत्तम गति चाहनेवाला	**राजा**	राजा (और)
पुरुषः	पुरुष	**गुरुः**	आचार्य
विशेषतः	विशेषत	**एतानि**	इनको
धर्मशीलः	धर्मात्मा,	**क्वचित्**	कभी भी
		न सेवेत	सेवन न करें ॥४१॥

वृषस्य नष्टांस्त्रीन् पादान् तपः शौचं दयामिति ।
प्रतिसंदध आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ॥४२॥

वृषस्य नष्टान् त्रीन् पादान् तपः शौचं दयां इति प्रतिसन्दध आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ॥ ४२ ॥

वृषस्य	बैलके	**तपः**	तपस्या,
नष्टान्	नष्ट हुए	**शौचं**	पवित्रता (और)
त्रीन्	तीन	**दयां**	दया—
पादान्	पैर	**इति**	इनको

प्रतिसंदध	फिरसे जोड़ दिया	**महीं**	पृथ्वीको
च	और	**समवर्धयत**	भली प्रकार समृद्ध
आश्वास्य	आश्वासन देकर		(सुखी)किया ॥४२॥

स एष एतर्ह्यध्यास्त आसनं पार्थिवोचितम् ।
पितामहेनोपन्यस्तं राज्ञारण्यं विविक्षता ॥४३॥

स एष एतः हि अध्यास्त आसनं पार्थिवोचितं पितामहेन उपन्यस्तं राज्ञा अरण्यं विविक्षता ॥ ४३ ॥

अरण्यं	वनमें	**आसनं**	सिंहासनपर
विविक्षता	जानेकी इच्छावाले	**स**	वही
राज्ञा	राजा	**एष**	ये (राजा परिक्षित्)
पितामहेन	पितामह (युधिष्ठिर) द्वारा	**हि**	क्योंकि
		एतः	इस समय*
उपन्यस्तं	दिये गये	**अध्यास्त**	विराजमानहैं ॥४३॥
पार्थिवोचितं	राजोचित		

आस्तेऽधुना स राजर्षिः कौरवेन्द्रश्रियोल्लसन् ।
गजाह्वये महाभागश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ॥४४॥

आस्ते अधुना स राजर्षिः कौरवेन्द्रश्रिय उल्लसन् गजाह्वये महाभागः चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ॥ ४४ ॥

स	वे	**कौरवेन्द्रश्रियः**	कौरवेन्द्रकी लक्ष्मीसे
राजर्षिः	राजर्षि	**उल्लसन्**	सुशोभित
महाभागः	महाभाग	**गजाह्वये**	हस्तिनापुरमें
चक्रवर्ती	चक्रवर्ती	**अधुना**	इस समय*
बृहच्छ्रवाः	महान यशस्वी	**आस्ते**	हैं ॥४४॥

---

* भागवतके सभी विद्वान टीकाकारोंका मत है कि यहाँ परीक्षितके वर्तमान होनेकी बात—आसन्न भूतकालके लिए इसलिए है; क्योंकि शौनकादिका सत्र परीक्षितके राज्यकालमें प्रारम्भ होगया था ।

इत्थम्भूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतो नृपः ।
यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥४५॥

इत्थंभूत अनुभावः अयं अभिमन्युसुतः नृपः यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥ ४५ ॥

इत्थंभूत	इस प्रकारके	**क्षोणीं**	पृथ्वीका
अनुभावः	प्रभाववाले	**पालयतः**	पालन करते समय
अयं	ये	**यूयं**	आप लोगोंने
अभिमन्युसुतः	अभिमन्युके पुत्र	**सत्राय**	(इस सत्रकी)
नृपः	राजा (परीक्षित) हैं	**दीक्षिताः**	दीक्षा ली ॥४५॥
यस्य	जिनके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः

अथ अष्टादशोऽध्यायः

सूत उवाच-

यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टो न मातुरुदरे मृतः ।
अनुग्रहाद् भगवतः कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥१॥

यः वै द्रोणि अस्त्र विप्लुष्टः न मातुः उदरे मृतः अनुग्रहात् भगवतः कृष्णस्य अद्भुत कर्मणः ॥ १ ॥

अद्भुत	अद्भुत
कर्मणः	कर्म करनेमें समर्थ
भगवतः	भगवान्
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके
अनुग्रहात्	अनुग्रहसे
यः	जो
द्रोणि	अश्वत्थामाके
अस्त्र वै	ब्रह्मास्त्रसे निश्चित रूपसे
विप्लुष्टः	नष्ट किये जानेपर भी
मातु	माताके
उदरे	पेटमें
न	नहीं
मृतः	मरे ॥१॥

ब्रह्मकोपोत्थिताद् यस्तु तक्षकात्प्राणविप्लवात् ।
न सम्मुमोहोरुभयाद् भगवत्यर्पिताशयः ॥२॥

ब्रह्म कोप उत्थितात् यस्तु तक्षकात् प्राण विप्लवात् न सम्मुमोह उरुभयात् भगवति अर्पित आशयः ॥ २ ॥

ब्रह्म	ब्राह्मणके
कोप	क्रोधसे
उत्थितात्	उत्पन्न
तक्षकात्	तक्षक द्वारा
प्राण	प्राण
विप्लवात्	नाश (जैसे)
उरुभयात्	भारी भयसे (भी)
भगवति	भगवानमें
अर्पित	अर्पित
आशयः	अन्तःकरण (होनेसे)
यस्तु	जो (राजा परीक्षित)
न सम्मुमोह	मोहमें नहीं पड़े ॥२॥

उत्सृज्य सर्वतः सङ्गं विज्ञाताजितसंस्थितिः ।
वैयासकेर्जह्नौ शिष्यो गङ्गायां स्वं कलेवरम् ॥३॥

उत्सृज्य सर्वतः सङ्गं विज्ञात अजित संस्थितिः वैयासकेः जहौ शिष्यः गङ्गायां स्वं कलेवरम् ॥ ३ ॥

सर्वतः	सब ओरसे	**संस्थितिः**	स्वरूप
सङ्गं	आसक्ति	**विज्ञात**	जानकर (उन राजा परीक्षितने)
उत्सृज्य	त्यागकर	**गङ्गायां**	गङ्गा किनारे
वैयासकेः	व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीसे	**स्वं**	अपने
शिष्यः	(उनका) शिष्य बनकर	**कलेवरं**	शरीरको
अजित	श्रीहरिका	**जहौ**	त्याग दिया ॥३॥

नोत्तमश्लोकवार्तानां जुषतां तत्कथामृतम् ।
स्यात्सम्भ्रमोऽन्तकालेऽपि स्मरतां तत्पदाम्बुजम् ॥४॥

न उत्तमश्लोक वर्तानां जुषतां, तत् कथामृतं स्यात् सम्भ्रमः अन्तकाले अपि स्मरतां तत् पदाम्बुजम् ॥ ४ ॥

उत्तमश्लोक	पुण्य कीर्ति भगवानकी	**स्मरतां**	स्मरण करने वालोंको
वार्तानां	चर्चामें लगे,	**अन्तकाले**	मरते समय
तत्	उनकी	**अपि**	भी
कथामृतं	कथारूप अमृतका	**सम्भ्रमः**	(देहात्म बुद्धि रूप) भ्रम
जुषतां	सेवन करने वालोंको,	**न**	नहीं
तत्	उनके	**स्यात्**	होता ॥४॥
पदाम्बुजं	चरण-कमलोंका		

तावत्कलिर्न प्रभवेत् प्रविष्टोऽपीह सर्वतः ।
यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट् ॥५॥

तावत् कलिः न प्रभवेत् प्रविष्टः अपि इह सर्वतः यावत् ईशः महान् उर्व्यां आभिमन्यव एकराट् ॥ ५ ॥

इह	इस पृथ्वीपर	**प्रविष्टः**	प्रवेश कर लेनेपर
सर्वतः	सब कहीं	**अपि**	भी

कलिः	कलियुग
तावत्	तबतक
न	नहीं
प्रभवेत्	(अपना) प्रभाव दिखा सका
यावत्	जबतक
उर्व्यां	पृथ्वीपर
आभिमन्यव	अभिमन्यु नन्दन (परीक्षित)
महान्	महान्
एकराट्	एक छत्र
ईशः	सम्राट् रहे ॥५॥

यस्मिन्नहनि यर्ह्येव भगवानुत्ससर्ज गाम् ।
तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः ॥६॥

यस्मिन् अहनि यर्हि एव भगवान् उत्ससर्ज गां तत् एव इह अनुवृत्तः असाः अधर्म प्रभवः कलिः ॥ ६ ॥

यस्मिन्	जिस
अहनि	दिन,
यर्हि	जिस समय
एव	ही
भगवान्	भगवान् श्रीकृष्णने
गां	पृथ्वीको
उत्ससर्ज	छोड़ा
तत्	उस (समय)
एव	ही
इह	इस लोकमें
असाः	यह
अधर्म प्रभवः	अधर्मको उत्पन्न करनेवाला
कलिः	कलियुग
अनुवृत्तः	प्रवृत्त होगया ॥६॥

नानुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् ।
कुशलान्याशु सिद्धयन्ति नेतराणि कृतानि यत् ॥७॥

न अनुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् कुशलानि आशु सिद्ध्यन्ति न इतराणि कृतानि यत् ॥ ७ ॥

सारङ्ग	भ्रमरके
इव	समान
सारभुक्	सार भोजी
सम्राट्	राजा परीक्षित्ने
कलिं	कलियुगसे
अनुद्वेष्टि	दृढ़ द्वेष
न	नहीं किया,
यत्	क्योंकि (इस कलियुगमें)

कुशलानि	उत्तम कर्म*	**कृतानि**	कर्म
आशु	शीघ्र	**न**	(शीघ्र सफल) नहीं
सिद्ध्यन्ति	सफल होते हैं।		होते ॥७॥
इतराणि	दूसरे (असत्)		

किं नु बालेषु शूरेण कलिना धीरभीरुणा।
अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको नृषु वर्तते ॥८॥

किं नु बालेषु शूरेण कलिना धीर भीरुणा अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यः वृकः नृषु वर्तते ॥ ८ ॥

बालेषु	बालकों (जैसे अज्ञानियों) के लिए	**अप्रमतः**	सावधान होकर
शूरेण	शूरवीरसे,	**वर्तते**	वर्तनेवाले
धीर	धैर्यशालियोंसे	**वृकः**	भेड़ियेके समान
भीरुणा	डरनेवालेसे,	**यः**	इस
प्रमत्तेषु	प्रमाद करनेवाले	**कलिना**	कलियुगसे
नृषु	मनुष्योंसे	**किं नु**	क्या हानि है ॥८॥

उपवर्णितमेतद्वः पुण्यं पारीक्षितं मया।
वासुदेवकथोपेतमाख्यानं यदपृच्छत ॥९॥

उपवर्णितं एतद् वः पुण्यं पारीक्षितं मया वासुदेव कथाः उपेतं आख्यानं यत् पृच्छतः ॥ ९ ॥

यत्	जो	**कथाः**	कथासे
पृच्छतः	(आप लोगोंने) पूछा था (वह)	**उपेतं**	मिला हुआ
		पुण्यं	पवित्र
वासुदेव	भगवान श्रीकृष्णकी	**पारीक्षित**	राजा परीक्षितका

---

* यहाँ उत्तम कर्मके शीघ्र तथा अधम कर्मके शीघ्र न सफल होनेकी बात सांसारिक सफलताके क्षेत्रमें नहीं है। अन्त:करणकी शुद्धि तथा पारलौकिक सफलता ही सफलता है। राजस-तामस साधनाओंसे यह सफलता इस युगमें दुर्लभ है।

एतत्	यह	**मया**	मैंने
आख्यानं	चरित	**उपवर्णितं**	वर्णन किया ॥९॥
वः	आप लोगोंसे		

या याः कथा भगवतः कथनीयोरुकर्मणः ।
गुणकर्माश्रयाः पुम्भिः संसेव्यास्ता बुभूषुभिः ॥१०॥

याः याः कथा भगवतः कथनीया उरुकर्मणः गुण कर्म आश्रयाः पुंभिः संसेव्याः ताः बुभषुभिः ॥ १० ॥

याः याः	जो जो	**बुभूषुभिः**	आत्मतृप्ति चाहनेवाले
भगवतः	भगवान	**पुम्भिः**	पुरुषोंको
उरुकर्मणः	अनन्त कर्माके	**ताः**	उनका
गुण	गुणों (एवं)	**संसेव्याः**	सेवन (श्रवण-कीर्तन) करना चाहिए ॥१०॥
कर्म	कर्म (चरित्र) के		
आश्रयाः	आधारकी		
कथनीया कथाः	वर्णन करने योग्य कथा हैं,		

शौनक उवाच*-

सूत जीव समाः सौम्य शाश्वतीर्विशदं यशः ।
यस्त्वं शंससि कृष्णस्य मर्त्यानाममृतं हि नः ॥११॥

सूत जीव समाः सौम्य शाश्वतीः विशदं यशः यः त्वं शंससि कृष्णस्य मर्त्यानां अमृतं हि नः ॥ ११ ॥

सौम्य	शान्त	**यशः**	सुयश
सूत	सूतजी ! (आप)	**शाश्वतीः**	शाश्वत (नित्य) हो
समाः	बहुत वर्ष	**हि**	क्योंकि
जीव	जीवित रहो	**त्वं**	आप
विशदं	(आपका) निर्मल	**यः**	जो

---

* अन्य प्रतियोंमें 'ऋषयउचुः' है ।

मर्त्यानां	मरण धर्मा मनुष्योंके लिए	**कृष्णस्य**	श्रीकृष्णकी (कथा)
अमृतं	अमृत स्वरूप (है वह)	**नः**	हम लोगोंको
		शंससि	सुना रहे हैं ॥११॥

कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान् ।
आपाययति गोविन्दपादपद्मासवं मधु ॥१२॥

कर्मणि अस्मिन् अनाश्वासे धूम्र धूम्रात्मनां भवान् आपाययति गोविन्द पादपद्म आसवं मधु ॥१२॥

अस्मिन्	इस	**भवान्**	आप
अनाश्वासे	आश्वासन रहित	**गोविन्द**	गोविन्दके
कर्मणि	(यज्ञीय) कर्ममें लगे	**पादपद्म**	चरण-कमलोंका
धूम्र	धुँएँसे	**आसव**	आसव रूप
धूम्रात्मनां	मलिन (धुंऐले हुए) शरीर एवं चित्तवाले (हम लोगोंको)	**मधु**	अमृत
		आपाययति	पिला रहे हैं ॥१२॥

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥१३॥

तुलयाम लवेन अपि न स्वर्गं न अपुनर्भवं भगवत् सङ्गि-सङ्गस्य मर्त्यानां किं उत आशिषः ॥ १३ ॥

भगवत्	भगवानमें	**अपुनर्भवं**	मोक्षसे भी
सङ्गि	आसक्त भक्तोंका	**न**	नहीं करते
लवेन	क्षण भरके	**उत**	फिर
अपि	भी	**मर्त्यानां**	मनुष्योंकी
सङ्गस्य	संगकी	**आशिषः**	(लौकिक)
तुलयाम	तुलना हम		कामनाओंकी
स्वर्गं	स्वर्ग (के सुख) से	**किं**	चर्चा ही क्या ॥१३॥
न	नहीं		

को नाम तृप्येद् रसवित्कथायां
महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
नान्तं गुणानामगुणस्य जग्मु-
र्योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः ॥१४॥

कः नाम तृप्येत रसवित् कथायां महत्तम एकान्त परायणस्य न अन्तं गुणानां अगुणस्य जग्मुः योगेश्वरा ये भव पाद्म मुख्याः ॥ १४ ॥

महत्तम	महापुरुष
एकान्त	अनन्य भावसे
परायणस्य	जिसके परायण रहते हैं (उस)
कथायां	कथासे
कः	कौन
नाम	भला
रसवित्	रसज्ञ
तृप्येत	तृप्त होगा
ये	जो
भव	शिव
पाद्म	ब्रह्मा (आदि)
मुख्याः	मुख्य
योगेश्वराः	योगेश्वर हैं (वे भी)
अगुणस्य	निर्गुण परमात्माके (सगुण होनेपर)
गुणानां	गुणोंका
अन्तं	अन्त,
न	नहीं
जग्मुः	पाते ॥१४॥

तन्नो भवान् वै भगवत्प्रधानो
महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
हरेरुदारं चरितं विशुद्धं
शुश्रूषतां नो वितनोतु विद्वन् ॥१५॥

तत् नः भवान् वै भगवत् प्रधानः महत्तम एकान्त परायणस्य हरेः उदारं चरितं विशुद्धं शुश्रूषतां नः वितनोतु विद्वन् ॥ १५ ॥

तत्	इसलिए
नः	हमारे लिए तो
भवान्	आप
वै	निश्चय
प्रधानः	प्रधान
भगवत	भगवद् भक्त हैं
विद्वन्	(आप) विद्वान हैं,
नः	हम

शुश्रूतां	सेवा करनेवालोंके लिए	**हरेः**	श्रीहरिके
महत्तम	महापुरुष	**उदारं**	उदार
एकान्त	अनन्य भावसे	**विशुद्धं**	निर्मल
परायणस्य	(जिसके) परायण रहते हैं (उन)	**चरितं**	चरितोंको
		वितनोतु	विस्तार कीजिये ॥१५॥

स वै महाभागवतः परीक्षिद्
येनापवर्गाख्यमदभ्रबुद्धिः ।
ज्ञानेन वैयासकिशब्दितेन
भेजे खगेन्द्रध्वजपादमूलम् ॥१६॥

स वै महाभागवतः परीक्षित् येन अपवर्ग आख्यं अदभ्र बुद्धिः ज्ञानेन वैयासकि शब्दितेन भेजे खगेन्द्रध्वज पादमूलम् ॥ १६ ॥

स	वे	**शब्दितेन**	उपदिष्ट
परीक्षित्	परीक्षित	**अपवर्ग**	मोक्ष*
वै	निश्चय	**आख्यं**	कहे जानेवाले
महाभागवतः	महाभागवत थे	**ज्ञानेन**	ज्ञानके द्वारा
येन	जिन	**खगेन्द्रध्वज**	गरुड़ध्वज भगवानके
अदभ्र	निर्मल	**पादमूलं**	चरणोंको
बुद्धि	बुद्धिने	**भेजे**	प्राप्त किया ॥१६॥
वैयासकि	व्यासनन्दन द्वारा		

तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थं-
माख्यानमत्यद्भुतयोगनिष्ठम् ।
आख्याह्यनन्ताचरितोपपन्नं
पारीक्षितं भागवताभिरामम् ॥१७॥

---

* भागवतमें आगे भी 'ज्ञान मात्रं परंब्रह्म' आवेगा। ज्ञान ही मोक्ष है अतः मोक्ष (अपवर्ग) ज्ञानका ही नाम है।

तत् नः परं पुण्यं असंवृत अर्थं आख्यानं अति अद्भुत योग निष्ठं आख्याहि अनन्त चरित उपपन्न पारीक्षितं भागवत अभिरामं ॥ १७॥

तत्	अतः	**अनन्त**	भगवानके
परं	परम	**चरित**	चरितसे
पुण्यं	पवित्र,	**उपपननं**	संयुक्त,
असंवृत	स्पष्ट	**भागवत**	भगवद्भक्तमें
अर्थं	प्रयोजनवाला,	**अभिरामं**	सुन्दर
अति	बहुत	**पारीक्षितं**	परीक्षित्का
अद्भुत	अद्भुत	**आख्यानं**	चरित
योगनिष्ठं	योग (भगवत्प्राप्तिमें) निष्ठा (उत्पन्न करने) वाला,	**नः**	हम लोगोंको
		आख्याहि	सुनाइये ॥१७॥

सूत उवाच–

अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म
वृद्धानुवृत्यापि विलोमजाताः ।
दौष्कुलमार्धिं विधुनोति शीघ्रं
महत्तमानामभिधानयोगः ॥१८॥

अहो वयं जन्मभृतः अद्य हास्म वृद्ध अनुवृत्त्या अपि विलोम जाताः दौष्कुल्यं आर्धिं विधुनोति शीघ्रं महत्तमानां अभिधान योगः ॥ १८ ॥

अहो	सौभाग्यकी बात है कि	**जाताः**	उत्पन्न होने
		अपि	पर भी
वृद्ध	बड़ोंके	**वयं**	हमारा
अनुवृत्त्या	अनुकरणसे	**जन्मभृतः**	जन्मलेना
विलोम	प्रतिलोम*	**अद्य**	आज

---

* माता उच्च वर्णकी हो और पिता छोटे वर्णका हो तो उससे उत्पन्न सन्तान प्रतिलोमज अतः पितासे भी हीन वर्णका माना जाता है। सूत प्रतिलोमज जाति है।

हास्म	सफल हो गया।
महत्तमानां	महापुरुषों द्वारा (आदरपूर्वक) सम्बोधित
योगः	किया जाना
दौष्कुल्यं	हीनकुलमें उत्पन्न होनेकी
आर्धिं	चिन्ताको
शीघ्रं	शीघ्र
विधुनोति	नष्ट कर देता है ॥१८॥

कुतः पुनर्गृणतो नाम तस्य
महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
योऽनन्तशक्तिर्भगवाननन्तो
महद्गुणत्वाद् यमनन्तमाहुः ॥१९॥

कुतः पुनः गृणतः नाम तस्य महत्तम एकान्त परायणस्य यः अनन्तशक्तिः भगवान् अनन्तः महद् गुणत्वात् यं अनन्तं आहुः ॥ १९ ॥

महत्तम	श्रेष्ठ महापुरुष
एकान्त	अनन्य भावसे
परायणस्य	जिनके परायण रहते हैं,
यः	जो
अनन्तशक्तिः	अनन्त शक्ति
भगवान् अनन्तः	भगवान् अनन्त
यं	जिन्हें
महत्	महान
गुणत्वात	गुणोंके कारण
अनन्तः	अनन्त
आहुः	(शास्त्रमें) कहा गया है
तस्य	उनके
नाम	नामोंका
गृणतः	कीर्तन करते
पुनः	फिर
कुतः	(हीनकुलमें जन्म लेनेकी चिन्ता नष्ट होनेकी) बात ही क्या ॥१९॥

एतावतालं ननु सूचितेन
गुणैरसाम्यानतिशायनस्य ।
हित्वेतरान् प्रार्थयतो विभूति-
र्यस्याङ्घ्रिरेणुं जुषतेऽनभीप्सोः ॥२०॥

एतावता अलं ननु सूचितेन गुणैः असाम्यान् अतिशायनस्य हित्वा इतरान् प्रार्थयतः विभूतिः यस्य अङ्घ्रि रेणुं जुषते अनभीप्सोः ॥ २०॥

असाम्यान् गुणैः	असाधारण गुणोंकी	**हित्वा**	छोड़कर
अतिशायनस्य	अतिशयता	**विभूतिः**	लक्ष्मीजी
सूचितेन	सूचित करनेके लिए	**यस्य**	जिन
ननु	निश्चय	**अनभीप्सोः**	न चाहनेवाले (भगवान) की
एतावता	इतना ही		
अलं	पर्याप्त है कि	**पादरेणुं**	चरण रजका
प्रार्थयतः	प्रार्थना करनेवाले	**जुषते**	सेवन करती हैं ॥२०॥
इतरान्	दूसरोंको		

अथापि यत्पादनखावसृष्टं
जगद् विरिञ्चोपहृतार्हणाम्भः ।
सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुन्दात्
को नाम लोके भगवत्पदार्थः ॥२१॥

अथ अपि यत् पादनख अवसृष्टं जगत् विरिञ्च उपहृता अर्हण अम्भः स ईशं पुनाति अन्यतमः मुकुन्दात् कः नाम लोके भगवत् पदार्थः ॥ २१ ॥

अथ	फिर	**स ईशं**	शंकरजीके साथ
अपि	भी	**जगत्**	संसारको
यत्	जिनके	**पुनाति**	पवित्र करता है (उन)
पादनख	चरण नखसे		
अवसृष्टं	गिरा हुआ	**मुकुन्दात्**	मुकुन्दसे
विरिञ्च	ब्रह्माजी द्वारा	**लोके अन्यतमः**	पृथक् लोकमें
उपहृता	प्रस्तुत	**भगवत्**	षडैश्वर्य सम्पन्न
अर्हण	(चरण प्रक्षालन) पूजाका	**पदार्थ**	पदार्थ (व्यक्ति)
		कः नाम	कौन हो सकता है ? ॥२१॥
अम्भः	जल (गंगा बनकर)		

यत्रानुरक्ताः सहसैव धीरा
व्यपोह्य देहादिषु सङ्गमूढम् ।

व्रजन्ति तत्पारमहंस्यमन्त्यं
यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ॥२२॥

यत्र अनुरक्ताः सहसा एव धीराः व्यपोह्य देहादिषु सङ्गं ऊढं व्रजन्ति तत् पारमहंस्यं अन्त्यं यस्मिन् अहिंसा उपशमः स्वधर्मः ॥ २२ ॥

यत्र	जिन (श्रीचरणों) में	तत्	उस
अनुरक्ताः	प्रीतिवाले	अन्त्यं	अन्तिम
धीराः	धीर पुरुष	पारमहंस्यं	परमहंसावस्थामें
सहसा	अचानक	व्रजन्ति	जाते हैं
एव	ही	यस्मिन्	जिसमें
देहादिषु	देह (परिवार) आदिमें	अहिंसा	अहिंसा (और)
		उपशमः	परम शान्ति
ऊढं	दृढ़	स्वधर्मः	अपना धर्म (हो जाता)है ॥२२॥
सङ्गं	आसक्तिको		
व्यपोह्य	त्यागकर		

अहं हि पृष्टोऽर्यमणो भवद्भि-
राचक्ष आत्मावगमोऽत्र यावान् ।
नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्त्रिण-
स्तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः ॥२३॥

अहं हि पृष्टः आर्यमणो भवद्भिः आचक्ष आत्म अवगमः अत्र यावान् नभः पतन्ति आत्मसम पतत्रिणः तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः ॥ २३ ॥

आर्यमणो	आर्य श्रेष्ठो !	अत्र	इस विषयमें
भवद्भिः	आप लोगों द्वारा	यावान्	जितनी
हि	क्योंकि	अवगमः	जानकारी है
अहं	मैं	आचक्ष	बतलाऊँगा ।
पृष्टः	पूछा गया हूँ (आपने मुझसे पूछा है)	पतत्रिणः	पक्षी
		आत्मसमः	अपनी शक्तिके समान
		नभः	आकाशमें
आत्म	मेरा अपना	पतन्ति	उड़ते हैं,

तथा	ऐसे ही	**समं**	(अपनी बुद्धिके)
विपश्चितः	विद्वान भी		समान (वर्णन करते
विष्णुगतिं	भगवान विष्णुकी		हैं) ॥२३॥
	गति (लीलाके		
	विषयमें)		

एकदा धनुरुद्यम्य विचरन् मृगयां वने ।
मृगाननुगतः श्रान्तः क्षुधितस्तृषितो भृशम् ॥२४॥

एकदा धनु उद्यम्य विचरन् मृगयां वने मृगान् अनुगतः श्रान्तः क्षुधितः तृषितः भृशम् ॥ २४ ॥

एकदा	एक बार	**अनुगतः**	पीछे दौड़ते
धनुः	धनुष	**श्रान्तः**	(राजा परीक्षित)
उद्यम्य	लेकर		थक गये ।
वने	वनमें	**भृशं**	बहुत
मृगयां	आखेट करनेके लिए	**क्षुधितः**	भूखे
विचरन्	घूमते (समय)	**तृषितः**	प्यासे थे ॥२४॥
मृगान्	पशुओंके		

जलाशयमचक्षाणः प्रविवेश तमाश्रमम् ।
ददर्श मुनिमासीनं शान्तं मीलितलोचनम् ॥२५॥

जलाशयं अचक्षाणः प्रविवेश तं आश्रमं ददर्श मुनिं आसीनं शान्तं मीलित लोचनम् ॥ २५ ॥

जलाशयं	जलाशय	**शान्तं**	(वहाँ) शन्त,
अचक्षाणः	ढूँढ़ते हुए	**मीलित लोचनं**	नेत्र बन्द किये,
तं	उस	**आसीनं**	बैठे
आश्रमं	आश्रममें	**मुनिं**	मुनिको
प्रविवेश	प्रवेश किया	**ददर्श**	देखा ॥२५॥

प्रतिरुद्धेन्द्रियप्राणमनोबुद्धिमुपारतम् ।
स्थानत्रयात्परं प्राप्तं ब्रह्मभूतमविक्रियम् ॥२६॥

प्रतिरुद्धः इन्द्रिय प्राण मनः बुद्धि उपारतं स्थानत्रयात् परं प्राप्तं ब्रह्मभूतं अविक्रियम् ॥ २६ ॥

इन्द्रिय	इन्द्रियोंको,	**परं**	परेकी अवस्था (तुरीय-समाधि) में
प्राण	प्राणोंको,	**प्राप्तं**	प्राप्त (स्थित),
मनः	मनको,	**अविक्रियं**	निर्विकार,
बुद्धि	बुद्धिको	**ब्रह्मभूतं**	ब्राह्मी भावापन्न, ॥२६॥
प्रतिरुद्धः	रोक (निरुद्ध) करके		
उपारतं	(इनसे) उपरत हुए		
स्थानत्रयात्	तीनों स्थानों (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) से		

विप्रकीर्णजटाच्छन्नं रौरवेणाजिनेन च ।
विशुष्यत्तालुरुदकं तथाभूतमयाचत ॥२७॥

विप्रकीर्णं जटा आच्छन्नं रौरवेन अजिनेन च विशुष्यत् तालुः उदकं तथाभूत अयाचत ॥ २७ ॥

जटा	जटा	**तथाभूतं**	इस अवस्थाके (मुनिसे)
विप्रकीर्णं	फैलाये	**तालुः**	(प्यासके मारे) तालु
च	और	**विशष्यत्**	अत्यन्त सूख रहा था
रौरवेन	रुरुमृग (चीतल) के	**उदकं**	जल
अजिनेन	चर्मसे	**अयाचत**	मांगा ॥२७॥
आच्छन्नं	ढके (ओढ़े) हुए		

अलब्धतृणभूम्यादिरसम्प्राप्तार्घ्यसूनृतः ।
अवज्ञातमिवात्मानं मन्यमानश्चुकोप ह ॥२८॥

अलब्धः तृणः भूमि आदि असम्प्राप्तः अर्घ्य सूनृतः अवज्ञातं इव आत्मानं मन्यमानः चुकोप ह ॥ २८ ॥

अर्घ्य	हाथ धोनेको जल	**तृणः**	कुशासन (अथवा)
सूनृतः	उत्तम मधुरवाणी (से स्वागत)	**भूमि**	भूमि (पर ही बैठ जानेका संकेत)

आदि	आदि (पाद्य-पैर धोनेको जल, पीनेको जल)
अलब्धः	(यह कुछ भी) न मिलनेसे
ह	क्योंकि
आत्मानं	अपना
अवज्ञातं	अवज्ञा (अपमान हुआ है)
इव	ऐसा
भन्यमानः	मान लिया (अतः)
चुकोप	क्रोधमें आगये ॥२८॥

अभूतपूर्वः सहसा क्षुत्तृड्भ्यामर्दितात्मनः ।
ब्राह्मणं प्रत्यभूद् ब्रह्मन् मत्सरो मन्युरेव च ॥२९॥

अभूत पूर्वः सहसा क्षुत् तृट्भ्यां अर्दितः आत्मनः ब्राह्मणं प्रति अभूत् ब्रह्मन् मत्सरः मन्युः एव च ॥ २९ ॥

ब्रह्मन्	शौनकजी
सहसा	अचानक
अभूत पूर्वः	ऐसा (व्यवहार राजके साथ) पहिले कभी हुआ नहीं था,
क्षुत्	भूख-
तृट्भ्यां	प्याससे
आत्मनः	मन
अर्दितः	रौंदा हुआ(व्याकुल) था (इस परि-स्थितिमें)
ब्राह्मणं	ब्राह्मण (उन ध्यानस्थ ऋषि) के
प्रति	प्रति
मत्सरः	मत्सर (उनमें दोष बुद्धि)
च	और
मन्युः एव	क्रोध भी
अभूत	हुआ ॥२९॥

स तु ब्रह्मऋषेरंसे गतासुमुरगं रुषा ।
विनिर्गच्छन्धनुष्कोट्या निधाय पुरमागमत् ॥३०॥

स तु ब्रह्मऋषेः अंसे गतासुं उरगं रुषा विनिर्गच्छन् धनुः कोट्या निधाय पुरं आगमत् ॥ ३० ॥

स तु	उन्होंने तो
ब्रह्मऋषेः	ब्रह्मर्षिके
अंसे	गलेमें
गतासुं	मरे हुए
उरगं	सर्पको
रुषा	क्रोधवश

धनुः	धनुषकी	**विनिर्गच्छन्**	(आश्रमसे) निकलते
कोट्या	नोकसे		हुए
निधाय	डालकर	**पुरं**	राजधानी
		आगमत्	आगये ॥३०॥

एष किं निभृताशेषकरणो मीलितेक्षणः ।
मृषासमाधिराहोस्विदिं नु स्यात्क्षत्रबन्धुभिः ॥३१॥

एष किं निभृत अशेष करणः मीलितेक्षणः मषा समाधिः अहोस्वित् किं नु स्यात् क्षत्रबन्धुभिः ॥ ३१ ॥

एष	(राजाने सोचा) ये	**आहोस्वित्**	अथवा (यह
किं	क्या		सोचकर कि)
अशेष	सम्पूर्ण	**क्षत्र बन्धुभिः**	'अधम क्षत्रियसे
करणः	इन्द्रियों तथा मन-	**किं नु**	भला क्या (प्रयोजन)
	बुद्धिको	**स्यात्**	है'
निभृत	निश्चल करके	**मृषा**	झूठी
मीलितेक्षणः	नेत्र बन्द किये हैं	**समाधिः**	समाधि (का बहाना
			किये) हैं ॥३१॥

तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी विहरन् बालकोऽर्भकैः ।
राज्ञाघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्रेदमब्रवीत् ॥३२॥

तस्य पुत्रः अतितेजस्वी विहरन् बालकः अर्भकैः राज्ञा अघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्र इदं अब्रवीत् ॥ ३२ ॥

तस्य	उन (ऋषि) का	**तातं**	पिताके साथ
पुत्रः	पुत्र	**अघं**	अपराध
अतितेजस्वी	अत्यन्त तेजस्वी	**प्रापितं**	किया है
	(था) ।	**श्रुत्वा**	सुनकर
बालकः	(वह) बालक	**तत्र**	वहीं
अर्भकैः	बच्चोंके साथ	**इदं**	यह
विहरन्	खेल रहा था ।	**अब्रवीत्**	बोला ॥३२॥
राज्ञा	राजाने		

अहो अधर्मः पालानां पीन्नां बलिभुजामिव ।
स्वामिन्यघं यद् दासानां द्वारपानां शुनामिव ॥३३॥

अहो अधर्मः पालानां पीन्नां बलिभुजां इव स्वामिन् अघं यत् दासानां द्वारपानां शुनां इव ॥ ३३ ॥

बलिभुजां	कौओंके	**यत्**	क्योंकि
इव	समान	**द्वारपानां**	द्वाररक्षक
पीन्नां	मोटे हुए	**शुनां**	कुत्तोंके
पालानां	पालकों (राजाओं) का	**इव**	समान
		दासानां	सेवकोंका
अहो	आश्चर्यजनक	**स्वामिन्**	स्वामीके प्रति (यह)
अधर्मः	अधर्म (देखो)	**अघं**	अपराध (है) ॥३३॥

ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुर्हि द्वारपालो निरूपितः ।
स कथं तद्गृहे द्वाःस्थः सभाण्डं भोक्तुमर्हति ॥३४॥

ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुः हि द्वारपालः निरूपितः स कथं तत् द्वास्थः सभाण्डं भोक्तुं अर्हति ॥ ३४ ॥

ब्राह्मणैः	ब्राह्मणों द्वारा	**तत्**	उन (ब्राह्मणों) के
हि	क्योंकि	**गृहे**	घरमें
क्षत्रबन्धुः	क्षत्रियाधम	**सभाण्डं**	बर्तनोंमें
द्वारपालः	द्वारपाल	**भोक्तुं**	भोजन करने
निरूपितः	बतलाये गये हैं ।	**अर्हति**	योग्य हो सकते है ॥३४॥
स द्वास्थः	वे द्वारपर रहनेवाले		
कथं	कैसे		

कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनाम् ।
तद्भिन्नसेतूनद्याहं शास्मि पश्यत मे बलम् ॥३५॥

कृष्णे गते भगवति शास्तरि उत्पथ गामिनां तद् भिन्नसेतून् अद्य अहं शास्मि पश्यत मे बलम् ॥ ३५ ॥

उत्पथ	कुमार्गसे	**शास्तरि**	दण्ड देनेवाले
गामिनां	चलनेवालोंको	**भगवति**	भगवान

कृष्णे	श्रीकृष्णके
गते	चले जानेपर
तद्	उनकी
भिन्नसेतून्	मर्यादा भंग करने वालोंको
अद्य	आज
अहं	मैं
शास्मि	दण्ड दे रहा हूँ
मे	मेरी
बलं	शक्तिको
पश्यत	देखो ॥३५॥

इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो वयस्यानृषिबालकान् ।
कौशिक्याप उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह ॥३६॥

इति उक्त्वा रोष ताम्राक्षः वयस्मान् ऋषि बालकान् कौशिकी आप् उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह ॥ ३६ ॥

रोष ताम्राक्षः	क्रोधसे लाल नेत्र (वह)
वयस्यान्	अपने मित्र
ऋषि बालकान्	ऋषियोंके बालकोंसे
इति	ऐसा
उक्त्वा	कहकर
कौशिकी	कौशिकी नदीके
आप्	जलसे
उपस्पृश्य	आचमन करके
वाग्वज्रं	वाणी रूप वज्र
विससर्ज	विसर्जित
ह	किया (शाप दिया) ॥३६॥

इति लङ्घितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि ।
दङ्क्ष्यति स्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्रुहम् ॥३७॥

इति लङ्घित मर्यादं तक्षकः सप्तमे अहनि दङ्क्ष्यतिस्म कुलाङ्गारं चोदितः मे ततः द्रुहम् ॥ ३७ ॥

ततः	मेरे पितासे
द्रुहं	द्रोह करनेवाले
कुलाङ्गारं	कुलांगार
इति	इस प्रकार
मर्यादं	मर्यादाका
लङ्घितं	उल्लंघन करनेवाले (परीक्षित) को
मे	मेरे द्वारा
चोदितः	प्रेरित
तक्षकः	तक्षक
सप्तमे	सातवें
अहनि	दिन
दंक्षपति	डँस
स्म	लेगा ॥३७॥

ततोऽभ्येत्याश्रमं बालो गले सर्पकलेवरम् ।
पितरं वीक्ष्य दुःखार्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥३८॥

ततः अभ्येत्य आश्रमं बालः गले सर्प कलेवरं पितरं वीक्ष्य दुःख आर्तः मुक्तकण्ठः रुरोद ह ॥ ३८ ॥

ततः	तदन्तर	**कलेवरं**	शरीर
बालः	(वह) बालक	**वीक्ष्य**	देखकर
आश्रमं	आश्रममें	**दुःखआर्तः**	दुःखसे व्याकुल होकर
अभ्येत्य	आकर	**मुक्तकण्ठः**	खुले गलेसे (जोरसे)
पितरं	पिताके		
गले	गलेमें	**रुरोद**	रोने
सर्प	सर्पका	**ह**	लगा ॥३८॥

सवा आङ्गिरसो ब्रह्मन् श्रुत्वा सुतविलापनम् ।
उन्मील्य शनकैर्नेत्रे दृष्ट्वा स्वांसे मृतोरगम् ॥३९॥

स वा आङ्गिरसः ब्रह्मन् श्रुत्वा सुत विलापनं उन्मील्य शनकैः नेत्रे दृष्ट्वा स्व अंसे मृत उरगम् ॥ ३९ ॥

ब्रह्मन्	शौनकजी !	**शनकैः**	धीरे-धीरे
स	उन	**नेत्रे**	नेत्रोंको
आङ्गिरसः	अंगिरा गोत्रीय (ऋषि) ने	**उन्मील्य**	खोला (और)
		स्व	अपने
वा	उस समय	**अंसे**	गलेमें
सुत	पुत्रका	**मृत**	मरे हुए
विलापनं	विलाप	**उरगं**	सर्पको
श्रुत्वा	सुनकर	**दृष्ट्वा**	देखकर ॥३९॥

विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ वत्स कस्माद्धि रोदषि ।
केन वा तेऽपकृतमित्युक्तः स न्यवेदयत् ॥४०॥

विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ वत्स कस्मात् हि रोदिषि केन वा ते अपकृतं इति उक्तः स न्यवेदयत् ॥ ४० ॥

विसृज्य	(उस मरे सर्पको) फेंककर
पुत्रं	पुत्रसे
पप्रच्छ	पूछा
वत्स	बेटा !
कस्मात् हि	किस कारणसे
रोदिषि	रो रहे हो ?
वा	अथवा
केन	किसने
ते	तुम्हारा
अपकृतं	अपकार किया है ?
इति	ऐसा
उक्तः	कहे जानेपर
स	उस (उनके पुत्र) ने
न्यवेदयत्	सब सुनाया ॥४०॥

निशम्य शप्तमतदर्हं नरेन्द्रं
स ब्राह्मणो नात्मजमभ्यनन्दत् ।
अहो बतांहो महदज्ञ ते कृत-
मल्पीयसि द्रोह उरुर्दमो धृतः ॥४१॥

निशम्य शप्तं अतदर्हं नरेन्द्रं स ब्राह्मणः न आत्मजं अभ्यनन्दत् अहो बत अंहो महत् अज्ञ ते कृतं अल्पीयसि द्रोहः उरुः दमः धृतः ॥ ४१ ॥

अतदर्हं	(शाप) के अयोग्य
नरेन्द्रं	सम्राट् (परीक्षित) को
शप्तं	शाप दिया, (यह)
निशम्य	सुनकर
स	उन
ब्राह्मणः	ब्राह्मणने
आत्मजं	पुत्रका
अभिनन्दत	समर्थन
न	नहीं किया ।
अहो	अहो
बत	निश्चय ही
ते	तुमने
अज्ञ	अज्ञानीने
महत्	भारी
अंहो	अपराध
कृतं	किया है, (जो)
अल्पीयसि	छोटेसे
द्रोहः	द्रोहके लिए
उरुः	बड़ा
दमः	दण्ड
धृतः	दे दिया ॥४१॥

न वै नृभिर्नरदेवं पराख्यं
सम्मातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे ।
यत्तेजसा दुर्विषहेण गुप्ता
विन्दन्ति भद्राण्यकुतोभयाः प्रजाः ॥४२॥

न वै नृभिः नरदेवं पराख्यं सम्मातुं अर्हसि अविपक्व बुद्धेः यत् तेजसा दुर्विषहेण गुप्ताः विन्दति भद्राणि अकुतः भयाः प्रजाः ।। ४२ ।।

अविपक्व	(तुम) कच्ची	**यत्**	जिसके
बुद्धेः	बुद्धिवाले हो	**दुर्विषहेण**	असह्य
पराख्यं	भगवत् कलायुत	**तेजसा**	तेजसे
नरदेवं	राजाकी	**गुप्ताः**	रक्षित
नृभिः	(साधारण) मनुष्योंसे	**प्रजाः**	प्रजा
		अकुतः भयाः	सब ओरसे निर्भय होकर
वै	निश्चय ही		
सम्मातुं	समता करनी	**भद्राणि**	कल्याणको
अर्हसि न	नहीं चाहिये	**विन्दति**	प्राप्त करती है ।।४२।।

अलक्ष्यमाणे नरदेवनाम्नि
रथाङ्गपाणावयमङ्ग लोकः ।
तदा हि चौरप्रचुरो विनङ्क्षय-
त्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत् क्षणात् ।।४३।।

अलक्ष्यमाणे नरदेवनाम्नि रथाङ्गपाणाः वयं अङ्ग लोकः तदा हि चौर प्रचुरः विनङ्क्ष्यति अरक्ष्यमाणः अवि वरूथवत् क्षणात् ।। ४३ ।।

अङ्ग	प्रिय पुत्र !	**तदा**	तब
हि	क्योंकि	**अरक्ष्यमाणः**	रक्षारहित
नरदेव	राजा	**अवि**	भेड़ोंके
नाम्नि	नामसे	**वरूथवत्**	झुंडके समान
रथाङ्गपाणाः	(स्वयं भगवान) चक्रपाणिके	**वयं**	हम सब (तथा)
		लोकः	लोक
अलक्ष्यमाणे	दिखायी न देनेपर	**क्षणात्**	शीघ्र ही
चौर	चोर	**विनंक्ष्यति**	नष्ट हो जाते
प्रचुरः	बढ़ जाते हैं		हैं ।।४३।।

तदद्य नः पापमुपैत्यनन्वयं
यन्नष्टनाथस्य वसोर्विलुम्पकात् ।

परस्परं घ्नन्ति शपन्ति वृञ्जते
पशून् स्त्रियोऽर्थान् पुरुदस्यवो जनाः ॥४४॥

तत् अद्य नः पापं उपैति अनु अन्वयं यत् नष्ट नाथस्य वसोः विलुम्पकात् परस्परं घ्नन्ति शपन्ति वृञ्जते पशून् स्त्रियः अर्थान् पुरु दस्यवः जनाः ॥ ४४ ॥

तत्	अतः	**स्त्रियः**	स्त्रियोंको
अद्य	अब	**अर्थान्**	धनको
अन्वयं	उस (चलनेवाली) परम्पराके	**वसोः**	सम्पत्तिको
		विलुम्पकात्	लूटनेवाले
अनु	पीछे	**पुरु**	बढ़े हुए
नः	हमको भी	**दस्यवः**	डाकू
पापं	पाप	**जनाः**	लोग
उपैति	लगेगा	**परस्परं**	आपसमें
यत्	क्योंकि	**घ्नन्ति**	एक दूसरेको मारते
नाथस्य	स्वामी (राजा) के	**वृञ्जते**	काटते
नष्ट	नष्ट हो जानेपर	**शपन्ति**	गाली देते हैं ॥४४॥
पशून्	पशुओंको		

तदाऽऽर्यधर्मश्च विलीयते नृणां
वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमयः ।
ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्मनां
शुनां कपीनामिव वर्णसंकरः ॥४५॥

तदा आर्य धर्मः च विलीयते नृथां वर्ण आश्रम आचारयुतः त्रयीमयः ततः अर्थ काम अभिनिवेशित आत्मनां शुनां कपीनां इव वर्णसंकरः ॥४५॥

तदा	उस समय		गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास रूप)
वर्ण	वर्ण (ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रात्मक)	**त्रयीमयः**	वैदिक
आश्रम	आश्रम (ब्रह्मचर्य,	**आचारयुतः**	आचारवाला

नृणां	मनुष्योंका
आर्य	श्रेष्ठ
धर्मं	धर्म
च	भी
विलीयते	नष्ट हो जाता है
ततः	तब
अर्थ	धन (और)
काम	भोगोंमें
अभिनिवेशित	पूर्णतः लगाये
आत्मनां	चित्तवालोंका
शुनां	कुत्तों
कपीनां	बन्दरों
इव	की भाँति
वर्णसङ्करः	वर्ण संकर हो जाता है। (कोई वैवाहिक मर्यादा नहीं रहती) ॥४५॥

धर्मपालो नरपतिः स तु सम्राड् बृहच्छ्रवाः ।
साक्षान्महाभागवतो राजर्षिर्हयमेधयाट् ।
क्षुत्तृट्श्रमयुतो दीनो नैवास्मच्छापमर्हति ॥४६॥

धर्मपालः नरपतिः स तु तस्माद् बृहत् श्रवाः साक्षात् महाभागवतः राजर्षिः हयमेध याट् क्षुत् तृट् श्रम युतः दीनः न एव अस्मत् शापं अर्हति ॥ ४६ ॥

स	वे
तु	तो
सम्राट्	सम्राट्
धर्मपालः	धर्मका पालन करनेवाले
नरपतिः	राजा हैं,
बृहत्	विशाल
श्रवाः	यशस्वी हैं,
साक्षात्	साक्षात्
महाभागवतः	महाभागवत
राजर्षि	राजर्षि हैं,
हयमेध	अश्वमेध यज्ञ
याट्	कर्ता हैं,
क्षुत्	भूख
तृट्	प्यास
श्रम	परिश्रमसे (थके)
युतः	युक्त होनेसे
दीनः	व्याकुल थे,
अस्मत्	हमारे
शापं	शापके
न एव	नहीं ही
अर्हति	योग्य थे ॥४६॥

अपापेषु स्वभृत्येषु बालेनापक्वबुद्धिना ।
पापं कृतं तद्भगवान् सर्वात्मा क्षन्तुमर्हति ॥४७॥

अपापेषु स्व भृत्येषु बालेन, अपक्व बुद्धिना पापं कृतं तत् भगवान् सर्वात्मा क्षन्तुं अर्हति ॥ ४७ ॥

स्व	अपने	**कृतं**	किया है,
अपापेषु	निष्पाप	**तत्**	वह
भृत्येषु	सेवकके प्रति	**सर्वात्मा**	सर्वात्मा
अपक्व	कच्ची	**भगवान**	भगवानको
बुद्धिना	बुद्धिके कारण	**क्षन्तुं**	क्षमा करना
बालेन	बालकने (जो)	**अर्हति**	चाहिये ॥४७॥
पापं	अपराध		

तिरस्कृता विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ता हता अपि ।
नास्य तत् प्रतिकुर्वन्ति तद्भक्ताः प्रभवोऽपि हि ॥४८॥

तिरस्कृताः विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ताः हताः अपि न अस्य प्रति कुर्वन्ति तद् भक्ताः प्रभवः अपि हि ॥ ४८ ॥

हि	क्योंकि	**अपि**	भी
तद्	उन (भगवान) के	**प्रभवः**	सामर्थ्य रहनेपर
भक्ताः	भक्तजन	**अपि**	भी
तिरस्कृताः	अपमानित होनेपर,	**अस्य**	इस (सब) का
विप्रलब्धाः	ठगे जानेपर,	**प्रति**	प्रतिकार
शप्ताः	गाली देनेपर,	**न**	नहीं
क्षिप्ताः	आक्षेप किये जानेपर,	**कुर्वन्ति**	करते ॥४८॥
हताः	मारे जानेपर		

इति पुत्रकृताघेन सोऽनुतप्तो महामुनिः ।
स्वयं विप्रकृतो राज्ञा नैवाघं तदचिन्तयत् ॥४९॥

इति पुत्र कृत अघेन सः अनुतप्तः महामुनिः स्वयं विप्रकृतः राज्ञा न एव अघं तत् अचिन्तयत् ॥ ४९ ॥

इति	इस प्रकार	**महामुनिः**	महामुनि
स	वे	**पुत्र**	पुत्र

कृत	के किये	**तत्**	उस
अघेन	अपराधसे	**अघं**	अपराधको
अनुतप्तः	बहुत दुःखी हुए।	**न**	नहीं
स्वयं	स्वयं	**एव**	ही
राज्ञा	राजासे	**अचिन्तयत्**	सोचा ॥४९॥
विप्रकृतः	अपमानित हुए थे		

प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः ।
न व्यथन्ति न हृष्यन्ति यत आत्मागुणाश्रयः ॥५०॥

प्रायशः साधवः लोके परैः द्वन्देषु योजिताः न व्यथयन्ति न हृष्यन्ति यत आत्मा गुण आश्रयः ॥ ५० ॥

प्रायशः	प्रायः	**न**	न
साधवः	सत्पुरुष	**हृष्यन्ति**	हर्षित होते,
लोके	संसारमें	**यत**	क्योंकि
परैः	दूसरों द्वारा	**आत्मा**	आत्मा
द्वन्देषु	द्वन्द्वों (सुख-दुःख, मानापमान) में	**गुण**	गुणों (त्रिगुणों) का
		आश्रयः	आश्रय है (गुणोंसे परे होनेके कारण उनसे प्रभावित नहीं होता) ॥५०॥
योजिताः	लगाये जानेपर		
न	नहीं		
व्यथयन्ति	व्यथित होते		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां अष्टादशसाहस्र्यां
पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

सूत उवाच-

महीपतिस्त्वथ तत्कर्म गर्ह्यं
विचिन्तयन्नात्मकृतं सुदुर्मनाः ।
अहो मया नीचमनार्यवत्कृतं
निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ॥१॥

महीपतिः तु अथ तत् कर्म गर्ह्यं विचिन्तयन् आत्म कृतं सुदुर्मनाः अहो मया नीचं अनार्यवत् कृतं निरागसि ब्रह्मणि गूढ तेजसि ॥ १ ॥

महीपतिः	राजा परीक्षित	**सुदुर्मनाः**	अत्यन्त खिन्न हुए।
तु	तो	**अहो**	हाय !
अथ	तदनन्तर (राजधानीमें पहुँचने पर)	**निरागसि**	निरपराध
		तेजसि	(अपने) तेजको
		गूढ	छिपाये
तत्	उस	**ब्रह्मणि**	ब्राह्मणके साथ
गर्ह्यं	निन्दित	**मया**	मैंने
आत्म	अपने	**अनार्यवत्**	अनार्यके समान
कृतं	किये	**नीचं**	नीच
कर्म	कर्मको	**कृतं**	(व्यवहार) किया ॥१॥
विचिन्तयन्	सोचते हुए		

ध्रुवं ततो मे कृतदेवहेलनाद्
दुरत्ययं व्यसनं नातिदीर्घात् ।
तदस्तु कामं त्वघनिष्कृताय मे
यथा न कुर्यां पुनरेवमद्धा ॥२॥

ध्रुवं ततः मे कृत देव हेलनात् दुरत्ययं व्यसनं न अति दीर्घात् तत् अस्तु कामं तु अघ निष्कृताय मे यथा न कुर्यां पुनः एवं अद्धा ॥ २ ॥

ध्रुवं	निश्चय ही
ततः मे कृत्	उस मेरे द्वारा किये
देव	देव (पुरुष) की
हेलनात्	अवहेलनासे
अति	बहुत
दीर्घात्	देरसे
न	नहीं (शीघ्र)
दुरत्ययं	घोर
व्यसनं	विपत्ति आवेगी,
तत्	वह
कामं	भरपूर
अस्तु	आवे,
मे	मेरे
अघ	पापका
निष्कृताय	प्रायश्चित करने (आवेगी)
यथा	जिससे
पुनः	फिर
एवं	इस प्रकारका
श्रद्धा	साहस
न	नहीं
कुर्यां	करूँ ॥२॥

अद्यैव राज्यं बलमृद्धकोशं
प्रकोपितब्रह्मकुलानलो मे ।
दहत्वभद्रस्य पुनर्न मेऽभूत्
पापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः ॥३॥

अद्य एव राज्यं वलं ऋद्ध कोशं प्रकोपितः ब्रह्मकुल अनल मे दहतु अभद्रस्य पुनः न मे अभूत् पापीयसी धीः द्विज देव गोभ्यः ॥ ३ ॥

अद्य	आज
एव	ही
प्रकोपितः	क्रुद्ध किये गये
ब्रह्मकुल	ब्राह्मणकुलकी
अनलः	(क्रोधरूप) अग्नि
मे	मुझ
अभद्रस्य	दुष्टके
राज्यं	राज्य,
बलं	सेना,
ऋद्ध	समृद्ध
कोशं	कोशको
दहतु	भस्म करदे
मे	(जिससे) मेरी
पुनः	फिर
द्विज	ब्राह्मण
देव	देवता (एवं)
गोभ्यः	गायोंके प्रति
पापीयसी	पापमयी
धीः	बुद्धि
न	नहीं
अभूत्	होवे ॥३॥

स चिन्तयन्नित्थमथाशृणोद् यथा
मुनेः सुतोक्तो निर्ऋतिस्तक्षकाख्यः ।
स साधु मेने नचिरेण तक्षका-
नलं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ॥४॥

स चिन्तयन् इत्थं अथ आशृणोत् यथा मुनेः सुत उक्तः निर्ऋतिः तक्षकाख्यः स साधु मेने न चिरेण तक्षक अनलं प्रसक्तस्य विरक्ति कारणम् ॥ ४ ॥

स	वे (परीक्षित)	**स**	उन्होंने
इत्थं	इस प्रकार	**साधु**	(इसे) अच्छा
चिन्तयन्	चिन्ता कर ही रहे थे	**मेने**	माना
अथ	कि इतनेमें	**चिरेण**	देरसे
यथा	जैसे	**न**	नहीं (शीघ्र ही)
मुनेः	मुनिके	**तक्षक**	तक्षक (रूपी)
सुत	पुत्रने	**अनलं**	अग्नि
उक्तः	कहा था	**प्रसक्तस्य**	(राज्यादिमें)
तक्षकाख्यः	तक्षकके (काटने) नामकी		आसक्तके लिए
निर्ऋतिः	मृत्यु (का समाचार)	**विरक्ति**	वैराग्यको
आशृणोत्	सुना,	**कारणम्**	करनेवाली हुई ॥४॥

अथो विहायेमममुं च लोकं
विमर्शितौ हेयतया पुरस्तात् ।
कृष्णाङ्घ्रिसेवामधिमन्यमान
उपाविशत् प्रायममर्त्यनद्याम् ॥५॥

अथ विहाय इमं अमुं च लोकं विमर्शितः हेयतया पुरस्तात् कृष्ण अङ्घ्रि सेवा अधि मन्यमानः उपाविशत् प्रायं अमर्त्यनद्याम् ॥ ५ ॥

पुरस्तात्	पहिले ही	**विमर्शितः**	विचार कर लिये जानेके कारण
हेयतया	त्याज्यरूपसे		

अथ	इसी समय	**अघि**	महत्त्वपूर्ण
इमं च	इस लोक तथा	**मन्यमानः**	मानते हुए
अमुं	उस (स्वर्गादि)	**अमर्त्य**	देव
लोकं	लोकको	**नद्यां**	नदी (सुरसरिके किनारे)
विहाय	त्यागकर		
कृष्ण	श्रीकृष्णके	**प्रायं**	प्रायोपवेश (अनशन)
अङ्घ्रि	चरणोंकी		करके
सेवा	सेवाको	**उपाविशत्**	बैठ गये ॥५॥

या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्र-
कृष्णाङ्घ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री ।
पुनाति लोकानुभयत्र सेशान्
कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥६॥

या वै लसत् श्रीः तुलसी विमिश्र कृष्ण अङ्घ्रि रेणुभिः अधिक अम्बु नेत्री पुनाति लोकान् उभय अत्र स ईशान् कः तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥ ६ ॥

या	जो	**वै**	निश्चित रूपसे
तुलसी	तुलसी	**अत्र**	इस जगतमें
विमिश्र	मिली हुई	**उभय**	दोनों
कृष्ण	श्रीहरिके	**लोकान्**	लोकोंको
अंघ्रि	चरण	**स ईशान**	लोकपालोंके साथ
रेणुभिः	रजसे	**पुनाति**	पवित्र करती हैं ।
अधिक	अधिक	**मरिष्यमाणः**	मरणासन्न
श्रीः	सुशोभित (एवं)	**कः**	कौन
लसत्	उल्लसित होकर	**तां**	उन (गंगाजी) का
अम्बु	जलधारा	**सेवेत**	सेवन
नेत्री	ले जाती हुई	**न**	नहीं करेगा ? ॥६॥

इति व्यवच्छिद्य स पाण्डवेयः
प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्याम् ।

दध्यौ मुकुन्दाङ्घ्रिमनन्यभावो
मुनिव्रतो मुक्तसमस्तसङ्गः ॥७॥

इति व्यवच्छिद्य स पाण्डवेयः प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्यां दध्यौ मुकुन्द अङ्घ्रि अनन्य भावः मुनिव्रतः मुक्त समस्त संगः ॥ ७ ॥

स	वह	**मुक्त**	त्यागकर
पाण्डवेयः	पाण्डववंशी (परीक्षित)	**मुनि**	मुनियोंके समान
		व्रतः	व्रती (मननशील) होकर
इति	इस प्रकार		
प्रायोपवेशं	आमरण उपवास	**विष्णुपद्यां**	गंगाजीके किनारे
प्रति	के लिए	**मुकुन्द**	श्रीकृष्णके
व्यवच्छिद्य	निश्चय करके	**अंघ्रि**	चरणोंको
समस्त	सभी	**अनन्यभावः**	अनन्य भावसे
संगः	आसक्तिको	**दध्यौ**	धारण किया ॥७॥

तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना
महानुभावा मुनयः सशिष्याः ।
प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः
स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ॥८॥

तत्र उपजग्मुः भुवनं पुनाना महानुभावा मुनयः स शिष्याः प्रायेण तीर्थ अभिगम अपदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ॥ ८ ॥

तत्र	वहाँ	**उपजग्मुः**	आये ।
भुवनं	त्रिभुवनको	**प्रायेण**	प्रायः
पुनाना	पवित्र करनेवाले	**हि**	क्योंकि
महानुभावाः	महान् प्रभाववाले	**सन्तः**	सन्त
मुनयः	मुनिगण	**स्वयं**	स्वयं
सशिष्याः	शिष्योंके साथ	**तीर्थानि**	तीर्थोंको
तीर्थअभिगम	तीर्थयात्राके	**पुनन्ति**	पवित्र करते हैं ॥८॥
अपदेशैः	बहानेसे		

अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वा-
नरिष्टनेमिर्भृगुरङ्गिराश्च ।
पराशरो गाधिसुतोऽथ राम
उतथ्य इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ ॥८॥

अत्रिः वसिष्ठः च्यवनः शरद्वान् अरिष्टनेमिः भृगु अङ्गिराः च (और) पराशरः गाधिसुतः (विश्वामित्र) अथ (तथा) राम (परशुराम) उतथ्य इन्द्रप्रमद इध्मबाहौ ॥ ९ ॥*

मेधातिथिर्देवल आर्ष्टिषेणो
भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः ।
मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भयोनि-
र्द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ॥१०॥

मेधातिथिः देवल आर्ष्टिषेणः भारद्वाजः गौतमः पिप्पलादः मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भयोनिः (अगस्त्य) द्वैपायनः (व्यास) भगवान् नारदः च ॥ १० ॥

अन्ये च देवर्षिब्रह्मर्षिवर्या
राजर्षिवर्या अरुणादयश्च ।
नानार्षेयप्रवरान् समेता-
नभ्यर्च्य राजा शिरसा ववन्दे ॥११॥

अन्ये च देवर्षि ब्रह्मर्षिवर्याः राजर्षिवर्याः अरुण आदयः च नाना आर्षेय प्रवराः समेतान् अभ्यर्च्य राजाः शिरसा ववन्दे ॥ ११ ॥

अन्ये	दूसरे	**राजर्षिवर्याः**	राजर्षि श्रेष्ठ
च	भी	**च**	तथा
देवर्षि	देवर्षि	**अरुण**	अरुण
ब्रह्मर्षिवर्याः	ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ	**आदयः**	आदि

---

* केवल नाम हैं इनमें

आर्षेय ऋषियोंके गोत्रमें उत्पन्न
नाना अनेक
प्रवराः श्रेष्ठ लोग
समेतान् आये थे, (उनकी)
अभ्यर्च्य सत्कार करके
राजा राजाने
शिरसा सिरसे (भूमिमें सिर रखकर)
ववन्दे प्रणाम किया ॥११॥

सुखोपविष्टेष्वथ तेषु भूयः
कृतप्रणामः स्वचिकीर्षितं यत् ।
विज्ञापयामास विविक्तचेता
उपस्थितोऽग्रेऽभिगृहीतपाणिः ॥१२॥

सुख उपविष्टेषु अथ तेषु भूयः कृत प्रणामः स्व चिकीर्षित यत् विज्ञापयामास विविक्त चेता उपस्थितः अग्रे अभिगृहीत पाणिः ॥ १२ ॥

अथ तदनन्तर
तेषु उन लोगोंके
सुख सुखपूर्वक
उपविष्टेषु बैठ जानेपर
भूयः फिरसे
प्रणामः प्रणाम
कृत करके
अग्रे उन सबके सामने
अभिगृहीतपाणिः हाथ जोड़कर
उपस्थितः खड़े होकर
विविक्त एकान्त (शुद्ध)
चेता चित्तवाले (राजा)
यत् जो
स्व अपनी
चिकित्सितं करनेकी इच्छा थी
विज्ञापयामास निवेदन करने लगे ॥१२॥

राजोवाच–

अहो वयं धन्यतमा नृपाणां
महत्तमानुग्रहणीयशीलाः ।
राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद्
दूराद् विसृष्टं बत गर्ह्यकर्म ॥१३॥

अहो वयं धन्यतमाः नृपाणां महत्तम अनुग्रहणीयशीलाः राज्ञां कुलं ब्राह्मणपाद शौचात् दूरं विसृष्टं बत गर्ह्यं कर्म ॥ १३ ॥

अहो अहो
नृपाणां राजाओंमें
वयं हम
धन्यतमाः परम धन्य हैं,
महत्तम महापुरुषोंके
अनुग्रहणीयशीलाः अनुग्रह करने योग्य शीलवाले हैं।
(लेकिन)
गर्ह्यं निन्दित
कर्म कर्म (करनेसे)
राज्ञां राजाओंका
कुलं कुल
ब्राह्मणपादशौचात् ब्राह्मणोंके चरणोंसे पवित्र होनेसे
बत प्रायः
दूरं दूर
विसृष्टं छूट जाता है ॥१३॥

तस्यैव मेऽघस्य परावरेशो
व्यासक्तचित्तस्य गृहेष्वभीक्ष्णम् ।
निर्वेदमूलो द्विजशापरूपो
यत्र प्रसक्तो भयमाशु धत्ते ॥१४॥

तस्य एव मे अघस्य परावर ईशः व्यासक्त चित्तस्य गृहेषु अभीक्ष्णं निर्वेद मूलः द्विजशापरूपः यत्र प्रसक्तः भयं आशु धत्ते ॥ १४ ॥

तस्य उस (राजकुलमें)
एव ही (उत्पन्न)
मे मुझ
अघस्य पापीपर (कृपा करके)
गृहेषु घरमें
अभीक्ष्णं निरन्तर
व्यासक्त आसक्त
चित्तस्य चित्तवाले
परावर इस लोक तथा परलोकके
इशः स्वामी (भगवान् ही)
द्विजशापरूपः ब्राह्मणके शापके रूपमें (पधारे हैं)
यत्र जहाँ (संसारमें)
प्रसक्तः आसक्तके लिए
निर्वेद वैराग्यके
मूलः कारण बनकर
आशु शीघ्र
भयं भयका (रूप वे)
धत्ते धारण करते हैं ॥१४॥

तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा
गङ्गा च देवी धृतचित्तमीशे ।

द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा
दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥१५॥

तं मां उपयातं प्रतियन्तु विप्राः गङ्गा च देवी धृतः चित्तं ईशः द्विज उपसृष्टः कुहकः तक्षकः वा दशतु अलं गायत विष्णुगाथाः ॥ १५ ॥

तं	उन	**उपसृष्टः**	प्रेरित
इशः	परमेश्वरमें	**कुहकः**	(कोई) कपटी
चित्तं	चित्त	**वा**	अथवा
धृतः	लगाये	**तक्षकः**	(स्वयं) तक्षक
उपयातं	शरणागत	**अल**	भले
मां	मुझपर	**दशतु**	काट ले
विप्राः	(आप) ब्राह्मणगण	**विष्णुगाथाः**	(आप सब तो) भगवान्‌का चरित
च	तथा	**गायतु**	गायन (वर्णन) करें ॥१५॥
गङ्गादेवी	देवी गङ्गा		
प्रतियन्तु	प्रतीति (कृपा) करें		
द्विज	ब्राह्मण द्वारा		

पुनश्च भूयाद्भगवत्यनन्ते
रतिः प्रसङ्गश्च तदाश्रयेषु ।
महत्सु यां यामुपयामि सृष्टि
मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः ॥१६॥

पुनः च भूयात् भगवति अनन्ते रतिः प्रसङ्गः च तत् आश्रयेषु महत्सु यां यां उपयामि सृष्टि मैत्री अस्तु सर्वत्रः नमः द्विजेभ्यः ॥१६॥

द्विजेभ्यः	(आप) ब्राह्मणोंको	**अनन्ते**	अनन्तमें (मेरी)
नमः	प्रणाम ! (आप आशीर्वाद दें कि)	**रतिः**	प्रीति
		भूयात्	होवे
यां यां	जिस जिस	**च**	तथा
सृष्टि	योनिमें	**तत्**	उनके
उपयामि	जन्म लूँ (वहाँ)	**आश्रयेषु**	शरणागत
पुनः	फिर	**महत्सु**	महापुरुषोंका
भगवति	भगवान्	**प्रसङ्गः**	सामीप्य

च	**एवं**	**मैत्री**	मित्रता
सवत्रः	सब कहीं	**अस्तु**	रहे ॥१६॥

सूत उवाच*-

इति स्म राजाध्यवसाययुक्तः
प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः ।
उदङ्मुखो दक्षिणकूल आस्ते
समुद्रपत्न्याः स्वसुतन्यस्तभारः ॥१७॥

इति स्म राजा अध्यवसाय युक्तः प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः उदङ्मुखः दक्षिणकूलः आस्ते समुद्रपत्न्याः स्वसुत न्यस्तः भारः ॥ १७ ॥

इति	ऐसा कहकर	**दक्षिणकूलः**	(गंगाके) दाहिने किनारे
धीरः	धैर्यशाली	**प्राचीनमूलेषु**	पश्चिम जड़ (पूर्वाग्र)
राजा	परीक्षित्	**कुशेषु**	(बिछाये) कुशोंके आसनपर
अध्यवसाय	दृढ़ निश्चय	**उदङ्मुखः**	उत्तरमुख करके
युक्तः	करके	**आस्ते**	बैठ
समुद्रपत्न्याः	पृथ्वीका	**स्म**	गये ॥१७॥
भारः	भार (दायित्व)		
स्वसुत	अपने पुत्र (जनमेजय) पर		
न्यस्तः	(पहिले ही) डाल चुके थे		

एवं च तस्मिन्नरदेवदेवे
प्रायोपविष्टे दिवि देवसंघाः ।
प्रशस्य भूमौ व्यकिरन् प्रसूनै-
र्मुदा मुहुर्दुन्दुभयश्च नेदुः ॥१८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

एवं च तस्मिन् नरदेवदेवे प्रायोपविष्टे दिवि देवसंघाः, प्रशस्य भूमौ व्यकिरन् प्रसूनैः मुदाः मुहुः दुन्दुभयः च नेदुः ॥ १८ ॥

एवं	इस प्रकार
च	से
तस्मिन्	उन
नरदेवदेवे	राजराजेश्वर (परीक्षित्) के
प्रायोपविष्टे	आमरण अनशनके लिए बैठ जानेपर
दिवि	आकाशसे
देवसंघाः	देवताओंके समूह
प्रशस्य	(राजाकी) प्रशंसा करके
भूमौ	पृथ्वीपर
मुदाः	हर्षपूर्वक
प्रसूनैः	पुष्पोंकी
व्यकिरन्	वर्षा करने लगे,
मुहुः	बार-बार
दुन्दुभयः	नगाड़े
च	भी
नेदुः	बजने लगे ॥१८॥

महर्षयो वै समुपागता ये
प्रशस्य साध्वित्यनुमोदमानाः ।
ऊचुः प्रजानुग्रहशीलसारा
यदुत्तमश्लोकगुणाभिरूपम् ॥१९॥

महर्षयः वै समुपागताः ये प्रशस्य साधु इति अनुमोदमानाः ऊचुः प्रजा अनुग्रहशीलसाराः यत् उत्तमश्लोक गुण अभिरूपम् ॥ १९ ॥

ये	जो
महर्षयः	महर्षिगण
वै	भी
समुपागताः	वहाँ आये थे
प्रशस्य	प्रशंसा करके,
साधु	उत्तम (निश्चय) है-
इति	ऐसा कहकर,
अनुमोदमानाः	अनुमोदन करते हुए
उचुः	बोले—
प्रजा	प्रजापर
अनुग्रह शीलसाराः	अनुग्रह शील रहनेवालेके लिए
यत्	जो
उत्तमश्लोक	पवित्र कीर्ति (श्रीहरि) के
गुण	गुणोंके
अभिरूपं	अनुरूप है (वही तुमने निश्चय किया है।) ॥१९॥

न वा इदं राजर्षिवर्य चित्रं
भवत्सु कृष्णं समनुव्रतेषु ।
येऽध्यासनं राजकिरीटजुष्टं
सद्यो जहुर्भगवत्पार्श्वकामाः ॥ ०॥

न वा इदं राजर्षिवर्य, चित्रं भवत्सु कृष्णं सम् अनुव्रतेषु ये अध्यासनं राजकिरीट जुष्टं सद्यः जहुः भगवत् पार्श्व कामाः ॥ २० ॥

राजर्षिवर्य	राजर्षि श्रेष्ठ ! (परीक्षित्)
कृष्णं	श्रीकृष्णके
सम्	पूर्णतः
अनुव्रतेषु	अनुयायी
भवत्सु	आपके लिए
इदं	यह
वा	जो
भगवत्	भगवानके
पार्श्व	समीप रहनेकी
कामाः	कामनासे
राजकिरीट	राजमुकुट
जुष्टं	युक्त
अध्यासनं	साम्राज्य सिंहासन
ये	जो
सद्यः	तत्काल
जहुः	त्याग दिया
चित्रं	आश्चर्यजनक
न	नहीं है ॥२०॥

सर्वे वयं तावदिहास्महेऽद्य
कलेवरं यावदसौ विहाय ।
लोकं परं विरजस्कं विशोकं
यास्यत्ययं भागवतप्रधानः ॥२१॥

सर्वे वयं तावत् इह आस्महे अद्य कलेवरं यावत् असौ विहाय लोकं परं विरजस्कं विशोकं यास्यति अयं भागवत प्रधानः ॥ २१ ॥

अद्य	अब
वयं	हम
सर्वे	सब
तावत्	तबतक
इह	यहीं
आस्महे	रहेंगे
यावत्	जबतक
अयं	ये
भागवत	भगवद्-भक्तोंमें
प्रधानः	प्रमुख (परीक्षित्)
असौ	इस (अपने)
कलेवरं	शरीरको

विहाय	त्यागकर	**परं**	परम
विरजस्कं	निर्मल	**लोकं**	लोकको
विशोकं	शोकरहित	**यास्मति**	जायँगे ।।२१।।

आश्रुत्य तदृषिगणवचः परीक्षित्
समं मधुच्युद् गुरु चाव्यलीकम् ।
आभाषतैनानभिनन्द्य युक्तान्
शुश्रूषमाणश्चरितानि विष्णोः ।।२२।।

आश्रुत्य तत् ऋषिगण वचः परीक्षित् समं मधुच्युत् गुरु च अव्यलीकं आभाषत एनान् अभिनन्द्य युक्तान् शुश्रूषमाणः चरितानि विष्णोः ।।२२।।

ऋषिगण	ऋषियोंकी	**परीक्षित्**	परीक्षित्ने
तत्	वह	**युक्तान्**	(उन) संयमी (मुनियोंका)
समं	समतायुक्त,		
मधुच्युत	अत्यन्त मधुर	**अभिनन्द्य**	अभिनन्दन करके
गुरु	गम्भीर	**विष्णोः**	भगवान्के
च	तथा	**चरितानि**	चरितोंको
अव्यलीकं	सत्य	**शुश्रूषमाणः**	सुननेकी इच्छासे
वचः	बात	**एनान्**	उनसे
आश्रुत्य	सुनकर	**अभाषत**	पूछा ।।२२।।

राजोवाच*-

समागताः सर्वत एव सर्वे
वेदा यथा मूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे ।
नेहाथवामुत्र च कश्चनार्थ
ऋते परानुग्रहमात्मशीलम् ।।२३।।

समागताः सर्वतः एव सर्वे वेदाः यथा मूर्तिधराः त्रिपृष्ठे न इह अथवा अमुत्र च कश्चन अर्थं ऋते पर अनुग्रहं आत्मशीलम् ।। २३ ।।

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

यथा	जैसे	**आत्मशीलं**	आपका स्वभाव है,
त्रिपृष्ठे	स्वर्गमें	**ऋते**	इसे छोड़कर
मूर्तिधराः	मूर्तिमान	**इह**	इस लोकमें
वेदाः	वेद (रहते हैं, वैसे)	**अथवा**	अथवा
सर्वतः	सब ओर	**अमुत्र**	परलोकमें
एव	से ही	**च**	भी
सर्वे	(आप) सब	**कश्चन**	कोई
समागताः	(यहाँ) पधारे हैं,	**अर्थं**	प्रयोजन (आप
पर	दूसरोंपर		लोगोंका)
अनुग्रहं	अनुग्रह करना	**न**	नहीं है । २३॥

ततश्च वः पृच्छचमिमं विपृच्छे
विश्रभ्य विप्रा इतिकृत्यतायाम् ।
सर्वात्मना म्रियमाणैश्च कृत्यं
शुद्धं च तत्रामृशताभियुक्ताः ॥२४॥

ततः च वः पृच्छं इमं विपृच्छे विश्रभ्य विप्राः इति कृत्यतायां सर्वात्मनाः म्रियमाणैः च कृत्यं शुद्धं च तत्र अमृशत अभियुक्ताः ॥ २४ ॥

विप्राः	ऋषियो	**सर्वात्मनाः**	सब प्रकारसे
विश्रभ्य च	(आप सबपर) विश्वास करके भी	**म्रियमाणैः च**	मरणासन्नके लिए
		इति कृत्यतायां	अन्तिम कर्तव्यके रूपमें (जो)
ततः	इसलिए		
वः	आपसे	**कृत्यं शुद्धं च**	कर्म शुद्ध भी हो
इमं	यह	**तत्र**	वह
पृच्छं	पूछने योग्य (बात)	**अभियुक्ताः**	(आप सब) मिलकर
विपृच्छे	विशेष रूपसे पूछता हूँ	**अमृशत**	विचार करें ॥२४॥

*सूत उवाच**–

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तत्राभवद्भगवान् व्यासपुत्रो
यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः ।
अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो
वृतश्च बालैरवधूतवेषः ॥२५॥

तत्र अभवत् भगवान् व्यासपुत्रः यदृच्छया गां अटमानः अनपेक्षः अलक्ष्यःलिङ्गः निजलाभ तुष्टः वृतः च बालैः अवधूतवेषः ॥ २५ ॥

यदृच्छया	स्वेच्छासे
गां	पृथ्वीपर
अटमानः	घूमते हुए,
अनपेक्षः	निरपेक्ष,
लिङ्गः	(किन्हीं भी) चिह्नोंसे
अलक्ष्यः	पहिचाने न जानेवाले
च	और
निजलाभ	आत्मलाभसे
तुष्टः	सन्तुष्ट,
अवधूतवेषः	अवधूतवेषमें
बालैः	बालकोंसे
वृतः	घिरे
भगवान्	भगवान्
व्यासपुत्रः	व्यासनन्द शुकदेवजी
तत्र	वहाँ
अभवत्	प्रकट हो गये ॥२५॥

तं द्वयष्टवर्षं सुकुमारपाद-
करोरुबाह्वंसकपोलगात्रम् ।
चार्वायताक्षोन्नसतुल्यकर्ण-
सुभ्रवाननं कम्बुसुजातकण्ठम् ॥२६॥

तं द्वयष्ट वर्षं सुकुमार पाद कर उरु बाहु अंस कपोल गात्रं चारु आयत अक्षः उन्नस तुल्य कर्णः सुभ्रू आननं कम्बु सुजात कण्ठम् ॥२६॥

तं	उन
द्वयष्ट	सोलह
वर्षं	वर्षके
सुकुमार	सुकुमार
ते	उनके
पाद	चरण
उरु	जाँघे,
कर	हाथ,
बाहु	भुजा
अंस	कन्धे,
कपोल	कपोल (युक्त)
चारु	सुन्दर

गात्रं	शरीर था ।
आयत	बड़े
अक्षः	नेत्र,
उन्नस	उठी हुई नासिका,
तुल्य	बराबर
कर्णः	कान,
सुभ्रू	सुन्दर भौंहे,
आननं	मुख, (एवं)
सुजात	उत्तम
कम्बु	शंखके समान
कण्ठं	गला था ॥२६॥

निगूढजत्रुं पृथुतुङ्गवक्षस-
मावर्तनाभिं बलिवल्गूदरं च ।
दिगम्बरं वक्त्रविकीर्णकेशं
प्रलम्बबाहुं स्वमरोत्तमाभम् ॥२७॥

निगूढ जत्रुं पृथुतुङ्ग वक्षः सम आवर्त नाभिं बलिवल्गु उदरं च दिगम्बरं वक्त्र विकीर्ण केशं प्रलम्ब बाहुं स्व अमरोत्तम आभम् ॥२७॥

निगूढ	(उनका) छिपा हुआ
जत्रुं	जत्रु,
पृथुतुङ्ग	चौड़ा और ऊँचा
वक्षः	वक्षस्थल,
सम	बराबर
आवर्त	घुमावदार
नाभि	नाभि,
बलिबल्गु	त्रिवली युक्त पतला
उदरं	पेट
च	था ।
दिगम्बरं	दिगम्बर
वक्त्र	मुखपर
विकीर्णकेशं	केश बिखरे थे ।
प्रलम्ब	खूब लम्बी
बाहुं	भुजाऐं (थी) ।
स्वं	अपनी
आभम्	आभा (तेजसे)
अमरोत्तम	श्रेष्ठ देवताके समान थे ॥२७॥

श्यामं सदापीच्यवयोऽङ्गलक्ष्म्या
स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन ।
प्रत्युत्थितास्ते मुनयः स्वासनेभ्य-
स्तल्लक्षणज्ञा अपि गूढवर्चसम् ॥२८॥

श्यामं सदा अपीच्य वयः अङ्ग लक्ष्म्याः स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिर स्मितेन प्रत्युत्थिताः ते मुनयः स्व आसनेभ्यः तत् लक्षणज्ञाः अपि गूढ वर्चसम् ॥२८॥

श्यामं	श्यामवर्ण,
सदा	नित्य
अपीच्य	युवा
वयः	अवस्थावाला
अङ्ग	शरीर,
लक्ष्म्याः	शोभासम्पन्न
रुचिर	सुन्दर
स्मितेन	मुसुकानसे
स्त्रीणां	स्त्रियोंके
मनोज्ञ	मनको प्रिय लगने वाले थे ।
गूढ	छिपाये
वर्चसम्	तेजवाले
अपि	होनेपर भी
तत्	उनके
लक्षणज्ञाः	लक्षणोंको जाननेवाले
ते	वे (वहाँ उपस्थित)
मुनयः	मुनिगण
स्व	अपने
आसनेभ्यः	आसनोंसे (उनके)
प्रत्युत्थिताः	सम्मानमें उठकर खड़े हो गये ॥२८॥

स विष्णुरातोऽतिथय आगताय
तस्मै सपर्यां शिरसाऽऽजहार ।
ततो निवृत्ता ह्यबुधाः स्त्रियोऽर्भका
महासने सोपविवेश पूजितः ॥२९॥

स विष्णुरातः अतिथय आगताय तस्मै सपर्यां शिरसा आजहार ततः निवृत्ताः हि अबुधाः स्त्रियः अर्भकाः महासने स उपविवेश पूजितः ॥२९॥

स	उन
विष्णुरातः	राजा परीक्षितने
आगताय	पधारे हुए
अतिथय	अतिथि
तस्मै	उन (श्रीशुकदेवजी) के प्रति
शिरसा	शिर झुकाकर (प्रणाम करके)
सपर्यां आजहार	(उनकी) पूजा की ।
हि अबुधाः	(श्रीशुकदेवजीके प्रभावसे) निश्चय ही अज्ञ
स्त्रियः	(वे) स्त्रियाँ (और)
अर्भकाः	बालकगण
ततः	वहाँसे
निवृत्ताः	निवृत्त होकर चले गये ।
स	वे (श्रीशुकदेवजी)
पूजितः	पूजित होकर
महासने उपविवेश	श्रेष्ठ आसनपर विराजमान हुए ॥२९॥

स संवृतस्तत्र महान् महीयसां
ब्रह्मर्षिराजर्षिदेवर्षिसंघैः ।
व्यरोचतालं भगवान् यथेन्दु-
र्ग्रहर्क्षतारानिकरैः परीतः ॥३०॥

स संवृतः तत्र महान् महीयसां ब्रह्मर्षि राजर्षि देवर्षि संघैः व्यरोचत अलं भगवान् यथा इन्दुः ग्रह अक्ष तारा: निकरैः परीतः ॥३०॥

ग्रह	ग्रह*	**महीयसां**	महत्तमोंमें भी
अक्ष	नक्षत्र (और)	**महान्**	महान
तारा:	तारोंके	**ब्रह्मर्षि**	ब्रह्मर्षियों
निकरैः	समूहसे	**राजर्षि**	राजर्षियों
परीतः	घिरे हुए	**देवर्षि**	देवर्षियोंके
इन्दुः	चन्द्रमा	**संघैः**	समूहसे
यथा	के समान	**संवृतः**	घिरे हुए
स	वे	**तत्र**	वहाँ
भगवान्	भगवान् (शुकदेवजी)	**अलं**	अतिशय
		व्यरोचत	सुशोभित हुए ॥३०॥

प्रशान्तमासीनमकुण्ठमेधसं
मुनिं नृपो भागवतोऽभ्युपेत्य ।
प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृताञ्जलि-
र्नत्वा गिरा सूनृतयान्वपृच्छत् ॥३१॥

---

* ग्रह—ये सात हैं—१. सूर्य, २. चन्द्र, ३. मंगल, ४. बुध, ५. गुरु, ६. शुक्र और ७. शनि। राहु-केतु छाया ग्रह हैं। आकाश-मण्डलमें ग्रह चलते रहते हैं।

अर्क्षया नक्षत्र—ये सत्ताइस हैं। ये कई कई तारोंके समूह हैं। इन्हींके सहारे आकाशमें ग्रहोंकी स्थितिकी गणना होती है।

तारा—ये ग्रह तथा नक्षत्रोंको छोड़कर असंख्य हैं। वर्तमान विज्ञानके अनुसार ग्रहों तथा चन्द्रमाको छोड़कर सभी तारे-नक्षत्र भी अतिशय दूरस्थ सूर्य हैं।

प्रशान्तं आसीनं अकुण्ठ मेधसं मुनिं नृपः भागवतः अभ्युपेत्य प्रणम्य मूर्ध्ना अवहितः कृताञ्जलिः नत्वा गिराः सूनृतया अन्वपृच्छत् ॥३१॥

प्रशान्तं	अत्यन्त शान्त	**मूर्ध्ना**	चरणोंपर सिर रखकर
अकुण्ठ	प्रखर	**प्रणम्य**	प्रणाम करके
मेधसं	बुद्धिवाले	**कृताञ्जलिः**	(उठकर) हाथ जोड़कर
आसीनं	बैठे हुए	**नत्वा**	(फिर) प्रणाम करके
मुनिं	मुनि शुकदेवजीके	**सूनृतया**	मधुर
अभ्युपेत्य	समीप जाकर	**गिराः**	वाणीसे
भागवतः	भगवद्भक्त	**अन्वपृच्छत्**	पूछा ॥३१॥
नृपः	राजाने		
अवहितः	झुककर		

परीक्षिदुवाच–

अहो अद्य वयं ब्रह्मन् सत्सेव्याः क्षत्रबन्धवः ।
कृपयातिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाः कृताः ॥३२॥

अहो अद्य वयं ब्रह्मन् सत्सेव्याः क्षत्रबन्धवः कृपया अतिथिरूपेण भवद्भिः तीर्थकाः कृताः ॥३२॥

अहो	अहो,	**ब्रह्मन्**	भगवन् !
क्षत्रबन्धवः	क्षत्रियाधम (होनेपर भी)	**कृपया**	कृपापूर्वक
अद्य	आज	**अतिथिरूपेण**	अतिथिरूपमें (पधारे हुए)
वयं	हम	**भवद्भिः**	आपके द्वारा
सत्सेव्याः	सन्तोंकी सेवाके अधिकारी हुए (क्योंकि)	**तीर्थकाः**	पवित्र
		कृताः	कर दिये गये ॥३२॥

येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः शुद्ध्यन्ति वै गृहाः ।
किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ॥३३॥

येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः शुद्धयन्ति वै गृहाः किं पुनः दर्शन स्पर्श पादशौच आसन आदिभिः ॥३३॥

येषां	जिनके	**पुनः**	फिर (उनके)
संस्मरणात्	स्मरण करने (मात्र) से	**दर्शन**	दर्शन,
		स्पर्श	स्पर्श,
पुंसां	लोगोंके	**पादशौच**	चरणोदक,
गृहाः	घर	**आसन**	बैठने
वै	निश्चित ही	**आदिभिः**	आदिसे (तो)
सद्यः	तत्काल	**किं**	कहना ही
शुद्ध्यन्ति	शुद्ध हो जाते हैं;		क्या ॥३३॥

सांनिध्यात्ते महायोगिन्पातकानि महान्त्यपि ।
सद्यो नश्यन्ति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः ॥३४॥

सांनिध्यात् ते महायोगिन् पातकानि महान्ति अपि सद्यः नश्यन्ति वै पुंसां विष्णोः इव सुरेतराः ॥ ३४ ॥

महायोगिन्	महायोगी !	**विष्णोः**	भगवान् विष्णुसे
ते	आपके	**सुरेतराः**	असुरोंके
सांनिध्यात्	सामीप्यसे	**इव**	समान—
पुंसां	पुरुषोंके	**वै**	निश्चित ही
महान्ति	महान	**सद्यः**	तत्काल
पातकानि	पाप	**नश्यन्ति**	नष्ट हो जाते हैं ॥३४॥
अपि	भी—		

अपि मे भगवान् प्रीतः कृष्णः पाण्डुसुतप्रियः ।
पैतृष्वसेयप्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्यात्तबान्धवः ॥३५॥

अपि मे भगवान् प्रीतः कृष्णः पाण्डुसुत प्रियः पैतृष्वसेयः प्रीत्यर्थं तद् गोत्रस्य आत्त बान्धवः ॥ ३५ ॥

पाण्डुसुत	पाण्डवोंके	**कृष्णः**	श्रीकृष्ण
प्रियः	प्रिय	**पैतृष्वसेयः**	अपनी बुआकी

प्रीत्यर्थं	प्रसन्नताके लिए	**मे**	मुझपर
तद्	उनके	**अपि**	भी
गोत्रस्य	गोत्रमें	**भगवान्**	(वे) भगवान्
आत्त	स्वीकार करके		(श्रीकृष्ण)
बान्धवः	सम्बन्धी	**प्रीतः**	प्रसन्न हुए हैं ॥३५॥

अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणाम् ।
नितरां म्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः ॥३६॥

अन्यथा ते अव्यक्त गतेः दर्शनं नः कथं नृणां नितरां म्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः ॥ ३६ ॥

अन्यथा	अन्यथा	**गतेः**	गतिवाले
नितरां	अत्यन्त	**संसिद्धस्य**	परमसिद्ध
म्रियमाणानां	मरणासन्न	**वनं यसः**	वनमें रहनेवाले
नृणां	(साधारण) मनुष्य	**ते**	आपका
नः	मुझे	**दर्शनं**	दर्शन
अव्यक्त	अव्यक्त	**कथं**	कैसे होता ? ॥३६॥

अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् ।
पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ॥३७॥

अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् पुरुषस्य इह यत् कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ॥ ३७ ॥

अतः	अतः	**सर्वथा**	सर्वथा
योगिनां	योगियोंके	**म्रियमाणस्य**	मरणासन्न
परमं	परम	**पुरुषस्य**	पुरुषके लिए
गुरुम्	गुरु (आपसे)	**इह**	इस लोकमें
संसिद्धिं	अन्तःकरणकी आत्मन्तिक शुद्धिके लिए	**यत्**	जो
		कार्यं	करणीय है (वह)
		पृच्छामि	(मैं) पूछता हूँ ॥३७॥

यच्छ्रोतव्यमथो जप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो ।
स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ॥३८॥

यत् श्रोतव्यं अथः जप्यं यत् कर्तव्यं नृभिः प्रभो स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ॥ ३८ ॥

प्रभो	प्रभो !	**स्मर्तव्यं**	स्मरण करने योग्य
नृभिः	(ऐसे) मनुष्य द्वारा	**वा**	अथवा
यत्	जो	**भजनीयं**	भजन करने योग्य हो
श्रोतव्यं	सुनने योग्य	**यद्वा**	जो इसके
अथः	अथवा	**विपर्ययम्**	उलटा (बाधा
जाप्यं	जप करने योग्य,		देनेवाला हो)
यत्	जो	**ब्रूहि**	(वह सब)
कर्तव्यं	करने योग्य,		बतलाइये ॥३८॥

नूनं भगवतो ब्रह्मन् गृहेषु गृहमेधिनाम् ।
न लक्ष्यते ह्यवस्थानमपि गोदोहनं क्वचित् ॥३९॥

नूनं भगवतः ब्रह्मन् गृहेषु गृहमेधिनां न लक्ष्यते हि अवस्थानं अपि गोदोहनं क्वचित् ॥ ३९ ॥

भगवतः	भगवत्स्वरूप	**गृहेषु**	घरोंमें
ब्रह्मन्	मुनिवर !	**हि**	निश्चयपूर्वक
नूनं	निश्चय ही	**क्वचित्**	कभी
गोदोइनं	गाय जितनी देरमें	**अवस्थानं**	(आपका) ठहरना
	दुही जाय उतनी देर	**न लक्ष्यते**	लक्षित नहीं
अपि	भी		होता ॥३९॥
गृहमेधिनां	गृहस्थोंके		

सूत उवाच-

एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा ।
प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान् बादरायणिः ॥४०॥

एव आभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा प्रति अभाषत धर्मज्ञः भगवान् बादरायणिः ॥ ४० ॥

एवं	इस प्रकार	**धर्मज्ञः**	धर्मको जाननेवाले
इलक्ष्णया	मधुर	**स**	वे
गिरा	वाणीसे	**भगवान्**	वे भगवान्
राज्ञा	राजा (परीक्षित्) द्वारा	**वादरायणिः**	व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी
आभाषितः	सम्भाषण करने (और)	**प्रति**	उत्तरमें
पृष्टः	पूछे जानेपर	**अभाषत**	बोले ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां एकोनविंशो पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः

॥ इति प्रथमः स्कन्धः समाप्तः ॥

हरिः ॐ तत्सत्

॥ द्वितीय स्कन्ध ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप ।
आत्मवित्सम्मतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ॥१॥

वरीयान् एषः ते प्रश्नः कृतः लोकहितं नृप आत्मवित् सम्मतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ॥१॥

नृप	राजन् !	**श्रोतव्यादिषु**	सुनने (स्मरण करने) आदिमें
एषः	यह	**यः**	जो
ते	तुम्हारा	**परः**	श्रेष्ठ है (उस विषयका प्रश्न)
प्रश्नः	प्रश्न	**आत्मविन**	आत्मज्ञानी
वरीयान्	उत्तम है ।	**पुंसां**	पुरुषोंको
लोकहितं	लोक कल्याणके लिए	**सम्मतः**	अभीष्ट होता है ॥१॥
कृतः	किया गया—		

श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रशः ।
अपश्यतामात्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥२॥

श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रशः अपश्यतां आत्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥२॥

राजेन्द्र	राजेन्द्र !	**नृणां**	पुरुषोंके लिए
गृहेषु	घरोंमें (आसक्त)	**सहस्रशः**	हजारों (बातें)
गृहमेधिनां	गृहस्थ	**श्रोतव्यादीनि**	श्रवणीय (कीर्तनीय) आदि
आत्मतत्त्वं	आत्मतत्त्वको		
अपश्यतां	न देखने (जानने-वालों) के लिए	**सन्ति**	हैं ॥२॥

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः ।
दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्बभरणेन वा ॥३॥

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः दिवा च अर्थ ईहया राजन् कुटुम्ब भरणेन वा ॥ ३ ॥

राजन्	राजन् ! (उन लोगोंकी)	**दिवा**	दिन
वयः	आयुकी	**च**	भी
नक्तं	रात्रियाँ	**अर्थ**	धन
निद्रया	नींद लेनेमें	**ईहया**	(पानेकी) चेष्टामें
वा	या	**वा**	अथवा
व्यवायेन	स्त्री-सहवासमें	**कुटुम्ब**	परिवारके
च	तथा	**भरणेन**	पालनमें
		ह्रियते	बीत जाते हैं ॥३॥

देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि ।
तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥४॥

देह अपत्य कलत्र आदिषु आत्म सैन्येषु असत्सु अपि तेषां प्रमत्तः निधनं पश्यन् अपि न पश्यति ॥ ४ ॥

देह	शरीर,	**अपि**	पर भी
अपत्य	पुत्र,	**तेषां**	उनमें ही
कलत्र	स्त्री	**निधनं**	मृत्युको
आदिषु	आदि	**पश्यन्**	देखता हुआ
आत्म	अपनी	**अपि**	भी
सैन्येषु	(परिवार-रूपी) सेनाके	**प्रमत्तः**	(लगकर) असावधान बना
असत्सु	असत् (केवल मान्यता मात्र) होने	**न**	नहीं
		पश्यति	देखता (चेतता)

तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवानीश्वरो हरिः ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम् ॥५॥

तस्मात् भारत सर्वात्मा भगवान् ईश्वरः हरिः श्रोतव्यः कीर्तितव्यः च स्मर्तव्यः च इच्छता अभयम् ॥ ५ ॥

तस्मात्	इसलिए	**हरिः**	श्रीहरि ही
भारत	परीक्षित् !	**श्रोतव्यः**	श्रवणीय
अभयं	अभय	**च**	एवं
इच्छता	चाहनेवालेके लिए	**कीर्तितव्यः**	कीर्तनीय
ईश्वरः	सर्वसंचालक	**च**	तथा
सर्वात्मा भगवान्	सबकी आत्मा भगवान्	**स्मर्तव्यः**	स्मरणीय हैं ॥५॥

एतावान् सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया ।
जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः ॥६॥

एतावान् सांख्य योगाभ्यां स्वधर्म परिनिष्ठया जन्म लाभः परः पुंसां अन्ते नारायणः स्मृतिः ॥ ६ ॥

एतावान्	इतना ही	**परः**	परम
सांख्य	वेदान्त (तथा)	**लाभः**	लाभ है कि
योगाभ्यां	योगके द्वारा,	**पुंसां**	पुरुषको
स्वधर्म	अपने धर्ममें	**अन्ते**	मरते समय
परिनिष्ठया	दृढ़ निष्ठा रखनेका	**नारायणः**	नारायणका
जन्म	(मनुष्य) जन्मका	**स्मृतिः**	स्मरण हो ॥६॥

प्रायेण मुनयो राजन्निवृत्ता विधिषेधतः ।
नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः ॥७॥

प्रायेण मुनयः राजन् निवृत्ताः विधि षेधतः नैर्गुण्यस्थाः रमन्ते स्म गुणान् अनुकथने हरेः ॥७॥

राजन्	राजन् !	**नैर्गुण्यस्थाः**	निर्गुण तत्त्वमें स्थित
विधि	विधि	**मुनयः**	मुनिगण भी
षेधतः	निषेध (के बन्धनसे)	**प्रायेण**	प्रायः
निवृत्ताः	छूटे हुए	**हरेः**	श्रीहरिके

गुणान्	गुणोंका	**रमन्ते**	आनन्द लेते
अनुकथने	बार-बार वर्णन करनेमें	**स्म**	हैं ॥७॥

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
अधीतवान् द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम् ॥८॥

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म सम्मितं अधीतवान् द्वापर आदौ पितुः द्वैपायनात् अहम् ॥ ८ ॥

इदं	इस	**अहं**	मैंने
भागवतं	भागवत	**पितुः**	अपने पिता
नाम	नामक	**द्वैपायनात्**	वेदव्यासजीसे
ब्रह्म	वेद	**द्वापर**	द्वापरके
सम्मितं	सम्मत	**आदौ**	अन्तमें*
पुराणं	पुराणको	**अधीतवान्**	अध्ययन किया ॥८॥

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया ।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ॥९॥

परिनिष्ठितः अपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोक लीलयाः गृहीतः चेताः राजर्षे आख्यानं यत् अधीतवान् ॥ ९ ॥

राजर्षे	राजर्षि !	**चेताः**	(मेरा) चित्त
नैर्गुण्य	निर्गुण तत्त्वमें	**गृहीतः**	पकड़ लिया गया
परिनिष्ठितः	दृढ़ निष्ठा होनेपर	**यत्**	जिससे
अपि	भी	**आख्यानं**	(श्रीमद्भागवत) आख्यान
उत्तमश्लोक	पवित्र कीर्ति (भगवान्‌की)	**अधीतवान्**	(मैंने) अध्ययन किया ॥९॥
लीलयाः	लीला द्वारा		

तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिको भवान् ।
यस्य श्रद्दधतामाशु स्यान्मुकुन्दे मतिः सती ॥१०॥

---

*'द्वापरादौ' का अर्थ सभी टीकाकारोंने 'द्वापर है आदिमें जिसके उस कलियुगके प्रारम्भमें अर्थात् द्वापरके अन्तमें' यह किया है ।

तत् अहं ते अभिधास्यामि महापौरुषिकः भवान् यस्य श्रद्दधतां आशु स्यात् मुकुन्दे मतिः सती ॥१०॥

यस्य	जिसपर	**तत्**	वह
श्रद्दधतां	श्रद्धा करनेसे	**अहं**	मैं
आशु	शीघ्र	**ते**	तुमको
मुकुन्दे	भगवान् मुकुन्दमें	**अभिधास्यामि**	सुनाऊँगा (क्योंकि)
सती	पवित्र	**भवान्**	तुम
मतिः	बुद्धि	**महापौरुषिकः**	भगवान् पुरुषोत्तमके
स्यात्	हो (लग) जाती है		(प्रिय) हो ॥१०॥

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् ।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥११॥

एतत् निर्विद्यमानानां इच्छतां अकुतः अभयं योगिनां नृप निर्णीतं हरेः नाम अनुकीर्तनम् ॥११॥

अकुतः	सर्वत्रसे	**निर्णीतं**	निर्णय किया गया है
अभयं	अभय (मोक्षपद)		(कि)
इच्छतां	चाहनेवाले	**हरेः**	श्रीहरिके
निर्विद्यमानानां	वैराग्यवान्	**नाम**	नामोंका
योगिनां	योगियोंके लिए भी	**अनुकीर्तनं**	बार-बार कीर्तन
नृप	राजन् !		(किया जाय) ॥११॥
एतत्	यही		

किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षैर्हायनैरिह ।
वरं मुहूर्तं विदितं घटेत श्रेयसे यतः ॥१२॥

किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षैः हायनैः इह वरं मुहूर्तं विदितं घटेत श्रेयसे यतः ॥१२॥

प्रमत्तस्य	प्रमादग्रस्त (असावधान व्यक्ति) की	**परोक्षैः बहुभिः**	अनजानमें (बीतनेवाले) बहुतसे
		हायनैः	(आयुके) अनेक वर्षोंसे

इह	इस संसारमें	वरं	श्रेष्ठ है
किं	क्या लाभ ?	यतः	जिससे
विदितं	ज्ञानपूर्वक	श्रेयसे	कल्याणके लिए
मुहूर्तं	एक मुहूर्त भी (जीवन)	घटेत	चेष्टाकी जाय ॥१२॥

खट्वाङ्गो नाम राजर्षिर्ज्ञात्वेयत्तामिहायुषः ।
मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयं हरिम् ॥१३॥

खट्वाङ्गः नाम राजर्षिः ज्ञात्वा यत्तां इह आयुषः मुहूर्तात् सर्वं उत्सृज्य गतवान् अभयं हरिम् ॥१३॥

खट्वाङ्गः	खट्वाङ्ग	सर्वं	सब कुछ
नाम	नामक	उत्सृज्य	त्यागकर
राजर्षिः	राजर्षि	मुहूर्तात्	एक मुहूर्तमें (ही)
इह	इस लोकमें	अभयं	अभय स्वरूप
आयुषः	(अपनी) आयुकी	हरिं	श्रीहरिको
यत्तां	अवधि	गतवान्	प्राप्त होगये ॥१३॥
ज्ञात्वा	जानकर,		

तवाप्येतर्हि कौरव्य सप्ताहं जीवितावधिः ।
उपकल्पय तत्सर्वं तावद्यत्साम्परायिकम् ॥१४॥

तव अपि एतः हि कौरव्य सप्ताहं जीविताः अवधिः उपकल्पय तत् सर्वं तावत् यत् साम्परायिकम् ॥१४॥

कौरव्य	परीक्षित् !	तावत्	तब तक
हि	क्योंकि	यत्	जो
तव	तुम्हारी	साम्परायिकं	पारलौकिक (हित) के लिए हो
अपि	भी		
एतः	यहाँ	तत्	वह
जीविताः	जीवनकी	सर्वं	सब
अवधिः	अवधि	उपकल्पय	करलो ॥१३॥
सप्ताहं	सात दिनकी है;		

अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः ।
छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम् ॥१५॥

अन्तकाले तु पुरुषः आगते गतः साध्वसः छिन्द्यात् असङ्ग शस्त्रेण स्पृहां देहे अनु ये च तम् ॥१५॥

पुरुषः	पुरुष	**देहे**	शरीरमें (और)
तु	तो	**ये**	जो
अन्तकाले	अन्त समय	**च**	भी
आगते	आ जानेपर,	**तं**	उस (शरीर) के
साध्वसः	घबड़ाहट	**अनु**	पीछे (परिवार,
गतः	छोड़कर,		नाम आदि हैं)
असङ्ग	अनासक्तिके	**स्पृहां**	(उनकी) स्पृहा
शस्त्रेण	शस्त्रसे	**छिन्द्यात्**	काट दे ॥१५॥

गृहात् प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः ।
शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने ॥१६॥

गृहात् प्रव्रजितः धीरः पुण्य तीर्थ जल आप्लुतः शुचौ विविक्त आसीनः विधिवत् कल्पित आसने ॥ १६ ॥

धीरः	धीर पुरुष	**विविक्त**	एकान्तमें
गृहात्	घरसे	**विधिवत्**	विधिपूर्वक (कुश,
प्रव्रजितः	निकलकर		मृगचर्म,वस्त्र क्रमशः
पुण्य	पवित्र		बिछाकर)
तीर्थ	तीर्थ (में जाकर वहाँ)	**कल्पित**	बनाये
जल	जलमें	**आसने**	आसनपर
आप्लुतः	स्नान करके	**आसीनः**	बैठकर ॥१६॥
शुचौ	पवित्र (तथा)		

अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम् ।
मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन् ॥१७॥

अभ्यसेत् मनसा शुद्धं त्रिवृत् ब्रह्म अक्षरं परं मनः यच्छेत् जितश्वासः ब्रह्मबीजं अविस्मरन् ॥१७॥

शुद्धं	शुद्ध
मनसा	मनसे
त्रिवृत्	तीन अक्षरों (अ, उ, म) वाले
परं	परम
ब्रह्म	ब्रह्मस्वरूप
अक्षरं	अक्षर (प्रणव) का
अभ्यसेत्	अभ्यास (जप) करे ।
ब्रह्मबीजं	(इस) वेदके बीज (प्रणव) को
अविस्मरन्	बराबर स्मरण करते हुए
जितश्वासः	श्वासको जीतकर (प्राणायाम करके)
मनः	मनको
यच्छेत्	नियन्त्रित करे ॥१७॥

नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः ।
मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया ॥१८॥

नियच्छेत् विषयेभ्यः अक्षान् मनसा बुद्धिः सारथिः मनः कर्मभिः आक्षिप्तं शुभ अर्थे धारयेत् धिया ॥ १८ ॥

मनसा	मनके द्वारा
बुद्धिः	बुद्धिको
सारथिः	सारथि (प्रेरक) बनाकर
विषयेभ्यः	(शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) विषयोंसे
अक्षान्	इन्द्रियोंको
नियच्छेत्	नियन्त्रित करे;
कर्मभिः	कर्म(की वासनाओं)से
आक्षिप्तं	चञ्चल
मनः	मनको
धिया	बुद्धिके द्वारा
शुभ	मंगलमय
अर्थे	पदार्थ (भगवान्‌के सगुण-रूप) में
धारयेत्	लगावे ॥१८॥

तत्रैकावयवं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा ।
मनो निर्विषयं युक्त्वा ततः किञ्चन न स्मरेत् ।
पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति ॥१९॥

तत्र एक अवयवं ध्यायेत् अव्युच्छिन्नेन चेतसाः मनः निर्विषयं युक्त्वा ततः किञ्चन न स्मरेत् पदं तत् परमं विष्णोः मनः यत्र प्रसीदति ॥१९॥

अव्युच्छिन्नेन	स्थिर
चेतसाः	चित्तसे
तत्र	वहाँ (भगवानके श्रीअंगमें-से)
एक	एक-एक

अवयवं	अंगका (क्रमशः)
ध्यायेत्	ध्यान करे।
निर्विषयं	(इसके बाद) निर्विषय (ध्येय विषयको छोड़कर)
मनः	मनको
युक्त्वा	स्थिर करके
ततः	तब
किञ्चन	कुछ भी
न	न
स्मरेत्	स्मरण करे।
तत्	वह (ध्याता, ध्येय रहित मन ही)
विष्णोः	व्यापक भगवान्‌का
परमं	परम
पदं	पद है
यत्र	जहाँ (जिस स्थितिमें)
मनः	मन
प्रसीदति	पूर्ण निर्मल हो जाता है ॥१९॥

रजस्तमोभ्यामाक्षिप्तं विमूढं मन आत्मनः।
यच्छेद्धारणया धीरो हन्ति या तत्कृतं मलम् ॥२०॥

रजः तमोभ्यां आक्षिप्तं विमूढं मनः आत्मनः यच्छेत् धारणया धीरः हन्ति या तत् कृतं मलम् ॥ २० ॥

आत्मनः	अपना
मनः	मन
रजः	रजोगुणसे
आक्षिप्तं	चञ्चल हो (या)
तमोभ्यां	तमोगुणसे
विमूढं	विमूढ (लय) हो
धीरः	(तो) धैर्यपूर्वक
धारणया	(भगवान्‌के रूपकी) धारणा करके
यच्छेत्	(उस मनको) नियन्त्रित करे,
या	जो (धारणा)
तत्	उन (रजोगुण, तमोगुण) से
कृतं	उत्पन्न
मलं	दोषको
हन्ति	नष्ट कर देती है ॥२०॥

यस्यां संधार्यमाणायां योगिनो भक्तिलक्षणः।
आशु सम्पद्यते योग आश्रयं भद्रमीक्षतः ॥२१॥

यस्यां संधार्यमाणायां योगिनः भक्ति लक्षणः आशु सम्पद्यते योगः आश्रयं भद्रं ईक्षतः ॥ २१ ॥

यस्यां	जिस (धारणा) के	**योगिनः**	योगियोंमें
संधार्यमाणायां	भली प्रकार धारण करनेसे	**भक्तिलक्षण**	भक्तिके लक्षणवाले
		योगः	भक्तियोगकी
भद्रं	कल्याणमय	**आशु**	शीघ्र
आश्रयं	आश्रय (श्रीभगवान्‌के स्वरूप) को	**सम्पद्यते**	पूर्ण प्राप्ति हो जाती है ।।२१।।
ईक्षतः	देखते हुए		

राजोवाच-

यथा संधार्यते ब्रह्मन् धारणा यत्र सम्मता ।
यादृशी वा हरेदाशु पुरुषस्य मनोमलम् ।।२२।।

यथा संधार्यते ब्रह्मन् धारणाः यत्र सम्मताः यादृशीः वा हरेत् आशु पुरुषस्य मनः मलम् ।। २२ ।।

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**संधार्यते**	धारण की जाती है
पुरुषस्य	पुरुषके	**यत्र**	जहाँ (भीतर-बाहर स्थानमें)
मनः	मनके		
मलं	मलको	**सम्मताः**	विहित है
आशु	शीघ्र	**वा**	अथवा
हरेत्	हरण करनेवाली	**यादृशीः**	जैसी है (वह बतलाइये) ।।२२।।
धारणाः	धारणा		
यथा	जैसे		

श्रीशुक उवाच-

जितासनो जितश्वासो जितसङ्गो जितेन्द्रियः ।
स्थूले भगवतो रूपे मनः संधारयेद्धिया ।।२३।।

जितासनः जितश्वासः जितसङ्गः जितेन्द्रियः स्थूले भगवतः रूपे मनः संधारयेत् धिया ।। २३ ।।

जितेन्द्रियः	इन्द्रियोंको जीतकर,	**जितश्वासः**	श्वासको नियन्त्रित करके
जितसङ्गः	आसक्तियोंको त्यागकर,	**जितासनः**	आसनको जीतकर

भगवतः	भगवान्‌के	धिया	बुद्धिके द्वारा
स्थूले	स्थूल	मनः	मनको
रूपे	रूपमें	सधारयेत्	लगावे ॥२३॥

विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम् ।
यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत् ॥२४॥

विशेषः तस्य देहः अयं स्थविष्ठः च स्थवीयसां यत्र इदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवत् च सत् ॥ २४ ॥

यत्र	जिसमें	अयं	यह
इदं	यह	तस्य	उनका (भगवान्‌का)
विश्वं दृश्यते	विश्व दीखता है,	स्थवीयसां	स्थूलोंमें
भूत	कभी था,	स्थविष्ठः	सबसे स्थूल
भवत्	है	च	और
च	और	विशेषः	विशेष (विराट्)
भव्यं	होगा	देहः	शरीर (है) ॥२४॥
सत्	सत्स्वरूपसे		

आण्डकोशे शरीरेऽस्मिन् सप्तावरणसंयुते ।
वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान् धारणाश्रयः ॥२५॥

आण्डकोशेः शरीरे अस्मिन् सप्त आवरण संयुते वैराजः पुरुषः यः असौ भगवान् धारणाः आश्रयः ॥ २५ ॥

सप्त	सात (जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व और प्रकृति)	शरीरे	शरीरमें
		यः	जो
		असौ	ये
		भगवान्	भगवान्
आवरण	आवरणोंसे	वैराजः	विराट्
संयुते	घिरे हुए	पुरुषः	पुरुष हैं (यही)
अस्मिन्	इस	धारणाः	धारणाके
आण्डकोशेः	ब्रह्माण्ड रूप	आश्रयः	आश्रय हैं ॥२५॥

पातालमेतस्य हि पादमूलं
पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम् ।

महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ
तलातलं वै पुरुषस्य जंघे ॥२६॥

पातालं एतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिः प्रपदे रसातलं महातलं विश्वसृजः अथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जंघे ॥२६॥

एतस्य	इस (विराट् पुरुष) के	**अथ**	और
हि वै	क्योंकि निश्चित ही	**विश्वसृजः**	(इन) विश्वस्रष्टा (भगवान्) के
पादमूलं पातालं	पैरके तलवे पाताल हैं,	**गुल्फौ**	पैरकी दोनों गाँठें
पार्ष्णिः	एड़ियाँ (और)	**महातलं**	महातल हैं
प्रपदे	(पैरके) पञ्जे	**पुरुषस्य**	विराट् पुरुषके
रसातलं	रसातल	**जंघे**	पिण्डलियाँ
पठन्ति	कहे जाते हैं	**तलातलं**	तलातल हैं ॥२६॥

द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्ते-
रूरुद्वयं वितलं चातलं च ।
महीतलं तज्जघन महीपते
नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ॥२७॥

द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेः उरुद्वयं वितलं च अतलं च महीतलं तत् जघनं महीपते नभः तलं नाभिसरः गृणन्ति ॥ २७ ॥

विश्वमूर्तेः	विश्वरूप (भगवान्)के	**जघनं**	पेडू
द्वे	दोनों	**महीतलं**	पृथ्वीतल हैं ।
जानुनी	घुटने	**महीपते**	राजन् !
सुतलं	सुतल है,	**नभःतलं**	आकाश
उरुद्वयं	दोनों जाँघें	**नाभिसरः**	(उनका) नाभि सरोवर
वितलं च	वितल और	**गृणन्ति**	कहा जाता है ॥२७॥
अतलं	अतल है,		
च तत्	और उनका		

उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य
ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य ।

तपो ररा टीं विदुरादिपुंसः
सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥२८॥

उरःस्थलं ज्योतिः अनीकं अस्य ग्रीवाः महः वदनं वै जनः अस्य तपः ररा टीं विदुः आदिपुंसः सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥ २८ ॥

अस्य	इन (भगवान्) के	**ररा टीं**	ललाटको
उरःस्थलं	वक्षस्थलको	**तपः**	तपोलक
ज्योतिः	तारोंका	**विदुः**	(विद्वान्) कहते हैं
अनीकं	समुदाय (स्वर्गलोक),	**अस्य**	इन
ग्रीवाः	गर्दनको	**आदिपुंसाः**	आदि पुरुष
महः	महर्लोक,	**सहस्रशीर्ष्णः**	सहस्रशीर्षाका
वदनं	मुखको	**शीर्षाणि**	मस्तक समूह
जनः	जनलोक	**तु**	ही
वै	तथा	**सत्यं**	सत्यलोक है ॥२८॥

इन्द्रादयो बाहव आहुरुस्राः
कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः ।
नासत्यदस्रौ परमस्य नासे
घ्राणोऽस्य गन्धो मुखमग्निरिद्धः ॥२९॥

इन्द्रः आदयः बाहवः आहुः उस्राः कर्णौ दिशः श्रोत्रं अमुष्य शब्दः नासत्यदस्रौ परमस्य नासे घ्राणः अस्य गन्धः मुखं अग्निः इद्धः ॥ २९ ॥

उस्राः	(उन) उरुश्रवाकी	**शब्दः**	शब्द
इन्द्र आदयः	इन्द्र आदि (देवता)	**श्रोत्रं:**	श्रवणेन्द्रिय है ।
बाहवः	भुजाएँ	**परमस्य**	परमपुरुष
आहुः	कही गयी हैं,	**तौ**	की
दिशः	दिशाएँ	**नासे**	नासिका छिद्र
कर्णौ	कान हैं ।	**नासत्यदस्रौ**	दोनों अश्विनीकुमार
अमुष्य	उन (विराट् पुरुष) का		हैं ।

अस्य	उनकी	इद्धः	प्रज्वलित
घ्राणः	घ्राण इन्द्रिय	अग्निः	अग्नि
गन्धः	गन्ध है,	मुखं	मुख है ॥२९॥

द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतङ्गः
पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च ।
तद्भ्रूविजृम्भः परमेष्ठिधिष्ण्य-
मापोऽस्य तालू रस एव जिह्वा ॥३०॥

द्यौः अक्षिणीः चक्षुः अभूत् पतङ्गः पक्ष्माणि विष्णोः अहनीः उभे च तत् भ्रू विजृम्भः परमेष्ठि धिष्ण्यं आपः अस्य तालुः रस एव जिह्वाः ॥३०॥

विष्णोः	भगवान् विष्णुके	भ्रू	भौंहका
अक्षिणीः	नेत्र	विजृम्भः	विलास
द्यौः	अन्तरिक्ष है,	परमेष्ठि	ब्रह्माका
पतङ्गः	सूर्य	धिष्ण्यं	लोक है ।
चक्षुः	नेत्रेन्द्रिय	अस्य	उनका
अभूत्	है	तालुः	तालु
च	और	आपः	जल है,
उभे	दोनों	जिह्वाः	जीभ
पक्ष्माणि	पलकें	एव	ही
अहनीः	दिन-रात हैं ।	रस	रस (तत्त्व)
तत्	उनका		है ॥३०॥

छन्दांस्यनन्तस्य शिरो गृणन्ति
दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि ।
हासो जनोन्मादकरी च माया
दुरन्तसर्गो यदपाङ्गमोक्षः ॥३१॥

छन्दांसि अनन्तस्य शिरः गृणन्ति दंष्ट्राः यमः स्नेहकलाः द्विजानि हासः जनः उन्मादकरी च मायाः दुरन्त सर्गः यत् अपांगमोक्षः ॥ ३१ ॥

छन्दान्सि	वेदोंको
अनन्तस्य	(इव) अनन्तका
शिरः	मूर्धा (ब्रह्मरन्ध्र)
गृणन्ति	कहते हैं,
यमः	यमराज
दंष्ट्राः	दाढ़े हैं,
स्नेहकलाः	सब प्रकारके स्नेह
द्विजानि	दाँत हैं
च	और
जनः	लोगोंको
उन्मादकरी	उन्मत्त कर देनेवाली
मायाः	माया
हासः	हँसी है ।
दुरन्त	दुस्तर
सर्गः	सृष्टि
यत्	उनका
अपांगमोक्षः	कटाक्षपात है ॥३१॥

व्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभो
धर्मः स्तनोऽधर्मपथोऽस्य पृष्ठम् ।
कस्तस्य मेढ्रं वृषणौ च मित्रौ
कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघाः ॥३२॥

व्रीडा उत्तर अधरः एव लौभः धर्मः स्तनः अधर्म पथः अस्य पृष्ठं कः तस्य मेढ्रं वृष्णौः च मित्रौ कुक्षिः समुद्राः गिरयः अस्थि संधाः ॥३२॥

व्रीडा	लज्जा
उत्तरः	ऊपरका (ओष्ठ) है
लोभः	लोभ
एव	ही
अधरः	(नीचेका) ओष्ठ है ।
धर्मः	धर्म
स्तनः	स्तन हैं,
अधर्म	अधर्मका
पथः	मार्ग
अस्य	इनकी
पृष्ठं	पीठ है ।
कः	प्रजापति
तस्य	उनके
मेढ्रं	मूत्रेन्द्रिय हैं
च	तथा
मित्रौ	मित्र और वरुण
वृषणौ	अण्डकोष हैं ।
समुद्राः	समुद्र
कुक्षिः	कोख है, (और)
गिरयः	पर्वत
अस्थि	हड्डियोंके
संधाः	समूह हैं ॥३२॥

नद्योऽस्य नाड्योऽथ तनूरुहाणि
महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र ।

अनन्तवीर्यः श्वसितं मातरिश्वा
गतिर्वयः कर्म गुणप्रवाहः ॥३३॥

नद्यः अस्य नाड्यः अथ तनूरुहाणि महीरुहाः विश्वतनोः नृपेन्द्र अनन्तवीर्यः श्वसितं मातरिश्वा गतिः वयः कर्मः गुणप्रवाह ॥ ३३ ॥

नृपेन्द्र	राजन् !	**वीर्यः**	पराक्रमी
अस्य	इन	**मातरिश्वा**	वायु
विश्वतनोः	विश्वरूपकी	**श्वसितं**	श्वास है,
नद्यः	नदियाँ	**वयः**	काल
नाड्यः	नाड़ियाँ हैं	**गतिः**	चाल है,
अथ	तथा	**गुण प्रवाहः**	त्रिगुणोंका प्रवाह
महीरुहाः	वृक्ष	**कर्मः**	(उनका) कर्म
तनूरुहाणि	रोम हैं,		है ॥३३॥
अनन्त	अनन्त		

ईशस्य केशान् विदुरम्बुवाहान्
वासस्तु संध्यां कुरुवर्य भूम्नः ।
अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च
स चन्द्रमाः सर्वविकारकोशः ॥३४॥

ईशस्य केशान् विदुः अम्बुवाहान् वासः तु सन्ध्यां कुरुवर्य भूम्नः अव्यक्तं आहुः हृदयं मनः च स चन्द्रमा सर्वविकार कोशः ॥ ३४ ॥

कुरुवर्य	कुरुश्रेष्ठ (परीक्षित) !	**हृदयं**	हृदय
ईशस्य	(इन) ईश्वरके	**अव्यक्तं**	प्रकृतिको
केशान्	बाल	**आहुः**	कहा गया है
अम्बुवाहान्	मेघ	**च**	तथा
विदुः	जाने जाते हैं,	**सर्वविकार**	सब विकारोंका
वासः	वस्त्र	**कोशः**	खजाना
तु	तो	**मनः**	(उनका) मन
सन्ध्यां	सन्ध्या है ।	**स**	वह
भूम्नः	(इन) सर्वव्यापकका	**चन्द्रमा**	चन्द्रमा है ॥३४॥

विज्ञानशक्तिं महिमामनन्ति
सर्वात्मनोऽन्तःकरणं गिरित्रम् ।
अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजा नखानि
सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशे ॥३५॥

विज्ञान शक्तिं महिमां आमनन्ति सर्वात्मनः अन्तःकरणं गिरित्रं अश्वः अश्वतरिः उष्ट्रः गजाः नखानि सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशे ॥३५॥

महिमां	महत्तत्त्वको	**गजाः**	हाथी
विज्ञानशक्तिं	(उनका) चित्त	**नखानि**	(उनके) नख हैं ।
आमनन्ति	कहते हैं ।	**सर्वे**	(दूसरे) सब
सर्वात्मनः	(इन) सर्वात्माका	**मृगाः**	मृगादि
अन्तःकरणं	अन्तःकरण	**पशवः**	पशु
गिरित्रं	अहंकार शिव हैं ।	**श्रोणिदेशे**	(उनके) नितम्ब भागमें स्थित हैं ॥३५॥
अश्वः	घोड़े,		
अश्वतरिः	खच्चर,		
उष्ट्रः	ऊँट,		

वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं
मनुर्मनीषा मनुजो निवासः ।
गन्धर्वविद्याधरचारणाप्सरः
स्वरस्मृतीरसुरानीकवीर्यः ॥३६॥

वयांसि तत् व्याकरणं विचित्रं मनुः मनीषाः मनुजः निवासः गन्धर्व विद्याधर चारण अप्सरः स्वरस्मृतीः असुर अनीकः वीर्यः ॥३६॥

वयांसि	पक्षीगण	**मनुजः**	मनुष्य
तत्	उनका	**निवासः**	(उनके) निवास (भवन) हैं
विचित्रं	विचित्र		
व्याकरणं	कौशल हैं ।	**गन्धर्व**	गन्धर्व,
मनुः	(स्वायम्भुव) मनु	**विद्याधर**	विद्याधर,
मनीषाः	(उनकी) बुद्धि हैं,	**चारण**	चारण (किन्नर)

अप्सरः	अप्सराएँ (उनके)	अनीकः	सेना
स्वरस्मृतिः	(षडजादि) स्वरोंकी स्मृतियाँ हैं	वीर्यः	(उनका) पराक्रम है ॥३६॥
असुर	असुरोंकी		

ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा
विड्ूरुरङ्घ्रिश्रितकृष्णवर्णः ।
नानाभिधाभीज्यगणोपपन्नो
द्रव्यात्मकः कर्म वितानयोगः ॥३७॥

ब्रह्म आननं क्षत्र भुजौ महात्मा विड् उरुः अङ्घ्रिश्रित कृष्णवर्णः नाना अभिधाभि इज्य गणोपन्नः द्रव्यात्मकः कर्म वितान योगः ॥ ३७॥

महात्मा	विराट् पुरुषके	नाना	अनेक
ब्रह्म	ब्राह्मण	अभिधाभिः	नामोंसे (देवताओंकी) जो
आननं	मुख,	द्रव्यात्मकः	अनेक द्रव्योंसे
क्षत्र	क्षत्रिय	गणोपन्नः	अनेक लोगों द्वारा
भुजौ	भुजाएँ,	इज्य	पूजा होती है (यह उनका)
विड्	वैश्य	कर्म वितान	कर्म-विस्तार रूप
उरुः	उरु (जंघाएँ),	योगः	योग है ॥३७॥
कृष्णवर्णः	शूद्र		
अंघ्रिश्रित	चरण स्वरूप हैं ।		

इयानसावीश्वरविग्रहस्य
यः संनिवेशः कथितो मया ते ।
संधार्यतेऽस्मिन् वपुषि स्थविष्ठे
मनः स्वबुद्ध्या न यतोऽस्ति किञ्चित् ॥३८॥

इयान् असौ एव ईश्वर विग्रहस्य यः सन्निवेशः कथितः मया ते संधार्यते अस्मिन् वपुषि स्थविष्ठे मनः स्व बुद्ध्या न यतः अस्ति किञ्चित् ॥ ३८ ॥

ईश्वर	ईश्वरके	असौ	यह
विग्रहस्य	विराट् रूपका	एव	ही

इयान्	इतना
सन्निवेशः	विस्तार है
यः	जो
मया	मैंने
ते	तुमसे
कथितः	बतलाया है ।
अस्मिन्	इस
स्थविष्ठे	स्थूल
वपुषि	रूपमें
यतः	जिससे (पृथक)
किञ्चित्	कुछ भी
न	नहीं
अस्ति	है (उनमें)
स्व	अपनी
बुद्ध्या	बुद्धिसे
मनः	मनको
सन्धार्यते	लगाया जाता है ॥३८॥

स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व
आत्मा यथा स्वप्नजनेक्षितैकः ।
तं सत्यमानन्दनिधिं भजेत
नान्यत्र सज्जेद् यत आत्मपातः ॥३९॥

स सर्व धी वृत्ति अनुभूत सर्व आत्मा यथा स्वप्न जन ईक्षित एकः
तं सत्यं आनन्दनिधिं भजेत न अन्यत्र सज्जेत् यत आत्मपातः ॥ ३९ ॥

यथा	जैसे
स्वप्न	स्वप्नमें
ईक्षित	दीखे
जन	लोगोंमें
एकः	एक ही (अपना आत्मा) है
सर्व	(वैसे ही) सबकी
धी	बुद्धियोंकी
वृत्ति	वृत्तियों द्वारा
अनुभूत	अनुभवमें आया
सर्व	सबका
स	वह
आत्मा	आत्मा (एक ही) है ।
तं	उस
सत्यं	सत्य स्वरूप
आनन्दनिधिं	आनन्दनिधिको
भजेत्	भजे (स्मरण करे)
अन्यत्र	और कहीं
न	न
सज्जेत	आसक्त हो
यत	जिस (अन्य आसक्ति) से
आत्मपातः	अपना पतन होता है ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां द्वितीयस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

एवं पुरा धारणयाऽऽत्मयोनि-
र्नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य तुष्टात् ।
तथा ससर्जेदममोघदृष्टि-
र्यथाप्ययात् प्राग् व्यवसायबुद्धिः ॥१॥

एवं पुरा धारणया आत्मयोनिः नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य तुष्टात् तथा ससर्ज इदं अमोघ दृष्टिः यथा अप्ययात् प्राग् व्यवसाय बुद्धिः ॥ १ ॥

पुरा	पहिले	**अमोघ दृष्टिः**	अमोघ दृष्टि
आत्मयोनिः	ब्रह्माजीने	**व्यवसाय**	निश्चयात्मिका
एवं	इसी प्रकारकी	**बुद्धिः**	बुद्धिसे
धारणया	धारण द्वारा	**इदं**	इस (जगत्) की
तुष्टात्	सन्तुष्ट हुए (भगवान्) से	**तथा**	वैसी ही
		ससर्ज	सृष्टिकी
नष्टां	(प्रलयमें) नष्ट हुई	**यथा**	जैसी
स्मृतिं	स्मरण शक्तिको	**अप्ययात्**	प्रलयसे
प्रत्यवरुध्य	पुनः प्राप्त करके	**प्राग्**	पहिले थी ॥१॥

शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था
यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः ।
परिभ्रमंस्तत्र न विन्दतेऽर्थान्
मायामये वासनया शयानः ॥२॥

शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था यत् नामभिः ध्यायति धीः अपार्थैः परिभ्रमन् तत्र न विन्दते अर्थान् मायामये वासनया शयानः ॥ २ ॥

हि	क्योंकि
ब्रह्मण	वेदोंकी
शाब्दस्य	शब्दावलीकी
एष	यह
पन्थाः	शैली ही ऐसी है,
यत्	जिससे
नामभिः	अनेक नामोंसे
धीः	(लोगोंकी) बुद्धि
अपार्थैः	अवास्तविक (वस्तुओंका)
ध्यायति	ध्यान (चिन्तन) करने लगती है,
मायामये	मायामय (पदार्थोंमें)
वासनया	(उनको पानेकी) वासनासे
शयानः	सोया (अविद्याग्रस्त) हुआ
परिभ्रमन	भटकता हुआ (जीव)
तत्र	उनमें
अर्थान्	पुरुषार्थ (सुख) को
न	नहीं
विन्दते	पाता ॥२॥

अतः कविर्नामसु यावदर्थः
स्यादप्रमत्तो व्यवसायबुद्धिः ।
सिद्धेऽन्यथार्थे न यतेत तत्र
परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः ॥३॥

अतः कविः नामसु यावत् अर्थः स्यात् अप्रमत्तः व्यवसाय बुद्धिः सिद्धे अन्यथा अर्थे न यतेत तत्र परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः ॥ ३ ॥

अतः	अतः
कविः	विद्वान् पुरुषको
अप्रमत्तः	सावधान होकर
नामसु	अनेक नामवाले (पदार्थों) में
यावत्	जितना
अर्थः	प्रयोजन
स्यात्	हो (उतना ही व्यवहार करना चाहिये) ।
अन्यथा	किसी और ढङ्गसे (बिना प्रयत्नके)
अर्थे	प्रयोजन
सिद्धे	पूरा हो जानेपर
व्यवसाय	निश्चयात्मिका (दृढ़ निश्चयवाली)
बुद्धिः	बुद्धिसे
तत्र	वहाँ
परिश्रमं	(केवल) परिश्रम

समीक्षमाणः	भली प्रकार देखता हुआ	**यतेत् न**	प्रचत्न नहीं करे ॥३॥
तत्र	उन (पदार्थों) के लिए		

सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासै-
र्बाहौ स्वसिद्धे ह्युपबर्हणैः किम् ।
सत्यञ्जलौ किं पुरुधान्यपात्र्या
दिग्वल्कलाद्यौ सति किं दुकूलैः ॥४॥

सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासैः बाहौ स्व सिद्धे हि उपबर्हणैः किं सति अञ्जलौ किं पुरु धान्यपात्र्या दिग् वल्कलाद्यौ सति किं दुकूलैः ॥४॥

क्षितौ	पृथ्वीके	**किं**	क्या लाभ है ।
सत्यां	रहते	**अञ्जलौ**	अञ्जलि
कशिपोः	(सोनेके लिए) पलंगका	**सति**	रहते हुए
		पुरु	बहुत-से
प्रयासैः	प्रयास	**धान्यपात्र्या**	भोजनके बर्तनोंसे
किं	क्यों किया जाय ।	**किं**	क्या प्रयोजन है ।
हि	क्योंकि	**दिक्**	दिशाएँ (या)
स्व	अपनी	**वल्कलाद्यौ**	वल्कल (चिथड़े) आदि (पहननेको)
बाहौ	भुजाएँ		
सिद्धे	(सिरके नीचे लगानेको) हैं ही	**सति**	रहते हुए
		दुकूलैः	उत्तम वस्त्रोंका
उपबर्हणैः	(तब) तकियोंसे	**किं**	करना क्या है ॥४॥

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां
नैवाङ्घ्रिपा परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन् ।
रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्
कस्माद् भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान् ॥५॥

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां न एव अंघ्रिपाः परभृतः सरितः अपि शुष्यन् रुद्धा गुहाः किं अजितः अवति न उपसन्नान् कस्मात् भजन्ति कवयः धन दुर्मदाअन्धान् ॥ ५ ॥

पथि	मार्गोंमें
किं	क्या
चीराणि	चीर* (पहिननेके लिए)
न	नहीं
सन्ति	रहे ?
परभृतः	दूसरोंका भरण-पोषण करनेवाले
अंघ्रिपाः	वृक्ष (आहारके लिए)
भिक्षां	भिक्षा
न	नहीं
एव	ही
दिशन्ति	देते ?
सरितः	नदियाँ (जल पीनेके लिए)
अपि	भी
शुष्यन्	सूख गयीं ?
गुहाः	गुफाएँ (रहनेके लिए)
रुद्धाः	रुक गयीं ? (यह सब हो भी गया हो तो)
किं	क्या
अजितः	भगवान् (भी)
उपसन्नान्	शरणागतोंकी
अवति	रक्षा
न	नहीं करते ? (ऐसा नहीं है तो)
कवयः	बुद्धिमान-विद्वान्
धन	धनके
दुर्मदान्धान्	गर्वसे मतवाले होकर अन्धे (विवेक शून्य) लोगोंकी
कस्मात्	किसलिए
भजन्ति	सेवा करते हैं ?■ ॥५॥

---

* पहिले प्रथा थी कि नया वस्त्र पहिनते समय एक लंगोटी बनने जितना चौड़ा भाग चीरकर, (फाड़कर) मार्गके किसी वृक्षपर गृहस्थ लटका देते थे। यही टुकड़े चीर कहे जाते थे।

■ **विशेष—**

आज सचमुच मार्गोंमें कहीं शुद्ध चीर नहीं हैं। वृक्ष फलवाले वनमें भी हों तो वे किसी व्यक्ति या वन-विभागके स्वत्व हैं। उनसे भिक्षा मानकर फल लेना चोरी है। सरिताएँ बहुत भागोंमें सूख गयीं, नहर निकालनेसे अथवा उनका जल गन्दगी मिलनेसे अनुपयोगी हो गया। गुफाएँ प्रायः जहाँ समीप जल हो रुक गयीं, वहाँ लोग बस गये। केवल भगवानका भरोसा रहा और शरणागतकी रक्षा वे करते ही हैं।

एवं स्वचित्ते स्वत एव सिद्ध
आत्मा प्रियोऽर्थो भगवाननन्तः ।
तं निर्वृतो नियतार्थो भजेत
संसारहेतूपरमश्च यत्र ॥६॥

एवं स्व चित्ते स्वत एव सिद्धः आत्मा प्रियः अर्थः भगवान् अनन्तः तं निर्वृतः नियत अर्थः भजेत संसार हेतु उपरमः च यत्र ॥ ६ ॥

एवं	इस प्रकार	**भगवान्**	भगवान्
निर्वृतः	विरक्त होकर	**अनन्तः**	अनन्तका
स्व	अपने	**नियत**	दृढ़
चित्ते	हृदयमें	**अर्थः**	निश्चयपूर्वक
स्वत	स्वतः	**भजेत्**	भजन करे
एव	ही	**यत्र**	जिससे
सिद्धः	सिद्ध	**च**	कि
आत्मा	आत्मा रूप	**संसार**	संसारका
प्रियः	प्रिय	**हेतु**	कारण (अज्ञान)
अर्थः	परम प्रयोजनीय	**उपरमः**	नष्ट हो जाता है ॥६॥

कस्तां त्वनादृत्य परानुचिन्ता-
मृते पशूनसतीं नाम युञ्ज्यात् ।
पश्यञ्जनं पतितं वैतरण्यां
स्वकर्मजान् परितापाञ्जुषाणम् ॥७॥

कः तां तु अनादृत्य पर अनुचिन्तां ऋते पशून् असतीं नाम युञ्ज्यात् पश्यन् जनं पतितं वैतरण्यां स्व कर्मजान् परितापान् जुषाणम् ॥ ७ ॥

जनं	लोगोंको	**कर्मजान्**	कर्मोंसे उत्पन्न
वैतरण्यां	(संसार रूप) वैतरणी (यमनदी)में	**परितापान्**	संतापोंको
		जुषाणं	भोगते
पतितं	गिरकर	**पश्यन्**	देखते हुए
स्व	अपने	**पशून्**	पशुओंको

ऋतेः	छोड़कर (और)	**तां**	उसी
कः	कौन है	**असतीं**	असत्
तु	जो	**नाम**	कहे जानेवाले (मार्गमें)
पर	परमात्माके		
अनुचिन्तां	बराबर चिन्तनका	**युञ्ज्यात्**	(अपने चित्तको) लगावेगा ॥७॥
अनादृत्य	अनादर करके		

केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे
प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम् ।
चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्ख-
गदाधरं धारणया स्मरन्ति ॥८॥

केचित् स्व देहान्तः हृदयवकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं बसन्तं चतुर्भुजं कञ्ज रथाङ्ग शङ्ख गदाधरं धारणया स्मरन्ति ॥ ८ ॥

केचित्	कोई (आचार्य-ऋषि विराट् पुरुषकी धारणा न करके)	**कञ्ज**	कमल
		रथाङ्ग	चक्र
		शङ्ख	शंख
स्व	अपने	**गदाधरं**	गदाधारी
देहान्तः	शरीरमें ही	**चतुर्भुजं**	चतुर्भुज
हृदयावकाशे	हृदयाकाशमें	**पुरुषं**	पुरुषका
वसन्तं	निवास करनेवाले	**धारणया**	धारणा द्वारा
प्रादेशमात्रं	अंगूठेके बराबर	**स्मरन्ति**	चिन्तन करते हैं ॥८॥

प्रसन्नवक्त्रं नलिनायतेक्षणं
कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससम् ।
लसन्महारत्नहिरण्मयाङ्गदं
स्फुरन्महारत्नकिरीटकुण्डलम् ॥९॥

प्रसन्न वक्त्रं नलिन आयत ईक्षणं कदम्ब किञ्जल्क पिशंग वाससं लसन् महारत्न हिरण्मय अङ्गदं स्फुरन् महारत्न किरीट कुण्डलम् ॥ ९ ॥

प्रसन्न	(वे) प्रसन्न	**नलिन**	(उनके) कमलके
वक्त्रं	मुख है,		समान

आयत	बड़े
ईक्षणं	नेत्र,
कदम्ब	कदम्ब पुष्पके
किञ्जल्क	परागके समान
पिशङ्ग	पीले
वाससं	वस्त्र, हैं,
महारत्न	(वे) महान् रत्न जटित
हिरण्मय	सोनेके
अङ्गदं	बाजूबंदसे
लसन्	सुशोभित,
महारत्न	बहुमूल्य रत्नोंके
किरीट	मुकुट
कुण्डलं	कुण्डलोंसे
स्फुरन्	जगमगा रहे हैं ॥९॥

उन्निद्रहृत्पङ्कजकर्णिकालये
योगेश्वरास्थापितपादपल्लवम् ।
श्रीलक्ष्मणं कौस्तुभरत्नकन्धर-
मम्लानलक्ष्म्या वनमालयाऽऽचितम् ॥१०॥

उन्निद्र हृत् पङ्कज कर्णिका आलये योगेश्वराः आस्थापित पाद पल्लवं श्री लक्ष्मणं कौस्तुभरत्न कन्धरं अम्लान लक्ष्म्या वनमालया आचितम् ॥ १० ॥

उन्निद्र	खिले हुए
हृत्	हृदय
पङ्कज	कमलकी
कर्णिका	कर्णिका रूप
आलये	निवासमें
योगश्वराः	योगेश्वरोंके द्वारा
आस्थापित	भली प्रकार स्थापित
पाद	चरण
पल्लवं	पल्लववाले
श्री लक्ष्मणं	(वक्षस्थलपर) श्रीवत्स चिह्न
कौस्तुभरत्न	(गलेमें) कौस्तुभ मणि
कन्धरं	कन्धे
अम्लान	नित्य प्रफुल्ल
लक्ष्म्या	शोभा युक्त
वनमालया	वनमालासे
आचितं	(वे) भूषित हैं ॥१०॥

विभूषितं मेखलयाङ्गुलीयकै-
र्महाधनैर्नूपुरकङ्कणादिभिः ।
स्निग्धामलाकुञ्चितनीलकुन्तलै-
र्विरोचमाननहासपेशलम् ॥११॥

विभूषितं मेखलया अङ्गुलीयकैः महाधनैः नूपुर कङ्कणादिभिः स्निग्ध अमल कुञ्चित नील कुन्तलैः विरोचमान आननं हास पेशलम् ॥११॥

मेखलया	मेखला (करधनी) से कमर	**कुञ्चित**	घुंघराले
महाधनैः	बहुमूल्य	**नील**	काले
अङ्गुलीयकैः	अंगूठियोंसे (अंगुलियाँ)	**कुन्तलैः**	केशोंसे
नूपुर	नूपुरसे (चरण)	**विरोचमान**	अत्यन्त शोभायमान हैं,
कङ्कणादिभिः	ककण आदिसे (हाथ)	**हास**	मुस्कराहट युक्त
विभूषितं	विभूषित हैं ।	**पेशलं**	(सुकुमार) खिला हुआ
स्निग्ध	चिकने	**आननं**	मुख है ॥११॥
अमल	स्वच्छ		

अदीनलीलाहसिसेक्षणोल्लसद्-
भ्रूभङ्गसंसूचितभूर्यनुग्रहम् ।
ईक्षेत चिन्तामयमेनमीश्वरं
यावन्मनो धारणयावतिष्ठते ॥१२॥

अदीन लीला हसित ईक्षण उल्लसत् भ्रूभङ्ग संसूचितं भूरि अनुग्रहं ईक्षेत चिन्तामयं एनं ईश्वरं यावत् मनः धारणया अवतिष्ठते ॥ १२ ॥

लीला	लीलायुक्त	**एनं**	इन
अदीन	उन्मुक्त	**चिन्तामयं**	भावनामय
हास्य	हँसी (और)	**ईश्वरं**	सर्व समर्थको
ईक्षण	चितवन सहित	**यावत्**	जबतक
उल्लसत्	उल्लासपूर्वक	**मनः**	मन
भ्रूभङ्ग	भौंहके संकेतसे	**धारणया**	इस धारणामें
भूरि	अत्यधिक	**अवतिष्ठते**	स्थिर न हो जाय
अनुग्रहं	अनुग्रहको	**ईक्षेत**	(बार-बार) देखता रहे ॥१२॥
संसूचितं	सूचित करते हुए		

एकैकशोऽङ्गानि धियानुभावयेत्
पादादि यावद्धसितं गदाभृतः ।

जितं जितं स्थानमपोह्य धारयेत्
परं परं शुद्ध्यति धीर्यथा यथा ॥१३॥

एक एकशः अङ्गानि धिया अनुभावयेत् पादादि यावत् हसितं गदाभृतः जितं जितं स्थानं अपोह्य धारयेत् परं परं शुद्ध्यति धीः यथा यथा ॥ १३ ॥

गदाभृतः	भगवान् गदाधरके	**धीः**	बुद्धि
पादादि	चरणोंसे प्रारम्भ करके	**शुद्ध्यति**	शुद्ध होती जाय,
हसितं	हास्ययुक्त मुखारविन्द	**जितं जितं**	जीते हुए (जिन अंगोंमें मन स्थिर हो गया है)
यावत्	पर्यन्त		
एक एकशः	क्रमशः एक एक	**स्थानं**	उन अंगोंको
अङ्गानि	अंगोंकी	**अपोह्य**	छोड़कर
धिया	बुद्धिसे	**परं परं**	उनसे अन्य अन्य
अनुभावयेत्	बार-बार भावना करे ।		अंगोंकी क्रमशः
		धारयेत्	धारणा करे ॥१३॥
यथा यथा	जैसे जैसे		

यावन्न जायेत परावरेऽस्मिन्
विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः ।
तावत् स्थवीयः पुरुषस्य रूपं
क्रियावसाने प्रयतः स्मरेत ॥१४॥

यावत् न जायेत पर अवरे अस्मिन् विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः तावत् स्थवीयः पुरुषस्य रूपं क्रिया अवसाने प्रयतः स्मरेत ॥ १४ ॥

यावत्	जबतक	**विश्वेश्वरे**	विश्वेश्वरमें
पर	परलोक	**भक्तियोगः**	भक्तियोग
अवरे	इस लोकके	**न**	नहीं
द्रष्टरि	द्रष्टा	**जायेत**	उत्पन्न हो जाय
अस्मिन्	इन	**तावत्**	तबतक

स्थवीयः	स्थूल	**क्रिया**	(नित्य नैमित्तिक)
पुरुषस्य	विराट् पुरुषका (पूर्व वर्णित)		कर्मके
		अवसाने	अन्तमें
रूपं	रूप	**प्रयतः**	एकाग्रतासे
		स्मरेत्	चिन्तन करे ॥१४॥

स्थिरं सुखं चासनमाश्रितो यति-
र्यदा जिहासुरिममङ्ग लोकम् ।
काले च देशे च मनो न सज्जयेत्
प्राणान् नियच्छेन्मनसा जितासुः ॥१५॥

स्थिरं सुखं च आसनं आश्रितः यतिः यदा जिहासुः इमं अङ्ग लोकं काले च देशे च मनः न सज्जयेत् प्राणान् नियच्छेत् मनसा जितासुः ॥१५॥

अङ्गः	प्रिय (परीक्षित्) !	**च**	और
यदा	जब	**काले**	कालमें
यतिः	योगी पुरुष	**च**	तथा
इमं	इस	**देशे**	देशमें
लोकं	लोकको	**मनः**	मनको
जिहासुः	छोड़ देना चाहे,	**न सज्जयेत्**	आसक्त न करे,
च	तब	**प्राणान्**	प्राणोंको
सुखं	सुखपूर्वक	**जितासुः**	जीतकर
स्थिरं	स्थिर	**मनसा**	मनसे
आसनं	आसनसे	**नियच्छेत्**	(इन्द्रियोंको)
आश्रितः	बैठजाय		नियन्त्रण करे ॥१५॥

मनः स्वबुद्ध्यामलया नियम्य
क्षेत्रज्ञ एतां निनयेत् तमात्मनि ।
आत्मानमात्मन्यवरुध्य धीरो
लब्धोपशान्तिर्विरमेत कृत्यात् ॥१६॥

मनः स्व बुद्ध्या अमलया नियम्य क्षेत्रज्ञ एतां निनयेत् तं आत्मनि आत्मानं आत्मनि अवरुध्य धीरः लब्धः उपशान्तिः विरमेत् कृत्यात् ॥१६॥

मनः	मनको	**आत्मानं**	आत्माको
स्व	अपनी	**आत्मनि**	परमात्मामें
अमलया	निर्मल	**अवरुध्य**	लीन करके
बुध्या	बुद्धिसे	**धीरः**	धीर पुरुष
नियम्य	नियन्त्रित करके	**उपशान्ति**	परम शान्तिको
एतां	इन (मन-बुद्धि) को	**लब्धः**	प्राप्त करके
क्षेत्रज्ञ	क्षेत्रज्ञ (जीव) में	**कृत्यात्**	कर्तव्यतासे
निनयेत्	ले जाय,	**विरमेत्**	विराम कर ले।
तं	उस (क्षेत्रज्ञ) को		(तब उसका कोई
आत्मनि	आत्मतत्त्वमें		कर्तव्य नहीं रह
	(मिलादे)		जाता।) ॥१६॥

न यत्र कालोऽनिमिषां परः प्रभुः
कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे ।
न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च
न वै विकारो न महान् प्रधानम् ॥१७॥

न यत्र कालः अनिमिषां परं प्रभुः कुतः नुः देवा जगतां य ईशिरे न यत्र सत्त्वं न रजः तमः च न वै विकारः न महान् प्रधानम् ॥ १७ ॥

अनिमिषां	देवताओंका	**सत्त्वं**	सत्वगुण
परः	परम	**न**	नहीं है,
प्रभुः	स्वामी	**रजः**	रजोगुण
कालः	काल भी	**तमः**	तमोगुण
यत्र	जहाँ	**न**	नहीं हैं,
न	नहीं है (तब)	**च**	तथा
जगतां	संसारका	**विकारः**	अहंकार
य	जो	**न**	नहीं है,
ईशिरे	सञ्चालन करते हैं	**महान्**	महत्तत्व
देवा	वे देवता,	**प्रधानं**	प्रकृति
कुतः नु	हो ही कैसे सकते हैं ?	**वै**	भी
यत्र	जहाँ	**न**	नहीं है ॥१७॥

परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्
यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ।
विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा
हृदोपगुह्यार्हपदं पदे पदे ॥१८॥

परं पदं वैष्णवं आमनन्ति तत् यत् नेति नेति इति अतत् उत्सिसृक्षवः विसृज्य दौरात्म्यं अनन्य सौहृदा हृत् उपगुह्य अर्ह पदं पदे पदे ॥ १८ ॥

तत्	उसे
वैष्णवं	भगवान् विष्णुका
परं	परम
पदं	पद
आमनन्ति	(शास्त्रमें) कहा जाता है
यत्	जिसे
अतत्	असत् (पदार्थोंको)
उत्सिसृक्षवः	त्याग देनेकी इच्छा वाले (मुनि)
नेति नेति	'यह नहीं, यह नहीं'
इति	इस प्रकार
दौरात्म्यं	आत्मासे भिन्नकी आसक्ति
विसृज्य	त्यागकर
अनन्य	अनन्य
सौहृदा	तौहार्द्रसे
अर्ह पदं	(उस) पूजनीय पद (स्वरूप) का
पदे पदे	पद पद पर (निरन्तर)
हृदा	हृदयसे
उपगुह्य	आलिंगन (एकात्म्य) करते हैं ॥१८॥

इत्थं मुनिस्तूपरमेद् व्यवस्थितो
विज्ञानदृग्वीर्यसुरन्धिताशयः ।
स्वपार्ष्णिनाऽऽपीड्य गुदं ततोऽनिलं
स्थानेषु षट्सून्नमयेज्जितक्लमः ॥१९॥

इत्थं मुनिः तु उपरमेत् व्यवस्थितः विज्ञान दृक् वीर्य सुरन्धित आशयः स्व पार्ष्णिना आपीड्य गुदं ततः अनिलं स्थानेषु षट्सु उन्नमयेत् जित क्लमः ॥ १९ ॥

विज्ञान	ज्ञान
दृक्	दृष्टिके
वीर्य	पराक्रमसे
आशयः	(कर्म संस्कारात्मक) (जिसका) चित्त

सुरन्धित	भली प्रकार भस्म हो चुका है
मुनिः	(वह) मुनि
तु	तो
इत्थं	इस प्रकार
व्यवस्थितः	व्यवस्थित होकर
उपरमेत्	उपराम हो (देह त्याग करे)।
स्व	अपनी
पार्ष्णिना	एड़ीसे
गुदं	गुदाको
आपीड्य	दबाकर
ततः	वहाँसे
अनिलं	प्राण वायुको
षड्सु	छहो
स्थानेषु	स्थानों (चक्रों) में (क्रमशः)
क्लमः	घबड़ाहट
जितः	त्यागकर
उन्नमयेत्	ले जाय ॥१९॥

नाभ्यां स्थितं हृद्यधिरोप्य तस्मा-
दुदानगत्योरसि तं नयेन्मुनिः ।
ततोऽनुसन्धाय धिया मनस्वी
स्वतालुमूलं शनकैर्नयेत् ॥२०॥

नाभ्यां स्थितं हृदि अधिरोप्य तस्मात् उदानगत्या उरसि तं नयेत् मुनिः ततः अनुसन्धाय धिया मनस्वो स्व तालुमूलं शनकैः नयेत् ॥२०॥

मनस्वो मुनिः	धैर्यशील योगी
नाभ्यां	नाभि (के मणिपूर चक्र) में
स्थितं	स्थित (प्राण वायुको)
हृदि	हृदय (अनाहत चक्र) में
अधिरोप्य तस्मात्	लाकर वहाँसे
उदानगत्या	उदानकी गतिसे (उदानसे मिलाकर)
उरसि	वक्षके ऊपर कण्ठ (विशुद्ध चक्र) में
तं	उस (वायु) को
नयेत्	लावे,
ततः	वहाँसे
धिया	बुद्धि द्वारा
अनुसन्धाय	(मार्गका) अनुसन्धान करके
शनकैः	धीरे-धीरे
स्व	अपने
तालुमूल	तालुमूल (विशुद्ध चक्रके ऊपर)
नयेत्	ले आवे ॥२०॥

तस्माद् भ्रुवोरन्तरमुन्नयेत
निरुद्धसप्तायतनोऽनपेक्षः ।
स्थित्वा मुहूर्तार्धमकुण्ठदृष्टि-
र्निभिद्य मूर्धन् विसृजेत्परं गतः ॥२१॥

तस्मात् भ्रुवोः अन्तरं उन्नयेत निरुद्धः सप्त आयतन अनपेक्षः स्थित्त्वा मुहूर्तार्धं अकुण्ठ दृष्टिः निर्भिद्य मूर्धन् विसृजेत् परं गतः ।.२१॥

अनपेक्षः	सब अपेक्षाएँ त्यागकर
सप्त	सात
आयतनः	छिद्रों (दो नेत्र, दो कान, दो नाक, एक मुख) को
निरुद्धः	बन्द करके
तस्मात्	वहाँ (तालुमूल) से (वायुको)
भ्रुवोः अनन्तरं	दोनों भौंहोंके बीच (आज्ञा चक्र) में
उन्नयेत	ले आवे ।
अकुण्ठ दृष्टिः	स्थिर लक्ष्य रखते हुए
मुहूर्तार्धं	आधे मुहूर्त (आधी घड़ी)
स्थित्त्वा	ठहर कर (वायुको वहीं रोककर)
मूर्धन्	मूर्धा (ब्रह्मरन्ध्र) को
निर्भिद्य	फोड़कर (भेदन कर)
विसृजेत्	(वाय इन्द्रियादिको) त्याग दे
परं	(और) परमात्मामें
गतः	मिल जाय ॥२१॥

यदि प्रयास्यन् नृप पारमेष्ठ्यं
वैहायसानामुत यद् विहारम् ।
अष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये
सहैव गच्छेन्मनसेन्द्रियैश्च ॥२२॥

यदि प्रयास्यन् नृप पारमेष्ठ्यं वैहयसानां उत यत् विहारं अष्ट आधिपत्यं गुण सन्निवाये सह एव गच्छेत् मनसा इन्द्रियैः च ॥२२॥

नृप	परीक्षित् !
यदि	यदि (योगीकी इच्छा)
पारमेष्ठ्यं	ब्रह्मलोक
प्रयास्यन	जानेकी हो,
उत	अथवा
अष्ट	आठ (सिद्धियों) का
आधिपत्यं	स्वामित्व प्राप्तकर

वैहायसानां	आकाशचारी सिद्धोंके साथ	**मनसा**	मन
यत्	अथवा	**च**	और
गुण	त्रिगुणमयी	**इन्द्रियैः**	इन्द्रियों
सन्निवाये	सृष्टिमें	**सह**	साथ
विहारं	विहार करनेकी हो (तो)	**एव**	ही
		गच्छेत्	(शरीरसे बाहर) जाय ॥२२॥

योगेश्वराणां गतिमाहुरन्त-
र्बहिस्त्रिलोक्याः पवनान्तरात्मनाम् ।
न कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवन्ति
विद्यातपोयोगसमाधिभाजाम् ॥२३॥

योगेश्वराणां गति आहुः अन्तर्बहिः त्रिलोक्याः पवन अन्तरात्मनां न कर्मभिः तां गतिं आप्नुवन्ति विद्या, तपः योग समाधि भाजां ॥२३॥

विद्या	उपासना,	**अन्तर्बहिः**	भीतर-बाहर (सर्वत्र)
तपः	तप,	**आहुः**	(शास्त्रोंमें) कही गयी है ।
योग	योग,	**कर्मभिः**	(केवल) कर्मके द्वारा
समाधि	अत्यन्त एकाग्रता	**तां**	उस
भाजां	सम्पन्न,	**गतिं**	गतिको
पवन	वायुके (समान)	**न**	नहीं
अन्तरात्मनां	सूक्ष्म शरीरवाले	**आप्नुवन्ति**	पाया जाता ॥२३॥
योगेश्वराणां	योगेश्वरोंकी		
गति	(स्वच्छन्द) गति		
त्रिलोक्याः	तीनों लोकोंके		

वैश्वानरं याति विहायसा गतः
सुषुम्णया ब्रह्मपथेन शोचिषा ।
विधूतकल्कोऽथ हरेरुदस्तात्
प्रयाति चक्रं नृप शैशुमारम् ॥२४॥

वैश्वानरं याति विहायसा गतः सुषुम्णया ब्रह्मपथेन शोचिषा विधूत कल्कः अथ हरेः उदस्तात् प्रयाति चक्रं नृप शैशुमारम् ॥२४॥

नृप	परीक्षित् !	**अथ**	तदनन्तर
शोचिषा	(योगी) ज्योतिर्मय		(वहाँ उसकी)
सुषुम्णया	सुषुम्णा नाड़ीके द्वारा	**कल्कः**	(रही सही) मलिनता
ब्रह्मपथेन	ब्रह्मलोकके मार्गसे (जाने समय)	**विधूत**	भस्म हो जानेपर
		उदस्तात्	वहाँसे ऊपर
विहायसा	(पहिले) आकाशमें	**हरेः**	श्रीहरिके
गतः	जाकर	**शैशुमारं**	शिशुमार
वैश्वानरं	अग्निलोक	**चक्रं**	चक्रपर
याति	पहुँचता है ।	**प्रयाति**	पहुँचता है ॥२४॥

तद् विश्वनाभिं त्वतिवर्त्य विष्णो-
रणीयसा विरजेनात्मनैकः ।
नमस्कृतं ब्रह्मविदामुपैति
कल्पायुषो यद् विबुधा रमन्ते ॥२५॥

तत् विश्वनाभिं तु अतिवर्त्य विष्णोः अणीयसा विरजेन आत्मना एकः नमस्कृतं ब्रह्मविदां उपैति कल्प आयुषः यत् बिबुधा रमन्ते ॥२५॥

तत्	उस	**ब्रह्मविदां**	वेदज्ञों द्वारा
विष्णोः	भगवान् विष्णुके	**नमस्कृतं**	नमस्कृत (उस महर्लोक) को
विश्वनाभिं	विश्वके केन्द्रको		
तु	भी	**उपैति**	पहुँचता है
अतिवर्त्य	पार करके	**यत्**	जिसमें
अणीयसा	अत्यन्त सूक्ष्म	**कल्प**	एक कल्प
विरजेन	निर्मल	**आयुषः**	आयु वाले
आत्मना	रूपसे	**बिबुधा**	देवता
एकः	अकेला	**रमन्ते**	क्रीड़ा करते हैं ॥२५॥

अथो अनन्तस्य मुखानलेन
दन्दह्यमानं स निरीक्ष्य विश्वम् ।
निर्याति सिद्धेश्वरजुष्टधिष्ण्यं
यद् द्वैपराध्यं तदु पारमेष्ठ्यम् ॥२६॥

अथ अनन्तस्य मुखानलेन दन्दह्यमानं स निरीक्ष्य विश्वं निर्याति सिद्धेश्वर जुष्ट धिष्ण्यं यत् द्वैपरार्ध्यं तत् पारमेष्ठ्यम् ॥२६॥

अथ	इसके अनन्तर (प्रलयकाल आनेपर)
अनन्तस्य	भगवान् शेषके
मुखानलेन	मुखसे निकले अग्निसे
विश्वं	विश्व (नीचेके लोकों) को
दन्दह्यमानः	जलता हुआ
निरीक्ष्य	देखकर
स	वह (योगी)
सिद्धेश्वर	सिद्धेश्वरोंके
जुष्ट	निवासवाले
धिष्ण्यं	(ब्रह्म) लोकको
निर्याति	चला जाता है,
यत्	जो
द्वैपरार्धं	दो परार्धकी आयु वाला है
तत्	(और) वह
पारमेष्ठ्यं	ब्रह्मलोकके समान ही है ॥२६॥

न यत्र शोको न जरा न मृत्यु-
र्नार्तिर्न चोद्वेग ऋते कुतश्चित् ।
यच्चित्ततोऽदः कृपयानिदंविदां
दुरन्तदुःखप्रभवानुदर्शनात् ॥२७॥

न यत्र शोकः न जराः न मृत्युः न आर्तिः न च उद्वेगः ऋते कुतश्चित् यत् चित्ततोऽदः कृपया अनिदं विदां दुरन्त दुःख प्रभव अनुदर्शनात् ॥२७॥

यत्र	जिस ब्रह्मलोकमें
न शोकः	न शोक है,
न जरा	न बुढ़ापा है,
न मृत्युः	न मृत्यु है,
न कुतश्चित्	न कोई
आर्तिः	क्लेश है,
च	और
न उद्वेग	न उद्वेग होता है,
ऋते	सिवाय इसके कि
अनिदं	तथ्यको न

विदां	जाननेवाले (अज्ञानियों) के
दुरन्त	असह्य
दुःख	दुःखोंके
प्रभवः	कारणोंको
अनुदर्शनात्	बार-बार देखनेसे
कृपया	कृपाके कारण
यत्	जो
चित्ततः	(वे) चित्तसे
अदः	खिन्न हो जाते हैं ॥२७॥

ततो विशेषं प्रतिपद्य निर्भय-
स्तेनात्मनापोऽनलमूर्तिरत्वरन् ।
ज्योतिर्मयो वायुमुपेत्य काले
वाय्वात्मना खं बृहदात्मलिङ्गम् ॥२८॥

ततः विशेषं प्रतिपद्य निर्भयः तेन आत्मना आपः अनल मूर्तिः अत्वरन् ज्योतिर्मयः वायुं उपेत्य काले वायु आत्मना खं वृहत् आत्मलिङ्गम् ॥ २८ ॥

ततः	तब (वह योगी)
निर्भयः	बिना भयके
विशेषं	पृथ्वीसे
प्रतिपद्य	मिलकर (एक होकर)
तेन आत्मना	उस रूपसे
अत्वरन्	बिना शीघ्रता किये
आपः	जलसे (एक होता है)
अनलमूर्तिः	(फिर जलसे) अग्नि रूप बनता है ।
ज्योतिर्मयः	अग्नि रूपसे
काले	समयपर
वायुं	वायु रूप
उपेत्य	प्राप्त कर (फिर)
आत्मना	अपने
वायु	वायु रूपसे
आत्मलिङ्गम्	आत्माके चिह्न (विभुत्व) वाले
वृहत्	अनन्त
खं	आकाशसे (एक होता है) ॥२८॥

घ्राणेन गन्धं रसनेन वै रसं
रूपं तु दृष्ट्या श्वसनं त्वचैव ।
श्रोत्रेण चोपेत्य नभोगुणत्वं
प्राणेन चाकूतिमुपैति योगी ॥२९॥

घ्राणेन गन्धं रसनेन वै रसं रूपं तु दृष्ट्या श्वसनं त्वचैव श्रोत्रेण च उपेत्य नभः गुणत्वं प्राणेन च आकूतिं उपैति योगी ॥२९॥

योगी	वह योगी (स्थूल आवरणोंको पार करते समय इन्द्रियों को भी सूक्ष्ममें मिलाता चलता है)	**त्वचैव**	त्वगेन्द्रियसे(त्वचासे)
		श्वसनं	स्पर्श तन्मात्राको
		च	और
		श्रोत्रेण	श्रवणेन्द्रियसे
		नभः	आकाशके
घ्राणेन	नासिकेन्द्रियके द्वारा	**गुणत्वं**	शब्द तन्मात्राको
गन्धं	गन्ध तन्मात्राको	**उपेत्य च**	प्राप्त करके फिर
रसनेन	रसनेन्द्रियसे	**प्राणेन**	प्राण (कर्मेन्द्रियों) से
रसं	रस तन्मात्राको	**आकूतिं**	क्रिया शक्ति (के स्वरूप) को
दृष्ट्या तु	नेत्रेन्द्रियसे तो		
रूपं	रूप तन्मात्राको	**उपैति**	प्राप्त करता है ।२९।

स भूतसूक्ष्मेन्द्रियसंनिकर्षं
मनोमयं देवमयं विकार्यम् ।
संसाद्य गत्या सह तेन याति
विज्ञानतत्त्वं गुणसंनिरोधम् ॥३०॥

सः भूतसूक्ष्मः इन्द्रिय संनिकर्षं मनोमयं देवमयं विकार्यं संसाद्य गत्या सह तेन याति विज्ञान तत्त्वं गुण संनिरोधम् ॥ ३० ॥

स	वह योगी	**विकार्यं**	इस विकारवान् (सम्पूर्ण अहंकारके)
भूतसूक्ष्म	तन्मात्राओं तथा		
इन्द्रिय	इन्द्रियोंके	**संसाद्य**	स्वरूपको भली
संनिकर्षं	मूलकारण (तामस अहंकार)		प्रकार अपनाकर
		तेन	उसके
मनोमयं	मनोमय (राजस अहंकार)	**सह**	साथ
		गत्या	गतिशील होकर
देवमयं	देवमय (इन्द्रियोंके देवताओंके कारण सात्त्विक अहंकार)	**विज्ञानतत्त्वं**	महत्तत्त्वमें (उससे)
		गुण सन्निरोधं	गुणोंके लयस्थान (प्रकृति) में
		याति	पहुँचता है ॥३०॥

तेनात्मनाऽऽत्मानमुपैति शान्त-
मानन्दमानन्दमयोऽवसाने ।
एतां गतिं भागवतीं गतो यः
स वै पुनर्नेह विषज्जतेऽङ्ग ॥३१॥

तेन आत्मना आत्मानं उपैति शान्तं आनन्दं आनन्दमयः अवसाने एतां गतिं भागवतीं गतः यः स वै पुनः न इह विषज्जते अङ्ग ॥३१॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित् !	**भागवतीं**	भागवती
अवसाने	महाप्रलयमें	**गतिं**	गतिको
तेन	उस (प्रकृति) का भी (त्याग करके)	**यः**	जो
		गतः	प्राप्त हुआ
आत्मना	अपने आपमें	**स**	वह
आत्मानं	आत्मतत्त्वको	**पुनः**	फिर
उपैति	प्राप्त कर लेता है ।	**वै**	निश्चित रूपसे
शान्तं	(वह) शान्त	**इह**	इस संसारमें
आनन्दं	आनन्द रूप	**न**	नहीं
आनन्दमयः	आनन्द है ।	**विषज्जते**	लौटता ॥३१॥
एतां	इस		

एते सृती ते नृप वेदगीते
त्वयाभिपृष्टे ह सनातने च ।
ये वै पुरा ब्रह्मण आह पृष्ट
आराधितो भगवान् वासुदेवः ॥३२॥

एते सृती ते नृप वेदगीते त्वया अभिपृष्टे ह सनातने च ये वै पुरा ब्रह्मण आह पृष्ट आराधितः भगवान् वासुदेवः ॥ ३२ ॥

नृप	परीक्षित् !	**एते**	ये दोनों
त्वया	तुम्हारे द्वारा	**सृती**	मार्ग,
अभिपृष्टे	पूछे गये	**ह**	जो
वेदगीते	वेदोंमें वर्णित	**सनातने**	सनातन

च	भी हैं, (और)	**भगवान्**	भगवान्
पुरा	पहिले	**वासुदेवः**	वासुदेव
ये	जिन्हें	**वै**	ने
ब्रह्मण	ब्रह्माके	**आह**	बतलाया था,
पृष्ट	पूछनेपर	**ते**	तुमसे (मैंने
आराधितः	(उनके द्वारा) आराधित		बतलाया) ॥३२॥

न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह ।
वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत् ॥३३॥

न हि अतः अन्यः शिवः पन्थाः विशतः संसृताः इह वासुदेवे भगवति भक्तियोगः यतः भवेत् ॥ ३३ ।

इह	इस	**पन्थाः**	मार्ग
संसृता	संसार चक्रमें	**न**	नहीं है
विशतः	पड़े हुए लोगोंके लिए	**यतः**	जिससे
हि	निश्चय ही	**भगवति**	भगवान्
अतः	इससे	**वासुदेवे**	वासुदेवमें
अन्यः	भिन्न	**भक्तियोगः**	भक्तियोग
शिवः	कल्याणकारी	**भवेत्**	(उत्पन्न) हो ॥३३॥

भगवान् ब्रह्म कात्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया ।
तदध्यवस्यत् कूटस्थो रतिरात्मन् यतो भवेत् ॥३४॥

भगवान् ब्रह्म कात्स्न्येन त्रिः अन्वीक्ष्य मनीषया तत् अध्यवस्यत् कूटस्थः रतिः आत्मन् यतः भवेत् ॥ ३४ ॥

भगवान्	भगवान् (ब्रह्माने)	**अध्यवत्स्यत्**	निश्चय किया
कात्स्न्येन	सम्पूर्ण रूपसे	**यतः**	जिससे
मनीषया	बुद्धिसे	**कूटस्थः**	जीवकी (कूट-मिथ्या शरीरमें स्थित)
ब्रह्म	वेदोंका		
त्रिः	तीन बार	**आत्मन्**	आत्मामें
अन्वीक्ष्य	अनुशीलन करके	**रतिः भवेत्**	प्रीति हो (वही श्रेष्ठ मार्ग है ।) ॥३४॥
तत्	तब		

भगवान् सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः ।
दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः ॥३५॥

भगवान् सर्व भूतेषु लक्षितः स्व आत्मना हरिः दृश्यैः बुद्ध्यादिभिः द्रष्टा लक्षणैः अनुमापकैः ॥ ३५ ॥

सर्व	सब	**दृश्यैः**	दृश्योंके द्वारा
भूतेषु	प्राणियोंमें	**द्रष्टा**	द्रष्टा रूपमें
स्व	(उनके) अपने	**अनुमापकैः**	(उनका) अनुमान
आत्मना	आत्माके रूपमें		करानेवाले
भगवान्	भगवान्	**लक्षणैः**	लक्षणोंसे (यह
हरिः	श्रीहरि (ही)		लक्षित होता
लक्षितः	लक्षित हैं;		है ।) ॥३५॥
बुद्ध्यादिभिः	बुद्धि आदि		

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ॥३६॥

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्रः सर्वदा श्रोतव्यः कीर्तिव्यः च स्मर्तव्यः भगवान् नृणाम् ॥ ३६ ॥

राजन्	राजन् !	**हरिः**	श्रीहरि (ही)
तस्मात्	इसलिए	**श्रोतव्यः**	सुनने योग्य,
नृणां	मनुष्यों द्वारा	**कीर्तिव्यः**	कीर्तन करने योग्य
सर्वात्मना	सम्पूर्ण हृदयसे	**च**	और
सर्वत्रः	सब कहीं,	**स्मर्तव्यः**	स्मरण करने योग्य
सर्वदा	सब समय,		हैं ॥३६॥
भगवान्	भगवान्		

पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां
कथामृतं श्रवणपुटेषु सम्भृतम् ।
पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं
व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ॥३७॥

पिबन्ति ये भगवतः आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु सक्षभृतं पुनन्ति ते विषय विदूषित आशयं व्रजन्ति तत् चरणसरोरुह अन्तिकम् ॥३७॥

ये	जो	**विषय विदूषित**	विषयों (की वासना) से अत्यन्त मलिन
सतां	सत्पुरुषोंके		
आत्मनः	आत्मस्वरूप	**आशयं**	अन्तःकरणको
भगवतः	भगवान्‌की	**पुनन्ति**	पवित्र कर लेते हैं,
कथामृतं	कथारूप अमृतको	**तत्**	(एवं) उन (भगवान्) के
श्रवणपुटेषु	कानोंके दोनेमें		
संभृतं	भरकर	**चरण सरोरुह**	चरण-कमलोंके
पिबन्ति	पीते हैं	**अन्तिकं**	समीप
ते	वे	**व्रजन्ति**	पहुँच जाते हैं ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

एवमेतन्निगदितं पृष्टवान् यद्भवान् मम ।
नृणां यन्म्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम् ॥१॥

एवं एतत् निगदितं पृष्टवान् यत् भवान् मम नृणां यत् म्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणां ॥ १ ॥

भवान्	(परीक्षित् !) तुमने	**यत्**	जो (कर्तव्य) है,
मम	मुझसे	**एवं**	इस प्रकार
मनुष्येषु	मनुष्योंमें	**एतत्**	यह
म्रियमाणानां	मरणासन्न	**यत्**	जो
मनीषिणां	बुद्धिमान	**पृष्टवान्**	पूछा (वह)
नृणां	लोगोंके लिए	**निगदितं**	(मैंने तुमको) बतलाया

ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम् ।
इन्द्रमिन्द्रियकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतीन् ॥२॥

ब्रह्मवर्चस कामः तु यजेत् ब्रह्मणस्पतिं इन्द्रं इन्द्रिय कामः तु प्रजाकामः प्रजापतीन् ॥ २ ॥

ब्रह्मवर्चस	ब्रह्म तेजका	**इन्द्रं**	इन्द्रका
कामः तु	इच्छावाला तो	**प्रजाकामः**	सनातनकी कामना वाला
ब्रह्मणस्पतिं	वृहस्पतिका	**प्रजापतीन्**	प्रजापतियोंके लिए
इन्द्रिय	इन्द्रियोंकी (विशेष शक्तिकी)	**यजेत्**	आराधना करे ॥२॥
कामः तु	कामनावाला तो		

देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम् ।
वसुकामो वसून् रुद्रान् वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् ॥३॥

देवीं मायां तु श्रीकामः तेजः कामः विभावसुं वसुकामः वसून् रुद्रान् वीर्यकामः अथ वीर्यवान ॥ ३ ॥

श्रीकामः	लक्ष्मी चाहनेवाला	**वसून्**	वसुओंकी
तु	तो	**अथ**	और
मायां	माया	**वीर्यवान**	पराक्रमी
देवीं	देवीको,	**वीर्यकामः**	शक्ति चाहनेवाला
तेजः कामः	तेज चाहनेवाला	**रुद्रान्**	रुद्रोंकी (आराधना करे) ॥३॥
विभावसुं	अग्निकी,		
वसुकामः	धन चाहनेवाला		

अन्नाद्यकामस्त्वदितिं स्वर्गकामोऽदितेः सुतान् ।
विश्वान्देवान् राज्यकामः साध्यान्संसाधको विशाम् ॥४॥

अन्नआदि कामः तु अदितिं स्वर्गगामो अदितेः सुतान् विश्वान् देवान् राज्यकामः साध्यान् संसाधकः विशाम् ॥ ४ ॥

अन्न आदि	अन्न आदि (भोज्य पदार्थोंकी)	**राज्यकामः**	राज्य चाहनेवालेको
कामः तु	कामनावाला	**विश्वान् देवान्**	विश्वेदेवोंकी
अदितिं	(देवमाता) अदितिकी	**विशां**	प्रजाको
स्वर्गकामः	स्वर्गकी इच्छा करनेवाला	**संसाधकः**	अनुकूल रखनेकी इच्छावालेको
अदितेः सुतान	अदितके पुत्र देवताओंकी	**साध्यान्**	साध्य देवोंकी (पूजा करनी चाहिये)॥४॥

आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत् ।
प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदसी लोकमातरौ ॥५॥

आयुष्कामः अश्विनौ देवौ पुष्टिकामः इलां यजेत् प्रतिष्ठाकामः पुरुषः रोदसीं लोकमातरौ ॥ ५ ॥

आयुष्कामः	दीर्घायु चाहनेवालेको	**आश्विनौ देवौ**	दोनों अश्विनी कुमारोंकी,

पुष्टिकामः	पुष्टि चाहनेवालेको	**रोदसी**	द्यौ (आकाश) और
इलां	पृथ्वीकी,		पृथ्वीकी
प्रतिष्ठाकामः	प्रतिष्ठा चाहनेवाले	**यजेत्**	आराधना करनी
पुरुषः	पुरुषको		चाहिये ॥५॥
लोकमातरौ	लोकोंकी दोनों		
	माताओं		

रूपाभिकामो गन्धर्वान् स्त्रीकामोऽप्सरउर्वशीम् ।
आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत परमेष्ठिनम् ॥६॥

रूपाभिकामः गन्धर्वान् स्त्रीकामः अप्सर उर्वशीं आधिपत्य कामः सर्वेषां यजेत् परमेष्ठिनम् ॥ ६ ॥

रूपाभिकामः	सौन्दर्य चाहनेवालेको	**आधिपत्य कामः**	अधिपति होनेकी
गन्धर्वान	गन्धर्वोंकी,		कामना हो तो
स्त्रीकामः	पत्नीकी चाह हो तो	**परमेष्ठिनं**	ब्रह्माजीकी
अप्सर उर्वशीं	उर्वशी अप्सराकी	**यजेत्**	आराधना करे ॥६॥
सर्वेषां	सबका		

यज्ञं यजेद् यशस्कामः कोशकामः प्रचेतसम् ।
विद्याकामस्तु गिरिशं दाम्पत्यार्थ उमां सतीम् ॥७॥

यज्ञं यजेत् यशः कामः कोश कामः प्रचेतसं विद्याकामः तु गिरिशं दाम्पत्यार्थं उमां सतीम् ॥ ७ ॥

यशः कामः	यशेच्छु	**दाम्पत्यार्थं**	पति-पत्नीमें प्रीति
यज्ञं	यज्ञ पुरुषकी,		चाहनेवालेको
कोश कामः	धनेच्छु	**सतीं**	सती
प्रचेतसं	वरुणकी,	**उमां**	उमाकी
विद्याकामः तु	विद्याका इच्छुक	**यजेद्**	आराधना करनी
गिरिशं	भगवान् शंकरकी,		चाहिये ॥७॥

धर्मार्थं उत्तमश्लोकं तन्तुं तन्वन् पितॄन् यजेत् ।
रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्गणान् ॥८॥

धर्मार्थं उत्तमश्लोकं तन्तुं तन्वन् पितॄन् यजेत् रक्षाकामः पुण्यजनान् ओजस्कामः मरुद्गणान् ॥ ८ ॥

धर्मार्थं	धर्मोपार्जनके लिए	**पुण्यजनान्**	यक्षोंकी,
उत्तमश्लोकं	विष्णु भगवान्‌की,	**ओजस्कामः**	ओजस्विता चाहनेवालेको
तन्तु तन्वन्	सन्तति परम्पराकी रक्षाके लिए	**मरुद्गणान्**	वायुदेवताओंकी
पितॄन्	पितरोंकी,	**यजेत्**	उपासना करनी
रक्षाकामः	सुरक्षाकी चाहसे		चाहिये ॥८॥

राज्यकामो मनून् देवान् निर्ऋतिं त्वभिचरन् यजेत् ।
कामकामो यजेत् सोममकामः पुरुषं परम् ॥९॥

राज्यकामः मनून् देवान् निर्ऋतिं तु अभिचरन् यजेत् कामकामः यजेत् सोमं अकामः पुरुषं परम् ॥ ९ ॥

राज्यकामः	राज्य चाहनेवालेको	**कामकामः**	भोगोंकी प्राप्तिके लिए
मनून् देवान्	मन्वन्तरोंके अधिदेवताओंका	**सोमं**	चन्द्रमाकी,
तु	तथा	**अकामः**	निष्कामता प्राप्तिके लिए
अभिचरन्	अभिचार (वशीकरण उच्चाटनादि) के लिए	**परं**	परम
		पुरुषं	पुरुषकी
निर्ऋतिं	निर्ऋति देवताका	**यजेत्**	आराधना करे ॥९॥
यजेत्	यजन् करे।		

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥१०॥

अकामः सर्वकामः वा मोक्षकाम उदार धीः तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत् पुरुषं परम् ॥ १० ॥

अकामः	निष्काम हो,	**वा**	अथवा
सर्वकामः	समस्त कामनाओं वाला हो	**मोक्षकाम**	मोक्ष चाहनेवाला हो
		उदार	(ऐसे) शुद्ध

धीर	बुद्धिमान पुरुषको	पुरुषं	पुरुषकी
तीव्रेण	तीव्र	यजेत्	उपासना करनी
भक्तियोगेन	भक्तियोगपूर्वक		चाहिये ॥१०॥
परं	परम		

एतावानेव यजतामिह निःश्रेयसोदयः ।
भगवत्यचलो भावो यद् भागवतसङ्गतः ॥११॥

एतावान् एव यजतां इह निःश्रेयस उदयः भगवति अचलः भावः यत् भागवत सङ्गतः ॥ ११ ॥

यजतां	(उपरोक्त विविध) आराधना करने वालोंका	यत्	(कि) जिससे
		भागवत	भगवद् भक्तोंके
		सङ्गतः	संगसे
इह	इस संसारमें	भगवति	भगवान्‌में
निःश्रेयस	परम कल्याण	अचलः	अविचल
एतावन्	इतना	भावः	भक्ति
एव	ही (है)	उदयः	उदय हो जाय ॥११

ज्ञानं यदाप्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्र-
मात्मप्रसाद उत यत्र गुणेष्वसङ्गः ।
कैवल्यसम्मतपथस्त्वथ भक्तियोगः
को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ॥१२॥

ज्ञानं यदा प्रतिनिवृत्त गुण उर्मि चक्रं आत्म प्रसाद उत यत्र गुणेषु असंगः कैवल्य सम्मत पथः तु अथ भक्तियोगः कः निर्वृतः हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ॥ १२ ॥

यदा	(उस सत्संगसे) जब	आत्म	चित्तकी
ज्ञानं	ज्ञान होता है (तब)	प्रसाद	निर्मलता होती है,
गुण	त्रिगुणोंकी	उत	एवं
उर्मि	लहरोंका	यत्र	जब
चक्रं	चक्र	गुणेषु	(इन्द्रियोंके) गुणोंसे
प्रति निवृत्तः	शान्त हो जाता है,	असंगः	असंगता आती है

तु अथ	तब	**निर्वृतः**	(भक्तिके) रसका
कैवल्य	मोक्षका		जानकर
सम्मत	सर्व सम्मत	**हरि**	श्रीहरिकी
पथः	मार्ग	**कथासु**	(ऐसी) कथामें
भक्तियोगः	भक्तियोग प्राप्त हो	**रतिं**	प्रीति
	जाता है ।	**न**	नहीं
कः	(भला) कौन	**कुर्यात्**	करेगा ॥१२॥

शौनक उवाच-

इत्यभिव्याहृतं राजा निशम्य भरतर्षभः ।
किमन्यत्पृष्टवान् भूयो वैयासकिमृषिं कविम् ॥१३॥

इति अभिहितं राजा निशम्य भरतर्षभः किं अन्यत् पृष्टवान् भूयः वैयासकिं ऋषिं कविं ॥ १३ ॥

इति	इस प्रकारकी	**कविं**	सर्वज्ञ
अभिहितं	बात	**ऋषिं**	वेदज्ञ
निशम्य	सुनकर	**वैयासकिं**	शुकदेवजीसे
भूयः	फिर	**अन्यत्**	और
भरतर्षभः	भरतकुलमें श्रेष्ठ	**किं**	क्या
राजा	परीक्षितने	**पृष्टवान्**	पूछा ? ॥१३॥

एतच्छुश्रूषतां विद्वन् सूत नोऽर्हसि भाषितुम् ।
कथा हरिकथोदर्काः सतां स्युः सदसि ध्रुवम् ॥१४॥

एतत् शुश्रूतां विद्वन् सूत नः अर्हसि भाषितुं कथाः हरिकथाः उदर्काः सतां स्युः सदसि ध्रुवम् ॥ १४ ॥

विद्वन्	विद्वान्	**भाषितुं**	(अवश्य) कहना
सूत	सूतजी !	**अर्हसि**	चाहिये (क्योंकि)
नः	हम	**ध्रुवं**	निश्चय ही
शुश्रूतां	सुननेकी इच्छावालोंसे	**सतां**	सन्तोंकी
एतत्	यह (आपको)	**सदसि**	सभामें

कथाः	चर्चा	उदर्काः	पर्यवसित होनेवाली
हरिकथा	भगवत्कथामें	स्युः	होती हैं ।।१४।।

स वै भागवतो राजा पाण्डवेयो महारथः ।
बालक्रीडनकैः क्रीडन् कृष्णक्रीडां य आददे ।।१५।।

स वै भागवतः राजा पाण्डवेयः महारथः बालक्रीडनकैः क्रीडन् कृष्णक्रीडां य आददे ।। १५ ।।

स	वह	क्रीडनकैः	खिलौनोंसे
पाण्डवेयः	पाण्डव वंशी	क्रीडन	खेलते हुए भी
महारथः	महारथी	य	जो
राजा	राजा (परीक्षित)	कृष्णक्रीडां	श्रीकृष्णकी लीलाका
वै	निश्चय	आददे	आयोजन करते
भागवतः	भगवद्भक्त थे,		थे ।।१५।।
बाल	बालकपनमें		

वैयासकिश्च भगवान् वासुदेवपरायणः ।
उरुगायगुणोदाराः सतां स्युर्हि समागमे ।।१६।।

वैयासकिः च भगवान् वासुदेव परायणः उरुगाय गुण उदाराः सतां स्युः हि समागमे ।। १६ ।।

भगवान्	भगवान्	समागमे	मिलनमें
वैयासकिः	शुकदेवजी	उरुगाय	उत्तमश्लोक भगवान्के
च	भी		
वासुदेव	श्रीकृष्णके	उदाराः	उदार
परायणः	परायण हैं ।	गुण	गुणोंकी (चर्चा)
हि	निश्चय ही	स्युः	होगी ही ।।१६।।
सतां	(ऐसे) संतोंके		

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ ।
तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तया ।।१७।।

आयुः हरति वै पुसां उद्यन् अस्तं च यत् असौ तस्य ऋते यत् क्षणं नीतः उत्तमश्लोक वार्तया ।। १७ ।।

उत्तमश्लोक	पुण्यकीर्ति भगवान्‌की
वार्तया	कथामें
यत्	जिस
पुंसां	पुरुषके
यत्	जो
क्षणं	क्षण
नीतः	व्यतीत होते हैं
ऋते	(उनके) अतिरिक्त
तस्य	(उसकी)
आयु	आयु (के दिन और क्षण)
उद्यन्	उदय
च	और
अस्तं	अस्त (होते हुए)
असौ	ये (सूर्य भगवान्)
वै	निश्चय ही
हरति	हरण करते हैं (अर्थात् उसकी आयुके वे दिन और क्षण व्यर्थ जा रहे हैं) ॥१७॥

तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत ।
न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपशवोऽपरे ॥१८॥

तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्ति उत न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्राम पशवः अपरे ॥ १८ ॥

किं	क्या
तरवः	वृक्ष
जीवन्ति	जीवित
न	नहीं रहते ?
किं	क्या
भस्त्राः	(लुहारकी) धौंकनी
न श्वसन्ति	श्वास नहीं लेती ?
उत	अथवा
किं	क्या
अपरे	दूसरे
ग्राम पशवः	ग्रामीण पशु
खादन्ति	खाते
न	नहीं,
मेहन्ति	मूत्र त्याग
न	नहीं करते ? (इसी प्रकार हरिकथा रहित जीवन लुहार की धौकनी जैसा श्वास लेना एवं ग्रामीण पशुओं जैसा भोजन तथा मल-मूत्र त्याग करना है ।) ॥१८॥

श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ।
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥१९॥

श्व विड्वराह उष्ट्र खरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः न यत् कर्णपथ उपेतः जातु नाम गदाग्रजः ॥ १९ ॥

गदाग्रजः	गदके बड़े भाई श्रीकृष्णका	**पुरुषः**	पुरुष
नाम	नाम	**श्व**	कुत्ते
यत्	जिसके	**विड्वराह**	ग्राम सूकर
कर्णपथ	कानके मार्गमें	**उष्ट्र**	ऊँट
जातु	कभी	**खरैः**	गधों (के समान)
न उपेतः	नहीं पहुँचा (वह)	**पशुः**	पशु
		संस्तुतः	कहा गया है ॥१९॥

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये
न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत
न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥२०॥

बिले बत उरुक्रम विक्रमान् ये नशृण्वतः कर्णपुटे नरस्य जिह्वा असती दार्दुरिकइव सूत न चउपगायति उरुगाय गाथाः ॥ २० ॥

सूत	सूतजी !	**च**	और
नरस्य	(उस) मनुष्यके	**जिह्वा**	(उसकी) जीभ
कर्णपुटे	कान	**दार्दुरिक**	मेढककी जीभके
बिले	बिलके	**इव**	समान
बत	समान हैं	**असती**	बुरी है
ये	जो	**उरुगाय**	(जो) उत्तमश्लोक (भगवान्) का
उरुक्रम	अनन्त पराक्रम (भगवान्) के	**गाथाः**	चरित (यदि)
विक्रमान्	विक्रमों (चरितों)को	**न**	नहीं
न	नहीं	**उपगायति**	गाती ॥२०॥
शृण्वतः	सुनता		

भारः परं पट्टकिरीटजुष्ट-
मप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम् ।

शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां
हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥२१॥

भारः परं पट्ट किरीट जुष्टं अपि उत्तमाङ्गं न नमेत् मुकुन्दं शावौ करौ नो कुरुतः सपर्या हरेः लसत् काञ्चन कङ्कणौ वा ॥ २१ ॥

पट्ट	रेशमी वस्त्र (की पगड़ी और)	**काञ्चन**	सोनेके
किरीट	मुकुटसे	**कङ्कणौ**	कंकणोंसे
जुष्टं	युक्त	**लसत्**	आभूषित
अपि	होनेपर भी	**वा**	होनेपर भी
उत्तमाङ्गं	(जो) मस्तक	**हरेः**	श्रीहरिकी
मुकुन्दं	भगवान् मुकुन्दको	**सपर्या**	सेवा पूजा
न नमेत्	नहीं झुकता (प्रणाम नहीं करता)	**नो**	नहीं
		कुरुतः	करनेवाले
परं	(वह) केवल	**करौ**	हाथ
भारः	भार है ।	**शावौ**	मुर्देके (हाथ) जैसे हैं ॥२१॥

बर्हायिते ते नयने नराणां
लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ।
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ
क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥२२॥

बर्हायिते ते नयने नराणां लिङ्गानि विष्णोः न निरीक्षतः ये पादौ नृणां तौ द्रुमजन्म भाजौ क्षेत्राणि न अनुव्रजतो हरेः यौ ॥ २२ ॥

नराणां	मनुष्योंके	**लिङ्गानि**	चिह्नों (श्रीविग्रहों) का
ते	वे		
नयने	नेत्र	**न निरीक्षतः**	दर्शन नहीं करते ।
बर्हायिते	मयूर पंखके चिह्नोंके समान हैं	**नृणां**	मनुष्योंके
		तौ	वे
ये	जो	**पादौ**	पैर
विष्णोः	भगवान् विष्णुके		

द्रुमजन्मभाजौ	वृक्षका जन्म पाने योग्य हैं	क्षेत्राणि	क्षेत्रों (तीर्थों) की
यौ	जो	अनुव्रजतौ	यात्रा
हरेः	श्रीहरिके	न	नहीं करते ॥२२॥

जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं
न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु ।
श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः
श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम् ॥२३॥

जीवन् शवः भागवत अङ्घ्रि रेणुं न जातु मर्त्यः अभिलभेत यस्तु श्रीविष्णुपद्या मनुजः तुलस्याः श्वसन् शवः यस्तु न वेद गन्धम् ॥२३॥

यस्तु	जो	मनुजः	मनुष्य
मर्त्यो	मनुष्य	श्रीविष्णुपद्या	भगवान् नारायणके चरणोंपर चढ़ी
भागवत	भगवद्भक्तोंकी	तुलस्याः	तुलसीकी
अंघ्रि	चरण	गन्धं	सुगन्ध
रेणुं	रज	न	नहीं
न जातु	कभी नहीं	वेद	जानता (वह)
अभिलभेत	प्राप्त करता (वह)	श्वसन्	श्वास लेता हुआ भी
जीवन्	जीते हुए	शवः	शव है ॥२३॥
शवः	मुर्दा है ।		
यस्तु	जो		

तदश्मसारं हृदयं बतेदं
यद् गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ।
न विक्रियेताथ यदा विकारो
नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥२४॥

तत् अश्मसारं हृदयं बत इदं यत् गृह्यमाणैः हरिनामधेयैः न विक्रियेत् अथ यदा विकारः नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥ २४ ॥

तत्	वह	बत	निश्चय
हृदयं	हृदय	इदं	ऐसा

अश्मसारं	लोहा है
यत्	जो
हरिनामधेयैः	श्रीहरिके नामोंको
गृह्यमाणैः	लेनेपर
विक्रियेत्	विकारवान् (द्रविन्)
न	नहीं होता
अथ विकारः	जिस विकारके होनेसे
यदा	जब
नेत्रे	आँखोंमें
जलं	आँसू आते हैं,
गात्ररुहेषु	रोमोंमें
हर्षः	उत्थान (रोमांच) होता है ॥२४॥

अथाभिधेह्यङ्ग मनोऽनुकूलं प्रभाषसे भागवतप्रधानः ।
यदाह वैयासकिरात्मविद्या-
विशारदो नृपतिं साधु पृष्टः ॥२५॥

अथ अभिधेहि अङ्ग मनः अनुकूलं प्रभाषसे भागवत प्रधानः यत् आह वैयासकिः आत्मविद्या विशारदः नृपतिं साधुपृष्टः ॥२५॥

अङ्ग	प्रिय सूतजी ! (आप हमारे)
मनः	मनके
अनुकूलं	अनुकूल
प्रभाषसे	बोलते हैं,
अथ	अतः
भागवत	भगवद्भक्तोंमें
प्रधान	प्रमुख
नृपतिं	राजा परीक्षितके
साधुपृष्टः	अच्छे ढङ्गसे पूछनेपर
आत्मविद्या	अध्यात्म विद्या
विशारदः	विशारद
वैयासकिः	शुकदेवजीने
यत्	जो
आह	कहा (वह)
अभिधेहि	सुनाइये ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

सूत उवाच-

वैयासकेरिति वचस्तत्त्वनिश्चयमात्मनः ।
उपधार्य मतिं कृष्णे औत्तरेयः सतीं व्यधात् ॥१॥

वैयासकेः इति वचः तत्त्व निश्चयं आत्मनः उपधार्य मतिं कृष्णे औत्तरेयः सतीं व्यधात् ॥ १ ॥

इति	इस प्रकारके	**औत्तरेयः**	उत्तरानन्दन परीक्षितने
आत्मनः	आत्म	**सतीं**	(अपनी) शुद्ध
तत्त्व	तत्त्वके	**मतिं**	बुद्धि
निश्चयं	निश्चयका	**कृष्णे**	श्रीकृष्णमें
वैयासकेः	शुकदेवजीका	**व्यधात्**	लगा दी ॥१॥
वचः	वचन		
उपधार्य	सुनकर		

आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु ।
राज्ये चाविकले नित्यं विरूढां ममतां जहौ ॥२॥

आत्म जाया सुत आगार पशु द्रविण वन्धुषु राज्ये च अविकले नित्यं विरूढां ममतां जहौ ॥ २ ॥

आत्म	शरीर,	**च**	और
जाया	पत्नी,	**अविकले**	निष्कण्टक
सुत	पुत्र,	**राज्ये**	राज्यमें
आगार	भवन,	**नित्यं**	सदा लगी
पशु	पशु (हाथी, घोड़े आदि),	**विरूढां**	बद्धमूल
		ममतां	ममताको
द्रविण	धन	**जहौ**	त्याग दिया ॥२॥
बन्धुषु	सम्बन्धियोंमें		

पप्रच्छ चेममेवार्थं यन्मां पृच्छथ सत्तमाः ।
कृष्णानुभावश्रवणे श्रद्दधानो महामनाः ॥३॥

पप्रच्छ च इमं एव अर्थं यत् मां पृच्छथ सत्तमाः कृष्ण अनुभाव श्रवणे श्रद्दधानः महामनाः ॥ ३ ॥

सत्तमा	(शौनकजी !) (आप) महात्मागण	**अनुभाव**	प्रभाव (महिमा) को
मां	मुझसे	**श्रवणे**	सुननेमें
यत्	जो	**श्रद्धधानः**	श्रद्धा करते हुए
पृच्छथ	पूछते हैं,	**महामनाः**	महामनस्वी (परीक्षितने)
इमं एव अर्थं च	इसी प्रयोजनसे ही	**प्रपच्छ**	पूछा था ॥३॥
कृष्ण	श्रीकृष्णके		

संस्थां विज्ञाय संन्यस्य कर्म त्रैवर्गिकं च यत् ।
वासुदेवे भगवति आत्मभावं दृढं गतः ॥४॥

संस्थां विज्ञाय संन्यस्य कर्म त्रैवर्गिकं च यत् वासुदेवे भगवति आत्मभावं दृढं गतः ॥ ४ ॥

संस्थां	मृत्युका समय	**सन्यस्य**	त्यागकर (परीक्षितने)
विज्ञाय	जानकर		
यत्	जो	**भगवति**	भगवान्
च	भी	**वासुदेवे**	श्रीकृष्णमें
त्रैवर्गिकं	अर्थ, धर्म, कामके लिए	**दृढं**	दृढ
		आत्मभावं	आत्मभाव
कर्म	कर्म किये जाते हैं (उन्हें)	**गतः**	कर लिया ॥४॥

राजोवाच-

समीचीनं वचो ब्रह्मन् सर्वज्ञस्य तवानघ ।
तमो विशीर्यते मह्यं हरेः कथयतः कथाम् ॥५॥

समीचीनं वचः ब्रह्मन् सर्वज्ञस्य तव अनघ तमः विशीर्यते मह्यं हरेः कथयतः कथाम् ॥ ५ ॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
तव	आप
अनघ	निष्पापके
वचः	वचन
समीचीन	अवसरके उपयुक्त हैं (इनसे)
मह्यं	मेरा
तमः	अज्ञान
विशीर्यते	नष्ट हो रहा है (अतः)
हरेः	श्रीहरिकी
कथां	कथा
कथयतः	कहिये ॥५॥

भूय एव विवित्सामि भगवानात्ममायया ।
यथेदं सृजते विश्वं दुर्विभाव्यमधीश्वरैः ॥६॥

भूय एव विवित्सामि भगवान् आत्ममायया यथा इदं सृजते विश्वं दुर्विभाव्यं अधीश्वरैः ॥ ६ ॥

भूय	फिर
एव	से
विवित्सामि	जानना चाहता हूँ
यथा	जैसे
भगवान्	भगवान्
आत्ममायया	अपनी मायासे
इदं	इस
विश्वं	विश्वकी
सृजते	सृष्टि करते हैं,
अधीश्वरैः	लोकपालोंके लिए भी
दुर्विभाव्यं	(यह विषय) समझना कठिन है ॥६॥

यथा गोपायति विभुर्यथा संयच्छसे पुनः ।
यां यां शक्तिमुपाश्रित्य पुरुशक्तिः परः पुमान् ।
आत्मानं क्रीडयन् क्रीडन् करोति विकरोति च ॥७॥

यथा गोपायति विभुः यथा संयच्छते पुनः यां यां शक्तिं उपाश्रित्य पुरुशक्तिः परः पुमान् आत्मानं क्रीडयन् क्रीडन् करोति विकरोति च ॥ ७ ॥

विभुः	(वे) सर्वव्यापक
यां यां	जिन जिन
शक्तिं	शक्तियोंका
उपाश्रित्य	सहारा लेकर (वे)
पुरुशक्तिः	अनन्त शक्ति
परः	परम
पुमान्	पुरुष
यथा	जैसे

आत्मानं	अपने आपले
क्रीडयन्	खेलते हुए
क्रीडन्	खेलमें ही
करोति	सृष्टि करते हैं,
च	पुनः
विकरोति	मिटा देते हैं (अतः)
यथा	जैसे
गोपायति	पालन करते हैं
पुनः	फिर
संयच्छते	समेट लेते (प्रलय कर देते) हैं (वह सुनाइये ।) ॥७॥

नूनं भगवतो ब्रह्मन् हरेरद्भुतकर्मणः ।
दुर्विभाव्यमिवाभाति कविभिश्चापि चेष्टितम् ॥८॥

नूनं भगवतः ब्रह्मन् हरेः अद्भुत कर्मणः दुर्विभाव्यं इव आभाति कविभिः च अपि चेष्टितम् ॥ ८ ॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
नूनं	निश्चय ही
अद्भुत	अद्भुत
कर्मणः	कर्मा
भगवतः	भगवान्
हरेः	श्रीहरिकी
चेष्टितं	चेष्टा
कविभिः	बड़े-बड़े विद्वानों
च	के लिए
अपि	भी
दुर्विभाव्यं	समझनेमें अत्यन्त कठिन
इव	जैसी
आभाति	लगती हैं ॥८॥

यथा गुणांस्तु प्रकृतेर्युगपत् क्रमशोऽपि वा ।
विभर्ति भूरिशस्त्वेकः कुर्वन् कर्माणि जन्मभिः ॥९॥

यथा गुणान् तु प्रकृतेः युगपत् क्रमशः अपि वा विभर्ति भूरिशः तु एकः कुर्वन् कर्माणि जन्मभिः ॥ ९ ॥

एकः तु	एक ही (भगवान्)
प्रकृतेः	प्रकृतिके
यथा गुणान्	जैसे गुणोंके अनुसार
युगपत्	एक साथ
भूरिशः	बहुत-से
वा	अथवा
क्रमशः	क्रमशः
अपि	भी
कर्माणि	कर्म
कुर्वन्	करते हुए
जन्मभिः	अवतार
विभर्ति	धारणा करते हैं ॥९॥

विचिकित्सितमेतन्मे ब्रवीतु भगवान् यथा ।
शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परस्मिंश्च भवान्खलु ॥१०॥

विचिकित्सितं एतत् मे ब्रवीतु भगवान् यथा शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परस्मिन् च भवान् खलु ॥ १० ॥

एतत्	यह	**ब्रह्मणि**	ब्रह्म (वेद) में
मे	मेरा	**निष्णातः**	प्रवीण हैं
विचिकित्सितं	सन्देह है,	**खलु**	निश्चय
ब्रवीतु	(आप) बतलावें	**भवान्**	आप
भगवान्	भगवन् (आप)	**परस्मिन्**	परब्रह्ममें
यथा	जैसे	**च**	भी (वैसे ही
शाब्दे	शब्द		हैं) ॥१०॥

सूत उवाच–

इत्युपामन्त्रितो राज्ञा गुणानुकथने हरेः ।
हृषीकेशमनुस्मृत्य प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे ॥११॥

इति उपामन्त्रितः राज्ञा गुण अनुकथने हरेः हृषीकेशं अनुस्मृत्य प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे ॥ ११ ॥

इति	इस प्रकार	**अनुकथने**	वर्णन करनेके लिए
राज्ञा	परीक्षित द्वारा	**हृषीकेशं**	हृषीकेशका
उपामन्त्रितः	साग्रह पूछ जानेपर	**अनुस्मृत्य**	स्मरण करके
हरेः	श्रीहरिके	**प्रतिवक्तुं**	उत्तर देनेका
गुण	गुणोंका	**प्रचक्रमे**	उपक्रम किया ॥११॥

श्रीशुक उवाच–

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे
सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ।
गृहीतशक्तित्रितयाय देहिना-
मन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥१२॥

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सत् उद्भव स्थान निरोध लीलया गृहीत शक्ति चित्तयाय देहिनां अन्तः भवाय अनुपलक्ष्य वर्त्मने ॥ १२ ॥

सत्	संसारके	**अन्तः**	अन्तःकरणमें
उद्भव	उत्पत्ति	**भवाय**	उनके कल्याणके
स्थान	स्थिति		लिए स्थित
निरोध	प्रलय (के लिए)	**अनुपलक्ष्य**	अचिन्त्य
लीलया	लीलासे	**वर्त्मने**	मार्ग (स्वरूप) वाले
त्रितयाय	त्रिगुण होने (तीन)	**परस्मै**	परम
शक्तिः	रूप (ब्रह्मा, विष्णु, शिव)	**पुरुषाय**	पुरुषको
		भूयसे	बार बार
गृहीत	धारण किये	**नमः**	नमस्कार है ॥१२॥
देहिनां	प्राणियोंके		

भूयो नमः सद्वृजिनच्छिदेऽसता-
मसम्भवायाखिलसत्त्वमूर्तये ।
पुंसां पुनः पारमहंस्य आश्रमे
व्यवस्थितानामनुमृग्यदाशुषे ॥१३॥

भूयः नमः सत् वृजिनच्छिदे असतां असम्भवाय अखिल सत्त्व मूर्तये पुंसां पुनः पारमहंसस्य आश्रमे व्यवस्थितानां अनुमृग्यत आशुषे ॥१३॥

सत्	सत्पुरुषोंकी	**व्यवस्थितानां**	स्थित
वृजिनच्छिदे	विपत्ति काटनेवाले,	**पुंसां**	पुरुषोंके लिए
असतां	दुष्टोंकी	**पुनः**	भी
असम्भवाय	अभिवृद्धि रोकनेवाले,	**अनुमृग्यत्**	अन्वेष्य वस्तु
अखिल	समस्त	**आशुषे**	प्रदान करनेवाले (प्रभुको)
सत्त्व	प्राणियोंके		
मूर्तये	स्वरूप,	**भूयः**	फिरसे
पारमहंसस्य	परमहंसोंके	**नमः**	नमस्कार ॥१३॥
आश्रमे	आश्रममें		

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां
विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ।

निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥१४॥

नमो नमस्ते अस्तु ऋषभाय सात्वतां विदूर काष्ठाय मुहुः कुयोगिनां निरस्त साम्य अतिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥१४॥

सात्वतां	भक्तोंके	**राधसा**	(उनके) ऐश्वर्यमें
ऋषभाय	अभीष्टपूर्ण करनेवाले	**साम्य**	समतावाला
मुहुः	बार बार	**निरस्त**	कोई है हो नहीं,
कुयोगिनां	(राजस-तामस साधक) कुयोगियोंसे	**अतिशयेन**	अधिकवाला कहाँसे होगा ?
विदूर	अत्यन्त दूर	**स्वधामनि**	अपने स्वरूप
काष्ठाय	स्वरूपवाले (भगवान्‌को)	**ब्रह्मणि**	ब्रह्ममें
नमो नमस्ते	बार बार नमस्कार	**रंस्यते**	विहार करनेवाले प्रभुको
अस्तु	है ।	**नमः**	नमस्कार है ॥१४॥

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥१५॥

यत् कीर्तनं यत् स्मरणं यत् ईक्षणं यत् वन्दनं यत् श्रवणं यत् अर्हणं लोकस्य सद्यः विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्र श्रवसे नमो नमः ॥ १५ ॥

यत् कीर्तनं	जिनका प्रकीर्तन,	**लोकस्य**	लोगोंके
यत् स्मरणं	जिनका स्मरण,	**कल्मषं सद्यः**	पापोंको तत्काल
यत् ईक्षणं	जिनका दर्शन,	**विधुनोति**	नष्ट कर देती है
यत् वन्दनं	जिनको प्रणाम करना,	**तस्मै**	उन
यत् श्रवणं	जिनका (नाम गुण लीला) सुनना,	**सुभद्र श्रवसे**	पुण्य कीर्तिको
यत् अर्हणं	जिनकी पूजा	**नमो नमः**	बार बार नमस्कार है ॥१५॥

विचक्षणा यच्चरणोपसादनात्
सङ्गंव्युदस्योभयतोऽन्तरात्मनः ।
विन्दन्ति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमा-
स्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥१६॥

विचक्षणा यत् चरण उपसादनात् सङ्गं व्युदस्य उभयतः अन्तरात्मनः विन्दन्ति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमाः तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १६ ॥

विचक्षणा	विवेकीजन
यत्	जिनके
चरण	चरणोंकी
उपसादनात्	शरण लेकर
अन्तरात्मनः	चित्तसे
उभयतः	(इस लोक परलोक) दोनोंकी
सङ्गं	आसक्ति
व्युदस्य	त्यागकर
गतक्लमाः हि	बिना परिश्रमके ही
ब्रह्मगतिं	ब्रह्मगति
विन्दन्ति	प्राप्त कर लेते हैं,
तस्मै	उन
सुभद्रश्रवसे	पुण्य कीर्तिको
नमो नमः	बार बार नमस्कार है ॥१६॥

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो
मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥१७॥

तपस्विनः दानपरा यशस्विनः मनस्विनः मन्त्रविदः सुमङ्गलाः क्षेमं न विन्दन्ति विना यत् अर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥१७॥

तपस्विनः	तपस्वी,
दानपरा	दानी,
यशस्विनः	यशस्वी,
मनस्विनः	मनस्वी,
सुमङ्गलाः	उत्तम मङ्गल देनेवाले
मन्त्रविदः	मन्त्रोंके जानकार
यत्	जिनको (अपने कर्म एवं कर्मफल)
अर्पणं	अर्पण किये
विना	विना (अपना)

क्षेमं	कल्याण	**सुभद्रश्रवसे**	पुण्य कीर्तिको
न	नहीं	**नमो नमः**	बार बार नमस्कार
विन्दन्ति	कर पाते		है ॥१७॥
तस्मै	उन		

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा
आभीरकङ्का यवनाः खसादयः ।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥१८॥

किरात हूण आन्ध्र पुलिन्द पुल्कसा आभीर कङ्का यवनाः खसादयः ये अन्ये च पापा यदु अपाश्रया श्रयाः शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥ १८ ॥

किरात	किरात,	**च**	भी
हूण	हूण,	**पापा**	पापी
आन्ध्र	आन्ध्र,	**यत्**	जिन
पुलिन्द	चाण्डाल,	**अपाश्रया**	अशरण शरणकी
पुल्कसा	कसाई,	**श्रयाः**	शरणसे
आभीर	आभीर,	**शुध्यन्ति**	शुद्ध हो जाते हैं
कङ्का	कङ्क,	**तस्मै**	उन
यवनाः	यवन,	**प्रभविष्णवे**	सर्वशक्तिमानको
खसादयः	शक आदि	**नमः**	नमस्कार है ॥१८॥
ये अन्ये	जो दूसरे		

स एष आत्माऽऽत्मवतामधीश्वर-
स्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः ।
गतव्यलीकैरजशङ्करादिभि-
र्वितर्क्यलिङ्गो भगवान् प्रसीदताम् ॥१९॥

स एषः आत्मा आत्मवतां अधीश्वरः त्रयीमयः धर्ममयः तपोमयः गत व्यलीकैः अज शङ्कर आदिभिः वितर्क्य लिङ्गः भगवान् प्रसीदतां ॥१९॥

आत्मवतां	आत्मज्ञानियोंके
आत्मा	आत्मा हैं,
अधीश्वरः	वे सर्वेश्वर
त्रयीमयः	वेद स्वरूप
धर्ममयः	धर्म स्वरूप
तपोमयः	तपः रूप हैं
गतव्यलीकैः	निश्छल हृदयसे
अज	ब्रह्मा
शङ्करआदिभिः	शंकर आदि द्वारा
लिङ्गः	जिनका स्वरूप
वितर्क्य	चिन्तन (ध्यान किया जाता है)
स एष	वही ये
भगवान्	भगवान्
प्रसीदतां	(हम पर) प्रसन्न हों ॥१९॥

श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापति-
र्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः ।
पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां
प्रसीदतां मे भगवान् सतां पतिः ॥२०॥

श्रियः पतिः यज्ञपतिः प्रजापतिः धियां पतिः लोकपतिः धरापतिः पतिः गतिः च अन्धक वृष्णि सात्वतां प्रसीदतां मे भगवान् सतां पतिः ॥२०॥

श्रियः पतिः	लक्ष्मीके स्वामी,
यज्ञपतिः	यज्ञेश्वर,
प्रजापतिः	प्रजाके स्वामी,
धियां पतिः	बुद्धियोंके स्वामी,
लोकपतिः	लोकोंके स्वामी,
धरापतिः	पृथ्वीके स्वामी,
अन्धक	अन्धक-
वृष्णि	वृष्णि-
सात्वतां पतिः	सात्वत वंशके लोगोंके स्वामी
सतां पतिः	भक्तोंके स्वामी
च गतिः	और गति (आश्रय)
भगवान्	भगवान् श्रीकृष्ण
मे	मुझपर
प्रसीदतां	प्रसन्न हों ॥२०॥

यदङ्घ्यभिध्यानसमाधिधौतया
धियानुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मनः ।
वदन्ति चैतत् कवयो यथारुचं
स मे मुकुन्दो भगवान् प्रसीदताम् ॥२१॥

यत् अङ्घ्रि अनुध्यान समाधि धौतया धिया अनुपश्यन्ति हि तत्त्वं आत्मनः वदन्ति च एतत् कवयः यथा रुचं स मे मुकुन्दः भगवान् प्रसीदताम् ॥ २१ ॥

हि	क्योंकि	**अनुपश्यन्ति**	देखते (अनुभव
यत्	जिनके		करते) हैं
अघ्रि	चरणोंके	**च एतत्**	तथा इनका
अनुध्यान	बार बार ध्यानकी	**यथारुचं**	अपनी रुचिके
समाधि	एकाग्रतासे		अनुसार
धौतया	शुद्ध हुई	**वदन्ति**	वर्णन करते हैं
धिया	बुद्धिसे	**स भगवान्**	वे भगवान्
कवयः	बुद्धिमान	**मुकुन्दः**	मुकुन्द
आत्मनः	आत्म-	**मे**	मुझपर
तत्त्वं हि	तत्त्वको	**प्रसीदतां**	प्रसन्न हों ॥२१॥

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती
वितन्वताजस्य सतीं स्मृतिं हृदि ।
स्वलक्षणा प्रादुरभूत् किलास्यतः
स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ॥२२॥

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्विता अजस्य सतीं स्मृतीं हृदि स्वलक्षणा प्रादुः अभूत् किल आस्यतः स मे ऋषीणां ऋषभः प्रसीदतां ॥२२॥

येन	जिनके द्वारा	**स्वलक्षणा**	अपने नित्यरूपसे
पुरा	(सृष्टिके) प्रारम्भमें		(वह वेदवाणी)
प्रचोदिता	प्रेरितकी गयी	**आस्यतः**	(ब्रह्माके) मुखसे
सरस्वती	वाणीने	**प्रादुः**	प्रकट
अजस्य	ब्रह्माके	**अभूत्**	हुई
हृदि	हृदयमें	**स**	वे
सतीं	(पूर्वकल्पकी) सत्य	**ऋषीणां**	ऋषियोंके
स्मृतीं	स्मृति	**ऋषभः**	ज्ञानदाता
वितन्विता	जागृतकी,	**मे**	मुझपर
किल	पुनः	**प्रसीदतां**	प्रसन्न हों ॥२२॥

भूतैर्महद्भिर्य इमाः पुरो विभु-
र्निर्माय शेते यदमूषु पूरुषः ।

भुङ्क्ते गुणान् षोडश षोडशात्मकः
सोऽलङ्कृषीष्ट भगवान् वचांसि मे ॥२३॥

भूतैः महद्भिः य इमाः पुरः विभुः निर्माय शेते यत् अमूषु पुरुषः भुङ्क्ते गुणान् षोडश षोडशात्मकः सः अलंकृषीष्ट भगवान् वचांसि मे ॥२३॥

महद्भिः	महा	**षोडशात्मकः**	सोलह कलाओं (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण, एक मन) से युक्त होकर
भूतैः	भूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) द्वारा	**षोडश गुणान्**	(इनके) सोलह विषयोंका
य	जो	**भुंक्ते**	उपभोग करते हैं
विभुः	सर्वव्यापक	**सः**	वे
इमाः	इन	**भगवान्**	भगवान्
पुरः	पुरों (शरीरों) को	**मे**	मेरी
निर्माय	निर्माण करके	**वचांसि**	वाणीको
यत्	क्योंकि	**अलंकृषीष्ट**	अलंकृत करें ॥२३॥
अमूषु	इनमें		
शेते	सोते (जीव रूपसे निवास करते) हैं		
पुरुषः	इसलिए पुरुष कहे जाते हैं		

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय वेधसे ।
पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम् ॥२४॥

नमः तस्मै भगवते वासुदेवाय वेधसे पपुः ज्ञानमयं सौम्या यत् मुखाम्बुरुह आसवम् ॥२४॥

तस्मै	उन	**नमः**	नमस्कार है
भगबते	भगवान्	**यत्**	जिनके
वासुदेवाय	वासुदेव स्वरूप	**मुखाम्बुरुह**	मुख कमलकी
वेधसे	शास्त्र निर्माता (व्यासजी) को	**ज्ञानमयं**	ज्ञानमयी

आसवं	सुधाको	**पपुः**	पीते हैं ॥२४॥
सौम्या	शांत सत्पुरुष		

एतदेवात्मभू राजन् नारदाय विपृच्छते ।
वेदगर्भोऽभ्यधात् साक्षाद् यदाह हरिरात्मनः ॥२५॥

एतत् एव आत्मभू राजन् नारदाय विपृच्छते वेदगर्भः अभ्यधात् साक्षात् यत् आह हरिः आत्मनः ॥ २५ ॥

राजन्	परीक्षित् !	**वेदगर्भ**	वेदगर्भ
यत्	जो	**आत्मभूः**	ब्रह्माजीने
साक्षात्	साक्षात्	**आत्मनः**	अपना स्वरूप
हरिः	श्रीहरिने	**नारदाय**	नारदजी द्वारा
आह	कहा था	**विपृच्छते**	पूछे जानेपर
एतत् एव	यह ही	**अभ्यधात्**	बतलाया था ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां द्वितीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः

अथ पञ्चमोऽध्यायः

नारद उवाच–

देवदेव नमस्तेऽस्तु भूतभावन पूर्वज ।
तद् विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनम् ॥१॥

देवदेव नमः ते अस्तु भूतभावन पूर्वज तत् विजानीहि यत् ज्ञानं आत्मतत्त्व निदर्शनम् ॥ १ ॥

भूत भावन	सब प्राणियोंको सङ्कल्पसे ही उत्पन्न करनेवाले	**अस्तु**	है ।
		यत्	जो
		ज्ञानं	ज्ञान
पूर्वज	सबके पूर्वज	**आत्मतत्त्व**	आत्मतत्त्वको
देवदेव	देवताओंके भी देवता !	**निदर्शनं**	विचार देनेवाला है
		तत्	वह
ते	आपको	**विजानीहि**	बतलाइये ॥१॥
नमः	नमस्कार		

यद्रूपं यदधिष्ठानं यतः सृष्टमिदं प्रभो ।
यत्संस्थं यत्परं यच्च तत् तत्त्वं वद तत्त्वतः ॥२॥

यत् रूपं यत् अधिष्ठानं यतः सृष्टं इदं प्रभो यत् संस्थ यत् परं यत् च तत् तत्त्वं वद तत्त्वतः ॥ २ ॥

प्रभो	प्रभो !	**यतः**	जिससे
इदं	इस संसारका	**सृष्टं**	(इसकी) उत्पत्ति हुई है,
यत्	जो		
रूपं	लक्षण है,	**यत्**	जिसमें
यत्	जो	**संस्थं**	(इसका) लय होता है,
अधिष्ठानं	आधार है,		

यत्	जिसके	**तत्**	वह
परं	आधीन है,	**तत्त्वं**	तत्त्व
यत्	जो (यह)	**तत्त्वतः**	ठीक ठीक
च	है	**वद**	बतलाइये ॥२॥

सर्वं ह्येतद् भवान् वेद भूतभव्यभवत्प्रभुः ।
करामलकवद् विश्वं विज्ञानावसितं तव ॥३॥

सर्वं हि एतत् भवान् वेद भूत भव्य भवत् प्रभुः कर आमलकवत् विश्वं विज्ञान अवसितं तव ॥ ३ ॥

हि	क्योंकि		स्वामी हो,
भवान्	आप	**तव**	आपकी
एतत्	यह	**विज्ञान**	ज्ञानकी
सर्वं	सब	**अवसितं**	दृष्टिमें
वेद	जानते हैं—	**विश्वं**	संसार
भूत	जो बीत गया,	**कर**	हाथपर रखे
भव्य	जो हो रहा है,	**आमलकवत्**	आँवलेके समान
भवत्	जो आगे होगा,		है ॥३॥
प्रभुः	आप उसके		

यद्विज्ञानो यदाधारो यत्परस्त्वं यदात्मकः ।
एकः सृजसि भूतानि भूतैरेवात्ममायया ॥४॥

यत् विज्ञानं यत् आधारः यत् परः त्वं यत् आत्मकः एकः सृजसि भूतानि भूतैः एव आत्ममायया ॥ ४ ॥

त्वं	आपको	**आत्मकः**	(आपका) स्वरूप है
यत्	जहाँसे		(वह बतावें) ।
विज्ञानं	यह ज्ञान मिला,	**एकः**	(आप) अकेले ही
यत्	जो (आपका)	**भूतानि**	प्राणियोंको
आधारः	आधार है,	**भूतैः**	(पञ्चमहा) भूतोंसे
यत्	जिसके	**एव**	ही
परः	(आप) परायण हो,	**आत्ममायया**	अपनी मायासे
यत्	जो	**सृजसि**	बनाते हैं ॥४॥

आत्मन् भावयसे तानि न पराभावयन् स्वयम् ।
आत्मशक्तिमवष्टभ्य ऊर्णनाभिरिवावलमः ॥५॥

आत्मन् भावयसे तानि न पर अभावयन् स्वयं आत्मशक्ति अवष्टभ्य ऊर्णनाभिः इव अवलमः ॥ ५ ॥

ऊर्णनाभिः	मकड़ीके (जालेके)	**भावयसे**	सृष्टि (भावना)
इव	समान	**स्वयं**	स्वयं
अवलमः	अनायास	**पर**	अपने भिन्न (कुछ)
आत्मशक्ति	अपनी शक्तिका	**न**	नहीं
अवष्टभ्य	आश्रय लेकर	**अभावयन्**	प्रकट करते
आत्मन्	अपने भीतर ही		(निर्विकार रहते
तानि	उन (प्राणियों) की		हैं) ॥५॥

नाहं वेद परं ह्यस्मिन्नापरं न समं विभो ।
नामरूपगुणैर्भाव्यं सदसत् किञ्चिदन्यतः ॥६॥

न अहं वेद परं हि अस्मिन् न अपरं न समं विभो नाम रूप गुणैः भाव्यं सत् असत् किञ्चित् अन्यतः ॥ ६ ॥

विभो	प्रभो !	**अन्यतः**	(जो आपसे)
हि	निश्चय ही		भिन्न हों;
अस्मिन्	इस संसारमें	**सत्**	(वह) सत् हो
नाम रूप गुणैः	नाम, रूप, गुणोंसे	**असत्**	(या) असत् हो
भाव्यं	जो जाना जाता है	**न परं अपरं**	(आपसे) श्रेष्ठ (या)
अहं	(उनमें) मैं		कनिष्ठ नहीं है,
किंचित्	कुछ (भी)	**न समं**	न समान ही है ॥६॥
न वेद	नहीं जानता		

स भवानचरद् घोरं यत् तपः सुसमाहितः ।
तेन खेदयसे नस्त्वं पराशङ्कां प्रयच्छसि ॥७॥

स भवान् अचरत् घोरं यत् तपः सुसमाहितः तेन खेदयसे नः त्वं परा शङ्कां प्रयच्छसि ॥ ७ ॥

स	ऐसे	**नः**	हमको
भवान्	आपने	**खेदयसे**	खिन्न बनाते हैं (और)
यत्	जो	**परा**	(आपसे भी) कोई श्रेष्ठ है
सुसमाहितः	अत्यन्त एकाग्र होकर	**शङ्कां**	(यह) शङ्का
घोरं	कठोर	**प्रयच्छसि**	देते (उत्पन्न करते) हैं ॥७॥
तपः	तपस्या		
अचरत्	की		
तेन	उससे		
त्वं	आप		

एतन्मे पृच्छतः सर्वं सर्वज्ञ सकलेश्वर ।
विजानीहि यथैवेदमहं बुद्धेऽनुशासितः ॥८॥

एतत् मे पृच्छतः सर्वं सर्वज्ञ सकलेश्वर विजानीहि यथा एव इदं अहं बुद्धेः अनुशासितः ॥ ८ ॥

एतत्	यह	**सर्वज्ञ**	(आप) सर्वज्ञ (तथा)
यथा एव	जैसा भी (है)	**सकलेश्वर**	सबके स्वामी हैं
इदं सर्वं	यह सब	**अहं**	मैं
मे	मेरे	**बुद्धेः**	बुद्धिके द्वारा
पृच्छतः	पूछे हुएको	**अनुशासितः**	प्रेरित (जिज्ञासु) हूँ ॥८॥
विजानीहि	बतलाइये		

ब्रह्मोवाच-

सम्यक् कारुणिकस्येदं वत्स ते विचिकित्सितम् ।
यदहं चोदितः सौम्य भगवद्वीर्यदर्शने ॥९॥

सम्यक् कारुणिकस्य इदं वत्सते विचिकित्सितं यत् अहं चोदितः सौम्य भगवत् वीर्य दर्शने ॥ ९ ॥

सौम्य	शान्त प्रकृतिवाले	**कारुणिकस्य**	दयालुका
वत्स	वत्स (नारद) !	**इदं**	यह
ते	तुम	**विचिकित्सितं**	पूछना

सम्यक्	उचित ही है	**वीर्य**	पराक्रमको
यत्	जिससे	**दर्शने**	दिखलाने (वर्णन करने) में
अहं	मैं		
भगवत्	भगवान्‌के	**चोदितः**	प्रेरित हुआ ॥९॥

नानृतं तव तच्चापि यथा मां प्रब्रवीषि भोः ।
अविज्ञाय परं मत्त एतावत्त्वं यतो हि मे ॥१०॥

न अनृतं तव तत् च अपि यथा मां प्रब्रवीषि भोः अविज्ञाय परं मत्त एतावत्त्वं यतः हि मे ॥ १० ॥

भोः	हे पुत्र !	**हि**	क्योंकि
तव	तुम्हारी	**मत्त**	मुझसे
तत्	वह	**परं**	परे (श्रेष्ठ) को
च अपि	बात भी	**अविज्ञाय**	न जाननेके
अनृतं	झूठी	**यतः**	कारण
न	नहीं है	**मे**	मुझे
यथा	जैसा	**एतावत्त्वं**	ऐसा ही जाना जाता है ॥१०॥
मां	मुझे		
प्रब्रवीषि	बतलाते हो		

येन स्वरोचिषा विश्वं रोचितं रोचयाम्यहम् ।
यथार्कोऽग्निर्यथा सोमो यथर्क्षग्रहतारकाः ॥११॥

येन स्वरोचिषा विश्वं रोचितं रोचयामि अहं यथा आकः अग्निः यथा सोमः यथा अर्क्ष ग्रह तारकाः ॥११॥

येन	जिन	**अग्निः**	अग्नि
स्वरोचिषा	स्वयं प्रकाश द्वारा	**यथा**	जैसे
रोचितं	प्रकाशित	**सोमः**	चन्द्रमा
विश्वं	विश्वको	**यथा**	जैसे
अहं	मैं (वैसे ही)	**अर्क्षं**	नक्षत्र
रोचयामि	प्रकाशित करता हूँ	**ग्रह**	ग्रह
यथा	जैसे	**तारकाः**	तारे ॥११॥
अर्कः	सूर्य (या)		

तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि ।
यन्मायया दुर्जयया मां ब्रुवन्ति जगद्गुरुम् ॥१२॥

तस्मै नमः भगवते वासुदेवाय धीमहि यत् मायया दुर्जयया मां ब्रुवन्ति जगद्गुरुम् ॥ १२ ॥

तस्मै	उन	**दुर्जयया**	दुर्जय
भगवते	भगवान्	**मायया**	मायासे मोहित (लोग)
वासुदेवाय	वासुदेवाको	**मां**	मुझे
नमः	नमस्कार	**जगद्गुरुं**	जगद्गुरु
धीमहि	हम उनका ध्यान करते हैं	**ब्रुवन्ति**	कहते हैं ॥१२॥
यत्	जिनकी		

विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया ।
विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः ॥१३॥

विलज्जमानया यस्य स्थातुं ईक्षापथे अमुया विमोहिताः विकत्थन्ते मम अहं इति दुर्धियः ॥ १३ ॥

यस्य	जिनसे	**विमोहिताः**	(उसी मायासे) मोहित
विलज्जमानया	अत्यन्त लज्जित होकर (माया)	**दुर्धियः**	दुर्बुद्धि लोग
अमुया	उनके	**मम**	यह मेरा है
ईक्षापथे	दृष्टि पथके (सामने)	**इति**	यह
स्थातुं	ठहर (नहीं पाती, किन्तु)	**आह**	कहकर
		विकत्थन्ते	बकवाद करते हैं ॥१३॥

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ।
वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ॥१४॥

द्रव्यं कर्म च कालः च स्वभावः जीव एव च वासुदेवात् परः ब्रह्मन् न च अन्यः अर्थः अस्ति तत्त्वतः ॥ १४ ॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् (नारद) !	**जीव**	जीव
द्रव्यं	पदार्थ,	**एव**	भी
कर्म	कर्म,	**वासुदेवात्**	वासुदेवसे
च	और	**परः**	पृथक
कालः	काल	**तत्त्वतः**	तत्त्वतः
च	तथा	**अन्यः**	दूसरा
स्वभावः	प्रकृति	**अर्थः**	तत्त्व (पदार्थ)
च	एवं	**अस्ति च न**	है ही नहीं ॥१४॥

नारायणपरा वेदा देवा नारायणाङ्गजाः ।
नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः ॥१५॥

नारायण परा वेदा देवानारायण अङ्गजाः नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः ॥ १५ ॥

वेदा	वेद	**लोका**	सब लोक
नारायणपरा	नारायण-परायण हैं,	**नारायणपरा**	नारायण-परायण हैं
देवा	देवता	**मखाः**	यज्ञ
नारायण	नारायणके	**नारायणपरा**	नारायणके लिए होते
अङ्गजाः	अंगोंसे उत्पन्न हैं,		हैं ॥१५॥

नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः ।
नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः ॥१६॥

नारायणपरः योगः नारायण परं तपः नारायण परं ज्ञानं नारायण परा गतिः ॥ १६ ॥

योगः	साधन (योग)	**नारायण**	नारायण ही
नारायणपरः	नारायणकी प्राप्तिके लिए होते हैं,	**परं ज्ञानं**	परम ज्ञान हैं
		नारायण	नारायण ही
तपः	तपस्या	**परा गतिः**	परमगति हैं ॥१६॥
नारायण परं	नारायणकी प्रसन्नताके लिए है,		

तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः ।
सृज्यं सृजामि सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः ॥१७॥

तस्य अपि द्रष्टुः ईशस्य कूटस्थस्य अखिलात्मनः सृज्यं सृजामि सृष्टः अहं ईक्षया एव अभिचोदितः ॥१७॥

तस्य	उन	**स्रष्टः अहं**	उत्पन्न किया गया मैं
कूटस्थस्य	निर्विकार	**ईक्षया**	(उनकी) दृष्टिसे
ईशस्य	सबके स्वामीके	**अभिचोदितः**	प्रेरित होकर
द्रष्टुः अपि	द्रष्टा मात्र होनेपर भी	**एव**	ही
अखिलात्मनः	(उन) सर्वात्माके द्वारा	**सृज्यंसृजामि**	उनकी सृष्टिकी रचना करताहूँ ॥१७॥

सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः ।
स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः ॥१८॥

सत्त्वं रजः तम इति निर्गुणस्य गुणाः त्रयः स्थिति सर्ग निरोधेषु गृहीता मायया विभोः ॥ १८ ॥

सत्त्वं	सत्त्व	**विभोः**	(उन) सर्वव्यापकने
रजः	रज	**स्थिति**	स्थिति
तम	तम	**सर्ग**	सृष्टि
निर्गुणस्य	निर्गुण परमात्माके	**निरोधेषु**	प्रलयके लिए
इति	ये	**मायया**	मायासे
त्रयः	तीन	**गृहीता**	(इन्हें) ग्रहण किया है ॥१८॥
गुणाः	गुण हैं ।		

कार्यकारणकर्तृत्वे द्रव्यज्ञानक्रियाश्रयाः ।
बध्नन्ति नित्यदा मुक्तं मायिनं पुरुषं गुणाः ॥१९॥

कार्य करण कर्तृत्वे द्रव्य ज्ञान क्रिया आश्रयाः बध्नन्ति नित्यदा मुक्तं मायिनं पुरुषं गुणाः ॥ १९ ॥

द्रव्य	द्रव्य (पदार्थ),	**गुणाः**	(ये तीनों) गुण
ज्ञान	ज्ञान (और)	**कार्य**	कार्य,
क्रिया	क्रियाका	**करण**	इन्द्रिय (तथा)
आश्रयाः	आश्रय लेकर	**कर्तृत्वे**	कर्तापन द्वारा

नित्यदा	नित्य ही	**पुरुषं**	पुरुषको
मुक्तं	मुक्त	**बध्नन्ति**	बाँधते हैं ॥१९॥
मायिनं	मायाके स्वामी		

स एष भगवाँल्लिङ्गैस्त्रिभिरेभिरधोक्षजः ।
स्वलक्षितगतिर्ब्रह्मन् सर्वेषां मम चेश्वरः ॥२०॥

स एष भगवान् लिङ्गैः त्रिभिः एभिः अधोक्षजः स्वलक्षित गतिः ब्रह्मन् सर्वेषां मम च ईश्वरः ॥ २० ॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् (नारद) !	**गतिः**	(अपनी) गति (चेष्टा) को
एष	यही	**स्वलक्षित**	अपने स्वयं ही समझनेवाले हैं
अधोक्षजः	इन्द्रियातीत	**सर्वेषां**	(वे) सबके
स	वे	**मम च**	(और) मेरे भी
भगवान्	भगवान् हैं	**ईश्वरः**	स्वामी हैं ॥२०॥
एभिः	(जो) इन		
त्रिभिः	तीनों		
लिंगैः	चिह्नोंसे		

कालं कर्म स्वभावं च मायेशो मायया स्वया ।
आत्मन् यदृच्छया प्राप्तं विबुभूषुरुपाददे ॥२१॥

कालं कर्म स्वभावं च मायेशः मायया स्वया आत्मन् यदृच्छया प्राप्तं विबुभूषुः उपाददे ॥ २१ ॥

मायेशः	मायापति (भगवान्) ने	**यदृच्छया**	अकस्मात्
विबुभूषुः	अनके होने (विभाजित होने) की इच्छासे	**प्राप्तं**	आये हुए
स्वया	अपनी	**कालं**	काल
मायया	मायासे	**कर्म**	कर्म
आत्मन्	अपनेमें	**च**	तथा
		स्वभावं	प्रकृतिको
		उपाददे	स्वीकार कर लिया ॥२१॥

कालाद् गुणव्यतिकरः परिणामः स्वभावतः ।
कर्मणो जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितादभूत् ॥२२॥

कालात् गुण व्यतिकरः परिणामः स्वभावतः कर्मणः जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितात् अभूत् ॥ २२ ॥

पुरुषादधिष्ठितात्	पुरुषके अधिष्ठान (आधार) बननेसे	**परिणामः**	उनमें परिवर्तन होनेसे
कालात्	कालके द्वारा	**कर्मणः**	कर्मने
गुण	(तीनों) गुणोंमें	**महतः**	महत्तत्त्वको
व्यतिकरः	क्षोभ उत्पन्न होनेसे	**जन्म**	जन्म दिया ॥२२॥
स्वभावतः	प्रकृतिके द्वारा		

महतस्तु विकुर्वाणाद्रजःसत्त्वोपबृंहितात् ।
तमःप्रधानस्त्वभवद् द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥२३॥

महतः तु विकुर्वाणात् रजः सत्त्व उपबृंहितात् तमः प्रधानः तु अभवत् द्रव्य ज्ञान क्रियात्मकः ॥२३॥

रजः	रजोगुण (और)	**द्रव्य**	द्रव्य,
सत्त्व	सत्त्वगुणसे	**ज्ञान**	ज्ञान (और)
उपबृंहितात्	युक्त	**क्रियात्मकः**	क्रियावाला
महतः	महत्तत्त्व	**तमः प्रधानः**	तमः प्रधान
तु	के	**तु**	विकार
विकुर्वाणात्	विकारी होनेपर	**अभूत्**	हुआ ॥२३॥

सोऽहङ्कार इति प्रोक्तो विकुर्वन् समभूत्त्रिधा ।
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेति यद्भिदा ।
द्रव्यशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्ति रिति प्रभो ॥२४॥

सः अहङ्कार इति प्रोक्तः विकुर्वन् समभूत् त्रिधा वैकारिकः तैजसः च तामसः च इति यत् भिदा द्रव्यशक्तिः क्रियाशक्तिः ज्ञानशक्तिः इति प्रभो ॥ २४ ॥

सः	वह	**इति प्रोक्तः**	इस नामसे कहा गया ।
अहङ्कार	अहंकार		

विकुर्वन्	(वह) विकारी होनेपर	**समभूत**	हो गया।
वैकारिकः	वैकारिक	**प्रभो**	नारदजी !
च	एवं	**द्रव्यशक्ति**	(तामस) द्रव्यशक्ति,
तैजसः	तैजस	**क्रियाशक्तिः**	(राजस) क्रियाशक्ति (और)
च	तथा	**ज्ञानशक्तिः**	(वैकारिक) ज्ञानशक्ति
तामसः	तामस	**यत्**	इसके
इति	इस प्रकार	**भिदा**	भेद
त्रिधा	तीन प्रकार	**इति**	हैं ॥२४॥

तामसादपि भूतादेर्विकुर्वाणादभून्नभः ।
तस्या मात्रा गुणः शब्दो लिङ्गं यद् द्रष्टृदृश्ययोः ॥२५॥

तामसात् अपि भूतादेः विकुर्वाणात् अभूत् नभः तस्य मात्रा गुणः शब्दः लिङ्गं यत् द्रष्ट दृश्ययोः ॥ २५ ॥

भूतादेः	पंचमहाभूतोंके मूल कारण	**मात्रा**	तन्मात्रा (और)
तामसात्	तामस अहंकारके	**गुणः**	गुण
अपि	भी	**शब्दः**	शब्द है,
विकुर्वाणात्	विकृत होनेपर	**यत्**	जिससे
नभः	आकाश	**द्रष्टृ**	द्रष्टा एवं
अभूत्	उत्पन्न हुआ।	**दृश्ययोः**	दृश्यकी
तस्य	उस (आकाश) की	**लिङ्गं**	पहचान होती है ॥२५॥

नभसोऽथ विकुर्वाणादभूत् स्पर्शगुणोऽनिलः ।
परान्वयाच्छब्दवांश्च प्राण ओजः सहो बलम् ॥२६॥

नभसः अथ विकुर्वाणात् अभूत् स्पर्शगुणः अनिलः पर अन्वयात् शब्दवान् च प्राणः ओजः सहः बलम् ॥ २६ ॥

अथ	तदनन्तर	**स्पर्श गुणः**	स्पर्श गुणवाला
नभसः	आकाशके	**अनिलः**	वायु
विकुर्वाणात्	विकारी होनेपर	**अभूत्**	उत्पन्न हुआ।

पर	पहिलेवाले (अपने कारण आकाशके)
अन्वयात्	गुण व्याप्त रहनेके कारण
शब्दवान्	(वह वायु) शब्द (गुण) वाला है
च	तथा
प्राणः	(इन्द्रियोंमें) स्फूर्ति
ओजः	तेज
सहः	जीवनी शक्ति और
बलं	बल देनेवाला है ॥२६॥

वायोरपि विकुर्वाणात् कालकर्मस्वभावतः ।
उदपद्यत तेजो वै रूपवत् स्पर्शशब्दवत् ॥२७॥

वायोः अपि विकुर्वाणात् काल कर्म स्वभावतः उदपद्यत तेजः वै रूपवत् स्पर्श शब्दवत् ॥ २७ ॥

काल	काल
कर्म	कर्म (और)
स्वभावतः	स्वभावसे
वायोः	वायुके
अपि	भी
विकुर्वाणात्	विकारवान् होनेसे
स्पर्श	(वायुके गुण) स्पर्श (तथा)
शब्दवत्	(आकाशके गुण) शब्द सहित
रूपवत्	रूप गुणवाला
तेजः वै	तेज (अग्नि)
उपपद्यत	उत्पन्न हुआ ॥२७॥

तेजसस्तु विकुर्वाणादासीदम्भो रसात्मकम् ।
रूपवत् स्पर्शवच्चाम्भो घोषवच्च परान्वयात् ॥२८॥

तेजसः तु विकुर्वाणात् अम्भः रसात्मकं रूपवत् स्पर्शवत् च अम्भः घोषवत् च परान्वयात् ॥ २८ ॥

तेजसः	अग्नि तत्त्वके
विकुर्वाणात्	विकृत होनेपर
रसात्मकं	रस गुणवाला
अम्भः	जल
तु आसीत	हुआ ।
अम्भः	जल
परान्वयात्	पहिलेके (तेज, वायु और आकाशके) व्याप्त होनेके कारण
रूपवत्	रूपवाला,
स्पर्शवत्	स्पर्शवाला
च घोषवत्	तथा शब्दवाला (भी) है ॥२८॥

विशेषस्तु विकुर्वाणादम्भसो गन्धवानभूत् ।
परान्वयाद् रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वितः ॥२९॥

विशेषः तु विकुर्वाणात् अम्भसः गन्धवान् अभूत् परान्वयात् रस स्पर्श शब्द रूप गुण अन्वितः ॥ २९ ॥

अम्भसः	जलके	**रस**	रस
विकुर्वाणात् तु	विकृत होनेसे	**रूप**	रूप
गन्धवान्	गन्ध गुणवाली	**स्पर्श**	स्पर्श
विशेषः	पृथ्वी	**शब्द**	शब्द
परान्वयात्	पहिले (जल, तेज, वायु और आकाश) कारणोंके व्याप्त होनेसे	**गुण**	गुणोंसे
		अन्वितः	युक्त
		अभूत्	उत्पन्न हुई ॥२९॥

वैकारिकान्मनो जज्ञे देवा वैकारिका दश ।
दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥३०॥

वैकारिकात् मनः जज्ञे देवा वैकारिका दश दिक् वात अर्क प्रचेतः अश्वि वह्नि इन्द्र उपेन्द्र मित्रकाः ॥ ३० ॥

वैकारिकात्	वैकारिक (अहंकार) से	**अश्वि**	अश्विनीकुमार
मनः	मन (और)	**वह्नि**	अग्नि,
वैकारिकाः	इन्द्रियोंके अधिष्ठाता	**इन्द्र**	इन्द्र
दिक्	दिक् (दिशा)	**उपेन्द्र**	उपेन्द्र (विष्णु)
वात्	वायु,	**मित्रकाः**	मित्र (और प्रजापति)
अर्क	सूर्य,	**दश देवा**	दश देवता
प्रचेतः	वरुण,	**जज्ञे**	उत्पन्न हुए ॥३०॥

तैजसात् तु विकुर्वाणादिन्द्रियाणि दशाभवन् ।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्बुद्धिः प्राणश्च तैजसौ ।
श्रोत्रं त्वग्घ्राणदृग्जिह्वा वाग्दोर्मेढ्राङ्घ्रिपायवः ॥३१॥

तैजसात् तु विकुर्वाणात् इन्द्रियाणि दश अभवन् ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः बुद्धिः प्राणः च तैजसः श्रोत्रं त्वक् घ्राण दृक् जिह्वा वाक् दोः मेढ्रः अंघ्रि पायवः ॥ ३१ ॥

तैजसात् तु	तैजस (अहंकार) के	**अंघ्रि**	पैर
विकुर्वाणात्	विकारी होनेपर	**पायवः**	गुदा
इन्द्रियाणि	इन्द्रियाँ	**दश**	ये दस
श्रोत्रं	कान	**अभवन्**	उत्पन्न हुईं
त्वक्	त्वचा	**ज्ञानशक्तिः**	ज्ञानशक्ति
दृक्	नेत्र	**क्रियाशक्तिः**	क्रियाशक्ति
जिह्वा	रसना	**बुद्धिः**	बुद्धि
घ्राण	नासिका	**च**	और
वाक्	वाणी	**प्राणः**	प्राण
दोः	भुजाएँ	**तैजसः**	तेजस अहंकारसे ही
मेढ्रः	उपस्थ		उत्पन्न हैं ॥३१॥

यदैतेऽसङ्गता भावा भूतेन्द्रियमनोगुणाः ।
यदायतननिर्माणे न शेकुर्ब्रह्मवित्तम ॥३२॥

यदा ऐते असङ्गता भावा भूत इन्द्रिय मनः गुणाः यदा आयतन निमाणे न शेकुः ब्रह्मवित्तम ॥ ३२ ॥

ब्रह्मवित्तम	ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ नारद !	**असङ्गता**	परस्पर पृथक
यदा	जिस समय	**भावाः**	तत्त्व
एते	ये	**यदा**	जब
भूत	पञ्च महाभूत,	**आयतन**	शरीर
इन्द्रिय	इन्द्रियाँ,	**निर्माणे**	निर्माणमें
मनः	मन (और)	**शेकुः**	समर्थ
गुणाः	तीनों गुण,	**न**	नहीं हुए ॥३२॥

तदा संहत्य चान्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः ।
सदसत्त्वमुपादाय चोभयं ससृजुर्ह्यदः ॥३३॥

तदा संहृत्य च अन्योन्यं भगवत् शक्ति चोदितः सत् असत्त्वं उपादाय च उभयं असृजुः ह्यदः ॥ ३३ ॥

तदा	उस समय	**असत्त्वं**	कार्य भाव
भगवत् शक्ति	भगवान्‌की शक्तिसे	**उपादाय**	स्वीकार करके
चोदितः	प्रेरित होकर	**उभयं**	दोनों (पिण्ड-ब्रह्माण्ड)
च	और	**च**	ही रूपमें
अन्योन्यं	एक दूसरेसे	**ह्यदः**	इस विश्वकी
संहृत्य	मिलकर,	**ससृजुः**	सृष्टिकी ॥३३॥
सत्	कारण-		

वर्षपूगसहस्रान्ते तदण्डमुदकेशयम् ।
कालकर्मस्वभावस्थो जीवोऽजीवमजीवयत् ॥३४॥

वर्ष पूग सहस्र अन्ते तत् अण्डं उदके शयं काल कर्म स्वभावस्थः अजीवः जीवं अजीवयत् ॥ ३४ ॥

पूग	पूर्ण	**कर्म**	कर्म (अपने कर्मसे)
सहस्र	सहस	**स्वभास्थः**	प्रकृतिमें स्थित
वर्ष	वर्ष	**अजीवं**	जीव रहित
अन्ते	बीतनेपर	**अण्डं**	ब्रह्माण्डको
तत्	उस	**जीवः**	(परमात्मा) समष्टि
उदके	जलमें (कारण वारिमें)		चेतनने
		अजीवयत्	जीवित कर
शयं	सोये		दिया ॥३४॥
काल	काल (के अनुसार)		

स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भिद्य निर्गतः ।
सहस्रोर्वङ्घ्रिबाह्वक्षः सहस्राननशीर्षवान् ॥३५॥

स एव पुरुषः तस्मात् अण्डं निर्भिद्य निर्गतः सहस्र उरु अंघ्रि बाहु अक्षः सहस्र आनन शीर्षवान ॥ ३५ ॥

स	वह	**सहस्र**	हजारों
एव	ही	**उरु**	जंघा,
पुरुषः	पुरुष	**अंघ्रि**	पैर,

बाहु	भुजा (और)	**तस्मात्**	उस
अक्षः	नेत्रोंवाला,	**अण्डं**	ब्रह्माण्ड रूप अंडेको
सहस्र	हजारों	**निर्भिद्य**	फोड़कर
आनन	मुखों (और)	**निर्गतः**	निकला ॥३५॥
शीर्षवान्	मस्तकोंवाला		

यस्येहावयवैर्लोकान् कल्पयन्ति मनीषिणः ।
कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः ॥३६॥

यस्य इह अवयवैः लोकान् कल्पयन्ति मनीषिणाः कट्यादिभिः अधः सप्त सप्त उर्ध्वं जघनादिभिः ॥ ३६ ॥

इह	यहाँ संसारमें	**सप्त**	सात (और)
मनीषिणः	बुद्धिमान लोग	**जघनादिभिः**	जाँघ आदि (कटि)से
यस्य	जिसके	**ऊर्ध्वं**	ऊपर
कट्यादिभिः	कटि आदि (नाभि) से	**सप्त**	सात
		लोकान्	लोकोंकी
अधः	नीचे	**कल्पयन्ति**	कल्पना करते हैं ॥३६॥
अवयवैः	अंगोंमें		

पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः ।
ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत ॥३७॥

पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रं एतस्य बाहवः उर्वः वैश्यः भगवतः पद्भ्यां शूद्रः अभ्यजायत ॥ ३७ ॥

भगवतः	विराट्	**क्षत्रं**	क्षत्रिय हैं,
पुरुषस्य	पुरुषका	**उर्वोः**	जांघोंसे
मुखं	मुख	**वैश्यः**	वैश्य और
ब्रह्म	ब्राह्मण हैं,	**पद्भ्यां**	पैरोंसे
एतस्य	इनकी	**शूद्रः**	शूद्र
बाहवः	भुजाएँ	**अभ्यजायत**	उत्पन्न हुए हैं ॥३७॥

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ।
हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः ॥३८॥

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकः अस्य नाभितः हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोकः महात्मनः ॥ ३८ ॥

महात्मनः	इन महाविराट्के	**हृदा**	हृदयमें
पद्भ्यां	चरणोंमें	**स्वर्लोकः**	स्वर्गलोककी
भूर्लोकः	पृथ्वीलोककी	**उरसा**	वक्षस्थलमें
अस्य	इनकी	**महर्लोकः**	महर्लोककी
नभितः	नाभिमें	**कल्पितः**	कल्पनाकी गयी
भुवर्लोकः	अन्तरिक्षलोककी		है ॥३८॥

ग्रीवायां जनलोकश्च तपोलोकः स्तनद्वयात् ।
मूर्धभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः ॥३९॥

ग्रीवायां जनलोकः च तपोलोकः स्तनद्वयात् मूर्धभिः सत्यलोकः तु ब्रह्मलोकः सनातनः ॥ ३९ ॥

ग्रीवायां	गर्दनमें	**मूर्धभिः तु**	मूर्धामस्तकमें
जनलोकः	जनलोक,	**सत्यलोकः**	सत्यलोक है (जो)
स्तनद्वयात्	दोनों स्तनोंमें	**सनातनः**	सनातन
तपोलोकः च	तपोलोक, और	**ब्रह्मलोकः**	ब्रह्मलोक है ॥३९॥

तत्कट्यां चातलं क्लृप्तमूरुभ्यां वितलं विभोः ।
जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जङ्घाभ्यां तु तलातलम् ॥४०॥

तत् कट्यां च अतलं क्लृप्तं ऊरुभ्यां वितलं विभोः जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जंघाभ्यां तु तलातलम् ॥ ४० ॥

तत्	उन	**वितलं**	वितल है
विभोः	सर्वव्यापककी	**जानुभ्यां**	घुटनोंमें
कट्यां	कमरमें	**शुद्धं**	पवित्र
अतलं	अतल	**सुतलं**	सुतल है
क्लृप्तं	व्याप्त है	**जंघाभ्यां तु**	पिंडलियोंमें
च	और	**तलातलं**	तलातल है ॥४०॥
ऊरुभ्यां	जाँघोंमें		

महासलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम् ।
पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान् ॥४१॥

महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलं पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान् ॥ ४१ ॥

गुल्फाभ्यां तु	पैरकी गाँठोंमें	**पातालं**	पाताल है;
महातलं	महातल है,	**इति**	इस प्रकार
प्रपदाभ्यां	पैरके ऊपरी भागमें	**पुमान्**	विराट् पुरुष
रसातलं	रसातल है,	**लोकमयः**	सर्वलोकमय हैं ॥४१॥
पादतलत	तलुओंमें		

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ।
स्वर्लोकः कल्पितो मूर्ध्ना इति वा लोककल्पना ॥४२॥

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकः अस्य नाभितः स्वर्लोकः कल्पितः मूर्ध्ना इति वा लोक कल्पनाः ॥ ४२ ॥

अस्य	इस विराट् पुरुषके	**मूर्ध्ना**	मस्तकमें
पद्भ्यां	पैरोंमें	**स्वर्लोकः**	स्वर्ग
भूर्लोकः	भूलोक	**कल्पितः**	कल्पित है,
कल्पितः	कल्पित है;	**इति वा**	ऐसा भी
नाभितः	नाभिमें	**लोक**	लोकोंकी
भुवर्लोकः	अन्तरिक्ष (और)	**कल्पनाः**	कल्पना है ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः

अथ षष्ठोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच—

वाचां वह्नेर्मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्त धातवः ।
हव्यकव्यामृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य च ॥१॥

वाचां वह्नेः मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्तधातवः हव्य कव्य अमृत अन्नानां जिह्वाः सर्व रसस्य च ॥१॥

मुखं	(उन विराट् पुरुषका) मुख—	**हव्य**	(देवताओंके लिए दिये जानेवाला) हविष्य,
वाचां	वाणी (और)	**कव्य**	(पितरोंके लिए दिये जानेवाला) कव्य (रूप)
वह्नेः	(उसके अधिदेवता) अग्निका,	**अमृत**	अमृतमय
[1] **सप्तधातवः**	(उनकी) सातों धातुएँ—	**अन्नानां**	अन्नोंका (और)
[2] **छन्दसां च**	(वेदके सातों) छन्दोंका, एवं	**सर्वरसस्य**	सब रसोंका
जिह्वाः	(उनकी) जीभ—	**क्षेत्रं**	उत्पत्ति स्थान है ॥१॥

सर्वासूनां च वायोश्च तन्नासे परमायने ।
अश्विनोरोषधीनां च घ्राणो मोदप्रमोदयोः ॥२॥

सर्व असूनां च वायोः च तत् नासे परम अयने अश्विनोः ओषधिनां च घ्राणः मोदप्रमदयोः ॥ २ ॥

---

[1] सप्तधातु—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ।

[2] गायत्री, त्रिष्टुप, अनुष्टुप उष्णिक, वृहती, पङ्क्ति और जगती—ये सात छन्द हैं ।

तत्	उनके
नासे	नासारन्ध्रसे
सर्व	सब
असूनां	प्राणियोंके (प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान) पाँचों प्राण
च वायोः	और (उन पंच प्राणोंके अधिदेव) वायु (उत्पन्न हुए)
च	और
घ्राणः	(उनकी) घ्राण इन्द्रिय
अश्विनोः	अश्विनीकुमारोंका,
ओषधीनां	ओषधियोंका
च मोद-प्रमोदयोः	तथा साधारण (एवं) विशेष गन्धका
परम	परम
अयने	निवास है ॥२॥

रूपाणां तेजसां चक्षुर्दिवः सूर्यस्य चाक्षिणी ।
कर्णौ दिशां च तीर्थानां श्रोत्रमाकाशशब्दयोः ।
तद्गात्रं वस्तुसाराणां सौभगस्य च भाजनम् ॥३॥

रूपाणां तेजसां चक्षुः दिवः सूर्यस्य च अक्षिणी कर्णौ दिशां च तीर्थानां श्रोत्रं आकाशः शब्दयोः तत् गात्रं वस्तुसाराणां सौभगस्य च भाजनम् ॥ ३ ॥

चक्षुः	(उनके) नेत्र
रूपाणां	रूपोंके, (एवं)
तेजसां	तेजके,
अक्षिणी	नेत्र गोलोक
दिवः	स्वर्गके
च	और
सूर्यस्य	सूर्यके (उत्पत्ति स्थान हैं) ।
कर्णौः	(उनके) कान
दिशां	दिशाओंके
च	तथा
तीर्थानाँ	तीर्थोंके (उद्गम हैं)।
श्रोत्रं	(उनकी) श्रवणेन्द्रिय
आकाशः	आकाश (एवं)
शब्दयोः	शब्दका (मूल है) ।
तत्	उनका
गात्रं	शरीर
वस्तुसाराणां	सब पदार्थोंके सार भागका
सौभगस्य	सौन्दर्यका
भाजनम्	निवास है ॥३॥

त्वगस्य स्पर्शवायोश्च सर्वमेधस्य चैव हि ।
रोमाण्युद्भिज्जजातीनां यैर्वा यज्ञस्तु सम्भृतः ॥४॥

त्वक् अस्य स्पर्श वायोः च सर्वमेधस्य च एव हि रोमाणि उद्भिज जातीनां यैः वा यज्ञस्तु सम्भृतः ॥ ४ ॥

अस्य त्वक्	इन (विराट् पुरुष) की त्वचा	**रोमाणि**	(उनके) रोम
स्पर्श	स्पर्शेन्द्रिय	**यैः वा**	जिनसे
च	तथा	**यज्ञस्तु**	यज्ञ
वायोः	वायु	**सम्भृतः**	सम्पन्न होते हैं,
च	एवं	**उद्भिजजातीनां**	(उन) उद्भिज पदार्थोंके (उत्पत्ति स्थान हैं) ॥४॥
सर्वमेधस्य	सब यज्ञोंका		
एव हि	भी (मूल है) ।		

केशश्मश्रुनखान्यस्य शिलालोहाभ्रविद्युताम् ।
बाहवो लोकपालानां प्रायशः क्षेमकर्मणाम् ॥५॥

केश श्मश्रु नखानि अस्य शिला लोह अभ्र विद्युतां बाहवः लोकपालानां प्रायशः क्षेम कर्मणाम् ॥ ५ ॥

अस्य	इन (विराट् पुरुष)के	**बाहवः**	(उनकी) भुजाएँ
केश	केश अभ्र (मेघ) का,	**प्रायशः**	प्रायः
श्मश्रु	श्मश्रु (दाढ़ी-मूँछ)	**कर्मणां**	कर्मलोककी
नखानि	विद्युत (बिजली) का,	**क्षेम**	रक्षा करनेवाले
		लोकपालानां	लोकपालोंका
शिला लोह अभ्रविद्युतां	नख शिला-लोहादि धातुओंका (उद्गम स्थान है) ।		(उत्पत्ति स्थान है) ॥५॥

विक्रमो भूर्भुवः स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च ।
सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरण आस्पदम् ॥६॥

विक्रमः भूः भुवः स्वः च क्षेमस्य शरणस्य च सर्वकाम वरस्य अपि हरेः चरण आस्यदम् ॥ ६ ॥

विक्रमः	(उनका) चलना-फिरना	**भूः**	भूलोक,
		भुवः	अन्तरिक्ष

च	तथा
स्वः	स्वर्ग (तीनों लोकोंका आश्रय है),
हरेः	श्रीहरिके
चरण	चरण-कमल
क्षेमस्य	कल्याणके,
शरण्यस्य	शरण देनेके
च	तथा
सर्वकाम	सब कामनाओंका
वरस्य	वरदान देनेके
अपि	भी
आस्पदं	स्थान हैं ॥६॥

अपां वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापतेः ।
पुंसः शिश्न उपस्थतु प्रजात्यानन्दनिर्वृतेः ॥७॥

अपां वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापतेः पुंसः शिश्नः उपस्थः तु प्रजाति अत्यानन्द निर्वृतेः ॥ ७ ॥

पुंसः	विराट् पुरुषका
शिश्नः	लिङ्ग (गोलक)
अपां	जलका,
वीर्यस्य	वीर्यका,
सर्गस्य	सृष्टिका,
पर्जन्यस्य	मेघोंका (और)
प्रजापतेः	प्रजापतिका (आधार है);
उपस्थः तु	(उनकी) जननेन्द्रिय
प्रजाति	सन्तानोत्पादन क्रियाके
अत्यानन्द	अत्यन्त आनन्दकी
निर्वृतेः	सुख लीनताका (आश्रय है ।) ॥७॥

पायुर्यमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नारद ।
हिंसाया निर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्य गुदः स्मृतः ॥८॥

पायुः यमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नारद हिंसाया निर्ऋतेः मृत्योः निरयस्य गुदः स्मृतः ॥ ८ ॥

नारद	नारद !
पायुः	(विराट् पुरुषकी) गुदा इन्द्रिय
यमस्य	यमराजका
मित्रस्य	मित्र देवताका (एवं)
परिमोक्षस्य	मल त्यागका (आश्रय है);
गुदः	(उनकी) गुदा (गोलक)
हिंसायाः	हिंसाका

निर्ऋतेः	निर्ऋति देवताका	स्मृतः	आश्रय कहा गया
मृत्योः	मृत्युका (और)		है ॥८॥
निरयस्य	नरकोंका		

पराभूतेरधर्मस्य तमसश्चापि पश्चिमः ।
नाड्यो नदनदीनां तु गोत्राणामस्थिसंहतिः ॥९॥

पराभूतेः अधर्मस्य तमसः च अपि पश्चिमः नाड्यः नद नदीनां तु गोत्राणां अस्थि संहतिः ॥ ९ ॥

पश्चिमः	(विराट् पुरुषकी) पीठ	नाड्यः	(उनकी) नाड़ियाँ
पराभूतेः	पराजयका,	नद	नदोंके
अधर्मस्य	अधर्मका,	नदीनां तु	नदियोंके (उद्गम है)
च	और	अस्थि	(उनकी) हड्डियोंका
तमसः	अज्ञानका	संहतिः	समुदाय
अपि	भी (उत्पत्ति स्थान है);	गोत्राणां	पर्वतोंका (मूल है) ॥९॥

अव्यक्तरससिन्धूनां भूतानां निधनस्य च ।
उदरं विदितं पुंसो हृदयं मनसः पदम् ॥१०॥

अव्यक्त रस सिन्धूनां भूतानां निधनस्य च उदरं विदित पुसः हृदयं मनसः पदम् ॥ १० ॥

पुंसः	विराट् पुरुषका	निधनस्य	प्रलयका
उदरं	पेट	विदितं	(आश्रय) जाना जाता है ।
अव्यक्त	प्रकृति		
रस	रसतत्त्व	हृदयं	(उनका) हृदय
सिन्धूनां	समुद्रोंका	मनसः	मनका
च	और	पदं	स्थान है ॥१०॥
भूतानां	प्राणि-पदार्थोंके		

धर्मस्य मम तुभ्यं च कुमाराणां भवस्य च ।
विज्ञानस्य सत्त्वस्य परस्यात्मा परायणम् ॥११॥

धर्मस्य मम तुभ्यं च कुमाराणां भवस्य च विज्ञानस्य च सत्त्वस्य परस्य आत्मा परायणम् ॥ ११ ॥

परस्य	(उन) परमपुरुषका	**च**	तथा
आत्मा	चित्त	**भवस्य**	रुद्रका,
धर्मस्य	धर्मका,	**विज्ञानस्य**	बुद्धिका
मम	मेरा (ब्रह्माका)	**च**	और
च	एवं	**सत्त्वस्य**	(समष्टि) अन्तः-
तुभ्यं	तुम्हारा (नारदका)		करणका
कुमाराणां	सनक्, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमारका	**परायणं**	परमाश्रय है ॥११॥

अहं भवान् भवश्चैव त इमे मुनयोऽग्रजाः ।
सुरासुरनरा नागाः खगा मृगसरीसृपाः १२॥

अहं भवान् भवः च एव त इमे मुनयः अग्रजाः सुर असुर नरा नागा खगा मृग सरीसृपाः ॥ १२ ॥

अहं	मैं ब्रह्मा,	**सुर**	देवता,
भवान्	तुम नारद	**असुर**	दैत्य,
च	और	**नरा**	मनुष्य,
भवः	रुद्र	**नागा**	नाग (अनेक सिर वाले सर्प),
एव	भी,	**खगा**	पक्षी,
त	तुम्हारे	**मृग**	पशु,
इमे	ये	**सरीसृपाः**	सरकनेवाले (रेंगनेवाले) प्राणी ॥१२॥
अग्रजाः	बड़े भाई		
मुनयः	(सनकादि) मुनिगण,		

गन्धर्वाप्सरसो यक्षा रक्षोभूतगणोरगाः ।
पशवः पितरः सिद्धा विद्याध्राश्चारणा द्रुमाः ॥१३॥

गन्धर्वा अप्सरसः यक्षा रक्षः भूतगणः उरगाः पशवः पितरः सिद्धाः विद्याध्राः चारणा द्रुमाः ॥ १३ ॥

गन्धर्वा	गन्धर्वगण,	**पशवः**	पशु,
अप्सरसः	अप्सराएँ,	**पितरः**	पितृगण,
यक्षा	यक्ष,	**सिद्धाः**	सिद्धगण,
रक्षः	राक्षस,	**विद्याध्राः**	विद्याधर,
भूतगणः	भूत (प्रेतादि) गण,	**चारणा**	चारण,
उरगाः	सर्प,	**द्रुमाः**	वृक्ष ॥१३॥

अन्ये च विविधा जीवा जलस्थलनभौकसः ।
ग्रहर्क्षकेतवस्तारास्तडितः स्तनयित्नवः ॥१४॥

अन्ये च विविधाः जीवा जल स्थल नभ ओकसः ग्रह ऋक्ष केतवः ताराः तडितः स्तनयित्नवः ॥ १४ ॥

अन्ये	दूसरे	**जीवा**	प्राणी,
जल	पानी,	**ग्रह**	ग्रह,
स्थल	पृथ्वी,	**ऋक्ष**	नक्षत्र,
च	और	**केतवः**	केतु,
नभः	आकाशमें	**ताराः**	तारे,
ओकसः	रहनेवाले	**तडितः**	बिजली,
विविधाः	अनेक प्रकारके	**स्तनयित्नवः**	मेघ ॥१४॥

सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत् ।
तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति ॥१५॥

सर्वं पुरुष एव इदं भूतं भव्यं भवत् च यत् तेन इदं आवृतं विश्वं वितस्ति अधितिष्ठति ॥ १५ ॥

इदं	यह	**विश्वं**	संसार है (वह)
सर्वं	सब	**पुरुष**	विराट् पुरुष
भूतं	बीता हुआ,	**एव**	ही है;
भव्यं	वर्तमान,	**तेन**	उसने
च	तथा	**इदं**	इस संसारको
भवत्	होनेवाला	**आवृतं**	घेर रखा है;
यत्	जो		

वितस्ति	उसके एकबित्ते (दस अंगुलमें)	**अधितिष्ठति**	(यह विश्व) स्थित है ॥१५॥

स्वधिष्ण्यं प्रतपन् प्राणो बहिश्च प्रतपत्यसौ ।
एवं विराजं प्रतपंस्तपत्यन्तर्बहिः पुमान् ॥१६॥

स्वधिष्ण्यं प्रतपन् प्राणः बहिः च प्रतपति असौ एवं बिराजं प्रतपन् तपति अन्तः बहिः पुमान् ॥१६॥

असौ	यह	**प्रतपन्**	प्रकाशित करते हुए
प्राणः	सूर्य (जैसे)	**पुमान्**	विराट् पुरुष (ब्रह्माण्डको भी)
स्वधिष्ण्यं	अपने मण्डलमें		
प्रतपन्	प्रकाशित होता	**अन्तः**	भीतर (और)
बहिः च	बाहर भी	**बहिः**	बाहर
प्रतपति	प्रकाश फैलाता है	**तपति**	प्रकाशित करता है ॥१६॥
एवं	इसी प्रकार		
विराजं	विराट् देहको		

सोऽमृतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात् ।
महिमैष ततो ब्रह्मन् पुरुषस्य दुरत्ययः ॥१७॥

सः अमृतस्य अभयस्य ईशः मर्त्यं अन्नं यत् अत्यगात् महिमा एष ततः ब्रह्मन् पुरुषस्य दुरत्ययः ॥१७॥

ब्रह्मन्	नारदजी !	**अत्यगात्**	अतिक्रमण किये है (परे है)
सः	वह (विराट् पुरुष)		
अमृतस्य	अमृतत्त्वका (एवं)	**ततः**	इसलिए
अभयस्य	अभयका (मोक्षका)	**पुरुषस्य**	उस पुरुषकी
ईशः	स्वामी है	**एष**	इस
मर्त्यं	मनुष्यके	**महिमा**	महिमाका
अन्नं	(क्रिया एवं सङ्कल्पके) निर्माणसे	**दुरत्ययः**	पार नहीं मिलता ॥१७॥
यत्	क्योंकि		

पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः ।
अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायि मूर्धसु ॥१८॥

पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थिति पदः विदुः अमृतं क्षेमं अभयं त्रिमूर्ध्नः अधायि मूर्धसु ॥१८॥

पुंसः	(उस विराट्) पुरुषके	**विदुः**	जाना जाता है ।
पादेषु	एक पादमें	**मूर्धसु**	(महः लोकके) ऊपर
सर्वभूतानि	(भुः, भुवः आदि लोक और) सब प्राणी-पदार्थोंकी	**त्रिमूर्ध्नः**	जन, तप और सत्यलोकमें (क्रमशः)
स्थिति	स्थितिका	**अमृतं**	अमृत,
पदः	स्थान	**अभयं**	अभय (और)
		क्षेमं	मोक्ष (सुख)
		अधायि	निहित है ॥१८॥

पादास्त्रयो बहिश्चासन्नप्रजानां य आश्रमाः ।
अन्तस्त्रिलोक्यास्त्वपरो गृहमेधोऽबृहद्व्रतः ॥१९॥

पादाः त्रयः वहिः च आसन् अप्रजानां य आश्रमाः अन्तः त्रिलोक्याः तु अपरः गृहमेधः अबृहद्व्रतः ॥ १९ ॥

य अप्रजानां	जो सन्तान उत्पादन नहीं करते, ऐसे	**आसन्**	हैं
आश्रमाः	(ब्रह्मचारी,वानप्रस्थ और संन्यास) आश्रमके लिए	**च**	और
त्रिलोक्याः	(भुः भुवः और स्वः) तीनों लोकोंसे	**अबृहद्व्रताः**	ब्रह्मचर्य पालन न करनेवाले
बहिः	बाहर	**गृहमेधः तु**	गृहस्थके लिए
त्रय पादाः	(क्रमशः) जन, तप और सत्यलोक	**अन्तः**	(संसारके) भीतर
		अपरः	दूसरे (भुः, भुवः और स्वः लोक) हैं, (भूर्लोकमें तो वे रहते हैं हीं) ॥१९॥

सृती विचक्रमे विष्वङ् साशनानशने उभे ।
यदविद्या च विद्या च पुरुषस्तुभयाश्रयः ॥२०॥

सृतौ विचक्रमे विष्वङ् स अशनाः अनशने उभे यत् विद्या च अविद्या च पुरुषः तु उभय आश्रयः ॥२०॥

सृतौ	सृष्टिमें	**अनशने**	निष्कामों (भोग न चाहनेवालों) के लिए
विष्वङ्	सर्वत्र	**विद्या च**	परमार्थ विद्याका।
उभे	दो	**यत्**	जो
विचक्रमे	मार्ग हैं,	**पुरुषः**	(परम) पुरुष हैं
स अशनाः	सकामोंके (भोग चाहनेवालों) के लिए	**तु**	(वे) तो
अविद्या च	अविद्याका है, और	**उभय**	दोनोंके (ही)
		आश्रयः	आश्रय हैं ॥२०॥

यस्मादण्डं विराड् जज्ञे भूतेन्द्रियगुणात्मकः ।
तद् द्रव्यमत्यगाद् विश्वं गोभिः सूर्य इवातपन् ॥२१॥

यस्मात् अण्डं विराट् जज्ञे भूत इन्द्रिय गुणात्मकः तद् द्रव्यं अत्यगात् विश्वं गोभिः सूर्य इव आतपन् ॥२१॥

यस्मात्	जिन (परमात्मा) से	**अत्यगात्**	अलग हैं
अण्डं	ब्रह्माण्ड,	**इव**	जैसे
भूतः	(पंच) भूत,	**विश्वं**	विश्वको
इन्द्रिय	(एकादश) इन्द्रियाँ,	**गोभिः**	(अपनी) किरणों द्वारा
गुणात्मकः	(एवं) गुणोंसे युक्त	**आतपन्**	प्रकाशित करते हुए (भी)
विराट्	विराट् पुरुष	**सूर्य**	सूर्य (अलग) है ॥२१॥
जज्ञे	उत्पन्न हुए		
तत् द्रव्यं	(वे परमात्मा भी) उन सबसे		

यदास्य नाभ्यान्नलिनादहमासं महात्मनः ।
नाविदं यज्ञसम्भारान् पुरुषावयवाद्दते ॥२२॥

यत् अस्य नाभ्यात् नलिनात् अहं आसं महात्मनः न अविदं यज्ञ सम्भारान् पुरुष अवयवात् ऋते ॥२२॥

यत्	जब	**महात्मनः**	विराट् पुरुषकी
अस्य	इस	**नाभ्यात्**	नाभिसे निकले

नलिनात्	कमलसे	**ऋते**	छोड़कर
अहं	मैं (ब्रह्मा)	**यज्ञ**	यज्ञकी (कोई भी)
आसं	उत्पन्न हुआ, (तब)	**सम्भारान्**	सामग्री
पुरुष	(इन) पुरुषके	**न**	नहीं
अवयवात्	अंगोंको	**अविदं**	जान सका ॥२२॥

तेषु यज्ञस्य पशवः सवनस्मतयः कुशाः ।
इदं च देवयजनं कालश्चोरुगुणान्वितः ॥२३॥

तेषु यज्ञस्य पशवः सवनस्पतयः कुशाः इदं च देवयजनं कालः च उरुगुणान्वितः ॥२३॥

तेषु	उन (विराट् पुरुषके अंगों) में ही	**इदं**	इस प्रकार
यज्ञस्य	यज्ञीय	**च**	से ही
पशवः	पशु (दूध, घी आदि के गौ आदि)	**देवयजनं**	परमात्माके लिए यज्ञकी
सवनस्पतयः	फलादि वनस्पतियोंके	**उरुगुणान्वितः**	बहुत गुणवाले
कुशाः	कुशोंकी (कल्पनाकी)	**कालः**	कालकी (समयकी)
		च	भी (कल्पनाकी)॥२३

वस्तून्योषधयः स्नेहा रसलोहमृदो जलम् ।
ऋचो यजूंषि सामानि चातुर्होत्रं च सत्तम ॥२४॥

वस्तूनि ओषधयः स्नेहाः रस लोह मृदः जलं ऋचः यजूंषि सामानि चातुर्होत्रं च सत्तम ॥२४॥

सत्तम	सत्पुरुष नारद !	**ऋचः**	ऋचाओंकी,
वस्तूनि	(यज्ञके लिए आवश्यक) वस्तुओंकी,	**यजूंषि**	यजुः (यजुर्वेदके गद्यकी),
ओषधयः	औषधियोंकी,	**सामानि**	साम (सामवेदकी स्तुतियोंकी),
स्नेहाः	स्नेहों (घी, तेल)की,	**च**	और
रस	(६) रसोंकी,	**चातुर्होत्रं**	चातुर्होत्रकी (कल्पना की) ॥२४॥
लोह	लोहेकी,		
मृदः	मिट्टीकी,		
जलं	जलकी,		

नामधेयानि मन्त्राश्च दक्षिणाश्च व्रतानि च ।
देवतानुक्रमः कल्पः सङ्कल्पस्तन्त्रमेव च ॥२५॥

नामधेयानि मन्त्राः च दक्षिणाः च व्रतानि च देवताः अनुक्रमः कल्पः सङ्कल्पः तन्त्रं एव च ॥२५॥

नामधेयानि	(यज्ञोंके) नाम,	**सङ्कल्पः**	संकल्प
मन्त्राः च	मन्त्र, एवं	**च**	तथा
दक्षिणाः च	दक्षिणा, भी	**तन्त्र**	अनुष्ठान रीति
व्रतानि च	तथा व्रत,	**एव**	की भी (कल्पना
देवताः	देवतागण,		की) ॥२५॥
अनुक्रमः कल्पः	विधि-क्रम,		

गतयो मतयः श्रद्धा प्रायश्चित्तं समर्पणम् ।
पुरुषावयवैरेते सम्भाराः सम्भृता मया ॥२६॥

गतयः मतयः श्रद्धा प्रायश्चित्तं समर्पणं पुरष अवयवैः एते सम्भाराः सम्भृता मया ॥२६॥

गतयः	गतियाँ,	**सम्भाराः**	सामग्रियाँ
मतयः	बुद्धि,	**पुरुष**	(विराट्) पुरुषके
श्रद्धा	श्रद्धा,	**अवयवैः**	अंगोंसे
प्रायश्चित्तं	प्रायश्चित,	**मया**	मेरे द्वारा
समर्पणं	समर्पण—	**सम्भृताः**	एकत्रकी गयीं ॥२६॥
एते	इतनी		

इति सम्भृतसम्भारः पुरुषावयवैरहम् ।
तमेव पुरुषं यज्ञं तेनैवायजमीश्वरम् ॥२७॥

इति सम्भृतः सम्भारः पुरुष अवयवैः अहं तं एव पुरुषं यज्ञं तेन एव अयजं ईश्वरम् ॥२७॥

इति	इस प्रकार	**सम्भारः**	सामग्रीको
पुरुष	(विराट्) पुरुषके	**सम्भृतः**	एकत्र करके
अवयवैः	अंगोंसे	**अहं**	मैंने

तं एव	उस ही	**पुरुषं**	पुरुषका
ईश्वरं	सर्वनियन्ता	**तेन एव**	उसीसे ही
यज्ञं	यज्ञरूप	**अयजं**	पूजन किया ॥२७॥

ततस्ते भ्रातर इमे प्रजानां पतयो नव ।
अयजन् व्यक्तमव्यक्त पुरुषं सुसमाहिताः ॥२८॥

ततः ते भ्रातरः इमे प्रजानां पतयः नव अयजन् व्यक्तं अव्यक्तं पुरुषं सुसमाहिताः ॥२८॥

ततः	तदनन्तर	**पतयः**	पतियोंने
ते	तुम्हारे	**सुसमाहिताः**	अत्यन्त एकाग्रता पूर्वक
इमे	ये (अत्रि, वशिष्ठ, अंगिरा, पुलस्त्य,पुलह क्रतु, भृगु, दक्ष मरीचि)	**व्यक्तं**	प्रकट विराट् रूप
		अव्यक्तं	(और) अप्रकट अन्तर्यामी रूप
नव भ्रातरः	नौ भाई	**पुरुषं**	पुरुषकी
प्रजानां	प्रजाके	**अयजन्**	पूजा की ॥२८॥

ततश्च मनवः काले ईजिरे ऋषयोऽपरे ।
पितरो विबुधा दैत्याः मनुष्याः क्रतुभिर्विभुम् ॥२९॥

ततः च मनवः काले ईजिरे ऋषयः अपरे पितरः बिबुधाः दैत्याः मनुष्याः क्रतुभिः विभुम् ॥२९॥

ततः	उसके पश्चात्	**विबुधाः**	देवताओंने,
काले च	समय समयपर	**दैत्याः**	दैत्योंने,
अपरे	दूसरे	**मनुष्याः**	मनुष्योंने,
मनवः	मनुओंने,	**क्रतुभिः**	यज्ञोंसे
ऋषयः	ऋषियोंने,	**विभुं**	उन सर्वव्यापककी
पितरः	पितरोंने,	**ईजिरे**	आराधनाकी ॥२९॥

नारायणे भगवति तदिदं विश्वमाहितम् ।
गूहीतमायोरुगुणः सर्गादावगुणः स्वतः ॥३०॥

नारायणे भगवति तत् इदं विश्वं आहितं गृहीतः माया उरुगुणः सर्गादाः अगुणः स्वतः ॥३०॥

तत् इदं	वह यह	**माया**	मायासे
विश्वं	विश्व	**उरुगुणः**	अनन्त गुण
भगवति	भगवान्	**गृहीतः**	ग्रहण किये हैं (लेकिन)
नारायणे	नारायणमें		
आहितं	स्थित है (जिनने)	**स्वतः**	स्वरूपसे
सर्गादाः	सृष्टिके आदिमें	**अगुणः**	निर्गुण हैं ॥३०॥

सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः ।
विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक् ॥३१॥

सृजामि तत् नियुक्तः अहं हरः हरति तत् वशः विश्वं पुरुष रूपेण परिपाति त्रिशक्ति धृक् ॥३१॥

तत्	उनके द्वारा	**पुरुष रूपेण**	पुरुष (विष्णु) के रूपसे
नियुक्तः	नियुक्त	**त्रिशक्ति**	(सृष्टि, स्थिति, प्रलयकी) तीनों शक्तियोंको
अहं	मैं		
विश्वं	विश्वकी		
सृजामि	सृष्टि करता हूँ,	**धृक्**	धारण करनेवाले (वे ही)
तत्	उनके		
वशः	वशमें रहकर	**परिपाति**	(इसका) पालन करते हैं ॥३१॥
हरः	शिव		
हरति	प्रलय करते हैं,		

इति तेऽभिहितं तात यथेदमनुपृच्छसि ।
नान्यद्भगवतः किंचिद्भाव्यं सदसदात्मकम् ॥३२॥

इति ते अभिहितं तात यथा इदं अनुपृच्छसि न अन्यत् भगवतः किञ्चित् भाव्यं सत् असत् आत्मकम् ॥३२॥

तात	वत्स नारद !	**ते इति**	वह सब (तुमको)
यथा इदं	जो कुछ	**अभिहितं**	बतला दिया ।
अनुपृच्छसि	तुमने पूछा है	**सत् असत्**	कारण कार्य

आत्मकं	स्वरूप	किंचित्	कुछ भी
भाव्यं	मनमें आनेवाला	भगवतः	भगवान्‌से
	तत्त्व	अन्यत् न	पृथक नहीं है ॥३२॥

न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते
न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः ।
न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथे
यन्मे हृदौत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः ॥३३॥

न भारती मे अङ्ग मृषा उपलक्ष्यते न वै क्वचित् मे मनसः मृषा गतिः न मे हृषीकाणि पतन्ति असत्पथे यत् मे हृदा उत्कण्ठ्यवता धृतः हरिः ॥ ३३ ॥

अङ्ग	प्रिय नारद !	मे	मेरी
मे	मेरी	हृषीकाणि	इन्द्रियाँ
भारती	वाणी	असत्पथे	कुमार्गमें
मृषा	झूठी	न	नहीं
न	नहीं	पतन्ति	गिरतीं
उपलक्ष्यते	लक्षित होती;	यत्	क्योंकि
मे	मेरे	मे	मैंने
मनसः	मनका	उत्कण्ठ्यवता	उत्कण्ठापूर्वक
गतिः	सङ्कल्प	हृदि	हृदयमें
क्वचित्	कभी भी	हरिः	श्रीहरिको
मृषा	झूठा	धृतः	धारण किया
न वै	नहीं ही होता;		है ॥३३॥

सोऽहं समाम्नायमयस्तपोमयः
प्रजापतीनामभिवन्दितः पतिः ।
आस्थाय योगं निपुणं समाहित-
स्तं नाध्यगच्छं यत आत्मसम्भवः ॥३४॥

स अहं समाम्नायमयः तपोमयः प्रजापतीनां अभिवन्दितः पतिः आस्थाय योगं निपुणं समाहितः तं न अध्यगच्छं यत आत्म सम्भवः ॥३४॥

स	वह
अहं	मैं
समाम्नायमयः	वेदमूर्ति,
तपोमयः	तपोमूर्ति,
प्रजापतीनां	प्रजापतियों द्वारा
अभिवन्दितः	नमस्कृत
पतिः	उनका स्वामी
योगं	योगमें
आस्थाय	स्थित होकर
निपुणं	भली प्रकार
समाहितः	एकाग्र होकर (भी)
यत	जिससे
आत्म	मेरी
सम्भवः	उत्पत्ति हुई
तं	उसे
न	नहीं
अध्यगच्छं	जान सका ॥३४॥

नतोऽस्म्यहं तच्चरणं समीयुषां
भवच्छिदं स्वस्त्ययनं सुमङ्गलम् ।
यो ह्यात्ममायाविभवं स्म पर्यगाद्
यथा नभः स्वान्तमथापरे कुतः ॥३५॥

नतः अस्मि अहं तत् चरणं समीयुषां भवच्छिदं स्वस्त्ययनं सुमङ्गलं यः हि आत्ममाया विभवं स्म परि अगात् यथा नभः स्वान्तं अथ अपरे कुतः ॥ ३५ ॥

समीयुषां	शरणागतोंके
भवच्छिदं	संसार (जन्म-मृत्यु) को काटनेवाले
स्वत्ययनं	कल्याणधाम
सुमङ्गलं	अत्यन्त मंगलमय
तत्	उनके
चरणं	चरणोंमें
अहं	मैं
नतः	प्रणत
अस्मि	हूँ ।
हि	क्योंकि
यथा	जैसे
नभः	आकाश
स्वान्तं	अपने अन्तको (नहीं जानता)
यः	(वैसे ही) वे (भी)
आत्ममाया	अपनी मायाके
विभवं	वैभवका
परि	पार
अगात्	नहीं पाते
स्मः	हैं
अथ	तब
अपरे	दूसरे
कुतः	कैसे पा सकते हैं ॥३५॥

नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदु-
र्न वामदेवः किमुतापरे सुराः ।
तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्विदं
विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे ॥३६॥

न अहं न यूयं यद् ऋतां गतिं विदुः न वामदेवः किमुत अपरे सुराः तत् मायया मोहित बुद्धयः तु इदं विनिर्मितं च आत्मसमं विचक्ष्महे ॥३६॥

यद्	जिनके
ऋतां	वास्तविक
गतिं	स्वरूपको
न अहं	न मैं,
न यूयं	न तुम लोग,
न वामदेवः	न शङ्करजी
विदुः	जानते हैं
अपरे	(तब) दूसरे
सुराः	देवता
किमुत	कैसे जान सकते हैं ?
तत्	उनकी
मायया	मायाके द्वारा
विनिर्मितं च	निर्मित
इदं	इस विश्वको
मोहित	मोहित
बुद्धयः तु	बुद्धिवाले तो
आत्मसमं	(ठीक ठीक न समझकर) अपनी बुद्धिके अनुसार
विचक्ष्महे	विवेचन करते हैं ॥३६॥

यस्यावतारकर्माणि गायन्ति ह्यस्मदादयः ।
न यं विदन्ति तत्त्वेन तस्मै भगवते नमः ॥३७॥

यस्य अवतार कर्माणि गायन्ति हि अस्मदादयः न यं विन्दन्ति तत्त्वेन तस्मै भगवते नमः ॥३७॥

यस्य	जिनके
अवतार	अबतारोंके
कर्माणि	कर्मोंका
अस्मदादयः	हम सब लोग
गायन्ति हि	गायन ही करते हैं,
यं	जिनको
तत्त्वेन	वास्तविक रूपसे
न	नहीं
विन्दन्ति	जानते,
तस्मै	उन
भगवते	भगवान्‌को
नमः	नमस्कार ॥३७॥

स एष आद्यः पुरुषः कल्पे कल्पे सृजत्यजः ।
आत्माऽऽत्मन्यात्मनाऽऽत्मानं संयच्छति च पाति च ॥३८॥

स एष आद्यः पुरुषः कल्पे कल्पे सृजति अजः आत्मा आत्मनि आत्मना आत्मानं संयच्छति च पाति च ॥३८॥

स एष	वे ये	**आत्मना**	अपने द्वारा ही
अजः	अजन्मा	**आत्मानं**	अपने ही को
आद्यः	आदि	**सृजति**	बनाते हैं
पुरुषः	पुरुष	**च पाति**	तथा पालन करते हैं
कल्पे कल्पे	प्रत्येक कल्पमें	**च संयच्छति**	तथा प्रलय भी करते हैं ॥३८॥
आत्मा	स्वयं		
आत्मनि	अपनेमें ही		

विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक् सम्यगवस्थितम् ।
सत्यं पूर्णमनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ॥३९॥

विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक् समक् अवस्थितं सत्यं पूर्णं अनादि अन्तं निर्गुणं नित्यं अद्वयम् ॥३९॥

विशुद्धं	(वे) (मायालेश रहित) शुद्धं,	**सत्यं**	(वे) सत्य (त्रिकाला वाधित)
केवलं	केवल	**पूर्णं**	परिपूर्ण,
ज्ञानं	ज्ञान स्वरूप,	**अनादि**	अनादि,
प्रत्यक्	अन्तरात्मा रूपमें	**अन्तं**	अनन्त
सम्यक्	भली प्रकार	**निर्गुणं**	निर्गुण,
अवस्थितं	स्थित हैं ।	**नित्यं**	नित्य,
		अद्वयं	अद्वितीय हैं ॥३९॥

ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः ।
यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥४०॥

ऋषे विन्दति मुनयः प्रशान्त आत्म इन्द्रिय आशयः यदा तदा एव असत् तर्कैः तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥४०॥

ऋषे	देवर्षि !
प्रशान्त	अत्यन्त शान्त
आत्म	चित्त
इन्द्रिय	इन्द्रियाँ (और)
आशयः	अन्तःकरणवाले
मुनयः	मुनि लोग
विदन्ति	(इस वर्णित रूपमें उनको) जानतेहैं, (किन्तु)
यदा	जब
असत्	निराधार
तर्कैः	कुतर्कोंसे
विप्लुतं	(उनका ज्ञान) ढक जाता है
तदा एव	उस ही समय (वे)
तिरोधीयेत	तिरोहित हो जाते हैं ॥४०॥

आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य
कालः स्वभावः सदसन्मनश्च ।
द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि
विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णुभूम्नः ॥४१॥

आद्यः अवतारः पुरुषः परस्य कालः स्वभावः सत् असत् मनः च द्रव्यं विकारः गुण इन्द्रियाणि विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः ॥४१॥

भूम्नः	सर्वव्यापक
पुरुषः परस्य	परम पुरुषका
आद्यः	पहिला
अवतारः	अवतार
कालः	काल,
स्वभावः	प्रकृति,
सत्	कारण,
असत्	कार्य,
मनः च	तथा मन,
द्रव्यं	पञ्चमहाभूत,
विकारः	अहंकार,
गुण	(सत्त्व, रज, तम) गुण,
इन्द्रियाणि	इन्द्रियाँ,
स्थास्नु	स्थावर (अचर),
चरिष्णु	जंगम (चर)
विराट्	विराट् ब्रह्माण्ड
स्वराट्	स्वयं प्रकाश (भगवान्का) है ॥४१॥

अहं भवो यज्ञ इमे प्रजेशा
दक्षादयो ये भवदादयश्च ।

स्वर्लोकपालाः खगलोकपाला
नृलोकपालास्तललोकपाला ॥४२॥

अहं भवः यज्ञ इमे प्रजेशाः दक्षादयः ये भवदादयः च स्वर्लोकपालाः खगलोकपालाः नृलोकपालाः तललोकपालाः ॥४२॥

अहं	मैं,
भवः	शङ्करजी,
यज्ञ	विष्णु भगवान्,
इमे	ये
प्रजेशाः	प्रजापति
दक्षादयः	दक्षादिक,
भवदादयः	तुम लोग (ऋषिगण)
च	तथा
ये	जो
स्वलोकपालाः	स्वर्गादि (अन्तरिक्ष) के पालक,
खगलोकपालाः	पक्षिलोकके पालक,
नृलोकपालाः	मनुष्यलोक (पृथ्वी) के पालक
तललोकपालाः	तललोक (अधो-लोकों) के पालक हैं ॥४२॥

गन्धर्वविद्याधरचारणेशा
ये यक्षरक्षोरगनागनाथाः ।
ये वा ऋषीणामृषभाः पितृणां
दैत्येन्द्रसिद्धेश्वरदानवेन्द्राः ।
अन्ये च ये प्रेतपिशाचभूत-
कूष्माण्डयादोमृगपक्ष्यधीशाः ॥४३॥

गन्धर्व विद्याधर चारण ईशाः ये यक्ष रक्ष उरग नाग नाथाः ये वा ऋषीणां ऋषभाः पितृणां दैत्येन्द्र सिद्धेश्वर दानवेन्द्राः अन्ये च ये प्रेत पिशाच भूत कूष्माण्ड यादः मृग पक्षि अधीशाः ॥४३॥

गन्धर्व	गन्धर्वों,
विद्याधर	विद्याधरों (और)
चारण	चारणोंके
ईशाः	स्वामी;
ये	जो
यक्ष	यक्ष,
रक्ष	रक्ष,
उरग	सर्प,
नाग नाथाः	नाग वर्गोंके, स्वामी हैं;

वा	अथवा
ये	जो
ऋषीणां	ऋषियोंमें
ऋषभाः	श्रेष्ठ हैं,
पितृणां	पितरोंमें (श्रेष्ठ हैं);
दैत्येन्द्र	दैत्योंके स्वामी,
सिद्धेश्वर	सिद्धोंके स्वामी
दानवेन्द्राः	दानवोंके स्वामी;
अन्ये च	दूसरे भी
ये प्रेत	जो प्रेत,
पिशाच	पिशाच,
भूत	भूत,
कूष्माण्ड	कूष्माण्ड,
यादः	जलजीव,
मृग	पशु,
पक्षि	पक्षी,
अधीशाः	(वर्गोंके) स्वामी हैं ॥४३॥

यत्किं च लोके भगवन्महस्व-
दोजःसहस्वद् बलवत् क्षमावत् ।
श्रीह्रीविभूत्यात्मवदद्भुतार्णं
तत्त्वं परं रूपवदस्वरूपम् ॥४४॥

यत् किंच लोके भगवन् महस्वत् ओजः सहस्वत् बलवत् क्षमावत् श्री ह्री विभूति आत्मवत् अद्भुत अर्णं तत्त्वं परं रूपवत् अस्वरूपम् ॥४४॥

लोके	(एवं) लोकमें
यत्	जो
किंच	कुछ
भगवन्	ऐश्वर्य युक्त,
महस्वत्	इन्द्रिय बलयुक्त,
ओजः	ओजस्वी,
सहस्वत्	शरीर-बलयुक्त
बलवत्	बलवान्,
क्षमावत्	क्षमाशील है;
श्री	शोभा,
ह्री	लज्जा,
विभूति	सम्पत्तिसे
आत्मवत्	अपने ही समान (अतुलनीय);
अद्भुत	अद्भुत
अर्णं	वर्णवाले
तत्त्वं	तत्त्व
रूपवत्	रूपवान् हों या
अस्वरूपं	रूप रहित (सभी)
परं	भगवत्स्वरूप ही हैं ॥४४॥

प्राधान्यतो यानृष आमनन्ति
लीलावतारान् पुरुषस्य भूम्नः ।

आपीयतां कर्णकषायशोषा-

ननुक्रमिष्ये त इमान् सुपेशान् ॥४५॥

प्राधान्यतः यान् ऋष आमनन्ति लीलावतारान् पुरुषस्य भूम्नः आपीयता, कर्ण कषाय शोषान् अनुक्रमिष्ये त इमान् सुपेशान् ॥४५॥

प्राधान्यतः	प्रधानतः		(श्रवण-कुसंगके दोषको)
यान्	जिनका	**शोषान्**	दूर करनेवाले
ऋष	शास्त्र	**लीलावतारान्**	लीलासे ग्रहण किये अवतारोंका
आमनन्ति	वर्णन करते हैं (उन)	**अनुक्रमिष्ये**	क्रमशः वर्णन करूँगा
भूम्नः	भूमा	**आपीयतां**	(तुम इस कथामृतका) पान करो ॥४५॥
पुरुषस्य	पुरुषके		
त इमान	उन इन		
सुपेशान्	परम मधुर		
कर्णकषाय	कर्णके मलको		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः

अथ सप्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच-

यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत्
क्रौडीं तनुं सकलयज्ञमयीमनन्तः ।
अन्तर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं
तं दंष्ट्रयाद्रिमिव वज्रधरो ददार ॥१॥

यत्र उद्यतः क्षितितल उद्धरणाय विभ्रत् क्रौडीं तनु सकल यज्ञमयीं अनन्तः अन्तः महार्णव उपागतं आदिदैत्यं तं द्रंष्ट्रया अद्रिं इव वज्रधरः ददार ॥ १ ॥

क्षितितल	पृथ्वीतलका	**तं**	उस
उद्धरणाय	उद्धार करनेके लिए	**आदि दैत्यं**	आदि दैत्य (हिरण्याक्षको)
उद्यतः	प्रस्तुत		
यत्र	जहाँ (ब्रह्मलोकमें)	**वजधरः**	(जैसे) वज्रधारी इन्द्र
सकल	सम्पूर्ण		
यज्ञमयीं	यज्ञस्वरूप	**अद्रिं**	पर्वतको (बिजली गिराकर फाड़ देते हैं)
क्रौडीं तनुं	वाराहशरीर		
विभ्रत्	धारण करके		
अनन्तः	भगवान् अनन्त	**इव**	इसी प्रकार
महार्णव	प्रलय समुद्रके	**दंष्ट्रया**	दाढ़से
अन्तः	भीतर	**ददार**	फाड़ दिया ॥१॥
उपागतं	आये हुए		

विशेष—क्षितितल पृथ्वीका ऊपरी भाग ही जलके ऊपर आता है। उसीको प्रलय समुद्रसे ऊपर उठाना था। समुद्र तो पृथ्वीपर ही रहेगा। अब भी तीन चौथाई पृथ्वीपर समुद्र है।

जातो रुचेरजनयत् सुयमान् सुयज्ञ
आकूतिसूनुरमरानथ दक्षिणायाम् ।

लोकत्रयस्य महतीमहरद् यदार्तिं
स्वायम्भुवेन मनुना हरिरित्यनूक्तः ॥२॥

जातः रुचेः अजनयत् सुयमान् सुयज्ञ आकूति सूनुः अमरान् अथ दक्षिणायां लोकत्रयस्य महतीं अहरत् यत् आर्तिं स्वायम्भुवेन मनुना हरिः इति अनूक्तः ॥ २ ॥

रुचेः	(फिर वे प्रजापति) रुचिकी पत्नी	**अमरान्**	देवताओंको
		अजनयत्	उत्पन्न किया।
आकूति	आकूतिके	**यत्**	क्योंकि (उनने)
सूनुः	पुत्र (बनकर)	**लोकत्रयस्य**	तीनोंलोकोंके
सुयज्ञ	सुयज्ञ नामसे	**महतीं आर्तिं**	महान् क्लेश
जातः	अवतरित हुए,	**अहरत्**	हरण कर लिये
अथ	उस समय	**स्वायम्भुवेन**	(इसीसे) स्वायम्भुव
दक्षिणायां	दक्षिणा नामक पत्नीमें	**मनुना**	मनुने (उनको)
		हरिः इति	'हरि' नामसे
सुयमान्	सुयम नामक	**अनूक्तः**	पुकारा ॥२॥

जज्ञे च कर्दमगृहे द्विज देवहूत्यां
स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगतिं स्वमात्रें ।
ऊचे ययाऽऽत्मशमलं गुणसङ्गपङ्क-
मस्मिन् विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे ॥३॥

जज्ञे च कर्दमगृहे द्विज देवहूत्यां स्त्रीभिः समं नवभिः आत्मगतिं स्वमात्रे ऊचे यया आत्म शमलं गुणसङ्ग पङ्कं अस्मिन् विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे ॥ ३ ॥

द्विज	नारद !	**स्त्रीभिः**	बहिनोंके
कर्दमगृहे	प्रजापति कर्दमके घरमें	**समं**	साथ
		जज्ञे	(भगवान्) उत्पन्न हुए।
च	भी		
देवहूत्यां	देवहूतिसे	**स्वमात्रे**	(उन्होंने) अपनी माताको
नवभिः	नौ		

आत्मगतिं	आत्मतत्त्वका	**शमलं**	मलिनताको
ऊचे	उपदेश किया,	**विधूय**	नष्ट करके
यया	जिसके द्वारा	**अस्मिन्**	इसी जन्ममें (वे)
गुणसङ्गः	गुणोंकी आसक्ति रूपी	**कपिलस्य**	भगवान् कपिलके
		गतिं	स्वरूपको
पङ्कं	कीचड़ रूपी	**प्रपेदे**	प्राप्त हो गयीं ॥३॥
आत्म	चित्तकी		

विशेष—त्रिगुणमय संसारके शरीर नामादिकी आसक्ति ही वह कीचड़ है जो चित्तको मलिन किये है। इसके नष्ट करनेपर ही आत्मतत्त्व या भगवत्प्राप्ति होती है।

अत्रेरपत्यमभिकाङ्क्षत आह तुष्टो
दत्तो मयाहमिति यद् भगवान् स दत्तः।
यत्पादपङ्कजपरागपवित्रदेहा
योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयाद्याः ॥४॥

अत्रेः अपत्यं अभिकांक्षत आह तुष्टः दत्तः मया अहं इति यद् भगवान् स दत्तः यत् पादपङ्कज पराग पवित्र देहा योग ऋद्धि आपुः उभयीं यदु हैहय आद्याः ॥ ४ ॥

अत्रेः	(प्रजापति महर्षि) अत्रिके	**दत्तः**	दत्त (दत्तात्रेय रूपसे उत्पन्न) हुए
अपत्यं	पुत्रकी	**यत्**	जिनके
अभिकांक्षत	कामना करनेपर	**पादपङ्कज**	चरण-कमलकी
यत्	जब	**पराग**	धूलिसे
तुष्टः	संतुष्ट होकर	**पवित्रदेहाः**	पवित्र शरीर
भगवान्	भगवान्ने	**यदु**	यदु (और)
आह	कहा—	**हैहयआद्याः**	सहस्रार्जुन आदिने
मया	"मैंने	**योग**	योगकी
अहं इति	अपनेको ही	**उभयींऋद्धिं**	भोग मोक्ष दोनों वैभव
दत्तः	दिया", (तब)		
स	वे ही (भगवान्)	**आपुः**	प्राप्त किया ॥४॥

तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे
आदौ सनात् स्वतपसः स चतुःसनोऽभूत् ।
प्राक्कल्पसम्प्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं
सम्यग् जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन् ॥५॥

तप्तं तपः विविध लोक सिसृक्षया मे आदौ सनात् स्वतपसः स चतुः सनः अभूत् प्राक् कल्प सम्प्लव विनष्टं इह आत्मतत्त्वं सम्यक् जगाद मुनयः यत् अचक्षत् आत्मन् ॥५॥

मे	मैंने	**प्राक् कल्प**	पहिले कल्पके
विविध लोक	अनेक लोकोंकी	**सम्प्लव**	प्रलयमें
सिसृक्षया	सृष्टि करनेकी इच्छासे	**विनष्टं**	विस्मृत हुए
तपः	तपस्या	**आत्मतत्त्वं**	आत्मतत्त्वके
तप्तं	की ।		ज्ञानको
स्वतपसः	उस अपनी तपस्यासे	**इह**	इस कल्पमें
आदौ सनात्	प्रारम्भमें सन् नामवाले	**सम्यक्**	भली प्रकार
		जगाद	उपदेश किया
स	वे	**यत्**	जिससे
चतुः	चार	**मुनयः**	मुनिगण
सनः	सन्—तपस्वी (सनक् सनन्दनन्द सनातन,सनत्कुमार)	**आत्मतत्त्वं**	आत्मतत्त्वका
		अचक्षत्	साक्षात्कार करते हैं ॥५॥
अभूत	उत्पन्न हुए		

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां
नारायणो नर इति स्वतपःप्रभावः ।
दृष्ट्वाऽऽत्मनो भगवतो नियमावलोपं
देव्यस्त्वनङ्गपृतना घटितुं न शेकुः ॥६॥

धर्मस्य दक्षदुहितरि अजनिष्ट मूर्त्यां नारायणः नर इति स्वतपः प्रभावः दृष्ट्वा आत्मनः भगवतः नियम अवलोपं देव्यः तु अनङ्ग पृतना घटितुं न शेकुः ॥६॥

धर्मस्य	धर्मकी (पत्नी)
दक्षदुहितरि	दक्षकी पुत्री
मूर्त्यां	मूर्तिसे (वे)
नारायणः	नारायण
नर	(और) नर
इति	इन नामोंसे
अजनिष्ट	उत्पन्न हुए ।
स्वतपः	उनके तपका
प्रभावः	प्रभाव
आत्मनः	उनके अपने जैसा (अद्वितीय) है ।
दृष्ट्वा	उसे देखकर
अनङ्गः	कामदेवकी
पृतना	सेनाकी
देव्यः	देवियाँ (अप्सराएँ) भी
भगवतः	भगवान्‌के
नियम	नियम (तप) का
अवलोपं	नाश
घटितुं	करनेमें
शेकुः	सफल
न	नहीं हुईं ॥६॥

कामं दहन्ति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या
रोषं दहन्तमुत ते न दहन्त्यसह्यम् ।
सोऽयं यदन्तरमलं प्रविशन् बिभेति
कामः कथं नु पुनरस्य मनः श्रयेत ॥७॥

कामं दहन्ति कृतिनः ननु रोष दृष्ट्या रोषं दहन्तं उत ते न दहन्ति असह्यं सः अयं यत् अन्तरं अलं प्रविशन् बिभेति कामः कथं नु पुनः अस्य मनः श्रयेत ॥७॥

कृतिनः	पुण्य पुरुष (शिवादि)
ननु	निश्चय
रोष	क्रोध भरी
दृष्ट्या	दृष्टिसे
काम	कामको
दहन्ति	जला देते हैं
उत	किन्तु
दहन्तं	(अपने आपको) जलानेवाले
असह्यं रोषं	असह्य क्रोधको
ते न	वे नहीं
दहन्ति	जला पाते ।
सः	वही (क्रोध)
अयं यत्	इन (नर-नारायण)के
अन्तरं	चित्तमें
प्रविशन्	प्रवेश करनेमें
अलं	अत्यन्त
बिभेति	डरता है ।
पुनः	फिर
अस्य	इनके
मनः	मनमें
कामः	काम

नु	तो	श्रयेत	आश्रय ले सकता
कथं	कैसे		है ॥७॥

विद्धः सपत्न्युदितपत्रिभिरन्ति राज्ञो
बालोऽपि सन्नुपगतस्तपसे वनानि ।
तस्मा अदाद् ध्रुवगतिं गृणते प्रसन्नो
दिव्याः स्तुवन्ति मुनयो यदुपर्यधस्तात् ॥८॥

विद्धः सपत्न्य उदित पत्रिभिः अन्ति राज्ञः बालः अपि सन् उपगतः तपसे वनानि तस्मा अदात् ध्रुव गतिं गृणते प्रसन्नः दिव्याः स्तुवन्ति मुनयः यत् उपरि अधस्तात् ॥८॥

राज्ञः	राजा (उत्तानपाद)के	गृणते	(उनके द्वारा) स्तुति करनेपर
अन्ति	समीप ही	प्रसन्नः	प्रसन्न होकर (भगवान्ने)
सपत्न्य	सौतेली माँ (सुरुचि) के	तस्मा	उनको
उदित	कहे हुए	ध्रुवगतिं	(वह) ध्रुवपद
पत्रिभिः	(वाग्) वाणोंसे	अदात्	दिया
विद्धः	बींधे जानेपर	यत्	जिसकी
बालः	(ध्रुव) बालक	उपरि	ऊपर
सन्	होनेपर	अधस्तात	नीचे (परिक्रमा करते)
अपि	भी	दिव्याः	दिव्य
वनानि	वनमें	मुनयः	मुनि (सप्तर्षि)
तपसे	तप करने	स्तुवन्ति	स्तुति करते हैं ॥८॥
उपगतः	चले गये ।		

यद्वेनमुत्पथगतं द्विजवाक्यवज्र-
विप्लुष्टपौरुषभगं निरये पतन्तम् ।
त्रात्वार्थितो जगति पुत्रपदं च लेभे
दुग्धा वसूनि वसुधा सकलानि येन ॥९॥

यत् वेनं उत्पथगतं द्विज वाक्य वज्र विप्लुष्टः पौरुष भगं निरये पतन्तं त्रात्वा अर्थितः जगति पुत्रपदं च लेभे दुग्धाः वसूनि वसुधाः सकलानि येन ॥९॥

यत्	जब	अर्थितः	(ऋषियों द्वारा) प्रार्थना करनेपर
उत्पथगतं	कुमार्गगामी	त्रात्वा	(उसकी) रक्षा करके
वेनं	वेनके	जगति	(भगवान्‌ने) संसारमें
द्विजवाक्य	ब्राह्मणोंकी वाणीरूप	पुत्रपदं	पुत्रत्व
वज्र	वज्रसे	च	भी
पौरुष	पौरुष (और)	लेभे	प्राप्त किया (और)
भगं	ऐश्वर्य	येन	जिन्होंने
विप्लुष्टः	नष्ट हो गये,	वसुधाः	(गो रूप) पृथ्वीसे
निरये	(तब उसके) नरकमें	सकलानि	सब
पतन्तं	गिरते समय	वसूनि	सम्पत्तियाँ
		दुग्धाः	दोहन कीं ॥८॥

नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनु-
र्यो वै चचार समदृग् जडयोगचर्याम् ।
यत् पारमहंस्यमृषयः पदमामनन्ति
स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः ॥१०॥

नाभेः असावृषभः आस सुदेवि सूनुः यः वै चचार समदृक् जडयोग चर्यां यत् पारमहंस्यं ऋषयः पदं आमनन्ति स्वस्थ प्रशान्तकरणः परिमुक्तः सङ्गः ॥१०॥

असा	ये (भगवान्)	स्वस्थ	अपने स्वरूपमें स्थित होकर,
नाभेः	राजा नाभिकी (पत्नी)	प्रशान्तकरणः	इन्द्रियोंको शान्त करके,
सुदेवि	सुदेवीके	सङ्गः	आसक्तिको
सुनुः	पुत्र	परिमुक्तः	त्यागकर,
वृषभः	ऋषभ	जड़योग	जड़योगकी
आस	हुए,	चर्यां	चर्या (विधि) का
यः वै	जिन	चचार	पालन किया,
समदृक्	समदर्शीने		

यत्	जिसे	पारहंस्य पदं	परमहंस पद
ऋषयोः	ऋषिगण		(अवधूतचर्या)
		आमनन्ति	कहते हैं ॥१०॥

सत्रे ममास भगवान् हयशीरषाथो
साक्षात् स यज्ञपुरुषस्तपनीयवर्णः ।
छन्दोमयो मखमयोऽखिलदेवतात्मा
वाचो बभूवुरुशतीःश्वसतोऽस्य नस्तः ॥११॥

सत्रे मम आस भगवान् हयशीर्षाः अथो साक्षात् स यज्ञपुरुषः तपनीयवर्णः छन्दोमयः मखमयः अखिल देवतात्मा वाचः बभूवुः उशतीः श्वसतः अस्य नस्तः ॥११॥

अथो	इसके पश्चात्	छन्दोमयः	वेदमय,
मम	मेरे	मखमयः	यज्ञमय और
सत्रे	यज्ञमें	अखिल	अखिल
साक्षात् भगवान्	साक्षात् भगवान्	देवतात्मा	देवस्वरूप हैं ।
यज्ञपुरुषः	यज्ञपुरुष	अस्य	इनकी
तपनीयवर्णः	स्वर्णके समान	नस्तः	नासिकासे
	कान्तिवाले	श्वसतः	श्वास रूपमें
हयशीर्षाः आस	हयशीर्ष (हयग्रीव)	उशतीः	पवित्र
	हुए	वाचः	वेदवाणी
स	वे	बभूवुः	प्रकट हुई ॥११॥

मत्स्यो युगान्तसमये मनुनोपलब्धः
क्षोणीमयो निखिलजीवनिकायकेतः ।
विस्रंसितानुरुभये सलिले मुखान्मे
आदाय तत्र विजहार ह वेदमार्गान् ॥१२॥

मत्स्यः युगान्त समये मनुना उपलब्धः क्षोणीमयः निखिल जीवः निकायः केतः विस्रंसितान् उरुभये सलिले मुखात् मे आदाय तत्र विजहार ह वेदमार्गान् ॥१२॥

युगान्त समये	(चाक्षुष मनुके) युगके अन्त समयमें
मनुना	(सत्यव्रत भावी) मनुके द्वारा
मत्स्यः	मत्स्य रूपमें (भगवान्)
उपलब्धः	प्राप्त हुए (और)
निखिल	सम्पूर्ण
जीवः	जीवोंको
निकायः	धारण करनेवाली
क्षोणीमयः	पृथ्वी (रूप नौका)के
उरुभये	महाभयसे
केतः	आश्रय हुए (एवं)
सलिले	(प्रलयके) जलमें
मुखात् मे	मेरे मुखसे
विस्रंसितान्	गिरे हुए
वेदमार्गान्	वेदोंको
आदाय	लेकर
तत्र ह	वहाँ ही
विजहार	विहार करते रहे ॥१२॥

क्षीरोदधावमरदानवयूथपाना-
मुन्मथ्नताममृतलब्धय आदिदेवः ।
पृष्ठेन कच्छपवपुर्विदधार गोत्रं
निद्राक्षणोऽद्रिपरिवर्तकषाणकण्डूः ॥१३॥

क्षीरोदधाः अमर दानव यूथपानां उन्मथ्नतां अमृत लब्धय आदिदेवः पृष्ठेन कच्छपवपुः विदधार गोत्रं निद्राक्षणः अद्रि परिवर्त कषाण कण्डूः ॥१३॥

अमृत	अमृतकी
लब्धय	प्राप्तिके लिए
अमर	देवता (और)
दानव	दैत्य
यूथपानां	यूथपतियों द्वारा
क्षीरोदधा	क्षीर सागर
उन्मथ्नतां	मन्थनके समय
आदिदेवः	आदिदेव (भगवान्) ने
कच्छपवपुः	कच्छप शरीरसे
पृष्ठेन	पीठपर
गोत्रं	पर्वतको
विदधार	धारण किया,
अद्रि	(उस) पर्वतके
परिवर्त	घूमनेसे
कण्डूः	खुलजाहट
कषाण	मिटनेसे
निद्राक्षणः	(सुखकी) नींदके क्षण बिता सके ।१३।

त्रैविष्टपोरुभयहा स नृसिंहरूपं
कृत्वा भ्रमद्भ्रुकुटिदंष्ट्रकरालवक्त्रम् ।
दैत्येन्द्रमाशु गदयाभिपतन्तमारा-
दूरौ निपात्य विददार नखैः स्फुरन्तम् ॥१४॥

त्रैविष्टप उरु भयहा स नृसिंह रूपं कृत्वा भ्रमत् भृकुटि दंष्ट्र कराल वक्त्रं दैत्येन्द्रं आशु गदया अभिपतन्तं आरात् उरौ निपात्य विददार नखैः स्फुरन्तम् ॥१४॥

त्रैविष्टप	स्वर्गके (देवताओंके)	**आरात्**	समीप ही
उरु	भारी	**गदया**	गदा लेकर
भयहा	भयको नष्ट करनेके लिए	**अभिपतन्तं**	झपटते
		दैत्येन्द्रं	दैत्येन्द्र (हिरण्यकशिपु) को
स	उन (भगवान्) ने	**आशु**	शीघ्र
भ्रमत्	घूमती हुई	**उरौ**	जांघोंपर
भृकुटि	भौहों (और)	**निपात्य**	गिराकर
कराल	भयङ्कर	**स्फुरन्तं**	चमकते
दष्ट्रं	दाँतों युक्त	**नखैः**	नखोंसे
वक्त्रं	मुखवाला	**विददार**	फाड़ डाला ॥१४॥
नृसिंह रूपं	नृसिंह रूप		
कृत्वा	धारण करके		

अन्तःसरस्युरुबलेन पदे गृहीतो
ग्राहेण यूथपतिरम्बुजहस्त आर्तः ।
आहेदमादिपुरुषाखिललोकनाथ
तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ॥१५॥

अन्तः सरसि उरु बलेन पदे गृहीतः ग्राहेण यूथपतिः अम्बुज हस्तः आर्तः आह इदं आदिपुरुष अखिल लोकनाथ तीर्थश्रवः श्रवणमंगल नामधेय ॥१५॥

सरसि	सरोवरके	**उरु**	बहुत
अन्तः	भीतर	**बलेन**	बलवान

ग्राहेण	मगर द्वारा
पदे	पैर
गृहीतः	पकड़ लिए जानेपर
आर्तः	व्याकुल होकर
यूथपतिः	(हाथियोंके) यूथके स्वामी गजराजने
अम्बुजहस्तः	सूंड़में कमल लेकर
इदं	यह
आह	कहा—
आदिपुरुष	आदिपुरुष !
अखिल लोकनाथ	अखिल लोकनाथ !
तीर्थश्रवः	पवित्र कीर्ति !
श्रवण मंगल	श्रवण मात्रसे ही मंगल करनेवाले
नामधेय	नामों वाले ॥१५॥

श्रुत्वा हरिस्तमरणार्थिनमप्रमेय-
श्चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः ।
चक्रेण नक्रवदनं विनिपाटच तस्मा-
द्धस्ते प्रगृह्य भगवान् कृपयोज्जहार ॥१६॥

श्रुत्वा हरिः तं अरणं अर्थिनं अप्रमेयः चक्रायुधः पतगराज भुजा अधिरूढः चक्रेण नक्र वदनं विनिपाट्य तस्मात् हस्ते प्रगृह्य भगवान् कृपया उज्जहार ॥१६॥

तं	उस
अर्थिनं	प्रार्थीकी
अरणं	रक्षाकी पुकार
श्रुत्वा	सुनकर,
अप्रमेयः	असीम पराक्रम
हरिः	श्रीहरि
चक्रायुधः	अपना अस्त्र चक्र लेकर
पतगराज	गरुड़के
भुजा	कन्धेपर
अधिरूढः	आरूढ़ होकर (वहाँ पहुँचे),
चक्रेण	(और) चक्रसे
नक्र	मगरके
वदनं	मुखको
विनिपाट्य	फाड़कर,
हस्ते	(गजराजकी) सूंड़
प्रगृह्य	पकड़कर
भगवान्	भगवान्‌ने
कृपया	कृपा करके
तस्मात्	उस (मगर) से
उज्जहार	(गजराजका) उद्धार किया ॥१६॥

ज्यायान् गुणैरवरजोऽप्यदितेः सुतानां
लोकान् विचक्रम इमान् यदथाधियज्ञः ।

क्ष्मां वामनेन जगृहे त्रिपदच्छलेन
याच्ञामृते ऽथि चरन् प्रभुभिर्न चाल्यः ॥१७॥

ज्यायान् गुणैः अवरजः अपि अदितेः सुतानां लोकान् विचक्रम इमान् यत् यथा अधियज्ञः क्ष्मां वामनेन जगृहे त्रिपदः छलेन याञ्चां ऋते पथिचरन् प्रभुभिः न चाल्यः ॥१७॥

अदितेः	अदितिके	**इमान्**	इस
सुतानां	पुत्रोंमें	**क्ष्मां**	पृथ्वी आदि
अवरजः	सबसे छोटे	**लोकान्**	लोकोंको
अपि	होनेपर भी	**विचक्रम**	मापकर
गुणैः	गुणोंसे	**जगृहे**	ले लिया।
ज्यायान्	बड़े थे	**पथिचरन्**	जो ठीक मार्गपर
यत्	क्योंकि		चल रहा है
अधियज्ञः	यज्ञपुरुष	**प्रभुभिः**	समर्थके लिए भी
	(भगवान्ने)	**याञ्चां**	मांगनेको
वामनेन	वामन रूपसे	**ऋते**	छोड़कर
त्रिपदः	तीन पैरके	**चाल्यः**	धक्का देने योग्य
छलेन	छलसे		(वह)
यथा	जैसे ही	**न**	नहीं है ॥१७॥
	(सङ्कल्प लिया)		

विशेष—जो ठीक मार्गपर जा रहा है, आप कितने भी समर्थ हों उसे धक्का देकर आगे निकलना उचित नहीं है। एकमात्र उपाय है कि उससे एक ओर होकर आगे जानेका मार्ग माँगिये।

नार्थो बलेरयमुरुक्रमपादशौच-
मापः शिखा धृतवतो विबुधाधिपत्यम् ।
यो वै प्रतिश्रुतमृते न चिकीर्षदन्य-
दात्मानमङ्ग शिरसा हरयेऽभिमेने ॥१८॥

न अर्थः बलेः अयं उरुक्रम पादशौचं आपः शिखा धृतवतः विबुध आधिपत्यं यः वै प्रतिश्रुतं ऋते न चिकीर्षत् अन्यत् आत्मानं अंग शिरसा हरये अभिमेने ॥१८॥

अंग	प्रिय नारद !
उरुक्रम	अनन्त पराक्रम वामन भगवान्‌के
पादशौचं आपः	चरण-प्रक्षालनका पवित्र जल (चरणामृत)
शिखा	मस्तकपर
धृतवतः	धारण करनेवाले
बलेः	बलिके लिए
विबुध	देवताओंके
आधिपत्यं	स्वामित्व (इन्द्र-पद) से
अयं अर्थः	यह प्रयोजन
न	नहीं था
यः	जिन्होंने
वै	निश्चयपूर्वक
प्रतिश्रुतं	अपनी प्रतिज्ञाकी (पूर्ति)
ऋते	छोड़कर
अन्यत्	दूसरा (कुछ)
न	नहीं
चिकीर्षत्	करना चाहा (प्रतिज्ञा पूर्तिके लिए)
आत्मानं	अपने
शिरसा	मस्तकको
हरये	भगवान्‌को
अभिमेने	अर्पित कर दिया ॥१८॥

तुभ्यं च नारद भृशं भगवान् विवृद्ध-
भावेन साधुपरितुष्ट उवाच योगम् ।
ज्ञानं च भागवतमात्मसतत्त्वदीपं
यद्वासुदेवशरणा विदुरञ्जसैव ॥१९॥

तुभ्यं च नारद भृशं भगवान् विवृद्धः भावेन साधु परितुष्टः उवाच योगं ज्ञानं च भागवतं आत्म सतत्त्व दीपं यत् वासुदेव शरणाः विदुः अञ्जसा एव ॥१९॥

नारद	नारद !
तुभ्यं	तुमको
च	भी
भृशं	अत्यन्त
विवृद्धः	बढ़े हुए (तीव्र)
भावेन	भावसे
साधु	भली प्रकार
परितुष्टः	सन्तुष्ट हुए
भगवान्	भगवान्‌ने
योगं	योग
आत्म	आत्माके
सतत्त्व दीपं	तत्त्वको प्रकाशित करनेवाले
भागवतं	भक्ति मार्गके
स	साथ
ज्ञानं	ज्ञानका

च	भी	**वासुदेव**	वासुदेवकी
उवाच	उपदेश (हंस रूपसे) किया ।	**शरणाः**	शरण लेनेवाले
		एव	ही
यत्	जिस (ज्ञान) को	**विदुः**	जानते हैं ॥१८॥
अञ्जसा	सरलतासे		

चक्रं च दिक्ष्वविहतं दशसु स्वतेजो
मन्वन्तरेषु मनुवंशधरो बिभर्ति ।
दुष्टेषु राजसु दमं व्यदधात् स्वकीर्ति
सत्ये त्रिपृष्ठ उशतीं प्रथयंश्चरित्रैः ॥२०॥

चक्रं च दिक्षु अवहितं दशसु स्वतेजः मन्वन्तरेषु मनुवंशधरः बिभर्ति दुष्टेषु राजसु दमं व्यदधात् स्वकीर्ति सत्ये त्रिपृष्ठः उशतीं प्रथयं चरित्रैः ।२०।

मन्वन्तरेषु	मन्वन्तरोंमें	**राजसु**	राजाओंके लिए
मनुवंशधरः	मनुवंशकी रक्षा करते हुए	**दमं**	दण्ड
		व्यदधात्	विधान करते हैं
दशसु	दसो	**त्रिपृष्ठः**	त्रिलोकीके ऊपर
दिक्षु	दिशाओंमें	**सत्ये**	सत्य (ब्रह्म) लोक
अवहितं	बेरोकटोक	**च**	तक
स्वतेजः	अपने तेजका	**चरित्रैः**	अपने चरित्रोंसे
चक्रं	चक्र	**स्वकीर्ति उशतीं**	अपनी निर्मल कीर्ति
बिभर्ति	धारण करते हैं	**प्रथयम्**	विस्तारित कर देते हैं ॥२०॥
च	और		
दुष्टेषु	दुष्ट		

धन्वन्तरिश्च भगवान् स्वयमेव कीर्ति-
र्नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति ।
यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्ध
आयुश्च वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके ॥२१॥

धन्वन्तरिः च भगवान् स्वयं एव कीर्तिः नाम्ना नृणां पुरु रुजां रुज आशु हन्ति यज्ञे च भागं अमृत आयुः अवावरुन्ध आयुः च वेदं अनुशास्ति अवतीर्य लोके ॥२१॥

भगवान्	भगवान्
धन्वन्तरिः च	धन्वन्तरि भी
स्वयं एव	अपने ही
नाम्ना	नामके द्वारा
पुरु रुजां	बहुत रोगी
नृणां	मनुष्योंके
रुज	रोगको
आशु	शीघ्र
हन्ति	नाश कर देते हैं
कीर्तिः	ऐसी (उनकी) प्रसिद्धि है,
यज्ञे च	यज्ञमें भी (वैद्य होनेपर भी)
भागं	उनका भाग है
अमृत	अमृत (पिलाकर)
आयुः	(देवताओंकी) आयुको
अवावरुन्ध	रोक दिया (उन्हें अमर कर दिया)
च लोके	तथा संसारमें
अवतीर्य	अवतार लेकर
आयुः वेदं	आयुर्वेदका
अनुशास्ति	प्रवर्तन किया ॥२१॥

क्षत्रं क्षयाय विधिनोपभृतं महात्मा
ब्रह्मध्रुगुज्झितपथं नरकार्तिलिप्सु ।
उद्धन्त्यसाववनिकण्टकमुग्रवीर्य-
स्त्रिःसप्तकृत्व उरुधारपरश्वधेन ॥२२॥

क्षत्रं क्षयाय विधिना उपभृतं महात्मा ब्रह्मध्रुक् उज्झितपथं नरक आर्तिलिप्सुः उद्धन्ति असौ अवनि कण्टकं उग्रवीर्यः त्रिःसप्त कृत्वः उरुधार परशुअधेन ॥२२॥

विधिना	संयोगवश
उपभृतं	बढ़े हुए
ब्रह्मध्रुक्	ब्राह्मण-द्रोही
उज्झितपथं	सन्मार्ग विमुख
नरक	नरककी
आर्तिलिप्सुः	आर्ति चाहनेवाले (नारकीय)
अवनि	पृथ्वीके
कण्टकं	कण्टक रूप
क्षत्रं	क्षत्रियोंके
क्षयाय	विनाशके लिए
असौ	इन
उग्रवीर्य	प्रचण्डतेजा
महात्मा	परम पराक्रमी (परशुराम) ने
उरुधार	तीक्ष्ण धारवाले
परशु	फरसेके
अधेन	प्रहारसे
त्रिसप्त	इक्कीस बार
कृत्वः	करके
उद्धन्ति	मारा ॥२२॥

अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश
इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे ।
तिष्ठन् वनं सदयितानुज आविवेश
यस्मिन् विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छत् ॥ ३॥

अस्मत् प्रसाद सुमुखः कलयाः कलेश इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोः निदेशे तिष्ठन् वनं स दयिता अनुज आविवेश यस्मिन् विरुध्य दशकन्धरः आर्तिं आर्च्छत् ॥२३॥

अस्मत्	हमपर	**अनुज**	छोटे भाई (लक्ष्मण) के
प्रसाद	कृपासे	**स**	साथ
सुमुखः	प्रसन्न होकर	**वनं**	वनमें
कलेशः	कलाओंके स्वामी	**तिष्ठन्**	रहने
कलयाः	(भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न) कलाओंके साथ	**आविवेश**	गये ।
		यस्मिन्	जिनसे
इक्ष्वाकुवंश	इक्ष्वाकुके वंशमें	**विरुध्य**	विरोध करके
अवतीर्य	अवतार लेकर	**दशकन्धरः**	रावण
गुरोः	पिताकी	**आर्तिं**	संकटको
निदेशे	आज्ञासे	**आर्च्छत्**	प्राप्त हुआ (मारा (गया ॥२३॥
दयिता	पत्नी		

यस्मा अदादुदधिरूढभयाङ्गवेपो
मार्गं सपद्यरिपुरं हरवद् दिधिक्षोः ।
दूरे सुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या
तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥२४॥

यस्मा अदात् उदधि रूढ भय अङ्गवेप. मार्गं सपदि अरिपुरं हरवत् दिधिक्षोः दूरे सुहृत् मथित रोष सुशोण दृष्ट्याः तातप्यमान मकर उरग नक्र चक्रः ॥२४॥

अरिपुरं	शत्रुके नगर (त्रिपुरको)	**दिधिक्षोः**	जलानेको उद्यत्
		हरवत्	शंकरजीके समान

दूरे सुहृत	पत्नीके वियोगके कारण
रोष	क्रोधसे
सुशोण	अत्यन्त लाल
दृष्ट्याः	दृष्टिसे ही
मथित	मथा जाता
तात्प्यमान	संतप्त होते
मकर	घड़ियाल
उरग	सर्प
नक्र	मगर
चक्रः	समुदायवाला
अधिरूढ भय	भयाक्रान्त
अङ्गवेपः	काँपते शरीर
उदधि	समुद्रने
सपदि	शीघ्र ही
यस्मा	जिनको
मार्गं	मार्ग
अदात्	दे दिया ॥२४॥

वक्षःस्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाह-
दन्तैर्विडम्बितककुब्जुष ऊढहासम् ।
सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तु-
र्विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये ॥२५॥

वक्षःस्थल स्पर्श रुग्ण महेन्द्रवाह दन्तैः विडम्बित ककुब्जुषु उढहासं सद्यः असुभिः सह विनेष्यति दारहर्तुः विस्फूर्जितैः धनुष उच्चरतः अधिसैन्ये ॥२५॥

वक्षःस्थल	(अपनी) छातीकी
स्पर्श	टक्करसे
महेन्द्रवाह	इन्द्रके वाहन ऐरावतके
दन्तैः	दाँतोंके
रुग्ण	टूट जानेसे
ककुब्जुषु	दिशाओंको
उढहासं	अट्टहाससे
विडम्बित	गुंजित (करनेवाले)
दारहर्तुः	पत्नी चुरानेवाले (उसी रावणके)
अधिसैन्ये	सेनाके मध्य (आनेपर)
विस्फूर्जितैः	प्रचण्ड
धनुष	धनुषकी
उच्चरतः	टंकारके साथ
सद्यः	तत्काल
असुभिः	प्राणोंके
सह	साथ
विनेष्यति	विनाश कर देंगे ॥२५॥

भूमेः सुरेतरवरूथविमर्दितायाः
क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्णकेशः ।

जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः
कर्माणि चात्ममहिमोपनिबन्धनानि ॥२६॥

भूमेः सुरेतर वरूथ विमर्दितायाः क्लेश व्ययाय कलया सितकृष्णकेशः जातः करिष्यति जना अनुपलक्ष्य मार्गः कर्माणि च आत्ममहिमा उपनिबन्धनानि ॥२६॥

सुरेतर	असुरोंके	**जना**	लोगोंके लिए
वरूथ	झुण्डोंसे	**अनुपलक्ष्य**	अनुमानके (अगोचर)
विमर्दितायाः	रौंदी हुई	**मार्गः**	मार्गसे परे
भूमेः	पृथ्वीके	**आत्ममहिमा**	अपनी महिमासे
क्लेश	कष्टको	**उपनिबन्धनानि**	परिपूर्ण
व्ययाय	नष्ट करनेके लिए	**कर्माणि**	कर्मोंको
कलया	कलासे*	**च**	भी
■ **सितकृष्णकेशः**	श्वेत और काले केशोंसे	**करिष्यति**	करेंगे ॥२६॥
जातः	अवतरित होकर		

---

* कलया—कलासे और सम्पूर्ण कलाओंके साथ यह दोनों अर्थ सम्भव है। दोनों अर्थ किया जाना चाहिए। 'कलया' इसका अन्वय तब दो बार होगा।

कलया—सम्पूर्ण कलाओंके साथ तथा कलासे श्वेत-कृष्ण केशके रूपमें। इसमें सम्पूर्ण कलाके साथ नन्दगृहमें और सितकृष्णकेशसे कलासे मथुरामें।

■ **केश**—केशावतारके लिए श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, महाभारत आदि सब जगहोंमें 'केश' शब्द व्यवहृत हुआ है। केशका प्रचलित अर्थ 'बाल' है। संस्कृत भाषामें 'केश' के पर्यायवाची शब्द हैं कच, कुनील, चिकुर आदि। कहीं भी केशावतारके लिए 'केश' की जगह दूसरे पर्यायवाची शब्दका प्रयोग नहीं हुआ है। अतः 'केश' शब्द एक विशेष अर्थमें लिया गया है।

तोकेन जीवहरणं यदुलूकिकाया-
स्त्रैमासिकस्य च पदा शकटोऽपवृत्तः ।
यद् रिङ्गतान्तरगतेन दिविस्पृशोर्वा
उन्मूलनं त्वितरथार्जुनयोर्न भाव्यम् ॥२७॥

तोकेन जीवहरणं यत् उलूकिकायाः त्रैमासिकस्य च पदा शकटः अपवृत्तः यत् रिङ्गतः अन्तरगतेन दिविस्पृशो वा उन्मूलनं तु इतरथा अर्जुनयोः न भाव्यम् ॥२७॥

तोकेन्	शिशु अवस्थामें (ही)	**अपवृत्तः**	उलट देना,
उलूकिकायाः	पूतनाका	**च**	और
यत्	जो	**रिङ्गतः**	सरकते हुए
जीवहरणं	प्राण हर लेना है,	**अन्तरगतेन**	बीचमें जाकर
त्रैमासिकस्य	तीन महीनेकी वयमें	**दिविस्पृशो**	गगनचुम्बी
पदा	पैरसे	**अर्जुनयो**	अर्जुनके दोनों
शकटः	छकड़ा		वृक्षोंको

*** अंशवो ये प्रकाशन्ते मम ते केश संज्ञिताः ।**
सर्वज्ञा केशवं तस्मान्मामाहुर्मुनिसत्तमाः ॥

महाभारत (गीता प्रेस) शान्ति पर्व ३४१.४८-४९
महाभारत (भण्डारक, पूना) ३२८.४३

अर्थ—भगवान् कहते हैं—मेरेमें विद्यमान अंशु (ज्योतिः) समूहका नाम 'केश' है, इसीसे सर्वज्ञ मुनि-सत्तम-गण मुझे 'केशव' कहते हैं ।

"तत्र च सर्वत्र केशेनर शब्द प्रयोगात् नानावर्णांशूनां श्रीनारद दृष्टतया मोक्षधर्म प्रसिद्धेश्च । —श्रीकृष्ण सन्दर्भ-२८

श्रीनृसिंह पुराणमें भी इस सिद्धान्तका समर्थक प्रमाण मिलता है—

देवक्यां वसुदेवाच्च अवतीर्य महीतले ।
सितकृष्णौ च मच्छक्ती कंसादीन घातयिष्वयतः ॥

नृसिंह पुराण, ५३.३२

उन्मूलनं	जड़से उखाड़ देना,	**न भाव्यं**	सम्भव नहीं
यत् तु	यह सब तो		है ॥२७॥
इतरथा	(भगवान्के अतिरिक्त किसी) दूसरेसे		

यद् वै व्रजे व्रजपशून् विषतोयपीथान्
पालांस्त्वजीवयदनुग्रहदृष्टिवृष्ट्या ।
तच्छुद्धयेऽतिविषवीर्यविलोलजिह्व-
मुच्चाटयिष्यदुरगं विहरन् ह्रदिन्याम् ॥२८॥

यत् वै व्रजे व्रजपशून् विषतोय पीथान् पालान् तु अजीवयत् अनुग्रह दृष्टि वृष्ट्या तत् शुद्धये अतिविष वीर्य विलोल जिह्वं उच्चाटयिष्यत् उरगं विहरन् ह्रदिन्याम् ॥२८॥

यत्	जो	**अजीवयत्**	जीवित कर दिया
वै	वह आश्चर्यजनक है कि	**ह्रदिन्यां**	(यमुना) सरितामें
		विहरन्	क्रीड़ा करते हुए
व्रजे	व्रजमें	**तत्शुद्धये**	उस (यमुना) की शुद्धिके लिए
विषतोय	विषैले जल		
पीथान्	दूषितको पीकर मृत हुए	**अतिविष**	अतिविषके*
		वीर्य	पराक्रमसे
व्रज पशून	व्रजके पशुओं और	**विलोल जिह्वं**	लपलपाते जीभवाले
पालान्	पशुपालकोंको	**उरगं**	सर्प (कालिय नाग) को
तु	भी		
अनुग्रह	कृपा भरी	**उच्चाटयिष्यत्**	(वहाँसे) निकाल देंगे ॥२८॥
ह्रष्टि वृष्टयाः	ह्रष्टिकी वर्षासे		

तत् कर्म दिव्यमिव यन्निशि निःशयानं
दावाग्निना शुचिवने परिदह्यमाने ।
उन्नेष्यति व्रजमतोऽवसितान्तकालं
नेत्रे पिधाय्य सबलोऽनधिगम्यवीर्यः ॥२९॥

---

* अत्यन्त उग्र विषोंकी अतिविष संज्ञा है ।

तत् कर्म दिव्यं इव यत् निशि निःशयानं दावाग्निना शुचिवने परिदह्यमाने उन्नेष्यति व्रजं अतः अवसित अन्तकालं नेत्रे पिधाय सबलः अनधिगम्य वीर्यः ॥२९॥

यत् निशि	जो उसी रातको	**सबलः**	बलराम सहित
निःशयनम्	घोर निद्रामें सोये हुओंको		(स्वयं)
		उन्नेष्यति	बचा लेंगे ।
शुचिवने	मूंजके वनमें	**अतः**	अतः
दावाग्निना	दावाग्नि द्वारा	**तत्**	उन
परिदह्यमाने	जलाये जानेवाले,	**अनधिगम्य**	अचिन्त्य
अन्तकालं	अन्तकाल आया	**वीर्य**	पराक्रम
अवसित	माननेवाले	**कर्म**	(भगवान्का) कर्म
व्रजं	व्रजवासियोंको	**दिव्यं इव**	अलौकिक-सा ही
नेत्रेपिधाय	नेत्र बन्द कराकर		है ॥२९॥

गृह्णीत यद् यदुपबन्धममुष्य माता
शुल्बं सुतस्य न तु तत् तदमुष्य माति ।
यज्जृम्भतोऽस्य वदने भुवनानि गोपी
संवीक्ष्य शङ्कितमनाः प्रतिबोधिताऽऽसीत् ॥३०॥

गृह्णीत यत् यत् उपबन्धं अमुष्य माता शुल्बं सुतस्य न तु तत् तत् अमुष्य माति यत् जृम्भतः अस्य वदने भुवनानि गोपी संवीक्ष्य शंकितमनाः प्रतिबोधिता आसीत् ॥३०॥

अमुष्य	इनकी	**गृह्णीत**	उठाती थीं
माता	माता (यशोदा)	**तत् तत्**	वे सभी
सुतस्य	पुत्रके	**अमुष्य**	इनको
उपबन्धं	बाँधनेके लिए	**तु**	तो
यत् यत्	जो जो	**न**	नहीं
शुल्बं	रस्सी		

माति	माप (घेर) पाती थी
यत्	जिनके
जृम्भतः	जम्हाई लेनेपर
अस्य	इनके
वदने	मुखमें
भुवनानि	त्रिभुवनको
संवीक्ष्य	देखकर
गोपी	गोपी (यशोदाजी)
शङ्कितमनाः	शंकित्त चित्त (फिर)
प्रतिबोधिता	सावधान
आसीत्	हो गयीं ॥३०॥

नन्दं च मोक्ष्यति भयाद् वरुणस्य पाशाद्
गोपान् बिलेषु पिहितान् मयसूनुना च ।
अह्नचापृतं निशि शयानमतिश्रमेण
लोकं विकुण्ठमुपनेष्यति गोकुलं स्म ॥३१॥

नन्दं च मोक्ष्यति भयात् वरुणस्य पाशात् गोपान् बिलेषु पिहितान् मयसूनुना च अह्नि आपृतं निशिशयानं अतिश्रमेण लोकं विकुण्ठं उपनेष्यति गोकुलं स्म ॥३१॥

नन्दं	(बे) नन्द बाबाको
च	भी
भयात्	(अजगरके) भयसे (और)
वरुणस्य	वरुणके
पाशात	बन्धनसे
मोक्ष्यति	छुड़ावेंगे ।
मयसूनना	मयके पुत्र व्योमासुर द्वारा
बिलेषु	गुफामें
पिहितान्	बन्द किये
गोपान्	गोपोंको
च	भी (छुड़ालायेंगे)।
अह्नि	दिनमें
आपृतं	(काम धन्धेमें) अत्यन्त व्यस्त
निशि	रात्रिमें
अतिश्रमेण	बहुत परिश्रमसे (थके)
शयानं	सो जानेवाले (साधनहीन)
गोकुलं	गोकुलके लोगोंको
विकुण्ठं	वैकुण्ठ
लोकं	लोक
उपनेष्यति स्म	ले जायेंगे ॥३१॥

गोपैर्मखे प्रतिहते व्रजविप्लवाय
देवेऽभिवर्षति पशून् कृपया रिरक्षुः ।

धर्तोच्छिलीन्ध्रमिव सप्त दिनानि सप्त-
वर्षो महीध्रमनघैककरे सलीलम् ॥३२॥

गोपैः मखे प्रतिहते व्रज विप्लवाय देवे अभिवर्षति पशून् कृपया रिरक्षुः धर्ताः उच्छिलिन्ध्रं इव सप्त दिनानि सप्त वर्षः महीध्रं अनघ एककरे सलीलम् ॥३२॥

अनघ	निष्पाप नारद !
गोपैः	गोपों द्वारा
मखे	(इन्द्र) यज्ञके
प्रतिहते	बन्द कर देनेपर
व्रज	व्रजके
विप्लवाय	विनाशके लिए
देवे	देवता इन्द्र द्वारा
अभिवर्षति	घोर वर्षा करते समय
कृपया	कृपासे
पशून्	पशुओंकी
रिरक्षुः	रक्षा करनेकी इच्छासे
सप्त वर्षः	सात वर्षकी अवस्थाके ही (श्रीकृष्ण)
सलीलं	खेल खेलमें
उच्छिलिन्ध्रं	बरसाती छत्तेके
इव	समान
महीध्रं	(गोवर्धन) पर्वतको
एककरे	एक ही हाथपर
सप्तः दिनानि	सात दिनतक
धर्ताः	उठाये रहेंगे ॥३२॥

क्रीडन् वने निशि निशाकररश्मिगौर्यां
रासोन्मुखः कलपदायतमूर्च्छितेन ।
उद्दीपितस्मररुजां व्रजभृद्वधूनां
हर्तुर्हरिष्यति शिरो धनदानुगस्य ॥३३॥

क्रीडन् वने निशि निशाकर रश्मि गौर्यां रासोन्मुखः कलपदायत मूर्च्छितेन उद्दीपित स्मररुजां व्रजभृत् वधूनां हर्तुः हरिष्यति शिरः धनद अनुगस्य ॥ ३३ ॥

निशाकररश्मि	चन्द्र किरणोंसे
गौर्यां	उज्वल
वने	वनमें
निशि	रात्रिमें
क्रीडन्	क्रीड़ा करते हुए
कलपदायत	मनोहर पदोंसे विस्तृत
मूर्च्छितेन	(वंशी) वादनसे (आकृष्ट आई)
रासोन्मुख	रासोद्यत

:स्मररुजां	कामकी बेचैनी	धनद	कुवेरके
उद्दीपित	बढ़ी हुई	अनुगस्य	अनुचर (शंखचूड़)
व्रजभृत्	व्रजवासियोंकी	शिरः	सिर
वधूनां	वहुओं (गोपियों) के	हरिष्यति	काट लेंगे ॥३३॥
हर्तुः	हरण करनेवाले		

ये च प्रलम्बखरदर्दुरकेश्यरिष्ट-
मल्लेभकंसयवनाः कुजपौण्ड्रकाद्याः ।
अन्ये च शाल्वकपिबल्वलदन्तवक्त्र-
सप्तोक्षशम्बरविदूरथरुक्ममुख्याः ॥३४॥

ये च प्रलम्ब खर दर्दुर केशि अरिष्ट मल्ल इभ कंस यवनाः कुज पौण्ड्रक आद्याः अन्ये च शाल्व कपि बल्वल दन्तवक्त्र सप्त उक्ष शम्बर विदूरथ रुक्ममुख्याः ॥३४॥

ये	जो	पौण्ड्रकआद्याः	पौण्ड्रक आदि,
च	भी	अन्ये च	दूसरे भी
प्रलम्ब	प्रलम्बासुर,	शाल्व	शाल्व,
खर	गधा (धेनुकासुर),	कपि	द्विविदवानर,
दर्दुर	बकासुर,	बल्वल	बल्वल,
केशि	केशी,	दन्तवक्त्र	दन्तवक्त्र,
अरिष्ट	अरिष्टासुर,	सप्त उक्ष	सातो सांड़,
मल्ल	(कंसके) पहलवान (चाणूर-मुष्टिकादि)		(राजा नग्नजित्के)
		शम्बर	शम्बरदैत्य,
इभ	हाथी (कुलमापीड़),	विदूरथ	विदूरथ,
कंस	कंस,	रुक्म मुख्याः	जिनमें रुक्मीमुख्य था ॥३४॥
यवनाः	(ससैन्य) कालयवन,		
कुज	भौमासुर,		

ये वा मृधे समितिशालिन आत्तचापाः
काम्बोजमत्स्यकुरुकैकयसृञ्जयाद्याः ।

यास्यन्त्यदर्शनमलं बलपार्थभीम-
व्याजाह्वयेन हरिणा निलयं तदीयम् ॥३५॥

ये वा मृधे समितशालिन आत्तचापाः काम्बोज मत्स्य कुरु कैकय, सृञ्जयाद्याः यास्यन्ति अदर्शनं अलं बल पार्थ भीम व्याज आह्वयेन हरिणा निलयं तदीयम् ॥३५॥

वा	अथवा	**बल**	बलराम,
ये	जो	**पार्थ**	अर्जुन,
समितशालिन्	सेना रखनेवाले	**भीम,**	भीमसेन
आत्तचापाः	धनुष चढ़ाये	**आह्वयेन**	के नामके
मृधे	युद्धमें (आवेंगे वे)	**व्याज**	बहाने
काम्बोज	(कन्धार) काम्बोज,	**हरिणा**	श्रीकृष्ण द्वारा
मत्स्य	मत्स्य,	**अलं अदर्शनं**	मारे जाकर
कुरु	कुरु,	**तदीयं**	उन (भगवान्) के
कैकय	कैककय,	**निलयं**	धाम
सृञ्जयाद्याः	सृञ्जय आदि देशोंके (राजा),	**यास्यन्ति**	जायेंगे ॥३५॥

कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां
स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः ।
आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां
वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म ॥३६॥

कालेन मीलित धिया अवमृश्य नृणां स्तोक आयुषां स्व निगमाः बत दूरपारः आविर्हितः तु अनुयुगं स हि सत्यवत्यां वेदद्रुमं विटपशाः विभजिष्यति स्म ॥३६॥

हि	क्योंकि	**स्तोक**	थोड़ी
कालेन	समयके फेरसे	**आयुषां**	आयुवाले
धिया	बुद्धिके	**नृणां**	मनुष्योंको
मीलित	घट जानेपर	**स्व**	अपने

निगमः	तत्त्वसे
बत	प्रायः
दूरपारः	दूर चला गया
अवमृश्य	विचार करके
स	वही (भगवान्)
अनुयुगं	प्रत्येक युगमें
सत्यवत्यां	सत्यवतीमें
आविर्हितः तु	आविर्भूत होकर ही
वेदद्रुमं	वेदरूपी वृक्षको
विटपशः	शाखाओंमें
विभजिष्यति स्म	विभाजन करेंगे ॥३६॥

देवद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानां
पूर्भिर्मयेन विहिताभिरदृश्यतूर्भिः ।
लोकान् घ्नतां मतिविमोहमतिप्रलोभं
वेषं विधाय बहु भाष्यत औपधर्म्यम् ॥३७॥

देवद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानां पूः भिः मयेन विहिताभिः अदृश्यतुः भिः लोकान् घ्नतां मतिविमोहं अतिप्रलोभं वेषं विधाय बहु भाष्यत औपधर्म्यम् ॥३७॥

निगमवर्त्मनि	वेदोंके मार्गमें
निष्ठितानां	निष्ठित
देवद्विषां	देवताओंके शत्रु (दैत्योंके)
मयेन	मयदानवके
विहिताभिः	बनाये हुए
अदृश्यतुः भिः	अदृश्य रहनेवाले
पूः भिः	(त्रि) पुरोंके द्वारा
लोकान्	लोकोंका
घ्नतां	नष्ट करते (देखकर)
अतिप्रलोभं	अत्यन्त लोभनीय
वेषं	वेश (बुद्धका)
विधाय	धारण करके
मतिविमोहं	बुद्धिको भ्रमित करनेवाले
बहु	बहुतसे
औपधर्म्यं	उपधर्मों (पाखण्डों) का
भाष्यत	उपदेश किया ॥३७॥

यर्ह्यालयेष्वपि सतां न हरेः कथाः स्युः
पाखण्डिनो द्विजजना वृषला नृदेवाः ।
स्वाहा स्वधा वषडिति स्म गिरो न यत्र
शास्ता भविष्यति कल्किर्भगवान् युगान्ते ॥३८॥

यर्हि आलयेषु अपि सतां न हरेः कथाः स्युः पाखण्डिनः द्विजजनाः वृषला नृदेवाः स्वाहा स्वधा बषट् इति स्म गिरः न यत्र शास्ताः भविष्यति कलेः भगवान् युगान्ते ॥३८॥

कलेः	कलि	**स्वाहा**	(देवयज्ञके लिए) स्वाहा
युगान्ते	युगके अन्तमें	**स्वधा**	(पितृयज्ञके लिए) स्वधा
यर्हि	जब	**वषट्**	(अंगन्यासादिके लिए) बषट्
सतां	सज्जनोंके	**इति स्म**	इस प्रकारकी
आलयेषु	घरोंमें	**गिरः**	वाणी
अपि	भी	**यत्र**	जहाँ (जब)
हरेः	श्रीहरिकी	**न**	नहीं (सुनी जायगी तब)
कथाः	कथा	**भगवान्**	भगवान् (कल्कि रूपमें अवतार लेकर)
न	नहीं	**शास्ताः**	दण्ड देनेवाले
स्युः	होगी,	**भविष्यति**	होंगे ॥३८॥
द्विजजनाः	ब्राह्मण लोग		
पाखण्डिनः	पाखण्डी(हो जायेंगे),		
वृषला	शूद्र		
नृदेवाः	राजा (हो जायेंगे),		

सर्गे तपोऽहमृषयो नव ये प्रजेशाः
स्थाने च धर्ममखमन्वमरावनीशाः ।
अन्ते त्वधर्महरमन्युवशासुराद्या
मायाविभूतय इमाः पुरुशक्तिभाजः ॥३९॥

सर्गे तपः अहं ऋषयः नव ये प्रजेशाः स्थाने च धर्म मखं अनु अमराः अवनीशाः अन्ते तु अधर्म हर मन्युवशा असुराद्या माया विभूतय इमाः पुरुशक्तिभाजः ॥३९॥

सर्गे	सृष्टिके लिए	**ये**	जो
तपः	तपस्या	**नव**	नौ
अहं	मुझ ब्रह्मा	**प्रजेशाः**	प्रजापति

ऋषियः	ऋषि हैं (उनके रूपमें)
च	और
स्थाने	पालन (स्थिति) के लिए
धर्मं	धर्म
मखं	यज्ञ
अमराः	देवता
अनु	(देवताओंके) अनुयायी (गन्धर्वादि)
अवनीशाः	राजा लोगों (के रूपमें)
अन्ते	प्रलयके लिए
तु	तो
अधर्म	अधर्म
हर	रुद्र
मन्युवशः	मन्युवश नामकागणों
असुराद्याः	असुरादि (के रूपमें)
इमाः	ये सब
पुरुशक्तिभाजः	अनन्त शक्तिवाले (भगवान्) की
माया	माया
विभूतय	विभूतियाँ हैं ॥३९॥

विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह
यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ।
चस्कम्भ यः स्वरंहसास्खलता त्रिपृष्ठं
यस्मात् त्रिसाम्यसदनादुरु कम्पयानम् ॥४०॥

विष्णोः नु वीर्य गणनां कतमः अर्हति इह यः पार्थिवानि अपि कविः विममे रजांसि चस्कम्भः यः स्वरंहसा स्खलता त्रिपृष्ठं यस्मात् त्रि साम्य सदनात् उरु कम्पयानम् ॥४०॥

इह	संसारमें
यः	जो
कविः	बुद्धिमान
पार्थिवानि	पृथ्वीके
अपि	भी
रजांसि	धूलिकणोंको
विममे	गिनले
नु	तो
विष्णोः	भगवान् विष्णुके
वीर्य	पराक्रमकी
गणना	गणना
कतमः	कौन
अर्हति	कर सकता है,
यः	जिनके
स्वरंहसा	अपने वेगसे
त्रिपृष्ठं	स्वर्गतक
स्खलता	नापते समय
सदनात्	(मेरा) सदन (ब्रह्मलोकतक)
चस्कम्भ	काँपने लगा

यस्मात्	जिनके	**त्रि**	तीनों लोक
उरु	अत्यन्त	**साम्य**	स्थिर हुए ॥४०॥
कम्पयानं	अनुकम्पा करनेपर		

नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते
मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये ।
गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः
शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ॥४१॥

न अन्तं विदामि अहं अमी मुनयः अग्रजाः ते मायाबलस्य पुरुषस्य कुतः अपरे ये गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः शेषः अधुना अपि समवस्यति न अस्य पारम् ॥४१॥

पुरुषस्य	परम पुरुषकी	**आदिदेवः**	आदिदेव
मायाबलस्य	मायाके बलका	**शेषः**	शेष
अन्तं	अन्त	**दशशतानन**	सहस्र मुखोंसे
अहं	मैं (और)	**गुणान्**	(उन भगवान्के)
अमी मुनयः	ये मुनिगण		गुणोंका
ते	तुम्हारे	**गायन्**	गान करते हुए
अग्रजाः	बड़े भाई	**अस्य**	इनका
न	नहीं	**पारं**	पार
विदामि	जानते	**अधुनाअपि**	अबतक भी
ये	जो	**न**	नहीं
अपरे	दूसरे हैं	**समवस्यति**	सोच पाते हैं ॥४१॥
कुतः	कैसे जान सकते हैं ।		

येषां स एव भगवान् दययेदनन्तः
सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां
नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये ॥४२॥

येषां स एव भगवान् दययेत् अनन्तः सर्वात्मना आश्रितः पदः यदि निर्व्यलीकं ते दुस्तरां अतितरन्ति च देवमायां न एषां मम अहं इति धीः श्वभृगाल भक्षे ॥४२॥

येषां	जिनपर	**भक्ष्ये**	भोजन (शरीर) में
स एव	वही	**मम-अहं**	मैं-मेरा
अनन्तः भगवान्	अनन्त भगवान्	**इति**	ऐसी
दययेत्	दया करें,	**धीः**	बुद्धि
यदि	यदि	**न**	नहीं है
निर्व्यलीकं	निष्कपट भावसे	**ते**	वे
सर्वात्मना	सब प्रकारसे	**च**	ही
पदः	(उनके) चरणोंके	**दुस्तरां**	दुस्तर
आश्रितः	आश्रित हुए हैं,	**देवमायां**	देवमायाको
एषां	जिनकी	**अतितरन्ति**	पार कर पाते हैं ।४२।
श्व भृगाल	कुत्ते और सियारोंके		

वेदाहमङ्ग परमस्य हि योगमायां
यूयं भवश्च भगवानथ दैत्यवर्यः ।
पत्नी मनोः स च मनुश्च तदात्मजाश्च
प्राचीनबर्हिर्ऋभुरङ्ग उत ध्रुवश्च ॥४३॥

वेद अहं अङ्ग परमस्य हि योगमायां यूयं भवः च भगवान् अथ दैत्यवर्यः पत्नी मनोः स च मनुः च तत् आत्मजाः च प्राचीनबर्हिः ऋभुः अङ्ग उत ध्रुवः च ॥४३॥

अङ्ग	प्रिय नारद	**भगवान्**	भगवान्
परमस्य	परम पुरुषकी	**भवः**	शंकरजी
हि	उस	**च**	और
योगमायां	योगमायाको	**दैत्यवर्यः**	दैत्य श्रेष्ठ प्रहलाद
अहं	मैं	**मनोः**	स्वायम्भुव मनुकी
वेद	जानता हूँ ।	**पत्नी**	शतरूपा
यूयं	तुम लोग (मेरे पुत्र)	**स च**	वही
अथ	तथा	**मनुः**	स्वायम्भुव मनु

च	एवं	ऋभुः	ऋभु
तत् आत्मजाः	उनके पुत्र (प्रियवत, उत्तानपाद)	उत	तथा
		अङ्ग	राजा अंग
च	और	च	एवं
प्राचीनवर्हि	प्राचीनबर्हि	ध्रुव	ध्रुव ॥४३॥

इक्ष्वाकुरैलमुचुकुन्दविदेहगाधि-
रघ्वम्बरीषसगरा गयनाहुषाद्याः ।
मान्धात्रलर्कशतधन्वनुरन्तिदेवा
देवव्रतो बलिरमूर्त्तरयो दिलीपः ॥४४॥

इक्ष्वाकुः ऐल (पुरुरवा) मुचुकुन्द विदेह (जनक) गाधिः रघु अम्बरीष सगरा गय नाहुषाद्याः (ययाति आदि) मान्धात्र अलर्क शतधन्व अनु रन्तिदेवः देवव्रत (भीष्म) बलिः अमूर्तरयः दिलीप ॥४४॥

सौभर्युतङ्कशिबिदेवलपिप्पलाद-
सारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः ।
येऽन्ये विभीषणहनूच्छदुपेन्द्रदत्त-
पार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः ॥४५॥

सौभरि उतङ्क शिबि देवल पिप्पलाद सारस्वत उद्धव पराशर भूरिषेणाः ये अन्ये (जो दूसरे) विभीषण हनूमत् उपेन्द्रदत्त (शुकदेव) पार्थ (अर्जुन) अर्ष्टिषेण विदुर श्रुतदेव वर्याः (श्रेष्ठ पुरुष हैं) ॥४५॥*

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां
स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः ।
यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षा-
स्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥४६॥

---

* यह केवल नाम हैं ।

ते वै विदन्ति अतितरन्ति च देवमायां स्त्री शूद्र हूण शबराः अपि पापजीवाः यत् अद्भुत क्रम परायण शील शिक्षाः तिर्यक्जनाः अपि किमु श्रुतधारणाः ये ॥४६॥

यत्	जिनको
अद्भुत क्रम	अद्भुत पराक्रम (भगवान्के)
परायण	परायण
शील	रहनेकी
शिक्षाः	शिक्षा मिली है
ते	वे
स्त्री	स्त्री
शूद्र	शूद्र
पापजीवाः	पापजीवी
अपि	होनेपर भी
हूण	हूण
शबराः	शबर (भीलादि)
तिर्यक्जनाः	पशु-पक्षीकी योनिके
अपि	भी
वै	निश्चित
देवमायां	देवमायाको
विदन्ति	जानते हैं
च	तथा
अतितरिन्ति	पार कर जाते हैं।
ये	जो
श्रुतधारणाः	वैदिक आचार धारी हैं
किमु	उनकी बात ही क्या ॥४६॥

शश्वत् प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमात्रं
शुद्धं समं सदसतः परमात्मतत्त्वम् ।
शब्दो न यत्र पुरुकारकवान् क्रियार्थो
माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना ॥४७॥

शश्वत् प्रशान्तं अभयं प्रतिबोधमात्रं शुद्धं समं सत् असत् परं आत्मतत्त्वं शब्दः न यत्र पुरुकारकवान् क्रियार्थ माया परैति अभिमुखे च विलज्जमाना ॥४७॥

आत्मतत्त्वं	आत्मतत्त्व
शश्वत्	नित्य
प्रशान्तं	प्रशान्त (एकरस)
अभयं	अभय
प्रतिबोधमात्रं	ज्ञानमात्र
शुद्धं	शुद्ध (निर्मल)
समं	सम (वैषम्यरहित)
सत् असत् परं	कार्य कारणसे अतीत है
यत्र	जहां
शब्दः	शब्द (लौकिक वैदिक कोई)

न	नहीं पहुँचता	**माया च**	माया भी (जहाँसे)
पुरुकारकवान्	अनेक साधनोंसे होनेवाले	**अभिमुखे**	सामने जानेमें
क्रियार्थः	कर्मोंका फल (भी नहीं पहुँचता)	**विलज्जमाना**	लज्जित होकर
		परेति	लौट आती है ॥४७॥

तद् वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो
ब्रह्मेति यद् विदुरजस्रसुखं विशोकम् ।
सध्र्यङ् नियम्य यतयो यमकर्तहेतिं
जह्युः स्वराडिव निपानखनित्रमिन्द्रः ॥४८॥

तत् वै पदं भगवतः परमस्य पुंसः ब्रह्म इति विदुः अजस्र सुखं विशोकं सध्र्यङ् नियम्य यतयः यं अकर्त हेतिं जह्युः स्वराट् इव निपान खनित्रं इन्द्रः ॥४८॥

तत्	वह	**नियम्य**	लगाकर
वै	ही	**निपान**	कुआँ
भगवतः	भगवान्	**खनित्रं**	खोदनेके शस्त्रको
परमस्य	परम	**इन्द्रः**	इन्द्र
पुंसः	पुरुषका	**इव**	की भाँति (इन्द्र स्वयं वर्षाके देवता होनेसे कुआँ जैसे नहीं खोदते-खोदनेका अस्त्र फेंक देते हैं, वैसे ही)
पदं	स्वरूप है,		
ब्रह्म	ब्रह्म		
इति	इस नामसे		
विदुः	जाना जाता है,		
अजस्रसुखं	अखण्ड आनन्दरूप	**स्वराट्**	स्वयं प्रकाशमें (में स्थित होकर)
विशोकं	शोकरहित है		
यतयः	संयमी	**अकर्तहेतिं**	कर्मोंके काटनेके साधनोंको
सध्र्यङ्	भली प्रकार		
यं	जिनमें (मनको)	**जह्युः**	त्याग देते हैं ॥४८॥

स श्रेयसामपि विभुर्भगवान् यतोऽस्य
भावस्वभावविहितस्य सतः प्रसिद्धिः ।

देहे स्वधातुविगमेऽनुविशीर्यमाणे
व्योमेव तत्र पुरुषो न विशीर्यतेऽजः ॥४९॥

स श्रेयसां अपि विभुः भगवान यतः अस्य भाव स्वभाव विहितस्य सतः प्रसिद्धिः देहे स्वधातु विगमे अनु विशीर्यमाणे व्योम इव तत्र पुरुषः न विशीर्यते अजः ॥४९॥

स	वे
विभुः	सर्वव्यापक
श्रेयसां	कल्याणोंके
अपि	भी
भगवान	स्वामी (प्रदाता) हैं,
यतः	क्योंकि
स्वभाव	अपने स्वभावके
विहितस्य	अनुसार होनेवाले
भाव	भाव (कर्म)
अस्य	इन (भगवानकी)
सतः	सत्तासे ही
प्रसिद्धिः	सफल होते हैं।
देहे	शरीरके
स्वधातु	अपनी धातु (रक्त-मांसादिके)
विगमे	पृथक-पृथक होनेपर
अनु	उसके साथ
विशीर्यमाणे	नष्ट होनेपर
व्योम	(शरीरमें स्थित) आकाश
इव	की भाँति
तत्र	उसमें (स्थित)
अजः	अजन्मा
पुरुषः	पुरुष
विशीर्यते	नष्ट
न	नहीं होता ॥४९॥

सोऽयं तेऽभिहितस्तात भगवान् विश्वभावनः।
समासेन हरेर्नान्यदन्यस्मात् सदसच्च यत् ॥५०॥

सः अयं ते अभिहितः तात भगवान् विश्वभावनः समासेन हरेः न अन्यत् अन्य अस्मात् सत् असत् च यत् ॥५०॥

तात	पुत्र नारद !
अयं	यह
ते	तुमसे
सः	उन
विश्वभावन	विश्वको भावनासे बनानेवाले
भगवान्	भगवानका
समासेन	संक्षिप्त रूपसे
अभिहितः	वर्णन किया,
सत्	कारण
असत्	कार्य
यत्	जो

च	भी है	अन्य	पृथक
अस्मात्	इन	न	नहीं है ॥५०॥
हरेः	श्रीहरिसे		

इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम् ।
संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद् विपुलीकुरु ॥५१॥

इदं भागवतं नाम यत् मे भगवता उदितं संग्रहः अयं विभूतीनां त्वं एतत् विपुली कुरु ॥५१॥

इदं	यह	विभूतीनां	(भगवानकी) विभूतियोंका
भागवतं	भागवत	संग्रहः	संग्रह (संक्षिप्त वर्णन) है ।
नाम	नामका (ज्ञान) है ।	त्वं	तुम
यत्	जिसे	एतत	इसका
मे	मुझसे	विपुली	विस्तार
भगवता	भगवान्‌ने	कुरु	करो ॥५१॥
उदितं	प्रकाशित किया (सुनाया),		
अयं	यह		

यथा हरौ भगवति नृणा भक्तिर्भविष्यति ।
सर्वात्मन्यखिलाधारे इति सङ्कल्प्य वर्णय ॥५२॥

यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिः भविष्यति सर्वात्मनि अखिलाधारे इति सङ्कल्प्य वर्णय ॥५२॥

यथा	जैसे	भक्तिः	भक्ति
भगवति	भगवान्	भविष्यति	होगी
सर्वात्मनि	सर्वात्मा	इति	ऐसा
अखिलाधारे	सर्वाधार	सङ्कल्प्य	संकल्प करके
हरौ	श्रीहरिमें	वर्णय	वर्णन करो ॥५२॥
नृणां	मनुष्योंकी		

मायां वर्णयतोऽमुष्य ईश्वरस्यानुमोदतः ।
शृण्वतः श्रद्धया नित्यं माययाऽऽत्मा न मुह्यति ॥५३॥

मायां वर्णयतः अमुष्य ईश्वरस्य अनुमोदतः शृण्वतः श्रद्धया नित्यं मायया आत्मा न मुह्यति ॥५३॥

अमुष्य	इन	**अनुमोदतः**	अनुमोदन करनेवालेका
ईश्वरस्य	परमेश्वरकी		
मायां	मायाका	**शृण्वतः**	सुनते हुए ।
नित्यं	सदा	**आत्मा**	चित्त
श्रद्धया	श्रद्धाके साथ	**मायया**	मायासे
वर्णयतः	वर्णन करनेवाले (तथा)	**न**	नहीं
		मुह्यते	मोहित होता ॥५३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः

अथ अष्टमोऽध्यायः

राजोवाच-

ब्रह्मणा चोदितो ब्रह्मन् गुणाख्यानेऽगुणस्य च ।
यस्मै यस्मै यथा प्राह नारदो देवदर्शनः ॥१॥

ब्रह्मणा चोदितः ब्रह्मन् गुण आख्याने अगुणस्य च यस्मै यस्मै यथा प्राह नारदः देवदर्शनः ॥१॥

ब्रह्मन्	शुकदेवजी	**देवदर्शनः**	देवताओंके समान जिनका दर्शन दुर्लभ है (उन)
ब्रह्मणा	ब्रह्माजीके द्वारा		
अगुणस्य	निर्गुण भगवान्के		
च	भी	**नारदः**	नारदजीने
गुण	गुणोंका	**यस्मै यस्मै**	जिन जिनको
आख्याने	वर्णन करनेके लिए	**यथा**	जैसे
चोदितः	प्रेरित किये जानेपर	**प्राह**	उपदेश किया ॥१॥

एतद् वेदितुमिच्छामि तत्त्वं वेदविदां वर ।
हरेरद्भुतवीर्यस्य कथा लोकसुमङ्गलाः ॥२॥

एतत् वेदुतुं इच्छामि तत्त्वं वेदविदांवर हरेः अद्भुत वीर्यस्य कथाः लोक सुमङ्गलाः ॥२॥

वेदविदांवर	वेदवेत्ताओंमें (आप) श्रेष्ठ हैं	**वीर्यस्य**	अद्भुत पराक्रम
		हरेः	श्रीहरिकी
एतत्	यह	**कथाः**	कथा
तत्त्वं	तत्त्व	**लोक**	लोकके लिए
वेदुतुं	जाननेकी	**सुमङ्गलाः**	परम कल्याणकारिणी है ॥२॥
इच्छामि	मेरी इच्छा है (क्योंकि)		

कथयस्व महाभाग यथाहमखिलात्मनि ।
कृष्णे निवेश्य निःसङ्गं मनत्यक्षे कलेवरम् ॥३॥

कथयस्व महाभाग यथा अहं अखिलात्मनि कृष्णे निवेश्य निःसङ्गं मनः त्यक्षे कलेवरम् ॥३॥

महाभाग	महाभाग !	**निःसङ्गं**	आसक्ति रहित
कथयस्व	(वह) वर्णन कीजिये	**मनः**	मनको
यथा	जैसे	**निवेश्य**	प्रवेश कराके
अहं	मैं	**कलेवरं**	शरीरको
अखिलात्मनि	अखिलात्मा	**त्यक्षे**	छोड़ दूं ॥३॥
कृष्णे	श्रीकृष्णमें		

शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम् ।
कालेन नातिदीर्घेण भगवान् विशते हृदि ॥४॥

शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतः च स्वचेष्टितं कालेन न अति दीर्घेण भगवान् विशते हृदि ॥४॥

स्वचेष्टितं	अपनी लीलाको	**अति**	बहुत
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक	**दीर्घेण**	लम्बे
नित्यं	सदा	**कालेन**	समयमें
शृण्वतः	सुननेवाले	**न**	नहीं (शीघ्र ही)
च	तथा	**भगवान्**	भगवान्
गृणतः	कहने वालेके	**हृदि**	हृदयमें
हृदि	हृदयमें	**विशते**	प्रवेश करते हैं ॥४॥

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम् ।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥५॥

प्रविष्टः कर्ण रन्ध्रेण स्वानां भाव सरोरुहं धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥५॥

स्वानां	अपने जनोंके	**कर्णरन्ध्रेण**	कानोंके छिद्रसे
भावसरोरुहं	भाव (हृदय) कमलमें	**प्रविष्टः**	प्रवेश करके
		कृष्णः	श्रीकृष्ण

शमलं	मनोमलको	यथा	जैसे
धुनोति	(वैसे ही) नष्ट कर देते हैं	सलिलस्य	पानीके (मलको)
		शरत्	शरदृतु ॥५॥

धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुञ्चति ।
मुक्तसर्वपरिक्लेशः पान्थः स्वशरणं यथा ॥६॥

धौतात्मा पुरुषः कृष्ण पादमूलं न मुञ्चति मुक्त सर्व परिक्लेशः पान्थः स्वशरणं यथा ॥६॥

यथा	जैसे	सर्व परिक्लेशः	सब चारों ओरसे आते क्लेशोंसे
पान्थः	यात्री	मुक्तः	छूटकर
स्वशरणं	अपने आश्रयको (नहीं छोड़ता)	कृष्ण	श्रीकृष्णके
धौतात्मा	निर्मल हुए चित्तवाला	पादमूलं	चरणोंको
पुरुषः	पुरुष	न	नहीं
		मुञ्चति	छोड़ता ॥६॥

यदधातुमतो ब्रह्मन् देहारम्भोऽस्य धातुभिः ।
यदृच्छया हेतुना वा भवन्तो जानते यथा ॥७॥

यत् अधातुमतः ब्रह्मन् देहारम्भः अस्य धातुभिः यदृच्छया हेतुना वा भवन्तः जानते यथा ॥७॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !		होता हैं,
यत्	क्योंकि (यह जीव)	वा	अथवा
अधातुमतः	पञ्चमहाभूतोंके सम्बन्धसे रहित	हेतुना	किसी कारणसे होता है,
अस्य	इसके	यथा	(इस विषयमें) जैसा है
देहारम्भः	शरीरका प्रारम्भ	भवन्तः	आप
धातुभिः	पञ्चमहाभूतोंसे होता है,	जानते	जानते हैं ॥७॥
यदृच्छया	(यह) अकस्मात्		

आसीद् यदुदरात् पद्मं लोकसंस्थानलक्षणम् ।
यावानयं वै पुरुष इयत्तावयवैः पृथक् ।
तावानसाविति प्रोक्तः संस्थावयववानिव ॥८॥

आसीत् यत् उदरात् पद्मं लोकसंस्थान लक्षणं यावान् अयं वै पुरुषः इयत्ता अवयवैः पृथक् तावान् असौ इति प्रोक्तः संस्था अवयवान् इव ॥८॥

यत्	जिनके	**अवयवैः**	अंगोंके होनेसे
उदरात्	पेट (नाभि) से	**वै**	निश्चय
लोकसंस्थान	लोकोंकी सृष्टि	**इयत्ता**	सीमावाला है,
लक्षणं	लक्षणवाला (जिससे सृष्टि हुई)	**यावान्**	जितना है,
		तावान्	उतना ही
पद्मं	(वह) कमल	**अवयवान इव**	अंगोंवालेकी भाँति
आसीत्	उत्पन्न हुआ	**असौ संस्था**	इसका भी स्वरूप
अयं	(यह)	**इति प्रोक्तः**	इस प्रकार कहा गया
पुरुषः	पुरुष (व्यक्ति)		है ॥८॥
पृथक्	अलग-अलग		

अजः सृजति भूतानि भूतात्मा यदनुग्रहात् ।
ददृशे येन तद्रूपं नाभिपद्मसमुद्भवः ॥९॥

अजः सृजति भूतानि भूतात्मा यत् अनुग्रहात् ददृशे येन तत् रूपं नाभिपद्म समुद्भवः ॥९॥

यत्	जिनके	**येन**	जिनके (अनुग्रह) से
अनुग्रहात्	अनुग्रहसे	**नाभिपद्म**	नाभि कमलसे
भूतात्मा	सर्वभूतमय	**समुद्भवः**	उत्पन्न होनेवाले
अजः	ब्रह्माजी	**तत्**	उनके
भूतानि	प्राणियोंकी	**रूपं**	रूपको
सृजति	सृष्टि करते हैं,	**ददृशे**	देख सके ॥९॥

स चापि यत्र पुरुषो विश्वस्थित्युद्भवाप्ययः ।
मुक्त्वाऽऽत्ममायां मायेशः शेते सर्वगुहाशयः ॥१०॥

स च अपि यत्र पुरुषः विश्व स्थिति उद्भव अप्ययः मुक्त्वा आत्ममायां मायेशः शेते सर्व गुहाशयः ॥१०॥

विश्व	संसारकी	**पुरुषः**	पुरुष
उद्भव	सृष्टि,	**अपि**	भी
स्थिति	स्थिति,	**यत्र**	जहाँ
अप्ययः	प्रलयको	**च**	भी
मुक्त्वा	त्यागकर	**मायेशः**	मायाका स्वामी
सर्व	सबके	**आत्ममायां**	अपनी मायामें
गुहाशयः	हृदय गुहामें रहनेवाला	**शेते**	सोता है (वह स्थान बतलावें) ॥१०॥
स	वह		

पुरुषावयवैर्लोकाः सपालाः पूर्वकल्पिताः ।
लोकैरमुष्यावयवाः सपालैरिति शुश्रुम ॥११॥

पुरुषाः अवयवैः लोकाः सपालाः पूर्व कल्पिताः लोकैः अमुष्य अवयवाः सपालैः इति शुश्रुम ॥११॥

पुरुषाः	पुरुषके	**अमुष्य**	इस (विराट् पुरुष)के
अवयवैः	अंगोंसे	**अवयवाः**	अंग (कल्पित किये गये),
लोकाः	सब लोक	**इति**	इस प्रकार (दोनों बातें)
सपालाः	लोकपालों सहित	**शुश्रुम**	(मैंने आपसे) सुनी (इसका क्या तात्पर्य है) ॥११॥
पूर्व	पहिले		
कल्पिताः	कल्पित किये गये,		
सपालैः	लोकपालों सहित		
लोकैः	लोकोंसे		

यावान् कल्पो विकल्पो वा यथा कालोऽनुमीयते ।
भूतभव्यभवच्छब्द आयुर्मानं च यत् सतः ॥१२॥

यावान् कल्पः विकल्पः वा यथा कालः अनुमीयते भूत भव्य भवत् शब्द आयुः मानं च यत् सतः ॥१२॥

यावान्	जितना (बड़ा)
कल्पः	महाकल्प
वा	अथवा
विकल्पः	(उसके) अवान्तर कल्प (होते हैं,)
यथा	जैसे
कालः	समयका
अनुमीयते	अनुमान किया जाता है,
भूत	भूत
भवत्	वर्तमान
भव्य	भविष्य
शब्द	ये नाम (जिस आधारपर रखे जाते हैं)।
च	तथा
यत्	जो
सतः	शरीरधारी हैं
आयुः	(उनकी) आयुका
मानं	परिमाण (क्या है ?) ॥१२॥

कालस्यानुगतिर्या तु लक्ष्यतेऽण्वी बृहत्यपि ।
यावत्यः कर्मगतयो यादृशीर्द्विजसत्तम ॥१३॥

कालस्य अनुगतिः या तु लक्ष्यते अण्वी बृहत् अपि यावत्यः कर्मगतयः यादृशीः द्विजसत्तम ॥१३॥

द्विजसत्तम	द्विजोत्तम !
कालस्य	कालकी
या तु	जो भी
अण्वी	सूक्ष्म (क्षणादि),
बृहत्	बड़ी
अपि	भी (वर्षादि)
अनुगतिः	बराबर चलनेवाली गति है,
यावत्यः	जितनी
यादृशीः	जिस प्रकारकी
कर्मगतयः	कर्मसे प्राप्त होनेवाली गतियाँ
लक्ष्यते	जान पड़ती हैं ॥१३॥

यस्मिन् कर्मसमावायो यथा येनोपगृह्यते ।
गुणानां गुणिनां चैव परिणाममभीप्सताम् ॥१४॥

यस्मिन् कर्म समावायः यथा येन उपगृह्यते गुणानां गुणिनां च एव परिणामं अभीप्सताम् ॥१४॥

गुणानां	(सत्त्व, रज, तम) गुणोंके
गुणिनां च	(इन) गुणोंवालोंके भी

परिणामं	फलको	**येन**	जिनके द्वारा
अभीप्सतां	चाहते हुए	**उपगृह्यते**	(वे कर्म) ग्रहण किये
एव	ही		जाते हैं (किस
यस्मिन्	जिस		इच्छासे, कैसा
कर्म	कर्म		अधिकारी, किस
समावायः	विस्तारमें		विधिसे, कौनसा कर्म
यथा	जैसे		करता है ?) ॥१४॥

भूपातालककुब्व्योमग्रहनक्षत्रभूभृताम् ।
सरित्समुद्रद्वीपानां सम्भवश्चैतदोकसाम् ॥१५॥

भू पाताल ककुब् व्योम ग्रह नक्षत्र भूभृतां सरित् समुद्र द्वीपानां सम्भवः च एतत् ओकसाम् ॥१५॥

भू	पृथ्वी,	**सरित्**	नदियों,
पाताल	पाताल	**समुद्र**	समुद्र,
	(नीचेके लोक),	**द्वीपानां**	द्वीपोंकी,
ककुब्	दिशाएँ,	**च**	तथा
व्योम	आकाश,	**एतत्**	इनमें
ग्रह	ग्रह,	**ओकसां**	रहनेवालोंकी
नक्षत्र	नक्षत्र,	**सम्भवः**	उत्पत्ति (कैसे
भूभृतां	पर्वतोंकी,		हुई ?) ॥१५॥

प्रमाणमण्डकोशस्य बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।
महतां चानुचरितं वर्णाश्रमविनिश्चयः ॥१६॥

प्रमाणं अण्डकोशस्य बाह्य अभ्यन्तर भेदतः महतां च अनुचरितं वर्ण आश्रम विनिश्चयः ॥१६॥

अण्डकोशस्य	ब्रह्माण्डका	**वर्ण**	(चारों ब्राह्मणादि)
बाह्य	बाहरी		वर्ण
अभ्यन्तर	भीतरके	**आश्रम**	(ब्रह्मचर्यादि)
भेदतः	भेदसे		आश्रमोंका
प्रमाणं	प्रमाण (विस्तार),		

विनिश्चयः	ठीक ठीक निर्णय (तथा)	**अनुचरितं**	पुरुषोंका चरित (सुनाइये) ॥१६॥
च महतां	और महान		

युगानि युगमानं च धर्मो यश्च युगे युगे ।
अवतारानुचरितं यदाश्चर्यतमं हरेः ॥१७॥

युगानि युगधर्मं च धर्मः यः च युगे युगे अवतार अनुचरितं यत् आश्चर्यतमं हरेः ॥१७॥

युगानि	युगोंका	**हरेः**	श्रीहरिके
च युगधर्मानि	तथा (उन) युगोंके धर्मोंका और	**यत्**	जो
		आश्चर्यतमं	अत्यन्त आश्चर्यजनक
यः	जो	**अवतार**	अवतारोंकी
च	भी	**अनुचरितं**	(युग युगमें) लीलाएँ हुईं ॥१७॥
धर्मः	धर्म		
युगे युगे	(उन उन) युगोंमें होते हैं,		

नृणां साधारणो धर्मः सविशेषश्च यादृशः ।
श्रेणीनां राजर्षीणां च धर्मः कृच्छ्रेषु जीवताम् ॥१८॥

नृणां साधरणः धर्मः सविशेषः च यादृशः श्रेणीनां राजर्षीणां च धर्मः कृच्छ्रेषु जीवताम् ॥१८॥

नृणां	मनुष्योंका	**श्रेणीनां**	(विभिन्न) वर्गों (व्यवसायमें लगे) लोगोंका
साधारणः	साधारण	**राजर्षीणां**	राजर्षियोंका
धर्मः	धर्म	**च कृच्छ्रेषु**	तथा आपत्तिमें
च	और	**जीवतां**	रहनेवालोंका (आपद्)
यादृशः	जैसा		
सविशेषः	विशेष (धर्म होता है),	**धर्मः**	धर्म (बतलाइये) ॥१८॥

तत्त्वानां परिसंख्यानं लक्षणं हेतुलक्षणम् ।
पुरुषाराधनविधिर्योगस्याध्यात्मिकस्य च ॥१९॥

तत्त्वानां परिसंख्यानं लक्षणं हेतु लक्षणं पुरुषः आराधन विधिः योगस्य आध्यात्मिकस्य च ॥१९॥

तत्त्वानां	(सृष्टिके) तत्त्वोंकी	**आराधनविधिः**	आराधनाकी विधि
परिसंख्यानं	गणना,	**च**	तथा
लक्षणं	(उनका) लक्षण,	**आध्यात्मिकस्य**	आध्यात्मिक
हेतु लक्षणं	उस लक्षणका कारण,	**योगस्य**	योगकी (विधि
पुरुषः	परम पुरुषकी		बतलाइये) ॥१९॥

योगेश्वरैश्वर्यगतिर्लिङ्गभङ्गस्तु योगिनाम् ।
वेदोपवेदधर्माणामितिहासपुराणयोः ॥२०॥

योगेश्वरः ऐश्वर्य गतिः लिङ्ग भङ्ग तु योगिनां वेद उपवेद धर्माणां इतिहास पुराणयोः ॥२०॥

योगश्वरः	योगेश्वरोंके	**वेद**	वेद,
ऐश्वर्य	ऐश्वर्यका	**उपवेद**	उपवेद,
गतिः	स्वरूप	**इतिहास**	इतिहास,
तु	तथा	**पुराणयोः**	पुराणोंके (वर्णित)
योगिनां	योगियोंका	**धर्माणां**	धर्मोंका (स्वरूप
लिङ्ग भङ्ग	लिङ्ग देह नष्ट होना (मोक्ष)		बतलावें) ॥२०॥

सम्प्लवः सर्वभूतानां विक्रमः प्रतिसंक्रमः ।
इष्टापूर्तस्य काम्यानां त्रिवर्गस्य च यो विधिः ॥२१॥

सम्प्लवः सर्वभूतानां विक्रमः प्रतिसंक्रमः इष्ट आपूर्तस्य काम्यानां त्रिवर्गस्य च यः विधिः ॥२१॥

सर्वभूतानां	सब प्राणियोंकी	**सम्प्लवः**	प्रलय,
प्रतिसंक्रमः	उत्पत्ति,	**इष्ट**	देवतादिके लिए
विक्रमः	पराक्रम (स्थिति)		होनेवाले यज्ञादि

आपूर्तस्य	समाजके लाभके लिए किये जानेवाले कूप सरोवरादि बनवाना,	**त्रिवर्गस्य**	अर्थ, धर्म, काम (प्राप्त करने तथा सेवनकी)
काम्यानां	सकाम कर्मोंकी	**यः**	जो
च	और	**विधिः**	विधि है। (वह सुनाइये) ॥२१॥

यश्चानुशायिनां सर्गः पाखण्डस्य च सम्भवः ।
आत्मनो बन्धमोक्षौ च व्यवस्थानं स्वरूपतः ॥२२॥

यः च अनुशायिनां सर्गः पाखण्डस्य च सम्भवः आत्मनः बन्ध मोक्षौ च व्यवस्थानं स्वरूपतः ॥२२॥

यः	जो	**च**	ही (कैसे होती है) ?
अनुशायिनां	(प्रलयके समय) प्रकृतिमें लीन रहने	**आत्मानः**	आत्माका
		बन्ध	बन्धन,
	वाले (जीवों) की	**मोक्षौ**	मोक्ष
सर्गः	सृष्टि है (वह कैसे होती है) ?	**च**	तथा
		स्वरूपतः	अपने स्वरूपमें
च	तथा	**व्यवस्थानं**	स्थिति (का स्वरूप क्या है ?) ॥२२॥
पाखण्डस्य	पाखण्डकी		
सम्भवः	उत्पत्ति		

यथाऽऽत्मतन्त्रो भगवान् विक्रीडत्यात्ममायया ।
विसृज्य वा यथा मायामुदास्ते साक्षिवद् विभुः ॥२३॥

यथा आत्मतन्त्राः भगवान् विक्रीडति आत्ममायया विसृज्य वा यथा मायां उदास्ते साक्षिवत् विभुः ॥२३॥

आत्मतन्त्रः	स्वतन्त्र	**वा**	अथवा
भगवान्	भगवान्	**यथा**	जैसे
यथा	जैसे	**मायां**	मायाको
आत्ममायया	अपनी मायासे	**विसृज्य**	छोड़कर
विक्रीडति	खेलते हैं	**विभुः**	(वे) सर्वव्यापक

साक्षिवत्	साक्षीके समान (तटस्थ)*	**उदास्ते**	उदासीन हो जाते हैं ॥२३॥

सर्वमेतच्च भगवन् पृच्छते मेऽनुपूर्वशः ।
तत्त्वतोऽर्हस्युदाहर्तुं प्रपन्नाय महामुने ॥२४॥

सर्वं एतत् च भगवन् पृच्छते मे अनुपूर्वशः तत्त्वतः अर्हसि उदाहर्तुं प्रपन्नाय महामुने ॥२४॥

भगवन्	भगवन् !	**सर्वं**	सब
महामुने	महामुनि !	**च**	ही (प्रश्नोंका)
मे	मुझ	**अनुपूर्वशः**	क्रमशः
प्रपन्नाय	शरणागतके	**तत्त्वतः**	वास्तविक
पृच्छते	पूछे हुए	**उदाहर्तुं**	उत्तर देना (आपको)
एतत्	इन	**अर्हसि**	चाहिए ॥२४॥

अत्र प्रमाणं हि भवान् परमेष्ठी यथाऽऽत्मभूः ।
परे चेहानुतिष्ठन्ति पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् ॥२५॥

अत्र प्रमाणं हि भवान् परमेष्ठी यथा आत्मभूः परे च इह अनुतिष्ठन्ति पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् ॥२५॥

अत्र	इस विषयमें	**इह**	इस लोकमें
भवान्	आप	**पूर्वेषां**	पहिलेके
यथा	जैसे	**पूर्वजैः**	पूर्वजोंके
परमेष्ठी	लोकस्रष्टा	**कृतं**	कृत्योंका
आत्मभूः	ब्रह्माजी हैं (वैसे)	**अनुतिष्ठन्ति**	अनुकरण करते हैं (उनका अपना कोई अनुभव नहीं होता) ॥२५॥
प्रमाणं	प्रमाण हैं (सर्वज्ञ हैं),		
हि	क्योंकि		
परे	दूसरे		
च	तो		

न मेऽसवः परायन्ति ब्रह्मन्ननशनादमी ।
पिबतोऽच्युतपीयूषमन्यत्र कुपिताद् द्विजात् ॥२६॥

---

* 'साक्षिवत्' इसलिए क्योंकि तब कोई साक्ष्यदृश्य होता ही नहीं ।

न मे असवः परायन्ति ब्रह्मन् अनशनात् अभी पिबतः अच्युत पीयूषं अन्यत्र कुपितात् द्विजात् ॥२६॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**अन्यत्र**	छोड़कर
अच्युत	भगवान्‌की (कथाके)	**अभी**	इस
पीयूषं	अमृतको	**अनशनात्**	अनशनसे
पिबतः	पीते हुए	**न**	नहीं
मे	मेरे	**परायन्ति**	निकल सकते (अतः आप मेरी चिन्ता छोड़ दें।) ॥२६॥
असवः	प्राण		
कुपि ात्	क्रुद्ध हुए		
द्विजात्	ब्राह्मणके (शापको)		

सूत उवाच-

स उपामन्त्रितो राज्ञा कथायामिति सत्पतेः ।
ब्रह्मरातो भृशं प्रीतो विष्णुरातेन संसदि ॥२७॥

सः उपामन्त्रितः राज्ञा कथायां इति सत्पते ब्रह्मरातः भृशं प्रीतः विष्णुरातेन संसदि ॥२७॥

इति	इस प्रकार	**कथायां**	कथाके लिए
राज्ञाः	राजा	**उपामन्त्रितः**	प्रार्थना किये जानेपर
विष्णुरातेन	परीक्षित द्वारा	**सः**	वे
संसदि	(ऋषियोंकी) सभामें	**ब्रह्मरातः**	शुकदेवजी
सत्पते	सत्पुरुषोंके नाथ (भगवान) की	**भृशं**	अत्यन्त
		प्रीतः	प्रसन्न हुए ॥२७॥

प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ॥२८॥

प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितं ब्रह्मणे भगवत् उक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ॥२८॥

ब्रह्मकल्प	ब्रह्म (नामक प्रथम) कल्प	**उपागते**	आनेपर
		भगवत्	भगवानके द्वारा

ब्रह्मणे	ब्रह्माको	भागवतं नाम	भागवत नामक
उक्तं	कहा गया	पुराणं	पुराण
ब्रह्मसम्मितं	वेदतुल्य	प्राह	सुनाया ॥२८॥

यद् यत् परीक्षिदृषभः पाण्डूनामनुपृच्छति ।
आनुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥२९॥

यत् यत् परीक्षित् ऋषभः पाण्डुनां अनुपृच्छति आनुपूर्व्येण तत् सर्वं आख्यातुं उपचक्रमे ॥२९॥

पाण्डुनां	पाण्डुके वंशमें	तत्	उस
ऋषभः	श्रेष्ठ	सर्वं	सबका
परीक्षित्	परीक्षितने	आनुपूर्व्येण	क्रमशः
यत् यत्	जो जो	आख्यातुं	कहना
अनुपृच्छति	क्रमशः पूछा था	उपचक्रमे	प्रारम्भ किया ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां द्वितीयस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

आत्ममायामृते राजन् परस्यानुभवात्मनः ।
न घटेतार्थसम्बन्धः स्वप्नद्रष्टुरिवाञ्जसा ॥१॥

आत्ममायां ऋते राजन् परस्य अनुभवात्मनः न घटेत अर्थ सम्बन्धः स्वप्न द्रष्टुः इव अञ्जसा ॥१॥

राजन्	राजन् !	**ऋते**	छोड़कर
स्वप्न	स्वप्नको	**अञ्जसा**	सरलतासे
द्रष्टुः	दे खने वालेसे	**अर्थ**	(दृश्य) पदार्थोंसे
इव	की भाँति	**सम्बन्धः**	सम्बन्ध
अनुभवात्मनः	अनुभव स्वरूप	**न**	नहीं
परस्य	परमात्माका	**घटेत**	बन सकता ॥१॥
आत्ममायां	अपनी मायाको		

बहुरूप इवाभाति मायया बहुरूपया ।
रममाणो गुणेष्वस्या ममाहमिति मन्यते ॥२॥

बहुरूप इव आभाति मायया बहुरूपया रममाणः गुणेषु अस्या मम अहं इति मन्यते ॥२॥

बहुरूपया	बहुत रूपवाली	**अस्या**	इस (माया) के
मायया	मायाके साथ	**गुणेषु**	गुणोंमें
रममाणः	खेलता हुआ	**मम**	मेरा (और)
बहुरूपया	अनेक रूपवाली	**अहं**	मैं
इव	की भाँति	**इति**	ऐसा
आभाति	जान पड़ता है	**मन्यते**	मान लेता है ॥२॥

यर्हि वाव महिम्नि स्वे परस्मिन् कालमाययोः ।
रमेत गतसम्मोहस्त्यक्त्वोदास्ते तदोभयम् ॥३॥

यर्हि वाव महिम्नि स्वे पर अस्मिन् काल मायया: रमेत गत सम्मोहः त्यक्त्वा उदास्ते तदा उभयम् ॥३॥

यर्हि	जब	**वाव**	ही
अस्मिन्	इन	**रमेत्**	रमण करता है,
काल	(क्षुब्ध करनेवाले) काल	**सम्मोहः**	सम्मोहसे
		गत	छूटकर
मायया:	(मोहित करनेवाली) मायासे	**तदा**	तब
		उभयं	दोनों (मैं-मेरा) को
पर	परे	**त्यक्त्वा**	त्यागकर
स्वे	अपनी	**उदास्ते**	उदासीन हो जाता है ॥३॥
महिम्नि	महिमा (स्वरूप) में		

आत्मतत्त्वविशुद्धयर्थं यदाह भगवानृतम् ।
ब्रह्मणे दर्शयन् रूपमव्यलीकव्रतादृतः ॥४॥

आत्मतत्त्व विशुद्धि अर्थं यत् आह भगवान् ऋतं ब्रह्मणे दर्शयन् रूपं अव्यलीक व्रत आहृतः ॥४॥

अव्यलीक	निष्कपट	**आत्मतत्त्व**	आत्मतत्त्वके
व्रत	व्रत (तप) से	**विशुद्धि**	शुद्धिके (ज्ञानके)
आहृतः	सम्मानित	**अर्थं**	लिए
भगवान्	भगवान्ने	**ऋतं**	सत्य (तत्त्व) का
ब्रह्मणे	ब्रह्माको	**आह**	वर्णन किया था (वह मैं तुमसे कह रहा हूँ ।) ॥४॥
रूपं	अपने स्वरूपका		
दर्शयन्	दर्शन देते समय		
यत्	जो		

स आदिदेवो जगतां परो गुरुः
स्वधिष्ण्यमास्थाय सिसृक्षयैक्षत ।

तां नाध्यगच्छद् दृशमत्र सम्मतां
प्रपञ्चनिर्माणविधिर्यया भवेत् ॥५॥

स आदिदेवः जगतां परः गुरुः स्वधिष्ण्यं आस्थाय सिसृक्षये ऐक्षत तां न अध्यगच्छत् दृशं अत्र सम्मतां प्रपञ्च निर्माण विधिः यया भवेत् ॥५॥

स	वे
जगतां	संसारके
परः	परम
गुरुः	गुरु
आदिदेवः	आदिदेव (ब्रह्माजी)
स्वधिष्ण्यं	अपने स्थान (कमल) पर
आस्थाय	बैठकर
सिसृक्षये	सृष्टि करनेके लिए
ऐक्षत	विचार करने लगे
यया	जिससे
प्रपञ्च निर्माण	संसारकी रचनाकी
विधिः	प्रक्रिया
भवेत्	सम्पन्न हो,
अत्र	इस
सम्मतां	विषयकी
तां	उस
दृशं	दृष्टि (बुद्धि-सूझ)
न	नहीं
अध्यगच्छत	प्राप्त कर सके ॥५॥

स चिन्तयन् द्व्यक्षरमेकदाम्भ-
स्युपाश्रृणोद् द्विर्गदितं वचो विभुः ।
स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशं
निष्किञ्चनानां नृप यद् धनं विदुः ॥६॥

स चिन्तयन् द्वय अक्षरं एकदा अम्भसि उपाश्रृणोत् द्विः गदितं वचः विभुः स्पर्शेषु यत् षोडशं एकविंशं निष्किञ्चनानां नृप यत् धनं विदुः ॥६॥

एकदा	एकबार
स	वे ब्रह्माजी
चिन्तयन्	विचार कर ही रहे थे कि
अम्भसि	(प्रलय समुद्रके) जलमें
विभुः	सर्वव्यापक भगवानकी
वचः	वाणीसे
द्विः	दो बार
गदितं	बोले गये
द्वय	दो
अक्षरं	अक्षरोंको
उपाश्रृणोत्	पास ही सुना
नृप	राजन् !
स्पर्शेषुयत्	व्यञ्जनाक्षरोंमें जो

षोडश	सोलहवाँ (त) और	निष्किञ्चनानां	सर्वस्व त्यागियोंका
एकविंश	इक्कीसवाँ (प) है	धनं	धन
यत्	जो	विदुः	जाना जाता है ॥६॥

निशम्य तद्वक्तृदिदृक्षया दिशो
विलोक्य तत्रान्यदपश्यमानः ।
स्वधिष्ण्यमास्थाय विमृश्य तद्धितं
तपस्युपादिष्ट इवादधे मनः ॥७॥

निशम्य तद् वक्तृ दिदृक्षया दिशः विलोक्य तत्र अन्यत् अपश्यमानः स्वधिष्ण्यं आस्थाय विमृश्य तत् हितं तपसि उपादिष्टः इव आदधे मनः ॥७॥

निशम्य	(उस वाणीको) सुनकर	आस्थाय	(स्थिर) बैठकर
तद्	उस	विभृश्य	विचार करके
वक्तृ	बोलनेवालेको	तपसि	तपस्या करनेके लिए
दिदृक्षया	देखनेकी इच्छासे	उपादिष्टः	(मुझे) उपदेश किया गया हैं,
दिशः	दिशाओंको	इव	यह समझकर
विलोक्य	देखकर,	तत्	उस
तत्र	वहाँ	हितं	(अपने) हितमें (तपमें)
अन्यत्	दूसरे किसीको	मनः	मनको
अपश्यमानः	न देखकर,	आदधे	लगाया ॥७॥
स्वधिष्ण्यं	अपने स्थानपर		

दिव्यं सहस्राब्दममोघदर्शनो
जितानिलात्मा विजितोभयेन्द्रियः ।
अतप्यत स्माखिललोकतापनं
तपस्तपीयांस्तपतां समाहितः ॥८॥

दिव्यं सहस्र अब्दं अमोघ दर्शनः जित अनिल आत्मा विजित उभय इन्द्रियः अतप्यत स्म अखिल लोक तापनं तपः तपीयान् तपतां समाहितः ॥८॥

अमोघ	अव्यर्थ
दर्शनः	ज्ञानवाले
तपतां	तपस्या करने वालोंमें
तपीयान्	सर्वश्रेष्ठ तपस्वी (ब्रह्माजीने)
दिव्यं	देवताओंके
सहस्र	एक सहस्र
अब्दं	वर्षतक
अनिलः	श्वासको तथा
जित् आत्मा	मनको जीतकर
उभय इन्द्रियः	कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय दोनोंको
विजित	वशमें करके,
समाहितः	एकाग्र होकर,
अखिल लोक	सब लोकोंको
तापनं	प्रकाशित करनेमें सक्षम
तपः	तप
अतप्यतस्म	किया ॥८॥

तस्मै स्वलोकं भगवान् सभाजितः
सन्दर्शयामास परं न यत्परम् ।
व्यपेतसंक्लेशविमोहसाध्वसं
स्वदृष्टवद्भिर्विबुधैरभिष्टुतम् ॥९॥

तस्मै स्वलोकं भगवान् सभाजितः सन्दर्शयामास परं न यत् परं व्यपेत संक्लेश विमोह साध्वसं स्वदृष्टवद्भिः विबुधैः अभिष्टुतम् ॥९॥

सभाजितः	(ब्रह्माजीके तपसे) सत्कृत
भगवान्	भगवानने
तस्मै	उनको
स्वलोकं	अपनालोक
सन्दर्शयामास	दिखलाया
यत्	जिससे
परं	परे
न	कोई (लोक) नहीं है,
संक्लेश	क्लेश
विमोह	मोह,
साध्वसं	भयसे,
व्यपेत	रहित
परं	परम (लोक) को
स्वदृष्टवद्भिः	जिन्होंने स्वयं देखा है
विबुधैः	(उन नित्य) देवताओं द्वारा
अभिष्टुतं	उस (लोक) की स्तुति होती है ॥९॥

प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः
सत्त्वं च मिश्रं न च कालविक्रमः ।

न यत्र माया किमुतापरे हरे-
रनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः ॥१०॥

प्रवर्तते यत्र रजः तमः तयोः सत्त्वं च मिश्रं न च काल विक्रमः न यत्र माया किमुत अपरे हरेः अनुव्रता यत्र सुर असुर अर्चिताः ॥१०॥

यत्र	जहाँ	**यत्र**	जहाँ
रजः	रजोगुण,	**माया**	माया ही नहीं
तमः	तमोगुण (तथा)		पहुँचती (वहाँ)
तयोः	इन दोनोंसे	**अपरे**	दूसरे (मायाके द्वारा
मिश्रं	मिश्रित		उत्पन्न)
सत्त्वं	सत्त्वगुण	**किमुत**	कैसे जा सकते हैं ।
च	भी	**यत्र**	जहाँ
न	नहीं	**सुर-असुर**	देव-दैत्य (सबसे)
प्रवर्तते	प्रवृत्त होता,	**अर्चिताः**	पूजित
काल	कालका	**हरेः**	श्रीहरिके
विक्रमः	पराक्रम	**अनुव्रताः**	पार्षद (निवास
च	भी		करते) हैं ॥१०॥
न	(वहाँ) नहीं है ।		

श्यामावदाताः शतपत्रलोचनाः
पिशङ्गवस्त्राः सुरुचः सुपेशसः ।
सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणि-
प्रवेकनिष्काभरणाः सुवर्चसः ।
प्रवालवैदूर्यमृणालवर्चसः
परिस्फुरत्कुण्डलमौलिमालिनः॥ ॥११॥

श्याम अवदाताः शतपत्र लोचनाः पिशङ्गवस्त्राः सुरुचः सुपेशसः सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन् मणि प्रवेक निष्क आभरणाः सुवर्चसः प्रवाल वैदूर्य मृणाल वर्चसः परिस्फुरत् कुण्डल मौलि मालिनः ॥११॥

सर्वे	सब	**श्याम**	श्यामवर्णके
अवदाताः	उज्वल	**शतपत्र**	कमल (केसमान)

लोचनाः	नेत्रोंवाले
पिशङ्ग वस्त्राः	पीले वस्त्रवाले,
सुरुचः	सुन्दर,
सुपेशसः	सुकुमार,
सुवर्चसः	उत्तम कान्तियुक्त,
चतुर्बाहव	चतुर्भुज
उन्मिषन्	चमकती
मणि	मणियोंसे
प्रवेक	जड़े हुए
निष्क	स्वर्णके
आभरणाः	आभूषणधारी,
प्रवाल	मूँगे,
वैदूर्य	वैदूर्य (लहसनिया),
मृणाल	कमलनाल (केसमान)
वर्चसः	कान्तिवाले,
परिस्फुरत्	दमकते
कुण्डल	कुण्डल (पहिने),
मौलि	सिरोंपर
मालिनः	मालाएँ पहिने थे ॥११॥

भ्राजिष्णुभिर्यः परितो विराजते
लसद्विमानावलिभिर्महात्मनाम् ।
विद्योतमानः प्रमदोत्तमाद्युभिः
सविद्युदभ्रावलिभिर्यथा नभः ॥१२॥

भ्राजिष्णुभिः यः परितः विराजते लसत् विमानावलिभिः महात्मनां विद्योतमानः प्रमदोत्तमा द्युभिः सविद्युत् अभ्रवलिभिः यथा नभः ॥१२॥

यथा	जैसे
नभः	आकाश
सविद्युत	बिजलीके साथ
अभ्रावलिभिः	मेघमालासे (वैसे ही)
यः	जो (लोक)
विद्योतमानः	प्रकाश करती हुई
प्रमदोत्तमाभाः	श्रेष्ठ महिलाओंकी
द्युभिः	कान्तिसे युक्त,
महात्मनां	उन महात्माओंके
लसत	सुशोभित
भ्राजिष्णुभिः	तेजोमय
विमानावलिभिः	विमानोंके समूहोंसे
परितः	चारों ओरसे
विराजते	अत्यन्त शोभित हो रहा है ॥१२॥

श्रीर्यत्र रूपिण्युरुगायपादयोः
करोति मानं बहुधा विभूतिभिः ।

प्रेङ्खं श्रिता या कुसुमाकरानुगै-
र्विगीयमाना प्रियकर्म गायती ॥१३॥

श्रीः यत्र रूपिणी उरुगाय पादयो करोति मानं बहुधा विभूतिभिः
प्रेङ्खं श्रिताः या कुसुमाकरानुगैः विगीयमाना प्रियकर्म गायती ॥१३॥

यत्र	जहाँ	**श्रिताः या**	बैठकर (वे जब)
रूपिणि	साकार होकर	**प्रियकर्म**	अपने प्रियतमकी लीलाओंका
श्रीः	लक्ष्मीजी	**गायती**	गान करने लगती हैं (तब)
उरुगाय	अनन्त कीर्ति (भगवान) के	**कुसुमाकरानुगैः**	भौंरोंके द्वारा
पादयोः	चरणोंका	**विगीयमाना**	(उनका ही यश) गाया जाता है (भ्रमर उनके समीप गुंजार करने लगते हैं) ॥१३॥
बहुधा	अनेक प्रकारकी		
विभूतिभिः	विभूतियोंसे		
मानं	सम्मान (अर्चन)		
करोति	करती हैं,		
प्रेङ्खं	झूलेपर		

ददर्श तत्राखिलसात्वतां पतिं
श्रियः पतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ।
सुनन्दनन्दप्रबलार्हणादिभिः
स्वपार्षदमुख्यैः परिसेवितं विभुम् ॥१४॥

ददर्श तत्र अखिल सात्वतां पतिं श्रियः पतिं यज्ञपतिं जगत्पतिं सुनन्द नन्द प्रबल अर्हणादिभिः स्वपार्षद मुख्यैः परिसेवितं विभुम् ॥१४॥

तत्र	उस लोकमें	**मुख्यैः**	प्रमुखोंसे
सुनन्द	सुनन्द,	**परिसेवितं**	चारों ओरसे सेवा किये जाते,
नन्द	नन्द,	**विभुं**	(उन) सर्वव्यापक
प्रबल	प्रबल,	**अखिल**	समस्त
अर्हणादिभिः	अर्हण आदि	**सात्वतांपतिं**	भक्तोंके स्वामी
स्वपार्षद	अपने पार्षद		

श्रियः पतिं	रमानाथ	ददर्श	(ब्रह्माने)
यज्ञपतिं	यज्ञेश्वर		देखा ॥१४॥
जगत्पतिं	जगन्नाथको		

भृत्यप्रसादाभिमुखं दृगासवं
प्रसन्नहासारुणलोचनाननम् ।
किरीटिनं कुण्डलिनं चतुर्भुजं
पीताम्बरं वक्षसि लक्षितं श्रिया ॥१५॥

भृत्य प्रसाद अभिमुखं दृक् आसवं प्रसन्नहास अरुण लोचन आननं किरीटिनं कुण्डलिनं चतुर्भुजं पीताम्बरं वक्षसि लक्षितं श्रिया ॥१५॥

भृत्य	सेवकोंपर	**आननं**	मुख,
प्रसाद	कृपा करनेको	**किरीटिनं**	मुकुटधारी,
अभिमुखं	(नित्य) उद्यत	**कुण्डलिनं**	कुण्डल पहिने,
दृक् आसवं	अमृत भरी दृष्टिवाले,	**चतुर्भुजं**	चतुर्भुज
		पीताम्बर	पीतम्बरधारी
प्रसन्न हास	प्रसन्नतासे हँसते	**वक्षसि**	वक्षस्थलपर
अरुण	लाल	**श्रिया**	श्रीवत्सका
लोचन	नेत्रोंसे युक्त	**लक्षितं**	चिह्न (है) ॥१५॥

अध्यर्हणीयासनमास्थितं परं
वृतं चतुःषोडशपञ्चशक्तिभिः ।
युक्तं भगैः स्वैरितरत्र चाध्रुवैः
स्व एव धामन् रममाणमीश्वरम् ॥१६॥

अध्यर्हणीय आसनं आस्थितं परं वृतं चतुः षोडश पञ्च शक्तिभिः युक्तं भगैः इतरअत्र च अध्रुवैः स्व एव धामन् रममाणं ईश्वरम् ॥१६॥

अध्यर्हणीय	बहुमूल्य सम्मान्य	**चतुः षोडष पञ्च**	चार, सोलह और
परं आसनं	श्रेष्ठ आसनपर		पाँच–पच्चीस
आस्थितं	बैठे हुए,		(पुरुष, प्रकृति,

	महतत्त्व, अहंकार, मन, दस इन्द्रियाँ, पंच तन्मात्र, पंच	अत्र	(जो) यहाँ (भगवानको छोड़कर)
शक्तिभिः	तत्त्वोंसे	इतर च	दूसरोंसे तो
वृतं	घिरे	अध्रुवैः	अस्थायी रहते हैं,
स्वैः	अपने	स्व	अपने
भगैः	ऐश्वर्य (समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य) से	एव	ही
		धामन्	धाम (स्वरूप) में
		रममाणं	क्रीड़ा करते,
		ईश्वरं	सर्व समर्थ
युक्तं	संयुक्त		(को देखा) ॥१६॥

तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुतान्तरो
हृष्यत्तनुः प्रेमभराश्रुलोचनः ।
ननाम पादाम्बुजमस्य विश्वसृग्
यत् पारमहंस्येन पथाधिगम्यते ॥१७॥

तत् दर्शन आह्लाद परिप्लुतः अन्तरः हृष्यत् तनुः प्रेमभर अश्रुलोचनः ननाम पादाम्बुजं अस्य विश्वसृक् यत् पारमहंस्येन पथा अधिगम्यते ॥१७॥

यत्	जो	हृष्यत्	रोमाञ्चित
पारमहंस्येन	परमहंसोंके	तनुः	शरीर,
पथा	मार्गसे (निवृत्ति मार्ग से)	प्रेमभर	प्रेमके आवेगसे
		अश्रुलोचनः	नेत्रोंसे अश्रु बहाते
अधिगम्यते	प्राप्त होते हैं	विश्वसृक्	सृष्टिकर्ता (ब्रह्माजी) ने
तत्	उनके		
दर्शन	दर्शनके	अस्य	इन (भगवान) के
आह्लाद	आनन्दसे	पादाम्बुजं	चरणकमलोंमें
परिप्लुतः	उमड़ते	ननाम	नमस्कार किया ॥१७॥
अन्तरः	हृदय,		

तं प्रीयमाणं समुपस्थितं तदा
प्रजाविसर्गे निजशासनार्हणम् ।
बभाष ईषत्स्मितशोचिषा गिरा
प्रियः प्रियं प्रीतमनाः करे स्पृशन् ॥१८॥

तं प्रीयमाणं समुपस्थितं तदा प्रजा विसर्गे निज शासन अर्हणं बभाष ईषत् स्मित शोचिषा गिरा प्रियः प्रियं प्रीतमनाः करे स्पृशन् ॥१८॥

तं	उन
प्रियं	अपने प्रिय (ब्रह्मा)से
तदा	उस समय
प्रीयमाणं	प्रसन्न करनेके प्रयत्नमें लगे
प्रियः	(ब्रह्माके) प्रिय (भगवान)
प्रजा विसर्गे	प्रजाकी सृष्टिमें
निज	अपने
शासन	आदेश
अर्हणं	योग्य,
समुपस्थितं	सम्मुख उपस्थित,
प्रीतमनाः	प्रसन्न चित्त होकर,
करे स्पृशन्	हाथसे स्पर्श करते हुए
ईषत् स्मित	मन्द मुसुकानसे
शोचिषा	अलंकृत
गिरा	वाणीसे
बभाष	बोले ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच-

त्वयाहं तोषितः सम्यग् वेदगर्भं सिसृक्षया ।
चिरं भृतेन तपसा दुस्तोषः कूटयोगिनाम् ॥१९॥

त्वया अहं तोषितः सम्यक् वेदगर्भ सिसृक्षया चिरं भृतेन तपसा दुस्तोषः कूट योगिनाम् ॥१९॥

कूट योगिनां	(मनमें) कपट रखकर योग करने वालोंसे
दुस्तोषः	सन्तुष्ट न होनेवाला
अहं	मैं
वेदगर्भ	ब्रह्माजी
सिसृक्षया	सृष्टि करनेकी इच्छासे
त्वया	तुम्हारे द्वारा
चिरं भृतेन	बहुत समयतक की गयी

तपसा	तपस्यासे	तोषितः	सन्तुष्ट किया
सम्यक्	भली प्रकार		गया ॥१९॥

वरं वरय भद्रं ते वरेशं माभिवाञ्छितम् ।
ब्रह्मञ्छ्रेयःपरिश्रामः पुंसो मद्दर्शनावधिः ॥२०॥

वरं वरय भद्रं ते वरेशं मां अभिवाञ्छितं ब्रह्मन् श्रेयः परिश्रामः पुंसः मत् दर्शन अवधिः ॥२०॥

ब्रह्मन्	ब्रह्माजी !	मां	मुझ
पुंसः	पुरुषके	वरेशं	वरदानोंके स्वामीसे
श्रेयः	कल्याणके लिए	अभिवाञ्छितं	अभीष्ट
परिश्रामः	परिश्रम (सब साधन)	वरं	वरदान
		वरय	मांग लो,
मत्	मेरे	ते	तुम्हारा
दर्शन	दर्शन	भद्रं	कल्याण हो ॥२०॥
अवधिः	तक ही है, (अतः)		

मनीषितानुभावोऽयं मम लोकावलोकनम् ।
यदुपश्रुत्य रहसि चकर्थ परमं तपः ॥२१॥

मनीषितः अनुभावः अयं मम लोक अवलोकनं यत् उपश्रुत्य रहसि चकर्थ परमं तपः ॥२१॥

अयं	यह	उपश्रुत्य	(मेरी वाणी) सुनकर
मम	मेरे	परमं तपः	परम (घोर) तपस्या (तुमने)
लोक	लोकका	चकर्थ	किया (उसी)
अवलोकनं	दर्शन	मनीषितः	मनस्विताका
यत्	जो	अनुभावः	प्रभाव है ॥२१॥
रहसि	एकान्तमें		

प्रत्यादिष्टं मया तत्र त्वयि कर्मविमोहिते ।
तपो मे हृदयं साक्षादात्माहं तपसोऽनघ ॥२२॥

प्रत्यादिष्टं मया तत्र त्वयि कर्म विमोहिते तपः मे हृदयं साक्षात् आत्मा अहं तपसः अनघ ॥२२॥

अनघ	निष्पाप (ब्रह्माजी) !	प्रत्यादिष्टं	(तुम्हें) आदेश दिया गया
त्वयि	तुम्हारे	तपः	तप
कर्म	(सृष्टि रचनाके) कर्ममें	साक्षात्	प्रत्यक्ष
विमोहिते	(किंकर्तव्य) विमूढ़ होनेपर	मे	मेरा
तत्र	वहाँ	हृदयं	हृदय है,
मया	मेरे द्वारा	अहं	मैं
		तपसः	तपका
		आत्मा	आत्मा हूँ ॥२२॥

सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः ।
बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः ॥२३॥

सृजामि तपसा एव इदं ग्रसामि तपसा पुनः बिभर्मि तपसा बिश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः ॥२३॥

इदं	इस	तपसा	तपस्यासे
विश्वं	विश्वकी	बिभर्मि	(संसारको) धारण करता हूँ,
तपसा	तपस्यासे	तपः	तपस्या
एव	ही	मे	मेरी
सृजामि	सृष्टि करता हूँ,	दुश्चरं	दुर्लंघ्य
पुनः	फिर	वीर्यं	शक्ति है ॥२३॥
तपसा	तपस्यासे		
ग्रसामि	(इसे) निगल लेता हूँ,		

ब्रह्मोवाच-

भगवन् सर्वभूतानामध्यक्षोऽवस्थितो गुहाम् ।
वेद ह्यप्रतिरुद्धेन प्रज्ञानेन चिकीर्षितम् ॥२४॥

भगवन् सर्वभूतानां अध्यक्षः अवस्थितः गुहां वेद हि अप्रतिरुद्धेन प्रज्ञानेन चिकीर्षितम् ॥२४॥

भगवन्	भगवन् !	**अप्रतिरुद्धेन**	अप्रतिहत
हि	क्योंकि	**प्रज्ञानेन**	(अपने) ज्ञानसे
सर्वभूतानां	समस्त प्राणियोंके	**चिकीर्षितं**	(मेरी जो) करनेकी
अध्यक्षः	(आप) स्वामी हैं,		इच्छा है
गुहां	(सबकी हृदय) गुहामें	**वेद**	(उसे) जानते ही हैं ॥२४॥
अवस्थितः	स्थित हैं,		

तथापि नाथमानस्य नाथ नाथय नाथितम् ।
परावरे यथा रूपे जानीयां ते त्वरूपिणः ॥२५॥

तथापि नाथमानस्य नाथ नाथय नाथितं परावर यथा रूपे जानीयां ते तु अरूपिणः ॥२५॥

तथापि	फिर भी	**ते**	आप
नाथ	स्वामी !	**अरूपिणः**	निराकार
नाथ मानस्य	याचना करते हुए (मेरी)	**तु**	के
		परावरे	कार्य-कारणात्मक
नाथितुं	याचनाको	**रूपे**	रूपोंको
नाथय	पूरी कर दीजिये,	**जानीयां**	जान सकूँ ॥२५॥
यथा	जिससे		

यथाऽऽत्ममायायोगेन नानाशक्त्युपबृंहितम् ।
विलुम्पन् विसृजन् गृह्णन् बिभ्रदात्मानमात्मना ॥२६॥

यथा आत्म माया योगेन नानाशक्ति उपबृंहितं विलुम्पन् विसृजन् गृहणन् विभ्रत् आत्मानं आत्मना ॥२६॥

यथा	जैसे (आप)	**उपबृंहितः**	सम्पन्न होकर
आत्ममाया	अपनी मायाके	**विलुम्पन्**	(जगतका) प्रलय करते
योगेन	योग (आश्रम) से		
नानाशक्ति	नाना शक्तियोंसे	**विसृजन्**	सृष्टि करते,

गृहणन्	ग्रहण (पालन) करते,	**आत्मानं**	अपने (स्वरूप)
आत्मना	अपने द्वारा		को ही
		विभ्रत्	धारण करते हैं ।२६।

क्रीडस्यमोघसङ्कल्प ऊर्णनाभिर्यथोर्णुते ।
तथा तद्विषयां धेहि मनीषां मयि माधव ॥२७॥

क्रीडसि अमोघ सङ्कल्पः ऊर्णनाभिः यथा ऊर्णते तथा तत् विषयां धेहि मनीषां मयि माधव ॥२७॥

माधव	माधव !	**तथा**	ऐसी ही
यथा	जैसे	**तत्**	उस (सृष्टि) के
ऊर्णनाभिः	मकड़ी	**विषयां**	विषयकी
ऊर्णते	जाला बनाती हैं,	**मनीषां**	बुद्धि
अमोघ	अव्यर्थ	**मयि**	मुझमें
सङ्कल्पः	सङ्कल्प (आप)	**धेहि**	दीजिये ॥२७॥
क्रीडसि	(वैसे ही) खेलते हैं,		

भगवच्छिक्षितमहं करवाणि ह्यतन्द्रितः ।
नेहमानः प्रजासर्गं बध्येयं यदनुग्रहात् ॥२८॥

भगवत इच्छितं अहं करवाणि हि अतन्द्रितः न ईहमानः प्रजासर्गं बध्येयं यत् अनुग्रहात् ॥२८॥

हि	क्योंकि	**करवाणि**	कर सकूं और
भगवत	भगवन् आपकी	**ईहमानः**	सृष्टि करते समय भी
इच्छितं	इच्छाके अनुसार	**यत् अनुग्रहात्**	जिनके अनुग्रहसे
अहं	मैं	**बध्येयं**	(इसमें) बन्धनमें
अतन्द्रितः	प्रमाद रहित होकर	**न**	न पड़ूँ ॥२८॥
प्रजासर्गं	प्रजाकी सृष्टि		

यावत् सखा सख्युरिवेश ते कृतः
प्रजाविसर्गे विभजामि भो जनम् ।

अविक्लवस्ते परिकर्मणि स्थितो
मा मे समुन्नद्धमदोऽजमानिनः ॥२९॥

यावत् सखा सख्युः इव ईश ते कृतः प्रजाविसर्गे विभजामि भो जनं अविक्लवः ते परिकर्मणि स्थितः मा मे समुन्नद्ध मदः अज मानिनः ॥२९॥

ईश	सर्वसमर्थ
सखा	परम मित्र !
ते	आपने (मुझे)
सख्युः	सखाकी
इव	भाँति
कृतः	बना लिया है (अतः)
यादत्	जबतक
प्रजाविसर्गे	प्रजाकी सृष्टिमें
अविक्लवः	सावधानीसे
जनं	लोगों (प्राणियों) का
विभजामि	विभाजन करने लगूँ
भो	हे प्रभो ! (तब)
ते	आपके ही
परिकर्मणि	(सृष्टि रूप) सेवा कर्ममें
स्थितः	लगनेपर
मे	मुझमें
अज	(अपनेको) अजन्मा
मानिनः	माननेका
समुन्नद्ध	बढ़ा हुआ
मदः	अहंकार
मा	न होवे ॥२९॥

श्रीभगवानुवाच-

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद् विज्ञानसमन्वितम् ।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥३०॥

ज्ञानं परम गुह्यं मे यद् विज्ञान समन्वितं सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥३०॥

यद्	जो
विज्ञान	विशेष ज्ञानसे
समन्वितं	संयुक्त
परमगुह्यं	परम रहस्यमय
ज्ञानं	ज्ञान है,
स रहस्यं	रहस्यके साथ
तदङ्गं	उसके अङ्ग
च	भी
मया	मेरे द्वारा
ते	तुम्हें
गदितं	कहा गया
गृहाण	ग्रहण करो ॥३०॥

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥३१॥

यावान् अहं यथा भावः यत् रूप गुण कर्मकः तथा एव तत्त्वविज्ञानं अस्तु ते मत् अनुग्रहात् ॥३१॥

अहं	मैं	**तथा**	वैसा
यावान्	जितना हूँ,	**एव**	ही
यथा	जैसे	**तत्त्व विज्ञानं**	तत्त्वका सम्पूर्ण ज्ञान
भावः	लक्षणवाला,	**मत्**	मेरे
यत्	जैसे	**अनुग्रहात्**	अनुग्रहसे
रूप	रूप,	**ते**	तुम्हें
गुण	गुण,	**अस्तु**	होवे ॥३१॥
कर्मकः	कर्मवाला हूँ ।		

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम् ।
पश्चादहं यदेतच्चयोऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥३२॥

अहं एव आसं एव अग्रे न अन्यत् सत् असत् परं पश्चात् अहं यत् एतत् च यः अवशिष्येत सः अस्मि अहम् ॥३२॥

अग्रे	(सृष्टिके) पहिले	**पश्चात्**	पीछे
अहं	मैं	**अहं**	मैं (ही रहजाता हूँ)
एव	ही	**यत्**	जो
आसं	था,	**एतत्**	यह (सृष्टि)
एव	था ही था (एकमात्र मैं था),	**च**	भी (और)
		यः	(इससे) जो
अन्यत्	दूसरा	**अवशिष्येत**	बच रहता है
सत्	कारण	**सः**	वह
असत्	कार्य	**अहं**	मैं (ही)
परं	इनसे परे (भी)	**अस्मि**	हूँ ॥३२॥
न	(कुछ) नहीं था,		

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥३३॥

ऋते अर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत च आत्मनि तत् विद्यात् आत्मनः मायां यथा आभासः यथा तमः ॥३३॥

अर्थं	तत्त्वके
ऋते	अतिरिक्त
यत्	जो
प्रतीयेत	प्रतीत होता है (किन्तु),
आत्मनि	आत्मामें
च	तो
न	नहीं
प्रतीयेत	प्रतीत होता
तत्	उसको
आत्मनः	आत्माकी
मायां	माया
विद्यात्	जाने,
यथा	जैसे
आभासः	प्रतिबिम्ब या प्रतीति (जैसे न होनेपर भी दो चन्द्र दीखते हैं)
यथा	जैसे
तमः	राहु (यह वस्तुतः कोई ग्रह नहीं है; किन्तु पृथ्वीकी छायासे प्रतीत होता है) ॥३३॥

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥३४॥

यथा महान्ति भूतानि भूतेषु उच्च अवचेषु अनुप्रविष्टानि अप्रविष्टानि तथा तेषु न तेषु अहम् ॥३४॥

यथा	जैसे
महान्ति भूतानि	महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश)
उच्च अवचानि	बड़े छोटे सब
भूतेषु	प्राणियोंमें
अप्रविष्टानि	बिना प्रवेश किये ही
अनुप्रविष्टानि	प्रवेश किये हैं (आकाश आदि सबमें हैं; किन्तु आकाशकी दृष्टिसे तो प्राणि-पदार्थकी सत्ता ही नहीं, अतः वह प्रवेश कहाँ किसमें करेगा),
तथा	वैसे ही

तेषु	उन सब (प्राणि पदार्थों) में होते हुए भी	**तेषु**	उनमें
		अहं	मैं
		न	नहीं हूँ ॥३४॥

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥३५॥

एतावत् एव जिज्ञास्यं तत्त्व जिज्ञासु आत्मनः अन्वय व्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥३५॥

आत्मनः	आत्म	**व्यतिरेकाभ्यां**	प्रलय क्रमसे भी
तत्त्व	तत्त्वको	**यत्**	जो
जिज्ञासु	जाननेकी इच्छा वालेको	**स्यात्**	(नित्य) तत्त्व है (वह)
एतावत्	इतना मात्र	**सर्वत्र**	सब देशमें,
एव	ही	**सर्वदा**	सब कालमें (एक रस रहता) है ॥३५॥
जिज्ञास्यं	जानना चाहिये कि		
अन्वय	सृष्टि क्रमसे,		

एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ।
भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥३६॥

एतत् मतं सम आतिष्ठ परमेण समाधिना भवान् कल्प विकल्पेषु न विमुह्यति कर्हचित् ॥३६॥

परमेण	अत्यन्त	**भवान्**	आप
समाधिना	एकाग्रतापूर्वक	**कल्प**	महाकल्प
एतत्	इस	**विकल्पेषु**	उप कल्पोंमें
मतं	मतपर	**कर्हिचित**	कभी भी
सम	भली प्रकार	**विमुह्येत**	मोहित
आतिष्ठ	स्थित हो जाओ (फिर)	**न**	नहीं होंगे ॥३६॥

श्रीशुक उवाच–

सम्प्रदिश्यैवमजनो जनानां परमेष्ठिनम् ।
पश्यतस्तस्य तद्रूपमात्मनो न्यरुणद्धरिः ॥३७॥

सम्प्रदिश्य एवं अजनः जनानां परमेष्ठिनं पश्यतः तस्य तद् रूपं आत्मनः न्यरुणत् हरिः ॥३७॥

जनानां	लोगोंके	**अजनः**	अजन्मा
परमेष्ठिनं	पितामह (ब्रह्माजी) को	**हरिः**	श्रीहरिने
एवं	इस प्रकार	**तद्**	वह
सम्प्रदिश्य	समझाकर,	**आत्मनः**	अपना
तस्य	उनके	**रूपं**	रूप
पश्यतः	देखते देखते	**न्यरुणत्**	छिपा लिया ॥३७॥

अन्तर्हितेन्द्रियार्थाय हरये विहिताञ्जलिः ।
सर्वभूतमयो विश्वं ससर्जेदं स पूर्ववत् ॥३८॥

अन्तर्हित इन्द्रियार्थाय हरये विहित अञ्जलिः सर्वभूतमयः विश्वं ससर्ज ददं स पूर्ववत् ॥३८॥

इन्द्रियार्थाय	इन्द्रिय गोचर (रूपके)	**सर्वभूतमयः**	सम्पूर्ण प्राणीमय
अन्तर्हिताय	तिरोहित हुए	**इदं**	इस
हरये	श्रीहरिके प्रति	**विश्वं**	विश्वको
विहित अञ्जलिः	हाथ जोड़कर,	**पूर्ववत्**	पहिले (कल्प) के समान
स	उन (ब्रह्माजी) ने	**ससर्ज**	बनाया ॥३८॥

प्रजापतिर्धर्मपतिरेकदा नियमान् यमान् ।
भद्रं प्रजानामन्विच्छन्नातिष्ठत् स्वार्थकाम्यया ॥३९॥

प्रजापतिः धर्मपतिः एकदा नियमान् यमान् भद्रं प्रजानां अन्विच्छन् आतिष्ठत् स्वार्थ काम्यया ॥३९॥

एकदा	एक बार	**स्वार्थ काम्यया**	अपने इस प्रयोजनकी कामनासे
धर्मपतिः	धर्मके स्वामी	**नियमान् यमान्**	यम-नियमोंका
प्रजापतिः	प्रजापति ब्रह्माजीने	**आतिष्ठत्**	भली प्रकार पालन किया ॥३९॥
प्रजानां	प्रजाका		
भद्रं	कल्याण		
अन्विच्छन्	चाहते हुए		

तं नारदः प्रियतमो रिक्थादानामनुव्रतः ।
शुश्रूषमाणः शीलेन प्रश्रयेण दमेन च ॥४०॥

तं नारदः प्रियतमः रिक्थादानां अनुव्रतः शुश्रूषमाणः शीलेन प्रश्रयेण दमेन च ॥४०॥

तं	उनको
रिक्थादानां	उत्तराधिकारी (पुत्रों) में
प्रियतमः	अत्यन्त प्रिय
अनुव्रतः	अनुगत
नारदः	नारद
शुश्रूषमाणः	(मायाका तत्त्व) सुननेकी इच्छासे
शीलेन	अपनी सौम्यतासे,
प्रश्रयेण	विनयसे,
दमेन च	संयमसे भी (प्रसन्न किया) ॥४०॥

मायां विविदिषन् विष्णोर्मायेशस्य महामुनिः ।
महाभागवतो राजन् पितरं पर्यतोषयत् ॥४१॥

मायां विविदिषन् विष्णोः मायेशस्य महामुनिः महाभागवतः राजन् पितरं पर्यतोषयत् ॥४१॥

राजन्	राजन् !
महाभागवतः	महाभागवत
महामुनिः	महामुनि (नारद) ने
मायेशस्य	मायाके स्वामी
विष्णोः	भगवान् विष्णुकी
मायां	माया (केतत्त्व) को
विविदिषन्	जाननेकी इच्छासे
पितरं	(अपने) पिता (ब्रह्माजी) को
पर्यतोषयत्	पूर्णतः सन्तुष्ट किया ॥४१॥

तुष्टं निशाम्य पितरं लोकानां प्रपितामहम् ।
देवर्षिः परिपप्रच्छ भवान् यन्मानुपृच्छति ॥४२॥

तुष्टं निशाम्य पितरं लोकानां प्रपितामहं देवर्षिः परिपप्रच्छ भवान् यत् मां अनुपृच्छति ॥४२॥

लोकानां	सब लोकोंके
प्रपितामहं	प्रपितामह
पितरं	अपने पिताको
तुष्टं	सन्तुष्ट
निशाम्य	देखकर
देवर्षिः	देवर्षि नारदने

	(वही)	मां	मुझसे
परिपप्रच्छ	पूछा	यत्	जो
भवान्	आप	अनुपृच्छसि	पूछते हैं ॥४२॥

तस्मा इदं भागवतं पुराणं दशलक्षणम् ।
प्रोक्तं भगवता प्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत् ॥४३॥

तस्मा इदं भागवतं पुराणं दशलक्षणं प्रोक्तं भगवता प्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत् ॥४३॥

तस्मा	उन		के द्वारा
पुत्राय	अपने पुत्र (नारदजी) से	प्रोक्तं	कहा गया
भूतकृत्	प्राणियोंके स्रष्टा (ब्रह्मा) ने	इदं	यह
प्रीतः	प्रसन्न होकर	दशलक्षणं	दस लक्षणवाला
भगवता	भगवान् (विष्णु)	पुराणं	पुराण
		भागवतं	भागवत
		प्राह	कहा ॥८॥

नारदः प्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप ।
ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायामिततेजसे ॥४४॥

नारदः प्राह मुनये सरस्वत्याः तटे नृप ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासाय अमित तेजसे ॥४४॥

नृप	राजन् !	मुनये	मुनि
सरस्वत्याः तटे	सरस्वतीके किनारे	व्यासाय	व्यासजीसे
परमं ब्रह्म	परम ब्रह्मका	नारदः	नारदजीने
ध्यायते	ध्यान करते हुए	प्राह	कहा ॥४४॥
अमित तेजसे	अमित तेजस्वी		

यदुताहं त्वया पृष्टो वैराजात् पुरुषादिदम् ।
यथाऽऽसीत्तदुपाख्यास्ये प्रश्नानन्यांश्च कृत्स्नशः ॥४५॥

यत् उत अहं त्वया पृष्टः वैराजात् पुरुषात् इदं यथा आसीत् तत् उपाख्यास्ये प्रश्नान् अन्यान् च कृत्स्नशः ॥४५॥

यत्	जो	इदं	यह जगत्
उत	कि	आसीत्	उत्पन्न हुआ
त्वया	तुम्हारे द्वारा	तत्	वह
अहं	मुझसे	च	तथा
पृष्टः	पूछा गया	अन्यान्	दूसरे
वैराजात्	विराट्	प्रश्नान्	प्रश्नोंका
पुरुषात्	पुरुषसे	कृत्स्नशः	पूर्णतः
यथा	जैसे	उपाख्यास्ये	उत्तर दूँगा ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहस्यां
संहितायां द्वितीयस्कन्धे नवमोऽध्यायः

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥१॥

अत्र सर्गः विसर्गः च स्थानं पोषणं ऊतयः मन्वन्तरः ईशानुकथा निरोधः मुक्तिः आश्रयः ॥१॥

अत्र	इस (महापुराण) में	**मन्वन्तरः**	मन्वन्तर,
सर्गः	सर्ग,	**ईशानुकथा**	ईशानुकथा,
विसर्गः	विसर्ग,	**निरोधः**	निरोध,
च	तथा	**मुक्ति**	मुक्ति,
स्थानं	स्थान,	**आश्रयः**	आश्रय (ये दस
पोषणं	पोषण,		विषय हैं) ॥११॥
ऊतयः	ऊतियाँ,		

दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् ।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा ॥२॥

दशमस्य विशुद्धि अर्थं नवानां इह लक्षणं वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेन अर्थेन च अञ्जसा ॥२॥

दशमस्य	दशम (आश्रयतत्त्व) की	**च**	और
		अर्थेन	(कहीं श्रुतिके) तात्पर्यसे,
विशुद्धि	ठीक ठीक निश्चय		
अर्थं	के लिए	**अञ्जसा**	सरलतासे
इह महात्मानः	इस (पुराण) में महात्मा लोग	**नवानां**	(शेष) नौ विषयोंका
		लक्षणं	स्वरूप
श्रुतेन	(कहीं) श्रुतिसे,	**वर्णयन्ति**	वर्णन करते हैं ॥२॥

भूतमात्रेन्द्रियधियां जन्म सर्ग उदाहृतः ।
ब्रह्मणो गुणवैषम्याद् विसर्गः पौरुषः स्मृतः ॥३॥

भूत मात्र इन्द्रिय धियां जन्म सर्ग उदाहृतः ब्रह्मणः गुण वैषम्यात् विसर्गः पौरुषः स्मृतः ॥३॥

गुण	(त्रि गुणोंमें	**सर्ग**	सर्ग
वैषम्यात्	विषमता आनेपर	**उदाहृतः**	कहा गया है।
भूत	पञ्चमहाभूत,	**ब्रह्मणः**	ब्रह्माके द्वारा
मात्र	(उनकी) तन्मात्रा,		(हुई सृष्टि)
इन्द्रिय	इन्द्रियों (तथा)	**पौरुषः**	पुरुषकृत
धियां	महत्तत्त्व एवं	**विसर्गः**	विसर्ग
	अहङ्कारका	**स्मृतः**	कही जाती है ॥३॥
जन्म	उत्पन्न होना,		

स्थितिर्वैकुण्ठविजयः पोषणं तदनुग्रहः ।
मन्वन्तराणि सद्धर्म ऊतयः कर्मवासनाः ॥४॥

स्थितिः वैकुण्ठ विजयः पोषणं तत् अनुग्रहः मन्वन्तराणि सद्धर्मः ऊतयः कर्मवासनाः ॥४॥

वैकुण्ठ	भगवान् विष्णुकी	**सद्धर्मः**	(मन्वन्तरोंके अधिपति
विजयः	विजय (विनाशकी		एवं उनकी सन्तानों
	ओर बढ़नेवाली		द्वारा आचरित)
	सृष्टिको बनाये		उत्तम धर्मको
	रखना जहाँतक है,	**मन्वन्तराणि**	मन्वन्तर कहते हैं,
	उस देश विस्तारको)	**कर्मवासनाः**	कर्मोंकी वासना
स्थितिः	स्थान कहा जाता है,		(तथा उनके फल)
तत्	उन (भगवान) के	**ऊतयः**	ऊति कहलाती
अनुग्रहः	अनुग्रहका नाम		हैं ॥४॥
पोषणं	पोषण है,		

अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम् ।
सतामीशकथाः प्रोक्ता नानाख्यानोपबृंहिताः ॥५॥

अवतार अनुचरितं हरेः च अस्य अनुवर्तिनां सतां ईशकथा प्रोक्ता नाना आख्यान उपबृंहिताः ॥५॥

हरेः	श्रीभगवानके	**सतां**	भक्तोंका
अवतार	अवतारोंका	**नाना**	अनेक
अनुचरित	चरित	**आख्यान**	आख्यानोंसे
च	तथा	**उपबृंहिताः**	युक्त कथा
अस्य	इन (भगवान) के	**ईशकथा**	ईशकथा
अनुवर्तिनां	अनुगामी	**प्रोक्ता**	कही गयी है ॥५॥

निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः ।
मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ॥६॥

निरोधः अस्य अनुशयनं आत्मनः सह शक्तिभिः मुक्तिः हित्वा अन्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ॥६॥

अस्य	इन भगवानका	**अन्यथा**	अपने स्वरूपसे भिन्न
आत्मनः	अपनी	**रूपं**	भावोंको
सह शक्तिभिः	शक्तियोंके साथ	**हित्वा**	त्यागकर
अनुशयनं	(योगनिद्रा स्वीकार करके) सो जाना	**स्वरूपेण**	अपने स्वरूपमें
		व्यवस्थितिः	स्थित हो जाना
निरोधः	निरोध कहा जाता है,	**मुक्तिः**	मुक्ति है ॥६॥

आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते ।
स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते ॥७॥

आभासः च निरोधः च यतः च अध्यवसीयते स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मा इति शब्द्यते ॥७॥

आभासः	(इस जगत्‌की) सृष्टि	**च**	ही
च	और	**अध्यवसीयते**	प्रतीत होते (प्रवर्तित होते) हैं
निरोधः	प्रलय		
च	भी	**स**	वह
यतः	जिससे	**परंब्रह्म**	परमब्रह्म

परमात्मा	परमात्मा	**शब्द्यते**	कहलानेवाला
इति	इस नामसे	**आश्रयः**	आश्रय है ॥७॥

योऽध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः ।
यस्तत्रोभयविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः ॥८॥

यः आध्यात्मिकः अयं पुरुषः सः असा एव आधिदैविकः यः तत्र उभय विच्छेदः पुरुषः हि आधिभौतिक ॥८॥

यः	जो	**यः**	जो
अयं	यह	**तत्र**	वहाँ
आध्यात्मिकः	आध्यात्मिक	**उभय**	दोनों (आध्यात्मि और आधिदैविक)का
पुरुषः	पुरुष है (शरीरमें नेत्रका अधिदेव सूर्य)	**विच्छेदः**	पार्थक्य करनेवाला है,
सः	वह	**पुरुषः हि**	(वह) पुरुष ही
असा	यह	**आधिभौतिकः**	आधिभौतिक (शरीर) है ॥८॥
एव	ही		
आधिदैविकः	आधिदैविक (सूर्य मण्डलका अधिदेवता सूर्य) है		

विशेष—

देहमें अध्यात्म पुरुष जीव तथा इन्द्रिय देवता हैं अधिदेव समष्टिके देवता तथा सृष्टिका संचालक ईश्वर है। इन दोनोंमें पृथकता अधिभूत शरीरकी आसक्तिसे ही जान पड़ती है। अन्यथा नेत्रका अधिदेवता तथा सूर्य मण्डलका अधिदेवता एक ही सूर्य है।

एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे ।
त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रयः ॥९॥

एकं एकतर अभावे यदा न उपलभामहे त्रितयं तत्र यः वेद स आत्मा स्वाश्रय आश्रयः ॥९॥

यदा	जब	**अभावे**	न रहनेपर
एकतर	एकके भी	**एकं**	एकको भी

न	नहीं	**वेद**	जानता है
उपलभामहे	पाया (जाना) जाता है	**स**	वह
		स्वाश्रय आश्रयः	अपने ही आधारपर स्थित
तत्र	वहाँ		
यः	जो	**आत्मा**	आत्मा है ॥९॥
त्रितयं	तीनोंको		

विशेष—

आध्यात्मिक नेत्रेन्द्रिय, अधिदेव सूर्य, अधिभूत नेत्र गोलक इन तीनमें एक भी उपस्थित न हो—नेत्रेन्द्रिय सहयोग न दे तो खुले नेत्र दिनमें भी कुछ नहीं दीखेगा। नेत्र गोलक ठीक न हों तो व्यक्ति अन्धा होता ही है। नेत्र बन्द करनेपर या सोते समय भी कुछ नहीं दीखता। सूर्य या कोई प्रकाश रूप अधिदेव न हो तो नेत्र ठीक हों, देखना भी चाहें तो कुछ नहीं दीखेगा। इन इन्द्रियों, गोलकों, देवताओंको जाननेवाला आत्मा—स्वयं प्रकाश अपने ही आश्रयसे हैं।

पुरुषोऽण्डं विनिर्भिद्य यदासौ स विनिर्गतः ।
आत्मनोऽयनमन्विच्छन्नपोऽस्राक्षीच्छुचिः शुचीः ॥१०॥

पुरुषः अण्डं विनिर्भिद्य यदा असौ स विनिर्गतः आत्मनः अयनं अन्विच्छन् अपः स्राक्षीत् शुचिः शुचीः ॥१०॥

शुचिः	परम पवित्र	**आत्मनः**	अपने लिए
यदा स	जब वह	**अयनं**	निवासका
पुरुषः	पुरुष	**अन्विच्छन्**	अन्वेषण करता हुआ
असौ अण्डं	इस ब्रह्माण्डको	**शुचीः**	पवित्र
विनिर्भिद्य	फोड़कर	**अपः**	जलकी
विनिर्गतः	बाहर निकला,	**स्राक्षीत्**	उत्पत्ति की ॥१०॥

तास्ववात्सीत् स्वसृष्टासु सहस्रपरिवत्सरान् ।
तेन नारायणो नाम यदापः पुरुषोद्भवाः ॥११॥

ताः सु अवात्सीत् स्वसृष्टासु सहस्र परिवत्सरान् तेन नारायणः नाम यत् आपः पुरुष उद्भवाः ॥११॥

स्वसृष्टासु	अपने उत्पन्न किये	**नाम**	**नाम पड़ा**
ताः सु	उस (जल) में	**यत्**	क्योंकि
सहस्र	एक हजार	**आपः**	जल (नार)
परिवत्सरान्	वर्षोंतक	**पुरुष**	पुरुषसे (नरसे)
अवात्सीत्	रहा	**उद्भवाः**	उत्पन्न हुआ (अतः
तेन	इससे		जलका नाम नार
नारायणः	नारायण		पड़ा) ॥११॥

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ।
यदनुग्रहतः सन्ति न सन्ति यदुपेक्षया ॥१२॥

द्रव्यं कर्म च कालः च स्वभावः जीव एव च यत् अनुग्रहतः सन्ति न सन्ति यत् उपेक्षया ॥१२॥

यत्	जिस (नारायण) की	**च**	तथा
अनुग्रहतः	कृपासे ही	**जीव**	जीवकी
द्रव्यं	पदार्थ	**एव**	भी
कर्म	कर्म	**सन्ति**	सत्ता है
च	तथा	**यत्**	जिसके
कालः	काल	**उपेक्षया**	उपेक्षा कर देनेपर
च	भी	**न**	(ये सब) नहीं
स्वभावः	प्रकृति	**सन्ति**	रह जाते ॥१२॥

एको नानात्वमन्विच्छन् योगतल्पात् समुत्थितः ।
वीर्यं हिरण्मयं देवो मायया व्यसृजत् त्रिधा ॥१३॥

एकः नानात्वं अन्विच्छन् योगतल्पात् समुत्थितः वीर्यं हिरण्मयः देवः मायया व्यसृजत् त्रिधा ॥१३॥

योगतल्पात्	योगनिद्रासे	**हिरण्मयं**	(अपने) स्वर्णमय
समुत्थितः	जागनेपर	**वीर्यं**	वीर्यका
एकः	(उन) अकेले	**मायया**	मायाके द्वारा
देवः	देवता (नारायण) ने	**त्रिधा**	तीन रूपोंमें
नानात्वं	अनेकताकी	**व्यसृजत्**	त्याग किया ॥१३॥
अन्विच्छन्	इच्छा करके		

अधिदैवमथाध्यात्ममधिभूतमिति प्रभुः ।
यथैकं पौरुषं वीर्यं त्रिधाभिद्यत तच्छृणु ॥१४॥

अधिदैवं अथ अध्यात्मं अधिभूतं इति प्रभुः यथा एकं पौरुषं वीर्यं त्रिधा अभिद्यत् तत् शृणु ॥१४॥

अधिदैवं	अधिदैव	**एकं**	एक ही
अथ	और	**पौरुषं**	पुरुषका
अध्यात्मं	अध्यात्म,	**वीर्यं**	वीर्य
अधिभूतं	अधिभूत,	**त्रिधा**	तीन प्रकारसे
इति	इस प्रकार,	**अभिद्यत**	भेदवाला हो गया
यथा	जैसे	**तत्**	वह
प्रभुः	सर्व समर्थ	**शृणु**	सुनो ॥१४॥

अन्तःशरीर आकाशात् पुरुषस्य विचेष्टतः ।
ओजः सहो बलं जज्ञे ततः प्राणो महानसुः ॥१५॥

अन्तःशरीर आकाशात् पुरुषस्य विचेष्टतः ओजः सहः बलं जज्ञे ततः प्राणः महान् असुः ॥१५॥

पुरुषस्य	पुरुषके	**बलं**	शरीरबल
विचेष्टतः	विशेष चेष्टा करने (हिलने-डोलने) पर	**जज्ञे**	उत्पन्न हुए
		ततः	फिर
अन्तःशरीर	(उनके) शरीरके भीतरी	**असुः**	(इन सबका) संचालक
आकाशात्	आकाशसे	**महान्**	महान्
ओजः	इन्द्रिय बल,	**प्राणः**	प्राण (उत्पन्न हुआ) ॥१५॥
सहः	मनोबल,		

अनु प्राणन्ति यं प्राणाः प्राणन्तं सर्वजन्तुषु ।
अपानन्तमपानन्ति नरदेवमिवानुगाः ॥१६॥

अनुप्राणन्ति यं प्राणाः प्राणन्तं सर्व जन्तुषु अपानन्तं अपानन्ति नरदेवं इव अनुगाः ॥१६॥

नरदेवं	राजाके (पीछे)	**अनुप्राणन्ति**	(देह इन्द्रियादि) सब
अनुगाः	अनुचरोंकी		सक्रिय रहते हैं,
इव	भाँति	**अपानन्तं**	(उस प्राणके)
सर्वजन्तुषु	सब प्राणियोंमें		शिथिल पड़ जानेपर
यं	जिस	**अपानन्ति**	सब शिथिल पड़
प्राणाः	प्राणके		जाते हैं ॥१६॥
प्राणन्तं	सक्रिय रहनेपर		

प्राणेन क्षिपता क्षुत् तृडन्तरा जायते प्रभोः ।
पिपासतो जक्षतश्च प्राङ्मुखं निरभिद्यत ॥१७॥

प्राणेन क्षिपता क्षुत् तृड् अन्तरा जायते प्रभोः पिपासतः जक्षतः च प्राङ् मुखं निरभिद्यत ॥१७॥

प्रभोः	विराट् पुरुषको	**पिपासतः**	पीनेकी
प्राणेन	प्राणोंके	**च**	तथा
क्षिपता	(आने जानेके) संघर्षसे	**जक्षतः**	खानेकी इच्छा होनेपर
अन्तरा	भीतर	**प्राङ्**	पहिले
क्षुत्	भूख	**मुखं**	मुख
तृड्	प्यास	**निरभिद्यत**	उत्पन्न हुआ ॥१७॥
जायते	उत्पन्न होती है,		

मुखतस्तालु निरभिन्नं जिह्वा तत्रोपजायते ।
ततो नानारसो जज्ञे जिह्वया योऽधिगम्यते ॥१८॥

मुखतः तालु निरभिन्नं जिह्वा तत्र उपजायते ततः नाना रसः जज्ञे जिह्वया यः अधिगम्यते ॥१८॥

मुखतः	मुखमें	**ततः**	उस (जीभ) से
तालु	तालू	**नानारसः**	अनेक प्रकारके रस
निरभिन्नं	बना	**जज्ञे**	उत्पन्न हुए
तत्र	उस (तालु) में	**यः**	जो
जिह्वा	जीभ	**जिह्वया**	जिह्वासे
उपजायते	उत्पन्न होती है	**अधिगम्यते**	जाने जाते हैं ॥१८॥

विवक्षोर्मुखतो भूम्नो वह्निर्वाग् व्याहृत तयोः ।
जले वै तस्य सुचिरं निरोधः समजायत ॥१९॥

विवक्षोः मुखतः भूम्नः वह्निः वाक् व्याहृतं तयोः जले वै तस्य सुचिरं निरोधः समजायत ॥१९॥

भूम्नः	उन व्यापक विराट् पुरुषके	**व्याहृतं**	बोलना, (व्यक्त हुआ)
विवक्षोः	बोलनेकी इच्छा करनेपर	**वै**	फिर
मुखतः	(उनके) मुखसे	**तस्य**	उन विराट् पुरुषका
वाक्	वाक् इन्द्रिय,	**सुचिरं**	बहुत देरतक
वह्नि	(उसके देवता)अग्नि,	**जले**	जलमें ही
तयोः	उसका विषय	**निरोधः**	चुपचाप बने रहना
		समजायत	हुआ ॥१९॥

नासिके निरभिद्येतां दोधूयति नभस्वति ।
तत्र वायुर्गन्धवहो घ्राणो नसि जिघृक्षतः ॥२०॥

नासिके निरभिद्येतां दोधूयति नभस्वति तत्र वायुः गन्धवहः घ्राणः नसि जिघृक्षतः ॥२०॥

नभस्वति	बायुके	**वायुः**	वायु उत्पन्न हुआ,
दोधूयति	वेगसे चलनेके कारण	**जिघृक्षतः**	सूँघनेकी इच्छा होनेपर
नासिके	नासिका	**नसि**	नासिकामें
निरभिद्येतां	प्रकट हुई,	**घ्राणः**	घ्राणेन्द्रिय उत्पन्न हुई ॥२०॥
तत्र	उस (नाक) से		
गन्धवहः	गन्ध ढोनेवाला		

यदाऽऽत्मनि निरालोकमात्मानं च दिदृक्षतः ।
निर्भिन्ने ह्यक्षिणी तस्य ज्योतिश्चक्षुर्गुणग्रहः ॥२१॥

यदा आत्मनि निरालोकं आत्मानं च दिदृक्षतः निर्भिन्ने हि अक्षिणी तस्य ज्योतिः चक्षुः गुणग्रहः ॥२१॥

यदा	जब	**अक्षिणी**	(तब) आँखोंके
निरालोकं	प्रकाश रहित*	**निर्भिन्ने**	प्रगट हो जानेपर
हि	क्योंकि	**चक्षुः गुण**	आँखका गुण (और)
आत्मनि	अपने शरीरमें	**ग्रहः**	(आँखसे) ग्रहण
आत्मानं	अपनेको		होनेवाला
च	भी	**ज्योतिः**	ज्योति (रूप) प्रकट
दिदृक्षतः	देखनेकी इच्छा हुई		हुआ ॥२१॥
तस्य	उनकी		

बोध्यमानस्य ऋषिभिरात्मनस्तज्जिघृक्षतः ।
कर्णौ च निरभिद्येतां दिशः श्रोत्रं गुणग्रह ॥२२॥

बोध्यमानस्य ऋषिभिः आत्मनः तत् जिघृक्षतः कर्णौ च निरभिद्येतां दिशः श्रोतं गुणग्रह ॥२२॥

ऋषिभिः	नित्य (वेदरूप) ऋषियोंसे	**च**	भी
बोध्यमानस्य	जगाये जानेपर	**निरभिद्येतां**	प्रकट हुए
तत्	उसे	**दिशः**	(उनसे) दिशाएँ,
आत्मनः	स्वयं	**श्रोत्रं**	कर्णेन्द्रिय,
जिघृक्षतः	सुननेकी इच्छा होनेपर	**गुणग्रहः**	(उनसे) ग्रहण होने वाला गुण (शब्द) उत्पन्न हुआ ॥२२॥
कर्णौ	कान		

वस्तुनो मृदुकाठिन्यलघुगुर्वोष्णशीतताम् ।
जिघृक्षतस्त्वङ् निर्भिन्ना तस्यां रोममहीरुहाः ।
तत्र चान्तर्बहिर्वातस्त्वचा लब्धगुणो वृतः ॥२३॥

वस्तुनो मृदु काठिन्य लघु गुरु उष्ण शीततां जिघृक्षतः त्वङ् निर्भिन्ना तस्यां रोमः महीरुहाः तस्य च अन्तः बहिः वातः त्वचा लब्धगुण वृतः ॥२३॥

वस्तुनो	वस्तुओंकी	**काठिन्य**	कठोरता,
मृदु	कोमलता,	**लघु**	हल्कापन,

---

* लोकंका अन्वय दो बार होगा ।

गुरु	भारीपन,
उष्ण	गर्मी,
शीततां	शीतलता
जिघृक्षतः	जाननेकी इच्छा होनेपर
त्वङ्	त्वचा
निर्भिन्ना	उत्पन्न हुई
महीरुहाः	(पृथ्वीसे) वृक्षोंकी भाँति
तस्यां	उस (त्वचा) से
रोमः	रोम (उत्पन्न हुए),
तस्य	उस
त्वचा	त्वचासे
लब्धगुणः	(उसका) गुण स्पर्श पाकर
अन्तः	(उसके) भीतर
च	और
बहिः	बाहर भी
वातः	चलनेवाला वायु
वृतः	(त्वचा द्वारा) स्वीकृत हो गया ।२३।

हस्तौ रुरुहतुस्तस्य नानाकर्मचिकीर्षया ।
तयोस्तु बलमिन्द्रश्च आदानमुभयाश्रयम् ॥२४॥

हस्तौ रुरुहतुः तस्य नानाकर्म चिकीर्षयः तयोः तु बलं इन्द्रः च आदानं उभय आश्रयम् ॥२४॥

नानाकर्म	अनेक प्रकारके कर्म
चिकीर्षया	करनेकी इच्छा होनेपर
तस्य	उनके
हस्तौ	हाथ
रुरुहतुः	निकल आये
तयोः	उन (हाथों) में
तु	तो
बलं	बलं (ग्रहण करनेकी शक्ति)
च	और
इन्द्रः	इन्द्र (हाथके देवता का निवास हुआ)
उभय आश्रयं	दोनों (बल तथा इन्द्र) के आश्रयमें रहनेवाली
आदानं	ग्रहण क्रिया उत्पन्न हुई ॥२४॥

गतिं जिगीषतः पादौ रुरुहातेऽभिकामिकाम् ।
पद्भ्यां यज्ञः स्वयं हव्यं कर्मभिः क्रियते नृभिः ॥२५॥

गतिं जिगीषतः पादौ रुरुहाते अभिकामिकं पद्भ्यां यज्ञः स्वयं हव्यं कर्मभिः क्रियते नृभिः ॥२५॥

अभिकामिकं	इच्छानुसार
गतिं	चलनेकी
जिगीषतः	कामना होनेपर
पादौ	पैर
रुरुहाते	निकल आये
स्वयं	(उनमें) स्वयं
यज्ञः	यज्ञपुरुष विष्णु स्थित हुए
नृभिः	मनुष्यों द्वारा
पद्भ्यां	पैरोंके
कर्मभिः	कर्म (चलनेसे)
हव्यं	यज्ञीय सामग्री
क्रियते	(एकत्र) की जाती है ॥२५॥

निरभिद्यत शिश्नो वै प्रजानन्दामृतार्थिनः ।
उपस्थ आसीत् कामानां प्रियं तदुभयाश्रयम् ॥२६॥

निरभिद्यत शिश्नः वै प्रजा आनन्द अमृत अर्थिनः उपस्थ आसीत् कामानां प्रियं तद् उभय आश्रयम् ॥२६॥

प्रजा	सन्तान,
आनन्द	रति,
अमृत	स्वर्गसुख
अर्थिनः	चाहनेपर
शिश्नः	शिश्न
निरभिद्यत	प्रगट हुआ
कामानां	कामुकोंको
प्रियं	प्रिय
उपस्थ	उपस्थेन्द्रिय
आसीत्	(उसमें) स्थित हुई
तत्	उस
उभय	दोनों (शिश्न तथा उपस्थेन्द्रियेका) आश्रित (कामसुख) भी हुआ ॥२६॥

उत्सिसृक्षोर्धातुमलं निरभिद्यत वै गुदम् ।
ततः पायुस्ततो मित्रं उत्सर्ग उभयाश्रयः ॥२७॥

उत्सिसृक्षोः धातुमलं निरभिद्यत वै गुदं ततः पायुः ततः मित्रं उत्सर्गं उभय आश्रयम् ॥२७॥

धातुमलं	धातुओंका मल
उत्सिसृक्षोः	त्यागनेकी इच्छा होनेपर
वै	ही
गुदं	गुदा
निरभिद्यत	उत्पन्न हुई
ततः	उसमें
पायुः	पायु इन्द्रिय

ततः	उसके	उभय आश्रयं	इन दोनोंके आश्रयसे
मित्रं	मित्र-देवता हुए	उत्सर्गं	मलत्याग होता है ॥२७॥

आसिसृप्सोः पुरः पुर्या नाभिद्वारमपानतः ।
तत्रापानस्ततो मृत्युः पृथक्त्वमुभयाश्रयम् ॥२८॥

आसिसृप्सोः पुरः पुर्यां नाभिद्वारं अपानतः तत्र अपानः ततः मृत्युः पृथकत्वं उभय आश्रयं ॥२८॥

अपानतः	अपानमार्ग द्वारा	अपानः	अपान वायु
पुरः	एक शरीरसे	ततः	उसके
पुर्यां	दूसरे शरीरमें	मृत्युः	मृत्यु देवता हुए
आसिसृप्सोः	जानेकी इच्छा होनेपर	उभय आश्रयं	दोनोंके आश्रयसे
		पृथकत्वं	प्राण और अपानकी पृथकता (रूप मृत्यु) होती है ॥२८॥
नाभिद्वारं	नाभिद्वार प्रकट हुआ ।		
तत्र	वहाँ		

आदित्सोरन्नपानानामासन् कुक्ष्यन्त्रनाडयः ।
नद्यः समुद्राश्च तयोस्तुष्टिः पुष्टिस्तदाश्रये ॥२९॥

आदित्सोः अन्न पानानां आसन् कुक्षि अन्त्र नाडयः नद्यः समुद्राः च तयोः तुष्टिः पुष्टिः तत् आश्रये ॥२९॥

अन्न	भोजन	नद्यः	नदियां (नाड़ियोंके देवता)
पानानां	जलादि		
आदित्सोः	लेनेकी इच्छा होनेपर	च	तथा
		समुद्राः	समुद्र (कुक्षिके देवता) हुए
कुक्षि	कोख		
अन्त्र	आँतें	तत्	इनके ही
नाडयः	नाड़ियाँ	आश्रये	आश्रयसे
आसन्	उत्पन्न हुईं,	तुष्टिः	तृप्ति और
तयोः	उनसे	पुष्टिः	पोषण है ॥२९॥

निदिध्यासोरात्ममायां हृदयं निरभिद्यत ।
ततो मनस्ततश्चन्द्रः सङ्कल्पः काम एव च ॥३०॥

निदिध्यासोः आत्ममायां हृदयं निरभिद्यत ततः मनः ततः चन्द्रः सङ्कल्पः काम एव च ॥३०॥

आत्ममायां	अपनी मायापर	**चन्द्रः**	(मनका देवता) चन्द्र,
निदिध्यासोः	विचार करनेकी इच्छा होनेपर	**च**	तथा
हृदयं	हृदय	**सङ्कल्पः**	संकल्प
निरभिद्यत	उत्पन्न हुआ,	**काम**	कामनाएँ
ततः	उससे	**एव**	भी (उत्पन्न हुईं) ॥३०॥
मनः	मन,		
ततः	उससे		

त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्थिधातवः ।
भूम्यप्तेजोमयाः सप्त प्राणो व्योमाम्बुवायुभिः ॥३१॥

त्वक् चर्म मांस रुधिर मेदः मज्जाः अस्थि धातवः भूमि अप् तेजोमयाः सप्त प्राणः व्योम अम्बु वायुभिः ॥३१॥

भूमि	पृथ्वी	**रुधिर**	रक्त,
अप्	पानी	**मेदः**	चर्बी,
तेजोमयाः	तथा अग्निसे उत्पन्न	**मज्जाः**	मज्जा (और)
सप्त	सात	**अस्थि**	हड्डियाँ (इसी प्रकार)
धातवः	धातुएँ (विराट्के शरीरमें हुईं)	**व्योम**	आकाश
त्वक्	त्वचा (स्पर्शग्राही चमड़ा)	**अम्बु**	जल (तथा)
चर्म	चमड़ा,	**वायुभिः**	वायुसे
मांस	मांस,	**प्राणः**	प्राण (उत्पन्न) हुआ ॥३१॥

गुणात्मकानीन्द्रियाणि भूतादिप्रभवा गुणाः ।
मनः सर्वविकारात्मा बुद्धिर्विज्ञानरूपिणी ॥३२॥

गुण आत्मकानि इन्द्रियाणि भूतादि प्रभवा गुणाः मनः सर्व विकार आत्मा बुद्धिः विज्ञान रूपिणी ॥३२॥

इन्द्रियाणि	इन्द्रियाँ (कर्ण आदि)	**मनः**	मन
गुण	गुण (शब्दादि)	**सर्व विकार आत्मा**	सब विषयोंका उत्पत्ति स्थान है।
आत्मकानि	स्वरूप (गुणोंके ग्रहण करनेवाली) हैं।	**बुद्धिः**	बुद्धि
भूतादि	अहङ्कारसे	**विज्ञान रूपिणी**	विशेष विशेष सब पदार्थोंका ज्ञान देने-वाली है ॥३२॥
गुणाः	गुण (शब्दादि)		
प्रभवाः	उत्पन्न हुए हैं।		

एतद्भगवतो रूपं स्थूलं ते व्याहृतं मया।
मह्यादिभिश्चावरणैरष्टभिर्बहिरावृतम् ॥३३॥

एतत् भगवतः रूपं स्थूलं ते व्याहृतं मया मही आदिभिः च आवरणैः अष्टभिः बहिः आवृतम् ॥३३॥

मही आदिभिः	पृथ्वी आदिके	**एतत्**	इस
च	ही	**भगवतः**	भगवानके
अष्टभिः	आठ (पंच महाभूत, अहंकार, महत्तत्त्व, प्रकृति)	**स्थूलं**	स्थूल-विराट्
		रूपं	रूपका
		मया	मैंने
आवरणैः	आवरणोंसे	**ते**	तुमसे
बहिः	बाहरसे	**व्याहृतं**	वर्णन किया ॥३३॥
आवृतम्	घिरे		

अतः परं सूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणम्।
अनादिमध्यनिधनं नित्यं वाङ्मनसः परम् ॥३४॥

अतः परं सूक्ष्मतमं अव्यक्तं निर्विशेषणं अनादि मध्य निधनं नित्यं वाङ् मनसः परम् ॥३४॥

अतः	इससे	**सूक्ष्मतमं**	अत्यन्त सूक्ष्म,
परं	(जो) परे है (वह)	**अव्यक्तं**	अव्यक्त,

निर्विशेषणं	निर्विशेष,	**नित्यं**	नित्य,
अनादि मध्य निधन	आदि, मध्य, अन्तसे रहित,	**वाङ् मनसः**	वाणी और मनसे
		परं	परे है ॥३४॥

अमुनी भगवद्रूपे मया ते अनुवर्णिते ।
उभे अपि न गृह्णन्ति मायासृष्टे विपश्चितः ॥३५॥

अमुनी भगवत् रूपे मया ते अनुवर्णिते उभे अपि न गृह्णन्ति माया सृष्टे विपश्चितः ॥३५॥

मया	मेरे द्वारा	**उभे**	दोनों
ते	तुमसे	**अपि**	ही को
अनुवर्णिते	वर्णन किये गये	**विपश्चितः**	ज्ञानी लोग
माया सृष्टे	मायाके द्वारा उत्पन्न	**न**	नहीं
भगवत् रूपे	भगवानके रूपोंको	**गृह्णन्ति**	ग्रहण (स्वीकार)
अमुनी	इन		करते ॥३५॥

स वाच्यवाचकतया भगवान् ब्रह्मरूपधृक् ।
नामरूपक्रिया धत्ते सकर्माकर्मकः परः ॥३६॥

स वाच्य वाचकतया भगवान् ब्रह्म रूप धृक् नाम रूप क्रिया धत्ते सकर्मा अकर्मकः परः ॥३६॥

स	वे	**वाच्य**	वाच्य (तथा)
भगवान्	भगवान्	**वाचकतया**	वाचक होकर
अकर्मकः	निष्क्रिय	**नाम, रूप, क्रिया**	नाम, रूप, क्रियाको
परः	सबसे परे हैं (वही)	**धत्ते**	धारण करके
ब्रह्म	ब्रह्माका	**सकर्माः**	कर्म करनेवाले बनते
रूप धृक्	रूप धारण करके		हैं ॥३६॥

प्रजापतीन्मनून् देवानृषीन् पितृगणान् पृथक् ।
सिद्धचारणगन्धर्वान् विद्याध्रासुरगुह्यकान् ॥३७॥

प्रजापतीन् मनून् देवान् ऋषीन् पितृगणान् पृथक् सिद्ध चारण गन्धर्वान् विद्याध्रा असुर गुह्यकान् ॥३७॥

किन्नराप्सरसो नागान् सर्पान् किम्पुरुषोरगान् ।
मातृ रक्षःपिशाचांश्च प्रेतभूतविनायकान् ॥३८॥

किन्नरा अप्सरसः नागान् सर्पान् किम्पुरुष उरगान् मातृ रक्षः पिशाचान् च प्रेत भूत विनायकान् ॥३८॥

कूष्माण्डोन्मादवेतालान् यातुधानान् ग्रहानपि ।
खगान्मृगान् पशून् वृक्षान्गिरीन्नृप सरीसृपान् ॥३९॥

कूष्माण्ड उन्माद वेतालान् यातुधानान् ग्रहान् अपि खगान् मृगान् पशून् वृक्षान् गिरीन् नृप सरीसृपान् ॥३९॥

द्विविधाश्चतुर्विधा येऽन्ये जलस्थलनभौकसः ।
कुशलाकुशला मिश्राः कर्मणां गतयस्त्विमाः ॥४०॥

द्विविधाः चतुर्विधाः ये अन्ये जल स्थल नभौकसः कुशला अकुशला मिश्राः कर्मणां गतयः तु इमाः ॥४०॥

द्विविधा	(चर-अचर भेदसे) दो प्रकारके
चतुर्विधाः	चार प्रकारके उद्भिज, स्वेदज, अण्डज, जरायुज)
ये	जो
अन्ये	दूसरे भी
जल,स्थल,नभौकसः	जलचर,स्थलचर, नभचर प्राणी हैं,
कुशला	शुभ
अकुशला	अशुभ
मिश्राः	(शुभ-अशुभ) मिश्रित
कर्मणां	कर्मकी
गतयः	गति (फलसे)
तु	तो
इमाः	ये सब हैं ॥४०॥

सत्त्वं रजस्तम इति तिस्रः सुरनृनारकाः ।
तत्राप्येकैकशो राजन् भिद्यन्ते गतयस्त्रिधा ।
यदैकैकतरोऽन्याभ्यां स्वभाव उपहन्यते ॥४१॥

---

* पिशाच, प्रेत, भूत, विनायक, कूष्माण्ड, उन्माद, वेताल तथा मातृका भी शिवगणोंके वर्ग हैं ।

सत्त्वं रजः तम इति तिस्रः सुरः नृः नारकाः तत्र अपि एक एकशः राजन् भिद्यन्ते गतयः त्रिधा यत् एकैकतरः अन्याभ्यां स्वभाव उपहन्यते ॥४१॥

राजन्	परीक्षित !	**तिस्रः**	(प्राणियोंके) तीन
सत्त्वं	सत्त्व गुण		भेद हैं ।
	(की प्रधानता) से	**तत्र अपि**	इनमें भी
सुरः	देवता,	**यत् एक एकशः**	क्योंकि एक एकके
रजः	रजोगुण	**एकतरः**	एकसे भिन्न
	(की प्रधानता) से	**अन्याभ्यां**	दूसरे (गुणों) के
नृः	मनुष्य,	**स्वभाव**	स्वभावके
तम	तमोगुण	**उपहन्यते**	अभिभूत कर लेनेसे
	(की प्रधानता) से	**गतयः**	ये (देव, मनुष्यादि)
नारकाः	नारकीय प्राणी,		गतियाँ
इति	इस प्रकार	**त्रिधा**	तीन तीन भागोंमें
		भिद्यन्ते	बँट जाती हैं ॥४१॥

स एवेदं जगद्धाता भगवान् धर्मरूपधृक् ।
पुष्णाति स्थापयन् विश्वं तिर्यङ्नरसुरात्मभिः ॥४२॥

स एव इदं जगद्धाता भगवान धर्मरूप धृक् पुष्णाति स्थापयन् विश्वं तिर्यङ् नर सुर आत्मभिः ॥४२॥

स	वे	**आत्मभिः**	बनकर
एव	ही		(अवतार लेकर)
जगद्धाता	जगत्के रक्षक	**इदं**	इस
भगवान्	भगवान्	**विश्वं**	विश्वकी
धर्मरूप	धर्मका रूप	**स्थापयन्**	स्थिति (मर्यादा)
धृक्	धारण करके		बनाये रखते
तिर्यङ्	पशु आदि (तथा)	**पुष्णाति**	(इसका) पोषण
नर	मनुष्य		करते हैं ॥४२॥
सुर	देवता		

ततः कालाग्निरुद्रात्मा यत्सृष्टमिदमात्मनः ।
संनियच्छति कालेन घनानीकमिवानिलः ॥४३॥

ततः काल अग्नि रुद्र आत्मा यत् सृष्टं इदं आत्मनः सन्नियच्छति कालेन घन अनीकं इव अनिलः ॥४३॥

ततः	फिर	**रुद्र**	रुद्र
कालेन	प्रलयकाल आनेपर	**आत्मा**	स्वरूप बनकर
यत्	जो	**धन अनीक**	मेघ समूहको
इदं	इस जगतको	**अनिलः**	वायुके
आत्मनः	अपनेसे ही	**इव**	समान
सृष्टं	बनाया हुआ है	**संनियच्छति**	(अपनेमें) पूर्णतः लीन कर लेते हैं ॥४३॥
काल	काल,		
अग्नि	अग्नि		

इत्थंभावेन कथितो भगवान् भगवत्तमः ।
नेत्थंभावेन हि परं द्रष्टुमर्हन्ति सूरयः ॥४४॥

इत्थं भावेन कथितः भगवान् भगवत्तमैः न इत्थं भावेन हि परं द्रष्टुं अर्हन्ति सूरयः ॥४४॥

इत्थं	इस प्रकारके	**भावेन**	(सृष्टि, स्थिति, प्रलयकर्ताके) रूपमें ही
भावेन	भावसे		
भगवत्तमैः	महापुरुषों द्वारा		
भगवान्	भगवानका	**परं**	इनसे परेको
कथितः	वर्णन हुआ है	**न**	नहीं
हि	किन्तु	**द्रष्टुं**	देखना
सूरयः	तत्वज्ञानियोंको	**अर्हन्ति**	चाहिये ॥४४॥
इत्थं	इसी		

नास्य कर्मणि जन्मादौ परस्यानुविधीयते ।
कर्तृत्वप्रतिषेधार्थं माययारोपितं हि तत् ॥४५॥

न अस्य कर्माणि जन्म आदौ परस्य अनुविधीयते कर्तृत्व प्रतिषेधार्थं मायया आरोपितं हि तत् ॥४५॥

अस्य	इस
परस्य	परमपुरुषके
कर्माणि	कर्म (और)
जन्म आदौ	जन्मादिका
अनुविधीयते	विधान
न	नहीं किया गया है
हि	क्योंकि
कर्तृत्व	कर्तापनके
प्रतिषेधार्थं	निषेधके लिए
तत्	वह (जन्म, कर्मादि)
मायया	मायासे
आरोपितं	आरोपित किया गया है ॥४५॥

अयं तु ब्रह्मणः कल्पः सविकल्प उदाहृतः ।
विधिः साधारणो यत्र सर्गाः प्राकृतवैकृताः ॥४६॥

अयं तु ब्रह्मणः कल्पः सविकल्प उदाहृतः विधिः साधारणः यत्र सर्गाः प्राकृत वैकृताः ॥४६॥

अयं	यह
तु	तो
ब्रह्मणः	ब्रह्माजीके
कल्पः	महाकल्पका
सविकल्प	अवान्तर कल्पोंके साथ
उदाहृतः	वर्णन किया गया है।
साधारणः	(सब अवान्तर कल्पोंमें) एकसी
विधिः	(सृष्टिकी) विधि रहती है
प्राकृत	प्रकृतिसे होनेवाले परिणाम (महत्तत्त्व, अहंकारादि)
वैकृताः	उनके विकारकी (अहंकारसे पंच तन्मात्रा, महाभूतादि)
सर्गाः	सृष्टि
यत्र	जिस (महाकल्प) में ही होते हैं ॥४६॥

विशेष—

ब्रह्माजीके एक दिनका नाम कल्प है। ब्रह्माजीके तीनसौ साठ दिन रातका एक वर्ष। ऐसे वर्षोंसे ब्रह्माजीकी आयु सौ वर्षकी है। इस पूरी आयुको महाकल्प कहते हैं। महाकल्पके प्रारम्भमें प्रकृतिमें क्षोभ होकर महत्तत्त्व, उससे अहंकार और अहंकारके सात्त्विक राजस तामस भेदोंसे पञ्चमहाभूत, पंचतन्मात्रा, मन, बुद्धि, चित्त, इनके देवता उत्पन्न होते हैं तथा परमपुरुष जल उत्पन्न करके उसमें शयन करनेके अनन्तर विराट् रूप

परिमाणं च कालस्य कल्पलक्षणविग्रहम् ।
यथा पुरस्ताद्व्याख्यास्ये पाद्मं कल्पमथो शृणु ॥४७॥

परिणामं च कालस्य कल्प लक्षण विग्रहं यथा पुरस्तात् व्याख्यास्ये पाद्मं कल्पं अथ शृणु ॥४७॥

कालस्य	कालका	**यथा**	जैसे वे हैं
परिमाणं	परिमाण	**पुरस्तात्**	आगे चलकर
च	तथा	**व्याख्यास्ये**	वर्णन करूँगा
कल्प	कल्पोंका	**अथ**	अभी
लक्षण	लक्षण	**पाद्मं**	पाद्म
विग्रहं	(उनके) अंग (मन्वन्तरोंका)	**कल्पं**	कल्पका (वर्णन)
		शृणु	सुनो ॥४७॥

शौनक उवाच-

यदाह नो भवान् सूत क्षत्ता भागवतोत्तमः ।
चचार तीर्थानि भुवस्त्यक्त्वा बन्धून् सुदुस्त्यजान् ॥४८॥

यत् आह नः भवान् सूत क्षत्ता भागवतोत्तमः चचार तीर्थानि भुवः त्यक्त्वा बन्धून् सुदुस्त्यजान् ॥४८॥

सूत	सूतजी !	**सुदुस्त्यजान्**	अत्यन्त दुस्त्यज
यत्	जो	**बन्धून्**	बन्धु-बान्धवोंको
भवान्	आपने	**त्यक्त्वा**	छोड़कर
नः	हम लोगोंसे	**भुवः**	पृथ्वीपर
आह	कहा था कि	**तीर्थानि**	तीर्थोंकी
भागवतोत्तमः	भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ	**चचार**	यात्रा करते रहे ॥४८॥
क्षत्ता	विदुरजीने		

धारण करते हैं। यह सृष्टि पूरे महाकल्प अर्थात् ब्रह्माकी आयुपर्यन्त ज्यों की त्यों बनी रहती है। महाप्रलयमें अर्थात् महाकल्पके अन्तमें यह विलय होती है। ब्रह्माजी जितनी प्राणि-सृष्टि करते हैं, केवल वही उनके दिनान्तमें उनमें लीन होती है। यह ब्रह्माजीका दिन कल्प है और उसमें प्राकृत सृष्टिका लय नहीं होता।

कुत्र कौषारवेस्तस्य संवादोऽध्यात्मसंश्रितः ।
यद्वा स भगवांस्तस्मै पृष्टस्तत्त्वमुवाच ह ॥४८॥

कुत्र कौषारवेः तस्य संवादः अध्यात्म संश्रितः यत् वा स भगवान् तस्मै पृष्टः तत्त्वं उवाच ह ॥४९॥

तस्य	उनका	**पृष्टः**	पूछनेपर
कुत्र	कहाँ	**तस्मै**	उनको
कौषारवेः	मैत्रेयजीसे	**स भगवान्**	उन भगवान् मैत्रेयने
अध्यात्म	अध्यात्म	**तत्त्वं**	तत्त्वज्ञानका
संश्रितः	विषयक	**उवाच**	उपदेश
संवादः	संवाद हुआ	**ह**	किया ॥४९॥
यत् वा	जिसमें		

ब्रूहि नस्तदिदं सौम्य विदुरस्य विचेष्टितम् ।
बन्धुत्यागनिमित्तं च तथैवागतवान् पुनः ॥५०॥

ब्रूहि नः तत् इदं सौम्य विदुरस्य विचेष्टितं बन्धू त्याग निमित्तं च तथा एव आगतवान् पुनः ॥५०॥

सौम्य	सौम्य सूतजी !	**निमित्तं**	कारण
नः	हम लोगोंसे	**च**	और
तत्	वह	**तथा**	वैसे
इदं	यह	**एव**	ही
विदुरस्य	विदुरजीकी	**पुनः**	फिर (जैसे)
विचेष्टितं	विशेष चेष्टा(उनके)	**आगतवान्**	लौट आये
बन्धु त्याग	स्वजनोंके त्यागका	**ब्रूहि**	बतलाइये ॥५०॥

सूत उवाच-

राज्ञा परीक्षिता पृष्टो यदवोचन्महामुनिः ।
तद्धोऽभिधास्ये शृणुत राज्ञः प्रश्नानुसारतः ॥५१॥

राज्ञा परीक्षिता पृष्टः यत् अवोचत् महामुनिः तत् वः अभिधास्ये शृणुत राज्ञः प्रश्नानुसारतः ॥५१॥

राज्ञा	राजा	**तत्**	वह
परीक्षिता	परीक्षितके	**वः**	आप लोगोंसे
पृष्टः	पूछनेपर	**अभिधास्ये**	कहूँगा ।
यत्	जो	**राज्ञः**	राजाके
महामुनिः	शुकदेवजीने	**प्रश्नानुसारतः**	प्रश्नानुसार
अवोचन्	कहा	**शृणुत**	सुनें ॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां द्वितीयस्कन्धे दशमोऽध्यायः

॥ इति द्वितीय स्कन्धः समाप्तः ॥

हरिः ॐ तत्सत्

॥ तृतीय स्कन्ध ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान् किल ।
क्षत्त्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ॥१॥

एवं एतत् पुरा पृष्टः मैत्रेयः भगवान् किल क्षत्त्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहं ऋद्धिमत् ॥१॥

ऋद्धमत्	समृद्धिसे पूर्ण	**पुरा एव**	पहिले इसी प्रकार
स्वगृहं	अपने घरको	**एतत् भगवान**	यह भगवान
त्यक्त्वा	छोड़कर	**मैत्रेयः किल**	मैत्रेयसे
वनं प्रविष्टेन	वनमें गए	**पृष्टः**	पूछा था ॥१॥
क्षत्त्रा	विदुरने		

यद्वा अयं मन्त्रकृद्वो भगवानखिलेश्वरः ।
पौरवेन्द्रगृहं हित्वा प्रविवेशात्मसात्कृतम् ॥ ॥

यद्वा अयं मन्त्रकृत् वः भगवान् अखिलेश्वरः पौरवेन्द्र गृहं हित्वा प्रविवेश आत्मसात् कृतम् ॥२॥

यद्वा वः	जब तुम पाण्डवोंके	**पौरवेन्द्र गृहं**	दुर्योधनका घर
मन्त्रकृत्	दूत बनकर	**हित्वा**	त्यागकर
भगवान्	भगवान	**आत्मसात् कृतं**	अपना ही कर (समझकर) के
अखिलेश्वरः	अखिलेश्वर (श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गये थे तब)	**प्रविवेश**	(जिस विदुरके घरमें) प्रविष्ट हुए थे ॥२॥

राजोवाच-

कुत्र क्षत्तुर्भगवता मैत्रेयेणास सङ्गमः ।
कदा वा सह संवाद एतद्वर्णय नः प्रभो ॥३॥

कुत्र क्षत्तुः भगवता मैत्रेयण आस सङ्गमः कदा वा सह संवाद एतत् वर्णय नः प्रभो ॥३॥

प्रभो	प्रभो !
क्षत्तुः	विदुरजीका
भगवता	भगवान
मैत्रेयण	मैत्रेयसे
कुत्र सङ्गमः	कहाँ मिलना
आस	हुआ था
वा कदा	अथवा कब
सह संवादः	उनके साथ बात चीत हुई
एतत् नः	यह मुझसे
वर्णय	वर्णन कीजिए ॥३॥

न ह्यल्पार्थोदयस्तस्य विदुरस्यामलात्मनः ।
तस्मिन् वरीयसि प्रश्नः साधुवादोपबृंहितः ॥४॥

न हि अल्प अर्थ उदयः तस्य विदुरस्य अमलात्मनः तस्मिन् वरीयसि प्रश्नः साधुवाद उपबृंहितः ॥४॥

हि तस्य	क्योंकि उन
अमलात्मनः	निर्मल चित्त
विदुरस्य	विदुरजीका
अल्प अर्थ	छोटे प्रयोजनको
उदयः	प्रकट करनेवाला (प्रश्न)
न	नहीं होगा
तस्मिन्	उस (बात चीत) में
साधुवाद	अभिनन्दनसे
उपबृंहितः	सम्मानित
वरीयसि प्रश्नः	श्रेष्ठ प्रश्न (ही हुआ होगा) ॥४॥

सूत उवाच-

स एवमृषिवर्योऽयं पृष्टो राज्ञा परीक्षिता ।
प्रत्याह तं सुबहुवित्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥५॥

स एवं ऋषिवर्यः अयं पृष्टः राज्ञा परीक्षिता प्रति आह तं सुबहुवित् प्रीतात्मा श्रूयतां इति ॥५॥

राज्ञा परीक्षिता	राजा परीक्षित द्वारा
स अयं	वे ये
सुबहुवित्	अत्यन्त बहुज्ञ
ऋषिवर्यः	ऋषि श्रेष्ठ (शुकदेवजी)

एवं पृष्टः	इस प्रकार पूछे जानेपर	**तं श्रूयतां**	उनसे सुनो
		इति	इस प्रकार
प्रीतात्मा	प्रसन्न चित्तसे	**प्रति आह**	उनसे बोले ॥५॥

श्रीशुक उवाच-

यदा तु राजा स्वसुतानसाधून्
पुष्णन्नधर्मेण विनष्टदृष्टिः ।
भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतान् विबन्धून्
प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह ॥६॥

यदा तु राजा स्वसुतान् असाधून् पुष्णन् अधर्मेण विनष्ट दृष्टिः भ्रातुः यविष्ठस्य सुतान् विबन्धून् प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह ॥६॥

यदा तु	जब तो	**यविष्ठस्य**	छोटे
विनष्ट दृष्टिः	अन्धे	**भ्रातुः**	भाईके
राजा	राजा (धृतराष्ट्र) ने	**विबन्धून्**	अनाथ
अधर्मेण	अधर्मपूर्वक	**सुतान्**	पुत्रोंको
असाधून्	दुष्ट	**लाक्षाभवने**	लाक्षागृहमें
स्वसुतान	अपने पुत्रोंका	**प्रवेश्य**	भेज़कर
पुष्णन्	पोषण करते (पक्ष लेते) हुए	**ददाह**	जलवा दिया ॥६॥

यदा सभायां कुरुदेवदेव्याः
केशाभिमर्शं सुतकर्म गर्ह्यम् ।
न वारयामास नृपः स्नुषायाः
स्वास्रैर्हरन्त्याः कुचकुङ्कुमानि ॥७॥

यदा सभायां कुरुदेव देव्याः केश अभिमर्शं सुतकर्म गर्ह्यं न वारयामास नृपः स्नुषायाः स्वास्रैः हरन्त्याः कुचकुङ्कुमानि ॥७॥

यदा	जब	**कुरुदेव**	युधिष्ठिरकी
सभायां	(द्यूत) सभामें	**देव्याः**	पटरानी

स्नुषायाः	अपनी पुत्रवधूके
स्वास्रैः	अपने आँसुओंसे
कुचकुङ्कुमानि	वक्षस्थलपर लगी केशरको
हरन्त्याः	धोती हुई (रोती हुई) के
केश	बालोंको
अभिमर्श	खींचनेके
गर्ह्यं	निन्दनीय
सुतकर्म	(अपने) पुत्रोंके कर्मको
नृपः न	राजा (धृतराष्ट्र) ने नहीं
वारयामास	रोका ॥७॥

द्यूते त्वधर्मेण जितस्य साधोः
सत्यावलम्बस्य वनागतस्य ।
न याचतोऽदात्समयेन दायं
तमो जुषाणो यदजातशत्रोः ॥८॥

द्यूते तु अधर्मेण जितस्य साधोः सत्य अवलम्बस्य वन आगतस्य न याचतः अदात् समयेन दायं तमः जुषाणः यत् अजातशत्रोः ॥८॥

द्यूते तु	जुएमें तो
अधर्मेण	अधर्मपूर्वक
जितस्य	जीते गये
साधोः	सत्पुरुष
सत्य अवलम्बस्य	सत्यावलम्बी
वन आगतस्य	वनसे लौटे हुए (पाण्डवोंके)
याचतः	मांगनेपर
दायं	पैतृक स्वत्व
समयेन	प्रतिज्ञानुसार
न अदात्	नहीं दिया
यत्	जिससे
अजातशत्रोः	युधिष्ठिर
तमः जुषाणः	क्रोधमें आ गये॥८॥

यदा च पार्थप्रहितः सभायां
जगद्गुरुर्यानि जगाद कृष्णः ।
न तानि पुंसाममृतायनानि
राजोरु मेने क्षतपुण्यलेशः ॥९॥

यदा च पार्थ प्रहितः सभायां जगद्गुरुः यानि जगाद कृष्णः न तानि पुसां अमृत अयनानि राजा उरु मेने क्षत पुण्यलेशः ॥९॥

यदा च	जबकि
पार्थ प्रहितः	पाण्डवों द्वारा भेजे गये
जगद्गुरुः	जगद्गुरु
कृष्णः	श्रीकृष्णने
सभायां	सभामें
यानि जगाद	जो बातें कहीं
पुंसां	(दूसरे) पुरुषोंको
अमृत	अमृतके
अयनानि	निवास-सी (लगीं, किन्तु)
पुण्यलेशः	पुण्यका लेश भी
क्षत राजा	(जिसका) नष्ट हो गया था (उस) राजाने
तानि	उन (वचनों) को
उरु न	महत्त्वपूर्ण नहीं
मेने	माना ॥९॥

यदोपहूतो भवनं प्रविष्टो
मन्त्राय पृष्टः किल पूर्वजेन ।
अथाह तन्मन्त्रदृशां वरीयान्
यन्मन्त्रिणो वैदुरिकं वदन्ति ॥१०॥

यदा उपहूतः भवनं प्रविष्टः मन्त्राय पृष्टः किल पूर्वजेन अथ आह तत् मन्त्रदृशां वरीयान् यत् मन्त्रिणः वैदुरिकं वदन्ति ॥१०॥

यदा पूर्वजेन	जब बड़े भाई द्वारा
उपहूतः	बुलाये जानेपर
भवनं प्रविष्टः	(उनके) भवनमें गये
किल मन्त्राय	निश्चित सम्मतिके लिए
पृष्टः मन्त्रदृशां	पूछे जानेपर नीतिज्ञोंमें
वरीयान्	श्रेष्ठ (विदुरजी)
अथ यत् आह	तब जो बोले
तत् मन्त्रिणः	उसे नीतिज्ञ लोग
वैदुरिकं	विदुरनीति
वदन्ति	कहते हैं ॥१०॥

*विदुरोवाच**-

अजातशत्रोः प्रतियच्छ दायं
तितिक्षतो दुर्विषहं तवागः ।

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सहानुजो यत्र वृकोदराहिः
श्वसन् रुषा यत्त्वमलं बिभेषि ॥११॥

अजातशत्रोः प्रतियच्छ दायं तितिक्षतः दुर्विषहं तव आगः सह अनुजः यत्र वृकोदर अहिः श्वसन् रुषा यत् त्वं अलं बिभेषि ॥११॥

अजातशत्रोः	युधिष्ठिरको	**यत्र वृकोदर**	जहाँ भीमसेन रूपी
दायं	(उनका) पैतृकस्वत्व	**अहिः रुषा**	सर्प क्रोधसे
प्रतियच्छ	दे दीजिए	**श्वसन्**	फूत्कार कर रहा है
तव दुर्विषहं	आपके असहनीय	**यत् त्वं**	जिससे आप
आगः	अपराधको	**अलं बिभेषि**	बहुत अधिक डरते हैं ॥११॥
सह अनुजः	भाइयोंके साथ		
तितिक्षतः	(वे)सहन कर रहे हैं,		

पार्थस्तु देवो भगवान्मुकुन्दो
गृहीतवान् सक्षितिदेवदेवः ।
आस्ते स्वपुर्यां यदुदेवदेवो
विनिर्जिताशेषनृदेवदेवः ॥१२॥

पार्थः तु देवः भगवान् मुकुन्दः गृहीतवान् स क्षितिदेवदेवः आस्ते स्वपुर्यां यदुदेवदेवः विनिर्जिता अशेष नृदेवदेवः ॥१२॥

पार्थः तु	पाण्डवोंको तो	**स्वपुर्यां**	(अभी) अपनी पुरीमें
देवः	परमदेव	**अशेष**	सम्पूर्ण
भगवान्	भगवान्	**नृदेवदेवः**	राजाओंको
मुकुन्दः	मुकुन्दने	**विनिर्जितः आस्ते**	जीतकर (स्थित) है ॥१२॥
क्षितिदेवदेवः	पृथ्वीके सम्राट् रूपमें		
गृहीतवान्	अपना लिया है ।		
स यदुदेवदेवः	वे यदुवंशियोंके आराध्यदेव		

स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते
गृहान् प्रविष्टो यमपत्यमत्या ।

पुष्णासि कृष्णाद्विमुखो गतश्री-
स्त्यजाश्वशैवं कुलकौशलाय ॥१३॥

स एष दोषः पुरुषद्विट् आस्ते गृहान् प्रविष्टः यं अपत्य मत्या पुष्णासि कृष्णात् विमुखः गतश्रीः त्यज आशु अशैवं कुलकौशलाय ॥१३॥

स एष	वह यह
पुरुषद्विट्	भगवानका विरोधी
दोषः वै	(मूर्तिमान) दोष ही (दुर्योधनके रूपमें) है
गृहान्	(आपके) घरोंमें
प्रविष्टः आस्ते	घुस आया है
यं अपत्य	जिसे पुत्र
मत्या	मानकर
पुष्णासि	(आप) पालन कर रहे हैं।
कृष्णात्	श्रीकृष्णसे
विमुखः	विमुख होनेसे
गतश्रीः	श्रीहीन
अशैवं	अमंगलरूप (इसे)
कुलकौशलाय	कुलकी कुशलके लिए
आशु त्यज	शीघ्र त्याग दीजिए ॥१३॥

*श्रीशुक उवाच**-

इत्यूचिवांस्तत्र सुयोधनेन
प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण ।
असत्कृतः सत्स्पृहणीयशीलः
क्षत्ता सकर्णानुजसौबलेन ॥१४॥

इति ऊचिवान् तत्र सुयोधनेन प्रवृद्ध कोपस्फुरित अधरेण असत्कृतः सत् स्पृहणीय शीलः क्षत्ता सकर्ण अनुज सौबलेन ॥१४॥

तत्र सत्	वह सज्जनों द्वारा
स्पृहणीय	स्पृहा करने योग्य
शीलः	शीलवाले
क्षत्ता	विदुरजीसे
सकर्ण	कर्णके साथ
अनुज	दुःशासन
सौबलेन	शकुनि सहित
प्रवृद्धकोपः	बढ़े क्रोधसे

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

स्फुरितअधरेण	फड़कते ओष्ठवाले	**असत्कृतः**	तिरस्कारपूर्वक
सुयोधनेन	दुर्योधनने	**इति ऊचिवान्**	यह कहा ॥१४॥

दुर्योधन उवाच*-

क एनमत्रोपजुहाव जिह्मं
दास्याः सुतं यद्बलिनैव पुष्टः ।
तस्मिन् प्रतीपः परकृत्य आस्ते
निर्वास्यतामाशु पुराच्छ्वसान ॥१५॥

क एनं मन्त्र उपजुहाव जिह्मं दास्याः सुतं यत् बलिना एव पुष्टः तस्मिन् प्रतीपः परकृत्य आस्ते निर्वास्यतां आशु पुरात् श्वसानः ॥१५॥

एनं जिह्मं	इस कपटी	**प्रतीपः**	उलटा चलता
दास्याः सुतं	दासी पुत्रको	**परकृत्य**	शत्रुका काम करता
क मन्त्र	किसने सलाह देनेके लिए	**आस्ते**	रहता है ।
		आशु	शीघ्र
उपजुहाव	बुलाया है ?	**पुरात्**	नगरसे
यत् बलिना एव	जिनके टुकड़े खाकर ही	**श्वसानः**	श्वास लेते हुए ही (बिना मारे)
पुष्टः	मोटा हुआ है,	**निर्वास्यतां**	निकाल दो ॥१५॥
तस्मिन्	उन्हींसे		

श्रीशुक उवाच*-

स इत्थमत्युल्बणकर्णबाणै-
र्भ्रातुः पुरो मर्मसु ताडितोऽपि ।
स्वयं धनुर्द्वारि निधाय मायां
गतव्यथोऽयादुरु मानयानः ॥१६॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

स इत्थं अति उल्बण कर्ण बाणैः भ्रातुः पुरः मर्मसु ताडितः अपि स्वयं धनुः द्वारि निधाय मायां गत व्यथः अयात् उरु मानयानः ॥१६॥

स इत्थं	वे (विदुरजी) इस प्रकार
भ्रातुः पुरः	भाईके सामने ही
अति उल्बण	अत्यन्त कठोर
कर्णबाणैः	कानोंको वाण जैसे लगनेवाले (वाक्योंसे)
ताडितः अपि	मारे जानेपर भी
स्वयं	स्वयं
धनुः द्वारि	(अपना) धनुष द्वारपर
निधाय	रखकर
मायां	(भगवानकी) मायांको
उरु मानयानः	प्रबल मानकर
गत व्यथः	व्यथा रहित
अयात्	(वहांसे) चले गये ॥१६॥

स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो
गजाह्वयात्तीर्थपदः पदानि ।
अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोर्व्यां
स्वधिष्ठतो यानि सहस्रमूर्तिः ॥१७॥

स निर्गतः कौरवपुण्य लब्धः गजाह्वयात् तीर्थपदः पदानि अन्वाक्रमत् पुण्य चिकीर्षया उर्व्यां स्वधिष्ठितः यानि सहस्रमूर्तिः ॥१७॥

कौरवपुण्य लब्धः	कौरवोंको (जो) पुण्योंसे मिले थे
स	वे (विदुरजी)
गजाह्वयात्	हस्तिनापुरसे
निर्गतः	निकलकर
पुण्यचिकीर्षः	पुण्य करनेकी इच्छासे
उर्व्यां	पृथ्वीपर
तीर्थपदः	तीर्थपाद (भगवान)
सहस्रमूर्तिः	सहस्रमूर्तिके
पदानि	स्थानोंमें
यानि स्वधिष्ठितः	वे (भगवान) स्वयं (मूर्ति रूपमें) जहां विराजमान हैं(वहाँ)
अन्वाक्रमत्	घूमने लगे ॥१७॥

पुरेषु पण्योपवनाद्रिकुञ्जे-
ष्वपङ्कतोयेषु सरित्सरःसु ।

अनन्तलिङ्गैः समलङ्कृतेषु
चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः ॥१८॥

पुरेषु पुण्य उपवन अद्रि कुञ्जेषु अपङ्कतोयेषु सरित् सरःसु अनन्तलिङ्गैः समलङ्कृतेषु चचार तीर्थायतनेषु अनन्यः ॥१८॥

अनन्तलिङ्गैः	भगवान अनन्तकी प्रतिमाओंसे	**कुञ्जेषु**	कुञ्जोंमें
समलङ्कृते	सुशोभित	**अपङ्कतोयेषु**	निर्मल जलवाली
पुरेषु	नगरोंमें	**सरित्**	नदियों,
पुण्य	पवित्र	**सरःसु**	सरोवरोंमें तथा
उपवनेषु	उपवनोंमें,	**तीर्थायतनेषु**	तीर्थोंके मन्दिरोंमें
अद्रि	पर्वतोंमें,	**अनन्यः**	अकेले ही
		चचार	घूमने लगे ॥१८॥

गां पर्यटन्मेध्यविविक्तवृत्तिः
सदाऽऽप्लुतोऽधःशयनोऽवधूतः ।
अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो
व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥१९॥

गां पर्यटन् मेध्य विविक्त वृत्तिः सदा आप्लुतः अधः शयनः अवधूतः अलक्षितः स्वैः अवधूत वेषः व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥१९॥

गां पर्यटन्	पृथ्वीपर घूमते हुए	**स्वैः अवधूत**	अपने असज्जित होनेसे
मेध्य	पवित्र	**अलक्षितः**	(किसीसे) पहिचाने न जाकर
विविक्त	ऐकान्तिक	**हरितोषणानि**	भगवानको सन्तुष्ट करनेवाले
वृत्तिः	वृत्तिसे	**व्रतानि**	व्रतोंको
सदा आप्लुतः	सदा स्नान करते	**चेरे**	करते रहे ॥१९॥
अधः शयनः	नीचे (पृथ्वीपर) सोते		
अवधूत	असज्जित		
वेषः	वेषमें रहते		

इत्थं व्रजन् भारतमेव वर्षं
कालेन यावद्गतवान् प्रभासम् ।

तावच्छशास क्षितिमेकचक्रा-
मेकातपत्रामजितेन पार्थः ॥२०॥

इत्थं व्रजन् भारतं एव वर्षं कालेन यावत् गतवान् प्रभासं तावत् शशास क्षितिं एकचक्रां एक आतपत्रां अजितेन पार्थः ॥२०॥

इत्थं	इस प्रकार
भारतं	भारत
वर्षं एव	वर्षमें ही
व्रजन्	घूमते हुए
यावत्	जितने
कालेन	समयमें
प्रभासं	प्रभास
गतवान्	पहुँचे
तावत्	तबतक
अजितेन	भगवान श्रीकृष्णकी सहायतासे
पार्थः	युधिष्ठिर
एक आतपत्रां	एक छत्र
एकचक्रां	अखण्ड
क्षितिं	भूमण्डलके
शशास	शासक हो गये थे ॥२०॥

तत्राथ शुश्राव सुहृद्विनष्टिं
वनं यथा वेणुजवह्निसंश्रयम् ।
संस्पर्धया दग्धमथानुशोचन्
सरस्वतीं प्रत्यगियाय तूष्णीम् ॥२१॥

तत्र अथ शुश्राव सुहृत् विनष्टिं वनं यथा वेणुज वह्नि संश्रयं संस्पर्धया दग्धं अथ अनुशोचन् सरस्वतीं प्रत्यक् इयाय तूष्णीम् ॥२१॥

अथ	तदनन्तर
तत्र सुहृत्	वहाँ (अपने) सम्बन्धियोंका
विनष्टिं	विनाश
शुश्राव	सुना
यथा वनं	जैसे वन-
वेणुज	बाँसोंकी रगड़से उत्पन्न
वह्नि संश्रयं	अग्नि लगनेसे
(ऐसे ही)	
सस्पर्धया	परस्परकी स्पर्धासे
दग्धं	भस्म हो गये थे
अथ अनुशोचन्	अब शोक करते हुए
तूष्णीं	चुपचाप
प्रत्यक्	प्रतीची
सरस्वतीं	सरस्वतीके पास
इयाय	पहुँचे ॥२१॥

तस्यां त्रितस्योशनसो मनोश्च
पृथोरथाग्नेरसितस्य वायोः ।
तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य
यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥२२॥

तस्यां त्रितस्य उशनसः मनोः च पृथोः अथ अग्नेः असितस्य वायोः तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य यत् श्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥२२॥

तस्यां	उस (सरस्वती) में	**सुदासस्य**	सुदासका
यत् त्रितस्य	जो त्रितका	**गवां**	गायोंका
उशनसः	उशनाका	**गुहस्य**	स्वामी कार्तिकका
मनोः	मनुका	**श्राद्धदेवस्य**	श्राद्धदेवका
च पृथोः	तथा पृथुका	**तीर्थं स**	तीर्थ थे उन (ग्यारहहो तीर्थोंका)
अथ अग्नेः	और अग्निका		
असितस्य	असितका	**आसिषेवे**	यथाविधि सेवन किया ॥२२॥
वायोः	वायुका		

अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः
कृतानि नानायतनानि विष्णोः ।
प्रत्यङ्गमुख्याङ्कितमन्दिराणि
यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति ॥२३॥

अन्यानि च इह द्विजदेव देवैः कृतानि नाना आयतनानि विष्णोः प्रत्यङ्ग मुख्य अङ्कित मन्दिराणि यत् दर्शनात् कृष्णं अनुस्मरन्ति ॥२३॥

अन्यानि च	दूसरे भी	**अङ्कित**	(चक्रसे) चिह्नित
द्विजदेव	ब्राह्मणों (तथा)	**यत् मन्दिराणि**	जिन मन्दिरोंके
देवैः	देवताओं द्वारा	**दर्शनात्**	दर्शनसे
कृतानि	बनाये	**कृष्णं**	श्रीकृष्णका
विष्णोः	भगवान (विष्णु) के	**अनुस्मरन्ति**	बार बार स्मरण होता है (उनका भी सेवन किया) ॥२३॥
नाना आयतनानि	अनेक मन्दिर थे		
मुख्य प्रत्यङ्ग	शिखरोंपर		

ततस्त्वतिव्रज्य सुराष्ट्रमृद्धं
सौवीरमत्स्यान् कुरुजाङ्गलांश्च ।
कालेन तावद्यमुनामुपेत्य
तत्रोद्धवं भागवतं ददर्श ॥२४॥

ततः तु अतिव्रज्य सुराष्ट्रं ऋद्धं सौवीर मत्स्यान् कुरुजाङ्गलान् च कालेन तावत् यमुनां उपेत्य तत्र उद्धवं भागवतं ददर्श ॥२४॥

ततः तु	वहांसे तो	**कालेन**	समयमें
ऋद्धं	सम्पन्न	**यमुनां**	यमुनाके
सुराष्ट्रं	सौराष्ट्र,	**उपेत्य**	पास पहुँचे (तो)
सौवीर	सौवीर,	**तत्र भागवतं**	वहां भगवान श्रीकृष्णके पार्षद
मत्स्यान् च	मत्स्यप्रदेश तथा		
कुरुजाङ्गलान्	कुरुजाङ्गलको	**उद्धवं**	उद्धवको
अतिव्रज्य	पार करके	**ददर्श**	देखा ॥२४॥
तावत्	तबतकके		

स वासुदेवानुचरं प्रशान्तं
बृहस्पतेः प्राप्तनयं प्रतीतम् ।
आलिङ्ग्य गाढं प्रणयेन भद्रं
स्वानामपृच्छद्भगवत्प्रजानाम् ॥२५॥

स वासुदेव अनुचरं प्रशान्तं बृहस्पतेः प्राप्तनयं प्रतीतं आलिङ्ग्य गाढं प्रणयेन भद्रं स्वानां अपृच्छत् भगवत् प्रजानाम् ॥२५॥

स वासुदेव	वे श्रीकृष्णके	**आलिङ्ग्य**	आलिंगन करके
अनुचरं	सेवक	**स्वानां**	उनके अपनों तथा
प्रशान्तं	अत्यन्त शान्त		
बृहस्पतेः	बृहस्पतिसे	**भगवत्**	भगवान्की
नयं	नीतिशास्त्रकी	**प्रजानां**	आश्रितोंका
प्राप्त	शिक्षा प्राप्त थे,	**भद्रं**	कुशल
प्रतीतं	(उनको) पहिचानकर	**अपृच्छत्**	पूछने लगे ॥२५॥
गाढं	दृढ़		

विदुरोवाच*-

कच्चित्पुराणौ पुरुषौ स्वनाभ्य-
पाद्मानुवृत्त्येह किलावतीर्णौ ।
आसात उर्व्याः कुशलं विधाय
कृतक्षणौ कुशलं शूरगेहे ॥२६॥

कच्चित् पुराणौ पुरुषौ स्वनाभ्य पाद्म अनुवृत्ति इह किल अवतीर्णौ आसात् उर्व्याः कुशलं विधाय कृतक्षणौ कुशलं शूरगेहे ॥२६॥

स्वनाभ्य	अपनी नाभिसे (उत्पन्न)
पाद्म	कमलसे प्रगट ब्रह्माजीके
अनुवृत्ति	अनुरोधसे
इह किल	इस पृथ्वीपर निश्चय
अवतीर्णौ	अवतार धारण किए
पुराणौ	पुराण-
पुरुषौ	पुरुष (बलराम-श्रीकृष्ण)
उर्व्याः	पृथ्वीका
कुशलं	मंगल
विधाय	सम्पन्न करके
कृतक्षणौ	विश्राम करते हुए
शूरगेहे	शूर (वसुदेवजीके पिता) के घरमें
कच्चित्	कहीं
कुशलं	कुशलपूर्वक
आसात	(सानन्द) हैं ॥२६॥

कच्चित्कुरूणां परमः सुहृन्नो
भामः स आस्ते सुखमङ्ग शौरिः ।
यो वै स्वसॄणां पितृवद्ददाति
वरान् वदान्यो वरतर्पणेन ॥२७॥

कच्चित् कुरूणां परमः सुहृत् नः भामः स आस्ते सुखं अङ्ग शौरिः यः वै स्वसॄणां पितृवत् ददाति वरान् वदान्यः वर तर्पणेन ॥२७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अङ्ग	प्रियवर !
नः कुरूणां	हम कुरुवंशियोंके
परम	परम
सुहृत्	सुहृद
स भामः	वे सम्मान्य
शौरिः	वसुदेवजी
यः वदान्यः वै	जो परमोदार तो
पितृवत्	पिताके समान
स्वसृणां	अपनी (कुन्ती आदि)
	बहिनोंको
वर	उनके पतियोंको
तर्पणेन	सन्तुष्ट करते हुए
वरान्	अभिलषित वस्तुयें
ददाति	देते हैं
कञ्चित्	कहीं
सुखं	सुखपूर्वक तो
आस्ते	हैं ॥२७॥

कच्चिद्वरूथाधिपतिर्यदूनां
प्रद्युम्न आस्ते सुखमङ्ग वीरः ।
यं रुक्मिणी भगवतोऽभिलेभे
आराध्य विप्रान् स्मरमादिसर्गे ॥२८॥

कच्चित् वरूथाधिपतिः यदूनां प्रद्युम्न आस्ते सुखं अङ्ग वीरः यं रुक्मिणी भगवतः अभिलेभे आराध्य विप्रान् स्मरं आदि सर्गे ॥२८॥

आदि सर्गे	पूर्वजन्ममें जो
स्मरं	कामदेव थे
यं विप्रान्	जिन्हें ब्राह्मणोंकी
आराध्य	पूजा करके
रुक्मिणी	रुक्मिणीदेवीने
भगवतः	भगवान श्रीकृष्ण द्वारा
अभिलेभे	प्राप्त किया
अङ्ग	प्रिय उद्धवजी !
यदूनां	यदुवंशियोंके
वरूथाधिपतिः	सेनापति (वे)
वीरः प्रद्युम्नः	वीर प्रद्युम्न
कच्चित्	क्या
सुखं आस्ते	सुखपूर्वक हैं ॥२८॥

कच्चित्सुखं सात्वतवृष्णिभोज-
दाशार्हकाणामधिपः स आस्ते ।
यमभ्यषिञ्चच्छतपत्रनेत्रो
नृपासनाशां परिहृत्य दूरात् ॥२९॥

कच्चित् सुखं सात्वत वृष्णि भोज दाशार्हकाणां अधिपः स आस्ते यं अभिषिञ्चत् शतपत्रनेत्रः नृपासन आशां परिहृत्य दूरात् ॥२९॥

सात्वत	सात्वत्
वृष्णि	वृष्णि
भोज	भोज
दाशार्हकाणां	दशार्हवंशीय यादवोंके
अधिपः	राजा (उग्रसेन)
स नृपासन	वे (जो) राज्य-सिंहासन (पानेकी)
आशां	आशा
दूरात्	दूरसे ही
परिहृत्य	छोड़ चुके थे किन्तु
यं शतपत्रनेत्रः	जिनका कमललोचन (भगवानने)
अभिषिञ्चत्	अभिषेक किया
कच्चित्	क्या
सुखं आस्ते	सुखसे हैं ॥२८॥

कच्चिद्धरेः सौम्य सुतः सदृक्ष
आस्तेऽग्रणी रथिनां साधु साम्बः ।
असूत यं जाम्बवती व्रताढ्या
देवं गुहं योऽम्बिका धृतोऽग्रे ॥३०॥

कच्चित् हरेः सौम्य सुतः सदृक्ष आस्ते अग्रणी रथिनां साधु साम्ब असूत यं जाम्बवती व्रताढ्या देवं गुहं यः अम्बिकया धृतः अग्रे ॥३०॥

सौम्य	सौम्य !
हरेः	श्रीहरिके
सदृक्ष	समान ही
सुतः	उनके पुत्र
रथिनां	रथियोंके
अग्रणी	अग्रणी
साम्ब	साम्ब
अग्रे यः	पूर्व जन्ममें जो
अम्बिकया	पार्वतीजी द्वारा
धृतः	(पुत्र रूपमें) अपनाये गये थे,
यः व्रताढ्या	जिनको बहुत व्रत करने वाली
जाम्बवती	महारानी जाम्बवतीने
असूत	जन्म दिया था
कच्चित्	क्या
साधु आस्ते	अच्छी तरह हैं॥३०॥

क्षेमं स कच्चिद्युयुधान आस्ते
यः फाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः ।
लेभेऽञ्जसाधोक्षजसेवयैव
गतिं तदीयां यतिभिर्दुरापाम् ॥३१॥

क्षेमं स कच्चित् युयुधान आस्ते यः फाल्गुनात् लब्धः धनू रहस्यः लेभे अञ्जसा अधोक्षज सेवया एव गतिं तदीयां यतिभिः दुरापाम् ॥३१॥

स युयुधान	वे सात्यकि	**यतिभिः**	यतियोंके लिए भी
यः फाल्गुनात्	जिन्होंने अर्जुनसे	**दुरापां**	दुर्लभ
धनू रहस्यः	धनुर्वेदका रहस्य	**तदीयां**	उन (भगवानकी)
लब्ध	पाकर	**गतिं**	गतिको
अञ्जसा	सरलतासे	**लेभे**	प्राप्त कर लिया,
अधोक्षज	भगवान हृषीकेशकी	**कच्चित्**	क्या
सेवया एव	सेवासे ही	**क्षेमं आस्ते**	कुशलपूर्वक हैं ॥३१॥

कच्चिद् बुधः स्वस्त्यनमीव आस्ते
श्वफल्कपुत्रो भगवत्प्रपन्नः ।
यः कृष्णपादाङ्कितमार्गपांसु-
ष्वचेष्टत प्रेमविभिन्नधैर्यः ॥३२॥

कच्चित् बुधः स्वस्ति अयनं इव आस्ते श्वफल्कपुत्रः भगवत् प्रपन्नः यः कृष्ण पाद अङ्कित मार्ग पांसुषु अचेष्टत प्रेम विभिन्नः धैर्यः ॥३२॥

यः भगवत्	जो भगवानके	**विभिन्न धैर्यः**	धैर्य त्यागकर
प्रपन्नः	शरणागत	**अचेष्टत**	लोटने लगे थे
बुधः श्वफल्कपुत्रः	बुद्धिमान अक्रूरजी	**अयनं**	घरमें
कृष्ण पाद	श्रीकृष्णके चरणोंसे	**स्वस्ति**	कुशलकी
अङ्कित	चिह्नित	**इव**	भाँति*
मार्ग पांसुषु	मार्गकी धूलिमें	**कच्चित् आस्ते**	क्या हैं ॥३२॥
प्रेम	प्रेम (की अधिकता)से		

कच्चिच्छिवं देवकभोजपुत्र्या
विष्णुप्रजाया इव देवमातुः ।

---

* कोई बुद्धिमान् भक्त घरमें कुशल मानकर सुखी नहीं रह सकता। वह गृहसे विरक्त ही होगा। अतः वह घरमें सकुशलकी भाँति ही रह सकता है।

या वै स्वगर्भेण दधार देवं
त्रयी यथा यज्ञवितानमर्थम् ॥३३॥

कच्चित् शिवं देवक भोज पुत्र्या विष्णु प्रजाया इव देवमातुः या वै स्वगर्भेण दधार देवं त्रयी यथा यज्ञवितान अर्थम् ॥३३॥

या भोज	जो भोजवंशी	**यज्ञवितान**	यज्ञ प्रसारके
देवक	देवककी	**अर्थं**	अर्थको (धारण किये है, वैसे)
पुत्र्या	पुत्री (देवकीजी)		
विष्णु प्रजाया	जिनके पुत्र स्वयं विष्णु (वामन) हुए (उन)	**स्वगर्भेण**	अपने गर्भमें
		देवं वै	भगवान श्रीकृष्णको ही
देवमातुः इव	देवमाता अदितिके समान	**दधार**	धारण किया (वे)
		कच्चित्	क्या
यथा त्रयी	जैसे वेद	**शिवं**	मंगलपूर्वक हैं ॥३३॥

अपिस्विदास्ते भगवान् सुखं वो
यः सात्वतां कामदुघोऽनिरुद्धः ।
यमामनन्ति स्म ह शब्दयोनिं
मनोमयं सत्त्वतुरीयतत्त्वम् ॥३४॥

अपिस्वित् आस्ते भगवान् सुखं वः यः सात्वतां कामदुघः अनिरुद्धः यं आमनन्ति स्म ह शब्दयोनिं मनोमयं सत्त्व तुरीय तत्त्वम् ॥३४॥

यं ह	जिनको ही	**वः सात्वतां**	आप यदुवंशियोंकी
शब्दयोनि	वेदोंका आदिकारण	**कामदुघः**	कामनाओंको पूर्ण करनेवाले
मनोमयं	मनोमय		
सत्त्व	अन्तःकरणका	**यः भगवान्**	जो भगवान
तुरीय	चौथा	**अनिरुद्धः**	अनिरुद्ध हैं
तत्त्वं	तत्त्व (अहङ्कार)	**अपिस्वित्**	क्या
आमनन्ति स्म	कहा जाता है	**सुखं आस्ते**	सुखपूर्वक हैं ॥३४॥

अपिस्विदन्ये च निजात्मदैव-
मनन्यवृत्त्या समनुव्रता ये ।
हृदीकसत्यात्मजचारुदेष्ण-
गदादयः स्वस्ति चरन्ति सौम्य ॥३५॥

अपिस्वित् अन्ये च निज आत्मदेवं अनन्य वृत्त्या सम अनुव्रता ये हृदीक सत्यात्मज चारुदेष्ण गद आदयः स्वस्ति चरन्ति सौम्य ॥३५॥

सौम्य	सौम्य !	**हृदीक**	हृदीक
अन्ये च	दूसरे भी	**सत्यात्मज**	सत्यानन्दन
निज आत्मदेवं	अपने हृदयेश्वर (भगवान् श्रीकृष्ण) का	**चारुदेष्ण**	चारुदेष्ण
		गद आदयः	गद आदि
		अपिस्वित्	क्या
अनन्य वृत्त्या ये	अनन्य भावसे जो	**स्वस्ति**	कुशलपूर्वक
सम अनुव्रता	भली प्रकार अनुसरण करनेवाले	**चरन्ति**	विचरण करते हैं ॥३५॥

अपि स्वदोर्भ्यां विजयाच्युताभ्यां
धर्मेण धर्मः परिपाति सेतुम् ।
दुर्योधनोऽतप्यत यत्सभायां
साम्राज्यलक्ष्म्या विजयानुवृत्त्या ॥३६॥

अपि स्व दोर्भ्यां विजय अच्युताभ्यां धर्मेण धर्मः परिपाति सेतं दुर्योधनः अतप्यत यत् सभायां साम्राज्यलक्ष्म्या विजय अनुवृत्त्या ॥३६॥

यत् सभायां	जिनकी सभामें	**विजय**	अर्जुन (और)
विजय	विजयकी	**अच्युताभ्यां**	श्रीकृष्ण रूपी
अनुवृत्त्या	अनुसरिणी	**स्व दोर्भ्यां**	अपनी दोनों भुजाओंसे
साम्राज्यलक्ष्म्या	साम्राज्य लक्ष्मीको देखकर	**अपि सेतुं**	क्या मर्यादाकी
		धर्मेण	धर्मपूर्वक
दुर्योधनः	दुर्योधन	**परिपाति**	रक्षा करते हैं ? ॥३६॥
अतप्यत	संतप्त हुआ था, (वे)		
धर्मः	धर्मराज (युधिष्ठिर)		

किं वा कृताघेष्वघमत्यमर्षी
भीमोऽहिवद्दीर्घतमं व्यमुञ्चत् ।
यस्याङ्घ्रिपातं रणभूर्न सेहे
मार्गं गदायाश्चरतो विचित्रम् ॥३७॥

किं वा कृत अघेषु अघं इति अमर्षी भीमः अहिवत् दीर्घतमं व्यमुञ्चत् यस्य अङ्घ्रिपातं रणभूः न सेहे मार्गं गदाया चरतः विचित्रम् ॥३७॥

गदाया	गदाके
विचित्रं	विचित्र
मार्गं	पैंतरे
चरतः	लेते
यस्य	जिनके
अङ्घ्रिपातं	चरणाघातको
रणभूः	युद्ध भूमि
न सेहे	नहीं सहपाती थी (वे)
अघेषु	पापीके प्रति
अघं	कठोर व्यवहार
इति	ऐसा माननेवाले
अमर्षी	असहिष्णु
भीमः	भीमसेनने
अहिवत्	सर्पके समान
दीर्घतमं	अत्यन्त दीर्घ (क्रोध)
किं वा	क्या
व्यमुञ्चत्	छोड़ दिया ॥३७॥

कच्चिद्यशोधा रथयूथपानां
गाण्डीवधन्वोपरतारिरास्ते ।
अलक्षितो यच्छरकूटगूढो
मायाकिरातो गिरिशस्तुतोष ॥३८॥

कच्चित् यशोधा रथयूथपानां गाण्डीव धन्वा उपरत अरि आस्ते अलक्षितः यत् शरकूट गूढः माया किरातः गिरिशः तुतोष ॥३८॥

यत्	जिनके
शरकूट	बाणोंकी पर्वताकार (झड़ी) में
गूढः	छिप गये
माया किरातः	मायासे किरात बने
अलक्षितः	(अतः) पहिचानमें न आनेवाले
गिरिशः	शङ्करजी
तुतोष	सन्तुष्ट हो गये थे (वे)

रथयूथपानां	रथसेनाके सेना-पतियोंका	**उपरत अरि**	शत्रुओंके समाप्त हो जानेपर
यशोधा	यश बढ़ानेवाले	**आस्ते**	(प्रसन्न) हैं ॥३८॥
गाण्डीव धन्वा	गाण्डीव धनुषवाले (अर्जुन)		

यमावुतस्वित्तनयौ पृथायाः
पार्थैर्वृतौ पक्ष्मभिरक्षिणीव ।
रेमात उद्दाय मृधे स्वरिक्थं
परात्सुपर्णाविव वज्रिवक्त्रात् ॥३९॥

यमाः उतस्वित् तनयौ पृथायाः पार्थैः वृतः पक्ष्मभिः अक्षिणी इव रेमात उद्दाय मृधे स्वरिक्थं परात् सुपर्णाः इव वज्रिवक्त्रात् ॥३९॥

पृथायाः	कुन्तीके (द्वारा) तथा	**वक्त्रात्**	मुखसे
पार्थैः	कुन्तीके पुत्रों द्वारा	**सुपर्णा इव**	दो गुरुड़ोके समान
पक्ष्मभिः	पलकों द्वारा	**मृधे**	युद्धमें
अक्षिणी इव	आँखोके समान	**परात्**	शत्रुओंसे
वृतः	सुरक्षित	**स्वरिक्थं**	अपना स्वत्व
यमाः	दोनों (नकुल-सहदेव)	**उद्दाय**	छीन लाकर
तनयौ	माद्रीके पुत्र	**उतस्वित्**	क्या अब
वज्रि	इन्द्रके	**रेमात**	क्रीड़ा करते हैं॥३९॥

अहो पृथापि ध्रियतेऽर्भकार्थे
राजर्षिवर्येण विनापि तेन ।
यस्त्वेकवीरोऽधिरथो विजिग्ये
धनुर्द्वितीयः ककुभश्चतस्रः ॥४०॥

अहो पृथापि ध्रियते अर्भक अर्थे राजर्षि वर्येण विनापि तेन यः तु एकवीरः अधिरथः विजिग्ये धनुः द्वितीयः ककुभः चतस्रः ॥४०॥

अहो	अहो	**तेन राजर्षि वर्येण**	उन राजर्षि श्रेष्ठ (पाण्डु) के
पृथापि	कुन्ती भी	**विनापि**	बिना भी
अर्भक अर्थे	बालकोंके लिए		

ध्रियते	(किसी प्रकार) देह धारण किये हैं
यः तु	जिन्होंने तो
एकवीरः	अकेले वीर
अधिरथः	अधिरथीने
धनुः द्वितीयः	केवल धनुष लेकर
चतस्रः	चारो
ककुभः	दिशाओंको
विजिग्ये	जीत लिया ॥४०॥

सौम्यानुशोचे तमधःपतन्तं
भ्रात्रे परेताय विदुद्रुहे यः ।
निर्यापितो येन सुहृत्स्वपुर्या
अहं स्वपुत्रान् समनुव्रतेन ॥४१॥

सौम्य अनुशोचे तं अधः पतन्तं भ्रात्रे परेताय विदुद्रुहे यः निर्यापितः येन सुहृत् स्वपुर्या अहं स्वपुत्रान् समअनुव्रतेन ॥४१॥

सौम्य	सौम्य !
तं परेताय	उस मरे हुए
भ्रात्रे	भाईसे
यः	जिसने
विदुद्रुहे	द्रोह किया है
तं अधःपतन्तं	उस अधःपतनकी ओर जाते
अनुशोचे	के लिए शोक है
येन	जिसने
स्वपुत्रान्	अपने पुत्रोंका
समनुव्रतेन	समर्थन करते हुए
सुहृत्	(अपने) हितचिन्तक
अहं	मुझे
स्वपुर्या	अपनी पुरीसे
निर्यापितः	निकलवा दिया है ॥४१॥

सोऽहं हरेर्मर्त्यविडम्बनेन
दृशो नृणां चालयतो विधातुः ।
नान्योपलक्ष्यः पदवीं प्रसादा-
च्चरामि पश्यन् गतविस्मयोऽत्र ॥४२॥

सः अहं हरेः मर्त्य विडम्बनेन दृशः नृणां चालयतः विधातुः न अन्य उपलक्ष्यः पदवीं प्रसादात् चरामि पश्यन् गत विस्मयः अत्र ॥४२॥

मर्त्य विडम्बनेन	मनुष्य लीला करते हुए
हरेः	श्रीकृष्णकी
प्रसादात्	कृपासे
सः अहं	वह मैं
गत विस्मयः	आश्चर्य रहित
दृशः	अपनी दृष्टिसे ही
नृणां	मनुष्योंको
चालयतः	संचालित करते
विधातुः	जगद्विधाता (भगवानकी)
पदवीं	लीलाको
पश्यन्	देखते हुए
अन्य	दूसरोंसे
न उपलक्ष्यः	पहिचानमें न आता
अत्र	यहाँ (तीर्थोंमें)
चरामि	घूम रहा हूँ ॥४२॥

नूनं नृपाणां त्रिमदोत्पथानां
महीं मुहुश्चालयतां चमूभिः ।
वधात्प्रपन्नार्तिजिहीर्षयेशो-
ऽप्युपैक्षताघं भगवान् कुरूणाम् ॥४३॥

नूनं नृपाणां त्रिमद उत्पथानां महीं मुहुः चालयतां चमूभिः वधात् प्रपन्न आर्ति जिहीर्षया ईशः अपि उपैक्षत अघं भगवान् कुरूणाम् ॥४३॥

त्रिमद	(धन, जाति, विद्या) तीनोंके गर्वसे
उत्पथानां	कुमार्गपर चलनेवाले,
चमूभिः	सेनाके द्वारा
मुहुः महीं	बार बार पृथ्वीको
चालयतां	कम्पित करनेवाले
नृपाणां	राजाओंके
वधात्	वधसे
प्रपन्न	शरणागत (पृथ्वी तथा देवताओंकी)
आर्ति	संकटको
जिहीर्षया	दूर करनेके लिए ही
नूनं	निश्चय
ईशः अपि	समर्थ होकर भी
भगवान्	भगवान (श्रीकृष्ण)ने
कुरूणां	कौरवोंके
अघं	अपराधोंकी
उपैक्षत	उपेक्षा की ॥४३॥

अजस्य जन्मोत्पथनाशनाय
कर्माण्यकर्तुर्ग्रहणाय पुंसाम् ।
नन्वन्यथा कोऽर्हति देहयोगं
परो गुणानामुत कर्मतन्त्रम् ॥४४॥

अजस्य जन्म उत्पथ नाशनाय कर्माणि अकुर्तुः ग्रहणाय पुसां ननु अन्यथा कः अर्हति देह योगं परः गुणानां उत कर्मतन्त्रम् ॥४४॥

ननु	निश्चय ही
अजस्य	अजन्मा (श्रीकृष्ण) का
जन्म	अवतार
उत्पथ	कुमार्गगामियोंके
नाशनाय	विनाशके लिए (हुआ)
अकर्तुः	(उन) अकर्ताके
कर्माणि	कर्म (चरित)
पुंसां	पुरुषोंको
ग्रहणाय	(अपनी ओर) आकर्षित करनेके लिए हैं
अन्यथा	अन्यथा
कः गुणानां	कौन गुणोंसे
परः	परे
उत	हुआ (सामान्य महापुरुष भी)
कर्मतन्त्रं	कर्मबन्धयुक्त
देह	शरीरका
योगं अर्हति	संयोग स्वीकार करेगा ॥४४॥

तस्य प्रपन्नाखिललोकपाना-
मवस्थितानामनुशासने स्वे ।
अर्थाय जातस्य यदुष्वजस्य
वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥४५॥

तस्य प्रपन्न अखिल लोकपानां अवस्थितानां अनुशासने स्वे अर्थाय जातस्य यदुषु अजस्य वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥४५॥

सखे	मित्र !
प्रपन्न	शरणागत
अखिल	समस्त
लोकपानां	लोकपालोंके (तथा)
स्वे अनुशासने	अपनी आज्ञामें
अवस्थितानां	स्थित (भक्तों)
अर्थाय	के लिए
यदुषु	यदुकुलमें
जातस्य	उत्पन्न
तस्य तीर्थकीर्तेः	उन पुण्य श्लोक
अजस्य	अजन्माकी
वार्तां कीर्तय	लीला वर्णन कीजिए ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

इति भागवतः पृष्टः क्षत्त्रा वार्तां प्रियाश्रयाम् ।
प्रतिवक्तुं न चोत्सेह औत्कण्ठ्यात्स्मारितेश्वरः ॥१॥

इति भागवतः पृष्टः क्षत्त्रा वार्तां प्रिय आश्रयां प्रतिवक्तुं न च उत्सेह औत्कठ्यात् स्मारित ईश्वरः ॥१॥

इति भागवतः	इस प्रकार भगवद्भक्त	**ईश्वरः**	अपने स्वामीके स्मरण कराये जानेसे
क्षत्त्रा	विदुरजी द्वारा	**प्रतिवक्तुं**	उत्तर देनेका
प्रिय आश्रयां	प्रियसे सम्बन्धित	**उत्सेह**	उत्साह
वार्तां पृष्टः	कथा पूछे जानेपर	**न च**	नहीं ही हुआ ॥१॥
औत्कण्ठ्यात्	उत्कण्ठासे		

यः पञ्चहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः ।
तन्नैच्छद्रचयन् यस्य सपर्यां बाललीलया ॥२॥

यः पञ्चहायनः मात्रा प्रातराशाय याचितः तत् न इच्छत् रचयन् यस्य सपर्यां बाल लीलया ॥२॥

यः पञ्चहायनः	जो पांच वर्षके थे तब	**प्रातराशाय**	कलेऊ करनेके लिए
बाल लीलया	बालक्रीड़ामें	**याचितः**	बुलाये जानेपर
यस्य सपर्यां	जिनकी पूजा (का खेल)	**तत् न इच्छत्**	उसे (कलेऊकी) इच्छा नहीं करते
रचयन्	बनाते (खेलते हुए)		थे ॥२॥
मात्रा	माताके द्वारा		

स कथं सेवया तस्य कालेन जरसं गतः ।
पृष्टो वार्तां प्रतिब्रूयाद्भर्तुः पादावनुस्मरन् ॥३॥

स कथं सेवया तस्य कालेन जरसं गतः पृष्टः वार्तां प्रतिब्रूयात् भर्तुः पादाः अनुस्मरन् ॥३॥

स	वही (उद्धवजी)	**पृष्टः**	पूछे जानेपर
तस्य	उन (अपने आराध्य श्रीकृष्ण) की	**भर्तुः**	अपने स्वामीके
कालेन	दीर्घकालके द्वारा	**पादाः अनुस्मरन**	चरणोंका चिन्तन करनेमें लगकर
सेवया	सेवा करते हुए	**कथं प्रतिब्रूयात्**	कैसे उत्तर दे सकते थे ॥३॥
जरसं	बुढ़ापेमें		
गतः	पहुँच गये		

स मुहूर्तमभूत्तूष्णीं कृष्णाङ्घ्रिसुधया भृशम् ।
तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधु निर्वृतः ॥४॥

स मुहूर्तं अभूत् तूष्णीं कृष्ण अङ्घ्रि सुधया भृशं तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधु निर्वृतः ॥४॥

कृष्ण अंघ्रि	श्रीकृष्णके चरणोंकी	**साधु**	भली प्रकार
सुधया	सुधामें	**निर्वृतः**	आनन्दमग्न हुए
तीव्रेण	तीव्र	**स मुहूर्तं**	वे (उद्धवजी) घड़ी भर
भक्तियोगेन	भक्तियोगसे	**तूष्णीं अभूत्**	चुप हो गये ॥४॥
भृशं निमग्नः	अत्यन्त डूबकर		

पुलकोद्भिन्नसर्वाङ्गो मुञ्चन्मीलद्दृशा शुचः ।
पूर्णार्थो लक्षितस्तेन स्नेहप्रसरसंप्लुतः ॥५॥

पुलक उद्भिन्न सर्व अङ्गः मुञ्चन् मीलत् दृशा शुचः पूर्ण अर्थः लक्षितः तेन स्नेह प्रसर सम्प्लुतः ॥५॥

सर्व अङ्गः	सम्पूर्ण अंग	**मीलत् दृशा**	बन्द नेत्रोंसे
पुलक उद्भिन्न	रोमाञ्चित हो गया	**शुचः मुञ्चन्**	आँसू बहा रहे थे

स्नेह प्रसर	प्रेम प्रवाहमें	**पूर्ण अर्थः**	कृतकृत्य
सम्प्लुतः	डूब गये थे	**लक्षितः**	समझ लिया ॥५॥
तेन	इससे (विदुरने उन्हें)		

शनकैर्भगवल्लोकान्नृलोकं पुनरागतः ।
विमृज्य नेत्रे विदुरं प्रत्याहोद्धव उत्स्मयन् ॥६॥

शनकैः भगवत् लोकात् नृलोकं पुनः आगतः विमृज्य नेत्रे विदुरं प्रति आह उद्धव उत्स्मयन् ॥६॥

शनकैः	धीरे-धीरे	**नेत्रं विमृज्य**	नेत्र पोंछकर
भगवत् लोकात्	भगवान्‌के लोकसे	**उत्स्मयन्**	विस्मित होकर
पुनः नृलोकं	फिर मनुष्य लोकमें	**विदुरं प्रति**	विदुरसे
आगतः उद्धव	आये उद्धव	**आह**	बोले ॥५॥

उद्धव उवाच–

कृष्णद्युमणिनिम्लोचे गीर्णेष्वजगरेण ह ।
किं नु नः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम् ॥७॥

कृष्ण द्युमणि निम्लोचे गीर्णेषु अजगरेण ह किं नु नः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेषु अहम् ॥७॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण रूपी	**गतश्रीषु**	शोभा रहित
द्युमणि	सूर्यके	**नः**	हमारे
निम्लोचे	छिप जानेपर	**गृहेषु**	घरोंकी
अजगरेण	(कालरूपी) अजगर द्वारा	**नु ह**	अब तो
		किं कुशलं	क्या कुशल
गीर्णेषु	निगल लिए	**ब्रूयां**	बतलावें ॥७॥

दुर्भगो बत लोकोऽयं यदवो नितरामपि ।
ये संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम् ॥८॥

दुर्भगः बत लोकः अयं यदवः नितरां अपि ये संवसन्तः न विदुः हरिं मीना इव उडुपम् ॥८॥

बत अयं	निश्चय यह
लोकः दुर्भगः	लोक भाग्यहीन है
यदवः अपि	यदुवंशी तो
नितरां	अत्यन्त (भाग्यहीन) हैं
ये संवसन्तः	जो साथ रहते हुए
हरिं	श्रीहरिको
न विदुः	नहीं जान सके
उडुपं	चन्द्रमाको
मीना इव	मछलियोंकी भाँति ॥८॥

विशेष—

अमृत-मन्थनसे पहिले अमृतमय चन्द्र समुद्रमें ही था; किन्तु मछलियाँ उसे भी कोई चमकीली मछली ही समझती थीं। उसमें अमृत है, यह नहीं जान सकीं; ऐसे ही यदुवंशी श्रीकृष्णको भी अपने समान ही समझते रहे। यह नहीं जान सके कि वे मोक्षदाता हैं।

इङ्गितज्ञाः पुरुप्रौढा एकारामाश्च सात्वताः।
सात्वसामृषभं सर्वे भूतावासममंसत ॥९॥

इङ्गितज्ञाः पुरुप्रौढाः एक आरामाः च सात्वताः सात्वतां ऋषभं सर्वे भूत आवासं अमंसत ॥९॥

सात्वताः	यदुवंशी
इङ्गितज्ञाः	संकेत समझनेवाले
पुरुप्रौढाः	बहुत चतुर थे
च एक आरामाः	और एक साथ क्रीड़ा करते थे (फिर भी)
सर्वे	सबने
भूत आवासं	सर्व भूतमय (भगवान) को
सात्वतां	यदुवंशियोंमें
ऋषभं	श्रेष्ठ (एक यादव मात्र)
अमंसत	माना ॥९॥

देवस्य मायया स्पृष्टा ये चान्यदसाश्रिताः।
भ्राम्यते धीर्न तद्वाक्यैरात्मन्युप्तात्मनो हरौ ॥१०॥

देवस्य मायया स्पृष्टा ये च अन्यत् असत् आश्रिताः भ्राम्यते धीः न तत् वाक्यैः आत्मनि उप्त आत्मनः हरौ ॥१०॥

देवस्य	भगवानकी
मायया	मायासे
स्पृष्टा	ग्रस्त
ये च	जो भी
अन्यत्	दूसरे
असत् आश्रिताः	असदावलम्बी थे
तत्	उन (शिशुपालादिके)
वाक्यैः	वाक्योंसे
आत्मनः	अपने
आत्मनि	प्राणोंको
हरौ	श्रीकृष्णको
उप्तं	समर्पित करने वालोंकी
धीः	बुद्धि
भ्राम्यते न	भ्रममें नहीं पड़ती ॥१०॥

प्रदर्श्यातप्ततपसामवितृप्तदृशां नृणाम् ।
आदायान्तरधाद्यस्तु स्वबिम्बं लोकलोचनम् ॥११॥

प्रदर्श्य अतप्त तपसां अवितृप्त दृशां नृणां आदाय अन्तरधात् यः तु स्वबिम्बं लोक लोचनम् ॥११॥

अतप्त तपसां	कभी तपस्या न करनेवाले
नृणां	मनुष्योंको
स्वबिम्बं	अपना स्वरूप
प्रदर्श्य	दर्शन कराके
अवितृप्त दृशां	उनके नेत्रोंके अतृप्त रहते
यः तु	जो यह
अन्तरधात्	अन्तर्धान हो गये (मानो)
लोक लोचनं	सब लोगोंके नेत्रोंको
आदाय	लेकर (चले गये) ॥११॥

यन्मर्त्यलीलोपयिकं स्वयोग-
मायाबलं दर्शयता गृहीतम् ।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः
परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् ॥१२॥

यत् मर्त्यलीला उपयिकं स्व योगमायाबलं दर्शयता गृहीतं विस्मापनं स्वस्य च सौभगऋद्धेः परं पदं भूषण भूषण अङ्गम् ॥१२॥

स्व	अपनी	**स्वस्य च**	उनको स्वयंको भी
योगमाया बलं	योगमायाकी शक्ति	**विस्मापनं**	विस्मित करनेवाला
दर्शयता	दिखलाते हुए	**भूषण**	आभूषणोंको भी
यत् मर्त्यलीला	जो मनुष्य लीलाके	**भूषणं**	सुन्दर करनेवाला
उपयिकं	उपयुक्त (रूप)	**अङ्ग**	वह श्रीअङ्ग
गृहीतं	ग्रहण किया था	**परं पदं**	सौन्दर्यकी पराकाष्ठा
सौभगऋद्धेः	सौन्दर्य सम्पत्तिमें		था ॥१२॥

यद्धर्मसूनोर्बत राजसूये
निरीक्ष्य दृक्स्वस्त्ययनं त्रिलोकः ।
कात्स्न्र्येन चाद्येह गतं विधातु-
रर्वाक्सृतौ कौशलमित्यमन्यत ॥१३॥

यत् धर्मसूनोः बत राजसूयः निरीक्ष्य दृक् स्वस्त्ययनं त्रिलोकः कात्स्न्र्येन च अद्य इह गतं विधातुः अर्वाक् सृतौ कौशलं इति अमन्यत ॥१३॥

यद् धर्मसूनोः	जब युधिष्ठिरके	**कात्स्न्र्येन**	सम्पूर्ण
राजसूये	राजसूय यज्ञमें	**कौशलं**	कुशलताको
दृक्	दृष्टिके लिए	**अद्य इह**	आज यहाँ
स्वस्त्ययनं	मंगल निवास (रूपको)	**वत अर्वाक्**	निश्चित नीचे (छोटा)
निरीक्ष्य	देखकर (लोगोंने)	**गतं च**	पहुँचा हुआ
विधातुः	ब्रह्माकी	**इति अमन्यत**	ऐसा मान लिया ॥१३॥
त्रिलोकः	त्रिलोकीको		
सृतौ	बनानेकी		

यस्यानुरागप्लुतहासरासे-
लीलावलोकप्रतिलब्धमानाः ।
व्रजस्त्रियो दृग्भिरनुप्रवृत्त-
धियोऽवतस्थुः किल कृत्यशेषाः ॥१४॥

यस्य अनुराग हास रास लीला अवलोक प्रतिलब्ध मानाः व्रजस्त्रियः दृग्भिः अनुप्रवृत्त धियः अवतस्थुः किल कृत्य शेषाः ॥१४॥

यस्य अनुराग हास	जिनकी प्रेमपूर्ण हास्य
रास	विनोद
लीला अवलोक	लीलामय चितवनसे
मानाः प्रतिलब्ध	सम्मान प्राप्ता
व्रजस्त्रियः	व्रजकी स्त्रियाँ
दृग्भिः	आखोंके (और)
धियः अनुप्रवृत्त	बुद्धिके उधर ही लग जानेसे
किल कृत्य	निश्चित कर्मको
शेषाः	अधूरा छोड़कर
अवतस्थुः	(पुतलीके समान) स्थिर रह जाती थीं ॥१४॥

स्वशान्तरूपेष्वितरैः स्वरूपै-
रभ्यर्द्यमानेष्वनुकम्पितात्मा ।
परावरेशो महदंशयुक्तो
ह्यजोऽपि जातो भगवान् यथाग्निः ॥१५॥

स्व शान्तरूपेषु इतरैः स्वरूपैः अभ्यर्द्यमानेषु अनुकम्पित आत्मा पर अवर ईशः महत् अंश युक्तः हि अजः अपि जातः भगवान् यथा अग्निः ॥१५॥

पर अवर	चर-अचरके
इशः	स्वामी (भगवान्ने)
स्व शान्तरूपेषु	अपने शान्त रूप (महात्माओंको)
इतरैः	दूसरे (राजसिक-तामसिक)
स्वरूपैः	अपने ही रूपोंसे
अभ्यर्द्यमानेषु	उत्पीड़ित होनेपर
हि अनुकम्पित	क्योंकि करुणापूर्ण
आत्मा	हृदय होकर
महत् अंश	महान अंश (बलरामजी)
युक्तः	सहित
अजः अपि	अजन्मा होनेपर भी
भगवान्	भगवानने
जातः	जन्म लिया
यथा अग्निः	जैसे अग्नि (सर्व व्यापक रहते भी आधार काष्ठादिमें पैदा हो जाता है) ॥१५॥

मां खेदयत्येतदजस्य जन्म-
विडम्बनं यद्वसुदेवगेहे ।
व्रजे च वासोऽरिभयादिव स्वयं
पुराद् व्यवात्सीद्यदनन्तवीर्यः ॥१६॥

मां खेदयति एतत् अजस्य जन्म विडम्बनं यत् वसुदेव गेहे व्रजे च वासः अरिभयात् इव स्वयं पुरात् व्यवात्सीत् यत् अनन्तवीर्यः ॥१६॥

अजस्य	अजन्मा होकर
यत्	**जो**
वसुदेव गेहे	वसुदेवजीके घरमें
जन्म	जन्म लेनेकी
विडम्बनं	लीला करना है
स्वयं अनन्तवीर्य	स्वयं अनन्त पराक्रम होनेपर भी
अरिभयात्	शत्रुसे (कंससे) भयभीतके
इव	समान
व्रजे वासः	व्रजमें निवास है
च यत्	तथा जो
पुरात्	(मथुरा) नगरको
व्यवात्सीत्	त्यागकर (काल-यवनके सामनेसे) उजाड़ना (द्वारिका बसाना है)
एतत्	ये (लीलायें)
मां खेदयति	मुझे खिन्न करती हैं ॥१६॥

दुनोति चेतः स्मरतो ममैतद्
यदाह पादावभिवन्द्य पित्रोः ।
तातास्ब कंसादुरुशङ्कितानां
प्रसीदतं नोऽकृतनिष्कृतीनाम् ॥१७॥

दुनोति चेतः स्मरतः मम एतत् यत् आह पादाः अभिवन्द्य पित्रोः तात अम्ब कंसात् उरु शङ्कितानां प्रसीदतं नः अकृत निष्कृतीनाम् ॥१७॥

एतत् स्मरतः	इसे स्मरण करनेपर
मम चेतः	मेरा चित्त
दुनोति	व्यथित हो जाता है
यत् पित्रोः	जो माता-पिताके
पादाः अभिवन्द्य	चरणोंकी वन्दना करके
आह	कहा था कि
तात अम्ब	पिताजी माताजी
कंसात्	कंससे
उरु शङ्कितानां	बहुत आशंकित
निष्कृतीनां	(आपके उपकारों) का बदला

अकृत नः	न दे सकनेवाले हम (दोनों भाइयों) पर	**प्रसीदतं**	(आप दोनों) प्रसन्न हों ॥१७॥

को वा अमुष्याङ्घ्रिसरोजरेणुं
विस्मर्तुमीशीत पुमान् विजिघ्रन् ।
यो विस्फुरद्भ्रूविटपेन भूमे-
र्भारं कृतान्तेन तिरश्चकार ॥१८॥

कः वा अमुष्य अङ्घ्रि सरोजरेणुं विस्मर्तुं ईशीत पुमान् विजिघ्रन् यः विस्फुरत् भ्रू विटपेन भूमेः भारं कृतान्तेन तिरश्चकार ॥१८॥

यः	जिन्होंने	**पादसरोजरेणुं**	चरण-कमलकी रजको
कृतान्तेन	काल स्वरूप	**विजिघ्रन**	सूँघने (सेवन करने) वाला
विस्फुरत्	फड़कती हुई	**कः वा**	कौन-सा
विटपेन	घनी टेढ़ी	**पुमान्**	मनुष्य
भ्रू	भौंहोंसे ही	**विस्मर्तुं**	(उसे) भूलनेमें
भूमेः भारं	पृथ्वीका भार	**ईशीत**	समर्थ हो सकता
तिरश्चकार	तिरस्कृत (दूर) कर दिया था		है ॥१८॥
अमुष्य	उनके		

दृष्टा भवद्भिर्ननु राजसूये
चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोऽपि सिद्धिः ।
यां योगिनः संस्पृहयन्ति सम्यग्
योगेन कस्तद्विरहं सहेत ॥१९॥

दृष्टा भवद्भिः ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतः अपि सिद्धिः यां योगिनः संस्पृहयन्ति सम्यक् योगेन कः तत् विरहं सहेत ॥१९॥

यां	जिस (गति) की	**योगेन**	योगके द्वारा
सम्यक्	भली प्रकार किये		(पानेकी)

योगिनः	योगी लोग
संस्पृहयन्ति	स्पृहा (इच्छा) करते हैं
चैद्यस्य	शिशुपालकी
कृष्णं	श्रीकृष्णसे
द्विषतः अपि	द्वेष करनेपर भी (वही)
सिद्धिः	गति हुई
ननु भवद्भिः	निश्चय आप लोगोंने
राजसूये	राजसूय यज्ञमें
दृष्टा	(इसे) देखा
तत्	उन्हीं (भगवान) के
विरहं	वियोगको
कः सहेत	कौन सह सकता है ॥१८॥

तथैव चान्ये नरलोकवीरा
य आहवे कृष्णमुखारविन्दम् ।
नेत्रैः पिबन्तो नयनाभिरामं
पार्थास्त्रपूताः पदमापुरस्य ॥२०॥

तथा एव च अन्ये नरलोक वीरा य आहवे कृष्ण मुख अरविन्दं नेत्रैः पिबन्तः नयन अभिरामं पार्थ अस्त्रपूताः पदं आपुः अस्य ॥२०॥

तथा एव	वैसे ही
अन्ये च	दूसरे भी
नरलोक वीरा	पृथ्वीके वीर
य आहवे	जो युद्धमें
नयन अभिरामं	नयनाभिराम
कृष्ण मुख	श्रीकृष्णके मुखरूपी
अरविन्दं	कमलको
नेत्रैः पिबन्तः	नेत्रोंसे पीते (देखते) हुए
पार्थ	अर्जुनके
अस्त्रपूताः	अस्त्रसे पवित्र हुए (मारे गये)
अस्य	(वे) इन (भगवान) के
पदं	धामको
आपुः	प्राप्त हुए ॥२०॥

स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः
स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः ।
बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः
किरीटकोट्येडितपादपीठः ॥२१॥

स्वयं तु असाम्य अतिशयः त्र्यधीशः स्वाराज्य लक्ष्म्या आप्त समस्त कामः बलिं हरद्भिः चिर लोकपालैः किरीट कोटि ईडित पादपीठः ॥२१॥

स्वयं तु	स्वयं तो (भगवान श्रीकृष्ण)
अतिशयः	सर्वश्रेष्ठ हैं,
असाम्य	उनकी समताका कोई नहीं
त्र्यधीशः	तीनों लोकोंके स्वामी हैं
स्वाराज्य लक्ष्म्या	अपने स्वतः सिद्ध ऐश्वर्यसे
आप्त समस्त कामः	सम्पूर्ण रूपसे पूर्ण काम हैं,
लोकपालैः	लोकपालों द्वारा
बलिं हरद्भिः	उपहार देते समय
चिर	बहुत देरतक
किरीट कोटि	मुकुटकी नोकसे (उनकी)
पादपीठः	चरण रखनेकी चौकी
ईडित	बन्दित होती थी ॥२१॥

तत्तस्य कैङ्कर्यमलं भृतान्नो
विग्लापयत्यङ्ग यदुग्रसेनम् ।
तिष्ठन्निषण्णं परमेष्ठिधिष्ण्ये
न्यबोधयद्देव निधारयेति ॥२ ॥

तत् तस्य कैङ्कर्यं अलं भृतान् नः विग्लापयत् अङ्ग यत् उग्रसेनं तिष्ठन् निषण्णं परमेष्ठिधिष्ण्ये न्यबोधयत् देव निधारय इति ॥२२॥

अंग	प्रिय (विदुरजी !)
तत् तस्य	ऐसे उन (श्रीकृष्ण) का
कैङ्कर्यं	सेवाभाव
नः भृतान्	हम (उनके) सेवकोंको
अलं	अत्यन्त
विग्लापयत्	व्यथित करता है
यत् परमेष्ठिधिष्ण्ये	जो राजसिंहासन-पर
निषण्णं	बैठे
उग्रसेनं	उग्रसेनके
तिष्ठन्	सामने खड़े होकर
इति	इस प्रकार
न्यबोधयत्	निवेदन करते थे
देव निधारय	देव (हमारी प्रार्थना) सुनिये ॥२२॥

अहो बकी यं स्तनकालकूटं
जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।

लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥२३॥

अहो बकी यं स्तन कालकूटं जिघांसया पाययत् यदपि असाध्वी लेभे गतिं धातृ उचितां ततः अन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥२३॥

अहो	आश्चर्यकी बात है कि	**यदपि**	यद्यपि (वह)
यं जिघांसया	जिनको मारनेके लिए	**असाध्वी**	दुष्टा थी (फिर भी)
स्तन कालकूटं	स्तनमें लगे कालकूट विषको	**ततः धातृ**	उनसे धायके लिए
पाययत्	पिलाया (उस)	**उचितां**	उचित(मिलने योग्य)
बकी	पूतनाने	**गतिं लेभे**	गतिको प्राप्त हुई
		कं वा	किस उनसे(अधिक)
		दयालुं	दयालुकी
		शरणं व्रजेम	शरणमें जावें ॥२३॥

मन्येऽसुरान् भागवतांस्त्र्यधीशे
संरम्भमार्गाभिनिविष्टचित्तान् ।
ये संयुगेऽचक्षत तार्क्ष्यपुत्र-
मंसेसुनाभायुधमापतन्तम् ॥२४॥

मन्ये असुरान् भागवतांन् त्र्यधीशे संरम्भ मार्ग अभिनिविष्ट चित्तान् ये संयुगे अचक्षत तार्क्ष्यपुत्रं अंसे सुनाभ आयुधं आपतन्तम् ॥२४॥

असुरान्	असुरोंको (मैं)	**तार्क्ष्यपुत्र**	गरुड़के
भागवतांन्	भगवद्भक्त	**अंसे**	कन्धेपर (बैठे)
मन्ये	मानता हूँ (क्योंकि वे)	**सुनाभ आयुध**	चक्रायुध (भगवानका)
त्र्यधीशे	त्रिभुवननाथमें	**आपतन्तं**	(अपनी ओर) झपटते हुए
संरम्भ मार्ग	द्वेषके मार्गसे	**अचक्षत**	दर्शन करते है ॥२४॥
अभिनिविष्ट	प्रविष्ट		
चित्तान्	चित्तवाले (हैं)		
ये संयुगे	जो युद्धमें		

वसुदेवस्य देवक्यां जातो भोजेन्द्रबन्धने ।
चिकीर्षुर्भगवानस्याः शमजेनाभियाचितः ॥२५॥

वसुदेवस्य देवक्यां जातः भोजेन्द्र बन्धने चिकुर्षुः भगवान् अस्याः शं अजेन अभियाचितः ॥२५॥

अस्या शं	इस (पृथ्वी) का कल्याण	**भोजेन्द्र**	कंसके
चिकुर्षुः	करनेकी इच्छासे	**बन्धने**	कारागारमें
अजेन	ब्रह्मा द्वारा	**वसुदेवस्य**	वसुदेवकी (पत्नी)
अभियाचितः	प्रार्थना किये जानेपर	**देवक्यां**	देवकीसे
भगवान्	भगवान	**जातः**	उत्पन्न हुए ॥२५॥

ततो नन्दव्रजमितः पित्रा कंसाद्विबिभ्यता ।
एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ॥२६॥

ततः नन्दव्रजं इतः पित्रा कंसात् विबिभ्यता एकादश समाः तत्र गूढार्चिः सबलः अवसत् ॥२६॥

ततः कंसात्	तदनन्तर कंससे	**तत्र गूढार्चिः**	वहाँ अपने तेजको छिपाये
विबिभ्यता	अत्यन्त डरते हुए	**एकादश समाः**	ग्यारह वर्ष
पित्रा	पिताके द्वारा	**सबलः**	बलरामजीके साथ
इतः	यहाँ (मथुरा) से	**अवसत्**	रहे ॥२६॥
नन्दव्रजं	नन्दजीके व्रज (गोकुल पहुँचाये गये)		

परीतो वत्सपैर्वत्सांश्चारयन् व्यहरद्विभुः ।
यमुनोपवने कूजद्द्विजसंकुलिताङ्घ्रिपे ॥२७॥

परीतः वत्सपैः वत्सान् चारयन् व्यहरत् विभुः यमुना उपवने कूजत् द्विज संकुलित अङ्घ्रिपे ॥२७॥

वत्सपैः	(वहाँ) बछड़ोंके रखवालोंसे	**वत्सान्**	बछड़ोंको
परीतः	घिरे हुए	**चारयन्**	चराते हुए
		विभुः	सर्वव्यापक भगवान

यमुना उपवने	यमुनातटके उपवनमें	**द्विज संकुलिते**	पक्षियोंसे भरे
कूजत्	कूजन करते (चहचहाते)	**अङ्घ्रिपे**	वृक्षों (के बीच)
		व्यहरत्	विहार करते रहे ॥२७॥

कौमारीं दर्शयंश्चेष्टां प्रेक्षणीयां व्रजौकसाम् ।
रुदन्निव हसन्मुग्धबालसिंहावलोकनः ॥२८॥

कौमारीं दर्शयन् चेष्टां प्रेक्षणीयां व्रजौकसां रुदन् इव हसन् मुग्ध बालसिंह अवलोकनः ॥२८॥

व्रजौकसां	व्रजवासियोंको	**हसन्**	(कभी) हँसते थे
प्रेक्षणीयां	देखने ही योग्य	**बालसिंह**	सिंह-शावकके समान*
कौमारीं चेष्टां	बाल लीला	**मुग्ध अवलोकनः**	(कभी) मुग्ध दृष्टिसे देखते थे ॥२८॥
दर्शयन्	दिखलाते हुए		
रुदन् इव	(कभी) रोते-से थे,		

स एव गोधनं लक्ष्म्या निकेतं सितगोवृषम् ।
चारयन्ननुगान् गोपान् रणद्वेणुररीरमत् ॥२९॥

स एव गोधनं लक्ष्म्या निकेतं सित गोवृषं चारयन् अनुगान् गोपान् रणत् वेणु अरीरमत् ॥२९॥

स एव	वही (भगवान कुछ बड़े होनेपर)	**चारयन्**	चराते हुए
सित गोवृषं	श्वेत सांड़ों (तथा)	**अनुगान्**	(अपने) अनुगत
लक्ष्म्या	लक्ष्मीकी	**गोपान्**	गोपबालकोंको
निकेतं	निवास	**रणत् वेणु**	वंशी बजाते हुए
गोधनं	गायोंको	**अरीरमत्**	रिझाने लगे ॥२९॥

प्रयुक्तान् भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः ।
लीलया व्यनुदत्तांस्तान् बालः क्रीडनकानिव ॥३०॥

---

* सिंह-शिशु न डरता, न आक्रमण करता, कोई नया प्राणी या व्यक्ति दीखनेपर उसे कुतूहलपूर्वक देखता रहता है ।

प्रयुक्तान् भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः लीलया व्यनुदत् तान्तान् बालः क्रीडनकान् इव ॥३०॥

भोजराजेन	कंसके द्वारा	**बालः**	बालक
प्रयुक्तान्	भेजे	**क्रीडनकान् इव**	खिलौनोंको जैसे (तोड़ते हैं)
मायिनः	मायावी	**लीलया**	खेलमें ही
कामरूपिणः	इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले	**व्यनुदत्**	मार डाला ॥३०॥
तान्तान्	उन उन (राक्षसोंको)		

विपन्नान् विषपानेन निगृह्य भुजगाधिपम् ।
उत्थाप्यापाययद्गावस्ततोयं प्रकृतिस्थितम् ॥३१॥

विपन्नान् विषपानेन निगृह्य भुजगाधिपं उत्थाप्य अपाययत् गावः ततः तोयं प्रकृतिः स्थितम् ॥३१॥

विषपानेन	विष (मिश्रित यमुनाजल) पीलेनेसे	**निगृह्य**	नियन्त्रित करके (निकालकर)
विपन्नान्	मरे हुए (ग्वालबालोंको)	**ततः तोयं**	उस (यमुना) जलको
उत्थाप्य	(जीवित करके) उठा दिया	**प्रकृतिः स्थितं**	स्वाभाविक (निर्विष) करके
भुजगाधिपं	नागराज (कालिय) को	**गावः**	गायोंको
		अपाययत्	पिलाया ॥३१॥

अयाजयद्गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः ।
वित्तस्य चोरुभारस्य चिकीर्षन् सद्व्ययं विभुः ॥३२॥

अयाजयत् गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः वित्तस्य च उरुभारस्य चिकीर्षन् सद्व्ययं विभुः ॥३२॥

विभुः	भगवानने	**उरुभारस्य**	बहुत सामग्रियोंका
वित्तस्य च	धनका और	**सद्व्ययं**	उत्तम उपयोग

चिकुर्षुः	करनेकी इच्छासे	**गोसवेन**	(गोवर्धन पूजन रूप)
द्विजोत्तमैः	श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा		गौयज्ञ
गोपराजं	गोपराज नन्दबाबासे	**अयाजयत्**	कराया ॥३२॥

वर्षतीन्द्रे व्रजः कोपाद्भग्नमानेऽतिविह्वलः ।
गोत्रलीलातपत्रेण त्रातो भद्रानुगृह्णता ॥३३॥

वर्षति इन्द्रे व्रजः कोपात् भग्नमाने अति विह्वलः गोत्र लीला आतपत्रेन त्रातः भद्र अनुगृह्णता ॥३३॥

भद्र	भद्र !	**व्रजः**	व्रज (के लोगों) की
भग्नमाने	मान भंग होनेसे	**लीला आतपत्रेन**	खेलके छत्ते
कोपात्	क्रोधसे		(के समान)
इन्द्रे वर्षति	इन्द्रके (घोर) वृष्टि	**गोत्र**	पर्वत (उठाकर)
	करनेपर	**अनुगृह्णता**	कृपा करके
अति विह्वलः	अत्यन्त व्याकुल	**त्रातः**	रक्षा की ॥३३॥

शरच्छशिकरैर्मृष्टं मानयन् रजनीमुखम् ।
गायन् कलपदं रेमे स्त्रीणां मण्डलमण्डनः ॥३४॥

शरत् शशिकरैः मृष्टं मानयन् रजनीमुखं गायन् कलपदं रेमे स्त्रीणां मण्डल मण्डनः ॥३४॥

शरत्	शरदऋतुके	**मण्डनः**	भूषित करते
शशिकरैः	चन्द्रकिरणोंमें	**कलपदं**	सुन्दर स्वरमें
मृष्टं	उज्ज्वल	**गायन्**	गाते हुए
रजनीमुखं	सायंकालका	**रेमे**	विहार करते
मानयन्	सम्मान करते हुए		रहे ॥३४॥
स्त्रीणां मण्डल	(स्त्री) गोपियोंके मण्डलको		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

उद्धव उवाच-

ततः स आगत्य पुरं स्वपित्रो-
श्चिकीर्षया शं बलदेवसंयुतः ।
निपात्य तुङ्गाद्रिपुयूथनाथं
हतं व्यकर्षद् व्यसुमोजसोर्व्याम् ॥१॥

ततः स आगत्य पुरं स्वपित्रोः चिकीर्षया शं बलदेव संयुतः निपात्य तुङ्गात् रिपु यूथनाथं हतं व्यकर्षत् व्यसुं ओजसः उर्व्यां ॥१॥

ततः स	फिर वे (श्रीकृष्ण)	**तुङ्गात्**	ऊँचे (मंच) से
स्वपित्रोः	अपने माता-पिताकी	**निपात्य**	गिराकर
शं चिकीर्षया	शान्ति-सुख चाहते हुए	**हतं**	मरनेपर
		ओजसः उर्व्यां	आवेशमें पृथ्वीपर
बलदेव संयुतः	बलरामजीके साथ	**व्यसुं**	(उसके) निष्प्राण देहको
पुरं आगत्य	नगर (मथुरा) में आकर	**व्यकर्षत्**	घसीटने लगे ॥१॥
रिपु यूथनाथं	शत्रुओंके समुदायके स्वामी (कंस) को		

सान्दीपनेः सकृत्प्रोक्तं ब्रह्माधीत्य सविस्तरम् ।
तस्मै प्रादाद्वरं पुत्रं मृतं पञ्चजनोदरात् ॥२॥

सान्दीपनेः सकृत् प्रोक्तं ब्रह्म अधीत्य सविस्तरं तस्मै प्रादात् वरं पुत्रं मृतं पञ्चजन उदरात् ॥२॥

सान्दीपनेः	(महर्षि) सान्दीपनि द्वारा	**सकृत् प्रोक्तं**	एक ही बार कहे गये

ब्रह्म सविस्तरं	वेदोंका विस्तारके साथ	**मृतं पुत्रं**	मरे पुत्रको
		तस्मै वरं	उन (गुरुजी) को वरदानके रूपमें
अधीत्य	अध्ययन करके		
पञ्चजन	(असुर) पञ्चजनके	**प्रादात्**	प्रदान किया ॥२॥
उदरात्	(निगलकर) पेटमें पहुँचकर		

समाहुता भीष्मककन्यया ये
श्रियः सवर्णेन बुभूषयैषाम् ।
गान्धर्ववृत्त्या मिषतां स्वभागं
जह्रे पदं मूर्ध्नि दधत्सुपर्णः ॥३॥

समाहुता भीष्मक कन्यया ये श्रियः सवर्णेन बुभूषया एषां गान्धर्व वृत्त्या मिषतां स्वभागं जह्रे पदं मूर्ध्नि दधत् सुपर्णः ॥३॥

ये	जो (राजा लोग)	**स्वभागं**	अपने भाग (रुक्मिणीको)
भीष्मक कन्यया	भीष्मककी पुत्री (रुक्मिणी)	**मिषतां**	पानेके लिए
श्रियः	की शोभासे(अथवा)	**एषां मूर्ध्नि**	उन (आये हुए नृपों) के सिरपर
सवर्णेन	सगे भाई (रुक्मी) के		
समाहुता	बुलानेपर	**पदं दधत्**	पैर रखकर
बुभूषया	उसे प्राप्त करने (आये थे)	**सुपर्णः**	गरुड़ (के अमृत हरणके समान)
गान्धर्व वृत्त्या	गान्धर्व-विधिसे	**जह्रे**	हरण कर लिया ।३।

ककुद्मतोऽविद्धनसो दमित्वा
स्वयंवरे नाग्नजितीमुवाह ।
तद्भग्नमानानपि गृध्यतोऽज्ञा-
ञ्जघ्नेऽक्षतः शस्त्रभृतः स्वशस्त्रैः ॥४॥

ककुद्मतः अविद्धनसः दमित्वा स्वयं वरे नाग्नजितीं उवाह तद् भग्नमानान् अपि गृध्यतः अज्ञान् जघ्ने अक्षतः शस्त्रभृतः स्वशस्त्रैः ॥४॥

अविद्धनसः	बिना नाथे हुए
ककुद्मतः	(सात) सांड़ोंका
दमित्वा	दमन करके
स्वयं वरे	स्वयंवरमें
नाग्नजितीं	नग्नजित नन्दिनी (सत्या) से
उवाह	विवाह किया
तद् भग्नमानान्	उन (सांड़ोंसे) मान भंग होनेपर
अपि	भी
गृध्यतः	(सत्याजीको) चाहते हुए
शस्त्रभृतः	शस्त्र लेकर (लड़ते)
अज्ञान्	मूर्खों (राजाओं) को
अक्षतः	(स्वयं) बिना घायल हुए
स्वशस्त्रैः	अपने शस्त्रोंसे
जघ्ने	मार दिया ॥४॥

प्रियं प्रभुर्ग्राम्य इव प्रियाया
विधित्सुराच्छिद्द्रु द्युतरुं यदर्थे ।
वज्र्याद्रवत्तं सगणो रुषान्धः
क्रीडामृगो नूनमयं वधूनाम् ॥५॥

प्रियं प्रभुः ग्राम्य इव प्रियाया विधित्सुः आच्छिनत् द्युतरुं यत् अर्थे वज्रया द्रवन्तं सगणः रुषा अन्धः क्रीडामृगः नूनं अयं वधूनाम् ॥५॥

ग्राम्य इव	विषयी पुरुषोंकी भाँति
प्रियाया	अपनी प्रिया (सत्यभामा) का
प्रियं विधित्सुः	प्रिय करनेके लिए
द्युतरुं	कल्पवृक्ष
आच्छिनत्	छीन लाये
यत् अर्थे	जिसके लिए
रुषा अन्धः	क्रोधसे अन्धे हुए
सगणः	अपने गणोंके साथ
वज्री आद्रवत	इन्द्र दौड़ पड़े
नूनं अयं	निश्चय ये (इन्द्र)
वधूनां	अपनी पत्नी (शचीके)
क्रीड़ामृगः	खिलौने (बन गये) थे ॥५॥

सुतं मृधे खं वपुषा ग्रसन्तं
दृष्ट्वा सुनाभोन्मथितं धरित्र्या ।
आमन्त्रितस्तत्तनयाय शेषं
दत्त्वा तदन्तःपुरमाविवेश ॥६॥

सुतं मृधे खं वपुषा ग्रसन्तं दृष्ट्वा सुनाभ उन्मथितं धरित्र्या आमन्त्रितः तत् तनयाय शेषं दत्त्वा तत् अन्तःपुरं आविवेश ॥६॥

खं	आकाशको	**धरित्र्या**	पृथ्वीके द्वारा
वपुषा	(अपने विशाल) शरीरसे	**आमन्त्रितः**	बुलाये जानेपर
		तत् तनयाय	उसके पुत्रको
ग्रसन्तं	ढक देनेवाले	**शेषं दत्त्वा**	शेष (राज्य) देकर
सुतं	पुत्र (नरकासुर) को	**तत् अन्तःपुरं**	उसके अन्तःपुरमें
सुनाभ	चक्र द्वारा	**आविवेश**	प्रवेश किया ॥६॥
उन्मथितं	मरा देखकर		

तत्राहृतास्ता नरदेवकन्याः
कुजेन दृष्ट्वा हरिमार्तबन्धुम् ।
उत्थाय सद्यो जगृहुः प्रहर्ष-
व्रीडानुरागप्रहितावलोकैः ॥७॥

तत्र आहृताः ता नरदेव कन्याः कुजेन दृष्ट्वा हरिं आर्तबन्धुं उत्थाय सद्यः जगृहुः प्रहर्ष व्रीडा अनुराग प्रहित अवलोकैः ॥७॥

तत्र कुजेन	वहाँ भौमासुर द्वारा	**प्रहर्ष**	अत्यन्त हर्ष
आहृताः	हरण की हुई	**व्रीडा अनुराग**	लज्जा, प्रेम
ता नरदेवकन्याः	उन राजकन्याओंने	**प्रहित**	भरी
आर्तबन्धुं	दीनबन्धु	**अवलोक**	चितवन द्वारा
हरिं दृष्ट्वा	श्रीकृष्णको देखकर	**जगृहुः**	(उन्हें पति रूपमें)
सद्यः	तत्काल		ग्रहण कर
उत्थाय	उठकर खड़ी होकर		लिया ॥७॥

आसां मुहूर्तं एकस्मिन्नानागारेषु योषिताम् ।
सविधं जगृहे पाणीननुरूपः स्वमायया ॥८॥

आसां मुहूर्त एकस्मिन् नाना आगारेषु योषितां सविधं जगृहे पाणीन् अनुरूपः स्वमायया ॥८॥

आसां योषितां	इन स्त्रियोंके	**एकस्मिन्**	एक ही
नाना आगारेषु	अनेकों घरोंमें	**मुहूर्तं**	मुहूर्तमें

सविधं	विधिपूर्वक	**पाणीन् जगृहे**	(उनका) पाणिग्रहण
स्वमायया	अपनी मायासे		किया ॥८॥
अनुरूपः	(उनके) अनुरूप होकर		

तास्वपत्यान्यजनयदात्मतुल्यानि सर्वतः ।
एकैकस्यां दश दश प्रकृतेर्विबुभूषया ॥९॥

तासु अपत्यान् अजनयत् आत्मतुल्यानि सर्वतः एकैकस्यां दश दश प्रकृतेः विबुभूषया ॥९॥

प्रकृतेः	अपनी लीलाका (सन्तानका)	**दश दश**	दस दस
विबुभूषया	विस्तार करनेके लिए	**सर्वतः**	सब प्रकारसे
तासु एकैकस्यां	उन (रानियों) में एक एक से	**आत्मतुल्यानि**	अपने समान
		अपत्यान्	पुत्र
		अजनयत्	उत्पन्न किए ॥९॥

कालमागधशाल्वादीननीकैः रुन्धतः पुरम् ।
अजीघनत्स्वयं दिव्यं स्वपुंसां तेज आदिशत् ॥१०॥

काल मागध शाल्व आदीन् अनीकैः रुन्धतः पुरं अजीघनत् स्वयं दिव्यं स्वपुंसां तेज आदिशत् ॥१०॥

काल	कालयवन,	**रुन्धतः**	घेरे जानेपर
मागध	जरासन्ध,	**स्वपुंसां**	अपने जनोंमें
शाल्व	शाल्व	**दिव्यं तेज**	(अपना) दिव्य तेज
आदीन्	आदि द्वारा	**आदिशत्**	देकर
अनीकैः	सेनाओंसे	**स्वयं**	स्वयं (उन्हें)
पुरं	मथुरापुरीके	**अजीघनत्**	मरवाया ॥१०॥

शम्बरं द्विविदं बाणं मुरं बल्वलमेव च ।
अन्यांश्च दन्तवक्त्रादीनवधीत्कांश्च घातयत् ॥११॥

शम्बरं द्विविदं बाणं मुरं बल्वलं एव च अन्यान् च दन्त वक्त्रादीन् अवधीत् कान् च घातयत् ॥११॥

शम्बरं	शम्बर
द्विविदं	द्विविद
बाणं	बाणासुर
मुरं च	मुर एवं
बल्वलं एव	बल्वलको भी
अन्यांन् च	दूसरे भी
दन्त वक्रादीन्	दन्तवक्र आदिको
अवधीत्	मार दिया
कांन् च	कुछको
घातयत्	मरवा दिया ॥११॥

अथ ते भ्रातृपुत्राणां पक्षयोः पतितान्नृपान् ।
चचाल भूः कुरुक्षेत्रं येषामापततां बलैः ॥१२॥

अथ ते भ्रतृ पुत्राणां पक्षयोः पतितान् नृपान् चचाल भूः कुरुक्षेत्रं येषां आपततां बलैः ॥१२॥

अथ ते	फिर आपके
भ्रातृ पुत्राणां	भाइयोंके पुत्रोंके
पक्षयोः	पक्षोंमें
पतितान्	आये हुए
नृपान्	राजाओंको (भी मरवा दिया)
येषां	जिनकी
बलैः	सेनाओंके
कुरुक्षेत्रं	कुरुक्षेत्रमें
आपततां	आनेसे
भूः चचाल	पृथ्वी हिलने लगी थी ॥१२॥

सकर्णदुःशासनसौबलानां
कुमन्त्रपाकेन हतश्रियायुषम् ।
सुयोधनं सानुचरं शयानं
भग्नोरुमुर्व्यां न ननन्द पश्यन् ॥१३॥

सकर्ण दुःशासन सौबलानां कुमन्त्र पाकेन हत श्रिया आयुषां सुयोधनं स अनुचरं शयानं भग्न उरुं उर्व्यां न ननन्द पश्यन् ॥१३॥

सकर्ण	कर्णके साथ
दुःशासन	दुःशासन
सौबलानां	शकुनिकी
कुमन्त्र	बुरी सलाहके
पाकेन	परिणाम स्वरूप
श्रिया	शोभा (एवं)
आयुषां	आयुके
हत	नष्ट होनेसे
अनुचरं	अनुचरोंके साथ
सुयोधनं	दुर्योधनकी
भग्न उरुं	जाँघें टूट जानेपर
उर्व्यां	पृथ्वीपर

शयानं	सोता (मरा)	न ननन्द	प्रसन्न नहीं
पश्यन्	देखकर (भगवान)		हुए ॥१३॥

कियान् भुवोऽयं क्षपितोरुभारो
यद्द्रोणभीष्मार्जुनभीममूलैः ।
अष्टादशाक्षौहिणीको मदंशै-
रास्ते बलं दुर्विषहं यदूनाम् ॥१४॥

कियान् भुवः अयं क्षपितः उरुभारः यत् द्रोण भीष्म अर्जुन भीम मूलैः अष्टादश अक्षौहिणिकः मदंशैः आस्ते बलं दुर्विषहं यदूनाम् ॥१४॥

यत्	(भगवान सोचने लगे) यदि	अयं भुवः	यह पृथ्वीका
द्रोण	द्रोणाचार्य,	उरु भारः	भारी भार
भीष्म	भीष्मपितामह,	क्षपितः	दूर हो गया
अर्जुन	अर्जुन,	कियान्	कितना (दूर हुआ)
भीम	भीमसेन	मदंशैः	मेरे अंशवाले
मूलैः	द्वारा	यदूनां	यदुवंशियोंकी
अष्टादश	अठारह	दुर्विषहं	दुःसह
अक्षौहिणिकः	अक्षौहिणीका	बलं आस्ते	सेना तो (अभी) है ही ॥१४॥

मिथो यदैषां भविता विवादो
मध्वामदातास्रविलोचनानाम् ।
नैषां वधोपाय इयानतोऽन्यो
मय्युद्यतेऽन्तर्दधते स्वयं स्म ॥१५॥

मिथः यत् एषां भविता विवादः मध्वा मदात् ताम्र विलोचनानां न एषां वध उपायः इयान् अतः अन्यः मयि उद्यते अन्तर्दधते स्वयं स्म ॥१५॥

यत् एषां	जो इनमें	मिथः	परस्पर
मध्वा मदात्	शराबके नशेसे	स्वयं विवादः	स्वयं झगड़ा
ताम्र विलोचनानां	लाल आँखों वालोंमें	भवितास्म	होवे तो
		मयि अन्तर्दधते	मेरे अन्तर्धान होनेके

उद्यते	प्रस्तुत होनेपर	उपायः	उपाय
इयान् अतः	इसको छोड़कर	एषां वध न	इनके वधका नहीं
अन्यः	दूसरा कोई		है ॥१५॥

एवं सञ्चिन्त्य भगवान् स्वाराज्ये स्थाप्य धर्मजम् ।
नन्दयामास सुहृदः साधूनां वर्त्म दर्शयन् ॥१६॥

एवं संचिन्त्य भगवान् स्वाराज्ये स्थाप्य धर्मजं नन्दयामास सुहृदः साधूनां वर्त्म दर्शयन् ॥१६॥

एवं	इस प्रकार	साधूनां वर्त्म	सत्पुरुषोंका मार्ग
संचिन्त्य	सोचकर	दर्शयन्	दिखलाते हुए
भगवान्	भगवानने	सुहृदः	सम्बन्धियोंको
धर्मजं	युधिष्ठिरको	नन्दयामास	आनन्दित
स्वाराज्ये	अपने राज्यपर		किया ॥१६॥
स्थाप्य	बैठाकर		

उत्तरायां धृतः पूरोर्वंशः साध्वभिमन्युना ।
स वै द्रौण्यस्त्रसंछिन्नः पुनर्भगवता धृतः ॥१७॥

उत्तरायां धृतः पूरोः वंशः साधु अभिमन्युना स वै द्रौणि अस्त्र संछिन्नः पुनः भगवता धृता ॥१७॥

उत्तरायां	उत्तरामें	द्रौणि अस्त्र	अश्वत्थामाके
अभिमन्युना	अभिमन्युके द्वारा		अस्त्रसे
साधु	श्रेष्ठ	संछिन्नः	कट गया था
पूरोः वंशः	पुरुका वंश	भगवता	भगवानके द्वारा
धृतः	स्थापित हुआ था	पुनः धृता	फिर रक्षित
स वै	वह तो		हुआ ॥१७॥

अयाजयद्धर्मसुतमश्वमेधैस्त्रिभिर्विभुः ।
सोऽपि क्ष्मामनुजैः रक्षन् रेमे कृष्णमनुव्रतः ॥१८॥

अथ अयाजयत् धर्मसुतं अश्वमेधैः त्रिभिः विभुः सः अपि क्ष्मां अनुजैः रक्षन् रेमे कृष्णं अनुव्रतः ॥१८॥

अथ विभुः	फिर भगवानने	**अनुव्रतः**	अनुगामी रहकर
धर्मसुतं	युधिष्ठिरसे	**अनुजैः**	भाइयोंके साथ
त्रिभिः	तीन	**क्ष्मां रक्षन्**	पृथ्वीकी रक्षा करते
अश्वमेधैः	अश्वमेध यज्ञ		हुए
अयाजयत्	करवाये	**रेमे**	आनन्दसे रहने
सः अपि	वे (युधिष्ठिर) भी		लगे ॥१८॥
कृष्णं	श्रीकृष्णके		

भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः ।

कामान् सिषेवे द्वार्वत्यामसक्तः सांख्यमास्थितः ॥१९॥

भगवान् अपि विश्वात्मा लोक वेद पथ अनुगः कामान् सिषेवे द्वार्वत्यां असक्तः साख्यं आस्थितः ॥१९॥

विश्वात्मा	विश्वात्मा	**साख्यं**	विवेकका
भगवान् अपि	भगवान्ने भी	**आस्थितः**	आश्रयण करके
लोक	लोकाचार	**असक्तः**	अनासक्त रहते हुए
वेद	वैदिक	**द्वार्वत्यां**	द्वारिकामें
पथ	मर्यादाके	**कामान्**	भोगोंका
अनुगः	पीछे चलते (पालन करते) हुए	**सिषेवे**	उपभोग किया ॥१९॥

स्निग्धस्मितावलोकेन वाचा पीयूषकल्पया ।

चरित्रेणानवद्येन श्रीनिकेतेन चात्मना ॥२०॥

स्निग्ध स्मित अवलोकेन वाचा पीयूष कल्पया चरित्रेण अनवद्येन श्रीनिकेतन च आत्मना ॥२०॥

स्निग्ध	मधुर	**अनवद्येन**	निर्दोष
स्मित	मुसुकानपूर्वक	**चरित्रेण च**	चरित्रसे तथा
अवलोकेन	देखनेसे	**श्रीनिकेतन**	शोभाधाम
पीयूष कल्पया	अमृत समान	**आत्मना**	अपने स्वरूपसे ॥२०॥
वाचा	वाणीसे		

इमं लोकममुं चैव रमयन् सुतरां यदून् ।
रेमे क्षणदया दत्तक्षणस्त्रीक्षणसौहृदः ॥२१॥

इमं लोकं अमुं च एव रमयन् सुतरां यदून् रेमे क्षणदया दत्तक्षण स्त्री क्षण सौहृदः ॥२१॥

इमं लोकं	इस लोकको	**स्त्री**	रानियोंको
अमुं च	परलोक (स्वर्ग) को भी	**दत्तक्षण**	अवसर देकर
		क्षण सौहृदः	सामयिक प्रेम करते हुए
सुतरां	विशेषतः		
यदून्	यदुवंशियोंको (तथा)	**रेमे**	आनन्दित किया ॥२१॥
क्षणदया	रात्रिमें		

तस्यैवं रममाणस्य संवत्सरगणान् बहून् ।
गृहमेधेषु योगेषु विरागः समजायत ॥२२॥

तस्य एवं रममाणस्य संवत्सर गणान् बहून् गृहमेधेषु योगेषु विरागः समजायत ॥२२॥

तस्य एवं	उनके इस प्रकार	**योगेषु**	संयोगोंसे
बहून्	बहुत	**विरागः**	वैराग्य
संवत्सर गणान्	वर्षों तक	**समजायत**	उत्पन्न हो गया ॥२२॥
रममाणस्य	विहार करते हुए		
गृहमेधेषु	गृहस्थ सम्बन्धी		

दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधीनः स्वयं पुमान् ।
को विस्रम्भेत योगेन योगेश्वरमनुव्रतः ॥२३॥

दैव आधीनेषु कामेषु दैव आधीनः स्वयं पुमान् कः विस्रम्भेत योगेन योगेश्वरं अनुव्रतः ॥२३॥

दैव आधीनेषु	दैवके वशवर्ती	**पुमान्**	पुरुष
कामेषु	भोग हैं;	**दैव आधीनः**	दैवके वशवर्ती है ; (अतः)
स्वयं	स्वयं		

योगेश्वरं	योगेश्वर (श्रीकृष्ण) का	**कः योगेन**	कौन (भोगोंके) संयोगपर
अनुव्रतः	अनुवर्ती	**विस्रंभेत**	विश्वास करेगा ॥२३॥

पुर्यां कदाचित्क्रीडद्भिर्यदुभोजकुमारकैः ।
कोपिता मुनयः शेपुर्भगवन्मतकोविदाः ॥२४॥

पुर्यां कदाचित् क्रीडद्भिः यदुभोज कुमारकैः कोपिता मुनयः शेपुः भगवन् मत कोविदाः ॥२४॥

कदाचित्	किसी समय	**कोपिता**	क्रुद्ध कर दिये गये
पुर्यां	नगरमें	**भगवन् मत**	भगवानके मतको
क्रीडद्भिः	खेलते हुए	**कोविदा**	जाननेवाले
यदुभोज कुमारकैः	यदु तथा भोज वंशी बालकों द्वारा	**मुनयः**	मुनियोंने
		शेपुः	शाप दे दिया ॥२४॥

ततः कतिपयैर्मासैर्वृष्णिभोजान्धकादयः ।
ययुः प्रभासं संहृष्टा रथैर्देवविमोहिताः ॥२५॥

ततः कतिपयैः मासैः वृष्णि भोज अन्धक आदयः ययुः प्रभासं संहृष्टा रथैः देव विमोहिता ॥२५॥

ततः	उसके पश्चात्	**संहृष्टा**	प्रसन्न होकर
कतिपयैः मासैः	कुछ महीने बाद	**रथैः**	रथोंपर बैठकर
देव विमोहिता	भावीसे विमोहित	**प्रभासं**	प्रभास
वृष्णिभोज अन्धक आदयः	वृष्णि, भोज-अन्ध-कादि वंशीय	**ययुः**	गये ॥२५॥

तत्र स्नात्वा पितॄन्देवानृषींश्चैव तदम्भसा ।
तर्पयित्वाथ विप्रेभ्यो गावो बहुगुणा ददुः ॥२६॥

तत्र स्नात्वा पितॄन् देवान् ऋषीः च एव तत् अम्भसा तर्पयित्वा अथ विप्रेभ्यः गावः बहुगुणाः ददुः ॥२६॥

तत्र स्नात्वा	वहां स्नान करके
तत् अम्भसा	वहाँके जलसे
पितॄन्	पितरोंका,
देवान्	देवताओंका,
ऋषीन् च	ऋषियोंका भी
तर्पयित्वा एव	तर्पण करके ही
अथ	पश्चात्
विप्रेभ्यः	ब्राह्मणोंको
बहुगुणाः	बहुत गुणवाली
गावः	गायें
ददुः	दान कीं ॥२६॥

हिरण्यं रजतं शय्यां वासांस्यजिनकम्बलान् ।
यानं रथानिभान् कन्या धरां वृत्तिकरीमपि ॥२७॥

हिरण्यं रजतं शय्यां वासांसि अजिन कम्बलान् यानं रथान् इभान् कन्या धरां वृत्तिकरीं अपि ॥२७॥

हिरण्यं	स्वर्ण
रजतं	चाँदी
शय्यां	शय्या
वासांसि	वस्त्र
अजिन	(मृग) चर्म
कम्बलान्	कम्बल
यानं रथान्	सवारी (के लिए) रथ
इभान्	हाथी
कन्या	कन्या
वृत्तिकरीं	जीविका निर्वाह योग्य
धरां अपि	भूमि भी ॥२७॥

अन्नं चोरुरसं तेभ्यो दत्त्वा भगवदर्पणम् ।
गोविप्रार्थासवः शूराः प्रणेमुर्भुवि मूर्धभिः ॥२८॥

अन्नं च उरुरसं तेभ्यः दत्त्वा भगवत् अर्पणं गो विप्र अर्थ असवः शूराः प्रणेमुः भुवि मूर्धभिः ॥२८॥

उरुरसं	बहुत रसवाले
अन्नं च	भोजन भी
भगवत् अर्पणं	भगवानको अर्पण करके
तेभ्यः	उनको
दत्त्वा	देकर
गो विप्र	गौ-ब्राह्मणों
अर्थ असवः	के लिए ही प्राण धारण करनेवाले
शूराः	उन वीरोंने
भुवि	पृथ्वीमें
मूर्धभिः	मस्तक रखकर
प्रणेमुः	(उन्हें) प्रणाम किया ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

उद्धव उवाच–

अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम् ।
तया विभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्म पस्पृशुः ॥१॥

अथ ते तत् अनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीं तया विभ्रंशित ज्ञाना दुरुक्तैः मर्म पस्पृशुः ॥१॥

अथ तत्	तदनन्तर उन (ब्राह्मणों) की
अनुज्ञाता	अनुमति पाकर
ते भुक्त्वा	उन लोगोंने भोजन करके
वारुणीं च	मदिरा भी
पीत्वा तया	पीकर उस (शराब) से
विभ्रंशित ज्ञाना	समझ नष्ट हो जानेसे
दुरुक्तैः	दुर्वचनोंसे
मर्म	हृदयको
पस्पृशुः	चोट पहुँचाने लगे ॥१॥

तेषां मैरेयदोषेण विषमीकृतचेतसाम् ।
निम्लोचति रवावासीद्वेणूनामिव मर्दनम् ॥२॥

तेषां मैरेय दोषेण विषमीकृत चेतसां निम्लोचति रवा आसीत् वेणूनां इव मर्दनम् ॥२॥

मैरेय दोषेण	शराबके दोषसे
विषमीकृत	बिगड़ी हुई
चेतसां	बुद्धिवाले
तेषां	उन लोगोंमें
निम्लोचति रवा	सूर्यास्त होते समय
वेणूनां इव	बाँसोंके (परस्पर रगड़नेके) समान
मर्दनं	संघर्ष
आसीत्	होने लगा ॥२॥

भगवान् स्वात्ममायाया गतिं तामवलोक्य सः ।
सरस्वतीमुपस्पृश्य वृक्षमूलमुपाविशत् ॥३॥

भगवान् स्वात्म मायाया गतिं तां अवलोक्य सः सरस्वतीं उपस्पृश्य वृक्षमूलं उपाविशत् ॥३॥

भगवान्	भगवान्ने	**सरस्वतीं**	सरस्वतीके (जलसे)
स्वात्म मायाया	अपनी मायाकी	**उपस्पृश्य**	आचमन करके
तां गतिं	वह अवस्था	**वृक्षमूलं**	पेड़की जड़के पास
अवलोक्य सः	देखकर वे	**उपाविशत्**	बैठ गये ॥३॥

अहं चोक्तो भगवता प्रपन्नार्तिहरेण ह ।
बदरीं त्वं प्रयाहीति स्वकुलं संजिहीर्षुणा ॥४॥

अहं च उक्तः भगवता प्रपन्न आर्ति हरेण ह बदरीं त्वं प्रयाहि इति स्व कुलं संजिहीर्षुणा ॥४॥

प्रपन्न	शरणागतके	**भगवता ह**	भगवानने बल देकर
आर्ति	दुःखको	**अहं च**	मुझसे तो
हरेण	हरण करनेवाले	**इति**	ऐसा
स्व कुलं	अपने कुलका	**उक्तः**	कह दिया था
संजिहीर्षुणा	सहार करनेकी इच्छा होनेपर	**त्वं बदरीं**	तुम बदरीनाथ
		प्रयाहि	चले जाओ ॥४॥

अथापि तदभिप्रेतं जानन्नहमरिन्दम ।
पृष्ठतोऽन्वगमं भर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः ॥५॥

अथ अपि तत् अभिप्रेतं जानन् अहं अरिन्दम पृष्ठतः अन्वगमं भर्तुः पाद विश्लेषण अक्षमः ॥५॥

अथ अपि	इतनेपर भी	**पाद विश्लेषण**	चरणोंसे पृथक होनेमें
अरिन्दम	शत्रु दमनकर्ता (विदुरजी)	**अक्षमः**	असमर्थ होकर
तत् अभिप्रेतं	उनके अभिप्रायको	**पृष्ठतः**	(उनके) पीछे
जानन् अहं	जानते हुए मैं	**अन्वगमं:**	गया ॥५॥
भर्तुः	अपने स्वामीके		

अद्राक्षमेकमासीनं विचिन्वन् दयितं पतिम् ।
श्रीनिकेतं सरस्वत्यां कृतकेतमकेतनम् ॥६॥

अद्राक्षं एकं आसीनं विचिन्वन् दयितं पतिं श्रीनिकेतं सरस्वत्यां कृतं केतं अकेतनम् ॥६॥

दयितं पतिं	(अपने) प्रिय स्वामीको
विचिन्वन्	ढूँढ़ते हुए
श्रीनिकेतं	(उन) शोभाधाम
कृत केतं	सबके आश्रय
अकेतनं	जिनका कोई आश्रय नहीं
सरस्वत्यां	सरस्वती किनारे
एकं आसीनं	अकेले बैठे
अद्राक्षं	देखा ॥६॥

श्यामावदातं विरजं प्रशान्तारुणलोचनम् ।
दोर्भिश्चतुर्भिर्विदितं पीतकौशाम्बरेण च ॥७॥

श्याम अवदातं विरजं प्रशान्त अरुण लोचनं दोर्भिः चतुर्भिः विदितं पीत कौशाम्बरेण च ॥७॥

विरजं	निर्मल
अवदातं	सुन्दर
श्याम	श्याम वर्ण
प्रशान्त	अत्यन्त शान्त
अरुण	रतनारे
लोचनं	नेत्र हैं
चतुर्भिः दोर्भिः च	चार भुजाओं तथा
पीत कौशाम्बरेण	पीले रेशमी वस्त्रसे
विदितं	(दूरसे) पहिचान लिए गये ॥७॥

वाम ऊरावधिश्रित्य दक्षिणाङ्घ्रिसरोरुहम् ।
अपाश्रितार्भकाश्वत्थमकृशं त्यक्तपिप्पलम् ॥८॥

वाम ऊराः अधिश्रित्य दक्षिण अङ्घ्रि सरोरुहं अपाश्रित अर्भक अश्वत्थं अकृशं त्यक्त पिप्पलम् ॥८॥

वाम ऊराः	बायीं जाँघपर
दक्षिण	दाहिने
अङ्घ्रि सरोरुहं	चरण-कमलको (रखे)
अर्भक अश्वत्थं	छोटेसे पीपलके
अपाश्रित	नीचे बैठे थे,
पिप्पलं	पोषण (आहारादि)
त्यक्त	छोड़ देनेपर भी
अकृशं	दुर्बल या खिन्न नहीं थे ॥८॥

तस्मिन्महाभागवतो द्वैपायनसुहृत्सखः ।
लोकाननुचरन् सिद्ध आससाद यदृच्छया ॥९॥

तस्मिन् महाभागवतः द्वैपायन सुहृत् सखा लोकान् अनुचरन् सिद्ध आससाद यदृच्छया ॥९॥

तस्मिन्	उसी समय
यदृच्छया	संयोगवश
महाभागवतः	महाभागवत
द्वैपायन सुहृत् सखा	व्यासजीके प्रिय मित्र
सिद्ध	सिद्ध (मैत्रेयजी)
लोकान् अनुचरन्	लोकमें घूमते हुए
आससाद	आ पहुँचे ॥९॥

तस्यानुरक्तस्य मुनेर्मुकुन्दः
प्रमोदभावानतकन्धरस्य ।
आशृण्वतो मामनुरागहास-
समीक्षया विश्रमयन्नुवाच ॥१०॥

तस्य अनुरक्तस्य मुनेः मुकुन्द प्रमोद भाव आनत कन्धरस्य आशृण्वतः मां अनुराग हास समीक्षया विश्रमयन् उवाच ॥१०॥

तस्य	उन
अनुरक्तस्य	(भगवानके) अनुरागी
प्रमोद भाव	आनन्द और भक्तिसे
आनत कन्धरस्य	कन्धे (सिर) झुकाये
मुनेः	मुनि (मैत्रेयजी) के
आशृण्वतः	सुनते हुए
मां	मुझे
अनुराग हास	प्रेम भरी मुसुकानसे
समीक्षया	देखते हुए
विश्रमयन्	आनन्दित करते
मुकुन्द	भगवान श्रीकृष्ण
उवाच	बोले ॥१०॥

श्रीभगवानुवाच-

वेदाहमन्तर्मनसीप्सितं ते
ददामि यत्तद् दुरवापमन्यैः ।
सत्रे पुरा विश्वसृजां वसूनां
मत्सिद्धिकामेन वसो त्वयेष्टः ॥११॥

वेद अहं अन्तः मनसि ईप्सितं ते ददामि यत् तत् दुरवापं अन्यैः सत्रे पुरा विश्वसृजां वसूनां मत् सिद्धि कामेन वसो त्वया इष्टः ॥११॥

ते अन्तः मनसि	तुम्हारी मनकी आन्तरिक
ईप्सितं	अभिलाषा
अहं वेद	मैं जानता हूँ।
यत् ददामि	जो (साधन) दे रहा हूँ,
तत् अन्यैः	वह दूसरोंके लिए
दुरवापं	दुष्प्राप्य है।
पुरा वसो	पहिले (तुम) वसु थे
मत् सिद्धि कामेन	मुझे पानेकी इच्छासे
विश्वसृजां	प्रजापतियों (तथा)
वसूनां सत्रे	वसुओंके यज्ञमें
त्वया	तुम्हारे द्वारा
इष्टः	(मैं) आराधित हुआ था ॥११॥

स एष साधो चरमो भवाना-
मासादितस्ते मदनुग्रहो यत्।
यन्मां नृलोकान् रह उत्सृजन्तं
दिष्ट्या ददृश्वान् विशदानुवृत्त्या ॥१२॥

स एष साधो चरमः भवानां आसादितः ते मत् अनुग्रहः यत् यत् मां नृलोकान् रह उत्सृजन्तं दिष्ट्या ददृश्वान् विशद अनुवृत्त्या ॥१२॥

साधो	साधु स्वभाव उद्धव
स एष	वह यह
ते भवानां	तुम्हारा जन्मोंमें
चरमः	अन्तिम है
यत् मत्	क्योंकि मेरा
अनुग्रहः	अनुग्रह
आसादितः	(तुमने) प्राप्त किया है,
यत् मां	जो मुझे
रह	एकान्तमें
नृलोकान्	मनुष्यलोक
उत्सृजन्तं	छोड़ते समय
दिष्ट्या	सौभाग्यवश
विशद	प्रशस्त
अनुवृत्त्या	अनुगमनसे
यत् ददृश्वान्	जो (तुमने) दर्शन पाया ॥१२॥

पुरा मया प्रोक्तमजाय नाभ्ये
पद्मे निषण्णाय ममादिसर्गे।
ज्ञानं परं मन्महिमावभासं
यत्सूरयो भागवतं वदन्ति ॥१३॥

पुरा मया प्रोक्तं अजाय नाभ्ये पद्मे निषण्णाय मम आदि सर्गे ज्ञानं परं मत् महिमा अवभासं यत् सूरयः भागवतं वदन्ति ॥१३॥

पुरा	पहिले	**अवभासं**	प्रकट करनेवाला
आदि सर्गे	सृष्टिके प्रारम्भमें	**परं ज्ञानं**	परम ज्ञानका
मम नाभ्ये	मेरी नाभिसे निकले	**प्रोक्तं**	उपदेश किया था
पद्मे	कमलपर	**यत् सूरयः**	जिसे विद्वान लोग
निषण्णाय	बैठे हुए	**भागवतं**	भागवत
अजाय मया	ब्रह्मासे मैंने	**वदन्ति**	कहते हैं ॥१३॥
मत् महिमा	मेरी महिमाको		

उद्धव उवाच*-

इत्याहृतोक्तः परमस्य पुंसः
प्रतिक्षणानुग्रहभाजनोऽहम् ।
स्नेहोत्थरोमा स्खलिताक्षरस्तं
मुञ्चञ्छुचः प्राञ्जलिराबभाषे ॥१४॥

इति आहृत उक्तः परमस्य पुंसः प्रतिक्षण अनुग्रह भाजनः अहं स्नेह उत्थरोमा स्खलित अक्षरः तं मुञ्चन् शुचः प्राञ्जलिः आबभाषे ॥१४॥

परमस्य पुंसः	परम पुरुषके	**स्नेह उत्थरोमा**	स्नेहसे रोमाञ्चित होकर
इति आहृत	इस प्रकार आदर करके	**स्खलित अक्षरः**	गद्गद् स्वरसे
उक्तः	कहे जानेपर	**मुञ्चन् शुचः**	आँसू बहाते हुए
प्रतिक्षण	सर्वदा (उनका)	**प्राञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
अनुग्रह भाजनः	कृपापात्र	**तं आबभाषे**	उनसे प्रार्थना की ॥१४॥
अहं	मैंने		

कोन्वीश ते पादसरोजभाजां
सुदुर्लभोऽर्थेषु चतुर्ष्वपीह ।

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तथापि नाहं प्रवृणोमि भूमन्
भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकः ॥१५॥

कः नु ईश ते पाद सरोजभाजां सुदुर्लभः अर्थेषु चतुर्षु अपि इह तथा अपि न अहं प्रवृणोमि भूमन् भवत् पाद अम्भोज निषेवण उत्सुकः ॥१५॥

ईश ते	स्वामिन् ! आपके
पाद सरोजभाजां	चरण-कमलके आश्रितोंके लिए
चतुर्षु अर्थेषु	चारो ही पुरुषार्थोंमें
अपि कः नु	भला कौन-सा
सुदुर्लभः	अत्यन्त दुर्लभ है,
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी
भवत् पाद अम्भोज	आपके चरणों-कमलोंकी
निषेवण	सेवाके लिए
उत्सुकः अहं	उत्सुक मैं
भूमन्	सर्वव्यापक प्रभु
न प्रवृणोमि	(उनमें कोई) नहीं पाना चाहता ॥१५॥

कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते
दुर्गाश्रयोऽथारिभयात्पलायनम् ।
कालात्मनो यत्प्रमदायुताश्रयः
स्वात्मन्रतेः खिद्यति धीर्विदामिह ॥१६॥

कर्माणि अनीहस्य भवः अभवस्य ते दुर्ग आश्रयः अथ अरि भयात् पलायनं कालात्मनः यत् प्रमदा अयुत आश्रयः स्वात्मन् रतेः खिद्यति धीः विदां इह ॥१६॥

अनीहस्य	इच्छाहीन (होनेपर भी)
ते कर्माणि	आपके कर्म,
अभवस्य	अजन्मा (होनेपर भी)
भवः	जन्म लेना,
अथ कालात्मनः	और कालस्वरूप (होनेपर भी)
अरिभयात्	शत्रुके भयसे
पलायनं	भागना (तथा)
दुर्ग आश्रयः	(द्वारिकाके) दुर्गमें शरण लेना,
स्वात्मन् रतेः	आत्माराम (होनेपर भी)
यत् प्रमदा अयुत	जो सहस्रों स्त्रियोंका
आश्रयः	साथ रखना है
इह	इन (विषयों) में
विदां	विद्वानोंकी भी
धीः	बुद्धि
खिद्यति	चक्करमें पड़ जाती है ॥१६॥

मन्त्रेषु मां वा उपहूय यत्त्व-
मकुण्ठिताखण्डसदात्मबोधः ।
पृच्छेः प्रभो मुग्ध इवाप्रमत्त-
स्तन्नो मनो मोहयतीव देव ॥१७॥

मन्त्रेषु मां वा उपहूय यत् त्वं अकुण्ठित अखण्ड सदा आत्मबोधः पृच्छेः प्रभो मुग्ध इव प्रमत्तः तत् नः मनः मोहयति इव देव ॥१७॥

वा मन्त्रेषु	अथवा मन्त्रणाके समय
मां	मुझे
उपहूय	बुलाकर
यत् त्वं	जो आप
सदा अकुण्ठित	नित्य अकुण्ठित (सावधान)
अखण्ड	अखण्ड
आत्मबोधः	ज्ञान स्वरूप हैं,
प्रभो	स्वामी !
मुग्ध	भोले
प्रमत्त इव	प्रमादी (लोगोंकी) भाँति
पृच्छेः	पूछते थे
देव	देव !
तत् नः मनः	वही मेरे मनको
मोहयति इव	मोहित-सा करता है ॥१७॥

ज्ञानं परं स्वात्मरहःप्रकाशं
प्रोवाच कस्मै भगवान् समग्रम् ।
अपि क्षमं नो ग्रहणाय भर्त-
र्वदाञ्जसा यद् वृजिनं तरेम ॥१८॥

ज्ञानं परं स्वात्म रहः प्रकाशं प्रोवाच कस्मै भगवान् समग्रं अपि क्षमं नः ग्रहणाय भर्तः वद अञ्जसा यत् वृजिनं तरेम ॥१८॥

स्वात्म	अपने स्वरूपका
रहः प्रकाशं	गूढ रहस्य प्रकट करनेवाला
समग्रं	सम्पूर्ण
परं ज्ञानं	परम ज्ञान
भगवान्	भगवान् (आपने)
कस्मै प्रोवाच	ब्रह्माजीको उपदेश किया था
अपि नः	यदि मैं (उसे)
ग्रहणाय	ग्रहण करने (समझने) में
क्षमं	समर्थ होऊँ (तो)

वद	(आप) कहें	**वृजिनं**	(संसारूप) दुःखसे
यत् अञ्जसा	जिससे सरलतासे	**तरेम**	पार हो सकूँ ॥१८॥

इत्यावेदितहार्दाय मह्यं स भगवान् परः ।
आदिदेशारविन्दाक्ष आत्मनः परमां स्थितिम् ॥१९॥

इति आवेदित हार्दाय मह्यं स भगवान् परः आदिदेश अरविन्दाक्ष आत्मनः परमां स्थितिम् ॥१९॥

इति	इस प्रकार	**अरविन्दाक्ष**	कमललोचनने
हार्दाय	हृदयकी बात	**आत्मनः**	आत्माके
आवेदित	निवेदित (करनेपर)	**परमां**	परम
मह्यं स	मुझसे उन	**स्थितिं**	स्वरूपका
भगवान् परः	भगवान परम पुरुष	**आदिदेश**	उपदेश किया ॥१९॥

स एवमाराधितपादतीर्थ-
दधीततत्त्वात्मविबोधमार्गः ।
प्रणम्य पादौ परिवृत्य देव-
मिहागतोऽहं विरहातुरात्मा ॥२०॥

स एवं आराधित पादतीर्थात् अधीत तत्त्व आत्म विबोध मार्गः प्रणम्य पादौ परिवृत्य देवं इह आगतः अहं विरह आतुर आत्मा ॥२०॥

एवं	इस प्रकार		करके
पादतीर्थात्	तीर्थपाद (श्रीकृष्ण) से	**परिवृत्य**	(उनकी) परिक्रमा करके
आत्म तत्त्व	आत्म तत्त्वके	**अहं विरह आतुर**	मैं (उनके) वियोगसे व्याकुल
विबोध मार्ग	जाननेके मार्गको	**आत्मा**	चित्त
अधीत	समझकर	**इह आगतः**	यहाँ आया हूँ ॥२०॥
स आराधित	उनकी सेवा (स्तुति) करके		
पादौ प्रणम्य	चरणोंमें प्रणाम		

सोऽहं तद्दर्शनाह्लादवियोगार्तियुतः प्रभो ।
गमिष्ये दयितं तस्य बदर्याश्रममण्डलम् ॥२१॥

स अहं तत् दर्शन आह्लाद वियोग आर्ति युतः प्रभो गमिष्ये दयितं तस्य बदर्य आश्रम मण्डलम् ॥२१॥

प्रभो	विदुरजी !	**तस्य दयितं**	उनके प्रिय
तत् दर्शन आह्लाद	उनके दर्शनजन्य आनन्द (एवं)	**बदर्य आश्रम मण्डल**	बदरीनाथ आश्रम स्थानको
वियोग आर्ति	वियोगजन्य दुःख	**गमिष्ये**	जाऊँगा ॥२१॥
युतः	युक्त		
स अहं	वह मैं		

यत्र नारायणो देवो नरश्च भगवानृषिः ।
मृदु तीव्रं तपो दीर्घं तेपाते लोकभावनौ ॥२२॥

यत्र नारायणः देवः नरः च भगवान् ऋषिः मृदु तीव्रं तपः दीर्घं तेपाते लोक भावनौ ॥२२॥

यत्र भगवान्	जहाँ भगवान	**मृदु**	कोमल (तथा)
नारायणः	नारायण	**तीव्रं तपः**	तीव्र तप
देवः च	देव तथा	**दीर्घं**	दीर्घ समयसे
नर ऋषि	नर ऋषि	**तेपाते**	कर रहे हैं ॥२२॥
लोक भावनौ	लोगोंपर कृपा करनेके लिए		

श्रीशुक उवाच-

इत्युद्धवादुपाकर्ण्य सुहृदां दुःसहं वधम् ।
ज्ञानेनाशमयत्क्षत्ता शोकमुत्पतितं बुधः ॥२३॥

इति उद्धवात् उपाकर्ण्य सुहृदां दुःसहं वधं ज्ञानेन शमयत् क्षत्ता शोकं उत्पतितं बुधः ॥२३॥

उद्धवात्	उद्धवसे	शोकं	शोकको
इति	इस प्रकार	बुधः	बुद्धिमान
सुहृदां	सम्बन्धियोंका	क्षत्ता	विदुरजीने
दुःसहं वधं	दुःसह वध	ज्ञानेन	ज्ञानके द्वारा
उपाकर्ण्य	सुनकर	शमयत्	शान्त कर
उत्पतितं	उत्पन्न हुए		दिया ॥२३॥

स तं महाभागवतं व्रजन्तं कौरवर्षभः ।
विश्रम्भादभ्यधत्तेदं मुख्यं कृष्णपरिग्रहे ॥२४॥

स तं महाभागवतं व्रजन्तं कौरवर्षभः विश्रम्भात् अभ्यधत्त इदं मुख्यं कृष्ण परिग्रहे ॥२४॥

कौरवर्षभः	कुरुश्रेष्ठ परीक्षित !	व्रजन्तं	गमनोद्यत (उद्धव) से
कृष्ण परिग्रहे	श्रीकृष्णके परिकरोंमें	विश्रम्भात्	श्रद्धापूर्वक
मुख्यं	प्रमुख	स इदं	उन (विदुर) ने यह
महाभागवतं तं	महाभागवत उन	अभ्यधत्त	कहा ॥२४॥

विदुर उवाच-

ज्ञानं परं स्वात्मरहः प्रकाशं
यदाह योगेश्वर ईश्वरस्ते ।
वक्तुं भवान्नोऽर्हति यद्धि विष्णो-
र्भृत्याः स्वभृत्यार्थकृतश्चरन्ति ॥२५॥

ज्ञानं परं स्वात्म रहः प्रकाशं यत् आह योगेश्वर ईश्वरः ते वक्तुं भवान् नः अर्हति यत् हि विष्णोः भृत्याः स्व भृत्य अर्थकृतः चरन्ति ॥२५॥

स्वात्म	अपने स्वरूपका	यत् योगेश्वर	जो योगेश्वरोंके
रहः प्रकाशं	गूढ़ रहस्य प्रकट करनेवाला	ईश्वरः	स्वामी (श्रीकृष्ण)नें
परं ज्ञानं	परम ज्ञान	ते आह	आपसे कहा (उसे)

नः वक्तुं	मुझसे (आपको) कहना	**स्वभृत्य**	अपने सेवकोंका
अर्हति	चाहिए	**अर्थ कृतः**	कार्य सिद्ध करनेके लिए
हि विष्णोः	क्योंकि श्रीहरिके	**चरन्ति**	घूमते हैं ॥२५॥
भृत्याः	सेवक		

उद्धव उवाच-

ननु ते तत्त्वसंराध्य ऋषिः कौषरवोऽन्ति मे ।
साक्षाद्भगवताऽऽदिष्टो मर्त्यलोकं जिहासता ॥२६॥

ननु ते तत्त्व संराध्य ऋषिः कौषारवः अन्ति मे साक्षात् भगवता आदिष्टः मर्त्यलोक जिहासता ॥२६॥

ननु	निश्चय	**मर्त्यलोक**	मनुष्यलोक
तत्त्व	(उस) तत्त्वके लिए	**जिहासता**	छोड़ते समय
ऋषिः	ऋषि	**साक्षात्**	साक्षात्
कौषारवः	मैत्रेय	**भगवता**	भगवानने (उनको)
ते संराध्य	आपके द्वारा सेवित होने योग्य हैं	**आदिष्टः**	आदेश दिया है ॥२६॥
मे अन्ति	मेरे समीप ही		

श्रीशुक उवाच-

इति सह विदुरेण विश्वमूर्ते-
र्गुणकथया सुधया प्लावितोरुतापः ।
क्षणमिव पुलिने यमस्वसुस्तां
समुषित औपगविर्निषां ततोऽगात् ॥२७॥

इति सह विदुरेण विश्वमूर्तेः गुण कथया सुधया प्लावितः उरुतापः क्षणं इव पुलिने यमः स्वसुः तां समुषित औपगविः निशां ततः अगात् ॥२७॥

इति	इस प्रकार	**विश्वमूर्तेः**	विश्वमूर्ति (भगवान) के
विदुरेण सह	विदुरके साथ		

गुण	गुणोंकी
कथया सुधया	कथारूप अमृतसे
उरुतापः	महान ताप
प्लावितः	नष्ट करके
यमस्वसुः	यमराजकी बहिन यमुनाके
तां पुलिने	उस पुलिनपर
निशां	रात्रि
क्षणं इव	एक क्षणकी भाँति
समुषित	बिताकर
औपगविः	उद्धव
ततः	वहाँसे
अगात्	चले गये ॥२७॥

राजोवाच-

निधनमुपगतेषु वृष्णिभोजे-
ष्वधिरथयूथपयूथपेषु मुख्यः ।
स तु कथमवशिष्ट उद्धवो यद्
हरिरपि तत्यज आकृतिं त्र्यधीशः ॥२८॥

निधनं उपगतेषु वृष्णि भोजेषु अधिरथ यूथप यूथपेषु मुख्यः स तु कथं अवशिष्ट उद्धवः यत् हरिः अपि तत्यज आकृतिं त्र्यधीशः ॥२८॥

वृष्णि भोज	वृष्णि भोजवंशी
अधिरथ यूथप	अतिरथियोंके भी यूथपति
यूथपेषु मुख्यः	और उनके यूथपोंके भी प्रधानों नायकोंके
निधनं उपगतेषु	मारे जानेपर
यत्	जबकि
त्र्यधीशः	त्रिलोकीनाथ
हरिः अपि	श्रीकृष्णने भी
आकृतिं	अपना वह रूप
तत्यज	त्याग दिया
स उद्धवः	वे उद्धवजी
तु कथं	तो कैसे
अवशिष्ट	बचे रह गये ॥२८॥

श्रीशुक उवाच-

ब्रह्मशापापदेशेन कालेनामोघवाञ्छितः ।
संहृत्य स्वकुलं नूनं त्यक्षन्देहमचिन्तयत् ॥२९॥

ब्रह्म शाप अपदेशेन कालेन अमोघ वाञ्छितः संहृत्य स्वकुलं नूनं त्यक्षन् देहं अचिन्तयत् ॥२९॥

अमोघ वाञ्छितः	अमोघ संकल्प (भगवान) ने
ब्रह्म शाप	ब्राह्मणोंके शापके
अपदेशेन	बहाने रूप
कालेन	कालके द्वारा
स्वकुलं	अपने कुलका
संहृत्य	संहार कराके
देहं	अपने शरीरको
त्यक्षन्	छोड़ते समय
नूनं	निश्चय (यह)
अचिन्तयत्	सोचा ॥२९॥

अस्माल्लोकादुपरते मयि ज्ञानं मदाश्रयम् ।
अर्हत्युद्धव एवाद्धा सम्प्रत्यात्मवतां वरः ॥३०॥

अस्मात् लोकात् उपरते मयि ज्ञानं मत् आश्रयं अर्हति उद्धव एव अद्धा सम्प्रति आत्मवतां वरः ॥३०॥

अस्मात्	इस
लोकात्	लोकसे
मयि	मेरे
उपरते	चले जानेपर
मत् आश्रयं	मेरे आश्रयका (मेरा)
ज्ञानं	ज्ञान
सम्प्रति	इस समय
आत्मवतां वरः	आत्म संयमियोंमें श्रेष्ठ
उद्धव एव	उद्धव ही
अद्धा	धारणके अधिकारी
अर्हति	हो सकते हैं ॥३०॥

नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नादितः प्रभुः ।
अतो मद्वयुनं लोकं ग्राहयन्निह तिष्ठतु ॥३१॥

न उद्धवः अणु अपि मत् न्यूनः यत् गुणैः नादितः प्रभुः अतः मत् वयुनं लोकं ग्राहयन् इह तिष्ठतु ॥३१॥

उद्धवः	उद्धव
अणु अपि	एक अणु भी
मत् न्यूनः	मुझसे कम
न यत्	नहीं हैं क्योंकि (वे)
प्रभुः	समर्थ
गुणैः	(प्रकृतिके) गुणोंसे
न अदितः	रौंदे नहीं गये।
अतः	अतः
मत् वयुनं	मेरे ज्ञानको
लोकं	लोगोंको
ग्राहयन्	ग्रहण कराते (शिक्षा देते)
इह	यहाँ (संसारमें)
तिष्ठतु	बने रहें ॥३१॥

एवं त्रिलोकगुरुणा सन्दिष्टः शब्दयोनिना ।
बदर्याश्रममासाद्य हरिमीजे समाधिना ॥३२॥

एवं त्रिलोक गुरुणा सन्दिष्टः शब्दयोनिना बदरि आश्रमं आसाद्य हरिं इजे समाधिना ॥३२॥

शब्द योनिना	वेदोंके मूलकारण	**आसाद्य**	जाकर
त्रिलोक गुरुणा	जगद्गुरु (श्रीकृष्ण) द्वारा	**समाधिना**	एकाग्र होकर
		हरिं	श्रीहरिकी
एवं	इस प्रकार	**इजे**	आराधना करने लगे ॥३२॥
सन्दिष्टः	आदेश दिये जानेपर		
बदरि आश्रमं	बदरीनाथ		

विदूरोऽप्युद्धवाच्छ्रुत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ।
क्रीडयोपात्तदेहस्य कर्माणि श्लाघितानि च ॥३३॥

विदुरः अपि उद्धवात् श्रुत्वा कृष्णस्य परमात्मनः क्रीडया उपात्त देहस्य कर्माणि श्लाघितानि च ॥३३॥

विदुरः अपि	विदुर भी	**कृष्णस्य**	श्रीकृष्णके
उद्धवात्	उद्धवसे	**श्लाघितानि**	प्रशंसनीय
क्रीडया	लीलासे	**कर्माणि च**	कर्मोंको
उपात्त देहस्य	शरीर धारण किये	**श्रुत्वा**	सुनकर ॥३३॥
परमात्मनः	परमात्मा		

देहन्यासं च तस्यैवं धीराणां धैर्यवर्धनम् ।
अन्येषां दुष्करतरं पशूनां विक्लवात्मनाम् ॥३४॥

देहन्यासं च तस्य एवं धीराणां धैर्यवर्धनं अन्येषां दुष्करतरं पशूनां विक्लव आत्मनां ॥३४॥

तस्य एवं	उन (श्रीकृष्ण) का इस प्रकार	**धीराणां**	धीर (पुरुषों) के लिए
देहन्यासं	शरीर अन्तर्धान कर लेना	**धैर्य वर्धनं च अन्येषां**	धैर्य बढ़ानेवाला तथा दूसरे

पशूनां	पशुप्राय	**दुष्करतरं**	अत्यन्त दुष्कर
विक्लव	अधीर		है ॥३४॥
आत्मनां	चित्त लोगोंके लिए		

आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसेक्षितम् ।
ध्यायन् गते भागवते रुरोद प्रेमविह्वलः ॥३५॥

आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसा ईक्षितं ध्यायन् गते भागवते रुरोद प्रेम विह्वलः ॥३५॥

कुरुश्रेष्ठ	परीक्षित !	**ध्यायन्**	सोच करके
कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा	**भागवते**	भागवत (उद्धव) के
मनसा	मनसे	**गते**	चले जानेपर
ईक्षितं	देखे (स्मरण किये गये)	**प्रेम विह्वलः**	प्रेमसे व्याकुल होकर
		रुरोद	रोने लगे ॥३५॥
आत्मानं च	अपनेको भी		

कालिन्द्याः कतिभिः सिद्ध अहोभिर्भरतर्षभः ।
प्रापद्यत स्वःसरितं यत्र मित्रासुतो मुनिः ॥३६॥

कालिन्द्याः कतिभिः सिद्ध अहोभिः भरतर्षभः प्रापद्यत स्वः सरितं यत्र मित्रासुतः मुनिः ॥३६॥

भरतर्षभः	भरतवंशमें श्रेष्ठ	**स्वः सरितं**	गंगा किनारे
सिद्ध	सिद्ध (विदुर)	**प्रापद्यत**	पहुँचे
कालिन्द्याः	यमुना किनारेसे	**यत्र**	जहाँ
कतिभिः	कुछ	**मुनिः**	मुनि
अहोभिः	दिनोंमें	**मित्रासुतः**	मैत्रेय थे ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

द्वारि द्युनद्या ऋषभः कुरूणां
मैत्रेयमासीनमगाधबोधम् ।
क्षत्तोपसृत्याच्युतभावशुद्धः
पप्रच्छ सौशील्यगुणाभितृप्तः ॥१॥

द्वारि द्युनद्या ऋषभः कुरूणां मैत्रेयं आसीनं अगाध बोधं क्षत्ता उपसृत्य अच्युत भाव शुद्धः पप्रच्छ सौशील्य गुण अभितृप्तः ॥१॥

द्युनद्या द्वारि	गंगाद्वार (हरिद्वार) में	अभितृप्तः	सन्तुष्ट होकर
अगाध बोधं	अगाध ज्ञान	अच्युतभाव शुद्धः	भगवद् भावसे शुद्ध
मैत्रेयं	मैत्रेयजीको	कुरूणां ऋषभः	कुरुकुलमें श्रेष्ठ
आसीनं	बैठे देखकर	क्षत्ता	विदुरने
सौशील्य गुण	शील तथा गुणोंसे	उपसृत्य	समीप जाकर
		पप्रच्छ	पूछा ॥१॥

विदुर उवाच-

सुखाय कर्माणि करोति लोको
न तैः सुखं वान्यदुपारमं वा ।
विन्देत भूयस्तत एव दुःखं
यदत्र युक्तं भगवान् वदेन्नः ॥२॥

सुखाय कर्माणि करोति लोकः न तैः सुखं वा अन्यत् उपारमं वा विन्देत भूयः तत एव दुःखं यत् अत्र युक्तं भगवान् वदेन नः ॥२॥

लोकः	लोग
सुखाय	सुख पानेके लिए
कर्माणि	कर्म
करोति	करते हैं
तैः सुखं वा	उनसे सुख अथवा
अन्यत्	उससे भिन्न (दु ख) की
उपारमं वा	निवृत्ति भी
न	नहीं होती
भूयः	फिर
तत एव	उस (कर्म) से भी
दुःखं विन्देत	दुःख मिलता है
अत्र यत्	इस विषयमें जो
युक्तं	उपयुक्त हो
भगवान्	भगवान् (आप) वह
नः वदेत्	मुझे बतलावें ॥२॥

जनस्य कृष्णाद्विमुखस्य दैवा-
दधर्मशीलस्य सुदुःखितस्य ।
अनुग्रहायेह चरन्ति नूनं
भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य ॥३॥

जनस्य कृष्णात् विमुखस्य दैवात् अधर्म शीलस्य सुदुःखितस्य अनुग्रहाय इह चरन्ति नूनं भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य ॥३॥

दैवात्	दुर्भाग्यवश
कृष्णात्	श्रीकृष्णसे
विमुखस्य	विमुख
अधर्म शीलस्य	अधर्ममें लगे
सुदुःखितस्य	अत्यन्त दुःखी
जनस्य	लोगोंपर
अनुग्रहाय	अनुग्रह करनेके लिए
नूनं	निश्चय ही
जनार्दनस्य	भगवान जनार्दनके
भव्यानि	भव्य
भूतानि	भक्त
इह	इस (पृथ्वी) पर
चरन्ति	विचरण करते हैं ॥३॥

तत्साधुवर्यादिश वर्त्म शं नः
संराधितो भगवान् येन पुंसाम् ।
हृदि स्थितो यच्छति भक्तिपूते
ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणम् ॥४॥

तत् साधुवर्य दिश वर्त्म शं नः संराधितः भगवान् येन पुंसा हृदि स्थितः यच्छति भक्तिपूते ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणम् ॥४॥

साधुवर्य	साधु शिरोमणे !
तत् शं	वह शान्तिका
वर्त्म नः	मार्ग मुझे
दिश	बतलाइये
येन	जिसके द्वारा
संराधितः	आराधना करनेपर
भक्तिपूते	भक्तिसे पवित्र
पुंसां	पुरुषोंके
हृदि	हृदयमें
स्थितः	स्थित होकर
भगवान्	भगवान्
सतत्त्वाधिगमं	तत्त्वज्ञान सहित
पुराणं	सनातन
ज्ञानं	ज्ञान
यच्छति	प्रदान करते हैं ॥४॥

करोति कर्माणि कृतावतारो
यान्यात्मतन्त्रो भगवांस्त्र्यधीशः ।
यथा ससर्जाग्र इदं निरीहः
संस्थाप्य वृत्तिं जगतो विधत्ते ॥५॥

करोति कर्माणि कृत अवतारः यानि आत्मतन्त्रः भगवान् त्र्यधीशः यथा ससर्ज अग्र इदं निरीहः संस्थाप्य वृत्तिं जगतः विधत्ते ॥५॥

आत्मतन्त्रः	परम स्वतन्त्र
त्र्यधीशः	त्रिलोकीनाथ
अवतारः कृतः	अवतार लेकर
यानि कर्माणि	जो जो कर्म
करोति	करते हैं,
यथा अग्र	जैसे पहिले
निरीहः	इच्छा रहित होनेपर भी
इदं	इस (संसार) की
ससर्ज	सृष्टिकी
संस्थाप्य	(इसकी) स्थापना करके
जगतां	जगतके (जीवोंकी)
वृत्तिं	आजीविकाका
विधत्ते	विधान करते हैं ॥५॥

यथा पुनः स्वे ख इदं निवेश्य
शेते गुहायां स निवृत्तवृत्तिः ।
योगेश्वराधीश्वर एक एत-
दनुप्रविष्टो बहुधा यथाऽऽसीत् ॥६॥

यथा पुनः स्वे ख इदं निवेश्य शेते गुहायां स निवृत्त वृत्तिः योगेश्वर अधीश्वर एक एतत् अनुप्रविष्टः बहुधा यथा आसीत् ॥६॥

यथा पुनः	जैसे फिर
इदं	इस (संसार) को
स्वे ख	अपने (भीतर) के आकाशमें
निवेश्य स	प्रविष्ट करके वे
निवृत्त वृत्तिः	सब वृत्तियोंको मिटाकर
गुहायां	योगमायामें ही
शेते	शयन करते हैं
योगेश्वर अधीश्वर	योगेश्वरेश्वर
एक	एक (होनेपर भी)
एतत्	इस (संसार) में
अनुप्रविष्टः	प्रत्येक (प्राणि पदार्थ) में प्रविष्ट होकर
यथा बहुधा	जैसे अनेक रूप
आसीत्	हो गये हैं ॥६॥

क्रीडन् विधत्ते द्विजगोसुराणां
क्षेमाय कर्माण्यवतारभेदैः ।
मनो न तृप्यत्यपि शृण्वतां नः
सुश्लोकमौलेश्चरितामृतानि ॥७॥

क्रीडन् विधत्ते द्विज गो सुराणां क्षेमाय कर्माणि अवतार भेदैः मनः न तृप्यति अपि शृण्वतां नः सुश्लोकमौलेः चरित अमृतानि ॥७॥

द्विज गो	ब्राह्मण, गौ,
सुराणां	देवताओंके
क्षेमाय	कल्याणके लिए
क्रीडन्	खेलते (लीला करते) हुए
अवतारभेदैः	भिन्न भिन्न अवतारोंमें
कर्माणि	(जो) कर्म (लीला)
विधत्ते	करते हैं
सुश्लोक मौलेः	उत्तम श्लोक शिरोमणिके
चरित अमृतानि	(उन) अमृतमय चरितोंको
शृण्वतां अपि	सुनते हुए भी
नः मनः	मेरा मन
न तृप्यति	नहीं तृप्त होता ॥७॥

यैस्तत्त्वभेदैरधिलोकनाथो
लोकानलोकान् सहलोकपालान् ।

अचीक्लृपद्यत्र हि सर्वसत्त्व-
निकायभेदोऽधिकृतः प्रतीतः ॥८॥

यैः तत्त्व भेदैः अधिलोकनाथः लोकान् अलोकान् सह लोकपालान् अचीक्लृपत् यत्र हि सर्वसत्त्व निकाय भेदः अधिकृतः प्रतीतः ॥८॥

अधिलोकनाथः	सम्पूर्ण लोकोंके स्वामीने
यैः तत्त्वभेदैः	जिन तत्त्वोंसे
सहलोकपालान्	लोकपालोंके साथ
लोकान्	लोकोंको
अलोकान्	लोकरहित भाग (लोकालोक पर्वतके बहिः भाग) की
अचीक्लृपत्	रचनाकी
हि यत्र	क्योंकि जहाँ (इन लोकोंमें)
सर्वसत्त्व	सब प्राणी
निकाय	समुदाय
भेदः अधिकृतः	(अधिकारानुसार) भेद स्वीकार करके
प्रतीतः	(बने) प्रतीत हो रहे हैं ॥८॥

येन प्रजानामुत आत्मकर्म-
रूपाभिधानां च भिदां व्यधत्त ।
नारायणो विश्वसृडात्मयोनि-
रेतच्च नो वर्णय विप्रवर्य ॥९॥

येन प्रजानां उत आत्म कर्म रूप अभिधानां च भिदां व्यधत्त नारायणः विश्वसृड् आत्मयोनिः एतत् च नः वर्णय विप्रवर्य ॥९॥

विप्रवर्य	विप्र श्रेष्ठ !
येन	जिस आधारपर
आत्मयोनिः	स्वयम्भू
विश्वसृड्	विश्वस्रष्टा
नारायणः	नारायणने
प्रजानां उत	प्रजाके तथा
आत्म च	अपने भी
कर्म रूप अभिधानां	कर्म, रूप तथा नामोंका
भिदां व्यधत्त	भेद-विधान किया
एतत् च	यह सब
नः वर्णय	मुझे बतलाइये ॥९॥

परावरेषां भगवन् व्रतानि
श्रुतानि मे व्यासमुखादभीक्ष्णम् ।

अतृप्नुम क्षुल्लसुखावहानां
तेषामृते कृष्णकथामृतौघात् ॥१०॥

पर अवरेषां भगवन् व्रतानि श्रुतानि मे व्यास मुखात् अभीक्ष्णं अतृप्नुम क्षुल्लसुख आवहानां तेषां ऋते कृष्ण कथा अमृत ओघात् ॥१०॥

भगवन्	भगवन् !	**आवहानां**	देनेवाले
पर अवरेषां	बड़े-छोटोंके	**कृष्ण कथा**	श्रीकृष्णकी कथारूपी
व्रतानि मे	धर्मोंका मैंने	**अमृत ओघात्**	अमृत-प्रवाहको
व्यास मुखात्	व्यासजीके मुखसे	**ऋते**	छोड़कर
अभीक्ष्णं	बार-बार	**तेषां**	उन (सुखोंसे)
श्रुतानि	सुना है	**अतृप्नुम**	(मेरी) अरुचि हो
क्षुल्लसुख	तुच्छ सुख		गयी है ॥१०॥

कस्तृप्नुयात्तीर्थपदोऽभिधानात्
सत्रेषु वः सूरिभिरीड्यमानात् ।
यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो
भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥११॥

कः तृप्नुयात् तीर्थपदः अभिधानात् सत्रेषु वः सूरिभिः ईड्यमानात् यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातः भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥११॥

तीर्थपदः	तीर्थपाद (भगवान) के	**ईड्यमानात्**	(जिसकी) स्तुति हुआ करती है
अभिधानात्	गुणानुवादसे	**यः पुरुषस्य**	जो पुरुषके
कः तृप्नुयात्	कौन तृप्त हो सकता है	**कर्णनाडीं यातः**	कानोंमें जाकर
सत्रेषु	यज्ञोंमें	**भवप्रदां**	जन्म-मरण देनेवाली
वः सूरिभिः	आप (जैसे) ज्ञानियोंके द्वारा	**गेहरतिं**	गृहासक्तिको
		छिनत्ति	काट देता है ॥११॥

मुनिर्विवक्षुर्भगवद्गुणानां
सखापि ते भारतमाह कृष्णः ।

यस्मिन्नृणां ग्राम्यसुखानुवादै-
र्मतिर्गृहीता नु हरेः कथायाम् ॥१२॥

मुनिः विवक्षुः भगवद् गुणानां सखा अपि ते भारतं आह कृष्णः यस्मिन् नृणां ग्राम्यसुख अनुवादैः मतिः गृहीता नु हरेः कथायाम् ॥१२॥

भगवद् गुणानां	भगवानके गुणोंका	**यस्मिन्**	जिसमें
विवक्षुः	वर्णन करनेकी इच्छासे	**ग्राम्यसुख**	विषय सुखोंके
		अनुवादैः	उल्लेख द्वारा
ते सखा	आपके मित्र	**नृणां मतिः**	मनुष्योंकी बुद्धि
मुनिः कृष्णः अपि	मुनि श्रीकृष्ण द्वैपायानने भी	**हरेः**	श्रीहरिकी
		कथायां	कथामें
भारतं	महाभारतको	**गृहीता**	लगायी गयी
आह	कहा (बनाया) है		है ॥१२॥

सा श्रद्दधानस्य विवर्धमाना
विरक्तिमन्यत्र करोति पुंसः ।
हरेः पदानुस्मृतिनिर्वृतस्य
समस्तदुःखात्ययमाशु धत्ते ॥१३॥

सा श्रद्दधानस्य विवर्धमाना विरक्ति अन्यत्र करोति पुसः हरेः पदानुस्मृति निर्वृतस्य समस्त दुःख अत्ययं आशु धत्ते ॥१३॥

सा	वह (भगवत्कथा) रुचि	**हरेःपदानुस्मृति**	श्रीहरि चरणोंके बार बार स्मरणमें
श्रद्दधानस्य	श्रद्धालु	**निर्वृतस्य**	आनन्दमग्नका
पुंसः	पुरुषमें	**आशु**	शीघ्र
विवर्धमाना	बढ़ती हुई	**समस्त दुःख**	सम्पूर्ण दुःखोंका
अन्यत्र	दूसरी ओरसे	**अत्ययं धत्ते**	अन्त कर देती
विरक्ति	विरक्त		है ॥१३॥
करोति	कर देती है,		

ताञ्छोच्यशोच्यानविदोऽनुशोचे
हरेः कथायां विमुखानघेन ।

क्षिणोति देवोऽनिमिषस्तु येषा-
मायुर्वृथावादगतिस्मृतीनाम् ॥१४॥

तान् शोच्यान् अविदः अनुशोचे हरेः कथायां विमुखान् अघेन क्षिणोति देवः अनिमिषः तु येषां आयुः वृथावाद गति स्मृतीनाम् ॥१४॥

तान् अविदः	उन अज्ञानी	**विमुखान्**	(जो) विमुख हैं,
शोच्यान्	शोचनीयोंके लिए	**देवः अनिमिषः तु**	कालदेव तो
अनुशोचे	(मैं) बार बार शोक करता हूँ	**वृथावाद**	व्यर्थ वाद-विवाद,
		गति	क्रिया (तथा)
हरेः कथायां	श्रीहरिकी कथासे	**स्मृतिः**	चिन्तनमें लगे
अघेन	पापोंके द्वारा (पापी होनेसे)	**येषां आयुः**	जिनकी आयुको
		क्षिणोति	घटा रहे हैं ॥१४॥

तदस्य कौषारव शर्मदातु-
र्हरेः कथामेव कथासु सारम् ।
उद्धृत्य पुष्पेभ्य इवार्तबन्धो
शिवायः न कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥१५॥

तत् अस्य कौषारव शर्मदातुः हरेः कथां एव कथासु सारं उद्धृत्य पुष्पेभ्य इव आर्तबन्धुः शिवाय नः कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥१५॥

कौषारव	मैत्रेयजी !	**पुष्पेभ्य इव**	पुष्पोंसे सारकी भाँति
तत् अस्य	अतः इन	**उद्धृत्य**	छाँटकर
शर्मदातुः	शान्तिदायी	**आर्तबन्धुः**	दुःखीके सहायक
तीर्थकीर्तेः	पवित्र कीर्ति	**नः शिवाय**	हमारे कल्याणके लिए
हरेः कथां एव	श्रीहरिकी कथा ही (जो)	**कीर्तय**	वर्णन कीजिए ॥१५॥
कथासु सारं	सब कथाओंका सार है		

स विश्वजन्मस्थितिसंयमार्थे
कृतावतारः प्रगृहीतशक्तिः ।

चकार कर्माण्यतिपूरुषाणि
यानीश्वरः कीर्तय तानि मह्यम् ॥१६॥

स विश्व जन्म स्थिति संयम अर्थे कृत अवतारः प्रगृहीत शक्तिः चकार कर्माणि अति पूरुषाणि यान् ईश्वरः कीर्तय तानि मह्यम् ॥१६॥

स ईश्वरः	उन सर्व समर्थने
विश्व	विश्वकी
जन्म	उत्पत्ति,
स्थिति	स्थिति,
संयम अर्थे	प्रलयके लिए
प्रगृहीत शक्तिः	(अपनी) माया शक्तिको स्वीकार करके
अवतारः कृतः	अवतार लेकर
यान्	जिन
अति पूरुषाणि	अति मानव
कर्माणि	कर्मोंको
चकार तानि	किया, उनको
मह्यं	मुझसे
कीर्तय	वर्णन कीजिए ॥१६॥

श्रीशुक उवाच–

स एवं भगवान् पृष्टः क्षत्त्रा कौषारविर्मुनिः ।
पुंसां निःश्रेयसार्थेन तमाह बहु मानयन् ॥१७॥

स एवं भगवान् पृष्टः क्षत्त्रा कौषारविः मुनिः पुंसां निःश्रेयस अर्थेन तं आह बहु मानयन् ॥१७॥

एवं पुंसां	इस प्रकार पुरुषोंके
निःश्रेयस	परम कल्याणके
अर्थेन	प्रयोजनसे
क्षत्त्रा	विदुरजीके
पृष्टः	पूछनेपर
स भगवान्	उन भगवान
मुनिः	मुनि
कौषारविः	मैत्रेयजीने
तं बहु मानयन्	उनका आदर करते
आह	कहा ॥१७॥

मैत्रेय उवाच–

साधु पृष्टं त्वया साधो लोकान् साध्वनुगृह्णता ।
कीर्तिं वितन्वता लोके आत्मनोऽधोक्षजात्मनः ॥१८॥

साधु पृष्टं त्वया साधो लोकान् साधु अनुगृह्णता कीर्ति वितन्विता लोके आत्मनः अधोक्षज आत्मनः ॥१८॥

साधो	साधु स्वभाव (विदुर)	**अधोक्षज**	(भगवान) हृषीकेशमें
त्वया	तुमने	**आत्मनः**	लगे चित्तवाले
लोकान्	लोगोंपर	**आत्मनः**	आपकी
साधु अनुगृह्णता	उत्तम अनुग्रह करते हुए	**कीर्ति**	कीर्ति (इससे)
		लोके	संसारमें
साधु पृष्टं	अच्छा पूछा	**वितन्विता**	फैलेगी ॥१८॥

नैतच्चित्रं त्वयि क्षत्तर्बादरायणवीर्यजे ।
गृहीतोऽनन्यभावेन यत्त्वया हरिरीश्वरः ॥१९॥

न एतत् चित्रं त्वयि क्षत्तः बादरायण वीर्यजे गृहीतः अनन्य भावेन यत् त्वया हरिः ईश्वरः ॥१९॥

बादरायण	व्यासजीके	**त्वया**	तुमने
वीर्यजे	वीर्यसे उत्पन्न	**अनन्य भावेन**	अनन्य भावसे
क्षत्तः	विदुर	**ईश्वरः**	सर्वसमर्थ
त्वयि	तुम्हारे लिए	**हरिः**	श्रीहरिकी
एतत् चित्रं	यह आश्चर्यकी बात	**गृहीतः**	शरण ले रखी है ॥१९॥
न यत्	नहीं है, क्योंकि		

माण्डव्यशापाद्भगवान् प्रजासंयमनो यमः ।
भ्रातुः क्षेत्रे भुजिष्यायां जातः सत्यवतीसुतात् ॥२०॥

माण्डव्य शापात् भगवान् प्रजा संयमनः यमः भ्रातुः क्षेत्रे भुजिष्यायां जातः सत्यवती सुतात् ॥२०॥

माण्डव्य शापात्	माण्डव्य ऋषिके शापसे	**भगवान्**	भगवान
प्रजा संयमनः	प्रजाका नियन्त्रण रखनेवाले	**यमः**	यमराज
		भ्रातुः क्षेत्रे	भाईकी पत्नी

भुजिष्यायां	भोग पत्नी (दासी) में	**जातः**	(आप) उत्पन्न हुए हैं ? ॥२०॥
सत्यवती सुतात्	सत्यवती नन्दन व्यासजीसे		

भवान् भगवतो नित्यं सम्मतः सानुगस्य च ।
यस्य ज्ञानोपदेशाय माऽऽदिशद्भगवान् व्रजन् ॥२१॥

भवान् भगवतः नित्यं सम्मतः सानुगस्य च यस्य ज्ञान उपदेशाय मा आदिशत् भगवान् व्रजन् ॥२१॥

भवान्	आप	**व्रजन्**	(इस लोकसे) जाते समय
सानुगस्य च	अनुयायी (भक्तों) के साथ	**यस्य**	जिस (आप) को
भगवतः	भगवान्के	**ज्ञान उपदेशाय**	ज्ञानोपदेश करनेका
नित्यं सम्मतः	सदा प्रिय हैं	**मा आदिशत्**	मुझे आदेश दिया है ॥२१॥
भगवान्	भगवान्ने		

अथ ते भगवल्लीला योगमायोपबृंहिताः ।
विश्वस्थित्युद्भवान्तार्था वर्णयाम्यनुपूर्वशः ॥२२॥

अथ ते भगवत् लीला योगमाया उपबृंहिता विश्व स्थिति उद्भव अन्त अर्था वर्णयामि अनुपूर्वशः ॥२२॥

अथ ते	इसलिए आपसे	**अन्त अर्था**	प्रलय प्रयोजनवाली
योगमाया	योगमायासे	**भगवत् लीला**	भगवानकी लीला
उपबृंहिताः	विस्तारित	**अनुपूर्वशः**	यथाक्रम
विश्व	संसारकी	**वर्णयामि**	वर्णन करता हूँ ॥२३॥
स्थिति उद्भव	स्थिति, सृष्टि,		

भगवानेक आसेदमग्र आत्माऽऽत्मनां विभुः ।
आत्मेच्छानुगतावात्मा नानामत्युपलक्षणः ॥२३॥

भगवान् एक आस इदं अग्र आत्म आत्मनां विभुः आत्म इच्छा अनुगतः आत्मा नाना मति उपलक्षणः ॥२३॥

नाना मति उपलक्षणः	(सृष्टिकालमें) अनेक बुद्धियोंकी उपाधिसे		अनुगत (प्रविष्ट) होनेवाले
आत्मा	(भिन्न प्रतीत होने वाला) आत्मा	**विभुः**	सर्वव्यापक
आत्म इच्छा अनुगतः	अपनी इच्छासे ही (इन बुद्धियोंमें)	**भगवान्**	भगवान
		इदं	इस (सृष्टिसे) से
		अग्र	पहिले
		एक	अकेले
		आत्मनां	अपने आपमें
		आत्मा आस	स्वयं थे ॥२३॥

विशेष :—

उस समय न कार्य था, न कारण। अतः केवल अद्वितीय तत्त्व था।

स वा एष तदा द्रष्टा नापश्यद् दृश्यमेकराट्।
मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥२४॥

स वा एष तदा द्रष्टा न अपश्यत् दृश्यं एकराट् मेने असन्तं इव आत्मानं सुप्त शक्तिः असुप्त दृक् ॥२४॥

स वा	वह ही	**असुप्त दृक्**	ज्ञानका लोप नहीं हुआ था (पर)
एष तदा	ये (भगवान) उस समय	**सुप्त शक्तिः**	सब शक्तियाँ सोयी थीं (अतः)
द्रष्टा	देखनेवाले बने (किन्तु)	**आत्मानं**	अपनेको
एकराट्	(उन) अद्वितीय स्वयं प्रकाशने	**असन्तं इव**	असत् (न होने) जैसा
दृश्यं न	दृश्य नहीं	**मेने**	मानने लगे ॥२४॥
अपश्यत्	देखा		

सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिःसदसदात्मिका।
माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ॥२५॥

सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सत् असत् आत्मिकाः माया नाम महाभाग यया इदं निर्ममे विभुः ॥२५॥

महाभाग	महाभाग !
एतस्य	इस
संद्रष्टुः	देखना चाहनेवाले
विभुः	सर्वव्यापक भगवानकी
सा वा	निश्चय वह
सत् असत्आत्मिका	कारण-कार्य स्वरूपिणी
माया नाम	माया नामकी
शक्तिः	शक्ति है
यया इदं	जिसके द्वारा इस (संसार) का
निर्ममे	निर्माण किया ॥२५॥

कालवृत्त्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः ।
पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान् ॥२६॥

कालवृत्त्या तु मायायां गुण मय्यां अधोक्षजः पुरुषेण आत्मभूतेन वीर्यं आधत्त वीर्यवान् ॥२६॥

कालवृत्त्या तु	काल-शक्तिसे तो
गुण मय्यां	गुणमयी
मायायां	मायामें (क्षोभ होनेपर)
अधोक्षजः	इन्द्रियातीत (भगवान) ने
आत्मभूतेन	अपने अंश
वीर्यवान्	चिदाभास रूप
पुरुषेण	पुरुष द्वारा
वीर्यं	वीर्य (संस्कार)
आधत्त	स्थापित किया ॥२६॥

ततोऽभवन्महत्तत्त्वमव्यक्तात्कालचोदितात् ।
विज्ञानात्माऽऽत्मदेहस्थं विश्वं व्यञ्जंस्तमोनुदः ॥२७॥

ततः अभवन् महत्तत्त्वं अव्यक्तात् कालचोदितात् विज्ञान आत्मा आत्मदेहस्थं विश्वं व्यञ्जन् तमोनुदः ॥२७॥

ततः	तब
कालचोदितात	कालकीप्रेरणासे
अव्यक्तात्	अव्यक्त (माया) से
विज्ञान आत्मा	विज्ञानस्वरूप
तमोनुदः	अज्ञान नाशक
आत्मदेहस्थं	अपने स्वरूपमें (सूक्ष्म रूपसे) स्थित
विश्वं	विश्वको
व्यञ्जन्	व्यक्त करता
महत्तत्त्वं	महत्तत्त्व
अभवन्	उत्पन्न हुआ ॥२७॥

सोऽप्यंशगुणकालात्मा भगवद्दृष्टिगोचरः ।
आत्मानं व्यकरोदात्मा विश्वस्यास्य सिसृक्षया ॥२८॥

सः अपि अंश गुण कालात्मा भगवत् दृष्टि गोचरः आत्मानं व्यकरोत् आत्मा विश्वस्य अस्य सिसृक्षया ॥२८॥

सः अपि	उसने भी
अंश	चिदाभास
गुण कालात्मा	गुण (एवं) कालके वशमें
भगवत् दृष्टि गोचरः	भगवानकी दृष्टिमें आनेपर
अस्य विश्वस्य	इस विश्वकी
सिसृक्षया	सृष्टि करनेके लिए
आत्मानं	अपनेको
आत्मा	स्वयं ही
व्यकरोत्	विकारी(रूपान्तरित) किया ॥२८॥

महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणादहंतत्त्वं व्यजायत ।
कार्यकारणकर्त्रात्मा भूतेन्द्रियमनोमयः ॥२९॥

महत्तत्त्वात् विकुर्वाणात् अहं तत्त्वः व्यजायत कार्यकारण कर्त्रात्मा भूत इन्द्रिय मनोमयः ॥२९॥

विकुर्वाणात्	परिणामी होते
महत्तत्त्वात्	महत्तत्त्वसे
कार्यकारण कर्त्रात्मा	कार्य, कारण, कर्ता स्वरूप
भूत इन्द्रिय मनोमयः	(पंच) भूत, इन्द्रिय और मनवाला
अहं तत्त्वः	अहं तत्त्व
व्यजायत	उत्पन्न हुआ ॥२९॥

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ।
अहंतत्त्वाद्विकुर्वाणान्मनो वैकारिकादभूत् ।
वैकारिकाश्च ये देवा अर्थाभिव्यञ्जनं यतः ॥३०॥

वैकारिकः तैजसः च तामसः च इति अहं त्रिधा अहं तत्त्वात् विकुर्वाणात् मनः वैकारिकात् अभूत् वैकारिकाः च ये देवाः अथ अभिव्यञ्जनं यतः ॥३०॥

अहं	अहं तत्त्व
त्रिधा	तीन रूप है
वैकारिकः च	वैकारिक तथा
तैजसः च	तैजस एवं
तामसः	तामस
इति	इस प्रकार
अहं तत्त्वात्	अहं तत्त्वसे
विकुर्वाणात्	परिणामी होनेपर
वैकारिकात्	वैकारिक (अहं) से
मनः	मन
अभूत्	उत्पन्न हुआ (और)
वैकारिकाः च	वैकारिकसे ही
ये देवाः	जो देवता उत्पन्न हुए
यतः	जिनसे
अर्थ अभिव्यञ्जनः	विषयोंका ज्ञान होता है ॥३०॥

विशेष :—

माया सत् असदात्मिका होनेसे अनिर्वचनीय है; किन्तु गुणात्मिका है। त्रिगुणोंका स्वरूप है। उसमें क्षोभ होनेपर प्रथम जो महत्तत्त्व हुआ, वह विज्ञानात्मा-बुद्धि तत्त्व है। उससे जब अहंकार उत्पन्न हुआ तब त्रिगुणोंके अनुसार उसके तीन भेद हो गये। सात्विक अहं वैकारिक, इससे मन तथा इन्द्रियोंके अधिदेवता उत्पन्न हुए। राजस अहं तैजस, इससे इन्द्रियां और तामस अहंसे पञ्च तन्मात्रायें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) हुईं।

तैजसानीन्द्रियाण्येव ज्ञानकर्ममयानि च।
तामसो भूतसूक्ष्मादिर्यतः खं लिङ्गमात्मनः ॥३१॥

तैजसात् इन्द्रियाणि एव ज्ञान कर्ममयानि च तामसः भूतसूक्ष्म आदिः यतः खं लिङ्गं आत्मनः ॥३१॥

तैजसात्	तैजस (अहंकार) से
ज्ञान च	
कर्ममयानि	ज्ञानमय तथा कर्ममय
इन्द्रियाणि एव	इन्द्रियाँ ही हुईं
तामसः	तामस (अहंकार) से
भूतसूक्ष्म आदिः	भूतसूक्ष्म (तन्मात्राओंमें) प्रथम (शब्द) हुआ
यतः आत्मनः	
लिङ्गं	जिससे आत्माका (विभुत्व)चिह्नवाला
खं	आकाश हुआ ॥३१॥

कालमायांशयोगेन भगवद्वीक्षितं नभः।
नभसोऽनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन्निर्ममेऽनिलम् ॥३२॥

काल माया अंश योगेन भगवत् वीक्षितं नभः नभसः अनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन् निर्ममे अनिलम् ॥३२॥

भगवत् वीक्षितं	भगवानकी दृष्टि पड़नेपर	**स्पर्शं**	स्पर्श
काल माया अंश	काल, माया, चिदाभासके	**अनुसृतं**	उत्पन्न हुआ
योगेन	संयोगसे	**विकुर्वन्**	उस (स्पर्शके) विकारी होनेपर
नभसः	आकाशसे	**अनिलं**	(उससे) वायु
		निर्ममे	निर्मित हुआ ॥३२॥

अनिलोऽपि विकुर्वाणो नभसोरुबलान्वितः ।
ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ॥३३॥

अनिलः अपि विकुर्वाणात् नभसा उरुबलान्वितः ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिः लोकस्य लोचनम् ॥३३॥

उरुबलान्वितः	अत्यन्त बलशाली	**रूपतन्मात्रं**	रूप तन्मात्रावाले
अनिलः अपि	वायुने भी	**लोकस्य लोचनं**	लोकोंके प्रकाशक
नभसा	आकाशके साथ	**ज्योतिः**	ज्योति (अग्नि) को
विकुर्वाणात्	विकारी होनेपर	**ससर्ज**	उत्पन्न किया ॥३३॥

अनिलेनान्वितं ज्योतिर्विकुर्वत्परवीक्षितम् ।
आधत्ताम्भो रसमयं कालमायांशयोगतः ॥३४॥

अनिलेन अन्वितं ज्योतिः विकुर्वत् पर वीक्षितं आधात् अम्भः रसमयं काल माया अंश योगतः ॥३४॥

पर	परमात्माके	**ज्योतिः**	ज्योतिने
वीक्षितं	देखनेपर	**विकुर्वत्**	परिणामी होकर
काल माया अंश		**रसमयं**	रसमय
योगतः	काल, माया, चिदाभासके संयोगसे	**अम्भः**	जल
		आधात्	उत्पन्न किया ॥३४॥
अनिलेन अन्वितं	वायुसे संयुक्त		

ज्योतिषाम्भोऽनुसंसृष्टं विकुर्वद्ब्रह्मवीक्षितम् ।
महीं गन्धगुणामाधात्कालमायांशयोगतः ॥३५॥

ज्योतिषा अम्भः अनुसंसृष्टं विकुर्वत् ब्रह्म वीक्षितं महीं गन्धगुणं आधात् कालमाया अंश योगतः ।।३५।।

ब्रह्म वीक्षितं	परमात्माकी दृष्टि पड़नेपर	**अनुसंसृष्टं**	संयुक्त
कालमाया अंश योगतः	काल, माया, चिदंशके योगसे	**अम्भः**	जलने
		विकुर्वत्	विकारी होकर
		गन्धगुणं	गन्ध गुणवाली
ज्योतिषा	तेजसे	**महीं**	पृथ्वी तत्त्वको
		आधात्	उत्पन्न किया ।।३५।।

भूतानां नभआदीनां यद्यद्भव्यावरावरम् ।
तेषां परानुसंसर्गाद्यथासंख्यं गुणान् विदुः ।।३६।।

भूतानां नभ आदीनां यत् यत् भव्य अवर अवरं तेषां पर अनुसंसर्गात् यथा संख्यं गुणान् विदुः ।।३६।।

नभ आदीनां	आकाशादि	**अनुसंसर्गात्**	अनुप्रविष्ट होनेसे
भूतानां	भूतोंमें	**यथा संख्यं**	क्रमशः पूर्व-पूर्वके (भूतोंके) भी
यत् यत्	जो जो		
अवर अवरं	पीछे-पीछे	**गुणान्**	गुणोंको
भव्य	उत्पन्न हुए हैं	**विदुः**	जानना चाहिए ।।३६।।
तेषां पर	उनमें पहिलोंके		

एते देवाः कला विष्णोः कालमायांशलिङ्गिनः ।
नानात्वात्स्वक्रियानीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयो विभुम् ।।३७।।

एते देवाः कला विष्णोः काल माया अंश लिङ्गिनः नानात्वात् स्वक्रिया अनीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयः विभुम् ।।३७।।

एते काल	ये काल	**विष्णोः**	भगवानकी ही
माया	माया	**कलाः**	कला हैं
अंश	चेतनांश	**नानात्वात्**	पृथक-पृथक होनेसे
लिङ्गिनः	विशिष्ट	**स्वक्रिया**	अपने कर्ममें
देवाः	(महत्तत्त्वादिके) अधिदेवता	**अनीशाः**	असमर्थ थे (अतः)

प्राञ्जलयः	हाथ जोड़कर	**प्रोचुः**	प्रार्थना करने
विभुं	भगवानसे		लगे ॥३७॥

देवा ऊचुः –

नमाम ते देव पदारविन्दं
प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ।
यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरु
संसारदुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति ॥३८॥

नमाम ते देव पदारविन्दं प्रपन्न ताप उपशमं आतपत्रं यत् मूल केता यतयः अञ्जसा उरु संसार दुःखं बहिः उत्क्षिपन्ति ॥३८॥

देव	देव !	**यत्**	जिनमें
प्रपन्न	शरणागतके	**मूल केत**	स्थिर निवास
ताप	संतापको		करनेवाले
उपशमं	शान्त करनेके लिए	**यतयः**	संयमी (भक्त)
आतपत्रं	छातेके समान	**अञ्जसा**	सरलतासे
ते पदारविन्दं	आपके चरण-कमलोंमें	**उरु**	भारी
		संसार दुःखं	संसार रूपी दुःखको
नमाम	(हम) प्रणाम करते हैं	**बहिः उत्क्षिपन्ति**	दूर फेंक देते हैं ॥३८॥

धातर्यदस्मिन् भव ईश जीवा-
स्तापत्रयेणोपहता न शर्म ।
आत्मँल्लभन्ते भगवंस्तवाङ्घ्रि-
च्छायां सविद्यामत आश्रयेम ॥३९॥

धातः यत् अस्मिन् भव ईश जीवाः तापत्रयेण उपहता न शर्म आत्मन् लभन्ते भगवन् तव अङ्घ्रि छायां सविद्यां अत आश्रयेम ॥३९॥

धातः	जगत्कर्ता	**अस्मिन्**	इस
ईश	सर्वेश	**भव यत्**	संसारमें क्योंकि

जीवाः	जीववृन्द (दैहिक, दैविक, भौतिक)
तापत्रयेण	तीनों तापोंसे
उपहृता	उत्पीड़ित
आत्मनि	चित्तमें
शर्म न	शान्ति नहीं
लभन्ते	पाते हैं
अत भगवन्	अतः भगवन्
सविद्यां	ज्ञानमयी
तव अङ्घ्रि	आपके चरणोंकी
छायां	छायाका
आश्रयेम	(हम) आश्रय लेते हैं ॥३९॥

मार्गन्ति यत्ते मुखपद्मनीडै-
श्छन्दः सुपर्णैर्ऋषयो विविक्ते ।
यस्याघमर्षोदसरिद्वरायाः
पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्ना ॥४०॥

मार्गन्ति यत् ते मुख पद्म नीडैः छन्दः सुपर्णैः ऋषयः विविक्ते यस्य अघमर्ष ओद सरित् वरायाः पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्नाः ॥४०॥

ऋषयः	ऋषिगण
विविक्ते	एकान्तमें
छन्दः	वेदमन्त्र रूपी
सुपर्णैः	पक्षियोंके द्वारा
यत् ते	क्योंकि आपके
मुख पद्म	मुख कमल रूपी
नीडैः	घोंलसों (आश्रय)को
मार्गन्ति	ढूँढ़ते रहते हैं
यस्य पदं	जिसके चरण
अघमर्ष	पापनाशिनी
सरित्वरायाः	सरिता श्रेष्ठ गंगाजीके
ओद पदं	जलके उद्गम स्थान हैं
तीर्थपदः	(उन आपके) पावन चरणोंकी
प्रपन्नाः	(हम) शरण हैं ॥४०॥

यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या
संमृज्यमाने हृदयेऽवधाय ।
ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा
व्रजेम तत्तेऽङ्घ्रिसरोजपीठम् ॥४१॥

यत् श्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या सम्मृज्यमाने हृदये अवधाय ज्ञानेन वैराग्य बलेन धीरा व्रजेम तत् ते अङ्घ्रि सरोज पीठम् ॥४१॥

यत् श्रद्धया	जिसकी श्रद्धा सहित
श्रुतवत्या	श्रवणादिरूप
भक्त्या च	भक्तिसे ही
संमृज्यमाने	स्वच्छ होते
हृदये	हृदयमें
अवधाय	धारण करके
वैराग्य बलेन	वैराग्य पुष्ट
ज्ञानेन	ज्ञानसे
धीरा	(भक्तजन) धीर हो जाते हैं
तत् ते	उस आपके
अङ्घ्रि सरोज	चरण-कमलकी
पीठं	चौकीकी
व्रजेम	(हम) शरण जाते हैं ॥४१॥

विश्वस्य जन्मस्थितिसंयमार्थे
कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते ।
व्रजेम सर्वे शरणं यदीश
स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम् ॥४२॥

विश्वस्य जन्म स्थिति संयम अर्थे कृत अवतारस्य पदाम्बुजं ते व्रजेम सर्वे शरणं यत् ईश स्मृतं प्रयच्छति अभयं स्वपुंसाम् ॥४२॥

ईश	जगदीश्वर !
विश्वस्य	विश्वकी
जन्म स्थिति संयम	उत्पत्ति स्थिति संहार
अर्थे	के लिए
कृतः अवतारस्य	अवतार धारण किये
ते	आपके
पदाम्बुजं	चरण-कमलोंकी
सर्वे	हम सब
शरणं	शरण
व्रजेम	जाते हैं
यत्	क्योंकि
स्मृतं	स्मरण करनेपर (वे)
स्वपुंसां	अपनेजनोंको
अभयं	अभय
प्रयच्छति	देते हैं ॥४२॥

यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहे
ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ।
पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां
भजेम तत्ते भगवन् पदाब्जम् ॥४३॥

यत् सानुबन्धे असति देह गेहे मम आह इति ऊढ दुराग्रहाणां पुंसां सुदूरं वसतः अपि पुर्यां भजेम तत् ते भगवन् पदाब्जम् ॥४३॥

भगवन् ते	भगवन् ! आपके	**मम आह**	'यह मेरा है'
तत् पदाब्जं	उन चरण-कमलोंका	**इति ऊढ**	इस प्रकार बद्धमूल
भजेम	(हम) भजन करते हैं	**दुराग्रहाणां**	दुराग्रहवालोंके
यत् देह	जो शरीर,	**पुंसां**	पुरुषोंके
गेहे	घर,	**पुर्यां**	हृदयमें
सानुबन्धे	सगे-सम्बन्धी (आदि)	**वसतः अपि**	रहते हुए भी
असति	अत्यन्त तुच्छमें	**सुदूरं**	(उनसे) बहुत दूर हैं ॥४३॥

तान् वै ह्यसद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये
पराहृतान्तर्मनसः परेश ।
अथो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं
ये ते पदन्यासविलासलक्ष्म्याः ॥४४॥

तान् वै हि असत् वृत्तिभिः अक्षिभिः ये पर आहृता अन्तः मनसः परेश अथ न पश्यन्ति उरुगाय नूनं ये ते पदन्यास विलास लक्ष्म्याः ॥४४॥

परेश	परमेश्वर !	**अथ**	अतः
हि अक्षिभिः	क्योंकि इन्द्रियोंके	**नूनं ये**	निश्चय जो
असत् वृत्तिभिः	असत (विषया-भिमुख) वृत्तिवाली होनेसे	**उरुगाय ते**	अनन्तकीर्ति आपके
		पदन्यास विलास	विलासपूर्ण पाद क्षेपकी
ये वै	जो तो	**लक्ष्म्याः**	शोभा है
अन्तः मनसः	मन-बुद्धिसे	**तान् न**	उसे नहीं
पर आहृता	बाहर आकर्षित हैं	**पश्यन्ति**	देख पाते ॥४४॥

पानेन ते देव कथासुधायाः
प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ।
वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं
यथाञ्जसान्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ॥४५॥

पानेन ते देव कथा सुधायाः प्रवृद्ध भक्त्या विशद आशया ये वैराग्य सारं प्रतिलभ्य बोधं यथा अञ्जसा अन्वीयुः अकुण्ठ धिष्ण्यम् ॥४५॥

देव ते	देव ! आपकी
कथा सुधायाः	कथामृतको
पानेन	पीनेसे
प्रवृद्ध	बढ़ी हुई
भक्त्या	भक्तिसे
ये विशद	जो निर्मल
आशया	अन्तःकरण हैं
वैराग्य सारं	वैराग्य ही जिसका सार है
बोधं	(वह) ज्ञान
प्रतिलभ्य	प्राप्त करके
यथा अञ्जसा	जैसे सरलतासे ही
अकुण्ठ	वैकुण्ठ
धिष्ण्यम्	धामका
अन्वीयुः	अनुगमन करते हैं ॥४५॥

तथापरे चात्मसमाधियोग-
बलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ।
त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति
तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ॥४६॥

तथा अपरे च आत्म समाधि योग बलेन जित्वा पुकृतिं बलिष्ठां त्वां एव धीराः पुरुषं विशन्ति तेषां श्रमः स्यात् न तु सेवया ते ॥४६॥

तथा अपरे	वैसे ही दूसरे
धीराः च	धैर्यशाली तो
आत्म समाधि	चित्तकी एकाग्रता रूपी
योग बलेन	योगकी शक्तिसे
बलिष्ठां	बलवान
प्रकृतिं	प्रकृतिको
जित्वा	जीतकर
त्वां पुरुषं एव	आप परम पुरुषमें ही
विशन्ति	प्रवेश करते हैं (पर)
तेषां श्रमः	उनको परिश्रम (करना)
स्यात् तु	होता है; किन्तु
ते सेवया	आपकी सेवासे
न	(परिश्रम) नहीं होता ॥४६॥

तत्ते वयं लोकसिसृक्षयाऽऽद्य
त्वयानुसृष्टास्त्रिभिरात्मभिः स्म ।

सर्वे वियुक्ताः स्वविहारतन्त्रं
न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवे ते ॥४७॥

तत् ते वयं लोक सिसृक्षया अद्य त्वया अनुसृष्टाः त्रिभिः आत्मभिः स्म सर्वे वियुक्ताः स्व विहार तन्त्रं न शक्नुमः तत् प्रतिहर्तवे ते ॥४७॥

तत् ते	अतः आपकी	**सर्वे**	(हम) सब
लोक सिसृक्षया	लोकोंकी सृष्टिकी इच्छासे	**स्व विहार**	अपनी चेष्टा
		तन्त्रं	करनेमें
त्वया	आपके द्वारा	**वियुक्ताः**	असमर्थ होनेसे
अद्य	इस समय	**तत् ते**	उस आपको
अनुसृष्टाः	उत्पन्न किये गये	**प्रतिहर्तवे**	उपहार देनेमें
वयं त्रिभिः	हम तीन (गुणोंवाले)	**शक्नुमः न**	समर्थ नहीं हैं ॥४७॥
आत्मभिः स्म	स्वरूप हैं,		

यावद्बलिं तेऽज हराम काले
यथा वयं चान्नमदाम यत्र ।
यथोभयेषां त इमे हि लोका
बलिं हरन्तोऽन्नमदन्त्यनूहाः ॥४८॥

यावत् बलिं ते अज हराम काले यथा वयं च अन्नं अदाम यत्र यथा उभयेषां त इमे हि लोकाः बलिं हरन्तः अन्नं अदन्ति अनूहाः ॥४८॥

अज	अजन्मा प्रभु !	**हि इमे**	और ये
यथा काले	जैसे समयपर	**लोकाः**	लोक
वयं ते	हम आपको	**बलिं**	(आपको) उपहार
यावत्	जब तक	**हरन्तः**	देते हुए
बलिं हराम	उपहार दे सकें	**अन्नं**	(अपना) आहार
च यत्र	तथा जहाँ (स्थित होकर)	**अदन्ति**	खा सकें
		त उभयेषां	वह दोनोंका ही
यथा अन्नं	जैसे आहार	**अनूहाः**	उपाय कीजिए ।४८।
अदाम	ग्रहण कर सकें		

त्वं नः सुराणामसि सान्वयानां
कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः ।

त्वं देव शक्त्यां गुणकर्मयोनौ
रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः ॥४८॥

त्वं नः सुराणां असि स अन्वयानां कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः त्वं देव शक्त्यां गुण कर्म योनौ रेतः तु अजायां कविं आदधे अजः ॥४९॥

त्वं कूटस्थ	आप कूटस्थ	**गुण**	(सत्वादि) गुणों एवं
पुराणः	सनातन	**कर्म**	कर्मोंकी
पुरुषः	पुरुष	**योनौ**	कारण रूपा
स अन्वयानां	कार्योंके सहित	**अजायां**	माया
नः सुराणां	हम देवताओंके	**शक्त्यां**	शक्तिमें
आद्यः असि	आदिकारण हैं	**रेतः**	(चिदाभास रूप)वीर्य
देव	देव !	**आदधे**	स्थापित
त्वं कविं	आप ज्ञानस्वरूप		किया ॥४९॥
अजः	अजन्माने		

ततो वयं सत्प्रमुखा यदर्थे
बभूविमात्मन् करवाम किं ते ।
त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या
देव क्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ॥५०॥

ततः वयं सत् प्रमुखा यत् अर्थे बभूव इमं आत्मन् करवाम किं ते त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देव क्रिया अर्थे यत् अनुग्रहाणाम् ॥५०॥

देव	देव	**ते किं**	आपकी क्या
ततः सत् प्रमुखा	अतः महत्तत्त्वादि प्रमुख	**करवाम**	(सेवा) करें ?
		त्वं नः	आप ही हमपर
वयं यत्	हम जिस	**अनुग्रहाणां**	अनुग्रह करनेवाले हैं
अर्थे	प्रयोजनसे	**क्रिया अर्थे**	कर्म करनेके लिए
बभूव	उत्पन्न हुए हैं	**शक्त्या**	(अपनी) शक्तिसे
इमं	उसके सम्बन्धमें	**स्व चक्षुः**	अपना ज्ञान
आत्मन्	अपनेसे	**परिदेहि**	दीजिए ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ षष्ठोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच*-

इति तासां स्वशक्तीनां सतीनामसमेत्य सः ।
प्रसुप्तलोकतन्त्राणां निशाम्य गतिमीश्वरः ॥१॥

इति तासां स्वशक्तीनां सतीनां असमेत्य सः प्रसुप्त लोकतन्त्राणां निशाम्य गतिं ईश्वरः ॥१॥

इति तासां	इस प्रकार उन	**प्रसुप्त**	असमर्थ
सतीनां	विद्यमान	**गतिं सः**	दशा उन
स्वशक्तीनां	अपनी शक्तियोंकी	**ईश्वरः**	समर्थने
असमेत्य	असंगठित होनेसे	**निशाम्य**	देखकर ॥१॥
लोकतन्त्राणां	लोक निर्माणमें		

कालसंज्ञा तदा देवीं बिभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः ।
त्रयोविंशतितत्त्वानां गणं युगपदाविशत् ॥२॥

काल संज्ञा तदा देवीं बिभ्रत् शक्ति उरुक्रमः त्रयोविंशति तत्त्वानां गणं युगपत् आविशत् ॥२॥

तदा उरुक्रमः	तब अनन्त पराक्रम (भगवान) ने	**त्रयोविंशति तत्त्वानां**	तेइस तत्त्वोंके■
काल संज्ञां	काल नामवाली	**गणं युगपत्**	समूहमें एक साथ
देवी शक्ति	दिव्य शक्तिको	**आविशत्**	प्रवेश किया ॥२॥
बिभ्रत्	धारण करके		

---

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है ।

■ महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा (शब्द, स्पर्शादि) पंचमहाभूत मन और दस इन्द्रियाँ ये तेइस तत्त्व हैं । चौबीसवाँ इनमें प्रविष्ट चेतन परमात्मा है ।

सोऽनुप्रविष्टो भगवांश्चेष्टारूपेण तं गणम् ।
भिन्नं संयोजयामास सुप्तं कर्म प्रबोधयन् ॥३॥

सः अनुप्रविष्टः भगवान् चेष्टा रूपेण तं गणं भिन्नं संयोजयामास सुप्तं कर्म प्रबोधयन् ॥३॥

सः भगवान्	उन भगवानने	**चेष्टा रूपेण**	क्रिया शक्तिसे
तं गणं	उन तत्त्वोंमें	**भिन्नं**	(उन) पृथक-पृथक (तत्त्वोंको)
अनुप्रविष्टः	प्रवेश करके		
सुप्तं	(जीवोंके) सोये हुए	**संयोजयामास**	परस्पर मिला दिया ॥३॥
कर्म	अदृष्ट (प्रारब्ध) को		
प्रबोधयन्	जगाते हुए		

प्रबुद्धकर्मा दैवेन त्रयोविंशतिको गणः ।
प्रेरितोऽजनयन्स्वाभिर्मात्राभिरधिपूरुषम् ॥४॥

प्रबुद्ध कर्मा दैवेन त्रयोविंशतिकः गणः प्रेरितः अजनयत् स्वाभिः मात्राभिः अधिपूरुषम् ॥४॥

प्रबुद्ध कर्मा	अदृष्टके जागने (कार्योन्मुख होने)पर	**स्वाभिः मात्राभिः**	अपने अंशसे
दैवेन	भगवानके द्वारा	**अधिपूरुषं**	पुरुषके आधार (विराट्) को
प्रेरितः	प्रेरित	**अजनयत्**	उत्पन्न किया ॥४॥
त्रयोविंशतिकः			
गणः	तेइसो तत्त्वोंके समुदायने		

परेण विशता स्वस्मिन्मात्रया विश्वसृग्गणः ।
चुक्षोभान्योन्यमासाद्य यस्मिँल्लोकाश्चराचराः ॥५॥

परेण विशता स्वस्मिन् मात्रया विश्वसृक्गणः चुक्षोभ अन्योन्यं आसाद्य यस्मिन् लोकाः चर अचराः ॥५॥

परेण	परम पुरुषके	**विशता**	प्रवेश करनेपर
मात्रया	अंशसे	**विश्वसृक्गणः**	विश्वनिर्मातातत्त्व
स्वस्मिन्	अपनेमें	**अन्योन्यं आसाद्य**	एक दूसरेसे मिलकर

चुक्षोभ	परिणामको प्राप्त हुए	**चर अचराः**	चर अचर
यस्मिन्	जिससे	**लोकाः**	सब लोक सृष्टि हुई ॥५॥

हिरण्मयः स पुरुषः सहस्रपरिवत्सरान् ।
आण्डकोश उवासाप्सु सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥६॥

हिरण्मयः स पुरुषः सहस्र परिवत्सरान् आण्डकोश उवास अप्सु सर्व सत्त्व उपबृंहितः ॥६॥

सर्व सत्व	सम्पूर्ण जीवोंको	**आडकोश**	ब्रह्माण्डरूप (अंडमें)
उपबृंहितः	साथ लिए	**सहस्र परिवत्सरान्**	सहस्र वर्ष*
स हिरण्मयः	वह स्वर्णमय	**अप्सु**	(कारण) जलमें
पुरुषः	(विराट्) पुरुष	**उवास**	रहा ॥६॥

स वै विश्वसृजां गर्भो देवकर्मात्मशक्तिमान् ।
विबभाजात्मनाऽऽत्मानमेकधा दशधा त्रिधा ॥७॥

स वै विश्वसृजां गर्भः देव कर्म आत्म शक्तिमान् विबभाज आत्मना आत्मानं एकधा दशधा त्रिधा ॥७॥

स वै विश्वसृजां	वह निश्चय विश्व रचना करनेवाले तत्त्वोंका	**आत्मानं**	अपनेको ही (उसने)
		एकधा	एक (हृदय) रूपमें
		दशधा	दस (प्राण) रूपमें और
गर्भः देव	गर्भ ज्ञान	**त्रिधा**	(अध्यात्म, अधिदेव, अधिभूत)तीन रूपोंमें
कर्म	कर्म (तथा)	**विबभाज**	विभाजित किया ॥७॥
आत्म शक्तिमान्	अपनी शक्तिसे सम्पन्न था		
आत्मना	अपने आपसे		

एष ह्यशेषसत्त्वानामात्मांशः परमात्मनः ।
आद्योऽवतारो यत्रासौ भूतग्रामो विभाव्यते ॥८॥

---

* वृहस्पति ग्रह वक्र न हो तो इसके एक राशिपर रहनेका काल परिवत्सरे कहा जाता है (५।२२।१५)

एष हि अशेष सत्त्वानां आत्मांशः परमात्मनः आद्यः अवतारः यत्र असौ भूत ग्रामः विभाव्यते ॥८॥

एष हि	यह ही	**यत्र असौ**	जिसमें यह
अशेष सत्त्वानां	सम्पूर्ण जीवोंका	**भूत ग्रामः**	प्राणि-पदार्थोंका समूह
परमात्मनः	परमात्माका	**विभाव्यते**	प्रकाशित होता है ॥८॥
आत्मांशः	अपना अंश		
आद्यः अवतारः	पहिला अवतार है		

साध्यात्मः साधिदैवश्च साधिभूत इति त्रिधा ।
विराट् प्राणो दशविध एकधा हृदयेन च ॥९॥

साध्यात्मः साधिदैवः च साधिभूत इति त्रिधा विराट् प्राणः दशविधः एकधा हृदयेन च ॥९॥

विराट्	विराट्	**त्रिधा**	तीन प्रकारका,
साध्यात्मः	अध्यात्म सहित	**प्राणः**	प्राणोंके द्वारा
साधिदैवः च	आधिदैव सहित तथा	**दशविधः च**	दस प्रकारका एवं
साधिभूत	अधिभूत सहित	**हृदयेन**	हृदयसे
इति	इस प्रकार	**एकधा**	एक प्रकारका है ॥९॥

स्मरन् विश्वसृजामीशो विज्ञापितमधोक्षजः ।
विराजमतपत्स्वेन तेजसैषां विवृत्तये ॥१०॥

स्मरन् विश्वसृजां ईशः विज्ञापितं अधोक्षजः विराजं अतपत् स्वेन तेजसा एषां विवृत्तये ॥१०॥

विश्वसृजां	विश्वस्रष्टा तत्त्वोंके	**विवृत्तये**	वृत्तियोंको जगानेके लिए
ईशः	स्वामी (भगवान) ने	**विराजं**	विराट्को
विज्ञापितं	(उनकी) प्रार्थनाका	**स्वेन तेजसा**	अपने तेजसे
स्मरन्	स्मरण करके	**अतपत्**	तपाया ॥१०॥
अधोक्षजः	हृषीकेश प्रभु		
एषां	इनकी		

अथ तस्याभितप्तस्य कति चायतनानि ह ।
निरभिद्यन्त देवानां तानि मे गदतः शृणु ॥११॥

अथ तस्य अभितप्तस्य कति च आयतनानि ह निरभिद्यन्त देवानां तानि मे गदतः शृणु ॥११॥

अथ तस्य	तब उस (विराट्) के	**आयतनानि**	स्थान
अभितप्तस्य	अत्यन्त तपनेपर	**निरभिद्यन्त**	प्रकट हुए
कति च ह	कुछ निश्चित	**तानि गदतः**	उनका वर्णन
देवानां	देवताओंके	**मे शृणु**	मुझसे सुनो ॥११॥

तस्याग्निरास्यं निर्भिन्नं लोकपालोऽविशत्पदम् ।
वाचा स्वांशेन वक्तव्यं ययासौ प्रतिपद्यते ॥१२॥

तस्य अग्निः आस्य निरभिन्नं लोकपालः अविशत् पदं वाचा स्वांशेन वक्तव्यं यया असौ प्रतिपद्यते ॥१२॥

तस्य	उस (विराट् पुरुषके)	**वाचा**	वाणीके साथ
आस्यं	मुखके	**पदं**	उस स्थानमें
निरभिन्नं	प्रकट होनेपर	**अविशत्**	प्रवेश किया
लोकपालः	लोकपाल	**यया असौ**	जिससे यह
अग्निः	अग्निने	**वक्तव्यं**	बोलने
स्वांशेन	अपने अंश	**प्रतिपद्यते**	लगा ॥१२॥

निर्भिन्नं तालु वरुणो लोकपालोऽविशद्धरेः ।
जिह्वयांशेन च रसं ययासौ प्रतिपद्यते ॥१३॥

निर्भिन्नं तालु वरुणः लोकपालः अविशत् हरेः जिह्वया अंशेन च रसं यया असौ प्रतिपद्यते ॥१३॥

हरेः	विराट् पुरुषके	**वरुणः**	वरुण
तालु	तालु	**अंशेन च**	अपने अंश सहित
निर्भिन्नं	प्रकट होनेपर	**जिह्वया**	रसनेन्द्रियसे
लोकपालः	लोकपाल	**अविशत्**	(उसमें) प्रविष्ट हुए,

यया असौ	जिससे यह	**प्रतिपद्यते**	ग्रहण करता
रसं	रस		है ॥१३॥

निर्भिन्ने अश्विनौ नासे विष्णोराविशतां पदम् ।
घ्राणेनांशेन गन्धस्य प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥१४॥

निर्भिन्ने अश्विनौ नासे विष्णोः आविशतां पदं घ्राणेन अंशेन गन्धस्य प्रतिपत्तिः यतः भवेत् ॥१४॥

विष्णोः	विराट्के	**घ्राणेन**	घ्राणेन्द्रिय सहित
नासे	नासिका	**आविशत्**	प्रविष्ट हुए
निर्भिन्ने	प्रगट होनेपर	**यतः**	जिससे
पदं	उस स्थानमें	**गन्धस्य**	गन्धकी
अश्विनौ	अश्विनीकुमार	**प्रतिपत्तिः**	उपलब्धि
अंशेन	अपने अंश	**भवेत्**	होती है ॥१४॥

निर्भिन्ने अक्षिणी त्वष्टा लोकपालोऽविशद्विभोः ।
चक्षुषांशेन रूपाणां प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥१५॥

निर्भिन्ने अक्षिणी त्वष्टा लोकपालः अविशत् विभोः चक्षुषा अंशेन रूपाणां प्रतिपत्तिः यतः भवेत् ॥१५॥

विभोः	विराट्के	**चक्षुषा**	नेत्रेन्द्रिय सहित
अक्षिणी	नेत्र	**अविशत्**	प्रविष्ट हुए
निर्भिन्ने	प्रकट होनेपर	**यतः**	जिससे
लोकपालः	लोकपाल	**रूपाणां**	रूपोंकी
त्वष्टा	सूर्य	**प्रतिपत्तिः**	उपलब्धि
अंशेन	अपने अंश	**भवेत्**	होती है ॥१५॥

निर्भिन्नान्यस्य चर्माणि लोकपालोऽनिलोऽविशत् ।
प्राणेनांशेन संस्पर्शं येनासौ प्रतिपद्यते ॥१६॥

निर्भिन्ना अस्य चर्माणि लोकपालः अनिलः आविशत् प्राणेन अंशेन संस्पर्शं येन असौ प्रतिपद्यते ॥१६॥

अस्य	इस (विराट्) के
चर्माणि	चर्म
निर्भिन्ना	प्रकट होनेपर
लोकपालः	लोकपाल
अनिलः	वायु
अंशेन	अपने अंश
प्राणेन	प्राणके साथ
आविशत्	(उसमें) प्रविष्ट हुए
येन	जिससे
असौ	यह
संस्पर्शं	स्पर्श
प्रतिपद्यते	पाता है ॥१६॥

कर्णावस्य विनिर्भिन्नौ धिष्ण्यं स्वं विविशुर्दिशः ।
श्रोत्रेणांशेन शब्दस्य सिद्धिं येन प्रपद्यते ॥१७॥

कर्णाः अस्य विनिर्भिन्नौ धिष्ण्यं स्वं विविशुः दिशः श्रोत्रेण अंशेन शब्दस्य सिद्धिं येन प्रपद्यते ॥१७॥

अस्य	इस (विराट्) के
कर्णाः	कान
विनिर्भिन्नौ	उत्पन्न होनेपर
स्व धिष्ण्यं	अपने स्थानमें
अंशेन	अपने अंश
श्रोत्रेण	श्रवणेन्द्रियके साथ
दिशः	दिशायें
विविशुः	प्रविष्ट हुईं
येन शब्दस्य	जिससे शब्दकी
सिद्धिं	सिद्धि (ज्ञान)
प्रपद्यते	प्राप्त होता है ॥१७॥

त्वचमस्य विनिर्भिन्नां विविशुर्धिष्ण्यमोषधीः ।
अंशेन रोमभिः कण्डूं यैरसौ प्रतिपद्यते ॥१८॥

त्वचं अस्य विनिर्भिन्नां विविशुः धिष्ण्यं ओषधीः अंशेन रोमभिः कण्डूं यैः असौ प्रतिपद्यते ॥१८॥

अस्य	इस (विराट्) के
त्वचं	त्वचा
विनिर्भिन्नां	प्रगट होनेपर
धिष्ण्यं	उस स्थानमें
ओषधीः	औषधियाँ
अंशेन	अपने अंश
रोमभिः	रोमोंके साथ
विविशुः	प्रविष्ट हुईं
यैः असौ	जिनसे यह
कण्डूं	खुजलाहट
प्रतिपद्यते	पाता है ॥१८॥

मेढ्रं तस्य विनिर्भिन्नं स्वधिष्ण्यं क उपाविशत् ।
रेतसांशेन येनासावानन्दं प्रतिपद्यते ॥१९॥

मेढ्रं तस्य विनिर्भिन्नं स्व धिष्ण्यं कः उपाविशत् रेतसा अंशेन येन असौ आनन्दं प्रतिपद्यते ॥१९॥

तस्य	उस (विराट्) के	**रेतसा अंशेन**	अपने अंश वीर्यसे
मेढ्रं	लिङ्ग	**उपाविशत्**	प्रविष्ट हुए
विनिर्भिन्नं	उत्पन्न होनेपर	**येन असौ**	जिससे यह
स्व धिष्ण्यं	अपने स्थानमें	**आनन्दं**	आनन्द
कः	प्रजापति	**प्रतिपद्यते**	पाता है ॥१९॥

गुदं पुंसो विनिर्भिन्नं मित्रो लोकेश आविशत् ।
पायुनांशेन येनासौ विसर्गं प्रतिपद्यते ॥ २०॥

गुदं पुंसः विनिर्भिन्नं मित्रः लोकेश आविशत् पायुना अंशेन येन असौ विसर्गं प्रतिपद्यते ॥२०॥

पुंसः	(विराट्) पुरुषके	**पायुना**	पायु इन्द्रिय सहित
गुदं	गुदा	**आविशत्**	प्रविष्ट हुए
विनिर्भिन्नं	उत्पन्न होनेपर	**येन असौ**	जिससे यह
लोकेश	लोकपाल	**विसर्गं**	मल त्याग
मित्रः	मित्र	**प्रतिपद्यते**	करता है ॥२०॥
अंशेन	अपने अंश		

हस्तावस्य विनिर्भिन्नाविन्द्रः स्वर्पतिराविशत् ।
वार्तयांशेन पुरुषो यया वृत्तिं प्रपद्यते ॥२१॥

हस्तौ अस्य विनिर्भिन्नाः इन्द्र स्वः पति आविशत् वार्तया अंशेन पुरुषः यया वृत्तिं प्रपद्यते ॥२१॥

अस्य	इस (विराट्) के	**वार्तया**	ग्रहण करनेकी शक्ति सहित
हस्तौ	हाथ		
विनिर्भिन्ना	उत्पन्न होनेपर	**आविशत्**	प्रविष्ट हुए
स्वः पति	स्वर्गके स्वामी	**यया**	जिससे
इन्द्र	इन्द्र	**पुरुषः**	पुरुष
अंशेन	अपने अंश	**वृत्तिं**	आजीविका
		प्रपद्यते	पाता है ॥२१॥

पादावस्य विनिर्भिन्नौ लोकेशो विष्णुराविशत् ।
गत्या स्वांशेन पुरुषो यया प्राप्यं प्रपद्यते ॥२२॥

पादाः अस्य विनिर्भिन्नौ लोकेशः विष्णुः आविशत् गत्या स्व अंशेन पुरुषः यया प्राप्यं प्रपद्यते ॥२२॥

अस्य	इसके	**गत्या**	गति सहित (उसमें)
पादाः	पैर	**आविशत्**	प्रवेश किया
विनिर्भिन्नौ	प्रकट होनेपर	**यया पुरुषः**	जिससे पुरुष
लोकेशः	लोकेश्वर	**प्राप्यं**	गन्तव्यपर
विष्णुः	विष्णुने	**प्रपद्यते**	पहुँचता है ॥२२॥
स्व अंशेन	अपने अंश		

बुद्धिं चास्य विनिर्भिन्नां वागीशो धिष्ण्यमाविशत् ।
बोधेनांशेन बोद्धव्यप्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥२३॥

बुद्धिं च अस्य विनिर्भिन्नां वागीशः धिष्ण्यं आविशत् बोधेन अंशेन बोधव्यं प्रतिपत्तिः यतः भवेत् ॥२३॥

बुद्धिं च	बुद्धिके भी	**धिष्ण्यं**	इस अपने स्थानमें
अस्य	इस (विराट्) के	**आविशत्**	आविष्ट हुए
विनिर्भिन्नां	उत्पन्न होनेपर	**यतः**	जिससे
वागीशः	वाक्पति	**बोधव्यं**	ज्ञातव्यकी
बोधेन अंशेन	अपने अंश बोध सहित	**प्रतिपत्तिः**	उपलब्धि
		भवेत्	होती है ॥२३॥

हृदयं चास्य निर्भिन्नं चन्द्रमा धिष्ण्यमाविशत् ।
मनसांशेन येनासौ विक्रियां प्रतिपद्यते ॥२४॥

हृदयं च अस्य निर्भिन्नं चन्द्रमा धिष्ण्यं आविशत् मनसा अंशेन येन असौ विक्रियां प्रतिपद्यते ॥२४॥

अस्य च	इसके तो	**धिष्ण्यं**	इस स्थानमें
हृदयं	हृदय	**मनसा अंशेन**	अपने अंश मन सहित
निर्भिन्नं	प्रगट होनेपर	**चन्द्रमा**	चन्द्र

आविशत्	प्रविष्ट हुए	**विक्रियां**	विकारोंको
येन असौ	जिससे यह	**प्रतिपद्यते**	प्राप्त होता है ॥२४॥

आत्मानं चास्य निर्भिन्नमभिमानोऽविशत्पदम् ।
कर्मणांशेन येनासौ कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥२५॥

आत्मानं च अस्य निर्भिन्नं अभिमानः आविशत् पदं कर्मणा अंशेन येन असौ कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥२५॥

अस्य	इसके	**अभिमानः**	अभिमानने
आत्मानं च	अहंकारके भी	**आविशत्**	प्रवेश किया
निर्भिन्नं	उत्पन्न होनेपर	**येन असौ**	जिससे यह
अंशेन	अपने अंश	**कर्तव्यं**	कर्तव्यको
कर्मणा	कर्मके साथ	**प्रतिपद्यते**	प्राप्त होता है ॥२५॥
पदं	इस स्थानमें		

सत्त्वं चास्य विनिर्भिन्नं महान्धिष्ण्यमुपाविशत् ।
चित्तेनांशेन योनासौ विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥२६॥

सत्त्वं च अस्य विनिर्भिन्नं महान् धिष्ण्यं उपाविशत् चित्तेन अंशेन येन असौ विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥२६॥

अस्य	इसके	**महान्**	महत्तत्त्व (ब्रह्मा)
सत्त्वं च	अन्तःकरण भी	**उपाविशत्**	प्रविष्ट हुआ
विनिर्भिन्नं	उत्पन्न हुआ	**येन असौ**	जिससे यह
धिष्ण्यं	इस स्थानमें	**विज्ञानं**	विशेष-विशेष ज्ञान (स्मृति)
चित्तेन	चित्तरूपी		
अंशेन	अंश सहित	**प्रतिपद्यते**	पाता है ॥२६॥

शीर्ष्णोऽस्य द्यौर्धरा पद्भ्यां खं नाभेरुदपद्यत ।
गुणानां वृत्तयो येषु प्रतीयन्ते सुरादयः ॥२७॥

शीर्ष्णः अस्य द्यौः धरा पद्भ्यां खं नाभेः उदपद्यत गुणानां वृत्तयः येषु प्रतीयन्ते सुरादयः ॥२७॥

अस्य	इस (विराट् पुरुष)के	**उदपद्यत**	उत्पन्न हुआ
शीर्ष्णः	सिरसे	**येषु**	जिनमें
द्यौः	स्वर्ग,	**गुणानां**	गुणोंकी
पद्भ्यां	पैरसे	**वृत्तयः**	वृत्तिवाले
धरा	पृथ्वी,	**सुरादयः**	देवतादि
नाभेः	नाभिसे	**प्रतीयन्ते**	देखे जाते हैं ॥२७॥
खं	आकाश		

आत्यन्तिकेन सत्त्वेन दिवं देवाः प्रपेदिरे ।
धरां रजःस्वभावेन पणयो ये च ताननु ॥२८॥

आत्यन्तिकेन सत्वेन दिवं देवाः प्रपेदिरे धरां रजः स्वभावेन पणयः ये च तान् अनु ॥२८॥

सत्त्वेन	सत्वगुणकी	**च ये**	तथा जो
आत्यन्तिकेन	प्रधानतासे	**तान् अनु**	उनके पीछे रहने वाले (पशु, पक्षी आदि)
देवाः	देवता		
दिवं	स्वर्गमें		
रजः स्वभावेन	रजोगुणी स्वभावके कारण	**धरां**	पृथ्वीपर
		प्रपेदिरे	रहते हैं ॥२८॥
पणयः	व्यापारी (कर्मशील मनुष्य)		

तार्तीयेन स्वभावेन भगवन्नाभिमाश्रिताः ।
उभयोरन्तरं व्योम ये रुद्रपार्षदां गणाः ॥२९॥

तार्तीयेन स्वभावेन भगवत् नाभि आश्रिताः उभयोः अन्तरं व्योम ये रुद्रपार्षदाः गणाः ॥२९॥

ये	जो	**स्वभावेन**	स्वभावके कारण
रुद्रपार्षदाः	रुद्रके पार्षद	**भगवत नाभि**	भगवानकी नाभिका
गणाः	उनके गण (भूत प्रेतादि) हैं	**आश्रिताः**	आश्रय लेकर
		उभयोः	दोनों (स्वर्ग और पृथ्वी) के
तार्तीयेन	तीसरे (तमोगुणी)		

अन्तर	बाचमें	व्योम	आकाशमें (रहते हैं) ॥२९॥

मुखतोऽवर्तत ब्रह्म पुरुषस्य कुरुद्वह ।
यस्तून्मुखत्वाद्वर्णानां मुख्योऽभूद्ब्राह्मणो गुरुः ॥३०॥

मुखतः अवतत ब्रह्म पुरुषस्य कुरुद्वह यस्तु उन्मुखत्वात् वर्णानां मुख्यः अभूत् ब्राह्मणः गुरुः ॥३०॥

कुरुद्वह	कुरुश्रेष्ठ (विदुर)	**उन्मुखत्वात्**	(वेदके) उन्मुख होनेसे
अस्य	इस	**वर्णानां**	वर्णोंमें
पुरुषस्य	विराट् पुरुषके	**ब्राह्मणः**	ब्राह्मण
मुखतः	मुखसे	**मुख्यः**	मुख्य (और सबका)
ब्रह्म	वेद और ब्राह्मण	**गुरुः**	गुरु
अवर्तत	प्रकट हुए	**अभूत्**	हुआ ॥३०॥
यस्तु	जो जो		

बाहुभ्योऽवर्तत क्षत्रं क्षत्रियस्तदनुव्रतः ।
यो जातस्त्रायते वर्णान् पौरुषः कण्टकक्षतात् ॥३१॥

बाहुभ्यः अवर्तत क्षत्रं क्षत्रियः तत् अनुव्रतः यः जातः त्रायते वर्णान् पौरुषः कण्टक क्षतात् ॥३१॥

बाहुभ्यः	(उनकी) भुजाओंसे	**यः पौरुषः**	जो परम पुरुषके अंशसे
क्षत्रं	क्षत्रिय (रक्षा) वृत्ति और	**जातः**	उत्पन्न होकर
तत्	उसका	**वर्णान्**	(दूसरे) वर्णोंको
अनुव्रतः	पालन करनेवाला	**कण्टक**	काँटों (डाकू, चोर आदि) के
क्षत्रियः	क्षत्रिय वर्ण	**क्षतात्**	आघातसे
अवर्तत	उत्पन्न हुआ	**त्रायते**	बचाता है ॥३१॥

विशोऽवर्तन्त तस्योर्वोर्लोकवृत्तिकरीर्विभोः ।
वैश्यस्तदुद्भवो वार्तां नृणां यः समवर्तयत् ॥३२॥

विशः अवर्तन्त तस्य उर्वोः लोक वृत्तिकरीः विभोः वैश्यः तत् उद्भवः वार्ता नृणां यः समवर्तयत् ॥३२॥

तस्य	उन	**उद्भवः**	उत्पन्न
विभोः	विराट् पुरुषके	**वैश्यः**	वैश्य वर्ण
उर्वोः	जाँघोंसे	**अवर्तन्त**	हुआ
लोक	लोगोंका	**यः नृणां**	जो मनुष्योंकी
वृत्तिकरीः	निर्वाह करनेवाली	**वार्ता**	जीविका
विशः	व्यापार वृत्ति (और)	**समवर्तयत्**	चलाता है ॥३२॥
तत्	उसीसे		

पद्भ्यां भगवतो जज्ञे शुश्रूषा धर्मसिद्धये ।
तस्यां जातः पुरा शूद्रो यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः ॥३३॥

पद्भ्यां भगवतः जज्ञे शुश्रूषा धर्म सिद्धये तस्यां जातः पुरा शूद्रः यत् वृत्त्या तुष्यते हरिः ॥३३॥

धर्म सिद्धये	धर्मकी सिद्धिके लिए	**शूद्रः**	शूद्र (भी उत्पन्न हुआ)
भगवतः	भगवानके	**यत् वृत्त्या**	जिसकी वृत्ति (सेवा) से
पद्भ्यां	पैरोंसे	**हरिः**	श्रीहरि
शुश्रूषा	सेवा	**तुष्यते**	सन्तुष्ट होते हैं ॥३३॥
जज्ञे	उत्पन्न हुई		
तस्यां	उन्हींसे		
पुरा	पहिले पहिले		

एते वर्णाः स्वधर्मेण यजन्ति स्वगुरुं हरिम् ।
श्रद्धयाऽऽत्मविशुद्धचर्थं यज्जाताः सह वृत्तिभिः ॥३४॥

एते वर्णाः स्वधर्मेण यजन्ति स्वगुरुं हरिं श्रद्धया आत्म विशुद्धचर्थं यत् जाताः सह वृत्तिभिः ॥३४॥

एते वर्णाः	ये (चारो) वर्ण	**जातः**	उत्पन्न हुए (उन)
यत्	जिनसे	**स्वगुरुं**	अपने गुरु
सह वृत्तिभिः	अपनी वृत्तियोंके साथ	**हरिं**	श्रीहरिकी

स्वधर्मेण	अपने धर्म (के पालन) से	**आत्म**	चित्तकी
श्रद्धया	श्रद्धा सहित	**विशुद्ध्यर्थं**	शुद्धिके लिए
		यजन्ति	यजन करते हैं ॥२४॥

एतत्क्षत्तर्भगवतो दैवकर्मात्मरूपिणः ।
कः श्रद्दध्यादुपाकर्तुं योगमायाबलोदयम् ॥३५॥

एतत् क्षत्तः भगवतः दैव कर्म आत्मरूपिणः कः श्रद्दध्यात् उपाकर्तुं योगमाया बल उदयम् ॥३५॥

क्षत्तः	विदुर !	**भगवतः**	भगवानकी
एतत्	यह	**योगमाया बल**	योगमायाकी शक्तिके
दैव	काल	**उदयं**	विस्तारको
कर्म	कर्म	**कः उपाकर्तुं**	कौन वर्णन करनेमें
आत्मरूपिणः	स्वभाव शक्ति युक्त,	**श्रद्दध्यात्**	समर्थ हो सकता है ॥३५॥

अथापि कीर्तयाम्यङ्ग यथामति यथाश्रुतम् ।
कीर्तिं हरेः स्वां सत्कर्तुं गिरमन्याभिधासतीम् ॥३६॥

अथापि कीर्तयामि अङ्ग यथा मति यथा श्रुतं कीर्तिं हरेः स्वां सत् कर्तुं गिरं अन्य अभिधा असतीम् ॥३६॥

अङ्ग	प्रिय विदुर !	**कीर्तिं**	सुयशका
अथापि	फिर भी	**यथा मति**	जैसी बुद्धि है (और)
अन्य अभिधा	दूसरी चर्चासे	**यथा श्रुतं**	जैसा (गुरुजनोंसे) सुना है
असतीं	अपवित्र हुई		
स्वां गिरं	अपनी वाणीको	**कीर्तयामि**	वर्णन करता हूँ ॥३६॥
सत् कर्तुं	शुद्ध करनेके लिए		
हरेः	श्रीहरिके		

एकान्तलाभं वचसो नु पुंसां
सुश्लोकमौलेर्गुणवादमाहुः ।
श्रुतेश्च विद्वद्भिरुपाकृतायां
कथासुधायामुपसम्प्रयोगम् ॥३७॥

एकान्त लाभं वचसः नु पुंसां सुश्लोकमौलेः गुणवादं आहुः श्रुतेः च विद्वद्भिः उपाकृतायां कथासुधायां उपसम्प्रयोगम् ॥३७॥

पुंसां	पुरुषकी	आहुः च	कहा गया है और
वचसः	वाणीका	श्रुतेः	कानोंका (लाभ)
एकान्त	एकमात्र	विद्वद्भिः	विद्वानों द्वारा
लाभं नु	लाभ निश्चित ही	उपाकृतायां	उपकार करके सुनायी
सुश्लोकमौलेः	पुण्य श्लोक शिरोमणि (भगवान) के	कथासुधायां	(भगवत्) कथामृतके
गुणवादं	गुणोंका वर्णन	उपसम्प्रयोगं	सुननेमें लगाना ही है ॥३७॥

आत्मनोऽवसितो वत्स महिमा कविनाऽऽदिना ।
संवत्सरसहस्रान्ते धिया योगविपक्वया ॥३८॥

आत्मना अवसितः वत्स महिमा कविना आदिना संवत्सर सहस्र अन्ते धिया योग विपक्वया ॥३८॥

वत्स	वत्स !	संवत्सर अन्ते	वर्ष तक (चिन्तन करके)
आदिना कविना	आदि कवि (ब्रह्माजी)	आत्मना	भगवानकी
योग विपक्वया	योगसे परिपक्व	महिमा	महिमाका
धिया	बुद्धिसे	अवसितः	पार पा सके ?॥३८॥
सहस्र	एक हजार		

अतो भगवतो माया मायिनामपि मोहिनी ।
यत्स्वयं चात्मवर्त्मात्मा न वेद किमुतापरे ॥३९॥

अतः भगवतः माया मायिनां अपि मोहिनी यत् स्वयं च आत्मवर्त्म आत्मा न वेद किम् उत अपरे ॥३९॥

अतः	अतः	मायिनां	(बड़े बड़े) मायावियोंको
भगवतः	भगवानकी	अपि	भी
माया	माया		

मोहिनी	मोहमें डालनेवाली है	**आत्मा**	परमात्मा
यत् स्वयं	जिसे स्वयं	**न वेद**	नहीं जानते
आत्मवर्त्मं	अपने स्वरूपमें लगे	**अपरे**	दूसरोंकी
च	होनेपर भी	**किं उत**	फिर चर्चा क्या ॥३९

यतोऽप्राप्य न्यवर्तन्त वाचश्च मनसा सह ।
अहं चान्य इमे देवास्तस्मै भगवते नमः ॥४०॥

यतः अप्राप्य न्यवर्तन्त वाचः च मनसा सह अहं च अन्य इमे देवाः तस्मै भगवते नमः ॥४०॥

यतः	जिनको	**अन्य इमे**	दूसरे ये
अप्राप्य	न पाकर	**देवाः**	देवता
वाचः	वाणी	**न्यवर्तन्त**	लौट आते हैं
मनसा सह च	मनके साथ ही	**तस्मै**	उन
अहं च	अहङ्कार (के अधिदेव रुद्र)भी	**भगवते**	भगवानको
		नमः	नमस्कार ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायनसुतो बुधः ।
प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ॥१॥

एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायन सुतः बुधः प्रीणयन् इव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ॥१॥

एवं	इस प्रकार	**बुधः**	बुद्धिमान
मैत्रेयं	मैत्रेयजीके	**द्वैपायन सुतः**	व्यासजीके पुत्र
ब्रुवाणं	कहनेपर	**विदुरः**	विदुरने
भारत्या	अपनी वाणीसे	**प्रत्यभाषत**	उनसे कहा ॥१॥
प्रीणयन् इव	प्रसन्न करते हुए से		

विदुर उवाच-

ब्रह्मन् कथं भगवतश्चिन्मात्रस्याविकारिणः ।
लीलया चापि युज्येरन्निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ॥२॥

ब्रह्मन् कथं भगवतः चिन् मात्रस्य अविकारिणः लीलया च अपि युज्येरन् निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ॥२॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**लीलया अपि**	लीलासे भी
भगवतः	भगवान	**गुणाः**	गुण (और)
चिन् मात्रस्य	ज्ञान स्वरूप मात्र	**क्रियाः**	क्रिया
अविकारिणः	निर्विकार	**कथं युज्येरन्**	कैसे सम्बद्ध हो सकते हैं ? ॥२॥
निर्गुणस्य	निर्गुणसे		

क्रीडायामुद्यमोऽर्भस्य कामश्चिक्रीडिषान्यतः ।
स्वतस्तृप्तस्य च कथं निवृत्तस्य सदान्यतः ॥३॥

क्रीडायां उद्यमः अर्भस्य कामः चिक्रीडिषा अन्यतः स्व तृप्तस्य च कथं निवृत्तस्य सदा अन्यतः ॥३॥

अन्यतः	दूसरेके साथ
चिक्रीडिषा	खेलनेकी
कामः	इच्छा (और)
क्रीडायां	खेलनेका
उद्यमः	प्रयत्न
अर्भस्य	बालकका (होता है)
सदा अन्यतः	सदा दूसरे (द्वितीय तत्त्व) से
निवृत्तस्य	रहित
स्व तृप्तस्य च	अपनेमें ही तृप्तका तो (परमात्माका)
कथं	(खेलनेका प्रयत्न) कैसे हो सकता है ? ॥३॥

अस्राक्षीद्भगवान् विश्वं गुणमय्याऽऽत्ममायया ।
तथा संस्थापयत्येतद्भूयः प्रत्यपिधास्यति ॥४॥

अस्राक्षी भगवान् विश्वं गुणमय्या आत्ममायया तथा संस्थापयत् एतत् भूयः प्रति पिधास्यति ॥४॥

गुणमय्या	गुणमयी
आत्ममायया	अपनी मायासे
भगवान्	भगवान्ने
विश्वं	विश्वकी
अस्राक्षी	सृष्टिकी
तथा	उसी (माया) के द्वारा
संस्थापयत्	(विश्वकी) स्थापना करते हैं
भूयः एतत्	फिर इस (विश्व)का
प्रति पिधास्यति	प्रलय कर देंगे ॥४॥

देशतः कालतो योऽसावव्यवस्थातः स्वतोऽन्यतः ।
अविलुप्तावबोधात्मा स युज्येताजया कथम् ॥५॥

देशतः कालतः यः असौ अवस्थातः स्वतः अन्यतः अविलुप्त अवबोध आत्मा स युज्येत अजया कथम् ॥५॥

यः असौ	जो यह
देशतः	देशसे
कालतः	कालसे
अवस्थातः	अवस्थासे

स्वतः	स्वतः	**अजया**	मायासे
अन्यतः	या किसी दूसरे द्वारा	**कथं**	कैसे
अविलुप्त	लुप्त न होनेवाले	**युज्येत**	संयुक्त हो सकता
अवबोध	ज्ञान स्वरूप		है ॥५॥
आत्मा स	आत्मा है, वह		

भगवानेक एवैष सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितः ।
अमुष्य दुर्भगत्वं वा क्लेशो वा कर्मभिः कुतः ॥६॥

भगवान् एक एव एष सर्वक्षेत्रेषु अवस्थितः अमुष्य दुर्भगत्वं वावक्लेशः वा कर्मभिः कुतः ॥६॥

एक एव	अकेले ही	**दुर्भगत्वं वा**	दुर्भाग्य अथवा
एष भगवान्	ये भगवान	**कर्मभिः**	कर्मों (के फल) से
सर्व क्षेत्रेषु	सब शरीरोंमें	**क्लेशः वा**	क्लेश ही
अवस्थितः	स्थित हैं	**कुतः**	कैसे हो सकता
अमुष्य	इनको		है ॥६॥

एतस्मिन्मे मनो विद्वन् खिद्यतेऽज्ञानसङ्कटे ।
तन्नः पराणुद विभो कश्मलं मानसं महत् ॥७॥

एतस्मिन् मे मनः विद्वन् खिद्यते अज्ञान सङ्कटे तत् नः पराणुद विभो कश्मलं मानसं महत् ॥७॥

विद्वन्	विद्वन् !	**तत् नः**	वह मेरा
एतस्मिन्	इस विषयमें	**महत्**	महान्
अज्ञान सङ्कटे	अज्ञानके संकटसे	**मानसं**	मानसिक
मे मनः	मेरा मन	**कश्मलं**	मोहको
खिद्यते	खिन्न हो रहा है	**पराणुद**	दूर कीजिए ॥७॥
विभो	प्रभो !		

श्रीशुक उवाच-

स इत्थं चोदितः क्षत्त्रा तत्त्वजिज्ञासुना मुनिः ।
प्रत्याह भगवच्चित्तः स्मयन्निव गतस्मयः ॥८॥

स इत्थं चोदितः क्षत्त्रा तत्त्व जिज्ञासुना मुनिः प्रत्याह भगवत् चित्तः स्ययन् इव गतस्मयः ॥८॥

स मुनिः	वे मुनि (मैत्रेय)	**भगवत् चित्तः**	भगवान्‌में चित्त लगाकर
तत्त्व जिज्ञासुना	तत्त्वको जाननेकी इच्छासे	**गत स्मयः**	निरभिमान
इत्थं	इस प्रकार	**स्ययन् इव**	मुस्कराते हुएसे
क्षत्त्रा	विदुर द्वारा	**प्रत्याह**	उत्तर देने
चोदितः	प्रेरित किये जानेपर		लगे ॥८॥

मैत्रेय उवाच–

सेयं भगवतो माया यन्नयेन विरुध्यते ।
ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्पण्यमुत बन्धनम् ॥९॥

सा इयं भगवतः माया यत् न येन विरुध्यते ईश्वरस्य बिमुक्तस्य कार्पण्यं उत बन्धनम् ॥९॥

सा इयं	वह यह	**कार्पण्यं**	दीनता और
भगवतः	भगवानकी	**विमुक्तस्य**	नित्य मुक्तका
माया	माया है	**बन्धनं**	बन्धनमें पड़ना
यत् येन	जिसमें,जिसके द्वारा	**विरुध्यते न**	विरोधी बात नहीं होती ॥९॥
ईश्वरस्य	सर्व समर्थकी		

यदर्थेन विनामुष्य पुंस आत्मविपर्ययः ।
प्रतीयत उपद्रष्टुः स्वशिरश्छेदनादिकः ॥१०॥

यत् अर्थेन विना अमुष्य पुंसः आत्म विपर्ययः प्रतीयत उपद्रष्टुः स्वशिरः छेदनादिकः ॥१०॥

यत् अर्थेन	जो पदार्थोंके	**विपर्ययः**	उलटापना
विना	न होनेपर	**प्रतीयत**	प्रतीत हो रहा है
अमुष्य	इस	**उपद्रष्टुः**	स्वप्न देखनेवालेके
पुंसः	पुरुषका	**स्वशिरः**	अपने ही सिरको
आत्म	अपने स्वरूपसे		

छेदनादिकः काटने आदिके समान (न होनेपर भी मिथ्या प्रतीति) है ॥१०॥

यथा जले चन्द्रमसः कम्पादिस्तत्कृतो गुणः ।
दृश्यतेऽसन्नपि द्रष्टुरात्मनोऽनात्मनो गुणः ॥११॥

यथा जले चन्द्रमसः कम्पादिः तत् कृतः गुणः दृश्यते असन् अपि द्रष्टुः आत्मनः न आत्मनः गुणः ॥११॥

यथा जले	जैसे जलमें (पड़े)
चन्द्रमसः	चन्द्रमा (के प्रतिविम्ब) में
तत् कृतो	उस (जल) से उत्पन्न
कम्पादिः	कम्पन आदि
गुणः	गुण
असन् अपि	(चन्द्रमामें) न होनेपर भी
दृश्यते	दीखते हैं
द्रष्टुः आत्मनः	(ऐसे ही) द्रष्टा आत्मामें
आत्मनः	न अनात्माके
गुणः	गुण (न होनेपर भी दीखते हैं) ॥११॥

स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया ।
भगवद्भक्तियोगेन तिरोधत्ते शनैरिह ॥१२॥

स वै निवृत्ति धर्मेण वासुदेव अनुकम्पया भगवत् भक्तियोगेन तिरोधत्ते शनैः इह ॥१२॥

वै स	निश्चय ही वह (माया)
निवृत्ति धर्मेण	निवृत्ति धर्मसे
वासुदेव	भगवान् श्रीकृष्णकी
अनुकम्पया	कृपासे (प्राप्त)
भगवत्	भगवान्की
भक्तियोगेन	भक्तियोगसे
इह शनैः	यहाँ चित्त (से) धीरे-धीरे
तिरोधत्ते	तिरोहित होती है ॥१२॥

यदेन्द्रियोपरामोऽथ द्रष्ट्रात्मनि परे हरौ ।
विलीयन्ते तदा क्लेशाः संसुप्तस्येव कृत्स्नशः ॥१३॥

यत् इन्द्रिय उपरामः अथ द्रष्ट्रा आत्मनि परे हरौ विलीयन्ते तदा क्लेशाः संसुप्तस्य इव कृत्स्नशः ॥१३॥

यत् इन्द्रिय उपरामः	जब इन्द्रियाँ (विषयोंसे) उपराम हो जाती हैं	संसुप्तस्य इव	सोते (पुरुष) के समान
		कृत्स्नशः	समस्त
अथ द्रष्टा परे आत्मनि हरौ तदा	तब साक्षी परमात्मा श्रीहरिमें (लग जाती हैं) तब	क्लेशाः	क्लेश
		विलीयन्ते	विलीन हो जाते हैं ॥१३॥

अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते
गुणानुवादश्रवणं मुरारेः ।
कुतः पुनस्तच्चरणारविन्द-
परागसेवारतिरात्मलब्धा ॥१४॥

अशेष संक्लेश शमं विधत्ते गुणानुवाद श्रवणं मुरारेः कुतः पुनः तत् चरणारविन्दपराग सेवा रतिः आत्म लब्धा ॥१४॥

मुरारेः	श्रीकृष्णके		रजकी
गुणानुवाद	गुणोंका वर्णन (तथा)	सेवा रतिः	सेवाकी प्रीति
		आत्मलब्धा	अपने चित्तमें आ जाय
श्रवणं	श्रवण		
अशेष संक्लेश	सम्पूर्ण क्लेशोंकी	कुतः	फिर पूछना वया ॥१४॥
शमं विधत्ते	शान्ति कर देता है		
पुनः तत् चरणारविन्द	फिर उनके		
पराग	चरण-कमलोंकी		

विदुर उवाच–

संछिन्नः संशयो मह्यं तव सूक्तासिना विभो ।
उभयत्रापि भगवन्मनो मे सम्प्रधावति ॥१५॥

संछिन्नः संशयं मह्यं तव सूक्ति असिना विभो उभय अत्र अपि भगवन् मनः मे सम्प्रधावति ॥१५॥

विभो	प्रभो !	**मे मनः**	मेरा मन
तव	आपकी	**अत्र**	इस
सूक्ति असिना	सूक्ति रूपी तलवारसे	**उभय**	दोनों विषयों (भगवानकी स्वतन्त्रता) में
मह्यं संशयं	मेरा सन्देह		
संछिन्नः	पूर्णतः कट गया,	**सम्प्रधावति**	दौड़ (प्रवेश कर) रहा है ॥१५॥
भगवन्	भगवन् !		

साध्वेतद् व्याहृतं विद्वन्नात्ममायायनं हरेः ।
आभात्यपार्थं निर्मूलं विश्वमूलं न यद्बहिः ॥१६॥

साधु एतत् व्याहृतं विद्वन् आत्म माया अयनं हरेः आभाति अपार्थं निर्मूलं विश्वमूलं न यत् बहिः ॥१६॥

विद्वन्	विद्वन् !	**आभाति**	प्रतीत हो रही है
एतत्	यह	**अपार्थं**	अस्तित्वहीन
व्याहृतं	(आपकी) बात	**निर्मूलं**	कारण हीन (होनेपर भी)
साधु	ठीक है		
हरेः	श्रीहरिकी	**यत् विश्वमूलं**	क्योंकि विश्वका कारण
आत्म माया	अपनी माया ही		
अयनं	(इस क्लेशादिका) आधार	**बहिः न**	बाहर नहीं है ॥१६॥

यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः ।
तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥१७॥

यः च मूढतमः लोके यः च बुद्धेः परंगतः ताः उभौ सुखं एधेते क्लिश्यन्ति अन्तरितः जनः ॥१७॥

लोके	संसारमें	**परंगतः**	पार पहुँचा है
यः च	जो भी	**ताः उभौ**	वही दोनों
मूढतमः	अत्यन्त मूर्ख है	**सुखं एधेते**	सुखसे बढ़ते हैं,
च यः	और जो	**अन्तरितः जनः**	मध्यस्थितिके लोग
बुद्धेः	बुद्धिके	**क्लिश्यन्ति**	कष्ट पाते हैं ॥१७॥

अर्थाभावं विनिश्चित्य प्रतीतस्यापि नात्मनः ।
तां चापि युष्मच्चरणसेवयाहं पराणुदे ॥१८॥

अर्थ अभावं विनिश्चित्य प्रतीतस्य अपि न आत्मनः तां च अपि युष्मत् चरण सेवया अहं पराणुदे ॥१८॥

न आत्मनः	अनात्म	**तां**	उस (प्रतीति)
अर्थं	पदार्थोंका	**च अपि**	को भी
अभावं	अभाव	**युष्मत्**	आपके
प्रतीतस्य अपि	प्रतीत होनेपर भी	**चरणसेवया**	चरणोंकी सेवासे
विनिश्चित्य	(मुझे) निश्चय हो गया है	**अहं पराणुदे**	मैं दूर फेंक दूंगा ॥२८॥

यत्सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः ।
रतिरासो भवेत्तीव्रः पादयोर्व्यसनार्दनः ॥१९॥

यत् सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः रतिः आसः भवेत् तीव्रः पादयोः व्यसन अर्दनः ॥१९॥

यत्	(आपके) जिन चरणोंकी	**पादयोः**	चरणोंमें
सेवया	सेवासे	**व्यसनार्दनः**	क्लेशोंकी नाशिका
कूटस्थस्य	कूटस्थ	**तीव्र**	तीव्र (उत्कट)
भगवतः	भगवान्	**आसः**	आनन्ददायिनी
मधुद्विषः	मधुसूदनके	**रतिः भवेत्**	प्रीति होती है ॥१९॥

दुरापा ह्यल्पतपसः सेवा वैकुण्ठवर्त्मसु ।
यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्दनः ॥२०॥

दुरापा हि अल्प तपसः सेवा वैकुण्ठ वर्त्मसु यत्र उपगीयते नित्यं देवदेवः जनार्दनः ॥२०॥

हि	क्योंकि	**वर्त्मसु**	मार्ग रूप (महात्माओं) की
अल्प तपसः	कम तप (पुण्य) वालोंके लिए	**सेवा**	सेवा
वैकुण्ठ	भगवानके	**दुरापा**	दुर्लभ है

यत्र नित्यं	जहाँ सदा	उपगीयते	वर्णन होता
देवदेवः	देवदेव		है ॥२०॥
जनार्दनः	जनार्दनका		

सृष्ट्वाग्रे महदादीनि सविकाराण्यनुक्रमात् ।
तेभ्यो विराजमुद्धृत्य तमनु प्राविशद्विभुः ॥२१॥

सृष्ट्वा अग्रे महत् आदीनि सविकाराणि अनुक्रमात् तेभ्यः विराजं उद्धृत्य तं अनु प्राविशत् विभुः ॥२१॥

अग्रे	पहिले	तेभ्यः	उनसे
महत् आदीनि	महत्तत्त्व आदिको	विराजं	विराट्को
अनुक्रमात्	क्रमानुसार	उद्धृत्य	उत्पन्न करके
सविकाराणि	उनके विकारोंके साथ	विभुः	परमात्माने
		तं अनु	उनमें फिर पीछे
सृष्ट्वा	उत्पन्न करके	प्राविशत्	प्रवेश किया ॥२१॥

यमाहुराद्यं पुरुषं सहस्राङ्घ्यूरबाहुकम् ।
यत्र विश्वं इमे लोकाः सविकासं समासते ॥२२॥

यं आहुः आद्यं पुरुषं सहस्र अङ्घ्रि उरु बाहुकं यत्र विश्व इमे लोकाः सविकासं समासते ॥२२॥

यं सहस्र	जिन हजारों	यत्र विश्वं	जिसमें विश्वके
अङ्घ्रि उरु बाहुकं	पैर जंघा भुजाओं वालेको	इमे लोकाः	ये लोक
		सविकासं	पूरे विस्तार सहित
आद्यं पुरुषं	आदि पुरुष	समासते	भली भाँति स्थित
आहुः	(वेदने) कहा है,		हैं ॥२२॥

यस्मिन् दशविधः प्राणः सेन्द्रियार्थेन्द्रियस्त्रिवृत् ।
त्वयेरितो यतो वर्णास्तद्विभूतीर्वदस्व नः ॥२३॥

यस्मिन् दशविधः प्राणः स इन्द्रिय अर्थ इन्द्रियः त्रिवृत् त्वया इरितः यतः वर्णाः तद् विभूतिः वदस्व नः ॥२३॥

यस्मिन्	जिसमें
दशविधः	दस प्रकारके
प्राणः	प्राण
इन्द्रिय	इन्द्रियाँ
अर्थ	विषय
त्रिवृत्	तीन प्रकारके
इन्द्रियः	इन्द्रियोंके अधिदेवता
यतः वर्णाः	जिनसे सब वर्णोंकी (उत्पत्ति)
त्वया ईरितः	आपने बतलायी
तद् विभूतीः	उनकी विभूतियोंका
नः वदस्व	मुझसे वर्णन कीजिए ॥२३॥

यत्र पुत्रैश्च पौत्रैश्च नप्तृभिः सह गोत्रजैः ।
प्रजा विचित्राकृतय आसन् याभिरिदं ततम् ॥२४॥

यत्र पुत्रैः च पौत्रैः च नप्तृभिः सह गोत्रजैः प्रजा विचित्र आकृतय आसन् याभिः इदं ततम् ॥२४॥

यत्र पुत्रैः च	जहाँ पुत्रोंसे
पौत्रैः च	पौत्रोंसे
नप्तृभिः	नातियोंसे
गोत्रजैः सह	गोत्रमें उत्पन्न (दूसरों) के साथ
विचित्र	नाना प्रकारकी
आकृतय	आकारवाली
प्रजा	प्रजा
आसन्	उत्पन्न हुई
याभिः	जिनसे
इदं	यह संसार
ततम्	भर गया ॥२४॥

प्रजापतीनां स पतिश्चक्लृपे कान् प्रजापतीन् ।
सर्गांश्चैवानुसर्गांश्च मनून्मन्वन्तराधिपान् ॥२५॥

प्रजापतीनां स पतिः चक्लृपे कान् प्रजापतीन् सर्गान् च अनुसर्गान् च मनून् मन्वन्तराधिपान् ॥२५॥

प्रजापतीनां	प्रजापतियोंके
स पतिः	वे स्वामी (ब्रह्माजी) ने
कान् प्रजापतीन्	किन प्रजापतियोंको
सर्गान् च	सर्ग (मूलसृष्टि) को
अनुसर्गान् च	अनुसर्ग (उससे पीछेकी सृष्टि) को
मन्वन्तराधिपान्	मन्वन्तरोके स्वामी
मनून्	मनुओंको
चक्लृपे	बनाया ॥२५॥

एतेषामपि वंशांश्च वंशानुचरितानि च ।
उपर्यधश्च ये लोका भूमेर्मित्रात्मजासते ॥२६॥

एतेषां अपि वंशान् च वंश अनुचरितानि च उपरि अधः च ये लोकाः भूमेः मित्रात्मज आसते ॥२६॥

मित्रात्मज	मैत्रेयजी !	**भूमेः**	भूमिके
एतेषां अपि	इन (मनुओं) के भी	**उपरि च**	ऊपर और
वंशान् च	वंशोंका	**अधः**	नीचे
वंश अनुचरितानि च	(उन) वंशोंमें हुए लोगोंके चरितोंको	**ये लोकाः आसते**	जो लोक हैं (भीतर लोक) हैं ॥२६॥

तेषां संस्थां प्रमाणं च भूर्लोकस्य च वर्णय ।
तिर्यङ्मानुषदेवानां सरीसृपपतत्त्रिणाम् ।
वद नः सर्गसंव्यूहं गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् ॥२७॥

तेषां संस्थां प्रमाणं च भूर्लोकस्य च वर्णय तिर्यङ् मानुष देवानां सरीसृप पतत्त्रिणां वद नः सर्ग संव्यूहं गार्भ स्वेद द्विज उद्भिदाम् ॥२७॥

तेषां	उनकी		(सरकनेवाले)
संस्थां च	स्थिति तथा	**पतत्त्रिणां**	पक्षियोंका
प्रमाणं	प्रमाण (विस्तार)	**गार्भं**	जरायुज
वर्णय च	वर्णन कीजिए और	**स्वेद**	स्वेदज
भूर्लोकस्य	पृथ्वीलोकके	**द्विज**	अण्डज
तिर्यक्	तिर्यक्	**उद्भिदां**	उद्भिज
मानुष	मनुष्य	**सर्ग संव्यूहं**	सृष्टिका विस्तार
देवानां	देवताओंका	**नः वद**	मुझे बतलाइये॥२७॥
सरीसृप	सरीसृप		

गुणावतारैर्विश्वस्य सर्गस्थित्यप्ययाश्रयम् ।
सृजतः श्रीनिवासस्य व्याचक्ष्वोदारविक्रमम् ॥२८॥

गुण अवतारः विश्वस्य सर्ग स्थिति अप्यय आश्रयं सृजतः श्रीनिवासस्य व्याचक्ष्व उदार विक्रमम् ॥२८॥

विश्वस्य	संसारकी	**स्थिति**	स्थिति
सर्ग	सृष्टि	**अप्यय**	प्रलयका

आश्रयं	आधार	श्रीनिवासस्य	भगवान् विष्णुके
गुणावतारः	गुणोंके आधारपर अवतार	उदार विक्रमं	उदार पराक्रमका
सृजतः	लेते	व्याचक्ष्व	वर्णन कीजिए ।२८।

वर्णाश्रमविभागांश्च रूपशीलस्वभावतः ।
ऋषीणां जन्मकर्मादि वेदस्य च विकर्षणम् ॥२९॥

वर्ण आश्रम विभागान् च रूपशील स्वभावतः ऋषीणां जन्म कर्मादि वेदस्य च विकर्षणम् ॥२९॥

रूप	वेश	ऋषीणां	ऋषियोंका
शील	आचरण तथा	जन्म कर्मादि	जन्म कर्म आदि (चरित)
स्वभावतः	स्वभावके भेदसे		
वर्ण आश्रम	वर्ण और आश्रमोंका	वेदस्य च	वेदका भी
विभागान् च	विभागोंको भी(कहें)	विकर्षणं	विभागीकरण॥२९॥

यज्ञस्य च वितानानि योगस्य च पथः प्रभो ।
नैष्कर्म्यस्य च सांख्यस्य तन्त्रं वा भगवत्स्मृतम् ॥३०॥

यज्ञस्य च वितानानि योगस्य च पथः प्रभो नेष्कर्म्यस्य च सांख्यस्य तन्त्रं वा भगवत् स्मृतम् ॥३०॥

प्रभो	प्रभो	सांख्यस्य वा	ज्ञानका (मार्ग) एवं
यज्ञस्य च	यज्ञोंका भी	भगवत् स्मृतं	भगवान्के द्वारा उपदिष्ट
वितानानि	विस्तार	तन्त्रं	पाञ्चरात्र आगम ॥३०॥
योगस्य च	योगका भी		
पथः	मार्ग		
नैष्कर्म्यस्य च	निष्कर्मता (निवृत्ति) का तथा		

पाखण्डपथवैषम्यं प्रतिलोमनिवेशनम् ।
जीवस्य गतयो याश्च यावतीर्गुणकर्मजाः ॥३१॥

पाखण्ड पथ वैषम्यं प्रतिलोम निवेशनं जीवस्य गतयः याः च यावतीः गुण कमजा ॥३१॥

पाखण्ड पथ	पाखण्ड मार्गोंके कारण
वैषम्यं	(होनेवाली) विषमता
प्रतिलोम	उच्च वर्णकी स्त्रीमें निम्न वर्णके पुरुषसे उत्पन्न लोगोंके
निवेशनं	प्रकार
गुण कर्मजा	गुणों और कर्मसे होनेवाली
जीवस्य	जीवकी
यावतीः	जितनी
याः च	और जो भी
गतयः	गतियाँ हैं ॥३१॥

धर्मार्थिकाममोक्षाणां निमित्तान्यविरोधतः ।
वार्तायां दण्डनीतेश्च श्रुतस्य च विधिं पृथक् ॥३२॥

धर्म अर्थ काम मोक्षाणां निमित्तानि अविरोधतः वार्तायां दण्डनीतिः च श्रुतस्य च विधिं पृथक् ॥३२॥

पृथक्	अलग अलग
धर्म	धर्म
अर्थ	धन
काम	भोग
मोक्षाणां	मोक्षकी (प्राप्तिके)
अविरोधतः	परस्पर अविरोधी
निमित्तानि	साधन
वार्तायां	वाणिज्यका
दण्डनीतेः च	दण्डनीतिकी तथा
श्रुतस्य	शास्त्र श्रवणकी
विधिं	विधि ॥३२॥

श्राद्धस्य च विधिं ब्रह्मन् पितृणां सर्गमेव च ।
ग्रहनक्षत्रतारााणां कालावयवसंस्थितिम् ॥३३॥

श्राद्धस्य च विधिं ब्रह्मन् पितृणां सर्गं एव च ग्रह नक्षत्र ताराणां काल अवयव संस्थितिम् ॥३३॥

श्राद्धस्य	श्राद्धकी
विधिं च	विधिको और
ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
पितृणां	पितरोंकी
सर्ग एव	सृष्टिका भी,
काल अवयव	काल चक्रमें
ग्रह नक्षत्र ताराणां	ग्रह, नक्षत्र, तारोंकी
संस्थितिम्	स्थितिका (वर्णन कीजिए) ॥३३॥

दानस्य तपसो वापि यच्चेष्टापूर्तयोः फलम् ।
प्रवासस्थस्य यो धर्मो यश्च पुंस उतापदि ॥३४॥

दानस्य तपसः वा अपि यत् इष्ट आपूर्तयोः फलं प्रवासस्थस्य यः धर्मः यः च पुंस उत आपदि ॥३४॥

दानस्य च	दानका तथा	**फलं**	फल है
तपसः अपि	तपस्याका भी	**प्रवासस्थस्य**	यात्रामें रहनेवालेका
यत् च	जो भी	**यः धर्मः**	जो धर्म है
इष्ट	देवार्चन निमित्त निर्माणका	**यः च**	जो भी
		आपदि उत	आपत्तिमें पड़े
आपूर्तयोः	समाजोपयोगी निर्माणका	**पुंस**	पुरुषका (धर्म) है ॥३४॥

येन वा भगवांस्तुष्येद्धर्मयोनिर्जनार्दनः ।
सम्प्रसीदति वा येषामेतदाख्याहि चानघ ॥३५॥

येन वा भगवान् तुष्येत् धर्मयोनिः जनार्दनः सम्प्रसीदति वा येषां एतत् आख्याहि च अनघ ॥३५॥

अनघ	निष्पाप (मैत्रेयजी)	**तुष्येत्**	सन्तुष्ट होते हैं
वा येन	तथा जिस (साधन)से	**वा येषां**	अथवा जिनपर
धर्मयोनिः	धर्मके मूलकारण	**सम्प्रसीदति**	प्रसन्न होते हैं
भगवान्	भगवान्	**एतत् च**	यह भी
जनार्दनः	जनार्दन	**आख्याहि**	वर्णन कीजिए ॥३५॥

अनुव्रतानां शिष्याणां पुत्राणां च द्विजोत्तम ।
अनापृष्टमपि ब्रूयुर्गुरवो दीनवत्सलाः ॥३६॥

अनुव्रताणां शिष्याणां पुत्राणां च द्विजोत्तम अनापृष्टं अपि ब्रूयूः गुरवः दीनवत्सलाः ॥३६॥

द्विजोत्तम	ब्राह्मण श्रेष्ठ !	**शिष्यानां च**	शिष्योंके तथा
दीनवत्सलाः	दीनोंपर स्नेह रखनेवाले	**पुत्राणां**	पुत्रोंके
		अनापृष्टं अपि	न पूछनेपर भी
गुरवः	गुरुजन	**ब्रूयूः**	बतलाते हैं ॥३६॥
अनुव्रतानां	अनुगामी		

तत्त्वानां भगवंस्तेषां कतिधा प्रतिसंक्रमः ।
तत्रेमं क उपासीरन् क उ स्विदनुशेरते ॥३७॥

तत्त्वानां भगवन् तेषां कतिधा प्रतिसंक्रमः तत्र इमं क उपासीरन् क उस्वित् अनुशेरते ॥३७॥

भगवन्	भगवन् !
तेषां तत्त्वानां	उन तत्त्वोंका
प्रतिसंक्रमः	प्रलय
कतिधा	कितने प्रकारका है
तत्र इमं	उनमें (योगनिद्रामें सोये भगवान्) की
क उपासरीन्	कौन उपासना करते हैं
उ क	तथा कौन
अनुशेरते	(उनमें) सो जाते (लीन होते)
स्वित्	हैं ॥३७॥

पुरुषस्य च संस्थानं स्वरूपं वा परस्य च ।
ज्ञानं च नैगमं यत्तद्गुरुशिष्यप्रयोजनम् ॥३८॥

पुरुषस्य च संस्थानं स्वरूपं वा परस्य च ज्ञानं च नैगमं यत् तत् गुरु शिष्य प्रयोजनम् ॥३८॥

पुरुषस्य च	जीवका तो
संस्थानं वा	तत्त्व तथा
परस्य च स्वरूपं	परमात्माका स्वरूप
नैगमं	श्रुति (उपनिषत्) प्रतिपादित
ज्ञानं च	ज्ञान तथा
गुरु-शिष्य	गुरु-शिष्यका
यत् तद्	जो भी (परस्पर)
प्रयोजनम्	प्रयोजन हैं ॥३८॥

निमित्तानि च तस्येह प्रोक्तान्यनघ सूरिभिः ।
स्वतो ज्ञानं कुतः पुंसां भक्तिर्वैराग्यमेव वा ॥३९॥

निमित्तानि च तस्य इह प्रोक्तानि अनघ सूरिभिः स्वतः ज्ञानं कुतः पुंसां भक्तिः वैराग्यं एव वा ॥३९॥

अनघ	निष्पाप मैत्रेयजी !
तस्य च	उस (साधन) के भी
निमित्तानि	निमित्त
इह	इस (संसार) में
सूरिभिः	विद्वानोंने
प्रोक्तानि	बतलाये हैं
पुंसां	पुरुषोंको
स्वतः	(अन्यथा) अपने आप
ज्ञानं	ज्ञान
भक्तिः वा	भक्ति अथवा
वैराग्य एव	वैराग्य ही
कुतः	कैसे हो सकता है ॥३९॥

एतान्मे पृच्छतः प्रश्नान् हरेः कर्मबिवित्सया ।
ब्रूहि मेऽज्ञस्य मित्रत्वादजया नष्टचक्षुषः ॥४०॥

एतान् मे पृच्छतः प्रश्नान् हरेः कर्म विवित्सया ब्रूहि मे अज्ञस्य मित्रत्वान् अजया नष्ट चक्षुषः ॥४०॥

अजया	मायासे	**पृच्छतः**	पूछे गये
नष्ट चक्षुषा	विचार दृष्टि लुप्त हुए	**एतान् मे**	इतने मेरे
मे अज्ञस्य	मुझ अज्ञानीसे	**प्रश्नान्**	प्रश्नोंको
हरेः	श्रीहरिकी	**मित्रत्वात्**	(मरे) सुहृद होनेके कारण
कर्म	लीलाको		
विवित्सया	जाननेकी इच्छासे	**ब्रूहि**	बतलाइये ॥४०॥

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ ।
जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ॥४१॥

सर्वे वेदाः च यज्ञाः च तपः दानानि च अनघ जीव अभय प्रदानस्य न कुर्वीरन् कलां अपि ॥४१॥

अनघ	अनघ !	**जीव**	जीवको
सर्वे वेदाः च	सब वेद भी	**अभय प्रदानस्य**	अभय देनेके
यज्ञाः च	(सब) यज्ञ भी	**कलां अपि**	एक अंशकी भी
तपः	तपस्या	**न कुर्वीरन्**	(समता) नहीं कर सकते ॥४१॥
दानानि च	(सब) दान भी		

श्रीशुक उवाच-

स इत्थमापृष्टपुराणकल्पः
कुरुप्रधानेन मुनिप्रधानः ।
प्रवृद्धहर्षो भगवत्कथायां
सञ्चोदितस्तं प्रहसन्निवाह ॥४२॥

स इत्थं आपृष्ट पुराण कल्पः कुरु प्रधानेन मुनिप्रधानः प्रवृद्ध हर्षः भगवत् कथायां सञ्चोदितः तं प्रहसन् इव आह ॥४२॥

इत्थं	इस प्रकार
कुरु प्रधानेन	कुरुश्रेष्ठ (विदुर) के
पुराण कल्पः	पुराण विषयक
आपृष्ट	प्रश्न करनेपर
स मुनिप्रधानः	वे मुनियोंमें श्रेष्ठ
भगवत् कथायां	भगवान्‌की कथाके लिए
संचोदितः	प्रेरित किये जानेपर
प्रवृद्धहर्षः	बढ़े हुए हर्षसे
प्रहसन् इव	हँसते हुएसे
तं आह	उन (विदुर) से बोले ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ।

अथ अष्टमोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

सत्सेवनीयो बत पूरुवंशो
यल्लोकपालो भगवत्प्रधानः ।
बभूविथेहाजितकीर्तिमालां
पदे पदे नूतनयस्यभीक्ष्णम् ॥१॥

सत् सेवनीयः बत पूरुवंशः यत् लोकपालः भगवत् प्रधानः बभूव इथ इह अजित कीर्तिमालां पदे पदे नूतनयस्य अभीक्ष्णम् ॥१॥

बत	निश्चय	**इथ**	इस (वंश) में
पूरुवंशः	पुरुवंश	**बभूव**	उत्पन्न हुए
सत् सेवनीयः	साधु पुरुषोंसे सेवनीय है		(जो आप)
		अभीक्ष्णं	निरन्तर
यत्	क्योंकि	**अजित कीर्तिमालां**	भगवान् अजितकी कीर्तिमालाको
भगवत् प्रधानः	भगवद् भक्तोंमें प्रधान	**पदे पदे**	पद पदपर
		नूतनयस्य	नवीन बना रहे
लोकपालः	लोकपाल (धर्मराज)		हैं ॥१॥
इह	इस (संसार) में		

सोऽहं नृणां क्षुल्लसुखाय दुःखं
महद्गतानां विरमाय तस्य ।
प्रवर्तये भागवतं पुराणं
यदाह साक्षाद्भगवानृषिभ्यः ॥२॥

सो अहं नृणां क्षुल्ल सुखाय दुःखं महद् गतानां विरमाय तस्य प्रवर्तये भागवतं पुराणं यत् आह साक्षात् भगवान् ऋषिभ्यः ॥२॥

क्षुल्ल सुखाय	तुच्छ सुखके लिए
महद्	महान
दुःखं	दुःखमें
गतानां	पड़े
नृणां	मनुष्योंके
तस्य	उन (दुःखों) को
विरमाय	रोकनेके लिए
स अहं	वह मैं
भागवतं पुराणं	भागवत पुराणको
प्रवर्तये	प्रारम्भ करता हूँ
यत्	जिसे
साक्षात् भगवान्	साक्षात् भगवान्ने
ऋषिभ्यः	ऋषियोंसे
आह	कहा है ॥२॥

आसीनमुर्व्यां भगवन्तमाद्यं
सङ्कर्षणं देवमकुण्ठसत्त्वम् ।
विवित्सवस्तत्त्वमतः परस्य
कुमारमुख्या मुनयोऽन्वपृच्छन् ॥३॥

आसीनं उर्व्यां भगवन्तं आद्यं सङ्कर्षणं देवं अकुण्ठ सत्त्वं विवित्सवः तत्त्वं अतः परस्य कुमार मुख्या मुनयः अन्वपृच्छन् ॥३॥

अकुण्ठ सत्त्वं	अखण्ड ज्ञान सम्पन्न
आद्यं	आदि पुरुष
भगवन्तं	भगवान्
सङ्कर्षणं देवं	संकर्षण देव
उर्व्यां	पृथ्वी (पाताल) में
आसीनं	विराजमानसे
परस्य	परमात्माके
तत्त्वं	तत्त्वको
विवित्सवः	जानना चाहते थे
अतः कुमारमुख्या	अतः सनत्कुमार प्रमुख
मुनयः	मुनियोंने
अन्वपृच्छन्	पूछा ॥३॥

स्वमेव धिष्ण्यं बहु मानयन्तं
यं वासुदेवाभिधमामनन्ति ।
प्रत्यग्धृताक्षाम्बुजकोशमीष-
दुन्मीलयन्तं विबुधोदयाय ॥४॥

स्वं एव धिष्ण्यं बहु मानयन्तं यं वासुदेव अभिधं आमनन्ति प्रत्यक् धृत अक्ष अम्बुज कोशंईषत् उन्मीलन्तं विबुध उदयाय ॥४॥

स्वं एव	अपने ही
धिष्ण्यं यं	स्वरूपकी जिसे
वासुदेव अभिधं	वासुदेवके नामसे
आमनन्ति	शास्त्र बतलाते हैं

बहु मानयन्तं	बहुत सम्मान देते (पूजा करते)	**विबुध**	देवता (सनकादि मुनियों) को
प्रत्यक् धृत	बन्द किये हुए	**उदयाय**	प्रसन्न करनेके लिए,
अक्ष अम्बुजकोश	कमलकोश जैसे नेत्रोंको	**ईषत्**	थोड़ा
		उन्मीलयन्तं	खोलते हुए ॥४॥

स्वधुन्युदाद्रः स्वजटाकलाप-
रुपस्पृशन्तश्चरणोपधानम् ।
पद्मं यदर्चन्त्यहिराजकन्याः
सप्रेम नानाबलिभिर्वरार्थाः ॥५॥

स्वर्धुनिउद् आर्द्रैः स्वजटा कलापैः उपस्पृशन्तः चरण उपधानं पद्मं यत् अर्चन्ति अहिराज कन्याः सप्रेम नाना बलिभिः वर अर्थाः ॥५॥

स्वर्धुनि	(सनकादिने) मन्दाकिनीके	**यत्**	जिस (पादपीठ) की
उद् आद्रैः	जलसे गीली	**अहिराज कन्याः**	नागराज कुमारियाँ
स्वजटा कलापैः	अपने जटा मण्डलसे	**वर अर्थाः**	वरदान पानेकी इच्छासे
चरणोपधानं	पादपीठके	**नाना बलिभिः**	अनेक उपहारोंसे
पद्मं	कमलका	**सप्रेम**	प्रेम सहित
उप स्पृशन्तः	स्पर्श करते हुए (पूछा)	**अर्चन्ति**	पूजा करती हैं ॥५॥

मुहुर्गृणन्तो वचसानुराग-
स्खलत्पदेनास्य कृतानि तज्ज्ञाः ।
किरीटसाहस्रमणिप्रवेक-
प्रद्योतितोद्दामफणासहस्रम् ॥६॥

मुहुः गृणन्तः वचसा अनुराग स्खलत् पदेन अस्य कृतानि तज्ज्ञाः किरीट साहस्र मणि प्रवेक प्रद्योतित उद्दाम फणा सहस्रम् ॥६॥

सहस्रं फणा	सहस्र फण	**साहस्र**	सहस्र
उद्दाम	उठाये हुए	**किरीट**	मुकुटोंमें

मणि प्रवेक	जड़ी मणियोंके प्रकाशसे
प्रद्योतित	प्रकाशित हो रहे हैं (ऐसे)
अस्य	इन (शेष भगवान)के
कृतानि	कर्मोंको
तज्ज्ञाः	जाननेवाले (सनकादि)
अनुराग	प्रेमसे
स्खलत् पदेन	गद्गद्
वचसा	वाणीसे
मुहुः	बार बार
गृणन्तः	स्तवन कर रहे थे ॥६॥

प्रोक्तं किलैतद्भगवत्तमेन
निवृत्तिधर्माभिरताय तेन ।
सनत्कुमाराय स चाह पृष्टः
सांख्यायनायाङ्ग धृतव्रताय ॥७॥

प्रोक्तं किल एतत् भगवत्तमेन निवृत्ति धर्म अभिरताय तेन सनत्कुमाराय स च आह पृष्टः सांख्यायनाय अङ्ग धृतव्रताय ॥७॥

तेन	उन
भगत्तमेन	अतिशय ऐश्वर्यवान् भगवान शेषने
निवृत्ति धर्म	निवृत्ति धर्म
अभिरताय	निरत
सनत्कुमाराय	सनत्कुमारसे
किल एतत्	निश्चय यह (भागवत)
प्रोक्तं	कहा
अंग	प्रिय (विदुर)
स च	उन्होंने भी
पृष्टः	पूछनेपर
धृतव्रताय	व्रतनिष्ठ
सांख्यायनाय	सांख्यायनसे
आह	कहा ॥७॥

सांख्यायनः पारमहंस्यमुख्यो
विवक्षमाणो भगवद्विभूतीः ।
जगाद सोऽस्मद्गुरवेऽन्विताय
पराशरायाथ बृहस्पतेश्च ॥८॥

सांख्यायनः पारमहंस्य मुख्यः विवक्षमाणः भगवद् विभूतिः जगाद सः अस्मत् गुरवे अन्विताय पराशराय अथ बृहस्पतेः च ॥८॥

पारमहंस्य मुख्यः	परमहंस प्रमुख
सांख्यायनः	सांख्यायनजीने
भगवद् विभूतिः	भगवान्‌की विभूतियोंका
दिवक्षमाणः	वर्णन करनेकी इच्छा होनेपर
अन्विताय	अपने अनुगत
अस्मत् गुरवे	मेरे गुरु
पराशराय अथ	पराशरजीको तथा
बृहस्पतेः च	बृहस्पतिजीको भी
जगाद	सुनाया ॥८॥

प्रोवाच मह्यं स दयालुरुक्तो
मुनिः पुलस्त्येन पुराणमाद्यम् ।
सोऽहं तवैतत्कथयामि वत्स
श्रद्धालवे नित्यमनुव्रताय ॥९॥

प्रोवाच मह्यं स दयालुः उक्तः मुनिः पुलस्त्येन पुराणं आद्यं सः अहं तव एतत् कथयामि वत्स श्रद्धालवे नित्यं अनुव्रताय ॥९॥

स दयालुः	उन दयालु (पराशर)
मुनिः	मुनिने
पुलस्त्येन	पुलस्त्यजीके
उक्तः	कहनेपर
मह्यं	मुझसे
आद्यं पुराणं	(यह) आदि पुराण
प्रोवाच	सुनाया
वत्स	वत्स !
सः अहं	वही मैं
एतत् ते	यह (पुराण) तुम्हें
श्रद्धाल वे	श्रद्धालु
नित्यं अनुव्रताय	नित्य अनुगतसे
कथयामि	कहता हूँ ॥९॥

उदाप्लुतं विश्वमिदं तदाऽऽसीद्
यन्निद्रयामीलितदृङ् न्यमीलयत् ।
अहीन्द्रतल्पेऽधिशयान एकः
कृतक्षणः स्वात्मरतौ निरीहः ॥१०॥

उद् आप्लुतं विश्वं इदं तदा आसीत् यत् निद्रया अमीलित दृक् न्यमीलयत् अहीन्द्रतल्पे अधिशयान् एकः कृतक्षणः स्वात्मरतौ निरीहः ॥१०॥

तदा	उस समय
इदं विश्वं	यह विश्व
उद् आप्लुतं	जलमें डूबा हुआ
आसीत्	था

यत्	जिस समय
अहीन्द्रतल्पे	शेष शय्यापर
कृतक्षणः	विश्राम करते
अधिशयान	लेटे हुए
एकः	अकेले
स्वात्मरतौ	आत्मानन्दमें मग्न
निरीहः	इच्छाहीन (भगवान) ने
अमीलित दृक्	नित्य जागरूक ज्ञान दृष्टि
निद्रया	योगनिद्रासे
न्यमीलयत	(नेत्र) बन्द कर लिये ॥१०॥

सोऽन्तःशरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्मः
कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाणः ।
उवास तस्मिन् सलिले पदे स्वे
यथानलो दारुणि रुद्धवीर्यः ॥११॥

सः अन्तः शरीरे अर्पित भूतसूक्ष्मः कालात्मिकां शक्तिं उदीरयाणः उवास तस्मिन् सलिले पदे स्वे यथा अनलः दारुणि रुद्ध वीर्यः ॥११॥

यथा दारुणि	जैसे लकड़ीमें
अनलः	अग्नि
रुद्ध वीर्यः	अपने (दाहकादि) पराक्रमको छिपाये रहता है (वैसे ही)
भूत सूक्ष्मः	सब प्राणियोंके सूक्ष्म शरीरोंको
अन्तः शरीरे	अपने शरीरके भीतर
अर्पित	लेकर
कालात्मिकां	काल स्वरूपिणीं
शक्तिं	शक्तिको
उदीरयाणः	जगानेके लिए रखकर
सः तस्मिन्	उन (भगवान) ने उस
सलिले	(कारण) जलमें
स्वे पदे	अपने धाममें
उवास	शयन किया ॥११॥

चतुर्युगानां च सहस्रमप्सु
स्वपन् स्वयोदीरितया स्वशक्त्या ।
कालाख्ययाऽऽसादितकर्मतन्त्रो
लोकानपीतान्ददृशे स्वदेहे ॥१२॥

चतुर्युगानां च सहस्रं अप्सु स्वपन् स्वया उदीरतया स्वशक्तया कालाख्यया आसादित कर्मतन्त्रः लोकान् अपीतान् ददृशे स्वदेहे ॥१२॥

स्वया	अपनी शक्तिके साथ	**आसादित**	(उन्हें) देने के लिए
चतुर्युगानां		**उदीरतया**	जगाये जानेपर
च सहस्रं	सहस्र चतुर्यगी तक	**अपीतान्**	अनन्त
अप्सु	जलमें	**लोकान्**	लोकोंको
स्वपन्	सोते हुए	**स्वदेहे**	अपने शरीरमें
कालाख्यया	काल नामक	**ददृशे**	देखा ॥१२॥
स्वशक्तया	अपनी शक्ति द्वारा		
कर्म तन्त्रः	(जीवोंके) कर्म विस्तारको		

तस्यार्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टे-
रन्तर्गतोऽर्थो रजसा तनीयान् ।
गुणेन कालानुगतेन विद्धः
सूष्यंस्तदाभिद्यत नाभिदेशात् ॥१३॥

तस्य अर्थं सूक्ष्म अभिनिष्ट दृष्टेः अन्तः गतः अथः रजसा तनीयान् गुणेन काल अतुगतेन विद्धः सूष्यन् तदा अभिद्यत नाभि देशात् ॥१३॥

तस्य	उन (भगवान) की	**तनीयान्**	क्षुभित होकर
अन्तः गतः	अपने भीतर स्थित	**विद्ध**	प्रभावित हुआ
अर्थं सूक्ष्म	सूक्ष्म शरीरोंपर	**सूष्यन्**	सूखते हुए
अभिनिविष्ट दृष्टेः	दृष्टि लग गयी	**नाभि देशात्**	नाभि स्थानसे
तदा	उस समय	**अर्थः**	वह सूक्ष्म शरीरोंका
काल अनुगतेन	कालानुगत		तत्त्व
रजसा गुणेन	रजोगुणसे	**अभिद्यत**	प्रकट हुआ ॥१३॥

स पद्मकोशः सहसोदतिष्ठत्
कालेन कर्मप्रतिबोधनेन ।
स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं
विद्योतयन्नर्क इवात्मयोनिः ॥१४॥

स पद्मकोशः सहसा उद् अतिष्ठत् कालेन कर्म प्रतिबोधनेन स्वरोचिषा तत् सलिलं विशालं विद्योतयन् अर्क इव आत्मयोनिः ॥१४॥

कर्म प्रतिबोधनेन	कर्म शक्तिको जागृत करनेवाले		हुआ
		स्वरोचिषा	अपनी कान्तिसे
कालेन	कालके द्वारा	**अर्क इव**	सूर्यके समान
स	वह (नाभिसे उत्पन्न तत्त्व)	**तत् सलिलं**	
		विशालं	उस विस्तृत जलको
पद्मकोशः	कमलकोशके रूपमें	**विद्योतयन्**	प्रकाशित कर रहा
सहसा	अचानक		था ॥१४॥
उद् तिष्ठत्	जलके ऊपर आया		
आत्मयोनिः	(वह) स्वयं उत्पन्न		

तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः
प्राविशत्सर्वगुणावभासम् ।
तस्मिन् स्वयं वेदमयो विधाता
स्वयम्भुवं यं स्म वदन्ति सोऽभूत् ॥१५॥

तत् लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्राविशत् सर्व गुण अवभासं तस्मिन् स्वयं वेदमयः विधाता स्वयं भुवं यं स्म वदन्ति सः अभूत् ॥१५॥

तत् लोकपद्मं	उस लोकमय कमलमें	**तस्मिन् यं**	उस (कमल) से जिन्हें
सर्व गुण	समस्त गुणोंको	**स्वयं भुवं**	स्वयम्भू
अवभासं	प्रकाशित करनेवाले	**वदन्ति स्म**	कहते हैं
स उ एव	उन्हीं	**सः स्वयं**	वे स्वयं
विष्णुः	विष्णु (भगवान्) ने	**वेदमयः**	वेदमय
प्राविशत्	(अन्तर्यामी होकर) प्रवेश किया	**विधाता**	सृष्टिकर्ता
		अभूत्	उत्पन्न हुए ॥१५॥

तस्यां स चाम्भोरुहकर्णिकाया-
मवस्थितो लोकमपश्यमानः ।

परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्तनेत्र-
श्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि ॥१६॥

तस्यां स च अम्भोरुह कर्णिकायां अवस्थितः लोकं अपश्यमानः परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्त नेत्रः चत्वरि लेभे अनुदिशं मुखानि ॥१६॥

स तस्यां	(ब्रह्माजी) उस	**व्योम्नि**	आकाशमें
अम्भोरुह		**चत्वारि दिशं**	चारों दिशाओंमें
कर्णिकायां	कमलकी कर्णिकापर	**परिक्रमन्**	घूमते हुए
अवस्थितः	बैठे हुए	**अनुदिशं**	प्रत्येक दिशामें
लोकं	लोकोंको		(एक एक)
अपश्यमानः	न देखकर	**चत्वारि मुखानि**	चार मुख
विवृत्त नेत्रः	आँखें फैलाये	**लेभे**	पालिए ॥१६॥

तस्माद्युगान्तश्वसनावघूर्ण-
जलोर्मिचक्रात्सलिलाद्विरूढम् ।
उपाश्रितः कञ्जमु लोकतत्त्वं
नात्मानमद्धाविददादिदेवः ॥१७॥

तस्मात् युगान्त श्वसन अवघूर्ण जल ऊर्मि चक्रात् सलिलात् विरूढं उपाश्रितः कञ्जमु लोकतत्त्वं नात्मानं अद्धा अविदत् आदिदेवः ॥१७॥

युगान्त श्वसन्	प्रलयकालीन वायुसे	**कञ्जमु**	कमलपर
अवघूर्ण	घूमते	**उपाश्रितः**	बैठे हुए
जल उर्मि चक्रात्	जल उर्मिचक्र	**आदिदेवः**	आदिदेव(ब्रह्माजी)ने
	(घूमते जलके	**लोकतत्त्वं**	लोकका तत्त्व
	समुद्रीय ववण्डर)		(तथा)
	पर	**आत्मानं**	अपनेको (भी)
विरूढं	स्थित	**अद्धा न**	भली प्रकार नहीं
तस्मात्	उस	**अविदत्**	जाना ॥१७॥

क एष योऽसावहमब्जपृष्ठ
एतत्कुतो वाब्जमनन्यदप्सु ।

अस्ति ह्यधस्तादिह किञ्चनैत-
दधिष्ठितं यत्र सता नु भाव्यम् ॥१८॥

क एष यः असा अहं अब्ज पृष्ठ एतत् कुतः वा अब्जं अनन्यत् अप्सु अस्ति हि अधः तात् इह किञ्चन एतत् अधिष्ठितं यत्र सता नु भाव्यम् ॥१८॥

यः अब्ज पृष्ठ	जो कमलपर (बैठा)	**हि इह**	क्योंकि इसके
असा अहं	यह मैं (हूँ)	**अधस्तात्**	नीचे
एष क	यह कौन है ?	**किञ्चन एतत्**	कुछ इसका
वा	तथा	**अधिष्ठितं**	आधार
अनन्यत् अप्सु	जहाँ पानीके अति-रिक्त कुछ नहीं है	**यत्र नु**	वहाँ निश्चय
		सता यत्र	स्थिर वस्तु वहाँ
एतत् अब्जं	यह कमल	**भाव्यं अस्ति**	लगती है ॥१८॥
कुतः	कहाँसे आ गया		

स इत्थमुद्वीक्ष्य तदब्जनाल-
नाडीभिरन्तर्जलमाविवेश ।
नार्वाग्गतस्तत्खरनालनाल-
नाभिं विचिन्वंस्तदविन्दताजः ॥१९॥

स इत्थं उद्वीक्ष्य तत् अब्जनाल नाडीभिः अन्तः जलं आविवेश न अर्वाक् गतः तत् खरनाल नालनाभिं विचिन्वन् तत् अविन्दत अजः ॥१९॥

स इत्थं	उन (ब्रह्माजी) ने इस प्रकार	**आविवेश**	प्रवेश करने लगे
		अर्वागतः	नीचे जाते हुए
उद्वीक्ष्य	विचार करके	**तत् खरनाल**	
तत्	उस	**नालनाभिं**	उस कमल नालके मूलको
अब्जनाल			
नाडीभिः	उस कमलनालकी नाड़ी (छिद्र) से	**विचिन्वन् तत्**	ढूँढ़ते हुए उसे
		अजः न	ब्रह्माजी नहीं
अन्तः जलं	जलके भीतर	**अविन्दत**	जान सके ॥१९॥

तमस्यपारे विदुरात्मसर्गं
विचिन्वतोऽभूत्सुमहांस्त्रिणेमिः ।
यो देहभाजां भयमीरयाणः
परिक्षिणोत्यायुरजस्य हेतिः ॥२०॥

तमसि अपारे विदुर आत्मसर्गं विचिन्वतः अभूत् सुमहान् त्रिणेमिः यः देहभाजां भयं ईरयाणः परिक्षिणोति आयु अजस्य हेतिः ॥२०॥

विदुर	विदुर !
अपारे	(उस) अपार
तमसि	अन्धकारमें
आत्मसर्गं	अपनी उत्पत्ति स्थानको
विचिन्वतः	ढूँढ़ते हुए
सुमहान्	बहुत अधिक
त्रिणेमिः	काल
अभूत्	बीत गया
यः देहभाजां	जो शरीरधारियोंको
भयं ईरयाणः	भय देता हुआ
अजस्य हेतिः	भगवान्‌का चक्र
आयुः	(उनकी) आयुको
परिक्षिणोति	क्षीण करता रहता है ॥२०॥

ततो निवृत्तोऽप्रतिलब्धकामः
स्वधिष्ण्यमासाद्य पुनः स देवः ।
शनैर्जितश्वासनिवृत्तचित्तो
न्यषीददारूढसमाधियोगः ॥२१॥

ततः निवृत्तः अप्रतिलब्ध कामः स्वधिष्ण्यं आसाद्य पुनः स देवः शनैः जित श्वास निवृत्त चित्तः न्यसीदत् आरूढ समाधि योगः ॥२१॥

ततः	तब
अप्रतिलब्ध कामः	विफल मनोरथ होकर
निवृत्तः पुनः	लौटकर फिर
स देवः	उन देवता (ब्रह्माजी) ने
स्वधिष्ण्यं	अपने स्थान (कमलपर)
आसाद्य	बैठकर
शनैः	धीरे-धीरे
जित श्वास	प्राण वायुको जीतकर
निवृत्त चित्तः	चित्तको (संकल्पहीन) स्थिर करके
आरूढ समाधि योगः	योगकी समाधिमें पहुँचकर
न्यषीदत्	स्थिर हो गये ॥२१॥

कालेन सोऽजः पुरुषायुषाभि-
प्रवृत्तयोगेन विरूढबोधः ।
स्वयं तदन्तर्हृदयेऽवभात-
मपश्यतापश्यत यन्न पूर्वम् ॥२२॥

कालेन सः अजः पुरुष आयुषाभिः प्रवृत्त योगेन विरूढबोधः स्वयं तत् अन्तः हृदये अवभातं अपश्यता पश्यत यत् न पूर्वम् ॥२२॥

सः अजः	उन ब्रह्माजीको	**तत् अन्तः हृदये**	उनके हृदयके भीतर
पुरुष आयुषाभिः	पुरुषकी आयु जितने (सौ वर्ष)	**स्वयं**	स्वयं
		अवभातं	प्रकाशित होते
कालेन	समय तक	**यत् पूर्वं**	जिसे पहिले
प्रवृत्त योगेन	योगाभ्यास करनेपर	**न अपश्यत**	नहीं देखा था (उसे)
विरूढ बोधः	ज्ञान प्राप्त हुआ (तब)	**अपश्यत**	देखा ॥२२॥

मृणालगौरायतशेषभोग-
पर्यङ्क एकं पुरुषं शयानम् ॥
फणातपत्रायुतमूर्धरत्न-
द्युभिर्हतध्वान्तयुगान्ततोये ॥२३॥

मृडाल गौर आयत शेष भोग पर्यङ्क एकं पुरुषं शयानं फण आतपत्र अयुत मूर्धरत्न द्युतिभिः हत ध्वान्त युगान्त तोये ॥२३॥

मृडाल गौर	कमल तन्तुके समान श्वेत	**अयुत फण आतपत्र**	सहस्र फणोंका छत्र (उन)
आयत	विस्तृत		
शेष भोग	शेषनागके शरीररूपी	**मूर्धरत्न**	फणोंमें लगी मणियोंके
		द्युभिः	प्रकाशसे
पर्यङ्क	शैय्यापर	**युगान्त तोये**	प्रलय समुद्रका
एकं पुरुषं	अकेले पुरुषको	**ध्वान्त हत**	अन्धकार नष्ट हो गया है ॥२३॥
शयानं	लेटे हुए,		

प्रेक्षां क्षिपन्तं हरितोपलाद्रेः
सन्ध्याभ्रनीवेरुरुरुक्ममूर्ध्नः ।
रत्नोदधारौषधिसौमनस्य-
वनस्रजो वेणुभुजाङ्घ्रिपाङ्घ्रेः ॥२४॥

प्रेक्षां क्षिपन्तं हरित उत्पल अद्रेः सन्ध्या अभ्रनि इव उरु रुक्म मूर्ध्नः रत्नः दधार औषधि सौमनस्य वनस्रजः वेणु भुज अङ्घ्रिप अङ्घ्रेः ॥२४॥

हरित उत्पल अद्रेः	मरकत मणिके पर्वतकी	**दधार**	धारण किये हैं
प्रेक्षां क्षिपन्तं	शोभाको (अपने श्यामांगकी शोभासे) लज्जित करते	**औषधि**	औषधियों (तुलसी एवं)
सन्ध्या अभ्रनि इव	सन्ध्याकालीन घटाके समान	**सौमनस्य वन्य स्रजः**	पुष्पोंकी वनमाला है
उरु रुक्म रत्नः	बहुमूल्य स्वर्णका रत्नोंसे जड़ा	**वेणु**	बाँसोंके समान (लम्बी)
मूर्ध्नः	(मुकुट) सिरपर	**भुजा अंघ्रिप अङ्घ्रेः**	भुजायें हैं, वृक्षोंके समान चरण हैं ॥२४॥

आयामतो विस्तरतः स्वमान-
देहेन लोकत्रयसंग्रहेण ।
विचित्रदिव्याभरणांशुकानां
कृतश्रियापाश्रितवेषदेहम् ॥२५॥

आयामतः विस्तरतः स्वमान देहेन लोकत्रय संग्रहेण विचित्र दिव्य आभरणं अंशुकानां कृतश्रिया उपासित वेष देहम् ॥२५॥

स्वमान आयामतः	अपने परिमाणसे सात वित्तेका	**संग्रहेण**	(अपनेमें) समाहित किये हैं,
विस्तरतः	विस्तारवाला	**विचित्र**	अद्भुत
लोकत्रय	तीनों लोकोंको	**दिव्य**	दिव्य

आभरण	आभूषण	उपासित वेष	उपासना योग्य वेशवाला
अंशुकानां	वस्त्रोंसे		
कृत श्रिया	सुशोभित	देहं	(वह) शरीर है ॥२५॥

पुंसां स्वकामाय विविक्तमार्गै-
रभ्यर्चतां कामदुघाङ्घ्रिपद्मम् ।
प्रदर्शयन्तं कृपया नखेन्दु-
मयूखभिन्नाङ्गुलिचारुपत्रम् ॥२६॥

पुंसां स्वकामाय विविक्त मार्गैः अभ्यर्चतां कामदुघा अङ्घ्रि पद्मं प्रदर्शयन्तं कृपया नख इन्दु मयूख भिन्न अंगुलि चारु पत्रम् ॥२६॥

स्वकामाय	अपनी कामनाओंकी पूर्तिके लिए	कामदुघा	कामधेनुके समान
बिविक्त मार्गैः	विभिन्न मार्गों (साधनों) से	नख इन्दु	नख चन्द्रकी
		मयूख भिन्न	किरणोंसे पृथक-पृथक
अभ्यर्चतां	अचर्ना करनेवाले	अंगुलि	अंगुलियों रूपी
पुंसां	पुरुषोंको	चारुपत्रं	पत्रोंसे सुशोभित
कृपया	कृपापूर्वक	अंघ्रि पद्मं	चरण-कमलोंको
		प्रदर्शयन्तं	दिखलाते हुए ॥२६॥

विशेष—

भगवान् ऐसे लेटे हैं मानो अपने फैले चरणोंको दिखला रहे हैं कि उपासकोंको इनका आश्रय लेना चाहिए।

मुखेन लोकार्तिहरस्मितेन
परिस्फुरत्कुण्डलमण्डितेन ।
शोणायितेनाधरबिम्बभासा
प्रत्यर्हयन्त सुनसेन सुभ्रुवा ॥२७॥

मुखेन लोक आर्ति हरस्मितेन परिस्फुरत् कुण्डल मण्डितेन शोणायितेन अधरबिम्ब भासा प्रत्यर्हयन्तं सुनसेन सुभ्रुवा ॥२७॥

लोक आर्ति	लोगोंकी विपत्ति	**शोणयितेन**	अरुणाभ हुए
हरस्मितेन	हारी मुस्कानसे युक्त	**सुनसेन**	सुन्दर नासिकासे
परिस्फुरत्	चमकते हुए	**सुभ्रुवा**	सुन्दर भौंहोंसे युक्त
कुण्डल मण्डितेन	कुण्डलोंसे भूषित	**मुखेन**	मुखसे
अधर बिम्बभासा	बिम्बा फल जैसे ओष्ठोंकी कान्तिसे	**प्रत्यर्हयन्तं**	अभिनन्दन करते हुए ॥२७॥

कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससा
स्वलंकृतं मेखलया नितम्बे ।
हारेण चानन्तधनेन वत्स
श्रीवत्सवक्षःस्थलवल्लभेन ॥२८॥

कदम्ब किञ्जल्क पिशङ्ग वाससा स्वलंकृतं मेखलया नितम्बे हारेण च अनन्त धनेन वत्स श्रीवत्स वक्षस्थल वल्लभेन ॥२८॥

वत्स	वत्स !	**हारेण च**	हारसे तथा
कदम्ब किञ्जल्क	कदम्ब पुष्प परागके समान	**वक्षस्थल**	वक्षस्थलपर
		वल्लभेन	लक्ष्मी स्वरूप
पिशङ्ग वाससा	पीले वस्त्रसे	**श्रीवत्स**	श्रीवत्स चिह्नसे
नितम्बे	नितम्बपर	**स्वलंकृतं**	भली प्रकार अलंकृत हैं ॥२८॥
मेखलया	करधनीसे		
अनन्त धनेन	अमूल्य		

परार्ध्यकेयूरमणिप्रवेक-
पर्यस्तदोर्दण्डसहस्रशाखम् ।
अव्यक्तमूलं भुवनाङ्घ्रिपेन्द्र-
महीन्द्रभोगैरधिवीतवल्शम् ॥२९॥

परार्ध्य केयूर मणि प्रवेक पर्यस्त दोर्दण्ड सहस्र शाखं अव्यक्त मूलं भुवन अङ्घ्रिपेन्द्रं अहीन्द्र भोगैः अधिवीत वल्शम् ॥२९॥

भुवन	संसारमें
अव्यक्त मूलं	अव्यक्त मूल*
अङ्घ्रिपेन्द्रं	वृक्षराज चन्दनके समान हैं
परार्ध्य	महामूल्य
मणिप्रवेक	मणि जटित
केयूर	वाजूबन्दसे(शोभित)
पर्यस्त	विशाल
दोःदण्ड	धुजायें (मानो)
सहस्र शाखं	(उस वृक्षकी) सहस्रों शाखायें हैं
अहीन्द्र भोगैः	शेष नागके भोगसे
अधिवीत	घिरे हुए
वल्शं	कन्धोंवाले (जैसे चन्दनकी डालियों– स्कन्धोंमें सर्प लिपटे हों) ॥२९॥

चराचरौको भगवन्महीध्र-
महीन्द्रबन्धुं सलिलोपगूढम् ।
किरीटसाहस्रहिरण्यशृङ्ग-
माविर्भवत्कौस्तुभरत्नगर्भम् ॥३०॥

चर अचर ओकः भगवन् महीध्रं अहीन्द्र बन्धुं सलिल उपगूढं किरीट साहस्र हिरण्य शृङ्गं आविर्भवत् कौस्तुभ रत्न गर्सम् ॥३०॥

अहीन्द्र बन्धुं	नागराज शेषके बन्धु (वे)
सलिल उपगूढं	जलमें छिपे हुए
भगवन्	भगवान् (नारायण)
महीध्र	पर्वत (के समान लगते) हैं
चर अचर ओकः	चर-अचरके निवास
किरीट साहस्र	(शेषके फणोंपर) सहस्र मुकुट
हिरण्य शृङ्ग	स्वर्ण शिखरों जैसे हैं
गर्भं	गर्भ (खादान) से
आविर्भवत्	प्रकट हुआ
रत्न	रत्न
कौस्तुभ	कौस्तुभ मणि है ॥३०॥

निवीतमाम्नायमधुव्रतश्रिया
स्वकीर्तिमय्या वनमालया हरिम् ।

---

* चन्दन पृथ्वीमें अपनी जड़से रस लेने वाला वृक्ष नहीं है। उसकी जड़ें दूसरे वृक्षकी जड़से रस लेती हैं।

सूर्येन्दुवाय्वग्न्यगमं त्रिधामभिः
परिक्रमत्प्राधनिकैर्दुरासदम् ॥३१॥

निवीतं आम्नाय मधुव्रत श्रिया स्वकीर्ति मय्या वनमालया हरिं सूर्य इन्दु वायु अग्नि अगमं त्रिधामभिः परिक्रमत् प्राधनिकैः दुरासदम् ॥३१॥

आम्नाय	वेद (रूपी)	**अग्नि**	अग्निसे
मधुव्रत	भ्रमरोंकी	**अगमं**	अगम्य
श्रिया	शोभायुक्त	**त्रिधामभिः**	तीनों लोकोंमें
स्वकीर्ति मय्या	अपनी कीर्तिमयी	**परिक्रमत**	घूमनेवाले
वनमालया	वनमाला	**प्राधनिकैः**	(अपने) प्रधान आयुध चक्रके लिए भी
निवीतं	धारण किये		
हरिं	भगवान् श्रीहरिको देखा	**दुरासदं**	दुरासद हैं (वे भी उन तक पहुँच नहीं पाते ।) ॥३१॥
सूर्य	सूर्य		
इन्दु	चन्द्र		
वायु	वायु		

तर्ह्येव तन्नाभिसरःसरोज-
मात्मानःमम्भः श्वसनं वियच्च ।
ददर्श देवो जगतो विधाता
नातः परं लोकविसर्गदृष्टिः ॥३२॥

तर्हि एव तत् नाभिसरः सरोजं आत्मानं अम्भः श्वसनं वियत् च ददर्श देवः जगतः विधाता न अतः परं लोक विसर्ग दृष्टिः ॥३२॥

लोक विसर्ग	लोकोंकी सृष्टि की	**आत्मानं**	(बैठे) अपनेको
दृष्टिः	इच्छावाले	**अम्भः**	जलको
जगतः विधाता	जगत्कर्ता	**श्वसनं च**	वायुको तथा
देवः	ब्रह्माने	**वियत्**	आकाशको
तर्हि एव तत्	उसी समय उन (नारायण) के	**ददर्श**	देखा
		अतः परं	इसके अतिरिक्त
नाभिसरः	नाभि सरोवरसे	**न**	(कुछ भी) नहीं
सरोज	(निकले) कमलपर		(देखा) ॥३२॥

स कर्मबीजं रजसोपरक्तः
प्रजाः सिसृक्षन्नियदेव दृष्ट्वा ।
अस्तौद्विसर्गाभिमुखस्तमीड्य-
मव्यक्तवर्त्मन्यभिवेशितात्मा ॥३३॥

स कर्मबीजं रजसा उपरक्तः प्रजा सिसृक्षन् इयत एव दृष्ट्वा अस्तौत् विसर्ग अभिमुखः तं ईड्यं अव्यक्त वर्त्मनि अभिवेशित आत्मा ॥३३॥

स	वे (ब्रह्माजी)	**दृष्ट्वा**	देखकर
रजसा	रजोगुणसे	**विसर्ग**	सृष्टिको
उपरक्तः	व्याप्त	**अभिमुखः**	प्रवृत्त होकर
कर्मबीजं	कर्म (प्रारब्ध) बीजवाली	**अव्यक्त वर्त्म**	अचिन्त्य गति (भगवान्) में
प्रजा	प्रजाकी	**आत्मा**	चित्त
सिसृक्षन्	सृष्टि करना चाहते थे (अतः)	**अभिवेशित**	लगाकर
इयत एव	इतना ही (जल, वायु, आकाश)	**तं ईड्यं**	उन पूजनीयकी
		अस्तौत्	स्तुति करने लगे ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ।

अथ नवमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच-

ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां
न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ।
नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं
मायागुणव्यतिकराद्यदुरुविभासि ॥१॥

ज्ञातः असि मे अद्य सुचिरात् ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतः गतिः इति अवद्यं न अन्यः त्वत् अस्ति भगवन् अपि तत् न शुद्धं माया गुण व्यति करात् यत् उरुः विभासि ॥१॥

सुचिरात्	बहुत समय पश्चात्	**भगवन्**	भगवन्
अद्य मे	आज मैंने	**न अस्ति**	नहीं है,
ज्ञातः असि	(आपको) जाना है	**अपि तत्**	है भी तो वह
ननु	निश्चय	**शुद्धं न**	शुद्ध नहीं है,
देहभाजां इति	शरीर धारियोंका यह	**यत्**	क्योंकि
		माया गुण	मायाके गुणोंके
अवद्यं	पाप है (कि)	**व्यति करात्**	व्यतिक्रमसे (आप ही)
भगवतः	आपका		
गतिः न	स्वरूप नहीं	**उरुः**	बहुत रूप
ज्ञायते	जानते हैं,	**विभासि**	प्रतीत होते हैं ॥१॥
त्वत्	आपसे		
अन्यः	भिन्न (कुछ)		

रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन
शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्राय ।
आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं
यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ॥२॥

रूपं यत् एतत् अवबोध रस उदयेन शश्वत् निवृत्त तमसः सत् अनुग्रहाय आदौ गृहीतं अवतार शतैक बीजं यत् नाभि पद्म भवनात् अहं आविरासम् ॥२॥

यत्	जिसकी
नाभि पद्म	नाभि कमल रूप
भवनात् अहं	भवनसे मैं
आविरासं	प्रकट हुआ
अवबोध रस	ज्ञान शक्तिके
उदयेन	जागृत रहनेसे
शश्वत्	नित्य
निवृत्त तमसः	तमोगुणको दूर किये (आप)
सत् अनुग्रहाय	सत्पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिए
शतैक	सैकड़ों
अवतार बीजं	अवतारोंका मूल
यत् एतत्	जो यह
रूपं	रूप
आदौ	(आपने) पहिले
	पहिले
गृहीतं	धारण किया है ॥२॥

नातः परं परम यद्भवतः स्वरूप-
मानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ।
पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन्
भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥३॥

न अतः परं परम यत् भवतः स्वरूपं आनन्दमात्रं अविकल्पं अविद्धवर्चः पश्यामि विश्वसृजं एकं अविश्वं आत्मन् भूत इन्द्रिय आत्मकं अदः न उप आश्रितः अस्मि ॥३॥

यत् भवतः	जो आपका
आनन्द मात्रं	आनन्द मात्र
अविकल्पं	निर्विकल्प
अविद्ध वर्चः	अखण्ड तेजोमय
परम स्वरूपं	परम स्वरूप है (उसे)
अतः परं न	इससे भिन्न नहीं
पश्यामि	देखता हूँ,
विश्वसृजं	विश्वस्रष्टा होनेपर भी
एकं	अद्वितीय
अविश्वं	विश्वातीत
आत्मन्	आपके
भूत इन्द्रिय आत्मकं	भूत, इन्द्रियोंके अधिष्ठान
अदः	इस (रूप) की
त	इसलिए
उप आश्रितः	परम आश्रय
अस्मि	लेता हूँ ॥३॥

तद्वा इदं भुवनमङ्गल मङ्गलाय
ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम् ।
तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं
योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसङ्गैः ॥४॥

तत् वा इदं भुवन मङ्गल मङ्गलाय ध्याने स्मनः दर्शितं त उपासकानां तस्मै नमः भगवते अनुविधेम तुभ्यं यः अनादृतः नरक भाक्भिः असत् प्रसङ्गैः ॥४॥

तत् वा	वह ही	**तुभ्यं नमः**	आपको नमस्कार
इदं	यह	**अनुविधेम**	बार-बार करता हूँ ।
भुवन मङ्गल	भुवन मंगल	**असत् प्रसङ्गैः**	विषयासक्त
त उपासकानां	आपके उपासक	**नरक भाग्भिः**	नरकके अधिकारियों द्वारा
नः मङ्गलाय	मेरे मंगलके लिए	**यः**	जिस (आप) का
ध्याने	ध्यानमें	**अनादृतः**	आदर नहीं होता ॥४॥
दर्शितं स्म	दर्शन दिया है		
तस्मै	उस		
भगवते	ऐश्वर्यमय		

ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं
जिघ्रन्ति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम् ।
भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां
नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम् ॥५॥

ये तु त्वदीय चरण अम्बुज कोश गन्धं जिघ्रन्ति कर्ण विवरैः श्रुति वातनीतं भक्त्या गृहीत चरणः परया च तेषां न अपैषि नाथ हृदय अम्बुरुहात् स्व पुंसाम् ॥५॥

ये तु	जो तो	**श्रुति वात**	श्रुति रूप वायुसे
त्वदीय	आपके	**नीतं**	लायी हुई
चरण अम्बुजकोश	चरण-कमल कोशकी	**गन्धं**	सुगन्धको
		कर्णविवरैः	कर्ण छिद्रोंसे

जिघ्रन्ति च	सूँघते (सुनते) हैं तथा
परया	परम
भक्त्या	भक्तिसे
चरणः	(आपके) चरण
गृहीत	पकड़ रखे हैं
नाथ	स्वामी !
तेषां स्वपुंसां	उन अपने भक्तोंके
हृदय अम्बुरुहात	हृदय कमलसे
न अपैषि	(आप) दूर नहीं होते ॥५॥

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं
शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं
यावन्नतेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥६॥

तावत् भयं द्रविण गेह सुहृत् निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवः विपुलश्च लोभः तावत् मम एतत् असत् अवग्रह आर्तिमूलं यावत् न ते अङ्घ्रि अभयं प्रवृणीत लोकः ॥६॥

द्रविण	धन
गेह	घर
सुहृत्	सम्बन्धियोंके
निमित्तं	कारण
तावत्	तब तक
भयं	भय
शोकः	शोक
स्पृहा	लालसा
परिभवः च	पराजय तथा
विपुलः लोभः	बहुत लोभ है
तावत्	तब तक
आर्तिमूलं	दुःखोंकी जड़
मम इति	मेरा है—यह
असत्	झूठा
अवग्रह	दुराग्रह है
यावत् ते	जब तक आपके
अभयं	अभय स्वरूप
अङ्घ्रि	चरणोंका
लोकः	लोग
न प्रवृणीत	आश्रय नहीं लेते ॥६॥

दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसङ्ग-
त्सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रिया ये ।
कुर्वन्ति कामसुखलेशलवाय दीना
लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् ॥७॥

दैवेन ते हतधियः भवतः प्रसङ्गात् सर्व अशुभ उपशमनात् विमुख इन्द्रिया ये कुर्वन्ति कामसुख लेशलवाय दीना लोभ अभिभूत मनसः अकुशलानि शश्वत् ॥७॥

ते दैवेन	वे दैव द्वारा	**काम सुख**	इच्छित सुखके
हतधियः	नष्ट बुद्धि हो गये हैं	**लेशलवाय**	अत्यन्त क्षुद्र भागके लिए
ये सर्व अशुभ	जो सब अमंगलोंके		
उपशमनात्	नष्ट कर देनेवाले	**दीना**	दीन बने
भवतः	आपके	**लोभ अभिभूत**	लोभाक्रान्त
प्रसङ्गः	प्रसंग (श्रवण-कीर्तनादि) से	**मनसः**	मनसे
		शश्वत	निरन्तर
विमुखा	विमुख होकर	**अकुशलानि**	दुष्कर्म
इन्द्रिया	इन्द्रियोंके	**कुर्वन्ति**	करते रहते हैं ॥७॥

क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः
शीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च ।
कामाग्निनाच्युत रुषा च सुदुर्भरेण
सम्पश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥८॥

क्षुत् तृत् त्रिधातुभिः इमा मुहुः अर्द्यमानाः शीत उष्ण वात वर्षैः इतरेतरात् च काम अग्निना अच्युत रुषा च सुर्दुभरेण सम्पश्यतः मन उरुक्रम सीदते मे ॥८॥

उरुक्रम	अनन्त विक्रम	**इतर इतरेत्**	परस्पर एक दूसरेसे
अच्युत	अच्युत !	**काम अग्निना**	कामनारूपी अग्निसे
इमा क्षुत्	इस भूख	**सुदुर्भरेण रुषा**	दुःसह क्रोधसे
तृट्	प्यास	**मुहुः**	बार बार
त्रिधातुभिः	वात, पित्त, कफसे	**अर्द्यमानाः**	रौंदे जाते (लोगोंको)
शीत	सर्दी	**सम्पश्यतः**	देखकर
उष्ण	गर्मी	**मे मन**	मेरा मन
वात	आँधी	**सीदते**	कष्ट पाता है ॥८॥
वर्षैः च	वर्षासे तथा		

यावत्पृथक्त्वमिदमात्मन इन्द्रियार्थ-
मायाबलं भगवतो जन ईश पश्येत् ।
तावन्न संसृतिरसौ प्रतिसंक्रमेत
व्यर्थापि दुःखनिवहं वहती क्रियार्था ॥९॥

यावत् पृथक्त्वं इदं आत्मन इन्द्रिय अर्थ मायाबलं भगवतः जन ईश पश्येत् तावत् न संसृतिः असौ प्रति संक्रमेत व्यर्था अपि दुःख निवहं वहती क्रियार्था ॥९॥

ईश	स्वामिन् !	**तावत्**	तब तक
यावत्	जब तक	**असौ संसृति**	यह आवागमन
जन	मनुष्य	**न प्रति संक्रमेत**	निवृत्त नहीं होता
इन्द्रिय	इन्द्रिय और	**व्यर्था अपि**	व्यर्थ (मिथ्या) होनेपर भी
अर्थ	विषय रूप	**क्रिया अर्था**	कर्मफल भोग रूप
भगवतः	भगवान् (आप) की	**दुःख निवहं**	दुःखोंमें
माया बलं	मायाके प्रभावसे	**वहती**	डालता रहता है ॥९॥
इदं आत्मन्	इस आत्मामें		
पृथक्त्वं	पार्थक्य (भेद)		
पश्येत्	देखता है		

अह्न्यापृतार्तकरणा निशि निःशयाना
नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः ।
दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव
युष्मत्प्रसङ्गविमुखा इह संसरन्ति ॥१०॥

अह्नि आपृतार्त करणा निशि निःशयाना नाना मनोरथ धिया क्षण भग्न निद्राः दैव आहत अर्थ रचना ऋषयः अपि देव युष्मत् प्रसङ्ग विमुखा इस संसरन्ति ॥१०॥

देव	देव !	**ऋषयः अपि**	ऋषि लोग भी
युष्मत्	आपके	**अह्नि**	दिनमें
प्रसङ्ग	कथा प्रसङ्गसे	**आपृत**	(अनेक कार्योंमें) व्यस्त
विमुखा	विमुख		

आर्त करणा	विक्षिप्त चित्त (रहते हैं)
निशि	रात्रिमें
निःशयाना	अचेत सोते रहते हैं
नाना मनोरथ	
धिया	(उस समय भी) अनेक मनोरथोंमें बुद्धि लगी होनेसे
क्षण भग्न	क्षण क्षणमें टूटती
निद्रा	निद्रा (ले पाते हैं)
अर्थ रचना	प्रयोजन सिद्धिका उद्योग
दैवहत	प्रारब्धवश नष्ट होता है
इह	(इस प्रकार) इसी संसारमें
संसरन्ति	भटकते रहते हैं ॥१०॥

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥११॥

त्वं भावयोग परिभावित हृत् सरोजे आस्से श्रुत ईक्षित पथः ननु नाथं पुंसां यत् यत् धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत् तत् वपुः प्रणयसे सत् अनुग्रहाय ॥११॥

नाथ	स्वामी
ननु	निश्चय
त्वं पुंसां	आप पुरुषों (भक्तों) के
भावयोग	भक्तियोगसे
परिभावित	शुद्ध हुए
हृत् सरोजे	हृदय कमलमें
श्रुत	श्रवणके द्वारा
ईक्षित	दिखलाये
पथः	मार्गसे
आस्से	आते हैं।
त यत् यत् धिया	वे जिस जिस भावसे
विभावयन्ति	(आपका) चिन्तन करते हैं
उरुगाय	उत्तम श्लोक !
सत्	(उन) सत्पुरुषों (भक्तों) पर
अनुग्राय	कृपा करके
तत् तत् वपुः	(आप) वह वह रूप
प्रणयसे	धारण कर लेते हैं ॥१२॥

नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारै-
राराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः ।

यत्सर्वभूतदययासदलभ्ययैको
नानाजनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ॥१२॥

न अति प्रसीदति तथा उपचित उपचारैः आराधितः सुरगणैः हृदि बद्ध कामैः यत् सर्वभूत दयया सत् लभ्यया एकः नाना जनेषु अवहितः सुहृत् अन्तरात्मा ॥१२॥

एकः	अद्वितीय
नाना जनेषु	भिन्न भिन्न प्राणियोंमें
अवहितः	स्थित
सुहृत	(उनके) हितैषी (तथा)
अन्तरात्मा	अन्तरात्मा (आप)
हृदि	हृदयमें
बद्ध कामः	प्रबल कामना लेकर
सुरगणैः	देवताओं द्वारा
उपचित उपचारैः	ढेरों सामग्रियोंसे
आराधितः	पूजित होनेपर
तथा	वैसे
न अति	बहुत नहीं
प्रसीदति	प्रसन्न होते
यत्	जैसे
सत् लभ्यया	सत्पुरुषोंको प्राप्त होनेवाली
सर्वभूत	सब प्राणियोंपर
दयया	दयाके द्वारा (प्रसन्न होते हैं) ॥१२॥

पुंसामतो विविधकर्मभिरध्वराद्यै-
र्दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च ।
आराधनं भगवतस्तव सत्क्रियार्थो
धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद्ध्रियते न यत्र ॥१३॥

पंसां अतः बिविध कर्णभिः अध्वर आद्यैः दानेन च उग्र तपसा व्रतचर्यया च आराधनं भगवतः तव सत् क्रिया अर्थः धर्मः अर्पितः कर्हिचित् ध्रियते न यत्र ॥१३॥

अतः विविध	अतः नाना प्रकारके
कर्मभिः	कर्मोंसे
अध्वर आद्यैः	यज्ञादिसे
दानेन च	दानसे तथा
उग्र तपसा च	घोर तपस्यासे एवं
व्रतचर्यया	व्रतोंके पालनसे
धर्मः	(होनेवाले) धर्म (पुण्य) का

भगवतः तव	भगवन् आपको	**यत्र कर्हिचित्**	जहाँ कभी भी
अर्पितः	समर्पित		(वह धर्म)
सत् क्रिया	श्रेष्ठ कर्मोंकी	**ध्रियते न**	नष्ट नहीं होता
अर्थः	प्रयोजन		(अक्षय हो जाता
	(सफलता) है		है) ॥१३॥

शश्वत्स्वरूपमहसैव निपीतभेद-
मोहाय बोधिषणाय नमः परस्मै ।
विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीला-
रासाय ते नम इदं चक्रमेश्वराय ॥१४॥

शश्वत् स्वरूप महसा एव निपीत भेद मोहाय बोध धिषणाय नमः परस्मै विश्व उद्भव स्थिति लयेषु निमित्त लीला रासाय ते नम इदं चक्रमे ईश्वराय ॥१४॥

शश्वत	निरन्तर	**विश्व**	विश्वकी
स्वरूप महसा एव	अपने स्वरूपके	**उद्भव स्थिति**	
	प्रकाशसे ही	**लयेषु**	सृष्टि स्थिति प्रलयके
भेद मोहाय	भेद भ्रमको	**निमित्त**	लिये
निपीत	नष्ट करते हैं,	**लीला रासाय**	लीला करनेवाले
बोध धिषणाय	ज्ञानके अधिष्ठान	**ईश्वराय**	(आप) सर्वेश्वरको
परस्मै	परम पुरुष	**इदं नम**	यह नमस्कार
नमः	(आपको) नमस्कार	**चक्रमे**	करता हूँ ॥१४॥

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि
नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा
संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥१५॥

यस्य अवतार गुण कर्म विडम्बनानि नामानि ये असु विगमे विवशा गृणन्ति ते न एक जन्म शमलं सहसा एव हित्वा संयन्ति अपावृतं ऋतं तं अजं प्रपद्ये ॥१५॥

यस्य	जिसके
अवतार	अवतारोंके
गुण-कर्म	गुणों कर्मोंको
विडम्बनानि	सूचित करनेवाले
नामानि	नामों (गोविन्द, वासुदेवादि) को
ये असुविगमे	जो प्राण निकलते (मरते) समय
विवशा	विवश होकर भी
गृणन्ति ते	उच्चारण करते हैं वे
सहसा एव	अचानक अप्रभास) ही
न एक जन्म	अनेक जन्मोंके
शमलं	पापोंको
हित्वा	छोड़कर
अपावृत	(मायादि) आवरणोंसे रहित
ऋतं	(परम) सत्य (परमात्मा) को
संयान्ति	प्राप्त करते हैं
तं अजं	उस अजन्मा (आपकी)
प्रपद्ये	शरण लेता हूँ ॥१५॥

यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च
स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम् ।
भित्त्वा त्रिपाद्ववृध एक उरुप्ररोह-
स्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ॥१६॥

यः वा अहं च गिरिशः च विभुः स्वयं च स्थिति उद्भव प्रलय हेतव आत्ममूलं भित्त्वा त्रिपात् ववृध एक उरु प्ररोहः तस्मै नमः भगवते भुवन द्रुमाय ॥१६॥

यः वा	जो तो
एक	अद्वितीय (होनेपर भी)
आत्ममूलं	अपने ही मूलको
भित्त्वा	फोड़कर (प्रकृतिको स्वीकार करके)
अहं च	मेरे रूपमें
गिरिशः च	शङ्करजीके रूपमें
स्वयं विभुः च	स्वयं (अपने) विष्णु रूपसे
स्थिति उद्भव प्रलय	स्थिति सृष्टि पालन
हेतव	के कारण
त्रिपाद्	तीन तनोंके रूपमें
ववृध	बढ़े (फिर)
उरु प्ररोह	(मनु प्रजापति आदि) बहुत शाखाओंवाले होगये
तस्मै भगवते	उन भगवान्
भुवन द्रुमाय	विश्व वृक्ष रूपको
नमः	नमस्कार ॥१६॥

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः
कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।
यस्तावदस्त बलवानिह जीविताशां
सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥१७॥

लोकः विकर्म निरतः कुशले प्रमत्तः कर्मणि अयं त्वत् उदिते भवत् अर्चने स्वे यः तावत् अस्य बलवान् इह जीवित आशां सद्यः छिनत्ति अनिमिषाय नमः अस्तु तस्मै ॥१७॥

त्वत्	आपके (कहे)	**तावत्**	(अतः) ऐसी दशामें
भवत्	आपकी		
अर्चने	अर्चनाको	**यः अस्य**	जो इनकी
स्वे	उनके अपने	**इह**	इसी लोकमें
उदिते	कल्याणके लिए (बतलाया है; किन्तु)	**जीवित आशां**	जीवित रहनेकी आशाको
अयं लोकः	यह लोक	**सद्यः**	तत्काल
विकर्म निरतः	विपरीत (निषिद्ध) कर्मोंमें लगे हैं	**छिनत्ति**	काट देते हैं
कुशले	(अपने) कल्याण (की ओरसे)	**तस्मै**	उन
प्रमत्तः	प्रमादी (असावधान) हैं	**अनिमिषाय**	कालस्वरूप (आपको)
		नमः अस्तु	नमस्कार है ॥१७॥

यस्माद्बिभेम्यहमपि द्विपरार्धधिष्ण्य-
मध्यासितः सकललोकनमस्कृतं यत् ।
तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समान-
स्तस्मै नमो भगवतेऽधिमखाय तुभ्यम् ॥१८॥

यस्मात् विभेमि अहं अपि द्विपरार्धं धिष्ण्यं अध्यासितः सकल लोक नमस्कृतं यत् तेपे तपः बहुसवः अवरुरुत्समानः तस्मै नमः भगवते अधिमखाय तुभ्यम् ॥१८॥

द्विपरार्ध	दोपरार्ध तक
धिष्ण्य	रहनेवाले
सकल लोक	सब लोकोंसे
नमस्कृतं	नमस्कृत
यत्	जो (सत्यलोक है) उसका
अध्यासितः	अधिष्ठाता (होनेपर भी)
अहं अपि	मैं भी
यस्मात्	जिससे
विभेमि	डरता हूँ
अवरुरुत्समानः	उस (काल) से बचनेके लिए
बहु सवः	बहुत समय तक
तपः तेपे	(मैंने) तपस्या की
तस्मै अधिमखाय	उस अधियज्ञ स्वरूप
भगवते	भगवान्
तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार ॥१८॥

तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनि-
ष्वात्मेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सया यः ।
रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेह-
स्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥१९॥

तिर्यङ् मनुष्य विबुधादिषु जीव योनिषु आत्म इच्छया आत्मकृत सेतु परीप्सया यः रेमे निरस्त रतिः अपि अवरुद्ध देहः तस्मै नमः भगवते पुरुषोत्तमाय ॥१९॥

आत्म इच्छया	स्वेच्छासे
आत्मकृत सेतु	अपनी बनायी मर्यादाकी
परीप्सया यः	रक्षाके लिए जो
निरस्त रतिः	विषय सुख इच्छा रहित
अपि	होनेपर भी
तिर्यङ्	पशु पक्षी आदि
मनुष्य	मनुष्य
विबुधादिषु	देवता आदि
जीव योनिषु	जीव योनियोंमें
अवरुद्ध देहः	देह (अवतार) धारण करके
रेमे	विहार करते हैं
तस्मै भगवते	उन भगवान्
पुरुषोत्तमाय	पुरुषोत्तमको
नमः	नमस्कार ॥१९॥

योऽविद्ययानुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या
निद्रामुवाह जठरी कृतलोकयात्रः ।

अन्तर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलां
भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् ॥२०॥

यः अविद्यया अनुपहतः अपि दशार्धवृत्त्या निद्रां उवाह जठरीकृत लोकयात्रः अन्तः जले अहि कशिपुः स्पर्श अनुकूलां भीम उर्ममालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् ॥१९॥

यः	जो
दशार्ध वृत्त्या	पाँच वृत्ति (अविद्या, अस्मिता, रागद्वेष, अभिनिवेश)
अविद्यया	(वाली) अविद्यासे
अनुपहतः अपि	असंस्पृष्ट होते हुए भी
लोकयात्रः	लोकों तथा उनके व्यवहारको
जठरीकृत	अपने उदरमें लेकर
अन्तःजले	जलके भीतर
भीम उर्ममालिनि	भयंकर तरंगोंवाले प्रलय समुद्रमें
स्पर्श अनुकूलां	स्पर्शके अनुकूल
अहि कशिपुः	शेष शैय्यापर
जनस्य	(पूर्व कल्पके) जीवोंको
सुखं विवृण्वन्	(निद्रा) सुख देनेके लिए
निद्रां उवाह	शयन कर रहे हैं ॥२०॥

यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य
लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ।
तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योग-
निद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥२१॥

यत् नाभि पद्म भवनात् अहं आसं ईड्य लोकत्रय उपकरणः यत् अनुग्रहेण तस्मै नमः त उदरस्थ भवाय योगनिद्रा अवसान विकसत् नलिन ईक्षणाय ॥२१॥

ईड्य	पूजनीय प्रभो !
यत्	जिस (आपकी)
नाभि पद्म	नाभि कमल रूप
भवनात्	भवनसे
अहं आसं	मैं उत्पन्न हुआ (और)
यत् अनुग्रहेण	जिनकी कृपासे
लोकत्रय	तीनों लोकोंका
उपकरणः	उपकार करने (सृजन) में लगा हूँ
त	उन
भवाय उदर	विश्वको पेटमें लिए

तस्मै	उन	**विकसन्**	खिलते हुए
योगनिद्रा	योगनिद्राकी	**नलिन ईक्षणाय**	कमल नेत्रको
अवसान	समाप्तिपर	**नमस्त**	नमस्कार ॥२१॥

सोऽयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा
सत्त्वेन यन्मृडयते भगवान् भगेन ।
तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद्यथाहं
स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं प्रणतप्रियोऽसौ ॥२२॥

सः अयं समस्त जगतां सुहृद एक आत्मा सत्त्वेन यत् मृडयते भगवान् भगेन तेन एव मे दृशं अनुस्पृशतात् यथा अहं स्रक्ष्यामि पूर्ववत् इदं प्रणत प्रिय असौ ॥२२॥

सः अयं	वह यह (आप)	**तेन एव**	उसी ही
समस्त जगतां	सम्पूर्ण जगत्के	**दृशं मे**	दृष्टिसे मुझे
एक सुहृद	एक मात्र हितैषी (और)	**अनुस्पृशतां**	स्पर्श कीजिए (वही अनुग्रह दृष्टि मुझपर डालिए)
आत्मा	आत्मा हैं	**यथा अहं**	जिससे मैं
असौ प्रणत प्रिय	यह शरणागतपर स्नेह करनेवाले	**इदं**	इस (विश्व) को
भगवान्	भगवन्	**पूर्ववत्**	पहिले (कल्प) के समान
यत् सत्त्वेन	जिस ज्ञान (तथा)	**स्रक्ष्यामि**	निर्मित कर सकूँ ॥२२॥
भगेन	ऐश्वर्यसे		
मृडयते	(विश्वकी) रक्षा करते हैं		

एष प्रपन्नवरदो रमयाऽऽत्मशक्त्या
यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः ।
तस्मिन् स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेतो
युञ्जीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम् ॥२३॥

एष प्रपन्न वरदः रमया आत्मशक्त्या यत् यत् करिष्यति गृहीत गुण अवतारः तस्मिन् स्वविक्रम इदं सृजतः अपि चेतः युञ्जीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम् ॥२३॥

एष	यह (आप)	**तस्मिन्**	उन
प्रपन्न	शरणागतको	**स्वविक्रम**	आपके पराक्रमोंमें
वरदः	वरदान देनेवाले हैं	**इदं**	इस (जगत) की
आत्म शक्त्या	अपनी शक्ति	**सृजतः अपि**	सृष्टि करते हुए भी
रमया	लक्ष्मीजीके साथ	**चेतः**	(मेरा) चित्त
गृहीत गुण	गुणोंको स्वीकार करके	**युञ्जीत**	लगाये रहिए
		यथा	जिससे
अवतारः	अवतार लेकर	**कर्म शमलं च**	(सृष्टि) कर्मके मल (अभिमान) को
यत् यत्	जो जो		
करिष्यति	करेंगे	**विजह्याम्**	त्याग सकूं ॥२३॥

नाभिह्रदादिह सतोऽम्भसि यस्य पुंसो
विज्ञानशक्तिरहमासमनन्तशक्तेः ।
रूपं विचित्रमिदमस्य विवृण्वतो मे
मा रीरिषीष्ट निगमस्य गिरां विसर्गः ॥२४॥

नाभि ह्रदात् इह सतः अम्भसि यस्य पुंसः विज्ञान शक्ति अहं आसं अनन्त शक्तेः रूपं विचित्रं इदं अस्य विवृण्वतः मे मारीरिषीष्ट निगमस्य गिरां विसर्गः ॥२४॥

इह अम्भसि सतः	यहाँ (प्रलय समुद्रके) जलके रहते	**इदं**	इस (जगत) के
		विचित्रं रूपं	विचित्र रूपोंको
अनन्त शक्तेः	अनन्त शक्ति	**विवृण्वतः**	बनाते समय
यस्य पुंसः	जिन परम पुरुषको	**अस्य मे**	मेरे मुखसे
नाभिह्रदात्	नाभि सरोवरसे (उत्पन्न)	**निगमस्य**	वेदवाणीका
		गिरां विसर्गः	उच्चारण होना
अहं	मैं (आप की ही)	**मा रीरिष्ट**	बन्द न हो
विज्ञान शक्ति आसं	विज्ञान शक्ति हूँ		जाय ॥२४॥

सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान् विवृद्ध-
प्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन् ।
उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं
माध्व्या गिरापनयतात्पुरुषः पुराणः ॥२५॥

सः असाः अदभ्र करुणः भगवान् विबृद्ध प्रेमस्मितेन नयन अम्बुरुहं विजृम्भन् उत्थाय विश्वविजयाय च नः विषादं माध्व्या गिरा अपनयतात् पुरुषः पुराणः ॥२५॥

सः असाः	वह ये	**उत्थाय**	उठकर
अदभ्र करुणः	अपार करुणामय	**विश्व विजयाय**	विश्वके उद्‌भवके लिए
भगवान्	भगवान्	**पुरुषः पुराणः**	पुराण पुरुष
विवृद्ध प्रेम	बढ़े हुए स्नेहसे (पूर्ण)	**माध्व्या गिरा**	(अपनी) मीठी वाणीसे
स्मितेन	मुसुकानसे	**नः विषादं**	मेरे विषादको
नयन अम्बुरुहं	नेत्र पद्मको	**अपनयतात्**	दूर कीजिए ॥२५॥
विजृम्भन	खोलकर		

मैत्रेय उवाच-

स्वसम्भवं निशाम्यैवं तपोविद्यासमाधिभिः ।
यावन्मनोवचः स्तुत्वा विरराम स खिन्नवत् ॥२६॥

स्व सम्भवं निशाम्य एवं तपः विद्या समाधिभिः यावन् मनः वचः स्तुत्वा विरराम स खिन्नवत् ॥२६॥

स्व सम्भवं	अपने उत्पत्ति स्थान (भगवान्) को	**यावत्**	जितनी
एवं तपः	इस प्रकार तप	**मनः वचः**	मन तथा वाणीकी (शक्ति थी)
विद्या	विद्या	**स्तुत्वा**	स्तुति करके
समाधिभिः	समाधिके द्वारा	**स खिन्नवत्**	वे खिन्नसे होकर
निशाम्य	देखकर	**विरराम**	चुप हो गये ॥२६॥

अथाभिप्रेतमन्वीक्ष्य ब्रह्मणो मधुसूदनः ।
विषण्णचेतसं तेन कल्पव्यतिकराम्भसा ॥२७॥

अथ अभिप्रेतं अन्वीक्ष्य ब्रह्मणः मधुसूदनः विषण्ण चेतसं तेन कल्प व्यतिकर अम्भसा ॥२७॥

अथ	तदनन्तर	**चेतसा**	चित्तवाला
मधुसूदनः	भगवान मधुसूदनने	**अन्वीक्ष्य**	देखकर (और)
कल्प व्यतिकर	कल्पान्तके	**ब्रह्मणः**	(उन) ब्रह्माजीका
अम्भसा	जलमें	**अभिप्रेतं**	अभीष्ट
तेन	उनको		(जानकर) ॥२७॥
विषण्ण	विषादग्रस्त		

लोकसंस्थानविज्ञान आत्मनः परिखिद्यतः ।
तमाहागाधया वाचा कश्मलं शमयन्निव ॥२८॥

लोकसंस्थान विज्ञान आत्मनः परिखिद्यतः तं आह अगाधया वाचा कश्मलं शमयन् इव ॥१८॥

लोक संस्थान	लोक रचना	**तं कश्मलं**	उन (ब्रह्माजी) के
विज्ञान	की जानकारीके		खेदको
	विषयमें	**शमयन् इव**	शान्त करते हुएसे
परिखिद्यतः	खेद करते हुए	**अगाधया वाचा**	गम्भीर वाणीसे
आत्मनः	चित्तवाले	**आह**	(भगवान)
			बोले ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच-

मा वेदगर्भ गास्तन्द्रीं सर्ग उद्यममावह ।
तन्मयाऽऽपादितं ह्यग्रेयन्मां प्रार्थयते भवान् ॥२९॥

मा वेदगर्भ गाः तन्द्रीं सर्ग उद्यम आवह तत् मया आपादितं हि अग्रे यत् मां प्रार्थयते भवान् ॥२९॥

वेदगर्भ	वेदगर्भ !	**मा गाः**	मत प्राप्त हो
तन्द्रीं	शिथिलता	**सर्ग**	सृष्टिके लिए

उद्यम आवह	उद्योग करो,	**तत् मया**	वह मेरे द्वार
यत् भवान्	जो आप	**अग्रे हि**	पहिले ही
मां प्रार्थयते	मुझसे प्रार्थना कर रहे हैं	**आपादितं**	किया जा चुका है ॥२९॥

भूयस्त्वं तप आतिष्ठ विद्यां चैव मदाश्रयाम् ।
ताभ्यामन्तर्हृदि ब्रह्मन् लोकान्द्रक्ष्यस्यपावृतान् ॥३०॥

भूयः त्वं तप आतिष्ठ विद्यां च एव मत् आश्रयां ताभ्यां अन्तः हृदि ब्रह्मन् लोकान् द्रक्ष्यसि अपावृतान् ॥३०॥

ब्रह्मन् त्वं	ब्रह्माजी तुम	**आतिष्ठ**	स्थित हो जाओ
भूयः	फिरसे	**ताभ्यां**	उन दोनोंसे
तप च	तप तथा	**अन्तःहृदि**	हृदयके भीतर
मदाश्रयां	मेरे आश्रयवाले (भागवत)	**अपावृतान्**	स्पस्टतया
		लोकान्	लोकोंको
विद्या एव	ज्ञानपर भी	**द्रक्ष्यसि**	देखोगे ॥३०॥

तत आत्मनि लोके च भक्तियुक्तः समाहितः ।
द्रष्टासि मां ततं ब्रह्मन्मयि लोकांस्त्वमात्मनः ॥३१॥

तत् आत्मनि लोके च भक्तियुक्तः समाहितः द्रष्टासि मां ततं ब्रह्मन् मयि लोकान् त्वं आत्मनः ॥३१॥

ब्रह्मन् तत	ब्रह्माजी ! तव	**मां ततं**	मुझे व्याप्त (तथा)
भक्तियुक्तः	भक्तियुक्त	**मयि त्वं**	मुझमें तुम
समाहितः	एकाग्र होकर	**आत्मनः**	अपनेको तथा
आत्मनि च	अपने तथा	**लोकान्**	लोकोंको
लोके	लोकमें	**द्रष्टासि**	देखोगे ॥३१॥

यदा तु सर्वभूतेषु दारुष्वग्निमिव स्थितम् ।
प्रतिचक्षीत मां लोको जह्यात्तर्ह्येव कश्मलम् ॥३२॥

यदा तु सर्वभूतेषु दारुषु अग्निं इव स्थितं प्रति चक्षीत् मां लोकः जह्यात् तर्हि एव कश्मलम् ॥३२॥

यदा तु	जिस समय तो	**लोकः**	लोकोंको
सर्वभूतेषु	सब प्राणियोंमें	**प्रति चक्षीत**	देखता है
दारुषु	काष्ठमें	**तर्हि एव**	उसी समय ही
अग्निं इव	अग्निकी भाँति	**कश्मलं**	(अज्ञानरूप) मल
स्थितं मां	स्थित मुझमें	**जह्यात्**	त्याग देता है ॥३२॥

यदा रहितमात्मानं भूतेन्द्रियगुणाशयैः ।
स्वरूपेण मयोपेतं पश्यन् स्वाराज्यमृच्छति ॥३३॥

यदा रहितं आत्मानं भूत इन्द्रिय गुण आशयैः स्वरूपेण मया उपेतं पश्यन् स्वाराज्यं ऋच्छति ॥३३॥

यदा आत्मानं	जब अपनेको	**मया उपेतं**	मुझसे संयुक्त
भूत, इन्द्रिय	पंचभूत, इन्द्रियों	**पश्यन्**	देखता है (तब)
गुण, आशयैः	गुणों तथा अन्तःकरणसे	**स्वाराज्यं**	मोक्षपद
रहित स्वरूपेण	रहित स्वरूपतः	**ऋच्छति**	पा लेता है ॥३३॥

नानाकर्मवितानेन प्रजा वह्वीः सिसृक्षतः ।
नात्मावसीदत्यस्मिंस्ते वर्षीयान्मदनुग्रहः ॥३४॥

नाना कर्म वितानेन प्रजा वह्वीः सिसृक्षतः न आत्मा अवसीदति अस्मिन् ते वर्षीयान् मदनुग्रहः ॥३४॥

नाना कर्म	अनेक प्रकारके कर्मोंके	**आत्मा**	चित्त
वितानेन	विस्तारके अनुसार	**न अवसीदति**	अवसादग्रस्त नहीं होता (यह)
वह्वीः	बहुत-सी	**मत्**	मेरा
प्रजा	प्रजाकी	**वर्षीयान्**	अतिशय
सिसृक्षतः	सृष्टि करनेके	**अनुग्रहः**	अनुग्रह है ॥३४॥
अस्मिन् ते	इस (कार्य) में तुम्हारा		

ऋषिमाद्यं न बध्नाति पापीयास्त्वां रजोगुणः ।
यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतोऽपि ते ॥३५॥

ऋषिं आद्यं न बध्नाति पापीयान् त्वां रजोगुणः यत् मनः मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतः अपि ते ॥३५॥

आद्यं ऋषिं	प्रथम ऋषि	**संसृजतः अपि**	उत्पत्ति करते हुए भी
त्वां पापीयान	तुमको पापमय	**ते मनः**	तुम्हारा मन
रजोगुणः	रजोगुण	**मयि**	मुझमें
न बध्नाति	नहीं बाँधेगा	**निर्बद्धं**	दृढ़तासे लगा है ॥३५॥
यत् प्रजाः	क्योंकि प्रजाकी		

ज्ञातोऽहं भवता त्वद्य दुर्विज्ञेयोऽपि देहिनाम् ।
यन्मां त्वं मन्यसेऽयुक्तं भूतेन्द्रियगुणात्मभिः ॥३६॥

ज्ञातः अहं भवतातु अद्य दुर्विज्ञेयः अपि देहिनां यत् मां मन्यसे अयुक्तं भूत इन्द्रिय गुण आत्मभिः ॥३६॥

भवतातु	तुम्हारे द्वारा तो	**यत् मां**	क्योंकि मुझे
अहं अद्य	मैं आज	**भूत**	पंचभूत
ज्ञातः	जान लिया गया हूँ	**इन्द्रिय गुण**	इन्द्रिय, गुण
अपि	यद्यपि	**आत्मभिः**	अन्तःकरणसे
देहिनां	शरीरधारियोंके लिए	**अयुक्तं**	रहित
दुर्विज्ञेयः	मुझे जान लेना बहुत कठिन है	**मन्यसे**	मानते हो ॥३६॥

तुभ्यं मद्विचिकित्सायामात्मा मे दर्शितोऽबहिः ।
नालेन सलिले मूलं पुष्करस्य विचिन्वतः ॥३७॥

तुभ्यं मद् विचिकित्सा यां आत्मा मे दर्शितः अबहिः नालेन सलिले मूलं पुष्करस्य विचिन्वतः ॥३७॥

सलिले	जलमें	**मूलं**	जड़को
नालेन	कमल नालके आधारसे	**विचिन्वतः**	ढूँढ़ते हुए
		मद्	अपने (मूलाधार)को
पुष्करस्य	कमलकी	**विचिकित्सायाँ**	जाननेकी इच्छावाले

तुभ्यं	तुमको	**अबहिः**	बाहर नहीं
मे आत्मा	मैंने अपना स्वरूप		(हृदयमें ही)
		दर्शितः	दिखलाया ॥३७॥

यच्चकर्थाङ्ग मत्स्तोत्रं मत्कथाभ्युदयाङ्कितम् ।
यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रहः ॥३८॥

यत् चकर्थ अङ्ग मत् स्तोत्रं मत् कथा अभ्युदय अङ्कितं यत् वा तपसि ते निष्ठा स एष मत् अनुग्रहः ॥३८॥

अङ्ग	प्रिय ब्रह्मा	**वा यत् ते**	अथवा जो तुम्हारी
यत् मत्	जो मेरी	**तपसि**	तपस्यामें
कथा	कथाओंके	**निष्ठा**	निष्ठा है
अभ्युदय	वैभवसे	**स एष**	वह यह
अङ्कितं	युक्त	**मत्**	मेरा
मत् स्तोत्रं	मेरी स्तुति	**अनुग्रहः**	अनुग्रह है ॥३८॥
चकर्थ	की है		

प्रीतोऽहमस्तु भद्रं ते लोकानां विजयेच्छया ।
यदस्तौषीर्गुणमयं निर्गुणं मानुवर्णयन् ॥३९॥

प्रीतः अहं अस्तु भद्रं ते लोकानां विजय इच्छया यत् अस्तौषीः गुणामयं निर्गुणं माँ अनुवर्णयन् ॥३९॥

अहं प्रीतः	मैं प्रसन्न हुआ	**यत् गुणमयं**	क्योंकि गुणमय होनेपर
ते भद्रं अस्तु	तुम्हारा कल्याण हो	**मां निर्गुणं**	मेरा निर्गुण रूपमें
लोकानां	लोकोंकी	**अनुवर्णयन्**	वर्णन किया
विजय इच्छया	सृष्टि करनेकी इच्छासे		है ॥३९॥

य एतेन पुमान्नित्यं स्तुत्वा स्तोत्रेण मां भजेत् ।
तस्याशु सम्प्रसीदेयं सर्वकामवरेश्वरः ॥४०॥

यः एतेन पुमान् नित्यं स्तुत्वा स्तोत्रेण मां भजेत् तस्य आशु सम्प्रसीदेयं सर्वकामवर ईश्वरः ॥४०॥

यः पुमान्	जो पुरुष
एतेन	इस
स्तोत्रेण मां	स्तोत्रसे मेरी
स्तुत्त्वा	स्तुति करके
भजेत्	आराधना करता है
तस्य	उसपर
आशु	शीघ्र
सर्वकाम	सब कामनाओंकी
वर	(पूर्तिका) वरदान (देनेमें)
ईश्वरः	समर्थ (मैं)
सम्प्रसीदेयं	पूर्णतः प्रसन्न हो जाऊँगा ॥४०॥

पूर्तेन तपसा यज्ञैर्दानैर्योगसभाधिना ।
राद्धं निःश्रेयसं पुंसां मत्प्रीतिस्तत्त्वविन्मतम् ॥४१॥

पूर्तेन तपसा यज्ञैः दानैः योग समाधिना राद्धं निःश्रेयसां पुंसां मत् प्रीतिः तत्त्ववित् मतम् ॥४१॥

तत्त्ववित्	तत्त्ववेत्ताओंका
मतं	मत है कि
पूर्तेन	पूर्त (समाजोपयोगी निर्माण) से
तपसा	तपस्यासे
यज्ञैः	यज्ञोंसे
दानैः	दानसे
योग समाधिना	योगकी समाधिसे
पुंसां राद्धं	पुरुषका सम्पूर्ण
निःश्रेयसं	परम कल्याण
मत् प्रीतिः	मेरी प्रसन्नता ही है ॥४१॥

अहमात्माऽऽत्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि ।
अतो मयि रतिं कुर्याद्देहादिर्यत्कृते प्रियः ॥४२॥

अहं आत्मा आत्मनां धातः प्रेष्ठः सत् प्रेयसां अपि अतः मयि रतिं कुर्यात् देहादेः यत् कृते प्रियः ॥४२॥

धातः	ब्रह्माजी
अहं आत्मनां	मैं आत्माओंका भी
आत्मा	आत्मा हूँ,
प्रेयसां अपि	प्रियोंमें भी
प्रेष्ठः सत्	(सबसे) प्रिय हूँ।
अतः देहादेः	अतः शरीर आदि
यत् कृते	जिसके लिए
प्रियः	प्रिय हैं (उस)
मयि	मुझसे
रतिं कुर्यात्	प्रीति करे ॥४२॥

सर्ववेदमयेनेदमात्मनाऽऽत्माऽऽत्मयोनिना ।
प्रजाः सृज यथापूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥४३॥

सर्वं वेदमयेन इदं आत्मना आत्मा आत्मयोनिना प्रजाः सृज यथा पूर्वं याः च मयि अनुशेरते ॥४३॥

सर्वं वेदमयेन	सब वेदमय	**मयि अनुशेरते**	मुझमें सो रही है
इदं आत्मना	इस अपने रूपसे	**आत्मयोनिना**	अपनेको कारण बनाकर
यथा पूर्वं	जैसे पहिले थी		
प्रजाः	प्रजाको	**आत्मा**	स्वयं
याः च	जो कि (इस समय)	**सृज**	निर्मित करो ॥४३॥

मैत्रेय उवाच-

तस्मा एवं जगत्स्रस्ष्ट्रे प्रधानपुरुषेश्वरः ।
व्यज्येदं स्वेन रूपेण कञ्जनाभस्तिरोदधे ॥४४॥

तस्मा एवं जगत् स्रष्टे प्रधान पुरुष ईश्वरः व्यज्य इदं स्वेन रूपेण कञ्जनाभः तिरोदधे ॥४४॥

प्रधानं	प्रकृति (और)	**एवं इदं**	इस प्रकार इस (जगत) को
पुरुष ईश्वरः	पुरुषके स्वामी		
कञ्जनाभः	भगवान पद्मनाभ	**व्यज्य**	अभिव्यक्ति करवाकर
तस्मा	उन	**स्वेन रूपेण**	अपने (साकार) रूपसे
जगत् स्रष्टे	विश्व स्रष्टा (ब्रह्माजी) को	**तिरोदधे**	तिरोहित हो गये ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे नवमोऽध्यायः ।

अथ दशमोऽध्यायः

विदुर उवाच-

अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लोकपितामहः ।
प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः ॥१॥

अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लोक पितामहः प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीः मानसीः विभुः ॥१॥

भगवति	भगवान्‌के	**दैहिकीः**	(अपने) देहसे
अन्तर्हिते	अन्तर्हित हो जानेपर		(और)
विभुः	व्यापक	**मानसीः**	मनसे
लोक पितामहः	लोक पितामह	**कतिधा**	कितने प्रकारकी
ब्रह्मा	ब्रह्माजीने	**प्रजाः ससर्ज**	प्रजाकी सृष्टिकी ॥१॥

ये च मे भगवन् पृष्टास्त्वय्यर्था बहुवित्तम ।
तान् वद स्वानुपूर्व्येण छिन्धि नः सर्वसंशयान् ॥२॥

ये च मे भगवन् पृष्टाः त्वयि अर्था बहुवित्तम तान् वदस्व आनुपूर्व्येण छिन्धि नः सर्व संशयम् ॥२॥

बहुवित्तम	बहुज्ञ श्रेष्ठ (मैत्रेयजी)	**तान्**	उनको
भगवन्	भगवन् !	**आनुपूर्व्येण**	क्रमशः
ये च मे	और जो मैंने	**वद नः**	बतलाइये, मेरे
त्वयि	आपसे	**सर्व संशयान्**	सब सन्देहोंको
अर्थाः पृष्टाः	प्रयोजनीय बातें पूछी हैं	**छिन्धि**	काट दीजिए ॥२॥

सूत उवाच-

एवं सञ्चोदितस्तेन क्षत्त्रा कौषारवो मुनिः ।
प्रीतः प्रत्याह तान् प्रश्नान् हृदिस्थानथ भार्गव ॥३॥

एवं संचोदितः तेन क्षत्त्रा कौषारवः मुनिः प्रीतः प्रत्याह तान् प्रश्नान् हृदिस्थान् अथ भार्गव ॥३॥

भार्गव	शौनकजी !	**प्रीतः**	प्रसन्न होकर
एवं	इस प्रकार	**तान् हृदिस्थान्**	उन हृदयस्थ
तेन क्षत्त्रा	उन विदुरजी द्वारा	**प्रश्नान्**	प्रश्नोंका
संचोदितः	प्रेरित	**अथ प्रत्याह**	तब उत्तर देने
मुनिः कौषारवः	मुनि मैत्रेयजी		लगे ॥३॥

मैत्रेय उवाच-

विरिञ्चोऽपि तथा चक्रे दिव्यं वर्षशतं तपः ।
आत्मन्यात्मानमावेश्य यदाह भगवानजः ॥४॥

विरिञ्चः अपि तथा चक्रे दिव्यं वर्षशतं तपः आत्मनि आत्मानं आवेश्य यत् आह भगवान् अजः ॥४॥

अजः भगवान्	अजन्मा भगवान्ने	**आत्मनि**	अपने आत्मामें
यत् आह	जैसा बतलाया था,	**आत्मानं आवेश्य**	चित्त लगाकर
तथा दिव्यं	वैसा दिव्य (देवताओंके)	**तपः**	तप
		विरिञ्चः अपि	ब्रह्माजीने भी
शतं वर्ष	सौ वर्ष तक	**चक्रे**	किया ॥४॥

तद्विलोक्याब्जसम्भूतो वायुना यदधिष्ठितः ।
पद्ममम्भश्च तत्कालकृतवीर्येण कम्पितम् ॥५॥

तत् विलोक्य अब्ज सम्भूतः वायुना यत् अधिष्ठितः पद्मं अम्भः च तत् कालकृत वीर्येण कम्पितम् ॥५॥

अब्ज सम्भूतः	कमलोद्भव (ब्रह्मा) ने
कालकृत	प्रलयकालीन
वीर्येण वायुना	प्रबल वायुसे
यत् अधिष्ठितं	जिसपर बैठे थे
तत् पद्मं	उस कमल
अम्भः च	और जलको भी
कम्पितं	काँपता
विलोक्य	देखकर ॥५॥

तपसा ह्येधमानेन विद्यया चात्मसंस्थया ।
विवृद्धविज्ञानबलो न्यपाद् बायुं सहाम्भसा ॥६॥

तपसा हि एधमानेन विद्यया च आत्मसंस्थया विवृद्ध विज्ञान बलः न्यपात् वायुं सह अम्भसा ॥६॥

हि तपसा च	क्योंकि तपस्यासे तथा
आत्म संस्थया	आत्म स्थिति
विद्यया	विद्या (आत्मज्ञान)से
विज्ञान बलः	विज्ञान शक्ति
विवृद्ध	बढ़ गयी थी
अम्भसा सह वायुं	जलके साथ वायुको
न्यपात्	पी लिया ॥६॥

तद्विलोक्य वियद्व्यापि पुष्करं यदधिष्ठितम् ।
अनेन लोकान् प्राग्लीनान् कल्पितास्मीत्यचिन्तयत् ॥७॥

तत् विलोक्य वियत् व्यापि पुष्करं यत् अधिष्ठितं अनेन लोकान् प्राक्लीन कल्पिता अस्मि इति चिन्तयत् ॥७॥

तत् वियत् व्यापी	उस आकाशव्यापी
पुष्करं	कमलको
यत् अधिष्ठितं	जिसपर बैठे थे
वियत् व्यापी	आकाशमें व्यापक
विलोक्य	देखकर
अनेन	इससे
प्राक्लीनान्	पहिलेके लीन हुए
लोकान्	लोकोंकी
कल्पिता अस्मि	रचना करूँ
इति अचिन्तयत्	ऐसा सोचा ॥७॥

पद्मकोशं तदाऽऽविश्य भगवत्कर्मचोदितः ।
एकं व्यभाङ्क्षीदुरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा ॥८॥

पद्मकोशं तदा आविश्य भगवत् कर्म चोदितः एकं व्यभांक्षीत् उरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा ॥८॥

भगवत्	भगवानके द्वारा
कर्म	(सृष्टि) कर्मके लिए
चोदितः	प्रेरित (ब्रह्मा) ने
तदा पद्मकोशं	तब(उस)कमलकोशमें

आविश्य	प्रवेश करके	**भाव्यं**	हो सकता था
एकं	उस एकको (जो)	**त्रिधा**	तीनों भेदों
द्विसप्तधा	चौदह रूपोंमें था		(भूः, भुवः, स्वः) में
उरुधा	बहुत रूपोंमें	**व्यभांक्षीत्**	विभक्त किया ॥८॥

एतावाञ्जीवलोकस्य संस्थाभेदः समाहृतः ।
धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठ्यसौ ॥९॥

एतावान् जीव लोकस्य संस्थाभेदः समाहृतः धर्मस्य हि अनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठि असौ ॥९॥

जीव लोकस्य	जीव लोगोंकी	**धर्मस्य हि**	धर्माचरणका तो
एतावान्	इतनी ही	**विपाकः**	परिणाम
संस्थाभेदः	भोग स्थानका भेद	**असौ परमेष्ठी**	ये ब्रह्माजी (इनके
समाहृतः	(शास्त्रोंमें) वर्णित है		लोकमहः जनः, तपः,
अनिमित्तस्य	निष्काम		सत्य) हैं ॥९॥

विदुर उवाच-

यदात्थ बहुरूपस्य हरेरद्भुतकर्मणः ।
कालाख्यं लक्षण ब्रह्मन् यथा वर्णय नः प्रभो ॥१०॥

यत् आत्थ बहुरूपस्य हरेः अद्भुत कर्मणः काल आख्यं लक्षणं ब्रह्मन् यथावर्णय नः प्रभो ॥१०॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**यथा लक्षणं**	(उसका) जैसा
अद्भुत कर्मणः	अद्भुतकर्मा		लक्षण हो
बहुरूपस्य	अनन्त रूप	**प्रभो**	प्रभो !
हरेः	श्रीहरिकी	**नः वर्णय**	मुझसे वर्णन
कालाख्यं	काल नामक		कीजिए ॥१०॥
यत् आत्थ	जिस शक्तिका आपने वर्णन किया		

मैत्रेय उवाच–

गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः ।
पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयासृजत् ॥११॥

गुण व्यतिकर आकारः निर्विशेषः प्रतिष्ठितः पुरुषः तत् उपादानं आत्मानं लीलया सृजत ॥११॥

गुण	(त्रिगुणमय) विषयोंका
व्यतिकर	विकारी (रूपान्तरित) होना ही
आकारः	(कालका) स्वरूप है (वह)
निर्विशेषः	निर्विशेष और
अप्रतिष्ठितः	अस्थिर (अनादि अनन्त) है
पुरुषः	परम पुरुषने
लीलया	लीलासे
तत् उपादानं	उस (काल) का उपादान (कारण)
आत्मानं	अपनेको ही
असृजत्	बनाया ॥११॥

विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया ।
ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्तमूर्तिना ॥१२॥

विश्वं वै ब्रह्म तन्मात्रं संस्थितं विष्णु मायया ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेन अव्यक्त मूर्तिना ॥१२॥

विष्णु मायया	भगवान् विष्णुकी मायासे
विश्वं वै	विश्व तो
ब्रह्म तन्मात्रं	ब्रह्मसे एकीभूत होकर
संस्थितं	स्थित था
ईश्वरेण	सर्व समर्थ
अव्यक्त मूर्तिना	अव्यक्त स्वरूप
कालेन	कालके द्वारा
परिच्छिन्नं	पृथक किया गया ॥१२॥

यथेदानीं तथाग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम् ।
सर्गो नवविधस्तस्य प्राकृतो वैकृतस्तु यः ॥१३॥

यथा इदानीं तथा अग्रे च पश्चात् अपि एतत् इदृशं सर्गः नवविधः तस्य प्राकृतः वैकृतः तु यः ॥१३॥

एतत्	यह (जगत)
यथा इदानीं	जैसा इस समय है
तथा अग्रे च	वैसा ही पहिले (कल्पोंमें) भी था
पश्चात् अपि	पीछे (आगामी कल्पोंमें) भी
ईदृशं	ऐसा ही रहेगा,
तस्य	उस (जगत) की
सर्गः	सृष्टि
नवविधः	नौ प्रकारकी
तु यः	तथा जो (दसवीं)
प्राकृतः वैकृतः	प्राकृत वैकृत है ॥१३॥

कालद्रव्यगुणैरस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः ।
आद्यस्तु महतः सर्गो गुणवैषम्यमात्मनः ॥१४॥

काल द्रध्य गुणैः अस्य त्रिविधः प्रति संक्रमः आद्यः तु महतः सर्गः गुण वैषम्य आत्मनः ॥१४॥

अस्य	इस जगतका
प्रति संक्रमः	प्रत्येक संक्रमण (स्थिति)*
काल द्रव्य गुणैः	समय, पदार्थ तथा गुण
त्रिविधः	(इस) तीन प्रकारकी होती है ।
आद्यः तु	(दस प्रकारकी सृष्टिमें) पहिली तो
महतः सर्गः	महत्तत्त्वकी सृष्टि है
गुण वैषम्यं	(प्रकृतिके तीनों) गुणोंमें विषमता हो जाना
आत्मनः	इसका स्वरूप है ॥१४॥

द्वितीयस्त्वहमो यत्र द्रव्यज्ञानक्रियोदयः ।
भूतसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रो द्रव्यशक्तिमान् ॥१५॥

द्वितीयः तु अहमः यत्र द्रव्य ज्ञान क्रिया उदयः भूतसर्ग तृतीयः तु तन्मात्रः द्रव्य शक्तिमान् ॥१५॥

द्वितीयः तु	दूसरी तो
अहमः	अहंकार (की सृष्टि है)
यत्र	जिसमें
द्रव्य, ज्ञान, क्रिया	द्रव्य,ज्ञान, क्रियाका
उदयः	प्राकट्य होता है ।

---

* विश्वकी प्रत्येक स्थिति १. काल—किसी समय होती है २. किसी पदार्थकी होती है ३. उसके कुछ गुण-दोष होते हैं ।

तृतीयः तु	तीसरी (सृष्टि) तो	**तन्मात्रः**	तन्मात्रात्मक
द्रव्य शक्तिमान्	द्रव्योंकी शक्तिवाली	**भूतसर्गः**	भूत सृष्टि है ॥१५॥

चतुर्थ ऐन्द्रियः सर्गो यस्तु ज्ञानक्रियात्मकः ।
वैकारिको देवसर्गः पञ्चमो यन्मयं मनः ॥१६॥

चतुर्थ ऐन्द्रियः सर्गः यः तु ज्ञान क्रियात्मकः वैकारिकः देव सर्गः पञ्चमः यत् मयं मनः ॥१६॥

चतुर्थ सर्गः	चौथी सृष्टि	**वैकारिकः**	वैकारिक (सात्त्विक अहंकार) से
ऐन्द्रियः	इन्द्रियोंकी है	**देव सर्गः**	देवताओंकी सृष्टि है
यः तु	जो कि	**यत् मयं मनः**	मन भी इसी (वैकारिक) मय है ॥१६॥
ज्ञान क्रियात्मकः	ज्ञानात्मक तथा क्रियात्मक हैं		

षष्ठस्तु तमसः सर्गो यस्त्वबुद्धिकृतः प्रभो ।
षडिमे प्राकृताः सर्गा वैकृतानपि मे शृणु ॥१७॥

षष्ठस्तु तमसः सर्गः यः तु अबुद्धि कृतः प्रभो षडिमे प्राकृताः सर्गा वैकृतान् अपि मे शृणु ॥१७॥

प्रभो	प्रभो ! (विदुर)	**इमे षट्**	ये छ
षष्ठस्तु	छठवीं तो	**प्राकृताः सर्गा**	प्राकृत सृष्टियाँ हैं
तमसः सर्गः	अविद्याकी सृष्टि है*	**वैकृतान् अपि**	वैकृत (सृष्टियों) को भी
यः तु	जो कि		
अबुद्धि कृतः	अज्ञानसे उत्पन्न है,	**मे शृणु**	मुझसे सुनो ॥१७॥

रजोभाजो भगवतो लीलेयं हरिमेधसः ।
सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषां च यः ॥१८॥

रजः भाजः भगवतः लीला इयं हरिं एधसः सप्तमः मुख्य सर्गः तु षट्विधः तस्थुषां च यः ॥१८॥

---

* इसमें तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह, महामोह ये पांच गाँठें हैं । इस भावकी एक पंक्ति कुछ पाठोमें और है ।

एधसः हरिं	दुःख हारी	**सप्तमः**	सातवीं
भगवतः	भगवानकी	**मुख्य सर्गः तु**	(वैकृतमें) प्रमुख तो
रजः भाजः	रजोगुण स्वीकार किये (ब्रह्मारूप) की	**यः तस्थुषां च**	जो स्थावरोंकी (सृष्टि) हैं
इयं लीला	यह लीला है	**षड् विधः**	छ प्रकारकी है ॥१८॥

वनस्पत्योषधिलतात्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः ।
उत्स्रोतसस्तमःप्राया अन्तःस्पर्शा विशेषिणः ॥१९॥

वनस्पति ओषधि लता त्वक्सारा वीरुधः द्रुमाः उत्स्रोतसः तमः प्राया अन्तः स्पर्शा विशेषिणः ॥ ९॥*

वनस्पति	बिना पुष्प आये फलनेवाले (वट, पीपल आदि)	**द्रुमाः**	वृक्ष जो पुष्प आकर फलते हैं ।
ओषधि	फल पकनेपर जो सूख जाती हैं (अन्नादि)	**उत्स्रोतसः**	इनमें रस-संचार (नीचेसे) ऊपर होता है
लता	किसीके सहारे फैलनेवाली	**प्राया तमः**	प्रायः ज्ञान शक्ति प्रकट नहीं होती
त्वक् सारा	जिनमें भीतर लकड़ी नहीं होती (बांस आदि)	**अन्तः स्पर्शा**	भीतर स्पर्शका अनुभव करते हैं
वीरुधः	क्षुप् जो न पृथ्वीपर फैलते, न बहुत ऊपर जाते (तुलसी आदि)	**विशेषिणः**	(प्रत्येक) विशेष गुण वाला होता है ॥१९॥

तिरश्चामष्टमः सर्गः सोऽष्टाविंशद्विधो मतः ।
अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हृद्यवेदिनः ॥२०॥

तिरश्चां अष्टमः सर्गः सः अष्टाविंशत् विधः मतः अविदः भूरि तमसः घ्राणज्ञा हृदि अवेदिनः ॥२०॥

---

* सब तृण (घासें) त्वक्सार वर्गमें हैं ।

अष्टमः सर्गः	आठवीं सृष्टि
तिरश्चां	तिर्यक् (पशु-पक्षी) की है
सः अष्टाविंशत्	वह अट्ठाइस
विधः	प्रकारकी
मतः	मानी जाती है
अविदः	(ये) अज्ञानी हैं
भूरि तमसः	बहुत तमोगुणवाले
घ्राणज्ञा	सूंघकर जाननेवाले*
हृदि	इनके हृदयमें
अवेदिनः	विचारका उदय नहीं होता ॥२०॥

गौरजो महिषः कृष्णः सूकरो गवयो रुरुः ।
द्विशफाः पशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्च सत्तम ॥२१॥

गौः अजः महिषः कृष्णः सूकरः गवयः रुरुः द्विशफाः पशवः च इमे अविः उष्ट्रः च सत्तमः । २१॥

सत्तमः	श्रेष्ठ सज्जन (विदुर)
गौः	गायें,
अजः	बकरियां,
महिषः	भैंस,
कृष्णः	काला-हिरन,
सूकरः	सुअर,
गवयः	नीलगाय,
रुरुः च	चित्तल-मृग तथा
अविः	भेड़,
उष्ट्रः	ऊँट
इमे	ये
पशवः च	पशु तो
द्विशफाः	दो भागोंमें फटे खुरके हैं ॥२१॥

खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरी तथा ।
एते चैकशफाः क्षत्तः शृणु पञ्चनखान् पशून् ॥२२॥

खरः अश्वः अश्वतरः गौरः शरभः चमरी तथा एते च एकशफाः क्षत्तः शृणु पञ्च नखान् पशून् ॥२२॥

क्षत्तः	विदुर !
खरः	गधा,
अश्वः	घोड़ा,
अश्वतरः	खच्चर,
गौरः	गौर (अरना सांड),
शरभः तथा	साँभर और
चमरी	चँवरी (याक)
एते च	इतने तो
एकशफाः	एक खुरवाले हैं
पञ्च नखान्	पाँच नखवाले
पशून् शृणु	पशुओंको सुनो ॥२२

* इस वर्गमें केवल पशु हैं। पक्षियोंको सूँघकर ज्ञान नहीं होता। प्रायः सब पक्षी अत्यन्त क्षीण गन्धग्राही हैं।

श्वा सृगालो वृको व्याघ्रो मार्जारः शशशल्लकौ ।
सिंहः कपिर्गजः कूर्मो गोधा च मकरादयः ॥२३॥

श्वा सृगालः वृकः व्याघ्रः मार्जारः शश शल्लकौ सिंहः कपिः गजः कूर्मः गोधा च मकरादयः ॥२३॥

श्वा	कुत्ता,	**सिंहः**	सिंह,
सृगालः	सियार,	**कपिः**	बन्दर,
वृकः	भेड़िया,	**गजः**	हाथी,
व्याघ्रः	बाघ,	**कूर्मः**	कछुआ,
मार्जारः	बिल्ली,	**गोधा च**	गोह तथा
शश	खरगोश,	**मकरादयः**	मगर आदि ॥२३॥
शल्लकौ	साही,		

कङ्कगृध्रवटश्येनभासभल्लूकबर्हिणः ।
हंससारसचक्राह्वकाकोलूकादयः खगाः ॥२४॥

कङ्क गृध्र वट श्येन भास भल्लक बर्हिणः हंस सारस चक्राह्व काक उलूकादयः खगाः ॥२४॥

कङ्क	काँक(चीलकी जाति),	**हंस**	हंस,
गृध्र	गीध,	**सारस**	सारस,
वट	बटेर,	**चक्राह्व**	चकवा,
श्येन	बाज,	**काक**	कौआ,
भास	टिटिहरी,	**उलूकादयः**	उल्लू आदि
भल्लक	कठफोड़वा,	**खगाः**	पक्षी हैं ॥२४॥*
बर्हिणः	मयूर,		

अर्वाक्स्रोतस्तु नवमः क्षत्तरेकविधो नृणाम् ।
रजोऽधिकाः कर्मपरा दुःखे च सुखमानिनः ॥२५॥

अर्वाक् स्रोतः तु नवमः क्षत्तः एकविधः नृणां रजः अधिकाः कर्मपरा दुःखे च सुख मानिनः ॥२५॥

---

* पशु-पक्षियोंमें एक एक वर्ग गिनाया गया है। सबके नाम देना सम्भव नहीं है।

क्षत्तः	विदुर !
अर्वाक् स्रोतः तु	अधः स्रोत तो
नवमः	नवम सृष्टि
एक विधः	एक ही प्रकारकी
नृणां	मनुष्योंकी है
रजः अधिकाः	(ये) रजोगुण प्रधान
कर्मपरा	कर्म परायण
दुःखे च	दुःख (दुःखरूप विषयों) में
सुखमानिनः	सुख माननेवाले होते हैं ॥२५॥

वैकृतास्त्रय एवैते देवसर्गश्च सत्तम ।
वैकारिकस्तु यः प्रोक्तः कौमारस्तूभयात्मकः ॥२६॥

वैकृताः त्रय एव एते देवसर्गः च सत्तम वैकारिकः तु यः प्रोक्तः कौमारः तु उ यात्मकः ॥२६॥

सत्तम	सज्जनोत्तम !
एते त्रय एव	ये तीनों ही (स्थावर, तिर्यक् तथा मनुष्य)
वैकृताः	वैकारिक सृष्टि हैं
च देवसर्गः	तथा देवताओंकी सृष्टि
यः वैकारिकः तु	जिसे वैकारिक (प्राकृत) सृष्टि (पहिले) कहा गया है, वह भी ।
कौमारः तु	सनकादि कुमारोंकी सृष्टि तो
उभयात्मकः	प्राकृत-वैकृत दोनों प्रकारकी है ॥२६॥

देवसर्गश्चाष्टविधो विबुधाः पितरोऽसुराः ।
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चारणाः ॥२७॥

देवसर्गः च अष्टविधः विबुधाः पितरः असुराः गन्धर्वा अप्सरसः सिद्धा यक्ष रक्षांसि चारणाः ॥२७॥

देवसर्ग च	देवताओंकी सृष्टि भी
अष्टविधः	आठ प्रकारकी है
विबुधाः	देवता,
पितरः	पितर,
असुराः	असुर,
गन्धर्वा	गंधर्व,
अप्सरसः	अप्सराएँ,
सिद्धा	सिद्धगण,
यक्ष	यक्ष और
रक्षांसि	राक्षस*
चारणाः	चारण २७॥

* यक्ष-राक्षस एक ही वर्ग है ।

भूतप्रेतपिशाचाश्च विद्याध्राः किन्नरादयः ।
दशैते विदुराख्याताः सर्गास्ते विश्वसृक्कृताः ॥२८॥

भूत प्रेत पिशाचाः च विद्याध्राः किन्नर आदयः दश एते विदुर आख्याताः सर्गाः ते विश्वसृक् कृताः ॥२८॥

विदुर	विदुर !	**एते विश्वसृक्**	ये ब्रह्माजीकी
भूत	भूत,	**कृता**	बनायी
प्रेत	प्रेत,	**दश सर्गाः**	दस प्रकारकी सृष्टि
पिशाचाः च	पिशाच तथा	**ते आख्याताः**	तुमसे (मैंने)
विद्याध्राः	विद्याधर-		सुनायी ।२८।
किन्नर आदयः	किन्नर आदि		

अतः परं प्रवक्ष्यामि वंशान्मन्वन्तराणि च ।
एवं रजःप्लुतः स्रष्टा कल्पादिष्वात्मभूर्हरिः ।
सृजत्यमोघसङ्कल्प आत्मैवात्मानमात्मना ॥२९॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि वंशान् मन्वन्तराणि च एवं रजः प्लुतः स्रष्टा कल्पादिषु आत्म भूः हरिः सृजति अमोघसङ्कल्पः आत्मा एव आत्मानं आत्मना ॥२९॥

अतः परं	इसके बाद	**हरिः**	श्रीहरि ही
मन्वन्तराणि	मन्वन्तरोंकी,	**रजः प्लुतः**	रजोगुण स्वीकार
वंशान् च	वंशावलियोंका भी		करके
प्रवक्ष्यामि	वर्णन करूँगा ।	**आत्म भूः**	ब्रह्माके रूपमें
एवं	इस प्रकार	**आत्मा एव**	अपनेको ही
कल्पादिषु	कल्पके प्रारम्भमें	**आत्मना**	अपने द्वारा
स्रष्टा	सृष्टि करनेकी इच्छासे	**आत्मानं**	अपने ही (अनेक) रूपोंमें
अमोघ सङ्कल्पः	अमोघ संकल्प	**सृजति**	बनाते हैं ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे दशमोऽध्यायः ।

अथ एकादशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा ।
परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः ॥१॥

चरमः सत् विशेषाणां अनेकः असंयुतः सदा परमाणुः स विज्ञेयः नृणां ऐक्य भ्रमः यतः ॥१॥

विशेषाणां	(पृथ्वी आदि) विशेष पदार्थोंकी	**असंयुत**	पृथक पृथक है
चरमः	जो अन्तिम	**स परमाणुः**	उसे परमाणु
सत्	सत्ता है (वह)	**विज्ञेयः**	जानना चाहिए
सदा	सदा	**यतः नृणां**	जिससे मनुष्योंको
अनेकः	अनेक	**ऐक्य**	एकताका
		भ्रमः	भ्रम रहता है ॥१॥

विशेष—

पदार्थ हो या शरीर वह असंख्य परमाणुओंका समुदाय है और वे परमाणु परस्पर सटते या मिलते नहीं हैं। मेलेकी भीड़के समान परमाणुओं की एक भीड़में ही पदार्थ, देह आदिका भ्रम होता है। परमाणु सब पृथक-पृथक हैं, स्वतन्त्र हैं और उनकी गति भी स्वतन्त्र है। उनके प्रवाहमें ही पिण्डका भ्रम हो रहा है।

सत एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत् ।
कैवल्यं परममहानविशेषो निरन्तरः ॥२॥

सत एव पदार्थस्य स्वरूप अवस्थितस्य यत् कैवल्यं परम महान् अविशेषः निरन्तरः ॥२॥

सत एव	सत्ता मात्र
पदार्थस्य	पदार्थका (परमाणुकी)
यत्	जो
स्वरूप अवस्थितस्य	अपने स्वरूपमें स्थिति है (जिसका परमाणु सूक्ष्मतम अंश है—उस तत्त्वका नाम)
परम महान्	परम महान् है,
कैवल्यं	वह केवल है
निरन्तरः	उसमें कोई (देश, काल, पदार्थका) भेद नहीं है ।
अविशेषः	वह निर्विशेष है ॥२॥

एवं कालोऽप्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम ।
संस्थानभुक्त्या भगवानव्यक्तो व्यक्तभुग्विभुः ॥३॥

एवं कालः अपि अनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम संस्थान भुक्त्या भगवान् अव्यक्तः व्यक्त भुक् विभुः ॥३॥

सत्तम	साधु श्रेष्ठ !
एव	इसी प्रकार
सौक्ष्म्ये च	सूक्ष्मरूप तथा
स्थौल्ये	स्थूलरूप
अव्यक्तः	अव्यक्त
भगवान्	भगवान्का
व्यक्त संस्थान	व्यक्त पदार्थोंके
भुक्त्या	भोगसे
कालः अपि	कालका भी
अनुमितः	अनुमान किया जाता है ॥३॥

स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम् ।
सतोऽविशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान् ॥४॥

स कालः परमाणुः वै यः भुङ्क्ते परमाणुतां सतः अविशेष भुक् यः तु स कालः परमः महान् ॥४॥

स कालः	वह काल
परमाणुः वै	परमाणु ही (कहा जाता) है
यः परमाणुतां	जो परमाणुके स्वरूपका
भुंक्ते	भोग करता है ।*

* यहाँ कुछ दर्शनों और विज्ञानका (वर्तमान) में मतभेद है न्यायादि परमाणुवादी-दर्शन तथ वर्तमान विज्ञान परमाणु तथा जीव णु (अन्तिम

सतः	सत्ता मात्र	**स कालः**	वह काल
अविशेष	निर्विशेषका	**परमः महान्**	परम महान् (काल)
यः तु	जो तो		है ॥४॥
भुक्	भोग करता है		

अणुर्द्वौ परमाणू स्यात्त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः ।
जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात् ॥५॥

अणुः द्वौ परमाणुः स्यात् त्रसरेणुः त्रयः स्मृतः जाल अर्करश्मि अवगतः खं एव अनुपतन् अगात् ॥५॥

द्वौ परमाणुः	दो परमाणु मिलकर	**अर्करश्मि**	(आती) सूर्यकी
अणुः स्यात्	एक अणु होता है		किरणोंमें
त्रयः	तीन अणु मिलकर	**खं एव**	आकाशमें ही
त्रसरेणुः स्मृतः	त्रसरेणु कहा जाता है	**अनुपतन्**	उड़ता
जाल	झरोखेसे	**अगात्**	हुआ
		अवगतः	जाना जाता है ॥५॥

त्रसरेणुत्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः ।
शतभागस्तु वेधःस्यात्तैस्त्रिभिस्तु लवःस्मृतः ॥६॥

त्रसरेणुः त्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः शतभागः तु वेधः स्यात् तैः त्रिभिः तु लवः स्मृतः ॥६॥

त्रसरेणुः त्रिकं	तीन त्रसरेणु	**वेधः स्यात्**	वेध होता है
यः कालः	जिस कालको	**तैः**	उस (वेध से
भुंक्ते स	भोगते हैं वह (काल)	**त्रिभिः तु**	तीनसे तो
त्रुटिः स्मृतः	त्रुटि कहा जाता है,	**लवः स्मृतः**	लव कहा जाता
शतभागः तु	(उससे) सौ गुना		है ॥६॥
	भाग तो		

निमेषस्त्रिलवो ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः ।
क्षणान् पञ्च विदुः काष्ठां लघु ता दश पञ्च च ॥७॥

■ कोशिका) को अजर-अमर नित्य मानते हैं; किन्तु क्षणिकवादी बौद्धादि तथा वेदान्त परमाणुको क्षणिक मानता है ।

निमेषः त्रिलवः ज्ञेयः आम्नातः ते त्रयः क्षणः क्षणान् पञ्च विदुः काष्ठां लघु ता दश पञ्च च ॥७॥

त्रिलवः	तीन लवका
निमेषः	निमेष
ज्ञेयः	जानना चाहिए
ते त्रयः	वे तीन (निमेष)
क्षणः	क्षण
आम्नातः	कहे गये हैं,
पञ्च क्षणान्	पांच क्षणोंकी
काष्ठां विदुः	काष्ठा जाननी चाहिए
दश पञ्च च ता	पन्द्रह उस (काष्ठा) की
लघु	लघु होती है ॥७॥

लघूनि वै समाम्नाता दश पञ्च च नाडिका ।
ते द्वे मुहूर्तः प्रहरः षड्यामः सप्त वा नृणाम् ॥८॥

लघूनि वै समाम्नाता दश पञ्च च नाडिका ते द्वे मुहूर्तः प्रहरः षट् यामः सप्त वा नृणाम् ॥८॥

दश पञ्च च	पन्द्रह
लघूनि वै	लघुकी ही
नाडिका	नाड़ी (दण्ड)
समाम्नाता	कही गयी है,
ते द्वे मुहूर्तः	उन दो (नाड़ियों) का मुहूर्त होता है
नृणां	मनुष्योंका
यामः	दिन (घटने बढ़नेके अनुसार)या रातका चौथा भाग
षट् वा सप्त	छः या सात नाड़िका होता है ।
प्रहरः	इसे प्रहर कहते हैं ॥८॥

द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः ।
स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम् ॥९॥

द्वादशार्धपल उन्मानं चतुःभिः चतुः अंगुलैः स्वर्ण माषैः कृतः छिद्रं यावत् प्रस्थ जलप्लुतम् ॥९॥

द्वादशार्ध पल	६ पल
उन्मानं	वजनका
माषैः	ताँबेका
प्रस्थजल	एक प्रस्थजल आने योग्य (वर्तन बनाया जाय)
चतुःभिः	चार मासा
स्वर्ण	सोनेकी
चतुः अंगुलैः	चार अंगुलकी सलाई बनाकर
कृतः छिद्रं	(उससे उस वर्तनमें) छेद किया जाय

यावत् जलप्लुतम् (वह वर्तन जलमें छोड़नेपर) जितने समयमें जलसे	भर जाय (उतने समयको नाड़ी कहते हैं) ॥९॥

यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे ।
पक्षः पञ्चदशाहानि शुक्लः कृष्णश्च मानद ॥१०॥

यामाः चत्वारः चत्वारः मर्त्यानां अहनी उभे पक्षः पञ्चदश अहानि शुक्लः कृष्णः च मानद ॥१०॥

मानद	सम्मान देनेवाले विदुर !
चत्वार चत्वारः	चार चार
यामाः	यामोंका
मर्त्यानां	मनुष्योंका
उभे अहनी	दोनों दिन-रात (होते हैं)
पञ्चदश अहानि	पन्द्रह दिन-रातका
शुक्लः च कृष्णः पक्षः	शुक्ल और कृष्ण (ये दो) पक्ष होते हैं ॥१०॥

तयोः समुच्चयो मासः पितृणां तदहर्निशम् ।
द्वौ तावृतुः षडयनं दक्षिणं चोत्तरं दिवि ॥११॥

तयोः समुच्चयः मासः पितृणां तत् अहः निशं द्वौ ताः ऋतुः षट् अयनं दक्षिणं च उत्तरं दिवि ॥११॥

तयोः	उन (दोनों पक्षों) को
समुच्चयः	मिलाकर
मासः	महीना होता है
तत्	वे (पक्ष)
पितृणां	पितरोंका
अहनी	(कृष्णपक्ष) दिन
निशं	(शुक्ल पक्ष) रात होतो है,
ताः द्वौ ऋतुः	उन दो (मासोंकी) ऋतु होती है,
षट् अयनं	६ (मास) का अयन होता है
दिवि	आकाशमें
दक्षिणं च उत्तरं	दक्षिणायन और उत्तरायण ॥११॥

अयने चाहनी प्राहुर्वत्सरो द्वादश स्मृतः ।
संवत्सरशतं नृणां परमायुर्निरूपितम् ॥१२॥

अयने च अहनी प्राहुः वत्सरः द्वादश स्मृतः संवत्सर शतं नृणां परमायुः निरूपितम् ॥१२॥

अयने च	अयनोंको तो (देवताओंका)
अहनी प्राहुः	दिन-रात कहा जाता है
द्वादश	ये बारह (देवताओंके दिन-रात, मनुष्यके महीने)
वत्सरः स्मृतः	वर्ष कहा जाता है।
संवत्सर शतं	सौ वर्ष
नृणां परमायुः	मनुष्यकी परम आयु
निरूपितं	बतलायी गयी है ॥१२॥*

ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः परमाण्वादिना जगत् ।
संवत्सरावसानेन पर्येत्यनिमिषो विभुः ॥१३॥

ग्रह अर्क्ष तारा चक्रस्थः परमाणु आदिना जगत् संवत्सर अवसानेन पर्येति अनिमिषः विभुः ॥१३॥

ग्रह	(चन्द्रादि) ग्रह
अर्क्ष	(अश्विनी आदि) नक्षत्र (तथा)
तारा चक्रस्थः	तारामण्डलमें स्थित
अनिमिषः विभुः	काल स्वरूप भगवान् सूर्य
परमाणु आदिना	परमाणुसे लेकर
संवत्सर अवसानेन	संवत्सर तकमें
जगत् पर्येति	जगत (राशि मण्डल रूप पूरे जगतकी) परिक्रमा करते हैं ॥१३॥

संवत्सरः परिवत्सर इडावत्सर एव च ।
अनुवत्सरो वत्सरश्च विदुरैवं प्रभाष्यते ॥१४॥

संवत्सर परिवत्सर इडावत्सर एव च अनुवत्सर वत्सरः च विदुर एवं प्रभाष्यते ॥१४॥

विदुर	विदुर !
संवत्सर च	(सूर्यका वर्ष) सम्वत्सर तथा
परिवत्सर एव	(वृहस्पतिका वर्ष) परिवत्सर और

---

* यह सौ वर्ष मनुष्यकी सामान्य परमायु है। इससे बहुत अधिक आयुके मनुष्य सदा होते रहे हैं।

इडावत्सर च	(चन्द्रमाका वर्ष) इडावत्सर एवं	**वत्सर एवं**	(नक्षत्र सम्बन्धी वर्ष) वत्सर इस प्रकार
अनुवत्सर	(शनिका वर्ष) अनुवत्सर	**प्रभाष्यते**	कहा जाता है ॥१४॥*

यः सृज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन् स्वशक्त्या
पुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति भूतभेदः ।
कालाख्यया गुणमयं क्रतुभिर्वितन्वं-
स्तस्मै बलिं हरत वत्सरपञ्चकाय ॥१५॥

यः सृज्य शक्ति उरुधा उच्छ्वसयन् स्व शक्त्या पुंसः अभ्रमाय दिवि धावति भूत भेदः काल आख्यया गुणमय क्रतुभिः वितन्वन् तस्मै बलिं हरत वत्सर पञ्चकाय ॥१५॥

यः सृज्य शक्ति	जो उत्पादक शक्तिको	**काल आख्यया**	काल नामक (शक्तिसे)
स्व शक्त्या	अपनी शक्तिसे	**क्रतुभिः**	यज्ञोंके
उरुधा	अनेक प्रकारसे	**वितन्वन्**	विस्तारको चलाते रहते हैं,
उच्छ्वसयन्	उच्छ्वसित (जीवित) करके	**तस्मै**	उन (सूर्य भगवान्) को
पुंसः	लोगोंको	**पञ्चकाय वत्सर**	पाँचो सम्वत्सर रूपको
अभ्रमाय	सावधान रखनेके लिए	**बलिं हरत**	उपहार देते हैं(उनकी पूजा करते हैं) ॥१५॥
दिवि	आकाशमें		
धावति	दौड़ते रहते हैं		
भूत भेदः	पंच महाभूतोंके एक भेद (ज्योतिके रूपमें)		

विदुर उवाच-

पितृदेव मनुष्याणामायुः परमिदं स्मृतम् ।
परेषां गतिमाचक्ष्व ये स्युः कल्पाद् बहिर्विदः ॥१६॥

---

* जब एक ग्रह बारह राशियोंका भ्रमण पूरा कर लेता है तो उसका एक वर्ष होता है। इसमें शनिका अनुवत्सर सबसे बड़ा ३० का है।

पितृदेव मनुष्याणां आयुः परं इदं स्मृतं परेषां गतिं आचक्ष्व ये स्युः कल्पात् बहिः विदः ॥१६॥

पितृ	पितर	**परेषां**	दूसरोंकी
देव	देवता	**गतिं**	अवस्था
मनुष्याणां	मनुष्योंकी	**आचक्ष्व ये**	बतलाइये जो
परं आयुः इदं	परमायु यह	**कल्पात् वहिः**	कल्पसे बाहर
स्मृतं	आपने बतलायी	**विदः स्युः**	जाने जाते हैं ॥१६॥

भगवान् वेद कालस्य गतिं भगवतो ननु ।
विश्वं विचक्षते धीरा योगराद्धेन चक्षुषा ॥१७॥

भगवान् वेद कालस्य गतिं भगवतः ननु विश्वं विचक्षते धीराः योग आराद्धेन चक्षुषा ॥१७॥

भगवान्	भगवन् !	**योग आराद्धेन**	योगसिद्ध निर्मल
भगवतः कालस्य	भगवान कालकी	**चक्षुषा**	दृष्टिसे
गतिं ननु	गति निश्चय	**विश्वं**	(पूरे) संसारको
वेद	(आप) जानते हैं	**विचक्षते**	देखते हैं ॥१७॥
धीराः	(क्योंकि) धीर पुरुष		

मैत्रेय उवाच–

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥१८॥

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिः च इति चतुः युगं दिव्यैः द्वादशभिः वर्षैः स अवधानं निरूपितम् ॥१८॥

कृतं च	सतयुग तथा		सन्ध्यांश सहित
त्रेता	त्रेतायुग	**दिव्यैः**	देवताओंके
द्वापरं च	द्वापरयुग और	**द्वादशभिः**	बारह सहस्र
कलिः इति	कलियुग इस प्रकार	**वर्षैः**	वर्ष तकके
चतुः युगं	ये चारो युग	**निरूपितं**	कहे गये हैं ॥१८॥
स अवधानं	अपनी सन्ध्या और		

चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् ।
संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च ॥१९॥

चत्वारि त्रीणि द्वे च एकं कृतादिषु यथाक्रमं संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च ॥१९॥

चत्वारि	चार		दुगने सौ (वर्ष सन्ध्या-सन्ध्यांशके)
त्रीणि	तीन		
द्वे च	दो और	**यथा क्रमं**	क्रमानुसार
एकं	एक	**कृतादिषु**	सतयुग आदिके (वर्ष)
सहस्राणि	सहस्र (वर्ष)		
द्विगुणानि		**संख्यातानि**	गिनाये गये हैं ॥१९॥
शतानि च	उतने सहस्रसे		

संध्यांशयोरन्तरेण यः कालः शतसंख्ययोः ।
तमेवाहुर्युगं तज्ज्ञा यत्र धर्मो विधीयते ॥२०॥

सन्ध्या अंशयोः अन्तरेण यः कालः शतसंख्ययोः तं एव आहुः युगं तज्ज्ञा यत्र धर्मः विधीयते ॥२०॥

सन्ध्या	(युगकी आदिमें) सन्ध्या तथा	**तज्ज्ञा**	उस (कालके) के जाननेवाले
अंशयोः	(उसका) सन्ध्यांश	**तं एव**	उस (मध्यवर्तीकाल)
शत संख्ययोः	सौ वर्षोंकी संख्यावाला		को ही
अन्तरेण	(युगके अन्तमें भी सन्ध्या सन्ध्यांश) इनके मध्यमें	**युगं आहुः**	युग कहते हैं,
		यत्र	जिसमें
		धर्मः	(विशेष विशेष युग) धर्मका
यः कालः	जो समय होता है	**विधीयते**	विधान होता है ॥२०॥

धर्मश्चतुष्पान्मनुजान् कृते समनुवर्तते ।
स एवान्येष्वधर्मेण व्येति पादेन वर्धता ॥२१॥

धर्मः चतुष्पात् मनुजान् कृते समनुवर्तते स एव अन्येषु अधर्मेण व्येति पादेन वर्धता ॥२१॥

कृते	सतयुगमें	**स एव**	वही (धर्म)
मनुजान्	मनुष्योंमें	**अन्येषु**	दूसरे (युगों) में
धर्मः	धर्म	**अधर्मेण वर्धता**	अधर्म बढ़ते जानेसे
चतुष्पात्	चारों पैरोंसे (पूर्ण)	**पादेन व्येति**	एक-एक पाद क्षीण
समनुवर्तते	भली प्रकार वर्तमान रहता है		होता जाता है ॥२१॥

त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिराब्रह्मणो दिनम् ।
तावत्येव निशा तात यन्निमीलति विभ्वसृक् ॥२२॥

त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिः आब्रह्मणः दिनं तावत् एव निशा तात यत् निमीलयति विश्वसृक् ॥२२॥

तात	तात !	**तावत् एव**	उतनी ही बड़ी (वहाँकी)
त्रिलोक्या बहिः	त्रिलोकीसे बाहर (महर्लोकसे लेकर)	**निशा**	रात्रि होती है
आब्रह्मणः	ब्रह्मलोक तक	**यत्**	जिसमें
युग साहस्रं	(यहाँकी) एक सहस्र चतुर्युगीका	**विश्वसृक्**	विश्वस्रष्टा (ब्रह्मा)
दिनं	दिन होता है ।	**निमीलयति**	सोते हैं ॥२२॥

निशावसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते ।
यावद्दिनं भगवतो मनून् भुञ्जंश्चतुर्दश ॥२३॥

निशावसान आरब्धः लोक कल्पः अनुवर्तते यावत् दिनं भगवतः मनून् भुञ्जन् चतुर्दश ॥२३॥

निशावसान	रात्रिका अन्त	**यावत् दिनं**	जब तक दिन रहता है
आरब्धः	प्रारम्भ होनेपर	**चतुर्दश**	चौदह
लोक कल्प	लोक व्यवहार	**मनून्**	मनु (उसमें)
अनुवर्तते	चलता रहता है	**भुञ्जन्**	भोग करते (होते)
भगवतः	भगवान् ब्रह्माका		हैं ॥२३॥

स्वं स्वं कालं मनुर्भुङ्क्ते साधिकां ह्येकसप्ततिम् ।
मन्वन्तरेषु मनवस्तद्वंश्या ऋषयः सुराः ।
भवन्ति चैव युगपत्सुरेशाश्चानु ये च तान् ॥२४॥

स्वं स्वं कालं मनूः भुंक्ते साधिकां हि एक सप्ततिं मन्वन्तरेषु मनवः तद्वंशाः ऋषयः सुराः भवन्ति च एव युगपत् सुरेशाः च अनु ये च तान् ॥२४॥

हि साधिकां	क्योंकि कुछ अधिक
एक सप्ततिं	इकहत्तर ($७१\frac{३}{७}$ चतुर्युगी)
स्वं स्वं कालं	अपने अपने समयमें
मनूः	मनु
भुंक्ते	भोग करते हैं ।
मन्वन्तरेषु	मन्वन्तरोंमें
मनवः	मनुः
तद्वंश्याः	उनके वंशके लोग
ऋषयः	सप्तर्षि
सुराः च	देवता तथा
सुरेशाः ये च	इन्द्र एवं जो
तान् अनु	उन (इन्द्रके) अनुयायी (देवतादि)हैं
युगपत् एव	एक साथ ही
भवन्ति	होते हैं ॥२४॥

एष दैनन्दिनः सर्गो ब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तनः ।
तिर्यङ्नृपितृदेवानां सम्भवो यत्र कर्मभिः ॥२५॥

एष दैनन्दिनः सर्गः ब्राह्मः त्रैलोक्य वर्तनः तिर्यङ् नृ पितृ देवानां सम्भवः यत्र कर्मभिः ॥२५॥

एष	यह
त्रैलोक्य वर्तनः	त्रिलोकीमें चलनेवाली
ब्राह्मः	ब्रह्माजीकी
दैनन्दिनः	दैनिक
सर्गः	सृष्टि है
यत्र कर्मभिः	जिसमें कर्मानुसार
तिर्यङ्	पशु-पक्षी आदि तिर्यक्
नृ पितृ देवानां	मनुष्य, पितर तथा देवताओंकी
सम्भवः	उत्पत्ति होती है ॥२५॥

मन्वन्तरेषु भगवान् बिभ्रत्सत्त्वं स्वमूर्तिभिः ।
मन्वादिभिरिदं विश्वमवत्युदितपौरुषः ॥२६॥

मन्वन्तरेषु भगवान् विभ्रत् सत्त्वं स्वमूर्तिभिः मन्वादिभिः इदं विश्वं अवति उदित पौरुषः ॥२६॥

मन्वन्तरेषु	मन्वन्तरोंमें	**स्वमूर्तिभिः**	अपनी ही मूर्ति (विभूतियों) द्वारा
भगवान्	भगवान्		
सत्त्वं	सत्त्वगुणका	**उदित पौरुषः**	पौरुष प्रकट करके
विभ्रत्	आश्रय लेकर	**इदं विश्वं**	इस विश्वकी
मन्वादिभिः	मनु आदि	**अवति**	रक्षा करते हैं ॥२६॥

तमोमात्रामुपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः ।
कालेनानुगताशेष आस्ते तूष्णीं दिनात्यये ॥२७॥

तमः मात्रां उपादाय प्रति संरुद्ध विक्रमः कालेन अनुगत अशेष आस्ते तूष्णीं दिन अत्यये ॥२७॥

कालेन	समयपर	**अनुगत**	साथ लेकर
दिन अत्यये	(ब्रह्माजीका) दिन बीत जानेपर	**विक्रमः**	पराक्रम
		प्रति संरुद्ध	रोककर
तमः मात्रां	तमोगुणका सम्पर्क	**तूष्णीं**	चुप (शान्त)
उपादाय	स्वीकार करके	**आस्ते**	हो जाते हैं ॥२७॥
अशेष	सम्पूर्ण (जगतको)		

तमेवान्वपिधीयन्ते लोका भूरादयस्त्रयः ।
निशायामनुवृत्तायां निर्मुक्तशशिभास्करम् ॥२८॥

तं एव अनुपिधीयन्ते लोका भूः आदयः त्रयः निशायां अनुवृत्तायां निर्मुक्त शशि भास्करम् ॥२८॥

शशि भास्करं	चन्द्र-सूर्यके	**त्रयः लोका**	तीनों लोक
निर्मुक्त	न रहनेपर	**तं एव**	उन (ब्रह्माजी) में ही
निशायां	(ब्रह्माजीकी) रात्रि	**अनुपिधीयन्ते**	लीन हो जाते हैं ॥२८॥
अनुवृत्तायां	आ जानेपर		
भूः आदयः	भूः आदि (भुवः स्वः)		

त्रिलोक्यां दह्यमानायां शक्त्या सङ्कर्षणाग्निना ।
यान्त्यूष्मणा महर्लोकाज्जनं भृग्वादयोऽर्दिताः ॥२९॥

त्रिलोक्यां दह्यमानायां शक्त्या संकर्षण अग्निना यान्ति उष्मणा महर्लोकात् जनं भृगु आदयः अर्दिताः ॥२९॥

संकर्षण	शेषजीके
अग्निना	(मुखसे निकली) अग्निरूप
शक्त्या	(भगवानकी) शक्तिसे
त्रिलोक्यां	त्रिलोकीके
दह्यमानायां	जलते समय
उष्मणा	गर्मीसे
अर्दिता	पीड़ित होकर
भृगु आदयः	भृगु आदि (ऋषि)
महर्लोकात्	महर्लोकसे
जनंयान्ति	जनलोक चले जाते हैं ॥२९॥

तावत्त्रिभुवनं सद्यः कल्पान्तैधितसिन्धवः ।
प्लावयन्त्युत्कटाटोपचण्डवातेरितोर्मयः ॥३०॥

तावत् त्रिभुवनं सद्यः कल्पान्तैधित सिन्धवः प्लावयन्ति उत्कट आटोप चण्डवात इरित उर्मयः ॥३०॥

तावत्	तब तक
कल्पान्तैधित	कल्पान्तमें बढ़े
चण्ड वात	प्रचण्ड वायु
ईरित	प्रेरित
उत्कट आटोप	भयंकर उछाल लेती
उर्मयः	लहरोंवाले
सिन्धवः	समुद्र
सद्यः	तुरन्त
त्रिभुवनं	तीनों लोकोंको
प्लावयन्ति	डुबा देने हैं ॥३०॥

अन्तः स तस्मिन् सलिल आस्तेऽनन्तासनो हरिः ।
योगनिद्रानिमीलाक्षः स्तूयमानो जनालयैः ॥३१॥

अन्तः स तस्मिन् सलिले आस्ते अनन्त आसनः हरिः योगनिद्रा निमील अक्षः स्तूयमानः जनालयैः ॥३१॥

तस्मिन्	उस
सलिले	जलके
अन्तः स	भीतर वे
अनन्त आसनः	शेषके आसनपर
हरिः	श्रीहरि
योगनिद्रा	योगनिद्रासे
अक्षः निमील	नेत्र बन्द करके
जनालयैः	जनलोक निवासियों द्वारा
स्तूयमानः	स्तुत होते
आस्ते	शयन करते हैं ॥३१॥

एवंविधैरहोरात्रैः कालगत्योपलक्षितैः ।
अपक्षितमिवास्यापि परमायुर्वयःशतम् ॥३२॥

एवं विधैः अहोरात्रैः कालगति उपलक्षितैः अपक्षितं एव अस्य अपि परम आयुः वयः शतम् ॥३२॥

एवं विधैः	इस प्रकारके	**अस्य अपि**	इन (ब्रह्माजी) की भी
कालगति	कालकी गतिसे	**परम आयुः**	परम आयु
उपलक्षितैः	प्रतीत होनेवाले	**वयः शतम्**	सौ वर्षकी वय है ॥३२॥
अहोरात्रैः	दिन-रातके		
अपक्षितं एव	व्यतीत होनेसे ही		

यदर्धमायुषस्तस्य परार्धमभिधीयते ।
पूर्वः परार्धोऽपक्रान्तो ह्यपरोऽद्य प्रवर्तते ॥३३॥

यत् अर्धम् आयुषः तस्य परार्धम् अभिधीयते पूर्वः परार्धः अपक्रान्तः हि अपरः अद्य प्रवर्तते ॥३३॥

यत् तस्य	जो उन (ब्रह्माजी)की	**पूर्वः परार्धः**	पहिला परार्ध
आयुषं	आयुका	**हि अपक्रान्तः**	क्योंकि बीत गया
अर्धम्	आधा भाग है	**अद्य**	इस समय
परार्धम्	परार्ध	**अपरः**	दूसरा (परार्ध)
अभिधीयते	कहा जाता है,	**प्रवर्तते**	चल रह है ॥३३॥

पूर्वस्यादौ परार्धस्य ब्राह्मो नाम महानभूत् ।
कल्पो यत्राभवद् ब्रह्मा शब्दब्रह्मेति यं विदुः ॥३४॥

पूर्वस्य आदौ परार्धस्य ब्राह्मः नाम महान् अभूत् कल्पः यत्र अभवत् ब्रह्मा शब्द ब्रह्म इति यं विदुः ॥३४॥

पूर्वस्य	पहिले	**यत्र ब्रह्मा**	जिसमें ब्रह्माजी
परार्धस्य	परार्धके	**अभवत्**	उत्पन्न हुए थे
आदौ	प्रारम्भमें	**यं**	जिनको
ब्राह्मः नाम	ब्राह्म नामका	**शब्द ब्रह्म**	शब्द ब्रह्म
महान् कल्पः	महान् कल्प	**इति विदुः**	इस नामसे जाना जाता है ॥३४॥
अभूत्	हुआ था		

तस्यैव चान्ते कल्पोऽभूद् यं पाद्ममभिचक्षते ।
यद्धरेर्नाभिसरस आसील्लोकसरोरुहम् ॥३५॥

तस्य एव च अन्ते कल्पः अभूत् यं पाद्मं अभिचक्षते यत् हरेः नाभि सरस आसीत् लोक सरोरुहम् ॥३५॥

तस्य एव	उसके ही	**यत् हरेः**	क्योंकि (उसमें) श्रीहरिकी
अन्ते च	अन्तमें तो	**नाभि सरस**	नाभि सरोवरसे
कल्पः अभूत्	वह) कल्प हुआ	**लोक सरोरुहं**	लोकमय कमल
यं पाद्मं	जिसे पाद्म	**आसीत्**	(उत्पन्न)हुआ ॥३५॥
अभिचक्षते	कहा जाता है		

अयं तु कथितः कल्पो द्वितीयस्यापि भारत ।
वाराह इति विख्यातो यत्रासीत्सूकरो हरिः ॥३६॥

अयं तु कथितः कल्पः द्वितीयस्य अपि भारत वाराह इति विख्यातः यत्र आसीत् सूकरः हरिः ॥३६॥

भारत	विदुर !	**वाराह इति**	वाराह इस नामसे
अयं तु	यह (वर्तमान) तो	**विख्यातः**	प्रसिद्ध है
कल्पः	कल्प	**यत्र हरिः**	जिसमें श्रीहरि
द्वितीयस्य अपि	दूसरे परार्धका ही	**सूकरः**	वाराह
कथितः	बतलाया गया है,	**आसीत्**	हुए थे ॥३६॥

कालोऽयं द्विपरार्धाख्यो निमेष उपचर्यते ।
अव्याकृतस्यानन्तस्य अनादेर्जगदात्मनः ॥३७॥

कालः अयं द्विपरार्ध आख्यः निमेष उपचर्य ते अव्याकृतस्य अनन्तस्य अनादेः जगदात्मनः ॥३७॥

अयं	यह	**अनादेः**	अनादि
द्विपरार्ध आख्यः	दो परार्ध कहा जानेवाला	**जगदात्मनः**	विश्वात्मा भगवानका
कालः	काल	**निमेष**	निमेष भी
अव्याकृतस्य	निर्विकार	**उपचर्य ते**	उपचारसे (कल्पित भावसे ही) कहा
अनन्तस्य	अनन्त		जाता है ॥३७॥

कालोऽयं परमाण्वादिर्द्विपरार्धान्त ईश्वरः ।
नैवेशितुं प्रभुर्भूम्न ईश्वरो धाममानिनाम् ॥३८॥

कालः अयं परमाणु आदिः द्विपरार्ध अन्त ईश्वरः न एव इशितुं प्रभुः भूम्नः ईश्वरः धाम मानिनाम् ॥३८॥

अयं परमाणु	
आदिः	यह परमाणुसे लेकर
द्विपरार्ध अन्त	द्विपरार्ध तकका
कालः	काल
ईश्वरः	समर्थ होनेपर भी
भूम्नः प्रभुः	सर्वव्यापक प्रभुको
इशितुं	प्रभावित करनेमें समर्थ
न एव	नहीं ही है,
धाम मानिनाम्	शरीरको मैं मानने वालोंका
ईश्वरः	(यह) स्वामी है ॥३८॥

विकारैः सहितो युक्तैर्विशेषादिभिरावृतः ।
आण्डकोशो बहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः ॥३९॥

विकारः सहितः युक्तैः विशेष आदिभिः आवृतः आण्डकोशः बहिः अयं पञ्चाशत् कोटि विस्तृतः ॥३९॥

विकारः	विकारों (दस इन्द्रिय, मन, पञ्चभूत)
सहितः	के साथ
विशेष	प्रकृतियों (प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार पञ्च तन्मात्रा)
युक्तैः	से युक्त होकर
आदिभिः	इन सबसे
आवृतः	घिरा हुआ
अयं आण्डकोशः	यह ब्रह्माण्ड
बहिः	बाहरसे (मापनेपर)
पञ्चाशत् कोटि	पचास करोड़ योजन
विस्तृतः	विस्तारवाला है ॥३९॥

दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् ।
लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः ॥४०॥

दश उत्तर अधिकैः यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् लक्ष्यते अन्तर्गताः च अन्ये कोटिशः हि अण्डराशयः ॥४०॥

दश उत्तर	उत्तरोत्तर दस-दस गुने
अधिकैः	बड़े (सात आवरणोंसे घिरा है)

यत्र	(यह) जिसमें	**अण्डराशयः**	ब्रह्माण्डोंकी ढेरियाँ (जिसके)
परमाणुवत्	परमाणुके समान		
प्रविष्टः	पड़ा है,	**अन्तर्गताः**	भीतर
अन्ये च	दूसरी भी	**लक्ष्यन्ते**	लक्षित होती हैं ॥४०॥
कोटिशः	करोड़ों		

तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ।
विष्णोर्धाम परं साक्षात्पुरुषस्य महात्मनः ॥४१॥

तत् आहुः अक्षरं ब्रह्म सर्वकारण कारणं विष्णोः धाम परं साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः ॥४१॥

तत् अक्षरं	उस अविनाशी	**साक्षात्**	साक्षात्
सर्वकारण	सबके कारण (प्रकृति) के भी	**परं पुरुषस्य**	परम पुरुष
		महात्मनः	परमात्मा
कारणं	कारणको	**विष्णोः**	विष्णुका
ब्रह्म	ब्रह्म	**धाम**	(वह) धाम (स्वरूप)
आहुः	कहा जाता है		है ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ।

अथ द्वादशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

इति ते वर्णितः क्षत्तः कालाख्यः परमात्मनः ।
महिमा वेदगर्भोऽथ यथास्राक्षीन्निबोध मे ॥१॥

इति ते वर्णितः क्षत्तः कालाख्यः परमात्मनः महिमा वेदगर्भः अथ यथा स्राक्षीत् निबोध मे ॥१॥

क्षत्तः	विदुर !	**वर्णितः**	वर्णनकी
इति ते	इस प्रकार तुमसे	**अथ वेदगर्भः**	अब ब्रह्माजीने
कालाख्यः	काल नामवाले	**यथा स्राक्षीत्**	जैसे सृष्टिकी
परमात्मनः	परमात्माकी	**मे निबोध**	मुझसे सुनो ॥१॥
महिमा	महिमा		

ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत् ।
महामोहं च मोहं च तमश्चाज्ञानवृत्तयः ॥२॥

ससर्ज अग्रे अन्ध तामिस्रं अथ तामिस्रं आदिकृत् महामोहं च मोहं च तमः च अज्ञान वृत्तयः ॥२॥

आदिकृत्	आदिकर्ता (ब्रह्मा)ने	**अथ तामिस्रं च**	तथा तामिस्र (अस्मिता) और
अग्रे	पहिले	**महामोहं च**	महामोह (राग) एवं
अज्ञान वृत्तयः	अज्ञानकी वृत्तियाँ	**मोहं च**	मोह (द्वेष) तथा
अन्ध तामिस्रं	अन्ध तामिस्र (अविद्या)	**तमः**	तम (अभिनिवेश)की
		ससर्ज	सृष्टि की ॥२॥

दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत ।
भगवद्ध्यानपूतेन मनसान्यां ततोऽसृजत् ॥३॥

दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं न आत्मानं बहु मन्यत भगवत् ध्यान पूतेन मनसा अन्यां ततः असृजत् ॥३॥

पापीयसीं	(इस) पापमयी	**ततः भगवत्**	
सृष्टिं	रचनाको	**ध्यान**	तब भगवानके
दृष्ट्वा	देखकर		ध्यानसे
आत्मानं	अपना	**पूतेन**	पवित्र (हुए)
न बहु मन्यत	सम्मान नहीं किया	**मनसा**	मनके द्वारा
	(अपनेको सम्मान	**अन्यां**	दूसरी
	योग्य नहीं माना)	**असृजत्**	रचना की ॥३॥

सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः ।
सनत्कुमारं च मुनीन्निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः ॥४॥

सनकं च सनन्दं च सनातनं अथ आत्मभूः सनत्कुमारं च मुनीन् निष्क्रियान् ऊर्ध्वरेतसः ॥४॥

अथ आत्मभूः	तब ब्रह्माने	**सनातनं**	सनातनको,
निष्क्रियान्	निवृत्ति परायण	**सनत्कुमारं च**	और सनत्कुमारको
ऊर्ध्वरेतसः	ब्रह्मचारी	**मुनीन्**	(इन चार)मुनियोंको
सनकं च	सनकको,		(उत्पन्न किया) ॥४॥
सनन्दं च	सनन्दको,		

तान् बभाषे स्वभूः पुत्रान् प्रजाः सृजत पुत्रकाः ।
तन्नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः ॥५॥

तान् बभाषे स्वभूः पुत्रान् प्रजाः सृजत पुत्रकाः तत् न ईच्छन् मोक्ष धर्माणः वासुदेव परायणाः ॥५॥

स्वभूः	ब्रह्माने	**तत्**	उसको (उन)
तान् पुत्रान्	उन पुत्रोंसे	**मोक्ष धर्माणः**	मोक्ष धर्मी
बभाषे	कहा	**वासुदेव**	
पुत्रकाः	मेरे छोटे बच्चो !	**परायणाः**	वासुदेव परायणोंने
प्रजाः सृजत	प्रजाकी सृष्टि करो	**इच्छन् न**	इच्छा नहीं की । ५॥

सोऽवध्यातः सुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः ।
क्रोधं दुर्विषहं जातं नियन्तुमुपचक्रमे ॥६॥

सः अवध्यातः सुतैः एवं प्रत्याख्यात अनुशासनैः क्रोधं दुर्विषहं जातं नियन्तुं उपचक्रमे ॥६॥

सः एवं	उन (ब्रह्माजी) को इस प्रकार
सुतैः	पुत्रों द्वारा
अनुशासनैः	(अपनी) आज्ञाके
प्रत्याख्यात	न मानने से
अवध्यातः	अपमानित होनेपर
दुर्विषहं	दुस्सह
क्रोधं जातं	क्रोध उत्पन्न हुआ
नियन्तुं	(उसे) नियन्त्रित करनेका
उपचक्रमे	उपक्रम किया ॥६॥

धिया निगृह्यमाणोऽपि भ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः ।
सद्योऽजायत तन्मन्युः कुमारो नोललोहितः ॥७॥

धिया निगृह्यमाणः अपि भ्रुवोः मध्यात् प्रजापतेः सद्यः अजायत तन्मन्युः कुमारः नीललोहितः ॥७॥

धिया निगृह्यमाणः	बुद्धिसे नियन्त्रित करनेपर
अपि	भी
प्रजापतेः	प्रजापति (ब्रह्माजी)के
भ्रुवोः मध्यात्	भ्रूमध्यसे
तन्-मन्यु	उनका क्रोध
सद्यः	तत्काल
नील लोहितः	नील-लोहित
कुमारः	कुमार (के रूपमें)
अजायत	उत्पन्न हो गया ॥७॥

स वै रुरोद देवानां पूर्वजो भगवान् भवः ।
नामानि कुरु मे धातः स्थानानि च जगद्गुरो ॥८॥

स वै रुरोद देवानां पूर्वजः भगवान् भवः नामानि कुरु मे धातः स्थानानि च जगद्गुरो ॥८॥

स देवानां पूर्वजः	वे देवताओंके पूर्वज
भगवान् भव वै	भगवान् भव तो
रुरोद	रोने लगे—
जगद्गुरोः	जगत् पिता
धातः	विधाता !
मे	मेरे
नामानि कुरु च	नाम रखो तथा
स्थानानि	(रहनेके) स्थान बतलाओ ! ॥८॥

इति तस्य वचः पाद्मो भगवान् परिपालयन् ।
अभ्यधाद् भद्रया वाचा मा रोदीस्तत्करोमि ते ॥९॥

इति तस्य वचः पाद्मः भगवान् परिपालयन् अभ्यधात् भद्रया वाचा मा रोदीः तत् करोमि ते ॥९॥

इति	इस प्रकारकी	**अभ्यधात्**	बोले—
तस्य	उस (कुमार) की	**रोदीः मा**	'रोओ मत !'
वचः	वाणीका (प्रार्थनाका)	**ते तत्**	तुम्हारी वह (प्रार्थना)
परिपालयन्	पालन करते हुए		
भगवान् पाद्मः	भगवान् ब्रह्मा	**करोमि**	(पूरी) करता हूँ ।९॥
भद्रया वाचा	कल्याणमयी वाणीसे		

यदरोदीः सुरश्रेष्ठ सोद्वेग इव बालकः ।
ततस्त्वामभिधास्यन्ति नाम्ना रुद्र इति प्रजाः ॥१०॥

यत् अरोदीः सुरश्रेष्ठ स उद्वेग इव बालकः ततः त्वां अभिधास्यन्ति नाम्ना रुद्र इति प्रजाः ॥१०॥

सुरश्रेष्ठ	देवोत्तम !	**ततः त्वां**	इसलिए (तुमको)
बालकः	बालक !	**प्रजाः**	प्रजा
यत्	क्योंकि	**रुद्र इति नाम्ना**	रुद्र इस नामसे
स उद्वेग इव	उद्विग्न हुएके समान	**अभिधास्यन्ति**	पुकारेगी ॥१०॥
अरोदीः	रोये हो		

हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुरग्निर्जलं मही ।
सूर्यश्चन्द्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रे कृतानि मे ॥११॥

हृद् इन्द्रियाणि असुः व्योम वायुः अग्निः जलं मही सूर्यः चन्द्रः तपः च एव स्थानानि अग्रे कृतानि मे ॥११॥

हृद्	हृदय,	**वायुः**	वायु,
इन्द्रियाणि	इन्द्रियां,	**अग्निः**	अग्नि,
असुः	प्राण,	**जलं**	जल,
व्योम	आकाश,	**मही**	पृथ्वी,

सूर्यः	सूर्य,	**अग्रे**	पहिले ही
चन्द्रः च	चन्द्र तथा	**मे कृतानि**	मैंने बना दिये
तपः एव	तपस्या भी		हैं ॥११॥
स्थानानि	(ये) स्थान		

मन्युर्मनुर्महिनसो महाञ्छिव ऋतध्वजः ।
उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः ॥१२॥

मन्युः मनुः महिनसः महान् शिव ऋतध्वजः उग्ररेता भवः कालः वामदेवः धृतव्रतः ॥१२॥

मन्युः	मन्यु	**उग्ररेता**	उर्ध्वरेता
मनुः	मनु	**भवः**	भव
महिनसः	महिनस	**कालः**	काल
महान्	महान्	**वामदेवः**	वामदेव
शिव	शिव	**धृतव्रतः**	धृतव्रत ॥१२॥
ऋतध्वजः	ऋतध्वज		

धीर्वृत्तिरुशनोमा च नियुत्सर्पिरिलाम्बिका ।
इरावती सुधा दीक्षा रुद्राण्यो रुद्र ते स्त्रियः ॥१३॥

धीः वृत्तिः उशना उमा च नियुत् सर्पिः इला अम्बिका इरावती सुधा दीक्षा रुद्राण्यः रुद्र ते स्त्रियः ॥१३॥

धीः	धी	**इरावती**	इरावती
वृत्तिः	वृत्ति	**सुधा**	सुधा
उशना	उशना	**दीक्षा**	दीक्षा
उमा च	उमा तथा	**रुद्राण्यः**	(ये) रुद्रानियां
नियुत्	नियुत्	**रुद्र**	रुद्र !
सर्पिः	सर्पि	**ते स्त्रियः**	तुम्हारी स्त्रियां
इला	इला		हैं ॥१३॥
अम्बिका	अम्बिका		

गृहाणैतानि नामानि स्थानानि च सयोषणः ।
एभिः सृज प्रजा बह्वीः प्रजानामसि यत्पतिः ॥१४॥

गृहाण एतानि नामानि स्थानानि च सयोषणः एभिः सृज प्रजा वह्वीः प्रजानाम् असि यत् पतिः ॥१४॥

एतानि नामानि	इन नामोंको
च स्थानानि	तथा स्थानोंको
सयोषणः	पत्नियोंके साथ
गृहाण	ग्रहण करो ।
एभिः	इनके द्वारा
वह्वीः प्रजा	बहुत-सी प्रजा
सृज यत्	उत्पन्न करो क्योंकि
प्रजानाम् पतिः	(तुम) प्रजापति
असि	हो ॥१४॥

इत्यादिष्टः स गुरुणा भगवान्नीललोहितः ।
सत्वाकृतिस्वभावेन ससर्जात्मसमाः प्रजाः ॥१५॥

इति आदिष्टः स गुरुणा भगवान् नीललोहितः सत्त्व आकृति स्वभावेन ससर्ज आत्मसमाः प्रजाः ॥१५॥

भगवान्	भगवान्
नीललोहितः	नील लोहितने
गुरुणा	लोक पिता (ब्रह्माजी) से
इति	इस प्रकार
आदिष्टः	आज्ञा पानेपर
सत्त्व	बल
आकृति	रूप
स्वभावेन	स्वभावमें
आत्मसमाः	अपने समान
प्रजाः ससर्ज	प्रजाकी सृष्टि की ॥१५॥

रुद्राणां रुद्रसृष्टानां समन्ताद् ग्रसतां जगत् ।
निशाम्यासंख्यशो यूथान् प्रजापतिरशङ्कत ॥१६॥

रुद्राणां रुद्र सृष्टानां समन्तात् ग्रसतां जगत् निशाम्य असंख्यशः यूथान् प्रजापतिः अशङ्कत ॥१६॥

समन्तात्	चारों ओरसे
जगत्	संसारको
ग्रसतां	मानो निगल लेंगे
रुद्राणां	रुद्रों (और)
रुद्र सृष्टानां	रुद्रके द्वारा उत्पन्न (गणों) के
असंख्यशः	अनगिनत
यूथान्	समूहोंको
निशाम्य	देखकर
प्रजापतिः	ब्रह्माजी
अशंकत	शंकित हो गये ॥१६॥

अलं प्रजाभिः सृष्टाभिरीदृशीभिः सुरोत्तम ।
मया सह दहन्तीभिर्दिशश्चक्षुभिरुल्बणैः ॥१७॥

अलं प्रजाभिः सृष्टाभिः ईदृशीभिः सुरोत्तम मया सह दहन्तीभिः दिशः चक्षुभिः उल्बणैः ॥१७॥

सुरोत्तम	देवश्रेष्ठ !	**चक्षुभिः**	नेत्रोंसे (यह)
ईदृशीभिः	ऐसी	**मया सह**	मेरे सा
प्रजाभिः	सन्तानोंके	**दिशः**	दिशाओंको
सृष्टाभिः	उत्पन्न करनेको	**दहन्तीभिः**	(मानो) जलाये दे
अलं	बस (बन्द) करो		रही है ॥१७॥
उल्बणैः	अत्युग्र		

तप आतिष्ठ भद्रं ते सर्वभूतसुखावहम् ।
तपसैव यथापूर्वं स्रष्टा विश्वमिदं भवान् ॥१८॥

तप आतिष्ठ भद्रं ते सर्वभूत सुख आवह तपसा एव यथा पूर्वं सृष्टा विश्वं इदं भवान् ॥१८॥

ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो	**तपसा एव**	तपस्यासे ही
सर्वभूत	सब प्राणियोंको	**इदं विश्वं**	इस विश्वको
सुख आवहं	सुख देनेवाला	**यथा पूर्वं**	जैसा पहिले थ
तप आतिष्ठ	तप करो	**सृष्टा**	बनानेवाले
भवान्	आप		(बनोगे) ॥१८॥

तपसैव परं ज्योतिर्भगवन्तमधोक्षजम् ।
सर्वभूतगुहावासमञ्जसा विन्दते पुमान् ॥१९॥

तपसा एव परं ज्योतिः भगवन्तं अधोक्षजं सर्वभूत गुहा आवासं अञ्जसा विन्दते पुमान् ॥१९॥

तपसा एव	तपस्यासे ही	**सर्वभूत गुहा**	सब प्राणियोंकी हृदय
पुमान्	पुरुष		गुहामें
परं ज्योतिः	परम प्रकाश	**आवासं**	निवास करनेवालेको
भगवन्तं	भगवान्	**अञ्जसा**	अनायास
अधोक्षजं	हृषीकेश	**विन्दते**	प्राप्त कर लेता
			है ॥१९॥

मैत्रेय उवाच-

एवमात्मभुवाऽऽदिष्टः परिक्रम्य गिरां पतिम् ।
बाढमित्यमुमामन्त्र्य विवेश तपसे वनम् ॥२०॥

एवं आत्मभुवा आदिष्टः परिक्रम्य गिरां पतिं बाढं इति अमुं आमन्त्र्य विवेश तपसे वनम् ॥२०॥

एवं	इस प्रकार	**गिरां पतिं**	(उन) वाणी-पति (ब्रह्माकी)
आत्मभुवा	ब्रह्माजीसे	**परिक्रम्य**	परिक्रमा करके
आदिष्टः	आदेश पाकर	**तपसे**	तप करनेके लिए
बाढं इति	ठीक है ऐसा	**वनं विवेश**	वनमें चले गये ॥२०॥
अमुं	उन (ब्रह्माजी) से		
आमन्त्र्य	अनुमति लेकर		

अथाभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे ।
भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः ॥२१॥

अथ अभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे भगवत् शक्ति युक्तस्य लोक सन्तान हेतवे ॥२१॥

अथ	तदनन्तर	**लोक सन्तान**	लोककी सन्तति परम्पराके
भगवत् शक्ति	भगवानकी शक्तिसे	**हेतवे**	कारण
युक्तस्य	युक्त (ब्रह्माजीके)	**दश पुत्राः**	दस पुत्र
सर्गं	सृष्टिका	**प्रजज्ञिरे**	उत्पन्न हुए ॥२१॥
अभिध्यायतः	चिन्तन करनेसे		

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥२२॥

मरीचिः अत्रि अङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः भृगुः वसिष्ठः दक्षः च दशमः तत्र नारदः ॥२२॥

मरीचिः	मरीचि	**अङ्गिरसौ**	अंगिरा
अत्रिः	अत्रि	**पुलस्त्यः**	पुलस्त्य

पुलहः	पुलह	**दक्षः**	दक्ष
क्रतुः	क्रतु	**तत्र**	इनमें
भृगुः	भृगु	**दशमः**	दसवें
वसिष्ठः च	वशिष्ठ और	**नारदः**	नारदजी थे ॥२२॥

उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयम्भुवः ।
प्राणाद्वसिष्ठः सञ्जातो भृगुस्त्वचिकरात्क्रतुः ॥२३॥

उत्सङ्गात् नारदः जज्ञे दक्षः अङ्गुष्ठात् स्वयम्भुवः प्राणात् वसिष्ठः सञ्जातः भृगुः त्वचि करात् क्रतुः ॥२३॥

स्वयम्भुवः	ब्रह्माजीकी	**वसिष्ठः**	वशिष्ठ
उत्सङ्गात्	गोदसे	**त्वचि**	त्वचासे
नारदः जज्ञे	नारद उत्पन्न हुए	**भृगुः**	भृगु
अङ्गुष्ठात्	अँगूठेसे	**करात्**	हाथसे
दक्षः	दक्ष	**क्रतुः**	क्रतु
प्राणात्	प्राण (वायु) से	**सञ्जातः**	उत्पन्न हुए ॥२३॥

पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोर्ऋषिः ।
अङ्गिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥२४॥

पुलहः नाभितः जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोः ऋषिः अङ्गिरा मुखतः अक्ष्णोः अत्रिः मरीचिः मनसः अभवत् ॥२४॥

पुलहः	पुलह	**अक्ष्णोः**	आँखोंसे
नाभितः जज्ञे	नाभिसे उत्पन्न हुए,	**अत्रिः**	अत्रि,
कर्णयोः	कानोंसे	**मनसः**	मनसे
ऋषिः पुलस्त्यः	ऋषि पुलस्त्य,	**मरीचिः**	मरीचि
मुखतः	मुखसे	**अभवत्**	(उत्पन्न)हुए ॥२४॥
अङ्गिराः	अंगिरा,		

धर्मः स्तनाद्दक्षिणतो यत्र नारायणः स्वयम् ।
अधर्मः पृष्ठतो यस्मान्मृत्युर्लोकभयङ्करः ॥२५॥

धर्मः स्तनात् दक्षिणतः यत्र नारायणः स्वयं अधर्मः पृष्ठतः यस्मात् मृत्युः लोक भयङ्करः ॥२५॥

दक्षिणतः स्तनात्	दाहिने स्तनसे
धर्मः	धर्म (उत्पन्न हुआ)
यत्र	जिससे
स्वयं नारायणः	स्वयं नारायण (अवतीर्ण हुए)
पृष्ठतः	पीठसे
अधर्मः	अधर्म (उत्पन्न हुआ)
यस्मात्	जिससे
लोक भयङ्करः	लोकके लिए भयदायी
मृत्युः	मृत्यु (उत्पन्न) हुई ॥२५॥

हृदि कामो भ्रुवः क्रोधो लोभश्चाधरदच्छदात् ।
आस्याद्वाक्सिन्धवो मेढ्रान्निर्ऋतिः पायोरघाश्रयः ॥२६॥

हृदिः कामः भ्रुवः क्रोधः लोभः च अधर दत् छदात् आस्यात् वाक् सिन्धवः मेढ्रात् निर्ऋतिः पायोः अघ आश्रयः ॥२६॥

हृदि	हृदयसे
कामः	काम
भ्रुवः	भौंहोंसे
क्रोधः	क्रोध
अधर दत् छदात्	दांत टकनेवाले (नीचेके) ओष्ठसे
लोभः	लोभ
आस्यात्	मुखसे
वाक्	वाणी (की देवता) सरस्वती
मेढ्रात्	लिंगसे
सिन्धवः	समुद्र
पायोः	गुदासे
अघ आश्रयः	पापका आश्रय (अधिदेव)
निर्ऋतिः	निर्ऋति (उत्पन्न हुआ) ॥२६॥

छायायाः कर्दमो जज्ञे देवहूत्याः पतिः प्रभुः ।
मनसो देहतश्चेदं जज्ञे विश्वकृतो जगत् ॥२७॥

छायायाः कर्दमः जज्ञे देवहूत्याः पतिः प्रभुः मनसः देहतः च इदं जज्ञे विश्वकृतः जगत् ॥२७॥

छायायाः	छायासे
प्रभुः	समर्थ
देवहूत्याः पतिः	देवहूतिके पति
कर्दमः जज्ञे	कर्दम उत्पन्न हुए
विश्वकृतः	ब्रह्माजीके
देहतः च	शरीरसे और
मनसः	मनसे
इदं जगत्	यह (सम्पूर्ण) ससार
जज्ञे	उत्पन्न हुआ ॥२७॥

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयम्भूर्हरतीं मनः ।
अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥२८॥

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयम्भूः हरतीं मनः अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥२८॥

क्षत्तः	विदुर !	**दुहितरं**	बेटी
इति नः श्रुतं	ऐसा हमने सुना है कि	**वाचं**	सरस्वती
		मनः हरतीं	मनहरण करतीको
तन्वीं	दुबली-सुकुमारी	**सकाम**	काम मोहित (ब्रह्मा)
अकामां	निष्काम	**चकमे**	चाहने लगे । २८॥

तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः ।
मरीचिमुख्या मुनयो विश्रम्भात्प्रत्यबोधयन् ॥२९॥

तं अधर्मे कृत मतिं विलोक्य पितरं सुताः मरीचि मुख्या मुनयः विश्रम्भात् प्रत्यबोधयन् ॥२९॥

तं पितरं	उन पिता (ब्रह्मा)को	**मरीचि मुख्य**	मरीचि प्रमुख
अधर्मे	अधर्मका	**मुनयः**	मुनिगण
मतिं कृत	संकल्प करते	**विश्रम्भात्**	विश्वासपूर्वक
विलोक्य	देखकर	**प्रत्यबोधयन्**	समझाने लगे ॥२९॥
सुताः	उनके पुत्र		

नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यन्ति चापरे ।
यत्त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्याङ्गजं प्रभुः ॥३०॥

न एतत् पूर्वैः कृतं तु अद्य न करिष्यन्ति च अपरे यत् त्वं दुहितरं गच्छेः अनिगृह्य अङ्गजं प्रभुः ॥३०॥

एतत्	ऐसा (अपकर्म)	**न अपरे च**	न दूसरे ही
पूर्वैः	पहिले (किसीने)	**करिष्यन्ति**	(आगे) करेंगे
न कृतं तु	नहीं किया है और	**यत् त्वं**	जो आप
अद्य	आज (वर्तमानमें न कोई करता है)	**प्रभुः**	समर्थ होनेपर भी

अङ्गजं	अपने देहमें उत्पन्न (कामको)	**दुहितरं**	पुत्रीके साथ
अनिगृह्य	न रोककर	**गच्छेः**	सहवास करना चाहते हो ॥३०॥

तेजीयसामपि ह्येतन्न सुश्लोक्यं जगद्गुरो ।
यद्वृत्तमनुतिष्ठन् वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥३१॥

तेजीयासां अपि हि एतत् न सुश्लोक्यं जगद्गुरोः यत् वृत्तिं अनुतिष्ठन् वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥३१॥

जगद्गुरोः	जगद्गुरो !	**क्षेमाय कल्पते**	कल्याण पाते हैं (उसे)
हि यत् वृत्तिं	क्योंकि जिसके आचारका	**तेजीयासां अपि**	तेजस्वी होनेपर भी
अनुतिष्ठन्	अनुकरण करनेपर	**एतत्**	यह काम
वै लोकः	निश्चय ही लोग	**सुश्लोक्यं न**	अच्छा यश देनेवाला नहीं है ॥३१॥

तस्मै नमो भगवते य इदं स्वेन रोचिषा ।
आत्मस्थं व्यञ्जयामास स धर्मं पातुमर्हति ॥३२॥

तस्मै नमः भगवते य इदं स्वेन रोचिषा आत्मस्थं व्यञ्जयामास स धर्मं पातुं अर्हति ॥३२॥

य	जिन्होंने	**भगवते**	भगवानको
आत्मस्थं	अपने भीतर स्थित	**नमः**	नमस्कार,
इदं	इस (जगत) को	**स धर्मं**	उन्हें धर्मकी
स्वेन रोचिषा	अपने ही तेजसे	**पातुं**	रक्षा करनी
व्यञ्जयामास	व्यक्त किया है	**अर्हति**	चाहिए ॥३२॥
तस्मै	उन		

स इत्थं गृणतः पुत्रान् पुरो दृष्ट्वा प्रजापतीन् ।
प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्याज व्रीडितस्तदा ।
तां दिशो जगृहुर्घोरां नीहारं यद्विदुस्तमः ॥३३॥

स इत्थं गृणतः पुत्रान् पुरः दृष्ट्वा प्रजापतीन् प्रजापति पतिः तन्वं तत्याज व्रीडितः तदा तां दिशः जगृहुः घोरां नीहारं यत् विदुः तमः ॥३३॥

स प्रजापति पतिः	उन प्रजापतियोंके स्वामी (ब्रह्माजी) ने	**तन्वं**	शरीरको
पुरः	अपने सम्मुख	**तत्याज**	छोड़ दिया
इत्थं गृणतः	ऐसा कहते	**तां घोरां**	उस घोर(शरीर)को
पुत्रान्	अपने पुत्र	**दिशः जगृहुः**	दिशाओंने ले लिया
प्रजापतीन्	प्रजापतियोंको	**यत् तमः**	जिस अँधेरेको
दृष्ट्वा	देखकर	**नीहारं**	कुहरा
तदा व्रीडितः	उस समय लज्जित होकर	**विदुः**	जाना जाता है ॥३३॥

कदाचिद् ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा आसंश्चतुर्मुखात् ।
कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान् समवेतान् यथा पुरा ॥३४॥

कदाचित् ध्यायतः स्रष्टुः वेदा आसन् चतुर्मुखात् कथं स्रक्ष्यामि अहं लोकान् समवेतान यथा पुरा ॥३४॥

कदाचित्	किसी समय	**समवेतान**	सुव्यवस्थित
स्रष्टुः	ब्रह्माजीके (यह)	**लोकान्**	लोकोंकी
ध्यायतः	चिन्तन करते समय कि—	**कथं स्रक्ष्यामि**	कैसे सृष्टि करूँ'
अहं यथा पुरा	'मैं जैसे पहिले थे (वैसे)	**चतुर्मुखात्**	चारों मुखोंसे
		वेदा	वेद
		आसन्	प्रकट हो गये ॥३४॥

चातुर्होत्रं कर्मतन्त्रमुपवेदनयैः सह ।
धर्मस्य पादाश्चत्वारस्तथैवाश्रमवृत्तयः ॥३५॥

चातुर्होत्रं कर्मतन्त्रं उपवेद नयैः सह धर्मस्य पादाः चत्वारः तथा एव आश्रम वृत्तयः ॥३५॥

चातुर्होत्रं	चार (होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा) के द्वारा होनेवाला यज्ञके	**उपवेद**	उपवेद (आयुर्वेद, स्थापत्यवेद, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद)
कर्मतन्त्रं	कर्मका विस्तार	**नयैः सह**	नीति शास्त्रके साथ

धर्मस्य	धर्मके
पादाः चत्वारः	चारो पद
तथा एव	वैसे ही
आश्रम वृत्तयः	आश्रम एवं उनकी वृत्तियाँ ॥३५॥

विदुर उवाच-

स वै विश्वसृजामीशो वेदादीन् मुखतोऽसृजत् ।
यद् यद् येनासृजद् देवस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥३६॥

स वै विश्वसृजां ईशः वेद आदीन् मुखतः असृजत् यत् यत् येन असृजत् देवः तत् मे ब्रूहि तपोधन ॥३६॥

तपोधन	तपोधन (मैत्रेयजी !)
स वै	वे ही
विश्वसृजां ईशः	विश्व स्रष्टा (प्रजापतियों) के स्वामी हैं
मुखतः	(अपने) मुखोंसे
वेद आदीन्	वेद आदिको
असृजत्	उत्पन्न किया
यत् यत्	जिस जिसको
येन	जिस (मुख) से
देवः	ब्रह्मदेवने
असृजत्	प्रकट किया
तत् मे	वह मुझे
ब्रूहि	बतलाइये ॥३६॥

मैत्रेय उवाच-

ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् वेदान् पूर्वादिभिर्मुखैः ।
शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्क्रमात् ॥३७॥

ऋक् यजुः साम अथर्व आख्यान् वेदान् पूर्व आदिभिः मुखैः शस्त्रं इज्यां स्तुति स्तोम प्रायश्चित्तं व्यधात् क्रमात् ॥३७॥

पूर्व आदिभिः	पूर्वसे प्रारम्भ करके
क्रमात्	क्रमशः
मुखैः	मुखोंसे
ऋक्	ऋग्वेद,
यजुः	यजुर्वेद,
साम	सामवेद,
अथर्वं	अथर्ववेद,
आख्यान्	नामवाले
शस्त्रं	शस्त्र (होताका कर्म)
इज्या	इज्या (अध्वर्युका कर्म)

स्तुति स्तोम	स्तुति स्तोम (उद्गाताका कर्म)	**प्रायश्चित्तं व्यधात्**	प्रायश्चित (ब्रह्माका कर्म) का विधान किया ॥३७॥

आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं वेदमात्मनः ।
स्थापत्यं चासृजद् वेदं मात्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥३८॥

आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं वेदं आत्मनः स्थापत्यं च असृजत् वेदं क्रमात् पूर्वादिभिः मुखैः ॥३८॥

पूर्वादिभिः	पूर्वसे प्रारम्भ करके	**आत्मनः**	अपने
क्रमात्	क्रमशः	**गान्धर्वं वेदं**	गान्धर्व वेद
मुखात्	मुखोंसे	**च स्थापत्यं वेदं**	और स्थापत्य वेदको
आयुर्वेदं	आयुर्वेद	**असृजत्**	बनाया (प्रकट किया) ॥३८॥
धनुर्वेदं	धनुर्वेद		

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः ।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥३९॥

इतिहास पुराणानि पञ्चमं वेदं ईश्वरः सर्वेभ्यः एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥३९॥

सर्वदर्शनः	सर्वज्ञ	**सर्वेभ्यः एव**	
ईश्वरः	समर्थ (ब्रह्माजीने)	**वक्त्रेभ्यः**	सभी मुखोंसे ही
पञ्चमं वेदं	पाँचवें वेद	**ससृजे**	बनाये ॥३९॥
इतिहास पुराणानि	इतिहास-पुराणोंको		

षोडश्युक्थौ पूर्ववक्त्रात्पुरीष्यग्निष्टुतावथ ।
आप्तोर्यामातिरात्रौ च वाजपेयं सगोसवम् ॥४०॥

षोडशि उक्थौः पूर्व वक्त्रात् पुरीषः अग्निष्टुतः अथ आप्तोर्यामा अतिरात्रौ च वाजपेयं सगोसवम् ॥४०॥

पूर्व वक्त्रात्	(इसी प्रकार) पूर्वके मुखसे (प्रारम्भ करके)	**षोडशि**	षोडशी
		उक्थौ	उक्थ
		पुरीषः	चयन

अग्निष्टुतः	अग्निष्टोम	**सगोसवं**	गोसवके साथ
आप्तोर्यामा	आप्तोर्यामा		(ये दो-दो वैदिक
अतिरात्रौ च	अतिरात्र तथा		याग भी उत्पन्न
वाजपेयं	वाजपेय		हुए) ॥४०॥

विद्या दानं तपः सत्यं धर्मस्येति पदानि च ।
आश्रमांश्च यथासंख्यमसृजत्सह वृत्तिभिः ॥४१॥

विद्या दानं तपः सत्यं धर्मस्य इति पदानि च आश्रमः च यथा संख्यं असृजत् सह वृत्तिभिः ॥४१॥

विद्या	विद्या	**यथा संख्यं**	जैसी संख्या है
दानं	दान		(चार)
तपः	तप	**आश्रमन् च**	आश्रमोंको भी
सत्यं इति	सत्य ये	**वृत्तिभिः सह**	उनकी वृत्तियोंके
धर्मस्य	धर्मके		साथ
पदानि च	पदोंको तथा	**असृजत्**	(क्रमानुसार मुखोंसे)
			बनाया ॥४१॥

सावित्रं प्राजापत्यं च ब्राह्मं चाथ बृहत्तथा ।
वार्त्तासञ्चयशालीनशिलोञ्छ इति वै गृहे ॥४२॥

सावित्रं प्राजापत्यं च ब्राह्मं च अथ बृहत् तथा वार्त्ता सञ्चय शालीन शिल उञ्छ इति वै गृहे ॥४२॥

सावित्रं	सावित्र (एक वर्षका		ब्रह्मचारीकी
	ब्रह्मचर्य)		वृत्तियाँ हैं)
प्राजापत्यं	प्राजापत्य	**तथा वार्त्ता**	तथा वार्ता
	(वेदाध्ययन तक		(अध्यापन)
	ब्रह्मचर्य)	**संचय**	संचय (यज्ञादि
च ब्राह्मं	तथा ब्राह्म (आयु-		कराना)
	पर्यन्त ब्रह्मचर्य)	**शालीन**	शालीन (अया-
अथ बृहत्	तथा बृहत् (कृषि		चित वृत्ति)
	आदि वृत्ति ये चार		

शिल उञ्छ	शिल उञ्छ (खेतमें या बाजारमें अपने आप झड़े दानोंसे निर्वाह)	**इति वै गृहे**	ये तो (चार) गृहस्थ (ब्राह्मणकी वृत्तियाँ हैं ।) ॥४२॥

वैखानसा वालखिल्यौदुम्बराः फेनपा वने ।
न्यासे कुटीचकः पूर्वे बह्वोदो हंसनिष्क्रियौ ॥४३॥

वैखानसा बालखिल्या उदुम्बराः फेनपा वने न्यासे कुटीचकः पूर्वं बह्वोदः हंस निष्क्रियौ ॥४३॥

वने	वनमें रहनेवाले (वानप्रस्थों) की	**फेनपा**	फेनप (दूधके फेनपर रहनेवाले; ये चार वृत्तियाँ हैं)
वैखानसा	वैखानस (बिना जोती भूमिसे उत्पन्न पदार्थसे निर्वाह)	**न्यासे**	संन्यासमें
		पूर्वं	पहिले
बालखिल्या	बाल खिल्य (नवीन अन्न मिलनेपर पुराना दान करने वाले)	**कुटीचकः**	कुटीचक (कुटिया बनाकर एक जगह रहनेवाले)
उदुम्बराः	उदुम्बरा (गूलरके फल खाकर रहने वाले)	**बह्वोदः**	बह्वोद (घूमनेवाले)
		हंस	हंस (ज्ञानाभ्यासी)
		निष्क्रियौ	निक्रिय (आजगर वृत्तिवाले) ॥४३॥

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्तथैव च ।
एवं व्याहृतयश्चासन् प्रणवो ह्यस्य दहृतः ॥४४॥

आन्विक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिः तथा एव च एवं व्याहृतयः च आसन् प्रणवः हि अस्य दहृतः ॥४४॥

आन्वीक्षिकी	अध्यात्म विद्या,	**दण्डनीतिः**	दण्डनीति (राजनीति)
त्रयी	कर्मकाण्डात्मक वेद विद्या,	**तथा एव च**	उसी प्रकार ये चार
वार्ता	व्यापार-कृषि आदि,		वृत्तियाँ (उत्पन्न हुईं)

एवं	इसी प्रकार	**दहतः**	हृदयसे
व्याहृतयः	व्याहृतियाँ (भूः, भुवः, स्वः, महः)	**प्रणवः हि**	प्रणव भी
		आसन्	उत्पन्न हुआ ॥४४॥
अस्य	इन (ब्रह्माजी) के		

तस्योष्णिगासील्लोमभ्यो गायत्री च त्वचो विभोः ।
त्रिष्टुम्मांसात्स्नुतोऽनुष्टुब्जगत्यस्थनः प्रजापतेः ॥४५॥

तस्य उष्णिक् आसीत् लोमभ्यः गायत्री च त्वचः विभोः त्रिष्टुप् मांसात् स्नुतः अनुष्टुप जगति अस्थनः प्रजापतेः ॥४५॥

तस्य प्रजापतेः	उन प्रजापतिके	**त्रिष्टुप्**	त्रिष्टुप्
लोमभ्यः	रोमोंसे	**स्नुतः**	स्नायुओंसे
उष्णिक्	उष्णिक*	**अनुष्टुप**	अनुष्टुप
विभोः	उन विभुके	**अस्थनः**	अस्थिसे
त्वचः	त्वचासे	**जगति**	जगती
गायत्री च	गायत्री तथा	**आसीत्**	हुई ॥४५॥
मांसात्	मांससे		

मज्जायाः पङ्क्तिरुत्पन्ना बृहती प्राणतोऽभवत् ।
स्पर्शस्तस्याभवज्जीवः स्वरो देह उदाहृतः ॥४६॥

मज्जायाः पंक्तिः उत्पन्ना बृहती प्राणतः अभवत् स्पर्शः तस्य अभवत् जीवः स्वरः देह उदाहृतः ॥४६॥

मज्जायाः	मज्जासे	**स्पर्शः**	स्पर्श वर्ण (क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्गके अक्षर)
पंक्तिः	पंक्ति		
उत्पन्ना	उत्पन्न हुई		
प्राणतः	प्राणसे		
बृहती	वृहती	**देह**	देह
अभवत्	हुई	**स्वरः**	स्वर वर्ण (अकारादि)
तस्य जीवः	उनका जीव		
		उदाहृतः	कहलाया ॥४६॥

---

* ये सब ७ वैदिक छन्द हैं ।

ऊष्माणमिन्द्रियाण्याहुरन्तःस्था बलमात्मनः ।
स्वराः सप्त विहारेण भवन्ति स्म प्रजापतेः ॥४७॥

ऊष्माणं इन्द्रियाण्याहुः अन्तस्था बलं आत्मनः स्वराः सप्त विहारेण भवन्ति स्म प्रजापतेः ॥४७॥

इन्द्रियाणि	(ब्रह्माजीकी) इन्द्रियाँ	**प्रजापतिः**	प्रजापतिके
ऊष्माणं	ऊष्मवर्ण (शष सह)	**विहारेण**	विहार (क्रिया) से
आत्मनः बलं	(उनका) आन्तरिक बल	**सप्त स्वराः**	(निषाद, ऋषभ, गान्धार, षडज, मध्यम, धैवत, पंचम) ये सात स्वर
अन्तस्थाः	अन्तस्थ वर्ण (य र ल व)	**भवन्ति स्म**	उत्पन्न होते हैं ॥४७॥

विशेष—

ब्रह्माजी वेद गर्भ वेदमूर्ति हैं, अतः उनके अंग तथा क्रियाका कौनसा भाग क्या है, यह विवरण है।

शब्दब्रह्मात्मनस्तस्य व्यक्ताव्यक्तात्मनः परः ।
ब्रह्मावभाति विततो नानाशक्त्युपबृंहितः ॥४८॥

शब्द ब्रह्म आत्मनः तस्य व्यक्त अव्यक्त आत्मनः परः ब्रह्म अवभाति विततः नाना शक्ति उपबृंहितः ॥४८॥

शब्द ब्रह्म	वेद	**आत्मनः परः**	(उनके इन) अपने रूपोंसे परे
आत्मनः	स्वरूप	**नाना शक्ति**	अनेक शक्तियोंसे
तस्य	उन (ब्रह्माजी) का	**उपबृंहितः**	युक्त
व्यक्त	(वैखरी रूप) प्रकट	**विततः**	व्यापक
अव्यक्त	(प्रणव रूप) अव्यक्त है	**ब्रह्म**	परब्रह्म
		अवभाति	भासमान है। ४८॥

ततोऽपरामुपादाय स सर्गाय मनो दधे ।
ऋषीणां भूरिवीर्याणामपि सर्गमविस्तृतम् ॥४९॥

ततः अपरां उपादाय स सर्गाय मनः दधे ऋषीणां भूरि वीर्याणां अपि सर्गं अविस्तृतम् ॥४९॥

भूरि वीर्याणां	बहुत शक्तिशाली	**स ततः**	उन (ब्रह्माजी) ने तब
ऋषीणां	ऋषियों मरीचि आदि) से	**अपरां**	दूसरा (शरीर)
अपि सर्गं	भी सृष्टि	**उपादाय**	ग्रहण करके
अविस्तृतं	न बढ़ती (देखकर)	**सर्गाय**	सृष्टि करनेका
		मनः दधे	मन किया ॥४९॥

ज्ञात्वा तद्धृदये भूयश्चिन्तयामास कौरव ।
अहो अद्भुतमेतन्मे व्यापृतस्यापि नित्यदा ॥५०॥

ज्ञात्वा तत् हृदये भूयः चिन्तयामास कौरव अहो अद्भुतं एतत् मे व्यापृतस्य अपि नित्यदा ॥५०॥

कौरव	विदुर !	**चिन्तयामास**	सोचने लगे—
तत्	उन (ऋषियों) के	**अहो एतत्**	अहो यह
हृदये	हृदयकी स्थिति (वैराग्य)	**अद्भुतं**	आश्चर्य है कि
		मे नित्यदा	मेरे सर्वदा
ज्ञात्वा	जानकर	**व्यापृतस्य**	प्रयत्न करने
भूयः	फिर	**अपि**	पर भी ॥५०॥

न ह्येधन्ते प्रजा नूनं दैवमत्र विघातकम् ।
एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ॥५१॥

न हि एधन्ते प्रजा नूनं दैवं अत्र विघातकं एवं युक्त कृतः तस्य दैवं च अवेक्षतः तदा ॥५१॥

हि प्रजा	क्योंकि प्रजा	**विघातकं**	बाधा डालनेवाला है
न एधन्ते	नहीं बढ़ रही है	**एवं**	इस प्रकार
नूनं	निश्चय	**युक्त कृतः**	उपयुक्त क्रिया करनेवाले
अत्र	इस विषयमें		
दैवं	दैव	**तस्य**	उन (ब्रह्माजी) के

तदा	उस समय	अवेक्षतः	सम्बन्धमें विचार
दैवं	दैवके		करते ॥५१॥

कस्य रूपमभूद् द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ।
ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥५२॥

कस्य रूपं अभूत् द्वेधा यत् कायं अभिचक्षते ताभ्यां रूप विभागाभ्यां मिथुनं सम पद्यत ॥५२॥

कस्य रूपं	ब्रह्माजीका रूप	ताभ्यां	उन
द्वेधा	दो भागोंमें	रूप विभागाभ्यां	रूपके विभागों
अभूत्	हो गया		(टुकड़ों) से
यत् कायं	जिससे (उसे) काया	मिथुनं	जोड़ा (स्त्री-पुरुषका)
अभिचक्षते	कहते हैं ।	सम पद्यत	प्रकट हुआ ॥५२॥

यस्तु तत्र पुमान् सोऽभून्मनुः स्वायम्भुवः स्वराट् ।
स्त्रीयाऽऽसीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ॥५३॥

यः तु तत्र पुमान् सः अभूत् मनुः स्वायम्भुवः स्वराट् स्त्री या आसीत् शतरूपाख्या महिषी अस्य महात्मनः ॥५३॥

तत्र यः तु	उनमें जो तो	या शतरूपाख्या	जो शतरूपा
पुमान्	पुरुष था		नामवाली
सः स्वराट्	वह सार्वभौम	स्त्री आसीत्	स्त्री थी
	सम्राट्	अस्य महात्मनः	इन महात्मा
स्वायम्भुवः मनुः	स्वायम्भू मनु		(मनु) की
अभूत्	हुए	महिषी	महारानी
			(हुई) ॥५३॥

तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधाम्बभूविरे ।
स चापि शतरूपायां पञ्चापत्यान्यजीजनत् ॥५४॥

तदा मिथुन धर्मेण प्रजा हि एधां बभूविरे स च अपि शतरूपायां पञ्च अपत्यान् अजीजनत् ॥५४॥

तदा	तबसे
मिथुन धर्मेण	मिथुन धर्मेण (स्त्री-पुरुष संभोग)से
प्रजा हि	प्रजाकी
एधां बभूविरे	वृद्धि होने लगी ।
स च अपि	उन (मनु) ने भी
शतरूपायां	शतरूपामें
पञ्च	पाँच
अपत्यान्	सन्तानें
अजीजनत्	उत्पन्न कीं ॥५४॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत ।
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति सत्तम ॥५५॥

प्रियव्रत उत्तानपादौ तिस्रः कन्याः च भारत आकूतिः देवहूतिः च प्रसूतिः इति सत्तम ॥५५॥

सत्तम	साधु श्रेष्ठ
भारत	विदुर !
प्रियव्रत	प्रियव्रत
उत्तानपादौ	उत्तानपाद (ये दो पुत्र)
तिस्रः कन्याः च	तथा तीन कन्याएँ
आकूतिः	आकूति
देवहूतिः च	देवहूति और
प्रसूतिः इति	प्रसूति इन (नामों) की ॥५५॥

आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय तु मध्यमाम् ।
दक्षायादात्प्रसूतिं च यत आपूरितं जगत् ॥५६॥

आकूतिं रुचये प्रादात् कर्दमाय तु मध्यमां दक्षायादात् प्रसूतिं च यत् आपूरितं जगत् ॥५६॥

आकूतिं	आकूतिको
रुचये	रुचिको
मध्यमां तु	बीचकी (देवहूति) को तो
कर्दमाय	कर्दमको
प्रादात् च	दिया तथा
प्रसूतिं	प्रसूतिको
दक्षायादात्	दक्षको दिया
यत् जगत्	जिनसे (जिनकी सन्ततिसे) संसार
आपूरितं	भर गया ॥५६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

निशम्य वाचं वदतो मुनेः पुण्यतमां नृप ।
भूयः पप्रच्छ कौरव्यो वासुदेवकथादृतः ॥१॥

निशम्य वाचं वदतां मुनेः पुण्यतमां नृप भूयः पप्रच्छ कौरव्यः वासुदेव कथा आदृतः ॥१॥

नृप	राजन् !
मुनेः	मुनि मैत्रेयको
पुण्यतमां	परमपुण्यमयी
वाचं वदतां	वाणी कहते
निशम्य	सुनकर
वासुदेव कथा	भगवान वासुदेवकी कथाके
आदृतः	प्रति आदर रखनेवाले
कौरव्यः	विदुरने
भूयः पप्रच्छ	फिर पूछा ॥१॥

विदुर उवाच-

स वै स्वायम्भुवः सम्राट् प्रियः पुत्रः स्वयम्भुवः ।
प्रतिलभ्य प्रियां पत्नीं किं चकार ततो मुने ॥२॥

स वै स्वायम्भुवः सम्राट् प्रियः पुत्रः स्वयम्भुवः प्रतिलभ्य प्रियां पत्नीं किं चकार ततः मुने ॥२॥

मुने	मुने !
स वै	वे तो
स्वयम्भुवा	ब्रह्माजीके
प्रियः पुत्रः	प्रिय पुत्र थे (उन)
सम्राट्	सम्राट्
स्वायम्भुवः	स्वायम्भूने
प्रियां पत्नीं	प्रिय पत्नीको
प्रतिलभ्य	पाकर
ततः किं चकार	तब क्या किया ?॥२॥

चरितं तस्य राजर्षेरादिराजस्य सत्तम ।
ब्रूहि मे श्रद्दधानाय विष्वक्सेनाश्रयो ह्यसौ ॥३॥

चरितं तस्य राजर्षेः आदिराजस्य सत्तम ब्रूहि मे श्रद्दधानाय विष्क्सेन आश्रयः हि असौ ॥३॥

सत्तम	साधु श्रेष्ठ !	**मे श्रद्दधानाय**	मुझ श्रद्धालुसे
तस्य		**ब्रूहि**	कहिए
आदिराजस्य	उन आदिराज	**हि असौ**	क्योंकि ये
राजर्षेः	राजर्षिका	**विष्क्सेन**	भगवान नारायणकी
चरितं	चरित	**आश्रयः**	शरण लिए थे ।३॥

श्रुतस्य पुंसां सुचिरश्रमस्य
नन्वञ्जसा सूरिभिरीडितोऽर्थः ।
यत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्द-
पादारविन्दं हृदयेषु येषाम् ॥४॥

श्रुतस्य पुंसां सुचिर श्रमस्य ननु अञ्जसा सूरिभिः ईडितः अर्थः यत् तत् गुण अनुश्रवणं मुकुन्द पादारविन्दं हृदयेषु येषाम् ॥४॥

पुंसां	पुरुषोंका	**यत्**	जो है (वह)
सुचिर	बहुत समय तक	**येषां**	जिनके
श्रुतस्य	शास्त्राध्यनके	**हृदयेषु**	हृदयमें
श्रमस्य	परिश्रमका	**मुकुन्द**	भगवान मुकुन्दके
अर्थः	प्रयोजन	**पादारविन्दं**	चरण-कमल हैं
ननु	निश्चय	**तत्**	उनके
सूरिभिः	विद्वानों द्वारा	**गुण अनुश्रवणं**	गुणोंको बार-बार
ईडितः	प्रशंसित		सुनना ॥४॥

श्रीशुक उवाच-

इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं
सहस्रशीर्ष्णश्चरणोपधानम् ।
प्रहृष्टरोमा भगवत्कथायां
प्रणीयमानो मुनिरभ्यचष्ट ॥५॥

इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं सहस्रशीर्ष्णः चरण उपधानं प्रहृष्ट रोमा भगवत् कथायां प्रणीयमानः मुनिः अभ्यचष्ट ॥५॥

इति	इस प्रकार	**ब्रुवाणं**	कहनेपर
सहस्रशीर्ष्णः	सहस्रशीर्षा भगवानके	**भगवत् कथायां**	भगवानकी कथाकी
		प्रणीयमानः	प्रेरणा पाकर
चरण उपधानं	चरणाश्रित	**प्रहृष्ट रोमा**	हर्षसे रोमांचित
विनीतं	विनयी	**मुनिः**	मैत्रेयजी
विदुरं	विदुरजीके	**अभ्यचष्ट**	बोले ॥५॥

मैत्रेय उवाच–

यदा स्वभार्यया साकं जातः स्वायम्भुवो मनुः ।
प्राञ्जलिः प्रणतश्चेदं वेदगर्भमभाषत ॥६॥

यदा स्वभार्यया साकं जातः स्वायम्भुवः मनुः प्राञ्जलिः प्रणतः च इदं वेदगर्भं अभाषतः ॥६॥

यदा	जब	**प्राञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
स्वभार्यया	अपनी पत्नीके	**प्रणतः च**	प्रणाम करके तब
साकं	साथ	**वेदगर्भं**	ब्रह्माजीसे
स्वायम्भुवः	स्वायम्भू	**इदं अभाषत**	यह बोले ॥६॥
मनुः जातः	मनु उत्पन्न हुए		

मनुरुवाच–*

त्वमेकः सर्वभूतानां जन्मकृद् वृत्तिदः पिता ।
अथापि नः प्रजानां ते शुश्रूषा केन वा भवेत् ॥७॥

त्वं एकः सर्वभूतानां जन्मकृत् वृत्तिदः पिता अथ अपि नः प्रजानां ते शुश्रूषा केनवा भवेत् ॥७॥

त्वं एकः	आप अकेले ही	**जन्मकृत्**	जन्म देनेव ले(तथा)
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंको	**वृत्तिदः**	आजीविका देनेवाले

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

पिता	पिता हैं	ते शुश्रूषा	आपकी सेवा
अथ अपि	फिर भी	केनवा	किस प्रकारसे
नः प्रजानां	हम सन्तानोंसे	भवेत्	होगी ॥७॥

तद्विधेहि नमस्तुभ्यं कर्मस्वीड्यात्मशक्तिषु ।
यत्कृत्वेह यशो विष्वगमुत्र च भवेद् गतिः ॥८॥

तत् विधेहि नमः तुभ्यं कर्मसु ईड्य आत्मशक्तिषु यत् कृत्वा इह यशः विष्वक् अमुत्र च भवेत् गतिः ॥८॥

ईड्य	पूज्य !	आत्मशक्तिषु	अपनी शक्तिके अनुसार
तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार	कृत्वा	करके
तत् कर्मसु	उस कर्मका	इह	इस लोकमें
विधेहि	विधान कीजिए (आज्ञा दीजिए)	विष्वक् यशः	चारों ओर यश हो
यत्	जिसे	च अमुत्र	तथा परलोकमें
		गतिः भवेत्	सद्गति हो ॥८॥

ब्रह्मोवाच–

प्रीतस्तुभ्यमहं तात स्वस्ति स्ताद्वां क्षितीश्वर ।
यन्निर्व्यलीकेन हृदा शाधि मेत्यात्मनार्पितम् ॥९॥

प्रीतः तुभ्यं अहं तात स्वस्ति तात् वां क्षितीश्वर यत् निर्व्यलीकेन हृदा शाधि मे इति आत्मानं अर्पितः ॥९॥

तात	तात !	निर्व्यलीकेन	निष्कपट
तुभ्यं	तुमसे	हृदा	हृदयसे
अहं प्रीतः	मैं प्रसन्न हुआ ।	'मां शाधि'	'मुझे आज्ञा दीजिए'
क्षितीश्वर	राजन् !	इति मे	यह (कहकर) मुझे
वां	तुम्हारा	आत्मानं	अपने आपको
स्वस्ति	कल्याण हो	अर्पितः	अर्पित किया है ॥९॥
यत्	क्योंकि		

एतावत्यात्मजैर्वीर कार्या ह्यपचितिर्गुरौ ।
शक्त्याप्रमत्तैर्गृह्येत सादरं गतमत्सरैः ॥१०॥

एतावता आत्मजैः वीर कार्या हि अपचितिः गुरौ शक्त्या अप्रमत्तैः गृह्येत सादरं गत मत्सरः ॥१०॥

वीर हि	वीर ! क्योंकि	**अप्रमत्तैः**	प्रमादरहित होकर
एतावता	इतना ही	**मत्सरः**	ईर्षा
आत्मजैः	पुत्रोंको	**गत**	त्यागकर
गुरौ	पिताकी	**सादरं**	आदर सहित
अपचितिः	सेवा	**गृह्येत**	(उनकी आज्ञा)
कार्या	करनी चाहिए		स्वीकार करे ॥१०॥
शक्त्या	शक्तिके अनुसार		

स त्वमस्यामपत्यानि सदृशान्यात्मनो गुणैः ।
उत्पाद्य शास धर्मेण गां यज्ञैः पुरुषं यज ॥११॥

स त्वं अस्यां अपत्यानि सदृशान् आत्मनः गुणैः उत्पाद्य शास धर्मेण गां यज्ञैः पुरुषं यज ॥११॥

स त्वं	वह तुम	**धर्मेण**	धर्मपूर्वक
अस्यां	इस (अपनी पत्नी)में	**गां शास**	पृथ्वीका शासन करो
गुणैः	गुणोंमें		(तथा)
आत्मनः सदृशं	अपने समान	**यज्ञैः**	यज्ञों द्वारा
अपत्यानि	पुत्रोंको	**पुरुषं यज**	परम पुरुषका यजन
उत्पाद्य	उत्पन्न करके		करो ॥११॥

पर शुश्रूषण मह्य स्यात्प्रजारक्षया नृप ।
भगवांस्ते प्रजाभर्तृ हृषीकेशोऽनुतुष्यति ॥१२॥

परं शुश्रूषणं मह्यं स्यात् प्रजारक्षया नृप भगवान् ते प्रजाभर्तुः हृषीकेशः अनुतुष्यति ॥१२॥

नृप	राजन् !	**मह्यं**	मेरी
प्रजारक्षया	प्रजाकी रक्षासे ही	**परं शुश्रूषणं**	परम सेवा

स्यात्	होगी (और)	**हृषीकेशः**	हृषीकेश
ते प्रजाभर्तुः	तुम प्रजापालकपर	**अनुतुष्यति**	सन्तुष्ट होंगे ॥१२॥
भगवान्	भगवान्		

येषां न तुष्टो भगवान् यज्ञलिङ्गो जनार्दनः ।
तेषां श्रमो ह्यपार्थाय यदात्मा नादृतः स्वयम् ॥१३॥

येषां न तुष्टः भगवान् यज्ञलिङ्गः जनार्दनः तेषां श्रमः हि अपार्थाय यत् आत्मा न आदृतः स्वयम् ॥१३॥

हि येषां	क्योंकि जिनपर	**अपार्थाय**	व्यर्थ बातोंके लिए है
यज्ञलिङ्गः	यज्ञस्वरूप	**यत् स्वयं**	क्योंकि स्वयं
भगवान्	भगवान्	**आत्मा**	(अपने) आत्मस्वरूप (भगवान) का
जनार्दनः	जनार्दन	**आदृतः न**	आदर नहीं किया ॥१३॥
तुष्टः न	सन्तुष्ट नहीं हुए		
तेषां	उनका		
श्रमः	(सब) परिश्रम		

मनुरुवाच-

आदेशेऽहं भगवतो वर्तेयामीवसूदन ।
स्थानं त्विहानुजानीहि प्रजानां मम च प्रभो ॥१४॥

आदेशे अहं भगवतः वर्तेय अमी अवसूदन स्थानं तु इह अनुजानिहि प्रजानां मम च प्रभो ॥१४॥

अवसूदन	पापनाशक	**तु प्रजानां**	किन्तु (मेरी) सन्तानों
प्रभो	प्रभो !	**च मम**	और मेरे लिए भी
भगवतः	आपकी	**इह स्थान**	यहाँ (रहनेका) स्थान
आदेशे	आज्ञाके अनुसार	**अनुजानीहि**	बतलाइये ॥१४॥
अहं वर्तेय	मैं बर्ताव करूँगा		

यदोकः सर्वसत्त्वानां मही मग्ना महाम्भसि ।
अस्या उद्धरणे यत्नो देव देव्या विधीयताम् ॥१५॥

यत् ओकः सर्व सत्त्वानां मही मग्ना महाम्भसि अस्या उद्धरणे यत्नः देव देव्या विधीयताम् ॥१५॥

सर्व सत्वानां	सब प्राणियोंकी	**देव**	देव !
यत् ओकः	जो निवास	**अस्या देव्या**	इस (पृथ्वी) देवीके
मही	पृथ्वी (थी)	**उद्धरणे**	ऊपर उठानेका
महाम्भसि	प्रलय जलमें	**यत्नः**	प्रयत्न
मग्ना	डूब गयी है	**विधीयतां**	कीजिए ॥१५॥

मैत्रेय उवाच-

परमेष्ठी त्वपां मध्ये तथा सन्नामवेक्ष्य गाम् ।
कथमेनां समुन्नेष्य इति दध्यौ धिया चिरम् ॥१६॥

परमेष्ठी तु अपां मध्ये तथा सन्नां अवेक्ष्य गां कथं एनं समुन्नेष्य इति दध्यौ धिया चिरम् ॥१६॥

परमेष्ठी तु	ब्रह्माजी तो	**समुन्नेष्य**	ऊपर लाऊँगा
अपां मध्ये	जलमें	**इति धिया**	इसको बुद्धिसे
तथा सन्नां	वैसे ही डूबी	**चिरं दध्यौ**	देर तक सोचते
गां अवेक्ष्य	पृथ्वीको देखकर		रहे ॥१६॥
एनं कथं	इसको कैसे		

सृजतो मे क्षितिर्वार्भिः प्लाव्यमाना रसां गता ।
अथात्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयोजितैः ।
यस्याहं हृदयादासं स ईशो विदधातु मे ॥१७॥

सृजतः मे क्षितिः वार्भिः प्लाव्यमाना रसां गता अथ अत्र किं अनुष्ठेयं अस्माभिः सर्गयोजितैः यस्य अहं हृदयात् आसं स ईशः विदधातु मे ॥१७॥

मे सृजतः	मेरे सृष्टिमें लगनेपर	**प्लाव्यमाना**	डुबाये जानेपर
क्षितिः	पृथ्वी	**रसां गता**	रसातल चली गयी,
वार्भि.	जलसे	**सर्गयोजितैः**	सृष्टि कार्यमें नियुक्त

अस्माभिः	हम लोगों द्वारा	**अहं आसं**	मैं उत्पन्न हुआ हूँ
अथ अत्र	अब इस विषयमें	**स ईशः**	वही ईश्वर
किं अनुष्ठेयं	क्या किया जाना चाहिए	**मे विदधातु**	मेरा (यह कार्य) सम्पन्न करें ॥१७॥
यस्य हृदयात्	जिनके सङ्कल्पसे		

इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसानघ ।
वराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः ॥१८॥

इति अभिध्यायतः नासा विवरात् सहसा अनघ वराह तोकः निरगात् अंगुष्ठ परिमाणकः ॥१८॥

अनघ	निष्पाप (विदुर)	**नासा विवरात्**	नाकके छिद्रसे
इति	इस प्रकार	**सहसा**	अचानक
अभिध्यायतः	चिन्ता करते हुए (ब्रह्माजीकी)	**अंगुष्ठ परिमाणकः**	अंगूठेके बराबर
		वराह तोकः	सुअरका बच्चा
		निरगात्	निकला ॥१८॥

तस्याभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत ।
गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत् ॥१९॥

तस्य अभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत गजमात्रः प्रववृधे तत् अद्भुतं अभून् महत् ॥१९॥

भारत	विदुर !	**क्षणेन किल**	क्षण भरमें ही
तस्य	उन (ब्रह्माजी) के	**गजमात्रः**	हाथीके बराबर
अभिपश्यतः	देखते-देखते	**प्रववृधे**	बढ़ गया
खस्थः	आकाशमें स्थित (वह)	**तत् महत्**	यह बड़ा
		अद्भुतं अभून्	आश्चर्य हुआ ॥१९॥

मरीचिप्रमुखैर्विप्रैः कुमारैर्मनुना सह ।
दृष्ट्वा तत्सौकरं रूपं तर्कयामास चित्रधा ॥२०॥

मरीचि प्रमुखैः विप्रैः कुमारैः मनुना सह दृष्ट्वा तत् सौकरं रूपं तर्कयामास चित्रधा ॥२०॥

तत्	वह	**मनुना सह**	मनुके साथ
सौकरं रूपं	वाराह रूप		(ब्रह्माजी)
दृष्ट्वा	देखकर	**चित्रधा**	अनेक प्रकारके
मरीचि प्रमुखैः	मरीचि आदि मुख्य	**तर्कयामास**	तर्क करने
विप्रैः	ब्राह्मणों		लगे ।२०।।
कुमारैः	सनकादि कुमार (तथा)		

किमेतत्सौकरव्याजं सत्त्वं दिव्यमवस्थितम् ।
अहो बताश्चर्यमिदं नासाया मे विनिःसृतम् ॥२१॥

किं एतत् सौकर व्याजं सत्त्वं दिव्यं अवस्थितं अहो बत आश्चर्यं इदं नासाया मे विनिःसृतम् ॥२१॥

सौकर व्याजं	सूकरके बहानेसे	**अहो इदं बत**	अहो यह तो
अवस्थितं	खड़ा	**आश्चर्यं**	आश्चर्य है कि
एतत् दिव्यं सत्त्वं	यह दिव्य प्राणी	**मे नासाया**	मेरी नासिकासे
किं	कौन है ?	**विनिःसृतं**	निकला है ॥२१॥

दृष्टोऽङ्गुष्ठशिरोमात्रः क्षणाद्गण्डशिलासमः ।
अपि स्विद्भगवानेष यज्ञो मे खेदयन्मनः ॥२२॥

दृष्टः अंगुष्ठ शिरोमात्रः क्षणात् गण्डशिला समः अपि स्वित् भगवान् एष यज्ञः मे खेदयन् मनः ॥२२॥

अंगुष्ठ शिरोमात्रः	अंगूठेके सिरके बराबर	**अपि स्वित्**	अवश्य ही
दृष्टः	दिखाई पड़ा	**मे मनः**	मेरे मनको
क्षणात्	क्षण भरमें	**खेदयन्**	मोहित करते
गण्डशिला समः	भारी शिलाके बराबर (हो गया)	**एष भगवान्**	ये भगवान
		यज्ञः	यज्ञमूर्ति हैं ॥२२॥

इति मीमांसतस्तस्य ब्रह्मणः सह सूनुभिः ।
भगवान् यज्ञपुरुषो जगर्जागेन्द्रसन्निभः ॥२३॥

इति मीमांसतः तस्य ब्रह्मणः सह सूनुभिः भगवान् यज्ञ पुरुषः जगर्ज अगेन्द्र सन्निभः ॥२३॥

इति	इस प्रकार
सूनुभिः सह	पुत्रोंके साथ
तस्य ब्रह्मणः	उन ब्रह्माजीके
मीमांसतः	सोचते समय
भगवान् यज्ञ	
पुरुषः	भगवान् यज्ञ पुरुष
अगेन्द्र सन्निभः	महापर्वतके समान होकर
जगर्ज	गरजने लगे ॥२३॥

ब्रह्माणं हर्षयामास हरिस्तांश्च द्विजोत्तमान् ।
स्वगर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुः ॥२४॥

ब्रह्माणं हर्षयामास हरितान् च द्विजोत्तमान् स्व गर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुः ॥२४॥

विभुः	सर्वव्यापक (भगवान) ने
स्व गर्जितेन	अपनी गर्जनासे
ककुभः	दिशाओंको
प्रतिस्वनयता	प्रतिध्वनित करके
ब्रह्माणं च	ब्रह्माको तथा
हरितान्	
द्विजोत्तमान्	श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको
हर्षयामास	हर्षित किया ॥२४॥

निशम्य ते घर्घरितं स्वखेद-
क्षयिष्णु मायामयसूकरस्य ।
जनस्तपःसत्यनिवासिनस्ते
त्रिभिः पवित्रैर्मुनयोऽगृणन् स्म ॥२५॥

निशम्य ते घर्घरितं स्वखेद क्षयिष्णु मायामय सूकरस्य जनः तपः सत्य निवासिनः ते त्रिभिः पवित्रैः मुनयः अगृणन् स्म ॥२५॥

स्वखेद	अपने खेदको
क्षयिष्णु	दूर करने वाले
मायामय	मायामय
सूकरस्य	वाराहकी
घर्घरितं	घुरघुराहटको
निशम्य ते	सुनकर वे
जनः तपः सत्य	जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक
निवासिनः	निवासी
मुनयः	मुनिगण

त्रिभिः पवित्रैः	तीनों वेदोंकी पवित्र (स्तुतियोंसे)	अगृणन् स्म	स्तुति करने लगे ॥२५॥

तेषां सतां वेदवितानमूर्ति-
र्ब्रह्मावधार्यात्मगुणानुवादम् ।
विनद्य भूयो विबुधोदयाय
गजेन्द्रलीलो जलमाविवेश ॥२६॥

तेषां सतां वेदवितानमूर्तिः ब्रह्म अवधार्य आत्मगुण अनुवादं विनद्य भूयः विबुध उदयाय गजेन्द्रलीलः जलं आविवेश ॥२६॥

तेषां सतां ब्रह्म आत्मगुण अनुवादं अवधार्य	उन सन्तोंकी वैदिक (स्तुति) अपने गुणोंका वर्णन सुनकर	भूयः विनद्य विबुध उदयाय	फिर गर्जना करके देवताओंके अभ्युदय के लिए
वेदवितानमूर्तिः	वैदिक विस्तार (यज्ञ) की मूर्ति (वाराह)	गजेन्द्रलीलः	गजेन्द्रके समान लीला करते
		जलं आविवेश	जलमें घुसे ॥२६॥

उत्क्षिप्तबालः खचरः कठोरः
सटा विधुन्वन् खररोमशत्वक् ।
खुराहताभ्रः सितदंष्ट्र ईक्षा-
ज्योतिर्बभासे भगवान्महीध्रः ॥२७॥

उत्क्षिप्त बालः खचरः कठोरः सटा विधुन्वन् खर रोमशः त्वक् खुर आहत अभ्रः सितदंष्ट्र ईक्षा ज्योतिः बभासे भगवान् महीध्रः ॥२७॥

महीध्रः	पर्वतके समान	कठोरः	कठोर
भगवान्	भगवान्	सटा विधुन्वन्	गर्दनके बालोंको फटकारते थे
बालः उत्क्षिप्त	पूंछ उठाकर		
खचरः	आकाशमें उछले	त्वक्	(उनकी) त्वचा

खर रोमशः	कड़े रोमोंसे भरी थी	**ज्योतिः ईक्षा**	ज्योतिवाले नेत्रोंसे
खुर आहतअभ्रः	खुरोंसे मेघोंको छितरा रहे थे	**बभासे**	शोभित हो रहे थे ॥२७॥
सितदंष्ट्र	श्वेत दाढ़ें थीं		

घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन्
क्रोडापदेशः स्वयमध्वराङ्गः ।
करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्या-
मुद्वीक्ष्य विप्रान् गृणतोऽविशत्कम् ॥२८॥

घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन् क्रोडापदेशः स्वयं अध्वर अङ्ग कराल दंष्ट्रः अपि अकराल दृग्भ्यां उद्वीक्ष्य विप्रान् गृणतः अविशत् कम् ॥२८॥

अङ्गः		**अकराल**	सौम्य
स्वयं अध्वर	स्वयं यज्ञ-पुरुष	**दृग्भिः**	दृष्टिसे
क्रोडापदेशः	वाराह रूप धरे	**गृणतः विप्रान्**	स्तुति करते ब्राह्मणोंको
पृथ्व्याः पदं	पृथ्वीका स्थान	**उद्वीक्ष्य**	देखकर
घ्राणेन	नाकसे	**कं आविशत्**	जलमें प्रविष्ट हुए ॥२८॥
विजिघ्रन्	सूँघते हुए		
कराल दंष्ट्रः अपि	भयानक दाढ़ोंवाले होनेपर भी		

स वज्रकूटाङ्गनिपातवेग-
विशीर्णकुक्षिः स्तनयन्नुदन्वान् ।
उत्सृष्टदीर्घोर्मिभुजैरिवार्त-
श्चुक्रोश यज्ञेश्वर पाहि मेति ॥२९॥

स वज्रकूट अङ्ग निपात वेग विशीर्ण कुक्षिः स्तनयन् उदन्वान् उत्सृष्ट दीर्घ उर्मि भुजैः इव आर्त चुक्रोश यज्ञेश्वर पाहि मे इति ॥२९॥

स	उनके	**कुक्षिः**	पेट
वज्रकूट	वज्र पर्वतके समान	**विशीर्ण**	फटा
अङ्ग निपात	अङ्गके गिरनेके	**स्तनयन्**	होगया (ऐसा)
वेग	वेगसे	**उदन्वान्**	समुद्र

दीर्घ उर्मि भुजैः	ऊँची लहरों रूपी भुजाओंको	**यज्ञेश्वर**	यज्ञेश्वर !
उत्सृष्ट इव	उठाकर मानो	**मे पाहि**	मेरी रक्षा करो
आर्त	व्याकुल होकर	**इति चुक्रोश**	इस प्रकार चिल्ला उठा ॥२९॥

खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाऽऽप
उत्पारपारं त्रिपरू रसायाम् ।
ददर्श गां तत्र सुषुप्सुरग्रे
यां जीवधानीं स्वयमभ्यधत्त ॥३०॥

खुरैः क्षुरप्रैः दरयन् तत् आप उत्पार पारं त्रिपरू रसायां ददर्श गां तत्र सुषुप्सुः अग्रे यां जीवधानीं स्वयं अभ्यधत्त ॥३०॥

क्षुरप्रैः	छुरेके समान तीक्ष्ण	**अग्रे सुषुप्सुः**	पहिले (प्रलय कालमें) सोते समय
खुरैः	खुरोंसे	**यां जीवधानीं**	जिस जीवोंकी आश्रय भूताको
तत् आप	उस (समुद्र) के जलको	**स्वयं अभ्यधत्त**	स्वयं अपने भीतर धर लिया था (उस)
दरयन्	फाड़ते हुए	**गां**	पृथ्वीको
उत्पार पारं	अपार (सागर) के पार	**तत्र ददर्श**	वहां देखा ॥३०॥
त्रिपरू	तीसरे अधोलोक		
रसायां	रसातलमें		

स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां
स उत्थितः संरुरुचे रसायाः ।
तत्रापि दैत्यं गदयाऽऽपतन्तं
सुनाभसन्दीपिततीव्रमन्युः ॥३१॥

स्व दंष्ट्रया उद्धृत्य महीं निमग्नां स उत्थितः संरुरुचे रसायाः तत्र अपि दैत्यं गदया आपतन्तं सुनाभ संदीपित तीव्र मन्युः ॥३१॥

स्व दंष्ट्रया	अपनी दाढ़पर	**महीं**	पृथ्वीको
निमग्नां	डूबी हुई	**रसायाः**	रसातलसे

उद्धृत्य	उठाकर
स उत्थितः	वे उठते हुए (वाराह)
संरुरुचे	अत्यन्त शोभित हुए
तत्र अपि	वहाँ भी
गदया	गदा लेकर
आपतन्तं	झपटकर आक्रमण करते
दैत्यं	दैत्य (हिरण्याक्ष)को
सुनाभ संदीपित	चक्रके समान प्रज्वलित
तीव्र मन्युः	प्रचण्ड क्रोध करके ॥३१॥

जघान रुन्धानमसह्यविक्रमं
स लीलयेभं मृगराडिवाम्भसि ।
तद्रक्तपङ्काङ्कितगण्डतुण्डो
यथा गजेन्द्रो जगतीं विभिन्दन् ॥३२॥

जघान रुन्धानं असह्य विक्रमं स लीलया इभं मृगराट् इव अम्भसि तद् रक्त पङ्क अङ्कित गण्ड तुण्डः यथा गजेन्द्रः जगतीं विभिन्दन् ॥३२॥

अम्भसि	जलमें
रुन्धानं	रोकते हुए
असह्य विक्रमं	असह्य पराक्रम (उस दैत्यको)
स लीलया	उन्होंने खेलमें ही
इभं	हाथीको
मृगराट् इव	सिंहके समान
जघान	मार दिया,
तद् रक्त	उसके रक्तकी
पङ्क अङ्कित	कीचसे चिह्नित
गण्ड तुण्डः	कपोल और थूथन
यथा	(ऐसे लगे) जैसे
गजेन्द्रः	गजेन्द्र
जगतीं	(लाल मिट्टीके) टीलेको
विभिन्दन्	टक्कर मार आया हो ॥३२॥

तमालनीलं सितदन्तकोट्या
क्ष्मामुत्क्षिपन्तं गजलीलयाङ्ग ।
प्रज्ञाय बद्धाञ्जलयोऽनुवाकै-
र्विरिञ्चिमुख्या उपतस्थुरीशम् ॥३३॥

तमाल नीलं सित दंष्ट्र कोट्या क्ष्मां उत्क्षिपन्तं गजलीलया अङ्ग प्रज्ञाय बद्धाञ्जलयः अनुवाकैः विरञ्चि मुख्याः उपतस्थुः ईशम् ॥३३॥

अङ्ग	विदुर !
गजलीलया	हाथीके समान खेलमें
तमाल नीलं	तमालके समान श्याम (अङ्ग)
सित दंष्ट्र कोट्या	श्वेत दाँतोंकी नोकपर
क्ष्मां उत्क्षिपन्तं	पृथ्वीको ऊपर उठाये
ईशं प्रज्ञाय	(वाराहको, ईश्वर जानकर
विरञ्चि मुख्याः	ब्रह्मादि (सब) प्रमुख
अनुवाकैः	वेदमन्त्रोंसे
उपतस्थुः	स्तुति करने लगे ॥३३॥

ऋषय ऊचुः-

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन
त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ।
यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरा-
स्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥३४॥

जितं जितं ते अजित यज्ञ भावन त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः यत् रोमगर्तेषु निलिल्युः अध्वराः तस्मै नमः कारण सूकराय ते ॥३४॥

अजित	(भगवान्) अजित्
ते जितं जितं	आपकी जय हो, जय हो,
यज्ञ भावन	यज्ञ रक्षक !
स्वां त्रयीं तनुं	अपने वेदमय शरीरको
परिधुन्वते	कँपते हुए
नमः	(आपको) नमस्कार,
यत् रोमगर्तेषु	जिसके रोम कूपोंमें
अध्वरा निलिल्युः	सब यज्ञ समाये हैं
तस्मै	उन
कारण सूकराय	प्रयोजनवश वाराह बने
ते नमः	आपको नमस्कार ॥३५॥

रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां
दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ।
छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हिरोम-
स्वाज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥३५॥

रूपं तव एतत् ननु दुष्कृत आत्मनां दुर्दर्शनं देव यत् अध्वरात्मकं छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हि रोमसु आज्यं दृशि अङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥३५॥

देव	देव !
तव	आपका
एतत् रूपं	यह रूप
ननु	निश्चय
दुष्कृत आत्मनां	पापियोंके लिए
दुर्दर्शनं	अत्यन्त कठिनतासे दीखने वाला है
यत् अध्वरात्मकं	क्योंकि यज्ञस्वरूप है,
यस्य त्वचि	जिसकी त्वचामें
छन्दांसि	छन्द (गायत्री आदि)
रोमसु	रोमोंमें
बर्हि	कुश
दृशि	आँखोंमें
आज्यं	घृत
अङ्घ्रिषु	चारों पैरोंमें
चातुर्होत्रं	चार (ब्रह्मा, अध्वर्यु, ऋत्विक, उद्गाता) द्वारा होनेवाला यज्ञीय कर्म है ॥३५॥

स्रुक्तुण्ड आसीत्स्रुव ईश नासयो-
रिडोदरे चमसाः कर्णरन्ध्रे ।
प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते
यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥३६॥

स्रुक् तुण्ड आसीत् स्रुव ईश नासयोः इडा उदरे चमसाः कर्णरन्ध्रेः प्राशित्रं आस्ये ग्रसने ग्रहाः अस्तु ते यत् चर्वणं ते भगवन् अग्निहोत्रम् ॥३६॥

ईश	ईश !
तुण्ड	थूथनमें
स्रुक्	स्रुक् (यज्ञपात्र)
नासयोः	नासिका छिद्रोंमें
स्रुव	स्रुवा
उदरे	पेटमें
इडा	इडा (यज्ञीय भक्षण पात्र)
कर्णरन्ध्रे	कानोंके छिद्रमें
चमसाः आसीत्	चमस है
आस्ये	मुखमें
प्राशित्रं	प्राशित्र (ब्रह्मभाग पात्र)
ते ग्रसने	आपके कण्ठ छिद्रमें
ग्रहाः अस्तु	सोमपात्र हो,
भगवन्	भगवन् !
यत् ते चर्वणं	आपका जो चबाना है
अग्निहोत्रं	(वही) अग्निहोत्र है ॥३६॥

दीक्षानुजन्मोपसदः शिरोधरं
त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ।
जिह्वा प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः
सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते ॥३७॥

दीक्षा अनुजन्म उपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीय उदयनीय दंष्ट्रः जिह्वा प्रवर्ग्यः तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यः अवसथ्यं चितयः असवः हि तेः ॥३७॥

क्रतोः	यज्ञस्वरूप भगवान् !	**तव जिह्वा**	आपकी जीभ
त्वं	आप (जो)	**प्रवर्ग्यः**	प्रवर्ग्य (प्रत्येक उपसदके पूर्व होने वाला 'महावीर' कर्म) है
अनुजन्म	बार-बार अवतार लेते हैं (वह)		
दीक्षा	दीक्षणीय इष्टि है,	**शीर्षकं**	मस्तक
शिरोधरं	सिरके नीचेका भाग (गर्दन)	**सभ्य**	सभ्य (होमरहित अग्नि) और
उपसदः	उपसद (तीन इष्टियाँ) हैं	**आवसथ्य**	आवसथ्य (उपासनीय अग्नि) है,
दंष्ट्रः	दाढ़ें	**ते असवः**	आपके प्राण
प्रायणीय	प्रायणीय (दीक्षाके बादकी इष्टि) तथा	**चितयः हि**	चिति (इष्टका चयन) हैं ॥३७॥
उदयनीय	उदनीय यज्ञ समाप्ति की इष्टि) है,		

सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः
संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ।
सत्राणि सर्वाणि शरीरसन्धि-
स्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ॥३८॥

सोमः तु रेतः सवनानि अवस्थितिः संस्थाविभेदः तव देव धातवः सत्राणि सर्वाणि शरीरसन्धिः त्वं सर्व यज्ञ क्रतुः इष्टि बन्धनः ॥३८॥

देव	देव !	**सोमः तु**	सोम ही है,
तव रेतः	आपका वीर्य	**अवस्थितिः**	बैठना

सवनानि	तीनों (प्रातः, मध्याह्न, सायं) सवन हैं,
धातवः	(शरीरकी सातो) धातुएँ
संस्थाविभेदः	संस्थाओंके सातो भेद (अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम) हैं
शरीरसन्धिः	शरीरकी सन्धियाँ (जोड़)
सर्वाणि सत्राणि	सब सत्र हैं,
त्वं सर्व	आप सब
यज्ञ	यज्ञ(सोमरहित याग)
क्रतु	क्रतु (सोम सहित याग) हैं,
बन्धनः	मांस पेशियाँ
इष्टिः	(यज्ञानुष्ठान रूप) इष्टियाँ हैं ॥३८॥

नमो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवता-
द्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ।
वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभावित-
ज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥३९॥

नमो नमस्ते अखिल मन्त्र देवता द्रव्याय सर्व क्रतवे क्रिया आत्मने वैराग्य भक्त्या आत्मजय अनुभावित ज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥३९॥

अखिल	समस्त
मन्त्र	मन्त्र
देवता	देवता
द्रव्याय	द्रव्य (पदार्थ)
सर्व क्रतवे	सब यज्ञ एवं
क्रिया आत्मने	क्रिया स्वरूप
नमो नमस्ते	आपको बार-बार नमस्कार
वैराग्य	वैराग्य,
भक्त्या	भक्ति तथा
आत्मजय	चित्तको वश करके
अनुभावित	अनुभवमें आनेवाले
ज्ञानाय	ज्ञानस्वरूप
विद्या गुरवे	(सब) विद्याओंके आदि गुरु
नमो नमः	(आपको) बार-बार नमस्कार ॥३९॥

दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता
विराजते भूधर भूः सभूधरा ।

यथा वनान्निःसरतो दता धृता
मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥४०॥

दंष्ट्र अग्र कोट्या भगवन् त्वया धृता विराजते भूधर भूः सभूधरा यथा वनात् निःसरतः दता धृता मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्र पद्मिनी ॥४०॥

भूधर	पृथ्वीधारी
भगवन्	भगवन्
दंष्ट्र अग्र कोट्या	दाढ़ोंकी अगली नोकपर
त्वया धृता	आपके द्वारा उठायी गयी
सभूधरा भूः	पर्वतोंके साथ पृथ्वी
विराजते	(ऐसी) शोभित हो रही है
यथा	जैसे
वनात् निःसरतः	वनसे निकलते हुए
मतङ्गजेन्द्रस्य	गजराजके
दता धृता	दाँतोंपर रखी हुई
सपत्र पद्मिनी	पत्तोंके साथ कमलिनी हो ॥४०॥

त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं
भूमण्डलेनाथ दता धृतेन ते ।
चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा
कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ॥४१॥

त्रयीमयं रूपं इदं च सौकरं भूमण्डलेन अथ दता धृतेन ते चकास्ति शृङ्ग ऊढ घनेन भूयसा कुलाचलेन्द्रस्य यथा इव विभ्रमः ॥४१॥

भूमण्डलेन	भूमण्डलको
दता धृतेन	दाँतोंपर उठाये
ते इदं	आपका यह
त्रयीमयं	वेदमय
सौकरं रूपं	वाराह रूप
चकास्ति	ऐसा शोभित हो रहा है
यथा इव	जैसे यह
कुलाचलेन्द्रस्य	कुल पर्वत श्रेष्ठ (हिमालय) की
भूयसा घनेन	सघन मेघोंके
शृङ्ग ऊढ	शिखरपर छानेसे
विभ्रमः	शोभा होती है ॥४१॥

संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां
लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ।

विधेम चास्यै नमसा सह त्वया ।
यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥४२॥

संस्थापय एनां जगतां स तस्थुषां लोकाय पत्नीं असि मातरं पिता विधेम च अस्यै नमसा सह त्वया यस्यां स्वतेजः अग्नि इव अरण अवधाः ॥४२॥

एनां पत्नीं	इन अपनी पत्नीको	**अरण अवधाः**	रक्षा करनेकी
जगतां	चर		सम्पूर्ण शक्ति रूप
तस्थुषां स	अचरोंके साथ	**अग्नि इव**	अग्निके समान
लोकाय	सभी लोकोंके लिए	**स्वतेजः**	अपना तेज (आपने
संस्थापय	स्थापित कीजिए		स्थापित किया है)
मातरं	(ये सबकी) माता हैं	**अस्यै च**	इनको भी
पिता असि	(आप) पिता हैं,	**सह त्वया**	आपके साथ
यस्यां	जिनमें	**नमसा विधेम**	(हम) नमस्कार करते हैं ॥४२॥

कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो
रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ।
न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये
यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ॥४३॥

कः श्रद्दधीत् अन्यतमः तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणं न विस्मयः असौ त्वयि विश्वविस्मये यः मायया इदं ससृजे अति विस्मयम् ॥४३॥

प्रभो	प्रभो !	**अति विस्मयं**	अत्यन्त आश्चर्य रूप
रसां गताया	रसातल गयी	**इदं ससृजे**	इस (जगत) की
भुवि	पृथ्वीके		सृष्टि की
उद्विबर्हणे	निकालनेका	**विश्वविस्मये**	(उन) विश्वरूप
तव अन्यतमः	आपको छोड़कर		परमाश्चर्य
कः श्रद्दधीत्	कौन साहस कर	**त्वयि**	आपके लिए
	सकता था	**असौ**	यह
यः मायया	जिन्होंने अपनी	**विस्मयः न**	आश्चर्यजनक नहीं
	मायासे		है ॥४३॥

विधुन्वता वेदमयं निजं वपु-
र्जनस्तपःसत्यनिवासिनो वयम् ।
सटाशिखोद्धूतशिवाम्बुबिन्दुभि-
र्विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥४४॥

विधुन्वता वेदमयं निजं वपुः जनः तपः सत्य निवासिनः वयं सटा-शिखोद्धूत शिव अम्बु विन्दुभिः विमृज्यमाना भृशं ईश पाविताः ॥४४॥

ईश	स्वामी !
वेदमयं	वेदमय
निजं वपुः	अपने शरीरको
विधुन्वता	कँपाते समय
सटा शिखोद्धूत	गरदनके बालोंसे उड़ती
शिव अम्बु बिन्दुभिः	पवित्र जलके छीटोंसे
विमृज्यमानाः	मार्जित होते
वयं	हम
जनः तपः सत्य	जन, तप, सत्यलोकके
निवासिनः	निवासी
भृशं पाविताः	अत्यन्त पवित्र किए गये हैं ॥४४॥

स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैष ते
यः कर्मणां पारमपारकर्मणः ।
यद्योगमायागुणयोगमोहितं
विश्वं समस्तं भगवन् विधेहि शम् ॥४५॥

स वै बत भ्रष्टमतिः तव एष ते यः कर्मणां पारं अपार कर्मणः यत् योगमाया गुणयोग मोहितं विश्वं समस्तं भगवन् विधेहि शम् ॥४५॥

तव	आप
अपार कर्मणः	जिनके कर्मोंका पार नहीं है
ते एष	आपके इस
कर्मणः पारं	कर्मोंका पार
यः	जो (चाहता है)
स वै बत	वह तो निश्चय
भ्रष्टमतिः	भ्रष्ट बुद्धि (मूर्ख) है
यत्	क्योंकि
योगमाया	(आपकी) योगमायाके
गुणयोग	गुणोंके संयोगसे
समस्तं विश्वं	पूरा विश्व
मोहितं	मोहित है
भगवन्	भगवन् !
शं विधेहि	(इसका) कल्याण कीजिये ॥४५॥

मैत्रेय उवाच-

इत्युपस्थीयमानस्तैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
सलिले स्वखुराक्रान्त उपाधत्तावितावनिम् ॥४६॥

इति उपस्थीयमानः तैः मुनिभिः ब्रह्मवादिभिः सलिले स्वखुर आक्रान्त उपाधत्त अविता अवनिम् ॥४६॥

इति तैः	इस प्रकार उन	**स्वखुर**	अपने खुरोंसे
ब्रह्मवादिभिः	वेदवादी	**आक्रान्त**	स्तम्भित किये
मुनिभिः	मुनियोंके	**सलिले**	जलपर
उपस्थीयमानः	स्तुति करनेपर	**अवनिम्**	पृथ्वीको
अविता	सबके रक्षक (भगवान) ने	**उपाधत्त**	स्थापित कर दिया ॥४६॥

स इत्थं भगवानुर्वी विष्वक्सेनः प्रजापतिः ।
रसाया लीलयोन्नीतामप्सु न्यस्य ययौ हरिः ॥४७॥

स इत्थं भगवान् उर्वीं विष्वक्सेनः प्रजापतिः रसाया लीलया उन्नीतां अप्सु न्यस्य ययौ हरिः ॥४७॥

स भगवान्	उन भगवान्	**उन्नीतां**	लायी हुई
प्रजापतिः	प्रजापति	**उर्वीं**	पृथ्वीको
विष्वक्सेनः	विष्वक्सेन (विष्णु)ने	**अप्सु न्यस्य**	जलपर रखकर
इत्थं	इस प्रकार	**हरिः ययौ**	श्रीहरि चले गये ॥४७॥
लीलया	लीलासे ही		
रसाया	रसातलसे		

य एवमेतां हरिमेधसो हरेः
कथां सुभद्रां कथनीयमायिनः ।
शृण्वीत भक्त्या श्रवयेत वोशतीं
जनार्दनोऽस्याशु हृदि प्रसीदति ॥४८॥

य एवं एतां हरिमेधसः हरेः कथां सुभद्रां कथनीय मायिनः शृण्वीत भक्त्या श्रवयेत वा उशतीं जनार्दनः अस्य आशु हृदि प्रसीदति ॥४८॥

य एवं	जो इस प्रकार
मायिनः	लीलामय
हरेः	श्रीहरिके
सुभद्रां	कल्याणमयी
कथनीय	कीर्तनीय
हरिमेधसः	भगवानमें लगी बुद्धिको पवित्र करने वाली
उशतीम्	मंजुल
एतां कथां	इस कथाको
भक्त्या	भक्ति पूर्वक
शृण्वीत	सुनता है
वा श्रवयेत	अथवा सुनाता है
अस्य हृदि	उसके हृदयमें (स्थित)
जनार्दनः	जनार्दन
आशु प्रसीदति	शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं ॥४८॥

तस्मिन् प्रसन्ने सकलाशिषां प्रभौ
किं दुर्लभं ताभिरलं लवात्मभिः ।
अनन्यदृष्ट्या भजतां गुहाशयः
स्वयं विधत्ते स्वगतिं परः पराम् ॥४९॥

तस्मिन् प्रसन्ने सकल आशिषां प्रभो किं दुर्लभं ताभिः अलं लव आत्मभिः अनन्य दृष्ट्या भजतां गुहाशयः स्वयं विधत्ते स्व गतिं परः पराम् ॥४९॥

सकल आशिषां	सम्पूर्ण कामनाओंको
प्रभोः	पूर्ण करनेमें समर्थ
तस्मिन्	उन (भगवान) के
प्रसन्ने	प्रसन्न हो जानेपर
दुर्लभं किं	दुर्लभ क्या रहता है
लव आत्मभिः	तुच्छ स्वरूपवाली
ताभिः	उन (कामनापूर्तिसे)
अलं	बस (क्या प्रयोजन)
अनन्य दृष्ट्या	अनन्य लक्ष्य बनाकर
भजतां	भजन करनेवालोंको
स्वयं परः	स्वयं परमपुरुष
स्व परां गतिं	अपनी परम गति
विधत्ते	प्रदान करते हैं ॥४९॥

को नाम लोके पुरुषार्थसारवित्
पुराकथानां भगवत्कथासुधाम् ।
आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहा-
महो विरज्येत विना नरेतरम् ॥५०॥

कः नाम लोके पुरुषार्थ सारवित् पुरा कथानां भगवत् कथा सुधां आपीय कर्ण अञ्जलिभिः भवापहां अहो विरज्येत विना नर इतरम् ॥५०॥

अहो	अहो
नर इतरं	मनुष्येतर (पशुओं)के
विना	विना
पुरुषार्थ	पुरुषार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष)
सारवित्	के सारको जाननेवाला
लोके कः नाम	लोकमें कौन होगा (जो)
भवापहां	आवागमनसे छुड़ाने वाली
भगवत्	भगवान्‌की
पुरा कथानां	प्राचीन कथाओंमें
कथा सुधां	(किसी) कथामृतको
कर्ण	
आञ्जलिभिः	कानोंकी अंजलिसे
आपीय	भली प्रकार पीकर
विरज्येत	(उससे) विरक्त होगा ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

निशम्य कौषारविणोपवर्णितां
हरेः कथां कारणसूकरात्मनः ।
पुनः स पप्रच्छ तमुद्यताञ्जलि-
र्न चातितृप्तो विदुरो धृतव्रतः ॥१॥

निशम्य कौषारविणः उपवर्णितां हरेः कथां कारण सूकर आत्मनः पुनः स पप्रच्छ तम् उद्यत अञ्जलिः न च अतितृप्तः विदुरः धृत व्रतः ॥१॥

कौषारविणोः	मैत्रेयजी द्वारा	**अतितृप्तः न च**	बहुत सन्तुष्ट न हुए
उपवर्णितां	वर्णन की गयी	**व्रत धृतः**	व्रतधारी
कारण सूकर		**विदुरः तं**	विदुरजीने उनसे
आत्मनः	सप्रयोजन वाराह बने	**उद्यत अञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
		पुनः	फिर
हरेः कथां	श्रीहरिकी कथा	**स पप्रच्छ**	उन्होंने पूछा ॥१॥
निशम्य	सुनकर		

विदुर उवाच-

तेनैव तु मुनिश्रेष्ठ हरिणा यज्ञमूर्तिना ।
आदिदैत्यो हिरण्याक्षो हत इत्यनुशुश्रुम ॥२॥

तेन एव तु मुनिश्रेष्ठ हरिणा यज्ञमूर्तिना आदिदैत्यः हिरण्याक्षः हत इति अनुशुश्रुम ॥२॥

मुनिश्रेष्ठ	मुनिश्रेष्ठ	**यज्ञमूर्तिना**	यज्ञमूर्ति
तेन	उन	**हरिणा एव तु**	श्रीहरिने ही तो

आदिदैत्यः	आदिदैत्य	**इति**	ऐसा
हिरण्याक्षः	हिरण्याक्षको	**अनुशुश्रुम**	(आपसे) मैंने
हत	मारा था		सुना ॥२॥

तस्य चोद्धरतः क्षोणीं स्वदंष्ट्राग्रेण लीलया ।
दैत्यराजस्य च ब्रह्मन् कस्माद्धेतोरभून्मृधः ॥३॥

तस्य च उद्धरतः क्षोणीं स्वदंष्ट्राग्रेण लीलया दैत्यराजस्य च ब्रह्मन् कस्मात् हेतोः अभून् मृधः ॥३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**तस्य च**	उनका और
स्वदंष्ट्राग्रेण	अपनी दाढ़की नोकसे	**दैत्यराजस्य च**	दैत्यराजका भी
लीलया	खेल खेलमें	**मृधः**	युद्ध
क्षोणीं	पृथ्वीको	**कस्मात् हेतोः**	किस कारणसे
उद्धरतः	उठाते समय	**अभून्**	हुआ ॥३॥

मैत्रेय उवाच-

साधु वीर त्वया पृष्टमवतारकथां हरेः ।
यत्त्वं पृच्छसि मर्त्यानां मृत्युपाशविशातनीम् ॥४॥

साधु वीर त्वया पृष्टं अवतार कथां हरेः यत् त्वं पृच्छसि मर्त्यानां मृत्युपाश विशातनीम् ॥४॥

वीर त्वया	वीर तुमने	**विशातनीम्**	काट देनेवाली
साधु पृष्टः	उत्तम प्रश्न किया	**हरेः**	श्रीहरिकी
यत् त्वं	क्योंकि तुम	**अवतार कथां**	अवतार-कथा
मर्त्यानां	मरणधर्मा मनुष्यके	**पृच्छसि**	पूछते हो ॥४॥
मृत्युपाश	मृत्युके पाशको		

ययोत्तानपदः पुत्रो मुनिना गीतयार्भकः ।
मृत्योः कृत्वेव मूर्ध्न्यङ्घ्रिमारुरोह हरेः पदम् ॥५॥

यया उत्तानपदः पुत्रः मुनिना गीतया अर्भकः मृत्योः कृत्वा एव मूर्ध्नि अङ्घ्रिम् आरुरोह हरेः पदम् ॥५॥

उत्तानपदः	उत्तानपादका	**मृत्योः**	मृत्युके
अर्भकः पुत्रः	शिशु पुत्र	**मूर्ध्नि एव**	सिरपर ही
मुनिना गीतया	नारदमुनि-वर्णित	**अङ्घ्रिम् कृत्वा**	पैर रखकर
यया	जिस (कथा) के (प्रभावसे)	**हरेः पदं**	श्रीहरिके स्थानपर
		आरुरोह	चढ़ गये ॥५॥

अथात्रापीतिहासोऽयं श्रुतो मे वर्णितः पुरा ।
ब्रह्मणा देवदेवेन देवानामनुपृच्छताम् ॥६॥

अथ अत्र अपि इतिहासः अयं श्रुतः मे वर्णितः पुरा ब्रह्मणा देवदेवेन देवानां अनुपृच्छताम् ॥६॥

अथ देवानां	अब देवताओंके	**देवदेवेन**	देवदेव
अनुपृच्छतां	पूछनेपर	**ब्रह्मणा**	ब्रह्माजी द्वारा
अत्र अयं	इस विषयक यह	**पुरा वर्णितः**	पहिले कहा गया
इतिहासः अपि	इतिहास भी	**मे श्रुतः**	मैंने सुना है ॥६॥

दितिर्दाक्षायणी क्षत्तर्मारीचं कश्यपं पतिम् ।
अपत्यकामा चकमे सन्ध्यायां हृच्छयार्दिता ॥७॥

दितिः दाक्षायणी क्षत्तः मारीचं कश्यपं पतिं अपत्य कामा चकमे सन्ध्यायां हृच्छय अर्दिता ॥७॥

क्षत्तः	विदुर !	**मारीचं**	मरीचिनन्दन
दाक्षायणीः	दक्षकन्या	**पतिं**	अपने पति
दितिः	दितिने	**कश्यपं**	कश्यपसे
हृच्छय अर्दिताः	काम पीड़ित होकर	**अपत्य कामा**	पुत्र पानेकी इच्छासे
सन्ध्यायां	सन्ध्याके समय	**चकमे**	प्रार्थना की ॥७॥

इष्ट्वाग्निजिह्वं पयसा पुरुषं यजुषां पतिम् ।
निम्लोचत्यर्क आसीनमग्न्यगारे समाहितम् ॥८॥

इष्ट्वा अग्नि जिह्वं पयसा पुरुषं यजुषां पतिं निम्लोचति अर्कं आसीनं अग्न्य आगारे समाहितम् ॥८॥

अग्नि जिह्वं	अग्नि जिह्वा	**पुरुषं**	परम पुरुषको
यजुषां पतिं	यज्ञपति	**पयसा**	खीरकी

इष्ट्वा	आहुति देकर	**अग्न्य आगारे**	हवनशालामें
अकं निम्लोचति	सूर्यास्तके समय	**आसीनं**	बैठे हुए
समाहितं	एकाग्रचित्त		(कश्यपसे) ॥८॥

दितिरुवाच–

एष मां त्वत्कृते विद्वन् काम आत्तशरासनः ।
दुनोति दीनां विक्रम्य रम्भामिव मतङ्गजः ॥९॥

एष मां त्वत् कृते विद्वन् काम आत्त शरासनः दुनोति दीनां विक्रम्य रम्भां इव मतङ्गजः ॥९॥

विद्वन्	विद्वन्	**आत्तः**	लिये
रम्भां	केलेको	**विक्रम्य**	बल लगाकर
मतङ्गजः इव	हाथीके समान	**मां दीनां**	मुझ अबलाको
त्वत् कृते	आपके निमित्तसे	**दुनोति**	बेचैन कर रहा
एष कामः	यह काम		है ॥९॥
शरासनः	धनुष		

तद्भवान्दह्यमानायां सपत्नीनां समृद्धिभिः ।
प्रजावतीनां भद्रं ते मय्यायुङ्क्तामनुग्रहम् ॥१०॥

तत् भवान् दह्यमानायां सपत्नीनां समृद्धिभिः प्रजावतीनां भद्रं ते मयि अयुङ्क्तां अनुग्रहम् ॥१०॥

ते भद्रं	आपका कल्याण हो	**मयि**	मुझपर
प्रजावतीनां	पुत्रवती	**तत् भवान्**	वह आप
सपत्नीनां	सौतोंकी	**अनुग्रहं**	अनुग्रह
समृद्धिभिः	समृद्धि (उन्नति) से	**अयुङ्क्तां**	कीजिए ॥१०॥
दह्यमानायां	जलती हुई		

भर्तर्याप्तोरुमानानां लोकानाविशते यशः ।
पतिर्भवद्विधो यासां प्रजया ननु जायते ॥११॥

भर्तरि आप्त उरुमानानां लोकान् आविशते यशः पतिः भवत् विधः यासां प्रजया ननु जायते ॥११॥

ननु	निश्चय	**भर्तः**	पतिसे
भवत् विधः	आपके समान	**उरुमानानां**	बहुत सम्मान
पतिः	पति	**आप्त**	प्राप्त (स्त्रियोंका)
यासां	जिनसे	**लोकान् यशः**	लोकमें यश
प्रजया	पुत्र रूपमें	**आविशते**	फैलता है ॥११॥
जायते	उत्पन्न होता है		

पुरा पिता नो भगवान्दक्षो दुहितृवत्सलः ।
कं वृणीत वरं वत्सा इत्यपृच्छत नः पृथक् ॥१२॥

पुरा पिता नः भगवान् दक्षः दुहितृ वत्सलः कं वृणीत वरं वत्सा इति अपृच्छत नः पृथक् ॥१२॥

पुरा नः	पहिले हमारे	**इति**	इस प्रकार
पिता	पिता	**अपृच्छत**	पूछा
दुहितृ वत्सलः	पुत्री वत्सल	**वत्साः**	बेटियो !
भगवान् दक्षः	भगवान् दक्षने	**कं वरं**	किसे वर (पति)
नः पृथक्	हम सबसे अलग-अलग	**वृणीत**	बनाना चाहती हो ॥१२॥

स विदित्वाऽऽत्मजानां नो भावं सन्तानभावनः ।
त्रयोदशाददात्तासां यास्ते शीलमनुव्रताः ॥१३॥

स विदित्वा आत्मजानां नः भावं सन्तान भावनः त्रयोदश अदात् तासां याः ते शीलं अनुव्रताः ॥१३॥

स सन्तान भावनः	उन सन्तानपर स्नेह रखने वालेने	**शीलं अनुव्रताः**	स्वभावके पीछे चलनेवाली थीं
नः आत्मजानां	हम पुत्रियोंका	**त्रयोदशः**	उन तेरहको
भावं विदित्वा	भाव जानकर	**अदात्**	(आपको) दे दिया ॥१३॥
तासां यः ते	उनमें जो आपके		

अथ मे कुरु कल्याण कामं कञ्जविलोचन ।
आर्तोपसर्पणं भूमन्नमोघं हि महीयसि ॥१४॥

अथ मे कुरु कल्याण कामं कञ्जविलोचन आर्त उपसर्पणं भूमन् अमोघं हि महीयसि ॥१४॥

कल्याण	मंगल स्वरूप
कञ्ज विलोचन	कमल नयन
अथ मे	अतः मेरा
कामं कुरु	मनोरथ पूरा कीजिए
हि भूमन्	
महीयसि	क्योंकि अत्यन्त महत्तम लोगोंके
उपसर्पणं	समीप जाना
आर्तः	दुःखियोंका
अमोघं	व्यर्थ नहीं जाता ॥१४॥

*मैत्रेय उवाच**–

इति तां वीर मारीचः कृपणां बहुभाषिणीम् ।
प्रत्याहानुनयन् वाचा प्रवृद्धानङ्गकश्मलाम् ॥१५॥

इति तां वीर मारीचः कृपणां बहु भाषिणीं प्रत्याह अनुनयन् वाचा प्रवृद्ध अनङ्ग कश्मलाम् ॥१५॥

वीर	वीर (विदुर) !
इति	इस प्रकार
प्रवृद्ध	बढ़े हुए
अनङ्ग कश्मलां	कामके वेगसे
कृपणां	बेचैन
बहु भाषिणीं	बहुत बोलनेवाली
तां	उस (दिति) से
वाचा अनुनयन्	वाणीसे समझाते हुए
मारीचः	कश्यपजी
प्रत्याह	बोले ॥१५॥

*कश्यप उवाच**–

एष तेऽहं विधास्यामि प्रियं भीरु यदिच्छसि ।
तस्याः कामं न कः कुर्यात्सिद्धिस्त्रैवर्गिकी यतः ॥१६॥

एष ते अहं विधास्यामि प्रियं भीरु यत् इच्छसि तस्याः कामः न कः कुर्यात् सिद्धिः त्रैवर्गिकी यतः ॥१६॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भीरु	भीरु !
एष ते प्रियं	यह तुम्हारा प्रिय
यत् इच्छसि	जो चाहती हो
अहं विधास्यामि	मैं अवश्य करूँगा
यतः	जिससे
त्रैवर्गिको	अर्थ, धर्म, कामकी
सिद्धिः	सिद्धि होती है
तस्याः	उसकी
कामः	इच्छा
कः न	कौन नहीं
कुर्यात्	पूरा करेगा ॥१६॥

सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् ।
व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथार्णवम् ॥१७॥

सर्वं आश्रमान् उपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् व्यसन अर्णवं अति एति जलयानैः यथा अर्णवम् ॥१७॥

यथा जलयानैः	जैसे जहाजसे
अर्णवं	समुद्र (पार करते हैं—वैसे ही)
कलत्रवान्	पत्नीवाला (गृहस्थ)
सर्वं आश्रमान्	(दूसरे) सब आश्रयोंको
उप आदाय	आश्रय देता हुआ
स्व आश्रमेण	अपने ही आश्रमसे
व्यसन अर्णवं	व्यसन रूपी समुद्रको
अति एति	पार कर जाता है ॥१७॥

यामाहुरात्मनो ह्यर्धं श्रेयस्कामस्य मानिनि ।
यस्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति विज्वरः ॥१८॥

यां आहुः आत्मनः हि अर्धं श्रेयः कामस्य मानिनी यस्यां स्वधुरं अध्यस्य पुमान् चरति विज्वरः ॥१८॥

मानिनी	मानिनी !
श्रेयः कामस्य	कल्याण चाहने वालेका
यां हि	जिसे तो
आत्मनः	शरीरका
अर्धं आहुः	आधा कहा गया है
यस्यां स्वधुरं	जिसपर अपना भार
अध्यस्य	डालकर
पुमान्	पुरुष
विज्वरः	निश्चिन्त
चरति	घूमता है ॥१८॥

यामाश्रित्येन्द्रियारातीन्दुर्जयानितराश्रमैः ।
वयं जयेम हेलाभिर्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा ॥१९॥

यां आश्रित्य इन्द्रिय अरातीन् दुर्जयान् इतर आश्रमैः वयं जयेम हेलाभिः दस्यून् दुर्गपतिः यथा ॥१९॥

यथा दुर्गपतिः	जैसे दुर्गपति	**इन्द्रिय अरातीन्**	इन्द्रियोंरूपी शत्रुओंको
दस्यून्	डाकुओंको (जीत लेता है)	**यां आश्रित्य**	जिसका सहारा लेकर
इतर आश्रमैः	दूसरे आश्रमवालोंके लिए	**वयं हेलाभिः**	हम उपेक्षापूर्वक
दुर्जयान्	दुर्जय	**जयेम**	जीत लेते हैं ॥१९॥

न वयं प्रभवस्तां त्वामनुकर्तुं गृहेश्वरि ।
अप्यायुषा वा कात्स्न्र्येन ये चान्ये गुणगृध्नवः ॥२०॥

न वयं प्रभवः तां त्वां अनुकर्तुं गृह ईश्वरि अपि आयुषा वा कात्स्न्र्येन ये च अन्ये गुण गृध्नवः ॥२०॥

गृहेश्वरि	गृहस्वामिनी !	**गुण गृध्नवः**	गुणग्राही पुरुष है
तां त्वां	ऐसी तुम्हारे	**कात्स्न्र्येन**	पूर्णतः
अनुकर्तुं	उपकारोंका बदला देनेमें	**अपि आयुषा वा**	पूरी आयुमें भी
वयं	हम	**प्रभवः न**	समर्थ नहीं हो सकते ॥२०॥
च ये अन्ये	और जो दूसरे		

अथापि काममेतं ते प्रजात्यै करवाण्यलम् ।
यथा मां नातिवोचन्ति मुहूर्तं प्रतिपालय ॥२१॥

अथ अपि कामं एतं ते प्रजात्यै करवाणि अलं यथा मां न अति ऊचन्ति मुहूर्तं प्रतिपालय ॥२१॥

अथ अपि	फिर भी	**अति न**	अति करनेवाला नहीं
एतं ते	यह तुम्हारी		
प्रजात्यै कामं	पुत्र प्राप्तिकी इच्छा	**ऊचन्ति**	कहें
अलं करवाणि	पूर्ण करूँगा; किन्तु	**मुहूर्तं**	एक मुहूर्त
यथा मां	जैसे (लोग) मुझे	**प्रतिपालय**	ठहरो ॥२१॥

एषा घोरतमा वेला घोराणां घोरदर्शना ।
चरन्ति यस्यां भूतानि भूतेशानुचराणि ह ॥२२॥

एषा घोरतमा वेला घोराणां घोर दर्शना चरन्ति यस्यां भूतानि भूतेश अनुचराणि ह ॥२२॥

एषा	यह	**यस्यां ह**	जिसमें निश्चय
घोरतमा	अत्यन्त घोर	**भूतेश अनुचराणि**	भूतनाथके अनुचर
वेला	समय	**भूतानि**	भूत
घोर दर्शना	देखनेमें भयानक	**चरन्ति**	घूमते रहते हैं ॥२२॥
घोराणां	भयानक जीवोंका है		

एतस्यां साध्वि सन्ध्यायां भगवान् भूतभावनः ।
परीतो भूतपर्षद्भिर्वृषेणाटति भूतराट् ॥२३॥

एतस्यां साध्वि सन्ध्यायां भगवान् भूतभावनः परीतः भूत पर्षद्भिः वृषेण अटति भूतराट् ॥२३॥

साध्वि	साध्वि !	**भूतराट्**	भूतनाथ
एतस्यां	इस	**भूत पर्षद्भिः**	भूतगणोंसे
सन्ध्यायां	सन्ध्याकालमें	**परीतः**	घिरे हुए
भूतभावनः	भूत भावन	**वृषेण**	बैलपर बैठकर
भगवान्	भगवान्	**अटति**	घूमते हैं ॥२३॥

श्मशानचक्रानिलधूलिधूम्र-
विकीर्णविद्योतजटाकलापः ।
भस्मावगुण्ठामलरुक्मदेहो
देवस्त्रिभिः पश्यति देवरस्ते ॥२४॥

श्मशान चक्र अनिल धूलिधूम्र विकीर्ण विद्योत जटा कलापः भस्म अवगुण्ठ अमल रुक्मदेहः देवः त्रिभिः पश्यति देवरः ते ॥२४॥

श्मशान	श्मशानमें (उठे)	**विकीर्ण**	बिखरी हुई
अनिल चक्र	बवंडरकी	**विद्योत**	चमकती
धूलिधूम्र	धूलिसे धूसर	**जटा कलापः**	जटा मण्डलवाले

अमल रुक्मदेहः	निर्मल स्वर्णके समान शरीरमें	**त्रिभिः**	तीन नेत्रोंसे (सूर्य, चन्द्र, अग्नि, रूप)
भस्म अवगुण्ठ ते देवरः	भस्म लगाये तुमको वरदान देने वाले* देवता	**पश्यति**	देखते हैं ॥२४॥

विशेष—

सन्ध्या समय अनेक तिथियोंमें सूर्य-चन्द्र दोनों आकाशमें होते हैं और सायंकालीन हवनकी अग्नि भी जलती है। ये सूर्य, चन्द्र, अग्नि रुद्र-नेत्र माने जाते हैं।

न यस्य लोके स्वजनः परो वा
नात्यादृतो नोत कश्चिद्विगर्ह्यः।
वयं व्रतैर्यच्चरणापविद्धा-
माशास्महेऽजां बत भुक्तभोगाम् ॥२५॥

न यस्य लोके स्वजनः परः वा न अति आदृतः न उत कश्चित् विगर्ह्यः वयं व्रतैः यत् चरण अपविद्धां आशा स्महे अजां बत भुक्त भोगाम् ॥२५॥

लोके यस्य स्वजनः परः	संसारमें जिनका	**यत् भुक्त भोगां**	जिनके द्वारा भोगकर
वा न	स्वजन या शत्रु कोई नहीं है,	**चरण अपविद्धां**	चरणोंसे ठुकरायी गयी
न अति आदृतः	न कोई अधिक आदरणीय है	**अजां बत**	मायाको ही
कश्चित् विगर्ह्यः	कोई निन्दनीय	**व्रतैः**	व्रत करके
उत न	भी नहीं है।	**वयं**	हम लोग
		आशा स्महे	चाहते हैं ॥२५॥

---

* प्रायः टीकाकारोंने देवरका अर्थ श्वसुर किया है; क्योंकि कश्यपजीके पिता मरीचि ब्रह्माजीके पुत्र होनेसे रुद्रके छोटे भाई हैं; किन्तु देवर शब्दका अर्थ श्वसुर न लोक-सम्मत है, न कोश-सम्मत।

यस्यानवद्याचरितं मनीषिणो
गृणन्त्यविद्यापटलं बिभित्सवः ।
निरस्तसाम्यातिशयोऽपि यत्स्वयं
पिशाचचर्यामचरद्गतिः सताम् ॥२६॥

यस्य अनवद्य चरितं मनीषिणः गुणन्ति अविद्या पटलं विभीत्सवः निरस्त साम्य अतिशयः अपि यत् स्वयं पिशाचचर्यां अचरत् गतिः सताम् ॥२६॥

यस्य	जिनके
अनवद्य	निर्मल
चरितं	चरितोंको
अविद्या	अविद्याके
पटलं	आवरणको
विभीत्सवः	दूर करनेकी इच्छावाले
मनीषिणः	विवेकी लोग
गृणन्ति	गान करते हैं
साम्य	(अपनेसे) समान एवं
अतिशयः अपि	बड़ा भी
निरस्त	दूर किये
सतां गतिः	सत्पुरुषोंकी गति (के)
यत् स्वयं	जो स्वयं
पिशाचचर्यां	पिशाचों जैसा आचरण
अचरत्	करते हैं ॥२६॥

हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगाः
स्वात्मन् रतस्याविदुषः समीहितम् ।
यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः
श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम् ॥२७॥

हसन्ति यस्य आचरितं हि दुर्भगाः स्व आत्मन् रतस्य अविदुषः सम ईहितं यैः वस्त्र माल्य आभरण अनुलेपनैः श्व भोजनं स्व आत्मतया उपलालितं ॥२७॥

यस्य	जिन
स्व आत्मन् रतस्य	आत्मारामके
सम ईहितं	चेष्टाको भली प्रकार
अविदुषः	न जाननेवाले
आचरितं	आचरणका
हसन्ति	उपहास करते हैं
हि दुर्भगाः	क्योंकि अभागे हैं
यैः वस्त्र माल्य	जो वस्त्र, माला

आभरण	आभूषण	**स्व आत्मतया**	अपना स्वरूप
अनुलेपनैः	अंगरागसे		मानकर
श्व भोजनं	कुत्तेके भोजन (शरीरको)	**उपलालितं**	लालित करते हैं ॥२७॥

ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला
यत्कारणं विश्वमिदं च माया ।
आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या
अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥२८॥

ब्रह्माआदयः यत् कृत सेतुपाला यत् कारणं विश्वं इदं च माया आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या अहो विभूम्नः चरितं विडम्बनम् ॥२८॥

ब्रह्माआदयः	ब्रह्मा आदि	**च माया**	और माया
यत् कृत्	जिनकी बनायी	**आज्ञाकरी**	आज्ञापालिका है
सेतुपाला	मर्यादाका पालन करते हैं,	**तस्य विभूम्नः**	उन व्यापक प्रभुका
		पिशाचचर्या	पिशाचारण
यत् इदं विश्वं	जो इस विश्वके	**चरितं**	यह लीला
कारणं	कारण हैं,	**विडम्बनं**	अद्भुत है ॥२८॥

मैत्रेय उवाच-

सैवं संविदिते भर्त्रा मन्मथोन्मथितेन्द्रिया ।
जग्राह वासो ब्रह्मर्षेर्वृषलीव गतत्रपा ॥२९॥

सा एवं संविदिते भर्त्रा मन्मथ उन्मथित इन्द्रिया जग्राह वासः ब्रह्मर्षेः वृषली इव गतत्रपाः ॥२९॥

एवं	इस प्रकार	**वृषली इव**	वेश्याके समान
भर्त्रा	पतिके	**गतत्रपाः**	निर्लज्ज होकर
संविदिते	समझानेपर भी	**ब्रह्मर्षेः**	ब्रह्मर्षि (कश्यपजी)
सा मन्मथ	उस (दिति) ने कामदेव द्वारा		का
		वासः	वस्त्र
उन्मथित इन्द्रिया	मथित होती इन्द्रिय (के कारण)	**जग्राह**	पकड़ लिया ॥२९॥

स विदित्वाथ भार्यायास्तं निर्बन्धं विकर्मणि ।
नत्वा दिष्टाय रहसि तयाथोपविवेश ह ॥३०॥

स विदित्वा अथ भार्यायाः तं निर्बन्धं विकर्मणि नत्वा दिष्टाय रहसि तया अथ उपविवेश ह ॥३०॥

स	उन (कश्यपजी) ने	**अथ दिष्टाय**	तब दैवको
भार्यायाः	पत्नीका	**नत्वा**	नमन करके
तं विकर्मणि	उस अपकर्ममें	**तया**	उसके साथ
निर्बन्धं	अत्याग्रह	**रहसि**	एकान्तमें
विदित्वा	जानकर	**उपविवेश ह**	प्रवेश किया ॥३०॥

अथोपस्पृश्य सलिलं प्राणानायम्य वाग्यतः ।
ध्यायञ्जजाप विरजं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥३१॥

अथ उपस्पृश्य सलिलं प्राणान् आयम्य वाक् यतः ध्यायन् जजाप विरजं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥३१॥

अथ	तदनन्तर	**वाक् यतः**	वाणी रोककर (मौन होकर)
सलिलं	जलसे	**सनातनं ज्योतिः**	नित्य प्रकाश रूप परमात्माका
उपस्पृश्य	आचमन करके	**ध्यायन्**	ध्यान करते हुए
प्राणान्	श्वासको	**ब्रह्म जजाप**	प्रणवका जप करने लगे ॥३१॥
आयम्य	संयमित (प्राणायाम) करके		

दितिस्तु व्रीडिता तेन कर्मावद्येन भारत ।
उपसङ्गम्य विप्रर्षिमधोमुख्यभ्यभाषत ॥३२॥

दितिः तु व्रीडिता तेन कर्म अवद्येन भारत उपसङ्गम्य विप्रर्षिम् अधोमुखी अभ्यभाषत ॥३२॥

भारत	विदुर !	**तेन अवद्येन**	उस निन्दित
दिति तुः	दिति तो	**कर्मणा**	कर्मके कारण

व्रीडिता	लज्जित होकर	उपसङ्गम्य	समीप जाकर
अधोमुखी	मुख नीचे लटकाये	अभ्य भाषत	बोली ॥३२॥
विप्रर्षि	ब्रह्मर्षि (कश्यपके)		

दितिरुवाच–

मा मे गर्भमिमं ब्रह्मन् भूतानामृषभो वधीत् ।
रुद्रः पतिर्हि भूतानां यस्याकरवमंहसम् ॥३३॥

मा मे गर्भं इमं ब्रह्मन् भूतानां ऋषभः वधीत् रुद्रः पतिः हि भूतानां यस्या अकरवं अंहसम् ॥३३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	हि यस्या	क्योंकि जिनका
मे अयं गर्भः	मेरा यह गर्भ	अंहसम्	अपराध
भूतानां ऋषभः	प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ	अकरवं	(मैंने) किया है वे)
रुद्रः	रुद्र	भूतानां पतिः	प्राणियोंके स्वामी
मा वधीत्	न मारें (नष्ट न करें)		हैं ॥३३॥

नमो रुद्राय महते देवायोग्राय मीढुषे ।
शिवाय न्यस्तदण्डाय धृतदण्डाय मन्यवे ॥३४॥

नमः रुदाय महते देवाय उग्राय मीढुषे शिवाय न्यस्त दण्डाय धृत दण्डाय मन्यवे ॥३४॥

महते	महान्	धृत दण्डाय	(दुष्टोंके लिए) दण्डधारी
मीढुषे	अभीष्टदाता	मन्यवे	मन्यु (क्रोध स्वरूप)
उग्राय देवाय	उग्र देवता	रुद्राय नमः	रुद्रको नमस्कार ॥३४॥
न्यस्त दण्डाय	दण्ड देनेके भावको ही त्यागे		
शिवाय	शिव (कल्याण रूप)		

स नः प्रसीदतां भामो भगवानुर्वनुग्रहः ।
व्याधस्याप्यनुकम्प्यानां स्त्रीणां देवः सतीपतिः ॥३५॥

स नः प्रसीदतां भामः भगवान् उरु अनुग्रहः व्याधस्य अपि अनुकम्प्यानां स्त्रीणां देवः सतीपतिः ॥३५॥

व्याधस्य अपि	व्याधके लिए भी	**भामः**	बहनोई*
अनुकम्प्यानां	दया करने योग्य	**उरु अनुग्रहः**	अत्यन्त दयाशील हैं
स्त्रीणां	स्त्रियोंके लिए	**प्रसीदतां**	(मुझपर) प्रसन्न
देवः सतीपतिः	देवता, सतीपति		हों ॥३५॥
स नः	वे मेरे		

मैत्रेय उवाच-

स्वसर्गस्याशिषं लोक्यामाशासानां प्रवेपतीम् ।
निवृत्तसन्ध्यानियमो भार्यामाह प्रजापतिः ॥३६॥

स्व सर्गस्य आशिषं लोक्यां आशासानां प्रवेपतीं निवृत्त सन्ध्या नियमः भार्यां आह प्रजापतिः ॥३६॥

स्व सर्गस्य	अपनी संतानकी	**भार्यां**	पत्नीसे
लोक्यां	इस लोक और परलोकमें	**सन्ध्या नियमः**	सन्ध्याके नियम
		निवृत्तः	पूरा करके
आशिषं	कल्याण	**प्रजापतिः**	प्रजापति (कश्यप)
आशासानां	चाहती हुई	**आह**	बोले ॥३६॥
प्रवेपतीं	(भयसे, काँपती हुई		

कश्यप उवाच-

अप्रायत्यादात्मनस्ते दोषान्मौहूर्तिकादुत ।
मन्निदेशातिचारेण देवानां चातिहेलनात् ॥३७॥

अप्रायति अति आत्मनः ते दोषात् मौहूर्तिकात् उत मत् निदेश अति चारेण देवानां च अति हेलनात् ॥३७॥

---

* यद्यपि दिति प्राचेतस दक्षकी पुत्री हैं; किन्तु यही दक्ष अपने पूर्व जन्ममें ब्रह्माजीके मानस-पुत्र दक्ष थे, जिनकी पुत्री सती हुईं, उसी नातेको लेकर दिति भगवान रुद्रको बहनोई कहती हैं।

ते आत्मनः	तुम्हारे चित्तके
अति	अत्यन्त
अप्रायति	असंयत होनेसे
उत मौहूर्तिकात्	तथा उस मुहूर्त सम्बन्धी
दोषात्	दोषसे
मत् निदेश	मेरे आदेशकी
अति चारेण	उपेक्षा करनेसे
देवानां च	देवताओंकी भी
अति हेलनात्	अत्यन्त अवहेलना करनेसे ॥३७॥

भविष्यतस्तवाभद्रावभद्रे जाठराधमौ ।
लोकान् सपालांस्त्रींश्चण्डि मुहुराक्रन्दयिष्यतः ॥३८॥

भविष्यतः तव अभद्राः अभद्रे जाठर अधमौ लोकान् सपालान् त्रीन् चण्डि मुहुः आक्रन्दयिष्यतः ॥३८॥

अभद्रे	अमङ्गलमयी !
चण्डि	चण्डी !
तव जाठर	तुम्हारे पेटसे उत्पन्न
अधमौ	अधम
भविष्यतः	होंगे
सपालान्	लोकपालोंके साथ
त्रीन् लोकान्	तीनों लोकोंसे
मुहुः	बार-बार
आक्रन्दयिष्यतः	(अपने अत्याचारोंसे) आक्रन्दन् कराने लगेंगे ॥३८॥

प्राणिनां हन्यमानानां दीनानामकृतागसाम् ।
स्त्रीणां निगृह्यमाणानां कोपितेषु महात्मसु ॥३९॥

प्राणिनां हन्यमानानां दीनानां अकृत आगसां स्त्रीणां निगृह्यमाणानां कोपितेषु महात्मषु ॥३९॥

दीनानां	दीन
अकृत आगसां	निरपराध
प्राणिनां	प्राणियोंके
हन्यमानानां	मारे जानेपर,
स्त्रीणां	स्त्रियोंके
निगृह्यमाणानां	वन्दिनी बनाये जानेपर
महात्मषु	महात्माओंके
कोपितेषु	क्रोधित किये जानेपर ॥३९॥

तदा विश्वेश्वरः क्रुद्धो भगवाँल्लोकभावनः ।
हनिष्यत्यवतीर्यासौ यथाद्रीन् शतपर्वधृक् ॥४०॥

तदा विश्वेश्वरः क्रुद्धः भगवान् लोकभावनः हनिष्यति अवतीर्य असौ यथा अद्रीन् शतपर्व धृक् ॥४०॥

तदा लोकभावनः	तब लोकरक्षक	**यथा**	जैसे
विश्वेश्वर	विश्वेवर	**शतपर्व धृक्**	वज्रधर (इन्द्र)
भगवान्	भगवान्	**अद्रीन्**	पर्वतोंको (नष्ट करते हैं)
अवतीर्य	अवतार लेकर		
क्रुद्धः	क्रोध करके	**हनिष्यति**	(वैसे ही) मार देंगे ॥४०॥
असौ	इन (तुम्हारे होने वाले) पुत्रोंको		

दितिरुवाच-

वधं भगवता साक्षात्सुनाभोदारबाहुना ।
आशासे पुत्रयोर्मह्यं मा क्रुद्धाद्ब्राह्मणाद्विभो ॥४१॥

वधं भगवता साक्षात् सुनाभ उदार बाहुना आशासे पुत्रयोः मह्यं मा क्रुद्धात् ब्राह्मणात् विभो ! ॥४१॥

विभो	प्रभो !	**सुनाभ**	चक्रसे
मह्यं	मेरे	**आशासे**	चाहती हूँ,
पुत्रयोः	पुत्रोंका	**क्रुद्धात्**	क्रोधमें भरे
वधं	वध	**ब्राह्मणात्**	ब्राह्मणसे
उदार बाहुना	लम्बी भुजाओंवाले	**मा**	(उनकी मृत्यु) मत हो ॥४१॥
भगवता	भगवान्के		
साक्षात्	साक्षात्		

न ब्रह्मदण्डदग्धस्य न भूतभयदस्य च ।
नारकाश्चानुगृह्णन्ति यां यां योनिमसौ गतः ॥४२॥

न ब्रह्मदण्ड दग्धस्य न भूत भयदस्य च नारकाः च अनुगृह्णन्ति यां यां योनिं असौ गतः ॥४२॥

न ब्रह्मदण्ड	न तो ब्राह्मणके शापसे	**भूत भयदस्य**	प्राणियोंको भय देने वालेको
दग्धस्य च	जले तथा	**असौ**	वह

यां यां योनिगतः	जिस जिस योनिमें जाता है	**न अनुगृह्णन्ति**	(उसपर) दया नहीं करते ॥४२॥
नारकाः च	नारकीय प्राणी भी		

कश्यप उवाच-

कृतशोकानुतापेन सद्यः प्रत्यवमर्शनात् ।
भगवत्युरुमानाच्च भवे मय्यपि चादरात् ॥४३॥

कृत शोक अनुतापेन सद्यः प्रति अवमर्शनात् भगवति उरु मानात् च भवे मयि अपि च आदरात् ॥४३॥

कृत शोक अनुतापेन	किए हुए पर शोक, पश्चाताप करनेसे	**उरु मानात् च**	बहुत सम्मान भाव होनेसे और
सद्यः	तत्काल	**भवे**	शंकरजीके प्रति
प्रति अवमर्शनात्	उसपर (उचिता-नुचित) विवेक हो जानेसे	**मयि अपि**	मेरे प्रति भी
		आदरात्	आदर भाव होनेसे ॥४३॥
भगवति	भगवानके प्रति		

पुत्रस्यैव तु पुत्राणां भवितैकः सतां मतः ।
गास्यन्ति यद्यशः शुद्धं भगवद्यशसा समम् ॥४४॥

पुत्रस्य एव तु पुत्राणां भविता एकः सतां मतः गास्यन्ति यत् यशः शुद्धं भगवत् यशसा समम् ॥४४॥

पुत्रस्य एव तु	(तुम्हारे) पुत्रोंके ही तो	**यत् शुद्धं यशः**	जिसका शुद्ध यश
		भगवत्	भगवानके
पुत्राणां	पुत्रोंमें	**यशः समं**	यशके साथ
सतां मतः	सत्पुरुषोंको मान्य	**गास्यन्ति**	(लोग) गान करेंगे ॥४४॥
एकः भविता	एक होनेवाला है		

योगैर्हेमेव दुर्वर्णं भावयिष्यन्ति साधवः ।
निर्वैरादिभिरात्मानं यच्छीलमनुवर्तितुम् ॥४५॥

योगैः हेम एव दुर्वर्णं भावयिष्यन्ति इह साधवः निर्वैर आदिभिः आत्मानं यत् शीलं अनुवर्तितुम् ॥४५॥

हेम एव	सोनेके ही	**अनुवर्तितुं**	अनुकरण करनेके लिए
दुर्वर्णं	दोषपूर्ण रंगको		
योगैः	विशेष द्रव्य मिलाकर (जैसे शुद्ध किया जाता है)	**निर्वैर आदिभिः**	निर्वैर आदि (सद्गुणों) से
		आत्मानं	अपने चित्तको
साधवः	(वैसे ही) सत्पुरुष	**इह**	इस लोकमें
यत् शीलं	जिसके शीलका	**भावयिष्यन्ति**	शुद्ध करेंगे ॥४५॥

यत्प्रसादादिदं विश्वं प्रसीदति यदात्मकम् ।
स स्वदृग्भगवान् यस्य तोष्यतेऽनन्यया दृशा ॥४६॥

यत् प्रसादात् इदं विश्वं प्रसीदति यत् आत्मकं स स्वदृक् भगवान् यस्य तोष्यते अनन्यया दृशा ॥४६॥

इदं विश्वं	यह विश्व	**यस्य**	जिसकी
यत् प्रसादात्	जिसकी कृपासे	**अनन्यया**	अनन्य
प्रसीदति	प्रसन्न रहता है	**दृशा**	निष्ठासे
यत् आत्मकं	जिसका स्वरूप है	**तोष्यते**	सन्तुष्ट किये जायँगे ॥४६॥
स स्वदृक्	वे स्वयं प्रकाश		
भगवान्	भगवान्		

स वै महाभागवतो महात्मा
महानुभावो महतां महिष्ठः ।
प्रवृद्धभक्त्या ह्यनुभाविताशये
निवेश्य वैकुण्ठमिमं विहास्यति ॥४७॥

स वै महाभागवतः महात्मा महानुभावः महतां महिष्ठः प्रवृद्ध भक्त्या हि अनुभावित आशये निवेश्य वैकुण्ठं इमं विहास्यति ॥४७॥

वै सः	निश्चय वह	**महानुभावः**	महान् प्रभाववाला
महाभागवतः	महाभागवत	**महतां महीष्ठः**	महापुरुषोंका भी पूज्य होगा
महात्मा	उदार चित्त		

हि प्रवृद्ध भक्त्या	क्योंकि बढ़ी हुई भक्तिसे	**वैकुण्ठं**	भगवानको
अनुभावित	शुद्ध हुए	**निवेश्य**	बैठाकर
आशये	चित्तमें	**इमं**	इस (देहाभिमान)को
		विहास्यति	त्याग देगा ॥४७॥

अलम्पटः शीलधरो गुणाकरो
हृष्टः परद्धर्या व्यथितो दुःखितेषु ।
अभूतशत्रुर्जगतः शोकहर्ता
नैदाघिकं तापमिवोडुराजः ॥४८॥

अलम्पटः शीलधरः गुण आकरः हृष्टः परः ऋद्ध्याः व्यथितः दुःखितेषु अभूतशत्रुः जगतः शोकहर्ता नैदाघिकं तापं इव उडुराजः ॥४८॥

अलम्पटः	लम्पट नहीं (संयमी)	**व्यथितः**	दुःखी होनेवाला
शीलधरः	शीलवान्	**अभूत शत्रुः**	अजात शत्रु
गुण आकरः	गुणखान	**नैदाघिकं तापं**	ग्रीष्म ऋतुके तापको
परः ऋद्ध्याः	दूसरोंकी सम्पत्तिसे	**उडुराजः इव**	चन्द्रमाके समान
हृष्टः	हर्षित होनेवाला	**जगतः शोकहर्ता**	संसारका शोक नाशक होगा ॥४८॥
दुःखितेषु	(दूसरोंके) दुःखित होनेपर		

अन्तर्बहिश्चामलमब्जनेत्रं
स्वपूरुषेच्छानुगृहीतरूपम् ।
पौत्रस्तव श्रीललनाललामं
द्रष्टा स्फुरत्कुण्डलमण्डिताननम् ॥४९॥

अन्तः बहिः च अमलं अब्जनेत्रं स्वपूरुष इच्छा अनुगृहीत रूपं पौत्रः तव श्रीललना ललाम द्रष्टा स्फुरत् कुण्डल मण्डित आननम् ॥४९॥

अन्तः बहिः च	(इस संसारके) बाहर भीतर भी (व्याप्त)	**स्वपूरुष**	अपने भक्तकी
		इच्छा	इच्छा (के अनुसार)
अमलं	निर्मल	**अनुगृहीत**	अनुग्रहपूर्वक
अब्जनेत्रं	कमल नयन	**रूपं**	रूप ग्रहण किए

श्रीललना	लक्ष्मी जैसी लावण्यमयीको भी	**मण्डित आननं**	सुशोभित मुखवाले (भगवानका)
ललाम	भूषित करनेवाले	**तव पौत्रः**	तुम्हारा पौत्र
स्फुरत् कुण्डल	चमकते कुण्डलोंसे	**द्रष्टा**	दर्शन करेगा ॥४९॥

मैत्रेय उवाच–

श्रुत्वा भागवतं पौत्रममोदत दितिर्भृशम् ।
पुत्रयोश्च वधं कृष्णाद्विदित्वाऽऽसीन्महामनाः ॥५०॥

श्रुत्वा भागवतं पौत्रं अमोदत दितिः भृशं पुत्रयोः च वधं कृष्णात् विदित्वा आसीत् महामनाः ॥५०॥

पौत्रं भागवतं	पौत्र भगवद्भक्त होगा	**कृष्णात् वधं**	भगवान विष्णु द्वारा वध
श्रुत्वा	यह सुनकर	**विदित्वा**	जानकर
दितिः भृशं	दिति बहुत	**महामनाः**	बहुत उत्साहित
अमोदत	आनन्दित हुई,	**आसीत्**	हुयी ॥५०॥
पुत्रयोः च	पुत्रोंका भी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

प्राजापत्यं तु तत्तेजः परतेजोहनं दितिः ।
दधार वर्षाणि शतं शङ्कमाना सुरार्दनात् ॥१॥

प्राजापत्यं तु तत् तेजः पर तेजः हनं दितिः दधार वर्षाणि शतं शङ्कमाना सुर अर्दनात् ॥१॥

सुर	देवताओं द्वारा	**तेजं तु**	तेज (वीर्य) को तो
अर्दनात्	सताये जानेकी	**दितिः**	दितिने
शङ्कमाना	आशंका करती हुई	**शतं वर्षाणि**	सौ वर्ष तक
पर तेजः	दूसरोंके तेजको	**दधार**	(अपने पेटमें) धारण
हनं	नष्ट करनेवाले		किये रही ॥१॥
तत् प्राजापत्यं	उस प्रजापति		
	(कश्यप) के		

लोके तेन हतालोके लोकपाला हतौजसः ।
न्यवेदयन् विश्वसृजे ध्वान्तव्यतिकरं दिशाम् ॥२॥

लोके तेन हत आलोके लोकपालाः हत ओजसः न्यवेदयन् विश्वसृजे ध्वान्त व्यतिकरं दिशाम् ॥२॥

तेन	उस (दितिके गर्भ)के	**दिशां**	दिशाओंमें
आलोके	प्रकाशसे		(सब ओर)
लोके हत	लोकके (सूर्यादि)	**ध्वान्त**	अँधेरेके कारण
	प्रकाश फीके पड़ गये,	**व्यतिकरं**	(फैली) अव्यवस्था
लोकपालाः	(इन्द्रादि) लोकपाल	**विश्वसृजे**	ब्रह्माजीसे
हत ओजसः	कान्ति हीन होगये ।	**न्यवेदयन्**	(देवताओंने) निवेदन
			किया ॥२॥

देवा ऊचुः-

तम एतद्विभो वेत्थ संविग्ना यद्वयं भृशम् ।
न ह्यव्यक्तं भगवतः कालेनास्पृष्टवर्त्मनः ॥३॥

तम एतत् विभो वेत्थ संविग्ना यत् वयं भृशं न हि अव्यक्तं भगवतः कालेन अस्पृष्ट वर्त्मनः ॥३॥

विभो	प्रभो !	**वेत्थ हि**	(आप) जानते ही हो क्योंकि
यत् वयं	जिससे हम सब	**कालेन**	कालके द्वारा
भृशं	बहुत	**भगवतः**	आपकी
संविग्ना	उद्विग्न हैं	**वर्त्मनः**	गति
एतत्	(उस) इस	**अस्पृष्ट**	प्रभावित नहीं है ॥३॥
तम	अन्धकारको		

देवदेव जगद्धातर्लोकनाथशिखामणे ।
परेषामपरेषां त्व भूतानामसि भाववित् ॥४॥

देवदेव जगद्धातः लोकनाथ शिखामणे परेषां अपरेषां त्वं भूतानां असि भाववित् ॥४॥

देवदेव	देवाधिदेव !	**परेषां-अपरेषां**	बड़े-छोटे
जगद्धातः	जगत्कर्ता	**भूतानां त्वं**	(सब) प्राणियोंके आप
लोकनाथ शिखामणे	लोकपालोंके शिरोमणि	**भाववित् असि**	भाव जाननेवाले हैं ॥४॥

नमो विज्ञानवीर्याय मायायेदमुपेयुषे ।
गृहीतगुणभेदाय नमस्तेऽव्यक्तयोनये ॥५॥

नमः विज्ञान वीर्याय मायया इदं उपेयुषे गृहीत गुणभेदाय नमः ते अव्यक्त योनये ॥५॥

विज्ञान वीर्याय	विज्ञान शक्ति सम्पन्न	**मायया**	मायासे
नमः	(आपको) नमस्कार,	**इदं**	इस (चतुर्मुख रूपको)

उपेयुषे	स्वीकार किये	**अव्यक्त योनये**	(आपके इस रूपकी)
गुणभेदाय	त्रिगुणोंके भेद		उत्पत्तिका कारण
	(से बने जगतकी		(किसीको) ज्ञात नहीं
	सृष्टि) के लिए	**ते नमः**	आपको प्रणाम ॥५॥
गृहीत	(इस रूपको) ग्रहण		
	किये हैं (पर)		

ये त्वानन्येन भावेन भावयन्त्यात्मभावनम् ।
आत्मनि प्रोतभुवनं परं सदसदात्मकम् ॥६॥

ये तु अनन्येन भावेन भावयन्ति आत्म भावनं आत्मनि प्रोतं भुवनं परं सत् असत् आत्मकम् ॥६॥

सत् असत्	कारण-कार्य	**आत्म भावनं**	स्वयं भू (आपका)
आत्मकं	स्वरूप	**ये तु अनन्येन**	जो तो अनन्य
भुवनं	त्रिभुवन	**भावेन**	भावसे
आत्मनि	(आपके) अपने रूपमें	**भावयन्ति**	चिन्तन (ध्यान)
प्रोतं	व्याप्त है		करते ॥६॥
परं	(आप) उससे परे हैं		

तेषां सुपक्वयोगानां जितश्वासेन्द्रियात्मनाम् ।
लब्धयुष्मत्प्रसादानां न कुतश्चित्पराभवः ॥७॥

तेषां सुपक्व योगानां जित श्वास इन्द्रिय आत्मनां लब्ध युष्मत् प्रसादानां न कुतश्चित् पराभवः ॥७॥

तेषां	उन	**प्रसादानां**	कृपाको
श्वास इन्द्रिय	श्वास, इन्द्रिय,	**लब्ध**	प्राप्त किये
आत्मनां	चित्त		(लोगोंका)
जित	वशमें किये	**कुतश्चित्**	कहीं भी
सुपक्व योगानां	परिपक्व योगवाले	**पराभवः न**	पराभव (ह्रास)
युष्मत्	आपकी		नहीं होता ॥७॥

यस्य वाचा प्रजाः सर्वा गावस्तन्त्येव यन्त्रिताः ।
हरन्ति बलिमायत्तास्तस्मै मुख्याय ते नमः ॥८॥

यस्य वाचा प्रजाः सर्वा गावः तन्ति एव यन्त्रिताः हरन्ति बलिं आयत्ताः तस्मै मुख्याय ते नमः ॥८॥

तन्ति एव	नाककी रस्सीसे	आयत्ताः	जकड़ी हुई
यन्त्रिताः	बँधे	**बलिं हरन्ति**	उपहार (पूजा)
गावः	बैलोंकी भाँति		अर्पित करती है
यस्य वाचा	जिनकी (वेदरूप) वाणीसे	**तस्मै ते**	उस आप
		मुख्याय	सबके प्रमुखको
सर्वा प्रजाः	सब प्रजा	**नमः**	नमस्कार ॥८॥

स त्वं विधत्स्व शं भूमंस्तमसा लुप्तकर्मणाम् ।
अदभ्रदयया दृष्ट्या आपन्नानर्हसीक्षितुम् ॥९॥

स त्वं विधत्स्व शं भूमन् तमसा लुप्त कर्मणां अदभ्र दयया दृष्ट्या आपन्नान् अर्हसि ईक्षितुम् ॥९॥

भूमन्	भूमन् !	**अदभ्र दयया**	अपार दयाकी
स त्वं	वह आप	**दृष्ट्या**	दृष्टिसे
तमसा	अन्धकारके कारण	**आपन्नान्**	(हम) शरणागतोंको
लुप्त कर्मणां	लुप्त होते (सन्ध्यादि) कर्मवालोंका	**ईक्षितुं**	(आपको) देखना
		अर्हसि	चाहिए ॥९॥
शं विधत्स्व	कल्याण कीजिए		

एष देव दितेर्गर्भ ओजः काश्यपमर्पितम् ।
दिशस्तिमिरयन् सर्वा वर्धतेऽग्निरिवैधसि ॥१०॥

एष देव दितेः गर्भ ओजः काश्यपं अर्पितं दिशः तिमिरयन् सर्वा वर्धते अग्निः इव एधसि ॥११॥

देव एष	देव ! यह	**सर्वा दिशः**	सब दिशाओंको
काश्यपं	कश्यपका	**तिमिरयन्**	अन्धकारपूर्ण करता
ओजः	ओज (वीर्य)	**एधसि**	ईंधनसे
अर्पितं	दिया गया	**अग्निः इव**	अग्निके समान
दितेः गर्भ	दितिका गर्भ	**वर्धते**	बढ़ रहा है ॥१०॥

मैत्रेय उवाच-

स प्रहस्य महाबाहो भगवान् शब्दगोचरः ।
प्रत्याचष्टात्मभूर्देवान् प्रीणन् रुचिरया गिरा ॥११॥

स प्रहस्य महाबाहो भगवान् शब्दगोचरः प्रत्याचष्ट आत्म भूः देवान् प्रीणन् रुचिरया गिरा ॥११॥

महाबाहो	महाबाह विदुर !	**प्रहस्य**	हँसकर
स शब्दगोचरः	वे वेदसे जाने जानेवाले	**रुचिरया गिरा**	सुन्दर वाणीसे
		देवान् प्रीणन्	देवताओंको प्रसन्न करते
भगवान्	भगवान्		
आत्म भूः	ब्रह्माजी	**प्रत्याचष्ट**	उत्तर देने लगे ॥११॥

ब्रह्मोवाच-

मानसा मे सुता युष्मत्पूर्वजाः सनकादयः ।
चेरुर्विहायसा लोकाँल्लोकेषु विगतस्पृहाः ॥१२॥

मानसा मे सुता युष्मत् पूर्वजाः सनकादयः चेरुः विहायसा लोकान् लोकेषु विगतस्पृहा ॥१२॥

युष्मत्	तुम लोगोंसे	**लोकेषु**	लोकोंमें
पूर्वजाः	पहिले उत्पन्न	**विगतस्पृहाः**	निस्पृह होकर
मे मानसा सुता	मेरे मानस-पुत्र	**विहायसा**	आकाश मार्गसे
सनकादयः	सनक आदि (चारों कुमार)	**लोकान् चेरुः**	लोकोंमें घूमते थे ॥१२॥

त एकदा भगवतो वैकुण्ठस्यामलात्मनः ।
ययुर्वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥१३॥

त एकदा भगवतः वैकुण्ठस्य अमल आत्मनः ययुः वैकुण्ठ निलयं सर्वलोक नमस्कृतम् ॥१३॥

एकदा त	एकबार वे (सनकादि)	**भगवतः**	भगवान्
		अमल आत्मनः	निर्मल स्वरूप

वैकुण्ठस्य	नारायणके	**वैकुण्ठ निलयं**	वैकुण्ठधाम
सर्वलोक	सब लोकोंसे	**ययुः**	गये ॥१३॥
नमस्कृतं	प्रणम्य		

वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठमूर्तयः ।
येऽनिमित्तनिमित्तेन धर्मेणाराधयन् हरिम् ॥१४॥

वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठ मूर्तयः ये अनिमित्त निमित्तेन धर्मेण आराधयन् हरिम् ॥१४॥

ये	जिन्होंने	**सर्वे पुरुषाः**	वे सब पुरुष
अनिमित्त		**वैकुण्ठ मूर्तयः**	भगवान् विष्णुके ही
निमित्तेन	निष्काम भावसे		समान रूपमें
धर्मेण	धर्मपालन द्वारा	**यत्र वसन्ति**	जहाँ रहते हैं ॥१४॥
हरिं आराधयन्	श्रीहरिकी आराधना (की है)		

यत्र चाद्यः पुमानास्ते भगवान् शब्दगोचरः ।
सत्त्वं विष्टभ्य विरजं स्वानां नो मृडयन् वृषः ॥१५॥

यत्र च आद्यः पुमान् आस्ते भगवान् शब्दगोचरः सत्त्वं विष्टभ्य विरजं स्वानां नः मृडयन् वृषः ॥१५॥

यत्र च	जहाँ तो	**विरजं**	निर्मल
भगवान्	भगवान्	**सत्त्वं**	सत्त्वमय
शब्दगोचरः	श्रुति प्रतिपाद्य	**विष्टभ्य**	स्वरूप धारणकर
वृषः	धर्ममूर्ति	**आद्यः पुमान्**	आदि पुरुष
नः स्वानां	हम अपने (आश्रितों) को	**आस्ते**	विराजमान हैं ॥१५॥
मृडयन्	सुख देनेके लिए		

यत्र नैःश्रेयसं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः ।
सर्वर्तुश्रीभिर्विभ्राजत्कैवल्यमिव मूर्तिमत् ॥१६॥

यत्र नैःश्रेयसं नामवनं कामदुघैः द्रुमैः सर्व ऋतु श्रीभिः विभ्राजत् कैवल्यं इव मूर्तिमत् ॥१६॥

यत्र	जहाँ
मूर्तिमत्	मूर्तिमान
कैवल्यं इव	कैवल्य मोक्षके समान
सर्व ऋतु श्रीभिः	सब ऋतुओंकी शोभा सम्पन्न
कामदुघैः द्रुमैः	कल्प वृक्षोंसे भरा
नैःश्रेयंस नामवनं	नैश्रेयस नामका वन
विभ्राजत्	सुशोभित हो रहा है ॥१६॥

वैमानिकाः सलनाश्चरितानि यत्र
गायन्ति लोकशमलक्षपणानि भर्तुः ।
अन्तर्जलेऽनुविकसन्मधुमाधवीनां
गन्धेन खण्डितधियोऽप्यनिलं क्षिपन्तः ॥१७॥

वैमानिकाः सलनाः चरितानि यत्र गायन्ति लोक शमल क्षपणानि भर्तुः अन्तः जले अनुविकसन् मधु माधवीनां गन्धेन खण्डित धियः अपि अनिलं क्षिपन्तः ॥१७॥

सलनाः	पत्नियोंके साथ
वैमानिकाः	विमानोंमें बैठे भगवत्पार्षद
यत्र अन्तः जले	जहाँ जलके भीतर
अनुविकसन्	खिली हुई
मधु माधवीनां	वसन्त मालती लताकी
गन्धेन खण्डित धियः	सुगन्धिसे
अपि	आकर्षित बुद्धि होने पर भी
अनिलं क्षिपन्तः	वायुको ही दोष देते हुए
लोक शमल	लोगोंकी पाप-राशिको
क्षपणानि	नष्ट कर देनेवाले
भर्तुः	(अपने) स्वामीके
चरितानि	चरितोंका
गायन्ति	गान करते हैं ॥१७॥

पारावतान्यभृतसारसचक्रवाक-
दात्यूहहंसशुकतित्तिरिबर्हिणां यः ।
कोलाहलो विरमतेऽचिरमात्रमुच्चै-
र्भृङ्गाधिपे हरिकथामिव गायमाने ॥१८॥

पारावत अन्यभृत सारस चक्रवाक दात्यूह हंस शुक तित्तिर बर्हिणां यः कोलाहलः विरमते अचिरमात्र उच्चैः भृङ्गाधिपे हरिकथां इव गायमाने ॥१८॥

भृङ्गाधिपे	भ्रमरराजके
उच्चैः	उच्च स्वरसे
हरिकथां	श्रीहरिकी कथाका
गायमाने इव	मानो गान कर रहे हों (इस प्रकार गुंजार करनेपर)
अचिरमात्र	थोड़ी देरको
पारावत	कबूतर,
अन्यभृत्	कोयल,
सारस	सारस,
चक्रवाक	चकवा,
दात्यूह	पपीहा,
हंस	हंस,
शुक	तोते,
तित्तिर	तीतर और
बर्हिणां	मयूरोंका
यः कोलाहलः	जो कोलाहल है,
विरमते	(वह) रुक जाता है ॥१८॥

मन्दारकुन्दकुरबोत्पलचम्पकार्ण-
पुन्नागनागबकुलाम्बुजपारिजाताः ।
गन्धेऽर्चिते तुलसिकाभरणेन तस्या
यस्मिंस्तपः सुमनसो बहु मानयन्ति ॥१९॥

मन्दार कुन्द कुरबक उत्पल चम्पक अर्ण पुन्नाग नाग बकुल अम्बुज पारिजाताः गन्धे अर्चिते तुलसिका आभरणेन तस्या यस्मिन् तपः सुमनसः बहु मानयन्ति ॥१९॥

तुलसिका	तुलसीके
आभरणेन	आभूषणोंकी
गन्धे	सुगन्धिसे
तस्या	उस (तुलसी) के द्वारा
अर्चिते	(श्रीभगवान्के) पूजित (अलंकृत) होनेपर
यस्मिन्	जहाँ
मन्दार	आक,
कुन्द	कुन्द,
कुरबक	कुरबक (तिलकवृक्ष)
उत्पल	श्वेत कमल,
अर्ण	अर्ण,
पुन्नाग	पुन्नाग,
नाग	नागकेशर,
बकुल	मौलिश्री,
अम्बुज	कमल और
पारिजाताः	हरश्रृंगारके
सुमनसः	सुगन्धित पुष्प
तस्या	उस (तुलसी) की
तपः	तपस्या
बहु मानयन्ति	अधिक (श्रेष्ठ) मानते हैं ॥१९॥

यत्संकुलं हरिपदानतिमात्रदृष्टै-
र्वैदूर्यमारकतहेममयैर्विमानैः ।
येषां बृहत्कटितटाः स्मितशोभिमुख्यः
कृष्णात्मनां न रज आदधुरुत्स्मयाद्यैः ॥२०॥

यत् संकुलं हरिपदान् अतिमात्र दृष्टैः वैदूर्य मारकत हेममयैः विमानैः येषां बृहत् कटितटाः स्मितशोभि मुख्यः कृष्ण आत्मनां न रज आदधुः उत्स्मय आद्यैः ॥२०॥

यत् वैदूर्य	जो लहसनिया	**कृष्ण आत्मनां**	श्रीहरिमें चित्त लगे लोगोंका
मारकत	पन्ना (जड़े)	**बृहत् कटितटाः**	भारी नितम्बोंवाली
हेममयै	स्वर्णमय	**स्मितशोभि**	मुस्कानसे सुशोभित
विमानैः	विमानोंसे	**मुख्याः**	सुमुखी (सुन्दरियां)
संकुलं	भरा हुआ है,	**उत्स्मय आद्यैः**	मन्द मुस्कान अदि (हावभाव) से
हरिपदान्	श्रीहरिके चरणोंमें ही		
अतिमात्र	एकमात्र	**रज**	मनोविकार
दृष्टैः	दृष्टि (प्रीति) से (यह वैभव) है	**न आदधुः**	नहीं उत्पन्न कर पातीं ॥२०॥
येषां	जिन (विमानवाले)		

श्री रूपिणी क्वणयती चरणारविन्दं
लीलाम्बुजेन हरिसद्मनि मुक्तदोषा ।
संलक्ष्यते स्फटिककुड्य उपेतहेम्नि
सम्मार्जंतीव यदनुग्रहणेऽन्ययत्नः ॥२१॥

श्री रूपिणी क्वणयती चरणारविन्दं लीला अम्बुजेन हरि सद्मनि मुक्तदोषा संलक्ष्यते स्फटिक कुड्य उपेत हेम्नि सम्मार्जंती इव यत् अनुग्रहणे अन्य यत्नः ॥२१॥

यत्	जिनकी		प्रयत्न करते रहते हैं (वे)
अनुग्रहणे	कृपा प्राप्तिके लिए	**रूपिणी**	सौन्दर्यमयी
अन्य यत्नः	दूसरे (देवादि)		

श्री	लक्ष्मीजी
मुक्तदोषा	(चंचलता रूप) दोष, त्यागकर
चरणारविन्दं	चरण-कमलोंके (नूपुरोंको)
क्वणयती	झङ्कृत करती
हेम्नि उपेत	स्वर्ण निर्मित

हरि सद्मनि	श्रीहरिके भवनकी
स्फटिक कुड्य	स्फटिक दीवारोंको
लीला अम्बुजेन	लीला कमलसे (प्रतिविम्ब पड़नेसे)
सम्मार्जंती इव	पोंछती-सी
संलक्ष्यते	दिखलायी पड़ती हैं ॥२१॥

वापीषु विद्रुमतटास्वमलामृताप्सु
प्रेष्यान्विता निजवने तुलसीभिरीशम् ।
अभ्यर्चंती स्वलकमुन्नसमीक्ष्य वक्त्र-
मुच्छ्वेषितं भगवतेत्यमताङ्ग यच्छ्रीः ॥२२॥

वापीषु विद्रुम तटासु अमल अमृत अप्सु प्रेष्य अन्विता निजवने तुलसीभिः ईशं अभ्यर्चंती स्व अलकं उन्नसं ईक्ष्य वक्त्रं उच्छ्वेषितं भगवता इति अमत अङ्ग यत् श्रीः ॥२२॥

अङ्ग	प्रिय (देवताओ)
विद्रुम तटासु	मूंगेसे बने घाटवाली
अमल अमृत	
अप्सु	निर्मल अमृत जलवाली
वापीषु	वावलीपर
निजवने	अपने वनमें
प्रेष्य अन्विता	प्रिय सखियोंके साथ
तुलसीभिः	तुलसीके द्वारा
ईशं अभ्यर्चंती	अपने स्वामीकी पूजा करती

स्व अलकं	अपना अलंकोंसे घिरा
उन्नसं	उन्नत नासिकावाला
वक्त्रं ईक्ष्य	मुख देखकर
श्रीः यत्	लक्ष्मीजी क्योंकि
भगवता	'भगवानका
उच्छ्वेषितं	चुम्बित है'
इति	ऐसा (समझकर)
अमत	(अपनेको) भाग्य-शालिनी मानती हैं ॥२२॥

यन्न व्रजन्त्यघभिदो रचनानुवादा-
च्छृण्वन्ति येऽन्यविषयाः कुकथा मतिघ्नीः ।
यास्तु श्रुता हतभगैर्नृभिरात्तसारा-
स्तां स्तान् क्षिपन्त्यशरणेषु तमःसु हन्त ॥२३॥

यत् न व्रजन्ति अघभिदः रचना अनुवादा शृण्वन्ति ये अन्य विषयाः कुकथा मतिघ्नीः याः तु श्रुता हत भगैः नृभिः आत्तसाराः तान् तान् क्षिपन्ति अशरणेषु तमः सु हन्त ॥२३॥

अघभिदः	पापहारी (भगवान) की
रचना अनुवादा	लीला कथाओंको (छोड़कर)
ये मतिघ्नीः	जो बुद्धि नाशिका
अन्य विषयाः	दूसरे (लौकिक) विषयोंकी
कुकथा	निन्दित कथाएँ
शृण्वन्ति	सुनते हैं (वे)
यत् न व्रजन्ति	जहाँ नहीं जाते ।
याः तु	जिसे तो
हन्त	हाय (उन)
हत भगैः	अभागे
नृभिः	मनुष्यों द्वारा
आत्तसाराः	सारहीन (बातोंको)
श्रुता	सुनकर (वे बातें ही)
तान् तान्	उन-उन
अशरणेषु	आश्रयहीन
तमः सु	नरकोंमें
क्षिपन्ति	डाल देती हैं ॥२३॥

येऽभ्यर्थितामपि च नो नृगतिं प्रपन्ना
ज्ञानं च तत्त्वविषयं सहधर्मं यत्र ।
नाराधनं भगवतो वितरन्त्यमुष्य
सम्मोहिता विततया बत मायया ते ॥२४॥

ये अभ्यर्थितां अपि च नः नृगतिं प्रपन्ना ज्ञानं च तत्त्व विषयं सह धर्मं यत्र न आराधनं भगवतः वितरन्ति अमुष्य सम्मोहिता विततया बत मायया ते ।

नः	हम (देवताओं द्वारा भी)
अभ्यर्थितां	चाही जानेवाली
नृगतिं अपि	मनुष्य योनिको भी
ये प्रपन्ना	जो प्राप्त करके
यत्र	जिसमें
धर्मं सह	धर्माचरणके साथ
तत्त्व विषयं	परमतत्त्व सम्बन्धी
ज्ञानं च	ज्ञान (हो सकता है) तथा
भगवतः	भगवानकी
आराधनं न	आराधना नहीं
वितरन्ति	करते
बत ते	निश्चय वे
अमुष्य	इन (भगवान) की
वितनया	विस्तृत
मायया	माया द्वारा
सम्मोहिता	मोहित हैं ॥२४॥

यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या
दूरेयमा ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः ।
भर्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुराग-
वैक्लव्यबाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः ॥२५॥

यत् च व्रजन्ति अनिमिषां ऋषभ अनुवृत्त्या दूरे यमा हि उपरि नः स्पृहणीय शीलाः भर्तुः मिथः सुयशसः कथन अनुराग वैक्लव्य बाष्प कलया पुलकीकृत अङ्गाः ॥२५॥

मिथः	परस्पर
भर्तुः	अपने स्वामी (भगवान) के
सुयशसः	सुयशको
कथन	वर्णन करनेसे (उत्पन्न)
अनुराग	प्रेमकी
वैक्लव्य	व्याकुलता जन्य
बाष्प कलया	अश्रुधारा (तथा)
पुलकीकृत	रोमांचित हुए
अङ्गाः हि	शरीरवाले क्योंकि
अनिमिषां ऋषभ	देवदेवेश्वर (भगवान) का
अनुवृत्त्या	सतत चिन्तन करनेसे
यमा दूरे	(जिनसे) यमराज दूर रहते हैं
स्पृहणीय	स्पृहा करने योग्य
शीलाः	आचरणवाले
यत् च नः	जो (वे) तो हम (सब) से
उपरि	ऊपर
व्रजन्ति	जाते हैं ॥२५॥

तद्विश्वगुर्वधिकृतं भुवनैकवन्द्यं
दिव्यं विचित्रविबुधाग्र्यविमानशोचिः ।
आपुः परां मुदमपूर्वमुपेत्य योग-
मायाबलेन मुनयस्तदथो विकुण्ठम् ॥२६॥

तत् विश्वगुरु अधिकृतं भुवन एक वन्द्यं दिव्यं विचित्र विबुध अग्र्य विमान शोचिः आपुः परां मुदं अपूर्वं उपेत्य योगमाया बलेन मुनयः तत् अथ विकुण्ठम् ॥२६॥

तत्	उस
विश्वगुरु	विश्वगुरु (श्रीहरि) से
अधिकृतं	अधिष्ठित
भुवन एक वन्द्यं	त्रिभुव द्वारा एक मात्र वन्दनीय

अग्रय विबुध	श्रेष्ठ देवताओंके
विचित्र विमान	विचित्र विमानोंसे
शोचिः	सुशोभित
तत् विकुण्ठं	उस वैकुण्ठमें
योगमाया बलेन	योगमाया बलसे
अथ उपेत्य	तब पहुँचकर
मुनयः	(सनकादि) मुनियोंको
अपूर्वं	अपूर्व
मुदं आपुः	आनन्द प्राप्त हुआ ॥२६॥

तस्मिन्नतीत्य मुनयः षडसज्जमानाः
कक्षाः समानवयसावथ सप्तमायाम् ।
देवावचक्षत गृहीतगदौ परार्ध्य-
केयूरकुण्डलकिरीटविटङ्कवेषौ ॥२७॥

तस्मिन् अतीत्य मुनयः षट् असज्जमानाः कक्षाः समान वयसा अथ सप्तमायाम् देवाः अचक्षत गृहीत गदौ परार्ध्यं केयूर कुण्डल किरीट विटङ्क वेषौ ॥२७॥

तस्मिन्	उस (वैकुण्ठ) में
असज्जमानाः	कहीं आसक्त न होते
षट् कक्षाः	छ ड्योढ़ियोंको
अतीत्य	पार करके
अथ सप्तमायाम्	जब सातवीं (ड्योढ़ी, पर पहुँचे
समान वयसाम्	(वहाँ) समान आयुवाले
परार्ध्यं	बहुमूल्य
केयूर कुण्डल	बाजूबन्द, कुण्डल
किरीट	मुकुटसे
विटङ्क वेषौ	सुसज्जित वेशवाले
गृहीत गदौ	गदा लिये
देवाः	दो देवताओंको
अचक्षत	देखा ॥२७॥

मत्तद्विरेफवनमालिकया निवीतौ
विन्यस्तयासितचतुष्टयबाहुमध्ये ।
वक्रं भ्रुवा कुटिलया स्फुटनिर्गमाभ्यां
रक्तेक्षणेन च मनाग्रभसं दधानौ ॥२८॥

मत्त द्विरेफ वनमालिकया निवीतौ विन्यस्तया असित चतुष्टय बाहुमध्ये वक्रं भ्रुवा कुटिलया स्फुट निर्गमाभ्यां रक्त ईक्षणेन च मनाक् रभसं दधानौ ॥२८॥

असित	श्यामवर्णकी
चतुष्टय बाहुमध्ये	चार भुजाओंके बीचमें
विन्यस्तया	रखी गयी
मत्त द्विरेफ	मतवाले भ्रमरोंसे भूषित
वनमालिकया	वनमाला
निवीतौ	पहिने
वक्रं भ्रुवा	टेढ़ी भौंहोंके
कुटिलया	तिरछेपनसे
स्फुट निर्गमाभ्यां	फड़कती नासिकासे
च रक्त ईक्षणेन	तथा लाल आँखोंसे
मनाक् रभसं	थोड़ा क्षोभ
दधानौ	धारण किये (दीखते थे) ॥२८॥

द्वार्येतयोर्निविविशुर्मिषतोरपृष्ट्वा
पूर्वा यथा पुरटवज्रकपाटिका याः ।
सर्वत्र तेऽविषमया मुनयः स्वदृष्ट्या
ये सञ्चरन्त्यविहता विगताभिशङ्काः ॥२९॥

द्वारि एतयोः निविविशुः मिषतोः अपृष्ट्वा पूर्वा यथा पुरटवज्र कपाटिका याः सर्वत्र ते अविषमया मुनयः स्वदृष्ट्या ये सञ्चरन्ति अविहता विगत अभिशङ्काः ॥२९॥

ये सर्वत्र	जो सब कहीं
अविषमया	समान
स्व दृष्ट्या	अपनी दृष्टिसे
अभिशङ्काः	आशङ्का
विगत	रहित (अशङ्क)
अविहता	अव्याहतगति
सञ्चरन्ति	घूमते रहते हैं,
ते मुनयः	वे (सनकादि) मुनि
यथा पूर्वा	जैसे पहिले
पुरटवज्र	स्वर्णके हीरे जड़े
कपाटिका याः	किवाड़ोंवाले (द्वारोंसे आये थे)
एतयोः	इन दोनों (द्वारपालों) के
मिषतोः	देखते हुए (सामने ही)
द्वारि	द्वारमें
अपृष्ट्वा	बिना पूछे
निविविशुः	प्रवेश करने लगे ॥२९॥

तान् वीक्ष्य वातरशनांश्चतुरः कुमारान्
वृद्धान्दशार्धवयसो विदितात्मतत्त्वान् ।
वेत्रेण चास्खलयतामतदर्हणांस्तौ
तेजो विहस्य भगवत्प्रतिकूलशीलौ ॥३०॥

तान् वीक्ष्य वातरशनान् चतुरः कुमारान् वृद्धान् दशार्ध वयसः विदित आत्मतत्त्वान् वेत्रेण च अस्खलयतां अतदर्हणान् तौ तेजः विहस्य भगवत् प्रतिकूल शीलौ ॥३०॥

तान्	उन
वातरशनान्	दिगम्बर
वृद्धान्	(सबसे) आयुमें बड़े; किन्तु
दशार्ध वयसः	पाँच वर्षकी आयुके लगते)
विदित	
आत्मतत्त्वान्	आत्मतत्त्व ज्ञानी
चतुरः कुमारान्	चारों कुमारोंको
वीक्ष्य	देखकर
तौ	वे दोनों (द्वारपाल)
भगवत्	भगवान्के
प्रतिकूल शीलौ	शीलके विपरीत व्यवहार करते
तेजः विहस्य	(उन कुमारोंके) तेजकी हँसी उड़ाते
वेत्रेण	बेंतके द्वारा (वेत अड़ाकर)
अस्खलयता च	रोक दिया, यद्यपि
अतदर्हणान्	(वे) इस व्यवहारके योग्य नहीं थे ॥३०॥

ताभ्यां मिषत्स्वनिमिषेषु निषिध्यमानाः
स्वर्हत्तमा ह्यपि हरेः प्रतिहारपाभ्याम् ।
ऊचुः सुहृत्तमदिदृक्षितभङ्ग ईष-
त्कामानुजेन सहसा त उपप्लुताक्षाः ॥३१॥

ताभ्यां मिषत् सु अनिमिषेषु निषिध्यमानाःसु अर्हत्तमा हि अपि हरेः प्रतिहारपाभ्यां उचुः सुहृत्तम दिदृक्षित भङ्ग ईषत् कामानुजेन सहसा त उपप्लुत अक्षाः ॥३१॥

अनिमिषेसु	देवताओंके
मिषत् सु	सामने देखते हुए
ताभ्यां हरेः	उन श्रीहरिके
प्रतिहारपाभ्यां	द्वारपालों द्वारा
हि	क्योंकि
अर्हत्तमाः	पूज्यतम
अपि	होनेपर भी
निषिध्यमानाः सु	रोके जानेपर
सुहृत्तम	(अपने) प्रियतम (भगवानके)
दिदृक्षित	दर्शनकी इच्छाको
भङ्ग	रोकनेसे
ईषत्	थोड़े
कामानुजेन	क्रोधसे
उपप्लुत	लाल हो उठे
अक्षाः	दृष्टिवाले (वे)
उचुः	बोले ॥३१॥

*कुमारा ऊचुः**–

को वामिहैत्य भगवत्परिचर्ययोच्चै-
स्तद्धर्मिणां निवसतां विषमः स्वभावः ।
तस्मिन् प्रशान्तपुरुषे गतविग्रहे वां
को वाऽऽत्मवत्कुहकयोः परिशङ्कनीयः ॥३२॥

कः वां इह एत्य भगवत् परिचर्यया उच्चैः तत् धर्मिणां निवसतां विषमः स्वभावः तस्मिन् प्रशान्त पुरुषे गत विग्रहे वां कः वा आत्मवत् कुहकयोः परिशंकनीयः ॥३२॥

भगवत्	भगवानकी
उच्चैः	महती
परिचर्यया	सेवाके प्रभावसे
इह एत्य	यहाँ पहुँचकर
तत् धर्मिणां	उन (भगवान) के समान ही स्वभाव वालोंमें
निवसतां	रहते हुए
विषमः स्वभावः	उलटे स्वभावके
वां कः	तुम दोनों कौन हो ?
वा तस्मिन्	अथवा उन
प्रशान्त पुरुषे	परमशान्त परम पुरुषकी
विग्रहे गत	किसीसे शत्रुता नहीं है
आत्मवत् कुहकयोः	अपने समान कपटी (होनेके)
परिशङ्कनीयः	आशङ्का करने योग्य (माननेवाले)
वां कः	तुम दोनों कौन हो ? ॥३२॥

न ह्यन्तरं भगवतीह समस्तकुक्षा-
वात्मानमात्मनि नभो नभसीव धीराः ।
पश्यन्ति यत्र युवयोः सुरलिङ्गिनोः किं
व्युत्पादितं ह्युदरभेदिभयं यतोऽस्य ॥३३॥

न हि अन्तरं भगवति इह समस्त कुक्षाः आत्मानं आत्मनि नभः नभसा इव धीराः पश्यन्ति यत्र युवयोः सुर लिङ्गिनोः किं व्युत्पादितं हि उदरभेदि भयं यतः अस्य ॥३३॥

---

* अन्य प्रतियोंमें 'मुनयः ऊचुः' है ।

हि	क्योंकि
समस्त कुक्षाः	सम्पूर्ण (जगतको) उदरमें रखनेवाले
भगवति	भगवानके लिए
नभः	महाकाशके लिए
नभसा इव	(घट) आकाशके समान
आत्मानं	
आत्मनि इह	अपने आपमें यहाँ
अन्तरं न	(कोई) भेद नहीं है।
धीराः	(यहाँ रहनेवाले) धीर (ज्ञानी) लोगों समान
सुर लिङ्गिनोः	देवताओंके समान रूपवाले
युवयोः	तुम दोनोंको
यत्र	जहाँ
उदरभेदि	पेटके कारण होने वाले भेद
यतः अस्य	इन (भगवान) के लिए
भयं	भय
व्युत्पादितं	उत्पन्न हो गया हो
हि किं	ऐसा क्या (कारण)
पश्यन्ति	देखते हो ॥३३॥

तद्वाममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः
कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मन्दधीभ्याम् ।
लोकानितो व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या
पापीयसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र ॥३४॥

तत् वां अमुष्य परमस्य विकुण्ठ भर्तुः कर्तुं प्रकृष्टं इह धीमहि मन्द धीभ्यां लोकान् इतः व्रजतं अन्तरभाव दृष्ट्या पापीयसः त्रय इमे रिपवः अस्य यत्र ॥३४॥

तत् धीमहि	अतः हम समझते हैं
अमुष्य	इन
परमस्य	परम पुरुष
विकुण्ठ भर्तुः	वैकुण्ठनाथके
प्रकृष्टं कर्तुं	श्रेष्ठ सेवक (पार्षद)
इह	यहाँ रहनेवाले
मन्द धीभ्यां	मन्द बुद्धि
वां इतः	तुम दोनों यहाँसे
अन्तर भाव	भेद-भाव युक्त
दृष्ट्या	दृष्टिके कारण
पापीयसः	पापियोंके
लोकान् व्रजत	(उन) लोकोंको जाओ
यत्र अस्य	जहाँ इन (भगवान)के
इमे त्रय	ये तीन (काम, क्रोध, लोभ)
रिपवः	शत्रु रहते हैं ॥३४॥

ब्रह्मोवाच*-

तेषामितीरितमुभावबधार्य घोरं
तं ब्रह्मदण्डमनिवारणमस्त्रपूगैः ।
सद्यो हरेरनुचरावुरु बिभ्यतस्तत्-
पादग्रहावपततामतिकातरेण ॥३५॥

तेषां इति ईरितं उभाः अवधार्य घोरं तं ब्रह्मदण्डं अनिवारणं **अस्त्र पूगैः सद्यः हरेः अनुचराः उरु बिभ्यतः तत् पादग्रहाः अपततां अति कातरेण ॥३५॥**

तेषां	उन (सनकादि) के	**अवधार्य**	सुनकर
इति	इस प्रकार	**उभाः**	दोनों
अस्त्र पूगैः	अस्त्र राशिसे	**हरेः अनुचराः**	श्रीहरिके अनुचर
अनिवारणं	प्रतिकार न होने योग्य	**उरु बिभ्यतः**	अत्यन्त भयभीत होकर
घोरं तं	घोर उस	**अति कातरेण**	बहुत व्याकुल होकर
ब्रह्मदण्डं	ब्राह्मणोंके दण्ड (शाप) को	**तत् पादग्रहाः**	उनके चरणोंको पकड़कर
ईरितं	कहा गया (दिया गया)	**अपततां**	गिर पड़े ॥३५॥

जय-विजयोव*-

भूयादघोनि भगवद्भिरकारि दण्डो
यो नौ हरेत सुरहेलनमप्यशेषम् ।
मा वोऽनुतापकलया भगवत्स्मृतिघ्नो
मोहो भवेदिह तु नौ व्रजतोरधोऽधः ॥३६॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भूयात् अघोनि भगवद्भिः अकारि दण्डः यः नौ हरेत सुरहेलनं अपि अशेषं मा वः अनुताप कलया भगवत स्मृतिघ्नः मोहः भवेत् इह तु नौ व्रजतः अधः अधः ॥३६॥

भगवद्भिः	भगवन् ! आप लोगोंने	**वः**	आपके
यः दण्डः	जो दण्ड	**अनुताप कलया**	पश्चाताप लेशसे
नौ अघोनि	हम दोनों अपराधियोंको	**इह तु**	यहाँसे तो
अकारि	दिया है (वह)	**अधः अधः**	नीचे ही नीचे
अशेषं	वह पूर्ण हो,	**व्रजतः**	जाते हुए
सुरहेलनं अपि	भगवानकी अवहेलना भी	**नौ**	हम दोनोंको
हरेत	करावे पर हमें शाप देकर जो आपको थोड़ा भी (पछताव होगा, उस)	**भगवत्**	भगवानकी
		स्मृतिघ्न	स्मृतिका नाशक
		मोहः	मोह
		मा भवेत्	न होवे ॥३६॥

ब्रह्मोवाच-*

एवं तदैव भगवानरविन्दनाभः
स्वानां विबुध्य सदतिक्रममार्यहृद्यः ।
तस्मिन् ययौ परमहंसमहामुनीना-
मन्वेषणीयचरणौ चलयन् सहश्रीः ॥३७॥

एवं तत एव भगवान् अरविन्दनाभः स्वानां बिबुध्य सत् अतिक्रमं आर्यहृद्यः तस्मिन् ययौ परमहंस महामुनीनां अन्वेषणीय चरणौ चलयन् सहश्रीः ॥३७॥

एवं	इस प्रकार	**आर्यहृद्यः**	श्रेष्ठ पुरुषोंके
तत एव	उसी समय		हृदय धन

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भगवान्	भगवान्
अरविन्दनाभः	कमलनाभ
स्वानां	अपने सेवकों द्वारा
सत् अतिक्रमं	सत्पुरुषोंका अपमान हुआ
बिबुध्य	जानकर
परमहंस	
महामुनीनां	परमहंस महामुनियों द्वारा
अन्वेषणीय	
चरणौ	जिनके चरणोंकी खोज होती है (वे)
सहश्रीः	लक्ष्मीके साथ
चलयन्	चलकर
तस्मिन् ययौ	वहाँ आये ॥३७॥

तं त्वागतं प्रतिहृतोपयिकं स्वपुम्भि-
स्तेऽचक्षताक्षविषयं स्वसमाधिभाग्यम् ।
हंसश्रियोर्व्यजनयोः शिववायुलोल-
च्छुभ्रातपत्रशशिकेसरशीकराम्बुम् ॥३८॥

तं तु आगतं प्रतिहृत उपयिकं स्व पुम्भिः ते अचक्षत अक्ष विषयं स्व समाधि भाग्यं हंस श्रियोः व्यजनयोः शिव वायु लोलः शुभ्र आतपत्र शशि केसर शीकर अम्बुम् ॥३८॥

ते स्व	उन (सनकादि) ने अपनी
समाधि	समाधिके
भाग्यं	सौभाग्य (समाधिमें सौभाग्यसे आनेवाले)
तं तु	उन (श्रीहरि) को तो
अक्ष विषयं	आँखोंके सम्मुख (प्रत्यक्ष)
अचक्षत	देखा।
स्व पुम्भिः	अपने सेवकों द्वारा
उपयिकं	सेवा सामग्री (व्यजनादि)
प्रतिहृतं	साथ लाये हुए
हंस श्रियोः	हंसके समान शुभ्र सुन्दर
व्यजनयोः	चवँरोंकी
शिव वायु	मंगल वायुसे
लोल	हिलती
शुभ्र आतपत्र	श्वेत छत्रकी
शशि केसर	चन्द्रकिरणोंके समान (झालरोंसे)
शीकर अम्बुम्	मानो ओसकी बूँदें (टपकती हों) ॥३८॥

कृत्स्नप्रसादसुमुखं स्पृहणीयधाम
स्नेहावलोककलया हृदि संस्पृशन्तम् ।

श्यामे पृथावुरसि शोभितया श्रिया स्व-
श्चूडामणिं सुभगयन्तमिवात्मधिष्ण्यम् ॥३९॥

कृत्स्न प्रसाद सुमुखं स्पृहणीय धाम स्नेह अवलोक कलया हृदि संस्पृशन्तं श्यामे पृथाः उरसि शोभितया श्रिया स्वं चूडामणिं सुभगयन्तं इव आत्मधिष्ण्यम् ॥३९॥

कृत्स्न	सम्पूर्ण	**शोभितया**	सुशोभित
प्रसाद	कृपासे	**श्रिया**	श्रीवत्स चिह्नसे
सुमुखं	युक्त शान्त मुख	**स्वं**	अपने
स्नेह अवलोक	स्नेह भरी चितवन वाली	**स्पृहणीय**	स्पृहा करने योग
		धाम	धाम
कलया	दृष्टिसे	**आत्मधिष्ण्यं**	निज निवास (वैकुण्ठ)
हृदि	हृदयको		
संस्पृशन्तं	छूते हुए	**चूडामणिं**	सब लोकोंके शिरोमणिको
श्यामे	श्यामवर्ण वाले		
पृथा	विशाल	**सुभगयन्तं इव**	सुशोभित करतेसे ॥३९॥
उरसि	वक्षस्थलपर		

पीतांशुके पृथुनितम्बिनि विस्फुरन्त्या
काञ्च्यालिभिर्विरुतया वनमालया च ।
वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम् ॥४०॥

पीत अंशुके पृथु नितम्बिनि विस्फुरन्त्या काञ्च्या अलिभिः विरुतया वनमालया च वल्गु प्रकोष्ठ वलयं विनतासुत अंसे विन्यस्त हस्तं इतरेण धुनानं अब्जम् ॥४०॥

पीत अंशुके	पीताम्बर मंडित	**अलिभिः**	भ्रमरोंकी
पृथु	भारी	**विरुतया**	गुंजारसे युक्त
नितम्बिनि	नितम्बोंपर	**वनमालया**	वनमालासे (भूषित थे)
काञ्च्या	करधनी		
विस्फुरन्त्या च	चमकती थी, तथा	**वल्गु**	सुन्दर

प्रकोष्ठ	कलाइयोंमें	**इतरेण**	दूसरे (हाथ) से
वलयं	कंकण था	**अब्जं**	कमलको
विनतासुत	गरुड़के	**धुनानं**	घुमाते हुए ॥४०॥
अंसे	कन्धेपर (वह भुजा रखे)		

विद्युत्क्षिपन्मकरकुण्डलमण्डनार्ह-
गण्डस्थलोन्नसमुखं मणिमत्किरीटम् ।
दोर्दण्डषण्डविवरे हरता परार्ध्य-
हारेण कन्धरगतेन च कौस्तुभेन ॥४१॥

विद्युत् क्षिपन् मकरकुण्डल मण्डन अर्हं गण्डस्थल उन्नस मुखं मणिमत् किरीटं दोर्दण्ड षण्ड विवरे हरता परार्ध्य हारेण कन्धर गतेन च कौस्तुभेन ॥४१॥

विद्युत्	बिजलीको	**दोर्दण्ड षण्ड**	विशाल भुजाओके
क्षिपन्	लज्जित करनेवाले	**विवरे**	मध्यमें
मकरकुण्डल	मकराकृति कुण्डलोंसे	**कन्धर गतेन**	कन्धोंपर पड़े
गण्डस्थल	कपोल प्रान्त	**परार्ध्य**	बहुमूल्य
मण्डन अर्हं	सुभूषित थे ।	**हारेण च**	हारके द्वारा तथा
उन्नस मुखं	उठी हुई नासिका युक्त मुख,	**कौस्तुभेन**	कौस्तुभ मणि
		हरता	पहिननेसे (सुशोभित) ॥४१॥
मणिमत्	मणिजटित		
किरीटं	मुकुट (धारण किये)		

अत्रोपसृष्टमिति चोत्स्मितमिन्दिरायाः
स्वानां धिया विरचितं बहुसौष्ठवाढ्यम् ।
मह्यं भवस्य भवतां च भजन्तमङ्गं
नेमुर्निरीक्ष्य नवितृप्तदृशो मुदा कैः ॥४२॥

अत्र उपसृष्टं इति च उत्स्मितं इन्दिरायाः स्वानां धिया विरचितं बहु सौष्ठव आढ्यं मह्यं भवस्य भवतां च भजन्तं अङ्गं नेमुः निरीक्ष्य न वितृप्त दृशः मुदा कैः ॥४२॥

अत्र	यहाँ (इसके सम्मुख)
इन्दिरायाः	लक्ष्मीका भी
उत्स्मित	(सौन्दर्य) गर्व
उपसृष्टं	गलित हो गया है,
इति च	ऐसा ही
स्वानां	(भगवानके) अपने भक्तोंका
धिया विरचितं	बुद्धिका निश्चय है,
बहु सौष्ठव	अत्यन्त सौन्दर्य
आढ्यं	परिपूर्ण
मह्यं	मेरे लिए
भवस्य	शंकरजीके लिए
भवतां च	तुम लोगोंके लिए भी
अंगं भजन्तं	ऐसा श्रीविग्रह धारण किये
न वितृप्त	अतृप्त
दृशः	दृष्टिसे
निरीक्ष्य	(श्रीहरिको) देखकर
मुदा	आनन्दसे
कैः नेमुः	सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥४२॥

तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द-
किञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः ।
अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां
सङ्क्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः ॥४३॥

तस्य अरविन्द नयनस्य पदारविन्द किञ्जल्क मिश्र तुलसी मकरन्द वायुः अन्तर्गतः स्व विवरेण चकार तेषां संक्षोभं अक्षरजुषां अपि चित्त तन्वोः ॥४३॥

तस्य	उन
अरविन्द नयनस्य	कमल लोचनके
पदारविन्द	चरण-कमलोंके
किञ्जल्क	परागसे
मिश्र	मिली हुई
तुलसी मकरन्द	तुलसीकी परागकी
वायुः	वायु
स्व विवरेण	(उनके अपने) नासिका छिद्रसे
अन्तर्गतः	भीतर जाकर
अक्षरजुषां	निराकार ब्रह्ममें लगे
अपि	होनेपर भी
तेषां चित्तं	उनके चित्तको
संक्षोभं तन्वोः	संक्षोभ भरा
चकार	बना दिया ॥४३॥

ते वा अमुष्य वदनासितपद्मकोश-
मुद्वीक्ष्य सुन्दरतराधरकुन्दहासम् ।

लब्धाशिषः पुनरवेक्ष्य तदीयमङ्घ्रि-
द्वन्द्वं नखारुणमणिश्रयणं निदध्युः ॥४४॥

ते वा अमुष्य वदनं असित पद्मकोशं उद्वीक्ष्य सुन्दरतरं अधरं कुन्द हासं लब्ध आशिषः पुनः अवेक्ष्य तदीयं अङ्घ्रि द्वन्द्वं नख अरुणमणि श्रयणं निदध्युः ॥४४॥

अमुष्य	इन (भगवान) के	**लब्ध**	मिल (पूरी हो) गयीं
असित पद्मकोशं	नीलकमल पुष्पके समान	**अरुणमणि श्रयणं**	लाल मणियोंके समान
सुन्दरतरं	अतिशय सुन्दर		
वदन	मुखको,	**नख तदीय**	नखोंवाले उनके
अधरं	ओष्ठोंको,	**अङ्घ्रि द्वद्वं**	दोनों चरणोंको
कुन्दहासं	कुन्द पुष्प (के समान) उज्वल हास्यको	**पुनः अवेक्ष्य**	फिरसे देखकर
		ते वा	वे तो
		निदध्युः	उन्हींके ध्यानमें मग्न हो गये ॥४४॥
उद्वीक्ष्य	देखकर (उनकी)		
आशिष	सब कामनाये		

पुंसां गतिं मृगयतामिह योगमार्गै-
र्ध्यानास्पदं बहु मतं नयनाभिरामम् ।
पौंस्नं वपुर्दर्शयानमनन्यसिद्धै-
रौत्पत्तिकैः समगृणन् युतमष्टभोगैः ॥४५॥

पुंसां गतिं मृगयतां इह योगमार्गैः ध्यान आस्पदं बहु मतं नयन अभिरामं पौंस्नं वपुः दर्शयानं अनन्य सिद्धैः औत्पत्तिकैः समगृणन् युतं अष्ट भोगैः ॥४५॥

इह	इस (जगत) में	**बहुमतं**	बहुत सम्मानित
योगमार्गैः	योगके साधनों द्वारा	**नयन अभिरामं**	नयनाभिराम
पुंसां	पुरुषकी	**अनन्य सिद्धैः**	अन्य किसी साधनसे न मिलनेवाला
गतिं	परमगति (मोक्ष)		
मृगयतां	ढूँढ़ने वालोंके लिए	**औत्पत्तिकैः**	स्वाभाविक
ध्यान आस्पदं	ध्यानका आधार रूप	**अष्ट भोगैः**	अष्ट सिद्धियोंसे

युतं	युक्त	**समगृणन्**	स्तुति करने लगे ॥४५॥
पौस्नं वपुः	(अपना) पुरुष रूप		
दर्शयानं	दर्शन देते (भगवानकी)		

कुमारा ऊचुः—

योऽन्तर्हितो हृदि गतोऽपि दुरात्मनां त्वं
सोऽद्यैव नो नयनमूलमनन्त राद्धः ।
यर्ह्येव कर्णविवरेण गुहां गतो नः
पित्रानुवर्णितरहा भवदुद्भवेन ॥४६॥

यः अन्तर्हितः हृदि गतः अपि दुरात्मनां त्वं सः अद्य एव नः नयनमूलं अनन्त राद्धः यर्हि एव कर्णविवरेण गुहां गतः नः पित्रा अनुवर्णितः रहा भवत् उद्भवेन ॥४६॥

यर्हि भवत्	जबसे आपसे	**यः दुरात्मनां**	जो मलिन-हृदय लोगोंके
उद्भवेन	उत्पन्न	**हृदि**	हृदयमें
पित्रा	(हमारे) पिता (ब्रह्मा) ने	**गतः अपि**	रहनेपर भी
रहा	(आपका) रहस्य	**अन्तर्हितः**	(उनसे) अदृश्य रहते हैं
अनुवर्णितः	वर्णन किया	**सः अनन्त**	वही आप अनन्त
कर्णविवरेण	(तबसे) कर्णोंके छिद्रसे	**राद्धः**	साक्षात्
नः गुहां	हमारी हृदय गुहामें	**अद्य एव**	आज ही
गतः	(आप) आ गये थे	**नयनमूलं**	नेत्रोंके सम्मुख आये हैं ॥४६॥

तं त्वां विदाम भगवन् परमात्मतत्त्वं
सत्त्वेन सम्प्रति रतिं रचयन्तमेषाम् ।
यत्तेऽनुतापविदितैर्दृढभक्तियोगै-
रुग्रन्थयो हृदि विदुर्मुनयो विरागाः ॥४७॥

तं त्वां विदाम भगवन् परम आत्मतत्त्वं सत्त्वेन सम्प्रति रतिं रचयन्तं एषां यत् ते अनुताप विदितैः दृढ भक्तियोगैः उद्ग्रन्थयः हृदि विदुः मुनयः विरागाः ॥४७॥

भगवन्	भगवन् !	**अनुताप**	वियोगनुभूति जन्य तापसे
तं त्वां	ऐसे आपको (हम)	**विदितैः**	प्रकट होनेवाले
परम आत्मतत्त्वं	परम आत्मतत्त्व	**दृढ भक्तियोगैः**	दृढ़ भक्तियोगसे
विदाम	(हम) जानते हैं	**उद्ग्रन्थय**	(काम-क्रोध-लोभकी) ग्रन्थिसे मुक्त
सम्प्रति	इस समय	**विरागाः**	वैराग्यवान
सत्त्वेन	सत्त्वगुण स्वीकार करके	**मुनयः**	मुनिगण
एषां	इन (अपने भक्तों)को	**हृदि**	हृदयमें
रतिं	प्रसन्नता	**विदुः**	जानते (उपलब्ध करते) हैं ॥४७॥
रचयन्तं	प्रदान कर रहे है,		
यत्	क्योंकि		

नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं
किन्त्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयैस्ते ।
येऽङ्ग त्वदङ्घ्रिशरणा भवतः कथायाः
कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ॥४८॥

न आत्यन्तिकं विगणयन्ति अपि ते प्रसादं किनु तु अन्यत् अर्पितं भयं भ्रुव उन्नयैः ते ये अङ्ग त्वत् अङ्घ्रि शरणाः भवतः कथायाः कीर्तन्य तीर्थयशसः कुशलाः रसज्ञाः ॥४८॥

अङ्ग !	प्रिय (प्रभु !)	**कुशला**	चतुर
ये त्वत्	जो आपके	**रसज्ञाः**	रसविद् हैं
अङ्घ्रि	चरणोंके	**ते आत्यन्तिकं**	वे (आपके) आत्यन्तिक
शरणाः	शरणागत	**प्रसादं अपि**	प्रसाद (मोक्ष) की भी
कीर्तन्य	कीर्तनीय	**विगणयन्ति न**	(कोई) गणना नहीं करते
तीर्थयशसः	पुण्यश्लोक		
भवतः	आपकी		
कथायाः	कथाके		

किं नु	फिर भला	**भ्रुव उन्नैयैः**	भौंहोंको टेढ़े करनेसे
अन्यत्	दूसरे (अभक्तों) को		होनेवाले
अर्पितं	दिखाये गये	**भयं तु**	भयकी तो (क्या
ते	आपकी		गणना करेंगे) ॥४८॥

कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्ता-
च्चेतोऽलिवद्यदि नु ते पदयो रमेत ।
वाचश्च नस्तुलसिवद्यदि तेऽङ्घ्रिशोभाः
पूर्येत ते गुणगणैर्यदि कर्णरन्ध्रः ॥४९॥

कामं भवः स्ववृजिनैः निरयेषु नः स्यात् चेतः अलिवत् यदि नु ते पदयोः रमेत वाचः च नः तुलसिवत् यदि ते अङ्घ्रि शोभाः पूर्येत ते गुणगणैः यदि कर्णरन्ध्रः ॥४९॥

यदि नु	यदि तो	**ते गुणगणैः**	आपके गुणगणों
अलिवत्	भ्रमरके समान		(के श्रवण) से
नः चेतः	हमारा चित्त	**यदि कर्णरन्ध्रः**	यदि कर्ण छिद्र
ते पदयोः	आपके चरणोंमें	**पूर्येत**	भरते रहें (आपके
रमेत	लगा रहे		गुणानुवाद सुननेको
च यदि वाचः	और यदि वाणी		मिलते रहें तो)
तुलसिवत्	तुलसीके समान	**स्ववृजिनैः**	अपने पापोंसे
ते अङ्घ्रिशोभाः	आपके चरणोंकी	**निरयेषु**	नरकोंमें
	शोभा (का वर्णन	**नः भवः**	हमारा जन्म
	करती रहे)	**कामः स्यात्**	भले हो ॥४९॥

प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूत रूपं
तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः ।
तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम
योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान् प्रतीतः ॥५०॥

प्रादुः चकर्थ यत् इदं पुरुहूत रूपं तेन ईश निर्वृतिं अवापुः अलं दृशः नः तस्मा इदं भगवते नम इति विधेम यः अनात्मनां दुरदयः भगवान् प्रतीतः ॥५०॥

ईश	स्वामी !
यत् इदं	यह जो
पुरुहूत	विपुल ऐश्वर्यमय
रूपं	रूप
प्रादुः चकर्थ	(आपने) प्रकट किया है
तेन	उससे
नः दृशः	हमारे नेत्रोंको
अलं निर्वृतिं	अत्यन्त आनन्द
अवापुः	मिला है ।
यः भगवान्	जो भगवानका
प्रतीतः	दर्शन
अनात्मनां	चित्तवशमें न करने वालोंको
दुरदयः	(बहुत) दूर है
तस्मा इदं	इसलिए यह
भगवते	(आप) भगवानको
नम इति	नमस्कार ऐसा*
विधेम	करते हैं ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ।

---

* 'नम इति विधेम' का तात्पर्य है कि हम केवल नमस्कार ही कर सकते हैं। दूसरी कोई सेवा करने योग्य नहीं हैं।

अथ षोडशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच-

इति तद् गृणतां तेषां मुनीनां योगधर्मिणाम् ।
प्रतिनन्द्य जगादेदं विकुण्ठनिलयो विभुः ॥१॥

इति तत् गृणतः तेषां मुनीनां योग धर्मिणां प्रतिनन्द्य जगाद इदं विकुण्ठ निलयः विभुः ॥१॥

तेषां	उन	**तत्**	उसका
योग धर्मिणां	योगनिष्ठ	**प्रतिनन्द्य**	समर्थन करके
मुनीनां	मुनियों द्वारा	**विकुण्ठ निलयः**	वैकुण्ठ निवासी
इति	इस प्रकार	**विभुः**	भूमा (भगवान)
गृणतः	कहनेपर	**जगाद**	बोले ॥१॥

श्रीभगवानुवाच-

एतौ तौ पार्षदौ मह्यं जयो विजय एव च ।
कदर्थीकृत्य मां यद्वो बह्वक्रातामतिक्रमम् ॥२॥

एतौ तौ पार्षदौ मह्यं जयः विजयः एव च कदर्थी कृत्य मां यद्वः बह्व क्रातां अतिक्रमम् ॥२॥

एतौ तौ	ये दोनों तो	**कृत्य यत्**	करके जो
जयः च विजय	जय और विजय	**वः**	आप लोगोंका
मह्यं	मेरे	**वह्वः**	बहुत
पार्षदौ एव	पार्षद ही हैं,	**अतिक्रमं**	अनादर
मां कदर्थी	मेरी उपेक्षा	**अक्रातां**	किया है ॥२॥

यस्त्वेतयोर्धृतो दण्डो भवद्भिर्मामनुव्रतैः ।
स एवानुमतोऽस्माभिर्मुनयो देवहेलनात् ॥३॥

यः तु एतयोः धृतः दण्ड भवद्भिः मां अनुव्रतैः स एव अनुमतः अस्माभिः मुनयः देवहेलनात् ॥३॥

मुनयः	(आप) मुनियोंकी (अवज्ञासे)	**एतयोः**	इन दोनोंको
देवहेलनात्	मेरी ही अवज्ञा होनेके कारण	**धृतः**	दिया गया है,
मां अनुव्रतैः	मेरे अनुगामी	**स एव**	उसका ही
भवद्भिः	आप लोगों द्वारा	**अस्माभिः**	मेरे द्वारा
यः तु दण्डः	जो तो दण्ड	**अनुमतः**	अनुमोदन कर दिया गया ॥३॥

तद्वः प्रसादयाम्यद्य ब्रह्म दैवं परं हि मे ।
तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये यत्स्वपुम्भिरसत्कृताः ॥४॥

तत् वः प्रसादयामि अद्य ब्रह्म दैवं परं हि मे तत् हि आत्मकृतं मन्ये यत् स्व पुंभिः असत्कृताः ॥४॥

हि यत्	क्योंकि (यह) जो	**मन्ये**	मानता हूँ,
स्व पुंभिः	मेरे अपने सेवकों द्वारा	**ततः वः**	अतः आप लोगोंको
असत्कृताः	(आपका) अनादर हुआ है,	**प्रसादयामि**	प्रसन्न कर रहा हूँ,
तत्	उसे (मैं)	**हि ब्रह्म**	क्योंकि ब्राह्मण
आत्मकृतं	अपने द्वारा किया गया	**मे परं दैवं**	मेरे परम देवता हैं ॥४॥

यन्नामानि च गृह्णाति लोको भृत्ये कृतागसि ।
सोऽसाधुवादस्तत्कीर्तिं हन्ति त्वचमिवामयः ॥५॥

यत् नामानि च गृह्णाति लोकः भृत्ये कृत आगसि सः असाधुवादः तत् कीर्तिं हन्ति त्वचं इव आमयः ॥५॥

त्वचं	त्वचापर हुए	**आगसि कृतः**	अपराध करनेपर,
आमयः इव	रोगके समान	**यत् नामानि**	जिसका नाम
लोके भृत्ये	लोकमें सेवकके	**गृह्णाति**	(लोग) लेते हैं,

सः असाधुवादः	वह अपयश	**हन्ति**	नष्ट कर देता
तत् कीर्ति	उसकी कीर्तिको		है ॥५॥

यस्यामृतामलयशः श्रवणावगाहः
सद्यः पुनाति जगदाश्वपचाद्विकुण्ठः ।
सोऽहं भवद्भ्य उपलब्धसुतीर्थकीर्ति-
श्छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम् ॥६॥

यस्य अमृत अमल यशः श्रवण अवगाहः सद्यः पुनाति जगत् आश्वपचात् विकुण्ठः सः अहं भवद्भ्य उपलब्ध सुतीर्थ कीर्तिः छिन्द्यां स्वबाहुं अपि वः प्रतिकूल वृत्तिम् ॥६॥

यस्य	जिसका	**विकुण्ठः**	वैकुण्ठाधीश
अमृत अमल यशः	अमृतके समान निर्मल यश	**भवद्भ्य**	आप (सन्तों) से
		सुतीर्थ कीर्तिः	पवित्र कीर्ति
श्रवण अवगाहः	कानोंमें जाकर	**उपलब्धः**	प्राप्त करके
सद्यः	तत्काल	**वः**	आप लोगोंके
आश्वपचात्	चाण्डाल तक	**प्रतिकूल वृत्ति**	विपरीत आचरण करनेवाली
जगत्	संसारको		
पुनाति	पवित्र कर देता है,	**स्वबाहुं अपि**	अपनी भुजाको भी
सः अहं	वह मैं	**छिन्द्यां**	काट डालूंगा ॥६॥

यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं
सद्यःक्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलम् ।
न श्रीर्विरक्तमपि मां विजहाति यस्याः
प्रेक्षालवार्थ इतरे नियमान् वहन्ति ॥७॥

यत् सेवया चरण पद्म पवित्र रेणुं सद्यः क्षत अखिलमलं प्रतिलब्ध शीलं न श्रीः विरक्तं अपि मां विजहाति यस्याः प्रेक्षालवार्थ इतरे नियमान् वहन्ति ॥७॥

यत्	जिन (सन्तों) की	**चरण पद्म**	(मेरे) चरण-
सेवया	सेवा (के प्रभाव) से,		कमलोंकी

रेणुं	रज
पवित्र	(ऐसी) पवित्र हो गई है कि
सद्यः	तत्काल
अखिलमलं	सम्पूर्ण पापोंको
क्षत	नष्ट कर देती है और
शीलं	(मुझे ऐसा) स्वभाव
प्रतिलब्ध	मिला है (जिससे)
यस्याः	जिसके
प्रेक्षालवार्थं	तनिक दृष्टिपातके लिए
इतरे	दूसरे लोग
नियमान्	(साधन) नियमोंका
आवहन्ति	पालन करते हैं,
श्रीः	(वह) लक्ष्मी
विरक्तं अपि	(मेरे) उदासीन होनेपर भी
मां	मुझे
न जहाति	नहीं छोड़ती ॥७॥

नाहं तथाग्नि यजमानहविर्विताने
श्च्योतद्घृतप्लुतमदन् हुतभुङ्मुखेन ।
यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं
तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ॥८॥

न अहं तथा अग्नि यजमान हविः वितने च्योतत् घृतप्लुतं अदन् हुतभुक् मुखेन यत् ब्राह्मणस्य मुखतः चरतः अनुघासं तुष्टस्य मयि अवहितैः निज कर्मपाकैः ॥८॥

मयि	मुझे
निज कर्मपाकैः	अपने कर्मफलको
अवहितैः	समर्पित करके
तुष्टस्य	सन्तुष्ट रहनेवाले
ब्राह्मणस्य	ब्राह्मणके
मुखतः	मुखसे
घृतप्लुत	घीसे तर
चरतः यत्	खाते हुए जो
अनुग्रासं	प्रत्येक ग्रास
अदन्	खाते हुए (मुझे तृप्ति होती है)
तथा	वैसे
यजमान	यजमान द्वारा
विताने	यज्ञमें
च्योतत् हविः	(घी) टपकती हुई हविष्य
अहं	मैं
हुतभुक्	अग्निके मुखसे
न अग्नि	नहीं खाता ॥८॥

येषां बिभर्म्यहमखण्डविकुण्ठयोग-
मायाविभूतिरमलाङ्घ्रिरजः किरीटैः ।

विप्रांस्तु को न विषहेत यदर्हणाम्भः
सद्यः पुनाति सहचन्द्रललामलोकान् ॥९॥

येषां बिभर्मि अहं अखण्ड विकुण्ठ योगमाया विभूतिः अमल अङ्घ्रि रजः किरीटैः विप्रान् तु कः न विषहेत यत् अर्हण अम्भः सद्यः पुनाति सह चन्द्रललाम लोकान् ॥९॥

अहं	मैं	**सद्यः पुनाति**	तत्काल पवित्र करता है
योगमाया	योगमायाका	**येषां**	जिनकी
अखण्ड विकुण्ठ	अखण्ड अकुंठित	**अङ्घ्रि रजः**	चरण धूलिको
अमल विभूतिः	निर्मल ऐश्वर्यवाला	**किरीटैः**	मुकुटपर
यत्	जिसके	**बिभर्मि**	धारण करता हूँ,
अर्हण अम्भः	पूजनका जल (गंगा होकर)	**विप्रान् तु**	(उन) ब्राह्मणोंका (स्वभाव)
चन्द्रललाम सह	शंकरजीके साथ	**कः न विषहेत**	कौन नहीं सहन करेगा ॥९॥
लोकान्	लोकोंको		

ये मे तनूर्द्विजवरान्दुहतीर्मदीया
भूतान्यलब्धशरणानि च भेदबुद्धया ।
द्रक्ष्यन्त्यघक्षतदृशो ह्यहिमन्यवस्तान्
गृध्रा रुषा मम कुषन्त्यधिदण्डनेतुः ॥१०॥

ये मे तनूः द्विजवरान् दुहतीः मदीया भूतानि अलब्ध शरणानि च भेद बुद्धया द्रक्ष्यन्ति अघक्षत दृशः हि अहिमन्यवः तान् गृध्रा रुषा मम कुषन्ति अधिदण्ड नेतुः ॥१०॥

मे तनूः	मेरे शरीर (रूप)	**भूतानि**	प्राणियोंको
द्विजवरान्	ब्राह्मणोंको,	**ये हि**	जो भी
मदीया	मेरी (प्रिय)	**अहिमन्यवः**	सर्पके समान क्रोधी
दुहतीः च	दूध देनेवाली (गायों) को तथा	**अघक्षत दृशः**	पापके कारण नष्ट (विवेक) दृष्टिसे
अलब्ध शरणानि	अशरण (असहाय)	**द्रक्ष्यन्ति**	देखते हैं

तान् मम	उनको मेरे (द्वारा नियुक्त)	**नेतुः गृध्रा**	दूत गीधके समान
अधिदण्ड	दण्डके अधिष्ठाता (यमराज) के	**कुषन्ति**	नोचते हैं ॥१०॥

ये ब्राह्मणान्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयन्त-
स्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ।
वाण्यानुरागकलयाऽऽत्मजवद् गृणन्तः
सम्बोधयन्त्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः ॥११॥

ये ब्राह्मणान् मयि धिया क्षिपतः अर्चयन्तः तुष्यत् हृदः स्मित् सुधा उक्षित पद्म वक्त्राः वाण्या अनुराग कलया आत्मजवत् गृणन्तः सम्बोधयन्ति अहं इव अहं उपाहृतः तैः ॥११॥

क्षिपतः	आक्षेप करते (कटु बोलते)	**स्मित सुधा उक्षित**	मन्द मुस्कान रूपी अमृतसे युक्त
ब्राह्मणान्	ब्राह्मणोंको	**वक्त्राः**	मुखसे
मयि धिया	(उसे मेरा स्वरूप समझकर	**अहं इव**	मेरी भाँति (जैसे मैं आप लोगोंको)
ये अर्चयन्तः	जो सम्मानित करते हुए	**सम्बोधयन्ति**	सम्बोधित करते हैं,
तुष्यत् हृदः	सन्तुष्ट चित्तसे	**अहं तैः**	मैं उन लोगों द्वारा
आत्मजवत्	पुत्रके समान	**उपाहृतः**	वशमें कर लिया
अनुराग कलया	स्नेह भरी वाणीसे		गया हूँ ॥११॥
गृणन्तः	समझाते हैं,		

तन्मे स्वभर्तुरवसायमलक्षमाणौ
युष्मद्व्यतिक्रमगतिं प्रतिपद्य सद्यः ।
भूयो ममान्तिकमितां तदनुग्रहो मे
यत्कल्पतामचिरतो भृतयोर्विवासः ॥१२॥

तत् मे स्वभर्तुः अवसायं अलक्षमाणौ युष्मत् व्यतिक्रम गतिं प्रतिपद्य सद्यः भूयः मम अन्तिकं इतां तत् अनुग्रहः मे यत् कल्पतां अचिरतः भृतयः विवासः ॥१२॥

तत् मे स्वभर्तुः	उस मुझ अपने स्वामीके
अवसायं	अभिप्रायको
अलक्षमाणौ	न समझकर
युष्मत्	आप लोगोंके
व्यतिक्रम	अपमानके
गतिं	परिणामको
सद्यः	तत्काल
प्रतिपद्य	प्राप्त करके
यत् भूयः	जिससे फिर
मम अन्तिकं	मेरे समीप
इतां	आ जायँ
भृतयः	(इन) सेवकोंका
विवासः	निर्वासन
अचिरतः	शीघ्र समाप्त होनेवाला
कल्पतां	कर दीजिए
तत् मे	वह मुझपर
अनुग्रहः	कृपा होगी ॥१२॥

ब्रह्मोवाच–

अथ तस्योशतीं देवीमृषिकुल्यां सरस्वतीम् ।
नास्वाद्य मन्युदष्टानां तेषामात्माप्यतृप्यत ॥१३॥

अथ तस्य उशतीं देवीं ऋषिकुल्यां सरस्वतीं न आस्वाद्य मन्यु दष्टानां तेषां आत्मा अपि तृप्यत ॥१३॥

अथ तस्य	तब उन (भगवान) की
उशतीं	मधुर
ऋषिकुल्यां देवीं	मन्त्रमयी दिव्य
सरस्वतीं	वाणीको
आस्वाद्य	आस्वादन कर (सुनकर)
तेषां	उन (सनकादि) का
मन्यु दष्टानां	क्रोधसे डँसा हुआ
आत्मा अपि	चित्त भी
न अतृप्यत	तृप्त नहीं हो रहा था ॥१३॥

सतीं व्यादाय शृण्वन्तो लध्वीं गुर्वर्थगह्वराम् ।
विगाह्यागाधगम्भीरां न विदुस्तच्चिकीर्षितम् ॥१४॥

सतीं व्यादाय शृण्वन्तः लध्वीं गुरु अर्थ गह्वरां विगाह्य अगाध गम्भीरां न विदुः तत् चिकीर्षितम् ॥१४॥

शृण्वन्तः	सुननेमें (वह वाणी)
व्यादाय सतीं	बहुत ही मनोहर
लध्वीं	थोड़े शब्दोंवाली थी (किन्तु)

अर्थं	(उसका) अर्थ
गुरु गह्वरं	बहुत दुर्विज्ञेय
अगाध	अथाह
गम्भीरं	गम्भीर था
विगाह्य	उसमें डूबकर (विचार करके)
तत् चिकीर्षितं	उन (भगवान) की क्या करनेकी इच्छा है,
न विदुः	(यह) नहीं जान सके ॥१४॥

ते योगमायया ऽऽरब्धपारमेष्ठ्यमहोदयम् ।
प्रोचुः प्राञ्जलयो विप्राः प्रहृष्टाः क्षुभितत्वचः ॥१५॥

ते योगमायया आरब्ध पारमेष्ठ्य महोदयं प्रोचुः प्राञ्जलयः विप्राः प्रहृष्टाः क्षुभितः त्वचः ॥१५॥

योगमायया	योगमायासे
पारमेष्ठ्य	परम ऐश्वर्यके
महोदयं	उत्कर्षको
आरब्ध	प्रकट करनेवाले (भगवान) से
ते विप्राः	वे ब्राह्मण (सनकादि)
प्रहृष्टाः	अत्यन्त हर्षसे
क्षुभित त्वचः	रोमांचित शरीर
प्राञ्जलयः	हाथ जोड़कर
प्रोचुः	बोले ॥१५॥

कुमारा ऊचुः-*

न वयं भगवन् विद्मस्तव देव चिकीर्षितम् ।
कृतो मेऽनुग्रहश्चेति यदध्यक्षः प्रभाषसे ॥१६॥

न वयं भगवन् विद्मः तव देव चिकीर्षितं कृतः मे अनुग्रहः च इति यत् अध्यक्षः प्रभाषसे ॥१६॥

भगवन् देव	भगवन् ! देव !
वयं तव	हम आपकी (जो)
चिकीर्षितं	करनेकी इच्छा है,
न विद्मः	(उसे) नहीं जानते
मे अनुग्रहः	हमपर अनुग्रह
कृतः	(आपने) किया है,
च इति	ऐसा हम समझते हैं
यत्	क्योंकि
अध्यक्षः	सबके स्वामी होकर
प्रभाषसे	(आप ऐसा) कह रहे हैं ॥१६॥

* अन्य प्रतियोंमें 'ऋषय ऊचुः' है ।

ब्रह्मयस्य परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते प्रभो ।
विप्राणां देवदेवानां भगवानात्मदैवतम् ॥१७॥

ब्रह्मण्यस्य परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते प्रभो विप्राणां देवदेवानां भगवान् आत्म दैवतम् ॥१७॥

ब्रह्मण्यस्य	ब्राह्मण भक्तोंके	**विप्राणां**	(वस्तुतः) ब्राह्मणोंके
परं दैवं	(आप) परम देवता (परम आदर्श) हैं	**देवदेवानां**	देवताओंके देवता (ब्रह्माजी) के भी
प्रभो	प्रभो !	**भगवान्**	आप ही
किल	भले (आप मानें)	**आत्म दैवतं**	अपने आराध्य हैं ॥१७॥
ब्राह्मणाः ते	ब्राह्मण आपके (देवता हैं)		

त्वत्तः सनातनो धर्मो रक्ष्यते तनुभिस्तव ।
धर्मस्य परमो गुह्यो निर्विकारो भवान्मतः ॥१८॥

त्वत्तः सनातनः धर्मः रक्ष्यते तनुभिः तव धर्मस्य परमः गुह्यः निर्विकारः भवान् मतः ॥१८॥

त्वत्तः	आपके द्वारा	**मतः**	हमारे मतसे
तव तनुभिः	आपके अवतारों द्वारा	**धर्मस्य**	धर्मका
सनातनः धर्मः	सनातन धर्मकी	**परमः गुह्यः**	परम रहस्य
रक्ष्यते	रक्षा होती है ।	**निर्विकारः**	निर्विकार
		भवान्	आप ही हैं ॥१८॥

तरन्ति ह्यञ्जसा मृत्युं निवृत्ता यदनुग्रहात् ।
योगिनः स भवान् किंस्विदनुगृह्येत यत्परैः ॥१९॥

तरन्ति हि अञ्जसा मृत्युं निवृत्ताः यत् अनुग्रहात् योगिनः स भवान् किं स्वित् अनुगृह्येत यत् परैः ॥१९॥

निवृत्ताः	निवृत्ति परायण	**यत् अनुग्रहात्**	जिनकी कृपासे
योगिनः हि	योगी लोग भी	**अञ्जसा**	सरलतासे

मृत्युं तरन्ति	मृत्युको पार कर लेते हैं,	**परैः**	दूसरे
		स्वित् किं यत्	भला क्या
स भवान्	उस आपपर	**अनुग्रहात्**	कृपा करेंगे ॥१९॥

यं वै विभूतिरुपयात्यनुवेलमन्यै-
रर्थार्थिभिः स्वशिरसा धृतपादरेणुः ।
धन्यार्पिताङ्घ्रितुलसीनवदामधाम्नो
लोकं मधुव्रतपतेरिव कामयाना ॥२०॥

यं वै विभूतिः उपयाति अनुवेलं अन्यैः अर्थार्थिभिः स्व शिरसा धृत पादरेणुः धन्य अर्पिताः अङ्घ्रि तुलसी नवदाम धाम्नः लोकं मधुव्रत पतेः इव कामयाना ॥२०॥

अन्यैः	दूसरे	**धन्य लोकं**	धन्य लोगों (भक्तों)
अर्थार्थिभिः	अर्थार्थी लोगों द्वारा		द्वारा (आपके)
वै	निश्चय	**अङ्घ्रि अर्पिता**	चरणोंपर चढ़ायी गयी
स्व शिरसा	अपने मस्तकोंपर	**तुलसी नवदाम**	तुलसीकी नयी
अनुवेलं	प्रत्येक समय		मालाओंमें
यं विभूतिः	जिन लक्ष्मीजीकी	**मधुव्रत पतेः**	भ्रमरराजके
पादरेणुः	चरण-रज	**इव धाम्नः**	समान निवास
धृत	धारण की जाती है (वे लक्ष्मीजी भी)		(बनाना)
		कामयाना	चाहती हैं ॥२०॥

यस्तां विविक्तचरितैरनुवर्तमानां
नात्याद्रियत्परमभागवतप्रसङ्गः ।
स त्वं द्विजानुपथपुण्यरजः पुनीतः
श्रीवत्सलक्ष्म किमगा भगभाजनस्त्वम् ॥२१॥

यः तां विविक्त चरितैः अनुवर्तमानां न अति आद्रियत् परम भागवत प्रसङ्गः स त्वं द्विज अनुपथ पुण्यरजः पुनीतः श्रीवत्सलक्ष्मः किं अगाः भगभाजनः त्वम् ॥२१॥

तां	उस (लक्ष्मी) द्वारा
विविक्त	एकान्त
चरितैः	निष्ठायुक्त आचरणसे
अनुवर्तमानां	सेवामें लगीको
यः	जो (आप)
अति आद्रियत्	बहुत आदर नहीं देते
परम भागवत	परम भक्तोंसे
प्रसङ्गः	(आप) स्नेह करते हैं
स त्वं	वह आप
अनुपथ	मार्गोंमें चलते
द्विज	ब्राह्मणोंकी
पुण्यरजः	पवित्र (चरण) धूलिसे
पुनीतः	पवित्र होकर
श्रीवत्सलक्ष्मः	श्रीवत्स चिह्न (भृगुके पद चिह्न) से
कि भगभाजनः	क्या ऐश्वर्य भाजन
त्वं अगाः	आप बनते हैं ॥२१॥

धर्मस्य ते भगवतस्त्रियुग त्रिभिः स्वैः
पद्भिश्चराचरमिदं द्विजदेवतार्थम् ।
नूनं भृतं तदभिघाति रजस्तमश्च
सत्त्वेन नो वरदया तनुवा निरस्य ॥२२॥

धर्मस्य ते भगवतः त्रियुगः त्रिभिः स्वैः पद्भिः चराचरं इदं द्विज देवता अर्थं नूनं भृतं तत् अभिघाति रजः तमः च सत्त्वेन नः वरदया तनुवा निरस्य ॥२२॥

भगवतः	भगवन्
नूनं	निश्चय
ते	आप
धर्मस्य	धर्म स्वरूप
त्रियुगः	तीन (सतयुग, त्रेता, द्वापर) युगोंमें
त्रिभिः	तीन
स्वैः पद्भिः	अपने चरणों (तप, शौच, दया) से
इदं चराचरं	इस चराचर (जगत) को
तत् अभिघाति	उस (धर्मको) नष्ट करनेवाले
रजः च तमः	रजोगुण और तमोगुणको
सत्त्वेन वा	सत्त्गुणसे अथवा
नः वरदया	हमें वरदान देनेवाले
तनु	इस (साकार) रूपसे
निरस्य	नष्ट करके
द्विज देवता अर्थं	ब्राह्मण एवं देवताओंके लिए
भृतं	पालन करते हैं ॥२२॥

न त्वं द्विजोत्तमकुलं यदिहात्मगोपं
गोप्ता वृषः स्वर्हणेन ससूनृतेन ।
तर्ह्येव नङ्क्ष्यति शिवस्तव देव पन्था
लोकोऽग्रहीष्यदृषभस्य हि तत्प्रमाणम् ॥२३॥

न त्वं द्विजोत्तम कुलं यत् इह आत्म गोपं गोप्ता वृषः स्वर्हणेन स सूनृतेन तर्हि एव नङ्क्ष्यति शिवः तव देव पन्था लोकः अग्रहीष्य ऋषभस्य हि तत् प्रमाणम् ॥२३॥

यत्	क्योंकि	**तर्हि एव**	तभी
आत्म गोपं	अपने द्वारा रक्षणीय	**तव**	आपका (चलाया)
द्विजोत्तम कुलं	श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके कुलकी	**शिवः पन्था**	कल्याण मार्ग
		नङ्क्ष्यति	नष्ट हो जायगा,
इह	इस संसारमें	**हि देव तत्**	क्योंकि देव ! उस
स्वर्हणेन	अपनी पूजा द्वारा	**ऋषभस्य**	श्रेष्ठके (आचरण)को
स सूनृतेन	मधुरवाणी द्वारा	**प्रमाणं**	प्रमाणके रूपमें
गोप्ता	रक्षा करनेवाले	**लोकः**	लोग
त्वं न	आप न बनें	**अग्रहीष्य**	ग्रहण करते हैं ॥२३॥
वृषः	धर्ममूर्ति !		

तत्तेऽनभीष्टमिव सत्त्वनिधेर्विधित्सोः
क्षेमं जनाय निजशक्तिभिरुद्धृतारेः ।
नैतावता त्र्यधिपतेर्बत विश्वभर्तु-
स्तेजः क्षतं त्ववनतस्य स ते विनोदः ॥२४॥

तत् ते अनभीष्टं इव सत्त्वनिधेः विधित्सोः क्षेमं जनाय निज शक्तिभिः उद्धृत अरेः न एतावता त्रय अधिपतेः बत विश्वभर्तुः तेजः क्षतं अवनतस्य स ते विनोदः ॥२४॥

जनाय	भक्तोंका	**निजशक्तिभिः**	अपनी शक्ति (मनु, राजा आदि) द्वारा
क्षेमं	कल्याण		
विधित्सोः	करनेके लिए		

अरेः	(उन भक्तोंके) शत्रुओंका	**विश्वभर्तुः**	जगत् पालक
उद्धृत	नाश करना भी	**एतावता**	इतनी अधिक
तत् सत्वनिधेः	वह सत्वगुणकी खान	**अवनतस्य**	आपकी विनम्रता
ते	आपको	**तेजः क्षतं**	तेज हानि करनेवाली
अनभीष्टं इव	अभीष्टकी भाँति है।	**न बत**	नहीं है अपितु
त्र्यधिपतेः	त्रिलोकीनाथ	**स ते**	वह आपका
		विनोदः	विनोद है ॥२४॥

यं वानयोर्दममधीश भवान् विधत्ते
वृत्तिं नु वा तदनुमन्महि निर्व्यलीकम् ।
अस्मासु वा य उचितो ध्रियतां स दण्डो
येऽनागसौ वयमयुङ्क्षमहि किल्बिषेण ॥२५॥

यं वा अनयोः दमं अधीश भवान् विधत्ते वृत्तिं नु वा तत् अनुमत् महि निर्व्यलीकं अस्मासु वा य उचितः धृयतां स दण्डः ये अनागसौ वयं अयुङ्क्षमहि किल्विषेण ॥२५॥

अधीश	सर्वेश्वर	**वा ये**	अथवा जो
अनयोः	इन दोनोंको	**अनागसौ**	निरपराधोंको
यं वा	जो भी	**वयं**	हमने
दण्ड भवान्	दण्ड आप	**किल्विषेण**	(शाप देकर) अपराधसे
विधत्ते वा	निर्णय करें अथवा		
वृत्तिं नु	वृत्ति (वेतन) बढ़ा दें	**अयुङ्क्ष**	लिप्त किया है
		अस्मासु	(अतः) हम लोगोंको
निर्व्यलीकं	निष्कपट भावसे	**य उचितो**	जो उचित हो
तत्	उसका	**स दण्डः**	वह दण्ड
अनुमन्महि	(हम) अनुमोदन करते हैं,	**ध्रियतां**	दीजिए ॥२५॥

श्रीभगवानुवाच-

एतौ सुरेतरगतिं प्रतिपद्य सद्यः
संरम्भसम्भृतसमाध्यनुबद्धयोगौ ।

भूयः सकाशमुपयास्यत आशु यो वः
शापो मयैव निमितस्तदवैत विप्राः ॥२६॥

एतौ सुरेतर गतिं प्रतिपद्य सद्यः संरम्भ सम्भृत समाधि अनुवद्ध योगैः भूयः सकाशं उपयास्यत आशु यः वः शापः मयि एव निमितः तत् अवैत विप्राः ॥२६॥

विप्राः	ब्राह्मणो !	**प्रतिपद्य**	प्राप्त करके
यः वः	जो आपका	**संरम्भ सम्भृत**	क्रोधावेश बढ़नेसे हुई
शापः	शाप है	**समाधि**	एकाग्रता (रूप)
मयि एव	मेरी ही	**योगैः**	योगसे
निमितः	प्रेरणासे है	**आशु**	शीघ्र
तत् अवैत	इसे जानलें (अतः)	**सकाशं**	(मेरे) समीप
एतौ	ये दोनों	**उपयास्यत**	आ जायँगे ॥२६॥
सद्यः	तत्काल		
सुरेतर गतिं	असुर अवस्थाको		

ब्रह्मोवाच-

अथ ते मुनयो दृष्ट्वा नयनानन्दभाजनम् ।
वैकुण्ठं तदधिष्ठानं विकुण्ठं च स्वयंप्रभम् ॥२७॥

अथ ते मुनयः दृष्ट्वा नयनानन्द भाजनं वैकुण्ठं तत् अधिष्ठानं विकुण्ठं च स्वयं प्रभम् ॥२७॥

अथ ते मुनयः	तब वे (सनकादि) मुनि	**तत्**	उसके
नयनानन्द भाजनं	नेत्रोंको आनन्दायी पात्र	**अधिष्ठानं**	आश्रय
वैकुण्ठं च	वैकुण्ठ लोकको तथा	**स्वयं प्रभं**	स्वयं प्रकाश
		विकुण्ठं	भगवान् वैकुण्ठनाथको
		दृष्ट्वा	देखकर ॥२७॥

भगवन्तं परिक्रम्य प्रणिपत्यानुमान्य च ।
प्रतिजग्मुः प्रमुदिताः शंसन्तो वैष्णवीं श्रियम् ॥२८॥

भगवन्तं परिक्रम्य प्रणिपत्य अनुमान्य च प्रतिजग्मुः प्रमुदिताः शंसन्तः वैष्णवीं श्रियम् ॥२८॥

भगवन्तं	भगवान्‌की
परिक्रम्य	परिक्रमा करके,
प्रणिपत्य च	(उनको) प्रणाम करके तथा
अनुमान्य	अनुमति लेकर
प्रमुदिताः	आनन्दित होकर
वैष्णवीं श्रियं	भगवान् विष्णुकी शोभाकी
शंसन्तः	प्रशंसा करते हुए
प्रतिजग्मुः	लौट आये ॥२८॥

भगवाननुगावाह यातं मा भैष्टमस्तु शम् ।
ब्रह्मतेजः समर्थोऽपि हन्तुं नेच्छे मतं तु मे ॥२९॥

भगवान् अनुगाः आह यातं मा भैष्टं अस्तु शं ब्रह्मतेजः समर्थः अपि हन्तुं न इच्छे मतं तु मे ॥२९॥

भगवान्	भगवान्‌ने
अनुगाः	अनुचरोंसे
आह	कहा
यातं	'जाओ,
मा भैष्टं	मत डरो,
शं अस्तु	(तुम्हारा) कल्याण हो !'
मे तु मतं	मेरा तो मत है कि
समर्थः अपि	समर्थ होनेपर भी
ब्रह्मतेजः	ब्राह्मणोंके शापको
हन्तुं	नष्ट करनेकी
इच्छे न	(उन्होंने) इच्छा नहीं की ॥२९॥

एतत्पुरैव निर्दिष्टं रमया क्रुद्धया यदा ।
पुरापवारिता द्वारि विशन्ती मय्युपारते ॥३०॥

एतत् पुरा एव निर्दिष्टं रमया क्रुद्धया यदा पुरा अपवारिता द्वारि विशन्ती मयि उपारते ॥३०॥

पुरा मयि	पहिले मेरे
उपारते	उपरत हो जाने (सो जानेपर)
द्वारि विशता	द्वारमें प्रवेश करती
यदा अपवारिता	जब रोकी जानेपर
क्रुद्धया	क्रोधित हुई
रमया	लक्ष्मी द्वारा
एतत्	यह (शाप तो)
पुरा एव	पहिले ही
निर्दिष्टं	निश्चित कर दिया गया था ॥३०॥

*श्रीभगवानुवाच**-

मयि संरम्भयोगेन निस्तीर्य ब्रह्महेलनम् ।
प्रत्येष्यतं निकाशं मे कालेनाल्पीयसा पुनः ॥३१॥

मयि संरम्भ योगेन निस्तीर्य ब्रह्महेलनात् प्रति एष्यतं निकाशं मे कालेन अल्पीयसा पुनः ॥३१॥

मयि	मेरे प्रति	**निस्तीर्य**	पार होकर
संरम्भ	क्रोध (के कारण)	**कालेन अल्पीयसा**	थोड़े समयमें
योगेन	एकाग्र वृत्तिसे	**पुनः**	फिर
ब्रह्महेलनात्	ब्राह्मणोंके अपमान (के पास) से	**मे निकाशं**	मेरे समीप
		प्रति एष्यतं	लौट आओगे ॥३१॥

द्वाः स्थावादिश्य भगवान् विमानश्रेणिभूषणम् ।
सर्वातिशयया लक्ष्म्या जुष्टं स्वं धिष्ण्यमाविशत् ॥३२॥

द्वाः स्थाः आदिश्य भगवान् विमान श्रेणि भूषणं सर्व अतिशयया लक्ष्म्या जुष्टं स्वं धिष्ण्यं आविशत् ॥३२॥

भगवान्	भगवान्ने	**सर्व अतिशयया**	सबसे अत्यधिक
द्वाः स्थाः	द्वारपर रहनेवालों (द्वारपालों) को	**लक्ष्म्या**	शोभासे
		जुष्टं	युक्त
आदिश्य	यह आदेश देकर	**स्वधिष्ण्यं**	अपने धाममें
विमान श्रेणि	विमानोंके झुंडोंसे	**आविशत्**	प्रवेश किया ॥३२॥
भूषणं	सुशोभित		

तौ तु गीर्वाणऋषभौ दुस्तरादृरिलोकतः ।
हतश्रियौ ब्रह्मशापादभूतां विगतस्मयौ ॥३३॥

तौ तु गीर्वाण ऋषभौ दुस्तरात् हरि लोकतः हतश्रियौ ब्रह्मशापात् अभूतां विगत स्मयौ ॥३३॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तौ	वे दोनों
गीर्वाण ऋषभौ	
तु	देव श्रेष्ठ तो
ब्रह्मशापात्	ब्राह्मणोंके शापसे
हरि लोकतः	श्रीहरिके लोकसे ही
गतश्रियौ	श्रीहीन
अभूतां	हो गये ।
स्मयौ	(उनका) गर्व
विगतः	नष्ट होगया ॥३३॥

तदा विकुण्ठधिषणात्तयोर्निपतमानयोः ।
हाहाकारो महानासीद्विमानाग्र्येषु पुत्रकाः ॥३४॥

तदा विकुण्ठ धिषणात् तयोः निपतमानयोः हाहाकारः महान् आसीत् विमान अग्रेषु पुत्रकाः ॥३४॥

पुत्रकाः	मेरे छोटे बच्चो !
तदा	उस समय
तयोः	उन दोनोंके
विकुण्ठ धिषणात्	वैकुण्ठ लोकसे
निपत मानयोः	गिरते समय
विमान अग्रेषु	(वहाँके) विमानमें बैठे लोगोंका
महान्	भारी
हाहाकारः	हाहाकार
आसीत्	हुआ ॥३४॥

तावेव ह्यधुना प्राप्तौ पार्षदप्रवरौ हरेः ।
दितेर्जठरनिर्विष्टं काश्यपं तेज उल्बणम् ॥३५॥

ताः एव हि अधुना प्राप्तौ पार्षद प्रवरौ हरेः दितेः जठर निर्विष्टं काश्यपं तेज उल्बणम् ॥३५॥

हि	क्योंकि
अधुना	इस समय
दितेः जठर	दितिके पेटमें
निर्विष्टं	प्रविष्ट
काश्यपं	कश्यपका
उल्बणं तेजः	उग्र तेज है (उसमें)
हि ताः एव	क्योंकि वह ही
हरेः	श्रीहरिके
पार्षद प्रवरौ	पार्षद प्रधानोंने
प्राप्तौ	प्रवेश किया है॥३५॥

तयोरसुरयोरद्य तेजसा यमयोर्हि वः ।
आक्षिप्तं तेज एतर्हि भगवांस्तद्विधित्सति ॥३६॥

तयोः असुरयोः अद्य तेजसा यमयोः हि वः आक्षिप्तं तेजः एतर्हि भगवान् तत् विधत्सति ॥३६॥

अद्य	इस समय
तयोः यमयोः	उन दोनों
असुरयोः	असुरोंके द्वारा
हि वः	क्योंकि तुम लोगोंका
तेजः आक्षिप्तं	तेज फीका पड़ा है,
तत् भगवान्	उसे वे भगवान्
एतर्हि	ऐसा ही
विधत्सति	करना चाहते हैं ॥३६॥

विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो
योगेश्वरैरपि दुरत्ययययोगमायः ।
क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीश-
स्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥३७॥

विश्वस्य यः स्थिति लय उद्भव हेतुः आद्यः योगेश्वरैः अपि दुरत्यय योगमायः क्षेमं विधास्यति स नः भगवान् त्र्यधीशः तत्र अस्मदीय विमृशेन कियान् इह अर्थः ॥३७॥

योगेश्वरैः अपि	योगेश्वरोंसे भी
दुरत्यय	दुष्पार
योगमायः	योगमायावाले
यः आद्यः	जो आदि पुरुष
विश्वस्य	विश्वकी
स्थिति, लय, उद्भव	स्थिति, प्रलय, सृष्टिके
हेतुः स	कारण हैं वे
भगवान्	भगवान्
त्र्यधीशः	त्रिलोकीनाथ
नः क्षेमं	हमारा कल्याण
विधास्यति	करेंगे
तत्र	इस सम्बन्धमें
अस्मदीय	हमारे
विमृशेन	विशेष विचारसे
कियान् हि	कितना (क्या)
अर्थः	प्रयोजन है ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

निशम्यात्मभुवा गीतं कारणं शङ्कयोज्झिताः ।
ततः सर्वे न्यवर्तन्त त्रिदिवाय दिवौकसः ॥१॥

निशम्य आत्मभुवा गीतं कारणं शङ्कया उज्झिताः ततः सर्वे न्यवर्तन्त त्रिदिवाय दिवौकसः ॥१॥

आत्मभुवा	ब्रह्माजी द्वारा	**शङ्कया**	शंकाके
कारणं	(अन्धकारका) कारण	**उज्झिताः**	दूर हो जानेपर
		सर्वे दिवौकसः	सब देवता
गीतं	बतलाये जानेपर	**ततः त्रिदिवाय**	वहाँसे स्वर्गको
निशम्य	उसे सुनकर	**न्यवर्तन्त**	लौट गये ॥१॥

दितिस्तु भर्तुरादेशादपत्यपरिशङ्किनी ।
पूर्णे वर्षशते साध्वी पुत्रौ प्रसुषुवे यमौ ॥२॥

दितिः तु भर्तुः आदेशात् अपत्य परिशङ्किनी पूर्णे वर्षे शते साध्वी पुत्रौ प्रसुषुवे यमौ ॥२॥

साध्वी	पतिव्रता	**भर्तुः आदेशात्**	पतिकी आज्ञासे
दितिः तु	दिति नेतो	**शते वर्षे**	सौ वर्ष
अपत्य	सन्तानके सम्बन्धमें	**पूर्णे**	पूरे हो जानेपर
परिशङ्किनी	(आपत्तिकी) आशङ्का करनेवाली थी किन्तु	**यमौ सुतौ**	जुड़वाँ पुत्र
		प्रसुषुवे	प्रसव किया ॥२॥

उत्पाता बहवस्तत्र निपेतुर्जायमानयोः ।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च लोकस्योरुभयावहाः ॥३॥

उत्पाता बहवः तत्र निपेतुः जायमानयोः दिवि भुवि अन्तरिक्षे च लोकस्य उरु भय आवहा ॥३॥

जायमानयोः	(उनके) उत्पन्न होते समय	**तत्र दिवि**	वहाँ स्वर्गमें
लोकस्य	लोगोंके लिए	**भुवि**	पृथ्वीपर
उरु भयावहाः	अतिशय भयदायक	**च अन्तरिक्षे**	तथा आकाशमें
उत्पाताः	उत्पात	**निपेतुः**	होने लगे ॥३॥

महाचला भुवश्चेलुर्दिशः सर्वाः प्रजज्वलुः ।
सोल्काश्चाशनयः पेतुः केतवश्चार्तिहेतवः ॥४॥

सह अचला भुवः चेलुः दिशः सर्वाः प्रजज्वलुः स उल्काः च अशनयः पेतुः केतवः च आर्ति हेतवः ॥४॥

सह अचला	पर्वतोंके साथ	**स उल्काः च**	उल्काओंके साथ ही
भुवः	पृथ्वी	**अशनयः पेतुः**	वज्र बिजली) गिरने लगा,
चेलुः	चलने (हिलने) लगी,	**आर्ति हेतवः**	दुःखोंके कारण
सर्वाः दिशः	सव दिशाएँ	**केतवः च**	केतु भी (उदित हो गये) ॥४॥
प्रजज्वलुः	जलने लगीं,		

ववौ वायुः सुदुः स्पर्शः फूत्कारानीरयन्मुहुः ।
उन्मूलयन्नगपतीन्वात्यानीको रजोध्वजः ॥५॥

ववौ वायुः सुदुः स्पर्शः फूत्कारान् ईरयन् मुहुः उन्मूलयन् नगपतीन् वात्या अनीकः रजः ध्वजः ॥५॥

मुहुः	बार-बार	**वात्या अनीकः**	बवण्डरोंकी सेना लिए
फूत्कारान्	फूत्कार (की ध्वनि)	**रजः ध्वजः**	धूलिका झंडा
ईरयन्	करता		उड़ाता
सुदुः स्पर्शः	अत्यन्त दुःसह स्पर्शवाला	**वायुः ववौ**	वायु चलने लगा ॥५॥

उद्धसत्तडिदम्भोदघटया नष्टभागणे ।
व्योम्नि प्रविष्टतमसा न स्म व्यादृश्यते पदम् ॥६॥

उत् हसत् तडित अम्भोद घटया नष्ट भागणे व्योम्नि प्रविष्टः तमसा न स्म व्यादृश्यते पदम् ॥६॥

तडित	बिजली	**नष्ट**	छिप गये
उत् हसत्	मानो हँस रही हो (इस प्रकार बार-बार चमकने लगी)	**व्योम्नि**	आकाशमें
		तमसा प्रविष्टः	अन्धकार छा गया
		पदं न स्म	कोई स्थान नहीं
अम्भोद घटया	मेघ घटासे	**व्यादृश्यते**	दीखता था ॥६॥
भागणे	चन्द्र, तारादि		

चुक्रोश विमना वार्धिरुर्दूमिः क्षुभितोदरः ।
सोदपानाश्च सरितश्चुक्षुभुः शुष्कपङ्कजाः ॥७॥

चुक्रोश विमना वार्धिः उर्दूमिः क्षुभितः उदरः स उदपानाः च सरितः चुक्षुभुः शुष्क पङ्कजाः ॥७॥

उर्दूमिः	उत्ताल तरंगोंसे	**स उदपानाः**	जलाशयोंके साथ
वार्धिः	समुद्र	**सरितः च**	नदियां भी
उदरः क्षुभितः	भीतरी तल तक क्षुब्ध हो उठा	**चुक्षुभुः**	क्षुब्ध हो गयीं
		शुष्क पङ्कजाः	उनके कमल सूख गये ॥७॥
विमना	(मानो) दुःखी होकर		
चुक्रोश	चिल्ला रहा हो ।		

मुहुः परिधयोऽभूवन् सराह्वोः शशिसूर्ययोः ।
निर्घाता रथनिर्ह्रादा विवरेभ्यः प्रजज्ञिरे ॥८॥

मुहुः परिधयः अभूवन् सराह्वः शशि सूर्ययोः निर्घाताः रथनिर्ह्रादाः विवरेभ्यः प्रजज्ञिरे ॥८॥

सराह्वः	राहु साथ होनेसे	**मुहुः**	बार-बार (ग्रहण होने लगे, और)
शशि-सूर्ययोः	चन्द्र-सूर्यको		

परिधयः	(उनपर) मण्डल	**रथ निर्ह्रादाः**	रथ चलनेकी ध्वनि
अभूवन्	होने लगे।	**प्रजज्ञिरे**	उत्पन्न होने
विवरेभ्यः	गुफाओंसे		लगी ॥८॥
निर्घाताः	वज्रपातकी (तथा)		

अन्तर्ग्रामेषु मुखतो वमन्त्यो वह्निमुल्बणम् ।
सृगालोलूकटङ्कारैः प्रणेदुरशिवं शिवाः ॥९॥

अन्तः ग्रामेषु मुखतः वमन्त्यः वह्निं उल्बणं सृगाल उलूक टङ्कारैः प्रणेदुः अशिवं शिवाः ॥९॥

ग्रामेषु अन्तः	गाँवोंके भीतर	**मुखतः**	मुखसे
सृगाल उलूक	सियार और उल्लू	**उल्बणं वह्निं**	भयानक अग्नि
टङ्कारैः	उच्च ध्वनिसे	**वमन्त्यः**	उगलती हुई
प्रणेदुः	बोलने लगे,	**अशिवं प्रणेदुः**	अमंगल शब्द करने
शिवा	सृगाली		लगी ॥९॥

सङ्गीतवद्रोदनवदुन्नमय्य शिरोधराम् ।
व्यमुञ्चन् विविधा वाचो ग्रामसिंहास्ततस्ततः ॥१०॥

सङ्गीतवत् रोदनवत् उन्नमय्य शिरः धरां व्यमुञ्चन् विविधा वाचः ग्रामसिंहाः ततः ततः ॥१०॥

ततः ततः	जहाँ तहाँ	**सङ्गीतवत्**	गानेकी भांति,
ग्रामसिंहाः	कुत्ते	**रोदनवत्**	रोनेकी भांतिके
शिरः	सिर	**विविधा वाचः**	अनेक प्रकारके शब्द
धरां	पृथ्वीसे	**व्यमुञ्चन्**	करने लगे ॥१०॥
उन्नमय्य	ऊपर उठाकर		

खराश्च कर्कशैः क्षत्तः खुरैर्घ्नन्तो धरातलम् ।
खार्कारैरभसा मत्ताः पर्यधावन् वरूथशः ॥११॥

खराः च कर्कशैः क्षत्तः खुरैः घ्नन्तः धरातलं खार्कार रभसा मत्ताः पर्यधावन् वरूथशः ॥११॥

क्षत्तः	विदुर !
वरूथशः	झुंडके झुंड
खराः च	गधे भी
कर्कशैः	कर्कश
खार्कार रभसा	रेंकनेके वेगसे
मत्ताः	मतवाले होकर
खुरैः	खुरोंसे
धरातलं घ्नन्तः	पृथ्वीको पीटते
पयधावन्	चारों ओर दौड़ने लगे ॥११॥

रुदन्तो रासभत्रस्ता नीडादुदपतन् खगाः ।
घोषेऽरण्ये च पशवः शकृन्मूत्रमकुर्वत ॥१२॥

रुदन्तः रासभः त्रस्ताः नीडात् उदपतन् खगाः घोषे अरण्ये च पशवः शकृत् मूत्रं अकुर्वत ॥१२॥

रुदन्तः	रोते (चिल्लाते)
रासभः	गधोंसे
त्रस्ताः खगाः	डरकर पक्षी
नीडात्	घोंसलोंसे
उदपतन्	उड़ने लगे ।
घोषे च	गाँवोंमें तथा
अरण्ये	वनमें
पशवः	पशु
शकृत् मूत्रं	गोबर तथा मूत्र
अकुर्वन्	करने लगे ॥२१॥

गावोऽत्रसन्नसृग्दोहास्तोयदाः पूयवर्षिणः ।
व्यरुदन्देवलिङ्गानि द्रुमाः पेतुर्विनानिलम् ॥१३॥

गावः अत्रसन् असृक् दोहाः तोयदाः पूय वर्षिणः व्यरुदन् देवलिङ्गानि द्रुमाः पेतुः विना अनिलम् ॥१३॥

गावः	गायें
अत्रसन्	(ऐसी) डर गयीं
दोहाः	दुहनेपर
असृक्	रक्त निकलने लगा,
तोयदाः	बादल
पूय वर्षिणः	पीवकी वर्षा करने लगे,
देवलिङ्गानि	देवमूर्तियां
व्यरुदन्	रोने लगीं
द्रुमाः	वृक्ष
अनिलं विना	वायु (आँधीके) बिना ही
पेतुः	गिर गये ॥१३॥

ग्रहान् पुण्यतमानन्ये भगणांश्चापि दीपिताः ।
अतिचेरुर्वक्रगत्या युयुधुश्च परस्परम् ॥१४॥

ग्रहान् पुण्यतमान् अन्ये भगणाः च अपि दीपिताः अति चेरुः वक्रगत्या युयुधुः च परस्परम् ॥१४॥

पुण्य तमान्	पवित्र (गुरु,शुक्रादि)
ग्रहान् च	ग्रहोंको तथा
भगणाः अपि	नक्षत्रोंको भी
दीपिताः	दीप्त (प्रबल) होकर*
अन्ये	दूसरे (शनि,मंगलादि अशुभ ग्रह)
वक्रगत्या	वक्री गतिसे
अति चेरुः	अतिचारी हो गये (उलंघन करके)
च परस्परं	तथा परस्पर
युयुधुः	युद्ध करने लगे ॥१४॥

दृष्ट्वान्यांश्च महोत्पातानतत्त्वविदः प्रजाः ।
ब्रह्मपुत्रान्ऋते भीता मेनिरे विश्वसम्प्लवम् ॥१५॥

दृष्ट्वा अन्यान् च महाउत्पातान् अतत्त्वविदः प्रजाः ब्रह्मपुत्रान् ऋते भीता मेनिरे विश्व सम्प्लवम् ॥१५॥

अन्यान् च	दूसरे भी
महाउत्पातान्	बड़े उत्पातोंको
दृष्ट्वा	देखकर
ब्रह्मपुत्रान् ऋते	ब्रह्माके पुत्रोंको छोड़कर
अतत्त्व विदः	उस (घटना) के रहस्यको न जानने वाली
प्रजाः	जनताके लोग
भीता	डरकर
विश्व सम्प्लवं	विश्वका प्रलय (होनेवाला)
मेनिरे	मानने लगे ॥१५॥

तावादिदैत्यौ सहसा व्यज्यमानात्मपौरुषौ ।
ववृधातेऽश्मसारेण कायेनाद्रिपती इव ॥१६॥

ताः आदिदैत्यौ सहसा व्यज्मान आत्म पौरुषौ ववृधाते अश्मसारेण कायेन अद्रिपती इव ॥१६॥

---

* सुप्त, दीप्त आदि ग्रहोंकी अवस्था होती है और ग्रहोंकी गति मार्गी (सीधी) वक्री (पीछे लौटनेकी) अति चारी (तीव्र) होती है।

ताः	वे दोनों	कायेन	शरीरसे
आदिदैत्यौ	आदि दैत्य	अद्रिपती इव	पर्वतराजके समान
आत्म पौरुषौ	अपना पौरुष	सहसा	अचानक
व्यज्यमान	प्रकट करते हुए,	ववृधाते	बढ़ गये ॥१६॥
अश्मसारेण	फौलादके समान		

दिविस्पृशौ हेमकिरीटकोटिभि-
निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदङ्गदाभुजौ ।
गां कम्पयन्तौ चरणैः पदे पदे
कट्या सुकाञ्च्यार्कमतीत्य तस्थतुः ॥१७॥

दिवि स्पृशौ हेमकिरीट कोटिभिः निरुद्ध काष्ठौ स्फुरत् अङ्गदाः भुजौ गां कम्पयन्तौ चरणैः पदे पदे कट्या सुकाञ्च्या अर्कं अतीत्य तस्थतुः ॥१७॥

हेम किरीट	स्वर्ण मुकुटकी	गां कम्पयन्तौ	पृथ्वीको कम्पित करते,
कोटिभिः	नोकसे	तस्थतुः	खड़े होनेपर
दिवि स्पृशौ	स्वर्गको छूते,	कट्या	कमरमें पड़ी
स्फुरत् अङ्गदाः	चमकते बाजूबन्द वाली	काञ्च्या	करधनीसे
भुजौ	भुजाओंसे	अर्कं अतीत्य	सूर्यको भी पार करते थे। (वे इतने ऊँचे विशाल थे कि उनके कमरकी करधनी सूर्य मण्डलसे ऊपर पहुँची थी ॥१७॥
निरुद्ध काष्ठौ	सब दिशाओंको (मानो) रोक लेंगे,		
पदे पदे	पद-पदपर (चलते समय)		
चरणैः	पैरोंसे		

प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्
यः प्राक् स्वदेहाद्यमयोरजायत ।
तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा
यं तं हिरण्याक्षमसूत साग्रतः ॥१८॥

प्रजापतिः नाम तयोः अकार्षीत् यः प्राक् स्वदेहात् यमयोः अजायत तं वै हिरण्य कशिपुं विदुः प्रजाः यं तं हिरण्याक्षं असूत सा अग्रतः ॥१८॥

प्रजापतिः	प्रजापति (कश्यप)ने		(के नामसे)
तयोः यमयोः	उन यमजोंका	**विदुः**	जानने लगे,
नाम अकार्षीत्	नाम रखा,	**यं सा**	जिसको उस
यः प्राक्	जो पहिले		(दिति) ने
स्वदेहात्	अपने शरीरसे	**अग्रतः**	पहिले
अजायत	(गर्भमें) उत्पन्न हुआ	**असूत**	जन्म दिया
तं वै	उसे तो	**तं हिरण्याक्षं**	उसे हिरण्याक्ष
प्रजा	लोग		(कहा गया)* ॥१८॥
हिरण्यकशिपुं	हिरण्यकशिपु		

चक्रे हिरण्यकशिपुर्दोर्भ्यां ब्रह्मवरेण च ।
वशे सपालाँल्लोकांस्त्रीनकुतोमृत्युरुद्धतः ॥१९॥

चक्रे हिरण्यकशिपुः दोर्भ्यां ब्रह्मवरेण च वशे स पालान् लोकान् त्रीन् अकुतो मृत्युः उद्धतः ॥१९॥

ब्रह्मवरेण च	ब्रह्माके वरदानसे तो	**दोर्भ्यां**	अपने भुजबलसे
अकुतोमृत्युः	सर्वत्र मृत्यु भयसे	**सपालान्**	लोकपालोंके साथ
	मुक्त होकर	**त्रीन् लोकान्**	तीनों लोकोंको
उद्धतः	उद्धत हुआ	**वशे चक्रे**	अपने वशमें कर
हिरण्यकशिपुः	हिरण्यकशिपुने		लिया ॥१९॥

हिरण्याक्षोऽनुजस्तस्य प्रियः प्रीतिकृदन्वहम् ।
गदापाणिर्दिवं यातो युयुत्सुर्मृगयन् रणम् ॥२०॥

हिरण्याक्षः अनुजः तस्य प्रियः प्रीतिकृत् अन्वहं गदापाणिः दिवं यातः युयुत्सुः मृगयन् रणम् ॥२०॥

अन्वहं	सर्वदा	**प्रीतिकृत्**	प्रसन्न करनेवाला
प्रियः	प्रिय (भाई) को	**तस्य अनुजः**	उसका छोटा भाई

---

* अब इतना सूक्ष्म विचार लोग नहीं करते । गर्भमें जो पहिले आया वही बड़ा भाई होता है; किन्तु जो पीछे आया, वह पहिले गर्भसे बाहर जन्म लेता है । यही क्रम यहाँ कहा गया है ।

हिरण्याक्षः	हिरण्याक्ष	गदापाणिः	हाथमें गदा लेकर
रणं मृगयन्	युद्ध ढूंढ़ता	दिवं यातः	स्वर्ग पहुँचा ॥२०॥
युयुत्सुः	युद्ध करनेकी इच्छासे		

तं वीक्ष्य दुःसहजवं रणत्काञ्चननूपुरम् ।
वैजयन्त्या स्रजा जुष्टमंसन्यस्तमहागदम् ॥२१॥

तं वीक्ष्य दुःसह जवं रणत् काञ्चन नूपुरं वैजयन्त्या स्रजा जुष्टं अंसन्यस्तं महागदम् ॥२१॥

दुःसह जवं	असह्य वेगवाले,	जुष्टं	पहिने
काञ्चन नूपुरं	सोनेके नूपुरोंको	अंस	कन्धेपर
रणत्	झनकारते,	महागदं न्यस्तं	भारी गदा रखे
वैजयन्त्या स्रजा	वैजयन्तीमाला	तं वीक्ष्य	उसे देखकर

मनोवीर्यवरोत्सिक्तमसृण्यमकुतोभयम् ।
भीता निलिल्यिरे देवास्तार्क्ष्यत्रस्ता इवाहयः ॥२२॥

मनोवीर्यं वरः उत्सिक्तं असृण्यं अकुतः भयं भीता निलिल्यिरे देवाः तार्क्ष्य त्रस्ता इव अहयः ॥२२॥

मनोवीर्यं	मनोबल (तथा)	भीता	डरकर
वरः	(ब्रह्माके) वरदानसे	तार्क्ष्य त्रस्ताः	गरुड़से संत्रस्त
उत्सिक्तं	दर्पित	अहयः इव	सर्पोंके समान
असृण्यं	निरंकुश	देवाः	देवता
अकुतः भयं	सर्वथा निर्भय (हिरण्याक्ष) से	निलिल्यिरे	छिप गये ॥२२॥

स वै तिरोहितान् दृष्ट्वा महसा स्वेन दैत्यराट् ।
सेन्द्रान्देवगणान् क्षीबानपश्यन् व्यनदन् भृशम् ॥२३॥

स वै तिरोहितान् दृष्ट्वा महसा स्वेन दैत्यराट् स इन्द्रान् देवगणान् क्षीबान् अपश्यन् व्यनदत् भृशम् ॥२३॥

स्वेन महसा	अपने तेजसे	स इन्द्रान्	इन्द्रके साथ
तिरोहितान्	तिरोहित हुए	क्षीवान्	नपुंसक (कायर)

देवगणान्	देवताओंको	**भृशं व्यनदत्**	बार-बार भयंकर
अपश्यन्	न देखकर		गर्जना की ॥२३॥
स वै दैत्यराट्	उस दैत्यराजने तो		

ततो निवृत्तः क्रीडिष्यन् गम्भीरं भीमनिस्वनम् ।
विजगाहे महासत्त्वो वार्धि मत्त इव द्विपः ॥२४॥

ततः निवृत्तः क्रीडिष्यन् गम्भीरं भीमनिःस्वनं विजगाहे महासत्त्वः वार्धि मत्त इव द्विपः ॥२४॥

ततः	वहाँसे	**इव**	समान
निवृत्तः	लौटकर	**गम्भीरं**	गंभीर
महासत्त्वः	महाप्राण (वह दैत्य)	**भीमनिः स्वनः**	भयंकर गर्जनावाले
क्रीडिष्यन्	(जल) क्रीड़ा करने	**वार्धि**	समुद्रमें
मत्त द्विपः	मतवाले हाथीके	**विजगाहे**	प्रवेश किया ॥२४॥

तस्मिन् प्रविष्टे वरुणस्य सैनिका
यादोगणाः सन्नधियः ससाध्वसाः ।
अहन्यमाना अपि तस्य वर्चसा
प्रधर्षिता दूरतरं प्रदुद्रुवुः ॥२५॥

तस्मिन् प्रविष्टे वरुणस्य सैनिकाः यादोगणाः सन्नधियः स साध्वसाः अहन्यमानाः अपि तस्य वर्चसा प्रधर्षिता दूरतरं प्रदुद्रुवुः ॥२५॥

तस्मिन्	उस (समुद्र) में	**अपि**	मारे न जानेपर भी
प्रविष्टे	प्रवेश करते ही	**तस्य वर्चसा**	उसके तेजसे ही
वरुणस्य सैनिकाः	वरुणके सैनिक	**प्रधर्षिताः**	घबड़ाकर
यादोगणाः	जलचर जीव	**स साध्वसाः**	भयभीत होकर
सन्नधियः	हतवक बुद्धि होकर	**दूरतरं**	(उससे) बहुत दूर
अहन्यमानाः		**प्रदुद्रुवुः**	भाग गये ॥२६॥

स वर्षपूगानुदधौ महाबल-
श्चरन्महोर्मीञ्छ्वसनेरितान्मुहुः ।
मौर्व्याभिजघ्ने गदया विभावरी-
मासेदिवांस्तात पुरीं प्रचेतसः ॥२६॥

स वर्ष पूगान् उदधौ महाबलः चरन् महोर्मिन् श्वसन ईरितान् मुहुः मौर्व्या अभिजघ्ने गदया विभावरीं आसेदिवान् तात पुरीं प्रचेतसः ॥२६॥

तात	विदुर !
स महाबलः	वह महाबली (हिरण्याक्ष)
वर्ष पूगान्	बहुत वर्षों तक
उदधौः चरन्	समुद्रमें घूमता हुआ
श्वसन् ईरितान्	वायु द्वारा उठायी गयी
महोर्मिन्	बड़ी लहरोंको
मुहुः	बार-बार
मौर्व्या	लोहेकी
गदया	गदासे
अभिजघ्ने	प्रहार करता रहा ।
प्रचेतसः	(इसी प्रकार) वरुणकी
पुरीं	पुरी
विभावरीं	विभावरीमें
आसेदिवान्	पहुँच गया ॥२६॥

तत्रोपलभ्यासुरलोकपालकं
यादोगणानामृषभं प्रचेतसम् ।
स्मयन् प्रलब्धुं प्रणिपत्य नीचव-
ज्जगाद मे देह्यधिराज संयुगम् ॥२७॥

तत्र उपलभ्य असुर लोकपालकं यादोगणानां ऋषभं प्रचेतसं स्मयन् प्रलब्धुं प्रणिपत्य नीचवत् जगाद मे देहि अधिराज संयुगम् ॥२७॥

तत्र	वहाँ
असुर लोकपालकं	असुर लोकोंके स्वामी
यादोगणानां	जलजीवोंके
ऋषभं	अधिपति
प्रचेतसं	वरुणको
उपलभ्य	पाकर,
प्रलब्धुं	(उनका) उपहास करनेके लिए
स्मयन्	हँसते हुए
नीचवत्	नीचके समान
प्रणिपत्य	प्रणाम करके
जगाद	बोला—
अधिराज	'राजाधिराज !
मे	मुझे
संयुगं देहि	युद्ध दीजिए ।' ॥२७

त्वं लोकपालोऽधिपतिर्बृहच्छ्रवा
वीर्यापहो दुर्मदवीरमानिनाम् ।

विजित्य लोकेऽखिलदैत्यदानवान्
यद्राजसूयेन पुरायजत्प्रभो ॥२८॥

त्वं लोकपालः अधिपतिः बृहत् श्रवा वीर्य अपहाः दुर्मद वीर मानिनां विजित्य लोके अखिल दैत्य दानवान् यत् राजसूयेन पुरा यजत् प्रभो ॥२८॥

प्रभो	प्रभो !		करनेवाले हैं,
त्वं लोकपालः	आप लोकपाल	**यत् पुरा**	क्योंकि पहिले
अधिपतिः	अधीश्वर तथा		(आपने)
बृहत् श्रवाः	बहुत यशस्वी हैं,	**अखिल दैत्य**	
वीर मानिनां	अपनेको वीर	**दानवान्**	सब दैत्य दानवोंको
	माननेवाले	**विजित्य**	जीतकर
दुर्मद	बहुत घमण्डी	**राजसूयेन**	(आपने) राजसूय
	(लोगोंके)		यज्ञ द्वारा ,
वीर्य अपहाः	पराक्रमको नष्ट	**अयजत्**	यजन किया था ।२८।

स एवमुत्सिक्तमदेन विद्विषा
दृढं प्रलब्धो भगवानपां पतिः ।
रोषं समुत्थं शमयन् स्वया धिया
व्यवोचदङ्गोपशमं गता वयम् ॥२९॥

स एवं उत्सिक्त मदेन विद्विषा दृढं प्रलब्धः भगवान् अपां पतिः रोषं समुत्थं शमयन् स्वया धिया व्यवोचत् अङ्ग उपशमं गता वयम् ॥२९॥

उत्सिक्त मदेन	मदोन्मत्त	**समुत्थं रोषं**	उत्पन्न क्रोधको
विद्विषा	शत्रुके द्वारा	**स्वया धिया**	अपनी बुद्धिसे
एवं	इस प्रकार	**शमयन्**	शान्त करते
दृढं प्रलब्धः	भारी उपहास किए	**व्यवोचत्**	बोले—
	जानेपर	**अङ्ग वयं**	'प्यारे हम
स भगवान्	उन ऐश्वर्यशाली	**उपशमं गताः**	शान्त वृत्ति स्वीकार
अपां पतिः	जलाधीश (वरुण) ने		कर चुके हैं ॥२९॥

पश्यामि नान्यं पुरुषात्पुरातनाद्
यः संयुगे त्वां रणमार्गकोविदम् ।

आराधयिष्यत्यसुरर्षभेहि तं
मनस्विनो यं गृणते भवादृशाः ॥३०॥

पश्यामि न अन्यं पुरुषात् पुरातनात् यः संयुगे त्वां रणमार्गं कोविदं आराधयिष्यति असुर ऋषभः हि तं मनस्विनः यं गृणते भवादृशाः ॥३०॥

असुर ऋषभः	असुर श्रेष्ठ !	**त्वां**	तुमको
पुरातनात्	सनातन	**आराधयिष्यति**	सन्तुष्ट करेगा ।
पुरुषात्	पुरुषको (छोड़कर)	**भवादृशाः**	आपके समान
अन्यं न	दूसरे (किसी)को नहीं	**मनस्विनः**	मनस्वी
पश्यामि	देखता हूँ,	**यं**	जिनकी
यः संयुगे	जो युद्धमें	**गृणते**	(वीरोंमें) गणना
रणमार्ग कोविदं	युद्ध पथमें निपुण		करते हैं ॥३०॥

तं वीरमारादभिपद्य विस्मयः
शयिष्यसे वीरशये श्वभिर्वृतः ।
यस्त्वद्विधानामसतां प्रशान्तये
रूपाणि धत्ते सदनुग्रहेच्छया ॥३१॥

तं वीरं आरात् अभिपद्य विस्मयः शयिष्यसे वीरशये श्वभिः वृतः यः त्वत् विधानां असतां प्रशान्तये रूपाणि धत्ते सत् अनुग्रह इच्छया ॥३१॥

तं वीरं	उन वीरको	**यः त्वत् विधानां**	जो तुम्हारे समान
आरात्	(अपने, समीप	**असतां**	दुष्टोंको
अभिपद्य	पाकर	**प्रशान्तये**	शान्त करनेके लिए
विस्मयः	(तुम्हारा) गर्व नष्ट		(तथा)
	हो जायगा,	**सत् अनुग्रह**	सत्पुरुषोंपर कृपा
श्वभिः वृतः	कुत्तोंसे घिरे	**इच्छया**	करनेके लिये
वीरशये	वीर शय्यापर	**रूपाणि धत्ते**	अवतार रूप धारण
शयिष्यसे	सो जाओगे,		करते हैं ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण वैयासिक्यां पारमहंस्यां
संहितायां तृतीयस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ।

अथ अष्टादशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

तदेवमाकर्ण्य जलेशभाषितं
महामनास्तद्विगणय्य दुर्मदः ।
हरेर्विदित्वा गतिमङ्ग नारदाद्
रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ॥१॥

तत् एवं आकर्ण्य जलेश भाषितं महामनाः तत् अविगणय्य दुर्मदः हरेः विदित्वा गतिं अङ्ग नारादात् रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ॥१॥

जलेश	वरुणकी	अविगणय्य	अवहेलना करके
भाषितं	बात	नारदात्	नारदजीसे
आकर्ण्य	सुनकर	हरेः गतिं	श्रीहरिकी स्थिति
महामनाः	उत्साहमें भरा	विदित्वा	जानकर
दुर्मदः	मदान्ध	त्वरान्वितः	शीघ्रतापूर्वक
तत्	उस (वरुणकी बात) की	रसातलं	रसातलमें
		निर्विविशे	प्रवेश किया ॥१॥

ददर्श तत्राभिजितं धराधरं
प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया ।
मुष्णन्तमक्ष्णा स्वरुचोऽरुणश्रिया
जहास चाहो वनगोचरो मृगः ॥२॥

ददर्श तत्र अभिजितं धराधरं प्रोन्नीयमानं अर्वानं अग्र दंष्ट्रया मुष्णन्तं अक्ष्णा स्वरुचः अरुणश्रिया जहास च अहो वनगोचरः मृगः ॥२॥

तत्र	वहाँ	धराधरं	पृथ्वीके धारक (वाराह भगवान, को
अभिजितं	सर्वत्र विजयी		

अग्रदंष्ट्र्या	दाढ़ोंकी नोकपर
अर्वानं	पृथ्वीको
प्रोन्नीयमानं	उठाकर ऊपर ले जाते,
अरुणश्रिया	लालिमाकी शोभावाले
अक्ष्णा	आँखोंसे
स्वरुचः	(उस दैत्यकी) अपनी कान्तिको
मुष्णन्तं	छीनते हुए
ददर्श	देखा ।
जहास च	और हँसा—
अहो	अरे,
वनगोचरः	वनमें रहनेवाला
मृगः	पशु (यहाँ कैसे आ गया) ॥२॥

आहैनमेह्यज्ञ महीं विमुञ्च नो
रसौकसां विश्वसृजेयमर्पिता ।
न स्वस्ति यास्यस्यनया ममेक्षतः
सुराधमासादितसूकराकृते ॥३॥

आह एनं मे एहि अज्ञ महीं विमुञ्च नः रसौकसां विश्वसृजः इयं अर्पिता न स्वस्ति यास्यसि अनया मम ईक्षतः सुराधम आसादित सूकर आकृते ॥३॥

एनं आह	इन (वाराह) से बोला—
मे एहि	'मेरे पास आ,
अज्ञ	मूर्ख !
महीं	पृथ्वीको
विमुञ्च	छोड़ दे ।
विश्वसृजाः	विश्वस्रष्टाने
नः रसौकसां	हम रसातल वासियोंको
इयं	इसे
अर्पिता	दे दिया है ।
मम ईक्षतः	मेरे देखते
सूकर आकृते	सूअरका रूप
आसादित	बनाये
सुराधम	(तू) अधम देवता
अनया	इसके साथ
स्वस्ति	कुशलपूर्वक
न यास्यसि	नहीं जा सकेगा ॥३॥

त्वं नः सपत्नैरभवाय किं भृतो
यो मायया हन्त्यसुरान् परोक्षजित् ।

त्वां योगमायाबलमल्पपौरुषं
संस्थाप्य मूढ प्रमृजे सुहृच्छुचः ॥४॥

त्वं नः सपत्नैः अभवाय किं भृतः यः मायया हन्ति असुरान् परोक्षजित्
त्वां योगमायाबलं अल्प पौरुषं संस्थाप्य मूढ़ प्रमृजे सुहृत् शुचः ॥४॥

किं	क्या	**हन्ति**	मारता है।
नः अभवाय	हमारा नाश करनेके लिए	**योगमायाबलं**	योगमायाकी शक्तिवाले
सपत्नैः	हमारे शत्रुओंने	**अल्प पौरुषं**	थोड़े पौरुषवाले
त्वं भृतः	तुझे पाला है ?	**मूढ त्वां**	मूर्ख, तुझे
यः परोक्षजित्	जो छिपकर जीतनेवाला	**संस्थाप्य**	मारकर
मायया	कपटपूर्वक	**सुहृत**	(अपने)सम्बन्धियोंके
असुरान्	असुरोंको	**शुचः**	आँसू
		प्रमृजामि	पोंछूंगा ॥४॥

त्वयि संस्थिते गदया शीर्णशीर्ष-
ण्यस्मद्भुजच्युतया ये च तुभ्यम् ।
बलिं हरन्त्यृषयो ये च देवाः
स्वयं सर्वे न भविष्यन्त्यमूलाः ॥५॥

त्वयि संस्थिते गदया शीर्ण शीर्षणि अस्मत् भुज च्युतया ये च तुभ्यं
बलिं हरन्ति ऋषयः ये च देवाः स्वयं सर्वे न भविष्यन्ति अमूलाः ॥५॥

अस्मत्	मेरी	**ऋषयः**	ऋषिगण
भुज च्युतया	भुजासे गिरी (मारी गयी)	**ये च देवाः**	और जो देवता
		तुभ्य	तुझे
गदया	गदासे	**बलिं हरन्ति**	उपहार देते हैं
शीर्षणि	सिर	**अमूलाः**	निर्मूल होनेसे
शीर्ण	फट जानेसे	**सर्वे**	वे सब
त्वयि संस्थिते	तेरे मर जानेपर	**स्वयं**	स्वतः
ये च	जो भी	**न भविष्यन्ति**	नहीं रह जायँगे ॥५॥

स तुद्यमानोऽरिदुरुक्ततोमरै-
र्दंष्ट्राग्रगां गामुपलक्ष्य भीताम् ।
तोदं मृषन्निरगादम्बुमध्याद्
ग्राहाहतः सकरेणुर्यथेभः ॥६॥

स तुद्यमानः अरि दुरुक्ति तोमरैः दंष्ट्राग्रगां गां उपलक्ष्य भीतां तोदं मृषन् निरगात् अम्बु मध्यात् ग्राह आहतः सकरेणुः यथा इभः ॥६॥

अरि	शत्रुकी
दुरुक्ति	दुर्वचन रूपी
तोमरैः	वाणोंसे
तुद्यमानः	विद्ध होते हुए
स	वे (वाराह भगवान्)
दंष्ट्राग्रगां	दाढ़ोंकी नोकपर स्थित
भीतां गां	डरी हुई पृथ्वीको
उपलक्ष्य	देखकर
यथा	जैसे
ग्राह आहतः	मगरसे चोट खाया
इभः	हाथी
सकरेणुः	हथिनीके साथ (निकले)
तोदं मृषन्	(वाणीकी) चोट सहते हुए
अम्बु मध्यात्	जलमें-से
निरगात्	निकल आये ॥६॥

तं निःसरन्तं सलिलादनुद्रुतो
हिरण्यकेशो द्विरदं यथा झषः ।
करालदंष्ट्रोऽशनिनिःस्वनोऽब्रवीद्
गतह्रियां किं त्वसतां विगर्हितम् ॥७॥

तं निःसरन्तं सलिलात् अनुद्रुतः हिरण्य केशः द्विरदं यथा झषः कराल दंष्ट्रः अशनि निःस्वनः अब्रवीत् गत ह्रियां किं तु असतां विगर्हितम् ॥७॥

सलिलात्	जलसे
तं निःसरन्तं	उनके निकलते समय
यथा झषः	जैसे मगर
द्विरदं	हाथीका(पीछा करे)
अनुद्रुतः	पीछे दौड़ता
हिरण्य केशः	पीले केश (तथा)
कराल दंष्ट्रः	भयानक दाँतोंवाला (दैत्य)
अशनि निःस्वनः	वज्रके समान कड़ककर
अब्रवीत्	बोला—
गत ह्रियां	'निर्लज्ज हो गया है?
असतां	असत्पुरुषोंके लिए
विगर्हितं	निन्दित कर्म
किं	क्या है ।' ॥७॥

स गामुदस्तात्सलिलस्य गोचरे
विन्यस्य तस्यामदधात्स्वसत्त्वम् ।
अभिष्टुतो विश्वसृजा प्रसूनै-
रापूर्यमाणो विबुधैः पश्यतोऽरेः ॥८॥

स गां उदस्तात् सलिलस्य गोचरे विन्यस्य तस्यां अदधात् स्व सत्त्वं अभिष्टुतः विश्वसृजा प्रसूनैः आपूर्यमाणः विबुधैः पश्यतः अरेः ॥८॥

अरेः	शत्रुके
पश्यतः	देखते (सामने) ही
स	उन भगवानने
सलिलस्य	जलके
उदस्तात्	ऊपर लाकर
गां	पृथ्वीको
गोचरे	व्यवहार योग्य स्थानमें
विन्यस्य	रखकर
तस्यां	उसमें
स्व सत्त्वं	अपनी (आधार) शक्ति
अदधात्	धारण करा दी ।
विश्वसृजा	ब्रह्माजी द्वारा
अभिष्टुतः	स्तुति किये गये,
विबुधैः	देवताओंने
प्रसूनैः	पुष्पोंकी
आपूर्यमाणः	वर्षा की ॥८॥

परानुषक्तं तपनीयोपकल्पं
महागदं काञ्चनचित्रदंशम् ।
मर्माण्यभीक्ष्णं प्रतुदन्तं दुरुक्तैः
प्रचण्डमन्युः प्रहसंस्तं बभाषे ॥९॥

पर अनुषक्तं तपनीय उपकल्पं महागदं काञ्चन चित्र दंशं मर्माणि अभीक्ष्णं प्रतुदन्तं दुरुक्तैः प्रचण्ड मन्युः प्रहसन् तं वभाषे ॥९॥

तपनीय उपकल्पं	सोनेके आभूषण पहिने,
काञ्चन	स्वर्णका
चित्र दंशम्	विचित्र कवच धारण किए,
महागदं	भारी गदा लिये,
अभीक्ष्णं	निरन्तर
दुरुक्तैः	दुर्वचनोंसे
मर्माणि	हृदयको
प्रतुदन्तं	नोचते
अनुषक्तं	पीछे लगे
परं	शत्रुसे

तं प्रहसन्	उसकी हँसी उड़ाते	**प्रचण्ड मन्युः बभाषे**	प्रचण्ड क्रोधसे बोले ॥९॥

*वाराह उवाच**–

सत्यं वयं भो वनगोचरा मृगा
युष्मद्विधान्मृगये ग्रामसिंहान् ।
न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीरा
विकत्थनं तव गृह्णन्त्यभद्र ॥१०॥

सत्यं वयं भो वनगोचराः मृगाः युष्मत् विधान् मृगये ग्रामसिंहान् न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीरा विकत्थनं तव गृह्णन्ति अभद्र ॥१०॥

भो	अरे,	**अभद्र**	दुष्ट !
सत्यं वयं	सचमुच हम	**वीरा**	वीर पुरुष
वनगोचराः	वनमें रहनेवाले	**मृत्युपाशैः**	मृत्युके पाशमें
मृगाः	पशु हैं,	**प्रतिमुक्तस्य**	जकड़े
युष्मत् विधान्	तुम्हारे समान	**तव विकत्थनं**	तेरी बकवादपर
ग्रामसिंहान्	कुत्तोंको	**न गृह्णन्ति**	ध्यान नहीं देते ॥१०॥
मृगये	ढूँढ़ते हैं ।		

एते वयं न्यासहरा रसौकसां
गतह्रियो गदया द्रावितास्ते ।
तिष्ठामहेऽथापि कथञ्चिदाजौ
स्थेयं क्व यामो बलिनोत्पाद्य वैरम् ॥११॥

एते वयं न्यास हरा रसौकसां गतह्रियः गदया द्राविताः ते तिष्ठामहे अथ अपि कथञ्चित् आजौ स्थेयं क्व यामः बलिना उत्पाद्य वैरम् ॥११॥

एते वयं	यह हम	**न्यास हरा**	धरोहर चुरानेवाले,
रसौकसां	रसातल वासियोंकी	**गतह्रियः**	निर्लज्ज,

---

* यहाँ अन्य प्रतियोंमें 'श्रीभगवानुवाच' है ।

ते गदया	तेरी गदासे
द्राविताः	भगाये गये,
आजौ	मायासे
स्थेयं	रुकनेकी शक्तिसे
	(रहित हैं)
अथ अपि	फिर भी
कथंचित्	किसी प्रकार
तिष्ठामहे	रुकते हैं,
बलिना	(तुम्हारे समान)
	बलवानसे
वैरं उत्पाद्य	शत्रुता उत्पन्न करके
क्व यामः	कहाँ जायँगे ॥११॥

त्वं पद्रथानां किल यूथपाधिपो
घटस्व नोऽस्वस्तय आश्वनूहः ।
संस्थाप्य चास्मान् प्रमृजाश्रु स्वकानां
यः स्वां प्रतिज्ञां नातिपिपर्त्यसभ्यः ॥१२॥

त्वं पद्रथानां किल यूथप अधिपः घटस्व नः अस्वस्तय आशु अनूहः संस्थाप्य च अस्मान् प्रमृज अश्रु स्वकानां यः स्वां प्रतिज्ञां न अति पिपर्ति असभ्यः ॥१२॥

त्वं किल	तुम निश्चय
पद्रथानां	पैदल वीरोंके
यूथप	यूथपतियोंके
अधिपः	अध्यक्ष हो,
आशु	(अतः) शीघ्र
अनूहः	उधेड़बुन छोड़कर
नः अस्वस्तय	हमारे अनिष्टका
घटस्व च	प्रयत्न करो और
अस्मान्	हमको
संस्थाप्य	मार कर
स्वकानां	अपनोंके
अश्रु प्रमृज	आँसू पोंछो ।
यः स्वां प्रतिज्ञां	जो अपनी प्रतिज्ञाको
न अति पिपर्ति	भली प्रकार पालन नहीं करता,
असभ्यः	(वह) असभ्य है ॥१२॥

मैत्रेय उवाच-

सोऽधिक्षिप्तो भगवता प्रलब्धश्च रुषा भृशम् ।
आजहारोल्बणं क्रोधं क्रीड्यमानोऽहिराडिव ॥१३॥

सः अधिक्षिप्तः भगवता प्रलब्धः च रुषा भृशं आजहार उल्बणं क्रोधं क्रीड्यमानः अहिराट् इव ॥१३॥

सः	वह	**क्रीड्यमानः**	(पकड़कर)
भगवता	भगवान्‌के द्वारा		खेलते हुए
भृशं अधिक्षिप्तः	बहुत आक्षेप करनेपर	**अहिराट् इव**	सर्पराजके समान
च प्रलब्धः	तथा तिरस्कार	**उल्बणं क्रोधं**	भयंकर क्रोधमें
	किए जानेपर	**आजहार**	आ गया ॥१३॥

सृजन्नमर्षितः श्वासान्मन्युप्रचलितेन्द्रियः ।
आसाद्य तरसा दैत्यो गदयाभ्यहनद्धरिम् ॥१४॥

सृजन् अमर्षितः श्वासान् मन्यु प्रचलित इन्द्रियः आसाद्य तरसा दैत्यः गदया अभ्य हनत् हरिम् ॥१४॥

अमर्षितः	खीझकर	**तरसा**	वेगपूर्वक
श्वासान्	(लम्बी) श्वास	**आसाद्य**	समीप आकर
सृजन्	लेता,	**गदया**	गदासे
मन्युः	क्रोधसे	**हरिं**	भगवान्
प्रचलित	क्षुब्ध		(वाराह) को
इन्द्रियः	इन्द्रिय	**अभ्य हनत्**	मारा ॥१४॥
दैत्यः	दैत्यने		

भगवांस्तु गदावेगं विसृष्टं रिपुणोरसि ।
अवञ्चयत्तिरश्चीनो योगारूढ इवान्तकम् ॥१५॥

भगवान् तु गदावेगं विसृष्टं रिपुणा उरसि अवञ्चयत् तिरश्चीनः योग आरूढ इव अन्तकम् ॥१५॥

भगवान् तु	भगवानने तो	**योग आरूढ**	योग (समाधि) में
रिपुणा	शत्रु द्वारा		स्थित (जैसे)
उरसि	छातीपर	**अन्तकं इव**	मृत्युको (बचा लेता
विसृष्टं	मारी गयी		है) इस प्रकार
गदावेगं	गदाके वेगको	**तिरश्चीनः**	तिरछे होकर
		अवञ्चयत्	बचा लिया ॥१५॥

पुनर्गदां स्वामादाय भ्रामयन्तमभीक्ष्णशः ।
अभ्यधावद्धरिः क्रुद्धः संरम्भाद्दष्टदच्छदम् ॥१६॥

पुनः गदां स्वां आदाय भ्रामयन्तं अभीक्ष्णशः अभ्यधावत् हरिः क्रुद्धः संरम्भ दष्ट दच्छदम् ॥१६॥

पुनः स्वां गदां	फिर अपनी गदा	**क्रुद्धः**	क्रोधित होकर
आदाय	लेकर	**संरम्भ**	आवेशसे
अभीक्ष्णशः	बराबर	**दशनच्छदः**	ओष्ठ
भ्रामयन्तं	(उसे) घुमाते हुए	**दष्टः**	काटते हुए
हरिः	भगवान् वाराह	**अभ्यधावत्**	दौड़े ॥१६॥

ततश्च गदयारातिं दक्षिणस्यां भ्रुवि प्रभुः ।
आजघ्ने स तु तां सौम्य गदया कोविदोऽहनत् ॥१७॥

ततः च गदया आरातिं दक्षिणस्यां भ्रुवि प्रभुः आजघ्ने स तु तां सौम्य गदया कोविदः अहनत् ॥१७॥

सौम्य	शान्त विदुर !	**स तु**	वह तो
ततः च	फिर तो	**कोविदः**	(गदायुद्धमें)
प्रभुः	समर्थ भगवान्ने		चतुर था
गदया	गदासे	**तां गदया**	उन (भगवान) पर
आरातिं	शत्रुकी		गदासे
दक्षिणस्यां भ्रुवि	दाहिनी भौंहपर	**अहनत्**	आघात किया ॥१७॥
आजघ्ने	मारा		

एवं गदाभ्या गुर्वीभ्यां हर्यक्षो हरिरेव च ।
जिगीषया सुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥१८॥

एवं गदाभ्यां गुर्वीभ्यां हर्यक्षः हरिः एव च जिगीषया सुसंरब्धाः अन्योन्यं अभिजघ्नतुः ॥१८॥

एवं	इस प्रकार	**जिगीषया**	जीतनेकी इच्छासे
गुर्वीभ्यां	भारी	**सुसंरब्धा**	अत्यन्त क्रोधमें भरे
गदाभ्यां	गदासे	**अन्योन्यं**	एक दूसरेको
हर्यक्षः	हिरण्याक्ष	**अभिजघ्नतुः**	प्रहार करने
च हरिः एव	और भगवान भी		लगे ॥१८॥

तयोः स्पृधोस्तिग्मगदाहताङ्ग्योः
क्षतास्रवघ्राणविवृद्धमन्यवोः ।
विचित्रमार्गांश्चरतोर्जिगीषया
व्यभादिलायामिव शुष्मिणोर्मृधः ॥१९॥

तयोः स्पृधोः तिग्मगदा आहत अङ्ग्योः क्षत आस्रव घ्राण विवृद्ध मन्योः विचित्र मार्गांत् चरतः जिगीषया व्यभात् इलायां इव शुष्मिणोः मृधः ॥१९॥

स्पृधोः	स्पर्धा (होड़) करनेवाले	**विचित्र मार्गात्**	विचित्र पैंतरे
तयोः	उन दोनोंके	**चरतः**	लेते
तिग्मगदा	तीक्ष्ण गदा प्रहारसे	**जिगीषया**	जीतनेकी इच्छासे,
आहत अंगयोः	घायल शरीरके	**इलायां**	गायके लिए
क्षत आस्रव	घावोंसे बहते रक्तकी	**शुष्मिणोः**	साँड़ोंके समान
घ्राण विवृद्ध	गन्धसे बढ़े	**मृधः**	युद्ध
मन्योः	क्रोधसे	**व्यभात्**	हुआ ॥१९॥

दैत्यस्य यज्ञावयवस्य मायया-
गृहीतवाराहतनोर्महात्मनः ।
कौरव्य महयां द्विषतोर्विमर्दनं
दिदृक्षुरागादृषिभिर्वृतः स्वराट् ॥२०॥

दैत्यस्य यज्ञ अवयवस्य माया गृहीत वाराह तनोः महात्मनः कौरव्य महयां द्विषतोः विमर्दनं दिदृक्षुः आगात् ऋषिभिः वृतः स्वराट् ॥२०॥

कौरव्य	विदुर !	**यज्ञ अवयवस्य**	यज्ञ विग्रह भगवानका
माया	मायासे		
वाराह तनोः	वाराह शरीर	**दैत्यस्य**	दैत्यके साथ
गृहीत	धारण किये	**महयां**	पृथ्वीके लिए
महात्मनः	परमात्मा	**द्विषतोः**	द्वेष बाँधकर

विमर्दनं	होते संघर्षको	**स्वराट्**	ब्रह्माजी
दिदृक्षुः	देखनेकी इच्छासे,	**आगात्**	आये ॥२०॥
ऋषिभिः वृतः	ऋषियोंसे घिरे		

आसन्नशौण्डीरमपेतसाध्वसं
कृतप्रतीकारमहार्यविक्रमम् ।
विलक्ष्य दैत्यं भगवान् सहस्रणी-
र्जगाद नारायणमादिसूकरम् ॥२१॥

आसन्न शौण्डीरं अपेत साध्वसं कृत प्रतिकारं अहार्य विक्रमं विलक्ष्य दैत्यं भगवान् सहस्रणीः जगाद नारायणं आदिसूकरं ॥२१॥

शौण्डीरं	शूरवीर	**सहस्रणीः**	सहस्रों ऋषियों सहित आये
अपेत साध्वसं	निर्भय		
प्रतिकारं कृतं	प्रत्याघात करके	**भगवान्**	भगवान् ब्रह्माजी
अहार्यं विक्रमं	अजेय पराक्रम	**आदिसूकरं**	आदि वाराह
दैत्यं	दैत्यको	**नारायणं**	नारायणसे
आसन्नं	समीप ही	**जगाद**	बोले ॥२१॥
विलक्ष्य	देखकर		

ब्रह्मोवाच-

एष ते देव देवानामङ्घ्रिमूलमुपेयुषाम् ॥
विप्राणां सौरभेयीणां भूतानामप्यनागसाम् ॥२२॥

एष ते देव देवानां अङ्घ्रि मूलं उपेयुषां विप्राणां सौरभेयीनां भूतानां अपि अनागसाम् ॥२२॥

देव	देव !	**विप्राणां**	ब्राह्मणों
एष ते	यह आपके	**सौरभेयीनां**	गायों
अङ्घ्रि मूलं	चरणों (की)	**अनागसां**	निरपराध
उपेयुषां	(शरण) में आनेवालों,	**भूतानां अपि**	प्राणियोंका भी ॥२२॥
देवानां	देवताओं		

आगस्कृद्भयकृद्दुष्कृदस्मद्राद्धवरोऽसुरः ।
अन्वेषन्नप्रतिरथो लोकानटति कण्टकः ॥२३॥

आगस्कृत् भयकृत् दुष्कृत् अस्मत् राद्ध वरः असुरः अन्वेषन् अप्रतिरथः लोकान् अटति कण्टकः ॥२३॥

आगस्कृत्	अपराध करनेवाला,	**अप्रतिरथः**	अपनी जोड़का योधा न होनेसे
भयकृत्	डरानेवाला,	**अन्वेषन्**	उसे ढूंढ़ता
दुष्कृत्	कुकर्मी	**कण्टकः**	कांटा बना
असुरः	असुर	**लोकान् अटति**	लोकोंमें घूमता है ॥२३॥
अस्मत्	मुझसे		
वरः राद्धः	वरदान पाकर		

मैनं मायाविनं दृप्तं निरङ्कुशमसत्तमम् ।
आक्रीड बालवद्देव यथाऽऽशीविषमुत्थितम् ॥२४॥

मा एनं मायाविनं दीप्तं निरङ्कुशं असत्तमं आक्रीड बालवत् देव यथा आशीविषं उत्थितम् ॥२४॥

देव	देव !	**असत्तमं**	अत्यन्त दुष्ट (के साथ)
एनं	इस	**उत्थितं**	फण उठाये
मायाविनं	मायावी	**आशीविषं**	विषैले सर्पसे
दीप्तं	घमण्डी	**बालवत्**	बालकके समान
निरङ्कुशं	उच्छृंखल	**मा आक्रीड**	मत खेलिये ॥२४॥

न यावदेष वर्धेत स्वां वेलां प्राप्य दारुणः ।
स्वां देव मायामास्थाय तावज्जहि अघं अच्युत ॥२५॥

न यावत् एव वर्धेत स्वां वेलां प्राप्य दारुणः स्वां देव मायां आस्थाय तावत् जहि अघं अच्युत ॥२५॥

अच्युत	अच्युत !	**स्वां वेलां**	अपनी (शक्ति वृद्धिकी) बेला
दारुणः	(यह) दारुण दैत्य	**प्राप्य**	पाकर
यावत् एव	जब तक कि		

वर्धेत न	अधिक बलवान नहीं हो जाता	**स्वां देव मायां आस्थाय**	अपनी योगमायाका अवलम्बन करके
तावत्	तभी तक (उससे पहिले ही)	**अघं जहि**	(इस) पापीको मार दें ॥२५॥

एषा घोरतमा सन्ध्या लोकच्छम्बट्करी प्रभो ।
उपसर्पति सर्वात्मन् सुराणां जयमावह ॥२६॥

एषा घोरतमा सन्ध्या लोकः शम्बट्करी प्रभो उपसर्पति सर्वात्मन् सुराणां जयं आवह ॥२६॥

प्रभो	प्रभो !	**उपसर्पति**	आ रही है,
सर्वात्मन्	सर्वात्मा !	**सुराणां**	(उससे पूर्व) देवताओंको
एष लोक	यह लोकोंका	**जयं आवह**	विजय दीजिए॥२६॥
शम्बट्करी	संहार करनेवाली		
सन्ध्या	सन्ध्या		

अधुनैषोऽभिजिन्नाम योगो मौहूर्तिको ह्यगात् ।
शिवाय नस्त्वं सुहृदामाशु निस्तर दुस्तरम् ॥२७॥

अधुना एषः अभिजित् नाम योगः मौहूर्तिकः अगात् शिवाय नः त्वं सुहृदां आशु निस्तर दुस्तरम् ॥२७॥

अधुना एषः	इस समय यह	**शिवाय**	कल्याणके लिए
अभिजित् नाम	अभिजित् नामका	**त्वं आशु**	आप शीघ्र
मौहूर्तिकः	मंगल मुहूर्तका	**दुस्तरं**	(इस) दुर्जयसे
योगः अगात्	योग आगया है,	**निस्तर**	निपट लीजिए ॥२७॥
नः सुहृदां	हम सुहृदोंके		

दिष्ट्या त्वां विहितं मृत्युमयमासादितः स्वयम् ।
विक्रम्यैनं मृधे हत्वा लोकानाधेहि शर्मणि ॥२८॥

दिष्ट्या त्वां विहितं मृत्यं अयं आसादितः स्वयं विक्रम्य एनं मृधे हत्वा लोकान् आधेहि शर्मणि ॥२८॥

त्वां	आप (के हाथ) से
मृत्युं	(इसकी) मृत्यु
विहितं	वदी है,
दिष्ट्या	(हमारे) सौभाग्यसे
स्वयं	(यह) स्वयं
आसादितः	(आपके पास) आ पहुँचा,
विक्रम्य	पराक्रम करके
मृधे	युद्धमें
एनं हत्वा	इसे मारकर
लोकान्	लोकोंको
शर्मणि	शान्ति
आधेहि	प्रदान कीजिए॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः।

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

अवधार्य विरिञ्चस्य निर्व्यलीकामृतं वचः ।
प्रहस्य प्रेमगर्भेण तदपाङ्गेन सोऽग्रहीत् ॥१॥

अवधार्य विरिञ्चस्य निर्व्यलीकं अमृतं वचः प्रहस्य प्रेमगर्भेण तत् अपाङ्गेन सः अग्रहीत् ॥१॥

सः	उन (भगवान्) ने	**प्रहस्य तत्**	हँसकर उसे
विरिञ्चस्य	ब्रह्माजीकी	**प्रेमगर्भेण**	प्रेम भरी
निर्व्यलीकं	निष्कपट	**अपाङ्गेन**	तिरछी चितवनसे
अमृतं वचः	अमृतमय वाणी	**अग्रहीत्**	ग्रहण (स्वीकार)
अवधार्य	सुनकर		कर लिया ॥१॥

ततः सपत्नं मुखतश्चरन्तमकुतोभयम् ।
जघानोत्पत्य गदया हनावसुरमक्षजः ॥२॥

ततः सपत्नं मुखतः चरन्तं अकुतोभयं जघान उत्पत्य गदया हनाः असुरं अक्षजः ॥२॥

ततः	तदनन्तर	**सपत्नं**	शत्रुकी
अक्षजः	भगवान्ने	**हनाः**	ठुड्डीपर
मुखतः	सामने ही	**उत्पत्य**	कूदकर
अकुतोभयं	निर्भय	**गदया**	गदासे
चरन्तं	घूमते	**जघान**	मारा ॥२॥
असुरं	दैत्य		

सा हता तेन गदया विहता भगवत्करात् ।
विघूर्णितापतद्रेजे तदद्भुतमिवाभवत् ॥३॥

सा हता तेन गदया विहता भगवत् करात् विघूर्णिता अपतत् रेजे तत् अद्भुतं इव अभवत् ॥३॥

सा	वह (भगवानकी)	**विघूर्णिता**	घूमती हुई
हता	मारी गयी (गदा)	**अपतत् रेजे**	गिरती सुशोभित हुई।
तेन गदया	उस (दैत्य) की गदासे (टकराकर)	**तत्**	यह
भगवत् करात्	भगवानके हाथसे	**अद्भुतं इव**	आश्चर्य-सी (घटना)
विहता	छूटकर	**अभवत्**	हुई ॥३॥

स तदा लब्धतीर्थोऽपि न बबाधे निरायुधम् ।
मानयन् स मृधे धर्मं विष्वक्सेनं प्रकोपयन् ॥४॥

स तदा लब्धतीर्थः अपि न बबाधे निरायुधं मानयन् स मृधे धर्मं विष्वक्सेनं प्रकोपयन् ॥४॥

तदा	उस समय	**स मृधे धर्मं**	उस युद्धके धर्मको
लब्धतीर्थः अपि	अवसर पानेपर भी	**मानयन्**	मानकर
विष्वक्सेनं	भगवानको	**निरायुधं**	आयुध रहित (भगवानपर)
प्रकोपयन्	क्रोधित करनेके लिए	**बबाधे न**	चोट नहीं की ॥४॥
स	उस (दैत्य) ने		

गदायामपविद्धायां हाहाकारे विनिर्गते ।
मानयामास तद्धर्मं सुनाभं चास्मरद्विभुः ॥५॥

गदायां अपविद्धायां हाहाकारे विनिर्गते मानयामास तत् धर्मं सुनाभं च अस्मरत् विभुः ॥५॥

गदायां	गदाके	**विभुः**	भगवानने
अपविद्धायां	टकराकर गिर जानेपर	**तत् धर्मं**	उस (दैत्य) के धर्मं व्यवहारकी
हाहाकारे	(देवताओंका) हाहाकार	**मानयामास**	प्रशंसा की
विनिर्गते	बन्द हो जानेपर	**च सुनाभं**	और चक्रका
		अस्मरत्	स्मरण किया ॥५॥

तं व्यग्रचक्रं दितिपुत्राधमेन
स्वपार्षदमुख्येन विषज्जमानम् ।
चित्रा वाचोऽतद्विदां खेचराणां
तत्रास्मासन्न स्वस्ति तेऽमुं जहीति ॥६॥

तं व्यग्र चक्रं दितिपुत्र अधमेन स्वपार्षद मुख्येन विषज्जमानं चित्रा वाचः अतद्विदां खेचराणां तत्र अस्मासन् स्वस्ति ते अमुं जहि इति ॥६॥

व्यग्र चक्रं	चक्र घुमाते,
अधमेन	अधम
दितिपुत्र	दैत्य,
स्वपार्षद मुख्येन	अपने मुख्य पार्षदसे
विषज्जमानं	क्रीड़ा करते
तं	उन (भगवान) से
अतद्विदां	उनके प्रभावको न जाननेवाले
खेचराणां	देवताओंकी
इति	इस प्रकारकी
चित्रा वाचः	विचित्र वचन
तत्र अस्मासन्	वहाँ सुनायी देनेलगी
स्वस्ति ते	आपका कल्याण हो,
अमुं जहि	इसे मार दीजिये ॥६॥

स तं निशाम्यात्तरथाङ्गमग्रतो
व्यवस्थितं पद्मपलाशलोचनम् ।
विलोक्य चामर्षपरिप्लुतेन्द्रियो
रुषा स्वदन्तच्छदमादशच्छ्वसन् ॥७॥

स तं निशम्य* आत्त रथाङ्गं अग्रतः व्यवस्थितं पद्म पलाश लोचनं विलोक्य च अमर्ष परिप्लुत इन्द्रियः रुषा स्व दन्तच्छदं आदशत् श्वसन् ॥७॥

स	उस (दैत्य) ने
तं	उस (देववाणी) को
निशम्य च	सुनकर तथा
आत्त रथाङ्ग	चक्र लिए
पद्म पलाश लोचनं	कमलदल लोचन (भगवान) को
अग्रतः	(अपने) आगे

---

* यहाँ मूलमें 'निशाम्य' पाठ है, किन्तु निशाम्यका अर्थ देखकर है और श्लोकमें 'विलोक्य' है, अतः अर्थपर ध्यान देनेसे यहाँ 'निशम्य' पाठ समीचीन लगता है ।

व्यवस्थितं	खड़े	**रुषा**	गुस्सेसे
विलोक्य	देखकर	**श्वसन्**	(लम्बी) श्वास लेते
अमर्ष	क्रोधसे	**स्व दन्तच्छदं**	अपने ओष्ठको
परिप्लुत इन्द्रियः	व्याकुलेन्द्रिय होकर	**आदशत्**	काट लिया ॥७॥

करालदंष्ट्रश्चक्षुर्भ्यां सञ्चक्षाणो दहन्निव ।
अभिप्लुत्य स्वगदया हतोऽसीत्याहनद्धरिम् ॥८॥

करालदंष्ट्रः चक्षुर्भ्यां सञ्चक्षाणः दहन् इव अभिप्लुत्य स्वगदया हतः आसीत् आहनत् हरिम् ॥८॥

करालदंष्ट्रः	भयानक दाढ़ोंवाला (दैत्य)	**अभिप्लुत्य**	उछलकर
चक्षुर्भ्यांः	नेत्रोंसे	**स्वगदया**	अपनी गदासे
दहन् इव	जला देगा, इस प्रकार	**'हतः आसीत्'**	'अब मारा गया' (यह कहता)
सञ्चक्षाणः	घूरता हुआ,	**हरिं**	भगवानको
		आहनत्	मारा ॥८॥

पदा सव्येन तां साधो भगवान् यज्ञसूकरः ।
लीलया मिषतः शत्रोः प्राहरद्वातरंहसम् ॥९॥

पदा सव्येन तां साधो भगवान् यज्ञ सूकरः लीलया मिषतः शत्रोः प्राहरत् वात रंहसा ॥९॥

साधो	साधु विदुर !	**लीलया**	खेलकी भाँति
भगवान्	भगवान	**वात रंहसा**	वायु वेगसे (आती)
यज्ञ सूकरः	यज्ञ वाराहने	**तां**	उस (गदा) पर
शत्रोः	शत्रुके	**सव्येन पदा**	बायें पैरसे
मिषतः	देखते हुए	**प्राहरत्**	प्रहार किया ॥९॥

आह चायुधमाधत्स्व घटस्व त्वं जिगीषसि ।
इत्युक्तः स तदा भूयस्ताडयन् व्यनदद् भृशम् ॥१०॥

आह च आयुधं आधत्स्व घटस्व त्वं जिगीषसि इति उक्तः स तदा भूयः ताडयन् व्यनदत् भृशम् ॥१०॥

आह च	और बोले	**इति उक्तः**	ऐसा कहे जानेपर
आयुधं	'हथियार	**तदा स**	तब उसने
आधत्स्व	उठालो,	**भूयः**	फिरसे
त्वं	तुम	**ताडयन्**	प्रहार करते हुए
जिगीषसि	(मुझे) जीतना चाहते हो तो	**भृशं**	बार-बार
		व्यनदत्	गर्जना करने
घटस्व	प्रयत्न करो ।'		लगा ॥१०॥

तां स आपततीं वीक्ष्य भगवान् समवस्थितः ।
जग्राह लीलया प्राप्तां गरुत्मानिव पन्नगीम् ॥११॥

तां स आपततीं वीक्ष्य भगवान् समवस्थितः जग्राह लीलया प्राप्तां गरुत्मान् इव पन्नगीम् ॥११॥

स	उन	**लीलया**	खेलमें ही
भगवान्	भगवानने	**प्राप्तां**	समीप आयी (गदा) को
तां	उस (गदा) को		
आपततीं	गिरती	**गरुत्मान्**	गरुड़ द्वारा
वीक्ष्य	देखकर	**पन्नगीं इव**	सर्पिणीकी भाँति
समवस्थितः	स्थिर खड़े रहकर	**जग्राह**	पकड़ लिया ॥११॥

स्वपौरुषे प्रतिहते हतमानो महासुरः ।
नैच्छद्गदां दीयमानां हरिणा विगतप्रभः ॥१२॥

स्व पौरुषे प्रतिहते हत मानः महा असुरः न ऐच्छत् गदां दीयमानां हरिणा विगत प्रभः ॥१२॥

स्व पौरुषे	अपने उद्यमके	**हरिणा**	भगवान द्वारा
प्रतिहते	नष्ट होनेसे	**दीयमानां**	दी जाती
महा असुरः	उस महादैत्यका	**गदां**	गदाको
मानः हत	अभिमान नष्ट हो गया,	**न ऐच्छत्**	नहीं लेना चाहा ॥१२॥
प्रभः विगतः	तेज भी नष्ट हो गया,		

जग्राह त्रिशिखं शूलं ज्वलज्ज्वलनलोलुपम् ।
यज्ञाय धृतरूपाय विप्रायाभिचरन् यथा ॥१३॥

जग्राह त्रिशिखं शूलं ज्वलत् ज्वलन लोलुपं यज्ञाय धृतरूपाय विप्राय अभिचरन् यथा ॥१३॥

यथा	जैसे (कोई)	**ज्वलत् ज्वलन**	प्रज्वलित अग्निके समान
विप्राय	ब्राह्मणपर (व्यर्थ)		
अभिचरन्	(मारणादि) अभिचार करे,	**लोलुपं**	लपलपाता
		त्रिशिखं	तीन नोकवाला
धृतरूपाय	(वाराह) रूप धारण किए	**शूलं**	शूल (त्रिशूल)
		जग्राह	पकड़ा (उठाया) ॥१३॥
यज्ञाय	यज्ञ पुरुषके लिए		

तदोजसा दैत्यमहाभटार्पितं
चकासदन्तः ख उदीर्णदीधिति ।
चक्रेण चिच्छेद निशातनेमिना
हरिर्यथा तार्क्ष्यपतत्त्रमुज्झितम् ॥१४॥

तत् ओजसा दैत्य महाभट अर्पितं चकासत अन्तः ख उदीर्ण दीधितिः चक्रेण चिच्छेद निशात नेमिना हरिः यथा तार्क्ष्य पतत्त्रं उज्झितम् ॥१४॥

महाभट दैत्य	महाशूर दैत्य द्वारा	**चक्रेण**	चक्रसे (उसे भगवान्ने)
अर्पितं	चलाया गया		
तत्	वह (त्रिशूल)	**चिच्छेद**	(ऐसे) काट दिया
अन्तःख	आकाशमें	**यथा हरिः**	जैसे इन्द्रने (वज्रसे)
उदीर्ण दीधितिः	किरणें फैलाते	**तार्क्ष्यं**	गरुड़के
ओजसा	अपनी चमकसे	**उज्झितं**	त्यागे
चकासत	प्रकाशित हुआ,	**पतत्त्रं**	पंखको (काट दिया था) ॥१४॥
निशात नेमिना	तीक्ष्ण धारवाले		

वृक्णे स्वशूले बहुधारिणा हरेः
प्रत्येत्य विस्तीर्णमुरो विभूतिमत् ।

प्रवृद्धरोषः स कठोरमुष्टिना
नदन् प्रहृत्यान्तरधीयतासुरः ॥१५॥

वृक्णे स्वशूले बहुधा अरिणा हरेः प्रति एत्य विस्तीर्णं उरः विभूतिमत्
प्रवृद्ध रोषः स कठोर मुष्टिना नदन् प्रहृत्य अन्तर धीयत असुरः ॥१५॥

अरिणा हरेः	(अपने) शत्रु भगवान द्वारा	**कठोर मुष्टिना**	कठोर घूसेसे
स्वशूले	अपने त्रिशूलके	**विस्तीर्णं**	विशाल
बहुधा वृक्णे	अनेक टुकड़ोंमें कट जानेपर	**विभूतिमत्**	श्रीवत्साङ्कित
प्रवृद्ध रोषः	बढ़े क्रोधसे	**उरः**	वक्षस्थलपर
स असुरः	वह दैत्य	**नदन्**	गर्जना करते हुए
प्रति एत्य	पास आकर	**प्रहृत्य**	प्रहार करके
		अन्तर धीयत	अदृश्य होगया ॥१५॥

तेनेत्थमाहतः क्षत्तर्भगवानादिसूकरः ।
नाकम्पत मनाक् क्वापि स्रजा हत इव द्विपः ॥१६॥

तेन इत्थं आहतः क्षत्तः भगवान् आदि सूकरः न अकम्पत मनाक् क्वापि स्रजा हत इव द्विपः ॥१६॥

क्षत्तः	विदुर !	**आदि सूकरः**	आदि वाराह
तेन	उस (दैत्य) द्वारा	**स्रजाहत**	मालासे मारे गये
इत्थं	इस प्रकार	**द्विपः इव**	हाथीके समान
आहतः	आघात किये जानेपर	**क्वापि मनाक्**	कहीं तनिक भी
भगवान्	भगवान्	**न अकम्पत**	नहीं काँपे ॥१६॥

अथोरुधासृजन्मायां योगमायेश्वरे हरौ ।
यां विलोक्य प्रजास्त्रस्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम् ॥१७॥

अथ उरुधा असृजन् मायां योगमाया ईश्वरे हरौ यां विलोक्य प्रजाः त्रस्ता मेनिरे अस्य उपसंयमम् ॥१७॥

अथ	तदनन्तर	**हरौ**	भगवानको (डरानेके लिए)
योगमाया	योगमायाके		
ईश्वरे	स्वामी	**उरुधा**	अनेक प्रकारकी

मायां	मायाको	**अस्य**	इस (संसार) की
असृजन्	प्रकट किया	**उपसंयमं**	प्रलय (काल आया)
यां विलोक्य	जिसे देखकर	**मेनिरे**	मान लिया ॥१७॥
त्रस्ताः प्रजाः	संत्रस्त प्रजाने		

प्रववुर्वायवश्चण्डास्तमः पांसवमैरयन् ।
दिग्भ्यो निपेतुर्ग्रावाणः क्षेपणैः प्रहिता इव ॥१८॥

प्रववुः वायवः चण्डाः तमः पांसवं ऐरयन् दिग्भ्यः निपेतुः ग्रावाणः क्षेपणैः प्रहिता इव ॥१८॥

चण्डाः वायवः	प्रचण्ड आँधी	**दिग्भ्यः**	दिशाओंसे
प्रववुः	चलने लगी,	**क्षेपणैः**	गुलेलसे
पांसवं	धूलि	**प्रहिता इव**	फेंकेके समान
ऐरयन्	उड़ानेसे	**ग्रावाणः**	पत्थर
तमः	अन्धकार (छा गया)	**निपेतुः**	गिरने लगे ॥१८॥

द्यौर्नष्टभगणाभ्रौघैः सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ।
वर्षद्भिः पूयकेशासृग्विण्मूत्रास्थीनि चासकृत् ॥१९॥

द्यौः नष्ट भगणा अभ्र ओघैः सविद्युत् स्तनयित्नुभिः वर्षत्भिः पूय केश असृक् विट् मूत्र अस्थीनि च असकृत् ॥१९॥

सविद्युत्	बिजलीके साथ	**पूय केश**	पीब, केश,
स्तनयित्नुभिः	गड़गड़ाते हुए	**असृक्**	रक्त
अभ्र ओघैः	मेघोंकी घनघोर घटासे—	**विट्, मूत्र**	विष्ठा, मूत्र,
		च अस्थीनि	तथा हड्डियोंकी
द्यौः	आकाशके	**असकृत्**	लगातार
भगणाः	सूर्यादि ग्रह	**वर्षद्भिः**	वर्षा करते
नष्ट	छिप गये ।		हुए ॥१९॥

गिरयः प्रत्यदृश्यन्त नानायुधमुचोऽनघ ।
दिग्वाससो यातुधान्यः शूलिन्यो मुक्तमूर्धजाः ॥२०॥

गिरयः प्रत्यदृश्यन्त नाना आयुध मुचः अनघ दिग्वाससः यातुधान्यः शूलिन्यः मुक्त मूर्धजाः ॥२०॥

अनघ	निष्पाप विदुर !	दिग्वाससः	दिगम्बरा
नाना आयुध	अनेक प्रकारके शस्त्र	शूलिन्यः	त्रिशूल लिए
मुचः	गिरानेवाले	मुक्त मूर्धजाः	केश खोले
गिरयः	पर्वत	यातुधान्यः	राक्षसियाँ
प्रत्यदृश्यन्त	चारों ओर दिखायी पड़े ।		(दीखने लगीं)॥२०॥

बहुभिर्यक्षरक्षोभिः पत्त्यश्वरथकुञ्जरैः ।
आततायिभिरुत्सृष्टा हिंस्रा वाचोऽतिवैशसाः ॥२१॥

बहुभिः यक्ष रक्षोभिः पत्ति अश्व रथ कुञ्जरैः आततायिभिः उत्सृष्टा हिंस्रा वाचः अति वैशसः ॥२१॥

बहुभिः	बहुत-सी	अति वैशसः	अत्यन्त क्रूर
अश्व रथ		हिंस्राः	हिंसामयी
कुञ्जरैः	घोड़े, रथ, हाथी युक्त	वाचः	वाणी
यक्ष रक्षोभिः	यक्ष राक्षसोंकी	उत्सृष्टाः	उत्पन्न हो
आततायिभिः	आक्रमणकारी		गयी ॥२१॥
पत्ति	सेना की		

प्रादुष्कृतानां मायानामासुरीणां विनाशयत् ।
सुदर्शनास्त्रं भगवान् प्रायुङ्क्त दयितं त्रिपात् ॥२२॥

प्रादुष्कृतानां मायानां आसुरीनां विनाशयत् सुदर्शन अस्त्रं भगवान् प्रायुङ्क्त दयितं त्रिपात् ॥२२॥

प्रादुष्कृतानां	प्रकट हुई	त्रिपात्	तीनों लोकोंमें
आसुरीनां	(उस) आसुरी		आघात करनेवाले
मायानां	मायाके	दयितं	अपने प्रिय
विनाशयत्	विनाशके लिए	सुदर्शन अस्त्रं	सुदर्शन चक्रका
भगवान्	भगवान्‌ने	प्रायुङ्क्त	प्रयोग किया ॥२२॥

तदा दितेः समभवत्सहसा हृदि वेपथुः ।
स्मरन्त्या भर्तुरादेशं स्तनाच्चासृक् प्रसुस्रुवे ॥२३॥

तदा दितेः समभवत् सहसा हृदि वेपथुः स्मरन्त्या भर्तुः आदेशं स्तनात् च असृक् प्रसुस्रुवे ॥२३॥

तदा	उस समय	**च भर्तुः**	और पतिके
सहसा	अचानक	**आदेशं**	कथनका
दितेः	दितिके	**स्मरन्त्या**	स्मरण करती
हृदि	हृदयमें	**स्तनात्**	स्तनोंसे
वेपथुः	कम्पन	**असृक्**	रक्त
समभवत्	होने लगा	**प्रसुस्रुवे**	टपकने लगा ॥२२॥

विनष्टासु स्वमायासु भूयश्चावव्रज्य केशवम् ।
रुषोपगूहमानोऽमुं ददृशेऽवस्थितं बहिः ॥२४॥

विनष्टासु स्वमायासु भूयः च आवव्रज्य केशवं रुषा उपगूहमानः अमुं ददृशे अवस्थितं बहिः ॥२४॥

स्वमायासु	अपनी मायाके	**उपगूहमानः**	भुजाओंमें भरकर दबानेकी चेष्टामें
विनष्टासु	नष्ट हो जानेपर	**बहिः अवस्थितं**	बाहर ही खड़े
भूयः च	फिरसे	**अमुं**	उनको
केशवं	केशवके	**ददृशे**	देखा ॥२४॥
आवव्रज्य	समीप आकर		
रुषा	क्रोधसे		

तं मुष्टिभिर्विनिघ्नन्तं वज्रसारैरधोक्षजः ।
करेण कर्णमूलेऽहन् यथा त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः ॥२५॥

तं मुष्टिभिः विनिघ्नन्तं वज्रसारैः अधोक्षजः करेण कर्णमूले अहन् यथा त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः ॥२५॥

वज्रसारैः	फौलादके समान	**कर्णमूले**	कनपटीपर
मुष्टिभिः	घूसोंसे	**अहन्**	मारा
विनिघ्नन्तं तं	मारते हुए उसे	**यथा मरुत्पतिः**	जैसे इन्द्रने
अधोक्षजः	भगवानने	**त्वाष्ट्रं**	वृत्रको (मारा था) ॥२५॥
करेण	चपतसे		

स आहतो विश्वजिता ह्यवज्ञया
परिभ्रमद्गात्र उदस्तलोचनः ।
विशीर्णबाह्वङ्घ्रिशिरोरुहोऽपतद्
यथा नगेन्द्रो लुलितो नभस्वता ॥२६॥

स आहतः विश्वजिता हि अवज्ञया परिभ्रमत् गात्र उदस्त लोचनः विशीर्ण बाहु अङ्घ्रि शिरोरुहः अपतत् यथा नगेन्द्रः लुलितः नभस्वता ॥२६॥

हि स	क्योंकि वह
विश्वजिता	विश्व विजयी (भगवान) द्वारा
अवज्ञया	उपेक्षापूर्वक
आहतः	मारा गया
गात्र परिभ्रमत्	(उसका) शरीर घूमने लगा,
उदस्त लोचनः	आखें निकल आयीं,
बाहु अङ्घ्रि शिरोरुह	भुजा, पैर और केश
विशीर्ण	फैलाकर
अपतत्	गिर पड़ा,
यथा नभस्वता	जैसे अन्धड़से
लुलितः	उखाड़ा
नगेन्द्रः	भारी पर्वत हो ॥२६॥

क्षितौ शयानं तमकुण्ठवर्चसं
करालदंष्ट्रं परिदष्टदच्छदम् ।
अजादयो वीक्ष्य शशंसुरागता
अहो इमां को नु लभेत संस्थितिम् ॥२७॥

क्षितौ शयानं तं अकुण्ठ वर्चसं कराल दंष्ट्रं परिदष्ट दत्छदं अज आदयः वीक्ष्य शशंसुः आगता अहो इमां कः नु लभेत संस्थितिम् ॥२७॥

तं	उस
अकुण्ठ वर्चसं	अम्लान तेजा
कराल दंष्ट्रं	भयानक दाढ़ोंवाले
दच्छदं	ओष्ठको
परिदष्ट	दाँतसे दबाये
क्षितौ शयानं	पृथ्वीपर सोते
वीक्ष्य	देखकर
आगता	वहाँ आये
अज आदयः	ब्रह्मादि
शशंसुः	प्रशसा करने लगे
अहो	'अहो !
इमां	ऐसी (अलभ्य)
संस्थितिं	मृत्यु
कः नु लभेत	भला कौन पा सकता है ॥२७॥

यं योगिनो योगसमाधिना रहो
ध्यायन्ति लिङ्गादसतो मुमुक्षया ।
तस्यैष दैत्यऋषभः पदाहतो
मुखं प्रपश्यंस्तनुमुत्ससर्ज ह ॥२८॥

यं योगिनः योग समाधिना रहः ध्यायन्ति लिङ्गात् असतः मुमुक्षया तस्य एष दैत्य ऋषभः पदाहतः मुखं प्रपश्यन् तनुं उत्ससर्ज ह ॥२७॥

योगिनः	योगी लोग
रहः	एकान्तमें
योग समाधिना	योगकी एकाग्रतासे
असतः	असत्
लिङ्गात्	लिंग शरीरसे
मुमुक्षया	मुक्त हो जानेकी इच्छासे
यं ध्यायन्ति	जिनका ध्यान करते हैं
एष दैत्य ऋषभः	यह दैत्य श्रेष्ठ
ह	अहो
तस्य पदाहतः	उनके चरणोंसे मारा जाकर
मुखं प्रपश्यन्	(उनके) मुखका दर्शन करता
तनुं	शरीर
उत्ससर्ज	त्याग गया ॥२८॥

एतौ तौ पार्षदावस्य शापाद्यातावसद्गतिम् ।
पुनः कतिपयैः स्थानं प्रपत्स्येते ह जन्मभिः ॥२९॥

एतौ तौ पार्षदाः अस्य शापात् याताः असद्गतिं पुनः कतिपयैः स्थानं प्रपत्स्येत इह जन्मभिः ॥२९॥

एतौ	ये दोनों
अस्य	इन (भगवान) के
तौ	वे दोनों (जय-विजय)
पार्षदाः	पार्षद हैं,
शापात्	शापके कारण
असद्गतिं	निन्दित गति (योनि) में
याताः	आये हैं,
पुनः इह	फिर यहाँ (पृथ्वीमें)
जन्मभिः	जन्म लेकर
कतिपयैः स्थानं	कुछ स्थानोंमें
प्रपत्स्येत	जायँगे' ॥२९॥

देवा ऊचुः-

नमो नमस्तेऽखिलयज्ञतन्तवे
स्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये ।
दिष्ट्या हतोऽयं जगतामरुन्तुद-
स्त्वत्पादभक्त्या वयमीश निर्वृताः ॥३०॥

नमो नमः ते अखिल यज्ञ तन्तवे स्थितौ गृहीत अमल सत्त्वमूर्तये दिष्ट्या हतः अयं जगतां अरुन्तुदः त्वत् पाद भक्त्या वयं ईश निर्वृताः ॥३०॥

अखिल यज्ञ	समस्त यज्ञोंकी
तन्तवे स्थितौ	परम्परा बनाये रखनेके लिए
अमल सत्त्वमूर्तये	निर्मल सत्त्व मूर्ति
गृहीत ते	धारण किये आपको
नमो नमः	बार-बार नमस्कार।
दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है कि
अयं जगतां	यह सारे संसारको
अरुन्तुदः	पीड़ा देनेवाला
हतः	मारा गया,
ईश	स्वामी
त्वत् पाद भक्त्या	आपके चरणोंकी भक्तिसे
वयं	हम
निर्वृताः	सुखी हुए ॥३०॥

मैत्रेय उवाच-

एवं हिरण्याक्षमसह्यविक्रमं
स सादयित्वा हरिरादिसूकरः ।
जगाम लोकं स्वमखण्डितोत्सवं
समीडितः पुष्करविष्टरादिभिः ॥३१॥

एवं हिरण्याक्षं असह्य विक्रमं स सादयित्वा हरिः आदि सूकरः जगाम लोकं स्वं अखण्डित उत्सवं समीडितः पुष्कर विष्टर आदिभिः ॥३॥

एवं	इस प्रकार
असह्य विक्रमं	असह्य पराक्रम
हिरण्याक्षं	हिरण्याक्षको
स आदि सूकरः	उन आदि वाराह
हरिः	श्रीहरिने
सादयित्वा	मारकर

पुष्कर विष्टर	पद्मासन (ब्रह्मा)	**अखण्डित उत्सवं**	अखण्डित उत्सव
आदिभिः	आदिसे		(चलनेवाले)
समीडितः	भली प्रकार स्तुत	**स्वं लोकं**	अपने लोकको
	होकर	**जगाम**	चले गये ॥३१॥

मया यथानूक्तमवादि ते हरेः
कृतावतारस्य सुमित्र चेष्टितम् ।
यथा हिरण्याक्ष उदारविक्रमो
महामृधे क्रीडनवन्निराकृतः ॥३२॥

मया यथा नूक्तं अवादि ते हरेः कृत अवतारस्य सुमित्र चेष्टितं यथा हिरण्याक्ष उदार विक्रमः महामृधे क्रीडनवत् निराकृतः ॥३२॥

सुमित्र	अच्छे मित्र विदुर !	**निराकृतः**	मार डाला (यह)
कृत अवतारस्य	अवतार लेकर	**हरेः**	श्रीहरिकी
यथा	जैसे	**चेष्टितं**	चेष्टा (लीला)
उदार विक्रमः	उदार पराक्रम (भगवान) ने	**मया**	मैंने
		यथा नूक्तं	जैसी सुनी थी,
महामृधे	महायुद्धमें	**ते अवादि**	तुमसे कह
हिरण्याक्षं	हिरण्याक्षको		दिया ॥३२॥
क्रीडनवत्	खिलौनेके समान		

सूत उवाच-

इति कौषारवाख्यातामाश्रुत्य भगवत्कथाम् ।
क्षत्ताऽऽनन्दं परं लेभे महाभागवतो द्विज ॥३३॥

इति कौषारव आख्यातां आश्रुत्य भगवत् कथां क्षत्ता आनन्दं परं लेभे महाभागवतः द्विज ॥३३॥

द्विज	ब्राह्मण ! (शौनकजी)	**कौषारव**	मैत्रेयजी द्वारा
		आख्यातां	वर्णित
इति	इस प्रकार	**भगवत् कथां**	भगवानकी कथाको

आश्रुत्य	सुनकर	**परं आनन्दं**	परमानन्द
महा भागवतः	महा भागवत	**लेभे**	पाये ॥३३॥
क्षत्ता	विदुर		

अन्येषां पुण्य श्लोकानामुद्दामयशसां सताम् ।
उपश्रुत्य भवेन्मोदः श्रीवत्साङ्कस्य किं पुनः ॥३४॥

अन्येषां पुण्य श्लोकानां उद्दाम यशसां सतां उपश्रुत्य भवेत् मोदः श्रीवत्साङ्कस्य किं पुनः ॥३४॥

अन्येषां	दूसरे	**पुनः**	फिर
पुण्य श्लोकानां	पवित्र कीर्ति	**श्रीवत्साङ्कस्य**	श्रीवत्सवक्षा (भगवानके)
उद्दाम यशसां	उद्दाम यशस्वी	**किं**	(चरितकी तो बात ही) क्या ॥३४॥
सतां	सत्पुरुषोंका (चरित)		
उपश्रुत्य	सुनकर		
मोदः भवेत्	आनन्द होता है,		

यो गजेन्द्रं झषग्रस्तं ध्यायन्तं चरणाम्बुजम् ।
क्रोशन्तीनां करेणूनां कृच्छ्रतोऽमोचयद् द्रुतम् ॥३५॥

यः गजेन्द्रं झष ग्रस्तं ध्यायन्तं चरणाम्बुजं क्रोशन्तीनां करेणूनां कृच्छ्रतः अमोचयत् द्रुतम् ॥३५॥

झष ग्रस्तं	मगरसे पकड़े,	**करेणूनां**	हथिनियोंके
चरणाम्बुजं	(अपने) चरण-कमलका	**क्रोशन्तीनां**	चीत्कार करते समय
ध्यायन्तं	ध्यान करते	**कृच्छ्रतः**	संकटसे
गजेन्द्रं	गजेन्द्रको	**यः द्रुतं**	जिन्होंने झटपट
		अमोचयत्	छुड़ा दिया ॥३५॥

तं सुखाराध्यमृजुभिरनन्यशरणैर्नृभिः ।
कृतज्ञः को न सेवेत दुराराध्यमसाधुभिः ॥३६॥

तं सुखाराध्यं ऋजुभिः अनन्य शरणैः नृभिः कृतज्ञः कः न सेवेत दुराराध्यं असाधुभिः ॥३६॥

ऋजुभिः	सरल (हृदय)	**दुराराध्यं**	दुराराध्य
अनन्य शरणैः	अनन्य शरणागत	**तं**	उन भगवानकी
नृभिः	मनुष्यों द्वारा	**कः**	कौन
सुखाराध्यं	सुखपूर्वक प्रसन्न होनेवाले	**कृतज्ञः**	कृतज्ञ पुरुष
		सेवेत न	सेवा नहीं
असाधुभिः	(किन्तु) दुर्जनोंसे ।		करेगा ॥३६॥

यो वै हिरण्याक्षवधं महाद्भुतं
विक्रीडितं कारणसूकरात्मनः ।
शृणोति गायत्यनुमोदतेऽञ्जसा
विमुच्यते ब्रह्मवधादपि द्विजाः ॥३७॥

यः वै हिरण्याक्ष वधं महा अद्भुतं विक्रीडितं कारण सूकर आत्मनः शृणोति गायति अनुमोदते अञ्जसा विमुच्यते ब्रह्मवधात् अपि द्विजाः ॥३७॥

द्विजाः	ब्राह्मणो !	**गायति**	वर्णन करता है
महा अद्भुतं	अत्यन्त अद्भुत		(अथवा)
हिरण्याक्ष वधं	हिरण्याक्ष वध	**अनुमोदते**	(इसका) अनुमोदन
कारण	प्रयोजनवश		करता है—
सूकर आत्मनः	वाराह शरीरधारी भगवानकी	**वै**	निश्चय (वह)
		अञ्जसा	सरलतासे
विक्रीडितं	क्रीड़ा	**ब्रह्मवधात् अपि**	ब्रह्म हत्यासे भी
यः शृणोति	जो सुनता है,	**विमुच्यते**	छूट जाता है ॥७॥

एतन्महापुण्यमलं पवित्रं
धन्यं यशस्यं पदमायुराशिषाम् ।
प्राणेन्द्रियाणां युधि शौर्यवर्धनं
नारायणोऽन्ते गतिरङ्ग शृण्वताम् ॥३८॥

एतत् महा पुण्यं अलं पवित्रं धन्यं यशस्यं पदं आयुः आशिषां प्राण इन्द्रियाणां युधि शौर्य वर्धनं नारायणः अन्ते गतिः अङ्ग शृण्वताम् ॥३८॥

अङ्ग	प्रिय (शौनकादि)
एतत्	यह (कथा)
महा पुण्यं	महा पुण्यदायिनी है,
अलं पवित्रं	परम पवित्र है,
धन्यं यशस्यं	धन और यश-दायिनी है,
आयुः आशिषां	आयु और कामनाओंकी
पदं	पूर्ति करनेवाली है,
युधि	युद्धमें
प्राण इन्द्रियाणां	प्राण और इन्द्रियोंके
शौर्यं वर्धनं	शौर्यको बढ़ानेवाली है
शृण्वतां	इसे सुनने वालोंको
अन्ते	अन्तमें
गतिः नारायणः	भगवान नारायण प्राप्त होते हैं ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथ विंशोऽध्यायः

शौनक उवाच-

महीं प्रतिष्ठामध्यस्य सौते स्वायम्भुवो मनुः ।
कान्यन्वतिष्ठद् द्वाराणि मार्गायावरजन्मनाम् ॥१॥

महीं प्रतिष्ठां अध्यस्य सौते स्वायम्भुवः मनुः कानि अन्वतिष्ठत् द्वाराणि मार्गायाः अवर जन्मनाम् ॥१॥

सौते	सूतजी !	**कानि**	किन
महीं प्रतिष्ठां	पृथ्वी रूप आधारको	**द्वाराणि मार्गायाः**	द्वारों (उपायों) या साधनोंका
अध्यस्य	प्राप्त करके	**अन्वतिष्ठत्**	अवलम्बन किया ॥१॥
स्वायम्भुवः मनुः	स्वायम्भू मनुने		
अवर जन्मनां	(अपने) पीछे होने वाली सन्तानोंके लिए		

क्षत्ता महाभागवतः कृष्णस्यैकान्तिकः सुहृत् ।
यस्तत्याजाग्रजं कृष्णे सापत्यमघवानिति ॥२॥

क्षत्ता महाभागवतः कृष्णस्य ऐकान्तिकः सुहृत् यः तत्याज अग्रजं कृष्णे स अपत्यं अघवान् इति ॥२॥

क्षत्ता	विदुरजी	**अघवान्**	अपराधी हैं'
महाभागवतः	परम भगवद्भक्त थे,	**इति**	ऐसा समझकर
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	**स अपत्यं**	पुत्रोंके साथ
ऐकान्तिकः	अनन्य	**अग्रजं**	बड़े भाई (धृतराष्ट्र) को
सुहृत्	सुहृद थे,		
यः	जिन्होंने	**तत्याज**	त्याग दिया ॥२॥
कृष्णे	'श्रीकृष्णके		

द्वैपायनादनवरो महित्वे तस्य देहजः ।
सर्वात्मनाश्रितः कृष्णं तत्परांश्चाप्यनुव्रतः ॥३॥

द्वैपायनात् अनवरः महित्वे तस्य देहजः सर्वात्मना श्रितः कृष्णं तत्परान् च अपि अनुव्रतः ॥३॥

महित्वे	महिमामें	**कृष्णं**	श्रीकृष्णके
द्वैपायनात्	व्यासजीसे	**श्रितः च**	आश्रित थे और
तस्य देहजः	उनके पुत्र (विदुर)	**तत्परां अपि**	उनके परायण (भक्तों) के भी
अनवरः	कम नहीं थे.		
सर्वात्मना	सर्वभावसे (वे)	**अनुव्रतः**	अनुगत थे ॥३॥

किमन्वपृच्छन्मैत्रेयं विरजास्तीर्थसेवया ।
उपगम्य कुशावर्तं आसीनं तत्त्ववित्तमम् ॥४॥

किं अन्व पृच्छत् मैत्रेयं विरजाः तीर्थ सेवया उपगम्य कुशावर्तं आसीनं तत्त्ववित्तमम् ॥४॥

तीर्थ सेवया	तीर्थ सेवनसे	**तत्त्ववित्तमं**	तत्त्ववेत्ताओंमें श्रेष्ठ
विरजाः	निर्मल हुए	**आसीनं**	बैठे हुए
कुशावर्तं	द्वारिकासे*	**मैत्रेयं**	मैत्रेयजीसे
उपगम्य	आकर	**किं अन्वपृच्छत्**	क्या और पूछा ॥४॥

तयोः संवदतोः सूत प्रवृत्ता ह्यमलाः कथाः ।
आपो गाङ्गा इवाघघ्नीर्हरेः पादाम्बुजाश्रयाः ॥५॥

तयोः संवदतोः सूत प्रवृत्ता हि अमलाः कथाः आपः गाङ्गा इव अघघ्नीः हरेः पादाम्बुज आश्रयाः ॥५॥

सूत	सूतजी !	**हरेः पादाम्बुज**	श्रीहरिके चरण कमलकी
तयोः	उन दोनोंके		
संवदतोः हि	संवादमें क्योंकि	**आश्रयाः**	आश्रय (सम्बन्धी)

---

* अनेक टीकाकारोंने कुशावर्तका अर्थ हरिद्वार किया है, क्योंकि 'कुशावर्तात्' पाठ यहाँ नहीं है; किन्तु व्याकरणकी ऐसी उपेक्षा ग्रन्थमें और भी है और भागवतमें द्वारिका कुशस्थली कही गयी है ।

गाङ्गा आपः इव	गङ्गाजलके समान	**अमलाः कथाः**	निर्मल कथा
अघघ्नीः	पाप नाशिनी	**प्रवृत्ता**	हुई होगी ॥५॥

ता नः कीर्तय भद्रं ते कीर्तन्योदारकर्मणः ।
रसज्ञः को नु तृप्येत हरिलीलामृतं पिबन् ॥६॥

ता नः कीर्तय भद्रं ते कीर्तन्यः उदार कर्मणः रसज्ञः कः नु तृप्येत हरि लीला अमृतं पिबन् ॥६॥

ता नः कीर्तय	उसे हमें सुनाइये,	**लीला अमृतं**	लीलारूपी अमृतको
ते भद्रं	आपका कल्याण हो,	**पिबन्**	पीते हुए
कीर्तन्यः	कीर्तनीय	**कः रसज्ञः नु**	कौन रसवेत्ता भला
उदार कर्मणः	उदारकर्मा	**तृप्येत**	तृप्त होगा ॥७॥
हरि	श्रीहरिकी		

व्यास उवाच*–

एवमुग्रश्रवाः पृष्ट ऋषिभिर्नैमिषायनैः ।
भगवत्यर्पिताध्यात्मस्तानाह श्रूयतामिति ॥७॥

एवं उग्रश्रवाः पृष्टः ऋषिभिः नैमिषायनैः भगवति अर्पित अध्यात्मः तान् आह श्रूयतां इति ॥७॥

एवं	इस प्रकार	**अध्यात्म**	चित्त
नैमिषायनैः	नैमिषारण्यमें रहनेवाले	**अर्पित**	लगाये
		उग्रश्रवाः	उग्रश्रवा सूत
ऋषिभिः	ऋषियों द्वारा	**तान् इति**	उनसे इस प्रकार
पृष्टः	पूछे जानेपर	**आह श्रूयतां**	बोले 'सुनिये !' ॥७॥
भगवति	भगवानमें		

सूत उवाच–

हरेर्धृतक्रोडतनोः स्वमायया
निशम्य गोरुद्धरणं रसातलात् ।

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

लीलां हिरण्याक्षमवज्ञया हतं
सञ्जातहर्षो मुनिमाह भारतः ॥८॥

हरेः धृत क्रोडतनोः स्वमायया निशम्य गोः उद्धरणं रसातलात्
लीलां हिरण्याक्षं अवज्ञया हतं सञ्जात हर्षः मुनिं आह भारतः ॥८॥

स्वमायया	अपनी मायासे
हरेः	श्रीहरिके
क्रोडतनोः धृत	वाराह शरीर धारण करके
लीलां	खेल-खेलमें
अवज्ञया	उपेक्षापूर्वक
हिरण्याक्षं हतं	हिरण्याक्षको मार देना
निशम्य	सुनकर
सञ्जात हर्षः	आनन्दित होकर
भारतः	विदुर
मुनिं	मुनि (मैत्रेय) से
आह	बोले ॥८॥

विदुर उवाच–

प्रजापतिपतिः सृष्ट्वा प्रजासर्गे प्रजापतीन् ।
किमारभत मे ब्रह्मन् प्रब्रूह्यव्यक्तमार्गवित् ॥९॥

प्रजापति पतिः सृष्ट्वा प्रजा सर्गे प्रजापतीन् किं आरभत मे ब्रह्मन् प्रब्रूहि अव्यक्त मार्गवित् ॥९॥

ब्रह्मन्	मैत्रेयजी !
अव्यक्त	परोक्ष विषयोंको
मार्गवित्	(आप) जाननेवाले हैं, (अतः)
प्रजापति पतिः	प्रजापतियोंके स्वामी (ब्रह्माजीने)
प्रजापतीन्	
सृष्ट्वा	प्रजापतियोंको उत्पन्न करके
प्रजा सर्गे	प्रजाकी सृष्टिके लिए
किं आरभत	क्या (करना) आरम्भ किया
मे प्रब्रूहि	मुझे बतलाइये ॥९॥

ये मरीच्यादयो विप्रा यस्तु स्वायम्भुवो मनुः ।
ते वै ब्रह्मण आदेशात्कथमेतदभावयन् ॥१०॥

ये मरीचि आदयः विप्राः यः तु स्वायम्भुवः मनुः ते वै ब्रह्मण आदेशात् कथं एतत् अभावयन् ॥१०॥

ये मरीचि आदयः	जो मरीचि (अत्रि) आदि	**ब्रह्मण आदेशात्**	ब्रह्माजीकी आज्ञासे (लगे)
विप्राः	ब्राह्मण(ब्रह्मपुत्र) थे,	**एतत्**	(उन्होंने) इस (संसार) की
यः तु	जो तो	**कथं अभावयन्**	कैसे भावना (रचना) की ॥१०॥
स्वायम्भुवः मनु	स्वायम्भू मनु थे,		
ते वै	इनमें जो भी		

सद्वितीयाः किमसृजन् स्वतन्त्रता उत कर्मसु ।
आहोस्वित्संहताः सर्व इदं स्म समकल्पयन् ॥११॥

स द्वितीयाः किं असृजन् स्वतन्त्रा उत कर्मसु आहोस्वित् संहताः सर्व इदं स्म सम कल्पयन् ॥११॥

किं स द्वितीयाः	क्या दूसरे (पत्नीके) साथ	**आहोस्वित्**	अथवा तो
असृजन्	सृष्टि की	**सर्व संहताः**	सबने एक साथ मिलकर
उत कर्मसु	अथवा (अपने) कार्योंमें	**इदं**	इस (जगत) की
स्वतन्त्राः	स्वतन्त्र रहकर	**सम कल्पयन् स्म**	भली प्रकार कल्पना की ॥११॥

मैत्रेय उवाच-

दैवेन दुर्वितर्क्येण परेणानिमिषेण च ।
जातक्षोभाद्भगवतो महानासीद् गुणत्रयात् ॥१२॥

दैवेन दुर्वितर्क्येण परेण अनिमिषेण च जात क्षोभात् भगवतः महान् आसीत् गुणत्रयात् ॥१२॥

दुर्वितर्क्येण	अतर्क्य	**भगवतः**	भगवानसे (प्रेरणा पाकर)
दैवेन	उन जीवोंके प्रारब्धसे,	**जात क्षोभात्**	क्षोभ उत्पन्न होनेपर
परेण	(प्रकृतिके) नियन्ता पुरुषसे,	**गुणत्रयात्**	त्रिगुणमयी (प्रकृति)से
अनिमिषेण	काल (समय) पर	**महान् आसीत्**	महतत्त्व उत्पन्न हुआ ॥१२॥

रजः प्रधानान्महतस्त्रिलिङ्गो दैवचोदितात् ।
जातः ससर्ज भूतादिर्वियदादीनि पञ्चशः ॥१३॥

रजः प्रधानात् महतः त्रिलिङ्गः दैव चोदितात् जातः ससर्ज भूतादिः वियत् आदीनि पञ्चशः ॥१३॥

दैव चोदितात्	दैवकी प्रेरणासे	**भूतादिः**	अहंकार
रजः प्रधानात्	रजोगुण प्रधान	**जातः**	उत्पन्न हुआ (उसने)
महतः	महत्त्वसे	**वियत् आदीनि**	आकाशादि
त्रिलिङ्गः	तीन प्रकारके चिह्नवाला	**पञ्चशः**	पांच वर्ग
		ससर्ज	उत्पन्न किये ॥१३॥

तानि चैकैकशः स्रष्टुमसमर्थानि भौतिकम् ।
संहत्य दैवयोगेन हैममण्डमवासृजन् ॥१४॥

तानि च एकएकशः स्रष्टुं असमर्थानि भौतिकं संहत्य दैवयोगेन हैमं अण्डं अवासृजन् ॥१४॥

तानि च	उनके तो	**दैवयोगेन**	दैवयोगसे
एक एकशः	अकेले-अकेले	**संहत्य**	सब मिल गये (और)
भौतिकं स्रष्टुं	आधिभौतिक (संसार) की सृष्टिमें	**हैमं अण्डं**	स्वर्णमय अण्डा
असमर्थानि	असमर्थ होनेपर	**अवासृजन्**	उत्पन्न किया ॥१४॥

सोऽशयिष्टाब्धिसलिले आण्डकोशो निरात्मकः ।
साग्रं वै वर्षसाहस्रमन्ववात्सीत्तमीश्वरः ॥१५॥

सः अशयिष्ट अब्धि सलिले आण्डकोशः निरात्मकः स अग्रं वै वर्ष साहस्रं अन्ववात्सीत् तं ईश्वरः ॥१५॥

सः निरात्मकः	वह चेतना शून्य	**अशयिष्ट**	सोता (पड़ा) रहा
आण्डकोशः	अण्डा	**स तं**	तब उसमें
अब्धि सलिले	समुद्रके जलमें	**ईश्वरः**	ईश्वरने
अग्रं	पहिले	**अन्ववात्सीत्**	प्रवेश किया ॥१५॥
वर्ष साहस्रं वै	सहस्र वर्षों तक		

तस्य नाभेरभूत्पद्मं सहस्रार्कोरुदीधिति ।
सर्वजीवनिकायौको यत्र स्वयमभूत्स्वराट् ॥१६॥

तस्य नाभेः अभूत् पद्मं सहस्र अर्कः उरु दीधितिः सर्व जीव निकायः ओकः यत्र स्वयं अभूत् स्वराट् ॥१६॥

तस्य नाभेः	उनकी नाभिसे	**पद्मं अभूत्**	कमल प्रकट हुआ,
सहस्र अर्क	हजारों सूर्यके समान	**यत्र**	जिसपर
उरु दीधितिः	अत्यन्त प्रकाशमान	**स्वयं स्वराट्**	स्वयं वे स्वयं प्रकाश
सर्व जीव निकाय	सब जीव समूहोंका	**अभूत्**	(ब्रह्मा रूपसे) प्रकट
ओकः	निवास		हुए ॥१६॥

सोऽनुविष्टो भगवता यः शेते सलिलाशये ।
लोकसंस्थां यथापूर्वं निर्ममे संस्थया स्वया ॥१७॥

सः अनुविष्टः भगवता यः शेते सलिल आशये लोक संस्थां यथा पूर्वं निर्ममे संस्थया स्वया ॥१७॥

यः सलिल आशये	जो जलके भीतर	**यथा पूर्वं**	जैसे पहिले
शेते	सोते हैं		(कल्पमें) थी
सः भगवता	उन भगवान	**लोक संस्थां**	लोकोंका आधार
	(नारायण) के	**स्वया संस्थया**	अपने आधार
अनुविष्टः	(हृदयमें) प्रवेश		(कमल) से
	करनेपर	**निर्ममे**	निर्माण किया ॥१७॥

ससर्जच्छाययाविद्यां पञ्चपर्वाणमग्रतः ।
तामिस्रमन्धतामिस्रं तमो मोहो महातमः ॥१८॥

ससर्ज छायया अविद्यां पञ्च पर्वाणं अग्रतः तामिस्रं अन्धतामिस्रं तमः मोहः महातमः ॥१८॥

अग्रतः	पहिले	**अन्धतामिस्र**	अन्धतामिस्र
छायया	(अपनी) छायासे		(अस्मिता)
तामिस्रं	तामिस्र (अविद्या)	**तमः**	तम (राग)

मोहः	मोह (द्वेष)	**पञ्च पर्वाणं**	(इन) पांच गाठोंवाली
महातमः	महातम (अभिनिवेश)	**अविद्यां**	अविद्याकी
		ससर्ज	सृष्टि की ॥१८॥

विससर्जात्मनः कायं नाभिनन्दंस्तमोमयम् ।
जगृहुर्यक्षरक्षांसि रात्रिं क्षुत्तृट्समुद्भवाम् ॥१९॥

विससर्ज आत्मनः कायं न अभिनन्दन् तमः मयं: जगृहुः यक्ष रक्षांसि रात्रिं क्षुत् तृट् समुद्भवाम् ॥१९॥

आत्मनः	अपने	**समुद्भवां**	उत्पन्न करनेवाली
तमः मयं	तमोमय	**रात्रिं**	(उस) रात्रिरूपाको
कायं	शरीरका	**यक्ष रक्षांसि**	(उसीसे उत्पन्न) यक्ष-राक्षसोंने
अभिनन्दन न	अभिनन्दन न करके	**जगृहुः**	ग्रहण कर लिया ॥१९॥
विससर्ज	(ब्रह्माजीने) त्याग दिया,		
क्षुत् तृट्	भूख-प्यास		

क्षुत्तृड्भ्यामुपसृष्टास्ते तं जग्धुमभिदुद्रुवुः ।
मा रक्षतैनं जक्षध्वमित्यूचुः क्षुत्तृडर्दिताः ॥२०॥

क्षुत् तृट्भ्यां उपसृष्टाः ते तं जग्धुं अभिदुद्रुवुः मा रक्षत एनं जक्षध्वं इति उचूः क्षुत् तृट् अर्दिताः ॥२०॥

क्षुत् तृट्भ्यां	भूख-प्याससे	**इति उचूः**	(वे) इस प्रकार बोले—
उपसृष्टाः	अभिभूत	**एनं मा रक्षत**	'इसकी रक्षा मत करो,
ते तं	वे उन (ब्रह्माजी)को	**जक्षध्वं**	खा जाओ ।' ॥२०॥
जग्धुं	खानेके लिए		
अभिदुद्रुवुः	उनकी ओर दौड़े,		
क्षुत् तृट् अर्दिताः	भूख-प्याससे पीड़ित		

देवस्तानाह संविग्नो मा मां जक्षत रक्षत ।
अहो मे यक्षरक्षांसि प्रजा यूयं बभूविथ ॥२१॥

देवः तान् आह संविग्नः मा मां जक्षत रक्षत अहो मे यक्ष रक्षांसि प्रजा यूयं वभूविथ ॥२१॥

देवः	ब्रह्माजी	**मे प्रजा**	मेरी सन्तान
संविग्नः	घबड़ाकर	**वभूविथ**	होते हो,
तान् आह	उनसे बोले—	**मां मा जक्षत**	मुझे मत खाओ,
यूयं	'तुम लोग	**रक्षत**	(मेरी) रक्षा
यक्ष रक्षांसि	यक्ष-राक्षस		करो।' ॥२१॥

विशेष—

ब्रह्माने जिनसे कहा—'माजक्षत' (मत खाओ' वे यक्ष हो गये और जिनसे कहा—'रक्षत' (रक्षा करो) वे राक्षस कहलाये।

देवताः प्रभया या या दीव्यन् प्रमुखतोऽसृजत् ।
ते अहार्षुर्देवयन्तो विसृष्टां तां प्रभामहः ॥२२॥

देवताः प्रभया या या दीव्यन् प्रमुखतः असृजत् ते अहार्षुः देवयन्तः विसृष्टां तां प्रभां अहः ॥२२॥

या या प्रभया	जिस-जिस प्रभासे	**विसृष्टां**	(ब्रह्माजी द्वारा)
दिव्यन्	प्रकाशित होते हुए		छोड़ी गयी
प्रमुखतः	मुख्य-मुख्य	**तां प्रभां**	उस प्रभाको (जो)
देवताः	देवताओंको	**अहः ते**	दिन था, उन
असृजत्	(ब्रह्माजीने) उत्पन्न		(देवताओं) ने
	किया	**अहार्षुः**	ग्रहण कर
देवयन्तः	क्रीड़ा करते हुए		लिया ॥२२॥

देवोऽदेवाञ्जघनतः सृजति स्मातिलोलुपान् ।
त एनं लोलुपतया मैथुनायाभिपेदिरे ॥२३॥

देवः अदेवान् जघनतः सृजति स्म अति लोलुपान् त एनं लोलुपतया मैथुनाय अभिपेदिरे ॥२३॥

देवः	ब्रह्माजीने	**अति लोलुपान्**	अत्यन्त कामुक
जघनतः	अपनी जांघसे	**अदेवान्**	असुरोंको

सृजति स्म	उत्पन्न किया ही था कि	**एनं**	इन (ब्रह्माजी) को ओर
त लोलुपतया	वे कामुक होनेके कारण	**मैथुनाय अभिपेदिरे**	मैथुनके लिए झपट पड़े ॥२३॥

ततो हसन् स भगवानसुरैर्निरपत्रपैः ।
अन्वीयमानस्तरसा क्रुद्धो भीतः परापतत् ॥२४॥

ततः हसन् स भगवान् असुरैः निरपत्रपैः अन्वीयमानः तरसा क्रुद्धः भीतः परापतत् ॥२३॥

स भगवान्	वे भगवान् (ब्रह्मा)	**अन्वीयमानः**	पीछा किये जानेपर
ततः हसन्	उस समय हँसे (किन्तु)	**क्रुद्धः**	क्रोधित हुए और
		भीतः तरसा	डरकर वेगसे
निरपत्रपैः	निर्लज्ज	**परापतत्**	भागने लगे ॥२४॥
असुरैः	असुरों द्वारा		

स उपव्रज्य वरदं प्रपन्नार्तिहरं हरिम् ।
अनुग्रहाय भक्तानामनुरूपात्मदर्शनम् ॥२५॥

स उपव्रज्य वरदं प्रपन्न आर्ति हरं हरिं अनुग्रहाय भक्तानां अनुरूप आत्मदर्शनम् ॥२५॥

वरदं	वरदान देनेवाले,	**आत्मदर्शनं**	अपने रूपका दर्शन करानेवाले
प्रपन्न आर्ति हरं	शरणागतके क्लेशहारी,	**हरिं**	श्रीहरिके
		उपव्रज्य	पास जाकर
भक्तानां	भक्तोंपर	**स**	वे (ब्रह्माजी बोले) ॥२५॥
अनुग्रहाय	कृपा करनेके लिए		
अनुरूप	उनके अनुकूल		

*ब्रह्मोवाच**—

पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनासृजं प्रजाः ।
ता इमा यभितुं पापा उपाक्रामन्ति मां प्रभो ॥२६॥

पाहि मां परमात्मन् ते प्रेषणेन असृजं प्रजाः ता इमाः यभितुं पापाः उपाक्रामन्ति मां प्रभो ॥२६॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

परमात्मन्	परमात्मा !	**ता इमाः पापाः**	सो ये पापी
मां पाहि	मेरी रक्षा कीजिए,	**प्रभो**	प्रभो !
ते प्रेषणेन	आपके भेजनेसे	**मां यभितुं**	मुझे ही तंग करने
प्रजाः असृजं	(मैं) प्रजाकी सृष्टि करता था,	**उपाक्रामन्ति**	ऊपर चढ़े आ रहे हैं ॥२६॥

त्वमेकः किल लोकानां क्लिष्टानां क्लेशनाशनः ।
त्वमेकः क्लेशदस्तेषामनासन्नपदां तव ॥२७॥

त्वं एकः किल लोकानां क्लिष्टानां क्लेश नाशनः त्वं एकः क्लेशदः तेषां अनासन्न पदां तव ॥२७॥

किल	निश्चय	**तव पदां**	आपके चरणोंमें
एकः त्वं	एक मात्र आप	**अनासन्न**	न आनेवाले
क्लिष्टानां	क्लेशमें पड़े	**तेषां**	उनके
लोकानां	लोगोंके	**एकः त्वं**	एक मात्र आप ही
क्लेश नाशनः	क्लेश नाशक हैं (और)	**क्लेशदः**	क्लेश देनेवाले भी है ॥२७॥

*मैत्रेय उवाच**–

सोऽवधार्यास्य कार्पण्यं विविक्ताध्यात्मदर्शनः ।
विमुञ्चात्मतनुं घोरामित्युक्तो विमुमोच ह ॥२८॥

सः अवधार्य अस्य कार्पण्यं विविक्त अध्यात्म दर्शनः विमुञ्च आत्म तनुं घोरां इति उक्तः विमुमोच ह ॥२८॥

सः	वे (भगवान्)	**आत्मघोरां तनुं**	'अपने घोर शरीरको
विविक्त अध्यात्म	हृदयके एकान्त (भाव) को	**विमुञ्च**	छोड़ दो ।'
दर्शनः	देखनेवाले	**इति उक्तः**	ऐसा कहा,
अस्य	इन (ब्रह्माजी) की	**विमुमोच ह**	अतः (ब्रह्माजीने उसे) छोड़ दिया ॥२८॥
कार्पण्यं	आतुरता		
अवधार्य	समझकर		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तां क्वणच्चरणाम्भोजां मदविह्वललोचनाम् ।
काञ्चीकलापविलसद्दुकूलच्छन्नरोधसम् ॥२९॥

तां क्वणत् चरण अम्भोजां मद विह्वल लोचनां काञ्ची कलाप विलसत् दुकूलच्छन्न रोधसम् ॥२९॥

तां क्वणत्	उस (नूपुर) बजाते	**रोधसं**	नितम्बोंपर
चरण अम्भोजां	चरण-कमलवाली,	**काञ्ची कलाप**	
मद विह्वल	मदसे चंचल	**विलसत्**	करधनी पहिननेसे
लोचनां	नेत्रोंवाली,		सुशोभित ॥२९॥
दुकूलच्छन्न	साड़ीसे ढके		

अन्योन्यश्लेषयोत्तुङ्गनिरन्तरपयोधराम् ।
सुनासां सुद्विजां स्निग्धहासलीलावलोकनाम् ॥३०॥

अन्योन्य श्लेषयोः उत्तुङ्ग निरन्तर पयोधरां सुनासां सुद्विजां स्निग्धहास लीला अवलोकनाम् ॥३०॥

अन्योन्य	एक दूसरेसे	**सुद्विजां**	सुन्दर दाँतोंवाली,
श्लेषयोः	सटे हुए	**स्निग्धहास**	मधुर हँसीसे
निरन्तर	बिना अन्तरवाले	**लीला**	
उत्तुङ्ग	ऊँचे	**अवलोकनां**	क्रीड़ा (कटाक्ष)पूर्वक
पयोधरां	स्तनोंवाली,		देखनेवाली ॥३०॥
सुनासां	सुन्दर नाकवाली,		

गूहन्तीं व्रीडयाऽऽत्मानं नीलालकवरूथिनीम् ।
उपलभ्यासुरा धर्म सर्वे सम्मुमुहुः स्त्रियम् ॥३१॥

गूहन्तीं व्रीडया आत्मानं नील अलक वरूथिनीं उपलभ्य असुराः धर्म सर्वे सम्मुमुहुः स्त्रियम् ॥३१॥

व्रीडया	लज्जासे	**नील अलक**	
आत्मानं	अपनेको	**वरूथिनीं**	काले सघन
गूहन्तीं	छिपाती हुई,		अलकोंवाली

स्त्रियं	स्त्रीको	**सर्वे असुराः**	सब असुर
उपलभ्य	पाकर	**सम्मुमुहुः**	(उस पर) मोहित
धर्म	विदुरजी !		हो गये ॥३१॥

अहो रूपमहो धैर्यमहो अस्या नवं वयः ।
मध्ये कामयमानानामकामेव विसर्पति ॥३२॥

अहो रूपं अहो धैर्यं अहो अस्य नवं वयः मध्ये कामय मानानां अकाम एव विसर्पति ॥३२॥

अहो रूपं	'अहो ! (इसका) रूप,	**कामय मानानां**	(हम) चाहनेवालोंके
अहो धैर्यं	आश्चर्यजनक (इसमें) धैर्य है,	**मध्ये**	बीचमें
अहो अस्य	अद्भुत इसकी	**अकाम एव**	निष्कामकी भाँति
नवं वयः	नयी अवस्था है,	**विसर्पति**	(लापरवाहीसे) विचर रही हैं ॥३२॥

वितर्कयन्तो बहुधा तां सन्ध्यां प्रमदाकृतिम् ।
अभिसम्भाव्य विश्रम्भात्पर्यपृच्छन् कुमेधसः ॥३३॥

वितर्कयन्तः बहुधा तां सन्ध्यां प्रमदा आकृतिं अभिसम्भाव्य विश्रम्भात् पर्यपृच्छन् कुमेधसः ॥३३॥

कुमेधसः	दुर्बुद्धि (असुरोंने)	**अभिसम्भाव्य**	(उसका) आदर करके
तां प्रमदा आकृतिं	उस स्त्री रूपिणी	**विश्रम्भात्**	प्रेमपूर्वक
सन्ध्यां	सन्ध्या (के सम्बन्धमें)	**पर्यपृच्छन्**	(उससे) पूछने लगे ॥३३॥
बहुधा	अनेक प्रकारके		
वितर्कयन्तः	तर्क-वितर्क करते हुए		

*असुरा ऊचुः**-

कासि कस्यासि रम्भोरु को वार्थस्तेऽत्र भामिनी ।
रूपद्रविणपण्येन दुर्भगान्नो विराधसे ॥३४॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

कासि कस्य असि रम्भोरु कः अर्थः ते अत्र भामिनी रूप द्रविण पण्येन दुर्भगान् नः बिबाध से ॥३४॥

रम्भोरु	केलेके समान जांघोवाली,	**भामिनी**	सुन्दरी !
कासि	कौन हो ?	**रूप द्रविण**	सौन्दर्य रूपी धनके
कस्य असि	किसकी (पुत्री) हो ?	**पण्येन**	मूल्यसे
अत्र ते	यहाँ तुम्हारा	**नः दुर्भगान्**	हम अभागोंको
कः अर्थः	क्या प्रयोजन है ?	**बिबाध से**	तरसा रही हो ॥३४॥

या वा काचित्त्वमबले दिष्ट्या सन्दर्शनं तव ।
उत्सुनोषीक्षमाणानां कन्दुकक्रीडया मनः ॥३५॥

या वा काचित् त्वं अबले दिष्ट्या सन्दर्शनं तव उत्सुनोषि ईक्षमाणानां कन्दुक क्रीडया मनः ॥३५॥

त्वं	तुम	**कन्दुक क्रीडया**	(अपने) गेंदके खेलसे
या काचित् वा	जो कोई भी हो	**ईक्षमाणानां**	(हम) दर्शकोंका
अबले	अबले !	**मनः**	मन
दिष्ट्या	सौभाग्यसे	**उत्सुनोषि**	मथे डालती हो ॥३५॥
तव सन्दर्शनं	तुम्हारा दर्शन हुआ।		

नैकत्र ते जयति शालिनि पादपद्मं
घनन्त्या मुहुः करतलेन पतत्पतङ्गम् ।
मध्यं विषीदति बृहत्स्तनभारभीतं
शान्तेव दृष्टिरमला सुशिखासमूहः ॥३६॥

न एकत्र ते जयति शालिनी पाद पद्मं घनन्त्या मुहुः करतलेन पतत् पतङ्गं मध्यं विषीदति बृहत् स्तन भार भीतं शान्त इव दृष्टिः अमला सुशिखा समूहः ॥३६॥

पतत्	गिरती हुई	**मुहुः**	बार-बार
पतङ्गं	गेंदको	**करतलेन**	हथेलीसे

घ्नत्याः	मारनेसे
जयति शालिनि	विजय करनेवाली (सुन्दरी)
ते	तुम्हारे
पाद पद्मं	चरण-कमल
एकत्र न	एक स्थानपर नहीं रह पाते,
वृहत् स्तन भार भीतं	भारी स्तनोंके भारसे डरा हुआ
मध्यं	बीचका भाग (कमर)
विषीदति	(थकी)कष्ट पाती है,
अमला दृष्टिः	(तुम्हारी) निर्मल दृष्टि
शान्त एव	शान्त ही है,
सुशिखा समूहः	केशपाश (कितना) सुन्दर है ॥३६॥

*मैत्रेय उवाच**–

इति सायंतनीं संध्यामसुराः प्रमदायतीम् ।
प्रलोभयन्तीं जगृहुर्मत्वा मूढधियः स्त्रियम् ॥३७॥

इति सायंतनीं सन्ध्यां असुराः प्रमदायतीं प्रलोभयन्तीं जगृहुः मत्त्वा मूढधियः स्त्रियम् ॥३७॥

इति	इस प्रकार
प्रमदायतीं	स्त्री रूप धारिणी
प्रलोभयन्तीं	प्रलुब्ध करती
सायंतनीं	सायंकालीना
सन्ध्यां	सन्ध्याको
मूढधियः	मूढ बुद्धि
असुराः	असुरोंने
स्त्रियं मत्वा	स्त्री समझकर
जगृहुः	ग्रहण कर लिया ॥३७॥

प्रहस्य भावगम्भीरं जिघ्रन्त्यात्मानमात्मना ।
कान्त्या ससर्ज भगवान् गन्धर्वाप्सरसां गणान् ॥३८॥

प्रहस्य भाव गम्भीरं जिघ्रन्त्य आत्मानं आत्मना कान्त्या ससर्ज भगवान् गन्धर्व अप्सरसां गणान् ॥३८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

गम्भीरं भाव	गम्भीर भावसे	**कान्त्या**	(अपनी) कान्तिसे
प्रहस्य	हँसकर	**गन्धर्व अप्सरसां**	
भगवान्	भगवान (ब्रह्माने)	**गणान्**	गन्धर्व एवं अप्सरा गणोंको
आत्मानं			
आत्मना	अपने आपको स्वयं	**ससर्ज**	उत्पन्न किया ॥३८॥
जिघ्रन्त्य	सूंघती (आस्वादन करती)		

विससर्ज तनुं तां वै ज्योत्स्नां कान्तिमतीं प्रियाम् ।
त एव चाददुः प्रीत्या विश्वावसु पुरोगमाः ॥३९॥

विससर्ज तनुं तां वै ज्योत्स्नां कान्तिमतीं प्रियां त एव च आददुः प्रीत्या विश्वावसु पुरोगमाः ॥३९॥

तां ज्योत्स्नां	उस चन्द्रिका रूप	**प्रीत्या**	प्रसन्नतापूर्वक
कान्तिमतीं	कान्तिमय	**विश्वावसु**	विश्वावसु
प्रियां तनुं वै	प्रिय शरीरको भी	**पुरोगमाः**	जिनके आगे चलते हैं (उन गन्धर्वोंने)
विससर्ज	त्याग दिया,		
त एव च	उसको ही	**आददुः**	ले लिया ॥३९॥

सृष्ट्वा भूतपिशाचांश्च भगवानात्मतन्द्रिणा ।
दिग्वाससो मुक्तकेशान् वीक्ष्य चामीलयद् दृशौ ॥४०॥

सृष्ट्वा भूत पिशाचान् च भगवान् आत्म तन्द्रिणा दिग्वाससः मुक्तकेशान् वीक्ष्य च अमीलयत् दृशौ ॥४०॥

भगवान्	भगवान (ब्रह्माने)	**सृष्ट्वा**	उत्पन्न करके
आत्म तन्द्रिणा	अपनी तन्द्रासे	**वीक्ष्य च**	और (उन्हें) देखकर
दिग्वाससः	दिगम्बर	**दृशौ**	नेत्रोंको
मुक्तकेशान्	खुले बालोंवाले	**अमीलयत्**	बन्द कर लिया ॥४०॥
भूत पिशाचान् च	भूत तथा प्रेतोंको		

जगृहुस्तद्विसृष्टां तां जृम्भणाख्यां तनुं प्रभोः ।
निद्रामिन्द्रियविक्लेदो यया भूतेषु दृश्यते ।
येनोच्छिष्टान्धर्षयन्ति तमुन्मादं प्रचक्षते ॥४१॥

जगृहुः तद् विसृष्टां तां जृम्भण आख्यां तनुं प्रभोः निद्रां इन्द्रिय विक्लेदः यया भूतेषु दृश्यते येन उच्छिष्टान् धर्षयन्ति तं उन्मादं प्रचक्षते ॥४१॥

तद्	उन (ब्रह्माजी) के द्वारा
विसृष्टां	छोड़ा गया
प्रभोः	ब्रह्माजीके
जृम्भण आख्यां	जम्हाई नामक
तां तनुं निद्रां	उस शरीर निद्राको
जगृहुः	(उन भूत-पिशाचोंने) ले लिया,
यया	जिसके द्वारा
भूतेषु	प्राणियोंमें
इन्द्रिय विक्लेदः	इन्द्रियोंकी शिथिलता
दृश्यते	दिखलायी पड़ती है,
येन	जिस (निद्राके) माध्यमसे
उच्छिष्टान्	जूठे मुख सोने वालेको
धर्षयन्ति	(भूत-प्रेत) अभिभूत कर लेते हैं
तं	उस (अवस्था) को
उन्मादं	पागलपन
प्रचक्षते	कहा जाता है ॥४१॥

ऊर्जस्वन्तं मन्यमान आत्मानं भगवानजः ।

साध्यान् गणान् पितृगणान् परोक्षेणासृजत्प्रभुः ॥४२॥

ऊर्जस्वन्तं मन्यमानः आत्मानं भगवान् अजः साध्यान् गणान् पितृ गणान् परोक्षेण असृजत् प्रभुः ॥४२॥

प्रभुः	समर्थ
भगवान् अजः	भगवान ब्रह्माने
आत्मानं	अपनेको
ऊर्जस्वन्तं	ऊर्जा(शक्ति) सम्पन्न
मन्यमानः	मानकर
परोक्षेण	अदृश्य रूपसे
साध्यान् गणान्	साध्यगणोंको (और)
पितृ गणान्	पितरगणोंको
असृजत्	उत्पन्न किया ॥४२॥

त आत्मसर्गं तं कायं पितरः प्रतिपेदिरे ।

साध्येभ्यश्च पितृभ्यश्च कवयो यद्वितन्वते ॥४३॥

त आत्मसर्गं तं कायं पितरः प्रतिपेदिरे साध्येभ्यः च पितृभ्यः च कवयः यत् वितन्वते ॥४३॥

आत्मसर्गं	अपने उत्पन्न करनेवाले
तं कायं	उस (अदृश्य) शरीरको
त पितरः	उन पितरोंने
प्रतिपेदिरे	ग्रहण कर लिया,
यत्	जिसके द्वारा
साध्येभ्यः च	साध्यगणोंको और
पितृभ्यः च	पितरोंको भी
कवयः	कव्य(पिण्ड)और हव्य
वितन्वते	अर्पण करते हैं॥४३॥

सिद्धान् विद्याधरांश्चैव तिरोधानेन सोऽसृजत् ।
तेभ्योऽददात्तमात्मानमन्तर्धानाख्यमद्भुतम् ॥४४॥

सिद्धान् विद्याधरान् च एव अन्तर्धानेन सः असृजत् तेभ्यः अदात् तं आत्मानं अन्तर्धान आख्यं अद्भुतम् ॥४४॥

सिद्धान्	सिद्धोंको
विद्याधरान्	
च एव	और विद्याधरोंको भी
सः	उन (ब्रह्माजी) ने
अन्तर्धानेन	तिरोधान शक्तिसे
असृजत्	बनाया
तेभ्यः	उनको
अन्तर्धान आख्यं	अन्तर्धान नामवाला
तं अद्भुतं	उस अद्भुत
आत्मानं	अपने शरीरको
अदात्	दिया ॥४४॥

सकिन्नरान् किम्पुरुषान् प्रत्यात्म्येनासृजत्प्रभुः ।
मानयन्नात्मनाऽऽत्मानमात्माभासं विलोकयन् ॥४५॥

स किन्नरान् किम्पुरुषान् प्रत्यात्म्येन असृजत् प्रभुः मानयन् आत्मानं आत्मना आत्मानं आत्म आभासं विलोकयन् ॥४५॥

प्रभुः	समर्थ (ब्रह्माजी) ने
आत्म आभासं	अपने प्रतिविम्बको
विलोकयन्	देखते हुए
आत्मना	स्वयं ही (उसे)
आत्मानं मानयन्	अपना स्वरूप मानते हुए
प्रत्यात्म्येन	(उस) प्रतिविम्बसे
स किन्नरान्	किन्नरोंके साथ
किम्पुरुषान्	किम्पुरुषोंको
असृजत्	उत्पन्न किया ॥४५॥

ते तु तज्जगृहू रूपं त्यक्तं यत्परमेष्ठिना ।
मिथुनीभूय गायन्तस्तमेवोषसि कर्मभिः ॥४६॥

ते तु तत् जगृहुः रूपं त्यक्तं यत् परमेष्ठिना मिथुनी भूय गायन्तः तं एव उषसि कर्मभिः ॥४६॥

यत् परमेष्ठिना	जो ब्रह्माजी द्वारा	**तं एव**	उन (ब्रह्माजी)का ही
त्यक्तं	छोड़ दिया गया	**कर्मभिः**	(उनके) कर्मोंके
तत् रूपं	उस रूपको		वर्णन द्वारा
ते तु	उन्होंने तो	**मिथुनी भूय**	पत्नियोंके साथ
जगृहुः	ग्रहण कर लिए	**गायन्तः**	गायन करते हैं॥४६॥
उषसि	प्रातःकाल		

देहेन वै भोगवता शयानो बहुचिन्तया ।
सर्गेऽनुपचिते क्रोधादुत्ससर्ज ह तद्वपुः ॥४७॥

देहेन वै भोगवता शयानः बहु चिन्तया सर्गे अनुपचिते क्रोधात् उत्ससर्ज ह तद् वपुः ॥४७॥

सर्गे	सृष्टिके	**शयानः**	लेटे हुए
अनुपचिते	न बढ़नेसे	**क्रोधात्**	क्रोधवश
बहु चिन्तया	बहुत चिन्तासे	**तद् वपुः**	उस शरीरको
भोगवता वै	हाथ-पैर फैलाये	**उत्ससर्ज ह**	त्याग ही
देहेन	शरीरसे		दिया ॥४७॥

येऽहीयन्तामुतः केशा अहयस्तेऽङ्ग जज्ञिरे ।
सर्पाः प्रसर्पतः क्रूरा नागा भोगोरुकन्धराः ॥४८॥

ये अहीयन्तां उतः केशा अहयः ते अङ्ग जज्ञिरे सर्पाः प्रसर्पतः क्रूरा नागा भोगः उरु कन्धराः ॥४८॥

अङ्ग	प्रिय विदुर !	**क्रूराः प्रसर्पतः**	उन क्रोधियोंको
उतः	उस (शरीर) से		सरकनेके कारण
ये केशा	जो बाल	**सर्पाः**	सर्प कहा गया ।
अहीयन्तां ते	झड़कर गिरे वे	**उरुभोगः कन्धरा**	लम्बे देह तथा
अहयः जज्ञिरे	अहि होकर उत्पन्न		अनेक सिरवाले
	हुए ।	**नागा**	नाग कहलाये ॥४८॥

स आत्मानं मन्यमानः कृतकृत्यमिवात्मभूः ।
तदा मनून् ससर्जान्ते मनसा लोकभावनान् ॥४९॥

स आत्मानं मन्यमानः कृतकृत्यं इव आत्मभूः तदा मनून् ससर्ज अन्ते मनसा लोक भावनान् ॥४९॥

स आत्मभूः	उन ब्रह्माजीने	**लोक भावनान्**	प्रजाकी वृद्धि करनेवाले
आत्मानं	अपनेको	**मनून्**	मनुओंको
कृतकृत्यं इव	कृतकृत्य जैसा	**मनसा ससर्ज**	मनसे (संकल्पसे) उत्पन्न किया ॥४९॥
मन्यमानः	मानते हुए		
तदा अन्ते	तब अन्तमें		

तेभ्यः सोऽत्यसृजत्स्वीयं पुरं पुरुषमात्मवान् ।
तान् दृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः प्रशशंसुः प्रजापतिम् ॥५०॥

तेभ्यः सः अत्य सृजत् स्वीयं पुरं पुरुषं आत्मवान् तान् दृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः प्रशशंसुः प्रजापतिम् ॥५०॥

सः आत्मवान्	उन मनस्वी (ब्रह्माजीने)	**तान् दृष्ट्वा**	उन (मनुओं) को देखकर
तेभ्यः	उन (मनुओं) के लिए	**ये पुरा सृष्टाः**	जो पहिले उत्पन्न किये गये थे
स्वीयं	अपना		
पुरुषं पुरं	पुरुषाकार शरीर	**प्रजापतिं**	(वे) ब्रह्माजीकी
अत्य सृजत्	त्याग दिया,	**प्रशशंसुः**	प्रशंसा करने लगे ॥५०॥

अहो एतज्जगत्स्रष्टः सुकृतं बत ते कृतम् ।
प्रतिष्ठिताः क्रिया यस्मिन् साकमन्नमदामहे ॥५१॥

अहो एतत् जगत् स्रष्टः सुकृतं बत ते कृतं प्रतिष्ठिताः क्रिया यस्मिन् साकं अन्नं अदाम हे ॥५१॥

जगत् स्रष्टः	विश्वकर्ता !	**सुकृतं कृतं**	उत्तम कार्य किया है,
अहो एतत्	अहो ! यह	**यस्मिन्**	जिन (मनुओं) में
ते बत	आपने निश्चय	**क्रियाः**	कर्मोंकी

प्रतिष्ठिताः	प्रतिष्ठा (स्थिति) है (जिन्हें कर्म करनेका अधिकार है)*	**अन्नं**	(हम भी अपना) आहार (हवि भाग)
साकं	(इनके) साथ	**अदामहे**	खा सकेंगे ॥५१॥

तपसा विद्यया युक्तो योगेन सुसमाधिना ।
ऋषीनृषिर्हृषीकेशः ससर्जाभिमताः प्रजाः ॥५२॥

तपसा विद्यया युक्तः योगेन सुसमाधिना ऋषीन् ऋषिः हृषीकेशः ससर्ज अभिमताः प्रजाः ॥५२॥

हृषीकेशः	इन्द्रियोंके स्वामी	**सुसमाधिना**	अत्यन्त एकाग्रतासे
ऋषिः	आदि ऋषि (ब्रह्माजी) ने	**युक्तः**	युक्त होकर
तपसा	तपस्यासे,	**अभिमताः प्रजाः**	अपनेको प्रिय लगने वाली सन्तान
विद्यया	विद्यासे,	**ऋषीन्**	ऋषियोंको
योगेन	योगसे	**ससर्ज**	उत्पन्न किया ॥५२॥

तेभ्यश्चैकैकशः स्वस्य देहस्यांशमदादजः ।
यत्तत्समाधियोगर्द्धितपोविद्याविरक्तिमत् ॥५३॥

तेभ्यः च एक एकशः स्वस्य देहस्य अंशं अदात् अजः यत् तत् समाधि योग अर्धि तपः विद्या विरक्तिमत् ॥५३॥

तेभ्यः च	उन (ऋषियों) को भी	**अर्धि विद्या**	ऐश्वर्य विद्या
अजः	ब्रह्माजीने	**विरक्तिमत्**	वैराग्य सम्पन्न था (उसका)
स्वस्य तत्		**एक एकशः**	एक एक
देहस्य	अपने उस शरीरका	**अंशं**	अंश
यत् समाधि	जो एकाग्रता	**अदात्**	दिया ॥५३॥
योग तपः	योग, तपस्या		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे विंशोऽध्यायः ।

---

* 'प्रतिष्ठिताः क्रिया यस्मिन्' का तात्पर्य है कि जो कर्मयोनि है । जिसे कर्म करनेका स्वतन्त्र अधिकार है ।

अथैकविंशोऽध्यायः

विदुर उवाच-

स्वायम्भुवस्य च मनोर्वंशः परमसम्मतः ।
कथ्यतां भगवन् यत्र मैथुनेनैधिरे प्रजाः ॥१॥

स्वायम्भुवस्य च मनोः वंशः परम सम्मतः कथ्यतां भगवन् यत्र मैथुनेन एधिरे प्रजाः ॥१॥

भगवन्	भगवन् !	**कथ्यतां**	(उसका) वर्णन कीजिए
स्वायम्भुवस्य			
मनोः च	स्वायंभू मनुका भी	**यत्र**	जिसमें
वंशः	वंश	**मैथुनेन**	मैथुन धर्मसे
परम सम्मतः	परम आदरणीय है,	**प्रजाः एधिरे**	प्रजाकी बृद्धि हुई ॥१॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ स्वायम्भुवस्य वै ।
यथाधर्मं जुगुपतुः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥२॥

प्रियव्रत उत्तान पादौ सुतौ स्वायम्भुवस्य वै यथा धर्मं जुगुपतुः सप्त द्वीपवतीं महीम् ॥२॥

स्वायम्भुवस्य वै	स्वायम्भू (मनु) के जो	**सप्त द्वीपवतीं महीं**	सात द्वीपोंवाली पृथ्वीको
सुतौ	पुत्र		
प्रियव्रत उत्तान पादौ	प्रियव्रत और उत्तान पादने	**यथा धर्मं जुगुपतुः**	जैसे धर्मपूर्वक रक्षण किया (वह सुनाइये) ॥२॥

तस्य वै दुहिता ब्रह्मन्देवहूतीति विश्रुता ।
पत्नी प्रजापतेरुक्ता कर्दमस्य त्वयानघ ॥३॥

तस्य वै दुहिता ब्रह्मन् देवहूति इति विश्रुताः पत्नी प्रजापतेः उक्ता कर्दमस्य त्वया अनघ ॥३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
अनघ	निष्पाप मैत्रेयजी !
तस्य वै	उनकी ही तो
देवहूति इति	देवहूति इस नामसे
विश्रुताः दुहिता	प्रसिद्ध पुत्री थीं,
त्वया	आपने (उन्हें)
प्रजापतेः कर्दमस्य	प्रजापति कर्दमकी
पत्नी उक्ता	पत्नी बतलाया है ॥३॥

तस्यां स वै महायोगी युक्तायां योगलक्षणैः ।
ससर्ज कतिधा वीर्यं तन्मे शुश्रूषवे वद ॥४॥

तस्यां स वै महायोगी युक्तायां योग लक्षणैः ससर्ज कतिधा वीर्यं तत् मे शुश्रूषवे वद ॥४॥

योग लक्षणैः	योगके लक्षणों (यम-नियमादि) से
युक्तायां	युक्त
तस्यां	उस (देवहूति) में
स महायोगी	उन महायोगी नें
वै	निश्चित रूपसे
कतिधा वीर्यं	कितनी सन्तानें
ससर्ज	उत्पन्न कीं
तत् मे	वह मुझ
शुश्रूषवे	सुननेकी इच्छा वालेको
वद	बतलाइये ॥४॥

रुचिर्यो भगवान् ब्रह्मन्दक्षो वा ब्रह्मणः सुतः ।
यथा ससर्ज भूतानि लब्ध्वा भार्यां च मानवीम् ॥५॥

रुचिः यः भगवान् ब्रह्मन् दक्षः वा ब्रह्मणः सुतः यथा ससर्ज भूतानि लब्ध्वा भार्यां च मानवीम् ॥५॥

ब्रह्मन् यः	ब्रह्मन् ! जो
भगवान् रुचिः	भगवान् रुचि थे
वा	अथवा
ब्रह्मणः सुतः	
दक्षः	ब्रह्माजीके पुत्र दक्ष थे,
मानवीं च	मनुकी पुत्रियोंको ही
भार्यां लब्ध्वा	पत्नी रूपमें पाकर
यथा	जैसे
भूतानि ससर्ज	प्राणियोंकी सृष्टिकी (वह बतलावें) ॥५॥

मैत्रेय उवाच–

प्रजाः सृजेति भगवान् कर्दमो ब्रह्मणोदितः ।
सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दश ॥६॥

प्रजाः सृज इति भगवान् कर्दमः ब्रह्मणा उदितः सरस्वत्यां तपः तेपे सहस्राणां समा दश ॥६॥

प्रजाः सृज	'संतान उत्पन्न करो'	**सरस्वत्यां**	सरस्वती किनारे
इति	इस प्रकार	**दश सहस्राणां**	
ब्रह्मणा उदितः	ब्रह्माजी द्वारा आदेश देनेपर	**समाः**	दस हजार वर्ष तक
		तपः तेपे	तपस्या की ॥६॥
भगवान् कर्दमः	भगवान कर्दमने		

ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्दमः ।
सम्प्रपेदे हरिं भक्त्या प्रपन्नवरदाशुषम् ॥७॥

ततः समाधि युक्तेन क्रिया योगेन कर्दमः सम्प्रपेदे हरिं भक्त्या प्रपन्न वरदाशुषम् ॥७॥

ततः	उस समय	**वरदाशुषं**	वरदायक
समाधि युक्तेन	एकाग्र चित्तसे	**हरिं**	श्रीहरिकी
क्रिया योगेन	पूजन विधिसे	**भक्त्या**	भक्तिपूर्वक
कर्दमः	कर्दमजी	**सम्प्रपेदे**	आराधना करने लगे ॥७॥
प्रपन्न	शरणागत		

तावत्प्रसन्नो भगवान् पुष्कराक्षः कृते युगे ।
दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्म दधद्वपुः ॥८॥

तावत् प्रसन्नः भगवान् पुष्कर अक्षः कृते युगे दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्म दधत् वपुः ॥८॥

क्षत्तः	विदुर !	**प्रसन्नः**	प्रसन्न होकर
तावत्	उतने समयमें	**शाब्दं ब्रह्म**	शब्द ब्रह्म (वेद)मय
कृत युगे	सतयुगमें	**वपुः दधत्**	शरीर धारण करके
भगवान्		**तं दर्शयामास**	उनको दर्शन दिया ॥८॥
पुष्कर अक्षः	भगवान कमल नयनने		

स तं विरजमर्काभं सितपद्मोत्पलस्रजम् ।
स्निग्धनीलालकव्रातवक्त्राब्जं विरजोऽम्बरम् ॥९॥

स तं विरजं अर्काभं सित पद्म उत्पल स्रजं स्निग्ध नील अलक व्रात वक्त्र अब्जं विरज अम्बरम् ॥९॥

स	उन (कर्दमजी) ने
तं	उन (भगवान) को देखा
अर्काभं	सूर्यके समान तेजोमय,
सित पद्म	श्वेत कमल (और)
उत्पल स्रजं	कुमुदिनीकी माला पहिने
स्निग्ध	चिकनी
नील अलक व्रात	काली अलकोंसे घिरे
वक्त्र अब्जं	कमल मुखवाले,
विरज अम्बरं	निर्मल वस्त्र वाले ॥९॥

किरीटिनं कुण्डलिनं शङ्ख-चक्रगदाधरम् ।
श्वेतोत्पलक्रीडनकं मनःस्पर्शस्मितेक्षणम् ॥१०॥

किरीटिनं कुण्डलिनं शङ्ख चक्र गदाधरं श्वेत उत्पल क्रीडनकं मनः स्पर्श स्मित ईक्षणम् ॥१०॥

किरीटिनं	मुकुटधारी,
कुण्डलिनं	कुण्डल पहिने,
शङ्ख चक्र गदाधरं	शंख, चक्र,गदाधारी,
श्वेत उत्पल क्रीडनकं	श्वेत कमलको खिलौनेकी भाँति लिए
मनः स्पर्श स्मित ईक्षणं	मनको छू लेनेवाली मन्द मुस्कान सहित देखते हुए ॥१०॥

विन्यस्तचरणाम्भोजमंसदेशे गरुत्मतः ।
दृष्ट्वा खेऽवस्थितं वक्षः श्रियं कौस्तुभकन्धरम् ॥११॥

विन्यस्त चरण अम्भोजं अंश देशे गरुत्मतः दृष्ट्वा खे अवस्थितं वक्षः श्रियं कौस्तुभ कन्धरम् ॥११॥

वक्षः श्रियं	वक्षस्थलपर श्रीवत्स,
कौस्तुभ कन्धरं	गलेमें कौस्तुभमणि पहिने
गरुत्मतः अंश देशे	गरुड़के कन्धोंपर
चरण अम्भोजं विन्यस्तं	चरण-कमल रखे हुए
खे अवस्थितं दृष्ट्वा	आकाशमें स्थित (भगवानको देखकर ॥११॥

जातहर्षोऽपतन्मूर्ध्ना क्षितौ लब्धमनोरथः ।
गीर्भिस्त्वभ्यगृणात्प्रीतिस्वभावात्मा कृताञ्जलिः ॥१२॥

जात हर्षः अपतन् मूर्ध्ना क्षितौ लब्ध मनोरथः गीर्भिः तु अभ्यगृणात् प्रीति स्व भावात्मा कृत अञ्जलिः ॥१२॥

जात हर्षः	बड़ा हर्ष हुआ,	**मूर्ध्ना**	सिरसे (पृथ्वीपर सिर टेककर)
लब्ध मनोरथः	सब मनोरथ प्राप्त हो गया ।	**कृत अञ्जलिः**	(फिर)हाथ जोड़कर
प्रीति स्व	प्रीतिसे पूर्ण	**गीर्भिः तु**	शुद्ध वाणीसे
भावात्मा	भावमग्न चित्त	**अभ्यगृणात्**	स्तुति करने
क्षितौ अपतन्	पृथ्वीपर (साष्टाङ्ग) गिरकर		लगे ॥१२॥

*कर्दमोवाच-**

जुष्टं बताद्याखिलसत्त्वराशेः
सांसिध्यमक्ष्णोस्तव दर्शनान्नः ।
यद्दर्शनं जन्मभिरीड्य सद्भि-
राशासते योगिनो रूढयोगाः ॥१३॥

जुष्टं बत अद्य अखिल सत्त्व राशेः सांसिध्यं अक्ष्णोः तव दर्शनात् नः यत् दर्शनं जन्मभिः ईड्य सद्भिः आशासते योगिनः रूढ योगाः ॥१३॥

अखिल	सम्पूर्ण	**यत् दर्शनं**	जिनका दर्शन
सत्त्व राशेः	सचराचर जगत् रूप	**सद्भिः**	सत्पुरुष
ईड्य	स्तवनीय (प्रभु !)	**योगिनः**	योगीजन
बत अद्य	सौभाग्यसे आज	**जन्मभिः**	अनेक जन्मोंमें
तव दर्शनात्	आपके दर्शनसे	**रूढ योगाः**	योगारूढ होकर
नः अक्ष्णोः	मेरे नेत्र	**आशासते**	करना चाहते
सांसिध्यं	सफल हुए ।		हैं ॥१३॥

ये मायया ते हतमेधसस्त्वत्
पादारविन्दं भवसिन्धुपोतम् ।

---

* अन्य प्रतियोंमें 'ऋषिरुवाच' पाठ है ।

उपासते कामलवाय तेषां
रासीश कामान्निरयेऽपि ये स्युः ॥१४॥

ये मायया ते हत मेधसः त्वत् पाद अरविन्दं भवसिन्धु पोतं उपासते कामलवाय तेषां रासीश कामान् निरये अपि ये स्युः ॥१४॥

ये	जिनकी	**निरये अपि**	नरकमें भी
ते मायया	आपकी मायासे	**ये स्युः**	जो हैं (उन)
मेधसः हत	बुद्धि मारी गयी है (वे)	**कामलवाय**	कामना कणिकाओंके लिए
भवसिन्धु पोतं	संसार सागरमें जहाज रूप	**उपासते**	उपासना करते हैं,
त्वत् पाद		**तेषां**	उनकी (कामनायें)
अरविन्दं	आपके चरण-कमलोंकों	**रासीश**	(आप) पूर्ण करते हैं ॥१४॥

तथा स चाहं परिवोढुकामः
समानशीलां गृहमेधधेनुम् ।
उपेयिवान्मूलमशेषमूलं
दुराशयः कामदुघाङ्घ्रिपस्य ॥१५॥

तथा स च अहं परिवोढु कामः समान शीलां गृहमेध धेनुं उपेयिवान् मूलं अशेष मूलं दुराशयः कामदुघ अङ्घ्रि पस्य ॥१५॥

तथा स च अहं	वैसा ही यह मैं भी	**मूलं उपेयिवान्**	समीप आया हूँ
दुराशयः	तुच्छ अभिप्राय वाला हूँ,	**समान शीलां**	समान स्वभाववाली
कामदुघ	कल्प वृक्ष समान	**गृहमेध धेनुं**	गार्हस्थ्य सुख देने वालीसे
अङ्घ्रि पस्य	चरणवाले	**परिवोढु कामः**	विवाह करनेकी इच्छासे ॥१५॥
अशेष मूलं	सबके मूलकारण		

प्रजापतेस्ते वचसाधीश तन्त्या
लोकः किलायं कामहतोऽनुबद्धः ।

अहं च लोकानुगतो वहामि
बलिं च शुक्लानिमिषाय तुभ्यम् ॥१६॥

प्रजापतेः ते वचसा अधीश तन्त्या लोकः किल अयं कामहतः अनुबद्धः अहं च लोक अनुगतः वहामि बलिं च शुक्ल अनिमिषाय तुभ्यम् ॥१६॥

अधीश	सर्वेश्वर !	**अहं च**	मैं भी
प्रजापतेः	प्रजाके स्वामी !	**लोक अनुगतः**	लोकानुगामी होकर
ते वचसा	आपकी (वेदरूपी) वाणी	**शुक्ल**	धर्ममूर्ति
		अनिमिषाय	कालस्वरूप
तन्त्या किल	रूपी रस्सीसे ही	**तुभ्यं**	आपको
अनुबद्धः	बँधा हुआ	**बलिं च**	(यह स्तुति रूपी) उपहार ही
अयं लोकः	यह लोक		
कामहतः	कामनाओंसे मारा गया है ।	**वहामि**	दे रहा हूँ ॥१६॥

लोकांश्च लोकानुगतान् पशूंश्च
हित्वा श्रितास्ते चरणातपत्रम् ।
परस्परं त्वद्गुणवादसीधु-
पीयूषनिर्यापितदेहधर्माः ॥१७॥

लोकान् च लोक अनुगतान् पशून् च हित्वा श्रिताः ते चरण आतपत्रं परस्परं त्वत् गुणवाद सीधु पीयूष निर्यापित देह धर्माः ॥१७॥

लोकान् च	लोगोंको और	**परस्परं**	परस्पर
लोक अनुगतान्	लोगोंके अनुगत	**त्वत् गुणवाद**	आपके गुणानुवाद
पशून् च	(मुझ जैसे) पशुओंको भी	**सीधु पीयूष**	मादक सुधासे
		देह धर्माः	शरीरके धर्म (भूख प्यासादि)
हित्वा ते	छोड़कर आपके		
चरण आतपत्रं	चरण रूपी छत्रकी	**निर्यापितः**	(को भी) शान्त
श्रिताः	छायाका आश्रय लेनेवाले		करते हैं ॥१७॥

न तेऽजराक्षभ्रमिरायुरेषां
त्रयोदशारं त्रिशतं षष्टिपर्व ।
षण्नेम्यनन्तच्छदि यत्त्रिणाभि
करालस्रोतो जगदाच्छिद्य धावत् ॥१८॥

न ते अजः अक्षभ्रमिः आयुः एषां त्रयोदश अरं त्रिशत षष्टि पर्व षट्नेमिः अनन्तः छदि यत् त्रिणाभिः कराल स्रोतः जगत् आछिद्य धावत् ॥१८॥

यत् अक्षभ्रमिः	जो ब्रह्मरूप धुरीपर घूमनेवाला	त्रिणाभिः	तीन (चातुर्मास्य रूप) नाभिवाला,
त्रयोदश अरं	(अधिक मास सहित) तेरह मास रूप अरोंवाला,	कराल स्रोतः	भयङ्कर गतिवाला (काल चक्र)
त्रिषष्टि पर्वं	तीनसौ साठ (दिन रूप)जोड़वाला	जगत् आछिद्य धावत्	जगतको काटता दौड़ रहा है,
षट्नेमिः	६ (ऋतु रूपी) हाल युक्त,	अजः	अजन्मा प्रभु !
अनन्तः छदिः	अनन्त (क्षण, पल रूप) धारोंवाला,	ते एषां आयुः न	तुम्हारे (हैं) उनकी आयुको नहीं (काटता) ॥१८॥

एकः स्वयं सञ्जगतः सिसृक्षया-
द्वितीययाऽऽत्मन्नधियोगमायया ।
सृजस्यदः पासि पुनर्ग्रसिष्यसे
यथोर्णनाभिर्भगवन् स्वशक्तिभिः ॥१९॥

एकः स्वयं सन् जगतः सिसृक्षया द्वितीयया आत्मनि अधियोग-मायया सृजसि अदः पासि पुनः ग्रसिष्यसे यथा उर्णनाभिः भगवन् स्वशक्तिभिः ॥१९॥

भगवन्	भगवन् !	स्वयं	स्वयं
एकः सन्	अकेले होते हुए	जगतः	संसारकी

सिसृक्षया	सृष्टि करनेकी इच्छासे
आत्मनि	अपनेमें ही
द्वितीयया	अपनेसे पृथक
अधियोगमाया	योगमायाका आश्रय लेकर
अदः	उससे उत्पन्न
स्वशक्तिभिः	अपनी शक्तियों द्वारा
सृजसि	सृष्टि करते हैं,
पासि	पालन करते हैं
पुनः ग्रसिष्यसे	फिर इसे ग्रस्त कर लेंगे
यथा उर्णनाभिः	जैसे मकड़ी ॥१९॥

नैतद्धताधीश पदं तवेप्सितं
यन्माययानस्तनुषे भूतसूक्ष्मम् ।
अनुग्रहायास्त्वपि यर्हि मायया
लसत्तुलस्या तनुवा विलक्षितः ॥२०॥

न एतत् बत अधीश पदं तव ईप्सितं यत् मायाया नः तनुषे भूत सूक्ष्मं अनुग्रहाय अस्तु अपि यर्हि मायया लसत् तुलस्या तनु वा विलक्षितः ॥२०॥

अधीश	सर्वेश्वर !
बत	निश्चय
एतत् पदं	यह रूप भी
तव ईप्सितं	आपका (अपना) अभीष्ट
न	नहीं है,
यर्हि	जो कि
तुलस्या लसत्	तुलसी मण्डित
मायया	मायासे
तनु वा	साकार रूपमें
विलक्षितः	दर्शन दे रहा है,
यत् मायाया	जिससे मायासे
नः	हमको
भूत सूक्ष्मं	(गन्धादि) तन्मात्राओंको
तनुषे	प्रदान कर रहे हैं ॥२०॥

तं त्वानुभूत्योपरतक्रियार्थं
स्वमायया वर्तितलोकतन्त्रम् ।
नमाम्यभीक्ष्णं नमनीयपाद-
सरोजमल्पीयसि कामवर्षम् ॥२१॥

तं तु अनुभूति उपरत क्रिया अर्थं स्वमायया वर्तित लोकतन्त्रं नमामि अभीक्ष्णं नमनीय पादसरोजं अल्पीयसि कामवर्षम् ॥२१॥

अनुभूति	अपने अनुभवमें
क्रिया अर्थं	कर्मके प्रयोजनसे
उपरत	उपरत (निष्क्रिय परन्तु)
स्वमायया	अपनी मायासे
लोकतन्त्रं	लोक व्यवहार
वर्तितं	चलानेवाले
तं तु	उस आपके
अल्पीयसि	छुद्र
कामवर्षं	कामनाओंको पूर्ण करनेवाले
नमनीय	वन्दनीय
पाद सरोजं	चरण कमलोंमें
अभीक्ष्णं	निरन्तर
नमामि	प्रणाम करता हूँ ॥२१॥

*मैत्रेय उवाच**–

इत्यव्यलीकं प्रणुतोऽब्जनाभ-
स्तमाबभाषे वचसामृतेन ।
सुपर्णपक्षोपरि रोचमानः
प्रेमस्मितोद्वीक्षणविभ्रमद्भ्रूः ॥२२॥

इति अव्यलीकं प्रणतः अब्जनाभः तं आबभाषे वचसा अमृतेन सुपर्णपक्ष उपरि रोचमानः प्रेमस्मितः उद्वीक्षण विभ्रमत् भ्रूः ॥२२॥

इति	इस प्रकार
अव्यलीकं	निष्कपट भावसे
प्रणुतः	प्रणाम करनेपर
सुपर्णपक्षः	गरुड़के पंखों (पीठ)
उपरि	के ऊपर
रोचमानः	सुशोभित
प्रेमस्मित	प्रेमपूर्ण मुस्कराहट सहित
उद्वीक्षण	देखनेसे
विभ्रमत् भ्रूः	चञ्चल भौंहवाले
अब्जनाभः	कमलनाभ भगवान
अमृतेन वचसा	अमृतमयी वाणीसे
तं आबभाषे	उनसे बोले ॥२२॥

---

* अन्य प्रतियोंमें 'ऋषिरुवाच' है; किन्तु 'ऋषिरुवाच' तो उनके अनुसार श्लोक १३ से चल ही रहा था।

श्रीभगवानुवाच-

विदित्वा तव चैत्यं मे पुरैव समयोजि तत् ।
यदर्थमात्मनियमैस्त्वयैवाहं समर्चितः ॥२३॥

विदित्वा तव चैत्यं मे पुरा एव समयोजि तत् यत् अर्थं आत्म नियमैः त्वयि एव अहं समर्चितः ॥२३॥

यत् अर्थं	जिस प्रयोजनसे ही	**तव चैत्यं**	तुम्हारे चित्तकी बात
आत्म नियमैः	अपने नियमों द्वारा	**विदित्वा**	जानकर
त्वयि अहं	तुम्हारे द्वारा मैं	**पुरा एव**	पहिले ही
समर्चितः	भली प्रकार पूजित हुआ,	**समयोजि**	उसकी योजना बना दी है ॥२३॥
तत्	वह		

न वै जातु मृषैव स्यात्प्रजाध्यक्ष मदर्हणम् ।
भवद्विधेष्वतितरां मयि संगृभितात्मनाम् ॥२४॥

न वै जातु मृषा एव स्यात् प्रजाध्यक्ष मत् अर्हणं भवत् विधेषु अतितरां मयि संगृभित आत्मनाम् ॥२४॥

प्रजाध्यक्ष	प्रजापति !	**मयि**	मुझमें
मत् अर्हणं	मेरा पूजन	**संगृभित**	निष्ठापूर्वक लगाये
जातु	कभी भी	**आत्मनां**	चित्तवालोंका तो
मृषा एव	झूठा (व्यर्थ) तो	**अतितरां**	अधिकतम (फल-
न वै स्यात्	हो ही नहीं सकता,		दायी होता है)॥२४॥
भवत् विधेषु	आप जैसे		

प्रजापतिसुतः सम्राण्मनुर्विख्यातमङ्गलः ।
ब्रह्मावर्तं योऽधिवसन् शास्ति सप्तार्णवां महीम् ॥२५॥

प्रजापति सुतः सम्राट् मनुः विख्यात मङ्गलः ब्रह्मावर्तं यः अधिवसन् शास्ति सप्तार्णवां महीम् ॥२५॥

विख्यात मङ्गलः	विख्यात यशस्वी
प्रजापति सुतः	ब्रह्माजीके पुत्र
सम्राट् मनुः यः	सम्राट् मनु जो
ब्रह्मावर्तं	
अधिवसन्	ब्रह्मावर्तमें रहते
सप्तार्णवां महीं	सात समुद्रोंवाली पृथ्वीका
शास्ति	शासन करते हैं ॥२५॥

स चेह विप्र राजर्षिर्महिष्या शतरूपया ।
आयास्यति दिदृक्षुस्त्वां परश्वो धर्मकोविदः ॥२६॥

स च इह विप्र राजर्षिः महिष्या शतरूपया आयास्यति दिदृक्षुः त्वां परश्वः धर्म कोविदः ॥२६॥

विप्र	ब्रह्मन् !
स च	वे तो
धर्म कोविदः	धर्मज्ञ
राजर्षिः	राजर्षि
महिष्या	(अपनी) महारानी
शतरूपया	शतरूपाके साथ
परश्वः	परसों
त्वां दिदृक्षुः	तुम्हें देखने
इह आयास्यति	यहाँ आवेंगे ॥२६॥

आत्मजामसितापाङ्गीं वयः शीलगुणान्विताम् ।
मृगयन्तीं पतिं दास्यत्यनुरूपाय ते प्रभो ॥२७॥

आत्मजां असित अपाङ्गीं वयः शील गुण अन्वितां मृगयन्तीं पतिं दास्यति अनुरूपाय ते प्रभो ॥२७॥

असित अपाङ्गीं	श्याम लोचना
वयः शील गुण	आयु, शील, गुण
अन्वितां	युक्ता
पतिं मृगयन्तीं	पति ढूंढ़ती
आत्मजां	अपनी पुत्रीको
ते अनुरूपाय	तुम अनुरूप
प्रभो	स्वामीको
दास्यति	(वे) देंगे ॥२७॥

समाहितं ते हृदयं यत्रेमान् परिवत्सरान् ।
सा त्वां ब्रह्मन्नृपवधूः काममाशु भजिष्यति ॥२८॥

समाहितं ते हृदयं यत्र इमान् परिवत्सरान् सा त्वं ब्रह्मन् नृप वधूः कामं आशु भजिष्यति ॥२८॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**सा**	वह (वैसी ही)
इमान्	इन	**नृप वधूः**	राजकन्या
परिवत्सरान्	वर्षोंमें	**आशु त्वं**	शीघ्र तुम्हारी
ते हृदयं	तुम्हारा हृदय	**कामं**	पर्याप्त
यत्र समाहितं	जैसी (पत्नी) में लगा रहा है	**भजिष्यति**	सेवा करेगी ॥२८॥

या त आत्मभृतं वीर्यं नवधा प्रसविष्यति ।
वीर्ये त्वदीये ऋषय आधास्यन्त्यञ्जसाऽऽत्मनः ॥२९॥

या त आत्मभृतं वीर्यं नवधा प्रसविष्यति वीर्ये त्वदीये ऋषयः आधास्यन्ति अञ्जसा आत्मनः ॥२९॥

या त	जो तुम्हारे	**वीर्ये**	वीर्यज (सन्तानों) में
आत्मभृतं	अपनेमें स्थापित	**ऋषयः**	ऋषि लोग
वीर्यं	वीर्यको	**अञ्जसा**	सरलतासे
नवधा	नव रूपोंमें	**आत्मनः**	(सन्तान रूपसे) अपनेको
प्रसविष्यति	उत्पन्न करेगी ।	**आधास्यन्ति**	उत्पन्न करेंगे ॥२९॥
त्वदीये	तुम्हारी		

त्वं च सम्यगनुष्ठाय निदेशं म उशत्तमः ।
मयि तीर्थीकृताशेषक्रियार्थो मां प्रपत्स्यसे ॥३०॥

त्वं च सम्यक् अनुष्ठाय निदेशं म उशत्तमः मयि तीर्थीकृत अशेष क्रियार्थः मां प्रपत्स्यसे ॥३०॥

त्वं च	तुम भी	**अशेष क्रियार्थः**	सब कर्मोंका फल
मे निदेशं	मेरे आदेशका	**मयि तीर्थीकृतः**	मुझे समर्पित करके
सम्यक् अनुष्ठाय	अच्छी तरह पालन करके	**मां प्रपत्स्यसे**	मुझे प्राप्त होओगे ॥३०॥
उशत्तमः	शुद्ध चित्त हो जाओगे,		

कृत्वा दयां च जीवेषु दत्त्वा चाभयमात्मवान् ।
मय्यात्मानं सह जगद् द्रक्ष्यस्यात्मनि चापि माम् ॥३१॥

कृत्वा दयां च जीवेषु दत्त्वा च अभयं आत्मवान् मयि आत्मानं सह जगत् द्रक्ष्यसि आत्मनि च अपि माम् । ३१॥

जीवेषु च	जीवोंपर तो	**आत्मानं सह**	अपने साथ
दयां कृत्वा	दया करके	**जगत् मयि**	जगतको मुझमें
च अभयं दत्त्वा	और (उनको) अभय देकर	**च मां**	और मुझे
		आत्मनि	अपनेमें
आत्मवान्	आत्मज्ञानी होकर	**द्रक्ष्यसि**	देखोगे ॥३१॥

सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने ।
तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम् ॥३२॥

सह अहं स्व अंश कलया त्वत् वीर्येण महामुने तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्व संहिताम् ॥३२॥

महामुने	महामुनि !	**देवहूत्यां**	देवहूतिसे (उत्पन्न होकर)
सह अहं	उनके साथ मैं भी		
स्व अंश कलया	अपनी अंश कलासे	**तत्त्व संहिताम्**	तत्त्व (गणना-सांख्य) शास्त्रकी
त्वत् वीर्येण	तुम्हारे वीर्यसे		
तव क्षेत्रे	तुम्हारी पत्नी	**प्रणेष्ये**	रचना करूँगा ॥३२॥

मैत्रेय उवाच–

एवं तमनुभाष्याथ भगवान् प्रत्यगक्षजः ।
जगाम बिन्दुसरसः सरस्वत्या परिश्रितात् ॥३३॥

एवं तं अनुभाष्य अथ भगवान् प्रत्यक् अक्षजः जगाम विन्दुसरसः सरस्वत्या परिश्रितात् ॥३३॥

अथ	तदनन्तर	**भगवान्**	भगवान्
एवं	इस प्रकार	**सरस्वत्याः**	सरस्वती नदीसे
तं अनुभाष्य	उनसे कहकर	**परिश्रितात्**	घिरे हुए
प्रत्यक् अक्षजः	इन्द्रियोंके अन्तर्मुख होनेसे दर्शन देनेवाले	**विन्दुसरसः**	विन्दु सरोवरसे
		जगाम	चले गये ॥३३॥

निरीक्षतस्तस्य ययावशेष-
सिद्धेश्वराभिष्टुतसिद्धमार्गः ।
आकर्णयन् पत्ररथेन्द्रपक्षै-
रुच्चारितं स्तोममुदीर्णसाम ॥३४॥

निपीक्षतः तस्य यया अशेष सिद्धेश्वर अभिष्टुत सिद्ध मार्गः आकर्णयन् पत्र रथेन्द्र पक्षैः उच्चारितं स्तोमं उदीर्ण साम ॥३४॥

पत्र रथेन्द्र	पक्षिराज (गरुड़) के	**निरीक्षतः**	देखते-देखते
पक्षैः	पंखोंसे	**अशेष सिद्धेश्वर**	समस्त सिद्धेश्वरों द्वारा
साम स्तोमं	सामवेदकी आधार-भूत ऋचाओंकी	**अभिष्टुत**	प्रशंसित
उदीर्णं	उठती (ध्वनि)	**सिद्ध मार्गं**	सिद्ध-मार्ग (वैकुण्ठ)
आकर्णयन्	सुनते हुए,	**यया**	चले गये ॥३४॥
तस्य	उन (कर्दमजी) के		

अथ सम्प्रस्थिते शुक्ले कर्दमो भगवानृषिः ।
आस्ते स्म बिन्दुसरसि तं कालं प्रतिपालयन् ॥३५॥

अथ सम्प्रस्थिते शुक्ले कर्दमः भगवान् ऋषिः आस्ते स्म बिन्दुसरसि तं कालं प्रतिपालयन् ॥३५॥

अथ	तब	**तं कालं**	उस (भगवानके बतलाये) समयकी
शुक्ले	भगवानके	**प्रतिपालयन्**	प्रतीक्षा करते
सम्प्रस्थिते	चले जानेपर	**बिन्दुसरसि**	विन्दु सरोवरपर ही
भगवान् कर्दमः		**आस्ते स्म**	रुके रहे ॥३५॥
ऋषिः	भगवान कर्दम ऋषि		

मनुः स्यन्दनमास्थाय शातकौम्भपरिच्छदम् ।
आरोप्य स्वां दुहितरं सभार्यः पर्यटन्महीम् ॥३६॥

मनुः स्यन्दनं आस्थाय शातकौम्भ परिच्छदं आरोप्य स्वं दुहितरं सभार्यः पर्यटन् महीम् ॥३६॥

शातकौम्भ	सुवर्ण
परिच्छदं	जटित
स्यन्दनं	रथपर
सभार्यः	पत्नी (शतरूपा) के साथ
स्वयं दुहितरं	अपनी पुत्रीको
आरोप्य	बैठाकर
मनुः	मनु
आस्थाय	(स्वयं भी) बैठकर
महीं पर्यटन्	पृथ्वीपर घूमते हुए ॥३६॥

तस्मिन् सुधन्वन्नहनि भगवान् यत्समादिशत् ।
उपायादाश्रमपदं मुनेः शान्तव्रतस्य तत् ॥३७॥

तस्मिन् सुधन्वन् अहनि भगवान् यत् समादिशत् उपायात् आश्रम पदं मुनेः शान्त व्रतस्य तत् ॥३७॥

सुधन्वन्	वीरवर विदुर !
यत् भगवान्	जो भगवानने
समादिशत्	बतलाया था
तस्मिन् अहनि	उसी दिन
शान्त व्रतस्य	शान्ति परायण
मुनेः	मुनि (कर्दम) के
तत् आश्रम पदं	उस आश्रम स्थानपर
उपायात्	पहुँचे ॥३७॥

यस्मिन् भगवतो नेत्रान्न्यपतन्नश्रुबिन्दवः ।
कृपया सम्परीतस्य प्रपन्नेऽर्पितया भृशम् ॥३८॥

यस्मिन् भगवतः नेत्रात् न्यपतन् अश्रु बिन्दवः कृपया सम्परीतस्य प्रपन्ने अर्पितया भृशम् ॥३८॥

प्रपन्ने	शरणागतपर
भृशं अर्पितया	अत्यधिक की गयी
कृपया	कृपासे
सम्परीतस्य	वशीभूत हुए
भगवतः	भगवानके
नेत्रात्	नेत्रोंसे
यस्मिन्	जिस (सरोवर) में
अश्रु बिन्दवः	आँसूकी बूँदें
न्यपतन्	गिरीं ॥३८॥

तद्वै बिन्दुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतम् ।
पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् ॥३९॥

तत् वै बिन्दुसरः नाम सरस्वत्या परिप्लुतं पुण्यं शिव अमृत जलं महर्षिगण सेवितम् ॥३९॥

सरस्वत्याः	सरस्वतीके
परिप्लुतं	(जलसे) भरा हुआ
तत् वै	वह निश्चय
बिन्दुसरसः	बिन्दु सरोवर नामक
पुण्यं	पवित्र (तीर्थ) है
शिव अमृत जलं	अमृतके समान कल्याणकारी जल वाला (वह)
महर्षिगण	महर्षि समूहसे
सेवितं	सेवित है। (वहाँ महर्षि रहते हैं) ॥३९॥

पुण्यद्रुमलताजालैः कूजत्पुण्यमृगद्विजैः ।
सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं वनराजिश्रियान्वितम् ॥४०॥

पुण्य द्रुम लता जालैः कूजत् पुण्य मृग द्विजैः सर्व ऋतु फल पुष्प आढ्यं वनराजि श्रिया अन्वितम् ॥४०॥

पुण्य	पवित्र
द्रुम लता जालैः	वृक्ष-लता समूहसे,
कूजत्	बोलते हुए
पुण्य	पवित्र
मृग द्विजैः	पशु-पक्षियोंसे,
सर्व ऋतु	सब ऋतुओंमें
फल-पुष्प आढ्यं	फल-पुष्प भरे रहनेसे
वनराजि	(वहाँका) वन समूह
श्रिया अन्वितं	(बहुत) सुशोभित है ॥४०॥

मत्तद्विजगणैर्घुष्टं मत्तभ्रमरविभ्रमम् ।
मत्तबर्हिनटाटोपमाह्वयन्मत्तकोकिलम् ॥४१॥

मत्त द्विजगणैः घुष्टं मत्त भ्रमर विभ्रमं मत्त बर्हि नट आटोपं आह्वयन् मत्त कोकिलम् ॥४१॥

मत्त	मतवाले हुए
द्विजगणैः	पक्षियोंके स्वरसे)
घुष्टं	शब्दायमान,
मत्त भ्रमर	मतवाले भौंरोंकी
विभ्रमं	(गुंजारसे) गुंजित,
मत्त बर्हि नट	मतवाले नाचते मयूरोंके
आटोपं	फैले पंखोंसे छाया,
मत्त कोकिल	मतवाली कोयल
आह्वयन्	मानो बुला रही थी ॥४१॥

कदम्बचम्पकाशोककरञ्जबकुलासनैः ।
कुन्दमन्दारकुटजैश्चूतपोतैरलङ्कृतम् ॥४२॥

कदम्ब चम्पक अशोक करञ्ज बकुल (मौलिश्री) असनैः कुन्द मन्दार (आक) कुटज चूतपोतैः (नये आमके वृक्षोंसे) अलंकृतम् ॥४२॥

कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कुररैर्जलकुक्कुटैः ।
सारसैश्चक्रवाकैश्च चकोरैर्वल्गु कूजितम् ॥४३॥

कारण्डवैः प्लवैः हंसैः कुररैः जलकुक्कुटैः सारसैः चक्रवाकैः च चकोरैः वल्गु कूजितम् ॥४३॥

कारण्डवैः	जलकाकों,	सारसैः	सारसों,
प्लवैः	बत्तकों,	चक्रवाकैः च	चकवों तथा
हंसैः	हंसों,	चकोरैः	चकोरोंके
कुररैः	पनडुब्बीपक्षी,	वल्गु कूजितं	मधुर कलरवसे भरा
जलकुक्कुटैः	जलमुर्गों,		था ॥४३॥

तथैव हरिणैः क्रोडैः श्वाविद्गवयकुञ्जरैः ।
गोपुच्छैर्हरिभिर्मर्कैर्नकुलैर्नाभिभिर्वृतम् ॥४४॥

तथा एव हरिणैः क्रोडैः श्वअविद् गवय कुञ्जरैः गोपुच्छैः हरिभिः मर्कैः नकुलैः नाभिभिः वृतम् ॥४४॥

तथा एव	इसी प्रकार	गोपुच्छैः	गोलांगूल बन्दरों,
हरिणैः	हरिनों,	हरिभिः	सिंहों,
क्रोडैः	सूअरों,	मर्कैः	बन्दरों,
श्वअविद्	स्याही (सेही)	नकुलैः	नेवलों,
गवय	नीलगाय,	नाभिभिः	कस्तूरी मृगोंसे
कुञ्जरैः	हाथियों,	वृतम्	घिरा था ॥४४॥

प्रविश्य तत्तीर्थवरमादिराजः सहात्मजः ।
ददर्श मुनिमासीनं तस्मिन् हुतहुताशनम् ॥४५॥

प्रविश्य तत् तीर्थवरं आदिराजः सह आत्मजैः ददर्श मुनिं आसीनं तस्मिन् हुत हुताशनम् ॥४५॥

तत् तीर्थवरं	उस श्रेष्ठ तीर्थमें	प्रविश्य	प्रवेश करके
सह आत्मजैः	पुत्रोंके साथ	आदिराजः	आदिराज मनुने

तस्मिन्	उस (आश्रम) में	**मुनिं**	मुनि (कर्दम) को
हुत हुताशनं	अग्निमें हवन करके	**ददर्श**	देखा ॥४५॥
आसीनं	बैठे		

विद्योतमानं वपुषा तपस्युग्रयुजा चिरम् ।
नातिक्षामं भगवतः स्निग्धापाङ्गावलोकनात् ।
तद्व्याहृतामृतकलापीयूषश्रवणेन च ॥४६॥

विद्योतमानं वपुषा तपसि उग्र युजा चिरं न अति क्षामं भगवतः स्निग्ध अपाङ्ग अवलोकनात् तत् व्याहृत अमृतकला पीयूष श्रवणेन च ॥४६॥

चिरं	बहुत दिनों तक	**अमृतकला**	
उग्र तपसि युजा	कठोर तप करनेपर भी	**पीयूष**	अमृत भरी सुधाधारा
भगवतः	भगवानकी	**श्रवणेन च**	सुननेसे भी
स्निग्ध	स्नेह भरी	**अति क्षामं**	बहुत दुबले
अपाङ्ग		**वपुषा न**	शरीरवाले नहीं थे,
अवलोकनात्	चितवन देखनेसे	**विद्योतमानं**	तेजो दीप्त थे ॥४६॥
तत् व्याहृत	उन (भगवान) के वचनरूपी		

प्रांशुं पद्मपलाशाक्षं जटिलं चीरवाससम् ।
उपसंसृत्य मलिनं यथार्हणमसंस्कृतम् ॥४७॥

प्राशुं पद्म पलाश अक्षं जटिलं चीरवाससं उपसंसृत्य मलिनं यथा अर्हणं असंस्कृतम् ॥४७॥

प्राशुं	लम्बा शरीर,	**यथा**	जैसे
पद्म पलाश अक्षं	कमलदल लोचन,	**असंस्कृतं**	बिना स्वच्छ किए
जटिलं	जटाधारी	**अर्हणं**	देवमूर्ति
चीरवाससं	चीरवस्त्र पहिने,	**मलिनं**	मैली हो (ऐसे लगते
उपसंसृत्य	समीप जानेपर		थे) ॥४७॥

अथोटजमुपायातं नृदेवं प्रणतं पुरः ।
सपर्यया पर्यगृह्णात्प्रतिनन्द्यानुरूपया ॥४८॥

अथ उटजं उपायातं नृदेवं प्रणतं पुरः सपर्यया पर्यं गृह्णात् प्रतिनन्द्य अनुरूपया ॥४८॥

अथ	तब
उटजं उपायातं	कुटियाके समीप आकर
पुरः प्रणतं	सामने प्रणाम करते
नृदेवं	राजाको
प्रतिनन्द्य	आशीर्वादसे प्रसन्न करके
अनुरूपया	(आतिथ्यके) अनुरूप
सपर्यया	सत्कारसे
पर्यं गृह्णात्	सत्कृत किया ॥४८॥

गृहीतार्हणमासीनं संयतं प्रीणयन्मुनिः ।
स्मरन् भगवदादेशमित्याह श्लक्ष्णया गिरा ॥४९॥

गृहीतं अर्हणं आसीनं संयतं प्रीणयन् मुनिः स्मरन् भगवत् आदेशं इति आह श्लक्ष्णया गिरा ॥४९॥

अर्हणं गृहीतं	सत्कार स्वीकार करके
संयतं	स्वस्थचित्त (मनुके)
आसीनं	बैठ जानेपर
भगवत् आदेशं	भगवानके आदेशको
स्मरन्	स्मरण करते हुए
मुनिः	मुनि (कर्दमजी)
श्लक्ष्णया गिरा	मधुरवाणीसे
इति आह	इस प्रकार बोले ॥४९॥

कर्दम उवाच*-

नूनं चङ्क्रमणं देव सतां संरक्षणाय ते ।
वधाय चासतां यस्त्वं हरेः शक्तिर्हि पालिनी ॥५०॥

नूनं चङ्क्रमणं देव सतां संरक्षणाय ते वधाय च असतां यः त्वं हरेः शक्तिः हि पालिनी ॥५०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

देव	देव !
नूनं	निश्चय
ते चङ्क्रमणं	आपका पर्यटन
सतां संरक्षणाय	सत्पुरुषोंकी रक्षाके लिए
च	तथा
असतां वधाय	दुष्टोंको मारनेके लिए है;
हि	क्योंकि (आप)
हरेः	भगवानकी
पालिनी	पालन करनेवाली
शक्तिः	शक्ति हैं ॥५०॥

योऽर्केन्द्वग्नीन्द्रवायूनां यमधर्मप्रचेतसाम् ।
रूपाणि स्थान आधत्से तस्मै शुक्लाय ते नमः ॥५१॥

यः अर्क इन्दु अग्नि इन्द्र वायूनां यम धर्म प्रचेतसां रूपाणि स्थान आधत्से तस्मै शुक्लाय ते नमः ॥५१॥

यः अर्क इन्दु	जो सूर्य, चन्द्र,
अग्नि इन्द्र	अग्नि, इन्द्र,
यम धर्म	यमराज, धर्म,
प्रचेतसां	वरुणके
रूपाणि	रूप (और)
स्थान	दायित्व
आधत्से	धारण करते हैं,
तस्मै	उस
शुक्लाय	भगवत्स्वरूप
ते नमः	आपको नमस्कार ॥५१॥

न यदा रथमास्थाय जैत्रं मणिगणार्पितम् ।
विस्फूर्जच्चण्डकोदण्डो रथेन त्रासयन्नघान् ॥५२॥

न यदा रथं आस्थाय जैत्रं मणिगण अर्पितं विस्फूर्जत् चण्ड कोदण्डः रथेन त्रासयन् अघान् ॥५२॥

मणिगण अर्पितं	मणि जटित
जैत्रं	जयदायक
रथं आस्थाय	रथपर बैठकर,
चण्ड कोदण्ड	भयानक धनुषकी
विस्फूर्जत्	टंकार करते
रथेन	रथसे ही
अघान् त्रासयन्	पापियोंको डराते
यदा न	जब नहीं (घूमेंगे) ॥५२॥

स्वसैन्यचरणक्षुण्णं वेपयन्मण्डलं भुवः ।
विकर्षन् बृहतीं सेनां पर्यटस्यंशुमानिव ॥५३॥

स्वसैन्य चरण क्षुण्णं वेपयन् मण्डलं भुवः विकर्षन् बृहतीं सेनां पर्यटन् अंशुमान् इव ॥५३॥

स्वसैन्य	अपनी सेनाके	**बृहतीं सेनां**	बड़ी भारी सेनाको
चरण क्षुण्णं	चरणोंसे रौंदे	**विकर्षन्**	खींचते (साथ लिए)
भुवः मण्डलं	भू-मण्डलको	**अंशुमान इव**	सूर्यके समान
वेपयन्	कम्पित करते,	**पर्यटन्**	(नहीं) घूमेंगे ॥५३॥

तदैव सेतवः सर्वे वर्णाश्रमनिबन्धनाः ।
भगवद्रचिता राजन् भिद्येरन् बत दस्युभिः ॥५४॥

तत् एव सेतवः सर्वे वर्ण आश्रम निबन्धनाः भगवत् रचिता राजन् भिद्येरन् बत दस्युभिः ॥५४॥

राजन्	राजन् !	**तत् एव**	उसी समय
भगवत् रचिता	भगवानकी बनायी	**बत**	निश्चय
वर्ण आश्रम	वर्ण और आश्रम (के रूपमें)	**दस्युभिः**	डाकुओं द्वारा
		भिद्येरन्	तोड़ दी जायंगी ॥५४॥
निबन्धनाः	सुनिश्चित		
सर्वे सेतवः	सब मर्यादाएँ		

अधर्मश्च समेधेत लोलुपैर्व्यङ्कुशैर्नृभिः ।
शयाने त्वयि लोकोऽयं दस्युग्रस्तो विनङ्क्षयति ॥५५॥

अधर्मः च समेधेत लोलुपैः व्यङ्कुशैः नृभिः शयाने त्वयि लोकः अयं दस्यु ग्रस्तः विनङ्क्ष्यति ॥५५॥

अधर्मः च	अधर्म भी	**त्वयि शयाने**	आपके सो जाने (निंश्चिन्त हो जाने) पर
लोलुपैः	लालची		
व्यङ्कुशैः	निरंकुश		
नृभिः	मनुष्यों द्वारा	**अयंलोकः**	यह संसार
समेधेत	बहुत बढ़ जायगा ।	**दस्यु ग्रस्तः**	डाकुओंसे आक्रान्त होकर
		विनङ्क्ष्यति	नष्ट होजायगा ॥५५॥

अथापि पृच्छे त्वां वीर यदर्थं त्वमिहागतः ।
तद्वयं निर्व्यलीकेन प्रतिपद्यामहे हृदा ॥५६॥

अथ अपि पृच्छे त्वां वीर यत् अर्थं त्वं इह आगतः तत् वयं निर्व्यलीकेन प्रतिपद्यामहे हृदा ॥५६॥

वीर	वीर !	**तत् वयं**	उसको हम
अथ अपि	फिर भी	**निर्व्यलीकेन**	निष्कपट भावसे
त्वां पृच्छे	आपसे पूछते हैं,	**हृदा**	हृदयसे
यत् अर्थं	जिस प्रयोजनसे	**प्रतिपद्यामहे**	स्वीकार करेंगे ॥५६॥
त्वं इह आगतः	आप यहाँ आये हैं ।		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

एवमाविष्कृताशेषगुणकर्मोदयो मुनिम् ।
सव्रीड इव तं सम्राडुपारतमुवाच ह ॥१॥

एवं आविष्कृत अशेष गुण कर्म उदयः मुनिं सव्रीड इव तं सम्राट् उपारतं उवाच ह ॥१॥

एवं	इस प्रकार	**सम्राट्**	महाराज मनु
अशेष	सम्पूर्ण	**सव्रीड इव**	लज्जित होतेसे
गुण कर्म उदयः	गुणों तथा कर्मोंकी श्रेष्ठताको	**मुनिं उपारतं**	मुनिके चुप हो जानेपर
आविष्कृतं	प्रकट कर देनेपर	**तं ह उवाच**	उनसे ही बोले ॥१॥

मनुरुवाच-

ब्रह्मासृजत्स्वमुखतो युष्मानात्मपरीप्सया ।
छन्दोमयस्तपोविद्यायोगयुक्तानलम्पटान् ॥२॥

ब्रह्मा असृजत् स्व मुखतः युष्मान् आत्म परीप्सया छन्दः मयः तपः विद्या योग युक्तान् अलम्पटान् ॥२॥

ब्रह्मा	ब्रह्माजीने	**तपः विद्याः**	तपस्य, विद्या,
स्व मुखतः	अपने मुखसे	**योग युक्तान्**	योगसे युक्त
आत्म परीप्सया	अपने (वेदमय) शरीरकी रक्षाके लिए	**अलम्पटान्**	सदाचारी
		युष्मान्	आप (ब्राह्मणों) को
छन्दः मयः	वेदमय,	**असृजत्**	उत्पन्न किया ॥२॥

तत्त्राणायासृजच्चास्मान्दोःसहस्रात्सहस्रपात् ।
हृदयं तस्य हि ब्रह्म क्षत्रमङ्गं प्रचक्षते ॥३॥

तत् त्राणाय असृजत् अस्मान् दोः सहस्रात् सहस्रपात् हृदयं तस्य हि ब्रह्म क्षत्रं अङ्गं प्रचक्षते ॥३॥

तत् त्राणाय	उनकी रक्षाके लिए
सहस्रपात्	सहस्रों चरणोंवाले (विराट् पुरुषने)
अस्मान्	हम लोगोंको
दोःसहस्रात्	हजारों हाथोंसे
असृजत्	उत्पन्न किया,
हि ब्रह्म	क्योंकि ब्राह्मण (और वेद)
तस्य हृदयं	उनके हृदय हैं,
क्षत्रं अंगं	क्षत्रिय शरीर
प्रचक्षते	कहा जाता है ॥३॥

अतो ह्यन्योन्यमात्मानं ब्रह्म क्षत्रं च रक्षतः ।
रक्षति स्माव्ययो देवः स यः सदसदात्मकः ॥४॥

अतः हि अन्योन्यं आत्मानं ब्रह्म क्षत्रं च रक्षतः रक्षति स्म अव्ययः देवः स यः सत् असदात्मकः ॥४॥

अतः हि	अतः निश्चित रूपसे
ब्रह्म क्षत्रं च	ब्राह्मण और क्षत्रिय
अन्योन्यं	
आत्मानं	परस्पर एक दूसरेकी
रक्षतः यः	रक्षा करते हैं तब जो
सत् असदात्मकः	कारण कार्य स्वरूप
देवः	परमात्मा हैं
स अव्ययः	वे अविनाशी
रक्षति स्म	(हम दोनोंकी) रक्षा करते हैं ॥४॥

तव सन्दर्शनादेवच्छिन्ना मे सर्वसंशयाः ।
यत्स्वयं भगवान् प्रीत्या धर्ममाह रिरक्षिषोः ॥५॥

तव सन्दर्शनात् एव छिन्ना मे सर्व संशयाः यत् स्वयं भगवान् प्रीत्या धर्मं आह रिरक्षिषोः ॥५॥

तव	आपके
सन्दर्शनात् एव	दर्शन मात्रसे ही
मे सर्व संशयाः	मेरे सब संशय
छिन्ना	कट गये,
यत् भगवान्	क्योंकि भगवन् !
प्रीत्या स्वयं	प्रेमके कारण स्वयं (आपने)
रिरक्षिषोः	(प्रजाकी) रक्षाकी इच्छा रखनेवालेके
धर्मं आह	धर्म बतलाये हैं ॥५॥

दिष्ट्या मे भगवान् दृष्टो दुर्दर्शो योऽकृतात्मनाम् ।
दिष्ट्या पादरजः स्पृष्टं शीर्ष्णा मे भवतः शिवम् ॥६॥

दिष्ट्या मे भगवान् दृष्टः दुर्दर्शः यः अकृत आत्मनां दिष्ट्या पादरजः स्पृष्टं शीर्ष्णा मे भवतः शिवम् ॥६॥

अकृत आत्मनां	असंयत चित्तवालोंके लिए	**दृष्टः**	दर्शन किया ।
यः दुर्दर्शः	जो कठिनाईसे दर्शन देनेवाले हैं,	**दिष्ट्या**	सौभाग्यसे
		भवतः	आपकी
दिष्ट्या	सौभाग्यसे	**शिवं**	कल्याणमयी
मे	मैंने (उन)	**पादरजः**	चरण धूलिका
भगवान्	भगवन् (आपका)	**मे शीर्ष्णा**	मैंने मस्तकसे
		स्पृष्टं	स्पर्श किया ॥६॥

दिष्ट्या त्वयानुशिष्टोऽहं कृतश्चानुग्रहो महान् ।
अपावृतैः कर्णरन्ध्रैर्जुष्टा दिष्ट्योशतीर्गिरः ॥७॥

दिष्ट्या त्वया अनुशिष्टः अहं कृतः च अनुग्रहः महान् अपावृतैः कर्णरन्ध्रैः जुष्टा दिष्ट्या उशतीः गिरः ॥७॥

दिष्ट्या	सौभाग्यवश	**दिष्ट्या**	परम सौभाग्यसे
महान् अनुग्रहः	महान् अनुग्रह	**उशती गिरः**	(आपकी) पवित्र वाणी
कृतः च	करके ही		
त्वया	आपने	**अपावृतैः**	(मेरे) खुले
अहं	मुझे	**कर्णरन्ध्रैः**	कर्ण छिद्रोंमें
अनुशिष्टः	उपदेश किया,	**जुष्टा**	पड़ी ॥७॥

स भवान्दुहितृस्नेहपरिक्लिष्टात्मनो मम ।
श्रोतुमर्हसि दीनस्य श्रावितं कृपया मुने ॥८॥

स भवान् दुहितृ स्नेह परिक्लिष्ट आत्मनः मम श्रोतुं अर्हसि दीनस्य श्रावितं कृपया मुने ॥८॥

मुने	मुने !	**श्रावितं**	प्रार्थना
दुहितृ स्नेह	(इस) पुत्रीके स्नेहसे	**स भवान्**	वह (कृपालु)आपको
परिक्लिष्ट	चिन्तित	**कृपया**	कृपा करके
आत्मनः	चित्त	**श्रोतुं अर्हसि**	सुनना चाहिए ॥८॥
मम दीनस्य	मुझ दीनकी		

प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसेयं दुहिता मम ।
अन्विच्छति पतिं युक्तं वयःशीलगुणादिभिः ॥९॥

प्रियव्रत उत्तानपदः स्वसा इयं दुहिता मम अन्विच्छति पतिं युक्तं वयः शील गुण आदिभिः ॥९॥

प्रियव्रत	प्रियव्रत (तथा)	**आदिभिः**	आयु, आचार, गुण आदिमें
उत्तानपदः	उत्तानपादकी	**युक्तं पतिं**	अपने उपयुक्त पतिको
इयं स्वसा	यह बहिन	**अन्विच्छति**	पाना चाहती हैं ॥९॥
मम दुहिता	मेरी पुत्री		
वयः शील गुण			

यदा तु भवतः शीलश्रुतरूपवयोगुणान् ।
अश्रृणोन्नारदादेषा त्वय्यासीत्कृतनिश्चया ॥१०॥

यदा तु भवतः शील श्रुत रूप वयः गुणान् अश्रृणोत् नारदात् एषा त्वयि आसीत् कृत निश्चया ॥१०॥

भवतः	आपके	**यदा तु**	जबसे
शील, श्रुत	स्वभाव, विद्या,	**अश्रृणोत्**	सुना है,
रूप, वयः	सौन्दर्य, आयु (तथा)	**त्वयि**	आपको (पति बनानेका)
गुणान्	गुणोंको	**कृत निश्चया**	निश्चय कर
एषा	इसने	**आसीत्**	चुकी है ॥१०॥
नारदात्	नारदजीसे		

तत्प्रतीच्छ द्विजाग्र्येमां श्रद्धयोपहृतां मया ।
सर्वात्मनानुरूपां ते गृहमेधिषु कर्मसु ॥११॥

तत् प्रतीच्छ द्विज अग्रच इमां श्रद्धया उपहृतां मया सर्व आत्मना अनुरूपां ते गृहमेधिषु कर्मसु ॥११॥

द्विज अग्रच	द्विज श्रेष्ठ !	**प्रतीच्छ**	स्वीकार कीजिए ।
श्रद्धया	श्रद्धाके साथ	**गृहमेधिषु**	गृहस्थके
मया	मेरे द्वारा	**कर्मसु ते**	कर्ममें आपके
उपहृतां	भेंट की गयी	**सर्व आत्मना**	सब प्रकारसे
तत् इमां	अतः इसे	**अनुरूपां**	अनुरूप है ॥११॥

उद्यतस्य हि कामस्य प्रतिवादो न शस्यते ।
अपि निर्मुक्तसङ्गस्य कामरक्तस्य किं पुनः ॥१२॥

उद्यतस्य हि कामस्य प्रतिवादः न शस्यते अपि निर्मुक्त सङ्गस्य कामरक्तस्य किं पुनः ॥१२॥

हि	क्योंकि	**प्रतिवादः**	अस्वीकार करना
निर्मुक्त सङ्गस्य	अनासक्तके लिए	**शस्यते न**	प्रशंसनीय नहीं है,
अपि	भी	**पुनः**	फिर
उद्यतस्य	उपस्थित	**कामरक्तस्य**	भोगासक्तकी
कामस्य	भोगको	**किं**	बात ही क्या ॥१३॥

य उद्यतमनादृत्य कीनाशमभियाचते ।
क्षीयते तद्यशः स्फीतं मानश्चावज्ञया हतः ॥१३॥

यः उद्यतं अनादृत्य कीनाशं अभियाचते क्षीयते तत् यशः स्फीतं मानः च अवज्ञया हतः ॥१३॥

यः उद्यतं	जो उपस्थितका	**स्फीतं यशः**	फैला हुआ यश
अनादृत्य	अनादर करके	**क्षीयते च**	क्षीण हो जाता है
कीनाशं	(किसी) कृपणके		और
अभियाचते	पास जाकर माँगता है,	**मानः**	सम्मान
		अवज्ञया हतः	अवमाननासे मारा जाता है ॥१३॥
तत्	उसका		

अहं त्वाभृणवं विद्वन् विवाहार्थं समुद्यतम् ।
अतस्त्वमुपकुर्वाणः प्रत्तां प्रतिगृहाण मे ॥१४॥

अहं त्वा अशृणवं विद्वन् विवाहार्थं समुद्यतं अतः त्वं उपकुर्वाणः प्रत्तां प्रतिगृहाण मे ॥१४॥

विद्वन्	विद्वन् !	**मे उपकुर्वाणः**	मुझपर उपकार करके
अहं त्वा	मैंने आपको	**प्रत्तां**	दी जाती कन्याको
विवाहार्थं	विवाहके लिए	**प्रतिगृहाण**	स्वीकार कर लीजिए ॥१४॥
समुद्यतं	भली प्रकार उद्यत		
अशृणवं	सुना है ।		
अतः त्वं	अतः आप		

*कर्दमोवाच-**

बाढमुद्वोढुकामोऽहमप्रत्ता च तवात्मजा ।
आवयोरनुरूपोऽसावाद्यो वैवाहिको विधिः ॥१५॥

बाढं उद्वोढु कामः अहं अप्रत्ता च तव आत्मजा आवयोः अनुरूपः असाः आद्यः वैवाहिकः विधिः ॥१५॥

बाढं अहं	ठीक है, मैं	**असाः आद्यः**	यह प्रथम
उद्वोढु कामः	विवाह करना चाहता हूँ ।	**वैवाहिकः**	विवाहकी
		विधिः	विधि
तव आत्मजा च	तुम्हारी पुत्री भी	**आवयोः**	हम दोनोंके
अप्रत्ता	वाग्दान रहिता है,	**अनुरूपः**	अनुरूप है ॥१५॥

कामः स भूयान्नरदेव तेऽस्याः
पुत्र्याः समाम्नायविधौ प्रतीतः ।
क एव ते तनयां नाद्रियेत
स्वयैव कान्त्या क्षिपतीमिव श्रियम् ॥१६॥

कामः स भूयात् नरदेव ते अस्याः पुत्र्याः समाम्नाय विधौ प्रतीतः कः एव ते तनयां न आद्रियेत स्वस्या एव कान्त्या क्षिपतीं इव श्रियम् ॥१६॥

---

* अन्य प्रतियोंमें 'ऋषिरुवाच' है ।

नरदेव	राजन् !
समाम्नाय	वेदोक्त
विधौ	(विवाह) विधिमें
स कामः	वह काम (वेद सम्मत भोग)
ते	तुम्हारी
अस्याः पुत्र्याः	इस पुत्रीसे
प्रतीतः	पूर्ण होगा ।
स्वस्य एव	अपनी ही
कान्त्या	कान्तिसे
श्रियं क्षिपतीं इव	लक्ष्मीको लज्जित करती-सी
ते तनयां	आपकी पुत्रीका
कः एव	कौन-सा (पुरुष)
आद्रियेत न	आदर नहीं करेगा ॥१६॥

यां हर्म्यपृष्ठे क्वणदङ्घ्रिशोभां
विक्रीडतीं कन्दुकविह्वलाक्षीम् ।
विश्वावसुर्न्यपतत्स्वाद्विमाना-
द्विलोक्य सम्मोहविमूढचेताः ॥१७॥

यां हर्म्यपृष्ठे क्वणत् अङ्घ्रिशोभां विक्रीडतीं कन्दुक विह्वल अक्षीं विश्वावसुः न्यपतत् स्वाद् विमानात् विलोक्य सम्मोह विमूढ चेताः ॥१७॥

हर्म्यपृष्ठे	महलकी छतपर
क्वणत्	
अङ्घ्रिशोभां	पैरोंके (नूपुर) झनकारती
कन्दुक	
विक्रीडतीं	गेंद खेलती
विह्वल अक्षीं	चंचल नेत्री
यां विलोक्य	जिसे देखकर
सम्मोह	
विमूढ चेताः	मोहवश अचेत होकर
विश्वावसुः	(गन्धर्वराज) विश्वावसु
स्वाविमानात्	अपने विमानसे
न्यपतत्	गिर पड़े ॥१७॥

तां प्रार्थयन्तीं ललनाललाम-
मसेवितश्रीचरणैरदृष्टाम् ।
वत्सां मनोरुच्चपदः स्वसारं
को नानुमन्येत बुधोऽभियाताम् ॥१८॥

तां प्रार्थयन्तीं ललना ललामं असेवित श्रीचरणैः अदृष्टां वत्सां मनोः उच्चपदः स्वसारं कः न अनुमन्येत बुधः अभियाताम् ॥१८॥

असेवित श्रीचरणैः	लक्ष्मीजीके चरणोंकी जिन्होंने सेवा नहीं की उनको
अदृष्टां	यह दीख भी नहीं सकती ऐसी
ललना ललामं	स्त्री-रत्न
मनोः वत्सां	मनुकी पुत्री
उच्चपदां	उच्च पदस्थों (प्रियव्रत, उत्तान-पाद) की
स्वसारं	बहिन
अभियातां	स्वयं आकर
प्रार्थयन्तीं	प्रार्थना कर रही है,
कः बुधः	कौन बुद्धिमान
तां	उसका
अनुमन्येत न	अनुमोदन नहीं करेगा ॥१८॥

अतो भजिष्ये समयेन साध्वीं
यावत्तेजो बिभृयादात्मनो मे ।
अतो धर्मान् पारमहंस्यमुख्यान्
शुक्लप्रोक्तान् बहु मन्येऽविहिंस्रान् ॥१९॥

अतः भजिष्ये समयेन साध्वीं यावत् तेजः बिभृयात् आत्मनः मे अतः धर्मान् पारमहंस्य मुख्यान् शुक्ल प्रोक्तान् बहुमन्ये अविहिंस्रान् ॥१९॥

अतः	अतः
समयेन	एक शर्तके साथ
साध्वीं	इस साध्वीको
भजिष्ये	स्वीकार करूँगा,
यावत्	जब तक
मे तेजः	मेरे तेजको
आत्मनः	अपनेमें (यह)
बिभृयात्	धारण करेगी (जब तक इसके सन्तान नहीं हो जायगी)
अतः	तदनन्तर
शुक्ल प्रोक्तान्	भगवानके द्वारा उपदिष्ट
पारमहंस मुख्यान्	परमहंसोंका प्रमुख
अविहिंस्रान्	हिंसा रहित
धर्मान्	धर्मोंको (संन्यास, शमदमादिको)
बहुमन्ये	आदर दूँगा ॥१९॥

यतोऽभवद्विश्वमिदं विचित्रं
संस्थास्यते यत्र च वावतिष्ठते ।

प्रजापतीनां पतिरेष मह्यं
परं प्रमाणं भगवाननन्तः ॥२०॥

यतः अभवत् विश्वं इदं विचित्रं संस्थास्यते यत्र च वा अवतिष्ठते प्रजापतीनां पतिः एष मह्यं परं प्रमाणं भगवान् अनन्तः ॥२०॥

यतः इदं	जिनसे यह
विचित्रं विश्वं	विचित्र संसार
अभवत्	उत्पन्न हुआ,
यत्र वा	तथा जिनमें
संस्थास्यते	लीन हो जायगा
च अवतिष्ठते	और (जिनमें) स्थित है,
एष प्रजापतीनां पतिः	यही प्रजापतियोंके स्वामी
भगवान् अनन्तः	भगवान अनन्त
मह्यं	मुझे
परम् प्रमाणं	अत्यन्त मान्य हैं ॥२०॥

मैत्रेय उवाच–

स उग्रधन्वन्नियदेवाबभाषे
आसीच्च तूष्णीमरविन्दनाभम् ।
धियोपगृह्णन् स्मितशोभितेन
मुखेन चेतो लुलुभे देवहूत्याः ॥२१॥

स उग्रधन्वन् इयदेव आबभाषे आसीत् च तूष्णीं अरविन्दनाभं धिया उपगृह्णन् स्मित शोभितेन मुखेन चेतः लुलुभे देवहूत्याः ॥२१॥

उग्रधन्वन्	प्रचण्ड धनुर्धर विदुर !
स इयदेव	वे (कर्दमजी) इतना ही
आबभाषे	बोलकर
तूष्णीं आसीत् च	चुप हो गये तथा
अरविन्दनाभं	भगवान कमलनाभको
धिया उपगृह्णन्	बुद्धिमें ग्रहण करके
स्मित शोभितेन	मुसुकान शोभित
मुखेन	मुख देखकर
देवहूत्याः	देवहूतिका
चेतः लुलुभे	चित्त लुभा गया ॥२१॥

सोऽनुज्ञात्वा व्यवसितं महिष्या दुहितुः स्फुटम् ।
तस्मै गुणगणाढ्याय ददौ तुल्यां प्रहर्षितः ॥२२॥

सः अनुज्ञात्वा व्यवसितं महिष्याः दुहितुः स्फुटं तस्मै गुणगण आढ्याय ददौ तुल्यां प्रहर्षितः ॥२२॥

सः	उन (मनु) ने	**तस्मै**	उन (कर्दमजी) को
महिष्याः	महारानीका और)	**तुल्यां**	उनके समान (गुणवती)
दुहितुः	पुत्रीका		
स्फुटं व्यवसितं	स्पष्ट निश्चय	**प्रहर्षितः**	हर्षित होकर
अनुज्ञात्वा	जानकर	**ददौ**	दे दी ॥२२॥
गुणगण आढ्याय	गुणगणोंके धनी		

शतरूपा महाराज्ञी पारिबर्हान्महाधनान् ।
दम्पत्योः पर्यदात्प्रीत्या भूषावासः परिच्छदान् ॥२३॥

शतरूपा महाराज्ञो पारिबर्हान् महाधनान् दम्पत्योः पर्यदात् प्रीत्या भूषावासः परिच्छदम् ॥२३॥

महाराज्ञी	महारानी	**भूषावासः**	आभूषण, वस्त्र
शतरूपा	शतरूपाने	**परिच्छदं**	दूसरे (पात्रादि) उपकरण
दम्पत्योः	बेटी-दामादको		
प्रीत्या	प्रेमपूर्वक	**पारिबर्हं**	दहेजमें
महाधनान्	बहुमूल्य	**पर्यदात्**	प्रदान किए ॥२३॥

प्रत्तां दुहितरं सम्राट् सदृक्षाय गतव्यथः ।
उपगुह्य च बाहुभ्यामौत्कण्ठ्योन्मथिताशयः ॥२४॥

प्रत्तां दुहितरं सम्राट् सदृक्षाय गतव्यथः उपगुह्य च बाहुभ्यां औत्कण्ठ्य उन्मथित आशयः ॥२४॥

सम्राट्	महाराज (मनु)	**दुहितरं प्रत्तां**	पुत्री देकर
सदृक्षाय	सुयोग्य वरको	**गतव्यथः**	निश्चिन्त हो गये ।

बाहुभ्यां उपगुह्य च	भुजाओंमें भरकर और छातीसे लगाकर	औत्कण्ठ्यात् उन्मथित आशयः	उत्कण्ठासे विह्वल चित्त हो गये ॥२४॥

अशक्नुवंस्तद्विरहं मुञ्चन् वाष्पकलां मुहुः ।
आसिञ्चदम्ब वत्सेति नेत्रोदैर्दुहितुः शिखाः ॥२५॥

अशक्नुवन् तद् विरहं मुञ्चन् बाष्पकलां मुहुः आसिञ्चत् अम्ब वत्से इति नेत्रोदैः दुहितुः शिखाः ॥२५॥

तद् विरहं अशक्नुवन्	उसका वियोग न सह सकनेके कारण	वाष्पकलां मुहुः मुञ्चन् नेत्रोदैः दुहितुः शिखाः आसिञ्चत्	आँसू बार-बार बहाते उन आँसुओंसे पुत्रीके केश भिगा दिये ॥२५॥
अम्ब ! वत्से इति	'मां ! बेटी !' ऐसा कहते		

आमन्त्र्य तं मुनिवरमनुज्ञातः सहानुगः ।
प्रतस्थे रथमारुह्य सभार्यः स्वपुरं नृपः ॥२६॥

आमन्त्र्य तं मुनिवरं अनुज्ञातः सहअनुगः प्रतस्थे रथं आरुह्य सभार्यः स्वपुरं नृपः ॥२६॥

तं मुनिवरं	उन मुनि श्रेष्ठ (कर्दमजी) से	रथं आरुह्य	रथमें बैठकर
आमन्त्र्य	पूछकर	नृपः	राजाने
अनुज्ञातः	आज्ञा लेकर	सह अनुगः	अनुचरोंके साथ
सभार्यः	पत्नीके साथ	स्वपुरं प्रतस्थे	अपने नगरको प्रस्थान किया ॥२६॥

उभयोर्ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः सुरोधसोः ।
ऋषीणामुपशान्तानां पश्यन्नाश्रमसम्पदः ॥२७॥

उभयोः ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः सुरोधसोः ऋषीणां उपशान्तानां पश्यन् आश्रम सम्पदाः ॥२७॥

ऋषिकुल्यायाः	ऋषिगण सेविता	**उपशान्तानां**	अत्यन्त शान्त
सरस्वत्याः	सरस्वती नदीके	**ऋषीणां**	ऋषियोंके
उभयोः		**आश्रम सम्पदाः**	आश्रमोंकी शोभा
सुरोधसोः	दोनों उत्तम तटोंपर	**पश्यन्**	देखते हुए ॥२७॥

तमायान्तमभिप्रेत्य ब्रह्मावर्तात्प्रजाः पतिम् ।
गीतसंस्तुतिवादित्रैः प्रत्युदीयुः प्रहर्षिताः ॥२८॥

तं आयान्तं अभिप्रेत्य ब्रह्मावर्तात् प्रजाः पतिं गीत संस्तुति वादित्रैः प्रत्युदीयुः प्रहर्षिताः ॥२८॥

तं पतिं	उन (अपने) स्वामीको	**वादित्रैः**	बाजे बजाते
आयान्तं	आता	**ब्रह्मावर्तात्**	ब्रह्मावर्तसे
अभिप्रेत्य	जानकर	**प्रहर्षिताः**	प्रसन्न होकर
प्रजाः	प्रजाजन	**प्रत्युदीयुः**	अगवानी करने बाहर आये ॥२८॥
गीत संस्तुति	गाते, स्तुति करते		

बर्हिष्मती नाम पुरी सर्वसम्पत्समन्विता ।
न्यपतन् यत्र रोमाणि यज्ञस्याङ्गं विधुन्वतः ॥२९॥

बर्हिष्मती नाम पुरी सर्व सम्पत् समन्विता न्यपतत् यत्र रोमाणि यज्ञस्य अङ्गं विधुन्वतः ॥२९॥

सर्व सम्पत्	सब सम्पत्तियोंसे	**यत्र यज्ञस्य**	जहाँ भगवान् वाराहके
समन्विता	भली प्रकार परिपूर्ण	**अंगं विधुन्वता**	शरीर कम्पित करते समय
बर्हिष्मती नाम पुरी	बर्हिष्मती नामक राजधानी थी*	**रोमाणि न्यपतत्**	(उनके) रोम गिरे ॥२९॥

कुशाः काशास्त एवासन् शश्वद्धरितवर्चसः ।
ऋषयो यैः पराभाव्य यज्ञघ्नान् यज्ञमीजिरे ॥३०॥

---

* सोरों-कासगंजसे एटा (एताः) तक यह रही होगी । कासगंज तो बर्हिष्मतीका पर्याय नाम ही है ।

कुशाः काशाः त एव आसन् शश्वत् हरित वर्चसः ऋषयः यैः पराभाव्य यज्ञघ्नान् यज्ञं ईजिरे ॥३०॥

त एव	वही (रोम)	**यज्ञघ्नान्**	यज्ञमें विघ्न करने वाले असुरोंको
शश्वत् हरित वर्चसः	बराबर हरे रहनेवाले	**पराभाव्य**	दूर भगाकर
कुशाः काशाः आसन्	कुश और कास हो गये।	**ऋषयः**	ऋषि लोग
		यज्ञं ईजिरे	भगवान् यज्ञपुरुषका यजन करते हैं ॥३०॥
यैः	जिनके द्वारा		

कुशकाशमयं बर्हिरास्तीर्य भगवान्मनुः।
अयजद्यज्ञपुरुषं लब्धा स्थानं यतो भुवम् ॥३१॥

कुश काशमयं बर्हिः आस्तीर्य भगवान् मनुः अयजत् यज्ञपुरुषं लब्धा स्थानं यतः भुवम् ॥३१॥

यतः स्थानं	जिनसे (अपने) रहनेका स्थान	**बर्हिः**	चटाई
		आस्तीर्य	बिछाकर
भुवं लब्धा	पृथ्वी प्राप्त हुई	**यज्ञपुरुषं**	उन यज्ञपुरुषका
भगवान् मनुः	भगवान् मनुने	**अयजत्**	यजन किया ॥३१॥
कुश काशमयं	कुश-कास से बनी		

बर्हिष्मतीं नाम विभुर्यां निर्विश्य समावसत्।
तस्यां प्रविष्टो भवनं तापत्रयविनाशनम् ॥३२॥

बर्हिष्मती नाम विभुः यां निर्विश्य समावसत् तस्यां प्रविष्टः भवनं तापत्रय विनाशनम् ॥३२॥

बर्हिष्मती	बर्हिष्मती नामक पुरी	**तपात्रय**	
यां निर्विश्य	जिसमें प्रवेश करके	**विनाशनं**	त्रिताप नाशक
विभुः समावसत्	राजामनु रहते थे,	**भवनं प्रविष्टः**	(अपने) भवनमें प्रवेश किया ॥३२॥
तस्यां	उसमें		

सभार्यः सप्रजः कामान् बुभुजेऽन्याविरोधतः ।
सङ्गीयमानसत्कीर्तिः सस्त्रीभिः सुरगायकैः ।
प्रत्यूषेष्वनुबद्धेन हृदा शृण्वन् हरेः कथाः ॥३३॥

सभार्यः सप्रजः कामान् बुभुजे अन्य अविरोधतः सङ्गीयमान सत्कीर्तिः सस्त्रीभिः सुरगायकैः प्रत्यूषेषु अनुबद्धेन हृदा शृण्वन् हरेः कथाः ॥३३॥

सभार्यः	स्त्री (तथा)	**सस्त्रीभिः**	पत्नियोंके साथ
सप्रजः	पुत्रोंके साथ	**सुरगायकैः**	गन्धर्व लोग
अन्य अविरोधतः	दूसरोंको विरोध न हो (किसीकी हानि किये बिना)	**सत्कीर्तिः**	(उनकी) उत्तम कीर्ति
		सङ्गीयमानः	गानेपर भी
कामान् बुभुजे	भोगोंका सेवन करते थे ।	**हृदा अनुबद्धेन**	चित्त लगाकर (वे)
		हरेः कथाः	श्रीहरिकी कथा
प्रत्यूषेषु	प्रातःकाल होनेपर	**शृण्वन्**	सुनते थे ॥३३॥

निष्णातं योगमायासु मुनिं स्वायम्भुवं मनुम् ।
यदा भ्रंशयितुं भोगा न शेकुर्भगवत्परम् ॥३४॥

निष्णातं योगमायासु मुनिं स्वायम्भुवं मनुं यदा भ्रंशयितुं भोगाः न शेकुः भगवत् परम् ॥३४॥

योगमायासु	योगमायामें (इच्छानुसार भोग प्रगट करनेमें)	**यदा भगवत् परं**	जो भगवानके परायण थे
		भोगाः	भोग
निष्णातं	निपुण	**भ्रंशयितुं**	भ्रष्ट करनेमें
मुनिं	मननशील	**शेकुः न**	समर्थ नहीं हुए ॥३४॥
स्वायम्भुवं	स्वायम्भू मनुको		

अयातयामास्तस्यासन् यामाः स्वान्तरयापनाः ।
शृण्वतो ध्यायतो विष्णोः कुर्वतो ब्रुवतः कथाः ॥३५॥

अयात यामाः तस्य आसन् यामाः स्वान्तर यापनाः शृण्वतः ध्यायतः विष्णुः कुर्वतः ब्रुवतः कथाः ॥३५॥

विष्णुः	भगवान् विष्णुकी	**यापनाः**	व्यतीत करनेवाला
कथाः	कथाको	**यामाः**	समय
शृण्वतः ध्यायतः	सुनते, सोचते,	**अयात यामाः**	सदा नवीन (वर्तमान) जैसा
कुर्वतः ब्रुवतः	रचना करते, कहते,		
तस्य स्वान्तर	उनके मन्वन्तरको	**आसन्**	रहता था ॥३५॥

विशेष—

मनुजी भगवान्‌की कथा सुनने, सोचने, कहनेमें लगे अपने पूरे मन्वन्तर सदा वर्तमानकालमें ही चित्त रखते थे। भूत, भविष्यको कभी सोचते ही नहीं थे।

स एवं स्वान्तरं निन्ये युगानामेकसप्ततिम् ।
वासुदेवप्रसङ्गेन परिभूतगतित्रयः ॥३६॥

स एवं स्वान्तरं निन्ये युगानां एक सप्ततिं वासुदेव प्रसङ्गेन परिभूत गति त्रयः ॥३६॥

गति त्रयः	तीनों (गुणों) की गतिको	**एक सप्ततिं युगानां**	इकत्तर चतुर्युगीवाला
परिभूत	पराजित करके		
वासुदेव प्रसङ्गेन	भगवान् वासुदेवकी चर्चामें	**स्वान्तरं निन्ये**	अपना मन्वन्तर व्यतीत कर दिया ॥३६॥
स एवं	उन्होंने इस प्रकार		

शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः ।
भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधन्ते हरिसंश्रयम् ॥३७॥

शारीराः मानसाः दिव्या वैयासे ये च मानुषाः भौतिकाः च कथं क्लेशाः बाधन्ते हरि संश्रयम् ॥३७॥

वैयासे	व्यासनन्दन विदुर !	**शारीराः**	शरीरमें होनेवाले,
हरि संश्रयं	श्रीहरिके शरणागतको	**मानसाः**	मानसिक,
		दिव्याः	देवताओंसे

ये च मानुषाः	और जो मनुष्योंसे	**कथं बाधन्ते**	कैसे बाधा दे सकते
च भौतिकाः	तथा प्राकृतिक		हैं ॥३७॥
क्लेशाः	क्लेश हैं,		

विशेष—

तात्पर्य यह है कि ये सब वर्णित कष्ट मनुको हुए; किन्तु उनके भगवत्कथा-श्रवण-चिन्तनमें इनसे कभी बाधा नहीं पड़ी।

यः पृष्टो मुनिभिः प्राह धर्मान्नानाविधाञ्छुभान् ।
नृणां वर्णाश्रमाणां च सर्वभूतहितः सदा ॥३८॥

यः पृष्टः मुनिभिः प्राह धर्मान् नाना विधान् शुभान् नृणां वर्ण आश्रमाणां च सर्वभूतहितः सदा ॥३८॥

मुनिभिः पृष्टः	मुनियों के पूछनेपर	**नृणां**	मनुष्योंका
सदा सर्वभूत-		**नाना विधान्**	अनेक प्रकारका
हितः	सदा सब प्राणियोंके	**शुभान्**	कल्याणकारी
	लिए हितकर	**धर्मान्**	धर्मोंको
वर्ण आश्रमाणां	वर्ण आश्रम	**प्राह**	वर्णन किया ॥३८॥
	माननेवाले		

एतत्त आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतम् ।
वर्णितं वर्णनीयस्य तदपत्योदयं शृणु ॥३९॥

एतत् ते आदिराजस्य मनोः चरितं अद्भुतं वर्णितं वर्णनीयस्य तत् अपत्य उदयं शृणु ॥३९॥

ते एतत्	तुमसे यह	**वर्णितं**	(मैंने) वर्णन किया,
वर्णनीयस्य	वर्णन करने योग्य	**तत्**	(अब) उनके
आदिराजस्य		**अपत्य उदयं**	सन्तानोंका उत्कर्ष
मनोः	आदिराज मनुका	**शृणु**	सुनो ॥३९॥
अद्भुतं चरितं	अद्भुत चरित		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिङ्गितकोविदा ।
नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या भवानीव भवं प्रभुम् ॥१॥

पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिं इङ्गित कोविदा नित्यं पर्यचरत् प्रीत्या भवानी इव भवं प्रभुम् ॥१॥

पितृभ्यां	माता-पिताके
प्रस्थिते	चले जानेपर
इङ्गित कोविदा	संकेत समझनेमें निपुणा
साध्वी	पतिव्रता (देवहूति)
प्रभुं भवं	भगवान् शिवकी
भवानी इव	भवानीके समान
पतिं	(अपने) पतिकी
प्रीत्या	प्रेमपूर्वक
नित्यं पर्यचरत्	नित्य सेवा करने लगी ॥१॥

विश्रम्भेणात्मशौचेन गौरवेण दमेन च ।
शुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भोः ॥२॥

विश्रम्भेण आत्म शौचेन गौरवेण दमेन च शुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भोः ॥२॥

विश्रम्भेण	विश्वास,
आत्म शौचेन	अपनी पवित्रता,
गौरवेण	आदर देने,
दमेन	इन्द्रिय-संयम
च शुश्रूषया	तथा सेवासे
सौहृदेन च	सौहार्द्रसे तथा
मधुरया वाचा	मधुरवाणीसे
भोः	(पुकारनेपर) 'जी' कहकर ॥२॥

विसृज्य कामं दम्भं च द्वेषं लोभमघं मदम् ।
अप्रमत्तोद्यता नित्यं तेजीयांसमतोषयत् ॥३॥

विसृज्य कामं दम्भं च द्वेषं लोभं अघं मदं अप्रमत्ता उद्यता नित्यं तेजीयान् समतोषयत् ॥३॥

कामं	कामना (कुछ पानेकी इच्छा)	**विसृज्य**	त्याग कर
दम्भं	बनावट (दिखावा)	**अप्रमत्ता**	प्रमादहीन होकर,
च द्वेषं	तथा द्वेष	**नित्यं उद्यता**	सदा तत्पर रहकर
लोभं	लोभ	**तेजीयान्**	परम तेजस्वी (कर्दमजी) को
अघं	पाप (अपराध)	**समतोषयत्**	भली प्रकार सन्तुष्ट कर लिया ॥३॥
मदं	घमण्डको		

स वै देवर्षिवर्यस्तां मानवीं समनुव्रताम् ।
दैवाद्गरीयसः पत्युराशासानां महाशिषः ॥४॥

स वै देवर्षि वर्यः तां मानवीं समनुव्रतां दैवात् गरीयसः पत्युः आशासानां महाशिषः ॥४॥

स वै	निश्चय वे	**दैवात् गरीयसः**	दैवसे भी महान् मानती
देवर्षि वर्यः	देवर्षि श्रेष्ठ थे	**महाशिषः**	बड़ी-बड़ी कामनाएँ
समनुव्रतां	भली प्रकार सेवामें लगी	**आशासानां**	पानेकी आशा करनेवाली ॥४॥
मानवीं	मनु-पुत्री		
पत्युः	पतिको		

कालेन भूयसा क्षामां कर्शितां व्रतचर्यया ।
प्रेमगद्गदया वाचा पीडितः कृपयाब्रवीत् ॥५॥

कालेन भूयसा क्षामां कर्शितां व्रतचर्यया प्रेम गद्गदया वाचा पीडितः कृपया ब्रवीत् ॥५॥

भूयसा कालेन	बहुत लम्बे समयसे	**कृपया**	कृपापूर्वक
व्रतचर्यया	नियमपालन करनेसे	**प्रेम गद्गदया**	प्रेमसे गद्गद
कर्शितां	थकती	**वाचा**	वाणीसे
क्षामां	दुबली हुई (देखकर)	**ब्रवीत्**	बोले ॥५॥
पीडितः	पीड़ानुभव करके,		

कर्दम उवाच-

तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः
शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या ।
यो देहिनामयमतीव सुहृत्स्वदेहो
नावेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे ॥६॥

तुष्टः अहं अद्य तव मानवि मानदायाः शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या यः देहिनां अयं अतीव सुहृत् स्वदेहः न अवेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे ॥६॥

मानवि	मनुपुत्री !
तव मानदायाः	तुम सम्मान देने-वालीकी
परमया शुश्रूषया	उत्तम सेवा
च परया भक्त्या	तथा परम भक्तिसे
अहं अद्य तुष्टः	मैं आज सन्तुष्ट हो गया,
देहिनां	शरीरधारियोंका
अयं	यह जो
अतीव सुहृत्	अत्यन्त प्रिय
स्वदेहः	अपना शरीर है,
समुचितः	ऐसा होना पूर्ण उचित है; किन्तु
मदर्थे	मेरे लिए
क्षपितुं	उसके क्षीण होनेकी
न अवेक्षितः	ओर तुमने ध्यान नहीं दिया ॥६॥

ये मे स्वधर्मनिरतस्य तपःसमाधि-
विद्यात्मयोगविजिता भगवत्प्रसादाः ।
तानेव ते मदनुसेवनयावरुद्धान्
दृष्टिं प्रपश्य वितराम्यभयानशोकान् ॥७॥

ये मे स्वधर्म निरतस्य तपः समाधि विद्या आत्म योग विजिताः भगवत् प्रसादाः तान् एव ते मत अनुसेवनया अवरुद्धान् दृष्टिं प्रपश्य वितरामि अभयान् अशोकान् ॥७॥

मे	मैंने
स्वधर्म निरतस्य	अपने धर्ममें लगे रहकर
तपः	तपस्या
समाधि	एकाग्रता,
आत्म विद्या-	उपासना,

योग ये	योगसे जो
अभयान्	भयहीन,
अशोकान्	शोकहीन,
भगवत् प्रसादाः	भगवान्‌की कृपासे (विभूतियाँ)
विजिताः	प्राप्त की हैं,
मत् अनुसेवनया	मेरी निरन्तर (सेवा) से
तान् एव	उनपर ही
ते अवरुद्धान्	तुम्हारा अधिकार हो गया,
दृष्टिं वितरामि	(तुम्हें) दिव्य दृष्टि देता हूँ,
प्रपश्य	उन्हें देखो ॥७॥

अन्ये पुनर्भगवतो भ्रुव उद्विजृम्भ-

विभ्रंशितार्थरचनाः किमुरुक्रमस्य ।

सिद्धासि भुङ्क्ष्व विभवान्निजधर्मदोहान्

दिव्यान्नरैर्दुरधिगान्नृपविक्रियाभिः ॥८॥

अन्ये पुनः भगवतः भ्रुव उद्विजृम्भ विभ्रंशित अर्थ रचनाः किमु उरुक्रमस्य सिद्धा असि भुङ्क्ष्व विभवान् निजधर्म दोहान् दिव्यान् नरैः दुरधिगान् नृप विक्रियाभिः ॥८॥

पुनः अन्ये	फिर दूसरे
अर्थ रचनाः	धनसे जुटाये (भोग)
भगवतः	भगवान्‌की
भ्रुव उद्विजृम्भ	भृकुटि विलाससे
विभ्रंशितः	नष्ट हो जानेवाले हैं,
उरुक्रमस्य	अनन्त पराक्रम भगवान्‌के (प्रसाद इनसे)
किमु	उनकी क्या तुलना।
नृप विक्रियाभिः	राजापनेके विकार (अहङ्कार) से
नरैः	मनुष्यों द्वारा
दुरधिगान्	इनको पाना बहुत कठिन है,
सिद्धा असि	(मेरी सेवासे तुम) सिद्ध हो गयी हो,
निजधर्म दोहान्	अपने धर्माचरणसे प्राप्त
दिव्यान् विभवान्	दिव्य वैभवोंको
भुङ्क्ष्व	भोगो ॥८॥

मैत्रेय उवाच-*

एवं ब्रुवाणमबलाखिलयोगमाया-
विद्याविचक्षणमवेक्ष्य गताधिरासीत् ।
सम्प्रश्रयप्रणयविह्वलया गिरेषद्-
व्रीडावलोकविलसद्धसिताननाऽऽह ॥८॥

एवं ब्रुवाणं अबला अखिल योगमाया विद्या विचक्षणं अवेक्ष्य गत आधिः आसीत् सम्प्रश्रय प्रणय विह्वलया गिरा इषत् व्रीड़ा अवलोक विलसत् हसित आनना आह ॥८॥

एवं	(कर्दमजीके) इस प्रकार	**गत आधिः आसीत्**	चिन्ता रहित हो गयी ।
ब्रुवाणं	कहनेपर	**सम्प्रश्रय**	विनय,
अबला	देवहूति (उन्हें)	**प्रणय विह्वलया**	प्रेम विह्वल
अखिल योगमाया	सम्पूर्ण योगमाया (और)	**गिरा**	वाणीसे
		ईषत् व्रीडा	तनिक लज्जा भरी
विद्या विचक्षण	विद्याओंमें निपुण	**अवलोक**	चितवनसे
अवेक्ष्य	देखकर	**विलसत्**	सुशोभित
		हसित आनना	हँसते हुए मुखसे
		आह	बोली ॥८॥

देवहूतिरुवाच-

राद्धं बत द्विजवृषैतदमोघयोग-
मायाधिपे त्वयि विभो तदवैमि भर्तः ।
यस्तेऽभ्यधायि समयः सकृदङ्गसङ्गो
भूयाद्गरीयसि गुणः प्रसवः सतीनाम् ॥१०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

राद्धं बत द्विजवृष एतत् अमोघ योगमायाधिपे त्वयि विभो तत् अवैमि भर्तः यः ते अभिधायि समयः सकृत् अङ्ग सङ्ग भूयात् गरीयसि गुणः प्रसवः सतीनाम् ॥१०॥

द्विजवृष	द्विजर्षभ !
भर्तः	स्वामी !
अमोघ	निष्फल न होनेवाली
योगमायाधिपे	योगमायाके स्वामी
त्वयि	आपमें
एतत्	ये सब
राद्धं	ऐश्वर्य प्राप्त हैं,
तत् अवैमि	यह जानती हूँ
बत विभो	किन्तु प्रभो !
यः ते समयः	जो आपने प्रतिज्ञा
अभिधायि	(विवाहके समय) की थी,
सकृत अङ्ग सङ्गः	एक बार अंग-संगकी
भूयात्	(वह) हो (क्योंकि)
सतीनां	पतिव्रता स्त्रीके लिए
गुणः प्रसवः	सद्गुणी संतान होना
गरीयसि	महान् लाभ है॥१०॥

तत्रेतिकृत्यमुपशिक्ष यथोपदेशं
येनैष मे कर्शितोऽतिरिरिंसयाऽऽत्मा ।
सिद्धयेत ते कृतमनोभवधर्षितायाः
दीनस्तदीश भवनं सदृशं विचक्ष्व ॥११॥

तत्र इति कृत्यं उपशिक्ष यथा उपदेशं येन एष मे कर्शितः अति रिरिंसया आत्मा सिद्धयेत ते कृत मनोभव धर्षितायाः दीनः तत् ईश भवनं सदृशं विचक्ष्व ॥११॥

तत्र	इस विषयमें
यथा उपदेशं	शास्त्र वर्णित विधिसे
इति कृत्यं	जो करणीय हो
उपशिक्ष	उसे सिखलाइये ।
ते कृतं	आपके लिए
मनोभव	
धर्षितायाः	कामसे उत्पीड़िता
मे	मैंने
येन रिरिंसया	जिस रमणकी इच्छासे
एष आत्मा	यह शरीर
अति कर्शिताः	अत्यन्त दुर्बल किया,
दीनः	दीन हुआ,
तत् ईश	अतः आप समर्थ हो
सदृशं भवनं	(इसके) उपयुक्त भवन
विचक्ष्व	(बनानेका) विचार कीजिए ॥११॥

मैत्रेय उवाच-

प्रियायाः प्रियमन्विच्छन् कर्दमो योगमास्थितः ।
विमानं कामगं क्षत्तस्तर्ह्येवाविरचीकरत् ॥१२॥

प्रियायाः प्रियं अन्विच्छन् कर्दमः योगं आस्थितः विमानं कामगं क्षत्तः तर्हि एव अविरची करत् ॥१२॥

क्षत्तः	विदुर !	**कामगं**	इच्छानुसार चलनेवाला
प्रियायाः	प्रिय पत्नीका	**विमानं**	विमान
प्रियं अन्विच्छन्	प्रिय करनेकी इच्छामे	**तर्हि एव**	उसी समय
कर्दमः	कर्दमजीने	**अविरची करत्**	निर्मित कर दिया ॥१२॥
योगं आस्थितः	योगमें स्थित होकर		

सर्वकामदुघं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् ।
सर्वर्द्ध्युपचयोदर्कं मणिस्तम्भैरुपस्कृतम् ॥१३॥

सर्वं कामदुघं दिव्यं सर्वरत्न समन्वितं सर्वं ऋद्धि उपचय उदर्कं मणिस्तम्भैः उपस्कृतम् ॥१३॥

सर्वं कामदुघं	सब कामनाएँ पूर्ण करनेवाला,	**सर्वं ऋद्धि उपचय**	सब समृद्धियोंके संग्रहसे
सर्वरत्न समन्वितं	सब रत्नोंसे भरा,	**उदर्कं**	जगमगाता
		मणिस्तम्भैः	मणियोंके खम्भोंसे
		उपस्कृतं	सुशोभित ॥१३॥

दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् ।
पट्टिकाभिः पताकाभिर्विचित्राभिरलंकृतम् ॥१४॥

दिव्य उपकरण उपेतं सर्वकाल सुखावहं पट्टिकाभिः पताकाभिः विचित्राभिः अलंकृतम् ॥१४॥

दिव्य उपकरण उपेतं	दिव्य सामग्रियोंसे भरा,	**सर्वकाल सुखावहं**	सब ऋतुओंमें सुखदायक

विचित्राभिः	विचित्र	पताकाभिः	पताकाओंसे
पट्टिकाभिः	स्वागत वाक्यादि और	अलंकृतम्	भूषित था ॥१४॥

स्रग्भिर्विचित्रमाल्याभिर्मञ्जुशिञ्जत्षडङ्घ्रिभिः ।
दुकूलक्षौमकौशेयैर्नानावस्त्रैर्विराजितम् ॥१५॥

स्रग्भिः विचित्र माल्याभिः मञ्जुशिञ्जत् षडङ्घ्रिभिः दुकूल क्षौम कौशेयैः नाना वस्त्रैः विराजितम् ॥१५॥

स्रग्भिः	पुष्प मालाओंसे	क्षौम	अलसीके रेशेसे बने,
विचित्र		कौशेयैः	रेशमी
माल्याभिः	अनेक रत्नोंकी मालाओंसे,	नाना वस्त्रैः	अनेक प्रकारके वस्त्रोंसे
मञ्जु शिञ्जत्	मधुर गुंजार करते	विराजितम्	बहुत सुशोभित था ॥१५॥
षडङ्घ्रिभिः	भौंरोंसे		
दुकूल	सूती,		

उपर्युपरि विन्यस्तनिलयेषु पृथक्पृथक् ।
क्षिप्तैः कशिपुभिः कान्तं पर्यङ्कव्यजनासनैः ॥१६॥

उपरि उपरि विन्यस्त निलयेषु पृथक् पृथक् क्षिप्तैः कशिपुभिः कान्तं पर्यङ्क व्यजन आसनैः ॥१६॥

उपरि उपरि	एक दूसरेके ऊपर	कशिपुभिः	आराम करनेके*
विन्यस्तं	बनाये हुए		पलंग,
निलयेषु	(अनेक मंजिलके) घरोंमें	पर्यङ्क	सोनेके लिए पलंग,
पृथक् पृथक्		व्यजन	पंखे
क्षिप्तैः	अलग-अलग रखे	आसनैः	आसनोंसे
		कान्तं	सुन्दर लगता था ॥१६॥

तत्र तत्र विनिक्षिप्तनानाशिल्पोपशोभितम् ।
महामरकतस्थल्या जुष्टं विद्रुमवेदिभिः ॥१७॥

---

* आराम कुर्सी जैसा आसन ।

तत्र तत्र विनिक्षिप्त नाना शिल्प उपशोभितं महामरकत स्थल्या जुष्टं विद्रुम वेदिभिः ॥१७॥

तत्र तत्र	जहाँ तहाँ
नाना शिल्प	अनेक प्रकारकी
जुष्टम्	युक्त कारीगरीसे
उपशोभितं	सुशोभित
महामरकत	महामरकतमणि (पन्ने) के
स्थल्या	फर्शपर
विद्रुम वेदिभिः	मूँगेकी वेदियाँ
विनिक्षिप्त	बनी थीं ॥१७॥

द्वाःसु विद्रुमदेहल्या भातं वज्रकपाटवत् ।
शिखरेष्विन्द्रनीलेषु हेमकुम्भैरधिश्रितम् ॥१८॥

द्वाःसु विद्रुम देहल्या भातं वज्र कपाट वत् शिखरेषु इन्द्रनीलेषु हेमकुम्भैः अधिश्रितम् ॥१८॥

विद्रुम देहल्या	मूंगेकी चौखटवाले
द्वाःसु	द्वार
वज्र कपाटवत्	हीरे जड़े किवाड़ोंसे
भातं	शोभित थे ।
शिखरेषु	शिखरोंपर जो
इन्द्रनीलेषु	इन्द्र नीलमणिका था,
हेमकुम्भैः	स्वर्ण कलश
अधिश्रितं	चढ़े थे ॥१८॥

चक्षुष्मत्पद्मरागाग्र्यैर्वज्रभित्तिषु निर्मितैः ।
जुष्टं विचित्रवैतानैर्महार्हैर्हेमतोरणैः ॥१९॥

चक्षुष्मत् पद्मराग अग्र्यैः वज्रभित्तिषु निर्मितैः जुष्टं विचित्र वैतानैः महार्हैः हेमतोरणैः ॥१९॥

वज्रभित्तिषु	हीरेकी दीवारोंमें
पद्मराग अग्र्यैः	पद्मरागकी नोकोंकी
निर्मितैः	ऐसी रचना थी कि
चक्षुष्मत्	वह) आंखोंवाला (लगता था)
विचित्र वैतानैः	रंग-बिरंगे चँदोवे (और)
महार्हैः	
हेमतोरणैः	सोनेकी बहुमूल्य वन्दनवारोंसे
जुष्टं	सजा था ॥१९॥

हंसपारावतव्रातैस्तत्र तत्र निकूजितम् ।
कृत्रिमान् मन्यमानैः स्वानधिरुह्याधिरुह्य च ॥२०॥

हंस पारावत व्रातैः तत्र तत्र निकूजितं कृतिमान् मन्यमानैः स्वान् अधिरुह्य अधिरुह्य च ॥२०॥

तत्र तत्र	**जहाँ तहाँ**
हंस पारावत व्रातैः	हंसों और कबूतरोंके झुंड
निकूजितं च स्वान्	कलरव करते और अपनेको
कृतिमान् मन्यमानः	बनावटी मानकर
अधिरुह्य	और बार-बार उसपर बैठते ॥२०॥

विहारस्थानविश्रामसंवेशप्राङ्गणाजिरैः ।
यथोपजोषं रचितैर्विस्मापनमिवात्मनः ॥२१॥

विहारस्थान विश्रामसंवेश प्राङ्गण अजिरैः यथा उपजोषं रचितैः विस्मापनं इव आत्मनः ॥२१॥

यथा उपजोषं	सुविधानुसार
विहारस्थान	क्रीडास्थल,
विश्रामसंवेश	बैठक,
प्राङ्गण	आंगन,
अजिरैः	चौक
रचितैः	बने होनेसे
आत्मनः	अपने (कर्दमजी) को ही
विस्मापनं इव	चकित-सा करने वाला था ॥२१॥

ईदृग्गृहं तत्पश्यन्तीं नातिप्रीतेन चेतसा ।
सर्वभूताशयाभिज्ञः प्रावोचत्कर्दमः स्वयम् ॥२२॥

ईदृक् गृहं तत् पश्यन्ती न अति प्रीतेन चेतसा सर्वभूत आशय अभिज्ञः प्रावोचत् कर्दमः स्वयम् ॥२२॥

तत् ईदृक्	उस ऐसे
गृहं पश्यन्ती	गृहको देखकर भी
चेतसा	चित्तसे
अति प्रीतेन न	बहुत प्रसन्न नहीं हुई ।
सर्वभूत	सब प्राणियोंके
आशयः अभिज्ञः	चित्तकी बात जाननेवाले
स्वयं कर्दमः	स्वयं कर्दमजीने
प्रावोचत्	कहा ॥२२॥

कर्दम उवाच*-

निमज्ज्यास्मिन् ह्रदे भीरु विमानमिदमारुह ।
इदं शुक्लकृतं तीर्थमाशिषां यापकं नृणाम् ॥२३॥

निमज्ज्य अस्मिन् ह्रदे भीरु विमानं इदं आरुह इदं शुक्ल कृतं तीर्थं आशिषां यापकं नृणाम् ॥२३॥

भीरु	भीरु !
अस्मिन् ह्रदे	इस सरोवरमें
निमज्ज्य	स्नान करके
इदं विमानं	इस विमानपर
आरुह	चढ़ो ।
शुक्ल कृतं	भगवान का बनाया
इदं तीर्थं	यह तीर्थ
नृणां	मनुष्यों की
आशिषां यापकं	कामनाओंको प्राप्त करानेवाला है ॥२४॥

मैत्रेय उवाच*-

सा तद्भर्तुः समादाय वचः कुवलयेक्षणा ।
सरजं बिभ्रती वासो वेणीभूतांश्च मूर्धजान् ॥२४॥

सा तत् भर्तुः समादाय वचः कुवलय ईक्षणा सरजं बिभ्रती वासः वेणीभूतान् च मूर्धजान् ॥२४॥

सा कुवलय ईक्षणा	वह कमल लोचना (देवहूति)
तत् भर्तुः वचः	उस पतिके वचनको
समादाय	स्वीकार करके
सरजं वासः	मैले वस्त्र
च वेणीभूतान्	और जटा बने
मूर्धजान्	केशोंको
बिभ्रती	धारण किये ॥२४॥

अङ्गं च मलपङ्केन संछन्नं शबलस्तनम् ।
आविवेश सरस्वत्याः सरः शिवजलाशयम् ॥२५॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अङ्गं च मलपङ्केन संछन्नं शबल स्तनं आविवेश सरस्वत्याः सरः शिव जलाशयम् ॥२५॥

मलपङ्केन	मैलके कीचड़से
संच्छन्नं	ढका हुआ
अङ्गं च	शरीर था तथा
स्तनं शबल	स्तन क्रान्तिहीन थे ।
सरस्वत्याः	सरस्वतीके
शिव जलाशयं	पवित्र जलसे भरे
सरः आविवेश	सरोवरमें प्रवेश किया ॥२५॥

सान्तःसरसि वेश्मस्थाः शतानि दश कन्यकाः ।
सर्वाः किशोरवयसो ददर्शोत्पलगन्धयः ॥२६॥

स अन्तः सरसि वेश्मस्थाः शतानि दश कन्यकाः सर्वाः किशोर वयसः ददर्श उत्पल गन्धयः ॥२६॥

स	उसने
अन्तः सरसि	सरोवरके भीतर (बने)
वेश्मस्थाः	घरमें रहनेवाली
शतानि दश	एक हजार
कन्यकाः	कन्यायें
ददर्श	देखीं ।
सर्वाः	(वे) सब
किशोर वयसः	किशोरावस्थावाली
उत्पल गन्धयः	कमलगन्धा थीं । २६॥

तां दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रोचुः प्राञ्जलयः स्त्रियः ।

तां दृष्ट्वा सहसा उत्थाय प्रोचुः प्राञ्जलयः स्त्रियः

तां	उस (देवहूति) को
दृष्ट्वा	देखकर
स्त्रिया	वे स्त्रियां
सहसा उत्थाय	सहसा खड़ी होगयीं,
प्राञ्जलयः प्रोचुः	हाथ जोड़कर बोलीं—

स्त्रिय ऊचुः*—

वयं कर्मकरीस्तुभ्यं शाधि नः करवाम किम् ॥२७॥

वयं कर्मकरीः तुभ्यं शाधि नः करवाम किं ॥२७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

वयं	हम सब	**तुभ्यं किं करवाम** आपकी क्या सेवा
कर्मकरीः	सेविकायें हैं,	करें ॥२७॥
नः शाधि	हमें आज्ञा दीजिए,	

*मैत्रेय उवाच**–

स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम् ।
दुकूले निर्मले नूत्ने ददुरस्यै च मानदाः ॥२८॥

स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम् दुकूले निर्मले नूत्ने ददुः अस्यै च मानदाः ॥२८॥

मानदाः	(स्वामिनीका) सम्मान करती हुई	**स्नानेन**	
तां	उनको	**स्नापयित्वा**	स्नान कराके,
महार्हेण	बहुमूल्य (उबटन, तैल आदि) से	**च अस्यै**	फिर इनको
		निर्मले नूत्ने	निर्मल नवीन
		दुकूले ददुः	दुकूल दिये ॥२८॥

भूषणानि परार्ध्यानि वरीयांसि द्युमन्ति च ।
अन्नं सर्वगुणोपेतं पानं चैवामृतासवम् ॥२९॥

भूषणानि परार्ध्यानि वरीयांसि द्युमन्ति च अन्नं सर्व गुण उपेतं पानं च एव अमृत आसवम् ॥२९॥

परार्ध्यानि	बहुत मूल्यवाले	**एव**	तथा
वरीयांसि	उत्तम	**अमृत आसवं**	अमृतके समान आसव
च द्युमन्ति	तथा जगमगाते	**पानं च**	पीनेको भी दिया ॥२९॥
भूषणानि	आभूषण दिये,		
सर्व गुण उपेतं	सब गुणोंसे युक्त		
अन्नं	भोजन		

अथादर्शे स्वमात्मानं स्रग्विणं विरजाम्बरम् ।
विरजं कृतस्वस्त्ययनं कन्याभिर्बहुमानितम् ॥३०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अथ आदर्शे स्वं आत्मानं स्रग्विणं विरज अम्बरं विरजं कृत स्वस्त्ययनं कन्याभिः बहुमानितम् ॥३०॥

अथ	तदनन्तर
आदर्शे	दर्पणमें
स्वं आत्मनं	अपने आपको (देखा)
स्रग्विणं	पुष्पमाला पहिने,
विरज अम्बरं	निर्मल वस्त्र पहिने,
विरजं	निर्मल (शरीर)
कन्याभिः	कन्याओं द्वारा
बहु मानितं	बहु सम्मानित
कृत स्वस्त्ययनं	मांगलिक शृङ्गार किए ॥३०॥

स्नातं कृतशिरः स्नानं सर्वाभरणभूषितम् ।
निष्कग्रीवं वलयिनं कूजत्काञ्चननूपुरम् ॥३१॥

स्नातं कृतशिरः स्नानं सर्व आभरण भूषितं निष्कग्रीवं वलयिनं कूजत काञ्चन नूपुरम् ॥३१॥

कृतशिरः स्नानं	सिर धोकर स्नान करके
स्नातं	(पुनः) स्नान किया है,
सर्व आभरण भूषितं	सभी आभूषणोंसे भूषित है
निष्कग्रीवं	गलेमें हार-हुमेल है,
वलयिनं	(हाथोंमें) कङ्कण पहिने है,
कूजत काञ्चन नूपुरं	सोनेके नूपुर झंकार करते हैं ॥३१॥

श्रोण्योरध्यस्तया काञ्च्या काञ्चन्या बहुरत्नया ।
हारेण च महार्हेण रुचकेन च भूषितम् ॥३२॥

श्रोण्योः अधस्तया काञ्च्या काञ्चन्या बहुरत्नया हारेण च महार्हेण रुचकेन च भूषितम् ॥३२॥

श्रोण्योः अधस्तया	नितम्बोंके नीचे तक पहुँचती
बहुरत्नया काञ्चन्या	बहुत रत्नजड़ी
काञ्च्या च	सोनेकी करधनीसे एवं
महार्हेण हारेण च रुचकेन	महा मूल्यवान हारसे और अंगरागसे
भूषितम्	सुशोभित है ॥३२॥

सुदता सुभ्रुवा श्लक्ष्णस्निग्धापाङ्गेन चक्षुषा ।
पद्मकोशस्पृधा नीलैरलकैश्च लसन्मुखम् ॥३३॥

सुदता सुभ्रुवा श्लक्ष्ण स्निग्ध अपाङ्गेन चक्षुषा पद्मकोश स्पृधा नीलैः अलकैः च लसन् मुखम् ॥३३॥

मुखं	(उसका) मुख	**पद्मकोश स्पृधा**	कमलकलीके समान
सुदता	सुन्दर दन्तावली,	**नील अलकैः च**	काली अलकोंसे भी घिरा
सुभ्रुवा	सुन्दर भौंहों	**लसन्**	सुशोभित है ॥३३॥
स्निग्ध अपाङ्गेन	प्रेमपूर्ण कटाक्षवाले		
चक्षुषा	नेत्रोंसे		

यदा सस्मार ऋषभमृषीणां दयितं पतिम् ।
तत्र चास्ते सहस्त्रीभिर्यत्रास्ते स प्रजापतिः ॥३४॥

यदा सस्मार ऋषभं ऋषीणां दयितं पतिं तत्र च आस्ते सह स्त्रीभिः यत्र आस्ते स प्रजापतिः ॥३४॥

यदा	जब	**तत्र च आस्ते**	वहीं तो उपस्थित है
ऋषीणां ऋषभं	ऋषि श्रेष्ठ	**यत्र स प्रजापतिः**	जहाँ वे प्रजापति (कर्दमजी)
दयितं पतिं	(अपने) प्रिय पतिको	**आस्ते**	विराजमान हैं ॥३४॥
सस्मार	(उसने) स्मरण किया (तो देखा)		
सह स्त्रीभिः	स्त्रियों (सेविकाओं) के साथ		

भर्तुः पुरस्तादात्मानं स्त्रीसहस्रवृतं तदा ।
निशाम्य तद्योगगतिं संशयं प्रत्यपद्यत ॥३५॥

भर्तुः पुरस्तात् आत्मानं स्त्री सहस्रवृतं तदा निशाम्य तद् योगगतिं संशयं प्रत्यपद्यत ॥३५॥

भर्तुः पुरस्तात्	पतिके सामने	**आत्मानं निशाम्य**	अपनेको देखकर
स्त्री सहस्रवृतं	एक हजार स्त्रियोंसे घिरी		

तदा तद् योगगतिं	उस समय उनकी योगशक्तिके विषयमें	**संशयं**	सन्देह (इनकी योग शक्ति और कितनी अधिक है।)
		प्रत्यपद्यत	उत्पन्न हो गया ॥३५॥

स तां कृतमलस्नानां विभ्राजन्तीमपूर्ववत् ।
आत्मनो बिभ्रतीं रूपं संवीतरुचिरस्तनीम् ॥३६॥

स तां कृतमल स्नानां विभ्राजन्तीं अपूर्ववत् आत्मनः विभ्रतीं रूपं संवीत रुचिर स्तनीम् ॥३६॥

स तां	उन (कर्दमजी) ने उसको	**आत्मनः**	
कृतमल स्नानां	स्नान करके निर्मल हुई,	**अपूर्ववत्**	अपना जैसा पहिले नहीं था
संवीत रुचिर		**रूपं विभ्रतीं**	सौन्दर्य धारण किए
स्तनीं	ढके हुए सुन्दर वक्षवाली,	**विभ्राजन्तीं**	अत्यन्त सुशोभिता देखा ॥३६॥

विद्याधरीसहस्रेण सेव्यमानां सुवाससम् ।
जातभावो विमानं तदारोहयदमित्रहन् ॥३७॥

विद्याधरी सहस्रेण सेव्यमाना सुवाससं जातभावः. विमानं तत् आरोहयत् अमित्रहन् ॥३७॥

अमित्रहन्	शत्रु नाशक विदुर !	**सुवाससं**	उत्तम वस्त्र पहिने (देवहूतिको)
विद्याधरी			
सहस्रेण	एक सहस्र विद्याधरियों द्वारा	**जातभावः**	प्रेमपूर्वक
		तत् विमानं	उस विमानपर
सेव्यमाना	सुसेवित	**आरोहयत्**	चढ़ाया ॥३७॥

तस्मिन्नलुप्तमहिमा प्रिययानुरक्तो
विद्याधरीभिरुपचीर्णवपुर्विमाने ।

बभ्राज उत्कचकुमुद्गणवानपीच्य-
स्ताराभिरावृत इवोडुपतिर्नभःस्थः ॥३८॥

तस्मिन् अलुप्त महिमा प्रियया अनुरक्तः विद्याधरीभिः उपचीर्ण वपुः विमाने बभ्राज उत्कच कुमुद्गणवान् अपीच्यः ताराभिः आवृत इव उडुपतिः नभस्थः ॥३८॥

तस्मिन्	उस विमानमें
प्रियया अनुरक्तः	अपनी प्रियामें अनुरक्त होनेपर भी
अलुप्त महिमा	(उनका) प्रभाव लुप्त नहीं हुआ था,
विद्याधरीभिः	विद्याधरियों द्वारा
उपचीर्ण वपुः	शारीरिक सेवा किए जाते हुए
उत्कच	
कुमुद्गणवान्	खिली कुमुदिनियोंकी माला पहिने
ताराभिः आवृत	तारागणोंसे घिरे
नभस्थः उडुपति	
इव	आकाशमें स्थित चन्द्रके समान
अपीच्यः	अत्यन्त सुन्दर लगते
बभ्राज	विराजमान थे ॥३८॥

तेनाष्टलोकपविहारकुलाचलेन्द्र-
द्रोणीष्वनङ्गसखमारुतसौभगासु ।
सिद्धैर्नुतो द्युधुनिपातशिवस्वनासु
रेमे चिरं धनदवल्ललनाबरूथी ॥३९॥

तेन अष्ट लोकप विहार कुलाचलेन्द्र द्रोणीषु अनङ्ग सख मारुत सौभगासु सिद्धैः नुतः द्युधुनिपात शिवः स्वनासु रेमे चिरं धनदवत् ललना वरूथी ॥३९॥

तेन	उस (विमान) से
धनदवत्	कुवेरके समान
चिरं	बहुत समय तक
लोकप विहार	लोकपालोंकी विहार भूमि
कुलाचलेन्द्र	सुमेरुकी
अष्ट द्रोणीषु	आठो घाटियोंमें जो
अनङ्ग सख	कामदेवके मित्र
मारुत सौभगासु	सुखद वायुवाली हैं एवं

द्यधुनिपात	गंगाजीके गिरनेके
शिवः स्वनासु	मंगल शब्दसे गूँजती हैं,
सिद्धैः नुतः	सिद्धों द्वारा प्रणमित होते,
ललना वरूथी	सुन्दरी विद्याधरियोंसे सेविता
रेमे	(देवहूतिके साथ) विहार किया ॥३९॥

वैश्रम्भके सुरसने नन्दने पुष्पभद्रके ।
मानसे चैत्ररथ्ये च स रेमे रामया रतः ॥४०॥

वैश्रम्भके सुरसने नन्दने पुष्प भद्रके मानसे चैत्ररथ्ये च स रेमे रामया रतः ॥४०॥

रामया रतः	अपनी प्रियामें अनुरक्त
स	उन्होंने
वैश्रम्भके	वैश्रम्भक (कुवेरके उद्यान)
सुरसने	सुरसन (वरुणके उद्यान)
नन्दने	नन्दन (इन्द्रके उद्यान)
पुष्प भद्रके	पुष्प भद्रक (धर्मराजके उद्यान)
चैत्ररथ्ये	चैत्ररथ (गन्धर्वोद्यान)
च मानसे	और मानसरोवरमें
रेमे	विहार किया ॥४०॥

भ्राजिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा ।
वैमानिकानत्यशेत चरँल्लोकान् यथानिलः ॥४१॥

भ्राजिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा वैमानिकान् अत्यशेत चरन् लोकान् यथा अनिलः ॥४१॥

महीयसा	श्रेष्ठ
भ्राजिष्णुना	कान्तिमान
कामगेन	इच्छानुसार चलनेवाले
विमानेन	विमानसे
अनिलः यथा	वायुके समान
लोकान् चरन्	लोकोंमें घूमते
वैमानिकान्	विमानारूढ़ (देवताओं) से भी
अत्यशेत	बढ़ गये ॥४१॥

किं दुरापादनं तेषां पुंसामुद्दामचेतसाम् ।
यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो व्यसनात्ययः ॥४२॥

किं दुरापादनं तेषां पुंसां उद्दाम चेतसां यैः आश्रितः तीर्थपदः चरणः व्यसन अत्ययः ॥४२॥

यैः	जिन्होंने	**तेषां**	उन
व्यसन अत्ययः	क्लेशहारी (भवभयहारी)	**उद्दाम चेतसां**	निर्बन्ध चित्तवाले
		पुंसां	पुरुषोंके लिए
तीर्थपदः	पावन चरण भगवान्‌के	**किं दुरापादनं**	क्या दुष्प्राप्य है ॥४२॥
चरणः आश्रितः	चरणोंका आश्रय लिया है		

प्रेक्षयित्वा भुवो गोलं पत्न्यै यावान् स्वसंस्थया ।
बह्वाश्चर्यं महायोगी स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥४३॥

प्रेक्षयित्वा भुवः गोलं पत्न्यैः यावान् स्वसंस्थया बह्वाश्चर्यं महायोगी स्व आश्रमाय न्यवर्तत ॥४३॥

भुवः गोलं	भूमण्डल	**पत्न्यैः**	पत्नीको
यावान्		**प्रेक्षयित्वा**	दिखलाकर
स्व संस्थया	जितना अपने विस्तारमें है,	**महायोगी**	(वे) महायोगी (कर्दमजी)
बह्वाश्चर्यं	बहुत आश्चर्योंसे भरा	**स्व आश्रमाय**	अपने आश्रम
		न्यवर्तत	लौट आये ॥४३॥

विभज्य नवधाऽऽत्मानं मानवीं सुरतोत्सुकाम् ।
रामां निरमयन् रेमे वर्षपूगान्मुहूर्तवत् ॥४४॥

विभज्य नवधा आत्मानं मानवीं सुरत उत्सुकां रामां निरमयन् रेमे वर्षपूगान् मुहूर्तवत् ॥४४॥

आत्मानं	अपनेको	**निरमयन्**	रमण कराते
नवधा विभज्य	नौ रूपोंमें विभक्त करके,	**वर्षपूगान्**	बहुत वर्षोंको
		मुहूर्तवत्	एक मुहूर्तके समान
सुरत उत्सुकां	सहवासको उत्सुक	**रेमे**	विहारमें
रामां मानवीं	पत्नी मनुपुत्रीको		बिताया ॥४४॥

तस्मिन् विमान उत्कृष्टां शय्यां रतिकरीं श्रिता ।
न चाबुध्यत तं कालं पत्यापीच्येन सङ्गता ॥४५॥

तस्मिन् विमान उत्कृष्टां शय्यां रतिकरीं श्रिताः न च अबुध्यत तं कालं पत्या अपीच्येन सङ्गता ॥४५॥

तस्मिन् विमान	उस विमानमें
उत्कृष्टां रतिकरीं	श्रेष्ठ सुख देनेवाली
शय्यां श्रिताः	शय्यापर स्थित
अपीच्येन पत्याः	रूपवान पतिके
सङ्गताः	साथ मिलकर
तं कालं	उस समयको
न च अबुध्यत	नहीं ही जान सकी ॥४५॥

एवं योगानुभावेन दम्पत्यो रममाणयोः ।
शतं व्यतीयुः शरदः कामलालसयोर्मनाक् ॥४६॥

एवं योग अनुभावेन दम्पत्योः रममाणयोः शतं व्यतीयुः शरदः काम लालसयोः मनाक् ॥४६॥

एवं	इस प्रकार
योग अनुभावेन	योगके प्रभावसे
रममाणयोः	रमण करते
दम्पत्योः	उस दम्पति
काम लालसयोः	कामकी लालसा वालेको
मनाक्	बहुत थोड़े (क्षण) के समान
शतं शरदः	सौ वर्ष
व्यतीयुः	बीत गये ॥४६॥

तस्यामाधत्त रेतस्तां भावयन्नात्मनाऽऽत्मवित् ।
नोधा विधाय रूपं स्वं सर्वसङ्कल्पविद्विभुः ॥४७॥

तस्यां आधत्त रेतः तां भावयन् आत्मना आत्मवित् नोधा विधाय रूपं स्वं सर्वं सङ्कल्पवित् विभुः ॥४७॥

आत्मना	अपने आपसे
आत्मवित्	आत्मा तत्त्वको जाननेवाले
विभुः	समर्थ
सर्व सङ्कल्पवित्	सब संकल्पोंके वेत्ता (कश्यपजी) ने
स्वं नोधा रूपं	अपनेको नौ रूपोंमें
विधाय	विभक्त करके
तां भावयन्	उस (देवहूति) की भावना करते
तस्यां	उसमें
रेतः आधत्त	वीर्याधान किया ॥४७॥

अतः स सुषुवे सद्यो देवहूतिः स्त्रियः प्रजाः ।
सर्वास्ताश्चारुसर्वाङ्ग्यो लोहितोत्पलगन्धयः ॥४८॥

अतः सा सुषुवे सद्यः देवहूतिः स्त्रियः प्रजाः सर्वाः ताः चारु सर्वाङ्ग्यः लोहित उत्पल गन्धयः ॥४८॥

अतः	अतः
सा देवहूतिः	उस देवहूतिने
सद्यः	तुरन्त
स्त्रियः प्रजाः	कन्या सन्तानोंको
सुषुवे	जन्म दिया ।
ताः सर्वाः	वे सब
चारु सर्वाङ्ग्यः	सर्वांग सुन्दरी
लोहित उत्पल	लाल कमलके समान
गन्धयः	सुगन्ध वाली थीं ॥४८॥

पतिं सा प्रव्रजिष्यन्तं तदाऽऽलक्ष्योशती सती ।
स्मयमाना विक्लवेन हृदयेन विदूयता ॥४९॥

पतिं सा प्रव्रजिष्यन्तं तदा आलक्ष्य उशती सती स्मयमाना विक्लवेन हृदयेन विदूयता ॥४९॥

सा उशती सती	उस शुद्ध चरिता सतीने
तदा पतिं	उस समय पतिको
प्रव्रजिष्यन्तं	संन्यास लेकर जानेको तत्पर
आलक्ष्य	लक्षित करके
विक्लवेन	व्याकुलतासे
विदूयता	संतप्त
हृदयेन	हृदयसे
स्मयमाना	(ऊपरसे) मुस्कराते हुए ॥४९॥

लिखन्त्यधोमुखी भूमिं पदा नखमणिश्रिया ।
उवाच ललितां वाचं निरुध्याश्रुकलां शनैः ॥५०॥

लिखन्ति अधोमुखी भूमिं पदानख मणि श्रिया उवाच ललितां वाचं निरुध्य अश्रुकलां शनैः ॥५०॥

मणि श्रिया	मणिके समान शोभावाले
पदानख	चरणोंके नखसे
भूमिं लिखन्ति	भूमि कुरेदती
अधोमुखी	सिर झुकाये
शनैः	धीरे से
अश्रुकलां निरुध्य	आँसुओंको रोककर
ललितां वाचं	मधुर वाणीसे
उवाच	बोलीं ॥५०॥

देवहूतिरुवाच-

सर्वं तद्भगवान्मह्यमुपोवाह प्रतिश्रुतम् ।
अथापि मे प्रपन्नाया अभयं दातुमर्हसि ॥५१॥

सर्वं तत् भगवान् मह्यं उपोवाह प्रतिश्रुतं अथापि मे प्रपन्नाया अभयं दातुं अर्हसि ॥५१॥

भगवान्	भगवानने
मह्यं	जो मुझसे (विवाहके समय)
प्रतिश्रुतं	प्रतिज्ञा की थी,
तत् सर्वं उपोवाह	वह सब पूरी करदी,
अथापि	फिर भी
मे प्रपन्नाया	मुझ शरणागताको
अभयं	(आपको) अभय
दातुं अर्हसि	देना चाहिए ॥५१॥

ब्रह्मन्दुहितृभिस्तुभ्यं विमृग्याः पतयः समाः ।
कश्चित्स्यान्मे विशोकाय त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥५२॥

ब्रह्मन् दुहितृभिः तुभ्यं विमृग्याः पतयः समाः कश्चित् स्यात् मे विशोकाय त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥५२॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
दुहितृभिः तुभ्यं	पुत्रियोंके साथ आपको
समाः पतयः	उनके समान पति
विमृग्याः	ढूँढ़ना चाहिए ।
त्वयि	आपके
वनं प्रव्रजिते	वनमें संन्यास लेकर जानेपर
कश्चित्	कोई
मे विशोकाय	मुझे शोकरहित करनेको
स्यात्	होना चाहिए ॥५२॥

एतावतालं कालेन व्यतिक्रान्तेन मे प्रभो ।
इन्द्रियार्थप्रसङ्गेन परित्यक्तपरात्मनः ॥५३॥

एतावता अलं कालेन व्यतिक्रान्तेन मे प्रभो इन्द्रिय अर्थ प्रसङ्गेन परित्यक्तः परात्मनः ॥५३॥

एतावता अलं कालेन	इतना पर्याप्त समय
परात्मनः परित्यक्तः	परमात्माको भूलकर

प्रभो	प्रभो !	**मे व्यतिक्रान्तेन**	मैंने व्यतीत कर दिया ॥५३॥
इन्द्रिय अर्थ प्रसङ्गेन	इन्द्रियोंके प्रयोजनको पूरा करनेमें		

इन्द्रियार्थेषु सज्जन्त्या प्रसङ्गस्त्वयि मे कृतः ।
अजानन्त्या परं भाव तथाप्यस्त्वभयाय मे ॥५४॥

इन्द्रिय अर्थेषु सज्जन्त्याः प्रसङ्गः त्वयि मे कृतः अजानन्त्या परं भावं तथापि अस्तु अभयाय मे ॥५४॥

इन्द्रिय अर्थेषु सज्जन्त्याः मे त्वयि प्रसङ्गः कृतः परं भावं	इन्द्रियोंके भोगोंमें आसक्त होकर मैंने आपके साथ सहवास किया, (आपके) परम प्रभावको	**अजानन्त्या तथापि मे अभयाय अस्तु**	न जानकर, फिर भी (यह आपका साथ) मुझे अभय देनेवाला होवे ॥५४॥

सङ्गो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया ।
स एव साधुषु कृतो निःसङ्गत्वाय कल्पते ॥५५॥

सङ्गः यः संसृतेः हेतुः असत्सु विहितः अधिया स एव साधुषु कृतः निःसंगत्वाय कल्पते ॥५५॥

यः असत्सु	जो असत् पुरुषोंके साथ	**स एव साधुषु कृतः निःसंगत्वाय**	वही (आसक्ति) सत्पुरुषसे करनेपर अनासक्तिका
अधिया विहितः	अज्ञानवश की गयी	**कल्पते**	कारण हो जाती है ॥५५॥
सङ्गः संसृतेः हेतुः	आसक्ति जन्म-मरणका कारण होती है,		

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ।
न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥५६॥

न इह यत् कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते न तीर्थपद सेवायै जीवन् अपि मृतः हि सः ॥५६॥

हि इह	क्योंकि इस (संसार) में
यत् कर्म	जो कर्म
न धर्माय	न धर्मके लिए,
न विरागाय	न वैराग्यके लिए
कल्पते	किया जाता,
न तीर्थपद सेवायै	न पवित्र चरण (संतों) की सेवाके लिए
सः जीवन् अपि	वह जीवित रहते भी
मृतः	मरा हुआ है ॥५६॥

साहं भगवतो नूनं वञ्चिता मायया दृढम् ।
यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात् ॥५७॥

स अहं भगवतः नूनं वञ्चिता मायया दृढं यत् त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात् ॥५७॥

स अहं	वह मैं
नूनं	निश्चय
भगवतः मायया	भगवान्‌की मायासे
दृढं वञ्चिता	भली प्रकार ठग ली गयी
यत् त्वां	जो आप
विमुक्तिदं	मोक्ष देने वालेको
प्राप्य	प्राप्त करके (भी)
बन्धनात्	बन्धनसे
न मुमुक्षेय	छूटनेकी इच्छा नहीं की ॥५७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

निर्वेदवादिनीमेवं मनोर्दुहितरं मुनिः ।
दयालुः शालिनीमाह शुक्लाभिव्याहृतं स्मरन् ॥१॥

निर्वेद वादिनीं एवं मनोः दुहितरं मुनिः दयालुः शालिनीं आह शुक्ल अभिव्याहृतं स्मरन् ॥१॥

एवं	इस प्रकार
निर्वेद वादिनीं	वैराग्यकी बातें करनेवाली
शालिनीं	शीलमयी
मनोः दुहितरं	मनुपुत्रीसे
दयालुः मुनिः	दयालु मुनि (कर्दम) ने
शुक्ल अभिव्याहृतं	भगवान् विष्णुके कथनको
स्मरन् आह	स्मरण करते बोले ॥१॥

कर्दम उवाच*-

मा खिदो राजपुत्रीत्थमात्मानं प्रत्यनिन्दिते ।
भगवांस्तेऽक्षरो गर्भमदूरात्सम्प्रपत्स्यते ॥२॥

मा खिदः राजपुत्रि इत्थं आत्मानं प्रतिनिन्दिते भगवान् ते अक्षरः गर्भं अदूरात् सम्प्रपत्स्यते ॥२॥

राजपुत्रि	राजपुत्री !
इत्थं	इस प्रकार
आत्मानं	
प्रतिनिन्दिते	अपनी निन्दा करते हुए
खिदः मा	खेद मत करो,
अक्षरः भगवान्	अविनाशी भगवान्
अदूरात्	शीघ्र
ते गर्भं	तुम्हारे गर्भमें
प्रपत्स्यते	आवेंगे ॥२॥

---

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है ।

धृतव्रतासि भद्रं ते दमेन नियमेन च ।
तपोद्रविणदानैश्च श्रद्धया चेश्वरं भज ॥३॥

धृत व्रतासि भद्रं ते दमेन नियमेन च तपः द्रविण दानैः च श्रद्धया च ईश्वरं भज ॥३॥

धृत व्रतासि	तुम व्रतधारिणी हो,	**द्रविण दानैः च**	तथा धनका दान करके,
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो,	**श्रद्धया च**	और श्रद्धा सहित
दमेन च नियमेन	इन्द्रिय दमनसे और नियम पालन द्वारा,	**ईश्वरं भज**	ईश्वरका भजन करो ॥३॥
तपः	तपस्या करके		

स त्वयाऽऽराधितः शुक्लो वितन्वन्मामकं यशः ।
छेत्ता ते हृदयग्रन्थिमौदर्यो ब्रह्मभावनः ॥४॥

स त्वया आराधितः शुक्लः वितन्वन् मामकं यशः छेत्ता ते हृदय ग्रन्थि औदर्यः ब्रह्म भावनः ॥४॥

स त्वया	वह तुम्हारे द्वारा	**ब्रह्म भावनः**	ब्रह्मज्ञानका. उपदेश करके
आराधितः	आराधना करनेपर	**हृदय ग्रन्थिः**	(अज्ञानरूपी) हृदय ग्रन्थि
शुक्लः	श्रीहरि	**छेत्ता**	काट देंगे ॥४॥
मामकं यशः	मेरे यशको		
वितन्विता	फैलाते		
ते औदर्यः	तुम्हारे पेटसे उत्पन्न होकर		

मैत्रेय उवाच-

देवहूत्यपि संदेशं गौरवेण प्रजापतेः ।
सम्यक् श्रद्धाय पुरुषं कूटस्थमभजद्गुरुम् ॥५॥

देवहूति अपि संदेशं गौरवेण प्रजापतेः सम्यक् श्रद्धाय पुरुषं कूटस्थं अभजत् गुरुम् ॥५॥

प्रजापतेः	प्रजापति (कर्दमके)
संदेशं	आदेशमें
गौरवेण	गौरव बुद्धि होनेसे
देवहूति अपि	देवहूतिने भी
सम्यक् श्रद्धाय	उसपर पूर्ण श्रद्धा करके
कूटस्थं गुरुं	कूटस्थ, जगद्गुरु
पुरुषं	परम पुरुषका
अभजत्	भजन करने लगी ॥५॥

तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः ।
कार्दमं वीर्यमापन्नो यज्ञेऽग्निरिव दारुणि ॥६॥

तस्यां बहुतिथे काले भगवान् मधुसूदनः कार्दमं वीर्यं आपन्नः जज्ञे अग्निः इव दारुणि ॥६॥

बहुतिथे काले	बहुत समय बीत जानेपर
भगवान्	
मधुसूदनः	भगवान् मधुसूदन
कार्दमं वीर्यं	
आपन्नः	कर्दमजीके वीर्यका आश्रय लेकर
तस्यां	उन (देवहूति) से
दारुणि	काष्ठमें
अग्निः इव	अग्निके समान
जज्ञे	उत्पन्न हुए ॥६॥

अवादयंस्तदा व्योम्नि वादित्राणि घनाघनाः ।
गायन्ति तं स्म गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसो मुदा ॥७॥

अवादयन् तदा व्योम्नि वादित्राणि घनाघनाः गायन्ति तं स्म गन्धर्वा नृत्यन्ति अप्सरसः मुदा ॥७॥

तदा	उस समय
व्योम्नि	आकाशमें
घनाघनाः	सघनमेघ
वादित्राणि	बाजे
अवादयन्	बजाने लगे,
गन्धर्वाः तं	गन्धर्व उनका (यश)
गायन्ति स्म	गाने लगे,
मुदा	हर्षसे
अप्सरसः	अप्सराएँ
नृत्यन्ति	नाचने लगीं ॥७॥

पेतुः सुमनसो दिव्याः खेचरैरपवर्जिताः ।
प्रसेदुश्च दिशः सर्वा अम्भांसि च मनांसि च ॥८॥

पेतुः सुमनसः दिव्याः खेचरैः अपवर्जिताः प्रसेदुः च दिशः सर्वाः अम्भांसि च मनांसि च ॥८॥

खेचरैः	
अपवर्जिताः	देवताओं द्वारा छोड़ी गयी
दिव्याः सुमनसः	दिव्य पुष्पोंकी (झड़ी)
पेतुः	गिरने लगी,
सर्वाः दिशः	सब दिशायें
च अम्भांसि	और जल
च मनांसि	तथा (लोगोंके) मन
प्रसेदुः	निर्मल हो गये ॥८॥

तत्कर्दमाश्रमपदं सरस्वत्या परिश्रितम् ।
स्वयम्भूः साकमृषिभिर्मरीच्यादिभिरभ्ययात् ॥९॥

तत् कर्दम आश्रम पदं सरस्वत्या परिश्रितं स्वयम्भूः साकं ऋषिभिः मरीचि आदिभिः अभ्ययात् ॥९॥

सरस्वत्याः	सरस्वती नदीके
परिश्रितं	किनारे स्थित
तत् कर्दम	उस कर्दमजीके
आश्रम पदं	आश्रम स्थानपर
मरीचि आदिभिः	मरीचि आदि
ऋषिभिः साकं	ऋषियोके साथ
स्वयम्भूः	ब्रह्माजी
अभ्ययात्	आये ॥९॥

भगवन्तं परं ब्रह्म सत्त्वेनांशेन शत्रुहन् ।
तत्त्वसंख्यानविज्ञप्त्यै जातं विद्वानजः स्वराट् ॥१०॥

भगवन्तं परं ब्रह्म सत्त्वेन अंशेन शत्रुहन् तत्त्व संख्यान विज्ञप्त्यैः जातं विद्वान् अजः स्वराट् ॥१०॥

अजः स्वराट्	सर्वज्ञ ब्रह्माजी
विद्वान्	(यह) जानकर कि
परम् ब्रह्म	परम ब्रह्म
भगवन्तं	भगवान्को
सत्त्वेन अंशेन	सत्त्वमय अंशसे
तत्त्व संख्यान	तत्त्वोंकी संख्या करनेवाले (सांख्य शास्त्र) का
विज्ञप्त्यैः	प्रचार (उपदेश) करनेके लिए
जातं	उत्पन्न हुए हैं (आये) ॥१०॥

सभाजयन् विशुद्धेन चेतसा तच्चिकीर्षितम् ।
प्रहृष्यमाणैरसुभिः कर्दमं चेदमभ्यधात् ॥११॥

सभाजयन् विशुद्धेन चेतसा तत् चिकीर्षितं प्रहृष्यमाणैः असुभिः कर्दमं च इदं अभ्यधात् ॥११॥

तत् चिकीर्षितं	उन (भगवान्) की जो करनेकी इच्छा थी उसका	**असुभिः**	
विशुद्धेन चेतसा	शुद्ध चित्तसे	**प्रहृष्यमाणैः**	प्राणोंसे हर्षित होकर
सभाजयन्	आदर करते हुए,	**कर्दमं च**	कर्दमजीसे
		इदं अभ्यधात्	यह बोले ॥११॥

ब्रह्मोवाच–

त्वया मेऽपचितिस्तात कल्पिता निर्व्यलीकतः ।
यन्मे सञ्जगृहे वाक्यं भवान्मानद मानयन् ॥१२॥

त्वया मे अपचितिः तात कल्पिता निर्व्यलीकतः यत् मे सञ्जगृहे वाक्यं भवान् मानद मानयन् ॥१२॥

तात	तात !	**भवान् मानद**	तुम (दूसरोंका) सम्मान करनेवाले हो,
त्वया मे	तुम्हारे द्वारा मेरी		
अपचितिः	पूजा		
निर्व्यलीकतः	निष्कपट भावसे	**मे वाक्यं**	मेरी बातका
कल्पिता	हुई है,	**मानयन्**	सम्मान करते हुए
यत्	क्योंकि	**सञ्जगृहे**	(उसे) स्वीकार किया ॥१२॥

एतावत्येव शुश्रूषा कार्या पितरि पुत्रकैः ।
बाढमित्यनुमन्येत गौरवेण गुरोर्वचः ॥१३॥

एतावत्येव शुश्रूषा कार्या पितरि पुत्रकैः बाढं इति अनुमन्येत गौरवेण गुरोः वचः ॥१३॥

पुत्रकैः	पुत्रों द्वारा	**गुरोः वचः**	उन श्रेष्ठकी बात
पितरि	पिताकी	**बाढं इति**	'ठीक है' इस प्रकार
एतावत्येव	इतनी ही	**गौरवेण**	आदरपूर्वक
शुश्रूषा	सेवा	**अनुमन्येत**	स्वीकार करे ॥१३॥
कार्या	करनी चाहिए कि		

इमा दुहितरः सभ्य तव वत्स सुमध्यमाः ।
सर्गमेतं प्रभावैः स्वैर्बृंहयिष्यन्त्यनेकधा ॥१४॥

इमाः दुहितरः सभ्य तव वत्स सुमध्यमाः सर्गं एतं प्रभावैः स्वैः बृहयिष्यन्ति अनेकधा ॥१४॥

सभ्य वत्स	शिष्ट वत्स !	**एतं सर्गं**	इस सृष्टिको
इमा सुमध्यमाः	ये क्षीण कटिबाली	**अनेकधा**	अनेक प्रकारसे
तव दुहितरः	तुम्हारी पुत्रियाँ	**बृहयिष्यन्ति**	बढ़ावेंगी ॥१४॥
स्वैः प्रभावैः	अपने प्रभावसे		

अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथाशीलं यथारुचि !
आत्मजाः परिदेह्यद्य विस्तृणीहि यशो भुवि ॥१५॥

अतः त्वं ऋषि मुख्येभ्यः यथाशीलं यथारुचिः आत्मजाः परिदेहि अद्य विस्तृणीहि यशः भुवि ॥१५॥

अतः त्वं अद्य	अतः तुम आज	**आत्मजाः**	
ऋषि मुख्येभ्यः	मुख्य ऋषियोंको	**परिदेहि**	कन्याएँ दे दो।
यथाशीलं	शीलके अनुसार और	**भुवि**	(इस प्रकार) पृथ्वीमें
यथारुचिः	रुचिके अनुसार	**यशः विस्तृणीहि**	यशका विस्तार करो ॥१५॥

वेदाहमाद्यं पुरुषमवतीर्णं स्वमायया ।
भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं मुने ॥१६॥

वेद अहं आद्यं पुरुषं अवतीर्णं स्वमायया भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं मुने ॥१६॥

मुने	मुने !
अहं वेद	मैं जानता हूँ—
भूतानां	प्राणियोंकी
शेवधिं	कल्याण सीमा रूप
देहं बिभ्राणं	शरीर धारण करके
स्वमायया	अपनी मायासे
आद्यं पुरुषं	आदि पुरुषने
कपिलं अवतीर्णं	कपिल रूपमें अवतार लिया है ॥१६॥

ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणामुद्धरन् जटाः ।
हिरण्यकेशः पद्माक्षः पद्ममुद्रापदाम्बुजः ॥१७॥

ज्ञान विज्ञान योगेन कर्मणां उद्धरन् जटाः हिरण्यकेशः पद्माक्षः पद्ममुद्रा पदाम्बुजः ॥१७॥

ज्ञान विज्ञान योगेन	ज्ञान-विज्ञान द्वारा
कर्मणां जटाः	कर्मोंकी जड़ (वासनाका)
उद्धरन्	उखाड़ने (नाश करने)के लिए
हिरण्यकेशः	सुनहले बाल
पद्माक्षः	कमल-नयन
पद्ममुद्रा	कमल चिह्न
पदाम्बुजः	चरण-कमल वाले ॥१७॥

एष मानवि ते गर्भं प्रविष्टः कैटभार्दनः ।
अविद्यासंशयग्रन्थिं छित्त्वा गां विचरिष्यति ॥१८॥

एष मानवि ते गर्भं प्रविष्टः कैटभार्दनः अविद्या संशय ग्रन्थिं छित्त्वा गां विचरिष्यति ॥१८॥

मानवि	मनु पुत्री !
एष ते गर्भं	यह तुम्हारे गर्भमें
प्रविष्टः	आये
कैटभार्दनः	कैटभारि भगवान् हैं ।
अविद्या	(तुम्हारी) अविद्या जनित
संशय ग्रन्थिं	मोहकी गाँठको
छित्त्वा	काटकर
गां विचरिष्यति	पृथ्वीपर घूमेंगे ॥१८॥

अयं सिद्धगणाधीशः साङ्ख्याचार्यैः सुसम्मतः ।
लोके कपिल इत्याख्यां गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ॥१९॥

अयं सिद्धगण अधीशः साङ्ख्याचार्यैः सुसम्मतः लोके कपिल इति आख्यां गन्ताः ते कीर्ति वर्धनः ॥१९॥

अयं	ये
सिद्धगण अधीशः	सिद्धगणोंके अधीश्वर
साङ्ख्याचार्यैः	सांख्याचार्योंके
सुसम्मतः	आदरणीय
लोके कपिल इति	लोकमें कपिल इस
आख्यां गन्ताः	नामसे प्रसिद्ध होकर
ते कीर्ति वर्धनः	तुम्हारी कीर्ति बढ़ानेवाले होंगे ॥१९॥

मैत्रेय उवाच–

तावाश्वास्य जगत्स्रष्टा कुमारैः सहनारदः ।
हंसो हंसेन यानेन त्रिधामपरमं ययौ ॥२०॥

ताः आश्वास्य जगत्स्रष्टा कुमारैः सह नारदः हंसः हंसेन यानेन त्रिधाम परमं ययौ ॥२०॥

ताः आश्वास्य	उन दोनोंको आश्वासन देकर
जगत्स्रष्टा	जगतकी सृष्टि करनेवाले
हंसः	विवेकी (ब्रह्माजी)
हंसेन यानेन	हंसारूढ होकर
कुमारैः	सनकादि कुमारों तथा
नारदः सह	नारदजीके साथ
त्रिधाम परमं	त्रिलोकीसे परे (अपने लोक)
ययौ	चले गये ॥२०॥

गते शतधृतौ क्षत्तः कर्दमस्तेन चोदितः ।
यथोदितं स्वदुहितः प्रादाद्विश्वसृजां ततः ॥२१॥

गते शतधृतौ क्षत्तः कर्दमः तेन चोदितः यथा उदितं स्वदुहितः प्रादात् विश्वसृजां ततः ॥२१॥

क्षत्तः	विदुर
शतधृतौ गते	ब्रह्माजीके चले जानेपर
तेन चोदितः	उनसे प्रेरित
कर्दमः	कर्दमजीने
ततः स्वदुहितः	तब अपनी कन्याओंको
विश्वसृजां	प्रजापतियोंको
प्रादात्	दिया ॥२१॥

मरीचये कलां प्रादादनसूयामथात्रये ।
श्रद्धामङ्गिरसेऽयच्छत्पुलस्त्याय हविर्भुवम् ॥२२॥

मरीचये कलां प्रादात् अनसूयां अथ अत्रये श्रद्धां अङ्गिरसे अयच्छत् पुलस्त्याय हविर्भुवम् ॥२२॥

कलां	कला
मरीचये प्रादात्	मरीचिको दी,
अथ अनसूयां	तथा अनुसूया
अत्रये	अत्रिको,
श्रद्धां	श्रद्धा
अङ्गिरसे	
अयच्छत्	अंगिराको दे दी,
हविर्भुवं	हविर्भू
पुलस्त्याय	पुलस्त्यको ॥२२॥

पुलहाय गतिं युक्तां क्रतवे च क्रियां सतीम् ।
ख्यातिं च भृगवेऽयच्छद्वसिष्ठायाप्यरुन्धतीम् ॥२३॥

पुलहाय गतिं युक्तां क्रतवे च क्रियां सतीं ख्यातिं च भृगवे अयच्छत् वसिष्ठाय अपि अरुन्धतीम् ॥२३॥

गतिं	गति
पुलहाय युक्तां	पुलहके उपयुक्त थी, उन्हें
क्रियां सतीं च	और सती क्रियाको
क्रतवे	क्रतुको,
ख्यातिं च	तथा ख्यातिको
भृगवे अयच्छत्	भृगुको दी
अरुन्धतीं अपि	अरुन्धतीको भी
वसिष्ठाय	वसिष्ठको दी ॥२३॥

अथर्वणेऽददाच्छान्तिं ययाऽयज्ञो वितन्यते ।
विप्रर्षभान् कृतोद्वाहान् सदारान् समलालयत् ॥२४॥

अथर्वणे अददात् शान्तिं ययाऽयज्ञः वितन्यते विप्रर्षभान् कृतः उद्वाहान् सदारान् समलालयत् ॥२४॥

अथर्वणे	अथर्वाको
शान्तिं अददात्	शान्ति दी,
ययाऽयज्ञः वितन्यते	जिसके द्वारा यज्ञका कर्म विस्तार होता है,
कृतः उद्वाहान्	विवाह करके
विप्रर्षभान्	(उन) श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका
सदारान्	उनकी पत्नियोंके साथ
समलालयत्	अच्छी प्रकार सत्कार किया ॥२४॥

ततस्त ऋषयः क्षत्तः कृतदारा निमन्त्र्य तम् ।
प्रातिष्ठन्नन्दिमापन्नाः स्वं स्वमाश्रममण्डलम् ॥२५॥

ततः त ऋषयः क्षत्तः कृतदारा निमन्त्र्य तं प्रातिष्ठं नन्दि आपन्नाः स्वं स्वं आश्रम मण्डलम् ॥२५॥

क्षत्तः	विदुर !	**नन्दि आपन्नाः**	आनन्दित होकर
ततः	तदनन्तर	**स्वं स्वं**	अपने-अपने
त कृतदाराः	वे विवाहित	**आश्रम मण्डलं**	आश्रम स्थानको
ऋषयः	ऋषि	**प्रातिष्ठन्**	चले गये ॥२५॥
तं निमन्त्र्य	उनसे आज्ञा लेकर		

स चावतीर्णं त्रियुगमाज्ञाय विबुधर्षभम् ।
विविक्त उपसङ्गम्य प्रणम्य समभाषत ॥२६॥

स च अवतीर्णं त्रियुगं आज्ञाय विबुधर्षभं विविक्त उपसङ्गम्य प्रणम्य समभाषत ॥२६॥

स च	उन (कर्दमजी)ने भी	**आज्ञाय**	जानकर
विबुधर्षभं	देवोत्तम	**विविक्त**	एकान्तमें
त्रियुगं	तीन (सत् , त्रेता, द्वापर) में अवतार लेनेवाले	**उपसङ्गम्य**	उनके पास जाकर
		प्रणम्य	प्रणाम करके
		समभाषत	(उनसे) कहा ॥२६॥
अवतीर्णं	(भगवान्‌को) अवतरित		

*कर्दम उवाच**–

अहो पापच्यमानानां निरये स्वैरमङ्गलैः ।
कालेन भूयसा नूनं प्रसीदन्तीह देवताः ॥२७॥

अहो पापच्यमानानां निरये स्वै अमङ्गलैः कालेन भूयसा नूनं प्रसीदन्ति इह देवताः ॥२७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अहो	अहो !	नूनं इह	निश्चय इस संसारमें
स्वैः अमङ्गलैः	अपने पापोंसे	देवताः	देवता
निरये	नरकमें	भूयसा कालेन	बहुत समयमें
पापच्यमानानां	पीड़ा पाते	प्रसीदन्ति	प्रसन्न होते हैं ॥२७॥

बहुजन्मविपक्वेन सम्यग्योगसमाधिना ।
द्रष्टुं यतन्ते यतयः शून्यागारेषु यत्पदम् ॥२८॥

बहुजन्म विपक्वेन सम्यक् योग समाधिना द्रष्टुं यतन्ते यतयः शून्य आगारेषु यत् पदम् ॥२८॥

यतयः	योगी लोग	शून्य आगारेषु	एकान्तमें
बहुजन्म	अनेक जन्मोंमें	यत् पदं	जिनके स्वरूपको
विपक्वेन	परिपक्व हुई	द्रष्टुं यतन्ते	दर्शन करनेके लिए
सम्यक्	भली प्रकार की गयी		प्रयत्न करते
योग समाधिना	योगकी समाधिसे		हैं ॥२८॥

स एव भगवानद्य हेलनं नगणय्य नः ।
गृहेषु जातो ग्राम्याणां यः स्वानां पक्षपोषणः ॥२९॥

स एव भगवान् अद्य हेलनं नगणय्य नः गृहेषु जातः ग्राम्याणां यः स्वानां पक्षपोषणः ॥२९॥

स एव भगवान्	वही भगवान्	अद्य	आज
यः स्वानां	जो अपने जनोंके	ग्राम्याणां	ग्रामीणों (भोगमें
पक्षपोषणः	पक्षपोषक हैं,		लगे लोगों) के
नः हेलनं	हमारे द्वारा हुई	गृहेषु जातः	घरमें अवतीर्ण हुए
	उपेक्षा		हैं ॥२९॥
नगणय्य	पर ध्यान न देकर		

स्वीयं वाक्यमृतं कर्तुमवतीर्णोऽसि मे गृहे ।
चिकीर्षुर्भगवान् ज्ञानं भक्तानां मानवर्धनः ॥३०॥

स्वीयं वाक्यं ऋतं कर्तुं अवतीर्णः असि मे गृहे चिकीर्षुः भगवान् ज्ञानं भक्तानां मानवर्धनः ॥३०॥

भक्तानां	**भक्तोंका**	**ज्ञानं चिकीर्षुः**	**सांख्य** शास्त्रके
मानवर्धनः	सम्मान बढ़ानेवाले		उपदेशकी इच्छासे
भगवान्	भगवान्	**मे गृहे**	मेरे घरमें
स्वीयं वाक्यं	अपनी बातको	**अवतीर्णः असि**	अवतार लिया
ऋतं कर्तुं	सच करनेके लिए,		है ॥३०॥

तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव ।
यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः ॥३१॥

तानि एव ते अभिरूपाणि रूपाणि भगवन् तव यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानां अरूपिणः ॥३१॥

ते अरूपिणः	आप निराकारके	**भगवन्**	भगवन् !
अभिरूपाणि	अनुरूप	**यानि यानि च**	जो जो भी
तानि एव	वही	**तव स्वजनानां**	आपके भक्तोंको
रूपाणि	रूप हैं	**रोचन्ते**	प्रिय लगते हैं । ३१॥

त्वां सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाद्धा
सदाभिवादार्हणपादपीठम् ।
ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोध-
वीर्यश्रिया पूर्त्तमहं प्रपद्ये ॥३२॥

त्वां सूरिभिः तत्त्व बुभुत्सया अद्धा सदा अभिवाद अर्हण पादपीठं ऐश्वर्य वैराग्य यशः अवबोध वीर्य श्रिया पूर्त्तं अहं प्रपद्ये ॥३२॥

तत्त्व बुभुत्सया	तत्त्वज्ञान पानेकी इच्छावाले	**यश अवबोध**	यश, ज्ञान
सूरिभिः	विद्वानों द्वारा	**वीर्य श्रिया**	वीर्य और लक्ष्मी (इन छः ऐश्वर्योंसे)
पादपीठं	आपका पादपीठ	**पूर्त्तं त्वां**	परिपूर्ण आपकी
अद्धा सदा	प्रत्यक्ष नित्य	**अहं प्रपद्ये**	मैं शरण लेता हूँ ॥३२॥
अभिवाद अर्हण	वन्दनीय है ।		
ऐश्वर्य वैराग्य	ऐश्वर्य, वैराग्य,		

परं प्रधानं पुरुषं महान्तं
कालं कविं त्रिवृतं लोकपालम् ।

आत्मानुभूत्यानुगतप्रपञ्चं
स्वच्छन्दशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥३३॥

परं प्रधानं पुरुषं महान्तं कालं कविं त्रिवृतं लोकपालं आत्मानुभूत्या अनुगतं प्रपञ्चं स्वच्छन्द शक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥३३॥

परं प्रधानं पुरुषं	परमब्रह्म, प्रकृति, पुरुष
महान्तं	महत्तत्त्व,
कालं	काल,
कविं	उसके ज्ञाता,
त्रिवृतं	त्रिविध अहंकार,
लोकपालं	सब लोक और लोकपाल (आप ही हैं)
आत्मानुभूत्या	आत्मानुभूतिसे
प्रपञ्चं	विश्वप्रपंचको
अनुगतं	अपनेमें लीन कर लेनेवाले
स्वच्छन्द शक्तिं	स्वतन्त्र शक्तिवाले
कपिलं	(आप) कपिल भगवानकी
प्रपद्ये	(मैं) शरण लेता हूँ ॥३३॥

आ स्माभिपृच्छेऽद्य पतिं प्रजानां
त्वयावतीर्णार्णं उताप्तकामः ।
परिव्रजत्पदवीमास्थितोऽहं
चरिष्ये त्वां हृदि युञ्जन् विशोकः ॥३४॥

आ स्माभि पृच्छे अद्य पतिं प्रजानां त्वया अवतीर्णं अर्णं उत आप्तकामः परिव्रजत् पदवीं आस्थितः अहं चरिष्ये त्वां हृदि युञ्जन् विशोकः ॥३४॥

पतिं प्रजानां	प्रजाके स्वामी
आ स्माभिः	आपसे
पृच्छे	पूछता (अनुमति लेता) हूँ,
अद्य	आज
त्वया अवतीर्णं	आपके अवतार लेनेसे
अर्णं	(मैं तीनों) ऋणोंसे मुक्त हो गया
उत आप्तकामः	तथा मेरी सब कामनायें प्राप्त (पूर्ण) हो गयीं ।
परिव्रजत् पदवीं	संन्यास मार्गको
आस्थितः	ग्रहण करके,

अहं त्वां	मैं आपको	**विशोकः चरिष्ये**	शोक रहित विचरण
हृदि युञ्जन्	हृदयमें चिन्तन करता		करूँगा ॥३४॥

*कपिल उवाच**–

मया प्रोक्तं हि लोकस्य प्रमाणं सत्यलौकिके ।
अथाजनि मया तुभ्यं यदवोचमृतं मुने ॥३५॥

मया प्रोक्तं हि लोकस्य प्रमाणं सत्य लौकिके अथ अजनि मया तुभ्यं यत् अवोचं ऋतं मुने ॥३५॥

मुने हि	मुने ! क्योंकि	**प्रमाणं**	प्रमाण है,
सत्य लौकिके	वैदिक और लौकिक (दोनों विषयोंमें)	**अथ मया**	अतः मैंने
		तुभ्यं यत् अवोचि	तुमसे जो कहा था,
लोकस्य	लोगोंके लिए	**ऋतं अजनि**	उसे सत्य करनेको जन्म लिया है ॥३५॥
मया प्रोक्तं	मेरा कहा ही		

एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन्मुमुक्षूणां दुराशयात् ।
प्रसंख्यानाय तत्त्वानां सम्मतायात्मदर्शने ॥३६॥

एतत् मे जन्म लोके अस्मिन् मुमुक्षूणां दुराशयात् प्रसंख्यानाय तत्त्वानां सम्मताय आत्मदर्शने ॥३६॥

अस्मिन् लोके	इस लोकमें	**आत्मदर्शने**	आत्म-दर्शनमें
एतत् मे जन्म	यह मेरा अवतार	**सम्मतायाः**	उपयोगी
दुराशयात्	लिंग शरीरसे	**तत्त्वानां**	
मुमुक्षूणां	छूटनेकी इच्छावालों के लिए	**प्रसंख्यानाय**	तत्त्वोंकी गणनाके लिए है ॥३६॥

---

* गीता प्रेसकी प्रतिमें यहाँसे लेकर अध्याय २९ तक सब कहीं 'कपिल उवाच' के लिए 'श्रीभगवानुवाच' है और अध्याय ३० से 'कपिल उवाच' है।

एष आत्मपथोऽव्यक्तो नष्टः कालेन भूयसा ।
तं प्रवर्तयितुं देहमिमं विद्धि मया भृतम् ॥३७॥

एष आत्मपथः अव्यक्तः नष्टः कालेन भूयसा तं प्रवर्तयितुं देहं इमं विद्धि मया भृतम् ॥३७॥

एष अव्यक्तः	यह सूक्ष्म	**मया इमं**	मैंने यह
आत्मपथः	आत्मज्ञानका मार्ग	**देह भृतं**	शरीर धारण किया है,
भूयसा कालेन	बहुत समयसे	**विद्धि**	यह जानो ॥३७॥
नष्टः	लुप्त हो गया है,		
तं प्रवर्तयितुं	उसे प्रवर्तित करनेके लिए		

गच्छ कामं मयाऽऽपृष्टो मयि संन्यस्तकर्मणा ।
जित्वा सुदुर्जयं मृत्युममृतत्वाय मां भज ॥३८॥

गच्छ कामं मया आपृष्टः मयि संन्यस्त कर्मणा जित्वा सुदुर्जयं मृत्युं अमृत त्वाय मां भज ॥३८॥

गच्छ कामं	इच्छानुसार जाओ,	**मृत्युं**	मृत्युको
मया आपृष्टः	मैं अनुमति देता हूँ ।	**जित्वा**	जीतकर
मयि	मुझमें	**अमृतत्वाय**	मोक्ष प्राप्तके लिए
कर्मणा संन्यस्त	कर्मोंका समर्पण करके	**मां भज**	मेरा भजन करो ॥३८॥
सुदुर्जयं	अत्यन्त दुर्जय		

मामात्मानं स्वयंज्योतिः सर्वभूतगुहाशयम् ।
आत्मन्येवात्मना वीक्ष्य विशोकोऽभयमृच्छसि ॥३९॥

मां आत्मानं स्वयं ज्योतिः सर्वभूत गुहाशयं आत्मनि एव आत्मना वीक्ष्य विशोकः अभयं ऋच्छसि ॥३९॥

मां आत्मानं	मुझ परमात्मा,	**गुहाशयं**	अन्तःकरणमें स्थितको
स्वयं ज्योतिः	स्वयं प्रकाश,	**आत्मनि एव**	अपनेमें ही
सर्वभूत	सब प्राणियोंके		

आत्मना वीक्ष्य विशोकः	**अपने आपसे देखकर शोक रहित होकर**	**अभयं ऋच्छसि**	**अभय-पद पा लोगे ॥३९॥**

मात्र आध्यात्मिकीं विद्यां शमनीं सर्वकर्मणाम् ।
वितरिष्ये ययाचासौ भयं चातितरिष्यति ॥४०॥

मात्रे आध्यात्मिकीं विद्यां शमनीं सर्व कर्मणां वितरिष्ये ययाच असौ भयं च अतितरिष्यति ॥४०॥

सर्व कर्मणां	सब कर्म संस्कारोंको	**ययाच**	जिससे कि
शमनीं	मिटानेवाली	**असौ**	यह
आध्यात्मिकीं		**भयं च**	भय (आवागमन)को
विद्यां	अध्यात्म विद्या	**अतितरिष्यति**	पार कर
मात्रे	माताको		जायँगी ॥४०॥
वितरिष्ये	बाँटूँगा (दूँगा)		

मैत्रेय उवाच-

एवं समुदितस्तेन कपिलेन प्रजापतिः ।
दक्षिणीकृत्य तं प्रीतो वनमेव जगाम ह ॥४१॥

एवं समुदितः तेन कपिलेन प्रजापतिः दक्षिणीकृत्य तं प्रीतः वनं एव जगाम ह ॥४१॥

एवं तेन	इस प्रकार उन	**प्रीतः**	प्रसन्न होकर
कपिलेन	भगवान् कपिल द्वारा	**वनं एव**	वनको ही
समुदितः	कहनेपर	**जगाम ह**	तुरन्त चले गये ॥४१॥
प्रजापतिः	प्रजापति (कर्दमजी)		
तं दक्षिणीकृत्य	उनकी परिक्रमा करके		

व्रतं स आस्थितो मौनमात्मैकशरणो मुनिः ।
निःसङ्गो व्यचरत्क्षोणीमनग्निरनिकेतनः ॥४२॥

व्रतं स आस्थितः मौनं आत्मैक शरणः मुनिः निःसङ्गः व्यचरत् क्षोणीं अनग्निः अनिकेतनः ॥४२॥

स मुनिः	उन मुनिने	**अनग्निः**	अग्नि रहित,
मौनं व्रतं	मौन व्रत	**अनिकेतनः**	बिना निवास बनाये,
आस्थितः	धारण कर लिया	**निःसङ्गः**	अनासक्त होकर
आत्मैक शरणः	केवल भगवानके सहारे	**क्षोणीं व्यचरत्**	पृथ्वीपर घूमने लगे ॥४२॥

मनो ब्रह्मणि युञ्जानो यत्तत्सदसतः परम् ।
गुणावभासे विगुण एकभक्त्यानुभाविते ॥४३॥

मनः ब्रह्मणि युञ्जानः यत् तत् सदसतः परं गुण अवभासे विगुणः एक भक्त्या अनुभाविते ॥४३॥

यत्	जो	**गुण अवभासे**	गुणोंके प्रकाशक
एक भक्त्या	अनन्य भक्तिसे	**विगुणः**	निर्गुण
अनुभाविते	प्राप्त होनेवाले,	**ब्रह्मणि**	ब्रह्ममें
तत् सदसतः परं	उस कार्य-कारणसे परे	**मनः युञ्जानः**	मन लगा दिया ॥४३॥

निरहंकृतिर्निर्ममश्च निर्द्वन्द्वः समदृक् स्वदृक् ।
प्रत्यक्प्रशान्तधोर्धीरः प्रशान्तोर्मिरिवोदधिः ॥४४॥

निरहंकृतिः निर्ममः च निर्द्वन्द्वः समदृक् स्वदृक् प्रत्यक् प्रशान्त धीः धीरः प्रशान्त उर्मि इव उदधिः ॥४४॥

प्रशान्त उर्मि	शान्त लहरोंवाले	**स्वदृक्**	आत्मदर्शी
उदधिः इव	समुद्रके समान	**प्रत्यक् प्रशान्तः धीः**	अन्तर्मुखी बुद्धिसे अत्यन्त शान्त
निरहंकृतिः	अहंकार रहित,	**धीरः**	धैर्यवान हो गये ॥४४॥
निर्ममः च	तथा ममताहीन,		
निर्द्वन्द्वः	(सुख-दुःखादि) द्वन्द्वोंसे रहित,		
समदृक्	समदर्शी,		

वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि ।
परेण भक्तिभावेन लब्धात्मा मुक्तबन्धनः ॥४५॥

वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि परेण भक्तिभावेन लब्ध आत्मा मुक्तबन्धनः ॥४५॥

सर्वज्ञे	सर्वज्ञ	**भक्ति भावेन**	भक्ति भावसे
प्रत्यगात्मनि	अपने भीतर स्थित आत्मरूप	**लब्ध आत्मा**	चित्त लगाकर
भगवति वासुदेवे	भगवान् वासुदेवमें	**मुक्तबन्धनः**	बन्धनमुक्त हो गये ॥४५॥

आत्मानं सर्वभूतेषु भगवन्तमवस्थितम् ।
अपश्यत्सर्वभूतानि भगवत्यपि चात्मनि ॥४६॥

आत्मानं सर्वभूतेषु भगवन्तं अवस्थितं अपश्यत् सर्वभूतानि भगवति अपि च आत्मनि ।४।६॥

आत्मानं	अपनेको और	**सर्वभूतानि**	सब प्राणियोंको
भगवन्तं	भगवानको	**भगवति अपि च**	भगवानको भी
सर्वभूतेषु	सब प्राणियोंमें	**आत्मनि**	अपनेमें
अवस्थितं	स्थित (तथा)	**अपश्यत्**	देखते थे ॥४६॥

इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्र समचेतसा ।
भगवद्भक्तियुक्तेन प्राप्ता भागवती गतिः ॥४७॥

इच्छा द्वेष विहीनेन सर्वत्र समचेतसा भगवद् भक्ति युक्तेन प्राप्ता भागवती गतिः ॥६७॥

इच्छा द्वेष विहीनेन	राग-द्वेष रहित होकर,	**भगवद् भक्ति युक्तेन**	भगवानकी भक्तिसे युक्त होकर
सर्वत्र	सब कहीं	**भागवती गतिः**	भगवानका परमपद
समचेतसा	समान चित्त रखकर,	**प्राप्ता**	प्राप्त कर लिया ॥४७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

शौनक उवाच-

कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवानात्ममायया ।
जातः स्वयमजः साक्षादात्मप्रज्ञप्तये नृणाम् ॥१॥

कपिलः तत्त्व संख्याता भगवान् आत्ममायया जातः स्वयं अजः साक्षात् आत्म प्रज्ञप्तये नृणाम् ॥१॥

नृणां	मनुष्योंको	**साक्षत् अजः**	साक्षात् अजन्मा
आत्म प्रज्ञप्तये	आत्मज्ञानका उपदेश करनेके लिए	**स्वयं भगवान्**	स्वयं भगवान्ने
		आत्ममायया	अपनी मायासे
तत्त्व संख्याता	तत्त्वोंकी गणना करनेवाले	**कपिलः जातः**	कपिल रूपमें अवतार लिया ॥१॥

न ह्यस्य वर्ष्मणः पुंसां वरिम्णः सर्वयोगिनाम् ।
विश्रुतौ श्रुतदेवस्य भूरि तृप्यन्ति मेऽसवः ॥२॥

न हि अस्य वर्ष्मणः पुंसां वरिम्णः सर्वयोगिनां विश्रुतौ श्रुतदेवस्य भूरि तृप्यन्ति मे असवः ॥२॥

हि	क्योंकि	**पुंसां वरिम्णः**	पुरुषश्रेष्ठ
भूरि श्रुतदेवस्य	भगवानके बहुत चरित सुननेपर भी	**अस्य**	इन (कपिलदेवजीकी)
सर्वयोगिनां		**वर्ष्मणः**	कीर्ति (सुनते)
विश्रुतौ	सब योगियोंमें प्रसिद्ध	**मे असवः**	मेरे प्राण
		तृप्यन्ति न	तृप्त नहीं होते ॥२॥

यद्यद्विधत्ते भगवान् स्वच्छन्दात्माऽऽत्ममायया ।
तानि मे श्रद्दधानस्य कीर्तन्यान्यनुकीर्तय ॥३॥

यत् यत् विधत्ते भगवान् स्वच्छन्दात्मा आत्ममायया तानि मे श्रद्दधानस्य कीर्तन्यानि अनुकीर्तय ॥३॥

स्वच्छन्दात्मा	सर्वथा स्वतन्त्र
भगवान्	भगवान
आत्ममायया	अपनी मायासे
यत् यत् विधत्ते	जो जो करते हैं,
मे श्रद्दधानस्य	मुझ श्रद्धालुसे
तानि कीर्तन्यानि	उन वर्णनीय (चरितों) का
अनुकीर्तय	वर्णन कीजिए ॥३॥

सूत उवाच-

द्वैपायनसखस्त्वेवं मैत्रेयो भगवांस्तथा ।
प्राहेदं विदुरं प्रीत आन्वीक्षिक्यां प्रचोदितः ॥४॥

द्वैपायन सखः तु एवं मैत्रेयः भगवान् तथा प्राह इदं विदुरं प्रीतः आन्वीक्षिक्यां प्रचोदितः ॥४॥

एवं	इसी प्रकार
द्वैपायन सखः	व्यासजीके मित्र
भगवान् मैत्रेयः तु	भगवान् मैत्रेय तो
तथा	इसी तरह
आन्वीक्षिक्यां	आत्मज्ञानके उपदेशके प्रति
प्रचोदितः	प्रेरित किये जानेपर
प्रीतः विदुरं	प्रसन्न होकर विदुरसे
प्राह	बोले ॥४॥

मैत्रेय उवाच-

पितरि प्रस्थितेऽरण्यं मातुः प्रियचिकीर्षया ।
तस्मिन् बिन्दुसरेऽवात्सीद्भगवान् कपिलः किल ॥५॥

पितरि प्रस्थिते अरण्यं मातुः प्रिय चिकीर्षया तस्मिन् विन्दुसरे अवात्सीत् भगवान् कपिलः किल ॥५॥

भगवान् कपिलः	भगवान कपिल
पितरि अरण्यं	पिताके वनमें
प्रस्थिते	चले जानेपर
मातुः	माताको
प्रिय चिकीर्षया	प्रसन्न करनेके लिए
तस्मिन् विन्दुसरे	उस विन्दु सरोवरपर
किल अवात्सीत्	ही रहने लगे ॥५॥

तमासीनमकर्माणं तत्त्वग्रामाग्रदर्शनम् ।
स्वसुतं देवहूत्याह धातुः संस्मरतो वचः ॥६॥

तं आसीनं अकर्माणं तत्त्व ग्राम अग्रदर्शनं स्वसुतं देवहूति इति आह धातुः संस्मरती वचः ॥६॥

तं अकर्माणं	उन निष्क्रिय
आसीनं	बैठे हुए
तत्त्व ग्राम	तत्त्व समूहके
अग्रदर्शनं	अग्रदर्शी (परमज्ञाता)
स्वसुतं	अपने पुत्रसे
धातुः वचः	ब्रह्माजीकी बातको
संस्मरती	स्मरण करती
देवहूति इति आह	देवहूति इस प्रकार बोली ॥६॥

देवहूतिरुवाच-

निर्विण्णा नितरां भूमन्नसदिन्द्रियतर्षणात् ।
येन सम्भाव्यमानेन प्रपन्नान्धं तमः प्रभो ॥७॥

निर्विण्णा नितरां भूमन् असत् इन्द्रिय तर्षणात् येन सम्भाव्यमानेन प्रपन्नं अन्धं तमः प्रभो ॥७॥

भूमन् प्रभो	भूमन् ! प्रभो !
असत् इन्द्रिय	(इन) दुष्ट इन्द्रियोंकी
तर्षणात्	(भोग) तृष्णासे
नितरां निर्विण्णा	(मैं) अत्यन्त ऊब गयी हूँ ।
येन	जिनका
सम्भाव्यमानेन	आदर करनेसे
अन्धं तमः	अज्ञनान्धकारमें
प्रपन्नः	पड़ी हूँ ॥७॥

तस्य त्वं तमसोऽन्धस्य दुष्पारस्याद्य पारगम् ।
सच्चक्षुर्जन्मनामन्ते लब्धं मे त्वदनुग्रहात् ॥८॥

तस्य त्वं तमसा अन्धस्य दुष्पारस्य अद्य पारगम् सत् चक्षुः जन्मनां अन्ते लब्धं मे त्वत् अनुग्रहात् ॥८॥

तस्य	उस
अन्धस्य	अन्धीके लिए
दुष्पारस्य	दुष्पार
तमसा	अज्ञानसे

पारगं	पार ले जानेवाले	**जन्मनां अन्ते**	अनेक जन्मोंके पश्चात्
त्वं	आप		
सत् चक्षुः	ज्ञान नेत्र रूपको	**त्वत् अनुग्रहात्**	आपके ही अनुग्रहसे
		मे लब्धं	मैंने पाया है ॥८॥

य आद्यो भगवान् पुंसामीश्वरो वै भवान् किल ।
लोकस्य तमसान्धस्य चक्षुः सूर्य इवोदितः ॥९॥

यः आद्यः भगवान् पुंसां ईश्वरः वै भवान् किल लोकस्य तमसा अन्धस्य चक्षुः सूर्य इव उदितः ॥९॥

यः आद्यः	जो आदिपुरुष	**तमसा अन्धस्य**	अज्ञानसे अन्धे
भगवान्	भगवान	**लोकस्य**	लोगोंके लिए
पुंसां ईश्वरः	लोगोंके स्वामी हैं–	**उदितः सूर्य इव**	उदित सूर्यके समान
वै भवान् किल	निश्चय वह आप ही हैं,	**चक्षुः**	(ज्ञानरूप) नेत्र हैं ॥९॥

अथ मे देव सम्मोहमपाक्रष्टुं त्वमर्हसि ।
योऽवग्रहोऽहंममेतीत्येतस्मिन् योजितस्त्वया ॥१०॥

अथ मे देव सम्मोहं अपाक्रष्टुं त्वं अर्हसि यः अवग्रहः अहं मम इति एतस्मिन् योजितः त्वया ॥१०॥

देव	देव !	**योजितः**	लगा दिया गया है,
एतस्मिन्	इस संसारमें	**मे सम्मोहं**	(यह) मेरा मोह
त्वया	आपके द्वारा	**अथ त्वं**	अब आपको
यः अहं मम	जो मैं और मेरा	**अपाक्रष्टुं**	दूर कर देना
इति अवग्रहः	ऐसा दुराग्रह	**अर्हसि**	चाहिए ॥१०॥

तं त्वां गताहं शरणं शरण्यं
स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारम् ।
जिज्ञासयाहं प्रकृतेः पूरुषस्य
नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम् ॥११॥

तं त्वां गता अहं शरणं शरण्यं स्वभृत्य संसारतरोः कुठारं जिज्ञासया अहं प्रकृतेः पूरुषस्य नमामि सद्धर्म विदां वरिष्ठं ॥११॥

प्रकृतेः पूरुषस्य	प्रकृति और पुरुषका
जिज्ञासया	स्वरूप जाननेकी इच्छासे
शरण्यं	शरणदाता
स्वभृत्य	अपने पुत्र
संसारतरोः	संसाररूपी वृक्षको
कुठारं	(काटनेवाले) कुल्हाड़ेके समान
तंत्वां	उस आपकी
अहं शरणं गताः	मैं शरण आयी हूँ।
सद्धर्म विदां	उत्तम धर्मको जानने वालोंमें
वरिष्ठं	सर्वश्रेष्ठ
नमामि	(आपको) नमस्कार करती हूँ ॥११॥

मैत्रेय उवाच-

इति स्वमातुर्निरवद्यमीप्सितं
निशम्य पुंसामपवर्गवर्धनम् ।
धियाभिनन्द्यात्मवतां सतां गति-
र्बभाष ईषत्स्मितशोभिताननः ॥१२॥

इति स्वमातुः निरवद्यं ईप्सितं निशम्य पुंसां अपवर्ग वर्धनं धिया अभिनन्द्य आत्मवतां सतां गतिः बभाष ईषत् स्मित शोभित आननः ॥१२॥

इति	इस प्रकार
स्वमातुः	अपनी माताके
निरवद्यं	पवित्र
पुंसां	लोगोंकी
अपवर्ग	मोक्षमार्ग (की रुचि)
वर्धनं	बढ़ानेवाली
ईप्सितं	इच्छाको
निशम्य	सुनकर
धिया अभिनन्द्य	मन-ही-मन प्रशंसा करते
आत्मवतां सतां	आत्मज्ञानी सत्पुरुषोंकी
गतिः	गति (भगवान कपिल)
ईषत् स्मित	मन्द मुस्कानसे
शोभित आननः	सुशोभित मुख
बभाष	बोले ॥१२॥

कपिल उवाच-

योग आध्यात्मिकः पुंसां मतो निःश्रेयसाय मे ।
अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥१३॥

योगः आध्यात्मिकः पुंसां मतः निःश्रेयसाय मे अत्यन्त उपरतिः यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥१३॥

मे मतः	मेरे मतमें	**दुःखस्य च**	दुःखोंकी और
पुंसां	पुरुषका	**सुखस्य च**	सुखोंकी भी
निःश्रेयसाय	आत्यन्तिक कल्याण	**आत्यन्तिकी**	आत्यन्तिक
आध्यात्मिकः	आध्यात्मिक	**उपरतिः**	निवृत्ति हो जाती
योगः	योगसे होता है ।		है ॥१३॥
यत्र	जिसमें		

तमिमं ते प्रवक्ष्यामि यमवोचं पुरानघे ।
ऋषीणां श्रोतुकामानां योगं सर्वाङ्गनैपुणम् ॥१४॥

तं इमं ते प्रवक्ष्यामि यं अवोचं पुरा अनघे ऋषीणां श्रोतुकामानां योगं सर्वाङ्ग नैपुणं ॥१४॥

तं इमं	उस इस	**श्रोतुकामानां**	सुननेकी इच्छावाले
सर्वाङ्ग नैपुणं	सर्वाङ्गपूर्ण	**ऋषीणां**	ऋषियोंको
योगं	योगको	**पुरा**	पहिले
ते प्रवक्ष्यामि	तुम्हें बतलाता हूँ,	**अवोचं**	(मैंने) सुनाया
अनघे	निष्पापे !		था ॥१४॥
यं	जिसे		

चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम् ।
गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥१५॥

चेतः खलु अस्य बन्धाय मुक्तये च आत्मनः मतं गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥१५॥

अस्य आत्मनः	इस आत्माके	**च मुक्तये**	और मुक्तिका
बन्धाय	बन्धनका	**मतं**	निश्चित कारण

खलु चेतः गुणेषु सक्तं बन्धाय	निश्चय चित्त ही है, विषयोंमें आसक्त बन्धनका(कारण है)	वा पुंसि रतं मुक्तये	अथवा भगवानमें लगा मुक्तिका (कारण होता है) ॥१५॥

अहंममाभिमानोत्थैः कामलोभादिभिर्मलैः ।
वीतं यदा मनः शुद्धमदुःखमसुखं समम् ॥१६॥

अहं मम अभिमान उत्थैः काम लोभ आदिभिः मलैः वीतं यदा मनः शुद्धं अदुःखं असुखं समम् ॥१६॥

अहं मम अभिमान उत्थैः काम लोभ आदिभिः मलैः	अहंता ममताके अभिमानसे उत्पन्न काम लोभादिके विकारोंसे	यदा वीतं मनः शुद्धं अदुःखं असुखं समं	जब मुक्त मन शुद्ध होकर दुःख-सुख रहित समताकी अवस्थामें रहता है ॥१६॥

तदा पुरुष आत्मानं केवलं प्रकृतेः परम् ।
निरन्तरं स्वयंज्योतिरणिमानमखण्डितम् ॥१७॥

तदा पुरुष आत्मानं केवलं प्रकृतेः परं निरन्तरं स्वयं ज्योतिः अणिमानं अखण्डितम् ॥१७॥

तदा	उस समय	निरन्तरं	भेद रहित
पुरुष आत्मानं	पुरुष अपनेको	स्वयं ज्योतिः	स्वयं प्रकाश
केवलं	अद्वितीय	अणिमानं	सूक्ष्म
प्रकृतेः परं	प्रकृतसे परे	अखण्डितं	अखण्ड ॥१७॥

ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियुक्तेन चात्मना ।
परिपश्यत्युदासीनं प्रकृतिं च हतौजसम् ॥१८॥

ज्ञान वैराग्य युक्तेन भक्तियुक्तेन च आत्मना परिपश्यति उदासीनं प्रकृतिं च हत ओजसम् ॥१८॥

उदासीनं	उदासीन	**आत्मना**	अपनेको
ज्ञान वैराग्य	ज्ञान और वैराग्य	**परिपश्यति**	देखता है
युक्तेन	युक्त	**प्रकृतिं च**	और प्रकृतिको
भक्तियुक्तेन च	तथा भक्तियुक्त (होकर)	**हत ओजसं**	निस्तेज (देखता है) ॥ ८॥

न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि ।
सदृशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये ॥१९॥

न युज्यमानया भक्त्या भगवति अखिलात्मनि सदृशः अस्ति शिवः पन्थाः योगिनां ब्रह्म सिद्धये ॥१९॥

योगिनां	योगियोंके लिए	**भक्त्या**	भक्ति
ब्रह्म सिद्धये	ब्रह्मस्थिति प्राप्तिके लिए	**युज्यमानया**	लगानेके
		सदृशः	समान
अखिलात्मनि	अखिलात्मा	**शिवः पन्थाः**	कल्याणमय मार्ग
भगवति	भगवान्‌में	**न अस्ति**	नहीं है ॥१८॥

प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥२०॥

प्रसङ्गं अजरं पाशं आत्मनः कवयः विदुः स एव साधुषु कृतः मोक्षद्वारं अपावृतम् ॥२०॥

प्रसङ्गं	आसक्तिको	**स एव**	वही (आसक्ति)
आत्मनः	आत्माका	**साधुषु कृतः**	सत् पुरुषसे करनेपर
अजरं पाशं	अच्छेद्य बन्धन	**अपावृतं**	खुला
कवयः विदुः	विवेकी लोग जानते हैं,	**मोक्षद्वारं**	मुक्तिद्वार है ॥२०॥

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥२१॥

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनां अजात शत्रवः शान्ताः साधवः साधु भूषणाः ॥२१॥

विशेष

[सहज प्रश्न उठा कि सत्पुरुष किसे कहा जाय ? इसके उत्तरमें साधुका लक्षण बतलाते हैं]

तितीक्षवः	तितीक्षु(आये कष्टको शान्तिस सहलेने वाले)	**अजात शत्रवः**	किसीको भी शत्रु न मानने वाले
कारुणिकाः	दयालु	**शान्ताः**	शान्त स्वभाव
सर्व देहिनां सुहृदः	सब प्राणियोंके हितैषी	**साधु भूषणाः**	सत्पुरुषोंके आभूषण इन गुणों युक्त
		साधवः	सत्पुरुष होते हैं ॥२१॥

मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम् ।
मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबान्धवाः ॥२२॥

मयि अनन्येन भावेन भक्तिम् कुर्वन्ति ये दृढां मत कृते त्मक्तः कर्माणः त्यक्त स्वजन बान्धवाः ॥२२॥

ये मयि	जो मुझमें	**कर्माणः**	कर्मोंको
अनन्येन भावेन	अनन्य भावसे	**त्यक्त**	छोड़ दिया है (और)
दृढां भक्ति	निश्चल भक्ति	**स्वजन बान्धवाः**	स्वजन सम्बन्धियोंको
कुर्वन्ति	करते हैं,	**त्यक्त**	छोड़ दिया है ॥२२॥
मत् कृते	मेरे लिए		

मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च ।
तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः ॥२३॥

मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च तपन्ति विविधाः तापा न एतान् मद्गत चेतसः ॥२३॥

मदाश्रयाः	मेरे सम्बन्धकी	**मद्गत चेतसः**	मुझमें चित्त लगे लोगोंको
मृष्टाः कथा	पवित्र कथाओंको	**विविधाः तापा**	(संसारके) अनेक प्रकारके सन्ताप
शृण्वन्ति			
कथयन्ति च	सुनते तथा कहते हैं	**तपन्ति न**	सन्तप्त नहीं करते ॥२३॥
एतान्	इन		

त एते साधवः साध्वि सर्वसङ्गविवर्जिताः ।
सङ्गस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः सङ्गदोषहरा हि ते ॥२४॥

त एते साधवः साध्वि सर्वसङ्ग विवर्जिताः सङ्गः तेषु अथ ते प्रार्थ्यः सङ्गदोष हरा हि ते ॥२४॥

साध्वि	साध्वी !
त एते	ये ऐसे
सर्वसङ्ग	सब आसक्तियोंसे
विवर्जिताः	रहित
साधवः	सत्पुरुष हैं ।
अथ ते	अतः तुम्हें
तेषु सङ्गः	उनमें आसक्तिकी
प्रार्थ्यः	कामना करनी चाहिए,
हि	क्योंकि
ते सङ्गदोष हराः	वे आसक्तिके दोषोंको दूर करने वाले हैं ॥२४॥

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥२५॥

सतां प्रसङ्गात् मम वीर्य संविदः भवन्ति हृत् कर्ण रसायनाः कथाः तत् जोषणात् आशु अपवर्ग वर्त्मनि श्रद्धा रतिः भक्तिः अनुक्रम एष्यति ॥२५॥

सतां प्रसङ्गात्	सत्पुरुषोंके समागमसे
मम वीर्य	मेरे पराक्रमको
संविदः	बतलाने वाली
हृत् कर्ण	
रसायनाः	हृदय और कर्णोंको प्रिय लगने वाली
कथाः भवन्ति	कथा होती है
तत् जोषणात्	उनका सेवन करनेसे
अपवर्ग वर्त्मनि	मोक्षमार्गमें
आशु	शीघ्र
अनुक्रम	क्रमशः
श्रद्धा रतिः	
भक्तिः	श्रद्धा, प्रीति और भक्ति
एष्यति	आती है ॥२५॥

भक्त्या पुमाञ्जातविराग ऐन्द्रियाद्
दृष्टश्रुतान्मद्रचनानुचिन्तया ।

चित्तस्य यत्तो ग्रहणे योगयुक्तो
यतिष्यते ऋजुभिर्योगमार्गैः ॥२६॥

भक्त्या पुमान् जात विरागः ऐन्द्रियात् दृष्ट श्रुतात् मद् रचना अनुचिन्तया चित्तस्य यत्तः ग्रहणे योगयुक्तः यतिष्यते ऋजुभिः योगमार्गैः ॥२६॥

भक्त्या पुमान्	भक्तिसे पुरुषको
मद्रचना	मेरी सृष्टि आदि लोलाका
अनुचिन्तया	बार-बार चिन्तन करनेसे
दृष्ट	देखे (लौकिक) और
श्रुतात्	शास्त्र वर्णित (पारलौकिक)
ऐन्द्रियात्	ऐन्द्रियक भोगोंसे
जात विरागः	वैराग्य हो जाता है,
चित्तस्य ग्रहणे	(तब) चित्तको वशमें करनेके लिए
यत्तः	प्रयत्न करता है।
ऋजुभिः	सरल
योगमार्गैः	योग (भक्ति) के साधनोंसे
योग युक्तः	योग युक्त होकर
यतिष्यते	साधन करता है ॥२६॥

असेवयायं प्रकृतेर्गुणानां
ज्ञानेन वैराग्यविजृम्भितेन ।
योगेन मय्यर्पितया च भक्त्या
मां प्रत्यगात्मानमिहावरुन्धे ॥२७॥

असेवया अयं प्रकृतेः गुणानां ज्ञानेन वैराग्य विजृम्भितेन योगेन मयि अर्पितया च भक्त्या मां प्रत्यगात्मानं इह अवरुन्धे ॥२७॥

अयं प्रकृतेः	इस प्रकृतिके
गुणानां असेवया	गुणोंका सेवन न करनेसे,
वैराग्य	
विजृम्भितेन	वैराग्यसे युक्त
ज्ञानेन	ज्ञानसे,
योगेन	योगसे
च मयि अर्पितया	तथा मुझे समर्पित
भक्त्या	भक्तिसे
मां प्रत्यगात्मानं	मुझ अन्तरात्माको
इह अवरुन्धे	इस (देह) में ही प्राप्त कर लेता है ॥२७॥

देवहूतिरुवाच-

काचित्त्वय्युचिता भक्तिः कीदृशी मम गोचरा ।
यया पदं ते निर्वाणमञ्जसान्वाश्नवा अहम् ॥२८॥

काचित् त्वयि उचिता भक्तिः की दृशी मम गोचरा यया पदं ते निर्वाणं अञ्जसा अनु अश्नवा अहम् ॥२८॥

त्वयि	आपकी
उचिता भक्तिः	उचित भक्तिका
काचित्	स्वरूप क्या है ?
की दृशी	किस प्रकारकी
मम गोचरा	मेरे लिए ठीक है,
यया	जिसके द्वारा
ते निर्वाणं पदं	आपके निर्वाण पदको
अञ्जसा	सरलतासे
अहं अनु अश्नवा	मैं उपभोग कर सकूं ॥२८॥

यो योगो भगवद्बाणो निर्वाणात्मंस्त्वयोदितः ।
कीदृशः कति चाङ्गानि यतस्तत्त्वावबोधनम् ॥२९॥

यः योगः भगवत् बाणः निर्वाण आत्मन् त्वया उदितः कीदृशः कति च अङ्गानि यतः तत्त्व अवबोधनम् ॥२९॥

भगवत्	भगवन् !
निर्वाण आत्मन्	निर्वाण स्वरूप
त्वयायः योगः	आपने जो योग
बाणः उदितः	बाणके समान बतलाया है,
यतः तत्त्व अवबोधनं	जिससे तत्त्वज्ञान होता है,
कीदृशः	(वह) कैसा है ?
कति च अङ्गानि	(उसके) कितने अंग हैं ॥२९॥

तदेतन्मे विजानीहि यथाहं मन्दधीर्हरे ।
सुखं बुद्ध्येय दुर्बोधं योषा भवदनुग्रहात् ॥३०॥

तत् एतत् मे विजानीहि यथा अहं मन्द धीः हरे सुखं बुद्ध्येय दुर्बोधं योषा भवत् अनुग्रहात् ॥३०॥

हरे	हरे !
यथा अहं	जैसे मैं
मन्द धीः	मन्द बुद्धि
योषा	अबला
दुर्बोधं	दुर्बोधको
भवत् अनुग्रहात्	आपके अनुग्रहसे
सुखं बुद्ध्येयं	सरलतासे समझ लूं
तत् एतत्	वह यह
मे विजानीहि	मुझे समझाइये ॥३०

मैत्रेय उवाच–

विदित्वार्थं कपिलो मातुरित्थं
जातस्नेहो यत्र तन्वाभिजातः ।
तत्त्वाम्नायं यत्प्रवदन्ति सांख्यं
प्रोवाच वै भक्तिवितानयोगम् ॥३१॥

विदित्वा अर्थं कपिलः मातुः इत्थं जात स्नेहः यत्र तनु अभिजातः तत्त्वाम्नायं यत् प्रवदन्ति सांख्यं प्रोवाच वै भक्ति वितान योगम् ॥३१॥

यत्र तनु	जिसके शरीरसे
अभिजातः	जन्म लिया था
मातुः	(उस) माताका
इत्थं अर्थ	इस प्रकारका प्रयोजन
विदित्वा	जानकर
कपिलः जात	
स्नेहः	कपिलमें स्नेह उमड़ पड़ा,
यत् तत्त्वाम्नायं	जिस तत्त्वदर्शनको
साख्यं प्रवदन्ति	सांख्य कहते हैं
वै भक्तिवितान	तथा भक्ति विस्तार-रूप
योगं	योगका
प्रोवाच	उपदेश किया ॥३१॥

कपिल उवाच–

देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम् ।
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥३२॥

देवानां गुणलिङ्गानां आनुश्रविक कर्मणां सत्त्व एवैक मनसि वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥३२॥

आनुश्रविक	वेद विहित
कर्मणां	कर्म करनेवालोंकी
गुणलिङ्गानां	एक-एक (शब्द, स्पर्शादि) गुणोंके चिह्नवाली
देवानां	इन्द्रियोंकी
सत्त्व एवैक	एक मात्र सत्त्व (रूप भगवानके प्रति)
मनसि तु	मनकी तो
या स्वाभाविकी	
वृत्तिः	स्वाभाविक प्रवृत्ति है ॥३२॥

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ॥३३॥

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेः गरीयसी जरयति आशु या कोशं निगीर्णं अनलः यथा ॥३३॥

अनिमित्ता	(वही) अहैतुकी
भागवती भक्तिः	भगवानकी भक्ति
सिद्धेः गरीयसी	(यह) मुक्तिसे भी महान् है ।
या कोशं	जो कर्म संस्कारके भण्डार (लिङ्ग देह) को
आशु जरयति	शीघ्र नष्ट कर देती है,
यथा निगीर्णं	जैसे निगले हुएको
अनलः	जठराग्नि ॥३३॥

नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति केचिन्-
मत्पादसेवाभिरता मदीहाः ।
येऽन्योन्यतो भागवताः प्रसज्य
सभाजयन्ते मम पौरुषाणि ॥३४॥

न एकात्मतां मे स्पृहयन्ति केचित् मत्पाद सेवा अभिरता मदीहाः ये अन्योन्यतः भागवताः प्रसज्य सभाजयन्ते मम पौरुषाणि ॥३४॥

केचित्	कोई-कोई
भागवताः	भगवद्भक्त
मत्पाद सेवा	मेरी चरण सेवामें
अभिरताः	लगे हुए
ये अन्योन्यतः	जो एक-दूसरेसे
प्रसज्य	मिलकर
मम पौरुषाणि	मेरे पराक्रमोंकी
सभाजयन्ते	चर्चा किया करते हैं,
मदीहाः	मेरी इच्छासे भी
मे एकात्मतां	मुझसे एक हो जाना
न स्पृहयन्ति	नहीं चाहते ॥३४॥

पश्यन्ति ते मे रुचिराण्यम्ब सन्तः
प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ।
रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि
साकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति ॥३५॥

पश्यन्ति ते मे रुचिराणि अम्ब सन्तः प्रसन्नवक्त्र अरुण लोचनानि रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि साकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति ॥३५॥

अम्ब	अम्ब !
ते सन्तः	वे सत्पुरुष
मे रुचिराणि	मेरे मनोहर
प्रसन्नवक्त्र	प्रसन्नमुख
अरुण लोचनानि	रतनारे नेत्रों वाले
दिव्यानि	दिव्य
वरप्रदानि	वरदायक
रूपाणि	रूपोंको
पश्यन्ति	देखते हैं ।
साकं	(और) मेरे साथ
स्पृहणीयां	स्पृहा करने योग्य
वाचं वदन्ति	बात-चीत करते हैं ॥३५॥

तैर्दर्शनीयावयवैरुदार-
विलासहासेक्षितवामसूक्तैः ।
हृतात्मनो हृतप्राणांश्च भक्ति-
रनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते ॥३६॥

तैः दर्शनीय अवयवैः उदार विलास हास ईक्षित वामसूक्तैः हृतात्मनः हृतप्राणाः च भक्तिः अनिच्छतः मे गतिं अण्वीं प्रयुङ्क्ते ॥३६॥

तैः	उन (रूपों) के
दर्शनीय अवयवैः	दर्शनीय अङ्गोंके (दर्शनसे),
उदार विलास	मनोहर चेष्टा,
हास ईक्षित्	मुस्कान सहित देखना
वाम सूक्तैः	प्रेमपूर्ण व्यंग वाणीसे
हृतात्मनः	उनका मन हरण हो जाता है,
हृतप्राणाः च	तथा प्राण (इन्द्रियों) का हरण हो जाता है,
अनिच्छतः	उनके न चाहने पर भी
भक्तिः	भक्ति (उन्हें)
मे अण्वीं गतिं	मेरी सूक्ष्मगति (परम पद)
प्रयुङ्क्ते	दे देती है ॥३६॥

अथो विभूतिं मम मायाविनस्ता-
मैश्वर्यमष्टाङ्गमनुप्रवृत्तम् ।
श्रियं भागवतीं वास्पृहयन्ति भद्रां
परस्य मे तेऽश्नुवते तु लोके ॥३७॥

अथ विभूतिं मम मायाविनः ताम् ऐश्वर्यं अष्टाङ्गं अनुप्रवृत्तं श्रियं भागवतीं वा स्पृहयन्ति भद्रां परस्य मे ते अश्नुवते तु लोके ॥३७॥

अथ	(अविद्या निवृत्तिके) पश्चात्
मम मायाविनः	मुझ मायापतिके
तां अष्टाङ्गं ऐश्वर्यं	उस अष्ट सिद्धिको,
वा	अथवा
अनुप्रवृत्तं	मेरे पीछे चलनेवाली
भद्रां	कल्याण कारिणी
भागवतीं श्रियं	भागवती लक्ष्मीको
स्पृहयन्ति	यदि चाहते हैं तो
मे परस्य लोके	मुझ परम पुरुषके लोकमें
अश्नुवते	उसका उपभोग करते हैं ॥३७॥

न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे
नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः ।
येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च
सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥३८॥

न कर्हिचित् मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नः मे अनिमिषः लेढि हेतिः येषां अहं प्रिय आत्मा सुतः च सखाः गुरुः सुहृदः दैवं इष्टम् ॥३८॥

येषां अहं	जिनका मैं ही
प्रिय आत्मा	प्रिय, आत्मा,
सुतः सखाः	पुत्र, मित्र,
सुहृदः	सुहृद,
इष्टं दैवं च	और इष्ट देव हूँ
मत्पराः	वे मेरे परायण
शान्तरूपे	शान्त स्वरूप (भक्त)
कर्हिचित्	कभी भी
न नङ्क्ष्यन्ति	नष्ट नहीं होते,
नः	न
हेतिः मे अनिमिषः	मेरा काल चक्र
लेढिः	उन्हें चाट (ग्रस) सकता ॥३८॥

इमं लोकं तथैवामुमात्मानमुभयायिनम् ।
आत्मानमनु ये चेह ये रायः पशवो गृहाः ॥३९॥

इमं लोकं तथा एवं अमुं आत्मानं उभय यायिनं आत्मानं अनु ये च इह ये रायः पशवः गृहाः ॥३९॥

इमं लोकं	इस लोकको
तथा एवं	उसी प्रकार
अमुं	उस (परलोक) को
उभय यायिनं	दोनोके मध्य जानेवाले
आत्मानं	लिङ्ग शरीरको,
आत्मानं अनु	अपने पीछे लगनेवाले
ये च इह	जो भी यहाँ (संसारमें)
रायः पशवः गृहाः	धन, पशु, भवन हैं ॥३९॥

विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम् ।
भजन्त्यनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये ॥४०॥

विसृज्य सर्वान् अन्यान् च मां एवं विश्वतः मुखं भजन्ति अनन्यया भक्त्या तान् मृत्योः अतिपारये ॥४०॥

अन्यान् च	और दूसरे भी
सर्वान्	सबको
विसृज्य	त्याग कर
विश्वतः मुखं	सब प्रकारसे
मां एवं	मुझे ही
अनन्यया भक्त्या	अनन्य भक्तिसे
भजन्ति	भजते हैं,
तान्	उन्हें
मृत्योः अतिपारये	(मैं) मृत्युसे पार कर देता हूँ ॥४०॥

नान्यत्र मद्भगवतः प्रधानपुरुषेश्वरात् ।
आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते ॥४१॥

न अन्यत्र मद्भगवतः प्रधान पुरुष ईश्वरात् आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते ॥४१॥

प्रधान पुरुष ईश्वरात्	प्रकृति और पुरुषके स्वामी
मद्भगवतः	मुझ भगवानको
अन्यत्र	छोड़कर
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंका
आत्मनः	अपना
तीव्रं भयं	तीव्र भय
न निवर्तते	निवृत्त नहीं होता ॥४१॥

मद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात् ।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मद्भयात् ॥४२॥

मद् भयात् वाति वातः अयं सूर्यः तपति मद् भयात् वर्षति इन्द्रः दहति अग्निः मृत्युः चरति मद् भयात् ॥४२॥

मद् भयात्	मेरे भयसे
अयं वातः वाति	यह वायु चलता है,
मद् भयात्	मेरे भयसे
सूर्यः तपति	सूर्य तपता है,
मद् भयात्	मेरे भयसे ही
इन्द्र वर्षति	इन्द्र वर्षा करते हैं,
अग्निः दहति	अग्नि जलाता है,
मृत्युः चरति	मृत्यु घूमती रहती है ॥४२॥

ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियोगेन योगिनः ।
क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशन्त्यकुतोभयम् ॥४३॥

ज्ञान वैराग्य युक्तेन भक्ति योगेन योगिनः क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशन्ति अकुतः भयम् ॥४३॥

ज्ञान वैराग्य युक्तेन	ज्ञान-वैराग्ययुक्त
भक्ति योगेन	भक्तियोगसे
योगिनः	योगी (साधक)
क्षेमाय	अपने कल्याणके लिए
अकुतः भयं	सर्वत्रसे निर्भय
मे पादमूलं	मेरे चरणोंका
प्रवशन्ति	आश्रय लेते हैं ॥४३॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां निःश्रेयसोदयः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम् ॥४४॥

एतावान् एव लोके अस्मिन् पुंसां निःश्रेयसः उदयः तीव्रेण भक्ति-योगेन मनः मयि अर्पितं स्थिरम् ॥४४॥

एतावान् एव	इतना ही
अस्मिन् लोके	इस लोकमें
पुंसां	पुरुषके
निःश्रेयसः उदयः	परमकल्याणका उदय है कि
तीव्रेण भक्ति योगेन	तीव्र भक्तियोगसे
मयि मनः	मुझमें मनको
स्थिरं अर्पितं	लगाकर (वहीं) स्थिर कर दे ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ।

अथ षड्विंशोऽध्यायः

कपिल उवाच-

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक् ।
यद्विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥ १ ॥

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक् यत् विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैः गुणैः ॥१॥

अथ ते	अब तुमसे	**यत् विदित्वा**	जिसे जानकर
तत्त्वानां पृथक्	तत्त्वोंका अलग अलग	**पुरुषः**	पुरुष
लक्षणं	लक्षण	**प्राकृतैः गुणैः**	प्रकृतिके गुणोंसे
संप्रवक्ष्यामि	बतला रहा हूँ,	**विमुच्येत**	छूट जाता है ॥१॥

ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरुषस्यात्मदर्शनम् ।
यदाहुर्वर्णये तत्ते हृदयग्रन्थिभेदनम् ॥ २ ॥

ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरुषस्य आत्मदर्शनं यत् आहुः वर्णये तत् ते हृदय ग्रन्थि भेदनम् ॥२॥

हृदय ग्रन्थि	हृदयकी (मोहरूपी) गांठ	**निःश्रेयसार्थाय**	मोक्षके लिए
भेदनं यत्	छेदन करनेवाला जो	**आहुः**	(वेदोंमें) कहा गया है,
आत्मदर्शनं ज्ञानं	आत्मदर्शन रूप ज्ञान	**तत् ते**	वह तुमसे
पुरुषस्य	जीवके	**वर्णये**	वर्णन करता हूँ ॥२॥

अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
प्रत्यग्धामा स्वयंज्योतिर्विश्वं येन समन्वितम् ॥ ३ ॥

अनादिः आत्मा पुरुषः निर्गुणः प्रकृतेः परः प्रत्यक् धामा स्वयं ज्योतिः विश्वं येन समन्वितम् ॥३॥

येन विश्वं	जिससे यह जगत्	**प्रकृतेः परः**	प्रकृतिसे परे
समन्वितं	व्याप्त है	**प्रत्यक् धामाः**	अन्तःकरणमें स्थित
आत्मा पुरुषः	वह आत्मा ही पुरुष है,	**स्वयं ज्योतिः**	स्वयं प्रकाश
निर्गुणः	(वह) निर्गुण	**अनादिः**	अनादि है ॥३॥

स एष प्रकृतिं सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः ।
यदृच्छयैवोपगतामभ्यपद्यत लीलया ॥ ४ ॥

स एष प्रकृतिं सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः यदृच्छया एव उपगतां अभ्यपद्यत लीलया ॥४॥

स एष विभुः	उसी इस सर्व-व्यापकने	**सूक्ष्मां दैवीं**	अव्यक्त वैष्णवी
यदृच्छया एव		**गुणमयीं प्रकृतिं**	त्रिगुणमयी प्रकृतिको
उपगतां	अकस्मात् ही समीप आयी	**लीलया**	खेलमें ही
		अभ्यपद्यत	स्वीकार कर लिया ॥४॥

गुणैर्विचित्राः सृजतीं स्वरूपाः प्रकृतिं प्रजाः ।
विलोक्य मुमुहे सद्यः स इह ज्ञानगूहया ॥ ५ ॥

गुणैः विचित्राः सृजतीं स्वरूपाः प्रकृतिं प्रजाः विलोक्य मुमुहे सद्यः स इह ज्ञान गूहया ॥५॥

विचित्राः गुणैः	विचित्र गुणों द्वारा	**विलोक्य**	देखकर
स्वरूपाः प्रजाः	अपने समान (त्रिगुणमयी) प्रजा	**स इह**	वह (पुरुष) यहाँ (जगतमें)
सृजतीं प्रकृतिं	उत्पन्न करती प्रकृतिको	**सद्यः मुमुहे**	तुरन्त मोहित हो गया ॥५॥
ज्ञान गूहया	(जो) ज्ञानको आच्छादित करने वाली थी		

एवं पराभिध्यानेन कर्तृत्वं प्रकृतेः पुमान् ॥
कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैरात्मनि मन्यते ॥ ६ ॥

एवं पर अभिध्यानेन कर्तृत्वं प्रकृतेः पुमान् कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैः आत्मनि मन्यते ॥६॥

एवं	इस प्रकार
प्रकृतेः गुणैः	प्रकृतिके गुणों द्वारा
कर्मसु	कर्मोंके
क्रियमाणेषु	किये जानेपर भी
पर अभिध्यानेन	अपनेसे भिन्नको अपना स्वरूप माननेसे
आत्मनि कर्तृत्वं	अपनेमें (उन कर्मोंका) कर्त्तापन
मन्यते	मानता है ॥६॥

तदस्य संसृतिर्बन्धः पारतन्त्र्यं च तत्कृतम् ।
भवत्यकर्तुरीशस्य साक्षिणो निर्वृतात्मनः ॥ ७ ॥

तत् अस्य संसृतिः बन्धः पारतन्त्र्यं च तत् कृतं भवति अकर्तुः ईशस्य साक्षिणः निर्वृत आत्मनः ॥७॥

तत्	इसीसे
तत् कृतं च	उस (भ्रान्त मान्यता)के द्वारा ही
अस्य अकर्तुः	इस अकर्त्ता
साक्षिणः ईशस्य	साक्षी, समर्थ
निर्वृत आत्मनः	आनन्दस्वरूपकी
संसृतिः बन्धः	आवागमन रूप बंधन
च पारतन्त्र्यं	तथा परतन्त्रता
भवति	होती है ॥७॥

कार्यकारणकर्तृत्वे कारणं प्रकृतिं विदुः ।
भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥ ८ ॥

कार्यं कारण कर्तृत्वे कारणं प्रकृतिं विदुः भोक्तृत्वे सुख दुःखानां पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥८॥

कार्यं	कार्य (शरीर)
कारण	कारण (इन्द्रिय)
कर्तृत्वे	कर्त्तापनमें
कारणं	हेतु
प्रकृतिं विदुः	(विद्वान) प्रकृतिको जानते हैं,

सुख दुःखानां भोक्तृत्वे	सुख-दुःखोंके भोक्तापनमें (कारण)	**प्रकृतेः परं**	प्रकृतसे परे (रहनेवाले)
		पुरुषं	पुरुषको (जानते हैं) ॥८॥

विशेष—

समस्त कार्य (जगत और उसकी क्रियाएँ) तथा उन कार्योंके कारण मूलतत्त्व आकाशादि तथा कर्तृत्व अर्थात् उन कार्योंके घटित होनेका हेतु—ये सब प्राकृतिक हैं; किन्तु प्रकृति जड़ है। उसमें सुख-दुःखकी अनुभूति नहीं है। किसी घटना या पदार्थकी उपस्थिति-अनुपस्थितिसे सुख या दुःख पुरुष—जीवको होता है जो प्रकृतिसे परे है।

देवहूतिरुवाच—

प्रकृतेः पुरुषस्यापि लक्षणं पुरुषोत्तम।
ब्रूहि कारणयोरस्य सदसच्च यदात्मकम् ॥ ९ ॥

प्रकृतेः पुरुषस्य अपि लक्षणं पुरुषोत्तम ब्रूहि कारणयोः अस्य सत् असत् च यत् आत्मकम् ॥९॥

पुरुषोत्तम	पुरुषोत्तम !	**प्रकृतेः पुरुषस्य**	
सत् असत् च	कारण और कार्य	**अपि**	प्रकृति और पुरुषका भी
आत्मकं	स्वरूप		
अस्य यत्	इस (जगत्) के जो	**लक्षणं ब्रूहि**	लक्षण बतलाइये ॥९
कारणयोः	कारण हैं (उन)		

कपिल उवाच—

यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेषवत् ॥१०॥

यत् तत् त्रिगुणं अव्यक्तं नित्यं सत् असत् आत्मकं प्रधानं प्रकृतिं प्राहुः अविशेषं विशेषवत् ॥१०॥

यत् त्रिगुणं	जो त्रिगुणमयी,	**सत् असत्**	
अव्यक्तं नित्यं	अव्यक्त, नित्य,	**आत्मकं**	कारण कार्य स्वरूप

अविशेषं विशेषवत्	निर्विशेष होकर भी सब विशेषता युक्त-सा लगता	**प्रधानं तत् प्रकृतिं प्राहुः**	(वह) प्रधान तत्त्व है, उसीको प्रकृति कहा जाता है ॥१०॥

पञ्चभिः पञ्चभिर्ब्रह्म चतुर्भिर्दशभिस्तथा ।
एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः ॥११॥

पञ्चभिः पञ्चभिः ब्रह्म चतुर्भिः दशभिः तथा एतत् चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः ॥११॥

पञ्चभिः	पांच	**चतुर्विंशतिकं गणं**	चौबीसोंको
पञ्चभिः	पांच	**ब्रह्म**	विद्वान
चतुर्भिः	चार	**प्राधानिकं विदुः**	प्रकृतिका कार्य जानते हैं ॥११॥
दशभिः	दस		
एतत्	इन		

महाभूतानि पञ्चैव भूरापोऽग्निर्मरुन्नभः ।
तन्मात्राणि च तावन्ति गन्धादीनि मतानि मे ॥१२॥

महाभूतानि पञ्च एव भूः आपः अग्निः मरुत् नभः तन्मात्राणि च तावन्ति गन्ध आदीनि मतानि मे ॥१२॥

मे मतानि	मेरे मतमें	**तन्मात्राणि च**	तन्मात्राएँ भी
महाभूतानि	महाभूत	**गन्ध आदीनि**	गन्ध आदि (रस, रूप, स्पर्श, शब्द)
पञ्च एव	(पहिले) पांच ही हैं	**तावन्ती**	उतनी ही हैं ॥१२॥
भूः आपः अग्निः	पृथ्वी, जल, अग्नि,		
मरुत् नभः	वायु और आकाश ।		

इन्द्रियाणि दश श्रोत्रं त्वग्दृग्रसननासिकाः ।
वाक्करौ चरणौ मेढ्रं पायुर्दशम उच्यते ॥१३॥

इन्द्रियाणि दश श्रोत्रं त्वक् दृक् रसन नासिकाः वाक् करौ चरणौ मेढ्रं पायुः दशम उच्यते ॥१३॥

इन्द्रियाणि दश इन्द्रियां दस हैं,	**मेढ्रं** लिङ्ग तथा गुदाको
श्रोत्रं त्वक् दृक् कान, त्वचा, नेत्र,	**दशम उच्यते** दसवीं कहा जाता
रसन नासिकाः रसना, नाक,	है ॥१३॥
वाक् करौ चरणौ वाणी, हाथ, पैर,	

मनो बुद्धिरहङ्कारश्चित्तमित्यन्तरात्मकम् ।
चतुर्धा लक्ष्यते भेदो वृत्त्या लक्षणरूपया ॥१४॥

मनः बुद्धिः अहङ्कारः चित्तं इति अन्तरात्मकं चतुर्धा लक्ष्यते भेदः बृत्त्या लक्षणरूपया ॥१४॥

मनः बुद्धिः मन, बुद्धि,	**वृत्त्या** वृत्तियोंसे
अहङ्कार चित्तं अहंकार और चित्त	**चतुर्धा भेदः** (ये) चार प्रकारके भेद
इति अन्तरात्मकं ये अन्तःकरण रूप हैं,	**लक्ष्यते** पहिचाने जाते हैं ॥१४॥
लक्षणरूपया (विभिन्न) लक्षण वाला	

एतावानेव सङ्ख्यातो ब्रह्मणः सगुणस्य ह ।
सन्निवेशो मया प्रोक्तो यः कालः पञ्चविंशकः ॥१५॥

एतावान् एव सङ्ख्यातः ब्रह्मणः सगुणस्य ह सन्निवेशः मया प्रोक्तः यः कालः पञ्चविंशकः ॥१५॥

मया प्रोक्तः मेरे द्वारा बतलाया गया	**सन्निवेशः** स्वरूप भेद
सगुणस्य ह सगुण स्वरूप कही	**सङ्ख्यातः** गणना किया गया है,
ब्रह्मणः परमात्माका	**यः कालः** जो काल है
एतावान् एव इतना ही	**पञ्चविंशकः** (वह) पच्चीसवां तत्त्व है ॥१५॥

प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालमेके यतो भयम् ।
अहङ्कारविमूढस्य कर्तुः प्रकृतिमीयुषः ॥१६॥

प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालं एके यतः भयं अहङ्कार विमूढ़स्य कर्तुः प्रकृति ईयुषः ॥१६॥

अहङ्कार विमूढस्य	अहङ्कारसे विमूढ हुए
प्रकृतिं ईयुषः	प्रकृतिको स्वीकार करके
कर्तुः	(अपनेको) कर्ता समझने वालेको
यतः भयं	जिससे भय लगता है,
कालं	(उस) कालको
एके	कोई-कोई (पृथक तत्त्व न मानकर)
पौरुषं	परम पुरुष भगवानका
प्रभावं प्राहुः	प्रभाव (शक्ति) कहते हैं ॥१६॥

प्रकृतेर्गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि ।
चेष्टा यतः स भगवान् काल इत्युपलक्षितः ॥१७॥

प्रकृतेः गुण साम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि चेष्टा यतः स भगवान् काल इति उपलक्षितः ॥१७॥

मानवि	मनुपुत्री !
गुण साम्यस्य	गुणोंकी साम्यावस्था रूप
निर्विशेषस्य	निर्विशेष
प्रकृतेः	प्रकृतिमें
यतः चेष्टा	जिनके द्वारा गति उत्पन्न होती है
स भगवान्	वे भगवान ही
काल इति	काल इस रूपमें
उपलक्षितः	जाने जाते हैं ॥१७॥

अन्तः पुरुषरूपेण कालरूपेण यो बहिः ।
समन्वेत्येष सत्त्वानां भगवानात्ममायया ॥१८॥

अन्तः पुरुषरूपेण कालरूपेण यः बहिः समन्वेत्ति एष सत्त्वानां भगवान् आत्म मायया ॥१८॥

यः सत्त्वानां	जो प्राणियोंके
अन्तः पुरुषरूपेण	भीतर जीव रूपसे (और)
बहिः कालरूपेण	बाहर काल रूपसे
आत्म मायया	अपनी मायासे
समन्वेति	व्याप्त हैं
स एषः भगवान्	वह यह भगवान ही हैं ॥१८॥

दैवात्क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान् ।
आधत्त वीर्यं सासूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम् ॥१९॥

दैवात् क्षुभित धर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान् आधत्त वीर्यं स असूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम् ॥१९॥

दैवात्	जीवोंके अदृष्ट (कर्म) वश	**वीर्यं आधत्त**	अपना तेज स्थापित किया
क्षुभित धर्मिण्यां	गुणोंमें क्षोभ आयी	**हिरण्मयं**	
स्वस्यां	अपनी ही	**महत्तत्त्वं**	(इससे) तेजोमय महत्तत्त्व
योनौ	जीवोंकी उत्पत्ति स्थाना (माया) में	**स असूत**	उसने उत्पन्न किया ॥१९॥
परः पुमान्	परम पुरुषने		

विश्वमात्मगतं व्यञ्जन् कूटस्थो जगदङ्कुरः ।
स्वतेजसापिबत्तीव्रमात्मप्रस्वापनं तमः ॥२०॥

विश्वं आत्मगतं व्यञ्जन् कूटस्थः जगत् अङ्कुरः स्वतेजसा अपिबत् तीव्रं आत्म प्रस्वापनं तमः ॥२०॥

कूटस्थः	लय-विक्षेपहीन	**आत्म प्रस्वापनं**	अपनेको सुलाने (ढकने) वाले
जगत् अङ्कुरः	(उस) जगत्के अंकुर (महत्तत्त्व) ने	**तीव्रं तमः**	घोर अन्धकारको
आत्मगतं विश्वं	अपने भीतर स्थित विश्वको	**स्वतेजसा**	अपने तेजसे
व्यञ्जन्	प्रकट करनेके लिए	**अपिवत्**	पी लिया ॥२०॥

यत्तत्सत्त्वगुणं स्वच्छं शान्तं भगवतः पदम् ।
यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तं तन्महदात्मकम् ॥२१॥

यत् तत् सत्त्वगुणं स्वच्छं शान्तं भगवतः पदं यत् आहुः वासुदेव आख्यं चित्तं तत् महत् आत्मकम् ॥२१॥

यत्	जिस	**तत्**	उस
सत्त्वगुणं	सत्त्वगुणमय,	**वासुदेव आख्यं**	वासुदेव कहे जाने वालेको
स्वच्छं	स्वच्छ		
शान्तं	शान्त	**तत् महत्**	
भगवतः पदं	भगवानका स्थान	**आत्मकं**	महत्तत्त्व स्वरूप
चित्तं	चित्त है,	**आहुः**	कहा गया है ॥२१॥

स्वच्छत्वमविकारित्वं शान्तत्वमिति चेतसः ।
वृत्तिभिर्लक्षणं प्रोक्तं यथापां प्रकृतिः परा ॥२२॥

स्वच्छत्वं अविकारित्वं शान्तत्वं इति चेतसः वृत्तिभिः लक्षणं प्रोक्तं यथा अपां प्रकृतिः परा ॥२२॥

यथा अपां	जैसे जलका	**शान्तत्वं**	शान्त रहना,
परा प्रकृतिः	वास्तविक स्वभाव है	**इति**	इसी प्रकारकी
स्वच्छत्वं	स्वच्छ रहना,	**वृत्तिभिः**	वृत्तियोंसे
अविकारित्वं	विकारहीन रहना,	**चेतसः लक्षणं**	चित्तका लक्षण
		प्रोक्तं	कहा गया है ॥२२॥

महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यसम्भवात् ।
क्रियाशक्तिरहङ्कारस्त्रिविधः समपद्यत ॥२३॥

महत् तत्त्वात् विकुर्वाणात् भगवद् वीर्य सम्भवात् क्रिया शक्तिः अहङ्कारः त्रिविधः समपद्यत ॥२३॥

विकुर्वाणात्	विकारी होनेपर	**क्रिया शक्तिः**	
महत् तत्त्वात्	महत्तत्त्वसे	**अहङ्कारः**	क्रिया शक्ति रूप अहङ्कार
भगवत् वीय		**त्रिविधः**	
सम्भवात्	भगवानके तेजसे उत्पन्न	**समपद्यत**	तीन रूपोंमें हो गया ॥२३॥

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतो भवः ।
मनसश्चेन्द्रियाणां च भूतानां महतामपि ॥२४॥

वैकारिकः तैजसः च तामसः च यतः भवः मनसः च इन्द्रियाणां च भूतानां महतां अपि ॥२४॥

वैकारिकः	वैकारिक	**मनसः**	
च तैजसः	और तैजस	**इन्द्रियाणां च**	मन तथा इन्द्रियोंकी
च तामसः	तथा तामस (इन तीन रूपोंमें)	**च महतां**	
		भूतानां अपि	और महाभूतोंकी भी
यतः	जिससे	**भवः**	उत्पत्ति हुई ॥२४॥

सहस्रशिरसं साक्षाद्यमनन्तं प्रचक्षते ।
सङ्कर्षणाख्यं पुरुषं भूतेन्द्रियमनोमयम् ॥२५॥

सहस्र शिरसं साक्षात् यं अनन्तं प्रचक्षते सङ्कर्षणाख्यं पुरुषं भूत इन्द्रिय मनोमयम् ॥२५॥

यं सहस्र शिरसं	जिन्हें सहस्र सिरवाले	**प्रचक्षते**	कहे जाते हैं (वे)
साक्षात् अनन्तं	साक्षात् अनन्त	**भूत इन्द्रिय मनोमयं**	महाभूत, इन्द्रिय और मनोमय (अहंकार ही) हैं ॥२५॥
पुरुषं	पुरुषको		
संकर्षणाख्यं	संकर्षण नामवाले		

कर्तृत्वं करणत्वं च कार्यत्वं चेति लक्षणम् ।
शान्तघोरविमूढत्वमिति वा स्यादहंकृतेः ॥२६॥

कर्तृत्वं करणत्वं च कार्यत्वं च इति लक्षणं शान्त घोर विमूढत्वं इति वा स्यात् अहंकृतेः ॥२६॥

कर्तृत्वं च	कर्तापन और	**शान्त**	सत्वगुणसे) शान्त
करणत्वं	करण (इन्द्रिय) रूपत्व,	**घोर**	(रजोगुणसे) उग्र
		विमूढत्वं	(तमोगुणसे) विमूढत्व
च कार्यत्वं	तथा कार्य रूपत्व	**इति लक्षणं**	यह लक्षण
वा	अथवा	**अहंकृतेः स्यात्**	अहंकारके हैं ॥२६॥

वैकारिकाद्विकुर्वाणान्मनस्तत्त्वमजायत ।
यत्सङ्कल्पविकल्पाभ्यां बर्तते कामसम्भवः ॥२७॥

वैकारिकात् विकुर्वाणात् मनः तत्त्वं अजायत यत् सङ्कल्प विकल्पाभ्यां वर्तते कामसम्भवः ॥१७॥

वैकारिकात्	वैकारिक (सात्त्विक अहंकारके)	**यत्**	जिसके
		सङ्कल्प	
विकुर्वाणात्	विकारवान होनेपर	**विकल्पाभ्यां**	संकल्प विकल्पसे
मनः तत्त्वं	मनरूपी तत्त्व	**कामसम्भवः**	कामनाकी उत्पत्ति
अजायत	उत्पन्न हुआ,	**बर्तते**	होती है ॥२७॥

यद्विदुर्ह्यनिरुद्धाख्यं हृषीकाणामधीश्वरम् ।
शारदेन्दीवरश्यामं संराध्यं योगिभिः शनैः ॥२८॥

यत् विदुः अनिरुद्ध आख्यं हृषीकाणां अधीश्वरं शारद इन्दीवर श्यामं संराध्यं योगिभिः शनैः ॥२८॥

यत्	जिस
हृषीकाणां	इन्द्रियोंके
अधीश्वरं	स्वामीको
अनिरुद्ध आख्यं	अनिरुद्ध नामसे
विदुः	जाना जाता है।
शारद इन्दीवर	शरद्ऋतुके इन्दीवरके समान
श्यामं	श्यामवर्णका (यह)
योगिभिः	योगियों द्वारा
शनैः	धीरे-धीरे
संराध्यं	वशमें करने योग्य है ॥२८॥

तैजसात्तु विकुर्वाणाद् बुद्धितत्त्वमभूत्सति ।
द्रव्यस्फुरणविज्ञानमिन्द्रियाणामनुग्रहः ॥२९॥

तैजसात् तु विकुर्वाणात् बुद्धि तत्त्वं अभूत् सति द्रव्य स्फुरण विज्ञानं इन्द्रियाणां अनुग्रहः ॥२९॥

सति	साध्वी !
तैजसात् तु	तैजस (राजस अहंकार) के तो
विकुर्वाणात्	परिणामी होनेपर
बुद्धि तत्त्वं	बुद्धि तत्त्व
अभूत्	उत्पन्न हुआ,
द्रव्य स्फुरण	पदार्थोंकी प्रतीतिका
विज्ञानं	विज्ञान (और)
इन्द्रियाणां	इन्द्रियोंकी
अनुग्रहः	सहायता (इसके कार्य हैं) ॥२९॥

संशयोऽथ विपर्यासो निश्चयः स्मृतिरेव च ।
स्वाप इत्युच्यते बुद्धेर्लक्षणं वृत्तितः पृथक् ॥३०॥

संशयः अथ विपर्यासः निश्चयः स्मृतिः एव च स्वाप इति उच्यते बुद्धेः लक्षणं वृत्तिभिः पृथक् ॥३०॥

वृत्तिभिः पृथक्	अलग-अलग वृत्तियोंके भेदसे
संशयः	संशय
अथ विपर्यासः	तथा विपर्यय (विपरीत ज्ञान)
निश्चयः	निश्चय

च स्मृतिः	और स्मृति,	लक्षणं उच्यते	लक्षण कहे जाते हैं
एव स्वाप	एवं निद्रा		(यही प्रद्युम्न
इति बुद्धेः	ये बुद्धिके		है ।) ॥३०॥

तैजसानीन्द्रियाण्येव क्रियाज्ञानविभागशः ।
प्राणस्य हि क्रियाशक्तिर्बुद्धेर्विज्ञानशक्तिता ॥३१॥

तैजसात् इन्द्रियाणि एव क्रिया ज्ञान विभागशः प्राणस्य हि क्रिया शक्तिः बुद्धेः विज्ञान शक्तिता ॥३१॥

तैजसात् एव	तैजस (अहङ्कार) से ही	प्राणस्य हि	प्राणकी ही क्रिया शक्ति (कर्मेन्द्रिय)
क्रिया ज्ञान विभागशः	क्रिया और ज्ञानके भेदसे	बुद्धेः	बुद्धिकी
इन्द्रियाणि	इन्द्रियाँ हुईं(जिनमें)	विज्ञान शक्तिता	विज्ञान शक्ति (ज्ञानेन्द्रिय)हैं ॥३१॥

तामसाच्च विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यचोदितात् ।
शब्दमात्रमभूत्तस्मान्नभः श्रोत्रं तु शब्दगम् ॥३२॥

तामसात् तु विकुर्वाणात् भगवद् वीर्य चोदितात् शब्द मात्रं अभूत् तस्मात् नभः श्रोत्रं तु शब्दगम् ॥३२॥

तामसात् तु	तामस (अहङ्कार) के तो	तस्मात् नभः च शब्दगम्	उससे आकाश हुआ और शब्द जाननेवाली
भगवत् वीर्य चोदितात्	भगवान्‌के तेजसे प्रेरित होनेपर,	श्रोत्रं	श्रवणेन्द्रिय (उत्पन्न हुई) ॥३२॥
विकुर्वाणात्	परिणामी होनेपर		
शब्द मात्रं अभूत्	शब्द तन्मात्रा उत्पन्न हुई,		

अर्थाश्रयत्वं शब्दस्य द्रष्टुर्लिङ्गत्वमेव च ।
तन्मात्रत्वं च नभसो लक्षणं कवयो विदुः ॥३३॥

अर्थं आश्रयत्वं शब्दस्य द्रष्टुः लिङ्गत्वं एव च तन्मात्रत्वं च नभसः लक्षणं कवयः विदुः ॥३३॥

शब्दस्य अर्थ आश्रत्वं	शब्दके अर्थका आधार होता,
द्रष्टुः लिङ्गत्वं	द्रष्टा (आत्मा) का चिह्न (व्यापक) होना (उसे समझाता)
भूतानां	प्राणियोंको
वहिः अन्तरं	
एव च	बाहर और भीतर भी
छिद्र दातृत्वं	अवकाश देना
नभसः	
तन्मात्रत्वं च	आकाशकी तन्मात्रा होना
कवयः लक्षणं	विद्वान (शब्दका) लक्षण
विदुः	जानते हैं ॥३३॥

भूतानां छिद्रदातृत्वं बहिरन्तरमेव च ।
प्राणेन्द्रियात्मधिष्ण्यत्वं नभसो वृत्तिलक्षणम् ॥३४॥

भूतानां छिद्र दातृत्वं वहिः अन्तरं एव च प्राण इन्द्रिय आत्म धिष्ण्यत्वं नभसः वृत्ति लक्षणम् ॥३४॥

भूतानां	प्राणियोंको
वहिः अन्तरं	
एव च	बाहर और भीतर भी
छिद्र दातृत्वं	अवकाश देना
प्राण इन्द्रिय आत्म	प्राण, इन्द्रिय तथा मनका
धिष्ण्यत्वं	आश्रय होना
नभसः	आकाशके
वृत्ति लक्षणम्	वृत्ति रूप लक्षण हैं ॥३४॥

नभसः शब्दतन्मात्रात्कालगत्या विकुर्वतः ।
स्पर्शोऽभवत्ततो वायुस्त्वक् स्पर्शस्य च संग्रहः ॥३५॥

नभसः शब्द तन्मात्रात् कालगत्या विकुर्वतः स्पर्शः अभवत् ततः वायुः त्वक् स्पर्शस्य च संग्रहः ॥३५॥

कालगत्या	कालकी गतिसे
नभसः शब्द	
तन्मात्रात्	आकाशकी तन्मात्रा शब्दके
विकुर्वतः	विकारी होनेपर
स्पर्शः अभवत्	स्पर्श (तन्मात्रा) उत्पन्न हुई,
ततः वायुः	उससे वायु उत्पन्न हुआ
च स्पर्शस्य	
संग्रहः	तथा स्पर्शका अनुभव करने वाली
त्वक्	त्वक्-इन्द्रिय उत्पन्न हुई ॥३५॥

मृदुत्वं कठिनत्वं च शैत्यमुष्णत्वमेव च ।
एतत्स्पर्शस्य स्पर्शत्वं तन्मात्रत्वं नभस्वतः ॥३६॥

मृदुत्वं कठिनत्वं च शैत्यं उष्णत्वं एव च एतत् स्पर्शस्य स्पर्शत्वं तन्मात्रत्वं नभस्वतः ॥३६॥

मृदुत्वं	कोमलता	**तन्मात्रत्वं**	तन्मात्रा होना
च कठिनत्वं	और कठोरता,	**स्पर्शस्य**	स्पर्श तन्मात्राका ।
शैत्यं	शीतलता	**एतत्**	इतना
च उष्णत्वं एव	तथा उष्णता भी	**स्पर्शत्वं**	स्पर्श स्वरूप है ॥३६॥
नभस्वतः	वायुकी		

चालनं व्यूहनं प्राप्तिर्नेतृत्वं द्रव्यशब्दयोः ।
सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं वायोः कर्माभिलक्षणम् ॥३७॥

चालनं व्यूहनं प्राप्तिः नेतृत्वं द्रव्यशब्दत्योः सर्वं इन्द्रियाणां आत्मत्वं वायोः कर्म अभिलक्षणम् ॥३७॥

चालनं	हिलाना (शाखादि को)	**नेतृत्वं**	ले जाना (अपने साथ)
व्यूहनं	इकट्ठा कर देना (तृणादिको)	**सर्व इन्द्रियाणां**	सब इन्द्रियोंका
प्राप्तिः	पहुँचाना (गन्धादि-को)	**आत्मत्त्वं**	(कार्य शक्ति देकर) उनका स्वरूप होना
द्रव्यशब्दत्योः	पदार्थ तथा शब्दको	**वायोः**	वायुके
		कर्म अभिलक्षणं	कर्मोंके ये लक्षण हैं ॥३७॥

वायोश्च स्पर्शतन्मात्राद्रूपं दैवेरितादभूत् ।
समुत्थितं ततस्तेजश्चक्षू रूपोपलम्भनम् ॥३८॥

वायोः च स्पर्श तन्मात्रात् रूपं दैव ईरितात् अभूत् समुत्थितं ततः तेजः चक्षुः रूप उपलम्भनम् ॥३८॥

वायोः च	वायुकी भी	**रूपं समुत्थितात्**	उत्पन्न हुई रूप तन्मात्रा
स्पर्श तन्मात्रात्	स्पर्श तन्मात्रासे		
दैव ईरितात्	दैवकी प्रेरणासे		

ततः तेजः रूप उपलम्भनं	उससे तेज और रूपको उपलब्ध करने वाली	**चक्षुः**	नेत्रेन्द्रिय (उत्पन्न हुई) ॥३८॥

द्रव्याकृतित्वं गुणता व्यक्तिसंस्थात्वमेव च ।
तेजस्त्वं तेजसः साध्वि रूपमात्रस्य वृत्तयः ॥३९॥

द्रव्य आकृत्वं गुणता व्यक्ति संस्थात्वं एव च तेजस्त्वं तेजसः साध्वि रूप मात्रस्य वृत्तयः ॥३९॥

साध्वि	साध्वी !	**व्यक्ति संस्थात्वं**	व्यक्तिकी स्थिति बनाये रखना,
द्रव्य आकृत्वं	पदार्थकी आकृति व तल लाना,	**तेजसः तेजस्त्वं**	तेजकी तन्मात्रा होना,
गुणता	उसी आकृतिका हो जाना,	**रूप मात्रस्य वृत्तयः**	रूप तन्मात्राके कार्य हैं ॥३९॥

द्योतनं पचनं पानमदनं हिममर्दनम् ।
तेजसो वृत्तयस्त्वेताः शोषणं क्षुत्तृडेव च ॥४०॥

द्योतनं पचनं पानं अदनं हिममर्दनं तेजसः वृत्तयः तु एताः शोषणं क्षुत् तृट् एव च ॥४०॥

द्योतनं	प्रकाश करना,	**क्षुत् तृट् एव**	भूख-प्यास लगाना भी
अदनं पानं पचनं	खाये-पियेको पचाना,	**एताः तु**	इतनी तो
हिममर्दनं च	शीत मिटाना तथा	**तेजसः वृत्तमः**	तेज (अग्नि) के कार्य हैं ॥४०॥

रुपमात्राद्विकुर्वाणात्तेजसो दैवचोदितात् ।
रसमात्रमभूत्तस्मादम्भो जिह्वा रसग्रहः ॥४१॥

रूपमात्रात् विकुर्वाणात् तेजसः दैव चोदितात् रसमात्रं अभूत् तात अम्भः जिह्वाः रसग्रहः ॥४१॥

तात	तात !
तेजसः	
रूपमात्रात्	तेजकी रूपतन्मात्राके
दैव चोदितात्	दैवकी प्रेरणासे
विकुर्वाणात्	विकारो होनेपर
रसमात्रं अभूत्	रस तन्मात्रा उत्पन्न हुई,
अम्भः	(उससे) जल (तथा)
रसग्रहः जिह्वाः	रस ग्रहण करनेवाली जीभ हुई ॥४१॥

कषायो मधुरस्तिक्तः कटवम्ल इति नैकधा ।
भौतिकानां विकारेण रस एको विभिद्यते ॥४२॥

कषायः मधुरः तिक्तः कटु अम्ल इति नैकधा भौतिकानां विकारेण रस एकः विभिद्यते ॥४२॥

भौतिकानां	भौतिक पदार्थोंके
विकारेण	मिलनेसे
रस एकः	एक होनेपर भी रस
कषायः	कसैला,
मधुरः	मीठा,
तिक्तः	चरपरा,
कटु	कड़वा,
अम्ल	खट्टा
इति नैकधा	इस प्रकार अनेक रूपोंमें
विभिद्यते	बँट जाता है ॥४२॥

क्लेदनं पिण्डनं तृप्तिः प्राणनाप्यायनोन्दनम् ।
तापापनोदो भूयस्त्वमम्भसो वृत्तयस्त्विमाः ॥४३॥

क्लेदनं पिण्डनं तृप्तिः प्राणनं आप्यायनः ओन्दनं ताप अपनोदः भूयस्त्वं अम्भसः वृत्तयः तु इमाः ॥४३॥

क्लेदनं	गीला करना,
पिण्डनं	पिण्डाकार कर देना (चूर्णको)
तृप्तिः	तृप्त करना,
प्राणनं	जीवित रखना,
आप्यायनं	प्यास बुझाना,
ओन्दनं	नरम बना देना (कड़े पदार्थोंको)
ताप अपनोदः	गर्मी दूर करना,
भूयस्त्वं	(पदार्थको) बढ़ा देना,
अम्भसः	जलके
तु वृत्तयः इमाः	तो ये कार्य हैं ॥४३॥

रसमात्राद्विकुर्वाणादम्भसो दैवचोदितात् ।
गन्धमात्रमभूत्तस्मात्पृथ्वी घ्राणस्तु गन्धगः ॥४४॥

रस मात्रात् विकुर्वाणात् अम्भसः दैव चोदितात् गन्धमात्रं अभूत् तस्मात् पृथ्वी घ्राणः तु गन्धगः ॥४४॥

दैव चोदितात्	दैव द्वारा प्रेरित	**तस्मात्**	उससे
अम्भसः	जलकी	**पृथ्वी तु**	पृथ्वी और
रस मात्रात्	तन्मात्रा रसके	**गन्धगः घ्राणः**	गन्ध ग्राहिणी घ्राणेन्द्रिय हुई ॥४४॥
विकुर्वाणात्	विकारी होनेपर		
गन्धमात्रं	गन्ध तन्मात्रा		
अभूत्	उत्पन्न हुई,		

करम्भपूतिसौरभ्यशान्तोग्राम्लादिभिः पृथक् ।
द्रव्यावयववैषम्याद्गन्ध एको विभिद्यते ॥४५॥

करम्भः पूतिः सौरभ्यः शान्तः उग्र अम्ल आदिभिः पृथक् द्रव्य अवयव वैषम्यात् गन्ध एकः विभिद्यते ॥४५॥

गन्ध एकः	गन्ध एक ही (होनेपर भी)	**शान्तः**	मधुर
		उग्र	तीक्ष्ण,
द्रव्य अवयव	द्रव्योंके अंगोंके	**अम्ल**	खट्टी
वषम्यात्	कम अधिक मिलनेसे	**आदिभिः**	आदि रूपोंमें
करम्भः	मिश्रित गन्ध,	**पृथक्**	अलग-अलग
पूतिः	दुर्गन्ध	**विभिद्यते**	बँट जाती है ॥४५॥
सौरभ्यः	सुगन्धि,		

भावनं ब्रह्मणः स्थानं धारणं सद्विशेषणम् ।
सर्वसत्त्वगुणोद्भेदः पृथिवीवृत्तिलक्षणम् ॥४६॥

भावनं ब्रह्मणः स्थानं धारणं सत् विशेषणं सर्व सत्त्व गुण उद्भेदः पृथिवी वृत्ति लक्षणम् ॥४६॥

ब्रह्मणः	(प्रतिमान रूपसे) ब्रह्मकी	**धारणं**	(सबको) धारण करना,
भावनं स्थानं	भावनाका आधार होना,	**सत् विशेषणं**	सत्ताका विशेषण होना,

सर्व सत्त्व गुण उद्भेदः	सब प्राणियोंके गुणोंको प्रकट करना,	**पृथिवी वृत्ति लक्षणं**	पृथ्वीका कार्य-रूप लक्षण है ॥४६॥

नभोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्छ्रोत्रमुच्यते ।
वायोर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य तत्स्पर्शनं विदुः ॥४७॥

नभः गुण विशेष अर्थः यस्य तत् श्रोत्रं उच्यते वायोः गुण विशेष अर्थः यस्य तत् स्पर्शनं विदुः ॥४७॥

नभः विशेष गुण	आकाशका विशेष गुण	**वायोः विशेष गुण**	वायुका विशेष गुण
यस्य अर्थः	जिसका विषय है	**यस्य अर्थः**	जिसका विषय है
तत् श्रोत्रं उच्यते	उसे कान कहा जाता है,	**तत् स्पर्शनं विदुः**	उसे स्पर्शेन्द्रिय जाना जाता है ॥४७॥

तेजोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्चक्षुरुच्यते ।
अम्भोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तद्रसनं विदुः ।
भूमेर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य स घ्राण उच्यते ॥४८॥

तेजः गुण विशेष अर्थः यस्य तत् चक्षुः उच्यते अम्भः गुण विशेष अर्थः यस्य तत् रसनं विदुः भूमेः गुण विशेष अर्थः यस्य स घ्राण उच्यते ॥४८॥

तेजः विशेष गुण	तेजका विशेष गुण	**यस्य अर्थः**	जिसका विषय है
यस्य अर्थः	जिसका विषय है	**तत् रसनं विदुः**	उसे रसना जाना जाता है,
तत् चक्षुः उच्यते	उसे नेत्र कहा जाता है,	**भूमेः विशेष गुण**	भूमिका विशेष गुण
अम्भः विशेष गुण	जलका विशेष गुण	**यस्य अर्थः**	जिसका विषय है
		स घ्राण उच्यते	उसे घ्राणेन्द्रिय कहा जाता है ॥४८॥

परस्य दृश्यते धर्मो ह्यपरस्मिन् समन्वयात् ।
अतो विशेषो भावानां भूमावेवोपलक्ष्यते ॥४९॥

परस्य दृश्यते धर्मः हि अपरस्मिन् समन्वयात् अतः विशेषः भावानां भूमा एव उपलक्ष्यते ॥४९॥

हि	क्योंकि	**अतः**	अतः
परस्य	पहिलोंका	**भावानां विशेषः**	(दूसरे) सब तत्त्वों की विशेषता
धर्मः	गुण		
अपरस्मिन्	उनसे पीछे होने वालोंमें	**भूमा एव**	पृथ्वीमें ही
		उपलक्ष्यते	पायी जाती है ॥४९॥
समन्वयात्	(उनके) व्याप्त होनेसे		
दृश्यते	दीखते हैं,		

एतान्यसंहत्य यदा महदादीनि सप्त वै ।
कालकर्मगुणोपेतो जगदादिरुपाविशत् ॥५०॥

एतानि असंहत्य यदा महदादीनि सप्त वै काल कर्म गुण उपेतः जगदादिः उपाविशत् ॥५०॥

यदा	जब	**काल कर्म गुण**	
महदादीनि सप्त	महत्तत्त्वादि सात (महत्तत्त्व, अहङ्कार और पंच महाभूत)	**उपेतः**	(तब) काल, कर्म, गुणोंके साथ
		जगदादिः	जगत्के आदि (भगवान नारायण)ने
वै असंहत्य	निश्चित पृथक-पृथक रहे (परस्पर मिल न सके)	**उपाविशत्**	(इनमें) प्रवेश किया ॥५०॥

ततस्तेनानुविद्धेभ्यो युक्तेभ्योऽण्डमचेतनम् ।
उत्थितं पुरुषो यस्मादुदतिष्ठदसौ विराट् ॥५१॥

ततः तेन अनुविद्धेभ्यः युक्तेभ्यः अण्डं अचेतनं उत्थितं पुरुषः यस्मात् उदतिष्ठत् असौ विराट् ॥५१॥

ततः तेन	तब उन (नारायण) द्वारा	**अनुविद्धेभ्यः**	क्षुब्ध किए गए

युक्तेभ्यः	परस्पर मिले हुए (तत्त्वों) से	यस्मात्	जिससे
अचेतनं	अचेतन	असौ विराट्	यह विराट्
अण्डं उत्थितं	एक अण्डा उत्पन्न हुआ,	पुरुषः उदतिष्ठत्	पुरुष अभिव्यक्त हुआ ॥५१॥

एतदण्डं विशेषाख्यं क्रमवृद्धैर्दशोत्तरैः ।
तोयादिभिः परिवृतं प्रधानेनावृतैर्बहिः ।
यत्र लोकवितानोऽयं रूपं भगवतो हरेः ॥५२॥

एतत् अण्डं विशेष आख्यं क्रम वृद्धैः दश उत्तरैः तोय आदिभिः परिवृतं प्रधानेन आवृतैः बहिः यत्र लोक वितानः अयं रूपं भगवतः हरेः ॥५२॥

एतत् अण्डं	यह अण्ड	परिवृतं	घिरा हुआ है ।
विशेष आख्यं	'विशेष' नामवाला है ।	प्रधानेन बहिः	प्रकृति द्वारा बाहरसे
		आवृतैः	घिरा है ।
क्रम दश उत्तरैः	क्रमशः दस गुना	यत्र अयं	जिसमें यह
वृद्धैः	बढ़ते जानेवाले	भगवतः हरेः	भगवान श्रीहरिका
तोय आदिभिः	जल आदि (अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व)से	लोक वितानः	लोकोंके विस्तार वाला
		रूपं	विराट् रूप है॥५२॥

हिरण्मयादण्डकोशादुत्थाय सलिलेशयात् ।
तमाविश्य महादेवो बहुधा निर्बिभेद खम् ॥५३॥

हिरण्मयात् अण्डकोशात् उत्थाय सलिलेशयात् तं आविश्य महादेवः बहुधा निर्बिभेद खम् ॥५३॥

हिरण्मयात्	स्वर्णमय	तं आविश्य	उसमें प्रवेश करके
सलिलेशयात्	पानीमें सोते	बहुधा	अनेक प्रकारकी
अण्डकोशात्	अण्डकोशमें	खं निर्बिभेद	छिद्र(इन्द्रिय गोलक)
महादेवः	देवादि देव(भगवान)ने		उत्पन्न किए ॥५३॥

निरभिद्यतास्य प्रथमं मुखं वाणी ततोऽभवत् ।
वाण्या वह्निरथो नासे प्राणोतो घ्राण एतयोः ॥५४॥

निरभिद्यता अस्य प्रथमं मुखं वाणी ततः अभवत् वाण्या वह्निः अथ नासे प्राणः अतः घ्राणः एतयोः ॥५४॥

प्रथमं अस्य	पहिले इसके
मुखं निरभिद्यता	मुख प्रकट हुआ,
ततः वाणी	
अभवत्	उसमें वाणी (वाक् इन्द्रिय)
वाण्या वह्निः	वाक् इन्द्रियसे (उसके अधिदेवता) अग्नि हुए।
अथ एतयोः	फिर इसके
नासे प्राण अतः	नासिका छिद्र, उनमें प्राणके साथ
घ्राणः	घ्राणेन्द्रिय उत्पन्न हुई ॥५४॥

घ्राणाद्वायुरभिद्येतामक्षिणी चक्षुरेतयोः।
तस्मात्सूर्यो न्यभिद्येतां कर्णौ श्रोत्रं ततो दिशः ॥५५॥

घ्राणात् वायुः अभिद्येतां अक्षिणीः चक्षुः एतयोः तस्मात् सूर्यः न्यभिद्येतां कर्णौ श्रोत्रं ततः दिशः ॥५५॥

घ्राणात्	घ्राणेन्द्रियसे
वायुः अभिद्येतां	वायु प्रकट हुआ,
एतयोः अक्षिणीः	फिर इसके नेत्र गोलक हुए
चक्षुः	उससे नेत्रेन्द्रिय तथा
तस्मात्	उससे (उसके अधिदेव)
सूर्यः	सूर्य प्रकट हुए,
कर्णौ	फिर कर्ण गोलक
न्यभिद्येतां	इसके प्रकट हुए,
ततः श्रोत्रं	उनसे श्रवणेन्द्रिय और
दिशः	(उनके अधिदेवता) दिशामें हुईं ॥५५॥

निर्बिभेद विराजस्त्वग्रोमश्मश्रूवादयस्ततः।
तत ओषधयश्चासन् शिश्नं निर्बिभिदे ततः ॥५६॥

निर्बिभेद विराजः त्वक् रोमश्मश्रु आदयः ततः ततः ओषधयः च आसन् शिश्नं निर्बिभिदे ततः ॥५६॥

विराजः	विराट्के
त्वक् निर्बिभेदे	त्वचा प्रगट होनेपर
ततः रोमश्मश्रु आदयः	उससे रोम, दाढ़ी, मूंछ आदि

ततः	और उनसे	ततः शिश्नं	
ओषधयः च		निर्बिभिदे	तब लिङ्ग
आसन्	ओषधियाँ भी		फूटा ॥५६॥
	उत्पन्न हुईं,		

रेतस्तस्मादाप आसन्निरभिद्यत वै गुदम् ।
गुदादपानोऽपानाच्च मृत्युर्लोकभयङ्करः ॥५७॥

रेतः तस्मात् आपः आसन् निरभिद्यत वै गुदं गुदात् अपानः अपानात् च मृत्युः लोक भयङ्करः ॥५७॥

तस्मात् रेतः	उससे वीर्य (और)	अपानात्	अपानसे (उसका
आपः आसन्	जल हुआ,		अभिमानी)
वै गुदं		लोक भयङ्करः	
निरभिद्यत्	फिर तो गुदा फूटी,	मृत्युः	लोक भयङ्कर मृत्यु
गुदात् अपानः	गुदासे अपान वायु		उत्पन्न हुआ ॥५७॥

हस्तौ च निरभिद्येतां बलं ताभ्यां ततः स्वराट् ।
पादौ च निरभिद्येतां गतिस्ताभ्यां ततो हरिः ॥५८॥

हस्तौ च निरभिद्यत् एतां बलं ताभ्यां ततः स्वराट् पादौ च निरभिद्येत् एतां गतिः ताभ्यां ततः हरिः ॥५८॥

एतां	इस (अण्ड) में	एतां पादौ च	इसके पैर भी
हस्तौ च	हाथ भी	निरभिद्यत	निकले
निरभिद्येत्	फूट आये-	ताभ्यां गतिः	उनसे गति आयी,
बलं ताभ्यां	उनसे बल हुआ,	ततः हरिः	उसमें (गतिके देव
ततः स्वराट्	उनमें (उनके देवता)		स्वयं) श्रीहरि
	इन्द्र हुए,		हुए ॥५८॥

नाड्योऽस्य निरभिद्यन्त ताभ्यो लोहितमाभृतम् ।
नद्यस्ततः समभवन्नुदरं निरभिद्यत ॥५९॥

नाड्यः अस्य निरभिद्य एतां ताभ्यः लोहितं आभृतं नद्यः ततः समभवन् उदरं निरभिद्यत ॥५९॥

एतां	इस (विराट् पुरुष) की
नाड्य निर्भिद्य	नाड़ियाँ प्रकट होनेपर
लोहितं आभृतं	वे रक्तसे भर गयीं
ततः नद्यः	उन (नाड़ियों) से नदियाँ
समभवन्	उत्पन्न हुईं,
उदरं निरभिद्यत	फिर उदर प्रकट हुआ ॥५८॥

क्षुत्पिपासे ततः स्यातां समुद्रस्त्वेतयोरभूत् ।
अथास्य हृदयं भिन्नं हृदयान्मन उत्थितम् ॥६०॥

क्षुत् पिपासे ततः स्यातां समुद्रः तु एतयोः अभूत् अथ अस्य हृदयं भिन्नं हृदयात् मन उत्थितम् ॥६०॥

ततः	उस (उदर) में
क्षुत् पिपासे स्यातां	भूख-प्यास लगने लगी,
एतयोः	इसी (उदर) से
समुद्रः तु अभूत्	समुद्र भी उत्पन्न हुआ,
अथ अस्य	फिर इसके
हृदयं भिन्नं	हृदय उत्पन्न हुआ,
हृदयात्	हृदयसे
मन उत्थितं	मन उठ खड़ा हुआ ॥६०॥

मनसश्चन्द्रमा जातो बुद्धिर्बुद्धेर्गिरां पतिः ।
अहङ्कारस्ततो रुद्रश्चित्तं चैत्यस्ततोऽभवत् ॥६१॥

मनसः चन्द्रमाः जातः बुद्धिः बुद्धेः गिरां पतिः अहङ्कारः ततः रुद्रः चित्तं चैत्यः ततः अभवत् ॥६१॥

मनसः	मनसे (उसका अभिमानी देवता)
चन्द्रमाः जातः	चन्द्रमा उत्पन्न हुआ,
बुद्धिः	(हृदयसे ही) बुद्धि और
बुद्धेः गिरां पतिः	बुद्धिसे (उसके देवता) ब्रह्मा हुए,
अहङ्कारः	(हृदयसे ही)अहंकार
ततः रुद्रः	उससे रुद्र हुए ।
चित्तं	(फिर) चित्त
ततः चैत्यः	उससे (उसका अधिदेव) क्षेत्रज्ञ
अभवत्	हुआ ॥६१॥

एते ह्यभ्युत्थिता देवा नैवास्योत्थापनेऽशकन् ।
पुनराविविशुः खानि तमुत्थापयितुं क्रमात् ॥६२॥

एते हि अभ्युत्थिताः देवाः न एव अस्य उत्थापने अशकन् पुनः आविविशुः खानि तं उत्थापयितुं क्रमात् ॥६२॥

हि	क्योंकि	**अशकन्**	समर्थ नहीं हुए,
अभ्युत्थिताः	उत्पन्न हुए	**उत्थापयितुं**	उठानेके लिए
एते देवाः	ये देवता	**क्रमात्**	क्रमशः
अस्य उत्थापने	इस (विराट्) को उठानेमें	**पुनः खानि**	फिर अपने गोलकोंमें
		आविविशुः	प्रविष्ट हुए ॥६२॥

वह्निर्वाचा मुखं भेजे नोदतिष्ठत्तदा विराट् ।
घ्राणेन नासिके वायुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६३॥

वह्निः वाचा मुखं भेजे न उदतिष्ठत् तदा विराट् घ्राणेन नासिके वायुः न उदतिष्ठत् तदा विराट् ॥६३॥

वह्निः वाचा	अग्निने वाणीके साथ	**नासिके**	नासिकामें
मुखं भेजे	मुखमें प्रवेश किया,		(प्रविष्ट हुआ)
तदा विराट्	तब विराट्	**तदा विराट्**	तब विराट्
न उदतिष्ठत्	नहीं उठा,	**न उदतिष्ठत्**	नहीं उठा ॥६३॥
घ्राणेन वायुः	गन्धके साथ वायु		

अक्षिणी चक्षुषाऽऽदित्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ।
श्रोत्रेण कर्णौ च दिशो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६४॥

अक्षिणी चक्षुषाः आदित्यः न उदतिष्ठत् तदा विराट् श्रोत्रेण कर्णौ च दिशः न उदतिष्ठत् तदा विराट् ॥६४॥

चक्षुषाः		**श्रोत्रेण च दिशः**	कानोंके साथ दिशाएँ भी
आदित्यः	नेत्रोंके साथ सूर्य	**कर्णौ**	कर्ण-गोलकोंमें
चक्षिणीः	आँखोंमें (प्रविष्ट हुए)		(प्रविष्ट हुईं)
तदा विराट्	तब विराट्	**तदा विराट्**	तब विराट्
न उदतिष्ठत्	नहीं उठा,	**न उदतिष्ठत्**	नहीं उठा ॥६४॥

त्वचं रोमभिरोषध्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ।
रेतसा शिश्नमापस्तु नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६५॥

त्वचं रोमभिः ओषध्यः न उदतिष्ठत् तदा विराट् रेतसा शिश्नं आपः तु न उदतिष्ठत् तदा विराट् ॥६५॥

ओषध्यः		आपः तु रेतसा	जल तो वीर्यके साथ
रोमभिः	औषधियाँ रोमोंके साथ	शिश्नं	उपस्थमें (प्रविष्ट हुआ)
त्वचं	त्वचामें(प्रविष्ट हुई)	तदा विराट्	तब विराट्
तदा विराट्	तब विराट्	न उदतिष्ठत्	नहीं उठा ॥६५॥
न उदतिष्ठत्	नहीं उठा,		

गुदं मृत्युरपानेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ।
हस्ताविन्द्रो बलेनैव नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६६॥

गुदं मृत्युः अपानेन न उदतिष्ठत् तदा विराट् हस्ताः इन्द्रः बलेन एव न उदतिष्ठत् तदा विराट् ॥६६॥

मृत्युः अपानेन	मृत्यु अपान-वायुके साथ	इन्द्रः बलेन एव	इन्द्र बलके साथ ही
गुदं	गुदामें (प्रविष्ट हुआ)	हस्ताः	हाथोंमें (प्रविष्ट हुए)
तदा विराट्	तब विराट्	तदा विराट्	तब विराट्
न उदतिष्ठत्	नहीं उठा,	न उदतिष्ठत्	नहीं उठा ॥६६॥

विष्णुर्गत्यैव चरणौ नोदतिष्ठत्तदा विराट् ।
नाडीर्नद्यो लोहितेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६७॥

विष्णुः गत्या एव चरणौ न उदतिष्ठत् तदा विराट् नाडीः नद्यः लोहितेन न उदतिष्ठत् तदा विराट् ॥६७॥

विष्णुः		चरणौ	चरणोंमें
गत्या एव	विष्णु भगवान् गतिके साथ ही		(प्रविष्ट हुए)
		तदा विराट्	तब विराट्

न उदतिष्ठत्	नहीं उठा,	**तदा विराट्**	तब विराट्
नद्यः लोहितेन	नदियां रक्तके साथ	**न उदतिष्ठत्**	नहीं उठा ॥६७॥
नाड़ीः	नाड़ियोंमें (प्रविष्ट हुईं)		

क्षुत्तृड्भ्यामुदरं सिन्धुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ।
हृदयं मनसा चन्द्रो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६८॥

क्षुत् तृट्भ्यां उदरं सिन्धुः न उदतिष्ठत् तदा विराट् हृदयं मनसा चन्द्रः न उदतिष्ठत् तदा विराट् ॥६८॥

क्षुत् तृट्भ्यां		**न उदतिष्ठत्**	नहीं उठा,
सिन्धुः	भूख-प्यासके साथ समुद्र	**मनसा चन्द्र**	मनके साथ चन्द्रमा
उदरं	उदरमें (प्रविष्ट हुआ)	**हृदयं**	हृदयमें (प्रविष्ट हुए)
वदा विरट्	तब विराट्	**तदा विराट्**	तब विराट्
		न उदतिष्ठत्	नहीं उठा ॥६८॥

बुद्धचा ब्रह्मापि हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ।
रुद्रोऽभिमत्या हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६९॥

बुद्धचा ब्रह्मा अपि हृदयं न उदतिष्ठत् तदा विराट् रुद्रः अभिमत्या हृदयं न उदतिष्ठत् तदा विराट् ॥६९॥

बुद्धचा ब्रह्मा		**अभिमत्या रुद्रः**	अभिमानके साथ रुद्र
अपि	बुद्धिके साथ ब्रह्माजी भी	**हृदयं**	हृदयमें (प्रविष्ट हुए)
हृदयं	हृदयमें (प्रविष्ट हुए)	**तदा विराट्**	तब विराट्
तदा विराट्	तब विराट्	**न उदतिष्ठत्**	नहीं उठा ॥६९॥
न उदतिष्ठत्	नहीं उठा		

चित्तेन हृदयं चैत्यः क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा ।
विराट् तदैव पुरुषः सलिलादुदतिष्ठत ॥७०॥

चित्तेन हृदयं चैत्यः क्षेत्रज्ञः प्राविशत् यदा विराट् तदा एव पुरुषः सलिलात् उदतिष्ठत ॥७०॥

चित्तेन चैत्यः क्षेत्रज्ञः	चित्तके साथ चैत्य क्षेत्रज्ञ
यदा हृदयं प्राविशत्	जब हृदयमें प्रविष्ट हुआ ।
तद्दा एव विराट् पुरुषः	उसी समय विराट् पुरुष
सलिलात् उदतिष्ठत्	पानीमें-से उठ खड़ा हुआ ॥७०॥

यथा प्रसुप्तं पुरुषं प्राणेन्द्रियमनोधियः ।
प्रभवन्ति विना येन नोत्थापयितुमोजसा ॥७१॥

यथा प्रसुप्तं पुरुषं प्राण इन्द्रिय मनः धियः प्रभवन्ति विना येन न उत्थापयितुं ओजसा ॥७१॥

यथा प्रसुप्तं पुरुषं	जैसे सोए पुरुषको
येन विना	जिस (क्षेत्रज्ञ) के बिना
प्राण इन्द्रिय	प्राण, इन्द्रियाँ,
मनः धियः ओजसा	मन और बुद्धि
उत्थापयितुं न प्रभवन्ति	बलपूर्वक उठानेमें नहीं समर्थ होते ॥७१॥

तमस्मिन् प्रत्यगात्मानं धिया योगप्रवृत्तया ।
भक्त्या विरक्त्या ज्ञानेन विविच्यात्मनि चिन्तयेत् ॥७२॥

तं अस्मिन् प्रत्यगात्मानं धिया योग प्रवृत्तया भक्त्या विरक्त्या ज्ञानेन विविच्य आत्मनि चिन्तयेत् ॥७२॥

अस्मिन्	इस शरीरमें
तं प्रत्यगात्मानं	उस अन्तरात्माको
योग प्रवृत्तया	योगमें लगी
धिया	बुद्धिसे
भक्त्या	भक्तिपूर्वक
विरक्त्या ज्ञानेन	वैराग्य सहित ज्ञानसे
विविच्य	विवेक करके
आत्मनि चिन्तयेत्	अपनेमें ही चिन्तन करे ॥७२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

कपिल उवाच-

प्रकृतिस्थोऽपि पुरुषो नाज्यते प्राकृतैर्गुणैः ।
अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत् ॥१॥

प्रकृतिस्थः अपि पुरुषः न अज्यते प्राकृतैः गुणैः अविकारात् अकर्तृत्वात् निर्गुणत्वात् जल अर्कवत् ॥१॥

जल अर्कवत्	जलमें पड़े सूर्य के प्रतिविम्बके समान
प्रकृतिस्थः अपि	प्रकृतिमें स्थित होने पर भी
पुरुषः	पुरुष
अविकारात्	निर्विकार होनेसे,
अकर्तृत्वात्	अकर्ता होनेसे,
निर्गुणत्वात्	निर्गुण होनेसे
प्राकृतैः गुणैः	प्रकृतिके गुणों (धर्मों) से
न अज्यते	लिप्त नहीं होता ॥१॥

स एष यर्हि प्रकृतेर्गुणेष्वभिविषज्जते ।
अहंक्रियाविमूढात्मा कर्तास्मीत्यभिमन्यते ॥२॥

स एष यर्हि प्रकृतेः गुणेषु अभिविषज्जते अहंक्रिया विमूढ आत्मा कर्ता अस्मि इति अभिमन्यते ॥२॥

स एष	वही यह
यर्हि	जब
प्रकृतेः गुणेषु	प्रकृतिके गुणोंमें
अहंक्रिया	अपने कर्तृत्वके अहंकारसे
विमूढ आत्मा	विमूढ चित्त
अभिविषज्जते	अत्यन्त लिप्त हो जाता है (तब)
कर्ता अस्मि	मैं करने वाला हूँ
इति अभिमन्यते	ऐसा मानने लगता है ॥२॥

तेन संसारपदवीमवशोऽभ्येत्यनिर्वृतः ।
प्रासङ्गिकैः कर्मदोषैः सदसन्मिश्रयोनिषु ॥३॥

तेन संसार पदवीं अवशः अभ्येति अनिर्वृतः प्रासङ्गिकैः कर्मदोषैः सत् असत् मिश्र योनिषु ॥३॥

तेन	उस (अहंकार) के कारण	**अनिर्वृतः**	दुःखी होकर
प्रासङ्गिकैः	संसर्गमें रहने वालों (शरीरादि) के	**सत् असत् मिश्र**	उत्तम, अधम, मध्यम
कर्मदोषैः	कर्मोंके दोषसे	**योनिषु**	योनियोंमें
अवशः	विवश होकर	**संसार पदवीं**	संसारमें
		अभ्येति	बार-बार जन्म लेता है ॥३॥

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥४॥

अर्थे हि अविद्यमाने अपि संसृतिः न निवर्तते ध्यायतः विषयान् अस्य स्वप्ने अनर्थ आगमः यथा ॥४॥

यथा स्वप्ने अनर्थ आगमः	जैसे स्वप्नमें (अनेक) अनर्थ (कष्ट) आते हैं,	**विषयान् ध्यायतः**	भोगोंका चिन्तन करनेसे
हि	वैसे ही	**अस्य संसृतिः**	इस (जीव) का जन्म-मरण चक्र
अर्थे अविद्यमाने आपि	पदार्थोंकी सत्ता न होने पर भी	**न निवर्तते**	नहीं मिटता ॥४॥

अत एव शनैश्चित्तं प्रसक्तमसतां पथि ।
भक्तियोगेन तीव्रेण विरक्त्या च नयेद्वशम् ॥५॥

अत एव शनैः चित्तं प्रसक्तं असतां पथि भक्तियोगेन तीव्रेण विरक्त्या च नयेत् वशम् ॥५॥

अत एव	इसलिए ही	**तीव्रेण विरक्त्या**	तीव्र वैराग्यसे
असतां पथि	असन्मार्गमें	**शनैः वशं नयेत्**	धीरे-धीरे वशमें लावे ॥५॥
प्रसक्तं चित्तं	आसक्त चित्तको		
भक्तियोगेन	भगवानकी भक्तिसे और		

यमादिभिर्योगपथैरभ्यसञ् श्रद्धयान्वितः ।
मयि भावेन सत्येन मत्कथाश्रवणेन च ॥६॥

यम आदिभिः योगपथैः अभ्यसन् श्रद्धया अन्वितः मयि भावेन सत्येन मत्कथा श्रवणेन च ॥६॥

श्रद्धया अन्वितः	श्रद्धा सहित	**मयि भावेन**	
यम आदिभिः	यम (नियम) आदि	**सत्येन**	मुझमें सच्चे भावसे
योगपथैः	योगके साधनोंका	**च मत्कथा**	
अभ्यसन्	अभ्यास करते,	**श्रवणेन**	और मेरी कथा सुनने से ॥६॥

सर्वभूतसमत्वेन निर्वैरेणाप्रसङ्गतः ।
ब्रह्मचर्येण मौनेन स्वधर्मेण बलीयसा ॥७॥

सर्वभूत समत्वेन निर्वैरेण अप्रसङ्गतः ब्रह्मचर्येण मौनेन स्वधर्मेण बलीयसा ॥७॥

सर्वभूत समत्वेन	सब प्राणियोंमें समभाव रखनेसे,	**मौनेन**	मौनसे,
		बलीयसा	
निर्वैरेण	कहीं शत्रुता न रखनेसे,	**स्वधर्मेण**	बलवान (निष्ठापूर्वक) अपने धर्मके पालन-
अप्रसङ्गतः	अनासक्तिसे,		से ॥७॥
ब्रह्मचर्येण	ब्रह्मचर्य पालनसे,		

यदृच्छयोपलब्धेन सन्तुष्टो मितभुङ् मुनिः ।
विविक्तशरणः शान्तो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥८॥

यदृच्छया उपलब्धेन सन्तुष्टः मितभुक् मुनिः विविक्त शरणः शान्तः मैत्रः करुण आत्मवान् ॥८॥

यदृच्छया	बिना मांगे स्वतः	**विविक्त शरणः**	एकान्तमें रहनेवाला
उपलब्धेन	मिले हुएसे	**शान्तः**	शान्त स्वभाव,
सन्तुष्टः	सन्तुष्ट,	**मैत्रः**	सबका मित्र,
मितभुक्	थोड़ा खाने वाला,	**करुण**	कृपा शील,
मुनिः	मननशील,	**आत्मवान्**	धैर्य शाली ॥८॥

सानुबन्धे च देहेऽस्मिन्नकुर्वन्नसदाग्रहम् ।
ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥९॥

स अनुबन्धे च देहे अस्मिन् न कुर्वन् असत् आग्रहं ज्ञानेन दृष्ट तत्त्वेन प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥९॥

स अनुबन्धे	सम्बन्धियोंके साथ	प्रकृतेः	
अस्मिन् देहे च	इस शरीरमें भी	पुरुषस्य च	प्रकृत और पुरुषका
असत् आग्रहं	दुराग्रह	दृष्ट तत्त्वेन	तत्त्व विवेक करने वाले
न कुर्वन्	न करके,	ज्ञानेन	ज्ञानसे ॥९॥

निवृत्तबुद्धचवस्थानो दूरीभूतान्यदर्शनः ।
उपलभ्यात्मनाऽऽत्मानं चक्षुषेवार्कमात्मदृक् ॥१०॥

निवृत्त बुद्धि अवस्थानः दूरीभूत अन्य दर्शनः उपलभ्य आत्मना आत्मानं चक्षुषा एव अर्कं आत्मदृक् ॥१०॥

बुद्धि अवस्थानं	बुद्धिकी (जाग्रतादि) अवस्थाओंसे	आत्मना	
निवृत्त	अतीत होकर	आत्मानं	अपने द्वारा आत्माका
अन्य दर्शनः	दूसरेका दीखना	आत्मदृक्	आत्मदर्शी हो
दूरीभूतः	दूर हो गया,		गया ॥१०॥
चक्षुषा एव अर्कं	नेत्रोंसे सूर्यके समान		

मुक्तलिङ्गं सदाभासमसति प्रतिपद्यते ।
सतो बन्धुमसच्चक्षुः सर्वानुस्यूतमद्वयम् ॥११॥

मुक्तलिङ्गं सत् आभासं असति प्रतिपद्यते सतः बन्धुं असत् चक्षुः सर्वं अनुस्यूतं अद्वयम् ॥११॥

मुक्तलिङ्गं	लिंग शरीरसे मुक्त हो गया,	सतः प्रतिपद्यते	सत्य (ब्रह्म) को प्राप्त हो जाता है,
असति सत् आभासं	असत् (अहंकारादि) में सत्य रूपसे भासनेवाले	बन्धुं	जो (सच्चा) मित्र है,
		असत् चक्षुः	असत् (जगत्) का प्रकाशक है,
		सर्वं अनुस्यूतं अद्वयम्	सबमें व्यापक है, अद्वितीय है ॥११॥

यथा जलस्थ आभासः स्थलस्थेनावदृश्यते ।
स्वाभासेन तथा सूर्यो जलस्थेन दिवि स्थितः ॥१२॥

यथा जलस्य आभासः स्थल स्थेन अवदृश्यते स्व आभासेन तथा सूर्यः जलस्थेन दिवि स्थितः ॥१२॥

यथा स्थल स्थेन	जैसे स्थल (दीवार) पर पड़नेसे	**तथा जलस्थेन**	वैसे ही जलमें पड़े
जलस्य आभासः	जलका (जलमें पड़ा) प्रतिबिम्ब	**आभासेन**	प्रतिबिम्बके द्वारा
अवदृश्यते	देखा जाता है,	**दिवि स्थितः**	आकाशमें स्थित
		सूर्यः	सूर्य (देखा जाता है ।) ॥१२॥

एवं त्रिवृदहङ्कारो भूतेन्द्रियमनोमयैः ।
स्वाभासैर्लक्षितोऽनेन सदाभासेन सत्यदृक् ॥१३॥

एवं त्रिवृत् अहङ्कारः भूत इन्द्रिय मकोमयैः स्व आभासैः लक्षितः अनेन सत् आभासेन सत्यदृक् ॥१३॥

एवं	इसी प्रकार	**लक्षितः**	लक्षित होता है,
त्रिवृत् अहङ्कारः	तीन (वैकारिकादि) भेदवाल अहंकार	**सत् आभासेन**	परमात्माके आभास युक्त
भूत इन्द्रिय मनोमयैः	शरीर, इन्द्रिय तथा मनमें पड़े	**अनेन**	इस (अहंकार) द्वारा
स्व आभासैः	अपने आभाससे	**सत्यदृक्**	ज्ञान स्वरूप (परमात्मा लक्षित होता है) ॥१३॥

भूतसूक्ष्मेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिष्विह निद्रया ।
लीनेष्वसति यस्तत्र विनिद्रो निरहंक्रियः ॥१४॥

भूत सूक्ष्म इन्द्रिय मनः बुद्धि आदिषु इह निद्रया लीनेषु असति यः तत्र विनिद्रः निरहंक्रियः ॥१४॥

इह	इस (संसार) में	**असति**	न होने पर भी
निद्रया लीनेषु	निद्रामें लीन होनेसे	**यः तत्र**	जो वहाँ
भूत सूक्ष्म इन्द्रिय मन बुद्धि आदिषु	शरीर सूक्ष्म इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिके	**विनिद्रः**	जागृत
		निरहंक्रियः	अहंकार रहित (रहता है) ॥१४॥

मन्यमानस्तदाऽऽत्मानमनष्टौ नष्टवन्मृषा ।
नष्टेऽहङ्करणे द्रष्टा नष्टवित्त इवातुरः ॥१५॥

मन्यमानः तदा आत्मानं अनष्टौ नष्टवत् मृषा नष्टे अहङ्करणे द्रष्टा नष्ट वित्त इव आतुरः ॥१५॥

तदा अहङ्करणे	उस समय (सुषुप्तिमें) अहंकारके	**मृषा नष्टवत्**	झूठे ही नष्टके समान
नष्टे	नाश (लय) हो जाने पर	**मन्यमानः**	मानता हुआ
द्रष्टा	(उसको) देखने वाला आत्मा	**नष्ट वित्त इव**	जिसके धन नष्ट हुआ हो उसके समान
अनष्टौ	नष्ट न होने पर भी	**आतुरः**	व्याकुल होता है ॥१५॥

एवं प्रत्यवमृश्यासावात्मनं प्रतिपद्यते ।
साहङ्कारस्य द्रव्यस्य योऽवस्थानमनुग्रहः ॥१६॥

एवं प्रति अवमृश्य असा आत्मानं प्रति पद्यते स अहङ्कारस्य द्रव्यस्य यः अवस्थानं अनुग्रहः ॥१६॥

एवं प्रति अवमृश्य	इस प्रकार (आत्माके) सम्बन्धमें विचार करके	**यः अवस्थानं अनुग्रहः**	जो अधिष्ठान (और) प्रकाशक है
स अहङ्कारस्य द्रव्यस्य	अहंकार सहित सब पदार्थोंका	**असा आत्मानं प्रति पद्यते**	यह आत्मा है (यह) जाना जाता है ॥१६॥

देवहूतिरुवाच-

पुरुषं प्रकृतिर्ब्रह्मन्न विमुञ्चति कर्हिचित् ।
अन्योन्यापाश्रयत्वाच्च नित्यत्वादनयोः प्रभो ॥१७॥

पुरुषं प्रकृतिः ब्रह्मन् न विमुञ्चति कर्हिचित् अन्योन्य अपाश्रय त्वात् च नित्यत्वात् अनयोः प्रभो ॥१७॥

ब्रह्मन् प्रभो ब्रह्मन् ! प्रभो !
अन्योन्य उपाश्रय
त्वात् एक दूसरे पर अवलम्बित होनेसे,
च अनयोः नित्य-
त्वात् और इन दोनोंके नित्य होनेसे
प्रकृतिः पुरुषं प्रकृति पुरुषको
कर्हिचित् कभी भी
न विमुञ्चति नहीं छोड़ती ॥१७॥

यथा गन्धस्य भूमेश्च न भावो व्यतिरेकतः ।
अपां रसस्य च यथा तथा बुद्धेः परस्य च ॥१८॥

यथा गन्धस्य भूमेः च न भावः व्यतिरेकतः अपां रसस्य च यथा तथा बुद्धेः परस्य च ॥१८॥

यथा गन्धस्य च
भूमेः जैसे गन्धका और पृथ्वीका
रसस्य च अपां रसका और जलका
तथा बुद्धेः च
परस्य वैसे ही प्रकृतिका और पुरुषका
व्यतिरेकतः पृथक
भावः न सत्ता नहीं है ॥१८॥

अकर्तुः कर्मबन्धोऽयं पुरुषस्य यदाश्रयः ।
गुणेषु सत्सु प्रकृतेः कैवल्यं तेष्वतः कथम् ॥१९॥

अकर्तुः कर्म बन्धः अयं पुरुषस्य यत् आश्रयः गुणेषु सत्सु प्रकृतेः कैवल्यं तेषु अतः कथम् ॥१९॥

यत् आश्रयः जिनके सहारे रहनेसे
अकर्तुः पुरुषस्य अकर्ता पुरुषका
अयं कर्म बन्धः यह कर्मोंका बन्धन है,
तेषु प्रकृतेः इन प्रकृतिके
गुणेषु सत्सु गुणोंके रहते
अतः कैवल्यं कथं फिर कैवल्य कैसे प्राप्त होगा ? ॥१९॥

क्वचित् तत्त्वावमर्शेन निवृत्तं भयमुल्बणम् ।
अनिवृत्तनिमित्तत्वात्पुनः प्रत्यवतिष्ठते ॥२०॥

क्वचित् तत्त्व अवमर्शेन निवृत्तं भयं उल्बणं अनिवृत्त निमित्त त्वात् पुनः प्रत्यवतिष्ठते ॥२०॥

तत्त्व अवमर्शेन	तत्त्व विचारसे	निमित्त अनिवृत्त	(उसके) कारणके बने रहनेसे
क्वचित्	कभी	पुनः प्रत्यवष्ठिते	फिर आ जायगा ॥२०॥
उल्बणं भयं	भयानक (जन्म-मरणरूप) भय		
निवृत्तं	छूट भी जाय तो		

कपिल उवाच–

अनिमित्तनिमित्तेन स्वधर्मेणामलात्मना ।
तीव्रया मयि भक्त्या च श्रुतसम्भृतया चिरम् ॥२१॥

अनिमित्त निमित्तेन स्वधर्मेण अमलात्मना तीव्रया मयि भक्त्या च श्रुत सम्भृतया चिरम् ॥२१॥

अनिमित्त निमित्तेन	निष्काम भावसे पालन किए गये	च चिरं तीव्रया	और बहुत समय तक
स्वधर्मेण	अपने धर्मसे	श्रुत सम्भृतया	(कथा) सुननेसे उत्पन्न
अमलात्मना	निर्मल चित्त हुए	मयि भक्त्या	मुझमें भक्तिसे ॥२१॥

ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन वैराग्येण बलीयसा ।
तपोयुक्तेन योगेन तीव्रेणात्मसमाधिना ॥२२॥

ज्ञानेन दृष्ट तत्त्वेन वैराग्येण बलीयसा तपोयुक्तेन योगेन तीव्रेण आत्मसमाधिना ॥२२॥

दृष्ट तत्त्वेन	तत्त्व दर्शन कराने वाले	तपोयुक्तेन योगेन	तपस्या सहित योगसे,
ज्ञानेन	ज्ञानसे,		
बलीयसा वैराग्येण	बलवान वैराग्यसे,	तीव्रेण आत्मसमाधिना	तीव्र चित्तकी एकाग्रतासे ॥२२॥

प्रकृतिः पुरुषस्येह दह्यमाना त्वहर्निशम् ।
तिरोभवित्री शनकैरग्नेर्योनिरिवारणिः ॥२३॥

प्रकृतिः पुरुषस्य इह दह्यमाना तु अहर्निशं तिरोभवित्री शनकैः अग्नेः योनिः इव अरणिः ॥२३॥

अग्नेः योनिः	अग्निके उत्पत्ति स्थान	**अहर्निशं तु**	रात-दिन ही
अरणिः इव	काष्ठके समान	**दह्यमाना**	जलती हुई
इह पुरुषस्य	यहां (जीवनमें) पुरुषकी	**शनकैः**	धीरे-धीरे
प्रकृतिः	प्रकृति	**तिरोभवित्री**	लुप्त हो जाती है ॥२३॥

भुक्तभोगा परित्यक्ता दृष्टदोषा च नित्यशः ।
नेश्वरस्याशुभं धत्ते स्वे महिम्नि स्थितस्य च ॥२४॥

भुक्तभोगा परित्यक्ता दृष्टदोषा च नित्यशः न ईश्वरस्य अशुभं धत्ते स्वे महिम्नि स्थितस्य च ॥२४॥

नित्यशः दृष्टदोषा	नित्यप्रति दोष देखकर	**स्थितस्य च**	स्थित हुए और
		ईश्वरस्य	समर्थ पुरुषका
भुक्तभोगा	भोग भोगकर	**अशुभं न धत्ते**	अकल्याण नहीं करपाती ॥२४॥
परित्यक्ता	त्यागी हुई (प्रकृति)		
स्वे महिम्नि	अपनी महिमामें		

यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ।
स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥२५॥

यथा हि अप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापः बहु अनर्थभृत् स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥२५॥

हि यथा	क्योंकि जैसे	**स एव वै**	वही निश्चय
अप्रतिबुद्धस्य	सोते रहने वालेके लिए	**प्रतिबुद्धस्य**	जग जाने वालेको
		मोहाय न	
प्रस्वापः	स्वप्न	**कल्पते**	मोह नहीं उत्पन्न करता ॥२५॥
बहु अनर्थभृत्	बहुत अनर्थ देने वाला होता है,		

एवं विदिततत्त्वस्य प्रकृतिर्मयि मानसम् ।
युञ्जतो नापकुरुत आत्मारामस्य कर्हिचित् ॥२६॥

एवं विदिततत्त्वस्य प्रकृतिः मयि मानसंयुञ्जतः न अपकुरुत आत्मारामस्य कर्हिचित् ॥२६॥

एव	
विदिततत्त्वस्य	इसी प्रकार तत्त्वज्ञान हुए
मयि मानसः	मुझमें मन
युञ्जतः	लगाने वाले
आत्मारामस्य	आत्मारामका
प्रकृतिः न	
अपकुरुत	प्रकृति अपकार नहीं करती ॥२६॥

यदैवमध्यात्मरतः कालेन बहुजन्मना ।
सर्वत्र जातवैराग्य आब्रह्मभुवनान्मुनिः ॥२७॥

यत् एव अध्यात्मरतः कालेन बहुजन्मना सर्वत्र जात वैराग्यः आब्रह्मभुवनात् मुनिः ॥२७॥

बहुजन्मना	बहुत जन्मोंमें
कालेन	बहुत समयमें
आब्रह्मभुवनात्	ब्रह्मलोक तक
सर्वत्र जात	
वैराग्यः	सर्वत्र वैराग्य उत्पन्न होने पर
यत एव मुनिः	
अध्यात्मरतः	मुनि जब भी आत्म चिन्तनमें निमग्न होता है ॥२७॥

मद्भक्तः प्रतिबुद्धार्थो मत्प्रसादेन भूयसा ।
निःश्रेयसं स्वसंस्थानं कैवल्याख्यं मदाश्रयम् ॥२८॥

मद्भक्तः प्रतिबुद्ध अर्थः मत्प्रसादेन भूयसा निःश्रेयसं स्वसंस्थानं कैवल्याख्यं मत् आश्रयम् ॥२८॥

मद्भक्तः	मेरा भक्त होता है,
प्रतिबुद्ध अर्थः	तत्त्व ज्ञान होता है,
भूयसा	
मत्प्रसादेन	मेरी महती कृपासे
मत् आश्रयं	मेरे आश्रित
स्वसंस्थानं	अपने परमस्थान
निःश्रेयसं	आत्यन्तिक कल्याण
कैवल्याख्यं	जिसे कैवल्य कहते हैं ॥२८॥

प्राप्नोतीहाञ्जसा धीरः स्वदृशाच्छिन्नसंशयः ।
यद्गत्वा न निवर्तेत योगी लिङ्गाद्विनिर्गमे ॥२९॥

प्राप्नोति इह अञ्जसा धीरः स्वदृशा छिन्न संशयः यद् गत्वा न निवर्तेत योगी लिङ्गात् विनिर्गमे ॥२९॥

धीरः	धीर पुरुष	यद् गत्वा	जहां जाकर
स्वदृशा	अपने ही ज्ञानसे (उसके सब)	योगी न निवर्तेत	योगी नहीं लौटता
छिन्न संशयः	संशय कट जाते हैं।	इह अञ्जसा	इसी (जीवन) में सरलतासे
लिङ्गात् विनिर्गमे	लिंग शरीरसे निकल जानेपर	प्राप्नोति	इच्छा पाता है ॥२९॥

यदा न योगोपचितासु चेतो
मायासु सिद्धस्य विषज्जतेऽङ्ग ।
अनन्यहेतुष्वथ मे गतिः स्याद्
आत्यन्तिकी यत्र न मृत्युहासः ॥३०॥

यदा न योगः उपचितासु चेतः मायासु सिद्धस्य विषज्जते अङ्ग अनन्यहेतुषु अथ मे गतिः स्यात् आत्यन्तिकी यत्र न मृत्युहासः ॥३०॥

अङ्ग	प्यारी मां !	आत्यन्तिकी गति	आत्यन्तिक गति (परम-पद)
यदा योगः उपचितासु	जब योगसे प्राप्त	स्यात्	प्राप्त होती है
अनन्यहेतुषु	जिनको पानेका (योगके अतिरिक्त) दूसरा साधन नहीं है	यत्र मृत्युहासः न	जहाँ मृत्युका हास्य नहीं है (जो अविनाशी-पद है।) ॥३०॥
मायासु	माया (सिद्धियों) में		
सिद्धस्य	सिद्ध पुरुषकी		
न विषज्जते	आसक्ति नहीं होती		
अथ मे	तब मेरी (वह)		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथ अष्टविंशोऽध्यायः

कपिल उवाच-

योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे ।
मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम् ॥१॥

योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे मनः येन एव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम् ॥१॥

नृपात्मजे	राजपुत्री !
सबीजस्य	बीज (आलम्बन) युक्त
योगस्य लक्षणं	योगका लक्षण
वक्ष्ये	बतलाता हूँ
येन विधिना एव	जिस विधिसे ही
मनः प्रसन्नः	मन शुद्ध होकर
सत्पथं	परमात्माके मार्गमें
याति	जाता है ॥१॥

स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम् ।
दैवाल्लब्धेन सन्तोष आत्मवित्चरणार्चनम् ॥२॥

स्वधर्मं आचरणं शक्त्या विधर्मात् च निवर्तनं दैवात् लब्धेन सन्तोषः आत्मवित् चरण अर्चनम् ॥२॥

शक्त्या	शक्तिके अनुसार
स्वधर्मं आचरणं	अपने धर्मका आचरण,
च विधर्मात्	और विपरीत आचरणका
निवर्तनं	परित्याग,
दैवात् लब्धेन	प्रारब्धानुसार जो मिले
सन्तोषः	उसमें सन्तुष्ट रहना,
आत्मवित्	आत्मज्ञानी (पुरुषोंके)
चरण अर्चनं	चरणोंकी पूजा ॥२॥

ग्राम्यधर्मनिवृत्तिश्च मोक्षधर्मरतिस्तथा ।
मितमेध्यादनं शश्वद्विविक्तक्षेमसेवनम् ॥३॥

ग्राम्य धर्म निवृत्तिः च मोक्षधर्म रतिः तथा मित मेध्य अदनं शश्वत् विविक्त क्षेम सेवनम् ॥३॥

च ग्राम्य धर्म	और कामासक्तिको
निवृत्तिः	त्याग देना,
तथा मोक्षधर्म	तथा मुक्त करने वाले साधनोंमें
रतिः	प्रीति होना,
शश्वत् मित	निरन्तर परमित
मेध्य अदनं	पवित्र भोजन करना,
विविक्त क्षेम	एकान्तमें उपद्रवहीन स्थानमें
सेवनम्	रहना ॥३॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं यावदर्थपरिग्रहः ।
ब्रह्मचर्यं तपः शौचं स्वाध्यायः पुरुषार्चनम् ॥४॥

अहिंसा सत्यं अस्तेयं यावत् अर्थः परिग्रहः ब्रह्मचर्यं तपः शौचं स्वाध्यायः पुरुष अर्चनम् ॥४॥

अहिंसा सत्यं	अहिंसा, सत्य,
अस्तेयं	चोरी न करना,
यावत् अर्थः	जितना प्रयोजन हो
परिग्रहः	(उतना ही) संग्रह रखना,
ब्रह्मचर्यं	ब्रह्मचर्यका पालन करना
तपः, शौचं	तपस्या, पवित्रता,
स्वाध्यायः	जप
पुरुष अर्चनं	भगवानकी पूजा करना ॥४॥

मौनं सदाऽऽसनजयस्थैर्यं प्राणजयः शनैः ।
प्रत्याहारश्चेन्द्रियाणां विषयान्मनसा हृदि ॥५॥

मौनं सदा आसन जयः स्थैर्यं प्राणजयः शनैः प्रत्याहारः च इन्द्रियाणां विषयात् मनसा हृदि ॥५॥

मौनं	वाणीका संयम,
सदा आसन	
जयः	बराबर स्थिर बैठे रहना,
स्थैर्यं	स्थिर रहना,
शनैः प्राणजयः	धीरे-धीरे श्वास जीतना,
च इन्द्रियाणां	और इन्द्रियोंको
विषयात्	भोगोंसे
मनसा	मनके द्वारा
हृदि प्रत्याहारः	हृदयमें खींचकर रोक रखना ॥५॥

स्वधिष्ण्यानामेकदेशे मनसा प्राणधारणम् ।
वैकुण्ठलीलाभिध्यानं समाधानं तथाऽऽत्मनः ॥६॥

स्वधिष्ण्यानां एकदेशे मनसा प्राण धारणं वैकुण्ठ लीला अभिध्यानं समाधानं तथा आत्मनः ॥६॥

स्वधिष्ण्यानां	अपने (मूलाधारादि) किसी केन्द्रमें	वैकुण्ठ लीला	भगवान नारायणकी लीलाओंका
एकदेशे	एक स्थानमें	अभिध्यानं	भली प्रकार चिन्तन करना,
मनसा प्राण धारण	मनके द्वारा प्राण लगाना,	तथा आत्मनः समाधानं	तथा चित्तको समाहित (एकाग्र) करना ॥६॥

एतैरन्यैश्च पथिभिर्मनो दुष्टमसत्पथम् ।
बुद्धया युञ्जीय शनकैर्जितप्राणो ह्यतन्द्रितः ॥७॥

एतैः अन्यैः च पथिभिः मनः दुष्टं असत्पथं बुद्ध्या युञ्जीत् शनकैः जितप्राणः हि अतन्द्रितः ॥७॥

एतैः अन्यैः च	इनसे और दूसरे भी	जितप्राणः	श्वासको जीतकर
पथिभिः	साधनोंसे	बुद्ध्या	बुद्धि द्वारा
दुष्ट असत्पथं	दुष्ट कुमार्गगामी	शनकैः युञ्जीत्	धीरे-धीरे एकाग्र करे ॥७॥
मनः	चित्तको		
हि अतन्द्रितः	निश्चित सावधान रहकर		

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य विजितासन आसनम् ।
तस्मिन् स्वस्ति समासीन ऋजुकायः समभ्यसेत् ॥८॥

शुचौदेशे प्रतिष्ठाप्य विजित आसन आसनं तस्मिन् स्वस्ति सम आसीनः ऋजुकायः समभ्यसेत् ॥८॥

विजित आसन	पहिले आसन जीत ले,
शुचौदेशे	पवित्र स्थानमें
आसनं प्रतिष्ठाप्य	आसन स्थापित करके*
तस्मिन् स्वस्ति	उस पर सुखपूर्वक
ऋजुकायः	शरीर सीधा करके
सम आसीनः	भली प्रकार बैठकर
समभ्यसेत्	अभ्यास करे ॥८॥

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः ।
प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिरमचञ्चलम् ॥९॥

प्राणस्य शोधयेत् मार्गं पूर कुम्भक रेचकैः प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिरं अचञ्चलम् ॥९॥

पूर कुम्भक रेचकैः	पूरक,कुम्भक, रेचक करके
वा	अथवा
प्रतिकूलेन	उलटे (रेचक, कुम्भक, पूरक करके)
प्राणस्य मार्गं	प्राणके मार्गको
शोधयेत्	शुद्ध करे,
यथा चित्तं	जिससे चित्त
स्थिरं अचञ्चलं	चञ्चलता छोड़कर स्थिर हो ॥९॥

मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः ।
वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम् ॥१०॥

मनः अचिरात् स्यात् विरजं जितश्वासस्य योगिनः वायु अग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम् ॥१०॥

जितश्वासस्य	श्वास जीत लेने वाले
योगिनः मनः	योगीका मन
अचिरात्	अविलम्ब
विरजं स्यात्	निर्मल हो जाता है,
यथा	जैसे
वायु अग्निभ्यां	वायु तथा अग्निसे
ध्मातं लोहं	धौंका गया लोहा
वै मलं त्यजति	निश्चित मैलको छोड़ देता है ॥१०॥

---

* कुशासन, उसपर मृग-चर्म, उसपर वस्त्र बिछाकर इस योग-साधनाके आसनको हटावे नहीं ।

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषान् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥११॥

प्राणायामैः दहेत् दोषान् धारणाभिः च किल्बिषान् प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेन अनीश्वरान् गुणान् ॥११॥

प्राणायामैः	प्राणायामसे	**संसर्गान्**	विषय-सम्बन्धको
दोषान्	(वात-पित्तादिसे उत्पन्न) दोषोंको,		(तथा)
		ध्यानेन	ध्यानके द्वारा
च धारणाभिः	और धारणासे	**अनीश्वरान्**	
किल्बिषान्	पाप वासनाको,	**गुणान्**	भगवद्विमुख करने वाले दुर्गुणोंको
प्रत्याहारेण	प्रत्याहार (इन्द्रियों-को बाहरसे हटाकर)	**दहेत्**	जला दे ॥११॥

यदा मनः स्वं विरजं योगेन सुसमाहितम् ।
काष्ठां भगवतो ध्यायेत्स्वनासाग्रावलोकनः ॥१२॥

यदा मनः स्वं विरजं योगेन सुसमाहितः काष्ठां भगवतः ध्यायेत् स्वनासाग्र अवलोकनः ॥१२॥

यदा स्वं मनः	जब अपना मन	**स्व नासग्र**	अपनी नाकके अग्रभाग*
योगेन	योग करनेसे	**अवलोकनः**	देखते हुए
विरजं		**भगवतः काष्ठां**	(तब) भगवानकी मूर्तिका
सुसमाहितः	निर्मल और अत्यन्त एकाग्र हो जाय	**ध्यायेत्**	ध्यान करे ॥१२॥

---

* नासाग्रके अर्थमें आचार्योंमें मतभेद है—

१. अधिक लोक भ्रूमध्यको नासाग्र मानते हैं।

२. नाककी नोकको कुछ आचार्य नासाग्र मानते हैं।

३. नाककी हडी समाप्त होकर जहाँसे नरम भाग प्रारम्भ होता है उसे भी कुछ आचार्य नासाग्र मानते हैं।

प्रसन्नवदनाम्भोजं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥१३॥

प्रसन्न वदन अम्भोजं पद्मगर्भ अरुण ईक्षणं नील उत्पलदल श्यामं शङ्ख चक्र गदा धरम् ॥१३॥

प्रसन्न वदन		**नील उत्पलदल**	नील कमलदलके समान
अम्भोजं	प्रफुल्लित मुख-कमल	**श्यामं**	श्याम वर्ण
पद्मगर्भं	कमलके भीतरी भागके समान	**शङ्ख चक्र गदा**	शंख, चक्र, गदाधारी ॥१३॥
अरुण ईक्षणं	रतनारे नेत्र	**धरं**	

लसत्पङ्कजकिञ्जल्कपीतकौशेयवाससम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ॥१४॥

लसत् पङ्कज किञ्जल्क पीत कौशेय वाससं श्रीवत्स वक्षसं भ्राजत् कौस्तुभ आमुक्त कन्धरम् ॥१४॥

पङ्कज किञ्जल्क	कमल परागके समान	**भ्राजत्**	शोभायमान है,
पीत कौशेय वाससं	पीले रेशमी वस्त्रसे	**कन्धरं**	कन्धोंके मध्य (गलेमें)
लसत्	सुशोभित,	**कौस्तुभ आमुक्तं**	कौस्तुभमणि पहिने हैं ॥१४॥
श्रीवत्स वक्षसं	श्रीवत्स-चिह्न वक्षस्थलपर		

मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया ।
परार्ध्यहारवलयकिरीटाङ्गदनूपुरम् ॥१५॥

मत्तद्विरेफ कलया परीतं वनमालया परार्घ्यं हार वलय किरीट अङ्गद नूपुरम् ॥१५॥

मत्तद्विरेफ कलया परीतं	मतवाले भौंरोंकी गुंजारसे गुँजित	**वनमालया**	वनमाला (पहिने हैं)

परार्घ्य	बहुमूल्य	**किरीट अङ्गद**	
हार बलय	हार, कङ्कण,	**नूपुरं**	मुकुट, अङ्गद, नूपुर (से भूषित हैं) ॥१५॥

काञ्चीगुणोल्लसच्छ्रोणिं हृदयाम्भोजविष्टरम् ।
दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥१६॥

काञ्ची गुण उल्लसत् श्रोणिं हृदय अम्भोज विष्टरं दर्शनीयतमं शान्तं मनः नयन वर्धनम् ॥१६॥

काञ्ची गुण	करधनीसे	**शान्तं**	शान्त
श्रोणि उल्लसत्	नितम्ब शोभित हैं,	**मनः नयन**	मन और नेत्रोंको
हृदय अम्भोज	हृदय कमलके	**वर्धनं**	आनन्द देनेवाले
विष्टरं	आसनपर आसीन		हैं ॥१६॥
दर्शनीयतमं	अत्यन्त दर्शनीय		

अपीच्यदर्शनं शश्वत्सर्वलोकनमस्कृतम् ।
सन्तं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रहकातरम् ॥१७॥

अपीच्य दर्शनं शश्वत् सर्वलोक नमस्कृतं सन्तं वयसि कैशोरे भृत्य अनुग्रह कातरम् ॥१७॥

अपीच्य दर्शनं	मनोहर झाँकी है,	**सन्तं वयसि**	
शश्वत्	सदा	**कैशोरे**	किशोरावस्थाके हैं,
सर्वलोक		**भृत्य अनुग्रह**	भक्तोंपर कृपा
नमस्कृतं	सब लोकोंसे		करनेको
	नमस्कृत है,	**कातरं**	उत्सुक हैं ॥१७॥

कीर्तन्यतीर्थयशसं पुण्यश्लोकयशस्करम् ।
ध्यायेद्देवं समग्राङ्गं यावन्न च्यवते मनः ॥१८॥

कीर्तन्य तीर्थ यशसं पुण्य श्लोक यशस्करं ध्यायेत् देवं समग्र अङ्गं यावत् न च्यवते मनः ॥१८॥

तीर्थं यशसः	उनका पावन यश
कीर्तन्य	कीर्तनीय है,
पुण्य श्लोक	पवित्र कीर्ति (लोगों) के
यशस्करं	यशको बढ़ानेवाले हैं,
देवं	भगवान नारायणके
समग्र अङ्गं	(इस प्रकार) सम्पूर्ण शरीरका
ध्यायेत्	ध्यान करे,
यावत् मनः	जब तक मन
च्यवते न	(वहाँसे) हटे नहीं ॥१८॥

स्थितं व्रजन्तमासीनं शयानं वा गुहाशयम् ।
प्रेक्षणीयेहितं ध्यायेच्छुद्धभावेन चेतसा ॥१९॥

स्थितं व्रजन्तं आसीनं शयानं वा गुहाशयं प्रेक्षणीय ईहितं ध्यायेत् शुद्ध भावेन चेतसा ॥१९॥

स्थितं व्रजन्तं	खड़े, चलते,
आसीनं	बैठे,
शयानं	लेटे हुए
वा गुहाशयं	अथवा अन्तर्यामी रूपमें
प्रेक्षणीय ईहितं	दर्शनीय चेष्टा करते (भगवानका)
शुद्ध भावेन	शुद्ध भाव सहित
चेतसा ध्यायेत्	चित्तसे ध्यान करे ॥१९॥

तस्मिँल्लब्धपदं चित्तं सर्वावयवसंस्थितम् ।
विलक्ष्यैकत्र संयुज्यादङ्गे भगवतो मुनिः ॥२०॥

तस्मिन् लब्धपदं चित्तं सर्व अवयव संस्थितं विलक्ष्य एकत्र संयुज्यात् अङ्गे भगवतः मुनिः ॥२०॥

तस्मिन्	उस
सर्व अवयव संस्थितं	सर्वाङ्गपूर्ण मूर्तिमें
लब्धपदं चित्तं	भली प्रकार लग गये चित्तको
विलक्ष्य	ठीक-ठीक देखकर
मुनिः	योगी
भगवतः	भगवान्के
एकत्र अङ्गे	एक-एक अङ्गमें
संयुञ्जात्	(चित्त) लगावे ॥२०॥

सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं
वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम् ।

उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवाल-
ज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम् ॥२१॥

सञ्चिन्तयेत् भगवतः चरण अरविन्दं वज्र अंकुश ध्वज सरोरुह लाञ्छन आढ्यं उत्तुङ्ग रक्त विलसत् नख चक्रवाल ज्योत्स्नाभिः आहत् महत् हृदय अन्धकारम् ॥२१॥

वज्र अंकुश	वज्र, अंकुश,	विलसत्	सुशोभित
ध्वज सरोरुह	ध्वजा, कमल,	नख चक्रवाल	नख-मण्डलकी
लाञ्छन आढ्यं	चिह्नोंसे सम्पन्न	ज्योत्स्नाभिः	चन्द्रिकासे
भगवतः	भगवानके	महत्	घोर
चरण अरविन्दं	चरण-कमलोंका	हृदय अन्धकारं	हृदयके अन्धकारको
सञ्चिन्तयेत्	चिन्तन करे।	आहत	नष्ट कर रहे
उत्तुंङ्ग रक्त	(जो) ऊँचे, लाल,		हैं ॥२१॥

यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन
तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् ।
ध्यातुर्मनः शमलशैलनिसृष्टवज्रं
ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम् ॥२२॥

यत् शौच निःसृत् सरित् प्रवर उदकेन तीर्थेन मूर्ध्नि अधिकृतेन शिवः शिवः अभूत् ध्यातुः मनः शमल शैल निसृष्ट वज्रं ध्यायेत् चिरं भगवतः चरणार विन्दम् ॥२२॥

यत् शौच	जिनको धोनेसे	ध्यातुः मनः	ध्यान करने वालेके मनके
निःसृत्	निकली हुई		
सरित् प्रवर	नदी श्रेष्ठ (गंगाजी) के	शमल शैल	पाप-रूपी पर्वतको (नष्ट करनेको)
तीर्थेन उदकेन	पावन जलको	निसृष्ट वज्रं	छोड़े हुए वज्रके समान
मूर्ध्नि अधिकृतेन	मस्तकपर धारण करनेसे	भगवतः	भगवानके
शिवः शिवः		चरणार विन्दं	चरण-कमलोंका
अभूत्	शंकरजी कल्याण-रूप हो गये,	चिरं ध्यायेत्	देर तक ध्यान करे ॥२२॥

जानुद्वयं जलजलोचनया जनन्या
लक्ष्म्याखिलस्य सुरवन्दितया विधातुः ।
ऊर्वोर्निधाय करपल्लवरोचिषा यत्
संलालितं हृदि विभोरभवस्य कुर्यात् ॥२३॥

जानुद्वयं जलजलोचनया जनन्या लक्ष्म्याः अखिल सुरवन्दितया विधातुः उर्वोः निधाय करपल्लव रोचिषा यत् संलालितं हृदि विभोः अभवस्य कुर्यात् ॥२३॥

जलज-	
लोचनयाः	कमल नयना,
विधातुः जनन्याः	ब्रह्माजीकी जननी,
अखिल	
सुरवन्दितया	समस्त सुरोंसे वन्दिता
लक्ष्म्याः	लक्ष्मीजी द्वारा
उर्वोः निधाय	जांघपर रखकर
करपल्लव	
रोचिषा	हस्त-पल्लवकी कान्तिमें
यत् संलालितं	जिसका लाड़ लड़ाया जाता है
विभोः अभवस्य	सर्वव्यापक अजन्मा भगवानके
जानुद्वयं	दोनों पिण्डलियोंका
हृदि कुर्यात्	हृदयमें (चिन्तन) करे ॥२३॥

ऊरू सुपर्णभुजयोरधिशोभमाना-
वोजोनिधी अतसिकाकुसुमावभासौ ।
व्यालम्बिपीतवरवाससि वर्तमान-
काञ्चीकलापपरिरम्भि नितम्बबिम्बम् ॥२४॥

ऊरू सुपर्ण भुजयोः अधिशोभमानः ओजोनिधिः अतसिका कुसुम अवभासौ व्यालम्बि पीतवर वाससि वर्तमान काञ्चीकलाप परिरम्भि नितम्बविम्बम् ॥२४॥

सुपर्ण भुजयोः	गरुड़की भुजाओंपर
अधिशोभमानः	अत्यन्त सुशोभित
ओजोनिधिः	तेजोमय
अतसिका कुसुम	अलसीके पुष्पके
अवभासौ	रंगके समान
उरूः	जाँघें

पीतवर वाससि	श्रेष्ठ पीताम्बर	**परिरम्भि**	घेरनेवाली
व्यालम्बि	लटकनेसे ढँके हैं,	**काञ्चीकलाप**	करघनीकी लड़ी
नितम्बविम्बं	नितम्बोंको	**वर्तमान**	पड़ी है ॥२४॥

नाभिह्रदं भुवनकोशगुहोदरस्थं
यत्रात्मयोनिधिषणाखिललोकपद्मम् ।
व्यूढं हरिन्मणिवृषस्तनयोरमुष्य
ध्यायेद् द्वयं विशदहारमयूखगौरम् ॥२५॥

नाभि ह्रदं भुवनकोश गुह उदरस्थं यत्र आत्मयोनि धिषण अखिल लोक पद्मं व्यूढं हरित् मणि वृषः स्तनयोः अमुष्य ध्यायेत् द्वयं विशदहार मयूख गौरम् ॥२५॥

भुवनकोश गुह	सब लोकोंकी (निवास) गुफा रूप	**अखिल लोक पद्मं**	सर्वलोकमय कमल है ।
उदरस्थं	(भगवानके) उदरमें स्थित	**अमुष्य वृषः**	(फिर) इन वरदके
नाभि ह्रदं	नाभि सरोवरका (ध्यान करे)	**हरित् मणि व्यूढं**	मरकत-मणिके समान
यत्र	जिसमें	**विशदहार**	शुभ्र हारकी
आत्मयोनि		**मयूख गौरं**	किरणोंसे उज्ज्वल लगते
धिषण	ब्रह्माजीका आधार स्थान	**द्वयोः स्तनयोः**	दोनों स्तनोंका
		ध्यायेत्	ध्यान करे ॥२५॥

वक्षोऽधिवासमृषभस्य महाविभूतेः
पुंसां मनोनयननिर्वृतिमादधानम् ।
कण्ठं च कौस्तुभमणेरधिभूषणार्थं
कुर्यान्मनस्यखिललोकनमस्कृतस्य ॥२६॥

वक्षः अधिवासं ऋषभस्य महाविभूतेः पुंसां मनः नयन निर्वृतिं आदधानं कण्ठं च कौस्तुभमणेः अधिभूषणार्थं कुर्यात् मनसि अखिल लोक नमस्कृतस्य ॥२६॥

महाविभूतेः	महालक्ष्मीके		करनेके लिए
अधिवासं	निवास-स्थान,		(पहिने)
मनः नयन	मन और नेत्रोंको	**अखिल लोक**	सब लोकोंसे
निर्वृतिं		**नमस्कृतस्य**	
आदधानं	परमानन्द देनेवाले	**कण्ठं**	नमस्कृत(भगवानके)
पुंसां वक्षः	परमपुरुषके		कण्ठका
	वक्षस्थलका	**मनसि कुर्यात्**	मनसे चिन्तन
च कौस्तुभमणेः	तथा कौस्तुभमणिको		करे ॥२६॥
अधिभूषणार्थं	अधिक शोभित		

बाहूंश्च मन्दरगिरेः परिवर्तनेन
निर्णिक्तबाहुबलयानधिलोकपालान् ।
सञ्चिन्तयेद्दशशतारमसह्यतेजः
शङ्खं च तत्करसरोरुहराजहंसम् ॥२७॥

बाहून् च मन्दरगिरेः परिवर्तनेन निर्णिक्त बाहुवलयान् अधिलोकपालान् सञ्चिन्तयेत् दशशत अरं असह्य तेजः शङ्खं च तत् करसरोरुह राजहंसम् ॥२७॥

अधिलोकपालान्	सब लोकोंकी पालिका एवं आश्रय-भूता	**बाहुवलयान**	(उन) भुजाओंमें पड़े कङ्कणोंका,
बाहून् च	चारों भुजाओंका तथा	**दशशत अरं**	सहस्र धारवाले
मन्दरगिरेः	मन्दराचलको (अमृत मन्थन समय)	**असह्य तेजः**	असह्यतेजा (चक्र) का
		च तत् करसरोरुह	तथा उनके कर-कमलमें स्थित
परिवर्तनेन	घुमाते समय रगड़ लगनेसे)	**राजहंसं शङ्खं**	राजहंसके समान शङ्खका
निर्णिक्त	उज्ज्वल हुए	**सञ्चिन्तयेत्**	चिन्तन करे ॥२७॥

कौमोदकीं भगवतो दयितां स्मरेत
दिग्धामरातिभटशोणितकर्दमेन ।

मालां मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टां
चैतस्य तत्त्वममलं मणिमस्य कण्ठे ॥२८॥

कौमोदकीं भगवतः दयितां स्मरेत दिग्धां अराति भट शोणित कर्दमेन मालां मधुव्रत वरूथ गिरः उपघुष्टां चैतस्य तत्त्वं अमलं मणिं अस्य कण्ठे ॥२८॥

अराति भट	शत्रु-शूरोंके
शोणित कर्दमेन	रक्त-कीचसे
दिग्धां	लथपथ
भगवतः दयितां	भगवानकी प्यारी
कौमोदकीं	कौमोदकी गदाका,
मधुव्रत वरूथ	भ्रमरावलीकी
गिरः उपघुष्टां	गुंजारसे गुंजित
मालां	वनमालाका,
चैतस्य अमलं तत्त्वं	चेतनाके निर्मल-तत्त्व (जीव) रूपका
अस्य कण्ठे	(जो) इन भगवानके कण्ठमें
मणिं स्मरेत	कौस्तुभ-मणि है, उनका स्मरण करे ॥२८॥

भृत्यानुकम्पितधियेह गृहीतमूर्तेः
सञ्चिन्तयेद्भगवतो वदनारविन्दम् ।
यद्विस्फुरन्मकरकुण्डलवल्गितेन
विद्योतितामलकपोलमुदारनासम् ॥२९॥

भृत्य अनुकम्पित धिया इह गृहीत मूर्तेः सञ्चिन्तयेत् भगवतः वदनारविन्दं यत् विस्फुरत् मकर कुण्डल वल्गितेन विद्योतितं अमल कपोल उदारनासम् ॥२९॥

भृत्य अनुकम्पित धिया	भक्तोंपर अनुग्रह करनेके विचारसे
इह गृहीत मूर्तिः	इस लोकमें साकार बने
भगवतः वदनारविन्दं	भगवानके मुख-कमलका
सञ्चिन्तयेत्	चिन्तन करे,
यत् विस्फुरत् मकर कुण्डल वल्गितेन	जिससे चमकते मकराकार कुण्डलोंके हिलनेसे
अमल कपोल विद्योतितं	निर्मल कपोल प्रकाशित हैं
उदारनासं	(और) ऊँची नाक-वाला है ॥२९॥

यच्छ्रीनिकेतमलिभिः परिसेव्यमानं
भूत्या स्वया कुटिलकुन्तलवृन्दजुष्टम् ।
मीनद्वयाश्रयमधिक्षिपदब्जनेत्रं
ध्यायेन्मनोमयमतन्द्रित उल्लसद्भ्रू ॥३०॥

यत् श्रीनिकेतं अलिभिः परिसेव्यमानं भूत्या स्वया कुटिल कुन्तलवृन्द जुष्टं मीनद्वय आश्रयं अधिक्षिपन् अब्ज नेत्रं ध्यायेत् मनोमयं अतन्द्रित उल्लसत् भ्रू ॥३०॥

कुटिल कुन्तल वृन्द	घुँघराली (काली) अलकावलीसे	**अधिक्षिपन्**	लज्जित करता (भगवानका श्रीमुख)
जुष्टं	सुशोभित	**मीनद्वय**	दो मछलियोंके (समान नेत्रोंका)
स्वया भूत्या	अपनी शोभासे	**आश्रयं**	स्थान
अलिभिः		**उल्लसत् भ्रू**	उन्नत भौहोंवाला
परिसेव्यमानं	भ्रमरोंसे सेवित	**मनोमयं**	मनमें धारणासे लाया.
श्रीनिकेतं	लक्ष्मी-निवास (कमल) को	**अतन्द्रितं**	आलस्यरहित होकर
		ध्यायेत्	ध्यान करे ॥३०॥

तस्यावलोकमधिकं कृपयातिघोर-
तापत्रयोपशमनाय निसृष्टमक्ष्णोः ।
स्निग्धस्मितानुगुणितं विपुलप्रसादं
ध्यायेच्चिरं विततभावनया गुहायाम् ॥३१॥

तस्य अवलोकं अधिकं कृपया अतिघोर तापत्रय उपशमनाय निसृष्टं अक्ष्णोः स्निग्ध स्मित अनुगुणितं विपुल प्रसादं ध्यायेत् चिरं वितत भावनया गुहायाम् ॥३१॥

अतिघोर	अत्यन्त उग्र	**अधिकं कृपया**	अत्यन्त कृपासे
तापत्रय	तीनों तापोंको	**स्निग्ध स्मित**	मधुर मुसुकानसे
उपशमनाय	शान्त करनेके लिए	**अनुगुणितं**	बढ़ायी हुई

विपुल प्रसादं	असीम करुणा भरे	भावनया वितत	भावनासे स्पष्ट
अक्ष्णोः	नेत्रोंके	चिरं ध्यायेत्	देर तक ध्यान
अवलोकं विसृष्टं	कटाक्षपातको		करे ॥३१॥
गुहायां	हृदयगुहामें		

हासं हरेरवनताखिल लोकतीव्र-
शोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम् ।
सम्मोहनाय रचितं निजमायया‌स्य
भ्रूमण्डलं मुनिकृते मकरध्वजस्य ॥३२॥

हासं हरेः अवनत अखिल लोक तीव्र शोक अश्रु सागर विशोषणं अति उदारं सम्मोहनाय रचितं निज मायया अस्य भ्रूमण्डलं मुनिकृते मकरध्वजस्य ॥३२॥

अवनत	प्रणत	मकरध्वजस्य	कामको
अखिल लोक	समस्त लोकोंके	सम्मोहनाय	सम्मोहित करनेके लिए
तीव्र शोक	तीव्र शोकके		
अश्रु सागर	अश्रु समुद्रके	निज मायया	
विशोषणं	सुखा देनेमें	रचितं	अपनी मायासे बनाये
अति उदारं	अतिशय उदार	अस्य भ्रूमण्डलं	इन (भगवान) के भ्रूमण्डलका (ध्यान करे) ॥३२॥
हरेः हासं	श्रीहरिके हास्यका (तथा)		
मुनिकृते	मुनियोंके हितके लिए		

ध्यानायनं प्रहसितं बहुलाधरोष्ठ-
भासारुणायिततनुद्विजकुन्दपङ्क्ति ।
ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्य विष्णो-
र्भक्त्याऽऽर्द्रयार्पितमना न पृथग्दिदृक्षेत् ॥३३॥

ध्यान अयनं प्रहसितं बहुल अधर ओष्ठभासा अरुणायित तनु द्विज कुन्द पङ्क्ति ध्यायेत् स्वदेह कुहरे अवसितस्य विष्णोः भक्त्या आर्द्रया अर्पित मना न पृथक् दिदृक्षेत् ॥३३॥

ध्यान अयनं	ध्यान करने ही योग्य
विष्णोः	श्रीहरिके
बहुल प्रहसितं	पूरे खुलकर हँसनेसे
अधर ओष्ठ-भासा	नीचे-ऊपरके ओष्ठोंकी कान्तिसे
अरुणायित तनु द्विज कुन्द पङ्क्ति	अरुणाभ हुई पतली कुन्दकली-सी दन्तावलीका
स्वदेह कुहरे	अपने शरीरके हृदयाकाशमें
भक्त्या आर्द्रया	भक्तिसे पिघले
मना अर्पित	मनको लगाकर
ध्यायेत्	ध्यान करे,
पृथक्	(उनसे) भिन्न (कुछ)
न दिदृक्षेत्	नहीं देखे ॥३३॥

एवं हरौ भगवति प्रतिलब्धभावो
भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात् ।
औत्कठ्यबाष्पकलया मुहुरर्द्यमान-
स्तच्चापि चित्तबडिशं शनकैर्वियुङ्क्ते ॥३४॥

एवं हरौ भगवति प्रतिलब्ध भावः भक्त्या द्रवत् हृदय उत्पुलकः प्रमोदात् औत्कण्ठ्य वाष्प कलया मुहुः अर्द्यमानः तत् च अपि चित्त बडिशं शनकैः वियुङ्क्ते ॥३४॥

एवं हरौ	इस प्रकार श्रीहरि
भगवति	भगवानमें
भावः प्रतिलब्ध	भक्ति प्राप्त होनेपर
भक्त्या द्रवत्	भक्तिसे द्रवित
हृदय	हृदय होनेसे
प्रमोदात्	हर्षसे
उत्पुलकः	रोमोत्थान होता है,
औत्कण्ठ्य	उत्कण्ठासे,
वाष्प कलया	आँसूसे
मुहुः	बार-बार
अर्द्यमानः	व्याकुल होनेपर
तत्	उस
चित्त बडिशं	(भगवानको खींचने वाले) वंशी कांटे जैसे चित्तको
अपि च	भी
शनकैः	धीरे-धीरे
वियुङ्क्ते	हटा लेता है ॥३४॥

मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं
निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथार्चिः ।

आत्मानमत्र पुरुषोऽव्यवधानमेक-

मन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः ॥३५॥

मुक्त आश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं निर्वाणं ऋच्छति मनः सहसा यथा अर्चिः आत्मानं अत्र पुरुषः अव्यवधानं एकं अन्वीक्षते प्रतिनिवृत्त गुणप्रवाहः ॥३५॥

यर्हि	(इस प्रकार) जब
आश्रयं	आश्रयको भी
मुक्त	छोड़कर
निर्विषयं	निर्विषय (और)
विरक्तं	विरक्त हो जाता है (तब)
यथा अर्चिः	जैसे अग्नि (काष्ठ जल जानेपर)
सहसा	अचानक
मनः	मन
निर्वाणं	
ऋच्छति	निर्वाण प्राप्त हो जाता है (मनकी पृथक सत्ता मिट जाता है)
गुणप्रवाहः	त्रिगुणोंकी धारा
प्रतिनिवृत्त	लौट जाती है ।
अत्र पुरुषः	यहाँ (देहमें) जो पुरुष है (वह)
आत्मानं	अपनेको
अव्यवधानं	बिना रुकावट (अनवच्छिन्न)
एकं	अद्वितीय
अन्वीक्षते	देखता है ॥३५॥

सोऽप्येतया चरमया मनसो निवृत्त्या

तस्मिन्महिम्न्यवसितः सुखदुःखबाह्ये ।

हेतुत्वमप्यसति कर्तरि दुःखयोर्यत्

स्वात्मन् विधत्त उपलब्धपरात्मकाष्ठः ॥३६॥

सः अपि एतया चरमया मनसः निवृत्त्या तस्मिन् महिम्नि अवसितः सुख दुःख बाह्ये हेतुत्वम् अपि असति कर्तरि दुःखयोः यत् स्वात्मन् विधत्त उपलब्ध परआत्म काष्ठः ॥३६॥

सः अपि	वह (योगी) भी
एतया चरमया	इस अन्तिम
मनसः निवृत्त्या	चित्तकी (अविद्या-रूप) निवृत्तिसे
तस्मिन्	उस
सुख-दुःख बाह्ये	सुख-दुःखसे अतीत
महिम्नि	अपनी महिमामें
अवस्थितः	स्थित होता है।
यत् दुःखयोः हेतुत्वं	जिस दुःखके कारण
कर्तरि अपि	कर्तापनको भी
स्वात्मन् विधत्त	अपनेमें मानता था,
परआत्म कष्ठः	परमात्मामें स्थिति
उपलब्धः	प्राप्त करके
असति	(उस कर्तृत्वको) अविद्यामें (जान लेता है) ॥३६॥

देहं च तं न चरमः स्थितमुत्थितं वा
सिद्धो विपश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ।
दैवादुपेतमथ दैववशादपेतं
वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः ॥३७॥

देहं च तं न चरमः स्थितं उत्थितं वा सिद्धः विपश्यति यतः अध्यगमत् स्वरूपं दैवात् उपेतं अथ दैववशात् अपेतं वासः यथा परिकृतं मदिरा मद अन्धः ॥३७॥

यथा	जैसे
मदिरा मद	शराबके नशेमें
अन्धः	धुत्
परिकृतं वासः	पहिने वस्त्रको (नहीं जानता)
तं चरमः	(उसी प्रकार) उस अन्तिम
देहं च	देहको भी
सिद्धः	सिद्ध (महापुरुष)
स्थितं उत्थितं वा	बैठे अथवा खड़े,
दैवात्	प्रारब्धवश
उपेतं	उपस्थित (रहते)
अथ	अथवा
दैववशात्	प्रारब्धवश
अपेतं	चले गये (मरनेको)
न विपश्यति	नहीं देखता
यतः स्वरूपं	क्योंकि अपने स्वरूपको
अध्यगमत्	जान चुका है ॥३७॥

देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्
स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः ।

तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः
स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥३८॥

देहः अपि दैववशगः खलु कर्म यावत् स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव स असुः तं सप्रपञ्चं अधिरूढ समाधियोगः स्वाप्नं पुनः न भजते प्रतिबुद्धः वस्तुः ॥३८॥

दैववशगः	प्रारब्धाधीन
देहः अपि	(उसका) शरीर भी
यावत्	जब तक
स्वारम्भकं	उसे आरम्भ करने (जन्म देनेवाला)
कर्म खलु	प्रारब्ध कर्म शेष है,
स असुः	(तब तक) सप्राण रहते
प्रतिसमीक्षत एव	प्रत्यक्ष जीवित रहता ही है,
समाधियोगः	(किन्तु) समाधि-योगमें
अधिरूढ	पहुँचा हुआ
वस्तुः प्रतिबुद्धः	वस्तु तत्त्व (परमात्माको) जान लेनेवाला
तं सप्रपञ्चं	उस (शरीर) को संसारके साथ
स्वाप्नं	स्वप्नके समान (जानकर)
पुनः न भजते	फिर सेवन नहीं करता ॥३८॥

यथा पुत्राच्च वित्ताच्च पृथङ्मर्त्यः प्रतीयते ।
अप्यात्मत्वेनाभिमताद्देहादेः पुरुषस्तथा ॥३९॥

यथा पुत्रात् च वित्तात् च पृथक् मर्त्यः प्रतीयते अपि आत्मत्वेन अभिमतात् देहादेः पुरुषः तथा ॥३९॥

यथा	जैसे
पुत्रात् च	पुत्रसे और
वित्तात् च	धनसे भी
मर्त्यः	मनुष्य
पृथक् प्रतीयते	पृथक (अपनेको) जानता है
आत्मत्वेन	अपना आत्मा
अभिमतात् अपि	मान लेनेपर भी
देहादेः	शरीर (मन) आदि
तथा पुरुषः	वैसे ही पुरुष (पृथक) है ॥३९॥

यथोल्मुकाद्विस्फुलिङ्गाद्धूमाद्वापि स्वसम्भवात् ।
अप्यात्मत्वेनाभिमताद्यथाग्निः पृथगुल्मुकात् ॥४०॥

यथा उल्मुकात् विस्फुलिङ्गात् धूमात् वापि स्वसम्भवात् अपि आत्मत्वेन अभिमतात् यथा अग्नि पृथक् उल्मुकात् ॥४०॥

आत्मत्वेन	अपना आत्मा	**स्वसम्भवात्**	अपनेसे उत्पन्न
अभिमतात्	माने हुओंसे	**धूमात् वापि**	धुएँसे भी
अपि	भी	**उल्मुकात्**	लकड़ीमें उठती
यथा उल्मुकात्	जैसे जलती लकड़ीसे,		अग्निसे भी
		अग्निः पृथक्	अग्नि पृथक
विस्फुलिङ्गात्	चिनगारीसे,		है ॥४०॥

भूतेन्द्रियान्तः करणात्प्रधानाज्जीवसंज्ञितात् ।
आत्मा तथा पृथग्द्रष्टा भगवान् ब्रह्मसंज्ञितः ॥४१॥

भूत इन्द्रिय अन्तःकरणात् प्रधानात् जीव संज्ञितात् आत्मा तथा पृथक् द्रष्टा भगवान् ब्रह्म संज्ञितः ॥४१॥

तथा	वैसे ही	**द्रष्टा आत्मा**	उनको देखनेवाला आत्मा
भूत इन्द्रिय	पंचमहाभूत (शरीर) इन्द्रियों	**पृथक्**	पृथक है
अन्तःकरणात्	अन्तःकरणसे,	**भगवान्**	(वह) भगवान
प्रधानात्	प्रकृतिसे,	**ब्रह्म संज्ञितः**	ब्रह्म कहा जाता है ॥४१॥
जीव संज्ञितात्	जिसे जीव कहा जाता है उससे		

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षेतानन्यभावेन भूतेष्विव तदात्मताम् ॥४२॥

सर्व भूतेषु च आत्मानं सर्व भूतानि च आत्मनि ईक्षेत अनन्य भावेन भूतेषु इव तत् आत्मताम् ॥४२॥

भूतेषु	प्राणियोंमें	**आत्मताम् इव**	चेतन तत्त्वके समान
तत्	व्याप्त		

सर्वं भूतेषु च	सब प्राणियोंमें तो	**अनन्य भावेन**	दूसरा कोई
आत्मानं	अपने आत्माको		अन्यताका भाव किये
च आत्मनि	और अपनेमें		बिना
सर्वं भूतानि	सब प्राणियोंको	**ईक्षेत**	देखे ॥४२॥

स्वयोनिषु यथा ज्योतिरेकं नाना प्रतीयते ।
योनीनां गुणवैषम्यात्तथाऽऽत्मा प्रकृतौ स्थितः ॥४३॥

स्वयोनिषु यथा ज्योतिः एकं नाना प्रतीयते योनीनां गुण वैषम्यात् तथा आत्मा प्रकृतौ स्थितः ॥४३॥

यथा ज्योतिः	जैसे अग्नि	**नाना प्रतीयते**	अनेक जान पड़ता है,
एकं	एक होनेपर भी	**तथा**	वैसे ही
स्वयोनिषु	अपने प्रगट होनेकी लकड़ीमें	**प्रकृतौ स्थितः**	प्रकृतिमें स्थित
योनीनां गुण		**आत्मा**	आत्मा (शरीरोंके भेदसे अनेक लगता
वैषम्यात्	उन लकड़ियोंके गुणोंमें विषमता होनेसे		है) ॥४३॥

तस्मादिमां स्वां प्रकृतिं दैवीं सदसदात्मिकाम् ।
दुर्विभाव्यां पराभाव्य स्वरूपेणावतिष्ठते ॥४४॥

तस्मात् इमां स्वां प्रकृतिं दैवीं सत् असत् आत्मिकां दुर्विभाव्यां पराभाव्य स्वरूपेण अवतिष्ठते ॥४४॥

तस्मात्	इसलिए	**दुर्विभाव्यां**	अचिन्त्य
इमां	इस	**पराभाव्य**	भगवत्कृपासे
स्वां प्रकृतिं	अपनी प्रकृतिको		जानकर
दैवीं	ईश्वरकी	**स्वरूपेण**	अपने स्वरूपमें
सत् असत्		**अवतिष्ठते**	स्थित हो जाता
आत्मिकां	कारण-कार्यरूपा		है ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

देवहूतिरुवाच-

लक्षणं महदादीनां प्रकृतेः पुरुषस्य च ।
स्वरूपं लभ्यतेऽमीषां येन तत्पारमार्थिकम् ॥१॥

लक्षणं महत् आदीनां प्रकृतेः पुरुषस्य च स्वरूपं लभ्यते अमीषां येन तत् पारमार्थिकम् ॥१॥

महत् आदीनां	महत्तत्त्व आदिका,	**येन**	जिसके द्वारा
प्रकृतेः	प्रकृतिका	**स्वरूपं**	स्वरूप
च पुरुषस्य	और पुरुषका भी	**लभ्यते**	जाना जाता है
लक्षणं	लक्षण (तथा)	**तत् पारमार्थिकं**	वह पारमार्थिक (उपदेश है) ॥१॥
अमीषां	इनका		

यथा सांख्येषु कथितं यन्मूलं तत्प्रचक्षते ।
भक्तियोगस्य मे मार्गं ब्रूहि विस्तरशः प्रभो ॥२॥

यथा सांख्येषु कथितं यत् मूलं तत् प्रचक्षते भक्तियोगस्य मे मार्गं ब्रूहि विस्तरशः प्रभो ॥२॥

प्रभो	प्रभो !	**प्रचक्षते**	बतलाया जाता है (उस)
यथा सांख्येषु	जैसा सांख्य शास्त्रमें	**भक्तियोगस्य**	भक्तियोगका
कथितं	बतलाया गया है,	**मार्गं**	साधन
तत् यत् मूलं	उसका जो कारण (प्रयोजन)	**मे विस्तरशः**	मुझे विस्तारसे
		ब्रूहि	बतलाइये ॥२॥

विरागो येन पुरुषो भगवन् सर्वतो भवेत् ।
आचक्ष्व जीवलोकस्य विविधा मम संसृतिः ॥३॥

विरागः येन पुरुषः भगवन् सर्वतः भवेत् आचक्ष्व जीवलोकस्य विविधा मम संसृतिः ॥३॥

भगवन्	भगवन् !	**आचक्ष्व**	बतलाइये
जीवलोकस्य	जीवोंकी	**येन पुरुषः**	जिससे पुरुषको
मम	मेरी भी	**सर्वतः विरागः**	सब ओरसे वैराग्य
संसृतिः	(जन्म-मरण रूप) गतियाँ	**भवेत्**	हो जाता है ॥३॥

कालस्येश्वररूपस्य परेषां च परस्य ते ।
स्वरूपं बत कुर्वन्ति यद्धेतोः कुशलं जनाः ॥४॥

कालः इति ईश्वर रूपस्य परेषां च परस्य ते स्वरूपं बत कुर्वन्ति यत् हेतोः कुशलं जनाः ॥४॥

परेषां च	श्रेष्ठोंसे भी	**यत् हेतोः**	जिस कारण
परस्य ते	श्रेष्ठ आपके	**कुशलं जनाः**	चतुर लोग
ईश्वरस्य	सर्वसमर्थके	**बत स्वरूपं**	क्यों मूर्ति
काल इति	काल कहे जानेवाले	**कुर्वन्ति**	बनाते (उपासना
रूपस्य	रूपकी		करते) हैं ? ॥४॥

लोकस्य मिथ्याभिमतेरचक्षुष-
श्चिरं प्रसुप्तस्य तमस्यनाश्रये ।
श्रान्तस्य कर्मस्वनुबिद्धया धिया
त्वमाविरासीः किल योगभास्करः ॥५॥

लोकस्य मिथ्या अभिमतेः अचक्षुषः चिरं प्रसुप्तस्य तमसि अनाश्रये श्रान्तस्य कर्मसु अनुबिद्धया धिया त्वं आविरासीः किल योगभास्करः ॥५॥

मिथ्या अभिमतेः	झूठे अभिमानसे	**तमसि**	अन्धकारमें
अचक्षुषः	अन्धे होकर,	**चिरं प्रसुप्तस्य**	बहुत समयसे सोये
कर्मसु		**लोकस्य**	लोगों (को जगाने)
अनुबिद्धया	कर्मासक्त		के लिए
धिया	बुद्धि होनेसे	**किल त्वं**	निश्चय आप
श्रान्तस्य	थके	**योगभास्करः**	योगरूपी सूर्य
अनाश्रये	आश्रयहीन	**आविरासीः**	उदय हुए हैं ॥५॥

मैत्रेय उवाच-

इति मातुर्वचः श्लक्ष्णं प्रतिनन्द्य महामुनिः ।
आबभाषे कुरुश्रेष्ठ प्रीतस्तां करुणार्दितः ॥६॥

इति मातुः वचः श्लक्ष्णं प्रतिनन्द्य महामुनिः आबभाषे कुरुश्रेष्ठ प्रीतः तां करुणार्दितः ॥६॥

कुरुश्रेष्ठ	कुरुश्रेष्ठ विदुर !	**महामुनिः**	महामुनि कपिल
इति मातुः	इस प्रकार माताके	**करुणार्दितः**	कृपासे द्रवित होकर
श्लक्ष्णं वचः	मनोहर वचनोंकी	**प्रीतः तां**	प्रसन्न चित्त उनसे
प्रतिनन्द्य	प्रशंसा करके	**आबभाषे**	बोले ॥६॥

कपिल उवाच-

भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते ।
स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥७॥

भक्तियोगः बहुविधः मार्गैः भामिनि भाव्यते स्वभाव गुण मार्गेण पुंसां भावः विभिद्यते ॥७॥

भामिनि	माताजी !	**स्वभाव गुण**	स्वाभाविक गुणों (तथा)
भक्तियोगः	भक्तियोग	**मार्गेण**	मार्ग (सम्प्रदायों) के कारण
बहुविधः मार्गैः	अनेक प्रकारके साधनोंसे	**पुंसां भावः**	पुरुषोंके भावोंमें
भाव्यते	भावित होता है ।	**विभिद्यते**	भेद होता है ॥७॥

अभिसंधाय यो हिंसा दम्भं मात्सर्यमेव वा ।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥८॥

अभिसंधाय यः हिंसां दम्भं मात्सर्यं एव वा संरम्भी भिन्नदृक् भावं मयि कुर्यात् स तामसः ॥८॥

यः भिन्नदृक्	जो भेददर्शी
संरम्भी	क्रोधी
हिंसां दम्भं	हिंसा, दम्भ
वा मात्सर्यं एव	अथवा मात्सर्यका ही
अभिसंधाय	लक्ष्य रखकर
मयि भावं कुर्यात्	मेरी भावना (पूजा) करता है।
स तामसः	वह तमोगुणी (भक्त) है ॥८॥

विषयानभिसंधाय यश ऐश्वर्यमेव वा।
अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥९॥

विषायान् अभिसंधाय यशः ऐश्वर्यं एव वा अर्चादाः अर्चयेत् यः मां पृथक् भावः स राजसः ॥९॥

विषमान् वा यशः ऐश्वर्यं एव	भोगोंकी, अथवा यश या ऐश्वर्यकी ही
अभिसंधाय	पानेकी इच्छा रखकर
यः मां	जो मेरी
पृथक् भावः	पृथकत्वकी भावनासे
अर्चादाः	मूर्ति आदिमें
अर्चयेत्	पूजा करता है,
स राजसः	वह रजोगुणी (भक्त) है ॥९॥

कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम्।
यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥१०॥

कर्मनिर्हारं उद्दिश्य परस्मिन् वा तत् अर्पणं यजेत् यष्टव्यं इति वा पृथक् भावः स सात्त्विकः ॥१०॥

पृथक् भावः कर्मनिर्हारं	(मुझे) पृथक मानकर कर्मोंसे छुटकारा पानेके
उद्दिश्य	उद्देश्यसे
वा परस्मिन्	अथवा परमात्माको
तत् अर्पणं	उनका अर्पण करनेके लिए
वा यष्टव्यं इति	अथवा यजन करना कर्तव्य है ऐसा मानकर
यजेत्	(जो) यज्ञ (पूजा) करता है
स सात्त्विकः	वह सात्त्विक (भक्त) है ॥१०॥

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥११॥

मद्गुण श्रुति मात्रेण मयि सर्वगुहाशये मनोगतिः अविच्छिन्ना यथा गङ्गा अम्भसः अम्बुधौ ॥११॥

मद्गुण	मेरे गुणोंके
श्रुति मात्रेण	कानमें जाते ही
सर्वगुहाशये	सबके हृदयमें स्थित
मयि मनोगतिः	मुझमें मनकी गति
अविच्छिन्ना	अखण्ड लग जाती है
यथा गङ्गा	
अम्भसः	जैसे गङ्गाका जल
अम्बुधौ	समुद्रमें जाता रहता है ॥११॥

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥१२॥

लक्षणं भक्ति योगस्य निर्गुणस्य हि उदाहृतं अहैतुकी अव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥१२॥

पुरुषोत्तमे	भगवान पुरुषोत्तममें
या अहैतुकी	जो निष्काम
अव्यवहिता	अखण्ड
भक्तिः	भक्ति है
निर्गुणस्य हि	उस निर्गुण भक्तिके ही
भक्ति योगस्य	भक्ति-योगके
लक्षणं	लक्षणका
उदाहृतं	उदाहरण दिया गया है ॥१२॥

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥१३॥

सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्य एकत्वं अपि उत दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत् सेवनं जनाः ॥१३॥

जनाः	(मेरे) भक्त
मत् सेवनं	मेरी सेवाको
विना	छोड़कर
सालोक्य सार्ष्टि	सालोक्य, सार्ष्टि (ब्रह्मादि-पद)
सामीप्य सारूप्य	सामीप्य, सारूप्य
उत एकत्वं अपि	तथा एकत्व(सायुज्य) भी
दीयमानं	(मेरे) देने पर भी
न गृह्णन्ति	नहीं ग्रहण करते ॥१३॥

स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः ।
येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते ॥१४॥

स एव भक्तियोग आख्यः आत्यन्तिक उदाहृतः येन अतिव्रज्य त्रिगुणं मत् भावाय उपपद्यते ॥१४॥

स एव	यही	**येन त्रिगुणं**	जिसके द्वारा त्रिगुणोंको
आत्यन्तिक	परम (पुरुषार्थ)	**अतिव्रज्य**	पार करके
भक्ति योग		**मत् भावाय**	मेरे स्वरूपको
आख्यः	भक्ति-योग नामसे	**उपपद्यते**	प्राप्त हो जाता है ॥१४॥
उदाहृतः	कहा जाता है,		

निषेवितेनानिमित्तेन स्वधर्मेण महीयसा ।
क्रियायोगेन शस्तेन नातिहिंस्रेण नित्यशः ॥१५॥

निषेवितेन अनिमित्तेन स्वधर्मेण महीयसा क्रिया योगेन शस्तेन न अतिहिंस्रेण नित्यशः ॥१५॥

अनिमित्तेन	निष्काम भावसे	**शस्तेन क्रिया योगेन**	प्रशस्त क्रिया-योगके
महीयसा स्वधर्मेण	महान् स्वधर्मका	**नित्यशः**	प्रतिदिन करनेसे ॥१५॥
निषेवितेन	पालन करनेसे,		
न अतिहिंस्रेण	जिसमें बहुत हिंसा न होती हो उस		

मद्धिष्ण्यदर्शनस्पर्शपूजास्तुत्यभिवन्दनैः ।
भूतेषु मद्भावनया सत्त्वेनासङ्गमेन च ॥१६॥

मत् धिष्ण्य दर्शन स्पर्श पूजा स्तुति अभिवन्दनैः भूतेषु मत् भावनया सत्त्वेन असङ्गमेन च ॥१६॥

मत् धिष्ण्य	मेरी मूर्तिका	**भूतेषु मत् भावनया**	प्राणियोंमें मेरी भावना करनेसे,
दर्शन स्पर्श	दर्शन, स्पर्श,	**सत्त्वेन**	धैर्यसे,
पूजा स्तुति	पूजन, स्तुति,	**असङ्गमेन च**	तथा वैराग्यसे ॥१६॥
अभिवन्दनैः	वन्दना करनेसे,		

महतां बहुमानेन दीनानामनुकम्पया ।
मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ॥१७॥

महतां बहुमानेन दीनानां अनुकम्पया मैत्र्या च एव आत्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ॥१७॥

महतां	महापुरुषोंका	**यमेन**	यम (अहिंसा, सत्य,
बहुमानेन	बहुत आदर करनेसे,		अस्तेय, ब्रह्मचर्य
दीनानां			अपरिग्रह)
अनुकम्पया	दीनोंपर दया करनेसे,	**च नियमेन**	तथा नियम (शौच,
च आत्मतुल्येषु			सन्तोष, जप, तप,
एव	तथा अपने समानोंसे		ईश्वर प्रणिधान) के
	तो		पालनसे ॥१७॥
मैत्र्या	मित्रता करनेसे,		

आध्यात्मिकानुश्रवणान्नामसङ्कीर्तनाच्च मे ।
आर्जवेनार्यसङ्गेन निरहंक्रियया तथा ॥१८॥

आध्यात्मिक अनुश्रवणात् नाम संकीर्तनात् च मे आर्जवेन आर्यसङ्गेन निरहंक्रियया तथा ॥१८॥

आध्यात्मिक	आध्यात्मिक	**आर्जवेन**	सरलतासे,
	(शास्त्रों) को	**आर्यसङ्गेन**	सत्पुरुषोंके संगसे,
अनुश्रवण	बार-बार सुननेसे	**तथा**	
च मे नाम		**निरहंक्रियया**	और अहङ्कारके
संकीर्तनात्	तथा मेरे नामोंका		त्यागसे ॥१८॥
	कीर्तन करनेसे,		

मद्धर्मणो गुणैरेतैः परिसंशुद्ध आशयः ।
पुरुषस्याञ्जसाभ्येति श्रुतमात्रगुणं हि माम् ॥१९॥

मत् धर्मणः गुणैः एतैः परिसंशुद्ध आशयः पुरुषस्य अञ्जसा अभ्येति श्रुतमात्र गुणं हि माम् ॥१९॥

मत् धर्मणः	मेरे (भागवत) धर्मोंका पालन करने वाले
पुरुषस्य	पुरुषका
एतैः गुणैः	इन गुणोंसे
आशयः	चित्त
परिसंशुद्ध	अतिशय शुद्ध हो जाता है,
हि श्रुतमात्रं गुणं	तब (मेरे) गुणोंको सुनते ही
माम् अभ्येति	मुझमें चला आता है ॥१९॥

यथा वातरथो घ्राणमावृङ्क्ते गन्ध आशयात् ।
एवं योगरतं चेत आत्मानमविकारि यत् ॥२०॥

यथा वातरथः घ्राणं आवृङ्क्ते गन्ध आशयात् एवं योगरतं चेतः आत्मानं अविकारि यत् ॥२०॥

यथा वातरथः	जैसे वायुपर चढ़ने वाली
गन्ध आशयात्	गन्ध (अपने) निवास (पुष्प) से
घ्राणं आवृङ्क्ते	नाक तक पहुँच जाती है,
एवं यत् अविकारिः	इसी प्रकार क्योंकि निर्विकार हैं,
योगरतं चेतः आत्मानं	योगमें लगेका चित्त परमात्माको (पा लेता है) ॥२०॥

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा ।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ॥२१॥

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मा अवस्थितः सदा तं अवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुते अर्चा विडम्बनम् ॥२१॥

सर्वेषु भूतेषु भूतात्मा	सब प्राणियोंमें उन प्राणियोंके आत्मारूपसे
अहं सदा अवस्थितः	मैं सदा स्थित हूँ,
मर्त्यः तं मां अवज्ञाय	मनुष्य उस मेरी उपेक्षा करके
अर्चा विडम्बनं	पूजाकी विडम्बना (स्वांग)
कुरुते	करता है ॥२१॥

यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ॥२२॥

यः मां सर्वेषु भूतेषु सन्तं आत्मानं ईश्वरं हित्वा अर्चां भजते मौढ्यात् भस्मनि एव जुहोति सः ॥२२॥

सर्वेषु भुतेषु	सब प्राणियोंमें
सन्तं मां	स्थित मुझ
आत्मानं ईश्वरं	आत्मा परमेश्वरको
हित्वा मौढ्यात्	छोड़कर मूर्खतावश
अर्चां भजते	प्रतिमा-पूजनमें लगा रहता है,
सः भस्मनि एव	वह (मानो) भस्ममें ही
जुहोति	(निष्फल) हवन करता है ॥२२॥

द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति ॥२३॥

द्विषतः परकाये मां मानिनः भिन्न दर्शिनः भूतेषु बद्ध बैरस्य न मनः शान्ति ऋच्छति ॥२३॥

भिन्न दर्शिनः	भेददर्शी
मानिनः	अभिमानी
भुतेषु बद्ध बैरस्य	प्राणियोंसे बैर बाँधने वाले
परकाये मां	दूसरे शरीरोंमें (स्थित) मुझसे
द्विषतः	द्वेष करने वाले
मनः शान्ति	मनकी शान्ति
न ऋच्छति	नहीं पाते ॥२३॥

अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयानघे ।
नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ॥२४॥

अहं उच्च अवचयैः द्रव्यैः क्रियया उत्पन्नया अनघे न एव तुष्ये अर्चितः अर्चायां भूतग्राम अवमानिनः ॥२४॥

अनघे	निष्पापे !
भूतग्राम	प्राणि समुदायका
अवमानिनः	अपमान करने वालेकी
उच्च अवचयैः	बड़ी-छोटी
द्रव्यैः	सामग्रीसे
क्रियया	
उत्पन्नया	अनेक क्रियाओंसे की गयी
अर्चायां	प्रतिमामें
अर्चितः	पूजित
अहं न एव तुष्ये	मैं नहीं ही सन्तुष्ट होता ॥२४॥

अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत् ।
यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥२५॥

अर्चादाः अर्चयेत् तावत् ईश्वरं मां स्वकर्मकृत् यावत् न वेद स्वहृदि सर्वभूतेषु अवस्थितम् ।२५॥

स्वकर्मकृत्	अपने कर्तव्यका पालन करने वाला	**स्वहृदि**	अपने हृदयमें (तथा)
तावत् मां	तब तक मुझ	**सर्वभुतेषु**	
ईश्वरं	परमेश्वरको	**अवस्थितं**	सब प्राणियोंमें स्थित
अर्चादाः	मूर्ति आदिमें	**न वेद**	(मुझे) न जान ले ॥२५॥
अर्चयेत्	पूजा करे,		
यावत्	जब तक		

आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यन्तरोदरम् ।
तस्य भिन्नदृशो मृत्युर्विदधे भयमुल्बणम् ॥२६॥

आत्मनः च परस्य अपि यः करोति अन्तर उदरं तस्य भिन्नदृशः मृत्युः विदधे भयं उल्बणम् ॥२६॥

यः आत्मनः च	जो आत्मामें और	**तस्य भिन्नदृशः**	उस भेददर्शीके लिए
परस्य अपि	परमात्मामें भी	**मृत्युः उल्बणं**	मृत्यु भयानक
उदरं अन्तरं		**भयं विदधे**	भय देता है ॥२६॥
करोति	पेटका (शरीरोंका) अन्तर करता है		

अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम् ।
अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा ॥२७॥

अथ मां सर्वभूतेषु भूत आत्मानं कृत आलयं अर्हयेत् दान मानाभ्यां मैत्र्या अभिन्नेन चक्षुषा ॥२७॥

अथ सर्वभुतेषु	अतः सब प्राणियोंमें	**कृत आलयं**	निवास करते
भूत आत्मानं	उन प्राणियोंके आत्मारूपसे	**मां अभिन्नेन**	
		चक्षुषा	मुझे अभिन्न दृष्टिसे

दान मानाभ्यां	दान तथा सम्मान (एवं)	**मैत्र्या अर्हयेत्**	मित्रतापूर्वक सत्कृत करे ॥२७॥

जीवाः श्रेष्ठा अजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे ।
ततः सचित्ताः प्रवरास्ततश्चेन्द्रियवृत्तयः ॥२८॥

जीवाः श्रेष्ठाः अजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे ततः सचित्ताः प्रवराः ततः च इन्द्रिय वृत्तयः ॥२८॥

शुभे	शुभे !	**ततः सचित्ताः**	उनसे चित्त वाले (जिनमें मन है)
अजीवानां	निर्जीवों (पाषाणादि) से	**प्रवराः**	श्रेष्ठ हैं,
जीवाः श्रेष्ठाः	जीवन वाले श्रेष्ठ हैं,	**ततः च इन्द्रिय**	
ततः प्राणभृतः	उनसे श्वास लेने वाले (वृक्षादि)	**वृत्तयः**	उनसे इन्द्रिय व्यवहार वाले ॥२८॥

तत्रापि स्पर्शवेदिभ्यः प्रवरा रसवेदिनः ।
तेभ्यो गन्धविदः श्रेष्ठास्ततः शब्दविदो वराः ॥२९॥

तत्र अपि स्पर्श वेदिभ्यः प्रवराः रसवेदिनः तेभ्यः गन्धविदः श्रेष्ठाः ततः शब्दविदः वराः ॥२९॥

तत्र अपि	उनमें भी	**तेभ्यः गन्धविदः**	उनसे गन्ध जानने वाले
स्पर्श वेदिभ्यः	स्पर्श जानने वाले (केंचुए आदिसे)	**श्रेष्ठाः**	श्रेष्ठ हैं ।
रसवेदिनः	रस जानने वाले (चींटी आदि)	**ततः शब्दविदः**	शब्द जानने वाले
प्रवराः	श्रेष्ठ हैं,	**वराः**	श्रेष्ठ हैं ॥२९॥*

रूपभेदविदस्तत्र ततश्चोभयतोदतः ।
तेषां बहुपदाः श्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततो द्विपात् ॥३०॥

रूप भेद विदः तत्र ततः च उभयतः दतः तेषां बहुपदाः श्रेष्ठाः चतुष्पादः ततः द्विपात् ॥३०॥

---

* इस प्रकारका प्राणियोंका वर्गीकरण वर्तमान प्राणि-शास्त्रमें नहीं है ।

तत्र रूप भेद विदः	उनमें आकृति भेदको जाननेवाले
ततः च उभयतः दतः	उनमें भी जिनके ऊपर नीचे दोनों ओर दांत होते हैं।
तेषां बहुपदाः	उनमें अनेक पैरवाले
चतुष्पादः	फिर चौपाये
ततः द्विपात् श्रेष्ठाः	उनसे दो पैरवाले श्रेष्ठ हैं ॥३०॥

ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः ।
ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः ॥३१॥

ततः वर्णाः चत्वारः तेषां ब्राह्मण उत्तमः ब्राह्मणेषु अपि वेदज्ञः हि अर्थज्ञः अभ्यधिकः ततः ॥३१॥

ततः चत्वारः वर्णाः	उनमें चारों वर्णवाले
तेषां ब्राह्मण उत्तमः	उनमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं।
ब्राह्मणेषु अपि	ब्राह्मणोंमें भी
वेदज्ञः	वेदज्ञ
अर्थज्ञः हि	वेदार्थ जानने वाला तो
ततः अभ्यधिकः	उनसे भी श्रेष्ठ हैं ॥३१॥

अर्थज्ञात्संशयच्छेत्ता ततः श्रेयान् स्वकर्मकृत् ।
मुक्तसङ्गस्ततो भूयानदोग्धा धर्ममात्मनः ॥३२॥

अर्थज्ञात् संशयः छेत्ता ततः श्रेयान् स्वकर्मकृत् मुक्तसङ्गः ततः भूयान् अदोग्धा धर्मं आत्मनः ॥३२॥

अर्थज्ञात् संशयः छेत्ता	अर्थ जाननेवालेसे सन्देह दूर करनेवाला,
ततः श्रेयान् स्वकर्मकृत्	उससे श्रेष्ठ है अपने (वर्णाश्रम विहित) कर्मको करनेवाला,
ततः मुक्त सङ्गः	उससे अनासक्त
आत्मनः अदोग्धा धर्मं	अपने धर्मका फल न लेनेवाले
भूयान्	उत्तम हैं ॥३२॥

तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियार्थात्मा निरन्तरः ।
मय्यर्पितात्मनः पुंसो मयि संन्यस्तकर्मणः ।
न पश्यामि परं भूतमकर्तुः समदर्शनात् ॥३३॥

तस्मात् मयि अर्पित अशेष क्रिया अर्थ आत्मा निरन्तरः मयि अर्पित आत्मनः पुंसः मयि संन्यस्त कर्मणः न पश्यामि परं भूतं अकर्तुः समदर्शनात् ॥३३॥

तस्मात्	उससे
अशेष क्रिया अर्थ	सम्पूर्ण कर्मोंके फलको
आत्मा निरन्तर	(तथा) चित्तको बराबर
मयि अर्पित	मुझमें अर्पण करने वाला (श्रेष्ठ है)
मयि अर्पित	मुझमें लगाये
आत्मनः पुंसः	चित्तवाले पुरुषसे
मयि संन्यस्त	(जिसने) सब कर्म
कर्मणः	मुझे अर्पित कर दिये हैं
समदर्शनात	समदर्शी
अकर्तुः	अकर्तासे
परं भूतं	श्रेष्ठ (कोई)
न पश्यामि	नहीं देखता ॥३३॥

मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहु मानयन् ।
ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ॥३४॥

मनसा एतानि भूतानि प्रणमेत् बहु मानयन् ईश्वरः जीवकलया प्रविष्टः भगवान् इति ॥३४॥

जीवकलया	जीवके रूपमें अंशसे
ईश्वरः भगवान्	समर्थ भगवान्
प्रविष्टः	(इनमें) प्रविष्ट हैं
इति	ऐसा (समझकर)
बहु मानयन्	श्रेष्ठ मानकर
एतानि भूतानि	इन सब प्राणियोंको
मनसा प्रणमेत्	मनसे प्रणाम करे ॥३४॥

भक्तियोगश्च योगश्च मया मानव्युदीरितः ।
ययोरेकतरेणैव पुरुषः पुरुषं व्रजेत् ॥३५॥

भक्तियोगः च योगः च मया मानवि उदीरितः ययोः एकतरेण एव पुरुषः पुरुषं व्रजेत् ॥३५॥

मानवि	मनुपुत्री !
मया	मैंने
भक्ति योगः	भक्ति योग
च योगः	और योगका
उदीरितः	वर्णन किया
ययोः	जिनमें-से
एकतरेण एव	किसी एकसे ही
पुरुषः पुरुषं	पुरुष परमपुरुषतक
व्रजेत्	पहुँच जाता है ॥३५॥

एतद्भगवतो रूपं ब्रह्मणः परमात्मनः ।
परं प्रधानपुरुषं दैवं कर्मविचेष्टितम् ॥३६॥

एतत् भगवतः रूपं ब्रह्मणः परमात्मनः परं प्रधानं पुरुषं दैवं कर्म विचेष्टितम् ॥३६॥

एतत्	यह
भगवतः	भगवान
ब्रह्मणः	परमात्मा
परमात्मनः	परं ब्रह्मका
रूपं	स्वरूप है।
परं	परमात्मा,
प्रधानं	प्रकृति,
पुरुषं	जीव,
कर्म विचेष्टितं	कर्मकी चेष्टासे
दैवम्	उत्पन्न प्रारब्ध ॥३६

रूपभेदास्पदं दिव्यं काल इत्यभिधीयते ।
भूतानां महदादीनां यतो भिन्नदृशां भयम् ॥३७॥

रूपभेद आस्पदं दिव्यं काल इति अभिधीयते भूतानां महत् आदीनां यतः भिन्नदृशां भयम् ॥३७॥

महत् आदीनां	महत्तत्त्वादिका,
भूतानां	महाभूतोंका,
रूपभेद आस्पदं	रूपभेदका आधार
दिव्यं	जो दिव्य (कारण)है
काल	काल
इति अभिधीयते	इस नामसे कहा जाता है,
यतः भिन्नदृशां	जिससे भेददर्शियोंको
भयम्	भय होता है ॥३७॥

योऽन्तः प्रविश्य भूतानि भूतैरत्त्यखिलाश्रयः ।
स विष्ण्वाख्योऽधियज्ञोऽसौ कालः कलयतां प्रभुः ॥३८॥

यः अन्तः प्रविश्य भूतानि भूतैः अत्ति अखिलाश्रयः स विष्णु अधियज्ञः असौ कालः कलयतां प्रभुः ॥३८॥

यः अखिलाश्रयः	जो सबका आश्रय
अन्तः प्रविश्य	भीतर प्रवेश करके
भूतैः भूतानि	प्राणियों द्वारा ही प्राणियोंको
अत्ति स	खाता है वही
कलायतां प्रभुः	सृष्टिकर्ताओंका भी स्वामी
विष्णु आख्यः	विष्णु नामवाले
अधियज्ञः	अधियज्ञ (यज्ञाधिष्ठाता)
असौ कालः	यह काल है ॥३८॥

न चास्य कश्चिद्दयितो न द्वेष्यो न च बान्धवः ।
आविशत्यप्रमत्तोऽसौ प्रमत्तं जनमन्तकृत् ॥३९॥

न च अस्य कश्चित् दयितः न द्वेष्यः न च बान्धवः आविश्य अप्रमत्तः असौ प्रमत्तं जनं अन्तकृत् ॥३९॥

अस्य कश्चित्	इनका कोई
न दयितः	न प्रिय है,
न द्वेष्यः	न द्वेष करने योग्य,
न च बान्धवः	न सम्बन्धी ही है,
असौ अप्रमत्तः	ये सदा सावधान रहते
प्रमत्तं जनं	प्रमत्त लोगोंमें प्रवेश-
आविश्य	करके
अन्तकृत्	उनका संहार करते हैं ॥३९॥

यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् ।
यद्भयाद्वर्षते देवो भगणो भाति यद्भयात् ॥४०॥

यत् भयात् वाति वातः अयं सूर्यः तपति यत् भयात् यत् भयात् वर्षते देवः भगणः भाति यत् भयात् ॥४०॥

यत् भयात्	जिसके भयसे
अयं वातः वाति	यह वायु चलता है,
सूर्यः यत् भयात्	सूर्य जिसके भयसे
तपति	तपता है,
यत् भयात्	जिसके भयसे
देवः वर्षते	देव (इन्द्र) वर्षा करते हैं,
यत् भयात्	जिसके भयसे
भगणः भाति	तारे चमकते हैं ॥४०॥

यद्वनस्पतयो भीता लताश्चौषधिभिः सह ।
स्वे स्वे कालेऽभिगृह्णन्ति पुष्पाणि च फलानि च ॥४१॥

यत् वनस्पतयः भीताः लताः च औषधिभिः सह स्वे स्वे काले अभिगृह्णन्ति पुष्पाणि च फलानि च ॥४१॥

यत् भीताः	जिससे डरकर
वनस्पतयः	वनस्पति वर्ग
च लताः	और लताएँ
औषधिभिः सह	औषधियोंके साथ
स्वे स्वे काले	अपने-अपने समयपर
पुष्पाणि च	पुष्पों तथा फलोंको
फलानि च	भी
गृह्णन्ति	ग्रहण करते हैं ॥४१॥

स्रवन्ति सरितो भीता नोत्सर्पत्युदधिर्यतः ।
अग्निरिन्धे सगिरिभिर्भूर्न मज्जति यद्भयात् ॥४२॥

स्रवन्ति सरितः भीताः न उत्सर्पति उदधिः यतः अग्निः इन्धे सगिरिभिः भूः न मज्जति यत् भयात् ॥४२॥

यतः भीताः	जिससे डरकर
सरितः स्रवन्ति	नदियाँ बहती हैं (और)
उदधिः न उत्सर्पति	समुद्र (अपनी सीमासे) नहीं बढ़ता,
यत् भयात्	जिसके भयसे
अग्निः इन्धे	अग्नि प्रज्वलित होता है तथा
सगिरिभिः	पर्वतोंके साथ
भूः न मज्जति	पृथ्वी डूब नहीं जाती ॥४२॥

नभो ददाति श्वसतां पदं यन्नियमाददः ।
लोकं स्वदेहं तनुते महान् सप्तभिरावृतम् ॥४३॥

नभः ददाति श्वसतां पदं यत् नियम आददः लोकं स्वदेहं तनुते महान् सप्तभिः आवृतम् ॥४३॥

यत् नियम	जिसके नियमको
आददः	स्वीकार करके
नभः श्वसतां	आकाश श्वास लेने वालेको
पदं ददाति	स्थान देता है,

महान्	महत्तत्त्व	**लोकं तनुते**	लोकोंके रूपमें
सप्तभिः आवृतं	सात आवरणोंसे युक्त		विस्तार करता करता है ॥४३॥
स्वदेहं	अपने शरीरका		

गुणाभिमानिनो देवाः सर्गादिष्वस्य यद्भयात् ।
वर्तन्तेऽनुयुगं येषां वश एतच्चराचरम् ॥४४॥

गुण अभिमानिनः देवाः सर्ग आदिषु अस्य यत् भयात् वर्तन्ते अनुयुगं येषां वश एतत् चराचरम् ॥४४॥

यत् भयात्	जिसके भयसे	**अस्य सर्गादिषु**	इस (संसार) की सृष्टि आदिके लिए
गुण	(सत्व, रज आदि)		
अभिमानिनः	गुणोंके अभिमानी	**अनुयुगं**	युगोंके अनुसार
देवाः	देवता (ब्रह्मादि)	**वर्तन्ते**	व्यवहार करते हैं ॥४४॥
येषां वश	जिनके वशमें		
एतत् चराचरं	यह चर-अचर (जगत्) है,		

सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ।
जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥४५॥

सः अनन्तः अन्तकरः कालः अनादिः आदिकृत् अव्ययः जनं जनेन जनयन् मारयन् मृत्युना अन्तकम् ॥४५॥

सः अनन्तः	वह अनन्त	**अव्ययः**	अविनाशी
अन्तकरः	सबका अन्त करनेवाला	**जनेन जनं**	लोगोंसे ही लोगोंको
		जनयन्	उत्पन्न करता है और
कालः	काल	**मृत्युना**	मृत्युसे
अनादिः	अनादि,	**अन्तकं**	यमराजको भी
आदिकृत्	सबका प्रारम्भक,	**मारयन्**	मार देता है ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

कपिल उवाच-

तस्यैतस्य जनो नूनं नायं वेदोरुविक्रमम् ।
काल्यमानोऽपि बलिनो वायोरिव घनावलिः ॥१॥

तस्य एतस्य जनः नूनं न अयं वेद उरु विक्रमं काल्यमानः अपि बलिनः वायोः इव घनावलिः ॥१॥

नूनं	निश्चय
अयं जनः	यह मनुष्य
तस्य	उस
बलिनः	बलवान (काल भगवान द्वारा)
वायोः घनावलिः	वायु द्वारा मेघ
इव	मंडलके समान
काल्यमानः अपि	भटकाया जाता भी
एतस्य	इनके
उरु विक्रमं	महान् पराक्रमको
न वेद	नहीं जानता ॥१॥

यं यमर्थमुपादत्ते दुःखेन सुखहेतवे ।
तं तं धुनोति भगवान् पुमाञ्छोचति यत्कृते ॥२॥

यं यं अर्थं उपादत्ते दुःखेन सुखहेतवे तं तं धुनोति भगवान् पुमान् शोचति यत् कृते ॥२॥

सुखहेतवे	सुखके लिए
दुःखेन	कष्ट उठाकर
पुमान्	पुरुष
यं यं अर्थं	जिस जिस पदार्थको
उपादत्ते	प्राप्त करता है,
भगवान्	भगवान (काल)
तं तं धुनोति	उस-उसको नष्ट कर देते हैं,
यत् कृते	जिसके लिए
शोचति	(वह) शोक करता है ॥२॥

यदध्रुवस्य देहस्य सानुबन्धस्य दुर्मतिः ।
ध्रुवाणि मन्यते मोहाद् गृहक्षेत्रवसूनि च ॥३॥

यत् अध्रुवस्य देहस्य सानुबन्धस्य दुर्मतिः ध्रुवाणि मन्यते मोहात् गृह क्षेत्र वसूनि च ॥३॥

यत्	क्योंकि	**दुर्मतिः**	दुर्बुद्धि (मनुष्य)
सानुबन्धस्य	सम्बन्धियोंके साथ	**मोहात्**	मोहवश
अध्रुवस्य	नाशवान	**ध्रुवाणि मन्यते**	स्थायी मान लेता है ॥३॥
देहस्य	शरीर (और)		
गृह क्षेत्र	घर, भूमि तथा		
वसूनि च	धनको		

जन्तुर्वै भव एतस्मिन् यां यां योनिमनुव्रजेत् ।
तस्यां तस्यां स लभते निर्वृतिं न विरज्यते ॥४॥

जन्तुः वै भव एतस्मिन् यां यां योनिं अनुव्रजेत् तस्यां तस्यां स लभते निर्वृतिं न विरज्यते ॥४॥

जन्तुः	जीव	**निर्वृतिं लभते**	आनन्द पाने लगता है,
एतस्मिन् भव	इस संसारमें	**न विरज्यते**	(अतः) विरक्त नहीं होता ॥४॥
यां यां योनिं	जिस-जिस योनिमें		
अनुव्रजेत्	जाता है		
तां तां वै	उस-उसमें ही		

नरकस्थोऽपि देहं वै पुमांस्त्यक्तुमिच्छति ।
नारक्यां निर्वृतौ सत्यां देवमायाविमोहितः ॥५॥

नरकस्थः अपि देहं वै न पुमान् त्यक्तुं इच्छति नारक्यां निर्वृतौ सत्यां देवमाया विमोहितः ॥५॥

पुमान्	जीव	**नारक्यां देहं**	उस नारकीय शरीरको
नरकस्थः अपि	नरकमें होनेपर भी	**त्यक्तुं**	छोड़ना
निर्वृतौ सत्यां	(वहाँके भोगमें भी) सुख होनेसे	**वै न**	निश्चित रूपसे नहीं
देवमाया	भगवानकी मायासे	**इच्छति**	चाहता ॥५॥
विमोहितः	मोहित होकर		

आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु ।
निरूढमूलहृदय आत्मानं बहु मन्यते ॥६॥

आत्मजाया सुत आगार पशु द्रविण बन्धुषु निरूढमूल हृदयः आत्मानं बहु मन्यते ॥६॥

आत्मजाया	अपनी पत्नी,	**हृदयः**	हृदय
सुत आगार	पुत्र, घर,	**आत्मानं**	अपनेको
पशु द्रविण	पशु, धन,	**बहु मन्यते**	भाग्यवान मानता है ॥६॥
बन्धुषु	सम्बन्धियोंमें		
निरूढमूल	अत्यन्त आसक्त		

सन्दह्यमानसर्वाङ्ग एषामुद्वहनाधिना ।
करोत्यविरतं मूढो दुरितानि दुराशयः ॥७॥

सन्दह्यमानः सर्वाङ्गः एषां उद्वह आधिनां करोति अविरतं मूढः दुरितानि दुराशयः ॥७॥

एषां उद्वह	इनके भरण-पोषणकी	**मूढः दुराशयः**	(फिर भी यह) मूर्ख दुर्वासनाओंसे
आधिना	चिन्तासे	**अविरतं**	अविश्राम
सर्वाङ्गः	पूर्णतः	**दुरितानि करोति**	पाप करता रहता है ॥७॥
सन्दह्यमानः	जलता रहता है,		

आक्षिप्तात्मेन्द्रियः स्त्रीणामसतीनां च मायया ।
रहोरचितयाऽऽलापैः शिशूनां कलभाषिणाम् ॥८॥

आक्षिप्तं आत्म इन्द्रियः स्त्रीणां असतीनां च मायया रहः रचितया आलापैः शिशूनां कलभाषिणाम् ॥८॥

असतीनां स्त्रीणां	कुलटा स्त्रियोंके	**शिशूनां कलभाषिणाम्**	(तथा) शिशुओंकी मीठी बातोंमें
मायया च	छलपूर्ण	**आत्म इन्द्रियः आक्षिप्तः**	चित्त और इन्द्रियाँ उलझ जाती हैं ॥८॥
रहः आलापैः रचितया	एकान्तकी चर्चासे		

गृहेषु कूटधर्मेषु दुःखतन्त्रेष्वतन्द्रितः ।
कुर्वन्दुःखप्रतीकारं सुखवन्मन्यते गृही ॥९॥

गृहेषु कूटधर्मेषु दुःखतन्त्रेषु अतन्द्रितः कुर्वन् दुःखप्रतीकारं सुखवत् मन्यते गृही ॥९॥

गृही	(इससे) गृहस्थ	**दुःखप्रतीकारं**	दुःखोंका प्रतिकार
कूटधर्मेषु	कपटपूर्ण कर्मोंवाले	**कुर्वन्**	करता हुआ
दुःखतन्त्रेषु	दुःखदायी	**सुखवत्**	(उसीको) सुखकी
गृहेषु	घरमें		भाँति
अतन्द्रितः	आलस्यरहित होकर	**मन्यते**	मानता है ॥९॥

विशेष—

सांसारिक सब सुख केवल दुःखके प्रतिकारमें प्राप्त यत्किञ्चित् सफलता मात्र हैं। अज्ञानसे ही इन्हें लोग सुख मानते हैं।

अर्थैरापादितैर्गुर्व्या हिंसयेतस्तश्च तान् ।
पुष्णाति येषां पोषेण शेषभुग्यात्यधः स्वयम् ॥१०॥

अर्थैः आपादितैः गुर्व्या हिंसयेत् ततः च तान् पुष्णाति येषां पोषेण शेषभुक् याति अधः स्वयम् ॥१०॥

ततः च तान्	जहाँ-तहाँ लोगोंको	**अधः याति**	अधःपतन होता है,
अर्थैः आपादितैः	धनोपार्जनमें	**तानि पुष्णाति**	उनका पालन
गुर्व्या हिंसयेत्	बहुत उत्पीड़ित		करता है ।
	करता है,	**स्वयं शेष भुक्**	स्वयं उनसे बचा
येषां पोषेण	जिनके पालनसे		भोगता है ॥१०॥

वार्तायां लुप्यमानायामारब्धायां पुनः पुनः ।
लोभाभिभूतो निःसत्त्वः परार्थे कुरुते स्पृहाम् ॥११॥

वार्तायां लुप्यमानायां आरब्धायां पुनः पुनः लोभ अभिभूतः निःसत्त्वः पर अर्थे कुरुते स्पृहाम् ॥११॥

आरब्धायां	प्रारम्भ की हुई
वार्तायां	जीविकाके
पुनः पुनः	बार-बार
लुप्यमानायां	नष्ट हो जानेसे
लोभ अभिभूतः	लोभाक्रान्त
निःसत्त्वः	अधीर होकर
पर अर्थे	दूसरेके धनको
स्पृहां कुरुते	पानेकी इच्छा करता है ॥११॥

कुटुम्बभरणाकल्पो मन्दभाग्यो वृथोद्यमः ।
श्रिया विहीनः कृपणो ध्यायञ्छ्वसिति मूढधीः ॥१२॥

कुटुम्ब भरण अकल्पः मन्दभाग्यः वृथा उद्यमः श्रिया विहीनः कृपणः ध्यायन् श्वसितः मूढधीः ॥१२॥

मन्दभाग्यः	मन्दभाग्य,
मूढधीः	मूढबुद्धि,
कुटुम्ब भरण	कुटुम्ब पालनमें
अकल्पः	असमर्थ
उद्यमः वृथा	उद्योगोंके व्यर्थ हो जानेपर
श्रिया विहीनः	धनहीन होकर
कृपणः	दुःखी होकर
ध्यायन्	चिन्ता करता
श्वसितः	लम्बी सांस लेता है ॥१२॥

एवं स्वभरणाकल्पं तत्कलत्रादयस्तथा ।
नाद्रियन्ते यथा पूर्वं कीनाशा इव गोजरम् ॥१३॥

एवं स्वभरण अकल्पं तत् कलत्रादयः तथा न आद्रियन्ते यथा पूर्वं कीनाश इव गोजरम् ॥१३॥

एवं	इस प्रकार
स्वभरण अकल्पं	अपने पालनमें असमर्थका
तत् कलत्र आदयः	उसकी पत्नी (पुत्र) आदि
कीनाश गोजरं	किसान जैसे बूढ़े
इव	बैलका
यथा पूर्व तथा	जैसे पहिले करते थे वैसा
आदियन्ते न	आदर नहीं करते ॥१३॥

तत्राप्यजातनिर्वेदो म्रियमाणः स्वयम्भृतैः ।
जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे ॥१४॥

तत्र अपि अजात निर्वेदः म्रियमाणः स्वयं भृतैः जरया उपात्त वैरूप्यः मरण अभिमुखः गृहे ॥१४॥

तत्र गृहे अपि	फिर भी उस घरमें	**जरया वैरूप्यः**	बुढ़ापेसे कुरूप
अजात निर्वेदः	वैराग्य नहीं होता,	**उपात्त**	होकर
स्वयं भृतैः	जिनका स्वयं पालन किया था	**मरण अभिमुखः**	मरणोन्मुख हो जाता है ॥१४॥
म्रियमाणः	(उनके द्वारा) पालित होता,		

आस्तेऽवमत्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन् ।
आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥१५॥

आस्ते अवमत्या उपन्यस्तं गृहपाल इव आहरन् आमय अव्यप्रदीप्त अग्निः अल्प आहारः अल्प चेष्टितः ॥१५॥

अवमत्या	अपमानपूर्वक	**अग्निः अल्प**	अग्निसे थोड़ा
उपन्यस्तं	फेंके (टुकड़ों) को	**आहारः**	भोजन,
गृहपाल इव	कुत्तेके समान	**अल्प चेष्टितः**	थोड़ी चेष्टा करता
आहरन्	ग्रहण करता,	**आस्ते**	रहता है । (किसी
आमय	रोगके कारण		प्रकार जीता
अव्य प्रदीप्त	दुर्बल हुई		है) ॥१५॥

वायुनोत्क्रमतोत्तारः कफसंरुद्धनाडिकः ।
कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरघुरायते ॥१६॥

वायुना उत्क्रमता उत्तारः कफसंरुद्ध नाडिकः कासश्वासकृत आयासः कण्ठे घुरघुरायते ॥१६॥

वायुना क्रमता	प्राण वायुका उत्क्रमण (निकलनेकी तैयारी) होनेपर	**नाडिकः**	नाड़ियां कफसे रुक
		कफ संरुद्धः	जाती हैं,
		कासश्वास	खांसीके कारण
उत्तारः	(नेत्रकी) पुतलियाँ ऊपर चढ़ जाती हैं		श्वास लेनेमें

आयसः कृत	प्रयत्न करना पड़ता है,	कण्ठे घुरघुरायते	गला घर्र घर्र करने लगता है ॥१६॥

शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः ।
वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशं गतः ॥१७॥

शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः वाच्यमानः अपि न ब्रूते कालपाश वशं गतः ॥१७॥

परिशोचद्भिः	शोक करते हुए	वाच्यमानः अपि	बुलाये जानेपर भी
स्वबन्धुभिः	अपने सम्बन्धियोंसे	कालपाश वशं	मृत्युके फन्देमें पड़ा
परिवीतः	घिरा	गतः	
शयानः	सोता	ब्रूते न	बोलता नहीं ॥१७॥

एवं कुटुम्बभरणे व्यापृतात्माजितेन्द्रियः ।
म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयास्तधीः ॥१८॥

एवं कुटुम्ब भरणे व्यापृत आत्मा अजितेन्द्रियः म्रियते रुदतां स्वानां उरु वेदनया अस्त धीः ॥१८॥

अजितेन्द्रियः	इन्द्रियोंको वशमें न करनेवाला	उरु वेदनया	बहुत पीड़ासे
		अस्त धीः	लुप्त बुद्धि
कुटुम्ब भरणे	कुटुम्ब-पालनमें	एवं मृयते	इस प्रकार मर जाता है ॥१८॥
व्यापृत आत्मा	व्यस्त चित्त (पुरुष)		
स्वानां रुदतां	स्वजनोंके रोते रहते,		

यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभसेक्षणौ ।
स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः शकृन्मूत्रं विमुञ्चति ॥१९॥

यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभस इक्षणौ स दृष्ट्वा त्रस्त हृदयः शकृन् मूत्रं विमुञ्चति ॥१९॥

तदा	उस समय	सरभस ईक्षणौ	क्रोध भरे नेत्र वाले
भीमौ	भयानक		

यमदूतौ प्राप्तौ	(कम-से-कम) दो यमदूत आते हैं*	**व्रस्त हृदयः**	भयभीत हृदय
स दृष्ट्वा	वह (उन्हें) देखकर	**शकृन् मूत्रं**	मल-मूत्र
		विमुञ्चति	त्यागता है ॥१९॥

यातनादेह आवृत्य पाशैर्बद्ध्वा गले बलात् ।
नयतो दीर्घमध्वानं दण्ड्यं राजभटा यथा ॥२०॥

यातना देह आवृत्य पाशैः बध्वा गले बलात् नयतः दीर्घं अध्वानं दण्ड्यं राजभटाः यथा ॥२०॥

यातना देह	यातना देहमें	**राजभटाः**	राज्यके शूर (पुलिसवाले)
आवृत्य	डालकर■	**दीर्घं अध्वानं**	लम्बे रास्तेमें
बलात् पाशैः	बलपूर्वक पाशसे	**नयतः**	(घसीट) ले जाते
गले बध्वा	गला बाँधकर		हैं ॥२०॥
यथा दण्ड्यं	जैसे दण्डनीय (अपराधी) को		

तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः ।
पथि श्वभिर्भक्ष्यमाण आर्तोऽघं स्वमनुस्मरन् ॥२१॥

तयोः निर्भिन्न हृदयः तर्जनैः जात वेपथुः पथि श्वभिः भक्ष्यमाणः आर्तः अघं स्वं अनुस्मरन् ॥२१॥

तयोः तर्जनैः	उन (यमदूतों) के डांटनेसे	**जात वेपथुः**	(शरीर) कांपता रहता है,
निर्भिन्न हृदयः	हृदय फटता लगता है,	**पथि श्वभिः**	मार्गमें कुत्ते
		भक्ष्यमाणः	काटते रहते हैं,

---

* **दो ही यमदूत आवें**— यह नियम नहीं है। अजामिलको लेने तीन यमदूत आये थे। (६.१.२८)

■ **यातना देह**का दूसरा नाम अतिवाहिक देह है। इस देहको काटने, छेदने, जलानेसे यह नष्ट नहीं होता; किन्तु बार-बार काटने, जलाने आदिकी पीड़ा इसमें होती रहती है।

आर्तः स्वं अघं	व्याकुल होकर अपने पापोंको	अनुस्मरन्	बार-बार स्मरण करता है ॥२१॥

क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः
सन्तप्यमानः पथि तप्तवालुके ।
कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडित-
श्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके ॥२२॥

क्षुत् तृट् परीतः अर्क दवानल अनिलैः सन्तप्यमानः पथि तप्त वालुके कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडिते चलति अशक्तः अपि निराश्रम उदके ॥२२॥

क्षुत् तृट् परीतः	भूख-प्याससे बेचैन,	पथि	मार्गमें
अर्क	सूर्य (की गर्मी) तथा	अशक्तः अपि	असमर्थ होनेपर भी
दवानल अनिलैः	दावाग्निकी वायु (लू) से	पृष्ठे कशया	पीठपर कोड़ोंसे
सन्तप्यमानः	संतप्त होता,	ताडिते	मारे जानेसे किसी
निराश्रम उदके	विराम एवं जलहीन	चलति च	प्रकार चलता
तप्त वालुके	तपी रेतवाले		है ॥२२॥

तत्र तत्र पतञ्छ्रान्तो मूर्च्छितः पुनरुत्थितः ।
पथा पापीयसा नीतस्तरसा यमसादनम् ॥२३॥

तत्र तत्र पतन् श्रान्तः मूर्छितः पुनः उत्थितः पथा पापीयसा नीतः तरसा यम सादनम् ॥२३॥

श्रान्तः	थक कर	पथा पापीयसा	पापियोंके ले जानेके मार्गसे
मूर्छितः	मूर्छित होकर	तरसा	वेगपूर्वक यमलोक
तत्र तत्र पतन्	जहां-तहां गिर जाता है,	यम सादनं	लाया जाता
पुनः उत्थितः	फिर उठता है,	नीतः	है ॥२३॥

योजनानां सहस्राणि नवतिं नव चाध्वनः ।
त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः ॥२४॥

योजनानां सहस्राणि नवतिं नव च अध्वनः त्रिभिः मुहूर्तैः द्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः ॥२४॥

सहस्राणि नवतिं नव च	निन्यानबे हजार	**वा द्वाभ्यां**	अथवा दोमें
योजनानां	योजनका (वह)	**नीतः यातनाः**	लाया जाकर (वहां) यातनायें
अध्वनः	मार्ग	**प्राप्नोति**	पाता है ॥२४॥
त्रिभिः मुहूर्तैः	तीन मुहूर्तमें		

आदीपनं स्वगात्राणां वेष्टयित्वोल्मुकादिभिः ।
आत्ममांसादनं क्वापि स्वकृत्तं परतोऽपि वा ॥२५॥

आदीपनं स्वगात्राणां वेष्टयित्त्वा उल्मुकादिभिः आत्म मांस अदनं क्वापि स्वकृतं परतः अपि वा ॥२५॥

उल्मुकादिभिः	जलती लकड़ियों आदिसे	**क्वापि आत्म**	कभी उसे अपना
वेष्टयित्त्वा	घेरकर	**मांस**	ही मांस
स्वगात्राणं	उसके शरीरको	**स्वकृतं अपि वा**	स्वयं उसे अथवा
आदीपनं	जलाया जाता है,	**परतः अदनं**	दूसरोंको खिलाया जाता है ॥२५॥

जीवतश्चान्त्राभ्युद्धारः श्वगृध्रैर्यमसादने ।
सर्पवृश्चिकदंशाद्यैर्दशद्भिश्चात्मवैशसम् ॥२६॥

जीवितः च अन्त्र अभ्युद्धारः श्वगृध्रैः यमसादने सर्प वृश्चिक दंश आद्यैः दशद्भिः च आत्म वैशसम् ॥२६॥

आत्म वैशसं	उसके अपने पापोंसे	**जीवितः च**	जीते हुए ही
यमसादने	यमपुरीके	**अन्त्र अभ्युद्धारः**	(उसकी) आँतें निकाल ली जाती हैं,
श्वगृध्रैः	कुत्ते, गीधों द्वारा		

सर्प वृश्चिक दंश आद्यैः	सर्प, बिच्छू, डांस आदि	दशद्भिः च	डंसते ही रहते हैं ॥२६॥

कृन्तनं चावयवशो गजादिभ्यो भिदापनम् ।
पातनं गिरिशृङ्गेभ्यो रोधनं चाम्बुगर्तयोः ॥२७॥

कृन्तनं च अवयवशः गजादिभ्यः भिदापनं पातनं गिरिशृंगेभ्यः रोधनं च अम्बु गर्तयोः ॥२७॥

अवयवशः	टुकड़े-टुकड़े अंग	पातनं च	गिराया जाता है, और
कृतन्तं च	काटा भी जाता है,	अम्बु गर्तयोः	जलमें या गड्ढेमें
गजादिभ्यः	हाथी आदिसे	रोधनं	डालकर बन्द कर
भिदापनं	चिरवाया जाता है		देते हैं ॥२७॥
गिरिशृंगेभ्यः	पर्वत शिखरसे		

यास्तामिस्रान्धतामिस्रा रौरवाद्याश्च यातनाः ।
भुङ्क्ते नरो वा नारी वा मिथः सङ्गेन निर्मिताः ॥२८॥

याः तामिस्र अन्धतामिस्रा रौरव आद्याः च यातनाः भुङ्क्ते नरः वा नारी वा मिथः सङ्गेन निर्मिताः ॥२८॥

याः तामिस्र	जो तामिस्र,	नरः वा नारी वा	पुरुष हो या स्त्री हो
अन्धतामिस्रा	अन्धतामिस्रा	मिथः सङ्गेन	परस्परके संसर्गसे
रौरवआद्यः च यातनाः	तथा रौरव आदि (नरकों) की यातनायें हैं	निर्मिताः	उत्पन्न (पापोंके फलसे)
		भुङ्क्ते	भोगते हैं ॥२८॥

अत्रैव नरकः स्वर्ग इति मातः प्रचक्षते ।
या यातना वै नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः ॥२९॥

अत्र एव नरकः स्वर्गः इति मातः प्रचक्षते याः यातनाः वै नारक्याः ताः इह अपि उपलक्षिताः ॥२९॥

मातः	माता !	यातनाः	यातनायें हैं
अत्र एव	यहीं (इसी पृथ्वीपर)	ताः वै	वे तो निश्चय
नरकः स्वर्गः	नरक और स्वर्ग हैं,	इह अपि	यहाँ भी
इति प्रचक्षते	ऐसा कहा जाता है ।	उपलक्षते	देखी जाती हैं ॥२९॥
याः नारक्याः	जो नारकीय		

एवं कुटुम्बं बिभ्राण उदरम्भर एव वा ।
विसृज्येहोभयं प्रेत्य भुङ्क्ते तत्फलमीदृशम् ॥३०॥

एवं कुटुम्बं विभ्राणः उदरंभर एव वा विसृज्य इह उभयं प्रेत्य भुङ्क्ते तत् फलं ईदृशम् ॥३०॥

एवं कुटुम्बं	इस प्रकार कुटुम्बके	विसृज्य	छोड़कर
विभ्राणं	भरण-पोषणमें लगा	प्रेत्य	मरकर
एव वा	अथवा	तत् ईदृशं	उसका ऐसा
उदरंभर	अपना पेट ही भरनेवाला	फलं भुङ्क्ते	फल भोगता है ॥३०॥
इह उभयं	यहीं दोनों (कुटुम्ब और देह) को		

एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वेदं स्वकलेवरम् ।
कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद् भृतम् ॥३१॥

एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वा इदं स्वं कलेवरं कुशल. इतर पाथेयः भूत द्रोहेण यत् भृतम् ॥३१॥

इदं स्व कलेवरं	इस अपने शरीरको	यत् भृतं	जो इकट्ठा किया
हित्वा	छोड़कर		था (उस)
भूत द्रोहेण	प्राणियोंसे द्रोह करके	कुशल इतर	पाप रूप

पाथेयः	पाथेय (मार्गाहार) को लेकर	एकः ध्वान्तं प्रपद्यते	अकेला नरक जाता है ॥३१॥

दैवेनासादितं तस्य शमलं निरये पुमान् ।
भुङ्क्ते कुटुम्बपोषस्य हृतवित्त इवातुरः ॥३२॥

दैवेन आसादितं तस्य शमलं निरये पुमान् भुङ्क्ते कुटुम्ब पोषस्य हृतवित्त इव आतुरः ॥३२॥

हृतवित्त इव	जिसका धन हरण हो गया हो वैसा	दैवेन आसादितं	दैवके देनेसे
आतुरः	व्याकुल होकर	पुमान्	पुरुष (जीव)
कुटुम्ब पोषस्य	कुटुम्ब पोषणके	निरये भुङ्क्ते	नरकमें भोगता है ॥३२॥
तस्य शमलं	उस पापका (फल)		

केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः ।
याति जीवोऽन्धतामिस्रं चरमं तमसः पदम् ॥३३॥

केवलेन हि अधर्मेण कुटुम्ब भरण उत्सुकः याति जीवः अन्धतामिस्रं चरमं तमसः पदम् ॥३३॥

केवलेन	केवल	तमसः चरमं पदं	नरकमें अन्तिम कष्टके स्थान
अधर्मेण हि	अधर्मसे ही	अन्धतामिस्रं	
कुटुम्ब भरण	कुटुम्ब पालनमें	याति	अन्धतामिस्र जाता है ॥३३॥
उत्सुकः	उत्सुक		
जीवः	जीव		

अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः ।
क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः ॥३४॥

अधस्तात् नर लोकस्य यावतीः यातना आदयः क्रमशः समनुक्रम्य पुनः अत्र आव्रतेत् शुचिः ॥३४॥

नर लोकस्य	मनुष्य लोक (पृथ्वी) के
अधस्तात्	नीचे*
यावतीः	
यातना आदयः	जितने यातनादि हैं
क्रमशः	
समनुक्रम्य	क्रमशः उनको भोगकर
शुचिः पुनः	पवित्र होकर फिर
अत्र आव्रतेत्	इसी लोकमें आ जाता है ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धेत्रिंशोऽध्यायः ।

---

* पृथ्वी गोल है और आकाशमें घूम रही है, अतः इसके ऊपर-नीचेका कुछ अर्थ नहीं है। अतः यहाँ नीचेका अर्थ भीतर करना पड़ेगा। पृथ्वीके भीतर कल्पनातीत गर्मीमें पिघले द्रव्य हैं। उनमें ही कहीं यह नरक हैं—यह चिन्तनीय है।

अथ एकत्रिंशोऽध्यायः

कपिल उवाच*-

कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये ।
स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः ॥१॥

कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुः देह उपपत्तये स्त्रियाः प्रविष्टः उदरं पुंसः रेतः कण आश्रयः ॥१॥

कर्मणा	प्रारब्ध कर्मानुसार	**पुंसः रेतः कण**	पुरुष वीर्यके कणका
दैवनेत्रेण	दैवके दिखाये स्थानपर	**आश्रयः**	सहारा लेकर
		स्त्रियाः उदरं	स्त्रीके पेटमें
देह उपपत्तये	शरीर प्राप्त करनेके लिए	**प्रविष्टः**	प्रवेश करता है ॥१॥
जन्तुः	जीव		

कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम् ।
दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम् ॥२॥

कललं तु एक रात्रेण पञ्च रात्रेण बुद्बुदं दश अहेन तु कर्कन्धूः पेशि अण्डं वा ततः परम् ॥२॥

कललं तु	कलल (लसलसा पदार्थ) तो	**दश अहेन तु**	दस दिनमें तो
		कर्कन्धूः	बेरके फलके समान कुछ कड़ा
एक रात्रेण	एक रातमें (और)		
पञ्च रात्रेण	पांच रातमें	**ततः परं**	उसके पश्चात्
बुद्बुदं	बुलबुला (बन जाता है)	**पेशि अण्डं वा**	मांस पेशी अथवा अंडा बनाता है ॥२॥

*गीता प्रेसकी प्रतिमें यहाँ 'श्रीभगवानुवाच' है ।

मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्घ्याद्यङ्गविग्रहः ।
नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः ॥३॥

मासेन तु शिरः द्वाभ्यां बाहु अङ्ग आदि विग्रहः नख लोम अस्थि चर्माणि लिङ्ग छिद्र उद्भवः त्रिभिः ॥३॥

मासेन तु	एक महीनेमें तो	**अस्थि चर्माणि**	हड्डी, चमड़ा,
शिरः	सिर (बनता है)	**लिङ्ग छिद्रं**	(स्त्री-पुरुष) पहचानको इन्द्रिय
द्वाभ्यां	दो (महीने) में	**त्रिभिः उद्भवः**	तीन (महीने) में उत्पन्न होती है ॥३॥
बाहु आदि	भुजा आदि		
अंग विग्रहं	शरीरके अंग (तथा)		
नख लोम	नख, रोम		

चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः ।
षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे ॥४॥

चतुर्भिः धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत् तृट् उद्भवः षट्भिः जरायुणा वीतः कुक्षि भ्राम्यति दक्षिणे ॥४॥

चतुर्भिः	चार (महीने) में	**षट्भिः**	छ (महीने) में
सप्त धातवः	(मांसादि) सातों धातुएँ,	**जरायुणा वीतः**	जरायुसे घिरा
पञ्चभिः	पाँच (महीने) में	**दक्षिणे कुक्षि**	(माताकी) दाहिनी कोखमें
क्षुत् तृट् उद्भवः	भूख-प्यास उत्पन्न हो जाती है	**भ्राम्यति**	घूमने (हिलने) शगता है ॥४॥

मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसम्मते ।
शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसम्भवे ॥५॥

मातुः जग्ध अन्न पान आद्यैः एध धातुः असम्मते शेते विण्मूत्रयोः गर्ते स जन्तुः जन्तु सम्भवे ॥५॥

मातुः जग्ध अन्न पान आद्यैः	माताके खाये अन्न-जलादिसे	**एध धातुः**	(उसके शरीरकी) धातुएँ बढ़ती रहती हैं,

विण्मूत्रयोः	विष्टा-मूत्रके	**गर्ते**	गड्ढे (आंत) में
असम्मते	न चाहने योग्य	**स जन्तुः**	वह जीव
जन्तु सम्भवे	जिसमें कीड़े उत्पन्न होते हैं	**शेते**	सोता है ॥५॥

कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम् ।
मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः ॥६॥

कृमिभिः क्षत सर्वाङ्गः सौकुमार्यात् प्रतिक्षणं मूर्छां आप्नोति उरु क्लेशः तत्रत्यैः क्षुधितैः मुहुः ॥६॥

क्षुधितैः	भूखे	**क्षत सर्वाङ्गः**	सब अंगोंमें घाव हो जाते हैं
तत्रत्यैः	वहाँ रहनेवाले	**प्रतिक्षणं मुहुः**	हर क्षण बार-बार
कृमिभिः	कीड़ों द्वारा (काटे जानेसे)	**उरु क्लेशात्**	अत्यन्त कष्टके कारण
सौकुमार्यात्	सुकुमार होनेसे	**मूर्छां आप्नोति**	मूर्छित होता रहता है ॥६॥

कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः ।
मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः ॥७॥

कटु तीक्ष्ण उष्ण लवण रूक्ष अम्ल आदिभिः उल्बणैः मातृ भुक्तैः उपस्पृष्टः सर्वाङ्ग उत्थितः वेदनः ॥७॥

मातृ भुक्तैः	माताके खाये	**उल्बणैः**	आदि उग्र (पदार्थों) के
कटु तीक्ष्ण	कड़वे, तीखे,	**उपस्पृष्टः**	स्पर्शसे (उसके)
उष्ण लवण	गरम, नमकीन,	**सर्वाङ्ग**	सब अंगोंमें
रूक्ष अम्ल	रूखे, खट्टे	**वेदनः उत्थितः**	पीड़ा उठने लगती है ॥७॥
आदिभिः			

उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृतः ।
आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः ॥८॥

उल्बेन संवृतः तस्मिन् अन्त्रैः च बहिः आवृतः आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठ शिरः अधरः ॥८॥

तस्मिन् कुक्षौ	उस कोखमें	कृत्वा	सिर नीचेकी ओर
उल्बेन संवृतः	जरायुसे लिपटा		करके
अन्त्रैः च	और आँतसे	भुग्नपृष्ठ	टेढ़ी (झुकी) पीठ
बहिः आवृतः	बाहरसे घिरा	आस्ते	रहता है ॥८॥
शिरः अधरः			

अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे ।
तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम् ।
स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते ॥९॥

अकल्पः स्वाङ्ग चेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे तत्र लब्धः स्मृतिः दैवात् कर्म जन्म शतः उद्भवम् स्मरन् दीर्घं अनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते ॥९॥

स्वाङ्ग चेष्टायां	अपने अंग हिलानेमें	कर्म स्मृतिः	कर्मोंकी स्मृति
पञ्जरे	पिंजड़ेमें पड़े	लब्धः	पाता है,
शकुन्त इव	पक्षीकी भाँति	स्मरन्	(उनको) स्मरण
अकल्पः	असमर्थ रहता है ।		करके
तत्र दैवात्	वहाँ भाग्यकी	दीर्घं अनुच्छ्वासं	लम्बी साँसें लेता,
	प्रेरणासे	किं नाम शर्म	भला कैसे शान्ति
जन्म शतः		विन्दते	पा सकता है ॥९॥
उद्भवं	सैकड़ों जन्मोंमें किये		

आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः ।
नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः ॥१०॥

आरभ्य सप्तमान् मासान् लब्ध बोधः अपि वेपितः न एकत्र आस्ते सूतिवातैः विष्ठाभूः इव सोदरः ॥१०॥

सप्तमान्		सूतिवातैः	
मासान्	सातवें महीनेके	वेपितः	प्रसूति वायुसे
आरभ्य	प्रारम्भसे		हिलानेके कारण
लब्ध बोधः	ज्ञान-शक्ति पा	सोदरः	उसी उदरमें उत्पन्न
अपि	जानेपर भी		

विष्ठाभूः इव	विष्ठामें उत्पन्न कीड़ोंकी भाँति	**एकत्र न आस्ते**	एक स्थानपर नहीं रह पाता ॥१०॥

नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृताञ्जलिः ।
स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः ॥११॥

नाथमानः ऋषिः भीतः सप्त अवध्रिः कृत अञ्जलिः स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येन उदरे अर्पितः ॥११॥

सप्त अवध्रिः	सात (महीनेका) हो जानेपर	**विक्लवया वाचा**	व्याकुल वाणीसे
ऋषिः	(वह अनेक जन्मोंकी) स्मृति सम्पन्न	**तं स्तुवीतः**	उनकी स्तुति करता है,
नाथमानः	(जरायुसे) बँधा हुआ	**येन उदरे**	जिन्होंने (उसे) गर्भमें
भीतः	भयभीत होकर	**अर्पितः**	डाला है ॥११॥
कृत अञ्जलिः	हाथ जोड़कर		

जन्तुरुवाच-

तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयाऽऽत्त-
नानातनोर्भुवि चलच्चरणारविन्दम् ।
सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे
येनेदृशी गतिरदर्श्यसतोऽनुरूपा ॥१२॥

तस्य उपसन्नं अवितुं जगत् इच्छया आत्त नाना तनुः भुवि चलत् चरणारविदं स अहं व्रजामि शरणं हि अकुतः भयं मे येन ईदृशी गतिः अदर्शयत असतः अनुरूपा ॥१२॥

हि येन मे असतः	क्योंकि जिन्होंने	**ईदृशी गतिः**	ऐसी अवस्था
		अदर्शयत	(मुझे) दिखलायी,
अनुरूपा	मुझ जैसे अधमके अनुरूप	**उपसन्नं**	शरणागत

जगत् अवितुं	संसारकी रक्षाके लिए
इच्छया	स्वेच्छासे
नाना तनुः आत्त	नाना शरीर धारण करके
भुवि चलत्	पृथ्वीपर चलते
अकुतः भयं	सर्वत्रसे अभय देनेवाले
तस्य	
चरणारविदं	उनके चरण-कमलोंका
स अहं	वह मैं
शरणं व्रजामि	शरण जाता हूँ ॥१२॥

यस्त्वत्र बद्ध इव कर्मभिरावृतात्मा
भूतेन्द्रियाशयमयीमवलम्ब्य मायाम् ।
आस्ते विशुद्धमविकारमखण्डबोध-
मातप्यमानहृदयेऽवसितं नमामि ॥१३॥

यस्तु अत्र बद्ध इव कर्मभिः आवृत आत्मा भूत इन्द्रिय आशयमयीं अवलम्ब्य मायां आस्ते विशुद्धं अविकारम् अखण्ड बोधम् आतप्यमान हृदये अवसितं नमामि ॥१३॥

यस्तु अत्र	जो तो यहां (माताके उदरमें)
भूत इन्द्रिय आशयमयीं	शरीर, इन्द्रिय, अन्तःकरण रूप
मायां अवलम्ब्य	मायाका आश्रय लेकर
कर्मभिः	(पाप-पुण्य रूप) कर्मोंसे
आवृतः	आच्छादित
बद्ध इव	बँधेके समान (लगते हैं),
आतप्यमान	(अपने) संतप्त हृदयमें
अवसितं	स्फुरित होते (उन)
विशुद्धं	
अविकारम्	विशुद्ध, निर्विकार
अखण्ड बोधं	अखण्ड ज्ञान रूपको
नमामि	नमस्कार करता हूँ ॥१३॥

यः पञ्चभूतरचिते रहितः शरीरे-
च्छन्नो यथेन्द्रियगुणार्थंचिदात्मकोऽहम् ।

तेनाविकुण्ठमहिमानमृषिं तमेनं
वन्दे परं प्रकृतिपूरुषयोः पुमांसम् ॥१४॥

यः पञ्चभूत रचिते रहितः शरीरे छन्नः यथा इन्द्रिय गुण अर्थ चिदात्मकः अहं तेन अविकुण्ठ महिमानं ऋषिं तं एनं वन्दे परं प्रकृति पूरुषयोः पुमांसम् ॥१४॥

पञ्चभूत रचिते	पञ्चभूतोंसे बने
शरीरे	शरीरमें
इन्द्रिय गुण अर्थ	इन्द्रियों, गुणों, (शब्दादि) विषयोंसे
छन्नः यथा अहं रहितः	ढका जैसे मैं
चिदात्मकः	(इनसे) रहित ज्ञान-स्वरूप हूँ,
यः तेन	जो उन (शरीर इन्द्रियादि) से
अविकुण्ठ	
महिमानं	अकुंठित महिमावाले
ऋषिं	सर्वज्ञ हैं
तं एनं	उन इन
प्रकृति पूरुषयोः	प्रकृति तथा पुरुषसे
परं पुमांसं	परे परम पुरुषकी
वन्दे	वन्दना करता हूँ ॥१४॥

यन्माययोरुगुणकर्मनिबन्धनेऽस्मिन्
सांसारिके पथि चरंस्तदभिश्रमेण ।
नष्टस्मृतिः पुनरयं प्रवृणीत लोकं
युक्त्या कया महदनुग्रहमन्तरेण ॥१५॥

यत् मायया उरु गुण कर्म निबन्धने अस्मिन् सांसारिके पथि चरन् तत् अभिश्रमेण नष्ट स्मृतिः पुनः अयं प्रवृणीत लोकं युक्त्या कया महत् अनुग्रहं अन्तरेण ॥१५॥

यत् मायया	जिनकी मायासे
गुण कर्म	गुणों और कर्मके
उरु निबन्धने	बड़े,बन्धनसे (बँधा)
अस्मिन्	
सांसारिक	इस संसारके
पथि चरन्	मार्गमें चलता,
तत् अभिश्रमेण	उस अत्यन्त परिश्रमसे
नष्ट स्मृतिः	स्मृति नष्ट हो जानेसे
पुनः अयं लोकं	फिर इसी लोकको
प्रवृणीत	वरण करता (चाहता) है—

महत् अनुग्रहं अन्तरेण	महापुरुषोंके अनुग्रहको छोड़कर	**कया युक्त्या**	(इससे छूटनेकी) दूसरी क्या युक्ति हो सकती है ॥१५॥

ज्ञानं यदेतददधात्कतमः स देव-
स्त्रैकालिकं स्थिरचरेष्वनुवर्तितांशः ।
तं जीवकर्मपदवीमनुवर्तमाना-
स्तापत्रयोपशमनाय वयं भजेम ॥१६॥

ज्ञानं यत् एतत् अदधात् कतमः स देवः त्रैकालिकं स्थिर चरेषु अनुवर्तित अंशः तं जीव कर्मपदवीं अनुवर्तमानः तापत्रय उपशमनाय वयं भजेम ॥१६॥

त्रैकालिकं एतत् यत् ज्ञानं	त्रैकालिक यह जो ज्ञान (इस समय मुझे है)	**तं कर्मपदवीं**	उनका कर्मानुसार स्थान (जन्म)
स कतमः देवः	वह किस देवताने	**अनुवर्तमानः**	प्राप्त कर
अदधात्	दिया है,	**तापत्रय**	
स्थिर चरेषु	स्थावर-जंगम (सब) में	**उपशमनाय**	त्रिताप नाशके लिए
अंशः अनुवर्तित	अंश रूपसे विद्यमान	**वयं भजेम**	हम भजन करते हैं ॥१६॥

देह्यन्यदेहविवरे जठराग्निनासृग्-
विण्मूत्रकूपपतितो भृशतप्तदेहः ।
इच्छन्नितो विवसितुं गणयन् स्वमासान्
निर्वास्यते कृपणधीर्भगवन् कदा नु ॥१७॥

देही अन्य देह विवरे जठराग्निना असृक् विट्मूत्र कूप पतितः भृश तप्त देहः इच्छन् इतः विवसितुं गणयन् स्वमासान् निर्वास्यते कृपण धीः भगवन् कदा नु ॥१७॥

अन्य देह विवरे	दूसरेके शरीरके उदरमें	**कूप पतितः**	कूएँमें गिरा
असृक् विटमूत्र	रक्त, विष्ठा, मूत्रके	**जठराग्निना**	जठराग्नि द्वारा

भृश तप्त देहः	अत्यन्त तपाये जाते शरीरसे	**कृपण धीः**	(इस) व्याकुल बुद्धिको
इतः विवसितं इच्छन्	यहाँसे निकलनेकी इच्छा करता है,	**भगवन् कदा नु निर्वास्यते**	भगवान कब तो निकालेंगे ॥१७॥
स्वमासान् गणयन्	अपने (जन्मके) महीनोंको गिनता है,		

येनेदृशीं गतिमसौ दशमास्य ईश
संग्राहितः पुरुदयेन भवादृशेन ।
स्वेनैव तुष्यतु कृतेन स दीननाथः
को नाम तत्प्रति विनाञ्जलिमस्य कुर्यात् ॥१८॥

येन इदृशीं गतिं असौ दशमास्य ईशः संग्राहितः पुरुदयेन भवादृशेन स्वेन एव तुष्यतु कृतेन स दीननाथः कः नाम तत् प्रति विना अञ्जलिं अस्य कुर्यात् ॥१८॥

येन ईशः	जिन समर्थने	**स्वेन एव कृतेन**	अपने ही (कृपा) करके
दशमास्य	दस महीनेके (जीवको)	**तुष्यतु**	सन्तुष्ट हों,
असौ इदृशीं गतिं	यह ऐसी (ज्ञानकी) अवस्था	**तत् प्रति अस्य**	उनके इस (उपकारक)
संग्राहितः	प्रदानकी है	**विना अञ्जलिं**	हाथ जोड़नेके अतिरिक्त
भवादृशेन	आपके समान	**कः नाम कुर्यात्**	ऐसा कौन है जो (पूरा) कर सके ॥१८॥
पुरुदयेन	अत्यन्त दयामय		
स दीननाथः	वे दीनोंके स्वामी		

पश्यत्ययं धिषणया ननु सप्तवध्रिः
शारीरके दमशरीर्यपरः स्वदेहे ।
यत्सृष्टयाऽऽसं तमहं पुरुषं पुराणं
पश्ये बहिर्हृदि च चैत्यमिव प्रतीतम् ॥१९॥

पश्यति अयं धिषणया ननु सप्तवध्रिः शारीरके दम शरीरः यः परः स्वदेहे यत् सृष्टया आसं तं अहं पुरुषं पुराणं पश्ये बहिः हृदि च चैत्यम् इव प्रतीतम् ॥१९॥

यः परः	जो दूसरे (पशु-पक्षी आदि) हैं	**यत् सृष्टया आसं**	जिनके बनानेसे हूँ,
धिषणया	(अपनी) बुद्धिसे	**तं पुराणं पुरुषं**	उन सनातन परम पुरुषको
अयं सप्तवध्रिः शरीरः पश्यति	इस सात धातुवाले शरीरको ही देखते हैं,	**अहं बहिः हृदि च**	मैं बाहर और हृदयमें भी
दम शारीरके	(शम) दम करने योग्य शरीरके	**चैत्य इव प्रतीतं**	अपने आत्माके समान (आत्म रूपमें)
स्वदेहे	इस (अपने) शरीरमें	**पश्ये**	देखता हूँ ॥१९॥

सोऽहं वसन्नपि विभो बहुदुःखवासं
गर्भान्न निर्जिगमिषे बहिरन्धकूपे ।
यत्रोपयातमुपसर्पति देवमाया
मिथ्यामतिर्यदनु संसृतिचक्रमेतत् ॥२०॥

सः अहं वसन् अपि विभो बहु दुःखवासं गर्भात् न निर्जिगमिषे बहिः अन्धकूपे यत्र उपयातं उपसर्पति देवमाया मिथ्यामतिः यत् अनु संसृति चक्रं एतत् ॥२०॥

विभो	प्रभो !	**यत्र उपयातं**	जहाँ जानेपर
सः अहं	वह मैं	**देवमाया**	देवमायासे
बहु दुःखवासं	बहुत दुःखोंके निवासमें	**मिथ्यामतिः**	मिथ्या बुद्धि
वसन् अपि	रहते हुए भी	**उपसर्पति**	पास आ जाती है,
गर्भात् बहिः		**यत् अनु**	जिसके पीछे
अन्धकूपे	गर्भसे बाहरके अन्धे-कुएमें	**एतत् संसृति चक्रं**	यह आवागमनका चक्र (चल पड़ता) है ॥२०॥
न निर्जिगमिषे	नहीं निकलूँगा,		

तस्मादहं विगतविक्लव उद्धरिष्य
आत्मानमाशु तमसः सुहृदाऽऽत्मनैव ।
भूयो यथा व्यसनमेतदनेकरन्ध्रं
मा मे भविष्यदुपसादितविष्णुपादः ॥२१॥

तस्मात् अहं विगत विक्लव उद्धरिष्य आत्मानं आशु तमसः सुहृत् आत्मना एव भूयः यथा व्यसनं एतत् अनेकरन्ध्रं मा मे भविष्यत् उपसादित विष्णुपादः ॥२१॥

तस्मात् अहं	इसलिए मैं	**आत्मानं**	अपना
विगत विक्लव	व्याकुलता त्यागकर	**तमसः उद्धरिष्ये**	अज्ञानसे उद्धार करूँगा,
आशु	शीघ्र		
विष्णुपादः	भगवान विष्णुके चरणोंका	**यथा एतत्**	जिससे यह
		अनेकरन्ध्रं	अनेक दोषोंवाला
उपसादित	आश्रय लेकर,	**व्यसनं मे**	क्लेश मुझे
सुहृत् आत्माना		**भूयः मा**	
एव	सुहृत् अपने आपसे ही	**भविष्यत्**	फिर न होवे ॥२१॥

कपिल उवाच–

एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृषिः ।
सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः ॥२२॥

एवं कृतमतिः गर्भे दश मास्यः स्तुवन् ऋषिः सद्यः क्षिपति अवाचीनं प्रसूत्यैः सूतिमारुतः ॥२२॥

एवं कृतमतिः	ऐसा निश्चय करके	**सूतिमारुतः**	प्रसव वायु
गर्भे स्तुवन्	गर्भमें (भगवानकी) स्तुति करते	**प्रसूत्यै**	प्रसवके लिए
		सद्यः अवाचीनं	तुरन्त नीचे
ऋषिः	ज्ञान सम्पन्न हुएको	**क्षिपति**	फेंकता है ॥२२॥

तेनावसृष्टः सहसा कृत्वावाक् शिर आतुरः ।
विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो गतस्मृतिः ॥२३॥

तेन अवसृष्टः सहसा कृत्वा अवाक् शिरः आतुरः विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासः गत स्मृतिः ॥२३॥

तेन सहसा	उसके द्वारा अचानक	**गत स्मृतिः**	स्मृति नष्ट हो
अवसृष्टः	धक्का दिए जानेपर		जाती है,
अवाक् शिरः	नीचे सिर	**कृच्छ्रेण**	कष्टसे
कृत्वा आतुरः	करके व्याकुल होकर	**विनिष्क्रामति**	बाहर निकलता
निरुच्छ्वासः	श्वासकी गति रुक		है ॥२३॥
	जाती है,		

पतितो भुव्यसृङ्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते ।
रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥२४॥

पतितः भुवि असृङ्मूत्रे विष्ठाभूः इव चेष्टते रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥२४॥

असृङ्मूत्रे	रक्त-मूत्रमें	**गते ज्ञाने**	ज्ञान नष्ट हो जानेसे
भुवि पतितः	पृथ्वीपर गिरकर	**विपरीतां गतिं**	उलटी दशाको
विष्ठाभूः इव	विष्ठामें उत्पन्न होने	**गतः रोरूयति**	पहुँचा रोता
	वाले कीड़ोंके समान		है ॥२४॥
चेष्टते	चेष्टा करता है,		

परच्छन्दं न विदुषा पुष्यमाणो जनेन सः ।
अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातुमनीश्वरः ॥२५॥

परच्छन्दं न विदुषा पुष्यमाणः जनेन सः अनभि प्रेतं आपन्नः प्रत्याख्यातुं अनीश्वरः ॥२५॥

न विदुषा	(उसकी स्थिति) न	**आपन्नः**	आनेपर
	जाननेवाले	**प्रत्याख्यातुं**	प्रतिवाद (मना)
जनेन पुष्यमाणः	लोगोंसे पालित		करनेमें
	होता	**अनीश्वरः**	असमर्थ होता
परच्छन्दं	परवश होता है,		है ॥२५॥
अनभि प्रेतं	प्रतिकूल स्थिति		

शायितोऽशुचिपर्यङ्के जन्तुः स्वेदजदूषिते ।
नेशः कण्डूयनेऽङ्गानामासनोत्थानचेष्टने ॥२६॥

शायितः अशुचि पर्यङ्के जन्तुः स्वेदज दूषिते न ईशः कण्डूयने अङ्गानां आसन उत्थान चेष्टने ॥२६॥

स्वेदज जन्तुः	पसीनेसे उत्पन्न जीवों (जूँ-खटमलों)से	**अङ्गानां**	
दूषिते	दूषित	**कण्डूयने**	अङ्गोंको खुजलानेमें,
अशुचि पर्यङ्के	अपवित्र (गन्दे) पलंगपर	**आसन उत्थान**	बैठने, उठनेमें,
शायिते	सुला देनेपर	**चेष्टने**	कोई चेष्टा करनेमें
		न ईशः	समर्थ नहीं रहता ॥२६॥

तुदन्त्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः ।
रुदन्तं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा ॥२७॥

तुदन्ति आमत्वचं दंशाः मशकाः मत्कुण आदयः रुदन्तं विगत ज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा ॥२७॥

यथा कृमिकं	जैसे कीड़ेको	**रुदन्तं**	रोते हुए
कृमयः	(दूसरे) कीड़े (काटते हैं,)	**आमत्वचं**	(उसकी) कच्ची त्वचाको
दंशाः मशकाः	डांस, मच्छर,	**तुदन्ति**	काटते रहते हैं ॥२७॥
मत्कुण आदयः	खटमल आदि		
विगत ज्ञानं	ज्ञान रहित होकर		

इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगण्डमेव च ।
अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचार्पितः ॥२८॥

इति एवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगण्डं एव च अलब्धा अभीप्सितः अज्ञानात् इद्धमन्युः शुचार्पितः ॥२८॥

इति एवं	इस प्रकारके	**भुक्त्वा**	भोगकर
शैशवं	शिशु अवस्थाको	**पौगण्डं एव च**	पौगण्डावस्थामें भी
		दुःखं	दुःख पाता है,

अभीप्सितः	जो पाना चाहता है	**इद्धमन्युः**	क्रोध बढ़ता है,
अलब्धा	उसे न पाकर	**शुचार्पितः**	शोकाकुल हो जाता
अज्ञानात्	नासमझीसे		है ॥२८॥

सह देहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना ।
करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः ॥२९॥

सह देहेन मानेन वर्ध मानेन मन्युना करोति विग्रहं कामी कामिषु अन्ताय च आत्मनः ॥२९॥

देहेन सह	देहके साथ-साथ	**अन्ताय**	विनाशके लिए
मानेन मन्युना	अभिमान और क्रोध	**कामिषु**	(दूसरे) कामियोंसे
वर्ध मानेन	बढ़ते जानेसे	**विग्रहं करोति**	शत्रुता कर लेता
कामी	कामनावश		है ॥२९॥
आत्मनः च	अपने ही		

भूतैः पञ्चभिरारब्धे देहे देह्यबुधोऽसकृत् ।
अहंममेत्यसद्ग्राहः करोति कुमतिर्मतिम् ॥३०॥

भूतैः पञ्चभिः आरब्धे देहे देही हि अबुधः असकृत् अहं मम इति असत् ग्राहः करोति कुमतिः मतिम् ॥३०॥

भूतैः पञ्चभिः	पञ्च महाभूतोंसे	**अहं मम इति**	'मैं मेरा' ऐसी
आरब्धे देहे	बने शरीरमें	**असत् ग्राहः**	असत्को पकड़े
हि अबुधः	क्योंकि अज्ञानी है		रहनेवाली
कुमतिः देही	दुर्बुद्धि जीव	**मतिं**	समझ
असकृत्	निरन्तर	**करोति**	कर लेता है ॥३०॥

तदर्थं कुरुते कर्म यद्बद्धो याति संसृतिम् ।
योऽनुयाति ददत्क्लेशमविद्याकर्मबन्धनः ॥३१॥

तत् अर्थं कुरुते कर्म यत् बद्धः याति संसृतिं यः अनुयाति ददत् क्लेशम् अविद्या कर्म बन्धनः ॥३१॥

तत् अर्थं	उस (अन्तःकरण)	**कर्म कुरुते**	कर्म करता है
	की तुष्टिके लिए	**यः क्लेशं ददत्**	क्लेश देता

अनुयाति	(इसके) पीछे (जन्मान्तरोंमें भी) जाता है	**कर्म बन्धनः**	कर्मके बन्धनसे
		यत्र बद्धः	जिससे बँधा
		संसृतिं याति	जन्म-मरणके चक्रमें
अविद्या	अविद्या (और)		पड़ता है ॥३१॥

यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः ।
आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत् ॥३२॥

यत् असत्भिः पथि पुनः शिश्न उदर कृत उद्यमैः आस्थितः रमते जन्तुः तमः विशति पूर्ववत् ॥३२॥

यत् पुनः	जिससे फिर	**जन्तुः रमते**	(इसीमें) जीव सुख मानता है,
असत्भिः पथि	कुमार्गसे (चलता)		
शिश्न उदर	उपस्थ और पेटके लिए	**पूर्ववत्**	पहिलेके समान
		तमः विशति	नरक जाता है ॥३२॥
कृत उद्यमः	प्रयत्न करता		
आस्थितः	रहता है,		

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा ।
शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गाद्याति सङ्क्षयम् ॥३३॥

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीः ह्रीः यशः क्षमाः शमः दमः भगः च इति यत् सङ्गात् याति संक्षयम् ॥३३॥

यत् सङ्गात्	जिस (शरीर) की आसक्तिसे	**क्षमा, शमः**	क्षमा,मनकी शान्ति,
		दमः भगः च	इन्द्रिय संयम और ऐश्वर्य
सत्यं शौचं	सत्य, पवित्रता,		
दयां मौनं	दया, मौन,	**इति**	ये सब
बुद्धिः श्रीः	बुद्धि, लक्ष्मी,	**संक्षयं याति**	नष्ट हो जाते हैं ॥३३॥
ह्रीः यशः	लज्जा, यश,		

तेष्वशान्तेषु मूढेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु ।
सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च ॥३४॥

तेषु अशान्तेषु मूढेषु खण्डित आत्मसु असाधुषु सङ्गं न कुर्यात् शोच्येषु योषित् क्रीडामृगेषु च ॥३४॥

तेषु अशान्तेषु	उन अशान्त,
मूढेषु	अज्ञानो,
खण्डित आत्मसु	खण्डित (विक्षिप्त)-चित्त,
असाधुषु	दुष्ट,
च योषित्	
क्रीडामृगेषु	और स्त्रियोंके खिलौनों,
शोच्येषु	शोचनीय लोगोंका
सङ्गं न कुर्यात्	साथ न करे ॥३४॥

न तथास्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः ।
योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः ॥३५॥

न तथा अस्य भवेत् मोहः बन्धः च अन्य प्रसङ्गतः योषित् सङ्गात् यथा पुंसः यथा तत् सङ्गि सङ्गतः ॥३५॥

अस्य	इस (जीव) का
तथा मोहः	वैसा मोह
च बन्धः	और बन्धन
अन्य प्रसङ्गतः	न दूसरी आसक्तियोंसे नहीं होता
यथा	जैसा
योषित् सङ्गात्	स्त्रीमें आसक्त होने तथा
तत् पुंस सङ्गि	उनमें आसक्त पुरुषके
सङ्गतः	साथसे
यथा भवेत्	(उसके) जैसा हो जाय ॥३५॥

प्रजापतिः स्वां दुहितरं दृष्ट्वा तद्रूपधर्षितः ।
रोहिद्भूतां सोऽन्वधावद्दृक्षरूपी हतत्रपः ॥३६॥

प्रजापतिः स्वां दुहितरं दृष्ट्वा तत् रूप धर्षितः रोहित् भूतां सः अन्वधावत् ऋक्ष रूपी हतत्रपः ॥३६॥

प्रजापतिः	ब्रह्माजी
स्वां दुहितरं	अपनी पुत्रीको
दृष्ट्वा	देखकर
तत् रूप	उसके रूपपर
धर्षितः	मोहित होकर
रोहित् भूतां	मृगी होकर (भागती) के
ऋक्ष रूपी	मृग होकर
हतत्रपः	निर्लज्ज होकर
सः अन्वधावत्	वह (उसके) पीछे दौड़े ॥३६॥

तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु को न्वखण्डितधीः पुमान् ।
ऋषिं नारायणमृते योषिन्मय्येह मायया ॥३७॥

तत् सृष्ट सृष्ट सृष्टेषु कः नु अखण्डित धीः पुमान् ऋषिं नारायणं ऋते योषित् मयि इह मायया ॥३७॥

तत् सृष्ट	उन (ब्रह्माजी) के बनाये (मरीचि आदि)	**ऋते इह**	छोड़कर इस संसारमें
सृष्ट	उनके बनाये (कश्यपादि)	**योषित् मयि**	स्त्री रूपिणी
सृष्टेषु	उनके बनाये लोगोंमें	**मायया**	मायासे
ऋषिं नारायणं	श्रीनारायण ऋषिको	**कः नु पुमान्**	कौन-सा पुरुष है
		अखण्डित धीः	जिसकी बुद्धि विचलित न हो ॥३७॥

बलं मे पश्य मायायाः स्त्रीमय्या जयिनो दिशाम् ।
या करोति पदाक्रान्तान् भ्रूविजृम्भेण केवलम् ॥३८॥

बलं मे पश्य मायायाः स्त्री मय्या जयिनः दिशां या करोति पदाक्रान्तान् भ्रूविजृम्भेण केवलम् ॥३८॥

मे स्त्री मय्या	मेरी स्त्रीमयी	**दिशां जयिनः**	दिग्विजयीको
मायायाः	मायाका	**पदाक्रान्तान्**	
बलं पश्य	बल देखो	**करोति**	पैरोंसे कुचल देती है ॥३८॥
या केवलं	जो केवल		
भ्रूविजृम्भेम्ण	भृकुटि विलाससे		

सङ्गं न कुर्यात्प्रमदासु जातु
योगस्य पारं परमारुरुक्षुः ।
मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो
वदन्ति या निरयद्वारमस्य ॥३९॥

सङ्गं न कुर्यात् प्रमदासु जातुः योगस्य पारं परं आरुरुक्षुः मत् सेवया प्रतिलब्ध आत्मलाभः वदन्ति या निरयद्वारं अस्य ॥३९॥

योगस्य पारं परं योगके परम पार
आरुरुक्षः चढ़ने (पहुँचने) की इच्छा वालेको
मत् सेवया (अथवा) मेरी सेवासे
प्रतिलब्ध
आत्मलाभः आत्मज्ञान प्राप्त
जातुः किसीको
प्रमदासु स्त्रियोंमें
सङ्गं न कुर्यात् आसक्ति नहीं करनी चाहिए
या अस्य जिसे इन लोगोंके लिए
निरयद्वारं नरकका द्वार
वदन्ति बतलाते हैं ॥३९॥

योपयाति शनैर्माया योषिद्देवविनिर्मिता ।
तामीक्षेतात्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥४०॥

यः उपयाति शनैः माया योषित् देव विनिर्मिता तां इक्षेत् आत्मनः मृत्युं तृणैः कूपं इव आवृतम् ॥४०॥

यः देव
विनिर्मिता जो भगवानकी बनायी
योषित् माया स्त्री रूपिणी माया
शनैः उपयाति (सेवादिके बहाने) धीरे-धीरे पास आती है
तां तृणैः आवृतं उसे तिनकोंसे ढँके
कूपं इव कुएँके समान
आत्मनः मृत्युं अपनी मृत्यु
इक्षेत् देखे ॥४०॥

यां मन्यते पतिं मोहान्मन्मायामृषभायतीम् ।
स्त्रीत्वं स्त्रीसङ्गतः प्राप्तो वित्तापत्यगृहप्रदम् ॥४१॥

यां मन्यते पतिं मोहात् मत मायां ऋषभायतीं स्त्रीत्वं स्त्रीसङ्गतः प्राप्तः वित्त अपत्य गृहप्रदम् ॥४१॥

स्त्रीसङ्गतः स्त्रीमें आसक्तिके कारण
स्त्रीत्वं प्राप्तः स्त्री-शरीर पानेके कारण
यां मोहात् जिसे अज्ञानवश
वित्त अपत्य धन, सन्तान,
गृहप्रदं घर देनेवाला
पतिं मन्यते पति मानती है,
ऋषभायतीं श्रेष्ठ बनी (वह)
मत् मायां मेरी माया है ॥४१॥

तामात्मनो विजानीयात्पत्यपत्यगृहात्मकम् ।
दैवोपसादितं मृत्युं मृगयोर्गायनं यथा ॥४२॥

तां आत्मनः विजानीयात् पति अपत्य गृहात्मकं दैव उपसादितं मृत्युं मृगयोः गायनं यथा ॥४२॥

तां पति अपत्य	पति-पुत्र,	**विजानीयात्**	जाने,
गृहात्मकं	गृहादि रूपमें	**मृगयोः**	हिरनोंके लिए
दैव उपसादितं	विधाता द्वारा भेजी	**यथा**	जैसे (बहेलियेका)
आत्मनः मृत्युं	अपनी मृत्यु	**गायनं**	संगीत ॥४२॥

देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन् ।
भुञ्जान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान् ॥४३॥

देहेन जीव भूतेन लोकात् लोकं अनुव्रजन् भुञ्जान एव कर्माणि करोति अविरतं पुमान् ॥४३॥

जीव भूतेन देहेन	जीव-स्वरूप सूक्ष्म शरीरसे	**पुमान् कर्माणि**	पुरुष कर्म (फलों) को
लोकात् लोकं	एक लोकसे दूसरे लोक	**भुञ्जान एव अविरतं करोति**	भोगता हुआ भी अविराम (कर्म ही) करता रहता
अनुव्रजन्	बार-बार जाता		है ॥४३॥

जीवो ह्यस्यानुगो देहो भूतेन्द्रियमनोमयः ।
तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु सम्भवः ॥४४॥

जीवः हि अस्य अनुगः देहः भूत इन्द्रिय मनोमयः तत् निरोधः अस्य मरणं आविर्भावः तु सम्भवः ॥४४॥

देहः भूत इन्द्रिय	शरीर पंचमहाभूत, इन्द्रिय	**अस्य अनुगः**	इसके पीछे चलने वाला है
मनोमयः	मनोमय है,	**तत् निरोधः**	इन दोनोंके (सहयोगका) रुकना
जीवः हि	जीव क्योंकि (सूक्ष्म शरीर)		

अस्य मरण	इस जीवकी मृत्यु (है)	**आविर्भावः तु सम्भवः**	(दोनोंका) साथ-साथ प्रकट होना ही जन्म है ॥४४॥

द्रव्योपलब्धिस्थानस्य द्रव्येक्षायोग्यता यदा ।
तत्पञ्चत्वमहं मानादुत्पत्तिर्द्रव्यदर्शनम् ॥४५॥

द्रव्य उपलब्धि स्थानस्य द्रव्य ईक्षा अयोग्यता यदा तत् पञ्चत्वं अहं मानात् उत्पत्तिः द्रव्य दर्शनम् ॥४५॥

द्रव्य उपलब्धि	पदार्थोंकी उपलब्धिके	**तत् पञ्चत्वं**	वह (इसकी) मृत्यु है ।
स्थानस्य	स्थान इस (स्थूलदेह) में	**अहं मानात्**	(इस स्थूल देहको) मैं मानकर
यदा द्रव्य ईक्षा अयोग्यता	पदार्थोंको देखनेकी योग्यता नहीं रहती,	**द्रव्य दर्शनं उत्पत्तिः**	पदार्थोंको देखना इसका जन्म है ॥४५॥

विशेष—

जन्म या मृत्युमें न कोई तत्त्व घटता, न बढ़ता। शरीरमें संसारको देखनेकी योग्यता स्थायी रूपसे चली गयी और देहके पञ्चभूत बिखरकर पञ्चभूतोंमें मिल गये, यह मृत्यु है और किसी शरीरमें संसार देखनेकी शक्ति आयी तथा उस देहको 'मैं' माना चेतनाने तो यह उसका जन्म कहलाता है।

यथाक्ष्णोर्द्रव्यावयवदर्शनायोग्यता यदा ।
तदैव चक्षुषो द्रष्टुर्द्रष्टृत्वायोग्यतानयोः ॥४६॥

यथा अक्ष्णोः द्रव्य अवयव दर्शन अयोग्यता यदा तदा एव चक्षुषः द्रष्टुः द्रष्टृत्व अयोग्यता अनयोः ॥४६॥

यथा यदा	जैसे जब	**दर्शन अयोग्यता**	देखनेकी योग्यता नहीं रहती,
अक्ष्णोः	नेत्रोंमें	**तदा एव**	उसी समय
द्रव्य अवयव	पदार्थोंके अंगोंको		

चक्षुषः द्रष्टुः अनयोः	नेत्रोंके द्रष्टाकी— (तथा नेत्रकी) इन दोनोंकी	**द्रष्टृत्व अयोग्यता**	देखनेकी शक्ति नहीं रहती ॥४६॥

तस्मान्न कार्यः सन्त्रासो न कार्पण्यं न सम्भ्रमः ।
बुद्ध्वा जीवगतिं धीरो मुक्तसङ्गश्चरेदिह ॥४७॥

तस्मात् न कार्यः सन्त्रासः न कार्पण्यं न सम्भ्रमः बुद्ध्वा जीव गतिं धीरः मुक्त सङ्गः चरेत् इह ॥४७॥

तस्मात्	इसलिए	**धीरः**	धीर पुरुष
न सन्त्रासः	न (मृत्यु आदिसे) भय,	**जीव गतिं**	जीवके स्वरूपको
		बुद्ध्वा	जानकर
न कार्पण्यं	न दीनता	**मुक्त सङ्गः**	अनासक्त होकर
न सम्भ्रमः	न अकुलाहट	**इह चरेत्**	इस संसारमें
कार्यः	करना चाहिए,		विचरण करे ॥४७॥

सम्यग्दर्शनया बुद्ध्या योगवैराग्ययुक्तया ।
मायाविरचिते लोके चरेन्न्यस्य कलेवरम् ॥४८॥

सम्यक् दर्शनया बुद्धया योग वैराग्य युक्तया माया विरचिते लोके चरेत् न्यस्य कलेवरम् ॥४८॥

योग वैराग्य	योग तथा वैराग्यसे	**लोके**	संसारमें
युक्तया	युक्त	**कलेवरं**	शरीरको
सम्यक् दर्शनया	सम्यक् ज्ञानमयी	**न्यस्य**	धरोहरके समान (अनासक्त) रखते
बुद्धया	बुद्धिसे		
माया विरचिते	माया निर्मित	**चरेत्**	विचरण करे ॥४८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धेएकत्रिंशोऽध्यायः ।

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

कपिल उवाच-

अथ यो गृहमेधीयान्धर्मानेवावसन् गृहे ।
काममर्थं च धर्मान् स्वान् दोग्धि भूयः पिपर्ति तान् ॥१॥

अथ यः गृहमेधीयान् धर्मान् एव आवसन् गृहे कामं अर्थं च धर्मान् स्वान् दोग्धि भूयः पिपर्ति तान् ॥१॥

अथ यः	फिर जो
गृहे आवसन्	घरमें रहकर
गृहमेधीयान्	
एव	गृहस्थ धर्मका ही (पालन करता)
स्वान् धर्मान्	उन अपने धर्मोंको
दोग्धि	दुहकर (उनके फलसे)
कामं अर्थं च	भोग और धनको चाहता है
भूयः तान्	बार-बार उनका ही
पिपर्ति	पोषण (अनुष्ठान) करता है ॥१॥

स चापि भगवद्धर्मात्काममूढः पराङ्मुखः ।
यजते क्रतुभिर्देवान् पितॄंश्च श्रद्धयान्वितः ॥२॥

स च अपि भगवत् धर्मात् काममूढः पराङ्मुखः यजते क्रतुभिः देवान् पितॄन् च श्रद्धयान्वितः ॥२॥

स च अपि	वह भी
काममूढ	कामनाओंके कारण मूढ़ हुआ
भगवत् धर्मात्	भागवत धर्मोंसे
पराङ्मुखः	विमुख होकर
श्रद्धयान्वितः	श्रद्धा सहित
क्रतुभिः देवान्	यज्ञ करके देवताओंना
च पितॄन्	तथा पितरोंका
यजते	यजन (पूजन) करता है ॥२॥

तच्छ्रद्धयाक्रान्तमतिः पितृदेवव्रतः पुमान् ।
गत्वा चान्द्रमसं लोकं सोमपाः पुनरेष्यति ॥३॥

तत् श्रद्धया आक्रान्त मतिः पितृ देवव्रतः पुमान् गत्वा चान्द्रमसं लोकं सोमपाः पुनः एष्यति ॥३॥

पितृ देवव्रतः	पितर तथा देवताओंका उपासक	**गत्वा सोमपाः**	जाकर (देवताओंके साथ) सोमपान करके
तत् श्रद्धया	उस श्रद्धासे		
आक्रान्त मतिः	आविष्ट बुद्धि	**पुनः एष्यति**	(पुण्य समाप्त होनेपर) फिर लौट आता है ॥३॥
पुमान्	पुरुष		
चान्द्रमसं लोकं	चन्द्रलोक (स्वर्ग)		

यदा चाहीन्द्रशय्यायां शेतेऽनन्तासनो हरिः ।
तदा लोका लयं यान्ति त एते गृहमेधिनाम् ॥४॥

यदा च अहीन्द्र शय्यायां शेते अनन्त आसनः हरिः तदा लोकाः लयं यान्ति त एते गृहमेधिनाम् ॥४॥

यदा च	जब भी	**गृहमेधिनां**	गृहस्थोंके
अनन्त आसनः		**त एते लोकाः**	वे इतने (सब) लोक
हरिः	शेषशायी श्रीहरि	**लयं यान्ति**	लीन हो जाते हैं ॥४॥
अहीन्द्र शय्यायां	शेष-शय्यापर		
शेते तदा	सोते हैं तभी		

ये स्वधर्मान्न दुह्यन्ति धीराः कामार्थहेतवे ।
निःसङ्गा न्यस्तकर्माणः प्रशान्ताः शुद्धचेतसः ॥५॥

ये स्वधर्मान् न दुह्यन्ति धीराः काम अर्थ हेतवे निःसङ्गा न्यस्त कर्माणः प्रशान्ताः शुद्ध चेतसः ॥५॥

ये धीराः	जो धैर्यशाली (पुरुष)	**स्वधर्मान् न दुह्यन्ति**	अपने धर्मोंको नहीं दुहते (वे)
काम अर्थ हेतवे	भोग और धनके लिए	**निःसङ्गा**	अनासक्त,

न्यस्त कर्माणः	भगवदर्पित कर्म करनेवाले	**प्रशान्ताः शुद्ध चेतसः**	पूर्ण शान्त शुद्ध चित्त ॥५॥

निवृत्तिधर्मनिरता निर्ममा निरहङ्कृताः ।
स्वधर्माख्येन सत्त्वेन परिशुद्धेन चेतसा ॥६॥

निवृत्ति धर्म निरताः निर्ममा निरहङ्कृताः स्वधर्म आख्येन सत्त्वेन परिशुद्धेन चेतसा ॥६॥

निवृत्ति धर्म निरताः	निवृत्ति धर्म परायण	**स्वधर्म आख्येन**	स्वधर्म पालन रूप
निर्ममा	ममताहीन	**सत्त्वेन**	शक्तिसे
निरहङ्कृताः	अहङ्कारहीन	**परिशुद्धेन चेतसा**	चित्तके अत्यन्त शुद्ध होनेसे ॥६॥

सूर्यद्वारेण ते यान्ति पुरुषं विश्वतोमुखम् ।
परावरेशं प्रकृतिमस्योत्पत्त्यन्तभावनम् ॥७॥

सूर्यद्वारेण ते यान्ति पुरुषं विश्वतः मुखं परावरेशं प्रकृतिं अस्य उत्पत्ति अन्त भावनम् ॥७॥

ते सूर्यद्वारेण	वे सूर्य मार्ग (देवयान) से	**अस्य उत्पत्ति**	इस (जगत) की सृष्टि
विश्वतः मुखं	सर्वव्यापक	**अन्त भावनं**	प्रलय तथा पालनके
परावरेशं	कारण-कार्यके स्वामी	**प्रकृतिं**	स्वभाववाले
		पुरुषं यान्ति	परम पुरुषके पास जाते हैं ॥७॥

द्विपरार्द्धविसाने यः प्रलयो ब्रह्मणस्तु ते ।
तावदध्यासते लोकं परस्य परचिन्तकाः ॥८॥

द्विपरार्ध अवसाने यः प्रलयः ब्रह्मणः तु ते तावत् अध्यासते लोकं परस्य पर चिन्तकाः ॥८॥

द्विपरार्ध अवसाने	दो परार्ध बीतनेपर	**तु ते**	तुमसे कही है,
यः ब्रह्मणः प्रलयः	जो ब्राह्मी प्रलय	**तावत् परस्य**	तब तक परम पुरुषके

लोकं पर चिन्तकाः	लोकमें उनका ध्यान करनेवाले	**अध्यासते**	विराजते हैं ॥८॥

क्ष्माम्भोऽनलानिलवियन्मनइन्द्रियार्थ-
भूतादिभिःपरिवृतं प्रतिसञ्जिहीर्षुः ।
अव्याकृतं विशति यर्हि गुणत्रयात्मा
कालं पराख्यमनुभूय परः स्वयम्भूः ॥९॥

क्ष्मा अम्भः अनल अनिल वियत् मन इन्द्रिय अर्थ भूतादिभिः परिवृतं प्रतिसञ्जिहीर्षुः अव्याकृतं विशति यर्हि गुणत्रय आत्मा कालं पराख्यं अनुभूय परः स्वयम्भूः ॥९॥

क्ष्मा अम्भः	पृथ्वी, जल,	**यर्हि गुणत्रय**	
अनल अनिल	अग्नि, वायु,	**आत्मा**	जब त्रिगुण स्वरूपा
वियत् मन	आकाश, मन,	**अव्याकृतं**	प्रकृतिके साथ
इन्द्रिय अर्थ	इन्द्रियाँ, विषय (शब्दादि) और	**स्वयम्भूः**	ब्रह्माजी
		पराख्यं कालं	
भूतादिभिः	अहंकारसे	**अनुभूय**	दो परार्ध कालका अनुभव (भोग) करके
परिवृतं	घिरे (ब्रह्माण्डको)	**परः विशति**	परमात्मामें लीन हो जाते हैं ॥९॥
प्रति-			
सञ्जिहीर्षुः	प्रलयमें खींच लेनेकी इच्छासे		

एवं परेत्य भगवन्तमनुप्रविष्टा
ये योगिनो जितमरुन्मनसो विरागाः ।
तेनैव साकममृतं पुरुषं पुराणं
ब्रह्म प्रधानमुपयान्त्यगताभिमानाः ॥१०॥

एवं परेत्य भगवन्तं अनुप्रविष्टाः ये योगिनः जित मरुत् मनसः विरागाः तेन एव साकं अमृतं पुरुषं पुराणं ब्रह्म प्रधानं उपयान्ति अगता अभिमानाः ॥१०॥

ये योगिनः	जो योगीजन	**तेन एव साकं**	(वे) उन ब्रह्माजीके साथ
जित मरुत्	प्राणको जीतकर		
मनसः विरागाः	वैराग्य युक्त मनसे	**अमृतं पुराणं**	
अगता		**पुरुषं**	अविनाशी सनातन पुरुष
अभिमानाः	(परन्तु व्यक्तित्वके) अभिमान घटे बिना	**ब्रह्म प्रधानं**	परम ब्रह्ममें
एवं परेत्य	इस प्रकार मरकर (ब्रह्मा)	**उपयान्ति**	लीन हो जाते हैं ॥१०॥
भगवन्तं			
अनुप्रविष्टाः	भगवानके लोकमें आये हैं		

अथ तं सर्वभूतानां हृत्पद्मेषु कृतालयम् ।
श्रुतानुभावं शरणं व्रज भावेन भामिनि ॥११॥

अथ त सवभूताना हृत् पद्मषु कृत आलय श्रुत अनुभाव शरण व्रज भावेन भामिनि ॥११॥

भामिनी	माताजी !		सुना है
अथ सर्वभूतानां	अतः सब प्राणियोंके	**तं भावेन**	उन (भगवानकी) भावसे
हृत् पद्मेषु	हृदय कमलमें		
कृत आलयं	निवास किए	**शरणं व्रज**	शरण जाओ ॥११॥
श्रुत अनुभावं	जिनका प्रभाव (तुमने मुझसे)		

आद्यः स्थिरचराणां यो वेदगर्भः सहर्षिभिः ।
योगेश्वरैः कुमाराद्यैः सिद्धैर्योगप्रवर्तकैः ॥१२॥

आद्यः स्थिर चराणां यः वेदगर्भः सहर्षिभिः योगेश्वरैः कुमाराद्यैः सिद्धैः योग प्रवर्तकैः ॥१२॥

यः स्थिर		**आद्यः**	आदि कारण
चराणां	जो (सब) स्थावर-जंगम प्राणियोंके	**वेदगर्भः**	ब्रह्माजी हैं,
		सहर्षिभिः	ऋषियोंके साथ

कुमाराद्यैः योग प्रवर्तकैः	सनत्कुमार आदि योग (साधनों) के प्रवर्तक	**सिद्धैः योगेश्वरैः**	सिद्ध योगेश्वरों सहित ॥१२॥

भेददृष्ट्याभिमानेन निःसङ्गेनापि कर्मणा ।
कर्तृत्वात्सगुणं ब्रह्म पुरुषं पुरुषर्षभम् ॥१३॥

भेद दृष्ट्या अभिमानेन निःसङ्गेन अपि कर्मणा कर्तृत्वात् सगुणं ब्रह्म पुरुषं पुरुषर्षभम् ॥१३॥

भेद दृष्ट्या	भेद बुद्धि होनेसे,	**कर्मणा अपि**	कर्मसे भी
कर्तृत्व अभिमानेन	कर्तापनके अभिमानके क रण	**स गुणं ब्रह्म**	सगुण ब्रह्म
निःसङ्गेन	आसक्ति रहित	**पुरुषर्षभं पुरुषं**	पुरुषोत्तम पुरुष (श्रीहरिकी) (सेवा करके)॥१३॥

स संसृत्य पुनः काले कालेनेश्वरमूर्तिना ।
जाते गुणव्यतिकरे यथापूर्वं प्रजायते ॥१४॥

स संसृत्य पुनः काले कालेन ईश्वर मूर्तिना जाते गुणव्यतिकरे यथा पूर्वं प्रजायते ॥१४॥

स संसृत्य	उनके समीप जाकर (उनमें लीन होकर भी)	**काले**	समय
		जाते	(सृष्टि काल) आनेपर
ईश्वर मूर्तिना	सर्व-समर्थ-स्वरूप	**यथा पूर्वं**	जैसे पहिले (उत्पन्न हुए थे)
कालेन पुनः	कालके द्वारा फिर		
गुणव्यतिकरे	गुणोंमें वैषम्यका	**प्रजायते**	उत्पन्न होते हैं ॥१४

ऐश्वर्यं पारमेष्ठ्यं च तेऽपि धर्मविनिर्मितम् ।
निषेव्य पुनरायान्ति गुणव्यतिकरे सति ॥१५॥

ऐश्वर्यं पारमेष्ठ्यं च ते अपि धर्म विनिर्मितं निषेव्य पुनः आयान्ति गुण व्यतिकरे सति ॥१५॥

धर्म विनिर्मितं	(अपने)धर्माचरणसे बने (मिले)
पारमेष्ठ्यं च	ब्रह्मलोकके भी
ऐश्वर्यं निषेव्य	ऐश्वर्यको भोगकर
ते अपि	वे भी
गुण व्यतिकरे सति	गुणोंमें विकार (सृष्टि काल) आनेपर
पुनः आयान्ति	फिर (संसारमें) आते हैं ॥१५॥

ये त्विहासक्तमनसः कर्मसु श्रद्धयान्विताः ।
कुर्वन्त्यप्रतिषिद्धानि नित्यान्यपि च कृत्स्नशः ॥१६॥

ये तु इह आसक्त मनसः कर्मसु श्रद्धया अन्वितः कुर्वन्ति अप्रतिषिद्धानि नित्यानि अपि च कृत्स्नशः ॥१६॥

ये तु	जो तो
इह आसक्त	इस (संसार) में आसक्त
मनसः	चित्तवाले
अप्रतिषिद्धानि	अनिषिद्ध (शास्त्र विहित)
कर्मसु	कर्मोंको
च नित्यान् अपि	और नित्य कर्मोंको भी
श्रद्धया अन्वितः	श्रद्धा सहित
कृत्स्नशः	पूरी तरह
कुर्वन्ति	करते हैं ॥१६॥

रजसा कुण्ठमनसः कामात्मानोऽजितेन्द्रियाः ।
पितॄन् यजन्त्यनुदिनं गृहेष्वभिरताशयाः ॥१७॥

रजसा कुण्ठ मनसः कामात्मानः अजितेन्द्रियाः पितॄन् यजन्ति अनुदिनं गृहेषु अभिरत आशयाः ॥१७॥

रजसा कुण्ठ मनसः	रजोगुणसे कुंठित-मन,
कामात्मानः	सकाम चित्तवाले,
अजितेन्द्रियाः	अजितेन्द्रिय
गृहेषु अभिरत आशयाः	घरोंमें आसक्त-चित्तवाले
अनुदिनं	प्रतिदिन
पितॄन् यजन्ति	पितरोंकी पूजा करते हैं ॥१७॥

त्रैवर्गिकास्ते पुरुषा विमुखा हरिमेधसः ।
कथायां कथनीयोरुविक्रमस्य मधुद्विषः ॥१८॥

त्रैवर्गिकाः ते पुरुषा विमुखा हरिमेधसः कथायां कथनीयः उरु विक्रमस्य मधुद्विषः ॥१८॥

ते पुरुषा	वे पुरुष	**मधुद्विषः**	भगवान मधुसूदनकी
त्रैवर्गिकाः	त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम) चाहनेवाले हैं,	**कथनीयः**	कीर्तनीय
		कथायां	कथासे
हरिमेधसः	भवभयहारी	**विमुखा**	विमुख रहते हैं ॥१८॥
उरु विक्रमस्य	अनन्त पराक्रम		

नूनं दैवेन विहता ये चाच्युतकथासुधाम् ।
हित्वा शृण्वन्त्यसद्गाथाः पुरीषमिव विड्भुजः ॥१९॥

नूनं दैवेन विहता ये च अच्युत कथा सुधां हित्वा शृण्वन्ति असत् गाथाः पुरीषं इव विड्भुजाम् ॥१९॥

विड्भुजां	गुबरैले, सूअर आदि विष्ठा भोगी	**हित्वा**	छोड़कर
		असत् गाथाः	निन्दित चर्चाओंको
पुरीषं इव	विष्ठा के समान	**शृण्वन्ति**	सुनते हैं
ये च	जो लोग भी	**नूनं दैवेन**	निश्चय दैवके
अच्युत कथा		**विहता**	मारे हैं ॥१९॥
सुधां	भगवानकी कथा-रूपी अमृतको		

दक्षिणेन पथार्यम्णः पितृलोकं व्रजन्ति ते ।
प्रजामनु प्रजायन्ते श्मशानान्तक्रियाकृतः ॥२०॥

दक्षिणेन पथाः यम्णः पितृलोकं व्रजन्ति ते प्रजां अनु प्रजायन्ते श्मशान अन्त क्रियाकृतः ॥२०॥

श्मशान अन्त	(गर्भाधानसे लेकर) अन्त्येष्टि तक	**यम्णः पितृलोकं**	अर्यमाके पितृलोक
		व्रजन्ति प्रजां अनु	जाते हैं और अपनी सन्तानोंके पीछे (वंशमें)
क्रियाकृतः	(सब) संस्कार-कर्म करनेवाले		
दक्षिणेन	(सूर्यसे) दाहिने	**प्रजायन्ते**	उत्पन्न होते हैं ॥२०॥
पथाः ते	मार्गसे वे		

ततस्ते क्षीणसुकृताः पुनर्लोकमिमं सति ।
पतन्ति विवशा देवैः सद्यो विभ्रंशितोदयाः ॥२१॥

ततः ते क्षीण सुकृताः पुनः लोकं इमं सति पतन्ति विवशा देवैः सद्यः विभ्रंशित उदयः ॥२१॥

सति	साध्वी !	**विभ्रंशित उदयः**	ऐश्वर्य भ्रष्ट कर देने पर
ततः ते	तब उनके	**सद्यः विवशा**	तुरन्त विवश बने,
क्षीण सुकृताः	पुण्य (भोगसे) क्षीण हुए लोग	**पुनः इमं लोकं**	फिर इस लोकमें
देवैः	देवताओं द्वारा	**पतन्ति**	गिरते (जन्म लेते) हैं ॥२१॥

तस्मात्त्वं सर्वभावेन भजस्व परमेष्ठिनम् ।
तद्गुणाश्रयया भक्त्या भजनीयपदाम्बुजम् ॥२२॥

तस्मात् त्वं सर्व भावेन भजस्व परमेष्ठिनं तत् गुणाश्रयया भक्त्या भजनीय पदाम्बुजम् ॥२२॥

तस्मात् त्वं	इसलिए तुम	**तत् गुणाश्रयया**	उन्हींके गुणोंका आश्रय लेनेवाली
भजनीय	भजन करने योग्य		
पदाम्बुजं	चरण-कमल	**भक्त्या सर्व**	
परमेष्ठिनं	सर्वेश्वर भगवानका	**भावेन**	भक्तिसे सर्वभावसे
		भजस्व	भजन करो ॥२२॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥२३॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः जनयति आशु वैराग्यं ज्ञानं यत् ब्रह्म दर्शनम् ॥२३॥

भगवति-		**यत् ब्रह्मदर्शनं**	जिससे ब्रह्म साक्षात्कार होता है
वासुदेवे	भगवान वासुदेवमें		
प्रयोजितः-		**ज्ञानं जनयति**	(वह) ज्ञान उत्पन्न करता है ॥२३॥
भक्तियोगः	प्रयुक्त भक्तियोग		
आशु वैराग्यं	शीघ्र वैराग्य (और)		

यदास्य चित्तमर्थेषु समेष्विन्द्रियवृत्तिभिः ।
न विगृह्णाति वैषम्यं प्रियमप्रियमित्युत ॥२४॥

यदा अस्य चित्तं अर्थेषु समेषु इन्द्रिय वृत्तिभिः न विगृह्णाति वैषम्यं प्रियं अप्रियं इति उत ॥२४॥

यदा अस्य	जब इसका	**वैषम्यं उत**	विषमता तथा
चित्तं समेषु	चित्त (वस्तुतः) समान	**प्रियं अप्रियं इति**	यह प्रिय है, यह अप्रिय है ऐसा
अर्थेषु	विषयोंमें	**न विगृह्णाति**	नहीं ग्रहण करता ॥२४॥
इन्द्रिय वृत्तिभिः	इन्द्रियोंकी वृत्तिसे		

स तदैवात्मनाऽऽत्मानं निःसङ्गं समदर्शनम् ।
हेयोपादेयरहितमारूढं पदमीक्षते ॥२५॥

स तत् एव आत्माना आत्मानं निःसङ्गं समदर्शनं हेय उपादेय रहितं आरूढं पदं ईक्षते ॥२५॥

स तत् एव आत्मना	वह उसी समय ही	**हेय उपादेय**	त्याज्य एवं ग्रहण योग्य (गुणोंसे)
आत्मानं	अपनें आप अपनेको	**रहितं पदं**	रहित पदपर
निःसङ्गं	अनासक्त	**आरूढं ईक्षते**	आरूढ देखता है ॥२५॥
समदर्शनं	समदर्शी		

ज्ञानमात्रं परं ब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान् ।
दृश्यादिभिः पृथग्भावैर्भगवानेक ईयते ॥२६॥

ज्ञान मात्रं परं ब्रह्म परमात्मा ईश्वरः पुमान् दृश्य आदिभिः पृथक् भावैः भगवान् एक ईयते ॥२६॥

परं ब्रह्म	परमब्रह्म	**दृश्य आदिभिः**	दृश्य (इन्द्रियादि) द्वारा
परमात्मा	परमात्मा	**एक भगवान्**	एक ही भगवान्
ईश्वरः	ईश्वर	**पृथक् भावैः**	भिन्न-भिन्न रूपोंमें
पुमान्	पुरुषोत्तम	**ईयते**	प्रतीत हो रहे हैं ॥२६॥
ज्ञान मात्रं	ज्ञानमात्र (ज्ञान ही) हैं		

एतावानेव यो गेन समग्रेणेह योगिनः ।
युज्यतेऽभिमतो ह्यर्थो यदसङ्गस्तु कृत्स्नशः ॥२७॥

एतावान् एव योगेन समग्रेण इह योगिनः युज्यते अभिमतः हि अर्थः यत् असङ्गः तु कृत्स्नशः ॥२७॥

इह योगिनः	इस (लोक) में योगियोंका	**अर्थः युज्यते**	प्रयोजन उपयुक्त है
समग्रेण योगेन	समस्त योग साधनोंका	**यत् कृत्स्नशः**	जो सम्पूर्ण (संसार) से
एतावान् एव हि	इतना ही	**असङ्गः तु**	अनासक्त हो
अभिमतः	अत्यन्त अभीष्ट		जाता ॥२७॥

ज्ञानमेकं पराचीनैरिन्द्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम् ।
अवभात्यर्थरूपेण भ्रान्त्या शब्दादिधर्मिणा ॥२८॥

ज्ञानं एकं पराचीनैः इन्द्रियैः ब्रह्म निर्गुणं अवभाति अर्थ रूपेण भ्रान्त्या शब्दादि धर्मिणा ॥२८॥

ज्ञानं एकं	ज्ञान स्वरूप, अद्वितीय	**भ्रान्त्या**	भ्रान्तिसे
निर्गुणं ब्रह्म	निर्गुण ब्रह्म	**शब्दादि धर्मिणा**	शब्द (रूप,स्पर्शादि) धर्मवाले
पराचीनैः		**अर्थ रूपेण**	विषयोंके रूपमें
इन्द्रियैः	बहिर्मुखी इन्द्रियों द्वारा	**अवभाति**	प्रतीत हो रहा है ॥२८॥

यथा महानहंरूपस्त्रिवृत्पञ्चविधः स्वराट् ।
एकादशविधस्तस्य वपुरण्डं जगद्यतः ॥२९॥

यथा महान् अहं रूपः त्रिवृत् पञ्चविधः स्वराट् एकादशविधः तस्य वपुः अण्डं जगत् यतः ॥२९॥

यथा महान्	जैसे महत्तत्त्व	**पञ्चविधः**	पञ्च महाभूत रूप
त्रिवृत् अहं	तीन प्रकार (वैकारिकादि) अहंकार	**एकादशविधः**	ग्यारह (मनसहित) इन्द्रियोंवाला

तस्य वपुः अण्डं	उसका शरीर ब्रह्माण्ड रूप	**जगत्**	विश्व बन गया है ॥२९॥
यतः स्वराट्	जैसे (वह) स्वयं प्रकाश ही		

एतद्वै श्रद्धया भक्त्या योगाभ्यासेन नित्यशः ।
समाहितात्मा निःसङ्गो विरक्त्या परिपश्यति ॥३०॥

एतत् वै श्रद्धया भक्त्या योग अभ्यासेन नित्यशः समाहित आत्मा निःसङ्गः विरक्त्या परिपश्यति ॥३०॥

एतत् वै	इसको निश्चित ही	**निःसङ्ग आत्मा**	अनासक्त चित्त,
श्रद्धया भक्त्या	श्रद्धायुक्त भक्तिसे,	**विरक्त्या**	वैराग्यसे (युक्त ही)
योग अभ्यासेन	योगाभ्याससे,	**परिपश्यति**	सर्वत्र देखता है ॥३०॥
नित्यशः			
समाहित	सदा एकाग्र,		

इत्येतत्कथितं गुर्वि ज्ञानं तद्ब्रह्मदर्शनम् ।
येनानुबुद्धयते तत्त्वं प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥३१॥

इति एतत् कथितं गुर्वि ज्ञानं तत् ब्रह्मदर्शनं येन अनुबुद्ध्यते तत्त्वं प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥३१॥

गुर्वि	पूजनीय माताजी !	**येन प्रकृतेः**	जिससे प्रकृतिका
तत् ब्रह्मदशनं	वह ब्रह्म साक्षात्कार करानेवाला	**च पुरुषस्य**	और पुरुषका
ज्ञानं इति एतत्	ज्ञान इस प्रकार यह	**तत्त्वं अनुबुद्ध्यते**	तत्त्व जाना जाता है ॥३१॥
कथितं	(मैंने) कहा,		

ज्ञानयोगश्च मनिष्ठो नैर्गुण्यो भक्तिलक्षणः ।
द्वयोरप्येक एवार्थो भगवच्छब्दलक्षणः ॥३२॥

ज्ञानयोगः च मनिष्ठः नैर्गुण्यः भक्तिलक्षणः द्वयोः अपि एक एव अर्थः भगवत् शब्द लक्षणः ॥३२॥

नैर्गुण्यः	निर्गुण विषयक
ज्ञानयोगः च	ज्ञानयोग तथा
मनिष्ठः	मुझमें निष्ठायुक्त
भक्तिलक्षणः	भक्तियोग
द्वयोः अपि	दोनोंका ही
एक एव अर्थः	एक ही प्रयोजन है
भगवत् शब्द लक्षणः	उसे ही भगवान कहते हैं ॥३२॥

यथेन्द्रियैः पृथग्द्वारैरर्थो बहुगुणाश्रयः ।
एको नानेयते तद्वद्भगवान् शास्त्रवर्त्मभिः ॥३३॥

यथा इन्द्रियैः पृथक् द्वारैः अर्थः बहुगुण आश्रयः एकः नाना ईयते तद्वत् भगवान् शास्त्र वर्त्मभिः ॥३३॥

यथा एकः	जैसे एक ही
बहुगुण आश्रयः	(शब्द-स्पर्शादि) अनेक गुणोंवाला
अर्थः इन्द्रियैः	पदार्थ इन्द्रियोंके
पृथक् द्वारैः	भिन्न-भिन्न द्वारोंसे
नाना ईयते	अनेक रूप जाना जाता है,
तद्वत् भगवान्	इसी प्रकार भगवान्
शास्त्र वर्त्मभिः	शास्त्रके (अनेक) मार्गोंसे (अनेक रूपोंमें अनुभूत होते हैं) ॥३३॥

क्रियया क्रतुभिर्दानैस्तपः स्वाध्यायमर्शनैः ।
आत्मेन्द्रियजयेनापि संन्यासेन च कर्मणाम् ॥३४॥

क्रियया क्रतुभिः दानैः तपः स्वाध्याय मर्शनैः आत्म इन्द्रिय जयेन अपि संन्यासेन च कर्मणाम् ॥३४॥

क्रियया क्रतुभिः	अनेक कर्मोंसे, यज्ञसे,
दानैः तपः	दानसे, तपसे,
स्वाध्याय	वेदाध्ययनसे,
मर्शनैः	वेद-विचारसे,
आत्म इन्द्रिय	अपनी इन्द्रियोंको
जयेन अपि	जीतनेसे भी
च कर्मणां	तथा कर्मोंके
संन्यासेन	त्यागसे ॥३४॥

योगेन विविधाङ्गेन भक्तियोगेन चैव हि ।
धर्मेणोभयचिह्नेन यः प्रवृत्तिनिवृत्तिमान् ॥३५॥

योगेन विविध अङ्गेन भक्तियोगेन च एव हि धर्मेण उभय चिह्नेन यः प्रवृत्ति निवृत्तिमान् ॥३५॥

विविध अङ्गेन	अनेक अंगोंवाले
योगेन	योगसे,
च भक्तियोगेन	
एव हि	तथा भक्तियोगसे भी
यः प्रवृत्ति	जो प्रवृत्तिपरक (तथा)
निवृत्तिमान्	निवृत्तिपरक
उभय चिह्नेन	दोनों लक्षणोंवाले
धर्मेण	धर्मसे ॥३५॥

आत्मतत्त्वावबोधेन वैराग्येण दृढेन च ।
ईयते भगवानेभिः सगुणो निर्गुणः पुमान् ॥३६॥

आत्म तत्त्व अवबोधेन वैराग्येण दृढेन च ईयते भगवान् एभिः सगुणः निर्गुणः पुमान् ॥३६॥

आत्म तत्त्व	
अवबोधेन	आत्म तत्त्वके ज्ञानसे,
दृढेन च	
वैराग्येण	तथा दृढ़ वैराग्यसे,
एभिः	इन (साधनों) से
सगुणः निर्गुणः	सगुण-निर्गुण रूप
पुमान् भगवान्	परमपुरुष भगवानको
ईयते	प्राप्त किया जाता है ॥३६॥

प्रावोचं भक्तियोगस्य स्वरूपं ते चतुर्विधम् ।
कालस्य चाव्यक्तगतेर्योऽन्तर्धावति जन्तुषु ॥३७॥

प्रावोचं भक्तियोगस्य स्वरूपं ते चतुर्विधं कालस्य च अव्यक्त गतेः यः अन्तःधावति जन्तुषु ॥३७॥

चतुर्विधं	चारों प्रकारके (सात्त्विक, राजस, तामस, निर्गुण)
भक्तियोगस्य	भक्तियोगका
स्वरूपं	स्वरूप,
अव्यक्त गतेः	अव्यक्त गति
यः जन्तुषु	जो प्राणियोंके
अन्तः धावति	भीतर गतिशील है (उस)
कालस्य च	कालका भी
ते प्रावोचं	तुमसे वर्णन कर चुका ॥३७॥

जीवस्य संसृतीर्बह्वीरविद्याकर्मनिर्मिताः ।
यास्वङ्ग प्रविशन्नात्मा न वेद गतिमात्मनः ॥३८॥

जीवस्य संसृतिः बह्वीः अविद्या कर्म निर्मिताः या स्वङ्ग प्रविशन् आत्मा न वेद गतिं आत्मनः ॥३८॥

अविद्या निर्मिताः	अविद्यासे उत्पन्न	**या स्वङ्ग**	
जीवस्य बह्वीः	जीवकी बहुत-सी	**प्रविशन्**	जिनमें स्वयं जानेपर
कर्म संसृतिः	कर्मसे मिलनेवाली गतियाँ	**आत्मा**	जीव
		आत्मनः गतिं	अपनी गति
		न वेद	नहीं जानता ॥३८॥

नैतत्खलायोपदिशेन्नाविनीताय कर्हिचित् ।
न स्तब्धाय न भिन्नाय नैव धर्मध्वजाय च ॥३९॥

न एतत् खलाय उपदिशेत् न अविनीताय कर्हिचित् न स्तब्धाय न भिन्नाय न एव धर्म ध्वजाय च ॥३९॥

एतत् खलाय	यह (उपदेश) दुष्टको नहीं,	**भिन्नाय न**	दुराचारी (भेददर्शी) को नहीं
अविनीताय	दुर्विनीतको	**च धर्म ध्वजाय**	तथा पाखण्डीको
कर्हिचित् न	कभी नहीं,	**न एव उपदिशेत्**	नहीं ही उपदेश करे ॥३९॥
स्तब्धाय न	घमंडीको नहीं,		

न लोलुपायोपदिशेन्न गृहारूढचेतसे ।
नाभक्ताय च मे जातु न मद्भक्तद्विषामपि ॥४०॥

न लोलुपाय उपदिशेत् न गृहारूढ चेतसे न अभक्ताय च मे जातुः न मद्भक्त द्विषां अपि ॥४०॥

लोलुपाय न गृहारूढ	लालचीको नहीं,	**चेतसे न**	गृहासक्त चित्तको नहीं,

मे अभक्ताय	जिसकी मुझमें भक्ति नहीं	**मद्भक्त द्विषां अपि**	मेरे भक्तोंसे द्वेष करने वालोंको भी
जातुः च न	उत्पन्न हुई है उसको भी नहीं,	**उपदिशेत् न**	उपदेश न करे ॥४०॥

श्रद्दधानाय भक्ताय विनीतायानसूयवे ।
भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषाभिरताय च ॥४१॥

श्रद्दधानाय भक्ताय विनीताय अनसूयवे भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषा अभिरताय च ॥४१॥

श्रद्दधानाय भक्ताय	श्रद्धालु भक्तको,	**भूतेषु कृत-मैत्राय**	प्राणियोंसे मित्रता करने वालेको,
विनीताय अनुसूयवे	विनीत, असूया न करने वालेको,	**शुश्रूषा अभिरताय च**	और सेवा परायणको ॥४१॥

बर्हिजातविरागाय शान्तचित्ताय दीयताम् ।
निर्मत्सराय शुचये यस्याहं प्रेयसां प्रियः ॥४२॥

बर्हिजात विरागाय शान्त चित्ताय दीयतां निर्मत्सराय शुचये यस्य अहं प्रेयसां प्रियः ॥४२॥

बर्हिजात विरागाय	जिसका वैराग्य प्रकट है,	**शुचये**	पवित्रको,
शान्त चित्ताय	शान्त चित्त,	**यस्य अहं**	जिसका मैं
निर्मत्सराय	मत्सर रहित,	**प्रेयसां प्रियः**	प्रियोंसे भी प्रिय हूँ
		दीयतां	(उसे यह उपदेश) दो ॥४२॥

य इदं शृणुयादम्ब श्रद्धया पुरुषः सकृत् ।
यो वाभिधत्ते मच्चित्तः स ह्येति पदवीं च मे ॥४३॥

यः इदं शृणुयात् अम्ब श्रद्धया पुरुषः सकृत् यः वा अभिधत्ते मत् चित्तः स हि एति पदवीं च मे ॥४३॥

अम्ब यः इदं	माताजी ! जो इसको
पुरुषः सकृत्	पुरुष एक बार भी
श्रद्धया शृणुयात्	श्रद्धापूर्वक सुनता है,
वा यः मत्	
चित्तः	अथवा जो मुझमें चित्त लगाकर
अभिधत्ते	(इसे) धारण करता है
स हि च	वह तो निश्चय
मे पदवीं एति	मेरे परमपदको आवेगा ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

एवं निशम्य कपिलस्य वचो जनित्री
सा कर्दमस्य दयिता किल देवहूतिः ।
विस्रस्तमोहपटला तमभिप्रणम्य
तुष्टाव तत्त्वविषयाङ्कितसिद्धिभूमिम् ॥१॥

एवं निशम्य कपिलस्य वचः जनित्री सा कर्दमस्य दयिता किल देवहूतिः विस्रस्त मोहपटला तं अभिप्रणम्य तुष्टाव तत्त्व विषय अङ्कित सिद्धि भूमिम् ॥१॥

एवं कपिलस्य	इस प्रकार कपिलजीके	**देवहूतिः**	देवहूति
वचः निशम्य	वचनोंको सुनकर	**तत्त्व विषय**	तत्त्वज्ञानके विषयमें
विस्रस्त		**सिद्धि भूमि**	आधार भूमि (सांख्य शास्त्री)
मोहपटला	मोहका पर्दा फट गया,	**अङ्कित**	के उपदेष्टा
सा कर्दमस्य	वे महर्षि कर्दमकी	**तं अभिप्रणम्य**	उनको प्रणाम करके
किल दयिता	अत्यन्त प्रिय पत्नी	**तुष्टाव**	स्तुति करने लगीं ॥१॥
जनित्री	(कपिलकी) जननी		

देवहूतिरुवाच-

अथाप्यजोऽन्तःसलिले शयानं
भूतेन्द्रियार्थात्ममयं वपुस्ते ।
गुणप्रवाहं सदशेषबीजं
दध्यौ स्वयं यज्जठराब्जजातः ॥२॥

अथ अपि अजः अन्तः सलिले शयानं भूत इन्द्रिय अर्थ आत्ममयं वपुः ते गुण प्रवाहं सत् अशेषबीजं दध्यौ स्वयं यत् जठर अब्जजातः ॥२॥

अब्जजातः	(आपकी) नाभि कमलसे उत्पन्न	**गुण प्रवाहं**	गुणोंका प्रवाह,
अजः अपि	ब्रह्माजीने भी	**सत्**	सत्वस्वरूप,
अन्तः सलिले	प्रलय जलके भीतर	**अशेषबीजं**	सम्पूर्ण (कार्य-कारणका) बीज है
शयानं	सोते हुए	**स्वयं**	स्वयं
भूत इन्द्रिय	पञ्चभूत, इन्द्रिय,	**यत् दध्यौ**	क्योंकि ध्यान ही किया था ॥२॥
अर्थं आत्ममयं	विषय तथा मनोमय		
ते वपुः	आपके शरीरका		
जठर	(जो) पेट		

स एव विश्वस्य भवान् विधत्ते
गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ।
सर्गाद्यनीहोऽवितथाभिसन्धि-
रात्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्रशक्तिः ॥३॥

स एव विश्वस्य भवान् विधत्ते गुण प्रवाहेण विभक्त वीर्यः सर्गादि अनीहः अवितथ अभिसन्धिः आत्मेश्वरः अतर्क्य सहस्र शक्तिः ॥३॥

स एव भवान्	वही आप	**गुण प्रवाहेण**	गुणोंके प्रवाहसे
अवितथ अभिसन्धिः	अव्यर्थ संकल्प,	**विभक्त वीर्यः**	अपनी विभूतियोंको (ब्रह्मादि रूपमें) बाँटकर
आत्मेश्वरः	जीवोंके स्वामी,	**विश्वस्य**	संसारकी
अतर्क्य सहस्र शक्तिः	अचिन्त्य अनन्त शक्ति	**सर्गादि विधत्ते**	सृष्टि आदिका विधान करते हैं ॥३॥
अनीहः	इच्छाहीन होनेपर भी		

स त्वं भृतो मे जठरेण नाथ
कथं नु यस्योदर एतदासीत् ।

विश्वं युगान्ते वटपत्र एकः
शेते स्म मायाशिशुरङ्घ्रिपानः ॥४॥

स त्वं भृतः मे जठरेण नाथ कथं नु यस्य उदर एतत् आसीत् विश्वं युगान्ते वटपत्र एकः शेते स्म माया शिशुः अङ्घ्रिपानः ॥४॥

नाथ	नाथ !
यस्य उदर	जिसके पेटमें
एतत् विश्व	
आसीत्	यह सम्पूर्ण जगत है
स त्वं मे	वही आप मेरे
जठरेण	पेठमें
नु कथं	भला कैसे
भृतं	धारण किए गये ? (पर यह सम्भव है; क्योंकि)
युगान्ते	कल्पान्तके समय
अङ्घ्रिपानः	अपने चरण (का अंगूठा) पीते
माया शिशुः	मायासे शिशु बनकर
वटपत्र	वरगदके पत्तेपर
एकः शेते	(आप) अकेले सोते हैं ॥४॥

त्वं देहतन्त्रः प्रशमाय पाप्मनां
निदेशभाजां च विभो विभूतये ।
यथावतारास्तव सूकरादय-
स्तथायमप्यात्मपथोपलब्धये ॥५॥

त्वं देहतन्त्रः प्रशमाय पाप्मनां निदेश भाजां च विभो विभूतये यथा अवताराः तव सूकर आदयः तथा अयं अपि आत्मपथ उपलब्धये ॥५॥

विभो	प्रभो !
पाप्मनां	
प्रशमाय च	पापियोंका दमन और
निदेश भाजां	आज्ञाकारियों (भक्तों) के
विभूतये	अभ्युदयके लिए
त्वं देहतन्त्रः	आप अवतार लेते हैं ।
यथा तव	जैसे आपके
सूकर आदयः	वाराहादि
अवतारः	अवतार हुए
तथा अयं अपि	वैसे ही यह भी
आत्मपथ	आत्मज्ञानका मार्ग
उपलब्धये	दिलानेके लिए (हुआ) है ॥५॥

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्
यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते
कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥६॥

यत् नामधेय श्रवणात् अनुकीर्तनात् यत् प्रह्वणात् यत् स्मरणात् अपि क्वचित् श्वादः अपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनः ते भगवन् नु दर्शनात् ॥६॥

क्वचित् अपि	कभी भी
यत् नामधेय	जिनके नामोंको
श्रवणात्	सुननेसे या
अनुकीर्तनात्	बार-बार कीर्तन करनेसे,
यत् प्रह्वणात्	जिनको प्रणाम करनेसे,
यत् स्मरणात्	जिनका स्मरण करनेसे
सद्यः श्वादः अपि	तुरन्त चाण्डाल भी
सवनाय कल्पते	याज्ञिक (ब्राह्मण)के समान हो जाता है,
भगवन्	भगवन् !
ते दर्शनात् नु	आपके दर्शनसे तो
पुनः कुतः	फिर क्या पूछना ॥६॥

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥७॥

अहो बत श्वपचः अतः गरीयान् यत् जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यं तेपुः तपः ते जुहुवुः सस्नुः आर्या ब्रह्मान् उचुः नाम गृणन्ति ये ते ॥७॥

यत् जिह्वाग्रे	जिनकी जीभकी नोकपर
तुभ्यं नाम वर्तते	आपका नाम आता है,
अहो बत	अरे वह तो
श्वपचः	चाण्डाल भी
अतः गरीयान्	इससे श्रेष्ठ है ।
ये ते नाम गृणन्ति	जो आपके नामको लेते हैं,

ते तपः तेपुः	उन्होंने तपस्यायें करलीं,	**आर्या सस्नुः**	उत्तम तीर्थोंमें स्नान कर लिया,
जुहुवुः	यज्ञ कर लिए,	**ब्रह्मान् उचुः**	वेदपाठ कर लिये ॥७॥

तं त्वामहं ब्रह्म परं पुमांसं
प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि संविभाव्यम् ।
स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहं
वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम् ॥८॥

तं त्वां अहं ब्रह्म परं पुमांसं प्रत्यक् स्रोतसि आत्मनि संविभाव्यं स्वतेजसा ध्वस्त गुण प्रवाहं वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम् ॥८॥

तं त्वां ब्रह्म	उस आप ब्रह्म,	**ध्वस्त गुण प्रवाहं**	त्रिगुणोंके प्रवाहको निरस्त करनेवाले
परं पुमांसं	परम पुरुष,	**वेदगर्भं**	सम्पूर्ण वेद अपने भीतर रखनेवाले
स्रोतसि प्रत्यक्	वृत्तियोंको अन्तर्मुख करके	**कपिलं विष्णुं**	कपिल रूपमें विष्णु भगवान्‌की
आत्मनि संविभाव्यं	अन्तःकरणमें ध्यान करने योग्य,	**वन्दे**	वन्दना करती हूँ ॥८॥
स्वतेजसा	अपने तेजसे		

मैत्रेय उवाच-

ईडितो भगवानेवं कपिलाख्यः परः पुमान् ।
वाचाविक्लवयेत्याह मातरं मातृवत्सलः ॥९॥

ईडितः भगवान् एवं कपिलाख्यः परः पुमान् वाचा अविक्लवया इति आह मातरं मातृवत्सलः ॥९॥

कपिलाख्यः	कपिल नामवाले	**भगवान्**	भगवान्
परः पुमान्	परम पुरुष	**मातृवत्सलः**	मातृवत्सल

एवं ईडितः	इस प्रकार स्तुति किये जानेपर	**मातरं इति आह**	मातासे यह बोले ॥९॥
अविक्लवया वाचा	गम्भीर वाणीसे		

कपिल उवाच-

मार्गेणानेन मातस्ते सुसेव्येनोदितेन मे ।
आस्थितेन परां काष्ठामचिरादवरोत्स्यसि ॥१०॥

मार्गेण अनेन मातः ते सुसेव्येन उदितेन मे आस्थितेन परां काष्ठां अचिरात् अवरोत्स्यसि ॥१०॥

मातः	माता !	**आस्थितेन**	(उस पर) स्थित होनेसे
मे उदितेन	मेरे द्वारा बतलाये	**परां काष्ठां**	परमपदपर
अनेन मार्गेण	इस मार्गसे	**अचिरात्**	शीघ्र
ते सुसेव्येन	तुम्हारे द्वारा भली प्रकार आचरण करते	**अवरोत्स्यसि**	चढ़ जाओगी ॥१०॥

श्रद्धत्स्वैतन्मतं मह्यं जुष्टं यद्ब्रह्मवादिभिः ।
येन मामभवं याया मृत्युमृच्छन्त्यतद्विदः ॥११॥

श्रद्धत्स्व एतत् मतं मह्यं जुष्टं यत् ब्रह्मवादिभिः येन मां अभवं याया मृत्युं ऋच्छन्ति अतत् विदः ॥११॥

एतत् मह्यं मतं	इस मेरे मतपर	**येन मां**	जिसके द्वारा मुझ
श्रद्धत्स्व	श्रद्धा करो,	**अभवं याया**	मोक्ष स्वरूपको पहुँचोगी ।
यत्			
ब्रह्मवादिभिः	क्योंकि वेदवादी लोगोंने	**अतत् विदः**	इसे न जाननेवाले
		मृत्युं ऋच्छन्ति	मृत्युके चक्रमें पड़ते हैं ॥११॥
जुष्टं	(इसे) अपनाया है ।		

मैत्रेय उवाच-

इति प्रदर्श्य भगवान् सतीं तामात्मनो गतिम् ।
स्वमात्रा ब्रह्मवादिन्या कपिलोऽनुमतो ययौ ॥१२॥

इति प्रदर्श्य भगवान् सतीं तां आत्मनः गतिं स्वमात्रा ब्रह्मवादिन्या कपिलः अनुमतः ययौ ॥१२॥

इति	इस प्रकार	**ब्रह्मवादिन्या**	
आत्मनः गतिं	आत्मज्ञानका	**अनुमतः**	(उन) ब्रह्मवादिनीसे अनुमति लेकर
तां सतीं		**भगवान् कपिलः**	भगवान कपिल
स्वमात्रां	उन सती अपनी माताको	**ययौ**	(वहाँसे) चले गये ॥१२॥
प्रदर्श्य	उपदेश करके		

सा चापि तनयोक्तेन योगादेशेन योगयुक् ।
तस्मिन्नाश्रम आपीडे सरस्वत्याः समाहिता ॥१३॥

सा च अपि तनय उक्तेन योगादेशेन योगयुक् तस्मिन् आश्रम आपीडे सरस्वत्याः समाहिता ॥१३॥

सा च अपि	वह (देवहूति) भी	**आपीडे**	उस आश्रम शिरोमणिमें
तनय उक्तेन	पुत्रके बतलाये	**योगयुक्**	योग करके
योगादेशेन	योगोपदेशसे	**समाहिता**	समाधिस्थ हो गयीं ॥१३॥
सरस्वत्याः	सरस्वती तटके		
तस्मिन् आश्रम			

अभीक्ष्णावगाहकपिशान् जटिलान् कुटिलालकान् ।
आत्मानं चोग्रतपसा बिभ्रती चीरिणं कृशम् ॥१४॥

अभीक्ष्ण अवगाह कपिशान् जटिलान् कुटिल अलकान् आत्मानं च उग्र तपसा बिभ्रती चीरिणं कृशम् ॥१४॥

अभीक्ष्ण अवगाह	तीनों समय स्नान करनेसे	**कुटिल अलकान्**	घुँघराली अलकें (जो)

कपिशान्		**उग्र तपसा**	उग्र तपस्यासे
जटिलान्	भूरी होकर जटाबनी	**कृशं आत्मानं च**	
चीरिणं च	चीर वस्त्र पहिने और	**बिभ्रती**	दुबले शरीरको ही धारण करती ॥१४॥

प्रजापतेः कर्दमस्य तपोयोगविजृम्भितम् ।
स्वगार्हस्थ्यमनौपम्यं प्रार्थ्यं वैमानिकैरपि ॥१५॥

प्रजापतेः कर्दमस्य तपः योग विजृम्भितं स्वगार्हस्थ्यं अन उपम्यं प्रार्थ्यं वैमानिकैः अपि ॥१५॥

प्रजापतेः		**अन उपम्यं**	अनुपम
कर्दमस्य	प्रजापति कर्दमके	**वै मानिकैः अपि**	देवताओंके लिए भी
तपः योग		**प्रार्थ्यं**	चाहने योग्य
विजृम्भितं	तप तथा योगबलसे प्राप्त	**स्वगार्हस्थ्यं**	अपने गृहस्थ सुखको (त्याग दिया)॥१५॥

पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ।
आसनानि च हैमानि सुस्पर्शास्तरणानि च ॥१६॥

पयःफेननिभाः शय्याः दान्ता रुक्मपरिच्छदाः आसनानि च हैमानि सुस्पर्श आस्तरणानि च ॥१६॥

पयःफेननिभाः	दूधके फेनके समान	**च हैमानि**	
शय्याः	(जिसमें) पलंग थे,	**आसनानि**	तथा सोनेके आसन थे,
दान्ताः			
रुक्मपरिच्छदाः	हाथी दांतके तथा सोनेके उपकरण थे,	**च सुस्पर्श आस्तरणानि**	एवं कोमल स्पर्शवाले बिछौने थे ॥१६॥

स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ।
रत्नप्रदीपा आभान्ति ललनारत्नसंयुताः ॥१७॥

स्वच्छ स्फटिक कुड्येषु महामारकतेषु च रत्नप्रदीपाः आभान्ति ललनारत्न संयुताः ॥१७॥

स्वच्छ स्फटिक च महामारकतेषु कुड्येषु	स्वच्छ स्फटिक एवं महामरकत-मणिकी दीवारोंमें
ललनारत्न संयुताः	श्रेष्ठ रमणियोंकी मूर्तियोंमें
रत्नप्रदीपाः आभान्ति	रत्नोंके दीपक जगमगाते थे ॥१७॥

गृहोद्यानं कुसुमितै रम्यं बह्वमरद्रुमैः ।
कूजद्विहङ्गमिथुनं गायन्मत्तमधुव्रतम् ॥१८॥

गृह उद्यानं कुसुमितैः रम्यं बहु अमरद्रुमैः कूजत् विहंग मिथुनं गायन् मत्त मधुव्रतैः ॥१८॥

गृह उद्यानं	घरेलू बगाचा
बहु अमरद्रुमैः	बहुतसे दिव्य वृक्षोंसे
कुसुमितैः	पुष्पित था ।
विहंग मिथुनं कूजत्	पक्षियोंके जोड़े (उसमें) कलरव करते थे
मत्त मधुव्रतैः गायन्	मतवाले भौंरे गुंजार करते थे ॥१८॥

यत्र प्रविष्टमात्मानं विबुधानुचरा जगुः ।
वाप्यामुत्पलगन्धिन्यां कर्दमेनोपलालितम् ॥१९॥

यत्र प्रविष्टं आत्मानं विबुधा अनुचराः जगुः वाप्यां उत्पल गन्धिन्यां कर्दमेन उपलालिताम् ॥१९॥

उत्पल गन्धिन्यां वाप्यां	कमल-गन्धवाली वावली थी,
यत्र प्रविष्टं	जिसमें प्रवेश करनेपर
कर्दमेन उपलालितां	कर्दमजी द्वारा लाड़ करते समय
विबुधा अनुचराः	देवताओंके सेवक (गन्धर्व)
आत्मानं जगुः	उसका गान करते थे ॥१९॥

हित्वा तदीप्सिततममप्याखण्डलयोषिताम् ।
किञ्चिच्चकार वदनं पुत्रविश्लेषणातुरा ॥२०॥

हित्वा तत् ईप्सित तमं अपि आखण्डल योषितां किञ्चित् चकार वदनं पुत्र विश्लेषण आतुरा ॥२०॥

आखण्डल योषितां अपि	इन्द्रकी पत्नियोंके लिए भी
तत् ईप्सित तमं हित्वा	उस परम अभीष्ट (घरको) छोड़कर
पुत्र विश्लेषण	पुत्रके वियोगसे
किञ्चित् वदनं	मुख कुछ
आतुरा चकार	व्याकुल बनाया ॥२०॥

वनं प्रव्रजिते पत्यावपत्यविरहातुरा ।
ज्ञाततत्त्वाप्यभून्नष्टे वत्से गौरिव वत्सला ॥२१॥

वनं प्रव्रजिते पत्याः अपत्य विरह आतुरा ज्ञाततत्त्व अपि अभूत् नष्टे वत्से गौः इव वत्सला ॥२१॥

पत्याः वनं प्रव्रजिते	पतिके संन्यास लेकर वनमें चले जानेपर
अपत्य विरह आतुरा	पुत्रके वियोगमें व्याकुल
ज्ञाततत्त्व अपि	तत्त्वज्ञान हो जानेपर भी
वत्से नष्टे	बछड़ेके मर जानेपर
वत्सला गौः इव	बछड़ेवाली गायके समान
अभूत्	हो गयीं ॥२१॥

तमेव ध्यायती देवमपत्यं कपिलं हरिम् ।
बभूवाचिरतो वत्स निःस्पृहा तादृशे गृहे ॥२२॥

तं एव ध्यायती देवं अपत्यं कपिलं हरिं बभूव अचिरतः वत्स निःस्पृहा तादृशे गृहे ॥२२॥

वत्स	वत्स विदुर !
तं एव हरिं अपत्यं कपिलं देवं ध्यायती	उन्हीं श्रीहरि अपने पुत्र कपिल भगवानका ध्यान करती
अचिरतः	शीघ्र
तादृशे गृहे	वैसे (अनुपम) घरसे
निःस्पृहा बभूव	निःस्पृह हो गयीं ॥२२॥

ध्यायती भगवद्रूपं यदाह ध्यानगोचरम् ।
सुतः प्रसन्नवदनं समस्तव्यस्तचिन्तया ॥२३॥

ध्यायती भगवत् रूपं यत् आह ध्यान गोचरं सुतः प्रसन्न वदनं समस्त व्यस्त चिन्तया ॥२३॥

सुतः यत् आह	पुत्र (कपिल) ने जो बतलाया था	**समस्त**	सम्पूर्ण और
ध्यान गोचरं	ध्यान करने योग्य	**व्यस्त चिन्तया**	एक-एक अंग चिन्तनपूर्वक
प्रसन्न वदनं	प्रसन्न मुखवाले	**ध्यायती**	ध्यान करने लगीं ॥२३॥
भगवत् रूपं	भगवानके रूपका		

भक्तिप्रवाहयोगेन वैराग्येण बलीयसा ।
युक्तानुष्ठानजातेन ज्ञानेन ब्रह्महेतुना ॥२४॥

भक्ति प्रवाह योगेन वैराग्येण बलीयसा युक्ता अनुष्ठान जातेन ज्ञानेन ब्रह्म हेतुना ॥२४॥

भक्ति प्रवाह	भक्तिके प्रवाहसे,	**अनुष्ठान जातेन**	अनुष्ठान करनेसे
योगेन	योगसे,	**ब्रह्म हेतुना**	
बलीयसा		**ज्ञानेन**	ब्रह्म साक्षात्कार करानेवाले ज्ञानसे ॥२४॥
वैराग्येण	बलवान वैराग्यसे		
युक्ता	युक्त होकर		

विशुद्धेन तदाऽऽत्मानमात्मना विश्वतोमुखम् ।
स्वानुभूत्या तिरोभूतमायागुणविशेषणम् ॥२५॥

विशुद्धेन तदा आत्मानं आत्मना विश्वतः मुखं स्व अनुभूत्या तिरोभूत माया गुण विशेषणम् ॥२५॥

तदा विशुद्धेन	तब अत्यन्त शुद्ध	**माया गुण विशेषणं**	मायाके गुणोंकी विशेषता (व्यक्तित्वका अहंकार)
आत्मना	चित्तसे		
आत्मानं	अपनेको		
विश्वतः मुखं	सर्वव्यापक रूपमें		
स्व अनुभूत्या	अपनी अनुभूतिसे	**तिरोभूत**	लुप्त हो गया ॥२५॥

ब्रह्मण्यवस्थितमतिर्भगवत्यात्मसंश्रये ।
निवृत्तजीवापत्तित्वात्क्षीणक्लेशाऽऽप्तनिर्वृतिः ॥२६॥

ब्रह्मणि अवस्थित मतिः भगवति आत्मसंश्रये निवृत्त जीव आपत्तित्वात् क्षीण क्लेश आप्त निर्वृतिः ॥२६॥

भगवति	भगवानमें
आत्मसश्रये	चित्त लग जानेसे
मतिः ब्रह्मणि	बुद्धि (निर्गुण) ब्रह्ममें
अवस्थित	लग गयी,
निवृत्त जीव	
आपत्तित्वात्	जीव भाव निवृत्त हो जानेसे
क्षीण क्लेश	(अविद्या, अस्मितादि) क्लेश नष्ट हो गये
निवृतिः आप्त	परमानन्द प्राप्त हो गया ॥२६॥

नित्यारूढसमाधित्वात्परावृत्तगुणभ्रमा ।
न सस्मार तदाऽऽत्मानं स्वप्ने दृष्टमिवोत्थितः ॥२७॥

नित्य आरूढ समाधित्वात् परावृत्त गुण भ्रमा न सस्मार तदा आत्मानं स्वप्ने दृष्टं इव उत्थितः ॥२७॥

नित्य	सदा
आरूढ	
समाधित्वात्	समाधि लगी रहनेसे
गुण भ्रमा	विषयों में सत्यत्वका भ्रम
परावृत्त	मिट गया,
तदा आत्मानं	तब अपने शरीरको
स्वप्ने दृष्टं	स्वप्नमें देखेको
उत्थितः इव	जागे हुएके समान
न सस्मार	स्मरण नहीं करती थीं ॥२७॥

तद्देहः परतःपोषोऽप्यकृशश्चाध्यसम्भवात् ।
बभौ मलैरवच्छन्नः सधूम इव पावकः ॥२८॥

तत् देहः परतः पोषः अपि अकृशः च आधि असम्भवात् बभौ मलैः अवच्छन्नः सधूम इव पावकः ॥२८॥

सधूम	धुएं सहित
पावकः इव	अग्निके समान
परतः पोषः	
अपि	दूसरों द्वारा पोषित होनेपर भी

तत् देहः	उनका शरीर	**च मलैः**	
आधि		**अवच्छन्नः**	और मैलसे ढका
असम्भवात्	चिन्ता न होनेसे ।	**बभौ**	सुशोभित था ॥२८॥
अकृशः	दुबला नही था		

स्वाङ्गं तपोयोगमयं मुक्तकेशं गताम्बरम् ।
दैवगुप्तं न बुबुधे वासुदेवप्रविष्टधीः ॥२९॥

स्व अङ्गं तपः योगमयं मुक्तकेशं गत अम्बरं दैव गुप्तं न बुबुधे वासुदेव प्रविष्ट धीः ॥२९॥

वासुदेव	भगवान वासुदेवमें	**गत अम्बरं**	वस्त्रहीन,
प्रविष्ट धीः	बुद्धिके प्रवेश कर जानेसे	**दैव गुप्तं**	भाग्यसे रक्षित
		स्व अङ्गं	अपने शरीरका
तपः योगमयं	तप एवं योगमय	**न बुबुधे**	बोध नहीं रहता
मुक्तकेशं	खुले केशवाले,		था ॥२९॥

एवं सा कपिलोक्तेन मार्गेणाचिरतः परम् ।
आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं भगवन्तमवाप ह ॥३०॥

एवं सा कपिल उक्तेन मार्गेण अचिरतः परं आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं भगवन्तं अवाप ह ॥३०॥

एवं सा	इस प्रकार वह	**भगवन्तं**	भगवानमें
कपिल उक्तेन	कपिल द्वारा उपदिष्ट	**ब्रह्म निर्वाणं**	ब्रह्म निर्वाण
		अवाप ह	प्राप्त हो
मार्गेण अचिरतः	मार्गसे शीघ्र		गयीं ॥३०॥
परं आत्मानं	परमात्मा		

तद्वीरासीत्पुण्यतमं क्षेत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
नाम्ना सिद्धपदं यत्र सा संसिद्धिमुपेयुषी ॥३१॥

तत् आविरासीत् पुण्यतमं क्षेत्रं त्रैलोक्य विश्रुतं नाम्ना सिद्धपदं यत्र सा संसिद्धिं उपेयुषी ॥३१॥

यत्र सा	जहाँ उन्होंने
संसिद्धिं उपेयुषि	परमसिद्धि प्राप्त किया
तत् पुण्यतमं	वह परम पवित्र
त्रैलोक्य विश्रुतं	त्रिलोकीमें प्रसिद्ध
सिद्धपदं नाम्ना	सिद्धपुर नामका
क्षेत्रं	तीर्थ
आविरासीत्	प्रकट हो गया ॥४१॥

तस्यास्तद्योगविधुतमार्त्यं मर्त्यमभूत्सरित् ।
स्रोतसां प्रवरा सौम्य सिद्धिदा सिद्धसेविता ॥३२॥

तस्याः तद् योग विधुत मार्त्यं मर्त्यं अभूत् सरित् स्रोतसां प्रवरा सौम्य सिद्धिदा सिद्ध सेविता ॥३२॥

सौम्य	सौम्य विदुर !
तद् योग	उनके योग साधनसे
मार्त्यं विधुत	मरण धर्मिता नष्ट हुए
तस्याः मर्त्यं	उनका शरीर
स्रोतसां प्रवरा	नदियोंमें श्रेष्ठ
सिद्धिदा	सिद्धि देनेवाली
सिद्ध सेविता	सिद्धोंसे सेवित
सरित् अभूत्	सरिता हो गया ॥३२॥

कपिलोऽपि महायोगी भगवान् पितुराश्रमात् ।
मातरं समनुज्ञाप्य प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥३३॥

कपिलः अपि महायोगी भगवान् पितुः आश्रमात् मातरं सं अनुज्ञाप्य प्राक् उदीचीं दिशं ययौ ॥३३॥

महायोगी	
भगवान्	महायोगी भगवान
कपिलः अपि	कपिल भी
मातरं	मातासे
सं अनुज्ञाप्य	भली प्रकार अनुमति लेकर
पितुः आश्रमात्	पिताके आश्रमसे
प्राक् उदीचि	
दिशं	पूर्वोत्तर (ईशान) दिशामें
ययौ	गये ॥३३॥

सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ।
स्तूयमानः समुद्रेण दत्तार्हणनिकेतनः ॥३४॥

सिद्ध चारण गन्धर्वैः मुनिभिः च अप्सरः गणैः स्तूयमानः समुद्रेण दत्तः अर्हण निकेतनः ॥३४॥

सिद्ध चारण	सिद्ध, चारण,	**समुद्रेण अर्हण**	समुद्र द्वारा पूजा तथा
गन्धर्वैः	गन्धर्वोंसे,	**निकेतनः दत्तः**	निवास दिये जाने पर ॥३४॥
अप्सरः गणैः	अप्सराओंसे,		
च मुनिभिः	तथा मुनियोंसे		
स्तूयमानः	स्तुत होते		

आस्ते योगं समास्थाय सांख्याचार्यैरभिष्टुतः ।
त्रयाणामपि लोकानामुपशान्त्यै समाहितः ॥३५॥

आस्ते योगं समास्थाय सांख्याचार्यैः अभिष्टुतः त्रयाणां अपि लोकानां उपशान्त्यै समाहितः ॥३५॥

सांख्याचार्यैः	सांख्याचार्योंसे	**योगं समास्थाय**	योगमें भली प्रकार स्थित होकर
अभिष्टुतः	स्तुत होते	**समाहितः आस्ते**	समाधिमें स्थित हैं ॥३५॥
त्रयाणां लोकानां अपि	तीनों लोकोंको ही		
उपशान्त्यैः	शान्ति प्रदान करनेके लिए		

एतन्निगदितं तात यत्पृष्टोऽहं तवानघ ।
कपिलस्य च संवादो देवहूत्याश्च पावनः ॥३६॥

एतत् निगदितं तात यत् पृष्टः अहं तव अनघ कपिलस्य च संवादः देवहूत्याः च पावनः ॥३६॥

अनघ तात	निष्पाप तात ! विदुर !	**च देवहूत्याः**	तथा देवहूतिका
तव यत् पृष्टः	तुमने जो पूछा था	**पावनः संवादः**	पवित्र संवाद
एतत् कपिलस्य	यह कपिलका	**अहं निगदितं**	मैंने सुना दिया ॥३६॥

य इदमनुशृणोति योऽभिधत्ते
कपिलमुनेर्मतमात्मयोगगुह्यम् ।
भगवति कृतधीः सुपर्णकेता-
वुपलभते भगवत्पदारविन्दम् ॥३७॥

यः इदं अनुशृणोति यः अभिधत्ते कपिलमुनेः मतं आत्मयोग गुह्यं भगवति कृतधीः सुपर्णकेताः उपलभते भगवत् पदारविन्दम् ॥३७॥

यः इदं	जो इस	**भगवति**	भगवानमें
कपिलमुनेः	कपिल मुनिके	**कृतधीः**	(उसकी) बुद्धि लग जाती है,
गुह्यं आत्मयोग मतं	रहस्यमय आत्मयोग-मतको	**सुपर्णकेताः**	गरुड़ध्वज
अनुशृणोति	बार-बार सुनना है,	**भगवत् पदारविन्दं**	भगवानके चरण-कमलको
यः अभिधत्ते	जो (इसे) धारण करता है,	**उपलभते**	पाता है ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

॥ इति तृतीयः स्कन्धः समाप्तः ॥

हरिः ॐ तत्सत्

॥ चतुर्थ स्कन्ध ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे ।
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ॥१॥

मनोः तु शतरूपायां तिस्रः कन्याः च जज्ञिरे आकूतिः देवहूतिः च प्रसूतिः इति विश्रुताः ॥१॥

मनोः तु	मनुके तो	**देवहूतिः च**	देवहूति तथा
शतरूपायां	शतरूपासे	**प्रसूतिः**	प्रसूति (ये)
तिस्रः कन्याः च	तीन कन्यायें भी	**इति विश्रुताः**	इन नामोंसे प्रसिद्ध
जज्ञिरे	उत्पन्न हुईं ।		हैं ॥१॥
आकूतिः	आकूति,		

आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृपः ।
पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥२॥

आकूतिं रुचये प्रादात् अपि भ्रातृमतीं नृपः पुत्रिका धर्मं आश्रित्य शतरूपा अनुमोदितः ॥२॥

शतरूपा	(अपनी पत्नी) शतरूपाकी	**आकूतिं रुचये**	आकूति रुचि (प्रजापति) को
अनुमोदितः	अनुमतिसे	**पुत्रिका धर्मं**	पुत्रिका धर्मको*
नृपः	राजा मनुने	**आश्रित्य**	अपनाकर
भ्रातृमतीं अपि	(उसके) भाई होनेपर भी	**प्रादात्**	प्रदान किया ॥२॥

---

* पुत्रिका धर्मके विवाहमें शर्त होती है कि कन्याकी प्रथम सन्तान उसका पिता (सन्तानका नाना) ले लेगा ।

प्रजापतिः स भगवान् रुचिस्तस्यामजीजनत् ।
मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥३॥

प्रजापतिः स भगवान् रुचिः तस्यां अजीजनत् मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥३॥

ब्रह्मवर्चस्वी	ब्रह्म तेज सम्पन्न	**परमेण**	
स भगवान्		**समाधिना**	अत्यन्त एकाग्रतासे
रुचिः	उन भगवान् रुचि	**तस्यां मिथुनं**	उसमें एक जोड़ा
प्रजापतिः	प्रजापतिने	**अजीजनत्**	उत्पन्न किया ॥३॥

यस्तयोः पुरुषः साक्षाद्विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक् ।
या स्त्री सा दक्षिणा भूतेरंशभूतानपायिनी ॥४॥

यः तयोः पुरुषः साक्षात् विष्णुः यज्ञस्वरूप धृक् या स्त्री सा दक्षिणाः भूतेः अंश भूता अनपायिनी ॥४॥

तयोः यः	उस जोड़ेमें जो	**या स्त्रीः सा**	
पुरुषः	पुरुष था	**दक्षिणा**	जो दक्षिणा नामकी कन्या थी वह
यज्ञस्वरूप धृक्	यज्ञका स्वरूप धारण किये	**अनपायिनी**	भगवानसे कभी पृथक् न होनेवाली
साक्षात् विष्णुः	साक्षात् विष्णु थे ।	**भूतेः अंश भूता**	लक्ष्मीकी अंश स्वरूपा थी ॥४॥

आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्याः पुत्रं विततरोचिषम् ।
स्वायम्भुवो मुदा युक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणाम् ॥५॥

आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्याः पुत्रं वितत रोचिषं स्वायम्भुवः मुदा युक्तः रुचिः जग्राह दक्षिणाम् ॥५॥

वितत रोचिषं	परम तेजस्वी	**स्वगृहं आनिन्ये**	अपने घर ले आये ।
पुत्र्याः पुत्रं	(अपनी) कन्याके पुत्रको	**रुचिः**	प्रजापति रुचिने
स्वायम्भुवः	स्वायम्भू मनु	**दक्षिणां जग्राह**	दक्षिणाको ले लिया ॥५॥
मुदा युक्तः	प्रसन्न होकर		

तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः ।
तुष्टायां तोषमापन्नोऽजनयद् द्वादशात्मजान् ॥६॥

तां कामयानां भगवान् उवाह यजुषां पतिः तुष्टायां तोषं आपन्नः अजनयत् द्वादश आत्मजान् ॥६॥

तां	उस
कामयानां	(अपनेको) चाहने वालीको
भगवान् यजुषां पतिः	भगवान यज्ञपतिने
उवाह	विवाह लिया,
तुष्टायां	(इससे उसके)
तोषं आपन्नः	सन्तुष्ट होनेपर (स्वयं भी) सन्तुष्ट होकर
द्वादश आत्मजान्	बारह पुत्र
अजनयत्	उत्पन्न किये ॥६॥

तोषः प्रतोषः संतोषो भद्रः शान्तिरिडस्पतिः ।
इध्मः कविर्विभुः स्वह्नः सुदेवो रोचनो द्विषट् ॥७॥

तोषः, प्रतोषः, सन्तोषः, भद्रः, शान्तिः, इडस्पतिः, इध्मः, कविः, विभुः, स्वह्नः, सुदेवः, रोचनः, द्विषट् (ये बारह हैं) ॥७॥

तुषिता नाम ते देवा आसन् स्वायम्भुवान्तरे ।
मरीचिमिश्रा ऋषयो यज्ञः सुरगणेश्वरः ॥८॥

तुषिता नाम ते देवाः आसन् स्वायम्भुव अन्तरे मरीचिमिश्रा ऋषयः यज्ञः सुरगणे ईश्वरः ॥८॥

स्वायम्भुव अन्तरे	स्वायम्भू मन्वन्तरमें
ते तुषिता नाम	वे (बारहो) 'तुषित' नामके
देवाः आसन्	देवता हुए,
मरीचिमिश्रा	मरीचि आदि (ब्रह्मपुत्र)
ऋषयः	सप्तर्षि हुए,
यज्ञः	भगवान यज्ञ
	उस मन्वन्तर (में)
सुरगण ईश्वरः	देवताओंके स्वामी इन्द्र हुए ॥८॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ ।
तत्पुत्रपौत्रनप्तृणामनुवृत्तं तदन्तरम् ॥९॥

प्रियव्रतः उत्तानपादौ मनुपुत्रौ महा ओजसौ तत् पुत्र पौत्र नप्तृणां अनुवृत्तं तदन्तरम् ॥९॥

प्रियव्रतः	
उत्तानपादौ	प्रियव्रत और उत्तानपाद
महा ओजसौ	अत्यन्त तेजस्वी
मनुपुत्रौ	मनुके पुत्र थे,
तदन्तरं	उस मन्वन्तरमें
तत् पुत्र पौत्र	उनके पुत्रों, पौत्रों,
नप्तृणां अनुवृत्तं	दौहित्रौका वंश ही रहा ॥९॥

देवहूतिमदात्तात कर्दमायात्मजां मनुः ।
तत्सम्बन्धि श्रुतप्रायं भवता गदतो मम ॥१०॥

देवहूतिं अदात् तात कर्दमाय आत्मजां मनुः तत् सम्बन्धि श्रुतं प्राय भवता गदतः मम ॥१०॥

तात	तात विदुर !
आत्मजां	
देवहूतिं	अपनी पुत्री देवहूति
मनुः	मनुने
कर्दमाय अदात्	कर्दमजीको दिया ।
तत् सम्बन्धी	उनके सम्बन्धकी (बातें)
भवता मम	
गदतः	तुमने मेरे वर्णनसे
प्रायः श्रुतं	प्रायः सुन लिया है ॥१०॥

दक्षाय ब्रह्मपुत्राय प्रसूतिं भगवान्मनुः ।
प्रायच्छद्यत्कृतः सर्गस्त्रिलोक्यां विततो महान् ॥११॥

दक्षाय ब्रह्म पुत्राय प्रसूतिं भगवान् मनुः प्रायच्छत् यत् कृतः सर्गः त्रिलोक्यां विततः महान् ॥११॥

भगवान् मनुः	भगवान् मनुने
ब्रह्म पुत्राय	
दक्षाय	ब्रह्माजीके पुत्र दक्षको
प्रसूतिं प्रायच्छत्	प्रसूति प्रदान की,
यत् कृतः महान्	
सर्गः	जिनका किया महान् वंश विस्तार
त्रिलोक्यां	
विततः	तीनों लोकोंमें फैला है ॥११॥

याः कर्दमसुताः प्रोक्ता नव ब्रह्मर्षिपत्नयः ।
तासां प्रसूतिप्रसवं प्रोच्यमानं निबोध मे ॥१२॥

याः कर्दमसुताः प्रोक्ता नव ब्रह्मर्षि पत्नयः तासां प्रसूति प्रसवं प्रोच्यमानं निबोध मे ॥१२॥

याः कर्दमसुताः	जो कर्दमजीकी पुत्रियां	**प्रोक्ता**	(मैंने) बतलायी हैं,
नव ब्रह्मर्षि पत्नयः	नौ ब्रह्मर्षियोंकी पत्नियाँ	**तासां प्रसूति प्रसवं मे प्रोच्यमानं निबोध**	उनकी वंश-परम्परा मैं बतला रहा हूँ, सुनो ॥१२॥

पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा ।
कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत् ॥१३॥

पत्नी मरीचेः तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा कश्यपं पूर्णिमानं च ययोः आपूरितं जगत् ॥१३॥

कर्दमात्मजा	कर्दमजीकी कन्या	**सुषुवे**	उत्पन्न किया,
मरीचेः पत्नी	मरीचिकी पत्नी	**ययोः**	जिन्होंने (अपनी सन्तानोंसे)
कला तु	कलाने तो	**जगत् आपूरितं**	पूरे संसारको भर दिया ॥१३॥
कश्यपं च पूर्णिमानं	कश्यप और पूर्णिमानको		

पूर्णिमासूत विरजं विश्वगं च परंतप ।
देवकुल्यां हरेः पादशौचाद्याभूत्सरिद्दिवः ॥१४॥

पूर्णिमा असूत विरजं विश्वगं च परंतप देवकुल्यां हरेः पादशौचात् अभूत् सरित् दिवः ॥१४॥

परंतप	शत्रुतापन विदुर !	**विरजं च विश्वगं**	विरज, विश्वग (दो पुत्र) और
पूर्णिमा	पूर्णिमानने		

देवकुल्यां अभूत्	देवकुल्या (नामक कन्या) उत्पन्न की	**दिवः सरित् अभूत्**	सुरसरि हुई ॥१४॥
हरेः पादशौचात्	(जो जन्मान्तरमें) श्रीहरिके चरणोदकसे		

अत्रेः पत्न्यनसूया त्रीञ्जज्ञे सुयशसः सुतान् ।
दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसम्भवान् ॥१५॥

अत्रेः पत्नि अनसूया त्रीन् जज्ञे सुयशसः सुतान् दत्तं दुर्वाससं सोमं आत्म ईश ब्रह्म सम्भवान् ॥१५॥

अत्रेः पत्नि अनुसूया	अत्रिकी पत्नी अनुसूयाने	**आत्म ईश ब्रह्म सम्भवान्**	विष्णु, शिव, ब्रह्माके (अंशसे) उत्पन्न
सुयशसः	उत्तम यशस्वी	**दत्तं दुर्वाससं सोमं**	दत्त, दुर्वासा तथा चन्द्रमाको ॥१६॥
त्रीन् सुतान् जज्ञे	तीन पुत्र जन्म दिये,		

विदुर उवाच-

अत्रेर्गृहे सुरश्रेष्ठाः स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ।
किञ्चिच्चिकीर्षवो जाता एतदाख्याहि मे गुरो ॥१६॥

अत्रेः गृहे सुरश्रेष्ठाः स्थिति उत्पत्ति अन्त हेतवः किञ्चित् चिकीर्षवः जाता एतत् आख्याहि मे गुरो ॥१६॥

गुरो	गुरुजी !	**किञ्चित् चिकीर्षवः**	कुछ करनेकी इच्छासे
अत्रेः गृहे	महर्षि अत्रिके घर		
स्थिति उत्पत्ति अन्त	स्थिति, सृष्टि, प्रलयके	**जाता मे एतत् आख्याहि**	उत्पन्न हुए होंगे, मुझे यह बतलाइये ॥१६॥
हेतवः सुरश्रेष्ठाः	कारण देवोत्तम		

मैत्रेय उवाच-

ब्रह्मणा नोदितः सृष्टावत्रिर्वेदविदां वरः ।
सह पत्न्या ययावृक्षं कुलाद्रिं तपसि स्थितः ॥१७॥

ब्रह्मणा नोदितः सृष्टः अत्रिः वेदविदांवरः सहपत्न्या यया ऋक्षं कुलाद्रि तपसि स्थितः ॥१७॥

ब्रह्मणा नोदितः	ब्रह्म जीके आज्ञा देनेपर	तपसि स्थितिः	तपस्या करने
वेदविदांवरः	वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ	ऋक्षं कुलाद्रि	ऋक्ष नामक कुल पर्वतपर
सहपत्न्या अत्रिः	पत्नी के साथ अत्रि	यया	गये ॥१७॥

तस्मिन् प्रसूनस्तबकपलाशाशोककानने ।
वार्भिः स्रवद्भिरुद्घुष्टे निर्विन्ध्यायाः समन्ततः ॥१८॥

तस्मिन् प्रसून स्तबक पलाश अशोक कानने वार्भिः स्रवद्भिः उद्घुष्टे निर्विन्ध्यायाः समन्ततः ॥१८॥

तस्मिन्	वहां	समन्ततः	चारों ओर
प्रसून स्तबक	पुष्प गुच्छोंसे युक्त	निर्विन्ध्यायाः	निर्विन्ध्या नदीके
पलाश अशोक		वार्भिः स्रवद्भिः	पानी बहनेकी
कानने	पलाश और अशोक-केवनमें	उद्घुष्टे	ध्वनि होती थी ॥१८॥

प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षशतं मुनिः ।
अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः ॥१९॥

प्राणायामेन संयम्य मनः वर्षशतं मुनिः अतिष्ठत् एक पादेन निर्द्वन्द्वः अनिल भोजनः ॥१९॥

प्राणायामेन	प्राणायामसे	अनिल भोजनः	केवल वायु पीकर
मनः संयम्य	मनको नियन्त्रित करके	एक पादेन मुनिः	एक पैरसे वे मुनि
निर्द्वन्द्वः	(शीत-उष्णादि) द्वन्द्वों को त्यागकर	वर्षशतं अतिष्ठत्	सौ वर्ष खड़े रहे ॥१९॥

शरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगदीश्वरः ।
प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छत्विति चिन्तयन् ॥२०॥

शरणं तं प्रपद्ये अहं य एव जगदीश्वरः प्रजां आत्मसमां मह्यं प्रयच्छतु इति चिन्तयन् ॥२०॥

य एव जगदीश्वरः	'जो कोई जगदीश्वर हो
तं अहं शरणं प्रपद्ये	उसकी मैं शरण लेता हूँ ।
मह्यं आत्मसमां प्रजां प्रयच्छतु	मुझे अपने समान पुत्र प्रदान करे ।'
इति चिन्तयन	ऐसा संकल्प किया था ॥२०॥

तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायामैधसाग्निना ।
निर्गतेन मुनेर्मूर्ध्नः समीक्ष्य प्रभवस्त्रयः ॥२१॥

तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायाम एधसा अग्निना निर्गतेन मुनेः मूर्ध्नः समीक्ष्य प्रभवः त्रयः ॥२१॥

प्राणायाम एधसा	प्राणायामसे बढ़ो हुई
मुनेः मूर्ध्नः	मुनिके मस्तकसे
निर्गतेन अग्निना	निकली आगसे
त्रिभुवनं तप्यमानं	त्रिभुवनका संतप्त होते
समीक्ष्य	देखकर
त्रयः प्रभवः	(विश्वके) तीनों स्वामी ॥२१॥

अप्सरोमुनिगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगैः ।
वितायमानयशसस्तदाश्रमपदं ययुः ॥२२॥

अप्सरः मुनिगन्धर्व सिद्ध विद्याधर उरगैः वितायमानं यशसः तत् आश्रम पदं ययुः ॥२२॥

अप्सरः मुनि-गन्धर्व	अप्सरा, मुनिगण, गन्धर्वों
सिद्ध विद्याधर उरगैः	सिद्धों, विद्याधरों, नागों द्वारा
यशसः वितायमानं	यशोगान गाये जाते
तत् आश्रम पदं	उनके आश्रम स्थान पर
ययुः	आये ॥२२॥

तत्प्रादुर्भावसंयोगविद्योतितमना मुनिः ।
उत्तिष्ठन्नेकपादेन ददर्श विबुधर्षभान् ॥२३॥

तत् प्रादुर्भाव संयोग विद्योतितमना मुनिः उत्तिष्ठन् एक पादेन ददर्श विबुधर्षभान् ॥२३॥

तत् प्रादुर्भाव संयोग	उनके प्रादुर्भाव होनेसे	**एक पादेन उत्तिष्ठन्**	एक पैरसे खड़े-खड़े
मुनिः	मुनिका	**विबुधर्षभान् ददर्श**	(उन) देवोत्तमोंको देखा ॥२३॥
विद्योतितमना	चित्त प्रकाशित हो गया,		

प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपतस्थेऽर्हणाञ्जलिः ।
वृषहंससुपर्णस्थान् स्वैः स्वैश्चिह्नैश्च चिह्नितान् ॥२४॥

प्रणम्य दण्डवत् भूमाः उपतस्थे अर्हण अञ्जलिः वृष हंस सुपर्ण स्थान् स्वैः स्वैः चिह्नैः च चिह्नितान् ॥२४॥

वृष हंस सुपर्ण स्थान् च स्वैः स्वैः	बैल, हंस, गरुड़पर बैठे,	**भूमौ दण्डवत्**	पृथ्वीमें दण्डवत्
		प्रणम्य	प्रणाम करके
चिह्नैः	और अपने-अपने चिह्नों (त्रिशूल, कमंडलु, चक्र)से	**अर्हणं अञ्जलिः उपतस्थे**	पूजा करके हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥२४॥
चिह्नितान्	चिह्नित (उनको)		

कृपावलोकेन हसद्वदनेनोपलम्भितान् ।
तद्रोचिषा प्रतिहते निमील्य मुनिरक्षिणी ॥२५॥

कृपा अवलोकेन हसत् वदनेन उपलम्भितान् तत् रोचिषा प्रतिहते निमील्य मुनिः अक्षिणी ॥२५॥

कृपा अवलोकेन	कृपा पूर्वक देखते	**प्रतिहते अक्षिणी**	चौंधियायी आँखोंको
हसत् वदनेन	मुस्कराते मुखसे	**मुनिः निमील्य**	मुनिने बन्द करके ॥२५॥
उपलम्भितान्	(सुप्रसन्न) दीखते		
तत् रोचिषा	उनकी कान्तिसे		

चेतस्तत्प्रवणं युञ्जन्नस्तावीत्संहताञ्जलिः ।
श्लक्ष्णया सूक्तया वाचा सर्वलोकगरीयसः ॥२६॥

चेतः तत् प्रवणं युञ्जन् अस्तावीत् संहत अञ्जलिः श्लक्ष्णया सूक्तया वाचा सर्वलोक गरीयसः ॥२६॥

चेतः तत् प्रवणं	चित्तको उन्हींकी ओर	**सूक्तया वाचा**	भावपूर्ण वाणीसे
युञ्जन्	लगाकर	**सर्वलोक गरीयसः**	लोकोंमें सबसे बड़े
संहत अञ्जलिः	हाथ जोड़कर	**अस्तावीत्**	उनकी स्तुति करने लगे ॥२६॥
श्लक्ष्णया	मधुर		

अत्रि रुवाच–

विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानै-
र्मायागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः ।
ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्म्यहं व-
स्तेभ्यः क एव भवतां म इहोपहूतः ॥२७॥

विश्व उद्भव स्थिति लयेषु विभज्यमानैः माया गुणैः अनुयुगं विगृहीत देहाः ते ब्रह्म विष्णु गिरिशाः प्रणतः अस्मि अहं वः तेभ्यः क एव भवतां म इह उपहूतः ॥२७॥

अनुयुगं	प्रत्येक कल्प (के प्रारम्भ) में	**ते ब्रह्म विष्णु गिरिशाः**	आप ब्रह्मा, विष्णु, शिवको
माया गुणैः	मायाके (सत्त्वादि) गुणोंका	**अहं प्रणतः अस्मि**	मैं प्रणाम करता हूँ,
विभज्यमानैः	विभाग करके	**भवतां तेभ्यः**	आप लोगोंमें-से
विश्व उद्भव	संसारकी उत्पत्ति,	**क एव**	वे कौन हैं,
स्थिति लयेषु	स्थिति,प्रलयके लिए	**म इह उपहूतः**	(जिन्हें) मैंने यहाँ बुलाया था ? ॥२७॥
देहाः विगृहीतः	शरीर धारण किए		

एको मयेह भगवान् विबुधप्रधान-
श्चित्तीकृतः प्रजननाय कथं नु यूयम् ।
अत्रागतास्तनुभृतां मनसोऽपि दूराद्
ब्रूत प्रसीदत महानिह विस्मयो मे ॥२८॥

एकः मया इह भगवान् विबुध प्रधानैः चित्तीकृतः प्रजननाय कथं नु यूयं अत्र आगताः तनुभृतां मनसा अपि दूरात् ब्रूत प्रसीदत महान् इह विस्मयः मे ॥२८॥

मया इह	मैंने यहाँ
विबुध प्रधानैः	देवताओंमें मुख्य
एकः प्रजननाय	एकका (पुत्र रूपसे) उत्पन्न होनेके लिए
चित्तीकृतः	ध्यान किया था,
तनुभृतां	शरीरधारियोंके लिए
मनसा अपि दूरात्	मनसे भी दूर रहनेवाले
यूयं कथं नु	आप कैसे तो
अत्र आगताः	यहाँ आ गये,
इह मे	इस सम्बन्धमें मुझे
महान् विस्मयः	महान् आश्चर्य है,
प्रसीदत ब्रूत	प्रसन्न होकर बतलाइये ॥२८॥

मैत्रेय उवाच-

इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयस्ते विबुधर्षभाः ।
प्रत्याहुः श्लक्ष्णया वाचा प्रहस्य तमृषिं प्रभो ॥२९॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयः ते विबुधर्षभाः प्रत्याहुः श्लक्ष्णया वाचा प्रहस्य तं ऋषिं प्रभो ॥२९॥

प्रभो	समर्थ विदुर !
इति तस्य	इस प्रकार उनकी
वचः श्रुत्वा	बात सुनकर
ते त्रयः	वे तीनों
विबुधर्षभाः	देव श्रेष्ठ
प्रहस्य	हँसकर
तं ऋषिं	उन ऋषिसे
श्लक्ष्णया वाचा	मधुर वाणीसे
प्रत्याहुः	उत्तरमें बोले ॥२९॥

त्रिदेवा ऊचुः■-

यथा कृतस्ते सङ्कल्पो भाव्यं तेनैव नान्यथा ।
सत्सङ्कल्पस्य ते ब्रह्मन् यद्वै ध्यायति ते वयम् ॥३०॥

यथा कृतः ते सङ्कल्पः भाव्यं तेन एव न अन्यथा सत् सङ्कल्पस्य ते ब्रह्मन् यत् वै ध्यायति ते वयम् ॥३०॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन्	**अन्यथा न**	(उससे) भिन्न नहीं,
ते सत्		**यत् वै**	(अतः) जो निश्चित
सङ्कल्पस्य	आप सत्य संकल्पने		(आप)
यथा सङ्कल्पः		**ध्यायति**	ध्यान करते हैं,
कृतः	जैसा संकल्प किया	**ते वयं**	वे हम (तीनों)
तेन एव भाव्यं	उसके अनुसार ही होना चाहिए		हैं ॥३०॥

अथास्मदंशभूतास्ते आत्मजा लोकविश्रुताः ।
भवितारोऽङ्ग भद्रं ते विस्रप्स्यन्ति च ते यशः ॥३१॥

अथ अस्मत् अंशभूताः ते आत्मजाः लोकविश्रुताः भवितारः अङ्ग भद्रं ते विस्रप्स्यन्ति च ते यशः ॥३१॥

अथ अस्मत्	अतः हमारे	**ते यशः च**	तुम्हारे यशको भी
अंशभूताः	अंश-स्वरूप	**विस्रप्स्यन्ति**	फैलावेंगे
लोकविश्रुताः	लोकप्रसिद्ध	**अङ्ग ते भद्रं**	प्रिय ऋषि आपका
ते आत्मजाः	तुम्हारे पुत्र		मंगल हो ॥३१॥
भवितारः	होंगे		

मैत्रेय उवाच*-

एवं कामवरं दत्त्वा प्रतिजग्मुः सुरेश्वराः ।
सभाजितास्तयोः सम्यग्दम्पत्योर्मिषतोस्ततः ॥३२॥

■ अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'देवा ऊचुः' है ।
* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

एवं कामवरं दत्त्वा प्रतिजग्मुः सुरेश्वराः सभाजिताः तयोः सम्यक् दम्पत्योः मिषतः ततः ॥३२॥

एवं कामवरं	इस प्रकार मनचाहा वरदान	**तयोः दम्पत्योः**	उन दम्पतिके
दत्त्वा	देकर	**मिषतः**	देखते
सम्यक्		**ततः सुरेश्वराः**	वहाँसे (वे) देव स्वामी
सभाजिताः	भली प्रकार सत्कृत होकर	**प्रतिजग्मुः**	लौट गये ॥३२॥

सोमोऽभूद्ब्रह्मणोंऽशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवित् ।
दुर्वासाः शंकरस्यांशो निबोधाङ्गिरसः प्रजाः ॥३३॥

सोमः अभूत् ब्रह्मणः अंशेन दत्तः विष्णोः तु योगवित् दुर्वासाः शंकरस्य अंशः निबोध आङ्गिरसः प्रजाः ॥३३॥

ब्रह्मणः अंशेन		**शंकरस्य अंशः**	शंकरके अंशसे
सोमः	ब्रह्माके अंशसे चन्द्र,	**दुर्वासाः अभूत्**	दुर्वासा हुए ।
विष्णोः तु	विष्णुके (अंशसे) तो	**आङ्गिरसः**	
योगवित् दत्तः	योगशास्त्रके ज्ञाता दत्त,	**प्रजाः निबोध**	अब अंगिराकी सन्तान सुनो ॥३३॥

श्रद्धा त्वङ्गिरसः पत्नी चतस्रोऽसूत कन्यकाः ।
सिनीवाली कुहू राका चतुर्थ्यनुमतिस्तथा ॥३४॥

श्रद्धा तु अङ्गिरसः पत्नी चतस्रः असूत कन्यकाः सिनीवाली कुहू राका चतुर्थ्य अनुमतिः तथा ॥३४॥

श्रद्धा तु	श्रद्धा तो	**सिनीवाली कुहू**	सिनीवाली, कुहू,
अङ्गिरसः पत्नी	अंगिराजीकी पत्नीने	**राका**	राका
चतस्र कन्यकाः	चार कन्याएँ	**तथा चतुर्थ्य**	तथा चौथी
असूत	उत्पन्न की,	**अनुमतिः**	अनुमति ॥३४॥

तत्पुत्रावपरावास्तां ख्यातौ स्वारोचिषेऽन्तरे ।
उतथ्यो भगवान् साक्षाद्ब्रह्मिष्ठश्च बृहस्पतिः ॥३५॥

तत् पुत्राः अपराः आस्तां ख्यातौ स्वारोचिष अन्तरे उतथ्यः भगवान् साक्षात् ब्रह्मिष्ठः च बृहस्पतिः ॥३५॥

तत् अपराः	उसके और
पुत्राः आस्तां	दो पुत्र थे,
साक्षात् भगवान्	साक्षात् भगवान्
उतथ्यः च	उतथ्य और
ब्रह्मिष्ठः	
बृहस्पतिः	ब्रह्मज्ञानी वृहस्पति
स्वारोचिष	
अन्तरे	(ये) स्वारोचिष मन्वन्तरमें
ख्यातौ	प्रसिद्ध हुए ॥३५॥

पुलस्त्योऽजनयत्पत्न्यामगस्त्यं च हविर्भुवि ।
सोऽन्यजन्मनि दहाग्निर्विश्रवाश्च महातपाः ॥३६॥

पुलस्त्यः अजनयत् पत्न्यां अगस्त्यं च हविर्भुवि सः अन्य जन्मनि दहाग्निः विश्रवाः च महातपाः ॥३६॥

पुलस्त्यः	पुलस्त्यजीने
हविर्भुवि पत्न्यां	हविर्भू नामक पत्नीसे
अगस्त्यं च	अगस्त्यको
सः अन्यजन्मनि	(जो) वे दूसरे जन्ममें
दहाग्निः	जठराग्नि थे,
च महातपाः	तथा महातपस्वी
विश्रवाः	
अजनयत्	विश्रवाको उत्पन्न किया ॥३६॥

तस्य यक्षपतिर्देवः कुबेरस्त्विडविडासुतः ।
रावणः कुम्भकर्णश्च तथान्यस्यां विभीषणः ॥३७॥

तस्य यक्षपतिः देवः कुबेरः तु इडविडा सुतः रावणः कुम्भकर्णः च तथा अन्यास्यां विभीषणः ॥३७॥

तस्य	उन (विश्रवा) के
इडविडा सुतः	इडविडा (नामकी पत्नी) के पुत्र
यक्षपतिः	यक्षराज
देवः कुबेरः तु	देव कुबेर हुए

तथा अन्यास्यां	तथा दूसरी (पत्नी) से
रावणः	
कुम्भकर्णः	रावण, कुम्भकर्ण
च विभीषणः	और विभीषण हुए ॥३७॥

पुलहस्य गतिर्भार्या त्रीनसूत सती सुतान् ।
कर्मश्रेष्ठं वरीयांसं सहिष्णुं च महामते ॥३८॥

पुलहस्य गतिः भार्या त्रीन् असूत सती सुतान् कर्मश्रेष्ठं वरीयांसं सहिष्णुं च महामते ॥३८॥

महामते	महामते !
पुलहस्य	पुलहकी
सती भार्या	
गतिः	सती पत्नी गतिने
त्रीन् सुतान्	तीन पुत्र
कर्मश्रेष्ठं	कर्मश्रेष्ठ,
वरीयांसं	वरीयान्,
च सहिष्णुं	और सहिष्णु,
असूत	उत्पन्न किया ॥३८॥

क्रतोरपि क्रिया भार्या वालखिल्यानसूयत ।
ऋषीन्षष्टिसहस्राणि ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥३९॥

क्रतोः अपि क्रिया भार्या वालखिल्यान् असूयत ऋषीन् षष्टि सहस्राणि ज्वलतः ब्रह्मतेजसा ॥३९॥

क्रतोः अपि	क्रतुकी भी
क्रिया भार्या	क्रिया (नामक) पत्नीने
ब्रह्मतेजसा	
ज्वलतः	ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान
षष्टि सहस्राणि	साठ हजार
वालखिल्यान्	
ऋषीन्	वालखिल्य ऋषि
असूयत	जन्म दिये ॥३९॥

ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्रा वसिष्ठस्य परन्तप ।
चित्रकेतुप्रधानास्ते सप्त ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥४०॥

ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्राः वशिष्ठस्य परन्तप चित्रकेतु प्रधानाः ते सप्त ब्रह्मर्षयः अमलाः ॥४०॥

परन्तप	शत्रुतापन विदुर !	**अमलाः**	
वसिष्ठस्य	वशिष्ठके	**सप्त ब्रह्मर्षयः**	निर्मल सात ब्रह्मर्षि
ऊर्जायां	ऊर्जा (अरुन्धती) में	**पुत्राः जज्ञिरे**	पुत्र उत्पन्न हुए ॥४०॥
चित्रकेतु प्रधानाः	चित्रकेतु आदि		

चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजा मित्र एव च ।
उल्बणो वसुभृद्यानो द्युमान् शक्त्यादयोऽपरे ॥४१॥

चित्रकेतुः सुरोचिः च विरजा मित्र एव च उल्बणः वसुभृद्यानः द्युमान् शक्ति आदयः अपरे ॥४१॥

चित्रकेतुः सुरोचिः च विरजा मित्र एव	चित्रकेतु, सुरोचि और विरजा तथा मित्र	**च उल्बणः वसुभृद्यानः द्युमान् अपरे शक्ति आदयः**	एवं उल्बण, वसुभृद्यान, द्युमान तथा दूसरे शक्ति आदि ॥४१॥

चित्तिस्त्वथर्वणः पत्नी लेभे पुत्रं धृतव्रतम् ।
दध्यञ्चमश्वशिरसं भृगोर्वंशं निबोध मे ॥४२॥

चित्तिः तु अथर्वणः पत्नी लेभे पुत्रं धृतव्रतं दध्यञ्चं अश्वशिरसं भृगोः वंशं निबोध मे ॥४२॥

अथर्वणः पत्नीः	अथर्वाकी पत्नी	**दध्यञ्चं**	दधीचिको
चित्तिः तु	चित्तिने तो	**पुत्रं लेभे**	पुत्र रूपमें पाया,
धृतव्रतं	व्रतधारी (तपस्वी)	**मे भृगोः वंशं**	(अब) मुझसे भृगुका वंश
अश्वशिरसं	(पीछे) घोड़ेके मुख वाले बने	**निबोध**	सुनो ॥४२॥

भृगुः ख्यात्यां महाभागः पत्न्यां पुत्रानजीजनत् ।
धातारं च विधातारं श्रियं च भगवत्पराम् ॥४३॥

भृगुः ख्यात्यां महाभागः पत्न्यां पुत्रान् अजीजनत् धातारं च विधातारं श्रियं च भगवत्पराम् ॥४३॥

महाभागः भृगुः	महाभाग भृगुने
ख्यात्यां पत्न्यां	ख्याति (नामक) पत्नीसे
धातारं च विधातारं	धाता और विधाता
पुत्रान् च भगवत्परां श्रियं	पुत्रोंको और भगवान (विष्णु) की परायण लक्ष्मीको
अजीजनत्	उत्पन्न किया ॥४३॥

आयतिं नियतिं चैव सुते मेरुस्तयोरदात् ।
ताभ्यां तयोरभवतां मृकण्डः प्राण एव च ॥४४॥

आयतिं नियतिं च एव सूते मेरुः तयोः अदात् ताभ्यां तयोः अभवतां मृकण्डः प्राण एव च ॥४४॥

मेरुः तयोः	मेरु ऋषिने उन (धाता-विधाता) को
सूते आयतिं नियतिं च	अपनी पुत्री आयति और नियति
एव अदात्	दोनोंको दे दिया,
ताभ्यां तयोः	उनसे उन दोनोंको
मृकण्डः च प्राण एव अभवतां	मृकण्ड तथा प्राण भी हुए ॥४४॥

मार्कण्डेयो मृकण्डस्य प्राणाद्वेदशिरा मुनिः ।
कविश्च भार्गवो यस्य भगवानुशना सुतः ॥४५॥

मार्कण्डेयः मृकण्डस्य प्राणात् वेदशिरा मुनिः कविः च भार्गवः यस्य भगवान् उशना सुतः ॥४५॥

मृकण्डस्य	मृकण्डके (पुत्र)
मार्कण्डेयः	मार्कण्डेय (हुए)
प्राणात् मुनिः	प्राणसे मुनि
वेदशिराः	वेदशिरा हुए।
भार्गवः कविः च	भृगुजीके ही (पुत्र) कवि थे,
यस्य सुतः	जिनके पुत्र
भगवान् उशना	भगवान् शुक्राचार्य हैं ॥४५॥

त एते मुनयः क्षत्तर्लोकान् सर्गैरभावयन् ।
एष कर्दमदौहित्रसंतानः कथितस्तव ।
शृण्वतः श्रद्दधानस्य सद्यः पापहरः परः ॥४६॥

त एते मुनयः क्षत्तः लोकान् सर्गैः अभावयन् एष कर्दम दौहित्र संतानः कथितः तव शृण्वतः श्रद्दधानस्य सद्यः पापहरः परः ॥४६॥

क्षत्तः	विदुर !	**संतानः कथितः**	सन्तानोंका वर्णन किया,
त एते मुनयः	ये इतने मुनिगण		
सर्गैः लोकान्	सन्तानोत्पादनसे लोकोंको	**श्रद्दधानस्य**	श्रद्धापूर्वक
		शृण्वतः	सुननेसे (यह)
अभावयन्	भर दिया ।	**सद्यः परः**	
तव एष	तुमसे यह	**पापहरः**	तुरन्त महापाप भी नष्ट कर देता है ॥४६॥
कर्दम दौहित्र	कर्दमजीके दौहित्रोंकी		

प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः ।
तस्यां ससर्ज दुहितॄः षोडशामललोचनाः ॥४७॥

प्रसूतिं मानवीं दक्षः उपयेमे हि अजात्मजः तस्यां ससर्ज दुहितॄः षोडश अमल लोचनाः ॥४७॥

हि अजात्मजः	*क्योंकि ब्रह्माजीके पुत्र थे	**तस्यां**	उसने
		अमल लोचनाः	निर्मल नेत्रोंवाली
दक्षः	दक्ष	**षोडश दुहितॄः**	सोलह कन्याएँ
मानवीं प्रसूतिं	मनुपुत्री प्रसूतिसे	**ससर्ज**	उत्पन्न कीं ॥४७॥
उपयेमे	विवाह किया,		

त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः ।
पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे ॥४८॥

त्रयोदश अदात् धर्माय तथा एकां अग्नये विभुः पितृभ्यः एकां युक्तेभ्यः भवाय एकां भवच्छिदे ॥४८॥

धर्माय	धर्मको	**एकां अग्नये**	एक (कन्या) अग्निको,
त्रयोदश अदात्	तेरह (कन्याएँ) दीं,		
विभुः	भगवान् (दक्ष) ने		

---

* 'हि अजात्मजः' इसमें 'हि' का संकेत है कि इन्हें भी पिताके समान सृष्टि-विस्तारकी धुन चढ़ी थी ।

युक्तेभ्यः	
पितृभ्यः	सब सम्मिलित पितरोंको
एकां तथा	एक तथा
भवच्छिदे	
भवाय	संसारके (जन्म-मरण) नाशक शिवको
एकां	एक (कन्या) दी ॥४८॥

श्रद्धा मैत्री दया शान्तिरतुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः ।
बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्तिर्धर्मस्य पत्नयः ॥४९॥

श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्तिः, तुष्टिः, पुष्टिः क्रिया, उन्नतिः, बुद्धिः, मेधा, तितिक्षा, ह्रीः, मूर्तिः, धर्मस्य पत्नयः (ये धर्मकी पत्नियाँ हैं ।)॥४९॥

श्रद्धासूत शुभं मैत्री प्रसादमभयं दया ।
शान्तिः सुखं मुदं तुष्टिः स्मयं पुष्टिरसूयत ॥५०॥

श्रद्धा असूत शुभं मैत्री प्रसादं अभयं दया शान्तिः सुखं मुदं तुष्टिः स्मयं पुष्टिः असूयत ॥५०॥

श्रद्धा शुभं	श्रद्धाने शुभको,
मैत्री प्रसादं	मैत्रीने प्रसादको,
दया अभयं	दयाने अभयको,
शान्तिः सुखं	शान्तिने सुखको,
असूत	उत्पन्न किया
तुष्टिः मुदं	तुष्टिने मोद और
पुष्टिः स्मयं	पुष्टिने स्मय (अहंकार) को
असूयत	जन्म दिया ॥५०॥

योगं क्रियोन्नतिर्दर्पमर्थं बुद्धिरसूयत ।
मेधा स्मृतिं तितिक्षा तु क्षेमं ह्रीः प्रश्रयं सुतम् ॥५१॥

योगं क्रिया उन्नतिः दर्पं अर्थं बुद्धिः असूयत मेधा स्मृतिं तितिक्षा तु क्षेमं ह्रीः प्रश्रयं सुतम् ॥५१॥

क्रिया योगं	क्रियाने योगको,
उन्नतिः दर्पं	उन्नतिने दर्प (गर्व) को,
बुद्धिः अर्थं	बुद्धिने अर्थको,
मेधा स्मृतिं	मेधाने स्मृतिको,

तितिक्षा तु क्षेमं तितिक्षानें तो क्षेम (कुशल) को,
ह्रीः प्रश्रयं ह्री (लज्जा) ने प्रश्रय (विनय)
सुतं असूयत पुत्र उत्पन्न किये ॥५१॥

मूर्तिः सर्वगुणोत्पत्तिर्नरनारायणावृषी ॥५२॥

मूर्तिः सर्वगुण उत्पत्तिः नरनारायणौ ऋषिः ॥५२॥

मूर्तिः मूर्तिने
सर्वगुण उत्पत्तिः सब गुणोंके जन्मदाता
नरनारायणौ ऋषिः नर-नारायण ऋषियोंको (जन्म दिया) ॥५२॥

ययोर्जन्मन्यदो विश्वमभ्यनन्दत्सुनिर्वृतम् ।
मनांसि ककुभो वाताः प्रसेदुः सरितोऽद्रयः ॥५३॥

ययोः जन्मनि अदोः विश्वं अभ्यनन्दत् सुनिर्वृतं मनांसि ककुभः वाताः प्रसेदुः सरितः अद्रयः ॥५३॥

ययोः जन्मनि जिनका जन्म होनेपर
अदोः विश्वं सुनिर्वृतं अभ्यनन्दत् इस पूरे बिश्वने अत्यन्त आनन्दित होकर अभिनन्दन किया,
मनांसि ककुभः मन, दिशाएँ,
वाताः सरितः वायु, नदियाँ,
अद्रयः प्रसेदुः पर्वत सभी प्रसन्न (निर्मल) हो गये ॥५३॥

दिव्यवाद्यन्त तूर्याणि पेतुः कुसुमवृष्टयः ।
मुनयस्तुष्टुवुस्तुष्टा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥५४॥

दिव्य वाद्यन्त तूर्याणि पेतुः कुसुम वृष्टयः मुनयः तुष्टुवुः तुष्टा जगुः गन्धर्व किन्नराः ॥५४॥

दिव्य तूर्याणि देवताओंकी तुरहियाँ
वाद्यन्त बजने लगीं,
कुसुम वृष्टयः पेतुः पुष्प वर्षा होने लगी,

तुष्टा मुनय	सन्तुष्ट होकर मुनिगण	**गन्धर्व किन्नराः जगुः**	गन्धर्व और किन्नर गाने लगे ॥५४॥
तुष्टुवुः	स्तुति करने लगे,		

नृत्यन्ति स्म स्त्रियो देव्य आसीत्परममङ्गलम् ।
देवा ब्रह्मादयः सर्वे उपतस्थुरभिष्टवैः ॥५५॥

नृत्यन्ति स्म स्त्रियः देव्य आसीत् परम मङ्गलं देवाः ब्रह्मादयः सर्वे उपतस्थुः अभिष्टवैः ॥५५॥

देव्य स्त्रियः	देवताओंकी स्त्रियाँ	**सर्वे ब्रह्मादयः देवाः अभिष्टवैः**	सब ब्रह्मादि देवता
नृत्यन्ति स्म	नाचने लगीं,		
परम मङ्गलं आसीत्	बड़ा महोत्सव होने लगा,	**उपतस्थुः**	स्तुति करने उपस्थित हुए ॥५५॥

देवा ऊचुः—

यो मायया विरचितं निजयाऽऽत्मनीदं
खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय ।
एतेन धर्मसदने ऋषिमूर्तिनाद्य
प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥५६॥

यः मायया विरचितं निजया आत्मनि इदं खे रूपभेदं इव तत् प्रति चक्षणाय एतेन धर्म सदने ऋषि मूर्तिना आद्यः प्रादुः चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥५६॥

खे रूपभेदं इव	आकाशमें रूपभेद (की कल्पना) के समान	**आत्मनि इदं**	अपने भीतर ही इस (संसार) को
		विरचितं	बनाकर
यः निजया मायया	जो अपनी मायासे	**तत् प्रति चक्षणाय**	उसे प्रकाशित करनेके लिए

एतेन ऋषि मूर्तिना धर्म सदने प्रादुः चकार	इन ऋषि रूपोंमें धर्मके घरमें आविर्भूत हुए हैं,	**आद्यः पुरुषाय परस्मै नमः**	उन आदि पुरुष परमात्माको नमस्कार ॥५६॥

सोऽयं स्थितिव्यतिकरोपशमाय सृष्टान्
सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेयतत्त्वः ।
दृश्याददभ्रकरुणेन विलोकनेन
यच्छ्रीनिकेतममलं क्षिपतारविन्दम् ॥५७॥

सः अयं स्थिति व्यतिकरः उपशमाय सृष्टान् सत्त्वेन नः सुरगणान् अनुमेय तत्त्वः दृश्यात् अदभ्र करुणेन विलोकनेन यत् श्रीनिकेतं अमलं क्षिपत अरविन्दम् ॥५७॥

सः	उन्हीं (भगवान) ने	**यत् श्रीनिकेतं**	जो शोभाधाम
स्थिति व्यतिकरः	स्थितिमें गड़बड़ी करने वालोंको	**अमलं अरविन्दं**	निर्मल
उपशमाय	शान्त करनेके लिए	**क्षिपत**	कमलको लज्जित करनेवाले
नः सुरगणान् सृष्टान्	हम देवगणोंको बनाया है,	**अदभ्र करुणेन विलोकनेन**	असीम करुणामय
अयं अनुमेय तत्त्वः	ये जिनके तत्त्वका (हम शास्त्रोंसे) अनुमान ही करते हैं (जान नहीं पाते)	**दृश्यात्**	नेत्रोंसे (हमारी ओर) देखें ॥५७॥

*मैत्रेय उवाच**-

एवं सुरगणैस्तात भगवन्तावभिष्टुतौ ।
लब्धावलोकैर्ययतुरर्चितौ गन्धमादनम् ॥५८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

एवं सुरगणैः तात भगवन्तौ अभिष्टुतः लब्ध्वा अवलोकैः ययतुः अर्चितौ गन्धमादनम् ॥५८॥

तात	तात विदुर !
एवं सुरगणैः	इस प्रकार देवताओं द्वारा
अभिष्टुतौ	स्तुति किये जानेपर
अवलोकैः	कृपा दृष्टि
लब्ध्वा	पाकर
अर्चितौ	उन (देवताओंसे) पूजित होकर
गन्धमादनं	गन्धमादन पर्वतपर
ययतुः	चले गये ॥५८॥

ताविमौ वै भगवतो हरेरंशाविहागतौ ।
भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहौ ॥५९॥

तौ इमौ वै भगवतः हरेः अंशाः इह आगतौ भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदु कुरुद्वहौ ॥५९॥

भुवः भार-व्ययाय	पृथ्वीका भार मिटाने
वै तौ इमौ	निश्चय वही ये दोनों
कृष्णौ च	कृष्ण* भी
यदु कुरुद्वहौ	यदुवंश और कुरुवंशमें
भगवतः हरेः	भगवान श्रीहरिके
अंशाः	अंश
इह आगतौ	इस (संसार) में आये थे ॥५९॥

स्वाहाभिमानिनश्चाग्नेरात्मजांस्त्रीनजीजनत् ।
पावकं पवमानं च शुचिं च हुतभोजनम् ॥६०॥

स्वाहा अभिमानिनः च अग्नेः आत्मजान् त्रीन् अजीजनत् पावकं पवमानं च शुचिं च हुत भोजनम् ॥६०॥

अग्नेः स्वाहा	अग्निकी पत्नी स्वाहाने
अभिमानिनः	(अग्निके ही) अभिमानी
हुत भोजनं च	हवन कियेको ही खाने वाले
त्रीन् आत्मजान् पावकं च	तीन पुत्र
पवमानं च शुचिं	पावक और पवमान
अजीजनत्	तथा शुचिको उत्पन्न किया ॥६०॥

---

* अर्जुनका भी एक नाम कृष्ण था ।

तेभ्योऽग्नयः समभवन् चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
त एवैकोनपञ्चाशत्साकं पितृपितामहैः ॥६१॥

तेभ्यः अग्नयः समभवन् चत्वारिंशत् च पञ्च च त एव एकोन पञ्चाशत् साकं पितृ पितामहैः ॥६१॥

तेभ्यः	इनसे	**पितृ पितामहैः**	
चत्वारिंशत्		**साकं**	(तीन) पिता तथा (एक) पितामहके साथ
च पञ्च च	पैंतालीस		
अग्नयः			
समभवन्	अग्नि उत्पन्न हुए ।	**एकोन**	
त एव	यह ही	**पञ्चाशत्**	उनचास (अग्नि) हैं ॥६१॥

वैतानिके कर्मणि यन्नामभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
आग्नेय्य इष्टयो यज्ञे निरूप्यन्तेऽग्नयस्तु ते ॥६२॥

वैतानिके कर्मणि यत् नामभिः ब्रह्मवादिभिः आग्नेय्य इष्टयः यज्ञे निरूप्यन्ते अग्नयः तु ते ॥६२॥

ब्रह्मवादिभिः	वेदज्ञों द्वारा	**आग्नेय्य इष्टयः**	आग्नेयी इष्टियाँ
वैतानिके		**निरूप्यन्ते**	करते हैं
कर्मणि	यज्ञीय कर्ममें	**ते तु अग्नयः**	वे तो (यही) अग्नियाँ हैं ॥६२॥
यत् नामभिः	जिनके नाम लेकर		

अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोम्याः पितर आज्यपाः ।
साग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा ॥६३॥

अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोम्याः पितर आज्यपाः साग्नयः अनग्नयः तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा ॥६३॥

अग्निष्वात्ता	अग्निष्वात्ता	**आज्यपाः**	आज्यप
बर्हिषदः	बर्हिषद	**पितर**	ये पितर हैं,
सोम्याः	सौम्य	**तेषां साग्नयः**	उनमें (कुछ) साग्निक और

अनग्नयः	(कुछ) निरग्निक हैं ।	**दाक्षायणी स्वधा**	दक्षपुत्री स्वधा है ॥६३॥
पत्नी	इनकी पत्नी		

तेभ्यो दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा ।
उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविज्ञानपारगे ॥६४॥

तेभ्यः दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञान विज्ञान पारगे ॥६४॥

तेभ्यः स्वधा	उन (पितरों) से स्वधाने	**ते उभे ज्ञान-विज्ञान पारगे**	वे दोनों ज्ञान-विज्ञान पारंगता
द्वे कन्ये	दो कन्याएँ	**ब्रह्मवादिन्यौ**	ब्रह्मज्ञानोपदेशिका हुईं ॥६४॥
दधार	उत्पन्न कीं,		
वयुनां धारिणीं	वयुना और धारिणी,		

भवस्य पत्नी तु सती भवं देवमनुव्रता ।
आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ॥६५॥

भवस्य पत्नी तु सती भवं देवं अनुव्रता आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ॥६५॥

भवस्य पत्नी	शंकरजीकी पत्नी	**गुणशीलतः**	(किन्तु) गुण और शीलमें
सती तु	सती तो	**आत्मनः सदृशं**	अपने समान
देवं भवं		**पुत्रं न लेभे**	पुत्र नहीं पाया ॥६५॥
अनुव्रता	भगवान् शिवकी अनुव्रता थी		

पितर्यप्रतिरूपे स्वे भवायानागसे रुषा ।
अप्रौढैवात्मनाऽऽत्मानमजहाद्योगसंयुता ॥६६॥

पितरि अप्रतिरूपे स्वे भवाय अनागसे रुषा अप्रौढा एव आत्मना आत्मानं अजहात् योग संयुता ॥६६॥

अनागसे भवाय	निरपराध शंकरजीका	**योग संयुता**	योगके द्वारा
स्वे पितरि	अपने पिता द्वारा	**आत्मना**	
अप्रतिरूपे	प्रतिकूल आचरण करनेसे	**आत्मानं**	स्वयं ही शरीरका
		अजहात्	त्याग कर दिया ॥६६॥
अप्रौढा एव	युवावस्थामें ही		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

विदुर उवाच-

भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षो दुहितृवत्सलः ।
विद्वेषमकरोत्कस्मादनादृत्यात्मजां सतीम् ॥१॥

भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षः दुहितृ वत्सलः विद्वेषं अकरोत् कस्मात् अनादृत्य आत्मजां सतीम् ॥१॥

दुहितृ वत्सलः	पुत्रियोंसे प्रेम करनेवाले	**अनादृत्य**	उपेक्षा करके
दक्षः	दक्षने	**शीलवतां श्रेष्ठे**	शीलवानोंमें श्रेष्ठ
आत्मजां सतीं	अपनी पुत्री सतीकी	**भवे कस्मात्**	शंकरजीसे क्यों
		विद्वेषं अकरोत्	द्वेष किया ॥१॥

कस्तं चराचरगुरुं निर्वैरं शान्तविग्रहम् ।
आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतो दैवतं महत् ॥२॥

कः तं चराचर गुरुं निर्वैरं शान्त विग्रहं आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतः दैवतं महत् ॥२॥

तं चराचर गुरुं	उन चराचरके गुरु,	**जगतः महत् दैवतं**	जगतके परमाराध्य देवसे
निर्वैरं	निर्वैर,	**कः कथं द्वेष्टि**	प्रजापति (दक्ष) ने क्यों द्वेष किया ॥२॥
शान्त विग्रहं	शान्त मूर्ति,		
आत्मारामं	आत्माराम,		

एतदाख्याहि मे ब्रह्मन् जामातुः श्वशुरस्य च ।
विद्वेषस्तु यतः प्राणांस्तत्यजे दुस्त्यजान्सती ॥३॥

एतत् आख्याहि मे ब्रह्मम् जामातुः श्वशुरस्य च विद्वेषः तु यतः प्राणान् तत्यजे दुस्त्यजान् सती ॥३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
एतत् मे	
आख्याहि	यह मुझे बतलाइये कि
जामातुः च	जामाता और
श्वशुरस्य	श्वशुरकी
विद्वेषः आख्या	शत्रुता (क्यों हुई)
हि यतः	क्योंकि जिससे
दुस्त्यजान्	
प्राणान्	दुस्त्यज प्राणोंको
सती तत्यजे	सतीने छोड़ दिया ॥३॥

मैत्रेय उवाच-

पुरा विश्वसृजां सत्रे समेताः परमर्षयः ।
तथामरगणाः सर्वे सानुगा मुनयोऽग्नयः ॥४॥

पुरा विश्वसृजां सत्रे समेताः परमर्षयः तथा अमरगणाः सर्वे सानुगाः मुनयः अग्नयः ॥४॥

पुरा	पहिले
विश्वसृजां सत्रे	ब्रह्माजीके यज्ञमें
परमर्षयः तथा	परमर्षि-गण तथा
सानुगाः सर्वे	अनुचरोंके साथ सब
अमरगणाः	देवगण
मुनयः अग्नयः	अपनी अग्नियोंके साथ मुनि-गण
समेताः	एकत्र हुए थे ॥४॥

तत्र प्रविष्टमृषयो दृष्ट्वार्कमिव रोचिषा ।
भ्राजमानं वितिमिरं कुर्वन्तं तन्महत्सदः ॥५॥

तत्र प्रविष्टं ऋषयः दृष्ट्वा अर्कं इव रोचिषा भ्राजमानं वितिमिरं कुर्वन्तं तत् महत् सदः ॥५॥

रोचिषा अर्कं इव	कान्तिमें सूर्यके समान
भ्राजमानं	प्रकाशित होते,
तत् महत् सदः	उस विशाल सभा-भवनको
वितिमिरं कुर्वन्तं	प्रकाशित करते
तत्र प्रविष्टं	वहां प्रवेश करते (दक्षको)
दृष्ट्वा ऋषयः	देखकर ऋषि-गण ॥५॥

उदतिष्ठन् सदस्यास्ते स्वधिष्ण्येभ्यः सहाग्नयः ।
ऋते विरिञ्चं शर्वं च तद्भासाऽऽक्षिप्तचेतसः ॥६॥

उदतिष्ठन् सदस्याः ते स्वधिष्ण्येभ्यः सह अग्नयः ऋते विरिञ्चि शर्वं च तद् भासा आक्षिप्त चेतसः ॥६॥

तद् भासा	उन (दक्ष) की कान्तिसे
आक्षिप्त चेतसः	प्रभावित चित्त
ते सदस्याः	उस सभाके सदस्य
विरिञ्चि शर्वं च	ब्रह्मा और शिवको
ऋते	छोड़कर
सह अग्नयः	अपनी अग्नियोंके साथ
स्वधिष्ण्येभ्यः	अपने आसनोंसे
उदतिष्ठन्	उठ खड़े हुए ॥६॥

सदसस्पतिभिर्दक्षो भगवान् साधु सत्कृतः ।
अजं लोकगुरुं नत्वा निषसाद तदाज्ञया ॥७॥

सदसस्पतिभिः दक्षः भगवान् साधु सत्कृतः अजं लोकगुरुं नत्वा निषसाद तत् आज्ञया ॥७॥

भगवान् दक्षः	भगवान दक्ष
सदसस्पतिभिः	यज्ञके सदस्यों द्वारा
साधु सत्कृतः	भली प्रकार सत्कृत होकर
लोकगुरुं अजं	लोकमें सर्वश्रेष्ठ ब्रह्माजीको
नत्वा तत्	
आज्ञया	प्रणाम करके, उनकी आज्ञासे
निषसाद	बैठ गये ॥७॥

प्राङ्निषण्णं मृडं दृष्ट्वा नामृष्यत्तदनादृतः ।
उवाच वामं चक्षुर्भ्यामभिवीक्ष्य दहन्निव ॥८॥

प्राक् निषण्णं मृडं दृष्ट्वा न अमृष्यत् तत् अनादृतः उवाच वामं चक्षुर्भ्यां अभिवीक्ष्य दहन् इव ॥८॥

मृडं प्राक्	
निषण्णं	शंकरजी को पहिलेसे बैठा
दृष्ट्वा	देखकर
तत् अनादृतः	उनसे आदर न पाकर
अमृष्यत् न	(इसे) सहन नहीं कर सके,
वामं चक्षुर्भ्यां	टेढ़ी दृष्टिसे
अभिवीक्ष्य	देखकर
दहन् इव	मानो जला देंगे
उवाच	बोले ॥८॥

दक्षोवाच■

श्रूयतां ब्रह्मर्षयो मे सहदेवाः सहाग्नयः ।
साधूनां ब्रुवतो वृत्तं नाज्ञानान्न च मत्सरात् ॥९॥

श्रूयतां ब्रह्मर्षयः मे सहदेवाः सहअग्नयः साधूनां ब्रुवतः वृत्तं न अज्ञानात् न च मत्सरात् ॥९॥

सहदेवाः	देवताओंके साथ	**ब्रुवतः**	की बात कहता हूँ
सहअग्नयः	अग्नियोंके साथ	**न अज्ञानात्**	ना समझीसे नहीं
ब्रह्मर्षयः	ब्रह्मर्षि-गण	**न चू मत्सरात्**	या द्वेषवश नहीं (कहता) ॥९॥
मे श्रूयतां	मेरी बात सुनें		
साधूनां वृत्तं	सत्पुरुषोंके आचार (शिष्टाचार)		

अयं तु लोकपालानां यशोघ्नो निरपत्रपः ।
सद्भिराचरितः पन्था येन स्तब्धेन दूषितः ॥१०॥

अयं तु लोकपालानां यशोघ्नः निरपत्रपः सद्भिः आचरितः पन्थाः येन स्तब्धेन दूषितः ॥१०॥

अयं तु	यह (शिव) तो	**येन स्तब्धेन**	जिस मूर्खने
निरपत्रपः	निर्लज्ज है,	**सद्भिः**	
लोकपालानां		**आचरितः**	सत्पुरुषोंसे आचरित
यशोघ्नः	लोकपालोंके यशका नाशक है	**पन्थाः दूषितः**	मार्गको भ्रष्ट किया है ॥१०॥

एष मे शिष्यतां प्राप्तो यन्मे दुहितुरग्रहीत् ।
पाणिं विप्राग्निमुखतः सावित्र्या इव साधुवत् ॥११॥

एष मे शिष्यतां प्राप्तः यत् मे दुहितुः अग्रहीत् पाणि विप्र अग्नि मुखतः सावित्र्या इव साधुवत् ॥११॥

■ यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

एष मे यह मेरे
शिष्यतां प्राप्तः शिष्य (पुत्र) के समान हो गया है,
यत् क्योंकि
विप्र अग्नि
मुखतः ब्राह्मणों और अग्निके सामने
सावित्र्या इव सावित्रीके समान
मे दुहितुः मेरी पुत्रीका
साधुवत् सत्पुरुषके समान
पाणिं अग्रहीत् पाणिग्रहण किया ॥११॥

गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कटलोचनः ।
प्रत्युत्थानाभिवादार्हे वाचाप्यकृत नोचितम् ॥१२॥

गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कटलोचनः प्रत्युत्थान अभिवादार्हे वाचा अपि कृत न उचितम् ॥१२॥

मृगशावाक्ष्याः मृग-शावक-नयनी (मेरी पुत्रीका)
मर्कटलोचनः (इस) कपिनेत्रने
पाणिं गृहीत्वा पाणि-ग्रहण करके भी
प्रत्युत्थान उठ खड़े होने तथा
अभिवादार्हे अभिवादनके योग्य (मेरा)
वाचा अपि वाणीसे भी
उचितं न कृत उचित (सत्कार) नहीं किया ॥१२॥

लुप्तक्रियायाशुचये मानिने भिन्नसेतवे ।
अनिच्छन्नप्यदां बालां शूद्रायेवोशतीं गिरम् ॥१३॥

लुप्त क्रियायाः अशुचये मानिने भिन्नसेतवे अनिच्छन् अपि अदां बालां शूद्राय उशतीं गिरम् ॥१३॥

शूद्राय शूद्रको
उशतीं गिरम् दिव्य-वाणी (वेद पढ़ा देनेके समान)
अनिच्छन् अपि इच्छा न होनेपर भी
लुप्त क्रियायाः सत्कर्मका लोप करनेवाले,
अशुचये अपवित्र,
मानिने अभिमानी,
भिन्नसेतवे मर्यादानाशकको
बालां अदां (मैंने अपनी) पुत्री दे दी ॥१३॥

प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः ।
अटत्युन्मत्तवन्नग्न व्युप्तकेशो हसन् रुदन् ॥१४॥

प्रेत आवासेषु घोरेषु प्रेतैः भूतगणैः आवृतः अटति उन्मत्तवत् नग्नः व्युप्तकेशः हसन् रुदन् ॥१४॥

घोरेषु प्रेत आवासेषु	भयानक प्रेतोंके रहने योग्य स्थानोंमें	**नग्नः**	
प्रेतैः भूतगणैः आवृतः	प्रेत-भूतगणोंसे घिरा	**व्युप्तकेशः**	नंगा, बाल बिखेरे,
उन्मत्तवत्	पागलोंके समान	**हसन् रुदन्**	कभी हँसता, कभी रोता
		अटति	घूमता रहता है ॥१४॥

चिताभस्मकृतस्नानः प्रेतस्रङ्स्थिवभूषणः ।
शिवापदेशो ह्यशिवो मत्तो मत्तजनप्रियः ।
पतिः प्रमथभूतानां तमोमात्रात्मकात्मनाम् ॥१५॥

चिताभस्म कृतस्नानः प्रेतस्रङ्न्रस्थि भूषणः शिव अपदेशः हि अशिवः मत्तः मत्तजनप्रियः पतिः प्रमथभूतानां तमः मात्रा आत्मक आत्मनाम् ॥१५॥

चिताभस्म कृतस्नानः	चिताकी भस्म सारे शरीरमें लगाये,	**मत्तजनप्रियः**	पागलोंको ही प्रिय है,
प्रेतस्रङ् न्रस्थि भूषणः	मुर्देपर चढ़ी माला और मुण्डमाला पहिने,	**तमः मात्रा आत्मक आत्मनां**	तमोगुणी स्वभाव वाले
शिव अपदेशः	कहलाता तो शिव है; किन्तु	**प्रमथ भूतानां पतिः**	प्रमथ एवं भूतोंका स्वामी है ॥१५॥
अशिवः	अमंगल रूप है,		
मत्तः	पागल है,		

तस्मा उन्मादनाथाय नष्टशौचाय दुर्हृदे ।
दत्ता बत मया साध्वी चोदिते परमेष्ठिना ॥१६॥

तस्मा उन्मादनाथाय नष्ट शौचाय दुर्हृदे दत्ता बत मया साध्वी चोदिते परमेष्ठिना ॥१६॥

बत परमेष्ठिना	
चोदिते	अरे, ब्रह्माजीकी प्रेरणासे
तस्मा	
उन्मादनाथाय	इस पागलोंके स्वामी,
नष्ट शौचाय	आचारहीन
दुर्हृदे	दुष्ट हृदयको
मया साध्वी	
दत्ता	मैंने (अपनी) साधु स्वभावा (पुत्री) दे दी ॥१६॥

मैत्रेय उवाच–

विनिन्द्यैवं स गिरिशमप्रतीपमवस्थितम् ।
दक्षोऽथाप उपस्पृश्य क्रुद्धः शप्तुं प्रचक्रमे ॥१७॥

विनिन्द्य एवं स गिरिशं अप्रतीपं अवस्थितं दक्षः अथ अपः उपस्पृश्य क्रुद्धः शप्तु प्रचक्रम ॥१७॥

स दक्षः	उस दक्षने
एवं गिरिशं	इस प्रकार शंकरजीकी
विनिन्द्य	निन्दा करके
अप्रतीपं इव	(इसका) प्रतिकार किए बिना*
अवस्थितं	(स्थिर) बैठे (शंकरजी) को
अथ अपः	
उपस्पृश्य	फिर जलसे आचमन करके
क्रुद्धः	क्रोधमें भरा
शप्तुं प्रचक्रमे	शाप देने लगा ॥१७॥

दक्ष उवाच■–

अयं तु देवयजन इन्द्रोपेन्द्रादिभिर्भवः ।
सह भागं न लभतां देवैर्देवगणाधमः ॥१८॥

---

* अप्रतीपं इव—जैसे कुछ उलटा हो ही नहीं रहा है ऐसे ।

■ यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अयं तु देवयजन इन्द्र उपेन्द्र आदिभिः भवः सह भागं न लभतां देवैः देवगणाधमः ॥१८॥

अयं तु भवः	यह शिव तो	**इन्द्रउपेन्द्र**	
देवगणाधमः	देवताओंमें अधम है	**आदिभिः**	इन्द्र, उपेन्द्र आदि
देवयजन	देव-पूजामें	**देवैः सह**	देवताओंके साथ
		भागं न लभतां	भाग न पावे ॥१८॥

मैत्रेय उवाच–*

निषिध्यमानः स सदस्यमुख्यै-
र्दक्षो गिरित्राय विसृज्य शापम् ।
तस्माद्विनिष्क्रम्य विवृद्धमन्यु-
र्जगाम कौरव्य निजं निकेतनम् ॥१९॥

निषिध्यमानः स सदस्य मुख्यैः दक्षः गिरित्राय विसृज्य शापं तस्मात् विनिष्क्रम्य विवृद्ध मन्युः जगाम कौरव्य निजं निकेतनम् ॥१९॥

कौरव्य	विदुर !	**शापं विसृज्य**	शाप देकर
सदस्य मुख्यैः	मुख्य सभासदों द्वारा	**विवृद्ध मन्युः**	बढ़े क्रोधवश
		तस्मात्	
निषिध्यमानः	रोके जानेपर भी	**विनिष्क्रम्य**	वहाँसे निकलकर
स दक्षः	वह दक्ष	**निजं निकेतनम्**	अपने घर
गिरित्राय	शंकरजीको	**जगाम**	चला गया ॥१९॥

विज्ञाय शापं गिरिशानुगाग्रणी-
र्नन्दीश्वरो रोषकषायदूषितः ।
दक्षाय शापं विससर्ज दारुणं
ये चान्वमोदंस्तदवाच्यतां द्विजाः ॥२०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

विज्ञाय शापं गिरिश अनुग अग्रणीः नन्दीश्वरः रोषकषायदूषितः दक्षाय शापं विससर्ज दारुणं ये च अन्वमोदन् तत् अवाच्यतां द्विजाः ॥२०॥

गिरिश	
अनुग अग्रणीः	शिवजीके अनुचरोंमें श्रेष्ठ
नन्दीश्वरः	नन्दीश्वर
शापं विज्ञाय	(शंकरजीको) शाप जानकर
रोषकषाय-दूषितः	क्रोधके आवेशसे तमतमा उठे,
दक्षाय च	दक्षको तथा
तत् आवाच्यतां ये द्विजाः	उसके दुर्वचनोंका
अन्वमोदन्	जिन ब्राह्मणोंने अनुमोदन किया था उनको
दारुणं शापं विससर्ज	भयंकर शाप दिया ॥२०॥

*नन्दीश्वरोवाच**—

य एतन्मर्त्यमुद्दिश्य भगवत्यप्रतिद्रुहि ।
द्रुह्यत्यज्ञः पृथग्दृष्टिस्तत्त्वतो विमुखो भवेत् ॥२१॥

य एतत् मर्त्यं उद्दिश्य भगवति अप्रति द्रुहि द्रुह्यति अज्ञः पृथक् दृष्टिः तत्त्वतः विमुखः भवेत् ॥२१॥

एतत् मर्त्यं	इस मरणधर्मा शरीरको
उद्दिश्य	उद्देश्य बनाकर
अप्रति द्रुहि	किसीसे भी द्वेष न करने वाले
भगवति	भगवान (शिव) से
य अज्ञः	जो मूर्ख
पृथक् दृष्टिः	भेददर्शी (दक्ष)
द्रुह्यति	द्रोह करता है,
तत्त्वतः विमुखः	(वह) तत्त्वज्ञानसे विमुख
भवेत्	रहे ॥२१॥

गृहेषु कूटधर्मेषु सक्तो ग्राम्यसुखेच्छया ।
कर्मतन्त्रं वितनुते वेदवादविपन्नधीः ॥२२॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

गृहेषु कूट धर्मेषु सक्तः ग्राम्यसुख इच्छया कर्मतन्त्रं वितनुते वेदवाद विपन्नधीः ॥२२॥

वेदवाद	वेदोंके अर्थवाद से	**गृहेषु सक्तः**	घरोंमें आसक्त
विपन्नधीः	विवेक भ्रष्ट (दक्ष)	**कर्मतन्त्रं**	
ग्राम्यसुख		**वितनुते**	कर्मकाण्डका विस्तार करता है । ॥२२॥
इच्छया	विषयसुख पानेकी इच्छासे		
कूट धर्मेषु	कपटाचरण वाले		

बुद्ध्यापराभिध्यायिन्या विस्मृतात्मगतिः पशुः ।
स्त्रीकामः सोऽस्त्वतितरां दक्षो बस्तमुखोऽचिरात् ॥२३॥

बुद्ध्या पर अभिध्यायिन्या विस्मृतः आत्मगतिः पशुः स्त्रीकामः सः अस्तु अतितरां दक्षः बस्तमुखः अचिरात् ॥२३॥

पर		**सः पशुः दक्षः**	वह पशुदक्ष
अभिध्यायिन्या	देहादिको आत्मा समझने वाली	**अतितरां स्त्री-कामः**	अत्यन्त स्त्री लम्पट और
बुद्ध्या	बुद्धि से	**अचिरात्**	शीघ्र
आत्मगतिः		**बस्तमुखः अस्तु**	बकरेके मुख वाला हो जाय ॥२३॥
विस्मृतः	आत्मस्वरूपको भूला		

विद्याबुद्धिरविद्यायां कर्ममय्यामसौ जडः ।
संसरन्त्विह ये चामुमनु शर्वावमानिनम् ॥२४॥

विद्याबुद्धिः अविद्यायां कर्ममय्यां असौ जडः संसरन्तु ये च अमु अनु शर्व अवमानिनम् ॥२४॥

ये च अमुंअनु	जिन्होंने भी इस (दक्ष) के साथ	**अविद्यायां**	अविद्यामें
शर्वं अवमानिनं	शंकरजीका अपमान किया है (वे)	**विद्याबुद्धिः**	विद्याबुद्धि करके
असौ कर्ममय्यां	इस कर्मकाण्डमयी	**जडः संसरन्तु**	अज्ञानी रहकर आवागमनमें पड़े रहें ॥२४॥

गिरः श्रुतयाः पुष्पिण्या मधुगन्धेन भूरिणा ।
मथ्ना चोन्मथितात्मानः सम्मुह्यन्तु हरद्विषः ॥२५॥

गिरः श्रुतयाः पुष्पिण्या मधुगन्धेन भूरिणा मथ्ना च उन्मथित आत्मानः सम्मुह्यन्तु हरद्विषः ॥२५॥

श्रुतायाः गिरः	वेदकी वाणी	**उन्मथित आत्मनः**	क्षुब्ध चित्त
भूरिणा		**हरद्विषः**	शंकरजीसे द्वेष करने वाले
मधुगन्धेन	बहुत मीठी गन्धसे	**सम्मुह्यन्तु**	सम्मोहित ही रहें ॥२५॥
पुष्पिण्या	पुष्पवती (अर्थवाद युक्त) है		
मथ्ना	उस मोहित करने वाली (वाणी से)		

सर्वभक्षा द्विजा वृत्त्यै घृतविद्यातपोव्रताः ।
वित्तदेहेन्द्रियारामा याचका विचरन्त्विह ॥२६॥

सर्वभक्षाः द्विजा वृत्त्यै धृत विद्या तपः व्रताः वित्त देह इन्द्रिय आरामाः याचकाः विचरन्तु इह ॥२६॥

इह द्विजा	जो यहां ब्राह्मणहैं वे	**वित्त देह इन्द्रिय**	धन, शरीर, इन्द्रियोंके
सर्वभक्षा	(खाद्याखाद्यविचार-हीन) सर्वभक्षी,	**आरामाः**	सुखोंमें ही लगे
वृत्त्यै	आजीविकाके लिए	**याचकाः**	
विद्या तपः		**विचरन्तु**	भिखारी बने भटकते रहें ॥२६॥
व्रताः धृत	वेदविद्या, तपस्या, व्रतधारी होकर		

*मैत्रेय उवाच**-

तस्यैवं ददतः शापं श्रुत्वा द्विजकुलाय वै ।
भृगुः प्रत्यसृजच्छापं ब्रह्मदण्डं दुरत्ययम् ॥२७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तस्य एवं ददतः शापं श्रुत्वा द्विज कुलाय वै भृगुः प्रत्यसृजत् शापं ब्रह्मदण्डं दुरत्ययः ॥२७॥

तस्य एवं	उन (नन्दीश्वर) के इस प्रकार
द्विज कुलाय वै	ब्राह्मण-कुलको ही
शापं ददतः	शाप देते
श्रुत्वा	सुनकर
भृगुः दुरत्ययः	भृगुने दुस्तर
शापं ब्रह्मदण्डं	शाप रूपी ब्रह्मदण्ड
प्रत्यसृजत्	उलटकर दिया ॥२७॥

*भृगु उवाच**–

भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः ।
पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥२८॥

भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः पाखण्डिनः ते भवन्तु सत् शास्त्र परिपन्थिनः ॥२८॥

ये च भवव्रतधरा	जो लोग शिवभक्त हैं
ये च तान्	और जो उनके
समनुव्रताः ते	अनुयायी हैं
सत् शास्त्र	सात्विक शास्त्रोंके
परिपन्थिनः	विरुद्ध आचरण करने वाले
पाखण्डिनः	
भवन्तु	पाखण्डी हो जायँ ॥२८॥

नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः ।
विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम् ॥२९॥

नष्टशौचा मूढधियः जटा भस्म अस्थि धारिणः विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरो आसवम् ॥२९॥

नष्टशौचा	शौचाचारहीन,
मूढ़धियः	मूढ़बुद्धि,
जटा भस्म	
अस्थि	जटा, भस्म, हड्डियोंको
धारिणः	धारण करने वाले
शिवदीक्षायां	शिव दीक्षा (शैव सम्प्रदाय) में
विशन्तु	प्रवेश करें
यत्र सुरा आसवं	जहाँ शराब और आसव ही
दैवं	आराध्य हैं ॥२९॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ब्रह्म च ब्राह्मणांश्चैव यद्यूयं परिनिन्दथ ।
सेतुं विधारणं पुंसामतः पाखण्डमाश्रिताः ॥३०॥

ब्रह्म च ब्राह्मणाः च एव यत् यूयं परिनिन्दथ सेतुं विधारणं पुंसां अतः पाखण्डं आश्रिताः ॥३०॥

पुंसां सेतुं विधारणं	लोगोंकी मर्यादाके रक्षक	**परिनिन्दथ**	निन्दा करते हो
		अतः	इससे (पता लगता है)
ब्रह्म च	वेदोंकी और	**पाखण्डं**	
ब्राह्मणाः च	ब्राह्मणोंकी भी	**आश्रिताः**	पाखण्डका सहारा ले रखा है ॥३०॥
यत् यूयं	क्यों कि तुम लोग		

एष एव हि लोकानां शिवः पन्थाः सनातनः ।
यं पूर्वे चानुसंतस्थुर्यत्प्रमाणं जनार्दनः ॥३१॥

एष एव हि लोकानां शिवः पन्थाः सनातनः यं पूर्वे च अनुसंतस्थुः यत् प्रमाणं जनार्दनः ॥३१॥

हि	क्योंकि	**अनुसंतस्थुः**	चलते आये हैं,
लोकानां शिवः	लोकोंके कल्याणका	**यत् प्रमाणं**	जिसके प्रमाण (मूल)
एष एव	यह ही		
सनातनः		**जनार्दनः**	भगवान जनार्दन हैं ॥३१॥
पन्थाः	सनातन मार्ग है		
यं पूर्वे च	जिस पर पूर्व-पुरुष भी		

तद्ब्रह्म परमं शुद्धं सतां वर्त्म सनातनम् ।
विगर्ह्यं यात पाखण्डं दैवं वो यत्र भूतराट् ॥३२॥

तत् ब्रह्म परमं शुद्धं सतां वर्त्म सनातनं विगर्ह्यं यात पाखण्डं दैवं वः यत्र भूतराट् ॥३२॥

तत् परमं शुद्धं	उस परम पवित्र
सतां सनातनं	सज्जनोंके सनातन
वर्त्म ब्रह्म	मार्ग (स्वरूप) वेदकी
विगर्ह्य	निन्दा करके
पाखण्डं यात	(उस) पाखण्ड मार्गमें जाओ
यत्र वः दैवं	जहां तुम्हारे आराध्य
भूतराट्	भूतराज रहते हैं ॥३२॥

मैत्रेय उवाच-

तस्यैवं वदतः शापं भृगोः स भगवान् भवः ।
निश्चक्राम ततः किञ्चिद्विमना इव सानुगः ॥३३॥

तस्य एवं ददतः शापं भृगोः स भगवान् भवः निःचक्राम ततः किञ्चित् विमना इव सानुगः ॥३३॥

तस्य भृगोः	उन भृगुके
एवं शापं ददतः	इस प्रकार शाप देने पर
किञ्चित्	
विमना इव	कुछ खिन्नसे होकर
स भगवान् भवः	वे भगवान् शिव
सानुगः ततः	अनुचरोंके साथ वहांसे
निःचक्राम	निकल कर चले गये ॥३३॥

तेऽपि विश्वसृजः सत्रं सहस्रपरिवत्सरान् ।
संविधाय महेष्वास यत्रेज्य ऋषभो हरिः ॥३४॥

ते अपि विश्वसृजः सत्रं सहस्र परिवत्सरान् संविधाय महेष्वास यत्र इज्य ऋषभः हरिः ॥३४॥

महेष्वास	महाधनुर्धर विदुर !
ते अपि	वे लोग भी
सहस्र	
परिवत्सरान्	एक सहस्र वर्षमें पूरा होने वाला
विश्वसृजः सत्रं	प्रजापतियोंका यज्ञ
यत्र इज्य	जिसमें आराध्य
ऋषभः हरिः	पुरुषोत्तम श्रीहरि थे
संविधाय	पूरा करके ॥३४॥

आप्लुत्यावभृथं यत्र गङ्गा यमुनयान्विता ।
विरजेनात्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ययुस्ततः ॥३५॥

आप्लुत्य अवभृथं यत्र गङ्गा यमुनया अन्विता विरजेन आत्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ययः ततः ॥३५॥

यत्र गङ्गा		**विरजेन**	
यमुनया		**आत्मना**	प्रसन्न मनसे
अन्विता	जहां गंगामें यमुना मिलती हैं,	**ततः स्वं**	
		स्वं धाम	वहांसे अपने अपने धाम
अवभृथं			
आप्लुत्य	अवभृथ स्नान करके	**सर्वे ययुः**	सब चले गये ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे दक्षशापो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ तृतीयोऽध्याय

मैत्रेय उवाच-

सदा विद्विषतोरेवं कालो वै ध्रियमाणयोः ।
जामातुः श्वशुरस्यापि सुमहानतिचक्रमे ॥१॥

सदा विद्विषतः एवं कालः वै ध्रियमाणयोः जामातः श्वशुरस्य अपि सुमहान् अतिचक्रमे ॥१॥

एवं	इस प्रकार	**वै**	
जामातुः	दामाद और	**सुमहान् कालः**	निश्चित ही बहुत बड़ा समय
श्वशुरस्य अपि	स्वसुरका भी		
सदा विद्विषतः	सदा बैर-विरोध	**अतिचक्रमे**	बीत गया ॥१॥
ध्रियमाणयोः	कहते हुए		

यदाभिषिक्तो दक्षस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
प्रजापतीनां सर्वेषामाधिपत्ये स्मयोऽभवत् ॥२॥

यदा अभिषिक्तः दक्षः तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना प्रजापतीनां सर्वेषां आधिपत्ये स्मयः अभवत् ॥२॥

यदा		**दक्षः तु**	
परमेष्ठिना	जब सृष्टिकर्त्ता	**अभिषिक्तः**	दक्षका तो अभिषेक कर दिया
ब्रह्मणा	ब्रह्माजी द्वारा		
सर्वेषां		**स्मयः अभवत्**	(तब उन्हें) घमण्ड हो गया ॥२॥
प्रजापतीनां	अब प्रजापतियोंके		
आधिपत्ये	अधिपति पदपर		

इष्ट्वा स वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठानभिभूय च ।
वृहस्पतिसवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥३॥

इष्ट्वा स वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठान् अभिभूय च वृहस्पति सवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥३॥

ब्रह्मिष्ठान् अभिभूय	ब्रह्मनिष्ठों (शिवसनकादि) का तिरस्कार करके	**च वृहस्पति- सवं नाम**	फिर वृहस्पतीसव नामक
वाजपेयेन इष्ट्वा	वाजपेय यज्ञ करके,	**क्रतूत्तमं समारेभे**	महायज्ञका प्रारम्भ किया ॥३॥

तस्मिन् ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षिपितृदेवताः ।
आसन् कृतस्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यश्च सभर्तृकाः ॥४॥

तस्मिन् ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षि पितृ देवताः आसन् कृतस्वस्त्ययनाः तत् पत्न्यः च सभर्तृकाः ॥४॥

तस्मिन् सर्वे ब्रह्मर्षयः देवर्षि पितृ देवताः तत् पत्न्यः च	उस (यज्ञ)में सब ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर-देवताः और उनकी पत्नियां भी	**आसन् कृत- स्वस्त्ययनाः**	आयीं (वहां उन्होंने) मंगलकृत्य किये ॥४॥
सभर्तृकाः	पतियोंके साथ		

तदुपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पताम् ।
सती दाक्षायणी देवी पितुर्यज्ञमहोत्सवम् ॥५॥

तत् उपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पतां सती दाक्षायणी देवी पितुः यज्ञ महोत्सवम् ॥५॥

नभसि खेचराणां आकाशमें जाते देवताओंकी
प्रजल्पतां बातचीतमें
तत् पितुः यज्ञ महोत्सवं उस पिताके यज्ञ-महोत्सवकी
उपश्रुत्य चर्चा सुनकर
दाक्षायणी देवी सती दक्ष-कन्या-देवी सतीने ॥५॥

व्रजन्तीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेववरस्त्रियः ।
विमानयानाः सप्रेष्ठा निष्ककण्ठीः सुवाससः ॥६॥

व्रजन्तीः सर्वतः दिग्भ्यः उपदेववरस्त्रियः विमानयानाः सप्रेष्ठा निष्ककण्ठीः सुवाससः ॥६॥

विमानयानाः विमानोंपर बैठी
निष्ककण्ठीः हार पहिने
सुवाससः उत्तम वस्त्र वाली
सप्रेष्ठा अपने पतियोंके साथ
उपदेववरस्त्रियः गन्धर्वोंकी श्रेष्ठ स्त्रियोंको
सर्वतः दिग्भ्यः सब ओरसे
व्रजन्तीः जाते ॥६॥

दृष्ट्वा स्वनिलयाभ्याशे लोलाक्षीर्मृष्टकुण्डलाः ।
पतिं भूतपतिं देवमौत्सुक्यादभ्यभाषत ॥७॥

दृष्ट्वा स्वनिलयाभ्याशे लोलाक्षीः मृष्टकुण्डलाः पतिं भूतपतिं देवं औत्सुक्यात् अभ्यभाषत ॥७॥

स्वनिलयाभ्याशे अपने भवनके समीपसे
लोलाक्षीः
मृष्टकुण्डलाः (उन) चंचल नेत्र चमकते कुण्डल वालियोंको
दृष्ट्वा देखकर
पतिं
भूतपतिं देवं अपने पतिदेव भूतनाथसे
औत्सुक्यात् उत्सुकतावश
अभ्यभाषत बोलीं ॥७॥

सत्युवाच–

प्रजापतेस्ते श्वशुरस्य साम्प्रतं
निर्वापितो यज्ञमहोत्सवः किल ।

वयं च तत्राभिसराम वाम ते
यद्यर्थितामी विबुधा व्रजन्ति हि ॥८॥

प्रजापतेः ते श्वशुरस्य साम्प्रतं निर्वापित यज्ञमहोत्सवः किल वयं च तत्र अभिसराम वाम ते यत् अर्थितां अमी विबुधाः व्रजन्ति हि ॥८॥

वाम	वामदेव जी !	**हि यत् अर्थितां**	क्योंकि उसके लिए
ते श्वशुरस्य	आपके स्वसुरके यहाँ	**अमी बिबुधाः**	ये देवता
		व्रजन्ति	जा रहे हैं,
साम्प्रतं किल	इस समय निश्चित	**ते वयं च**	आप और मैं भी
यज्ञमहोत्सवः	यज्ञ महोत्सव	**तत्र अभिसराम**	वहाँ चलें ॥८॥
निर्वापितः	हो रहा है,		

तस्मिन् भगिन्यो मम भर्तृभिः स्वकै-
र्ध्रुवं गमिष्यन्ति सुहृद्दिदृक्षवः ।
अहं च तस्मिन् भवताभिकामये
सहोपनीतं परिबर्हमर्हितुम् ॥९॥

तस्मिन् भगिन्यः मम भर्तृभिः स्वकैः ध्रुवं गमिष्यन्ति सुहृत् दिदृक्षवः अहं च तस्मिन् भवता अभिकामये सह उपनीतं परिबर्हं अर्हितुम् ॥९॥

तस्मिन्	उस (महोत्सव) में	**तस्मिन् अहं च**	उसमें मैं भी
मम भगिन्यः	मेरी बहिनें	**भवता**	
स्वकैः भर्तृभिः	अपने पतियोंके साथ	**सह उपनीतं**	आपके साथ जाकर
सुहृत् दिदृक्षवः	सम्बन्धियोंको देखनेकी इच्छासे	**परिबर्हं अर्हितुं**	उपहार स्वीकार
		अभिकामये	करना चाहती हूँ ॥९॥
ध्रुवं गमिष्यन्ति	निश्चित जायेगी,		

तत्र स्वसुर्मे ननु भर्तृसम्मिता
मातृष्वसृः क्लिन्नधियं च मातरम् ।
द्रक्ष्ये चिरोत्कण्ठमना महर्षिभि-
रुन्नीयमानं च मृडाध्वरध्वजम् ॥१०॥

तत्र स्वसृः मे ननु भृर्तु सम्मिता मातृष्वसृः क्लिन्नधियं च मातरं द्रक्ष्ये चिर उत्कण्ठमना महर्षिभिः उन्नीयमानं च मृड अध्वर ध्वजम् ॥१०॥

मृड	मृड !	**क्लिन्नधियं**	
तत्र महर्षिभिः	वहां महर्षियों द्वारा	**मातरं**	स्नेहार्द्र चित्त माताको
अध्वर ध्वजं	यज्ञीय झंडा		
उन्नीयमानं	ले जाया जायगा (तथा)	**चिर**	
ननु भर्तु		**उत्कण्ठमना**	(देखनेकी) बहुत दिनोंसे चित्तमें उत्कण्ठा रखने वाली
सम्मिता	अवश्य अपने पतियोंसे सम्मानिता		
मे स्वसृः	मेरी बहिनोंको		
मातृष्वसृः च	मौसियोंको तथा	**द्रक्ष्ये**	(मैं) देखूँगी ॥१०॥

त्वय्येतदाश्चर्यमजात्ममायया
विनिर्मितं भातिगुणत्रयात्मकम् ।
तथाप्यहं योषिदतत्त्ववित्त ते
दीना दिदृक्षे भव मे भवक्षितिम् ॥११॥

त्वयि एतत् आश्चर्यं अज आत्ममायया विनिर्मितं भाति गुणत्रयात्मकं तथापि अहं योषित् अतत्त्ववित् च ते दीना दिदृक्षे भव मे भवक्षितिम् ॥११

अज भव	अजन्मा भव !	**तथापि अहं**	फिर भी मैं
एतत् आश्चर्यं	यह आश्चर्यमय	**योषित् च**	स्त्री हूँ और
गुणत्रयात्मकं	त्रिगुणात्मक (संसार)	**ते अतत्त्ववित्**	आपके तत्त्वको नहीं जानती
त्वयि		**दीना**	दीन हूँ
आत्ममायया	आपमें आपकी मायासे	**मे भवक्षितिं दिदृक्षे**	अपनी जन्मभूमि देखना चाहती हूं ॥११॥
विनिर्मितं भाति	निर्मित प्रतीत हो रहा है,		

पश्य प्रयान्तीरभवान्ययोषितो-
ऽप्यलंकृताः कान्तसखा वरूथशः ।

यासां व्रजद्भिः शितिकण्ठ मण्डितं
नभो विमानैः कलहंसपाण्डुभिः ॥१२॥

पश्य प्रयान्तीः अभवानि योषितः अति अलङ्कृता; कान्तसखा वरूथशः
यासां व्रजद्भिः शितिकण्ठ मण्डितं नभः विमानैः कलहंस पाण्डुभिः ॥१२॥

अभवानि	
शितिकण्ठ	जन्मरहित नीलकण्ठ !
अति अलंकृताः	अत्यन्त सजी-धजी
कान्तसख	
वरूथशः	पतियोंके साथ झुंडकी झंड
योषितः	
प्रयान्तीः पश्य	स्त्रियोंको जाती देखिये,
यासां कल-	
हंस पाण्डुभिः	जिनके राजहंसके समान श्वेत
विमानैः	
व्रजद्भिः	विमानोंके जानेसे
नभः मण्डितं	आकाश सुशोभित हो रहा है ॥१२॥

कथं सुतायाः पितृगेहकौतुकं
निशम्य देहः सुरवर्य नेङ्गते ।
अनाहुता अप्यभियन्ति सौहृदं
भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम् ॥१३॥

कथं सुतायाः पितृगेह कौतुकं निशम्य देहः सुरवर्यं न इङ्गते अनाहुता अपि अभियन्ति सौहृदं भर्तुः गुरोः देहकृतः च केतनम् ॥१३॥

सुरवर्यं	महादेव !
पितृगेह कौतुंक	पिताके घर उत्सव
निशम्य कथं	सुनकर कैसे
सुतायाः देहः	पुत्रीका शरीर
न इङ्गते	चलनोद्यत नहीं होगा,
अनाहुता अपि	बिना बुलाये भी
सौहृदं	सम्बन्धके कारण
भर्तुः गुरोः	पतिके, गुरुके,
च देहकृतः	
केतनं	और जन्मदाता (पिताके) घर
अभियन्ति	जाया जाता है ॥१३॥

तन्मे प्रसीदेदममर्त्य वाञ्छितं
कर्तुं भवान्कारुणिको बतार्हति ।
त्वयाऽऽत्मनोऽर्धेऽहमदभ्रचक्षुषा
निरूपिता मानुगृहाण याचितः ॥१४॥

तत् मे प्रसीद इदं अमर्त्यं वाञ्छितं कर्तुं भवान् कारुणिकः बत अर्हति त्वया आत्मनः अर्धे अहं अदभ्र च क्षुषा निरूपिता मां अनुगृहाण याचितः ॥१४॥

तत् मे प्रसीद	अतः मुझपर प्रसन्न हों,
अमर्त्य इदं वाञ्छितं	देव, यह मेरी इच्छा
बत कर्तुं अर्हति	अवश्य पूरी करना चाहिए ।
भवान् कारुणिकः	आप करुणामय हैं
अदभ्र च क्षुषा	परम ज्ञानी होकरभी
त्वया अहं	आपने मुझे
आत्मनः अर्धे	अपने आधे शरीरमें
निरूपिता	स्थान दिया है,
मां याचितः	मेरी प्रार्थनापर
अनुगृहाण	अनुग्रह करिये ॥१४॥

*मैत्रेय उवाच**–

एवं गिरित्रः प्रिययाभिभाषितः
प्रत्यभ्यधत्त प्रहसन् सुहृत्प्रियः ।
संस्मारितो मर्मभिदः कुवाग्विषून्
यानाह को विश्वसृजां समक्षतः ॥१५॥

एवं गिरित्रः प्रियया अभिभाषितः प्रति अभ्यधत्त प्रहसन् सुहृत् प्रियः संस्मारितः मर्मभिदः कुवाक् इषून् यान् आह कः विश्वसृजां समक्षतः ॥१५॥

---

* गीताप्रेसकी प्रतिमें यहां 'ऋषि उवाच' है ।

प्रियया एवं	प्रिय पत्नीके
	इस प्रकार
अभिभाषितः	कहने पर
सुहृत् प्रियः	सम्बन्धियोंका प्रिय
	करनेवाले
गिरित्रः	शंकरजी
विश्वसृजां	
समक्षतः	सब प्रजापतियोंके
	सामने
मर्मभिदः	मर्मवेधी
यान् कुवाक्	
इषन्	जिन बाणके समान
	दुर्वाक्योंको
कः आह	प्रजापति दक्षने
	कहा था
संस्मारितः	(उनका) स्मरण
	करके
प्रहसन्	हँसते हुए
प्रति अभ्यधत्त	उत्तर देने
	लगे ॥१५॥

शिव उवाच■–

त्वयोदितं शोभनमेव शोभने
अनाहुता अप्यभियन्ति बन्धुषु ।
ते यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो
बलीयसानात्म्यमदेन मन्युना ॥१६॥

त्वया उदितं शोभनं एव शोभने अनाहुता अपि अभियन्ति बन्धुषु ते यदि अनुत्पादित दोषदृष्टयः बलीयसा न आत्म्यमदेन मन्युना ॥१६॥

शोभने त्वया	सुन्दरी ! तुमने
शोभनं एव	
उदितं	सुन्दर बात ही
	कही है कि
अनाहुता अपि	बिना बुलायेभी
बन्धुषु	
अभियन्ति	सम्बन्धियोंके यहां
	जाया जाता है ।
यदि ते	(लेकिन) यदि वे
बलीयसा	
आत्म्यमदेन	अपने प्रबल
	घमण्ड (और)
मन्युना	क्रोधसे
दोषदृष्टयः न	
अनुत्पादित	दोषदृष्टि न
	करते हों ॥१६॥

■ गीताप्रेसकी प्रतिमें यहां 'श्रीभगवानुवाच' है ।

विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैः
सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः ।
स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः
स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ॥१७॥

विद्या तपः वित्त वपुः वयः कुलैः सतां गुणैः षट्भिः असत्तम् इतरैः स्मृतौ हतायां भृतमान दुर्दृशः स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ॥१७॥

सतां षट्भिः गुणैः	सज्जनोंके ६ गुणोंसे	**स्मृतौ हतायां**	स्मृति नष्ट हो जानेसे
विद्या तपः	विद्या, तपस्या	**भृतमान दुर्दृशः**	अहंकार बढ़ जाता है, कुदृष्टि हो जाती है,
वित्त वपुः	धन, अच्छा शरीर,		
वयः कुलैः	बड़ी आयु, उच्च कुलसे	**स्तब्धा**	(वे) मूर्ख
		भूयसां धाम	महापुरुषोंका प्रभाव
हि	क्योंकि		
इतरैः असत्तमैः	दूसरे दुर्जनोंकी	**पश्यन्ति न**	देख नहीं पाते ॥१७॥

नैतादृशानां स्वजनव्यपेक्षया
गृहान् प्रतीयादनवस्थितात्मनाम् ।
येऽभ्यागतान् वक्रधियाभिचक्षते
आरोपितभ्रूभिरमर्षणाक्षिभिः ॥१८॥

न एतादृशानां स्वजन व्यपेक्षया गृहान् प्रतीयात् अनवस्थित आत्मनां ये अभ्यागतान् वक्रधिया अभिचक्षते आरोपित भ्रूभिः अमर्षण अक्षिभिः ॥१८॥

एतादृशानां स्वजन व्यपेक्षया	ऐसे लोगोंको सम्बन्धी समझकर	**अनवस्थित आत्मनां**	इन अस्थिर चित्त लोगोंके
		गृहं न प्रतीयात्	घर न जाय ।

ये अभ्यागतान्	जो अपने यहाँ आयेको	**आरोपित भ्रूभिः**	भौंहें चढ़ाकर
वक्रधिया	कुटिल बुद्धिके कारण	**अमर्षण अक्षिभिः**	असहनशील दृष्टिसे
		अभिचक्षते	देखते हैं ॥१८॥

तथारिभिर्न व्यथते शिलीमुखैः
शेतेऽर्दिताङ्गो हृदयेन दूयता ।
स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभि-
र्दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः ॥१९॥

तथा अरिभिः न व्यथते शिलीमुखैः शेते अर्दिता अङ्गः हृदयेन दूयता स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभिः दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः ॥१९॥

अरिभिः शिलीमुखैः	शत्रु द्वारा बाणोंसे	**यथा वक्रधियां**	जैसे कुटिल बुद्धि वाले
अर्दित अङ्गः	छेदे गये अंग (होनेपर भी)	**स्वानां दुरुक्तिभिः**	अपने लोगोंके दुर्वचनोंसे
दूयता हृदयेन शेते	पीड़ित हृदय भी (जैसे-तैसे) सो ही जाता है,	**मर्मताडितः**	मर्म-स्थानपर चोट करनेसे
तथा न व्यथते	वैसी व्यथा नहीं पाता	**दिवानिशं तप्यति**	रात-दिन संतप्त होता रहता है ॥१९॥

व्यक्तं त्वमुत्कृष्टगतेः प्रजापतेः
प्रियाऽऽत्मजानामसि सुभ्रु सम्मता ।
अथापि मानं न पितुः प्रपत्स्यसे
मदाश्रयात्कः परितप्यते यतः ॥२०॥

व्यक्तं त्वं उत्कृष्टगतेः प्रजापतेः प्रिया आत्मजानां असि सुभ्रु सम्मता अथ अपि मानं न पितुः प्रपत्स्यसे मदाश्रयात् कः परितप्यते यतः ॥२०॥

सुभ्रु व्यक्तं त्वं	सुलोचने ! स्पष्ट है कि तुम
उत्कृष्टगतेः	परमोन्नति प्राप्त
प्रजापतेः	प्रजापति (दक्ष) की
प्रिय	
आत्मजानां	प्यारी पुत्रियोंमें
सम्मता असि	अधिक प्रिय हो,
अथ अपि	फिर भी
पितुःमानं	पितासे सम्मान
न प्रपत्स्यसे	नहीं पाओगी
यतः कः	क्योंकि प्रजापतिदक्ष
मदाश्रयात्	मेरी आश्रिता होनेसे
परितप्यते	(तुम से भी) जलते हैं ॥२०॥

पापच्यमानेन हृदाऽऽतुरेन्द्रियः
समृद्धिभिः पूरुषबुद्धिसाक्षिणाम् ।
अकल्प एषामधिरोढुमञ्जसा
पदं परं द्वेष्टि यथासुरा हरिम् ॥२१॥

पापच्यमानेन हृदा आतुर इन्द्रियः समृद्धिभिः पूरुष बुद्धि साक्षिणां अकल्प एषां अधिरोढुं अञ्जसा पदं परं द्वेष्टि यथा असुरा हरिम् ॥२१॥

बुद्धि साक्षिणां पूरुष	बुद्धिके साक्षी
समृद्धिभिः	महापुरुषोंके ऐश्वर्यसे
अञ्जसा एषां अधिरोढुं	सरलतासे उस पदपर पहुँचनेमें
अकल्प	असमर्थ होकर
पापच्यमानेन हृदा	जलते रहने वाले हृदय तथा
आतुर इन्द्रियः	व्याकुल इन्द्रिय वाले
परं पदं द्वेष्टि	उस परम-पदसे ही द्वेष करने लगते हैं
यथा असुरा हरिं	जैसे असुर श्रीहरिसे ॥२१॥

प्रत्युद्गमप्रश्रयणाभिवादनं
विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे ।
प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा
गुहाशयायैव न देहमानिने ॥२२॥

प्रत्युद्गम प्रश्रयण अभिवादनं विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा गुहाशयाय एव न देहमानिने ॥२२॥

सुमध्यमे	सुमध्यमे !
प्रत्युद्गम	उठकर सामने (स्वागतार्थं) जाना,
प्रश्रयण	नम्रता दिखाना,
अभिवादनं	प्रणाम करना,
मिथः विधीयते	(जो) परस्पर की जाती हैं,
साधु	अच्छी हैं, किन्तु
देहमानिने न	(ये) देहाभिमानीके लिए नहीं की जाती,
चेतसा	
गुहाशयाय	चित्तकी गुफामें रहने वाले
परस्मै पुरुषाय	परम-पुरुष
प्राज्ञैः एव	प्राज्ञःके लिए ही की जाती हैं ॥२२॥

सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं
यदीयते तत्र पुमानपावृतः ।
सत्त्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो
ह्यधोक्षजो मे नमसा विधीयते ॥२३॥

सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव शब्दितं यत् ईयते तत्र पुमान् अपावृतः सत्त्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवः हि अधोक्षजः मे नमसा विधीयते ॥२३॥

विशुद्धं सत्त्वं	विशुद्ध अन्तः-करणका
वसुदेव शब्दितं	वसुदेव नाम है,
हि यत् तत्र	क्योंकि वहां परम-
पुमान्	पुरुष
अपावृतः ईयते	अनावरण प्राप्त होते हैं ।
तस्मिन् सत्त्वे च	उस अन्तःकरणमें ही (स्थित)
अधोक्षजः	हृषीकेश
भगवान्	
वासुदेवः	भगवान वासुदेवको
मे नमसा	मैं प्रणाम करता
विधीयते	हूँ ॥२३॥

तत्ते निरीक्ष्यो न पितापि देहकृद्
दक्षो मम द्विट् तदनुव्रताश्च ये ।
यो विश्वसृग्यज्ञगतं वरोरु मा-
मनागसं दुर्वचसाकरोत्तिरः ॥२४॥

तत् ते निरीक्ष्यः न पिता अपि देहकृत् दक्षः मम द्विट् तत् अनुव्रताः च ये यः विश्वसृक् यज्ञगतं वरोरु मां अनागसं दुर्वचसा करोत् तिरः ॥२४॥

विश्वसृक्	विश्वस्रष्टा ब्रह्माजी-
यज्ञगतं	के यज्ञमें गये
अनागसं	निरपराध
यः दुर्वचसा	(जिसने) दुर्वचनोंसे
मां तिरः करोत्	मेरा तिरस्कार किया
वरोरु	हे सुन्दरि !
देहकृत्	(तुम्हारे) जन्म देने
पिता अपि	वाला पिता होनेपर भी
मम द्विट्	मुझसे द्वेष करने वाले
दक्षः च ये	दक्षा और जो
तत् अनुव्रताः	उसके अनुयायी हैं
तत् ते न निरीक्ष्यः	उनका तुम्हें दर्शन नहीं करना चाहिए ॥२४॥

यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो
भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति ।
सम्भावितस्य स्वजनात्पराभवो
यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ॥२५॥

यदि व्रजिष्यसि अतिहाय मद्वचः भद्रं भवत्या न ततः भविष्यति सम्भावितस्य स्वजनात् पराभवः यदा स सद्यः मरणाय कल्पते ॥२५॥

यदि मद्वचः	यदि मेरी बात
अतिहाय	
व्रजिष्यसि	न मान कर जाओगी
ततः भवत्या	तो तुम्हारा
भद्रं न भविष्यति	कल्याण नहीं होगा,
यदा	
सम्भावितस्य	जब प्रतिष्ठित व्यक्तिका
स्वजनात्	
पराभवः	अपने लोगोंसे अनादर होता है
स सद्यः	(तब) वह तुरन्त
मरणाय कल्पते	मृत्युका कारण हो जाता है ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे उमारुद्रसंवादे तृतीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

एतावदुक्त्वा विरराम शंकरः
पत्यङ्गनाशं ह्युभयत्र चिन्तयन् ।
सुहृद्दिदृक्षुः परिशङ्किता भवा-
न्निष्क्रामती निर्विशती द्विधाऽऽस सा ॥१॥

एतावत् उक्त्वा विरराम शंकरः पत्नि अङ्ग नाशं हि उभयत्र चिन्तयन् सुहृत् दिदृक्षुः परिशङ्किता भवानि निष्क्रामती निर्विशती द्विधा आस सा ॥१॥

अङ्ग	प्रिय विदुर
हि उभयत्र	क्योंकि दोनों दशाओंमें (जाने देने और रोकनेमें भी)
पत्नि नाशं	पत्नीकी मृत्यु
चिन्तयन्	समझते हुए
शंकरः एतावत् उक्त्वा	शंकरजी इतना ही
विरराम	कहकर चुप हो गये।
सुहृत् दिदृक्षुः	सम्बन्धियोंको देखने की इच्छा तथा
परिशङ्किता	शंकरजीके रुष्ट होने की आशङ्कासे
सा भवानि	वे भवानी
निष्क्रामती	कभी (चलने को) निकलती
निर्विशती	कभी लौट आतीं
द्विधा आस	द्विविधामें पड़ गयीं ॥१॥

सुहृद्दिदृक्षाप्रतिघातदुर्मनाः
स्नेहाद्रुदत्यश्रुकलातिविह्वला ।
भवं भवान्यप्रतिपूरुषं रुषा
प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथुः ॥२॥

सुहृत् दिदृक्षा प्रतिघात दुर्मनाः स्नेहात् रुदति अश्रुकला अतिविह्वला भवं भवानि अप्रति पूरुषं रुषा प्रधक्ष्यती इव ईक्षत जात वेपथुः ॥२॥

सुहृत् दिदृक्षा	सम्बन्धियोंको देखने की इच्छामें	**अति विह्वला**	अत्यन्त व्याकुल होकर
प्रतिघात		**अप्रति पूरुषं**	अप्रतिम पुरुष
दुर्मनाः	बाधा पड़नेसे दुखित चित्ता		(शंकरजी) को
		जात वेपथुः	काँपती हुई
स्नेहात् रुदति	(बान्धवोंके) स्नेहसे रोती,	**प्रधक्ष्यती इव**	मानो भस्म कर देंगी ऐसे
अश्रुकला	आंसू बहाती,	**ईक्षत**	देखने लगीं ॥२॥

ततो विनिःश्वस्य सती विहाय तं
शोकेन रोषेण च दूयता हृदा ।
पित्रोरगात्स्त्रैणविमूढधीर्गृहान्
प्रेम्णाऽऽत्मनो योऽर्धमदात्सतां प्रियः ॥३॥

ततः विनिः श्वस्य सती विहाय तं शोकेन रोषेण च दूयता हृदा पित्रोः अगात् स्त्रैण विमूढधीः गृहान् प्रेम्णा आत्मनः यः अर्धं अदात् सतां प्रियः ॥३॥

यः सतां प्रियः	जिन सत्पुरुषोंके प्रिय (शंकरजी) ने	**स्त्रैण विमूढधीः**	स्त्री स्वभावके कारण मूढ-बुद्धि होकर
प्रेम्णा आत्मनः	प्रेमवश अपना		
अर्धं अदात्	आधा (देह) दे दिया था,	**तं विहाय**	उन (शंकरजी) को छोड़कर
		ततः विनिःश्वस्य	वहांसे लम्बी श्वास लेते
शोकेन च रोषेण दूयता हृदा	शोक तथा रोषसे विह्वल चित्त होकर	**पित्रोः गृहान् अगात्**	पिताके घर चल पड़ीं ॥३॥

तामन्वगच्छन् द्रुतविक्रमां सती-
मेकां त्रिनेत्रानुचराः सहस्रशः ।
सपार्षदयक्षा मणिमन्मदादयः
पुरोवृषेन्द्रास्तरसा गतव्यथाः ॥४॥

तां अन्वगच्छन् द्रुत विक्रमां सतीं एकां त्रिनेत्र अनुचराः सहस्रशः सपार्षद यक्षा मणिमन् मद आदयः पुरः वृषेन्द्राः तरसा गतव्यथाः ॥४॥

तां द्रुत विक्रमां	उन तेजीसे जाती	**वृषेन्द्राः पुरः**	(शंकरजीके वाहन) वृषभेन्द्रको आगे करके
एकां सतीं	अकेली सतीके	**गतव्यथः तरसा**	निर्भयता पूर्वक तेजीसे
सहस्रशः	हजारों	**अन्वगच्छन्**	पीछे चलने लगे ॥४॥
मणिमन् मद आदयः	मणिमान् मद आदि		
सपार्षद	पार्षदोंके साथ		
त्रिनेत्र अनुचराः यक्षाः	शंकरजीके अनुचर यक्ष		

तां सारिकाकन्दुकदर्पणाम्बुज-
श्वेतातपत्रव्यजनस्रगादिभिः ।
गीतायनैर्दुन्दुभिशङ्खवेणुभि-
र्वृषेन्द्रमारोप्य विटङ्किता ययुः ॥५॥

तां सारिका कन्दुक दर्पण अम्बुज श्वेत आतपत्र व्यजन स्रगादिभिः गीत अयनैः दुन्दुभि शङ्ख वेणुभिः वृषेन्द्रं आरोप्य विटङ्किता ययुः ॥५॥

तां वृषेन्द्रं आरोप्य	उनको वृषेन्द्रपर बैठाकर	**विटङ्किता**	सुशोभित करके
सारिका कन्दुक	मैंना, गेंद	**दुन्दुभि शङ्ख**	दुन्दुभि (नगाड़ा) शंख
दर्पण अम्बुज	दर्पण, कमला,	**वेणुभिः**	वंशी बजाते
श्वेत आतपत्र	श्वेत छत्र	**गीत अयनैः**	गाते हुए
व्यजन स्रगादिभिः	पंखा, माला आदिसे	**ययुः**	(साथ) चले ॥५॥

आब्रह्मघोषोर्जितयज्ञवैशसं
विप्रर्षिजुष्टं विबुधैश्च सर्वशः ।
मृद्दार्वयःकाञ्चनदर्भचर्मभि-
र्निसृष्टभाण्डं यजनं समाविशत् ॥६॥

आब्रह्मघोष उर्जित यज्ञ वैशसं विप्रर्षि जुष्टं विबुधैः च सर्वशः मृत् दारु अथः काञ्चन दर्भ चर्मभिः निसृष्ट भाण्डं यजनं समाविशत् ॥६॥

आब्रह्मघोष	वेदपाठकी ध्वनिमें
उर्जित वैशसं	प्रतिस्पर्धा लगी थी (कौन) सबसे उच्च-स्वरसे बोल सकता
विप्रर्षि च	
विबुधैः	ब्रह्मर्षियों और देवताओंसे
सर्वशः जुष्टं	सर्वथा भरे हुए
मृत् दारु अयः	मिट्टी, लकड़ी, लोहे
काञ्चन, दर्भ,	
चर्मभिः	स्वर्ण, कुश, चमड़ेके
भाण्डं निसृष्टं	वर्तन रखे हुए थे,
यजनं समाविशत्	ऐसी यज्ञशालामें प्रवेश किया ॥६॥

तामागतां तत्र न कश्चनाद्रियद्
विमानितां यज्ञकृतो भयाज्जनः ।
ऋते स्वसुर्वै जननीं च सादराः
प्रेमाश्रुकण्ठ्यः परिषस्वजुर्मुदा ॥७॥

तां आगतां तत्र न कश्चन आद्रियत् विमानितां यज्ञकृतः भयात् जनः ऋते स्वसृः वै जननीं च सादराः प्रेमाश्रुकण्ठ्यः परिषस्वजुः मुदा ॥७॥

यज्ञकृतः	यज्ञकर्ता (दक्ष) द्वारा
विमानितां	अवहेलिता
तां आगतां	उन आयी हुई (सती) का
भयात् तत्र	(दक्षके) डरसे वहाँ
कश्चन जनः	किसी व्यक्तिने
आद्रियत् न	आदर नहीं किया,
वै स्वसृः जननीं	
ऋते	केवल बहिनों और माताको छोड़कर
च सादराः	उन्होंने आदर किया,
प्रेम अश्रुकण्ठ्यः	प्रेमके कारण आँसूसे उनका गलाभर आया
मुदा परिषस्वजुः	हर्ष पूर्वक आलिंगन किया ॥७॥

सौदर्यसम्प्रश्नसमर्थवार्तया
मात्रा च मातृष्वसृभिश्च सादरम् ।
दत्तां सपर्यां वरमासनं च सा
नादत्त पित्राप्रतिनन्दिता सती ॥८॥

सौदर्य सम्प्रश्न समर्थ वार्तया मात्रा च मातृष्वसृभिः च सादरं दत्तां सपर्यां बरं आसनं च सा न अदत्त पित्रा अप्रतिनन्दिता सती ॥८॥

सौदर्य मात्रा च	बहिनों और माता
च मातृष्वसृभिः	तथा मौसियों द्वारा
सादरं समर्थं	
सम्प्रश्न	आदर पूर्वक कुशल प्रश्न
वार्तया	बातचीत
वरं आसनं सपर्यां	श्रेष्ठ आसन तथा उपहार
दत्तां सा सती	दिये जानेपर उन सतीने
पित्रा न अदत्त	पिताने (शिवजीको) नहीं दिया था
अप्रतिनन्दिता	(अतः) उसे स्वीकार नहीं किया ॥८॥

अरुद्रभागं तमवेक्ष्य चाध्वरं
पित्रा च देवे कृतहेलनं विभौ ।
अनादृता यज्ञसदस्यधीश्वरी
चुकोप लोकानिव धक्ष्यतो रुषा ॥९॥

अरुद्रभागं तं अवेक्ष्य च अध्वरं पित्रा च देवे कृत हेलनं विभौ अनादृता यज्ञ सदस्य अधीश्वरी चुकोप लोकान् इव धक्ष्यती रुषा ॥९॥

तं अध्वरं	उस यज्ञको
अरुद्रभागं	रुद्रके भागसे रहित
च पित्रा	
विभौ देवे	पिताको भगवान महादेवका
कृत हेलनं	अपमान करते
अवेक्ष्य च	देखकर
अनादृता	(स्वयं) उपेक्षिता
यज्ञ सदस्य	
अधीश्वरी	यज्ञके सदस्योंकी अधीश्वरी
रुषा लोकान्	रोषसे लोकोंको
धक्ष्यती इव	मानो भस्म कर देंगी
चुकोप	ऐसे क्रुद्ध हो गयीं ॥९॥

जगर्ह सामर्षविपन्नया गिरा
शिवद्विषं धूमपथश्रमस्मयम् ।
स्वतेजसा भूतगणान् समुत्थितान्
निगृह्य देवी जगतोऽभिशृण्वतः ॥१०॥

जगर्ह सा अमर्षं विपन्नया गिरा शिवद्विषं धूमपथ श्रम स्मयं स्वतेजसा भूतगणान् समुत्थितान् निगृह्य देवी जगतः अभिशृण्वतः ॥१०॥

देवी स्वतेजसा	देवी (सती) ने अपने तेजसे
समुत्थितान् भूतगणान्	(दक्षको मारनेके लिए) उठ खड़े हुए भूतोंको
निगृह्य जगतः अभिशृण्वतः	रोककर सबके सुनते हुए
धूमपथ श्रम	कर्मकाण्डमें श्रम (करके निपुण होने) से
स्मयं	(बड़े) अभिमान वाले (दक्ष) की
शिवद्विषं	शिवजीसे द्वेष करने वाले की
अमर्ष विपन्नया गिरा	क्रोधसे लड़खड़ाती वाणीसे
सा जगर्ह	उन्होंने भर्त्सना की ॥१०॥

*सत्युवाच**–

न यस्य लोकेऽस्त्यतिशायनः प्रिय-
स्तथाप्रियो देहभृतां प्रियात्मनः ।
तस्मिन् समस्तात्मनि मुक्तवैरके
ऋते भवन्तं कतमः प्रतीपयेत् ॥११॥

---

* गीता प्रेसकी प्रतिमें यहाँ 'श्रीदेव्युवाच' है; किन्तु उसीमें इसी अध्यायमें श्लोक ७ के बाद 'सत्युवाच' आया है।

न यस्य लोके अतिशायिनः प्रियः तथा अप्रियः देहभृतां प्रिय आत्मनः तस्मिन् समस्त आत्मनि मुक्तवैरके ऋते भवन्तं कतमः प्रतीपयेत् ॥११॥

लोके यस्य लोकमें जिनसे
अतिशायिनः न बड़ा कोई नहीं है,
तथा प्रियः
अप्रियः वैसे ही प्रिय या अप्रिय भी (कोई नहीं है)
देहभृतां प्रिय
आत्मनः देहधारियोंके जो प्रिय आत्मा हैं,
समस्त आत्मनि सर्वात्मा
मुक्तवैरके
तस्मिन् शत्रुता रहित उनसे
भवन्तं ऋते आपको छोड़कर
कतमः
प्रतीपयेत् कौन विरोध करेगा ॥११॥

दोषान् परेषां हि गुणेषु साधवो
गृह्णन्ति केचिन्न भवादृशा द्विज ।
गुणांश्च फल्गून् बहुलीकरिष्णवो
महत्तमास्तेष्वविदद्भवानघम् ॥१२॥

दोषान् परेषां हि गुणेषु साधवः गृह्णन्ति केचित् न भवादृशा द्विज गुणांश्च फल्गून् बहुलो करिष्णवः महत्तमाः तेषु अविदत् भवान् अघम् ॥१२॥

द्विज ब्राह्मण !
भवादृशा आपके समान लोग
हि परेषां गुणेषु क्योंकि दूसरोंके गुणों में भी
दोषान् गृह्णन्ति दोष ही पकड़ते हैं,
केचित् न कुछ ऐसे नहीं होते (लेकिन)
फल्गून् गुणांश्च थोड़े गुणों को भी
बहुली करिष्णवः बड़ा करके देखने वाले
महत्तमाः महापुरुष होते हैं
भवान् तेषु आपने ऐसे (महा-पुरुष) पर
अघं अविदत् दोषारोप किया है ॥१२॥

नाश्चर्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा
महद्विनिन्दा कुणपात्मवादिषु ।
सेर्ष्यं महापूरुषपादपांसुभि-
र्निरस्ततेजःसु तदेव शोभनम् ॥१३॥

न आश्चर्यं एतत् यत् असत्सु सर्वदा महत् विनिन्दा कुणप आत्मवादिषु स इर्ष्यं महापूरुष पादपांसुभिः निरस्त तेजः सु तत् एव शोभनम् ॥१३॥

कुणप आत्मवादिषु	शवरूप देहको ही आत्मा मानने वाले
असत्सु एतत् सर्वदा महत् विनिन्दा	दुष्ट पुरुषके लिए यह सर्वदा महापुरुषकी निन्दा करते रहना
आश्चर्यं न	आश्चर्यकी बात नहीं है ।
महापूरुष पादपांसुभिः	महापुरुषोंकी चरण-धूलि द्वारा
स ईर्ष्यं	ईर्ष्या सहित
निरस्त तेजः सु	जिनका तेज नष्ट कर दिया गया है
तत् एव शोभनं	(उनके लिए) वही (महापुरुष निन्दा) ही शोभा देती है ॥१३॥

यद् द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां
सकृत्प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत् ।
पवित्रकीर्तिं तमलङ्घ्यशासनं
भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ॥१४॥

यत् द्व्यक्षरं नाम गिरा ईरितं नृणां सकृत् प्रसङ्गात् अघं आशु हन्ति तत् पवित्रकीर्तिं तं अलङ्घ्यशासनं भवान् अहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ॥१४॥

यत् द्व्यक्षरं नाम	जिनका दो अक्षरका नाम (शिव)
प्रसङ्गात् सकृत्	प्रसंगवश एक बार मात्र*
गिरा ईरितं	वाणीसे लेनेपर
नृणां अघं	मनुष्यके पापोंको
आशु हन्ति	तुरन्त नष्ट कर देता है,
पवित्रकीर्ति	पुण्य-कीर्ति
अलङ्घ्य शासनं	जिनकी आज्ञाका कोई उलंघन नहीं कर सकता
अहो तत् शिवं	अहो उन भगवान शिवसे
द्वेष्टि	द्वेष करते हो,
शिवेतरः	(तुम) अमंगल रूप हो ॥१४॥

यत्पादपद्मं महतां मनोऽलिभि-
र्निषेवितं ब्रह्मरसासवार्थिभिः ।
लोकस्य यद्वर्षति चाशिषोऽर्थिन-
स्तस्मै भवान् द्रुह्यति विश्वबन्धवे ॥१५॥

यत् पादपद्मं महतां मनः अलिभिः निषेवितं ब्रह्मरस आसव अर्थिभिः लोकस्य यद् वर्षति च आशिषः अर्थिनः तस्मै भवान् द्रुह्यति विश्व बन्धवे ॥१५॥

ब्रह्मरस आसव	ब्रह्मरस रूपी मधु
अर्थिभिः	चाहने वाले
महतां मनः	महापुरुषोंके मन रूपी

*** विशेष :—**

द्व्यक्षरं नाम	केवल दो अक्षरका नाम मात्र,
प्रसङ्गात्	जान बूझकर नहीं, किसी प्रसंगमें आनेपर
सकृत्	बार-बार नहीं, केवल एक बार
गिरा ईरितं	मनसे नहीं, केवल वाणीसे लेनेपर
नृणां	मनुष्य मात्रके
अघं आशु हन्ति	कालान्तरमें नहीं, तुरन्त पापका नाश कर देता है,

इस श्लोकके शब्दोंमें ये अर्थ निहित हैं ।

अलिभिः भौरों से
यत् पादपद्मं जिनके चरण-कमलों का
निषेवितं सेवन किया जाता है,
अर्थिनः लोकस्य सकाम लोगोंको
यद् आशिषः
वर्षति जो उनके अभीष्ट देते हैं,
तस्मै
विश्वबन्धवे उन विश्वबन्धु (भगवान) से
भवान् द्रुह्यति आप वैर करते हो ॥१५॥

किं वा शिवाख्यमशिवं न विदुस्त्वदन्ये
ब्रह्मादयस्तमवकीर्य जटाः श्मशाने ।
तन्माल्यभस्मनृकपाल्यवसत्पिशाचै-
र्ये मूर्धभिर्दधति तच्चरणावसृष्टम् ॥१६॥

किं वा शिवाख्यं अशिवं न विदुः त्वत् अन्ये ब्रह्मा आदयः तं अवकीर्य जटाः श्मशाने तत् माल्य भस्म नृ कपाल्य अवसत् पिशाचैः ये मूर्धाभिः दधति तत् चरण अवसृष्टम् ॥१६॥

शिवाख्यं शिव नाम वाले
अशिवं अमंगल रूपका
किं वा त्वत् अन्ये क्या तुम्हारे अतिरिक्त दूसरे
न विदुः नहीं जानते ?
तं जटाः उनके जटा
अवकीर्य विखेरे
तत् श्मशाने उस श्मशान-भूमिमें
नृ कपाल्य मानवकी खोपड़ियों की माला (पहिने)
भस्म (चिता) भस्म लगाये
पिशाचैः
अवसत् पिशाचोंके साथ रहते
तत् चरण
अवसृष्टं उनके चरणोंसे गिरा
माल्य निर्माल्य
ये ब्रह्मा आदयः जो ब्रह्मा आदि हैं
मूर्धभिः दधति अपने सिरोंपर धारण करते हैं ।१६।

कर्णौ पिधाय निरयाद्यदकल्प ईशे
धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने ।

छिन्द्यात्प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चे-
ज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्स धर्मः ॥१७॥

कर्णौ पिधाय निरयात् यत् अकल्प ईशे धर्मावितरि असृणिभिः नृभिः अस्य माने छिन्द्यात् प्रसह्य रुशतीं असतीं प्रभुः चेत् जिह्वां असून् अपि ततः विसृजेत् स धर्मः ॥१७॥

असृणिभिः नृभिः	निरंकुश लोगों द्वारा
धर्मावितरि ईशे	धर्म रक्षक अपने स्वामीकी
अस्य माने	निन्दा करनेपर
यत् अकल्पः	(दण्ड देनेमें) यदि असमर्थ हो तो
कर्णौ पिधाय	कान बन्द करके
निरयात्	(वहां से) निकल जाय,
प्रभुः चेत्	(दण्ड देनेमें) समर्थ हो तो
प्रसह्य	बलपूर्वक
असतीं रुशतीं	दुष्टा बकवादी
जिह्वां छिन्द्यात्	जीभको काट दे,
ततः असून् अपि	इस (पापको रोकने) केलिए प्राण भी
विसृजेत्	दे दे,
स धर्मः	यही धर्म है ॥१७॥

अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं
न धारयिष्ये शितिकण्ठगर्हिणः ।
जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धिमन्धसो
जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ॥१८॥

अतः तव उत्पन्नं इदं कलेवरं न धारयिष्ये शितिकण्ठ गर्हिणः जग्धस्य मोहात् हि विशुद्धिं अन्धसः जुगुप्सितस्य उद्धरणं प्रचक्षते ॥१८॥

अतः शितिकण्ठ गर्हिणः	अतः भगवान नील-कण्ठके निन्दक
तव उत्पन्नं इदं कलेवरं	तुमसे उत्पन्न यह शरीर
न धारयिष्ये	नहीं धारण करूंगी,
हि	क्योंकि
मोहात्	
जुगुप्सितस्य	अज्ञानवश निन्दित
अन्धसः जग्धस्य	वस्तु खा लेनेपर
उद्धरणं	वमन कर देना
विशुद्धिम्	उसकी शुद्धि
प्रचक्षते	बतलायी गयी है ॥१८॥

न वेदवादाननुवर्तते मतिः
स्व एव लोके रमतो महामुनेः ।
यथा गतिर्देवमनुष्ययोः पृथक्
स्व एव धर्मे न परं क्षिपेत्स्थितः ॥१९॥

न वेद वादान् अनुवर्तते मतिः स्व एव लोके रमतः महामुनेः यथा गतिः देव मनुष्ययोः पृथक् स्व एव धर्मे न परं क्षिपेत् स्थितः ॥१९॥

स्व एव लोके	अपने ही स्वरूपमें
रमतः महामुनेः	रमण करने वाले महामुनियोंकी
मतिः	बुद्धि
वेद वादान्	वेदके (विधि-निषेध) विवादोंमें
अनुवर्तते न	प्रवृत्त नहीं होती,
यथा देव	
मनुष्ययोः	जैसे देवता और मनुष्योंकी
गतिः पृथक्	गति भिन्न-भिन्न होती है,
स्व एव	
धर्मे स्थितः	अपने ही धर्मपर स्थित रहे
परं न क्षिपेत्	दूसरे (धर्मपर स्थित) पर आक्षेप न करे ॥१९॥

कर्म प्रवृत्तं च निवृत्तमप्यृतं
वेदे विविच्योभयलिङ्गमाश्रितम् ।
विरोधि तद्योगपदैककर्तरि
द्वयं तथा ब्रह्मणि कर्म नर्च्छति ॥२०॥

कर्म प्रवृत्तं च निवृत्तं अपि ऋतं वेदे विविच्य उभय लिङ्गम् आश्रितं विरोधि तत् योग पदैक कर्तरि द्वयं तथा ब्रह्मणि कर्म न ऋच्छति ॥२०॥

कर्म प्रवृत्तं	कर्म प्रवृत्ति रूप (यज्ञादि)
च निवृत्तं अपि	चाहे निवृत्ति रूप ही हो
ऋतं	(दोनों ही) सत्य (ठीक) हैं ।
वेदे विविच्य	वेदमें विवेचन करके
उभय लिङ्गम्	दोनोंके चिह्न (राग-वैराग्य) वाले

आश्रितं	अधिकारी (बतलाये) हैं,
तत् विरोधि	उनके परस्पर विरोधी होनेसे
द्वयं कर्म	दोनों प्रकारके कर्म
तथा योग पदैक	उचित रूपसे एक साथ
कर्तरि	एक कर्ताके लिए तथा
ब्रह्मणि	ब्रह्मस्वरूप (शिव) के लिए
ऋच्छति न	आवश्यक नहीं है ॥२०॥

मा वः पदव्यः पितरस्मदास्थिता
या यज्ञशालासु न धूमवर्त्मभिः ।
तदन्नतृप्तैरसुभृद्भिरीडिता
अव्यक्तलिङ्गा अवधूतसेविताः ॥२१॥

मा वः पदव्यः पितर अस्मत् आस्थिता या यज्ञशालासु न धूमवर्त्मभिः तत् अन्न तृप्तैः असुभृत्भिः ईडिता अव्यक्तलिङ्गा अवधूत सेविताः ॥२१॥

पितर	पिताजी
अव्यक्तलिङ्गा	अव्यक्त चिह्न
अवधूत सेविताः	अवधूतों (महापुरुषों) से सेवित
अस्मत्	हम (गौरवमय)
पदव्यः	
आस्थिता	जिस पदपर स्थित हैं
धूमवर्त्मभिः	धूम्रमार्ग (कर्मकाण्ड में
यज्ञशालासु	यज्ञशालामें
या तत् अन्न	
तृप्तैः	जो उसी (यजमान) के अन्नसे तृप्त
असुभृतभिः	प्राण पोषकोंसे
ईडिता	स्तुत होता है (ऐसे)
वः मा	आपको (वह गौरव) प्राप्त नहीं है ॥२१॥

नैतेन देहेन हरे कृतागसो
देहोद्भवेनालमलं कुजन्मना ।
व्रीडा ममाभूत्कुजनप्रसङ्गत-
स्तज्जन्म धिग् यो महतामवद्यकृत् ॥२२॥

न एतेन देहेन हरे कृत आगसः देह उद्भवेन अलं अलं कुजन्मना व्रीडा मम अभूत् कुजन प्रसङ्गतः तत् जन्म धिक् यः महतां अवद्यकृत् ॥२२॥

हरे कृत आगसः	भगवान शिवका अपराध करने वालेके
देह उद्भवेन	शरीरसे उत्पन
एतेन देहेन	इस शरीरसे
अलं अलं	बस बस,
कुजन प्रसङ्गतः	दुर्जनके द्वारा प्राप्त
कुजन्मना	इस निन्दित जन्मसे
मम व्रीडा अभूत	मुझे लज्जा लगेगी,
तत् जन्म धिक्	उस जन्मको धिक्कार
यः महतां	जो महापुरुषोंका
अवद्यकृत्	अपराध करने वाला है ॥२२॥

गोत्रं त्वदीयं भगवान् वृषध्वजो
दाक्षायणीत्याह यदा सुदुर्मनाः ।
व्यपेतनर्मस्मितमाशु तद्वचहं
व्युत्स्रक्ष्य एतत्कुणपं त्वदङ्गजम् ॥२३॥

गोत्रं त्वदीयं भगवान् वृषध्वजः दाक्षायणी इति आह यदा सुदुर्मनाः व्यपेत नर्मस्मितं आशु तत् हि अयं व्युत्स्रक्ष्य एतत् कुणपं त्वदङ्गजम् ॥२३॥

त्वदीयं गोत्रं	तुम्हारे गोत्रके कारण
भगवान्	
वृषध्वजः	भगवान वृषभध्वज
नर्मस्मितं	व्यंगभरी मुस्कराहटसे
यदा दाक्षायणी	जब (मुझे) दाक्षायणी
इति आह	इस (नाम) से पुकारेंगे
व्यपेत सुदुर्मनाः	(तब) हंसी भूलकर (मैं) अत्यन्त दुःखी हो जाऊंगी ।
हि तत्	अतः वह
आशु एतत्	शीघ्र इस
त्वदङ्गजं कुणपं	तुमसे उत्पन्न शव-तुल्य देहको
व्युत्स्रक्ष्य	त्याग दूँगी ॥२३॥

मैत्रेय उवाच-

इत्यध्वरे दक्षमनूद्य शत्रुहन्
क्षितावुदीचीं निषसाद शान्तवाक् ।
स्पृष्ट्वा जलं पीतदुकूलसंवृता
निमील्य दृग्योगपथं समाविशत् ॥२४॥

इति अध्वरे दक्षं अनूद्य शत्रुहन् क्षिताः उदीचीं निषसाद शान्तवाक् स्पृष्ट्वा जलं पीतदुकूल संवृता निमील्य दृक् योगपथं समाविशत् ॥२४॥

शत्रुहन्	शत्रुनाशक विदुर !	**शान्तवाक्**	
अध्वरे	यज्ञशालामें	**निषसाद**	मौन होकर बैठ गयीं,
दक्षं इति अनूद्य	दक्षसे इस प्रकार कहकर	**जलं स्पृष्ट्वा**	जलसे आचमन करके,
पीतदूकूल संवृता	पीले दुपट्टे को ओढ़कर	**दृक् निमील्य योगपथं**	नेत्र बन्द करके,
उदीचीं क्षिताः	उत्तर दिशामें	**समाविशत्**	योग-मार्गमें प्रविष्ट हुईं ॥२४॥

कृत्वा समानावनिलौ जितासना
सोदानमुत्थाप्य च नाभिचक्रतः ।
शनैर्हृदि स्थाप्य धियोरसि स्थितं
कण्ठाद् भ्रुवोर्मध्यमनिन्दितानयत् ॥२५॥

कृत्वा समानाः अनिलौ जितासना स उदानं उत्थाप्य च नाभिचक्रतः शनैः हृदि स्थाप्य धिया उरसि स्थितं कण्ठात्, भ्रुवोः मध्यं अनिन्दिता अनयत् ॥२५॥

अनिन्दिता जितासनाः	निर्दोष सतीने आसन स्थिर किया,	**अनिलौ समानाः**	(प्राणायाम द्वारा) प्राण-अपान दोनों को समान

कृत्वा	करके
नाभिचक्रतः	नाभिचक्रसे
स उदानं	उनके साथ उदान
	भी लेकर
धिया हृदि	
स्थाप्य	बुद्धिके द्वारा उनको हृदयमें लाकर
उरसि स्थितं	
कण्ठात्	हृदयमें स्थितको कण्ठमें होकर
भ्रुवोः मध्यं	भ्रूमध्य (आज्ञा चक्र) में
अनयत्	ले आयीं ॥२५॥

एवं स्वदेहं महतां महीयसा
मुहुः समारोपितमङ्कमादरात् ।
जिहासती दक्षरुषा मनस्विनी
दधार गात्रेष्वनिलाग्निधारणाम् ॥२६॥

एवं स्वदेहं महतां महीयसा मुहुः समारोपितं अङ्कं आदरात् जिहासती दक्षरुषा मनस्विनी दधार गात्रेषु अनिल अग्निधारणाम् ॥२६॥

एवं दक्षरुषा	इस प्रकार दक्षसे रुष्ट होकर
मनस्विनी	मनस्विनी (सती) ने
महतां महीयसा	महानोंसे भी महान् (भगवान शंकर) द्वारा
मुहुः आदरात्	बार-बार आदर सहित
अङ्कम्	
समारोपितं	गोदमें बैठाये गये
स्वदेहं	अपने शरीरको
जिहासती	त्यागनेके लिए
गात्रेषु	शरीरमें
अनिल अग्नि-	वायु और अग्निकी
धारणां दधार	धारणा की ॥२६॥

ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासव
जगद्गुरोश्चिन्तयती न चपारम् ।
ददर्श देहो हतकल्मषः सती
सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना ॥२७॥

ततः स्वभर्तुः चरणाम्बुज आसवं जगत् गुरोः चिन्तयती न च अपरं ददर्श देहः हतकल्मषः सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिजा अग्निना ॥२७॥

ततः जगद्गुरोः	फिर जगद्गुरु
स्वभर्तुः	अपने पतिके
चरणाम्बुज	
आसवं	चरणारविन्द
	मकरन्दका
चिन्तयती	चिन्तन करती
अपरं च न	दूसरे किसीका भी
	नहीं,
हतकल्मषः	सर्वथा निष्पाप हुई
सती ददर्श	सतीने (शरीरसे
	पृथक होकर) देख,
सद्यः देहः	तत्काल (उनका)
	शरीर
समाधिजा	
अग्निना	समाधिसे उत्पन्न
	अग्निसे
प्रजज्वाल	जल उठा ॥२७॥

तत्पश्यतां खे भुवि चाद्भुतं महद्
हाहेति वादः सुमहानजायत ।
हन्त प्रिया दैवतमस्य देवी
जहावसून् केन सती प्रकोपिता ॥२८॥

तत् पश्यतां खे भुवि च अद्भुतं महत् हाहेति वादः सुमहान् आजायत
हन्त प्रिया दैवतमस्य देवी जहाः असून् केन सती प्रकोपिता ॥२८॥

तत् महत्	
अद्भुतं	उस महाश्चर्यको
पश्यतां सुमहान्	देखकर बड़ा भारी
हाहेति वादः	हा-हाकार
अजायत	होने लगा,
खे भुवि च	आकाशमें और
	पृथ्वीपर (यही चर्चा
	चलने लगी)
हन्त दैवतमस्य	'हाय, देवदेव
	महादेवकी
प्रिया देवी सती	प्रिया देवी सतीने
केन प्रकोपिता	प्रजापति दक्ष द्वारा
	क्रुद्ध करनेपर
असून् जहाः	प्राण त्याग
जहौ	दिये ॥२८॥

अहो अनात्म्यं महदस्य पश्यत
प्रजापतेर्यस्य चराचरं प्रजाः ।
जहावसून् यद्विमताऽऽत्मजा सती
मनस्विनी मानमभीक्ष्णमर्हति ॥२९॥

अहो अनात्म्यं महत् अस्य पश्यत प्रजापतेः यस्य चराचरं प्रजाः जहाः असून् यत् विमता आत्मजा सती मनस्विनी मानं अभीक्ष्णं अर्हति ॥२९॥

अहो	
चराचरं	अरे जिसकी सब चराचर
प्रजाः	प्रजा है
अस्य प्रजापतेः	उस इस प्रजापति (दक्ष) की
अनात्म्यं पश्यत	दुष्टता तो देखो,
सती मनस्विनी	सती (तो) मनस्विनी थीं,
अभीक्ष्णं मानं	
अर्हति	बराबर सम्मान पाने योग्य थीं
यत् आत्मजा	
विमता	जिसकी पुत्री होने पर भी उपेक्षिता होकर
असून् जहाः	प्राण त्याग दिये ॥२९॥

सोऽयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक् च
लोकेऽपकीर्तिं महतीमवाप्स्यति ।
यदङ्गजां स्वां पुरुषद्विडुद्यतां
न प्रत्यषेधन्मृतयेऽपराधतः ॥३०॥

सः अयं दुर्मर्षहृदयः ब्रह्मध्रुक् च लोके अपकीर्तिं महतीम् अवाप्स्यति यत् अङ्गजां स्वां पुरुषद्विट् उद्यतां न प्रत्यषेधत् मृतये अपराधतः ॥३०॥

सः अयं	वह यह (दक्ष)
दुर्मर्षहृदयः	असहिष्णु चित्त
च ब्रह्मध्रुक्	और ब्राह्मण-द्रोही है,
यत् स्वां	
अङ्गजां	क्योंकि अपनी पुत्रीके
पुरुषद्विट्	उसके पतिसे द्वेष करने पर
अपराधतः	(इसीके) अपराधसे
मृतये उद्यतां	मरनेको उद्यत होनेपर
प्रत्यषेधत् न	रोका नहीं,
लोके महतीं	(अतः) संसारमें बड़ी भारी
अपकीर्तिं	
अवाप्स्यति	अपकीर्ति पावेगा ॥३०॥

वदत्येवं जने सत्या दृष्ट्वासुत्यागमद्भुतम् ।
दक्षं तत्पार्षदा हन्तुमुदतिष्ठन्नुदायुधाः ॥३१॥

वदति एवं जने सत्या दृष्ट्वा असुत्यागं अद्भुतं दक्षं तत् पार्षदाः हन्तुं उदतिष्ठन् उदायुधाः ॥३१॥

जने एवं वदति	लोगोंके यह कहते समय	**दक्षं हन्तुं उदायुधाः**	दक्षको मारनेके लिए
सत्या अद्भुतं असुत्यागं दृष्ट्वा	सतीका अद्भुत प्राणत्याग देखकर	**उदतिष्ठन्**	हथियार उठाकर खड़े हो गये ॥३१॥
तत् पार्षदाः	उनके पार्षद (भूत-प्रेत)		

तेषामापततां वेगं निशाम्य भगवान् भृगुः ।
यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहाव ह ॥३२॥

तेषां आपततां वेगं निशाम्य भगवान् भृगुः यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहाव ह ॥३२॥

तेषां आपततां	उनके आक्रमणका	**यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा**	यज्ञके विघ्न नाशक मन्त्रोंसे
वेगं निशाम्य	वेग देखकर	**दक्षिणाग्नौ**	दक्षिणाग्निमें
भगवान् भृगुः	समर्थ भृगुजीने	**जुहाव ह**	आहुति दे दी ॥३२॥

अध्वर्युणा हूयमाने देवा उत्पेतुरोजसा ।
ऋभवो नाम तपसा सोमं प्राप्ताः सहस्रशः ॥३३॥

अध्वर्युणा हूयमाने देवा उत्पेतुः ओजसा ऋभवः नाम तपसा सोमं प्राप्ताः सहस्रशः ॥३३॥

अध्वर्युणा	आध्वर्यु द्वारा
हूयमाने	हवन करनेपर
ऋभवः नाम	ऋभु नामक
तपसा सोमं	
प्राप्ताः	तपस्या करके चन्द्र-लोक पहुँचे
ओजसा	
सहस्रशः देवाः	तेजस्वी हजारों देवता
उत्पेतुः	प्रकट हो गये ॥३३॥

तैरलातायुधैः सर्वे प्रमथाः सहगुह्यकाः ।
हन्यमाना दिशो भेजुरुशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥३४॥

तैः अलात आयुधैः सर्वे प्रमथाः सहगुह्यकाः हन्यमानाः दिशः भेजुः उशद्भिः ब्रह्मतेजसा ॥३४॥

तैः ब्रह्मतेजसा	उन ब्रह्मतेज
उशद्भिः	अभिष्टयों द्वारा
अलात आयुधैः	जलती लकड़ियोंसे
हन्यमानाः	मारे जाते हुए
सर्वे प्रमथाः	सब भूत
सहगुह्यकाः	यक्षोंके साथ
दिशः भेजुः	चारों ओर भाग गये ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे सतीदेहोत्सर्गो नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

भवो भवान्या निधनं प्रजापते-
रसत्कृताया अवगम्य नारदात् ।
स्वपार्षदसैन्यं च तदध्वरर्भुभि-
र्विद्रावितं क्रोधमपारमादधे ॥१॥

भवः भवान्या निधनं प्रजापतेः असत् कृताया अवगम्य नारदात् स्वपार्षद सैन्यं च तत् अध्वर ऋभुभिः विद्रावितं क्रोधं अपारं आदधे ॥१॥

प्रजापतेः असत् कृताया	प्रजापति दक्ष द्वारा असम्मानिता	**स्वपार्षद सैन्यं**	अपने पार्षदोंकी सेना
भवान्या निधनं	सतीका मरण	**विद्रावितं**	भगा दी गयी (यह)
च तत् अध्वर	तथा उस यज्ञके	**नारदात् भवः**	नारदसे शंकरजीने
ऋभुभिः	ऋभुओं द्वारा	**अवगम्य**	जानकर
		अपारं क्रोधं आदधे	अपार क्रोध किया ॥१॥

क्रुद्धः सुदष्टोष्ठपुटः स धूर्जटि-
र्जटां तडिद्वह्निसटोग्ररोचिषम् ।
उत्कृत्य रुद्रः सहसोत्थितो हसन्
गम्भीरनादो विससर्ज तां भुवि ॥२॥

क्रुद्धः सुदष्ट ओष्ठपुटः स धूर्जटिः जटां तडित् वह्निसटा उग्ररोचिषं उत्कृत्य रुद्रः सहसा उत्थितः हसन् गम्भीरनादः विससर्ज तां भुवि ॥२॥

स धूर्जटिः क्रुद्धः	उन धूर्जटिने क्रोधमें भरकर
ओष्ठपुटः सुदष्टः	ओठोंको जोरसे काटा,
तडित् वह्निसटा	विद्युदग्निकी चाबुक के समान
उग्ररोचिषं जटां	उग्रतेज वाली जटा
उत्कृत्य सहसा उत्थितः	उखाड़कर सहसा उठे और
गम्भीरनादः हसन्	गम्भीर स्वरसे अट्टहास करते
तां भुवि विससर्ज	उसे पृथ्वीपर पटक दिया ॥२॥

ततोऽतिकायस्तनुवा स्पृशन्दिवं
सहस्रबाहुर्घनरुक् त्रिसूर्यदृक् ।
करालदंष्ट्रो ज्वलदग्निमूर्धजः
कपालमाली विविधोद्यतायुधः ॥३॥

ततः अतिकायः तनुवा स्पृशन् दिवं सहस्रबाहुः घनरुक् त्रिसूर्यदृक् कराल दंष्ट्रः ज्वलत् अग्निमूर्धजः कपालमाली विविध उद्यत आयुधः ॥३॥

ततः	उस (जटा) से
अतिकायः	बहुत बड़े शरीरका
तनुवा दिवं स्पृशन्	शरीरसे आकाशको छूता,
सहस्रबाहुः	हजार भुजाओं वाला
घनरुक्	मेघोंके समान काले वर्णका,
त्रिसूर्यदृक्	तीन सूर्योंके समान त्रिनेत्र,
कराल दंष्ट्रः	भयानक दाढ़ों वाला,
ज्वलत् अग्नि-मूर्धजः	प्रज्वलित अग्निके समान केशों वाला,
कपालमाली	मुण्डमाला पहिने,
विविध उद्यत आयुधः	अनेक प्रकारके हथियार उठाये (पुरुष उत्पन्न हुआ) ॥३॥

तं किं करोमीति गृणन्तमाह
बद्धाञ्जलिं भगवान् भूतनाथः ।

दक्षं सयज्ञं जहि मद्भटानां
त्वमग्रणी रुद्र भटांशको मे ॥४॥

तं किं करोमि इति गृणन्तं आह बद्धाञ्जलिं भगवान् भूतनाथः दक्षं सयज्ञं जहि मत्भटानां त्वं अग्रणीः रुद्र भट अंशकः मे ॥४॥

तं बद्धाञ्जलि	उसने हाथ जोड़े (पूछा)
किं करोमि	'क्या (सेवा) करूं ?'
इति गृणन्तं	ऐसा कहते हुएसे
भगवान्	
भूतनाथः आह	भगवान भूतनाथने कहा
भट	वीर रुद्र !
सयज्ञं दक्षं	'यज्ञके साथ दक्षको
जहि	नष्ट करदो ।
रुद्र त्वं मे अंशकः	रुद्र ! तुम मेरे अंश हो,
मत्भटानां	
अग्रणीः	(मेरे) गणोंके अधिनायक हो ॥४॥

आज्ञप्त एवं कुपितेन मन्युना
स देवदेवं परिचक्रमे विभुम् ।
मेने तदाऽऽत्मानमसङ्गरंहसा
महीयसां तात सहः सहिष्णुम् ॥५॥

आज्ञप्त एवं कुपितेन मन्युना स देवदेवं परिचक्रमे विभुम् मेने तदा आत्मानं असङ्ग रंहसा महीयसां तात सहः सहिष्णुम् ॥५॥

तात	तात विदुर !
एवं मन्युना	इस प्रकार क्रोधसे
कुपितेन	
आज्ञप्त	क्रुद्ध (शंकरजीके) आज्ञा देनेपर
स विभुं देवदेवं	उसने भगवान महादेवकी
परिचक्रमे	परिक्रमा की,
तदा आत्मानं	उस समय अपनेको
महीयसां रंहसा	बड़े-बड़े वेगको
असंग सहिष्णुं	अप्रभावित रहते सह लेनेमें
सहः मेने	समर्थ माना ॥५॥

अन्वीयमानः स तु रुद्रपार्षदै-
र्भृशं नदद्भिर्व्यनदत्सुभैरवम् ।
उद्यम्य शूलं जगदन्तकान्तकं
स प्राद्रवद् घोषणभूषणाङ्घ्रिः ॥६॥

अन्वीयमानः स तु रुद्रपार्षदैः भृशं नदद्भिः व्यनदत्सुभैरवं उद्यम्य जगत् अन्तक अन्तकं स प्राद्रवत् घोषण भूषण अङ्घ्रिः ॥६॥

घोषण भूषण	बजने वाले आभूषण
अङ्घ्रिः	पैरोमें पहिने
सुभैरवं	अत्यन्त भयङ्कर
स तु व्यनदत्	उसने तो गर्जना की और
जगत् अन्तक	संसारको मारने वाले कालको
अन्तकं शूलं	भी मार देने वाला त्रिशूल
उद्यम्य	उठाकर
स प्राद्रवत्	वह (दक्षके यज्ञ-शालाकी ओर) दौड़ा,
भृशं नदद्भिः	बार-बार गर्जना करते
रुद्रपार्षदैः	शंकरजीके गणों द्वारा
अन्वीयमानः	उसका अनुगमन हो रहा था ॥६॥

अथर्त्विजो यजमानः सदस्याः
ककुभ्युदीच्यां प्रसमीक्ष्य रेणुम् ।
तमः किमेतत्कुत एतद्रजोऽभू-
दिति द्विजा द्विजपत्न्यश्च दध्युः ॥७॥

अथ ऋत्विजः यजमानः सदस्याः ककुभिः उदीच्यां प्रसमीक्ष्य रेणुँ तमः किं एतत् कुत एतत् रजः अभूत् इति द्विजाः द्विजपत्न्यः च दध्युः ॥७॥

अथ उदीच्यां ककुभिः	इधर उत्तर दिशामें
रेणुं प्रसमीक्ष्य	धूलि (उठती) देखकर
ऋत्विजः यजमानः	ऋत्विक, यजमान,
सदस्याः द्विजाः	सदस्य ब्राह्मण,
च द्विजपत्न्यः	और ब्राह्मणोंकी पत्नियाँ
दध्युः	विचार करने लगे

एतत् तमः किं	'यह अन्धकार कैसा है ?	**एतत् रजः कुत अभूत**	यह धूलि कहांसे उठ रही है ? ॥७॥

वाता न वान्ति न हि सन्ति दस्यवः
प्राचीनबर्हिर्जीवति होग्रदण्डः ।
गावो न काल्यन्त इदं कुतो रजो
लोकोऽधुना किं प्रलयाय कल्पते ॥८॥

वाता न वान्ति न हि सन्ति दस्यवः प्राचीनबर्हिः जीवति ह उग्रदण्डः गावः न काल्यन्त इदं कुतः रजः लोकः आधुना किं प्रलयाय कल्पते ॥८॥

वाता न वान्ति	आँधी नहीं चल रही है,	**गावः काल्यन्त न**	गायोंके (वनसे) आनेका समय नहीं है,
दस्यवः न सन्ति	(कहीं) डाकू भी नहीं हैं	**इदं रजः कुतः**	(फिर) यह धूलि कहांसे उठ रही है ?
हि उग्रदंडः	क्योंकि कठोर दण्ड देने वाले	**किं अधुना**	क्या इस समय
प्राचीन बर्हिः जीवति ह	राजा प्राचीन वर्हि जीवित ही हैं,	**लोकः प्रलयाय कल्पते**	लोकोंकी प्रलय तो नहीं हो रही है? ॥८॥

प्रसूतिमिश्राः स्त्रिय उद्विग्नचित्ता
ऊचुर्विपाको वृजिनस्यैष तस्य ।
यत्पश्यन्तीनां दुहितॄणां प्रजेशः
सुतां सतीमवदध्यावनागाम् ॥९॥

प्रसूति मिश्राः स्त्रिय उद्विग्न चित्ताः ऊचुः विपाकः वृजिनस्य एष तस्य यत् पश्यन्तीनां दुहितृणां प्रजेशः सुतां सतीं अवदध्याः अनागाम् ॥९॥

प्रसूति मिश्रा (दक्षपत्नी) प्रसूति प्रभृत
स्त्रिय उद्विग्न चित्ताः स्त्रियां व्याकुल चित्त
उचुः बोलीं
यत् प्रजेशः दुहितृणां क्योंकि प्रजापति (दक्ष) ने अपनी पुत्रियोंके
पश्यन्तीनां अनागां सुतां देखते हुए अपनी निरपराध पुत्री,
सतीं अवदध्याः सतीका अनादर किया,
एष तस्य वृजिनस्य विपाकः यह उसी पापका फल है ॥९॥

यस्त्वन्तकाले व्युप्तजटाकलापः
स्वशूलशूच्यर्पितदिग्गजेन्द्रः ।
वितत्य नृत्यत्युदितास्त्रदोर्ध्वजा-
नुच्चाट्टहासस्तनयित्नुभिन्नदिक् ॥१०॥

यः तु अन्तकाले व्युप्त जटा कलापः स्वशूल शूच्य अर्पित दिक् गजेन्द्रः वितत्य नृत्यति उदित अस्त्र दोः ध्वजान् उच्चाट हासः तनयित्नु भिन्न दिक् ॥१०॥

अन्तकाले यः तु प्रलय कालमें जो (रुद्र) तो
व्युप्त जटा कलापः जटाएँ विखेरे
स्वशूल शूच्य अपने त्रिशूलकी नोकपर
दिक् गजेन्द्रः अर्पितः दिग्गजोंको बींधकर
उदित अस्त्र दोः अस्त्र लिए भुजाओंको
ध्वजान् वितत्य ध्वजाके समान फैलाकर
नृत्यति नाचते हैं (एवं)
उच्चाट हासः दिक् भिन्न तनयित्नु अट्टहाससे दिशाओंको विदीर्ण करते हैं ॥१०॥

अमर्षयित्वा तमसह्यतेजसं
मन्युप्लुतं दुर्विषहं भ्रुकुट्या ।

करालदंष्ट्राभिरुदस्तभागणं
स्यात्स्वस्ति किं कोपयतो विधातुः ॥११॥

अमर्षयित्वा तंत्र असह्य तेजसं मन्युप्लुतं दुर्विषहं भ्रुकुट्या करालदंष्ट्राभिः उदस्त भागणं स्यात् स्वस्ति किं कोपयतः विधातुः ॥११॥

तं असह्य तेजसं	उन असह्य तेजा,
मन्युप्लुत भ्रुकुट्या	क्रोधसे टेढी भौंहे किये
दुर्विषहं	असहनीय,
कराल-दंष्ट्राभिः	भयानक दाढ़ोंसे
भागणं उदस्त	तारा-मंडलको अस्त-व्यस्त कर देनेवालेको
अमर्षयित्वा	कुपित करके
कोपयतः	उनको कुपित करने वाला
विधातुः किं स्वस्ति स्यात्	विधाता भी क्या सकुशल रह सकता है ॥११॥

बहुवेवमुद्विग्नदृशोच्यमाने
जनेन दक्षस्य मुहुर्महात्मनः ।
उत्पेतुरुत्पाततमाः सहस्रशो
भयावहा दिवि भूमौ च पर्यक् ॥१२॥

बहु एवं उद्विग्न दृशः उच्यमाने जनेन दक्षस्य मुहुः महात्मनः उत्पतुः उत्पाततमाः सहस्रशः भय आवहा दिवि भूमौ च पर्यक् ॥१२॥

महात्मनः दक्षस्य	महात्मा दक्षके यहाँ
उद्विग्न दृशः जनेन	व्याकुल नेत्र लोगों द्वारा
एवं बहु उच्यमाने	ऐसी बहुत बातें कही जा रही थीं
सहस्रशः उत्पाततमाः	(तभी) हजारों महान अपशकुन
दिवि च भूमौ	आकाश और पृथ्वीमें
पर्यक् उत्पेतुः	चारों ओर होने लगे ॥१२॥

तावत्स रुद्रानुचरैर्मखो महान्
नानायुधैर्वामनकैरुदायुधैः ।
पिङ्गैः पिशङ्गैर्मकरोदराननैः
पर्याद्रवद्भिर्विदुरान्वरुध्यत ॥१३॥

तावत् स रुद्र अनुचरैः मखः महान् नाना आयुधैः वामनकैः उदायुधैः पिङ्गैः पिशङ्गैः मकर उदर आननैः परि अद्रवत्भिः विदुर अन्वरुध्यत ॥१३॥

विदुर	विदुर !
तावत् स	तब तक वह
महान् मखः	महायज्ञ (शाला)
परि अद्रवत्भिः	चारों ओर भागते लोगों सहित
नाना आयुधैः	अनेक प्रकारके शस्त्र
उदायुधैः	उठाये
वामनकैः पिङ्गैः	वामन, पीले,
पिशङ्गैः	भूरे रंग वाले,
मकर उदर आननैः	मगरके समान पेट और मुख वाले,
रुद्र अनुचरैः	रुद्रके सेनकों द्वारा
अन्वरुध्यत	घेर लिया गया ॥१३

केचिद्बभञ्जुः प्राग्वंशं पत्नीशालां तथापरे ।
सद आग्नीध्रशालां च तद्विहारं महानसम् ॥१४॥

केचित् वभञ्जुः प्राग्वंशं पत्नी शालां तथा अपरे सद आग्नीध्रशालां च तत् विहारं महानसम् ॥१४॥

केचित्	किसीने
प्राग्वंशं	प्राग्वंश (पूर्व और पश्चिमके खम्भोंके बीच रखे आड़े डंडे)
वभञ्जुः	तोड़ दिये,
तथा अपरे	तथा दूसरोंने
पत्नी शालां	(यज्ञ शालाके पश्चिम बनी)पत्नी-शाला (नष्ट कर दी)
सद	यज्ञशालाके सामनेका मंडप
च आग्नी-ध्रशालां	और अग्निशालाको
तत् बिहारं	उस (यजमान) के गृहको तथा
महानसं	रसोईघरको (नष्ट कर दिया) ॥१४॥

रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तथैकेऽग्नीननाशयन् ।
कुण्डेष्वमूत्रयन् केचिद्बिभिदुर्वेदिमेखलाः ॥१५॥

रुरुजुः यज्ञपात्राणि तथा एके अग्नीन् अनाशयन् कुण्डेषु अमूत्रयन् केचित् बिभिदुः वेदिमेखलाः ॥१५॥

यज्ञपात्राणि	यज्ञके बर्तनोंको	**कुण्डेषु अमूत्रयन्**	कुण्डोंमें पेशाबकर दिया,
रुरुजुः	फोड़ दिये,		
तथा एके	तथा किन्हींने	**केचित्**	
अग्नीन्		**वेदिमेखलाः**	किन्हीने वेदीकी सीमाके सूत्र
अनाशयन्	अग्नियां बुझा दीं,		
		बिभिदुः	तोड़ दिये ॥१५॥

अबाधन्त मुनीनन्य एके पत्नीरतर्जयन् ।
अपरे जगृहुर्देवान् प्रत्यासन्नान् पलायितान् ॥१६॥

अबाधन्त मुनीन् अन्य एके पत्नीन् अतर्जयन् अपरे जगृहुः देवान् प्रत्यासन्नान् पलायितान् ॥१६॥

अन्य मुनीन्	दूसरोंने मुनियोंको	**अपरे**	
अबाधन्त	तंग किया,	**प्रत्यासन्नान्**	दूसरोंने अपने समीपसे
एके पत्नीन्	किन्हींने ब्राह्मण-पत्नियोंको	**पलायितान्**	
अतर्जयन्	धमकाया,	**देवान्**	भागते देवताओंको
		जगृहुः	पकड़ लिया ॥१६॥

भृगुं बबन्ध मणिमान् वीरभद्रः प्रजापतिम् ।
चण्डीशः पूषणं देवं भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत् ॥१७॥

भृगुं बबन्ध मणिमान् वीरभद्रः प्रजापतिं चण्डीशः पूषणं देवं भगं नन्दीश्वरः अग्रहीत् ॥१७॥

मणिमान् भृगुं बबन्ध मणिमानने भृगुको बाँध लिया,

प्रजापतिं वीरभद्रः प्रजापति (दक्ष) को वीरभद्रने,

पूषणं देवं चण्डीशः पूषा देवताको चण्डीशने और

भगं नन्दीश्वरः अग्रहीत् भग देवताको नन्दीश्वरने पकड़ लिया ॥१७॥

सर्व एवर्त्विजो दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः ।
तैरर्द्यमानाः सुभृशं ग्रावभिर्नैकधाद्रवन् ॥१८॥

सर्व एव ऋत्विजः दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः तैः अर्द्यमानाः सुभृशं ग्रावभिः न एकधा अद्रवन् ॥१८॥

सर्व एव ऋत्विजः सभी

सदस्याः ऋत्विक्, सदस्य,

सदिवौकसः देवताओंके साथ

दृष्ट्वा यह (उत्पात) देखकर और

तैः सुभृशं उन (शिवगणों) की बार-बार

ग्रावभिः अर्द्यमानाः पत्थरोंकी वर्षासे घायल होकर

न एकधा अद्रवन् जहां-तहां भाग गये ॥१८॥

जुह्वतः स्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान् भवः ।
भृगोर्लुलुञ्चे सदसि योऽहसच्छ्मश्रु दर्शयन् ॥१९॥

जुह्वतः स्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान् भवः भृगोः लुलुञ्चे सदसि यः अहसन् श्मश्रुदर्शयन् ॥१९॥

सदसि यः (प्रजापतियोंकी) सभामें जो

श्मश्रु दर्शयन् दाढ़ी दिखलाते (सहलाते)

भगवान भवः भगवान शंकर को

अहसन् हँसे थे (उन)

स्रुवहस्तस्य स्रुवा हाथमें लेकर

जुह्वतः भृगोः आहुत देते भृगुकी

श्मश्रूणि लुलुञ्चे दाढ़ी उखाड़ ली॥१९॥

भगस्य नेत्रे भगवान् पातितस्य रुषा भुवि ।
उज्जहार सदःस्थोऽक्ष्णा यः शपन्तमसूसुचत् ॥२०॥

भगस्य नेत्रे भगवान् पातितस्य रुषा भुवि उज्जहार सदःस्थः अक्ष्णा यः शपन्तं असूसुचत् ॥२०॥

रुषा भुवि पातितस्य	क्रोध पूर्वक पृथ्वीमें पटके
भगस्य नेत्रे भगवान्	भग देवाताके नेत्र
उज्जहार	भगवान् (वीरभद्रने) निकाल लिए,
यः सदःस्थः	जो (उस) सभामें
शपन्तं अक्ष्णा असूसुचत्	शाप देते समय नेत्रसे (संकेतसे दक्षको) उकसाया था ॥२०॥

पूष्णश्चापातयद्दन्तान् कालिङ्गस्य यथा बलः ।
शप्यमाने गरिमणि योऽहसद्दर्शयन्दतः ॥२१॥

पूष्णः च अपातयत् दन्तान् कालिङ्गस्य यथा बलः शप्यमाने गरिमणि यः अहसत् दर्शयन् दतः ॥२१॥

गरिमणि शप्यमाने	महादेवजीको शाप देते समय
यः दतः दर्शयन् अहसत्	जो दाँत दिखाकर हँसते थे (उन)
पूष्णः च दन्तान्	पूषा देवताके दाँत
यथा कालिङ्गस्य	जैसे कलिङ्गराजके
बलः	बलरामजीने (तोड़े थे)*
अपातयत्	तोड़ दिये ॥२१॥

आक्रम्योरसि दक्षस्य शितधारेण हेतिना ।
छिन्दन्नपि तदुद्धर्तुं नाशक्नोत् त्र्यम्बकस्तदा ॥२२॥

आक्रम्य उरसि दक्षस्य शितधारेण हेतिना छिन्दन् अपि तत् उद्धर्तुं न अशक्नोत् त्र्यम्बकः तदा ॥२२॥

---

* यह उपमा बहुत अटपटी है । दक्ष-यज्ञध्वंस प्रथम कल्पके सतयुगमें हुआ । वहाँकी घटनाके सहस्रों कल्प पीछेके वर्तमान चतुर्युगीकी घटनासे उपमित किया गया ।

दक्षस्य उरसि आक्रम्य	दक्षकी छातीपर चढ़कर
तदा त्र्यम्बकः शितधारेण हेतिना	तब वीरभद्र तीक्ष्ण धारके खांडेसे
छिन्दन् अपि तत् उद्धर्तुं	काटनेपर भी उनका सिर उखाड़ने में
न अशक्नोत्	नहीं समर्थ हुए ॥२२॥

शस्त्रैरस्त्रान्वितैरेवमनिर्भिन्नत्वचं हरः ।
विस्मयं परमापन्नो दध्यौ पशुपतिश्चिरम् ॥२३॥

शस्त्रैः अस्त्र अन्वितैः एवं अनिर्भिन्न त्वचं हरः विस्मयं परम आपन्नः दध्यौ पशुपतिः चिरम् ॥२३॥

एवं शस्त्रैः अस्त्र अन्वितैः	इस प्रकार अस्त्र-शस्त्रोंसे
त्वचं अनिर्भिन्न	(दक्षकी) चमड़ी न कटनेपर
हरः परम विस्मयं	वीरभद्रको अत्यन्त आश्चर्य
आपन्नः	हुआ,
पशुपतिः चिरं	वीरभद्रने (तब) देर तक
दध्यौ	विचार किया ॥२३॥

दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं पशूनां स पतिर्मखे ।
यजमानपशोः कस्य कायात्तेनाहरच्छिरः ॥२४॥

दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं पशूनां स पतिः मखे यजमानः पशोः कस्य कायात् तेन अहरत् शिरः ॥२४॥

मखे	यज्ञमें
पशूनां संज्ञपनं	पशुओंको मारे जानेकी
योगंदृष्ट्वा	विधि देखकर
स पशूनां पतिः	उन पशुपति (वीरभद्रने)

तेन कायात्	उसी विधिसे शरीरसे	**कस्य शिरः**	प्रजापति दक्षका सिर
यजमानः पशोः	यजमान रूपी पशु	**अहरत्**	अलग कर दिया ॥२४॥

साधुवादस्तदा तेषां कर्म तत्तस्य शंसताम् ।
भूतप्रेतपिशाचानामन्येषां तद्विपर्ययः ॥२५॥

साधुवादः तदा तेषां कर्म तत् तस्य शंसतां भूत प्रेत पिशाचानां अन्येषां तत् विपर्ययः ॥२५॥

तदा तस्य तत् कर्म शंसतां	उस समय उनके उस कर्मकी प्रशंसा करते	**साधुवादः**	'वाह ! वाह !' होने लगा तथा
तेषां भूत प्रेत पिशाचानां	उनके भूत, प्रेत पिशाचोंका	**अन्येषां तत्**	दूसरों(दक्षके लोगों) का
		विपर्ययः	इससे उलटा (हाय-हृय होने लगा) ॥२५॥

जुहावैतच्छिरस्तस्मिन्दक्षिणाग्नावमर्षितः ।
तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद् गुह्यकालयम् ॥२६॥

जुहाव एतत् शिरः तस्मिन् दक्षिणाग्नाः अमर्षितः तत् देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठत् गुह्यक आलयम् ॥२६॥

अमर्षितः	क्रोधमें भरकर	**तत् देवयजनं**	उस देवयज्ञशालाको
एतत् शिरः	इस (दक्षके) सिरको	**दग्ध्वा**	जलाकर
तस्मिन्		**गुह्यक आलयं**	यक्षोंके निवास (कैलास)
दक्षिणाग्नाः	उस (यज्ञ) की दक्षिणाग्निमें	**प्रातिष्ठत्**	लौट गये ॥२६॥
जुहाव	हवन कर दिया,		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञविध्वंसो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ षष्ठोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

अथ देवगणाः सर्वे रुद्रानीकैः पराजिताः ।
शूलपट्टिशनिस्त्रिंशगदापरिघमुद्गरैः ॥१॥

अथ देवगणाः सर्वे रुद्र अनीकैः पराजिताः शूल पट्टिश निःत्रिंश गदा परिघ मुद्गरैः ॥१॥

अथ रुद्र अनीकैः	तब रुद्रकी सेनाके	**परिघ, मुद्गरैः**	लाठी, मुद्गरसे
शूल पट्टिश	त्रिशूल, पट्टिश,	**सर्वे देवगणाः**	सब देवगण
निःत्रिंश गदा	खड्ग, गदा,	**पराजिताः**	हार गये ॥१॥

संछिन्नभिन्नसर्वाङ्गाः सर्त्विक्सभ्या भयाकुलाः ।
स्वयम्भुवे नमस्कृत्य कात्स्न्र्येनैतन्न्यवेदयन् ॥२॥

संछिन्न भिन्न सर्वाङ्गाः स ऋत्विक् सभ्याः भय आकुलाः स्वयम्भुवे नमस्कृत्य कात्स्न्र्येन एतत् न्यवेदयन् ॥२॥

सर्वाङ्गाः संछिन्न भिन्न	(उनके) सब अंग कट-फट गये थे,	**स्वयम्भुवे**	ब्रह्माजी (के पास जाकर)
स ऋत्विक् सभ्याः	ऋत्विकोंके साथ सभासद	**नमस्कृत्य**	प्रणाम करके
भय आकुलाः	भयसे व्याकुल होकर	**एतत् कात्स्न्र्येन न्यवेदयन्**	यह सब पूरा निवेदन किया ॥२॥

उपलभ्य पुरैवैतद्भगवानब्जसम्भवः ।
नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमीयतुः ॥३॥

उपलभ्य पुरा एव एतत् भगवान् अब्ज सम्भवः नारायणः च विश्वात्मा न कस्य अध्वरं ईयतुः ॥३॥

पुरा एव एतत्	पहिले ही यह (होगा)
उपलभ्य	जानकर
भगवान् अब्ज	
सम्भवः	भगवान् ब्रह्मा
च विश्वात्मा	
नारायणः	और विश्वात्मा नारायण
कस्य अध्वरं	प्रजापति दक्षके यज्ञमें
न ईयतुः	नहीं आये थे ॥३॥

तदाकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृतागसि ।
क्षेमाय तत्र सा भूयात्न प्रायेण बुभूषताम् ॥४॥

तत् आकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृत आगसि क्षेमाय तत्र सा भूयात् न प्रायेण बुभूषताम् ॥४॥

तत् आकर्ण्य	उसे सुनकर
विभुः प्राह	ब्रह्माजीने कहा—
तेजीयसि	तेजस्वीका
आगसि कृत	अपराध करनेपर
बुभूषतां	अपराधीका
तत्र सा	वहाँ वह (कार्य)
प्रायेण क्षेमाय	प्रायः कल्याणकारी
न भूयात्	नहीं होता ॥४॥

अथापि यूयं कृतकिल्बिषा भवं
ये बर्हिषो भागभाजं परादुः ।
प्रसादयध्वं परिशुद्धचेतसा
क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीताङ्घ्रिपद्मम् ॥५॥

अथ अपि यूयं कृत किल्बिषा भवं ये बर्हिषः भाग भाजं परादुः प्रसादयध्वं परिशुद्ध चेतसा क्षिप्र प्रसादं प्रगृहीत अङ्घ्रि पद्मम् ॥५॥

ये यूयं	जिन तुम लोगोंने
बर्हिषः भाग	
भाजं	यज्ञमें भाग पानेवाले
भवं परादुः	शंकरजीको (उनका) भाग नहीं दिया ।

किल्विषा कृत	अपराध किया है,
अथ अपि	फिर भी
परिशुद्ध चेतसा	विशुद्ध चित्तसे
प्रसादयध्वं	(उन्हें) प्रसन्न करो ।
अङ्घ्रि पद्मं	चरण-कमल
प्रगृहीतं	पकड़ लेनेपर
क्षिप्र प्रसादं	(वे) शीघ्र प्रसन्न होने वाल हैं ॥५॥

आशासाना जीवितमध्वरस्य
लोकः सपालः कुपिते न यस्मिन् ।
तमाशु देवं प्रियया विहीनं
क्षमापयध्वं हृदि विद्धं दुरुक्तैः ॥६॥

आशासाना जीवितं अध्वरस्य लोकः सपालः कुपिते न यस्मिन् तं आशु देवं प्रियया विहीनं क्षमापयध्वं हृदि विद्धं दुरुक्तैः ॥६॥

दुरुक्तैः	(दक्षके) दुर्वचनोंसे
हृदि विद्धं	(उनका) हृदय (पहिले ही) बिंधा है,
प्रियया विहीनं	(अब) प्रिया रहित हो गये,
अध्वरस्य जीवितं	इस यज्ञको (फिर) जीवन देनेकी
आशासाना	आशा करते हो तो
तं देवं आशु	उन महादेवसे शीघ्र
क्षमापयध्वं	क्षमा कराओ,
यस्मिन् कुपिते	जिनके क्रुद्ध होनेपर
लोकः सपालाः	लोकपालोंके साथ लोक
न	नहीं बचेंगे ॥६॥

नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये
ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम् ।
विदुः प्रमाणं बलवीर्ययोर्वा
यस्यात्मतन्त्रस्य क उपायं विधित्सेत् ॥७॥

न अहं न यज्ञः न च यूयं अन्ये ये देह भाजः मुनयः च तत्त्वं विदुः प्रमाणं बल वीर्ययोः वा यस्य आत्मतन्त्रस्य क उपायं विधित्सेत् ॥७॥

यस्य आत्म-तन्त्रस्य	जिन परम स्वतन्त्र (शिव) के
तत्त्वं वा बल वीर्ययोः	तत्त्व अथवा बल-पराक्रमकी

प्रमाणं	सीमाको
अहं न यज्ञः	मैं और न भगवान् विष्णु
च न यूयं अन्ये	तथा न तुम लोग कोई दूसरे,
ये देह भाजः	जो देहधारी
मुनयः	मुनिगण हैं
न विदुः	नहीं जानते
क उपायं	(उनके विरुद्ध) कौन उपाय
विधित्सेत्	कर सकता है ॥७॥

स इत्थमादिश्य सुरानजस्तैः
समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः ।
ययौ स्वधिष्ण्यान्निलयं पुरद्विषः
कैलासमद्रिप्रवरं प्रियं प्रभोः ॥८॥

स इत्थं आदिश्य सुरान् अजः तैः समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः ययौ स्वधिष्ण्यात् निलयं पुरद्विषः कैलासं अद्रिप्रवरं प्रियं प्रभोः ॥८॥

सुरान् इत्थं	देवताओंको इस प्रकार
आदिश्य	आदेश देकर
स अजः	वे ब्रह्माजी
सप्रजेशैः	
पितृभिः	प्रजापतियों, पितरों एवं
तैः समन्वितः	उन (देवताओं) के साथ
स्वधिष्ण्यात्	अपने धामसे
पुरद्विषः निलयं	त्रिपुरारिके निवास
प्रभोः प्रियं	शंकरजीके प्रिय
अद्रिप्रवरं	पर्वत श्रेष्ठ
कैलासं ययौ	कैलासपर गये ॥८॥

जन्मौषधितपोमन्त्रयोगसिद्धैर्नरेतरैः ।
जुष्टं किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा ॥९॥

जन्म औषधि तपः मन्त्र योगसिद्धैः नरेतरैः जुष्टं किन्नर गन्धर्वैः अप्सरोभिः वृतं सदा ॥९॥

जन्म औषधि	जन्मसे ही, औषधि प्रयोगसे,
तपः मन्त्र	तप या मन्त्र-जपसे,
योगसिद्धैः	या योगसे सिद्धि प्राप्त
नरेतरैः जुष्टं	देवताओंसे युक्त
किन्नर गन्धर्वैः	किन्नरों, गन्धर्वों,
अप्सरोभिः	अप्सराओंसे
सदा वृतं	सदा घिरा हुआ ॥९॥

नानामणिमयैः शृङ्गैर्नानाधातुविचित्रितैः ।
नानाद्रुमलतागुल्मैर्नानामृगगणावृतैः ॥१०॥

नाना मणिमयैः शृङ्गैः नाना धातु विचित्रितैः नाना द्रुम लता गुल्मैः नाना मृगगण आवृतैः ॥१०॥

नाना मणिमयैः शृङ्गैः	अनेक मणियोंवाले शिखरवाला	**नाना द्रुम लता गुल्मैः**	अनेक वृक्ष, लता, कुञ्जोंसे युक्त
नाना धातु विचित्रितैः	अनेक धातुओंसे रंग-बिरंगा,	**नाना मृगगण आवृतैः**	अनेक पशुगणोंसे भरा हुआ ॥१०॥

नानामलप्रस्रवणैर्नानाकन्दरसानुभिः ।
रमणं विहरन्तीनां रमणैः सिद्धयोषिताम् ॥११॥

नाना अमल प्रस्रवणैः नाना कन्दर सानुभिः रमणं विहरन्तीनां रमणैः सिद्धयोषिताम् ॥११॥

नाना कन्दर सानुभिः	अनेक गुफाओं तथा चोटियोंसे	**रमणं सिद्धयोषितां**	(वहाँ) पतियोंको सिद्धोंकी पत्नियां
नाना अमल प्रस्रवणैः	अनेक निर्मल झरनोंसे युक्त,	**रमणैः विहरन्तीनां**	अपनी क्रीड़ाओंसे विहार करा रही थीं ॥११॥

मयूरकेकाभिरुतं मदान्धालिविमूर्च्छितम् ।
प्लावितै रक्तकण्ठानां कूजितैश्च पतत्त्रिणाम् ॥१२॥

मयूर केकाभिः रुतं मदान्ध अलि विमूर्च्छितं प्लावितैः रक्तकण्ठानां कूजितैः च पतत्त्रिणाम् ॥१२॥

मयूर केकाभिः रुतं	मयूरोंकी केकाध्वनि से ध्वनित	**मदान्ध अलि विमूर्च्छितं**	मतवाले भौंरोंसे गुञ्जायमान,

रक्तकण्ठानां प्लावितैः कोकिलके कुहकनेसे **च पतत्त्रिणां कूजितैः** तथा पक्षियोंके चहकनेसे (भरा) ॥१२॥

आह्वयन्तमिवोद्धस्तैर्द्विजान् कामदुघैर्द्रुमैः ।
व्रजन्तमिव मातङ्गैर्गृणन्तमिव निर्झरैः ॥१३॥

आह्वयन्तं इव उद्हस्तैः द्विजान् कामदुघैः द्रुमैः व्रजन्तं इव मातङ्गैः गृणन्तं इव निर्झरैः ॥१३॥

उद्हस्तैः द्विजान् ऊपर हाथ उठाकर पक्षियोंको
आह्वयन्तं इव बुलाते हुएसे
कामदुघैः द्रुमैः कल्पवृक्षोंसे,
मातङ्गैः व्रजन्तं इव हाथियोंके द्वारा मानो (पर्वत ही) चलता-सा हो,
निर्झरैः गृणन्तं इव झरनों (की ध्वनि) से मानो बातचीत करता हो ॥१३॥

मन्दारैः पारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम् ।
तमालैः शालतालैश्च कोविदारासनार्जुनैः ॥१४॥

मन्दारैः पारिजातैः च सरलैः च उपशोभितं तमालैः शालतालैः च कोविदार असन अर्जुनैः ॥१४॥

मन्दारैः च पारिजातैः आक और हर-शृंगार,
सरलै, तमालैः सरल, तमाल,
शालतालैः शाल, ताड़,
कोविदार असन च अर्जुनः कचनार, असन, एवं अर्जुनसे
उपशोभितं सुशोभित ॥१४॥

चूतैः कदम्बैर्नीपैश्च नागपुन्नागचम्पकैः ।
पाटलाशोकबकुलैः कुन्दैः कुरबकैरपि ॥१५॥

चूतैः कदम्बैः नीपैः च नाग पुन्नाग चम्पकैः पाटल अशोक बकुलैः कुन्दैः कुरबकैः अपि ॥१५॥

चूतैः कदम्बैः	(स्वयं टपकनेवाले) आम, कदम्ब,
नीपैः	नीप*
नाग पुन्नाग	नाग, पुंनाग,
चम्पकैः पाटल	चम्पा, गुलाब,
अशोक बकुलैः च कुन्दैः	अशोक, मौलिश्री,
कुरबकैः अपि	और कुन्द तथा कुरबकसे भी ॥१५॥

स्वर्णार्णशतपत्रैश्च वररेणुकजातिभिः ।
कुब्जकैर्मल्लिकाभिश्च माधवीभिश्च मण्डितम् ॥१६॥

स्वर्ण अर्ण शतपत्रैः च वर रेणुक जातिभिः कुब्जकैः मल्लिकाभिः च माधवीभिः च मण्डितम् ॥१६॥

स्वर्ण अर्ण	पीत कमल,
च शतपत्रैः	तथा शतदल कमल,
वर रेणुक	उत्तम इलायची,
जातिभिः	जाति (कुन्दी या जूही)
कुब्जकैः	कुब्जक (बेला)
मल्लिकाभिः च	चमेलीसे तथा
माधवीभिः च	
मण्डितं	माधवीसे भी सुशोभित ॥१६॥

पनसोदुम्बराश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधहिङ्गुभिः ।
भूर्जैरोषधिभिः पूगै राजपूगैश्च जम्बुभिः ॥१७॥

पनसः उदुम्बर अश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध हिङ्गुभिः भूर्जैः ओषधिभिः पूगैः राजपूगैः च जम्बुभिः ॥१७॥

पनसः	कटहल,
उदुम्बर	गूलर,
अश्वत्थ	पीपल,
प्लक्ष	पाकर,
न्यग्रोध	बट,
हिङ्गुभिः	गूगल,

---

* नीप और बकुल दोनों मौलिश्रीके नाम हैं। इसी श्लोकमें बकुल भी आया है, अतः शायद यहाँ 'नीमैः' नीम हो। पर सभी प्रतियोंमें 'नीप' पाठ ही है।

भूर्जैः	भोजपत्र वृक्ष,	राजपूगैः	बड़ी सुपारी,
ओषधिभिः	हर्रसे,	च जम्बुभिः	तथा जामुनसे ॥१७
पूगैः	सुपारी,		

खर्जूराम्रातकाम्राद्यैः प्रियालमधुकेङ्गुदैः ।
द्रुमजातिभिरन्यैश्च राजितं वेणुकीचकैः ॥१८॥

खर्जूरैः आम्रातक आम्र आद्यैः प्रियाल मधुक इंगुदैः द्रुम जातिभिः अन्यः च राजितं वेणुकीचकैः ॥१८॥

खर्जूरैः	खजूरसे,	अन्यः च	दूसरे भी
आम्रातक	आमड़ा	द्रुम जातिभिः	अनेक जातिके वृक्षोंसे तथा
आम्र आद्यैः	स्वयं न टपकनेवाले आम	वेणुकीचकैः	ठोस और पोले बाँसोंसे
प्रियाल	पियाल (पयाल),	राजितं	बहुत सुन्दर लगता था ॥१८॥
मधुक	महुआ,		
इंगुदैः	इंगुदी (या लिसौड़ा)		

कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रवनर्द्धिभिः ।
नलिनीषु कलं कूजत्खगवृन्दोपशोभितम् ॥१९॥

कुमुद उत्पल कह्लार शतपत्र वन ऋद्धिभिः नलिनीषु कलं कूजत् खगवृन्द उपशोभितम् ॥१९॥

कुमुद	कुमुदिनी,	नलिनीषु	सरोवरोंमें
उत्पल	नीलकमल,	कलं कूजत्	मधुर कूजन करते
कह्लार	श्वेत कमल,	खगवृन्द	
शतपत्र	लाल कमल	उपशोभितं	पक्षि समूहसे सुशोभित था ॥१९॥
वन ऋद्धिभिः	वनकी सम्पत्तिसे (सम्पन्न था)		

मृगैः शाखामृगैः क्रोडैर्मृगेन्द्रैर्ऋक्षशल्यकैः ।
गवयैः शरभैर्व्याघ्रै रुरुभिर्महिषादिभिः ॥२०॥

मृगैः शाखामृगैः क्रोडैः मृगेन्द्रैः ऋक्षः शल्यकैः गवयैः शरभैः व्याघ्रैः रुरुभिः महिष आदिभिः ॥२०॥

मृगैः शाखामृगैः हिरन, बन्दर,
क्रोडैः मृगेन्द्रैः सुअर, सिंह,
ऋक्षः शल्यकैः रीछ, साही,
गवयैः शरभैः नीलगाय, सांभर
व्याघ्रैः रुरुभिः बाघ, चित्तल मृग,
महिष आदिभिः भैंसे आदि
(वहाँ थे।) ॥२०॥

कर्णान्त्रैकपदाश्वास्यैर्निर्जुष्टं वृकनाभिभिः।
कदलीषण्डसंरुद्धनलिनीपुलिनश्रियम् ॥२१॥

कर्णान्त्र एकपदा अश्व आस्यैः निर्जुष्टं वृक नाभिभिः कदली षण्डसंरुद्ध नलिनी पुलिन श्रियम् ॥२१॥

कर्णान्त्र कर्णान्त्र } ❀
एकपदा एकपदा }
अश्व आस्यैः अश्वमुख
वृक नाभिभिः भेड़िये, कस्तूरी-मृगोंसे
निर्जुष्टं भरा हुआ था।
नलिनी पुलिन सरोवरोंके तट
कदली षण्ड-संरुद्ध केलोंके वृक्षोंसे घिरे
श्रियं सुन्दर लगते थे ॥२१॥

पर्यस्तं नन्दया सत्याः स्नानपुण्यतरोदया।
विलोक्य भूतेशगिरिं विबुधा विस्मयं ययुः ॥२२॥

पर्यस्तं नन्दया सत्याः स्नान पुण्यतरोदयाः विलोक्य भूतेशगिरिं विबुधाः विस्मयं ययुः ॥२२॥

सत्याः स्नान देवी सतीके स्नान करनेसे
पुण्यतरोदयाः अत्यन्त पवित्र हुई
नन्दया पर्यस्तं नन्दा नदीसे घिरे हुए
भूतेशगिरिं विलोक्य शंकरजीके पर्वतको देखकर
विबुधाः विस्मयं ययुः देवताओंको आश्चर्य हुआ ॥२२॥

---

* इन पशुओंकी जाति ही लुप्त हो गयी लगती है।

दद्दशुस्तत्र ते रम्यामलकां नाम वै पुरीम् ।
वनं सौगन्धिकं चापि यत्र तन्नाम पङ्कजम् ॥२३॥

दद्दशुः तत्र ते रम्यां अलकां नाम वै पुरीं वनं सौगन्धिकं च अपि यत्र तत् नाम पङ्कजम् ॥२३॥

ते तत्र	उन्होंने वहाँ
अलकां नाम	अलका नामवाली
पुरीं वै दद्दशुः	पुरीको भी देखा
सौगन्धिकं वनं च अपि	सौगन्धिक वनको भी
यत्र तत् नाम	जहाँ उसी (सौगंधिक) नामका
पङ्कजम्	कमल (ब्रह्म कमल) होता है ॥२३॥

नन्दा चालकनन्दा च सरितौ बाह्यतः पुरः ।
तीर्थपादपदाम्भोजरजसातीव पावने ॥२४॥

नन्दा च अलकनन्दा च सरितौ बाह्यतः पुरः* तीर्थपाद पदाम्भोज रजसा अतीव पावने ॥२४॥

बाह्यतः पुरः	पुरीसे बाहरकी ओर
तीर्थपाद पदाम्भोज	तीर्थचरण (भगवान के) चरण-कमलकी
रजसा अतीव पावने	रजसे अत्यन्त पावन
नन्दा च अलक-नन्दा च	नन्दा तथा अलक-नन्दा
सरितौ पुरः बाह्यतः	सरिताएँ पुरीके बाहर हैं ॥२४॥

* यहाँ दो बातें स्पष्ट की गयी हैं—

१. नन्दा और अलकनन्दा गंगाजीकी ही धारा हैं जो भागीरथीसे पहिलेसे हैं।

२. तिब्बतमें मानसरोवरके पास वाला कैलास भगवान् शंकरका कैलास नहीं है। भगवान् शंकरका कैलास नन्दा और अलक-नन्दासे घिरा चौखम्भा पर्वतके पास कहीं है। यह क्षेत्र अगम्य है और सदा कुहरेसे ढका रहता है।

ययोः सुरस्त्रियः क्षत्तरवरुह्य स्वधिष्ण्यतः ।
क्रीडन्ति पुंसः सिञ्चन्त्यो विगाह्य रतिकर्शिताः ॥२५॥

ययोः सुरस्त्रियः क्षत्तः अवरुह्य स्वधिष्ण्यतः क्रीडन्ति पुंसः सिञ्चन्त्यः विगाह्य रतिकर्शिताः ॥२५॥

क्षत्तः	विदुर !	**ययोः विगाह्य**	जिनमें स्नान करके
रतिकर्शिताः	कामक्रीड़ासे थककर	**पुंसः सिञ्चन्त्यः**	पुरुषोंपर जल उलीचती
सुरस्त्रियः	देवांगनाएँ	**क्रीडन्ति**	क्रीड़ा करती हैं ॥२५
स्वधिष्ण्यतः	अपने स्थानसे		
अवरुह्य	उतरकर		

ययोस्तत्स्नानविभ्रष्टनवकुङ्कुमपिञ्जरम् ।
वितृषोऽपि पिबन्त्यम्भः पाययन्तो गजा गजीः ॥२६॥

ययोः तत् स्नान विभ्रष्ट नव कुकुंम पिञ्जरं वितृषः अपि पिबन्ति अम्भः पाययन्तः गजाः गजीः ॥२६॥

तत् स्नान		**अम्भः वितृषः**	
विभ्रष्ट	उनके स्नानसे घुले	**अपि**	जलको प्यास न होनेपर भी
नव कुङ्कुम			
पिञ्जरं	नवीन केशरसे पीले हुए	**गजाः गजीः पाययन्तः**	हाथी हथिनियोंको
		पिबन्ति	पिलाते हुए पीते हैं ॥२६॥

तारहेममहारत्नविमानशतसंकुलाम् ।
जुष्टां पुण्यजनस्त्रीभिर्यथा खं सतडिद्घनम् ॥२७॥

तारहेम महारत्न विमान शत संकुलां जुष्टां पुण्यजनः स्त्रीभिः यथा खं सतडित् घनम् ॥२७॥

तारहेम महारत्न	चांदी, सोने और महारत्नोंसे बने	**शत विमान संकुलां**	सैकड़ों विमानोंसे भरी

पुण्यजनः स्त्रीभिः	यक्ष पत्नियोंसे (ऐसी लगती थी)	**यथा सतडित् घनं खं**	जैसे बिजली सहित मेघोंसे आकाश हो ॥२७॥

हित्वा यक्षेश्वरपुरीं वनं सौगन्धिकं च तत् ।
द्रुमैः कामदुघैर्हृद्यं चित्रमाल्यफलच्छदैः ॥२८॥

हित्वा यक्षेश्वर पुरीं वनं सौगन्धिकं च तत् द्रुमैः कामदुघैः हृद्यं चित्र माल्य फलः छदैः ॥२८॥

यक्षेश्वर पुरीं हित्वा	कुवेरकी पुरीको छोड़कर	**कामदुघैः द्रुमैः चित्र माल्य फलः**	कल्पवृक्षोंसे तथा
तत् सौगन्धिकं वनं	उस सौगन्धिक वनमें (आये)	**छदैः**	विचित्र फूल, फल, पत्तोंसे
		हृद्यं	(जो) मनोहर था ॥२८॥

रक्तकण्ठखगानीकस्वरमण्डितषट्पदम् ।
कलहंसकुलप्रेष्ठखरदण्डजलाशयम् ॥२९॥

रक्तकण्ठ खग अनीक स्वर मण्डित षट्पदं कलहंस कुलप्रेष्ठ खरदण्ड जलाशयम् ॥२९॥

रक्तकण्ठ खग अनीक	कोकिल आदि पक्षि समूह	**कलहंस कुलप्रेष्ठ खरदण्ड जलाशयं**	राजहंसोंके प्रिय कमलपूर्ण जलाशय थे ॥२९॥
षट्पदं स्वर मण्डित	(तथा) भौंरोंके स्वरसे भूषित,		

वनकुञ्जरसंघृष्टहरिचन्दनवायुना ।
अधि पुण्यजनस्त्रीणां मुहुरुन्मथयन्मनः ॥३०॥

वन कुञ्जर संघृष्ट हरिचन्दन वायुना अधि पुण्यजन स्त्रीणां मुहुः उन्मथयन् मनः ॥३०॥

वन कुञ्जर संघृष्ट जंगली हाथियोंके (शरीर) रगड़नेसे
हरिचन्दन वायुना श्वेत चन्दन वृक्षोंसे आती वायु
अधि पुण्यजन स्त्रीणां यक्ष स्त्रियोंके
मनः मुहुः उन्मथयन् मनको बार-बार क्षुब्ध करना था ॥३०॥

वैदूर्यकृतसोपाना वाप्य उत्पलमालिनीः ।
प्राप्ताः किम्पुरुषैर्दृष्ट्वा त आराद्ददृशुर्वटम् ॥३१॥

वैदूर्यकृत सोपानाः वाप्य उत्पल मालिनीः प्राप्ताः किम्पुरुषैः दृष्ट्वा त आरात् ददृशुः वटम् ॥३१॥

उत्पल मालिनीः कमलोंसे भरी
वाप्य बावलियोंमें
वैदूर्यकृत सोपानाः वैदूर्य मणिकी सीढ़ियां बनी थीं
किम्पुरुषैः प्राप्ताः वहाँ किम्पुरुष आये हैं
दृष्ट्वा त (यह) देखकर उन्होंने
आरात् वटं ददृशुः पास ही वटवृक्ष देखा ॥३१॥

स योजनशतोत्सेधः पादोनविटपायतः ।
पर्यक्कृताचलच्छायो निर्नीडस्तापवर्जितः ॥३२॥

स योजन शत उत्सेधः पाद ऊन विटपायतः पर्यंक् कृत अचलत्छायः निर्नीडः ताप वर्जितः ॥३२॥

स योजन शत उत्सेधः वह सौ योजन* ऊँचा था,
पादऊन एक अंश कम (पचहत्तर योजन)

---

* यह सम्पूर्ण कैलासका वर्णन दिव्य अभौतिक वर्णन है। व्यासजीका आश्रम बदरीनाथसे आगे ही था। अतः हिमालयमें आम-सुपारी आदि वृक्ष नहीं होते यह वे जानते थे। वहाँ कौनसे पशु-पक्षी होते हैं, यह भी उन्हें पता

(पृष्ठ १०२ पर)

विटपायतः	चारों ओर फैला था,	**निर्नीडः**	(उस पर) कोई घोंसला नहीं था,
पर्यक् कृत अचलत् छायः	(उसके) चारों ओर स्थिर छाया रहती थी,	**ताप वर्जितः**	(वहाँ) कभी गर्मी नहीं होती थी ॥३२

तस्मिन्महायोगमये मुमुक्षुशरणे सुराः ।
ददृशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवान्तकम् ॥३३॥

तस्मिन् महायोगमये मुमुक्षुशरणे सुराः ददृशुः शिवं आसीनं त्यक्त अमर्षम् इव अन्तकम् ॥३३॥

महायोगमये	महायोगमय	**अन्तकं इव**	कालके समान
मुमुक्षेशरणे	मुमुक्षुओंके आश्रय-भूत	**आसीनं शिवं**	बैठे भगवान शंकर-को
तस्मिन्	उस (वटवृक्ष) के नीचे	**सुराः ददृशुः**	देवताओं ने देखा ॥३३॥
त्यक्त अमर्षम्	क्रोध रहित		

सनन्दनाद्यैर्महासिद्धैः शान्तैः संशान्तविग्रहम् ।
उपास्यमानं सख्या च भर्त्रा गुह्यकरक्षसाम् ॥३४॥

सनन्दन आद्यैः महासिद्धैः शान्तैः संशान्त विग्रहं उपास्यमानं सख्या च भर्त्रा गुह्यक रक्षसाम् ॥३४॥

संशान्त विग्रहं	वे अत्यन्त शान्त स्वरूप	**शान्तैः सनन्दन आद्यैः**	शान्त सनन्दन आदि

(पृष्ठ १०१ से आगे)

था और इतना बड़ा वटवृक्ष वहाँ कोई नहीं है, बद्रीनाथकी ऊँचाईपर ही वटवृक्ष नहीं होता, यह भी वे जानते-देखते थे; किन्तु भगवान शंकर और उनका निवास भौतिक नहीं है। अतः उनके निवास दिव्य स्थल-का यह वर्णन है। उसे देवता ही देख सकते थे।

महासिद्धैः च	महासिद्धों तथा	**उपास्यमानं**	सेवित (हो रहे
गुह्यक रक्षसां	यक्ष राक्षसोंके		थे) ॥३४॥
भर्त्रा सख्या	स्वामी अपने सखा		
	(कुवेर) से		

विद्यातपोयोगपथमास्थितं तमधीश्वरम् ।
चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमङ्गलम् ॥३५॥

विद्या तपः योगपथं आस्थितं तं अधीश्वरं चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्यात् लोक मङ्गलम् ॥३५॥

विश्वसुहृदं	सम्पूर्ण विश्वके	**विद्या तपः योग-**	
	सुहृद	**पथं**	उपासना, तपस्या,
वात्सल्यात्	वात्सल्यके कारण		योग साधन
लोक मङ्गलं	लोकके मंगलके	**आस्थितं चरन्तं**	अपना कर उनका
	लिए		पालन करते
		तं अधीश्वरं	उन सर्वेश्वर-
			को ॥३५॥

लिङ्गं च तापसाभीष्टं भस्मदण्डजटाजिनम् ।
अङ्गेन संध्याभ्ररुचा चन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ॥३६॥

लिङ्गं च तापस अभीष्टं भस्म दण्ड जटा अजिनं अङ्गेन सन्ध्या अभ्र रुचा चन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ॥३६॥

तापस अभीष्टं	तपस्वियोंको अभीष्ट	**अङ्गेन चन्द्र-**	
भस्म दण्ड जटा	विभूति, दण्ड, जटा	**लेखां च**	शरीरमें चन्द्रकला
अजिनं लिङ्गं	मृगचर्म आदि चिन्ह		भी
च सन्ध्या अभ्र		**बिभ्रतं**	धारण किये
रुचा	तथा सन्ध्या कालीन		थे ॥३६॥
	मेघके समान		

उपविष्टं दर्भमय्यां बृस्यां ब्रह्म सनातनम् ।
नारदाय प्रवोचन्तं पृच्छते शृण्वतां सताम् ॥३७॥

उपविष्टं दर्भे मय्यां बृस्यां ब्रह्म सनातनं नारदाय प्रवोचन्तं पृच्छते शृण्वतां सताम् ॥३७॥

दर्भे मय्यां बृस्यां	कुशास्तरण वाली वेदीपर
उपविष्टं	बैठे हुए
पृच्छते नारदाय	प्रश्न कर्ता नारदको
सतां शृण्वतां	(सनकादि) महात्माओंके सुनते
सनातनं ब्रह्म	सनातन (नित्य) ब्रह्मका
प्रवोचन्तं	उपदेश कर रहे थे ॥३७॥

कृत्वोरौ दक्षिणे सव्यं पादपद्मं च जानुनि ।
बाहुं प्रकोष्ठेऽक्षमालामासीनं तर्कमुद्रया ॥३८॥

कृत्वा उरौ दक्षिणे सव्यं पाद पद्मं च जानुनि बाहुं प्रकोष्ठे अक्षमालां आसीनं तर्क मुद्रया ॥३८॥

दक्षिणे उरौ	दाहिनी जंघापर
सव्यं पाद पद्मं च कृत्वा जानुनि	वायें चरण-कमलको रखे, घुटनेपर
बाहुं	(वायां) हाथ रखे,
प्रकोष्ठे अक्षमालां	कलाईमें रुद्राक्षकी माला पहिने
तर्क मुद्रया आसीनं	तर्क-मुद्रा (ज्ञान-मुद्रा) बनाये बैठे थे ॥३८॥

तं ब्रह्मनिर्वाणसमाधिमाश्रितं
व्युपाश्रितं गिरिशं योगकक्षाम् ।
सलोकपाला मुनयो मनूना-
माद्यं मनुं प्राञ्जलयः प्रणेमुः ॥३९॥

तं ब्रह्म निर्वाण समाधि आश्रितं व्युपाश्रितं गिरिशं योग कक्षां स लोकपालाः मुनमः मनूनां आद्यं मनुं प्राञ्जलयः प्रणेमुः ॥३९॥

ब्रह्म निर्वाण	ब्रह्मानन्दका
समाधिम् आश्रितं	एकाग्र चित्तसे अवम्बन किये

योग कक्षां व्युपाश्रितं योग पट्टिकाका सहारा लिए

तं मनूनां आद्यं मनुं उन मननशीलोंमें सर्वश्रेष्ठ मननशील

गिरिशं शंकरजीको

स तूपलभ्यागतमात्मयोनिं
सुरासुरेशैरभिवन्दिताङ्घ्रिः ।
उत्थाय चक्रे शिरसाभिवन्दन-
मर्हत्तमः कस्य यथैव विष्णुः ॥४०॥

स तु उपलभ्य आगतं आत्मयोनिं सुर असुरेशैः अभिवन्दित् अङ्घ्रिः उत्थाय चक्रे शिरसा अभिवन्दनं अर्हत्तमः कस्य यथा इव विष्णुः ॥४०॥

सुर असुरेशैः सुर और असुरोंके स्वामियों द्वारा

अभिवन्दित अङ्घ्रिः जिनके चरणोंकी वन्दना होती है

स तु आत्मयोनिं उन (शंकरजी)ने तो ब्रह्माजीको

आगतं उपलभ्य आया देखकर

स लोकपालैः मुनिभिः लोकपालोंके साथ मुनियोंने

प्राञ्जलयः प्रणेमुः हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥३९॥

यथा कस्य जैसे प्रजापति (कश्यपजी) की

अर्हत्तमः पूज्यतम

विष्णुः इव वामन भगवान करते हैं वैसे

उत्थाय शिरसा उठकर मस्तक झुकाकर

अभिवन्दनं चक्रे प्रणाम किया ॥४०॥

तथापरे सिद्धगणा महर्षिभि-
र्ये वै समन्तादनु नीललोहितम् ।
नमस्कृतः प्राह शशाङ्कशेखरं
कृतप्रणामं प्रहसन्निवात्मभूः ॥४१॥

तथा अपरे सिद्धगणाः महर्षिभिः ये वै समन्तात् अनु नीललोहितं नमस्कृतः प्राह शशाङ्कशेखरं कृत प्रणामं प्रहसन् इव आत्मभूः ॥४१॥

तथा अपरे ये वै अनुनील लोहितं समन्तात् सिद्धगणाः महर्षिभिः नमस्कृतः	इसी प्रकार दूसरे जो भी शंकरजी के चारों ओर (बैठे) सिद्धगण महर्षियोंके साथ थे, (उन्होंने ब्रह्माजीको) प्रणाम किया
कृत प्रणामं प्रहसन् इव आत्मभूः शशाङ्कशेखरं प्राह	उनके प्रणाम कर लेनेपर हँसते हुएसे ब्रह्माजी भगवान चन्द्रशेखर-से बोले ॥४१॥

ब्रह्मोवाच-

जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः ।
शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरन्तरम् ॥४२॥

जाने त्वां ईशं विश्वस्य जगतः योनि बीजयोः शक्तेः शिवस्य च परं यत् ब्रह्म निरन्तरम् ॥४२॥

त्वां विश्वस्य ईशं जाने जगतः योनि शक्तेः	आपको संसारका स्वामी जानता हूँ, जगत् उत्पादिका शक्ति
च बीजयोः शिवस्य	तथा उसके मूल-कारण शिवसे
परं यत् निरन्तरं ब्रह्म	परे जो (वह) अखण्ड ब्रह्म (आप) हैं ॥४२॥

त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः सरूपयोः ।
विश्वं सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥४३॥

त्वं एव भगवन् एतत् शिव शक्त्योः सरूपयोः विश्वं सृजसि पासि अत्सि क्रीडन् उर्णपटः यथा ॥४३॥

यथा उर्णपटः	जैसे मकड़ी
भगवन् त्वं एव	(वैसे ही) भगवन् आप ही
एतत् शिव शक्त्योः	इस शिव तथा शक्तिके
सरूपयोः	स्वरूपसे
क्रीडन्	क्रीडा करते हुए
विश्वं सृजसि	विश्वकी सृष्टि करते हैं,
पासि अत्सि	पालन करते तथा खा लेते हैं ॥४३॥

त्वमेव धर्मार्थदुघाभिपत्तये
दक्षेण सूत्रेण ससर्जिथाध्वरम् ।
त्वय्येव लोकेऽवसिताश्च सेतवो
यान्ब्राह्मणाः श्रद्दधते धृतव्रताः ॥४४॥

त्वं एव धर्मं अर्थं दुधा अभिपत्तये दक्षेण सूत्रेण ससर्जिथ अध्वरं त्वयि एव लोके अवसिताः च सेतवः यान् ब्राह्मणाः श्रद्दधते धृतव्रताः ॥४४॥

धर्मं अर्थं दुधा	धर्म और अर्थको देनेवाले (वेदों) की
अभिपत्तये	रक्षाके लिए
त्वं एव	आपने ही
दक्षेण सूत्रेण	दक्षके माध्यमसे
अध्वरं ससर्जिथ	यज्ञको उत्पन्न किया,
यान् धृतव्रताः	जिनपर व्रतधारी
ब्राह्मणाः श्रद्दधते	ब्राह्मण श्रद्धा करते हैं,
त्वयि एव	आपने ही
सेतवः च	(वे वर्णाश्रमकी) मर्यादाएँ भी
लोके अवसिताः	संसारमें स्थापित की हैं ॥४४॥

त्वं कर्मणां मङ्गलमङ्गलानां
कर्तुः स्म लोकं तनुषे स्वः परं वा ।
अमङ्गलानां च तमिस्रमुल्बणं
विपर्ययः केन तदेव कस्यचित् ॥४५॥

त्वं कर्मणां मङ्गलं मङ्गलानां कर्तुः स्म लोकं तनुषे स्वः परं वा अमङ्गलानां च तमिस्रम् उल्बणं विपर्ययः केन तत् एव कस्यचित् ॥४५॥

मङ्गलानां कर्मणां	शुभ कर्म
कर्तुः स्म	करने वालेको तो
मङ्गलं स्वः	मंगलमय स्वर्ग

वा परं	अथवा मोक्ष
तनुषे	देते हैं,
च अमङ्गलानां	और अशुभ (कर्म करने वालों) को
उल्बणं तमिस्रं	घोर नरक (देते हैं)

तत् एव	
कस्यचित्	फिर भी किसीके लिए
केन विपर्ययः	कैसे उलटा (फल) हो जाता है ?॥४५॥

न वै सतां त्वच्चरणार्पितात्मनां
भूतेषु सर्वेष्वभिपश्यतां तव ।
भूतानि चात्मन्यपृथग्दिदृक्षतां
प्रायेण रोषोऽभिभवेद्यथा पशुम् ॥४६॥

न वै सतां त्वत् चरण अर्पित आत्मनां भूतेषु सर्वेषु अभिपश्यतां तव भूतानि च आत्मनि अपृथक् दिदृक्षतां प्रायेण रोषः अभिभवेत् यथा पशुम् ॥४६॥

त्वत् चरण	आपके चरणोंमें
अर्पित आत्मनां	अर्पित चित्त,
सर्वेषु भूतेषु	सब प्राणियोंमें
तव अभिपश्यतां	आपको देखने वाले,
भूतानि च	तथा प्राणियोंको
आत्मनि अपृथक्	अपनेसे अभिन्न

दिदृक्षतां सतां वै	देखने वाले संतोंको तो
पशुं	पशुओंके समान
प्रायेण	प्रायः
रोषः न	
अभिभवेत्	क्रोध नहीं अभिभूत करता ॥४६॥

पृथग्धियः कर्मदृशो दुराशयाः
परोदयेनार्पितहृद्रुजोऽनिशम् ।
परान् दुरुक्तैर्वितुदन्त्यरुन्तुदा-
स्तान्मा वधीद्दैववधान् भवद्विधः ॥४७॥

पृथक्धियः कर्मदृशः दुराशयाः परउदयेन अर्पित हृत् रुजः अनिशं परान् दुरुक्तैः वितुदन्ति अरुन्तुदाः तान् मा वधीत् दैववधान् भवत् विधः ॥४७॥

पृथक् धियः कर्मदृशः	भेद बुद्धि होनेसे
दुराशयाः	कर्मासक्त, दुरभिप्राय,
पर उदयेन	दूसरोंकी उन्नतिसे (अपना)
अनिशं	रात-दिन
हृत् रुजः अर्पित	हृदय जलाने वाले,
दुरुक्तैः परान्	दुर्वचनोंसे (जो) दूसरोंको
वितुदन्ति	वेधते रहते हैं,
अरुन्तुदाः	वे उत्पीड़क
दैववधान्	(पहिलेसे ही) दैवके मारे हैं,
भवत् विधः	आप जैसोंको
तान् मा वधीत्	उन्हें नहीं मारना चाहिए ॥४७॥

यस्मिन् यदा पुष्करनाभमायया
दुरन्तया स्पृष्टधियः पृथग्दृशः ।
कुर्वन्ति तत्र ह्यनुकम्पया कृपां
न साधवो दैवबलात्कृते क्रमम् ॥४८॥

यस्मिन् यदा पुष्कर नाभ मायया दुरन्तया स्पृष्टधियः पृथक् दृशः कुर्वन्ति तत्र हि अनुकम्पया कृपां न साधवः दैव बलात् कृते क्रमम् ॥४८॥

पुष्कर नाभ	भगवान नारायणकी
दुरन्तया मायया	दुष्पार मायासे
स्पृष्टधियः	आक्रान्त बुद्धि
पृथक्	भेद वाले लोग
यदा यस्मिन् कुर्वन्ति	जब जिस विषयमें कुछ करते हैं,
तत्र हि साधवः	उसमें क्योंकि सत्पुरुष
अनुकम्पया कृपां	अनुग्रहशील स्वभाव वश कृपा (ही करते हैं)
दैव वलात् कृते	दैववश जो हो जाता है (उसे)
क्रमं न	रोकते नहीं ॥४८॥

भवांस्तु पुंसः परमस्य मायया
दुरन्तयास्पृष्टमतिः समस्तदृक् ।
तया हतात्मस्वनुकर्मचेतः-
स्वनुग्रहं कर्तुमिहार्हसि प्रभो ॥४९॥

भवान् तु पुंसः परमस्य मायया दुरन्तया अस्पृष्ट मतिः समस्त दृक् तया हत आत्मसु अनुकर्मं चेतः सु अनुग्रहं कर्तुं इह अर्हसि प्रभो ॥४९॥

प्रभो	प्रभो !
भवान् तु	आप तो
परमस्य पुंसः	परम पुरुषकी
दुरन्तया मायया	दुष्पार मायासे
अस्पृष्ट मतिः	अछूती बुद्धि
समस्त दृक्	पूर्ण ज्ञानी हैं,
तया हत आत्मसु	उस (माया) के मारे चित्त वाले
अनुकर्मं चेताःसु	कर्मोंमें चित्त लगाये लोगोंपर
इह अनुग्रहं	यहाँ (आपको) अनुग्रह
कर्तुं अर्हसि	करना चाहिए ॥४९

कुर्वध्वरस्योद्धरणं हतस्य भोः
त्वयासमाप्तस्य मनो प्रजापतेः ।
न यत्र भागं तव भागिनो ददुः
कुयज्विनो येन मखो निनीयते ॥५०॥

कुरु अध्वरस्य उद्धरणं हतस्य भोः त्वया समाप्तस्य मनः प्रजापतेः न यत्र भागं तव भागिनः ददुः कुयज्विनः येन मखः निनीयते ॥५०॥

भोः	हे प्रभो !
हतस्य प्रजापतेः	नष्ट हुए
अध्वरस्य	प्रजापति (दक्ष) के यज्ञका
उद्धरणं कुरु	उद्धार कीजिए
यत्र कुयज्विनः	जिसमें बुद्धिहीन याजकोंने
येन मखः निनीयते	जिनके द्वारा यज्ञ पूर्ण किये जाते हैं
तव भागिनः	उस आप भागके अधिकारीको
भागं न ददुः	भाग नहीं दिया
त्वया मनः समाप्तस्य	अतः आपने (उसे) अपने संकल्पोंसे (वीरभद्र उत्पन्न करके) समाप्त कर दिया ॥५०॥

जीविताद्यजमानोऽयं प्रपद्येताक्षिणी भगः ।
भृगोः श्मश्रूणि रोहन्तु पूष्णो दन्ताश्च पूर्ववत् ॥५१॥

जीवितात् यजमानः अयं प्रपद्येत अक्षिणी भगः भृगोः श्मश्रूणि रोहन्तु पूष्णः दन्ताः च पूर्ववत् ॥५१॥

अयं यजमानः	यह यजमान (दक्ष)	**भृगोः श्मश्रूणि**	भृगुकी दाढ़ी
जीवितात्	जीवित हो जाय,	**रोहन्तु**	उगे,
भगः अक्षिणी	भग देवता नेत्र	**च पूष्णः दन्ताः**	तथा पूषाके दाँत
प्रपद्येत	प्राप्त करें,	**पूर्ववत्**	पहिले जैसे हो जायँ ॥५१॥

देवानां भग्नगात्राणामृत्विजां चायुधाश्मभिः ।
भवतानुगृहीतानामाशु मन्योऽस्त्वनातुरम् ॥५२॥

देवानां भग्न गात्राणां ऋत्विजां च आयुध अश्मभिः भवता अनुगृहीतानां आशु मन्यो अस्तु अनातुरम् ॥५२॥

मन्यो	रुद्रदेव !	**देवानां च ऋत्विजां**	देवताओं तथा ऋत्विजोंको
भवता अनुगृहीतानां	आपका अनुग्रह प्राप्त करके	**आशु अनातुरं अस्तु**	शीघ्र स्वास्थ्य प्राप्त हो ॥५२॥
आयुध अश्मभिः	शस्त्रों तथा पत्थरोंसे		
भग्न गात्राणां	कटे-फटे शरीरवाले		

एष ते रुद्र भागोऽस्तु यदुच्छिष्टोऽध्वरस्य वै ।
यज्ञस्ते रुद्र भागेन कल्पतामद्य यज्ञहन् ॥५३॥

एष ते रुद्र भागः अस्तु यत् उच्छिष्टः अध्वरस्य वै यज्ञः ते रुद्र भागेन कल्पतां अद्य यज्ञहन् ॥५३॥

यत् वै अध्वरस्य	जो कुछ यज्ञ होनेपर
उच्छिष्टः	बचा रहे
एष ते रुद्र भागः	
अस्तु	यह आपका रुद्र भाग हो,
यज्ञहन्	यज्ञविध्वंसक !
अद्य ते रुद्र भागेन	आज आपके रुद्र भागसे ही
यज्ञः कल्पतां	यज्ञ (पूर्ण) कराइये ॥५३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे रुद्रसान्त्वनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

इत्यजेनानुनीतेन भवेन परितुष्यता ।
अभ्यधायि महाबाहो प्रहस्य श्रूयतामिति ॥१॥

इति अजेन अनुनीतेन भवेन परितुष्यता अभ्यधायि महाबाहो प्रहस्य श्रूयतां इति ॥१॥

महाबाहो	महाबाहु विदुर !	**परितुष्यता**	
इति अजेन	इस प्रकार ब्रह्माजी द्वारा	**भवेन**	सन्तुष्ट होकर शिवने
अनुनीतेन	प्रार्थना करनेपर	**प्रहस्य इति**	हँसकर ऐसा
		अभ्यधायि	कहा—
		श्रूयतां	'सुनिये ! ॥१॥

रुद्र उवाच*-

नाघं प्रजेश बालानां वर्णये नानुचिन्तये ।
देवमायाभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतो मया ॥२॥

न अघं प्रजेश बालानां वर्णये न अनुचिन्तये देवमाया अभिभूतानां दण्डः तत्र धृतः मया ॥२॥

प्रजेश	ब्रह्माजी !	**न वर्णये**	(मैं) न चर्चा करता हूँ,
देवमाया अभिभूतानां	भगवानकी मायासे मोहित	**न अनुचिन्तये**	न उसे बार-बार सोचता हूँ
बालानां अघं	अज्ञानियोंके अपराधकी		

---

* गीता प्रेसकी प्रतिमें 'श्रीमहादेव उवाच' है; किन्तु इससे पहिले और आगे भी उन्होंने 'रुद्र उवाच' ही दिया है।

तत्र मया उनके करनेपर मैंने (अपराध **दण्डः धृतः** दण्ड दे दिया ॥२॥

प्रजापतेर्दग्धशीर्ष्णो भवत्वजमुखं शिरः ।
मित्रस्य चक्षुषेक्षेत भागं स्वं बर्हिषो भगः ॥३॥

प्रजापतेः दग्धशीर्ष्णः भवतु अजमुखं शिरः मित्रस्य चक्षुषा ईक्षेत भागं स्वं बर्हिषः भगः ॥३॥

दग्धशीर्ष्णः जले सिरवाले
प्रजापतेः प्रजापति दक्षका
अजमुखं शिरः बकरेके मुँहवाला सिर
भवतु होवे,
स्वं बर्हिषः भागं अपना यज्ञीय भाग
भगः भग देवता
मित्रस्य चक्षुषा मित्र देवताके नेत्रोंसे
ईक्षेत देखा करें ॥३॥

पूषा तु यजमानस्य दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक् ।
देवाः प्रकृतसर्वाङ्गा ये म उच्छेषणं ददुः ॥४॥

पूषा तु यजमानस्य दद्भिः जक्षतु पिष्टभुक् देवाः प्रकृत सर्वाङ्गाः ये म उच्छेषणं ददुः ॥४॥

पूषा तु पिष्टभुक् पूषा तो पिसा अन्न खानेवाले हैं
यजमानस्य
दद्भिः (अतः) यजमानके दांतसे
जक्षतु खाया करें,
ये म उच्छेषणं
ददुः जिन्होंने मुझे (यज्ञसे) बचा दिया है,
देवाः प्रकृत सर्वाङ्गाः उन देवताओंके सब अंग यथावत (स्वस्थ) हो जायँ ॥४॥

बाहुभ्यामश्विनोः पूष्णो हस्ताभ्यां कृतबाहवः ।
भवन्त्वध्वर्यवश्चान्ये बस्तश्मश्रुर्भृगुर्भवेत् ॥५॥

बाहुभ्यां अश्विनोः पूष्णः हस्ताभ्यां कृत बाहवः भवन्तु अध्वर्यवः च अन्ये बस्तश्मश्रुः भृगुः भवेत् ॥५॥

अन्ये च अध्वर्यवः दूसरे अध्वर्यु आदि (जिनकी भुजा या हाथ टूटे हैं)

अश्विनोः बाहुभ्यां अश्विनी कुमारोंकी भुजाओंसे

पूष्णः हस्ताभ्यां कृत बाहवः भवन्तु पूषाके हाथोंसे भुजाओंवाले हों (भुजाओंका काम लें)

भृगुः बस्तश्मश्रुः भवेत् भृगु बकरेकी दाढ़ी वाले होवें ॥५॥

मैत्रेय उवाच-

तदा सर्वाणि भूतानि श्रुत्वा मीढुष्टमोदितम् ।
परितुष्टात्मभिस्तात साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥६॥

तदा सर्वाणि भूतानि श्रुत्वा मीढुष्टं उदितं परितुष्टात्मभिः तात साधु साधु इति अथ अब्रुवन् ॥६॥

तात तात् !

तदा मीढुष्टं उदितं तब शंकरजीकी बात

श्रुत्वा सर्वाणि भूतानि सुनकर सब प्राणी

परितुष्टात्मभिः सन्तुष्ट चित्त होकर

अथ साधु साधु यह 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा'

इति अब्रुवन् हुआ यह कहने लगे ॥६॥

ततो मीढ्वांसमामन्त्र्य शुनासीराः सहर्षिभिः ।
भूयस्तद्देवयजनं समीढ्वद्वेधसो ययुः ॥७॥

ततः मीढ्वांसं आमन्त्र्य शुनासीराः सह ऋषिभिः भूयः तत् देव यजनं समीढ्वत् वेधसः ययुः ॥७॥

ततः शुनासीराः तब देवता

सह ऋषिभिः ऋषियोंके साथ

मीढ्वांसं आमन्त्र्य शंकरजीको आमन्त्रण देकर

समीढ्वत् वेधसः शिव और ब्रह्माके साथ

तत् देव यजनं उस देव यज्ञशालामें

भूयः ययुः फिर गये ॥ ७॥

विधाय कात्स्न्र्येन च तद्यदाह भगवान् भवः ।
संदधुः कस्य कायेन सवनीयपशोः शिरः ॥८॥

विधाय कात्स्न्र्येन च तत् यत् आह भगवान् भवः संदधुः कस्य कायेन सवनीय पशोः शिरः ॥८॥

च भगवान् भवः	और भगवान् शंकरने	**कस्य कायेन**	दक्षके धड़पर
यत् आह	जो बतलाया	**सवनीय पशोः**	यज्ञ-पशुका
तत् कात्स्न्र्येन		**शिरः संदधुः**	सिर जोड़
विधाय	उसे पूर्णतः करके		दिया ॥८॥

संधीयमाने शिरसि दक्षो रुद्राभिवीक्षितः ।
सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ ददृशे चाग्रतो मृडम् ॥९॥

संधीयमाने शिरसि दक्षः रुद्र अभिवीक्षितः सद्यः सुप्त इव उत्तस्थौ ददृशे च अग्रतः मृडम् ॥९॥

शिरसि सन्धीय-		**सुप्त इव सद्यः**	सोतेसे जगेके समान
माने	सिरके जोड़े जानेपर		तत्काल
रुद्र अभिवीक्षितः	शङ्करजीकी दृष्टि	**दक्षः उत्तस्थौ**	दक्षजी उठे,
	पड़नेपर	**च अग्रतः**	और सामने ही
		मृडं ददृशे	शिवजीको देखा ॥९

तदा वृषध्वजद्वेषकलिलात्मा प्रजापतिः ।
शिवावलोकादभवच्छरद्ध्रद इवामलः ॥१०॥

तदा वृषध्वज द्वेष कलिल आत्मा प्रजापतिः शिव अवलोकात् अभवत् शरत् ह्रद इव अमलः ॥१०॥

वृषध्वज द्वेष	शङ्कर द्वेषकी	**शिव अवलोकात्**	शङ्करजीके दर्शनसे
कलिल आत्मा	कालिमासे कलुषित	**शरत् ह्रद इव**	शरत् कालीन
प्रजापतिः तदा	प्रजापति दक्ष उसी		सरोवरके समान
	समय	**अमलः अभवत्**	निर्मल हो गये ॥१०

भवस्तवाय कृतधीर्नाशक्नोदनुरागतः ।
औत्कण्ठ्याद्बाष्पकलया सम्परेतां सुतां स्मरन् ॥११॥

भवस्तवाय कृतधीः न अशक्नोत् अनुरागतः औत्कण्ठ्यात् वाष्पकलया सम्परेतां सुतां स्मरन् ॥११॥

भवस्तवाय	शङ्करजीकी स्तुति-का	**अनुरागतः**	प्रेमके कारण
कृतधीः	विचार किया; किन्तु	**वाष्पकलया औत्कण्ठ्यात्**	आँसूसे गला रुक जानेके कारण
सम्परेतां सुतां स्मरन्	मृत पुत्रीका स्मरण करके	**अशक्नोत् न**	(स्तुति) कर नहीं सके ॥११॥

कृच्छ्रात्संस्तभ्य च मनः प्रेमविह्वलितः सुधीः ।
शशंस निर्व्यलीकेन भावेनेशं प्रजापतिः ॥१२॥

कृच्छ्रात् संस्तभ्य च मनः प्रेम विह्वलितः सुधीः शशंस निर्व्यलीकेन भावेन ईशं प्रजापतिः ॥१२॥

सुधीः प्रजापतिः	विचारवान् प्रजापति दक्षने	**निर्व्यलीकेन भावेन**	निष्कपट भावसे
कृच्छ्रात् च	कठिनाईसे ही	**ईशं शशंस**	शङ्करजीकी प्रशंसा करने लगे ॥१२॥
मनः संस्तभ्य	मनको स्थिर करके		
प्रेम विह्वलितः	प्रेम विह्वल होकर		

दक्ष उवाच-

भूयाननुग्रह अहो भवता कृतो मे
दण्डस्त्वया मयि भृतो यदपि प्रलब्धः ।
न ब्रह्मबन्धुषु च वां भगवन्नवज्ञा
तुभ्यं हरेश्च कुत एव धृतव्रतेषु ॥१३॥

भूयान् अनुग्रहः अहो भवता कृतः मे दण्डः त्वया मयि भृतः यदपि प्रलब्धः न ब्रह्म बन्धुषु च वां भगवन् अवज्ञा तुभ्यं हरेः च कुत एव धृत व्रतेषु ॥१३॥

भगवन् अहो	भगवन् अहो !	**त्वया मे दण्डः भृतः**	आपने मुझे दण्ड देकर
यदपि प्रलब्धः	यद्यपि (मैंने आपको) ठगा (भागवंचित) किया था,		

मयि भूयान् भवता	मुझपर बड़ा भारी आपने
अनुग्रहः कृतः	अनुग्रह किया,
तुभ्यं हरेः	आप और श्रीहरि
वां ब्रह्म बन्धुषु च	दोनों ब्राह्मणाधमकी भी
अवज्ञा न	अवहेलना नहीं करते,
धृत व्रतेषु	(मेरे जैसे)व्रतनिष्ठ-की
कुत एव	फिर कैसे कर सकते हैं ॥१३॥

विद्यातपोव्रतधरान् मुखतः स्म विप्रान्
ब्रह्माऽऽत्मतत्त्वमवितुं प्रथमं त्वमस्राक् ।
तत्ब्राह्मणान् परम सर्वविपत्सु पासि
पालः पशूनिव विभो प्रगृहीतदण्डः ॥१४॥

विद्या तपः व्रतधरान् मुखतः स्म विप्रान् ब्रह्म आत्मतत्त्वं अवितुं प्रथमं त्वं अस्राक् तत् ब्राह्मणान् परम सर्व विपत्सु पासि पालः पशून् इव विभो प्रगृहीत दण्डः ॥१४॥

विभो	प्रभो !
आत्मतत्त्वं ब्रह्म	अपने ही स्वरूप वेदकी
अवितुं प्रथमं	रक्षाके लिए पहले
विद्या तपः व्रत-धरान्	विद्या, तप, व्रतनिष्ठ
विप्रान् स्म	ब्राह्मणोंको
त्वं मुखतः अस्राक्	आपने अपने मुखसे उत्पन्न किया
तत् ब्राह्मणान्	अतः उन ब्राह्मणोंकी
दण्डः प्रगृहीतः	दण्ड लेकर
पशून् पालः इव	पशुओंको उनके पालकके समान
सर्व विपत्सु परम	सब विपत्तियोंमें अच्छी तरह
पासि	रक्षा करते हैं ॥१४॥

योऽसौ मयाविदिततत्त्वदृशा सभायां
क्षिप्तो दुरुक्तिविशिखैरगणय्य तन्माम् ।
अर्वाक् पतन्तमर्हत्तमनिन्दयापाद्
दृष्ट्याऽऽर्द्रया स भगवान् स्वकृतेन तुष्येत् ॥१५॥

यः असौ मया अविदित तत्त्वदृशा सभायां क्षिप्तः दुरुक्ति विशिखैः अगणय्य तत् मां अर्वाक् पतन्तं अर्हत्तम निन्दया पात् दृष्ट्या आर्द्रया स भगवान् स्वकृतेन तुष्येत् ॥१५॥

तत्त्वदृशा अविदित	(आपके) तत्त्वको न जानकर
असौ मया	जो मैंने
दुरुक्ति विशिखैः	दुर्वचन-रूप वाणोंसे
सभायां क्षिप्तः	भरी सभामें आक्षेप किया था,
तत् अगणय्य	उसको गणना न करके
अर्हत्तम निन्दया	परम पूज्यकी निन्दा करनेसे
अर्वाक् पतन्तं मां	अधः पतित होते मुझे
आर्द्रया दृष्ट्या	करुणा-द्रवित दृष्टिसे
यः पात्	जिन्होंने बचा लिया,
स भगवान्	वे भगवान
स्वकृतेन तुष्येत्	अपनी उदारतासे ही सन्तुष्ट हों (उन्हें सन्तुष्ट करने योग्य मेरे पास कुछ नहीं है) ॥१५॥

मैत्रेय उवाच-

क्षमाप्यैवं स मीढ्वांसं ब्रह्मणा चानुमन्त्रितः ।
कर्म सन्तानयामास सोपाध्यायर्त्विगादिभिः ॥१६॥

क्षमाप्य एवं स मीढ्वांसं ब्रह्मणा च अनुमन्त्रितः कर्म सन्तान यामास स उपाध्याय ऋत्विक् आदिभिः ॥१६॥

स एवं मीढ्वांसं	उन (दक्ष) ने इस प्रकार शिवसे
क्षमाप्य च	क्षमा मांग कर और
ब्रह्मणा अनुमन्त्रितः	ब्रह्माजीसे अनुमति पाकर
स उपाध्याय ऋत्विक् आदिभिः	उपाध्याय, ऋत्विकों आदिके साथ
कर्म सन्तान यामास	(यज्ञीय) कार्य फैलाया ॥१६॥

वैष्णवं यज्ञसन्तत्यै त्रिकपालं द्विजोत्तमाः ।
पुरोडाशं निरवपन् वीरसंसर्गशुद्धये ॥१७॥

वैष्णवं यज्ञ सन्तत्यै त्रिकपालं द्विजोत्तमाः पुरोडाशं निरवपन् वीर संसर्ग शुद्धये ॥१७॥

द्विजोत्तमाः	श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने	**वैष्णवं यज्ञ**	
वीर संसर्ग शुद्धये	भूत-प्रेतोंके स्पर्श-दोषकी शुद्धिके लिए	**सन्तत्यै**	भगवान् विष्णुके निमित्त होने वाले यज्ञके विस्तारके लिए
त्रिकपालं	तीन पात्रोंमें तैयार		
पुरोडाशं	पुरोडाश नामक चरुका	**निरवपन्**	हवन किया ॥१७॥

अध्वर्युणाऽऽत्तहविषा यजमानो विशाम्पते ।
धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुरभूद्धरिः ॥१८॥

अध्वर्युणा आत्त हविषा यजमानः विशाम्पते धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुः अभूत् हरिः ॥१८॥

विशाम्पते	विदुर !	**विशुद्धया धिया**	विशुद्ध बुद्धिसे
आत्त हविषा	उस हविष्यको लेकर	**यजमानः दध्यौ**	यजमान (दक्ष) ने ध्यान किया
अध्वर्युणा	अध्वर्यके (खड़े होनेपर)	**तथा हरिः**	वैसे ही श्रीहरि
		प्रादुः अभूत्	प्रकट होगये ॥१८॥

तदा स्वप्रभया तेषां द्योतयन्त्या दिशो दश ।
मुष्णंस्तेज उपानीतस्ताक्ष्येण स्तोत्रवाजिना ॥१९॥

तदा स्वप्रभया तेषां द्योतयन्त्या दिशः दश मुष्णन् तेजः उपानीतः ताक्ष्येण स्तोत्र वाजिना ॥१९॥

स्तोत्र	(वृहत् एवं रथन्तर नामक) सामवेदके स्तोत्र रूपी	**स्वप्रभया**	अपनी कान्तिसे
वाजिना	पंख वाले	**दिशः दश**	दशों दिशाओंको
ताक्ष्येण उपानीतः	गरुड़पर बैठकर समीप आये	**द्योतयन्त्या**	प्रकाशित करते,
		तेषां तेजः मुष्णन्	उन (सब देवताओं) के तेजको हर लिया ॥१९॥

श्यामो हिरण्यरशनोऽर्ककिरीटजुष्टो
नीलालकभ्रमरमण्डितकुण्डलास्यः ।
कम्बवब्जचक्रशरचापगदासिचर्म-
व्यग्रैर्हिरण्मयभुजैरिव कर्णिकारः ॥२०॥

श्यामः हिरण्यरशनः अर्ककिरीट जुष्टः नील अलक भ्रमर मण्डित कुण्डल आस्यः कम्बु अब्ज चक्र शर चाप गदा असि चर्म व्यग्रैः हिरण्मय भुजैः इव कर्णिकारः ॥२०॥

श्यामः	श्याम वर्ण,
हिरण्यरशनः	सोनेकी करधनी पहिने,
अर्ककिरीट जुष्टः	सूर्यके समान प्रकाशमान मुकुट धारण किये,
नील अलक भ्रमर	काली भौंरों जैसी अलकों तथा
कुण्डल मण्डित आस्यः	कुण्डलोंसे शोभित मुख,
कम्बु अब्ज	शंख, कमल,
चक्र शर चाप	चक्र, वाण, धनुष,
गदा असि चर्म	गदा, तलवार, ढाल
हिरण्मय भुजैः	स्वर्णाभरण भूषित भुजाओंमें
व्यग्रैः	लिए हुए
कर्णिकारः इव	(पुष्पित) कनैरके समान थे ॥२०॥

वक्षस्यधिश्रितवधूर्वनमाल्युदार-
हासावलोककलया रमयंश्च विश्वम् ।
पार्श्वभ्रमद्व्यजनचामरराजहंसः
श्वेतातपत्रशशिनोपरि रज्यमानः ॥२१॥

वक्षसि अधिश्रित वधूः वनमाल्य उदार हास अवलोक कलया रमयन् च विश्वं पार्श्व भ्रमत् व्यजन चामर राजहंसः श्वेत आतपत्र शशिना उपरि रज्यमानः ॥२१॥

वक्षसि	वक्षस्थलपर
वधूः अधिश्रित	लक्ष्मी (श्रीवत्स) विराजमान तथा
उदार वनमल्य	विशाल वनमाला है,
हास अवलोक	
कलया	सस्मित दृष्टिपातसे–
विश्वं च रमयन्	सम्पूर्ण विश्वको आनन्दित कर रहे हैं,

व्यजन राजहंसः	
चामर	पंखे तथा राजहंस जैसे श्वेत चामर
पार्श्व भ्रमत्	दोनों ओर चलते हैं,
उपरि शशिना	
रज्यमानः	ऊपर चन्द्रके समान शोभावाला
श्वेत आतपत्र	श्वेत छत्र लगा है ॥२१॥

तमुपागतमालक्ष्य सर्वे सुरगणादयः ।
प्रणेमुः सहसोत्थाय ब्रह्मेन्द्रव्यक्षनायकाः ॥२२॥

तं उपागतं आलक्ष्य सर्वे सुरगण आदयः प्रणेमुः सहसा उत्थाय ब्रह्म इन्द्रव्यक्ष नामकाः ॥२२॥

तं उपागतं	
आलक्ष्य	उनको आया देखकर
ब्रह्म इन्द्रव्यक्ष	ब्रह्मा, इन्द्र, शिव
नामकाः सर्वे	प्रमुख सब

सुरगण आदयः	देवादिगणने
सहसा उत्थाय	सहसा उठकर
प्रणेमुः	प्रणाम किया ॥२२॥

तत्तेजसा हतरुचः सन्नजिह्वाः ससाध्वसाः ।
मूर्ध्ना धृताञ्जलिपुटा उपतस्थुरधोक्षजम् ॥२३॥

तत् तेजसा हतरुचः सन्न जिह्वाः स साध्वसाः मूर्ध्ना धृत आञ्जलिपुटाः उपतस्थुः अधोक्षजम् ॥२३॥

तत् तेजसा	उनके तेजसे
हतरुचः	(सबकी) कान्ति मलिन हो गयी,
सन्न जिह्वाः	जीभ स्तब्ध हो गयी,
स साध्वसाः	वे (सबके सब) सकपका गये

अञ्जलिपुटाः	अञ्जलि बाँधकर
मूर्ध्ना धृत	उसे सिरसे लगाकर
अधोक्षजं	भगवान् हृषीकेशके
उपतस्थुः	सामने खड़े हो गये ॥२३॥

अप्यवर्ग्यवृत्तयो यस्य महि त्वात्मभुवादयः ।
यथामति गृणन्ति स्म कृतानुग्रहविग्रहम् ॥२४॥

अपि अर्वाक् वृत्तयः यस्य महो तु आत्मभुव आदयः यथामति गृणन्ति स्म कृत अनुग्रह विग्रहम् ॥२४॥

आत्मभुव आदयः	ब्रह्मादि देवताओंकी
वृत्तयः	वृत्तियाँ
महि अपि	(भगवानकी) महिमासे यद्यपि
अर्वाक्	नीचे ही रहती हैं,
अनुग्रह विग्रहं	कृपापूर्वक शरीर धारण
कृतं स्म	किये हुए (भगवानकी)
यथा मति	अपनी बुद्धिके अनुसार
गृणन्ति	स्तुति करने लगे ॥२४॥

दक्षो गृहीतार्हणसादनोत्तमं
यज्ञेश्वरं विश्वसृजां परं गुरुम् ।
सुनन्दनन्दाद्यनुगैर्वृतं मुदा
गृणन् प्रपेदे प्रयतः कृताञ्जलिः ॥२५॥

दक्षः गृहीत अर्हण सादन उत्तमं यज्ञेश्वरं विश्वसृजां परं गुरुं सुनन्द नन्द आदि अनुगैः वृतं मुदा गृणन् प्रपेदे प्रयतः कृताञ्जलिः ॥२५॥

दक्षः उत्तमं	दक्ष उत्तम
अर्हण सादन गृहीत	पूजन सामग्री लेकर
यज्ञेश्वरं	यज्ञेश्वर
विश्वसृजां परं गुरुं	प्रजापतियोंके परम गुरु
सुनन्द नन्द आदि	सुनन्द नन्द आदि
अनुगैः वृतं	अनुचरोंसे घिरे (भगवानके)
मुदा प्रपेदे	पास प्रसन्नतासे गये,
कृताञ्जलिः	हाथ जोड़कर
प्रयतः गृणन्	एकाग्र होकर स्तुति करने लगे ॥२५॥

दक्ष उवाच-

शुद्धं स्वधाम्न्युपरताखिलबुद्ध्यवस्थं
चिन्मात्रमेकमभयं प्रतिषिध्य मायाम् ।

तिष्ठंस्तयैव पुरुषत्वमुपेत्य तस्या-
मास्ते भवानपरिशुद्ध इवात्मतन्त्रः ॥२६॥

शुद्धं स्वधाम्नि उपरतं अखिल बुद्ध्यवस्थं चिन्मात्रं एकं अभयं प्रतिषिध्य मायां तिष्ठन् तया एव पुरुषत्वं उपेत्य तस्यां आस्ते भवान् अपरिशुद्ध इव आत्मतन्त्रः ॥२६॥

स्वधाम्नि	अपने स्वरूपमें	**मायां प्रतिषिध्य**	मायाका तिरस्कार करके
अखिल बुद्ध्यवस्थं	बुद्धिकी समस्त अवस्थासे	**आत्मतन्त्रः तिष्ठन्**	स्वतन्त्र स्थित हैं,
उपरतं	रहित	**तया एव**	उस (माया) से ही
भवान् शुद्धं	आप शुद्ध	**पुरुषत्वं उपेत्य**	जीव भाव ग्रहण करके
चिन्मात्रं एकं	चिन्मय, अद्वितीय,	**तस्यां**	उस (माया) में ही
अभयं	अभय स्वरूप हैं,	**अपरिशुद्ध इव**	अशुद्ध (अज्ञानी)जैसे
		आस्ते	हो जाते हैं ॥२६॥

ऋत्विज ऊचुः-

तत्त्वं न ते वयमनञ्जन रुद्रशापात्
कर्मण्यवग्रहधियो भगवन्विदामः ।
धर्मोपलक्षणमिदं त्रिवृदध्वराख्यं
ज्ञातं यदर्थमधिदैवमदोव्यवस्थाः ॥२७॥

तत्त्वं न ते वयं अनञ्जन रुद्र शापात् कर्मणि अवग्रह धियः भगवन् विदामः धर्मं उपलक्षणं इदं त्रिवृत् अध्वराख्यं ज्ञातं यत् अर्थम् अधिदैवं अदोः व्यवस्थाः ॥२७॥

अनञ्जन भगवन्	परम शुद्ध भगवन् !	**तत्त्वं न विदामः**	तत्त्व नहीं जानते,
रुद्र शापात्	रुद्र (के प्रधानानुचर) के शापसे	**कर्मणि अवग्रह**	कर्ममें दुराग्रह रखने वाला
वयं ते	हम आपका	**धियः**	बुद्धिके कारण

यत् अर्थं	जिसके लिए
अदोः अधिदैवं	'इसका यह अधि-देवता है'
व्यवस्थाः	ऐसी व्यवस्था है,
धर्मं उपलक्षणं	(उस) धर्म प्रवृत्तिके नियामक
त्रिवृत्	वेदत्रयीसे (प्रतिपादित)
इदं अध्वराख्यं ज्ञातं	इस यज्ञ रूपको ही (हम आपका स्वरूप) जानते हैं ॥२७॥

सदस्या ऊचुः-

उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्र-
व्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्यात्मगेहोरुभारः ।
द्वन्द्वभ्रेऽभ्रे खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः
पादौकस्ते शरणद कदा याति कामोपसृष्टः ॥२८॥

उत्पत्ति अध्वनि अशरण उरु क्लेश दुर्गे अन्तक उग्र व्याल अन्विष्टे विषय मृग तृष्या आत्मगेह उरु भारः द्वन्द्वषु अभ्रे खल मृग भये शोकदावे अज्ञ सार्थः पादौ कः ते शरणद कदा याति काम उपसृष्टः ॥२८॥

शरणद	शरणदाता !
उरु क्लेश दुर्गे	बहुत क्लेशोंके कारण दुर्गम,
अन्तक उग्र व्याल अन्विष्टे	कालरूपी भयानक सर्प ताकमें जहां बैठा है,
विषय मृग तृष्या	विषय-भोगरूपी मृग तृष्णासे
आत्मगेह उरु भारे	शरीर और घरके भारी भारको लिए
द्वन्द्वषु अभ्रे	द्वन्द्व रूपी गड्ढोंसे भरे
खल मृग भये	दुर्जन रूपी पशुओंके भयसे युक्त
शोकदावे	शोक रूपी दावाग्नि लगे
अशरणे	विश्राम-स्थान रहित
उत्पत्ति अध्वनि	जन्म (मरण) रूपी मार्गमें
अज्ञ सार्थः	अज्ञानियोंके साथ
काम उपसृष्टः	कामनाओंसे प्रेरित (जाते)
ते कः कदा ते पादौ याति	वे कौन हैं और कब आपके चरणोंमें जायँगे ॥२८॥

रुद्र उवाच-

तव वरद वराङ्घ्रावाशिषेहाखिलार्थे
ह्यपि मुनिभिरसक्तैरादरेणार्हणीये ।
यदि रचितधियं मामविद्यलोकोऽपविद्धं
जपति न गणये तत्त्वत्परानुग्रहेण ॥२९॥

तव वरद वर अङ्घ्राः आशिष इह अखिल अर्थे हि अपि मुनिभिः असक्तैः आदरेण अर्हणीये यदि रचित धियं मा अविद्य लोकः अपविद्धं जपति न गणये तत् त्वत् पर अनुग्रहेण ॥२९॥

हि वरद	क्योंकि वरदायक प्रभु !	रचित धियं	उनमें चित्त लगा रहनेसे
इह	इस (संसार) में	यदि मा अविद्य	मुझे यदि अज्ञानी
अखिल अर्थे	समस्त प्रयोजनोंको	लोकः	लोग
तव वर अङ्घ्राः	आपके श्रेष्ठ चरण देने वाले हैं	अपविद्धं	आचरणभ्रष्ट
असक्तैः मुनिभिः	अनासक्त मुनियों द्वारा	जपति	कहते हैं (तो)
अपि आदरेण	भी आदरपूर्वक	त्वत् पर अनुग्रहेण	आपके परमानुग्रहसे
अर्हणीये	(वे) पूजनीय हैं,	तत् न गणये	उसकी (मैं) गणना नहीं करता ॥२९॥

भृगुरुवाच-

यन्मायया गहनयापहृतात्मबोधा
ब्रह्मादयस्तनुभृतस्तमसि स्वपन्तः ।
नात्मन् श्रितं तव विदन्त्यधुनापि तत्त्वं
सोऽयं प्रसीदतु भवान् प्रणतात्मबन्धुः ॥३०॥

यत् मायया गहनया अपहृत आत्मबोधाः ब्रह्मादयः तनुभृतः तमसि स्वपन्तः न आत्मन् श्रितं तव विदन्ति अधुना अपि तत्त्वं सः अयं प्रसीद तु भवान् प्रणत आत्म बन्धुः ॥३०॥

यत् गहनया मायया	जिनकी गम्भीर मायासे
आत्मबोधाः अपहृत	आत्मज्ञान लुप्त हो जानेसे
तमसि स्वपन्तः	अज्ञान निद्रामें सोये
ब्रह्मादयः तनुभृतः	ब्रह्मादि देहधारी
आत्मन् श्रितं	अपने भीतर ही स्थित
तव तत्त्वं	आपके तत्त्वको
अधुना अपि	अब तक भी
न विदन्ति	नहीं जानते
सः अयं	वह ये (प्रभु)
प्रणत	शरणागतके
आत्म बन्धुः	आत्मा और स्वजन
प्रसीद तु	(मुझपर) प्रसन्न हों ॥३०॥

ब्रह्मोवाच-

नैतत्स्वरूपं भवतोऽसौ पदार्थ-
भेदग्रहैः पुरुषो यावदीक्षेत् ।
ज्ञानस्य चार्थस्य गुणस्य चाश्रयो
मायामयाद् व्यतिरिक्तो यतस्त्वम् ॥३१॥

न एतत् स्वरूपं भवतः असौ पदार्थ भेद ग्रहैः पुरुषः यावत् ईक्षेत् ज्ञानस्य च अर्थस्य गुणस्य च आश्रयः माया मयात् व्यतिरिक्तः यतः त्वम् ॥३१॥

पदार्थ भेद ग्रहैः	पदार्थोंकी पृथकता जानने वाला (इन्द्रियोंसे)
पुरुषः यावत् ईक्षेत्	पुरुष जो कुछ देखता है
असौ एतत्	वह यह सब
भवतः स्वरूपं न	आपका स्वरूप नहीं है,
ज्ञानस्य च	ज्ञानके और
अर्थस्य	विषयोंके,
गुणस्य च	इन्द्रियोंके भी (आप)
आश्रयः	अधिष्ठान हैं,
यतः त्वं	अतएव आप
माया मयात्	मायामय (संसारसे)
व्यतिरिक्तः	(सर्वथा) पृथक हैं ॥३१॥

इन्द्र उवाच-

इदमप्यच्युत विश्वभावनं
वपुरानन्दकरं मनोदृशाम् ।
सुरविद्विट्क्षपणैरुदायुधै-
र्भुजदण्डैरुपपन्नमष्टभिः ॥३२॥

इदं अपि अच्युत विश्व भावनं वपुः आनन्दकरं मनः दृशां सुरविद्विट् क्षपणैः उदायुधैः भुजदण्डैः उपपन्नं: अष्टभिः ॥३२॥

अच्युत	अच्युत !	**इदं वपुः अपि**	यह (आपका) शरीर भी
सुरविद्विट्	देवद्रोहियोंका	**विश्व भावनं**	विश्व रक्षक तथा
क्षपणैः	नाश करनेवाले	**मनः दृशां**	(हमारे) मन एवं नेत्रोंको
उदायुधैः	शस्त्र उठाये	**आनन्दकरं**	आनन्द देने वाला है ॥३२॥
अष्टभिः			
भुजदण्डैः	आठ भुजदण्डोंसे		
उपपन्नं:	युक्त		

पत्न्य ऊचु-

यज्ञोऽयं तव यजनाय केन सृष्टो
विध्वस्तः पशुपतिनाद्य दक्षकोपात् ।
तं नस्त्वं शवशयनाभशान्तमेधं
यज्ञात्मन्नलिनरुचा दृशा पुनीहि ॥३३॥

यज्ञः अयं तव यजनाय केन सृष्टः विध्वस्तः पशु पतिना अद्य दक्ष-कोपात् तं नः त्वं शव शयनाभ शान्तं एधं यज्ञात्मन् नलिन रुचा दृशा पुनीहि ॥३३॥

अयं यज्ञः	यह यज्ञ	**केन सृष्टः**	प्रजापति (दक्ष) ने प्रारम्भ किया था,
तव यजनाय	आपके पूजनके लिए		

दक्षकोपात्	दक्षपर क्रोधके कारण
पशुपतिना विध्वस्तः	रुद्रने (उसे) नष्ट कर दिया,
यज्ञात्मन्	यज्ञ स्वरूप !
तं नः	उस हमारे
शव शयनाभ	मुर्देके समान निश्चेष्ट पड़े
शान्तं एधं	बुझी अग्निवाले (यज्ञ) को
त्वं नलिन रुचा	आप नीलकमल जैसी सुन्दर
दृशा पुनीहि	दृष्टिसे (देखकर) पवित्र कर दीजिये ॥३३॥

ऋषय ऊचुः—

अनन्वितं ते भगवन् विचेष्टितं
यदात्मना चरसि हि कर्म नाज्यसे ।
विभूतये यत उपसेदुरीश्वरीं
न मन्यते स्वयमनुवर्ततीं भवान् ॥३४॥

अन अन्वितं ते भगवन् विचेष्टितं यत् आत्मना चरसि हि कर्म न अज्यसे विभूतये यत उपसेदुः ईश्वरीं न मन्यते स्वयं अनुवर्ततीं भवान् ॥३४॥

भगवन्	भगवन् !
ते विचेष्टितं	आपकी लीला
अन अन्वितं	अनोखी है,
हि आत्मना	
चरसि	क्योंकि आप व्यवहार करते हैं,
यत् कर्म न	
अज्यसे	पर उसके कर्मसे लिप्त नहीं होते,
यत विभूतये	जिनसे ऐश्वर्य पानेके लिए
ईश्वरीं उपसेदुः	(दूसरे जिस) लक्ष्मीजीकी उपासना करते हैं—
स्वयं अनुवर्ततीं	उन स्वयं अनुगामिनी वनीका
भवान् न मन्यते	आप मान नहीं करते ॥३४॥

सिद्धा ऊचु :-

अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां
मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः ।
तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं
न निष्क्रामति ब्रह्मसम्पन्नवन्नः ॥३५॥

अयं त्वत् कथा मृष्ट पीयूष नद्यां मनः वारणः क्लेश दावाग्नि दग्धः तृषार्तः अवगाढः न सस्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्मसम्पन्नवत् नः ॥३५॥

अयं नः मनः वारणः	यह हमारा मन रूपी हाथी
क्लेश दावाग्नि दग्धः	क्लेशोंरूपी दावाग्निसे संतप्त
तृषार्तः	प्यासा
त्वत् कथा मृष्ट पीयूष	आपकी कथा रूपी विशुद्ध अमृत
नद्यां	नदीमें (वहाँ)
अवगाढः	गोता लगाये हैं,
ब्रह्मसम्पन्नवत्	ब्रह्मानन्द लीनसार (अब)
दावं न सस्मार	दावाग्निका स्मरण भी नहीं करता और
न निष्क्रामति	न (वहांसे) निकलता ॥३५॥

यजमान्युवाच-

स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः
श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः ।
त्वामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते
शीर्षहीनः कबन्धो यथा पूरुषः ॥३६॥

स्वागतं ते प्रसीद ईश तुभ्यं नमः श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः त्वां ऋते अधीश न अङ्गैः मखः शोभते शीर्षहीनः कबन्धः यथा पूरुषः ॥३६॥

ईश	सर्वेश्वर !
ते स्वागतं	आपका स्वागत है,
तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार,
श्रीनिवास	
कान्तया	श्रीनिवास ! अपनी प्रिया
श्रिया नः त्राहि	लक्ष्मी सहित हमारी रक्षा कीजिए ।
अधीश	यज्ञेश्वर !
त्वां ऋते	आपके बिना
न अङ्गैः मखः	अंगहीन यज्ञ
यथा पूरुषः	जैसे पुरुष
शीर्षहीनः	
कबन्धः	सिर रहित धड़ हो
शोभ ते	ऐसा लगता है ॥३६॥

लोकपाला ऊचु :-

दृष्टः किं नो दृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वं
प्रत्यग्द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम् ।
माया ह्येषा भवदीया हि भूमन्
यस्त्वं षष्ठः पञ्चभिर्भासि भूतैः ॥३७॥

दृष्टः किं नः दृक्भिः असत् ग्रहैः त्वं प्रत्यक् द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यं माया हि एषा भवदीया हि भूमन् यः त्वं षष्ठुः पञ्चभिः भासि भूतैः ॥३७॥

भूमन्	सर्वव्यापी प्रभु !
त्वं प्रत्यक् द्रष्टा	आप सब अन्तः करणोंके साक्षी हैं,
येन दृश्यं दृश्यते	जिसके द्वारा यह दृश्य जगत दीखता है ।
किं नः असत्	
ग्रहैः	क्या हमारी मायिक जगत देखनेवाली
त्वं दृष्टः	(इन्द्रियों) से आप देखे जा सकते हैं ?
हि एषा	
भवदीया	क्योंकि यह आपकी
माया हि	माया ही है कि
यः त्वं षष्ठुः	जो आप पंचभूतोंसे परे छठवें हैं,
पञ्चभिः भूतैः	पञ्चभूतोंसे युक्त
भासि	प्रतीत हो रहे हैं ॥३७॥

योगेश्वरा ऊचुः-

प्रेयान्न तेऽन्योऽस्त्यमुतस्त्वयि प्रभो
विश्वात्मनीक्षेन्न पृथग्य आत्मनः ।
अथापि भक्त्येशतयोपधावता-
मनन्यवृत्त्यानुगृहाण वत्सल ॥३८॥

प्रेयान् न ते अन्यः अस्ति यं उतः त्वयि प्रभो विश्व आत्मनि ईक्षेत् न पृथक् य आत्मनः अथापि भक्ति ईश तया उपधावतां अनन्य वृत्त्या अनुगृहाण वत्सल ॥३८॥

प्रभो	प्रभो !
य त्वयि विश्व आत्मनः	जो आपसे विश्वको,
आत्मनि	तथा अपने आत्मासे
पृथक् न ईक्षेत्	पृथक (विश्वको) नहीं देखता
यं उतः अन्यः ते प्रेयान् न अस्ति	उससे भिन्न दूसरा आपको अधिक प्रिय नहीं है ।
अथापि	फिर भी
भक्ति ईश तया	भक्तिके स्वामी होनेसे
अनन्य वृत्त्या	अनन्य भावसे
उपधावतां	भजन करने वोंलों पर
वत्सल अनुगृहाण	भक्तवत्सल ! अनुग्रह कीजिए ॥३८

जगदुद्भवस्थितिलयेषु दैवतो
बहुभिद्यमानगुणयाऽऽत्ममायया ।
रचितात्मभेदमतये स्वसंस्थया
विनिवर्तितभ्रमगुणात्मने नमः ॥३९॥

जगत् उद्भव स्थिति लयेषु दैवतः बहुभिद्यमान गुणया आत्ममायया रचित आत्मभेद मतये स्वसंस्थया विनिवर्तित भ्रम गुणात्मने नमः ॥३९॥

दैवतः	(जीवोंके) अदृष्ट वश
बहुभिद्यमान	अनेक प्रकारसे भेद उत्पन्न करती
गुणया आत्ममायया	गुणमयी अपनी मायासे

जगत् उद्भव स्थिति लयेषु	विश्वकी सृष्टि, स्थिति,प्रलयके लिए
आत्मभेद रचित	अपने ही (ब्रह्मादि) भेद बनाकर भी
स्वसंस्थया	अपने स्वरूपमें
मतये विनिवर्तित भ्रम	भ्रम रहित बुद्धिमें प्रकाशित
गुणात्मने नमः	निखिल गुणगण रूप आपको नमस्कार ॥३९॥

*वेदोवाच**–

नमस्ते श्रितसत्त्वाय धर्मादीनां च सूतये ।
निर्गुणाय च यत्काष्ठां नाहं वेदापरेऽपि च । ४०॥

नमः ते श्रित सत्त्वाय धर्म आदीनां च सूतये निर्गुणाय च यत् काष्ठां न अहं वेद अपरे अपि च ॥४०॥

धर्म आदीनां च	धर्म आदि (सत्कर्मों) की
सूतये	उत्पत्तिके लिए
श्रित सत्त्वाय	सत्व गुणको स्वीकार किये
च निर्गुणाय	तथा निर्गुण स्वरूप
ते नमः	आपको नमस्कार
यत् काष्ठां	जिसके स्वरूपको
अहं अपरे	
अपि च	हम और दूसरे भी
न वेद	नहीं जानते ॥४०॥

अग्निरुवाच–

यत्तेजसाहं सुसमिद्धतेजा
हव्यं वहे स्वध्वर आज्यसिक्तम् ।
तं यज्ञियं पञ्चविधं च पञ्चभिः
स्विष्टं यजुर्भिः प्रणतोऽस्मि यज्ञम् ॥४१॥

---

* गीता प्रेसकी प्रतिमें यहाँ 'ब्रह्मोवाच' है; किन्तु ब्रह्माजी बोल चुके हैं और टीकाकारोंने इसे वेदवाणी ही माना है।

यत् तेजसा अहं सुसमिद्ध तेजाः हव्यं वहे स्वध्वर आज्य सिक्तं तं यज्ञियं पञ्चविधं च पञ्चभिः स्विष्टं यजुर्भिः प्रणतः अस्मि यज्ञम् ॥४१॥

यत् तेजसा	जिसके तेजसे
अहं सुसमिद्ध	
तेजाः	मैं भली प्रकार तेजसे प्रज्वलित होकर
स्वध्वर आज्य	
सिक्तं	यज्ञमें घृत मिश्रित
हव्यं वहे	हवि (देवताओंके पास) पहुँचाता हूँ
तं पञ्चविधं	उन पाँच प्रकारके
यज्ञियं	(अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य तथा पशु सोम) यज्ञीय रूप वाले
पञ्चभिः	पांच (आश्रावय, अस्तु श्रौषट्, यजे, ये प्रजामहे, बषट्) इन प्रकारोंके
यजुर्भिः	यजुः मन्त्रोंसे
स्विष्टं	पूजित होनेवाले
यज्ञं प्रणतः	
अस्मि	यज्ञ पुरुषको प्रणाम करता हूँ ॥४१॥

देवा ऊचुः—

पुरा कल्पापाये स्वकृतमुदरीकृत्य विकृतं
त्वमेवाद्यस्तस्मिन् सलिल उरगेन्द्राधिशयने ।
पुमान् शेषे सिद्धैर्हृदि विमृशिताध्यात्मपदविः
स एवाद्याक्ष्णोर्यः पथि चरसि भृत्यानवसि नः ॥४२॥

पुरा कल्प अपाये स्वकृतं उदरीकृत्य विकृतं त्वं एव आद्यः तस्मिन् सलिल उरगेन्द्र अधिशयने पुमान् शेषे सिद्धैः हृदि विमृशित अध्यात्म पदविः स एव अद्यः अक्ष्णः यः पथि चरसि भृत्यान् अवसि नः ॥४२॥

पुरा कल्प अपाये	पहिले कल्पके प्रलय समय
स्वकृतं विकृतं	अपने बनाये विकारी जगतको
उदरीकृत्य	अपने भीतर समेट कर
सलिल	(प्रलय) जलमें

उरगेन्द्र अधिशयने	शेष शैय्यापर
त्वं एव आद्यः पुमान्	आप ही आदि पुरुष
शेषे	शयन करते हैं,
सिद्धैः अध्यात्म पदवीः	सिद्धों द्वारा अध्यात्म स्थितिका
विमृशित हृदि	मनन करनेपर (उन्हें) हृदयमें प्राप्त होते हैं
स एव अद्यः	वही (आप) आज
यः अक्ष्णः पथि चरसि	जो आंखोंके सामने उपस्थित हैं,
नः भृत्यान् अवसि	हम सेवकोंकी रक्षा करें ॥४२॥

गन्धर्वा ऊचुः-

अंशांशास्ते देव मरीच्यादय एते
ब्रह्मेन्द्राद्या देवगणा रुद्रपुरोगाः ।
क्रीडाभाण्डं विश्वमिदं यस्य विभूमन्
तस्मै नित्यं नाथ नमस्ते करवाम ॥४३॥

अंशांशाः ते देव मरीचि आदय एते ब्रह्म इन्द्र आद्याः देवगणाः रुद्र पुरोगाः क्रीडाभाण्डं विश्वं इदं यस्य विभूमन् तस्मै नित्यं नाथ नमः ते करवाम ॥४३॥

देव	देव !
एते मरीचि आदय	ये मरीचि आदि ऋषि,
ब्रह्म इन्द्र आद्याः देवगणाः	ब्रह्मा, इन्द्रादि देवगण,
रुद्र पुरोगाः	रुद्रादि प्रमुख सब
ते अंशांशाः	आपके क्षुद्र अंश हैं,
इदं विश्वं	यह संसार
यस्य विभूमन्	जिस सर्वव्यापकका
क्रीडाभाण्डं	खिलौना पात्र है
तस्मै नाथ ते नित्यं नमः करवाम	उस स्वामी आपको (हम) सदा नमस्कार करते हैं ॥४३॥

विद्याधर ऊचुः :-

त्वन्माययार्थमभिपद्य कलेवरेऽस्मिन्
कृत्वा ममाहमिति दुर्मतिरुत्पथैः स्वैः ।

क्षिप्तोऽप्यसद्विषयलालस आत्ममोहं
युष्मत्कथामृतनिषेवक उद् व्युदस्येत् ॥४४॥

त्वन् मायया अर्थं अभिपद्य कलेवरे अस्मिन् कृत्वा मम अहं इति दुर्मतिः पथैः स्वैः क्षिप्तः अपि असत् विषय लालस आत्म मोहं युष्मत् कथा अमृत निषेवक उद् व्युदस्येत् ॥४४॥

त्वन् मायया	आपकी मायासे	**असत् विषय आत्म मोहं लालसः**	मिथ्या भोगोंकी अपनेको मोहमें डालने वाली लालसाको
अर्थं	परम पुरुषार्थदायी		
अस्मिन् कलेवरे	इस (मनुष्य) शरीरमें		
अभिपद्य	आकर भी	**युष्मत् कथा अमृत निषेवक**	आपके कथामृतका सेवन करनेवाला ही
मम अहं इति	'मेरा' 'मैं' इस प्रकार		
दुर्मतिः कृत्वा	दुर्बुद्धि करके	**उद् व्युदस्येत्**	नष्ट कर सकता है ॥४४॥
स्वैः पथैः	अपने मार्गसे		
क्षिप्तः अपि	गिरनेपर भी		

ब्राह्मणा ऊचुः :-

त्वं क्रतुस्त्वं हविस्त्वं हुताशः स्वयं
त्वं हि मन्त्रः समिद्दर्भपात्राणि च ।
त्वं सदस्यर्त्विजो दम्पती देवता
अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥४५॥

त्वं क्रतुः त्वं हविः त्वं हुताशः स्वयं त्वं हि मन्त्रः समित् दर्भ पात्राणि च त्वं सदस्य ऋत्विजः दम्पती देवताः अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥४५॥

हि त्वं क्रतुः	क्योंकि आप ही सम्पूर्ण यज्ञरूप हैं,	**त्वं स्वयं हुताशः**	आप स्वयं अग्नि हैं,
त्वं हविः	आप ही हविष्य हैं,	**त्वं मन्त्रः समित्**	आप ही मन्त्र, समिधा,

दर्भ पात्राणि च	कुश तथा (यज्ञीय) पात्र हैं,
त्वं सदस्य ऋत्विजः	आप ही सदस्य, ऋत्विक्,
दम्पती देवताः	यजमान दम्पति, देवता
अग्निहोत्रं	अग्नि होत्र
स्वधा सोम	स्वधा, सोमरस,
आज्यं पशुः	घी और पशु हैं ॥४५॥

त्वं पुरा गां रसाया महासूकरो
दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रो यथा ।
स्तूयमानो नदँल्लीलया योगिभि-
र्व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः ॥४६॥

त्वं पुरा गां रसाया महासूकरः दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रः यथा स्तूयमानः नदत् लीलया योगिभिः व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः ॥४६॥

त्रयीगात्र	वेद मूर्ते !
त्वं यज्ञक्रतुः	आप ही यज्ञ और उसका संकल्प हैं,
पुरा रसाया गां	पहिले रसातल गयी पृथ्वीको
त्वं महासूकरः	आप महावाराहने
यथा वारणेन्द्रः	जैसे गजराज
पद्मिनीं	कमलिनी उठाये
दंष्ट्रया	(अपनी) दाढ़पर उठाकर
योगिभिः स्तूयमानः	योगियों द्वारा स्तुत होते
नदत् लीलया	गर्जना करते लीला पूर्वक
व्युज्जहर्थ	ऊपर ले आये थे ॥४६॥

स प्रसीद त्वमस्माकमाकाङ्क्षतां
दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ।
कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते
यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ॥४७॥

स प्रसीद त्वं अस्माकं आकाङ्क्षतां दर्शनं ते परिभ्रष्ट सत् कर्मणां कीर्त्यमाने नृभिः नाम्नि यज्ञेश ते यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ॥४७॥

ते दर्शनं	
आकांक्षतां	आपका दर्शन चाहने वाले
सत् कर्मणां	
परिभ्रष्ट	सत्कर्मसे भ्रष्ट हुए
अस्माकं	हम लोगोंपर
स त्वं प्रसीद	वह आप प्रसन्न हों,
यज्ञेश	यज्ञेश !
नृभिः ते नाम्नि	मनुष्यों द्वारा आपके नामोंका
कीर्त्यमाने	कीर्तन किये जानेपर
यज्ञविघ्नाः	यज्ञोंके विघ्न
क्षयं यान्ति	नष्ट हो जाते हैं,
तस्मै नमः	उस आपको नमस्कार ॥४७॥

मैत्रेय उवाच-

इति दक्षः कविर्यज्ञं भद्र रुद्रावमर्शितम् ॥
कीर्त्यमाने हृषीकेशे संनिन्ये यज्ञभावने ॥४८॥

इति दक्षः कविः यज्ञं भद्र रुद्र अवमर्शितं कीर्त्यमाने हृषीकेशे सन्निन्ये यज्ञ भावने ॥४८॥

भद्र	भद्र विदुर !
इति यज्ञ भावने	इस प्रकार यज्ञ-रक्षक
हृषीकेशे	भगवान हृषीकेशकी
कीर्त्यमाने	स्तुति होते समय
कविः दक्षः	चतुर दक्षने
रुद्र अवमर्शितं	रुद्रगणों द्वारा नष्ट किया
यज्ञं सन्निन्ये	यज्ञ (फिर) प्रारम्भ किया ॥४८॥

भगवान् स्वेन भागेन सर्वात्मा सर्वभागभुक् ।
दक्षं बभाष आभाष्य प्रीयमाण इवानघ ॥४९॥

भगवान् स्वेन भागेन सर्वात्मा सर्व भाग भुक् दक्षं बभाष आभाष्य प्रीयमाण इव अनघ ॥४९॥

अनघ	निष्पाप विदुर !
सर्वात्मा	सर्वान्तर्यामी
सर्व भाग भुक्	सभीके भागोंके भोक्ता
भगवान्	भगवान् (श्रीहरि)
स्वेन भागेन	(त्रिकपाल पुरोडाश रूप) अपने भागसे
प्रीयमाण इव	प्रसन्नसे होकर
दक्षं आभाष्य	दक्षको संबोधित करके
वभाष	बोले ॥४९॥

श्रीभगवानुवाच–

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥५०॥

अहं ब्रह्मा च शर्वः च जगतः कारणं परं आत्मा ईश्वर उपद्रष्टा स्वयं दृक् अविशेषणः ॥५०॥

अहं ब्रह्मा च च शर्वः जगतः परं कारणं	मैं तथा ब्रह्माजी एवं शंकरजी जगतके परम कारण हैं,
आत्मा, ईश्वर	(हम) सबके आत्मा, ईश्वर,
उपद्रष्टा	साक्षी,
स्वयं दृक्	स्वयं प्रकाश और
अविशेषणः	निर्विशेष हैं ॥५०॥

आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥५१॥

आत्म मायां समाविश्य स अहं गुणमयीं द्विज सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥५१॥

द्विज	ब्रह्मन् (दक्ष) !
स अहं	वही मैं
गुणमयीं आत्म मायां	अपनी त्रिगुणमयी मायामें
समाविश्य	प्रवेश करके
विश्वं सृजन्	विश्वकी सृष्टि करते,
रक्षन् हरन्	पालन तथा संहार करते हुए
क्रियोचिताम् संज्ञां दध्रे	उस क्रियाके अनुसार नाम धारण कर लेता हूँ ॥५१॥

तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ।
ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥५२॥

तस्मिन् ब्रह्मणि अद्वितीये केवले परमात्मनि ब्रह्म रुद्रौ च भूतानि भेदेन अज्ञः अनुपश्यति ॥५२॥

तस्मिन् ब्रह्मणि	उस ब्रह्म	**च भूतानि**	तथा सब प्राणियोंको
अद्वितीये	अद्वितीय	**भेदेन**	
केवले		**अनुपश्यति**	भेदसे (भिन्न-भिन्न) देखता है ॥५२॥
परमात्मनि	शुद्ध परमात्मा (मुझ) में		
अज्ञः ब्रह्म रुद्र	अज्ञानी पुरुष ब्रह्मा, रुद्र		

यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु शिरः पाण्यादिषु क्वचित् ।
पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः ॥५३॥

यथा पुमान् न स्व अङ्गेषु शिरः पाणि आदिषु क्वचित् पारक्य बुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः ॥५३॥

यथा पुमान्	जैसे पुरुष	**न कुरुते**	नहीं करता,
शिरः पाणि		**एवं मत्परः**	इसी प्रकार मेरे परायण भक्त
आदिषु	सिर, हाथ आदि		
स्व अङ्गेषु	अपने अङ्गोंमें	**भूतेषु**	प्राणियोंमें (परायापन नहीं करते) ॥५३
क्वचित्	कभी भी		
पारक्य बुद्धिं	परायेपनका भाव		

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥५४॥

त्रयाणां एक भावानां यः न पश्यति वै भिदां सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिं अधिगच्छति ॥५४॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
त्रयाणां	(हम ब्रह्म और शिव) तीनों जो
एक भावानां	स्वरूपतः एक ही हैं,
सर्वभूतात्मनां	सब प्राणियोंकी आत्मा हैं,
यः वै भिदां	जो भी भेद
न पश्यति	नहीं देखता
स शान्ति	वह शान्ति
अधिगच्छति	पाता है ॥५४॥

मैत्रेय उवाच-

एवं भगवताऽऽदिष्टः प्रजापतिपतिर्हरिम् ।
अर्चित्वा क्रतुना स्वेन देवानुभयतोऽयजत् ॥५५॥

एवं भगवता आदिष्टः प्रजापति पतिः हरिं अर्चित्वा क्रतुना स्वेन देवान् उभयतः अयजत् ॥५५॥

एवं भगवता	इस प्रकार भगवानके
आदिष्टः	आदेश देनेपर
प्रजापति पतिः	प्रजापतियोंके अध्यक्ष (दक्ष) ने
हरिं क्रतुना	श्रीहरिकी (त्रिक-पाल) यज्ञ द्वारा
अर्चित्वा	पूजा करके
उभयतः	दोनों प्रकारके (अंग-भूत और प्रधान)
देवान् अयजत्	देवताओंकी पूजा की ॥५५॥

रुद्रं च स्वेन भागेन ह्युपाधावत्समाहितः ।
कर्मणोदवसानेन सोमपानितरानपि ।
उदवस्य सहर्त्विग्भिः सस्नाववभृथं ततः ॥५६॥

रुद्रं च स्वेन भागेन हि उपाधावत् समाहितः कर्मणा उद् अवसानेन सोमपान् इतरान् अपि उदवस्य सह ऋत्विक्भिः सस्ना अवभृथं ततः ॥५६॥

हि स्वेन भागेन च	फिर (यज्ञ शेषरूप) अपने भागसे ही
समाहितः	एकाग्र चित्तसे
रुद्र उपाधावत्	शंकरजीकी पूजा की,
उद् अवसानेन कर्मणा	(समाप्तिमें किये जाने वाले) उदवसान कर्मसे
सोमपान्	सोमपान करनेवाले
	तथा
इतरान् अपि	दूसरे भी (देवताओं) को
उदवस्य	उद्वासन करके,
ततः ऋत्विक्भिः सह	फिर ऋत्विजोंके साथ
अवभृथं सस्ना	अवभृथ स्नान किया ॥५६॥

तस्मा अप्यनुभावेन स्वेनैवावाप्तराधते ।
धर्म एव मतिं दत्त्वा त्रिदशास्ते दिवं ययुः ॥५७॥

तस्मा अपि अनुभावेन स्वेन एव आप्त राधसे धर्म एव मतिं दत्त्वा त्रिदशाः ते दिवं ययुः ॥५७॥

स्वेन एव आप्त राधसे	अपने पुरुषार्थसे ही सब सिद्धि प्राप्त
तस्मा अनुभावेन	उन प्रभावशाली दक्षको भी
धर्म एव मतिं	'तुम्हारी बुद्धि धर्म-में ही लगी रहे'
दत्त्वा	(यह आशीर्वाद) देकर
ते त्रिदशाः	वे देवता
दिवं ययुः	स्वर्ग चले गये ॥५७

एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम् ।
जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुश्रुम ॥५८॥

एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वं कलेवरं जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायां इति शुश्रुम ॥५८॥

एवं दाक्षायणी सती	इस प्रकार दक्ष कन्या सती
पूर्वं कलेवरं हित्वा	पहिला शरीर त्याग-कर

हिमवतः क्षेत्रे मेनायां जज्ञे	हिमाचलकी पत्नी मेनासे उत्पन्न हुई,	**इति शुश्रुम**	ऐसा सुना है ॥५८॥

तमेव दयितं भूय आवृङ्क्ते पतिमम्बिका ।
अनन्यभावैकगतिं शक्तिः सुप्तेव पूरुषम् ॥५९॥

तं एव दयितं भूय आवृङ्क्ते पतिं अम्बिका अनन्य भाव एक गतिं शक्तिः सुप्त एव पूरुषम् ॥५९॥

सुप्त एव पूरुषं	जैसे सोये हुए पुरुष-की	**एक गतिं**	(अपनी) एकमात्र गति
शक्तिः	शक्ति (उसीमें रहती है, वैसे)	**अनन्य भाव**	अनन्यभाव वाली
तं एव दयितं	उन्हीं अपने प्रियतम (शिव) की	**अम्बिका**	जगदम्बा (पार्वती)ने
		भूय पतिं	फिरसे पति
		आवृङ्क्ते	वरण किया ॥५९॥

एतद्भगवतः शम्भोः कर्म दक्षाध्वरद्रुहः ।
श्रुतं भागवताच्छिष्यादुद्धवान्मे बृहस्पतेः ॥६०॥

एतत् भगवतः शम्भोः कर्म दक्ष अध्वर द्रुहः श्रुतं भागवतात् शिष्यात् उद्धवात् मे बृहस्पतेः ॥६०॥

एतत् भगवतः	यह भगवान	**बृहस्पतेः**	
दक्ष अध्वर द्रुहः	दक्ष-यज्ञ-विनाशक	**शिष्यात्**	बृहस्पतिके शिष्य
शम्भोः	शंकरका	**भागवतात्**	महाभागवत
कर्म मे	कर्म मैंने	**उद्धवात् श्रुतं**	उद्धवसे सुना है ॥६०

इदं पवित्रं परमीशचेष्टितं
यशस्यमायुष्यमघौघमर्षणम् ।
यो नित्यदोऽऽकर्ण्य नरोऽनुकीर्तयेद्
धुनोत्यघं कौरव भक्तिभायतः ॥६१॥

इदं पवित्रं परं ईश चेष्टितं यशस्यं आयुष्यं अघ ओघ मर्षणं यः नित्यदा आकर्ण्य नरः अनुकीर्तयेत् धुनोति अघं कौरव भक्ति भावतः ॥६१॥

कौरव	विदुर !
इदं ईश चेष्टितं	यह शिव-चरित
परं पवित्रं	परम पवित्र है,
यशस्यं आयुष्यं	यश तथा आयु देने वाला है,
अघ ओघ मर्षणं	पापराशिका नाशक है,
यः भक्ति भावतः	जो भक्तिभाव पूर्वक
नरः नित्यदा	
आकर्ण्य	मनुष्य नित्य सुनकर
अनुकीर्तयेत्	फिर इसका वर्णन करता है
अघं धुनोति	वह अपने) पाप नष्ट कर देता है ॥६१

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे **पारमहंस्यां संहितायां**

चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञसंधानं नाम सप्तमोऽध्यायः।

अथ अष्टमोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

सनकाद्या नारदश्च ऋभुर्हंसोऽरुणिर्यतिः ।
नैते गृहान् ब्रह्मसुता ह्यावसन्नूर्ध्वरेतसः ॥१॥

सनक आद्याः नारदः च ऋभुः हंसः अरुणिः यतिः न एते गृहान् ब्रह्मसुताः हि आवसन् ऊर्ध्वरेतसः ॥१॥

सनक आद्याः	सनकादि (चारों कुमार)	**ब्रह्मसुताः**	ये ब्रह्माके पुत्र
		एते गृहान् न	ये लोग गृहस्थ नहीं हुए,
नारदः ऋभुः	नारद, ऋभु,		
हंसः अरुणिः	हंस, अरुणि,	**हि अर्ध्वरेतसः**	क्योंकि ब्रह्मचारी ही
च यतिः	तथा यति	**आवसन्**	बने रहे ॥१॥

मृषाधर्मस्य भार्याऽऽसीद्दम्भं मायां च शत्रुहन् ।
असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिर्जगृहेऽप्रजः ॥२॥

मृषा अधर्मस्य भार्या आसीत् दम्भं मायां च शत्रुहन् असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिः जगृहे अप्रजः ॥२॥

शत्रुहन्	शत्रु (कामादि) नाशक विदुर !	**दम्भं मायां च**	दम्भ और मायाका
		मिथुनं असूत	(उसने) जोड़ा उत्पन्न किया
अधर्मस्य	अधर्मकी		
भार्या मृषा		**तत्तु अप्रजः**	उन्हें तो सन्तान हीन
आसीत्	पत्नी मृषा (मिथ्या) थी	**निर्ऋतिः जगृहे**	निर्ऋतिने ले लिया ॥२॥

तयोः समभवल्लोभो निकृतिश्च महामते ।
ताभ्यां क्रोधश्च हिंसा च यद्दुरुक्तिः स्वसा कलिः ॥३॥

तयोः समभवत् लोभः निकृतिः च महामते ताभ्यां क्रोधः च हिंसा च यत् दुरुक्तिः स्वसा कलिः ॥३॥

महामते	महामति विदुर !	**ताभ्यां च**	उनसे तो
तयोः	उन दोनों (दम्भ और माया) से	**क्रोधः च हिंसा**	क्रोध और हिंसा
		यत् कलिः	जिनसे कलि
लोभः च निकृतिः	लोभ और निकृति (शठता)	**स्वसा दुरुक्तिः**	और उसकी बहिन दुरुक्ति उत्पन्न हुई ॥३॥
समभवत्	उत्पन्न हुए*		

दुरुक्तौ कलिराधत्त भयं मृत्युं च सत्तम ।
तयोश्च मिथुनं जज्ञे यातना निरयस्तथा ॥४॥

दुरुक्तौ कलिः आधत्त भयं मृत्युं च सत्तम तयोः च मिथुनं जज्ञे यातनाः निरयः तथा ॥४॥

सत्तम	साधु श्रेष्ठ !	**यातनाः तथा**	
भयं मृत्युं च	भय और मृत्यु,	**निरयः**	यातना और नरक
कलिः दुरुक्तौ	कलिने दुरुक्तिसे	**मिथुनं जज्ञे**	यह जोड़ा उत्पन्न हुआ ॥४॥
आधत्त	उत्पन्न किया,		
तयोः च	उनसे भी		

संग्रहेण मयाऽऽख्यातः प्रतिसर्गस्तवानघ ।
त्रिःश्रुत्वैतत्पुमान् पुण्यं विधुनोत्यात्मनो मलम् ॥५॥

संग्रहेण मया आख्यातः प्रतिसर्गः तव अनघ त्रिःश्रुत्वा एतत् पुमान् पुण्यं विधुनोति आत्मनः मलम् ॥५॥

अनघ तव	निष्पाप विदुर ! तुमसे	**प्रतिसर्गः**	प्रलयका कारण (अधर्मका वंश)
मया संग्रहेण	मैंने संक्षेपमें	**आख्यातः**	सुनाया,

---

*यह अधर्मका वंश है, अतः इसमें बहिन भाइयोंके परस्पर विवाह-की परम्परा चली है ।

एतत् पुण्यं	यह पुण्यका कारण	**आत्मनः मलं**	(अपने) चित्तके
पुमान् श्रुत्वा त्रिः	पुरुष तीन बार सुनकर	**विधुनोति**	दोषोंको दूर कर देता है ॥५॥

अथातः कीर्तये वंशं पुण्यकीर्तेः कुरूद्वह ।
स्वायम्भुवस्यापि मनोर्हरेरंशांशजन्मनः ॥६॥

अथ अतः कीर्तये वंशं पुण्यकीर्तेः कुरूद्वह स्वायम्भुवस्य अपि मनोः हरेः अंश अंश जन्मनः ॥६॥

कुरूद्वह	कुरुनन्दन !	**अंश जन्मनः**	अंशसे जन्म लेने-वाले
अथ अतः	अब इस (चित्त शुद्धि) के लिए	**पुण्यकीर्तेः**	पवित्र यशा
हरेः अशं	श्रीहरिके अंश (ब्रह्मा) के	**स्वायम्भुवस्य मनोः**	स्वायभ्भू मनुका
		अपि वंशं कीर्तये	भी वंश वर्णन करता हूँ ॥६॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ शतरूपापतेः सुतौ ।
वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतः स्थितौ ॥७॥

प्रियव्रत उत्तान पादौ शतरूपापतेः सुतौ वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतः स्थितौ ॥७॥

प्रियव्रत उत्तान पादौ	प्रियव्रत और उत्तान-पाद	**वासुदेवस्य कलया**	भगवान वासुदेवकी कला होनेसे
शतरूपापतेः	शतरूपाके पति (स्वायम्भूमनु) के	**जगतः रक्षायां स्थितौ**	संसारकी रक्षामें लगे रहते थे ॥७॥
सुतौ	पुत्र थे,		

जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिस्तयोः ।
सुरुचिः प्रेयसी पत्युर्नेतरा यत्सुतो ध्रुवः ॥८॥

जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिः तयोः सुरुचिः प्रेयसी पत्युः न इतरा यत् सुतः ध्रुवः ॥८॥

उत्तानपादस्य उत्तानपादकी
सुनीतिः सुरुचिः
जाये सुनीति और सुरुचि दो पत्नियाँ थीं
तयोः सुरुचिः उनमें-से सुरुचि
पत्युः प्रेयसी पतिकी प्रिया थी,
यत् सुतः ध्रुवः पर जिसके पुत्र ध्रुव थे
इतरा न वह दूसरी (सुनीति पति-प्रिया) नहीं थी ॥८॥

एकदा सुरुचेः पुत्रमङ्कमारोप्य लालयन् ।
उत्तमं नारुरुक्षन्तं ध्रुवं राजाभ्यनन्दत ॥९॥

एकदा सुरुचेः पुत्रं अङ्कं आरोप्य लालयन् उत्तमं न आरुरुक्षन्तं ध्रुवं राजा अभ्यनन्दत ॥९॥

एकदा सुरुचेः
पुत्रं एक बार सुरुचिके पुत्र
उत्तमं अङ्कं
आरोप्य उत्तमको गोदमें लेकर
लालयन् राजा स्नेह करते राजाने
आरुरुक्षन्तं ध्रुवं गोदमें चढ़नेको उद्धत ध्रुवका
अभ्यनन्दत न अभिनन्दन नहीं किया। (गोदमें नहीं लिया।) ॥९॥

तथा चिकीर्षमाणं तं सपत्न्यास्तनयं ध्रुवम् ।
सुरुचिः शृण्वतो राज्ञः सेर्ष्यमाहातिगर्विता ॥१०॥

तथा चिकीर्षमाणं तं सपत्न्याः तनयं ध्रुवं सुरुचिः शृण्वतः राज्ञः स ईर्ष्यं आह अति गर्विता ॥१०॥

तं सपत्न्याः तनयं उस सौतके बेटे
ध्रुवं तथा ध्रुवको वैसा (पिताकी गोदमें चढ़नेकी)
चिकीर्षमाणं चेष्टा करते (देखकर)
राज्ञः शृण्वतः राजाके सुनाते हुए
स ईर्ष्यं ईर्ष्यापूर्वक
अति गर्विता अत्यन्त गर्वसे
सुरुचिः आह सुरुचिने कहा ॥१०॥

सुरुच्युवाच*-

न वत्स नृपतेर्धिष्ण्यं भवानारोढुमर्हति ।
न गृहीतो मया यत्त्वं कुक्षावपि नृपात्मजः ॥११॥

न वत्स नृपतेः धिष्ण्यं भवान् आरोढुं अर्हति न गृहीतः मया यत् त्वं कुक्षाः अपि नृप आत्मजः ॥११॥

वत्स नृपतेः धिष्ण्यं भवान् आरोढुं अर्हति न नृप आत्मजः	बच्चे ! राज-सिंहासनपर तुम चढ़नेके अधिकारी नहीं हो,	**अपि यत् त्वं मया कुक्षाः न गृहीतः**	राजाके पुत्र होनेपर भी, क्योंकि तुमको मैंने (अपनी) कोखमें नहीं धारण किया ॥११॥

बालोऽसि बत नात्मानमन्यस्त्रीगर्भसम्भृतम् ।
नूनं वेद भवान् यस्य दुर्लभेऽर्थे मनोरथः ॥१२॥

बालः असि बत न आत्मानं अन्य स्त्री गर्भं सम्भृतं नूनं वेद भवान् यस्य दुर्लभे अर्थे मनोरथः ॥१२॥

बालः असि नूनं बत अन्य स्त्री गर्भं सम्भृतं न वेद	अभी नासमझ हो निश्चय इसीसे दूसरी स्त्रीके गर्भसे (अपना) उत्पन्न होना नहीं जानते	**यस्य भवान् दुर्लभे अर्थे मनोरथः**	जिससे तुम दुर्लभ विषयको पाना चाहते हो ॥१२॥

तपसाऽऽराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे ।
गर्भे त्वं साधयात्मानं यदीच्छसि नृपासनम् ॥१३॥

तपसा आराध्य पुरुषं तस्य एव अनुग्रहेण मे गर्भे त्वं साधय आत्मानं यत् ईच्छसि नृप आसनम् ॥१३॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

यत् नृप आसनं ईच्छसि	यदि राज्यसिंहासन चाहते हो तो
तपसा पुरुषं आराध्य	तपस्यासे भगवानको प्रसन्न करके
तस्य एव अनुग्रहेण	उन्हींकी कृपासे
त्वं गर्भे आत्मानं साधय	तुम मेरे गर्भमें अपनेको ले आओ ॥१३॥

विशेष—

इसमें दो बातें गर्वमें सुरुचिने विकट कही हैं—

१. इस जन्ममें तुम्हें राज्यासन नहीं मिल सकता। अतः मरकर मेरे गर्भमें आओ।

२. भगवान भी तुम्हें इस जन्ममें सिंहासन नहीं दे सकते। वे भी कृपा करें तो तुम्हें मेरे पेटसे जन्म देकर ही सिंहासन दे सकेंगे।

इसी गर्वका फल हुआ कि सुरुचि और उसके पुत्रको मरना पड़ा।

मैत्रेय उवाच–

मातुः सपत्न्याः स दुरुक्तिविद्धः
श्वसन् रुषा दण्डहतो यथाहिः।
हित्वा मिषन्तं पितरं सन्नवाचं
जगाम मातुः प्ररुदन् सकाशम् ॥१४॥

मातुः स पत्न्याः स दुरुक्ति विद्धः श्वसन् रुषा दण्डहतः यथा अहिः हित्वा मिषन्तं पितरं सन्नवाचं जगाम मातुः प्ररुदन् सकाशं ॥१४॥

सपत्न्याः मातुः	सौतेली मां द्वारा
दुरुक्ति विद्धः	दुर्वचनों-सी वींधा
यथा अहिः	जैसे सर्प
दण्डहतः	डंडेसे घायल हो
रुषा श्वसन्	क्रोधसे लम्बी श्वास छोड़ता
सन्नवाचं	स्तब्ध मौन
मिषन्तं	देखते हुए
पितरं हित्वा	पिताको छोड़कर
स प्ररुदन्	वह रोते हुए
मातुः सकाशं जगाम	माताके पास गया ॥१४॥

तं निःश्वसन्तं स्फुरिताधरोष्ठं
सुनीतिरुत्सङ्ग उदूह्य बालम् ।
निशम्य तत्पौरमुखान्नितान्तं
सा विव्यथे यद्गदितं सपत्न्या ॥१५॥

तं निःश्वसन्तं स्फुरित अधर ओष्ठं सुनीतिः उत्सङ्गं उदूह्य बालं निशम्य तत् पौरमुखात् नितान्तं सा विव्यथे यत् गदितं सपत्न्या ॥१५॥

तं निःश्वसन्तं	उस लम्बी श्वास छोड़ते,
स्फुरित अधर ओष्ठं	फड़कते ओठ वाले
बालं उत्सङ्गं उदूह्य	पुत्रको गोदमें उठाकर,
यत् सपत्न्या गदितं	जो सौतने कहा था
तत् पौरमुखात् निशम्य	वह पुरवासियोंके मुखसे सुनकर
सा सुनीतिः नितान्तं विव्यथे	वह सुनीति अत्यन्त व्यथित हुई ॥१५॥

सोत्सृज्य धैर्यं विललाप शोक-
दावाग्निना दावलतेव बाला ।
वाक्यं सपत्न्याः स्मरती सरोज-
श्रिया दृशा बाष्पकलामुवाह ॥१६॥

स उत्सृज्य धैर्यं विललाप शोक दावाग्निना दाव लता इव बाला वाक्यं सपत्न्याः स्मरती सरोजश्रिया दृशा बाष्प कलां उवाह ॥१६॥

धैर्यं उत्सृज्य	धैर्यं त्यागकर
स बाला	वह रानी
शोक दावाग्निना लता इव दाव	शोकरूपी दावाग्निसे लताके समान झुलसी
विललाप	विलाप करने लगी,
सपत्न्याः वाक्यं स्मरती	सौतकी बातें स्मरण करके
सरोजश्रिया दृशा	कमलके समान सुन्दर नेत्रोंमें
बाष्पकलां उवाह	आँसू भर लिये ॥१६॥

दीर्घं श्वसन्ती वृजिनस्य पार-
मपश्यती बालकमाह बाला ।

दीर्घं श्वसन्ती वृजिनस्य पारं अपश्यती बालकं आह बाला ।

दीर्घं श्वसन्ती	लम्बी श्वास लेती	**अपश्यती बाला**	न देखती हुई रानी
वृजिनस्य पारं	विपत्तिका अन्त	**बालकं आह**	पुत्रसे बोली—

*सुनीत्युवाच**

मामङ्गलं तात परेषु मंस्था
भुङ्क्ते जनो यत्परदुःखदस्तत् ॥१७॥

मा अमङ्गलं तात परेषु मंस्था भुङ्क्ते जनः यत् परदुःखदः तत् ॥१७॥

तात परेषु अमङ्गलं मा मंस्था	बेटा ! दूसरोंके लिए अमंगल मत मनाना,	**यत् परदुःखदः**	क्योंकि जो दूसरोंको दुख देता है
		तत् जनः भुङ्क्ते	उसे वह जन स्वयं भोगता है ॥१७॥

सत्यं सुरुच्याभिहितं भवान्मे
यद् दुर्भगाया उदरे गृहीतः ।
स्तन्येन वृद्धश्च विलज्जते यां
भार्येति वा वोढुमिडस्पतिर्माम् ॥१८॥

सत्यं सुरुच्या अभिहितं भवान् मे यत् दुर्भगाया उदरे गृहीतः स्तन्येन वृद्धः च विलज्जते यां भार्या इति वा वोढुं इडस्पतिः माम् ॥१८॥

सुरुच्या सत्यं अभिहितं	सुरुचिने ठीक ही कहा है	**भवान् उदरे गृहीतः**	तुम्हें (अपने) पेटमें धारण किया,
यत् मे दुर्भगायाः	कि मुझ अभागिनीने	**च स्तन्येन वृद्धः**	और इसीका स्तन-पान करके बढ़े हो,

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इडस्पतिः यां मां भार्यां इति वोढुं	महाराज जिस मुझे 'यह मेरी पत्नी है' यह स्वीकार करनेमें	**विलज्जते**	लज्जित होते हैं ॥१८॥

आतिष्ठ तत्तात विमत्सरस्त्व-
मुक्तं समात्रापि यदव्यलीकम् ।
आराधयाधोक्षजपादपद्मं
यदीच्छसेऽध्यासनमुत्तमो यथा ॥१९॥

आतिष्ठ तत् तात विमत्सरः त्वं उक्तं समात्रा अपि यत् अव्यलीकं आराधय अधोक्षज पादपद्मं यत् इच्छसे अध्यासनं उत्तमः यथा ॥१९॥

तात	प्रिय पुत्र !	**इच्छसे**	यदि राजसिंहासन चाहते हो
समात्रा उक्तं अपि	सौतेली मां का कहा होनेपर भी	**अधोक्षज पाद-पद्मं**	तो भगवान हृषीकेशके चरण-कमलकी
यत् अव्यलीकं	क्योंकि निर्दोष है,		
तत् विमत्सरः	वह द्वेष भाव छोड़कर	**आराधय**	आराधना करो ॥१९
आतिष्ठ	आचरण करो,		
उत्तमः यथा यत् अध्यासनं	उत्तमके समान		

यस्याङ्घ्रिपद्मं परिचर्य विश्व-
विभावनायात्तगुणाभिपत्तेः ।
अजोऽध्यतिष्ठत्खलु पारमेष्ठ्यं
पदं जितात्मश्वसनाभिवन्द्यम् ॥२०॥

यस्य अङ्घ्रि पद्मं परिचर्यं विश्वविभावनाय आत्तगुण अभिपत्तेः अजः अध्यतिष्ठत् खलु पारमेष्ठ्यं पदं जित आत्मश्वसन अभिवन्द्यम् ॥२०॥

विश्व-विभावनाय	संसारका पालन करनेके लिए	**आत्तगुण अभिपत्तेः**	सत्त्वगुण स्वीकार करनेवाले

यस्य अङ्घ्रि पद्मं	जिनके चरण कमलों-की
परिचर्य	पूजा करके
आत्मश्वसन जित	चित्त और श्वासपर विजय पानेवाले
अभिवन्द्यं	(लोगोंसे) अभिवन्दित
पारमेष्ठ्यं पदं	सर्वश्रेष्ठ पदपर
अजः अध्यतिष्ठत्	ब्रह्माजी स्थित हुए ॥२०॥

तथा मनुर्वो भगवान् पितामहो
यमेकमत्या पुरुदक्षिणैर्मखैः ।
इष्ट्वाभिपेदे दुरवापमन्यतो
भौमं सुखं दिव्यमथापवर्ग्यम् ॥२१॥

तथा मनुः वः भगवान् पितामहः यं एकमत्या पुरुदक्षिणैः मखैः इष्ट्वा अभिपेदे दुरवापम् अन्यतः भौमं सुखं दिव्यं अथ अपवर्ग्यम् ॥२१॥

तथा वः पितामहः	ऐसे ही तुम्हारे पितामह
भगवान् मनुः	भगवान मनुने
पुरुदक्षिणैः मखैः	बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंसे
एकमत्या यं इष्ट्वा	अनन्यभावसे जिनका यजन करके
अन्यतः दुरवापं	दूसरोंके लिए दुष्प्राप्य
दिव्यं भौमं सुखं	दिव्य तथा पार्थिव सुख
अथ अपवर्ग्यं अभिपेदे	तथा मोक्ष भी प्राप्त किया ॥२१॥

तमेव वत्साश्रय भृत्यवत्सलं
मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिम् ।
अनन्यभावे निजधर्मभाविते
मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम् ॥२२॥

तं एव वत्स आश्रय भृत्यवत्सलं मुमुक्षुभिः मृग्य पदाब्ज पद्धतिं अनन्यभावे निजधर्म भाविते मनसि अवस्थाप्य भजस्व पूरुषम् ॥२२॥

वत्स बेटा !
तं एव उन्हीं
आश्रय भृत्य-
वत्सलं शरणागत भक्त-वत्सल,
मुमुक्षुभिः जन्म-भृत्युसे छूटना चाहनेवाले
मृग्य पदाब्ज
पद्धतिं (जिनके) चरण-कमलोंके मार्गकी खोज करते रहते हैं,

निजधर्म
भाविते स्वधर्म पालनसे शुद्ध
मनसि
अवस्थाप्य चित्तमें (उन्हें) बैठाकर
अनन्यभावे अनन्य भावसे
पूरुषं भजस्व (उन) परमपुरुषका भजन करो ॥२२॥

नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनाद्
दुःखच्छिदं ते मृगयामि कंचन
यो मृग्यते हस्तगृहीतपद्मया
श्रियेतरैरङ्ग विमृग्यमाणया ॥२३॥

न अन्यं ततः पद्मपलाश लोचनात् दुःखच्छिदं ते मृगयामि कंचन यः मृग्यते हस्त गृहीत पद्मया श्रिय इतरैः अङ्ग विमृग्यमाणया ॥२३॥

अङ्ग प्रिय पुत्र !
इतरैः
विमृग्यमाणया दूसरों द्वारा जिनकी खोज होती रहती है,
हस्त गृहीत
पद्मया हाथमें कमल लेकर
श्रिय यः मृग्यते (उन) लक्ष्मी द्वारा जो ढूँढ़े जाते हैं,
ततः पद्मपलाश

लोचनात् उन कमलदल-लोचनको
अन्यं छोड़कर दूसरे किसीको
ते दुःखच्छिदं तुम्हारे दुःखका नाशक
मृगयामि न (मैं) ढूंढ़ नहीं पाती हूँ ॥२३॥

मैत्रेय उवाच

एवं संजल्पितं मातुराकर्ण्यार्थागमं वचः ।
संनियम्यात्मनाऽऽत्मानं निश्चक्राम पितुः पुरात् ॥२४॥

एवं संजल्पितं मातुः आकर्ण्य अर्थं आगमं वचः संनियम्य आत्मना आत्मानं निःचक्राम पितुः पुरात् ॥२४॥

एवं मातुः	
संजल्पितं	इस प्रकार माताका कहा
अर्थं आगमं	प्रयोजन सिद्ध करने वाली
वचः आकर्ण्य	बात सुनकर
आत्मना	
आत्मानं	अपने आपसे चित्तको
संनियम्य	नियन्त्रित करके
पितुः पुरात्	पिताके नगरसे
निःचक्राम	निकल पड़े ॥२४॥

नारदस्तदुपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ।
स्पृष्ट्वा मूर्धन्यघघ्नेन पाणिना प्राह विस्मितः ॥२५॥

नारदः तत् उपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितं स्पृष्ट्वा मूर्धनि अघघ्नेन पाणिना प्राह विस्मितः ॥२५॥

तत् उपाकर्ण्य	यह सब सुनकर
तस्य चिकीर्षितं	वे जो करना चाहते थे वह
ज्ञात्वा नारदः	जानकर नारदजीने
अघघ्नेन	
पाणिना	(अपने) पाप-नाशक हाथसे
मूर्धनि स्पृष्ट्वा	(उनका) मस्तक छू कर
विस्मितः प्राह	चकित होकर बोले—॥२५॥

*नारद उवाच**—

अहो तेजः क्षत्रियाणां मानभङ्गममृष्यताम् ।
बालोऽप्ययं हृदा धत्ते यत्समातुरसद्वचः ॥२६॥

अहो तेजः क्षत्रियाणां मानभङ्गं अमृष्यतां बालः अपि अयं हृदा धत्ते यः समातुः असत् वचः ॥२६॥

---

* गीता प्रेसकी प्रतिमें इस श्लोकके आगे यह उवाच है ।

अहो क्षत्रियाणां तेजः मानभङ्गं अमृष्यतां यः अयं बालः

अहो ! क्षत्रियोंकी (आश्चर्य जनक) तेजस्विता (ये) सम्मान नाश नहीं सह सकते,

नाधुनाप्यवमानं ते सम्मानं वापि पुत्रक ।
लक्षयामः कुमारस्य सक्तस्य क्रीडनादिषु ॥२७॥

न अधुना अपि अवमानं ते सम्मानं वा अपि पुत्रक लक्षयामः कुमारस्य सक्तस्य क्रीडन आदिषु ॥२७॥

पुत्रक मेरे नन्हे बच्चे !
कुमारस्य (तुम) बालकका
क्रीडन आदिषु
सक्तस्य खिलौनों आदिमें आसक्त
अधुना ते अभी तुम्हारा (इस आयुमें)
अवमानं अपि अपमान भी
वा सम्मानं अपि अथवा सम्मान भी
लक्षयामः न (मुझे) जान नहीं पड़ता है ॥२७॥

विकल्पे विद्यमानेऽपि न ह्यसंतोषहेतवः ।
पुंसो मोहमृते भिन्ना यल्लोके निजकर्मभिः ॥२८॥

विकल्पे विद्यमाने अपि न हि असंतोष हेतवः पुंसः मोहं ऋते भिन्ना यत् लोके निजकर्मभिः ॥२८॥

विकल्पे विकल्प (मानापमानका विचार)
विद्यमाने अपि रहनेपर भी
असंतोष हेतवः असन्तुष्ट होनेका कारण
मोहं ऋते
भिन्ना न अज्ञानके अतिरिक्त दूसरा नहीं है,
हि यत् लोके क्योंकि संसारमें
पुंसः निज-
कर्मभिः पुरुषको अपने कर्मोंसे ही (मानापमान मिलता है ।) ॥२८॥

परितुष्येत्ततस्तात तावन्मात्रेण पूरुषः ।
दैवोपसादितं यावद्वीक्ष्येश्वरगतिं बुधः ॥२९॥

परितुष्येत् ततः तात तावत् मात्रेण पूरुषः दैव उपसादितं यावत् वीक्ष्य ईश्वर गतिं बुधः ॥२९॥

तात	प्रिय वत्स !	**यावत् दैव**	
बुधः पूरुषः	बुद्धिमान पुरुष	**उपसादितं**	जितना प्रारब्धसे प्राप्त हो
ईश्वर गतिं			
वीक्ष्य	भगवानकी (विचित्र) गति देखकर	**तावत् मात्रेण**	उतने मात्रमें
		ततः परितुष्येत्	उससे सन्तुष्ट रहे ॥२९

अथ मात्रोपदिष्टेन योगेनावरुरुत्ससि ।
यत्प्रसादं स वै पुंसां दुराराध्यो मतो मम ॥३०॥

अथ मात्राः उपदिष्टेन योगेन अवरुरुत्ससि यत् प्रसादं स वै पुंसां दुराराध्यः मतः मम ॥३०॥

अथ मात्राः		**मम मतः**	मेरे मतसे
उपदिष्टेन	अभी माताके बतलाये	**वै स**	निश्चय वह
योगेन		**पुंसां दुराराध्यः**	पुरुषोंके लिए बड़ी कठिनतासे प्रसन्न होनेवाले हैं ॥३०॥
अवरुरुत्ससि	योगके द्वारा जिसे पाने चला है,		

मुनयः पदवीं यस्य निःसङ्गेनोरुजन्मभिः ।
न विदुर्मृगयन्तोऽपि तीव्रयोगसमाधिना ॥३१॥

मुनयः पदवीं यस्य निःसङ्गेन उरु जन्मभिः न विदुः मृगयन्तः अपि तीव्र योग समाधिना ॥३१॥

मुनयः	मुनिगण	**तीव्र योग**	
उरु जन्मभिः	बहुत जन्मों तक	**समाधिना**	तीव्र योगकी एकाग्रतासे
निःसङ्गेन	अनासक्त रहकर		

मृगयन्तः अपि	ढूंढ़ते हुए भी	**न विदुः**	नहीं जान सके ॥३१॥
यस्य पदवीं	जिन (भगवान) के पथको		

अतो निवर्ततामेष निर्बन्धस्तव निष्फलः ।
यतिष्यति भवान् काले श्रेयसां समुपस्थिते ॥३२॥

अतः निवर्ततां एष निर्बन्धः तव निष्फलः यतिष्यति भवान् काले श्रेयसां समुपस्थिते ॥३२॥

अतः निवर्ततां	अतः लौट जाओ	**समुपस्थिते**	आनेपर
एष तव निर्बन्धः	यह तुम्हारा हठ	**भवान् यतिष्यति**	तुम साधन
निष्फलः	निष्फल है,		करोगे ॥३२॥
श्रेयसां काले	कल्याणका समय		

यस्य यद् दैवविहितं स तेन सुखदुःखयोः ।
आत्मानं तोषयन्देही तमसः पारमृच्छति ॥३३॥

यस्य यत् दैव विहितं स तेन सुखदुःखयोः आत्मानं तोषयत् देही तमसः पारं ऋच्छति ॥३३॥

यस्य यत्	जिसके लिए जो	**देही तमसः**	शरीरधारी अज्ञान्ध-कारसे
दैव विहितं	दैवका विधान है,	**पारं ऋच्छति**	पार पहुँच जाता है ॥३३॥
स तेन	वह उस		
सुखदुःखयोः	सुख-दुःखमें		
आत्मानं तोषयत्	अपनेको सन्तुष्ट रखता		

गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात् ।
मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते ॥३४॥

गुण अधिकान् मुदं लिप्सेत् अनुक्रोशं गुण अधमात् मैत्रीं समानात् अन्विच्छेन् न तापैः अभिभूयते ॥३४॥

गुण अधिकान्	अपनेसे अधिक गुणवालोंसे	**समानात् मैत्रीं**	समान (गुणवाले) से मित्रता
मुदं लिप्सेत्	(उनको देखकर) प्रसन्न हो,	**अन्विच्छेत्**	करना चाहे (तब)
गुण अधमात्	अपनेसे कम गुण-वालोंपर	**तापैः न अभिभूयते**	सन्ताप ग्रस्त नहीं होता ॥३४॥
अनुक्रोशं	अनुग्रह करे		

ध्रुव उवाच–

सोऽयं शमो भगवता सुखदुःखहतात्मनाम् ।
दर्शितः कृपया पुंसां दुर्दर्शोऽस्मद्विधैस्तु यः ॥३५॥

सः अयं शमः भगवता सुखदुःख हत आत्मनां दर्शितः कृपया पुंसां दुर्दशः अस्मत् विधैः तु यः ॥३५॥

अस्मत् विधैः	मेरे जैसोंके लिए	**सुख दुःख हत आत्मनां**	सुख-दुःखसे
यः तु दुर्दशः	जो तो दुर्दर्श (समझमें न आने वाला) है,	**पुंसां**	आहत चित्त पुरुषोंके लिए
सः अयं शमः	वह यह शान्तिका मार्ग	**भगवता कृपया दर्शितः**	आपने कृपा पूर्वक दिखलाया ॥३५॥

अथापि मेऽविनीतस्य क्षात्त्रं घोरमुपेयुषः ।
सुरुच्या दुर्वचोबाणैर्न भिन्ने श्रयते हृदि ॥३६॥

अथापि मे अविनीतस्य क्षात्रं घोरं उपेयुषः सुरुच्या दुर्वचः बाणैः न भिन्ने श्रयते हृदि ॥३६॥

अथापि घोरं क्षात्रं	फिर भी	**सुरुच्या दुर्वचः**	सुरुचिके दुर्वचनों रूपी
उपेयुषः	घोर क्षत्रिय स्व-भाववाले,	**बाणैः भिन्ने हृदि**	बाणोंसे विदीर्ण हृदयमें
अविनीतस्य	विनय रहित के	**न श्रयते**	नहीं ठहर पाता ॥३६

पदं त्रिभुवनोत्कृष्टं जिगीषोः साधु वर्त्म मे ।
ब्रूह्यस्मत्पितृभिर्ब्रह्मन्नन्यै रप्यनधिष्ठितम् ॥३७॥

पदं त्रिभुवन उत्कृष्टं जिगीषोः साधु वर्त्म मे ब्रूहि अस्मत् पितृभिः ब्रह्मन् अन्यैः अपि अनधिष्ठितम् ॥३७॥

अस्मत् पितृभिः	मेरे पिता-पितामह	**पदं जिगीषोः**	पदको जीतना चाहता हूँ,
अन्यैः अपि	तथा दूसरोंसे भी	**ब्रह्मन्**	ब्रह्मन् !
अनधिष्ठितं	न पाया हुआ	**साधु वर्त्म**	(इसका) उत्तम मार्ग
त्रिभुवन उत्कृष्टं	त्रिभुवनमें सर्वश्रेष्ठ	**मे ब्रूहि**	मुझे बतलाइये ॥३७॥

नूनं भवान् भगवतो योऽङ्गजः परमेष्ठिनः ।
वितुदन्नटते वीणां हितार्थं जगतोऽर्कवत् ॥३८॥

नूनं भवान् भगवतः यः अङ्गजः परमेष्ठिनः वितुदन् अटते वीणां हितार्थं जगतः अर्कवत् ॥३८॥

यः भगवतः		**वीणां वितुदन्**	वीणा बजाते
परमेष्ठिनः	क्योंकि भगवान् ब्रह्माजीके	**अर्कवत्**	सूर्यके समान
		जगतः हितार्थं	संसारके कल्याणके लिए
अङ्गजः नूनं			
भवान्	पुत्र हैं, निश्चय वह आप हैं,	**अटते**	घूमते रहते हैं ॥३८॥

मैत्रेय उवाच :-

इत्युदाहृतमाकर्ण्य भगवान्नारदस्तदा ।
प्रीतः प्रत्याह तं बालं सद्वाक्यमनुकम्पया ॥३९॥

इति उदाहृतं आकर्ण्य भगवान् नारदः तदा प्रीतः प्रत्याह **तं बालं सद् वाक्यं अनुकम्पया ॥३९॥**

इति उदाहृतं	इस प्रकारकी बात	**प्रीतः तं बालं**	प्रसन्न होकर उस बालकपर
आकर्ण्य	(ध्रुवकी) सुनकर	**अनुकम्पया**	कृपा करके
तदा भगवान्		**सद् वाक्यं**	
नारदः	तब भगवान नारद	**प्रत्याह**	उपदेश देने लगे ॥३९

नारद उवाच :-

जनन्याभिहितः पन्थाः स वै निःश्रेयसस्य ते ।
भगवान् वासुदेवस्तं भज तत्प्रवणात्मना ॥४०॥

जनन्या अभिहितः पन्थाः स वै निःश्रेयसस्य ते भगवान् वासुदेवः तं भज तत् प्रवण आत्मना ॥४०॥

जनन्या		**तं भगवान्**	
अभिहितः	माताके द्वारा बतलाया	**वासुदेवं**	उन भगवान वासुदेवका
स पन्थाः वै	वही मार्ग निश्चय	**तत् प्रवण**	
ते निःश्रेयसस्य	तुम्हारे लिए परम-कल्याणकारी है,	**आत्मना**	उनमें चित्त लगाकर
		भज	भजन करो ॥४०॥

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ।
एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥४१॥

धर्म अर्थ काम मोक्ष आख्यं य इच्छेत श्रेय आत्मनः एकं एव हरेः तत्र कारणं पाद सेवनम् ॥४१॥

धर्म अर्थ काम		**तत्र एकं एव**	उसमें एक मात्र
मोक्ष	धर्म, अर्थ,काम, मोक्ष	**कारणं**	उपाय
आख्यं श्रेय	नामक पुरुषार्थोंमें	**हरेः पाद सेवनम्**	श्रीहरिकी चरण सेवा ही है ॥४१॥
य आत्मनः			
इच्छेत	जो अपने लिए चाहे		

तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि ।
पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरेः ॥४२॥

तत् तात गच्छ भद्रं ते यमुनायाः तटं शुचि पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥४२॥

तात	प्रियवत्स !
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो,
यत्र नित्यदा	जहाँ सर्वदा
हरेः सान्निध्यं	श्रीहरिका सन्निध्य है
तत् यमुनायाः	उस यमुनाके
शुचि तटं	पवित्र किनारे
पुण्यं मधुवनं	पावन मधुवनमें
गच्छ	जाओ ॥४२॥

स्नात्वानुसवनं तस्मिन् कालिन्द्याः सलिले शिवे ।
कृत्वोचितानि निवसन्नात्मनः कल्पितासनः ॥४३॥

स्नात्वा अनुसवनं तस्मिन् कालिन्द्याः सलिले शिवे कृत्वा उचितानि निवसन् आत्मनः कल्पित आसनः ॥४३॥

तस्मिन् शिवे कालिन्द्याः	वहाँ
सलिले	निर्मल यमुना-जलमें
अनुसवनं	
स्नात्वा	तीनों समय स्नान करके
उचितानि कृत्वा	नित्य दैनिक कर्म करके
आत्मनः कल्पित	अपने द्वारा बनाये
आसनः निवसन्	आसनपर स्थिर बैठना ॥४३॥

प्राणायामेन त्रिवृता प्राणेन्द्रियमनोमलम् ।
शनैर्व्युदस्याभिध्यायेन्मनसा गुरुणा गुरुम् ॥४४॥

प्राणायामेन त्रिवृता प्राण इन्द्रिय मनः मलं शनैः व्युदस्य अभिध्यायेत् मनसा गुरुणा गुरुम् ॥४४॥

त्रिवृता	तीन प्रकारके (पूरक, कुम्भक, रेचक)
प्राणायामेन	प्राणायामसे
प्राण इन्द्रिय	प्राण, इन्द्रिय तथा
मनः मलं	मनकी मलिनता
शनैः व्युदस्य	धीरे-धीरे दूर करके
मनसा	मनके द्वारा
गुरुणा गुरुं	गुरुओंके भी परम-गुरु
अभिध्यायेत्	(भगवानका) ध्यान करे ॥४४॥

प्रसादाभिमुखं शश्वत्प्रसन्नवदनेक्षणम् ।
सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुन्दरम् ॥४५॥

प्रसाद अभिमुखं शश्वत् प्रसन्न वदन ईक्षणं सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुन्दरम् ॥४५॥

सुरसुन्दरं	सभी देवताओंमें परम सुन्दर,
सुनासं सुभ्रुवं	सुन्दर नासिका, सुन्दर भौंह,
चारुकपोलं	सुन्दर कपोलवाले,
प्रसन्न वदन ईक्षणं	प्रसन्न मुख एवं नेत्र
शश्वत् प्रसाद अभिमुखं	सदा कृपा करनेको उद्यत ॥४५॥

तरुणं रमणीयाङ्गमरुणोष्ठेक्षणाधरम् ।
प्रणताश्रयणं नृम्णं शरण्यं करुणार्णवम् ॥४६॥

तरुणं रमणीय अङ्गं अरुण ओष्ठ ईक्षणं अधरं प्रणत आश्रयणं नृम्णं शरण्यं करुणार्णवम् ॥४६॥

तरुणं	तरुण अवस्थाके
रमणीय अङ्गं	मनोहर अङ्गोंवाले
अरुण ओष्ठ अधरं	लाल लाल दोनों ओठ
ईक्षणं	रतनारे नेत्रोंवाले,
प्रणत आश्रयणं	प्रणतजनोंके आश्रयदाता,
नृम्णं	सुखदायक
शरण्यं	शरणागत-वत्सल, और
करुणार्णवं	करुणा-सागर हैं ॥४६॥

श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम् ॥४७॥

श्रीवत्स अङ्कम् घनश्यामं पुरुषं वनमालिनं शङ्ख चक्र गदा पद्मैः अभिव्यक्त चतुर्भुजम् ॥४७॥

श्रीवत्स अङ्कम्	श्रीवत्सलाञ्छन,
घनश्यामं	मेघके समान श्याम,
वनमालिनं पुरुषं	वनमालाधारी परम-पुरुष,
शंख चक्र गदा पद्मैः अभिव्यक्तं चतुर्भुजम्	शंख, चक्र,गदा,पद्म-धारी चतुर्भुज हैं ॥४७॥

किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलयान्वितम् ।
कौस्तुभाभरणग्रीवं पीतकौशेयवाससम् ॥४८॥

किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलय अन्वितं कौस्तुभ आभरणं ग्रीवं पीतकौशेय वाससम् ॥४८॥

किरीटिनं	मुकुटधारी,	**ग्रीवं कौस्तुभ आभरणं**	गलेमें कौस्तुभमणि पहिने,
कुण्डलिनं	कुण्डल पहिने,		
केयूरवलय अन्वितं	वाजूबंद, कंकणधारी	**पीतकौशेय वाससं**	पीले रेशमी कपड़े वाले ॥४८॥

काञ्चीकलापपर्यस्तं लसत्काञ्चननूपुरम् ।
दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥४९॥

काञ्ची कलाप पर्यस्तं लसत् काञ्चन नूपुरं दर्शनीयतमं शान्तं मनः नयन वर्धनम् ॥४९॥

काञ्ची कलाप पर्यस्तं	सोनेकी करधनी पहिने,	**दर्शनीयतमं**	अत्यन्त दर्शनीय,
		शान्तं	शान्त,
काञ्चन नूपुरं लसत्	सोनेके नूपुरोंसे शोभित,	**मनः नयन वर्धनं**	मन तथा नेत्रोंको आनन्द देने वाले हैं ॥४९॥

पद्भ्यां नखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यां समर्चताम् ।
हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यमाक्रम्यात्मन्यवस्थितम् ॥५०॥

पद्भ्यां नखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यां समर्चतां हृत् पद्म कर्णिका-धिष्ण्यं आक्रम्य आत्मनि अवस्थितम् ॥५०॥

नखमणि श्रेण्या	मणियोंके समान नखावलीवाले	**पद्भ्यां विलसद्भ्यां**	चरणोंसे लीलापूर्वक

समर्चतां	(मानसिक) पूजन करनेवालोंके	**आक्रम्य**	चढ़कर
हृत् पद्म कर्णिकाधिष्ण्यं	हृदय कमलकी कर्णिकाके स्थानपर	**आत्मनि अवस्थितं**	अपने भीतर ही स्थित हैं ॥५०॥

स्मयमानमभिध्यायेत्सानुरागावलोकनम् ।
नियतेनैकभूतेन मनसा वरदर्षभम् ॥५१॥

स्मयमानं अभिध्यायेत् स अनुराग अवलोकनं नियतेन एक भूतेन मनसा वरदर्षभम् ॥५१॥

नियतेन एक भूतेन	नियन्त्रित तथा एकाग्र	**अवलोकनं**	प्रेम भरे नेत्रोंसे देखते
मनसा	मनसे	**वरदर्षभं**	वरदानी शिरोमणि (भगवान) का
स्मयमानं स अनुराग	मुस्कराते हुए	**अभिध्यायेत्**	ध्यान करे ॥५१॥

एवं भगवतो रूपं सुभद्रं ध्यायतो मनः ।
निर्वृत्या परया तूर्णं सम्पन्नं न निवर्तते ॥५२॥

एवं भगवतः रूपं सुभद्रं ध्यायतः मनः निर्वृत्या परया तूर्णं सम्पन्नं न निवर्तते ॥५२॥

एवं सुभद्रं	इस प्रकार परम कल्याणमय	**परया निर्वृत्या**	परमानन्द
भगवतः रूपं	भगवानके स्वरूपका	**सम्पन्नं मनः**	प्राप्त मन
ध्यायतः तूर्णं	ध्यान करनेसे शीघ्र	**निवर्तते न**	(वहांसे) हटता नहीं ॥५२॥

जप्यश्च परमो गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज ।
यं सप्तरात्रं प्रपठन् पुमान् पश्यति खेचरान् ॥५३॥

जप्यः च परमः गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज यं सप्तरात्रं प्रपठन् पुमान् पश्यति खेचरान् ॥५३॥

नृपात्मज	राजकुमार !
मे परमः गुह्यः	मुझसे परम रहस्य-मय
जप्यः च श्रूयतां	जप मन्त्र भी सुनो,
यं पुमान्	जिसे पुरुष
सप्तरात्रं प्रपठन्	सात दिन-रात (अखंड) जपकर
खेचरान् पश्यति	देवताओंको देखने लगता है ॥५३॥

"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।"

मन्त्रेणानेन देवस्य कुर्याद् द्रव्यमयीं बुधः ।
सपर्यां विविधैर्द्रव्यैर्देशकालविभागवित् ॥५४॥

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्रेण अनेन देवस्य कुर्यात् द्रव्यमयीं बुधः सपर्यां विविधैः द्रव्यैः देशकाल विभागवित् ॥५४॥

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।'

अनेन मन्त्रेण	इस मन्त्रसे
देशकाल विभागवित्	देश तथा समयका विभाग जाननेवाला
बुधः	बुद्धिमान (देशकाल-के अनुसार)
विविधैः द्रव्यैः	अनेक प्रकारके पदार्थोंसे
देवस्य	भगवानकी
द्रव्यमयीं सपर्यां	पदार्थार्पण रूप पूजा
कुर्यात्	करे ॥५४॥

सलिलैः शुचिभिर्माल्यैर्वन्यैर्मूलफलादिभिः ।
शस्ताङ्कुरांशुकैश्चार्चेत्तुलस्या प्रियया प्रभुम् ॥५५॥

सलिलैः शुचिभिः माल्यैः वन्य मूल फलादिभिः शस्त अङ्कुर अंशुकैः च अर्चेत् तुलस्याः प्रियया प्रभुम् ॥५५॥

प्रभुं	भगवानकी
शुचिभिः	
सलिलैः	पवित्र जलसे
वन्य माल्यैः	वनमें होनेवाले पुष्पोंकी माला,
मूल फलादिभिः	कन्द, फल आदिसे
शस्त अङ्कुर	शास्त्र विहित (पूर्वादि) अङ्कुरों-से,
अंशुकैः	वल्कल वस्त्रसे तथा

प्रियया तुलस्याः	उनकी प्रिया तुलसीसे	**अर्चेत्**	पूजा करे ॥५५॥

लब्ध्वा द्रव्यमयीमर्चां क्षित्यम्ब्वादिषु वार्चयेत् ।
आभृतात्मा मुनिः शान्तो यतवाङ् मितवन्यभुक् ॥५६॥

लब्ध्वा द्रव्यमयीं अर्चा क्षिति अम्बु आदिषु वार्चयेत् आभृत आत्मा मुनिः शान्तः यत वाक् मितवन्यभुक् ॥५६॥

द्रव्यमयीं	द्रव्य (शिला आदि) की	**आभृत आत्मा**	संयत चित्त,
अर्चा लब्ध्वा	मूर्ति मिल जाय तो उसमें	**मुनिः शान्तः**	मननशील, शान्त,
क्षिति अम्बु आदिषु	(अन्यथा) पृथ्वी, जल आदिमें	**यत वाक्**	वाणीको संयममें रखनेवाला
वार्चयेत्	(भगवानकी) पूजा करे,	**मितवन्यभुक्**	परिमित वनमें हुए (फलादि) का भोजन करे ॥५६॥

स्वेच्छावतारचरितैरचिन्त्यनिजमायया ।
करिष्यत्युत्तमश्लोकस्तद् ध्यायेद्धृदयङ्गमम् ॥५७॥

स्वेच्छा अवतार चरितैः अचिन्त्य निज मायया करिष्यन् उत्तम श्लोकः तत् ध्यायेत् हृदयङ्गमम् ॥५७॥

निज अचिन्त्य मायया	अपनी अचिन्त्य मायासे	**उत्तम श्लोकः**	पुण्य श्लोक भगवान्
स्वेच्छा अवतार	इच्छानुसार अवतार लेकर	**चरितैः करिष्यन्**	जो चरित करेंगे
		हृदयङ्गमं	मन ही मन
		तत् ध्यायेत्	उनका चिन्तन करे ॥५७॥

परिचर्या भगवतो यावत्यः पूर्वसेविताः ।
ता मन्त्रहृदयेनैव प्रयुञ्ज्यान्मन्त्रमूर्तये ॥५८॥

परिचर्या भगवतः यावत्यः पूर्व सेविताः ता मन्त्र हृदयेन एव प्रयुञ्ज्यात् मन्त्र मूर्तये ॥५८॥

भगवतः यावत्यः	भगवानकी जितनी	**ताः मन्त्र**	
पूर्वसेविताः	पहिले लोगों द्वारा की गयी	**हृदयेन एव**	उन्हें द्वादशाक्षर मन्त्रसे ही
परिचर्याः	पूजा विधियां हैं,	**मन्त्र मूर्तये**	मन्त्र मूर्ति भगवान-को
		प्रयुञ्ज्यात्	अर्पण करे ॥५५॥

एवं कायेन मनसा वचसा च मनोगतम् ।
परिचर्यमाणो भगवान् भक्तिमत्परिचर्यया ॥५६॥

एवं कामेन मनसा वचसा च मनः गतं परिचर्यमाणः भगवान् भक्तिमत् परिचर्यया ॥५६॥

एवं कामेन	इस प्रकार शरीरसे,	**भक्तिमत्**	
मनसा च वचसा	मनसे तथा वाणीसे	**परिचर्यया**	भक्तिमान (पुरुष) की पूजासे
मनः गतं			
भगवान्	चित्तमें स्थित भगवान्	**परिचर्यमाणः**	पूजित होकर ॥५६॥

पुंसाममायिनां सम्यग्भजतां भाववर्धनः ।
श्रेयो दिशत्यभिमतं यद्धर्मादिषु देहिनाम् ॥६०॥

पुंसां अमायिनां सम्यक् भजतां भाववर्धनः श्रेयः दिशति अभिमतं यत् धर्म आदिषु देहिनां ॥६०॥

सम्यक् भजतां	भली प्रकार भजन करनेवाले	**देहिनां**	शरीरधारियोंका
अमायिनां पुंसां	निश्छल पुरुषोंको	**धर्म आदिषु**	धर्म (काम) आदिमें
भाववर्धनः	उनके भावको बढ़ानेके लिए	**यत् अभिमतं दिशति**	जो अभीष्ट हो (वह) प्रदान करते हैं ॥६०॥

विरक्तश्चेन्द्रियरतौ भक्तियोगेन भूयसा ।
तं निरन्तरभावेन भजेताद्धा विमुक्तये ॥६१॥

विरक्तः च इन्द्रियरतौ भक्तियोगेन भूयसा तं निरन्तर भावेन भजेत अद्धा विमुक्तये ॥६१॥

इन्द्रियरतौ च विरक्तः	इन्द्रियोंके भोगसे वैराग्य हो तो
निरन्तर भूयसा भक्तियोगेन	अनन्य प्रबल भक्तियोगसे
अद्धा भावेन	सम्पूर्ण भावसे
विमुक्तये	मोक्ष प्राप्तिके लिए
तं भजेत	उन (भगवान) का भजन करे ॥६१॥

*मैत्रेय उवाच**-

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृपार्भकः ।
ययौ मधुवनं पुण्यं हरेश्चरणचर्चितम् ॥६२॥

इति उक्तः तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृप अर्भकः ययौ मधुवनं पुण्यं हरेः चरण चर्चितम् ॥६२॥

इति उक्तः	(नारदजीके) ऐसा कहनेपर
नृप अर्भकः तं परिक्रम्य च	राजकुमार (ध्रुव) उनकी परिक्रमा करके
प्रणम्य हरेः चर्चितं	श्रीहरिके चरण-चिह्नोंसे भूषित
पुण्यं मधुवनं ययौ	पवित्र मधुवन गये ॥६२॥

तपोवनं गते तस्मिन्प्रविष्टोऽन्तःपुरं मुनिः ।
अर्हितार्हणको राज्ञा सुखासीन उवाच तम् ॥६३॥

तपोवनं गते तस्मिन् प्रविष्टः अन्तःपुरं मुनिः अर्हितः अर्हणकः राज्ञा सुखासीन उवाच तम् ॥६३॥

तस्मिन् तपोवनं गते	उन (ध्रुव) के तपोवन जानेपर
मुनिः अन्तःपुरं प्रविष्टः	मुनि (नारदजी राजाके) अन्तः-पुरमें गये

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अर्हणकैः	पूजा सामग्रीसे	**सुखासीन**	सुखपूर्वक बैठकर
राज्ञा अर्हितः	राजा द्वारा पूजित होकर	**तम् उवाच**	उन (राजा उत्तान-पाद) से बोलो ॥६३

नारद उवाच–

राजन् किं ध्यायसे दीर्घं मुखेन परिशुष्यता ।
किं वा न रिष्यते कामो धर्मो वार्थेन संयुतः ॥६४॥

राजन् किं ध्यायसे दीर्घं मुखेन परिशुष्यता किं वा न रिष्यते कामः धर्मः वा अर्थेन संयुतः ॥६४॥

दीर्घं मुखेन परिशुष्यता	देरसे सूखते मुखसे	**धर्मः वा कामः**	धर्म या काम
किं ध्यायसे	क्या सोच रहे हो ?	**अर्थेन संयुतः**	धनके साथ
किं वा	अथवा	**रिष्यते न**	कोई कम तो नहीं हुआ ॥६४॥

राजोवाच–

सुतो मे बालको ब्रह्मन् स्त्रैणेनाकरुणात्मना ।
निर्वासितः पञ्चवर्षः सह मात्रा महान्कविः ॥६५॥

सुतः मे बालकः ब्रह्मन् स्त्रैणेन अकरुण आत्मना निर्वासितः पञ्चवर्षः सह मात्रा महान् कविः ॥६५॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**अकरुण आत्मना**	निर्दय चित्त
महान् कविः	बड़े बुद्धिमान	**मात्रा सह**	माताके साथ
पञ्चवर्षः	पांच वर्षके	**निर्वासितः**	(मैंने) निकाल
मे सुतः	अपने पुत्रको		दिया ॥६५॥
स्त्रैणेन	स्त्री जित		

अप्यनाथं वने ब्रह्मन्मास्मादन्त्यर्भकं वृकाः ।
श्रान्तं शयानं क्षुधितं परिम्लानमुखाम्बुजम् ॥६६॥

अपि अनाथं वने ब्रह्मन् मा अस्मत् अन्त्य अर्भकं वृकाः श्रान्तं शयानं क्षुधितं परिम्लान मुख श्रियम् ॥६६॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**वने अनाथं**	
परिम्लान मुख		**अपि**	वनमें असहाय हुए
श्रियं	कुम्हलाये मुखवाले	**अस्मत् अर्भकं**	मेरे बच्चेको
श्रान्तं	थककर	**वृकाः मा अन्त्य**	भेड़िये न खा
क्षुधितं शयानं	भूखे ही सोये		जायँ ॥६६॥

अहो मे बत दौरात्म्यं स्त्रीजितस्योपधारय ।
योऽङ्कं प्रेम्णाऽऽरुरुक्षन्तं नाभ्यनन्दमसत्तमः ॥६७॥

अहो मे बत दौरात्म्यं स्त्री जितस्य उपधारय यः अङ्कं प्रेम्णा आरुरुक्षन्तं न अभ्यनन्दं असत्तमः ॥६७॥

अहो बत	अरे यह	**यः प्रेम्णा**	जिसने प्रेमसे
मे असत्तमः	मुझ अत्यन्त दुष्ट	**अङ्कं**	
स्त्री जितस्य	स्त्री जिनकी	**आरुरुक्षन्तं**	गोदमें चढ़नेका
दौरात्म्यं		**अभ्यनन्दं न**	अभिनन्दन नहीं
उपधारय	कुटिलता तो सुनिये		किया ॥६७॥

नारद उवाच–

मा मा शुचः स्वतनयं देवगुप्तं विशाम्पते ।
तत्प्रभावमविज्ञाय प्रावृङ्क्ते यद्यशो जगत् ॥६८॥

मा मा शुचः स्वतनयं देवगुप्तं विशाम्पते तत् प्रभावं अविज्ञाय प्रावृङ्क्ते यत् यशः जगत् ॥६८॥

विशाम्पते	राजन् !	**तत् प्रभावं**	उसके प्रभावको
देवगुप्तं	भगवानसे रक्षित्	**अविज्ञाय**	न जानकर,
स्वतनयं	अपने पुत्रके लिए	**यत् यशः जगत्**	जिसके यशसे संसार
मा मा शुचः	शोक मत कीजिए, मत कीजिए !	**प्रावृङ्क्ते**	भर जायगा ॥६८॥

सुदुष्करं कर्म कृत्वा लोकपालैरपि प्रभुः ।
ऐष्यत्यचिरतो राजन् यशो विपुलयंस्तव ॥६९॥

सुदुष्करं कर्म कृत्वा लोकपालैः अपि प्रभुः एष्यति अचिरतः राजन् यशः विपुलयन् तव ॥६९॥

राजन्	राजन् !	**तव यशः**	
लोकपालैः अपि	लोकपालोंसे भी	**विपुलयन्**	तुम्हारे यशको बढ़ाता
सुदुष्करं कर्म	अत्यन्त दुष्कर कर्म		
कृत्वा अचिरतः	करके शीघ्र	**एष्यति**	आ जायगा ॥६९॥
प्रभुः	वह समर्थ		

मैत्रेय उवाच-

इति देवर्षिणा प्रोक्तं विश्रुत्य जगतीपतिः ।
राजलक्ष्मीमनादृत्य पुत्रमेवान्वचिन्तयत् ॥७०॥

इति देवर्षिणा प्रोक्तं विश्रुत्य जगती पतिः राजलक्ष्मीं अनादृत्य पुत्रं एव अनुचिन्तयत् ॥७०॥

इति देवर्षिणा	इस प्रकार नारदजीका	**अनादृत्य**	अनादर करके
प्रोक्तं विश्रुत्य	कहा सुनकर	**पुत्रं एव**	पुत्रकी ही
जगती पतिः	सारे संसारके स्वामी	**अनुचिन्तयत्**	बार बार चिन्ता करने लगेगा ॥७०॥
राजलक्ष्मीं	राजलक्ष्मीका		

तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीम् ।
समाहितः पर्यचरदृष्यादेशेन पूरुषम् ॥७१॥

तत्र अभिषिक्तः प्रयतः तां उपोष्य विभावरीं समाहितः पर्यचरत् दृष्य आदेशेन पूरुषम् ॥७१॥

तत्र	वहाँ (मधुवन) में	**तां विभावरीं**	उस रात
अभिषिक्तः	स्नान करके	**उपोष्य**	उपवास करके

दृष्य आदेशेन	(नारदजीकी) बतलायी विधिसे	**पूरुषं पर्यंचरत्**	परम पुरुषकी पूजा करने लगे ॥७१॥
समाहितः	एकाग्र होकर		

त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते कपित्थबदराशनः ।
आत्मवृत्त्यनुसारेण मासं निन्येऽर्चयन्हरिम् ॥७२॥

त्रिरात्र अन्ते त्रिरात्र अन्ते कपित्थ बदर अशनः आत्मवृत्ति अनुसारेण मासं निन्ये अर्चयन् हरिम् ॥७२॥

आत्मवृत्ति अनुसारेण	अपनी आजीविकाके अनुसार	**कपित्थ बदर अशनः**	कैथ और बेर खाकर
त्रिरात्र अन्ते त्रिरात्र अन्ते	तीन-तीन दिनोंके बाद	**हरिं अर्चयन्**	श्रीहरिकी पूजा करते
		मासं निन्ये	एक महीना बिताया ॥७२॥

द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने ।
तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम् ॥७३॥

द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठे अर्भकः दिने तृण पर्ण आदिभिः शीर्णैः कृत अन्नः अभ्यर्चयत् विभुम् ॥७३॥

तथा द्वितीयं च मासं	इसी प्रकार दूसरे महीनेमें	**शीर्णैः तृण पर्ण आदिभिः**	सूखकर गिरे तिनकों-पत्तों आदिका
अर्भकः	वह बच्चा	**कृत अन्नः**	आहार करके
षष्ठे षष्ठे दिने	हर छठवें दिन	**विभुं अभ्यर्चयत्**	भगवानकी पूजा करता था ॥७३॥

तृतीयं चानयन्मासं नवमे नवमेऽहनि ।
अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत्समाधिना ॥७४॥

तृतीयं च अनयत् मासं नवमे नवमे अहनि अब्भक्ष उत्तम श्लोकं उपाधावत् समाधिना ॥७४॥

नवमे नबमे	
अहनि	हर नौवें दिन
अब्भक्षः	केवल जल पीकर
उत्तम श्लोकं	उत्तम श्लोक भगवानकी
समाधिना	
उपाधावत्	समाधि लगाकर पूजा (ध्यान) करते
तृतीयं च मासं	तीसरे महीनेको
अनयत्	बिताया ॥७४॥

चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहनि ।
वायुभक्षो जितश्वासो ध्यायन्देवमधारयत् ॥७५॥

चतुर्थम् अपि वै मासं द्वादशे द्वादशे अहनि वायुभक्षः जितश्वासः ध्यायन् देवं अधारयत् ॥७५॥

चतुर्थं मासं	
वै अपि	चौथे महीनेमें भी
द्वादशे द्वादशे	
अहनि	हर बारहवें दिन
वायुभक्षः	केवल श्वास लेकर
जितश्वासः	श्वासको जीतकर
ध्यायन्	ध्यान करते हुए
देवं अधारयत्	भगवानको (हृदयमें) स्थिर कर लिया ॥७५॥

पञ्चमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः ।
ध्यायन् ब्रह्म पदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥७६॥

पञ्चमे मासि अनुप्राप्ते जितश्वासः नृपात्मजः ध्यायन् ब्रह्म पद एकेन तस्थौ स्थाणुः इव अचलः ॥७६॥

पञ्चमे मासि	
अनुप्राप्ते	पाँचवां महीना लगनेपर
जितश्वासः	
नृपात्मजः	श्वासको जीतकर राजकुमार ध्रुव
ब्रह्म ध्यायन्	ब्रह्म ध्यान करते हुए
पद एकेन	एक पैरसे
स्थाणु इव	
अचलः	ठूंठके समान निश्चल
तस्थौ	खड़े हो गये ॥७६॥

सर्वतो मन आकृष्य हृदि भूतेन्द्रियाशयम् ।
ध्यायन्भगवतो रूपं नाद्राक्षीत्किंचनापरम् ॥७७॥

सर्वतः मन आकृष्य हृदि भूत इन्द्रिय आशयं ध्यायन् भगवतः रूपं न अद्राक्षीत् किंचन अपरम् ॥७७॥

सर्वतः	चारों ओरसे	**भगवतः रूपं**	
भूत इन्द्रिय	पंचभूत, इन्द्रियों	**ध्यायन्**	भगवानके रूपका
आशयं मन	के आधार मनको		ध्यान करते हुए
हृदि आकृष्य	हृदयमें खींचकर	**किंचन अपरं**	कुछ भी दूसरेको
		न अद्राक्षीत्	नहीं देखा ॥७७॥

आधारं महदादीनां प्रधानपुरुषेश्वरम् ।
ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोकाश्चकम्पिरे ॥७८॥

आधारं महत् आदीनां प्रधान पुरुष ईश्वरं ब्रह्म धारय माणस्य त्रयः लोकाः चकम्पिरे ॥७८॥

महत् आदीनां	महत्तत्त्व आदि (सब तत्त्वों) के	**ब्रह्म धारय माणस्य**	परंब्रह्मकी धारणा करनेपर
आधारं	आधार		
प्रधान पुरुष ईश्वरं	प्रकृति और पुरुषके स्वामी	**त्रयः लोकाः चकम्पिरे**	तीनों लोक काँप उठे ॥७८॥

यदैकपादेन स पार्थिवार्भक-
स्तस्थौ तदङ्गुष्ठनिपीडिता मही ।
ननाम तत्रार्धमिभेन्द्रधिष्ठिता
तरीव सव्येतरतः पदे पदे ॥७९॥

यदा एक पादेन स पार्थिव अर्भकः तस्थौ तत् अंगुष्ठ निपीडिता मही ननाम तत्र अर्धं इभेन्द्र धिष्ठिता तर इव सव्य इतरतः पदे पदे ॥७९॥

स पार्थिव अर्भकः	वह राजकुमार
यदा एक पादेन तस्थौ	जब एक पैरसे खड़ा होता था
तत् अंगुष्ठ निपीडिता	उसके अंगूठेसे दबकर
मही तत्र अर्ध ननाम	पृथ्वी उस ओर आधी झुक जाती थी,
इभेन्द्रधिष्ठिता	गजराजके चढ़नेपर
पदे पदे	पद पदपर
सव्य इतरतः	बायें-दाहिने
तरी इव	नौकाके समान ॥७९

तस्मिन्नभिध्यायति विश्वमात्मनो
द्वारं निरुध्यासुमनन्यया धिया ।
लोका निरुच्छ्वासनिपीडिता भृशं
सलोकपालाः शरणं ययुर्हरिम् ॥८०॥

तस्मिन् अभिध्यायति विश्व मात्मनः द्वारं निरुध्य असुं अनन्यया धिया लोकाः निरुच्छ्वास निपीडिता भृशं सलोकपालाः शरणं ययुः हरिम् ॥८०॥

तस्मिन्	उन (ध्रुव) के
असुं द्वारं निरुध्य	प्राणके द्वारोंको रोककर
अनन्यया धिया	अनन्य बुद्धिसे
विश्व मात्मनः	विश्वात्माका
अभिध्यायति	ध्यान करनेपर
लोकाः निरुच्छ्वास	सब लोक श्वास रुकनेसे
भृशं निपीडिता	अत्यन्त पीड़ित होकर
सलोकपालाः	लोकपालोंके साथ
हरिं शरणं ययुः	श्रीहरिकी शरण गये ॥८०॥

देवा ऊचुः-

नैवं विदामो भगवन् प्राणरोधं
चराचरस्याखिलसत्त्वधाम्नः ।
विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं
प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यम् ॥८१॥

न एवं विदामः भगवन् प्राणरोधं चराचरस्य अखिल सत्त्व धाम्नः विधेहि तत् नः वृजिनात् विमोक्षं प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यम् ॥८१॥

भगवन्	भगवन् !	**तत् वृजिनात्**	अतः इस संकटसे
अखिल सत्त्व		**नः विमोक्षं**	
धाम्नः	समस्त प्राणियोंके स्वरूप !	**विधेहि**	हमारा छुटकारा कीजिए
चराचरस्य	सम्पूर्ण चर-अचरका	**त्वां शरण्यं**	आप शरणदाताकी
एवं प्राणरोधं	इस प्रकार श्वास रुकना	**वयं शरणं**	
न विदामः	(हम) नहीं जानते,	**प्राप्ताः**	हम शरण आये हैं ॥८१॥

श्रीभगवानुवाच—

मा भैष्ट बालं तपसो दुरत्यया-
न्निवर्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम ।
यतो हि वः प्राणनिरोध आसी-
दौत्तानपादिर्मयि संगतात्मा ॥८२॥

मा भैष्ट बालं तपसः दुरत्ययात् निवर्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम यतः हि वः प्राण निरोध आसीत् औत्तानपादिः मयि संगत आत्मा ॥८२॥

हि		**बालं दुरत्ययात्**	उस बालकको दुष्कर
औत्तानपादिः	क्योंकि उत्तान पादका पुत्र ध्रुव	**तपसः**	तपस्यासे
आत्मा मयि		**निवर्तयिष्ये**	निवृत्त कर दूंगा,
संगत	चित्तको मुझमें लगा चुका है,	**भैष्ट मा**	डरो मत,
यतः वः	जिससे तुम लोगोंका	**स्वधाम**	
प्राण निरोध		**प्रतियात**	अपने धाम लौट
आसीत्	श्वास रुक गया है,		जाओ ॥८२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचरितेऽष्टमोऽध्यायः ।

अथ नवमोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

त एवमुत्सन्नभया उरुक्रमे
कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम् ।
सहस्रशीर्षापि ततो गरुत्मता
मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः ॥१॥

त एवं उत्सन्न भया उरुक्रमे कृत अवनामाः प्रययुः त्रिविष्टपं सहस्र-शीर्षा अपि ततः गरुत्मता मधोः वनं भृत्य दिदृक्षया गतः ॥१॥

त एवं	वे (देवता) इस प्रकार	सहस्रशीर्षा अपि	भगवान नारायण भी
भया उत्सन्न	भय दूर हो जानेपर	ततः गरुत्मता	वहाँसे गरुड़पर बैठकर
उरुक्रमे	अनन्त पराक्रम भगवानको	भृत्य दिदृक्षया	अपने सेवक (ध्रुव) को देखनेके लिए
कृत अवनामाः	प्रणाम करके	मधोः वनं गतः	मधुवन गये ॥१॥
त्रिविष्टपं प्रययुः	स्वर्ग चले गये ।		

स वै धिया योगविपाकतीव्रया
हृत्पद्मकोशे स्फुरितं तडित्प्रभम् ।
तिरोहितं सहसैवोपलक्ष्य
बहिःस्थितं तदवस्थं ददर्श ॥२॥

स वै धिया योगविपाक तीव्रया हृत् पद्मकोशे स्फुरितं तडित् प्रभं तिरोहितं सहसा एव उपलक्ष्य बहिःस्थितं तदवस्थं ददर्श ॥२॥

स वै	वे (ध्रुव) भी	तीव्रया धिया	अत्यन्त एकाग्र बुद्धिसे
योगविपाक	परिपक्व योगसे		

हृत् पद्मकोशे	हृदय कमलमें
तडित् प्रभं	
स्फुरितं	बिजलीके समान प्रकाशित
सहसा एव	(भगवानको) अचानक ही
तिरोहितं	
उपलक्ष्य	अदृश्य हुआ देखकर (घबरा कर नेत्र खोलनेपर)
तदवस्थं	उसी स्वरूपमें
बहिः स्थितं	
ददर्श	बाहर उपस्थित देखा ॥२॥

तद्दर्शनेनागतसाध्वसः क्षिता-
ववन्दताङ्गं विनमय्य दण्डवत् ।
दृग्भ्यां प्रपश्यन् प्रपिबन्निवार्भक-
श्चुम्बन्निवास्येन भुजैरिवाश्लिषन् ॥३॥

तत् दर्शनेन आगत साध्वसः क्षिता ववन्दत अङ्गं विनमय्य दण्डवत् दृग्भ्यां प्रपश्यन् प्रपिबन् इव अर्भकः चुम्बन् इव आस्येन भुजैः इव आश्लिषन् ॥३॥

तत् दर्शनेन	उन (भगवान) के दर्शनसे
साध्वसः आगतः	बड़ा कुतूहल हुआ,
क्षिता अङ्गं	पृथ्वीपर शरीरसे
दण्डवत्	
विनमय्य	दण्डवत् पड़कर
ववन्दत	प्रणाम किया
अर्भकः	बालक (ध्रुव)
दृग्भ्यां	
प्रपिबन् इव	आंखोंसे पी लेनेके समान
प्रपश्यन्	देखते हुए
आस्येन चुम्बन्	
इव	मुखसे मानो चूम लेंगे
भुजैः आश्लिषन्	
इव	भुजाओंसे मानो आलिंगन कर लेंगे (ऐसे उत्सुक हो गये) ॥३॥

स तं विवक्षन्तमतद्विदं हरि-
र्ज्ञात्वास्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितः ।

कृताञ्जलिं ब्रह्ममयेन कम्बुना
पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥४॥

स तं विवक्षन्तं अतत् विदं हरिः ज्ञात्वा अस्य सर्वस्य च हृदि अवस्थितः कृताञ्जलिं ब्रह्ममयेन कम्बुना पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥४॥

अस्य च सर्वस्य	इन (ध्रुव) के और सबके	**विवक्षन्तं**	
हृदि अवस्थितः	हृदयमें स्थित	**ज्ञात्वा**	कुछ कहना चाहता है यह जानकर
स हरिः	उन भगवानने	**कृपया**	
तं कृताञ्जलिं	उस हाथ जोड़े	**ब्रह्ममयेन**	कृपा करके वेदमय
अतत् विदं		**कम्बुना कपोले**	शंखसे (उसके) कपोलका
बालं	अज्ञानी बालकको	**पस्पर्श**	स्पर्श कर दिया ॥४॥

स वै तदैव प्रतिपादितां गिरं
दैवीं परिज्ञातपरात्मनिर्णयः ।
तं भक्तिभावोऽभ्यगृणादसत्वरं
परिश्रुतोरुश्रवसं ध्रुवक्षितिः ॥५॥

स वै तदैव प्रतिपादितां गिरं दैवीं परिज्ञात पर आत्म निर्णयः तं भक्ति भावः अभ्यगृणात् असत्वरं परिश्रुतः उरु श्रवसं ध्रुवक्षितिः ॥५॥

स वै तदैव	वे तो उसी समय	**भक्ति भावः**	भक्ति भाव सहित
दैवीं गिरं		**तं उरु श्रवसं**	
प्रदिपादितां	दिव्यवाणीसे सम्पन्न हो गये,	**अभ्यगृणात्**	उन अनन्त यशस्वी (भगवान) की स्तुति करने लगे,
पर आत्म निर्णयः	ब्रह्म तथा जीवके स्वरूपका निर्णय	**ध्रुवक्षितिः**	ध्रुवलोक मिलनेका
परिज्ञात	पूर्णज्ञान होगया,	**परिश्रुतः**	वरदान मिल गया था ॥५॥
असत्वरं	बिना हड़बड़ाहटके		

ध्रुव उवाच-

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥६॥

यः अन्तः प्रविश्य मम वाचं इमां प्रसुप्तां संजीवयति अखिल शक्तिधरः स्वधाम्ना अन्यांः च हस्त चरण श्रवण त्वक् आदीन् प्राणान् नमः भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥६॥

यः अन्तः		**श्रवण त्वक्**	कान, त्वचा
प्रविश्य	जो भीतर प्रवेश करके	**आदीन्**	आदि इन्द्रियोंको
		प्राणान्	तथा प्राणको
मम इमां	मेरी इस	**संजीवयति**	जीवन दे रहे हैं
प्रसुप्तां वाचं	सोयी वाणीको	**तुभ्यं भगवते**	उन आप भगवान्
च अन्यांः	तथा दूसरे	**पुरुषाय नमः**	परम पुरुषको नमस्कार ॥६॥
हस्त चरण	हाथ-पैर		

एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या
मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम् ।
सृष्ट्वानुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु
नानेव दारुषु विभावसुवद्विभासि ॥७॥

एकः त्वं एव भगवन् इदं आत्म शक्त्या माया आख्यया उरु गुणया महत् आदि अशेषं सृष्ट्वा अनुविश्य पुरुषः तत् असत् गुणेषु नाना इव दारुषु विभावसुवत् विभासि ॥७॥

भगवन्	भगवन् !	**आत्म शक्त्या**	अपनी शक्तिसे
त्वं एकः एव	आप एक ही हैं,	**इदं महत् आदि**	इस महत्तत्त्वादि
माया आख्यया	माया नामक	**अशेषं सृष्ट्वा**	सम्पूर्ण (विश्व) को बनाकर
उरु गुणया	बहुत गुणोंवाली		

तत् असत् गुणेषु	इन (इन्द्रियादि) असत् गुणोंमें
पुरुषः अनुविश्य	जीव रूपसे प्रवेश करके
दारुषु विभावसुवत्	लकड़ियोंमें अग्निके समान
नाना इव	अनेक जैसे
विभासि	प्रतीत हो रहे हैं ॥७

त्वद्दत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं
सुप्तप्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः ।
तस्यापवर्ग्यशरणं तव पादमूलं
विस्मर्यते कृतविदा कथमार्तबन्धो ॥८॥

त्वत् दत्तया वयुना इदं अचष्ट विश्वं सुप्त प्रबुद्ध इव नाथ भवत् प्रपन्नः तस्य अपवर्ग्यं शरणं तव पाद मूलं विस्मर्यते कृतविदा कथं आर्तबन्धो ॥८॥

त्वत् दत्तया वयुना इदं	आपके दिये
विश्वं	ज्ञानसे इस संसार-को
सुप्त प्रबुद्ध इव अचष्ट	सोकर जगेके समान (ब्रह्माने) देखा था,
नाथ भवत् प्रपन्नः	स्वामी आपके शरणगत
अपवर्ग्यं शरणं	मुक्त पुरुषोंके आश्रय
तव पाद मूलं	आपके चरणोंको
आर्तबन्धो	दीनबन्धु !
कृतविदा कथं विस्मर्यते	कृतज्ञ पुरुष कैसे भूल सकते हैं ॥८॥

नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते
ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः ।
अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्य-
मिच्छन्ति यत्स्पर्शजंनिरयेऽपि नृणाम् ॥९॥

नूनं विमुष्ट मतयः तव माययां ते ये त्वां भव अप्यय विमोक्षणं अन्य-हेतोः अर्चन्ति कल्प कतरुं कुणप उपभोग्यं इच्छन्ति यत् स्पर्शजं निरये अपि नृणाम् ॥९॥

कुणप उपभोग्यं	शव तुल्य शरीरोंसे भोगे जानेवाला
स्पर्शजं यत्	इन्द्रिय-विषय संयोगसे जो सुख
नृणां निरये अपि	मनुष्योंको नरकमें भी मिलता है,
ये इच्छन्ति	जो (उसकी) इच्छा करते हैं,
भव अप्यय	जन्म-मरणसे
विमोक्षणं	छुड़ा देनेवाले
कल्पकतरुं	कल्पवृक्ष स्वरूप
त्वां अन्यहेतोः	आपकी और किसी कारणसे
अर्चन्ति	पूजा करते हैं,
नूनं तव मायया	निश्चय आपकी मायासे
ते विमुष्ट मतयः	वे हरण की गयी बुद्धिवाले हैं ॥९॥

या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्म-
ध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ।
सा ब्रह्मणि स्वमहिम्न्यपि नाथ मा भूत्
किं त्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात् ॥१०॥

या निर्वृतिः तनुभृतां तव पादपद्म ध्यानात् भवत् जन कथा श्रवणेन वा स्यात् सा ब्रह्मणि स्वमहिमनि अपि नाथ मा भूत् किं तु अन्तक असि लुलितात् पततां विमानात् ॥१०॥

नाथ	नाथ !
तनुभृतां	शरीरधारियोंको
या निवृतिः	जो आनन्द
तव पादपद्म	आपके चरण-कमलोंके
ध्यानात् वा	ध्यानसे अथवा
भवत् जन कथा	आपके भक्तोंके चरित
श्रवणेन स्यात्	सुननेसे मिलता है,
सा ब्रह्मणि	वह ब्रह्मके
स्वमहिमनि अपि	अपने स्वरूपमें भी
मा	नहीं हो सकता,
अन्तक असि लुलितात्	कालकी तलवारसे काटे गये
विमानात् पततां	विमानोंसे गिरते
किं तु	(देवताओंको) वह कैसे मिल सकता है ॥१०॥

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
भूयादनन्त महताममलाशयानाम् ।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥११॥

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गः भूयात् अनन्त महतां अमल-आशयानां येन अञ्जसा उल्बणं उरुव्यसनं भव अब्धिं नेष्ये भवत् गुण कथा अमृत पान मत्तः ॥११॥

अनन्त	अनन्त !
अमल	
आशयानां	निर्मल चित्तवाले
त्वयि मुहुः	आपमें सदा
भक्ति प्रवहतां	भक्ति करनेवाले
महतां	महापुरुषोंसे
मे प्रसङ्गः	मेरा साथ
भूयात्	होवे,
उल्बणं	भयानक
उरुव्यसनं	बहुत कष्टोंवाले
भव अब्धि	संसार-सागरसे
भवत् गुण कथा	आपके गुणोंकी कथा रूपी
अमृत पान मत्तः	अमृत पीनेसे मत्त (मैं)
येन अञ्जसा	
नेष्ये	जिससे सरलतासे पार हो जाऊँ ॥११॥

ते न स्मरन्त्यतितरां प्रियमीश मर्त्यं
ये चान्वदः सुतसुहृद्गृहवित्तदाराः ।
ये त्वब्जनाभ भवदीयपदारविन्द-
सौगन्ध्यलुब्धहृदयेषु कृतप्रसङ्गाः ॥१२॥

ते न स्मरन्ति अतितरां प्रियं ईश मर्त्यं ये च अन्वदः सुतसुहृत् गृह वित्त दाराः ये तु अब्जनाभ भवदीय पदारविन्द सौगन्ध्य लुब्ध हृदयेषु कृत प्रसङ्गाः ॥१२॥

अब्जनाभ ईश	कमलनाभ स्वामी !
ये तु भवदीय	
पदारविन्द	जो लोग तो आपके चरण-कमलोंकी
सौगन्ध्य लुब्ध	सुगन्धिके लोभी
हृदयेषु	हृदयवाले (संतों)से
प्रसङ्गाः कृत	साथ करते हैं,
ते प्रियं मर्त्यं	वे अपने प्रिय शरीर,

च ये अन्वदः	और जो उसके पीछे लगे	**दाराः अतितरां न स्मरन्ति**	पत्नीको बहुत स्मरण नहीं करते ॥१२॥
सुतसुहृत्	पुत्र, सम्बन्धी,		
गृह वित्त	घर, धन,		

तिर्यङ् नगद्विजसरीसृपदेवदैत्य-
मर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम् ।
रूपं स्थविष्ठमज ते महदाद्यनेकं
नातः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥१३॥

तिर्यङ् नग द्विज सरीसृप देव दैत्य मर्त्य आदिभिः परिचितं सत् असत् विशेषं रूपं स्थविष्ठं अज ते महत् आदि अनेकं न अतः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥१३॥

अज	अजन्मा प्रभु !	**ते स्थविष्ठं रूपं**	आपके इस स्थूल रूपको
तिर्यङ् नग	वृक्ष-पर्वत,	**वेद्मि**	जानता हूँ,
द्विज सरीसृप	पक्षी, सरीसृप,	**यत्र वादः न**	जिसमें वाणीकी गति नहीं है,
देव दैत्य मर्त्य आदिभिः	देवता, दैत्य, मनुष्य,	**अतः परं न**	इस (स्थूल रूपसे) परेको नहीं (जानता) ॥१३॥
परिचितं	आदिसे परिपूर्ण,		
महत् आदि अनेकं सत्	महत्तत्वादि		
असत् विशेषं	अनेक कारण-कार्य स्वरूप		

कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णन्
शेते पुमान् स्वदृगनन्तसखस्तदङ्के ।
यन्नाभिसिन्धुरुहकाञ्चनलोकपद्म-
गर्भद्युमान् भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥१४॥

कल्पान्त एतत् अखिलं जठरेण गृह्णन् शेते पुमान् स्वदृक् अनन्त सखः तत् अङ्के यत् नाभि सिन्धु रुह काञ्चन लोक पद्म गर्भ द्युमान् भगवते प्रणतः अस्मि तस्मै ॥१४॥

कल्पान्त कल्पके अन्तमें
एतत् अखिलं यह सम्पूर्ण (जगत)
जठरेण गृह्णन् (अपने) पेटमें लेकर
स्वदृक् पुमान् स्वयं प्रकाश परम-पुरुष
अनन्त सखः शेषके मित्र
तत् अङ्के शेते उनकी गोदमें सो जाते हैं,
यत् नाभि सिन्धु रुह जिनकी नाभि समुद्रसे उत्पन्न
काञ्चन लोक पद्म स्वर्णमय लोक पद्मके
गर्भे द्युमान् भीतर प्रकाशमय (ब्रह्माजी उत्पन्न हुए)
तस्मै भगवते उन भगवानको
प्रणतः अस्मि प्रणाम करता हूँ ॥१४॥

त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्ध आत्मा
कूटस्थ आदि पुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः ।
यद्बुद्ध्यवस्थितिमखण्डितया स्वदृष्ट्या
द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्से ॥१५॥

त्वं नित्य मुक्त परिशुद्ध विबुद्ध आत्मा कूटस्थ आदि पुरुषः भगवान् त्र्यधीशः यत् बुद्धि अवस्थितिम् अखण्डितया स्वदृष्ट्या द्रष्टा स्थिताः अधिमखः व्यतिरिक्त आस्से ॥१५॥

भगवान् भगवन् !
त्वं नित्य मुक्त आप नित्य मुक्त,
परिशुद्ध विबुद्ध परम शुद्ध, ज्ञान-स्वरूप,
आत्मा, कूटस्थ आदि पुरुषः आत्मा, कूटस्थ, आदिपुरुष,
त्र्यधीशः त्रिलोकीनाथ हैं,
यत् बुद्धि अवस्थितिं जो बुद्धिकी सभी अवस्थाओंमें
अखण्डितया स्वदृष्ट्या अपने अखण्ड ज्ञानसे
द्रष्टा स्थिताः द्रष्टा रूपमें स्थित हैं,
अधिमखः अधियज्ञ तथा
व्यतिरिक्त आस्से (इन सबसे) पृथक भी हैं ॥१५॥

यस्मिन् विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतन्ति
विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात् ।

तद्ब्रह्म विश्वभवमेकमनन्तमाद्य-
मानन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ॥१६॥

यस्मिन् विरुद्ध गतयः हि अनिशं पतन्ति विद्या आदयः विविध शक्तयः आनुपूर्व्यात् तत् ब्रह्म विश्व भवं एकं अनन्तं आद्यं आनन्द मात्रं अविकारं अहं प्रपद्ये ॥१६॥

हि यस्मिन्	क्योंकि जिसमें	**पतन्ति**	प्रकट होती रहती हैं,
आनुपूर्व्यात्	एकके पीछे दूसरीके क्रमसे	**तत् विश्व भवं**	उस जगतके कारण
		ब्रह्म एकं	ब्रह्म, अद्वितीय,
विद्या आदयः	विद्या आदि	**अनन्तं आद्यं**	अनन्त, सबके आदि
विविध	अनेक प्रकारकी	**आनन्द मात्रं**	आनन्द स्वरूप,
विरुद्ध गतयः	परस्पर विरोधी स्वरूपवाली	**अविकारं**	निर्विकारकी
		अहं प्रपद्ये	मैं शरण हूँ ॥१६॥
शक्तयः अनिशं	शक्तियाँ रात-दिन		

सत्याऽऽशिषो हि भगवंस्तव पादपद्म-
माशीस्तथानुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः ।
अप्येवमर्य भगवान् परिपाति दीनान्
वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥१७॥

सत्य आशिषः हि भगवन् तव पादपद्म् आशीः तथा अनुभजतः पुरुषार्थ मूर्तेः अपि एवं अर्य भगवान् परिपाति दीनान् वाश्रेव वत्सकं अनुग्रह कातरः अस्मान् ॥१७॥

हि भगवन् आशीः तव	क्योंकि भगवन् !	**पुरुषार्थ मूर्तेः**	सम्पूर्ण पुरुषार्थ-मूर्ति !
पादपद्मं	आशा पूर्वक आपके चरण-कमलोंका	**तथा अपि**	आपके ऐसा होनेपर भी
अनुभजतः	बराबर भजन करने वालोंकी	**अर्य भगवान्**	आप आराध्य भगवान्
आशिषः सत्य	कामनाएँ सफल होती हैं,	**वत्सकं वाश्रेव**	छोटे बछड़ेको तुरन्त व्यायी गौ के समान

अनुग्रह कातरः	स्वयं कृपाद्रवित होकर (भजन न करने वाले)	**अस्मान् दीनान् परिपाति**	हम दीनजनोंकी रक्षा करते हैं ॥१७॥

मैत्रेय उवाच–

अथाभिष्टुत एवं वै सत्संकल्पेन धीमता ।
भृत्यानुरक्तो भगवान् प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥१८॥

अथ अभिष्टुत एवं वै सत् सङ्कल्पेन धीमता भृत्य अनुरक्तः भगवान् प्रतिनन्द्य इदं अब्रवीत् ॥१८॥

सत् सङ्कल्पेन धीमता एवं वै	श्रेष्ठ संकल्पवाले, बुद्धिमान (ध्रुव) द्वारा इस प्रकारसे	**भृत्य अनुरक्तः**	अपने सेवकसे स्नेह करके
अभिष्टुत	स्तुति करनेपर	**प्रतिनन्द्य**	उनकी प्रशंसा करके
अथ भगवान्	तब भगवान्	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच–

वेदाहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यबालक ।
तत्प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ॥१९॥

वेद अहं ते व्यवसितं हृदि राजन्य बालक तत् प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापं अपि सुव्रत ॥१९॥

सुव्रत	उत्तम व्रत करनेवाले	**तत् दुरापं अपि**	वह दुष्प्राप्य होनेपर भी
राजन्य बालक	राजकुमार !	**प्रयच्छामि**	देता हूँ,
अहं ते हृदि	मैं तुम्हारे हृदयका	**ते भद्रं**	तुम्हारा कल्याण हो ॥१९॥
व्यवसितं वेद	संकल्प जानता हूँ,		

नान्यैरधिष्ठितं भद्र यद्भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति ।
यत्र ग्रहर्क्षताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥२०॥

न अन्यैः अधिष्ठितं भद्र यत् भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति यत्र ग्रह ऋक्ष तारागणां ज्योतिषां चक्रं आहितम् ॥२०॥

भद्र	भद्र !
अन्यैः न	
अधिष्ठितं	दूसरे किसीसे अप्राप्त
यत् भ्राजिष्णु	जो प्रकाशमय
ध्रुवक्षिति	ध्रुवलोक है,
यत्र ग्रह ऋक्ष	जिसके ग्रह, नक्षत्र,
तारागणां	तारोंका
ज्योतिषां चक्रं	ज्योतिर्मण्डल
आहितम्	आश्रित है ॥२०॥

मेढ्यां गोचक्रवत्स्थास्नु परस्तात्कल्पवासिनाम् ।
धर्मोऽग्निः कश्यपः शुक्रो मुनयो ये वनौकसः ।
चरन्ति दक्षिणीकृत्य भ्रमन्तो यत्सतारकाः ॥२१॥

मेढ्यां गोचक्रवत् स्थास्नु परस्तात् कल्प वासिनां धर्मः अग्निः कश्यपः शुक्रः मुनयः ये वनौकसः चरन्ति दक्षिणी कृत्य भ्रमन्तः यत् सतारकाः ॥२१॥

गोचक्रवत्	दँवरीके बैलोंके चक्रमें
मेढ्यां	केन्द्रके
स्थास्नु	समान स्थिर रहने वाला*
कल्प वासिनां	एक कल्प जीवित रहने वालोंसे
परस्तात्	से भी परे,
धर्मः अग्निः	धर्म, अग्नि,
कश्यपः शुक्रः	कश्यप, शुक्र
ये वनौकसः	
मुनयः	जो वनवासी मुनि हैं, (सप्तर्षि)
यत् दक्षिणी	
कृत्य	जिसे दाहिने करके
सतारकाः	तारा-मंडलके साथ (उसके)
भ्रमन्तः चरन्ति	चारों ओर घूमते चलते रहते हैं ॥२१॥

प्रस्थिते तु वनं पित्रा दत्त्वा गां धर्मसंश्रयः ।
षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं रक्षिताव्याहतेन्द्रियः ॥२२॥

---

* कटी फसल सुखाकर उसे कुचलनेके लिए कई बैल एक साथ बांधकर बीचमें एक खम्भा गाड़ते थे, उसे मेढ़ी कहते थे, उससे एक सिरेपर बैल बँधा रहता था। सब उसके चारों ओर घूमते थे।

प्रस्थिते तु वनं पित्रा दत्त्वा गां धर्म संश्रयः षट्त्रिंशत् वर्ष साहस्रं रक्षिता अव्याहत इन्द्रियः ॥२२॥

गां दत्त्वा	पृथ्वी (का राज्य) देकर	**अव्याहत इन्द्रियः**	इन्द्रिय शक्ति अक्षीण रहते
पित्रा तु	पिताके तो		
वनं प्रस्थिते	वनमें चले जानेपर	**षट् त्रिंशत्**	
धर्म संश्रयः	धर्म पूर्वक	**वर्ष साहस्रं**	छत्तीस हजार वर्ष
		रक्षिता	(पृथ्वीके) रक्षक रहोगे ॥२२॥

त्वद्भ्रातर्युत्तमे नष्टे मृगयायां तु तन्मनाः ।
अन्वेषन्ती वनं माता दावाग्निं सा प्रवेक्ष्यति ॥२३॥

त्वत् भ्रातः उत्तमे नष्टे मृगयायां तु तन् मनाः अन्वेषन्ती वनं माता दावाग्निं सा प्रवेक्ष्यति ॥२३॥

त्वत् भ्रातः	तुम्हारे भाई	**माता तु**	उसकी मां तो
उत्तमे मृगयायां	उत्तमके शिकार खेलते हुए	**वनं अन्वेषन्ती**	वनमें (उसे) ढूंढ़ती
		सा दावाग्नि	वह दावाग्निमें
नष्टे	मारे जानेपर	**प्रवेक्ष्यति**	प्रवेश कर (जल) जायगी ॥२३॥
तन् मनाः	उसमें आसक्त चित्त		

इष्ट्वा मां यज्ञहृदयं यज्ञैः पुष्कलदक्षिणैः ।
भुक्त्वा चेहाशिषः सत्या अन्ते मां संस्मरिष्यसि ॥२४॥

इष्ट्वा मां यज्ञहृदयं यज्ञैः पुष्कल दक्षिणैः भुक्त्वा च इह आशिषः सत्या अन्ते मां संस्मरिष्यसि ॥२४॥

मां यज्ञहृदयं	मुझ यज्ञस्वरूपका	**सत्याः आशिषः**	उत्तम भोगोंको
पुष्कल दक्षिणैः	बहुत दक्षिणा दिये जानेवाले	**मुक्त्वा**	भोगकर
		अन्ते मां	अन्त समयमें मुझे
यज्ञैः इष्ट्वा	यज्ञोंसे यजन करके,	**संस्मरिष्यसि**	स्मरण करोगे ॥२४॥
इह च	इस लोकमें भी		

ततो गन्तासि मत्स्थानं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
उपरिष्टाद्दृषिभ्यस्त्वं यतो नावर्तते गतः ॥२५॥

ततः गन्ता असि मत् स्थानं सर्व लोक नमस्कृतं उपरिष्टात् ऋषिभ्यः त्वं यतः न आवर्तते गतः ॥२५॥

यतः गतः	जहाँ जाकर	**ततः मत् स्थानं**	तब उस मेरे स्थानको
न आवर्तते	फिर (संसारमें) नहीं लौटता,	**ऋषिभ्यः**	
सर्व लोक		**उपरिष्टात्**	सप्तर्षियोंसे ऊपर
नमस्कृतं	सब लोक जिसे प्रणाम करते हैं,	**त्वं गन्ता असि**	तुम जानेवाले हो ॥२५॥

मैत्रेय उवाच–

इत्यर्चितः स भगवानतिदिश्यात्मनः पदम् ।
बालस्य पश्यतो धाम स्वमगाद्गरुडध्वजः ॥२६॥

इति अर्चितः स भगवान् अतिदिश्य आत्मनः पदं बालस्य पश्यतः धाम स्वं अगात् गरुडध्वजः ॥२६॥

स गरुडध्वजः		**अतिदिश्य**	प्रदान करके,
भगवान्	वे गरुड़ध्वज भगवान्	**बालस्य पश्यतः**	बालकके देखते हुए
इति अर्चितः	इस प्रकार पूजित होकर,	**स्वं धाम आगात्**	अपने धाम चले गये ॥२६॥
आत्मनः पदं	अपना पद		

सोऽपि संकल्पजं विष्णोः पादसेवोपसादितम् ।
प्राप्य संकल्पनिर्वाणं नातिप्रीतोऽभ्यगात्पुरम् ॥२७॥

सः अपि संकल्पजं विष्णोः पाद सेवा उपसादितं प्राप्य संकल्प निर्वाणं न अति प्रीतः अभ्यगात् पुरम् ॥२७॥

सः अपि वे (ध्रुव) भी
विष्णोः
पाद सेवा भगवान् विष्णुकी चरण सेवासे
उपसादितं उपलब्ध
संकल्पजं अपने संकल्पके अनुसार
संकल्प निर्वाणं उस संकल्पकी पूर्ति
प्राप्य न अति
प्रीतः पाकर बहुत प्रसन्न नहीं हुए,
पुरं अभ्यगात् अपने नगर लौट चले ॥२७॥

विदुर उवाच–

सुदुर्लभं यत्परमं पदं हरे-
र्मायाविनस्तच्चरणार्चनार्जितम् ।
लब्ध्वाप्यसिद्धार्थमिवैकजन्मना
कथं स्वमात्मानममन्यतार्थवित् ॥२८॥

सुदुर्लभं यत् परमं पदं हरेः मायाविनः तत् चरण अर्चन अर्जितं लब्ध्वा अपि असिद्धार्थं इव एक जन्मना कथं स्वं आत्मानं अमन्यत अर्थवित् ॥२८॥

मायाविनः हरेः मायाधीश श्रीहरिका
यत् परमं पदं जो परमपद
सुदुर्लभं अत्यन्त दुर्लभ है,
एक जन्मना एक ही जन्ममें
तत् चरण
अर्चन उनके चरणोंकी पूजासे
अर्जितं लब्ध्वा
अपि उपार्जित प्राप्त करके भी
अर्थवित् वे प्रयोजन समझने वाले
असिद्धार्थ इव असफलकी भाँति
स्वं आत्मानं स्वयं अपनेको
कथं क्यों
अमन्यत तिरस्कार योग्य माना ? ॥२८॥

मैत्रेय उवाच :–

मातुः सपत्न्या वाग्बाणैर्हृदि विद्धस्तु तान् स्मरन् ।
नैच्छन्मुक्तिपतेर्मुक्तिं तस्मात्तापमुपेयिवान् ॥२९॥

मातुः सपत्न्या बाग्वाणैः हृदि विद्धः तु तान् स्मरन् न ईच्छन् मुक्ति-पतेः मुक्तिं तस्मात् तापं उपेयिवान् ॥२९॥

सपत्न्या मातुः	सौतेली मांके
वाग्वाणैः	वाणी रूप वाणोंसे
विद्धः हृदि तु	वींधे हृदय होनेसे
तान् स्मरन्	उनका स्मरण करके
मुक्तिपतेः	मुक्तिके स्वामीसे
मुक्तिं न ईच्छन्	मुक्ति नहीं चाही
तस्मात्	इसलिए (उन्हें)
तापं उपेयिवान्	पश्चाताप हुआ ॥२९॥

ध्रुव उवाच-

समाधिना नैकभवेन यत्पदं
विदुः सनन्दादय ऊर्ध्वरेतसः ।
मासैरहं षड्भिरमुष्य पादयो-
श्छायामुपेत्यापगतः पृथङ्मतिः ॥३०॥

समाधिना न एक भवेन यत् पदं विदुः सनन्द आदय ऊर्ध्व रेतसः मासैः अहं षड्भिः अमुष्य पादयोः छायां उपेत्य अपगतः पृथक् मतिः ॥३०॥

सनन्द आदयः	सनन्दन आदि
ऊर्ध्व रेतसः	आजन्म ब्रह्मचारी
समाधिना	समाधिके द्वारा
न एक भवेन	अनेक जन्मोंमें
यत् पदं विदुः	जिसके स्वरूपको जान सके,
अहं षड्भिः मासैः	मैं छः महीनेमें ही
अमुष्य पादयोः	उन्हींके चरणोंकी
छायां उपेत्य	छायामें पहुँचकर
पृथक् मतिः	भिन्नदर्शी (होनेके कारण)
अपगतः	उससे दूर हो गया ॥३०॥

अहो बत ममानात्म्यं मन्दभाग्यस्य पश्यत ।
भवच्छिदः पादमूलं गत्वायाचे यदन्तवत् ॥३१॥

अहो बत मम अनात्म्यं मन्द भाग्यस्य पश्यत भवच्छिदः पादमूलं गत्वा याचे यत् अन्तवत् ॥३१॥

अहो बत	अहो यह
मम मन्द	
भाग्यस्य	मुझ मंदभागीकी
अनात्म्यं पश्यत	मूर्खता तो देखो,
यत् भवच्छिदः	जो आवागमन नाशकके (प्रभु)
पादमूलं गत्वा	चरणोंके समीप जाकर
अन्तवत् याचे	विनाशी वस्तु मांगी ॥३१॥

मतिर्विदूषिता देवैः पतद्भिरसहिष्णुभिः ।
यो नारदवचस्तथ्यं नाग्राहिषमसत्तमः ॥३२॥

मतिः विदूषिता देवैः पतत्भिः असहिष्णुभिः यः नारद वचः तथ्यं न अग्राहिषं असत्तमः ॥३२॥

पतत्भिः	(स्वर्ग भोगकर) गिरनेवाले
असहिष्णुभिः	दूसरेकी उन्नति न सह सकनेवाले
देवैः	देवताओंने
मतिः विदूषिता	(मेरी) बुद्धि भ्रष्ट कर दी,
यः नारद	जिससे नारदजीकी
तथ्यं वचः	यथार्थ बात
असत्तमः	(मुझ) दुष्टने
अग्राहिषं न	ग्रहण नहीं की ॥३२

दैवीं मायामुपाश्रित्य प्रसुप्त इव भिन्नदृक् ।
तप्ये द्वितीयेऽप्यसति भ्रातृभ्रातृव्यहृद्रुजा ॥३३॥

दैवीं मायां उपाश्रित्य प्रसुप्त इव भिन्न दृक् तप्ये द्वितीये अपि असति भातृ भ्रातृव्य हृद् रुजा ॥३३॥

द्वितीये अपि असति	(संसारमें आत्माके सिवा) दूसरा कोई न होनेपर भी
प्रसुप्त इव भिन्न दृक्	सोये हुएके समान पृथक्-पृथक् (तत्त्व स्वप्नमें) देखनेवाला
दैवीं मायां	भगवानकी मायासे
उपाश्रित्य	मोहित होकर
भ्रातृ भ्रातृव्य	भाईको शत्रु मानकर
हृद् रुजा तप्ये	(मैं अपने ही) हृदयके संतापसे तप्त होने लगा ॥३३॥

मयैतत्प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सेव गतायुषि ।
प्रसाद्य जगदात्मानं तपसा दुष्प्रसादनम् ।
भवच्छिदमयाचेऽहं भवं भाग्यविवर्जितः ॥३४॥

मया एतत् प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सा इव गत आयुषि प्रसाद्य जगत् आत्मानं तपसा दुष्प्रसादनं भवच्छिदं याचे अहं भवं भाग्य विवर्जितः ॥३४॥

गत आयुषि	जिसकी आयु समाप्त हो गयी है,
चिकित्सा इव	उसकी चिकित्साके समान
मया एतत्	मैंने जो यह
प्रार्थितं व्यर्थ	माँगा, व्यर्थ है ।
दुष्प्रसादनं	जिनको प्रसन्न करना बहुत कठिन है
जगत् आत्मानं	उन जगदात्मा
भवच्छिदं	आवागमन नाशकको
प्रसाद्य	प्रसन्न करके
अहं भाग्य विवर्जितः	मैं भाग्यहीन हूँ
मया भवं याचे	(अतः) मैंने संसार ही मांगा ॥३४॥

स्वाराज्यं यच्छतो मौढ्यान्मानो मे भिक्षितो बत ।
ईश्वरात्क्षीणपुण्येन फलीकारानिवाधनः ॥३५॥

स्वाराज्यं यच्छतः मौढ्यात् मानः मे भिक्षितः बत ईश्वरात् क्षीण पुण्येन फलीकारान् इव अधनः ॥३५॥

क्षीण पुण्येन	पुण्य हीन
अधनः इव	कंगाल जैसे
ईश्वरात्	समर्थ (सम्राट्) से
फलीकारान्	भूसी सहित चावल-की कनी मांगे,
स्वाराज्यं यच्छतः	आत्मानन्द देनेवाले (प्रभु) से
मौढ्यात्	मूर्खतावश
बत मे	अरे मैंने
मानः भिक्षितः	अभिमान (बढ़ाने वाला उच्च पद) मांग लिया ॥३५॥

मैत्रेय उवाच-

न वै मुकुन्दस्य पदारविन्दयो
रजोजुषस्तात भवादृशा जनाः ।
वाञ्छन्ति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो
यदृच्छयालब्धमनः समृद्धयः ॥३६॥

न वै मुकुन्दस्य पदारविन्दयोः रजः जुषः तात भवादृशा जनाः वाञ्छन्ति तत् दास्यं ऋते अर्थं आत्मनः यदृच्छया लब्धमनः समृद्धयः ॥३६॥

तात	प्रिय विदुर !
मुकुन्दस्य पदार-विन्दयोः	मुकुन्दके चरण-कमल
रजः जुषः	मकरन्दके सेवन-कर्ता
भवादृशा जनाः वै	आपके समान भक्त लोग तो
यदृच्छया लब्धमनः	अपने आप
समृद्धयः	प्राप्त परिस्थितिमें सन्तुष्ट रहते है ।
तत् दास्यं ऋते	उन (भगवान) की सेवाको छोड़कर
आत्मनः अर्थं	अपने लिए दूसरा कोई पदार्थ
न वाञ्छन्ति	नहीं चाहते ॥३६॥

आकर्ण्यात्मजमायान्तं सम्परेत्य यथाऽऽगतम् ।
राजा न श्रद्दधे भद्रमभद्रस्य कुतो मम ॥३७॥

आकर्ण्य आत्मजं आयान्तं सम्परेत्य यथा आगतं राजा न श्रद्दधे भद्रं अभद्रस्य कुतः मम ॥३७॥

यथा सम्परेत्य आगतं	जैसे कोई मरकर लौटा हो,
आत्मजं आयान्तं	पुत्रको आता
आकर्ण्य	सुनकर
राजा न श्रद्दधे	राजाने विश्वास नहीं किया
मम अभद्रस्य भद्रं कुतः	'मुझ अभागेका ऐसा भाग्य कहाँ ॥३७॥

श्रद्धाय वाक्यं देवर्षेर्हर्षवेगेन धर्षितः ।
वार्ताहर्तुरतिप्रीतो हारं प्रादान्महाधनम् ॥३८॥

श्रद्धाय वाक्यं देवर्षेः हर्षवेगेन धर्षितः वार्ताहर्तुः अति प्रीत्या हारं प्रादात् महाधनम् ॥३८॥

देवर्षेः वाक्यं	देवर्षि नारदजीकी बातपर	**वार्ताहर्तुः**	समाचार लाने-वालेको
श्रद्धाय	विश्वास करके,	**अति प्रीत्या**	बहुत प्रसन्न होकर
हर्षवेगेन		**महाधनं**	बहुमूल्य
धर्षितः	हर्षातिरेकसे अधीर होकर	**हारं प्रादात्**	हार दिया ॥३८॥

सदश्वं रथमारुह्य कार्तस्वरपरिष्कृतम् ।
ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च पर्यस्तोऽमात्यबन्धुभिः ॥३९॥

सत् अश्वं रथं आरुह्य कार्तस्वर परिच्छदं ब्राह्मणैः कुल वृद्धैः च पर्यस्तः अमात्य बन्धुभिः ॥३९॥

सत् अश्वं	अच्छे घोड़ेवाले	**आमात्य**	
कार्तस्वर		**बन्धुभिः**	मन्त्रियों, सम्बन्धियोंसे
परिच्छदं	स्वर्ण जटित	**पर्यस्तः**	चारों ओरसे घिरे
रथं आरुह्य	रथपर बैठकर,		हुए ॥३९॥
ब्राह्मणैः च			
कुल वृद्धैः	ब्राह्मणों तथा कुल-के बड़ों,		

शङ्खदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः ।
निश्चक्राम पुरात्तूर्णमात्मजाभीक्षणोत्सुकः ॥४०॥

शङ्ख दुन्दुभि नादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः निश्चक्राम पुरात् तूर्णं आत्मज अभीक्षण उत्सुकः ॥४०॥

आत्मज	पुत्रसे
अभीक्षण	
उत्सुकः	मिलनेको सदा उत्सुक (राजा उत्तानपाद)
शङ्ख दुन्दुभि	शंख, नगाड़े
वेणुभिः नादेन	वंशीको बजवाते
ब्रह्मघोषेण	वेद-पाठ कराते
तूर्णं पुरात्	शीघ्र नगरसे
निश्चक्राम	बाहर निकले ॥४०॥

सुनीतिः सुरुचिश्चास्य महिष्यौ रुक्मभूषिते ।
आरुह्य शिबिकां सार्धमुत्तमेनाभिजग्मतुः ॥४१॥

सुनीतिः सुरुचिः च अस्य महिष्यौ रुक्म भूषिते आरुह्य शिबिकां साधं उत्तमेन अभिजग्मतुः ॥४१॥

अस्य महिष्यौ	इनकी दोनों रानियां
सुनीतिः च	
सुरुचिः	सुनीति और सुरुचि
रुक्म भूषिते	स्वर्णालंकारोंसे आभूषित
उत्तमेन साधं	कुमार उत्तमके साथ
शिबिकां आरुह्य	पालकीपर बैठकर
अभिजग्मतुः	चल रही थीं ॥४१॥

तं दृष्ट्वोपवनाभ्याश आयान्तं तरसा रथात् ।
अवरुह्य नृपस्तूर्णमासाद्य प्रेमविह्वलः ॥४२॥

तं दृष्ट्वा उपवन अभ्याश आयान्तं तरसा रथात् अवरुह्य नृपः तूर्णं आसाद्य प्रेम विह्वलः ॥४२॥

तं उपवन	
अभ्याश	उन (ध्रुव) के बगीचेके पास
आयान्तं	
दृष्ट्वा	आते देखकर
प्रेम विह्वलः	
नृपः	प्रेमसे व्याकुल राजा
तरसा रथात्	
अवरुह्य	झट रथसे कूदकर
तूर्णं आसाद्य	शीघ्र समीप पहुँचे ॥४२॥

परिरेभेऽङ्गजं दोर्भ्यां दीर्घोत्कण्ठमनाः श्वसन् ।
विष्वक्सेनाङ्घ्रिसंस्पर्शहताशेषाघबन्धनम् ॥४३॥

परिरेभे अङ्गजं दोर्भ्यां दीर्घं उत्कण्ठ मनाः श्वसन् विष्वक्सेन अङ्घ्रि संस्पर्श हतशेष अघ बन्धनम् ॥४३॥

विष्वक्सेन	
अङ्घ्रि	भगवान् नारायणके चरणोंके
संस्पर्श	स्पर्शसे
अघ बन्धनं	पाप तथा बन्धन
हतशेष	जिनके नष्ट हो गये थे उस
अङ्गजं	पुत्रको
दीर्घं उत्कण्ठ	
मनाः	अत्यन्त उत्कण्ठा-युक्त चित्तसे
श्वसन्	लम्बी श्वास लेते
दोर्भ्यां परिरेभे	भुजाओंमें भरकर आलिगन किया ॥४३

अथाजिघ्रन्मुहुर्मूर्ध्नि शीतैर्नयनवारिभिः ।
स्नापयामास तनयं जातोद्दाममनोरथः ॥४४॥

अथ अजिघ्रन् मुहुः मूर्ध्नि शीतैः नयन वारिभिः स्नापयामास तनयं जात उद्दाम मनोरथः ॥४४॥

जात उद्दाम	
मनोरथः	बहुत बड़ी कामना पूर्ण होनेसे
अथ मुहुः	फिर बार-बार
मूर्ध्नि अजिघ्रन्	सिर सूंघते हुए*
शीतैः नयन	
वारिभिः	शीतल अश्रुओंसे
तनयं	
स्नापयामास	पुत्रको स्नान करा दिया ॥४४॥

अभिवन्द्य पितुः पादावाशीर्भिश्चाभिमन्त्रितः ।
ननाम मातरौ शीर्ष्णा सत्कृतः सज्जनाग्रणीः ॥४५॥

अभिवन्द्य पितुः पादाः आशीभिः च अभिमन्त्रितः ननाम मातरः शीर्ष्णाः सत्कृतः सज्जन अग्रणीः ॥४५॥

सज्जन अग्रणीः	सज्जनोंमें श्रेष्ठ (ध्रुव) ने
पितुः पादाः	पिताके चरणोंमें
अभिवन्द्य	प्रणाम करके

---

* पहिले बच्चोंको प्यारसे चूमते नहीं थे, उनका मस्तक सूंघ लेते थे ।

च आशीभिः अभिमन्त्रितः	तथा आशीर्वाद पाकर	**सत्कृतः शीर्ष्णा**	सत्कार पूर्वक मस्तक झुकाकर
		मातरः ननाम	माताओंको प्रणाम किया ॥४५॥

सुरुचिस्तं समुत्थाप्य पादावनतमर्भकम् ।
परिष्वज्याह जीवेति बाष्पगद्गदया गिरा ॥४६॥

सुरुचिः तं समुत्थाप्य पादावनतं अर्भकं परिष्वज्य आह जीव इति बाष्प गद्गदया गिरा ॥४६॥

पादावनतं	(अपने) पैरोंपर झुके	**परिष्वज्य**	गोदसे लगाकर
		बाष्प गद्गद्या	आँसूसे गद्गद
तं अर्भकं	उस बालकको	**गिरा जीव**	वाणीसे 'जीते रहो'
सुरुचिः		**इति आह**	यह कहा ॥४६॥
समुत्थाप्य	सुरुचिने उठाकर		

यस्य प्रसन्नो भगवान् गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः ।
तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम् ॥४७॥

यस्य प्रसन्नः भगवान् गुणैः मैत्र्यादिभिः हरिः तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नं आप इव स्वयम् ॥४७॥

मैत्र्यादिभिः गुणैः यस्य भगवान् हरिः प्रसन्नः	मैत्री आदि गुणोंसे जिसपर भगवन् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं	**स्वयं आप निम्नं इव**	स्वयं जल जैसे नीचे-की ओर जाता है,
		तस्मै भूतानि	उसके सम्मुख सब प्राणी
		नमन्ति	झुक जाते हैं ॥४७॥

उत्तमश्च ध्रुवश्चोभावन्योन्यं प्रेमविह्वलौ ।
अङ्गसङ्गादुत्पुलकावस्रौघं मुहुरूहतुः ॥४८॥

उत्तमः च ध्रुवः च उभाः अन्योन्यं प्रेम विह्वलौ अङ्ग सङ्गात् उत्पुलकाः अस्रौघं मुहुः ऊहतुः ॥४८॥

उत्तमः च ध्रुवः	उत्तम और ध्रुव
उभाः च	दोनों ही
प्रेम विह्वलौ	प्रेमसे विह्वल होकर
अन्योन्यं अङ्ग सङ्गात्	एक दूसरेको आलिंगन करके
उत्पुलकाः	रोमांचित हो गये और
मुहुः अस्रौघं ऊहतुः	बार-बार बहुत आँसू बहाने लगे ॥४८॥

सुनीतिरस्य जननी प्राणेभ्योऽपि प्रियं सुतम् ।
उपगुह्य जहावार्धिं तदङ्गस्पर्शनिर्वृता ॥४९॥

सुनीतिः अस्य जननी प्राणेभ्यः अपि प्रियं सुतं उपगुह्य जहाः आर्धिं तत् अङ्गस्पर्श निर्वृता ॥४९॥

अस्य जननी	इन (ध्रुव) की माता
सुनीतिः	सुनीतिने
प्राणेभ्यः अपि	प्राणसे भी
प्रियं सुतं	प्रिय पुत्रको
उपगुह्य	हृदयसे लगाकर
तत् अंगस्पर्श	उनके अंग स्पर्शसे
निर्वृता	आनन्दमग्न होकर
आर्धिं जहाः	निश्चिन्त हो गयी ॥४९॥

पयःस्तनाभ्यां सुस्राव नेत्रजैः सलिलैः शिवैः ।
तदाभिषिच्यमानाभ्यां वीर वीरसुवो मुहुः ॥५०॥

पयः स्तनाभ्याँ सुस्राव नेत्रजैः सलिलैः शिवैः तत् अभिषिच्य मानाभ्यां वीर वीर सुवः मुहुः ॥५०॥

स्तनाभ्यां पयः सुस्राव	स्तनोंसे दूध टपकने लगा,
वीर सुवः मुहुः	(उन) वीरमाताने बार-बार
नेत्रजैः शिवैः सलिलैः	नेत्रोंके पवित्र जल (आँसू) से
तत् वीर अभिषिच्य मानाभ्यां	उस समय पुत्रको भिगाती रहीं ॥५०॥

तां शशंसुर्जना राज्ञीं दिष्ट्या ते पुत्र आर्तिहा ।
प्रतिलब्धश्चिरं नष्टो रक्षिता मण्डलं भुवः ॥५१॥

तां शशंसुः जना राज्ञीं दिष्ट्या ते पुत्र आर्तिहा प्रतिलब्धः चिरंनष्टः रक्षिता मण्डलं भुवः ॥५१॥

जनां तां राज्ञीं	लोग उस महारानीकी	**ते पुत्र**	
शशंसुः	प्रशंसा करने लगे–	**प्रतिलब्धः**	आपका पुत्र फिर मिल गया,
दिष्ट्या	'सौभाग्यसे	**आर्तिहा**	सबका दुःख दूर
चिरंनष्टः	बहुत दिनसे खोया		करनेवाला यह
		भुवः मण्डलं	भूमण्डलका
		रक्षिता	रक्षक होगा ॥५१॥

अभ्यर्चितस्त्वया नूनं भगवान् प्रणतार्तिहा ।
यदनुध्यायिनो धीरा मृत्युं जिग्युः सुदुर्जयम् ॥५२॥

अभ्यर्चितः त्वया नूनं भगवान् प्रणत आर्तिहा यत् अनुध्यायिनः धीरा मृत्युं जिग्युः सुदुर्जयम् ॥५२॥

यत्		**नूनं त्वया**	निश्चय आपने
अनुध्यायिनः	जिनका निरन्तर चिन्तन करनेवाले	**प्रणत आर्तिहा**	(उन) शरणागत दुःख नाशक
धीराः	धीर पुरुष	**भगवान्**	
सुदुर्जयं मृत्युं	अत्यन्त दुर्जय मृत्युको	**अभ्यर्चितः**	भगवानकी भली प्रकार पूजा की
जिग्युः	जीत लेते हैं,		है ॥५२॥

लाल्यमानं जनैरेवं ध्रुवं सभ्रातरं नृपः ।
आरोप्य करिणीं हृष्टः स्तूयमानोऽविशत्पुरम् ॥५३॥

लाल्यमानं जनैः एवं ध्रुवं सभ्रातरं नृपः आरोप्य करिणीं हृष्टः स्तूयमानः अविशत् पुरम् ॥५३॥

जनैः एवं	लोगों द्वारा इस प्रकार	**हृष्टः नृपः**	प्रसन्न होकर राजाने
ध्रुवं लाल्यमानं	ध्रुवको लाड़ दिखलानेपर	**सभ्रातरं**	भाई (उत्तम) के साथ (उन्हें)

करिणीं आरोप्य स्तूयमानः	हथिनीपर बैठाकर (लोगों द्वारा) प्रशंसित होते	**पुरं अविशत्**	नगरमें प्रवेश किया ॥५३॥

तत्र तत्रोपसंक्लृप्तैर्लसन्मकरतोरणैः ।
सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैश्च तद्विधैः ॥५४॥

तत्र तत्र उपसंक्लृप्तैः लसन् मकर तोरणैः सवृन्दैः कदली स्तम्भैः पूगपोतैः च तत् विधैः ॥५४॥

तत्र तत्र मकर तोरेणैः	(नगरमें) जहां-तहां मकरके आकारके तोरण	**स्तम्भैः**	फलोंके गुच्छे सहित केलेके खम्भे
उपसंक्लृप्तैः सवृन्दैः कदली	बनाये थे,	**तत् विधैः**	उसी प्रकारके (फलों सहित)
		पूगपोतैः लसन्	सुपारीके पौधे सुशोभित थे ॥५४॥

चूतपल्लववासःस्रङ्मुक्तादामविलम्बिभिः ।
उपस्कृतं प्रतिद्वारमपां कुम्भैः सदीपकैः ॥५५॥

चूतपल्लव वासः स्रङ् मुक्तादाम विलम्बिभिः उपस्कृतं प्रतिद्वारं अपां कुम्भैः सदीपकैः ॥५५॥

प्रतिद्वारं चूतपल्लव	प्रत्येक द्वार आमके पत्तोंके तोरण	**सदीपकैः अपां कुम्भैः**	दीपकके साथ जल भरे कलशसे
वासः स्राङ् मुक्तादाम	वस्त्र, मालाएँ,	**उपस्कृतं**	सज्जित थे ॥५५॥
विलम्बिभिः	मोतियोंकी झालर लटकानेसे		

प्रकारैर्गोपुरागा रैः शातकुम्भपरिच्छदैः ।
सर्वतोऽलंकृतं श्रीमद्विमानशिखरद्युभिः ॥५६॥

प्राकारैः गोपुर आगारैः शातकुम्भ परिच्छदैः सर्वतः अलंकृतं श्रीमत् विमान शिखर द्युभिः ॥५६॥

प्राकारैः	(वह नगर) चहार दीवारीसे,	**आगारैः**	भवनोंसे
गोपुर	तोरण द्वारसे,	**श्रीमत् विमान**	सुन्दर छज्जोंसे,
शातकुम्भ		**शिखर द्युभिः**	शिखरोंकी चमकसे
परिच्छदैः	सोनेके उपकरणों-वाले	**सर्वतः**	
		अलङ्कृतं	सब ओर सजा हुआ था ॥५६॥

मृष्टचत्वररथ्याट्टमार्गं चन्दनचर्चितम् ।
लाजाक्षतैः पुष्पफलैस्तण्डुलैर्बलिभिर्युतम् ॥५७॥

मृष्ट चत्वर रथ्या अट्टमार्गं चन्दन चर्चितं लाजा अक्षतैः पुष्प फलैः तण्डुलैः बलिभिः युतम् ॥५७॥

चत्वर रथ्या	चौराहे, गलियाँ,	**लाजा अक्षतैः**	धानकी खील,
अट्टमार्गं	बाजारोंके मार्ग	**पुष्प फलैः**	
मृष्ट चन्दन		**तण्डुलैः**	पुष्प, फल, अक्षतोंसे
चर्चितं	स्वच्छ करके चंदनसे सजाये गये थे,	**बलिभिः युतं**	(जहाँ तहाँ)पूजा की गयी थी ॥५७॥

ध्रुवाय पथि दृष्टाय तत्र तत्र पुरस्त्रियः ।
सिद्धार्थाक्षतदध्यम्बुदूर्वापुष्पफलानि च ॥५८॥

ध्रुवाय पथि दृष्टाय तत्र तत्र पुरः स्त्रियः सिद्धार्थ अक्षत दधि अम्बु दूर्वा पुष्प फलानि च ॥५८॥

ध्रुवाय पथि		**सिद्धार्थ, अक्षत्**	पीली सरसों, अक्षत,
दृष्टाय	ध्रुवको मार्गमें देखनेके लिए	**दधि अम्बु**	दही, जल,
तत्र तत्र	जहाँ तहाँ	**पुष्प दूर्वा च**	
पुरः स्त्रियः	नगरकी स्त्रियाँ (आ गयीं)	**फलानि**	पुष्प, दूर्वा तथा फलका ॥५८॥

उपजह्रुः प्रयुञ्जाना वात्सल्यादाशिषः सतीः ।
शृण्वंस्तद्वल्गु गीतानि प्राविशद्भुवनं पितुः ॥५९॥

उपजह्रु प्रयुञ्जाना वात्सल्यात् आशिषः सतीः शृण्वन् तद् वल्गु गीतानि प्राविशत् भवनं पितुः ॥५९॥

उपजह्रुः	उपहार दिया ।
वात्सल्यात्	वात्सल्य भावसे
सतीः आशिषः	उत्तम आशीर्वाद
प्रयुञ्जानाः	देते हुए ।
तद् बल्गु गीतानि	उनके मनोहर गीत
शृण्वन् पितुः भवनं	सुनते हुए पिताके भवनमें
प्राविशत्	प्रवेश किया ॥५९॥

महामणिव्रातमये स तस्मिन् भवनोत्तमे ।
लालितो नितरां पित्रा न्यवसद्दिवि देववत् ॥६०॥

महामणि व्रातमये स तस्मिन् भवन उत्तमे लालितः नितरां पित्रा न्यवसत् दिवि देववत् ॥६०॥

महामणि व्रातमये	महामणियोंकी लड़ियोंसे युक्त
तस्मिन् उत्तमे भवने	उस श्रेष्ठ भवनमें
स पित्रा	वे पिता द्वारा
नितरां लालितः	बहुत लाड़-प्यार पाते
दिवि देववत्	स्वर्गमें देवताओंके समान
न्यवसत्	निवास करने लगे ॥६०॥

पयःफेन निभाःशय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ।
आसनानि महार्हाणि यत्र रौक्मा उपस्कराः ॥६१॥

पयः फेन निभाःशय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः आसनानि महार्हाणि यत्र रौक्माः उपस्कराः ॥६१॥

पयः फेन निभाः शय्याः	दूधके फेनके समान (कोमल) पलंग,
दान्ताः रुक्म-	हाथी दांतके स्वर्ण जटित

परिच्छदाः	पाये आदि थे,	**रौक्माः**	
यत्र महार्हाणि		**उपस्कराः**	तथा सोनेके दूसरे
आसनानि	जहाँ बहुमूल्य आसन		सामान थे ॥६१॥

यत्र स्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ।
मणिप्रदीपा आभान्ति ललनारत्नसंयुताः ॥६२॥

यत्र स्फटिक कुड्येषु महामारकतेषु च मणि प्रदीपा आभान्ति ललनारत्न संयुताः ॥६२॥

यत्र स्फटिक च महामार-		**ललनारत्न**	सुन्दर स्त्रियोंकी मूर्तियाँ
कतेषु	तथा महामरकत मणिकी	**मणि प्रदीपा**	
कुड्येषु	दीवारोंमें	**संयुताः**	मणियोंके दीपक सहित
		आभान्ति	सुशोभित थीं ॥६२॥

उद्यानानि च रम्याणि विचित्रैरमरद्रुमैः ।
कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥६३॥

उद्यानानि च रम्याणि विचित्रैः अमर द्रुमैः कूजत् विहङ्ग मिथुनैः गायन् मत्त मधुव्रतैः ॥६३॥

विचित्रैः	अनेक प्रकारके	**कूजत् च**	कलरव करते थे तथा
अमर द्रुमैः	दिव्य वृक्षोंवाले	**मत्त मधुव्रतैः**	
रम्याणि		**गायन्**	मदमत्त भौंरे गुंजार
उद्यानानि	रमणीय बगीचे थे,		करते थे ॥६३॥
विहङ्ग मिथुनैः	(जिनमें) पक्षियोंके जोड़े		

वाप्यो वैदूर्यसोपानाः पद्मोत्पलकुमुद्वतीः ।
हंसकारण्डवकुलैर्जुष्टाश्चक्राह्वसारसैः ॥६४॥

वाप्यः वैदूर्यं सोपानाः पद्म उत्पल कुमुद्वतीः हंस कारण्डव कुलैः जुष्टाः चक्राह्व सारसैः ॥६४॥

वैदूर्य सोपानाः	वैदूर्यकी सीढ़ियों-वाली
पद्म उत्पल	लाल तथा नीले कमल,
कुमुद्वतीः	कुमुदिनी वाली
हंस कारण्डव	
कुलैः	हंस, कारण्डवों (जलकाक)
चक्राह्व सारसैः	चकवा तथा सारसों-से
जुष्टाः वाप्यः	युक्त वावली थीं ॥६४॥

उत्तानपादो राजर्षिः प्रभावं तनयस्य तम् ।
श्रुत्वा दृष्ट्वाद्भुततमं प्रपेदे विस्मयं परम् ॥६५॥

उत्तानपादः राजर्षिः प्रभावं तनयस्य तं श्रुत्वा दृष्ट्वा अद्भुत तमं प्रपेदे विस्मयं परम् ॥६५॥

राजर्षिः उत्तान-पादः	राजर्षि उत्तान-पादको
तनयस्य तं	पुत्रके उस
अद्भुत तमं	अत्यन्त अद्भुत
प्रभावं श्रुत्वा	प्रभावको सुनकर,
दृष्ट्वा	(वैसा ही) देखकर
परम् विस्मयं	अत्यन्त आश्चर्य
प्रपेदे	हुआ ॥६५॥

वीक्ष्योढवयसं तं च प्रकृतीनां च सम्मतम् ।
अनुरक्तप्रजं राजा ध्रुवं चक्रे भुवः पतिम् ॥६६॥

वीक्ष्य ऊढ वयसं तं च प्रकृतीनां च सम्मतं अनुरक्तं प्रजां राजा ध्रुवं चक्रे भुवः पतिम् ॥६६॥

तं च ऊढ वयसं	उन (ध्रुव) को भी तरुणावस्थाका
प्रकृतीनां सम्मतं	अमात्यवर्ग द्वारा आदर प्राप्त
प्रजां अनुरक्तं	प्रजाका उनपर अनुराग
वीक्ष्य ध्रुवं	देखकर ध्रुवको
भुवः पतिं चक्रे	पृथ्वीका स्वामी बना दिया ॥६६॥

आत्मानं च प्रवयसमाकलय्य विशाम्पतिः ।
वनं विरक्तः प्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनो गतिम् ॥६७॥

आत्मानं च प्रवयसं आकलय्य विशाम्पतिः वनं विरक्तः प्रातिष्ठत् विमृशन् आत्मनः गतिम् ॥६७॥

विशाम्पतिः	राजाने
आत्मानं च	अपनेको भी
प्रवयसं	
आकलय्य	वृद्ध हुआ समझकर
आत्मनः गतिं	आत्मस्वरूपका
विमृशन्	विचार करते हुए
विरक्तः	विरक्त होकर
वनं प्रातिष्ठत्	वनको प्रस्थान किया ॥६७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे ध्रुवराज्याभिषेकवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः।

अथ दशमोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः ।
उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥१॥

प्रजापतेः दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः उपयेमे भ्रमिं नाम तत् सुतौ कल्प वत्सरौ ॥१॥

प्रजापतेः		**ध्रुवः वै उपयेमे**	ध्रुवने तो विवाह किया,
शिशुमारस्य	प्रजापति शिशु मारकी	**तत् सुतौ**	उससे दो पुत्र
भ्रमिं नाम		**कल्प वत्सरौ**	कल्प और वत्सर
दुहितरं	भ्रमि नामकी पुत्रीसे		हुए ॥१॥

इलायामपि भार्यायां वायोः पुत्र्यां महाबलः ।
पुत्रमुत्कलनामानं योषिद्रत्नमजीजनत् ॥२॥

इलायां अपि भार्यायां वायोः पुत्र्यां महाबलः पुत्रं उत्कल नामानं योषित् रत्नं अजीजनत् ॥२॥

इलायां भार्यायं		**पुत्रं योषित्**	
अपि	इला नामक दूसरी पत्नीसे भी	**रत्नं**	पुत्र तथा कन्यारत्न
		अजीजनत्	उत्पन्न किया ॥२॥
उत्कल नामान	उत्कल नामवाला ।		

उत्तमस्त्वकृतोद्वाहो मृगयायां बलीयसा ।
हतः पुण्यजनेनाद्रौ तन्मातास्य गतिं गता ॥३॥

उत्तमः तु अकृत उद्वाहः मृगयायां बलीयसा हतः पुण्यजनेन अद्रौ तत् माता अस्य गतिं गता ॥३॥

उद्वाहः अकृत	विवाह न करके
उत्तमः तु	उत्तम तो
अद्रौ मृगयायां	पहाड़ (हिमालय) पर आखेट करने जाकर
बलीयसा पुण्यजनेन	बलवान यक्षों द्वारा
हतः	मारा गया,
तत् माता	उसकी माता (सुरुचि)
अस्य गतिं गता	उसीकी गति (मृत्युको) प्राप्त हुई ॥३॥

ध्रुवो भ्रातृवधं श्रुत्वा कोपामर्षशुचार्पितः ।
जैत्रं स्यन्दनमास्थाय गतः पुण्यजनालयम् ॥४॥

ध्रुवः भ्रातृ वधं श्रुत्वा कोप अमर्ष शुच अर्पितः जैत्रं स्यन्दनं आस्थाय गतः पुण्यजन आलयम् ॥४॥

ध्रुवः	ध्रुवने
भ्रातृ वधं श्रुत्वा	भाईका वध सुनकर
कोप अमर्ष शुच	क्रोध, असहन शक्ति, शोक
अर्पितः	से भरकर
जैत्रं स्यन्दनं आस्थाय	विजयदायी रथपर बैठकर
पुण्यजन आलयं गतः	यक्षोंके नगरके पास गये ॥४॥

गत्वोदीचीं दिशं राजा रुद्रानुचरसेविताम् ।
ददर्श हिमवद्द्रोण्यां पुरीं गुह्यकसंकुलाम् ॥५॥

गत्वा उदीचीं दिशं राजा रुद्र अनुचर सेवितां ददर्श हिमवत् द्रोण्यां पुरीं गुह्यक संकुलाम् ॥५॥

रुद्र अनुचर सेवितां	रुद्रके सेवकों (प्रेत-पिशाचों) से सेवित
उदीचीं दिशं	उत्तर दिशामें
गत्वा राजा	जाकर राजा ध्रुवने
हिमवत् द्रोण्यां गुह्यक संकुलां	हिमालयकी घाटीमें
पुरीं	यक्षोंसे भरे नगरको
ददर्श	(अलकाको) देखा ॥५॥

दध्मौ शङ्खं बृहद्बाहुः खं दिशश्चानुनादयन् ।
येनोद्विग्नदृशः क्षत्तरुपदेव्योऽत्रसन्भृशम् ॥६॥

दध्मौ शङ्खं बृहद् बाहुः खं दिशः च अनुनादयन् येन उद्विग्न दृशः क्षत्तः उपदेव्यः अत्रसन् भृशम् ॥६॥

क्षत्तः	विदुर !
बृहद् बाहुः	विशाल बाहु (ध्रुव) ने
खं दिशः च	आकाश और दिशाओंको भी
अनुनादयन्	गुञ्जित करते
शङ्खं दध्मौ	शंख बजाया,
येन उद्विग्न दृशः	जिससे व्याकुल नयना
उपदेव्यः	यक्षस्त्रियां
भृशं अत्रसन्	बहुत डर गयीं ॥६॥

ततो निष्क्रम्य बलिन उपदेवमहाभटाः ।
असहन्तस्तन्निनादमभिपेतुरुदायुधाः ॥७॥

ततः निष्क्रम्य बलिनः उपदेव महाभटाः असहन्तः तत् निनादं अभिपेतुः उदा युधाः ॥७॥

ततः तत् निनादं	तब उस उग्र ध्वनिको
असहन्तः	सहन न करके
बलिनः	
महाभटाः	बलवान महाशूर
उपदेव	
उदा युधाः	यक्षगण हथियार उठाये
निष्क्रम्य	
अभिपेतुः	निकलकर टूट पड़े ॥७॥

स तानापततो बीर उग्रधन्वा महारथः ।
एकैकं युगपत्सर्वानहन् बाणैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥८॥

स तान् आपततः वीर उग्रधन्वा महारथः एक एकं युगपत् सर्वान् अहन् बाणैः त्रिभिः त्रिभिः ॥८॥

तान् आपततः	उन आक्रमण करने वालोंको
स वीर	उस वीर
उग्रधन्वा	
महारथः	प्रचण्ड धनुर्धर महारथीने
युगपत एक एकं	एक साथ प्रत्येकको,
सर्वान्	सबको
त्रिभिः त्रिभिः	
बाणैः	तीन-तीन वाणोंसे
अहन्	मारा ॥८॥

ते वै ललाटलग्नैस्तैरिषुभिः सर्व एव हि ।
मत्वा निरस्तमात्मानमाशंसन् कर्म तस्य तत् ॥६॥

ते वै ललाट लग्नैः तैः इषुभिः सर्व एव हि मत्वा निरस्तं आत्मानं आशंसन् कर्म तस्य तत् ॥६॥

ते वै सर्व एव हि	उन सबने ही
तैः ललाट लग्नैः	उन ललाटमें लगे
इषुभिः	वाणोंसे
आत्मानं निरस्तं	अपनेको पराजित
मत्वा तस्य तत्	मानकर उनके उस
कर्म आशंसन्	पराक्रमकी प्रशंसा की ॥६॥

तेऽपि चामुममृष्यन्तः पादस्पर्शमिवोरगाः ।
शरैरविध्यन् युगपद् द्विगुणं प्रचिकीर्षवः ॥१०॥

ते अपि च अमुं अमृष्यन्तः पादस्पर्शं इव उरगाः शरैः अविध्यन् युगपत् द्विगुणं प्रचिकीर्षवः ॥१०॥

पादस्पर्शः	
उरगाः इव	पैरसे ठुकराये सर्पके समान
ते अपि च	वे (यक्ष) भी
अमुं अमृष्यन्तः	(ध्रुवके) इस (पराक्रम) को न सहकर
प्रचिकीर्षवः	बदला लेनेकी इच्छासे
युगपत् द्विगुणं	एक साथ दुगुने (६६)
शरैः अविध्यन्	वाणोंसे मारा ॥१०॥

ततः परिघनिस्त्रिंशैः प्रासशूलपरश्वधैः ।
शक्त्यृष्टिभिर्भुशुण्डीभिश्चित्रवाजैः शरैरपि ॥११॥

ततः परिघ निस्त्रिंशैः प्रास शूल परशु अधैः शक्ति ऋषिभिः भुशुण्डीभिः चित्रवाजैः शरैः अपि ॥११॥

ततः परिघ	फिर डंडे,
निस्त्रिंशैः	खड्ग
प्रास शूल	भाले, त्रिशूल
परशु	फरसे

शक्ति ऋषिभिः शक्ति, ऋष्टि,
भुशुण्डीभिः बन्दूकोंसे
चित्रवाजैः विचित्र पंखोंवाले
शरैः अपि अधैः बाणोंसे भी प्रहार करने लगे ॥११॥

अभ्यवर्षन् प्रकुपिताः सरथं सहसारथिम् ।
इच्छन्तस्तत्प्रतीकर्तुमयुतानि त्रयोदश ॥१२॥

अभ्यवर्षन् प्रकुपिताः सरथं सह सारथि इच्छन्तः तत् प्रतीकर्तुं अयुतानि त्रयोदश ॥१२॥

अयुतानि त्रयोदश (वे) एक लाख तीस हजार (तेरह अयुत यक्ष)
तत् प्रतीकर्तुं इच्छन्त उन (ध्रुव) से बदला लेनेकी इच्छा-से
प्रकुपिताः अत्यन्त क्रुद्ध होकर
सरथं सह सारथि रथ और सारथी सहितपर
अभ्यवर्षन् (शस्त्रोंकी) चारों ओरसे वर्षा करने लगे ॥१२॥

औत्तानपादिः स तदा शस्त्रवर्षेण भूरिणा ।
न उपादृश्यतच्छन्न आसारेण यथा गिरिः ॥१३॥

औत्तानपादिः स तदा शस्त्र वर्षेण भूरिणा न उपादृश्यत छन्नः आसारेण यथा गिरिः ॥१३॥

यथा आसारेण गिरिः जैसे भारी वर्षासे पर्वत (नहीं दीखता)
तदा स औत्तानपादिः उस समय वे ध्रुव
भूरिणा शस्त्र वर्षेण बहुत अधिक शस्त्र वर्षासे
छन्नः ढककर
न उपादृश्यत नहीं दिखायी पड़े ॥१३॥

हाहाकारस्तदैवासीत्सिद्धानां दिवि पश्यताम् ।
हतोऽयं मानवः सूर्यो मग्नः पुण्यजनार्णवे ॥१४॥

हाहाकारः तदा एव आसीत् सिद्धानां दिवि पश्यतां हतः अयं मानवः सूर्यः मग्नः पुण्यजन अर्णवे ॥१४॥

दिवि पश्यतां	आकाशसे (युद्ध) देखनेवाले	**अयं मानवः सूर्यः**	यह मानव-सूर्य
सिद्धानां तदा एव	सिद्धोंमें उसी समय	**पुण्यजन अर्णवे मग्नः**	यक्षों रूपी समुद्रमें डूबकर
हाहाकारः आसीत्	हाहाकार होने लगा कि	**हतः**	मारा गया ॥१४॥

नदत्सु यातुधानेषु जयकाशिष्वथो मृधे ।
उदतिष्ठद्रथस्तस्य नीहारादिव भास्करः ॥१५॥

नदत्सु यातु धानेषु जयकाशिषु अथ मृधे उदतिष्ठत् रथः तस्य नीहारात् इव भास्करः ॥१५॥

जयकाशिषु	अपनी विजय घोषणा करते	**मृधे तस्य रथः नीहारात्**	युद्धमें उनका रथ
यातु धामेषु	यक्षोंके	**भास्करः इव**	कुहरेसे सूर्यके समान
नदत्सु अथ	गर्जते समय ही	**उदतिष्ठत्**	निकल आया ॥१५॥

धनुर्विस्फूर्जयन्दिव्यं द्विषतां खेदमुद्वहन् ।
अस्त्रौघं व्यधमद्बाणैर्घनानीकमिवानिलः ॥१६॥

धनुः विस्फूर्जयन् दिव्यं द्विषतां खेदं उद्वहन् अस्त्र ओघं व्यधमत् बाणैः घन अनीकं इव अनिलः ॥१६॥

द्विषतां खेदं उद्वहन्	शत्रुओंको खिन्न करते	**घन अनीकं**	मेघोंकी घटाको (हटा दे)
दिव्यं धनुः	(अपने) दिव्य धनुषकी	**बाणैः अस्त्र ओघं**	वाणोंसे अस्त्रोंकी बाढ़
विस्फूर्जयन् इव अनिलः	टंकार करते, जैसे वायु	**व्यधमत्**	नष्ट कर दी ॥१६॥

तस्य ते चापनिर्मुक्ता भित्त्वा वर्माणि रक्षसाम् ।
कायान्नाविविशुस्तिग्मा गिरीनशनयो यथा ॥१७॥

तस्य ते चाप निर्मुक्ता भित्त्वा वर्माणि रक्षसां कायान् आविविशुः तिग्मा गिरीन् अशनयः यथा ॥१७॥

तस्य चाप		**रक्षसां बर्माणि**	
निर्मुक्ता	उनके धनुषसे छूटे	**भित्त्वा**	यक्षोंके कवच फोड़कर
ते तिग्मा	वे तीक्ष्ण (वाण)		
यथा अशनयः		**कायान्**	
गिरीन्	जैसे वज्र पर्वतोंपर पड़े	**आविविशुः**	(उनके) शरीरोंमें घुस गये ॥१७॥

भल्लैः संछिद्यमानानां शिरोभिश्चारुकुण्डलैः ।
उरुभिर्हेमतालाभैर्दोर्भिर्वलयवल्गुभिः ॥१८॥

भल्लैः संछिद्य मानानां शिरोभिः चारुकुण्डलैः उरुभिः हेमताल आभैः दोर्भिः बलय वल्गुभिः ॥१८॥

भल्लैः	(ध्रुवके) वाणोंसे	**उरुभिः**	स्वर्ण-ताड़-वृक्षके समान जांघें
चारुकुण्डलैः			
शिरोभिः	सुन्दर कुण्डल पहिने सिर	**वलय वल्गुभिः**	
		दोर्भिः	कंकण भूषित भुजाएँ
हेमताल आभैः		**संछिद्य मानानां**	(यक्षोंकी) कट रही थीं ॥१८॥

हारकेयूरमुकुटैरुष्णीषैश्च महाधनैः ।
आस्तृतास्ता रणभुवो रेजुर्वीरमनोहराः ॥१९॥

हार केयूर मुकुटैः उष्णीषैः च महाधनैः आस्तृताः ता रणभुवः रेजुः वीर मनोहराः ॥१९॥

हार केयूर	हार, अंगद,	**च महाधनैः**	
मुकुटैः	मुकुटों	**उष्णीषैः**	तथा बहुमूल्य पगड़ियोंसे

आस्तृताः वीर मनोहराः	विछी वीरोंकी मनोहारिणी	**ता रणभुवः रेजुः**	वह युद्ध भूमि शोभित हुई ॥१९॥

हतावशिष्टा इतरे रणाजिराद्
रक्षोगणाः क्षत्रियवर्यसायकैः ।
प्रायो विवृक्णावयवा विदुद्रुवु-
र्मृगेन्द्रविक्रीडितयूथपा इव ॥२०॥

हताः अवशिष्टा इतरे रण अजिरात् रक्षोगणाः क्षत्रिय वर्य सायकैः प्रायः विवृक्ण अवयवा विदुद्रुवुः मृगेन्द्र बिक्रीडित यूथपा इव ॥२०॥

क्षत्रिय वर्य सायकैः	क्षत्रियोत्तम (ध्रुव)के वाणोंसे	**मृगेन्द्र विक्रीडित यूथपा इव**	सिंहसे क्रीडा-युद्धमें (हारे) गजराजके समान
हताः अवशिष्टाः	मारे जानेसे बचे	**रण अजिरात्**	रणांगनसे
इतरे रक्षोगणाः	दूसरे यक्ष	**विदुद्रुवुः**	भाग गये ॥२०॥
प्रायः विवृक्ण अवयवा	प्रायः कटे-फटे अंगवाले		

अपश्यमानः स तदाऽऽततायिनं
महामृधे कंचन मानवोत्तमः ।
पुरीं दिदृक्षन्नपि नाविशद् द्विषां
न मायिनां वेद चिकीर्षितं जनः ॥२१॥

अपश्यमानः स तदा आततायिनं महामृधे कंचन मानवोत्तमः पुरीं दिदृक्षन् अपि न अविशत् द्विषां न मायिनां वेद चिकीर्षितं जनः ॥२१॥

स मानवोत्तमः	वे मानव श्रेष्ठ ध्रुव	**कंचन**	
तदा	उस समय	**आततायिनं**	किसी भी आक्रमण-कारीको
महामृधे	महायुद्धमें		

अपश्यमानः	न देखते हुए	**मायिनां**	
द्विषां पुरीं	शत्रुओंके नगरको	**चिकीर्षितं**	'मायावी क्या करना
दिदृक्षन् अपि	देखनेकी इच्छा		चाहते हैं'
	होनेपर भी	**जनः न वेद**	सामान्यजन नहीं
अविशत् न	(उसमें) प्रविष्ट नहीं		जान पाते ॥२१॥
	हुए (क्योंकि)		

इति ब्रुवंश्चित्ररथः स्वसारथिं
यत्तः परेषां प्रतियोगशङ्कितः ।
शुश्राव शब्दं जलधेरिवेरितं
नभस्वतो दिक्षु रजोऽन्वदृश्यत ॥२२॥

इति ब्रुवन् चित्ररथः स्वसारथिं यत्तः परेषां प्रतियोग शङ्कितः शुश्राव शब्दं जलधेः इव ईरितं नभस्वतः दिक्षु रजः अन्वदृश्यत ॥२२॥

चित्ररथः	विचित्र रथमें बैठे	**जलधेः इव**	
	(ध्रुव)	**ईरितं**	समुद्रकी गर्जनाके
स्वसारथिं	अपने सारथिसे		समान
इति ब्रुवन्	ऐसा कह ही रहे थे,	**शब्दं शुश्राव**	शब्द सुनाई पड़ा
परेषां	(क्योंकि उनको)		और
	शत्रुओंसे	**दिक्षु नभस्वतः**	
प्रतियोग		**रजः**	दिशाओंमें आंधीसे
शङ्कितः	प्रतिकारकी		उठी धूलि
	आशङ्का थी,	**अन्वदृश्यत**	दीख पड़ी ॥२२॥
यत्तः	सावधान थे (तभी)		

क्षणेनाच्छादितं व्योम घनानीकेन सर्वतः ।
विस्फुरत्तडिता दिक्षु त्रासयत्स्तनयित्नुना ॥२३॥

क्षणेन आच्छादितं व्योम घन अनीकेन सर्वतः विस्फुरत् तडिता दिक्षु त्रासयत् स्तनयित्नुना ॥२३॥

क्षणेन	
घन अनीकेन	एक क्षणमें मेघोंकी घटासे
सर्वतः व्योम	सब ओरसे आकाश
आच्छादितं	ढक लिया गया,
स्तनयित्नुना	गड़गड़ाहटके साथ
त्रासयत्	डराती हुई
दिक्षु तडिता	दिशाओंमें बिजलियां
विस्फुरत्	चमकने लगीं ॥२३॥

ववृषू रुधिरौघासृक्पूयविण्मूत्रमेदसः ।
निपेतुर्गगनादस्य कबन्धान्यग्रतोऽनघ ॥२४॥

ववृषू रुधिर ओघ असृक् पूय विट् मूत्र मेदसः निपेतुः गगनात् अस्य कबन्धान् अग्रतः अनघ ॥२४॥

अनघ	निष्पाप विदुर !
रुधिर असृक्	रक्त, कफ,
पूय विट्	पीव, विष्ठा
मूत्र मेदसः	मूत्र, चर्बीकी
औघ ववृषुः	बाढ़ जैसी वर्षा होने लगी
अस्य अग्रतः	इन (ध्रुव) के आगे
गगनात्	आकाशसे
कबन्धान्	
निपेतुः	सिरहीन धड़ गिरने लगे ॥२४॥

ततः खेऽदृश्यत गिरिर्निपेतुः सर्वतोदिशम् ।
गदापरिघनिस्त्रिंशमुसलाः साश्मवर्षिणः ॥२५॥

ततः खे अदृश्यत गिरिः निपेतुः सर्वतः दिशं गदा परिघ निस्त्रिंश मुसलाः स अश्म वर्षिणः ॥२५॥

स अश्म वर्षिणः	पत्थरोंकी वर्षा करता
गिरिः ततः	पर्वत फिर
ख अदृश्यत	आकाशमें दीख पड़ा,
सर्वतः दिशं	(उससे) चारों ओर
गदा परिघ	गदा, डंडे,
निस्त्रिंश	
मुसलाः	खड्ग, मूसल
निपेतुः	गिरने लगे ॥२५॥

अहयोऽशनिनिःश्वासा वमन्तोऽग्निं रुषाक्षिभिः ।
अभ्यधावन् गजा मत्ताः सिंहव्याघ्रश्च यूथशः ॥२६॥

अहयः अशनि निःश्वासा वमन्तः अग्नि रुषा अक्षिभिः अभ्यधावन् गजा मत्ताः सिंह व्याघ्र वरूथशः ॥२६॥

अशनि	
निःश्वासा	वज्रकी तरह फुफकारते
रुषा अक्षिभिः	क्रुद्ध होकर आंखोंसे
अग्नि वमन्तः	आग उगलने लगे,
मत्ताः गजा	पागल हाथी
सिंह व्याघ्र	सिंह और बाघ
वरूथशः	झुंडके झुंड
अभ्यधावन्	चारों ओर दौड़ने लगे ॥२६॥

समुद्र ऊर्मिभिर्भीमः प्लावयन् सर्वतो भुवम् ।
आससाद महाह्रादः कल्पान्त इव भीषणः ॥२७॥

समुद्र ऊर्मिभिः भीमः प्लावयन् सर्वतः भुवं आससाद महाह्रादः कल्पान्त इव भीषणः ॥२७॥

कल्पान्त इव	
भीषणः	प्रलय कालके समान भयानक
भीमः ऊर्मिभिः	भयङ्कर लहरोंसे
सर्वतः भुवं	सब ओरसे पृथ्वीको
प्लावयन्	डुबाता हुआ
महाह्रादः	महागर्जन करता
समुद्र आससाद	समुद्र बढ़ आया ॥२७॥

एवंविधान्यनेकानि त्रासनान्यमनस्विनाम् ।
ससृजुस्तिग्मगतय आसुर्या माययासुराः ॥२८॥

एवं विधानि अनेकानि त्रासनानि अन्य मनस्विनां ससृजुः तिग्म गतयः आसुर्या मायया असुराः ॥२८॥

असुराः	असुर (यक्षों) ने
आसुर्या मायया	आसुरी मायासे
एवं विधानि	इस प्रकारकी
अनेकानि	अनेकों
अन्य मनस्विनां	दूसरे मनस्वियोंको
त्रासनानि	डरानेवाली
तिग्म गतयः	तीक्ष्ण (उग्र) परिस्थितियाँ
ससृजुः	निर्मित कीं ॥२८॥

ध्रुवे प्रयुक्तामसुरैस्तां मायामतिदुस्तराम् ।
निशाम्य तस्य मुनयः शमाशंसन् समागताः ॥२९॥

ध्रुवे प्रयुक्तां असुरैः तां मायां अतिदुस्तरां निशाम्य तस्य मुनयः शं आशंसन् समागताः ॥२९॥

असुरैः	असुर (यक्षों) द्वारा
तां अतिदुस्तरां मायां ध्रुवे प्रयुक्तां	उस अत्यन्त दुस्तर मायाका प्रयोग ध्रुवपर हुआ
निशाम्य	देखकर
तस्य शं आशंसन्	उसकी शान्ति चाहते
मुनयः समागताः	कुछ मुनि आ गये ॥२९॥

मुनय ऊचुः-

औत्तानपादे भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा
देवः क्षिणोत्ववनतार्तिहरो विपक्षान् ।
यन्नामधेयमभिधाय निशम्य चाद्धा
लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमङ्ग मृत्युम् ॥३०॥

औत्तानपादे भगवान् तव शार्ङ्गधन्वा देवः क्षिणोति अवनत आर्तिहरः विपक्षान् यत् नामधेयं अभिधाय निशम्य च अद्धा लोकः अञ्जसा तरति दुस्तरं अङ्ग मृत्युम् ॥३०॥

अङ्ग देवः	प्यारे प्रभु !
शार्ङ्गधन्वा	शारंगधन्वा !
यत् नामधेयं	जिस (आपके) नामोंको
अद्धा	भली प्रकार
अभिधाय	
निशम्य च	उच्चारण करके तथा सुनकर
दुस्तरं मृत्युं	दुष्पार मृत्युको
लोकः अञ्जसा तरति	लोग अनायास पार कर लेते हैं
भगवान्	भगवन्
अवनत आर्तिहरः	शरणागत विपत्ति-हारी !
औत्तानपादे	उत्तानपादके पुत्र ध्रुव
तव विपक्षान् क्षिणोति	आपके विरोधियोंका क्षय करें ॥३०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे दशमोऽध्यायः ।

अथ एकादशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

निशम्य गदतामेवमृषीणां धनुषि ध्रुवः ।
संदधेऽस्त्रमुपस्पृश्य यन्नारायणनिर्मितम् ॥१॥

निशम्य गदतां एवं ऋषीणां धनुषि ध्रुवः संदधे अस्त्रं (अप्) उपस्पृश्य यत् नारायण निर्मितम् ॥१॥

एवं ऋषीणां	इस प्रकार ऋषियोंकी
गदतां निशम्य	बात सुनकर
ध्रुवः (अप्)	
उपस्पृश्य	ध्रुवने आचमन करके
यत् नारायण निर्मितं	जो भगवान नारायण द्वारा निर्मित था
अस्त्रं धनुषि सन्दधे	वह अस्त्र धनुषपर चढ़ाया ॥१॥

संधीयमान एतस्मिन्माया गुह्यकनिर्मिताः ।
क्षिप्रं विनेशुर्विदुर क्लेशा ज्ञानोदये यथा ॥२॥

सन्धीयमान एतस्मिन् माया गुह्यक निर्मिताः क्षिप्रं विनेशुः विदुर क्लेशा ज्ञानोदये यथा ॥२॥

विदुर	विदुर !
एतस्मिन्	उस (अस्त्र) के
सन्धीयमाने	सन्धान करनेपर
गुह्यक निर्मिताः	यक्षों द्वारा प्रकट की गयी
माया क्षिप्रं	
विनेशुः	माया शीघ्र नष्ट हो गयी,
यथा ज्ञानोदये	जैसे ज्ञान हो जानेपर
क्लेशा	(अविद्यादि) क्लेश (नष्ट हो जाते हैं) ॥२॥

तस्यार्षास्त्रं धनुषि प्रयुञ्जतः
सुवर्णपुङ्खाः कलहंसवाससः ।
विनिःसृता आविविशुर्द्विषद्बलं
यथा वनं भीमरवाः शिखण्डिनः ॥३॥

तस्य आर्ष अस्त्रं धनुषि प्रयुञ्जतः सुवर्णपुङ्खाः कलहंस वाससः विनिः सृता आविविशुः द्विषत् बलं यथा वनं भीमरवाः शिखण्डिनः ॥३॥

तस्य आर्ष	उस ऋषि (नारायण) निर्मित	**विनिःसृता**	निकलकर
अस्त्रं धनुषि	अस्त्रको धनुषपर	**द्विषत् बलं**	शत्रु सेनामें
प्रयुञ्जतः	चढ़ाते ही	**आविविशुः**	प्रविष्ट हुए
सुवर्णपुङ्खाः	सोनेके फल और	**यथा वनं**	जैसे वनमें
कलहंस वाससः	राजहंसके पंखवाले (वाण)	**भीमरवाः शिखण्डिनः**	उग्रध्वनि मोर (प्रवेश करते हैं)॥३॥

तैस्तिग्मधारैः प्रधने शिलीमुखै-
रितस्ततः पुण्यजना उपद्रुताः ।
तमभ्यधावन् कुपिता उदायुधाः
सुपर्णमुन्नद्धफणा इवाहयः ॥४॥

तैः तिग्मधारैः प्रधने शिलीमुखैः इतः ततः पुण्यजनाः उपद्रुताः तं अभ्यधावन् कुपिता उदायुधाः सुपर्णं उन्नद्ध फणा इव अहयः ॥४॥

तैः तिग्मधारैः	उन तीक्ष्ण धारवाले	**सुपर्णं**	गरुड़की ओर
शिलीमुखैः	वाणोंसे	**उन्नद्ध फणा**	फण उठाये
प्रधने पुण्यजनाः	युद्धमें यक्ष	**अहयः इव**	सर्पोंकी भाँति
इतः ततः उपद्रुताः	जहाँ-तहाँ बेचैन हो गये,	**उदायुधाः अभ्यधावन्**	शस्त्र उठाकर दौड़े ॥४॥
कुपिता तं	क्रुद्ध होकर उन (ध्रुव) की ओर		

स तान् पृषत्कैरभिधावतो मृधे
निकृत्तबाहूरुशिरोधरोदरान् ।
निनाय लोकं परमर्कमण्डलं
व्रजन्ति निर्भिद्य यमूर्ध्वरेतसः ॥५॥

स तान् पृषत् कैः अभिधावतः मृधे निकृत्त बाहु उरु शिरोधर उदरान् निनाय लोकं परं अर्क मण्डलं व्रजन्ति निर्भिद्य यं उर्ध्वरेतसः ॥५॥

स तान्	उन (ध्रुव) ने उन (यक्षों) को	**अर्क मण्डलं**	
कैः पृषत्	अपने सामने	**निर्भिद्य**	सूर्य मण्डलका वेधन करके
भृधे		**यं उर्ध्वरेतसः**	जहाँ आजन्म ब्रह्मचारी
अभिधावतः	युद्धमें दौड़कर आते (देखकर)	**व्रजन्ति**	जाते हैं (उस)
बाहु उरु	भुजा, जांघें,	**परं लोकं**	
शिरोधर	कन्धे	**निनाय**	परमलोकमें भेज
उदरान् निकृत्त	पेट काट कर		दिया* ॥५॥

तान् हन्यमानानभिवीक्ष्य गुह्यका-
ननागसश्चित्ररथेन भूरिशः ।
औत्तानपादिं कृपया पितामहो
मनुर्जगादोपगतः सहर्षिभिः ॥६॥

तान् हन्यमानान् अभिवीक्ष्य गुह्यकान् अनागसः चित्ररथेन भूरिशः औत्तानपादिं कृपया पितामहः मनुः जगाद उपगतः सहर्षिभिः ॥६॥

तान् अनागसः	उन निरपराध	**चित्ररथेन**	विचित्र रथमें बैठे (ध्रुव द्वारा
गुह्यकान्	यक्षोंको		

---

* शास्त्र-वाणी है कि सम्मुख, युद्धमें मारे वीर योगीके समान सूर्य-मण्डल वेधकर परमलोक जाते हैं।

हन्यमानान्	मारे जाते हुए	**सर्षिभिः**	ऋषियोंके साथ
अभिवीक्ष्य	देखकर	**उपगतः**	पास आकर
कृपया	कृपापूर्वक	**औत्तानपादिं**	उत्तानपाद-नन्दनसे
पितामहः मनुः	पितामह मनु	**जगाद**	बोले ॥६॥

मनुरुवाच–

अलं वत्सातिरोषेण तमोद्वारेण पाप्मना ।
येन पुण्यजनानेतानवधीस्त्वमनागसः ॥७॥

अलं वत्स अतिरोषेण तमः द्वारेण पाप्मना येन पुण्यजनान् एतान् अवधीः त्वं अनागसः ॥७॥

वत्स !	बेटा !	**अनागसः एतान्**	निरपराध इन
तमः द्वारेण	नरकके द्वार	**पुण्यजनान्**	
पाप्मना	पाप करानेवाले	**अवधीः**	यक्षोंको मारा
अतिरोषेण अलं	बहुत क्रोधको रोको,		है ॥७॥
येन त्वं	जिसके कारण तुमने		

नास्मत्कुलोचितं तात कर्मैतत्सद्विगर्हितम् ।
वधो यदुपदेवानामारब्धस्तेऽकृतैनसाम् ॥८॥

न अस्मत् कुलोचितं तात कर्म एतत् सत् विगर्हितं वधः यत् उपदेवानां आरब्धः ते अकृत एनसाम् ॥८॥

यत् ते	जो तुमने	**सत् विगर्हितं**	सज्जनों द्वारा
एनसां अकृत	अपराध न करनेवाले		निन्दित
उपदेवानां	उपदेवताओंका	**एतत् कर्म**	यह कर्म
वधः आरब्धः	वध प्रारम्भ	**अस्मत्**	
	किया है,	**कुलोचितं न**	हमारे कुलके लिए
तात	तात !		उचित नहीं है ॥८॥

नन्वेकस्यापराधेन प्रसङ्गाद् बहवो हताः ।
भ्रातुर्वधाभितप्तेन त्वयाङ्ग भ्रातृवत्सल ॥९॥

ननु एकस्य अपराधेन प्रसङ्गात् बहवः हताः भ्रातुर्वध अभितप्तेन त्वया अङ्ग भ्रातृ वत्सल ॥९॥

अङ्ग	प्रिय !
भ्रातुर्वध	
अभितप्तेन	भाईके वधसे संतप्त
त्वया भ्रातृ	
वत्सल	तुम भ्रातृवत्सल द्वारा
ननु	निश्चय
एकस्य	
अपराधेन	एकके अपराधके कारण
प्रसङ्गात्	उसके साथके कारण
बहवः हताः	बहुतसे (यक्ष) मारे गये ॥९॥

नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम् ।
यदात्मानं पराग्गृह्य पशुवद्भूतवैशसम् ॥१०॥

न अयं मार्गः हि साधूनां हृषीकेश अनुवर्तिनां यत् आत्मानं पराक् गृह्य पशुवत् भूत वैशसम् ॥१०॥

यत् आत्मानं	जो (जड़) शरीरको
पराक् गृह्य	आत्मा मानकर
पशुवत्	पशुओंके समान
भूत वैशसं	प्राणियोंकी हिंसा करता है
हि अयं मार्गः	निश्चय यह मार्ग
हृषीकेश	
अनुवर्तिनां	भगवान हृषीकेशके अनुचर
साधूनां न	सत्पुरुषोंका नहीं है ॥१०॥

सर्वभूतात्मभावेन भूतावासं हरिं भवान् ।
आराध्यापं दुराराध्यं विष्णोस्तत्परमं पदम् ॥११॥

सर्वभूत आत्मभावेन भूत आवासं हरिं भवान् आराध्य आप दुराराध्यं विष्णोः तत् परमं पदम् ॥११॥

भवान्	तुमने
सर्वभूत	
आत्मभावेन	सब प्राणियोंमें आत्मभाव करके
भूत आवासं	
हरिं	सब प्राणियोंमें रहने वाले श्रीहरिकी
आराध्य	आराधना करके

तत् दुराराध्यं विष्णोः परमं पदं	उस दुष्प्राप्य भगवान विष्णुके परम-पदको	**आप**	प्राप्त किया ॥११॥

स त्वं हरेरनुध्यातस्तत्पुंसामपि सम्मतः ।
कथं त्ववद्यं कृतवाननुशिक्षन् सतां व्रतम् ॥१२॥

स त्वं हरेः अनुध्यातः तत् पुंसां अपि सम्मतः कथं तु अवद्यं कृतवान् अनुशिक्षन् सतां व्रतम् ॥१२॥

त्वं हरेः			
अनुध्यातः	तुम श्रीहरिके प्रिय हो,	**सतां व्रतं**	सत्पुरुषोंकी रहनी
तत् पुंसां अपि	उनके भक्तोंके भी	**अनुशिक्षन्**	सिखलानेवाले होकर
सम्मतः	सम्मानित हो,	**स तु कथं**	उस तुमने तो कैसे
		अवद्यं कृतवान्	निन्दनीय कर्म किया ॥१२॥

तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु ।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति ॥१३॥

तितिक्षया करुणया मैत्र्या च अखिल जन्तुषु समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति ॥१३॥

तितिक्षया	(दूसरों द्वारा प्राप्त कष्टको)सहन करके,	**अखिल जन्तुषु**	सम्पूर्ण प्राणियोंमें
करुणया	(दुःखियोंपर) दया करके,	**समत्वेन च**	समत्व रखनेसे ही
		सर्वात्मा भगवान्	सबके आत्मा भगवान
च मैत्र्या	तथा (बराबर वालोंसे) मित्रता करके,	**सम्प्रसीदति**	पूर्ण प्रसन्न होते हैं ॥१३॥

सम्प्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ।
विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्म निर्वाणमृच्छति ॥१४॥

सम्प्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैः गुणैः विमुक्तः जीव निर्मुक्तः ब्रह्म निर्वाणं ऋच्छति ॥१४॥

भगवति	
सम्प्रसन्ने	भगवानके पूर्ण प्रसन्न होनेपर
पुरुषः प्राकृतैः	
गुणैः	पुरुष प्रकृतिके गुणोंसे
विमुक्तः	छूटकर
जीव निर्मुक्तः	जीवत्वसे छूटकर
ब्रह्म निर्वाणं	
ऋच्छति	ब्रह्म-निर्वाण पाता है ॥१४॥

भूतैः पञ्चभिरारब्धैर्योषित्पुरुष एव हि ।
तयोर्व्यवायात्सम्भूतिर्योषित्पुरुषयोरिह ॥१५॥

भूतैः पञ्चभिः आरब्धैः योषित् पुरुष एव हि तयोः व्यवायात् सम्भूतिः योषित् पुरुषयोः इह ॥१५॥

हि योषित्	
पुरुष एव	क्योंकि स्त्री-पुरुष दोनोंका ही
पञ्चभिः भूतैः	(शरीर) पञ्च महाभूतोंसे
आरब्धैः	बना हुआ है,
तयोः	
व्यावायात्	उन्हींके समागमसे
इह योषित्	
पुरुषयोः	इस संसारमें स्त्री-पुरुषकी
सम्भूतिः	उत्पत्ति होती है ॥१५

एवं प्रवर्त्तते सर्गः स्थितिः संयम एव च ।
गुणव्यतिकराद्राजन् मायया परमात्मनः ॥१६॥

एवं प्रवर्तते सर्गः स्थितिः संयम एव च गुण व्यतिकरात् राजन् मायया परमात्मनः ॥१६॥

राजन्	राजन् ।
परमात्मनः	
मायया	परमात्माकी मायासे
सर्गः एवं	संसारकी इस प्रकार
स्थितिः	स्थिति,
संयम एव च	तथा प्रलय भी
गुण व्यतिकरात्	गुणोंमें विकार होनेसे
प्रवर्तते	चलता रहता है ॥१६

निमित्तमात्रं तत्रासीन्निर्गुणः पुरुषर्षभः ।
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत् ॥१७॥

निमित्त मात्रं तत्र आसीत् निर्गुणः पुरुषर्षभः व्यक्त अव्यक्तं इदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत् ॥१७॥

पुरुषर्षभ	पुरुष श्रेष्ठ !
तत्र निर्गुणः	इसमें निर्गुण (परमात्मा)
निमित्त मात्रं	केवल निमित्त
आसीत्	है
इदं विश्वं	यह जगत्
व्यक्त अव्यक्तं	कार्य-कारणात्मक
यत्र लोहवत्	जिसमें (चुम्बकके समीप) लोहेके समान
भ्रमति	घूमता रहता है ॥१७

स खल्विदं भगवान् कालशक्त्या
गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ।
करोत्यकर्तैव निहन्त्यहन्ता
चेष्टा विभूम्नः खलु दुर्विभाव्या ॥१८॥

स खलु इदं भगवान् कालशक्त्या गुण प्रवाहेण विभक्त वीर्यः करोति अकर्तैव निहन्ति अहन्ता चेष्टा विभूम्नः खलु दुर्विभाव्या ॥१८॥

खलु स इदं भगवान्	निश्चय वही ये भगवान
कालशक्त्या	(अपनी) काल-शक्तिसे
गुण प्रवाहेण	गुणोंमें क्षोभ होनेसे
विभक्त वीर्यः	अपनी शक्तियोंको (ब्रह्मा, रुद्र रूपमें) बाँटकर
अकर्तैव करोति	अकर्ता रहते ही करते हैं,
अहन्ता निहन्ति	अहिंसक रहते ही मारते हैं
विभूम्नः चेष्टा	उन सर्वव्यापककी चेष्टा
खलु दुर्विभाव्या	निश्चय अनुमानसे परे है ॥१८॥

सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ।
जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥१९॥

स अनन्तः अन्तकरः कालः अनादिः आदि कृत् अव्ययः जनं जनेन जनयन् मारयन् मृत्युना अन्तकम् ॥१९॥

स अनन्तः	वे अनन्त
अन्तकरः	(सबका) अन्त करनेवाले
कालः अनादिः	काल, अनादि
आदि कृत्	(सबका) प्रारम्भ करनेवाले
अव्ययः	अविनाशी हैं ।
जनं जनेन	
जनयन्	लोगोंको लोगोंसे ही उत्पन्न करते,
अन्तकं	मारनेवालेको भी
मृत्युना मारयन्	मृत्यु द्वारा मार देते हैं ॥१९॥

न वै स्वपक्षोऽस्य विपक्ष एव वा
परस्य मृत्योर्विशतः समं प्रजाः ।
तं धावमानमनुधावन्त्यनीशा
यथा रजांस्यनिलं भूतसङ्घाः ॥२०॥

न वै स्वपक्षः अस्य विपक्ष एव वा परस्य मृत्योः विशतः समं प्रजाः तं धावमानं अनुधावन्ति अनीशा यथा रजांसि अनिलं भूतसङ्घाः ॥२०॥

वै अस्य	निश्चय इनका परम पुरुषका
न स्वपक्षः	न कोई अपना पक्ष है,
एव वा विपक्षः	अथवा कोई विपक्ष है,
मृत्योः प्रजाः	मृत्युरूपसे प्रजामें
समं विशतः	शान्तिके लिए प्रविष्ट हैं
यथा रजांसि	
अनिलं	जैसे धूलि वायुके साथ (उड़ती है)
तं धावमानं	उनके गतिशील होनेपर
अनीशा भूत-	
सङ्घाः	विवश प्राणि-समूह
अनुधावन्ति	उनके पीछे दौड़ते हैं ॥२०॥

आयुषोऽपचयं जन्तोस्तथैवोपचयं विभुः ।
उभाभ्यां रहितः स्वस्थो दुःस्थस्य विदधात्यसौ ॥२१॥

आयुषः अपचयं जन्तोः तथैव उपचयं विभुः उभाभ्यां रहितः स्वस्थः दुःस्थस्य विदधाति असौ ॥२१॥

दुःस्थस्य	कर्म बन्धनसे बँधे	**उभाभ्यां**	
जन्तोः आयुषः	जीवकी आयुका	**रहितः**	इन दोनोंसे रहित
अपचयं तथैव		**असौ विभुः**	ये सर्वव्यापक भगवान
उपचयं	ह्रास तथा वृद्धिका	**विदधाति**	विधान करते हैं ॥२१॥

केचित्कर्म वदन्त्येनं स्वभावमपरे नृप ।
एके कालं परे दैवं पुंसः काममुतापरे ॥२२॥

केचित् कर्म वदन्ति एनं स्वभावं अपरे नृप एके कालं परे दैवं पुंसः कामं उत अपरे ॥२२॥

नृप	राजन् !	**परे दैवं**	दूसरे भाग्य
एनं केचित्	इसीको कोई	**उत अपरे**	तथा दूसरे
कर्म अपरे		**पुंसः कामं**	भगवानकी इच्छा
स्वभावं	कर्म, दूसरे प्रकृति,	**वदन्ति**	कहते हैं ॥२२॥
एके कालं	कोई-कोई काल (समयका प्रभाव)		

अव्यक्तस्याप्रमेयस्य नानाशक्त्युदयस्य च ।
न वै चिकीर्षितं तात को वेदाथ स्वसम्भवम् ॥२३॥

अव्यक्तस्य अप्रमेयस्य नाना शक्ति उदयस्य च न वै चिकीर्षितं तात कः वेद अथ स्वसम्भवम् ॥२३॥

तात	तात !	**वै चिकीर्षितं**	वे निश्चित क्या करना चाहते हैं,
अव्यक्तस्य	प्रमाणातीत,	**वेद न**	(कोई) नहीं जानता,
अप्रमेयस्य	अप्रमेय,	**स्वसम्भवं**	अपने उत्पन्नकर्ताको
च नाना शक्ति		**कः वेद**	कौन जान सकता
उदयस्य	तथा नाना शक्तियोंके कारण		है ॥२३॥

न चैते पुत्रक भ्रातुर्हन्तारो धनदानुगाः ।
विसर्गादानयोस्तात पुंसो दैवं हि कारणम् ॥२४॥

न च एते पुत्रक भ्रातुः हन्तारः धनद अनुगाः विसर्गात् आनयोः तात पुंसः दैवं हि कारणम् ॥२४॥

तात पुत्रक	तात ! मेरे नन्हे मुन्ने !
एते धनद अनुगाः च भ्रातुः हन्तारः न	ये कुबेरके अनुचर तो (तुम्हारे) भाईके हत्यारे नहीं हैं,
हि पुंसः	क्योंकि पुरुषके
विसर्गात् आनयोः	जन्म-मरणका
कारणं दैवं	कारण ईश्वर है ॥२४॥

स एव विश्वं सृजति स एवावति हन्ति च ।
अथापि ह्यनहंकारान्नाज्यते गुणकर्मभिः ॥२५॥

स एव विश्वं सृजति स एव अवति हन्ति च अथ अपि हि अनहंकारात् न आज्यते गुण कर्मभिः ॥२५॥

स एव विश्वं सृजति	वही विश्वकी सृष्टि करता है,
स एव अवति हन्ति च	वही रक्षा करता है तथा मारता भी है,
अथ अपि	फिर भी
हि अनहंकारात्	क्योंकि अहंकार रहित है
गुण कर्मभिः आज्यते न	गुण तथा कर्मोंसे लिप्त नहीं होता ॥२५

एष भूतानि भूतात्मा भूतेशो भूतभावनः ।
स्वशक्त्या मायया युक्तः सृजत्यत्ति च पाति च ॥२६॥

एष भूतानि भूतात्मा भूत ईशः भूत भावनः स्व शक्त्या मायया युक्तः सृजति अत्तिच पाति च ॥२६॥

एष भूतात्मा	यह सब प्राणियोंका आत्मा
भूत ईशः	सब प्राणियोंका स्वामी
भूत भावनः	सब प्राणियोंका सर्जक
स्व मायया शक्त्या	अपनी माया-शक्तिसे
युक्तः	युक्त होकर
भूतानि सृजति	प्राणियोंको उत्पन्न करता है,
अत्ति च	खा लेता है और
पाति च	पालन भी करता है ॥२६॥

तमेव मृत्युममृतं तात दैवं
सर्वात्मनोपेहि जगत्परायणम् ।
यस्मै बलिं विश्वसृजो हरन्ति
गावो यथा वै नसि दामयन्त्रिताः ॥२७॥

तं एव मृत्युं अमृतं तात दैवं सर्वात्मना उपेहि जगत् परायणं यस्मै बलिं विश्वसृजः हरन्ति गावः यथा वै नसि दाम यन्त्रिताः ॥२७॥

तात	तात !
तं एव मृत्युं	**उसी मृत्यु एवं**
अमृतं दैवं	**अमृत स्वरूप ईश्वर**
जगत् परायणं	संसारके आश्रयकी
सर्वात्मना उपेहि	सम्पूर्ण मनसे शरण लो,
यथा नसि दाम-	
यन्त्रिताः	जैसे नाकमें रस्सी डालकर नियन्त्रित
गावः	**बैल हों (ऐसे)**
विश्वसृजः	प्रजापति लोग
यस्मै बलिं	
हरन्ति	जिसे उपहार देते हैं ॥२७॥

यः पञ्चवर्षो जननीं त्वं विहाय
मातुः सपत्न्या वचसा भिन्नमर्मा ।
वनं गतस्तपसा प्रत्यगक्ष-
माराध्य लेभे मूर्ध्नि पदं त्रिलोक्याः ॥२८॥

यः पञ्चवर्षः जननीं त्वं विहाय मातुः सपत्न्याः वचसा भिन्न मर्मा वनं गतः तपसा प्रत्यक् अक्षं आराध्य लेभे मूर्ध्नि पदं त्रिलोक्याः ॥२८॥

यः त्वं	जो तुम
सपत्न्याः मातुः	सौतेली माताके
वचसा	
भिन्न मर्मा	वाणीसे व्यथित चित्त
पञ्चवर्षः	पांच वर्षकी आयुमें
जननीं विहाय	माताको छोड़कर
तपसा वनं गतः	तपस्या करने वनमें गये,
प्रत्यक् अक्षं	(वहाँ) भगवान अधोक्षजकी
आराध्य	आराधना करके
त्रिलोक्याः	
मूर्ध्नि	त्रिलोकीके मस्तकपर
पदं लेभे	स्थान प्राप्त किया ॥२८॥

तमेनमङ्गात्मनि मुक्तविग्रहे
व्यपाश्रितं निर्गुणमेकमक्षरम् ।
आत्मानमन्विच्छ विमुक्तमात्मदृग्
यस्मिन्निदम्भेदमसत् प्रतीयते ॥२९॥

तं एनं अङ्ग आत्मनि मुक्त विग्रहे व्यपाश्रितं निर्गुणं एकं अक्षरं आत्मानं अन्विच्छ विमुक्तं आत्मदं यस्मिन् इदं भेदं असत् प्रतीयते ॥२९॥

अङ्ग	प्रिय ध्रुव !
मुक्त विग्रहे	शत्रुताहीन
आत्मनि	चित्तमें
व्यपाश्रितं	विद्यमान
तं एनं	उन इन
निर्गुणं एकं	निर्गुण, अद्वितीय,
अक्षरं	अविनाशी
आत्मानं	परमात्मा
विमुक्तम् आत्मद्	मुक्त पुरुषोंका अपनेको ही दे देने वाले (भगवान) की
अन्विच्छ	शरण लो,
यस्मिन् इदं	जिसमें यह (जगतका)
भेदं असत्	भेद न होनेपर भी
प्रतीयते	प्रतीत हो रहा है ॥२ ॥

त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनन्त
आनन्दमात्र उपपन्नसमस्तशक्तौ ।
भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्या-
ग्रन्थिं विभेत्स्यसि ममाहमिति प्ररूढम् ॥३०॥

त्वं प्रत्यक् आत्मनि तदा भगवति अनन्त आनन्द मात्र उपपन्न समस्त शक्तौ भक्तिं विधाय परमां शनकैः अविद्या ग्रन्थिं विभेत्स्यसि मम अहं इति प्ररूढम् ॥३०॥

तदा त्वं	तब (ऐसा करनेपर) तुम
प्रत्यक् आत्मनि	अपने अन्तरात्मा
भगवति अनन्त	भगवान अनन्त
आनन्द मात्र	आनन्दघन
समस्त शक्तौ उपपन्न	सर्वशक्ति सम्पन्नकी

परमां भक्तिं विधाय	परम भक्ति करके
शनकैः अविद्या	धीरे-धीरे अविद्याकी
ममाहं इति	'मेरा-मैं' इस
प्ररूढं ग्रन्थिम्	दृढ़ ग्रन्थिको
विभेत्स्यसि	काट सकोगे ॥३०॥

संयच्छ रोषं भद्रं ते प्रतीपं श्रेयसां परम् ।
श्रुतेन भूयसा राजन्नगदेन यथाऽऽमयम् ॥३१॥

संयच्छ रोषं भद्रं ते प्रतीपं श्रेयसां परं श्रुतेन भूयसा राजन् अगदेन यथा आमयम् ॥३१॥

राजन्	राजन् !
भूयसा श्रुतेन	मेरे इस) बहुत उपदेशसे
यथा अगदेन	जैसे औषधिसे।
आमयं	रोग (दूर किया जाता है)
श्रेयसां परं प्रतीपं	कल्याण मार्गके अत्यन्त विरोधी
रोषं संयच्छ	क्रोधको नियन्त्रित करो,
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो ॥३१॥

येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम् ।
न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्नभयमात्मनः ॥३२॥

येन उपसृष्टात् पुरुषात् लोक उद्विजते भृशं न बुधः तत् वशं गच्छेत् इच्छन् अभयं आत्मनः ॥३२॥

येन उपसृष्टात्	जिस (क्रोधसे) अभिभूत
पुरुषात्	पुरुषसे
लोक भृशं उद्विजते	लोग बहुत उद्विग्न होते हैं,
बुधः आत्मनः अभयं इच्छन्	बुद्धिमान अपनी निर्भयता चाहते हुए
तत् वशं न गच्छेत्	उसके वशमें न हो ॥३२॥

हेलनं गिरिशभ्रातुर्धनदस्य त्वया कृतम् ।
यज्जघ्निवान् पुण्यजनान् भ्रातृघ्नानित्यमर्षितः ॥३३॥

हेलनं गिरिशः भ्रातुः धनदस्य त्वया कृतं यत् जघ्निवान् पुण्यजनान् भ्रातृघ्नान् इति अमर्षितः ॥३३॥

भ्रातृघ्नान् इति	ये मेरे भाईके हत्यारे हैं (ऐसा)
अमर्षितः	असहनशील होकर
यत् पुण्यजनान् जघ्निवान्	जो यक्षोंको (तुमने) मारा है (यह)
गिरिशः भ्रातुः धनदस्य	भगवान शंकरके भाई कुबेरका
त्वया हेलनं कृतं	तुमने अवहेलना की है ॥३३॥

तं प्रसादय वत्साशु संनत्या प्रश्रयोक्तिभिः ।
न यावन्महतां तेजः कुलं नोऽभिभविष्यति ॥३४॥

तं प्रसादय वत्स आशु संनत्या प्रश्रय उक्तिभिः न यावत् महतां तेजः कुलं नः अभिभविष्यति ॥३४॥

वत्स तं आशु सन्नत्या	वत्स ! उन्हें शीघ्र प्रणाम करके,
प्रश्रय उक्तिभिः	विनयपूर्ण वाणीसे
प्रसादय	प्रसन्न करो !
यावत् महतां तेजः	जब तक उन महान पुरुषका तेज
नः कुलं अभिभविष्यति	हमारे कुलको
न	आक्रान्त नहीं कर लेता ॥३४॥

*मैत्रेय उवाच**–

एवं स्वायम्भुवः पौत्रमनुशास्य मनुर्ध्रुवम् ।
तेनाभिवन्दितः साकमृषिभिः स्वपुरं ययौ ॥३५॥

एवं स्वायम्भुवः पौत्रं अनुशास्य मनुः ध्रुवं तेन अभिवन्दितः साकं ऋषिभिः स्वपुरं ययौ ॥३५॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

एवं स्वायम्भुवः मनुः इस प्रकार स्वयम्भू मनु
पौत्रं ध्रुवं अनुशास्य अपने पौत्र ध्रुवको आज्ञा देकर
तेन अभिवन्दितः उनके द्वारा वन्दना किये जानेपर
ऋषिभिः साकं ऋषियोंके साथ
स्वपुरं ययौ अपने लोक चले गये ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे एकादशोऽध्यायः।

अथ द्वादशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

ध्रुवं निवृत्तं प्रतिबुद्धय वैशसा-
दपेतमन्युं भगवान् धनेश्वरः ।
तत्रागतश्चारणयक्षकिन्नरैः
संस्तूयमानोऽभ्यवदत्कृताञ्जलिम् ॥१॥

ध्रुवं निवृत्तं प्रति बुद्धय वैशसात् अपेत मन्युं भगवान् धनेश्वरः तत्र आगतः चारण यक्ष किन्नरैः संस्तूयमानः अभ्यवदत् कृताञ्जलिम् ॥१॥

वैशसात् निवृत्तं	(यक्षोंकी) हिंसा छोड़कर	**चारण यक्ष किन्नरैः**	चारण, यक्ष, किन्नरों द्वारा
मन्युं अपेत	क्रोध रहित हुए	**संस्तूयमानः**	स्तुत होते
ध्रुवं प्रति बुद्धय	ध्रुवको जानकर	**तत्र आगतः**	वहाँ आये और
भगवान्		**कृताञ्जलि**	हाथ जोड़े (ध्रुव) से
धनेश्वरः	भगवान कुबेर	**अभ्यवदत्**	बोले ॥१॥

धनद उवाच-

भो भोः क्षत्रियदायाद परितुष्टोऽस्मि तेऽनघ ।
यस्त्वं पितामहादेशाद्वैरं दुस्त्यजमत्यजः ॥२॥

भो भोः क्षत्रिय दायाद परितुष्टः अस्मि ते अनघ यः त्वं पितामह आदेशात् वैरं दुस्त्यजं अत्यजः ॥२॥

भो भोः क्षत्रिय दायाद	हे क्षत्रिय कुमार !	**अनघ**	तुम निष्पाप हो,
		यः त्वं	जो तुमने

पितामह आदेशात्	अपने पितामहकी आज्ञासे	**अत्यजः ते परितुष्टः अस्मि**	त्याग दी (अतः) तुमपर बहुत प्रसन्न हूं ॥२॥
दुस्त्यजं वैरं	दुस्त्याज्य शत्रुता		

न भवानवधीद्यक्षान्न यक्षा भ्रातरं तव ।
काल एव हि भूतानां प्रभुरप्ययभावयोः ॥३॥

न भवान् अवधीत् यक्षान् न यक्षा भ्रातरं तव काल एव हि भूतानां प्रभुः अप्यय भावयोः ॥३॥

भवान् यक्षान् न अवधीत् न तव भ्रातरं यक्षा	तुमने यक्षोंको नहीं मारा, न तुम्हारे भाईको यक्षोंने (मारा)	**हि भूतानां अप्यय भावयोः प्रभुः काल एव**	क्योंकि प्राणियोंके मरण-जन्मका स्वामी काल ही है ॥४॥

अहं त्वमित्यपार्था धीरज्ञानात्पुरुषस्य हि ।
स्वाप्नीवाभात्यतद्ध्यानाद्यया बन्धविपर्ययौ ॥४॥

अहं त्वं इति अपार्था धीः अज्ञानात् पुरुषस्य हि स्वाप्नी इव आभाति अतत् ध्यानात् यया बन्ध विपर्ययौ ॥४॥

हि अहं त्वं इति	क्योंकि 'मैं-तुम' इस प्रकारकी	**अतत् ध्यानात्**	शरीरादिको आत्मा माननेसे
अपार्था धीः	मिथ्या बुद्धि	**आभाति**	होती है,
पुरुषस्य		**यया बन्ध**	जिससे बन्धन एवं
अज्ञानात्	पुरुषको अज्ञानसे	**विपर्ययौ**	(दुःखादि) विपरीत
स्वाप्नी इव	स्वप्नके समान		दशा मिलती है ॥४॥

तद्गच्छ ध्रुव भद्रं ते भगवन्तमधोक्षजम् ।
सर्वभूतात्मभावेन सर्वभूतात्मविग्रहम् ॥५॥

तद् गच्छ ध्रुव भद्रं ते भगवन्तं अधोक्षजं सर्वभूत आत्म भावेन सर्वभूत आत्म विग्रहम् ॥५॥

तद् ध्रुव गच्छ	अतः ध्रुव जाओ,	**सर्वभूत आत्म**	
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो,	**विग्रहं**	अपनेको सब प्राणि रूप समझकर
सर्वभूत आत्म			
भावेन	सब प्राणियोंको अपना आत्मा समझ कर	**भगवन्तं**	
		अधोक्षजं	भगवान्‌को अधोक्षज (इन्द्रियातीत) जानकर ॥५॥

भजस्व भजनीयाङ्घ्रिमभवाय भवच्छिदम् ।
युक्तं विरहितं शक्त्या गुणमय्याऽऽत्ममायया ॥६॥

भजस्व भजनीय अङ्घ्रि अभवाय भवच्छिदं युक्तं विरहितं शक्त्या गुणमय्या आत्ममायया ॥६॥

गुणमय्या	गुणमयी	**भजनीय अङ्घ्रि**	भजन करने योग्य श्रीचरण
आत्ममायया	अपनी माया	**अभवाय**	(भगवानका) मोक्षके लिए
शक्त्या युक्तं	शक्तिसे युक्त (होकर भी)	**भजस्व**	भजन करो ॥६॥
विरहितं	इनसे रहित		
भवच्छिदं	आवागमन नाशक		

वृणीहि कामं नृप यन्मनोगतं
मत्तस्त्वमौत्तानपदेऽविशङ्कितः ।
वरं वरार्होऽम्बुजनाभपादयो-
रनन्तरं त्वां वयमङ्ग शुश्रुम ॥७॥

वृणीहि कामं नृप यन् मनोगतं मत्तः त्वं औत्तानपदे अविशङ्कितः वरं वरार्हः अम्बुजनाभ पादयोः अनन्तरं त्वां वयं अङ्ग शुश्रुम ॥७॥

नृप	राजन् !	**औत्तानपदे**	उत्तानपाद-नन्दन !
यन् मनोगतं	(तुम्हारे) जो मनमें आवे	**अविशङ्कितः**	निःशंक होकर
		वरं वृणीहि	वरदान मांग लो,
मत्तः त्वं	मुझसे तुम		

अंग त्वां वयं शुश्रुम	प्रिय ! तुमको हम सुनते हैं कि
अम्बुजनाभ पादयोः	भगवान पद्मनाभके चरणोंमें
अनन्तरं	निरन्तर रहते हो (अतः)
वरार्हः	बरदान पाने योग्य हो ॥७॥

मैत्रेय उवाच–

स राजराजेन वराय चोदितो
ध्रुवो महाभागवतो महामतिः ।
हरौ स वव्रेऽचलितां स्मृतिं यया
तरत्ययत्नेन दुरत्ययं तमः ॥८॥

स राजराजेन वराय चोदितः ध्रुवः महाभागवत; महामतिः हरौ स वव्रे अचलितां स्मृतिं यया तरन्ति अयत्नेन दुरत्ययं तमः ॥८॥

राजराजेन	यक्षराज कुबेर द्वारा
स ध्रुवः वराय	वे ध्रुव वरदान मांगनेकी
चोदितः	प्रेरणा दिए जानेपर
स महाभागवतः	उन महाभागवत
महामतिः	परम बुद्धिमानने
हरौ अचलितां	भगवानकी निश्चल
स्मृतिं वव्रे	स्मृति वरदानमें मांगी*
यया अयत्नेन	जिससे अनायास
दुरत्ययं तमः	दुष्पार अज्ञानसे
तरन्ति	पार हो जाते हैं ॥८॥

तस्य प्रीतेन मनसा तां दत्त्वैडविडस्ततः ।
पश्यतोऽन्तर्दधे सोऽपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ॥९॥

---

* सहज प्रश्न है—कुबेर यह वरदान दे सकते हैं ? कुबेरने यह वरदान दिया, इसका अर्थ है कि उनके अधिकार क्षेत्रमें आना लोभ भगवत्-स्मृतिमें बाधक नहीं बनेगा ।

तस्य प्रीतेन मनसा तां दत्त्वा इडविडः ततः पश्यतः अन्तः दधे सः अपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ॥९॥

तस्य प्रीतेन मनसा	उनपर प्रसन्न चित्त होकर
तां दत्त्वा	वह वरदान देकर
ततः इडविडः पश्यतः	वहांसे कुबेरजी
अन्तः दधे	देखते-देखते अन्तर्धान हो गये।
सः अपि	वे (ध्रुव) भी
स्वपुरं प्रत्यपद्यत	अपनी राजधानी चले गये ॥९॥

अथायजत यज्ञेशं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः।
द्रव्यक्रियादेवतानां कर्म कर्मफलप्रदम् ॥१०॥

अथ अयजत यज्ञेशं क्रतुभिः भूरिदक्षिणैः द्रव्य क्रिया देवतानां कर्म कर्मफल प्रदम् ॥१०॥

द्रव्य क्रिया	पदार्थ, क्रिया,
देवतानां	देवताओंके,
कर्म	कर्मके स्वरूप और
कर्मफल प्रदं	कर्मफलके दाता
यज्ञेशं	भगवान् यज्ञेशका
भूरिदक्षिणैः	बहुत दक्षिणावाले
क्रतुभिः	यज्ञोंसे
अथ अयजत	फिर आराधना की ॥१०॥

सर्वात्मन्यच्युतेऽसर्वे तीव्रौघां भक्तिमुद्वहन्।
ददर्शात्मनि भूतेषु तमेवावस्थितं विभुम् ॥११॥

सर्वात्मनि अच्युते असर्वे तीव्रौघां भक्ति उद्वहन् ददर्श आत्मनि भूतेषु तं एव अवस्थितं विभुम् ॥११॥

सर्वात्मनि	सर्वात्मा
असर्वे	और सबसे रहित
अच्युते	अच्युतमें
तीव्रौघां भक्ति	तीव्र वेगात्मक भक्ति
उद्वहन्	करते हुए
तं एव विभुं	उन्हीं सर्वव्यापकको
आत्मनि भूतेषु	अपनेमें और सब प्राणियोंमें
अवस्थितं ददर्श	स्थित देखने लगे ॥११॥

तमेवं शीलसम्पन्नं ब्रह्मण्यं दीनवत्सलम् ।
गोप्ता धर्मसेतूनां मेनिरे पितरं प्रजाः ॥१२॥

तं एवं शीलसम्पन्नं ब्रह्मण्यं दीनवत्सलं गोप्तारं धर्मसेतूनां मेनिरे पितरं प्रजाः ॥१२॥

तं एवं शील-सम्पन्नं	उन ऐसे शील-सम्पन्न,	**धर्मसेतूनां गोप्तारं**	धर्म-मर्यादाके रक्षकको
ब्रह्मण्यं	ब्राह्मण भक्त,	**प्रजाः पितरं मेनिरे**	प्रजा अपना पिता मानने लगी ॥१२॥
दीनवत्सलं	दीनोंपर स्नेह करनेवाले,		

षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं शशास क्षितिमण्डलम् ।
भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन्नभोगैरशुभक्षयम् ॥१३॥

षट् त्रिंशत् वर्ष साहस्रं शशास क्षितिमण्डलं भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन् अभोगैः अशुभ क्षयम् ॥१३॥

भोगैः	भोगोंके उपभोगसे	**षट् त्रिंशत्**	छत्तीस
पुण्यक्षयं	पुण्योंका क्षय तथा	**साहस्रं वर्षं**	हजार वर्ष
अभोगैः	भोगोंके त्यागसे (यज्ञादिके द्वारा)	**क्षितिमण्डलं**	
		शशास	भूमंडलका शासन किया ॥१३॥
अशुभ क्षयं			
कुर्वन्	पापका क्षय करते हुए		

एवं बहुसवं कालं महात्माविचलेन्द्रियः ।
त्रिवर्गौपयिकं नीत्वा पुत्रायादान्नृपासनम् ॥१४॥

एवं बहुसवं कालं महात्मा अविचल इन्द्रियः त्रिवर्ग उपयिकं नीत्वा पुत्राय अदात् नृपासनम् ॥१४॥

अविचल इन्द्रियः	जितेन्द्रिय	**एवं बहुसवं कालं**	इस प्रकार बहुत दिनोंका समय
महात्मा	महात्मा ध्रुवने		

त्रिवर्गं उपयिकं	अर्थ, धर्म, कामके सम्पादनमें	**पुत्राय नृपासनं अदात्**	पुत्र (उत्कल) को राजसिंहासन दे दिया ॥१४॥
नीत्वा	बिताकर		

मन्यमान इदं विश्वं मायारचितमात्मनि ।
अविद्यारचितस्वप्नगन्धर्वनगरोपमम् ॥१५॥

मन्यमान इदं विश्वं माया रचितं आत्मनि अविद्या रचितं स्वप्न गन्धर्व नगरोपमम् ॥१५॥

इदं विश्वं	इस विश्वको	**आत्मनि माया रचितं**	आत्मामें माया रचित
अविद्या रचितं	अविद्या-निर्मित	**मन्यमान**	मानते हुए ॥१५॥
स्वप्न	स्वप्न (अथवा)		
गन्धर्व नगरोपमं	गन्धर्व-नगरके समान		

आत्मस्त्यपत्यसुहृदो बलमृद्धकोश-
मन्तःपुरं परिविहारभुवश्च रम्याः ।
भूमण्डलं जलधिमेखलमाकलय्य
कालोपसृष्टमिति स प्रययौ विशालाम् ॥१६॥

आत्म स्त्री अपत्य सुहृदः बलं ऋद्ध कोशं अन्तःपुरं परिविहार भुवः च रम्याः भूमण्डलं जलधिमेखलं आकलय्य काल उपसृष्टं इति स प्रययौ विशालाम् ॥१६॥

आत्म स्त्री	शरीर, पत्नी,	**च जलधि-मेखलं**	और समुद्रसे घिरे
अपत्य सुहृदः	पुत्र, सम्बन्धी,	**भूमण्डलं**	पूरी पृथ्वीको
बलं	सेना,	**काल उपसृष्टं**	कालके मुखमें पड़े हैं,
ऋद्ध कोशं	समृद्ध खजाना,	**इति स**	ऐसा जानकर वे
अन्तःपुरं	जनाने-महल,	**विशालां प्रययौ**	बदरीनाथ चले गये ॥१६॥
रम्याः			
परिविहार	रमणीय विहार-स्थली		

तस्यां विशुद्धकरणः शिववार्विगाह्य
बद्ध्वाऽऽसनं जितमरुन्मनसाऽऽहृताक्षः ।
स्थूले दधार भगवत्प्रतिरूप एतद्
ध्यायंस्तदव्यवहितो व्यसृजत्समाधौ ॥१७॥

तस्यां विशुद्ध करणः शिव वारि विगाह्य बद्ध्वा आसनं जित मरुत् मनसा आहृत अक्षः स्थूले दधार भगवति प्रतिरूप एतत् ध्यायत् तत् व्यवहितः व्यसृजत् समाधौ ॥१७॥

तस्यां शिव वारि	वहाँ पवित्र जलमें
विगाह्य	स्नान करके
विशुद्ध करणः	इन्द्रियोंको शुद्ध (शान्त) करके,
आसनं बद्ध्वा	आसनसे बैठकर,
जित मरुत्	प्राण वायुको जीतकर
मनसा आहृत अक्षाः	मनके द्वारा इन्द्रियोंको (हृदयमें) एकाग्र करके,
भगवति एतत्	भगवान्के इस
स्थूले प्रतिरूप	विराट् रूपका
ध्यायत्	ध्यान करते हुए
तत् अव्यहितः	उसमें (ध्याता, ध्यान, ध्येय रूप) भेद छूट जानेसे
समाधौ	समाधि लग जानेसे
व्यसृजत्	उसे भी छोड़ दिया ॥१७॥

भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन्नजस्र-
मानन्दवाष्पकलया मुहुरर्द्यमानः ।
विक्लिद्यमानहृदयः पुलकाचिताङ्गो
नात्मानमस्मरदसाविति मुक्तलिङ्गः ॥१८॥

भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन् अजस्रं आनन्द वाष्प कलया मुहुः अर्द्यमानः विक्लिद्यमान हृदयः पुलक आचित अङ्गः न आत्मानं अस्मरत् असाः इति मुक्त लिङ्गः ॥१८॥

अजस्रं भगवति हरौ भक्ति	निरन्तर भगवान श्रीहरिकी भक्ति
प्रवहन्	करते रहनेसे
आनन्द वाष्प कलया	आनन्दाश्रुका

मुहुः अर्द्यमानः बार-बार (प्रवाह) चलता था,
विक्लिद्यमान हृदयः हृदय अत्यन्त द्रवित होता,
पुलक आचित अङ्गः शरीर रोमाञ्चित होता,
आत्मानं असाः अपनेको 'यह मैं हूँ।
इति न अस्मरत् इस प्रकार स्मरण नहीं करते थे,
मुक्त लिङ्गः लिङ्ग देह (देहाभिमान) छूट गया ॥१८॥

स ददर्श विमानाग्र्यं नभसोऽवतरद् ध्रुवः।
विभ्राजयद्दश दिशो राकापतिमिवोदितम् ॥१९॥

स ददर्श विमान अग्र्यं नभसः अवतरत् ध्रुवः विभ्राजयत् दश दिशः राकापतिं इव उदितम् ॥१९॥

स ध्रुवः उन ध्रुवने
उदितं राकापतिं इव उदय हुए पूर्णिमाके चन्द्रके समान
नभसः अवतरत् आकाशसे उतरते
दश दिशः दसो दिशाओंको
विभ्राजयत् प्रकाशित करते
विमान अग्र्यं ददर्श श्रेष्ठ विमानको देखा ॥१९॥

तत्रानु देवप्रवरौ चतुर्भुजौ
श्यामौ किशोरावरुणाम्बुजेक्षणौ।
स्थिताववष्टभ्य गदां सुवाससौ
किरीटहाराङ्गदचारुकुण्डलौ ॥२०॥

तत्र अनु देवप्रवरौ चतुर्भुजौ श्यामौ किशोराः अरुण अम्बुज ईक्षणौ स्थिताः अवष्टभ्य गदां सुवाससौ किरीट हार अङ्गद चारु कुण्डलौ ॥२०॥

तत्र अनु चतुर्भुजौ उसमें
श्यामौ किशोराः चतुर्भुज, श्याम वर्ण, किशोरावस्थाके,
अरुण अम्बुज ईक्षणौ लाल कमलके समान नेत्रों वाले

सुवाससौ	उत्तम वस्त्र पहिने	**गदां अवष्टभ्य**	गदा लिए
किरीट हार		**देवप्रवरौ**	
अङ्गद	मुकुट, हार, अङ्गद,	**स्थिताः**	दो श्रेष्ठ देवता खड़े
चारु कुण्डलौ	सुन्दर कुण्डल पहिने		थे ॥२०॥

विज्ञाय तावुत्तमगायकिङ्करा-
वभ्युत्थितः साध्वसविस्मृतक्रमः ।
ननाम नामानि गृणन्मधुद्विषः
पार्षत्प्रधानाविति संहताञ्जलिः ॥२१॥

विज्ञाय ताः उत्तमगाय किङ्कराः अभ्युत्थितः साध्वस विस्मृत क्रमः ननाम नामानि गृणन् मधुद्विषः पार्षत् प्रधानाः इति संहत अञ्जलिः ॥२१॥

ताः उत्तमगाय	उनको उत्तम श्लोकका	**मधुद्विषः**	भगवान मधूसूदनके
किङ्कराः		**पार्षत् प्रधानाः**	प्रधान पार्षद हैं
विज्ञाय	सेवक जानकर	**इति**	ऐसा समझकर
साध्वस	हड़बड़ाहटमें	**नामानि गृणन्**	(भगवानके) नाम लेते हुए
विस्मृत क्रमः	(पूजादिका) क्रम भूलकर	**संहत अञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
अभ्युत्थितः	उठकर खड़े होगये,	**ननाम**	(उन्हें) प्रणाम किया ॥२१॥

तं कृष्णपादाभिनिविष्टचेतसं
बद्धाञ्जलिं प्रश्रयनम्रकन्धरम् ।
सुनन्दनन्दावुपसृत्य सस्मितं
प्रत्यूचतुः पुष्करनाभसम्मतौ ॥२२॥

तं कृष्णपादाः अभिनिविष्ट चेतसं बद्ध अञ्जलिं प्रश्रय नम्रकन्धरं सुनन्द नन्दाः उपसृत्य सस्मितं प्रत्यूचतुः पुष्करनाभ सम्मतौ ॥२२॥

कृष्णपादाः अभिनिविष्ट	श्रीकृष्णके चरणोंमें	**प्रश्रय**	
चेतसं	लगे चित्त वाले,	**नम्रकन्धरं**	विनम्रतासे सिर झुकाये
बद्ध अञ्जलि	हाथ जोड़े,	**तं**	उन (ध्रुव) से

पुष्करनाभ	भगवान पद्मनाभके	**सस्मितं**	
सम्मतौ	प्रिय (पार्षद)	**प्रत्यूचतुः**	मुस्कराते हुए
सुनन्द नन्दाः	सुनन्द और नन्द		बोले ॥२२॥
उपसृत्य	समीप आकर		

सुनन्दनन्दावूचतुः –

भो भो राजन् सुभद्रं ते वाचं नोऽवहितः शृणु ।
यः पञ्चवर्षस्तपसा भवान्देवमतीतृपत् ॥२३॥

भो भो राजन् सुभद्रं ते वाचं नः अवहितः शृणु यः पञ्च वर्षः तपसा भवान् देवं अतीतृपत् ॥२३॥

भो भो राजन्	हे राजन् !	**यः भवान्**	जो तुमने
ते सुभद्रं	तुम्हारा परम कल्याण हो,	**पञ्च वर्षः**	पांच वर्षकी अवस्थामें
नः वाचं	हमारी बात	**तपसा देवं**	तपस्यासे भगवानको
अवहितः शृणु	सावधान होकर सुनें !	**अतीतृपत्**	सन्तुष्ट किया था ॥२३॥

तस्याखिलजगद्धातुरावां देवस्य शार्ङ्गिणः ।
पार्षदाविह सम्प्राप्तौ नेतुं त्वां भगवत्पदम् ॥२४॥

तस्य अखिल जगत् धातुः आवां देवस्य शार्ङ्गिणः पार्षदाः इह सम्प्राप्ताः नेतुं त्वां भगवत् पदम् ॥२४॥

तस्य	उन्हीं	**आवां पार्षदाः**	हम दोनों पार्षद
अखिल जगत् धातुः	निखिल जगन्नियन्ता	**त्वां भगवत् पदं नेतुं इह**	तुमको भगवद्धाम
देवस्य शार्ङ्गिणः	भगवान शारंग-धन्वाके	**सम्प्राप्ताः**	ले जाने यहाँ आये हैं ॥२४॥

सुदुर्जयं विष्णुपदं जितं त्वया
यत्सूरयोऽप्राप्य विचक्षते परम् ।

आतिष्ठ तच्चन्द्रदिवाकरादयो
ग्रहर्क्षतारा: परियन्ति दक्षिणम् ॥२५॥

सुदुर्जयं विष्णुपदं जितं त्वया यत् सूरयः अप्राप्य विचक्षते परं आतिष्ठ तत् चन्द्र दिवाकरादयः ग्रह अर्क्ष ताराः परियन्ति दक्षिणम् ॥२५॥

यत् त्वया	क्योंकि तुमने	**परं विचक्षते**	दूरसे देखते हैं,
सुदुर्जयं	अत्यन्त दुष्प्राप्य (उस)	**तत् आतिष्ठ**	उसमें चलिए,
विष्णुपदं जितं	विष्णुलोकका अधिकार पा लिया है,	**ग्रह अर्क्ष ताराः**	ग्रह, नक्षत्र, तारे
सूरयः अप्राप्य	बड़े-बड़े ज्ञानी उसे) न पाकर	**दक्षिणं परियन्ति**	(उसकी) प्रदक्षिणा करते हैं ॥२५॥

अनास्थितं ते पितृभिरन्यैरप्यङ्ग कर्हिचित् ।
आतिष्ठ जगतां वन्द्यं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥२६॥

अनास्थितं ते पितृभिः अन्यैः अपि अङ्ग कर्हिचित् आतिष्ठ जगतां वन्द्यं तत् विष्णोः परमं पदम् ॥२६॥

अङ्ग	प्रियवर !	**तत् जगतां वन्द्यं**	उस जगतके वन्दनीय
ते पितृभिः	तुम्हारे पूर्वज	**विष्णोः परमं**	भगवान विष्णुके परम धाम
अन्यैः अपि	तथा दूसरे भी कोई	**पदं आतिष्ठ**	चलकर रहिये ॥२६॥
कर्हिचित्			
अनास्थितं	कभी भी (वहां) नहीं गये हैं,		

एतद्विमानप्रवरमुत्तमश्लोकमौलिना ।
उपस्थापितमायुष्मन्नधिरोढुं त्वमर्हसि ॥२७॥

एतत् विमान प्रवरं उत्तमश्लोक मौलिना उपस्थापितं आयुष्मन् अधिरोढुं त्वं अर्हसि ॥२७॥

एतत् विमान प्रवरं यह श्रेष्ठ विमान
उत्तमश्लोक मौलिना पुण्यश्लोक शिरोमणिने
उपस्थापितं भेजा है,
आयुष्मन् त्वं आयुष्मन् ! तुमको
अधिरोढुं अर्हसि (इसपर) चढ़ना चाहिए ॥२७॥

मैत्रेय उवाच-

निशम्य वैकुण्ठनियोज्यमुख्ययो-
र्मधुच्युतं वाचमुरुक्रमप्रियः ।
कृताभिषेकः कृतनित्यमङ्गलो
मुनीन् प्रणम्याशिषमभ्यवादयत् ॥२८॥

निशम्य बैकुण्ठ नियोज्य मुख्ययोः मधुच्युतं वाचं उरुक्रम प्रियः कृत अभिषेकः कृत नित्य मङ्गलः मुनीन् प्रणम्य आशिषं अभ्यवादयत् ॥२८॥

बैकुण्ठ नियोज्य मुख्ययोः श्रीहरिके मुख्य सेवकोंकी
मधुच्युतं वाचं परम मधुरवाणी
निशम्य सुनकर
उरुक्रम प्रियः अनन्त पराक्रम भगवानके प्रिय (ध्रुवने)
कृत अभिषेकः स्नान किया
कृत नित्य नित्य कर्म (संध्यादि) किया
मङ्गलः मंगल चिह्न (तिलकादि) किया।
मुनीन् प्रणम्य मुनियोंको प्रणाम करके
आशिषं अभ्यवादयत् आशीर्वाद लिया ॥२८॥

परीत्याभ्यर्च्यं धिष्ण्याग्र्यं पार्षदावभिवन्द्य च ।
इयेष तदधिष्ठातुं बिभ्रद्रूपं हिरण्मयम् ॥२९॥

परीत्य अभ्यर्च्यं धिष्ण्य अग्र्यं पार्षदाः अभिवन्द्य च इयेष तत् अधिष्ठातुं विभ्रत् रूपं हिरण्मयम् ॥२९॥

धिष्ण्य अग्र्यं	(उस) श्रेष्ठ विमानकी
परीत्य अभ्यर्च्य	परिक्रमा तथा पूजा करके
च पार्षदाः	
अभिवन्द्य	और पार्षदोंको प्रणाम करके
हिरण्मयं रूपं	स्वर्णके समान तेजोमय रूप
बिभ्रत्	धारण करके
तत् अधिष्ठातुं	उसपर चढ़नेको
इयेष	उद्यत हुए ॥२९॥

तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शान्तकमागतम् ।
मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम् ॥३०॥

तदा उत्तानपदः पुत्रः ददर्श अन्तकं आगतं मृत्योः मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोह अद्भुतं गृहम् ॥३०॥

उत्तानपदः पुत्रः	उत्तानपादके पुत्र (ध्रुव) ने
तदा अन्तकं	उस समय (मूर्तिमान) कालको
आगतं ददर्श	आया देखा,
मृत्योः मूर्ध्नि	(उस) मृत्युके सिरपर
पदं दत्त्वा	पैर रखकर
अद्भुतं गृहं आरुरोह	(उस) अद्भुत विमानमें चढ़ गये ॥३०॥

तदा दुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवादयः ।
गन्धर्वमुख्याः प्रजगुः पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥३१॥

तदा दुन्दुभयः नेदुः मृदङ्ग पणव आदयः गन्धर्वमुख्याः प्रजगुः पेतुः कुसुम वृष्टयः ॥३१॥

तदा दुन्दुभयः	उस समय दुन्दुभियां,
मृदङ्गः पणव आदयः	मृदंग, नगाड़े आदि
नेदुः	बजने लगे,
गन्धर्वमुख्याः	श्रेष्ठ गन्धर्व
प्रजगुः	गाने लगे,
कुसुम वृष्टयः पेतुः	पुष्प वर्षा होने लगी ॥३१॥

स च स्वर्लोकमारोक्ष्यन् सुनीतिं जननीं ध्रुवः ।
अन्वस्मरदगं हित्वा दीनां यास्ये त्रिविष्टपम् ॥३२॥

स च स्वः लोकं आरोक्ष्यन् सुनीतिं जननीं ध्रुवः अन्वस्मरत् अगं हित्वा दीनां यास्ये त्रिविष्टपम् ॥३२॥

स च ध्रुवः	उन ध्रुवने भी	**दीनां हित्वा**	'उस बेचारी (मां) को छोड़कर
स्वः लोकं	दिव्य लोकको		
आरोक्ष्यन्	जाते समय	**अगं त्रिविष्टपं**	
जननीं सुनीतिं	माता सुनीतिका	**यास्ये**	(मैं) अकेला ही स्वर्ग जाऊँगा ॥३२॥
अन्वस्मरत्	स्मरण किया—		

इति व्यवसितं तस्य व्यवसाय सुरोत्तमौ ।
दर्शयामासतुर्देवीं पुरो यानेन गच्छतीम् ॥३३॥

इति व्यवसितं तस्य व्यवसाय सुरोत्तमौ दर्शयामासतुः देवीं पुरः यानेन गच्छतीम् ॥३३॥

इति तस्य	इस प्रकार उनका	**पुरः यानेन**	
व्यवसितं	विचार	**गच्छतीं**	आगे विमानसे जाती
व्यवसाय	जानकर		
सुरोत्तमौ	भगवत्पार्षदोंने	**देवीं**	
		दर्शयामासतुः	देवी (सुनीति) को दिखलाया ॥३३॥

तत्र तत्र प्रसंसद्भिः पथि वैमानिकैः सुरैः ।
अवकीर्यमाणो ददृशे कुसुमैः क्रमशो ग्रहान् ॥३४॥

तत्र तत्र प्रशंसद्भिः पथि वैमानिकैः सुरैः अवकीर्यमाणः ददृशे कुसुमैः क्रमशः ग्रहान् ॥३४॥

तत्र तत्र	जहां-तहां (मार्गमें)	**कुसुमैः**	
वैमानिकैः सुरैः	विमानमें बैठे देवताओं द्वारा	**अवकीर्यमाणः**	पुष्प वर्षा होती थी,
		क्रमशः ग्रहान्	
प्रशंसद्भिः	प्रशंसा करते हुए	**ददृशे**	क्रमशः (सूर्यादि) ग्रहोंको देखा ॥३४॥

त्रिलोकीं देवयानेन सोऽतिव्रज्य मुनीनपि ।
परस्ताद्यद् ध्रुवगतिर्विष्णोः पदमथाभ्यगात् ॥३५॥

त्रिलोकीं देवयानेन सः अतिव्रज्य मुनीन् अपि परस्तात् यत् ध्रुव गतिः विष्णोः पदं अथ अभ्यगात् ॥३५॥

देवयानेन	उस दिव्य विमानसे
त्रिलोकीं मुनीन्	
अपि	त्रिलोकी तथा सप्तर्षियोंको भी
अतिव्रज्य	पार करके
परस्तात् यत्	उनसे भी ऊपर जो
ध्रुव गतिः	स्थिर रहनेवाला
विष्णोः पदं	भगवान विष्णुका स्थान है
अथ अभ्यगात्	(ध्रुवलोक) वहाँ पहुँच गये ॥३५॥

यद् भ्राजमानं स्वरुचैव सर्वतो
लोकास्त्रयो ह्यनु विभ्राजन्त एते ।
यन्नाव्रजञ्जन्तुषु येऽननुग्रहा
व्रजन्ति भद्राणि चरन्ति येऽनिशम् ॥३६॥

यत् स्वरुचा एव सर्वतः भ्राजमानं एते त्रयः लोकाः हि अनु विभ्राजन्त ते यत् न व्रजन् जन्तुषु ये अननुग्रहा व्रजन्ति भद्राणि चरन्ति ये अनिशम् ॥३६॥

यत् स्वरुचा एव	जो अपनी कान्तिसे ही
सर्वतः भ्राजमानं	चारों ओर प्रकाशित है,
एते त्रयः लोकाः हि अनु	ये तीनों लोक
विभ्राजन्त	क्योंकि उससे ही प्रकाशित होते हैं,
ये जन्तुषु	जो प्राणियोंपर
अननुग्रहा	दया नहीं करते
यत् न व्रजन्	जहाँ नहीं जा सकते,
ये अनिशं	जो रात-दिन
भद्राणि चरन्ति	शुभ कर्म ही करते हैं
व्रजन्ति	(वे वहाँ) जाते हैं ॥३६॥

शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूतानुरञ्जनाः ।
यान्त्यञ्जसाच्युतपदमच्युतप्रियबान्धवाः ॥३७॥

शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूत अनुरञ्जनाः यान्ति अञ्जसा अच्युत पदं अच्युत प्रिय बान्धवाः ॥३७॥

शान्ताः	शान्त,	**बान्धवाः**	(उन्हींको) सम्बन्धी
समदृशः	समदर्शी,		माननेवाले
शुद्धाः	शुद्ध चित्त,	**अञ्जसा**	
सर्वभूत		**अच्युत पदं**	सरलतासे भगवद्धाम
अनुरञ्जनाः	सब प्राणियोंको प्रसन्न रखनेवाले	**यान्ति**	जाते हैं ॥३७॥
अच्युत प्रिय	भगवानको प्यारे,		

इत्युत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः कृष्णपरायणः ।
अभूत्त्रयाणां लोकानां चूडामणिरिवामलः ॥३८॥

इति उत्तानपदः पुत्रः ध्रुवः कृष्ण परायणः अभूत् त्रयाणां लोकानां चूडामणि इव अमलः ॥३८॥

इति	इस प्रकार	**त्रयाणां**	
उत्तानपदः		**लोकानां**	तीनों लोकोंके
पुत्रः	उत्तानपादके पुत्र	**अमलः**	
कृष्ण परायणः		**चूडामणि इव**	निर्मल चूडामणिके
ध्रुवः	श्रीकृष्ण परायण ध्रुव		समान
		अभूत्	हुए ॥३८॥

गम्भीरवेगोऽनिमिषं ज्योतिषां चक्रमाहितम् ।
यस्मिन् भ्रमति कौरव्य मेढ्यामिव गवां गणः ॥३९॥

गम्भीर वेगः अनिमिषं ज्योतिषां चक्रं आहितं यस्मिन् भ्रमति कौरव्य मेढ्यां इव गवां गणः ॥३९॥

गवां गणः	बैलोंका समूह	**ज्योतिषां चक्रं**	तारा मण्डल
मेढ्यां इव	खलिहानके मेढीके (चारों ओरके) समान	**अनिमिषं**	निरन्तर
		यस्मिन् आहितं	जिसके सहारे
गम्भीर वेगः	तीव्र वेगवाला	**भ्रमति**	घूमता रहता है ॥३९॥

महिमानं विलोक्यास्य नारदो भगवानृषिः ।
आतोद्यं वितुदञ् श्लोकान् सत्रेऽगायत्प्रचेतसाम् ॥४०॥

महिमानं विलोक्य अस्य नारदः भगवान् ऋषिः आतोद्यं वितुदन् श्लोकान् सत्रे अगायत् प्रचेतसाम् ॥४०॥

अस्य	इस (अपने शिष्य ध्रुव) की	**आतोद्यं वितुदन्**	वीणा बजाते हुए
महिमानं		**प्रचेतासां सत्रे**	प्रचेताओंके यज्ञमें
विलोक्य	महिमा देखकर	**श्लोकान्**	
भगवान् ऋषिः	देवर्षि	**अगायत्**	(इन) श्लोकोंका गान किया ॥४०॥
नारदः	नारदने		

नारद उवाच–

नूनं सुनीतेः पतिदेवतायाः
स्तपःप्रभावस्य सुतस्य तां गतिम् ।
दृष्ट्वाभ्युपायानपि वेदवादिनो
नैवाधिगन्तुं प्रभवन्ति किं नृपाः ॥४१॥

नूनं सुनीतेः पतिदेवतायाः तपः प्रभावस्य सुतस्य तां गतिं दृष्ट्वा अभ्युपायान् अपि वेद वादिनः नैव अधिगन्तुं प्रभवन्ति किं नृपाः ॥४१॥

नूनं	निश्चय	**अभ्युपायान्**	
पतिदेवतायाः	पतिव्रता	**अपि**	साधन करते हुए भी
सुनेतेः तपः		**वेद वादिनः**	वेदज्ञ लोग
प्रभावस्य	सुनीतिके तपके प्रभावसे ही	**अधिगन्तुं**	(जहाँ) पहुँचनेमें
सुतस्य तां गतिं	(उनके) पुत्रको वह पद	**नैव प्रभवन्ति**	नहीं समर्थ होते,
दृष्ट्वा	प्राप्त हुआ	**किं नृपाः**	फिर राजा कैसे (समर्थ हो सकते हैं) ॥४१॥

यः पञ्चवर्षो गुरुदारवाक्शरै-
र्भिन्नेन यातो हृदयेन दूयता ।
वनं मदादेशकरोऽजितं प्रभुं
जिगाय तद्भक्तगुणैः पराजितम् ॥४२॥

यः पञ्चवर्षः गुरुदार वाक्शरैः भिन्नेन यातः हृदयेन दूयता वनं मत् आदेशकरः अजितं प्रभुं जिगाय तद् भक्त गुणैः पराजितम् ॥४२॥

यः पञ्चवर्षः	जो पाँच वर्ष (की आयु) में	**मत् आदेशकरः**	मेरी आज्ञाका पालन करके
गुरुदार वाक्-	सौतेली माताकी वाणी रूप	**तद् भक्त गुणैः पराजितम्**	अपने भक्तके गुणोंसे पराजित होनेवाले
शरैः भिन्नेन	वाणोंसे विद्ध	**अजितं प्रभुं**	अजित भगवानको
दूयता हृदयेन	दुःखी हृदयसे	**जिगाय**	जीत लिया ॥४२॥
वनं यातः	वनमें चला गया,		

यः क्षत्रबन्धुर्भुवि तस्याधिरूढ-
मन्वारुरुक्षेदपि वर्षपूगैः ।
षट्पञ्चवर्षो यदहोभिरल्पैः
प्रसाद्य वैकुण्ठमवाप तत्पदम् ॥४३॥

यः क्षत्रबन्धुः भुवि तस्य अधिरूढं अनु आरुरुक्षेत् अपि वर्ष पूगैः षट्पञ्चवर्षः यत् अहोभिः अल्पैः प्रसाद्य वैकुण्ठं अवाप तत् पदम् ॥४३॥

षट्पञ्चवर्षः	पांच-छ वर्षकी आयुमें	**भुवि क्षत्रबन्धुः**	पृथ्वीपर (दूसरा कौन) क्षत्रिय है
अहोभिः अल्पैः	थोड़े दिनोंमें	**यः तस्य**	
वैकुण्ठं प्रसाद्य	भगवान नारायणको प्रसन्न करके	**अधिरूढं**	जो उनके द्वारा प्राप्त (पदपर)
यत् तत् पदं अवाप	जो उनका स्थान (ध्रुवने) प्राप्त किया	**वर्ष पूगैः अपि अनु आरुरुक्षेत्**	बहुत वर्षोंमें भी पहुँचनेकी इच्छा कर सके ॥४३॥

मैत्रेय उवाच-

एतत्तेऽभिहितं सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ।
ध्रुवस्योद्दामयशसश्चरितं सम्मतं सताम् ॥४४॥

एतत् ते अभिहितं सर्वं यत् पृष्टः अहं इह त्वया ध्रुवस्य उद्दाम यशसः चरितं सम्मतं सताम् ॥४४॥

सतां सम्मतं	सत्पुरुषोंको प्रिय	**यत् त्वया पृष्टः**	जो तुमने पूछा था,
उद्दाम यशसः	उद्दाम यशस्वी	**ते एतत् सर्वं**	तुमसे यह सब
ध्रुवस्य चरितं	ध्रुवके चरित	**अहं अभिहितं**	मैंने बतला
इह	(के सम्बन्धमें) यहाँ		दिया ॥४४॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वस्त्ययनं महत् ।
स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं प्रशस्यमघमर्षणम् ॥४५॥

धन्यं यशस्यं आयुष्यं पुण्यं स्वस्त्ययनं महत् स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं प्रशस्यं अघमर्षणम् ॥४५॥

धन्यं यशस्यं	(यह) धन और यश देनेवाला,	**सौमनस्यं**	देवत्वदायी,
आयुष्यं	आयुदायक,	**प्रशस्यं**	प्रशंसनीय
महत् स्वस्त्ययनं	महान कल्याणकारी,	**ध्रौव्यं**	अविनाशी-पद देने वाला (तथा)
स्वर्ग्यं	स्वर्गदायी,	**अघमर्षणं**	पाप नाशक है ॥४५॥

श्रुत्वैतच्छ्रद्धयाभीक्ष्णमच्युतप्रियचेष्टितम् ।
भवेद्भक्तिर्भगवति यया स्यात्क्लेशसंक्षयः ॥४६॥

श्रुत्वा एतत् श्रद्धया अभीक्ष्णं अच्युतप्रिय चेष्टितं भवेत् भक्तिः भगवति यया स्यात् क्लेश संक्षयः ॥४६॥

एतत् अच्युत-प्रिय	इस भगवत्प्रियका	**चेष्टितं**	चरित
		श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक

अभीक्ष्णं श्रुत्वा	रोज-रोज सुननेसे	**यया क्लेश**	
भगवति	भगवानमें	**संक्षयः**	जिससे क्लेशोंका
भक्तिः भवेत्	भक्ति हो जाती है,		नाश
		स्यात्	हो जाता है ॥४६॥

महत्त्वमिच्छतां तीर्थं श्रोतुः शीलादयो गुणाः ।
यत्र तेजस्तदिच्छूनां मानो यत्र मनस्विनाम् ॥४७॥

महत्त्वं इच्छतां तीर्थं श्रोतुः शीलादयः गुणाः यत्र तेजः तत् इच्छूनां मानः यत्र मनस्विनाम् ॥४७॥

यत्र श्रोतुः	जिसके सुननेवाले	**तेजः तत्**	
महत्त्वं इच्छतां	महत्त्व चाहने वालों को (वह)	**इच्छूनां**	तेज उस (तेज) को चाहने वालोंको,
तीर्थं	पवित्र होनेकी (इच्छा वालोंको)	**मनस्विनां**	सम्मान चाहने वालोंको
शीलादयः गुणाः	शीलादि गुण	**यत्र मानः**	जिससे सम्मान (प्राप्त होगा) ॥४७

प्रयतः कीर्तयेत्प्रातः समवाये द्विजन्मनाम् ।
सायं च पुण्यश्लोकस्य ध्रुवस्य चरितं महत् ॥४८॥

प्रयतः कीर्तयेत् प्रातः समवाये द्विजन्मनां सायं च पुण्य श्लोकस्य ध्रुवस्य चरितं महत् ॥४८॥

द्विजन्मनां		**ध्रुवस्य महत्**	
समवाये	द्विजातियोंके समाजमें	**चरितं**	ध्रुवके महान चरितको
प्रातः सायं च	प्रातः और सायं-काल भी	**प्रयतः कीर्तयेत्**	एकाग्र चित्तसे कीर्तन करना चाहिए ॥४८॥
पुण्य श्लोकस्य	पवित्र कीर्ति		

पौर्णमास्यां सिनीवाल्यां द्वादश्यां श्रवणेऽथवा ।
दिनक्षये व्यतीपाते सङ्क्रमेऽर्कदिनेऽपि वा ॥४९॥

पौर्णमास्यां सिनीवाल्यां द्वादश्यां श्रवणे अथवा दिनक्षये व्यतीपाते सङ्क्रमे अकदिने अपि वा ॥४९॥

पौर्णमास्यां	पूर्णिमाको,
सिनीवाल्यां	अमावस्याको,
द्वादश्यां	द्वादशीको,
अथवा श्रवणे	अथवा श्रवण नक्षत्रमें,
दिनक्षये	तिथिक्षयमें,
व्यतीपाते	व्यतिपात योगमें,
सङ्क्रमे	संक्रान्तिको,
अपि वा अर्कदिने	अथवा रविवारको ॥४९॥

श्रावयेच्छ्रद्दधानानां तीर्थपादपदाश्रयः ।
नेच्छंस्तत्रात्मनाऽऽत्मानं सन्तुष्ट इति सिध्यति ॥५०॥

श्रावयेत् श्रद्दधानां तीर्थपाद पदाश्रयः न इच्छन् तत्र आत्मना आत्मानं सन्तुष्ट इति सिध्यति ॥५०॥

श्रद्धानानां	श्रद्धालुओंको (उक्त अवसरोंपर)
तीर्थपाद पदाश्रयः	(भगवानके) पवित्र चरणोंकी शरण लेकर,
आत्मना आत्मानं	अपने आपमें चित्तको
सन्तुष्ट	सन्तुष्ट रखकर
तत्र न इच्छन्	वहां (कथासे) कुछ नहीं चाहते-
श्रावयेत्	सुनावे,
इति सिध्यति	इस प्रकार सिद्ध हो जाता है ॥५०॥

ज्ञानमज्ञाततत्त्वाय यो दद्यात्सत्पथेऽमृतम् ।
कृपालोर्दीननाथस्य देवास्तस्यानुगृह्णते ॥५१॥

ज्ञानं अज्ञात तत्त्वाय यः दद्यात् सत्पथे अमृतं कृपालोः दीननाथस्य देवाः तस्य अनुगृह्णते ॥५१॥

अज्ञात तत्त्वाय	तत्त्वज्ञान रहित लोगोंको
सत्पथे	सत्पथपर लानेके लिए

यः अमृतं ज्ञानं	जो (यह) अमृतरूप ज्ञान	**दीननाथस्य**	दीनवत्सलपर
दद्यात्	देता है,	**देवाः अनुगृह्णते**	देवता अनुग्रह करते हैं ॥५१॥
तस्य कृपालोः	उस कृपालु		

इदं मया तेऽभिहितं कुरूद्वह ध्रुवस्य विख्यातविशुद्धकर्मणः ।
हित्वार्भकः क्रीडनकानि मातु-
र्गृहं च विष्णुं शरणं यो जगाम ॥५२॥

इदं मया ते अभिहितं कुरूद्वह ध्रुवस्य विख्यात विशुद्ध कर्मणः हित्वा अर्भकः क्रीडनकानि मातुः गृहं च विष्णुं शरणं यः जगाम ॥५२॥

कुरुद्वह	विदुर !	**जगाम**	गया (उस)
यः अर्भकः	जो बच्चा होनेपर भी	**ध्रुवस्य**	ध्रुवके
क्रीडन्कानि	खिलौनोंको,	**विख्यात**	प्रसिद्ध
मातुः गृहं च	तथा माताके घरको	**विशुद्ध कर्मणः**	पवित्र कर्मोंको
हित्वा	छोड़कर	**मया ते**	मैंने तुमसे
विष्णुं शरणं	भगवान विष्णुकी शरण	**अभिहितं**	सुनाया ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचरितं नाम द्वादशोऽध्यायः ।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

सूत उवाच-

निशम्य कौषारविणोपवर्णितं
ध्रुवस्य वैकुण्ठपदाधिरोहणम् ।
प्ररूढभावो भगवत्यधोक्षजे
प्रष्टुं पुनस्तं विदुरः प्रचक्रमे ॥१॥

निशम्य कौषारविणः उपवर्णितं ध्रुवस्य वैकुण्ठ पद अधिरोहणं प्ररूढभावः भगवति अधोक्षजे प्रष्टुं पुनः तं विदुरः प्रचक्रमे ॥१॥

कौषारविणः		**भगवति**	
उपवर्णितं	मैत्रेयजी द्वारा वर्णित	**अधोक्षजे**	भगवान हृषीकेशमें
ध्रुवस्य	ध्रुवका	**प्ररूढभावः**	भक्ति भावका उद्रेक हुआ,
वैकुण्ठ पद	भगवान विष्णुके स्थानको	**तं पुनः प्रष्टुं**	(उन) मैत्रेयजीसे फिर पूछना
अधिरोहणं	प्राप्त कर लेना	**विदुरः प्रचक्रमे**	विदुरने प्रारम्भ किया ॥१॥
निशम्य	सुनकर		

विदुर उवाच-

के ते प्रचेतसो नाम कस्यापत्यानि सुव्रत ।
कस्यान्ववाये प्रख्याताः कुत्र वा सत्रमासत ॥२॥

के ते प्रचेतसः नाम कस्य अपत्यानि सुव्रत कस्य अन्ववाये प्रख्याताः कुत्र वा सत्रं आसत ॥२॥

सुव्रत	उत्तमव्रती मैत्रेयजी !	**कस्य अन्ववाये**	किसके वंशमें
ते प्रचेतसः		**प्रख्याताः**	प्रसिद्ध हुए
नाम के	वे प्रचेता नामवाले कौन थे ?	**वा कुत्र**	तथा कहाँ
		सत्रं आसत	यज्ञ कर रहे थे ? ॥२॥
कस्य अपत्यानि	किसके पुत्र थे ?		

मन्ये महाभागवतं नारदं देवदर्शनम् ।
येन प्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्याविधिर्हरेः ॥३॥

मन्ये महाभागवतं नारदं देव दर्शनं येन प्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्या विधिः हरेः ॥३॥

देव दर्शनं	भगवद्दर्शन प्राप्त	**परिचर्या विधिः**	पूजापद्धति रूप
नारदं	नारदजीको	**क्रियायोगः**	क्रिया-योग
महाभागवतं	महान् भगवद्-भक्त	**प्रोक्तः**	(पाञ्चरात्र) का उपदेश किया है ॥३॥
मन्ये	(मैं) मानता हूं		
येन हरेः	जिन्होंने श्रीहरिकी		

स्वधर्मशीलैः पुरुषैर्भगवान् यज्ञपूरुषः ।
इज्यमानो भक्तिमता नारदेनेरितः किल ॥४॥

स्वधर्मशीलैः पुरुषैः भगवान् यज्ञपूरुषः इज्यमानः भक्तिमता नारदेन ईरितः किल ॥४॥

स्वधर्मशीलैः	स्वधर्मका पालन करनेवाले	**इज्यमानः**	जब यज्ञसे पूजन हो रहा था,
पुरुषैः	पुरुषों (प्रचेतागणों) से	**किल**	उसी समय
भगवान् यज्ञ-पुरुषः	यज्ञ-पुरुष भगवानका	**भक्तिमता नारदेन ईरितः**	भक्तिमान नारदजीने (ध्रुवकी कथा) कही थी ॥४॥

यास्ता देवर्षिणा तत्र वर्णिता भगवत्कथाः ।
मह्यं शुश्रूषवे ब्रह्मन् कात्स्न्र्येनाचष्टुमर्हसि ॥५॥

याः ता देवर्षिणा तत्र वर्णिता भगवत् कथाः मह्यं शुश्रूषवे ब्रह्मन् कात्स्न्र्येन आचष्टुं अर्हति ॥५॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
देवर्षिणा	देवर्षिने
याः ता भगवत्	
कथाः	जो कोई भगवत्-कथा
तत्र वर्णिता	वहां कही थी
तत्र कात्स्न्र्येन	उसे पूरी तरह
मह्यं शुश्रूषवे	मुझ सुननेकी इच्छा वालेसे
आचष्टुं अर्हति	(आपको) सुनाना चाहिए ॥५॥

मैत्रेय उवाच-

ध्रुवस्य चोत्कलः पुत्रः पितरि प्रस्थिते वनम् ।
सार्वभौमश्रियं नैच्छदधिराजासनं पितुः ॥६॥

ध्रुवस्य च उत्कलः पुत्रः पितरि प्रस्थिते वनं सार्वभौम श्रियं न इच्छत् अधिराज आसनं पितुः ॥६॥

ध्रुवस्य पुत्रः	ध्रुवके पुत्र
उत्कलः च	उत्कलने तो
पितरि वनं	
प्रस्थिते	पिताके वनमें चले जानेपर
सार्वभौम श्रियं	सार्वभौम वैभव तथा
पितुः अधिराज	
आसनं	पिताके सम्राट् सिंहासनको
न इच्छत्	नहीं लेना चाहा ॥६॥

स जन्मनोपशान्तात्मा निःसङ्गः समदर्शनः ।
ददर्श लोके विततमात्मानं लोकमात्मनि ॥७॥

स जन्मनः उपशान्त आत्मा निःसङ्गः समदर्शनः ददर्श लोके विततं आत्मानं लोकं आत्मनि ॥७॥

स जन्मनः	वह जन्मसे
उपशान्त आत्मा	शान्त चित्त,
निःसङ्गः	अनासक्त
समदर्शनः	समदर्शी था,

आत्मानं लोके अपने आत्माको लोकमें
लोकं आत्मनि लोकको अपने आत्मामें
विततं ददर्श व्याप्त देखता था ॥७॥

आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं प्रत्यस्तमितविग्रहम् ।
अवबोधरसैकात्म्यमानन्दमनुसन्ततम् ॥८॥

आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं प्रत्यस्तमित विग्रहं अवबोध रस ऐकात्म्यं आनन्दं अनुसंततम् ॥८॥

प्रत्यस्तमित विग्रहं अंत: करणसे भेद-बुद्धि नष्ट हो गयी थी,
आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं चित्त ब्रह्मानुभूति प्राप्त था,
अवबोध रस विशुद्ध बोधरससे
ऐकात्म्य एकात्मता अनुभव करके
आनन्दं अनुसंततं सर्वत्र आनन्द ही व्याप्त (देखता) था ॥८॥

अव्यवच्छिन्नयोगाग्निदग्धकर्ममलाशयः ।
स्वरूपमवरुन्धानो नात्मनोऽन्यं ततैक्षत ॥९॥

अव्यवच्छिन्न योगाग्नि दग्ध कर्ममल आशयः स्वरूपं अवरुन्धान: न आत्मनः अन्यं तत् ऐक्षत ॥९॥

अव्यवच्छिन्न योगाग्नि अखण्ड योगरूप अग्निसे
आशयः कर्ममल दग्ध चित्तके कर्मका मल जल गया था,
स्वरूपं अवरुन्धानः स्वरूपमें ही स्थित होनेसे
तत् आत्मनः अन्यं न ऐक्षत वह आत्मासे पृथक (कुछ) नहीं देखता था ॥९॥

जडान्धबधिरोन्मत्तमूकाकृतिरतन्मतिः ।
लक्षितः पथि बालानां प्रशान्तार्चिरिवानलः ॥१०॥

जड अन्ध बधिर उन्मत्त मूक आकृतिः अतन् मतिः लक्षितः पथि बालानां प्रशान्त अर्चिः इव अनलः ॥१०॥

जड अन्ध	मूर्ख, अन्धे,
बधिर, उन्मत्त	बहिरे, पागल,
मूक आकृतिः	गूंगेके समान
प्रशान्त अर्चिः	लपट बुझे
अनलः इव	अग्निके समान
अतन् मतिः	उसे न जाननेवाले
बालानां	अज्ञानियोंको
पथि लक्षितः	मार्गमें जान पड़ता था ॥१०॥

मत्वा तं जडमुन्मत्तं कुलवृद्धाः समन्त्रिणः ।
वत्सरं भूपतिं चक्रुर्यवीयांसं भ्रमेः सुतम् ॥११॥

मत्वा तं जडं उन्मत्तं कुल वृद्धाः समन्त्रिणः वत्सरं भूपतिं चक्रुः यवीयांसं भ्रमेः सुतम् ॥११॥

कुल वृद्धाः	कुलके बड़े लोगोंने
समन्त्रिणः	मन्त्रियोंके साथ
तं जडं उन्मत्तं	उसे मूर्ख-पागल
मत्वा	मानकर
यवीयांसं	उससे छोटे भाई
भ्रमेः सुतं	भ्रमिके पुत्र
वत्सरं	वत्सरको
भूपतिं चक्रुः	राजा बनाया ॥११॥

स्वर्वीथिर्वत्सरस्येष्टा भार्यासूत षडात्मजान् ।
पुष्पार्णं तिग्मकेतुं च इषमूर्जं वसुं जयम् ॥१२॥

स्वर्वीथीः वत्सरस्य इष्टा भार्या असूत षट् आत्मजान् पुष्पार्णं तिग्मकेतुं च इषं ऊर्जं वसुं जयम् ॥१२॥

वत्सरस्य	वत्सरकी
इष्टा भार्या	प्रिय पत्नी
स्वर्वीथीः	स्वर्वीथीने
पुष्पार्णं	
तिग्मकेतुं	पुष्पार्ण, तिग्मकेतु,
इषं ऊर्जं वसुं	इष, उर्ज, वसु,
च जयं	तथा जय (ये)
षट् आत्मजान्	
असूत	छः पुत्र उत्पन्न किये ॥१२॥

पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः ।
प्रातर्मध्यन्दिनं सायमिति ह्यासन् प्रभासुताः ॥१३॥

पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः प्रातः मध्यंदिनः सायं इति हि आसन् प्रभासुताः ॥१३॥

पुष्पार्णस्य	पुष्पार्णकी
प्रभा च दोषा	प्रभा और दोषा
द्वे भार्या बभूवतुः	दो पत्नियां थीं,
प्रातः मध्यंदिनः	प्रातः, मध्यन्दिन,
सायं इति	सायं, इस प्रकार तीन)
प्रभासुताः आसन्	प्रभाके पुत्र थे ॥१३॥

प्रदोषो निशिथो व्युष्ट इति दोषासुतास्त्रयः ।
व्युष्टः सुतं पुष्करिण्यां सर्वतेजसमादधे ॥१४॥

प्रदोषः निशिथः व्युष्ट इति दोषा सुताः त्रयः व्युष्टः सुतं पुष्करिण्यां सर्वतेजसं आदधे ॥१४॥

प्रदोषः निशिथः	प्रदोष, निशीथ,
व्युष्ट इति	व्युंष्ट, इस प्रकार
दोषा सुताः त्रयः	दोषाके तीन पुत्र थे,
व्युष्टः पुष्करिण्यां	(उनमें) व्युष्टने पुष्करिणी (पत्नी)में
सर्वतेजसं सुतं	सर्वतेजस नामका पुत्र
आदधे	उत्पन्न किया ॥१४॥

स चक्षुः सुतमाकूत्यां पत्न्यां मनुमवाप ह ।
मनोरसूत महिषी विरजान्नड्वला सुतान् ॥१५॥

स चक्षुः सुतं आकूत्यां पत्न्यां मनुं अवाप ह मनोः असूत महिषी विरजान् नड्वला सुतान् ॥१५॥

स	उस (सर्वतेजा) ने
आकूत्या पत्न्यां	आकूति नामक पत्नीसे
चक्षुः	चक्षुको
मनुं अवाप ह	(चाक्षुष मन्वन्तरके) मनुको (पुत्र रूपमें) पाया,
मनोः महिषी	(इस चक्षु) मनुकी पत्नी
नड्वला	नड्वलाने
विरजान् सुतान्	सत्वगुणी पुत्र (१२ उत्पन्न किये) ॥१५॥

पुरुं कुत्सं त्रितं द्युम्नं सत्यवन्तमृतं व्रतम् ।
अग्निष्टोममतीरात्रं प्रद्युम्नं शिबिमुल्मुकम् ॥१६॥

पुरुं कुत्सं व्रितं द्युम्नं सत्यवन्तं ऋतंव्रतं अग्निष्टोमं अतीरात्रं प्रद्युम्नं शिबि उल्मुकम् ॥१६॥*

उल्मुकोऽजनयत्पुत्रान्पुष्करिण्यां षडुत्तमान् ।
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ॥१७॥

उल्मुकः अजनयत् पुत्रान् पुष्करिण्यां षट् उत्तमान् अङ्गं सुमनसं ख्यातिं ऋतुं अङ्गिरसं गयम् ॥१७॥

उल्मुकः	(इनमें-से) उल्मुकने	**अङ्गं सुमनसं**	अंग, सुमना
पुष्करिण्यां	पुष्करिणीसे	**ख्यातिं ऋतुं**	ख्याति, क्रतु,
षट् उत्तमान्	छः उत्तम	**अंगिरसं गयं**	अंगिरा और
पुत्रान् अजनयत्	पुत्र उत्पन्न किये		गय ॥१७॥

सुनीथाङ्गस्य या पत्नी सुषुवे वेनमुल्बणम् ।
यद्दौःशील्यात्स राजर्षिर्निर्विण्णो निरगात्पुरात् ॥१८॥

सुनीथा अङ्गस्य या पत्नी सुषुवे वेनं उल्बणं यत् दौः शील्यात् स राजर्षिः निर्विण्णः निरगात् पुरात् ॥१८॥

अङ्गस्य या पत्नी	अंगकी जो पत्नी	**स राजर्षिः**	वे राजर्षि (अंग)
सुनीथा	सुनीथा थी,	**यत्**	
उल्बणं वेनं		**दौः शील्यात्**	जिसकी दुष्टतासे
सुषुवे	क्रूरकर्मा वेनको जन्म दिया	**निर्विण्णः**	ऊबकर
		पुरात् निरगात्	नगरसे निकल
			गये ॥१८॥

यमङ्ग शेपुः कुपिता वाग्वज्त्रा मुनयः किल ।
गतासोस्तस्य भूयस्ते ममन्थुर्दक्षिणं करम् ॥१९॥

---

* ये सब मनुकी पत्नी नड्वलाके बारह पुत्रोंके नाम हैं ।

यं अङ्ग शेपुः कुपिता वाग्वज्त्रा मुनयः किल गत असोः तस्य भूयः ते ममन्थुः दक्षिणं करम् ॥१९॥

अङ्ग	प्रिय विदुर !
वाग्वज्त्रा	वाणी रूप वज्त्रवाले
मुनयः कुपिता	मुनियोंने क्रुद्ध होकर
किल यं शेपुः	अरे, जिसे शाप दिया,
तस्य गत असोः	उसके निष्प्राण हो जानेपर
भूयः ते	फिर उन (मुनियों)ने
दक्षिणं करं	(उसके) दाहिने हाथका
ममन्थुः	मन्थन किया ॥१९॥

अराजके तदा लोके दस्युभिः पीडिताः प्रजाः ।
जातो नारायणांशेन पृथुराद्यः क्षितीश्वरः ॥२०॥

अराजके तदा लोके दस्युभिः पीडिताः प्रजाः जातः नारायण अंशेन पृथुः आद्यः क्षितीश्वरः ॥२०॥

तदा लोके	उस समय लोकके
अराजके	शासकहीन होनेपर
दस्युभिः प्रजाः	डाकुओं द्वारा प्रजाके
पीडिताः	उत्पीड़ित होनेपर
नारायण अंशेन	भगवान नारायणके अंशसे
आद्यः	
क्षितीश्वरः	आदि राजा
पृथुः जातः	पृथु उत्पन्न हुए ॥२०॥

विदुर उवाच-

तस्य शीलनिधेः साधोर्ब्रह्मण्यस्य महात्मनः ।
राज्ञः कथमभूद्दुष्टा प्रजा यद्विमना ययौ ॥२१॥

तस्य शीलनिधेः साधोः ब्रह्मण्यस्य महात्मनः राज्ञः कथं अभूत् दुष्टा प्रजा यत् विमना ययौ ॥२१॥

तस्य शीलनिधेः साधोः ब्रह्मण्यस्य उन परम शीलवान, सत्पुरुष, ब्राह्मण-भक्त, **महात्मनः राज्ञः** महात्मा राजा (अंग) का **प्रजा कथं दुष्टा अभूत् यत् विमना ययौ** पुत्र कैसे दुष्ट हो गया ? जिससे ऊबकर (वे) चले गये ॥२१॥

किं वांहो वेन उद्दिश्य ब्रह्मदण्डमयूयुजन् ।
दण्डव्रतधरे राज्ञि मुनयो धर्मकोविदाः ॥२२॥

किं वा अंहः वेन उद्दिश्य ब्रह्मदण्डं अयूयुजन् दण्डव्रतधरे राज्ञि मुनयः धर्मकोविदाः ॥२२॥

दण्डव्रतधरे राजदण्डधारी **वेन किं वा अहंः** वेनका ऐसा क्या दोष था **उद्दिश्य** जिसके कारण **धर्मकोविदाः मुनयः** धर्मज्ञ मुनियोंने **राज्ञि ब्रह्मदण्डं** राजापर ब्रह्मदण्ड (शाप) का **अयूयुजन्** प्रयोग किया ?॥२२॥

नावध्येयः प्रजापालः प्रजाभिरघवानपि ।
यदसौ लोकपालानां बिभर्त्योजः स्वतेजसा ॥२३॥

न अवध्येयः प्रजापालः प्रजाभिः अघवान् अपि यत् असौ लोकपालानां बिभर्ति ओजः स्वतेजसा ॥२३॥

प्रजापालः अघवान् अपि प्रजाके रक्षकसे अपराध हो जाने पर भी **प्रजाभिः** प्रजाके द्वारा (उसका) **अवध्येयः न** अपमान नहीं होना चाहिए **यत् असौ स्वतेजसा लोकपालानं ओजः बिभर्ति** क्योंकि यह अपने तेजसे (आठो) लोकपालोंके तेजको धारण करता है ॥२३॥

एतदाख्याहि मे ब्रह्मन् सुनीथात्मजचेष्टितम् ।
श्रद्दधानाय भक्ताय त्वं परावरवित्तमः ॥२४॥

एतत् आख्याहि मे ब्रह्मन् सूनीथा आत्मज चेष्टितं श्रद्दधानाय भक्ताय त्वं पर अवर वित्तमः ॥२४॥

ब्रह्मन् त्वं	ब्रह्मन् ! आप
पर अवर	भूत-भविष्यको
वित्तमः	जानने वालोंमें श्रेष्ठ हैं,
मे श्रद्दधानाय	मुझ श्रद्धालु
भक्ताय	भक्तसे
एतत्	यह
सुनीथा आत्मज	सुनीथाके पुत्र (वेन का
चेष्टितं	
आख्याहि	चरित कहिए ॥२४॥

मैत्रेय उवाच-

अङ्गोऽश्वमेधं राजर्षिराजहार महाक्रतुम् ।
नाजग्मुर्देवतास्तस्मिन्नाहूता ब्रह्मवादिभिः ॥२५॥

अङ्गः अश्वमेधं राजर्षिः आजहार महाक्रतुं न आजग्मुः देवताः तस्मिन् आहूता ब्रह्मवादिभिः ॥२५॥

राजर्षिः अङ्गः	राजर्षि अंगने
अश्वमेधं	
महाक्रतुं	अश्वमेध महायज्ञ
आजहार	प्रारम्भ किया,
तस्मिन्	
ब्रह्मवादिभिः	उसमें वेदज्ञों द्वारा
आहूता	आवाहन किये जानेपर
देवताः न	
आजग्मुः	देवता नहीं आये ॥२५॥

तमूचुर्विस्मितास्तत्र यजमानमथर्त्विजः ।

तं ऊचुः विस्मिताः तत्र यजमानं अथ ऋत्विजः ।

तं यजमानं	उन यजमान (राजा अंग) से
तत्र विस्मिताः	वहाँ आश्चर्यचकित
अथ ऋत्विजाः	
ऊचूः	तब ऋत्विक् बोले—

ऋत्विजा ऊचुः*-

हवींषि हूयमानानि न ते गृह्णन्ति देवताः ॥२६॥

हवींषि हूयमानानि न ते गृह्णन्ति देवताः ॥२६॥

ते हूयमानानि	आपके द्वारा हवन की गयी	**देवताः न गृह्णन्ति**	देवता नहीं ले रहे हैं ॥२६॥
हवींषि	(घृतादि) हविको		

राजन् हवींष्यदुष्टानि श्रद्धयाऽऽसादितानि ते ।
छन्दांस्ययातयामानि योजितानि धृतव्रतैः ॥२७॥

राजन् हवींषि अदुष्टानि श्रद्धया आसादितानि ते छन्दांसि अयात यामानि योजितानि धृतव्रतैः ॥२७॥

राजन्	राजन्	**धृतव्रतैः**	नियम निष्ठ (ब्राह्मणों) द्वारा
हवींषि अदुष्टानि	हवि निर्दोष है ।	**अयात यामानि**	ठीक-ठीक ताजेके समान याद
ते श्रद्धया	आपने श्रद्धापूर्वक	**योजितानि**	प्रयुक्त किये जा रहे हैं ॥२७॥
आसादितानि छन्दांसि	(उसे) जुटाया है, वेदमन्त्र		

न विदामेह देवानां हेलनं वयमण्वपि ।
यन्न गृह्णन्ति भागान् स्वान् ये देवाः कर्मसाक्षिणः ॥२८॥

न विदाम इह देवानां हेलनं वयं अण्वपि यत् न गृह्णन्ति भागान् स्वान् ये देवाः कर्मसाक्षिणः ॥२८॥

इह अण्वपि देवानां हेलनं	यहाँ तनिक भी देवताओंकी अवहेलना	**देवाः स्वान् भागान्**	देवता हैं वे अपना भाग
वयं न विदाम	(हुई हो) यह हम नहीं जानते,	**गृह्णन्ति न**	स्वीकार नहीं कर रहे हैं ॥२८॥
यत् ये कर्म-साक्षिणः	जिससे जो कर्मसाक्षी		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

मैत्रेय उवाच-

अङ्गो द्विजवचः श्रुत्वा यजमानः सुदुर्मनाः ।
तत्प्रष्टुं व्यसृजद्वाचं सदस्यांस्तदनुज्ञया ॥२९॥

अङ्गः द्विजवचः श्रुत्वा यजमानः सुदुर्मनाः तत् प्रष्टुं व्यसृजत् वाचं सदस्यान् तत् अनुज्ञया ॥२९॥

द्विजवचः श्रुत्वा	ब्राह्मणोंकी बात सुनकर	**तत् प्रष्टुं**	उसे पूछनेके लिए
यजमानः अङ्गः	यजमान राजा अङ्गने	**सदस्यान्**	सदस्योंसे
सुदुर्मनाः	अत्यन्त खिन्न होकर	**तत् अनुज्ञया**	उनकी अनुमतिसे
		वाचं व्यसृजत्	मौन तोड़कर पूछा ॥२९॥

*अग उवाच**

नागच्छन्त्याहुता देवा न गृह्णन्ति ग्रहानिह ।
सदसस्पतयो ब्रूत किमवद्यं मया कृतम् ॥३०॥

न आगच्छन्ति आहुता देवा न गृह्णन्ति ग्रहान् इह सदसस्पतयः ब्रूत किं अवद्यं मया कृतम् ॥३०॥

सदसस्पतयः	सदस्यजनो !	**न ग्रहान्**	
इह	इस यज्ञमें	**गृह्णन्ति**	न सोमपात्र ही लेते हैं,
आहुता	आह्वान करनेपर		
देवा न		**ब्रूत**	(अतः) बतलाइये
आगच्छन्ति	देवता नहीं आ रहे हैं,	**मया किं**	मुझसे क्या
		अवद्यं कृतं	अपराध हो गया है ? ॥३०॥

सदस्पतय ऊचुः -

नरदेवेह भवतो नाघं तावन्मनाक् स्थितम् ।
अस्त्येकं प्राक्तन मघं यदिहेदृक् त्वमप्रजः ॥३१॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

नरदेव इह भवतः न अघं तावत् मनाक् स्थितं अस्ति एकं प्राक्तनं अघं यत् इह ईदृक् त्वं अप्रजः ॥३१॥

नरदेव	राजन् !	**अघं अस्ति**	पाप है,
इह भवतः अघं	यहां (इस यज्ञमें) आपसे दोष	**यत् इह ईदृक्**	जिससे यहां (इस जन्ममें) इस प्रकार
तावत् मनाक् स्थितं न	अब तक तनिक भी हुआ नहीं है,	**त्वं अप्रजः**	आप सन्तानहीन हैं ॥३१॥
एकं प्राक्तनं	किन्तु एक पुराना (पूर्वजन्मका)		

तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रजं नृप ।
इष्टस्ते पुत्रकामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ॥३२॥

तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रजं नृप इष्टः ते पुत्र कामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ॥३२॥

नृप	राजन् !	**पुत्र कामस्य**	पुत्रकी कामनासे
ते भद्रं	आपका कल्याण हो	**इष्टः**	यज्ञ करनेपर
तथा आत्मानं	इस प्रकार अपनेको (यज्ञसे)	**यज्ञभुक्**	यज्ञभोक्ता भगवान
सुप्रजं साधय	सत् पुत्रवान बनाइये—	**ते पुत्रदास्यति**	आपको पुत्र देंगे ॥३२॥

तथा स्वभागधेयानि ग्रहीष्यन्ति दिवौकसः ।
यद्यज्ञपुरुषः साक्षादपत्याय हरिर्वृतः ॥३३॥

तथा स्वभाग धेयानि ग्रहीष्यन्ति दिवौकसः यत् यज्ञ पुरुषः साक्षात् अपत्याय हरिः वृतः ॥३३॥

यत् साक्षात्	जब साक्षात्	**तथा दिवौकसः**	तब देवता
यज्ञ पुरुषः हरिः	यज्ञ पुरुष श्रीहरिका	**स्वभाग धेयानि**	अपने-अपने भाग
अपत्याय वृतः	पुत्रके लिए वरण किया जायगा	**ग्रहीष्यन्ति**	स्वतः ग्रहण करेंगे ॥३३॥

तांस्तान् कामान् हरिर्दद्याद्यान् यान् कामयते जनः ।
आराधितो यथैवैष तथा पुंसा फलोदयः ॥३४॥

तान् तान् कामान् हरिः दद्यात् यान् यान् कामयते जनः आराधितः यथा एव एष तथा पुंसां फलोदयः ॥३४॥

जनः यान् यान्	भक्त जो जो
कामयते	चाहता है,
हरिः तान् तान्	श्रीहरि वही वही
कामान् दद्यात्	कामना (पूरा) दे देते हैं,
यथा एव एष	जिस प्रकारसे इन (प्रभु) की
आराधितः	आराधना की जाती है
पुंसां तथा फलोदयः	पुरुषको वैसा ही फल प्राप्त होता है ॥२४॥

*मैत्रेय उवाच**–

इति व्यवसिता विप्रास्तस्यराज्ञः प्रजातये ।
पुरोडाशं निरवपन् शिपिविष्टाय विष्णवे ॥३५॥

इति व्यवसिता विप्राः तस्य राज्ञः प्रजातये पुरोडाशं निरवपन् शिपि विष्टाय विष्णवे ॥३५॥

विप्राः	ब्राह्मणोंने
इति व्यवसिता	ऐसा निश्चय करके
तस्य राज्ञः	उन राजा (अंग)के
प्रजातये	पुत्र उत्पत्तिके (संकल्पसे)
शिपि विष्टाय	यज्ञीय पशुमें आविष्ट
विष्णवे	भगवान विष्णुको
पुरोडाशं	पुरोडाश (नामक चरु)
निरवपन्	प्रदान किया ॥३५॥

तस्मात्पुरुष उत्तस्थौ हेममाल्यमलाम्बरः ।
हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धमादाय पायसम् ॥३६॥

तस्मात् पुरुष उत्तस्थौ हेममालि अमल अम्बरः हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धं आदाय पायसं ॥३६॥

---

* अन्य प्रतियोंमें यह उवाच नहीं है ।

तस्मात्	उस (यज्ञ कुंड) से
हेममालि	स्वर्णकी माला पहिने
अमल अम्बरः	निर्मल वस्त्र धारण किये,
हिरण्मयेन पात्रेण	सोनेके पात्रमें
सिद्धं पायसं	
आदाय	पकी खीर लिये
पुरुष उत्तस्थौ	एक पुरुष ऊपर निकला ॥३६॥

स विप्रानुमतो राजा गृहीत्वाञ्जलिनौदनम् ।
अवघ्राय मुदा युक्तः प्रादात्पत्न्या उदारधीः ॥३७॥

स विप्र अनुमतः राजा गृहीत्वा अञ्जलिना ओदनं अवघ्राय मुदायुक्तः प्रादात् पत्न्या उदारधीः ॥३७॥

विप्र अनुमतः	ब्राह्मणोंकी आज्ञासे
स उदारधीः	उस उदार बुद्धि
राजा	राजाने
अञ्जलिना	अञ्जलिमें
ओदनं गृहीत्वा	(वह) खीर लेकर
अवघ्राय	उसे सूंघकर
मुदायुक्तः	प्रसन्न होकर
पत्न्या प्रादात्	पत्नीको दे दिया ॥३७॥

सा तत्पुंसवनं राज्ञी प्राश्य वै पत्युरादधे ।
गर्भं काल उपावृत्ते कुमारं सुषुवेऽप्रजा ॥३८॥

सा तत् पुंसवनं राज्ञी प्राश्य वै पत्युः आदधे गर्भं काल उपावृत्ते कुमारं सुषुवे अप्रजा ॥३८॥

सा अप्रजा राज्ञी	उस सन्तानहीना रानीने
तत् पुंसवनं	उस पुत्र प्रदायिनी (खीर) को
प्राश्य वै	खाकर ही
पत्युः गर्भं आदधे	पतिसे गर्भधारण किया,
काल उपावृत्ते	(फिर) समय आनेपर
कुमारं सुषुवे	पुत्रको जन्म दिया ॥३८॥

स बाल एव पुरुषो मातामहमनुव्रतः ।
अधर्मांशोद्भवं मृत्युं तेनाभवदधार्मिकः ॥३९॥

स बाल एव पुरुषः मातामहं अनुव्रतः अधर्म अंश उद्भवं मृत्युं तेन अभवत् अधार्मिकः ॥३९॥

स पुरुषः	
बाल एव	वह बालक बचपनसे ही
अधर्म अंश उद्भवं	अधर्मके अंशसे उत्पन्न था,
तेन अधार्मिकः	इससे अधार्मिक और
मातामहं मृत्युं	अपने नाना मृत्युका
अनुव्रतः अभवत्	अनुयायी हो गया ॥३ ॥

स शरासनमुद्यम्य मृगयुर्वनगोचरः ।
हन्त्यसाधुर्मृगान् दीनान् वेनोऽसावित्यरौज्जनः ॥४०॥

स शरासनं उद्यम्य मृगयुः वनगोचरः हन्ति असाधुः मृगान् दीनान् वेनः असा इति अरौत् जनः ॥४०॥

स असाधुः	वह दुष्ट
शरासनं उद्यम्य	धनुष लेकर
वनगोचरः	वनमें मिलनेवाले (पशुओंको)
मृगयुः	ढूँढ़-ढूँढ़कर
दीनान् मृगान्	
हन्ति	बेचारे हरिणोंको मारता
जनः असौ वेनः	लोग 'यह वेन है'
इति अरौत्	इस प्रकार पुकारने लगे ॥४०॥

आक्रीडे क्रीडतो बालान् वयस्यानतिदारुणः ।
प्रसह्य निरनुक्रोशः पशुमारममारयत् ॥४१॥

आक्रीडे क्रीडतः बालान् वयस्यान् अति दारुणः प्रसह्य निरनुक्रोशः पशुमारं अमारयत् ॥४१॥

अति दारुणः	अत्यन्त क्रूर (वह)
निरनुक्रोशः	निर्दय
आक्रीडे क्रीडतः	मैदानमें खेलते
वयस्यान्	
बालान्	अपनी आयुके बालकोंको
प्रसह्य	जबरदस्ती
पशुमारं	पशुकी भाँति पीटकर
अमारयत्	मार डालता था ॥४१॥

तं विचक्ष्य खलं पुत्रं शासनैर्विविधैर्नृपः ।
यदा न शासितुं कल्पो भृशमासीत्सुदुर्मनाः ॥४२॥

तं विचक्ष्य खलं पुत्रं शासनैः विविधैः नृपः यदा न शासितुं कल्पः भृशं आसीत् सुदुर्मनाः ॥४२॥

तं पुत्रं खलं	उस पुत्रको दुष्ट	**यदा शासितुं**	
विचक्ष्य	देखकर	**कल्पः न**	जब अनुशासित
यदा नृपः	जब राजा (अङ्ग)		करनेमें समर्थ नहीं
विविधैः			हुए (तब)
शासनैः	अनेक प्रकारसे सुधारनेकी चेष्टा करके	**भृशं सुदुर्मनाः**	अत्यन्त दुःखी
		आसीत्	हो गये ॥४२॥

प्रायेणाभ्यर्चितो देवो येऽप्रजा गृहमेधिनः ।
कदपत्यभृतं दुःखं ये न विन्दन्ति दुर्भरम् ॥४३॥

प्रायेण अभ्यर्चितः देवः ये अप्रजा गृहमेधिनः कदपत्य भृतं दुःखं ये न विन्दन्ति दुर्भरम् ॥४३॥

ये गृहमेधिनः	(वे राजा मन ही मन कहने लगे) जो गृहस्थ	**देवः अभ्यर्चितः**	भगवानकी पूजा की होगी,
अप्रजा	सन्तान हीन हैं	**ये न**	जिससे (वे)
प्रायेण	प्रायः (पूर्व जन्ममें उन्होंने)	**कदपत्य भृतं**	कुपुत्रकी करतूतसे
		दुर्भरं दुःखं	(होनेवाले) दुःसह दुःखको
		न विन्दन्ति	नहीं पाते ॥४३॥

यतः पापीयसी कीर्तिरधर्मश्च महान्नृणाम् ।
यतो विरोधः सर्वेषां यत आधिरनन्तकः ॥४४॥

यतः पापीयसी कीर्तिः अधर्मः च महान् नृणां यतः विरोधः सर्वेषां यत आधिः अनन्तकः ॥४४॥

यतः कीर्तिः	जिससे यश	**यतः सर्वेषां**	जिससे सबका
पापीयसी	पापमय हो जाय,	**विरोधः**	विरोध हो
च नृणां अधर्मः	और मनुष्यको अधर्ममार्गी बनना पड़े,	**यतः अनन्तकः**	जिससे अन्तहीन
		आधिः	चिन्ता (मिले) ॥४४

कस्तं प्रजापदेशं वै मोहबन्धनमात्मनः ।
पण्डितो बहु मन्येत यदर्थाः क्लेशदा गृहाः ॥४५॥

कः तं प्रजा अपदेशं वै मोहबन्धनं आत्मनः पण्डितः बहु मन्येत यत् अर्थाः क्लेशदा गृहाः ॥४५॥

यत् अर्थाः	जिसके कारण	**प्रजा अपदेशं**	पुत्र कहे जाने वालेको
गृहाः क्लेशदाः	घर दुःखदायी हो जाय	**वै कः पण्डितः**	भला कौन विद्वान
तं आत्मनः	उस अपनेको	**बहु मन्येत**	अच्छा मानेगा ॥४५
मोहबन्धनं	मोहमें बाँधनेवाले		

कदपत्यं वरं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात् ।
निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत्क्लेशनिवहा गृहाः ॥४६॥

कद् अपत्यं वरं मन्ये सद् अपत्यात् शुचां पदात् निर्विद्येत गृहात् मर्त्यः यत् क्लेश निवहा गृहाः ॥४६॥

शुचां पदात्	शोकके स्थान जिसे छोड़नेमें (बहुत शोक होता है)	**यत् गृहाः**	क्योंकि घर
		क्लेश निवहा	क्लेश दायी ही है
		मर्त्यः गृहात्	मनुष्य घरसे (कुपुत्र-के कारण)
सद् अपत्यात्	सुपुत्रसे		
कद् अपत्यं	कुपुत्रको	**निर्विद्येत**	विरक्त हो जाता
वरं मन्ये	(मैं) अच्छा मानता हूँ		है ॥४६॥

एवं स निर्विण्णमना नृपो गृहा-
न्निशीथ उत्थाय महोदयोदयात् ।
अलब्धनिद्रोऽनुपलक्षितो नृभि-
र्हित्वा गतो वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥४७॥

एवं स निर्विण्णमना नृपः गृहात् निशीथ उत्थाय महोदय उदयात् अलब्धनिद्रः अनुपलक्षितः नृभिः हित्वा गतः वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥४७॥

एवं स नृपः	इस प्रकार वे राजा (अङ्ग)
निर्विण्णमना	विरक्त चित्त होकर
अलब्धनिद्रः	(उन्हें) नींद नहीं आयी,
महोदय उदयात्	परम कल्याणका समय आनेसे
वेनसुवं प्रसुप्तां	वेनकी माताको सोती
हित्वा	छोड़कर
निशीथ उत्थाय	आधी रातमें उठकर
नृभिः	
अनुपलक्षितः	मनुष्योंसे अलक्षित रहते
गृहात् गतः	घरसे चले गये ॥४७॥

विज्ञाय निर्विद्य गतं पतिं प्रजाः
पुरोहितामात्यसुहृद्गणादयः ।
विचिक्युरुर्व्यामतिशोककातरा
यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः ॥४८॥

विज्ञाय निर्विद्य गतं पतिं प्रजाः पुरोहित अमात्य सुहृत् गण आदयः विचिक्युः उर्व्यां अति शोक कातरा यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः ॥४८॥

यथा निगूढं पुरुषं	जैसे (हृदयमें) छिपे परम पुरुषको
कुयोगिनः	ठीक साधन न जाननेवाले (बाहर ढूँढ़ते हैं वैसे ही)
पतिं	अपने स्वामीको
निर्विद्य गतं	विरक्त होकर गया
विज्ञाय	जानकर
प्रजाः पुरोहित अमात्य सुहृत्-	प्रजा, पुरोहित,

गण आदयः मन्त्री, सम्बन्धी आदि
अति शोक कातरा शोकसे अत्यन्त व्याकुल होकर
उर्व्यां विचिक्युः पृथ्वीपर ढूँढ़ने लगे ॥४८॥

अलक्षयन्तः पदवीं प्रजापते-
र्हतोद्यमाः प्रत्युपसृत्य ते पुरीम् ।
ऋषीन् समेतानभिवन्द्य साश्रवो
न्यवेदयन् पौरव भर्तृ विप्लवम् ॥४९॥

अलक्षयन्तः पदवीं प्रजापतेः हत उद्यमाः प्रति उपसृत्य ते पुरीं ऋषीन् समेतान् अभिवन्द्य साश्रवः न्यवेदयन् पौरव भर्तृ विप्लवम् ॥४९॥

प्रजापतेः पदवीं राजाके स्थानका
अलक्षयन्तः पता न पाकर,
हत उद्यमाः व्यर्थ उद्योग होकर,
ते पुरीं प्रति उपसृत्य वे लोग लौटकर नगर आये और
साश्रवः आंसू बहाते
समेतान् ऋषीन् एकत्रित मुनियोंको
अभिवन्द्य प्रणाम करके
पौरव भर्तृ पुरुवंशके स्वामीका
विप्लवं लापता होना
न्यवेदयन् निवेदन किया ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

भृग्वादयस्ते मुनयो लोकानां क्षेमदर्शिनः ।
गोप्तर्यसति वै नृणां पश्यन्तः पशुसाम्यताम् ॥१॥

भृग्वादयः ते मुनयः लोकानां क्षेमदर्शिनः गोप्तरि असति वै नृणां पश्यन्तः पशु साम्यताम् ॥१॥

लोकानां क्षेमदर्शिनः	लोगोंकी कुशल चाहनेवाले
ते भृग्वादयः मुनयः	उन भृगु आदि मुनियोंने
गोप्तरि असति	रक्षक न रहनेपर
नृणां वै	मनुष्योंमें भी
पशु साम्यतां	पशुओंकी समानता (उच्छृङ्खलता)
पश्यन्तः	देखते हुए ॥१॥

वीर मातरमाहूय सुनीथां ब्रह्मवादिनः ।
प्रकृत्यसम्मतं वेनमभ्यषिञ्चन् पतिं भुवः ॥२॥

वीर मातरं आहूय सुनीथां ब्रह्मवादिनः प्रकृति असम्मतं वेनं अभ्यषिञ्चन् पतिं भुवः ॥२॥

ब्रह्मवादिनः	(उन) वेदज्ञोंने
वीर मातरं सुनीथां	वीरमाता सुनीथाको
आहूय	बुलाकर
प्रकृति असम्मतं	मन्त्रियोंके सहमत न होनेपर भी
वेनं भुवः पतिं	वेनको भूपति पदपर
अभ्यषिञ्चन्	अभिषिक्त किया ॥२॥

श्रुत्वा नृपासनगतं वेनमत्युग्रशासनम् ।
निलिल्युर्दस्यवः सद्यः सर्पत्रस्ता इवाखवः ॥३॥

श्रुत्वा नृप आसन गतं वेनं अति उग्रशासनं निलिल्युः दस्यवः सद्यः सर्पत्रस्ताः इव आखवः ॥३॥

अति उग्रशासनं	अत्यन्त कठोर शासन करनेवाले
वेनं नृप	
आसन गतं	वेनको राज्यासनपर बैठे
श्रुत्वा	सुनकर
सद्यः दस्यवः	तुरन्त सब डाकू
सर्पत्रस्ताः	सर्पसे डरे
आखवः इव	चूहोंके समान
निलिल्युः	छिप गये ॥३॥

स आरूढनृपस्थान उन्नद्धोऽष्टविभूतिभिः ।
अवमेने महाभागान् स्तब्धः सम्भावितः स्वतः ॥४॥

स आरूढ नृपस्थान उन्नद्धः अष्ट विभूतिभिः अवमेने महाभागान् स्तब्धः सम्भावितः स्वतः ॥४॥

स नृपस्थान	वह (वेन) राज्यासनपर
आरूढ	बैठकर
अष्ट विभूतिभिः	आठो (लोकपालों) के ऐश्वर्यके कारण
उन्नद्धः	उन्मत्त हो गया,
स्वतः	
सम्भावितः	अपनेको ही सबसे सम्मान्य मानकर
स्तब्धः	
महाभागान्	(वह) मूर्ख महात्माओंका
अवमेने	अपमान करने लगा ॥४॥

एवं मदान्ध उत्सिक्तो निरङ्कुश इव द्विपः ।
पर्यटन् रथमास्थाय कम्पयन्निव रोदसी ॥५॥

एवं मदान्ध उत्सिक्तः निरङ्कुश इव द्विपः पर्यटन् रथं आस्थाय कम्पयन् इव रोदसी ॥५॥

एवं मदान्ध	इस प्रकार मदसे अन्धा होकर
उत्सिक्तः	ऐश्वर्य पाकर
रथं आस्थाय	रथपर बैठकर
निरङ्कुश	
द्विपः इव	अंकुशहीन हाथीके समान
रोदसी	
कम्पयन् इव	दिशाओंको कँपात-सा
पर्यटन्	घूमने लगा ॥५॥

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् ।
इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥६॥

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् इति न्यवारयत् धर्मं भेरी घोषेण सर्वशः ॥६॥

सर्वशः भेरी घोषेण	सर्वत्र नगाड़ा बजवाकर (मुनादी करके)
न यष्टव्यं	(किसीको) यज्ञ नहीं करना चाहिए,
न दातव्यं	दान नहीं करना चाहिए,
द्विजाः क्वचित्	ब्राह्मणो ! कभी भी
होतव्यं न	हवन मत करना !'
इति धर्मं	इस प्रकार धर्म करना
न्यवारयत्	रोकने लगा ॥६॥

वेनस्यावेक्ष्य मुनयो दुर्वृत्तस्य विचेष्टितम् ।
विमृश्य लोकव्यसनं कृपयोचुः स्म सत्रिणः ॥७॥

वेनस्य अवेक्ष्य मुनयः दुर्वृत्तस्य विचेष्टितं विमृश्य लोक व्यसनं कृपया उचुः स्म सत्रिणः ॥७॥

दुर्वृत्तस्य वेनस्य विचेष्टितं अवेक्ष्य	दुश्चरित्र वेनका अत्याचार देखकर
लोक व्यसनं	संसारपर संकट आया
विमृश्य	विचार करके,
सत्रिणः स्म मुनय;	यज्ञ-दीक्षित होनेपर भी मुनियोंने
कृपया ऊचुः	कृपा वश कहा ॥७॥

मुनय ऊचुः*-

अहो उभयतः प्राप्तं लोकस्य व्यसनं महत् ।
दारुण्युभयतो दीप्ते इव तस्करपालयोः ॥८॥

अहो उभयतः प्राप्तं लोकस्य व्यसनं महत् दारुणि उभयतः दीप्ते इव तस्कर पालयोः ॥८॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अहो उभयतः	अहो ! दोनों ओरसे	**दारुणि इव**	लकड़ी (पर स्थित
तस्कर पालयोः	डाकुओं तथा राजासे		चींटी) के समान
लोकस्य	लोकपर	**महत् व्यसनं**	महान् संकट
उभयतः दीप्ते	दोनों ओरसे जलती	**प्राप्तं**	आ गया ॥८॥

अराजकभयादेष कृतो राजातदर्हणः ।
ततोऽप्यासीद्भयं त्वद्य कथं स्यात्स्वस्ति देहिनाम् ॥९॥

अराजक भयात् एष कृतः राजा अत दर्हणः ततः अपि आसीत् भयं तु अद्य कथं स्यात् स्वस्ति देहिनाम् ॥९॥

अराजक भयात्	अराजकताके भयसे	**तु आसीत्**	ही आ गया
एष राजा कृतः	इस (वेन) को राजा बनाया,	**अद्य देहिनां**	इस समय शरीर धारियोंकी
अत दर्हणः	यह इसके योग्य नहीं था,	**स्वस्ति कथं स्यात्**	कुशल कैसे हो ? ॥९॥
ततः अपि भयं	उससे भी भय		

अहेरिव पयःपोषः पोषकस्याप्यनर्थभृत् ।
वेनः प्रकृत्यैव खलः सुनीथागर्भसम्भवः ॥१०॥

अहेः इव पयः पोषः पोषकस्य अपि अनर्थभृत् वेनः प्रकृति एव खलः सुनीथा गर्भं सम्भवः ॥१०॥

अहेः पयः पोषः	सांपको दूध पिलाकर पालनेके	**सुनीथा गर्भ सम्भवः**	मृत्युकी पुत्री) सुनीथाके पेटसे
इव पोषकस्य	समान पालनेवालेके		उत्पन्न
अपि अनर्थभृत्	लिए भी अनर्थ करनेवाला होता है,	**वेनः प्रकृति एव खलः**	वेन स्वभावसे ही दुष्ट है ॥१०॥

निरूपतिः प्रजापालः स जिघांसति वै प्रजाः ।
तथापि सान्त्वयेमामुं नास्मांस्तत्पातकं स्पृशेत् ॥११॥

निरूपतिः प्रजापालः स जिघांसति वै प्रजाः तथा अपि सान्त्वये अमुं न अस्मात् तत् पातकं स्पृशेत् ॥११॥

प्रजापालः	प्रजाकी रक्षाके लिए (इसे हमने)
निरूपतिः	नियुक्त किया था,
स वै	वही अब
प्रजाः जिघांसति	प्रजाको मार रहा है,
तथा अपि अमुं	फिर भी इसे
सान्त्वये	समझाना चाहिए
अस्माकं	(इससे) हम लोगोंको
तत् पातकं	उसका पाप
न स्पृशेत्	नहीं लगेगा ॥११॥

तद्विद्भिरसद्वृत्तो वेनोऽस्माभिः कृतो नृपः ।
सान्त्वितो यदि नो वाचं न ग्रहीष्यत्यधर्मकृत् ॥१२॥

तत् विद्वद्भिः असत् वृत्तः वेनः अस्माभिः कृतः नृपः सान्त्वितः यदि नः वाचं न ग्रहीष्यति अधर्म कृत् ॥१२॥

तत् विद्वद्भिः वेनः असत्	यह जानते हुए कि
वृत्तः	वेन असदाचारी है
अस्माभिः नृपः	
कृतः	हम लोगोंने (उसे) राजा बना दिया,
यदि अधर्म कृत्	यदि (वह) अधर्मी
सान्त्वितः	समझानेपर
नः वाचं	हमारी बात
न ग्रहीष्यति	नहीं मानेगा ॥१२॥

लोकधिक्कारसन्दग्धं दहिष्यामः स्वतेजसा ।

लोकधिक्कार सन्दग्धं दहिष्यामः स्वतेजसा ।

लोकधिक्कार	तो लोगोंके धिक्कारनेसे
सन्दग्धं	(पहिलेसे) जले हुएको
स्वतेजसा	अपने तेजसे (हम लोग)
दहिष्यामः	जला देंगे ।

*मैत्रेय उवाच**-

एवमध्यवसायैनं मुनयो गूढमन्यवः ।
उपव्रज्याब्रुवन् वेनं सान्त्वयित्वा च सामभिः ॥१३॥

एवं अध्यवसाय एनं मुनयः गूढमन्यवः उपव्रज्य अब्रुवन् वेनं सान्त्वयित्वा च सामभिः ॥१३॥

एवं अध्यवसाय	इस प्रकारका निश्चय करके
गूढमन्यवः	छिपे क्रोध वाले
मुनयः	मुनिगण
एनं वेनं	इस वेनके
उपव्रज्य च	पास जाकर तथा
सामभिः	सामनीतिके अनुसार
सान्त्वयित्वा	सान्त्वना देकर
अब्रुवन्	बोले ॥१३॥

मुनय ऊचुः

नृपवर्य निबोधैतद्यत्ते विज्ञापयाम भोः ।
आयुः श्रीबलकीर्तीनां तव तात विवर्धनम् ॥१४॥

नृपवर्य निबोध एतत् ते विज्ञापयाम भोः आयुः श्रीबल कीर्तीनां तव तात विवर्धनम् ॥१४॥

भोः नृपवर्य	हे राजन्यश्रेष्ठ !
एतत् निबोध	यह बात सुनिये
ते विज्ञापयाम	आपको (हम) बतलाते हैं,
तात तव	तात ! (यह) आपकी
आयुः श्रीबल कीर्तीनां	आयु, लक्ष्मी, बल
विवर्धनं	यशको बढ़ानेवाली है ॥१४॥

धर्म आचरितः पुंसां वाङ्मनः कायबुद्धिभिः ।
लोकान् विशोकान् वितरत्यथानन्त्यमसङ्गिनाम् ॥१५॥

धर्म आचरितः पुंसां वाङ्मनः काय बुद्धिभिः लोकान् विशोकान् वितरति यथा अनन्त्यं असङ्गिनाम् ॥१५॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

पुंसां	पुरुषों द्वारा
वाङ्मनः काय बुद्धिभिः	वाणी, मन, शरीर, बुद्धिसे
धर्मं आचरितः	धर्माचरण करनेपर
विशोकान्	शोकहीन (स्वर्गादि) लोक
वितरति	देता है,
यथा	वही (धर्म) निष्काम
असङ्गिनाम्	भावसे करनेपर
अनन्त्यं	अनन्त फल (मोक्ष देता है) ॥१५॥

स ते मा विनशेद्वीर प्रजानां क्षेमलक्षणः ।
यस्मिन् विनष्टे नृपतिरैश्वर्यादवरोहति ॥१६॥

स ते मा विनशेत् वीर प्रजानां क्षेमलक्षणः यस्मिन् विनष्टे नृपतिः ऐश्वर्यात् अवरोहति ॥१६॥

वीर	वीरवर !
प्रजानां क्षेम-लक्षणः	प्रजाका कल्याण रूप
स ते	वह (धर्म) आपके द्वारा
मा विनशेत्	नष्ट न हो,
यस्मिन् विनष्टे	जिस (धर्म) के नष्ट होनेपर
नृपतिः	राजा
ऐश्वर्यात्	
अवरोहति	ऐश्वर्य भ्रष्ट हो जाता है ॥१६॥

राजन्नसाध्वमात्येभ्यश्चोरादिभ्यः प्रजा नृपः ।
रक्षन् यथा बलिं गृह्णन्निह प्रेत्य च मोदते ॥१७॥

राजन् असाधु अमात्येभ्यः चोरादिभ्यः प्रजा नृपः रक्षन् यथा बलिं गृह्णन् इह प्रेत्य च मोदते ॥१७॥

राजन्	राजन् !
असाधु अमात्येभ्यः	दुष्ट मन्त्रियोंसे (तथा)
चोरादिभ्यः	चोर आदिसे
नृपः प्रजा रक्षन्	राजा प्रजाकी रक्षा करके
यथा बलिं	
गृह्णन्	उचित कर लेकर
इह प्रेत्य च	इस लोकमें तथा परलोकमें भी
मोदते	सुख पाता है ॥१७॥

यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान् यज्ञपूरुषः ।
इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितैः ॥१८॥

यस्य राष्ट्रे पुरे च एव भगवान् यज्ञपूरुषः इज्यते स्वेन धर्मेण जनैः वर्णाश्रम अन्वितैः ॥१८॥

यस्य राष्ट्रे च पुरे एव भगवान् यज्ञ-पूरुषः	जिसके राज्यमें तथा नगरमें भी भगवान् यज्ञ-पुरुष	**अन्वितैः**	वर्णाश्रम धर्मके पालक
वर्णाश्रम		**जनैः स्वेन धर्मेण**	लोगों द्वारा अपने धर्म पालनसे
		इज्यते	पूजित होते हैं ॥१८॥

तस्य राज्ञो महाभाग भगवान् भूतभावनः ।
परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने ॥१९॥

तस्य राज्ञः महाभाग भगवान् भूत भावनः परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतः निजशासने ॥१९॥

तस्य महाभाग राज्ञः	उस महाभाग राजापर	**भूत भावनः**	प्राणियोंके रक्षक
निजशासने तिष्ठतः	अपनी आज्ञा पालन करने वालेपर	**विश्वात्मा भगवान् परितुष्यति**	विश्वात्मा भगवान प्रसन्न रहते हैं ॥१९॥

तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे ।
लोकाः सपाला ह्येतस्मै हरन्ति बलिमादृताः ॥२०॥

तस्मिन् तुष्टे किं अप्राप्यं जगतां ईश्वरेश्वरे लोकाः सपालाः हि एतस्मै हरन्ति बलिं आदृताः ॥२०॥

जगतां ईश्वरेश्वरे	(ब्रह्मादि) जगदीश्वरोंके भी स्वामी
तस्मिन् तुष्टे	उन भगवानके सन्तुष्ट होनेपर
किं अप्राप्यं	क्या नहीं प्राप्त हो सकता,
हि	क्योंकि
सपालाः लोकाः	लोक पालोंके साथ सब लोक
आहृताः एतस्मै	आदर पूर्वक उन्हींको
बलिं हरन्ति	पूजोपहार अर्पित करते हैं ॥२०॥

तं सर्वलोकामरयज्ञसंग्रहं
त्रयीमयं द्रव्यमयं तपोमयम् ।
यज्ञैर्विचित्रैर्यजतो भवाय ते
राजन् स्वदेशाननुरोद्धुमर्हसि ॥२१॥

तं सर्वलोक अमर यज्ञ संग्रहं त्रयीमयं द्रव्यमयं तपः मयं यज्ञैः विचित्रैः यजतः भवाय ते राजन् स्वदेशान् अनुरोद्धुं अर्हसि ॥२१॥

राजन्	राजन् !
सर्वलोक अमर	सब लोकों, देवताओं,
यज्ञ संग्रहं	यज्ञोंके नियामक,
त्रयीमयं	वेद-स्वरूप,
द्रव्यमयं	सर्व पदार्थ रूप,
तपः मयं	तपोरूप
तं	उन (भगवान) की
ते भवाय	आपकी उन्नतिके लिए
विचित्रैः यज्ञैः	नाना प्रकारके यज्ञोंसे
यजतः	आराधना करनेका
स्वदेशान्	अपने देशसे
अनुरोद्धुं	(आपको) अनुरोध
अर्हसि	करना चाहिए ॥२१॥

यज्ञेन युष्मद्विषये द्विजातिभि-
र्वितायमानेन सुराः कला हरेः ।
स्विष्टाः सुतुष्टाः प्रदिशन्ति वाञ्छितं
तद्धेलनं नार्हसि वीर चेष्टितुम् ॥२२॥

यज्ञेन युष्मत् विषये द्विजातिभिः विताय मानेन सुराः कला हरेः स्विष्टाः सुतुष्टाः प्रदिशन्ति वाञ्छितं तत् हेलनं न अर्हसि वीर चेष्टितुम् ॥२२॥

युष्मत् विषये	आपके राज्यमें	**सुतुष्टाः**	अत्यन्त सन्तुष्ट होकर
द्विजातिभिः	ब्राह्मणों द्वारा	**वाञ्छितं**	
यज्ञेन विताय मानेन	यज्ञ-विस्तार करनेपर	**प्रदिशन्ति**	अभीष्ट प्रदान करेंगे
हरेः कला सुराः	श्रीहरिके कलांश देवता	**वीर**	वीरवर ! (आपको)
स्विष्टाः	भली प्रकार पूजित होनेपर	**तत् हेलनं**	उन (देवताओं) का अपमान
		न अर्हसि	नहीं करना चाहिए ॥२२॥

वेन उवाच–

बालिशा बत यूयं वा अधर्मे धर्ममानिनः ।
ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ॥२३॥

बालिशा बत यूयं वा अधर्मे धर्म मानिनः ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिं उपासते ॥२३॥

यूयं बत		**ये वृत्तिदं**	जैसे कोई (स्त्री) जीविका देनेवाले
बालिशा	तुम लोग या तो मूर्ख हो	**पतिं हित्वा**	पतिको छोड़कर
वा	अथवा	**जारं पतिं**	जार-पतिकी
अधर्मे धर्म मानिनः	अधर्मको धर्म मानने वाले हो,	**उपासते**	सेवा करती हो ॥२३॥

अवजानन्त्यमी मूढा नृपरूपिणमीश्वरम् ।
नानुविन्दन्ति ते भद्रमिह लोके परत्र च ॥२४॥

अवजानन्ति अमी मूढा नृप रूपिणं ईश्वरं न अनुविन्दन्ति ते भद्रं इह लोके परत्र च ॥२४॥

अमी मूढा नृप रूपिणं ईश्वरं	ये मूर्ख राजाके रूपमें (प्रत्यक्ष) ईश्वरका	**ते इह लोके परत्र च**	वे इस लोक और परलोकमें भी
अवजानन्ति	अपमान करते हैं	**भद्रं न अनुविन्दन्ति**	कुशलसे नहीं रह पाते ॥२४॥

को यज्ञपुरुषो नाम यत्र वो भक्तिरीदृशी ।
भर्तृस्नेहविदूराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥२५॥

कः यज्ञ पुरुषः नाम यत्र वः भक्तिः ईदृशी भर्तृ स्नेह विदूराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥२५॥

यत्र वः ईदृशी	जिसमें तुम लोगोंकी ऐसी	**भर्तृ स्नेह**	पतिके स्नेहसे
भक्तिः	भक्ति है (वह)	**विदूराणां**	वञ्चिता
यज्ञ पुरुषः नाम	यज्ञ-पुरुष नामक	**कुयोषितां**	दुष्टा स्त्रियोंकी
कः	कौन है ?	**यथा जारे**	जैसे जारमें (प्रीति होती है) ॥२५॥

विष्णुर्विरिञ्चो गिरिश इन्द्रो वायुर्यमो रविः ।
पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्निरपाम्पतिः ॥२६॥

विष्णुः विरिञ्चः गिरिशः इन्द्रः वायुः यमः रविः पर्जन्यः (मेघ) धनदः (कुवेर) सोमः (चन्द्र) क्षितिः अग्निः अपां पतिः (वरुण) ॥२६॥

एते चान्ये च विबुधाः प्रभवो वरशापयोः ।
देहे भवन्ति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः ॥२७॥

एते च अन्ये च विबुधाः प्रभवः वर शापयोः देहे भवन्ति नृपतेः सर्व देवमयः नृपः ॥२७॥

एते च अन्ये च	ये सब और दूसरे भी	**भवन्ति**	होते हैं,
वर शापयोः	वरदान तथा शाप देनेमें	**नृपः सर्व देवमयः**	राजा सर्वदेवमय है ॥२७॥
प्रभवः विबुधाः	समर्थ देवता		
नृपतेः देहे	राजाके शरीरमें		

तस्मान्मां कर्मभिर्विप्रा यजध्वं गतमत्सराः ।
बलिं च मह्यं हरत मत्तोऽन्यः कोऽग्रभुक् पुमान् ॥२८॥

तस्मात् मां कर्मभिः विप्राः यजध्वं गत मत्सराः बलिं च मह्यं हरत मत्तः अन्यः कः अग्रभुक् पुमान् ॥२८॥

तस्मात् विप्राः	इसलिए ब्राह्मणो !
गत मत्सराः	मत्सरता छोड़कर
कर्मभिः मां यजध्वं	अपने कर्मों द्वारा मेरी पूजा करो,
च मह्यं बलिं हरत	और मुझे भेंट दो,
मत्तः अन्यः	मुझसे भिन्न
कः पुमान्	कौन पुरुष
अग्रभुक्	प्रथम पूजा योग्य है ॥२८॥

मैत्रेय उवाच-

इत्थं विपर्ययमतिः पापीयानुत्पथं गतः ।
अनुनीयमानस्तद्याच्ञां न चक्रे भ्रष्टमङ्गलः ॥२९॥

इत्थं विपर्यय मतिः पापीयान् उत्पथं गतः अनुनीयमानः तद् याच्ञां न चक्रे भ्रष्ट मङ्गलः ॥२९॥

इत्थं	इस प्रकार
विपर्यय मतिः	उलटी बुद्धि होनेसे
उत्पथं गतः	कुमार्गपर लगा
पापीयान्	(वह) पापी (वेन)
भ्रष्ट मङ्गलः	क्षीण पुण्यने
अनुनीयमानः	विनय पूर्वक की गयी
तद् याच्ञां	उन (मुनयों) की प्रार्थनाको
न चक्रे	स्वीकार नहीं किया ॥२९॥

इति तेऽसत्कृतास्तेन द्विजाः पण्डितमानिना ।
भग्नायां भव्य याच्ञायां तस्मै विदुर चुक्रुधुः ॥३०॥

इति ते असत् कृताः तेन द्विजाः पण्डित मानिना भग्नायां भव्य याच्ञायां तस्मै विदुर चुक्रुधुः ॥३०॥

विदुर	विदुर !
इति	इस प्रकार
पण्डित मानिना	अपनेको विद्वान माननेवाले
तेन	उस (वेन) के द्वारा
असत् कृताः	अपमानित होकर
ते द्विजाः	वे ब्राह्मण
भव्य याच्ञायां	अपनी भव्य प्रार्थना
भग्नायां	टूट जाने (व्यर्थ होने) पर
तस्मै चुक्रुधुः	उसपर क्रुद्ध हो गये ॥३०॥

*मुनय ऊचुः** –

हन्यतां हन्यतामेष पापः प्रकृतिदारुणः ।
जीवञ्जगदसावाशु कुरुते भस्मसाद् ध्रुवम् ॥३१॥

हन्यतां हन्यतां एष पापः प्रकृति दारुणः जीवन् जगत् असाः आशु कुरुते भस्मसात् ध्रुवम् ॥३१॥

एष हन्यतां	'इसे मार डालो,
प्रकृति दारुणः	स्वभावसे ही दुष्ट
पापः हन्यतां	इस पापीको मार डालो !
असाः जीवन्	यह जीवित रह गया तो
ध्रुवं आशु जगत् भस्मसात् कुरुते	निश्चय शीघ्र ही पूरे संसारको भस्म कर देगा ॥३१॥

नायमर्हत्यसद्वृत्तो नरदेववरासनम् ।
योऽधियज्ञपतिं विष्णुं विनिन्दत्यनपत्रपः ॥३२॥

न अयं अर्हति असत्वृत्तः नरदेव वर आसनं यः अधियज्ञ पतिं विष्णुं विनिन्दति अनप त्रपः ॥३२॥

अयं असद्वृत्तः	यह कदाचारी
नरदेव वर	
आसनं	राजाके श्रेष्ठ सिंहासनके
अर्हति न	योग्य नहीं है,
यः अनप त्रयः	जो निर्लज्ज
अधियज्ञ पतिं	साक्षात् यज्ञपति
विष्णुं विनिन्दति	विष्णुकी निन्दा करता है ॥३२॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

को वैनं परिचक्षीत वेनमेकमृतेऽशुभम् ।
प्राप्त ईदृशमैश्वर्यं यदनुग्रहभाजनः ॥३३॥

कः वा एनं परिचक्षीत वेनं एकं ऋते अशुभं प्राप्त ईदृक् ऐश्वर्यं यत् अनुग्रह भाजनः ॥३३॥

यत् अनुग्रह भाजनः	जिनकी कृपापात्र होकर	**एकं अशुभं**	अकेले दुष्ट
ईदृक् ऐश्वर्यं प्राप्त	ऐसा ऐश्वर्य पाया	**वेनं ऋते**	वेनको छोड़कर
		कः वा एनं परिचक्षीत	कौन भला इन (श्रीहरिकी) निन्दा करेगा' ॥३३॥

*मैत्रेय उवाच**–

इत्थं व्यवसिता हन्तुमृषयो रूढमन्यवः ।
निजघ्नुर्हुङ्कृतैर्वेनं हतमच्युतनिन्दया ॥३४॥

इति व्यवसिता हन्तुं ऋषयः रूढमन्यवः निजघ्नुः हुङ्कृतैः वेनं हतं अच्युत निन्दया ॥३४॥

रूढमन्यवः	क्रोध चढ़े	**अच्युत निन्दया**	भगवानकी निन्दासे
ऋषयः	ऋषियोंने	**हतं**	पहिलेसे) मरेके समान
इति हन्तुं	इस प्रकार मार देनेका	**वेनं हुङ्कृतैः**	वेनको हुंकारसे
व्यवसिता	निश्चय करके,	**निजघ्नुः**	मार दिया ॥३४॥

ऋषिभिः स्वाश्रमपदं गते पुत्रकलेवरम् ।
सुनीथा पालयामास विद्ययोगेन शोचती ॥३५॥

ऋषिभिः स्व आश्रमपदं गते पुत्र कलेवरं सुनीथा पालयामास विद्ययोगेन शोचती ॥३५॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

ऋषिभिः	ऋषियोंके
स्व आश्रमपदं	अपने आश्रम-स्थानोंको
गते	चले जानेपर
सुनीथा शोचती	सुनीथाने चिन्तित होकर
विद्यायोगेन	(शवरक्षा) विद्याके द्वारा
पुत्र कलेवरं	पुत्रके शरीरको
पालयामास	रक्षित कर लिया ॥३५॥

एकदा मुनयस्ते तु सरस्वत्सलिलाप्लुताः ।
हुत्वाग्नीन् सत्कथाश्चक्रुरुपविष्टाः सरित्तटे ॥३६॥

एकदा मुनयः ते तु सरस्वति सलिल आप्लुताः हुत्वा अग्नीन् सत्कथाः चक्रुः उपविष्टाः सरित् तटे ॥३६॥

एकदा ते तु	
मुनयः	एक बार वही मुनिगण
सरस्वति सलिल आप्लुताः	सरस्वतीके जलमें स्नान करके,
अग्नीन् हुत्वा	अग्निहोत्र करके,
सरित् तटे	
उपविष्टाः	नदी-किनारे बैठे
सत्कथाः चक्रुः	हरिचर्चा कर रहे थे ॥३६॥

वीक्ष्योत्थितांस्तदोत्पातानाहुर्लोकभयङ्करान् ।
वीक्ष्य उत्थितान् तदा उत्पातान् आहुःलोकभयङ्करान्

तदा	
लोकभयङ्करान्	उस समय लोगोंके लिए भयंकर
उत्पातान्	
उत्थितान्	उत्पात होते
वीक्ष्य आहुः	देखकर बोले—

मुनय ऊचुः-*

अप्यभद्रमनाथाया दस्युभ्यो न भवेद्भुवः ॥३७॥

अपि अभद्रं अनाथाया दस्युभ्यः न भवेत् भुवः ॥३७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अनाथाया	स्वामीहीन हुई	**अपि अभद्रं**	कहीं अमंगल
भुवः	पृथ्वीका	**न भवेत्**	न हो जाय ॥३७॥
दस्युभ्यः	डाकुओं द्वारा		

मैत्रेय उवाच-

एवं मृशन्त ऋषयो धावतां सर्वतोदिशम् ।
पांसुः समुत्थितो भूरिश्चोराणामभिलुम्पताम् ॥३८॥

एवं मृशन्त ऋषयः धावतां सर्वतः दिशं पांसुः समुत्थितः भूरिः* चोराणां अभिलुम्पताम् ॥३८॥

ऋषयः एवं	ऋषि लोग इस प्रकार	**सर्वतः दिशं**	
मृशन्त	विचार कर ही रहे थे कि	**धावतां**	सब ओर दौड़ते
अभिलुम्पतां	सब ओर लूटपाट करने	**चोराणां**	चोरों (डाकुओं) के कारण
		भूरिः पांसुः	बहुत धूलि
		समुत्थितः	उड़ने लगी ॥३८॥

तदुपद्रवमाज्ञाय लोकस्य वसु लुम्पताम् ।
भर्तर्युपरते तस्मिन्नन्योन्यं च जिघांसताम् ॥३९॥

तत् उपद्रवं आज्ञाय लोकस्य वसु लुम्पतां भर्तुः उपरते तस्मिन् अन्योन्यं च जिघांसताम् ॥३९॥

तस्मिन्	उस प्रदेशमें	**तत् उपद्रवं**	
भर्तुः उपरते	स्वामीके न होनेसे	**आज्ञाय**	वह उपद्रव जानकर ॥३९॥
लोकस्य	लोगोंका		
वसु लुम्पतां	धन लूटते		
च अन्योन्यं			
जिघांसतां	तथा परस्पर एक दूसरेको मारते (डाकुओंका)		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

चोरप्रायं जनपदं हीनसत्त्वमराजकम् ।
लोकान्नावारयञ्छक्ता अपि तद्दोषदर्शिनः ॥४०॥

चोर प्रायं जनपदं हीनसत्त्वं अराजकं लोकान् न अवारयन् शक्ताः अपि तत् दोष दर्शिनः ॥४०॥

अराजकं	राजाके न होनेसे
जनपदं	वस्तियोंके (लोग)
हीनसत्त्वं	शक्तिहीन
चोर प्रायं	प्रायः चोर हो गये,
शक्ताः अपि	समर्थ होनेपर भी (मुनियोंने)
तत् दोष दर्शिनः	(रोकनेमें हिंसादि) उसके दोष देखनेके कारण
अवारयन् न	रोका नहीं ॥४०॥

ब्राह्मणः समदृक् शान्तो दीनानां समुपेक्षकः ।
स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिन्नभाण्डात्पयो यथा ॥४१॥

ब्राह्मणः समदृक् शान्तः दीनानां समुपेक्षकः स्रवते ब्रह्म तस्य अपि भिन्न भाण्डात् पयः यथा ॥४१॥

ब्राह्मणः	ब्राह्मण (भले)
समदृक् शान्तः	समदर्शी और शान्त हो, पर
दीनानं	
समुपेक्षकः	दीनोंकी उपेक्षा करनेवाला हो तो
तस्य अपि	उसका भी
ब्रह्म स्रवते	ब्रह्म-तेज क्षीण हो जाता है
यथा भिन्न	
भाण्डात्	जैसे फूटे बर्तनसे
पयः	दूध (चू जाता है) ॥४१॥

नाङ्गस्य वंशो राजर्षेरेष संस्थातुमर्हति ।
अमोघवीर्या हि नृपा वंशेऽस्मिन् केशवाश्रयाः ॥४२॥

न अङ्गस्य वंशः राजर्षेः एष संस्थातुं अर्हति अमोघ वीर्या हि नृपाः वंशे अस्मिन् केशव आश्रयाः ॥४२॥

राजर्षेः अङ्गस्य	राजर्षि अंगका
एष वंशः	यह वंश
संस्थातुं न	
अर्हति	समाप्त नहीं होना चाहिए
हि अस्मिन्	क्योंकि इस
केशव आश्रयाः	भगवदाश्रित
वंशे नृपाः	वंशमें राजा लोग
अमोघवीर्या	अमोघ वीर्य (होते हैं) ॥४२॥

विनिश्चित्यैवमृषयो विपन्नस्य महीपतेः ।
ममन्थुरूरुं तरसा तत्रासीद्बाहुको नरः ॥४३॥

विनिश्चित्य एवं ऋषयः बिपन्नस्य महीपतेः ममन्थुः उरुं तरसा तत्र आसीत् ऊर्द्वबाहुकः नरः ॥४३॥

ऋषयः एवं विनिश्चित्य	ऋषियोंने इस प्रकार निश्चय करके
विपन्नस्य महीपतेः	मरे हुए राजा (वेन) की
उरूं तरसा	जांघका बड़े वेगसे
ममन्थुः	मन्थन किया,
तत्र ऊर्द्वबाहुक नरः आसीत्	उससे एक बामन पुरुष उत्पन्न हुआ ॥४३॥

काककृष्णोऽतिह्रस्वाङ्गो ह्रस्वबाहुर्महाहनुः ।
ह्रस्वपान्निम्ननासाग्रो रक्ताक्षस्ताम्रमूर्धजः ॥४४॥

काक कृष्णः अति ह्रस्व अङ्गः ह्रस्व बाहुः महाहनुः ह्रस्वपात् निम्न नासाग्रः रक्ताक्षः ताम्र मूर्धजः ॥४४॥

काक कृष्णः	वह कौएके समान काला
अति ह्रस्व अङ्गः	बहुत छोटे शरीरका,
ह्रस्व बाहुः	छोटी भुजाओंवाला,
महाहनुः	भारी ठुड्ढीका,
ह्रस्वपात्	छोटे पैरों वाला,
निम्न नासाग्रः	दबी नासिकाग्रका,
रक्ताक्षः	लाल नेत्रों वाला तथा
ताम्र मूर्धजः	लाल केशों वाला था ॥४४॥

तं तु तेऽवनतं दीनं किं करोमीति वादिनम् ।
निषीदेत्यब्रुवंस्तात स निषादस्ततोऽभवत् ॥४५॥

तं तु ते अवनतं दीनं किं करोमि इति वादिनं निषीद इति ब्रुवं तात स निषादः ततः अभवत् ॥४५॥

तात	तात विदुर !
तं अवनतं	उस विनम्र
दीनं	दीन
किं करोमि इति	'क्या करूँ' यह
वादिनं	कहने वालेसे
ते तु निषीद	उन (ऋषियोंने) तो 'बैठ जाओ'
इति ब्रुवं	यह कहा
ततः स	इसलिए वह
निषादः अभवत्	निषाद हो गया ॥४५॥

तस्य वंश्यास्तु नैषादा गिरिकाननगोचराः ।
येनाहरज्जायमानो वेनकल्मषमुल्बणम् ॥४६॥

तस्य वंश्याः तु नैषादा गिरि कानन गोचराः येन अहरत् जायमानः वेन कल्मषं उल्बणम् ॥४६॥

येन जायमानः	जिसने उत्पन्न होकर
वेन उल्बणं	
कल्मषं	वेनके उग्र पापको
अहरत्	हरण कर (अपने ऊपर ले) लिया
तस्य वंश्याः तु	उसके वंशज तो
गिरि कानन	
गोचराः	पर्वत तथा वनोंमें पाये जाने वाले
नैषादा	निषाद लोग हैं ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते निषादोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

अथ तस्य पुनर्विप्रैरपुत्रस्य महीपतेः ।
बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥१॥

अथ तस्य पुनः विप्रैः अपुत्रस्य महीपतेः बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥१॥

अथ तस्य	फिर उस	**विप्रैः**	ब्राह्मणों द्वारा
अपुत्रस्य	पुत्रहीन	**मथ्यमानाभ्यां**	मन्थन होनेपर
महीपतेः	राजा (वेन) के	**मिथुनं**	एक जोड़ा
बाहुभ्यां	भुजाओंका	**समपद्यत**	उत्पन्न हुआ ॥१॥

तद् दृष्ट्वा मिथुनं जातमृषयो ब्रह्मवादिनः ।
ऊचुः परमसन्तुष्टा विदित्वा भगवत्कलाम् ॥२॥

तत् दृष्ट्वा मिथुनं जातं ऋषयः ब्रह्मवादिनः ऊचुः परम सन्तुष्टाः बिदित्वा भगवत् कलाम् ॥२॥

तत् मिथुनं जातं	उस जोड़ेको उत्पन्न हुआ	**परम सन्तुष्टाः**	अत्यन्त सन्तुष्ट होकर
दृष्ट्वा	देखकर	**ब्रह्मवादिनः**	
भगवत् कलां		**ऋषयः**	वेदज्ञ-ऋषि लोग
विदित्वा	उसे भगवानकी कला जानकर	**ऊचुः**	बोले ॥२॥

मुनय ऊचुः*-

एष विष्णोर्भगवतः कलाभुवनपालिनी ।
इयं च लक्ष्म्याः सम्भूतिः पुरुषस्यानपायिनी ॥३॥

एष विष्णोः भगवतः कला भुवनपालिनी इयं च लक्ष्म्याः सम्भूतिः पुरुषस्य अनपायिनी ॥३॥

एष	यह (पुरुष)	**पुरुषस्य**	परम पुरुष नारायणसे
भगवतः विष्णोः	भगवान् विष्णुकी		
भुवनपालिनी	त्रिभुवनका पालन करनेवाली	**अनपायिनी**	कभी पृथक न होनेवाली
कला	कला (से उत्पन्न) है,	**लक्ष्म्याः**	
इयं च	और यह (स्त्री)	**सम्भूतिः**	लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न है ॥३॥

अयं तु प्रथमो राज्ञां पुमान् प्रथयिता यशः ।
पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः ॥४॥

अयं तु प्रथमः राज्ञां पुमान् प्रथयिता यशः पृथुः नाम महाराजः भविष्यति पृथुश्रवाः ॥४॥

अयं तु	यह (पुरुष) तो	**पृथुश्रवाः**	
राज्ञां प्रथमः	राजाओंमें पहिला (राजा) होगा,	**महाराजः**	विपुल यशस्वी यह महाराज
यशः प्रथयिता	अपने यशका विस्तार करेगा,	**पृथुः नाम**	पृथु नामवाला
		भविष्यति	होगा ॥४॥

इयं च सुदती देवी गुणभूषणभूषणा ।
अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेवावरुन्धती ॥५॥

---

* यहाँ गीता प्रेसकी प्रतिमें 'ऋषय ऊचुः' है, पर पिछले अध्यायोंमें इन्हींको 'मुनयः' माना है ।

इयं च सुदती देवी गुण भूषण भूषणा अर्चिः नाम वरारोहा पृथुं एव अरुन्धती ॥५॥

इयं च	
सुदती देवी	और यह सुन्दर दांतोंवाली देवी
गुण भूषण	
भूषणा	गुणों तथा आभूषणोंको भी विभूषित करने वाली,
अर्चिः नाम	अर्चि नामवाली,
वरारोहा	सुन्दरी
पृथुं एव	
अरुन्धती	पृथुको ही पति बनावेगी ॥५॥

एष साक्षाद्धरेरंशो जातो लोकरिरक्षया ।
इयं च तत्परा हि श्रीरनुजज्ञेऽनपायिनी ॥६॥

एष साक्षात् हरेः अंशः जातः लोकरिरक्षया इयं च तत् परा हि श्रीः अनुजज्ञे अनपायिनी ॥६॥

एष साक्षात्	ये (पृथु) साक्षात्
हरेः अंशः	श्रीहरिके अंश हैं,
लोकरिरक्षया	लोकोंकी रक्षा करनेके लिए
जातः	उत्पन्न हुए हैं,
हि अनपायिनी	क्योंकि उनसे कभी पृथक नहीं रहतीं
इयं तत् परा च	ये उनके परायण ही है,
श्रीः अनुजज्ञे	(अतः ये) लक्ष्मीजी उनके पीछे ही उत्पन्न हुई हैं ॥६॥

मैत्रेय उवाच

प्रशंसन्ति स्म तं विप्रा गन्धर्वप्रवरा जगुः ।
मुमुचुः सुमनोधाराः सिद्धा नृत्यन्ति स्वःस्त्रियः ॥७॥

प्रशंसन्ति स्म तं विप्रा गन्धर्व प्रवरा जगुः मुमुचुः सुमनः धाराः सिद्धाः नृत्यन्ति स्वःस्त्रियः ॥७॥

विप्राः तं	ब्राह्मण उनकी
प्रशंसन्ति स्म	प्रशंसा करने लगे,
गन्धर्व	
प्रवरा जगुः	श्रेष्ठ गन्धर्व गाने लगे
सिद्धाः सुमनः	सिद्ध लोग पुष्पोंकी
धाराः मुमुचुः	झड़ीके समान वर्षा करने लगे,
स्वः स्त्रियः	स्वर्गीयस्त्रियां (अप्सराएँ)
नृत्यन्ति	नाचने लगीं ॥७॥

शङ्खतूर्यमृदङ्गाद्या नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ।
तत्र सर्व उपाजग्मुर्देर्षिपितृणां गणाः ॥८॥

शङ्ख तूर्य मृदङ्ग आद्या नेदुः दुन्दुभयः दिवि तत्र सर्व उपाजग्मुः देर्षिणां पितृणां गणाः ॥८॥

दिवि	आकाशमें
शङ्ख तूर्य मृदङ्ग	शंख, तुरही, मृदंग,
दुन्दुभयः आद्या	नगाड़े आदि
नेदुः	बजने लगे
देर्षिणां पितृणां गणाः	देवर्षियों और पितरोंके समूह
तत्र उपाजग्मुः	वहाँ आये ॥८॥

ब्रह्मा जगद्गुरुर्देवैः सहासृत्य सुरेश्वरैः ।
वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिह्नं गदाभृतः ॥९॥

ब्रह्मा जगद्गुरुः देवैः सह आसृत्य सुरेश्वरैः वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिह्नं गदाभृतः ॥९॥

जगद्गुरुः ब्रह्मा	जगद्गुरु ब्रह्माजी
देवैः सुरेश्वरैः	देवताओं तथा देवेश्वरोंके
सह आसृत्य	साथ आकर
वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते	पृथुके दाहिने हाथमें
गदाभृतः	भगवान गदाधरका
चिह्नं दृष्ट्वा	चिह्न (अखंडित चक्र) देखा ॥९॥

पादयोररविन्दं च तं वै मेने हरेः कलाम् ।
यस्याप्रतिहतं चक्रमंशः स परमेष्ठिनः ॥१०॥

पादयोः अरविन्दं च तं वै मेने हरेः कलां यस्य अप्रतिहतं चक्रं अंशः स परमेष्ठिनः ॥१०॥

च पादयोः
अरविन्दं और पैरोंमें कमल (चिह्न देखकर)
तं वै उन (पृथु) को निश्चित
हरेः कलां मेने श्री हरिकी कला मान लिया
यस्य अप्रतिहतं जिसके (दाहिने हाथमें अन्य रेखासे) अखण्डित
चक्रं चक्र चिह्न हो
स परमेष्ठिनः
अंशः वह भगवान विष्णु-का अंश होता है ॥१०॥

तस्याभिषेक आरब्धो ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ।
आभिषेचनिकान्यस्मै आजह्रुः सर्वतो जनाः ॥११॥

तस्य अभिषेकः आरब्धः ब्राह्मणैः ब्रह्मवादिभिः आभिषे च निकानि अस्मै आजह्रुः सर्वतः जनाः ॥११॥

ब्रह्मवादिभिः
ब्राह्मणैः वेदज्ञ ब्राह्मणोंने
तस्य अभिषेकः उन (पृथु) का अभिषेक
आरब्धः प्रारम्भ किया,
सर्वतः जनाः सब ओरके लोग
अस्मै इनके लिए
आभिषे च
निकानि अभिषेककी सामग्री
आजह्रुः ले आये ॥११॥

सरित्समुद्रा गिरयो नागा गावः खगा मृगाः ।
द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजह्रुरुपायनम् ॥१२॥

सरित् समुद्राः गिरयः नागाः गावः खगाः मृगाः द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजह्रुः उपायनम् ॥१२॥

सरित् समुद्राः
गिरयः नदियां, समुद्र, पर्वत,
नागाः गावः नाग, गौएँ,
खगाः मृगाः पक्षी, पशु,
द्यौः क्षितिः द्युलोक, पृथ्वी,
सर्वभूतानि सब प्राणी,
उपायनं
समाजह्रुः उपहार ले आये ॥१२॥

सोऽभिषिक्तो महाराजः सुवासाः साध्वलङ्कृतः ।
पत्न्यार्चिषालङ्कृतया विरेजेऽग्निरिवापरः ॥१३॥

सः अभिषिक्तः महाराजः सुवासाः साधु अलङ्कृतः पत्न्या अर्चिषा अलङ्कृतया विरेजे अग्निः इव अपरः ॥१३॥

सः महाराजः	वे महाराज (पृथु)
अभिषिक्तः	अभिषेक होनेपर
सुवासाः	उत्तम वस्त्र तथा
साधु अलङ्कृतः	उत्तम आभूषण धारण करके।
अलङ्कृतया	अलंकार धारिणी
पत्न्या अर्चिषा	अपनी पत्नी अर्चिके साथ
अपरः अग्निः	
इव	दूसरे अग्निके समान
विरेजे	सुशोभित हुए ॥१३॥

तस्मै जहार धनदो हैमं वीर वरासनम् ।
वरुणः सलिलस्रावमातपत्रं शशिप्रभम् ॥१४॥

तस्मै जहार धनदः हैमं वीर वरासनं वरुणः सलिल स्रावं आतपत्रं शशिप्रभम् ॥१४॥

वीर	वीर विदुर !
तस्मै धनदः	उनको कुबेरने
हैमं वरासनं	सोनेका श्रेष्ठ सिंहासन तथा
वरुणः	वरुणने
सलिल स्रावं	जलसीकर झरनेवाला
शशिप्रभं	
आतपत्रं	चन्द्रमा जैसी कान्तिका छत्र
जहार	प्रदान किया ॥१४॥

वायुश्च वालव्यजने धर्मः कीर्तिमयीं स्रजम् ।
इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दण्डं संयमनं यमः ॥१५॥

वायुः च वालव्यजने धर्मः कीर्तिमयीं स्रजं इन्द्रः किरीटं उत्कृष्टं दण्डं संयमनं यमः ॥१५॥

वायुः	
वालव्यजने	वायुने छोटे पंखे,
च धर्मः कीर्तिमयीं	
स्रजं	तथा धर्मने कीर्तिमयी माला

इन्द्रः उत्कृष्टं किरीटं	इन्द्रने श्रेष्ठ मुकुट और
यमः संयमनं दण्डं	यमराजने दमन करनेवाला दण्ड (दिया) ॥१५॥

ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म भारती हारमुत्तमम् ।
हरिः सुदर्शनं चक्रं तत्पत्न्यव्याहतां श्रियम् ॥१६॥

ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म भारती हारं उत्तमं हरिः सुदर्शनं चक्रं तत् पत्नि अव्याहतां श्रियम् ॥१६॥

ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्मं	ब्रह्माने वेदमय कवच,
भारती उत्तमं हारं	सरस्वतीने उत्तम हार,
हरिः सुदर्शनं चक्रं	विष्णु भगवानने सुदर्शन चक्र,
तत् पत्नि	उनकी पत्नी (लक्ष्मी) ने
अव्याहतां श्रियं	अविचल सम्पति (दी) ॥१६॥

दशचन्द्रमसिं रुद्रः शतचन्द्रं तथाम्बिका ।
सोमोऽमृतमयानश्वांस्त्वष्टा रूपाश्रयं रथम् ॥१७॥

दशचन्द्रं असिं रुद्रः शतचन्द्रं तथा अम्बिका सोमः अमृतमयान् अश्वान् त्वष्टा रूप आश्रयं रथम् ॥१७॥

रुद्रः दशचन्द्रं असिं	रुद्रने दस चन्द्र (चिह्नवाले कोशकी) तलवार,
तथा अम्बिका शतचन्द्रं	ऐसे ही भवानीने सौ चन्द्र (चिह्नों वाली) ढाल
सोमः अमृतमयान् अश्वान्	चन्द्रमाने अमृतमय घोड़े,
त्वष्टा रूप आश्रयं	विश्वकर्माने बहुत सुन्दर
रथं	रथ (दिया) ॥१७॥

अग्निराजगवं चापं सूर्यो रश्मिमयानिषून् ।
भूः पादुके योगमय्यौ द्यौः पुष्पावलिमन्वहम् ॥१८॥

अग्निः आजगवं चापं सूर्यः रश्मिमयान् इषून् भूः पादुके योगमय्यौ द्यौः पुष्पावलिम् अन्वहं ॥१८॥

अग्निः आजगवं चापं अग्निने गौके सींगका बना धनुष,

सूर्यः रश्मिमयान् इषून् सूर्यने तेजोमय वाण,

भूः पादुके योगमय्यौ पृथ्वीने योगमयी (पहिननेसे इच्छानुसार स्थानपर ले जानेवाली) पादुका,

द्यौः अन्वहं पुष्पावलिः आकाश नित्यनूतन पुष्पोंकी माला (दी) ॥१८॥

नाट्यं सुगीतं वादित्रमन्तर्धानं च खेचराः ।
ऋषयश्चाशिषः सत्याः समुद्रः शङ्खमात्मजम् ॥१९॥

नाट्यं सुगीतं वादित्रं अन्तर्धानं च खेचराः ऋषयः च आशिषः सत्याः समुद्रः शङ्खं आत्मजं ॥१९॥

खेचराः आकाशचारी (सिद्धादि) ने

नाट्यम् सुगीतं नाट्यकला, उत्तम गान-विद्या,

वादित्रं वाद्य कला,

च अन्तर्धानं तथा अन्तर्धान होनेकी विद्या,

ऋषयः च और ऋषियोंने

सत्याः आशिषः अमोघ आशीर्वाद,

समुद्रः आत्मजं शङ्खं समुद्रने अपनेमें उत्पन्न शंख दिया ॥१९॥

सिन्धवः पर्वता नद्यो रथवीथीर्महात्मनः ।
सूतोऽथ मागधो बन्दी तं स्तोतुमुपतस्थिरे ॥२०॥

सिन्धवः पर्वता नद्यः रथ वीथिः महात्मनः सूतः अथ मागधः बन्दी तं स्तोतुं उपतस्थिरे ॥२०॥

सिन्धवः पर्वता नद्यः समुद्र, पर्वतों, नदियोंने

महात्मनः उन महात्मा (पृथु) के

रथ वीथिः	रथके लिए (बाधा-हीन) मार्ग दिया,	**मागधः बन्दी**	मागध और बंदीजन
		तं स्तोतुं	उनकी स्तुति करने
अथ सूतः	तदनन्तर सूत,	**उपतस्थिरे**	उपस्थित हुए ॥२०॥

स्तावकांस्तानभिप्रेत्य पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।
मेघनिर्ह्रादया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥२१॥

स्तावकान् तान् अभिप्रेत्य पृथुः वैन्यः प्रतापवान् मेघनिर्ह्रादया वाचा प्रहसन् इदं अब्रवीत् ॥२१॥

तान् स्तावकान्	उन स्तुति-जीवियोंका	**मेघनिर्ह्रादया वाचा**	मेघ-गम्भीर वाणीसे
अभिप्रेत्य	अभिप्राय जानकर	**प्रहसन्**	हँसते हुए
प्रतापवान्	प्रतापी	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥२१॥
वैन्यः पृथुः	वेनके पुत्र पृथु		

पृथुरुवाच–

भोः सूत हे मागध सौम्य बन्दिँ-
ल्लोकेऽधुनास्पष्टगुणस्य मे स्यात् ।
किमाश्रयो मे स्तव एष योज्यतां
मा मय्यभूवन् वितथा गिरो वः ॥२२॥

भोः सूत हे मागध सौम्य बन्दिन् लोके अधुना अस्पष्ट गुणस्य मे स्यात् किं आश्रयः मे स्तव एष योज्यतां मा मयि अभूवन् वितथा गिरः वः ॥२२॥

भोः सूत		**किं आश्रयः**	किस आधारपर
हे मागध	हे सूत ! हे मागध !	**एष मे स्तव**	
सौम्य बन्दिन्	सौम्य बन्दीजन !	**योज्यतां**	यह मेरी स्तुति करोगे ?
अधुना लोके मे अस्पष्ट गुणः	अभी संसारमें		
स्यात्	मेरे गुण प्रगट नहीं हुए हैं।		

मयि वः गिरः	मेरे सम्बन्धमें तुम्हारी वाणी	वितथा मा अभूवन्	व्यर्थ न (व्यय) होवे ॥२२॥

तस्मात्परोक्षेऽस्मदुपश्रुतान्यलं-
करिष्यथ स्तोत्रमपीच्यवाचः ।
सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे
जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः ॥२३॥

तस्मात् परोक्षे अस्मत् उपश्रुतानि अलं करिष्यथ स्तोत्रं अपीच्य वाचः सति उत्तम श्लोक गुणानुवादे जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः ॥२३॥

तस्मात्	इसलिए	उत्तम श्लोक	(लेकिन) उत्तम श्लोक भगवानके
उपश्रुतानि परोक्षे	उत्तम गुणोंके (जो) अभी अप्रकट हैं	गुणानुवादे सति	गुणानुवादके रहते
अलं	(उनके प्रकट होने पर जब) उनसे अलंकृत हो जाऊँ (तब)	सभ्याः	सभ्य पुरुष
		जुगुप्सितं	तुच्छ निन्दित (मनुष्यों) की
अपीच्य वाचः	(अपनी) मधुर वाणीसे	स्तवयन्ति न	स्तुति नहीं करते ॥२०॥
अस्मत् स्तोत्रं करिष्यथ	हमारी स्तुति कर लेना,		

महद्गुणानात्मनि कर्तुमीशुः
कः स्तावकैः स्तावयतेऽसतोऽपि ।
तेऽस्याभविष्यन्निति विप्रलब्धो
जनावहासं कुमतिर्न वेद ॥२४॥

महत् गुणान् आत्मनि कर्तुं ईशः कः स्तावकैः स्तावयते असतः अपि ते अस्या भविष्यन् इति विप्रलब्धः जन अवहासं कुमतिः न वेद ॥२४॥

महत् गुणान्	महान गुणोंको
आत्मनि कर्तुं	
ईशः	अपनेमें लानेमें समर्थ
कः असतः अपि	कौन उन (गुणों) के न होनेपर भी
स्तावकैः	
स्तावयते	स्तुति करने वालोंसे (अपनी) स्तुति करवायेगा,
ते अस्या	
भविष्यन्	वे (गुण) इसमें होंगे
इति विप्रलब्धः	इस प्रकार (स्तुति करके) वह ठगा गया है—
कुमतिः	वह दुर्बुद्धि
जन अवहासं	लोग हँसी उड़ावेंगे (यह)
न वेद	नहीं समझाता ॥२४

प्रभवो ह्यात्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्त्यपि विश्रुताः ।
ह्रीमन्तः परमोदाराः पौरुषं वा विगर्हितम् ॥२५॥

प्रभवः हि आत्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्ति अपि विश्रुताः ह्रीमन्तः परम उदाराः पौरुषं वा विगर्हितम् ॥२५॥

वा	जैसे
ह्रीमन्तः परम	
उदाराः	लज्जाशील अत्यन्त उदार लोग
विगर्हितं पौरुषं	(अपने किसी) निन्दित कर्मकी (चर्चा पसन्द नहीं करते, वैसे ही)
विश्रुताः अपि	प्रसिद्ध होते हुए भी
प्रभवः	समर्थ लोग
हि आत्मनः	
स्तोत्रं	क्योंकि अपनी स्तुति
जुगुप्सन्ति	निन्दित मानते हैं ॥२५॥

वयं त्वविदिता लोके सूताद्यापि वरीमभिः ।
कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत् ॥२६॥

वयं तु अविदिता लोके सूत अद्यापि वरीमभिः कर्मभिः कथं आत्मानं गापयिष्याम बालवत् ॥२६॥

सूत	सूत !
वयं तु अद्यापि वरीमभिः	हम तो अभी तक
कर्मभिः	उत्तम कर्मोंसे
लोके अविदिता	लोकमें जाने नहीं गये हैं,
बालवत्	(अतः) बच्चोंके समान
कथं आत्मानं गापयिष्याम	कैसे अपनी प्रशंसा करवाएँ ॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

इति ब्रुवाणं नृपतिं गायका मुनिचोदिताः ।
तुष्टुवुस्तुष्टमनसस्तद्वागमृतसेवया ॥१॥

इति ब्रुवाणं नृपतिं गायकाः मुनि चोदिताः तुष्टुवुः तुष्ट मनसः तत् वाक् अमृत सेवया ॥१॥

नृपतिं इति		**सेवया तुष्ट**	
ब्रुवाणं	राजाके ऐसा कहनेपर	**मनसः**	सुनकर संतुष्ट चित्त
तत् वाक् अमृत	उनकी अमृत वाणी	**मुनि चोदिताः**	मुनियों द्वारा प्रेरित
		गायकाः तुष्टुवुः	गायक स्तुति करने लगे ॥१॥

बन्दीजना ऊचुः -

नालं वयं ते महिमानुवर्णने
यो देववर्योऽवततार मायया ।
वेनाङ्गजातस्य च पौरुषाणि ते
वाचस्पतीनामपि बभ्रमुर्धियः ॥२॥

न अलं वयं ते महिमा अनुवर्णने यः देववर्यः अवततार मायया वेन अङ्ग जातस्य च पौरुषाणि ते वाचस्पतीनां अपि बभ्रमुः धियः ॥२॥

यः देववर्यः	जो देवश्रेष्ठ श्रीहरि	**ते महिमा**	
मायया		**अनुवर्णने**	उन आपकी महिमाके वर्णनमें
अवततार	अपनी मायासे अवतरित हुए हैं	**वयं अलं न**	हम समर्थ नहीं हैं,

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

वेन अङ्ग जातस्य च	वेनके शरीरसे प्रकट होनेपर भी
ते पौरुषाणि	आपके पराक्रमके विषयमें
वाचस्पतीनां अपि	ब्रह्माकी भी
धियः बभ्रमुः	बुद्धि चकरा जाती है ॥२॥

अथाप्युदारश्रवसः पृथोर्हरेः
कलावतारस्य कथामृताहृताः ।
यथोपदेशं मुनिभिः प्रचोदिताः
श्लाघ्यानि कर्माणि वयं वितन्महि ॥३॥

अथ अपि उदारश्रवसः पृथोः हरेः कलावतारस्य कथामृत आहृताः यथा उपदेशं मुनिभिः प्रचोदिताः श्लाघ्यानि कर्माणि वयं वितन्महि ॥३॥

अथ अपि	फिर भी
उदारश्रवसः	उदारयशा
हरेः कलाव-तारस्य	श्रीहरिके कलावतार
पृथोः कथामृत	पृथुकी अमृत-कथामें
आहृताः	आदर-भाव रखकर
मुनिभिः यथा उपदेशं	मुनियोंके उपदेशके अनुसार
प्रचोदिताः	(उन्हींकी) प्रेरणासे
वयं श्लाघ्यानि	हम (आपके) प्रशंसनीय
कर्माणि	
वितन्महि	कर्मोंका विस्तार (वर्णन) करते हैं ॥३॥

एष धर्मभृतां श्रेष्ठो लोकं धर्मेऽनुवर्तयन् ।
गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता तत्परिपन्थिनाम् ॥४॥

एष धर्मभृतां श्रेष्ठः लोकं धर्मे अनुवर्तयन् गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता तत् परिपन्थिनाम् ॥४॥

एष धर्मभृतां श्रेष्ठः	ये धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ (पृथु)
लोकं धर्मे अनुवर्तयन्	लोगोंको धर्ममें लगाकर

धर्मसेतूनां	धर्म-मर्यादाके	शास्ता	दण्ड देनेवाले
गोप्ता च	रक्षक तथा		होंगे ॥४॥
तत् परिपन्थिनां	उस (धर्म) से उलटे मार्गपर चलने वालोंको		

एष वै लोकपालानां बिभर्त्येकस्तनौ तनूः ।
काले काले यथाभागं लोकयोरुभयोर्हितम् ॥५॥

एष वै लोकपालानां बिभर्ति एकः तनौ तनूः काले काले यथा भागं लोकयोः उभयोः हितम् ॥५॥

एष वै	ये निश्चय	एकः तनौ	अपने एक ही शरीरमें
काले काले	समय-समयपर	लोकपालानां	सब लोकपालोंका
यथा भागं	कार्य विभागानुसार	तनूः बिभर्ति	शरीर (प्रभाव) धारण करें ॥५॥
उभयोः लोकयोः	दोनों लोकोंके		
हितं	कल्याणके लिए		

वसु काल उपादत्ते काले चायं विमुञ्चति ।
समः सर्वेषु भूतेषु प्रतपन् सूर्यवद्विभुः ॥६॥

वसु काल उपादत्ते काले च अयं विमुञ्चति समः सर्वेषु भूतेषु प्रतपन् सूर्यवत् विभुः ॥६॥

सूर्यवत् प्रतपन्	सूर्यके समान तेजस्वी	काल-वसु उपादत्ते	समयपर (कर आदि द्वारा) धन लेंगे
सर्वेषु भूतेषु समः	सब प्राणियोंके प्रति समान	च काले विमुञ्चति	तथा समयपर बांट देंगे ॥६॥
अयं विभुः	ये समर्थ		

तितिक्षत्यक्रमं वैन्य उपर्यक्रमतामपि ।
भूतानां करुणः शश्वदार्तानां क्षितिवृत्तिमान् ॥७॥

तितिक्षति अक्रमं वैन्य उपरि आक्रमतां अपि भूतानां करुणः शश्वत् आर्तानां क्षितिवृत्तिमान् ॥७॥

क्षितिवृत्तिमान्	पृथ्वीके समान व्यवहार वाले
वैन्य	महाराज पृथु
आर्तानां भूतानां	दुःखी प्राणियोंका अतिक्रमण
आक्रमतां अपि	आक्रमण (आक्षेपादि) करनेपर भी
उपरि	अपने ऊपर
शश्वत् करुणः	निरन्तर करुणाशील रहकर
तितिक्षति	सहनकर लिया करेंगे ॥७॥

देवेऽवर्षत्यसौ देवो नरदेववपुर्हरिः ।
कृच्छ्रप्राणाः प्रजा ह्येष रक्षिष्यत्यञ्जसेन्द्रवत् ॥८॥

देवे अवर्षति असौ देवः नरदेववपुः हरिः कृच्छ्र प्राणाः प्रजा हि एष रक्षिष्यति अञ्जसा इन्द्रवत् ॥८॥

देवे अवर्षति	इन्द्रके कभी वर्षा न करने पर
असौ नरदेववपुः	यह राजाके रूपमें
देवः हरिः	भगवान श्रीहरि
प्रजा कृच्छ्र प्राणाः	प्रजाके प्राण संकटमें पड़नेपर
हि एष	निश्चय ये
इन्द्रवत्	इन्द्रके समान
अञ्जसा	
रक्षिष्यति	सरलतासे रक्षा कर लेंगे ॥८॥

आप्याययत्यसौ लोकं वदनामृतमूर्तिना ।
सानुरागावलोकेन विशदस्मितचारुणा ॥९॥

आप्याययति असौ लोकं वदन अमृत मूर्तिना सानुराग अवलोकेन विशदस्मित चारुणा ॥९॥

असौ	ये
अमृत मूर्तिना	अमृत स्वरूप
वदन	श्रीमुख (तथा)
सानुराग	प्रेम सहित
चारुणा	
विशदस्मित	सुन्दर स्पष्ट मुस्कान भरा
अवलोकेन	चितवनसे
लोकं आप्याययति	लोकको आनन्द मग्न करेंगे ॥९॥

अव्यक्तवर्त्मैष निगूढकार्यो
गम्भीरवेधा उपगुप्तवित्तः ।
अनन्तमाहात्म्यगुणैकधामा
पृथुः प्रचेता इव संवृतात्मा ॥१०॥

अव्यक्तवर्त्म एष निगूढ कार्यः गम्भीरवेधा उपगुप्त वित्तः अनन्त माहात्म्य गुण एक धामा पृथुः प्रचेता इव संवृत आत्मा ॥१०॥

एष अव्यक्त-वर्त्म	इनकी गति जानी नहीं जा सकेगी	**अनन्त माहात्म्य**	अनन्त महिमाशाली
निगूढ कार्यः	कार्य भी गुप्त रहेंगे	**गुण एक धामा**	गुणोंके एकमात्र आश्रय
गम्भीरवेधा	गम्भीर विधान करेंगे	**पृथुः प्रचेता इव**	पृथु वरुणके समान
वित्तः उपगुप्त	धन छिपा रहेगा	**संवृत आत्मा**	मनस्वी होंगे ॥१०॥

दुरासदो दुर्विषह आसन्नोऽपि विदूरवत् ।
नैवाभिभवितुं शक्यो वेनारण्युत्थितोऽनलः ॥११॥

दुरासदः दुर्विषह आसन्नः अपि विदूरवत् न एव अभिभवितुं शक्यः वेन अरणि उत्थितः अनलः ॥११॥

वेन अरणि	वेन रूपी अरणि (के मन्थनसे)	**विदूरवत्**	बहुत दूरके समान (अज्ञेय होंगे)
उत्थितः अनलः	उत्पन्न अग्नि (के समान पृथु)	**अभिभवितुं**	(इन्हें) पराजित करना
दुरासदः	दुर्धर्ष	**शक्यः न एव**	सम्भव नहीं ही होगा ॥११॥
दुर्विषह	दुःसह		
आसन्नः अपि	समीप रहनेपर भी		

अन्तर्बहिश्च भूतानां पश्यन् कर्माणि चारणैः ।
उदासीन इवाध्यक्षो वायुरात्मेव देहिनाम् ॥१२॥

अन्तः बहिः च भूतानां पश्यन् कर्माणि चारणैः उदासीन इव अध्यक्षः वायुः आत्म एव देहिनाम् ॥१२॥

भूतानां	प्राणियों (प्रजा) के (गुप्त)		उदासीनकी भांति
अन्तः बहिः च	आन्तरिक और बाहरी (प्रकट)	**अध्यक्षः**	(ये) अध्यक्ष (नरेश)
कर्माणि चारणैः	कर्मोंको गुप्तचरों द्वारा	**देहिनां**	शरीर धारियों (प्रजाजनों) के
पश्यन् उदासीन इव	जानकर भी	**आत्म वायुः एव**	अपनी प्राण वायुसे (होंगे) ॥१२॥

नादण्ड्यं दण्डयत्येष सुतमात्मद्विषामपि ।
दण्डयत्यात्मजमपि दण्ड्यं धर्मपथे स्थितः ॥१३॥

न अदण्ड्यं दण्डयति एष सुतं आत्मद्विषां अपि दण्डयति आत्मजं अपि दण्ड्यं धर्मपथे स्थितः ॥१३॥

आत्मद्विषां अपि	अपने शत्रुके भी	**धर्मपथे स्थितः**	धर्म-मार्गपर दृढ़ रहकर
अदण्ड्यं सुतं	दण्डन देने योग्य पुत्रको	**दण्ड्यं**	दण्ड देने योग्य
एष न दण्डयति	ये दण्ड नहीं देंगे (और)	**आत्मजं अपि दण्डयति**	अपने पुत्रको भी दण्ड देंगे ॥१३॥

अस्याप्रतिहतं चक्रं पृथोरामानसाचलात् ।
वर्तते भगवानर्को यावत्तपति गोगणैः ॥१४॥

अस्य अप्रतिहतं चक्रं पृथोः आमानस अचलात् वर्तते भगवान् अर्कः यावत् तपति गोगणैः ॥१४॥

भगवान् अर्कः	भगवान् सूर्य	अस्य अप्रतिहतं चक्रं	(उस पूरे प्रदेशमें) इनका निर्बाध राज्य रहेगा ॥१४॥
आमानस अचलात्	मानसोत्तर गिरिसे लेकर		
यावत् गोगणैः तपति	जहाँ तक किरणोंसे प्रकाशित करते हैं		

रञ्जयिष्यति यल्लोकमयमात्मविचेष्टितैः ।
अथामुमाहू राजानं मनोरञ्जनकैः प्रजाः ॥१५॥

रञ्जयिष्यति यत् लोकं अयं आत्म विचेष्टितैः अथ अमुं आहू राजानं मनोरञ्जनकैः प्रजाः ॥१५॥

यत् लोकं अयं आत्म विचेष्टितैः रञ्जयिष्यति	क्योंकि लोगोंको ये अपने प्रयत्नोंसे प्रसन्न करेंगे	अथ मनोरञ्जनकैः प्रजाः अमुं राजानं आहू	अतः मनोरंजन करनेवाले होनेसे प्रजा इनको राजा कहेगी ॥१५॥

दृढव्रतः सत्यसन्धो ब्रह्मण्यो वृद्धसेवकः ।
शरण्यः सर्वभूतानां मानदो दीनवत्सलः ॥१६॥

दृढव्रतः सत्यसन्धः ब्रह्मण्यः वृद्धसेवकः शरण्यः सर्वभूतानां मानदः दीनवत्सलः ॥१६॥

दृढ़व्रत सत्य-सन्धः ब्रह्मण्यः वृद्धसेवकः शरण्यः	(ये) दृढव्रती, सत्य-प्रतिज्ञ, ब्राह्मणोंके भक्त, बड़ोंकी सेवा करनेवाले, शरण देनेवाले,	सर्वभूतानां मानदः दीनवत्सलः	सब प्राणियोंका सम्मान करनेवाले (और) दोनोंपर वात्सल्य रखनेवाले (होंगे) ॥१६॥

मातृभक्तिः परस्त्रीषु पत्न्यामर्ध इवात्मनः ।
प्रजासु पितृवत्स्निग्धः किङ्करो ब्रह्मवादिनाम् ॥१७॥

मातृ भक्तिः परस्त्रीषु पत्न्यां अर्धं इव आत्मनः प्रजासु पितृवत् स्निग्धः किङ्करः ब्रह्मवादिनां ॥१७॥

परस्त्रीषु मातृ भक्तिः	परस्त्रियोंको माता मानकर भक्ति-भाव रखेंगे,	**प्रजासु पितृवत् स्निग्धः**	प्रजासे पिताके समान स्नेह करेंगे,
पत्न्यां आत्मनः अर्धं	अपनी पत्नीको अपना आधा देह (मानेंगे)	**ब्रह्मवादिनां किङ्करः**	वेदज्ञोंके सेवक रहेंगे ॥१७॥

देहिनामात्मवत्प्रेष्ठः सुहृदां नन्दिवर्धनः ।
मुक्तसङ्गप्रसङ्गोऽयं दण्डपाणिरसाधुषु ॥१८॥

देहिनां आत्मवत् प्रेष्ठः सुहृदां नन्दिवर्धनः मुक्तसङ्गः प्रसङ्गः अयं दण्डपाणिः असाधुषु ॥१८॥

देहिनां आत्मवत् प्रेष्ठः	शरीर-धारियोंको अपने शरीरके समान प्रिय होंगे,	**अयं मुक्तसङ्गः**	ये आसक्तिहीन (महापुरुषोंका)
सुहृदां नन्दिवर्धनः	सम्बन्धियोंका आनन्द बढ़ावेंगे,	**प्रसङ्गः असाधुषु दण्डपाणिः**	सत्संग करेंगे, दुष्टोंके लिए यमराजके समान होंगे ॥१८॥

अयं तु साक्षाद्भगवांस्त्र्यधीशः
कूटस्थ आत्मा कलयावतीर्णः ।
यस्मिन्नविद्यारचितं निरर्थकं
पश्यन्ति नानात्वमपि प्रतीतम् ॥१९॥

अयं तु साक्षात् भगवान् व्यधीशः कूटस्थ आत्मा कलया अवतीर्णः यस्मिन् अविद्या रचितं निरर्थकं पश्यन्ति नानात्वं अपि प्रतीतम् ॥१९॥

अयं तु साक्षात्	ये तो साक्षात्
भगवान्	
व्यधीशः	भगवान त्रिलोकीनाथ
कलया	
अवतीर्णः	अपनी कलासे अवतरित हैं,
यस्मिन् कूटस्थ	
आत्मा	जिन कूटस्थ आत्मामें
अविद्या रचितं	अविद्यासे बनाया
निरर्थकं	
नानात्वं	व्यर्थ अनेकता (भेद)
प्रतीतं पश्यन्ति	प्रतीत होते (ज्ञानीजन) देखते हैं ॥१९॥

अयं भुवो गोप्तैकवीरो मण्डलमोदयाद्रे-
नरदेवनाथः ।
आस्थाय जैत्रं रथमात्तचापः
पर्यस्यते दक्षिणतो यथार्कः ॥२०॥

अयं भुवः मण्डलं उदयाद्रेः गोप्तैक वीरः नरदेवनाथः आस्थाय जैत्रं रथं आत्त चापः पर्यस्यते दक्षिणतः यथा अर्कः ॥२०॥

यथा अर्कः	जैसे सूर्य
उदयाद्रेः	उदयाचलको
दक्षिणतः	
पर्यस्यते	दाहिने करके परिक्रमा करते हैं
भुवः मंडलं	भूमण्डलकी
अयं नर-	
देवनाथः	ये राजाधिराज
जैत्रं रथं	
आस्थाय	विजयदायी रथपर बैठकर
आत्त चापः	धनुष लिए (घूमते हुए)
गोप्तैक वीरः	अकेले ही ये वीर रक्षा करेंगे ॥२०॥

अस्मै नृपालाः किल तत्र तत्र
बलिं हरिष्यन्ति सलोकपालाः ।

मंस्यन्त एषां स्त्रिय आदिराजं
चक्रायुधं तद्यश उद्धरन्त्यः ॥२१॥

अस्मै नृपालाः किल तत्र तत्र वलिं हरिष्यन्ति सलोकपालाः मंस्यन्त एषां स्त्रिय आदिराजं चक्रायुधं तत् यश उद्धरन्त्यः ॥२१॥

तत्र तत्र किल	जहां-तहाँ अवश्य	**तत् यश**	
सलोकपालाः	लोकपालोंके साथ	**उद्धरन्त्यः**	इनका यशोगान करती हुई
नृपालाः	राजा लोग		
अस्मै वलिं		**चक्रायुधं**	
हरिष्यन्ति	इनको भेंट देंगे	**मंस्यन्त**	साक्षात् भगवान विष्णु
एषां स्त्रियः	उन सबकी स्त्रियां		
आदिराजं	आदिराज (पृथु)को		मानेंगी ॥२१॥

अयं महीं गां दुदुहेऽधिराजः
प्रजापतिर्वृत्तिकरः प्रजानाम् ।
यो लीलयाद्रीन् स्वशरासकोट्या
भिन्दन् समां गामकरोद्यथेन्द्रः ॥२२॥

अयं महीं गां दुदुहे अधिराजः प्रजापतिः वृत्तिकरः प्रजानां यः लीलया अद्रीन् स्वशरास कोट्या भिन्दन् समां गां अकरोत् यथा इन्द्रः ॥२२॥

अयं अधिराजः	ये महाराजाधिराज	**यथा इन्द्रः**	जैसे इन्द्रने (वज्रसे किया था)
गां महीं दुदुहे	गो-रूपधारिणी पृथ्वीका दोहन करेंगे	**यः लीलया**	जो खेल खेलमें
		स्वशरास	
प्रजापतिः	(क्यों कि ये) प्रजानाथ	**कोट्या**	अपने धनुषकी नोकसे
प्रजानां		**अद्रीन् भिन्दन**	पर्वतोंको तोड़कर
वृत्तिकरः	प्रजाकी आजिका (व्यवस्था) करनेवाले हैं	**गां समां**	पृथ्वीको समतल
		अकरोत्	बना देंगे ॥२२॥

विस्फूर्जयन्नाजगवं धनुः स्वयं
यदाचरत्क्ष्मामविषह्यमाजौ ।
तदा निलिल्युर्दिशि दिश्यसन्तो
लाङ्गूलमुद्यम्य यथा मृगेन्द्रः ॥२३॥

विस्फूर्जयन् आजगवं धनुः स्वयं यदा चरति क्ष्मां अविषह्यं आजौ
तदा निलिल्युः दिशि दिशि असन्तः लाङ्गूलं उद्यम्य यथा मृगेन्द्रः ॥२३॥

यथा लाङ्गूलं उद्यम्य मृगेन्द्रः जैसे पूंछ उठाकर सिंह (घूमता है)
यदा आजौ अविषह्यं जब ब्रह्माके लिए भी असह्य
स्वयं आजगवं धनुः (पृथु) स्वयं (अपना) आजगव धनुष
विस्फूर्जयन् टंकृत करते
क्ष्मां चरति पृथ्वीपर घूमेंगे
तदा असन्तः तब दुष्ट लोग
दिशि दिशि दिशाओंमें जहां-तहां
निलिल्युः छिप जायेंगे ॥२३॥

एषोऽश्वमेधान् शतमाजहार
सरस्वती प्रादुरभावि यत्र ।
जहार्षीद्यस्य हयं पुरन्दरः
शतक्रतुश्चरमे वर्तमाने ॥२४॥

एष अश्वमेधान् शतं आजहार सरस्वती प्रादुरभावि यत्र जहार्षीत्
यस्य हयं पुरन्दरः शतक्रतुः चरमे वर्तमाने ॥२४॥

यत्र सरस्वती जहांसे सरस्वती नदी
प्रादुरभावि निकली है (वहां)
एष शतं अश्वमेधान् ये सौ अश्वमेध यज्ञ
आजहार करेंगे
चरमे शतक्रतुः वर्तमाने अन्तिम सौवां यज्ञ होते समय
यस्य हयं पुरन्दरः जिसके अश्वको
जहार्षीत् इन्द्र हरण करेंगे ॥२४॥

एष स्वसद्योपवने समेत्य
सनत्कुमारं भगवन्तमेकम् ।
आराध्य भक्त्या लभतामलं तज्-
ज्ञानं यतो ब्रह्म परं विदन्ति ॥२५॥

एष स्वसद्य उपवने समेत्य सनत्कुमारं भगवन्तं एकं आराध्य भक्त्या लभता अमलं तत् ज्ञानं यतः ब्रह्म परं विदन्ति ॥२५॥

एष स्वसद्य		**भक्त्या एकं**	
उपवने	ये अपने भवनके बगीचेमें	**आराध्य**	भक्तिपूर्वक केवल उन्हींकी पूजा करके
भगवन्तं		**तत् अमलं ज्ञानं**	उस निर्मल ज्ञानको
सनत्कुमारं	भगवान सनत्कुमारसे	**लभता यतः**	पावेंगे जिससे
समेत्य	भेंट होनेपर	**परं ब्रह्म**	
		विदन्ति	परंब्रह्मका बोध होता है ॥२५॥

तत्र तत्र गिरस्तास्ता इति विश्रुतविक्रमः ।
श्रोष्यत्यात्माश्रिता गाथाः पृथुः पृथुपराक्रमः ॥२६॥

तत्र तत्र गिरः ताः ताः इति विश्रुत विक्रमः श्रोष्यति आत्म आश्रिताः गाथाः पृथुः पृथु पराक्रमः ॥२६॥

पृथु पराक्रमः		**आत्म आश्रिताः**	
पृथुः	विपुल पराक्रम पृथु	**गाथाः**	अपने सम्बन्धका वर्णन
विश्रुत विक्रमः			
इति	प्रसिद्ध पराक्रमवाले होंगे इसलिए	**ताः ताः गिरः**	वहां-वहांके लोगोंकी वाणीसे
तत्र तत्र	जहां-तहां	**श्रोष्यति**	सुनेंगे ॥२६॥

दिशो विजित्याप्रतिरुद्धचक्रः
स्वतेजसोत्पाटितलोकशल्यः ।

सुरासुरेन्द्रैरुपगीयमान-
महानुभावो भविता पतिर्भुवः ॥२७॥

दिशः विजित्य अप्रतिरुद्ध चक्रः स्वतेजसा उत्पाटित लोकशल्यः सुर असुरेन्द्रैः उपगीयमान महानुभावः भविता पतिः भुवः ॥२७॥

दिशः विजित्य	सब दिशाओंको जीतकर
अप्रतिरुद्ध चक्रः	निर्बाध राज्य (स्थापित) करके
स्वतेजसा	
लोकशल्यः	अपने तेजसे लोगोंके कष्टरूप (द्रष्टों) को
उत्पाटित	उखाड़ (नष्ट) करके
सुर असुरेन्द्रैः	देवता-दैत्य प्रमुखों द्वारा
महानुभावः	(इनका) महान् प्रभाव
उपगीयमान	वर्णित होता रहेगा
भुवः पतिः	
भविता	(ऐसे) ये भूपति होंगे ॥२७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्ध षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

एवं स भगवान् वैन्यः ख्यापितो गुणकर्मभिः ।
छन्दयामास तान् कामैः प्रतिपूज्याभिनन्द्य च ॥१॥

एवं स भगवान् वैन्यः ख्यापितः गुण कर्मभिः छन्दयामास तान् कामैः प्रतिपूज्य अभिनन्द्य च ॥१॥

एवं स भगवान्	इस प्रकार वे भगवान्	**तान् कामैः प्रतिपूज्य**	उनकी मन-चाही वस्तुएँ देकर
वैन्यः गुण कर्मभिः	पृथु गुण तथा कर्मोंकी	**अभिनन्द्य च**	तथा सत्कृत करके
ख्यापितः	(अग्रिम) सूचना दिये जानेपर	**छन्दयामास**	सन्तुष्ट किया ॥१॥

ब्राह्मणप्रमुखान् वर्णान् भृत्यामात्यपुरोधसः ।
पौराञ्जानपदान् श्रेणीः प्रकृतीः समपूजयत् ॥२॥

ब्राह्मण प्रमुखान् वर्णान् भृत्य अमात्य पुरोधसः पौरान् जानपदान् श्रेणीः प्रकृतिः समपूजयत् ॥२॥

ब्राह्मण प्रमुखान्	जिनमें ब्राह्मण मुख्य हैं	**पौरान् जानपदान्**	पुरवासी, देशवासी
वर्णान्	उन चारों वर्णोंको,	**श्रेणीः प्रकृतिः**	व्यापारियों, अनुयायियोंका
भृत्य अमात्य	सेवक, मन्त्री,	**समपूजयत्**	भली प्रकार सत्कार किया ॥२॥
पुरोधसः	पुरोहित,		

विदुर उवाच-

कस्माद्धार गोरूपं धरित्री बहुरूपिणी ।
यां दुदोह पृथुस्तत्र को वत्सो दोहनं च किम् ॥३॥

कस्मात् दधार गोरूपं धरित्री बहुरूपिणी यां दुदोह पृथुः तत्र कः वत्सः दोहनं च किम् ॥३॥

बहुरूपिणी धरित्री	बहुत रूप धारण करनेवाली पृथ्वीने	**यां तत्र पृथुः दुदोह**	जिसे वहाँ पृथुने दुहा,
गोरूपं कस्मात् दधार	गायका रूप क्यों धारण किया ?	**कः वत्सः**	कौन बछड़ा बना ?
		दोहनं च किं	दुहनेका पत्र क्या बना ? ॥३॥

प्रकृत्या विषमा देवी कृता तेन समा कथम् ।
तस्य मेध्यं हयं देवः कस्य हेतोरपाहरत् ॥४॥

प्रकृत्या विषमा देवी कृता तेन समा **कथं तस्य मेध्यं हयं देवः कस्य हेतोः अपाहरत् ॥४॥**

देवी प्रकृत्या	देवी (पृथ्वी) स्वभावसे	**तस्य मेध्यं हयं**	उनके पवित्र अश्वमेधीय) घोड़ेको
विषमा तेन	बिषम (ऊँची-नीची) हैं, उन्होंने	**देवः कस्य हेतोः**	इन्द्रने किस कारण
कथं समा कृता	कैसे समतल बनाया ?	**अपाहरत्**	अपहरण किया ॥४॥

सनत्कुमाराद्भगवतो ब्रह्मन् ब्रह्मविदुत्तमात् ।
लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं राजर्षिः कां गतिं गतः ॥५॥

सनत्कुमारात् भगवतः ब्रह्मन् ब्रह्मविद् उत्तमात् लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं राजर्षिः कां गतिं गतः ॥५॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
ब्रह्मविद्	
उत्तमात्	ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ
भगवतः	
सनत्कुमारात्	भगवान सनत्कुमारसे
सविज्ञानं ज्ञानं	
लब्ध्वा	विज्ञानके साथ ज्ञान प्राप्त करके
राजर्षिः	राजर्षि (पृथु)
कां गतिं गतः	किस गतिको प्राप्त हुए ? ॥५॥

यच्चान्यदपि कृष्णस्य भवान् भगवतः प्रभोः ।
श्रवः सुश्रवसः पुण्यं पूर्वदेहकथाश्रयम् ॥६॥

यत् च अन्यत् अपि कृष्णस्य भवान् भगवतः प्रभोः श्रवः सुश्रवसः पुण्यं पूर्व देह कथा आश्रयम् ॥६॥

अन्यत् अपि	
यत् च	और भी जो कुछ
सुश्रवसः	उत्तमश्लोक
प्रभोः भगवतः	सर्वेश्वर भगवान
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके
पूर्व देह कथा	
आश्रयं	पूर्वावतारके चरितसे सम्बन्धित
पुण्यं श्रवः	पवित्र यशोगाथा है
भवान्	आप (सुनाइये ।) ॥६॥

भक्ताय मेऽनुरक्ताय तव चाधोक्षजस्य च ।
वक्तुमर्हसि योऽदुह्यद्वैन्यरूपेण गामिमाम् ॥७॥

भक्ताय मे अनुरक्ताय तव च अधोक्षजस्य च वक्तुं अर्हसि यः अदुह्यत् वैन्य रूपेण गां इमाम् ॥७॥

मे तव च	मुझ आपके और
अधोक्षजस्य च	भगवान हृषीकेशके भी
अनुरक्ताय	
भक्ताय	अनुरागी भक्तसे
यः वैन्य रूपेण	जिन्होंने पृथु रूपसे
इमां गां अदुह्यत्	इस पृथ्वीका दोहन किया
वक्तुं अर्हसि	(उनका चरित आपको) कहना चाहिए ॥७॥

सूत उवाच-

चोदितो विदुरेणैवं वासुदेवकथां प्रति ।
प्रशस्य तं प्रीतमना मैत्रेयः प्रत्यभाषत ।।८।।

चोदितः विदुरेण एवं वासुदेव कथां प्रति प्रशस्य तं प्रीतमना मैत्रेयः प्रत्यभाषत ।।८।।

वासुदेव कथां		**प्रीतमना**	प्रसन्न चित्त
प्रति	भगवान वासुदेवकी कथाके लिए	**मैत्रेयः**	मैत्रेयजीने
एवं विदुरेण	इस प्रकार विदुर द्वारा	**तं प्रशस्य**	उन (विदुर) की प्रशंसा करके
चोदितः	प्रेरित किये जानेपर	**प्रत्यभाषत**	उत्तर देते बोले ।।८।।

मैत्रेय उवाच-

यदाभिषिक्तः पृथुरङ्ग विप्रै-
रामन्त्रितो जनतायाश्च पालः ।
प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य
क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन् ।।९।।

यदा अभिषिक्तः पृथुः अङ्ग विप्रैः आमन्त्रितः जनतायाः च पालः प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य क्षुत्क्षाम देहाः पतिं अभ्यवोचन् ।।९।।

अङ्ग	प्रिय विदुर !	**क्षितिपृष्ठ निरन्ने**	पृथ्वीके अन्नहीन हो जानेसे
यदा विप्रैः	जब ब्राह्मणों द्वारा	**क्षुत्क्षाम देहाः**	भूखसे दुबले शरीरवाली
पृथुः अभिषिक्तः	पृथुका अभिषेक करके	**प्रजा एत्य**	प्रजाने आकर
जनतायाः पालः	जनताका पालक	**पतिं अभ्यवोचन्**	अपने स्वामीसे प्रार्थना की ।।९।।
च आमन्त्रितः	घोषित भी कर दिया गया (तब)		

प्रजा ऊचुः*—

वयं राजञ्जाठरेणाभितप्ता
यथाग्निना कोटरस्थेन वृक्षाः ।
त्वामद्य याताः शरणं शरण्यं
यः साधितो वृत्तिकरः पतिर्नः ॥१०॥

वयं राजन् जाठरेण अभितप्ता यथा अग्निना कोटरस्थेन वृक्षाः त्वां अद्य याताः शरणं शरण्यं यः साधितः वृत्तिकरः पतिः नः ॥१०॥

यथा कोटरस्थेन	जैसे अपने कोटरमें स्थित
वृक्षाः	वृक्ष (सन्तप्त हो)
राजन् वयं जाठरेण अभितप्ता	राजन् ! हम लोग जठराग्नि (भूख) से संतप्त हैं,
यः नः वृत्तिकरः	जो हम लोगोंको जीविका देनेवाले
पतिः साधितः	स्वामी नियुक्त हुए हैं (उन)
त्वां शरण्यं	आप शरणदाताकी (हम)
अद्य शरणं याताः	आज शरणमें आये हैं ॥१०॥

तन्नो भवानीहतु रातवेऽन्नं
क्षुधार्दितानां नरदेवदेव ।
यावन्न नङ्क्ष्यामह उज्झितोर्जा
वार्तापतिस्त्वं किल लोकपालः ॥११॥

तत् नः भवान् ईहतु रातवे अन्नं क्षुधा अर्दितानां नरदेवदेव यावत् न नङ्क्ष्यामह उज्झित उर्जा वार्तापतिः त्वं किल लोकपालः ॥११॥

त्वं किल लोकपालः	आप निश्चय सब लोकोंके पालक हैं,
नरदेवदेव	राजराजेश्वर !
नः वृत्तिकरः पतिः	हम लोगोंको जीविका देनेवाले स्वामी

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तत् नः क्षुधा अर्दितानां	अतः हम भूखसे उत्पीड़ितोंकी
यावत् उज्झित ऊर्जा	जब तक शक्ति नष्ट होनेसे
न नङ्क्ष्यामह	नहीं नष्ट हो जाते
नः अन्नं रातवे	हमको अन्न देनेका
भवान् ईहतु	आप प्रबन्ध करें ॥११॥

मैत्रेय उवाच-

पृथुः प्रजानां करुणं निशम्य परिदेवितम् ।
दीर्घं दध्यौ कुरुश्रेष्ठ निमित्तं सोऽन्वपद्यत ॥१२॥

पृथुः प्रजानां करुणं निशम्य परिदेवितं दीर्घं दध्यौ कुरुश्रेष्ठ निमित्तं सः अन्वपद्यत ॥१२॥

कुरुश्रेष्ठ	कुरुश्रेष्ठ विदुर !
प्रजानां करुणं परिदेवितं	प्रजाका करुण
निशम्य	क्रन्दन सुनकर
पृथुः दीर्घं दध्यौ	पृथुने देर तक विचार किया
सः निमित्तं	उन्होंने (अन्नाभावका) कारण
अन्वपद्यत	जान लिया ॥१२॥

इति व्यवसितो बुद्ध्या प्रगृहीतशरासनः ।
सन्दधे विशिखं भूमेः क्रुद्धस्त्रिपुरहा यथा ॥१३॥

इति व्यवसितः बुद्ध्या प्रगृहीत शरासनः सन्दधे विशिखं भूमेः क्रुद्धः त्रिपुरहा यथा ॥१३॥

बुद्ध्या इति व्यवसितः	बुद्धिसे इस प्रकार (अन्नाभावका कारण) निश्चय करके
भूमेः क्रुद्धः	पृथ्वीपर क्रोध करके
यथा त्रिपुरहा	जैसे त्रिपुरनाशोद्यत रुद्र हों
शरासनं प्रगृहीतः	धनुष लेकर
विशिखं सन्दधे	उसपर वाण चढ़ाया ॥१३॥

प्रवेपमाना धरणी निशाम्योदायुधं च तम् ।
गौः सत्यपाद्रवद्भीता मृगीव मृगयुद्रुता ॥१४॥

प्रवेपमाना धरणी निशाम्य उदायुधं च तं गौः सति अपाद्रवत् भीता मृगी इव मृगयु द्रुता ॥१४॥

तं उदायुधं निशाम्य	उनको अस्त्र उठाये	**मृगयु मृगी इव**	व्याधके पीछा करनेपर मृगीके समान
धरणी	देखकर पृथ्वी		
प्रवेपमाना	कांपती हुई	**भीता द्रुता**	डरकर बड़े वेगसे
गौः सति	गाय बनकर	**अपाद्रवत्**	भागी ॥१४॥

तामन्वधावत्तद्वैन्यः कुपितोऽत्यरुणेक्षणः ।
शरं धनुषि सन्धाय यत्र यत्र पलायते ॥१५॥

तां अन्वधावत् तत् वैन्यः कुपितः अति अरुणेक्षणः शरं धनुषि सन्धाय यत्र यत्र पलायते ॥१५॥

अति अरुणेक्षणः	अत्यन्त लाल नेत्र किये	**यत्र यत्र पलायते**	जहां-जहां (वह पृथ्वी) भागती गई
शरं धनुषि सन्धाय	धनुषपर वाण चढ़ाये	**तां अन्वधावत्**	उसके पीछे दौड़ते गये ॥१५॥
तत् वैन्यः	वे पृथु		

सा दिशो विदिशो देवी रोदसी चान्तरं तयोः ।
धावन्ती तत्र तत्रैनं ददर्शानूद्यतायुधम् ॥१६॥

सा दिशः विदिशः देवी रोदसी च अन्तरं तयोः धावन्ती तत्र तत्र एनं ददर्श अनूद्यत आयुधम् ॥१६॥

सा देवी	वह (पृथ्वी, देवी	**तत्र तत्र धावन्ती**	जहां-तहां दौड़ती हुई
दिशः विदिशः	दिशा-विदिशा		
रोदसी च	आकाश तथा		
तयोः अन्तरं	उसके मध्य		

एनं अनूद्यत आयुधं	इन (पृथु) को अस्त्र उठाये ही		**ददर्श**	देखती रही ॥१६॥	

लोके नाविन्दत त्राणं वैन्यान्मृत्योरिव प्रजाः ।
त्रस्ता तदा निववृते हृदयेन विदूयता ॥१७॥

लोके न अविन्दत त्राणं वैन्यात् मृत्योः इव प्रजाः त्रस्ता तदा निववृते हृदयेन विदूयता ॥१७॥

मृत्योः प्रजाः इव	मृत्युसे प्रजाके समान		**तदा त्रस्ता**	तब संत्रस्त होकर	
लोके वैन्यात्	किसी लोकमें पृथुसे		**विदूयता हृदयेन**	अत्यन्त पीड़ित हृदय	
त्राणं न अविन्दत	रक्षा नहीं मिल सकी		**निववृते**	लौट पड़ी ॥१७॥	

उवाच च महाभागं धर्मज्ञापन्नवत्सल ।
त्राहि मामपि भूतानां पालनेऽवस्थितो भवान् ॥१८॥

उवाच च महाभागं धर्मज्ञ आपन्न वत्सल त्राहि मां अपि भूतानां पालने अवस्थितः भवान् ॥१८॥

महाभागं च उवाच	महाभाग पृथुसे ही बोली—		**भवान् भूतानां पालने अवस्थितः**	आप तो प्राणियोंके पालनमें लगे हैं,	
धर्मज्ञ आपन्न वत्सल	'धर्मज्ञ ! शरणागत वत्सल !		**मां अपि त्राहि**	मेरी भी रक्षा कीजिये ॥१८॥	

स त्वं जिघांससे कस्माद्दीनामकृतकिल्बिषाम् ।
अहनिष्यत्कथं योषां धर्मज्ञ इति यो मतः ॥१९॥

स त्वं जिघांससे कस्मात् दीनां अकृत किल्बिषां अहनिष्यति कथं योषां धर्मज्ञ इति यः मतः ॥१९॥

यः धर्मज्ञ इति मतः जो 'धर्मज्ञ हैं' ऐसा माना जाता है,
स त्वं कस्मात् वह आप किस कारणसे
दीनां अकृत किल्विषां जिघांससे दीना, निरपराधिनीको मारना चाहते हैं ?
योषां कथं अहनिष्यति स्त्रीको कैसे मारेंगे ? ॥१९॥

प्रहरन्ति न वै स्त्रीषु कृतागःस्वपि जन्तवः ।
किमुत त्वद्विधा राजन् करुणा दीनवत्सलाः ॥२०॥

प्रहरन्ति न वै स्त्रीषु कृतागः सु अपि जन्तवः किमुत त्वत् विधा राजन् करुणा दीनवत्सलाः ॥२०॥

राजन् राजन् !
कृतागः सु अपि अपराध करनेपर भी
स्त्रीषु वै स्त्रियोंपर तो
जन्तवः न प्रहरन्ति पशु भी आघात नहीं करते
त्वत् विधा आपके समान
करुणा दीन-वत्सलाः दयालु दीन-वत्सल
किमुत भला (प्रहार) करेंगे कैसे ॥२०॥

मां विपाट्याजरां नावं यत्र विश्वं प्रतिष्ठितम् ।
आत्मानं च प्रजाश्चेमाः कथमम्भसि धास्यसि ॥२१॥

मां विपाट्य अजरां नावं यत्र विश्वं प्रतिष्ठितं आत्मानं च प्रजाः च इमाः कथं अम्भसि धास्यसि ॥२१॥

यत्र विश्वं प्रतिष्ठितं जिसपर पूरा संसार स्थित है (उस)
मां अजरां नावं मुझ पुरानी न पड़ने वाली नौकाको
विपाट्य तोड़कर
आत्मानं च इमाः प्रजाः च अपने आपको और इस प्रजाको भी
अम्भसि कथं धास्यसि पानीपर कैसे ऊपर रखेंगे ?॥२१॥

पृथुरुवाच–

वसुधे त्वां वधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीम् ।
भागं बर्हिषि या वृङ्क्ते न तनोति च नो वसु ॥२२॥

वसुधे त्वां वधिष्यामि मत् शासन पराङ्मुखीं भागं बर्हिषि या वृङ्क्ते न तनोति च नः वसु ॥२२॥

या बर्हिषि	जो यज्ञमें (देवता रूपसे)	**न तनोति**	नहीं देती (उस)
भागं वृङ्क्ते	भाग लेती है (किन्तु)	**मत् शासन**	मेरी आज्ञाका
नः वसु	हम लोगोंको धन (अन्न)	**पराङ्मुखीं**	उल्लंघन करनेवाली
		वसुधे त्वां	
		वधिष्यामि	पृथ्वी ! तुझे मार दूंगा ॥२२॥

यवसं जग्ध्यनुदिनं नैव दोग्ध्यौधसं पयः ।
तस्यामेवं हि दुष्टायां दण्डो नात्र न शस्यते ॥२३॥

यवसं जग्ध्य अनुदिनं न एव दोग्धि औधसं पयः तस्यां एव हि दुष्टायां दण्डः न अत्र न शस्यते ॥२३॥

अनुदिनं यवसं	रोज-रोज हरीघास	**न अत्र दण्डः न**	इस विषयमें दण्ड न दिया जाय, ऐसा नहीं है
जग्ध्य	खा जाती है (किन्तु)	**शस्यते**	(दण्ड देना) उचित है ॥२४॥
औधसं पयः	अपने स्तनका दूध		
न एव दोग्धि	नहीं ही देती है		
हि तस्यां			
दुष्टायां	फिरतो उस दुष्टाको		

त्वं खल्वोषधिबीजानि प्राक् सृष्टानि स्वयम्भुवा ।
न मुञ्चस्यात्मरुद्धानि मामवज्ञाय मन्दधीः ॥२४॥

त्वं खलु ओषधि बीजानि प्राक् सृष्टानि स्वयंभुवा न मुञ्चसि आत्म रुद्धानि मां अवज्ञाय मन्दधीः ॥२४॥

स्वयम्भुवा	ब्रह्माजी द्वारा
प्राक् सृष्टानि	पहिले उत्पन्न किये गये
ओषधि बीजानि	अन्नोंके बीजोंको
त्वं मन्दधीः	तुझ मन्द बुद्धिने
खलु आत्म रुद्धानि	निश्चय अपने भीतर रोक लिया है
मुञ्चसि न	(उन्हें) छोड़ती नहीं है (उगने नहीं देती है) ॥२ ॥

अमूषां क्षुत्परीतानामार्तानां परिदेवितम् ।
शमयिष्यामि मद्बाणैर्भिन्नायास्तव मेदसा ॥२५॥

अमूषां क्षुत् परीतानां आर्तानां परिदेवितं शमयिष्यामि मद्बाणैः भिन्नायाः तव मेदसा ॥२५॥

मद्बाणैः	मेरे वाणोंसे
भिन्नायाः तव	छिन्न-भिन्न हुई तेरी
मेदसा	चर्बीसे
अमूषां क्षुत् परीतानां	इन भूखसे व्याकुल
आर्तानां परिदेवितं	दुःखियोंका क्रन्दन
शमयिष्यामि	शान्त करूँगा ॥२५॥

पुमान् योषिदुत क्लीब आत्मसम्भावनोऽधमः ।
भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽवधः ॥२६॥

पुमान् योषित् उत क्लीब आत्म सम्भावनः अधमः भूतेषु निरनुक्रोशः नृपाणां तत् वधः अवधः ॥२६॥

आत्म सम्भावनः	अपना ही पोषण करनेवाले
अधमः	अधम
भूतानां निरनुक्रोशः	प्राणियोंके प्रति निर्दय
पुमान् योषित्	पुरुष, स्त्री
उत क्लीब	अथवा नपुंसक हो,
नृपाणां तत्	राजाके लिए उसका
वधः अवधः	वध न मारते जैसा है ॥२६॥

त्वां स्तब्धां दुर्मदां नीत्वा मायागां तिलशः शरैः ।
आत्मयोगबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥२७॥

त्वां स्तब्धां दुर्मदां नीत्वा मायागां तिलशः शरैः आत्म योग बलेन इमा धारयिष्यामि अहं प्रजाः ॥२७॥

त्वां स्तब्धां	तुझ मूर्खा	**नीत्वा**	करके
दुर्मदां मायागां	मदोन्मत्ता, मायासे गौ बनीका	**आत्म योग बलेन**	अपने योग बलसे
शरैः तिलशः	बाणोंसे तिलोंके बराबर टुकड़े	**प्रजाः अहं धारयिष्यामि**	प्रजाका मैं धारण करूँगा ॥२७

*मैत्रेय उवाच**-

एवं मन्युमयीं मूर्तिं कृतान्तमिव बिभ्रतम् ।
प्रणता प्राञ्जलिः प्राह मही सञ्जातवेपथुः ॥२८॥

एवं मन्युमयीं मूर्तिं कृतान्तं इव बिभ्रतं प्रणता प्राञ्जलिः प्राह मही सञ्जातवेपथुः ॥२८॥

एवं कृतान्तं इव	इस प्रकार कालके समान	**सञ्जातवेपथुः**	काँपती हुई
मन्युमयीं मूर्तिं	क्रोधमय स्वरूप	**मही प्रणता**	पृथ्वी प्रणाम करके
बिभ्रतं	धारण किये (पृथुसे)	**प्राञ्जलिः प्राह**	हाथ जोड़कर बोली ॥२८॥

धरोवाच-

नमः परस्मै पुरुषाय मायया
विन्यस्तनानातनवे गुणात्मने ।
नमः स्वरूपानुभवेन निर्धुत-
द्रव्यक्रियाकारकविभ्रमोर्मये ॥२९॥

नमः परस्मै पुरुषाय मायया विन्यस्त नाना तनवे गुणात्मने नमः स्वरूप अनुभवेन निर्धुत द्रव्य क्रिया कारक विभ्रम उर्मये ॥२९॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

मायया नाना	
तनवे	मायासे अनेक शरीर
विन्यस्त	धारण किये
गुणात्मने	
परस्मै पुरुषाय	गुणात्मा परम-पुरुषको
नमः	नमस्कार ।
स्वरूप	
अनुभवेन	अपने स्वरूपानुभवसे
द्रव्यक्रिया	
कारक	पदार्थ, क्रिया, कर्त्ता रूप
विभ्रम ऊर्मये	अज्ञानकी लहरोंसे
निर्धुत	सर्वथा रहित
नमः	(आपको) नमस्कार ॥२९॥

येनाहमात्मायतनं विनिर्मिता
धात्रा यतोऽयं गुणसर्गसङ्ग्रहः ।
स एव मां हन्तुमुदायुधः स्वरा-
डुपस्थितोऽन्यं शरणं कमाश्रये ॥३०॥

येन अहं आत्म आयतनं विनिर्मिता धात्रा यतः अयं गुण सर्ग संग्रहः स एव मां हन्तुं उदायुधः स्वराट् उपस्थितः अन्यं शरणं कं आश्रये ॥३०॥

येन धात्रा	जिस विधाताने
अहं आत्म	
आयतनं	मुझे शरीरोंका आश्रय
विनिर्मिता	बनाया
यतः अयं	जिसपर यह
गुण सर्ग संग्रहः	त्रिगुणमयी सृष्टि स्थित है
स एव स्वराट्	वही स्वयं प्रकाश
मां हन्तुं	मुझे मारनेके लिए
उदायुधः	
उपस्थितः	अस्त्र उठाये आ गये हैं,
कं अन्यं	(फिर मैं) किस दूसरेकी
शरणं आश्रये	शरण ग्रहण करूँ ॥३०॥

य एतदादावसृजच्चराचरं
स्वमाययाऽऽत्माश्रययावितर्क्यया ।
तयैव सोऽयं किल गोप्तुमुद्यतः
कथं नु मां धर्मपरो जिघांसति ॥३१॥

य एतत् आदाः असृजत् चर अचरं स्वमायया आत्म आश्रयया अवितर्क्यया तया एव सः अयं किल गोप्तुं उद्यतः कथं नु मां धर्मपरः जिघांसति ॥३१॥

आदौ	(सृष्टिकी) आदिमें
य अवितर्क्यया	जिन्होंने अचिन्त्य
आत्म आश्रयया	अपने आश्रयमें रहनेवाली
स्वमायया	अपनी जो माया है
तया एव	उससे ही
एतत् चर अचरं	इस चर-अचर (जगत) की
असृजत्	सृष्टि की
सः अयं	वही ये (भगवान)
किल गोप्तुं	
उद्यतः	अब रक्षाके लिए प्रस्तुत हैं
धर्मपरः कथं	(वे) धर्मपरायण कैसे
मां नु जिघांसति	मुझे भला मार देंगे ॥३१॥

नूनं बतेशस्य समीहितं जनै-
स्तन्मायया दुर्जयायाकृतात्मभिः ।
न लक्ष्यते यस्त्वकरोदकारयद्-
योऽनेक एकः परतश्च ईश्वरः ॥३२॥

नूनं बत ईशस्य समीहितं जनैः तत् मायया दुर्जयया अकृत आत्मभिः न लक्ष्यते यस्तु अकरोत् अकारयत् यः अनेक एकः परतः च ईश्वरः ॥३२॥

नूनं बत	निश्चय अहो
ईशस्य	
समीहितं	सर्वेश्वरकी इच्छा
तत् दुर्जयया	
मायया	उनकी दुर्जय मायासे
अकृत	
आत्मभिः	अजितेन्द्रिय बने
जनैः न लक्ष्यते	लोगों द्वारा नहीं जानी जाती
यस्तु एकः	
ईश्वरः	जिन अद्वितीय ईश्वरने
परतः अकरोत्	(अपनेसे) भिन्न (ब्रह्मा) को बनाया
यः अनेकः	(फिर) जिसने (उनसे) अनेकता वाली (सृष्टि)
अकारयत्	बनवायी ॥३२॥

सर्गादि योऽस्यानुरुणद्धि शक्तिभिः-
र्द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मभिः ।
तस्मै समुन्नद्धनिरुद्धशक्तये
नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ॥३३॥

सर्गादि यः अस्य अनुरुणत् हि शक्तिभिः द्रव्य क्रिया कारक चेतन आत्मभिः तस्मै समुन्नद्ध निरुद्ध शक्तये नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ॥३३॥

हि यः	क्योंकि जो
द्रव्य क्रिया	पञ्चभूत, उनकी क्रिया (इन्द्रियां)
कारक	उनके अधिष्ठाता देवता
चेतन आत्मभिः	बुद्धि तथा अहंकार इन
शक्तिभिः	अपनी शक्तियोंसे
अस्य सर्गादि	इस (जगत) की सृष्टि आदि
अनुरुणत्	करते हैं
समुन्नद्ध	आविर्भूत तथा
निरुद्ध शक्तये	तिरोभूत होनेवाली शक्तिवाले
तस्मै परस्मै पुरुषाय	उन परम-पुरुष
वेधसे नमः	विधाताको नमस्कार ॥३३॥

स वै भवानात्मविनिर्मितं जगत्
भूतेन्द्रियान्तःकरणात्मकं विभो ।
संस्थापयिष्यन्नज मां रसातला-
दभ्युज्जहाराम्भस आदिसूकरः ॥३४॥

स वै भवान् आत्म विनिर्मितं जगत् भूत इन्द्रिय अन्तः करणात्मकं विभो संस्थपयिष्यत् अज मां रसातलात् अभ्युज्जहार अम्भस आदि-सूकरः ॥३४॥

स अज विभो	वही अजन्मा प्रभु
भवान् वै	आप ही हैं (जिन्होंने)
आदिसूकरः	आदिवाराह रूपसे
भूत इन्द्रिय	पंचभूत, इन्द्रिय,

अन्तः-
करणात्मकं अन्तःकरणवाले
आत्म
विनिर्मितं अपने बनाये
जगत्
संस्थापयिष्यत् जगतकी स्थापनाके लिए
मां अम्भस-
रसातलात् मुझे जलमें रसातलसे
अभ्युज्जहार उठाकर ले आये ॥३४॥

अपामुपस्थे मयि नाव्यवस्थिताः
प्रजा भवानद्य रिरक्षिषुः किल ।
स वीरमूर्तिः समभूद्धराधरो
यो मां पयस्युग्रशरो जिघांससि ॥३५॥

अपां उपस्थे मयि नाव्य वस्थिताः प्रजा भवान् अद्य रिरक्षिषुः किल स वीर मूर्तिः समभूत् धराधरः यः मां पयसि उग्रशरः जिघांसति ॥३५॥

यः धराधरः
समभूत् (इस प्रकार) जो धराके धारक बने थे
स वीर मूर्तिः वही आज वीर-मूर्ति धारणकर
अपां उपस्थे जलके ऊपर
मयि नाव्य
वस्थिताः मुझे नौकाके समान स्थित करनेवाले
किल अद्य अहो आज
प्रजा रिरक्षुषुः प्रजाकी रक्षाके लिए
भवान् मां आप मुझे
उग्रशरः
जिघांसति तीक्ष्ण वाणोंसे मारेंगे ? ॥३५॥

नूनं जनैरीहितमीश्वराणा-
मस्मद्विधैस्तद्गुणसर्गमायया ।
न ज्ञायते मोहितचित्तवर्त्मभि-
स्तेभ्यो नमो वीरयशस्करेभ्यः ॥३६॥

नूनं जनैः ईहितं ईश्वराणां अस्मत् विधैः तत् गुण सर्ग मायया न ज्ञायते मोहित चित्त वर्त्मभिः तेभ्यः नमः वीर यशः करेभ्यः ॥३ ॥

नूनं अस्मत्		**ईश्वराणां**	
विधैः	निश्चय मेरे जैसे	**ईहितं**	(आप) समर्थोंकी
जनैः	लोगों द्वारा		चेष्टा
तत् गुण सर्ग		**न ज्ञायते**	नहीं जानी जाती
मायया	उस (ईश्वर) की		(अतः)
	त्रिगुणात्मक सृष्टि	**वीर यशः**	
	करनेवाली मायासे	**करेभ्यः**	वीरोंको यश
मोहित चित्त			देनेवाले
वर्त्मभिः	मोहित चित्त मार्ग	**तेभ्यः नमः**	उनको (आपको)
	वालों द्वारा		नमस्कार ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते धरित्रीनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

इत्थं पृथुमभिष्टूय रुषा प्रस्फुरिताधरम् ।
पुनराहावनिर्भीता संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥१॥

इत्थं पृथुं अभिष्टूय रुषा प्रस्फुरित अधरं पुनः आह अवनिः भीता संस्तभ्य आत्मानं आत्मना ॥१॥

इत्थं	इस प्रकार	**आत्मना**	
रुषा प्रस्फुरित		**आत्मानं**	अपने आप ही
अधरं	क्रोधसे फड़कते ओष्ठ		चित्तको
पृथुं अभिष्टूय	पृथुकी स्तुति करके	**संस्तभ्य**	स्थिर करके
		भीता अवनिः	डरते-डरते पृथ्वी ने
		इदं आह	यह कहा ॥१॥

धरोवाच*-

संनियच्छाभिभो मन्युं निबोध श्रावितं च मे ।
सर्वतः सारमादत्ते यथा मधुकरो बुधः ॥२॥

संनियच्छ अभिभो मन्युं निबोध श्रावितं च मे सर्वतः सारं आदत्ते यथा मधुकरः बुधः ॥२॥

मन्युं अभिभो	क्रोधके आवेशको	**मधुकरः यथा**	
		बुधः	भ्रमरके समान बुद्धिमान
संनियच्छ	रोकिये		
च मे श्राबितं	और मेरी बात	**सर्वतः सारं**	
निबोध	सुनिये,	**आदत्ते**	सर्वत्र से सार ग्रहण करते हैं ॥२॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

अस्मिँल्लोकेऽथवामुष्मिन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
दृष्टा योगाः प्रयुक्ताश्च पुंसां श्रेयः प्रसिद्धये ॥३॥

अस्मिन् लोके अथवा अमुष्मिन् मुनिभिः तत्त्वदर्शिभिः दृष्टा योगाः प्रयुक्ताः च पुंसां श्रेयः प्रसिद्धये ॥३॥

अस्मिन् लोके	इस लोकमें	**तत्त्वदर्शिभिः**	तत्त्वज्ञानी
अथवा		**मुनिभिः**	मुनियों द्वारा
आमुष्मिन्	अथवा परलोकमें	**योगाः दृष्टा**	साधन निकाले
पुंसां श्रेयः		**च प्रयुक्ताः**	तथा उन्हें प्रयोग
प्रसिद्धये	पुरुषोंके कल्याण करनेके लिए		किया है ॥३॥

तानातिष्ठति यः सम्यगुपायान् पूर्वदर्शितान् ।
अवरः श्रद्धयोपेत उपेयान् विन्दतेऽञ्जसा ॥४॥

तान् आतिष्ठति यः सम्यक् उपायान् पूर्वदर्शितान् अवरः श्रद्धया उपेत उपेयान् विन्दते अञ्जसा ॥४॥

पूर्वदर्शितान्	पूर्वपुरुषों द्वारा बतलाये	**सम्यक् आतिष्ठति**	भली प्रकार अपनाता है,
तान् उपायान्	उन उपायोंको	**अञ्जसा**	(वह) सरलतासे
श्रद्धया उपेत	श्रद्धा सहित	**उपेयान् विन्दते**	अभीष्ट फल पा लेता है ॥४॥
यः अवरः	जो पीछे उत्पन्न		

तानवज्ञाय यो ऽविद्वानर्थमारभते स्वयम् ।
तस्य व्यभिचरन्त्यर्था आरब्धाश्च पुनः पुनः ॥५॥

तान् अनादृत्य यः अविद्वान् अर्थान् आरभते स्वयं तस्य व्यभिचरन्ति अर्था आरब्धाः च पुनः पुनः ॥५॥

यः अविद्वान्	जो अज्ञानी
तान् अनादृत्य	उन (उपायों) की उपेक्षा करके
स्वयं अर्थान्	स्वयं साधनोंको
आरभते	प्रारम्भ करता है,
तस्य पुनः पुनः च	उसके बार-बार भी
आरब्धाः अर्थाः	प्रारम्भ किये गये साधन
व्यभिचरन्ति	निष्फल होते हैं ॥५॥

पुरा सृष्टा ह्योषधयो ब्रह्मणा या विशाम्पते ।
भुज्यमाना मया दृष्टा असद्भिरधृतव्रतैः ॥६॥

पुरा सृष्टा हि ओषधयः ब्रह्मणा या विशाम्पते भुज्यमाना मया दृष्टा असद्भिः अधृतव्रतैः ॥६॥

विशाम्पते	राजन् !
ब्रह्मणा या ओषधयः	ब्रह्माजीने जो अन्न
पुरा सृष्टा	पहिले उत्पन्न किया था
हि मया दृष्टा	क्योंकि मैंने देखा
असद्भिः अधृत-व्रतैः	दुष्ट व्रतहीन लोग
भुज्यमाना	(उनका) उपभोग कर रहे हैं ॥६॥

अपालितानादृता च भवद्भिर्लोकपालकैः ।
चोरीभूतेऽथ लोकेऽहं यज्ञार्थेऽग्रसमोषधीः ॥७॥

अपालिता अनादृता च भवद्भिः लोकपालकैः चोरीभूते अथ लोके अहं यज्ञ अर्थे अग्रसं ओषधीः ॥७॥

लोकपालकैः	लोकपालक
भवद्भिः अपालिता अनादृता च	आप लोगोंके द्वारा पालन न करके उपेक्षिता
ओषधिः	अन्नादि
लोके चोरीभूते	लोकमें चुरायी जा रही थीं
अहं यज्ञ अर्थे अग्रसं	मैंने यज्ञके लिए (उन्हें) छिपा लिया ॥७॥

नूनं ता वीरुधः क्षीणा मयि कालेन भूयसा ।
तत्र योगेन दृष्टेन भवानादातुमर्हति ॥८॥

नूनं ता वीरुधः क्षीणा मयि कालेन भूयसा तत्र योगेन दृष्टेन भवान् आदातुं अर्हति ॥८॥

नूनं भूयसा कालेन	अवश्य बहुत समय बीतने से
ता वीरुधः	वे पौधे
मयि क्षीणा	मुझमें पच गये हैं
तत्र दृष्टेन	इस सम्बन्धमें निर्दिष्ट
योगेन भवान्	उपायसे आपको
आदातुं अर्हति	(उन्हें) निकालना चाहिए ॥८॥

वत्सं कल्पय मे वीर येनाहं वत्सला तव ।
धोक्ष्ये क्षीरमयान् कामाननुरूपं च दोहनम् ॥९॥

वत्सं कल्पय मे वीर येन अहं वत्सला तव धोक्ष्ये क्षीरमयान् कामान् अनुरूपं च दोहनम् ॥९॥

वीर मे	वीर ! मेरे लिए
वत्सं च अनुरूपं	बछड़ा और अनुरूप
दोहनं कल्पय	दोहन पात्रकी व्यवस्था कीजिए,
येन अहं वत्सला	जिससे मैं बछड़ेके स्नेहसे
तव कामान्	आपके अभीष्ट पदार्थ
क्षीरमयान् धोक्ष्ये	दूधके रूपमें दुहवा दूँ ॥९॥

दोग्धारं च महाबाहो भूतानां भूतभावन ।
अन्नमीप्सितमूर्जस्वद्भगवान् वाञ्छते यदि ॥१०॥

दोग्धारं च महाबाहो भूतानां भूतभावन अन्नं ईप्सितं ऊर्जस्वत् भगवान् वाञ्छते यदि ॥१०॥

महाबाहो	महाबाहु
भूतभावन	
भगवान्	प्राणियोंके रक्षक आप भगवान्
यदि भूतानां	यदि प्राणियोंके लिए
ऊर्जस्वत्	
ईप्सितं	शक्तिदायी अभीष्ट
अन्नं वाञ्छते	अन्न चाहते हैं,
दोग्धारं च	(तो)दुहनेवालेका भी (प्रबन्ध करें)॥१०॥

समां च कुरु मां राजन्देववृष्टं यथा पयः ।
अपर्तावपि भद्रं ते उपावर्तेत मे विभो ॥११॥

समां च कुरु मां राजन् देववृष्टं यथा पयः अपर्तौ अपि भद्रं ते उपावर्तेत मे विभो ॥११॥

विभो राजन्	प्रभो ! राजन् !
मां समां च कुरु	मुझे समतल भी बनाइये,
यथा देववृष्टं पयः	जिससे इन्द्रका बरसाया जल
अपर्ताः अपि	वर्षा बीत जानेपर भी
मे उपावर्तेत	मुझमें (नमीके रूपमें) बना रहे
ते भद्रं	वे कल्याणकारी (हों) ॥११॥

*मैत्रेय उवाच**–

इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः ।
वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत्सकलौषधीः ॥१२॥

इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः वत्सं कृत्वा मनुं पाणाः अदुहत् सकलौषधीः ॥१२॥

भुव इति प्रियं हितं वाक्यं	पृथ्वीके इस प्रकारके प्रिय हितकारी वचनोंको
आदाय भूपतिः	स्वीकार करके राजा (पृथु) ने
मनुं वत्सं कृत्वा	मनुको बछड़ा बनाकर
पाणाः सकलौषधिः अदुहत्	हाथमें ही सब अन्न दुह लिए ॥१२॥

तथा परे च सर्वत्र सारमाददते बुधाः ।
ततोऽन्ये च यथाकामं दुदुहुः पृथुभावितास् ॥१३॥

तथा परे च सर्वत्र सारं आददते बुधाः ततः अन्ये च यथा कामं दुदुहुः पृथु भावितास् ॥१३॥

तथा परे च	ऐसे (पृथुके समान) दूसरे भी
बुधाः सर्वत्र सारं आददते	बुद्धिमान सब कहींसे सार ग्रहण कर लेते हैं,
पृथु भावितां	पृथु द्वारा वशमें की (पृथ्वीसे)
ततः अन्ये च यथा कामं दुदुहुः	फिर दूसरोंने भी कामनानुसार दुहा ॥१३॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ऋषयो दुदुहुर्देवीमिन्द्रियेष्वथ सत्तम ।
वत्सं बृहस्पतिं कृत्वा पयश्छन्दोमयं शुचि ॥१४॥

ऋषयः दुदुहुः देवीं इन्द्रियेषु अथ सत्तम वत्सं बृहस्पतिं कृत्वा पयः छन्दोमयं शुचि ॥१४॥

सत्तम	संत प्रवर विदुर !	अथ इन्द्रियेषु	फिर इन्द्रियों (वाणी)में
देवीं ऋषयः	पृथ्वी देवीसे ऋषियोंने	शुचि छन्दोमयं	पवित्र वेदमन्त्र रूप
बृहस्पतिं वत्सं कृत्वा	बृहस्पतिको बछड़ा बनाकर	पयः दुदुहुः	दूध दुहा ॥१४॥

कृत्वा वत्सं सुरगणा इन्द्रं सोममदूदुहन् ।
हिरण्मयेन पात्रेण वीर्यमोजो बलं पयः ॥१५॥

कृत्वा वत्सं सुरगणा इन्द्रं सोमं अदूदुहन् हिरण्मयेन पात्रेण वीर्यं ओजः बलं पयः ॥१५॥

इन्द्रं वत्सं कृत्वा	इन्द्रको बछड़ा बनाकर	वीर्यं ओजः बलं	वीर्य, ओज, बलदायी
हिरण्मयेन पात्रेण	स्वर्णके बने पात्रमें	सोमं पयः अदूदुहन्	सोमरूप दूध दुहा ॥१५॥
सुरगणा	देवताओंने		

दैतेया दानवा वत्सं प्रह्लादमसुरर्षभम् ।
विधायादूदुहन् क्षीरमयःपात्रे सुरासवम् ॥१६॥

दैतेया दानवा वत्सं प्रह्लादं असुर ऋषभं विधाय अदूदुहन् क्षीरं अयः पात्र सुरा आसवम् ॥१६॥

दैतेया दानवाः	दैत्य और दानवोंने	अयः पात्रे	लोहेके बर्तनमें
असुर ऋषभं प्रह्लादं वत्सं विधाय	असुर श्रेष्ठ प्रह्लादको बछड़ा बनाकर	सुरा आसवं	शराब तथा आसव रूप
		क्षीरं अदूदुहन्	दूध दुहा ॥१६॥

गन्धर्वाप्सरसोऽधुक्षन् पात्रे पद्ममये पयः ।
वत्सं विश्वावसुं कृत्वा गान्धर्वं मधु सौभगम् ॥१७॥

गन्धर्वा अप्सरसः अधुक्षन् पात्रे पद्ममये पयः वत्सं विश्वावसुं कृत्वा गान्धर्वं मधु सौभगम् ॥१७॥

गन्धर्वा अप्सरसः	गन्धर्वों तथा अप्सराओंने	**कृत्वा**	विश्वावसुको बछड़ा बनाकर
पद्ममये पात्रे	कमलके पात्रमें	**मधु गान्धर्वं**	मधुर संगीत तथा
विश्वावसु वत्सं		**सौभगं**	सौन्दर्य रूप
		पयः अधुक्षन्	दूध दुहा ॥१७॥

वत्सेन पितरोऽर्यम्णा कव्यं क्षीरमधुक्षत ।
आमपात्रे महाभागाः श्रद्धया श्राद्धदेवताः ॥१८॥

वत्सेन पितरः अर्यम्णा कव्यं क्षीर मधु अक्षत आमपात्रे महाभागाः श्रद्धया श्राद्धदेवताः ॥१८॥

महाभागाः	महाभाव	**आमपात्रे**	मिट्टीके कच्चे बर्तनमें
पितरः	पितरोंने	**मधु अक्षत कव्यं**	मधु अक्षतयुक्त कव्य रूप
श्राद्धदेवताः	श्राद्धके देवता	**श्रद्धया क्षीरं**	श्रद्धापूर्वक दूध दुहा ॥१८॥
अर्यम्णा वत्सेन	अर्यमाको बछड़ा बनाकर		

प्रकल्प्य वत्सं कपिलं सिद्धाः सङ्कल्पनामयीम् ।
सिद्धिं नभसि विद्यां च ये च विद्याधरादयः ॥१९॥

प्रकल्प्य वत्सं कपिलं सिद्धाः सङ्कल्प नामयीं सिद्धिं नभसि विद्यां च ये च विद्याधर आदयः ॥१९॥

कपिलं वत्सं		**सिद्धाः सङ्कल्प**	
प्रकल्प्य	कपिलजीको बछड़ा बनाकर	**नामयीं**	सिद्धोंने संकल्पमयी
		सिद्धिं च ये	सिद्धियां तथा जो

विद्याधर आदयः	विद्याधर आदि थे	**नभसि विद्यां**	आकाशमें गमनकी विद्या (दुहा) ॥१ ॥

अन्ये च मायिनो मायामन्तर्धानाद्भुतात्मनाम् ।
मयं प्रकल्प्य वत्सं ते दुदुहुर्धारणामयीम् ॥२०॥

अन्ये च मायिनः मायां अन्तर्धान अद्भुत आत्मनां मयं प्रकल्प्य वत्सं ते दुदुहुः धारणामयीम् ॥२०॥

अन्ये च मायिनः	दूसरे मायावियोंने	**आत्मनां अन्तर्धान**	अपनेको अदृश्य करनेको
मयं वत्सं प्रकल्प्य	मयको बछड़ा बनाकर	**अद्भुत धारणामयीं मायां दुदुहुः**	अद्भुत धारणा रूपा माया दुहा ॥२०॥

यक्षरक्षांसि भूतानि पिशाचाः पिशिताशनाः ।
भूतेशवत्सा दुदुहुः कपाले क्षतजासवम् ॥२१॥

यक्ष रक्षांसि भूतानि पिशाचाः पिशित अशनाः भूतेश वत्सा दुदुहुः कपाले क्षतज आसवम् ॥२१॥

पिशित अशनाः	मांसाहारी	**भूतेश वत्सा**	रुद्रको बछड़ा बनाकर
यक्ष रक्षांसि भूतानि	यक्ष, राक्षस,	**कपाले**	खोपड़ीमें
पिशाचाः	भूत, पिशाचोंने	**क्षतज आसवं दुदुहुः**	घावसे निकला रक्त दुहा ॥२१॥

तथाहयो दन्दशूकाः सर्पा नागाश्च तक्षकम् ।
विधाय वत्सं दुदुहुर्बिलपात्रे विषं पयः ॥२२॥

तथा अहयः दन्दशूकाः सर्पा नागाः च तक्षकं विधाय वत्सं दुदुहुः बिल पात्रे बिषं पयः ॥२२॥

तथा दन्दशूकाः	इसी प्रकार डंसनेवाले
अहयः सर्पाः नागाः	अहि (बिना फणके) सर्प, फणधर सर्प, अनेक सिरवाले नागोंने
तक्षकं वत्सं विधाय	तक्षकको बछड़ा बनाकर
बिल पात्रे	बिल रूपी पात्रमें
विषं पयः	विष रूपी दूध
दुदुहुः	दुहा ॥२२॥

पशवो यवसं क्षीरं वत्सं कृत्वा च गोवृषम् ।
अरण्यपात्रे चाधुक्षन्मृगेन्द्रेण च दंष्ट्रिणः ॥२३॥

पशवः यवसं क्षीरं वत्सं कृत्वा च गोवृषं अरण्यपात्रे च आधुक्षन् मृगेन्द्रेण च दंष्ट्रिणः ॥२३॥

गोवृषं वत्सं कृत्वा	सांड़को बछड़ा बनाकर
अरण्यपात्रे च	वन रूपी पात्रेमें ही
पशवः च	पशुओंने तो
यवसं क्षीरं	हरी घास रूपी दूध
आधुक्षन् दंष्ट्रिणः च	चारों ओर दुहा दाढ़ोंवाले पशुओंने तो
मृगेन्द्रेण	सिंहको बछड़ा बनाकर ॥२३॥

क्रव्यादाः प्राणिनः क्रव्यं दुदुहुः स्वे कलेवरे ।
सुपर्णवत्सा विहगाश्चरं चाचरमेव च ॥२४॥
वटवत्सा वनस्पतयः पृथग्रसमयं पयः ।
गिरयो हिमवद्वत्सा नानाधातून् स्वसानुषु ॥२५॥

क्रव्यादाः प्राणिनः क्रव्यं दुदुहुः स्वे कलेवरे सुपर्णवत्सा विहगाः चरं च अचरं एव च वटवत्सा बनस्पतयः पृथक् रसमयं पयः गिरयः हिमवत् वत्सा नाना धातून् स्वसानुषु ॥२४-२५॥

स्वे कलेवरे	अपने शरीर (मुख) में
क्रव्यादाः प्राणिनः	कच्चा मांस खाने वाले प्राणियोंने

	कच्चा मांस,
सुपर्णवत्सा	गरुड़को बछड़ा बनाकर
विहगाः	पक्षियोंने
चरं च	चलनेवाले (कीट आदि)
च अचरं एव	तथा अचर (फलादि) भी,
वटवत्सा	वट-वृक्षको बछड़ा बनाकर
वनस्पतयः	वृक्षोंने
पृथक् रसमयं पयः	अलग-अलग रस-वाला दूध,
हिमवत् वत्सा	हिमालयको बछड़ा बनाकर
गिरयः	
स्वसानुषु	पर्वतोंने अपने शिखरोंपर
नाना धातून्	
दुदुहुः	अनेक प्रकारकी धातुएँ दुहा ॥२४-२५

सर्वे स्वमुख्यवत्सेन स्वे स्वे पात्रे पृथक् पयः ।
सर्वकामदुघां पृथ्वीं दुदुहुः पृथुभावितां ॥२६॥

सर्वे स्वमुख्य वत्सेन स्वे स्वे पात्रे पृथक् पयः सर्वकाम दुघां पृथ्वीं दुदुहुः पृथु भावितां ॥२६॥

पृथु भावितां	पृथुके द्वारा वश की गयी
सर्वकाम दुघां	सब अभीष्ट वस्तु देनेवाली
पृथ्वीं	पृथ्वीको
सर्वे स्वमुख्य	सबने अपने प्रमुखको
वत्सेन	बछड़ा बनाकर
स्वे स्वे पात्रे	अपने-अपने पात्रोंमें
पृथक् पयः	अलग-अलग दूध
दुदहुः	दुहा ॥२६॥

एवं पृथ्वादयः पृथ्वीमन्नादाः स्वन्नमात्मनः ।
दोहवत्सादिभेदेन क्षीरभेदं कुरूद्वह ॥२७॥

एवं पृथ्वादयः पृथ्वीं अन्नादाः स्व अन्नं आत्मनः दोहबत्सादि भेदेन क्षीरभेदं कुरुद्वह ॥२७॥

कुरुद्वह	कुरुश्रेष्ठ विदुर !
एवं पृथ्वादयः	इस प्रकार पृथु आदिने
अन्नादाः पृथ्वीं	आहार करने वालोंने पृथ्वीसे

स्व आत्मनः अन्नं	अपना-अपना आहर (दुहा)	**दोहवत्सादि भेदेन क्षीरभेदं**	दुहनेके पात्रों, बछड़ों आदिके भेदसे दूधमें भेद हो गया ॥२७॥

ततो महीपतिः प्रीतः सर्वकामदुघां पृथुः ।
दुहितृत्वे चकारेमां प्रेम्णा दुहितृवत्सलः ॥२८॥

ततः महीपतिः प्रीतः सर्वकाम दुघां पृथुः दुहितृत्वे चकार इमां प्रेम्णा दुहितृ वत्सलः ॥२८॥

ततः दुहितृ वत्सलः	तब पुत्रियोंसे स्नेह करनेवाले	**सर्वकाम दुघां**	सब अभीष्ट देनेवाली (पृथ्वी) को
महीपतिः पृथुः	राजा पृथुने	**प्रेम्णा दुहितृत्वे चकार**	प्रेमवश पुत्री बना लिया ॥२८॥
प्रीतः इमां	प्रसन्न होकर इस		

चूर्णयन् स्वधनुष्कोट्या गिरिकूटानि राजराट् ।
भूमण्डलमिदं वैन्यः प्रायश्चक्रे समं विभुः ॥२९॥

चूर्णयन् स्वधनुष् कोट्या गिरिकूटानि राजराट् भूमण्डलं इदं वैन्यः प्रायः चक्रे समं विभुः ॥२९॥

विभुः राजराट् वैन्यः	समर्थ सम्राट् पृथुने	**गिरिकूटानि चूर्णयन्**	पर्वत शिखरोंको चूर-चूर करके
स्वधनुष् कोट्या	अपने धनुषकी नोकसे	**इदं भूमण्डलं प्रायः समं चक्रे**	इस धरा-मण्डलको प्रायः समतल बना दिया ॥२९॥

अथास्मिन् भगवान् वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता ।
निवासान् कल्पयाञ्चक्रे तत्र तत्र यथार्हतः ॥३०॥

अथ अस्मिन् भगवान् वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता निवासान् कल्पयान् चक्रे तत्र तत्र यथा अर्हतः ॥३०॥

प्रजानां पिता	प्रजाको पिताके समान
वृत्तिदः	आजीविका देनेवाले
भगवान् वैन्यः	भगवान् पृथुने
अथ अस्मिन्	फिर इस (पृथ्वी) पर
यथा आर्हंतः	जो जिसके योग्य था उसे वहां
तत्र तत्र	उचित स्थानोंमें
निवासान्	रहनेका स्थान
कल्पयान् चक्रे	बनवा दिया ॥३०॥

ग्रामान् पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च ।
घोषान् व्रजान् सशिबिरानाकरान् खेटखर्वटान् ॥३१॥

ग्रामान् पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च घोषान् व्रजान् सशिविरान् आकरान् खेट खर्वटान् ॥३१॥

ग्रामान् पुरः	गाँव, कस्बे,
पत्तनानि	नगर
च विविधानि	
दुर्गाणि	और बहुतसे किले,
सशिविरान्	अस्थायी निवासोंके साथ
व्रजान् घोषान्	चलते-फिरते चरवाहोंके निवास,
आकरान्	खदानें
खेट खर्वटान्	खेड़े (छोटे गाँव), झोपड़े (बसाये) ॥३१॥

प्राक्पृथोरिह नैवैषा पुरग्रामादिकल्पना ।
यथासुखं वसन्ति स्म तत्र तत्राकुतोभयाः । ३२॥

प्राक् पृथोः इह न एव एषा पुरग्रामादि कल्पना यथा सुखं वसन्ति स्म तत्र तत्र अकुतः भयाः ॥३२॥

पृथोः प्राक्	पृथुसे पहिले
इह एषा	यहां (पृथ्वी) पर यह
पुरग्रामादि	नगर-गांव आदिकी
कल्पना न एव	कल्पना नहीं ही थी,
अकुतः भयाः	कहींसे भय न होनेसे लोग
यथा सुखं	अपनी सुविधानुसार
तत्र तत्र	जहाँ-तहाँ
वसन्ति स्म	बस जाते थे ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे पृथुविजयेऽष्टादशोऽध्यायः ।

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

अथादीक्षत राजा तु हयमेधशतेन सः ।
ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥१॥

अथ अदीक्षत राजा तु हयमेध शतेन सः ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥१॥

अथ सः राजा तु	फिर उस राजा (पृथु) ने तो
यत्र प्राची सरस्वती	जहां प्राची सरस्वती है*
मनोः क्षेत्रे ब्रह्मावर्ते	मनुके क्षेत्र ब्रह्मावर्तमें
हयमेध शतेन	सौ अश्वमेध-यज्ञ करनेकी
अदीक्षत	दीक्षा ली ॥१॥

तदभिप्रेत्य भगवान् कर्मातिशयमात्मनः ।
शतक्रतुर्न ममृषे पृथोर्यज्ञमहोत्सवम् ॥२॥

तत् अभिप्रेत्य भगवान् कर्म अतिशयं आत्मनः शतक्रतुः न ममृषे पृथोः यज्ञ महोत्सवम् ॥२॥

भगवान् शतक्रतुः	भगवान् इन्द्र
तत् आत्मनः	उस अपने (समान)
अतिशयं कर्म	अत्यन्त श्रेष्ठ कर्मका
अभिप्रेत्य	अभिप्राय जानकर
पृथोः यज्ञ महोत्सवं	पृथुके यज्ञ महोत्सवको
ममृषे न	सहन नहीं कर सके ॥२॥

---

* कई नदियोंका नाम सरस्वती था। बदरीनाथसे आगे व्यासाश्रम उदीची सरस्वती (माना गांवके पास) सिद्धपुर (गुजरात) के पास प्रतीची सरस्वतीका वर्णन भागवतमें पीछे आ चुका है; किन्तु कानपुरके पास ब्रह्मावर्त (विठूर) के समीपकी यह प्राची सरस्वती शायद लुप्त हो गयी और यही प्रयागमें गुप्ता है।

यत्र यज्ञपतिः साक्षाद्भगवान् हरिरीश्वरः ।
अन्वभूयत सर्वात्मा सर्वलोकगुरुः प्रभुः ॥३॥

यत्र यज्ञपतिः साक्षात् भगवान् हरिः ईश्वरः अन्वभूयत सर्वात्मा सर्वलोक गुरुः प्रभुः ॥३॥

यत्र सर्वात्मा	जिस यज्ञमें सर्वात्मा,	**यज्ञपतिः**	
सर्वलोक गुरुः	सब लोकोंके गुरु और	**भगवान्**	यज्ञपति भगवान्
प्रभुः साक्षात्	स्वामी साक्षात्	**ईश्वरः हरिः**	सर्वेश्वर श्रीहरिका
		अन्वभूयत	अनुभव (दर्शन) हुआ ॥३॥

अन्वितो ब्रह्मशर्वाभ्यां लोकपालैः सहानुगैः ।
उपगीयमानो गन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ॥४॥

अन्वितः ब्रह्म शर्वाभ्यां लोकपालैः सह अनुगैः उपगीयमानः गन्धर्वैः मुनिभिः च अप्सरः गणैः ॥४॥

ब्रह्म शर्वाभ्यां	ब्रह्मा और शंकरजीके	**गन्धर्वैः मुनिभिः**	गन्धर्व, मुनिजन,
अन्वितः	साथ (भगवान) आये ।	**च अप्सरः गणैः**	तथा अप्सरा समूह
सह अनुगैः		**उपगीयमानः**	(उनका) यश गा रहा था ॥४॥
लोकपालैः	अनुचरोंके साथ लोकपाल,		

सिद्धा विद्याधरा दैत्या दानवा गुह्यकादयः ।
सुनन्दनन्दप्रमुखाः पार्षदप्रवरा हरेः ॥५॥

सिद्धाः, विद्याधराः, दैत्याः, दानवाः, गुह्यक (यक्ष) आदयः सुनन्द-नन्द प्रमुखाः पार्षद प्रवराः हरेः ॥५॥

कपिलो नारदो दत्तो योगेशाः सनकादयः ।
तमन्वीयुर्भागवता ये च तत्सेवनोत्सुकाः ॥६॥

कपिलः, नारदः, दत्तः (दत्तात्रेय), योगेशाः सनकादयः तं अन्वीयुः भागवता ये च तत्सेवन उत्सुकाः ॥६॥

ये च तत्सेवन	जो भी उन (भगवान) की सेवा	**भागवता**	(वे) भगद्भक्त
उत्सुकाः	(करनेको) उत्सुक थे	**तं अन्वीयुः**	उनके पीछे आये ॥६॥

यत्र धर्मदुघा भूमिः सर्वकामदुघा सती ।
दोग्धि स्माभीप्सितानर्थान् यजमानस्य भारत ॥७॥

यत्र धर्मदुघा भूमिः सर्वकाम दुघा सती दोग्धि स्म अभीप्सितान् अर्थान् यजमानस्य भारत ॥७॥

भारत	विदुर !	**भूमिः**	
यत्र धर्मदुघा	जिस (यज्ञ) में धर्म पूर्वक दुही	**यजमानस्य**	पृथ्वी यजमान पृथुको
सर्वकाम दुघा	सब अभीष्ट देनेवाली	**अभीप्सितान् अर्थान्**	अभीष्ट पदार्थ
		दोग्धि स्म	पूर्ण करती रही ॥७॥

ऊहुः सर्वरसान्नद्यः क्षीरदध्यन्नगोरसान् ।
तरवो भूरिवर्ष्माणः प्रासूयन्त मधुच्युतः ॥८॥

ऊहुः सर्वरसान् नद्यः क्षीर दधि अन्न गोरसान् तरवः भूरिवर्ष्माणः प्रासूयन्त मधुच्युतः ॥८॥

नद्यः सर्वरसान्	नदियाँ सब रस	**तरवः**	वृक्ष
क्षीर, दधि, अन्न, गोरसान्	दूध, दही, अन्न, गोरस (घृत)	**भूरिवर्ष्माणः**	बहुत सामग्रियां देते थे तथा
ऊहुः	बहालाती थीं,	**मधुच्युतः**	(उनसे) मधुकी धारा
		प्रासूयन्त	प्रकट हो गयी ॥८॥

सिन्धवो रत्ननिकरान् गिरयोऽन्नं चतुर्विधम् ।
उपायनमुपाजह्रुः सर्वे लोकाः सपालकाः ॥९॥

सिन्धवः रत्न निकरान् गिरयः अन्नं चतुर्विधं उपायनं उपाजह्रुः सर्वे लोकाः सपालकाः ॥९॥

रत्न निकरान्	रत्नोंकी राशियां	**सपालकाः**	लोकपालोंके साथ
सिन्धवः	समुद्रोंने दीं,	**सर्वे लोकाः**	सब लोक
गिरयः चतुर्विधं	पर्वतोंने चारों प्रकारके*	**उपायनं**	
अन्नं	खाने योग्य फल दिये,	**उपाजह्रुः**	उपहार भेंट लाये ॥९॥

इति चाधोक्षजेशस्य पृथोस्तु परमोदयम् ।
असूयन् भगवानिन्द्रः प्रतिघातमचीकरत् ॥१०॥

इति च अधोक्षज ईशस्य पृथोः तु परम उदयं असूयन् भगवान् इन्द्रः प्रतिघातं अचीकरत् ॥१०॥

अधोक्षज ईशस्य	श्रीहरि जिनके स्वामी हैं उन	**असूयन्**	डाह करते हुए
पृथोः तु	पृथुके तो	**इन्द्रः भगवान्**	इन्द्र भगवानने
इति च परम		**प्रतिघातं**	
उदयं	ऐसे परम अभ्युदयसे	**अचीकरत्**	विघ्न डालनेकी चेष्टा की ॥१०॥

चरमेणाश्वमेधेन यजमाने यजुष्पतिम् ।
वैन्ये यज्ञपशुं स्पर्धन्नपोवाह तिरोहितः ॥११॥

चरमेण अश्वमेधेन यजमाने यजुष्पतिं वैन्ये यज्ञपशुं स्पर्धन् अपोवाह तिरोहितः ॥११॥

---

* चतुर्विध आहार है—१—चर्व्य (चबाकर खाने योग्य) २—चोष्य (जो चूसा जाय) ३—लेह्य (चाट लेने योग्य) ४—पेय (पीने योग्य)

चरमेण अश्वमेधेन	अन्तिम अश्वमेध यज्ञ द्वारा
यजुष्पतिं	भगवान यज्ञपतिकी
यजमाने	जब आराधना हो रही थी तब
वैन्ये स्पर्धन्	पृथुसे स्पर्धा करते हुए
तिरोहितः	अदृश्य रहकर (इन्द्रने)
यज्ञ पशुं अपोवाह	यज्ञीय अश्व हरण कर लिया ॥११॥

तमत्रिर्भगवानैक्षत्त्वरमाणं विहायसा ।
आमुक्तमिव पाखण्डं योऽधर्मे धर्मविभ्रमः ॥१२॥

तं अत्रिः भगवान् ऐक्षत् त्वरमाणं विहायसा आमुक्तं इव पाखण्डं यः अधर्मे धर्म विभ्रमः ॥१२॥

यः अधर्मे	जो अधर्ममें
धर्म विभ्रमः	धर्मका भ्रम उत्पन्न करनेवाला है (उस)
पाखण्डं आमुक्तं इव	पाखण्ड करनेवाले समान (वेश धारण किए)
विहायसा	
त्वरमाणं	आकाशमें शीघ्रतासे जाते
तं भगवान् अत्रिः	उन (इन्द्र को भगवान अत्रिने
ऐक्षत्	देख लिया ॥१२॥

अत्रिणा चोदितो हन्तुं पृथुपुत्रो महारथः ।
अन्वधावत संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥१३॥

अत्रिणा चोदितः हन्तुं पृथुपुत्रः महारथः अन्वधावत संक्रुद्धः तिष्ठ-तिष्ठ इति च अब्रवीत् ॥१३॥

अत्रिणा हन्तुं	अत्रि द्वारा मार देनेकी
चोदितः	
महारथः	प्रेरणा देनेपर महारथी
पृथुपुत्रः	पृथुके पुत्र
संक्रुद्धः	
अन्वधावत	क्रोधित होकर (इन्द्रके) पीछे दौड़ पड़े
'तिष्ठ तिष्ठ'	'ठहर ! ठहर !'
इति च अब्रवीत्	यह भी बोले ॥१३॥

तं तादृशाकृतिं वीक्ष्य मेने धर्मं शरीरिणम् ।
जटिलं भस्मनाच्छन्नं तस्मै बाणं न मुञ्चति ॥१४॥

तं तादृश आकृतिं वीक्ष्य मेने धर्मं शरीरिणं जटिलं भस्मना आच्छन्नं तस्मै बाणं न मुञ्चति ॥१४॥

तं जटिलं	उन (इन्द्रको) जटाधारी	**वीक्ष्य**	देखकर
भस्मना आच्छन्नं	भस्म पूरे देहमें लगाये	**शरीरिणं धर्मं**	शरीरधारी (साक्षात्) धर्म
तादृश आकृतिं	इस प्रकारका वेश बनाये	**मेने**	मान लिया,
		तस्मै	उसपर
		बाणं न मुञ्चति	बाण नहीं छोड़ा ॥१४॥

वधान्निवृत्तं तं भूयो हन्तवेऽत्रिरचोदयत् ।
जहि यज्ञहनं तात महेन्द्रं विबुधाधमम् ॥१५॥

बधात् निवृत्तं तं भूयः हन्तवे अत्रिः अचोदयत् जहि यज्ञहनं तात महेन्द्रं विबुध अधमम् ॥१५॥

बधात् निवृत्तं	वध न करके लौटे	**विबुधा अधमं**	देवाधम
तं अत्रिः भूयः	उसे अत्रिने फिर	**महेन्द्रं जहि**	महेन्द्रको मार
अचोदयत्	प्रेरित किया—		दो ।' ॥१५॥
'तात यज्ञहनं	'तात ! यज्ञ नाशक		

एवं वैन्यसुतः प्रोक्तस्त्वरमाणं विहायसा ।
अन्वद्रवदभिक्रुद्धो रावणं गृध्रराडिव ॥१६॥

एवं वैन्यसुतः प्रोक्तः त्वरमाणं विहायसा अन्वद्रवत् अभिक्रुद्धः रावणं गृध्रराट् इव ॥१६॥

एवं प्रोक्तः	ऐसा कहे जानेपर	**अन्वद्रवत्**	पीछे दौड़ पड़े
अभिक्रुद्धः	अत्यन्त क्रुद्ध होकर	**रावणं गृध्रराट्**	
विहायसा		**इव**	रावणपर गृध्रराज
त्वरमाणं	आकाशमें शीघ्रतासे जाते (इन्द्रके)		(जटायु) के समान ॥१६॥

सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्मा अन्तर्हितः स्वराट् ।
वीरः स्वपशुमादाय पितुर्यज्ञमुपेयिवान् ॥१७॥

सः अश्वं रूपं च तत् हित्वा तस्मा अन्तर्हितः स्वराट् वीरः स्वपशुं आदाय पितुः यज्ञं उपेयिवान् ॥१७॥

सः अश्वं च तत् रूपं	वे घोड़ेको	**अन्तर्हितः**	अदृश्य हो गये ।
हित्वा	तथा उस रूपको भी छोड़कर	**वीरः स्वपशुं आदाय**	वह वीर अपना पशु लेकर
स्वराट् तस्मा	इन्द्र उस (पृथु पुत्र) से	**पितुः यज्ञं उपेयिवान्**	पिताके यज्ञमें आ गया ॥१७॥

तत्तस्य चाद्भुतं कर्म विचक्ष्य परमर्षयः ।
नामधेयं ददुस्तस्मै विजिताश्व इति प्रभो ॥१८॥

तत् तस्य च अद्भुतं कर्म विचक्ष्य परमर्षयः नामधेयं ददुः तस्मै विजिताश्व इति प्रभो ॥१८॥

प्रभो	शक्तिशाली विदुर !	**विजिताश्व**	
तस्य तत्	उसके उस	**इति**	'विजिताश्व' यह
अद्भुतं कर्म च	अद्भुत कर्मको	**नामधेयम्**	उपाधि
विचक्ष्य		**तस्मै ददुः**	उसे प्रदान की ॥१८॥
परमर्षयः	देखकर परमर्षियोंने		

उपसृज्य तमस्तीव्रं जहाराश्वं पुनर्हरिः ।
चषालयूपतश्छन्नो हिरण्यरशनं विभुः ॥१९॥

उपसृज्य तमः तीव्रं जहार अश्वं पुनः हरिः चषाल यूपतः छन्नः हिरण्य रशनं विभुः ॥१९॥

चषाल यूपतः	चषाल और यूपसे	**तीव्रं तमः**	
हिरण्य रशनं	सोनेकी जंजीरसे	**उपसृज्य**	घोर अन्धकार फैलाकर
छन्नः अश्वं	बँधे घोड़ेको	**जहार**	हरण कर लिया ॥१९॥
पुनः विभुः हरिः	फिर समर्थ इन्द्रने		

अत्रिः सन्दर्शयामास त्वरमाणं विहायसा ।
कपालखट्वाङ्गधरं वीरो नैनमबाधत ॥२०॥

अत्रिः सन्दर्शयामास त्वरमाणं विहायसा कपाल खट्वाङ्ग धरं वीरः न एनं अबाधत ॥२०॥

विहायसा		**कपाल खट्वाङ्गं**	
त्वरमाणं	आकाशमें जल्दी-जल्दी जाते	**धरं**	खोपड़ी और खटियेका पाया लिए
अत्रिः			
सन्दर्शयामास	(इन्द्रको) अत्रिने दिखला दिया,	**एनं वीरः**	इसको (देखकर) वीर (पृथु-पुत्र) ने
		न अबाधत	नहीं रोका ॥२०॥

अत्रिणा चोदितस्तस्मै सन्दधे विशिखं रुषा ।
सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्थावन्तर्हितः स्वराट् ॥२१॥

अत्रिणा चोदितः तस्मै सन्दधे विशिखं रुषा सः अश्वं रूपं च तत् हित्वा तस्थाः अन्तर्हितः स्वराट् ॥२१॥

अत्रिणा चोदितः	अत्रिके द्वारा प्रेरित होनेपर	**अश्वं च तत्**	
रुषा तस्मै	क्रुद्ध होकर उसपर (मारनेको)	**रूपं**	अश्व और उस रूपको
विशिखं सन्दधे	बाण चढ़ाया,	**हित्वा अन्तर्हितः**	छोड़कर अदृश्य रहते
सः स्वराट्	वह इन्द्र	**तस्थौ**	वहीं बना रहा ॥२१

वीरश्चाश्वमुपादाय पितृयज्ञमथाव्रजत् ।
तदवद्यं हरे रूपं जगृहुर्ज्ञानदुर्बलाः ॥२२॥

वीरः च अश्वं उपादाय पितृयज्ञं अथ आव्रजत् तत् अवद्यं हरे रूपं जगृहुः ज्ञान दुर्बलाः ॥२२॥

वीरः च	वीर (पृथु-पुत्र) ने तो
अश्वं उपादाय	घोड़ेको लेकर
पितृयज्ञं अथ	पिताके यज्ञमें फिर
आव्रजत्	चले आये ।
ज्ञान दुर्बलाः तत् हरे अवद्यं रूपं	मन्द बुद्धि लोगोंने उस इन्द्रके निन्दित रूपोंको
जगृहुः	धारण कर लिया ॥२२॥

यानि रूपाणि जगृहे इन्द्रो हयजिहीर्षया ।
तानि पापस्य खण्डानि लिङ्गं खण्डमिहोच्यते ॥२३॥

यानि रूपाणि जगृहे इन्द्रः हय जिहीर्षया तानि पापस्य खण्डानि लिङ्गं खण्डं इह उच्यते ॥२३॥

हय जिहीर्षया इन्द्रः यानि रूपाणि जगृहे	घोड़ा चुरानेके लिए इन्द्रने जिन रूपोंको धारण किया,
तानि पापस्य खण्डानि	उनको पापका खण्ड कहा गया
इह लिङ्गं खण्डं उच्यते	यहाँ चिह्नको खण्ड कहा गया है ॥२३॥

एवमिन्द्रे हरत्यश्वं वैन्ययज्ञजिघांसया ।
तद्गृहीतविसृष्टेषु पाखण्डेषु मतिर्नृणाम् ॥२४॥

एवं इन्द्रे हरति अश्वं वैन्य यज्ञ जिघांसया तत् गृहीत विसृष्टेषु पाखण्डेषु मतिः नृणाम् ॥२४॥

वैन्य यज्ञ जिघांसया इन्द्रे एवं अश्वं हरति तत् गृहीत	पृथुके यज्ञको नष्ट करनेके लिए इन्द्र द्वारा इस प्रकार अश्व चुराते समय उनके द्वारा अपनाये और
विसृष्टेषु पाखण्डेषु नृणां मतिः	त्यागे हुए पाखण्डोंमें मनुष्योंकी बुद्धि जाती है ॥२४॥

धर्म इत्युपधर्मेषु नग्नरक्तपटादिषु ।
प्रायेण सज्जते भ्रान्त्या पेशलेषु च वाग्मिषु ॥२५॥

धर्म इति उपधर्मेषु नग्न रक्तपट आदिषु प्रायेण सज्जते भ्रान्त्या पेशलेषु च वाग्मिषु ॥२५॥

नग्न रक्तपट आदिषु	नग्न या लाल वस्त्रादि	**भ्रान्त्या धर्म इति**	भ्रमवश यह धर्म है, ऐसा मानकर
इति उपधर्मेषु पेशलेषु च वाग्मिषु	इस प्रकारके उपधर्मी सुन्दर तथा युक्ति बनानेमें चतुर लोगोंमें	**प्रायेण सज्जते**	प्रायः लोग आसक्त हो जाते हैं ॥२५॥

तदभिज्ञाय भगवान् पृथुः पृथुपराक्रमः ।
इन्द्राय कुपितो बाणमादत्तोद्यतकार्मुकः ॥२६॥

तत् अभिज्ञाय भगवान् पृथुः पृथु पराक्रमः इन्द्राय कुपितः बाणं आदत्त उद्यत कार्मुकः ॥२६॥

तत् अभिज्ञाय	इसे जानकर	**इन्द्राय कुपितः**	इन्द्रपर क्रोध करके
पृथु पराक्रमः	महान् पराक्रमी	**उद्यत कार्मुकः**	चढ़े धनुषपर
भगवान् पृथुः	भगवान् पृथुने	**बाणं आदत्त**	बाण चढ़ाया ॥२६॥

तमृत्विजः शक्रवधाभिसन्धितं
विचक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमसह्यरंहसम् ।
निवारयामासुरहो महामते
न युज्यतेऽत्रान्यवधः प्रचोदितात् ॥२७॥

तं ऋत्विजः शक्र वध अभिसंधितं विचक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यम् असह्यरंहसं निवारयामासुः अहो महामते न युज्यते अत्र अन्यवधः प्रचोदितात् ॥२७॥

तं शक्र वध	उन्हें इन्द्रको
	मारनेके लिए
अभिसंधितं	कृत निश्चय
विचक्ष्य	देखकर,
दुष्प्रेक्ष्यम्	उनकी ओर देखना
	कठिन हो रहा था,
असह्यरंहसं	असह्य वेगवाले
	(पृथुको)
ऋत्विजः	
निवारयामासुः	ऋत्विजोंने रोका
अहो महामते	अहो महामते !
अत्र प्रचोदितात्	यह यज्ञमें जिसको
	(वलिका) विधान
	है,
अन्यवधः	उससे भिन्नका वध
युज्यते	उपयुक्त नहीं
	है ॥२७॥

वयं मरुत्वन्तमिहार्थनाशनं
ह्वयामहे त्वच्छ्रवसा हतत्विषम् ।
अयातयामोपहवैरनन्तरं
प्रसह्य राजन् जुहवाम तेऽहितम् ॥२८॥

वयं मरुत्वन्तं इह अर्थं नाशनं ह्वयामहे त्वत् श्रवसा हतत्विषं अयातयामः उपहवैः अनन्तरं प्रसह्य राजन् जुहवाम ते अहितम् ॥२८॥

राजन् ते अहितं	राजन् आपके शत्रु
इह अर्थं नाशनं	यहां प्रयोजन (यज्ञ)
	के नाशक,
त्वत् श्रवसा	आपके यशसे
हतत्विषं	नष्ट कान्ति
मरुत्वन्तं	इन्द्रको
वयं	
अयातायामः	हम लोग अमोघ
उपहवैः	आकर्षण मन्त्रोंसे
जुहवाम	हवन करते हुए
अनन्तरं प्रसह्य	यहाँपर बल पूर्वक
	खींचकर
ह्वयामहे	हवन कर देते
	हैं ॥२८॥

इत्यामन्त्र्य क्रतुपतिं विदुरास्यर्त्विजो रुषा ।
स्रुग्घस्ताञ्जुह्वतोऽभ्येत्य स्वयम्भूः प्रत्यषेधत ॥२९॥

इति आमन्त्र्य क्रतुपतिं विदुर अस्य ऋत्विजः रुषा स्रुक् हस्तान् जुह्वतः अभ्येत्य स्वयम्भूः प्रत्यषेधत ॥२९॥

क्रतुपतिं	यज्ञकर्ता स्वामीसे
इति आमन्त्र्य	ऐसा कहकर
अस्य ऋत्विजः	इनके ऋत्विजोंने
रुषा स्रुक्हस्तान्	रोष पूर्वक हाथमें स्रुवा उठाया,
जुह्वतः	(उनको) हवन करते समय
स्वयम्भूः	ब्रह्माजीने
अभ्येत्य	
प्रत्यषेधत	आकर रोका ॥२८॥

*ब्रह्मोवाच**–

न वध्यो भवतामिन्द्रो यद्यज्ञो भगवत्तनुः ।
यं जिघांसथ यज्ञेन यस्येष्टास्तनवः सुराः ॥३०॥

न वध्यः भवतां इन्द्रः यत् यज्ञः भगवत् तनुः यं जिघांसथ यज्ञेन यस्य इष्टाः तनवः सुराः ॥३०॥

भवतां तनवः	आप लोगों द्वारा
इन्द्रः न वध्यः	इन्द्र मारणीय नहीं हैं,
यत् यज्ञः	क्योंकि यज्ञ
भगवत् तनुः	भगवानका शरीर है,
यस्य सुराः इष्टाः	जिनके देवता प्रिय हैं
यं यज्ञेन जिघांसथ	जिन्हें (आप) यज्ञ द्वारा मारने जा रहे हैं ॥३०॥

तदिदं पश्यत महद्धर्मव्यतिकरं द्विजाः ।
इन्द्रेणानुष्ठितं राज्ञः कर्मैतद्विजिघांसता ॥३१॥

तत् इदं पश्यत महत् धर्म व्यतिकरं द्विजाः इन्द्रेण अनुष्ठितं राज्ञः कर्म एतत् विजिघांसता ॥३१॥

द्विजाः	ब्राह्मणो !
राज्ञः एतत् कर्म	राजाके इस कर्म (यज्ञ) को
विजिघांसता	नष्ट करनेके प्रयत्नमें
इन्द्रेण अनुष्ठितं	इन्द्रके द्वारा किए गए
तत् इदं	वह इस
महत् धर्म व्यतिकरं	महान् धर्मनाशको
पश्यत	देखो ॥३१॥

* यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

पृथुकीर्तेः पृथोर्भूयात्तर्ह्येकोनशतक्रतुः ।
अलं ते क्रतुभिः स्विष्टैर्यद्भवान्मोक्षधर्मवित् ॥३२॥

पृथुकीर्तेः पृथोः भूयात् तर्हि एकोन शतक्रतुः अलं ते क्रतुभिः स्विष्टैः यत् भवान् मोक्ष धर्मवित् ॥३२॥

पृथुकीर्तेः	परम यशस्वी	**ते क्रतुभिः**	
पृथोः	पृथुको	**स्विष्टैः**	(राजन्) आप यज्ञों द्वारा यजन करना.
तर्हि एकोन	इसलिए अब एक कम	**अलं**	बस (बन्द कर दें)
शतक्रतुः	सौ यज्ञ (निन्यानवे) वाला	**यत् भवान्**	क्योंकि आप
भूयात्	हों (रहने दो)	**मोक्ष धर्मवित्**	मोक्ष धर्मको जानने-वाले हैं ॥३२॥

नैवात्मने महेन्द्राय रोषमाहर्तुमर्हसि ।
उभावपि हि भद्रं ते उत्तमश्लोकविग्रहौ ॥३३॥

न एव आत्मनः महेन्द्राय रोषं आहर्तुं अर्हसि उभाः अपि हि भद्रं ते उत्तम श्लोक विग्रहौ ॥३३॥

ते भद्रं	आपका कल्याण हो,	**हि उभाः अपि**	क्योंकि (आप) दोनों ही
महेन्द्राय	इन्द्रपर	**उत्तम श्लोक**	उत्तम श्लोक भगवानके
आत्मनः रोषं	अपने चित्तमें क्रोध		
आहर्तुं न	आपको नहीं करना		
अर्हसि	चाहिए,	**विग्रहौ**	शरीर हैं ॥३३॥

मास्मिन्महाराज कृथाः स्म चिन्तां
निशामयास्मद्वच आहृतात्मा ।
यद्ध्यायतो दैवहतं नु कर्तुं
मनोऽतिरुष्टं विशते तमोऽन्धम् ॥३४॥

मा अस्मिन् महाराज कृथाः स्म चिन्तां निशामय अस्मत् वच आहृत आत्मा यत् ध्यायतः दैवहतं नु कर्तुं मनः अतिरुष्टं विशते तमः अन्धम् ॥३४॥

महाराज महाराज !
अस्मिन् इस (अपूर्ण यज्ञ) के विषयमें
चिन्तां
मा स्म कृथाः चिन्ता मत कीजिए
अस्मत् वचः मेरी बात
आहृत आत्मा आदर पूर्वक
निशामय सुनिये
यत् दैवदतं जो विधाताके बिगाड़े हुएको
नु कर्तुं
ध्यायतः फिर करनेकी सोचता है,
मनः अतिरुष्टं (उसका) मन अत्यन्त क्रोधसे
अन्धं तमः
विशते घोर मोहमें डूब जाता है ॥३४॥

क्रतुर्विरमतामेष देवेषु दुरवग्रहः ।
धर्मव्यतिकरो यत्र पाखण्डैरिन्द्रनिर्मितैः ॥३५॥

क्रतुः विरमतां एष देवेषु दुरवग्रहः धर्म व्यतिकरः यत्र पाखण्डैः इन्द्र निर्मितैः ॥३५॥

यत्र इन्द्र
निर्मितैः जिसमें इन्द्रके चलाये
पाखण्डैः पाखण्डोंसे
धर्म व्यतिकरः धर्मका नाश हो रहा है,
एष देवेषु
दुरवग्रहः यह देवताओंके प्रति दुराग्रहसे पूर्ण
क्रतुः विरमतां यज्ञ रोक दीजिए ॥३५॥

एभिरिन्द्रोपसंसृष्टैः पाखण्डैर्हारिभिर्जनम् ।
ह्रियमाणं विचक्ष्वैनं यस्ते यज्ञध्रुगश्वमुट् ॥३६॥

एभिः इन्द्र उपसंसृष्टैः पाखण्डैः हारिभिः जनं ह्रियमाणं विचक्ष्व एनं यः ते यज्ञ ध्रुक् अश्वमुट् ॥३६॥

यः ते यज्ञ ध्रुक् जो आपके यज्ञसे द्वेष करके
अश्वमुट् (यज्ञीय) अश्व चुरा रहा था,
इन्द्र उपसंसृष्टैः (उस) इन्द्रके द्वारा चलाये
एभिः हारिभिः इन मनोहर
पाखण्डैः
ह्रियमाणं पाखण्डोंकी ओर खिचते जानेवाली
एनं जनं
विचक्ष्व इस जनताको देखो ॥३६॥

भवान् परित्रातुमिहावतीर्णो
धर्मं जनानां समयानुरूपम् ।
वेनापचारादवलुप्तमद्य
तद्देहतो विष्णुकलासि वैन्य ॥३७॥

भवान् परित्रातुं इह अवतीर्णः धर्मं जनानां समय अनुरूपं वेन अपचारात् अवलुप्तं अद्य तत् देहतः विष्णुकला असि वैन्य ॥३७॥

वैन्य भवान्	महाराज पृथु ! आप	**तत् देहतः**	उस (वेन) के शरीरसे
वेन अपचारात्	वेनके अत्याचारसे	**अद्य इह**	इस समय यहाँ (संसारमें)
अवलुप्तं	लुप्त हो गये	**अवतीर्णः**	अवतार लिए
जनानां समय अनुरूपं	लोगोंका समय (युग) के अनुरूप	**विष्णुकला असि**	भगवान विष्णुकी कला हैं ॥३७॥
धर्मं परित्रातुं	धर्मकी रक्षा करनेके लिए		

स त्वं विमृश्यास्य भवं प्रजापते
सङ्कल्पनं विश्वसृजां पिपीपृहि ।
ऐन्द्रीं च मायामुपधर्ममातरं
प्रचण्डपाखण्डपथं प्रभो जहि ॥३८॥

स त्वं विमृश्य अस्य भवं प्रजापते सङ्कल्पनं विश्वसृजां पिपीपृहि ऐन्द्रीं च मायां उपधर्ममातरं प्रचण्ड पाखण्डपथं प्रभो जहि ॥३८॥

प्रजापते प्रभो	प्रजापालक प्रभो !	**सङ्कल्पनं**	
स त्वं	वह आप	**पिपीपृहि**	संकल्प पूरा कीजिये
अस्य भवं	इस (संसार) का कल्याण	**च उपधर्म-**	
		मातरं	तथा अधर्मकी जन्मदात्री
विमृश्य	विचारकर		
विश्वसृजां	प्रजापतियों (कश्यपादि) का		

ऐन्द्रीं मायां	इन्द्रकी मायाके (द्वारा चले)	**पथं जहि**	मार्गको नष्ट कीजिए ॥३८॥
प्रचण्ड पाखण्ड	प्रचण्ड पाखण्ड		

मैत्रेय उवाच—

इत्थं स लोकगुरुणा समादिष्टो विशाम्पतिः ।
तथा च कृत्वा वात्सल्यं मघोनापि च सन्दधे ॥३९॥

इत्थं स लोक गुरुणा समादिष्टः विशाम्पतिः तथा च कृत्वा वात्सल्यं मघोना अपि च सन्दधे ॥३९॥

स विशाम्पतिः	वे महाराज	**तथा च कृत्वा**	वैसा ही करके (यज्ञ बन्द करके)
लोक गुरुणा	लोक गुरु (ब्रह्माजी) द्वारा	**मघोना अपि च**	इन्द्रपर भी
इत्थं समादिष्टः	इस प्रकार आदेश देनेपर	**वात्सल्यं सन्दधे**	वात्सल्य-स्नेह किया ॥३९॥

कृतावभृथस्नानाय पृथवे भूरिकर्म्मणे ।
वरान्ददुस्ते वरदा ये तद्बर्हिषि तर्पिताः ॥४०॥

कृताः अवभृथ स्नानाय पृथवे भूरि कर्मणे वरान् ददुः ते वरदा ये ये तत् बर्हिषि तर्पिताः ॥४०॥

अवभृथ स्नानाय	अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान	**ते वरदा**	उन वरदान देनेवाले (देवताओंने)
कृताः	कर लेनेपर	**वरान् ददुः**	वरदान दिये
भूरि कर्मणे पृथवे	महत् कर्मा पृथुको	**ये तत बर्हिषि तर्पिताः**	जो उनके यज्ञमें तृप्त किये गये थे ॥४०॥

विप्राः सत्याशिषस्तुष्टाः श्रद्धयालब्धदक्षिणाः ।
आशिषो युयुजुः क्षत्तरादिराजाय सत्कृताः ॥४१॥

विप्राः सत्य आशिषः तुष्टाः श्रद्धया लब्ध दक्षिणाः आशिषः युयुजुः क्षतः आदिराजाय सत्कृताः ॥४१॥

क्षत्तः	विदुर !
सत्य आशिषः	जिनके आशीर्वाद सच्चे होते हैं,
विप्राः श्रद्धया	उन ब्राह्मणोंने श्रद्धापूर्वक
लब्ध दक्षिणाः	दक्षिणा पाकर
सत्कृताः तुष्टाः	सत्कृत होकर; सन्तुष्ट होकर
आदिराजाय	आदिराज (पृथु)को
आशिषः युयुजुः	आशीर्वाद दिया ॥४१॥

*विप्राः ऊचुः**–

त्वयाऽऽहूता महाबाहो सर्व एव समागताः ।
पूजिता दानमानाभ्यां पितृदेवर्षिमानवाः ॥४२॥

त्वया आहूता महाबाहो सर्व एव समागताः पूजिताः दानमानाभ्यां षितृ देव ऋषि मानवाः ॥४२॥

महाबाहो	महाबाहु !
त्वया आहूता	आपके बुलानेसे
सर्व एव	सभी
पितृ देव ऋषि मानवाः	पितर, देवता, ऋषि मनुष्य
समागताः	(जो) आये थे
दानमानाभ्यां	(उनका) दान और सम्मानसे
पूजिताः	(आपने ठीक-ठीक) पूजा की है ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे पृथुविजय एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अथ विंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

भगवानपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः ।
यज्ञैर्यज्ञपतिस्तुष्टो यज्ञभुक् तमभाषत ॥१॥

भगवान् अपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः यज्ञैः यज्ञपतिः तुष्टः यज्ञभुक् तं अभाषत ॥१॥

यज्ञपतिः	
यज्ञभुक्	यज्ञेश्वर, यज्ञभोक्ता
वैकुण्ठः	
भगवान् अपि	वैकुण्ठनाथ भगवान भी
यज्ञैः तुष्टः	यज्ञोंसे सन्तुष्ट होकर
विभुः मघवता	
साकं	वे विभु इन्द्रके साथ (आकर)
तं अभाषत	उन (पृथु) से बोले ॥१॥

श्रीभगवान् उवाच-

एष तेऽकार्षीच्छ्रद्धं हयमेधशतस्य ह ।
क्षमापयत आत्मानममुष्य क्षन्तुमर्हसि ॥२॥

एष ते अकार्षीत् मङ्गं हयमेध शतस्य ह क्षमापयत आत्मानं अमुष्य क्षन्तुं अर्हसि ॥२॥

ते हयमेध शतस्य ह	तुम्हारे सौवें अश्वमेधको ही
एष भङ्गं अकार्षीत्	इन्होंने भंग किया है,
आत्मानं क्षमापयत	(अब) अपनेको क्षमा कराना चाहते हैं,
अमुष्य क्षन्तुं अर्हसि	इनको (तुम्हें) क्षमा कर देना चाहिए ॥२

सुधियः साधवो लोके नरदेव नरोत्तमाः ।
नाभिद्रुह्यन्ति भूतेभ्यो यर्हि नात्मा कलेवरम् ॥३॥

सुधियः साधवः लोके नरदेव नरोत्तमाः न अभिद्रुह्यन्ति भूतेभ्यः यर्हि न आत्मा कलेवरम् ॥३॥

नरदेव	राजन् !	**भूतेभ्यः**	प्राणियोंसे
लोके सुधियः साधवः	संसारमें बुद्धिमान्,	**न अभिद्रुह्यन्ति**	कहीं द्रोह नहीं करते
		यर्हि आत्मा	क्योंकि आत्मा
नरोत्तमाः	सत्पुरुष, श्रेष्ठ मनुष्य	**कलेवरं न**	शरीर नहीं है ॥३॥

पुरुषा यदि मुह्यन्ति त्वादृशा देवमायया ।
श्रम एव परं जातो दीर्घया वृद्धसेवया ॥४॥

पुरुषाः यदि मुह्यन्ति त्वादृशा देवमायया श्रम एव परं जातः दीर्घया वृद्ध सेवया ॥४॥

यदि त्वादृशा पुरुषाः	यदि तुम्हारे समान पुरुष	**दीर्घया वृद्ध सेवया**	बहुत दिनों तक बड़ोंकी सेवामें
देवमायया मुह्यन्ति	मेरी मायासे मोहित हों तो	**परं श्रम एव जातः**	फिर (कोई लाभ नहीं हुआ) केवल परिश्रम ही हुआ ॥४॥

अतः कायमिमं विद्वानविद्याकामकर्मभिः ।
आरब्ध इति नैवास्मिन् प्रतिबुद्धोऽनुषज्जते ॥५॥

अतः कायं इमं विद्वान् अविद्या काम कर्मभिः आरब्ध इति न एव अस्मिन् प्रतिबुद्धः अनुषज्जते ॥५॥

अतः इमं कायं अविद्या काम कर्मभिः	अतः इस शरीरको अविद्या, कामना तथा कर्म (संस्कार) से
आरब्ध इति विद्वान्	बना हुआ है, ऐसा जानकर
प्रतिबुद्धः	जागा हुआ ज्ञान प्राप्त पुरुष
अस्मिन् न एव अनुषज्जते	इसमें नहीं ही आसक्त होता ॥५॥

असंसक्तः शरीरेऽस्मिन्नमुनोत्पादिते गृहे ।
अपत्ये द्रविणे वापि कः कुर्यान्ममतां बुधः ॥६॥

असंसक्तः शरीरे अस्मिन् अमुना उत्पादिते गृहे अपत्ये द्रविणे वा अपि कः कुर्यात् ममतां बुधः ॥६॥

अस्मिन् शरीरे असंसक्तः	इस शरीरसे अनासक्त रहकर
कः बुधः	कौन बुद्धिमान
अमुना उत्पादिते	इसीके द्वारा उत्पन्न किये
गृहे अपत्ये वा द्रविणे	घर, पुत्र अथवा धनमें
ममतां कुर्यात्	ममत्व करेगा ॥६॥

एकः शुद्धः स्वयंज्योतिर्निर्गुणोऽसौ गुणाश्रयः ।
सर्वगोऽनावृतः साक्षी निरात्माऽऽत्माऽऽत्मनः परः ॥७॥

एकः शुद्धः स्वयंज्योतिः निर्गुणः असौ गुण आश्रयः सर्वगः अनावृतः साक्षी निरात्मा आत्मा आत्मनः पुरः ॥७॥

असौ आत्मा एकः शुद्धः	यह आत्मा एक शुद्ध,
स्वयंज्योतिः	स्वयं प्रकाश
निर्गुणः गुण आश्रयः	निर्गुण, गुणोंका आश्रय,
सर्वगः अनावृतः	सर्वव्यापी, निरावरण,
साक्षी निरात्मा	साक्षी, द्वितीय भेद रहित (अद्वितीय)
आत्मनः परः	शरीरसे भिन्न है ॥७

य एवं सन्तमात्मानमात्मस्थं वेद पूरुषः ।
नाज्यते प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः स मयि स्थितः ॥८॥

य एवं सन्तं आत्मानं आत्मास्थं वेद पूरुषः न अज्यते प्रकृतिस्थः अपि तद्गुणैः स मयि स्थितः ॥८॥

य एवं सन्तं आत्मानं	जो इस स्वरूपके	**प्रकृतस्थः अपि**	प्रकृतिमें रहते हुए भी
आत्मस्थं	आत्माको अपने (अन्तःकरण)में स्थित	**तद्गुणैः न अज्यते**	उसके गुणोंसे लिप्त नहीं होता
वेद पूरुषः	जानता है, वह पुरुष	**स मयि स्थितः**	वह तो मुझमें स्थित है ॥८॥

यः स्वधर्मेण मां नित्यं निराशीः श्रद्धयान्वितः ।
भजते शनकैस्तस्य मनो राजन् प्रसीदति ॥९॥

यः स्वधर्मेण मां नित्यं निराशीः श्रद्धया अन्वितः भजते शनकैः तस्य मनः राजन् प्रसीदति ॥९॥

राजन्	राजन् !	**भजते**	पूजन करता है
यः निराशीः	जो निष्काम भावसे	**शनकैः**	धीरे-धीरे
श्रद्धया अन्वितः	श्रद्धा सहित	**तस्य मनः**	उसका चित्त
स्वधर्मेण	अपने धर्मपालन द्वारा	**प्रसीदति**	निर्मल हो जाता है ॥९॥
मां नित्यम्	मेरा प्रतिदिन		

परित्यक्तगुणः सम्यग्दर्शनो विशदाशयः ।
शान्ति मे समवस्थानं ब्रह्म कैवल्यमश्नुते ॥१०॥

परित्यक्त गुणः सम्यक् दर्शनः विशद आशयः शान्ति मे समवस्थानं ब्रह्म कैवल्यं अश्नुते ॥१०॥

विशद आशयः	चित्त शुद्ध हो जानेपर
परित्यक्त गुणः	गुणोंसे सम्बन्ध छूट जाता है,
सम्यक् दर्शनः	ठीक तत्त्व ज्ञान हो जाता है,
मे समवस्थानं	मेरी समता रूप स्थितिको पाकर
शान्ति ब्रह्म	
कैवल्यं	परम शान्ति ब्रह्म कैवल्य (मोक्ष)
अश्नुते	पालेता है ॥१०॥

उदासीनमिवाध्यक्षं द्रव्यज्ञानक्रियात्मनाम् ।
कूटस्थमिममात्मानं यो वेदाप्नोति शोभनम् ॥११॥

उदासीनं इव अध्यक्षं द्रव्य ज्ञान क्रिया आत्मनां कूटस्थं इमं आत्मानं यः वेद आप्नोति शोभनम् ॥११॥

यः इमं आत्मानं	जो इस आत्माको
द्रव्य ज्ञान क्रिया	पदार्थ, उनके ज्ञान तथा कर्मसे
उदासीनं इव	उदासीनकी भाँति
अध्यक्षं	उनका अध्यक्ष
कूटस्थं वेद	कूटस्थ जानता है,
शोभनं	वह परम शुभ(मोक्ष)
आप्नोति	पाता है ॥११॥

भिन्नस्य लिङ्गस्य गुणप्रवाहो
द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मनः ।
दृष्टासु सम्पत्सु विपत्सु सूरयो
न विक्रियन्ते मयि बद्धसौहृदाः ॥१२॥

भिन्नस्य लिङ्गस्य गुण प्रवाहः द्रव्य क्रिया कारक चेतन आत्मनः दृष्टासु सम्पत्सु विपत्सु सूरयः न विक्रियन्ते मयि बद्ध सौहृदाः ॥१२॥

गुण प्रवाहः	गुणोंका प्रवाह रूप (आवागमन)
द्रव्य क्रिया कारक	महाभूत, क्रिया (इन्द्रिय) कारक (इन्द्रिय देवता)
चेतन	चिदाभासका
आत्मनः	
भिन्नस्य	आत्मासे पृथक्
लिङ्गस्य	लिङ्ग (सूक्ष्म) शरीरका
दृष्टासु	देखा जाता है, (अतः)

मयि बद्ध सौहृदाः	मुझसे सौहार्द्र करनेवाले	**विक्रियन्ते न**	(हर्ष-शोक) विकार-ग्रस्त नहीं होते ॥१२॥
सूरयः	बुद्धिमान लोग		
सम्पत्सु विपत्सु	सम्पत्ति या विपत्तिमें		

समः समानोत्तममध्यमाधमः
सुखे च दुःखे च जितेन्द्रियाशयः ।
मयोपकॢप्ताखिललोकसंयुतो
विधत्स्व वीराखिललोकरक्षणम् ॥१३॥

समः समान उत्तम मध्यम अधमः सुखे च दुःखे च जित इन्द्रिय आशयः मया उपकॢप्त अखिल लोक संयुतः विधत्स्व वीर अखिल लोक रक्षणम् ॥१३॥

समान उत्तम	(अपने) समान श्रेष्ठ	**वीर**	वीरवर !
मध्यम, अधमः	मध्यम तथा निकृष्टके प्रति	**मया उपकॢप्त अखिल लोक**	मेरे द्वारा जुटाये
समः	समान रहते,	**संयुतः**	सब (मन्त्री आदि) लोगोंके साथ
सुखे च दुःखे च जित इन्द्रिय	सुख तथा दुःखमें भी	**अखिल लोक**	सब लोकोंकी
आशयः	इन्द्रियों तथा मनको वशमें करके	**रक्षणं विधत्स्व**	रक्षा करते रहो ॥१३॥

श्रेयः प्रजापालनमेव राज्ञो
यत्साम्पराये सुकृतात् षष्ठमंशम् ।
हर्तान्यथा हृतपुण्यः प्रजाना-
मरक्षिता करहारोऽघमत्ति ॥१४॥

श्रेयः प्रजापालनं एव राज्ञः यत् साम्पराये सुकृतात् षष्ठं अंशं हर्ता अन्यथा हृतपुण्यः प्रजानां अरक्षिता करहारः अघं अत्ति ॥१४॥

प्रजापालनं एव	प्रजाका पालन ही
राज्ञः श्रेयः	राजाके लिए कल्याणकारी है,
यत् साम्पराये	क्योंकि मरनेपर (परलोकमें)
सुकृतात् षष्ठं अंशं हर्ता	(प्रजाके) पुण्यमें-से छठवां भाग पाता है,
अन्यथा अरक्षिता करहारः हृतपुण्यः अघं अत्ति	अन्यथा (प्रजाकी) रक्षा न करके कर लेनेवाला (प्रजा उसका) पुण्य छीन लेती है, (वह प्रजाके) पाप भोगता है ॥१४॥

एवं द्विजाग्र्यानुमतानुवृत्त-
धर्मप्रधानोऽन्यतमोऽवितास्य ।
ह्रस्वेन कालेन गृहोपयातान्
द्रष्टासि सिद्धाननुरक्तलोकः ॥१५॥

एवं द्विज अग्र्य अनुमता अनुवृत्तधर्म प्रधानः अन्यतमः अविता अस्याः ह्रस्वेन कालेन गृह उपयातान् द्रष्टासि सिद्धान् अनुरक्त लोकः ॥१५॥

एवं	इस प्रकार
द्विज अग्र्य	ब्राह्मणोंकी
अनुमता	आज्ञानुसार
अनुवृत्तधर्म	
प्रधानः	परम्परा प्राप्त प्रधान धर्मको
अन्यतमः	सर्वप्रधान मानते
अनुरक्तः लोकः	अपनेमें अनुरक्त प्रजाकी
अविता	रक्षा करते हुए
ह्रस्वेन कालेन	थोड़े ही समयमें
गृह उपयातान्	अपने घर आये
सिद्धान् द्रष्टासि	सिद्धोंका दर्शन करोगे ॥१५॥

वरं च मत् कञ्चन मानवेन्द्र
वृणीष्व तेऽहं गुणशीलयन्त्रितः ।
नाहं मखैर्वै सुलभस्तपोभि-
र्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती ॥१६॥

वरं च मत् कञ्चन मानवेन्द्र वृणीष्व ते अहं गुणशील यन्त्रितः न अहं मखैः वै सुलभः तपोभिः योगेन वा यत् समचित्तवर्ती ॥१६॥

मानवेन्द्र	मानवेन्द्र !
मत् कञ्चन	मुझसे कोई
वरं च वृणीष्व	वरदान भी मांग लो,
अहं ते	मैं तुम्हारे
गुणशील	
मन्त्रितः	गुणों तथा शीलसे वशमें हो गया हूं,
वै अहं	अन्यथा मैं
मखैः तपोभिः	यज्ञोंसे, तपस्यासे
वा योगेन	अथवा योगसे
सुलभः न	सुलभ नहीं हूं,
यत्	
समचित्तवर्ती	क्योंकि समतामें स्थित चित्तमें रहता हूँ ॥१६॥

मैत्रेय उवाच–

स इत्थं लोकगुरुणा विष्वक्सेनेन विश्वजित् ।
अनुशासित आदेशं शिरसा जगृहे हरेः ॥१७॥

स इत्थं लोक गुरुणा विष्वक्सेनेन विश्वजित् अनुशासित आदेशं शिरसा जगृहे हरेः ॥१७॥

इत्थं	इस प्रकार
लोक गुरुणा	सब लोकोंके गुरु
विष्वक्सेनेन	भगवान विष्णुके
अनुशासित	आज्ञा देनेपर
स विश्वजित्	उन जगद्विजयी (पृथु) ने
हरेः आदेशं	श्रीहरिकी आज्ञाको
शिरसा जगृहे	सिर झुकाकर स्वीकार किया ॥१७॥

स्पृशन्तं पादयोः प्रेम्णा व्रीडितं स्वेन कर्मणा ।
शतक्रतुं परिष्वज्य विद्वेषं विससर्ज ह ॥१८॥

स्पृशन्तं पादयोः प्रेम्णा व्रीडितं स्वेन कर्मणा शतक्रतुं परिष्वज्य विद्वेषं विससर्ज ह ॥१८॥

स्वेन कर्मणा	अपने कर्मसे
व्रीडितं	लज्जित
पादयोः स्पृशन्तं	पैर छूनेको झुके
शतक्रतुं प्रेम्णा	इन्द्रको प्रेमपूर्वक
परिष्वज्य	आलिंगन करके
विद्वेषं विससर्ज ह	परस्परके द्वेषको समाप्त ही कर दिया ॥१८॥

भगवानथ विश्वात्मा पृथुनोपहृतार्हणः ।
समुज्जिहानया भक्त्या गृहीतचरणाम्बुजः ॥१९॥
प्रस्थानाभिमुखोऽप्येनमनुग्रहविलम्बितः ।
पश्यन् पद्मपलाशाक्षो न प्रतस्थे सुहृत्सताम् ॥२०॥

भगवान् अथ विश्वात्मा पृथुना उपहृत अर्हणः समुज्जिहानया भक्त्या गृहीत चरणाम्बुजः ॥१९॥

प्रस्थान अभिमुखः अपि एनं अनुग्रह विलम्बितः पश्यन् पद्मपलाशाक्षः न प्रतस्थे सुहृत् सताम् ॥२०॥

पृथुना उपहृत अर्हणः	पृथुके द्वारा पूजोपहार अर्पित करके
समुज्जिहानया भक्त्या	उमड़ते भाव सहित भक्तिसे
चरणाम्बुजः गृहीतः	चरण-कमल पकड़ लिये गये
अथ विश्वात्मा	तब विश्वात्मा
सतां सुहृत्	सत्पुरुषोंके सुहृद्
भगवान्	भगवान
प्रस्थान अभिमुखः अपि	जानेको उद्यत होनेपर भी
एनं पद्मपलाशा-क्षः पश्यन्	इन (पृथुको) कमलदल-लोचनोंसे देखते,
न प्रतस्थे	गये नहीं,
अनुग्रह विलम्बितः	कृपापूर्वक रुक गये ॥१९-२०॥

स आदिराजो रचिताञ्जलिर्हरिं
विलोकितुं नाशकदश्रुलोचनः ।

न किञ्चनोवाच स बाष्पविक्लवो
हृदोपगुह्यामुमधादवस्थितः ॥२१॥

स आदिराजः रचित अञ्जलिः हरिं विलोकितुं न अशकत् अश्रु-लोचनः न किञ्चन उवाच स बाष्पविक्लवः हृदा उपगुह्य अमुं उपधात् अवस्थितः ॥२१॥

स आदिराजः	वे आदिराज (पृथु)	**स किञ्चन न उवाच**	वे कुछ बोले भी नहीं,
रचित अञ्जलिः	हाथ जोड़े		
अश्रुलोचनः	नेत्रोंमें आंसू भरनेसे	**अमुं हृदा उपगुह्य**	उन्हें हृदयसे आलिंगन करके
हरिं विलोकितुं	श्रीहरिका दर्शन करनेमें		
अशकत् न	समर्थ नहीं हुए,	**उपधात् अवस्थितः**	ज्योंके-त्यों खड़े रह गये ॥२१॥
बाष्पविक्लवः	कण्ठ भर आनेसे		

अथावमृज्याश्रुकला विलोकयन्-
नतृप्तदृग्गोचरमाह पूरुषम् ।
पदा स्पृशन्तं क्षितिमंस उन्नते
विन्यस्तहस्ताग्रमुरङ्गविद्विषः ॥२२॥

अथ अवमृज्य अश्रुकला विलोकयन् न तृप्त दृक् गोचरं आह पूरुषं पदा स्पृशन्तं क्षिति अंस उन्नते विन्यस्त हस्त अग्रं उरङ्ग विद्विषः ॥२२॥

अथ अश्रुकला अवमृज्य	फिर आंसुओंको पोंछकर	**न तृप्त दृक्**	नेत्र तृप्त नहीं हो रहे थे ।
दृक् गोचरं	आंखोंके सामने खड़े (भगवानका)	**पदा क्षितिं स्पृशन्तं**	चरणोंसे पृथ्वीको छूते*
विलोकयन्	दर्शन करते		

---

* देवता किसीको दर्शन दें तो आकाशमें ही खड़े रहते हैं । पृथ्वीका पैरसे स्पर्श नहीं करते । पृथ्वीपर चरण भगवान ही रखते हैं ।

उरङ्ग विद्विषः	नागोंके शत्रु (गरुड़) के	हस्त अग्रम् विन्यस्त	हस्ताग्र रखे
उन्नते अंस	ऊँचे कन्धेपर	पूरुषं आह	परम-पुरुषसे बोले ॥२२॥

पृथुरुवाच–

वरान् विभो त्वद्वरदेश्वराद् बुधः
कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम् ।
ये नारकाणामपि सन्ति देहिनां
तानीश कैवल्यपते वृणे न च ॥२३॥

वरान् विभो त्वत् बरदेश्वरात् बुधः कथं वृणीते गुण विक्रियात्मनां ये नारकाणां अपि सन्ति देहिनां तान् ईश कैवल्यपते वृणे न च ॥२३॥

कैवल्यपते विभो	मोक्षपति प्रभो !	बुधः कथं वृणीते	कोई बुद्धिमान कैसे मांग सकता है,
बरदेश्वरात् वरान्	वरदान देनेवाले श्रेष्ठ (ब्रह्मादि) के भी स्वामी	ये नारकाणां देहिनां	जो नारकीय प्राणियों
त्वत्	आपसे	अपि सन्ति	को भी प्राप्त हैं
गुण विक्रियात्मनां	गुणोंके विकारसे मिलनेवाले (भोगों) को	ईश तान्	स्वामी ! उन (भोगों) को
		न च वृणे	नहीं ही मागूंगा ॥२३॥

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्-
न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो
विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥२४॥

न कामये नाथ तदपि अहं क्वचित् न यत्र युष्मत् चरणाम्बुज आसवः महत्तम अन्तः हृदयात् मुखच्युतः विधत्स्व कर्ण अयुतं एष मे वरः ॥२४॥

युष्मत्	
चरणाम्बुज	आपके चरण-कमलोंका
आसवः	आसव
महत्तम अन्तः	
हृदयात्	महापुरुषोंके हृदयके भीतरसे
मुखच्युतः	मुख द्वारा बाहर निकला
यत्र न	जहां नहीं है
नाथ तदपि	नाथ वह कुछ
क्वचित् अहं	कभी मैं
न कामये	नहीं चाहता,
एष मे वरः	मेरे लिए यही वरदान है कि
अयुतं कर्ण	(उसे पीनेके लिए) दस हजार कान
विधत्स्व	(मेरे) बना दीजिए ॥२४॥

स उत्तमश्लोक महन्मुखच्युतो
भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः ।
स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां
कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ॥२५॥

स उत्तम श्लोक महत् मुखच्युतः भवत् पद अम्भोज सुधाकण अनिलः स्मृतिं पुनः विस्मृत तत्त्ववर्त्मनां कुयोगिनां नः वितरति अलं वरैः ॥२५॥

उत्तम श्लोक	उत्तम श्लोक !
स महत्	वह महापुरुषोंके
मुखच्युतः	मुखसे निकली
भवत् पद	
अम्भोज	आपके चरण-कमलके
सुधाकण	
अनिलः	अमृत-कण सहित वायु
तत्त्ववर्त्मनां	
विस्मृत	तत्त्व ज्ञानके मार्गको भूले
नः कुयोगिनां	हम कुयोगियोंको
पुनः स्मृतिं	
वितरति	फिर स्मृति (तत्त्व-ज्ञान) करा देती है,
अलं वरैः	वरदानका क्या प्रयोजन है ॥२५॥

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे
यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत् ।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं
श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥२६॥

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया च उपशृणोति ते सकृत् कथं गुणज्ञः विरमेत् विना पशुं श्रीः यत् प्रवव्रे गुण संग्रह इच्छया ॥२६॥

सुश्रव	उत्तम श्लोक !	**ते शिवं यशः**	आपका मंगलमय-यश
गुण संग्रह	गुणोंको पानेकी		
इच्छया श्रीः	इच्छासे लक्ष्मीजी भी	**सकृत्**	
		उपशृणोति	एकबार भी सुनकर
यत् प्रवव्रे	जिसे बहुत चाहती हैं,	**पशुं विना**	पशुको छोड़कर
		गुणज्ञः	कोई गुण पहिचानने वाला
आर्यसङ्गमे	(उस) श्रेष्ठ पुरुषोंके सत्संगमें	**कथं विरमेत्**	(उसे सुनना) कैसे छोड़ेगा ॥२६॥
यदृच्छया च	अकस्मात् भी		

अथाभजे त्वाखिलपूरुषोत्तमं
गुणालयं पद्मकरेव लालसः ।
अप्यावयोरेकपतिस्पृधोः कलि-
र्न स्यात्कृतत्वच्चरणैकतानयोः ॥२७॥

अथ आभजे त्वां अखिल पूरुषोत्तमं गुणालयं पद्मकरेव लालसः अपि आवयोः एक पति स्पृधोः कलिः न स्यात् कृत त्वत् चरण एक एक तानयोः ॥२७॥

अथ पद्मकरेव	अतः लक्ष्मीजीके समान ही	**त्वां अखिल पूरुषोत्तमं**	आप समस्त पुरुषोंमें श्रेष्ठ
लालसः	लालसासे	**गुणालयं**	गुण गणैक धामकी
		आभजे	सेवा करूँगा ।

आवयोः	हम दोनों (लक्ष्मीजी और मेरे)	**एक तानयोः कृत**	एकाग्र चित्त किये
एक पति अपि	एक स्वामी होनेपर भी	**स्पृधोः कलिः न स्यात्**	स्पर्धासे झगड़ा नहीं होगा ॥२७॥
त्वत् चरण	आपके चरणोंमें		

जगज्जनन्यां जगदीश वैशसं
स्यादेव यत्कर्मणि नः समीहितम् ।
करोषि फल्ग्वप्युरु दीनवत्सलः
स्व एव धिष्ण्येऽभिरतस्य किं तया ॥२८॥

जगत् जनन्यां जगदीश वैशसं स्यात् एव यत् कर्मणि नः समीहितं करोषि फल्गु अपि उरु दीनवत्सलः स्व एव धिष्ण्ये अभिरतस्य किं तया ॥२८॥

जगदीश	जगदीश !	**अभिरतस्य**	निमग्न (आपको)
जगत् जनन्यां	जगज्जननीसे	**तया किं**	उनसे क्या (प्रयोजन)
स्यात् वैशसं एव	कदाचित झगड़ा हो ही	**दीनवत्सलः**	(आप) दीनोंपर वात्सल्य रखनेवाले
यत् नः कर्मणि	क्योंकि हमारे कर्मोंमें		
समीहितं	समान (सेवा की) इच्छा है,	**फल्गु अपि**	थोड़ी (सेवा) को भी
स्व एव धिष्ण्ये	(पर) अपने स्वरूपमें ही	**उरु करोषि**	बहुत करते (मानते) हैं ॥२८॥

भजन्त्यथ त्वामत एव साधवो
व्युदस्तमायागुणविभ्रमोदयम् ।
भवत्पदानुस्मरणादृते सतां
निमित्तमन्यद्भगवन्न विद्महे ॥२९॥

भजन्ति अथ त्वां अत एव साधवः व्युदस्त माया गुण विभ्रमोदयं भवत् पद अनुस्मरणात् ऋते सतां निमित्तं अन्यत् भगवन् न विद्महे ॥२९॥

भगवन्	भगवन् !
माया गुण	मायाके गुणोंके
विभ्रम उदये	भ्रमोंकी उत्पत्तिसे
व्युदस्त	सर्वथा रहित
त्वां अतएव	आपका इसीसे
अथ साधवः	
भजन्ति	तो साधु लोग भजन करते हैं,
भवत् पद	
अनुस्मरणात्	आपके चरणोंके बार-बार स्मरणको
ऋते सतां	छोड़कर संतोंका
अन्यत् निमित्तं	दूसरा प्रयोजन
न विद्महे	(मैं) नहीं जानता ॥२९॥

मन्ये गिरं ते जगतां विमोहिनीं
वरं वृणीष्वेति भजन्तमात्थ यत् ।
वाचा नु तन्त्या यदि ते जनोऽसितः
कथं पुनः कर्म करोति मोहितः ॥३०॥

मन्ये गिरं ते जगतां विमोहिनीं वरं वृणीष्व इति भजन्तं आत्थ यत्
वाचा नु तन्त्या यदि ते जनः असितः कथं पुनः कर्म करोति मोहितः ॥३०॥

भजन्तं	(आपने मुझ) भजन करनेवालेसे
यत् इति आत्थ	जो यह कहा कि
वरं वृणीष्व	'वरदान माँगो !'
ते गिरं	आपकी (इस) वाणीको
जगतां	
विमोहिनीं	संसारको मोहमें डालनेवाली
मन्ये	मानता हूँ
ते वाचा नु तन्त्या	आपकी (वेदरूप) वाणीकी रस्सीसे ही
असितः जनः	बँधे हुए लोग
यदि	यदि (न होते तो)
पुनः कथं	फिर कैसे
मोहितः	मोहमें पड़कर
कर्म करोति	(सकाम) कर्म करते ॥३०॥

त्वन्माययाद्धा जन ईश खण्डितो
यदन्यदाशास्त ऋतात्मनोऽबुधः ।
यथा चरेद्बालहितं पिता स्वयं
तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितुम् ॥३१॥

त्वत् मायया अद्धा जनः ईश खण्डितः यत् अन्यत् आशास्त ऋत आत्मनः अबुधः यथा चरेत् बालहितं पिता स्वयं तथा त्वं एव अर्हसि नः समीहितुम् ॥३१॥

ईश	सर्वेश !
त्वत् मायया	आपकी मायासे
अद्धा खण्डितः	
जनः	पूर्णतः (आपसे) पृथक हुए लोग
ऋत आत्मनः	अपने स्वरूपको छोड़कर
यत् अबुधः	क्योंकि अज्ञानी हैं
अन्यत् आशास्त	दूसरे (स्त्री-पुत्रादि) को चाहते हैं
यथा पिता	
स्वयं	जैसे पिता स्वयं
बालहितं चरेत्	बच्चेकी भलाई करता है,
तथा त्वं एव	वैसे ही आपको भी
नः समीहितुं	हमारे (भलेकी) पूरी इच्छा
अर्हसि	करनी चाहिए ॥३१॥

मैत्रेय उवाच—

इत्यादिराजेन नुतः स विश्वदृक्
तमाह राजन् मयि भक्तिरस्तु ते ।
दिष्ट्येदृशी धीर्मयि ते कृता यया
मायां मदीयां तरति स्म दुस्त्यजाम् ॥३२॥

इति आदिराजेन नुतः स विश्वदृक् तं आह राजन् मयि भक्तिः अस्तु ते दिष्ट्या दृशो धीः मयि ते कृता यया मायां मदीयां तरति स्म दुस्त्यजाम् ॥३२॥

इति आदिराजेन	इस प्रकार आदिराज (पृथु) के
नुतः	स्तुति करनेपर
स विश्वदृक्	उन सर्वसाक्षीने
तं आह	उनसे कहा—
राजन् ते मयि भक्तिः अस्तु	'राजन् ! तुम्हारी मुझमें भक्ति हो'
दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है कि
ते मयि धीः कृता	तुमने मुझमें बुद्धि लगायी है
यया मदीयां	जिससे मेरी

दुस्त्यजां मायां	दुस्त्यज मायाको (मनुष्य)	**तरति स्म**	पार कर लेता है ॥३२॥

तत्त्वं कुरु मयाऽऽदिष्टमप्रमत्तः प्रजापते ।
मदादेशकरो लोकः सर्वत्राप्नोति शोभनम् ॥३३॥

तत् त्वं कुरु मया आदिष्टं अप्रमत्तः प्रजापते मत् आदेशकरः लोकः सर्वत्र आप्नोति शोभनम् ॥३३॥

प्रजापते	प्रजाके पालक !	**मत् आदेशकरः**	मेरे आदेशका पालन करनेवाले
त्वं तत् मया आदिष्टं	तुम उस मेरे	**लोकः सर्वत्र**	लोग सब कहीं
अप्रमत्तः	आदेशका प्रमाद-हीन होकर	**शोभनं आप्नोति**	मंगल प्राप्त करते हैं* ॥३३॥
कुरु	(पालन) करो,		

इति वैन्यस्य राजर्षेः प्रतिनन्द्यार्थवद्वचः ।
पूजितोऽनुगृहीत्वैनं गन्तुं चक्रेऽच्युतो मतिम् ॥३४॥

इति वैन्यस्य राजर्षेः प्रतिनन्द्य अर्थवत् वचः पूजितः अनुगृहीत्वा एनं गन्तुं चक्रे अच्युतः मतिम् ॥३४॥

इति राजर्षेः	इस प्रकार राजर्षि	**एनं अनुगृहीत्वा**	उनपर अनुग्रह करके
वैन्यस्य	पृथुकी	**अच्युतः गन्तुं**	भगवान अच्युतने जानेका
अर्थवत् वचः	सारगर्भित वाणीकी	**मतिं चक्रे**	विचार किया ॥३४॥
प्रतिनन्द्य	प्रशंसा करके		
पूजितः	पूजित होकर		

देवर्षिपितृगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगाः ।
किन्नराप्सरसो मर्त्याः खगा भूतान्यनेकशः ॥३५॥

---

* यहां उवाच सब प्रतियोंमें है; किन्तु होना नहीं चाहिए; क्योंकि भगवानके वचन मैत्रेयके कथनके अन्तर्गत ही श्लोक ३२ में प्रारम्भ हुए हैं। उससे पहिलेसे 'मैत्रेय उवाच' चल रहा है।

देवर्षि, पितृ, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नगाः, किन्नरः, अप्सरसः मर्त्याः (मनुष्य) खगा भूतानि अनेशः (अनेक प्रकारके प्राणी एवं पार्षद) ॥३५॥

यज्ञेश्वरधिया राज्ञा वाग्वित्ताञ्जलिभक्तितः ।
सभाजिता ययुः सर्वे वैकुण्ठानुगतास्ततः ॥३६॥

यज्ञेश्वरधिया राज्ञा वाक् वित्त अञ्जलि भक्तितः सभाजिता ययुः सर्वे वैकुण्ठ अनुगताः ततः ॥३६॥

राज्ञा	राजा द्वारा
यज्ञेश्वरधिया	भगवद्बुद्धिसे
वाक् वित्त	वाणी और धनसे (देकर)
भक्तितः अञ्जलि	भक्ति सहित हाथ जोड़कर
सभाजिता	सत्कृत होकर
सर्वे वैकुण्ठ अनुगताः	सब भगवानके पीछे
ततः ययुः	वहाँसे चले गये ॥३६॥

भगवानपि राजर्षेः सोपाध्यायस्य चाच्युतः ।
हरन्निव मनोऽमुष्य स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥३७॥

भगवान् अपि राजर्षेः स उपाध्यायस्य च अच्युतः हरन् इव मनः अमुष्य स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥३७॥

भगवान् अच्युतः अपि	भगवान अच्युत भी
स उपाध्यायस्य च	पुरोहितोंके सहित ही
अमुष्य राजर्षेः	इन राजर्षि (पृथु) का
मनः हरन् इव	मन चुराते हुएसे
स्वधाम प्रत्यपद्यत	अपने धाम पहुँच गये ॥३७॥

अदृष्टाय नमस्कृत्य नृपः सन्दर्शितात्मने ।
अव्यक्ताय च देवानां देवाय स्वपुरं ययौ ॥३८॥

अदृष्टाय नमः कृत्य नृपः सन्दर्शित आत्मने अव्यक्ताय च देवानां देवाय स्वपुरं ययौ ॥३८॥

सन्दर्शित आत्मने	अपना स्वरूप दिखलाकर	**देवाय नमः कृत्य**	भगवानको नमस्कार करके
देवानां च अदृष्टाय अव्यक्ताय	देवताओंके लिए भी दर्शन न देनेवाले अव्यक्त (अदृश्य) हुए	**नृपः स्वपुरं ययौ**	राजा अपने नगर चले गये ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥३८॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच–

मौक्तिकैः कुसुमस्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्णतोरणैः ।
महासुरभिभिर्दीपैर्मण्डितं तत्र तत्र वै ॥१॥

मौक्तिकैः कुसुमस्रक्भिः दुकूलैः स्वर्ण तोरणैः महासुरभिभिः दीपैः मण्डितं तत्र तत्र वै ॥१॥

तत्र तत्र वै	(वह नगर) स्थान-स्थानपर	**स्वर्ण तोरणैः**	स्वर्णके तोरण द्वारोंसे
मौक्तिकैः कुसुमस्रक्भिः	मोतियों और पुष्पोंकी मालाओंसे	**महासुरभिभिः**	बहुत अधिक सुगन्धित (धूप) से
दुकूलैः	वस्त्रोंसे	**दीपैः**	दीपकोंसे
		मण्डितं	सजा था ॥१॥

चन्दनागुरुतोयार्द्ररथ्याचत्वरमार्गवत् ।
पुष्पाक्षतफलैस्तोक्मैर्लाजैरर्चिर्भिरर्चितम् ॥२॥

चन्दन अगुरु तोय आर्द्र रथ्या चत्वर मार्ग वत् पुष्प अक्षत फलैः तोक्मैः लाजैः अर्चिर्भिः अर्चितम् ॥२॥

रथ्या चत्वर मार्ग	गलियां‘ चबूतरे सड़कें	**अक्षत फल**	अक्षत, फल
चन्दन अगुरु तोय	चन्दन तथा अगुरु मिले जलसे	**तोक्मैः लाजैः**	भ्रुवांकुर, लाजा तथा
आर्द्र वत्	सींची गयी थीं,	**अर्चिर्भिः**	दीपकोंसे
		अर्चितं	सजायी गयी थीं ॥२॥

सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैः परिष्कृतम् ।
तरुपल्लवमालाभिः सर्वतः समलंकृतम् ॥३॥

सवृन्दैः कदली स्तम्भैः पूगपोतैः परिष्कृतं तरु पल्लव मालाभिः सर्वतः समलंकृतम् ॥३॥

सवृन्दैः कदली स्तम्भैः	धार सहित केलोंके खम्भोंसे,	**तरु पल्लव मालाभिः**	वृक्षोंके पत्तों और मालाओंसे
पूगपोतैः	सुपारीके छोटे पौधोंसे,	**सर्वतः समलंकृतं**	चारों ओर खूब सजायी थीं ॥३॥
परिष्कृतं	सँवारकर		

प्रजास्तं दीपबलिभिः सम्भृताशेषमङ्गलैः ।
अभीयुर्मृष्टकन्याश्च मृष्टकुण्डलमण्डिताः ॥४॥

प्रजाः तं दीपबलिभिः सम्भृत अशेष मङ्गलैः अभीयुः मृष्ट कन्या च मृष्ट कुण्डल मण्डिताः ॥४॥

अशेष मङ्गलैः	सम्पूर्ण मंगल द्रव्य	**मृष्ट कन्या**	सुन्दरी कन्याओं द्वारा
सम्भृत	लिए हुए	**दीपबलिभिः**	आरती लिए
मृष्ट कुण्डल मण्डिताः	मनोहर कुण्डलोंसे भूषित	**प्रजाः तं अभीयुः**	प्रजा उनकी अगवानी करने आयी ॥४॥

शङ्खदुन्दुभिघोषेण ब्रह्मघोषेण चर्त्विजाम् ।
विवेश भवनं वीरः स्तूयमानो गतस्मयः ॥५॥

शङ्ख दुन्दुभि घोषेण ब्रह्मघोषेण च ऋत्विजां विवेश भवनं वीरः स्तूयमानः गत स्मयः ॥५॥

शङ्खदुन्दुभिघोषेण च ऋत्विजां ब्रह्मघोषेण	शंख दुन्दुभिके वाद्य तथा पुरोहितोंके वेदपाठके साथ
वीरः गतस्मयः	वीर निरभिमान (पृथु) ने
स्तूयमानः	(लोगोंकी) स्तुतिसे स्तुत होते
भवनं विवेश	भवनमें प्रविष्ट हुए ॥५॥

पूजितः पूजयामास तत्र तत्र महायशाः ।
पौराञ्जानपदांस्तांस्तान् प्रीतः प्रियवरप्रदः ॥६॥

पूजितः पूजयामास तत्र तत्र महायशाः पौरान् जानपदान् तान्तान् प्रीतः प्रियवरप्रदः ॥६॥

तत्र तत्र	स्थान-स्थानपर
प्रियवरप्रदः	प्रिय अभीष्ट पदार्थ देनेवाले,
महायशाः	महान् यशस्वी (पृथु) ने
पूजितः	सत्कृत होकर
तान् तान्	उन उन
पौरान् जानपदान्	पुरवासियों तथा देशवासियोंका
प्रीतः पूजयामास	प्रसन्न होकर सत्कार किया ॥६॥

स एवमादीन्यनवद्यचेष्टितः
कर्माणि भूयांसि महान्महत्तमः ।
कुर्वन् शशासावनिमण्डलं यशः
स्फीतं निधायारुरुहे परं पदम् ॥७॥

स एवं आदीनि अनवद्य चेष्टितः कर्माणि भूयांसि महान् महत्तमः कुर्वन् शशास अवनि मण्डलं यशः स्फीतं निधाय आरुरुहे परं पदम् ॥७॥

एवं स	इस प्रकार उन
महान् महत्तमः	महान् पुरुषोंमें भी सर्वश्रेष्ठने
अनवद्य चेष्टितः	निर्दोष व्यवहार करते
भूयांसि कर्माणि	बहुत कर्मों

आदीनि	आदिको
कुर्वन्	करते हुए
अवनि मण्डलं	भूमंडलका
शशास	शासन किया,
स्फीतं यशः	निर्मल यशका
निधाय	विस्तार करके,
परं पदं आरुरुहे	परं पदपर पहुँच गये ॥७॥

सूतरुवाच-

तदादिराजस्य यशो विजृम्भितं
गुणैरशेषैर्गुणवत्समाजितम् ।
क्षत्ता महाभागवतः सदस्पते
कौषारविं प्राह गृणन्तमर्चयन् ॥८॥

तत् आदिराजस्य यशः विजृम्भितं गुणैः अशेषैः गुणवत् समाजितं क्षत्ता महाभागवतः सदस्पते कौषारविं प्राह गुणन्तं अर्चयन् ॥८॥

सदस्पते	सभापति (शौनक) जी !
तत्	
आदिराजस्य	उन आदिराज (पृथु) का
गुणवत्	
समाजितं	गुणवानों द्वारा प्रशंसित
अशेषैः गुणैः	
विजृम्भितं	सम्पूर्ण गुणोंसे पूर्ण
यशः	सुयश
कौषारविं	
गृणन्तं	मैत्रेय द्वारा वर्णित (सुनकर)
महाभागवतः	
क्षत्ता	महाभागवत विदुरने
अर्चयन् प्राह	(उनका) अभिनन्दन करते कहा ॥७॥

विदुर उवाच-

सोऽभिषिक्तः पृथुर्विप्रैर्लब्धाशेषसुरार्हणः ।
बिभ्रत् स वैष्णवं तेजो बाह्वोर्याभ्यां दुदोह गाम् ॥९॥

सः अभिषिक्तः पृथुः विप्रैः लब्धा अशेष सुर अर्हणः बिभ्रत् स वैष्णवं तेजः बाह्वोः याभ्यां दुदोह गाम् ॥९॥

सः पृथुः विप्रैः अभिषिक्तः	उन पृथुका ब्राह्मणों द्वारा अभिषेक हुआ,
अशेष सुर अर्हणः लब्धा	सभी देवताओंसे उपहार प्राप्त करके,
स बाह्वोः वैष्णवं तेजः बिभ्रत् याभ्यां गां दुदोह	उन्होंने भुजाओंमें वैष्णव तेज धारण किया, जिनसे पृथ्वीका दोहन किया ॥९॥

को न्वस्य कीर्तिं न शृणोत्यभिज्ञो
यद्विक्रमोच्छिष्टमशेषभूपाः ।
लोकाः सपाला उपजीवन्ति काम-
मद्यापि तन्मे वद कर्म शुद्धम् ॥१०॥

कः नु अस्य कीर्तिं न शृणोति अभिज्ञः यत् विक्रम उच्छिष्टं अशेष भूपाः लोकाः सपालाः उपजीवन्ति कामं अद्य अपि तत् मे वद कर्म शुद्धम् ॥१०॥

यत् विक्रम उच्छिष्टं अशेष भूपाः सपालाः लोकाः	जिनके पराक्रमके उच्छिष्ट (भोगों) से सब राजा लोग तथा लोकपालोंके साथ सब लोक
अद्य अपि	आज भी
कामं उपजीवन्ति	इच्छानुसार जीवन-निर्वाह करते हैं,
अस्य कीर्तिं	उनका सुयश
कः नु अभिज्ञः	कौन समझदार
न शृणोति	नहीं सुनना चाहेगा,
तत् मे	अतः मुझसे
शुद्धं कर्म	(उनके) पवित्र कर्म
वद	कहिए ॥१०॥

मैत्रेय उवाच-

गङ्गायमुनयोर्नद्योरन्तराक्षेत्रमावसन् ।
आरब्धानेव बुभुजे भोगान् पुण्यजिहासया ॥११॥

गङ्गा यमुनयोः नद्योः अन्तराक्षेत्रं आवसन् आरब्धान् एव बुभुजे भोगान् पुण्य जिहासया ॥११॥

गङ्गा यमुनयोः	
नद्योः	गंगा-यमुना नदियोंके
अन्तराक्षेत्रं	
आवसन्	मध्य क्षेत्रमें रहते हुए,
पुण्य जिहासया	पुण्य क्षय करनेकी इच्छासे
आरब्धान् एव	प्रारब्ध प्राप्त ही
भोगान् बुभुजे	भोगोंको भोगते थे ॥११॥

सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक् ।
अन्यत्र ब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः ॥१२॥

सर्वत्र अस्खलित आदेशः सप्तद्वीप एक दण्डधृक् अन्यत्र ब्राह्मण-कुलात् अन्यत्र अच्युत गोत्रतः ॥१२॥

ब्राह्मणकुलात्	
अन्यत्र	ब्राह्मण-कुलोंको छोड़कर
अच्युत गोत्रतः	
अन्यत्र	तथा अच्युत-गोत्र (भगवद्भक्तों) को छाड़कर
सप्तद्वीप	सप्तद्वीप (पूरे ब्रह्माण्ड) के
एक दण्डधृक्	एकमात्र शासक (पृथुका)
सर्वत्र	सब कहीं
अस्खलित	
आदेशः	निर्बाध शासन था ॥१२॥

एकदाऽऽसीन्महासत्त्रदीक्षा तत्र दिवौकसाम् ।
समाजो ब्रह्मर्षीणां च राजर्षीणां च सत्तम ॥१३॥

एकदा आसीत् महासत्त्र दीक्षा तत्र दिवौकसां समाजः ब्रह्मर्षीणां च राजर्षीणां च सत्तम ॥१३॥

सत्तम	सज्जन श्रेष्ठ विदुर !
एकदा तत्र	एकबार वहाँ (उन्होंने)
महासत्त्र दीक्षा	महायज्ञकी दीक्षा ली,
दिवौकसां	देवताओंका

ब्रह्मर्षीणां च राजर्षीणां च समाजः	ब्रह्मर्षियोंका तथा राजर्षियोंका भी	आसीत्	समाज एकत्र था ॥ १३॥

तस्मिन्नर्हत्सु सर्वेषु स्वर्चितेषु यथार्हतः ।
उत्थितः सदसो मध्ये ताराणामुडुराडिव ॥१४॥

तस्मिन् अर्हत्सु सर्वेषु स्वर्चितेषु यथा अर्हतः उत्थितः सदसः मध्ये ताराणां उडुराड इव ॥१४॥

तस्मिन् सर्वेषु अर्हत्सु	उस यज्ञमें सब पूजनीयोंका	ताराणां उडुराड इव	तारागणोंमें चन्द्रमाके समान
यथा अर्हतः	जो जिस सत्कार योग्य था	सदसः मध्ये	सभाके बीचमें
स्वर्चितेषु	उसका वैसा स्वयं सत्कार करके	उत्थितः	उठकर खड़े हो गये ॥१४॥

प्रांशुः पीनायतभुजो गौरः कञ्जारुणेक्षणः ।
सुनासः सुमुखः सौम्यः पीनांसः सुद्विजस्मितः ॥१५॥

प्रांशुः पीन आयत भुजः गौरः कञ्ज अरुण ईक्षणः सुनासः सुमुखः सौम्यः पीन अंसः सुद्विजः स्मितः ॥१५॥

प्रांशुः पीन आयत	लम्बा शरीर,	सुनासः	सुन्दर नासिका,
भुजः	मोटी-लम्बी भुजाएँ,	सौम्यः सुमुखः	शान्त सुन्दर मुख,
गौरः	गौर वर्ण,	पीन अंसः	मोटे कन्धे,
कञ्ज अरुण ईक्षणः	लाल कमलके समान नेत्र,	स्मितः सुद्विजः	मुस्करानेपर सुन्दर दांतवाले ॥१५॥

व्यूढवक्षा बृहच्छ्रोणिर्वलिवल्गुदलोदरः ।
आवर्तनाभिरोजस्वी काञ्चनोरुरुदग्रपात् ॥१६॥

व्यूढवक्षा बृहत् श्रोणिः वलिवल्गुदल उदरः आवर्त नाभिः ओजस्वी काञ्चनः उरुः उदग्रपात् ॥१६॥

व्यूढवक्षा	चौड़ी छातीवाले,	**ओजस्वी**	
बृहत् श्रोणिः	स्थूल नितम्ब,	**काञ्चनः उरुः**	तेजयुक्त स्वर्णके समान जांघें,
वलिवल्गु-दल उदरः	त्रिवलीयुक्त पतला पत्ते के समान (सुडौल) पेट,	**उदग्रपात्**	उभरे हुए पैरोंके पंजे ॥१६॥
आवर्त नाभिः	भँवरके समान नाभि,		

सूक्ष्मवक्रासितस्निग्धमूर्धजः कम्बुकन्धरः ।
महाधने दुकूलाग्र्ये परिधायोपवीय च ॥१७॥

सूक्ष्म वक्र असित स्निग्ध मूर्धजः कम्बुकन्धरः महाधने दुकूल अग्र्ये परिधाय उपवीय च ॥१७॥

सूक्ष्म वक्र	पतले, घुंघराले,	**अग्र्ये परिधाय**	धोती पहिने
असित स्निग्ध	काले-चिकने	**च दुकूल**	
मूर्धजः	केश,	**उपवीय**	तथा दुपट्टा ओढ़े थे ॥१७॥
कम्बुकन्धरः	शंखके समान गला,		
महाधने	महामूल्यवान		

व्यञ्जिताशेषगात्रश्रीर्नियमे न्यस्तभूषणः ।
कृष्णाजिनधरः श्रीमान् कुशपाणिः कृतोचितः ॥१८॥

व्यञ्जित अशेष गात्र श्रीः नियमे न्यस्त भूषणः कृष्ण अजिनधरः श्रीमान् कुशपाणिः कृत उचितः ॥१८॥

अशेष गात्र	पूरे शरीरसे	**नियमे**	यज्ञ दीक्षित होनेसे
श्रीः व्यञ्जित	शोभा प्रगट हो रही थी,	**न्यस्त भूषणः**	आभूषण छोड़ रखे थे,

कृष्ण अजिन धरः	कृष्णमृग-चर्म पहिने	**कृत उचितः**	(नित्य कर्मादि) उचित कर्म कर चुके थे ॥१८॥
कुशपाणिः	हाथमें कुश लिए		

शिशिरस्निग्धताराक्षः समैक्षत समन्ततः ।
ऊचिवानिदमुर्वीशः सदः संहर्षयन्निव ॥१९॥

शिशिर स्निग्धतार अक्षः सम ऐक्षत समन्ततः ऊचिवान् इदं उर्वीशः सदः संहर्षयन् इव ॥१९॥

उर्वीशः	राजा पृथुने	**सदः संहर्षयन् इव**	सभाको अत्यन्त हर्षित करते हुएसे
समन्ततः	चारों ओर	**इदं ऊचिवान्**	यह बोले ॥१९॥
शिशिर स्निग्ध-तार अक्षः	शीतल, स्नेह भरे, रतनारे नेत्रोंसे		
सम ऐक्षत	भलीप्रकार देखा (फिर)		

चारु चित्रपदं श्लक्ष्णं मृष्टं गूढमविक्लवम् ।
सर्वेषामुपकारार्थं तदा अनुवदन्निव ॥२०॥

चारु चित्रपदं श्लक्ष्णं मृष्टं गूढं अविक्लवं सर्वेषां उपकार अर्थं तदा अनुवदन् इव ॥२०॥

चारु चित्रपदं	सुन्दर विचित्र पदोंसे युक्त	**सर्वेषां उपकार अर्थं**	सबके उपकारके लिए
श्लक्ष्णं मृष्टं	स्पष्ट, मधुर,	**तदा इव**	उस समय (ऐसे लगता था) जैसे
गूढं अविक्लवं	गम्भीर, अकुलाहट रहित,	**अनुवदत्**	सबकी जानी बात दुहराते हों ॥२०॥

विशेष—

यहाँ महाराज पृथुके भाषणकी विशेषता बतलाकर उत्तम वक्ताके उत्तम भाषणका लक्षण भी बतलाया है। १—सुन्दर और विचित्र (अलंकारयुक्त) वाक्य २—स्पष्ट घुमा फिराकर बात नहीं कही गयी) ३—मधुर (व्यंग या कठोरता नहीं) ४—गम्भीर बात (हल्कापन नहीं) ५—बोलनेमें अकुलाहट नहीं ६—सबके भलेकी बात (केवल अपने मतका प्रतिपादन नहीं) ७—यह सबसे बड़ी और दुर्लभ विशेषता है कि श्रोताओंको उस समय लगे कि यह उनके मनकी 'मुँहकी बात' कही गयी है।

*पृथुरुवाच**—

सभ्याः शृणुत भद्रं वः साधवो य इहागताः।
सत्सु जिज्ञासुभिर्धर्ममावेद्यं स्वमनीषितम् ॥२१॥

सभ्याः शृणुत भद्रं वः साधवः य इह आगताः सत्सु जिज्ञासुभिः धर्मं आवेद्यं स्वमनीषितम् ॥२१॥

सभ्याः	सज्जनो !	**स्वमनीषितं**	धर्मके सम्बन्धमें अपना निश्चय
वः भद्रं	आपका कल्याण हो	**सत्सु आवेद्यं**	सज्जनोंको बतलाना चाहिए। (जिससे भूल सुधर सके) ॥२१॥
यः साधवः	जो सत्पुरुष		
इह आगताः	यहाँ पधारे हैं,		
शृणुत	सुनें !		
जिज्ञासुभिः	जिज्ञासुओंको		
धर्मं			

अहं दण्डधरो राजा प्रजानामिह योजितः।
रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु स्थापिता पृथक्। २२॥

अहं दण्डधरः राजा प्रजानां इह योजितः रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु स्थापिता पृथक् ॥२२॥

---

* यहाँ अन्य प्रतियोंमें 'राजोवाच' है; किन्तु ग्रन्थमें अनेक राजा बोलेंगे अतः नाम देना ठीक है।

अहं इह	मैं इस (पृथ्वी) पर	**सेतुषु स्थापिता**	मर्यादाओंमें रखनेवाला
प्रजानां	प्रजाका	**दण्डधरः राजा**	दण्डधारी राजा
रक्षिता	रक्षक	**योजितः**	बनाया गया हूँ ॥२२॥
वृत्तिदः	आजिविका देनेवाला		
पृथक् स्वेषु	अलग-अलग अपनी		

तस्य मे तदनुष्ठानाद्यनाहुर्ब्रह्मवादिनः ।
लोका स्युः कामसन्दोहा यस्य तुष्यति दिष्टदृक् ॥२३॥

तस्य मे तदनुष्ठान् आदि यान् आहुः ब्रह्मवादिनः लोका स्युः काम सन्दोहा यस्य तुष्यति दिष्टदृक् ॥२३॥

तदनुष्ठान् आदि यान्	इन (कर्तव्यों) के पालन आदिसे	**काम सन्दोहा**	सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाले
यस्य दिष्टदृक्	जिसपर कर्मोंके साक्षी (भगवान्)	**यान लोकान्**	जो लोक (मिलते)
तुष्यति	सन्तुष्ट होते हैं (उसे)	**आहुः**	बतलाते हैं
ब्रह्मवादिनः	वेदवादी लोग	**तस्य मे स्युः**	वे मुझे प्राप्त होने चाहिए ॥२३॥

य उद्धरेत्करं राजा प्रजा धर्मेष्वशिक्षयन् ।
प्रजानां शमलं भुङ्क्ते भगं च स्वं जहाति सः ॥२४॥

यः उद्धरेत् करं राजा प्रजा धर्मेषु अशिक्षयन् प्रजानां शमलं भुङ्क्ते भगं च स्वं जहाति सः ॥२४॥

यः राजा	जो राजा	**सः प्रजानां**	वह प्रजाके
प्रजा धर्मेषु	प्रजाको धर्मकी	**शमलं भुङ्क्ते**	पाप भोगता है,
अशिक्षयन्	शिक्षा दिये बिना	**च स्वम् भगं**	तथा अपना ऐश्वर्य
करं उद्धरेत्	कर वसूल करता है,	**जहाति**	खो देता है ॥२४॥

तत् प्रजा भर्तृपिण्डार्थं स्वार्थमेवानसूयवः ।
कुरुताधोक्षजधियस्तर्हि मेऽनुग्रहः कृतः ॥२५॥

तत् प्रजा भर्तृपिण्ड अर्थं स्वार्थं एव अनसूयवः कुरुत अधोक्षज धियः तर्हि मे अनुग्रहः कृतः ॥२५॥

तत् प्रजा	अतः प्रजाजनो !	**अधोक्षज धियः**	सर्वत्र भगवद्बुद्धि रखकर
भर्तृपिण्ड अर्थं	अपने इस राजाकी पारलौकिक भलाईके लिए	**कुरुत**	(अपना कर्तव्य) पालन करें,
स्वार्थं एव	अपने ही भलेके लिए	**तर्हि मे**	ऐसा करनेपर (आप) मुझपर
अनसूयवः	दोष-दृष्टि त्यागकर	**अनुग्रह कृतः**	अनुग्रह करेंगे ॥२५॥

यूयं तदनुमोदध्वं पितृदेवर्षयोऽमलाः ।
कर्तुः शास्तुरनुज्ञातुस्तुल्यं यत्प्रेत्य तत्फलम् ॥२६॥

यूयं तत् अनुमोदध्वं पितृदेव ऋषयः अमलाः कर्तुः शास्तुः अनुज्ञातुः तुल्यं यत् प्रेत्य तत् फलम् ॥२६॥

अमलाः	शुद्ध हृदय	**कर्तुः यत् फलं**	कर्मके कर्ताको जो फल मिलता है—
पितृदेव ऋषयः	पितर, देवता, ऋषियों,	**तत् तुल्यं शास्तुः**	वही बराबर (फल)
यूयं तत् अनुमोदध्वं	आप सब इसका अनुमोदन करें	**अनुज्ञातुः**	आज्ञा देनेवाले तथा अनुमोदन करनेवालेको भी (मिलता है) ॥२६॥
प्रेत्य	क्योंकि मरनेपर		

अस्ति यज्ञपतिर्नाम केषाञ्चिदर्हसत्तमाः ।
इहामुत्र च लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नावत्यः क्वचिद्भुवः ॥२७॥

मनोरुत्तानपादस्य ध्रुवस्यापि महीपतेः ।
प्रियव्रतस्य राजर्षेरङ्गस्यास्मत्पितुः पितुः ॥२८॥

ईदृशानामथान्येषामजस्य च भवस्य च ।
प्रह्लादस्य बलेश्चापि कृत्यमस्ति गदाभृता ॥२९॥

दौहित्रादीनृते मृत्योः शोच्यान् धर्मविमोहितान् ।
वर्गस्वर्गापवर्गाणां प्रायेणैकात्म्यहेतुना ॥३०॥

अस्ति यज्ञपतिः नाम केषाञ्चित् अर्हसत्तमाः इह अमुत्र च लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नावत्यः क्वचित् भुवः ॥२७॥

मनोः उत्तानपादस्य ध्रुवस्य अपि महीपतेः प्रियव्रतस्य राजर्षेः अङ्गस्य अस्मत् पितुः पितुः ॥२८॥

ईदृशानां अथ अन्येषां अजस्य च भवस्य च प्रह्लादस्य बलेः च अपि कृत्यं अस्ति गदा भृता ॥२९॥

दौहित्र आदीन् ऋतेः मृत्योः शोच्यान् धर्म विमोहितान् वर्ग स्वर्ग अपवर्गाणां प्रायेण ऐकात्म्य हेतुना ॥३०॥

मृत्योः दौहित्र आदीन्	मृत्युके दौहित्र (वेन) आदि
धर्म विमोहितान्	धर्मके सम्बन्धमें अत्यन्त मूढ़
ऋतेः	लोगोंको छोड़कर
केषाञ्चित्	कुछ
अर्हसत्तमाः	पूजनीय महापुरुषोंके मतसे
वर्ग स्वर्ग	त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम) स्वर्ग तथा
अपवर्गाणां	मोक्षोंकी
प्रायेण ऐकात्म्य हेतुना	प्रायः एकात्मता होनेसे
यज्ञपतिः नाम	इनके कारण (दाता) यज्ञपति नामके भगवान
अस्ति	हैं, (दूसरे तेजस्वी कोई नहीं हो सकते, क्योंकि)–
इह अमुत्र च	इस लोक तथा पर-लोकमें भी,

भुवः	पृथ्वीपर भी
ज्योत्स्नावत्यः	बड़े तेजोमय (शरीर)
लक्ष्यन्ते	देखे जाते हैं (वे अनेक हैं।)
मनोः उत्तानपादस्य महीपतेः	मनु, उत्तानपाद,
ध्रुवस्य अपि	महाराज ध्रुवका भी,
राजर्षेः प्रियव्रतस्य	राजर्षि प्रियव्रतका,
अस्मत् पितुः पितुः	मेरे पिताके पिता (पितामह)
अङ्गस्य अथ	अंगका तथा
ईदृशानां	ऐसे ही
अन्येषां	दूसरोंका भी
अजस्य च	ब्रह्माजीका तथा
भवस्य च	शंकरजीका एवं
प्रह्लादस्य	प्रह्लादका
वलेः च अपि	वलिका भी
गदा मृता	भगवान गदाधर द्वारा
कृत्यं अस्ति	काम (उपकार) हुआ है ॥२७-३०॥

यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विना-
मशेषजन्मोपचितं मलं धियः ।
सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती
यथा पदाङ्गुष्ठविनिःसृता सरित् ॥३१॥

यत् पादसेवा अभिरुचिः तपस्विनां अशेष जन्म उपचितं मलं धियः सद्यः क्षिणोति अनु अहं एधती सती यथा पद अङ्गुष्ठ विनिःसृता सरित् ॥३१॥

यत् पादसेवा	जिनके चरणोंकी सेवाकी
अभिरुचिः	अभिलाषा,
अनु अहं एधती	प्रतिदिन बढ़ती हुई
पद अङ्गुष्ठ विनिःसृता	(उन्हींके)चरणांगुष्ठ-से निकली
सरित् यथा	सरिता (गंगाजी)के समान
तपस्विनां	संसार ताप संतप्त प्राणियोंके
अशेष जन्म उपचितं	समस्त जन्मोंके
धियः मलं	एकत्र बुद्धिके मलको
सद्यः क्षिणोति	तत्काल नष्ट कर देती है ॥३१॥

विनिर्धुताशेषमनोमलः पुमा-
नसङ्गविज्ञानविशेषवीर्यवान् ।
यदङ्घ्रिमूले कृतकेतनः पुनः
न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते ॥३२॥

विनिर्धुत अशेष मनोमलः पुमान् असङ्ग विज्ञान विशेष वीर्यवान् यत् अङ्घ्रिमूले कृतकेतनः पुनः न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते ॥३२॥

पुमान्	पुरुष
अशेष मनोमलः	मनके सम्पूर्ण दोषोंके
विनिर्धुत	नष्ट हो जानेपर
असङ्ग	असंगता (वैराग्य) और
विज्ञान विशेष	विशेष विज्ञान (तत्त्वज्ञान) का
वीर्यवान्	बल प्राप्त करके
यत्	
अङ्घ्रिमूले	जिनके चरण-कमलोंमें
कृतकेतनः	निवास बना लेता है,
पुनः क्लेशवहां	फिर क्लेशदायी
संसृतिं	आवागमनमें
न प्रपद्यते	नहीं पड़ता ॥३२॥

तमेव यूयं भजतात्मवृत्तिभि-
र्मनोवचःकायगुणैः स्वकर्मभिः ।
अमायिनः कामदुघाङ्घ्रिपङ्कजं
यथाधिकारावसितार्थसिद्धयः ॥३३॥

तं एव यूयं भजत आत्म वृत्तिभिः मनः वचः कायगुणैः स्वकर्मभिः अमायिनः कामदुध अङ्घ्रि पङ्कजं यथा अधिकार अवसित अर्थ सिद्धयः ॥३३॥

कामदुध	अभीष्ट फलदाता
तं एव	उनके ही
अङ्घ्रि पङ्कजं	चरण-कमलोंका
यूयं	आप सब
आत्म वृत्तिभिः	अपनी आजीविकाके उपयुक्त
कायगुणैः	अपने शारीरिक गुणोंसे

अमायिनः	निश्छल भावसे
मनः वचः	मन, वाणी तथा
स्वकर्मभिः	अपने कर्मोंसे
भजत	भजन करें,
यथा अधिकार	अपने अधिकारके अनुसार
अर्थ सिद्धयः	(इससे) प्रयोजनकी सिद्धि
अवसित	अवश्य होगी ॥३३॥

असाविहानेकगुणोऽगुणोऽध्वरः
पृथग्विधद्रव्यगुणक्रियोक्तिभिः ।
सम्पद्यतेऽर्थाशयलिङ्गनामभि-
र्विशुद्धविज्ञानघनः स्वरूपतः ॥३४॥

असाः इह अनेक गुणः अगुणः अध्वरः पृथक् विध द्रव्य गुण क्रिया उक्तिभिः सम्पद्यते अर्थ आशय लिङ्ग नामभिः विशुद्ध विज्ञान घनः स्वरूपतः ॥३४॥

इह असा	यहाँ होनेवाला यह
अनेक गुणः	अनेकों गुणोंवाला
अध्वरः	यज्ञ जो
पृथक् विध	विभिन्न विधियोंसे,
द्रव्य, गुण	पदार्थों, गुणों (क्रिया नैयुष्म)
उक्तिभिः	वचनों से,
अर्थ	धन,
आशय	चित्तके उत्साहसे
नामभिः	मन्त्रों द्वारा
सम्पद्यते	होता है (यह)
स्वरूपतः	स्वरूपसे
विज्ञान धनः	विज्ञान धन
अगुणः	निर्गुण भगवान ही हैं ॥३४॥

प्रधानकालाशयधर्मसंग्रहे
शरीर एष प्रतिपद्य चेतनाम् ।
क्रियाफलत्वेन विभुर्विभाव्यते
यथानलो दारुषु तद्गुणात्मकः ॥३५॥

प्रधान काल आशय धर्म संग्रहे शरीर एष प्रतिपद्य चेतनां क्रिया-फलत्वेन विभुः विभाव्यते यथा अनलः दारुषु तद्गुण आत्मकः ॥३५॥

यथा दारुषु	जैसे (विभिन्न) लकड़ियोंमें
तद्गुण आत्मकः	उनके गुण (लम्बाई-मोटाई आदि) के समान
अनलः	अग्नि (प्रतीत होता है, वैसे ही)
प्रधान काल	प्रकृति, काल
आशय	अन्तःकरणकी वासना,
धर्म संग्रहे	धर्माधर्मके संस्कार संग्रहसे
चेतनां प्रतिपद्य	चिदाभासको ग्रहण करके
एष शरीर क्रियाफलत्वेन	इस शरीरमें कर्मोंके फलानुसार
विभुः विभाव्यते	व्यापक होनेपर भी आत्माकी (जीव रूपसे) प्रतीति होती है ॥३५॥

अहो ममामी वितरन्त्यनुग्रहं
हरिं गुरुं यज्ञभुजामधीश्वरम् ।
स्वधर्मयोगेन यजन्ति मामका
निरन्तरं क्षोणितले दृढव्रताः ॥३६॥

अहो मम अमी वितरन्ति अनुग्रहं हरिं गुरुं यज्ञ भुजां अधीश्वरं स्वधर्म योगेन यजन्ति मामका निरन्तरं क्षोणितले दृढव्रताः ॥३६॥

अहो	अहो !
यज्ञ भुजां अधीश्वरं	यज्ञभोक्ता देवताओं-के अधीश्वर
गुरुं हरिं	जगद्गुरु श्रीहरिकी
स्वधर्म योगेन	अपने धर्म-पालन द्वारा
दृढव्रतः	दृढ़निष्ठ होकर
निरन्तरं	निरन्तर
क्षोणितले	पृथ्वीपर
अमी मामका	जो ये मेरे प्रजाजन
यजन्ति	पूजन करते हैं,
मम अनुग्रहं वितरन्ति	(वे) मुझपर अनुग्रह करते हैं ॥३६॥

मा जातु तेजः प्रभवेन्महर्द्धिभि-
स्तितिक्षया तपसा विद्यया च ।

देदीप्यमानेऽजितदेवतानां
कुले स्वयं राजकुलाद् द्विजानाम् ॥३७॥

मा जातु तेजः प्रभवेत् महर्द्धिभिः तितिक्षया तपसा विद्यया च देदीप्यमाने अजित देवतानां कुले स्वयं राजकुलात् द्विजानाम् ॥३७॥

तितिक्षया तपसा च विद्यया	सहनशीलता तपस्या तथा विद्यासे
देदीप्यमाने	परमोज्वल हुए
अजित देवतानां	भगवानको ही आराध्य माननेवाले
द्विजानाम् कुले	ब्राह्मणोंके परिवार-पर
महर्द्धिभिः	ऐश्वर्य आदि समृद्धियोंसे
स्वयं तेजः जातु	स्वयं तेजस्वी होनेके कारण
मा प्रभवेत्	अपना प्रभुत्व न दिखाते ॥३७॥

ब्रह्मण्यदेवः पुरुषः पुरातनो
नित्यं हरिर्यच्चरणाभिवन्दनात् ।
अवाप लक्ष्मीमनपायिनीं यशो
जगत्पवित्रं च महत्तमाग्रणीः ॥३८॥

ब्रह्मण्यदेवः पुरुषः पुरातनः नित्यं हरिः यत् चरण अभिवन्दनात् अवाप लक्ष्मीं अनपायिनीं यशः जगत् पवित्रं च महत्तम अग्रणीः ॥३८॥

महत्तम अग्रणीः	(ब्रह्मादि) महापुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ
ब्रह्मण्यदेवः	ब्राह्मणोंको पूज्य माननेवाले
पुरातनः पुरुषः	पुराण-पुरुष
हरिः नित्यं	श्रीहरिने नित्य
यत् चरण	
अभिवन्दनात्	जिनके चरण वन्दन
अनपायिनीं	करनेसे कभी पृथक न होनेवाली
लक्ष्मीं च	लक्ष्मीजीको तथा
जगत् पवित्रं	संसारको पवित्र करनेवाला
यशं अवाप	सुयश प्राप्त किया ॥३८॥

यत्सेवयाशेषगुहाशयः स्वराड्
विप्रप्रियस्तुष्यति काममीश्वरः ।
तदेव तद्धर्मपरैर्विनीतैः
सर्वात्मना ब्रह्मकुलं निषेव्यताम् ॥३९॥

यत् सेवया अशेष गुहाशयः स्वराट् विप्रप्रियः तुष्यति कामं ईश्वरः तत् एव तत् धर्मपरैः विनीतैः सर्वात्मना ब्रह्मकुलं निषेव्यताम् ॥३९॥

यत् सेवया	जिनकी सेवासे
विप्रप्रियः	ब्राह्मणोंके प्रिय
गुहाशयः	
स्वराट्	सर्वान्तर्यामी, स्वयं प्रकाश
ईश्वरः	ईश्वर
कामं तुष्यति	पूर्ण सन्तुष्ट होते हैं,
तत् धर्मपरैः	उन (भगवान) के धर्म परायण, (आप सब)
तत् एव	
विनीतैः	उनके समान ही विनम्र भावसे
सर्वात्मना	सम्पूर्ण हृदयसे
ब्रह्मकुलं	ब्राह्मणोंकी
निषेव्यताम्	पूरी सेवा करें ॥३८॥

पुमाँल्लभेतानतिवेलमात्मनः
प्रसीदतोऽत्यन्तशमं स्वतः स्वयम् ।
यन्नित्यसम्बन्धनिषेवया ततः
परं किमत्रास्ति मुखं हविर्भुजाम् ॥४०॥

पुमान् लभेत अनति वेलं आत्मनः प्रसीदतिः अत्यन्त शमं स्वतः स्वयं यत् नित्य सम्बन्ध निषेवया ततः परं किं अत्र अस्ति मुखं हविर्भुजाम् ॥४०॥

यत् निषेवया	जिनकी सेवाका
नित्य सम्बन्ध	सदा सम्बन्ध होनेसे
पुमान्	
अनतिवेलं	पुरुष शीघ्र ही
आत्मनः	
प्रसीदतः	चित्त निर्मल हो जानेसे
स्वतः स्वयं	अपने आप

अत्यन्त शमं	आत्मन्तिक शान्ति (मोक्ष)
लभेत	पा लेता है
अत्र	इस लोकमें
ततः परं	उन (ब्राह्मणोंसे) भिन्न
हवि र्भुजां	देवताओंका
किं मुखं अस्ति	क्या मुख हो सकता है ॥४०॥

अश्नात्यनन्तः खलु तत्त्वकोविदैः
श्रद्धाहुतं यन्मुख इज्यनामभिः ।
न वै तथा चेतनया बहिष्कृते
हुताशने पारमहंस्यपर्यगुः ॥४१॥

अश्नाति अनन्तः खलु तत्त्वकोविदैः श्रद्धाहुतं यत् मुख इज्यनामभिः न वै तथा चेतनया बहिष्कृते हुताशने पारमहंस्य पर्यगुः ॥४१॥

पारमहंस्य	परमहंसोंके
पर्यगुः	पीछे चलनेवाले
अनन्तः	भगवान अनन्त
तत्त्वकोविदैः	तत्त्व ज्ञानियों द्वारा
इज्यनामभिः	यज्ञीय देवताओं (इन्द्रादि) के नामसे
यत् मुख	जिन (ब्राह्मणों) के मुखमें
श्रद्धाहुतं	श्रद्धापूर्वक हवन करनेपर
खलु अश्नाति	निश्चय खाते हैं
तथा चेतनया बहिष्कृते	वैसे चेतनाहीन
हुताशने	अग्निमें (हवन करनेपर)
न वै	नहीं ही (खाते) ॥४१॥

यद्ब्रह्म नित्यं विरजं सनातनं
श्रद्धातपोमङ्गलमौनसंयमैः ।
समाधिना बिभ्रति हार्थदृष्टये
यत्रेदमादर्श इवावभासते ॥४२॥

यत् ब्रह्म नित्यं विरजं सनातनं श्रद्धा तपः मङ्गल मौन संयमैः समाधिना बिभ्रति ह अर्थ दृष्टये यत्र इदं आदर्श इव अवभासते ॥४२॥

यत्र इदं	जिसमें इस (विश्व-प्रपञ्च) का
आदर्श इव	दर्पणमें (मुख)के समान
अवभासते	ज्ञान होता है,
यत् नित्यं	
विरजं	उस नित्य, निर्मल,
सनातनं	शाश्वत
ब्रह्म	वेदको (जो)
ह अर्थ दृष्टये	निश्चित परमार्थ ज्ञान (तत्त्वज्ञान) के लिए
श्रद्धा तपः	श्रद्धा, तप
मङ्गल मौन	सदाचार, मौन,
संयमैः समाधिना	संयम तथा एकाग्रतासे
बिभ्रति	धारण करते हैं ॥४२॥

तेषामहं पादसरोजरेणु-
मार्या वहेयाधिकिरीटमायुः ।
यं नित्यदा बिभ्रत आशु पापं
नश्यत्यमुं सर्वगुणा भजन्ति ॥४३॥

तेषां अहं पाद सरोज रेणुं आर्या वहेय अधिकिरीटं आयुः यं नित्यदा बिभ्रत आशु पापं नश्यति अमुं सर्वगुणा भजन्ति ॥४३॥

अहं तेषां	मैं उन (ब्राह्मणों) की
आर्या पाद सरोज रेणुं	पूज्या चरण-कमलों-की रजको
आयुः	जीवन पर्यन्त
अधिकिरीटं वहेय	(अपने) मुकुटपर धारण करू
यं नित्यदा बिभ्रत	जिसे सदा धारण करनेसे
पापं आशु नश्यति	पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ।
सर्वगुणा भजन्ति	(और) सब गुण आ जाते हैं ॥४३॥

गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं
वृद्धाश्रयं संवृणते नु सम्पदः ।

प्रसीदतां ब्रह्मकुलं गवां च
जनार्दनः सानुचरश्च महाम् ॥४४॥

गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं वृद्धाश्रयं संवृणते नु सम्पदः प्रसीदतां ब्रह्मकुलं गवां च जनार्दनः सानुचरः च मह्यम् ॥४४॥

गुणायनं	गुणवान्,
शीलधनं	शीलवान्,
कृतज्ञं	कृतज्ञ
वृद्धाश्रयं	बड़ोंके आश्रयमें रहनेवालेको
नु सम्पदः	अवश्य सारी सम्पत्तियाँ
वृणुते	वरण करती (स्वयं प्राप्त होती) हैं,
ब्रह्मकुलं गवां च	ब्राह्मण-कुल तथा गायें
च सानुचरः	
जनार्दनः	एवं भक्तोंके साथ भगवान जनार्दन
मह्यं प्रसीदतां	मुझपर प्रसन्न हों २४॥

मैत्रेय उवाच-

इति ब्रुवाणं नृपतिं पितृदेवद्विजातयः ।
तुष्टुवुर्हृष्टमनसः साधुवादेन साधवः ॥४५॥

इति ब्रुवाणं नृपतिं पितृदेव द्विजातयः तुष्टुवुः हृष्ट मनसः साधुवादेन साधवः ॥४५॥

नृपतिं	राजा (पृथु) के
इति ब्रुवाणं	इस प्रकार कहनेपर
हृष्ट मनसः	प्रसन्न-चित्त होकर
पितृदेव	पितर, देवता,
द्विजातयः	ब्राह्मण,
साधवः	(तथा अन्य) सत्पुरुष
साधुवादेन	'साधु साधु' कहकर
तुष्टुवुः	प्रशंसा करने लगे ॥४५॥

साध्वादयः ऊचु-*

पुत्रेण जयते लोकानिति सत्यवती श्रुतिः ।
ब्रह्मदण्डहतः पापो यद्वेनोऽत्यतरत्तमः ॥४६॥

पुत्रेण जयते लोकान् इति सत्यवती श्रुतिः ब्रह्मदण्ड हतः पापः यत् वेनः अत्यतरत् तमः ॥४६॥

पुत्रेण	'पुत्रके द्वारा
लोकान् जयते	(पिता) पुण्य-लोक पा लेता है'
इति श्रुतिः	यह वेद-वाक्य
सत्यवती	सच है,
यत्	क्योंकि
ब्रह्मदण्ड हतः	ब्राह्मणोंके दण्डसे मारा गया
पापः वेनः	पापी वेन (पुत्र पृथुके कारण)
तमः अत्यतरत्	नरकसे पार हो गया ॥४६॥

हिरण्यकशिपुश्चापि भगवन्निन्दया तमः ।
विविक्षुरत्यगात्सूनोः प्रह्लादस्यानुभावतः ॥४७॥

हिरण्यकशिपुः च अपि भगवत् निन्दया तमः विविक्षुः अत्यगात् सूनोः प्रह्लादस्य अनुभावतः ॥४७॥

च हिरण्य-	
कशिपुः अपि	और हिरण्यकशिपु भी
भगवत् निन्दया	भगवानकी निन्दा करनेसे
तमः विविक्षुः	नरकमें जाने ही वाला था;
सूनोः प्रह्लादस्य	(किन्तु) पुत्र प्रह्लादके
अनुभावतः	प्रभावसे
अत्यगात्	(नरकको) पारकर गया ॥४७॥

वीरवर्यपितः पृथ्व्याः समाः सञ्जीव शाश्वतीः ।
यस्येदृशयच्युते भक्तिः सर्वलोकैकभर्तरि ॥४८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

वीरवर्य पितः पृथ्व्याः समाः सञ्जीव शाश्वतीः यस्य इदृशि अच्युते भक्तिः सर्वलोक एक भर्तरि ॥४८॥

वीरवर्य	वीर श्रेष्ठ !
पृथ्व्या पितः	(आप तो) पृथ्वीके पिता हैं,
शाश्वतीः	
समाः	अनन्त वर्षों तक
सञ्जीव	जीवित रहो,
यस्य	जिसकी
सर्वलोक एक	
भर्तरि	सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र स्वामी
अच्युते	भगवान अच्युतमें
इदृशि भक्तिः	ऐसी भक्ति है ॥४८॥

अहो वयं ह्यद्य पवित्रकीर्ते
त्वयैव नाथेन मुकुन्दनाथाः ।
य उत्तमश्लोकतमस्य विष्णो-
र्ब्रह्मण्यदेवस्य कथां व्यनक्ति ॥४९॥

अहो वयं हि अद्य पवित्र कीर्तेः त्वयि एव नाथेन मुकुन्दनाथाः यः उत्तम श्लोक तमस्य विष्णोः ब्रह्मण्य देवस्य कथां व्यनक्ति ॥४९॥

हि यः	क्योंकि जो
उत्तय श्लोक	
तमस्य	पुण्यश्लोक शिरोमणि
ब्रह्मण्य देवस्य	ब्रह्मण्यदेव
विष्णोः	भगवान विष्णुकी
कथां व्यनक्ति	कथाका प्रचार करते हैं
अहो अद्य	अहो ! आज
पवित्र कीर्तेः	पवित्र कीर्ति
त्वयि एव	
नाथेन	आपके ही स्वामी होनेसे
वयं मुकुन्दनाथाः	हमारे स्वामी भगवान मुकुन्द हो गये ॥४९॥

नात्यद्भुतमिदं नाथ तवाजीव्यानुशासनम् ।
प्रजानुरागो महतां प्रकृतिः करुणात्मनाम् ॥५०॥

न अत्यद्भुतं इदं नाथ तव आजीव्य अनुशासनं प्रजा अनुरागः महतां प्रकृतिः करुणात्मनां ॥५०॥

नाथ	स्वामी !
तव इदं	आपका यह
आजीव्य	
अनुशासनं	अपने अनुजीवियोंको आदेश देना
अत्यद्भुतं न	बहुत अद्भुत नहीं है,
करुणात्मनां	(क्योंकि) दयालु-चित्त
महतां	महापुरुषोंका
प्रजा अनुरागः	प्रजासे प्रेम करना
प्रकृतिः	स्वभाव ही होता है ॥५०॥

अद्य नस्तमसः पारस्त्वयोपासादितः प्रभो ।
भ्राम्यतां नष्टदृष्टीनां कर्मभिर्दैवसंज्ञितैः ॥५१॥

अद्य नः तमसः पारः त्वया उपासादितः प्रभो भ्राम्यतां नष्ट दृष्टीनां कर्मभिः दैवसंज्ञितैः ॥५१॥

दैवसंज्ञितैः	प्रारब्ध कहे जानेवाले
कर्मभिः	
भ्राम्यतां	कर्मके द्वारा भटकाये जाते
नष्ट दृष्टीनां	अन्धे (ज्ञानहीन) बने
नः अद्य	हम लोगोंको आज
प्रभो त्वया	प्रभो ! आपने
तमसः पारः	अज्ञानान्धकारसे पार
उपासादितः	पहुँचा दिया ॥५१॥

नमो विवृद्धसत्त्वाय पुरुषाय महीयसे ।
यो ब्रह्म क्षत्रमाविश्य बिभर्तीदं स्वतेजसा ॥५२॥

नमः विवृद्ध सत्त्वाय पुरुषाय महीयसे यः ब्रह्म क्षत्रं आविश्य बिभर्ति इदं स्वतेजसा ॥५२॥

यः ब्रह्म क्षत्रं	जो ब्राह्मण और क्षत्रियोंमें
आविश्य	प्रवेश करके
स्वतेजसा	अपने तेजसे
इदं बिभर्ति	इस (विश्व) की रक्षा करते हैं
विवृद्ध सत्त्वाय	(उन) विशुद्ध सत्त्व-गुणमय
महीयसे पुरुषाय	महत्तम (उत्तम) पुरुष (आप) को
नमः	(हम) नमस्कार करते हैं ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

जनेषु प्रगृणत्स्वेवं पृथुं पृथुलविक्रमम् ।
तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारः सूर्यवर्चसः ॥१॥

जनेषु प्रगृणत्सु एवं पृथुम् पृथुल विक्रमम् तत्र उपजग्मुः मुनयः चत्वारः सूर्य वर्चसः ॥१॥

जनेषु	(जब) प्रजाजन	**सूर्य वर्चसः**	सूर्यके समान तेजस्वी
पृथुल विक्रमम्	महान् पराक्रमी	**चत्वारः**	चार
पृथुम्	(राजा) पृथुकी	**मुनयः**	मुनिगण
एवम्	इस प्रकार	**उपजग्मुः**	आये ॥१॥
प्रगृणत्सु	स्तुति कर रहे थे		
तत्र	(उसी समय) वहाँ		

तांस्तु सिद्धेश्वरान् राजा व्योम्नोऽवतरतोऽर्चिषा ।
लोकानपापान् कुर्वत्या सानुगोऽचष्ट लक्षितान् ॥२॥

तान् तु सिद्धेश्वरान् राजा व्योम्नः अवतरतः अर्चिषा लोकान् अपापान् कुर्वत्या सानुगः अचष्ट लक्षितान् ॥२॥

सानुगः	सेवकों सहित	**अर्चिषा**	कान्तिसे ही
राजा तु	राजाने तो	**लक्षितान्**	पहिचाने गये
व्योम्नः	आकाशसे	**तान्**	उन
अवतरतः	उतरते हुए	**सिद्धेश्वरान्**	सिद्धोंके स्वामी चारों मुनियोंको)
लोकान्	सम्पूर्ण लोकोंको		
अपापान्	पाप रहित	**अचष्ट**	देखा ॥२॥
कुर्वत्या	करती हुई		

तद्दर्शनोद्गतान् प्राणान् प्रत्यादित्सुरिवोत्थितः ।
ससदस्यानुगो वैन्य इन्द्रियेशो गुणानिव ॥३॥

तद् दर्शन उद्गतान् प्राणान् प्रत्यादित्सुः इव उत्थितः स सदस्य अनुगः वैन्यः इन्द्रियेशः गुणान् इव ॥३॥

वैन्यः	राजा पृथु	**गुणान्**	विषयोंकी ओर (दौड़ता हो)
तद्	उन सनकादि चारों मुनियोंके	**प्रत्यादित्सुः इव**	मानो उन्हें रोकनेके लिए
दर्शन उद्गतान्	दर्शनोंसे उनकी ओर चल पड़े	**स सदस्य अनुगः**	अपने सदस्य और सेवकोंके साथ
प्राणान्	अपने प्राणोंको	**उत्थितः**	उठकर खड़े हो गये ॥३॥
इन्द्रियेशः	इन्द्रियोंका स्वामी (जीव) जैसे		

गौरवाद्यन्त्रितः सभ्यः प्रश्रयानतकन्धरः ।
विधिवत्पूजयाञ्चक्रे गृहीताध्यर्हणासनान् ॥४॥

गौरवात् यन्त्रितः सभ्यः प्रश्रय आनत कन्धरः विधिवत् पूजयाञ्चक्रे गृहीत अध्यर्हण आसनान् ॥४॥

गृहीत	ग्रहण किया है	**कन्धरः**	विनयसे गर्दन झुकाकर
अध्यर्हण	पूजाका अर्घ्य तथा	**सभ्यः**	शिष्टाग्रणी (राजाने)
आसनान्	आसन जिन्होंने ऐसे (मुनिजनोंके)	**विधिवत्**	विधिपूर्वक
गौरवात्	गौरवसे	**पूजयाञ्चक्रे**	(उनकी) पूजा की ॥४॥
यन्त्रितः	प्रभावित होकर		
प्रश्रय आनत			

तत्पादशौचसलिलैर्मार्जितालकबन्धनः ।
तत्र शीलवतां वृत्तमाचरन्मानयन्निव ॥५॥

तत् पाद, शौच, सलिलैः मार्जित अलकबन्धनः तत्र शीलवतां वृत्तं आचरत् मानयन इव ॥५॥

तत्	उनके	**शीलवतां**	शिष्टजनोचित
पादशौच-		**वृत्तम्**	आचारका
सलिलैः	चरणोदकसे	**मानयन् इव**	आदर तथा पालन
मार्जित अलक			करते हुए
बन्धनः	अपने सिरके	**आचरत्**	समुचित सत्कार
	बालोंको सींचकर		किया ॥५॥
तत्र	वहां		

हाटकासन आसीनान् स्वधिष्ण्येष्विव पावकान् ।
श्रद्धासंयमसंयुक्तः प्रीतः प्राह भवाग्रजान् ॥६॥

हाटक आसने आसीनान् स्वधिष्ण्येषु इव पावकान् श्रद्धा संयम संयुक्तः प्रीतः प्राह भव अग्रजान् ॥६॥

हाटक आसने	सोनेके सिंहासनपर	**श्रद्धा संयम**	
आसीनान्	बैठे हुए	**संयुक्तः**	श्रद्धा और संयमके
स्वधिष्ण्येषु	अपने-अपने		साथ
	स्थानोंपर (बैठे)	**प्रीतः**	प्रेमपूर्वक
पावकान् इव	अग्नियोंकी तरह	**प्राह**	(पृथु) बोले ॥६॥
भव अग्रजान्	शंकरजीके बड़े भाई		
	(उन मुनियोंसे)		

पृथुः उवाच-

अहो आचरितं किं मे मङ्गलं मङ्गलायनाः ।
यस्य वो दर्शनं ह्यासीद्दुर्दर्शानां च योगिभिः ॥७॥

अहो आचरितं किं मे मङ्गलं मङ्गल अयनाः यस्य वः दर्शनं हि आसीत् दुदर्शानां च योगिभिः ॥७॥

मङ्गल अयनाः	हे मङ्गल मूर्तियो !	**दुदर्शानां**	दुर्लभ दर्शन
योगिभिः च	योगियोंके लिए भी	**वः**	आपका

दर्शनं	दर्शन	**किम् मङ्गलं**	मैंने ऐसा क्या पुण्य-
यस्य मे	जिससे (स्वयं) मुझे		कर्म
अहो हि	आश्चर्य ही है	**आचरितं**	किया है ॥७॥

किं तस्य दुर्लभतरमिह लोके परत्र च ।
यस्य विप्राः प्रसीदन्ति शिवो विष्णुश्च सानुगः ॥८॥

किं तस्य दुर्लभतरं इह लोके परत्र च यस्य विप्राः प्रसीदन्ति शिवः विष्णुः च स अनुगः ॥८॥

यस्य	जिसपर	**प्रसीदन्ति**	प्रसन्न होते हैं
विप्राः	ब्राह्मण	**तस्य**	उसके लिए
च	तथा	**इह लोके**	इस लोकमें
स अनुगः	अनुचरों सहित	**च परत्र**	और परलोकमें
शिवः	शंकर और	**किं**	कौन-सी (वस्तु)
विष्णुः	विष्णु भगवान	**दुर्लभतरं**	बहुत दुर्लभ है ॥८॥

नैव लक्षयते लोको लोकान् पर्यटतोऽपि यान् ।
यथा सर्वदृशं सर्वं आत्मानं येऽस्य हेतवः ॥९॥

न एव लक्षयते लोकः लोकान् परि अटतः अपि यान् यथा सर्वदृशं सर्वं आत्मानं ये अस्य हेतवः ॥९॥

लोकान्	समस्त लोकोंमें	**अस्य**	इस दृश्य प्रपंचके
परि अटतः अपि	विचरण करते हुए भी	**ये**	जो
		सर्वं	सर्व (रूप)
यान्	जिन (आप) लोगोंको	**हेतवः**	कारण (महत् तत्व अहंकार आदि)
लोकः	(अनधिकारी) जन	**सर्वदृशं**	सर्वसाक्षी
न एव	नहीं	**आत्मानं**	आत्माको (नहीं
लक्षयते	देख पाते हैं		देख पाते) ॥९॥
यथा	जैसे		

अधना अपि ते धन्याः साधवो गृहमेधिनः ।
यद्गृहा ह्यर्हवर्याम्बुतृणभूमीश्वरावराः १०॥

अधना अपि ते धन्याः साधवः गृहमेधिनः यद् गृहा हि अर्हवर्य अम्बु तृण भूमि ईश्वर अवराः ॥१०॥

यद् गृहाः	जिनके घरोंमें	**ते**	वे
हि अर्हवर्य	(आप जैसे) पूज्य पुरुषोंमें श्रेष्ठके लिए	**अधना अपि**	निर्धन भी
अम्बु तृण भूमि	जल, आसन, पृथ्वी	**साधवः**	सज्जन
ईश्वर अवराः	गृह स्वामी अथवा सेवक आदि किसी पदार्थको (स्वीकार करते) हैं	**गृहमेधिनः**	गृहस्थ
		धन्याः	धन्य हैं ॥१०॥

व्यालालयद्रुमा वै तेऽप्यरिक्ताखिलसम्पदः ।
यद्गृहास्तीर्थपादीयपादतीर्थविवर्जिताः ॥११॥

व्याल आलय द्रुमा वै ते अपि अरिक्त अखिल सम्पदः यद् गृहाः तीर्थ पादीय पाद तीर्थ विवर्जिताः ॥११॥

यद् गृहाः	जिन घरोंमें कभी	**अरिक्त अखिल**	
तीर्थ पादीय	भगवद् भक्तोंके	**सम्पदः**	सब प्रकारकी ऋद्धि-
पाद तीर्थ	परम पवित्र चरणोदकके		सिद्धियोंसे भरपूर भी
विवर्जिताः	छींटे नहीं पड़े	**वैः**	निश्चय ही
ते	वे घर	**द्रुमाः**	ऐसे वृक्षोंके समान (हैं) जिनमें—
		व्याल आलय	सर्प रहते हैं ॥११॥

स्वागतं वो द्विजश्रेष्ठा यद्व्रतानि मुमुक्षवः ।
चरन्ति श्रद्धया धीरा बाला एव बृहन्ति च ॥१२॥

स्वागतं वः द्विज श्रेष्ठा यद् व्रतानि मुमुक्षवः चरन्ति श्रद्धया धीरा बालाः एव बृहन्ति च ॥१२॥

द्विज श्रेष्ठा	हे मुनीश्वरो	**मुमुक्षवः**	मुमुक्षु (मोक्ष चाहने वाले)
वः स्वागतं	आपका स्वागत है		
बालाः एव	बालक लगनेपर भी	**यद् व्रतानि**	जिनके (ब्रह्म-
बृहन्ति च	सबसे बड़े भी हैं (और)		चार्यादि) व्रतोंका
		श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक
धीरा	धैर्यशाली	**चरन्ति**	आचरण करते हैं ॥१२॥

कच्चिन्नः कुशलं नाथा इन्द्रियार्थार्थवेदिनाम् ।
व्यसनावाप एतस्मिन् पतितानां स्वकर्मभिः ॥१३॥

कच्चित् नः कुशलं नाथाः इन्द्रिया अर्थ अर्थ वेदिनां व्यसना आवापे एतस्मिन् पतितानाम् स्वकर्मभिः ॥१३॥

नाथाः	हे स्वामियो !	**इन्द्रिया अर्थ**	
स्वकर्मभिः	हम लोग अपने कर्मोंके वश होकर	**अर्थ वेदिनां**	केवल इन्द्रिय सम्बन्धी भोगोंको ही परम पुरुषार्थ मान रहे हैं
व्यसना आवापे	विपत्तियोंके मिलने- के स्थान		
एतस्मिन्	इस (संसार) में	**कच्चित्**	(सो) क्या कोई
पतितानां	पड़े हुए	**नः**	हमारे
		कुशलं	कल्याणका (उपाय है ?) ॥१३॥

भवत्सु कुशलप्रश्न आत्मारामेषु नेष्यते ।
कुशलाकुशला यत्र न सन्ति मतिवृत्तयः ॥१४॥

भवत्सु कुशलप्रश्न आत्मारामेषु न इष्यते कुशलाकुशलाः यत्र न सन्ति मतिवृत्तयः ॥१४॥

भवत्सु	आप लोगोंसे	**कुशलप्रश्न**	कुशल पूछना
आत्मारामेषु	निरन्तरमें आत्मामें ही रमण करने- वालोंसे	**न इष्यते**	उचित नहीं हैं ।
		यत्र	आपमें

कुशलाकुशला	यह कुशल है यह अकुशल है	**न सन्ति**	होती ही नहीं है ॥१४॥
मतिवृत्तयः	इस प्रकारकी बुद्धि वृत्तियां		

तदहं कृतविश्रम्भः सुहृदो वस्तपस्विनाम् ।
संपृच्छे भव एतस्मिन् क्षेमः केनाञ्जसा भवेत् ॥१५॥

तत् अहं कृत विश्रम्भः सुहृदः वः तपस्विनां सम्पृच्छे भवे एतस्मिन् क्षेमः केन अञ्जसा भवेत् ॥१५॥

वः	आप	**सम्पृच्छे**	पूछना चाहता हूँ कि
तपस्विनां	संसार ताप संतप्त लोगोंके	**एतस्मिन् भवे**	इस संसारमें
सुहृदः	परम हितैषी है ।	**केन**	किस प्रकार
तत्	इसलिए	**अञ्जसा**	सरलतासे (मनुष्यका)
कृत विश्रम्भः	आपसे विश्वास करके	**क्षेमः**	कल्याण
		भवेत्	हो सकता है ॥१५॥

व्यक्तमात्मवतामात्मा भगवानात्मभावनः ।
स्वानामनुग्रहायेमां सिद्धरूपी चरत्यजः ॥१६॥

व्यक्तम् आत्मवतां आत्मा भगवान् आत्म भावनः स्वानां अनुग्रहाय इमां सिद्धरूपी चरति अजः ॥१६॥

व्यक्तं आत्मवतां आत्मा	निश्चय है कि जो आत्मवान् (धीर) पुरुषोंमें आत्मारूपसे प्रकाशित होते हैं	**अजः भगवान्**	वे अजन्मा भगवान् ही
		स्वानाम्	अपने जनोंपर
		अनुग्रहाय	कृपा करनेके लिए
		सिद्धरूपी	(आप जैसे) सिद्ध पुरुषोंके रूपमें
आत्म भावनः	और उपासकोंके हृदयमें अपने स्वरूपको प्रकट करते हैं ।	**इमां**	इस पृथ्वीपर
		चरति	विचरण करते हैं ॥१६॥

मैत्रेय उवाच-

पृथोस्तत्सूक्तमाकर्ण्य सारं सुष्ठु मितं मधु ।
स्मयमान इव प्रीत्या कुमारः प्रत्युवाच ह ॥१७॥

पृथोः तत् सूक्तं आकर्ण्य सारं सुष्ठु मितं मधु स्मयमान इव प्रीत्या कुमारः प्रति उवाच ॥१७॥

पृथोः	पृथुके	**आकर्ण्य**	वचन सुनकर
तत्	ये	**कुमारः**	श्रीसनत्कुमारजी
सूक्तं	युक्ति युक्त	**प्रीत्या ह**	प्रेमसे ही
सारं	गम्भीर	**स्मयमान इव**	मुस्कराते-से
सुष्ठु मधु	सुन्दर और मधुर	**प्रति उवाच**	(उनसे) बोले ॥१७॥
मितं	परमित		

सनत्कुमार उवाच-

साधु पृष्टं महाराज सर्वभूतहितात्मना ।
भवता विदुषा चापि साधूनां मतिरीदृशी ॥१८॥

साधु पृष्टं महाराज सर्वभूत हित आत्मना भवता विदुषा च अपि साधूनां मतिः ईदृशी ॥१८॥

महाराज	हे महाराज	**साधु पृष्टं**	बड़ी अच्छी बात पूछी है ।
भवता च	आपने तो	**साधूनां**	साधु पुरुषोंकी
विदुषा अपि	सब जानते हुए भी	**ईदृशी मतिः**	ऐसी ही बुद्धि होती है ॥१८॥
सर्वभूत हित आत्मना	सब प्राणियोंके और अपने भी कल्याणके लिए		

सङ्गमः खलु साधूनामुभयेषां च सम्मतः ।
यत्सम्भाषणसम्प्रश्नः सर्वेषां वितनोति शम् ॥१९॥

संङ्गमः खलु साधूनां उभयेषां च सम्मतः यत् सम्भाषण सम्प्रश्नः सर्वेषां वितनोति शम् ॥१९॥

साधूनां	सत्पुरुषोंका
संङ्गमः	समागम
खलु	निश्चय ही
उभयेषां च	श्रोता और वक्ता दोनोंका
सम्मतः	अभिमत होता है।
यत्	क्योंकि (उसमें)
सम्भाषण	
सम्प्रश्नः	(उनके) प्रश्न उत्तर
सर्वेषां	सभीका
शम् वितनोति	कल्याण करते हैं ॥१९॥

अस्त्येव राजन् भवतो मधुद्विषः
पादारविन्दस्य गुणानुवादने ।
रतिर्दुरापा विधुनोति नैष्ठिकी
कामं कषायं मलमन्तरात्मनः ॥२०॥

अस्ति एव राजन् भवतः मधुद्विषः पादारविन्दस्य गुण अनुवादने रतिः दुरापा विधुनोति नैष्ठिकी कामं कषायं मलं अन्तरात्मनः ॥२०॥

राजन्	हे राजा !
मधुद्विषः	श्रीमधुसूदन भगवान्के
पादारविन्दस्य	चरण-कमलोंके
गुण अनुवादने	गुणानुवादमें
एव	ही
भवतः	आपकी
दुरापा	दुष्प्राप्य
नैष्ठिकी	दृढ़ (निष्ठायुत)
रतिः अस्तिः	प्रीति है (जो)
अन्तरात्मनः	हृदयके भीतर रहनेवाले
कषायं	वासना-रूप
मलं	मलको
कामं	सर्वथा
विधुनोति	नष्ट कर देती है ॥२०॥

शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणां
क्षेमस्य सध्र्यग्विमृशेषु हेतुः ।
असङ्ग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि
दृढा रतिर्ब्रह्मणि निर्गुणे च या ॥२१॥

शास्त्रेषु इयान् एव सुनिश्चितः नृणां क्षेमस्य सध्रचक् विमृशेषु हेतुः असङ्गः आत्म व्यतिरिक्त आत्मनि दृढा रतिः ब्रह्मणि निर्गुणे च या ॥२१॥

शास्त्रेषु	शास्त्रोंमें
नृणां	जीवोंके
क्षेमस्य	कल्याणके लिए
सध्रचक्	भली भाँति
विमृशेषु	विचार कर
इयान् एव	इतना ही
हेतुः	साधन
सुनिश्चितः	सुनिश्चित किया है कि
आत्म व्यतिरिक्त	आत्मासे अतिरिक्त (देहादिमें)
असङ्गः	वैराग्य होना
च या	और
निर्गुणे ब्रह्मणि आत्मनि	निगुण ब्रह्म परमात्मामें
दृढा रतिः	दृढ़ प्रीति होना ॥२१

सा श्रद्धया भगवद्धर्मचर्यया
जिज्ञासयाऽऽध्यात्मिकयोगनिष्ठया ।
योगेश्वरोपासनया च नित्यं
पुण्यश्रवःकथया पुण्यया च ॥२२॥

सा श्रद्धया भगवद् धर्म चर्यया जिज्ञासया आध्यात्किक योग निष्ठया योगेश्वरोपासनया च नित्यं पुण्यश्रवः कथया पुण्यया च ॥२२॥

सा	वह प्रीति
श्रद्धया	श्रद्धासे
भगवद् धर्म चर्यया	भागवत धर्मोंका आचरण करनेसे
जिज्ञासया	तत्व जिज्ञासासे
आध्यात्मिक योग निष्ठया	ज्ञान योगकी निष्ठासे
योगेश्वरो-पासनया	योगेश्वर (श्रीहरि) की उपासनासे
नित्यं च	नित्य ही
पुण्यया	परम पवित्र
पुण्यश्रवः कथया	पुण्य कीर्ति श्रीभगवान्‌की कथा सुननेसे (होती है) ॥२२॥

अर्थेन्द्रियारामसगोष्ठचतृष्णया
तत्सम्मतानामपरिग्रहेण च ।
विविक्तरुच्या परितोष आत्मन्
विना हरेर्गुणपीयूषपानात् ॥२३॥

अर्थ इन्द्रिय आराम सगोष्ठि अतृष्णया तत् सम्मतानां अपरिग्रहेण च विविक्त रुच्या परितोष आत्मन् विना हरेः गुण पीयूष पानात् ॥२३॥

अर्थ इन्द्रिय आराम	धन और इन्द्रियोंके भोगोंमें रत जनोंकी
सगोष्ठि	गोष्ठिमें
अतृष्णया	प्रेम न रखनेसे
तत् सम्मतानाम्	उन्हें प्रिय लगनेवाले पदार्थोंका
अपरिग्रहेण च	संग्रह न करनेसे
हरेः	भगवान्‌के
गुण पीयूष पानात्	गुणामृतका पान करनेके
विना	अतिरिक्त समयमें
आत्मन्	आत्मामें ही
परितोष	संतुष्ट रहते हुए
विविक्त रुच्या	एकान्त सेवनमें प्रेम रखनेसे ॥२३॥

अहिंसया पारमहंस्यचर्यया
स्मृत्या मुकुन्दाचरिताग्र्यसीधुना ।
यमैरकामैर्नियमैश्चाप्यनिन्दया
निरीहया द्वन्द्वतितिक्षया च ॥२४॥

अहिंसया पारमहंस्यचर्यया स्मृत्या मुकुन्द आचरिता अग्र्य सीधुना यमैः अकामैः नियमैः च अपि अनिन्दया निरीहया द्वन्द्वतितिक्षया च ॥२४॥

अहिंसया	किसी भी जीवको कष्ट न देनेसे
पारम-हंस्यचर्यया	निवृत्ति निष्ठासे
स्मृत्या	आत्महितका अनुसन्धान करते रहनेसे

मुकुन्द आचरिता	
अग्रथ सीधुना	श्रीहरिके पवित्र चरित्र रूप श्रेष्ठ अमृतका पान करनेसे ।
अकामैः	निष्काम भावसे
यमैः च नियमैः	यम और नियमोंका पालन करनेसे ।
अनिन्दया	कभी किसीकी निन्दा न करनेसे
निरीहया	(योगक्षेमके लिए) चेष्टा न करनेसे
च द्वन्द्वतितिक्षया	और शीत उष्ण आदि द्वन्द्वोंको सहन करनेसे ॥२४॥

हरेर्मुहुस्तत्परकर्णपूर-
गुणाभिधानेन विजृम्भमाणया ।
भक्त्या ह्यसङ्गः सदसत्यनात्मनि
स्यान्निर्गुणे ब्रह्मणि चाञ्जसा रतिः ॥२५॥

हरेः मुहुः तत्पर कर्णपूर गुण अभिधानेन विजृम्भमाणया भक्त्या हि असङ्गः सत् असति अनात्मनि स्यात् निर्गुणे ब्रह्मणि च अञ्जसा रतिः ॥२५॥

तत्पर कर्णपूर	उन (भगवान) के परायण (भक्तों) के कानोंको सुख देनेवाले
हरेः	श्रीहरिके
मुहुः गुण अभिधानेन	गुणोंका बार-बार वर्णन करनेसे
विजृम्भमाणया	बढ़ती हुई
भक्त्या	भक्तिसे
च	और
सत् असति अनात्मनि	कार्यकारण रूप जड़ प्रपञ्चसे
असङ्गः	निःसंगता होनेसे
निगुणे ब्रह्मणि	आत्मरूप निर्गुण परब्रह्ममें
अञ्जसा	अनायास ही
रतिः स्यात्	प्रीति प्राप्त होती है ॥२५॥

यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमा-
नाचार्यवान् ज्ञानविरागरंहसा ।

दहत्यवीर्यं हृदयं जीवकोशं
पञ्चात्मकं योनिमिवोत्थितोऽग्निः ॥२६॥

यदा रतिः ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमान् आचार्यवान् ज्ञान विराग रंहसा दहति अवीर्यं हृदयं जीवकोशं पञ्चात्मकं योनिं इव उत्थितः अग्निः ॥२६॥

यदा	जब
ब्रह्मणि	परमात्मामें
नैष्ठिकी	सुदृढ़
रतिः	प्रीति हो जाती है
पुमान्	(तब पुरुष
आचार्यवान्	आचार्यकी शरण लेता है।
ज्ञान विराग	(फिर) ज्ञान और वैरागके (प्रबल)
रंहसा	वेगसे
अवीर्यं	वासनाशून्य
पञ्चात्मक	अविद्यादि पाँच क्लेशोंसे युक्त
हृदयं	(संस्कारात्मक) चित्तको
जीवकोशं	(जो) लिंग शरीर है
दहति	(वह) पुरुष जला देता है,
इव	जैसे
उत्थितः	लकड़ीसे उत्पन्न अग्नि
योनिं	(फिर) उसी लकड़ीको (जला देता है) ॥२६॥

दग्धाशयो मुक्तसमस्ततद्गुणो
नैवात्मनो बहिरन्तर्विचष्टे।
परात्मनोर्यद् व्यवधानं पुरस्ताद्
स्वप्ने यथा पुरुषस्तद्विनाशे ॥२७॥

दग्ध आशयः मुक्त समस्त तद् गुणः न एव आत्मनः बहिः अन्तः विचष्टे परा आत्मनोः यद् व्यवधानं पुरस्तात् स्वप्ने यथा पुरुषः तद् विनाशे ॥२७॥

दग्ध आशयः	लिङ्ग देहके नाश हो जानेपर
मुक्त समस्त तद् गुणः	(वह) उसके कर्तृत्व आदि सभी गुणोंसे मुक्त हो जाता है

आत्मनः	शरीरके
बहिः	बाहर दिखाई देने वाले(घट-पट आदि)
अन्तः	(और) भीतर (अनुभव होनेवाले सुख-दुख आदि) को भी
न एव विचष्टे	नहीं ही देखता
यथा	जैसे
स्वप्ने	स्वप्नावस्थामें (तरह-तरहके दीखनेवाले पदार्थ)
तद् विनाशे	स्वप्नके नष्ट होनेपर (नहीं दीखते)
पुरस्तात्	इस स्थितिके प्राप्त होनेसे पहले
परा आत्मनोः	
यद् व्यवधानं	जीवात्मा और परमात्माके बीच जो भेदकर रहे थे– (वे अब नहीं रहते) ॥२७॥

आत्मानमिन्द्रियार्थं च परं यदुभयोरपि ।
सत्याशय उपाधौ वै पुमान् पश्यति नान्यदा ॥२८॥

आत्मानं इन्द्रियार्थं च परं यत् उभयोः अपि सति आशये उपाधौ वै पुमान् पश्यति न अन्यदा ॥२८॥

वै	निश्चय ही
आशये	अन्तःकरण रूप
उपाधौ सति	उपाधि रहनेपर ही
पुमान्	पुरुष
आत्मनं	जीवात्मा
इन्द्रियार्थं	इन्द्रियोंके विषय
च यत् उभयोः	और इन दोनोंका सम्बन्ध करानेवाले
परम्	अहंकारका (अनुभव करता है)
अन्यदा न	(उपाधिके नष्ट होनेपर) अन्य कालमें ऐसा (अनुभव) नहीं करता ॥२८॥

निमित्ते सति सर्वत्र जलादावपि पूरुषः ।
आत्मनश्च परस्यापि भिदां पश्यति नान्यदा ॥२९॥

निमित्ते सति सर्वत्र जलादौ अपि पूरुषः आत्मनः च परस्य अपि भिदां पश्यति न अन्यदा ॥२९॥

पूरुषः	पुरुष
सर्वत्र अपि	सब कहीं (वाह्य जगत्में भी)
जलादौ	जल (दर्पण) आदि
निमित्ते सति	निमित्त होनेपर
आत्मनः	
परस्य च	अपने विम्ब और प्रतिविम्ब ही का
भिदां	भेद
पश्यति	देखता है
अन्यदा	अन्य समयमें नहीं ॥२९॥

इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः ।
चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्बस्तोयमिव ह्रदात् ॥३०॥

इन्द्रियैः विषय आकृष्टैः आक्षिप्तं ध्यायतां मनः चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्बः तोयं इव ह्रदात् ॥३०॥

ध्यायतां	जो (विषयोंके) चिन्तनमें लगे रहते हैं ।
विषय आकृष्टैः	विषयों द्वारा आकृष्ट
इन्द्रियैः	(उनकी) इन्द्रियोंको (तथा)
मनः आक्षिप्तं	मनको भी (विषयों-की ओर) खींच ले जाती है
स्तम्बः	(जलाशयके तीरपर उगे हुए) कुश आदि
ह्रदात्	जलाशयसे (अपनी जड़ोंसे)
तोयं इव	जैसे जलको खींचते हैं
बुद्धेः चेतनां हरते	(उसी प्रकार इन्द्रिया सक्त) मन बुद्धिकी विचार-शक्तिको हर लेता है ॥३०॥

भ्रश्यत्यनु स्मृतिश्चित्तं ज्ञानभ्रंशः स्मृतिक्षये ।
तद्रोधं कवयः प्राहुरात्मापह्नवमात्मनः ॥३१॥

भ्रश्यति अनु स्मृतिः चित्तं ज्ञान भ्रंशः स्मृतिक्षये तद्रोधं कवयः प्राहुः आत्म अपह्नवं आत्मनः ॥३१॥

चित्तं अनु स्मृतिः	चित्तकी
भ्रश्यति	पूर्वापरकी स्मृति जाती रहती है
स्मृतिक्षये	स्मृतिके नाश हो जानेपर
ज्ञान भ्रंशः	ज्ञान नहीं रहता
तद्बोधं	इस (ज्ञान) के नाशको ही
कवयः	पण्डित-जन
आत्मनः	
आत्मअह्नवं	अपने आप अपना नाश
प्राहुः	(करना) कहते हैं ॥३१॥

नातः परतरो लोके पुंसः स्वार्थव्यतिक्रमः ।
यदध्यन्यस्य प्रेयस्त्वमात्मनः स्वव्यतिक्रमात् ॥३२॥

न अतः परतरः लोके पुंसः स्वार्थं व्यति क्रमः यत् अधि अन्यस्य प्रेयस्त्वं आत्मनः स्वव्यतिक्रमात् ॥३२॥

यत् अधि	जिसके उद्देश्य (आधार) से
अन्यस्य प्रेमस्त्वं	अन्य सब पदार्थोंमें प्रियताका बोध होता है ।
आत्मनः	उस आत्माका
स्वव्यतिक्रमात्	अपने द्वारा ही नाश होनेसे
पुंसः स्वार्थ व्यति	पुरुषकी
क्रमः	जो स्वार्थ विरोध (हानि) होती है
अतः	इससे
लोके	लोकमें
परतरः न	बढ़कर कोइ हानि नहीं है ॥३२॥

अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम् ।
भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम् ॥३३॥

अर्थं इन्द्रिय अर्थ अभिध्यानं सर्व अर्थ अपह्नवः नृणां भ्रंशितः ज्ञान विज्ञानात् येन आविशति मुख्यताम् ॥३३॥

अर्थं इन्द्रिय अर्थ	धन, इन्द्रियके विषयका
अभिध्यानं नृणां	चिन्तन मनुष्योंके

सर्व अर्थ अपह्नवः	सब ही पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है।
येन	क्योंकि इनकी चिन्तासे (मनुष्य)
ज्ञान विज्ञानात्	ज्ञान और विज्ञानसे
भ्रंशितः	भ्रष्ट होकर
मुख्यतां	(वृक्षादि) स्थावर योनियोंमें
आविशति	प्रवेश करता है ॥३३॥

न कुर्यात्कर्हिचित्सङ्गं तमस्तीव्रं तितीरिषुः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां यदत्यन्तविघातकम् ॥३४॥

न कुर्यात् कर्हिचित् सङ्गं तमः तीव्रं तितीरिषुः धर्म अर्थ काम मोक्षाणां यत् अत्यन्त विघातकम् ॥३४॥

तीव्रं तमः	घोर (अज्ञान) अन्धकारसे
तितीरिषुः	पार होनेकी इच्छा रखनेवाला
सङ्गम्	(विषयोंमें) आसक्ति
कर्हिचित	कभी भी
न कुर्यात्	न करे
धर्म अर्थ कामं मोक्षाणाम्	क्योंकि (यह विषयासक्ति) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष
अत्यन्त विघातकम्	अत्यन्त नाशक है ॥३४॥

तत्रापि मोक्ष एवार्थ आत्यन्तिकतयेष्यते ।
त्रैवर्ग्योऽर्थो यतो नित्यं कृतान्तभयसंयुतः ॥३५॥

तत्र अपि मोक्ष एव अर्थः आत्यन्तिकतया इष्यते त्रैवर्ग्यः अर्थः यतः नित्यं कृतान्त भय संयुतः ॥३५॥

तत्र अपि	इन चार पुरुषार्थोंमें भी
आत्यन्ति-कतया	सबसे श्रेष्ठ
मोक्ष एव	मोक्ष ही
अर्थः	पुरुषार्थ
इष्यते	माना जाता है।
यतः	क्योंकि
त्रैवर्ग्यः अर्थः	अन्य तीन पुरुषार्थों
नित्यं	सर्वदा
कृतान्त	कालके
भय	भयसे
संयुतः	युक्त (ग्रस्त) हैं ॥३५

परेऽवरे च ये भावा गुणव्यतिकरादनु ।
न तेषां विद्यते क्षेममीशविध्वंसिताशिषाम् ॥३६॥

परे अवरे च ये भावाः गुण व्यतिकरात् अनु न तेषां विद्यते क्षेमं ईशविध्वंसित आशिषाम् ॥३६॥

गुण व्यति-		**क्षेमं**	कुशल
करात् अनु	प्रकृतिमें गुणक्षोभ होनेके बाद	**न विद्यते**	(किसीकी) नहीं हैं
		ईशविध्वंसित	
ये	जितने भी	**आशिषां**	क्योंकि काल-
परे च अवरे			भगवान (उनकी)
भावाः	उत्तम और अधम पदार्थ प्रकट हुए हैं।		आशा नष्ट कर देते हैं ॥३६॥
तेषां	उनमें		

तत्त्वं नरेन्द्र जगतामथ तस्थुषां च
देहेन्द्रियासुधिषणात्मभिरावृतानाम् ।
यः क्षेत्रवित्तपतया हृदि विश्वगाविः
प्रत्यक् चकास्ति भगवांस्तमवेहि सोऽस्मि ॥३७॥

तत् त्वं नरेन्द्र जगतां अथ तस्थुषां च देह इन्द्रिय असु धिषणात्मभिः आवृतानां यः क्षेत्र वित्तपतया हृदि विश्वक आविः प्रत्यक् चकास्ति भगवान् तं अवेहि सः अस्मि ॥३७॥

तत्	अतः	**आवृतानां**	घिरे हुए
नरेन्द्र	हे राजन् !	**जगतां**	जंगम
त्वं	तुम	**अथ**	और
यः	जो श्रीभगवान्	**तस्थुषां**	स्थावर (प्राणियों)
देह इन्द्रिय असु	देह, इन्द्रिय, प्राण,		के
धिषणात्मभिः	बुद्धि और अहंकारसे	**हृदि**	हृदयोंमें

क्षेत्र वित्तपतया	जीवके नियामक अन्तर्यामी आत्म-रूपसे
विश्वक	सर्वत्र
आविः	साक्षात
प्रत्यक्	अन्तर्यामी रूपसे
चकास्ति	प्रकाशित हो रहे हैं
तं	उन्हीं (भगवान्‌को)
सः अस्मि	वह मैं ही हूँ
अवेहि	ऐसा जानो ॥३७॥

यस्मिन्निदं सदसदात्मतया विभाति
माया विवेकविधुति स्रजि वाहिबुद्धिः ।
तं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्धतत्त्वं
प्रत्यूढकर्मकलिलप्रकृतिं प्रपद्ये ॥३८॥

यस्मिन् इदं सद् असत् आत्मतया विभाति माया विवेक विधुति स्रजि इव अहिबुद्धिः तं नित्य मुक्त परिशुद्ध विबुद्ध तत्वं प्रत्यूढ कर्मकलिल प्रकृति प्रपद्ये ॥३८॥

स्रजि	मालामें
अहिबुद्धिः	सर्प-बुद्धि (सर्पके भ्रम) के
इव	समान
विवेक	विवेचन-विचार (से)
विधुति	नष्ट हो जानेवाली
इदं	यह
सत् असत	कारण कार्य रूपा
माया	माया
यस्मिन्	जिस (परमात्मामें)
आत्मतया	अपने स्वरूपकी भांति
विभाति	प्रतीत हो रही है (उस)
कर्मकलिल	कर्म (फल) रूपी कीचड़से (युक्त)
प्रकृतिं	प्रकृतिसे
प्रत्यूढ	परे स्थित (परमात्माकी)
तं	उन
नित्य मुक्त	नित्य मुक्त
परिशुद्ध	सब ओरसे शुद्ध
विबुद्ध तत्त्वं	तत्त्व ज्ञान स्वरूपकी
प्रपद्ये	(मैं) शरण हूँ ॥३८॥

यत्पादपङ्कजपलाशविलासभक्त्या
कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः ।
तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्ध-
स्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम् ॥३९॥

यत् पाद पङ्कज पलाश विलास भक्त्या कर्माशयं ग्रथितं उद्ग्रथयन्ति सन्तः तद्वत् न रिक्त मतयः यतयः अपि रुद्ध स्रोतोगणाः तं अरणं भज वासुदेवं ॥३९॥

यत्	जिनके
पाद पङ्कज	चरण-कमल (की)
पलाश	(अंगुलिरूप) दलकी
विलास	चेष्टा
भक्त्या	भक्ति (स्मरण) से
सन्तः	संतजन
ग्रथितं	(दृढ़) बँधे
कर्माशयं	कर्म संस्कार युक्त (अन्तःकरण) को
उद्ग्रथयन्ति	ग्रन्थिहीन कर देते हैं,
रिक्त मतयः	रिक्त (मल-विक्षेप हीन शुद्ध) बुद्धि
यतयः अपि	यतिगण भी
तद्वत्	उस प्रकार
स्रोतोगणाः	(इन्द्रियों रूप) स्रोतोंको
रुद्ध न	निरुद्ध नहीं कर पाते
तं अरणं	उन रक्षक
वासुदेवं भज	वासुदेवका भजन करो ॥३९॥

कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशां
षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीर्षन्ति ।
तत्त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं
कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम् ॥४०॥

कृच्छ्रः महान् इह भवार्णवं अप्लवेशां षड्वर्ग नक्रं असुखेन तितीर्षन्ति तत् त्वम् हरेः भगवतः भजनीयं अङ्घ्रिं कृत्वा उडुपं व्यसनं उत्तर दुस्तरार्णम् ॥४०॥

इह	इस
षडवर्ग नक्रं	(मन और इन्द्रिय रूप) छः वर्ग के मगरोंसे भरे हुए
भवार्णवं	संसार-सागरको
असुखेन	(योग आदि) दुष्कर साधनोंसे
अप्लेवेशां	(श्रीहरिके चरण रूप) जहाजसे रहित
तितीर्षन्ति	(जो) पार करना चाहते हैं
महान् कृच्छ्रः	उनका उस पार पहुँचना अति कठिन है

तत् त्वम्	अतः तुम तो	**व्यसनं**	(अनायास ही)
भगवतः हरेः	भगवान् हरिके		इस संकट
भजनीयं	आराधनीय	**दुस्तराणं**	(संसार रूपी)
अङ्घ्रि	चरण-कमलोंको		दुस्तर समुद्रको
उडुपं कृत्वा	नौका बनाकर	**उत्तर**	पार कर लो ॥४०॥

मैत्रेय उवाच-

स एवं ब्रह्मपुत्रेण कुमारेणात्ममेधसा ।
दर्शितात्मगतिः सम्यक्प्रशस्योवाच तं नृपः ॥४१॥

स एवं ब्रह्मपुत्रेण कुमारेण आत्ममेधसा दर्शितात्मगतिः सम्यक् प्रशस्य उवाच तं नृपः ॥४१॥

स नृपः	राजा पृथु	**तं**	उन (सनत्कुमार-जीकी
ब्रह्मपुत्रेण	ब्रह्माजीके पुत्र	**प्रशस्य**	बहुत प्रशंसा करते हुए
आत्ममेधसा	आत्मज्ञानी	**उवाच**	कहने लगे ॥४१॥
कुमारेण	सनत्कुमारजी द्वारा		
एवं	इस प्रकार		
दर्शितात्मगतिः	आत्मतत्वका उपदेश पाकर		

पृथुरुवाच-*

कृतो मेऽनुग्रहः पूर्वं हरिणाऽऽर्तानुकम्पिना ।
तमापादयितुं ब्रह्मन् भगवन् यूयमागताः ॥४२॥

कृतः मे अनुग्रहः पूर्वं हरिणा आर्त अनुकम्पिना तं आपादयितुं ब्रह्मन् भगवन् यूयं आगताः ॥४२॥

---

* अन्य प्रतियोंमें यहां 'राजोवाचा' है।

भगवन्	हे भगवन् !	**अनुग्रहः**	कृपा
आर्त		**कृतः**	की थी
अनुकम्पिना	दीनोंपर दया करने-वाले	**तं**	उसीको
		आपादयितुं	पूरा करनेके लिए
हरिणा	श्रीहरिने	**ब्रह्मन्**	हे ब्रह्मन्
मे	मुझपर	**यूयं**	आप लोग
पूर्वं	पहिले	**आगताः**	आये हैं ॥४२॥

निष्पादितश्च कात्स्न्र्येन भगवद्भिर्घृणालुभिः ।
साधूच्छिष्टं हि मे सर्वमात्मना सह किं ददे ॥४३॥

निष्पादितः च कात्स्न्र्येन भगवद्भिः घृणालुभिः साधूच्छिष्टं हि मे सर्वं आत्मना सह किं ददे ॥४३॥

घृणालुभिः	(परम) दयालु	**आत्मना सह**	शरीर और इसके साथ
भगवद्भिः	आप लोगोंने		
कात्स्न्र्येन च	(जिस कार्यके लिए आप लोग आये, इसे आपने) अच्छी तरहसे	**मे सर्वं**	मेरा सब कुछ
		हि	क्योंकि
		साधूच्छिष्टं	महापुरुषोंका ही प्रसाद है
निष्पादितः	सम्पन्न कर दिया	**किं ददे**	मैं आपको क्या दूँ ॥४३॥

प्राणा दाराः सुता ब्रह्मन् गृहाश्च सपरिच्छदाः ।
राज्यं बलं मही कोश इति सर्वं निवेदितम् ॥४४॥

प्राणाः दाराः सुताः ब्रह्मन् गृहाः च सपरिच्छदाः राज्यं बलं मही कोश इति सर्वं निवेदितं ॥४४॥

प्राणाः	प्राण,	**च सपरिच्छदाः**	
दाराः	स्त्री,	**गृहाः**	और सब सामग्री सहित घर,
सुताः	पुत्र,		

राज्यं	राज्य,
बलं	सेना,
मही	पृथिवी
कोश	और खजाना
इति सर्वं	यह सब कुछ
ब्रह्मन्	हे ब्रह्मन
निवेदितं	आपके श्रीचरण-कमलोंमें अर्पित है ॥४४॥

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥४५॥

सैनापत्यं च राज्यं च दण्ड नेतृत्वम् एव च सर्व लोक अधिपत्यं च वेदशास्त्रवित् अर्हति ॥४५॥

सैनापत्यं च	(वास्तवमें तो) सेनापतित्व
च राज्यम्	और राज्य
च दण्ड नेतृत्वं	दण्डाभिधान
एव च	तथा
सर्वं	
लोक अधिपत्य	सब लोकोंका आधिपत्य
वेदशास्त्रवित्	
च	वेद-शास्त्रके ज्ञाता-
अर्हति	को ही है ॥४५॥

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ।
तस्यैवानुग्रहेणान्नं भुञ्जते क्षत्रियादयः ॥४६॥

स्वं एव ब्राह्मणः भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च तस्य एव अनुग्रहेण अन्नं भुञ्जते क्षत्रियादयः ॥४६॥

ब्राह्मणः	ब्राह्मण
स्वं एव	अपना ही
भुङ्क्ते	खाता है
स्वं वस्ते	अपना ही पहनता है
स्वं च ददाति	अपनी ही वस्तु देता है
क्षत्रियादयः	दूसरे क्षत्रिय आदि तो
तस्य एव	उसीकी
अनुग्रहेण	कृपासे
अन्नं भुञ्जते	अन्न खाते हैं ॥४६॥

यैरीदृशी भगवतो गतिरात्मवादे
एकान्ततो निगमिभिः प्रतिपादिता नः ।
तुष्यन्त्वदभ्रकरुणाः स्वकृतेन नित्यं
को नाम तत्प्रतिकरोति विनोदपात्रम् ॥४७॥

यैः ईदृशी भगवतः गतिः आत्मवादे एकान्ततः निगमिभिः प्रतिपादिता नः तुष्यन्तु अदभ्रकरुणाः स्वकृतेन नित्यं कः नाम तत्प्रतिकरोति विना उदपात्रं ॥४७॥

यैः	जिन	**स्वकृतेन**	अपने इस उपकार-
निगमिभिः	(आप) वेदके		में ही
	पारंगतोंकी	**नित्यं**	सदा
आत्मवादे	अध्यात्म-तत्वका	**तुष्यन्तु**	सन्तुष्ट रहे
	विचार करनेमें	**विना उदपात्रं**	(अर्घ्यके लिए)
	(एवं)		जलपात्र उठानेके
एकान्ततः	निश्चितरूपसे		अतिरिक्त
भगवतः	भगवानके प्रति	**कः नाम**	भला ऐसा कौन है
ईदृशी गतिः	इस प्रकारकी भक्ति		(जो)
प्रतिपादिता	समझा दी है	**तत्प्रतिकरोति**	उस (आपके
अदभ्रकरुणाः	परम कृपालु (वे		उपकार का) बदला
	आप)		चुका सके ॥४७॥

मैत्रेय उवाच–

त आत्मयोगपतय आदिराजेन पूजिताः ।
शीलं तदीयं शंसन्तः खेऽभूवन्मिषतां नृणाम् ॥४८॥

ते आत्मयोगपतयः आदिराजेन पूजिताः शीलं तदीयं शंसन्तः खे अभूवन मिषतां नृणाम् ॥४८॥

आदिराजेन	आदिराज पृथु द्वारा
आत्मयोग-पतयः	आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ (सनकादिकों-की)
पूजिताः	पूजा होनेके बाद
ते	वे सब
तदीयं शीलं	उनके शील स्वभावकी
शंसन्तः	प्रशंसा करते हुए
नृणां मिषतां	सब लोगोंके देखते-देखते
खे अभूवन	आकाश-मार्गसे चले गये ॥५८॥

वैन्यस्तु धुर्यो महतां संस्थित्याध्यात्मशिक्षया ।
आप्तकाममिवात्मानं मेन आत्मन्यवस्थितः ॥४९॥

वैन्यः तु धुर्यः महतां संस्थित्या अध्यात्म शिक्षया आप्तकामं इव आत्मानं मेने आत्मनि अवस्थितः ॥४९॥

महतां धुर्यः	महात्माओंमें अग्रणी
वैन्यः तु	महाराज पृथु तो
अध्यात्म शिक्षया	आत्मोपदेश पाकर
संस्थित्या	चित्तकी एकाग्रतासे
आत्मनि अवस्थितः	आत्मामें ही स्थित रहनेके कारण
आत्मानं आप्तकामं इव मेने	अपनेको पूर्णमनोरथ मानने लगे ॥४९॥

कर्माणि च यथाकालं यथादेशं यथाबलम् ।
यथोचितं यथावित्तमकरोद्ब्रह्मसात्कृतम् ॥५०॥

कर्माणि च यथाकालं यथादेशं यथाबलं यथोचितं यथावित्तं अकरोत् ब्रह्म सात्कृतं ॥५०॥

च	और
यथाकालं	समयके अनुसार
यथा देशं	स्थानके अनुसार
यथाबलं	शक्तिके अनुसार
यथोचित्तं	न्यायके अनुसार
यथावित्तं	और धनके अनुसार
ब्रह्म सात्कृतं	ब्रह्मार्पण बुद्धिसे
कर्माणि	सभी कर्म
अकरोत्	करते थे ॥५०॥

फलं ब्रह्मणि विन्यस्य निर्विषङ्गः समाहितः ।
कर्माध्यक्षं च मन्वान आत्मानं प्रकृतेः परम् ॥५१॥

फलं ब्रह्मणि विन्यस्य निर्विषङ्गः समाहितः कर्मआध्यक्षं च मन्वान आत्मानं प्रकृतेः परं ॥५१॥

समाहितः	एकाग्र चित्तसे	**कर्माध्यक्षं**	कर्मोंका साक्षी
फलं	(समस्त कर्मोंका) फल	**च**	और
ब्रह्मणि विन्यस्य	परमात्माको अर्पण करके	**प्रकृतेः परं**	प्रकृतिसे अतीत
आत्मानं	आत्माको	**मन्वान**	समझते हुए
		निर्विषङ्गः	निर्लिप्त रहे ॥५१॥

गृहेषु वर्तमानोऽपि स साम्राज्यश्रियान्वितः ।
नासञ्जतेन्द्रियार्थेषु निरहंमतिरर्कवत् ॥५२॥

गृहेषु वर्तमानः अपि स साम्राज्यश्रिया अन्वितः न असञ्जता इन्द्रियार्थेषु निरहं मतिः अर्कवत् ॥५२॥

अर्कवत्	सूर्यकी तरह	**वर्तमानः अपि**	रहते हुए भी
निरहं मतिः	निर्लिप्त बुद्धि	**स**	वे (राजा पृथु)
साम्राज्यश्रिया अन्वितः	साम्राज्य लक्ष्मीसे सम्पन्न	**इन्द्रियआर्थेषु**	इन्द्रियोंके विषयोंमें
		न असञ्जता	आसक्त नहीं हुए ॥५२॥
गृहेषु	गृहस्थाश्रममें		

एवमध्यात्मयोगेन कर्माण्यनुसमाचरन् ।
पुत्रानुत्पादयामास पञ्चर्चिष्यात्मसम्मतान् ॥५३॥

एवं अध्यात्म योगेन कर्माणि अनु समाचरन् पुत्रान् उत्पादयामास पंच अर्चिसि आत्मसम्मतान् ॥५३॥

एवं	इस प्रकार
अध्यात्मयोगेन	आत्मनिष्ठा द्वारा
कर्माणि	सभी कर्तव्य कर्मोंका
अनुसमाचरन्	अनुष्ठान करते हुए (उन्होंने)
अर्चिषि	(अपनी पत्नी) अर्चीं (के गर्भ) से
आत्म-सम्मतान्	अपने समान
पञ्च	पाँच
पुत्रान्	पुत्र
उत्पादयामास	उत्पन्न किए ॥५३॥

विजिताश्वं धूम्रकेशं हर्यक्षं द्रविणं वृकम् ।
सर्वेषां लोकपालानां दधारैकः पृथुर्गुणान् ॥५४॥

विजिताश्वं धूम्रकेशं हर्यक्षं द्रविणं वृकं सर्वेषां लोकपालानां दधार एकः पृथुः गुणान् ॥५४॥

विजिताश्वं	विजिताश्व
धूम्रकेशं	धूम्रकेश
हर्यक्षं	हर्यक्ष
द्रविणं	द्रविण
वृकं	और वृक (ये पुत्रोंके नाम थे)
एकः पृथुः	अकेले पृथुने
सर्वेषां	सब ही
लोकपालानां	लोकपालोंके
गुणान्	सभी गुणोंको धारण (धधार) करते थे ॥५४॥

गोपीथाय जगत्सृष्टेः काले स्वे स्वेऽच्युतात्मकः ।
मनोवाग्वृत्तिभिः सौम्यैर्गुणैः संरञ्जयन् प्रजाः ॥५५॥

गोपीथाय जगत्सृष्टेः काले स्वे स्वे अच्युतात्मकः मनोवाग्वृत्तिभिः सौम्यैः गुणैः संरञ्जयन् प्रजाः ॥५५॥

जगत्सृष्टेः	जगत्के प्राणियोंकी
गोपीथाय	रक्षाके लिए
स्वे स्वे काले	अपने-अपने समयपर
अच्युतात्मकः	विष्णु रूप (राजा पृथु)
मनोवाग्-वृत्तिभिः	मन वाणी तथा व्यवहारसे
सौम्यैः गुणैः	(और) सौम्य गुणोंसे
प्रजाः	
संरञ्जयन्	प्रजाका रंजन करते रहे ॥५५॥

राजेत्यधान्नामधेयं सोमराज इवापरः ।
सूर्यवद्विसृजन् गृह्णन् प्रतपंश्च भुवो वसु ॥५६॥

राजा इति अधात् नामधेयं सोमराज इव अपरः सूर्यवत् विसृजन् गृह्णन् प्रतपन् च भुवः वसु ॥५६॥

अपरः सोमराज इव	दूसरे चन्द्रमाके समान
राजा इति नामधेयं अधात्	राजा इस नामको धारण किया ।
सूर्यवत्	सूर्यके समान
भुवः वसु	पृथ्वीके धन (रूप जल) को
गृह्णन्	लेते (करादि रूपमें)
विसृजन्	(वर्षाके समान) छोड़ते (पान करते)
च प्रतपन्	(तेज) प्रताप करते (प्रभावित करते थे) ॥५८॥

दुर्धर्षस्तेजसेवाग्निर्महेन्द्र इव दुर्जयः ।
तितिक्षया धरित्रीव द्यौरिवाभीष्टदो नृणाम् ॥५७॥

दुर्धर्षः तेजसा इव अग्निः महेन्द्र इव दुर्जयः तितिक्षया धरित्री इव द्यौः इव अभीष्टदः नृणाम् ॥५७॥

तेजसा	तेजसे
अग्निः इव	अग्निकी तरह
दुर्धर्षः	असह्य थे ।
महेन्द्र इव	इन्द्रकी तरह
दुर्जयः	अजेय थे ।
तितिक्षया	सहनशीलतासे
धरित्री इव	पृथ्वीके समान थे ।
द्यौः इव	स्वर्गके समान
नृणां	मनुष्योंको
अभीष्टदः	अभीष्ट (पदार्थ) देते थे ॥५७॥

वर्षति स्म यथाकामं पर्जन्य इव तर्पयन् ।
समुद्र इव दुर्बोधः सत्त्वेनाचलराडिव ॥५८॥

वर्षति स्म यथा कामं पर्जन्य इव तर्पयन् समुद्र इव दुर्बोधः सत्वेन अचलराड् इव ॥५८॥

तर्पयन्	(प्रजाको) तृप्त करते हुए
पर्जन्य इव	मेघके समान
यथा कामं	इच्छानुसार
वर्षति स्म	वर्षा करते (दान देते) थे ।
समुद्र इव दुर्बोधः	समुद्रके समान दुर्बोध थे ।
सत्वेन	धैर्यमें
अचलराड् इव	हिमालयके समान थे ॥५८॥

धर्मराडिव शिक्षायामाश्चर्ये हिमवानिव ।
कुबेर इव कोशाढ्यो गुप्तार्थो वरुणो यथा ॥५९॥

धर्मराट् इव शिक्षायां आश्चर्ये हिमवान् इव कुबेर इव कोशाढ्यः गुप्तार्थः वरुणः यथा ॥५९॥

शिक्षायां	(दुष्टोंको) अनुशासित रखनेमें
धर्मराट् इव	यमराजके समान,
आश्चर्ये	आश्चर्योंमें
हिमवान् इव	हिमालयके समान थे ।
कोशाढ्यः	कोशकी समृद्धिमें
कुबेर इव	कुबेरके समान थे ।
गुप्तार्थः	धनका गुप्त रखनेमें
वरुणः यथा	वरुणके समान थे ॥५९॥

मातरिश्वेव सर्वात्मा बलेन सहसौजसा ।
अविषह्यतया देवो भगवान् भूतराडिव ॥६०॥

मातरिश्वा इव सर्वात्मा बलेन सहसा ओजसा अविषह्यतया देवः भगवान् भूतराट् इव ॥६०॥

मातरिश्वा इव	वायुके समान
बलेन्	शारीरिक बल
सहसा	इन्द्रियोंकी पटुता
ओजसा	तथा तेजस्विता
सर्वात्मा	सर्वत्र गतिशीलतामें थे ।
अविषह्यतया	असह्य तेजमें
भगवान् भूतराट् इव	भगवान् शंकरके समान थे ॥६०॥

कन्दर्प इव सौन्दर्ये मनस्वी मृगराडिव ।
वात्सल्ये मनुवन्नृणां प्रभुत्वे भगवानजः ॥६१॥

कन्दर्प इव सौन्दर्ये मनस्वी मृगराड् इव वात्सल्ये मनुवत् नृणां प्रभुत्वे भगवान् अजः ॥६१॥

सौन्दर्ये	सुन्दरतामें	**मनुवत्**	मनुके समान,
कन्दर्प इव	कामदेवके समान,	**नृणां**	मनुष्योंके
मनस्वी	उत्साहमें	**प्रभुत्वे**	प्रभुत्वमें
मृगराड् इव	सिंहके समान,	**भगवान् अजः**	भगवान् ब्रह्माके
वात्सल्ये	वात्सल्य (स्नेह) में		समान थे ॥६१॥

बृहस्पतिर्ब्रह्मवादे आत्मवत्त्वे स्वयं हरिः ।
भक्त्या गोगुरुविप्रेषु विष्वक्सेनानुवर्तिषु ।
ह्रिया प्रश्रयशीलाभ्यामात्मतुल्यः परोद्यमे ॥६२॥

बृहस्पतिः ब्रह्मवादे आत्मवत्वे स्वयं हरिः भक्त्या गो गुरु विप्रेषु विष्वक्सेनानुवर्तिषु ह्रिया प्रश्रयशीलाभ्यां आत्मतुल्यः परोद्यमे ॥६२॥

ब्रह्मवादे	ब्रह्म-विचारमें		सेवामें,
बृहस्पतिः	बृहस्पतिके समान	**भक्त्या**	भक्तिमें
आत्मवत्वे	आत्मस्थितिमें	**ह्रिया**	लज्जामें
स्वयं हरिः	स्वयं भगवान् (अवतार) थे ही	**प्रश्रय-शीलाभ्याम्**	विनय और शीलमें तथा
गो गुरु विप्रेषु	गौ, गुरुजन, ब्राह्मण एवं	**परोद्यमे**	परोपकार करनेमें
विष्वक्सेन अनुवर्तिषु	भगवत् भक्तोंकी	**आत्मतुल्यः**	अपने ही समान (अनुपम) थे ॥६२॥

कीर्त्योर्ध्वगीतया पुम्भिस्त्रैलोक्ये तत्र तत्र ह ।
प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेषु स्त्रीणां रामः सतामिव ॥६३॥

कीर्त्या अर्ध्व गीतया पुम्भिः त्रैलोक्ये तत्र तत्र ह प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेषु स्त्रीणां रामः सतां इव ॥६३॥

त्रैलोक्ये	त्रिलोकीमें	**स्त्रीणां**	स्त्रियों तकके
तत्र तत्र ह	जहां-तहां निश्चित रूपसे	**कर्णरन्ध्रेषु**	कानोंमें
		प्रविष्टः	वैसे ही प्रविष्ट थे
पुंभिः	मनुष्यों द्वारा	**सतां इव**	जैसे सज्जन पुरुषोंके हृदयोंमें
ऊर्ध्व गीतया	उच्च स्वरसे गायी जानेवाली	**रामः**	श्रीराम प्रविष्ट रहते हैं ॥६३॥
कीर्त्या	कीर्तिसे		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

दृष्ट्वाऽऽत्मानं प्रवयसमेकदा वैन्य आत्मवान् ।
आत्मना वर्धिताशेषस्वानुसर्गः प्रजापतिः ॥१॥

दृष्ट्वा आत्मानं प्रवयसं एकदा वैन्य आत्मवान् आत्मना वर्धित अशेष स्व अनुसर्गः प्रजापतिः ॥१॥

आत्मवान्	महा मनस्वी	**वर्धित**	अभिवृद्धि करके
प्रजापतिः	प्रजाओंके स्वामी	**एकदा**	एक समय
वैन्यः	राजा पृथुने	**आत्मानं**	अपनेको
आत्मना	स्वयमेव	**प्रवयसं**	वृद्ध हुआ
स्वं अनुसर्गः	अपनी प्रजाकी	**दृष्ट्वा**	देखकर ॥१॥
अशेष	पूर्णतः		

जगतस्तस्थुषश्चापि वृत्तिदो धर्मभृत्सताम् ।
निष्पादितेश्वरादेशो यदर्थमिह जज्ञिवान् ॥२॥

जगतः तस्थुषा च अपि वृत्तिदः धर्मभृत् सताम् निष्पादित ईश्वर आदेशः यदर्थम् इह जज्ञिवान् ॥२॥

सतां धर्मभृत्	सज्जनोंके धर्मको जाननेवाले	**इह**	इस लोक
		यदर्थम्	जिस उद्देश्यसे
जगतः	जङ्गम	**जज्ञिवान्**	जन्म लिया था (उस)
च तस्थुषा	और स्थावरोंकी		
अपि	भी	**ईश्वर आदेशः**	ईश्वरके आदेशको
वृत्तिदः	आजीविका देनेवाले	**निष्पादित**	परिपूर्ण करके ॥२॥

आत्मजेष्वात्मजां न्यस्य विरहाद्रुदतीमिव ।
प्रजासु विमनःस्वेकः सदारोऽगात्तपोवनम् ॥३॥

आत्मजेषु आत्मजां न्यस्य विरहात् रुदतीं इव प्रजासु विमनः सु एकः सदारः अगात् तपोवनम् ॥३॥

विरहात्	उनके वियोगसे	विमनः सु	बिलखती हुई (छोड़कर)
रुदतीं इव	रोती हुई सी	सदारः	अपनी पत्नी सहित
आत्मजां	पुत्री (रूपा पृथ्वी) को	एकः	अकेले ही
आत्मजेषु	पुत्रोंके ऊपर	तपोवनं	तप योग्य वनको
न्यस्य	सौंपकर	अगात्	चले गये ॥३॥
प्रजासु	प्रजाको		

तत्राप्यदाभ्यनियमो वैखानससुसम्मते ।
आरब्ध उग्रतपसि यथा स्वविजये पुरा ॥४॥

तत्र अपि अदाभ्यनियमः वैखानस सुसंमते आरब्धः उग्रतपसि यथा स्वविजये पुरा ॥४॥

तत्र अपि	वहाँ भी	उग्रतपसि	प्रारम्भ कर दी
अदाभ्यनियमः	अखण्ड व्रत पूर्वक	यथा	जैसे
वैखानस		पुरा	पहले (गृस्थाश्रममें)
सुसंमते	वानप्रस्थ आश्रमके अनुसार	स्वविजये	(अखण्ड व्रत पूर्वक) विजय करनेमें
आरब्धः	कठोर तपस्या		लगे थे ॥४॥

कन्दमूलफलाहारः शुष्कपर्णाशनः क्वचित् ।
अब्भक्षः कतिचित्पक्षान् वायुभक्षस्ततः परम् ॥५॥

कन्दमूल फलाहरः शुष्क पर्णाशिनः क्वचित् अब्भक्षः कतिचित्पक्षान् वायु भक्षः ततः परं ॥५॥

क्वचित्	कुछ दिनों तक	**अब्भक्षः**	केवल जलका पान किया
कन्दमूल फलाहारः	कन्द-मूल-फलका आहार किया	**ततः परं**	इसके बाद
शुष्क पर्णाशनः	(कुछ दिनों) तक सूखे पत्ते खाये	**वायुः भक्षः**	केवल वायु पीकर (श्वास लेकर) रहने लगे ॥५॥
कतिचित्पक्षान्	कुछ पखवाड़ों तक		

ग्रीष्मे पञ्चतपा वीरो वर्षास्वासारषाण्मुनिः ।
आकण्ठमग्नः शिशिरे उदके स्थण्डिलेशयः ॥६॥

ग्रीष्मे पञ्चतपा वीरः वर्षासु आसारषाट् मुनिः आकण्ठ मग्नः शिशिरे उदके स्थण्डिलेशयः ॥६॥

वीरः	वीरवर (पृथु) ने	**उदके**	जलमें
मुनिः	मननशील (होकर)	**आकण्ठ मग्नः**	गले तक खड़े रहते थे
ग्रीष्मे	गर्मीमें		
पञ्चतपा	पञ्चाग्नि तापी	**स्थण्डिलेशयः**	मिट्टीकी वेदीपर ही शयन करते थे ॥६॥
वर्षासु	वर्षा ऋतुमें		
आसारषाट्	खुले मैदानमें रहे		
शिशिरे	शीतकालमें		

तितिक्षुर्यतवाग्दान्त ऊर्ध्वरेता जितानिलः ।
आरिराधयिषुः कृष्णमचरत्तप उत्तमम् ॥७॥

तितिक्षुः यतवाक् दान्तः ऊर्ध्वरेता जित अनिलः आरिराधयिषुः कृष्णं अचरत् तप उत्तमम् ॥७॥

तितिक्षुः	(उन्होंने) शीत, उष्ण अदि द्वन्द्वोंको सहन किया	**ऊर्ध्वरेता**	ब्रह्मचर्यका पालन किया
यतवाक् दान्तः	वाणी और मनका संयम किया	**जित अनिलः**	प्राणोंको अपने अधीन किया
		कृष्णं	(इस प्रकार) श्रीकृष्णकी

आरिराधयिषुः	आराधना करनेकी इच्छासे	उत्तमं तप अचरत्	उत्तम तप किया ॥७॥

तेन क्रमानुसिद्धेन ध्वस्तकर्ममिलाशयः ।
प्राणायामैः संनिरुद्धषड्वर्गश्छिन्नबन्धनः ॥८॥

तेन क्रमानुसिद्धेन ध्वस्त कर्माम् अमल आशयः प्राणायामैः संनिरुद्ध षड्वर्गः छिन्नबन्धनः ॥८॥

क्रमानुसिद्धेन	क्रमसे सिद्ध हुए	संनिरुद्ध षड्वर्गः	मन और इन्द्रियों-का निरोध हो गया
तेन	उस तपसे	छिन्नबन्धनः	(वासना जन्य) बन्धन कट गया ॥८॥
ध्वस्त कर्माम्	उनके कर्म नष्ट हो गये		
अमल आशयः	और चित्त सर्वथा निर्मल हो गया		
प्राणायामैः	प्राणायामोंसे		

सनत्कुमारो भगवान् यदाहाध्यात्मिकं परम् ।
योगं तेनैव पुरुषमभजत्पुरुषर्षभः ॥९॥

सनत्कुमारः भगवान् यत् आह आध्यात्मिकं परं योगं तेन एव पुरुषं अभजत् पुरुष ऋषभः ॥९॥

भगवान् सनत्कुमारः	भगवान् सनत्कुमार-ने	आह	उपदेश किया था
यत् परं आध्यत्मिक	जिस परमोत्कृष्ट	तेन एव	उसीके अनुसार
योगं	अध्यात्म-योगका	पुरुष ऋषभः	पुरुषश्रेष्ठ (पृथु) ने
		पुरुषं	पुरुषोत्तम (श्रीहरि) की
		अभजत्	आराधना की ॥९॥

भगवद्धर्मिणः साधोः श्रद्धया यततः सदा ।
भक्तिर्भगवति ब्रह्मण्यनन्यविषयाभवत् ॥१०॥

भगवत् धर्मिणः साधोः श्रद्धया यततः सदा भक्तिः भगवति ब्रह्मणि अनन्य विषया अभवत् ॥१०॥

भगवद् धर्मिणः	(इस प्रकार) भगवद् धर्म (भक्ति) का	**सदा यततः**	निरन्तर साधन करनेसे
श्रद्धया	श्रद्धा पूर्वक (पालन करते)	**भगवति ब्रह्मणि**	भगवान् परब्रह्ममें
साधोः	सत्पुरुष (पृथु) के	**अनन्य विषया**	अनन्या (उनकी)
		भक्तिः	भक्ति
		अभवत्	हो गयी ॥१०॥

तस्यानया भगवतः परिकर्मशुद्ध-
सत्त्वात्मनस्तदनु संस्मरणानुपूर्त्या ।
ज्ञानं विरक्तिमदभून्निशितेन येन
चिच्छेद संशयपदं निजजीव कोशम् ॥११॥

तस्य अनया भगवतः परिकर्म शुद्ध सत्वात्मनः तत् अनु संस्मरण अनुपूर्त्या ज्ञानं विरक्तिमत् अभूत निशितेन येन चिच्छेद संशयपदं निज जीव कोशं ॥११॥

तस्य	उन (पृथु) की	**विरक्तिमत्**	वैराग्ययुक्त
अनया	इस	**ज्ञानं अभूत्**	ज्ञान हो गया
भगवतः	भगवानकी	**येन**	जिस
परिकर्म	परिचर्या (अर्चना) से	**निशितेन**	तीक्ष्ण (ज्ञान) से
		संशयपदं	संशयके स्थान
शुद्ध	शुद्ध हुए	**निज**	अपने
सत्त्वात्मनः	सात्विक अन्तः-करणमें	**जीव कोशं**	जीवकोश (लिंगदेह-अविद्या) को
तत्	उन (भगवान) के	**चिच्छेद**	काट दिया (नष्ट कर दिया) ॥११॥
अनु संस्मरण	बार-बार स्मरणसे		
अनुपूर्त्या	निरन्तर पूर्ण होते (चित्तमें)		

छिन्नान्यधीरधिगतात्मगतिर्निरीह-
स्तत्तत्यजेऽच्छिनदिदं वयुनेन येन ।

तावन्न योगगतिभिर्यतिरप्रमत्तो
यावद्गदाग्रजकथासु रतिं न कुर्यात् ॥१२॥

छिन्न अन्यधीः अधिगतः आत्मगतिः निरीहः तत्यजे अच्छिनत् इदं वयुनेन येन तावत् न योग गतिभिः यतिः अप्रमत्तः यावत् गदाग्रज कथासु रतिः न कुर्यात् ॥१२॥

अन्यधीः	अन्य (पारक्य) बुद्धि	**तत्यजे**	उसे भी त्याग दिया
छिन्न	नष्ट हो गयी	**योग गतिभिः**	योगकी गति (साधन) से
आत्मगतिः	अपना स्वरूप	**तावत्**	तब तक
अधिगतः	प्राप्त हो गया (स्वरूपमें स्थिति हो गयी	**यतिः**	यत्नकर्ता (साधक)
		अप्रमत्तः	प्रमादहीन (सदा सावधान)
निरीहः	इच्छाहीन हो गये (तब)	**न**	नहीं हो पाता
		यावत्	जब तक
येन	जिस	**गदाग्रज**	गदके बड़े भाई (श्रीकृष्ण) की
वयुनेन	ज्ञानसे		
इदं	इस (भेद-बुद्धि) को	**कथासु**	कथामें
अच्छिनत्	काटा (नष्ट किया) था	**रतिः**	प्रीति
		न कुर्यात्	नहीं करता ॥१२॥

एवं स वीरप्रवरः संयोज्यात्मा नमात्मनि ।
ब्रह्मभूतो दृढं काले तत्याज स्वं कलेवरम् ॥१३॥

एवं स वीर प्रवरः संयोज्य आत्मा नं आत्मनि ब्रह्म भूतः दृढं काले तत्याज स्वं कलेवरम् ॥१३॥

एवं	इस प्रकार	**दृढं**	दृढता पूर्वक
काले	अन्तकाल आनेपर	**आत्मनि**	
वीर प्रवरः	वीरवर	**संयोज्य**	परमात्मामें स्थित करके
स	उस (पृथुने)		
आत्मा नं	अपने चित्तको		

ब्रह्मभूतः	ब्रह्मभावमें अवस्थित होकर	**स्वं कलेवरं**	अपने शरीरको
		तत्याज	त्याग दिया ॥१३॥

सम्पीड्य पायुं पार्ष्णिभ्यां वायुमुत्सारयञ्छनैः ।
नाभ्यां कोष्ठेष्ववस्थाप्य हृदुरःकण्ठशीर्षणि ॥१४॥

सम्पीड्य पायुं पार्ष्णिभ्यां वायुं उत्सारयन् शनैः नाभ्यां कोष्ठेषु अवस्थाप्य हृत् उरः कण्ठ शीर्षणि ॥१४॥

पार्ष्णिभ्यां	एड़ियोंसे	**हृत्**	हृदयमें,
पायुं	गुदाके द्वारको	**उरः**	वक्षस्थलमें,
सम्पीड्य	रोककर	**कण्ठ**	कण्ठमें
वायुं	प्राण वायुको	**शीर्षणि**	मस्तकमें,
शनैः	धीरे-धीरे	**कोष्ठेषु**	चक्रोंमें
उत्सारयन्	(मूलाधारसे) ऊपर-की ओर उठाते हुए	**अवस्थाप्य**	स्थापित करते (रोकते) गये ॥१४॥
नाभ्यां	(क्रमशः) नाभिमें,		

उत्सर्पयंस्तु तं मूर्ध्नि क्रमेणावेश्य निःस्पृहः ।
वायुं वायौ क्षितौ कायं तेजस्तेजस्ययूयुजत् ॥१५॥

उत्सर्पयन् तु तं मूर्ध्नि क्रमेण आवेश्य निःस्पृहः वायुं वायौ क्षितौ कायं तेजः तेजसि अयूयुजत् ॥१५॥

उत्सर्पयन्	ऊपरको ले जाते हुए	**वायुं**	(प्राण) वायुको
तु तम्	फिर उस वायुको	**वायौ**	(समष्टि) वायुमें
क्रमेण	क्रमशः	**कायं**	(पार्थिव) शरीरको
मूर्ध्नि	ब्रह्मरन्ध्रमें	**क्षितौ**	पृथ्विीमें
आवेश्य	स्थित करके	**तेजः**	(शरीरके) तेजको
निस्पृहः	स्पृहा (सब अभिलाषा) करके त्यागकर	**तेजसि**	(समष्टि) तेजमें
		अयूयुजत्	लीन कर दिया ॥१५

खान्याकाशे द्रवं तोये यथास्थानं विभागशः ।
क्षितिमम्भसि तत्तेजस्यदो वायौ नभस्यमुम् ॥१६॥

खानि आकाशे द्रवं तोये यथास्थानं विभागशः क्षितिं अम्भसि तत् तेजसि अदः वायौ नभसि अमुं ॥१६॥

खानि	(देहस्थ) आकाश-को
आकाशे	आकाशमें
द्रवं	(शरीर गत) जलको
तोये	(समष्टि) जलमें
यथास्थानं	यथा स्थान
विभागशः	विभागसे (लयकर दिया फिर)
क्षितिं	पृथ्वीको
अम्भसि	जलमें
तत्	उस (जलको)
तेजसि	तेजमें
अदः	तेजको
वायौ	वायुमें
अमुं	इस (वायु) को
नभसि	आकाशमें (लय किया) ॥१६॥

इन्द्रियेषु मनस्तानि तन्मात्रेषु यथोद्भवम् ।
भूतादिनामून्युत्कृष्य महत्यात्मनि सन्दधे ॥१७॥

इन्द्रियेषु मनः तानि तन्मात्रेषु यथा उद्भवम् भूतादिना अमूनि उत्कृष्य महति आत्मनि संदधे ॥१७॥

मनः	मनको
इन्द्रियेषु	इन्द्रियोंमें
तानि	इन्द्रियोंको
तन्मात्रेषु	तन्मात्राओंमें
यथा उद्भवम्	जो जिससे उत्पन्न हुई थी (उसमें)
भूतादिना	(तंमात्राओंके कारण) अहंकार द्वारा
अमूनि	इन (आकाश, इन्द्रिय और तन्मात्राओंको)
उत्कृष्य	खींचकर
महति	यह तत्वमें
आत्मनि	(उस) महत्तत्वको) आत्मामें (लय किया) ॥१७॥

तं सर्वगुणविन्यासं जीवे मायामये न्यधात् ।
तं चानुशयमात्मस्थमसावनुशयी पुमान् ।
ज्ञानवैराग्यवीर्येण स्वरूपस्थोऽजहात्प्रभुः ॥१८॥

तं सर्वगुण विन्यासं जीवे मायामये न्यधात् तं च अनुशयम् आत्मस्थम् असौ अनुशयी पुमान् ज्ञान वैराग्य वीर्येण स्वरूपस्थः अजहात् प्रभुः ॥१८॥

तं	उस
सर्वगुण विन्यासं	सब गुणोंकी अभिव्यक्ति करनेवाले (महत् तत्व) को
मायामये जीवे	मायोपाधिक जीवमें
न्यधात्	स्थित किया
असौ	यही
अनुशयी	मायोपाधिक
पुमान्	पुरुष (जीव) है।
आत्मस्थं	अपने रूपमें स्थित
तं	उस
अनुशयम् च	मायोपाधिक (जीव) को भी
ज्ञान वैराग्य वीर्येण	ज्ञान और वैराग्यके प्रभावसे
स्वरूपस्थः प्रभुः	अपने शुद्ध ब्रह्म स्वरूपमें अवस्थित होकर समर्थ (पृथु) ने
अजहात्	त्याग दिया ॥१८॥

अर्चिर्नाम महाराज्ञी तत्पत्न्यनुगता वनम् ।
सुकुमार्यतदर्हा च यत्पद्भ्यां स्पर्शनं भुवः ॥१९॥

अर्चिः नाम महाराज्ञी तत् पत्नी अनुगता वनं सुकुमारी अतदर्हा च यत् पद्भ्यां स्पर्शनं भुवः ॥१९॥

तत्	उनकी
पत्नी	पत्नी
महाराज्ञी	महारानी
अर्चिः नाम	अर्चि नामकी
वनं	वनको
अनुगता	(उनके) पीछे गईं
सुकुमारी	(वह) बड़ी सुकुमारी थी
अतदर्हा	वे इसके योग्य नहीं थी
यत्	क्योंकि
पद्भ्यां	पैरोंसे
भुवः	पृथ्वीका
स्पर्शनं च	स्पर्श भी (नहीं किया था) ॥१९॥

अतीव भर्तुर्व्रतधर्मनिष्ठया
शुश्रूषया चार्षदेहयात्रया ।
नाविन्दतार्तिं परिकर्शितापि सा
प्रेयस्करस्पर्शनमाननिवृतिः ॥२०॥

अतीव भर्तुः व्रतधर्म निष्ठया शुश्रूषया च आर्ष देहयात्रया न अविन्दत आर्तिं परिकर्शिता अपि सा प्रेयस्कर स्पर्शन मान निर्वृतिः ॥२०॥

भर्तुः	(फिर भी) अपने स्वामीके	**परिकर्शिता अपि**	अति दुर्बल होकर भी
व्रतधर्म निष्ठया	व्रत और नियमोंका पालन करते हुए (उन्होंने)	**सा**	उन्होंने
अतीव शुश्रूषया च आर्ष देहयात्रया	खूब सेवासे और मुनि-वृत्तिके अनुसार देहयात्रासे	**आर्ति न अविन्दत**	खेदका अनुभव नहीं किया
		प्रेयस्कर	(क्योंकि) अपने प्रियतमके
		स्पर्शन	(कर) स्पर्शसे
		मान	सम्मानित होकर
		निर्वृतः	अति सुखका अनुभव करती थीं ॥२०

देहं विपन्नाखिलचेतनादिकं
पत्युः पृथिव्या दयितस्य चात्मनः ।
आलक्ष्य किञ्चिच्च विलप्य सा सती
चितामथारोपयदद्रिसानुनि ॥२१॥

देहं विपन्नं अखिल चेतनादिकं पत्युः पृथिव्याः दयितस्य च आत्मनः आलक्ष्य किंचित् च विलप्य सा सती चितां अथ आरोपयत् अद्रिसानुनि ॥२१॥

पृथिव्याः पत्युः च आत्मनः	पृथ्वीके स्वामी	**दयितस्य**	और अपने प्रियतम (पृथु) की

देहं	देहको
अखिल	
चेतनादिकं	समस्त चेतनादिसे
विपन्नं	रहित
आलक्ष्य	देखकर
सा सती	उस सतीने
किञ्चित् च	और कुछ
विलप्य	विलाप करके
अथ	फिर
अद्रिसानुनि	पर्वतके शिखरपर
चितां	चिता (पर)
आरोपयत्	रख दिया ॥२१॥

विधाय कृत्यं ह्रदिनीजलाप्लुता
दत्त्वोदकं भर्तुरुदारकर्मणः ।
नत्वा दिविस्थांस्त्रिदशांस्त्रिः परीत्य
विवेश वह्निं ध्यायती भर्तृपादौ ॥२२॥

विधाय कृत्यं ह्रदिनी जल आप्लुता दत्वा उदकं भर्तुः उदारकर्मणः नत्वा दिविस्थान् त्रिदशान् त्रिःपरीत्य विवेश वह्निम् ध्यायती भतृपादौ ॥२२॥

कृत्यं विधाय	उस समय सम्पूर्ण कृत्य करके
ह्रदिनी जल आप्लुता	नदीके जलमें स्नान करके
उदारकर्मणः	उदारकर्मा
भर्तुः	पतीको
उदकं दत्वा	जलाञ्जलि देकर
दिविस्थान्	आकाशमें स्थित
त्रिदशान्	देवताओंको
नत्वा	नमस्कार करके
त्रिः परीत्य	तीन बार (चिता-की) परिक्रमा करके
भतृपादौ-ध्यायती	पतिके चरणोंका ध्यान करती हुई
वह्निं विवेश	अग्निमें प्रवेश कर गयीं ॥२२॥

विलोक्यानुगतां साध्वीं पृथुं वीरवरं पतिम् ।
तुष्टुवुर्वरदा देवैर्देवपत्न्यः सहस्रशः ॥२३॥

विलोक्य अनुगतां साध्वीं पृथुं वीरवरं पतिम् तुष्टुवुः वरदा देवैः देव पत्न्यः सहस्रशः ॥२३॥

साध्वीं	पतिव्रता (अर्चि) को	वरदा	वर देनेवाली
पतिं	अपने पति	देव पत्न्यः	देवियोंने
वीरवरं पृथुं	वीर श्रेष्ठ पृथुका	देवैः	देवताओंके साथ
अनुगतां	अनुगमन करते	तुष्टुवुः	(उनकी) स्तुति
विलोक्य	देखकर		की ॥२३॥
सहस्रशः	हजारों		

कुर्वत्यः कुसुमासारं तस्मिन्मन्दरसानुनि ।
नदत्स्वमरतूर्येषु गृणन्ति स्म परस्परम् ॥२४॥

कुर्वत्यः कुसुम आसारं तस्मिन् मन्दर सानुनि नदत्सु अमर तूर्येषु गृणन्ति स्म परस्परं ॥२४॥

अमर तूर्येषु	देवताओंके वाजे	कुसुम आसारं	
नदत्सु	बजने हुए	कुर्वत्यः	पुष्पोंकी वर्षा करतीं हुई
तस्मिन्	उस	परस्परं	आपसमें
मन्दर सानुनि	मन्दराचलके शिखरपर	गृणन्ति स्म	कहने लगीं ॥२४॥

देव्य ऊचुः-

अहो इयं वधूर्धन्या या चैवं भूभुजां पतिम् ।
सर्वात्मना पतिं भेजे यज्ञेशं श्रीर्वधूरिव ॥२५॥

अहो इयं वधूः धन्या या च एवं भूभुजां पतिं सर्वात्मना पतिं भेजे यज्ञेशं श्रीः वधूः इव ॥२५॥

अहो	आश्चर्य है	सर्वात्मना	सम्पूर्ण मनसे
इयं	यह	भेजे	(ठीक उसी प्रकार) सेवा की है
वधूः धन्या	राजवधू धन्य है		
या च	जिसने कि	श्रीः वधूः इव	जैसे लक्ष्मीजी
भूभुजां पतिम्	राजराजेश्वर	यज्ञेशं	भगवानकी (सेवा
पतिं	अपने पतिकी		करती हैं) ॥२५॥

सैषा नूनं व्रजत्यूर्ध्वं मनु वैन्यं पतिं सती ।
पश्यतास्मानतीत्यार्चिर्दुर्विभाव्येन कर्मणा ॥२६॥

सा एषा नूनं व्रजति ऊर्ध्वं अनु वैन्यं पतिं सती पश्यत अस्मान् अतीत्य अर्चिः दुर्विभाव्येन कर्मणा ॥२६॥

सा एषा	वह यह	**पश्यत अस्मान्**	हमारे देखते-देखते
सती	पतिव्रता	**अतीत्य**	(हमको) पार करके
अर्चिः	अर्चि	**अनु वैन्यं**	(अपने पति) पृथुके पीछे
नूनं	निश्चय		
दुर्विभाव्येन	(अपने) अतर्क्य	**ऊर्ध्वं**	(हमसे) ऊपर
कर्मणा	कर्मसे	**व्रजति**	जा रही है ॥२६॥

तेषां दुरापं किं त्वन्यन्मर्त्यानां भगवत्पदम् ।
भुवि लोलायुषो ये वै नैष्कर्म्यं साधयन्त्युत ॥२७॥

तेषां दुरापं किं तु अन्यत् मर्त्यानां भगवत्पदम् भुवि लोलायुषः ये वै नैष्कर्म्यं साधयन्ति उत ॥२७॥

भुवि	पृथ्वीपर	**साधयन्ति**	प्राप्त करते हैं
लोलायुषः	कुछ दिनोंका जीवन होनेपर भी	**तेषां मर्त्यानाम्**	उन मनुष्योंके लिए
		उत किं तु	
ये वै	जो लोग निश्चय ही	**अन्यत्**	और दूसरी क्या वस्तु
भगवत्पदं	भगवान्‌के परमपद प्राप्ति करानेवाले	**दुरापं**	दुर्लभ है ॥२७॥
नैष्कर्म्यं	आत्मज्ञानको		

स वञ्चितो बतात्मघ्रुक् कृच्छ्रेण महता भुवि ।
लब्ध्वापवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु विषज्जते ॥२८॥

स वञ्चितः वत् आत्मघ्रुक् कृच्छ्रेण महता भुवि लब्ध्वा आपवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु विषज्जते ॥२८॥

महता	बड़ी
कृच्छ्रेण	कठिनतासे
भुवि	भूलोकमें
आपवर्ग्यं	मोक्षके साधन स्वरूप
मानुष्यं	मनुष्यदेहको
लब्ध्वा	पाकर भी
विषयेषु	विषयोंमें
विपज्जते	आसक्त रहता है
स	वह निश्चय ही
आत्मध्रुक्	आत्मघाती है
वत्	खेद है
वञ्चितः	वह खुद ही ठगा गया है ॥२८॥

मैत्रेय उवाच-

स्तुवतीष्वमरस्त्रीषु पतिलोकं गता वधूः ।
यं वा आत्मविदां धुर्यो वैन्यः प्रापाच्युताशयः ॥२९॥

स्तुवतीषु अमर स्त्रीषु पतिलोकं गता वधूः यं वा आत्मविदां धुर्यः वैन्यः प्राप अच्युताशयः ॥२९॥

स्तुवतीषु	स्तुति करती हुई
अमर स्त्रीयु	देवांगनाओंके (समय)
आत्मविदां धुर्यः	आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ
अच्युताशयः	भगवत् प्राण
वैन्यः	महाराज पृथुने
यं वा	जिस (धाम) को
प्राप	प्राप्त किया ।
वधू	(उनकी) पत्नी भी
पतिलोकं	(उसी) पति-लोकको
गता	गयी ॥२९॥

इत्थंभूतानुभावोऽसौ पृथुः स भगवत्तमः ।
कीर्तितं तस्य चरितमुद्दामचरितस्य ते ॥३०॥

इत्थं भूत अनुभावः असौ पृथुः स भगवत्तमः कीर्तितं तस्य चरितं उद्दाम चरितस्य ते ॥३०॥

भगवत्तमः	परम भागवत
असौ स पृथुः	वह प्रसिद्ध राजा पृथु
इत्थं भूत अनुभावः	ऐसे ही प्रभावशाली थे

उद्दाम चरितस्य तस्य	उदार चरितवाले उनके	**चरितं ते कीर्तितं**	चरित्रका तुम्हारे सामने वर्णन किया ॥३०॥

य इदं सुमहत्पुण्यं श्रद्धयावहितः पठेत् ।
श्रावयेच्छृणुयाद्वापि स पृथोः पदवीमियात् ॥३१॥

यः इदं सुमहत् पुण्यं श्रद्धया अवहितः पठेत् श्रावयेत् शृणुयात् वा अपि सः पृथोः पदवीं इयात् ॥३१॥

यः	जो पुरुष	**शृणुयात्**	सुनता है
इदं	इस	**अपि वा**	अथवा
सुमहत् पुण्यं	परम पवित्र (चरित्र) को	**श्रावयेत्**	सुनाता है
श्रद्धया	श्रद्धासे	**सः**	वह
अवहितः	एकाग्र चित्त होकर	**पृथोः पदवीं**	पृथुके पद (भगवद्-धाम)
पठेत्	पढ़ता है,	**इयात्**	पहुँचता है ॥३१॥

ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः ।
वैश्यः पठन् विट्पतिः स्याच्छूद्रः सत्तमतामियात् ॥३२॥

ब्राह्मणः ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यः जगती पतिः वैश्यः पठन् विट्पतिः स्यात् शूद्रः सत्तमतां इयात् ॥३२॥

ब्राह्मणः पठन्	ब्राह्मण इसका पाठ करनेसे	**वैश्य विट्पतिः**	व्यापारियोंमें प्रधान होता है
ब्रह्मवर्चस्वी स्यात्	ब्रह्म तेज प्राप्त करता है।	**शूद्रः सत्तमतां इयात्**	(और) शूद्र साधुता-को प्राप्त होता है ॥३२॥
राजन्यः जगती पतिः	क्षत्रिय पृथ्वी पति (हो जाता है)		

त्रिकृत्व इदमाकर्ण्य नरो नार्यथवाऽऽहृता ।
अप्रजः सुप्रजतमो निर्धनो धनवत्तमः ॥३३॥

त्रिकृत्वः इदं आकर्ण्य नरः नारी अथवा आहृता अप्रजः सुप्रजतमः निर्धनः धनवत्तमः ॥३३॥

नरः	पुरुष	**अप्रजः**	सन्तानहीन
अथवा नारी	अथवा स्त्री	**सुप्रजतमः**	श्रेष्ठ सन्तान वाला
आहृता	आदर पूर्वक	**निर्धनः**	धनहीन
त्रिकृत्वः	तीन बार	**धनवत्तमः**	महाधनी (हो जाता है) ॥३३॥
इदं	इस (पृथु चरित्र) को		
आकर्ण्य	सुनकर		

अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः ।
इदं स्वस्त्ययनं पुंसाममङ्गल्यनिवारणम् ॥३४॥

अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खः भवति पण्डितः इदं स्वस्त्ययनं पुंसां अमङ्गल्यनिवारणं ॥३४॥

अस्पष्ट कीर्तिः	कीर्तिहीन	**स्वस्त्ययनं**	कल्याणकारी है
सुयशा	उत्तम यशस्वी	**पुंसां**	सभी मनुष्योंके
मूर्खः	मूर्ख	**अमङ्गल्य-**	अमङ्गलको
पण्डितः भवति	पण्डित हो जाता है	**निवारणं**	दूर करनेवाला है ॥३४॥
इदं	यह (पृथु चरित)		

धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं कलिमलापहम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां सम्यक्सिद्धिमभीप्सुभिः ।
श्रद्धयैतदनुश्राव्यं चतुर्णां कारणं परम् ॥३५॥

धन्यं शयस्यं आयुष्यं स्वर्ग्यं कलिमलापहं धर्म अर्थ काम मोक्षाणां सम्यक् सिद्धि अभीप्सुभिः श्रद्धया एतत् अनुश्राव्यं चतुर्णां कारणं परं ॥३५॥

धन्यं	धन देनेवाला है	**सम्यक्**	भली भाँति
यशस्यं	यश देने वाला है	**सिद्धि**	
आयुष्यं	आयुकी वृद्धि करने-वाला है	**अभीप्सुभिः**	सिद्धि चाहने वालों-को
स्वर्ग्यं	स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला	**एतत् श्रद्धया अनुभाव्यं**	यह इसका श्रद्धामें श्रवण करना चाहिए
कलिमलापहं	कलिके दोषोंका नाश करनेवाला है	**चतुर्णां परम् कारणं**	चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्तिमें यह परम हेतु है ॥३५॥
धर्म अर्थ काम मोक्षाणां	धर्म अर्थ काम और मोक्षको		

विजयाभिमुखो राजा श्रुत्वैतदभियाति यान् ।
बलिं तस्मै हरन्त्यग्रे राजानः पृथवे यथा ॥३६॥

विजय अभिमुखः राजा श्रुत्वा एतत् अभियाति यान् बलि तस्मै हरन्ति अग्रे राजानः पृथवे यथा ॥३६॥

विजय अभिमुखः	विजयके लिए प्रस्थान करनेवाला	**राजानः अग्रे**	(वे) राजा लोग (उसके) आगे आकर
राजा	राजा	**तस्मै**	उसके लिए
एतत् श्रुत्वा	इस (चरित्र) को सुनकर	**बलि हरन्ति**	(उसी प्रकार) भेंट देते हैं
यान् अभियाति	जिनपर चढ़ाई करता है	**यथा पृथवे**	जैसे महाराज पृथुको देते थे ॥३६॥

मुक्तान्यसङ्गो भगवत्यमलां भक्तिमुद्वहन् ।
वैन्यस्य चरितं पुण्यं शृणुयाच्छ्रावयेत्पठेत् ॥३७॥

मुक्त अन्यसङ्गः भगवति अमलां भक्तिं उद्वहन् वैन्यस्य चरितं पुण्यं शृणुयात् श्रावयेत् पठेत् ॥३७॥

मुक्त अन्यसङ्गः	अन्य सब प्रकारकी आसक्ति छोड़कर
भगवति	भगवान्‌में
अमलां भक्तिं	विशुद्ध (निष्काम) भक्ति-भावको
उद्वहन्	रखते हुए
वैन्यस्य	महाराज पृथुके
पुण्यं चरितं	पवित्र चरित्रको
शृणुयात्	सुने,
श्रावयेत्	सुनावे
पठेत्	(और) पढ़े ॥३७॥

वैचित्रवीर्याभिहितं महन्माहात्म्यसूचकम् ।
अस्मिन् कृतमतिर्मर्त्यः पार्थवीं गतिमाप्नुयात् ॥३८॥

वैचित्र वीर्य अभिहितं महन् माहात्म्य सूचकं अस्मिन् कृतमतिः मर्त्यः पार्थवीं गतिम् आप्नुयात् ॥३८॥

वैचित्र वीर्य	विचित्र वीर्यके पुत्र (विदुर)
महन् माहात्म्य सूचकं	भगवान्‌की महिमा-को प्रकट करनेवाला
अभिहितं	(यह) तुम्हें सुना दिया
अस्मिन्	इस (चरित्र) में
कृतमतिः	प्रेम करनेवाला
मर्त्यः	मनुष्य
पार्थवीं	महाराज पृथुकी-सी
गतिं	गतिको
आप्नुयात्	प्राप्त होता है ॥३८

अनुदिनमिदमादरेण शृण्वन्
पृथुचरितं प्रथयन् विमुक्तसङ्गः ।
भगवति भवसिन्धुपोतपादे
स च निपुणां लभते रतिं मनुष्यः ॥३९॥

अनुदिनं इदं आदरेण शृण्वन् पृथुचरितं प्रथयन् विमुक्त-सङ्गः भगवति भवसिन्धु पोतपादे स च निपुणां लभते रतिं मनुष्यः ॥३९॥

अनुदिनं प्रति दिन
इदं पृथुचरितं इस पृथु चरितका
आदरेण आदर पूर्वक
विमुक्तसङ्गः निष्काम भावसे (जो)
शृण्वन् श्रवण करता है
प्रथयन् (और) कीर्तन करता है
भवसिन्धु **पोतपादे** जिनके चरण संसार सागरपार करनेके लिए नौकाके समान **है**
भगवति (उन) श्रीहरिमें
स च मनुष्यः यह मनुष्य
निपुणां सुदृढ
रतिं अनुराग
लभते प्राप्त करता है ॥३९

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच–

विजिताश्वोऽधिराजाऽऽसीत्पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः ।
यवीयोभ्योऽददात्काष्ठा भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सलः ॥१॥

विजिताश्वः अधिराजा आसीत् पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः यवीयेभ्यः अददात् काष्ठा भ्रातृभ्यः भ्रातृवत्सलः ॥१॥

पृथुश्रवाः	परम यशस्वी	**भ्रातृवत्सलः**	भाइयोंपर प्रेम करने वाले (उन्होंने)
पृथुपुत्रः	पृथुके पुत्र	**यवीयेभ्यः**	छोटे
विजिताश्वः	विजिताश्व नामवाले	**भ्रातृभ्यः**	भाइयोंको
अधिराजा		**काष्ठा**	चारों दिशाओंका अधिकार
आसीत्	राजा हुए	**अददात्**	दे दिया ॥१॥

हर्यक्षायादिशत्प्राचीं धूम्रकेशाय दक्षिणाम् ।
प्रतीचीं वृकसंज्ञाय तुर्यां द्रविणसे विभुः ॥२॥

हर्यक्षाय अदिशत् प्राचीं धूम्रकेशाय दक्षिणाम् प्रतीचीं वृकसंज्ञाय तुर्यां द्रविणसे विभुः ॥२॥

विभुः	समर्थ (विजिताश्व) ने	**दक्षिणां**	दक्षिणका
हर्यक्षाय	हर्यक्षको	**वृकसंज्ञाय**	वृक नामवाले (भाई) को
प्राचीं	पूर्व दिशाका	**प्रतीचीं**	पश्चिम
धूम्रकेशाय	धूम्रकेशको	**द्रविणसे**	(और) द्रविणसको

तुर्या	चौथी (उत्तर दिशा) को	**अदिशत्**	(राज्य करनेका) आदेश किया ॥२॥

अन्तर्धानगतिं शक्रात्लब्ध्वान्तर्धानसंज्ञितः ।
अपत्यत्रयमाधत्त शिखण्डिन्यां सुसम्मतम् ॥३॥

अन्तर्धानगतिं शक्रात् लब्ध्वा अन्तर्धान संज्ञितः अपत्यत्रयं आधत्त शिखण्डिन्यां सुसम्मतम् ॥३॥

शक्रात्	इन्द्रसे	**शिखण्डिन्यां**	शिखण्डिनी (नामकी अपनी पत्नी) में
अन्तर्धानगतिं	अन्तर्धान होनेकी शक्ति	**सुसम्मतं**	श्रेष्ठतम
लब्ध्वा	प्राप्त करके	**अपत्यत्रयं**	तीन पुत्रोंका
अन्तर्धान संज्ञितः	अन्तर्धान नामवाले (विजिताश्व)	**आधत्त**	आधान किया (जन्म दिया) ॥३॥

पावकः पवमानश्च शुचिरित्यग्नयः पुरा ।
वसिष्ठशापादुत्पन्नाः पुनर्योगगतिं गताः ॥४॥

पावकः पवमानः च शुचिः इति अग्नयः पुरा वसिष्ठशापात् उत्पन्नाः पुनः योग गतिं गताः ॥४॥

पावकः	पावक	**वसिष्ठशापात्**	वसिष्ठके शापसे
पवमानः च	पवमान और	**उत्पन्नाः**	जन्म लिया था
शुचिः	शुचि (ये)	**पुनः**	फिर
इति	इस प्रकार	**योग गतिं**	योग-मार्गसे
अग्नयः	अग्नियोंने ही	**गताः**	(अपने अग्निरूपको) प्राप्त हो गये ॥४॥
पुरा	पूर्वकालमें		

अन्तर्धानो नभस्वत्यां हविर्धानमविन्दत ।
य इन्द्रमश्वहर्तारं विद्वानपि न जघ्निवान् ॥५॥

अन्तर्धानः नभस्वत्यां हविर्धानं अविन्दत यः इन्द्रं अश्व हर्तारं विद्वान् अपि न जघ्निवान् ॥५॥

अन्तर्धानः	अन्तर्धानने	**अश्व हर्तारं**	(अपने पिताके यज्ञके) अश्वको हरण करनेवाले
नभस्वत्यां	नभस्वति (नामकी पत्नी) में	**इन्द्रं**	इन्द्रको
हविर्धानं	हविर्धान (नामक पुत्रको)	**विद्वान् अपि**	जानते हुए भी
अविन्दत	प्राप्त किया	**न जघ्निवान्**	मारा नहीं ॥५॥
यः	जिसने		

राज्ञां वृत्तिं करादानदण्डशुल्कादिदारुणाम् ।
मन्यमानो दीर्घसत्रव्याजेन विससर्ज ह ॥६॥

राज्ञां वृत्तिं करादान दण्ड शुल्कादि दारुणां मन्यमानः दीर्घसत्र व्याजेन विससर्ज ह ॥६॥

करादान	कर लेना	**दीर्घसत्र व्याजेन**	दीर्घ कालीन यज्ञके बहानेसे
दण्ड शुल्कादि	जुर्माना, मूल्य लेना आदि	**ह विससर्ज**	सर्वथा छोड़ दिया ॥६॥
राज्ञां वृत्तिं	राजाओंकी वृत्तिको		
दारुणां	कठोर		
मन्यमानः	मानते हुए		

तत्रापि हंसं पुरुषं परमात्मानमात्मदृक् ।
यजंस्तल्लोकतामाप कुशलेन समाधिना ॥७॥

तत्र अपि हंसं पुरुषं परमात्मानं आत्मदृक् यजन् तत् लोकतां आप कुशलेन समाधिना ॥७॥

तत्र अपि	उस (यज्ञ कार्य) में (लगे रहनेपर) भी	**कुशलेन समाधिना**	निपुण समाधिके द्वारा
आत्मदृक्	आत्मदर्शीने	**तत् लोकतां**	उनके लोकको
हंसं पुरुषं	हंस स्वरूप पुरुष	**आप**	प्राप्त किया ॥७॥
परमात्मानं	परमात्माकी		
यजन्	आराधना करते हुए		

हविर्धानाद्धविर्धानी विदुरासूत षट् सुतान् ।
बर्हिषदं गयं शुक्लं कृष्णं सत्यं जितव्रतम् ॥८॥

हविर्धानात् हविर्धानी विदुर असूत षट् सुतान् बर्हिषदं गयं शुक्ल कृष्णं सत्यं जितव्रतं ॥८॥

विदुर	हे विदुरजी !	**कृष्णं**	कृष्ण
हविर्धानी	हविर्धानीने	**सत्यं**	सत्य
हविर्धानात्	हविर्धानिसे	**जितव्रतं**	(और) जितव्रत (ये)
बर्हिषदं	बर्हिषद	**षट् सुतान्**	छै पुत्रोंको
गयं	गय	**असूत**	जन्म दिया ॥८॥
शुक्लं	शुक्ल		

बर्हिषत् सुमहाभागो हाविर्धानिः प्रजापतिः ।
क्रियाकाण्डेषु निष्णातो योगेषु च कुरूद्वह ॥९॥

बर्हिषत् सुमहाभागः हाविर्धानिः प्रजापतिः क्रियाकाण्डेषु निष्णातः योगेषु च कुरूद्वह ॥९॥

कुरूद्वह	कुरु श्रेष्ठ (विदुर)	**क्रियाकाण्डेषु**	(यज्ञ आदि) कर्म-काण्डमें
हाविर्धानिः	हविर्धानीके पुत्र	**च योगेषु**	और योगाभ्यासमें
सुमहाभागः	महाभाग्यवान्	**निष्णातः**	कुशल थे ॥९॥
प्रजापतिः	प्रजापति		
बर्हिषत्	बर्हिषत्		

यस्येदं देवयजनमनु यज्ञं वितन्वतः ।
प्राचीनाग्रैः कुशैरासीदास्तृतं वसुधातलम् ॥१०॥

यस्य इदं देवयजनं अनु यज्ञं वितन्वतः प्राचीनाग्रैः कुशैः आसीत् आस्तृतं वसुधातलम् ॥१०॥

यस्य	जिनके	**अनु यज्ञं**	एकके बाद दूसरा यज्ञ
देवयजनं	देवाराधनके लिए		

वितन्वतः	विस्तार करते हुए	**कुशैः**	कुशोंसे
इदं वसुधातलं	यह सम्पूर्ण पृथ्वी	**आस्तृतं आसीत्**	ढँक गयी ॥१०॥
प्राचीनाग्रैः	पूर्वकी ओर अग्र भाग करके फैलाये गये		

सामुद्रीं देवदेवोक्तामुपयेमे शतद्रुतिम् ।
यां वीक्ष्य चारुसर्वाङ्गीं किशोरीं सुष्ठ्वलङ्कृताम् ।
परिक्रमन्तीमुद्वाहे चकमेऽग्निः शुकीमिव ॥११॥

सामुद्रीं देव देवोक्तां उपयेमे शतद्रुतिं यां वीक्ष्य चारुसर्वाङ्गीं किशोरीं सुष्ठु अलंकृतां परिक्रमन्तीं उद्वाहे चकमे अग्निः शुकीं इव ॥११॥

देव देवोक्तां	ब्रह्माजीके कहनेपर	**उद्वाहे**	विवाहके समय
सामुद्रीं	समुद्रकी कन्या	**परिक्रमन्तीं**	(अग्निकी) परिक्रमा करती हुई
शतद्रुतिं	शतद्रुतिसे	**वीक्ष्य**	देखकर
उपयेमे	विवाह किया	**अग्निः**	अग्निदेव
यां	जिस	**चकमे**	(ऐसे) चाहने लगे
चारुसर्वाङ्गीं	सर्वाङ्ग सुन्दरी	**शुकीं इव**	जैसे शुकीको देखकर (मोहित हो गये थे) ॥११॥
किशोरीं	किशोरी		
सुष्ठु अलंकृताम्	भली प्रकार अलंकृताको		

विबुधासुरगन्धर्वमुनिसिद्धनरोरगाः ।
विजिताः सूर्यया दिक्षु क्वणयन्त्यैव नूपुरैः ॥१२॥

विबुध असुर गन्धर्व मुनि सिद्ध नर उरगाः विजिताः सूर्यया दिक्षु क्वणयन्त्या एव नूपुरैः ॥१२॥

नूपुरैः	नूपुरोंकी	**दिक्षु**	दिशाओंके
क्वणयन्त्या एव	झंकारसे ही	**विबुध**	देवता,
सूर्यया	(उस) नवविवाहिताने	**असुर**	असुर,
		गन्धर्व	गन्धर्व,

मुनि	मुनि,	उरगाः	नागोंको
सिद्ध	सिद्ध,	विजिताः	जीत लिया ॥१२॥
नर	मनुष्य (और)		

प्राचीनबर्हिषः पुत्राः शतद्रुत्यां दशाभवन् ।
तुल्यनामव्रताः सर्वे धर्मस्नाताः प्रचेतसः ॥१३॥

प्राचीनबर्हिषः पुत्राः शतद्रुत्यां दश अभवन् तुल्यनामव्रताः सर्वे धर्मस्नाताः प्रचेतसः ॥१३॥

शतद्रुत्यां	शतद्रुतिकेसे	धर्मस्नाताः	धर्मज्ञ
प्राचीनबर्हिषः	प्राचीन बर्हिके	तुल्यनाम-	(वे) एकसे नाम
दश पुत्राः	दशपुत्र	व्रताः	(और) आचरणवाले
अभवन्	हुए	प्रचेतसः	प्रचेता
सर्वे	वे सब		(कहलाये, ॥१३॥

पित्राऽऽदिष्टाः प्रजासर्गे तपसेऽर्णवमाविशन् ।
दशवर्षसहस्राणि तपसाऽऽर्चंस्तपस्पतिम् ॥१४॥

पित्रा आदिष्टाः प्रजासर्गे तपसे अर्णवम् आविशन् दशवर्षसहस्राणि तपसा आर्चन् तपस्पतिम् ॥१४॥

प्रजासर्गे	सन्तान उत्पन्न करनेके लिए	दशवर्ष-सहस्राणि	दश हजार वर्ष तक
पित्रा	पिताका	तपसा	तप करते हुए
आदिष्टाः	आदेश पाकर	तपस्पतिम्	तपके स्वामी (श्री हरि) की
तपसे	तपस्या करनेके लिए	आर्चन्	आराधना की ॥१४
अर्णवं	समुद्रमें		
आविशन्	(उन सबने) प्रवेश किया (और)		

यदुक्तं पथि दृष्टेन गिरिशेन प्रसीदता ।
तद्धचायन्तो जपन्तश्च पूजयन्तश्च संयताः ॥१५॥

यत् उक्तं पथि दृष्टेन गिरिशेन प्रसीदता तत् ध्यायन्तः जपन्तः च पूजयन्तः च संयताः ॥१५॥

प्रसीदता	प्रसन्न होकर	**संयताः**	एकाग्र होकर
पार्थ दृष्टेन	मार्गमें दर्शन देनेवाले	**ध्यायन्तः**	ध्यान करते
गिरिशेन	श्रीमहादेवजीने	**च पयन्तः**	और जप करते
यत् उक्तं	जो बतलाया	**च पूजयन्तः**	तथा पूजन करते
तत्	उसीका		रहे ॥१५॥

विदुर उवाच-

प्रचेतसां गिरित्रेण यथाऽऽसीत्पथि सङ्गमः ।
यदुताह हरः प्रीतस्तन्नो ब्रह्मन् वदार्थवत् ॥१६॥

प्रचेतसां गिरित्रेण यथा आसीत् पथि सङ्गमः यत् उत आह हरः प्रीतः तत् नः ब्रह्मन् वद अर्थवत् ॥१६॥

पथि	मार्गमें	**प्रीतः**	प्रसन्न होकर
प्रचेतसां	प्रचेताओंका	**यत्**	जो
गिरित्रेण	श्रीमहादेवजीके साथ	**आह**	(उन्हें) कहा था
		ब्रह्मन्	हे ब्रह्म ऋषि !
यथा	जिस प्रकार	**अर्थवत्**	सारयुक्त
सङ्गमः	मिलन	**तत्**	वह
आसीत्	हुआ था	**नः**	मुझको
उत	और	**वद**	बतलाइये ॥१६॥
हरः	श्रीमहादेवजीने		

सङ्गमः खलु विप्रर्षे शिवेनेह शरीरिणाम् ।
दुर्लभो मुनयो दध्युरसङ्गाद्यमभीप्सितम् ॥१७॥

सङ्गमः खलु विप्रर्षे शिवेन इह शरीरिणां दुर्लभः मुनयः दध्युः असङ्गात् यं अभीप्सितम् ॥१७॥

विप्रर्षे	विप्रश्रेष्ठ !	**दुर्लभः**	दुर्लभ है ।
इह	इस लोकमें	**मुनयः**	मुनिजन
शरीरिणां	देह धारियोंके लिए	**असङ्गात्**	असंगतासे भी
शिवेन	श्रीमहादेवजीसे	**यं**	जिसे
सङ्गमः	मिलने	**अभीप्सितं**	परम प्राप्य
खलु	निश्चय ही	**दध्युः**	मानते हैं ॥१७॥

आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य लोककल्पस्य राधसे ।
शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान् भवः ॥१८॥

आत्मारामः अपि यः तु अस्य लोककल्पस्य राधसे शक्त्या युक्तः विचरति घोरया भगवान् भवः ॥१८॥

यः आत्मारामः	जो आत्माराम	**राधसे**	रक्षाके लिए
अपि	होकर भी	**घोरया**	घोर रूप वाली
भगवान् भवः	भगवान् शंकर तो	**शक्त्या युक्तः**	शक्ति (शिवा) के
अस्य	इस		साथ
लोककल्पस्य	लोक-सृष्टिकी	**विचरति**	घूमते रहते हैं ॥१८॥

मैत्रेय उवाच–

प्रचेतसः पितुर्वाक्यं शिरसाऽऽदाय साधवः ।
दिशं प्रतीचीं प्रययुस्तपस्याहृतचेतसः ॥१९॥

प्रचेतसः पितुः वाक्यं शिरसा आदाय साधवः दिशं प्रतीचीं प्रययुः तपसि आहृत चेतसः ॥१९॥

साधवः	साधु स्वभाववाले	**आहृत चेतसः**	चित्तका आदर
प्रचेतसः	प्रचेतागण		होनेसे
पितुः वाक्यं	पिताकी आज्ञाको	**प्रतीचीं दिशं**	पश्चिम दिशाकी
शिरसा आदाय	शिरोधार्यकर		ओर
तपसि	तपस्यामें	**प्रययुः**	चले गये ॥१९॥

समुद्रमुप विस्तीर्णमपश्यन् सुमहत्सरः ।
महन्मन इव स्वच्छं प्रसन्नसलिलाशयम् ॥२०॥

समुद्रं उप विस्तीर्णं अपश्यन् सुमहत् सरः महन् मन इव स्वच्छं प्रसन्न सलिलाशयं ॥२०॥

समुद्रं उप	समुद्रके समीप	**महन् मन इव**	(वह) सज्जनोंके मनके समान
विस्तीर्णं	विशाल		
सुमहत्	अत्यन्त महान्	**प्रसन्न**	निर्मल-
सरः	सरोवर	**सलिलाशयं**	जलसे भरा था ॥२०
अपश्यन्	(उन्होंने) देखा		

नीलरक्तोत्पलाम्भोजकह्लारेन्दीवराकरम् ।
हंससारसचक्राह्वकारण्डवनिकूजितम् ॥२१॥

नील रक्त उत्पल अम्भोज कह्लार इन्दीवर आकरम् हंस सारस चक्राह्व कारण्डव निकूजितम् ॥२१॥

नील रक्त उत्पल अम्भोज	नीले, लाल, श्वेत,	**हंस**	हंस,
		सारस	सारस,
		चक्राह्व	चक्रवाक् (चकवा),
कह्लार	गुलाबी कमल,	**कारण्डव**	टिटिहरी (आदि पक्षियों) के
इन्दीवर	नील कमलिनी		
आकरम्	से भरा था	**निकूजितं**	कूजनसे पूर्ण था ॥२१

मत्तभ्रमरसौस्वर्यहृष्टरोमलताङ्घ्रिपम् ।
पद्मकोशरजो दिक्षु विक्षिपत्पवनोत्सवम् ॥२२॥

मत्त भ्रमर सौस्वर्य हृष्ट रोम लताङ्घ्रिपं पद्मकोश रजः दिक्षु विक्षिपत् पवनोत्सवं ॥२२॥

मत्त भ्रमर सौस्वर्य मतवाले भ्रमरोंके सुन्दर स्वरोंसे
लताङ्घ्रिपं वृक्ष और लताओंके
हृष्ट रोम मानो रोमाञ्च हो रहे थे,
पद्मकोश रजः कमलकोषके परागको
दिक्षुः विक्षिपत् दिशाओंमें फैलाते हुए
पवनोत्सवं वायुका उत्सव हो रहा था ॥२२॥

तत्र गान्धर्वमाकर्ण्य दिव्यमार्गमनोहरम् ।
विसिस्म्यू राजपुत्रास्ते मृदङ्गपणवाद्यनु ॥२३॥

तत्र गान्धर्वं आकर्ण्य दिव्यमार्गमनोहरं विसिस्म्यू राजपुत्राः ते मृदङ्ग पणवादि अनु ॥२३॥

तत्र वहां
मृदङ्ग पणवादि अनु मृदङ्ग, नगाड़े आदि बाजोंके साथ
दिव्यमार्ग-मनोहरं दिव्य राग-राग-नियोंसे मनोहर
गान्धर्वं आकर्ण्य गायनको सुनकर
ते राजपुत्राः वे राजकुमार
विसिस्म्यू चकित हो गये ॥२३

तर्ह्येव सरसस्तस्मान्निष्क्रामन्तं सहानुगम् ।
उपगीयमानममरप्रवरं विबुधानुगैः ॥२४॥

तर्हि एव सरसः तस्मात् निष्क्रामन्तं सहानुगं उपगीयमानं अमर प्रवरं विबुधानुगैः ॥२४॥

तर्हि एव उसी समय
तस्मात् सरसः उस सरोवरसे
सहानुगं सेवकोंके साथ
निष्क्रामन्तं निकलते हुए
विबुधानुगैः देवताओंके सेवकों द्वारा
उपगीयमानं यशगान किये जाते
अमर प्रवरं देवताओंमें श्रेष्ठ ॥२४॥

तप्तहेमनिकायाभं शितिकण्ठं त्रिलोचनम् ।
प्रसादसुमुखं वीक्ष्य प्रणेमुर्जातकौतुकाः ॥२५॥

तप्त हेम निकायभं शितिकण्ठं त्रिलोचनं प्रसाद सुमुखं वीक्ष्य प्रणेमुः जातकौतुकाः ॥२५॥

तप्त हेम निकायभं	तपायी हुई स्वर्ण-राशिके समान कान्तिवाले	**प्रसाद सुमुखं**	कृपासे प्रसन्न मुख
शितिकण्ठं	नीलकण्ठ	**वीक्ष्य**	(भगवान् शङ्करको) देखकर
त्रिलोचनं	त्रिलोचन	**जातकौतुकाः**	कुतूहलसे भरे हुए
		प्रणेमुः	(राजकुमारोंने) प्रणाम किया ॥२५॥

स तान् प्रपन्नार्तिहरो भगवान्धर्मवत्सलः ।
धर्मज्ञान् शीलसम्पन्नान् प्रीतः प्रीतानुवाच ह ॥२६॥

स तान् प्रपन्नार्ति हरः भगवान् धर्मवत्सलः धर्मज्ञान् शीलसम्पन्नान् प्रीतः प्रीतान् उवाच ह ॥२६॥

प्रपन्नर्ति हरः	शरणागत भयहारी	**धर्मज्ञान्**	धर्मज्ञ
धर्मवत्सलः	धर्म सेवात्सल्य रखनेवाले	**शीलसम्पन्नान्**	शील सम्पन्न (उन राजकुमार) से
प्रीतः	प्रसन्न होकर	**ह**	निश्चय पूर्वक
सः भगवान्	वे भगवान् (शङ्कर)	**उवाच**	बोले ॥२६॥
प्रीतान्	अपने दर्शनोंसे) प्रसन्न हुए		

श्रीरुद्र उवाच–

यूयं वेदिषदः पुत्रा विदितं वश्चिकीर्षितम् ।
अनुग्रहाय भद्रं व एवं मे दर्शनं कृतम् ॥२७॥

यूयं वेदिषदः पुत्राः विदितं वः चिकीर्षितं अनुग्रहाय भद्रं वः एवं मे दर्शनं कृतं ॥२७॥

यूयं	तुम सब
वेदिषदः पुत्राः	प्राचीन वर्हिके पुत्र हो
वः चिकीर्षितं	तुम सब जो करना चाहते हो
विदितं	वह जानता हूँ
वः भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो
एवं	इस प्रकार
अनुग्रहाय	तुमपर कृपा करनेके लिए
मे दर्शनं कृतं	मैंने दर्शन दिया है ॥२७॥

यः परं रंहसः साक्षात्त्रिगुणाज्जीवसंज्ञितात् ।
भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्नः स प्रियो हि मे ॥२८॥

यः परं रंहसः साक्षात् त्रिगुणात् जीव संज्ञितात् भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्नः स प्रियः हि मे ॥२८॥

यः	जो
त्रिगुणात् रंहसः	तीन गुणों वेगवाली (प्रकृति) से
जीव संज्ञितात्	जीव संज्ञकसे
परं	परे
भगवन्तं वासुदेवं	भगवान् वासुदेवकी
साक्षात् प्रपन्नः	साक्षात् शरण लेता है ।
स हि मे प्रियः	वह निश्चय मुझे प्रिय है ॥२८॥

स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान्
विरिञ्चतामेति ततः परं हि माम् ।
अव्याकृतं भागवतोऽथ वैष्णवं
पदं यथाहं विबुधाः कलात्यये ॥२९॥

स्वधर्मनिष्ठुः शतजन्मभिः पुमान् विरिञ्चतामेति ततः परं हि मां अव्याकृतं भागवतः अथ वैष्णवं पदं यथा अहं विबुधाः कला अत्यये ॥२९॥

स्वधर्मनिष्ठः	अपने (वर्णाश्रम) धर्मका भली-भाँति निष्ठावान	**मां**	मुझे प्राप्त करता है
		अथ भागवतः	किन्तु जो भगवद् भक्त है
पुमान्	पुरुष	**अव्याकृतं**	(वह) अविनाशी
शतजन्मभिः	सौ जन्मोंके बाद	**वैष्णवं पदं**	विष्णु-पद (वैकुण्ठ) जाता है
विरिञ्चता मेति	ब्रह्माके पदको प्राप्त करता है।	**यथा अहं**	जैसे मैं (तथा)
		विबुधाः	देवता
हि ततः परं	और इससे भी अधिक पुण्य होनेपर	**कला अत्यये**	कल्पान्तसे (प्रलयके समय पावेंगे ॥२९॥

अथ भागवता यूयं प्रियाः स्थ भगवान् यथा ।
न मद्भागवतानां च प्रेयानन्योऽस्ति कर्हिचित् ॥३०॥

अथ भागवता यूयं प्रियाः स्थ भगवान् यथा न मत् भागवतानां च प्रेयान् अन्यः अस्ति कर्हिचित् ॥३०॥

अथ	क्योंकि	**च भागवतानां**	और भगवद् भक्तों-को
यूयं भागवता	तुम सब भगवान्के भक्त हो	**मत् अन्यः**	मुझसे अतिरिक्त
		कर्हिचित्	कोई भी
यथा भगवान् प्रियाः स्थ	जैसे (मुझे) भगवान प्यारे हैं	**प्रेयान् न अस्ति**	अतिप्रिय नहीं होता ॥३०॥

इदं विविक्तं जप्तव्यं पवित्रं मङ्गलं परम् ।
निःश्रेयसकरं चापि श्रूयतां तद्वदामि वः ॥३१॥

इदं विविक्तं जप्तव्यं पवित्रं मङ्गलं परं निःश्रेयसकरं च अपि श्रूयतां तत् वदामि वः ॥३१॥

इदं पवित्रं	यह बड़ा ही पवित्र	**जप्तव्यं**	जयनीय (स्तोत्र) है
परं मङ्गलं	परम मङ्गलमय	**अपि श्रूयतां**	इसे सुनो
च निःश्रेयसकरं	और कल्याणकारी		

तत् वः वदामि	वह तुमको बतलाता हूँ	**विविक्तं**	इसे एकाग्र चित्तसे (जप करना)॥३१॥

मैत्रेय उवाच–

इत्यनुक्रोशहृदयो भगवानाह ताञ्शिवः ।
बद्धाञ्जलीन् राजपुत्रान्नारायणपरो वचः ॥३२॥

इति अनुक्रोश हृदयः भगवान् आह तान् शिवः बद्ध अञ्जलिनान् राजपुत्रान् नारायणपरः वचः ॥३२॥

इति	इस प्रकार	**राजपुत्रान्**	राज पुत्रोंको
अनुक्रोश हृदयः	करुणापूर्ण हृदयवाले	**नारायणपरः**	नारायण-परायण
भगवान् शिवः	भगवान् शंकरने	**वचः आह**	वाणी (स्तोत्र) सुनाया ॥३२॥
बद्ध अञ्जलिनान्	हाथ जोड़कर खड़े हुए		

श्रीरुद्र उवाच–

जितं त आत्मविद्धुर्यस्वस्तये स्वस्तिरस्तु मे ।
भवता राधसा राद्धं सर्वस्मा आत्मने नमः ॥३३॥

जितं ते आत्मविद्धुर्य स्वस्तये स्वस्तिः अस्तु मे भवता राधसा राद्धं सर्वस्मै आत्मने नमः ॥३३॥

ते जितं	(भगवान) आपकी जय हो	**स्वस्तये**	कल्याणके लिए
		मे	मेरा
आत्मविद्-	आत्मज्ञानियोंमें	**स्वस्तिः**	कल्याण
धुर्य	श्रेष्ठोंके	**अस्तु**	हो*

---

* आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ सनकादि मेरा ही आश्रय लेते हैं, अतः उनके कल्याणके लिए मेरा कल्याण हो ।

भवता	आप	**आत्मने नमः**	आत्मस्वरूप
राधसा	आराधनीयोंके (भी)		(आपको)
राद्धं	आराधनीय है		नमस्कार ॥३३॥
सर्वस्मै	सबके		

नमः पङ्कजनाभाय भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने ।
वासुदेवाय शान्ताय कूटस्थाय स्वरोचिषे ॥३४॥

नमः पङ्कजनाभाय भूतसूक्ष्म इन्द्रिय आत्मने वासुदेवाय शान्ताय कूटस्थाय स्वरोचिषे ॥३४॥

पङ्कजनाभाय	पद्मनाभ (कारण) है ।	**कूटस्थाय**	कूटस्थ (संसारमें व्यापक होकर स्थित)
भूतसूक्ष्म	तन्मात्राएँ	**स्वरोचिषे**	स्वयं प्रकाश
इन्द्रिय आत्मने	इन्द्रियोंके नियामक (आप)	**वासुदेवाय**	हृषीकेश
		नमः	(आपको)
शान्ताय	शान्त स्वरूप		नमस्कार ॥३४॥

सङ्कर्षणाय सूक्ष्माय दुरन्तायान्तकाय च ।
नमो विश्वप्रबोधाय प्रद्युम्नायान्तरात्मने ॥३५॥

सङ्कर्षणाय सूक्ष्माय दुरन्ताय अन्तकाय च नमः विश्वप्रबोधाय प्रद्युम्नाय अन्तरात्मने ॥३५॥

सूक्ष्माय	आप ही सूक्ष्म (अव्यक्त)	**विश्वप्रबोधाय**	संसारके ज्ञानके दाता
दुरन्ताय	दुरन्त	**अन्तरात्मने**	बुद्धिके अधिष्ठाता
च अन्तकाय	और काल-स्वरूप संहार करनेवाले	**प्रद्युम्नाय**	प्रद्युम्न स्वरूप
		नमः	आपको
सङ्कर्षणाय	संकर्षण स्वरूप तथा		नमस्कार ॥३५॥

नमो नमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेन्द्रियात्मने ।
नमः परमहंसाय पूर्णाय निभृतात्मने ॥३६॥

नमो नमः अनिरुद्धाय हृषीकेश इन्द्रिय आत्मने नमः परमहंसाय पूर्णाय निभृत आत्मने ॥३६॥

इन्द्रिय आत्मने	इन्द्रियोंकी आत्मा (शक्ति)	**परमहंसाय**	परम हंस (सूर्यरूप)
हृषीकेश	हृषीकेश	**पूर्णाय**	परिपूर्ण
अनिरुद्धाय	अनिरुद्ध स्वरूप	**निभृत आत्मने**	अक्षय आत्मस्वरूप
नमो नमः	आपको बार-बार नमस्कार	**नमः**	आपको नमस्कार ॥३६॥

स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्यं शुचिषदे नमः ।
नमो हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे ॥३७॥

स्वर्ग अपवर्ग द्वाराय नित्यं शुचिषदे नमः नमः हिरण्य वीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे ॥३७॥

स्वर्ग	स्वर्ग	**चातुर्होत्राय**	चातुर्होत्र (यज्ञ) कर्मकी साधन
अपवर्ग	मोक्षके	**तन्तवे**	परम्पराके आधार (नग्नि है)
द्वाराय	द्वार	**नमः**	आपको नमस्कार ॥३७॥
नित्यं शुचिषदे	निरन्तर पवित्र हृदयमें रहने		
नमः	आपको नमस्कार		
हिरण्य वीर्याय	सुवर्ण युक्त वीर्यसे मुक्त (आप)		

नम ऊर्ज इषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे ।
तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरसात्मने ॥३८॥

नमः ऊर्जे इषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरस आत्मने ॥३८॥

ऊर्जे	पितरों (तथा)	**त्रय्याः पतये**	तीनों वेदोंके स्वामी
इषे	देवताओंके पोषक (सोमरूप)	**नमः**	आपको नमस्कार
		च	तथा

जीवानां तृप्तिदाय	प्राणियोंको तृप्ति-देनेवाले	**सर्वरस आत्मने नमः**	सर्वरस (जल) रूप आपको नमस्कार ॥३८॥

सर्वसत्त्वात्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे ।
नमस्त्रैलोक्यपालाय सहओजोबलाय च ॥३९॥

सर्वसत्व आत्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे नमः त्रैलोक्यपालाय सह ओजः बलाय च ॥३९॥

सर्वसत्व आत्मदेहाय	समस्त प्राणियोंके आत्मा और शरीर (रूप)	**सह ओजः च बलाय**	मानसिक बल ऐन्द्रिक बल और शारीरिक शक्ति (वायु) स्वरूप
विशेषाय	पृथ्वी रूप		
स्थवीयसे	विराट् स्वरूप		
त्रैलोक्यपालाय	त्रिलोकीकी रक्षा करनेवाले	**नमः**	आपको नमस्कार ॥३९॥

अर्थलिङ्गाय नभसे नमोऽन्तर्बहिरात्मने ।
नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे ॥४०॥

अर्थ लिङ्गाय नभसे नमः अन्तः बहिः आत्मने नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे ॥४०॥

अर्थ लिङ्गाय	अर्थके चिह्न (शब्द) के	**पुण्याय लोकाय**	पवित्र (स्वर्गादि) लोक स्वरूप (तथा)
नभसे	(आधार) आकाश-रूप	**अमुष्मै भूरिवर्चसे**	उन (लोकों) की अत्यन्त तेस्वितारूप
अन्तः बहिः आत्मने	बाहर-भीतर (के) आधार	**नमः**	आपको नमस्कार ॥४०॥

प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे ।
नमोऽधर्मविपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च ॥४१॥

प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृ देवाय कर्मणे नमः अधर्म विपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च ॥४१॥

पितृ	पितरोंके लिए (संतान परंपरा बनाये रखनेको)	**अधर्म**	
		विपाकाय	अधर्मके परिणाम रूप
प्रवृत्ताय	प्रवृत्तिरूप (तथा)	**दुःखदाय**	दुःख देनेवाले
देवाय	देवताओंके लिए	**च**	तथा
निवृताय	निवृत्ति रूप	**मृत्यवे**	मृत्यु रूप
कर्मणे	कर्म स्वरूप	**नमः**	आपको नमस्कार ॥४१॥

नमस्त आशिषामीश मनवे कारणात्मने ।
नमो धर्माय बृहते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
पुरुषाय पुराणाय सांख्ययोगेश्वराय च ॥४२॥

नमः ते आशिषां ईश मनवे कारण आत्मने नमः धर्माय बृहते कृष्णाय अकुण्ठ मेधसे पुरुषाय पुराणाय सांख्य-योग ईश्वराय च ॥४२॥

आशिषां ईश	ईप्सितोंके स्वामी	**पुराणाय**	सनातन
ते कारण		**पुरुषाय**	पुरुष
आत्मने	आप कारण स्वरूप	**च**	तथा
मनवे	आदि मनुको	**सांख्य-योग**	सांख्य (तत्त्व-ज्ञान) तथा योग (साधन) के
नमः	नमस्कार		
बृहते	महान्		
धर्माय	धर्म स्वरूप	**ईश्वराय**	स्वामी
अकुण्ठ मेधसे	अकुंठित प्रज्ञावाले	**नमः**	आपको नमस्कार ॥४२॥
कृष्णाय	श्रीकृष्ण		

शक्तित्रयसमेताय मीढुषेऽहंकृतात्मने ।
चेतआकूतिरूपाय नमो वाचोविभूतये ॥४३॥

शक्तित्रय समेताय मीढुषे अहंकृत आत्मने चेत आकूति रुपाय नमः वाचः विभूतये ॥४३॥

शक्तित्रय	तीनों (उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय) शक्तियोंसे	**रुपाय**	ज्ञान और क्रिया स्वरूप हैं
समेताय	भली प्रकार मुक्त	**वाचः**	वाणीके
अहंकृत आत्मने	अहंकारके अधिष्ठाता	**विभूतये**	वैभव (विद्या) है
मीढुषे	रुद्ररूप	**नमः**	आपको नमस्कार ॥४३॥
चेत आकूति			

दर्शनं नो दिदृक्षूणां देहि भागवतार्चितम् ।
रूपं प्रियतमं स्वानां सर्वेन्द्रियगुणाञ्जनम् ॥४४॥

दर्शनं नः दिदृक्षूणां देहि भागवत अर्चितम् रूपं प्रियतमं स्वानां सर्व इन्द्रिय गुणाञ्जनम् ॥४४॥

भागवत	भक्तों द्वारा	**गुणाञ्जनं**	गुणोंसे तृप्त करने-वाले
अर्चितं	पूजित	**रूपं**	(अपने) रूपका
स्वानां	अपने जनोंको	**नः**	हम
प्रियतमं	अत्यन्त प्रिय	**दिदृक्षूणां**	दर्शनोत्सुकोंको
सर्व इन्द्रिय	सभी इन्द्रियोंके	**दर्शनं देहि**	दर्शन दीजिए ॥४४॥

स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं सर्वसौन्दर्यसंग्रहम् ।
चार्वायतचतुर्बाहुं सुजातरुचिराननम् ॥४५॥

स्निग्धं प्रावृड् घनश्यामं सर्वसौन्दर्य संग्रहं चारु आयत चतुर्बाहुं सुजात रुचिर आननं ॥४५॥

प्रावृड्	वर्षाकालीन	**आयत**	विशाल
स्निग्ध	सुचिक्कन	**चतुर्बाहुं**	चतुर्भुज
घनश्यामं	मेघके समान श्याम	**सुजात**	उत्तम भंगीवाला
सर्वसौन्दर्यं	सम्पूर्ण सौन्दर्योंका	**रुचिर**	सुन्दर
संग्रहं	सार सर्वस्व	**आननं**	मुख ॥४५॥
चारु	सुन्दर		

पद्मकोशपलाशाक्षं सुन्दरभ्रु सुनासिकम् ।
सुद्विजं सुकपोलास्यं समकर्णविभूषणम् ॥४६॥

पद्मकोश पलाश अक्षं सुन्दरभ्रू सुनासिकं सुद्विजं सुकपोल आस्यं समकर्ण विभूषणं ॥४६॥

पद्मकोश	कमलके भीतरी भाग	**सुद्विजं**	सुन्दर दांत
पलाश	(के समान) लाल	**विभूषणं**	भूषण (कुंडल) युक्त
अक्षं	नेत्रों	**समकर्ण**	बराबर कानोंवाला
सुन्दरभ्रू	सुन्दर भौंहों	**सुकपोल**	सुन्दर कपोलोंवाला
सुनासिकं	सुन्दर नासिकवाला	**आस्यं**	मुख (दिखलापमे) ॥४६॥

प्रीतिप्रहसितापाङ्गमलकैरुपशोभितम् ।
लसत्पङ्कजकिञ्जल्कदुकूलं मृष्टकुण्डलम् ॥४७॥

प्रीति प्रहसित अपाङ्गं अलकैः उपशोभितं लसत् पङ्कज किञ्जल्क दुकूलं मृष्ट कुण्डलं ॥४७॥

प्रीति	प्रसन्नतासे	**किञ्जल्क**	परागके समान
प्रहसित	उन्मुक्त हास्य युक्त	**दुकूलं**	वस्त्र
अपाङ्गम्	कटाक्ष पूर्वक देखते	**लसत्**	सुशोभित है
अलकैः	अलकोंसे	**मृष्ट**	चमकते
उपशोभितं	घिरे सुशोभित	**कुण्डलं**	कुण्डल है ॥४७॥
पङ्कज	कमलके		

स्फुरत्किरीटवलयहारनूपुरमेखलम् ।
शङ्खचक्रगदापद्ममालामण्युत्तमर्द्धिमत् ॥४८॥

स्फुरत् किरीट वलय हार नुपूर मेखलं शंख चक्र गदा पद्म माला मणि उत्तम ऋद्धिमत् ॥४८॥

किरीट	मुकुट,
वलय	कङ्कण,
हार	हार,
नूपुर	नूपुर,
मेखलं	करधनी (पहिने)
शंख चक्र गदा	
पद्म	शंख, चक्र, गदा,पद्म
उत्तम	श्रेष्ठ
ऋद्धिमत	बहुमूल्य
मणि माला	मणियोंकी माला है ।।४८।।

सिंहस्कन्धत्विषो बिभ्रत्सौभगग्रीवकौस्तुभम् ।
श्रियानपायिन्या क्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत् ।।४९।।

सिंहस्कन्धत्विषः बिभ्रत् सौभग ग्रीव कौस्तुभं श्रिया अनपायिन्या क्षिप्त निकष अश्मे उरसा उल्लसत् ।।४९।।

सिंह-स्कन्धत्विषः	सिंहके समान कान्तिमान कंधे
सौभग बिभ्रत्	(जो) सौभाग्य धारण करते हैं
ग्रीव	कण्ठमें
कौस्तुभं	कौस्तुभ-मणि है
अनपायिन्या	अनन्या
श्रिया	लक्ष्मीसे
क्षिप्त	युक्त
निकष अश्मे	कसौटीके पत्थरके समान
उरसा	वक्ष स्थल
उल्लसत्	अत्यन्त शोभित है ।।४९।।

पूररेचकसंविग्नवलिवल्गुदलोदरम् ।
प्रतिसंक्रामयद्विश्वं नाभ्याऽऽवर्तगभीरया ।।५०।।

पूर रेचक संविग्न वलि वल्गु दल उदरं प्रति संक्रामयत् विश्वं नाभ्या आवर्त्त गभीरया ।।५०।।

पूर रेचक संविग्न	श्वांसके आने-जानेसे हिलता हुआ
वलि	त्रिवली वाला
वल्गु	पतला
दल उदरम्	(पीतलके) पत्तेके समान उदर

आवर्त्त		**विश्वं**	(अपनेसे उत्पन्न)
गभीरया	जलावर्तके समान गंभीर		विश्वको
नाभ्या	नाभिसे	**प्रति संक्रामयत्**	(मानो अपने ही में) लीन करता है ॥५०॥

श्यामश्रोण्यधिरोचिष्णु दुकूलस्वर्णमेखलम् ।
समाचार्वङ्घ्रिजङ्घोरुनिम्नजानुसुदर्शनम् ॥५१॥

श्यामश्रोणि अधिरोचिष्णु दुकूल स्वर्णमेखलं सम चारु अङ्घ्रि जङ्घा उरु निम्नजानु सुदर्शनं ॥५१॥

श्यामश्रोणि	श्याम वर्ण नितम्ब भागमें	**सम चारू अङ्घ्रि**	समान और सुन्दर चरण,
अधिरोचिष्णु	अतिशयसे चमकते हुए	**जङ्घा**	पिण्डली,
		उरु	जांघे,
दुकूल	पीताम्बर	**निम्नजानु**	घुटने
स्वर्णमेखलं	(और) स्वर्ण-मेखला है	**सुदर्शनं**	देखनेमें सुन्दर हैं ॥५१॥

पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा
नखद्युभिर्नोऽन्तरघं विधुन्वता ।
प्रदर्शय स्वीयमपास्तसाध्वसं
पदं गुरो मार्गगुरुस्तमोजुषाम् ॥५२॥

पदा शरत्पद्म पलाश रोचिषा नखद्युभिः नः अन्तः अघं विधुन्वता प्रदर्शय स्वीयं अपास्त साध्वसं पदं गुरो मार्ग गुरुः तमोजुषां ॥५२॥

रोचिषा	कान्तिवाले	**साध्वसं**	संकट
पदा	चरणोंके	**अपास्त**	मिटानेवाले
नखद्युभिः	नखोंकी कान्तिसे	**स्वीयं पदं**	अपने स्वरूपका
अन्तः अघं	हृदयके अन्धकारको	**प्रदर्शय**	दर्शन कराइये
विधुन्वता	दूर करते	**गुरो**	हे जगद्गुरु

तमोजुषां	अज्ञानावृत (हम) लोगोंको	**मार्ग गुरुः**	(अपनी) प्राप्तिका मार्ग बतानेवाले गुरु आप हैं ॥५२॥

एतद्रूपमनुध्येयमात्मशुद्धिमभीप्सताम् ।
यद्भक्तियोगोऽभयदः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥५३॥

एतद् रूपं अनुध्येयं आत्मशुद्धि अभीप्सतां यद् भक्तियोगः अभयदः स्वधर्मं अनुतिष्ठतां ॥५३॥

आत्मशुद्धि	चित्तकी शुद्धिकी	**स्वधर्मं**	अपने धर्मपर
अभीप्सतां	अभिलाषा रखने वालोंको	**अनुतिष्ठतां**	बराबर स्थित रहने वालेको
एतद् रूपं	यह रूप	**भक्तियोगः**	भक्तियोग
अनुध्येयं	निरन्तर ध्यानके योग्य है	**अभयदः**	अभय देनेवाला है ॥५३॥
यद्	क्योंकि		

भवान् भक्तिमता लभ्यो दुर्लभः सर्वदेहिनाम् ।
स्वाराज्यस्याप्यभिमत एकान्तेनात्मविद्गतिः ॥५४॥

भवान् भक्तिमता लभ्यः दुर्लभः सर्वदेहिनां स्वाराज्यस्य अपि अभिमतः एकान्तेन आत्मविद् गतिः ॥५४॥

भवान्	आप	**अभिमतः**	(परम) अभीष्ट हैं
सर्वदेहिनां	सभी देहधारियोंको	**आत्मविद्**	आत्मज्ञानियोंकी
दुर्लभः	दुर्लभ हैं ।	**एकान्तेन**	ऐकान्तिक (एकमात्र)
स्वाराज्यस्य	त्रिलोकेशत्व प्राप्त (इन्द्र)	**गतिः**	गति हैं
		भक्तिमता	भक्तिमानोंको आप
अपि	को भी	**लभ्यः**	प्राप्त होते हैं ॥५४॥

तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया ।
एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत्पादमूलं विना बहिः ॥५५॥

तं दुराराध्यं आराध्य सतां अपि दुरापया एकान्त भक्त्या कः वाञ्छेत् पादमूलं विना बहिः ॥५५॥

सतां अपि	सत्पुरुषोंके लिए भी
दुराराध्यं	कठिनतासे प्रसन्न होनेवाले
तं	इन (भगवान्) को
दुरापया	कठिनतासे प्राप्त होनेवाली
एकान्त भक्त्या	अनन्य भक्तिसे
आराध्य	प्रसन्न करके
कः	ऐसा कौन होगा
पादमूलं विना	(जो) उनके चरण-तलके अतिरिक्त
बहिः	हाहरकी (सांसारिक वस्तु)
वाञ्छेत्	चाहेगा ॥५५॥

यत्र निर्विष्टमरणं कृतान्तो नाभिमन्यते ।
विश्वं विध्वंसयन् वीर्यशौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा ॥५६॥

यत्र निर्विष्टं अरणं कृतान्तः न अभिमन्यते विश्वं विध्वंसयन् वीर्य शौर्यं विस्फुरद् भ्रुवा ॥५६॥

वीर्यं	पराक्रम (तथा)
शौर्यं	शूरतासे
विस्फुरद्	फड़कती
भ्रुवा	भौंह वाला
कृतान्तः	काल
विश्वं	
विध्वंसयन्	संसारका विनाश करता हुआ
यत्र	जहां (जिन चरणों-में)
अरणं	रक्षक (मानकर)
निर्विष्टं	प्रविष्ट हुए (शरण लिये) को
न अभिमन्यते	(अपने अधिकारमें) नहीं मानता ॥५६॥

क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥५७॥

क्षणार्धं न अपि तुलये न स्वर्गं न अपु नर्भवं भगवत् सङ्गि सङ्गस्य मर्त्यानां किं उत आशिषः ॥५७॥

भगवत् सङ्गि	भगवान्‌के भक्तोंका	**तुलये**	तुलना करता हूँ
सङ्गस्य	सत्सङ्गके	**मर्त्यानां**	(फिर) मृत्युलोक-
क्षणार्धे अपि	आधे क्षणसे भी		की
न स्वर्गम्	न स्वर्गसे	**आशिषः उत**	आशाओंका तो
न अपुनर्भवं	न मोक्षसे	**किं**	कहना क्या ॥५७॥

अथानघाङ्घ्रे स्तव कीर्तितीर्थयो-
रन्तर्बहिःस्नानविधूतपाप्मनाम् ।
भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां
स्यात्सङ्गमोऽनुग्रह एष नस्तव ॥५८॥

अथ अनघ अङ्घ्रेः तव कीर्ति तीर्थयोः अन्तः बहिः स्नान विधूत पाप्मनां भूतेषु अनुक्रोश सुसत्त्व शीलिनां स्यात् सङ्गमः अनुग्रहः एष नः तव ॥५८॥

अथ	अतः	**भूतेषु**	प्राणियोंके प्रति
अनघ अङ्घ्रेः	पापहारी-चरण	**अनुक्रोश**	अनुकम्पा करते हैं
	कमलवाले (प्रभु) !	**सुसत्व**	उत्तम सात्विक
तव कीर्ति	तुम्हारी कीर्त्ति रूप	**शीलिनां**	स्वभाववाले हैं
तीर्थयोः	तीर्थमें	**नः**	हमारा
अन्तः बहिः	आन्तरिक और	**सङ्गमः**	(उनसे) सम्पर्क
	बाहरी	**स्यात्**	हो
स्नान	स्नान करके	**एष**	यही
विधूत पाप्मनां	(जिन्होंने सब)	**तव**	आपकी
	पापोंको धो डाला है	**अनुग्रहः**	कृपा होगी ॥५८॥

न यस्य चित्तं बहिरर्थविभ्रमं
तमोगुहायां च विशुद्धमाविशत् ।
यद्भक्तियोगानुगृहीतमञ्जसा
मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिम् ॥५९॥

न यस्य चित्तं बहिः अर्थ विभ्रमं तमः गुहायां च विशुद्धं आविशत् यत् भक्तियोग अनुगृहीतं अञ्जसा मुनिः विचष्टे ननु तत्र ते गतिम् ॥५९॥

यस्य	जिसका	**अनुगृहीतं**	अनुग्रहसे
चित्तं	चित्त	**अञ्जसा**	सरलतासे
तमः गुहायां	अन्धकार पूर्ण गुफा रूपी	**विशुद्धं**	अत्यन्त शुद्ध हो गया है
वहिः च	बाहरी (शारीरिक)	**ननु**	निश्चय
अर्थं विभ्रमं	पदार्थोंके विभ्रम (मनोमल)	**तत्र**	उस (चित्त) में
		ते	आपकी
च	में	**गतिं**	स्वरूपको
न आविशत्	नहीं प्रवेश करता	**मुनिः**	मननशीलजन
यत्	क्योंकि	**विचष्टे**	साक्षात् करते हैं ॥५९॥
भक्तियोग	भक्ति-योगके		

यत्रेदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन्नवभाति यत् ।
तत् त्वं ब्रह्म परं ज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ॥६०॥

यत्र इदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन् अवभाति यत् तत् त्वं ब्रह्म परं ज्योतिः आकाशं इव विस्तृतम् ॥६०॥

यत्र	जिसमें	**आकाशं इव**	आकाशकी तरह
इदं विश्वम्	यह सम्पूर्ण जगत्	**विस्तृतम्**	व्यापक
व्यज्यते	दिखाई देता है	**परं ज्योतिः**	परम प्रकाशक
यत्	जो	**तत् ब्रह्म**	वह ब्रह्म-तत्त्व
विश्वस्मिन्	सम्पूर्ण जगत्में	**त्वं**	आप ही हैं ॥६०॥
अवभाति	भास रहा है		

यो मायया इदं पुरुरूपयासृजद्
बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः ।
यद्भेदबुद्धिः सदिवात्मदुःस्थया
तमात्मतन्त्रं भगवन् प्रतीमहि ॥६१॥

यः मायया इदं पुरुरूपया असृजत् बिर्भर्त्ति भूयः क्षपयति अविक्रियः यद् भेदबुद्धिः सद् इव आत्मदुःस्थया तं आत्मतन्त्रं भगवन् प्रतीमहि ॥६१॥

यः अविक्रियः	जो निर्विकार रहते हुए	**यद् भेदबुद्धिः**	जिस (माया) से भेद बुद्धि होती है
पुरुरूपया	अनेक रूपवाली	**आत्मदुःस्थया**	(पर) आत्मामें वह (माया) कठिनाईसे (अविद्या) से स्थित है
मायया	मायासे		
इदं असृजत्	इस विश्वकी रचना करते हैं,		
बिर्भर्त्ति	पालन करते हैं,		
भूयः क्षपयति	फिर संहार करते हैं	**तं**	उस
सद् इव	जैसे यह कोई सद्-वस्तु	**भगवन्**	भगवान ! (आपको)
		आत्मतन्त्रम्	(हम) स्वतन्त्र
		प्रतीमहि	समझते हैं ॥६१॥

क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः
श्रद्धान्विताः साधु यजन्ति सिद्धये ।
भूतेन्द्रियान्तःकरणोपलक्षितं
वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः ॥६२॥

क्रिया कलापैः इदं एव योगिनः श्रद्धा अन्विताः साधु यजन्ति सिद्धये भूत इन्द्रिय अन्तःकरण उपलक्षितं वेदे च तन्त्रे च ते एव कोविदाः ॥६२॥

भूत इन्द्रिय	पञ्चभूत इन्द्रिय	**इदं एव**	(आपके) इसी (सगुण रूपका)
अन्तःकरण	(और) अन्तः-करणके	**श्रद्धा अन्विताः**	श्रद्धा पूर्वक
उपलक्षितं	उपलक्षित होता है	**साधु यजन्ति**	भली-भाँति पूजन करते हैं
योगिनः	(जो) कर्मयोगी है		
सिद्धये	सिद्धिकी प्राप्तिके लिए	**ते एव**	वे ही
		वेदे च	वेदोंमें,
क्रिया कलापैः	तरह-तरहके कर्मोंके द्वारा	**तन्त्रे च**	तन्त्रोंमें भी
		कोविदाः	निपुण हैं ॥६२॥

त्वमेक आद्यः पुरुषः सुप्तशक्ति-
स्तया रजःसत्त्वतमो विभिद्यते ।
महानहं खं मरुदग्निवार्धराः
सुरर्षयो भूतगणा इदं यतः ॥६३॥

त्वं एक आद्यः पुरुषः सुप्तशक्तिः तया रजः सत्त्व तमः विभिद्यते महान् अहं खं मरुत् अग्नि वारि धराः सुर ऋषयः भूतगणाः इदं यतः ॥६३॥

त्वं एक	आप ही एक मात्र	**खं**	आकाश,
आद्यः पुरुषः	आदिपुरुष हैं	**मरुत्**	वायु,
सुप्तशक्ति	(सृष्टिसे पूर्व आपकी, शक्ति सोई रहती है	**अग्नि**	अग्नि,
		वारि	जल,
तया	उसी (शक्ति) से	**धराः**	पृथ्वी,
रजः सत्त्व तमः	रजो गुण सत्वगुण, तमोगुण	**सुर**	देवता,
		ऋषयः	ऋषिगण
विभिद्यते	(का) भेद होता है	**भूतगणाः**	प्राणि वर्ग (उत्पन्न होते हैं)
तमः	जिनसे		
महान्	महत्तत्त्व	**यतः**	जिनसे
अहं	अहंकार,	**इदं**	यह जगत है ॥६३॥

सृष्टं स्वशक्त्येदमनुप्रविष्ट-
श्चतुर्विधं पुरमात्मांशकेन ।
अथो विदुस्तं पुरुषं सन्तमन्त-
र्भुङ्क्ते हृषीकैर्मधु सारघं यः ॥६४॥

सृष्टं स्वशक्ति इदं अनुप्रविष्टः चतुर्विधं पुरं आत्म अंशकेन अथो विदुः तं पुरुषं सन्तं अन्तः भुङ्क्ते हृषीकैः मधु सारघं यः ॥६४॥

स्वशक्ति सृष्टम्	(फिर) अपनी शक्तिसे रचे गये	**चतुर्विधं**	चार प्रकारके (जरायुज, अण्डज, स्वेदज उद्भिज्ज)
इदं	इन		

पुरं	नगर (शरीरमें)
आत्म अंशकेन	अपने अंशसे (आपने)
अनुप्रविष्टः	प्रवेश किया है
अथो	अतः
तं	उस (अंश) को
पुरुषं	जीव
विदुः	जाना गया है
यः	जो
अन्तः सन्तं	अन्तःकरणमें रहकर
हृषीकैः	इन्द्रियों द्वारा
सारघं	मधु मक्खियों द्वारा
मधु	(स्वयं एकत्र) मधु (के समान)
भुङ्क्ते	भोग करता है ॥६४

स एष लोकानतिचण्डवेगो
विकर्षसि त्वं खलु कालयानः ।
भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो
घनावलीर्वायुरिवाविषह्यः ॥६५॥

स एष लोकान् अतिचण्ड वेगः विकर्षसि त्वं खलु कालयानः भूतानि भूतैः अनुमेय तत्त्वः घन अवलीः वायुः इव अविषह्यः ॥६५॥

स एष	वही यह
खलु	निश्चय
त्वं	आप ही
कालयानः	काल स्वरूप होकर
अविषह्यः	असह्य
अतिचण्ड वेगः	(अपने) प्रचण्ड वेगसे
भूतानि भूतैः	पृथ्वी आदि भूतोंको अन्य भूतोंसे
लोकान्	लोकोंको
विकर्षसि	खींचते (प्रलय करते) हैं ।
वायुः	
घन अवलीः इव	जैसे वायु मेघ समूहको
अनुमेय तत्त्वः	(आपका) स्वरूप अनुमानसे जाना जाता है (प्रत्यक्ष नहीं है ।) ॥६५॥

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया
प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे
क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥६६॥

प्रमत्तं उच्चैः इति कृत्य चिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसं त्वं अप्रमतः सहसा अभिपद्यसे क्षुत् लोलिहानः अहिः इव आखुं अन्तकः ॥६६॥

उच्चैः	अत्यन्त
प्रमत्तं	प्रमादग्रस्त (पुरुष)
इति कृत्य	यह करना है
चिन्तया	(इस) चिन्तासे
प्रवृद्धलोभं	इसका लोभ बढ़ गया है
विषयेषु लालसम्	विषयोंकी ही लालसा लगी रहती है।
त्वं	आप
अप्रमत्तः	सदा सजग रहनेवाले
अन्तकः	काल भगवान्
सहसा	अचानक
अभिपद्यसे	आ ढूँढ़ते हैं
आखुम्	चूहेपर
क्षुत् लेलिहानः	भूखसे जीभ लपलपाते
अहिः इव	सर्पके समान ॥६६॥

कस्त्वत्पदाब्जं विजहाति पण्डितो
यस्तेऽवमानव्ययमानकेतनः ।
विशङ्क्यास्मद्गुरुरर्चति स्म यद्
विनोपपत्तिं मनवश्चतुर्दश ॥६७॥

कः त्वत् पदाब्जं विजहाति पण्डितः यः ते अवमान व्ययमान केतनः विशङ्क्या अस्मद् गुरुः अर्चति स्म यत् विना उपपत्तिं मनवः चतुर्दश ॥६७॥

यः ते	जो आपकी
अवमान	अवहेलना (के कारण)
केतनः	अपनी आयु
व्ययमान	(व्यर्थ) व्यय होती माननेवाला
कः	ऐसा कौन है (जो)
त्वत् पदाब्जं	तुम्हारे चरण-कमलको
विजहाति	त्यागेगा
विशङ्क्या	(कालकी) अशंकासे
अस्मद् गुरुः	हमारे पिता (ब्रह्माजी)
चतुर्दश मनवः	(और) चौदह (स्वायुम्भव आदि) मनुओंने
उपपत्तिं विना	बिना किसी विचारके (केवल युद्धासे) ही
यत्	जिनकी
अर्चति स्म	अर्चना करते हैं ॥६७॥

अथ त्वमसि नो ब्रह्मन् परमात्मन् विपश्चिताम् ।
विश्वं रुद्रभयध्वस्तमकुतश्चिद्भया गतिः ॥६८॥

अथ त्वं असि नः ब्रह्मन् परमात्मन् विपश्चितां विश्वं रुद्र भय ध्वस्तं अकुतः चिद्भया गतिः ॥६८॥

अथ	अतः	**नः**	हम लोगोंको तो
ब्रह्मन्	हे ब्रह्मन्	**परमात्मन्**	हे परमात्मन्
विश्वं	सम्पूर्ण जगत्	**अकुतः**	
रुद्र भय ध्वस्तं	रुद्र रूप कालके भयसे व्याकुल है	**चिद्भया**	सर्वथा भयशून्य
		गतिः	आप ही आश्रय हैं ॥६८॥
विपश्चितां	इस तत्त्वके जानने-वाले		

इदं जपत भद्रं वो विशुद्धा नृपनन्दनाः ।
स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो भगवत्यर्पिताशयाः ॥६९॥

इदं जपत भद्रं वः विशुद्धं नृपनन्दनाः स्वधर्मम् अनुतिष्ठन्तः भगवति अर्पित आशयाः ॥६९॥

नृपनन्दनाः	हे राजकुमारो !	**अर्पित आशयाः**	चित्त समर्पण करके
वः भद्रं	तुम्हरा कल्याण हो	**इदं**	इस
स्वधर्मम्	अपने धर्मपर	**विशुद्धं**	अत्यन्त शुद्ध (स्तोत्रका)
अनुतिष्ठन्तः	बराबर स्थिर रहते	**जपत**	जप करो ॥६९॥
भगवति	भगवानमें		

तमेवात्मानमात्मस्थं सर्वभूतेष्ववस्थितम् ।
पूजयध्वं गृणन्तश्च ध्यायन्तश्चासकृद्धरिम् ॥७०॥

तं एव आत्मानं आत्मस्थं सर्वभूतेषु अवस्थितं पूजयध्वं गृणन्तः च ध्यायन्तः च असकृत् हरिं ॥७०॥

आत्मस्थं	अपने अन्तःकरणमें स्थित
तं एव	उन्हीं
आत्मानं	आत्म स्वरूप
सर्वभूतेषु	सब प्राणियोंमें
अवस्थितं	स्थित
हरिम्	श्रीहरिका
असकृत्	निरन्तर
गृणन्तः च	जप करते हुए तथा
ध्यायन्तः च	ध्यान करते हुए भी
पूजयध्वं	पूजन करो ॥७०॥

योगादेशमुपासाद्य धारयन्तो मुनिव्रताः ।
समाहितधियः सर्व एतदभ्यसताद्दताः ॥७१॥

योग आदेशं उप आसाद्य धारयन्तः मुनिव्रताः समाहितधियः सर्वे एतत् अभ्यसत आद्दताः ॥७१॥

योग आदेशम्	(भगवान्‌से) योग करानेवाले इस आदेशको
उप आसाद्य	प्राप्त करके
धारयन्तः	(मनसे) धारण करते हुए
मुनिव्रताः	मुनियोंके व्रतका पालन करते हुए
समाहितधियः	एकाग्र बुद्धिसे
आद्दताः	आदर पूर्वक
सर्वे	सब लोग
एतत्	इसका
अभ्यसत	अभ्यास करो ॥७१॥

इदमाह पुरास्माकं भगवान् विश्वसृक्पतिः ।
भृग्वादीनामात्मजानां सिसृक्षुः संसिसृक्षताम् ॥७२॥

इदं आह पुरा अस्माकं भगवान् विश्वसृक्पतिः भृगु आदीनां आत्मजानां सिसृक्षुः संसिसृक्षतां ॥७२॥

इदं	यह स्तोत्र
पुरा	पूर्व कालमें
विश्वसृक्पतिः	प्रजापतियोंके पति
सिसृक्षुः	सृष्टि करनेकी इच्छासे
भगवान्	भगवान् ब्रह्माजीने
संसिसृक्षतां	सृष्टि करनेमें लगनेवाले
अस्माकं	हम
भृगु आदीनां	भृगु आदिकों
आत्मजानां	अपने पुत्रोंको
आह	सुनाया था ॥७२॥

ते वयं नोदिताः सर्वे प्रजासर्गे प्रजेश्वराः ।
अनेन ध्वस्ततमसः सिसृक्ष्मो विविधाः प्रजाः ॥७३॥

ते वयं नोदिताः सर्वे प्रजासर्गे प्रजेश्वराः अनेन ध्वस्ततमसः सिसृक्ष्मः विविधाः प्रजाः ॥७३॥

ते वयं सर्वे	वे हम सब	**ध्वस्ततमसः**	अपने अज्ञानको नष्ट करके
प्रजेश्वराः	प्रजापति गण		
प्रजासर्गे	प्रजाकी सृष्टिके लिए	**विविधाः प्रजाः**	अनेक प्रकारकी प्रजाकी
नोदिताः	आज्ञा पाकर		
अनेन	इस (स्तोत्र) द्वारा	**सिसृक्ष्मः**	सृष्टि करते हैं ॥७३॥

अथेदं नित्यदा युक्तो जपन्नवहितः पुमान् ।
अचिराच्छ्रेय आप्नोति वासुदेवपरायणः ॥७४॥

अथ इदं नित्यदा युक्तः जपन् अवहितः पुमान् अचिरात् श्रेय आप्नोति वासुदेव परायणः ॥७४॥

अथ इदं	अतः इस स्तोत्रका	**नित्यदा जपन्**	प्रतिदिन जप करते हुए
वासुदेव			
परायणः	भगवत्परायण	**अचिरात्**	शीघ्र ही
पुमान्	पुरुष	**श्रेय**	कल्याण
अवहितः	एकाग्र चित्तसे	**आप्नोति**	प्राप्त करता है ॥७४
युक्तः	चित्त लगाकर		

श्रेयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयसं परम् ।
सुखं तरति दुष्पारं ज्ञाननौर्व्यसनार्णवम् ॥७५॥

श्रेयसां इह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयसं परं सुखं तरति दुष्पारं ज्ञाननौः व्यसन अर्णवं ॥७५॥

इह	इस लोकमें	**परं**	श्रेष्ठ
सर्वेषां	सभी	**ज्ञानं**	ज्ञान है
श्रेयसां	कल्याणके साधनोंमें		

निःश्रेयसं	(वह) मोक्ष दायक है	**अर्णवं**	समुद्र (संसार) को
दुष्पारं	कठिनाईसे पार होनेवाले	**ज्ञाननौः**	ज्ञानकी नौकासे
व्यसन	दुःखोंके	**सुखं तरति**	सुख पूर्वक पार हो जाता है ॥७५॥

य इमं श्रद्धया युक्तो मद्गीतं भगवत्स्तवम् ।
अधीयानो दुराराध्यं हरिमाराधयत्यसौ ॥७६॥

यः इमं श्रद्धया युक्तः मद्गीतं भगवत्स्तवं अधीयानः दुराराध्यं हरिम् आराधयति असौ ॥७६॥

मद्गीतं	मेरे द्वारा गाये	**असौ**	वह
इमं	इस	**दुराराध्यं**	कठिनतासे प्रसन्न होने योग्य
भगवत्स्तवं	भगवान्‌के स्तोत्रका	**हरिं**	भगवान् श्रीहरिको
यः	जो	**आराधयति**	प्रसन्न कर लेगा ॥७६
श्रद्धया युक्तः	श्रद्धा सहित		
अधीयानः	अध्ययन करेगा		

विन्दते पुरुषोऽमुष्माद्यद्यदिच्छत्यसत्वरम् ।
मद्गीतगीतात्सुप्रीताच्छ्रेयसामेकवल्लभात् ॥७७॥

विन्दते पुरुषः अमुष्मात् यद्यद् इच्छति असत्वरम् मद्गीतगीतात् सुप्रीतात् श्रेयसां एकवल्लभात् ॥७७॥

श्रेयसां	सब प्रकारके कल्याणोंके साधनोंके	**सुप्रीतात्**	अत्यन्त प्रसन्न होकर
एकवल्लभात्	एक मात्र प्यारे (भगवान्)	**असत्वरं**	शीघ्र ही
मद्गीतगीतात्	मेरे द्वारा गाये गये (इस स्तोत्रसे)	**यद्यद् इच्छति**	जो जो चाहता है
		अमुष्मात्	उन्हीं (भगवान) से
		विन्दते	प्राप्त कर लेता है ॥७७॥

इदं यः कल्य उत्थाय प्राञ्जलिः श्रद्धयान्वितः ।
शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो मुच्यते कर्मबन्धनैः ॥७८॥

इदं यः कल्य उत्थाय प्राञ्जलिः श्रद्धया अन्वितः शृणुयात् श्रावयेत् मर्त्यः मुच्यते कर्म बन्धनैः ॥७८॥

यः मर्त्यः	जो पुरुष	**इदं शृणुयात्**	यह स्तोत्र सुनता है (या)
कल्य	उषा कालमें (प्रातः)	**श्रावयेत्**	सुनाता है
उत्थाय	उठकर	**कर्म बन्धनैः**	वह कर्म बन्धनोंसे
श्रद्धया अन्वितः	श्रद्धा युक्त	**मुच्यते**	विमुक्त हो जाता है ॥७८॥
प्राञ्जलिः	हाथ जोड़कर		

गीत मयेदं नरदेवनन्दनाः
परस्य पुंसः परमात्मनः स्तवम् ।
जपन्त एकाग्रधियस्तपो महत्-
चरध्वमन्ते तत आप्स्यथेप्सितम् ॥७९॥

गीतं मया इदं नरदेवनन्दनाः परस्य पुंसः परमात्मनः स्तवं जपन्तः एकाग्रधियः तपः महत् चरध्वं अन्ते ततः आप्स्यथ ईप्सितं ॥७९॥

नरदेवनन्दनाः	राजकुमारो	**जपन्तः**	जप करते हुए
मया गीतं	मेरे द्वारा सुनाये गये	**महत् तपः**	महान् तप
		चरध्वं	करो
परस्य पुंसः	परम पुरुष	**ततः**	फिर
परमात्मनः	परमात्माके	**अन्ते**	अन्तमें
इदं स्तवं	इस स्तोत्रको	**ईप्सितं**	अभीष्टको
एकाग्रधियः	एकाग्र चित्तसे	**आप्स्यथ**	प्राप्त कर लेगा ॥७९

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

इति सन्दिश्य भगवान् बार्हिषदैरभिपूजितः ।
पश्यतां राजपुत्राणां तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥१॥

इति सन्दिश्य भगवान् बार्हिषदैः अभिपूजितः पश्यतां राजपुत्राणां तत्र एव अन्तर्दधे हरः ॥१॥

इति सन्दिश्य	इस प्रकार आदेश देकर	**राज पुत्राणां**	राजकुमारोंके
भगवान् हरः	भगवान् शंकर	**पश्यतां**	सामने ही
बार्हिषदैः	प्रचेताओं के द्वारा	**तत्र एव**	वहीं
अभिपूजितः	भक्ति-भावसे पूजित होकर	**अन्तर्दधे**	अन्तर्धान हो गये ॥१॥

रुद्रगीतं भगवतः स्तोत्रं सर्वे प्रचेतसः ।
जपन्तस्ते तपस्तेपुर्वर्षाणामयुतं जले ॥२॥

रुद्रगीतं भगवतः स्तोत्रं सर्वे प्रचेतसः जपन्तः ते तपः तेपुः वर्षाणां अयुतं जले ॥२॥

ते सर्वे	वे सब	**जले**	जलमें खड़े होकर
प्रचेतसः	प्रचेता लोग	**जपन्तः**	जप करते हुए
रुद्रगीतं	भगवान् शंकरके बताये	**वर्षाणां अयुतं**	दस हजार वर्ष तक
भगवतः स्तोत्रं	भगवान्के स्तोत्रका	**तपः तेपुः**	तप करते रहे ॥२॥

प्राचीनबर्हिषं क्षत्तः कर्मस्वासक्तमानसम् ।
नारदोऽध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयत् ॥३॥

प्राचीन बर्हिषं क्षत्तः कर्मसु आसक्त मानसं नारदः अध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयत् ॥३॥

क्षत्तः	विदुरजी !
कर्मसु	कर्मोंमें
आसक्त मानसं	आसक्त मनवाले
प्राचीनबर्हिषं	राजा प्राचीन बर्हिको
अध्यात्मतत्त्वज्ञः	अध्यात्म तत्त्वके ज्ञाता
कृपालुः	दयावान
नारदः	श्रीनारदजीने
प्रत्यबोधयत्	उपदेश किया ॥३॥

श्रेयस्त्वं कतमद्राजन् कर्मणाऽऽत्मन ईहसे ।
दुःखहानिः सुखाऽऽप्तिः श्रेयस्तन्नेह चेष्यते ॥४॥

श्रेयः त्वं कतमद् राजन् कर्मणा आत्मन ईहसे दुःखहानिः सुख अवाप्तिः श्रेयः तत् न इह च इष्यते ॥४॥

राजन्	राजन् !
कर्मणा	कर्मोंके द्वारा
त्वं आत्मन	तुम अपना
कतमद्	कौनसा
श्रेयः	कल्याण
ईहसे	चाहते हो
दुःखहानिः	दुःखोंका निवारण (तथा)
सुख अवाप्तिः	परमानन्दकी प्राप्ति (वास्तविक)
श्रेयः	कल्याण है
तत् च इह न इष्यते	वह तो इन कर्मोंसे नहीं मिलता ॥४॥

*प्राचीनबर्हिरुवाच**-

न जानामि महाभाग परं कर्मापविद्धधीः ।
ब्रूहि मे विमलं ज्ञानं येन मुच्येय कर्मभिः ॥५॥

---

*अन्य प्रतियोंमें 'राजोवाच' है ।

न जानामि महाभाग परं कर्म अपविद्धधीः ब्रूहि मे विमलं ज्ञानं येन मुच्येय कर्मभिः ॥५॥

महाभाग	महाभाग !	**मे विमलं ज्ञानं**	मुझे विशुद्ध ज्ञान
कर्म	कर्मोंमें	**ब्रूहि**	बतलाइये
अपविद्धधीः	फंसी हुई बुद्धि होनेसे	**येन**	जिससे
परं	इससे परे कुछ	**कर्मभिः**	कर्म-बन्धनसे
न जानामि	नहीं जानता हूँ	**मुच्येय**	छूट जाऊं ॥५॥

गृहेषु कूटधर्मेषु पुत्रदारधनार्थधीः ।
न परं विन्दते मूढो भ्राम्यन् संसारवर्त्मसु ॥६॥

गृहेषु कूटधर्मेषु पुत्रदार धन अर्थधीः न परं विन्दते मूढः भ्राम्यन् संसार वर्त्मसु ॥६॥

कूटधर्मेषु	कपट धर्मभय	**मूढः**	अज्ञानी पुरुष
गृहेषु	गृहस्थाश्रममें (रहता)	**संसार वर्त्मसु**	संसारके मार्गमें
		भ्राम्यन्	भटकता हुआ
पुत्रदार	पुत्र-स्त्री	**परं**	परम कल्याणको
धन अर्थधीः	(तथा) धनके लिए लगी बुद्धि	**न विन्दते**	प्राप्त न हो पाता ॥६॥

नारद उवाच–

भो भोः प्रजापते राजन् पशून् पश्य त्वयाध्वरे ।
संज्ञापिताञ्जीवसङ्घान्निर्घृणेन सहस्रशः ॥७॥

भो भोः प्रजापते राजन् पशून् पश्य त्वया अध्वरे संज्ञापितान् जीव-सङ्घान् निर्घृणेन सहस्रशः ॥७॥

भो भोः प्रजापते	देखो देखो प्रजापति	**निर्घेणेन**	निर्दयता पूर्वक
राजन्	राजन् !	**अध्वरे**	यज्ञमें
त्वया	तुमने	**सहस्रशः**	हजारों

जीवसङ्घान्	जोवोंके समूह	**पश्य**	(उन्हें आकाशमें)
पशून्	पशुओंकी		देखो ॥७॥
संज्ञापिब्रान्	बलि दी है		

एते त्वां सम्प्रतीक्षन्ते स्मरन्तो वैशसं तव ।
सम्परेतमयः कूटैश्छिन्दन्त्युत्थितमन्यवः ॥८॥

एते त्वां संप्रतीक्षन्ते स्मरन्तः वैशसं तव सम्परेतं अयः कूटैः छिन्दति उत्थित मन्यवः ॥८॥

एते	यह सब	**सम्परेतं**	(तुम्हारे) मरनेपर
तव वैशसं	तुम्हारे अपराधको	**उत्थित मन्यवः**	क्रोधमें भरे
स्मरन्तः	याद करते हुए	**अयः कूटैः**	(अपने) लोहेके-से
त्वां संप्रतीक्षन्ते	तुम्हारी प्रतीक्षा कर		सींगोंसे
	रहे हैं	**छिन्दन्ति**	तुम्हे छेदेंगे ॥८॥

अत्र ते कथयिष्येऽनुमितिहासं पुरातनम् ।
पुरञ्जनस्य चरितं निबोध गदतो मम ॥९॥

अत्र ते कथयिष्ये अमुं इतिहासं पुरातनं पुरञ्जनस्य चरितं निबोध गदतः मम ॥९॥

अत्र	इस विषयमें	**पुरञ्जनस्य**	
ते	तुमसे	**चरितं**	यह राजा पुरञ्जन-
अमुं	यह		का चरित्र है
पुरातनं	प्राचीन	**गदतः मम**	मेरे कहे हुएको
इतिहासं	इतिहास	**निबोध**	सुनो ॥९॥
कथयिष्ये	कहता हूँ		

आसीत्पुरञ्जनो नाम राजा राजन् बृहच्छ्रवाः ।
तस्याविज्ञातनामाऽऽसीत्सखाविज्ञातचेष्टितः ॥१०॥

आसीत् पुरञ्जनः नाम राजा राजन् बृहत् श्रवाः तस्य अविज्ञात नामा आसीत् सखा अविज्ञात चेष्टितः ॥१०॥

राजन्	हे राजा !
पुरञ्जनः नाम	पुरञ्जन नामका
बृहत् श्रवाः	बड़ा यशस्वी
राजा आसीत्	एक राजा था
तस्य	उसका
अविज्ञात नामा अविज्ञात	अविज्ञात नामका
चेष्टितः	अज्ञात चेष्टावाला
सखा	एक मित्र
आसीत्	था ॥१०॥

सोऽन्वेषमाणः शरणं बभ्राम पृथिवीं प्रभुः ।
नानुरूपं यदाविन्ददभूत्स विमना इव ॥११॥

सः अन्वेषमाणः शरणं बभ्राम पृथिवीं प्रभुः न अनुरूपं यदा अविन्दत् अभूत् स विमना इव ॥११॥

स प्रभुः	वह समर्थ राजा
शरणं	अपने रहने योग्य स्थानकी
अन्वेषमाणः	खोज करता हुआ
पृथिवीं बभ्राम	सारी पृथ्वीपर घूमा
यदा अनुरूपं	जब उसने अपने अनुरूप
न अविन्दत्	कोई स्थान नहीं पाया
स विमना इव अभूत्	वह कुछ उदास हो गया ॥११॥

न साधु मेने ताः सर्वा भूतले यावतीः पुरः ।
कामान् कामयमानोऽसौ तस्य तस्योपपत्तये ॥१२॥

न साधु मेने ताः सर्वाः भूतले यावतीः पुरः कामान् कामयमानः असौ तस्य तस्य उपपत्तये ॥१२॥

असौ	यह (राजा)
कामान्	भोगोंको
कामयमानाः	चाहता हुआ
तस्य तस्य उपपत्तये	उन-उन (भोगोंकी) प्राप्तिके लिए
भूतले	पृथ्वीपर
यावतीः पुरः	जितने नगर हैं
ताः सर्वाः	उन सबको
साधु न मेने	अच्छा नहीं माना ॥१२॥

स एकदा हिमवतो दक्षिणेष्वथ सानुषु ।
ददर्श नवभिर्द्वार्भिः पुरं लक्षितलक्षणाम् ॥१३॥

स एकदा हिमवतः दक्षिणेषु अथ सानुषु ददर्श नवभिः द्वार्भिः पुरं लक्षित लक्षणां ॥१३॥

अथ	अन्ततः	नवभिः द्वारभिः	नौ दरवाजा वाले
एकदा	एक दिन	लक्षित	
स	उसने	लक्षणाम्	सुलक्षणोंसे युक्त
हिमवतः	हिमालयके	पुरं ददर्श	एक नगरको
दक्षिणेषु	दक्षिणके		देखा ॥१३॥
सानुषु	शिखरपर		

प्राकारोपवनाट्टालपरिखैरक्षतोरणैः ।
स्वर्णरौप्यायसैः शृङ्गैः संकुलां सर्वतो गृहैः ॥१४॥

प्राकार उपवन अट्टाल परिखैः अक्षः तोरणैः स्वर्ण रौप्य आयसैः शृङ्गैः संकुलां सर्वतः गृहैः ॥१४॥

सर्वतः	सब ओरसे	स्वर्ण	
प्राकार	परकोटों,	रौप्य आयसैः	सोने-चांदी-लोहेके
उपवन	बगीचों,	शृङ्गैः	शिखरवाले
अट्टाल	अटारियों,	गृहैः	घरोंसे
परिखैः	खाइयों,	सर्वतः	चारों ओरसे
अक्षः	झरोखों,	संकुलां	भरा था ॥१४॥
तोरणैः	राजद्वारों (से युक्त था)		

नीलस्फटिकवैदूर्यमुक्तामरकतारुणैः ।
कल्पितहर्म्यस्थलीं दीप्तां श्रिया भोगवतीमिव ॥१५॥

नील स्फटिक वैदूर्य मुक्ता मरकत अरुणैः कल्पित हर्म्यस्थलीं दीप्तां श्रिया भोगवतीं इव ॥१५॥

नील	नीलम-	क्लृप्त	जड़े थे
स्फटिक	स्फटिक,	दीप्तां	(वह) ज्योतिर्मयी (पुरी)
वैदूर्य	लहसनियां,		
मुक्ता	मोती,	श्रिया	शोभामें
मरकत	पन्ना,	भोगवतीं इव	(नागपुरी) भोगवतीके समान थी ॥१५॥
अरुणैः	लाल (मणियों) से		
हर्म्यस्थलीं	भवनोंके फर्श		

सभाचत्वररथ्याभिराक्रीडायतनापणैः ।
चैत्यध्वजपताकाभिर्युक्तां विद्रुमवेदिभिः ॥१६॥

सभा चत्वर रथ्याभिः आक्रीड आयतन आपणैः चैत्य ध्वज पताकाभिः युक्तां विद्रुमवेदिभिः ॥१६॥

सभा	सभागृह,	चैत्य	मन्दिरों,
चत्वर	चबूतरों,	ध्वज	ध्वजाओं (झंडों),
रथ्याभिः	सड़कों,	पताकाभिः	झंड़ियोंसे
आक्रीड	खेलनेके स्थान,	विद्रुमवेदिभिः	मूंगेकी बेदियोंसे
आयतन	खुले मैदान,	युक्तां	युक्त थी ॥१६॥
आपणैः	बाजारों,		

पुर्यास्तु बाह्योपवने दिव्यद्रुमलताकुले ।
नदद्विहङ्गालिकुलकोलाहलजलाशये ॥१७॥

पुर्याः तु बाह्य उपवने दिव्य द्रुमलता आकुले नदत् विहङ्ग अलिकुल कोलाहल जलाशये ॥१७॥

पुर्याः	नगरका	विहंग	पक्षियों तथा
बाह्य उपवने तु	बाहरी बगीचा तो	अलिकुल	भ्रमर-समूहोंके
दिव्य द्रुम-लता आकुले	दिव्य वृक्षों (तथा) लताओंसे भरा था	कोलाहल	कोलाहलसे (भरा)
नदत्	बोलते हुए	जलाशये	जलाशयोंसे युक्त था ॥१७॥

हिमनिर्झरविप्रुष्मत्कुसुमाकरवायुना ।
चलत्प्रवालविटपनलिनीतटसम्पदि ॥१८॥

हिमनिर्झर विप्रुष्मत् कुसुमाकर वायुना चलत् प्रवाल विटप नलिनी तट सम्पदि ॥१८॥

हिमनिर्झर	बरफसे शीतल झरनोंको	**तट सम्पदि**	(सरोवरोंके) तटोंकी शोभा
विप्रुष्मत्	छूकर	**विटप**	वृक्षोंके
कुसुमाकर	पुष्प राशिमें-से	**प्रवाल**	पत्ते
वायुना	वायुके द्वारा	**चलत्**	हिल रहे थे ॥१८॥
नलिनी	कमलों तथा		

नानारण्यमृगव्रातैरनाबाधे मुनिव्रतैः ।
आहूतं मन्यते पान्थो यत्र कोकिलकूजितैः ॥१९॥

नाना अरण्य मृग व्रातैः अनाबाधे मुनिव्रतैः आहूतं मन्यते पान्थः यत्र कोकिल कूजितैः ॥१९॥

मुनिव्रतैः	मुनियोंके समान व्रत करनेवाले	**यत्र**	जहाँ
नाना अरण्य	अनेक वन्य-	**पान्थः**	पथिक
मृग व्रातैः	पशु समूह	**कोकिल कूजितैः**	कोयलके शब्दोंसे
अनाबाधे	बिना बाधाके (घूमते थे)	**आहूतं मन्यते**	आमन्त्रितके समान मानता था ॥१९॥

यदृच्छयाऽऽगतां तत्र ददर्श प्रमदोत्तमाम् ।
भृत्यैर्दशभिरायान्तीमेकैकशतनायकैः ॥२०॥

यदृच्छया आगतां तत्र ददर्श प्रमदोत्तमां भृत्यैः दशभिः आयान्तीं एकैक शत नायकैः ॥२०॥

यदृच्छया		दशभिः भृत्यैः	जो देश-सेवकोंके
आगतां	अकस्मात् आई हुई		साथ
तत्र	उस वनमें	आयान्तीम्	आ रही थी
प्रमदोत्तमां	एक श्रेष्ठ सुन्दरीको	एकैक	जिनमें-से प्रत्येक
ददर्श	देखा	शत नायकैः	सौ-सौ सेवकोंका नायक था ॥२०॥

पञ्चशीर्षाहिना गुप्तां प्रतीहारेण सर्वतः ।
अन्वेषमाणामृषभमप्रौढां कामरूपिणीम् ॥२१॥

पञ्चशीर्षं अहिना गुप्तां प्रतीहारेण सवतः अन्वेषमाणां ऋषभं अप्रौढां कामरूपिणीं ॥२१॥

पञ्चशीर्ष		अप्रौढां	(वह सुन्दरी)
अहिना	पाँच सिरवाले सर्प		किशोरी थी
प्रतीहारेण सर्वतः	द्वारपाल द्वारा सब ओरसे	कामरूपिणीं	इच्छानुसार रूप धारण कर सकती थी
गुप्तां	(वह नगर) रक्षित था	ऋषभं	श्रेष्ठ पुरुषको
		अन्वेषमाणाम्	ढूँढ़ रही थी ॥२१॥

सुनासां सुदतीं बालां सुकपोलां वराननाम् ।
समविन्यस्तकर्णाभ्यां बिभ्रतीं कुण्डलश्रियम् ॥२२॥

सुनासां सुदतीं बालां सुकपोलां वराननां समविन्यस्त कर्णाभ्यां बिभ्रतीं कुण्डलश्रियं ॥२२॥

सुनासां	सुन्दर नाकवाली	समविन्यस्त	समान आकारवाले
सुदतीं	सुन्दर दांतवाली	कर्णाभ्यां	कानोंमें
बालां	किशोरी	कुण्डलश्रियं	कुण्डलोंकी शोभा
सुकपोलां	सुन्दर कपोलवाली	बिभ्रतीं	धारण किये थी ॥२२॥
वराननां	श्रेष्ठ मुखवाली		

पिशङ्गनीवीं सुश्रोणीं श्यामां कनकमेखलाम् ।
पद्भ्यां क्वणद्भ्यां चलन्तीं नूपुरैर्देवतामिव ॥२३॥

विशङ्गनीवीं सुश्रोणीं श्यामां कनक मेखलां पद्भ्यां क्वणद्भ्यां चलन्तीं नूपुरैः देवतां इव ॥२३॥

श्यामां	सांवले रंगकी	**नूपुरैः क्वणद्भ्यां**	नूपुरोंसे शब्द करते हुये
सुश्रोणीं	उत्तम नितम्बवाली	**पद्भ्यां चलन्तीं**	पैरोंसे चलती
पिशङ्गनीवीं	पीले रङ्गकी साड़ी और	**देवताम् इव**	साक्षात् देवता-सी लगती थी ॥२३॥
कनक मेखलां	सोनेकी करधनी (पहिने) थी		

स्तनौ व्यञ्जितकैशोरौ समवृत्तौ निरन्तरौ ।
वस्त्रान्तेन निगूहन्तीं व्रीडया गजगामिनीम् ॥२४॥

स्तनौ व्यञ्जित कैशोरौ समवृत्तौ निरन्तरौ वस्त्रान्तेन निगूहन्तीं व्रीडया गजगामिनीं ॥२४॥

गजगामिनीं	(वह) गजगामिनी	**स्तनौ**	स्तनोंको
व्यञ्जित		**व्रीडया**	लज्जा वश
कैशोरौ	किशोरा वस्थाकी सूचना देनेवाले	**वस्त्रान्तेन**	आँचलसे
समवृत्तौ	समान गोल	**निगूहन्तीं**	छिपाती जाती थी ॥२४॥
निरन्तरौ	परस्पर सटे हुए		

तामाह ललितं वीरः सव्रीडस्मितशोभनाम् ।
स्निग्धेनापाङ्गपुङ्खेन स्पृष्टः प्रेमोद्भ्रमद्भ्रुवा ॥२५॥

तां आह ललितं वीरः सव्रीडस्मित शोभनां स्निग्धेन अपाङ्ग पुङ्खेन स्पृष्टः प्रेम उद्भ्रमद्भ्रुवा ॥२५॥

प्रेमउद्-		**सव्रीडस्मित**	लज्जा पूर्ण
भ्रमद्भ्रुवा	प्रेमसे भटकती भौहोंसे		मुसकानसे
		शोभनां	सुन्दर लगनेवाली
स्निग्धेन	प्रेम पूर्ण	**तां**	उससे
अपाङ्ग पुंखेन	तिरछी चितवनसे	**ललितं आह**	मधुर वाणीसे
स्पृष्टः	घायल		बोला ॥२५॥
वीरः	वीर (पुरञ्जन)		

*पुरञ्जन उवाच-**

का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कस्यासीह कुतः सति ।
इमामुप पुरीं भीरु किं चिकीर्षसि शंस मे ॥२६॥

का त्वं कञ्जपलाश अक्षि कस्य असि इह कुतः सति इमां उप पुरीं भीरु किं चिकीर्षसि शंस मे ॥२६॥

कञ्जपलाश	कमलदल	**भीरु**	भीरु !
अक्षि	लोचने !	**इमां**	इस
का त्वं	तुम कौन हो ?	**उप पुरीं**	उप नगरमें
कस्य असि	किसकी हो ?	**किं चिकीर्षसि**	क्या करना चाहती हो ?
सति इह कुतः	सती ! यहां कहांसे आयी हो ?	**मे शंस**	मुझे बतलाओ ॥२६

क एतेऽनुपथा ये त एकादश महाभटाः ।
एता वा ललनाः सुभ्रु कोऽयं तेऽहिः पुरःसरः ॥२७॥

क एते अनुपथा ये त एकादश महाभटाः एताः वा ललनाः सुभ्रु कः अयं ते अहिः पुरः सरः ॥२७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

एते क	यह कौन हैं ?	**ते पुरः सरः**	तुम्हारे आगे चलने-
सुभ्रु	सुन्दर भौंहोंवाली		वाला
एताः ललनाः वा	अथवा ये सहेलियाँ	**अयं अहिः कः**	यह सर्प कान
	कौन हैं,		है ॥२७॥

त्वं ह्रीर्भवान्यस्यथ वाग्रमा पतिं
विचिन्वती किं मुनिवद्रहो वने ।
त्वदङ्घ्रिकामाप्तसमस्तकामं
क्व पद्मकोशः पतितः कराग्रात् ॥२८॥

त्वं ह्रीः भवानि असि अथ वा वाक् रमा पतिं विचिन्वती किं मुनिवत् रहः वने त्वत् अङ्घ्रि काम आप्त समस्त कामं क्व पद्मकोशः पतितः कराग्रात् ॥२८॥

त्वं	तुम	**विचिन्वती**	ढूँढ़ रही हो ?
ह्रीः	लज्जा देवी हो !	**त्वत् अङ्घ्रि**	तुम्हारे चरणोंकी
भवानि असि	भवानी हो ?	**काम**	कामना (तो)
अथ वा वाक्	अथवा सरस्वती	**समस्त कामं**	सब कामनाओंको
	हो ?	**आप्त**	प्राप्त हो जाना है,
रमा	लक्ष्मी हो ?	**कराग्रात्**	(तुम्हारे) हाथसे
मुनिवत्	मुनियोंके समान	**पद्मकोशः**	कमल-पुष्प
रहः वने	एकान्त वनमें	**पतितः**	कहाँ गिर
किं पतिं	क्या अपने पतिको		गया ? ॥२८॥

नासां वरोर्वन्यतमा भुविस्पृक्
पुरीमिमां वीरवरेण साकम् ।
अर्हस्यलङ्कर्तुमदभ्रकर्मणा
लोकं परं श्रीरिव यज्ञपुंसा ॥२९॥

न आसां वरोरु अन्य तमा भुविस्पृक् पुरीं इमां वीरवरेण साकं अर्हसि अलङ्कर्तुम् अदभ्रकर्मणा लोकं परं श्रीः इव यज्ञपुंसा ॥२९॥

वरोरु आसां	हे सुभगे इन सबमें
अन्य तमा	
भुविस्पृक् न	कोई भी पृथ्वीका स्पर्श नहीं करता
इमां पुरीं	और तुम पृथ्वीपर हो, अतः इस पुरीको
वीरवरेण साकं	मुझ वीर श्रेष्ठके साथ
अलङ्कर्तुम् अर्हसि	शोभित करो
परं लोकं यज्ञ-	
पुंसा श्रीः इव	वैकुण्ठ लोकको लक्ष्मी जिस प्रकार भगवान् विष्णुको शोभित करती है ॥२९॥

यदेष मापाङ्गविखण्डितेन्द्रियं
सव्रीडभावस्मितविभ्रमद्भ्रुवा ।
त्वयोपसृष्टो भगवान्मनोभवः
प्रबाधतेऽथानुगृहाण शोभने ॥३०॥

यत् एष मा अपाङ्ग विखण्डित इन्द्रियं सव्रीड भावस्मित विभ्रमद् भ्रुवा त्वया उपसृष्टः भगवान् मनोभवः प्रबाधते अथ अनुगृहाण शोभने ॥३०॥

अपाङ्ग	(तुम्हारे) कटाक्षोंसे
विखण्डित	
इन्द्रियं	इन्द्रियाँ घायल हो गयी हैं।
सव्रीड	
भावस्मित	लजीली भावपूर्ण मुसकानके साथ
विभ्रमद्भ्रुवा	फड़कती भौंहोंसे
त्वया उपसृष्टः	तुम्हारे द्वारा प्रेरित
एष	यह
भगवान्	
मनोभवः	भगवान कामदेव
यत् प्रबाधते	क्योंकि पीड़ित कर रहे हैं
अथ	इसलिए
शोभने	सुन्दरी
मा	मुझपर
अनुगृहाण	अनुग्रह करो ॥३०॥

त्वदाननं सुभ्रु सुतारलोचनं
व्यालम्बिनीलालकवृन्दसंवृतम् ।

उन्नीय मे दर्शय वल्गुवाचकं
यद्व्रीडया नाभिमुखं शुचिस्मते ॥३१॥

त्वत् आननं सुभ्रु सुतार लोचनं व्यालम्बि नील अलक वृन्द संवृतं उन्नीय मे दर्शय वल्गु वाचकं यद् व्रीडया न अभिमुखं शुचिस्मते ॥३१॥

शुचिस्मिते	पवित्र मुसकानवाली	**वृन्द संवृतं**	समूहसे घिरा हुआ है
सुभ्रु सुतार लोचनं	सुन्दर भोंह और सुघड़ नेत्रोंसे शोभित	**वल्गु वाचकं**	मधुर वाणी वाली हो
		व्रीडया	किन्तु लज्जासे
		यद्	जो
त्वत् आननं	तुम्हारा मुख	**अभिमुखं न**	मेरी ओर मुख नहीं करती हो उसे
व्यालम्बि	लटकती		
नील अलक	काली अलकोंके	**उन्नीय**	ऊँचा करके
		मे दर्शय	मुझें दिखलाओ ॥३१

नारद उवाच–

इत्थं पुरञ्जनं नारी याचमानमधीरवत् ।
अभ्यनन्दत तं वीरं हसन्ती वीर मोहिता ॥३२॥

इत्थं पुरञ्जनं नारी याचमानं अधीरवत् अभि अनन्दत तं वीरं हसन्ती वीर मोहिता ॥३२॥

इत्थं	इस प्रकार	**वीर मोहिता**	उस वीरपर मोहित होकर
अधीरवत्	अधीर-से होकर		
याचमानं	प्रार्थना करते हुए	**हसन्ती**	हँसती हुई
पुरञ्जनं	पुरञ्जनको	**तं**	उसका
		अभि अनन्दत	अनुमोदन किया ॥३२

न विदाम वयं सम्यक्कर्तारं पुरुषर्षभ ।
आत्मनश्च परस्यापि गोत्रं नाम च यत्कृतम् ॥३३॥

न विदाम वयं सम्यक् कर्त्तारं पुरुषर्षभ आत्मनः च परस्य अपि गोत्रं नाम च यत् कृतम् ॥३३॥

पुरुषर्षभ	हे पुरुषश्रेष्ठ !
वयं कर्तारं	मैं अपने पैदा करने वालेको
सम्यक् न विदाम	ठीक-ठीक नहीं जानती
यत्	जिसने
कृतम्	बताया हो
आत्मनः च परस्य अपि	अपने या किसी दूसरेके
नाम गोत्रं च	नाम या गोत्रको ॥३३॥

इहाद्य सन्तमात्मानं विदाम न ततः परम् ।
येनेयं निर्मिता वीर पुरी शरणमात्मनः ॥३४॥

इह अद्य सन्तं आत्मानं विदाम न ततः परं येन इयं निर्मिता वीर पुरी शरणं आत्मनः ॥३४॥

वीर	वीर !
इह	इस पुरीमें
अद्य सन्तं आत्मानं	आज तक अपने आपको
ततः परं	(तथा) उससे भिन्नको भी
येन	जिसने
आत्मानं	मेरे
शरणं	निवास स्थान
इयं पुरी	इस पुरीको
निर्मिता	बनाया (उसे)
न विदाम	नहीं जानती ॥३४॥

एते सखायः सख्यो मे नरा नार्यश्च मानद ।
सुप्तायां मयि जागर्ति नागोऽयं पालयन् पुरीम् ॥३५॥

एते सखायः सख्यः मे नरा नार्यः च मानद सुप्तायां मयि जागर्ति नागः अयं पालयन् पुरीं ॥३५॥

मानद	सम्मान देनेवाले (वीर)
एते नरा मे सखायः	यह पुरुष मेरे मित्र हैं

नार्यः च सख्यः	और स्त्रियां मेरी सहेलियां है	**अयं नागः**	यह सर्प
मयि	मेरे	**पुरीं पालयन्**	पुरीकी रक्षा करता हुआ
सुप्तायां	सो जानेपर	**जागर्ति**	जगता है ॥३५॥

दिष्ट्याऽऽगतोऽसि भद्रं ते ग्राम्यान् कामानभीप्ससे।
उद्वहिष्यामि तांस्तेऽहं स्वबन्धुभिररिन्दम ॥३६॥

दिष्ट्या आगतः असि भद्रं ते ग्राम्यान् कामान् अभीप्ससे उद्वहिष्यामि तान् ते अहं स्व बन्धुभिः अरिन्दम ॥३६॥

अरिन्दम	शत्रु दमन !	**अहं**	मैं
दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है	**तान् ते**	उन (विषय भोगों) को तुम्हारे लिए
आगतः असि	तुम यहाँ आये हो	**स्व बन्धुभिः**	अपने साथियोंके साथ
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो	**उद्वहिष्यामि**	प्रस्तुत करूँगी ॥३६॥
ग्राम्यान् कामान्	तुम विषय-भोगोंकी		
अभीप्ससे	इच्छा करते हो		

इमां त्वमधितिष्ठस्व पुरीं नवमुखीं विभो।
मयोपनीतान् गृह्णानः कामभोगान् शतं समाः ॥३७॥

इमां त्वं अधितिष्ठस्व पुरीं नवमुखीं विभो मया उपनीतान् गृह्णानः कामभोगान् शतं समाः ॥३७॥

विभो	प्रभो !	**कामभोगान्**	इच्छित भोगोंको
इमां	इस	**गृह्णानः**	ग्रहण करते हुए
नवमुखीं पुरीं	नौ द्वारवाली पुरीमें	**शतं समाः**	सौ वर्षोंतक
मया उपनीतान्	मेरे द्वारा प्रस्तुत किये गये	**अधितिष्ठस्व**	रहिये ॥३७॥

कं नु त्वदन्यं रमये ह्यरतिज्ञमकोविदम्।
असम्परायाभिमुखमध्वस्तनविदं पशुम् ॥३८॥

कं नु त्वदन्यं रमये हि अरतिज्ञं अकोविदं असम्पराय अभिमुखं अश्वस्तन विदं पशुं ॥३८॥

त्वदन्यं	आपको छोड़कर
कं नु	किसके साथ तो
रमये	रमण करूँगी
अकोविदं	अभिप्राय
अरतिज्ञं	रति सुख न जानने-वाला
असम्पराया	मृत्युके पश्चात् (परलोक)
अभिमुखं	अभिमुख हुए
अश्वस्तनविदं	कल क्या होगा इसे नहीं जानते
पशुं	ऐसे लोक तो पशुओंके समान हैं ॥३८॥

धर्मो ह्यत्रार्थकामौ च प्रजानन्दोऽमृतं यशः ।
लोका विशोका विरजा यान् न केवलिनो विदुः ॥३९॥

धर्मः हि अत्र अर्थ कामौ च प्रजा आनन्दः अमृतं यशः लोका विशोका विरजा यान् न केवलिनः विदुः ॥३९॥

हि	क्योंकि
अत्र	इस (गृहस्थाश्रम)में
धर्मः च अर्थ कामौ	धर्म और अर्थ, काम,
प्रजा आनन्दः	सन्तान सुख
अमृतं यशः	अमर यश
विशोका	शोक रहित
विरजा लोका	निर्मल लोकोंकी प्राप्ति है
यान्	जिनको
केवलिनः	संसार-त्यागी
न विदुः	नहीं जानते ॥३९॥

पितृदेवर्षिमर्त्यानां भूतानामात्मनश्च ह ।
क्षेम्यं वदन्ति शरणं भवेऽस्मिन् यद् गृहाश्रमः ॥४०॥

पितृ देव ऋषि मर्त्यानां भूतानां आत्मनः च ह क्षेम्यं वदन्ति शरणं भवे अस्मिन् यत् गृहाश्रमः ॥४०॥

पितृ	पितर,
देव	देवता,
ऋषि	ऋषिगण,
मर्त्यानां	मनुष्योंका
भूतानां	अन्य प्राणियोंका
आत्मनः च	अपना भी
ह	निश्चय
अस्मिन् भवे	इस संसारमें
क्षेम्यं शरणं	कल्याणकारी आश्रय
यत्	क्योंकि
गृहाश्रमः	गृहस्थाश्रम ही
वदन्ति	कहा गया है ॥४०॥

का नाम वीर विख्यातं वदान्यं प्रियदर्शनम् ।
न वृणीत प्रियं प्राप्तं मादृशी त्वादृशं पतिम् ॥४१॥

का नाम वीर विख्यातं वदान्यं प्रियदर्शनं न वृणीत प्रियं प्राप्तं मादृशी त्वादृशं पतिं ॥४१॥

का नाम	भला कौन-सी
मादृशी	मुझ जैसी (स्त्री)
विख्यातं	प्रसिद्ध
वीर	वीर
वदान्यं	उदार
प्रियदर्शनं	सुन्दर
प्रियं	प्रिय
त्वादृशं	आपके समान
पतिं प्राप्तं	पति मिलनेपर
न वृणीत	वरण नहीं करेगी ॥४१॥

कस्या मनस्ते भुवि भोगिभोगयोः
स्त्रिया न सज्जेद्भुजयोर्महाभुज ।
योऽनाथवर्गाधिमलं घृणोद्धत-
स्मितावलोकेन चरत्यपोहितुम् ॥४२॥

कस्या मनः ते भुवि भोगि भोगयोः स्त्रिया न सज्जेत् भुजयोः महाभुज यः अनाथ वर्गं अधिमलं घृणा उद्धत स्मित अवलोकेन चरति अपोहितुं ॥४२॥

महाभुज	महाबाहो !
भुवि	इस पृथ्वीपर
भोगि भोगयोः	सर्प जैसी लम्बी गोल
भुजयोः	भुजाओंमें
कस्या स्त्रिया	किस स्त्रीका
मनः	मन
सज्जेत्	आसक्त नहीं होगा

यः	जो	**स्मित**	
अनाथ वर्ग	अनाथ श्रेणीकी (मेरे)	**अवलोकेन**	मुस्कान भरी चितवनसे
अघिमलं	आन्तरिक कष्टको	**अपोहितुं**	दूर करनेके लिए
घृणाद्धत	कृपा पूर्ण	**चरति**	विचरण करते हैं ॥४२॥

नारद उवाच-

इति तौ दम्पती तत्र समुद्य समयं मिथः ।
तां प्रविश्य पुरीं राजन्मुमुदाते शतं समाः ॥४३॥

इति तौ दम्पती तत्र समुद्य समयं मिथः तां प्रविश्य पुरीं राजन् मुमुदाते शतं समाः ॥४३॥

राजन्	राजन् !	**तां पुरीं**	उस पुरीमें
तौ दम्पती	वे दोनों स्त्री पुरुष	**प्रविश्य**	प्रवेश करके
इति मिथः	इस प्रकार परस्पर	**शतं समाः**	सौ वर्षों तक
समयं समुद्य	प्रतिज्ञाका परस्पर समर्थन करके	**मुमुदाते**	आनन्द भोगते रहे ॥४३॥

उपगीयमानो ललितं तत्र तत्र च गायकैः ।
क्रीडन् परिवृतः स्त्रीभिर्ह्रदिनीमाविशच्छुचौ ॥४४॥

उपगीयमानः ललितं तत्र तत्र च गायकैः क्रीडन् परिवृतः स्त्रीभिः ह्रदिनीं आविशत् शुचौ ॥४४॥

गायकैः	गायक लोग	**स्त्रीभिः**	
तत्र तत्र च	जहां-तहां	**परिवृतः**	अनेकों स्त्रियोंसे घिर
ललितं	ललित स्वरसे	**क्रीडन्**	(जल) क्रीड़ाके लिए
उपगीयमानः	कीर्तिका गान करते थे	**ह्रदिनीं**	नदीमें
शुचौ	ग्रीष्म ऋतुमें	**आविशत्**	प्रवेश किया ॥४४॥

सप्तोपरि कृता द्वारः पुरस्तस्यास्तु द्वे अधः ।
पृथग्विषयगत्यर्थं तस्यां यः कश्चनेश्वरः ॥४५॥

सप्त उपरि कृता द्वारः पुरः तस्याः तु द्वे अधः पृथक् विषय गति अर्थम् तस्यां यः कश्चन ईश्वरः ॥४५॥

तस्यां यः	उसका जो	**तस्याः पुरः**	उस नगरीमें
कश्चन ईश्वरः	कोई राजा होता (उसके)	**सप्त द्वारः**	सात द्वार
		उपरि कृता	ऊपर बनाये थे
पृथक्	पृथक	**तु द्वे अधः**	और दो द्वार नीचे थे ॥४५॥
विषय गति अर्थम्	विषयोंमें जानेके लिए		

पञ्च द्वारस्तु पौरस्त्या दक्षिणैका तथोत्तरा ।
पश्चिमे द्वे अमूषां ते नामानि नृप वर्णये ॥४६॥

पञ्चद्वारः तु पौरस्त्याः दक्षिणा एका तथा उत्तरा पश्चिमे द्वे अमूषां ते नामानि नृप वर्णये ॥४६॥

पञ्चद्वारः	(इनमें) पांच द्वार	**नृप**	राजन् !
पौरस्त्याः	पूर्वकी ओर	**अमूषां**	इनके
एका दक्षिणा		**नामानि**	नामोंका
तथा	और एक दक्षिणमें	**ते**	तुमसे
एका उत्तरा	एक उत्तर	**वर्णये**	वर्णन करता हूँ ॥४६॥
द्वे पश्चिमे	दो द्वार पश्चिममें थे		

खद्योताऽऽविर्मुखी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते ।
विभ्राजितं जनपदं याति ताभ्यां द्युमत्सखः ॥४७॥

खद्योता आविर्मुखी च प्राग्द्वारौ एकत्र निर्मिते विभ्राजितं जनपदं याति ताभ्यां द्युमत् सखः ॥४७॥

खद्योता च अविर्मुखी खद्योता और आविर्मुखी
प्राग्द्वारौ पूर्वकी ओर यह दो द्वार
एकत्र निर्मिते एक ही जगह बनाये गये थे
ताभ्यां उनमें होकर
द्युमत् सखः अपने मित्रद्युमान्के साथ
विभ्राजितं जनपदं विभ्राजित नामक जनपदको
याति जाया करता था ॥४७॥

नलिनी नालिनी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते ।
अवधूतसखस्ताभ्यां विषयं याति सौरभम् ॥४८॥

नलिनी नालिनी च प्राग्द्वारौ एकत्र निर्मिते अवधूत सखः ताभ्यां विषयं याति सौरभं ॥४८॥

नलिनी नालिनी च नलि ननीऔर नालिनी नामके
प्राग्द्वारौ पूर्वकी ओर दो द्वार
एकत्र निर्मिते एक जगह बनाये गये थे
ताभ्यां उनसे होकर
अवधूत सखः अवधूतके साथ
सौरभं विषयं सौरभ नामके देशको
याति जाया करता था ॥४८॥

मुख्या नाम पुरस्ताद् द्वास्तयाऽऽपणबहूदनौ ।
विषयौ याति पुरराड्रसज्ञविपणान्वितः ॥४९॥

मुख्या नाम पुरस्तात् द्वाः तया आपण बहूदनौ विषयौ याति पुरराट् रसज्ञ विपण अन्वितः ॥४९॥

पुरस्तात् पूर्वकी ओर
मुख्या नाम द्वाः मुख्या नामका द्वार था
तया उससे
रसज्ञ विपण अन्वितः रसज्ञ और विपणके साथ
आपण बहूदनौ आपण और बहूदन नामक
विषयौ देशोंको
पुरराट् याति उस नगरका राजा जाता था ॥४९॥

पितृहूर्नृप पुर्या द्वार्दक्षिणेन पुरञ्जनः ।
राष्ट्रं दक्षिणपञ्चालं याति श्रुतधरान्वितः ॥५०॥

पितृहूः नृप पुर्या द्वाः दक्षिणेन पुरञ्जनः राष्ट्रं दक्षिण पञ्चालं याति श्रुतधर अन्वितः ॥५०॥

नृप	राजन् !	**श्रुतधर**	
पुर्या दक्षिणेन	नगरीके दक्षिणकी ओर	**अन्वितः**	श्रुतधरके साथ
पितृहूः द्वाः	पितृहू नामके द्वारसे	**दक्षिण**	
पुरञ्जनः	पुरञ्जन	**पञ्चालं**	दक्षिण पञ्चाल
		राष्ट्रं	राष्ट्रको
		याति	जाता था ॥५०॥

देवहूर्नाम पुर्या द्वा उत्तरेण पुरञ्जनः ।
राष्ट्रमुत्तरपञ्चालं याति श्रुतधरान्वितः ॥५१॥

देवहूः नाम पुर्याः द्वाः उत्तरेण पुरञ्जनः राष्ट्रं उत्तरपञ्चालं याति श्रुतधर अन्वितः ॥५१॥

पुर्याः उत्तरेण	पुरीके उत्तरमें	**उत्तर पञ्चालं**	उत्तर पञ्चाल नामक
देवहूः नाम द्वाः	देवहू नामका द्वार था	**राष्ट्रं पुरञ्जनः**	राष्ट्रको पुरंजन
श्रुतधर		**याति**	जाता था ॥५१॥
अन्वितः	उससे श्रुतधरके साथ		

आसुरी नाम पश्चाद् द्वास्तया याति पुरञ्जनः ।
ग्रामकं नाम विषयं दुर्मदेन समन्वितः ॥५२॥

आसुरी नाम पश्चात् द्वाः तया याति पुरञ्जनः ग्रामकं नाम विषयं दुर्मदेन समन्वितः ॥५२॥

पश्चात्	पश्चिम दिशामें
आसुरी नाम	
द्वाः	आसुरो नामक द्वार था
तया पुरञ्जनः	उस द्वारसे पुरञ्जन
दुर्मदेन	
समन्वितः	दुर्मदके साथ
ग्रामकं नाम	ग्रामक नामके
विषयं	देशको
याति	जाता था ॥५२॥

निर्ऋतिर्नाम पश्चाद् द्वास्तया याति पुरञ्जनः ।
वैशसं नाम विषयं लुब्धकेन समन्वितः ॥५३॥

निर्ऋतिः नाम पश्चात् द्वाः तया याति पुरञ्जनः वैशसं नाम विषयं लुब्धकेन समन्वितः ॥५३॥

पश्चात्	पश्चिम दिशामें
निर्ऋतिः नाम	निर्ऋति नामका
द्वाः	द्वार था
तया पुरञ्जनः	उससे पुरञ्जन
लुब्धकेन	
समन्वितः	लुब्धकके साथ
वैशसं नाम	वैशस नामके
विषयं याति	राष्ट्रको जाता था ॥५३॥

अन्धावमीषां पौराणां निर्वाक्पेशस्कृतावुभौ ।
अक्षण्वतामधिपतिस्ताभ्यां याति करोति च ॥५४॥

अन्धौ अमीषां पौराणां निर्वाक् पेशस्कृतौ उभौ अक्षण्वतां अधिपतिः ताभ्यां याति करोति च ॥५४॥

अमीषां पौराणां	इस नगरके निवासियोंमें
निर्वाक्	
पेशस्कृतौ	निर्वाक् और पेशस्कृत नामके
उभौ अन्धौ	दो अन्धे थे
अक्षण्वतां	(पुरञ्जन) आँखवालों
अधिपतिः	का स्वामी होकर
ताभ्यां याति	इन्हींकी सहायतासे जाता
च करोति	और सब कार्य करता था ॥५४॥

स यर्ह्यन्तःपुरगतो विषूचीनसमन्वितः ।

मोहं प्रसादं हर्षं वा याति जायात्मजोद्भवम् ॥५५॥

स यर्हि अन्तः पुरगतः विषूचीन समन्वितः मोहं प्रसादं हर्षं वा याति जाया आत्मजोद्भवं ॥५५॥

स यर्हि	वह जब	**आत्मजोद्भवं**	पुत्रोंसे उत्पन्न
विषूचीन		**मोहं**	मोह या
समन्वितः	विषूचीनके साथ	**प्रसादं**	प्रसन्नता
अन्तः पुरगनः	अन्तःपुरमें जाता	**हर्षं वा**	अथवा हर्षको
जाया	तब स्त्री और	**याति**	प्राप्त करता ॥५५॥

एवं कर्मसु संसक्तः कामात्मा वञ्चितोऽबुधः ।

महिषी यद्यदीहेत तत्तदेवान्ववर्तत ॥५६॥

एवं कर्मसु संसक्तः काम आत्मा वञ्चितः अबुधः महिषी यद् यद् ईहेत तत् तत् एव अनु अवर्त्तत ॥५६॥

एवं	इस प्रकार	**महिषी**	पत्नी
कर्मसु संसक्तः	कर्मोंमें आसक्त हुआ	**यद्यद् ईहेत**	जो जो चाहती थी
काम आत्मा	कामना पूर्ण चित्त	**तत् तद् एव**	वही वही ही
अबुधः	मूढ़ हो गया	**अनु अवर्त्तत**	करता था ॥५६॥
वञ्चितः	ठगा गया		

क्वचित्पिबन्त्यां पिबति मदिरां मदविह्वलः ।

अश्नन्त्यां क्वचिदश्नाति जक्षत्यां सह जक्षिति ॥५७॥

क्वचित् पिबन्त्यां पिबति मदिरां मदविह्वलः अश्नन्त्यां क्वचित् अश्नाति जक्षत्यां सह जक्षिति ॥५७॥

क्वचित्	**कभी**
मदिरां	
पिबन्त्यां	(स्त्री) मदिरा पीने लगती तो
पिबति	(वह भी) पीता था
मदविह्वलः	और मदसे उन्मत्त हो जाता

क्वचित्	
अश्नन्त्यां	कभी वह भोजन करती
अश्नाति	वह भी भोजन करता
जक्षत्यां	वह कुछ चबाती
सह जक्षिति	तब साथ ही चबानें लगता ॥५७॥

क्वचिद्गायति गायन्त्यां रुदत्यां रुदति क्वचित् ।

क्वचिद्धसन्त्यां हसति जल्पन्त्यामनु जल्पति ॥५८॥

क्वचिद् गायति गायन्त्यां रुदत्यां रुदति क्वचित् क्वचिद् हसन्त्यां हसति जल्पन्त्यां अनु जल्पति ॥५८॥

क्वचिद्	
गायन्त्यां	कभी जब वह गाने लगती तो
गायति	गाने लगता
क्वचिद् रुदत्यां	कभी वह रोती तो
रुदति	रोने लगता

क्वचिद्	
हसन्त्यां	कभी वह हँसती
हसति	तो हँसता
जल्पन्त्यां	वह बोलती तो
अनु जल्पति	पीछे बोलने लगता ॥५८॥

क्वचिद्धावति धावन्त्यां तिष्ठन्त्यामनु तिष्ठति ।

अनु शेते शयानायामन्वास्ते क्वचिदासतीम् ॥५९॥

क्वचिद् धावति धावन्त्यां तिष्ठन्त्यां अनु तिष्ठति अनु शेते शयानायां अनु आस्ते क्वचिद् आसतीं ॥५९॥

क्वचिद्	
धावन्त्यां	कभी वह दौड़ती तो
धावति	दौड़ने लगता
तिष्ठन्त्यां	वह खड़ी होती तो
अनु तिष्ठति	पीछे खड़ा हो जाता

शयानायां	वह सोती
अनु शेते	तब साथ सो जाता
क्वचिद् आसतीं	कभी वह बैठती तो
अनु आस्ते	साथ ही बैठ जाता ॥५९॥

क्वचिच्छृणोति शृण्वन्त्यां पश्यन्त्यामनु पश्यति ।

क्वचिज्जिघ्रति जिघ्रन्त्यां स्पृशन्त्यां स्पृशति क्वचित् ॥६०॥

क्वचित् शृणोति शृण्वन्त्यां पश्यन्त्यां अनु पश्यति क्वचिद् जिघ्रति जिघ्रन्त्यां स्पृशन्त्यां स्पृशति क्वचित् ॥६०॥

क्वचित्		**जिघ्रति**	सूंघने लगता
शृण्वन्त्यां	कभी वह सुनाती तो	**क्वचित्**	
शृणोति	सुनने लगता	**स्पृशन्त्यां**	कभी स्पर्श करती तो
पश्यन्त्यां	वह देखती तो		
अनु पश्यति	साथ ही देखता	**अनु स्पृशति**	साथ ही स्पर्श करता ॥६०॥
क्वचिद्			
जिघ्रन्त्यां	कभी सूंघती तो		

क्वचिच्च शोचतीं जायामनुशोचति दीनवत् ।

अनु हृष्यति हृष्यन्त्यां मुदितामनु मोदते ॥६१॥

क्वचित् च शोचतीं जायां अनु शोचति दीनवत् अनु हृष्यति हृष्यन्त्यां मुदितां अनु मोदते ॥६१॥

क्वचित् जायां	कभी पत्नीके	**अनु हृष्यति**	साथ हर्षित हो जाता
शोचतीं	शोक करनेपर	**मुदितां**	मुदित होती तो
दीनवत्	दीन की तरह	**अनु मोदते**	साथ प्रसन्न हो जाता ॥६१॥
अनु शोचति	साथ शोक करता		
हृष्यन्त्यां	वह हर्षित होती तब		

विप्रलब्धो महिष्यैवं सर्वप्रकृतिवञ्चितः ।

नेच्छन्नुकरोत्यज्ञः क्लैब्यात्क्रीडामृगो यथा ॥६२॥

विप्रलब्धः महिष्या एवं सर्व प्रकृति वञ्चितः न इच्छन् अनु करोति अज्ञः क्लैब्यात् क्रीडामृगः यथा ॥६२॥

एवं	इस प्रकार	**न इच्छन्**	न चाहनेपर भी
महिष्या		**क्लैब्यात्**	का-पुरुषतावश
विप्रलब्धः	स्त्रीके द्वारा ठगा गया	**यथा क्रीडामृगः**	जैसे खिलौनेका पशु हो
सर्वं प्रकृति	परिवारजनों द्वारा	**अनु करोति**	अनुकरण करता
वञ्चितः	ठगे जाकर		था ॥६२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

नारद उवाच-

स एकदा महेष्वासो रथं पञ्चाश्वमाशुगम् ।
द्वीषं द्विचक्रमेकाक्षं त्रिवेणुं पञ्चबन्धुरम् ॥१॥

स एकदा महा इष्वासः रथं पञ्चाश्वं आशुगं द्वीषं द्विचक्रं एकाक्षं त्रिवेणुं पञ्चबन्धुरं ॥१॥

एकदा	एक दिन	द्विचक्रं	दो पहियेके
स	वह	एकाक्षं	एकधुरीवाले
महा इष्वासः	विशाल धनुष लेकर	त्रिवेणुं	तीन ध्वज दण्डवाले
पञ्चाश्वं	पाँच घोड़ोंवाले	पञ्च बन्धुरं	पांच डोरियों-
आशुगं	शीघ्रगामी		वाले ॥१॥
द्वीषं	दो ईषा दण्डवाले		

एकरश्म्येकदमनमेकनीडं द्विकूबरम् ।
पञ्चप्रहरणं सप्तवरूथं पञ्चविक्रमम् ॥२॥

एक रश्मि एक दमनं एक नीडं द्वि कूबरं पञ्च प्रहरणं सप्त वरूथं पञ्च विक्रमं ॥२॥

एक रश्मि	एक लगामवाले	पञ्च प्रहरणं	पांच शस्त्रवाले
एक दमनं	एक सारथिवाले	सप्त वरूथं	सात आवरणवाले
एक नीडं	एक बैठनेके स्थान- वाले	पञ्च विक्रमं	पांच प्रकारसे चलनेवाले ॥२॥
द्वि कूबरं	दो जुए वाले		

हैमोपस्करमारुह्य स्वर्णवर्माक्षयेषुभिः ।
एकादशचमूनाथः पञ्चप्रस्थमगाद्वनम् ॥३॥

हैम उपस्करं आरुह्य स्वर्णवर्म अक्षय इषुभिः एकादश चमूनाथः पञ्चप्रस्थं अगात् वनं ॥३॥

हैम उपस्करं	सोनेके साजवाले (रथपर)	**आरुह्य**	बैठकर
स्वर्णवर्म	सोनेके कवचको पहनकर	**एकादश चमूनाथः**	ग्यारहो सेनापतिके साथ
अक्षय इषुधिः	अक्षय तरकस धारणकर	**पञ्चप्रस्थं**	पञ्चप्रस्थ नामक
		वनं अगात्	वनको गया ॥३॥

चचार मृगयां तत्र दृप्त आत्तेषुकार्मुकः ।
विहाय जायामतदर्हां मृगव्यसनलालसः ॥४॥

चचार मृगयां तत्र दृप्तः आत्त इषु कार्मुकः विहाय जायां अतदर्हां मृगव्यसन लालसः ॥४॥

तत्र	उस वनमें	**आत्त**	लेकर
मृगव्यसन	शिकारके व्यसन और	**अतदर्हां**	त्यागके अयोग्य
लालसः	लालसासे	**जायां**	पत्नीको
दृप्तः इषु	गर्वसे बाण	**विहाय**	छोड़कर
कार्मुकः	धनुष	**मृगयां चचार**	शिकार खेलने लगा ॥४॥

आसुरीं वृत्तिमाश्रित्य घोरात्मा निरनुग्रहः ।
न्यहनन्निशितैर्बाणैर्वनेषु वनगोचरान् ॥५॥

आसुरीं वृत्तिं आश्रित्य घोर आत्मा निर् अनुग्रहः नि अहनत् निशितैः बाणैः वनेषु वन गोचरान् ॥५॥

घोर आत्मा	कठोर स्वभाववाला	**निशितैः बाणैः**	तीक्ष्ण बाणोंसे
निरनुग्रहः	दया रहित	**वनेषु**	वनमें
आसुरीं वृत्तिम्	आसुरी वृत्तिको	**वनगोचरान्**	जंगली पशुओंको
अश्नित्य	ग्रहण कर	**निअहनत्**	मारा ॥५॥

तीर्थेषु प्रतिदृष्टेषु राजा मेध्यान् पशून् वने ।
यावदर्थमलं लुब्धो हन्यादिति नियम्यते ॥६॥

तीर्थेषु प्रतिदृष्टेषु राजा मेध्यान् पशून् वने यावद् अर्थं अलं लुब्धः हन्यात् इति नियम्यते ॥६॥

अलं लुब्धः	अत्यन्त लोभ (व्यसन) रोककर	**मेध्यान् पशून्**	आखेटके लिए विहित पशुओंका*
राजा वने	राजा वनमें जाकर	**हन्यात्**	वध करे
प्रतिदृष्टेषु	केवल शास्त्रोक्त कर्मोंके लिए	**इति नियम्यते**	ऐसा शास्त्र ने नियम किया है ॥६॥
तीर्थेषु	विहित स्थानसे		
यावद् अर्थं	आवश्यकताके अनुसार		

य एवं कर्म नियतं विद्वान् कुर्वीत मानवः ।
कर्मणा तेन राजेन्द्र ज्ञानेन न स लिप्यते ॥७॥

य एवं कर्म नियतं विद्वान् कुर्वीत मानवः कर्मणा तेन राजेन्द्र ज्ञानेन न स लिप्यते ॥७॥

यः	जो	**राजेन्द्र**	हे राजेन्द्र !
विद्वान् मानवः	विद्वान् मनुष्य	**स ज्ञानेन**	वह ज्ञानके द्वारा
एवं	इस प्रकार	**तेन कर्मणा**	उस कर्मसे
नियतं कर्म	शास्त्रोक्त कर्म	**न लिप्यते**	लिप्त नहीं होता ॥७॥
कुर्वीत	करता है		

---

* वृद्ध, दलवहिष्कृत पशु जो अपना आहार भी स्वयं सरलतासे नहीं ले पाते आखेट शास्त्रमें मारने योग्य माने गये हैं ।

अन्यथा कर्म कुर्वाणो मानारूढो निबध्यते ।
गुणप्रवाहपतितो नष्टप्रज्ञो व्रजत्यधः ॥८॥

अन्यथा कर्म कुर्वाणः मानारूढः निबध्यते गुणप्रवाह पतितः नष्टप्रज्ञः व्रजति अधः ॥८॥

अन्यथा कर्म	अन्यथा मनमाना कर्म	**गुणप्रवाह पतितः**	गुण प्रवाह रूप संसार चक्रमें पड़कर
कुर्वाणः	करनेसे	**नष्टप्रज्ञः**	विवेक भ्रष्ट होकर
मानारूढः	अभिमानवश	**अधः व्रजति**	अधम योनिमें जाता है ॥८॥
निबध्यते	कर्म बन्धनमें पड़ता है ।		

तत्र निर्भिन्नगात्राणां चित्रवाजैः शिलीमुखैः ।
विप्लवोऽभूद्दुःखितानां दुःसहः करुणात्मनाम् ॥९॥

तत्र निर्भिन्नगात्राणां चित्रवाजैः शिलीमुखैः विप्लवः अभूत् दुखितानां दुःसहः करुणात्मनाम् ॥९॥

चित्रवाजैः	तरह-तरहके पङ्खवाले	**करुणात्मनां**	दयालु स्वभाव लोगोंको
शिलीमुखैः	बाणोंसे	**दुःसहः**	असह्य
निर्भिन्नगात्राणां	छिन्न-भिन्न शरीरवाले	**विप्लवः**	विप्लव (उथल-पुथल)
तत्र	उस वनमें	**अभूत**	हुआ ॥९॥
दुःखितानां	दुःखी हो गये		

शशान् वराहान् महिषान् गवयान् रुरुशल्यकान् ।
मेध्यानन्यांश्च विविधान् विनिघ्नन् श्रममध्यगात् ॥१०॥

शशान् वराहान् महिषान् गवयान् रुरु शल्यकान् मेध्यान् अन्यान् च विविधान् विनिघ्नन् श्रमं अध्यगात् ॥१०॥

शशान	खरगोश,	**विविधान्**	अनेक प्रकारके
वराहान	सुअर,	**मेध्यान्**	(आखेट) पवित्र (पशु)
महिषान्	भैंसे,		
गवयान्	नील गाय,	**विनिघ्नन्**	मारते हुए
रुरु	चित्तल मृग,	**श्रमं**	परिश्रम
शल्यकान्	सेही	**अध्यगात्**	प्राप्त (शान्त) हो
च अन्यान्	तथा दूसरे		गया ॥१०॥

ततः क्षुत्तृट्परिश्रान्तो निवृत्तो गृहमेयिवान् ।
कृतस्नानोचिताहारः संविवेश गतक्लमः ॥११॥

ततः क्षुत् तृट् परिश्रान्तः निवृत्तः गृहं एयिवान् कृतस्नान उचित आहारः संविवेश गतक्लमः ॥११॥

ततः	तब	**कृतस्नान**	स्नान किया
क्षुत्	भूख	**उचित आहारः**	उचित भोजन किया
तृट्	प्याससे	**गतक्लमः**	श्रम दूर हुआ
परिश्रान्तः	थककर	**संविवेश**	आराम करने
निवृत्तः	लौटा		लगा ॥११॥
गृहं एयिवान्	राजमहलमें आया		

आत्मानमर्हयाञ्चक्रे धूपालेपस्रगादिभिः ।
साध्वलङ्कृतसर्वाङ्गो महिष्यामादधे मनः ॥१२॥

आत्मानं अर्हयाञ्चक्रे धूप आलेप स्रक् आदिभिः साधु अलंकृत् सर्वाङ्गः महिष्यां आदधे मनः ॥१२॥

धूप	(सुगंधित) धूप	**सर्वाङ्गः अलंकृत**	सब अंगोंका शृङ्गार करके
आलेप	अंगराग	**महिष्यां**	पत्नीको (पानेका)
स्रक् आदिभिः	माला आदिसे	**मनः आदधे**	मन (विचार) किया ॥१२॥
आत्मानं	अपना		
अर्हयांचक्रे	शृङ्गार किया		
साधु	भली प्रकार		

तृप्तो हृष्टः सुहृप्तश्च कन्दर्पाकृष्टमानसः ।
न व्यचष्ट वरारोहां गृहिणीं गृहमेधिनीम् ॥१३॥

तृप्तः हृष्टः सुहृप्तः च कन्दर्प आकृष्ट मानसः न व्यचष्ट वरारोहां गृहिणीं गृहमेधिनीं ॥१३॥

तृप्तः	(भोजनसे) तृप्त होकर	**कन्दर्प आकृष्ट मानसः**	कामसे चित्त खींचे जानेपर
हृष्टः	हर्षित होकर	**गृहमेधिनीं**	गृहस्वामिनी
च सुहृप्तः	तथा मदमे उन्मत्त होकर	**वरारोहां**	अति सुन्दरी
		गृहिणीं	भार्य्याको
		न व्यचष्ट	कहीं देखा नहीं ॥१३

अन्तःपुरस्त्रियोऽपृच्छद्विमना इव वेदिषत् ।
अपि वः कुशलं रामाः सेश्वरीणां यथा पुरा ॥१४॥

अन्तः पुरः स्त्रियः अपृच्छत् विमना इव वेदिषत् अपि वः कुशलं रामाः स ईश्वरीणां यथा पुरा ॥१४॥

वेदिषत्	हे प्राचीन बर्हि !	**स ईश्वरीणां**	अपनी स्वामिनी सहित
विमना इव	उदास-सा होकर	**वः**	तुम सब
अन्तःपुरःस्त्रियः	अन्तःपुराकी स्त्रियोंसे	**यथा पुरा**	पहलेकी भाँति
अपृच्छत्	पूछा—	**अपि कुशलं**	कुशलसे तो हो' ॥१४
रामाः	'सुन्दरियों		

न तथैतर्हि रोचन्ते गृहेषु गृहसम्पदः ।
यदि न स्याद् गृहे माता पत्नी वा पतिदेवता ।
व्यङ्गे रथ इव प्राज्ञः को नामासीत दीनवत् ॥१५॥

न तथा एतः हि रोचन्ते गृहेषु गृहसम्पदः यदि न स्यात् गृहे माता पत्नी वा पतिदेवता व्यङ्गे रथे इव प्राज्ञः को नाम आसीत् दीनवत् ॥१५॥

हि	क्योंकि
एतः	इस
गृहेषु	घरमें
गृहसम्पदः	घरकी सम्पति
तथा	वैसी
रोचन्ते न	शोभित नहीं होती
यदि	यदि
गृहे	घरमें
माता	माता
वा	अथवा
पतिदेवता	पतिव्रता
पत्नी न स्यात्	पत्नी न हो,
को नाम	भला कौन
प्राज्ञः	बुद्धिमान
दीनवत्	दीनकी भाँति
व्यंङ्गे रथे	अंग हीन रथ-
इव	की भाँति (ऐसे
	घरमें)
आसीत्	रहेगा ॥१५॥

क्व वर्तते सा ललना मज्जन्तं व्यसनार्णवे ।
या मामुद्धरते प्रज्ञां दीपयन्ती पदे पदे ॥१६॥

क्व वर्तते सा ललना मज्जन्तं व्यसन अर्णवे या मां उद्धरते प्रज्ञां दीपयन्ती पदे पदे ॥१६॥

सा ललना	वह सुन्दरी
क्व वर्तते	कहाँ है
व्यसन अर्णवे	दुःखके समुद्रमें
मज्जन्तं	डूबते
मां	मुझे
पदे पदे	पद-पदपर
या	जो
प्रज्ञां दीपयन्ती	प्रज्ञा प्रदीप्त करके
उद्धरते	उद्धार करती
	है ॥१६॥

रामा ऊचुः-

नरनाथ न जानीमस्त्वत्प्रिया यद्व्यवस्यति ।
भूतले निरवस्तारे शयानां पश्य शत्रुहन् ॥१७॥

नरनाथ न जानीमः त्वत् प्रिया यद् व्यवस्यति भूतले निरवस्तारे शयानां पश्य शत्रुहन् ॥१७॥

नरनाथ	राजन् !	**शत्रुहन्**	हे शत्रुदमन !
त्वत् प्रिया	तुम्हारी प्रियाने	**निरवस्तारे**	बिनाविछौना
यद् व्यवस्यति	जो करना चाहा है (वह)	**भूतले**	पृथिवीपर
		शयानां	सोती हुई (उन्हें)
न जानीमः	हमें नहीं जानतीं	**पश्य**	देखो ॥१७॥

नारद उवाच-

पुरञ्जनः स्वमहिषीं निरीक्ष्यावधुतां भुवि ।
तत्सङ्गोन्मथितज्ञानो वैक्लव्यं परमं ययौ ॥१८॥

पुरञ्जनः स्वमहिषीं निरीक्ष्य अवधुतां भुवि तत् संग उन्मथित ज्ञानः वैक्लव्यं परमं ययौ ॥१८॥

पुरञ्जनः	पुरञ्जन !	**ज्ञानः**	ज्ञानके
स्वमहिषीं	अपनी रानीको	**उन्मथितं**	अस्तव्यस्त हो जानेसे
भुवि	पृथ्वीपर	**परमं वैक्लव्यं**	अत्यन्त व्याकुलता-को
अवधुतां	मलिन दशामें		
निरीक्ष्य	देखकर	**ययौ**	प्राप्त हो गया ॥१८॥
तत् संग	उसकी आसक्तिसे		

सान्त्वयन् श्लक्ष्णया वाचा हृदयेन विदूयता ।
प्रेयस्याः स्नेहसंरम्भलिङ्गमात्मनि नाभ्यगात् ॥१९॥

सान्त्वयन् श्लक्ष्णया वाचा हृदयेन विदूयता प्रेयस्याः स्नेह संरम्भ लिङ्गं आत्मनि न अभ्यगात् ॥१९॥

विदूयता		**प्रेयस्याः**	प्रियाका
हृदयेन	दुःखित हृदयसे	**आत्मनि**	अपने प्रति
श्लक्ष्णया वाचा	मधुर वाणी द्वारा	**स्नेह संरम्भ**	प्रणय-कोपका
सान्त्वयन्	सान्त्वना देता रहापर	**लिङ्गं**	हेतु
		न अभ्यगात्	नहीं जान सका ॥१९

अनुनिन्येऽथ शनकैर्वीरोऽनुनयकोविदः ।
पस्पर्श पादयुगलमाह चोत्सङ्गलालिताम् ॥२०॥

अनुनिन्ये अथ शनकैः वीरः अनुनय कोविदः पस्पर्श पादयुगलं आह च उत्सङ्ग लालितां ॥२०॥

अथ	फिर	**पादयुगलं**	
अनुनय		**पस्पर्श**	दोनों पैर छुए
कोविदः	मनानेमें कुशल	**च**	और
वीरः	वीरने	**उत्सङ्ग**	गोदमें बिठाकर
शनकैः	धीरे-धीरे	**लालितां**	लाड़ करते
अनुनिन्ये	मनाना शुरू किया	**आह**	कहने लगा ॥२०॥

पुरञ्जन उवाच–

नूनं त्वकृतपुण्यास्ते भृत्या येष्वीश्वराः शुभे ।
कृतागस्स्वात्मसात्कृत्वा शिक्षादण्डं न युञ्जते ॥२१॥

नूनं तु अकृत पुण्याः ते भृत्या येषु ईश्वराः शुभे कृत आगस्सु आत्मसात् कृत्वा शिक्षा दण्डं न युञ्जते ॥२१॥

शुभे	हे सुन्दरी !	**आत्मसात्**	
ते भृत्या	वे सेवक	**कृत्वा**	अपना समझकर
नूनं	निश्चय	**ईश्वराः**	स्वामीजन
अकृत पुण्याः	पुण्य हीन हैं	**शिक्षा दण्डं**	शिक्षाके लिए
कृत अगस्सु	अपराध करनेपर		उचित दण्ड
येषु	जिनको	**न युञ्जते**	नहीं देते ॥२१॥

परमोऽनुग्रहो दण्डो भृत्येषु प्रभुणार्पितः ।
बालो न वेद तत्तन्वि बन्धुकृत्यममर्षणः ॥२२॥

परमः अनुग्रहः दण्डः भृत्येषु प्रभुणा अर्पितः बालः न वेद तत् तन्वि बन्धुकृत्यं अमर्षणः ॥२२॥

भृत्येषु	सेवकको
प्रभुणा	स्वामी द्वारा
अर्पितः	दिया गया
दण्डः	दण्ड
परमः अनुग्रहः	परम अनुग्रह है।
तन्वि	सुन्दरी
तव	उस
बन्धुकृत्यं	अपने सम्बन्धीके कर्मको
अमर्षणः	असहनशील
बालः	अज्ञानी
न वेद	नहीं जान पाता ॥२२॥

सा त्वं मुखं सुदति सुभ्रूवनुरागभार-
व्रीडाविलम्बविलसद्धसितावलोकम् ।
नीलालकालिभिरुपस्कृतमुन्नसं नः
स्वानां प्रदर्शय मनस्विनि वल्गुवाक्यम् ॥२३॥

सा त्वं मुखं सुदति सुभ्रूः अनुरागभार व्रीडाविलम्ब विलसत् हसित अवलोकम् नील अलक अलिभिः उपस्कृतं उन्नसं नः स्वानां प्रदर्शय मनस्विनि वल्गुवाक्यम् ॥२३॥

सा त्वं	वह तुम
सुदति	सुन्दर दांतोंवाली,
सुभ्रूः	सुन्दर भौंहोंवाली,
अनुरागभार	प्रेमके आधिक्यसे
व्रीडा विलम्ब	लज्जासे युक्त
हसित अवलोकं	मुस्कराहट भरी चितवनसे
विलसत्	खिले,
नील अलक	काली अलकों रूपी
अलिभिः	भ्रमरोंसे
उपस्कृतं	घिरे हुए,
उन्नसं	ऊँची नासिकावाला,
वल्गुवाक्यं	मधुर वाक्य युक्त
मुखं	मुख
मनस्विनि	मनस्विनी,
नः	मुझ
स्वानां	अपने (जन) को
प्रदर्शय	दिखलाओ ॥२३॥

तस्मिन्दधे दममहं तव वीरपत्नि
योऽन्यत्र भूसुरकुलात्कृतकिल्बिषस्तम् ।
पश्ये न वीतभयमुन्मुदितं त्रिलोक्या-
मन्यत्र वै मुररिपोरितरत्र दासात् ॥२४॥

तस्मिन् दधे दमं अहं तव वीरपत्नि यः अन्यत्र भूसुर कुलात् कृत किल्बिषः तं पश्ये न वीतभयं उन्मुदितं त्रिलोक्यां अन्यत्र वै मुररिपोः इतरत्र दासात् ॥२४॥

वीरपत्नि	हे वीर पत्नि !	**मुररिपोः**	
यः	जिसने	**दासात्**	भगवान् मुरारिके भक्तोंको
तव कृत किल्बिषः	तुम्हारा अपराध किया है	**इतरत्र**	छोड़कर
तं	उसे	**वै**	निश्चय
भूसुर कुलात्	ब्राह्मण कुलसे	**त्रिलोक्यां**	त्रिलोकीमें
अन्यत्र	भिन्न को तो	**अन्यत्र**	या उससे बाहर (कोई)
तस्मिन्	उसे	**वीतभयं**	भय रहित
अहं	मैं	**उन्मुदितं**	आनन्दपूर्वक रह सके
दमं दधे	दण्ड देता हूँ ।	**न पश्ये**	(ऐसा कोई) नहीं देखता हूँ ॥२४॥

वक्त्रं न ते वितिलकं मलिनं विहर्षं
संरम्भभीममविमृष्टमपेतरागम् ।
पश्ये स्तनावपि शुचोपहतौ सुजातौ
बिम्बाधरं विगतकुङ्कुमपङ्करागम् ॥२५॥

वक्त्रं न ते वितिलकं मलिनं विहर्षं संरम्भभीमं अविमृष्टं अपेतरागं पश्ये स्तनौ अपि शुचा उपहतौ सुजातौ बिम्बाधरं विगत कुङ्कुमपङ्क रागं ॥२५॥

ते वक्त्रं	तुम्हारा मुख कभी	**संरम्भभीमं**	क्रोधके कारण डरावना,
वितिलकं	तिलकहीन,	**अविमृष्टं**	असज्जित,
मलिनं	मलिन,	**सुजातौ स्तनौ**	सुन्दर स्तनोंको
विहर्षं	उदास		

अपि	भी	कुङ्कुमपंक	केशर-चन्दन
शुचा उपहतौ	शोकाश्रुओंसे भीगा,	रागं	रञ्जनसे,
बिम्बाधरं	विम्बाफलके समान	अपेतरागं	रहित स्नेह शून्य
	लाल ओष्ठोंको	न पश्ये	नहीं देखा है ॥२५॥

तन्मे प्रसीद सुहृदः कृतकिल्बिषस्य
स्वैरं गतस्य मृगयां व्यसनातुरस्य ।
का देवरं वशगतं कुसुमास्त्रवेग-
विस्रस्तपौंस्नमुशती न भजेत कृत्ये ॥२६॥

तत् मे प्रसीद सुहृदः कृत किल्बिषस्य स्वैरं गतस्य मृगयां व्यसन आतुरस्य का देवरं वशगतं कुसुम अस्त्रवेग विस्रस्तपौंस्नं उशती न भजेत कृत्ये ॥२६॥

व्यसन आतुरस्य	व्यसनवश हुए		वेगसे
स्वैरं	स्वच्छन्द	विस्रस्तपौंस्नं	जिसका पुरुषत्व
मृगयां गतस्य	आखेट करने गये,		नष्ट हो गया है
कृत किल्बिषस्य	अपराध करनेवाले	वशगतं	उस वशमें आये
तत्	उस	देवरं	वरदायी (पतिको)
सुहृदः	सुहृद	कृत्ये	उचित कार्यके लिये
मे प्रसीद	मुझपर प्रसन्न हो	का	कौन
	जाओ ।	न भजेत	सेवन नहीं
कुसुम अस्त्रवेग	कामके विषम वाणोंके		करेगी ॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे पुरञ्जनोपाख्याने षट्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

नारद उवाच-

इत्थं पुरञ्जनं सध्र्यग्वशमानीय विभ्रमैः ।
पुरञ्जनी महाराज रेमे रमयती पतिम् ॥१॥

इत्थं पुरञ्जनं सध्र्यक् वशं आनीय विभ्रमैः पुरञ्जनी महाराज रेमे रमयती पतिं ॥१॥

महाराज	हे महाराज	**वशं आनीय**	वशमें करके
इत्थं	इस प्रकार	**पतिं रमयती**	पतिको आनन्दित करती
पुरञ्जनी	पुरंजनी	**रेमे**	विहार करने लगी ॥१॥
विभ्रमैः	हाव-भावसे		
पुरञ्जनं	पुरञ्जनको		
सध्र्यक्	भली प्रकार		

स राजा महिषीं राजन् सुस्नातां रुचिराननाम् ।
कृतस्वस्त्ययनां तृप्तामभ्यनन्ददुपागताम् ॥२॥

स राज महिषीं राजन् सुस्नातां रूचिराननां कृतस्वस्त्ययनां तृप्तां अभ्यनन्दत् उपागतां ॥२॥

स राजन्	वह राजा	**तृप्तां**	तृप्त हुई
सुस्नातां	अच्छी प्रकार स्नान किये	**उपागतां**	पास आयी
		महिषीं	राजमहिषीका
कृतस्वस्त्ययनां	मंगल शृङ्गार किये	**अभ्यनन्दत्**	अभिनन्दन किया ॥२॥
रुचिराननां	सुन्दर मुखवाली		

तयोपगूढः परिरब्धकन्धरो
रहोऽनुमन्त्रैरपकृष्टचेतनः ।
न कालरंहो बुबुधे दुरत्ययं
दिवा निशेति प्रमदापरिग्रहः ॥३॥

तया उपगूढः परिरब्धकन्धरः रहः अनु मन्त्रैः अपकृष्ट चेतनः न काल रंहः बुबुधे दुरत्ययं दिवा निशा इति प्रमदा परिग्रहः ॥३॥

तया	उसके द्वारा	दिवा निशा	दिन-रात
उपगूढः	आलिंगित होकर	इति	इस प्रकार (बिताते)
परिरब्धकन्धर	उसको गले लगाकर		
रहः	एकान्तमें	दुरत्ययं	दुस्तर
अनुमन्त्रैः	रहस्यकी बातें करते	कालरंहः	कालके वेगको
चेतनः	चेतना (सावधानी)	न बुबुधे	नहीं जान
अपकृष्ट	विनष्ट हो गयी,		सका ॥३॥

शयान उन्नद्धमदो महामना
महार्हतल्पे महिषीभुजोपधिः ।
तामेव वीरो मनुते परं यत-
स्तमोऽभिभूतो न निजं परं च यत् ॥४॥

शयानः उन्नद्धमदः महामना महार्हतल्पे महिषी भुजा उपधिः तां एव वीरः मनुते परं यतः तमः अभिभूतः न निजं परं च यत् ॥४॥

उन्नद्धमदः	मदसे छका हुआ	वीरः	वह वीर
महामना	मनस्वी	तां एव	उसको ही
महिषी	पत्नीकी	परं मनुते	सर्वश्रेष्ठ मानता था
भुजा उपधिः	भुजाका तकिया बनाये	यत्	जिससे भिन्न
		निजं	अपना
महार्हतल्पे	महामूल्य शय्यापर	च	और
शयानः	सोता हुआ		

परं	पराया	**तमः अभिभूतः**	अज्ञानसे आच्छन्न हो गया ॥४॥
न	नहीं था ।		

तस्यैवं रममाणस्य कामकश्मलचेतसः ।
क्षणार्धमिव राजेन्द्र व्यतिक्रान्तं नवं वयः ॥५॥

तस्य एवं रममाणस्य कामकश्मल चेतसः क्षणार्धं इव राजेन्द्र व्यतिक्रान्तं नवं वयः ॥५॥

राजेन्द्र	राजेन्द्र !	**रममाणस्य**	रमण करते हुए
कामकश्मल	कामके द्वारा मलिन	**क्षणार्धं इव**	आधे क्षणके समान
चेतसः	चित्तवाले	**नवं वयः**	नयी उमर
तस्य	उसके	**व्यतिक्रान्तं**	बीत गयी ॥५॥
एवं	इस प्रकार		

तस्यामजनयत्पुत्रान् पुरञ्जन्यां पुरञ्जनः ।
शतान्येकादश विराडायुषोऽर्धमथात्यगात् ॥६॥

तस्यां अजनयत् पुत्रान् पुरञ्जन्यां पुरञ्जनः शतानि एकादश विराट् आयुषः अर्धं अथ अति अगात् ॥६॥

पुरञ्जनः	पुरंजनने	**अथ**	इस प्रकार
तस्यां	उस	**विराट् आयुषः**	बड़ी आयुका
पुरञ्जन्यां	पुरञ्जनीसे	**अर्धं**	आधा भाग
एकादश शतानि	ग्यारहसौ	**अति अगात्**	बीत गया ॥६॥
पुत्रान् अजनयत्	पुत्रोंको पैदा किया		

दुहितॄर्दशोत्तरशतं पितृमातृयशस्करीः ।
शीलौदार्यगुणोपेताः पौरञ्जन्यः प्रजापते ॥७॥

दुहितृः दशोत्तरशतं पितृ मातृ यशः करीः शील औदार्य गुण उपेताः पौरञ्जन्यः प्रजापते ॥७॥

प्रजापते	हे प्रजापते	**पितृ मातृ**	
दशोत्तर शतं	एकसौ दस	**यशः करीः**	पिता माताके यशको
शील औदार्य	शील एवं उदारताके		बढ़ानेवाली
गुण उपेताः	गुणोंसे युक्त	**दुहितृः**	कन्याएँ
		पौरञ्जन्यः	पुरञ्जनसे पैदा हुईं ॥७॥

स पञ्चालपतिः पुत्रान् पितृवंशविवर्धनान् ।
दारैः संयोजयामास दुहितृः सदृशैर्वरैः ॥८॥

स, पञ्चालपतिः पुत्रान् पितृवंश विवर्धनान् दारैः संयोजयामास दुहितृः सदृशैः वरैः ॥८॥

स पञ्चालपतिः	उस पञ्चालराजने		दिया
पितृवंश		**दुहितृः**	लड़कियोंको
विवर्धनान्	पिताके वंशको बढ़ानेवाले	**सदृशैः वरैः**	उनके योग्य वरोंसे (युक्त कर दिया) ॥८॥
पुत्रान्	पुत्रोंको		
दारैः			
संयोजयामास	पत्नियोंसे युक्त कर		

पुत्राणां चाभवन् पुत्रा एकैकस्य शतं शतम् ।
यैर्वै पौरञ्जनो वंशः पञ्चालेषु समेधितः ॥९॥

पुत्राणां च अभवन् पुत्राः एक एकस्य शतं शतं यैः वै पौरञ्जनः वंशः पञ्चालेषु समेधितः ॥९॥

पुत्राणां		**पौरञ्जनः वंशः**	पुरञ्जनका वंश
एक एकस्य	पुत्रोंके प्रत्येकके	**पञ्चालेषु**	पाञ्चालमें
शतं शतं अभवन्	सौ-सौ (पुत्र) हुये	**समेधितः**	भली प्रकार बढ़ गया ॥९॥
यैः वै	जिनसे निश्चय ही		

तेषु तद्रिक्थहारेषु गृहकोशानुजीविषु ।
निरूढेन ममत्वेन विषयेष्वन्वबध्यत ॥१०॥

तेषु तद् रिक्थहारेषु गृह कोश अनुजीविषु निरूढेन ममत्वेन विषयेषु अनु अबध्यत ॥१०॥

तेषु	उनके उन	**ममत्वेन**	ममताके
रिक्थहारेषु	उत्तराधिकारियों तथा	**निरूढेन**	अत्यन्त दृढ़ होनेसे
गृह	घर,	**विषयेषु**	(संसारिक) विषयोंके
कोश	खजाने	**अनु अबध्यत**	पीछे बँध गया ॥१०॥
अनुजीविषु	अनुजीवियोंमें		

ईजे च क्रतुभिर्घोरैर्दीक्षितः पशुमारकैः ।
देवान् पितॄन् भूतपतीन्नानाकामो यथा भवान् ॥११॥

ईजे च क्रतुभिः घोरैः दीक्षितः पशु मारकैः देवान् पितॄन् भूतपतीन् नाना कामः यथा भवान् ॥११॥

यथा भवान्	जैसा तुमने किया (वैसे ही)	**घोरैः क्रतुभिः**	घोर यज्ञोंसे
नाना कामः	अनेक कामनाओंसे	**देवान् पितॄन्**	देव-पितर (तथा)
दीक्षितः	यज्ञकी दीक्षा ली	**भूतपतीन्**	भूतपतियोंका
च पशु मारकैः	और पशु बलिवाले	**ईजे**	यजन किया ॥११॥

युक्तेष्वेवं प्रमत्तस्य कुटुम्बासक्तचेतसः ।
आससाद स वै कालो योऽप्रियः प्रिययोषिताम् ॥१२॥

युक्तेषु एवं प्रमत्तस्य कुटुम्ब आसक्त चेतसः आससाद स वै कालः यः अप्रियः प्रिय योषिताम् ॥१२॥

एवं युक्तेषु	इस प्रकार लगे हुए	**कुटुम्ब आसक्त चेतसः**	कुटम्बमें आसक्त चित्त
प्रमत्तस्य	असावधान		

स कालः	(के लिए) वह समय	**योषितां प्रिय**	स्त्रियोंके प्रेमियोंको
आससाद	आ गया	**अप्रियः**	अप्रिय है ॥१२॥
यः	जो		

चण्डवेग इति ख्यातो गन्धर्वाधिपतिर्नृप ।
गन्धर्वास्तस्य बलिनः षष्टयुत्तरशतत्रयम् ॥१३॥

चण्डवेग इति ख्यातः गन्धर्व अधिपतिः नृप गन्धर्वाः तस्य बलिनः षष्टि उत्तर शतत्रयं ॥१३॥

नृप	राजन् !	**बलिनः**	बलवान
चण्डवेग इति	चण्डवेग इस नामसे	**षष्टि उत्तर**	
ख्यातः	विख्यात	**शतत्रयम्**	तीनसौ साठ
गन्धर्व-		**गन्धर्वाः**	गन्धर्व (सैनिक)
अधिपतिः	गन्धर्वोंका अधिपति		हैं ॥१३॥
तस्य	उसके		

गन्धर्व्यस्तादृशीरस्य मैथुन्यश्च सितासिताः ।
परिवृत्त्या विलुम्पन्ति सर्वकामविनिर्मिताम् ॥१४॥

गन्धर्व्यः तादृशीः अस्य मैथुन्यः च सिता असिताः परिवृत्त्या विलुम्पन्ति सर्वकाम विनिर्मिताम् ॥१४॥

मैथुन्यः	मिली-जुली रहनेवाली	**परिवृत्त्या**	जो बारी-बारीसे
सिता असिताः	शुक्ल और कृष्ण वर्णकी	**सर्वकाम**	सभी भोग सामग्रीसे
तादृशीः	उतनी ही	**विनिर्मितां**	पूर्ण बनी (नगरीको)
अस्य	उसकी	**विलुम्पन्ति**	लूटती रहती हैं ॥१४॥
गन्धर्व्यः	गन्धर्वी भी हैं		

ते चण्डवेगानुचराः पुरञ्जनपुरं यदा ।
हर्तुमारेभिरे तत्र प्रत्यषेधत्प्रजागरः ॥१५॥

ते	उन
चण्डवेग	
अनुचराः	चण्डवेगके सेवकोंने
यदा	जब
पुरञ्जनपुरं	पुरञ्जनके नगरको
हर्तुम्	लूटना
आरेभिरे	प्रारम्भ किया
तत्र	तब
प्रजागरः	जागनेवाले (चौकीदार सर्पने)
प्रत्यषेधत्	उन्हें रोका ॥१५॥

स सप्तभिः शतैरेको विंशत्या च शतं समाः ।
पुरञ्जनपुराध्यक्षो गन्धर्वैर्युयुधे बली ॥१६॥

स सप्तभिः शतैः एकः विंशत्या च शतं समाः पुरञ्जनपुर अध्यक्षः गन्धर्वैः युयुधे बली ॥१६॥

स	उस
बली	बलवान
पुरञ्जनपुर अध्यक्षः	पुरञ्जनपुर पालकने
एकः	अकेले
शतं समाः	सौ वर्षों तक
सप्तभिः शतैः	सात सौ
विंशत्या च	और बीस (सात सौ बीस)
गन्धर्वैः	गन्धर्वोंसे
युयुधे	लड़ता रहा ॥१६॥

क्षीयमाणे स्वसम्बन्धे एकस्मिन् बहुभिर्युधा ।
चिन्तां परां जगामार्तः सराष्ट्रपुरबान्धवः ॥१७॥

क्षीयमाणे स्वसम्बन्धे एकस्मिन् बहुभिः युधा चिन्तां परां जगाम आर्तः सराष्ट्र पुर बान्धवः ॥१७॥

बहुभिः	बहुतों द्वारा
एकस्मिन्	एकसे
युधा	युद्ध होनेके कारण
स्वसम्बन्धे	अपने सम्बन्धीके
क्षीयमाणे	क्षीण (दुर्बल) होनेपर
सराष्ट्र	अपने राष्ट्र
पुर-बान्धवः	नगरवालों तथा सम्बन्धियों सहित
आर्तः	दुःखो होकर
परां चिन्तां	बड़ी चिन्ताको
जगाम	प्राप्त हुआ ॥१७॥

स एव पुर्यां मधुभुक्पञ्चालेषु स्वपार्षदैः ।
उपनीतं बलिं गृह्णन् स्त्रीजितो नाविदद्भयम् ॥१८॥

स एव पुर्यां मधुभुक् पञ्चालेषु स्वपार्षदैः उपनीतं बलिं गृह्णन् स्त्रीजितः न अविदत् भयम् ॥१८॥

स एव	वही (इतने दिनों तक)	**मधुभुक्**	मधुर (भोग) भोगता रहा,
पञ्चालेषु	पञ्चाल देशके	**स्त्रीजितः**	स्त्रीके वशीभूत होनेसे
पुर्यां	उस नगरमें	**भयं**	भयको
स्वपार्षदैः	अपने सेवकों द्वारा	**न अविदत्**	नहीं जान सका ॥१८॥
उपनीतं	लाये गये		
बलिं	उपहार (कर)		
गृह्णन्	लेते रहकर		

कालस्य दुहिता काचित्त्रिलोकीं वरमिच्छती ।
पर्यटन्ती न बर्हिष्मन् प्रत्यनन्दत कञ्चन ॥१९॥

कालस्य दुहिता काचित् त्रिलोकीं वरं इच्छती परि अटन्ती न बर्हिष्मन् प्रति अनन्दत कञ्चन ॥१९॥

बर्हिष्मन्	हे प्राचीन वर्हि,	**परि अटन्ती**	चारो ओर घूम रही थी (पर)
काचित्	कोई	**कञ्चन**	उसे किसीने
कालस्य		**न प्रति अनन्दत**	स्वीकार नहीं किया ॥१९॥
दुहिता	कालकी कन्या		
वरं इच्छती	वरकी इच्छा करती		
त्रिलोकीं	तीनों लोकोंमें		

दौर्भाग्येनात्मनो लोके विश्रुता दुर्भगेति सा ।
या तुष्टा राजर्षये तु वृतादात्पूरवे वरम् ॥२०॥

दौर्भाग्येन आत्मनः लोके विश्रुता दुर्भगा इति सा या, तुष्टा राजर्षये तु वृता अदात् पूरवे वरं ॥२०॥

आत्मनः	अपने	राजर्षयेतु	राजर्षि (ययाति) को
दौर्भाग्येन	दुर्भाग्यसे		ही
लोके सा	लोकमें वह	वृता	वरण किया
दुर्भगा इति	दुर्भगा है इस प्रकार		(उन्होंने)
विश्रुता	प्रसिद्ध हो गयी	पूरवे	पुरुको (उसे)
या	जिसने	वरं	वर रूपमें
तुष्टा	सन्तुष्ट होकर	अदात्	दिया ॥२०॥

कदाचिदटमाना सा ब्रह्मलोकान्महीं गतम् ।
वव्रे बृहद्व्रतं मां तु जानती काममोहिता ॥२१॥

कदाचित् अटमाना सा ब्रह्मलोकात् महीं गतं वव्रे बृहद्व्रतं मां तु जानती काम मोहिता ॥२१॥

सा	वह	बृहद्व्रतं	ब्रह्मचर्यव्रती
कदाचित्	किसी समय	जानती तु	जानती हुई भी
अटमाना	घूमती हुई	काम मोहिता	काम मोहित होकर
ब्रह्मलोकात्	ब्रह्म लोकसे	वव्रे	मुझे वरण करना
महीं गतं	पृथिवीपर आये		चाहा ॥२१॥
मां	मुझको		

मयि संरभ्य विपुलमदाच्छापं सुदुःसहम् ।
स्थातुमर्हसि नैकत्र मद्याच्ञाविमुखो मुने ॥२२॥

मयि संरभ्य विपुलं अदात् शापं सुदुःसहं स्थातुं अर्हसि न एकत्र मद् याच्ञा विमुखः मुने ॥२२॥

मयि	मेरे	मुने	मुनि
संरभ्य	मना करनेपर	मद् याञ्चा	मेरी याचनासे
सुदुःसहं	अत्यन्त दुःसह	विमुखः	विमुख होकर
विपुलं	भारी	एकत्र	एक जगह
शापं	शाप	स्थातुं	ठहरने
अदात्	दिया कि	न अर्हसि	योग्य नहीं हो ॥२२॥

ततो विहतसङ्कल्पा कन्यका यवनेश्वरम् ।
मयोपदिष्टमासाद्य वव्रे नाम्ना भयं पतिम् ॥२३॥

ततः विहतसङ्कल्पा कन्यका यवन ईश्वरं मया उपदिष्टं आसाद्य वव्रे नाम्नः भयं पतिं ॥२३॥

ततः	तब	भयं	भय
विहतसंकल्पा	नष्ट हुए संकल्प वाली	नाम्नः	नामकके
		आसाद्य	पास जाकर
कन्यका	उस कन्याने	पतिं वव्रे	पति रूपसे वरण किया ॥२३॥
मया उपदिष्टं	मेरे बतलानेसे		
यवन ईश्वरं	यवन देशके राजा		

ऋषभं यवनानां त्वां वृणे वीरेप्सितं पतिम् ।
सङ्कल्पस्त्वयि भूतानां कृतः किल न रिष्यति ॥२४॥

ऋषभं यवनानां त्वां वृणे वीर ईप्सितं पतिं सङ्कल्पः त्वयि भूतानां कृतः किल न रिष्यति ॥२४॥

वीर	हे वीर	त्वयि कृतः	तुम्हारे प्रति किया गया
यवनानां	यवनोंमें	भूतानां संकल्पः	प्राणियोंका संकल्प
ऋषभं	श्रेष्ठ	किल	
त्वां	तुम्हें	न रिष्यति	कभी विफल नहीं होता ॥२४॥
ईप्सितं	अभीष्ट		
पतिं वृणे	पति रूपसे वरण करती हूं		

द्वाविमावनुशोचन्ति बालावसदवग्रहौ ।
यल्लोकशास्त्रोपनतं न राति न तदिच्छति ॥२५॥

द्वौ इमौ अनुशोचन्ति बालौ असत् अवग्रहौ यत् लोक शास्त्र उपनतं न राति न तत् इच्छति ॥२५॥

यत्	जो
लोक शास्त्र	लोक या शास्त्र दृष्टिसे
उपनतं	प्राप्त वस्तुका
न राति	दान नहीं करता
न तत् इच्छति	(और अधिकारी होकर भी) उसकी इच्छा नहीं करता
इमौ द्वौ	ये दोनों
बालौ	मूर्ख हैं
असत् अवग्रहौ	दुराग्रही हैं
अनुशोचन्ति	पीछे पछताते हैं ॥२५॥

अथो भजस्व मां भद्र भजन्तीं मे दयां कुरु ।
एतावान् पौरुषो धर्मो यदार्ताननुकम्पते ॥२६॥

अथो भजस्व मां भद्र भजन्तीं मे दयां कुरु एतावान् पौरुषः धर्मः यत् आर्तान् अनुकम्पते ॥२६॥

मां	मुझ
भजन्तीं	सेवाको उत्सुकाको
भद्र	भद्र
भजस्व	स्वीकारं करो ।
मे	मुझपर
दयां कुरु	दया करो
एतावान्	इतना ही
पौरुषः धर्मः	पुरुषका धर्म है
यत्	कि
आर्तान्	दुःखियोंपर
अनुकम्पते	कृपा करता है ॥२६

कालकन्योदितवचो निशम्य यवनेश्वरः ।
चिकीर्षुर्देवगुह्यं स सस्मितं तामभाषत ॥२७॥

कालकन्या उदित वचः निशम्य यवन ईश्वरः चिकीर्षुः देव गुह्यं स सस्मितं तां अभाषत ॥२७॥

कालकन्या	कालकन्याके
उदित वचः	कहे वचनको
निशम्य	सुनकर
स यवन ईश्वरः	उस यवनराजने
देव गुह्यं	विधाताका गुप्त मन्तव्य जानकर
तां	उससे
सस्मितं	मुसकराते हुए
अभाषत	कहा ॥२७॥

मया निरूपितस्तुभ्यं पतिरात्मसमाधिना ।
नाभिनन्दति लोकोऽयं त्वामभद्रामसम्मताम् ॥२८॥

मया निरूपितः तुभ्यं पतिः आत्मसमाधिना न अभिनन्दति लोकः अयं त्वां अभद्रां असम्मताम् ॥२८॥

आत्मसमाधिना	अपने चित्तकी एकाग्रतासे
मया	मैंने
तुभ्यं	तुम्हारे लिए
पतिः	पति
निरूपितः	निश्चित कर दिया है ।
त्वां	तुम
अभद्रां	अमंगल रूपा
असम्मताम्	अस्वीकार्याकी
अयं लोकः	यह लोक
न अभिनन्दति	अभिनंदन (स्वागत) नहीं करता ॥२८॥

त्वमव्यक्तगतिर्भुङ्क्ष्व लोकं कर्मविनिर्मितम् ।
याहि मे पृतनायुक्ता प्रजानाशं प्रणेष्यसि ॥२९॥

त्वं अव्यक्तगतिः भुंक्ष्व लोकं कर्मविनिर्मितं याहि मे पृतनायुक्ता प्रजानाशं प्रणेष्यसि ॥२९॥

कर्मविनिर्मितं	कर्मसे बनै इस लोकको
त्वं	तुम
अव्यक्तगतिः	अलक्षित होकर
भुंक्ष्व	भोगो
मे पृतनायुक्ता	मेरीसेनाके साथ
याहि	जाओ
प्रजानाशं	(तुम) प्रजाका नाश
प्रणेष्यसि	कर सकोगी ॥२९॥

प्रज्वारोऽयं मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव ।
चराम्युभाभ्यां लोकेऽस्मिन्नव्यक्तो भीमसैनिकः ॥३०॥

प्रज्वारः अयं मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव चरामि उभाभ्यां लोके अस्मिन अव्यक्तः भीमसैनिकः ॥३०॥

अयं प्रज्वारः	यह प्रज्वार	उभाभ्यां	तुम दोनोंके साथ
मम भ्राता	मेरा भाई है	अव्यक्तः	अलक्षित गतिसे
त्वं मे	तुम मेरी	भीमसैनिकः	भयङ्कर सेना लेकर
भगिनी भव	बहिन बन जाओ	चरामि	घूमूंगा ॥३०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे पुरञ्जनोपाख्याने सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अथ अष्टविंशोऽध्यायः

नारद उवाच-

सैनिका भयनाम्नो ये बर्हिष्मन् दिष्टकारिणः ।
प्रज्वारकालकन्याभ्यां विचेरुरवनीमिमाम् ॥१॥

सैनिका भयनाम्नः ये बर्हिष्मन् दिष्टकारिणः प्रज्वार काल-कन्याभ्यां विचेरुः अवनीं इमां ॥१॥

बर्हिष्मन्	हे बर्हिष्मन् !
भयनाम्नः	भय नामक (यवनेश्वरके)
ये	जो
दिष्टकारिणः	आज्ञाकारी
सैनिका	सैनिक थे
प्रज्वार काल कन्याभ्यां	(वे) प्रज्वार और कालकन्याके साथ
इमां अवनीं	इस पृथिवीपर
विचेरुः	विचरण करने लगे ॥१॥

त एकदा तु रभसा पुरञ्जनपुरीं नृप ।
रुरुधुर्भौमभोगाढ्यां जरत्पन्नगपालिताम् ॥२॥

ते एकदा तु रभसा पुरञ्जनपुरीं नृप रुरुधुः भौमभोगाढ्यां जरत् पन्नग पालिताम् ॥२॥

नृप	राजन्
ते तु एकदा	उन्होंने तो एक समय
रभसा	बड़े वेगसे
जरत् पन्नग	बूढ़े सर्पसे
पालितां	सुरक्षित
भौमभोगढ्यां	पृथिवीके भोगोंसे पूर्ण
पुरञ्जनपुरीं	पुरञ्जनकी नगरी-को
रुरुधुः	घेर लिया ॥२॥

कालकन्यापि बुभुजे पुरञ्जनपुरं बलात् ।
ययाभिभूतः पुरुषः सद्यो निःसारतामियात् ॥३॥

कालकन्या अपि बुभुजे पुरञ्जनपुरं बलात् यया अभिभूतः पुरुषः सद्यः निःसारतां इयात् ॥३॥

कालकन्या		अभिभूतः पुरुष	घेरा गया पुरुष
अपि	कालकन्या भी	सद्यः	शीघ्र ही
पुरञ्जनपुरं	पुरञ्जनके नगरको	निःसारतां	
बलात्	बल पूर्वक	इयात्	निःसार हो जाता
बुभुजे	भोगने लगी		है ॥३॥
यया	जिससे		

तयोपभुज्यमानां वै यवनाः सर्वतोदिशम् ।
द्वार्भिः प्रविश्य सुभृशं प्रार्दयन् सकलां पुरीम् ॥४॥

तया उप भुज्यमानां वै यवनाः सर्वतः दिशं द्वार्भिः प्रविश्य सुभृशं प्रार्दयन् सकलां पुरीं ॥४॥

तया वै	उसके द्वारा निश्चित रूपसे	सर्वतः दिशं	चारों ओरसे
		द्वार्भिः प्रविश्य	द्वारों से प्रवेश करके
उप भुज्यमानां	भोगी जाती हुई	सकलां पुरीं	सम्पूर्ण नगरीको
पुरीं	नगरीमें	सुभृशं	अत्यधिक
यवनाः	यवन भी	प्रार्दयन्	रोंदने लगे ॥४॥

तस्यां प्रपीड्यमानायामभिमानी पुरञ्जनः ।
अवापोरुविधांस्तापान् कुटुम्बी ममताकुलः ॥५॥

तस्यां प्रपीड्यमानायां अभिमानी पुरञ्जनः अवाप उरु विधान् तापान् कुटुम्बी ममता आकुलः ॥५॥

तस्यां	उस (पुरी) के	कुटुम्बी	कुटुम्बवाला
प्रपीड्य-मानायां	पीडित किये जानेपर	पुरञ्जनः	राजा पुरञ्जन
अभिमानी	(उसमें) अभिमान करनेवाला	उरु विधान्	अनेक प्रकारके
		तापान्	कष्टोंको
ममता आकुलः	ममता ग्रस्त	अवाप	पाने लगा ॥५॥

कन्योपगूढो नष्टश्रीः कृपणो विषयात्मकः ।
नष्टप्रज्ञो हृतैश्वर्यो गन्धर्वैर्यवनैर्बलात् ॥६॥

कन्या उपगूढः नष्टश्रीः कृपणः विषय आत्मकः नष्टप्रज्ञः हृत एँश्वर्यः गन्धर्वयवनैः बलात् ॥६॥

कन्या उपगूढः	कालकन्यासे आलिङ्गित	गन्धर्वयवनैः	गन्धर्वों और यवनोंके द्वारा
नष्टश्रीः	नष्टकान्ति	बलात्	बल पूर्वक
विषय	विषयासक्तिसे	हृत ऐश्वर्यः	ऐश्वर्य छीने जानेपर
कृपणः	दीन	नष्टप्रज्ञः	उसकी विवेक शक्ति नष्ट हो गई ॥६॥

विशीर्णां स्वपुरीं वीक्ष्य प्रतिकूलाननादृतान् ।
पुत्रान् पौत्रानुगामात्याञ्जायां च गतसौहृदाम् ॥७॥

विशीर्णां स्वपुरीं वीक्ष्य प्रतिकूलान् अनादृतान् पुत्रान् पौत्र अनुग अमात्यान् जायां च गतसौहृदां ॥७॥

स्वपुरीं	अपनी नगरीको	पुत्रान् पौत्र	पुत्र, पौत्र,
विशीर्णां	अत्यन्त जर्जर (तथा)	अनुग	
		अमात्यान्	सेवकों, मन्त्रियोंको,
अनादृतान्	अनादर करनेवाले	गतसौहृदां	सौहार्द्र रहित
प्रतिकूलान्	विपरीत आचरण करनेवाले	जायां च वीक्ष्य	पत्नीको भी देखकर ॥७॥

आत्मानं कन्यया ग्रस्तं पञ्चालानरिदूषितान् ।
दुरन्तचिन्तामापन्नो न लेभे तत्प्रतिक्रियाम् ॥८॥

आत्मानं कन्यया ग्रस्तं पञ्चालान् अरिदूषितान् दुरन्त चिन्तां आपन्नः न लेभे तत् प्रतिक्रियां ॥८॥

आत्मानं	तथा अपनेको	दुरन्त चिन्तां	अपार चिन्तामें
कन्यया ग्रस्तं	कालकन्यासे ग्रस्त	आपन्नः	पड़ गया
पञ्चालान्	पञ्चाल देशोंको	तत् प्रतिक्रियां	उसका प्रतिकार
अरिदूषितान्	शत्रुओंसे दूषित (देखकर)	न लेभे	नहीं पासका ॥८॥

कामानभिलषन्दीनो यातयामांश्च कन्यया ।
विगतात्मगतिस्नेहः पुत्रदारांश्च लालयन् ॥९॥

कामान् अभिलषन् दीनः यातयामान् च कन्यया विगत आत्म गति स्नेहः पुत्रदारान् च लालयन् ॥९॥

कन्यया	कालकन्याके द्वारा	आत्म गति	अपनी पारलौकिकी गति
यातयामान्	पूरा समय नष्ट किये जाते	स्नेहः	(तथा स्वजनों के) स्नेह
कामान्			
अभिलषन्	भोगोंकी अभिलाषा करता हुआ	विगत	चले जानेपर
		पुत्रदारान् च	पुत्र और स्त्रीके
दीनः	दीन हुआ	लालयन्	लालन पालनमें लग गया ॥९॥

गन्धर्वयवनाक्रान्तां कालकन्योपमर्दिताम् ।
हातुं प्रचक्रमे राजा तां पुरीमनिकामतः ॥१०॥

गन्धर्व यवन आक्रान्तां कालकन्या उपमर्दितां हातुं प्रचक्रमे राजा तां पुरीं अनिकामतः ॥१०॥

गन्धर्व यवन आक्रान्तां	गन्धर्व और यवनोंसे घेरी गई
कालकन्या उपमर्दितां	कालकन्यासे कुचली गई
तां पुरीं अनिकामतः	उस नगरीको न चाहते हुए भी
राजा हातुं प्रचक्रमे	राजा पुरञ्जन छोड़नेको उद्यत हो गया ॥१०॥

भयनाम्नोऽग्रजो भ्राता प्रज्वारः प्रत्युपस्थितः ।
ददाह तां पुरीं कृत्स्नां भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥११॥

भय नाम्नः अग्रजः भ्राता प्रज्वारः प्रति उपस्थितः ददाह तां पुरीं कृत्स्नां भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥११॥

भय नाम्नः	भय नामक (यवनेश्वरके)
अग्रजः भ्राता	बड़े भाई
प्रज्वारः	प्रज्वारने
प्रति उपस्थितः	वहाँ पहुँचकर
भ्रातुः	भाईका
प्रियचिकीर्षया	प्रिय करनेकी इच्छासे
तां कृत्स्नां	उस पूरी
पुरीं	नगरीको
ददाहा	जला दिया ॥११॥

तस्यां सन्दह्यमानायां सपौरः सपरिच्छदः ।
कौटुम्बिकः कौटुम्बिन्या उपातप्यत सान्वयः ॥१२॥

तस्यां सन्दह्य मानायां सपौरः सपरिच्छदः कौटुम्बिकः कुटुम्बिन्या उप अतप्यत स अन्वयः ॥१२॥

तस्यां	उस नगरीके
सन्दह्य मानायां	जलनेपर
सपौरः	पुरवासियों सहित
सपरिच्छदः	सेवकों सहित
स अन्वयः	पुत्रों सहित
कुटुम्बिन्या	कुटुम्बकी स्वामिनी सहित
कौटुम्बिकः	कुटुम्ब वत्सल (वह)
उप अतप्यत	बहुत सन्ताप करने लगा ॥१२॥

यवनोपरुद्धायतनो ग्रस्तायां कालकन्यया ।
पुर्यां प्रज्वारसंसृष्टः पुरपालोऽन्वतप्यत ॥१३॥

यवन उपरुद्ध आयतनः ग्रस्तायां कालकन्यया पुर्यां प्रज्वार संसृष्टः पुरपालः अनु अतप्यत ॥१३॥

कालकन्यया	कालकन्यासे
ग्रस्तायां	पकड़ी गयी
पुर्यां	वह नगरी
आयतनः	पूरे भवन घेर लिये जानेपर
यवन उपरुद्ध	यवनों द्वारा
प्रज्वार संसृष्टः	प्रज्वारके भी आक्रमण करनेपर
पुरपालः	नगरीका रक्षक (सर्प)
अनु अतप्यत	बहुत दुःखित हो गया ॥१३॥

न शेके सोऽवितुं तत्र पुरुकृच्छ्रोरुवेपथुः ।
गन्तुमैच्छत्ततो वृक्षकोटरादिव सानलात् ॥१४॥

न शेके सः अवितुं तत्र पुरुकृच्छः उरुवेपथुः गन्तुं ऐच्छत् ततः वृक्ष कोटरात् इव सअनलात् ॥१४॥

तत्र सः	जब वह (सर्प)
अवितुं	रक्षामें
न शेके	समर्थ नहीं हुआ
पुरुकृच्छः	(तब) महान् कष्टसे
उरुवेपथुः	अत्यन्त कांपता हुआ
सअनलात्	जलते हुए
वृक्ष कोटरात्	वृक्षके कोटर
इव	के समान है
ततः गन्तुं	उस (नगरी) से निकलनेकी
ऐच्छत्	इच्छा करने लगा ॥१४॥

शिथिलावयवो यर्हि गन्धर्वैर्हृतपौरुषः ।
यवनैररिभी राजन्नुपरुद्धो रुरोद ह ॥१५॥

शिथिल अवयवः यर्हि गन्धर्वैः हृतपौरुषः यवनैः अरिभिः राजन् उपरुद्धः रुरोद ह ॥१५॥

राजन्	हे राजन्
यर्हि	जब
शिथिल	
अवयवः	अंग ढीले पड़ गये और
गन्धर्वैः	गन्धर्वोंने
हृतपौरुषः	सारी शक्ति छीन ली
अरिभिः यवनैः	शत्रु यवनोंसे
उपरुद्धः	घेर लिया गया
रुरोद ह	तब वह रोने ही लगा ॥१५॥

दुहितृः पुत्रपौत्रांश्च जामिजामातृपार्षदान् ।
स्वत्वावशिष्टं यत्किञ्चिद् गृहकोशपरिच्छदम् ॥१६॥

दुहितृः पुत्र पौत्रान् च जामि जामातृ पार्षदान् स्वत्व अवशिष्टं यत् किञ्चित् गृह कोश परिच्छदं ॥१६॥

दुहितृः	लड़की,
पुत्र	लड़के,
पौत्रान्	पोते,
जामि	पुत्र-वधू,
जामातृ	दामाद,
पार्षदान्	सेवक
च	तथा
यत् किञ्चित्	जो कुछ
गृह	घर,
कोश	धन
परिच्छदं	दूसरा सामान
स्वत्व अवशिष्टं	(अपने) अधिकार-का बचा था ॥१६॥

अहं ममेति स्वीकृत्य गृहेषु कुमतिर्गृही ।
दध्यौ प्रमदया दीनो विप्रयोग उपस्थिते ॥१७॥

अहं मम इति स्वीकृत्य गृहेषु कुमतिः गृही दध्यौ प्रमदया दीनः विप्रयोग उपस्थिते ॥१७॥

अहं मम इति	यह मैं हूँ यह सब मेरे हैं ऐसा
स्वीकृत्य	स्वीकार करके
गृहेषु	घरमें
कुमतिः गृही	कुबुद्धि गृहस्थ
प्रमदया	स्त्रीके प्रेममें
दीनः	दीन हुआ
विप्रयोग	
उपस्थिते	वियोगके उपस्थित होनेपर
दध्यौ	(उस स्त्रीका ही) चिन्तन करने लगा ॥१७॥

लोकान्तरं गतवति मय्यनाथा कुटुम्बिनी ।
वर्तिष्यते कथं त्वेषा बालकाननुशोचती ॥१८॥

लोकान्तरं गतवति मयि अनाथा कुटुम्बिनी वर्तिष्यते कथं तु एषा बालकान् अनुशोचती ॥१८॥

मयि	मेरे	बालकान्	
लोकान्तरं	दूसरे लोक	अनुशोचती	बालकोंकी चिन्ता
गतवति	चले जानेपर		करती हुई
एषा	यह	कथं वर्तिष्यते	कैसे निर्वाह
अनाथा	असहाय		करेगी ॥१८॥
कुटुम्बिनी	कुटुम्बवाली		

न मय्यनाशिते भुङ्क्ते नास्नाते स्नाति मत्परा ।
मयि रुष्टे सुसंत्रस्ता भर्त्सिते यतवाग्भयात् ॥१९॥

न मयि अनाशिते भुङ्क्ते न अस्नाते स्नाति मत् परा मयि रुष्टे सुसंत्रस्ता भर्त्सिते यतवाक् भयात् ॥१९॥

मत् परा	मेरे परायणा यह	मयि रुष्टे	मेरे रुष्ट होनेपर
मयि अनाशिते न	मेरे भोजन न	सुसन्त्रस्ता	बहुत डरती है
	करनेपर	भर्त्सिते	फटकारनेपर
भुङ्क्ते	भोजन नहीं करती	भयात् यतवाक्	भयसे मौन हो
अस्नाते			जाती है ॥१९॥
न स्नाति	स्नान न करनेपर		
	स्नान नहीं करती		

प्रबोधयति माविज्ञं व्युषिते शोककर्शिता ।
वर्त्मैतद् गृहमेधीयं वीरसूरपि नेष्यति ॥२०॥

प्रबोधयति मा अविज्ञं विडषिते शोक कर्शिता वर्त्म एतद् गृहमेधीयं वीरसूः अपि नेष्यति ॥२०॥

अविज्ञं	(मुझसे) भूल हो जानेपर
मा प्रबोधयति	मुझे सचेत कर देती है
विडषिते	परदेश जानेपर
शोक कर्शिता	शोकसे सूख जाती है
वीरसूः अपि	वीर माता होकर भी
एतद्	इस
गृहमेधीयं	गृहस्थीका
वर्त्म	मार्ग
नेष्यति	नहीं चला सकेगी ॥२०॥

कथं नु दारका दीना दारकीवापरायणाः ।
वर्तिष्यन्ते मयि गते भिन्ननाव इवोदधौ ॥२१॥

कथं नु दारका दीना दारकी वा परायणाः वर्तिष्यन्ते मयि गते भिन्न नाव इव उदधौ ॥२१॥

उदधौ	समुद्रमें
भिन्न नाव इव	नौका फटजानेके समान
मयि गते	मेरे (परलोक) चले जानेपर
दीना	दीन-हीन पुत्र
वा	अथवा
परायणाः	
दारकी	(मेरे) परायण पुत्रियाँ
कथं नु वर्तिष्यन्ते	किस प्रकार तो रह सकेंगे ॥२१॥

एवं कृपणया बुद्धया शोचन्तमतदर्हणम् ।
ग्रहीतुं कृतधीरेनं भयनामाभ्यपद्यत ॥२२॥

एवं कृपणया बुद्धया शोचन्तं अतद् अर्हणं गृहीतुं कृतधीः एनं भयनामा अभि पद्यत ॥२२॥

एवं	इस प्रकार
कृपयणाबुद्ध्य	दीन-चित्त
शोचन्तं	शोक करते हुये
अतद् अर्हणं	(शोकके) अयोग्य
एनं	इसे
गृहीतुं	पकड़नेके लिये
कृतधीः	निश्चय करके
भयनामा	भय नामके (यवन राजने)
अभि पद्यत	(इसको) घेर लिया ॥२२॥

पशुवद्यवनैरेष नीयमानः स्वकं क्षयम् ।
अन्वद्रवन्ननुपथाः शोचन्तो भृशमातुराः ॥२३॥

पशुवत् यवनैः एष नीयमानः स्वकं क्षयं अनुद्रवन् अनुपथाः शोचन्तः भृशं आतुराः ॥२३॥

यवनैः	यवनोंके द्वारा	**अनुपथाः**	(तब) इसके साथी
पशुवत्	पशुओंकी भाँति	**भृशं आतुराः**	अत्यन्त व्याकुल होकर
स्वकं क्षयं	अपने घरकी ओर	**अनुद्रवन्**	इसके पीछे दौड़ने लगे ॥२३॥
एष	यह		
नीयमानः	ले जा रहा था,		

पुरीं विहायोपगत उपरुद्धो भुजङ्गमः ।
यदा तमेवानु पुरी विशीर्णा प्रकृतिं गता ॥२४॥

पुरीं विहाय उपगतः उपरुद्धः भुजङ्गमः यदा तं एव अनु पुरी विशीर्णा प्रकृतिं गता ॥२४॥

उपरुद्धः	(यवनोंके द्वारा) रोका गया	**तं अनु एव**	उसके पीछे ही
भुजङ्गमः	सर्प	**पुरी विशीर्णा**	नगरी छिन्न-भिन्न हो गई
पुरीं विहाय	पुरीको दौड़कर	**प्रकृतिं गता**	अपने कारणमें लीन हो गई ॥२४॥
उपगतः	चल पड़ा		

विकृष्यमाणः प्रसभं यवनेन बलीयसा ।
नाविन्दत्तमसाऽऽविष्टः सखायं सुहृदं पुरः ॥२५॥

विकृष्यमाणः प्रसभं यवनेन बलीयसा न अविन्दत् तमसा आविष्टः सखायं सुहृदं पुरः ॥२५॥

बलीयसा	बलवान्	**तमसा आविष्टः**	अज्ञानसे आच्छन्न
यवनेन	यवनके द्वारा	**सुहृदं**	अपने सुहृद
प्रसभं	बलपूर्वक	**पुरः सखायं**	पुराने मित्रको
विकृष्यमाणः	खींचा जाता	**न अविन्दत्**	नहीं पा सका ॥२५॥

तं यज्ञपशवोऽनेन संज्ञप्ता येऽदयालुना ।
कुठारैश्चिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरन्तोऽमीवमस्य तत् ॥२६॥

तं यज्ञ पशवः अनेन संज्ञप्ता ये अदयालुना कुठारैः चिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरन्तः अमीवं अस्य तत् ॥२६॥

अदयालुना	दयारहित	अमीवं	पीड़ाका
अनेन	इसके द्वारा	स्मरन्तः	स्मरण करते हुए
ये यज्ञ पशवः	जो यज्ञ-पशु	क्रुद्धाः	क्रोधमें आकर
संज्ञप्ता	बलि दिये गये थे	कुठारैः	कुल्हाड़ोंसे
अस्य तत्	इसके उस	तं चिच्छिदुः	उसे काटने लगे ॥२६

अनन्तपारे तमसि मग्नो नष्टस्मृतिः समाः ।
शाश्वतीरनुभूयार्तिं प्रमदासङ्गदूषितः ॥२७॥

अनन्तपारे तमसि मग्नः नष्टस्मृतिः समाः शाश्वतीः अनुभूय आर्तिं प्रमदासङ्ग दूषितः ॥२७॥

शाश्वतीः समाः	बहुत वर्षों तक	आर्तिं अनुभूय	(निरन्तर) दुःख भोग कर
नष्टस्मृतिः	विवेकहीन अवस्थामें		
अनन्तपारे तमसि	अनन्त, अपार अन्धकारमें	प्रमदासङ्ग दूषितः	स्त्रीकी आसक्तिसे मलिन हुआ ॥२७॥

तामेव मनसा गृह्णन् बभूव प्रमदोत्तमा ।
अनन्तरं विदर्भस्य राजर्षिसहस्य वेश्मनि ॥२८॥

तां एव मनसा गृह्णन् बभूव प्रमदोत्तमा अनन्तरं विदर्भस्य राजर्षिसहस्य वेश्मनि ॥२८॥

तां एव मनसा गृह्णन्	उसी स्त्रीका मनसे ग्रहण करता हुआ	अनन्तरं	(इस जन्मके) बादमें

विदर्भस्य	विदर्भ देशके	प्रमदोत्तमा	उत्तम कन्या
राजर्षिसहस्य	श्रेष्ठ राजाके	बभूव	हुआ ॥२८॥
वेश्मनि	गृहमें		

उपयेमे वीर्यपणां वैदर्भीं मलयध्वजः ।
युधि निर्जित्य राजन्यान् पाण्डयः परपुरञ्जयः ॥२९॥

उपयेमे वीर्यपणां वैदर्भीं मलयध्वजः युधि निर्जित्य राजन्यान् पाण्ड्यः परपुरञ्जयः ॥२९॥

वीर्यपणां	पराक्रमके मूल्यवाली	मलयध्वजः	मलयध्वजने
वैदर्भीं	विदर्भ कन्याको	युधि	युद्धमें
परपुरञ्जयः	दूसरे त्रिपुरारिके समान	राजन्यान्	राजाओंको,
पाण्ड्यः	पाण्ड्य नरेश	निर्जित्य	जीतकर
		उपयेमे	विवाह किया ॥२८॥

तस्यां स जनयाञ्चक्र आत्मजामसितेक्षणाम् ।
यवीयसः सप्त सुतान् सप्त द्रविडभूभृतः ॥३०॥

तस्यां स जनयाञ्चक्रे आत्मजां असित ईक्षणां यवीयसः सप्त सुतान् सप्त द्रविड भूभृतः ॥३०॥

तस्यां	उससे	यवीयसः	उससे छोटे
स	उस राजाने	सप्त सुतान्	सात पुत्रों
असित ईक्षणां	श्याम नेत्रवाली	सप्त	सातों
आत्मजां	एक कन्याको	द्रविड भूभृतः	द्रविड देशके राजा
जनयाञ्चक्रे	उत्पन्न किया तथा		हुए ॥३०॥

एकैकस्याभवत्तेषां राजन्नर्बुदमदम् ।
भोक्ष्यते यद्वंशधरैर्मही मन्वन्तरं परम् ॥३१॥

एक एकस्य अभवत् तेषां राजन् अर्बुदं अर्बुदं भोक्ष्यते यद् वंशधरैः मही मन्वन्तरं परं ॥३१॥

राजन्	हे राजन्	मन्वन्तरं	मन्वन्तर पर्यन्त
तेषां	उनके	परं	(और) उसके
एक एकस्य	प्रत्येकके		बाद भी
अर्बुदं अर्बुदं	अनेकों अरब	महीं	पृथिवीका
अभवत्	(सन्तानें) हुईं,	भोक्ष्यते	भोग करेंगे ॥३१॥
यद् वंशधरैः	जिनके वंशधर		

अगस्त्यः प्राग्दुहितरमुपयेमे धृतव्रताम् ।
यस्यां दृढच्युतो जात इध्मवाहात्मजो मुनिः ॥३२॥

अगस्त्यः प्राग्दुहितरं उपयेमे धृतव्रतां यस्यां दृढच्युतः जातः इध्मवाहु आत्मजः मुनिः ॥३२॥

धृतव्रतां	व्रत धारण करने वाली	यस्यां	जिसमें
प्राग्दुहितरं	पहली पुत्रीसे	दृढच्युतः	दृढच्युत नामके
अगस्त्यः	अगस्त्य ऋषिने	मुनि जातः	मुनि उत्पन्न हुए
उपयेमे	विवाह किया,	आत्मजः	उनके पुत्र
		इध्मवाहु	इध्मवाह हुए ॥३२॥

विभज्य तनयेभ्यः क्ष्मां राजर्षिर्मलयध्वजः ।
आरिराधयिषुः कृष्णं स जगाम कुलाचलम् ॥३३॥

विभज्य तनयेभ्यः क्ष्मां राजर्षिः मलयध्वजः आरिराधयिषुः कृष्णं स जगाम कुलाचलम् ॥३३॥

राजर्षिः		तनयेभ्यः	पुत्रोंमें
मलयध्वजः	राजर्षि मलयध्वज	क्ष्मां विभज्य	पृथ्वी बाँटकर
कृष्णं	भगवान् कृष्णकी	कुलाचलं	मलय पर्वतपर
आरिराधयिषुः	आराधनाकी इच्छासे	स जगाम	वे चले गये ॥३३॥

हित्वा गृहान् सुतान् भोगान् वैदर्भी मदिरेक्षणा ।
अन्वधावत पाण्ड्येशं ज्योत्स्नेव रजनीकरम् ॥३४॥

हित्वा गृहान् सुतान् भोगान् वैदर्भी मदिरेक्षणा अनु अधावत पाण्ड्य ईशं ज्योत्स्ना इव रजनीकरं ॥३४॥

मदिरेक्षणा	मत्त-लोचनवाली	**भोगान् हित्वा**	भोगोंको छोड़कर
वैदर्भी	विदर्भकी कन्याने	**पाण्ड्य ईशं**	पाण्ड्येश्वर (अपने पतिके)
ज्योत्स्ना इव	जसे चन्द्रिका	**अनु अधावत**	पीछे (दौड़) चली गयी ॥३४॥
रजनीकरं	चन्द्रमाके पीछे जाती है		
गृहान् सुतान्	गृह-पुत्र (और)		

तत्र चन्द्रवसा नाम ताम्रपर्णी वटोदका ।
तत्पुण्यसलिलैर्नित्यमुभयत्रात्मनो मृजन ॥३५॥

तत्र चन्द्रवसा नाम ताम्रपर्णी वटोदका तत् पुण्य सलिलैः नित्यं उभयत्र आत्मनः मृजन् ॥३५॥

तत्र	वहाँ	**तत्**	उनके
चन्द्रवसा	चन्द्रवशा	**पुण्य सलिलैः**	पवित्र जलसे
ताम्रपर्णी		**नित्यं आत्मनः**	नित्य अपने
वटोदका नाम	ताम्रपर्णी और वटोदका नामकी (तीन नदियाँ थीं)	**उभयत्र**	दोनों (शरीर और मनको)
		मृजन्	निर्मल करते थे॥३५॥

कन्दाष्टिभिर्मूलफलैः पुष्पपर्णैस्तृणोदकैः ।
वर्तमानः शनैर्गात्रकर्शनं तप आस्थितः ॥३६॥

कन्द अष्टिभिः मूल फलैः पुष्प पर्णैः तृण उदकैः वर्तमानः शनैः गात्र कर्शनं तप आस्थितः ॥३६॥

कन्द	कन्द (एवं)	**फलैः**	फलोंसे,
अष्टिभिः	बीजोंसे,	**पुष्प**	(खाने योग्य)
मूल	जड़ोंसे,		फूलोंसे,

पर्णैः	पत्तोंसे,	गात्र कर्शनं	शरीरको कृश
तृणैः	घासोंसे (तथा)		करनेवाले
उदकैः	जलसे,	तप	तपमें
वर्तमानः	निर्वाह करते हुए	आस्थितः	स्थित हो गये ॥३६॥
शनैः	धीरे-धीरे		

शीतोष्णवातवर्षाणि क्षुत्पिपासे प्रियाप्रिये ।
सुखदुःखे इति द्वन्द्वान्यजयत्समदर्शनः ॥३७॥

शीत उष्ण वात वर्षाणि क्षुत् पिपासे प्रिय अप्रिये सुख दुःखे इति द्वन्दान् अजयत् समदर्शनः ॥३७॥

समदर्शनः	समदर्शी होकर	सुख दुःखे	सुख-दुःख
शीत-उष्ण	सर्दी-गर्मी (राजाने)	इति द्वन्दान्	इस प्रकारके सब
वात-वर्षाणि	आँधी-वर्षा,		द्वन्दोंको
क्षुत्-पिपासे	भूख-प्यास,	अजयत्	जीत लिया ॥३७॥
प्रिय-अप्रिये	प्रिय-अप्रिय,		

तपसा विद्यया पक्वकषायो नियमैर्यमैः ।
युयुजे ब्रह्मण्यात्मानं विजिताक्षानिलाशयः ॥३८॥

तपसा विद्यया पक्व कषायः नियमैः यमैः युयुजे ब्रह्मणि आत्मानं विजित अक्ष अनिल आशयः ॥३८॥

तपसा विद्यया	तप और उपासनासे	अनिल	प्राण और
		आशयः	चित्तको
पक्व कषायः	मल-दोषको पका (शुद्ध) कर,	विजित	जीतकर
		ब्रह्मणि आत्मानं	ब्रह्ममें आत्माको
यमैः नियमैः	यम नियम द्वारा	युयुजे	युक्त कर दिया ॥३८॥
अक्ष	इन्द्रिय,		

आस्ते स्थाणुरिवैकत्र दिव्यं वर्षशतं स्थिरः ।
वासुदेवे भगवति नान्यद्वेदोद्वहन् रतिम् ॥३९॥

आस्ते स्थाणुः इव एकत्र दिव्यं वर्षशतं स्थिरः वासुदेवे भगवति न अन्यद् वेद उद्वहन् रतिं ॥३९॥

दिव्यं वर्षशतं	दिव्य सौ वर्षों तक	**भगवति**	
स्थाणुः इव	सूखे काष्ठ रूप वृक्षकी भाँति	**वासुदेवे**	भगवान् वासुदेवमें
एकत्र आस्ते	एक ही स्थानपर स्थिर रहे	**रतिं उद्वहन्**	प्रीति करके
		अन्यद् न वेद	दूसरा कुछ नहीं जानते थे ॥३९॥

स व्यापकतयाऽऽत्मानं व्यतिरिक्ततयाऽऽत्मनि ।
विद्वान् स्वप्न इवामर्शसाक्षिणं विरराम ह ॥४०॥

स व्यापकतया आत्मानं व्यतिरिक्ततया आत्मनि विद्वान् स्वप्न इव अमर्श साक्षिणं विरराम ह ॥४०॥

स	उन्होंने	**साक्षिणं**	साक्षी
आत्मानं	आत्माको	**विद्वान्**	जानकर
व्यापकतया	व्यापक होनेसे,	**स्वप्न इव**	स्वप्नके समान (दृश्य-जगत) से
आत्मनि	अपने आपमें	**ह**	निश्चित रूपसे
व्यतिरिक्ततया	(सब प्रपंचसे) पृथक होनेसे,	**विरराम**	उपरत हो गये ॥४०॥
अमर्श	विचारका भी		

साक्षाद्भगवतोक्तेन गुरुणा हरिणा नृप ।
विशुद्धज्ञानदीपेन स्फुरता विश्वतोमुखम् ॥४१॥

साक्षात् भगवता उक्तेन गुरुणा हरिणा नृप विशुद्ध ज्ञान दीपेन स्फुरता विश्वतः मुखं ॥४१॥

नृप	हे राजन् !	**विश्वतः मुखं**	सब ओरसे
गुरुणा भगवता	गुरुरूप भगवान्	**स्फुरता**	स्फुरित होनेवाले
साक्षात् हरिणा	साक्षात् श्रीहरिके द्वारा	**विशुद्ध ज्ञान दीपेन**	विशुद्ध ज्ञान रूपी दीपसे ॥४१॥
उक्तेन	कहे गये		

परे ब्रह्मणि चात्मानं परं ब्रह्म तथाऽऽत्मनि ।
वीक्षमाणो विहायेक्षामस्मादुपरराम ह ॥४२॥

परे ब्रह्मणि च आत्मानं परं ब्रह्म तथा आत्मनि वीक्षमाणः विहाय ईक्षां अस्माद् उपरराम ह ॥४२॥

परे ब्रह्मणि	परब्रह्ममें	**ईक्षां विहाय**	(अन्तमें) इस चिन्तनको छोड़कर
आत्मानं	अपने आत्माको	**अस्माद्**	इस प्रपञ्चसे
तथा आत्मनि	तथा आत्मामें	**ह**	निश्चित रूपसे
परं ब्रह्म	परब्रह्माको	**उपरराम**	उपरत हो गये ॥४२॥
वीक्षमाणः	देखते हुए भी		

पतिं परमधर्मज्ञं वैदर्भी मलयध्वजम् ।
प्रेम्णा पर्यचरद्धित्वा भोगान् सा पतिदेवता ॥४३॥

पतिं परम धर्मज्ञं वैदर्भी मलयध्वजं प्रेम्णा पर्यचरत् हित्वा भोगान् सा पतिदेवता ॥४३॥

सा पतिदेवता	वह पतिव्रता	**पतिं**	अपने पतिकी
वैदर्भी	विदर्भ-कन्या	**प्रेम्णा**	प्रेमसे
भोगान् हित्वा	सब भोगोंका त्याग कर	**पर्यचरत्**	सेवा करने लगी ॥४३॥
परम धर्मज्ञं	परमधर्मज्ञ		

चीरवासा व्रतक्षामा वेणीभूतशिरोरुहा ।
बभावुप पतिं शान्ता शिखा शान्तमिवानलम् ॥४४॥

चीरवासा व्रतक्षामा वेणीभूत शिरोरुहा बभौ उप पतिं शान्ता शिखा शान्तम् इव अनलं ॥४४॥

चीरवासा	चीर-वस्त्र पहिनकर	**उप पतिं**	पतिके समीप
व्रतक्षामा	उपवाससे दुबली हुई	**शिखा शान्तं**	लपट रहित
		अनलं इव	अग्निके समान
वेणीभूत	उलझे हुए	**शान्ता**	शान्त
शिरोरुहा	केशोंवाली	**बभौ**	शोभित हुई ॥४४॥

अजानतो प्रियतमं यदोपरतमङ्गना ।
सुस्थिरासनमासाद्य यथापूर्वमुपाचरत् ॥४५॥

अजानतो प्रियतमं यदा उपरतं अङ्गना सुस्थिर आसनं आसाद्य यथापूर्वं उपाचरत् ॥४५॥

यदा	जब	अङ्गना	उनकी स्त्री
सुस्थिर आसनं	निश्चल आसनपर (बैठे होनेसे)	आसाद्य	(उनके) पास जाकर
प्रियतमं	प्रियतमको	यथापूर्वं	पहिलेके समान
उपरतं	शरीर त्याग किया	उपाचरत्	सेवा करने
अजानती	न जानती हुई		लगी ॥४५॥

यदा नोपलभेताङ्घ्रावूष्माणं पत्युरर्चती ।
आसीत्संविग्नहृदया यूथभ्रष्टा मृगी यथा ॥४६॥

यदा न उप लभेत अङ्घ्रौ ऊष्माणं पत्युः अर्चती आसीत् संविग्न हृदयः यूथ भ्रष्टा मृगी यथा ॥४६॥

पत्युः	पतिकी	यूथ भ्रष्टा	दलसे बिछुड़ी
अर्चती	सेवा करती हुई	मृगी इव	हिरणीके समान
यदा	जब	संविग्न	व्याकुल
अङ्घ्रौ	(उनके) पैरोंमें	हृदया	चित्त
ऊष्माणं	गर्मी	आसीत्	हो गयी ॥४६॥
न उपलभेत	नहीं प्राप्त की		

आत्मानं शोचती दीनमबन्धुं विक्लवाश्रुभिः ।
स्तनावासिच्य विपिने सुस्वरं प्ररुरोद सा ॥४७ ।

आत्मानं शोचती दीनं अबन्धुं विक्लव अश्रुभिः स्तनौ आसिच्य विपिने सुस्वरं प्ररुरोद सा ॥४७॥

अबन्धं	बन्धु रहित (होनेके कारण)	दीनं आत्मनं	अपनेको दीन समझ कर

विक्लवा	व्याकुल होकर	सुस्वरं	स्वरके साथ
अश्रुभिः	आसुओंसे	सा	वह
स्तनौ	स्तनोंको	प्ररुरोद	रोने लगी ॥४७॥
आसिच्य	भिगाती		

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजर्षे इमामुदधिमेखलम् ।
दस्युभ्यः क्षत्रबन्धुभ्यो बिभ्यतीं पातुमर्हसि ॥४८॥

उत्तिष्ठ उतिष्ठ राजर्षे इमां उदधि-मेखलां दस्युभ्यः क्षत्र बन्धुभ्यः पातुं अर्हसि ॥४८॥

राजर्षे	राजर्षि	दस्युभ्यः	लुटेरोंसे
उत्तिष्ड उत्तिष्ठ	उठो ! उठो !	विभ्यती	डरती हुई को
उदधि मेखलां	समुद्र पर्यन्तवाली	पातुं अर्हसि	(तुम) रक्षा
इमां	इस (पृथ्वी) को		करो ॥४८॥
क्षत्र बन्धुभ्यः	क्षत्रि माधमों		

एवं विलपती बाला विपिनेऽनुगता पतिम् ।
पतिता पादयोर्भर्तुं रुदत्यश्रूण्यवर्तयत् ॥४९॥

एवं विलपती बाला विपिने अनुगता पतिं पतिता पावयोः भर्तुः रुदती अश्रूणि अवर्तयत् ॥४९॥

एव	इस प्रकार	भर्तुः	पतिके
विलपती	विलाप करती हुई	पादयोः	चरणोंमें
विपिने	वनमें	पतिता	गिरकर
पतिं	पतिके साथ	रुदती	रोती हुई
अनुगता	आयी हुई,	अश्रूणि	आंसू
बाला	वह श्त्री	अवर्तयत्	बहाने लगी ॥४९॥

चितिं दारुमयीं चित्वा तस्यां पत्युः कलेवरम् ।
आदीप्य चानुमरणे विलपन्ती मनो दधे ॥५०॥

चितिं दारुमयीं चित्वा तस्यां पत्युः कलेवरं आदीप्य च अनुमरणे विलपन्ती मनो दधे ॥५०॥

दारुमयीं	काष्ठकी
चितिं	चिता
चित्वा	चुनकर
तस्यां	उसमें
पत्युः	पतिके
कलेवरं	शरीरको
आदीप्य	जलाकर
विलपन्ती	और विलाप करती हुई
अनुमरणे	पतिके पीछे मरने (सती होने) के लिए
मनो दधे	संकल्प किया ॥५०॥

तत्र पूर्वतरः कश्चित्सखा ब्राह्मण आत्मवान् ।
सान्त्वयन् वल्गुना साम्ना तामाह रुदतीं प्रभो ॥५१॥

तत्र पूर्वतरः कश्चित् सखा ब्राह्मण आत्मवान् सान्त्वयन् वल्गुना साम्ना तां आह रुदतीं प्रभो ॥५१॥

प्रभो	राजन् !
तत्र	वहां (उसी समय)
कश्चित्	कोई
पूर्वतरः सखा	पुराना मित्र
आत्मवान्	आत्मज्ञानी
ब्राह्मण	ब्राह्मण
रुदतीं तां	(उस) रुदन करती हुई
वल्गुना	अवलाको
साम्ना	मधुर सान्त्वना वचनसे
सान्त्वयन्	समझाते हुए
आह	बोला ॥५१॥

ब्राह्मण उवाच-

का त्वं कस्यासि को वायं शयानो यस्य शोचसि ।
जानासि किं सखायं मां येनाग्रे विचचर्थ ह ॥५२॥

का त्वं कस्य असि कः वा अयं शयानः यस्य शोचसि जानासि किं सखायं मां येन अग्रे विचचर्थ ह ॥५२॥

त्वं का	तुम कौन हो ?
कस्य असि	किसकी हो ?
वा	अथवा
अयं शयानः	यह सोया हुआ
कः	कौन है,
यस्य शोचसि	जिसका शोक करती हो
किं मां	क्या मुझ
सखायं जानासि	सखाको जानती हो
अग्रे येन	पहिले जिसके साथ
ह विचचर्थ	निश्चित रूपसे घूमती थीं ॥५२॥

अपि स्मरसि चात्मानमविज्ञातसखं सखे ।
हित्वा मां पदमन्विच्छन् भौमभोगरतो गतः ॥५३॥

अपि स्मरसि च आत्मानं अविज्ञात सखं सखे हित्वा मां पदं अनु इच्छन् भौम भोगरतः गतः ॥५३॥

सखे	मित्र !
अपि च आत्मानं स्मरसि	क्या तुम अपनेको स्मरण करते हो ?
आविज्ञात सखं	कि अविज्ञात नामक मैं तुम्हारा मित्र था
मां हित्वा	मुझे छोड़कर
भौम भोगरतः	पृथ्वीके भोगोंको प्रीतिसे
पदं अनु इच्छन्	निवास स्थानकी खोजमें
गतः	चले गये थे ॥५३॥

हंसावहं च त्वं चार्य सखायौ मानसायनौ ।
अभूतामन्तरा वौकः सहस्रपरिवत्सरान् ॥५४॥

हंसौ अहं च त्वं च आर्य सखायौ मानसायनौ अभूतां अन्तरा वा ओकः सहस्र परिवत्सरान् ॥५४॥

आर्य	हे श्रेष्ठ !
अहं च त्वं च सखायौ	मैं भी और तुम भी परस्पर मित्र हैं,
मानसायनौ	मानस-निवासी
हंसौ	हंस हैं

सहस्र परिवत्सरान्	और हजारों वर्षों तक	ओकः अन्तरा वा अभूतां	किसी निवास स्थानके बिना ही रहे थे ॥५४॥

स त्वं विहाय मां बन्धो गतो ग्राम्यमतिर्महीम् ।
विचरन् पदमद्राक्षीः कयाचिन्निर्मितं स्त्रिया ॥५५॥

स त्वं विहाय मां बन्धो गतः ग्राम्य मतिः महीं विचरन् पदं अद्राक्षीः कयाचित् निर्मितम् स्त्रिया ॥५५॥

बन्धो	मित्र,	विचरन्	घूमते-घूमते
ग्राम्य मतिः	विषय भोगोंकी इच्छासे	कयाचित् स्त्रिया	किसी स्त्रीके द्वारा
स त्वं	वह तुम	निर्मितं	बनाये गये
मां विहाय	मुझे छोड़कर	पदं अद्राक्षीः	स्थानको
गतः	चले गये		देखा ॥५५॥

पञ्चारामं नवद्वारमेकपालं त्रिकोष्ठकम् ।
षट्कुलं पञ्चविपणं पञ्चप्रकृति स्त्रीधवम् ॥५६॥

पञ्च आरामं नव द्वारम् एकपालं त्रिकोष्ठकं षट्कुलं पञ्चविपणं पंचप्रकृति स्त्रीधवम् ॥५६॥

पञ्च आरामं	उसमें पांच बगीचे थे,	पञ्चविपणं	पांच बाजार थे
नवद्वारं	नौ दरवाजे,	पञ्चप्रकृतिं	पांच उपादान कारणोंसे बना था
एकपालं	एक पालका	स्त्रीधवं	स्त्री उसकी
त्रिकोष्ठकं	तीन परकोठे,		स्वामिनी थी ॥५६॥
षट्कुलं	छः कुल थे,		

पञ्चेन्द्रियार्था आरामा द्वारः प्राणा नव प्रभो ।
तेजोऽबन्नानि कोष्ठानि कुलमिन्द्रियसंग्रहः ॥५७॥

पञ्च इन्द्रिय अर्था आरामा द्वारः प्राणा नव प्रभो तेजः अप् अन्नानि कोष्ठानि कुलं इन्द्रिय संग्रहः ॥५७॥

प्रभो	महाराज,
पंच इन्द्रिय अर्था	पांच इन्द्रियोंके विषय
आरामा	पांच उसके बगीचे थे,
नव प्राणा द्वारः	नौ इन्द्रियोंके छिद्र द्वार थे
तेजः अप् अन्नानि	तेज, जल और अन्न ये
कोष्ठानि	तीन परकोटे थे,
इन्द्रिय संग्रहः	(मन और) पांच ज्ञानेन्द्रिय
कुलम्	(छः) कुल थे ॥५७॥

विपणस्तु क्रियाशक्तिर्भूतप्रकृतिरव्यया ।
शक्त्यधीशः पुमांस्त्वत्र प्रविष्टो नावबुध्यते ॥५८॥

विपणः तु क्रियाशक्तिः भूत प्रकृतिः अव्यया शक्ति अधीशः पुमान् तत्र प्रविष्टः न अवबुध्यते ॥५८॥

क्रियाशक्तिः	क्रिया शक्ति रूप पांच कर्मेन्द्रिय
विपणः तु	तो पांच बाजार हैं,
अव्यया	कभी नष्ट न होनेवाले
भूत प्रकृतिः	पञ्चभूत उपादान कारण थे ।
शक्ति अधीशः	बुद्धि शक्ति ही इसकी स्वामिन थी
तत्र प्रविष्टः	जिसमें प्रविष्ट हुआ
पुमान्	पुरुष
न अवबुध्यते	अपनेको नहीं जान पाता ॥५८॥

तस्मिंस्त्वं रामया स्पृष्टो रममाणोऽश्रुतस्मृतिः ।
तत्सङ्गादीदृशीं प्राप्तो दशां पापीयसीं प्रभो ॥५९॥

तस्मिन् त्वं रामया स्पृष्टः रममाणः अश्रुतः स्मृति तत् सङ्गात् ईदृशीं प्राप्तः दशां पापीयसीं प्रभो ॥५९॥

प्रभो	हे भाई !
तस्मिन्	उस नगरमें
त्वं	तुम
रामया स्पृष्टः	उस स्त्रीसे स्पर्श करके
अश्रुत स्मृतिः	स्वरूपको भूलकर
रममाणः	उसके साथ विहार करते हुए
तत् सङ्गात्	उसके संगसे
ईदृशीं पापीयसीं	ऐसी पापमयी
दशां प्राप्तः	दशाको प्राप्त हुए हो ॥५९॥

न त्वं विदर्भदुहिता नायं वीरः सुहृत्तव ।
न पतिस्त्वं पुरञ्जन्या रुद्धो नवमुखे यया ॥६०॥

न त्वं विदर्भ दुहिता न अयं वीरः सुहृत् तव न पतिः त्वं पुरञ्जन्या रुद्धः नवमुखे यया ॥६०॥

त्वं विदर्भ दुहिता न	तुम विदर्भ-कन्या नहीं हो
अयं वीरः	यह वीर
तव सुहृत् न	तुम्हारा मित्र नहीं है,
यया	जिसके द्वारा
नवमुखे	नौ द्वार वाले (नगर) में
रुद्धः	रोके गये थे,
पुरञ्जन्या त्वं पतिः न	उस पुरञ्जनीके तुम पति नहीं हो ॥६०॥

माया ह्येषा मया सृष्टा यत्पुमांसं स्त्रियं सतीम् ।
मन्यसे नोभयं यद्वै हंसौ पश्यावयोर्गतिम् ॥६१॥

माया हि एषा मया सृष्टा यत् पुमांसं स्त्रियं सतीं मन्यसे न उभयं यत् वै हंसौ पश्य आवयोः गतिं ॥६१॥

हि एषा	क्योंकि यह
मया सृष्टा	मेरी बनायी
माया	माया है
यत्	जिससे
पुमांसं	(पहिले जन्ममें अपनेको) पुरुष
सतीं स्त्रियं	(इस जन्ममें) सती स्त्री
मन्यसे	मानते हो,
उभयं न	दोनों ही नहीं हो,
वै यत्	निश्चय क्योंकि

हंसौ	हम दोनों हंस हैं,	पश्य	देखो ॥६१॥
आवयोः गतिं	हम दोनोंके स्वरूपको		

अहं भवान्न चान्यस्त्वं त्वमेवाहं विचक्ष्व भोः ।
न नौ पश्यन्ति कवयश्छिद्रं जातु मनागपि ॥६२॥

अहं भवान् न च अन्यः त्वं त्वं एव अहं विचक्ष्व भोः न नौ पश्यन्ति कवयः छिद्रं जातु मनाक् अपि ॥६२॥

भोः	हे मित्र !	कवयः	ज्ञानीजन
अहं भवान्	जो मैं हूँ वही हो	नौ	हम दोनोंमें
न च त्वं अन्यः	तुम मुझसे कभी भिन्न नहीं हो,	जातु मनाक् अपि	कभी तनिक भी
		छिद्रं न पश्यन्ति	अन्तर नहीं देखते ॥६२॥
त्वं एव अहं	तुम्हो मेरे स्वरूप हो		
विचक्ष्व	विचार कर देखो		

यथा पुरुष आत्मानमेकमादर्शचक्षुषोः ।
द्विधाभूतमवेक्षेत तथैवान्तरमावयोः ॥६३॥

यथा पुरुष आत्मानं एकं आदर्श चक्षुषोः द्विधा भूतं अवेक्षेत तथा एव अन्तरं आवयोः ॥६३॥

यथा पुरुष	जैसे एक ही पुरुष	अवेक्षेत	देखता है
एकं आत्मानं	एक ही अपनेको	तथा एव	उसी प्रकार
आदर्श चक्षुषोः	दर्पणमें या किसीके नेत्रमें	आवयोः	हम दोनोंका
		अन्तरं	भेद है ॥६३॥
द्विधा भूतं	दो बना		

एवं स मानसो हंसो हंसेन प्रतिबोधितः ।
स्वस्थस्तद्व्यभिचारेण नष्टामाप पुनः स्मृतिम् ॥६४॥

एवं स मानसः हंसः हंसेन प्रतिबोधितः स्वस्थः तद् व्यभिचारेण नष्टां आप पुनः स्मृतिं ॥६४॥

एवं स	इस प्रकार वह
मानसः हंसः	मानसरोवरका हंस
हंसेन	दूसरे हंसके द्वारा
प्रतिबोधितः	समझाये जानेपर
स्वस्थः	अपने स्वरूपमें स्थित हो गया
तद्	उस (स्वरूप) के
व्यभिचारेण	व्यभिचार (उलटे भ्रम) से
नष्टां स्मृतिं	नष्ट हुई स्मृतिको
पुनः आप	फिर प्राप्त कर लिया ॥६४॥

बर्हिष्मन्नेतदध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितम् ।
यत्परोक्षप्रियो देवो भगवान् विश्वभावनः ॥६५॥

बर्हिष्मन् एतत् अध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितं यत् परोक्ष प्रियः देवः भगवान् विश्वभावनः ॥६५॥

बर्हिष्मन्	प्राचीनवर्हि !
एतत्	यह
अध्यात्मं	अध्यात्म ज्ञान
पारोक्ष्येण	मैंने परोक्ष रूपसे
प्रदर्शितं	बतलाया है ।
यत्	क्योंकि
विश्वभावनः	विश्व पालक
देवः भगवान्	देव भगवानको
परोक्ष	परोक्ष ही
प्रियः	प्रिय है ॥६५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे पुरञ्जनोपाख्याने अष्टविंशोऽध्यायः ॥२८॥

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

प्राचीन बर्हिरुवाच-

भगवंस्ते वचोऽस्माभिर्न सम्यगवगम्यते ।
कवयस्तद्विजानन्ति न वयं कर्ममोहिताः ॥१॥

भगवन् ते वचः अस्माभिः न सम्यक् अवगम्यते कवयः तद् विजानन्ति न वयं कर्ममोहिताः ॥१॥

भगवन्	भगवन् !	**कवयः**	विद्वान्
ते वचः	तुम्हारे वचन	**तद् विजानन्ति**	उनका तात्पर्य जान सकते हैं
अस्माभिः	मेरे द्वारा		
सम्यक्	भली प्रकार	**वयं कर्ममोहिताः**	हम कर्म-मोह
न अवगम्यते	नहीं समझे जाते हैं	**न**	नहीं जान पाते ॥१॥

नारद उवाच-

पुरुषं पुरञ्जनं विद्याद्येद् व्यनक्त्यात्मनः पुरम् ।
एकद्वित्रिचतुष्पादं बहुपादमपादकम् ॥२॥

पुरुषं पुरञ्जनं विद्यात् यत् व्यनक्ति आत्मनः पुरं एक द्वि त्रि चतुः पादं बहुपादं अपादकं ॥२॥

पुरुषं	जीवको	**बहुपादं**	बहुत पैरोंके (या)
पुरञ्जनं	पुरञ्जन	**अपादकं**	बिना पैरका
विद्यात्	समझना चाहिए	**पुरं**	नगर (शरीर)
यत्	जो	**व्यनक्ति**	प्रगट कर लेता है ॥२॥
आत्मनः	अपने लिए		
एक द्वि त्रि चतुः पादं	एक, दो, तीन या चार पैरके,		

योऽविज्ञाताहृतस्तस्य पुरुषस्य सखेश्वरः ।
यन्न विज्ञायते पुम्भिर्नामभिर्वा क्रियागुणैः ॥३॥

यः अविज्ञात आहृतः तस्य पुरुषस्य सखा ईश्वरः यत् न विज्ञायते पुम्भिः नामभिः वा क्रियागुणैः ॥३॥

तस्य पुरुषस्य		**नामभिः वा**	
सखा	उस जीवका मित्र	**क्रियागुणैः**	नाम, कर्म अथवा गुणोंसे
यत् अविज्ञात	जो अविज्ञात	**यत्**	जिसे
आहृतः	नामसे कहा गया है	**विज्ञायते**	नहीं जान सकते ॥३॥
ईश्वरः	वह ईश्वर है		
यः पुम्भिः	जो किसी पुरुष द्वारा		

यदा जिघृक्षन् पुरुषः कात्स्न्र्येन प्रकृतेर्गुणान् ।
नवद्वारं द्विहस्ताङ्घ्रि तत्रामनुत साध्विति ॥४॥

यदा जिघृक्षन् पुरुषः कात्स्न्र्येन प्रकृतेः गुणान् नवद्वारं द्विहस्त अङ्घ्रि तत्र अमनुत साधु इति ॥४॥

यदा पुरुषः	जब जीवने	**द्विहस्त अङ्घ्रि**	दो हाथ तथा दो पैर वाले (इस मनुष्य शरीरको)
प्रकृतेः गुणान्	प्रकृतिके गुणोंको	**साधु**	यह श्रेष्ठ है
जिघृक्षन्	भोगनेकी इच्छा की	**इति अमनुत**	ऐसा माना ॥४॥
तत्र	तब		
नवद्वारं	नौ द्वारवाले		

बुद्धिं तु प्रमदां विद्यान्ममाहमिति यत्कृतम् ।
यामधिष्ठाय देहेऽस्मिन् पुमान् भुङ्क्तेऽक्षभिर्गुणान् ॥५॥

बुद्धिं तु प्रमदां विद्यात् मम अहं इति यत् कृतं यां अधिष्ठाय देहे अस्मिन् पुमान् भुङ्क्ते अक्षभिः गुणान् ॥५॥

बुद्धिं तु	बुद्धिको ही
प्रमदा विद्यात्	स्त्री (पुरञ्जनी) समझो
यत् कृतं	जिसका बनाया
मम अहं इति	मैं और मेरा यह भाव है
पुमान्	पुरुष
यां अधिष्ठाय	जिसका आश्रय लेकर
अस्मिन् देहे	इस शरीरमें
अक्षभिः गुणान्	इन्द्रियों द्वारा विषयोंको
भुङ्क्ते	भोगता है ॥५॥

सखाय इन्द्रियगणा ज्ञानं कर्म च यत्कृतम् ।
सख्यस्तद्वृत्तयः प्राणः पञ्चवृत्तिर्यथोरगः ॥६॥

सखायः इन्द्रियगणाः ज्ञानं कर्म च यत् कृतं सख्यः तद् वृत्तयः प्राणः पञ्चवृत्तिः यथा उरगः ॥६॥

इन्द्रियगणाः	दश इन्द्रियां ही
सखायः	इसके मित्र हैं
कृतं यत्	जिनके करनेसे
ज्ञानं कर्म च	ज्ञान और कर्म होते हैं
तद् वृत्तयः	उन (इन्द्रियोंकी) वृत्तियां
सख्यः	सखियाँ हैं
पञ्चवृत्तिः	पांच वृत्तिवाला
प्राणः	प्राण (प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान)
उरगः यथा	सर्पके समान है ॥६

बृहद्बलं मनो विद्यादुभयेन्द्रियनायकम् ।
पञ्चालाः पञ्च विषया यन्मध्ये नवखं पुरम् ॥७॥

बृहद् बलं मनः विद्यात् उभय इन्द्रिय नायकं पञ्चालाः पञ्च विषयाः यत् मध्ये नवखं पुरं ॥७॥

मनः बृहद् बलं विद्यात्	मनको बृहद्बल समझो दोनों प्रकारकी
उभय इन्द्रिय नायकं	जो कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियोंका नायक है

पञ्चालाः पञ्च विषयाः	पांचाल प्रदेश पाँच विषय है	यत् मध्ये नवखं पुरं	जिनके बीचमें नौ द्वार वाला नगर है ॥७॥

अक्षिणी नासिके कर्णौ मुखं शिश्नगुदाविति ।
द्वे द्वे द्वारौ बहिर्याति यस्तदिन्द्रियसंयुतः ॥८॥

अक्षिणी नासिके कर्णौ मुखं शिश्न गुदौ इति द्वे द्वे द्वारौ बहिः याति यः तद् इन्द्रिय संयुतः ॥८॥

अक्षिणी नासिके	दो नेत्र गोलक दो नासिका छिद्र	यः तद् इन्द्रिय सयुतः	जो (जीव है) वह (इन्हीं द्वारोंसे) इन्द्रियोंके साथ
कर्णौ द्वे द्वे द्वारौ मुखं शिश्न गुदौ इति	दो कान ये दो-दो द्वार हैं (इसके साथ) मुख्य लिङ्ग और गुदा	बहिः याति	बाहर (विषयोंमें) जाता है ॥८॥

अक्षिणी नासिके आस्यमिति पञ्चपुरः कृताः ।
दक्षिणा दक्षिणः कर्ण उत्तरा चोत्तरः स्मृतः ॥९॥

अक्षिणी नासिके आस्यम् इति पञ्चपुरः कृताः दक्षिणा दक्षिणः कर्ण उत्तरा च उत्तरः स्मृतः ॥९॥

अक्षिणी नासिके	दो नेत्र गोलक, दो नासिका छिद्र	दक्षिणा दक्षिणः कर्ण	दक्षिण दिशा दाहिना कर्ण है
आस्यं इति पञ्चपुरः कृताः	मुख यह पूर्व (द्वार बने हैं)	च उत्तरा उत्तरः स्मृतः	और उत्तर दिशा वाया कर्ण है ॥९॥

पश्चिमे इत्यधोद्वारौ गुदं शिश्नमिहोच्यते ।
खद्योताऽऽविर्मुखी चात्र नेत्रे एकत्र निर्मिते ।
रूपं विभ्राजितं ताभ्यां विचष्टे चक्षुषेश्वरः ॥१०॥

पश्चिमे इति अधः द्वारौ गुदं शिश्नं इह उच्यते खद्योत आविर्मुखौ च अत्र नेत्रे एकत्र निर्मिते रूपं विभ्राजितं ताभ्यां विचष्टे चक्षुष ईश्वरः ॥१०

पश्चिमे इति	पश्चिम इस रूपमें	**एकत्र निर्मिते**	(ये) एक साथ बने हैं
अधः द्वारौ	नीचेके द्वार	**विभ्राजितं रूपं**	विभ्राजित रूप (का नाम) है
गुदं शिश्नं	गुदा और लिंग	**चक्षुष ईश्वरः**	नेत्रोंका स्वामी (जीव)
इह उच्यते	यहाँ कहे गये हैं	**ताभ्यां**	उन (नेत्रों) के द्वारा
खद्योत च आविर्मुखी	खद्योत एवं आविर्मुखी	**विचष्टे**	देखता है ॥१०॥
अत्र नेत्रे	यहाँ नेत्र (कहे गये)		

नलिनी नालिनी नासे गन्धः सौरभ उच्यते ।
घ्राणोऽवधूतो मुख्यास्यं विपणो वाग्रसविद्रसः ॥११॥

नलिनी नालिनी नासे गन्धः सौरभ उच्यते घ्राणः अवधूतः मुख्य आस्यं विपणः वाक् रसवित् रसः ॥११॥

नासे नलिनी नालिनी	नासा छिद्र नलिनी-नालिनी है	**घ्राणः अवधूतः**	घ्राणेन्द्रिय अबधूत कहा गया
गन्धः सौरभ उच्यते	गन्धको सौरभ (देश) कहा जाता है	**मुख्य आस्यं**	मुख्य मुख है
		वाक् विपणः	वाक्-इन्द्रिय विपण है
		रसवित् रसः	रसजानने वाला रसनेन्द्रिय है ॥११॥

आपणो व्यवहारोऽत्र चित्रमन्धो बहूदनम् ।
पितृहूर्दक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः ॥१२॥

आपणः व्यवहारः अत्र चित्रमन्धः बहूदनं पितृहूः दक्षिणः कर्णः उत्तरः देवहूः स्मृतः ॥१२॥

व्यवहारः	
आपणः	वाणीका व्यापार आपण है
चित्रमन्धः	
बहूदनं	तरह-तरहका अन्न-बहूदन है
दक्षिणः कर्णः	
पितृहूः	दाहिना कान पितृहू है
उत्तरः	वायाँ कान
देवहूः स्मृतः	देवहू कहा गया है ॥१२॥

प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पञ्चालसंज्ञितम् ।
पितृयानं देवयानं श्रोत्राच्छ्रुतधराद्व्रजेत् ॥१३॥

प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पञ्चाल संज्ञितं पितृयानं देवयानं श्रोत्रात् श्रुतधरात् व्रजेत् ॥१३॥

प्रवृत्तं	(कर्मकाण्ड रूप) प्रवृत्तिका मार्ग
च निवृत्तं	और (उपासना रूप) निवृत्ति को ही
पञ्चाल संज्ञितं	पञ्चाल देश कहे गये
श्रोत्रात्	श्रवणेन्द्रिय द्वारा
श्रुतधरात्	श्रवणको स्मरण रखनेसे
पितृयानं	पितृयान (मार्ग) से
देवयानं	(या) देवयान (मार्ग) से
व्रजेत्	जाता है ॥१३॥

आसुरी मेढ्रमर्वाग्द्वार्व्यवायो ग्रामिणां रतिः ।
उपस्थो दुर्मदः प्रोक्तो निर्ऋतिर्गुद उच्यते ॥१४॥

आसुरी मेढ्रं अर्वाक् द्वाः व्यवायः ग्रामिणां रतिः उपस्थः दुर्मदः प्रोक्तः निर्ऋतिः गुद उच्यते ॥१४॥

मेढ्रं आसुरी	लिङ्ग आसुरी नामक
अर्वाक् द्वाः	नीचेका द्वार है
व्यवायः	
ग्रामिणां रतिः	स्त्री प्रसङ्ग ग्राम्य रति है
उपस्थः	लिङ्गमें रहने वाली उपस्थेन्द्रिय
दुर्मदः प्रोक्तः	दुर्मद कही गयी है
निर्ऋतिः गुद उच्यते	गुदा निर्ऋति कही जाती है ॥१४॥

वैशसं नरकं पायुर्लुब्धकोऽन्धौ तु मे शृणु ।
हस्तपादौ पुमांस्ताभ्यां युक्तो याति करोति च ॥१५॥

वैशसं नरकं पायुः लुब्धकः अन्धौ तु मे शृणु हस्तपादौ पुमान् ताभ्यां युक्तः याति करोति च ॥१५॥

नरकं वैशसं	नरक वैशस नामका देश है	**हस्तपादौ**	(ये) हाथ और पैर हैं
पायुः लुब्धकः	(गुदामें स्थित) पायु इन्द्रिय लुब्धक कहा है	**ताभ्यां युक्तः**	इन दोनोंसे युक्त होकर
		करोति च	
		याति	(कर्म) करता है और (कहीं भी) जाता है ॥१५॥
अन्धौ तु मे			
शृणु	दो अन्धे हैं उन्हें मुझसे सुनो		

अन्तःपुरं च हृदयं विषूचिर्मन उच्यते ।
तत्र मोहं प्रसादं वा हर्षं प्राप्नोति तद्गुणैः ॥१६॥

अन्तःपुरं च हृदयं विषूचिः मन उच्यते तत्र मोहं प्रसादं वा हर्षं प्राप्नोति तद् गुणैः ॥१६॥

हृदयं अन्तःपुरं	हृदय अन्तःपुर है	**प्रसादं हर्षं वा**	
मन विषूचिः		**मोहं**	शान्ति हर्ष अथवा मोहको
उच्यते	मन विषूची कहा गया है	**प्राप्नोति**	प्राप्त करता है ॥१६
तद् गुणैः	उस (मन) के [सत्त्वादि] गुणोंसे		

यथा यथा विक्रियते गुणाक्तो विकरोति वा ।
तथा तथोपद्रष्टाऽऽत्मा तद्वृत्तीरनुकार्यते ॥१७॥

यथा यथा विक्रियते गुणाक्तः विकरोति वा तथा तथा उपद्रष्टा आत्मा तत् वृत्तीः अनुकार्यते ॥१७॥

यथा यथा	(बुद्धि) जैसे-जैसे
विक्रियते	विकृति होती है
वा यथा	
विकरोति	अथवा जैसे विकृत करती है
तथा तथा	वैसे-वैसे
उपद्रष्टा	साक्षी प्रकारसे
गुणाक्तः आत्मा	गुणोंसे लिप्त जीवसे
तत् वृत्तीः	उस (बुद्धि) की
अनुकार्यते	अपनी वृत्तिका अनुकरण कराती है ॥१७॥

देहो रथस्त्विन्द्रियाश्वः संवत्सररयोऽगतिः ।
द्विकर्मचक्रस्त्रिगुणध्वजः पञ्चासुबन्धुरः ॥१८॥

देहः रथः तु इन्द्रिय अश्वः संवत्सररयः अगतिः द्वि कर्म चक्रः त्रि गुण ध्वजः पञ्च असु बन्धुरः ॥१८॥

देहः तु रथः	देह तो रथ है
इन्द्रिय अश्वः	ज्ञानेन्द्रिय (पाँच) अश्व हैं
संवत्सररयः	संवत्सरका वेग
अगतिः	गति हीनत्व है
द्वि कर्म चक्रः	(पाप-पुण्य रूप) कर्म दो पहिये हैं
त्रि ध्वजः	(सत्त्व, रज, तज) तीन ध्वजा हैं
पञ्च असु	पाँच प्राण
बन्धुरः	डोरियां हैं ॥१८॥

मनोरश्मिर्बुद्धिसूतो हृन्नीडो द्वन्द्वकूबरः ।
पञ्चेन्द्रियार्थप्रक्षेपः सप्तधातुवरूथकः ॥१९॥

मनः रश्मिः बुद्धि सूतः हृत् नीडः द्वन्द्व कूबरः पञ्च इन्द्रिय अर्थ प्रक्षेपः सप्तधातु वरूथकः ॥१९॥

मनः रश्मिः	मन बागडोर है
बुद्धि सूतः	बुद्धि सारथि है
हृत् नीडः	हृदय बैठनेका स्थान है
द्वन्द्व कूबर	सुख-दुःखादि द्वन्द्व जुए हैं
पञ्च इन्द्रिय अर्थ	इन्द्रियोंके पाँच विषय
प्रक्षेपः	आयुध हैं
सप्त धातु वरूथकः	(त्वचादि) सात धातु आवरण हैं ॥१९॥

आकूतिर्विक्रमो बाह्यो मृगतृष्णां प्रधावति ।
एकादशेन्द्रियचमूः पञ्चसूनाविनोदकृत् ॥२०॥

आकूतिः विक्रमः बाह्यः मृगतृष्णां प्रधावति एकादश इन्द्रिय चमूः पञ्चसूना विनोद कृत् ॥२०॥

आकूतिः विक्रमः	(पांच) कर्मेन्द्रियां (पांच प्रकारकी) गति है	प्रधावति	दौड़ती है
		एकादश इन्द्रिय	
बाह्यः	(इस रथपर चढ़कर) रथी रूप जीव	चमूः	ग्यारह इन्द्रियां सेना हैं
मृगतृष्णां	मृगतृष्णा (के समान मिथ्या जीव विषयों) की ओर	पञ्चसूना	पांच (विषयोंका ग्रहण) आखेटका
		विनोदकृत्	विनोद करता है ॥२०॥

संवत्सरश्चण्डवेगः कालो येनोपलक्षितः ।
तस्याहानीह गन्धर्वा गन्धर्व्यो रात्रयः स्मृताः ।
हरन्त्यायुः परिक्रान्त्या षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥२१॥

संवत्सरः चण्डवेगः कालः येन उपलक्ष्यते तस्य अहानि इह गन्धर्वा गन्धर्व्यः रात्रयः स्मृताः हरन्ति आयुः परिक्रान्त्या षष्टि उत्तर शतत्रयं ॥२१॥

येन कालः	जिसके द्वारा कालका	रात्रयः स्मृताः	रात्रियां कही गयी हैं
उपलक्ष्यते	ज्ञान होता है	षष्टि उत्तर	
संवत्सरः	(वह) संवत्सर	शतत्रयं	ये तीन सौ साठ
चण्डवेगः	चण्डवेग कहा गया	परिक्रान्त्या	(बारी-बारीसे) घूमनेके द्वारा
इह	इसमें		
गन्धर्वा	गन्धर्व	आयुः	आयुका
अहानि	दिन हैं	हरन्ति	हरण करती हैं ॥२१॥
गन्धर्व्यः	गन्धर्वियां		

कालकन्या जरा साक्षाल्लोकस्तां नाभिनन्दति ।
स्वसारं जगृहे मृत्युः क्षयाय यवनेश्वरः ॥२२॥

कालकन्या जरा साक्षात् लोकः तां न अभिनन्दति स्वसारं जगृहे मृत्युः क्षयाय यवनेश्वरः ॥२२॥

जरा कालकन्या	वृद्धावस्था काल-कन्या है	**क्षयाय**	(लोकका) विनाश करनेके लिए
तां लोकः	उसको लोक	**स्वसारं जगृहे**	(उसे) बहिन रूपसे स्वीकार किया है ॥२२॥
अभिनन्दति न	पसन्द नहीं करता		
मृत्युः			
यवनेश्वरः	मृत्यु यवनराजने		

आधयो व्याधयस्तस्य सैनिका यवनाश्चराः ।
भूतोपसर्गाशुरयः प्रज्वारो द्विविधो ज्वरः ॥२३॥

आधयः व्याधयः तस्य सैनिका यवनाः चराः भूत उपसर्गः आशु रयः प्रज्वारः द्विविधः ज्वरः ॥२३॥

आधयः	मानसिक चिन्ता	**आशु रयः**	तीव्र वेग
व्याधयः	(शारीरिक) रोग	**द्विविधः**	(शीत और कृष्ण) दो प्रकारका
तस्य चराः	उस (यवनराज) के पैदल	**ज्वरः**	ज्वर
यवनाः सैनिका	यवन सैनिक हैं	**प्रज्वारः**	प्रज्वार नामक उसका मित्र है ॥२३
भूत उपसर्गः	प्राणियोंको पीड़ा देनेवाला		

एवं बहुविधैर्दुःखैर्दैवभूतात्मसम्भवैः ।
क्लिश्यमानः शतं वर्ष देहे देही तमोवृतः ॥२४॥

एवं बहुविधैः दुःखैः दैव भूत आत्म संभवैः क्लिश्यमानः शतं वर्ष देहे देही तमः वृतः ॥२४॥

एवं	इस प्रकार	दुःखैः	दुःखोंसे
देही	देहाभिमानी जीव	क्लिश्यमानः	क्लेश पाता हुआ
बहुविधैः	अनेक प्रकारके	शतं वर्षं	सौ वर्षों तक
दैव भूत	आधिदैविक, आधि	देहे	शरीरमें
	भौतिक	तमः वृतः	अज्ञानसे आच्छन्न
आत्म संभवैः	आध्यात्मिक		रहता है ॥२४॥

प्राणेन्द्रियमनोधर्मानात्मन्यध्यस्य निर्गुणः ।
शेते कामलवान्ध्यायन्ममाहमिति कर्मकृत् ॥२५॥

प्राण इन्द्रिय मनः धर्मान् आत्मनि अध्यस्य निर्गुणः शेते काम लवान् ध्यायन् मम अहं इति कर्मकृत् ॥२५॥

निर्गुणः	(वस्तुतः) निर्गुण	इति	इस भावसे
	होनेपर भी	कर्मकृत	कर्म करता हुआ
प्राण इन्द्रिय	प्राण, इन्द्रिय	काम लवान्	क्षुद्र भोगोंका
मनः धर्मान्	और मनके धर्मोंको	ध्यायन्	चिन्तन करता
आत्मनि	अपनेमें	शेते	सोता (निद्रा मग्न-
अध्यस्य	आरोपित करके		सा असावधान
मम अहं	मेरा और मैं		रहता) है ॥२५॥

यदाऽऽत्मानमविज्ञाय भगवन्तं परं गुरुम् ।
पुरुषस्तु विषज्जेत गुणेषु प्रकृतेः स्वदृक् ॥२६॥

यदा आत्मानं अविज्ञाय भगवन्तं परं गुरुं पुरुषः तु विषज्जेत गुणेषु प्रकृतेः स्वदृक् ॥२६॥

स्वदृक्	स्वयं प्रकाश (होने-	अविज्ञाय	नहीं जानकर
	पर भी)	पुरुषः तु	जीव तो
यदा	जब	प्रकृतेः गुणेषु	प्रकृतिके गुणोंमें
परं गुरुं	परम-गुरु	विषज्जेत	बँधा रहता
आत्मानं	आत्मस्वरूप		है ॥२६॥
भगवन्तं	भगवान्को		

गुणाभिमानी स तदा कर्माणि कुरुतेऽवशः ।
शुक्लं कृष्णं लोहितं वा यथाकर्माभिजायते ॥२७॥

गुण अभिमानी स तदा कर्माणि कुरुते अवशः शुक्लं कृष्णं लोहितं वा यथाकर्म अभिजायते ॥२७॥

गुण अभिमानी	गुणोंमें अभिमान करनेके कारण	वा लोहितं	अथवा राजसिक
		कर्माणि कुरुते	कर्मोंको करता है
स अवशः	वह पुरुष विवश होकर	यथाकर्म	कर्मके अनुसार
		अभिजायते	जन्म लेता है ॥२७॥
शुक्लं कृष्णं	सात्विक तामसिक		

शुक्लात्प्रकाशभूयिष्ठाँल्लोकानाप्नोति कर्हिचित् ।
दुःखोदर्कान् क्रियायासांस्तमः शोकोत्कटान् क्वचित् ॥२८॥

शुक्लात् प्रकाश भूयिष्ठान् लोकान् आप्नोति कर्हिचित् दुःख उदर्कान् क्रिया आयासान् तमः शोक उत्कटान् क्वचित् ॥२८॥

कर्हिचित्	कभी	दुःखोदर्कान्	दुःखोंसे भरे हुए
शुक्लात्	सात्विक कर्मोंसे	क्रिय आयासात्	कर्मके परिश्रमसे पूर्ण
प्रकाश		तमः	(और कभी) तामसिक कर्मसे
भूयिष्ठान्	प्रकाश बहुल (स्वर्गादि लोकों) को	शोक उत्कटान्	शोक बहुल
क्वचित्	कभी (राजसिक कर्मोंसे)	आप्नोति	(लोकोंको) प्राप्त करता है ॥२८॥

क्वचित्पुमान् क्वचिच्च स्त्री क्वचिन्नोभयमन्धधीः ।
देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथाकर्मगुणं भवः ॥२९॥

क्वचित् पुमान् क्वचित् च स्त्री क्वचित् न उभयं अन्धधीः देवः मनुष्यः तिर्यक् वा यथाकर्म गुणं भवः ॥२९॥

क्वचित् पुमान्	कभी पुरुष
च क्वचित् स्त्री	और कभी स्त्री
क्वचित् न	
उभयम्	कभी दोनों नहीं (नपुंसक)
अन्धधीः	(इस प्रकार) अन्ध बुद्धि हुआ
यथाकर्म गुणं	कर्म और गुणोंके अनुसार
देवः मनुष्यः	देव-योनि, मनुष्य-योनि
वा तिर्यक्	अथवा तिर्यक (पशु-पक्षी) योनिमें
भवः	जन्म लेता है ॥२८॥

क्षुत्परीतो यथा दीनः सारमेयो गृहं गृहम् ।
चरन् विन्दति यद्दिष्टं दण्डमोदनमेव वा ॥३०॥

क्षुत् परीतः यथा दीनः सारमेयः गृहं गृहं चरन् विन्दति यत् दिष्टं दण्डं ओदनं एव वा ॥३०॥

क्षुत् परीतः	भूखसे पीडित
दीनः सारमेयः	दीन कुत्ता
यथा गृहं गृहं	
चरन्	जैसे घर-घर घूमता
यत् दिष्टं	जो प्रारब्ध है
दण्डं एव	डंडा ही
वा ओदनं	अथवा भात
विन्दति	पाता है ॥३०॥

तथा कामाशयो जीव उच्चावचपथा भ्रमन् ।
उपर्यधो वा मध्ये वा याति दिष्टं प्रियाप्रियम् ॥३१॥

तथा कामाशयः जीवः उच्च अवचः पथा भ्रमन् उपरि अधः वा मध्ये वा याति दिष्टम् प्रिय अप्रियं ॥३१॥

तथा जीवः	उसी प्रकार जीव
कामाशयः	मनमें कामनाओंको लेकर
उच्च अवचः	
पथा	ऊँचे-नीचे मार्गसे
भ्रमन्	घूमता हुआ
उपरि अधः वा	ऊपर या नीचे
वा मध्ये	अथवा मध्यके लोकोंमें
दिष्टं	भाग्यानुसार
प्रिय अप्रियं	
याति	प्रिय या अप्रिय पाता है ॥३१॥

दुःखेष्वेकतरेणापि दैवभूतात्महेतुषु ।
जीवस्य न व्यवच्छेदः स्याच्चेत्तत्तत्प्रतिक्रिया ॥३२॥

दुःखेषु एकतरेण अपि दैव भूत आत्म हेतुषु जीवस्य न व्यवच्छेदः स्यात् चेत् तत् प्रतिक्रिया ॥३२॥

दैव	आधिदैविक	व्यवच्छेदः न	छुटकारा नहीं है
भूत	आधिभौतिक	चेत् स्यात्	यदि (छुटकारा) होता लगता है
आत्म	आध्यात्मिक		
हेतुषु	कारणोंसे (होनेवाले)	तत्	वह (केवल) उस
दुःखेषु	दुःखोंमें		दुःखकी
एकतरेण अपि	किसी एकसे भी	प्रतिक्रिया	प्रतिक्रिया है ॥३२॥
जीवस्य	जीवका		

यथा हि पुरुषो भारं शिरसा गुरुमुद्वहन् ।
तं स्कन्धेन स आधत्ते तथा सर्वाः प्रतिक्रियाः ॥३३॥

यथा हि पुरुषः भारं शिरसा गुरुं उद्वहन् तं स्कन्धेन स आधत्ते तथा सर्वाः प्रतिक्रियाः ॥३३॥

हि	क्योंकि	आधत्ते	रख लेता है
यथा पुरुषः	जैसे पुरुष	तथा	उसी प्रकार सभी
गुरुं भारं	भारी भारको	सर्वाः	सब
शिरसा उद्वहन्	सिरपर ढोता हुआ	प्रतिक्रियाः	(दुःख निवृत्ति)
स तं स्कन्धेन	वह उसे कन्धेपर		प्रतिक्रिया है ॥३३॥

नैकान्ततः प्रतीकारः कर्मणां कर्म केवलम् ।
द्वयं ह्यविद्योपसृतं स्वप्ने स्वप्न इवानघ ॥३४॥

न एकान्ततः प्रतीकारः कर्मणां कर्म केवलं द्वयं हि अविद्या उपसृतं स्वप्ने स्वप्न इव अनघ ॥३४॥

अनघ	निष्पाप राजन्
स्वप्ने स्वप्न इव	जैसे स्वप्नमें स्वप्नान्तरके समान
केवलं कर्म	केवल कर्मसे
कर्मणां	कर्मोंका
एकान्ततः	आत्यन्तिक (सर्वथा)
प्रतीकारः न	प्रतिकार नहीं हो सकता
हि	क्योंकि
द्वयं	दोनों (पहिले कर्म और उसका प्रतिकार)
अविद्या	अज्ञानसे
उपसृतं	आये हैं ॥३४॥

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ।
मनसा लिङ्गरूपेण स्वप्ने विचरतो यथा ॥३५॥

अर्थे हि अविद्यमाने अपि संसृतिः न निवर्तते मनसा लिङ्गरूपेण स्वप्ने विचरतः यथा ॥३५॥

स्वप्ने मनसा	
लिङ्गरूपेण	स्वप्नमें मनोमय लिङ्ग शरीरसे
विचरतः यथा	विचरनेवालेके समान
अर्थे अविद्यमाने	
अपि	दृश्य पदार्थ नहीं
संसृतिः	आवागमन होनेपर भी
न निवर्तते	नहीं छूटता है ॥३५॥

अथात्मनोऽर्थभूतस्य यतोऽनर्थपरम्परा ।
संसृतिस्तद्व्यवच्छेदो भक्त्या परमया गुरौ ॥३६॥

अथ आत्मनः अर्थ भूतस्य यतः अनर्थ परम्परा संसृतिः तत् व्यवच्छेदः भक्त्या परमया गुरौ ॥३६॥

अर्थ भूतस्य	
आत्मनः	परमार्थ स्वरूप आत्माको
यतः	जिस (अविद्या) से
अनर्थ परम्परा	अनर्थ परम्परा रूप
संसृतिः	जन्म-मरण (प्राप्त हुआ है)
तत्	उसका
व्यवच्छेदः	कटना
गुरौ परमया	
भक्त्या	गुरुरूप श्रीहरिमें
परमया	ही होता है ॥३६॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः ।
सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ॥३७॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ॥३७॥

भगवति वासुदेवे	भगवान् वासुदेवमें	**वैराग्यं**	वैराग्य
समाहितः	एकाग्रतापूर्वक	**च ज्ञानं**	और ज्ञानको
सध्रीचीनेन	अच्छी तरहसे	**जनयिष्यति**	उत्पन्न करता
भक्तियोगः	(किया गया) भक्ति-भाव		है ॥३७॥

सोऽचिरादेव राजर्षे स्यादच्युतकथाश्रयः ।
शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदा स्यादधीयतः ॥३८॥

सः अचिरात् एव राजर्षे स्यात् अच्युत कथा आश्रयः शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदा स्यात् अधीयतः ॥३८॥

राजर्षे सः	राजर्षि ! वह (भक्ति-भाव)	**शृण्वतः**	सुनते हुए
अच्युत कथा आश्रयः	भगवान्‌की कथाओं के आश्रित	**अधीयतः**	(अथवा) पढ़ने वालेको
नित्यदा	नित्य-नित्य	**अचिरात् एव स्यात्**	शीघ्र ही प्राप्त होता है ॥३८॥
श्रद्दधानस्य	श्रद्धापूर्वक		

यत्र भागवता राजन् साधवो विशदाशयाः ।
भगवद्गुणानुकथनश्रवणव्यग्रचेतसः ॥३९॥

यत्र भागवता राजन् साधवः विशद आशयाः भगवद् गुण अनु कथन श्रवण व्यग्र चेतसः ॥३९॥

राजन्	हे राजन् !	**विशद आशयाः**	विशुद्ध अन्तःकरण वाले
यत्र	जहाँ		

भागवता भगवद् गुण अनु कथन	भगवान्‌के भक्त भगवद्‌गुणोंका बार-बार वर्णन (तथा)	**श्रवण व्यग्र चेतसः साधवः**	सुननेके लिए तत्पर चित्तवाले साधुजन (रहते हैं) ॥३९॥

तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्र-
पीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति ।
ता ये पिबन्त्यविवृषो नृप गाढकर्णै-
स्तान्न स्पृशन्त्यशनतृड्भयशोकमोहाः ॥४०॥

तस्मिन् महन्मुखारिता मधुभित् चरित्र पीयूष शेष सरितः परितः स्रवन्ति ता ये पिबन्ति अवितृषः नृप गाढकर्णैः तान् न स्पृशन्ति अशन तृड् भय शोक मोहाः ॥४०॥

तस्मिन्	उस (साधु-समाज)में	**गाढकर्णैः**	एकाग्र कानोंसे
परितः	चारों ओर	**ता पिबन्ति**	उसे पीते हैं
महन्मुखारिता	महापुरुषोंके मुखसे निकले हुए	**तान्**	उनको
मधुभित् चरित्र	श्रीमधुसूदनके चरित्रकी	**अशन तृड् भय शोक**	भूख, प्यास,
पीयूष शेष	शुद्ध अमृतकी	**मोहाः**	भय, शोक और मोह
सरितः	नदियाँ बहती हैं।	**स्पृशन्ति न**	स्पर्श नहीं करते ॥४०॥
नृप	राजन् !		
ये अवितृषः	जो अत्यन्त प्यासे (चित्त) से		

एतैरुपद्रुतो नित्यं जीवलोकः स्वभावजैः ।
न करोति हरेर्नूनं कथामृतनिधौ रतिम् ॥४१॥

एतैः उपद्रुतः नित्यं जीवलोकः स्वभावजैः न करोति हरेः नूनं कथा अमृत निधौ रतिं ॥४१॥

एतैः	इन (भूख-प्यास, भय शोकादि) (दोषोंसे)
स्वभावजैः	स्वभावसे प्राप्त
नित्यं उपद्रुतः	सदा घिरा हुआ
जीवलोकः	जीव समुदाय
नूनं हरेः	निश्चय ही श्रीहरिके
कथा अमृत	
निधौ	कथा रूप अमृत-समुद्रमें
रतिं न करोति	प्रीति नहीं करता ॥४१॥

प्रजापतिपतिः साक्षाद्भगवान् गिरिशो मनुः ।
दक्षादयः प्रजाध्यक्षा नैष्ठिकाः सनकादयः ॥४२॥

प्रजापतिपतिः साक्षात् भगवान् गिरिशः मनुः दक्ष आदयः प्रजाध्यक्षाः नैष्ठिकाः सनका आदयः ॥४२॥

साक्षात्	साक्षात्
प्रजापतिपतिः	प्रजा पतियोंके पति ब्रह्माजी
भगवान्	
गिरिशः	भगवान् शङ्कर
मनुः	स्वायम्भुवमनु
दक्ष आदयः	
प्रजाध्यक्षाः	दक्ष आदि प्रजापति
नैष्ठिकाः	नैष्ठिक ब्रह्मचारी
सनका आदयः	सनकादि ॥४२॥

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
भृगुर्वसिष्ठ इत्येते मदन्ता ब्रह्मवादिनः ॥४३॥

मरीचिः अत्रिः अङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः भृगुः वसिष्ठः इति एते मत् अन्ता ब्रह्म वादिनः ॥४३॥

मरीचिः	मरीचि
अत्रिः	अत्रि
अङ्गिरसौ	अङ्गिरा
पुलस्त्यः पुलहः	पुलस्त्य पुलह
क्रतुः भृगुः	क्रतु भृगु और
वसिष्ठ	वशिष्ठ और
इति एते	इस प्रकारमें
मत् अन्ता	अन्तिम मैं
ब्रह्म वादिनः	ब्रह्मवादी मुनि है ॥४३॥

अद्यापि वाचस्पतयस्तपोविद्यासमाधिभिः ।
पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति पश्यन्तं परमेश्वरम् ॥४४॥

अद्य अपि वाचस्पतयः तपः विद्या समाधिभिः पश्यन्तः अपि न पश्यन्ति पश्यन्तं परमेश्वरं ॥४४॥

वाचस्पतयः		**पश्यन्तः अपि**	ढूँढ़ते हुए भी
अपि	समस्त वाङ्मयके-स्वामी होकर भी	**पश्यन्तं**	सर्वसाक्षी
तपः विद्या		**परमेश्वरं**	परमेश्वरको
समाधिभिः	तप विद्या और समाधिके द्वारा	**अद्य**	आज तक
		न पश्यन्ति	नहीं देख सके ॥४४॥

शब्दब्रह्मणि दुष्पारे चरन्त उरुविस्तरे ।
मन्त्रलिङ्गैर्व्यवच्छिन्नं भजन्तो न विदुः परम् ॥४५॥

शब्दब्रह्मणि दुष्पारे चरन्तः उरुविस्तरे मन्त्रलिङ्गैः व्यवच्छिन्नं भजन्तः न विदुः परं ॥४५॥

उरुविस्तरे	बहुत विस्तारवाले	**पश्यन्तः अपि**	ढूंढते हुए भी
दुष्पारे	अपार	**भजन्तः**	(परमात्माका) पूजन करते हुए भी
शब्दब्रह्मणि	वेदोंका		
चरन्तः	विचार करते हुए	**परं न विदुः**	उस परमात्मा (के स्वरूप)को नहीं जानते ॥४५॥
मन्त्रलिङ्गैः	मन्त्रों सूचित चिह्नोंसे		
व्यवच्छिन्नं	ढके (छिपे)		

यदा यमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः ।
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ॥४६॥

यदा यं अनुगृह्णाति भगवान् आत्म भावितः स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठितां ॥४६॥

भगवान्	भगवान् श्रीहरि		(शास्त्राचार) में
यदा यं	जब जिसपर	**परिनिष्ठितां**	अत्यन्त निष्ठावान्
अनुगृह्णाति	अनुग्रह करते हैं	**मतिं**	(वद्धमूल) बुद्धि (आस्था)को
स	वह		
लोके च वेदे	लोकाचार और वेद	**जहाति**	छोड़ पाता है ॥४६॥

तस्मात्कर्मसु बर्हिष्मन्नज्ञानादर्थकाशिषु ।
मार्थदृष्टिं कृथाः श्रोत्रस्पर्शिष्वस्पृष्टवस्तुषु ॥४७॥

तस्मात् कर्मसु बर्हिष्मन् अज्ञानात् अर्थ काशिषु मा अर्थ दृष्टिं कृथाः श्रोत्र स्पर्शिषु अस्पृष्ट वस्तुषु ॥४७॥

बर्हिष्मन्	प्राचीनबर्हि !	अज्ञानात्	अज्ञानसे
तस्मात्	इसलिए	अर्थ काशिषु	पदार्थ (सत्य) को
श्रोत्र स्पर्शिषु	सुननमें ही प्रिय लगनेवाले		प्रकाशित करने लगते
		कर्मसु	कर्मोंमें
अस्पृष्ट वस्तुषु	स्पर्शमें कभी न आनेवाली वस्तुओंमें	अर्थ दृष्टिं	परमार्थ बुद्धि
		मा कृथाः	मत करो ॥४७॥

स्वं लोकं न विदुस्ते वै यत्र देवो जनार्दनः ।
आहुर्धूम्रधियो वेदं सकर्मकमतद्विदः ॥४८॥

स्वं लोकं न विदुः ते वै यत्र देवः जनार्दनः आहुः धूम्रधियः वेदं सकर्मकं अतद् विदः ॥४८॥

धूम्रधियः	मलिन मति (कर्म-वादी)	स्वं लोकं	अपने (स्वरूप-भूत) लोक (आत्म तत्वको)
वेदं	वेदको		
सकर्मकं आहुः	कर्म परक बताते हैं	न विदुः	नहीं जानते
अतद् विदः	(वे, वेदके मर्मको नहीं जानते	यत्र वै	जहाँ साक्षात्
		जनार्दनः देवः	श्रीजनार्दन भगवान्
ते	(क्योंकि) वे		विराजमान हैं ॥४८

आस्तीर्य दर्भैः प्रागग्रैः कात्स्न्र्येन क्षितिमण्डलम् ।
स्तब्धो बृहद्वधान्मानी कर्म नावैषि यत्परम् ।
तत्कर्म हरितोषं यत्सा विद्या तन्मतिर्यया ॥४९॥

आस्तीर्य दर्भैः प्राक् अग्रैः कात्स्न्र्येन क्षितिमण्डलं स्तब्धः बृहत् वधात् मानी कर्म न अवैषि यत् परं तत् कर्म हरितोषं यत् सा विद्या तत् मतिः यया ॥४९॥

प्राक् अग्रैः	पूर्वकी ओर अग्रभाग वाले*
दर्भैः	कुशोंसे
कात्स्न्र्येन	सम्पूर्ण
क्षितिमण्डलं	भूमण्डलको
आस्तीर्य	आच्छादित करके
बृहत् वधात्	बहुतसे पशुओंका वध करनेसे
मानी	कर्माभिमानी
स्तब्धः	विवेकहीन हो गये हो
यत् कर्म परं	किन्तु जो कर्म परम्-पद देनेवाला है
न अवैषि	उसे नहीं जानते
कर्म तत्	कर्म तो वही हैं
यत् हरितोषं	जिससे श्रीहरि प्रसन्न हों
सा विद्या	और विद्या वही है
यया तत् मतिः	जिससे भगवान्‌में बुद्धि लगे ॥४९॥

हरिर्देहभृतामात्मा स्वयं प्रकृतिरीश्वरः ।
तत्पादमूलं शरणं यतः क्षेमो नृणामिह ॥५०॥

हरिः देहभृतां आत्मा स्वयं प्रकृतिः ईश्वरः तत् पादमूलं शरणं यतः क्षेमः नृणां इह ॥५०॥

हरिः	श्रीहरि
देहभृतां	देहधारियोंके
आत्मा	आत्मा हैं,
ईश्वरः	नियामक हैं,
स्वयं प्रकृतिः	स्वतन्त्र कारण हैं।
तत् पादमूलं	उनके चरण तल ही
शरणं	(एकमात्र) आश्रय हैं
यतः	जिनसे
इह	संसारमें
नृणां	मनुष्योंका
क्षेमः	कल्याण हो सकता है ॥५०॥

स वै प्रियतमश्चात्मा यतो न भयमण्वपि ।
इति वेद स वै विद्वान् यो विद्वान् स गुरुर्हरिः ॥५१॥

स वै प्रियतमः च आत्मा यतः न भयं अणु अपि इति वेद स वै विद्वान् यः विद्वान् स गुरुः हरिः ॥५१॥

---

* यज्ञमें पूर्वकी ओर नोक करके कुश बिछाये जाते हैं।

यतः	जिससे
अणु अपि	अणु मात्र भी
भयं न	भय नहीं होता
स वै	वही निश्चय
प्रियतमः	प्रियतम
च आत्मा	और आत्मा है
इति	ऐसा
यः वेद	जो जानता है
स विद्वान्	वह ज्ञानी है
यः विद्वान्	जो ज्ञानी है
स गुरुः	वही गुरु (एवं)
हरिः	(साक्षात्) हरि है ॥५१॥

*प्रश्न एवं हि संछिन्नो भवतः पुरुषर्षभ ।
अत्र मे वदतो गुह्यं निशामय सुनिश्चितम् ॥५२॥

प्रश्न एवं हि संछिन्नः भवतः पुरुषर्षभ अत्र मे वदतः गुह्य निशामय सुनिश्चितं ॥५२॥

पुरुषर्षभ	पुरुष-श्रेष्ठ !
एवं हि	इस प्रकार क्योंकि
भवतः	तुम्हारे
प्रश्न	प्रश्नको
संछिन्नः	काट दिया (उत्तर दे दिया) गया
अत्र	इस विषयमें
मे	मेरे
सुनिश्चितं	पूर्ण निश्चित किये हुए
गुह्यं	रहस्यको
वदतः	कहनेपर
निशामय	सुनो ॥५२॥

क्षुद्रश्चरं सुमनसां शरणे मिथित्वा
रक्तं षडङ्घ्रिगणसामसु लुब्धकर्णम् ।
अग्रे वृकानसुतृपोऽविगणय्य यान्तं
पृष्ठे मृगं मृगय लुब्धकबाणभिन्नम् ॥५३॥

क्षुद्रं चरं सुमनसां शरणे मिथित्वा रक्तं षडङ्घ्रिगण सामसु लुब्ध कर्णं अग्रे वृकान् असुतृपः अविगणय्य यान्तं पृष्ठे मृगं मृगय लुब्धक बाण भिन्नं ॥५३॥

---

* यहाँ ग्रन्थोंमें 'नारद उवाच' है जो अनावश्यक है।

सुमनसां शरणे	पुष्प वाटिकामें
मिथित्वा	अपने जोड़े (हरिणी) से मिलकर
क्षुद्रं चरं	छोटे तृण चरते (मृग) के
षड्ङ्घ्रिगण	
सामसु	भौंरोंके मधुर गानमें
लुब्ध कर्णं	कान लोभपूर्वक
रक्तं	अनुरागसे लगे हैं
अग्रे असुतृपः	उसके सामने ही (दूसरोंके) प्राणोंसे तृप्त होनेवाले
वृकान्	भेड़िये खड़े हैं
पृष्ठे	और पीछेसे
लुब्धक	व्याधने
बाण भिन्नं	वेधनेके लिए बाण छोड़ दिया है (किन्तु)
अविगणय्य	(इनकी) अवगणना करते
मृगं	(उस) मृगको
मृगय	ढूंढ़ो ॥५३॥

[अस्यार्थः]

सुमनः सधर्मणां स्त्रीणां शरण आश्रमे पुष्प मधुगन्धवत्क्षुद्रतमं काम्यकर्मविपाकजं कामसुखलवं जैह्व्यौपस्थ्यादि विचिन्वन्तं मिथुनीभूय तदभिनिवेशितमनसं षडङ्घ्रिगणसामगीतवदति-मनोहरवनितादिजनालापेष्वतितरामतिप्रलोभितकर्णमग्रे वृकयूथ-वदात्मन आयुर्हरतोऽहोरात्रान्तान् काल-लवविशेषानविगणय्य गृहेषु विहरन्तं पृष्ठत एव परोक्षमनुप्रवृत्तो लुब्धकः कृतान्तोऽन्तः शरेण यमिह पराविध्यति तमिममात्मानमहो राजन् भिन्नहृदयं द्रष्टुमर्हसीति ॥५४॥

[अस्यार्थ]

सुमनसः सधर्मणां स्त्रीणां शरण आश्रमे पुष्प मधु गन्धवत् क्षुद्रतमं काम्य कर्म विपाकजं काम सुखलवं जैह्व्य उपस्थ्यादि विचिन्वतं मिथुनी भूय मत् अभिनिवेशित मनसं षडङ्घ्रिगण सामगीतवत् अति मनोहर वनितादिजन आलापेषु अतितरां अति प्रलोभित कर्णं अग्रे वृकयूथवत् आत्मन आयुः

हरतः अहः रात्रान् तान् काललव विशेषान् अविगणय्य गृहेषु विहरन्तं पृष्ठत एव परोक्षं अनुप्रवृत्तः लुब्धकः कृतान्तः अन्तः शरेण यं इह पर अविध्यति तं इमं आत्मानं अहो राजन् भिन्न हृदयं द्रष्टुं अर्हसि इति ॥५४॥

सुमनसः	पुष्पोंके
सधर्माणां	समान धर्मवाली (सुकुमारी)
स्त्रीणां	स्त्रियोंके
शरण आश्रमे	आश्रयवाले (गृहस्थ) आश्रयमें
पुष्प मधु गन्धवत्	पुष्प, मधु, सुगन्धके समान
क्षुद्रतमं	अत्यन्त तुच्छ
काम्य कर्म विपाकजं	सकाम कर्मोंके फलस्वरूप (प्राप्त)
काम सुखलवं	कामोपभोगके सुखका लेश
जैह्व्य उपस्थ्यादि	जिह्वाके स्वाद उपस्थ आदिके भोगको
मिथुनी भूय	स्त्रीके साथ जोड़ बनाकर
विचिन्वतं	ढूंढ़ते हुए (पानेका प्रयत्न करते)
अभिनिवेशित	(इसीमें) तन्मय किये
मनसं	मन वाले होकर
षडंघ्रिगण सामगीतवत्	भ्रमरोंके सामान्य गायन (गुञ्जारके समान)
वनितादिजन	स्त्री आदिकी
आलापेषु	बात चीतमें
अतितरां	बहुत अधिक
अति प्रलोभित	प्रगाढ़तासे लुब्ध हुए
कर्ण	कान (लगाये)
अग्रे	सामने ही
वृकयूथवत्	भेड़ियोंके दलके समान
आयुः हरतः तान् काललव	आयुका हरण करते
विशेषान्	उन कालके लव विशेष (क्षणांशोंसे बने)
अहः रात्रान्	दिनों और रात्रियोंको
परोक्षं	
अनुप्रवृत्तः	जो छिपे रूपमें लगे हुए हैं (तथा)
लुब्धकः	शिकारी
कृतान्तः	काल
अन्तः शरेण	भीतरी बाणसे
इह	इस लोकमें
यं	जिसे

पर अविध्यति	दूरसे बींध (मार) डालता है	भिन्न हृदयं	हृदय भिन्न हुएसे हो
तं इमं	उस इस	इति	इस प्रकार
आत्मानं	अपने आपको	द्रष्टुं अर्हसि	(तुमको) देखना
अहो राजन्	हे राजन्		चाहिए ॥५४॥

स त्वं विचक्ष्य मृगचेष्टितमात्मनोऽन्त-
श्चित्तं नियच्छ हृदि कर्णधुनीं च चित्ते ।
जह्यङ्गनाश्रममसत्तमयूथगाथं
प्रीणीहि हंसशरणं विरम क्रमेण ॥५५॥

स त्वं विचक्ष्य मृग चेष्टितं आत्मनः अन्तः चित्तं नियच्छ हृदि कर्ण धुनीं च चित्ते जहि अङ्गनाश्रमं असत्तं यूथ गाथं प्रीणीहि हंस शरणं विरम क्रमेण ॥५५॥

स त्वं	इस प्रकार तुम	यूथ गाथं	लोगोंके समूहमें जिसकी चर्चा चलती है
आत्मनः	अपनी		
मृग चेष्टितं	मृगकी-सी चेष्टाको	अङ्गनाश्रमं	गृहस्थाश्रम
विचक्ष्य	देखकर	जहि	त्याग दो
चित्तं	चित्तको	हंस शरणं	परमहंसोंके आश्रय (श्रीहरि) को
अन्तः हृदि	हृदयके भीतर निरुद्ध करो	प्रीणीहि	प्रसन्न करो
		क्रमेण	और (आवागमनके) क्रमसे
च कर्णधुनीं	और कान रूपी नदीको	विरम	विराम करो (छूटो) ॥५५॥
चित्ते	चित्तमें		
नियच्छ	नियन्त्रित करो		
असत्तं	अत्यन्त असज्जन		

प्राचीनबर्हिरुवाच-*

श्रुतमन्वीक्षितं ब्रह्मन् भगवान् यदभाषत ।
नैतज्जानन्त्युपाध्यायाः किं न ब्रूयुर्विदुर्यदि ॥५६॥

---

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'राजोवाच' है ।

श्रुतं अन्वीक्षितं ब्रह्मन् भगवान् यत् अभाषत न एतत् जानन्ति उपाध्यायाः किं न ब्रूयुः विदुः यदि ॥५६॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
भगवान् यत् अभाषत	आपने जो उपदेश दिया
श्रुतं	(उसे) मैंने सुना
अन्वीक्षितं	(उसपर) विशेष रूपसे विचार भी किया
उपाध्यायाः	धर्मोपदेशक आचार्य
एतत् न जानन्ति	इसको नहीं जानते
यदि विदुः	यदि वे इस विषयको जानते
किं न ब्रुयुः	तो इसका उपदेश क्यों नहीं करते॥५६॥

संशयोऽत्र तु मे विप्र संछिन्नस्तत्कृतो महान् ।
ऋषयोऽपि हि मुह्यन्ति यत्र नेन्द्रियवृत्तयः ॥५७॥

संशयः अत्र तु मे विप्र संछिन्नः तत् कृतः महान् ऋषयः अपि हि मुह्यन्ति यत्र न इन्द्रिय वृत्तयः ॥५७॥

विप्र	विप्रवर !
तत् कृतः	उन उपाध्यायों द्वारा उत्पन्न किया
मे	मेरा
महान् संशयः तु	महान् संशय तो
अत्र	इस विषयका
संछिन्नः	कट गया
हि	क्योंकि
यत्र	जिस विषयमें
इन्द्रिय वृत्तयः	इन्द्रियोंकी वृत्ति नहीं पहुँचती
ऋषयः अपि	(उस विषयमें)ऋषि-लोग भी
मुह्यन्ति	मोहमें पड़ जाते हैं ॥५७॥

कर्माण्यारभते येन पुमानिह विहाय तम् ।
अमुत्रान्येन देहेन जुष्टानि स यदश्नुते ॥५८॥

कर्माणि आरभते येन पुमान् इह विहाय तं अमुत्र अन्येन देहेन जुष्टानि स यत् अश्नुते ॥५८॥

पुमान्	पुरुष	अमुत्र	परलोकमें
इह	इस लोकमें	अन्येन देहेन	दूसरे शरीरसे
येन	जिस (शरीर)से	स जुष्टानि	वह युक्त हो जाता है
कर्माणि	कर्मोंको	यत्	फिर जो
आरभते	आरम्भ करता है	अश्नुते	(पूर्व कर्मके फल)
तं विहाय	उस (शरीर) को		भोगता है ॥५८॥
	छोड़कर		

इति वेदविदां वादः श्रूयते तत्र तत्र ह ।
कर्म यत्क्रियते प्रोक्तं परोक्षं न प्रकाशते ॥५९॥

इति वेदविदां वादः श्रूयते तत्र तत्र ह कर्म यत् क्रियते प्रोक्तं परोक्षं न प्रकाशते ॥५९॥

इति	इस प्रकार	परोक्षं	वह परोक्षको (जिस
वेदविदां वादः	वेदवादियोंका कथन		शरीरसे किया गया
तत्र तत्र ह	जगह-जगह निश्चित		उसे)
	रूपमें	प्रकाशते न	प्रकाशित (प्रभावित)
श्रूयते	सुना जाता है किन्तु		नहीं करता ? ॥५९॥
यत् कर्म क्रियते	जो कर्म किया		
	जाता है		

नारद उवाच-

येनैवारभते कर्म तेनैवामुत्र तत्पुमान् ।
भुङ्क्ते ह्यव्यवधानेन लिङ्गेन मनसा स्वयम् ॥६०॥

येन एव आरभते कर्म तेन एव अमुत्र तत् पुमान् भुङ्क्ते हि अव्यवधानेन लिङ्गेन मनसा स्वयं ॥६०॥

येन	जिस	मनसा एव	मनसे ही
लिङ्गेन	लिंग (सूक्ष्म)	पुमान्	पुरुष
	शरीरसे		

कर्म आरभते	कर्म आरम्भ करता है	हि	क्योंकि
तेन एव	उसी (मन एवं सूक्ष्म-देह) से	अव्यवधानेन	बिना किसी रुकावटके
तत् पुमान	वही पुरुष	स्वयं	स्वयं
अमुत्र	परलोकमें	भुङ्क्ते	भोगता है ॥६०॥

शयानमिममुत्सृज्य श्वसन्तं पुरुषो यथा ।
कर्मात्मन्याहितं भुङ्क्ते तादृशेनेतरेण वा ॥६१॥

शयानं इमं उत्सृज्य श्वसन्तं पुरुषः यथा कर्म आत्मनि आहितं भुङ्क्ते तादृशेन इतरेण वा ॥६१॥

यथा पुरुषः	जैसे पुरुष यहाँ	इतरेण वा	अथवा अन्य (पशु-पक्षी) देहसे
शयानं श्वसन्तं	स्वप्नावस्थामें श्वास लेता	आत्मनि	
इमं उत्सृज्य	इस (जीवित) शरीरको छोड़कर	आहितं	मनमें संस्कार रूपसे स्थित
तादृशेन	इसी देहके समान	कर्म	कर्मोंके फलका
		भुङ्क्ते	भोग करता है ॥६१॥

ममैते मनसा यद्यदसावहमिति ब्रुवन् ।
गृह्णीयात्तत्पुमान् राद्धं कर्म येन पुनर्भवः ॥६२॥

मम एते मनसा यद् यद् असौ अहम् इति ब्रुवन् गृह्णीयात् तत् पुमान् राद्धं कर्म येन पुनर्भवः ॥६२॥

मनसा	मनके द्वारा	तत् राद्धं कर्म	वह (अपने) स्वीकृत कर्म है
एते मम	ये मेरे हैं		
असौ अहम्	यह (देहादि) मैं हूँ	येन	जिससे
इति ब्रुवन्	यह कहता हुआ	पुनर्भवः	पुनर्जन्म होता है ॥६२॥
यद् यद्	जो जो (संस्कार)		
गृह्णीयात्	ग्रहण करता है		

यथानुमीयते चित्तमुभयैरिन्द्रियेहितैः ।
एवं प्राग्देहजं कर्म लक्ष्यते चित्तवृत्तिभिः ॥६३॥

यथा अनुमीयते चित्तं उभयैः इन्द्रिय ईहितैः एवं प्राक् देहजं कर्म लक्ष्यते चित्त वृत्तिभिः ॥६३॥

यथा	जैसे	**अनुमीयते**	अनुमान होता है
उभयैः इन्द्रिय	दोनों प्रकारकी इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों) की	**एवं**	उसी तरह
		चित्त वृत्तिभिः	चित्तकी वृत्तियोंसे
		प्राक् देहजं	पूर्व जन्मोंके
इहितैः	चेष्टाओंसे	**कर्म**	कर्म
चित्तं	चित्तका	**लक्ष्यते**	लक्षित होते हैं ॥६३

नानुभूतं क्व चानेन देहेनादृष्टमश्रुतम् ।
कदाचिदुपलभ्येत यद्रूपं यादृगात्मनि ॥६४॥

न अनुभूतं क्व च अनेन देहेन अदृष्टं अश्रुतं कदाचित् उपलभ्येत यत् रूपं यादृक् आत्मनि ॥६४॥

कदाचित्	कभी-कभी	**आत्मनि**	चित्तमें (संस्कार रूपसे)
अनेन देहेन			
क्व च	इस देहसे कहीं भी	**यत् रूपं यादृक्**	जिस रूपकी जैसी होती है
न अनुभूतं	अनुभवमें न आया,		
अदृष्टं अश्रुतं	अनदेखा, अनसुना	**उपलभ्येत**	(स्वप्नमें) प्राप्त होती है ॥६४॥

तेनास्य तादृशं राजँल्लिङ्गिनो देहसम्भवम् ।
श्रद्धत्स्वाननुभूतोऽर्थो न मनः स्प्रष्टुमर्हति ॥६५॥

तेन अस्य तादृशं राजन् लिङ्गिने देह संभवं श्रद्धत्स्व अननुभूतः अर्थः न मनः स्प्रष्टुम् अर्हति ॥६५॥

राजन्	राजन् !
श्रद्धत्स्व	श्रद्धा करो कि
अस्य लिङ्गिने	इस लिङ्गाभिमानी-को
तेन	इसीसे
तादृशं देह संभवं	उस प्रकारके देहमें जन्म होता है
अननुभूतः अर्थः	अनुभवमें न आया पदार्थ
मनः स्प्रष्टुं न अर्हति	मनसे भी छूना नहीं हो सकता ॥६५॥

मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति ।
भविष्यतश्च भद्रं ते तथैव न भविष्यतः ॥६६॥

मन एव मनुष्याणां पूर्व रूपाणि शंसति भविष्यतः च भद्रं ते तथा एव न भविष्यतः ॥६६॥

ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो
मन एव मनुष्याणां	मन ही मनुष्योंके
पूर्व रूपाणि	पूर्व रूपों (जन्मों)को
च	तथा
भविष्यतः	आगेके (जन्मों)को
तथा एव न भविष्यतः	वैसे ही नहीं होने वाले (मुक्त हो जाने वाले) को
शंसति	बतलाता है ॥६६॥

अदृष्टमश्रुतं चात्र क्वचिन्मनसि दृश्यते ।
यथा तथानुमन्तव्यं देशकालक्रियाश्रयम् ॥६७॥

अदृष्टं अश्रुतं च अत्र क्वचित् मनसि दृश्यते यथा तथा अनुमन्तव्यं देशकाल क्रिया आश्रयं ॥६७॥

क्वचित्	कभी-कभी
देशकाल	देश-काल
क्रिया आश्रयं	क्रियासे सम्बन्धित
अदृष्टं अश्रुतं	अनदेखा, अनसुना
अत्र मनसि	यहाँ मन (स्वप्न)में
दृश्यते	दिखलाई पड़ता है
यथा तथा	ये जैसे हो उसके अनुसार
अनुमन्तव्यं	अनुमान करना चाहिए ॥६७॥

सर्वे क्रमानुरोधेन मनसीन्द्रियगोचराः ।
आयान्ति वर्गशो यान्ति सर्वे समनसो जनाः ॥६८॥

सर्वे क्रम अनुरोधेन मनसि इन्द्रिय गोचराः आयान्ति वर्गशः यान्ति सर्वे समनसः जनाः ॥६८॥

मनसि	मनमें	**क्रमानुरोधेन**	क्रमके अनुसार
इन्द्रिय गोचराः	इन्द्रियोंसे अनुभव योग्य	**आयान्ति यान्ति**	आते और जाते हैं
सर्वे वर्गसः	सब पदार्थ वर्गके अनुसार,	**सर्वेजनाः**	सभी लोग
		समनसः	मन वाले हैं ॥६८॥

सत्त्वैकनिष्ठे मनसि भगवत्पार्श्ववर्तिनि ।
तमश्चन्द्रमसीवेदमुपरज्यावभासते ॥६९॥

सत्त्व एकनिष्ठे मनसि भगवत् पार्श्व वर्तिनि तमः चन्द्रमसि इव इदं उपरज्य अवभासते ॥६९॥

भगवत्	भगवान्के	**इदं**	यह सम्पूर्ण विश्व
पार्श्व वर्तिनि	समीप रहनेवाले	**चन्द्रमसि**	चन्द्रमामें
सत्त्व एकनिष्ठे	एकनिष्ठ (विशुद्ध) सत्त्वमें स्थित	**तमः इव**	राहुकी भांति
		अवभासते	(भगवद्रूप) भासित होने लगता है ॥६९॥
मनसि	मनमें		
उपरज्य	उपरज्य (तदाकार) होकर		

नाहं ममेति भावोऽयं पुरुषे व्यवधीयते ।
यावद् बुद्धिमनोऽक्षार्थगुणव्यूहो ह्यनादिमान् ॥७०॥

न अहं मम इति भावः अयं पुरुषे व्यवधीयते यावत् बुद्धि मनः अक्ष अर्थ गुण व्यूहः हि अनादिमान् ॥७०॥

यावत्	जब तक
बुद्धि मनः अक्ष	बुद्धि मन इन्द्रियां
अर्थ गुण व्यूहः	पदार्थ उनके (शब्दादि) गुणोंका समूह
अनादिमान्	अनादि (लिङ्ग देह बना हुआ) है
पुरुषे	(तब तक) जीवके अन्दर
अहं मम	मैं और मेरा
इति भावः	ऐसा भाव
न व्यवधीयते	नहीं हराया जा सकता ॥७०॥

सुप्तिमूर्च्छोपतापेषु प्राणायनविघाततः ।
नेहतेऽहमिति ज्ञानं मृत्युप्रज्वारयोरपि ॥७१॥

सुप्ति मूर्च्छा उपतापेषु प्राण अयन विघाततः न ईहते अहं इति ज्ञानं मृत्यु प्रज्वारयोः अपि ॥७१॥

सुप्ति मूर्च्छा उपतापेषु	सुषुप्ति मूर्च्छा अत्यन्त दुःखमें
मृत्युः प्रज्वारयोः अपि	तथा मृत्यु और तीव्र ज्वरके समय
प्राण अयन विघाततः	इन्द्रियोंकी व्याकुलतामें
अहं इति ज्ञानं ईहते न	मैं हूँ ऐसा ज्ञान स्फुरित नहीं होता ॥७१॥

गर्भे बाल्येऽप्यपौष्कल्यादेकादशविधं तदा ।
लिङ्गं न दृश्यते यूनः कुह्वां चन्द्रमसो यथा ॥७२॥

गर्भे बाल्ये अपि अपौष्कल्यात् एकादश विधं तदा लिङ्गं न दृश्यते यूनः कुह्वां चन्द्रमसः यथा ॥७२॥

यथा कुह्वां	जैसे अमावस्याकी रात्रिमें
चन्द्रमसः	चन्द्रमा (रहते हुए भी नहीं दीखता)
एकादश विधं लिङ्गम्	ग्यारह (दस इन्द्रिय एक मन) प्रकारसे (प्रतीत) लिंग शरीर

यूनः	(उसी तरह) युवा-अवस्थामें	अपौष्कल्यात्	(इन्द्रियोंके) पूर्ण विकास न होनेसे
गर्भे बाल्ये अपि	गर्भावस्था और बाल्यावस्थामें भी	तदा न दृश्यते	उस समय नहीं दिखायी देता ॥७२॥

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥७३॥

अर्थे हि अविद्यमाने अपि संसृतिः न निवर्तते ध्यायतः विषयान् अस्य स्वप्ने अनर्थ आगमः यथा ॥७३॥

विषयान् ध्यायतः	विषयोंका चिन्तन करनेसे	अस्य	इस जीवका
		संसृतिः	जन-मरण रूप संसार
		न निवर्तते	निवृत्त नहीं होता
अर्थे हि अविद्यमाने अपि	पदार्थोंके तो असत् होनेपर भी	यथा स्वप्ने	जैसे स्वप्नमें
		अनर्थ आगमः	अनर्थ आ जाते हैं ॥७३॥

एवं पञ्चविधं लिङ्गं त्रिवृत् षोडशविस्तृतम् ।
एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते ॥७४॥

एवं पञ्चविधं लिंग त्रिवृत् षोडशविस्तृतं एष चेतनया युक्तः जीव इति अभिधीयते ॥७४॥

एवं	इस प्रकार	लिंग	लिङ्ग (शरीर)
पञ्चविधं	पांच तन्मात्राओंसे	चेतनया युक्तः	चेतनासे युक्त होकर
षोडशविस्तृतं	सोलह तत्त्वोंके रूपमें विकसित	जीवः	जीव
		इति	ऐसा
त्रिवृत्	त्रिगणमय	अभिधीयते	कहा जाता है ॥७४॥
एष	यह		

अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुञ्चति ।
हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विन्दति ॥७५॥

अनेन पुरुषः देहान् उप आदत्ते विमुञ्चति हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं च अनेन विन्दति ॥७५॥

अनेन पुरुषः	इस (लिङ्ग शरीर) के द्वारा पुरुष	विमुञ्चति	(और) त्यागता है
		च अनेन	और इसीके द्वारा
		हर्षं शोकं भयं	हष, शोक, भय,
देहान् उप आदत्ते	शरीरोंको ग्रहण करता है	दुःखं सुखं	दुःख-सुखको
		विन्दति	प्राप्त करता है ॥७५

यथा तृणजलूकेयं नापयात्यपयाति च ।
न त्यजेन्म्रियमाणोऽपि प्राग्देहाभिमतिं जनः ॥७६॥

यथा तृणजलूका इयं न अपयाति अपयाति च न त्यजेत् म्रियमाणः अपि प्राक् देह अभिमतिं जनः ॥७६॥

यथा इयं तृणजलूकेयं	जैसे यह तिनकोंपर रेंगने वाला कीड़ा	म्रियमाणः अपि जनः	मरता हुआ भी यह जीव
न अपयाति	(दूसरे तृणको पकड़े बिना पहिले तृणको) छोड़ती नहीं	प्राक् देह अभिमतिं	पहिले देहके अभिमानको
च अपयाति	और (दूसरेको पकड़) पहिलेको छोड़ देती है	न त्यजेत्	नहीं छोड़ता ॥७६॥

यावदन्यं न विन्देत व्यवधानेन कर्मणाम् ।
मन एव मनुष्येन्द्र भूतानां भवभावनम् ॥७७॥

यावत् अन्यं न विन्देत व्यवधानेन कर्मणां मन एव मनुष्येन्द्र भूतानां भव भावनं ॥७७॥

मनुष्येन्द्र	राजन् !	व्यवधानेन	समाप्ति होनेपर
कर्मणां	कर्मोंके	यावत् अन्यं	जब तक दूसरे (देह) को

न विन्देत	प्राप्त न करे (तब तक पहिला देहाभिमान रहता है)	भूतानां भव भावनं	प्राणियोंके संसार (जन्म-मरण) का कारण है ॥७७॥
मन एव	मन ही		

यदाक्षैश्चरितान् ध्यायन् कर्माण्याचिनुतेऽसकृत् ।
सति कर्मण्यविद्यायां बन्धः कर्मण्यनात्मनः ॥७८॥

यदा अक्षैः चरितान् ध्यायन् कर्माणि आचिनुते असकृत् सति कर्मणि अविद्यायां बन्धः कर्मणि अनात्मनः ॥७८॥

चरितान्	जब तक	सति कर्मणि	(तब) उन कर्मोंके रहते
यदा अक्षैः	इन्द्रियोंके चरित (भोगों) का	अविद्यायां	अविद्यामें
ध्यायन्	चिन्तन करता हुआ	कर्मणि	कर्मोंसे
असकृत्	बराबर	अनात्मनः	
कर्माणि		बन्धः	अनात्मासे बन्धन (तादात्म्य) हो जाता है ॥७८॥
आचिनुते	कर्मोंको सब ओर चुनता (करता) रहता है		

अतस्तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिम् ।
पश्यंस्तदात्मकं विश्वं स्थित्युत्पत्त्यप्ययो यतः ॥७९॥

अतः तत् अपवाद अर्थं भज सर्वात्मना हरिं पश्यन् तदात्मकं विश्वं स्थिति उत्पत्ति अप्यया यतः ॥७९॥

अतः	अतः	यतः	जिनसे
तत्	उस कर्मके	स्थिति उत्पत्ति	(इस विश्वकी) स्थिति, उत्पत्ति,
अपवाद अर्थं	अपवाद (छुटकारे) के लिए	अप्यया	प्रलय होती है

विश्वं तदात्मकं	विश्वको उनका स्वरूप	सर्वात्मना हरिम् भज	सब प्रकारसे श्रीहरिका भजन करो ॥७९॥
पश्यन्	देखते हुए		

मैत्रेय उवाच-

भागवतमुख्यो भगवान्नारदो हंसयोर्गतिम् ।
प्रदर्श्य ह्यमुमामन्त्र्य सिद्धलोकं ततोऽगमत् ॥८०॥

भागवत मुख्यः भगवान् नारदः हंसयोः गतिं प्रदर्श्य हि अमुं आमन्त्र्य सिद्धलोकं ततः अगमत् ॥८०॥

भागवत मुख्यः	भक्तोंमें श्रेष्ठ	हि अमुं आमन्त्र्य	फिर उनसे विदा लेकर
भगवान् नारदः	भगवान् नारदजी		
हंसयोः गतिं	हंस (जीव और ईश्वर) के स्वरूपका	ततः सिद्धलोकं	वहाँसे सिद्धलोकको
प्रदर्श्य	दिग्दर्शन कराकर	अगमत्	चले गये ॥८०॥

प्राचीनबर्ही राजर्षिः प्रजासर्गाभिरक्षणे ।
आदिश्य पुत्रानगमत्तपसे कपिलाश्रमम् ॥८१॥

प्राचीनबर्हिः राजर्षिः प्रजासर्ग अभिरक्षणे आदिश्य पुत्रान् अगमत् तपसे कपिल आश्रमं ॥८१॥

राजर्षिः		पुत्रान् आदिश्य	पुत्रोंको आदेश देकर
प्राचीनबर्हिः	राजर्षि प्राचीनबर्हि भी	तपसे	तपस्या करनेके लिए
		कपिलाश्रमं	कपिलाश्रमको
प्रजासर्ग अभिरक्षणे	प्रजा-वर्गकी सब प्रकारकी रक्षाका	अगमत्	चले गये ॥८१॥

तत्रैकाग्रमना वीरो गोविन्दचरणाम्बुजम् ।
विमुक्तसङ्गोऽनुभजन् भक्त्या तत्साम्यतामगात् ॥८२॥

तत्र एकाग्रमना वीरः गोविन्द चरणाम्बुजं विमुक्तसङ्गः अनुभजन् भक्त्या तत् साम्यतां अगात् ॥८२॥

तत्र वीरः	वहाँ उस वीरने
एकग्रमना	एकाग्र मनसे
विमुक्तसङ्गः	आसक्ति त्यागकर
गोविन्द	
चरणाम्बुजं	श्रीगोविन्दके चरण-कमलोंका
भक्त्या	
अनुभजन्	भक्तिपूर्वक चिन्तन करते हुए
तत् साम्यतां	उन (भगवान) का समता (स्वरूप)
अगात्	प्राप्त किया ॥८२॥

एतदध्यात्मपारोक्ष्यं गीतं देवर्षिणानघ ।

यः श्रावयेद्यः शृणुयात्स लिङ्गेन विमुच्यते ॥८३॥

एतद् अध्यात्म पारोक्ष्यं गीतं देवर्षिणा अनघ यः श्रावयेत् यः शृणुयात् स लिङ्गेन विमुच्यते ॥८३॥

अनघ	निष्पाप विदुर !
देवर्षिणा	देवर्षि नारद द्वारा
पारोक्ष्यं गीतं	परोक्ष रूपसे कहे गये
एतद् अध्यात्म	इस अध्यात्म ज्ञानको
यः शृणुयात्	जो सुनेगा,
यः श्रावयेत्	जो सुनायेगा,
स लिङ्गेन	वह लिङ्ग-देहसे
विमुच्यते	छूट जायगा ॥८३॥

एतन्मुकुन्दयशसा भुवनं पुनानं
देवर्षिवर्यमुखनिःसृतमात्मशौचम् ।
यः कीर्त्यमानमधिगच्छतिपारमेष्ठ्यं
नास्मिन् भवे भ्रमति मुक्तसमस्तबन्धः ॥८४॥

एतत् मुकुन्द यशसा भुवनं पुनानं देवर्षि वर्य मुख निःसृतं आत्मशौचं यः कीर्त्यमानं अधिगच्छति पारमेष्ठ्यं न अस्मिन् भवे भ्रमति मुक्त समस्त बन्धः ॥८४॥

देवर्षि वर्य	देवर्षिश्रेष्ठ नारदके
मुख निःसृतं	मुखसे निकले
एतत्	इसको
मुकुन्द यशसा	श्रीमुकुन्दके यशसे
भुवनं पुनानं	त्रिभुवनको पवित्र करने वाले
आत्मशौचं	अन्तःकरण-शोधक है
यः	जो
कीर्त्यमानं	इसका वर्णन करेगा
पारमेष्ठ्यं	ब्रह्मलोक
अधिगच्छति	प्राप्त करेगा
मुक्त समस्त बन्धः	सब बन्धनोंसे छूटकर
अस्मिन् भवे न भ्रमति	इस संसारमें नहीं भटकेगा ॥८४॥

अध्यात्मपारोक्ष्यमिदं मयाधिगतमद्भुतम् ।
एवं स्त्रियाऽऽश्रमःपुंसश्छिन्नोऽमुत्र च संशयः ॥८५॥

अध्यात्म पारोक्ष्यं इदं मया अधिगतं अद्भुतं एवं स्त्रिया आश्रमः पुंसः छिन्नः अमुत्र च संशयः ॥८५॥

इदं अद्भुतं	इस अद्भुत
पारोक्ष्यं	परोक्षरूपसे वर्णित
अध्यात्मं	अध्यात्म ज्ञानको
मया	मैंने
अधिगतं	(गुरुसे) प्राप्त किया है ।
एवं	इस प्रकार
पुंसः	पुरुषके
स्त्रिया आश्रमः	स्त्रीके आश्रम (गृहस्थ सम्बन्धी)
च अमुत्र	तथा परलोकके विषयमें
संशयः	सन्देह
छिन्नः	कट (मिट) जाता है ॥८५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे विदुरमैत्रेयसंवादे प्राचीनबर्हिर्नारदसंवादो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

विदुर उवाच-

ये त्वयाभिहिता ब्रह्मन्सुताः प्राचीनबर्हिषः ।
ते रुद्रगीतेन हरिं सिद्धिमापुः प्रतोष्य काम् ॥१॥

ये त्वया अभिहिता ब्रह्मन् सुताः प्राचीनबर्हिषः ते रुद्रगीतेन हरिं सिद्धि आपुः प्रतोष्य कां ॥१॥

ब्रह्मन्	हे ब्रह्मन् !	**ते रुद्रगीतेन**	उन्होंने रुद्रगीतके द्वारा
त्वया ये	आपने जो	**हरिं प्रतोष्य**	श्रीहरिको सन्तुष्ट करके
प्राचीनबार्हिषः सुताः	प्राचीनबार्हिके पुत्रोंका वर्णन किया	**कां सिद्धि आपुः**	किस सिद्धिको प्राप्त किया ॥१॥

किं बार्हस्पत्येह परत्र वाथ
कैवल्यनाथप्रियपार्श्ववर्तिनः ।
आसाद्य देवं गिरिशं यदृच्छया
प्रापुः परं नूनमथ प्रचेतसः ॥२॥

किं बार्हस्पत्य इह परत्र वा अथ कैवल्यनाथप्रिय पार्श्ववर्तिनः आसाद्य देवं गिरिशं यदृच्छया प्रापुः परं नूनं अथ प्रचेतसः ॥२॥

बार्हस्पत्य	बृहस्पतिजीके शिष्य मंत्रेयजी	**पार्श्ववर्तिनः**	समीप रहनेवाले
		देवं गिरिशं	भगवान् शङ्करको
कैवल्यनाथ-प्रिय	मोक्षके स्वामी श्रीभगवान्के प्रिय	**यदृच्छया**	अकस्मात्
		आसाद्य	प्राप्त करके
		प्रचेतसा	प्रचेताओंमें

नूनं	निश्चय	इह वा परत्र	इस लोक अथवा परलोकमें
परं प्रापुः	परमपद प्राप्त किया	किं	क्या (सिद्धि) प्राप्त की ॥२॥
अथ	इससे पहले		

मैत्रेय उवाच-

प्रचेतसोऽन्तरुदधौ पितुरादेशकारिणः ।
जपयज्ञेन तपसा पुरञ्जनमतोषयन् ॥३॥

प्रचेतसः अन्तः उदधौ पितुः आदेश कारिणः जपयज्ञेन तपसा पुरञ्जनं अतोषयन् ॥३॥

पितुः	पिताकी	तपसा	तपस्या (तथा)
आदेश कारिणः	आज्ञाको माननेवाले	जपयज्ञेन	जप रूप यज्ञसे
प्रचेतसः	प्रचेताओंने	पुरञ्जनं	शरीरोंके अधिष्ठाता (भगवान्) को
अन्तः उदधौ	समुद्रके भीतर (रहकर)	अतोषयन्	सन्तुष्ट किया ॥३॥

दशवर्षसहस्रान्ते पुरुषस्तु सनातनः ।
तेषामाविरभूत्कृच्छ्रं शान्तेन शमयन् रुचा ॥४॥

दश वर्ष सहस्र अन्ते पुरुषः तु सनातनः तेषां आविर्भूत् कृच्छ्रं शान्तेन् शमयन् रुचा ॥४॥

दश वर्ष सहस्र अन्ते	दस हजार वर्षके बाद	शान्तेन रुचा	अपनी सौम्य कान्तिसे
सनातनः पुरुषः तु	पुराण-पुरुष श्रीहरि तो	तेषां कृच्छ्रं शमयन्	उनके क्लेशको दूर करते हुए
		आविर्भूत्	प्रकट हुए ॥४॥

सुपर्णस्कन्धमारूढो मेरुशृङ्गमिवाम्बुदः ।
पीतवासा मणिग्रीवः कुर्वन् वितिमिरा दिशः ॥५॥

सुपर्णस्कन्धं आरूढः मेरुशृङ्गं इव अम्बुदः पीतवासा मणिग्रीवः कुर्वन् वितिमिरा दिशः ॥५॥

सुपर्णस्कन्धं	गरुड़के* कन्धोंपर	दिशः	
आरूढः	बैठे हुए	वितिमिरा	दिशाओंको
मेरुशृङ्गं	सुमेरुके शिखर		अन्धकारहीन
अम्बुदः इव	घटाके समान	कुर्वन्	करते हुए (प्रकट
पीतवासा	पीताम्बर पहिने		हुए) ॥५॥
मणीग्रीवः	कण्ठमें कौस्तुभ-मणि पहिने		

काशिष्णुना कनकवर्णविभूषणेन
भ्राजत्कपोलवदनो विलसत्किरीटः ।
अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभिः सुरेन्द्रै-
रासेवितो गरुडकिन्नरगीतकीर्तिः ॥६॥

काशिष्णुना कनकवर्ण विभूषणेन भ्राजत् कपोल वदनः विलसत् किरीटः अष्ट आयुधैः अनुचरैः मुनिभिः सुरेन्द्रैः आसेवितः गरुड किन्नर-गीत-कीर्त्तिः ॥६॥

काशिष्णुना	चमकते हुए	सुरेन्द्रैः	
कनकवर्ण		मुनिभिः	इन्द्रादि देवताओं
विभूषणेन	सुवर्णमय आभूषणोंसे (भूषित)		तथा मुनियोंसे
भ्राजत् कपोल	सुशोभित कपोलवाले	अनुचरैः	अपने पार्षदोंसे
वदनः	श्रीमुख,	आसेवितः	सेवित
विलसत्		गरुड किन्नर	गरुड-किन्नर
किरीटः	शोभा देता मुकुट,	गीतकीर्त्तिः	(उनका) यशोगान
अष्ट आयुधैः	(आठ भुजाओंमें) आठ शस्त्र लिए		करते थे ॥६॥

* गरुड़ स्वर्ग वर्णके हैं ।

पीनायताष्टभुजमण्डलमध्यलक्ष्म्या
स्पर्धच्छ्रिया परिवृतो वनमालयाऽऽद्यः ।
बर्हिष्मतः पुरुष आह सुतान् प्रपन्नान्
पर्जन्यनादरुतया सघृणावलोकः ॥७॥

पीन आयत अष्टभुज मण्डलमध्य लक्ष्म्या स्पर्धत् श्रिया परिवृतः वनमालया आद्यः बर्हिष्मतः पुरुष आह सुतान् प्रपन्नान् पर्जन्यनाद रुतया सघृण अवलोकः ॥७॥

पीन आयत	मोटी लम्बी
अष्टभुज	आठ भुजाओंके
मण्डलमध्य	मण्डलके मध्यमें
लक्ष्म्या	श्रीवत्स मानो
स्पर्धत् श्रिया	लक्ष्मीसे स्पर्धा करती
वनमालया	वनमालासे
परिवृतः	(वक्षस्थल) घिरा है
आद्यः पुरुषः	(ऐसे) आदिपुरुष
प्रपन्नान्	शरणमें आये
बर्हिष्मतः	
सुतान्	राजा बर्हिष्मतके पुत्र (प्रचेताओं) की ओर
सघृण अवलोकः	दयापूर्वक देखते हुए
पर्जन्यनाद	मेघ-ध्वनि जैसी
रुतया	(गम्भीर) वाणीसे
आह	बोले ॥७॥

श्रीभगवानुवाच—

वरं वृणीध्वं भद्रं वो यूयं मे नृपनन्दनाः ।
सौहार्देनापृथग्धर्मास्तुष्टोऽहं सौहृदेन वः ॥८॥

वरं वृणीध्वं भद्रं वः यूयं मे नृपनन्दनाः सौहार्देन अपृथक् धर्माः तुष्टः अहं सौहार्देन वः ॥८॥

नृपनन्दनाः	राजकुमारो !
वः भद्रं	तुम लोगोंका कल्याण हो
सौहार्देन	तुम सबमें परस्पर प्रेम है
अपृथक् धर्माः	(तुम) अभिन्न धर्मका पालन कर रहे हो
वः	तुम्हारे इस
सौहृदेन	परस्पर प्रीतिसे
अहं तुष्टः	मैं सन्तुष्ट हूँ
यूयं	तुम सब
मे वरं वृणीध्वं	मुझसे वर माँगो ॥८

योऽनुस्मरति सन्ध्यायां युष्माननुदिनं नरः ।
तस्य भ्रातृष्वात्मसाम्यं तथा भूतेषु सौहृदम् ॥९॥

यः अनुस्मरति सन्ध्यायां युष्मान् अनुदिनं नरः तस्य भ्रातृषु आत्मसाम्यं तथा भूतेषु सौहृदं ॥९॥

यः नरः	जो मनुष्य	**तस्य भ्रातृषु**	उसका भाइयोंसे
सन्ध्यायां	सन्ध्याके समय	**आत्मसाम्यं**	अपने ही समान
अनुदिनं	प्रतिदिन		प्रेम होगा
यः	तुम लोगोंका	**तथा भूतेषु**	तथा सब प्राणियोंसे
अनुस्मरति	स्मरण करेगा	**सौहृदं**	मित्रता होगी ॥९॥

ये तु मां रुद्रगीतेन सायं प्रातः समाहिताः ।
स्तुवन्त्यहं कामवरान्दास्ये प्रज्ञां च शोभनाम् ॥१०॥

ये तु मां रुद्रगीतेन सायं प्रातः समाहिताः स्तुवन्ति अहं कामवरान् दास्ये प्रज्ञां च शोभनां ॥१०॥

ये तु	जो लोग	**अहं काम-**	
सायं प्रातः	शामको और सबेरे	**वरान्**	मैं उन्हें अभीष्ट
समाहिताः	एकाग्रचित्तसे		वरदान
रुद्रगीतेन	रुद्रगीत द्वारा	**च शोभनां प्रज्ञां**	और शुद्ध बुद्धि
मां स्तुवन्ति	मेरी स्तुति करेंगे	**दास्ये**	दूंगा ॥१०॥

यद्यूयं पितुरादेशमग्रहीष्ट मुदान्विताः ।
अथो व उशती कीर्तिर्लोकाननु भविष्यति ॥११॥

यद् यूयं पितुः आदेशं अग्रहीष्ट मुदान्विताः अथो व उशती कीर्तिः लोकान् अनु भविष्यति ॥११॥

यद् यूयं	जो तुम लोगोंने	**उशती कीर्तिः**	निर्मल कीर्ति
मुदान्विताः	प्रसन्नतासे	**लोकान्**	सब लोकोंमें
पितुः आदेशं	पिताकी आज्ञाको	**अनु भविष्यति**	अनुभव की
अग्रहीष्ट	मान लिया		जायगी ॥११॥
अथो व	इससे तुम्हारी		

भविता विश्रुतः पुत्रोऽनवमो ब्रह्मणो गुणैः ।
य एतामात्मवीर्येण त्रिलोकीं पूरयिष्यति ॥१२॥

भविता विश्रुतः पुत्रः अनवमः ब्रह्मणः गुणैः य एतां आत्मवीर्येण त्रिलोकीं पूरयिष्यति ॥१२॥

विश्रुतः	(तुम्हारे) प्रसिद्ध	**य एतां**	जो इन
पुत्रः भविता	पुत्र होगा	**त्रिलोकीं**	तीनों लोकोंको
गुणैः	(वह) गुणोंमें	**आत्मवीर्येण**	अपनी सन्तानोंसे
ब्रह्मणः	ब्रह्माजीसे	**पूरयिष्यति**	भर देगा ॥१२॥
अनवमः	कम नहीं होगा		

कण्डोः प्रम्लोचया लब्धा कन्या कमललोचना ।
तां चापविद्धां जगृहुर्भूरुहा नृपनन्दनाः ॥१३॥

कण्डोः प्रम्लोचया लब्धा कन्या कमललोचना तां च अपविद्धां जगृहुः भूरुहा नृपनन्दनाः ॥१३॥

नृपनन्दनाः	राजकुमारो !	**तां अप-**	
कण्डोः	कण्डुमनिने	**विद्धां च**	उस (माता-पिता
प्रम्लोचया	प्रम्लोचा अप्सरासे		द्वारा) परित्यक्ताको
कमललोचना	कमल-नयनी	**भूरुहा जगृहुः**	वृक्षोंने ले
कन्या लब्धा	कन्या प्राप्त की थी		लिया ॥१३॥

क्षुत्क्षामाया मुखे राजा सोमः पीयूषवर्षिणीम् ।
देशिनीं रोदमानाया निदधे स दयान्वितः ॥१४॥

क्षुत् क्षामाया मुखे राजा सोमः पीयूषवर्षिणीं देशिनीं रोदमानाया निदधे स दयान्वितः ॥१४॥

क्षुत् क्षामाया	भूखसे व्याकुल होकर (दुर्बल होती)	**रोदमानाया**	रोती हुईके
		मुखे	मुखमें

स राजा	वे (औषधियोंके) राजा	पीयूषवर्षिणीम्	अमृत वर्षिणी
सोमः	चन्द्रमा	देशनीम् निदधे	तर्जनी अंगुली दे दी ॥१४॥
दयान्वितः	दयावश		

प्रजाविसर्ग आदिष्टाः पित्रा माममनुवर्तता ।
तत्र कन्यां वरारोहां तामुद्वहत मा चिरम् ॥१५॥

प्रजाविसर्गे आदिष्टाः पित्रा मां अनुवर्तता तत्र कन्यां वरारोहां तां उद्वहत मा चिरं ॥१५॥

मां अनुवर्तता	मेरी सेवा करते हुए	मा चिरं	(अतः तुम) देर मत करो
पित्रा	पिता द्वारा	तत्र	वहां
प्रजाविसर्गे	सन्तान उत्पन्न करनेके लिए	तां वरारोहां कन्यां	उस सुन्दरी कन्याको
आदिष्टाः	(तुम लोगोंको) आदेश मिला है	उद्वहत	विवाह लो ॥१५॥

अपृथग्धर्मशीलानां सर्वेषां वः सुमध्यमा ।
अपृथग्धर्मशीलेयं भूयात्पत्न्यर्पिताशया ॥१६॥

अपृथक् धर्मशीलानां सर्वेषां वः सुमध्यमा अपृथक् धर्मशीला इयं भूयात् पत्नी अर्पित आशया ॥१६॥

अपृथक् धर्मशीलानां	समान धर्म और स्वभाव वाले	अपृथक् धर्मशीला	समान धर्म और स्वभाववाली
वः सर्वेषां	तुम सबकी	इयं सुमध्यमा	यह सुन्दरी
		अर्पित आशया	चित्तार्पण करनेवाली
		पत्नी भूयात्	पत्नी होवे ॥१६॥

दिव्यवर्षसहस्राणां सहस्रमहतौजसः ।
भौमान् भोक्ष्यथ भोगान् वै दिव्यांश्चानुग्रहान्मम ॥१७॥

दिव्यवर्षसहस्राणां सहस्रं अहत ओजसः भौमान् भोक्ष्यथ भोगान् वै दिव्यान् च अनुग्रहात् मम् ॥१७॥

मम अनुग्रहात्	मेरी कृपासे
दिव्यवर्ष-सहस्राणां सहस्रं	दिव्य दस लाख वर्षों तक
अहत ओजसः	बिना ओज नष्ट हुए
भौमान्	पार्थिव
च दिव्यान्	और दिव्य
भोगान्	भोगोंका
भोक्ष्यथ	भोग करोगे ॥१७॥

अथ मय्यनपायिन्या भक्त्या पक्वगुणाशयाः ।
उपयास्यथ मद्धाम निर्विद्य निरयादतः ॥१८॥

अथ मयि अनपायिन्या भक्त्या पक्वगुण आशयाः उपयास्यथ मद्धाम निर्विद्य निरयात् अतः ॥१८॥

अथ	अन्तमें
मयि	मेरी
अनपायिन्या	अनन्य भक्तिसे
आशयाः पक्व-गुण	हृदयके गुणोंका परिपाक हो जानेपर*
अतः निरयात्	अतः नरक तुल्य (लगते भोगोंसे)
निर्विद्य	विरक्त होकर
मद्धाम	मेरे धाम
उपयास्यथ	पहुँच जाओगे ॥१८॥

गृहेष्वाविशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम् ।
मद्वार्तायातयामानां न बन्धाय गृहा मताः ॥१९॥

गृहेषु आविशतां च अपि पुंसां कुशल कर्मणां मत् वार्ता यात यामानां न बन्धाय गृहा मताः ॥१९॥

---

* काम-क्रोध आदि विकार हैं—यह इनका प्रकृतरूप नहीं है। प्रेमका विकार काम, वैराग्यका विकार क्रोध है। हृदयके गुणोंका परिपाक होनेपर शुद्ध गुण रहते हैं।

कुशल कर्मणां	*कुशलतापूर्वक कर्म करनेवाले	गृहेषु आविशतां	गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होनेपर भी
मत् वार्ता	मेरी कथामें	मताः	मेरे मतसे
यात यामानां	समय व्यतीत करने-वाले	गृहा बन्धाय न	घर बन्धनके कारण नहीं होते ॥१९॥
पुंसां	लोगोंके		

नव्यवद्धृदये यज्ञो ब्रह्म तद्ब्रह्मवादिभिः ।
न मुह्यन्ति न शोचन्ति न हृष्यन्ति यतो गताः ॥२०॥

नव्यवत् हृदये यत् ज्ञः ब्रह्म एतद् ब्रह्मवादिभिः न मुह्यन्ति न शोचन्ति न हृष्यन्ति यतः गताः ॥२०॥

यत्	जो	हृदये	हृदयमें (रहता) है
ब्रह्मवादिभिः	ब्रह्म-ज्ञानियों द्वारा	यतः गताः	जहाँ (जिस स्थिति-को) पहुँचकर
एतद् ज्ञः	यह ज्ञानमात्र		
ब्रह्म	ब्रह्म है (कहा जाता है)	मुह्यन्ति न	मोहमें नहीं पड़ते
		शोचन्ति न	शोक नहीं करते
नव्यवत्	नवीनके समान (विस्मृति रहित)	हृष्यन्ति	(और) हर्ष नहीं करते ॥२०॥

मैत्रेय उवाच–

एवं ब्रुवाणं पुरुषार्थभाजनं
जनार्दनं प्राञ्जलयः प्रचेतसः ।
तद्दर्शनध्वस्ततमोरजोमला
गिरागृणन् गद्गदया सुहृत्तमम् ॥२१॥

एवं ब्रुवाणं पुरुषार्थ भाजनं जनार्दनं प्राञ्जलयः प्रचेतसः तत् दर्शन ध्वस्त तमः रजः मला गिरा अगृणन् गद्गदया सुहृत् तमं ॥२१॥

पुरुषार्थभाजनं	सब पुरुषार्थोंके आश्रय
जनार्दनं	भगवान जनार्दनके
एवं ब्रुवाणं	इस प्रकार कहनेपर
प्राञ्जलयः	हाथ जोड़े हुए
प्रचेतसः	प्रचेतागण
तद् दर्शन	उन (भगवान) के दर्शनसे
तमः रजः मलः	तमोगुण और रजोगुणके मल (दोष)
ध्वस्त	नष्ट हो जानेसे
सुहृत् तमं	परम सुहृद (भगवान) की
गद्गदया गिरा	गद्गद् वाणीसे
अगृणन्	स्तुति करने लगे ॥२१॥

प्रचेतस ऊचुः

नमो नमः क्लेशविनाशनाय
निरूपितोदारगुणाह्वयाय ।
मनोवचोवेगपुरोजवाय
सर्वाक्षमार्गैरगताध्वने नमः ॥२२॥

नमोनमः क्लेशविनाशनाय निरूपित उदार गुण आह्वयाय मनः वचः वेग पुरः जवाय सर्व अक्ष मार्गैः अगत अध्वने नमः ॥२२॥

क्लेश-विनाशनाय	(समस्त) क्लेशोंके नाशक
नमोनमः	(प्रभु) आपको बार-बार नमस्कार
उदार गुण आह्वयाय	उदार गुण (वेदों द्वारा) कहे जानेवाले
मनः वचः वेग	मन॰वाणीकी गतिसे
पुरः जवाय	आगे रहनेवाले वेग युक्त
सर्व अक्ष मार्गैः	सभी इन्द्रियोंके मार्गसे
अगत अध्वने	अज्ञात मार्गवाले (इन्द्रियोंसे अगम्य)
नमः	(आपको) नमस्कार ॥२२॥

शुद्धाय शान्ताय नमः स्वनिष्ठया
मनस्यपार्थं विलसद्द्वयाय ।

नमो जगत्स्थानलयोदयेषु
गृहीतमायागुणविग्रहाय ॥२३॥

शुद्धाय शान्ताय नमः स्वनिष्ठया मनसि अपार्थं विलसत् द्वयाय नमः जगत् स्थान लय उदयेषु गृहीत माया गुण विग्रहाय ॥२३॥

स्वनिष्ठया	अपने स्वरूपमें	लय	प्रलय
शुद्धाय शान्ताय	(आप) नित्य शुद्ध शान्त हैं	उदयेषु	उत्पत्तिके लिए
		माया गुण	मायाके गुणोंसे
नमः	आपको नमस्कार	गृहीत	ग्रहण किये
मनसि	मनमें	विग्रहाय	स्वरूप (विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा)
अपार्थं	मिथ्या		
द्वयाय	द्वैतके रूपमें	नमः	आपको नमस्कार ॥२३॥
विलसत्	भासित		
जगत् स्थान	संसारकी स्थिति		

नमो विशुद्धसत्त्वाय हरये हरिमेधसे ।
वासुदेवाय कृष्णाय प्रभवे सर्वसात्वताम् ॥२४॥

नमः विशुद्धसत्त्वाय हरये हरिमेधसे वासुदेवाय कृष्णाय प्रभवे सर्व सात्वताम् ॥२४॥

विशुद्धसत्त्वाय	विशुद्ध सत्त्व स्वरूप	प्रभवे	प्रभु
हरिमेधसे	अविद्या नाशक ज्ञान स्वरूप	वासुदेवाय	वासुदेव (अन्तः-करणके प्रकाशक)
हरये	श्रीहरि	कृष्णाय नमः	श्रीकृष्णको नमस्कार ॥२४॥
सर्व सात्वतां	सभी सत्त्वगुणियों (भक्तों) के		

नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने ।
नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण ॥२५॥

नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण ॥२५॥

कमलनाभाय	नाभिमें कमलवाले	**कमलपादाय**	कमलके समान (कोमल) चरणवाले
नमः	आपको नमस्कार !		
कमलमालिने	कमलकी माला धारण किये	**नमः**	आपको नमस्कार,
		कमलेक्षण	कमल-नयन
नमः	आपको नमस्कार,	**ते नमः**	आपको नमस्कार ॥२५॥

नमः कमलकिञ्जल्कपिशङ्गामलवाससे ।
सर्वभूतनिवासाय नमोऽयुङ्क्ष्महि साक्षिणे ॥२६॥

नमः कमलकिञ्जल्क पिशङ्ग अमलवाससे सर्वभूत निवासाय नमः अयुङ्क्ष्महि साक्षिणे ॥२६॥

कमलकिञ्जल्क	कमल पुष्पके परागके समान	**सर्वभूत निवासाय**	सभी प्राणियोंके निवासरूप
पिशङ्ग अमल-वाससे	निर्मल पीताम्बर-धारी	**साक्षिणे**	सर्वसाक्षी
		नमः अयुङ्क्ष्महि	हम आपको नमस्कार करते हैं ॥२६॥

रूपं भगवता त्वेतदशेषक्लेशसंक्षयम् ।
आविष्कृतं नः क्लिष्टानां किमन्यदनुकम्पितम् ॥२७॥

रूपं भगवता तु एतत् अशेष क्लेशसंक्षयं आविष्कृतं नः क्लिष्टानां किं अन्यत् अनुकम्पितं ॥२७॥

अशेष क्लेशसंक्षयं	सम्पूर्ण क्लेशोंको नष्ट करनेवाला	**एतत् रूपं तु भगवता**	यह रूप तो भगवान् आपने

क्लिष्टानां	(अविद्या अस्मितादि) क्लेशग्रस्त	आविष्कृतं	प्रकट किया है
नः	हमारे समक्ष	अन्यत्	
		अनुकम्पितं	इससे अधिक कृपा
		किं	और क्या होगी ॥२७

एतावत्त्वं हि विभुभिर्भाव्यं दीनेषु वत्सलैः ।
यदनुस्मर्यते काले स्वबुद्ध्याभद्ररन्धन ॥२८॥

एतावत्त्वं हि विभुभिः भाव्यं दीनेषु वत्सलैः यत् अनुस्मर्यते काले स्वबुद्ध्या अभद्र रन्धन ॥२८॥

अभद्र रन्धन	अमंगलहारी प्रभु !	भाव्यं	कृपा करनी चाहिए
दीनेषु वत्सलैः	दीनोंपर दया करनेवाले	यत् काले	कि समय-समयपर
		स्वबुद्ध्या	अपनी बुद्धिसे
विभुभिः	समर्थोंको	अनुस्मर्यते	स्मरणकर लिया करें ॥२८॥
एतावत्त्वं हि	इतनी ही		

येनोपशान्तिर्भूतानां क्षुल्लकानामपीहताम् ।
अन्तर्हितोऽन्तर्हृदये कस्मान्नो वेद नाशिषः ॥२९॥

येन उपशान्तिः भूतानां क्षुल्लकानां अपि ईहतां अन्तर्हितः अन्तर्हृदये कस्मात् नः वेद न आशिषः ॥२९॥

येन	जिनके द्वारा	उपशान्तिः	परिपूर्ति रूप शान्ति होती है
क्षुल्लकानां भूतनां अपि	अत्यन्त क्षुद्र प्राणियोंके भी	नः आशिषः	हमारी आकांक्षा (वे)
अन्तर्हृदये	हृदयके भीतर	कस्मात्	क्यों
अन्तर्हितः	अदृश्य रूपसे रहते	न वेद	नहीं जानेंगे ॥२९॥
ईहतां	कामनाओंकी		

असावेव वरोऽस्माकमीप्सितो जगतः पते ।
प्रसन्नो भगवान् येषामपवर्गगुरुर्गतिः ॥३०॥

असौ एव वरः अस्माकं ईप्सितः जगतः पते प्रसन्नः भगवान् येषाम् अपवर्ग गुरुः गतिः ॥३०॥

जगतः पते	जगदीश्वर !
अपवर्ग	मोक्षके
गुरुः गतिः	उपदेष्टा तथा परमगति
भगवान्	भगवान् आप
येषां	जिनपर
प्रसन्नः	प्रसन्न हैं
असौ एव	यही
अस्माकं	हम सबका
ईप्सितः	अभीष्ट
वरः	वरदान है ॥३०॥

वरं वृणीमहेऽथापि नाथ त्वत्परतः परात् ।
न ह्यन्तस्त्वद्विभूतीनां सोऽनन्त इति गीयसे ॥३१॥

वरं वृणीमहे अथ अपि नाथ त्वत् परतः परात् न हि अन्तः त्वत् विभूतीनां सः अनन्त इति गीयसे ॥३१॥

अथ अपि नाथ त्वत् परतः	तथापि हे नाथ
परात्	आप (प्रकृति आदि से) परे से भी परे
वरं वृणीमहे	(हम) वर आपसे मांगते हैं,
त्वत् विभूतीनां	आपकी विभूतियोंका
हि अन्तः न	निश्चय अन्त नहीं है
सः अनन्त	इसलिए आप अनन्त
इति गीयसे	इस प्रकार गाये जाते हैं ॥३१॥

पारिजातेऽञ्जसा लब्धे सारङ्गोऽन्यन्न सेवते ।
त्वदङ्घ्रिमूलमासाद्य साक्षात्किं वृणीमहि ॥३२॥

पारिजाते अञ्जसा लब्धे सारङ्ग अन्यत् न सेवते त्वत् अङ्घ्रिमूलं आसाद्य साक्षात् किं किं वृणीमहि ॥३२॥

अञ्जसा	अनायास
पारिजाते लब्धे	कल्प-वृक्ष मिल जानेपर
सारङ्गः	भ्रमर
अन्यत्	दूसरे (पुष्प) का
सेवते न	सेवन नहीं करता

साक्षात्	प्रत्यक्ष	आसाद्य	पहुँचकर
त्वत् अङ्घ्रिमूलं	आपके चरणोंके समीप	किं किं	क्या-क्या
		वृणीमहि	वरदान मांगें ॥३२॥

यावत्ते मायया स्पृष्टा भ्रमाम इह कर्मभिः ।
तावद्भवत्प्रसङ्गानां सङ्गः स्यान्नो भवे भवे ॥३३॥

यावत् ते मायया स्पृष्टा भ्रमामः इह कर्मभिः तावत् भवत् प्रसङ्गानां सङ्गः स्यात् नः भवे भवे ॥३३॥

यावत्	जब तक	तावत्	तब तक
ते मायया	आपकी मायासे	भवे भवे	जन्म-जन्ममें
स्पृष्टा	ग्रस्त हुए	नः	हमें
कर्मभिः	कर्मानुसार	भवत् प्रसङ्गानां	आपके प्रेमी भक्तोंकी
इह	संसारमें	सङ्गः स्यात्	सङ्गति मिलती रहे ॥३३॥
भ्रमामः	हम भ्रमण करते रहें		

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥३४॥

तुलयाम लवेन अपि न स्वर्गं न अपुनर्भवं भगवत् सङ्गि सङ्गस्य मर्त्यानां किं उत् आशिषः ॥३४॥

भगवत् संगि	भगवानमें आसक्त (भक्त) की	मर्त्यानां	मरणधर्मा (मनुष्य) की
संगस्य	संगतिके	आशिषः	कामनाएँ
लवेन अपि	क्षणांशको भी	किं उत्	फिर किस गणनामें हैं ॥३४॥
स्वर्गं न	स्वर्गसे नहीं		
अपुनर्भवं न	मोक्षसे भी नहीं		
तुलयाम	तुलना (समता) करते हैं ।		

यत्रेड्यन्ते कथा मृष्टास्तृष्णायाः प्रशमो यतः ।
निर्वैरं यत्र भूतेषु नोद्वेगो यत्र कश्चन ॥३५॥

यत्र ईड्यन्ते कथा मृष्टाः तृष्णायाः प्रशमः यतःनिर्वैरं यत्र भूतेषु न उद्वेगः यत्र कश्चन ॥३५॥

यत्र	जहाँ	**यत्र**	जहाँ
मृष्टाः कथा	(भगवानकी) निर्मल कथा	**भूतेषु निर्वैरं**	प्राणियोंसे विरोध नहीं रहता
ईड्यन्ते	होती रहती है।	**यत्र**	जहाँ
यतः	जिससे	**कश्चन**	कोई
तृष्णायाः प्रशमः	तृष्णा शान्त हो जाती है	**उद्वेगः न**	उद्वेग नहीं होता ॥३५॥

यत्र नारायणः साक्षाद्भगवान्न्यासिनां गतिः ।
संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसङ्गैः पुनः पुनः ॥३६॥

यत्र नारायणः साक्षात् भगवान् न्यासिनां गतिः संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसङ्गैः पुनः पुनः ॥३६॥

यत्र	जहाँ	**साक्षात्**	
सत्कथासु	अच्छे-अच्छे कथा प्रसङ्गों द्वारा	**नारायणः**	साक्षात् श्रीनारायण
मुक्तसङ्गैः	अनासक्तों द्वारा	**भगवान्**	भगवान्का
न्यासिनां गतिः	संन्यासियोंके आश्रय	**पुनः पुनः संस्तूयते**	बार-बार गुणगान होता है ॥३६॥

तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया ।
भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः ॥३७॥

तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावन इच्छया भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः ॥३७॥

तीर्थानां	तीर्थोंको
पावन इच्छया	पवित्र करनेकी इच्छासे
पद्भ्यां	पैदल
विचरतां	विचरण करते
तेषां	उन
तावकानां	आपके भक्तोंका
समागम	समागम
भीतस्य	संसारसे भयभीतको
किं न रोचेत	कैसे अच्छा न लगेगा ॥३७॥

वयं तु साक्षाद्भगवन् भवस्य
प्रियस्य सख्युः क्षणसङ्गमेन ।
सुदुश्चिकित्स्यस्य भवस्य मृत्यो-
र्भिषक्तमं त्वाद्य गतिं गताः स्मः ॥३८॥

वयं तु साक्षात् भगवन् भवस्य प्रियस्य सख्युः क्षणसङ्गमेन सुदुः चिकित्स्यस्य भवस्य मृत्योः भिषक्तमं त्वा अद्य गतिं गताः स्मः ॥३८॥

भगवन्	भगवन् !
प्रियस्य सख्युः	आपके प्रिय सखा
भवस्य	भगवान् शंकरके
क्षणसङ्गेमेन तु	क्षण भरके संगसे ही
वयं साक्षात्	हमें साक्षात् आपका दर्शन हुआ है
सुदुः चिकित्स्यस्य	अति दुःसाध्य
भवस्य	संसार रूपी
मृत्योः	मृत्यु रोगके
भिषक्तमं	श्रेष्ठतम वैद्य
त्वा	आपकी
अद्य	आज
गतिं गताः स्मः	शरणमें आये हैं ॥३८॥

यन्नः स्वधीतं गुरवः प्रसादिता
विप्राश्च वृद्धाश्च सदानुवृत्त्या ।
आर्या नताः सुहृदो भ्रातरश्च
सर्वाणि भूतान्यनसूययैव ॥३९॥

यत् नः सु अधीतं गुरवः प्रसादिता विप्राः च वृद्धाः च सदा अनुवृत्या आर्या नताः सुहृदः भ्रातरः च सर्वाणि भूतानि अनुसूयया एव ॥३९॥

नः	हम लोगोंने
यत्	जो
सु अधीतं	उत्तम अध्ययन किया
सदा अनुवृत्त्या	सदा अनुगमन करनेसे
गुरवः	गुरुजनोंको
विप्राः च	ब्राह्मणोंको भी
च वृद्धाः	और वृद्धजनोंको
प्रसादिता	प्रसन्न किया
आर्या नताः	बड़ोंको प्रणाम किया
अनुसूयया एव	गुणोंमें दोष न देखकर
सुहृदः	सम्बन्धियों
भ्रातरः च	भाइयोंको (तथा)
सर्वाणि भूतानि	सब प्राणियोंको (प्रसन्न किया)॥३९॥

यन्नः सुतप्तं तप एतदीश
निरन्धसां कालमदभ्रमप्सु ।
सर्वं तदेतत्पुरुषस्य भूम्नो
वृणीमहे ते परितोषणाय ॥४०॥

यत् नः सुतप्तं तप एतत् ईश निरन्धसां कालम् अदभ्रम् अप्सु सर्वं तत् एतत् पुरुषस्य भूम्नः वृणीमहे ते परितोषणाय ॥४०॥

यत् नः	जो हमने
एतत्	यह
निरन्धसां	आहार त्यागकर
अदभ्रम् कालं	दीर्घ काल तक
अप्सु	जलमें (रहकर)
तप सुतप्तं	उत्तम तप किया
ईश	स्वामी !
तत् एतत् सर्वं	वह यह सब
भूम्नः	सर्व व्यापक
पुरुषस्य	परमपुरुष
ते परितोषणाय	आपको सन्तुष्ट करनेके लिए
वृणीमहे	यह वरदान हम मांगते हैं ॥४०॥

मनुः स्वयम्भूर्भगवान् भवश्च
येऽन्ये तपोज्ञानविशुद्धसत्त्वाः ।
अदृष्टपारा अपि यन्महिम्नः
स्तुवन्त्यथो त्वाऽऽत्मसमं गृणीमः ॥४१॥

मनुः स्वयंभूः भगवान् भवः च ये अन्ये तपः ज्ञान विशुद्ध सत्वाः अदृष्टपारा अपि यत् महिम्नः स्तुवन्ति अथो त्वा आत्मसमं गृणीमः ॥४१॥

यत् महिम्नः	आपकी जिन महिमाका
अदृष्टपारा अपि	पार न पाकर भी
मनुः स्वयंभूः	(स्वायम्भुव) मनु, ब्रह्माजी
च भगवान् भवः	तथा भगवान् शंकर तथा
ये अन्ये	जो अन्य
तपः ज्ञान	तप और ज्ञानसे
विशुद्ध सत्वाः	शुद्ध चित्तवाले हैं
स्तुवन्ति	आपकी स्तुति करते हैं
अथो त्वा	अतः हम भी आपकी
आत्मसमं	अपनी बुद्धिके अनुसार
गृणीमः	स्तुति कर रहे हैं ॥४१॥

नमः समाय शुद्धाय पुरुषाय पराय च ।
वासुदेवाय सत्त्वाय तुभ्यं भगवते नमः ॥४२॥

नमः समाय शुद्धाय पुरुषाय पराय च वासुदेवाय सत्वाय तुभ्यं भगवते नमः ॥४२॥

समाय शुद्धाय	सर्वत्र समान शुद्ध स्वरूप
च पराय	
पुरुषाय	तथा परम पुरुष
सत्वाय	सत्व स्वरूप
वासुदेवाय	भगवान वासुदेव
तुभ्यं भगवते	
नमः	आप भगवान्‌को नमस्कार ॥४२॥

मैत्रेय उवाच-

इति प्रचेतोभिरभिष्टुतो हरिः
प्रीतस्तथेत्याह शरण्यवत्सलः ।
अनिच्छतां यानमतृप्तचक्षुषां
ययौ स्वधामानपवर्गवीर्यः ॥४३॥

इति प्रचेतोभिः अभिष्टुतः हरिः प्रीतः तथा इति आह शरण्यवत्सलः अनिच्छतां यानं अतृप्त चक्षुषां ययौ स्वधामानू अपवर्ग वीर्यः ॥४३॥

प्रचेतोभिः	प्रचेताओंके द्वारा
इति	इस प्रकार
अभिष्टुतः	स्तुति करनेपर
शरण्यवत्सलः	शरणागत वत्सल
हरिः प्रीतः	श्रीहरिने प्रसन्न होकर
तथा इति आह	तथास्तु ऐसा कहा।
अपवर्ग वीर्यः	मोक्ष-दान, पराक्रम वाले (प्रभु)
अतृप्त चक्षुषां यानं	अतृप्त नेत्र
अनिच्छतां	उन्हें जाने देना नहीं चाहने वाले (के पाससे)
स्वधामानू ययौ	अपने धाम चले गये ॥४३॥

अथ निर्याय सलिलात्प्रचेतस उदन्वतः।
वीक्ष्याकुप्यन्द्रुमैश्छन्नां गां गां रोद्धुमिवोच्छ्रितैः ॥४४॥

अथ निर्याय सलिलात् प्रचेतसः उदन्वतः वीक्ष्य अकुप्यन् द्रुमैः छन्नां गां गां रोद्धुम् इव उच्छ्रितैः ॥४४॥

अथ	इसके बाद
प्रचेतसः	प्रचेताओंने
उदन्वतः	
सलिलात्	समुद्रके जलसे
निर्याय	निकलकर
गां रोद्धुम् इव	पूरी पृथ्वीको रुंध देनेके समान
उच्छ्रितैः	उठे (फैले) हुए
द्रुमैः	वृक्षोंसे
गां छन्नां	पृथ्वीको ढकी
वीक्ष्य	देखकर
अकुप्यन्	क्रुद्ध हो गये ॥४४॥

ततोऽग्निमारुतौ राजन्नमुञ्चन्मुखतो रुषा।
महीं निर्वीरुधं कर्तुं संवर्तक इवात्यये ॥४५॥

ततः अग्निमारुतौ राजन् अमुञ्चन् मुखतः रुषा महीं निर्वीरुधं कर्तुं संवर्तक इव अत्यये ॥४५॥

राजन्	राजन् !
ततः	तब
महीं निर्वीरुधं	पृथ्वीको वृक्ष-लता आदिसे रहित
कर्तुं	कर देनेके लिए
रुषा	क्रोधमें आकर
अत्यये	प्रलयकालमें
संवर्तक इव	संवर्तक रुद्रके समान
मुखतः	अपने मुखसे
अग्निमारुतौ	वायु और अग्निको
अमुञ्चन्	छोड़ने लगे ॥४५॥

भस्मसात्क्रियमाणांस्तान्द्रुमान् वीक्ष्य पितामहः ।
आगतः शमयामास पुत्रान् बर्हिष्मतो नयैः ॥४६॥

भस्मसात् क्रियमाणान् तान् द्रुमान् वीक्ष्य पितामहः आगतः शमयामास पुत्रान् बर्हिष्मतः नयैः ॥४६॥

भस्मसात् क्रियमाणान्	भस्म किये जाते हुए
द्रुमान् वीक्ष्य	वृक्षोंको देखकर
पितामहः	ब्रह्माजीने
आगतः	आकर
बर्हिष्मतः पुत्रान्	प्राचीनबर्हिके पुत्रोंको
नयैः	युक्ति पूर्वक (समझाकर)
शमयामास	शान्त किया ॥४६॥

तत्रावशिष्टा ये वृक्षा भीता दुहितरं तदा ।
उज्जह्रुस्ते प्रचेतोभ्य उपदिष्टाः स्वयम्भुवा ॥४७॥

तत्र अवशिष्टा ये वृक्षाः भीता दुहितरं तदा उज्जह्रुः ते प्रचेतोभ्यः उपदिष्टाः स्वयंभुवा ॥४७॥

तत्र तदा	फिर वहां
ये वृक्षाः	जो वृक्ष
अवशिष्टा	बच गये थे
स्वयम्भुवा उपदिष्टाः	ब्रह्माजीके कहनेसे
ते भीता	उन्होंने डरकर
दुहितरं	पुत्रीको
प्रचेतोभ्यः	प्रचेताओंको
उज्जह्रुः	दे दिया ॥४७॥

ते च ब्रह्मण आदेशान्मारिषामुपयेमिरे ।
यस्यां महदवज्ञानादजन्यजनयोनिजः ॥४८॥

ते च ब्रह्मण आदेशात् मारिषां उपयेमिरे यस्यां महत् अवज्ञानात अजनि अजन योनिजः ॥४८॥

ते च	उन (प्रचेताओं) ने भी	महत् अवज्ञानात्	श्रीमहादेवजीके अपमानके बाद
ब्रह्मण आदेशात्	ब्रह्माजीके आदेशसे		(दक्ष)
मारिषां	मारिषा (नामकी उस कन्या) से	अजन योनिजः	जो ब्रह्माजीका मानस-पुत्र था
उपयेमिरे	विवाह कर लिया		योनिज होकर
यस्यां	जिसके गर्भसे	अजनि	जन्मा ॥४८॥

चाक्षुषेत्वन्तरे प्राप्ते प्राक्सर्गे कालविद्रुते ।
यः ससर्ज प्रजा इष्टाः स दक्षो दैवचोदितः ॥४९॥

चाक्षुषे तु अन्तरे प्राप्ते प्राक्सर्गे कालविद्रुते यः ससर्ज प्रजा इष्टाः स दक्षः दैवचोदितः ॥४९॥

चाक्षुषे अन्तरे प्राप्ते तु	चाक्षुष-मन्वन्तर आने पर तो (मन्वन्तर) की सृष्टिके	दैवचोदितः	दैवकी प्रेरणासे
		यः इष्टाः प्रजा	जिन्होंने अभीष्ट प्रजाकी
		ससर्ज	सृष्टि की
प्राक्सर्गे काल-विद्रुते	पहले काल क्रमसे नष्ट हो जानेपर	स दक्षः	वे यही दक्ष थे ॥४९॥

यो जायमानः सर्वेषां तेजस्तेजस्विनां रुचा ।
स्वयोपादत्त दाक्ष्याच्च कर्मणां दक्षमब्रुवन् ॥५०॥

यः जायमानः सर्वेषां तेजः तेजस्विनां रुचा स्वया उपादत्त दाक्ष्यात् च कर्मणां दक्षं अब्रुवन् ॥५०॥

यः जायमानः	जिन्होंने जन्म लेते ही
स्वया रुचा	अपनी कान्तिसे
सर्वेषां तेजस्विनां	सभी तेजस्वियोंका
तेजः उपादत्त	तेज छीन लिया
च	और
कर्मणां दाक्ष्यात्	कर्म करनेमें दक्ष होनेसे
दक्षं अब्रुवन्	(उनको लोग) दक्ष कहते थे ॥५०॥

तं प्रजासर्गरक्षायामनादिरभिषिच्य च ।
युयोज युयुजेऽन्यांश्च स वै सर्वप्रजापतीन् ॥५१॥

तं प्रजासर्गं रक्षायां अनादिः अभिषिच्य च युयोज युयुजे अन्यान् च स वै सर्वप्रजापतीन् ॥५१॥

अनादिः	अनादि ब्रह्माजीने
प्रजा सर्ग रक्षायां	प्रजा-सृष्टिकी रक्षाके लिए
तं	उन (दक्ष) का
अभिषिच्य	अभिषेक करके
स वै	निश्चय उन (ब्रह्माजी) ने ही
अन्यान्	दूसरे
सर्वप्रजापतीन्	सब प्रजापतियोंको भी
युयोज	(प्रजा-रक्षामें) लगाया
च	तथा
युयुजे	स्वयं भी लगे ॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
चतुर्थस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

मैत्रेय उवाच-

तत उत्पन्नविज्ञाना आश्वधोक्षजभाषितम् ।
स्मरन्त आत्मजे भार्यां विसृज्य प्राव्रजन् गृहात् ॥१॥

ततः उत्पन्नविज्ञाना आशु अधोक्षजभाषितम् स्मरन्तः आत्मजे भार्यां विसृज्य प्राव्रजन् गृहात् ॥१॥

ततः	तब	**स्मरन्तः**	स्मरण करते हुए
उत्पन्नविज्ञाना	विवेक उत्पन्न होने पर	**भार्यां**	पत्नीको
		आत्मजे विसृज्य	पुत्रोंके पास छोड़कर
आशु	शीघ्र	**गृहात् प्राव्रजन्**	घरसे निकल पड़े ॥१॥
अधोक्षज-भाषितं	भगवान्के उपदेशको		

दीक्षिता ब्रह्मसत्रेण सर्वभूतात्ममेधसा ।
प्रतीच्यां दिशि वेलायां सिद्धोऽभूद्यत्र जाजलिः ॥२॥

दीक्षिता ब्रह्मसत्रेण सर्वभूत आत्ममेधसा प्रतीच्यां दिशि वेलायां सिद्धः अभूत् यत्र जाजलिः ॥२॥

प्रतीच्यां दिशि	पश्चिम दिशामें	**आत्ममेधसा**	आत्मबुद्धि कराने वाले
वेलयां	समुद्रके तटपर		
यत्र जाजलिः	जहाँ जाजलि (मुनि)	**ब्रह्मसत्रेण**	ब्रह्मसत्रकी
सिद्धः अभूत्	सिद्ध हुए थे	**दीक्षिता**	दीक्षा ली ॥२॥
सर्वभूत	सब प्राणियोंमें		

तान्निर्जितप्राणमनोवचोदृशो
जितासनान् शान्तसमानविग्रहान् ।
परेऽमले ब्रह्मणि योजितात्मनः
सुरासुरेड्यो ददृशे स्म नारदः ॥३॥

तान् निर्जित प्राण मनः वचः दृशः जित आसनान् शान्त समान विग्रहान् परे अमले ब्रह्मणि योजित आत्मनः सुर असुर ईड्यः ददृशे स्म नारदः ॥३॥

निर्जित	जीते गये
प्राण मनः	प्राण, मन,
वचः दृशः	वाणी, दृष्टिवाले,
जित आसनान्	आसन जय किये
शान्त	शान्त
समान विग्रहान्	समान (सीधे) शरीर (बैठे)
अमले परे	निर्मल परम-पुरुषमें
आत्मनः योजित	चित्त लगाये
तान्	उन (प्रचेताओं) को
सुर असुर ईड्यः	देव-दैत्य वन्दित
नारदः	देवर्षि नारदको
ददृशे स्म	दिखलायी पड़े ॥३॥

तमागतं त उत्थाय प्रणिपत्याभिनन्द्य च ।
पूजयित्वा यथादेशं सुखासीनमथाब्रुवन् ॥४॥

तं आगतं ते उत्थाय प्रणिपत्य अभिनन्द्य च पूजयित्वा यथा आदेशं सुखासीनं अथ अब्रुवन् ॥४॥

तं आगतं	उन (नारदजीको) आया देख
ते	वे (प्रचेतागण)
उत्थाय	उठकर खड़े हो गये
च प्रणिपत्य	और साष्टांग प्रणाम किया
अभिनन्द्य	स्वागत करके
यथा आदेशं	शास्त्र-विधि जैसी है वैसे
पूजयित्वा	पूजा करके
सुखासीनं	(उनके) सुखपूर्वक बैठ जानेपर
अथ	तब
अब्रुवन्	बोले ॥४॥

प्रचेतस ऊचुः-

स्वागतं ते सुरर्षेऽद्य दिष्ट्या नो दर्शनं गतः ।
तव चङ्क्रमणं ब्रह्मन्नभयाय यथा रवेः ॥५॥

स्वागतं ते सुर ऋषे अद्य दिष्ट्या नः दर्शनं गतः तव चङ्क्रमणं ब्रह्मन् अभयाय यथा रवेः ॥५॥

सुरऋषे	देवर्षि !
ते स्वागतं	आपका स्वागत है,
अद्य दिष्ट्या	आज बड़े भाग्यसे
नः दर्शनं गतः	हमें आपका दर्शन हुआ,
ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
रवेः यथा	सूर्यके समान
तव चङ्क्रमणं	आपका घूमना
अभयाय	(सबको) अभय देनेके लिए होता है ॥५॥

यदादिष्टं भगवता शिवेनाधोक्षजेन च ।
तद् गृहेषु प्रसक्तानां प्रायशः क्षपितं प्रभो ॥६॥

यत् आदिष्टं भगवता शिवेन अधोक्षजेन च तत् गृहेषु प्रसक्तानां प्रायशः क्षपितं प्रभो ॥६॥

प्रभो	स्वामिन् !
भगवता शिवेन	भगवान् शंकरने
च अधोक्षजेन	और हृषीकेश भगवान्ने
यत् आदिष्टं	जो उपदेश किया था,
गृहेषु प्रसक्तानां	गृहस्थीमें आसक्त रहनेके कारण
तत् प्रायशः	वह प्रायः
क्षपितं	नष्ट (भूल) हो गया ॥६॥

तन्नः प्रद्योतयाध्यात्मज्ञानं तत्त्वार्थदर्शनम् ।
येनाञ्जसा तरिष्यामो दुस्तरं भवसागरम् ॥७॥

तत् नः प्रद्योतय अध्यात्मज्ञानं तत्व अर्थ दर्शनं येन अञ्जसा तरिष्यामः दुस्तरं भवसागरं ॥७॥

तत् नः	अतः हमारे हृदयोंमें	प्रद्योतय	प्रकाशित कीजिए
तत्व अर्थ दर्शनं	परमार्थ तत्वका साक्षात्कार करानेवाले	येन अञ्जसा	जिससे सुगमतासे
		दुस्तरं	दुस्तर
		भवसागरं	संसार-सागरको
अध्यात्मज्ञानं	अध्यात्म ज्ञानको	तरिष्यामः	पार हो जाएँ ॥७॥

मैत्रेय उवाच-

इति प्रचेतसां पृष्टो भगवान्नारदो मुनिः ।
भगवत्युत्तमश्लोक आविष्टात्माब्रवीन्नृपान् ॥८॥

इति प्रचेतसां पृष्टः भगवान् नारदः मुनिः भगवति उत्तमश्लोके आविष्ट आत्मा अब्रवीत् नृपान् ॥८॥

उत्तमश्लोके	उत्तमश्लोक	इति	इस प्रकार
भगवति	भगवानमें	प्रचेतसां पृष्टः	प्रचेताओंके पूछनेपर
आविष्ट आत्मा	आसक्त चित्तवाले	नृपान्	उन राजाओंसे
भगवान् नारदः		अब्रवीत्	बोले ॥८॥
मुनिः	भगवान् नारद मुनिने		

नारद उवाच-

तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः ।
नृणां येनेह विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरः ॥९॥

तत् जन्म तानि कर्माणि तत् आयुः तत् मनः वचः नृणां येन इह विश्वात्मा सेव्यते हरिः ईश्वरः ॥९॥

इह	इस लोकमें	तानि कर्माणि	वही कर्म,
नृणां	मनुष्योंका	तत् आयुः	वही आयु,
तत् जन्म	वही जन्म,		

तत् मनः वचः	वही मन और वाणी (सफल हैं)	**ईश्वरः**	सर्वेश्वर
येन	जिनके द्वारा	**हरिः**	श्रीहरिकी
विश्वात्मा	सर्वात्मा	**सेव्यते**	सेवा की जाय ॥९॥

किं जन्मभिस्त्रिभिर्वेह शौक्लसावित्रयाज्ञिकैः ।
कर्मभिर्वा त्रयीप्रोक्तैः पुंसोऽपि विबुधायुषा ॥१०॥

किं जन्मभिः त्रिभिः व इह शौक्ल सावित्र याज्ञिकैः कर्मभिः वा त्रयी प्रोक्तैः पुंसः अपि विबुध आयुषा ॥१०॥

इह	इस संसारमें	**त्रयी प्रोक्तैः**	
शौक्ल	शुद्ध (माता-पिताकी पवित्रतासे)	**कर्मभिः**	वेदोक्त कर्मोंसे
सावित्र	यज्ञोपवीत-संस्कारसे	**वा**	अथवा
याज्ञिकैः	यज्ञ-दीक्षासे प्राप्त	**विबुध आयुषा**	देव सदृश दीर्घ आयुसे
त्रिभिः जन्मभिः	तीन प्रकारके जन्मोंसे	**अपि**	भी
व	अथवा	**पुंसः किम्**	पुरुषको क्या लाभ ॥१०॥

श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिश्चित्तवृत्तिभिः ।
बुद्ध्या वा किं निपुणया बलेनेन्द्रियराधसा ॥११॥

श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिः चित्त वृत्तिभिः बुद्ध्या वा किं निपुणया बलेन इन्द्रिय राधसा ॥११॥

श्रुतेन	वेदाध्ययनसे	**निपुणया**	निपुण
वा	अथवा	**बुद्ध्या वा**	बुद्धिसे अथवा
तपसा	तपस्यासे	**इन्द्रिय राधसा**	इन्द्रियोंकी पटुतायुक्त
किं	क्या लाभ,	**बलेन**	बलसे
वचोभिः	वाणीकी निपुणतासे	**किं**	क्या लाभ ॥११॥
चित्त वृत्तिभिः	चित्तकी (विशेष) वृत्ति बना लेनेसे		

किं वा योगेन सांख्येन न्यासस्वाध्याययोरपि ।
किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः ॥१२॥

किं वा योगेन सांख्येन न्यास स्वाध्याययोः अपि किं वा श्रेयोभिः अन्यैः च न यत्र आत्मप्रदः हरिः ॥१२॥

योगेन सांख्येन वा	योगसे अथवा विवेकसे
न्यास स्वाध्याययोः	संन्याससे
अपि	स्वाध्याय (जप)से भी
किं वा	क्या लाभ अथवा
अन्यैः च	
श्रेयोभिः	दूसरे भी कल्याण-कारी साधनोंसे
किं	क्या लाभ
यत्र	जहाँ
आत्मप्रदः	अपने आपको दे देनेवाले
हरिः न	श्रीहरि न हों ॥१२॥

श्रेयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः ।
सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्माऽऽत्मदः प्रियः ॥१३॥

श्रेयसां अपि सर्वेषां आत्मा हि अवधिः अर्थतः सर्वेषां अपि भूतानां हरिः आत्मा आत्मदः प्रियः ॥१३॥

अर्थतः	वास्तवमें
सर्वेषां	सभी
श्रेयसां अपि	कल्याणके साधनोंमें भी
हि	क्योंकि
आत्मा अवधिः	आत्मा ही उनकी सीमा है,
सर्वेषां अपि	सभी
भूतानां	प्राणियोंके
हरिः आत्मा	श्रीहरि ही आत्मा हैं,
आत्मदः	अपनेको दे देनेवाले हैं,
प्रियः	(सबके) प्रिय हैं ॥१३॥

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन
तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥१४॥

यथा तरोः मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत् स्कन्धभुजः उपशाखाः प्राण उपहारात् च यथा इन्द्रियाणां तथा एव सर्व अर्हणं अच्युत इज्या ॥१४॥

यथ तरोः	जैसे वृक्षकी	**प्राण उपहारात्**	प्राणोंको उपहार (भेंट) देनेसे
मूलनिषेचनेन	जड़ सींचनेसे	**इन्द्रियाणां**	(सब) इन्द्रियोंको (तृप्ति मिलती है)
तत्	उसके		
स्कन्ध भुजा उपशाखा	तने, मोटी डालें और पतली शाखायें	**तथा एव**	वैसे ही
		अच्युत इज्या	श्रीहरिकी पूजा
तृप्यन्ति	तृप्त (पुष्ट) होती हैं	**सर्व**	सबकी
यथा	जैसे	**अर्हणं**	पूजा है ॥१४॥

यथैव सूर्यात्प्रभवन्ति वारः
पुनश्च तस्मिन् प्रविशन्ति काले ।
भूतानि भूमौ स्थिरजङ्गमानि
तथा हरावेव गुणप्रवाहः ॥१५॥

यथा एव सूर्यात् प्रभवन्ति वारः पुनः च तस्मिन् प्रविशन्ति काले भूतानि भूमौ स्थिर जङ्गमानि तथा हरौ एव गुणप्रवाहः ॥१५॥

तथा एव	जैसे ही	**च पुनः**	और फिर
सूर्यात्	सूर्यसे	**काले**	समयपर
वारः	जल	**तस्मिन्**	उसीमें
प्रभवन्ति	उत्पन्न होता है		

प्रविशन्ति	(भाप बनकर) प्रवेश कर जाता है	**तथा एव**	वैसे ही
स्थिर		**गुणप्रवाहः**	त्रिगुणोंका प्रवाह (जगत)
जङ्गमानि	अचर और चर	**हरौ**	श्रीहरिसे (उत्पन्न होता और उन्हींमें
भूतानि	प्राणी		लय होता है) ॥१५॥
भूमौ	(जैसे) पृथ्वीमें (उत्पन्न होते मिलते हैं,)		

एतत्पदं तज्जगदात्मनः परं
सकृद्विभातं सवितुर्यथा प्रभा ।
यथासवो जाग्रति सुप्तशक्तयो
द्रव्यक्रियाज्ञानभिदाभ्रमात्ययः ॥१६॥

एतत् पदं तत् जगत् आत्मनः परं सकृत् विभातं सवितुः यथा प्रभा यथा असवः जाग्रति सुप्तशक्तयः द्रव्य क्रिया ज्ञान भिदा भ्रम अत्ययः ॥१६॥

एतत् जगत्	यह जगत्	**जाग्रति**	जागते (सक्रिय) रहते हैं,
आत्मनः	आत्माका	**द्रव्य**	(वैसे ही) पदार्थ
तत्	वह	**क्रिया**	(उनके) कर्म,
परं	परम सर्वोपाधि रहित	**ज्ञान**	(तत्सम्बन्धी) ज्ञानका
पदं	पद (स्वरूप) है	**भिदा**	भेद
यथा	जैसे	**भ्रम**	भ्रम (भगवत् स्वरूप)
प्रभा	प्रकाश	**सकृत्**	एकबार
सवितुः	सूर्यका	**विभातं**	प्रकाशित हो जानेपर
यथा	जैसे	**अत्ययः**	नष्ट हो जाता है ॥१६॥
सुप्तशक्तयः	शक्तियोंके सो जाने-पर भी		
असवः	प्राण		

यथा नभस्यभ्रतमःप्रकाशा
भवन्ति भूपा न भवन्त्यनुक्रमात् ।
एवं परे ब्रह्मणि शक्तयस्त्वमू
रजस्तमः सत्त्वमिति प्रवाहः ॥१७॥

यथा नभसि अभ्र तमः प्रकाशा भवन्ति भूपाः न भवन्ति अनुक्रमात् एवं परे ब्रह्मणि शक्तयः तु अमू रजः तमः सत्वं इति प्रवाहः ॥१७॥

भूपाः	राजाओं	एवं तु	इसी प्रकार
अभ्र तमः		सत्त्वम् रजः तमः	सत्त्व, रज तम
प्रकाशा	मेघ अन्धकार और प्रकाश	अमू शक्तयः	ये शक्तियाँ
		परे ब्रह्मणि	परब्रह्म परमात्मामें
अनुक्रमात्	क्रमसे	इति	इसी प्रकार
यथा नभसि	जैसे आकाशसे	प्रवाहः	प्रवाह रूपसे (कभी
भवन्ति	प्रकट होते हैं		होती, कभी नहीं
न भवन्ति	(कभी) नहीं होते		रहतीं) ॥१७॥

तेनैकमात्मानमशेषदेहिनां
कालं प्रधानं पुरुषं परेशम् ।
स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाह-
मात्मैकभावेन भजध्वमद्धा ॥१८॥

तेन एकं आत्मानं अशेष देहिनां कालं प्रधानं पुरुषं परेशं स्वतेजसा ध्वस्त गुणप्रवाहं आत्मैक भावेन भजध्वं अद्धा ॥१८॥

तेन	इसलिए	परेशं	(एवं) सबके परम
अशेष देहिनां	सभी देहधारियोंके		नियन्ता
एकं आत्मानं	एकमात्र आत्मा	पुरुषं	पुरुषोत्तम
कालं	काल	स्वतेजसा	अपने तेजसे
प्रधानं	प्रकृति		

गुणप्रवाहं	गुणोंके प्रवाह रूप प्रपञ्चको	**आत्मैक भावेन**	अपनेसे अभिन्न मानकर
ध्वस्त	नष्ट कर देनेवाले (भगवानका)	**अद्धा**	निश्चयपूर्वक
		भजध्वं	भजन करो ॥१८॥

दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्टया येन केन वा ।
सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जनार्दनः ॥१९॥

दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्ट्या येन केन वा सर्व इन्द्रिय उपशान्त्या च तुष्यति आशु जनार्दनः ॥१९॥

सर्वभूतेषु दयया	सब जीवोंपर दया करनेसे	**च सर्व इन्द्रिय उपशान्त्या**	तथा सब इन्द्रियोंको शान्त कर लेनेसे
वा	अथवा	**जनार्दनः**	भगवान् जनार्दन
येन केन सन्तुष्ट्या	जो कुछ मिले उसीसे सन्तोष करनेसे	**आश तुष्यति**	शीघ्र प्रसन्न होते हैं ॥१९॥

अपहृतसकलैषणामलात्म-
न्यविरतमेधितभावनोपहूतः ।
निजजनवशगत्वमात्मनोऽय-
न्न सरति छिद्रवदक्षरः सतां हि ॥२०॥

अपहृत सकल एषणा अमल आत्मनि अविरतं एधित भावना उपहूतः निजजन वशगत्वं आत्मनः अयं न सरति छिद्रवत् अक्षरः सतां हि ॥२०॥

हि	क्योंकि	**अयं**	ये (भगवान्)
सकल एषणा	सम्पूर्ण कामनाओंके	**निजजन**	अपने भक्तोंके
अपहृत	नष्ट हो जानेपर	**वशगत्वं**	वशमें रहनेवाले स्वभावसे
अमल आत्मनि	निर्मल चित्त	**अक्षरः छिद्रवत्**	रिक्त स्थानमें आकाशकी भाँति
सतां	सत्पुरुषोंके	**सरति न**	हटते नहीं है ॥२०॥
अविरतं	निरन्तर		
एधित	बढ़ती हुई		
भावना उपहूतः	भावनासे बुलाये गये		

न भजति कुमनीषिणां स इज्यां
हररधनात्मधनप्रियो रसज्ञः ।
श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्ये
विदधति पापमकिञ्चनेषु सत्सु ॥२१॥

न भजति कुमनीषिणां स इज्यां हरिः अधन आत्मधनः प्रियः रसज्ञः श्रुतधन कुल कर्मणां मदैः ये विदधति पापं अकिञ्चनेषु सत् सु ॥२१॥

हरिः	श्रीहरि	अकिञ्चनेषु	निर्धन
अधन	निर्धनोंके	सत् सु	सत्पुरुषोंका
आत्मधनः	अपने धन	पापं	अपमान
प्रियः	प्रिय	विदधति	करते हैं (उन)
रसज्ञः	रसके ज्ञाता हैं,	कुमनीषिणां	दुर्बुद्धि लोगोंकी
ये	(अतः) जो	इज्यां	यज्ञादि (पूजा) को
श्रुतधन	(अपने) शास्त्र-ज्ञान	स	वे
कुल	उच्चकुल (में जन्म)	न भजति	नहीं स्वीकार
कर्मणां	(श्रेष्ठ) कर्मोंके		करते ॥२१॥
मदैः	अभिमानमें		

श्रियमनुचरतीं तदर्थिनश्च
द्विपदपतीन् विबुधांश्च यत्स्वपूर्णः ।
न भजति निजभृत्यवर्गतन्त्रः
कथममुमुद्विसृजेत्पुमान् कृतज्ञः ॥२२॥

श्रियं अनुचरतीं तदर्थिनः च द्विपद पतीन् विबुधान् च यत् स्वपूर्णः न भजति निजभृत्यवर्ग तन्त्रः कथं अमुं उत् विसृजेत् पुमान् कृतज्ञः ॥२२॥

यत्	क्योंकि	अनुचरतीं	निरन्तर सेवामें
स्वपूर्णः	अपने ही में पूर्ण हैं (अतः)		लगी
		श्रियं	लक्ष्मीजीको

च तदर्थिनः	तथा उनको पाना चाहनेवाले	तन्त्रः	वशमें रहते हैं
द्विपद पतीन्	राजाओंकी	अमुं	उन (भगवान) को
च विबुधान्	एवं देवताओंकी भी	कृतज्ञः पुमान्	कृतज्ञ पुरुष
न भजति	अपेक्षा नहीं करते	कथं	कैसे
निजभृत्यवर्ग	पर अपने सेवक	उत विसृजेत्	छोड़ सकता है ॥२२॥
	वर्गके		

मैत्रेय उवाच-

इति प्रचेतसो राजन्नन्याश्च भगवत्कथाः ।
श्रावयित्वा ब्रह्मलोकं ययौ स्वायम्भुवो मुनिः ॥२३॥

इति प्रचेतसः राजन् अन्याः च भगवत् कथाः श्रावयित्वा ब्रह्मलोकं ययौ स्वायंभुवः मुनिः ॥२३॥

इति	इस प्रकार	स्वायंभुवः	ब्रह्माजीके पुत्र
प्रचेतसः	प्रचेताओंको	मुनिः	मुनि नारदजी
अन्याः च	और दूसरी भी	ब्रह्मलोकं ययौ	ब्रह्मलोक चले गये ॥२३॥
भगवत् कथाः	भगवानकी कथा		
श्रावयित्वा	सुनाकर		

तेऽपि तन्मुखनिर्यातं यशो लोकमलापहम् ।
हरेर्निशम्य तत्पादं ध्यायन्तस्तद्गतिं ययुः ॥२४॥

ते अपि तत् मुखनिर्यातं यशः लोकमल अपहं हरेः निशम्य तत् पादं ध्यायन्तः तद्गतिं ययुः ॥२४॥

ते अपि	वे (प्रचेतागण) भी	निशम्य	सुनकर
तत् मुखनिर्यातं	उन (श्रीनारदजी) के मुखसे निकले	तत् पादं	
		ध्यायन्तः	उनके चरणोंका ध्यान करते हुये
लोकमल	सब लोकोंके पापोंको		
अपहं	नष्ट करनेवाले	तद्गतिं ययुः	उन (भगवान)की गतिको पहुंचे ॥२४॥
हरेः यशः	श्रीहरिके यशको		

एतत्तेऽभिहितं क्षत्तर्यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ।
प्रचेतसां नारदस्य संवादं हरिकीर्तनम् ॥२५॥

एतत् ते अभिहितं क्षत्तः यत् मां त्वं परिपृष्टवान् प्रचेतसां नारदस्य संवादं हरिकीर्तनं ॥२५॥

क्षत्तः त्वं	विदुर तुमने	**संवादं**	संवाद
यत् मां	जो मुझसे	**परिपृष्टवान्**	पूछा था,
प्रचेतसां	प्रचेताओंके	**एतत् ते**	यह तुमसे
नारदस्य	नारदजीका	**अभिहितं**	(मैंने) कह
हरिकीर्तनम्	भगवत्कथा संबंधी		दिया ॥२५॥

श्रीशुक उवाच-

य एष उत्तानपदो मानवस्यानुवर्णितः ।
वंशः प्रियव्रतस्यापि निबोध नृपसत्तम ॥२६॥

य एष उत्तानपदः मानवस्य अनुवर्णितः वंशः प्रियव्रतस्य अपि निबोध नृपसत्तम ॥२६॥

नृपसत्तम	राजश्रेष्ठ परिक्षित	**वंश अनुवर्णितः**	वंशका वर्णन हुआ
य एष	यह यहाँ तक	**प्रियव्रतस्य अपि**	पियव्रतके भी
मानवस्य	स्वायम्भुव मनुके पुत्र	**निबोध**	(वंशको)
उत्तानपदः	उत्तानपादके		सुनो ॥२६॥

यो नारदादात्मविद्यामधिगम्य पुनर्महीम् ।
भुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्य ऐश्वरं समगात्पदम् ॥२७॥

यः नारदात् आत्मविद्यां अधिगम्य पुनः महीम् भुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्यः ऐश्वरं समगात् पदं ॥२७॥

यः	जो	**अधिगम्य**	प्राप्त करके
नारदात्	श्रीनारदजीसे	**पुनः**	फिर
आत्मविद्यां	आत्मविद्या		

महीं भुक्त्वा	पृथ्वीका (राज्य) भोग	**ऐश्वरं पदं**	भगवान्‌के धामको
पुत्रेभ्यः विभज्य	पुत्रोंमें (उसे) बाँटकर	**समगात्**	पहुँचे ॥२७॥

इमां तु कौषारविणोपवर्णितां
क्षत्ता निशम्याजितवादसत्कथाम् ।
प्रवृद्धभावोऽश्रुकलाकुलो मुने-
र्दधार मूर्ध्ना चरणं हृदा हरेः ॥२८॥

इमां तु कौषारविणा उपवर्णितां क्षत्ता निशम्य अजितवाद सत् कथां प्रवृद्धभावः अश्रुकला आकुलः मुनेः दधार मूर्ध्ना चरणं हृदा हरेः ॥२८॥

कौषारविणा	मैत्रेयजी द्वारा	**अश्रुकला**	
उपवर्णितां	कही गयी	**आकुलः**	अश्रुधारासे व्याकुल होकर बहने लगी
इमां	इस		
अजितवाद	भगवद्गुणानुवाद-युक्त	**हृदा**	हृदयमें
		हरेः	श्रीहरिके
सत् कथां तु	पवित्र कथाको तो	**मूर्ध्ना**	सिरको
निशम्य	सुनकर	**मुनेः चरणं**	मुनि-मैत्रेयके चरणों-पर
क्षत्ता	विदुर		
प्रवृद्धभावः	भक्तिभावके उद्रेकसे	**दधार**	रख दिया ॥२८॥

विदुर उवाच-

सोऽयमद्य महायोगिन् भवता करुणात्मना ।
दर्शितस्तमसः पारो यत्राकिञ्चनगो हरिः ॥२९॥

सः अयं अद्य महायोगिन् भवता करुणात्मना दर्शितः तमसः पारः यत्र अकिञ्चनगः हरिः ॥२९॥

महायोगिन्	महायोगी (मैत्रेयजी)	**तमसः पारः**	अज्ञानान्धकारका पार
करुणात्मना	परमदयालु		
भवता	आपने	**दर्शितः**	दिखा दिया
अद्य	आज	**यत्र**	जहाँ
सः अयं	वह यह	**अकिञ्चनगः**	अकिञ्चनोंकी गति
		हरिः	श्रीहरि हैं ॥२९॥

श्रीशुक उवाच–

इत्यानम्य तमामन्त्र्य विदुरो गजसाह्वयम् ।
स्वानां दिदृक्षुः प्रययौ ज्ञातीनां निर्वृताशयः ॥३०॥

इति आनम्य तं आमन्त्र्य विदुरः गजसाह्वयं स्वानां दिदृक्षुः प्रययौ ज्ञातीनां निर्वृत आशयः ॥३०॥

तं	उन (श्रीमैत्रेयजी) को	**निर्वृत आशयः**	प्रसन्न चित्त
		स्वानां ज्ञातीनां	अपने जातिवालोंको
इति	इस प्रकार	**दिदृक्षुः**	देखनेकी इच्छासे
आनम्य	प्रणाम कर	**गजसाह्वयं**	हस्तिनापुरको
आमन्त्र्य	(और उनसे) आज्ञा लेकर	**विदुरः**	विदुरजी
		प्रययौ	चले गये ॥३१॥

एतद्यः शृणुयाद्राजन् राज्ञां हर्यर्पितात्मनाम् ।
आयुर्धनं यशः स्वस्ति गतिमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥३१॥

एतत् यः शृणुयात् राजन् राज्ञां हरि अर्पित आत्मनां आयुः धनं यशः स्वस्ति गतिं ऐश्वर्यं आप्नुयात् ॥३१॥

राजन्	राजन् !
यः	जो
हरि अर्पित	भगवान्‌के अर्पित
आत्मनां	चित्तवाले
राज्ञां	राजाओंके
एतत्	इस (चरित्र) को
शृणुयात्	सुनेगा (वह)
आयुः धनं	आयु, धन
यशः	सुयश
स्वस्ति	कल्याण
गतिं	सद्गति
ऐश्वर्यं	ऐश्वर्यको
आप्नुयात्	पावेगा ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे प्रचेतउपाख्यानं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

॥ इति चतुर्थस्कन्धः समाप्तः ॥

हरिः ॐ तत्सत्

॥ पञ्चम स्कन्ध ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच—

प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने ।
गृहेऽरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः ॥१॥

प्रियव्रतः भागवतः आत्मारामः कथं मुने गृहे अरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः ॥१॥

मुने	महामुनि (शुकदेवजी) !	**यन्मूलः**	जिसकी जड़ ही
भागवतः	भगवद्-भक्त	**कर्मबन्धः**	कर्मका बन्धन (और)
आत्मारामः	अपने आत्मामें ही आनन्दित	**पराभवः**	पराजय है (उस)
प्रियव्रतः	प्रियव्रत	**गृहे**	गृहस्थाश्रममें
कथं	कैसे	**अरमत**	सुख मानने लगे ॥१॥

न नूनं मुक्तसङ्गानां तादृशानां द्विजर्षभ ।
गृहेष्वभिनिवेशोऽयं पुंसां भवितुमर्हति ॥२॥

न नूनं मुक्तसङ्गानां तादृशानां द्विजर्षभ गृहेषु अभिनिवेशः अयं पुंसां भवितुं अर्हति ॥२॥

द्विजर्षभ	विप्रश्रेष्ठ !	**गृहेषु**	गृहस्थाश्रममें
नूनं	निश्चय	**अयं**	यह
तादृशानां	उस प्रकारके	**अभिनिवेशः**	पूर्ण प्रवेश
मुक्तसङ्गानां	आसक्तिहीन	**न**	नहीं
पुंसां	पुरुषोंका	**भवितुं अर्हति**	होना चाहिए ॥२॥

महतां खलु विप्रर्षे उत्तमश्लोकपादयोः ।
छायानिर्वृतचित्तानां न कुटुम्बे स्पृहामतिः ॥३॥

महतां खलु विप्रर्षे उत्तमश्लोक पादयोः छाया निर्वृत चित्तानां न कुटुम्बे स्पृहामतिः ॥३॥

विप्रर्षे	ब्रह्मर्षि !	**चित्तानां**	चित्तवालोंका
उत्तमश्लोक	उत्तमयशा (भगवान्) के	**खलु**	निश्चय
		कुटुम्बे	परिवार वनानेमें
पादयोः	श्रीचरणोंकी	**स्पृहामति**	स्पृहाबुद्धि
छाया	छाया (चिन्तन) से	**न**	नहीं होती ॥३॥
निर्वृत	आनन्दमग्न		

संशयोऽयं महान् ब्रह्मन्दारागारसुतादिषु ।
सक्तस्य यत्सिद्धिरभूत्कृष्णे च मतिरच्युता ॥४॥

संशयः अयं महान् ब्रह्मन् दारा आगार सुतादिषु सक्तस्य यत् सिद्धिः अभूत् कृष्णे च मतिः अच्युता ॥४॥

ब्रह्मन् !	ब्रह्मन् !	**सिद्धिः च**	अन्तःकरण शुद्धि तथा
अयं	यह (मुझे)		
महान् संशयः	भारी संशय है	**कृष्णे**	भगवान् कृष्णमें
यत् दारा	जो, पत्नी	**अच्युता**	निश्चल
आगार	घर,	**मतिः**	बुद्धि (निष्ठा)
सुतादिषु	पुत्रादिमें	**अभूत्**	हो गयी ॥४॥
सक्तस्य	आसक्तकी		

श्रीशुक उवाच-

बाढमुक्तं भगवत उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविन्द-मकरन्दरस आवेशितचेतसो भागवतपरमहंसदयितकथां किञ्चिदन्तरायविहतां स्वां शिवतमां पदवीं न प्रायेण हिन्वन्ति ॥५॥

बाढं उक्तं भगवतः उत्तमश्लोकस्य श्रीमत् चरणारविन्द मकरन्द रस आवेशित चेतसः भागवत परमहंस दयित कथां किञ्चित् अन्तराय विहतां स्वां शिवतमां पद्धवीं न प्रायेण हिन्वन्ति ॥५॥

बाढं उक्तं	(तुमने) ठीक कहा (किन्तु)	दयित कथां	प्रिय (भगवत्) कथामें
भगवतः	भगवान्	किञ्चित्	तनिक
उत्तमश्लोकस्य	उत्तमश्लोकके	अन्तराय	
श्रीमत्	परमसुन्दर	विहतां	बाधा आ जानेपर (भी)
चरणारविन्द	चरण-कमलोंके	स्वां शिवतमां	अपनी परम कल्याणमयी
मकरन्द रस	मकरन्द (मधु) रसमें	पदवीं	स्थितिको
आवेशित	प्रविष्ट	प्रायेण	प्रायः
चेतसः	चित्तवाले (लोग)	न हिन्वन्ति	नहीं त्यागते ॥५॥
भागवत	भगवद्भक्त		
परमहंस	परमहंसोंकी		

यर्हि वाव ह राजन् स राजपुत्रः प्रियव्रतः परमभागवतो नारदस्य चरणोपसेवयाञ्जसावगतपरमार्थसतत्त्वो ब्रह्मसत्रेण दीक्षिष्यमाणोऽवनितलपरिपालनायाम्नातप्रवरगुणगणैकान्तभाजनतया स्वपित्रोपामन्त्रितो भगवति वासुदेव एवाव्यवधानसमाधियोगेन समावेशितसकलकारककक्रियाकलापो नैवाभ्यनन्दद्यद्यपि तदप्रत्याम्नातव्यं तदधिकरण आत्मनोऽन्यस्मादसतोऽपि पराभवमन्वीक्षमाणः ॥६॥

यर्हि वाव ह राजन् स राजपुत्रः प्रियव्रतः परमभागवतः नारदस्य चरण उपसेवया अञ्जसा अवगतः परमार्थ सतत्त्वः ब्रह्मसत्रेण दीक्षिष्यमाणः अवनितल परिपालनाय आम्नात प्रवर गुणगण एकान्त भाजनतया स्वपित्रा उपामन्त्रितः भगवति वासुदेव एव अव्यवधान समाधियोगेन समावेशित सकलकारक क्रियाकलापः न एव अभ्यनन्दत् यद्यपि तत्

अप्रति आम्नातव्यं तत् अधिकरण आत्मनः अन्यस्मात् असतः अपि पराभवं अन्वीक्षमाणः ॥६॥

राजन्	राजन् !
यर्हि वाव ह	जिस सुअवसरपर निश्चय
स राजपुत्रः	वह राजपुत्र
प्रियव्रतः	प्रियव्रत
परमभागवतः	परम-भगवद्-भक्त
नारदस्य	देवर्षि नारदके
चरण उपसेवया	चरणोंकी सेवासे
अञ्जसा	सुगमता पूर्वक
परमार्थ सतत्त्व	परमार्थतः सत् तत्त्वको
अवगतः	जानकर
ब्रह्मसत्रेण	ब्रह्मज्ञानके चिन्तन-परम्पराकी
दीक्षिष्यमाणः	(संन्यासकी) दीक्षा लेने जा रहे थे, (उसी समय)
अवनितल	पृथ्वीके
परिपालनाय	सम्यक् पालनके लिए
प्रवर आम्नात	श्रेष्ठ-वैदिकज्ञान युक्त (तथा)
गुणगण	अनेक सद्गुणोंके
एकान्त भाजन-तया	एकमात्र पात्र होनेसे
स्वपित्रा	अपने पिता (मनु) द्वारा
उपामन्त्रितः	बुलाये गये (किन्तु)
भगवति वासुदेव एव	भगवान् वासुदेवमें ही
अव्यवधान	निर्बाध
समाधियोगेन	एकाग्रता रूप योगसे
सकलकारक	समस्त करणों (इन्द्रियों) की
क्रियाकलापः	क्रियात्मक चेष्टा
समावेशित	भली प्रकार प्रविष्ट कर देनेसे
न एव	(उस पिताकी आज्ञाका) नहीं ही
अभ्यनन्दत्	अभिनन्दन किया।
यद्यपि	यद्यपि
तत्	वह (उपेक्षा)
आम्नातव्यं	शास्त्रकी माननीय आज्ञाके
अप्रति	अनुकूल नहीं थी (किन्तु)
तत् अधिकरण	उसका आधार
आत्मनः	अपने अन्तःकरणका
अन्यस्मात्	दूसरोंसे
असतः अपि	न होनेपर भी
पराभवं	पराजय
अन्वीक्षमाणः	(वे) देख (समझ) रहे थे ॥६॥

अथ ह भगवानादिदेव एतस्य गुणविसर्गस्य परिबृंहणानुध्यानव्यवसितसकलजगदभिप्राय आत्मयोनिरखिलनिगमनिजगणपरिवेष्टितः स्वभवनादवततार ॥७॥

अथ ह भगवान् आदिदेव एतस्य गुणविसर्गस्य परिबृंहण अनुध्यान व्यवसित सकलजगत् अभिप्राय आत्मयोनिः अखिलनिगम निजगण परिवेष्टितः स्वभवनात् अवततार ॥७॥

ह अथ	निश्चय इसी समय	सकलजगत	सम्पूर्ण जगतके (प्राणियोंका)
भगवान् आदिदेवः	भगवान् आदिदेव	अभिप्राय	संकल्प
आत्मयोनिः	स्वयंभू ब्रह्माजी	व्यवसित	जाननेके कारण,
एतस्य	इस	अखिलनिगम	समस्त वेदों (और)
गुणविसर्गस्य	त्रिगुणोंकी विशेष सृष्टिके	निजगण	अपने पार्षदोंसे
परिबृंहण अनुध्यान	विस्तारके लिए बराबर चिन्तनमें (लगे होनेसे)	परिवेष्टितः	घिरे हुए
		स्वभवनात्	अपने भवन (ब्रह्मलोक) से
		अवततार	उतरे ॥७॥

स तत्र तत्र गगनतल उडुपतिरिव विमानावलिभिरनुपथममरपरिवृढैरभिपूज्यमानः पथि पथि च वरूथशः सिद्धगन्धर्वसाध्यचारणमुनिगणैरुपगीयमानो गन्धमादनद्रोणीमवभासयन्नुपससर्प ॥८॥

स तत्र तत्र गगनतल उडुपतिः इव विमान अवलिभिः अनुपथं अमरपरिवृढैः अभिपूज्यमानः पथि पथि च वरूथशः सिद्ध गन्धर्व साध्य चारण मुनिगणैः उपगीयमानः गन्धमादन द्रोणीं अवभासयन्न उपससर्प ॥८॥

गगनतल	आकाशमें	अनुपथं	मार्गमें पड़नेवाले
उडुपतिः इव	चन्द्रमाके समान	विमान	
स	वे (ब्रह्माजी)	अवलिभिः	विमानोंके झुण्डोंमें
तत्र तत्र	जहां-तहां		

अमरपरिवृढै	आरोहण किये देवताओं द्वारा
अभिपूज्यमानः	आदर सहित पूजित होते
च पथि पथि	तथा मार्गोंमें
वरूथशः	दलकेदल
सिद्ध, गन्धर्व साध्य चारण	सिद्धों, गन्धर्वों, साध्यगण, चारणों,
मुनिगणैः	मुनिगणों द्वारा
उपगीयमानः	स्तुति किये जाते,
गन्धमादन द्रोणीं	गन्धमादन गिरिके शिखरको
अवभासयन्	प्रकाशित करते
उपससर्प	समीप पहुँचे ॥८॥

तत्र ह वा एनं देवर्षिर्हंसयानेन पितरं भगवन्तं हिरण्यगर्भमुपलभमानः सहसैवोत्थायार्हणेन सह पितापुत्राभ्यामवहिताञ्जलिरुपतस्थे ॥९॥

तत्र ह वा एनं देवर्षिः हंसयानेन पितरं भगवन्तं हिरण्यगर्भं उपलभमानः सहसा एव उत्थाय अर्हणेन सह पिता पुत्राभ्यां अवहित अञ्जलिः उपतस्थे ॥९॥

तत्र	वहां
एनं ह वा	इनको निश्चयपूर्वक पहिचानकर
देवर्षिः	देवर्षि नारदने
पितरं	अपने पिता
भगवन्तं	भगवान
हिरण्यगर्भं	ब्रह्माजीको
उपलभमानः	समीप पाकर
सहसा एव	सहसा ही
उत्थाय	उठकर खड़े होकर
सह पुत्राभ्यां	पुत्रों (सनकादि ऋषियों) के साथ
पिता	पिताके लिए
अवहित	
अञ्जलिः	हाथ जोड़कर
उपतस्थे	समीप खड़े हो गये ॥९॥

भगवानपि भारत तदुपनीतार्हणः सूक्तवाकेनातितरामुदितगुणगणावतारसुजयः प्रियव्रतमादिपुरुषस्तं सदयहासावलोक इति होवाच ॥१०॥

भगवान् अपि भारत तत् उपनीत अर्हणः सूक्त वाकेन अतितरां मुदित गुणगण अवतार सुजयः प्रियव्रतं आदिपुरुषः तं सदयहास अवलोक इति ह उवाच ॥१०॥

भारत	परीक्षित !	सुजयः	तथा यशोगानसे (प्रसन्न हो)
भगवान् अपि	भगवान् (ब्रह्मा) भी	आदिपुरुषः	आदिपुरुष
तत् उपनीत	उन (प्रियव्रत नारद) की लायी	तं प्रियव्रतं	उन प्रियव्रतको
अर्हणः	पूजा (तथा)	सदयहास	कृपापूर्ण मुस्कराहट (सहित)
सूक्त वाकेन	वैदिक सूक्तोंसे	अवलोक	देखते हुए
अतितरां	अत्यन्त	इति	इस प्रकार
मुदित	आनन्दित होकर	ह उवाच	निश्चित (स्वरमें) बोले ॥१०॥
गुणगण अवतार	गुणसमूहोंके वर्णन		

ब्रह्मोवाच*—

निबोध तातेदमृतं ब्रवीमि
मासूयितुं देवमर्हस्यप्रमेयम् ।
वयं भवस्ते तत एष महर्षि-
र्वहाम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ॥११॥

निबोध तात इदं अमृतं ब्रवीमि मा असूयितुं देवं अर्हसि अप्रमेयं वयं भवः ते तत एष महर्षिः वहाम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ॥११॥

तात	वत्स !	ब्रवीमि	बतलाता हूँ,
निबोध	सुनो,	अप्रमेयं देवं	अप्रमेय देव (श्रीहरि) से
इदं अमृतं	यह अमृत (अविनाशी सत्य)	असूयितुं	(तुम्हें) असूया

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'श्रीभगवानुवाच' है।

मा अर्हसि	नहीं करना चाहिए ।
वयं	हम सब
भवः	शंकरजी
ते तत एष	तुम्हारे विश्वस्त ये
महर्षिः	देवर्षि नारद,
सर्वे	सब लोग
यस्य दिष्टं	जिसका (प्रदत्त) प्रारब्ध
विवशा	विवश होकर
वहाम	ढोते (मानते) हैं ॥११॥

न तस्य कश्चित्तपसा विद्यया वा
न योगवीर्येण मनीषया वा ।
नैवार्थधर्मैः परतः स्वतो वा
कृतं विहन्तुं तनुभृद्विभूयात् ॥१२॥

न तस्य कश्चित् तपसा विद्यया वा न योगवीर्येण मनीषया वान एव अर्थ धर्मैः परतः स्वतः वा कृतं विहन्तुं तनुभृत् विभूयात् ॥१२॥

तस्य कृतं	उन (भगवान्) के किये (विधान) को
कश्चित्	कोई भी
तनुभृत्	शरीरधारी
तपसा	तपस्यासे
वा विद्यया न	अथवा किसी विद्यासे नहीं,
योगवीर्येण	योगकी शक्तिसे
वा मनीषया न	अथवा बुद्धिसे नहीं,
अर्थ धर्मैः	धनसे या धर्म बलसे
स्वतः	स्वयं
वा परतः	अथवा दूसरे (की सहायता) से
विहन्तुं	नष्ट करनेमें
न एव	नहीं ही
विभूयात्	समर्थ हो सकता ॥१२॥

भवाय नाशाय च कर्म कर्तुं
शोकाय मोहाय सदा भयाय ।
सुखाय दुःखाय च देहयोग-
मव्यक्तदिष्टं जनताङ्ग धत्ते । १३॥

भवाय नाशाय च कर्म कर्तुं शोकाय मोहाय सदा भयाय सुखाय दुःखाय च देहयोगं अव्यक्त दिष्टं जनता अङ्ग धत्ते ॥१३॥

अङ्ग	प्रिय (वत्स) !
जनता	लोग
भवाय	उत्पन्न होनेके लिए,
नाशाय च	मरनेके लिए तथा
कर्म कर्तुं	कर्म करनेके लिए,
शोकाय	शोकके लिए,
मोहाय	मोहके लिए,
सदा भयाय	नित्य भयग्रस्त रहनेके लिए,
सुखाय	सुखके लिए,
च दुःखाय	तथा दुःख (भोगने) के लिए
अव्यक्त दिष्टं	अव्यक्त प्रारब्धके अनुसार
देहयोगं	शरीरका योग (शरीर)
धत्ते	धारण करते हैं ॥१३॥

यद्वाचि तन्त्यां गुणकर्मदामभिः
सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः ।
सर्वे वहामो बलिमीश्वराय
प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥१४॥

यद् वाचि तन्त्यां गुणकर्म दामभिः सुदुस्तरैः वत्स वयं सुयोजिताः सर्वे वहामः बलिं ईश्वराय प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥१४॥

वत्स	बत्स !
द्विपदे	द्विपद (मनुष्यों) के लिए
चतुष्पदः	चौपाये (पशु) के
नसीव	नाककी रस्सीके समान
प्रोता	पिरोये
यद्	जिसकी
वाचि	वाणी (वेदवाणी) रूपी
तन्त्यां	तांत (रस्सी) में
सुदुस्तरैः	अत्यन्त दुस्तर
गुण कर्म	त्रिगुण और कर्मकी
दामभिः	रस्सी द्वारा
वयं सर्वे	हम सब
सुयोजिताः	भली प्रकार लगाये गये
ईश्वराय	(उस) सर्वेश्वरके लिए
बलिं	उपहार
वहामः	ढोते (देते) हैं ॥१४॥

ईशाभिसृष्टं हरवरुन्धमहेऽङ्ग
दुःखं सुखं वा गुणकर्मसङ्गात् ।

आस्थाय तत्तद्यदयुङ्क्त नाथ-
श्चक्षुष्मतान्धा इव नीयमानाः ॥१५॥

ईश अभिसृष्टं हि अवरुन्धमहे अङ्ग दुःखं सुखं वा गुण कर्मसङ्गात् आस्थाय तत् तत् यत् अयुङ्क्त नाथः चक्षुष्मत् अन्धा इव नीयमानः ॥१५॥

चक्षुष्मत्	आँखवाला	अवरुन्धमहे	हम नियन्त्रित होते हैं।
नाथः	स्वामी	गुण	गुणों तथा
अन्धा		कर्मसङ्गात्	कर्मोंकी आसक्तिमें
नीयमानः	अन्धेको ले जातेके	आस्थाय	स्थित होकर
इव हि	समान क्योंकि	दुःखं	दुःख
अङ्ग	वत्स !	वा सुखं	अथवा सुख
ईश	ईश्वरके	तत् तत्	वह वह
अभिसृष्टं	बनाये (विधान)के अनुसार	अयुङ्क्त	भोगते हैं ॥१५॥

मुक्तोऽपि तावद्बिबभृयात्स्वदेह-
मारब्धमश्नन्नभिमानशून्यः ।
यथानुभूतं प्रतियातनिद्रः
किं त्वन्यदेहाय गुणान्न वृङ्क्ते ॥१६॥

मुक्तः अपि तावत् बिभृयात् स्वदेहं आरब्धं अश्नन् अभिमान शून्यः यथा अनुभूतं प्रतियात निद्रः किं तु अन्य देहाय गुणान् न वृङ्क्ते ॥१६॥

यथा	जैसे	तावत्	तब तक
प्रतियात निद्रः	निद्रासे जगा हुआ	स्वदेहं	अपने शरीरको
यथा	(स्वप्नमें) जैसा	अभिमान शून्यः	अभिमान रहित होकर
अनुभूतं	अनुभव हुआ था (स्मरण करता है)	आरब्ध	प्रारब्ध
मुक्तः अपि	(वैसेही) मुक्त होनेपर भी	अश्नन्	भोगता हुआ
		बिभृयात्	धारण करता है,

किं नु	लेकिन	गुणान्	गुणोंका
अन्य देहाय	दूसरा शरीर पानेके लिए	वृङ्क्ते न	वरण नहीं करता ॥१६॥

भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्यात्
यतः स आस्ते सहषट्सपत्नः ।
जितेन्द्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य
गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम् ॥१७॥

भयं प्रमत्तस्य वनेषु अपि स्यात् यतः स आस्ते सह षट् सपत्नः जितेन्द्रियस्य आत्मरतेः बुधस्य गृहाश्रमः किं नु करोति अवद्यम् ॥१७॥

प्रमत्तस्य	प्रमादग्रस्तके लिए	जितेन्द्रियस्य	इन्द्रियोंको जीत लेनेवाले,
वनेषु अपि	वनमें भी	आत्मरतेः	अपने आत्मामें ही रत
भयं स्यात्	(पतनका) भय होता है,	बुधस्य	बुद्धिमानके लिए
यतः स	क्योंकि वह	गृहाश्रमः	गृहस्थाश्रम
षट्	छ (कामादि)	किं नु	क्या तो
सपत्नः	शत्रुओंके	अवद्यं	हानि
सह आस्ते	साथ है ।	करोति	करता है ॥१७॥

यः षट् सपत्नान् विजिगीषमाणो
गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वम् ।
अत्येति दुर्गाश्रित ऊर्जितारीन्
क्षीणेषु कामं विचरेद्विपश्चित् ॥१८॥

यः षट् सपत्नान् विजिगीषमाणः गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वं अति एति दुर्गं आश्रित ऊर्जित अरीन् क्षीणेषु कामं विचरेत् विपश्चित् ॥१८॥

यः	जो
षट् सपत्नान्	छः (कामादि) शत्रुओंको
विजिगीषमाणः	विजय करना चाहता हो
पूर्वं	(वह) पहिले
गृहेषु	गृहस्थाश्रममें
निर्विश्य	प्रवेश करके
यतेत	(उन्हें जीतनेका) प्रयत्न (साधन) करे
दुर्ग आश्रित	(इस प्रकार) किलेका सहारा लेकर
ऊर्जित	बलवान
अरीन्	शत्रुओंका
अति एति	अतिक्रान्त (परा-जित) कर लेता है
कामं	कामनाओंके
क्षीणेषु	क्षीण हो जानेपर
विपश्चित्	विवेकी (व्यक्ति)
विचरेत्	विचरण करे (परि-व्राजक बने) ॥१८॥

त्वं त्वब्जनाभाङ्घ्रिसरोजकोश-
दुर्गाश्रितो निर्जितषट्सपत्नः ।
भुङ्क्ष्वेह भोगान् पुरुषातिदिष्टान्
विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्व ॥१९॥

त्वं तु अब्जनाभ अङ्घ्रिसरोज कोश दुर्ग आश्रितः निर्जित षट् सपत्नः भुङ्क्ष्व इह भोगान् पुरुष अतिदिष्टान् विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्व ॥१९॥

त्वं तु	तुम तो
अब्जनाभ	भगवान् कमलनाभ-के
अङ्घ्रिसरोज	चरण-कमलके
कोश दुर्ग	कोश रूपी दुर्गके
आश्रितः	आश्रित होकर
षट् सपत्नः	छहों शत्रुओंको
निर्जित	जीत चुके,
इह	(अब) इस लोकमें
पुरुष अतिदिष्टान्	परम पुरुष द्वारा निर्दिष्ट (प्रदत्त)
भोगान्	भोगोंको
भुङ्क्ष्व	भोगो (तथा)
विमुक्तसंगः	आसक्ति त्यागकर
प्रकृतिं	प्रजाकी
भजस्व	सेवा (पालन) करो ॥१९॥

श्रीशुक उवाच-

इति समभिहितो महाभागवतो भगवतस्त्रिभुवनगुरोरनुशासनमात्मनो लघुतयावनतशिरोधरो बाढमिति सबहुमानमुवाह ॥२०॥

इति समभिहितः महाभागवतः भगवतः त्रिभुवन गुरोः अनुशासनं आत्मनः लघुतया अवनतः शिरः अधरः बाढं इति सबहुमानं उवाह ॥२०॥

इति	इस प्रकार
सम अभिहितः	भली प्रकार समझानेपर
महाभागवतः	परम भगवद्-भक्त (प्रियव्रत)ने
त्रिभुवन गुरोः	तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ
भगवतः	भगवान् (ब्रह्मा)की
अनुशासनं	आज्ञाको
आत्मनः	अपने
लघुतया	छोटे होनेके कारण
शिरः	सिर और
अधरः	शरीरका ऊपरी भाग
अवनतः	झुकाकर
बाढं इति	बहुत अच्छा, इस-प्रकार
सबहुमानं	बहुत सम्मानपूर्वक
उवाह	स्वीकार किया॥२०॥

भगवानपि मनुना यथावदुपकल्पितापचितिः प्रियव्रतनारदयोरविषममभिसमीक्षमाणयोरात्मसमवस्थानमवाङ्मनसं क्षयमव्यवहृतं प्रवर्तयन्नगमत् ॥२१॥

भगवान् अपि मनुना यथावत् उपकल्पित अपचितिः प्रियव्रत नारदयोः अविषमं अभिसमीक्षमाणयोः आत्म समवस्थानं अवाङ् मनसं क्षयं अव्यवहृतं प्रवर्तयन् अगमत् ॥२१॥

भगवान् अपि	भगवान् (ब्रह्मा) भी
मनुना	मनुके द्वारा
यथावत्	उचित
अपचितिः	कृतज्ञता
उपकल्पित	किए जानेपर
प्रियव्रत नारदयोः	प्रियव्रत और नारद द्वारा
अविषमं	समान रूपसे

अभिसमीक्षमाणयोः	उत्सुकतापूर्वक देखे जाते (दर्शन करते)
आत्म अवाङ् मनसं क्षयं	अपनी वाणी, मनसे परे विनाशसे
अव्यवहृतं	अस्पृष्ट
समवस्थानं	समतामें स्थिति (ब्रह्मस्थिति)को
प्रवर्तयन्	चिन्तन करते
अगमत्	चले गये ॥२१॥

मनुरपि परेणैवं प्रतिसन्धितमनोरथः सुरर्षिवरानुमतेनात्मजमखिलधरामण्डलस्थितिगुप्तय आस्थाप्य स्वयमतिविषमविषयविषजलाशयाशाया उपरराम ॥२२॥

मनुः अपि परेण एवं प्रतिसन्धित मनोरथः सुरर्षिवर अनुमतेन आत्मजं अखिल धरामण्डल स्थिति गुप्तय आस्थाप्य स्वयं अतिविषम विषयविष जल आशय आशाया उपरराम ॥२२॥

मनुः अपि	(स्वायम्भुव) मनु भी
परेण	दूसरेके द्वारा
एवं	इस प्रकार
मनोरथः	मनोरथके
प्रतिसन्धित	पूर्ण किए जानेपर
सुरर्षिवर	देवर्षि श्रेष्ठकी
अनुमतेन	अनुमतिसे
आत्मजं	अपने पुत्र (प्रियव्रत) को
अखिल धरामण्डल	सम्पूर्ण पृथ्वीकी
स्थिति गुप्तय	स्थितिकी रक्षाके लिए
आस्थाप्य	नियुक्ति करके
स्वयं	स्वयं
अतिविषम	बहुत असह्य
विषयविष	विषयरूपी विषोंके
जल आशया	जलकी आशाके समान
आशाया	आशा (कामनाओं)से
उपरराम	उपरत (विरक्त) हो गये ॥२२॥

इति ह वाव स जगतीपतिरीश्वरेच्छयाधिनिवेशितकर्माधिकारोऽखिलजगद्बन्धध्वंसनपरानुभावस्य भगवत आदिपुरुषस्याङ्घ्रियुगलानवरतध्यानानुभावेन परिरन्धितकषायाशयोऽवदातोऽपि मानवर्धनो महतां महीतलमनुशशास ॥२३॥

इति ह वाव स जगतीपतिः ईश्वर इच्छया अधिनिवेशित कर्म अधिकारः अखिल जगत् बन्ध ध्वंसन पर अनुभावस्य भगवतः आदिपुरुषस्य अङ्घ्रियुगल अनवरत ध्यान अनुभावेन परिरन्धित कषाय आशयः अवदातः अपि मानवर्धनः महतां महीतलं अनुशशास ॥२३॥

इति	इस प्रकार
ह वाव	निश्चय इसी कारण
स जगतीपतिः	वे संसारके स्वामी
ईश्वर इच्छया	सर्वेश्वरकी इच्छासे
कर्म अधिकारः	कर्म करनेके अधिकारी (पदपर)
अधिनिवेशित	पूर्णतः प्रतिष्ठित ✓ किये जानेपर ✓
अखिल जगत्	सम्पूर्ण संसारके
बन्ध ध्वंसन	बन्धनको नष्ट करनेवाले
पर अनुभावस्य	परम प्रभावशाली
भगवतः	भगवान्
आदिपुरुषस्य	आदिपुरुष (श्रीहरि) के
अङ्घ्रि युगल	दोनों चरणोंके
अनवरत	निरन्तर
ध्यान	
अनुभावेन	ध्यानके प्रभावसे
आशयः	चित्तके
कषाय	दोषके
परिरन्धित ✓	परिपाक हो जानेसे
अवदातः अपि ✓	निर्मल होनेपर भी
महतां	महत्तमोंके
मानवर्धनः	सम्मानको बढ़ानेवाले होनेसे
महीतलं	पृथ्वीका
अनुशशास	शासन करने लगे ॥२३॥

अथ च दुहितरं प्रजापतेर्विश्वकर्मण उपयेमे बर्हिष्मतीं नाम तस्यामु ह वाव आत्मजानात्मसमानशीलगुणकर्मरूपवीर्यो-दारान्दश भावयाम्बभूव कन्यां च यवीयसीमूर्जस्वतीं नाम ॥२४॥

अथ च दुहितरं प्रजापतेः विश्वकर्मणः उपयेमे बर्हिष्मतीं नाम तस्यां उ ह वाव आत्मजान् आत्मसमान शील गुण कर्म रूप वीर्य उदारान् दश भावयां बभूव कन्यां च यवीयसीं ऊर्जस्वतीं नाम ॥२४॥

अथ च	फिर तो
प्रजापतेः	प्रजापति
विश्वकर्मणः	विश्वकर्माकी
बर्हिष्मतीं नाम	बर्हिष्मती नामक
दुहितरं	पुत्रीसे
उपयेमे	विवाह किया,

तस्यां उ ह वाव	उसमें तो निश्चय करके
आत्मसमान	अपने समान
शील गुण	शील, गुण,
कर्म रूप	कर्म, रूप,
वीर्य उदारान्	पराक्रम, उदारतावाले
दश	दस
आत्मजान् च	पुत्र तथा
ऊर्जस्वतीं नाम	ऊर्जस्वती नामक
यवीयसीं	सबसे छोटी
कन्यां च	कन्याको भी
भावयां बभूव	भावना पूर्वक उत्पन्न किया ॥२४॥

आग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुमहावीरहिरण्यरेतोघृतपृष्ठसवन-मेधातिथिवीतिहोत्रकवय इति सर्व एवाग्निनामनः ॥२५॥

आग्नीध्रः इध्मजिह्वः यज्ञबाहुः महावीरः हिरण्यरेतः घृतपृष्ठः सवनं मेधातिथिः वीतिहोत्रः कवयः इति सर्वएव अग्निः नामानः ॥२५॥

आग्नीध्रः	आग्नीध्र,
इध्मजिह्वः	इध्मजिह्व,
यज्ञबाहुः	यज्ञबाहु,
महावीरः	महावीर,
हिरण्यरेतः	हिरण्यरेत,
घृतपृष्ठः	घृतपृष्ठ,
सवनं	सवन,
मेधातिथिः	मेधातिथि,
वीतिहोत्रः	वीतिहोत्र,
कवयः	कवि
इति	इस प्रकार
सर्वएव	सभी
अग्निः नामनः	अग्निके नामवाले थे ॥२५॥

एतेषां कविर्महावीरः सवन इति त्रयआसन्नूर्ध्वरेतसस्त आत्मविद्यायामर्भभावादारभ्य कृतपरिचयाः पारमहंस्यमेवाश्रममभजन् ॥२६॥

एतेषां कविः महावीरः सवनः इति त्रयः आसन् ऊर्ध्वरेतसः त आत्मविद्यायां अर्भभावात् आरभ्य कृत परिचयाः पारमहंस्यं एव आश्रमं अभजन् ॥२६॥

एतेषां	इनमें-से
कविः महावीरः	कवि, महावीर और
सवनः	सवन
इति त्रयः	इस प्रकार तीन

ऊर्ध्वरेतसः	(आजन्म) ब्रह्मचारी
आसन्	हुए
अर्भभावात्	शैशवके
आरभ्य	प्रारम्भसे ही
आत्मविद्यायां	आत्मविद्यासे
कृत परिचयाः	परिचय करके
पारमहंस्यं आश्रमं एव	परमहंस आश्रमका ही
अभजन्	सेवन किया ॥२६॥

तस्मिन्नु ह वा उपशमशीलाः परमर्षयः सकलजीव-निकायावासस्य भगवतो वासुदेवस्य भीतानां शरणभूतस्य श्रीमच्चरणारविन्दाविरतस्मरणाविगलितपरमभक्तियोगानुभावेन परिभावितान्तर्हृदयाधिगते भगवति सर्वेषां भूतानामात्मभूते प्रत्यगात्मन्येवात्मनस्तादात्म्यमविशेषेण समीयुः ॥२७॥

तस्मिन् नु ह वा उपशमशीलाः परमर्षयः सकल जीव निकाय अवासस्य भगवतः वासुदेवस्य भीतानां शरणभूतस्य श्रीमत् चरणारविन्द अविरत स्मरण अविगलित परमभक्तियोग अनुभावेन परिभावित अन्तः हृदय अधिगते भगवति सर्वेषां भूतानां आत्मभूते प्रत्यक् आत्मनि एव आत्मनः तादात्म्यं अविशेषेण समीयुः ॥२७॥

तस्मिन् नु	उस (पारमहंस्य आश्रम) में तो
ह वा	निश्चय ही
उपशमशीलाः	वैराग्यवान
परमर्षयः	परमर्षि गण
सकल जीव निकाय	समस्त जीववृन्दके
आवासस्य	आवास
भीतानां	(भव भयसे) डरे हुओंके
शरणभूतस्य	आश्रय-स्थान स्वरूप
भगवतः	
वासुदेवस्य	भगवान् वासुदेवके
श्रीमत्	शोभाशाली
चरणारविन्द	चरणकमलोंके
अविरत	निरन्तर
स्मरण	स्मरणसे
अविगलित	निश्चल
परमभक्तियोग	परम (साध्यरूपा) भक्तियोगके
अनुभावेन	प्रभावसे
परिभावित	दृढ़ भावयुक्त
अन्तः हृदय	हृदयके भीतर
अधिगते	प्राप्त
सर्वेषां भूतानां	समस्त प्राणियोंके
आत्मभूते	आत्मा स्वरूप

भगवति	भगवान्‌का
प्रत्यक्	
आत्मनि एव	अपनी अन्तरात्मामें ही
आत्मनः	अपने आपसे
अविशेषेण	निर्विशेष रूपसे
तादात्म्यं	एकात्मताको
समीयुः	पूर्णतः प्राप्त हुए ॥२७॥

अन्यस्यामपि जायायां त्रयः पुत्रा आसन्नुत्तमस्तामसो रैवत इति मन्वन्तराधिपतयः ॥२८॥

अन्यस्यां अपि जायायां त्रयः पुत्राः आसन् उत्तमः तामसः रैवतः इति मन्वन्तर अधिपतयः ॥२८॥

अन्यस्यां	दूसरी
जायायां अपि	पत्नीसे भी
त्रयः पुत्राः	तीन पुत्र
आसन्	थे
उत्तमः	उत्तम,
तामसः	तामस और
रैवतः	रैवत
इति	इस प्रकार
मन्वन्तर	(ये) मन्वन्तरोंके
अधिपतयः	अधिपति (मनु) हुए ॥२८॥

एवमुपशमायनेषु स्वतनयेष्वथ जगतीपतिर्जगतीमर्बुदान्येकादश परिवत्सराणामव्याहताखिलपुरुषकारसारसम्भृतदोर्दण्डयुगलापीडितमौर्वीगुणस्तनितविरमितधर्मप्रतिपक्षो बर्हिष्मत्याश्चानुदिनमेधमानप्रमोदप्रसरणयौषिण्यव्रीडाप्रमुषितहासावलोकरुचिरक्ष्वेल्यादिभिः पराभूयमानविवेक इवानवबुध्यमान इव महामना बुभुजे ॥२९॥

एवं उपशम अयनेषु स्वतनयेषु अथ जगतीपतिः जगतीं अर्बुदानि एकादश परिवत्सराणां अव्याहत अखिल पुरुषकार सार सम्भृत दोः दण्ड युगल आपीडित मौर्वीगुण स्तनित विरमित धर्म प्रतिपक्षः बर्हिष्मत्याः च अनुदिनं एधमान प्रमोद प्रसरण यौषिण्य व्रीडा प्रमुषित हास अवलोक रुचिरक्ष्वेल्यादिभिः पराभूयमान विवेक इव अनवबुध्यमान इव महामना बुभुजे ॥२९॥

एवं स्वतनयेषु उपशम अयनेषु इस प्रकार अपने (कवि आदि तीन) पुत्रोंके वैराग्यको घर बना लेने (विरक्त हो जाने) पर

अथ फिर

जगतीपतिः पूरे संसारके स्वामी (प्रियव्रत) ने

अबुंदानि एकादश परिवत्सराणां ग्यारह अरब वर्षों तक

जगतीं पृथ्वीका (शासन किया)

अव्याहत अखिल पुरुषकार अक्षीण सम्पूर्ण पुरुष सामर्थ्यके

सार सम्भृत सारमें परिपूर्ण

दोः दण्ड युगल आपीडित (अपनी) दोनों भुजाओंसे दबाकर

स्तनित मौर्वीगुण खींचे गये धनुषकी प्रत्यञ्चाके द्वारा

धर्म प्रतिपक्षः धर्म विरोधियोंको

विरमति बर्हिष्मत्याः निष्क्रिय कर दिया था (महारानी) बर्हिष्मती द्वारा

अनुदिनं दिन दिन

एधमान बढ़ते हुए

प्रमोद आनन्द विलास

यौषिण्य स्त्रियोंकी विशेष (मटकती)

प्रसरण चाल

व्रीडा प्रमुषित लज्जाको चुरा रखा ऐसी

हास अवलोक (लज्जापूर्ण) मुस्कान सहित देखनेकी भंगीसे

रुचिर-क्ष्वेल्यादिभिः मनोहर परिहासादि-से

पराभूयमान पराजित

विवेक इव अनवबुध्यमान इव विवेकके समान आत्म विस्मृत जैसे होकर

महामना बुभुजे परम उदार चित्तसे (भोगोंको) भोगते रहे ॥२९॥

यावदवभासयति सुरगिरिमनुपरिक्रामन् भगवानादित्यो वसुधातलमर्धेनैव प्रतपत्यर्धेनावच्छादयति तदा हि

भगवदुपासनोपचितातिपुरुषप्रभावस्तदनभिनन्दन् समजवेन रथेन ज्योतिर्मयेन रजनीमपि दिनं करिष्यामीति सप्तकृत्वस्तरणिमनुपर्यक्रामद् द्वितीय इव पतङ्गः ॥३०॥

यावत् अवभासयति सुरगिरिं अनुपरिक्रामन् भगवान् आदित्यः वसुधातलं अर्धेन एव प्रतपति अर्धेन अवच्छादयति तदा हि भगवत् उपासना उपचित अतिपुरुष प्रभावः तत् अनभिनन्दन् समजवेन रथेन ज्योतिः मयेन रजनीं अपि दिनं करिष्याम इति सप्तकृत्वः तरणिं अनु पर्यक्रामत् द्वितीय इव पतङ्गः ॥३०॥

सुरगिरिं	सुमेरुकी	**भगवत्**	
अनुपरिक्रामन्	चारों ओर परिक्रमा करते हुए	**उपासना**	भगवान्‌की उपासनासे
भगवान्		**उपचित**	प्राप्त
आदित्यः	भगवान सूर्य	**अतिपुरुष**	अतिमानव
यावत्	जहाँ तक (जगतको)	**प्रभावः**	प्रभाववाले (होनेसे)
अवभासयति	प्रकाशित करते हैं (उसमें)	**समजवेन**	समान वेगवाले
वसुधातलं	भूतल (एक साथ)	**ज्योतिः मयेन**	ज्योतिर्मय
अर्धेन एव	आधा ही	**रथेन**	रथके द्वारा
प्रतपति	प्रकाशित करते हैं,	**रजनीं अपि**	रात्रिको भी
अर्धेन	(दूसरे) आधे भागको	**दिनं करिष्याम**	दिन बना दूंगा
अवच्छादयति	ढक देते हैं,	**इति**	ऐसा सोचकर
तत्	इसे	**तरणि**	सूर्यके
अनभिनन्दन्	पसन्द न करके	**अनु**	पीछे
तदा हि	उस समय तो	**सप्तकृत्वः**	सात बार
		द्वितीय	दूसरे
		पतङ्गः इव	सूर्यके समान
		पर्यक्रामत्	परिक्रमा की ॥३०॥

ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्त सिन्धव आसन् यत एव कृताः सप्त भुवो द्वीपाः ॥३१॥

ये वा उ ह तत् रथ चरण नेमि कृतः परिखाः ताः ते सप्त सिन्धवः आसन् यत एव कृताः सप्त भुवः द्वीपाः ॥३१॥

ये	जो
वा उ ह	निश्चय वहां उस समय
तत्	उनके
रथ चरण नेमि	रथके पहियोंके घेरेसे
परिखाः कृतः	खाइयां बन गयीं
ते	वही
सप्त सिन्धवः	
आसन्	सात समुद्र हो गये
यत एव	जिनसे ही
भुवः	पृथ्वीके
सप्त द्वीपाः	सात द्वीप*
कृताः	बन गये ॥३१॥

जम्बूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौञ्चशाकपुष्करसंज्ञास्तेषां परिमाणं पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो यथासंख्यं द्विगुणमानेन बहिः समन्तत उपक्लृप्ताः ॥३२॥

जम्बू प्लक्ष शाल्मलि कुश क्रौञ्च शाक पुष्कर संज्ञाः तेषां परिमाणं पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् उत्तर उत्तरः यथा संख्यं द्विगुणमानेन बहिः समन्तत उपक्लृप्ताः ॥३२॥

जम्बू	जम्बू,
प्लक्ष	प्लक्ष,
शाल्मलि	शाल्मलि,
कुश	कुश,
क्रौञ्च	क्रौञ्च,
शाक	शाक,
पुष्कर	पुष्कर
संज्ञाः	नामवाले (ये सात द्वीप) हैं
तेषां	उनका
परिमाणं	घेरा
पूर्वस्मात् पूर्वस्मात्	पहिलोंसे
यथा संख्यं	क्रमशः
उत्तर उत्तरः	पिछले
द्विगुणमानेन	दुगुने विस्तारवाले हैं
बहिः समन्तत	बाहर चारों ओरसे
उपक्लृप्ताः	घिरे हुए हैं ॥३२॥

---

* इस वर्णनमें लोकालोक पर्यन्त सम्पूर्ण भाग भूतल कहा गया है। अतः वर्तमान ज्ञात पृथ्वीमें इस वर्णनकी संगति नहीं ढूंढ़ना चाहिए।

क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमण्डोदशुद्धोदाः सप्त जलधयः सप्त द्वीपपरिखा इवाभ्यन्तरद्वीपसमाना एकैकश्येन यथानुपूर्वं सप्तस्वपि बहिर्द्वीपेषु पृथक्परित उपकल्पितास्तेषु जम्ब्वादिषु बर्हिष्मतीपतिरनुव्रतानात्मजानाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान् यथासंख्येनैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिं विदधे ॥३३॥

क्षारोदः इक्षुरसोदः सुरोदः घृतोदः क्षीरोदः दधिमण्डोदः शुद्धोदाः सप्त जलधयः सप्त द्वीप परिखा इव अभ्यन्तर द्वीप समाना एक एकश्येन यथा अनुपूर्वं सप्तसु अपि बहिः द्वीपेषु पृथक परितः उपकल्पिताः तेषु जम्बू आदिषु बर्हिष्मतीपतिः अनुव्रतान् आत्मजान् आग्नीध्रः इध्मजिह्वः यज्ञबाहुः हिरण्यरेताः घृतपृष्ठः मेधातिथिः वीतिहोत्रः संज्ञान् यथा संख्येन एक एकस्मिन् एकं एव अधिपतिं विदधे ॥३३॥

क्षारोदः	क्षारोद,
इक्षुरसोदः	इक्षुरसोद,
सुरोदः	सुरोद,
घृतोदः	घृतोद,
क्षीरोदः	क्षीरोद,
दधिमण्डोदः	दधिमण्डोद,
शुद्धोदाः	शुद्धोद*
सप्त जलधयः	(ये) सात समुद्र
सप्तद्वीप	सातो द्वीपोंकी
परिखा इव	खाईं के समान हैं
अभ्यन्तर द्वीप	(ये समुद्र) अपने भीतरी द्वीप
समाना	के बराबर हैं
एक एकश्येन	एक दूसरेसे
यथा अनुपूर्वं	यथा क्रम
सप्तसु	सातो ही
द्वीपेषु	द्वीपोंके
बहिः अपि	बाहर भी
पृथक	अलग-अलग
परितः	चारो ओर
उपकल्पिताः	बनायेके समान हैं
तेषु	उन
जम्बू आदिषु	जम्बू आदि (द्वीपों) में
बर्हिष्मतीपतिः	बर्हिष्मतीके पति (प्रियव्रत)

* स्पष्ट है कि क्षारोद (खारे समुद्र) को छोड़कर दूसरे कोई समुद्र न भूतलपर और न अन्तरिक्षमें कहीं ज्ञात हैं। अवश्य अन्तरिक्षके वातावरणमें इनके तत्त्वोंके सूक्ष्मसार होने सम्भव हैं।

अनुव्रतान	अनुकूल आचरणवाले	मेधातिथिः	मेधातिथि (तथा)
आत्मजान्	(अपने) पुत्र	वीतिहोत्रः	वीतिहोत्र
आग्नीध्रः	आग्नीध्र,	संज्ञान्	नामवालोंको
इध्मजिह्वः	इध्मजिह्व,	यथा संख्येन	क्रमानुसार
यज्ञबाहुः	यज्ञबाहु,	एक एकस्मिन्	एक-एक (द्वीप) में
हिरण्यरेता	हिरण्यरेता,	एकं एव	एकको ही
धृतपृष्ठः	धृत पृष्ठ,	अधिपतिं	(उसका) अधिपति
		विदधे	बनाया ॥३३॥

दुहितरं चोर्जस्वतीं नामोशनसे प्रायच्छद्यस्यामासीद् देवयानी नाम काव्यसुता ॥३४॥

दुहितरं च ऊर्जस्वतीं नाम उशनसे प्रायच्छत् यस्यां आसीत् देवयानी नाम काव्यसुता ॥३४॥

ऊर्जस्वतीं नाम	ऊर्जस्वती नामक	यस्यां	जिससे
दुहितरं च	पुत्रीको तो	काव्यसुता	शुक्राचार्यकी पुत्री
उशनसे	शुक्राचार्यको	देवयानी नाम	देवयानी नामकी
प्रायच्छत्	प्रदान किया,	आसीत्	थी ॥३४॥

नैवंविधः पुरुषकार उरुक्रमस्य
पुंसां तदङ्घ्रिरजसा जितषड्गुणानाम् ।
चित्रं विदूरविगतः सकृदाददीत
यन्नामधेयमधुना स जहाति बन्धम् ॥३५॥

न एवं विधः पुरुषकार उरुक्रमस्य पुंसां तत् अङ्घ्रि रजसा जित-षड्गुणानां चित्रं विदूरविगतः सकृत् आददीत यत् नामधेयं अधुना स जहाति बन्धम् ॥३५॥

उरुक्रमस्य	अनन्त पराक्रम	अङ्घ्रि रजसा	चरणरजके प्रभावसे
पुंसां	परमपुरुष और		(शोक-मोह, भूख-
तत्	उनकी		प्यास, जरा-मृत्यु),

जितषड्गुणानां	छः गुणोंको जीत लेनेवालेके लिए
एवं विधः	इस प्रकारका
पुरुषकार	पुरुष-प्रयत्न
चित्रं न	आश्चर्यजनक नहीं है।
अधुना (अपि)	(क्योंकि) आज भी
विदूरविगतः	वर्णबहिष्कृत (चाण्डालादि) भी
यत्	जिनके (भगवान्)
नामधेयं	नामोंको
सकृत्	केवल एक बार
आददीत	लेता है तो
स बन्धं	वह (संसार) बन्धनको
जहाति	त्याग देता (छूट जाता) है ॥३५॥

स एवमपरिमितबलपराक्रम एकदा तु देवर्षिचरणानुशयनानुपतितगुणविसर्गसंसर्गेणानिर्वृतमिवात्मानं मन्यमान आत्मनिर्वेद इदमाह ॥३६॥

स एवं अपरिमित बल पराक्रम एकदा तु देवर्षि चरण अनुशयन अनुपतित गुण विसर्ग संसर्गेण अनिर्वृतं इव आत्मानं मन्यमान आत्मनिर्वेदं इदं आह ॥३६॥

एवं	इस प्रकारके
अपरिमित	असीम
बल पराक्रम	बल-पराक्रमवाले
स एकदा तु	वे एक बार तो
देवर्षि	देवर्षि नारदके
चरण अनुशयन	चरणोंके पीछे ही रहने (की स्थितिसे)
अनुपतित	च्युत होकर
गुण विसर्ग	त्रिगुणोंकी विशेष सृष्टिके
संसर्गेण	सम्पर्कमें आनेसे
अनिर्वृतं इव	अशान्तसे
आत्मानं	
मन्यमान	अपनेको मानते हुए
आत्मनिर्वेदं	अपने वैराग्यको व्यक्त करते
इदं आह	यह बोले ॥३६॥

अहो असाध्वनुष्ठितं यदभिनिवेशितोऽहमिन्द्रियैरविद्यारचितविषमविषयान्धकूपे तदलममुष्या वनिताया विनोदमृगं मां धिग्धिगिति गर्हयाञ्चकार ॥३७॥

अहो असाधु अनुष्ठितं यत् अभिनिवेशितः अहं इन्द्रियैः अविद्या रचित विषम विषय अन्धकूपे तत् अलं अलं अमुष्या वनिताया विनोदमृगं मां धिक् धिक् इति गर्हयां चकार ॥३७॥

अहो	'ओह !	तत् अलं अलं	इससे बस-बस !
असाधु	बुरा	अमुष्या	इस
अनुष्ठितं	हुआ,	वनिताया	स्त्रीके
यत् अहं	जो मैं	विनोदमृगं	क्रीड़ा करनेका बन्दर बने
इन्द्रियैः	इन्द्रियोंके द्वारा		
अविद्या रचित	अविद्याके बताये	मां	मुझे
विषम	कष्टमय	धिक् धिक्	बार-बार धिक्कार।'
विषय	विषयोंके	इति	इस प्रकार
अन्धकूपे	अन्धे (सूखे) कुएंमें	गर्हयां	(अपनी) निन्दा
अभिनिवेशितः	डाल दिया गया।	चकार	करने लगे ॥३७॥

परदेवताप्रसादाधिगतात्मप्रत्यवमर्शेनानुप्रवृत्तेभ्यः पुत्रेभ्य इमां यथादायं विभज्य भुक्तभोगां च महिषीं मृतकमिव सहमहाविभूतिमपहाय स्वयं निहितनिर्वेदो हृदि गृहीतहरिविहारानुभावो भगवतो नारदस्य पदवीं पुनरेवानुससार ॥३८॥

परदेवता प्रसाद अधिगत आत्म प्रत्यवमर्शेन अनुप्रवृत्तेभ्यः पुत्रेभ्यः इमां यथादायं विभज्य भुक्तभोगां च महिषीं मृतकं इव सह महाविभूतिं अपहाय स्वयं निहित निर्वेदः हृदि गृहीत हरि विहार अनुभावः भगवतः नारदस्य पदवीं पुनः एव अनुससार ॥३८॥

परदेवता	परमदेवता (श्रीहरि) की	आत्म प्रत्यवमर्शेन	आत्मतत्त्व विचारसे (युक्त हो)
प्रसाद	कृपासे		
अधिगत	प्राप्त	अनुप्रवृत्तेभ्यः	(अपने) अनुगत
		पुत्रेभ्यः	पुत्रोंको

इमां	इस पृथ्वीको	निहित	धारण करके
यथादायं	उत्तराधिकार नियमके अनुसार	हरि विहार अनुभावः	श्रीहरिकी लीलाओंका प्रभाव
विभज्य	बांटकर,		
भुक्तभोगां	(जिसके साथ) अनेक भोग भोगे थे उस	गृहीतः	ग्रहण (चिन्तन) करते
		पुनः एव	फिरसे
महिषीं	महारानीको	भगवतः	
मृतकं इव	मरी हुईके समान,	नारदस्य	भगवान नारदके
महाविभूति सह	महान् वैभवके साथ	पदवीं	बतलाये मार्गका
अपहाय	छोड़ दिया।	अनुससार	अनुसरण करने लगे ॥३८॥
स्वयं	अपने आप		
हृदि निर्वेदः	हृदयमें वैराग्य		

तस्य ह वा एते श्लोकाः—

तस्य ह वा एते श्लोकाः—

तस्य	उन (महाराज प्रियव्रत) के सम्बन्धमें	ह वा	निश्चित रूपसे
		एते	ये (नीचेके)
		श्लोकाः	श्लोक प्रसिद्ध हैं—

प्रियव्रतकृतं कर्म को नु कुर्याद्विनेश्वरम्।
यो नेमिनिम्नैरकरोच्छायां घ्नन् सप्त वारिधीन् ॥३९॥

प्रियव्रत कृतं कर्म कः नु कुर्यात् विना ईश्वरं यः नेमि निम्नैः अकरोत् छायां घ्नन् सप्त वारिधीन् ॥३९॥

विना ईश्वरं	ईश्वरके अतिरिक्त		सकेगा,
प्रियव्रत कृतं	महाराज प्रियव्रतके किये	यः	जिन्होंने
		छायां घ्नन्	(सूर्यकी) छायाको मिटाते हुए
कर्म	कर्मको		
नु कः कुर्यात्	भला कौन कर		

नेमि निम्नैः	(रथको) नेमिके गड्ढोंसे	सप्त वारिधीन्	सात समुद्र अकरोत् बना दिये ॥३९॥

भूसंस्थानं कृतं येन सरिद्गिरिवनादिभिः ।
सीमा च भूतनिर्वृत्यै द्वीपे द्वीपे विभागशः ॥४०॥

भूसंस्थानं कृतं येन सरित् गिरि वन् आदिभिः सीमा च भूतनिर्वृत्यै द्वीपे द्वीपे विभागशः ॥४०॥

भूतनिर्वृत्यै	प्राणियोंकी सुख-सुविधाके लिए	गिरि	पर्वतों,
येन	जिन्होंने	वन आदिभिः	वन आदिसे
भूसंस्थानं	पृथ्वीकी ठीक स्थिति	द्वीपे द्वीपे	प्रत्येक द्वीपमें
च सरित्	तथा नदियों,	विभागशः	बिभागके अनुसार
		सीमा कृतं	(सबकी) सीमा बना दी ॥४०॥

भौमं दिव्यं मानुषं च महित्वं कर्मयोगजम् ।
यश्चक्रे निरयौपम्यं पुरुषानुजनप्रियः ॥४१॥

भौमं दिव्यं मानुषं च महित्वं कर्मयोगजं यः चक्रे निरय उपम्यं पुरुष अनुजन प्रियः ॥४१॥

भौमं	(भूमिमें-के) पातालादिके	यः	जिन्होंने
दिव्यं	देवताओंके	पुरुष अनुजन	परमपुरुषके भक्त (नारदजी) के
मानुषं	मनुष्य लोकके	प्रियः	प्रिय (होनेसे)
कर्मयोगजं	कर्म तथा योगसे उत्पन्न (मिलनेवाले)	निरय उपम्यं	नरक (के भोगोंसे) तुलनाके योग्य
महित्वं	महानता (ऐश्वर्य) को	चक्रे	बना दिया ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे प्रियव्रतविजये प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

एवं पितरि सम्प्रवृत्ते तदनुशासने वर्तमान आग्नीध्रो जम्बूद्वीपौकसः प्रजा औरसवद्धर्मावेक्षमाणः पर्यगोपायत् ॥१॥

एवं पितरि सम्प्रवृत्ते तत् अनुशासने वर्तमानः आग्नीध्रः जम्बूद्वीप ओकसः प्रजा औरसवत् धर्मं अवेक्षमाणः परि अगोपायत ॥१॥

एवं	इस प्रकार	**जम्बूद्वीप**	
पितरि	पिताके	**ओकसः**	जम्बूद्वीपमें रहनेवाली
सम्प्रवृत्ते	उत्तम प्रवृत्ति (भगवद्-भजन) में लग जानेपर	**प्रजा**	प्रजाको
		औरसवत्	सगे पुत्रोंके समान
तत् अनुशासने	उनकी आज्ञाके (अनुसार)	**धर्मं अवेक्षमाणः**	धर्मानुसार देखते हुए
वर्तमानः	रहते (चलते) हुए	**परि अगोपायत**	चारों ओरसे रक्षा करने लगे ॥१॥
आग्नीध्रः	आग्नीध्र		

स च कदाचित्पितृलोककामः सुरवरवनिताक्रीडाचल-द्रोण्यां भगवन्तं विश्वसृजां पतिमाभृतपरिचर्योपकरण आत्मै-काग्र्येण तपस्व्याराधयाम्बभूव ॥२॥

स च कदाचित् पितृलोक कामः सुरवर वनिता क्रीडाचल द्रोण्यां भगवन्तं विश्व सृजां पतिं आभृत परिचर्या उपकरण आत्म एकाग्रेण तपसि आराधयां बभूव ॥२॥

स च	उन्होंने तो
कदाचित्	किसी समय
पितृलोक कामः	पितृलोककी कामना (सत्पुत्रपानेकी इच्छा) से
परिचर्या	
उपकरण	पूजाकी सामग्री
आभृत	जुटाकर
सुरवर वनिता	श्रेष्ठ सुरोंकी पत्नियोंके
क्रीडाचल	क्रीड़ा-पर्वत (मन्दराचल) की
द्रोण्यां	घाटीमें
भगवन्तं	भगवान्
विश्वसृजांपतिं	विश्व-स्रष्टाओंके स्वामी (ब्रह्माजी)की
आत्म एकाग्रेण	अपनी एकाग्रतासे (और)
तपसि	तपस्यासे
आराधयां बभूव	आराधना करने लगे ॥२॥

तदुपलभ्य भगवानादिपुरुषः सदसि गायन्तीं पूर्वचित्तिं नामाप्सरसमभियापयामास ॥३॥

तत् उपलभ्य भगवान् आदिपुरुषः सदसि गायन्तीं पूर्वचित्तिं नाम अप्सरसं अभियापयामास ॥३॥

तत् उपलभ्य	उनकी (कामना) जानकर
भगवान् आदि-पुरुष	आदिपुरुष भगवान् (ब्रह्माजी) ने
सदसि गायन्तीं	अपनी सभामें गाती
पूर्वचित्तीं नाम	पूर्वचित्ती नामक
अप्सरसं	अप्सराको
अभियापयामास	उनके पास भेज दिया ॥३॥

सा च तदाश्रमोपवनमतिरमणीयं विविधनिबिडविट-पिबिटपनिकरसंश्लिष्ट पुरटलतारूढस्थलविहङ्गमिथुनैः प्रोच्य-मानश्रुतिभिः प्रतिबोध्यमानसलिलकुक्कुटकारण्डवकलहंसादिभि-र्विचित्रमुपकूजितामलजलाशयकमलाकरमुप बभ्राम ॥४॥

सा च तत् आश्रम उपवनं अति रमणीयं विविध निबिड विटपि विटप निकर संश्लिष्ट पुरट लता आरूढ स्थल विहङ्गम मिथुनैः प्रोच्यमान श्रुतिभिः प्रतिबोध्यमान सलिल कुक्कुट कारण्डव कलहंस आदिभिः विचित्रं उपकूजित अमल जलाशय कमल आकरं उप बभ्राम ॥४॥

सा च	वह (अप्सरा) भी
तत् आश्रम	उन (आग्नीध्र) के आश्रमके
अति रमणीयं	अत्यन्त रमणीय
उपवनं	उपवनमें (जो)
विविध निबिड़	अनेक प्रकारके, सघन
विटपि विटप निकर	वीरुध, वृक्षोंके समूह
संश्लिष्ट	(जिनके) परस्पर सटे थे,
पुरट लता आरूढ	(जिनपर) स्वर्ण-लताएँ चढ़ी थीं,
स्थल विहङ्गम मिथुनैः	(जहाँ) स्थल-पक्षियोंके जोड़ोंके द्वारा
प्रोच्यमान श्रुतिभिः	उच्च स्वरसे की गयी ध्वनिसे
प्रतिबोध्यमान	सावधान किये गये
सलिल कुक्कुट	जलमुर्गे,
कारण्डव	सारस,
कलहंस आदिभिः	कलहंस आदि द्वारा
विचित्रं उपकूजितं	विचित्र रूपसे शब्दायमान
कमल आकरं	कमलोंसे भरे,
अमल जलाशयं	निमल जलाशयके
उप बभ्राम	समीप (वह) घूमने लगी ॥४॥

तस्याः सुललितगमनपदविन्यासगतिविलासायाश्चानुपदं खणखणायमानरुचिरचरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधियोगेनामीलितनयननलिनमुकुलयुगलमीषद्विकचय्य व्यचष्ट ॥५॥

तस्याः सुललित गमन पदविन्यास गति विलासायाः च अनुपदं खणखणायमान रुचिर चरणाभरण स्वनं उप आकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधि योगेन आमीलित नयन नलिन मुकुल युगलं ईषत् विकचय्य व्यचष्ट ॥५॥

तस्याः	उसके
सुललित गमन	अत्यन्त सुन्दर चालसे
गति विलासायाः	विलासपूर्वक चलनेसे
च पदविन्यास	तथा चरण निक्षेपसे
अनुपदं	प्रत्येक पदपर
खणखणायमान	झंकार करते
चरणाभरण	चरणोंके आभूषणोंकी

रुचिर स्वनं	मनोहर ध्वनि
उपाकर्ण्य	सुनकर
नरदेवकुमारः	राजकुमार (आग्नीध्र) ने
समाधि योगेन	अत्यन्त एकाग्रतासे
आमीलित	बन्द किये
युगल नयन नलिनमुकुल	दोनों कमल-कलिका जैसे नेत्रोंको
ईषत्	तनिक
विकचय्य	विकसित करके (खोलकर)
व्यचष्ट	देखा ॥५॥

तामेवाविदूरे मधुकरीमिव सुमनस उपजिघ्रन्तीं दिविजमनुजमनोनयनाह्लाददुघैर्गतिविहारव्रीडाविनयावलोकसुस्वराक्षरावयवैर्मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं विवरं निजमुखविगलितामृतासवसहासभाषणामोदमदान्धमधुकरनिकरोपरोधेन द्रुतपदविन्यासेन वल्गुस्पन्दनस्तनकलशकबर भाररशनां देवीं तदवलोकनेन विवृतावसरस्य भगवतो मकरध्वजस्य वशमुपनीतो जडवदिति होवाच ॥६॥

तां एव अविदूरे मधुकरीं इव सुमनस उपजिघ्रन्तीं दिविजमनुज मनः नयन आह्लाददुघैः गति विहार व्रीडाविनय अवलोक सुस्वर अक्षर अवयवैः मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं विवरं निजमुख विगलित अमृत आसवाहास भाषण आमोद मदान्ध मधुकर निकर उपरोधेन द्रुत-पद विन्यासेन वल्गु स्पन्दन स्तनकलश कबर भार रशनां देवीं तत् अवलोकनेन विवृत अवसरस्य भववतः मकरध्वजस्य वशं उपनीतः जडवत् इति ह उवाच ॥६॥

तां एव	उस (पूर्वचित्ती) को ही
अविदूरे	समीप ही
मधुकरीं इव	भ्रमरीके समान
सुमनस	पुष्पोंको
उपजिघ्रन्तीं	सूंघती हुई (देखा),
दिविजमनुज	देवता-मनुष्य (दोनों) के
मनः नयन	मन और नेत्रोंको
आह्लाददुघैः	आह्लाद देनेवाले
गति विहार	गति, क्रीड़ा,

व्रीडाविनय अवलोक	लज्जा और विनयसे देखनेकी भंगी
सुस्वर अक्षर अवयवैः	बहुत मधुर अक्षर वाले (गीत) और अंगोंसे
नृणां मनसि	मनुष्योंके मनमें
कुसुमायुधस्य विदधतीं	पुष्पधन्वा कामका विधान (संचार) करती,
निजमुख विवरं विगलित	अपने मुख विवरसे झरते
अमृत आसवा- हास भाषण	अमृत आसव (युक्त) हास्य सहित बोलनेसे
आमोद मदान्ध	निकलती सुगन्धिसे मदान्ध
मधुकर निकर उपरोधेन	भ्रमरोंके समूहसे बचनेके लिए
द्रुतपद विन्यासेन	शीघ्रतासे पैर रखकर चलनेसे
स्तनकलश	कलशके समान स्तनों तथा
कवर भार रशनां	जूड़ेके भारसे करधनी (की ध्वनि) से युक्त
तत् देवीं अवलोकनेन	उस देवीको देखनेसे
विवृत अवसरस्य	(हृदयमें प्रवेशका) खुला अवसर मिलनेसे
भगवतः मकरध्वजस्य	भगवान् कामदेवके
वशं उपनीतः	वशमें ले जाये जाकर
जडवत्	पागलकी भाँति
इति ह उवाच	इस प्रकार ही बोले ॥६॥

*आग्नीध्र उवाच**–

का त्वं चिकीर्षसि च किं मुनिवर्य शैले
मायासि कापि भगवत्परदेवतायाः ।
विज्ये बिभर्षि धनुषी सुहृदात्मनोऽर्थे
किं वा मृगान्मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

का त्वं चिकीर्षसि च किं मुनिवर्य शैले माया असि कापि भगवत् परदेवतायाः विज्ये बिभर्षि धनुषी सुहृद आत्मनः अर्थे किं वा मृगान् मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥७॥

मुनिवर्य	मुनिवर !	**बिभर्षि**	धारण कर रखे हैं
का त्वं	तुम कौन हो ?	**सुहृद**	मित्र !
च शैले	और इस पर्वतपर	**आत्मनः**	अपने
किं चिकीर्षसि	क्या करना चाहते हो ?	**अर्थे**	लिए (इनका तुम्हें) प्रयोजन है ?
परदेवतायाः	परमदेवता (नारायण) की	**वा किं**	अथवा क्या
कापि	कोई	**विपिने**	वनमें
माया असि	माया हो ?	**प्रमत्तान्**	असावधान
विज्ये	बिना ज्या (डोरी)के	**मृगान्**	पशुओंको
धनुषी	धनुष (नेत्र)	**मृगयसे**	ढूँढ़ रहे हो ॥७॥

बाणाविमौ भगवतः शतपत्रपत्रौ
शान्तावपुङ्ख्रुचिरावतितिग्मदन्तौ ।
कस्मै युयुङ्क्षसि वने विचरन्न विद्मः
क्षेमाय नो जडधियां तव विक्रमोऽस्तु ॥८॥

बाणाः इमौ भगवतः शतपत्रपत्रौ शान्ताः अपुङ्ख रुचिराः अतितिग्म दन्तौ कस्मै युयुङ्क्षसि वने विचरन् न विद्मः क्षेमाय नः जडधियां तव विक्रमः अस्तु ॥८॥

इमौ	ये (कटाक्ष रूपी)	**रुचिराः**	सुन्दर हैं (किन्तु)
भगवतः	भगवन् ! आपके	**अतितिग्म**	बहुत तीक्ष्ण
बाणाः	दोनों बाण	**दन्तौ**	दाँत (नोक) वाले हैं ।
शतपत्रपत्रौ	कमल-दलके		
अपुङ्ख	पंखवाले	**वने विचरन्**	वनमें घूमते हुए (आप)
शान्ताः	शान्त (और)		

कस्मै	किसपर (इनका)	नः जडधियां	हम जैसे पागलोंके
युयुङ्क्षसि	प्रयोग करेंगे	क्षेमाय	कल्याणके लिए
न विद्मः	(यह हम) नहीं	तव विक्रमः	आपका पराक्रम
	जानते	अस्तु	होवे ॥८॥

शिष्या इमे भगवतः परितः पठन्ति
गायन्ति साम सरहस्यमजस्रमीशम् ।
युष्मच्छिखाविलुलितः सुमनोऽभिवृष्टीः
सर्वे भजन्त्यृषिगणा इव वेदशाखाः ॥९॥

शिष्याः इमे भगवतः परितः पठन्ति गायन्ति साम सरहस्यं अजस्रं ईशं युष्मत् शिखाः विलुलिताः सुमनः अभिवृष्टीः सर्वे भजन्ति ऋषिगणाः इव वेदशाखाः ॥९॥

भगवतः	भगवन् आपके	युष्मत् शिखाः	आपकी चोटीसे
इमे शिष्याः	ये (भ्रमर) शिष्य	विलुलिताः	झड़े हुए
परितः	चारों ओर	सुमनः	
पठन्ति	पढ़ रहे हैं।	अभिवृष्टीः	पुष्प-वर्षाका
सरहस्यम्	रहस्यके साथ	ऋषिगणाः	ऋषियों द्वारा
साम	सामवेदके मन्त्रोंसे	वेदशाखाः इव	वेदोंकी शाखाओंके
अजस्रं	अविराम		समान
ईशं	अपने स्वामी	सर्वे भजन्ति	सब (भ्रमर शिष्य)
	(आपका)		सेवन करते हैं ॥९॥
गायन्ति	यशोगान कर		
	रहे हैं।		

वाचं परं चरणपञ्जरतित्तिरीणां
ब्रह्मन्नरूपमुखरां शृणवाम तुभ्यम् ।
लब्धा कदम्बरुचिरङ्कुविटङ्कुबिम्बे
यस्यामलातपरिधिः क्व च वल्कलं ते ॥१०॥

वाचं परं चरणपञ्जर तित्तिरीणां ब्रह्मन् न रूप मुखरां शृणवाम तुभ्यं लब्धा कदम्ब रुचिरङ्क विटङ्क बिम्बे यस्यां अलात परिधिः क्व च वल्कलं ते ॥१०॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
तुभ्यं	तुम्हारे
चरणपञ्जर	चरणोंके पिंजरेमें (रहनेवाले)
तित्तिरीणां	तीतरोंकी
परं वाचं	केवल वाणी
मुखरां	गूंजती
शृणवाम	सुन रहा हूँ
न रूप	(पर) उनका रूप नहीं (दीखता)
विटङ्क बिम्बे	नितम्ब विम्बोंने
कदम्ब	कदम्ब पुष्पोंकी
रुचिरङ्क	मनोहर शोभा
लब्धा	पाई है,
यस्यां	जिनपर
अलात परिधिः	अंगारोंका घेरा (करधनी) है,
ते	(पर) तुम्हारा
वल्कलं	वल्कल-वस्त्र
क्व च	कहां है ? ॥१०॥

किं सम्भृतं रुचिरयोर्द्विज शृङ्गयोस्ते
मध्ये कृशो वहसि यत्र दृशिः श्रिता मे ।
पङ्कोऽरुणः सुरभिरात्मविषाण ईदृग्
येनाश्रमं सुभग मे सुरभीकरोषि ॥११॥

किं सम्भृतं रुचिरयोः द्विज शृंगयोः ते मध्ये कृशः वहसि यत्र दृशिः श्रिता मे पङ्कः अरुणः सुरभिः आत्म विषाण ईदृक् येन आश्रमं सुभग मे सुरभी करोषि ॥११॥

द्विज	द्विजवर !
ते	तुम्हारे
रुचिरयोः	सुन्दर
शृङ्गयोः	दोनों सींगोंमें
किं सम्भृतं	क्या भरा है ?
मध्ये कृशः	मध्य (कटि) कृश (दुबली) है
वहसि	(फिर भी) इन सींगोंको ढोती हो-
यत्र	जहां
मे दृशिः	मेरी दृष्टि
श्रिता	अटक गयी है ।
सुभग	सुभगे !

अरुणः पङ्कः	लाल कीचसे युक्त (आपके)	येन	जिससे
आत्म विषाण	अपने सींगोंकी	मे आश्रमं	मेरे आश्रमको
ईदृक् सुरभिः	ऐसी सुगन्धि है	सुरभी करोषि	सुगन्धित कर रहे हो ॥११॥

लोकं प्रदर्शय सुहृत्तम तावकं मे
यत्रत्य इत्थमुरसावयववावपूर्वी ।
अस्मद्विधस्य मनउन्नयनौ बिभर्ति
बह्वद्भुतं सरसराससुधादि वक्त्रे ॥१२॥

लोकं प्रदर्शय सुहृत्तम तावकं मे यत्रत्य इत्थं उरसा अवयवाः अपूर्वौ अस्मत् विधस्य मन उन्नयनौ बिभर्ति बहु अद्भुतं सरसरास सुधाआदि वक्त्रे ॥१२॥

सुहृत्तम	मित्रवर !	अस्मत् विधस्य	हमारे जैसेके
मे तावकं	मुझे तुम्हारा	मन उन्नयनौ	मनको खींच लेने वाले हैं
लोकं प्रदर्शय	लोक दिखा दो	वक्त्रे	(आपके) मुखमें भी
यत्रत्य	जहाँके लोगोंके	सरसरास	सरस नृत्य (विलास)
उरसा	वक्षस्थलपर	सुधाआदि	अमृत आदि
इत्थं	इस प्रकारके	बहु अद्भुतं	बहुत अद्भुत (वस्तुएँ) हैं ॥१२॥
अपूर्वौ	अपूर्व		
अवयवाः	अंग		
बिभर्ति	धारण करते हैं (जो)		

का वाऽऽत्मवृत्तिरदनाद्धविरङ्ग वाति
विष्णोः कलास्यनिमिषोन्मकरौ च कर्णौ ।
उद्विग्नमीनयुगलं द्विजपङ्क्तिशोचि-
रासन्नभृङ्गनिकरं सर इन्मुखं ते ॥१३॥

का वा आत्म वृत्तिः अदनात् विरङ्ग वाति विष्णोः कलाः अनिमिषः मकरौ च कर्णौ उद्विग्न मीन युगलं द्विज पङ्क्ति शोचिः आसन्न भृङ्ग निकरं सर इन् मुखं ते ॥१३॥

आत्म वृत्तिः	(तुम्हारा) अपना आहार
का वा	क्या है ? अथवा (जिसके)
अदनात्	खानेसे (तुम्हारे मुखसे)
विरंग वाति	हवन जैसी वायु निकल रही है।
विष्णोः कलाः	(तुम) भगवान विष्णुकी कला हो
कर्णौ च	(तुम्हारे) कानोंमें भी
अनिमिषः	पलक न मारनेवाले
मकरौ	मकर (कुंडल) हैं
ते मुखं	तुम्हारा मुख
इन्न सर	सुन्दर सरोवर है (जिसमें)
उद्विग्न मीन युगलं	दो चंचल मछलियां है,
शोचिः	ज्योति युक्त
द्विज पंक्ति	हंसों (दांतों) की पंक्ति है (और)
आसन्न	समीप (अलक रूपी)
भृङ्गं निकरं	भ्रमरोंका समूह है ॥१३॥

योऽसौ त्वया करसरोजहतः पतङ्गो
दिक्षु भ्रमन् भ्रमत एजयतेऽक्षिणी मे ।
मुक्तं न ते स्मरसि वक्रजटावरूथं
कष्टोऽनिलो हरति लम्पट एष नीवीम् ॥१४॥

यः असौ त्वया करसरोज हतः पतङ्गः दिक्षु भ्रमन् भ्रमत एजयते अक्षिणी मे मुक्तं न ते स्मरसि वक्र जटा वरूथं कष्टः अनिलः हरति लम्पट एष नीवीम् ॥१४॥

यः असौ	यह जो
त्वया	तुम्हारे द्वारा
करसरोज	कर-कमलोंसे
हतः पतङ्गः	मारा गेंद है (वह)
दिक्षु भ्रमन् भ्रमत	दिशाओंमें घूमता घूमता
मे अक्षिणी	मेरे नेत्रोंको
एजयते	चञ्चल कर देता है
ते	तुम्हारा
वक्र जटा वरूथं	कुटिल जटा समूह
मुक्तं	खुल गया है
न स्मरसि	इसका (तुम्हें) स्मरण नहीं है,
कष्टः	दुःखकी बात है कि
एष लम्पट	यह लम्पट (असदाचारी)
अनिलः	वायु
नीवीं हरति	कटि वस्त्रको खींच रहा है ॥१४॥

रूपं तपोधन तपश्चरतां तपोघ्नं
ह्येतत्तु केन तपसा भवतोपलब्धम् ।
चर्तुं तपोऽर्हसि मया सह मित्र मह्यं
किं वा प्रसीदति स वै भवभावनो मे ॥१५॥

रूपं तपोधन तपः चरतां तपःघ्नं हि एतत् तु केन तपसा भवतः उपलब्धं चतुं तपः अर्हसि मया सह मित्र मह्यं किं वा प्रसीदति स वै भव भावनः मे ॥१५॥

तपोधत	तपोधन !
तपः चरतां	तपस्या करने वालोंकी
हि	निश्चित रूपसे
तपःघ्नं	तपस्याका नाशक
एतत् रूपं तु	यह (सुन्दर) रूप तो
भवतः	आपने
केन तपसा	किस तपस्यासे
उपलब्धं	पाया है ?
मित्र	मित्र !
मया सह	मेरे साथ (तुम्हें)
तपः चतुं	तपस्या करना
अर्हसि	चाहिए ।
वा किं	अथवा क्या
मह्यं प्रसीदति स वै भव	मुझपर कृपा करके
भावनः	निश्चय उन्हीं विश्वभावन (ब्रह्माजी) ने
मे	मुझे (तुमको दिया है) ॥१५॥

न त्वां त्यजामि दयितं द्विजदेवदत्तं
यस्मिन्मनो दृगपि नो न वियाति लग्नम् ।
मां चारुभृङ्ग्यर्हसि नेतुमनुव्रतं ते
चित्तं यतः प्रतिसरन्तु शिवाः सचिव्यः ॥१६॥

न त्वां त्यजामि दयितं द्विजदेवदत्तं यस्मिन् मनः दृक् अपि नः न वियाति लग्नं मां चारुभृङ्गि अर्हसि नेतुं अनुव्रतं ते चित्तं यतः प्रतिसरन्तु शिवाः सचिव्यः ॥१६॥

द्विजदेवदत्तं	(तुम) ब्रह्माजीकी दी हुई हो
त्वां दयितं	तुम प्रियको
न त्यजामि	नहीं छोड़ूंगा।
यस्मिन् लग्नं	जिसमें लगा
नः मनः दृक्	मेरा मन और दृष्टि
न वियाति	पृथक नहीं जाती है,
चारुश्रृङ्गि	सुन्दर सींगवाली
यतः प्रति-	
सरन्तु	जहाँ जानेकी
ते चित्तं	तुम्हारा मन हो (वहाँ)
मां नेतुं	(तुम्हें) मुझे ले जाना
अर्हसि	चाहिए
अनुव्रतं	(मैं तुम्हारा) अनुव्रत हूँ
शिवाः सचिव्यः	(तुम्हारी ये) मंगलमयी सखियाँ भी (साथ चलें) ॥१६॥

श्रीशुक उवाच-

इति ललनानुनयातिविशारदो ग्राम्यवैदग्ध्यया परिभाषया तां विबुधवधूं विबुधमतिरधिसभाजयामास ॥१७॥

इति ललता अनुनय अति विशारदः ग्राम्य वैदग्ध्यया परिभाषया तां विबुधवधूं विबुधमतिः अधिसभाजयामास ॥१७॥

इति	इस प्रकार
ललना अनुनय	स्त्रीको मनानेमें
अति विशारदः	अत्यन्त निपुण (आग्नीध्रने)
ग्राम्य वैदग्धया	कामनैपुण्यकी
परिभाषया	पद्धतिसे
तां विवुधवधूं	उस देववधू (अप्सरा) को
विवुधमतिः	देवता-बुद्धि (समझ) से
अधिसभा-	
जयामास	पूर्ण प्रसन्न कर लिया ॥१७॥

सा च ततस्तस्य वीरयूथपतेर्बुद्धिशीलरूपवयः श्रियौदार्येण पराक्षिप्तमनास्तेन सहायुतायुतपरिवत्सरोपलक्षणं कालं जम्बूद्वीपपतिना भौमस्वर्गभोगान् बुभुजे ॥१८॥

सा च ततः तस्य वीरयूथपतेः बुद्धिशील रूप वयः श्रिया औदार्येण पराक्षिप्त मनाः तेन सह अयुत अयुत परिवत्सर उपलक्षणं कालं जम्बूद्वीप पतिना भौम स्वर्ग भोगान् बुभुजे ॥१८॥

ततः	**तब**
तस्य	**उन**
वीरयूथपतेः	**वीरयूथोंके स्वामीकी**
बुद्धिशील	**बुद्धि, शील**
रूप वयः	**रूप, आयु**
श्रिया औदार्येण	**लक्ष्मी तथा उदारतासे**
सा च	**वह (अप्सरा) भी**
पराक्षिप्त मनाः	**मनके आकर्षित होनेसे**
तेन जम्बूद्वीप पतिना	**उन्हीं जम्बूद्वीपाधिपतिके**
सह	**साथ**
अयुत अयुत परिवत्सर	**कई हजार**
उपलक्षणं	**सम्वत्सरोंसे**
कालं	**समय तक**
भौम स्वर्ग भोगान्	**पृथ्वी और स्वर्गके भोगोंको**
बुभुजे	**भोगती रही ॥१८॥**

तस्यामु ह वा आत्मजान् स राजवर आग्नीध्रो नाभि-किम्पुरुषहरिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालसंज्ञान्नव पुत्रानजनयत् ॥१९॥

तस्यां उ ह वा आत्मजान् स राजवर आग्नीध्रः नाभिः किम्पुरुषः हरिवर्षः इलावृतः रम्यकः हिरण्मयः कुरुः भद्राश्वः केतुमालः संज्ञान् नव पुत्रान् अजनयत् ॥१९॥

तस्यां	**उसमें**	**आत्मजान्**	**अपने आत्मांशसे***
उ ह वा	**निश्चय रूपसे ही**	**नाभिः**	**नाभि,**
स राजवरः	**उन राजश्रेष्ठ**	**किम्पुरुषः**	**किम्पुरुष,**
आग्नीध्रः	**आग्नीध्रने**	**हरिवर्षः**	**हरिवर्ष,**

---

* यहाँ आत्मजका अर्थ पुत्र इसलिए सम्भव नहीं क्योंकि वाक्यके अन्तमें 'पुत्रान्' आया है।

इलावृतः	इलावृत,
रम्यकः	रम्यक,
हिरण्मयः	हिरण्मय,
कुरुः	कुरु,
भद्राश्वः	भद्राश्व,
केतुमालः	केतुमाल
संज्ञान्	नामवाले
नव पुत्रान्	नौ पुत्रोंको
अजनयत्	उत्पन्न किया ॥१९॥

सा सूत्वाथ सुतान्नवानुवत्सरं गृह एवापहाय पूर्वचित्तिर्भूय एवाजं देवमुपतस्थे ॥२०॥

सा सूत्वा अथ सुतान् नव अनुवत्सरं गृह एव अपहाय पूर्वचित्तिः भूय एव अजं देवं उपतस्थे ॥२०॥

अथ	फिर
अनुवत्सरं	प्रत्येक वर्ष एकके क्रमसे
सा	वह (अप्सरा)
नव सुतान्	नौ पुत्रोंको
सूत्वा	जन्म देकर
गृह एव	घरपर ही
अपहाय	त्यागकर
पूर्वचित्तिः	पूर्वचित्ती
भूय एव	फिरसे
अजं देवं	भगवान् ब्रह्माके
उपतस्थे	समीप पहुँच गयी ॥२०॥

आग्नीध्रसुतास्ते मातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैव संहनन-बलोपेताः पित्रा विभक्ता आत्मतुल्यनामानि यथाभागं जम्बू-द्वीपवर्षाणि बुभुजुः ॥२१॥

आग्नीध्र सुताः ते मातुः अनुग्रहात् औत्पत्तिकेन एव संहनन बल उपेताः पित्रा विभक्ता आत्मतुल्य नामानि यथाभागं जम्बूद्वीप वर्षाणि बुभुजः ॥२१॥

ते आग्नीध्र सुताः	वे आग्नीध्रके पुत्र
मातुः अनुग्रहात्	माताके अनुग्रहसे
औत्पत्तिकेन एव	जन्मके समयसे ही
संहनन बल	सुडौल और बल

उपेताः	युक्त थे ।	जम्बूद्वीप	
पित्रा विभक्ता	पिता द्वारा बाँटे गये	वर्षाणि	जम्बूद्वीपके प्रदेशोंको
आत्मतुल्य		यथाभागं	विभागके अनुसार
नामानि	अपने समान नामवाले	बुभुजुः	भोगने लगे ॥२१॥

आग्नीध्रो राजातृप्तः कामानामप्सरसमेवानुदिनमधिमन्यमानस्तस्याः सलोकतां श्रुतिभिरवारुन्ध यत्र पितरो मादयन्ते ॥२२॥

आग्नीध्रः राजा अतृप्तः कामानां अप्सरसं एव अनुदिनं अधिमन्यमानः तस्याः सलोकतां श्रुतिभिः अवारुन्ध यत्र पितरः मादयन्ते ॥२२॥

राजा आग्नीध्रः	महाराज आग्नीध्र	तस्याः	
कामानां	कामनाओं (के भोग) से	सलोकतां	उसके लोकको
अतृप्तः	अतृप्त थे ।	श्रुतिभिः	वैदिक कर्मसे
अनुदिनम्	प्रतिदिन	अवारुन्ध	प्राप्त किया,
अप्सरसं एव	अप्सराको ही	यत्र पितरः	जहाँ पितर
अधिमन्यमानः	परम पुरुषार्थ मानते हुए	मादयन्ते	आमोद-मग्न रहते हैं ॥२२॥

सम्परेते पितरि नव भ्रातरो मेरुदुहितृर्मेरुदेवीं प्रतिरूपामुग्रदंष्ट्रीं लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां देववीतिमितिसंज्ञा नवोदवहन् ॥२३॥

सम्परेते पितरि नव भ्रातरः मेरुदुहितृं मेरुदेवीं प्रतिरूपां उग्रदंष्ट्रीं लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां देववीतिं इति संज्ञा नव उदवहन् ॥२३॥

पितरि	पिताके
सम्परेते	परलोक सिधारनेपर
नव भ्रातरः	नौ भाइयोंने
मेरुदेवीं	मेरु देवी,
प्रतिरूपां	प्रतिरूपा,
उग्रदंष्ट्रीं	उग्रदंष्ट्री,
लतां	लता,
रम्यां	रम्या,
श्यामां	श्यामा,
नारीं	नारी,
भद्रां	भद्रा,
देववीतिं	देववीति,
संज्ञा	नामवाली
नव	नौ
मेरुदुहितृ	मेरुकी कन्याओंसे
उदवहन्	विवाह कर लिया ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे आग्नीध्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदेव्या भगवन्तं यज्ञपुरुषमवहितात्मायजत ॥१॥

नाभिः अपत्यकामः अप्रजया मेरु देव्याः भगवन्तं यज्ञ पुरुषं अवहित आत्मा अयजत् ॥१॥

अपत्यकामः	पुत्रकी कामनासे	**भगवन्तं**	भगवान्
नाभिः	नाभि	**यज्ञ पुरुषं**	यज्ञ-पुरुषका
अप्रजया	सन्तानहीना (अपनी पत्नी)	**अवहित आत्मा**	एकाग्र चित्तसे
		अयजत्	यजन करने लगे ॥१
मेरुदेव्याः	मेरुदेवीके साथ		

तस्य ह वाव श्रद्धया विशुद्धभावेन यजतः प्रवर्ग्येषु प्रचरत्सु द्रव्यदेशकालमन्त्रर्त्विग्दक्षिणाविधानयोगोपपत्त्या दुरधिगमोऽपि भगवान् भागवतवात्सल्यतया सुप्रतीक आत्मानमपराजितं निजजनाभिप्रेतार्थविधित्सया गृहीतहृदयो हृदयङ्गमं मनोनयनानन्दनावयवाभिराममाविश्चकार ॥२॥

तस्य ह वाव श्रद्धया विशुद्ध भावेन यजतः प्रवर्ग्येषु प्रचरत्सु द्रव्य देशकाल मन्त्र ऋत्विक् दक्षिणा विधान योग उपपत्त्या दुरधिगमः अपि भगवान् भागवत वात्सल्य तया सुप्रतीक आत्मानं अपराजितं निजजन अभिप्रेत अर्थ विधित्सया गृहीत हृदयः हृदयङ्गमं मनः नयन आनन्दन अवयव अभिरामं आविः चकार ॥२॥

द्रव्य	पदार्थ
देशकाल	स्थान और समय
मन्त्र ऋत्विक्	मन्त्र, ऋत्विक् (ब्राह्मण)
दक्षिणा	दक्षिणा आदिके
विधान	विधान
योग उपपत्त्या अपि	संयोग जुट जानेसे
दुरधिगमः	जिनकी प्राप्ति कठिन है,
भगवान्	वे भगवान्
भागवत वात्सल्य तया	भक्तोंपर वात्सल्य रखनेके कारण
तस्य	उन नाभिके
ह वाव	निश्चय ही
श्रद्धया	श्रद्धा पूर्वक
विशुद्ध भावेन	विशुद्ध भाव सहित
यजतः	यज्ञ करते समय
गृहीत हृदयः	(नाभिकी भक्तिसे) हृदय उनके वशमें होनेसे
अपराजितं	अपराजित
आत्मानं	स्वरूप होनेपर भी
निजजन	अपने भक्तके
अभिप्रेत	अभीष्टका
विधित्सया	विधान (प्रदान) करनेके लिए
प्रवर्ग्येषु	प्रवर्ग्य-कर्म
प्रचरत्सु	होते समय
हृदयङ्गमं	हृदयाकर्षक
सुप्रतीक	अत्यन्त शान्त
मनः नयन	मन और नेत्रोंको
आनन्दन	आनन्द देनेवाले,
अभिराम्	परम सुन्दर
अवयव	अंगवाले रूपको
आविः चकार	प्रकट किया ॥२॥

अथ ह तमाविष्कृतभुजयुगलद्वयं हिरण्मयं पुरुषविशेषं कपिशकौशेयाम्बरधरमुरसि विलसच्छ्रीवत्सललामं दरवरवनरुहवनमालाच्छूर्यमृतमणिगदादिभिरुपलक्षितं स्फुटकिरणप्रवरमुकुटकुण्डलकटककटिसूत्रहारकेयूरनूपुराद्यङ्गभूषणविभूषितमृत्विक्सदस्यगृहपतयोऽधना इवोत्तमधनमुपलभ्य सबहुमानमर्हणेनावनतशीर्षाण उपतस्थुः ॥३॥

अथ ह तं आविष्कृत भुज युगल द्वयं हिरण्मयं पुरुष विशेषं कपिश कौशेय अम्बर धरं उरसि विलसत् श्रीवत्स ललामं दरवर वनरुह वनमालात्

सूर्यमृतमणि गदा आदिभिः उपलक्षितं स्फुट किरण प्रवर मुकुट कुण्डल कटक कटिसूत्र हार केयूर नूपुर आदि अङ्गभूषण विभूषितं ऋत्विक् सदस्य गृहपतयः अधना इव उत्तम धनं उपलभ्य सबहुमानं अर्हणेन अवनत शीर्षाणि उपतस्थुः ॥३॥

अथ ह	उस समय प्रत्यक्ष
आविष्कृत	प्रकट किये
भुज युगल द्वयं	चतुर्भुज रूपमें
पुरुष विशेषं	विशेष पुरुष (पुरुषोत्तम)
हिरण्मयं	स्वर्णमय (स्वर्णिम रूपके) थे।
कपिश	पीले रंगके
कौशेय अम्बर धरं	रेशमी वस्त्र पहिने थे।
उरसि	वक्ष-स्थलपर
ललामं	परम सुन्दर
श्रीवत्स	श्रीवत्स चिह्न
विलसत्	अत्यन्त शोभित था।
दरवर	श्रेष्ठ शंख,
वनरुह	पद्म,
वनमालात्	वनमाला,
सूर्यमृतमणि	सूर्यको हीन-कान्ति करनेवाली (कौस्तुभ) मणि,
गदा आदिभिः	गदा आदि (चक्र) द्वारा
उपलक्षितं	पहिचाने जानेवाले रूपमें,
स्फुट किरण प्रवर	जिनसे श्रेष्ठ किरणें निकलती थीं उन
मुकुट	मुकुट,
कुण्डल कटक	कुण्डल, कङ्कण,
कटिसूत्र	काञ्ची
हार केयूर	हार, अंगद,
नूपुर आदि	नूपुर आदि
अंगभूषण	अंगोंको भूषित करनेवाले
विभूषितं	आभूषणोंसे भूषित-को (देखकर)
ऋत्विक्	ऋत्विक्
सदस्य	सदस्य
गृहपतयः	यजमान
अधना इव	निर्धनके समान
उत्तम धनं	उत्तम-धन (भगवान्) को
उपलभ्य	पाकर
सबहुमानं	बहुत आदर सहित
अवनत शीर्षाण	मस्तक झुकाये
अर्हणेन	पूजा करके
उपतस्थुः	स्तुति करने लगे ॥३॥

ऋत्विज ऊचुः

अर्हसि मुहुरर्हत्तमार्हणमस्माकमनुपथानां नमो नमइत्येतावत्सदुपशिक्षितं कोऽर्हति पुमान् प्रकृतिगुणव्यतिकरमतिरनीश ईश्वरस्य परस्य प्रकृतिपुरुषयोरर्वाक्तनाभिर्नामरूपाकृतिभी रूपनिरूपणम् ॥४॥

अर्हसि मुहुः अर्हत्तम अर्हणं अस्माकं अनुपथानां नमो नमः इति एतावत् सत् उपशिक्षितं कः अर्हति पुमान् प्रकृति गुण व्यतिकर मतिः अनीश ईश्वरस्य परस्य प्रकृति पुरुषयोः अर्वाक्तनाभिः नाम रूप आकृतिभी रूप निरूपणं ॥४॥

अर्हत्तम	पूज्यतम !
अस्माकं	हम
अनुपथानां	अनुयायियोंसे
मुहुः	बार-बार (आप)
अर्हणं	पूजाके
अर्हसि	योग्य हो (किन्तु)
नमो नमः	आपको बार-बार नमस्कार
इति	इस प्रकार
एतावत्	इतनी ही
सत् उपशिक्षितं	सत्पुरुषोंसे (हमें) शिक्षा मिली है
प्रकृति गुण	प्रकृतिके गुणोंसे
व्यतिकर मतिः	विकृत बुद्धि वाला
अनीश	असमर्थ होकर भी
प्रकृति पुरुषयोः	प्रकृति और पुरुषसे
परस्य	परे
ईश्वरस्य	ईश्वरके
अर्वाक्तनाभिः	पीछेके बने
नाम रूप	
आकृतिभी	नाम, रूप, आकृतिके द्वारा
रूप निरूपणं	स्वरूपका वर्णन
कः पुमान्	कौन पुरुष
अर्हति	कर सकता है ॥४॥

सकलजननिकायवृजिननिरसनशिवतमप्रवरगुणगणैकदेशकथनार्हते ॥५॥

सकलजन निकाय वृजिन निरसन शिवतम प्रवर गुणगण एकदेश कथनात् ऋते ॥५॥

सकलजन निकाय	समस्त जन-समूहके	एकदेश कथनात् ऋते	किसी एकांशके वर्णनको छोड़कर (कोई वर्णनका साहस भी करेगा तो और क्या कर सकेगा) ॥५॥
वृजिन निरसन	कष्टोंको दूर करनेवाले		
शिवतम प्रवर	परम कल्याणमय श्रेष्ठ		
गुणगण	गुणोंके समूहके		

परिजनानुरागविरचितशबलसंशब्दसलिलसितकिसलयतुलसिकादूर्वाङ्कुरैरपि सम्भृतया सपर्यया किल परम परितुष्यसि ॥६

परिजन अनुराग विरचित शबल संशब्द सलिल सित किसलय तुलसिका दूर्वाङ्कुरैः अपि सम्भृतया सपर्यया किल परम परितुष्यसि ॥६॥

परिजन	(अपने) भक्तों द्वारा	दुर्वाङ्कुरैः अपि	एवं दूर्वाके अङ्कुरोंसे भी
अनुराग	प्रेमपूर्वक	सम्भृतया	की गयी
विरचित	की गयी	सपर्यया	पूजासे
शबल संशब्द	गद्गद् वाणीकी स्तुति और	किल	निश्चय
सलिल	जल,	परम	परमपुरुष आप
सित किसलय	शुद्ध-पल्लव,	परितुष्यसि	परमसन्तुष्ट हो जाते हैं ॥६॥
तुलसिका	तुलसीदल		

अथानयापि न भवत इज्ययोरुभारभरया समुचितमर्थमिहोपलभामहे ॥७॥

अथ अनया अपि न भवत इज्ययोः उरुभार भरया समुचितं अर्थं इह उपलभामहे ॥७॥

अथ	अतः	समुचितं अर्थ इह न उपलभामहे	कोई उचित प्रयोजन यहाँ (हम) नहीं प्राप्त करते हैं (आप यज्ञसे नहीं, केवल कृपावश पधारे हैं) ॥७॥
इज्ययोः	यज्ञके		
उरुभार भरया	बहुत सम्भारपूर्ण		
अनया अपि	इस (आयोजन) से भी		
भवत	आपका		

आत्मन एवानुसवनमञ्जसाव्यतिरेकेण बोभूयमानाशेष-पुरुषार्थस्वरूपस्य किन्तु नाथाशिष आशासानानामेतदभिसंराधन-मात्रं भवितुमर्हति ॥८॥

आत्मन एव अनुसवनं अञ्जसा व्यतिरेकेण बोभूयमान अशेष पुरुषार्थ स्वरूपस्य किन्तु नाथ अशिष आशासानानां एतत् अभिसंराधनमात्रं भवितुं अर्हति ॥८॥

आत्मन एव	आपके अपने स्वरूपसे ही
अनुसवनं	प्रत्येक समय
अञ्जसा	सरल प्रयत्नके
व्यतिरेकेण	बिना ही (स्वाभाविक) रूपमें
अशेष पुरुषार्थ	सम्पूर्ण पुरुषार्थका
बोभूयमान	(फल) प्रादुर्भूत होता रहता है
स्वरूपस्य	उस (परमानन्द) के आप स्वरूप हैं,
किन्तु नाथ	लेकिन स्वामी !
आशिष	
आशासानानां	कामनाकी पूर्ति चाहनेवालोंके लिए
एतत्	यही (यज्ञार्चन ही)
अभिसंराधन-	
मात्रं	पर्याप्त (कामना-पूर्तिका) साधन
भवितुं अर्हति	होना चाहिए ॥८॥

तद्यथा बालिशानां स्वयमात्मनः श्रेयः परमविदुषां परमपरमपुरुष प्रकर्षकरुणया स्वमहिमानं चापवर्गाख्यमुपकल्प-यिष्यन् स्वयं नापचित एवेतरवदिहोपलक्षितः ॥९॥

तत् यथा बालिशानां स्वयं आत्मनः श्रेयः परं अविदुषां परम परम-पुरुष प्रकर्ष करुणया स्वमहिमानं च अपवर्गाख्यं उपकल्पयिष्यन् स्वयं न अपचित एव इतरवत् इह उपलक्षितः ॥९॥

तत्	अतः
यथा	जैसे
आत्मनः	अपने
परं श्रेयः	परम कल्याणको
स्वयं अविदुषां	स्वयं न जाननेवाले
बालिशानं	अज्ञानियोंके लिए

परम	श्रेष्ठोंसे भी
परमपुरुष	श्रेष्ठतम पुरुष (आप)
स्वमहिमानं	अपनी महिमाको
च	तथा
अपवर्गाख्यं	मोक्ष नामक पद (स्थिति) को
उपकल्पयिष्यन्	प्रदान करनेके लिए
स्वयं न अपचित	स्वयं कोई प्रतिकार मिले बिना
एव इतरवत्	ही दूसरे (दर्शकों) के समान
इह उपलक्षितः	यहाँ आ गये हैं ॥९॥

अथायमेव वरो ह्यर्हत्तम यर्हि बर्हिषि राजर्षेर्वरदर्षभो भवान्निजपुरुषेक्षणविषय आसीत् ॥१०॥

अथ अयं एव वरः हि अर्हत्तम यर्हि बर्हिषि राजर्षेः वरदर्षभः भवान् निजपुरुष ईक्षण विषय आसीत् ॥१०॥

अथ	अब
अयं एव वरः	यही वरदान है
हि	क्योंकि
अर्हत्तम	परमपूज्य
वपदर्षभः	वरदान देनेवालोंमें श्रेष्ठ
भवान्	आप
यर्हि बर्हिषि निजपुरुष	जब यज्ञमें
राजर्षेः	अपने सेवक राजर्षिके
ईक्षण विषय आसीत्	नेत्रोंके सामने हो गये हैं ॥१०॥

असङ्गनिशितज्ञानानलविधूताशेषमलानां भवत् स्वभावानामात्मारामाणां मुनीनामनवरतपरिगुणितगुणगण परममङ्गलायनगुणगणकथनोऽसि ॥११॥

असङ्ग निशित ज्ञानअनल विधूत अशेष मलानां भवत् स्वभावानां आत्मारामाणां मुनीनां अनवरत परिगुणित गुणगण परम मङ्गलायन गुणगण कथनः असि ॥११॥

असङ्ग निशित ज्ञान-अनल	आसक्तिहीन तीक्ष्ण ज्ञानाग्निसे
अशेष मलानां	समस्त (राग-द्वेषादि) मलोंको
विधूत भवत् स्वभावानां	भस्म कर देनेवाले, आपके ही स्वभाववाले,
आत्मारामाणां	आत्माराम मुनीनां मुनियों द्वारा
अनवरत गुणगण परिगुणित	निरन्तर (आपके) गुणगणोंकी गणना-गान किया जाता है
परम मङ्गलायन गुणगण कथनः असि	परम मंगलायन (आपके) गुण-गणोंका वर्णन (गान) है- ऐसे आप हैं ॥११॥

अथ कथञ्चित्स्खलनक्षुत्पतनजृम्भणदुरवस्थानादिषु विवशानां नः स्मरणाय ज्वरमरणदशायामपि सकलकश्मलनिरसनानि तव गुणकृतनामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु ॥१२॥

अथ कथञ्चित् स्खलन क्षुत् पतन जृम्भण दुरवस्थान आदिषु विवशानां नः स्मरणाय ज्वर मरणदशायां अपि सकल कश्मल निरसनानि तव गुणकृत नामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु ॥१२॥

अथ कथञ्चित् क्षुत् पतन	अतः किसी प्रकार भूख लगनेपर गिरने (फिसलने) पर,
जृम्भण दुरवस्थान आदिषु ज्वर मरणदशायां अपि	जम्हाई लेनेपर, संकटादिके समय, ज्वर आनेपर, मरणावस्थामें भी
नः विवशानां	हमारे विवश होनेपर
सकल कश्मल निरसनानि तव गुणकृत	सब पाप निवारक आपके गुणोंके अनुसार (पड़े)
नामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु	नाम वाणीसे उच्चरित होवें ॥१२॥

किञ्चायं राजर्षिरपत्यकामः प्रजां भवादृशीमाशासान ईश्वरमाशिषां स्वर्गापवर्गयोरपि भवन्तमुपधावति प्रजायामर्थ-प्रत्ययो धनदमिवाधनः फलीकरणम् ॥१३॥

किञ्च अयं राजर्षिः अपत्यकामः प्रजां भवादृशीं आशासानः ईश्वरं आशिषां स्वर्ग अपवर्गयोः अपि भवन्तं उपधावति प्रजायां अर्थ प्रत्ययः धनदं इव अधनः फलीकरणम् ॥१३॥

किञ्च	इसके अतिरिक्त
अयं	यह
राजर्षिः	राजर्षि
अपत्यकामः	पुत्र चाहता है।
अधनः	(कोई) कंगाल
धनदं	धन देनेवालेसे
फलीकरणं	भूसी चाहे
इव	इस भाँति
भवादृशीं	आपके समान
प्रजां	पुत्र
आशासानः	चाहता हुआ
आशिषां	कामनाओंके
स्वर्ग	स्वर्ग
अपवर्गयोः अपि	मोक्षके भी
ईश्वरं	(देनेवाले) समर्थ स्वामी
भवन्तं	आपकी
उपधावति	आराधना करता है।
प्रजायां	(क्योंकि) पुत्रको
अर्थ प्रत्ययः	पुरुषार्थ समझता है ॥१३॥

को वा इह तेऽपराजितोऽपराजितया माययानवसितपदव्याना-वृतमतिर्विषयविषरयानावृतप्रकृतिरनुपासितमहच्चरणः ॥१४॥

कः वा इह ते अपराजितः अपराजितया मायया अनवसित पदव्या अनावृत मतिः विषय विषरय अनावृत प्रकृतिः अनुपासित महत् चरणः ॥१४॥

कः वा	अथवा ऐसा कौन है
इह	इस संसारमें जो
ते अपराजितः	आप अपराजितकी
अपराजितया	अपराजिता
मायया	मायासे
महत् चरणः	महापुरुषोंके चरणोंकी
अनुपासित	उपासना किये बिना
अनवसित	अनिश्चित

पदव्या	स्वरूप वाली (मायाके)
विषय	विषय रूपी
विषरय	विष वेगसे (जिसका)
अनावृत प्रकृतिः	स्वभाव ढक न जाय
अनावृत मतिः	(जिसकी) बुद्धि ढक न जाय ॥१४॥

यदु ह वाव तव पुनरदभ्रकर्तरिह समाहूतस्तत्रार्थधियां मन्दानां नस्तद्यद्देवहेलनं देवदेवार्हसि साम्येन सर्वान् प्रतिवोढुमविदुषाम् ॥१५॥

यत् उ ह वाव तव पुनः अदभ्र कर्तः इह समाहूतः तत्र अर्थधियां मन्दानां नः तद् यत् देव हेलनं देवदेव अर्हसि साम्येन सर्वान् प्रतिवोढुं अविदुषां ॥१५॥

यत् उ ह वाव	क्योंकि निश्चित रूपसे ही
अदभ्र	(आप) अव्यर्थ
कर्तः	कर्ता हैं
पुनः	फिर
अर्थधियां	(तुच्छ) प्रयोजन बुद्धिसे
नः मन्दानां	हम अज्ञानियोंने
इह समाहूतः	यहाँ (आपका) आवाहन किया
तद्	वह
देव तव	देव, आपकी
यत् हेलनं	जो अब हेलना हुई
देवदेव	देव देव !
साम्येन	(अपनी) समतासे
अविदुषां	(हम) अज्ञानियोंकी
सर्वान्	सब (भूलें)
प्रतिवोढुं	(आपको) सह लेना
अर्हसि	चाहिए ॥१५॥

श्रीशुक उवाच–

इति निगदेनाभिष्टूयमानो भगवाननिमिषर्षभो वर्षधराभिवादिताभिवन्दितचरणः सदयमिदमाह ॥१६॥

इति निगदेन अभिष्टूयमानः भगवान् अनिषर्षभः वर्षधर अभिवादित अभिवन्दित चरणः सदयं इदं आह ॥१६॥

वर्षधर	वर्षाधिपति (नाभि) के	निगदेन	कहते हुए,
अभिवादित अभिवन्दित	वन्दनीय	अभिष्टूयमानः	स्तुति किये जानेपर
चरणः	पूज्यचरण (ऋत्विकों द्वारा)	अनिषर्षभः	देवऋषभ (परमदेव)
इति	इस प्रकार	भगवान्	भगवान्
		सदयं	दयापूर्वक
		इदं आह	यह बोले ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच–

अहो बताहमृषयो भवद्भिरवितथगीर्भिर्वरमसुलभ-मभियाचितो यदमुष्यात्मजो मया सदृशो भूयादिति ममाहमेवाभिरूपः कैवल्यादथापि ब्रह्मवादो न मृषा भवितुमर्हति ममैव हि मुखं यद् द्विजदेवकुलम् ॥१७॥

अहो बत अहं ऋषयः भवद्भिः अवितथ गीःभिः वरं असुलभं अभियाचितः यत् अमुष्य आत्मजः मया सदृशः भूयात् इति मम अहं एव अभिरूपः कैवल्यात् अथ अपि ब्रह्मवादः न मृषा भवितुं अर्हति मम एव हि मुखं यत् द्विज देव कुलम् ॥१७॥

अहो बत	अरे किन्तु;	अमुष्य आत्मजः	इनका पुत्र
ऋषयः	ऋषियो !	मया सदृशः	मेरे समान
भवद्भिः	आप लोगों द्वारा	भूयात्	होवे
अहं	मुझसे	इति	इस प्रकार (मांगा है)
अवितथ	अव्यर्थ	मम अभिरूपः	मेरे समान
गीः भिः	वाणीसे	अहं एव	मैं ही हूँ,
असुलभं	बड़ा दुर्लभ	कैवल्यात्	एक मात्र होनेसे
वरं	वरदान	अथ अपि	फिर भी
अभियाचितः	मांगा गया है,	ब्रह्मवादः	ब्राह्मणोंकी बात
यत्	जो		

मृषा भवितुं	झूठी होनी	द्विजदेवकुलं	ब्राह्मण देवताओंका कुल
न अर्हति	नहीं चाहिए,		
यत् हि	क्योंकि	मम एव	मेरा ही
		मुखं	मुख है ॥१७॥

तत आग्नीध्रीयेंऽशकलयावतरिष्याम्यात्मतुल्यमनुपलभमानः ॥१८॥

ततः आग्नीध्रीये अंश कलया अवतरिष्यामि आत्मतुल्यं अनुपलभमानः ॥१८॥

ततः	इसलिए	आग्नीध्रीये	आग्नीध्रके वंशमें
आत्मतुल्यं	अपने समान	अंश कलया	(अपनी) कलाके अंशसे
अनुपलभमानः	(दूसरा) न पानेके कारण	अवतरिष्यामि	अवतार लूंगा ॥१८॥

श्रीशुक उवाच-

इति निशामयन्त्या मेरुदेव्याः पतिमभिधायान्तर्दधे भगवान् ॥१९॥

इति निशामयन्त्या मेरुदेव्याः पतिं अभिधाय अन्तर्दधे भगवान् ॥१९॥

मेरुदेव्याः	मेरुदेवीके	भगवान्	भगवान्
निशामयन्त्या	सुनते हुए	अन्तर्दधे	अन्तर्हित हो गये ॥१९॥
इति	इस प्रकार		
पतिं अभिधाय	(उसके) पतिसे कहकर		

बर्हिषि तस्मिन्नेवऽहनि विष्णुदत्त भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान्दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनुवावततार ॥२०॥

बर्हिषि तस्मिन् एव अहनि विष्णुदत्त भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितः नाभेः प्रियचिकीर्षया तद् अवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितु कामः वातरशनानां श्रमणानां ऋषीणां ऊर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनुः अवततार ॥२०॥

बर्हिषि	यज्ञके
तस्मिन् एव	उसी
अहनि	दिन
विष्णुदत्त	परीक्षित !
परमर्षिभिः	परमर्षियों द्वारा
प्रसादितः	प्रसन्न किये जानेसे,
नाभेः	राजा नाभिका
प्रियचिकीर्षया	प्रिय करनेकी इच्छासे,
तद् अवरोधायने	उनके अन्तःपुरमें
मेरुदेव्यां	मेरुदेवीसे
वातरशनानां	दिगम्बर,
ऊर्ध्वमन्थिनां	ऊर्ध्वरेता
श्रमणानां	विरक्त
ऋषीणां	ऋषियोंके
धर्मान्	धर्मोंको
दर्शयितु कामः	प्रदर्शित करनेकी इच्छासे
भगवान्	भगवान्‌ने
शुक्लया तनुः	शुद्ध सत्त्वमय शरीरसे
अवततार	अवतार लिया ॥२०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे नाभिचरिते ऋषभावतारो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अथ ह तमुत्पत्त्यैवाभिव्यज्यमानभगवल्लक्षणं साम्योपशमवैराग्यैश्वर्यमहाविभूतिभिरनुदिनमेधमानानुभावं प्रकृतयः प्रजाः ब्राह्मणा देवताश्चावनितलसमवनायातितरां जगृधुः ॥१॥

अथ ह तं उत्पत्त्या एव अभिव्यज्यमान भगवत् लक्षणं साम्य उपशम वैराग्य ऐश्वर्य महाविभूतिभिः अनुदिनम् एधमान अनुभावं प्रकृतयः प्रजाः ब्राह्मणा देवताः च अवनितल समवनाय अतितरां जगृधुः ॥१॥

अथ ह तं	फिर निश्चय उन (नाभिनन्दन) में	**एधमान**	बढ़नेवाले
उत्पत्त्या एव	जन्मसे ही	**अनुभावं**	प्रभावको (देखकर)
भगवत् लक्षणं	भगवान् होनेके लक्षण	**प्रकृतयः**	मन्त्री आदि
अभिव्यज्यमान	प्रकट होने लगे।	**प्रजाः**	प्रजाजन,
साम्य	समता,	**ब्राह्मणा**	ब्राह्मण
उपशम	शान्ति,	**च देवताः**	और देवता भी
वैराग्य	वैराग्य,	**अवनितल**	पृथ्वीके
ऐश्वर्य	ऐश्वर्य,	**समवनाय**	शासन करनेके लिए
महाविभूतिभिः	महान् वैभवके साथ	**अतितरां**	अत्यन्त उत्सुकतासे
अनुदिनम्	दिन-दिन	**जगृधुः**	(उनका) वरण किया ॥१॥

तस्य ह वा इत्थं वर्ष्मणा वरीयसा बृहच्छ्लोकेन चौजसा बलेन श्रिया यशसा वीर्यशौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इतीदं नाम चकार ॥२॥

तस्य ह इत्थं वर्ष्मणा वरीयसा बृहत् श्लोकेन च ओजसा बलेन श्रिया यशसा वीर्य शौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इति इदं नाम चकार ॥२॥

तस्य ह	उनके निश्चय
इत्थं	इस प्रकारके
वर्ष्मणा	शरीरके
वरीयसा	(सुन्दर, सुडौल) श्रेष्ठत्वसे
बृहत् श्लोकेन	विपुल कीर्तिसे,
च ओजसा	तथा मनोबल,
बलेन	(दैहिक) बलसे,
श्रिया	शोभा,
यशसा	सुयश,
वीर्य	पराक्रम,
च शौर्याभ्यां	तथा शूरता (के श्रेष्ठ होने) से
पिता	पिता (राजा नाभि) ने
ऋषभ	ऋषभ
इति इदं	इस प्रकार यह
नाम चकार	नाम रखा ॥२॥

तस्य हीन्द्रः स्पर्धमानो भगवान् वर्षे न ववर्ष तदवधार्य भगवानृषभदेवो योगेश्वरः प्रहस्यात्मयोगमायया स्ववर्षमजनाभं नामाभ्यवर्षत् ।.३॥

तस्य हि इन्द्रः स्पर्धमानः भगवान् वर्षे न ववर्ष तत् अवधार्य भगवान् ऋषभदेवः योगेश्वरः प्रहस्य आत्मयोग मायया स्व वर्षं अजनाभम् नाम अभ्यवर्षत् ॥३॥

हि तस्य	निश्चय उनसे
स्पर्धमानः	स्पर्धा करते हुए
इन्द्रः	इन्द्रने
भगवान् वर्षे	भगवान्के प्रदेशमें
ववर्ष न	वर्षा नहीं की,
तत् अवधार्य	इसका विचार करके
भगवान् ऋषभदेवः	भगवान् ऋषभदेव तो
योगेश्वरः	योगेश्वर थे,
प्रहस्य	हँसकर
स्व अजनाभ नाम वर्षं	अपने अजनाभ नामके प्रदेशमें
अभ्यवर्षत्	चारों ओर वर्षा की ॥३॥

नाभिस्तु यथाभिलषितं सुप्रजस्त्वमवरुध्यातिप्रमोदभर-विह्वलो गद्गदाक्षरया गिरा स्वैरं गृहीतनरलोकसधर्मं भगवन्तं पुराणपुरुषं मायाविलसितमतिर्वत्स तातेति सानुरागमुपलालयन् परां निर्वृतिमुपगतः ॥४॥

नाभिः तु यथा अभिलषितं सुप्रजस्त्वं अवरुध्य अति प्रमोद भर विह्वलः गद्गद् अक्षरया गिरा स्वैरं गृहीत नरलोक सधर्मं भगवन्तं पुराण-पुरुषं माया विलसित मतिः वत्स तात इति सानुरागं उप लालयन् परां निर्वृतिं उपगतः ॥४॥

नाभिः तु	(महाराज)नाभि तो
यथा	
अभिलषितं	अपनी अभिलाषाके अनुसार
सुप्रजस्त्वं	उत्तम पुत्र
अवरुध्य	पाकर
अति प्रमोद	
भर	अतिशय आनन्दके उद्रेकसे
विह्वलः	विह्वल होकर
गद्गद्	
अक्षरया	गद्गद् स्वरवाली
गिरा	वाणीसे
स्वैरं	स्वेच्छासे
नरलोक	मनुष्य लोककी
सधर्मं	सधर्मता
गृहीत	ग्रहण किये (मनुष्य बने)
भगवन्तं	भगवान्
पुराण पुरुषं	पुराण-पुरुषको
माया	
विलसित	(उन्हींकी) मायाके विलाससे प्रभावित
मतिः	बुद्धि (होकर)
वत्स ! तात	वत्स ! तात !
इति	इस प्रकार
सानुरागं	अनुरागपूर्वक
लालयन्	लाड़ करते हुए
परां निर्वृतिं	परमानन्द
उपगतः	पा रहे थे ॥४॥

विदितानुरागमापौरप्रकृति जनपदो राजा नाभिरात्मजं समयसेतुरक्षायामभिषिच्य ब्राह्मणेषूपनिधाय सह मेरुदेव्या विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्यं भगवन्तं वासुदेवमुपासीनः कालेन तन्महिमानमवाप ॥५॥

विदित अनुरागं आपौर प्रकृति जनपदः राजा नाभिः आत्मजं समय सेतु रक्षायां अभिषिच्य ब्राह्मणेषु उपनिधाय सह मेरुदेव्याः विशालायां प्रसन्न

निपुणेन तपसा समाधि योगेन नर नारायण आख्यं भगवन्तं वासुदेवं उपासीनः कालेन तत् महिमानं अवाप ॥५॥

आपौर	पुरवासियोंसे लेकर
प्रकृति	मन्त्री आदि
जनपदः	सभी बस्तियोंके लोगोंका
अनुरागम्	प्रेम
विदितः	जानकर
राजा नाभिः	महाराज नाभिने
आत्मजं	अपने पुत्र (ऋषभदेव)को
समय सेतु रक्षायां	सामयिक मर्यादाकी रक्षाके लिए
अभिषिच्य	अभिषेक करके
ब्राह्मणेषु उपनिधाय	ब्राह्मणोंपर उनका संरक्षण देकर,
सह मेरुदेव्याः	(पत्नी) मेरुदेवीके साथ
विशालायां	बदरीनाथ धाममें
प्रसन्न निपुणेन	निर्मल कुशल
तपसा	तपस्यासे*
समाधियोगेन	योगकी समाधिसे
नर नारायण आख्यं	नर-नारायण नामवाले
भगवन्तं वासुदेवं	भगवान् वासुदेवकी
उपासीनः	उपासना करके
तत् महिमानं	उनकी महिमा (स्वरूप)को
अवाप	प्राप्त हो गये ॥५॥

यस्य ह पाण्डवेय श्लोकावुदाहरन्ति—

यस्य ह पाण्डवेय श्लोकाः उदाहरन्ति—

पाण्डवेय ह यस्य	परीक्षित ! निश्चय जिनके सम्बन्धमें
श्लोकाः उदाहरन्ति	ये श्लोक कहे जाते हैं—

को नु तत्कर्म राजर्षेर्नाभिरन्वाचरेत्पुमान् ।
अपत्यतामगाद्यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ॥६॥

कः नु तत् कर्म राजर्षेः नाभेः अनु आचरेत् पुमान् अपत्यतां अगात् यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ॥६॥

---

*तपस्या निर्मल होती है निष्काम होनेसे और उसमें निपुणता है कि वह गीतावर्णित सात्विक हो, राजस या तामस न हो ।

यस्य	जिनके
शुद्धेन कर्मणा	शुद्ध कर्म से
हरिः	(स्वयं) श्रीहरि
यस्य	जिनके
अपत्यतां	
अगात्	पुत्र बन गये,
तत् राजर्षेः	उन राजर्षि
नाभेः	नाभिके
कर्म	कर्मका
कः नु	
पुमान्	भला कौन पुरुष
अनु आचरेत्	अनुकरणकर
	सकता है ॥६॥

ब्रह्मण्योऽन्यः कुतो नाभेर्विप्रा मङ्गलपूजिताः ।
यस्य बर्हिषि यज्ञेशं दर्शयामासुरोजसा ॥७॥

ब्रह्मण्यः अन्यः कुतः नाभेः विप्राः मङ्गलपूजिताः यस्य बर्हिषि यज्ञेशं दर्शयामासुः ओजसा ॥७॥

नाभेः	महाराज नाभिसे
अन्यः	भिन्न
ब्रह्मण्यः	ब्राह्मण भक्त
कुतः	कोई कहां होगा
यस्य बर्हिषि	जिनके यज्ञमें
मङ्गलपूजिताः	मङ्गल (उत्साह) पूर्वक पूजित
विप्राः	ब्राह्मणोंने
ओजसा	अपने ओज (मन्त्र-बल) से
यज्ञेशं	भगवान् यज्ञेशका
दर्शयामासुः	दर्शन करा दिया ॥७॥

अथ ह भगवानृषभदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रमनुमन्यमानः प्रदर्शितगुरुकुलवासो लब्धवरैर्गुरुभिरनुज्ञातो गृहमेधिनां धर्मानिनु-शिक्षमाणो जयन्त्यामिन्द्रदत्तायामुभयलक्षणं कर्म समाम्नाया-म्नातमभियुञ्जन्नात्मजानामात्मसमानानां शतं जनयामास ॥८॥

अथ ह भगवान् ऋषभदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रं अनुमन्यमानः प्रदर्शित गुरुकुलवासः लब्धवरैः गुरुभिः अनुज्ञातः गृहमेधिनां धर्मान् अनुशिक्षमाणः जयन्त्यां इन्द्रदत्तायां उभय लक्षणं कर्म समाम्नाय आम्नातं अभियुञ्जन् आत्मजानां आत्मसमानानां शतं जनयामास ॥८॥

अथ ह	इसके पश्चात् तो
भगवान् ऋषभदेवः	भगवान् ऋषभदेवने
स्ववर्षं	अपने देश (अजनाभ वर्ष) को
कर्मक्षेत्रं अनुमन्यमानः	कर्म-भूमि मानकर*
गुरुकुलवासः	(लोक संग्रहार्थ) गुरुकुलमें निवास
प्रदर्शित	दिखलाया ।
लब्धवरैः	गुरु दक्षिणा पाये
गुरुभिः	गुरुदेवसे
अनुज्ञातः	अनुमति पाकर
गृहमेधिनां	गृहस्थोंके
धर्मान्	धर्मोंका
अनुशिक्षमाणः	(लोगोंको) शिक्षा देनेके लिए
इन्द्रदत्तायां	इन्द्रकी दी हुई (उनकी कन्या)
जयन्त्यां	जयन्तीके साथ
उभय लक्षणं	(श्रौत-स्मार्त) दोनों प्रकारके
कर्म समाम्नायं	शास्त्रीय कर्मोंका
अभिभुञ्जन्	पालन करते हुए
आत्मसमानानां	अपने समान
आत्मजानां शतं	सौ पुत्र
जनयामास	उत्पन्न किये ॥८॥

येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति ॥९॥

येषां खलु महायोगी भरतः ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीत् येन इदं वर्षं भारतं इति व्यपदिशन्ति ॥९॥

येषां खलु	जिन (सौपुत्रों)में तो
महायोगी	महायोगी
भरतः	भरत
ज्येष्ठः	सबसे बड़े और
श्रेष्ठगुणः	गुणोंमें श्रेष्ठ
आसीत्	थे
येन	जिनके कारण
इदं वर्षं	इस देश (अजनाभ
भारतं	भारत
इति	
व्यपदिशन्ति	ऐसा कहा जाता है ॥९॥

---

* सप्तद्वीप युक्ता पृथ्वी कही गयी । उसमें भी जम्बूद्वीपका एक भाग अजनाभ वर्ष (यही पीछे भारतवर्ष कहलाया) यही कर्मभूमि है इसका अर्थ है कि वर्तमान ज्ञात पृथ्वी पौराणिक भारतवर्ष मात्र है ।

तमनु कुशावर्तं इलावर्तो ब्रह्मावर्तो मलयः केतुर्भद्रसेन इन्द्रस्पृग्विदर्भः कीकट इति नव नवतिप्रधानाः ॥१०॥

तं अनु कुशावर्तः इलावर्तः ब्रह्मावर्तः मलयः केतुः भद्रसेनः इन्द्रस्पृक् विदर्भः कीकटः इति नव नवतिप्रधानाः ।१०॥

तं अनु	उनसे पीछे
कुशावर्तः	कुशावर्त,
इलावर्तः	इलावर्त,
ब्रह्मावर्तः	ब्रह्मावर्त,
मलयः	मलय,
केतुः	केतु,
भद्रसेनः	भद्रसेन,
इन्द्रस्पृक्	इन्द्रस्पृक्
विदर्भः	विदर्भ,
कीकटः	कीकट
इति नव	ये नौ (भाई)
नवतिप्रधानाः	(शेष) नब्बेसे बड़े थे ॥१०॥

कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥११॥

कविः हरिः अन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः आविर्होत्रः अथद्रुमिलः चमसः करभाजनः ॥११॥

कविः	कवि,
हरिः	हरि,
अन्तरिक्षः	अन्तरिक्ष,
प्रबुद्धः	प्रबुद्ध,
पिप्पलायनः	पिप्पलायन,
आविर्होत्रः	आविर्होत्र,
द्रुमिलः	द्रुमिल,
चमसः	चमस,
अथ करभाजनः	और करभाजन ॥११॥

इति भागवतधर्मदर्शना नव महाभागवतास्तेषां सुचरितं भगवन्महिमोपबृंहितं वसुदेवनारदसंवादमुपशमायनमुपरिष्टाद्वर्णयिष्यामः ॥१२॥

इति भागवतधर्म दर्शनाः नव महाभागवताः तेषां सुचरितं भगवन् महिमा उपबृंहितं वसुदेव नारद संवादं उपशमायनं उपरिष्टात् वर्णयिष्यामः ॥१२॥

इति	इस प्रकार (ये)	**तेषां**	उनका
भागवतधर्म	भागवत धर्मका	**सुचरितं**	उत्तम चरित
दर्शनाः	प्रचार करनेवाले	**वसुदेव-नारद**	
महाभागवताः	महाभागवत (हुए)	**संवादं**	वसुदेव-नारद संवादमें
भगवन् महिमा	भगवानकी महिमासे	**उपरिष्टात्**	आगे
उपबृंहितं	महिमान्वित	**वर्णयिष्यामः**	वर्णन करूँगा॥१२॥
उपशमायनं	परमशान्तिपूर्ण		

यवीयांस एकाशीतिर्जायन्तेयाः पितुरादेशकरा महाशालीना महाश्रोत्रिया यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा बभूवुः ॥१३॥

यवीयांस एकाशीतिः जायन्तेयाः पितुः आदेशकराः महाशालीनाः महाश्रोत्रियाः यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धाः ब्राह्मणाः बभूवः ॥१३॥

एकाशीतिः	इक्यासी	**महाश्रोत्रियाः**	महान् वेदज्ञ,
यवीयांस	छोटे	**यज्ञशीलाः**	निरन्तर यज्ञ करनेवाले,
जायन्तेयाः	जयन्तीके पुत्र	**कर्मविशुद्धाः**	कर्म शुद्ध होनेसे
पितुः	पिताकी	**ब्राह्मणाः**	
आदेशकराः	आज्ञा माननेवाले,	**बभूवुः**	ब्राह्मण हो गये ॥१३॥
महाशालीनाः	अत्यन्त विनीत,		

भगवानृषभसंज्ञ आत्मतन्त्रः स्वयं नित्यनिवृत्तानर्थपरम्परः केवलानन्दानुभव ईश्वर एव विपरीतवत्कर्माण्यारभमाणः कालेनानुगतं धर्ममाचरणेनोपशिक्षयन्ननतद्विदां सम उपशान्तो मैत्रः कारुणिको धर्मार्थयशः प्रजानन्दामृतावरोधेन गृहेषु लोकं नियमयत् ॥१४॥

भगवान् ऋषभसंज्ञः आत्मतन्त्रः स्वयं नित्य निवृत्त अनर्थ परम्परः केवल आनन्दानुभवः ईश्वर एवं विपरीतवत् कर्माणि आरभमाणः कालेव अनुगतं धर्म आचरणेन उपशिक्षयन् अतद्विदां सम उपशान्तः मैत्रः कारुणिकः धर्म अर्थ यशः प्रजानन्द अमृत अवरोधेन गृहेषु लोकं नियमयत् ॥१४॥

ऋषभसंज्ञः	ऋषभ नामवाले
भगवान्	(वे) भगवान्
आत्मतन्त्रः	परम स्वतन्त्र थे,
स्वयं	अपने स्वरूपसे
अनर्थ परम्परः	अनर्थोंकी परम्परा (अविद्या)से
नित्य निवृत्त	नित्य पृथक थे
केवल आनन्दा-नुभवः	अद्वितीय आनन्दानुभव स्वरूप थे ।
ईश्वर एव	ईश्वर ही थे ।
विपरीतवत्	(फिर भी) विपरीत (वद्ध-जीव)की भाँति
कर्माणि	कर्मोंको
आरभमाणः	आरम्भ करके
कालेन	समयानुसार
अनुगतं	अनुयायियोंको
आचरणेन धर्मं	अपने आचरणसे
उपशिक्षयन्	धर्मकी (प्रत्यक्ष) शिक्षा देते हुए
अतद्विदां	उस (धर्माचरण)को न जानने वालोंको
सम	समत्व
उपशान्तः	शान्त,
मैत्रः	(सबके) मित्र
कारुणिकः	कारुणिक रहकर
धर्म अर्थ	धर्म, अर्थ
यशः प्रजानन्द	यश, सन्तान सुख,
अमृत	मोक्षका
अवरोधेन	संग्रह करते हुए
लोकं	लोगोंको
गृहेषु	गृहस्थाश्रममें
नियमयत्	नियमित किया ॥१४॥

यद्यच्छीर्षण्याचरितं तत्तदनुवर्तते लोकः ॥१५॥

यत् यत् शीर्षाणि आचरितं तत् तत् अनुवर्तते लोकः ॥१५॥

शीर्षाणि	चोटीके लोग
यत् यत्	जो-जो
आचरितं	आचरण करते हैं,
लोकः	(दूसरे) लोग
तत् तत्	उसी उसीका
अनुवर्तते	अनुकरण करते हैं ॥१५॥

यद्यपि स्वविदितं सकलधर्मं ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैर्दर्शितमार्गेण सामादिभिरुपायैर्जनतामनुशशास ॥१६॥

यद्यपि स्वविदितं सकल धर्मं ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैः दर्शित मार्गेण सामादिभिः उपायैः जनतां अनुशशास ॥१६॥

यद्यपि	यद्यपि
सकल	सब
ब्राह्मं	वेदके
गुह्यं	रहस्य तथा
धर्मं	धर्मको
स्वविदितं	स्वयं जानते थे (फिर भी)
ब्राह्मणैः	ब्राह्मणोंके
दर्शित मार्गेण	दिखलाये (बतलाये) मार्गसे
सामादिभिः	समझानेके
उपायैः	उपायोंसे
जनतां	जनताका
अनुशशास	शासन करते रहे ॥१६॥

द्रव्य देशकालवयः श्रद्धर्त्विग्विधोद्देशोपचितैः सर्वैरपि क्रतुभिर्यथोपदेशं शतकृत्व इयाज ॥१७॥

द्रव्य देशकालवयः श्रद्धा ऋत्विक् विविध उद्देशः उपचितैः सर्वैः अपि क्रतुभिः यथा उपदेशं शतकृत्व इयाज ॥१७॥

यथा उपदेशं	(शास्त्र तथा ब्राह्मणोंके) उपदेश-के अनुसार,
विविध उद्देशः	भिन्न-भिन्न देवताओंके उद्देशसे
द्रव्य	पदार्थ
देशकाल-	स्थान, समय,
वयः	अवस्था,
श्रद्धा	श्रद्धा,
ऋत्विक्	(यज्ञ करानेवाले) ऋत्विकों
उपचितैः	(सब यथोचित) जुटाकर
शतकृत्व	सौ-सौ बार
सर्वैः क्रतुभिः	
अपि	सभी यज्ञोंसे ही
इयाज	यजन किया ॥१७॥

भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन् वर्षे न कश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथञ्चन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसवनं विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण ॥१८॥

भगवत ऋषभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन् वर्षे न कश्चन पुरुषः वाञ्छति अविद्यमानं इव आत्मनः अन्य स्मात् कथञ्चन किमपि कर्हिचित् अवेक्षते भर्तरि अनुसवनं विजृम्भित स्नेह अतिशयं अन्तरेण ॥१८॥

भगवत ऋषभेण	भगवान् ऋषभदेव द्वारा
परिरक्ष्यमाण	सब ओरसे रक्षित
एतस्मिन् वर्षे	इस देशमें
अनुसवनं	निरन्तर
विजृम्भित	बढ़ते हुए
स्नेह अतिशयं	अतिशय स्नेहको
अन्तरेण	छोड़कर
कश्चन पुरुषः	कोई भी पुरुष
कथञ्चन	कभी भी
किमपि	कुछ भी
अविद्यमानं इव	अपने पास नहीं है, इस भांति
आत्मनः	अपनेसे (भिन्न)
अन्य स्मात्	दूसरेसे
न वाञ्छति	नहीं चाहता था,
कर्हिचित्	किसी समय
अवेक्षते	अपेक्षा भी (नहीं करता था) ॥१८॥

स कदाचिदटमानो भगवानृषभो ब्रह्मावर्तगतो ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां प्रजानां निशामयन्तीनामात्मजानवहितात्मनः प्रश्रयप्रणयभरसुयन्त्रितानप्युपशिक्षयन्निति होवाच ॥१९॥

स कदाचित् अटमानः भगवान् ऋषभः ब्रह्मावर्तगतः ब्रह्मर्षि प्रवर सभायां प्रजानां निशामयन्तीनां आत्मजान् अवहित आत्मनः प्रश्रय प्रणय भर सुयन्त्रितान् अपि उपशिक्षयन् इति ह उवाच ॥१९॥

कदाचित्	किसी समय
अटमानः	घूमते हुए
स भगवान्	वे भगवान्
ऋषभः	ऋषभदेव
ब्रह्मावर्तं गतः	ब्रह्मावर्त पहुँचे ।
ब्रह्मर्षि सभायां	(वहां) ब्रह्मर्षियोंकी सभामें
प्रजानां	प्रजाके
निशामयन्तीनां	सुनते हुए
अवहित	
आत्मनः	समाहित चित्त,
प्रश्रय	नम्रता एवं
प्रणय भर	प्रेमातिशयसे
सुयन्त्रितान्	अत्यन्त संयत
आत्मजान् अपि	पुत्रोंको भी
उपशिक्षयन्	शिक्षा देते हुए
इति ह उवाच	इस प्रकार निर्णय पूर्वक बोले ॥१९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

ऋषभ उवाच-

नायं देहो देहभाजां नृलोके
कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये ।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं
शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥१॥

न अयं देहः देहभाजां नृलोके कष्टान् कामान् अर्हते विड्भुजां ये तपः दिव्यं पुत्रकाः येन सत्त्वं शुद्ध्येत् यस्मात् ब्रह्मसौख्यं तु अनन्तम् ॥१॥

पुत्रकाः	(मेरे) छोटे पुत्रो !	तपः दिव्यं	(यह) दिव्य तपके लिए है
नृलोके	मनुष्य-लोकमें	येन	जिससे
देहभाजां	शरीरधारियोंका	सत्त्वं शुद्ध्येत्	अन्तःकरण शुद्ध होता है
अयं देहः	यह (मनुष्य) शरीर	यस्मात्	जिससे
ये विड्भुजां	जो विष्ठा-भोजी (शूकरादिको भी)	अनन्तं	अनन्त
कष्टान्	दुःखमय	ब्रह्मसौख्यं तु	ब्रह्मानन्द मिलता है ॥१॥
कामान्	भोग मिलते हैं (उन्हें ही)		
न अर्हते	प्राप्त करनेके लिए नहीं है		

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्ते-
स्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम् ।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता
विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥२॥

महत् सेवां द्वारं आहुः विमुक्तेः तमः द्वारं योषितां सङ्गिसङ्गं महान्तः ते समचित्ताः प्रशान्ताः विमन्यवः सुहृदः साधवः ये ॥२॥

महत् सेवां	महापुरुषोंकी सेवा
विमुक्तेः	मोक्षका
द्वारं आहुः	द्वार कही गयी है
तमः द्वारं	नरकका द्वार
योषितां सङ्गि-सङ्गं	स्त्रियासक्त लोगोंका साथ है
महान्तः ते	महापुरुष वे हैं
ये	जो
समचित्ताः	(सब द्वन्द्वोंमें) सम-चित्त हैं
प्रशान्ताः	अत्यन्त शान्त हैं
विमन्यवः	क्रोधरहित हैं
सुहृदः	सबके हितैषी (और)
साधवः	सदाचारी हैं ॥२॥

ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था
जनेषु देहम्भरवार्तिकेषु ।
गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु
न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके ॥३॥

ये वा मयि ईशे कृतः सौहृद अर्थाः जनेषु देहम्भर वार्तिकेषु गृहेषु जाया आत्मज रातिमत् सु न प्रीतियुक्ता यावत् अर्थाः च लोके ॥३॥

वा	अथवा (वे महापुरुष हैं)
ये मयि ईशे	जो मुझ ईश्वरमें
सौहृद	सौहार्द्रको
अर्थाः कृतः	पुरुषार्थ बना चुके हैं
देहम्भर	शरीरके पोषणकी ही
वार्तिकेषु जनेषु	चर्चा करनेवाले लोगोंसे
गृहेषु	घरमें
जाया आत्मज	स्त्री-पुत्रमें
रातिमत् सु	धनादिमें
प्रीतियुक्ता न	प्रेम करनेवाले नहीं हैं
लोके	लोकमें
यावत् अर्थाः च	प्रयोजन मात्रके लिए ही हैं ॥३॥

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म
यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ।

न साधु मन्ये यत आत्मनोऽय-
मसन्नपि क्लेशद आस देहः ॥४॥

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यत् इन्द्रिय प्रीतय आपृणोति न साधु मन्ये यत आत्मनः अयं असत् अपि क्लेशद आस देहः ॥४॥

नूनं	निश्चय
यत्	जो
इन्द्रिय प्रीतय	इन्द्रियोंको प्रसन्नता-के लिए
आपृणोति	उन्हें तृप्त करता है
प्रमत्तः	प्रमादवश
विकर्म	कुकर्म
कुरुते	करता है।
न साधु मन्ये	मैं इसे अच्छा नहीं मानता
यत	(क्योंकि) जिससे
आत्मनः अय	आत्माको यह
असत् अपि	असत् होनेपर भी
क्लेशद देहः	क्लेश देनेवाला शरीर
आस	प्राप्त हुआ है ॥४॥

पराभवस्तावदबोधजातो
यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम् ।
यावत्क्रियास्तावदिदं मनो वै
कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः ॥५॥

पराभवः तावत् अववोधजातः यावत् न जिज्ञासत आत्मतत्त्वं यावत् क्रियाः तावत् इदं मनः वै कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः ॥५॥

अवबोधजातः	अज्ञानसे उत्पन्न
पराभवः	(मायासे) पराजय
तावत्	तब तक है
यावत्	जब तक
आत्मतत्त्वं	आत्मा-तत्त्वको
न जिज्ञासत	जाननेकी इच्छा नहीं करता
यावत् क्रियाः	जब तक (सकाम) कर्म हैं
तावत् इदं	तब तक यह
कर्मात्मकं	कर्म-संस्कार रूप
मनः वै	मन निश्चय है
येन	जिसके द्वारा
शरीरबन्धः	देह-बन्धन मिलता है ॥५॥

एवं मनः कर्मवशं प्रयुङ्क्ते
अविद्ययाऽऽत्मन्युपधीयमाने ।
प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे
न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥६॥

एवं मनः कर्मवशं प्रयुङ्क्ते अविद्यया आत्मनि उपधीयमाने प्रीतिः न यावत् मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥६॥

एवं	इस प्रकार	**यावत्**	जब तक
अविद्यया	अविद्यासे	**मयि वासुदेवे**	मुझ वासुदेवमें
आत्मनि	आत्म-तत्त्वके	**प्रीतिः न**	प्रीति नहीं होती
उपधीयमाने	ढक जानेपर	**तावत्**	तब तक
मनः	मन	**देहयोगेन**	शरीरोंके संयोग (पुनर्जन्म) से
कर्मवशं	कर्मके वशमें (फिर कर्ममें)	**न मुच्यते**	मुक्त नहीं होता ॥६॥
प्रयुङ्क्ते	लगा देता है		

यदा न पश्यत्ययथा गुणेहां
स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् ।
गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापा-
नासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञः ॥७॥

यदा न पश्यति अयथा गुण ईहां स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् गतः स्मृतिः विन्दति तत्र तापान् आसाद्य मैथुन्यं अगारं अज्ञः ॥७॥

स्वार्थे	(अपने वास्तविक) स्वार्थके प्रति	**गुण ईहां**	इन्द्रियोंकी चेष्टाओंको
प्रमत्तः	प्रमादग्रस्त	**अयथा**	मिथ्या
सहसा	अचानक	**न पश्यति**	नहीं देखता
विपश्चित्	विवेकशील होकर	**गतः स्मृतिः**	(तब तक) स्मृति-भ्रष्ट
यदा	जब तक		

अज्ञः	वह अज्ञानी	तत्र तापान्	वहां सन्ताप
मैथुन्यं अगारं	स्त्री-पुरुषके निवास	विन्दति	पाता रहता है ॥७॥
आसाद्य	(गृहस्थाश्रम) को पाकर		

पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं
तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः ।
अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तै-
र्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति ॥८॥

पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावं एतं तयोः मिथः हृदयग्रन्थिम् आहुः अतः गृहे क्षेत्र सुत आप्त वित्तैः जनस्य मोहः अयं अहं मम इति ॥८॥

पुंसः स्त्रिया	पुरुष और स्त्रीका	सुत आप्त	पुत्र, गुरुजन (पिता-माता)
मिथुनीभावं	दाम्पत्य		
एतं	इसीको	वित्तैः	(तथा) धनमें
तयोः मिथः	उन दोनोंकी परस्पर	अयं मम	यह मैं, यह मेरा
हृदयग्रन्थिम्	(स्थूल) हृदय-ग्रन्थि	इति	इस प्रकार
आहुः	कहा गया है	अयं जनस्य	यह लोगोंका
अतः	अतः	मोहः	मोह होता है ॥८॥
गृहक्षेत्र	घर, खेत (भूमि)		

यदा मनोहृदयग्रन्थिरस्य
कर्मानुबद्धो दृढ आश्लथेत ।
तदा जनः सम्परिवर्ततेऽस्माद्
मुक्तः परं यात्यतिहाय हेतुम् ॥९॥

यदा मनः हृदयग्रन्थिः अस्य कर्म अनुबद्धः दृढ आश्लथेत तदा जनः सम्परिवर्तते अस्मात् मुक्तः परं याति अतिहाय हेतुम् ॥९॥

यदा	जब
कर्म अनुबद्धः	कम वासनाओंसे
दृढ अस्य	दृढ इसकी
हृदयग्रन्थि	हृदयकी ग्रन्थि
आश्लथेत	शिथिल पड़ जाती है
तदा जनः	तब मनुष्य
अस्मात्	इस दाम्पत्य भावसे
सम्परिवर्तते	भली प्रकार परिवर्तित हो जाता है
मुक्तः	(उससे) छूटकर
हेतुं	(संसारके) कारण (अहंकार) को
अतिहाय	त्यागकर
परं याति	परमपदको जाता है ॥९॥

हंसे गुरौ मयि भक्त्यानुवृत्त्या
वितृष्णया द्वन्द्वतितिक्षया च ।
सर्वत्र जन्तोर्व्यसनावगत्या
जिज्ञासया तपसेहानिवृत्त्या ॥१०॥

हंसे गुरौ मयि भक्त्या अनुवृत्त्या वितृष्णया द्वन्द्वतितीक्षया च सर्वत्र जन्तोः व्यसन अवगत्या जिज्ञासया तपसः ईहा निवृत्त्या ॥१०॥

हंसे	विवेकी
गुरौ	गुरुमें (तथा)
मयि	मुझ (परमात्मा) में
भक्त्या	भक्तिसे
अनुवृत्त्या	(इनके) अनुकूल वृत्तिसे
वितृष्णया च	तृष्णाके त्यागसे तथा
द्वन्द्वतितिक्षया	(सुख-दुःखादि) द्वन्द्वोंको सह लेनेसे
सर्वत्र	सभी कहीं
जन्तोः व्यसन	जीवको दुःख ही मिलता है
अवगत्या	इस जानकारीसे
जिज्ञासया	(आत्मतत्त्वकी) जिज्ञासासे
तपसः	तपस्यासे
ईहा निवृत्त्या	इच्छाओंकी निवृत्तिसे ॥१०॥

मत्कर्मभिर्मत्कथया च नित्यं
मद्देवसङ्गाद् गुणकीर्तनान्मे ।

निर्वैरसाम्योपशमेन पुत्रा
जिहासया देहगेहात्मबुद्धेः ॥११॥

मत् कर्मभिः मत् कथया च नित्यं मत् देवसङ्गात् गुणकीर्तनात् मे निर्वैर साम्य उपशमेन पुत्राः जिहासया देहगेह आत्मबुद्धेः ॥११॥

पुत्राः	पुत्रो !
मत् कर्मभिः	मेरे लिए कर्म करनेसे
च नित्यं	और नित्य
मत् कथया	मेरी कथा (सुनने) से
मत् देवसङ्गात् मे गुण-कीर्तनात्	मेरे भक्तोंके सङ्गसे मेरे गुणोंका कीर्तन करनेसे
निर्वैर	(किसीसे) शत्रुता न करनेसे
साम्य	समत्वसे
उपशमेन	वैराग्यसे
देहगेहे	शरीर तथा घरमें
आत्मबुद्धेः	आत्मबुद्धिके
जिहासया	त्यागसे ॥११॥

अध्यात्मयोगेन विविक्तसेवया
प्राणेन्द्रियात्माभिजयेन सध्र्यक् ।
सच्छ्रद्धया ब्रह्मचर्येण शश्वद्
असम्प्रमादेन यमेन वाचाम् ॥१२॥

अध्यात्मयोगेन विविक्तसेवया प्राण इन्द्रिय आत्म अभिजयेन सध्र्यक् सत् श्रद्धया ब्रह्मचर्येण शश्वत् असम्प्रमादेन यमेन वाचाम् ॥१२॥

अध्यात्मयोगेन	अन्तर्मुखतासे
विविक्तसेवया	एकान्त-सेवनसे
सध्र्यक्	भली प्रकार
प्राण इन्द्रिय	प्राण-इन्द्रियों तथा
आत्म अभिजयेन	मनको जीतनेसे
सत् श्रद्धया	सात्विक श्रद्धासे
शश्वत्	निरन्तर
ब्रह्मचर्येण	ब्रह्मचर्य पालनसे
असम्प्रमादेन	प्रमादहीनतासे
वाचां यमेन	वाणीका संयम करनेसे ॥१२॥

सर्वत्र मद्भावविचक्षणेन
ज्ञानेन विज्ञानविराजितेन ।
योगेन धृत्युद्यमसत्त्वयुक्तो
लिङ्गं व्यपोहेत्कुशलोऽहमाख्यम् ॥१३॥

सर्वत्र मद्भाव विचक्षणेन ज्ञानेन विज्ञान विराजितेन योगेन धृति उद्यम सत्त्व युक्तः लिङ्गं व्यपोहेत् कुशलः अहं आख्यम् ॥१३॥

सर्वत्र	सब कहीं	धृति उद्यम	धैर्य, उद्योग
मत्भाव	मेरी ही सत्ता	सत्त्व युक्तः	मनोबल युक्त होकर
विचक्षणेन	देखते रहनेसे	कुशलः	चतुर व्यक्ति
विज्ञान		अहं आख्यं	अहं कहे जानेवाले
विराजितेन	अनुभव ज्ञान सहित	लिङ्गं	लिङ्ग शरीरको
ज्ञानेन	तत्त्व-ज्ञानसे	व्यपोहेत्	लीन कर दे ॥१३॥
योगेन	योग-साधनसे		

कर्माशयं हृदयग्रन्थिबन्ध-
मविद्ययाऽऽसादितमप्रमत्तः ।
अनेन योगेन यथोपदेशं
सम्यग्व्यपोह्योपरमेत योगात् ॥१४॥

कर्माशयं हृदयग्रन्थि बन्धं अविद्यया आसादितं अप्रमत्तः अनेन योगेन यथा उपदेशं सम्यक् व्यपोह्य उपरमेत योगात् ॥१४॥

अप्रमत्तः	सावधान रहकर	अनेन	इस (बतलाये गये)
अविद्यया	अविद्याके द्वारा	योगेन	योग (साधनों) से
आसादितं	प्राप्त हुई	सम्यक्	भली प्रकार
कर्माशयं	कर्माशय (रूप, अन्तःकरण) की	व्यपोह्य	काटकर
		योगात्	साधनोंसे
हृदयग्रन्थि	हृदयकी गांठके	उपरमेत	उपराम हो
बन्धं	बन्धनको		जाय ॥१४॥
यथा उपदेशं	शास्त्रोपदेशके अनुसार		

पुत्रांश्च शिष्यांश्च नृपो गुरुर्वा
मल्लोककामो मदनुग्रहार्थः ।
इत्थं विमन्युरनुशिष्यादतज्ज्ञान्
न योजयेत्कर्मसु कर्ममूढान् ।
कं योजयन्मनुजोऽर्थं लभेत
निपातयन्नष्टदृशं हि गर्ते ॥१५॥

पुत्रान् च शिष्यान् च नृपः गुरुः वा मत् लोककामः मत् अनुग्रह अर्थः इत्थं विमन्युः अनुशिष्यात् अतत् ज्ञान् न योजयेत् कर्मसु कर्ममूढान् कं योजयन् मनुजः अर्थं लभेत निपातयन् नष्टदृशं हि गर्ते ॥१५॥

मत् लोककामः	(जो) मेरा लोक पाना चाहता हो
मत् अनुग्रह अर्थः	(उसे) मेरा अनुग्रह पानेके लिए
नृपः	राजा
पुत्रान् च	पुत्रों (प्रजाको) तथा
गुरुः	गुरु
शिष्यान् च	शिष्योंको भी
विमन्युः	बिना क्रोधके
इत्थं	इस प्रकार
अनुशिष्यात्	बराबर सिखलावे,
अतत् ज्ञान्	तत्त्व न जाननेवाले
कर्ममूढान्	कर्ममें अज्ञानपूर्वक लगे लोगोंको
कर्मसु	कर्ममें ही
न योजयेत्	न लगावे,
हि नष्टदृशं	क्योंकि अन्धोंको
गर्ते निपातयन्	गड्ढेमें गिरानेसे
मनुजः	मनुष्य
कं अर्थं	कौन-सा प्रयोजन
लभेत	पा लेगा ॥१५॥

लोकः स्वयं श्रेयसि नष्टदृष्टि-
र्योऽर्थान् समीहेत निकामकामः ।
अन्योन्यवैरः सुखलेशहेतो-
रनन्तदुःखं च न वेद मूढः ॥१६॥

लोकः स्वयं श्रेयसि नष्टदृष्टिः यः अर्थान् समीहेत निकाम कामः अन्योन्य वैरः सुखलेश हेतः अनन्त दुःखं च न वेद मूढः ॥१६॥

लोकः	लोग	**समीहेत**	चाहते हैं,
स्वयं	अपने	**सुखलेश**	सुखके क्षुद्रांश
श्रेयसि	कल्याणके सम्बन्धमें	**हेतः**	के लिए
नष्टदृष्टिः	अन्धे हैं,	**अन्योन्य वैरं**	एक दूसरेसे शत्रुता करते हैं
यः निकाम	जो अत्यन्त उत्सुकतासे	**च मूढः**	और वे मूर्ख
कामः	कामनापूर्वक	**अनन्त दुःखं**	अनन्त दुःखोंको
अर्थान्	भोगोंको ही	**न वेद**	नहीं जानते हैं ॥१६॥

कस्तं स्वयं तदभिज्ञो विपश्चिद्
अविद्यायामन्तरे वर्तमानम् ।
दृष्ट्वा पुनस्तं सघृणः कुबुद्धिं
प्रयोजयेदुत्पथगं यथान्धम् ॥१७॥

कः तं स्वयं तत् अभिज्ञः विपश्चित् अविद्यायां अन्तरे वर्तमानं दृष्ट्वा पुनः तं सघृणः कुबुद्धिं प्रयोजयेत् उत्पथगं यथा अन्धम् ॥१७॥

स्वयं	स्वयं	**यथा**	जैसे
तत्	उस (तथ्य) को	**उत्पथगं**	कुमार्गसे जाते
अभिज्ञः	जानने वाला	**अन्धं**	अन्धेको
विपश्चित्	विवेकी	**सघृणः**	दयाल होते हुए भी
कः तं	कौन उन	**पुनः तं**	फिर उन्हें
अविद्यायां	अविद्याके	**कुबुद्धिं**	कुबुद्धिमें
अन्तरे वर्तमानं	भीतर ही रहनेवाले	**प्रयोजयेत्**	लगावेगा ॥१७॥
दृष्ट्वा	(लोगोंको) देखकर		

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।

दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न
मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥१८॥

गुरुः न स स्यात् स्वजनः न स स्यात् पिता न स स्यात् जननी न सा स्यात् दैवं न तत् स्यात् न पतिः च स स्यात् न मोचयेत् यः समुपेतं मृत्युम् ॥१८॥

स गुरुः	वह गुरु
न स्यात्	नहीं है,
स स्वजनः	वह स्वजन
न स्यात्	नहीं है,
स पिता	वह पिता
न स्यात्	नहीं है,
सा जननी	वह माता
न स्यात्	नहीं है,
तत् दैवं	वह इष्ट देव
न स्यात् च	नहीं है, और
स पतिः	वह पति
न स्यात्	नहीं है,
यः समुपेतं	जो पास आयी
मृत्युं	मृत्युसे
न मोचयेत्	छुड़ा न ले ॥१८॥

इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं
सत्त्वं हि मे हृदयं यत्र धर्मः ।
पृष्ठे कृतो मे यदधर्म आराद्
अतो हि मामृषभं प्राहुरार्याः ॥१९॥

इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं सत्त्वं हि मे हृदयं यत्र धर्मः पृष्ठे कृतः मे यत् अधर्म आरात् अतः हि मां ऋषभं प्राहुः आर्याः ॥१९॥

मम इदं शरीरं	मेरा यह (अवतार) देह
दुर्विभाव्यं	बुद्धिगम्य नहीं है,
हि सत्त्वं	क्योंकि शुद्ध सत्त्व
मे हृदयं	मेरा हृदय है,
यत्र धर्मः	जहाँ धर्म (की स्थिति) है,
यत् अधर्म	क्योंकि अधर्मको
आरात्	समीपसे
मे पृष्ठे कृतः	मैंने पीछे कर दिया (त्याग दिया) है,
अतः हि	अतः इसलिए
आर्याः	श्रेष्ठजन
मां ऋषभं	
प्राहुः	मुझे ऋषभ कहते हैं ॥१९॥

तस्माद्भुवन्तो हृदयेन जाताः
सर्वे महीयांसममुं सनाभम् ।
अक्लिष्टबुद्धया भरतं भजध्वं
शुश्रूषणं तद्धरणं प्रजानाम् ॥२०॥

तस्मात् भवन्तः हृदयेन जाताः सर्वे महीयांसं अमुं सनाभं अक्लिष्ट बुद्ध्या भरतं भजध्वं शुश्रूषणं तत् भरणं प्रजानाम् ॥२०॥

भवन्तः	तुम लोग
हृदयेन जाताः	(शुद्ध सत्त्व मेरे) हृदयसे उत्पन्न हो
तस्मात् सर्वे	इसलिए सब
अक्लिष्ट बुद्ध्या	मत्सरहीन बुद्धिसे
अमुं महीयांसं सनाभं	इन सगे बड़े भाई
भरतं भजध्वं	भरतकी सेवा करो,
तत् मरणं	उनकी सेवा
प्रजानां	प्रजाकी
शुश्रूषणं	सेवा है ॥२०॥

भूतेषु वीरुद्भ्य उदुत्तमा ये
सरीसृपास्तेषु सबोधनिष्ठाः ।
ततो मनुष्याः प्रमथास्ततोऽपि
गन्धर्वसिद्धा विबुधानुगा ये ॥२१॥

भूतेषु वीरुद्भ्यः उत् उत्तमा ये सरीसृपाः तेषु सबोध निष्ठाः ततः मनुष्याः प्रमथाः ततः अपि गन्धर्व सिद्धाः विबुध अनुगाः ये ॥२१॥

भूतेषु	प्राणियोंमें
वीरुद्भ्यः	वृक्षोंसे
उत् उत्तमा ये	कुछ श्रेष्ठ जो हैं (वे)
सरीसृपाः	सरीसृप (सरकने वाले) हैं,
तेषु	उनसे
सबोध निष्ठाः	ज्ञानवाले (पशु) श्रेष्ठ हैं,
ततः मनुष्याः	उनसे मनुष्य
ततः	उनसे
प्रमथाः	प्रमथ (भूतोंकी एक जाति)
ततः अपि	उनसे भी

य विबुध अनुगाः	देवताओंके अनुचर	गन्धर्व सिद्धाः	गन्धर्व सिद्धादि हैं ॥२१॥

देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना
दक्षादयो ब्रह्मसुतास्तु तेषाम् ।
भवः परः सोऽथ विरिञ्चवीर्यः
स मत्परोऽहं द्विजदेवदेवः ॥२२॥

देव असुरेभ्यः मघवत् प्रधानाः दक्षादयः ब्रह्मसुताः तु तेषां भवः परः सः अथ विरिञ्चि वीर्यः स मत् परः अहं द्विजदेव देवः ॥२२॥

देव असुरेभ्यः	देवता तथा असुरोंमें		उत्पन्न हैं
मघवत् प्रधानाः	इन्द्र श्रेष्ठ हैं,	स मत् परः	वे (ब्रह्मा) मेरे परायण हैं,
दक्षादयः	दक्षादि	अहं	मैं
ब्रह्मसुताः तु	ब्रह्माजीके पुत्र तो उनसे,	द्विजदेव देवः	ब्राह्मणोंको देव (पूज्य) मानता हूँ ॥२२॥
तेषां	उनमें		
भवः परः	रुद्र श्रेष्ठ हैं।		
अथ सः विरिञ्चि			
वीर्यः	फिर वे ब्रह्माजीसे		

न ब्राह्मणैस्तुलये भूतमन्यत्
पश्यामि विप्राः किमतः परं तु ।
यस्मिन्नृभिः प्रहुतं श्रद्धयाह-
मश्नामि कामं न तथाग्निहोत्रे ॥२३॥

न ब्राह्मणैः तुलये भूतं अन्यत् पश्यामि विप्राः किं अतः परं तु यस्मिन् नृभिः प्रहुतं श्रद्धया अहं अश्नामि कामं न तथा अग्निहोत्रे ॥२३॥

विप्राः	ब्राह्मणो !	तुलये न	तुलना नहीं करता,
ब्राह्मणैः	(मैं) ब्राह्मणोंसे	अतः परं तु	उनसे श्रेष्ठ तो
अन्यत् भूतं	दूसरे प्राणियोंको	किं पश्यामि	क्या देखूंगा ।

नृभिः	मनुष्यों द्वारा	अश्नामि	खाता हूं,
यस्मिन्	जिन (के मुख) में	तथा	वैसा
श्रद्धया	श्रद्धासे	अग्निहोत्रे	अग्निमें हवन
प्रहुतं	आहुति (भोजन) देनेपर		करनेसे
		न	नहीं (खाता)॥२३॥
अहं कामं	मैं भलो प्रकार		

धृता तनूरुशती मे पुराणी
येनेह सत्त्वं परमं पवित्रम् ।
शमो दमः सत्यमनुग्रहश्च
तपस्तितिक्षानुभवश्च यत्र ॥२४॥

धृताः तनूः उशतीः मे पुराणी येन इह सत्त्वं परमं पवित्रं शमः दमः सत्यं अनुग्रहः च तपः तितिक्षा अनुभवः च यत्र ॥२४॥

येन इह	जिन्होंने इस लोकमें	शमः दमः	शम (मनोनिग्रह) दम (इन्द्रिय-दमन)
उशतीः	सुन्दर		
पुराणी	सनातन	सत्यं अनुग्रहः	सत्य, कृपाशीलता,
मे तनूः	मेरे (वेदरूपी) शरीरको	च तपः	
		तितिक्षा	तथा तपस्या, तितीक्षा
धृताः	धारण कर रखा है,		
यत्र	जिनमें	च अनुभवः	एवं (परमार्थ-तत्त्वका) अनुभव* है ॥२४॥
परमं पवित्रं	परम पवित्र		
सत्त्वं	सत्त्व,		

मत्तोऽप्यनन्तात्परतः परस्मात्
स्वर्गापवर्गाधिपतेर्न किञ्चित् ।
येषां किमु स्यादितरेण तेषा-
मकिञ्चनानां मयि भक्तिभाजाम् ॥२५॥

---

* ब्राह्मणके ये आठ गुण हैं—१. सात्विकता, २. शम, ३. दम, ४. सत्य, ५. कृपा, ६. तप, ७. तितीक्षा तथा ८. ज्ञान ।

मत्तः अपि अनन्तात् परतः परस्मात् स्वर्ग अपवर्ग अधिपतेः न किञ्चित् येषां किमु स्यात् इतरेण तेषां अकिञ्चनानां मयि भक्ति भाजाम् ॥२५॥

अनन्तात्	अनन्त
परतः परस्मात्	(ब्रह्मादि) श्रेष्ठोंसे भी परम श्रेष्ठ
स्वर्गं अपवर्ग अधिपतेः	स्वर्ग और मोक्षके स्वामी
मत्तः अपि	मुझसे भी
येषां	जिनकी
किञ्चित् न	कोई मांग नहीं है,
मयि भक्ति भाजां	मुझमें भक्ति करनेवाले
येषां	उन
अकिञ्चनानां	अकिञ्चन भक्तोंका
इतरेण	दूसरोंसे
किमु स्यात्	क्या (प्रयोजन) हो सकता है ॥२५॥

सर्वाणि मद्भिष्ण्यतया भवद्भि-
श्चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि ।
सम्भावितव्यानि पदे पदे वो
विविक्तदृग्भिस्तदु हार्हणं मे ॥२६॥

सर्वाणि मत् भिष्ण्यतया भवत् भिः चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि सम्भावित व्यानि पदे पदे वः विविक्त दृग्भिः तत् उ ह अर्हणं मे ॥२६॥

भवत् भिः	तुम लोगोंके द्वारा
सर्वाणि	सब
चराणि	चर
ध्रुवाणि	अचर
भूतानि	प्राणियोंको
सुता वः	पुत्रो ! तुम लोग
मत् भिष्ण्यतया	मेरा स्वरूप समझकर
विविक्त दृग्भिः	एकान्त दृष्टि (भाव) से
पदे पदे	
सम्भावित व्यानि	पद-पदपर सम्मानित करो
तत् उ ह	वह निश्चित रूपसे ही
मे अर्हणं	मेरी पूजा है॥२६॥

मनोवचोदृक्करणेहितस्य
साक्षात्कृतं मे परिबर्हणं हि ।
विना पुमान् येन महाविमोहात्
कृतान्तपाशान्न विमोक्तुमीशेत् ॥२७॥

मनः वचः दृक् करण ईहितस्य साक्षात् कृतं मे परिबर्हणं हि विना पुमान् येन महाविमोहात् कृतान्त पाशात् न विमोक्तं ईशेत् ॥२७॥

हि	क्योंकि
मनः वचः	मन, वाणी
दृक् करण	दृष्टि तथा इन्द्रियोंकी
ईहितस्य	चेष्टाओंका
साक्षात्	साक्षात् (फल)
मे परिबर्हणं	मुझे(सब प्राणियोंको सम्मान देनेके द्वारा) उपहार
कृतं	देना है,
येन विना	जिसके बिना
पुमान्	पुरुष
महाविमोहात्	महान् मोहमय
कृतान्त पाशात्	कालके पाशसे
विमोक्तं	छूटनेमें
ईशेत् न	समर्थ नहीं होता ॥२७॥

श्रीशुक उवाच-

एवमनुशास्यात्मजान् स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः परमसुहृद्भगवानृषभापदेश उपशमशीलानामुपरत-कर्मणां महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्ममुप-शिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरितशरीरमात्र-परिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिता-हवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रववाज ॥२८॥

एवं अनुशास्य आत्मजान् स्वयं अनुशिष्टान् अपि लोकान् अनुशासनार्थं महा अनुभावः परम सुहृद् भगवान् ऋषभ अपदेशः उपशमशीलानां उपरत कर्मणां महामुनीनां भक्ति ज्ञान वैराग्य लक्षणं पारमहंस्य धर्मं उपशिक्षमाणः स्वतनय शत ज्येष्ठं परमभागवतं भगवत् जन परायणं भरतं धरणि पालनाय अभिषिच्य स्वयं भवन एव उर्वरित शरीरमात्र परिग्रहः उन्मत्त इव गगन परिधानः प्रकीर्ण केश आत्मनि आरोपित आहवनीयः ब्रह्मावर्तात् प्रवव्राज ॥२८॥

एवं	इस प्रकार
स्वयं	
अनुशिष्टान्	
अपि	स्वयं सुशिक्षित होनेपर भी
लोकान् अनुशासनार्थं	लोगोंको शिक्षा देनेके लिए
आत्मजान्	(अपने) पुत्रोंको
अनुशास्य	शिक्षा देकर
महा अनुभावः	महान् प्रभावशाली
परम सुहृद्	(सबके) परम सुहृद्
ऋषभ अपदेशः	ऋषभ नामवाले
भगवान्	भगवानने
उपशम-शीलानां	वैराग्य परायण
उपरत कर्मणां	कर्म-त्यागी
महामुनीनां	महामुनियोंके
भक्ति ज्ञान वैराग्य	भक्ति, ज्ञान, वैराग्य
लक्षणं	लक्षणवाले
पारमहंस्यं धर्मं	परमहंसोंके धर्मकी
उपशिक्षमाणः	शिक्षा देनेके लिए
स्वतनय शत ज्येष्ठं	अपने सौ पुत्रोंमें बड़े
परमभागवतं	परम भगवद् भक्त,
भगवत् जन परायणं	भगवद् भक्तोंके परायण
भरतं	भरतका
धरणि पालनाय	पृथ्वी, पालनके लिए
अभिषिच्य	अभिषेक करके
स्वयं	स्वयं
भवन एव	घरपर ही
उर्वरित शरीरमात्र	सब त्याग दिया
परिग्रहः	केवल शरीर ही साथ रखकर
उन्मत्त इव	पागलके समान
गगन परिधानः	दिगम्बर
प्रकीर्ण केश	बिखरे केश
आहवनीयः	गार्हस्पत्य अग्निका
आत्मनि एव	अपनेमें ही
आरोपित	आरोप (धारणा) करके
ब्रह्मावर्तात्	ब्रह्मावर्तसे
प्रवव्राज	निकल गये ॥२८॥

जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णीं बभूव ॥२९॥

जड अन्ध मूक बधिर पिशाच उन्मादकवत् अवधूतवेषः अभिभाष्यमाणः अपि जनानां गृहीतः मौनव्रतः तूष्णीं बभूव ॥२९॥

जड	मूर्ख,	**जनानां**	लोगोंके
अन्ध मूक	अन्धे, गूँगे,	**अभिभाष्य-**	
बधिर	बहिरे,	**माणः अपि**	बात करनेपर भी
पिशाच		**मौनव्रतः गृहीतः**	मौनव्रत धारण करके
उन्मादकवत्	भूत लगे पागलकी भाँति	**तूष्णीं बभूव**	चुप हो गये ॥२९॥
अवधूतवेषः	मलिन वेशमें		

तत्र तत्र पुरग्रामाकरखेटवाटखर्वट शिबिरव्रजघोषसार्थगिरिवनाश्रमादिष्वनुपथमवनिचरापसदैः परिभूयमानो मक्षिकाभिरिव वनगजस्तर्जनताडनावमेहनष्ठीवनग्रावशकृद्रजःप्रक्षेपपूतिवातदुरुक्तैस्तदविगणयन्नेवासत्संस्थान एतस्मिन् देहोपलक्षणे सदपदेश उभयानुभवस्वरूपेण स्वमहिमावस्थानेनासमारोपिताहंममाभिमानत्वादविखण्डितमनाः पृथिवीमेकचरः परिबभ्राम ॥३०॥

तत्र तत्र पुर ग्राम आकर खेट वाट खर्वट शिबिर व्रज घोष सार्थ गिरि वन आश्रम आदिषु अनुपथं अवनिचर अपसदैः परिभूयमानः मक्षिकाभिः इव वनगजः तर्जन ताडन अवमेहन ष्ठीवन ग्राव शकृत् रजः प्रक्षेप पूतिवात दुरुक्तैः तत् अविगणयन् एव असत् संस्थान एतस्मिन् देह उपलक्षणे सत् अपदेश उभय अनुभव स्वरूपेण स्वमहिमा अवस्थानेन असमारोपित अहं मम अभिमान त्वात् अविखण्डितमनाः पृथिवीं एकचरः परिबभ्राम ॥३०॥

तत्र तत्र जहाँ-तहाँ
पुर नगर,
ग्राम गाँव,
आकर खान,
खेट कृषक-वस्ती,
वाट बगीचेके मकान,
शिबिर सैनिक-पड़ाव,
व्रज चरवाहोंके चलते-फिरते गाँव,
घोष अहीरोंके गांव,
सार्थ यात्रियोंके पड़ाब,
गिरि पर्वत,
वन वन,
आश्रम आदिषु आश्रमोंमें
वनगजः जंगली-हाथी
मक्षिकाभिः मक्खियों द्वारा जैसे
इव (तंग किया जाय) इस प्रकार
तर्जन ताडन डाँटने, पीटने,
अवमेहन (ऊपर) मूत्र करने,
ष्ठीवन थूक देने,
ग्राव ढेला-
शकृत् विष्ठा या
रजः प्रक्षेप धूलि फेंकने,
पूतिवात अपानवायु त्यागने
दुरुक्तैः और दुवचनोंकी
अवनिचर
अपसदैः पृथ्वीपर चलने-वालोंके कलंक रुप दुष्टोंसे
परिभूयमानः तंग किये जानेको
अविगणयन्
एव अवहेलना करते हुए ही
असत् संस्थान असत् रुप
सत् अपदेशे सत् समझे जानेवाले
एतस्मिन् इस
देह उपलक्षणे शरीर रुपसे प्रतीतिमें
उभय (सत् और असत्) दोनोंके
अनुभव
स्वरूपेण अनुभव स्वरुप होनेसे
स्वमहिमा अपनी महिमामें
अवस्थानेन स्थित होनेसे
अहं मम
अभिमान अहं और मम यह अभिमान
असमारोपित
त्वात् (अपनेमें) आरोपित न होनेके कारण
अविखण्डित-
मनाः अखण्ड (शान्त) चित्तवृत्तिसे
एकचरः अकेले
पृथिवीं पृथ्वीपर
परिबभ्राम चारों ओर घूमते रहे ॥३०॥

अतिसुकुमारकरचरणोरःस्थलविपुलबाह्वंसगलवदनाद्यवयव-विन्यासः प्रकृतिसुन्दरस्वभावहाससुमुखो नवनलिनदलायमानशिशिरतारारुणायतनयनरुचिरः सदृशसुभगकपोलकर्णकण्ठनासो विगूढस्मितवदनमहोत्सवेन पुरवनितानां मनसि कुसुमशरासनमुपदधानः परागवलम्बमानकुटिलजटिलकपिशकेशभूरिभारोऽवधूतमलिननिजशरीरेण ग्रहगृहीत इवादृश्यत ॥३१॥

अतिसुकुमार करचरण उरःस्थल विपुल बाहु अंस गल वदन आदि अवयव विन्यासः प्रकृति सुन्दर स्वभाव हाससुमुखः नव नलिनदलायमान शिशिर तारारुण आयत नयन रुचिरः सदृश सुभग कपोल कर्ण कण्ठ नासः विगूढ स्मित वदन महोत्सेवन पुरवनितानां मनसि कुसुम शरासनं उपदधानः पराक् अवलम्बमान कुटिल जटिल कपिश केश भूरिभारः अवधूत मलिन निज शरीरेण ग्रहगृहीत इव अदृश्यत ॥३१॥

करचरण	हाथ और चरण	नव नलिन-दलायमान	नवीन कमलदलके समान
अतिसुकुमार	अत्यन्त सुकुमार थे		
उरःस्थल	वक्षस्थल	शिशिर तारारुण	शीतल कमलारुण
बाहु अंस	भुजाएँ, कन्धे	आयत नयन रुचिरः	बड़े-बड़े सुन्दर नेत्र थे
विपुल	विस्तीर्ण(विशाल) थे	सदृश सुभग	समान और सुन्दर
गल वदन	कंठ, मुख	कपोल कर्ण	कपोल, कान
आदि अवयव विन्यासः	आदि अंगोंकी बनावट	कण्ठ नासः	कण्ठ और तथा नासिका थी
प्रकृति सुन्दर	स्वाभाविक सुन्दर थी	विमूढ स्मित	अस्फुट मुसुकानयुक्त
हाससुमुखः स्वभाव	सहज मुस्कराहटयुक्त सुन्दर मुख था		

वदन महोत्सेवन	मुखकी शोभासे
पुरवनितानां मनसि	नगरकी नारियोंके मनमें
कुसुम शरासनं उपदधानः	कामका संचार करते
पराक् अवलम्बमान	चारों ओर बिखरे
कुटिल जटिल	घुँघराले, उलझे
कपिश	भूरे
केश भूरिभारः	बहुत केशोंके भारसे
अवधूत मलिन	अवधूतोंके समान मलिन
निज शरीरेण	अपने शरीरसे (वे)
ग्रहगृहीत इव	ग्रहग्रस्तके समान
अदृश्यत	दिखलाई पड़ते थे ॥३१॥

यर्हि वाव स भगवान् लोकमिमं योगस्याद्धा प्रतीपमिवाचक्षाणस्तत्प्रतिक्रियाकर्म बीभत्सितमिति व्रतमाजगरमास्थितः शयान एवाश्नाति पिबति खादत्यवमेहति हदति स्म चेष्टमान उच्चरित आदिग्धोद्देशः ॥३२॥

यर्हि वाव स भगवान् लोकं इमं योगस्य अद्धा प्रतीपं इव आचक्षाणः तत् प्रतिक्रिया कर्म बीभत्सितं इति व्रतं आजगरं आस्थितः शयान एव अश्नाति पिबति खादति अवमेहति हदति स्म चेष्टमान उच्चरित आदिग्धः उद्देशः ॥३२॥

यर्हि वाव	जब निश्चित रूपसे
स भगवान्	उन भगवान्‌ने
इमं लोकं	इस लोक (जनता) को
योगस्य	योगकी
अद्धा	सम्पूर्णतामें
प्रतीपं इव	बाधककी भाँति
आचक्षाणः	पूर्णरूपसे देखा (तब)
तत् प्रतिक्रिया	उसकी प्रतिक्रिया रूप
बीभत्सितं इति	'वीभत्स है' इस प्रकारका
कर्म	कर्म
आजगरं	अजगरके समान रहनेका
व्रतं आस्थितः	व्रत ले लिया ।
शयान एव	(उसमें) सोते हुए ही
अश्नाति पिबति	खाते थे, पीते थे
खादति	चबाते थे
अवमेहति	मूत्र-त्याग तथा

हदति स्म	मल-त्याग करते थे	आदिग्धः	सन जाते थे
चेष्टमानः	हलचल करके (लोट-पोट होकर)	उद्देशः	(यह सब) उद्देश-पूर्वक करते थे ॥३२॥
उच्चरित	त्यागे मल-मूत्रसे		

तस्य ह यः पुरीषसुरभिसौगन्ध्यवायुस्तं देशं दशयोजनं समन्तात् सुरभि चकार ॥३३॥

तस्य ह यः पुरीष सुरभि सौगन्ध्य वायुः तं देशं दश योजनं समन्तात् सुरभि चकार ॥३३॥

ह तस्य	निश्चय उनकी	तं देशं	उस प्रदेशको
यः पुरीष		समन्तात्	चारों ओर
सुरभि	जो विष्ठाकी सुगन्धिकी	दश योजनं	दस योजन तक
सौगन्ध्य वायुः	सुगन्धित वायु थी (उसने)	सुरभि चकार	सुगन्धित कर दिया ॥३३॥

एवं गोमृगकाकचर्यया व्रजंस्तिष्ठन्नासीनः शयानः काक-मृगगोचरितः पिबति खादत्यवमेहति स्म ॥३४॥

एवं गो मृग काकचर्यया व्रजन् तिष्ठन् आसीनः शयानः काक मृग गो चरितः पिबति खादति अवमेहति स्म ॥३४॥

एवं	इसी प्रकार	काक मृग	कौए, हिरण या
गो	गाय	गो चरितः	गायके समान आचरण करते,
मृग	हिरण या		
काकचर्यया	कौएके चर्यामें	पिबति	पीते,
व्रजन्	चलते-चलते,	खादति	खाते,
तिष्ठन्	खड़े-खड़े,	अवमेहति स्म	मूत्र त्याग करते थे ॥३४॥
आसीनः	बैठे हुए या		
शयानः	सोते-सोते		

इति नानायोगचर्याचरणो भगवान् कैवल्यपतिर्ऋषभो-ऽविरतपरममहानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनोऽव्यवधानानन्तरोदरभावेन सिद्ध-समस्तार्थपरिपूर्णो योगैश्वर्याणि वैहायसमनोजवान्तर्धानिपरकाय-प्रवेशदूरग्रहणादीनि यदृच्छयोपगतानि नाञ्जसा नृप हृदये-नाभ्यनन्दत् ॥३५॥

इति नाना योगचर्या चरणः भगवान् कैवल्यपतिः ऋषभः अविरत परम महानन्द अनुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानां आत्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनः अव्यवधान अनन्तः उदर भावेन सिद्ध समस्त अर्थ परिपूर्णः योग ऐश्वर्याणि वैहायस मनोजव अन्तर्धान परकाय प्रवेश दूर ग्रहण आदीनि यदृच्छया उपगतानि न अञ्जसा नृप हृदयेन अभ्यनन्दत् ॥३५॥

नृप	राजन् (परीक्षित)
इति	इस प्रकार
नाना योगचर्या	अनेक प्रकारकी योगचर्याका
चरणः	आचरण करनेवाले
भगवान्	भगवान्
कैवल्यपतिः	मोक्षके स्वामी
ऋषभः	ऋषभदेवजी
अविरत	निरन्तर
परम महानन्द	
अनुभव	परम महा आनन्द अनुभव स्वरूप
सर्वेषां भूतानां	सभी प्राणियोंके
आत्मभूते	आत्मा स्वरूप
भगवति	
वासुदेव	भगवान् वासुदेवसे
आत्मनः	अपना
अव्यवधान	निर्बाध
अनन्तः	अनन्त
उदर भावेन	एकात्म भावसे
समस्त अर्थ	समस्त प्रयोजन
सिद्ध परिपूर्णः	सिद्ध परिपूर्ण थे ।
वैहायस	आकाशमें
मनोजव	मनकी गतिसे जाना,
अन्तर्धान	अदृश्य हो जाना,
परकाय प्रवेश	दूसरेके शरीरमें प्रवेश,

दूर ग्रहण आदीनि योग ऐश्वर्याणि यदृच्छया उपगतानि — दूर ग्रहण आदि योगकी सिद्धियोंके अपनें आप ही आनेपर

हृदयेन अञ्जसा अभ्यनन्दत् न — हृदयसे सरलतासे उनका अभिनन्दन नहीं किया ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

राजोवाच—

न नूनं भगवन्नात्मारामाणां योगसमीरितज्ञानावभर्जित-कर्मबीजानामैश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितुमर्हन्ति यदृच्छ-योपगतानि ॥१॥

न नूनं भगवन् आत्मारामाणां योगसमीरित ज्ञान अवभर्जित कर्म बीजानां ऐश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितुं अर्हन्ति यदृच्छया उपगतानि ॥१॥

भगवन्	भगवन् !	यदृच्छया	अपने आप
योगसमीरित	योग रूपी वायुसे बढ़ाई	उपगतानि	आये
		ऐश्वर्याणि	ऐश्वर्य (सिद्धियां)
ज्ञान	ज्ञानाग्निमें	नूनं	निश्चय
अवभर्जित	भून दिये गये	पुनः क्लेशदानि	फिर क्लेश देनेवाले
कर्म बीजानां	कर्म बीजवाले	न भवितुं	नहीं होने
आत्मारामाणां	आत्मारामके लिए	अर्हन्ति	चाहिए ॥१॥

श्रीशुक उवाच*—

सत्यमुक्तं किन्त्विह वा एके न मनसोऽद्धाविश्रम्भमन-वस्थानस्य शठकिरात इव सङ्गच्छन्ते ॥२॥ तथा चोक्तम्—

सत्यं उक्तं किन्तु इह वा एके न मनसः अद्धा विश्रम्भं अनवस्थानस्य शठ किरात इव सङ्गच्छन्ते ॥२॥ तथा च उक्तं—

---

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है।

सत्यं उक्तं	(तुमने) सत्य कहा है;
किन्तु इह	किन्तु इस संसारमें
शठ किरात इव	निष्ठुर व्याधके समान*
एके वा	कोई एक तो
मनसः	मनका
अद्धा	भली प्रकार
न विश्रम्भं	विश्वास नहीं करते
अनवस्थानस्य	(इस) चंचलके
सङ्गच्छन्ते	साथ (सावधान) हो रहते हैं ॥२॥

तथा च उक्तं—जैसा कि कहा गया है—

न कुर्यात्कर्हिचित्सख्यं मनसि ह्यनवस्थिते ।
यद्विश्रम्भाच्चिराच्चीर्णं चस्कन्द तप ऐश्वरम् ॥३॥

न कुर्यात् कर्हिचित् सख्यं मनसि हि अनवस्थिते यत् विश्रम्भात् चिरात् चीर्णं चस्कन्द तप ऐश्वरम् ॥

अनवस्थिते	चञ्चल
मनसि	मनसे
कर्हिचित् सख्यं	कभी भी मित्रता
न कुर्यात्	न करे,
हि	क्योंकि
यत् विश्रम्भात्	जिसपर विश्वास करनेसे
चिरात् चीर्णं	बहुत समयका सञ्चित
ऐश्वरं	शंकरजी का
तप चस्कन्द	तप स्खलित हो गया ॥३॥

नित्यं ददाति कामस्यच्छिद्रं तमनु येऽरयः ।
योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली ॥४॥

नित्यं ददाति कामस्य छिद्रं तं अनु ये अरयः योगिनः कृत मैत्रस्य पत्युः जाया इव पुंश्चली ॥४॥

पुंश्चली	व्यभिचारिणी
जाया	पत्नी द्वारा
पत्युः इव	पतिको (धोखा देनेके) समान
कृत मैत्रस्य	(मनके साथ) मित्रता करनेवाले
योगिनः	योगियोंको
नित्यं कामस्य	सदा कामको

* जैसे चतुर व्याध अपने पकड़े मृगका विश्वास नहीं करता ।

तं अनु ये अरयः	उसके पीछे रहनेवाले जो (लोभ-मोहादि) शत्रु है,	छिद्रं ददाति	छिद्र (प्रवेशका अवसर) दे देते हैं ॥४॥

कामो मन्युर्मदो लोभः शोकमोहभयादयः ।
कर्मबन्धश्च यन्मूलः स्वीकुर्यात्को नु तद्बुधः ॥५॥

कामः मन्युः मदः लोभः शोकः मोहः भयादयः कर्मबन्धः च यन् मूलः स्वीकुर्यात् कः नु तत् बुधः ॥५॥

यन् मूलः	जिसकी जड़से	तत्	उसे
कामः मन्युः	काम, क्रोध,	नु कः बुधः	भला कौन बुद्धिमान
लोभः शोकः	लोभ, शोक	स्वीकुर्यात्	स्वीकार करेगा ॥६॥
मोहः भयादयः	मोह, भय आदि		
च कर्मबन्धः	तथा कर्मबन्धन होता है,		

अथैवमखिललोकपाललललामोऽपि विलक्षणैर्जडवदवधूत-वेषभाषाचरितैरविलक्षितभगवत्प्रभावो योगिनां साम्परायविधि-मनुशिक्षयन् स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमन-र्थान्तरभावेनान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम ॥६॥

अथ एवं अखिल लोकपाल ललामः अपि विलक्षणः जडवत् अवधूत वेष भाषा चरितैः अविलक्षित भगवत् प्रभावः योगिनां साम्पराय विधि अनुशिक्षयन् स्वकलेवरं जिहासुः आत्मनि आत्मानं असंव्यवहितं अनर्थ अन्तर भावेन अन्वीक्षमाण उपरत अनुवृत्तिः उपरराम ॥६॥

अथ एवं	फिर इस प्रकार	जडवत्	मूर्खके समान,
अखिल		अवधूत वेष	अवधूतोंके समान
लोकपाल	समस्त लोकपालोंसे		(विचित्र) वेश,
ललामः अपि	सुन्दर होनेपर भी	भाषा	भाषा
विलक्षणः	विलक्षण	चरितैः	चरित्रके द्वारा

अविलक्षित	छिपाये हुए
भगवत् प्रभावः	(अपने) भगवदीय प्रभावको
योगिनां	योगियोंको
साम्पराय विधि	देह त्यागकी विधि
अनुशिक्षयन्	सिखलानेके लिए
स्वकलेवरं	अपने शरीरको
जिहासुः	छोड़ना चाहा।
अनर्थ अन्तर भावेन	वासनाओंके लीन होनेसे
आत्मनि	अन्तःकरणमें
आत्मानं	परमात्माको
असंव्यवहितं	अभिन्न रूपसे स्थित
अन्वीक्षमाण	देखते (चिन्तन करते हुए)
अनुवृत्तिः	इसकी पुनरावृत्तिसे भी
उपरत	उपरत होकर
उपरराम	उपराम हो गये ॥६॥

तस्य ह वा एवं मुक्तलिङ्गस्य भगवत ऋषभस्य योग-मायावासनया देह इमां जगतीमभिमानाभासेन संक्रममाणः कोङ्कवेङ्ककुटकान्दक्षिणकर्णाटकान्देशान् यदृच्छयोपगतः कुटका-चलोपवन आस्यकृताश्मकवल उन्माद इव मुक्तमूर्धजोऽसंवीत एव विचचार ॥७॥

तस्य ह वा एवं मुक्तलिङ्गस्य भगवत ऋषभस्य योगमाया वासनया देह इमां जगतीं अभिमाना भासेन संक्रममाणः कोङ्कवेङ्क कुटकान् दक्षिण कर्णाटकान् देशान् यदृच्छया उपगतः कुटकाचल उपवन आस्यकृत अश्म कवल उन्माद इव मुक्त मूर्धजः असंवीत एव विचचार ॥७॥

तस्य ह वा एवं मुक्त-लिङ्गस्य	उन निश्चित रूपसे इस प्रकार लिङ्ग शरीर (के अभिमान) से मुक्त
भगवत ऋषभस्य	भगवान् ऋषभदेवका
योगमाया वासनया	योगमायाकी वासनासे
देह अभिमाना भासेन	शरीर (केवल) अभिमानाभाससे

इमां जगतीं	इस संसारमें	आस्यकृत	मुँहमें ग्रासकी
संक्रममाणः	घूमता हुआ		भाँति डाले,
यदृच्छया	संयोगवश	मुक्त मूर्धजः	बाल बिखेरे,
कोङ्क वेङ्क	कोङ्क, वेङ्क,	असंवीत एव	दिगम्बर ही
कुटकान्	कुटक	उन्माद इव	पागलकी भाँति
दक्षिण		कुटकाचल	
कर्णाटकान्	दक्षिण कर्नाटक	उपवन	कुटकाचलके
	आदि		बगीचेमें
देशान् उपगतः	प्रदेशोंमें गया	विचचार	विचरण करने
अश्म कवल	पत्थरका टुकड़ा		लगा ॥७॥

अथ समीरवेगविधूतवेणुविकर्षणजातोग्रदावानलस्तद्वन-मालेलिहानः सह तेन ददाह ॥८॥

अथ समीरवेग विधूत वेणुविकर्षण जातः उग्र दावानलः तत् वनं आलेलिहानः सह तेन ददाह ॥८॥

अथ	उसी समय	आलेलिहानः	उस वनको चाटता
समीरवेग	वायु-वेगसे		हुआ
विधूत	बहुत हिलते	तेन सह	उन (ऋषभदेवजी)
वेणुविकर्षण	बाँसोंकी रगड़से		के साथ
जातः	उत्पन्न	ददाह	(वनको भी) जला
उग्र दावानलः	प्रचण्ड दावानल		दिया ॥८॥
तत् वनं			

यस्य किलानुचरितमुपाकर्ण्य कोङ्कवेङ्कुकुटकानां राजार्हन्नामोपशिक्ष्य कलावधर्म उत्कृष्यमाणे भवितव्येन विमोहितः स्वधर्मपथमकुतोभयमपहाय कुपथपाखण्डमसमञ्जसं निजमनीषया मन्दः सम्प्रवर्तयिष्यते ॥९॥

यस्य किल अनुचरितं उपाकर्ण्य कोङ्क वेङ्क कुटकानां राजा अर्हत् नाम उपशिक्ष्य कलाः अधर्म उत्कृष्यमाणे भवितव्येन विमोहितः स्वधर्म पथं अकुतः भयं अपहाय कुपथ पाखण्डं असमञ्जसं निज मनीषया मन्दः सम्प्रवर्तयिष्यते ॥९॥

यस्य किल	जिनकी ही
अनुचरितं	चरित-चर्चाको
उपाकर्ण्य	सुनकर
कोङ्क वेङ्क कुटकानां	कोङ्क, वेङ्क, कुटकका
अर्हत् नाम राजा	अर्हत् नामका राजा
कलाः	कलियुगमें
अधर्म उत्कृष्यमाणे	अधर्म बढ़नेपर
भवितव्येन	होनहारवश
विमोहितः	अत्यन्त मोहित होकर
मन्दः	मन्दमति
अकुतः भयं	(जिसमें) कहीं भय नहीं है
स्वधर्म पथं	(उस) अपने धर्म-मार्गको
अपहाय	त्यागकर
निज मनीषया	अपना बुद्धि कल्पित
कुपथ	कुमार्ग
असमञ्जसं	अनुचित
पाखण्डं	पाखण्डका
सम्प्रवर्तयिष्यते	बहुत प्रचार करेगा ॥९॥

येन ह वाव कलौ मनुजापसदा देवमाया मोहिताः स्वविधिनियोगशौच चारित्रविहीना देवहेलनान्यपव्रतानि निज-निजेच्छया गृह्णाना अस्नानानाचमनाशौचकेशोल्लुञ्चनादीनि कलिनाधर्मबहुलेनोपहतधियो ब्रह्मब्राह्मणयज्ञपुरुषलोकविदूषकाः प्रायेण भविष्यन्ति ॥१०॥

येन ह वाव कलौ मनुज अपसदाः देवमाया मोहिताः स्वविधि नियोग शौच चारित्रविहीनाः देवहेलनानि अपव्रतानि निज निज इच्छया गृह्णानाः अस्नान अनाचमन अशौच केशःलुञ्चन आदीनि कलिना अधर्म बहुलेन उपहत धियः ब्रह्म ब्राह्मण यज्ञपुरुष लोक विदूषकाः प्रायेण भविष्यन्ति ॥१०॥

येन ह वाव	जिसके द्वारा निश्चित रूपसे
कलौ	कलियुगमें
मनुज अपसदाः	अधम-मनुष्य
देवमाया मोहिताः	भगवान्‌की मायासे मोहित होकर
स्वविधि नियोग	अपना शास्त्र-विहित
शौच	पवित्रता,
चारित्र-विहीनाः	सदाचारसे रहित लोग,
देवहेलनानि	देवताओंकी उपेक्षावाले,
अपव्रतानि	कुत्सित व्रत,
निज निज इच्छया	अपनी-अपनी इच्छासे
गृह्णानाः	ग्रहण करते हुए,
अस्नान	स्नान न करना,
अनाचमन	आचमन न करना,
अशौच	अपवित्र रहना,
केशःलुञ्चन	केश नोचना
आदीनि	आदि करेंगे।
अधर्म बहुलेन	अधर्म बाहुल्यवाले
कलिना	कलियुग द्वारा
धियः उपहतः	बुद्धि मारी जानेसे
ब्रह्म	वेद,
ब्राह्मण	ब्राह्मण,
यज्ञपुरुष	यज्ञ-पुरुष,
लोक	(स्वर्गादि)लोकोंका
विदूषकाः	उपहास करनेवाले
प्रायेण	प्रायः
भविष्यन्ति	होंगे ॥१०॥

ते च ह्यर्वाक्तनया निजलोकयात्रयान्धपरम्परयाऽऽश्वस्ता-स्तमस्यन्धे स्वयमेव प्रपतिष्यन्ति ।११॥

ते च हि अर्वाक् तनया निजलोक यात्रया अन्धपरम्परया आश्वस्ताः तमसि अन्धे स्वयं एव प्रपतिष्यन्ति ॥११॥

हि ते च	क्योंकि वे भी (जो)
अर्वाक् तनया निजलोक यात्रया	नवीन (अवैदिक) अपने लौकिक व्यवहारके निर्वाहके लिए
अन्धपरम्परया	अन्ध-परम्परासे
आश्वस्ताः	आश्वस्त हैं,
स्वयं एव	(वे) स्वयं ही
अन्धे तमसि	अन्धकारपूर्ण नरकमें
प्रपतिष्यन्ति	गिरेंगे ॥११॥

अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योप शिक्षणार्थः ॥१२॥

अयं अवतारः रजसः उपप्लुत कैवल्यः उप शिक्षण अर्थः ॥१२॥

अयं अवतारः	(भगवान्‌का) यह अवतार	**कैवल्यः**	मोक्षकी
रजसः		**उप शिक्षण**	
उपप्लुतः	रजोगुणसे आच्छन्न (लोगोंको)	**अर्थः**	शिक्षा देनेके लिए (हुआ) ॥१२॥

तस्यानुगुणान् श्लोकान् गायन्ति—

तस्य अनुगुणान् श्लोकान् गायन्ति—

तस्य	उनके	**श्लोकान्**	(इन) श्लोकोंको
अनुगुणान्	गुणोंके वर्णनमें	**गायन्ति**	(लोग) गाते हैं—

अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या
द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत् ।
गायन्ति यत्रत्यजना मुरारेः
कर्माणि भद्राण्यवतारवन्ति ॥१३॥

अहो भुवः सप्त समुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेषु अधिपुण्यं एतत् गायन्ति यत्रत्य जनाः मुरारेः कर्माणि भद्राणि अवतार वन्ति ॥१३॥

अहो	अहो,	**यत्रत्य जनाः**	जहाँ रहनेवाले लोग
सप्त समुद्रवत्या	सात समुद्रोंवाली	**मुरारेः**	श्रीहरिके
भुवः	पृथ्वीमें	**अवतार वन्ति**	अवतार लेकर किए
द्वीपेषु वर्षेषु	(दूसरे) द्वीपों एवं वर्षोंमें	**भद्राणि कर्माणि**	मंगलमय चरितोंका
		गायन्ति	गायन करते
एतत्	यह (भारतवर्ष)		हैं ॥१३॥
अधिपुण्यं	बहुत पुण्य (भूमि) है,		

अहो नु वंशो यशसावदातः
प्रैयव्रतो यत्र पुमान् पुराणः ।
कृतावतारः पुरुषः स आद्यः
चचार धर्मं यदकर्महेतुम् ॥१४॥

अहो नु वंशः यशसा अवदातः प्रैयव्रतः यत्र पुमान् पुराणः कृतः अवतारः पुरुषः स आद्यः चचार धर्मं यत् अकर्म हेतुम् ॥१४॥

अहो नु	अहो निश्चय
प्रैयव्रतः वंशः	प्रियव्रतका वंश
यशसा	
अवदातः	यशसे उज्ज्वल हैं,
यत्र	जिसमें
स आद्यः पुरुषः	उन आदि-पुरुष,
पुराणः पुमान्	सनातन पुरुषने
अवतारः कृतः	अवतार लेकर
यत् अकर्म हेतुं	जो मोक्षका कारण है,
धर्मं चचार	(उस) धर्मका आचरण किया ॥१४

को न्वस्य काष्ठामपरोऽनुगच्छे-
न्मनोरथेनाप्यभवस्य योगी ।
यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ता
ह्यसत्तया येन कृतप्रयत्नाः ॥१५॥

कः नु अस्य काष्ठां अपरः अनुगच्छेत् मनोरथेन अपि भवस्य योगी यः योगमायाः स्पृहयति उदस्ताः हि असत्तया येन कृत प्रयत्नाः ॥१५॥

कः नु	कौन भला
भवस्य	इस संसारका
अपरः योगी	दूसरा योगी
अस्य	इन (ऋषभदेवजी) के
काष्ठां	मार्गके
मनोरथेन अपि	मनसे भी
अनुगच्छेत्	पीछे चल सकता है,
यः योगमायाः	जो योगमायाकी
स्पृहयति	(सिद्धियोंकी) स्पृहा करते हैं,
येन	जिनके द्वारा
प्रयत्नाः कृतः	(उन्हें पानेके) प्रयत्न किये जाते हैं
हि	क्योंकि
असत्तया	(उसे) असत् होनेके कारण
उदस्ताः	त्याग दिया ॥१५॥

इति ह स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां परमगुरोर्भगवत ऋषभाख्यस्य विशुद्धाचरितमीरितं पुंसां समस्तदुश्चरिताभिहरणं परममहामङ्गलायनमिदमनुश्रद्धयोपचितयानुशृणोत्याश्रावयति वावहितो भगवति तस्मिन् वासुदेव एकान्ततो भक्तिरनयोरपि समनुवर्तते ॥१६॥

इति ह स्म सकलवेद लोक देव ब्राह्मण गवां परमगुरोः भगवतः ऋषभ आख्यस्य विशुद्ध आचरितं ईरितं पुंसां समस्त दुश्चरित अभिहरणं परम महामङ्गल अयनं इदं अनुश्रद्धया उपचितया अनुशृणोति आश्रावयति वा अवहितः भगवति तस्मिन् वासुदेव एकान्ततः भक्तिः अनयोः अपि समनुवर्तते ॥१६॥

इति ह	इस प्रकारसे
सकलवेद	समस्त वेदों,
लोक	लोकों,
देव	देवताओं,
ब्राह्मण गवां	ब्राह्मणों एवं गायोंके
परमगुरोः	परम गुरु
ऋषभ आख्यस्य	ऋषभ नामवाले
भगवतः	भगवान्‌का
पुंसां	पुरुषोंके
समस्त	
दुश्चरित	सभी पापोंको
अभिहरणं	पूर्णतः हरण करनेवाले
विशुद्ध आचरितं	विशुद्ध चरितको
ईरितं स्म	मैंने वर्णन किया।
इदं	इस
परम महामङ्गल अयनं	परम महामंगल-निवास (चरित) में
अनुश्रद्धया उपचितया	श्रद्धापूर्वक
अवहितः	एकाग्र-चित्तसे
अनुशृणोति	(जो) बराबर सुनता है,
वा आश्रावयति	या सुनाता है,
तस्मिन्	उन
भगवति वासुदेव	भगवान् वासुदेवमें
एकान्ततः भक्तिः	अनन्य भक्ति
अनयोः अपि समनुवर्तते	उसकी भी भली प्रकार हो जाती है ॥१६॥

यस्यामेव कवय आत्मानमविरतं विविधवृजिनसंसार-परितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नापयन्तस्तयैव परया निर्वृत्या

ह्यपवर्गमात्यन्तिकं परमपुरुषार्थमपि स्वयमासादितं नो एवा-द्रियन्ते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थिः ॥१७॥

यस्यां एव कवयः आत्मानं अविरतं विविध वृजिन संसार परिताप उपतप्यमानं अनुसवनं स्नापयन्तः तया एव परया निर्वृत्या हि अपवर्गं आत्यन्तिकं परम पुरुषार्थं अपि स्वयं आसादितं नो एव आद्रियन्ते भगवदीय-त्वेन एव परिसमाप्त सर्वाः अर्थाः ॥१७॥

विविध वृजिन	नाना प्रकारके पापोंसे
ससार परिताप	(पूर्ण) संसारके तापोंसे
उपतप्यमानं	संतप्त होते
कवयः	बुद्धिमान लोग
यस्यां एव	जिस (भक्ति) में ही
आत्मानं	अपनेको
अनुसवनं	निरन्तर
स्नापयन्तः	स्नान कराते रहते हैं
हि	क्योंकि
तया एव	उस (भक्ति) से ही
परया निर्वृत्या	परमानन्दपूर्वक
आत्यन्तिकं	आत्यन्तिक
परमपुरुषार्थं	परम-पुरुषार्थ
अपवर्गं अपि	मोक्षको भी
स्वयं आसदितं	स्वयं प्राप्त होनेपर
नो एव	नहीं ही
आद्रियन्ते	आदर करते,
भगवदीयत्वेन एव	भगवान्‌के होनेसे ही
सर्वाः अर्थाः	(उनके) सब प्रयोजन
परिसमाप्तः	परिपूर्ण हो गये हैं ॥१७॥

राजन् पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां
दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किङ्करो वः ।
अस्त्वेवमङ्ग भगवान् भजतां मुकुन्दो
मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् ॥१८॥

राजन् पतिः गुरुः अलं भवतां यदूनां दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किङ्करः वः अस्ति एवं अङ्ग भगवान् भजतां मुकुन्दः मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम् ॥१८॥

अङ्ग राजन्	प्रिय परीक्षित !		भी
भवतां	आपके (कुलके)	अस्ति एव	हैं ही ।
यदूनां	(तथा) यदुवंशियोंके	भगवान् मुकुन्दः	(ये) भगवान् मुकुन्द
पतिः गुरुः	स्वामी, गुरु,	भजतां	भजन करनेवालेको
अलं	सर्वस्व,	कर्हिचित् मुक्तिं	
दैवं प्रियः	इष्टदेव, प्रियतम,	ददाति स्म	कभी मुक्ति दे देते हैं
कुलपतिः	कुलपति	न भक्तियोगं	(पर) भक्तियोग
क्व च	कभी		नहीं देते ॥१८॥
वः किङ्करः	आप सबके सेवक		

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः
श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः ।
लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोक-
माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥१९॥

नित्य अनुभूत निजलाभ निवृत्त तृष्णः श्रेयस्य तत् रचनया चिर सुप्त बुद्धेः लोकस्य यः करुणया अभयं आत्मलोकं आख्यात् नमः भगवते ऋषभाय तस्मै ॥१९॥

नित्य अनुभूत	निरन्तर अनुभूत होते	बुद्धेः	बुद्धिवाले
निजलाभ	आत्मलाभसे	लोकस्य	लोगोंके लिए
निवृत्त तृष्णः	(समस्त) तृष्णाओंसे मुक्त (होनेपर भी)	करुणया	करुणा करके
		अभयं	अभय स्वरूप
तत् श्रेयस्य	उस (वास्तविक) कल्याणको	आत्मलोकं	आत्मलोकका
		आख्यात्	उपदेश किया
रचनया	√ प्राप्त करनेमें	तस्मै	उन
चिर सुप्त	चिर (अनादि-कालसे) प्रसुप्त	भगवते	
		ऋषभाय	भगवान् ऋषभदेवको
		नमः	नमस्कार ॥१९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

भरतस्तु महाभागवतो यदा भगवतावनितलपरिपालनाय सञ्चिन्तितस्तदनुशासनपरः पञ्चजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे ॥१॥

भरतः तु महाभागवतः यदा भगवता अवनितल परिपालनाय सञ्चिन्तितः तत् अनुशासन परः पञ्चजनीं विश्वरूप दुहितरं उपयेमे ॥१॥

भरतः तु	भरत तो	**सञ्चिन्तितः**	सोचे (नियुक्त किये) गये,
महाभागवतः	परम भगवद्भक्त थे-		
यदा	जब	**तत्**	
भगवता	भगवान्(ऋषभदेव) द्वारा	**अनुशासन परः**	उनकी आज्ञाके परायण होकर
अवनितल	भूतलके	**पञ्चजनीं**	पञ्चजनी (नामक)
परिपालनाय	भली प्रकार पालनके लिए	**विश्वरूप**	
		दुहितरं	विश्वरूपकी पुत्रीसे
		उपयेमे	विवाह किया ॥१॥

तस्यामु ह वा आत्मजान् कात्स्न्र्येनानुरूपानात्मनः पञ्च जनयामास भूतादिरिव भूतसूक्ष्माणि ॥२॥

तस्यां उ ह वा आत्मजान् कात्स्न्र्येन **अनुरूपान् आत्मनः पञ्च जनयामास भूतादिः इव भूतसूक्ष्माणि ॥२॥**

तस्यां उ ह वा	उससे निश्चित रूपसे	**आत्मनः**	अपने
भूतादिः	तामस अहंकारसे	**कात्स्न्र्येन**	सम्पूर्ण रूपसे
भूतसूक्ष्माणि	भूत सूक्ष्म (तन्मात्राओं) के	**अनुरूपान्**	अनुरूप
		पञ्च आत्मजान्	पाँच पुत्र
इव	समान	**जनयामास**	उत्पन्न किये ॥२॥

सुमतिं राष्ट्रभृतं सुदर्शनमावरणं धूम्रकेतुमिति । अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति ॥३॥

सुमतिं राष्ट्रभृतं सुदर्शनं आवरणं धूम्रकेतुं इति अजनाभं नाम एतत् वर्षं भारतं इति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति ॥३॥

सुमतिं	सुमति,
राष्ट्रभृतं	राष्ट्रभृत्,
सुदर्शनं	सुदर्शन,
आवरणं	आवरण (और)
धूम्रकेतुं	धूम्रकेतु
इति	इस प्रकार (उन पांचोंके नाम थे)
अजनाभं नाम	अजनाभ नामके
एतत् वर्षं	इस देशको
यत आरभ्य	जिनसे आरम्भ करके
भारतं इति	भारत इस नामके
व्यपदिशन्ति	निर्दिष्ट किया जाता है ॥३॥

स बहुविन्महीपतिः पितृपितामहवदुरुवत्सलतया स्वे स्वे कर्मणि वर्तमानाः प्रजाः स्वधर्ममनुवर्तमानः पर्यपालयत् ॥४॥

स बहुवित् महीपतिः पितृपितामहवत् उरुवत्सलतया स्वे स्वे कर्मणि वर्तमानाः प्रजाः स्वधर्मं अनुवर्तमानः परिपालयत् ॥४॥

स बहुवित्	उन बहुज्ञ
महीपतिः	राजा (भरत) ने
पितृ-पितामहवत्	पिता-पितामहके समान
उरुवत्सलतया	अत्यन्त वात्सल्य-भावसे
स्वे स्वे कर्मणि	अपने-अपने कर्ममें
वर्तमानाः	लगी हुई
प्रजाः	प्रजाको
स्वधर्मं	अपने धर्ममें
अनुवर्तमानः	स्थित रहते हुए
परिपालयत्	सब प्रकार पालन किया ॥४०॥

ईजे च भगवन्तं यज्ञक्रतुरूपं क्रतुभिरुच्चावचैः श्रद्धयाऽऽहृताग्निहोत्रदर्शपूर्णमासचातुर्मास्यपशुसोमानां प्रकृतिविकृतिभिरनुसवनं चातुर्होत्रविधिना ॥५॥

ई जे च भगवन्तं यज्ञक्रतु रूपं क्रतुभिः उच्च अवचैः श्रद्धया आहृत अग्निहोत्र दर्श पूर्णमास चातुर्मास्य पशु सोमानां प्रकृति विकृतिभिः अनुसवनं चातुर्होत्र विधिना ॥५॥

भगवन्तं	भगवान्
यज्ञक्रतु रूपं	यज्ञक्रतु रूपका
उच्च अवचैः	बड़े-छोटे
क्रतुभिः	यज्ञोंसे
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक
प्रकृति	प्रकृति (सर्वाङ्गपूर्ण)
विकृतिभिः	विकृति (अल्पाङ्ग अपूर्ण)
आहृत	जिसमें अग्नि लायी गयी है ऐसे
अग्निहोत्र	अग्निहोत्र
दर्श	दर्श (अमावस्या)
पूर्णमास	पूर्ण-मासके (पूर्णिमा) को
चातुर्मास्य	चातुर्मास्य (आषाढ़ शुक्ल एकादशीसे चार मासके)
पशु सोमानां	पशु (आलभन) तथा सोम (पानके)
चातुर्होत्र	चातुर्होत्र (होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा इन चारसे होनेवाले) यज्ञकी
विधिना	विधिसे
अनुसवनं	यथा समय
ई जे च	यजन भी किया ॥५॥

सम्प्रचरत्सु नानायागेषु विरचिताङ्गक्रियेष्वपूर्वं यत्तत्क्रियाफलं धर्माख्यं परे ब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्वदेवतालिङ्गानां मन्त्राणामर्थनियामकतया साक्षात्कर्तरि परदेवतायां भगवति वासुदेव एव भावयमान आत्मनैपुण्यमृदितकषायो हविःष्वध्वर्युभिर्गृह्यमाणेषु स यजमानो यज्ञभाजो देवांस्तान् पुरुषावयवेष्वभ्यध्यायत् ॥६॥

सम्प्रचरत्सु नाना यागेषु विरचित अङ्ग क्रियेषु अपूर्व यत् तत् क्रियाफलं धर्म आख्यं परे ब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्वदेवता लिङ्गानां मन्त्राणां अर्थ नियामकतया साक्षात् कर्तरि परदेवतायां भगवति वासुदेव एव भाव-

यमान आत्मनैपुण्य मृदित कषायः हविषु अध्वर्युभिः गृह्यमाणेषु स यजमानः यज्ञभाजः देवात् तान् पुरुष अवयवेषु अभ्यध्यायत् ॥६॥

अङ्ग	(यज्ञके) अंग और
क्रियेषु	क्रियाओंको
विरचित	बनाकर
नाना यागेषु	अनेक प्रकारके यज्ञोंको
सम्प्रचरत्सु	भली प्रकार करते हुए
यत् अपूर्वं	जो अपूर्व (नामक)
धर्म आख्यं	धर्म कहा जानेवाला
क्रियाफलं	कर्मका फल है (उसे)
परे ब्रह्मणि	परं ब्रह्म
यज्ञपुरुषे	यज्ञ-पुरुषको ही (अर्पित कर देते)
सर्वदेवता लिङ्गानां	सब देवताओंके स्वरूप
मन्त्राणां अर्थ नियामकतया	मन्त्रोंके अर्थके नियन्त्रक होनेसे
साक्षात् कर्तरि	साक्षात् कर्ता
परदेवतायां	परम-देवता
भगवति	भगवान्
वासुदेव	वासुदेव ही हैं
एव	इस प्रकार
भावयमान	भावना करते हुए
आत्मनै पुण्येन	अपनी निपुणतासे
मृदित कषायः	(उनके राग-द्वेषादि) मलोंका मार्जन हो गया
अध्वर्युभिः हविषु	अध्वर्युके
गृह्यमाणेषु	हवि उठानेपर
स यजमानः	वे यजमान(राजा भरत)
यज्ञभाजः	यज्ञमें भाग पानेवाले
तान् देवात्	उन देवताओंको
पुरुष अवयेषु	परम-पुरुषके अंगोंमें ही
अभ्यध्यायत्	ध्यान करते थे ॥६॥

एवं कर्मविशुद्धया विशुद्धसत्त्वस्यान्तर्हृदयाकाशशरीरे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूपोपलक्षणे श्रीवत्सकौस्तुभवनमालारिदरगदादिभिरुपलक्षिते निजपुरुषहृल्लिखितेनात्मनि पुरुषरूपेण विरोचमान उच्चैस्तरां भक्तिरनुदिनमेधमानरयाजायत ॥७॥

एवं कर्म विशुद्धया विशुद्धसत्त्वस्य अन्तर्हृदयाकाश शरीरे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूप उपलक्षणे श्रीवत्स कौस्तुभ वनमाला अरिदर गदादिभिः उपलक्षिते निजपुरुष हृत् लिखितेन आत्मनि पुरुषरूपेण विरोचमानः उच्चैः तरां भक्तिः अनुदिनं एधमानः अयाजायत ॥७॥

एवं	इस प्रकार	**गदादिभिः**	गदा आदिसे
कर्म विशुद्धया	कर्मकी पूर्ण शुद्धि होनेसे	**उपलक्षिते**	पहिचाना जानेवाला
दिशुद्धसत्त्वस्य	विशुद्ध अन्तःकरणके	**निजपुरुष**	अपने भक्तोंके
शरीरे	शरीरके	**हृत् लिखितेन**	हृदयमें चित्रित रहनेवाला रूप
अन्तर्हृदयाकाश	हृदयाकाशके भीतर	**आत्मनि**	अपने भीतर
ब्रह्मणि	परमब्रह्म	**पुरुषरूपेण**	(प्रत्यक्ष) पुरुष रूपसे
महापुरुषरूप उपलक्षणे	महापुरुष (पुरुषोत्तम) रूपके लक्षणोंसे युक्त	**विरोचमानं**	प्रकाशित होते
		भगवति	भगवान्
		वासुदेवे	वासुदेवमें
श्रीवत्स	श्रीवत्स-चिह्न (वक्षपर)	**उच्चैः तरां**	अत्यन्त उत्कृष्ट
		भक्तिः	भक्ति
कौस्तुभ	कौस्तुभमणि (कण्ठमें)	**अनुदिनं**	प्रतिदिन
		एधमानः	बढ़ती हुई
वनमाला	(गलेमें) वनमाला	**अयाजायत**	प्राप्त हो गयी ॥७॥
अरिदर	(करोंमें) चक्र-शङ्ख		

एवं वर्षायुतसहस्रपर्यन्तावसितकर्मनिर्वाणावसरोऽधिभुज्यमानं स्वतनयेभ्यो रिक्थं पितृपैतामहं यथादायं विभज्य स्वयं सकलसम्पन्निकेतात्स्वनिकेतात् पुलहाश्रमं प्रववाज ॥८॥

एवं वर्ष अयुत सहस्र पर्यन्त अवसितः कर्मनिर्वाण अवसरः अधिभुज्यमानं स्वतनयेभ्यः रिक्थं पितृ पैतामहं यथादायं विभज्य स्वयं सकल सम्पत् निकेतात् स्वनिकेतात् पुलह आश्रमं प्रववाज ॥८॥

एवं	इस प्रकार
अयुत सहस्र वर्ष	एक करोड़ वर्ष
पर्यन्त	तक
कर्मनिर्वाण	कर्मोंके समाप्त होनेका (राज्य-भोगका प्रारब्ध)
अवसरः	समय
अवसितः	समाप्त करके
अधिभुज्यमानं	भोगो जाती हुई
पितृ पैतामहं	पिता-पितामहकी
रिक्थं	सम्पत्तिको
स्वतनयेभ्यः	अपने पुत्रोंको
यथादायं	उत्तराधिकारके अनुसार
विभज्य	बांटकर
स्वयं	स्वयं
सकल सम्पत् निकेतात्	सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके निवास
स्वनिकेतात्	अपने भवनसे
पुलह आश्रमं	पुलह आश्रमको
प्रवव्राज	चले गये ॥८॥

यत्र ह वाव भगवान् हरिरद्यापि तत्रत्यानां निजजनानां वात्सल्येन संनिधाप्यत इच्छारूपेण ॥९॥

यत्र ह वाव भगवान् हरिः अद्य अपि तत्र त्यानां निजजनानां वात्सल्येन संनिधाप्यत इच्छारूपेण ॥९॥

यत्र ह वाव	जहां निश्चित रूपसे
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरि
अद्य अपि	आज भी
तत्र त्यानां	वहां रहनेवाले
निजजनानां	अपने भक्तोंको
वात्सल्येन	वात्सल्यवश
इच्छारूपेण	अभीष्ट रूपमें
संनिधाप्यत	सामीप्य देते रहते हैं ॥९॥

यत्राश्रमपदान्युभयतोनाभिर्भिर्दृषच्चक्रैश्चक्रनदी नाम सरित्प्रवरा सर्वतः पवित्रीकरोति ॥१०॥

यत्र आश्रम पदानि उभयतः नाभिभिः दृषत् चक्रैः चक्रनदी नाम सरित् प्रवरा सर्वतः पवित्री करोति ॥१०॥

यत्र	यहां
आश्रम पदानि	आश्रमोंके समीप
चक्रनदी नाम	चक्रनदी (गण्डकी) नामक

सरित् प्रवरा	सरिता श्रेष्ठ
उभयतः	दोनों ओर
नाभिर्हृषत् चक्रैः	नाभिके समान दीखनेवाले चक्रोंसे युक्त (शालग्राम शिला) से
सर्वतः पवित्रो करोति	चारों ओर पवित्र करती है ॥१०॥

तस्मिन् वाव किल स एकलः पुलहाश्रमोपवने विविध-कुसुमकिसलयतुलसिकाम्बुभिः कन्दमूलफलोपहारैश्च समीहमानो भगवत आराधनं विविक्त उपरतविषयाभिलाष उपभृतोपशमः परां निर्वृतिमवाप ॥११॥

तस्मिन् वाव किल स एकलः पुलह आश्रम उपवने विविध कुसुम किसलय तुलसिका अम्बुभिः कन्द मूल फल उपहारैः च समीहमानः भगवत आराधनं विविक्त उपरत विषय अभिलाष उपभृत उपशमः परां निर्वृतिं अवाप ॥११॥

वाव किल	निश्चय ही
तस्मिन्	उस
पुलह आश्रम उपवने	पुलहाश्रमके बगीचे-में
स एकलः	वे अकेले रहते थे
विविध कुसुम	अनेक प्रकारके पुष्प
किसलय	नव-पल्लव
तुलसिका	तुलसीदल तथा
अम्बुभिः	जलसे
कन्द	कन्द (जिन्हें भूना जा सकता है)
मूल	मूल (जो भूने नहीं जाते)
च फल उपहारैः	एवं फलकी भेंटसे
भगवत आराधनं	भगवान्‌की पूजाकी
समीहमानः	भली प्रकार चेष्टा करते थे
विविक्त	(उस) एकान्तमें
उपरत विषय अभिलाष	भोगोंकी अभिलाषा त्यागकर
उपभृत उपशमः	वैराग्य धारण करके
परां निर्वृतिं	परम-आनन्द
अवाप	प्राप्त किया ॥११॥

तयेत्थमविरतपुरुषपरिचर्यया भगवति प्रवर्धमानानुराग-भरद्रुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्षवेगेनात्मन्युद्भिद्यमानरोमपुलककुलक औत्कण्ठ्यप्रवृत्तप्रणयबाष्पनिरुद्धावलोकनयन एवं निजरमणारुण-चरणारविन्दानुध्यानपरिचितभक्तियोगेन परिप्लुतपरमाह्लाद-गम्भीरहृदयह्रदावगाढधिषणस्तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न सस्मार ॥१२॥

तया इत्थं अविरत पुरुष परिचर्यया भगवति प्रवर्धमान अनुरागभर द्रुतहृदय शैथिल्यः प्रहर्ष वेगेन आत्मनि उद्भिद्यमान रोम पुलक कुलक औत्कण्ठ्य प्रवृत्त प्रणय बाष्प निरुद्ध अवलोक नयन एवं निज रमण अरुण चरणारविन्द अनुध्यान परिचित भक्तियोगेन परिप्लुत परम आह्लाद गम्भीर हृदयह्रद अवगाढ धिषणः तां अपि क्रियमाणां भगवत् सपर्यां न सस्मार ॥१०॥

तया	उनके द्वारा
इत्थं	इस प्रकार
अविरत	अविराम
पुरुष	
परिचर्यया	परम पुरुषकी पूजा करनेसे
भगवति	भगवान्‌में
प्रवर्धमान	बढ़ते हुए
अनुरागभर	अनुरागसे भरे
द्रुत हृदय	द्रवित हृदय
शैथिल्यः	शिथिल हो जाता था ।
प्रहर्ष वेगेन	अत्यन्त हर्षवेगसे
आत्मनि	शरीरमें
रोम कुलक	रोम-समूह
पुलक	
उद्भिद्यमान	पुलकित होनेसे उठ खड़े होते थे ।
औत्कण्ठ्य	
प्रवृत्त	उत्कण्ठासे हुए
प्रणय बाष्प	प्रेमाश्रुओंसे
नयन अवलोक	नेत्रोंका देखना
निरुद्ध	रुक जाता था ।
एवं	इस प्रकार
निज रमण	अपने स्वामीके
अरुण	
चरणारविन्द	लाल-लाल चरण-कमलोंके
अनुध्यान	बार बार ध्यानसे

परिचित भक्तियोगेन परिचित भक्ति-योगसे
परम आह्लाद परम आनन्दसे
परिप्लुत भीगकर
गम्भीर गम्भीर
हृदयह्रद हृदय रूपी ह्रदमें
अवगाढ डूबी हुई
धिषणः बुद्धि होनेसे
तां क्रियमाणां उस की जाती हुई
भगवत् सपर्यां भगवत्-सेवाको
अपि न सस्मार भी नहीं स्मरण कर पाते थे ॥१२॥

इत्थं धृतभगवद्व्रतऐणेयाजिनवाससानुसवनाभिषेकार्द्र-कपिशकुटिलजटाकलापेन च विरोचमानः सूर्यर्चा भगवन्तं हिरण्मयं पुरुषमुज्जिहाने सूर्यमण्डलेऽभ्युपतिष्ठन्नेतदु होवाच—॥१३॥

इत्थं धृत भगवद् व्रत ऐणेय अजिन वाससा अनुसवन अभिषेक आर्द्र कपिश कुटिल जटा कलापेन च विरोचमानः सूर्य अर्चा भगवन्तं हिरण्मयं पुरुषं उज्जिहाने सूर्यमण्डले अभि उपतिष्ठन् एतत् उ ह उवाच ॥१३॥

इत्थं इस प्रकार
धृत भगवद् व्रत भगवत् (सेवाका) व्रत-धारण करके
ऐणेय कृष्ण-मृगचर्मका
वाससा वस्त्र धारण किये,
अनुसवन तीनों समय
अभिषेक आर्द्र स्नान करनेसे गीले
कपिश कुटिल जटा भूरे-घुँघराले
कलापेन च जटा-समूहसे ही
उज्जिहाने उगते हुए
सूर्यमण्डले अभि उपतिष्ठन् सूर्य-मण्डलमें (सूर्य-सम्बन्धी ऋचाओंसे) उपस्थान करते हुए
विरोचमानः ज्योतिर्मय प्रकाशित
हिरण्मयं पुरुषं भगवन्तं हिरण्यगर्भ पुरुष भगवान्
सूर्य अर्चा सूर्यकी पूजा करते
एतत् उ ह उवाच यह निश्चित बोलते थे ॥१३॥

परोरजः सवितुर्जातवेदो
देवस्य भर्गो मनसेदं जजान ।

सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे
हंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिरामिमः ॥१४॥

परः रजः सवितुः जातवेदः देवस्य भर्गः मनसा इदं जजान सुरेतसादः पुनः आविश्य चष्टे हंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिरां इमः ॥१४॥

जातवेदः	अग्नि-स्वरूप
सवितुः	सूर्य भगवान्
परः रजः	रजोगुण (प्रकृति)से परे हैं।
देवस्य भर्गः	ये परमात्माके तेज हैं।
मनसा इदं	(जिन्होंने) संकल्पसे ही इस संसारको
जजान	उत्पन्न किया है।
पुनः आविश्य	फिर इसमें प्रवेश करके
चष्टे	इसका साक्षी है और
सुरेतसादः	अपनी-चित्त शक्तिसे रक्षा करता है
गृध्राणं	विषय-लोलुपों (जीवों)का भी धारण करता है
इमः	हम
हंसं नृषद्रिङ्गिरां इमः	उसी बुद्धि प्रवर्तक हंस (तेज)की शरण लेते हैं ॥१४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे भरतचरिते भगवत्परिर्यायां सप्तमोऽयायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

एकदा तु महानद्यां कृताभिषेकनैयमिकावश्यको ब्रह्माक्षरम-भिगृणानो मुहूर्तत्रयमुदकान्त उपविवेश ॥१॥

एकदा तु महानद्यां कृत अभिषेक नैयमिक आवश्यकः ब्रह्माक्षरम् अभिगृणानः मुहुर्तत्रयम् उदकान्तं उपविवेश ॥१॥

एकदा तु	एकबार तो	**ब्रह्माक्षरम्**	गायत्री
महानद्यां	महानदी (गण्डकी)में	**अभिगृणानः**	जप करते हुए
		मुहुर्तत्रयम्	तीन मुहूर्त तक
अभिषेक कृत	स्नान करके	**उदकान्तं**	जल (धारा)के
आवश्यकः	आवश्यक		समीप
नैयमिक	नित्य नियमका	**उपविवेश**	बैठे रहे ॥१॥

तत्र तदा राजन् हरिणी पिपासया जलाशयाभ्याशमेकैवोप-जगाम ॥२॥

तत्र तदा राजन् हरिणी पिपासया जलाशय अभ्याशम् एक एव उपजगाम ॥२॥

राजन्	परीक्षित् !	**पिपासया**	जल पीने के लिए
तदा तत्र	उसी समय वहाँ	**हरिणी**	हरिणी
जलाशय	नदीके	**एक एव**	अकेली ही
अभ्याशं	समीप	**उपजगाम**	आयी ॥२॥

तया पेपीयमान उदके तावदेवाविदूरेण नदतो मृगपतेरुन्नादो लोकभयङ्कर उदपतत् ॥३॥

तया पेपीयमाने उदके तावत् एव अविदूरेण नदतः मृगपतेः उन्नादः लोक भयङ्कर उदपतत् ॥३॥

तया	उसके
उदके	
पेपीयमाने	पानीं पीते हुए
तावत् एव	उसी समय
अविदूरेण	समीप ही
नदतः मृगपतेः	गर्जना करते सिंहका
लोक भयङ्कर	सबके लिए डरावनी
उन्नादः	उच्च ध्वनि
उदपतत्	गूँजी ॥३॥

तमुपश्रुत्य सा मृगवधूः प्रकृतिविक्लवा चकितनिरीक्षणा सुतरामपि हरिभयाभिनिवेशव्यग्रहृदया पारिप्लवदृष्टिरगततृषा भयात् सहसैवोच्चक्राम ॥४॥

तं उपश्रुत्य सा मृगवधूः प्रकृति विक्लवा चकित निरीक्षणा सुतरां अपि हरिभय अभिनिवेश व्यग्रहृदया पारिप्लव दृष्टिः अगत तृषा भयात् सहसा एव उच्चक्राम ॥४॥

तं उपश्रुत्य	उस (गर्जना)को समीप सुनकर
सा मृगवधू	वह मृग पत्नी
प्रकृति	
विक्लवा	स्वभावसे ही डरपोक
चकित	
निरीक्षणा	चौंककर (इधर-उधर) देखता
सुतरां अपि	उस समय भी
हरिभय	
अभिनिवेश	सिंहके भयसे आक्रान्त
व्यग्रहृदया	बहुत धड़कते हृदयसे
अगत तृषा	प्यास न बुझनेपर भी
परिप्लव	
दृष्टिः	(नदी) कूद जानेके विचारसे
भयात्	भयके कारण
सहसा एव	अचानक ही
उच्चक्राम	उछल पड़ी ॥४॥

तस्या उत्पतन्त्या अन्तर्वत्न्या उरुभयावगलितो योनिनिर्गतो गर्भः स्रोतसि निपपात ॥५॥

तस्या उत्पतन्त्या अन्तर्वत्न्या उरुभय अवगलितः योनिनिर्गतः गभः स्रोतसि निपपात ॥५॥

अन्तर्वत्न्या	गर्भवती
तस्या	उस (हरिणी)के
उत्पतन्त्या	उछलनेपर
उरुभय	बहुत भयसे
अवगलितः	स्थानच्युत
गर्भः	गर्भ
योनिनिर्गतः	योनिद्वारसे निकलकर
स्रोतसि	(नदी की) धारामें
निपपात	गिर पड़ा ॥५॥

तत्प्रसवोत्सर्पणभयखेदातुरा स्वगणेन वियुज्यमाना कस्याञ्चिद्दर्यां कृष्णसारसती निपपाताथ च ममार ॥६॥

तत् प्रसव उत्सर्पण भय खेद आतुरा स्वगणेन वियुज्यमाना कस्याश्चित् दर्यां कृष्ण सारसती निपपात अथ च ममार ॥६॥

कृष्ण सारसती	कृष्ण मृग पत्नी
तत्	उस
प्रसव उत्सर्पण	गर्भ गिरजानेसे,
भय	(सिंहके) भयसे,
खेद	(लम्बी छलांगके) श्रमसे
आतुरा	व्याकुल होकर
स्वगणेन	अपने यूथसे
वियुज्यमाना	विमुक्त होकर
कस्याश्चित्	
दर्यां	किसी गुफामें
निपपात	गिर पड़ी
अथ च	और
ममार	मर गयी ॥६॥

तं त्वेणकुणकं कृपणं स्रोतसानूह्यमानमभिवीक्ष्यापविद्धं बन्धुरिवानुकम्पया राजर्षिर्भरत आदाय मृतमातरमित्याश्रमपदमनयत् ॥७॥

तं तु एण कुणकं कृपणं स्रोतसात् अह्यमानं अभिवीक्ष्य अपविद्धं बन्धुः इव अनुकम्पया राजर्षिः भरत आदाय मृतमातरं इति आश्रमपदं अनयत् ॥७॥

तं	उस
अपविद्धं	(मातासे) बिछुड़े
कृपणं	बेचारे
एण कुणकं तु स्रोतसात्	मृगीके बच्चेको तो
अह्यमानं	धाराओंसे बहाये जाते
अभिवीक्ष्य	देखकर
बन्धुः इव	आत्मीयके समान
अनुकम्पया	कृपासे
आदाय	लेकर
राजर्षिः भरत	राजर्षि भरत
मृतमातरं	'इसकी मां मर गयी है'
इति	ऐसा समझकर
आश्रमपदं	(अपने) आश्रम स्थानपर
अनयत्	ले आये ॥७॥

तस्य ह वा एणकुणक उच्चैरेतस्मिन् कृतनिजाभिमानस्याहरहस्तत्पोषणपालनलालनप्रीणनानुध्यानेनात्मनियमाः सहयमाः पुरुषपरिचर्यादय एकैकशः कतिपयेनाहर्गणेन वियुज्यमानाः किल सर्व एवोदवसन् ॥८॥

तस्य ह वा एण कुणक उच्चैःएतस्मिन् कृत निज अभिमानस्य अहरहः तत् पोषण पालन लालन प्रीणन अनुध्यानेन आत्मनियमाः सहयमाः पुरुष परिचर्यादय एक एकशः कतिपयेन अहर्गणेन वियुज्यमानाः किल सर्व एव उदवसन् ॥८॥

ह वा	फिर तो
तस्य	उस
एण कुणक	मृग छौनेके प्रति
एतस्मिन्	इसमें
उच्चैः कृत	प्रगाढ़ भावसे बनायें
निज	
अभिमानस्य	निजत्वके अभिमानसे
अहरहः	दिनोदिन
तत् पोषण	उसके पोषण,
पालन	पालन (रक्षण)
लालन	लाड़ करने
प्रीणन	प्रसन्न करनेके
अनुध्यानेन	चिन्तनमें लगे रहनेसे
आत्मनियमाः	अपने नियम
सहयमाः	(अपरिग्रह, अहिंसादि) यमोंके साथ,
पुरुष परि-चर्यादयः	भगवत् पूजा आदि
एक एकैशः	एक एक करके
वियुज्यमानाः	छूटते हुए

कतिपयेन	कुछ	**किल सर्व एव**	तो सभी
अहर्गणेन	दिनोंमें	**उदवसन्**	छूट गये ॥८॥

अहो बतायं हरिणकुणकः कृपण ईश्वररथचरणपरिभ्रमण-रयेण स्वगणसुहृद्बन्धुभ्यः परिवर्जितः शरणं च मोपसादितो मामेव मातापितरौ भ्रातृज्ञातीन् यौथिकांश्चैवोपेयाय नान्यं कञ्चन वेद मय्यतिविस्रब्धश्चात एव मया मत्परायणस्य पोषण-पालनप्रीणनलालनमनसूयुनानुष्ठेयं शरण्योपेक्षा दोषविदुषा ॥९॥

अहो बत अयं हरिण कुणकः कृपण ईश्वररथ चरण परिभ्रमण रयेण स्वगण सुहृत् बन्धुभ्यः परिवर्जितः शरणं च मा उपसादितः मां एव मातापितरौ भ्रातृज्ञातीन् यौथिकान् च उपेयाय न अन्यम् कञ्चन वेद मयि अति विस्रब्धः च अत एव मया मत् परायणस्य पोषण पालन प्रीणन लालनं अनसूयुना अनुष्ठेयं शरण्य उपेक्षा दोष विदुषा ॥९॥

अहो बत	अहो खेदकी बात है,	**मां एव**	मुझे ही
अयं कृपण	यह बेचारा	**मातापितरौ**	माता-पिता,
हरिण कुणकः	मृग-छौना	**भ्रातृज्ञातीन्**	भाई, सजातीय,
ईश्वररथ	भगवान्के(कालरूप)	**च यौथिकान्**	
	रथके	**एव**	तथा यूथके साथी
चरण			भी
परिभ्रमण	चक्रोंके घूमनेके	**उपेयाय**	समझता है।
रयेन	वेगसे	**अन्यं कञ्चन**	दूसरे किसीको
स्वगण सुहृत्	अपने दल, सुहृद,	**न वेद**	नहीं जानता
बन्धुभ्यः	बन्धुओंसे	**मयि**	मुझपर
परिवर्जितः	सर्वथा रहित होकर	**अति**	
मा	मेरी	**विस्रब्धः च**	बहुत विश्वास भी
शरणं च	शरणमें ही		करता है।
उपसादितः	पहुँचा दिया गया।		

अत एव	अतएव
मया	मुझे
शरण्य उपेक्षा	शरणागतकी उपेक्षाके
दोष विदुषा	दोष जाननेवाले को
मत् परायणस्य	मेरे परायणका
पोषण पालन	पोषण, पालन,
पीणन लालन	प्रसन्न करना, लालन
अनसूयुना	बिना दोष बुद्धिके
अनुष्ठेयं	करना चाहिए ॥९॥

नूनं ह्यार्याः साधव उपशमशीलाः कृपणसुहृद एवंविधार्थे स्वार्थानपि गुरुतरानुपेक्षन्ते ॥१०॥

नूनं हि आर्याः साधवः उपशमशीलाः कृपण सुहृत् एवं विध अर्थे स्वार्थान् अपि गुरुतरान् उपेक्षन्ते ॥१०॥

हि नूनं	क्योंकि निश्चय
आर्याः	श्रेष्ठ
साधवः	सत्पुरुष
उपशमशीलाः	शान्त स्वभाव,
कृपणसुहृत्	दीनोंके हितैषी
एवं विध अर्थे	इस प्रकारके प्रयोजनसे
गुरुतरान्	बहुत बड़े
स्वार्थान् अपि	स्वार्थों की भी
उपेक्षन्ते	उपेक्षा कर देते हैं ॥१०॥

इति कृतानुषङ्ग आसनशयनाटनस्थानाशनादिषु सह मृग-जहुना स्नेहानुबद्धहृदय आसीत् ॥११॥

इति कृत अनुषङ्ग आसन शयन अटन स्थान अशनादिषु सह मृग जहुना स्नेह अनुबद्ध हृदय आसीत् ॥११॥

इति	इस प्रकार
कृत अनुषङ्ग	आसक्ति करके
आसन	बैठते,
शयन	सोते,
अटन	घूमते,
स्थान	ठहरते,
अशनादिषु	भोजन आदिके समय भी
मृग जहुना सह स्नेह अनुबद्ध	मृगके बच्चेके साथ
हृदय	स्नेहसे बँधे हृदय
आसीत्	हो गये ॥११॥

कुशकुसुमसमित्पलाशफलमूलोदकान्याहरिष्यमाणो वृक-सालावृकादिभ्यो भयमाशंसमानो यदा सह हरिणकुणकेन वनं समाविशति ॥१२॥

कुशकुसुम समित् पलाश फलमूल उदकानि आहरिष्यमाणः वृक सालावृकादिभ्यः भयं आशंसमानः यदा सह हरिण कुणकेन वनं समाविशति ॥१२॥

कुशकुसुम	कुश, पुष्प	**भयं**	भयकी
समित् पलाश	समिधा, पत्ते	**आशंसमानः**	आशंका करके
फलमूल	फल, मूल	**हरिण कुणकेन**	
उदकानि यदा	जल जब	**सह**	हरिणके बच्चेके साथ
आहरिष्यमाणः	ले आने होते थे		
वृक	भेड़िये	**वनं**	
सालावृका-		**समाविशति**	वनमें प्रवेश करते
दिभ्यः	कुत्तों आदिसे		थे ॥१२॥

पथिषु च मुग्धभावेन तत्र तत्र विषक्तमतिप्रणयभरहृदयः कार्पण्यात्स्कन्धेनोद्वहति एवमुत्सङ्ग उरसि चाधायोपलालयन्मुदं परमामवाप ॥१३॥

पथिषु च मुग्धभावेन तत्र तत्र विषक्तं अति प्रणय भर हृदयः कार्पण्यात् स्कन्धेन उद्वहति एवं उत्सङ्ग उरसि च आधाय उपलालयन् मुदं परमां अवाप ॥१३॥

पथिषु च	मार्गमें भी	**भर हृदयः**	भरे हृदय
मुग्धभावेन	मुग्धभावसे	**कार्पण्यात्**	कृपा करके (उसे)
तत्र तत्र	स्थान-स्थानपर	**स्कन्धेन**	कन्धेपर
विषक्तं	(घास आदिसे) अटकनेपर	**उद्वहति**	ढोते थे
		एवं	इसी प्रकार
अति प्रणय	अतिशय प्रेमसे	**उत्सङ्ग**	गोदमें

च उरसि	तथा हृदयसे	**परमां मुदं**	परम आमोद
आधाय	लगाकर	**अवाप**	पाते थे ॥१३॥
उपलालयन्	लाड़ करते हुए		

क्रियायां निर्वर्त्यमानायामन्तरालेऽप्युत्थायोत्थाय यदै-
नमभिचक्षीत तर्हि वाव स वर्षपतिः प्रकृतिस्थेन मनसा तस्मा
आशिष आशास्ते स्वस्ति स्तादुत्स ते सर्वत इति ॥१४॥

क्रियायां निर्वर्त्यमानायां अन्तराले अपि उत्थाय उत्थाय यत् एनं अभिचक्षीत तर्हि वाव स वर्षपतिः प्रकृतिस्थेन मनसा तस्मा आशिष आशास्ते स्वस्ति तात् वत्स ते सर्वत इति ॥१४॥

क्रियायां	(नित्य-नैमित्तिक) कर्मोंको	**प्रकृतिस्थेन मनसा**	मनसे प्रकृतस्थ (निश्चिन्त) होते थे।
निर्वर्त्यमानायां	सम्पन्न करते समय भी	**तस्मा**	उसको
अन्तराले अपि	बीच-बीचमें भी	**आशिष**	
उत्थाय उत्थाय	उठ-उठकर	**आशास्ते**	आशीर्वाद देते थे—
यत् एनं	जब इसको	**वत्स ते**	'वत्स तुम्हारा
अभिचक्षीत	देख लेते थे	**सर्वत**	सब ओरसे
तर्हि वाव	तभी निश्चित	**स्वस्ति तात्**	कल्याण हो'
स वर्षपतिः	वे एक देशके स्वामी	**इति**	इस प्रकार ॥१४॥

अन्यदा भृशमुद्विग्नमना नष्टद्रविण इव कृपणः सकरुण-
मतितर्षेण हरिणकुणकविरहविह्वलहृदयसन्तापस्तमेवानुशोचन्
किल कश्मलं महदभिरम्भित इति होवाच ॥१५॥

अन्यदा भृशं उद्विग्नमना नष्ट द्रविण इव कृपणः सकरुणं अति तर्षेण हरिण कुणक विरह विह्वल हृदय सन्तापः तं एव अनुशोचन् किल कश्मलं महत् अभिरम्भित इति ह उवाच ॥१५॥

अन्यदा अन्यथा (कभी उसके न दीखनेपर)
भृशं उद्विग्न-मना अत्यन्त उद्विग्न मन
द्रविण नष्ट धन नष्ट हुए
कृपणः दीन (पुरुष)
इव की भांति
अति तर्षेण अत्यन्त प्यास (उत्कंठा) पूर्वक
स करुणं करुणावश
हरिण कुणक हरिणके बच्चेके
विरह विह्वल हृदय सन्तापः वियोगसे व्याकुल सन्तप्त-हृदय
तं एव अनुशोचन् उसकी ही बार-बार चिन्ता करते,
किल आश्चर्य है कि
महत् कश्मलं महान् शोक
अभिरम्भित आविष्ट
इति ह उवाच इस प्रकारसे ही कहने लगते ॥१५॥

*भरत उवाच-**

अपि बत स वै कृपण एणबालको मृतहरिणीसुतोऽहो ममनार्यस्य शठकिरातमतेरकृतसुकृतस्य कृतविस्रम्भ आत्मप्रत्ययेन तदविगणयन् सुजन इवागमिष्यति ॥१६॥

अपि बत स वै कृपण एण बालकः मृत हरिणी सुतः अहो मम् अनार्यस्य शठ किरातमतेः अकृत सुकृतस्य कृत विस्रम्भः आत्मप्रत्ययेन तत् अविगणयन् सुजन इव आगमिष्यति ॥१६॥

अपि बत क्या फिर
स वै कृपण वही बेचारा
एण बालकः मृग-शावक
मृत हरिणी सुतः मृत हरिणीका छौना
अहो अहो
मम् अनार्यस्य मुझ नीच
शठ किरातमतेः दुष्ट बहेलिये-सी बुद्धिवाले
अकृत सुकृतस्य पुण्यहीनपर
कृत विस्रम्भः विश्वास करके
आत्मप्रत्ययेन मुझे अपना मानकर
तत् अविगणयन् उस (मेरी दुष्टता) को न गिनकर
सुजन इव सत्पुरुषोंके समान
आगमिष्यति आवेगा ? ॥१६॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें में नहीं है।

अपि क्षेमेणास्मिन्नाश्रमोपवने शष्पाणि चरन्तं देवगुप्तं द्रक्ष्यामि ॥१७॥

अपि क्षेमेण अस्मिन् आश्रम उपवने शष्पाणि चरन्तं देवगुप्तं द्रक्ष्यामि ॥१७॥

अपि	क्या	**चरन्तं**	हरे-तृण चरते
क्षेमेण	कुशलपूर्वक	**देवगुप्तं**	भगवान्‌की कृपासे सुरक्षित
अस्मिन्	इस	**द्रक्ष्यामि**	(उसे मैं) देखूँगा ॥१७॥
आश्रम उपवने	आश्रमके बगीचेमें		
शष्पाणि			

अपि च न वृकः सालावृकोऽन्यतमो वा नैकचर एकचरो वा भक्षयति ॥१८॥

अपि च न वृकः सालावृकः अन्यतमः वा न एकचर एकचरः वा भक्षयति ॥८॥

अपि च	कहीं (उसे)	**न एकचर**	दलमें रहनेवाला
वृकः	भेड़िया,	**वा एकचरः**	या अकेले रहने वाला
सालावृकः वा	कुत्ता अथवा	**भक्षयति न**	खा न जाय ॥१८॥
अन्यतमः	कोई दूसरा		

निम्लोचति ह भगवान् सकलजगत्क्षेमोदयस्त्रय्यात्माद्यापि मम न मृगवधून्यास आगच्छति ॥१९॥

निम्लोचति ह भगवान् सकल जगत् क्षेम उदयः त्रयी आत्मा अद्यापि मम न मृगवधून्यास आगच्छति ॥१९॥

सकल जगत्	सम्पूर्ण विश्वके	**अद्यापि**	अब तक भी
क्षेम उदयः	कुशलके लिए प्रकट	**मम**	मेरी
त्रयी आत्मा	वेदत्रयी स्वरूप	**मृगवधून्यास**	मृगीकी धरोहर
भगवान्	भगवान् (सूर्य)	**न आगच्छति**	नहीं आ रहा है ॥१९॥
निम्लोचति ह	अस्त होने ही वाले हैं,		

अपिस्विदकृतसुकृतमागत्य मां सुखयिष्यति हरिणराज-कुमारो विविधरुचिरदर्शनीयनिजमृगदारकविनोदैरसन्तोषं स्वानामपनुदन् ॥२०॥

अपि स्वित् अकृत सुकृतं आगत्य मां सुखयिष्यति हरिणराजकुमारः विविध रुचिर दर्शनीय निज मृगदारक विनोदैः असन्तोषं स्वानां अपनुदन् ॥२०॥

अपि स्वित्	क्या (वह)
हरिण-राजकुमारः	हरिण-राजकुमार
अकृत सुकृतं	(मुझ) पुण्यहीनके (पास)
आगत्य	आ कर
विविध रुचिर	अनेक प्रकारकी
दर्शनीय	देखने ही योग्य
मृगदारक	मृग-छौनेके
निज विनोदैः	अपनी क्रीड़ाओंसे
स्वानां असन्तोषं	अपने जनोंका असन्तोष
अपनुदन्	दूर करते
मां	मुझे
सुखयिष्यति	सुखी करेगा ॥२०॥

क्ष्वेलिकायां मां मृषासमाधिनाऽऽमीलितदृशं प्रेमसंरम्भेण चकितचकित आगत्य पृषदपरुषविषाणाग्रेण लुठति ॥२१॥

क्ष्वेलिकायां मां मृषा समाधिना आमीलित दृशं प्रेम संरम्भेण चकित चकित आगत्य पृषत् अपरुष विषाण अग्रेण लुठति ॥२१॥

प्रेम संरम्भेण	प्रणय कोपसे
क्ष्वेलिकायां	हँसीमें
मृषा समाधिना	झूठी समाधि (के बहाने) से
आमीलित दृशं	नेत्र बन्द किए
मां	मुझे
चकित चकित	अत्यन्त आश्चर्यसे
आगत्य	पास आकर
पृषत्	छोटे
अपरुष	कठोर न हुए
विषाण अग्रेण	सींगोंकी नोंकसे
लुठति	ठेलता था ॥२१॥

आसादितहविषि बर्हिषी दूषिते मयोपालब्धो भीतभीतः सपद्युपरतरास ऋषिकुमारवदवहितकरणकलाप आस्ते ॥२२॥

आसादित हविषि बर्हिषि दूषिते मया उपालब्धः भीतभीतः सपदि उपरत रास ऋषिकुमारवत् अवहित करण कलाप आस्ते ॥२२॥

बर्हिषि	कुशोंपर
आसादित	रखी
हविषि	हवन-सामग्री
दूषिते	(मुख लगाकर) दूषित (जूठी) कर देने पर
मया	मेरे द्वारा
उपालब्धः	डांटनेपर
भीतभीतः	बहुत डरकर
ऋषिकुमार-वत्	ऋषिकुमारके समान
सपदि	तत्काल
उपरत रास	उछल-कूद त्यागकर
अवहित	रोकी हुई
करण कलाप	इन्द्रियोंकी चेष्टा (वाला)
आस्ते	(चुपचाप) बैठ जाता था ॥२२॥

किं वा अरे आचरितं तपस्तपस्विन्यानया यदियमवनिः सविनयकृष्णसारतनयतनुतरसुभगशिवतमाखरखुरपदपङ्क्तिभिर्द्रविणविधुरातुरस्य कृपणस्य मम द्रविणपदवीं सूचयन्त्यात्मानं च सर्वतः कृतकौतुकं द्विजानां स्वर्गापवर्गकामानां देवयजनं करोति ॥२३॥

किं वा अरे आचरितं तपः तपस्विनि अनया यत् इयं अवनिः सविनय कृष्णसार तनय तनुतर सुभग शिवतम आखर खुरपद पङ्क्तिभिः द्रविण विधुर आतुरस्य कृपणस्य मम द्रविण पदवीं सूचयन्ति आत्मानं च सर्वतः कृत-कौतुकं द्विजानां स्वर्ग अपवर्ग कामनां देवयजनं करोति ॥२३॥

अनया	इस
तपस्विनि	तपस्विनी (पृथ्वी)ने
अरे वा	अरे भला
किं तपः	क्या तपस्या
आचरितं	की है
यत् इयं	जो यह
अवनिः	पृथ्वी
सविनय	अत्यन्त विनीत
कृष्णसार	
तनय	कृष्ण-मृगके छौनेके
तनुतर	बहुत छोटे-छोटे
सुभग	सौभाग्यदायी
शिवतम	परम कल्याणकारी
आखर	तीक्ष्ण
खुरपद	खुरोंके चिह्नोंकी
पङ्क्तिभिः	पंक्तियोंसे
द्रविण विधुर	द्रव्य रहित
आतुरस्य	व्याकुल
कृपणस्य	दीन हो रहे
मम	मेरे
द्रविण	(मृगरूपी) धनके
पदवीं	स्थानको
सूचयन्ति	सूचित करते हुए
आत्मानं च	अपनेको भी
सर्वतः	सब ओर
कृतकौतुकं	(इन पद-चिह्नोंसे) भूषित करके
स्वर्ग अपवर्ग	स्वर्ग या मोक्षकी
कामानां	कामना वाले
द्विजानां	द्विजोंके लिए
देवयजनं	देवयज्ञ (स्थल)
करोति	बना रही हैं*॥२३॥

अपिस्विदसौ भगवानुडुपतिरेनं मृगपतिभयान्मृतमातरं मृगबालकं स्वाश्रमपरिभ्रष्टमनुकम्पया कृपणजनवत्सलः परिपाति ॥२४॥

अपि स्वित् असौ भगवान् उडुपतिः एनं मृगपति भयात् मृतमातरं मृगबालकं स्व आश्रमपरिभ्रष्टं अनुकम्पया कृपणजनवत्सलः परिपाति ॥२४॥

अपि स्वित्	अथवा क्या
असौ	ये
कृपणजन-वत्सलः	दुःखी लोगोंपर वात्सल्य रखने वाले

---

*स्मृति तथा पुराणोंके अनुसार जहाँ कृष्ण-मृग पाये जाते हैं, वह भूमि पवित्र और यज्ञानुष्ठान योग्य होती है।

भगवान् —
उडुपतिः भगवान् चन्द्रमा
मृगपति भयात् सिंहके भयसे
मृतमातरं मरी मातावाले
स्व आश्रम-परिभ्रष्टं अपने आश्रमसे भटके
एनं इस
मृगबालकं मृग-छौनेकी
अनुकम्पया दयावश
परिपाति रक्षा करते हैं ॥२४॥

किं वाऽऽत्मजविश्लेषज्वरदवदहनशिखाभिरुपतप्यमान-हृदयस्थलनलिनीकं मामुपसृतमृगीतनयं शिशिरशान्तानुराग-गुणितनिजवदनसलिलामृतमयगभस्तिभिः स्वधयतीति च ॥२५॥

किं वा आत्मज विश्लेष ज्वरदवदहन शिखाभिः उपतप्यमान हृदय-स्थलनलिनीकं मां उपसृत्य मृगीतनयं शिशिर शान्त अनुराग गुणित निज वदन सलिल अमृतमय गभस्तिभिः स्वधयतीति च ॥२५॥

आत्मज विश्लेष पुत्रोंके वियोगरूपी
ज्वरदवदहन ज्वर दावाग्निकी
शिखाभिः लपटोंसे
उपतप्यमान सन्तप्त होते
हृदयस्थल-नलिनीकं हृदय कमलवाले
मृगीतनयं मृग-छौनेके साथ
मां उपसृत्य मेरे समीप आकर (चन्द्रदेव)
शिशिर शान्त शीतल, शान्त
अनुराग गुणित अनुरागसे प्रवृद्ध
निज वदन अपने मुखकी
अमृतमय सलिल अमृतमय जल
गभस्तिभिः किरणोंसे
स्वधयतीति च (मुझे) शान्त कर रहे हैं ॥२५॥

श्रीशुक उवाच*-

एवमघटमानमनोरथाकुलहृदयो मृगदारकाभासेन स्वारब्धकर्मणा योगारम्भणतो विभ्रंशितः स योगतापसो

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

भगवदाराधनलक्षणाच्च कथमितरथा जात्यन्तर एणकुणक आसङ्गः साक्षान्निःश्रेयसप्रतिपक्षतया प्राक्परित्यक्तदुस्त्यजहृदयाभिजातस्य तस्यैवमन्तरायविहतयोगारम्भणस्य राजर्षेर्भरतस्य तावन्मृगार्भकपोषणपालनप्रीणनलालनानुषङ्गेणाविगणयत आत्मानमहिरिवाखुबिलं दुरतिक्रमः कालः करालरभस आपद्यत ॥२६॥

एवं अघटमान मनोरथ आकुलहृदयः मृगदारक आभासेन स्तव आरब्ध कर्मणा योगारम्भणतः विभ्रंशितः स योगतापसः भगवत् आराधन लक्षणात् च कथं इतरथा जात्यन्तर एण कुणक आसङ्गः साक्षात् निःश्रेयस प्रतिपक्षतया प्राक् परित्यक्त दुस्त्यज हृदय अभिजातस्य तस्य एवं अन्तराय विहत योग आरम्भणस्य राजर्षेः भरतस्य तावत् मृग अर्भक पोषण पालन प्रीणन लालन अनुषङ्गेण अविगणयत आत्मानं अहिः इव आखु बिलं दुरतिक्रमः कालः करालरभस आपद्यत ॥२६॥

एवं	इस प्रकार	**लक्षण**	रूपी
अघटमान	जिनका घटित होना शक्य नहीं	**योगारम्भणतः**	योग-साधनसे
		विभ्रंशितः	च्युत
मनोरथस्य	(ऐसे) मनोरथवाले	**स योगतापसः**	उन योगी तथा तपस्वीका
आकुलहृदयः	व्याकुल हृदय		
राजर्षेः		**इतरथा**	अन्यथा
भरतस्य	राजर्षि भरतका	**जात्यन्तर**	दूसरी जाति (पशु)
मृगदारक	मृग-छौनेके	**एण कुणक**	मृग-छौनेमें
आभासेन	रूपमें प्रतीत होने-वाले	**कथं आसङ्गः**	कैसे दृढ़ आसक्ति हो गयी।
स्व आरब्ध		**साक्षात्**	
कर्मणा	अपने प्रारब्ध कर्मसे	**निःश्रेयस**	साक्षात् मोक्षके
भगवत्		**प्रतिपक्षतया**	विरोधी होनेसे
आराधन	भगवान्‌की आरा-धना	**प्राक्**	पहिले

दुस्त्यज जिनका त्याग बहुत कठिन है
हृदय
अभिजातस्य (उन) हृदयसे उत्पन्न पुत्रोंको (जिन्होंने)
परित्यक्त छोड़ दिया था
तस्य एवं उनको इस प्रकार
अन्तराय विघ्नोंके द्वारा
योग आरम्भणस्य योग-साधनोंके
विहतस्य नष्ट हो जानेपर
तावत् उस समय
मृगअर्भक मृगछौनेके
पोषण पालन पोषण, पालन
प्रीणन लालन प्रसन्न करने, लाड़ लड़ानेमें
अनुषङ्गेन लगे रहकर
आत्मानं आत्म स्वरूपकी
अविगणयत अवगणना (उपेक्षा) करते हुए
आखु बिलं चूहेके बिलमें
अहिः इव सर्पके समान
करालरभसः भयानक वेगवाला
दुरतिक्रमः अनिवारण
कालः काल
आपद्यत पास आ गया ॥२६॥

तदानीमपि पार्श्ववर्तिनमात्मजमिवानुशोचन्तमभिवीक्षमाणो मृग एवाभिनिवेशितमना विसृज्य लोकमिमं सह मृगेण कलेवरं मृतमनु न मृतजन्मानुस्मृतिरितरवन्मृगशरीरमवाप ॥२७॥

तदानीं अपि पार्श्ववर्तिनं आत्मजं इव अनुशोचन्तं अभिवीक्षमाणः मृग एव अभिनिवेशितमना विसृज्य लोकं इमं सह मृगेण कलेवरं मृतं अनु न मृत जन्म अनुस्मृतिः इतरवत् मृगशरीरं अवाप ॥२७॥

तदानीं अपि उस समय भी
पार्श्ववर्तिनं समीप बैठे
आत्मजं इव पुत्रके समान
अनुशोचन्तं शोक करते हुएको
अभिवीक्षमाणः बार-बार देखते हुए
मृग एव मृगमें ही
अभिनिवेशित-मना मनका तादात्म्य होनेसे
सह मृगेण मृगके साथ
मृतं कलेवरं मरे शरीरको
अनु इमं लोकं पीछे इस लोकको
विसृज्य छोड़कर; किन्तु
इतरवत् दूसरोंके समान
मृत जन्म मरे (छूटे) जन्मकी
अनुस्मृतिः पिछली स्मृति
न नहीं (छोड़कर)
मृगशरीरं मृग-देह (में जन्म)
अवाप पाया ॥२७॥

तत्रापि ह वा आत्मनो मृगत्वकारणं भगवदाराधन-समीहानुभावेनानुस्मृत्य भृशमनुतप्यमान आह ॥२८॥

तत्र अपि ह वा आत्मनः मृगत्व कारणं भगवत् आराधन समीहा अनुभावेन अनुस्मृत्य भृशं अनुतप्यमानः आह ॥२८॥

तत्र अपि	वहाँ भी	**अनुभावेन**	प्रभावसे
ह वा	निश्चित रूपसे (पूर्व-जन्मके)	**आत्मनः**	अपने
		मृगत्व कारणं	मृग हो जानेके कारणको
भगवत् आराधनं	भगवान्‌की आराधनाको	**अनुस्मृत्य**	स्मरण करके
		भृशं	बहुत
समीहा	भली प्रकार चेष्टा करने	**अनुतप्यमानः**	संतप्त होते हुए
		आह	बोले ॥२८॥

अहो कष्टं भ्रष्टोऽहमात्मवतामनुपथाद्यद्विमुक्तसमस्त-सङ्गस्य विविक्तपुण्यारण्यशरणस्यात्मवत आत्मनि सर्वेषामात्मनां भगवति वासुदेवे तदनुश्रवणमननसङ्कीर्तनाराधनानुस्मरणा-भियोगेनाशून्यसकलयामेन कालेन समावेशितं समाहितं कात्स्न्र्येन मनस्तत्तु पुनर्ममाबुधस्यारान्मृगसुतमनु परिसु-स्राव ॥२९॥

अहो कष्टं भ्रष्टः अहं आत्मवतां अनुपथात् यत् विमुक्त समस्त सङ्गस्य विविक्त पुण्य अरण्य शरणस्य आत्मवत आत्मनि सर्वेषां आत्मनां भगवति वासुदेवे तत् अनुश्रवण मनन संकीर्तन आराधन अनुस्मरण अभियोगेन अशून्य सकलयामेन कालेन समावेशितं समाहितं कात्स्न्र्येन मनः तत् तु पुनः मम अबुधस्य आरात् मृगसुतं अनु परिसुस्राव ॥२९॥

अहो कष्टं	अहो, बड़े खेदकी बात है कि	**आत्मवतां**	संयमशील लोगोंके
		अनुपथात्	पीछे चलनेके मार्गसे
अहं	मैं	**भ्रष्टः**	भटक गया

यत्	जो
समस्त सङ्गस्य	सभी आसक्तियोंसे
विमुक्त	छूटकर
विविक्त	एकान्त
पुण्य अरण्य	पवित्र वनमें
शरणस्य	शरण लेकर
सर्वेषां आत्मनां भगवति वासुदेवे	सबके आत्मा भगवान् वासुदेवको
आत्मनि	अपने भीतर
आत्मवत	अपनी आत्माकी भाँति (देखते हुए)
तत् अनुश्रवण	उनका बार-बार श्रवण
मनन संकीर्तन	चिन्तन, गुणगान
आराधन	अर्चन
अनुस्मरण	बार-बार स्मरण
अभियोगेन	करनेमें लगे रहकर
सकलयामेन	सब समयको
अशून्य	(उनसेही) भरकर
कालेन	दीर्घ कालसे
समावेशितं	(उनमें) भली प्रकार प्रविष्ट
कात्स्न्र्येन	सम्पूर्ण
समाहितं	एकाग्र
मनः	मन (हो जानेपर भी)
पुनः	फिर
तत् नु	वह तो
मम अबुधस्य	मुझ अज्ञानीका
आरात्	समीपके
मृगसुतं	मृग-छौनेके
अनु	पीछे
परिसुस्राव	(लक्ष्यसे) परिच्युत हो गया ॥२९॥

इत्येवं निगूढनिर्वेदो विसृज्य मृगीम् मातरं पुनर्भगवत्क्षेत्र-मुपशमशीलमुनिगणदयितं शालग्रामं पुलस्त्यपुलहाश्रमं कालञ्ज-रात्प्रत्याजगाम ॥३०॥

इति एवं निगूढ निर्वेदः विसृज्य मृगीम् मातरं पुनः भगवत् क्षेत्रं उपशमशील मुनिगण दयितं शालग्रामं पुलस्त्य पुलह आश्रमं कालञ्जरात् प्रति आजगाम ॥३०॥

इति एवं	इस प्रकारसे
निगूढ़ निर्वेदः	छिपे वैराग्ययुक्त
मृगीम् मातरं	अपनी मां मृगीको
विसृज्य	छोड़कर
पुनः	फिर
कालञ्जरात्	कालञ्जरसे

शालग्रामं	शालग्राम वाले	**पुलस्त्य पुलह**	पुलस्त्य, पुलह महर्षियोंके
भगवत् क्षेत्रं	भगवदीय तीर्थ		
उपशमशील	विरक्त स्वभाव	**आश्रमं प्रति**	आश्रममें
मुनिगण दयितं	मुनियोंको प्रिय	**आजगाम**	आ गये ॥३०॥

तस्मिन्नपि कालं प्रतीक्षमाणः सङ्गाच्च भृशमुद्विग्न आत्मसहचरः शुष्कपर्णतृणवीरुधा वर्तमानो मृगत्वनिमित्तावसानमेव गणयन्मृगशरीरं तीर्थोदकल्किन्नमुत्ससर्ज ॥३१॥

तस्मिन् अपि कालं प्रतीक्षमाणः सङ्गात् च भृशं उद्विग्नः आत्मसहचरः शुष्क पर्ण तृण वीरुधा वर्तमानः मृगत्व निमित्त अवसानं एव गणयन् मृग शरीरं तीर्थ उदकल्किन्नं उत्ससर्ज ॥३१॥

तस्मिन् अपि कालं	वहाँ भी	**वीरुधा**	क्षुपोंसे
प्रतीक्षमाणः	समयकी प्रतीक्षा करते हुए	**वर्तमानः**	शरीर-निर्वाह करते
		मृगत्व	मृग-शरीर मिलनेके
सङ्गात् च	और आसक्तिसे	**निमित्त**	निमित्तकी
भृशं	अत्यधिक	**अवसानं एव**	समाप्तिकी ही
उद्विग्नः	उद्विग्न	**गणयन्**	प्रतीक्षा करते
आत्मसहचरः	अपने ही साथ (अकेले)	**तीर्थ**	
		उदकल्किन्नं	तीर्थ (गण्डकी)के जलसे भीगे।
शुष्क	सूखे	**मृग शरीरं**	हिरण देहको
पर्ण तृण	पत्ते, तिनके,	**उत्ससर्ज**	त्याग दिया ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भरतचरितेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

अथ कस्यचिद् द्विजवरस्याङ्गिरःप्रवरस्य शमदमतपःस्वाध्यायाध्ययनत्यागसन्तोषतितिक्षाप्रश्रयविद्यानसूयात्मज्ञानानन्दयुक्तस्यात्मसदृशश्रुतशीलाचाररूपौदार्यगुणा नव सोदर्या अङ्गजा बभूवुर्मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायाम् ॥१॥

अथ कस्यचित् द्विजवरस्य अङ्गिरः प्रवरस्य शमदम तपः स्वाध्याय अध्ययन त्याग संतोष तितिक्षा प्रश्रय विद्या अनसूया आत्मज्ञान आनन्द युक्तस्य आत्म सदृश श्रुत शील आचार रूप औदार्य गुणा नव सोदर्या अङ्गजा बभूवुः मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायाम् ॥१॥

अथ	फिर
कस्यचित्	किसी
अङ्गिरः	
प्रवरस्य	अङ्गिरा-गोत्रीय
शमदम	शम, दम,
तपः स्वाध्याय	तप, जप,
अध्ययन	वेदाध्ययन,
त्याग सन्तोष	त्याग, सन्तोष,
तितिक्षा	कष्ट सहिष्णुता,
प्रश्रय	नम्रता,
विद्या	शास्त्रज्ञान,
अनसूया	दूसरोंके गुणमें दोष न देखना,
आत्मज्ञान	आत्मज्ञान
आनन्द युक्तस्य	आनन्द युक्त
द्विजवरस्य	ब्राह्मण श्रेष्ठको
आत्म सदृश	अपने ही समान
श्रुत	विद्या,
शील आचार	शील, आचार,
रूप औदार्य	रूप, उदारता,
गुणा	गुणवाले
नव सोदर्या	नौ सहोदर
अङ्गजा	पुत्र (बड़ी पत्नीसे)
च यवीयस्यां	और छोटी
भार्यायां	पत्नीसे
मिथुनं	पुत्र-कन्याका जोड़ा
बभूवुः	उत्पन्न हुआ ॥१॥

यस्तु तत्र पुमांस्तं परमभागवतं राजर्षिप्रवरं भरतमुत्सृष्ट-मृगशरीरं चरमशरीरेण विप्रत्वं गतमाहुः ॥२॥

यः तु तत्र पुमान् तं परमभागवतं राजर्षिप्रवरं भरतं उत्सृष्टं मृग शरीरं चरम शरीरेण विप्रत्वं गतं आहुः ॥२॥

यः तु	जो तो	**मृग शरीरं**	हिरनके शरीरको
तत्र	उस (जोड़े)में	**उत्सृष्टं**	त्यागकर
पुमाँन् तं	लड़का था उसे	**चरम शरीरेण**	अन्तिम शरीरसे
परमभागवतं	परम भगवद्-भक्त	**विप्रत्वं गतं**	ब्राह्मण जन्म प्राप्त
राजर्षिप्रवरं	राजर्षि श्रेष्ठ	**आहुः**	कहा गया है ॥२॥
भरतं	भरतको		

तत्रापि स्वजनसङ्गाच्च भृशमुद्विजमानो भगवतः कर्मबन्धविध्वंसनश्रवणस्मरणगुणविवरणचरणारविन्दयुगलं मनसा विदधदात्मनः प्रतिघातमशङ्कमानो भगवदनुग्रहेणानुस्मृतस्वपूर्वजन्मावलिरात्मानमुन्मत्तजडान्धबधिरस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य ॥३॥

तत्र अपि स्वजन सङ्गात् च भृशं उद्विजमानः भगवतः कर्मबन्ध विध्वंसन श्रवण स्मरण गुण विवरण चरणारविन्द युगलं मनसा विदधत् आत्मनः प्रतिघातं आशङ्कमानः भगवत् अनुग्रहेण अनुस्मृत स्वपूर्वजन्मावलिः आत्मानं उन्मत्त जड अन्ध बधिर स्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य ॥३॥

तत्र अपि	वहां भी	**श्रवण**	(चरित) श्रवण,
स्वजन		**स्मरण**	स्मरण,
संगात् च	अपने सम्बन्धियोंकी आसक्तिसे तो	**गुण विवरण**	गुण-चिन्तन,
		चरणार-	
भृशं	बहुत ही	**विन्द युगलं**	दोनों चरण-
उद्विजमानः	उद्विग्न होते थे।		कमलोंको
भगवतः	भगवान्के	**मनसा**	मनसे
कर्मबन्ध	कर्मके बन्धनको	**विदधत्**	धारण किये रहते।
विध्वंसन	नष्ट करनेवाले		

भगवत् अनुग्रहेण	भगवान्‌की कृपासे
स्वपूर्व-जन्मावलिः	अपने-पूर्व जन्मोंकी परम्परा
अनुस्मृत	स्मरण रहनेसे
आत्मनः	अपने लिए
प्रतिघातं	(विघ्न रूप) प्रतिक्रिया
आशंकमानः	(आ जानेकी) आशंकासे
लोकस्य	लोगोंको
आत्मानं	अपनेको
उन्मत्त जड़	पागल, मूर्ख,
अन्ध बधिर	अन्धे, बहिरेके
स्वरूपेण	स्वरूपमें
दर्शयामास	दिखलाते थे ॥३॥

तस्यापि ह वा आत्मजस्य विप्रः पुत्रस्नेहानुबद्धमना आ समावर्तनात्संस्कारान् यथोपदेशं विदधान उपनीतस्य च पुनः शौचाचमनादीन् कर्मनियमाननभिप्रेतानपि समशिक्षयदनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः पुत्रेणेति ॥४॥

तस्य अपि ह वा आत्मजस्य विप्रः पुत्रस्नेह अनुबद्धमना आ समावर्तनात् संस्कारान् यथा उपदेशं विदधान उपनीतस्य च पुनः शौच आचमन आदीन् कर्मनियमान् अनभिप्रेतान् अपि समशिक्षयत् अनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः पुत्रेण इति ॥४॥

ह वा	निश्चित ही
तस्य	उस
आत्मजस्य	
अपि	पुत्रके भी
पुत्रस्नेह	पुत्र-स्नेहसे
अनुबद्धमना	बँधे चित्तवाले
विप्रः	(वे) ब्राह्मण
यथा उपदेशं	शास्त्रके उपदेशके अनुसार
आ समावर्तनात्	समावर्तन पर्यन्त
संस्कारान्	सब संस्कार
विदधान	कराते रहे।
पुनः	फिर
उपनीतस्य च	यज्ञोपवीत हो जानेपर तो
शौचं	पवित्रताके
आचमन	
आदीन्	आचमन आदि
अनभिप्रेतान्	
अपि	(उनके) न चाहनेपर भी
कर्म नियमान्	कर्मके नियमोंको

समशिक्षयत्	भली प्रकार सिखलाते थे।	**अनुशिष्टेन**	अनुशासनकी शिक्षा देनी चाहिए,
हि पितुः	क्योंकि पिताको	**इति**	ऐसा कर्तव्य है ॥४॥
पुत्रेण	पुत्रको		

स चापि तदु ह पितृसंनिधावेवा सध्रीचीनमिव स्म करोति छन्दांस्यध्यापयिष्यन् सह व्याहृतिभिः सप्रणवशिरस्त्रिपदीं सावित्रीं ग्रैष्मवासन्तिकान्मासानधीयानमप्यसमवेतरूपं ग्राहयामास ॥५॥

स च अपि तत् उ ह पितृ संनिधाः एव सध्रीचीनं इव स्म करोति छन्दांसि अध्यापयिष्यन् सह व्याहृतिभिः सप्रणवशिरः त्रिपदीं सावित्रीं ग्रैष्म वासन्तिकान् मासान् अधीयानं अपि असमवेत रूपं ग्राहयामास ॥५॥

स च अपि	वे भी तो	**अधीयानं अपि**	पढ़ाते रहनेपर भी
तत् उ ह	उसका तो निश्चित	**सह व्याहृतिभिः**	व्याहृति (भूः भुवः स्वः)के साथ
पितृ सन्निधाः	पिताके सामीप्यमें	**सप्रणवशिरः**	शिरोमन्त्र प्रणव सहित
एव	ही	**त्रिपदीं**	
सध्रीचीनं इव	उलटेके समान (व्यवहार)	**सावित्रीं**	तीन चरणका गायत्री-मन्त्र
करोति स्म	करते थे।	**असमवेत रूपं**	अटपटे रूपमें अच्छी तरह नहीं,
छन्दांसि	वेदोंको	**ग्राहयामास**	याद करा सके ॥५॥
अध्यापयिष्यन्	पढ़ाये जानेमें		
ग्रैष्म वास-न्तिकान्	ग्रीष्म और वसन्तके		
मासान्	(चार) महीनोंमें		

एवं स्वतनुज आत्मन्यनुरागावेशितचित्तः शौचाध्ययनव्रत-नियमगुर्वनलशुश्रूषणाद्यौपकुर्वाणककर्मण्यनभियुक्तान्यपि समनु-शिष्टेन भाव्यमित्यसदाग्रहः पुत्रमनुशास्य स्वयं तावदनधिगत-मनोरथः कालेनाप्रमत्तेन स्वयं गृह एव प्रमत्त उपसंहृतः ॥६॥

एवं स्वतनुज आत्मनि अनुराग आवेशित चितः शौच अध्ययन व्रत नियम गुरु अनल शुश्रूषण आदि औपकुर्वाणिक कर्माणि अनभियुक्तान् अपि समनुशिष्टेन भाव्यं इति असत् आग्रहः पुत्रं अनुशास्य स्वयं तावत् अनधिगत मनोरथः कालेन अप्रमत्तेन स्वयं गृह एव प्रमत्तः उपसंहृतः ॥६॥

एवं	ऐसा होनेपर भी	**अनभियुक्तान्**	
स्वतनुज	अपने पुत्रमें	**अपि**	अनुपयुक्त होनेपर भी
आत्मनि	अपने	**समनुशिष्टेन**	भलीप्रकार शिक्षा
अनुराग	अनुरागसे	**भाव्यं**	देनी ही चाहिए
आवेशित		**इति**	इस प्रकारके
चित्तः	चित्तको आविष्ट किये	**असत् आग्रहः**	अनुचित आग्रहसे
शौच	पवित्रता,	**पुत्रं अनुशास्य**	पुत्रको शिक्षा देते हुए
अध्ययन	वेदाध्ययन,	**स्वयं तावत्**	स्वयं तब तक
व्रत	व्रत,	**मनोरथः**	उनका मनोरथ
नियम	नियम,	**अनधिगत**	उन्हें प्राप्त नहीं हुआ था कि
गुरु अनल	गुरु एवं अग्निकी		
सुश्रूषण	सेवा-सम्हाल	**अप्रमत्तेन**	प्रमाद न करनेवाले
औपकुर्वाणिक	ब्रह्मचर्या श्रमके आवश्यक	**कालेन**	कालके द्वारा
		स्वयं प्रमत्तः	स्वयं प्रमादवश
कर्माणि	कर्मोंकी	**गृह एव**	घरमें रहते ही
		उपसंहृतः	उनका अन्त कर दिया गया ॥६॥

अथ यवीयसी द्विजसती स्वगर्भजातं मिथुनं सपत्न्या उपन्यस्य स्वयमनुसंस्थया पतिलोकमगात् ॥७॥

अथ यवीयसी द्विजसती स्वगर्भं जातं मिथुनं सपत्न्या उपन्यस्य स्वयं अनुसंस्थया पतिलोकं अगात् ॥७॥

अथ	तब	**द्विजसती**	पतिव्रता ब्राह्मण पत्नी
यवीयसी	छोटी		

स्वगर्भं जातं	अपने गर्भसे उत्पन्न	**स्वयं**	स्वयं
मिथुनं	कन्या-पुत्र दोनोंको	**अनुसंस्थया**	सती होकर
सपत्न्या	अपनी सौतको	**पतिलोकं**	पतिके लोकको
उपन्यस्य	सौंपकर	**अगात्**	चली गयी ॥७॥

पितर्युपरते भ्रातर एनमतत्प्रभावविदस्त्रय्यां विद्यायामेव पर्यवसितमतयो न परविद्यायां जडमतिरिति भ्रातुरनुशासन निर्बन्धान्न्यवृत्सन्त ॥८॥

पितरि उपरते भ्रातरः एनं अतत् प्रभावविदः त्रय्यां विद्यायां एव पर्यवसित मतयः न पर विद्यायां जडमतिः इति भ्रातुः अनुशासन निर्बन्धात् न्यवृत् सन्त ॥८॥

पितरि	पिताके	**अतत् प्रभाव-**	
उपरते	उपराम हो जाने (मर जाने) पर	**विदः**	इन (भरत)के प्रभावको नहीं जानते थे (अतः)
भ्रातरः	(इनके) भाई	**एनं**	इनको
त्रय्यां विद्यायां	त्रयी-विद्या (कर्मकाण्ड)में	**जडमतिः**	'जड़ बुद्धि है'
एव	ही	**इति**	ऐसा समझकर
पर्यवसित		**भ्रातुः**	भाईको
मतयः	सीमित बुद्धिवाले	**अनुशासन**	शिक्षा देनेके
पर विद्यायां	पराविद्या (ब्रह्म-ज्ञान)में	**निर्बन्धात्**	आग्रहसे
न	(निपुण) नहीं थे,	**न्यवृत् सन्त**	निवृत्त हो गये ॥८॥

स च प्राकृतैर्द्विपदपशुभिरुन्मत्तजडबधिरेत्यभिभाष्यमाणो यदा तदनुरूपाणि प्रभाषते कर्माणि च स कार्यमाणः परेच्छया करोति विष्टितो वेतनतो वा याच्ञया यदृच्छया वोपसादितमल्पं बहु मृष्टं कदन्नं वाभ्यवहरति परं नेन्द्रियप्रीतिनिमित्तम् । नित्य-

निवृत्तनिमित्तस्वसिद्धविशुद्धानुभवानन्दस्वात्मलाभाधिगमः सुख-दुःखयोर्द्वन्द्वनिमित्तयोरसम्भावित देहाभिमानः ॥६॥

स च प्राकृतैः द्विपद पशुभिः उन्मत्त जड बधिर इति अभिभाष्यमाणः यदा तत् अनुरूपाणि प्रभाषते कर्माणि च स कार्यमाणः परेच्छया करोति विष्टितः वेतनतः वा याञ्चया यदृच्छया वा उपसादितं अल्पं बहु मृष्टं कदन्नं वा अभ्यवहरति परं न इन्द्रिय प्रीति निमित्तं नित्य निवृत्त निमित्त स्वसिद्ध विशुद्ध अनुभव आनन्द स्व आत्मलाभ अधिगमः सुख-दुःखयोः द्वन्द्व निमित्तयोः असम्भावितः देह अभिमानः ॥६॥

प्राकृतैः	साधारण
द्विपद पशुभिः	दो पैरके पशु (जैसे लोगों) द्वारा
यदा उन्मत्त	जब पगला,
जड	मूर्ख,
बधिर	बहिरा,
इति	इस प्रकार
अभिभाष्य-माणः	कहकर पुकारे जानेपर
स च	वे भी
तत् अनुरूपाणि	तब उसके अनुरूप ही
प्रभाषते	बोलते थे ।
स कर्माणि च	वे कर्मोंको भी
विष्टितः	बेगारमें
वा वेतनतः	अथवा मजदूरीमें
कार्यमाणः	कराये जानेपर
परेच्छया	
करोति	दूसरेकी इच्छासे करते थे ।
याञ्चया	मांगनेसे
वा यदृच्छया	अथवा बिना मांगे
उपसादितं	प्राप्त हुए
अल्पं बहु	थोड़े या बहुत,
मृष्टं कदन्नं वा	स्वादिष्ट या बुरा अन्न
अभ्यवहरति	खा लेते थे
परं	किन्तु
इन्द्रिय प्रीति	इन्द्रिय (जीभ)को प्रसन्न
निमित्तं न	करनेके लिए नहीं ।
निमित्त	कारण (साधन)से
नित्य निवृत्त	सदा पृथक (न होनेवाला)
स्वसिद्ध	स्वतःसिद्ध
विशुद्ध अनुभव	विशुद्ध अनुभव,
आनन्द	आनन्द रूप
स्व आत्मलाभ	अपने आत्माकी प्राप्ति (ज्ञान)
अधिगमः	उन्हें हो गया था (अतः)

सुख दुःखयोः सुख-दुःखादि
द्वन्द्वयोः द्वन्द्वोंके
निमित्तयोः कारणसे (होनेवाला)

देह अभिमानः शरीरका अभिमान
असम्भावितः होनेकी सम्भावना नहीं थी ॥९॥

शीतोष्णवातवर्षेषु वृष इवानावृताङ्गः पीनः संहननाङ्गः स्थण्डिलसंवेशनानुन्मर्दनामज्जनरजसा महामणिरिवानभिव्यक्त-ब्रह्मवर्चसः कुपटावृतकटिरुपवीतेनोरुमषिणा द्विजातिरिति ब्रह्म-बन्धुरिति संज्ञयातज्ज्ञजनावमतो विचचार ॥१०॥

शीत उष्ण वात वर्षेषु वृष इव अनावृत अङ्गः पीनः संहनन अंगः स्थण्डिल संवेशनात् उन्मर्दन अमज्जन रजसा महामणिः इव अनभिव्यक्त ब्रह्मवर्चसः कुपट आवृत कटिः उपवीतेन उरु मषिणा द्विजातिः इति ब्रह्म-बन्धुः इति संज्ञया अतज्ज्ञ जनाः अवमतः विचचार ॥१०॥

शीत उष्ण सर्दी-गर्मी,
वात वर्षेषु आँधी-वर्षामें
वृष इव सांड़के समान
अनावृत अङ्गः बिना शरीर ढके रहते।
पीनः मोटे
संहनन अंगः सुगठित अंग थे।
स्थण्डिल संवेशनात् पृथ्वीपर ही पड़े रहनेसे
उन्मर्दन अमज्जन तेल-उवटन न लगाने और स्नान न करनेसे
रजसा धूलिसे (ढके)

महामणिः इव महामणिके समान
अनभिव्यक्त अप्रकट
ब्रह्मवर्चसः ब्रह्मतेज,
कुपट मैले-कुचैले वस्त्रको
आवृतः कटिः कमरमें लपेटे,
उरु मषिणा बहुत मैले
उपवीतेन यज्ञोपवीत द्वारा
द्विजातिः इति 'यह द्विजाति है।' इस प्रकार
ब्रह्मबंधुः इति 'ब्राह्मणाधम है' इस प्रकार
अतज्ज्ञ उनको न जाननेवाले लोगों द्वारा
अवमतः तिरस्कृत होते
विचचार विचरते थे ॥१०॥

यदा तु परत आहारं कर्मवेतनत ईहमानः स्वभ्रातृभिरपि केदारकर्मणि निरूपितस्तदपि करोति किन्तु न समं विषमं न्यूनमधिकमिति वेद कणपिण्याकफलीकरणकुल्माषस्थालीपुरीषादीन्यप्यमृतवदभ्यवहरति ॥११॥

यदा तु परतः आहारं कर्मवेतनतः ईहमानः स्वभ्रातृभिः अपि केदार कर्मणि निरूपितः तत् अपि करोति किन्तु न समं विषमं न्यूनं अधिकं इति वेद कण पिण्याक फलीकरण कुल्माष स्थाली पुरीष आदीनि अपि अमृतवत् अभ्यवहरति ॥११॥

यदा	जब	**समं विषमं**	समतल, विषम,
परतः	दूसरोंसे	**न्यूनं अधिकं**	कम-ज्यादा
कर्मवेतनतः	कर्मकी मजदूरीमें	**इति न वेद**	इस प्रकार नहीं जानते थे
आहारं	भोजन	**कण**	अन्न-कण
ईहमानः	चाहने लगे (तब)	**पिण्याक**	खली,
स्वभ्रातृभिः अपि	अपने भाइयों द्वारा भी	**फलीकरण**	भूसी,
केदार कर्मणि	खेतके काममें	**कुल्माष**	घुने उड़द,
निरूपितः	लगा दिये गये	**स्थाली पुरीष**	बर्तनमें लगा जला अन्न
तत् अपि करोति	उसे भी करते थे	**आदीनि अपि**	आदि भी
किन्तु	लेकिन	**अमृतवत्**	अमृतके समान
		अभ्यवहरति	खा लेते थे ॥११॥

अथ कदाचित्कश्चिद् वृषलपतिर्भद्रकाल्यै पुरुषपशुमालभतापत्यकामः ॥१२॥

अथ कदाचित् कश्चित् वृषलपतिः भद्रकाल्यै पुरुष पशुं आलभत अपत्यकामः ॥१२॥

अथ कदाचित्	फिर किसी समय	**वृषलपतिः**	शूद्रों (डाकुओं)का सरदार
कश्चित्	कोई		

अपत्यकामः	पुत्रकी कामनासे	**आलभत**	बलि देनेको उद्यत
भद्रकाल्यै	भद्रकालीको		हुआ ॥१२॥
पुरुषपशुं	मनुष्यरूपी पशुकी		

तस्य ह दैवमुक्तस्य पशोः पदवीं तदनुचराः परिधावन्तो निशि निशीथसमये तमसाऽऽवृतायामनधिगतपशव आकस्मिकेन विधिना केदारान् वीरासनेन मृगवराहादिभ्यः संरक्षमाणमङ्गिरःप्रवरसुतमपश्यन् ॥१३॥

तस्य ह दैवमुक्तस्य पशोः पदवीं तत् अनुचराः परिधावन्तः निशि निशीथ समये तमसा आवृतायां अनधिगत पशवः आकस्मिकेन विधिना केदारान् वीरासनेन मृग वराहादिभ्यः संरक्षमाणं अङ्गिरः प्रवर सुतं अपश्यन् ॥१३॥

तस्य	उसके	**आकस्मिकेन**	
ह दैव-		**विधिना**	अकस्मात् संयोगवश
मुक्तस्य	निश्चय प्रारब्धवश छूट जानेपर	**केदारान्**	खेतोंकी
तत् अनुचराः	उसके अनुचर	**वीरासनेन**	वीरासनसे बैठकर
पशोः पदवीं	उस बलि-पशुकी खोजमें	**मृग**	
		वराहादिभ्यः	हिरण, सूअर आदिसे
परिधावन्तः	चारों ओर दौड़ते हुए		
तमसा आवृतायां	अन्धकाराच्छन्न	**संरक्षमाणं**	रक्षा करते हुए
निशि निशीथ		**अङ्गिरः प्रवर**	अंगिरा गोत्रीय (ब्राह्मण)के
समये	आधी रातके समय		
पशवः		**सुतं**	पुत्रको
अनधिगत	उस बलि-पशुको न पाकर	**अपश्यन्**	देखा ॥१३॥

अथ त एनमनवद्यलक्षणमवमृश्य भर्तृकर्मनिष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वा रशनया चण्डिकागृहमुपनिन्युर्मुदा विकसितवदनाः ॥१४॥

अथ त एनं अनवद्य लक्षणं अवमृश्य भर्तृ कर्म निष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वा रशनया चण्डिकागृहं उपनिन्युः मुदा विकसित वदनाः ॥१४॥

अथ त	फिर तो वे	**मन्यमाना**	मानते हुए
एनं	इनका	**रशनया**	
अनवद्य लक्षणं	निर्दोष लक्षणोंवाला	**बद्ध्वा**	रस्सीसे बाँधकर
अवभृश्य	विचार करके,	**मुदा**	हर्षसे
भर्तृ कर्म	अपने स्वामीके कर्मकी	**विकसित**	
		वदनाः	खिले मुखवाले
निष्पत्ति	पूर्णता (हो जायगी, यह)	**चण्डिकागृहं**	चण्डिका-मन्दिरमें
		उपनिन्युः	ले आये ॥१४॥

अथ पणयस्तं स्वविधिनाभिषिच्याहतेन वाससाऽऽच्छाद्य भूषणालेपस्रक्तिलकादिभिरुपस्कृतं भुक्तवन्तं धूपदीपमाल्यलाजकिसलयाङ्कुरफलोपहारोपेतया वैशससंस्थया महता गीतस्तुतिमृदङ्गपणवघोषेण च पुरुषपशुं भद्रकाल्याः पुरत उपवेशयामासुः ॥१५॥

अथ पणयः तं स्वविधिना अभिषिच्य आहतेन वाससा आच्छाद्य भूषण आलेप स्रक् तिलक आदिभिः उपस्कृतं भुक्तवन्तं धूप दीप माल्य लाज किसलय अंकुर फल उपहार उपेतया वैशस संस्थया महता गीत स्तुति मृदङ्ग पणव घोषेण च पुरुष पशुं भद्रकाल्याः पुरतः उपवेशया मासुः ॥१५॥

अथ	तदनन्तर	**स्वविधिना**	अपनी विधिके अनुसार
पणयः	डाकुओंने		
तं	उनको	**अभिषिच्य**	स्नान कराके

आहतेन	बिना फाड़े (पूरे थानके कोरे)
वाससा	
आच्छाद्य	वस्त्रोंसे ढककर
भूषण	आभूषण,
आलेप	अंगराग,
स्रक् तिलक	माला, तिलक
आदिभिः	आदि द्वारा
उपस्कृतं	विभूषित करके,
भुक्तवन्तं	भोजन कर लेनेपर
धूप, दीप	धूप, दीप,
माल्य, लाज	माला, लाजा,
किसलय	नवपल्लव,
अंकुर	दूर्वाङ्कुर
फल उपहार	फलोंके उपहारसे
उपेतया	युक्त
वैशस संस्थया	बलिदान विधिसे
महता गीत	
स्तुति	गायन, स्तुतिका
	महान् शब्द करते
च मृदङ्ग	
पणव	और मृदंग, नगाड़े
घोषेण	बजाते
पुरुष पशुं	पुरुष-पशुको
भद्रकाल्याः	भद्रकालीके
पुरतः	सामने
उपवेशया	
मासुः	बैठा दिया ॥१५॥

अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोरसृगासवेन देवीं भद्रकालीं यक्ष्यमाणस्तदभिमन्त्रितमसिमतिकरालनिशितमुपाददे ॥१६॥

अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोः असृक् आसवेन देवीं भद्रकालीं यक्ष्यमाणः तत् अभिमन्त्रितं असिं अतिकराल निशितं उपाददे ॥१६॥

अथ	तब
वृषलराज-	
पणिः	शूद्र-डाकू सरदारने
पुरुषपशोः	पुरुष-पशुके
असृक् आसवेन	रक्तासव द्वारा
देवीं	
भद्रकालीं	देवी भद्रकालीको
यक्षमाणः	तृप्त करनेके लिए
तत्	
अभिमन्त्रितं	उन (देवी)के मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित
अतिकराल	बहुत भयानक
निशितं असिं	तीक्ष्ण तलवार
उपाददे	उठायी ॥१६॥

इति तेषां वृषलानां रजस्तमःप्रकृतीनां धनमदरजउत्सिक्त-मनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पथेन स्वैरं विहरतां हिंसाविहाराणां कर्मातिदारुणं यद्ब्रह्मभूतस्य साक्षाद्ब्रह्मर्षि-सुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृदः सूनायामप्यननुमतमालम्भनं तदुप-लभ्य ब्रह्मतेजसातिदुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसोच्चचाट सैव देवी भद्रकाली ॥१७॥

इति तेषां वृषलानां रजः तमः प्रकृतीनां धनमदरज उत्सिक्त मनसां भगवत् कला वीरकुलं कदर्थीकृत्य उत्पथेन स्वैरं विहरतां हिंसा विहाराणां कर्म अति दारुणं यत् ब्रह्मभूतस्य साक्षात् ब्रह्मर्षिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूत-सुहृदः सुनायां अपि अननुमतं आलम्भनं तत् उपलभ्य ब्रह्मतेजसा अति दुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसा उच्च चाट स एव देवी भद्रकाली॥१७॥

इति	इस प्रकार
तेषां	उन
रजः तमः	रजोगुणी, तमोगुणी
प्रकृतीनां	स्वभाववाले
धनमद रज	धनके मदसे
उत्सिक्त मनसां	मत्त चित्तवाले
भगवत् कला	भगवान्‌की कलासे
वीरकुलं	बलवान (ब्राह्मण) कुलका
कदर्थीकृत्य	तिरस्कार करके,
उत्पथेन	कुमार्गसे
स्वैरं	मनमाने
विहरतां	आचरण करनेवाले,
हिंसा विहाराणां	हिंसा-विहार करनेवाले
वृषलानां	शूद्रोंका
कर्म अति दारुणं	कर्म अत्यन्त भयङ्कर था,
यत् ब्रह्मभूतस्य	जो ब्रह्मभाव प्राप्त,
साक्षात्	साक्षात्
ब्रह्मर्षिसुतस्य	ब्रह्मर्षिके पुत्र,
निर्वैरस्य	वैरहीन,
सर्वभूतसुहृदः	सब प्राणियोके सुहृद्‌की,
सूनायां अपि	(आपत्ति कालमें विहित) हिंसामें भी
अननुमतं	निषिद्ध (ब्राह्मण-वध) की
आलम्भनं	बलि देने जा रहे थे,
तत् उपलभ्य	इसे समीप पाकर
अति दुर्विषहेण	अत्यन्त असह्य
ब्रह्मतेजसा	ब्रह्म-तेजसे

दन्दह्यमानेन	जलते
वपुषा	शरीरसे
स एव	वही
देवी भद्रकाली	देवी भद्रकाली
सहसा	अचानक
उच्च चाट	(मूर्तिसे) उछल पड़ीं ॥१७॥

भृशममर्षरोषावेशरभसविलसितभ्रुकुटिविटपकुटिलदंष्ट्रारुणेक्षणाटोपातिभयानकवदना हन्तुकामेवेदं महाट्टहासमतिसंरम्भेण विमुञ्चन्ती तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेनैवासिना विवृक्णशोष्णं गलात्स्रवन्तमसृगासवमत्युष्णं सह गणेन निपीयातिपानमदविह्वलोच्चैस्तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त च विजहार च शिरःकन्दुकलीलया ॥१८॥

भृशं अमर्ष रोष आवेश रभस विलसित भ्रुकुटि विटप कुटिल दंष्ट्रा अरुण ईक्षण आटोप अति भयानक वदना हन्तुकाम एव इदं महा अट्टहासं अति संरम्भेण विमुञ्चन्ती तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेन एव असिना विवृक्ण शोष्णं गलात् स्रवन्तं असृक् आसवं अति उष्णं सह गणेन निपीय अतिपानमद विह्वल उच्चैः तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त च विजहार च शिरः कन्दुक लीलया ॥१८॥

भृशं	अत्यन्त
अमर्ष	असहनशीलता (तथा)
रोष आवेश	क्रोधके आवेश
रभस	वेगसे
भ्रुकुटि	भौंहें
विटप	
विलसित	वृक्षोंके समान खड़ी हो गयी थीं
कुटिल दंष्ट्रा	टेढ़ी दाढ़ें,
अरुण ईक्षण	लाल नेत्र
आटोप	चढ़े होनेसे
अति भयानक	अत्यन्त भयानक
वदना	मुखवाली,
इदं	इस संसारका ही
हन्तुकाम	विनाश करनेकी इच्छाके
एव	समान
अति संरम्भेण	अत्यन्त आवेशसे
महा अट्टहासं	महा अट्टहास
विमुञ्चन्ती	करती हुई
तत उत्पत्य	वहाँसे उछलकर

तेन एव	उसी
असिना	तलवारसे
पापीयसां	पापी
दुष्टानां	दुष्टोंके
विवृक्ण	कटे
शीर्ष्णां	सिरोंके
गलात् स्रवन्तं	गलेसे बहते
अति उष्णं	बहुत गरम
असृक् आसवं	रुधिर रूपी आसव
सह गणेन	अपने गणोंके साथ
निपीय	भली प्रकार पिया,
अतिपानमद	बहुत पीनेके नशेसे
विह्वल	उन्मत्त होकर
स्वपार्षदैः सह	अपने पार्षदोंके साथ
उच्चैः तरां	बहुत ऊँचे स्वरसे
जगौ	गाने लगीं,
च ननर्त	तथा नाचने लगीं
च शिरः	
कन्दुक	और सिरोंसे गेंदका
लीलया	खेल
विजहार	खेलने लगीं ॥१६॥

एवमेव खलु महदभिचारातिक्रमः कात्स्न्र्येनात्मने फलति ॥१६॥

एवं एव खलु महत् अभिचार अतिक्रमः कात्स्न्र्येन आत्मने फलति ॥१६॥

एवं एव	ऐसे ही
खलु	निश्चय
महत्	महापुरुषोंके प्रति
अभिचार	अभिचारका
अतिक्रमः	अपराध
कात्स्न्र्येन	सम्पूर्ण रूपसे
आत्मने	अपने ऊपर ही
फलति	घटता है ॥१६॥

न वा एतद्विष्णुदत्त महदद्भुतं यदसम्भ्रमः स्वशिरश्छेदन आपतितेऽपि विमुक्तदेहाद्यात्मभावसुदृढहृदयग्रन्थीनां सर्वसत्त्वसुहृदात्मनां निर्वैराणां साक्षाद्भगवतानिमिषारिवरायुधेनाप्रमत्तेन तैस्तैर्भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलमकुतश्चिद्भयमुपसृतानां भागवतपरमहंसानाम् ॥२०॥

न वा एतत् विष्णुदत्त महत् अद्भुतं यत् असम्भ्रमः स्वशिरः छेदन आपतिते अपि विमुक्त देहादि आत्मभाव सुदृढ हृदय ग्रन्थीनां सर्वसत्त्व

सुहृत् आत्मनां निर्वैराणां साक्षात् भगवता अनिमिष अरि वरायुधेन अप्रमत्तेन तैः तैः भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत् पादमूलं अकुतश्चित् भयं उपसृतानां भागवत परमहंसानाम् ॥२०॥

विष्णुदत्त परीक्षित !
देहादि शरीर आदिमें
आत्मभाव आत्मभाव (तथा)
सुदृढ सुदृढ़
हृदय ग्रन्थीनां हृदयकी (देहाभिमान रूप गाँठोंसे)
विमुक्त छूटे हुए,
सर्वसत्त्व सब प्राणियोंके

सुहृत् हितैषी (एवं)
आत्मनां आत्मस्वरूप,
निर्वैराणां शत्रुताहीन,
साक्षात्
भगवता साक्षात् भगवान्के
अनिमिष अरि कालचक्र रूपी
अप्रमत्तेन सदा सावधान
वरायुधेन श्रेष्ठ अस्त्रसे
तैः तैः भावैः उन-उन भावों (रूपों)से

परिरक्ष्यमाणानां सब ओरसे रक्षित होने वाले,
अकुतश्चित्
भयं जहाँ कहींसे भी भय नहीं है
तत् पादमूलं उन चरणोंमें
उपसृतानां पहुँचे हुए
भागवत भगवद्-भक्त
परमहंसानां परमहंसोंके लिए
तत् जो
स्वशिरः छेदनं अपने सिर कटनेका
आपतिते अपि (अवसर) आनेपर भी
असम्भ्रमः कोई व्याकुलता नहीं है
एतत् वा यह तो
महत् (कोई) बड़ी
अद्भुतं न अद्भुत (बात) नहीं है ॥२०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे जडभरतचरिते नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अथ सिन्धुसौवीरपते रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्यास्तटे तत्कुल-पतिना शिबिकावाहपुरुषान्वेषणसमये दैवेनोपसादितः स द्विजवर उपलब्ध एष पीवा युवा संहननाङ्गो गोखरवद्धुरं वोढुमलमिति पूर्वविष्टिगृहीतैः सह गृहीतः प्रसभमतदर्हं उवाह शिबिकां स महानुभावः ॥१॥

अथ सिन्धु सौवीरपतेः रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्याः तटे तत् कुल-पतिना शिबिकावाह पुरुष अन्वेषण समये दैवेन उपसादितः स द्विजवर उपलब्ध एष पीवा युवा संहनन अङ्गः गोखरवत् धुरं वोढुं अलं इति पूर्व विष्टि गृहीतैः सह गृहीतः प्रसभं अतदर्हं उवाह शिबिकां स महानुभावः ॥१॥

अथ	एकबार	**समये**	समय
सिन्धु		**दैवेन**	दैववश
सौवीरपतेः	सिन्ध और सौराष्ट्रके राजा	**उपसादितः**	समीप आये
		स द्विजवरः	वे ब्राह्मणोत्तम
रहूगणस्य	रहूगणके	**उपलब्ध**	मिल गये।
व्रजत	यात्रा करते समय	**एष पीवा**	यह मोटा है,
इक्षुमत्याः तटे	इक्षुमती नदीके किनारे	**युवा**	जवान है
		संहनन अङ्गः	सुगठित शरीर है,
तत् कुलपतिना	उन (पालकी ढोने-वालों)के कुलपति (सरदार) द्वारा	**गोखरवत्**	बैल या गधेके समान
		धुरं वोढुं	भार ढोनेके लिए
शिबिकावाह	पालकी ढोनेवाले	**अलं इति**	पर्याप्त है, इसप्रकार
पुरुष अन्वेषण	पुरुषको ढूँढ़ते		(सोचकर)

पूर्व विष्टि गृहीतैः	पहिले बेगारमें पकड़े लोगोंके
सह गृहीतः	समान पकड़कर
प्रसभं	बलपूर्वक (इन्हें लगा दिया)
अतदर्ह	इसके योग्य न होनेपर भी
स महानुभावः	उन महान् प्रभाव-शालीने
शिबिकां उवाह	पालकी ढोयी ॥१॥

यदा हि द्विजवरस्येषुमात्रावलोकानुगतेर्न समाहिता पुरुष-गतिस्तदा विषमगतां स्वशिबिकां रहूगण उपधार्य पुरुषानधिवहत आह हे वोढारः साध्वतिक्रमत किमिति विषममुह्यते यानमिति ॥२॥

यदा हि द्विजवरस्य इषुमात्र अवलोक अनुगतेः न समाहिता पुरुष-गतिः तदा विषमगतां स्व शिबिकां रहूगण उपधार्य पुरुषान् अधिवहत आह हे वोढारः साधु अतिक्रमत किं इति विषमं उह्यते यानं इति ॥२॥

यदा हि	जब क्योंकि
द्विजवरस्य	(उन) ब्राह्मणोत्तमके
इषुमात्र	केवल वाण बराबर
अवलोक	आगे देखते
अनुगतेः	चलनेसे
पुरुषगतिः	(ढोने वाले) पुरुषोंकी चाल
न समाहिता	मेल नहीं बैठा सकी
तदा	उस समय
विषमगतां	टेढ़ी होती
स्व शिबिकां	अपनी पालकीको
उपधार्य	देखकर
रहूगण	(राजा) रहूगण
अधिवहत	ढोनेवाले
पुरुषान्	पुरुषोंसे
आह	बोला
हे वोढारः	'अरे, ढोने वालो,
साधु	
अतिक्रमत	ठीक ढंगसे चलो,
किं इति	इस प्रकार कैसे
विषमं यानं	टेढ़ी-सीधी पालकी
उह्यते	ढो रहे हो !'
इति	इस प्रकार ॥२॥

अथ त ईश्वरवचः सोपालम्भमुपाकर्ण्यौपायतुरीयाच्छङ्कित-मनसस्तं विज्ञापयांबभूवुः ॥

अथ त ईश्वर वचः स उपालम्भं उप आकर्ण्य उपाय तुरीय आशंकित मनसः तं विज्ञापयां बभूवुः ॥३॥

अथ त	तब तो वे
ईश्वर वचः	अपने स्वामीकी बात
स उपालम्भं	उलाहनेके साथ
उप आकर्ण्य	ठीक सुनकर
उपाय तुरीय	चौथे उपाय (दण्ड)*की
आशंकित मनसः	मनमें आशंका करके
तं	उस (राजा)से
विज्ञापयां	सूचना देने
बभूवुः	लगे ॥३॥

न वयं नरदेव प्रमत्ता भवन्नियमानुपथाः साध्वेव वहामः । अयमधुनैव नियुक्तोऽपि न द्रुतं व्रजति नानेन सह वोढुमु ह वयं पारयाम इति ॥४॥

न वयं नरदेव प्रमत्ता भवत् नियम अनुपथाः साधु एव वहामः अयं अधुना एव नियुक्तः अपि न द्रुतं व्रजति न अनेन सह वोढुं उह वयं पारयाम इति ॥४॥

नरदेव	राजन् !
वय न प्रमत्ता	हम लोग प्रमाद नहीं करते हैं ।
भवत्	आपके
नियम	
अनुपथाः	नियमोंके अनुसार चलनेवाले हैं,
साधु एव	
वहामः	अच्छी तरह ही ढो रहे हैं ।
अयं	यह
अधुना एव	अभी ही
नियुक्तः अपि	लगाये जानेपर भी
द्रुतं न व्रजति	जल्दी नहीं चलता है,
अनेन सह	इसके साथ
वोढुं	ढोनेमें

*उपाय चार हैं—१. साम (समझाना) २. दान (कुछ देना) ३. भेद (फूट डालना) ४. दण्ड ।

उह	निश्चय ही	**पारयाम**	चल पाते हैं।'
वयं न	हम नहीं	**इति**	इस प्रकार ॥४॥

सांसर्गिको दोष एव नूनमेकस्यापि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुमर्हतीति निश्चित्य निशम्य कृपणवचो राजा रहूगण उपासितवृद्धोऽपि निसर्गेण बलात्कृत ईषदुत्थितमन्युरविस्पष्टब्रह्मतेजसं जातवेदसमिव रजसाऽऽवृतमतिराह ॥५॥

सांसर्गिकः दोष एव नूनं एकस्य अपि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुं अर्हति इति निश्चित्य निशम्य कृपणवचः राजा रहूगण उपासित वृद्धः अपि निसर्गेण बलात् कृत ईषत् उत्थित मन्युः अविस्पष्ट ब्रह्मतेजसं जातवेदसं इव रजसा आवृत मतिः आह ॥५॥

कृपणवचः	दीनवाणी	**अपि**	बड़ोंकी सेवा
निशम्य	सुनकर		करनेवाला होनेपर
सांसर्गिकः	संसर्गसे लगनेवाला		भी
दोष एव	दोष ही	**निसर्गेण**	स्वभाववश
नूनं	निश्चय	**बलात् कृत**	बलपूर्वक
एकस्य अपि	एकका ही (होनेपर)	**ईषत् उत्थित**	तनिक उठे
		मन्युः	क्रोधसे
सर्वेषां	सभी (उसके)	**रजसा आवृत**	रजोगुणसे ढकी
सांसर्गिकाणां	संसर्गमें रहने	**मतिः**	बुद्धि (होने)से
	वालोंका	**अविस्पष्ट**	छिपे हुए
भवितुं अर्हति	हो जाना चाहिए,	**ब्रह्मतेजसं**	ब्रह्म तेजवाले
इति निश्चित्य	ऐसा निश्चय करके	**जातवेदसं इद**	अग्निके समान
राजा रहूगण	राजा रहूगण		(उन विप्र)से
उपासित वृद्धः		**आह**	बोला ॥५॥

अहो कष्टं भ्रातर्व्यक्तमुरु परिश्रान्तो दीर्घमध्वानमेक एव ऊहिवान् सुचिरं नातिपीवा न संहननाङ्गो जरसा चोपद्रुतो

भवान् सखे नो एवापर एते सङ्घट्टिन इति बहु विप्रलब्धोऽप्य-विद्यया रचितद्रव्यगुणकर्माशयस्वचरमकलेवरेऽवस्तुनि संस्थान विशेषेऽहं ममेत्यनध्यारोपितमिथ्याप्रत्ययो ब्रह्मभूतस्तूष्णीं शिबिकां पूर्ववदुवाह ॥६॥

अहो कष्टं भ्रातः व्यक्तं उरु परिश्रान्तः दीर्घं अध्वानं एक एव ऊहि-वान् सुचिरं न अति पीवा न संहननाङ्गः जरसा च उपद्रुतः भवान् सखे नो एव अपर एते सङ्घट्टिन इति बहु विप्रलब्धः अपि अविद्यया रचित द्रव्य गुण कर्म आशय स्व चरम कलेवरे अवस्तुनि संस्थान विशेषे अहं मम इति अनध्य आरोपित मिथ्या प्रत्ययः ब्रह्मभूतः तूष्णीं शिबिकां पूर्ववत् उवाह ॥६॥

अहो कष्टं	'बड़े कष्टकी बात है,
भ्रातः	भाई,
व्यक्तं	स्पष्ट है कि
उरु परिश्रान्तः	(तुम) बहुत थक गये हो,
दीर्घं अध्वानं	लम्बे रास्तेमें
सुचिरं	बहुत देरसे
एक एव	अकेले ही
ऊहिवान्	(पालकी) ढोते रहे हो,
न अति पीवा	न बहुत मोटे हो,
न संहननाङ्गः	न सुगठित देह हो,
भवान् सखे	मित्र आप
जरसा च	
उपद्रुतः	और बुढ़ापेसे भी ग्रस्त हो
एव अपर	ये दूसरे
एते सङ्घट्टिन	इतने साथवाले
नो	ऐसे नहीं हैं।
इति	इस प्रकार
बहु विप्रलब्धः	
अपि	बहुत व्यंग किये जानेपर भी
अविद्यया	
रचित	अविद्याके कार्य
द्रव्य, गुण	पञ्चभूत, त्रिगुण,
कर्म आशय	इन्द्रिय, चित्तके
स्व चरम	
कलेवरे	अपने अन्तिम देहमें
अवस्तुनि	
संस्थान	(दिखायी देनेपर भी) वस्तुतः न होनेवाले में,
अहं मम इति	यह मैं हूँ या मेरा है ऐसी
मिथ्या प्रत्ययः	मिथ्या प्रतीति

अनध्य आरोपित	आरोपित नहीं रही थी,
ब्रह्मभूतः	ब्रह्मरूप हो गये थे
तूष्णीं	(अतः) चुप रहे (और)
पूर्ववत्	पहिलेकी भाँति
शिबिकां उवाह	पालकी ढोते रहे ॥६॥

अथ पुनः स्वशिबिकायां विषमगतायां प्रकुपित उवाच रहूगणः किमिदमरे त्वं जीवन्मृतो मां कदर्थीकृत्य भर्तुः शासनमतिचरसि प्रमत्तस्य च ते करोमि चिकित्सां दण्डपाणिरिव जनताया यथा प्रकृतिं स्वां भजिष्यस इति ॥७॥

अथ पुनः स्वशिबिकायां विषमगतायां प्रकुपित उवाच रहूगणः किं इदं अरे त्वं जीवन् मृतः मां कदर्थीकृत्य भर्तुः शासनं अतिचरसि प्रमत्तस्य च ते करोमि चिकित्सां दण्डपाणिः इव जनतायाः यथा प्रकृतिं स्वां भजिष्यस इति ॥७॥

अथ पुनः	लेकिन फिर
स्वशिबिकायां	अपनी पालकीके
विषमगतायां	टेढ़ी चलनेपर
रहूगणः	(राजा) रहूगण
प्रकुपित	बहुत क्रुद्ध होकर
उवाच	बोला
किं इदं	'यह क्या है,
अरे त्वं	अरे, तू
जीवन् मृतः	जीते ही मरेके समान
मां कदर्थीकृत्य	मेरी अवहेलना करके
भर्तुः शासनं	स्वामीकी आज्ञाका
अतिचरसि	उल्लंघन कर रहा है,
दण्डपाणिः	यमराज द्वारा
जनतायाः	
इव	जनताकी भाँति
ते प्रमत्तस्य च	तुझ प्रमादीकी भी
चिकित्सां	चिकित्सा
करोमि	करता हूँ,
यथा	जिससे
स्वां प्रकृतिं	अपने स्वभावपर
इति भजिष्यस	अब आ जाओगे॥७॥

एवं बहुबद्धमपि भाषमाणं नरदेवाभिमानं रजसा तमसानुविद्धेन मदेन तिरस्कृताशेषभगवत्प्रियनिकेतं पण्डितमानिनं स

भगवान् ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः सर्वभूतसुहृदात्मा योगेश्वरचर्यायां नातिव्युत्पन्नमतिं स्मयमान इव विगतस्मय इदमाह ॥८॥

एवं बहु अबद्धं अपि भाषमाणं नरदेव अभिमानं रजसा तमसा अनुविद्धेन मदेन तिरस्कृत अशेष भगवत् प्रिय निकेतं पण्डित मानिनं स भगवान् ब्राह्मणः ब्रह्मभूतः सर्वभूतः सुहृत् आत्मा योगेश्वर चर्यायां न अति व्युत्पन्न मतिं स्मयमान इव विगतस्मय इदं आह ॥८॥

एवं	इस प्रकार
बहु अबद्धं अपि	बहुत उलटी-सीधी भी
भाषमाणं	बोलते हुए,
नरदेव	
अभिमानं	राजा होनेके अभिमानसे
रजसा तमसा	रजोगुण तथा तमोगुणसे
अनुविद्धेन	
मदेन	व्याप्त गर्वसे,
पण्डित मानिनं	(अपनेको) विद्वान माननेवाले
योगेश्वर	
चर्यायां	योगेश्वरोंकी रहनीके विषयमें
अति व्युत्पन्न	बहुत निपुण
मतिं न	बुद्धि न होनेसे
भगवत्	भगवानके
अशेष प्रिय	
निकेतं	सम्पूर्ण प्रिय पात्रका
तिरस्कृत	(उसने) तिरस्कार किया
स भगवान्	(किन्तु) वे भगवत्स्वरूप
ब्रह्मभूतः	ब्रह्मभूत
सर्वभूतः सुहृत्	सब प्राणियोंके हितैषी
आत्मा	आत्मस्वरूप
ब्राह्मणः	ब्राह्मण
स्मयमान इव	मुस्कराते हुएसे
विगतस्मय	बिना अभिमानके
इदं आह	यह बोले ॥८॥

ब्राह्मण उवाच-

त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं
भर्तुः स मे स्याद्यदि वीर भारः ।
गन्तुर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा
पीवेति राशौ न विदां प्रवादः ॥९॥

त्वया उदितं व्यक्तं अविप्रलब्धं भर्तुः स मे स्यात् यदि वीर भारः गन्तुः यदि स्यात् अधिगम्यं अध्वा पीवा इति राशौ न विदां प्रवादः ॥९॥

त्वया उदितं	(राजन्) तुम्हारा कहना	**अध्वा**	मार्ग हो तो
व्यक्तं	स्पष्ट रूपसे	**गन्तुः**	चलने वालेके लिए है,
अविप्रलब्धं	ठीक ही है,	**पीवा इति**	यह मोटा है ऐसा
वीर	भाई,	**राशौ**	(हड्डी माँसादिकी राशि) देहके लिए
यदि भारः			
स्यात्	यदि भार हो तो		कहा जाता है।
स मे	वह मेरे	**विदां प्रवादः**	ज्ञानियोंकी यह बात
भर्तुः	ढोनेको हो		
यदि अधिगम्यं	यदि कहीं 'पहुँचनेका	**न**	नहीं है ॥९॥

स्थौल्यं कार्श्यं व्याधय आधयश्च
क्षुत्तृड्भयं कलिरिच्छा जरा च।
निद्रा रतिर्मन्युरहंमदः शुचो
देहेन जातस्य हि मे न सन्ति ॥१०॥

स्थौल्यं कार्श्यं व्याधयः आधयः च क्षुत् तृट् भयं कलिः इच्छा जरा च निद्रा रतिः मन्युः अहं मदः शुचः देहेन जातस्य हि मे न सन्ति ॥१०॥

स्थौल्यं कार्श्यं	मोटापन, दुबलापन,	**मन्युः अहं**	क्रोध, अहंकार,
व्याधयः च		**मदः शुचः**	घमण्ड, शोक
आधयः	रोग और चिन्तामें	**हि**	क्योंकि (ये सब)
क्षुत् तृट्	भूख-प्यास,	**देहेन जातस्य**	शरीरसे उत्पन्न होते हैं
भयं कलिः	भय, झगड़ा,		
इच्छा च जरा	इच्छा एवं बुढ़ापा,	**मे न सन्ति**	मुझमें नहीं हैं ॥१०॥
निद्रा रतिः	निद्रा, इन्द्रिय-सुख,		

जीवन्मृतत्वं नियमेन राजन्
आद्यन्तवद्यद्विकृतस्य दृष्टम् ।
स्वस्वाम्यभावो ध्रुव ईड्य यत्र
तर्ह्यच्युतेऽसौ विधिकृत्ययोगः ॥११॥

जीवन् मृतः त्वं नियमेन राजन् आदि अन्तवत् यत् विकृतस्य दृष्टं स्वस्वाम्यभावः ध्रुव ईड्य यत्र तर्हि अच्युते असौ विधिकृत्य योगः ॥११॥

राजन्	राजन् !	**दृष्टं**	उसपर तुम्हारी दृष्टि है,
नियमेन	नियमतः तो	**स्वस्वाम्य-**	
त्वं	तुम	**भावः**	अपनेमें स्वामी भाव
जीवन् मृतः	जीते हुए ही मरेके समान हो	**यत्र**	जहाँ
यत्	क्योंकि	**ध्रुव ईड्य**	निश्चित प्रशंसनीय है
आदि अन्तवत्	आदि (जन्म) अन्त (मरण)वाला (और)	**तर्हि असौ**	तब तो यह
		विधिकृत्य	विधानसे प्राप्त
विकृतस्य	विकारवान (शरीर) है	**योगः**	योग
		अच्युते	(केवल) श्रीहरि में है ॥११॥

विशेषबुद्धेर्विवरं मनाक् च
पश्याम यन्न व्यवहारतोऽन्यत् ।
क ईश्वरस्तत्र किमीशितव्यं
तथापि राजन् करवाम किं ते ॥१२॥

विशेष बुद्धेः विवरं मनाक् च पश्याम यत् न व्यवहारतः अन्यत् क ईश्वरः तत्र किं ईशितव्यं तथा अपि राजन् करवाम किं ते ॥१२॥

यत्	क्योंकि
व्यवहारतः	व्यवहारसे
अन्यत्	भिन्न
विशेष बुद्धेः	(व्यक्तिकी) विशेषता बुद्धिके लिए
मनाक् च	तनिक भी
विवरं	छिद्र (अवसर)
न पश्याम	नहीं देखता हूँ
तत्र	ऐसी स्थितिमें वहाँ
क ईश्वरः	कौन स्वामी(शासक)
किं ईशितव्यं	कौन शासित (सेवक) ?
राजन्	राजन् !
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी
ते किं	तुम्हारा क्या काम
करवाम	करूँ ॥१२॥

उन्मत्तमत्तजडवत्स्वसंस्थां
गतस्य मे वीर चिकित्सितेन ।
अर्थः कियान् भवता शिक्षितेन
स्तब्धप्रमत्तस्य च पिष्टपेषः ॥१३॥

उन्मत्त मत्त जडवत् स्वसंस्थां गतस्य मे वीर चिकित्सितेन अर्थः कियान् भवता शिक्षितेन स्तब्ध प्रमत्तस्य च पिष्टपेषः ॥१३॥

वीर	वीर !
उन्मत्त	पागल,
मत्त	मतवाले,
जडवत्	मूर्खके समान
स्वसंस्थां	अपनी स्थितिमें
गतस्य	पहुँचे
मे चिकित्सितेन	मेरी चिकित्सासे
कियान् अर्थः	कितना प्रयोजन
भवता	आपकी
शिक्षितेन	शिक्षासे होगा ।
स्तब्धः	जड़
च प्रमत्तस्य	तथा प्रमादीके लिए
पीषपेषः	पीसेको फिर पीसने जैसा(व्यर्थ)है ॥१३॥

श्रीशुक उवाच–

एतावदनुवादपरिभाषया प्रत्युदीर्य मुनिवर उपशमशील उपरतानात्म्यनिमित्त उपभोगेन कर्मारब्धं व्यपनयन् राजयानमपि तथोवाह ॥१४॥

एतावत् अनुवाद परिभाषया प्रति उदीर्य मुनिवर उपशमशील उपरत अनात्म्य निमित्त उपभोगेन कर्म आरब्धं व्यपनयन् राजयानं अपि तथा उवाह ॥१४॥

एतावत्	इतना ही
अनुवाद	
परिभाषया	संक्षिप्त ढंगसे
प्रति उदीर्य	उत्तरमें कहकर
उपशमशील	शान्तवृत्ति,
अनात्म्य	आत्मासे भिन्न
निमित्त	निमित्तोंसे
उपरत	उपरत
मुनिवर	(वे) मुनिश्रेष्ठ
आरब्धं कर्म	प्रारब्ध कर्मको
उपभोगेन	भोग करके
व्यपनयन्	क्षय करते हुए
राजयानं अपि	राजाकी सवारी भी
तथा उवाह	वैसे ही ढोते रहे ॥१४॥

स चापि पाण्डवेय सिन्धुसौवीरपतिस्तत्त्वजिज्ञासायां सम्यक्-श्रद्धयाधिकृताधिकारस्तद्धृदयग्रन्थिमोचनं द्विजवच्च आश्रुत्य बहु-योगग्रन्थसम्मतं त्वरयावरुह्य शिरसा पादमूलमुपसृतः क्षमापयन् विगतनृपदेवस्मय उवाच ॥१५॥

स च अपि पाण्डवेय सिन्धुसौवीरपतिः तत्त्व जिज्ञासायां सम्यक् श्रद्धया अधिकृत अधिकारः तत् हृदयग्रन्थि मोचनं द्विजवच्च आश्रुत्य बहु-योगग्रन्थ सम्मतं त्वरया अवरुह्य शिरसा पादमूलं उपसृतः क्षमापयन् विगत नृपदेव स्मय उवाच ॥१५॥

पाण्डवेय	परीक्षित !
स च अपि	वह भी
सिन्धु-सौवीरपतिः	सिन्ध-सौराष्ट्रका राजा
सम्यक् श्रद्धया	आम श्रद्धासे
तत्त्व जिज्ञासायां	तत्त्व जिज्ञासाका
अधिकृत अधिकारः	अधिकार पा चुका था,
तत् हृदय-ग्रन्थि	(अतः) उस हृदय ग्रन्थि
मोचनं	छुड़ानेवाले
बहुयोगग्रन्थ	बहुतसे योग ग्रन्थोंसे

सम्मतं	सम्मत
द्विजवच	ब्राह्मणके वचन
आश्रुत्य	सुनकर
त्वरया	शीघ्रतापूर्वक
अवरुह्य	(पालकी से) उतरकर
पादमूलं	(उनके) चरणोंमें
शिरसा उपसृतः	मस्तक रखकर
विगत नृपदेव स्मय	राजा होनेका अभिमान त्यागकर
क्षमापयन्	क्षमा माँगते हुए
उवाच	बोला ॥१५॥

रहूगण उवाच-*

कस्त्वं निगूढश्चरसि द्विजानां
बिभर्षि सूत्रं कतमोऽवधूतः ।
कस्यासि कुत्रत्य इहापि कस्मात्
क्षेमाय नश्चेदसि नोत शुक्लः ॥१६॥

कः त्वं निगूढः चरसि द्विजानां बिभर्षि सूत्रं कतमः अवधूतः कस्य असि कुत्र अत्य इह अपि कस्मात् क्षेमाय नः चेत् असि न उत शुक्लः ॥१६॥

द्विजानां सूत्रं	ब्राह्मणों (का चिह्न) यज्ञोपवीत
बिभर्षि	धारण किया है (आपने)
निगूढः चरसि	छिपकर विचरण करने वाले
त्वं कः	आप कौन हैं ?
कतमः	
अवधूतः	कौनसे अवधूत हैं ?
कस्य असि	किनसे पुत्र हैं ?
कुत्र अत्य	कहाँसे आये हैं ?
इह अपि	यहाँ भी
कस्मात्	किस लिए (आये) हैं ?
चेत् नः क्षेमाय	यदि हमारा कल्याण करने आये हैं
उत	तो क्या
शुक्लः न	भगवान् कपिल तो नहीं हैं ॥१६॥

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

नाहं विशङ्के सुरराजवज्त्रा-
न्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात् ।
नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्रा-
च्छङ्के भृशं ब्रह्मकुलावमानात् ॥१७॥

न अहं विशङ्के सुरराज वज्त्रात् न त्र्यक्ष शूलात् न यमस्य दण्डात् न अग्नि अर्क सोम अनिल वित्तप अस्त्रात् शङ्के भृशं ब्रह्मकुल अवमानात् ॥१७॥

अहं	मैं
सुरराज वज्त्रात्	देवराज (इन्द्र)के वज्त्रसे
न विशङ्के	डरता नहीं,
त्र्यक्ष शूलात्	त्रिनयन (रुद्र)के त्रिशूलसे
न	नहीं
यमस्य दण्डात् न	यमराजके डण्डेसे नहीं,
अग्नि अर्क सोम अनिल वित्तप अस्त्रात् न	अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, कुबेरके अस्त्रोंसे नहीं
ब्रह्मकुल	(किन्तु) ब्राह्मण कुलके
अवमानात्	अपमानसे
भृशं शङ्के	बहुत डरता हूँ ॥१७॥

तद् ब्रूह्यसङ्गो जडवन्निगूढ-
विज्ञानवीर्यो विचरस्यपारः ।
वचांसि योगग्रथितानि साधो
न नः क्षमन्ते मनसापि भेत्तुम् ॥१८॥

तत् ब्रूहि असङ्गः जडवत् निगूढ विज्ञानवीर्यः विचरसि अपारः वचांसि योगग्रथितानि साधो न नः क्षमन्ते मनसा अपि भेत्तुम् ॥१८॥

तत् ब्रूहि	अतः बतलाइये,
विज्ञानवीर्यः	(अपने) विज्ञान और शक्तिको
जडवत्	मूर्खकी भाँति
निगूढ	छिपाकर (आप)
असङ्गः	अनासक्त

विचरसि	घूमते हैं,
साधो	साधो !
योगग्रथितानि	योगसे युक्त
अपारः	अपार
वचांसि	(आपके) वचनोंको
नः मनसा अपि	मैं मनसे भी
भेत्तुं	भेद न (समझने)में
क्षमन्ते न	सक्षम नहीं हूँ॥१८॥

अहं च योगेश्वरमात्मतत्त्व-
विदां मुनीनां परमं गुरुं वै ।
प्रष्टुँ प्रवृत्तः किमिहारणं तत्
साक्षाद्धरिं ज्ञानकलावतीर्णम् ॥१९॥

अहं च योगेश्वरं आत्मतत्त्व विदां मुनीनां परमं गुरुं वै प्रष्टुं प्रवृत्तः किं इह अरणं तत् साक्षात् हरिं ज्ञानकला अवतीर्णम् ॥१९॥

आत्मतत्त्व	
विदां	आत्मतत्त्वके जाननेवाले
मुनीनां परमं	
गुरुं	मुनियोंके परमगुरु
योगेश्वरं	योगेश्वर
वै	निश्चय
ज्ञानकला	
अवतीर्णम्	ज्ञानकलासे अवतार लिये
साक्षात् हरिं	साक्षात् श्रीहरि (कपिलजी)से
अहं च	मैं तो
प्रष्टुं प्रवृत्तः	पूछने जा रहा था कि
इह किं	इस संसारमें वह कौन है
तत् अरणं	जिसको शरण ली जाय ॥१९॥

स वै भवाँल्लोकनिरीक्षणार्थ-
मव्यक्तलिङ्गो विचरत्यपिस्वित् ।
योगेश्वराणां गतिमन्धबुद्धिः
कथं विचक्षीत गृहानुबन्धः ॥२०॥

स वै भवान् लोक निरीक्षण अर्थम् अव्यक्त लिङ्गः विचरति अपि स्वित् योगेश्वराणां गतिं अन्धबुद्धिः कथं विचक्षीत गृह अनुबन्धः ॥२०॥

अपि स्वित्	अथवा क्या
स वै	वही (भगवान् कपिल) तो
भवान्	आप नहीं हैं ?
लोक निरीक्षण अर्थम्	लोगोंको देखनेके लिए
अव्यक्त लिङ्गः	(अपने) चिह्न छिपाये
विचरति	घूम रहे हैं।
गृह अनुबन्धः	घरमें आसक्त
अन्धबुद्धिः	अन्धी बुद्धिवाला
योगेश्वराणां गतिं	(आप) योगेश्वरोंकी गति
कथं विचक्षीत	कैसे जान सकता है ॥२०॥

दृष्टः श्रमः कर्मत आत्मनो वै
भर्तुर्गन्तुर्भवतश्चानुमन्ये ।
यथासतोदानयनाद्यभावात्
समूल इष्टो व्यवहारमार्गः ॥२१॥

दृष्टः श्रमः कर्मत आत्मनः वै भर्तुः गन्तुः भवतः च अनुमन्ये यथा असतः उद आनयनादि अभावात् समूल इष्टः व्यवहारमार्गः ॥२१॥

वै	निश्चय
कर्मत	कर्म करनेसे
आत्मनः	अपनेको
श्रमः	परिश्रम होते
दृष्टः	(मैंने) देखा है,
भर्तुः	भार ढोकर
गन्तुः	चलनेमें
भवतः च	आपको भी (होता होगा ऐसा)
अनुमन्ये	अनुमान करता हूँ।
यथा	जैसे
असतः	मिथ्या (घड़े)से
उद् आनयनादि	पानी लाना इत्यादि
अभावात्	नहीं होता (अतः)
व्यवहारमार्गः	व्यवहारका मार्ग
समूल इष्टः	जड़ (कारण) सहित अभीष्ट है ॥२१॥

स्थाल्यग्नितापात्पयसोऽभिताप-
स्तत्तापतस्तण्डुलगर्भरन्धिः ।
देहेन्द्रियास्वाशयसन्निकर्षात्
तत्संसृतिः पुरुषस्यानुरोधात् ॥२२॥

स्थालि अग्नि तापात् पयसः अभितापः तत् तापतः तण्डुल गर्भ रन्धिः देह इन्द्रिय आस्व आशय सन्निकर्षात् तत् संसृतिः पुरुषस्य अनुरोधात् ॥२२॥

स्थालि	बर्तनको	**देह इन्द्रिय**	(इसी प्रकार) शरीर, इन्द्रिय,
अग्नि तापात्	अग्निका ताप लगनेसे	**आस्व आशय**	प्राण, अन्तःकरुणकी
पयसः	(उसमें रखा) दूध	**सन्निकर्षात्**	सन्निकटतासे,
अभितापः	तप जाता है ।	**तत् अनुरोधात्**	उनके पीछे लगे होनेसे
तत् तापतः	उस (दूध)के तपनेसे		
गर्भ तण्डुल	उसके भीतरका चावल	**पुरुषस्य**	पुरुष(आत्मा)का भी
		संसृतिः	आवागमन होता है ॥२२॥
रन्धिः	पक जाता है ।		

शास्ताभिगोप्ता नृपतिः प्रजानां
यः किङ्करो वै न पिनष्टि पिष्टम् ।
स्वधर्ममाराधनमच्युतस्य
यदीहमानो विजहात्यघौघम् ॥२३॥

शास्ता अभिगोप्ता नृपतिः प्रजानां यः किङ्करः वै न पिनष्टि पिष्टं स्वधर्मं आराधनं अच्युतस्य यत् ईहमानः विजहाति अघ ओघम् ॥२३॥

नृपतिः	राजा	**शास्ता**	
प्रजानां	प्रजाका	**अभिगोप्ता**	शासक और रक्षक है ।

वै यः किङ्करः	निश्चय जो(प्रजाका) सेवक है ।
पिनष्टि पिष्टं न	(उसका प्रमत्तादिको दण्ड देना) पीसेको पीसना नहीं है ।
स्वधर्मम्	अपने धर्मका पालन
अच्युतस्य आराधनं यत् ईहमानः	भगवान्‌की आराधना है, जिसकी चेष्टा (पालन) करनेसे
अघ ओघं विजहाति	पाप-प्रवाहको नष्ट कर देता है ॥२३॥

तन्मे भवान्नरदेवाभिमान-
मदेन तुच्छीकृतसत्तमस्य ।
कृषीष्ट मैत्रीदृशमार्तबन्धो
यथा तरे सदवध्यानमंहः ॥२४॥

तत् मे भवान् नरदेव अभिमान मदेन तुच्छीकृत सत्तमस्य कृषीष्ट मैत्री दृशं आर्तबन्धो यथा तरे सत् अवध्यानं अंहः ॥२४॥

आर्तबन्धो नरदेव	दुःखीके वन्धु !
अभिमान	राजा होनेके गर्वमें
मदेन	उन्मत्त होकर
सत्तमस्य	(आप) सत्पुरुष-श्रेष्ठको
मे तत्	मैंने इस प्रकार
तुच्छीकृत	तुच्छ बनाया
मैत्री दृशं	(अब आप अपनी) मित्रताकी दृष्टिसे
कृषीष्ट	कृपा कीजिए
यथा	जिससे
सत् अवध्यानं	सत् पुरुषके अपमानके
अंहः तरे	पापसे पार होऊँ ॥२४॥

न विक्रिया विश्वसुहृत्सखस्य
साम्येन वीताभिमतेस्तवापि ।
महद्विमानात् स्वकृताद्धि मादृङ्
नङ्क्षत्यदूरादपि शूलपाणिः ॥२५॥

न विक्रिया विश्व सुहृत् सखस्य साम्येन वीत अभिमतेः तव अपि महत् विमानात् स्वकृतात् हि माद्दक् नङ्क्ष्यति अदूरात अपि शूलपाणिः ॥२५॥

विश्व सुहृत	विश्वके सुहृद (भगवान्)के
सखस्य	सखा (निज-जन)
वीत अभिमतेः	अभिमान रहित
तव विक्रिया	आपमें विकार (क्रोध)
न अपि	न होनेपर भी
महत्	
विमानात्	महापुरुषोंके अपमानरूप
स्वकृतात् हि	अपने कर्मसे ही
माद्दक्	मेरे जैसे
शूलपाणिः	शिव जैसे (प्रभावशाली)
अपि	भी
अदूरात्	
नङ्क्ष्यति	शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच-

अकोविदः कोविदवादवादान्
वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः ।
न सूरयो हि व्यवहारमेनं
तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति ॥१॥

अकोविदः कोविदवाद वादान् वदसि अथो न अतिविदां वरिष्ठः न सूरयः हि व्यवहारं एनं तत्त्व अवमर्शेन सह आमनन्ति ॥१॥

अकोविदः	अज्ञानी होकर	**वरिष्ठः न**	श्रेष्ठ नहीं हो ।
कोविदवाद	ज्ञानियोंकी चर्चाके समान	**हि सूरयः**	क्योंकि तत्त्वज्ञानी
		एनं व्यवहारं	इस व्यवहारको
वादान्	तर्क-वितर्क	**तत्त्व अवमर्शेन**	तत्त्व-विचारके
वदसि	करते हो,	**सह न**	
अथो	अतः	**आमनन्ति**	साथ नहीं स्वीकार करते ॥१॥
अतिविदां	बहुज्ञ लोगोंमें		

तथैव राजन्नुरुगार्हमेध-
वितानविद्योरुविजृम्भितेषु ।
न वेदवादेषु हि तत्त्ववादः
प्रायेण शुद्धो नु चकास्ति साधुः ॥२॥

तथा एव राजन् उरु गार्हमेध वितान विद्या उरु विजृम्भितेषु न वेद-वादेषु हि तत्त्ववादः प्रायेण शुद्धः नु चकास्ति साधुः ॥२॥

राजन्	राजन् !
तथा एव	इसी प्रकार
उरु गार्हमेध	गृहस्थ-धर्म बहुल
वितान विद्या	यज्ञ-विद्याके
उरु	
विजृम्भितेषु	बहुत विस्तारसे भरे
वेदवादेषु हि	वैदिक-व्यवहारमें भी
प्रायेण	प्रायः
शुद्धः तत्त्ववादः	शुद्ध तत्त्व-विचार
साधुः नु	भली प्रकार तो
न चकास्ति	नहीं प्रकाशित हुआ है ॥२॥

न तस्य तत्त्वग्रहणाय साक्षाद्
वरीयसीरपि वाचः समासन् ।
स्वप्ने निरुक्तया गृहमेधिसौख्यं
न यस्य हेयानुमितं स्वयं स्यात् ॥३॥

न तस्य तत्त्व ग्रहणाय साक्षाद् वरीयसीः अपि वाचः समासन् स्वप्ने निरुक्त्था गृहं एधि सौख्यं न यस्य हेय अनुमितं स्वयं स्यात् ॥३॥

यस्य	जिसे
गृहम्	गृहस्थोचित
एधि	यज्ञादि कर्मोंसे प्राप्त होनेवाला
सौख्यं	स्वर्गादि सुख
स्वप्ने	स्वप्नके समान
हेय	त्यागने योग्य (हेय)
अनुमितं	तुच्छ
न	नहीं
स्यात्	जान पड़ता (होवे)
तस्य	उसे
तत्त्व	तत्त्वज्ञान
गृहणाय	करानेमें
साक्षात्	साक्षात्
स्वयं	स्वयं
निरुक्त्वा	उपनिषद्
वाचः	वाक्य
वरीयसीः	श्रेष्ठ होनेपर
अपि	भी
समासन्	✓ समर्थ
न	नहीं है ॥३॥

यावन्मनो रजसा पूरुषस्य
सत्त्वेन वा तमसा वानुरुद्धम् ।
चेतोभिराकूतिभिरातनोति
निरङ्कुशं कुशलं चेतरं वा ॥४॥

यावत् मनः रजसा पूरुषस्य सत्त्वेन वा तमसा वा अनुरुद्धं चेतः अभिः आकूतिभिः आतनोति निरंकुशं कुशलं च इतरं वा ।:४।।

यावत् पूरुषस्य	जब तक पुरुषका
मनः रजसा	मन रजोगुणके
वा सत्त्वेन	अथवा सत्त्वगुणके
वा तमसा	अथवा तमोगुणके
अनुरुद्धं	वशमें है,
चेतः निरंकुशं	(तब तक) चित्त बिना नियन्त्रण
अभिः आकूतिभिः	सब ओर ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियोंसे
कुशलं च अकुशलं	शुभ और (अशुभ)
वा इतरं	अथवा इनसे भिन्न (मनोराज्य)
आतनोति	फैलता रहता है ।।४।।

स वासनात्मा विषयोपरक्तो
गुणप्रवाहो विकृतः षोडशात्मा ।
बिभ्रत्पृथङ्नामभि रूपभेद-
मन्तर्बहिष्ट्वं च पूरैस्तनोति ।।५।।

स वासनात्मा विषय उपरक्तः गुणप्रवाहः विकृतः षोडशात्मा बिभ्रत् पृथक् नामभिः रूपभेदं अन्तः बहिष्ट्वं च पुरैः तनोति ।।५।।

स वासनात्मा	वह (मन) वासना-मय है,
विषय उपरक्तः	विषयासक्त है,
गुणप्रवाहः	गुणों (त्रिगुण)की धारामें ही रहता है,
विकृतः	विकारी है,
षोडशात्मा	पंचभूत तथा दस इन्द्रियोंमें मुख्य (सोलहवां) है ।
पृथक् नामभिः	अलग-अलग नामोंसे
रूपभेदं बिभ्रत्	भिन्न-भिन्न रूप धारण करके
अन्तः च बहिष्ट्वं	भीतर (स्वप्नमें) और बाहर (संसारमें)
पुरैः	शरीर (रूप नगरों) को
तनोति	फैलाता (शरीरका कारण होता है)।।५।।

दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च तीव्रं
कालोपपन्नं फलमाव्यनक्ति ।
आलिङ्ग्य मायारचितान्तरात्मा
स्वदेहिनं संसृतिचक्रकूटः ॥६॥

दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च तीव्रं काल उपपन्नं फलं आव्यनक्ति आलिङ्ग्य माया रचित अन्तरात्मा स्वदेहिनं संसृति चक्र कूटः ॥६॥

संसृति चक्र	संसार-चक्र (चलानेवाला)	**दुःखं सुखं**	दुःख-सुख
कूटः	यह छलनामय	**च व्यतिरिक्तं**	तथा इनसे भिन्न (मोह रूप)
माया रचित	मायासे उत्पन्न	**काल उपपन्नं**	कालके अनुसार प्राप्त
अन्तरात्मा	मन		
स्वदेहिनं	अपनी देहके अभिमानी जीवसे	**फलं**	फलको
		आव्यनक्ति	अभिव्यक्त करता है ॥६॥
आलिङ्ग्य	आलिंगन करके		

तावानयं व्यवहारः सदाविः
क्षेत्रज्ञसाक्ष्यो भवति स्थूलसूक्ष्मः ।
तस्मान्मनो लिङ्गमदो वदन्ति
गुणागुणत्वस्य परावरस्य ॥७॥

तावात् अयं व्यवहारः सदाविः क्षेत्रज्ञ साक्ष्यः भवति स्थूल सूक्ष्मः तस्मात् मनः लिङ्गं अदः वदन्ति गुण अगुणत्वस्य पर अवरस्य ॥७॥

तावात्	तभी तक	**व्यवहारः**	व्यवहार
अयं	यह	**क्षेत्रज्ञ**	क्षेत्रज्ञ (जीव)का
स्थूल सूक्ष्मः	जाग्रत और स्वप्नका	**साक्ष्यः**	दृश्य
		सदाविः	सदा प्रकाशित

भवति	होता है।
तस्मात्	इसलिए
गुण अवरस्य	त्रिगुणमय, हीन (संसार)का
अगुणत्वस्य	गुणातीत श्रेष्ठ
पर	(मोक्ष)का
मनः लिंगं	मनको ही
अदः	कारण
वदन्ति	बतलाते हैं ॥७॥

गुणानुरक्तं व्यसनाय जन्तोः
क्षेमाय नैर्गुण्यमथो मनः स्यात् ।
यथा प्रदीपो घृतवर्तिमश्नन्
शिखाःसधूमा भजति ह्यन्यदा स्वम् ।
पदं तथा गुणकर्मानुबद्धं
वृत्तीर्मनः श्रयतेऽन्यत्र तत्त्वम् ॥८॥

गुण अनुरक्तं व्यसनाय जन्तोः क्षेमाय नैर्गुण्यं अथः मनः स्यात् यथा प्रदीपः घृतवर्तिं अश्नन् शिखाः सधूमा भजति हि अन्यदा स्वं पदं तथा गुण कर्म अनुबद्धं वृत्तीः मनः श्रयते अन्यत्र तत्त्वम् ॥८॥

मनः	मन
गुण अनुरक्तं	विषयासक्त रहनेपर
जन्तोः	
व्यसनाय	जीवके क्लेशका हेतु है
अथः नैर्गुण्यं	और जब विषय रहित होता है
क्षेमाय स्यात्	कल्याणका हेतु हो जाता है
यथा	जैसे
प्रदीपः	दीपक
घृतवर्तिं	घी (से भीगी) बत्तीको
अश्नन्	(जब तक) खाता है,
सधूमा शिखाः	धुएँके साथ लौ
भजति	देता है
हि	क्योंकि
अन्यदा	अन्यथा (घी-बत्ती न होनेपर)
स्व	अपने स्वरूप (अग्नि) में रहता है,
तथा	वैसे ही
गुण कर्म	विषयों और कर्मके
अनुबद्धं	साथ बँधा हुआ

मनः वृत्तीः श्रयते अन्यत्र	मन वृत्तियोंका आश्रय लेता है, (गुण-कर्मके	**तत्त्वं**	आश्रयसे) पृथक आत्म-तत्त्वका (आश्रय लेता है) ॥८॥

एकादशासन्मनसो हि वृत्तय
आकूतयः पञ्च धियोऽभिमानः ।
मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां
वदन्ति हैकादश वीर भूमिः ॥९॥

एकादश आसन् मनसः हि वृत्तयः आकूतयः पञ्च धियः अभिमानः मात्राणि कर्माणि पुरं च तांसां वदन्ति ह एकादश वीर भूमिः ॥९॥

वीर	वीरवर !	**मात्राणि**	पञ्च-तन्मात्रामें (शब्द-स्पर्शादि)
मनसः	मनकी	**कर्माणि**	पाँच प्रकारके कर्म,
एकादश	ग्यारह (दस इन्द्रियां तथा अहंकार)	**च तासां पुरं**	और इनका नगर (शरीर)
ह	निश्चित	**एकादश**	(इन) ग्यारहको
वृत्तयः	वृत्तियां	**ह भूमिः**	
आसन्	हैं ।	**वदन्ति**	निश्चित आधार (जन्मस्थान) कहते हैं ॥९॥
पञ्च आकूतयः	पांच प्रकारके कर्म हैं ।		
धियः			
अभिमानः	बुद्धि और अभिमान,		

गन्धाकृतिस्पर्शरसश्रवांसि
विसर्गरत्यर्त्यभिजल्पशिल्पाः ।
एकादशं स्वीकरणं ममेति
शय्यामहं द्वादशमेक आहुः ॥१०॥

गन्ध आकृति स्पर्श रस श्रवांसि विसर्ग रति अर्त अभिजल्प शिल्पाः एकादशं स्वीकरणं मम इति शय्यां अहं द्वादशं एक आहुः ॥१०॥

गन्ध आकृति	गन्ध, रूप
स्पर्श रस	स्पर्श, रस
श्रवांसि	शब्द (ये पांच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय)
विसर्ग	मल त्याग,
रति	सम्भोग,
अर्त	गमन,
अभिजल्प	बोलना,
शिल्पाः	शिल्प (व्यवहार-काम करना) (ये पांच कर्मेन्द्रियोंके विषय)
एकादशं	ग्यारहवां
मम इति	ये मेरे हैं इस प्रकार
स्वीकरणं	(इन दसका) स्वीकार करना
एक	कोई
अहं	अहंकारको (तथा)
शय्यां	(उसके) आधार (शरीर)को
द्वादशं आहुः	(मनकी) बारहवीं वृत्ति कहते हैं ॥१०॥

द्रव्यस्वभावाशयकर्मकालै-
रेकादशामी मनसो विकाराः ।
सहस्रशः शतशः कोटिशश्च
क्षेत्रज्ञतो न मिथो न स्वतः स्युः ॥११॥

द्रव्य स्वभाव आशय कर्म कालैः एकादश अमी मनसः विकाराः सहस्रशः शतशः कोटिशः च क्षेत्रज्ञतः न मिथः न स्वतः स्युः ॥११॥

द्रव्य	विषय (पदार्थ)
स्वभाव	स्वभाव (द्रव्यके गुण)
आशय	आशय (संस्कार)
कर्म	क्रिया
कालैः	समय (के भेदसे)
अमी एकादश	ये ग्यारह
मनसः	
विकाराः	मनके विकार (वृत्तियां)
सहस्रशः	हजारों,
शतशः	सैकड़ों,
च कोटिशः	और करोड़ों (हो जाती हैं, किन्तु)

क्षेत्रज्ञतः न मिथः	क्षेत्रज्ञ (जीव)से (ये) न मिली हैं,	**न स्वतः स्युः**	न स्वतः (सत्) हैं। (ये प्रतीति मात्र हैं) ॥११॥

क्षेत्रज्ञ एता मनसो विभूती-
र्जीवस्य मायारचितस्य नित्याः।
आविर्हिताः क्वापि तिरोहिताश्च
शुद्धो विचष्टे ह्यविशुद्धकर्तुः ॥१२॥

क्षेत्रज्ञ एता मनसः विभूतीः जीवस्य माया रचितस्य नित्याः आविर्हिताः क्वापि तिरोहिताः च शुद्धः विचष्टे हि अविशुद्ध कर्तुः ॥१२॥

माया रचितस्य	माया-निर्मित	**च तिरोहिताः**	और (कभी) तिरोहित रहती है
मनसः	मनकी	**हि**	क्योंकि
एता	ये (वृत्तियां)	**कर्तुः अविशुद्ध**	कर्ता (अहंकार) अशुद्ध है
क्षेत्रज्ञ जीवस्य नित्याः	क्षेत्रज्ञ जीवकी	**शुद्धः विचष्टे**	शुद्ध (क्षेत्रज्ञ द्रष्टा) साक्षीरूपसे देखता रहता है॥१२॥
विभूतीः	(प्रवाह रूपसे) नित्य विभूति है		
क्वापि आविर्हिताः	कभी प्रकट हो जाती हैं		

क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः
साक्षात्स्वयंज्योतिरजः परेशः।
नारायणो भगवान् वासुदेवः
स्वमाययाऽऽत्मन्यवधीयमानः ॥१३॥

क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः साक्षात् स्वयं ज्योतिः अजः परेशः नारायणः भगवान् वासुदेवः स्वमायया आत्मनि अवधीयमानः ॥१३॥

क्षेत्रज्ञ	(यही) क्षेत्रज्ञ
आत्मा	आत्मा
पुराणः पुरुषः	सनातन पुरुष
साक्षात् स्वयं	
ज्योतिः	साक्षात् स्वयं प्रकाश
अजः परेशः	अजन्मा, सर्वेश्वर,
नारायणः	नारायण
भगवान्	
वासुदेवः	भगवान् वासुदेव हैं
स्वमायया	अपनी मायासे
आत्मनि	अपनेमें ही
अवधीयमानः	(जगतकी) अव-धारणा (कल्पना) करते हैं ॥१३॥

यथानिलः स्थावरजङ्गमाना-
मात्मस्वरूपेण निविष्ट ईशेत् ।
एवं परो भगवान् वासुदेवः
क्षेत्रज्ञ आत्मेदमनुप्रविष्टः ॥१४॥

यथा अनिलः स्थावर जङ्गमानां आत्मस्वरूपेण निविष्ट ईशेत् एवं परः भगवान् वासुदेवः क्षेत्रज्ञ आत्मा इदं अनुप्रविष्टः ॥१४॥

यथा अनिलः	जैसे वायु
स्थावर	
जङ्गमानां	अचर-चर (प्राणियोंमें)
आत्मस्वरूपेण	उनके अपने स्वरूपमें
निविष्ट	प्रवेश करके
ईशेत्	उनका सञ्चालन करता है,
एवं परः	इसी प्रकार परम-पुरुष
भगवान्	
वासुदेवः	भगवान् वासुदेव
क्षेत्रज्ञ आत्मा	क्षेत्रज्ञ आत्मा रूपसे
इदं	इस संसारमें
अनुप्रविष्टः	सर्वत्र प्रविष्ट हैं ॥१४॥

न यावदेतां तनुभृन्नरेन्द्र
विधूय मायां वयुनोदयेन ।
विमुक्तसङ्गो जितषट्सपत्नो
वेदात्मतत्त्वं भ्रमतीह तावत् ॥१५॥

न यावत् एतां तनुभृत् नरेन्द्र विधूय मायां वयुना उदयेन विमुक्त सङ्गः जितषट्सपत्नः वेद आत्मतत्त्वं भ्रमति इह तावत् ॥१५॥

नरेन्द्र	राजन् !
यावत्	जब तक
तनुभृत्	शरीरधारी (पुरुष)
जितषट्-सपत्नः	(कामादि) छहो शत्रुओंको जीतकर
विमुक्त सङ्गः	आसक्तिका त्याग करके
वयुना उदयेन	ज्ञानोदयसे
एतां मायां	इस मायाको
विधूय	नष्ट करके
आत्मतत्त्वं	आत्मतत्त्वको
न वेद	नहीं जानता,
इह तावत्	इस संसारमें तब तक
भ्रमति	(जन्म-मरण चक्रमें) घूमता है ॥१५॥

न यावदेतन्मन आत्मलिङ्गं
संसारतापावपनं जनस्य ।
यच्छोकमोहामयरागलोभ-
वैरानुबन्धं ममतां विधत्ते ॥१६॥

न यावत् एतत् मनः आत्मलिङ्गं संसार ताप आवपनं जनस्य यत् शोक मोह आमयराग लोभ वैर अनुबन्धं ममतां विधत्ते ॥१६॥

यावत्	जब तक
एतत् आत्म-लिङ्गं	इस आत्माके चिह्न (उपाधि)
मनः	मनको
जनस्य	पुरुषके लिए
संसार ताप	संसारके संतापोंका
आवपनं	बोनेवाला
न	नहीं (जानलेता)
यत्	क्योंकि
शोक मोह	शोक, मोह,
आमयराग	रोग, राग,
लोभ	
वैर अनुबन्धं	लोभ, शत्रुता (तथा)
ममतां	ममताको
विधत्ते	(यह मन ही) उत्पन्न करता है ॥१६॥

भ्रातृव्यमेनं तददभ्रवीर्य-
मुपेक्षयाध्येधितमप्रमत्तः ।
गुरोर्हरेश्चरणोपासनास्त्रो
जहि व्यलीकं स्वयमात्ममोषम् ॥१७॥

भ्रातृव्यं एनं तत् अदभ्रवीयं उपेक्षया एधितं अप्रमत्तः गुरोः हरेः चरण उपासन अस्त्रः जहि व्यलीकं स्वयं आत्ममोषम् ॥१७॥

भ्रातृव्यम्	भाई !	**अप्रमत्तः**	प्रमादहीन होकर
तत्	अतः	**गुरोः हरेः**	गुरुदेव तथा श्रीहरिके
अदभ्रवीयं	अत्यन्त बलवान	**चरण उपासन**	चरणोंकी उपासना रूपी
उपेक्षया	(तुम्हारी) उपेक्षासे	**अस्त्रः**	अस्त्रसे
एधितं	बढ़े हुए	**जहि**	मार डालो ॥१७॥
व्यलीकं	मिथ्या (असत्)		
स्वयं आत्म-मोषं	स्वयं आत्माको चुराने (ढकने) वाले		
एनं	इस मनको		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे ब्राह्मणरहूगण सम्वादे एकादशोऽध्यायः ।११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

रहूगण उवाच-

नमो नमः कारणविग्रहाय
स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय ।
नमोऽवधूत द्विजबन्धुलिङ्ग-
निगूढनित्यानुभवाय तुभ्यम् ॥१॥

नमो नमः कारणविग्रहाय स्वरूप तुच्छीकृतविग्रहाय नमः अवधूत द्विजबन्धु लिङ्ग निगूढ नित्य अनुभवाय तुभ्यम् ॥१॥

कारण-विग्रहाय	(जीवोंका उद्धार करनेके लिए) सकारण शरीर धारण किए	**नमो नमः**	(आपको) बार-बार नमस्कार
स्वरूप	(अपने) स्वरूपके अनुभवसे	**अवधूत**	मलिनवेष
तुच्छीकृत-विग्रहाय	स्थूल शरीरको तुच्छ मानने वाले	**द्विजबन्धु लिङ्ग**	उपेक्षणीय ब्राह्मण वेशमें
		निगूढ नित्य अनुभवाय	अपने नित्य अनुभव रूपको छिपाये
		तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार ॥१॥

ज्वरामयार्तस्य यथागदं सत्
निदाघदग्धस्य यथा हिमाम्भः ।
कुदेहमानाहिविदष्टदृष्टेः
ब्रह्मन् वचस्तेऽमृतमौषधं मे ॥२॥

ज्वर आमय आर्तस्य यथा अगदं सत् निदाघदग्धस्य यथा हिम अम्भः कुदेहमान अहि विदष्ट दृष्टेः ब्रह्मन् वचः ते अमृतं औषधं मे ॥२॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
यथा	जैसे
ज्वर आमय	ज्वर-रोगसे
आर्तस्य	पीड़ितके लिए
सत् अगदं	अच्छी औषधि हो,
यथा	जैसे
निदाघदग्धस्य	गर्मीसे संतप्तके लिए
हिम अम्भः	शीतल जल हो,
कुदेहमान	
अहि	इस बुरे शरीरके अभिमान रूपी सर्पसे
विदष्ट दृष्टेः	डँसी दृष्टि (विवेक-बुद्धि)
मे	मेरे लिए
ते वचः	आपके वचन
अमृतं औषधं	अमृतमय औषधि हैं ॥२॥

तस्माद्भवन्तं मम संशयार्थम्
प्रक्ष्यामि पश्चादधुना सुबोधम् ।
अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्त-
माख्याहि कौतूहलचेतसो मे ॥३॥

तस्मात् भवन्तं मम संशय अर्थं प्रक्ष्यामि पश्चात् अधुना सुबोधं अध्यात्मयोग ग्रथितं तव उक्तं आख्याहि कौतूहल चेतसः मे ॥३॥

तस्मात्	इसलिए
भवन्तं	आपसे
मम संशय अर्थं	अपने संशयको (दूर करनेके)लिए
पश्चात्	
प्रक्ष्यामि	पीछे पूछूँगा,
अधुना	इस समय
अध्यात्म-योग	अध्यात्म-योगसे
ग्रथितं	संयुक्त
तव उक्तं	आपने जो कहा
सुबोधं	सरलतासे समझमें आने
आख्याहि	(इस प्रकार उसे) कहिए,
मे चेतसः	मेरे चित्तमें
कौतूहल	उत्सुकता है ॥३॥

यदाह योगेश्वर दृश्यमानं
क्रियाफलं सद्व्यवहारमूलम् ।
न ह्यञ्जसा तत्त्वविमर्शनाय
भवानमुष्मिन् भ्रमते मनो मे ॥४॥

यत् आह योगेश्वर दृश्यमानं क्रियाफलं सत् व्यवहार मूलं न हि अञ्जसा तत्त्वविमर्शनाय भवान् अमुष्मिन् भ्रमते मनः मे ॥४॥

योगेश्वर	योगेश्वर !
भवान्	आपने
यत्	जो
दृश्यमानं	(प्रत्यक्ष) दिखलाई देनेवाला
सत् व्यवहार मूलं	अच्छे व्यवहारकी जड़ (कारण)
क्रियाफलं	कर्मका फल
हि	क्योंकि
अञ्जसा	सरलतासे
तत्त्वविमर्शनाय न	तत्त्व विचारके लिए (उपयुक्त) नहीं
आह	कहा
अमुष्मिन्	इस विषयमें
मे मनः	मेरा मन
भ्रमते	भटक रहा है ॥४॥

ब्राह्मण उवाच–

अयं जनो नाम चलन् पृथिव्यां
यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः ।
तस्यापि चाङ्घ्र्योरधि गुल्फजङ्घा-
जानूरुमध्योरशिरोधरांसाः ॥५॥

अयं जनः नाम चलन् पृथिव्यां यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः तस्य अपि च अङ्घ्रि अधि गुल्फ जङ्घा जानु उरु मध्य उर शिरः अधर अंसाः ॥५॥

पार्थिव	राजन्
अयं जनः नाम	यह मनुष्य कहा जानेवाला
यः	जो
पृथिव्यां चलन्	पृथ्वीपर चलता है,
कस्य हेतोः	किस कारणसे

पार्थिवः	पृथ्वी-तत्त्वसे बने (पाषाणादि)से भिन्न है ?
तस्य अपि च अङ्घ्रि	उसके भी तो
अधि गुल्फ	पैरोंके ऊपर टखने,
जङ्घा जानु	पिण्डलियां, घुटने
उरु मध्य	जाँघें, बीचका भाग (कटि)
उरः शिरः	वक्षस्थल, शिर
अधर अंसाः	गर्दन, कन्धे हैं ॥५॥

अंसेऽधि दार्वी शिबिका च यस्यां
सौवीरराजेत्यपदेश आस्ते ।
यस्मिन् भवान् रूढनिजाभिमानो
राजास्मि सिन्धुष्विति दुर्मदान्धः ॥६॥

अंसे अधि दार्वी शिबिका च यस्यां सौवीरराज इति अपदेश आस्ते यस्मिन् भवान् रूढ निज अभिमानः राजा अस्मि सिन्धुषु इति दुर्मद अन्धः ॥६॥

अंसे	कन्धेपर
दार्वी शिबिका	लकड़ीकी पालकी
अधि	रखी है
च यस्यां	और जिसमें
सौवीरराज	सौवीरराज
इति अपदेश	इस नामका
आस्ते	(एक शरीर) बैठा है,
यस्मिन्	जिसमें
भवान्	आप
निज	
अभिमानः	निजत्वका अभिमान
रूढ	करके
सिन्धुषु राजा	
अस्मि	(मैं) सिन्धका राजा हूँ
इति दुर्मद	इस प्रकारके बुरे गर्वसे
अन्धः	अन्धे (विवेकहीन) हो रहे हैं ॥६॥

शोच्यानिमांस्त्वमधिकष्टदीनान्
विष्टया निगृह्णन्निरनुग्रहोऽसि ।
जनस्य गोप्तास्मि विकत्थमानो
न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः ॥७॥

शोच्यान् इमान् त्वं अधिकष्ट दीनान् विष्ट्या निगृह्णन् निरनुग्रहः असि जनस्य गोप्ता अस्मि विकत्थमानः न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः ॥७॥

इमान्	इन	**असि**	हो ।
शोच्यान्	शोचनीय (बेचारे)	**जनस्य गोप्ता**	लोगोंका रक्षक
अधिकष्ट	कष्ट पाते	**अस्मि**	हूँ (ऐसी)
दीनान्	दीन (कहारों) को	**विकत्थमानः**	बकवाद करते हुए
विष्टया	बेगारमें	**धृष्टः**	ढीठ होनेसे
निगृह्णन्	पकड़कर लगाये	**वृद्धसभासु**	बड़ोंकी सभामें
त्वं	तुम	**न शोभसे**	शोभित नहीं
निरनुग्रहः	अनुग्रह हीन (क्रूर)		होते ॥७॥

यदा क्षितावेव चराचरस्य
विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यम् ।
तन्नामतोऽन्यद् व्यवहारमूलं
निरूप्यतां सत् क्रिययानुमेयम् ॥८॥

यदा क्षिताः एव चर अचरस्य विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यं तत् नामतः अन्यत् व्यवहारमूलं निरूप्यतां सत् क्रियया अनुमेयम् ॥८॥

यदा	जब		अनुमान किये
क्षिताः एव	पृथ्वीको ही		जानेवाले
चर अचरस्य	जङ्गम-जड़के	**नामतः अन्यत्**	नाम (भेदको)
निष्ठां	रहने		छोड़कर
च प्रभवं	तथा उत्पत्तिका	**व्यवहारमूलं**	व्यवहारका कारण
नित्यं निष्ठां	नित्य स्थान	**सत्**	सत्-वस्तु
विदाम	हम जानते हैं	**निरूप्यतां**	निरूपित करो
तत्	तब		(बतलाओ) ॥८॥
क्रियया			
अनुमेयं	(उनकी) क्रियासे		

एवं निरुक्तं क्षितिशब्दवृत्त-
मसन्निधानात्परमाणवो ये ।
अविद्यया मनसा कल्पितास्ते
येषां समूहेन कृतो विशेषः ॥९॥

एवं निरुक्तं क्षितिशब्द वृत्तं असत् निधानात् परमाणवः ये अविद्यया मनसा कल्पिताः ते येषां समहेन कृतः विशेषः ॥९॥

एवं निरुक्तं	इस प्रकार कहा गया	**येषां समूहेन**	जिनके समूहसे
क्षितिशब्द	पृथ्वी शब्दका	**विशेषः कृतः**	पृथ्वी बनी है,
वृत्तं	हाल भी	**ये परमाणवः**	वे जो परमाणु हैं
असत्		**अविद्यया**	अविद्यासे
निधानात्	असत् उत्पत्ति ही है ।	**ते मनसा**	
		कल्पिताः	वे मनःकल्पित हैं ॥९॥

एवं कृशं स्थूलमणुर्बृहद्यद्
असच्च सञ्जीवमजीवमन्यत् ।
द्रव्यस्वभावाशयकालकर्म-
नाम्नाजयावेहि कृतं द्वितीयम् ॥१०॥

एवं कृशं स्थूलं अणुः बृहत् यत् असत् च सञ्जीवं अजीवं अन्यत् द्रव्य स्वभाव आशय काल कर्म नाम्ना अजया अवेहि कृतं द्वितीयम् ॥१०॥

एवं	इसी प्रकार	**अजीवं**	निर्जीव,
कृशं स्थूलं	दुबला-मोटा	**अन्यत्**	इनसे भिन्न
अणुः बृहत्	छोटा-बड़ा,	**द्रव्य स्वभाव**	द्रव्य (पदार्थ) स्वभाव (गुण)
यत्	जो है,		
असत् च	असत् ही है ।	**आशय**	अन्तःकरण,
सञ्जीवं	जीवन वाले,	**काल कर्म**	काल कर्म

नाम्ना	नामसे	**द्वितीयं**	(समस्त) द्वैत
अजया कृतं	माया कृत		प्रपञ्च
		अवेहि	जानो ॥१०॥

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेक-
मनन्तरं स्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं
यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥११॥

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थं एकं अनन्तरं स्वबहिः ब्रह्म सत्यं प्रत्यक् प्रशान्तं भगवत् शब्द संज्ञं यत् वासुदेवं कवयः वदन्ति ॥११॥

विशुद्धं ज्ञानं	विशुद्ध ज्ञान	**प्रत्यक्**	(वही) अन्तर्यामी
परमार्थं	परमार्थ स्वरूप,	**प्रशान्तं**	प्रशान्त
एकं	अद्वितीय	**भगवत् शब्द**	
अनन्तरं	अन्तर (भीतर-बाहर)के भेदसे रहित	**संज्ञं**	भगवान् शब्दसे कहा जाता है ।
स्वबहिः	अपनेसे बाहर	**यत् कवयः**	जिसे विद्वान
ब्रह्म सत्यं	ब्रह्म रूपसे सत्य है ।	**वासुदेवं वदन्ति**	वासुदेव कहते हैं ॥११॥

रहूगणैतत्तपसा न याति
न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा ।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यै-
र्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ॥१२॥

रहूगण एतत् तपसा न याति न च ईज्यया निर्वपणात् गृहात् वा न छन्दसा न एव जल अग्नि सूर्यैः विना महत् पादरजः अभिषेकम् ॥१२॥

रहूगण	राजा रहूगण !	**पादरजः**	चरण-धूलिमें
महत्	महापुरुषोंकी	**अभिषेकं विना**	स्नान किये बिना

एतत्	इसको
तपसा न यति	तपस्यासे नहीं पहुँचता
च ईज्यया न	और यज्ञसे भी नहीं,
निर्वपणात्	(अन्नादि पुण्य) बोने (करने)से,
वा गृहात्	अथवा गृहस्थ-धर्म-पालनसे,
छन्दसा न	वेदाध्ययनसे नहीं,
जल अग्नि सूर्यः	जल, अग्नि, सूर्य (की उपासना) से
न	नहीं (पा सकता) ॥१२॥

यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः
प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः ।
निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षो-
र्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे ॥१३॥

यत्र उत्तमश्लोक गुणानुवादः प्रस्तूयते ग्राम्य कथा विघातः निषेव्य-माणः अनुदिनं मुमुक्षुः मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे ॥१३॥

यत्र	जहाँ (महापुरुषोंके समीप)
ग्राम्य कथा	विषय-चर्चाको
विघातः	नष्ट करनेवाला
उत्तमश्लोक	पवित्र-कीर्ति (भगवान्)का
गुणानुवादः	गुण वर्णन
प्रस्तूयते	होता रहता है ।
अनुदिनं	प्रतिदिन
निषेव्यमाणः	उसका भली प्रकार सेवन करनेसे
मुमुक्षुः	मुक्त होनेकी इच्छा-वालेको
वासुदेवे	भगवान् वासुदेवमें
सतीं मतिं	शुद्ध-बुद्धि
यच्छति	(वह चर्चा) प्रदान करती है ॥१३॥

अहं पुरा भरतो नाम राजा
विमुक्तदृष्टश्रुतसङ्गबन्धः ।

आराधनं भगवत ईहमानो
मृगोऽभवं मृगसङ्गाद्धतार्थः ॥१४॥

अहं पुरा भरतः नाम राजा विमुक्त दृष्टश्रुत सङ्गबन्धः आराधनं भगवत ईहमानः मृगः अभवं मृगसङ्गात् हतार्थः ॥१४॥

पुरा अहं	पहिले मैं	**भगवत**	
भरतः नाम		**आराधनं**	भगवान्‌की आरा-
राजा	भरत नामका राजा था ।		धना की,
		ईहमानः	चेष्टाकर रहा था,
दृष्टश्रुत	देखे (लौकिक) सुने (स्वर्गादि))की		किन्तु
		मृगसङ्गात्	मृगमें आसक्ति होनेसे
सङ्गबन्धः	आसक्ति रूपी बन्धनसे	**हतार्थः**	परमार्थ नष्ट होकर
		मृगः अभवं	(मैं) मृग हो
विमुक्त	छूट गया था ।		गया ॥१४॥

सा मां स्मृतिर्मृगदेहेऽपि वीर
कृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति ।
अथो अहं जनसङ्गादसङ्गो
विशङ्कमानोऽविवृतश्चरामि ॥१५॥

सा मां स्मृतिः मृगदेहे अपि वीर कृष्णार्चन प्रभवा नो जहाति अथो अहं जनसङ्गात् असङ्गः विशङ्कमानः अविवृतः चरामि ॥१५॥

वीर	वीरवर !	**सा स्मृतिः**	उस (पूर्व-जन्मकी)
कृष्णार्चन	भगवान् श्रीकृष्णकी पूजासे		स्मृतिने
		मृगदेहे अपि	मृग शरीरमें होने- पर भी
प्रभवा	उत्पन्न	**मां नो जहाति**	मुझे नहीं छोड़ा

अथो अहं	अतः मैं	**असङ्गः**	असंग भावसे
जनसङ्गात्	लोगोंके साथसे	**अविवृतः**	गुप्त रूपसे
विशङ्कमानः	आशंकित होकर	**चरामि**	घूमता हूँ ॥१५॥

तस्मान्नरोऽसङ्गसुसङ्गजात-
ज्ञानासिनैहैव विवृक्णमोहः ।
हरिं तदीहाकथनश्रुताभ्यां
लब्धस्मृतिर्यात्यतिपारमध्वनः ॥१६॥

तस्मात् नरः असङ्ग सुसङ्ग जात ज्ञान असिना हि एव विवृक्णमोहः हरिं तत् ईहा कथन श्रुताभ्यां लब्धस्मृतिः याति अतिपारं अध्वनः ॥१६॥

तस्मात्	इसलिए	**हरिं**	श्रीहरिकी
नरः	मनुष्य	**तत् ईहा**	उस लीला
असङ्ग	आसक्तिहीन	**कथन**	वर्णन और
सुसङ्ग	सत्पुरुषोंके संगसे	**श्रुताभ्यां**	श्रवणसे
जात	उत्पन्न	**लब्धस्मृतिः**	भगवत्स्मृति पाकर
ज्ञान असिना		**अध्वनः**	(आवागमनके)
हि एव	ज्ञान रूपी तलवारसे ही		मार्गसे
		अतिपारं	सर्वथा पार
विवृक्णमोहः	मोहको काटकर	**याति**	पहुँचता है ॥१६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे ब्राह्मणरहूगण संवादे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच-

दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशितो
रजस्तमःसत्त्वविभक्तकर्मदृक् ।
स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन्
भवाटवीं याति न शर्म विन्दति ॥ १ ॥

दुरत्यये अध्वनि अजया निवेशितः रजः तमः सत्त्वविभक्त कर्मदृक्
स एष सार्थः अर्थपरः परिभ्रमन् भव अटवीं याति न शर्म विन्दति ॥१॥

अजया	माया द्वारा	**अर्थपरः**	धन-लोलुप
दुरत्यये	दुष्पार	**सार्थः**	(अनेक स्थानोंमें)
अध्वनि	मार्गमें		घूमकर व्यापार
निवेशितः	प्रविष्ट कराये		करनेवाला
	जाकर	**परिभ्रमन्**	चारो ओर घूमता
रजः तमः	रजोगुण, तमोगुण	**भव अटवीं**	संसार रूप वनमें
सत्त्वविभक्त	सत्वगुणमें बँटे	**याति**	पहुँचता है ।
कर्मदृक्	कर्मोंपर दृष्टि	**शर्म न**	शान्ति नहीं
	रखकर	**विन्दति**	पाता ॥१॥
स एष	वह यह		

यस्यामिमे षण्नरदेव दस्यवः
सार्थं विलुम्पन्ति कुनायकं बलात् ।
गोमायवो यत्र हरन्ति सार्थिकं
प्रमत्तमाविश्य यथोरणं वृकाः ॥२॥

यस्यां इमे षट् नरदेव दस्यवः सार्थं विलुम्पन्ति कुनायकं बलात् गोमायवः यत्र हरन्ति सार्थिकं प्रमत्तं आविश्य यथा उरणं वृकाः ॥ २ ॥

नरदेव	राजन् !
यस्यां	जिस (वन)में
इमे षट्	ये छः
दस्यवः	डाकू
कुनायकं	दुष्ट नायक वाले
सार्थं	व्यापारीको
बलात्	बलपूर्वक
विलुम्पन्ति	लूट लेते हैं ।
गोमायवः	शृगाल
यत्र	जहाँ
आविश्य	प्रवेश करके
यथा वृकाः	जैसे भेड़िये
उरणं	भेड़ोंको (उठा ले जाते हैं)
प्रमत्तं सार्थिकं	असावधान व्यापारीका
हरन्ति	हरण कर लेते हैं ॥२॥

प्रभूतवीरुत्तृणगुल्मगह्वरे
कठोरदंशैर्मशकैरुपद्रुतः ।
क्वचित्तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति
क्वचित्क्वचिच्चाशुरयोल्मुकग्रहम् ॥३॥

प्रभूत वीरुत् तृण गुल्म गह्वरे कठोरदंशैः मशकैः उपद्रुतः क्वचित् तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति क्वचित् क्वचित् आशुरयः उल्मुकग्रहम् ॥३॥

प्रभूत	बहुत अधिक
वीरुत् तृण	पौधे, घास
गुल्म	झाड़ियोंसे
गह्वरे	(उस) सघन (वन)में
कठोरदंशैः	तीक्ष्ण डाँस,
मशकैः	मच्छरोंसे
उपद्रुतः	पीड़ित होता
क्वचित्	कभी
गन्धर्वपुरं	गन्धर्व नगर
प्रपश्यति	देखता है,
क्वचित्	
क्वचित् तु	कभी-कभी तो
आशुरयः	बहुत वेगवान
उल्मुकग्रहं	अगिया-वैताल (दीखता है) ॥३॥

निवासतोयद्रविणात्मबुद्धि-
स्तस्ततो धावति भो अटव्याम् ।

क्वचिच्च वात्योत्थितपांसुधूम्रा
दिशो न जानाति रज स्वलाक्षः ॥ ४ ॥

निवास तोय द्रविण आत्मबुद्धिः ततः ततः धावति भो अढव्यां क्वचित् च वात्या उत्थित पांसु धूम्रा दिशः न जानाति रज स्वल अक्षः ॥४॥

निवास	ठहरनेके स्थान
तोय द्रविण	जल तथा धनको
आत्मबुद्धिः	अपना स्वरूप मानकर
ततः ततः	जहाँ-तहाँ
भो अढव्यां	इस वनमें
धावति	दौड़ता रहता है।
च क्वचित्	और कभी
वात्या उत्थित	बवण्डरसे उठी
पांसु	धूलिसे
धूम्रा दिशः	धुँधली दिशाओंको
रज स्वल अक्षः	आँखोंमें धूलि भर जानेसे
न जानाति	नहीं जानता ॥४॥

अदृश्यझिल्लीस्वनकर्णशूल
उलूकवाग्भिर्व्यथितान्तरात्मा ।
अपुण्यवृक्षान् श्रयते क्षुधार्दितो
मरीचितोयान्यभिधावति क्वचित् ॥५॥

अदृश्य झिल्लीस्वन कर्णशूल उलूक वाक्भिः व्यथित अन्तरात्मा अपुण्य वृक्षान् श्रयते क्षुधा अर्दितः मरीचि तोयान् अभिधावति क्वचित् ॥५॥

अदृश्य	दिखायी न देनेवाले
कर्णशूल	कर्ण-कटु
झिल्लीस्वन	झींगुरोंका शब्द और
उलूक	उल्लूकी
वाक्भिः	बोलीसे
अन्तरात्मा व्यथित	(उसका) चित्त दुःखी होता है।
क्षुधा अर्दितः	भूखसे पीड़ित होकर
अपुण्य वृक्षान्	अपवित्र वृक्षोंका
श्रयते	आश्रय लेता है,
क्वचित्	कभी
मरीचि तोयान्	किरणोंमें दीखने-वाले जलकी ओर
अभिधावति	दौड़ता है ॥५॥

क्वचिद्वितोयाः सरितोऽभियाति
परस्परं चालषते निरन्धः
आसाद्य दावं क्वचिदग्नितप्तो
निर्विद्यते क्व च यक्षैर्हृतासुः ॥६॥

क्वचित् वितोयाः सरितः अभियाति परस्परं च आलषते निरन्धः आसाद्य दावं क्वचिद् अग्नितप्तः निर्विद्यते क्व च यक्षैः हृत असुः ॥६॥

क्वचित्	कभी
वितोयाः	जलहीन
सरितः	नदियों
अभियाति	की ओर जाता है,
निरन्धः	अन्न न मिलनेपर
परस्परं च आलषते	आपसमें ही (अन्न) पाना चाहता है।
क्वचित्	कभी
दावं आसाद्य	दावानलमें पहुँचकर
अग्नितप्तः	अग्निसे संतप्त होता है,
क्व च	कभी
यक्षैः	यक्षों द्वारा
हृत असुः	प्राण हरण होते (देखकर)
निर्विद्यते	खिन्न हो जाता है ॥६॥

शूरैर्हृतस्वः क्व च निर्विण्णचेताः
शोचन् विमुह्यन्नुपयाति कश्मलम्।
क्वचिच्च गन्धर्वपुरं प्रविष्टः
प्रमोदते निर्वृतवन्मुहूर्तम् ॥७॥

शूरैः हृत स्वः क्व च निर्विण्ण चेताः शोचन् विमुह्यन् उपयाति कश्मलं क्वचित् च गन्धर्वपुरं प्रविष्टः प्रमोदते निर्वृतवत् मुहूर्तम् ॥७।

क्व च	कभी
शूरैः	बलवानों द्वारा
स्वः हृतः	स्वत्व हरण होनेपर
निर्विण्ण चेताः	दुःखी-चित्त
शोचन्	शोक करते,
विमुह्यन्	मोहग्रस्त हो
कश्मलं	मूर्छामें
उपयाति	पहुँच जाता है

च क्वचित्	और कभी
गन्धर्वपुरं	गन्धर्व नगरमें
प्रविष्टः	प्रवेश करके
निर्वृतवत्	दुःखोंसे मुक्तकी भाँति
मुहूर्तं	घण्टे भर
प्रमोदते	आनन्द मनाता है ॥७॥

चलन् क्वचित्कण्टकशर्कराङ्घ्रि-
र्नगारुरुक्षुर्विमना इवास्ते ।
पदे पदेऽभ्यन्तरवह्निनार्दितः
कौटुम्बिकः क्रुध्यति वै जनाय ॥८॥

चलन् क्वचित् कण्टक शर्करा अङ्घ्रि नग आरुरुक्षुः विमना इव आस्ते पदे पदे अभ्यन्तर वह्निना अर्दितः कौटुम्बिकः क्रुध्यति वै जनाय ॥८॥

क्वचित्	कभी
नग आरुरुक्षुः	पर्वतपर चढ़ना चाहता है तो
कण्टक शर्करा	काँटे-कंकड़
अङ्घ्रिः	पैरमें चुभनेसे
विमना इव	उदास-सा
आस्ते	हो जाता है ।
पदे पदे	पद-पदपर
अभ्यन्तर	(अपने) भीतरकी
वह्निना	आग (भूख)से
अर्दितः	पीड़ित
कौटुम्बिकः	कुटुम्बवान होनेसे
वै जनाय	अपने ही लोगोंपर
क्रुध्यति	क्रोध करता है ॥८॥

क्वचिन्निगीर्णोऽजगराहिना जनो
नावैति किञ्चिद्विपिनेऽपविद्धः ।
दष्टः स्म शेते क्व च दन्दशूकै-
रन्धोऽन्धकूपे पतितस्तमिस्रे ॥९॥

क्वचित् निगीर्णः अजगर अहिना जनः न अवैति किञ्चित् विपिने अपविद्धः दष्टः स्म शेते क्व च दन्द शूकैः अन्धः अन्धकूपे पतितः तमिस्रे ॥९॥

क्वचित्	कभी
अजगर अहिना	अजगर सर्प द्वारा
निगीर्णः	निगल लिये जानेपर
विपिने	वनमें
अपविद्धः	फेंकें के समान
जनः	मनुष्य
किंचित् न	कुछ भी नहीं
अवैति	जानता।
क्व च	कभी
दन्द शूकैः	डँसने वालोंसे
दष्टः स्म	डँसे जानेपर
तमिस्रे	अन्धकार पूर्ण
अन्धकूपे	अन्धे कुएँमें
अन्धः	अन्धा होकर
पतितः	गिरता है ॥९॥

कर्हि स्म चित्क्षुद्ररसान् विचिन्वं-
स्तन्मक्षिकाभिर्व्यथितो विमानः ।
तत्रातिकृच्छ्रात्प्रतिलब्धमानो
बलाद्विलुम्पन्त्यथ तं ततोऽन्ये ॥१०॥

कर्हि स्म चित् क्षुद्ररसान् विचिन्वन् तत् मक्षिकाभिः व्यथितः विमानः तत्र अतिकृच्छ्रात् प्रतिलब्धमानः बलात् विलुम्पन्ति अथ तं ततः अन्येः ॥१०॥

कर्हि स्म चित्	किसी समय
क्षुद्ररसान्	शहद
विचिन्वन्	ढूँढ़ते समय
तत्	उस (शहद)की
मक्षिकाभिः	मक्खियों द्वारा
व्यथितः	पीड़ित होकर
विमानः	गलित अभिमान हो जाता है
तत्र	वहाँ
अतिकृच्छ्रात्	बड़े कष्टसे
प्रतिलब्धमानः	(जो कुछ) पाता है
तं	उसे
अथ बलात्	फिर बलपूर्वक
विलुम्पन्ति	(कोई) लूट लेते हैं,
ततः अन्ये	उन (लूटने वालों)से
अन्ये	दूसरे (लूट लेते हैं।)॥१०॥

क्वचिच्च शीतातपवातवर्ष-
प्रतिक्रियां कर्तुमनीश आस्ते ।

क्वचिन्मिथो विपणन् यच्च किञ्चिद्
विद्वेषमृच्छत्युत वित्तशाठ्यात् ॥११॥

क्वचित् च शीत आतप वात वर्ष प्रतिक्रियां कर्तुं अनीश आस्ते क्वचित् मिथः विपणन् यत् च किञ्चित् विद्वेषं ऋच्छति उत वित्त-शाठ्यात् ॥११॥

क्वचित् च	कभी तो
शीत आतप	सर्दी-गर्मी
वात वर्ष	आँधी, वर्षाका
प्रतिक्रियां	प्रतिकार (निवारण)
कर्तुं	करनेमें
अनीश आस्ते	असमर्थ हो जाता है,
क्वचित्	कभी
यत् च	जो भी
किञ्चित्	कुछ (पास) है,
मिथः विपणन्	परस्पर उसका व्यापार करनेमें
वित्तशाठ्यात्	धनकी शठता (कृपणता)से
उत	उनसे ही
विद्वेषं	शत्रुता
ऋच्छति	ठान लेता है ॥११॥

क्वचित्क्वचित्क्षीणधनस्तु तस्मिन्
शय्यासनस्थानविहारहीनः ।
याचन् परादप्रतिलब्धकामः
पारक्यदृष्टिर्लभतेऽवमानम् ॥१२॥

क्वचित् क्वचित् क्षीण धनः तु तस्मिन् शय्याआसन स्थान विहार हीनः याचन् परात् अप्रतिलब्ध कामः पारक्यदृष्टिः लभते अवमानम् ॥१२॥

क्वचित्	कभी-
क्वचित्	कभी
क्षीण धनः तु	धन नष्ट हो जानेपर तो
तस्मिन्	उस (वन)में
शय्या आसन	शय्या, आसन,
स्थान विहार	रहनेके स्थान, आमोद प्रमोदसे

हीनः	रहित होकर
परात् याचन्	दूसरोंसे माँगनेपर
कामः	कामनाके अनुसार
अप्रतिलब्ध	न मिलनेसे
पारक्यदृष्टिः	परायी वस्तुपर दृष्टि रखनेसे
अवमान	अपमान
लभते	पाता है ॥१२॥

अन्योन्यवित्तव्यतिषङ्गवृद्ध-
वैरानुबन्धो विवहन्मिथश्च ।
अध्वन्यमुष्मिन्नुरुकृच्छ्रवित्त-
बाधोपसर्गैर्विहरन् विपन्नः ॥१३॥

अन्योन्य वित्तव्यतिषङ्ग वृद्ध वैर अनुबन्धः विवहन् मिथः च अध्वनि अमुष्मिन् उरुकृच्छ्र वित्तबाध उपसर्गैः विहरन् विपन्नः ॥१३॥

वित्तव्यतिषङ्ग	धनकी आसक्तिसे
अन्योन्य	परस्पर
वैर अनुबन्ध	शत्रुताका भाव
वृद्ध	बढ़ जानेपर भी
मिथः च	आपसमें ही
विवहन च	विवाह करते हैं,
अमुष्मिन्	इस
अध्वनि	मार्गमें
उरुकृच्छ्र	भारी कष्ट तथा
वित्तबाध	धनकी बाधा आदि
उपसर्गैः	संकटोंको
विहरन्	झेलता हुआ
विपन्नः	मृतवत् हो जाता है ॥१३॥

तांस्तान् विपन्नान् स हि तत्र तत्र
विहाय जातं परिगृह्य सार्थः ।
आवर्ततेऽद्यापि न कश्चिदत्र
वीराध्वनः पारमुपैति योगम् ॥१४॥

तान् तान् विपन्नान् स हि तत्र तत्र विहाय जातं परिगृह्य सार्थः आवर्तते अद्यापि न कश्चित् अत्र वीर अध्वनः पारं उपैति योगम् ॥१४॥

तान् तान्	उन-उन
विपन्नान्	मरे लोगोंको
तत्र तत्र	जहाँ का तहाँ
विहाय	छोड़कर
सार्थः	(दूसरे) व्या-पारियोंको
परिगृह्य	साथ लेकर
हि स	क्योंकि वह (व्यापारी-दल)
जातं	(आगे) जाता है,
वीर	वीरवर !
अद्यापि	आज तक भी
कश्चित् अत्र	कोई यहाँ
आवर्तते न	लौटता नहीं,
(न) अध्वनः	(न) इस मार्गसे
पारं	पार जानेके
योगं उपैति	साधनके समीप पहुँचता ॥१४॥

मनस्विनो निर्जितदिग्गजेन्द्रा
ममेति सर्वे भुवि बद्धवैराः ।
मृधे शयीरन्न तु तद्व्रजन्ति
यन्न्यस्तदण्डो गतवैरोऽभियाति ॥१५॥

मनस्विनः निर्जित दिक् गजेन्द्राः मम इति सर्वे भुवि बद्धवैराः मृधे शयीरन् न तु तत् व्रजन्ति यत् न्यस्त दण्डः गतवैरः अभियाति ॥१५॥

दिक् गजेन्द्राः	दिग्गजोंको भी
निर्जित	जीत लेनेवाले,
सर्वे	सब
मनस्विनः	मनस्वी लोग
भुवि मम इति	पृथ्वी मेरी है, इस भावसे
बद्धवैरा.	शत्रुता बाँधकर
मृधे शयीरन्	युद्धमें सो गये
तु	किन्तु
न तत्	उस (पद)पर नहीं
व्रजन्ति	जा पाते
यत्	जिसपर
न्यस्त दण्डः	(किसीको भी) दण्ड देना त्याग देनेवाले
गतवैरः	शत्रुता रहित
अभियाति	(महापुरुष) पहुँचते हैं ॥१५॥

प्रसज्जति क्वापि लताभुजाश्रय-
स्तदाश्रयाव्यक्तपदद्विजस्पृहः ।
क्वचित्कदाचिद्धरिचक्रतस्त्रसन्
सख्यं विधत्ते बककङ्कगृध्रैः ॥१६॥

प्रसज्जति क्वापि लताभुज आश्रयः तत् आश्रय अव्यक्तपद द्विजस्पृहः क्वचित् कदाचित् हरिचक्रतः त्रसन् सख्यं विधत्ते बक कङ्क गृध्रैः ॥१६॥

कदाचित्	
क्वचित्	कदाचित् कभी
लताभुज	लताकी डालियोंका
आश्रयः	आश्रय लेकर
प्रसज्जति	(उसमें) आसक्त होता है,
अव्यक्त पद	(उसमें) छिपकर रहनेवाले
द्विजस्पृहः	पक्षियोंसे स्पृहा करता है।
क्वापि	कभी
हरिचक्रतः	सिंहोंके झुण्डसे
त्रसन्	डरकर
बक कङ्क	बगुले, काँक* और
गृध्रैः आश्रय	गीधोंका आश्रय लेकर
तत् सख्यं विधत्ते	वह मित्रता करता है ॥१७॥

तैर्वञ्चितो हंसकुलं समाविश-
न्नरोचयन् शीलमुपैति वानरान् ।
तज्जातिरासेन सुनिर्वृतेन्द्रियः
परस्परोद्वीक्षणविस्मृतावधिः ॥१७॥

तैः वञ्चितः हंसकुलं समाविशत् न रोचयन् शीलं उपैति वानरान् तत् जाति रासेन सुनिर्वृत इन्द्रियः परस्पर उद्वीक्षण विस्मृत अवधिः ॥१७॥

---

*गीध और चीलके बीचके इस पक्षीको चमर-गिद्धा भी कहा जाता है। मद्रासके पासके पक्षि-तीर्थमें इसीका दर्शन दोपहरमें यात्रियोंको वहाँ के पंडे कराते हैं।

तैः वञ्चितः	उनके द्वारा ठगे जानेपर
हंसकुलं	हंसोंके समाजमें
समाविशत्	प्रविष्ट हुआ,
न रोचयन्	(वह उसे) रुचिकर नहीं लगा,
वानरान् शीलं	(तब) बन्दरोंका आचरण
उपैति	अपना लिया।
तत् जाति	उनकी जातिके
रासेन	समान रहते
इन्द्रियः	(उसकी) इन्द्रियां
सुनिर्वृत	बहुत सुखी हुईं।
परस्पर	परस्पर (एक-दूसरे
उद्वीक्षण	को) देखनेमें
अवधिः	(आयुकी) सीमा
विस्मृत	भूल गयी ॥१७॥

द्रुमेषु रंस्यन् सुतदारवत्सलो
व्यवायदीनो विवशः स्वबन्धने।
क्वचित्प्रमादाद्गिरिकन्दरे पतन्
वल्लीं गृहीत्वा गजभीत आस्थितः ॥१८॥

द्रुमेषु रंस्यन् सुतदार वत्सलः व्यवायदीनः विवशः स्वबन्धने क्वचित् प्रमादात् गिरिकन्दरे पतन् वल्लीं गृहीत्वा गजभीत आस्थितः ॥१८॥

द्रुमेषु	पेड़ोंपर
रंस्यन्	क्रीड़ा करता हुआ
सुतदार	पुत्र-स्त्रीसे
वत्सलः	प्रेम करता है,
व्यवायदीनः	सम्भोगकी इच्छासे दीन
स्वबन्धने	अपने ही (स्नेह) बन्धनसे
विवशः	विवश रहता है।
क्वचित्	कभी
प्रमादात्	असावधानीवश
गिरिकन्दरे	पर्वतकी गुफामें
पतन्	गिरते समय
वल्लीं गृहीत्वा	लता पकड़कर (लटका)
गजभीत	हाथीसे डरता
आस्थितः	रहता है ॥१८॥

अतः कथञ्चित्स विमुक्त आपदः
पुनश्च सार्थं प्रविशत्यरिन्दम।
अध्वन्यमुष्मिन्नजया निवेशितो
भ्रमञ्जनोऽद्यापि न वेद कश्चन ॥१९॥

अतः कथञ्चित् स विमुक्त आपदः पुनः च साथं प्रविशति अरिन्दम अध्वनि अमुष्मिन् अजया निवेशितः भ्रमन् जनः अद्य अपि न वेद कश्चन ॥१९॥

अरिन्दम	शत्रुदमन !	**निवेशितः**	प्रविष्ट कराया गया
अतः			
कथञ्चित्	किसी प्रकार कभी	**अमुष्मिन्**	
स आपदः		**अध्वनि**	इस मार्गमें
विमुक्तः	वह आपत्तिसे छूटा (तो)	**भ्रमन् जनः**	भटकते हुए लोगोंमें-से
पुनः च	फिरसे	**अद्य अपि**	अब तक भी
साथं प्रविशति	वे व्यापारी-दलमें प्रवेश करता है ।	**कश्चन**	कोई
		वेद न	(अपना भटकना) जानता नहीं ॥१९॥
अजया	मायाके द्वारा		

रहूगण त्वमपि ह्यध्वनोऽस्य
संन्यस्तदण्डः कृतभूतमैत्रः ।
असञ्जितात्मा हरिसेवया शितं
ज्ञानासिमादाय तरातिपारम् ॥२०॥

रहूगण त्वं अपि हि अध्वनः अस्य संन्यस्त दण्डः कृत भूतमैत्रः असञ्जित आत्मा हरिसेवया शितं ज्ञान असिं आदाय तर अतिपारम् ॥२०॥

रहूगण	रहूगण !	**असञ्जित**	अनासक्त
हि	क्योंकि	**आत्मा**	चित्त होकर
त्वं अपि	तुम भी	**हरिसेवया**	श्रीहरिकी सेवासे
अस्य	इसके	**सितं**	तीक्ष्ण हुई
अध्वनः	पथिक हो (अतः)	**ज्ञान असिं**	ज्ञान रूपी तलवार
दण्डः संन्यस्त	(लोगोंको) दण्ड देना त्यागकर,	**आदाय**	लेकर
		अतिपारं तर	(इस) दुष्पारको पारकर जाओ॥२०॥
भूतमैत्रः कृतः	प्राणियोंसे मित्रता करके		

रहूगण उवाच-*

अहो नृजन्माखिलजन्मशोभनं
किं जन्मभिस्त्वपरैरप्यमुष्मिन् ।
न यद्धृषीकेशयशःकृतात्मनां
महात्मनां वः प्रचुरः समागमः ॥२१॥

अहो नृ जन्म अखिलजन्म शोभनं किं जन्मभिः तु अपरैः अपि अमुष्मिन् न यत् हृषीकेश यशः कृत आत्मनां महात्मनां वः प्रचुरः समागमः ॥२१॥

अहो	अहो,	**हृषीकेश यशः**	भगवान् हृषीकेशके यशसे
अखिलजन्म	समस्त (योनियोंमें) जन्मसे	**आत्मनां कृत**	चित्तको शुद्ध किये
नृजन्म	मनुष्य-जन्म	**वः महात्मनां**	आपसे महात्माओंका
शोभनं	सुन्दर हूँ,	**प्रचुरः**	अधिकाधिक
अपरैः अपि	दूसरे (देवादि) भी	**समागमः**	मिलन
जन्मभिः तु	जन्मोंसे तो	**न**	नहीं होता ॥२१॥
किं	क्या (लाभ)		
यत् अमुष्मिन्	क्योंकि उनमें		

न ह्यद्भुतं त्वच्चरणाब्जरेणुभि-
र्हतांहसो भक्तिरधोक्षजेऽमला ।
मौहूर्तिकाद्यस्य समागमाच्च मे
दुस्तर्कमूलोऽपहतोऽविवेकः ॥२२॥

न हि अद्भुतं त्वत् चरणाब्ज रेणुभिः हत अंहसः भक्तिः अधोक्षजे अमला मौहूर्तिकात् यस्य समागमात् च मे दुस्तर्क मूलः अपहत अविवेकः ॥२२॥

---

*अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'राजोवाच' है ।

त्वत्	आपके
चरणाब्ज	चरण-कमलोंकी
रेणुभिः	रजसे
अंहसः हत	पाप नष्ट हो जानेसे
अधोक्षजे	भगवान् हृषीकेशमें
अमला	निर्मल
भक्तिः	भक्ति (हो जाना)
अद्भुतं	आश्चर्यजनक
न हि	नहीं है,
यस्य	जिनके
मौहूर्तिकात्	दो घड़ीके
समागमात् च	मिलन (सत्संग)से ही
मे	मेरा
दुस्तर्क मूलः	कुतर्ककी जड़
अविवेकः	अज्ञान
अपहतः	नष्ट हो गया ॥२२॥

नमो महद्भ्योऽस्तु नमः शिशुभ्यो
नमो युवभ्यो नम आ वटुभ्यः ।
ये ब्राह्मणा गामवधूतलिङ्गा-
श्चरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम् ॥२३॥

नमः महद्भ्यः अस्तु नमः शिशुभ्यः नमः युवभ्यः नमः आ वटुभ्यः ये ब्राह्मणाः गां अवधूत लिङ्गाः चरन्ति तेभ्यः शिवं अस्तु राज्ञाम् ॥२३॥

महद्भ्यः नमः	महापुरुषोंको नमस्कार
शिशुभ्यः नमः	(वे) शिशु हों (तो भी) उन्हें नमस्कार
युवभ्यः नमः	युवक हों (तो) उन्हें नमस्कार
आ वटुभ्यः	सब ब्रह्मचारियोंको
नमः अस्तु	नमस्कार होवे ।
ये ब्राह्मणाः	जो ब्रह्मज्ञानी
गां	पृथ्वीपर
अवधूत लिङ्गाः	अवधूत वेशमें
चरन्ति	घूमते हैं
तेभ्यः	उनसे
राज्ञां	राजाओंका
शिवं अस्तु	कल्याण हो ॥२३॥

श्रीशुक उवाच-

इत्येवमुत्तरामातः स वै ब्रह्मर्षिसुतः सिन्धुपतय आत्मसत्त्वं विगणयतः परानुभावः परमकारुणिकतयोपदिश्य रहूगणेन

सकरुणमभिवन्दितचरण आपूर्णार्णव इव निभृतकरणोर्म्याशयो धरणिमिमां विचचार ॥२४॥

इति एवं उत्तरामातः स वै ब्रह्मर्षि सुतः सिन्धुपतयः आत्म असतत्त्वं विगणयतः परानुभावः परमकारुणिकतया उपदिश्य रहूगणेन सकरुणं अभिवन्दितचरण आपूर्ण अर्णव इव निभृत करण उर्मि आशयः धरणि इमां विचचार ॥२४॥

उत्तरामातः	उत्तरानन्दन !
इति इवं	इस प्रकार
वै	निश्चय
परानुभावः	परम प्रभावशाली
स ब्रह्मर्षि सुतः	उन ब्रह्मर्षि पुत्रने
आत्म असतत्त्वं	अपने अनादरकी
विगणयतः	अवगणना (उपेक्षा) करके
सिन्धुपतय	सिन्धु-नरेशको
परम-कारुणिकतया	परम-करुणकर होनेसे
उपदिश्य	उपदेश करके
रहूगणेन	रहूगण द्वारा
सकरुणं	दीन भावसे
अभिवन्दित-चरण	चरणोंमें प्रणामकर लेनेपर
आपूर्ण अर्णव	परिपूर्ण समुद्रकी
इव	भाँति
करण उर्मि	इन्द्रिय लहरों तथा
आशयः	चित्तको
निभृत	शान्त किये
इमां धरणि	इस पृथ्वीपर
विचचार	विचरने लगे ॥२४॥

सौवीरपतिरपि सुजनसमवगतपरमात्मसतत्त्व आत्मन्यविद्याध्यारोपितां च देहात्ममतिं विससर्ज । एवं हि नृप भगवदाश्रिताश्रितानुभावः ॥२५॥

सौवीरपतिः अपि सुजन समवगत परमात्म सतत्त्व आत्मनि अविद्या अध्यारोपितां च देहात्ममतिं विससर्ज। एवं हि नृप भगवत् आश्रित आश्रित अनुभावः ॥२५॥

सौवीरपतिः	
अपि	सौवीर राजाने भी
सुजन	(उन) सत्पुरुषसे
परमात्म	परमात्माके
सतत्त्व	तत्त्वको
समवगत	भली प्रकार जानकर
आत्मनि	आत्मामें
अविद्या च	अविद्यासे ही
अध्यारोपितां	अध्यारोपित
देहात्ममतिं	शरीरमें आत्मबुद्धि
विससर्ज	त्याग दिया
नृप	राजन् (परीक्षित)
भगवत्	भगवान्के
आश्रित	आश्रितोंके
आश्रित	आश्रितों (दासानु-दासों)का
एवं हि	ऐसा ही
अनुभावः	प्रभाव (होता) है ॥२५॥

राजोवाच-

यो ह वा इह बहुविदा महाभागवत त्वयाभिहितः परोक्षेण वचसा जीवलोकभवाध्वा स ह्यार्यमनीषया कल्पितविषयो नाञ्जसाव्युत्पन्नलोकसमधिगमः। अथ तदेवैतद्दुरवगमं समवेतानुकल्पेन निर्दिश्यतामिति ॥२६॥

यः ह वा इह बहुविदा महाभागवत त्वया अभिहितः परोक्षेण वचसा जीवलोक भव अध्वा स हि आर्य मनीषया कल्पित विषयः न अञ्जसा अव्युत्पन्न लोक समधिगमः अथ तत् एव एतत् दुरवगमं समवेत अनुकल्पेन निर्दिश्यतां इति ॥२६॥

यः ह वा	जो निश्चित ही
इह	यहाँ
बहुविदा	बहुज्ञ
महाभागवत	परम भगवद्भक्त
त्वया	आपने
परोक्षेण वचसा	परोक्ष वाणीसे
जीवलोक	जीवोंका
भव अध्वा	संसार-मार्ग
अभिहितः	वर्णन किया,
हि स	क्योंकि वह
आर्य मनीषया	श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा

कल्पित	कल्पित
विषयः	विषय है,
एतत् अव्युत्पन्न	यह अल्प बुद्धिवाले
लोक	लोगोंको
अञ्जसा	सरलतासे
समधिगमः न	भली प्रकार समझमें नहीं आ सकता ।
अथ	अतः
तत् एव	
दुरवगमं	उसी दुर्बोध (विषय)को
समवेत	
अनुकल्पेन	स्पष्टीकरणकी विधिसे
इति	इस प्रकार
निर्दिश्यताम्	समझाइये ॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

शुक उवाच-*

य एष देहात्ममानिनां सत्त्वादिगुणविशेषविकल्पितकुशलाकुशलसमवहारविनिर्मितविविधदेहावलिर्भिवियोगसंयोगाद्यनादिसंसारानुभवस्य द्वारभूतेन षडिन्द्रियवर्गेण तस्मिन्दुर्गाध्ववदसुगमेऽध्वन्यापतित ईश्वरस्य भगवतो विष्णोर्वंशवर्तिन्या मायया जीवलोकोऽयं यथा वणिक्सार्थोऽर्थपरः स्वदेहनिष्पादितकर्मानुभवः श्मशानवदशिवतमायां संसाराटव्यां गतो नाद्यापि विफलबहुप्रतियोगेहस्तत्तापोपशमनीं हरिगुरुचरणारविन्दमधुकरानुपदवीमवरुन्धे यस्यामु ह वा एते षडिन्द्रियनामानः कर्मणा दस्यव एव ते ॥१॥

य एष देह आत्म मानिनां सत्त्वादि गुणविशेष विकल्पित कुशल अकुशल समवहार विनिर्मित विविध देह अवलिभिः वियोग संयोग आदि अनादि संसार अनुभवस्य द्वारभूतेन षट् इन्द्रिय वर्गेण तस्मिन् दुर्ग अध्ववत् असुगमे अध्वनि आपतित ईश्वरस्य भगवतः विष्णोः वशवर्तिन्या मायया जीव लोकः अयं यथा वणिक् सार्थः अर्थपरः स्वदेह निष्पादित कर्म अनुभवः श्मशानवत् अशिवतमायां संसार अटव्यां गतः न अद्य अपि विफल बहु प्रतियोग इहः तत् ताप उपशमनीं हरिगुरु चरणारविन्द मधुकर अनुपदवीं अवरुन्धे यस्यां उ ह वा एते षडिन्द्रिय नामानः कर्मणा दस्यव एव ते ॥१॥

य एष	जो यह	**सत्त्वादि गुण-**	
देह आत्म		**विशेष**	सत्त्व आदि गुणोंमें-से
मानिनां	शरीरको ही आत्मा		किसीको विशेषतासे
	माननेवालोंका	**कुशल अशकुल**	शुभ, अशुभ,

*अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'स होवाच' है।

समवहार मिश्रित (कर्मों)से
विनिर्मित बने हुए
विविध नाना प्रकारके
देह शरीर
अवलिभिः समुदायके
वियोग संयोग वियोग-संयोग
आदि आदि
संसार संसार
अनुभवस्य (उसके) अनुभवके
द्वार भूतेन द्वार रूप
षट् इन्द्रिय छः इन्द्रिय
वर्गेण समूह (मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियों) द्वारा
तस्मिन् उस
दुर्ग अध्ववत् बीहड़ मार्गके समान
असुगमे दुर्गम
अध्वनि मार्गमें
भगवतः भगवान्
ईश्वरस्य सर्वेश्वर
विष्णोः विष्णुके
वशवर्तिन्या वशमें रहनेवाली
मायया माया द्वारा
अयं जीव यह जीव
लोकः समुदाय
आपतित गिर (लग) गया है।
यथा वणिक्
सार्थः जैसे व्यापारी-दल
अर्थ परः धन परायण हो।
स्वदेह अपने शरीरसे
निष्पादित सम्पन्न किये गये
कर्म अनुभवः कर्मोंके अनुभवसे
श्मशानवत् श्मशानकी भाँति
अशिवतमायां अत्यन्त अमंगल रूप
संसार अटव्यां संसार रूपी वनमें
गतः चला गया है।
अद्य अपि आज तक भी
बहु प्रतियोग बहुतसे उद्योगोंके
विफल असफल होनेसे
उ ह निश्चय ही
तत् ताप (उत्पन्न) उसके तापको
उपशमनीं शान्त करनेवाली
हरिगुरु श्रीहरि और गुरुदेवके
चरणारविन्द चरण-कमलोंके
मधुकर भ्रमरका
अनुपदवीं स्थान
न अवरुन्धे नहीं ले सका।
यस्यां जिस (भवाटवी) में
उ ह वा निश्चय ही ये
एते इतने
षट् इन्द्रिय छः इन्द्रिय
नामानः नामवाले
ते कर्मणा वे कर्मसे
दस्यव एव डाकू ही (रहते) हैं ॥१॥

तद्यथा पुरुषस्य धनं यत्किञ्चिद्धर्मोपयिकं बहुकृच्छ्राधिगतं साक्षात्परमपुरुषाराधनलक्षणो योऽसौ धर्मस्तं तु साम्पराय उदाहरन्ति । तद्धर्म्यं धनं दर्शनस्पर्शनश्रवणास्वादनावघ्राणसङ्कल्पव्यवसायगृहग्राम्योपभोगेन कुनाथस्याजितात्मनो यथा सार्थस्य विलुम्पन्ति ॥२॥

तत् यथा पुरुषस्य धनं यत् किञ्चित् धर्म उपयिकं बहु कृच्छ्र अधिगतं साक्षात् परमपुरुष आराधन लक्षणः यः असौ धर्मः तं तु साम्परायं उदाहरन्ति । तत् धर्म्यं धनं दर्शन स्पर्श न श्रवण आस्वादन अवघ्राण सङ्कल्प व्यवसाय गृहग्राम्य उपभोगेन कुनाथस्य अजित आत्मनः यथा सार्थस्य विलुम्पन्ति ॥२॥

तत् यथा	वह जैसे	**श्रवण**	सुनने,
पुरुषस्य	पुरुषका	**आस्वादन**	स्वाद लेने,
बहु कृच्छ्र	बहुत कष्टसे	**अवघ्राण**	सूँघने,
अधिगतं	पाया	**सङ्कल्प**	संकल्प करनेके
यत् किञ्चित	जो कुछ थोड़ा	**व्यवसाय**	व्यापार रूप
धनं	धन	**गृहग्राम्य**	गृहस्थके विषय
धर्म उपयिकं	धर्मोपार्जन है ।	**उपभोगेन**	भोगोंको भोगनेमें (लगकर)
साक्षात्	साक्षात्	**यथा**	जैसे
परमपुरुष	परम-पुरुषकी	**अजित**	बिना जीते
आराधन	आराधना	**आत्मनः**	मनवाले
लक्षणं	रूप	**कुनाथस्य**	बुरे (वेइमान) स्वामीवाले
असौ यः धर्मः	यह जो धर्म है,	**सार्थस्य**	व्यापारी दलका
तं तु साम्परायं	उसे तो परलोकके लिए	**विलुम्पन्ति**	(डाकू) लूट लेते हैं (इन्द्रियाँ – इसका धर्म-धन लूट लेती हैं) ॥२॥
उदाहरन्ति	बतलाया गया है ।		
तत् धर्म्यं	उस धर्मरूप		
धनं	धनको		
दर्शन स्पर्श न	देखने, छूने,		

अथ च यत्र कौटुम्बिका दारापत्यादयो नाम्ना कर्मणा वृक-सृगाला एवानिच्छतोऽपि कदर्यस्य कुटुम्बिन उरणकवत्संरक्ष्यमाणं मिषतोऽपि हरन्ति ॥३॥

अथ च यत्र कौटुम्बिका दारा अपत्य आदयः नाम्ना कर्मणा वृक शृगाला एव अनिच्छतः अपि कदर्यस्य कुटुम्बिनः उरणकवत् संरक्ष्यमाणं मिषतः अपि हरन्ति ॥३॥

अथ च	फिर और भी,	**कुटुम्बिनः**	कुटुम्बीका
यत्र	जहाँ (संसार-वनमें)	**उरणकवत्**	भेड़ोंके समान
कौटुम्बिका	कुटुम्बके सदस्य	**संरक्ष्यमाणं**	सुरक्षित किये (धन) को
दारा अपत्य	स्त्री, पुत्र	**अनिच्छतः**	(उसकी) इच्छा न होनेपर भी
आदयः	इत्यादि	**अपि**	
नाम्ना	नामक हैं	**मिषतः अपि**	(उसके) देखते होनेपर भी
कर्मणा	कर्मसे (वे)	**हरन्ति**	छीन लेते हैं ॥३॥
वृक शृगाला	भेड़िये, सियार		
एव	ही हैं,		
कदर्यस्य	कंजूस		

यथा ह्यनुवत्सरं कृष्यमाणमप्यदग्धबीजं क्षेत्रं पुनरेवावपन-काले गुल्मतृणवीरुद्भिर्गह्वरमिव भवत्येवमेव गृहाश्रमः कर्मक्षेत्रं यस्मिन्न हि कर्माण्युत्सीदन्ति यदयंकामकरण्ड एष आवसथः ॥४॥

यथा हि अनुवत्सरं कृष्यमाणं अपि अदग्ध बीजं क्षेत्रं पुनः एव आवपन काले गुल्म तृण वीरुत्भिः गह्वरं इव भवति एवं एव गृहाश्रमः कर्मक्षेत्रं यस्मिन् हि कर्माणि उत्सीदन्ति यत् अयं काम करण्ड एष आवसथः ॥४॥

यथा हि	जैसे कि	**कृष्यमाणं**	जोते जानेपर
अनुवत्सरं	प्रति वर्ष	**अपि**	भी

अदग्ध बीजं	बीज जलाये न गये हों तो
क्षेत्रं	(वह) खेत
पुनः एव	फिरसे
आवपन काले	बोनेके समय
गुल्म तृण	झाड़ियों, घास,
वीरुत्भिः	पौधोंसे
गह्वरं इव	सघन जैसा
भवति	हो जाता है,
एवं एव	ठीक ऐसे ही
गृहाश्रमः	गृहस्थाश्रम
कर्मक्षेत्रं	कर्मक्षेत्र (कर्मोत्पादनका खेत) है,
यस्मिन् हि	जिसमें कि
कर्माणि	कर्म
उत्सीदन्ति	नष्ट किये जाते हैं (किन्तु)
यत् अयं	क्योंकि यह
काम करण्ड	कामनाओंकी पिटारी है
एष आवसथः	इस आश्रमकी कामनाएँ उच्छिन्न नहीं होतीं ॥४॥

तत्रगतो दंशमशकसमापसदैर्मनुजैः शलभशकुन्ततस्करमूषकादिभिरुपरुध्यमानबहिःप्राणः क्वचित् परिवर्तमानोऽस्मिन्नध्वन्यविद्याकामकर्मभिरुपरक्तमनसानुपपन्नार्थं नरलोकं गन्धर्वनगरमुपपन्नमिति मिथ्यादृष्टिरनुपश्यति ॥५॥

तत्रगतः दंश मशक सम अपसदैं मनुजैः शलभ शकुन्त तस्कर मूषक आदिभिः उपरुध्यमान बहिःप्राणः क्वचित् परिवर्तमानः अस्मिन् अध्वनि अविद्या काम कर्मभिः उपरक्त मनसा अन उपपन्न अर्थं नरलोकं गन्धर्व नगरं उपपन्नं इति मिथ्या दृष्टिः अनुपश्यति ॥५॥

तत्रगतः	उस (गृहस्थाश्रम)में प्रवेश करके
दंश मशक सम	डांस और मच्छरोंके समान
अपसदैः मनुजैः	नीच मनुष्यों द्वारा,
शकुन्त तस्कर	पक्षी, चोर,
मूषक	चूहे
आधिभिः	आदिसे
बहिःप्राणः	बाहरी प्राण (धन)को
उपरुध्यमानः	उपरोध (हानि) पहुँचते रहते हैं।
क्वचित्	कभी

परिवर्तमानः	(स्थितिमें) परि-वर्तन होनेपर
अस्मिन्	इस
अध्वनि	(संसार) मार्गमें
अविद्या	अविद्या जनित
काम कर्मभिः	कामना और कर्मोंमें
उपरक्त मनसा	आसक्त मन होनेसे
मिथ्या दृष्टिः	भ्रान्त दृष्टि होनेसे
अर्थं	प्रयोजन
अन उपपन्न	पूर्ण हुए बिना ही
नरलोकं	मनुष्य जीवन
गन्धर्व नगरं	गन्धर्व नगर (न होनेपर भी अनु-भावना दृश्य)
उपपन्नं	पूर्ण हो गया
इति	ऐसा
अनुपश्यति	बार-बार देखता है ॥५॥

तत्र च क्वचिदातपोदकनिभान् विषयानुपधावति पानभोजन-व्यवायादिव्यसनलोलुपः ॥६॥

तत्र च क्वचित् आतप उदकनिभान् विषयान् उपधावति पानभोजन व्यवाय आदि व्यसन लोलुपः ॥६॥

तत्र च	वहाँ (गृहस्थाश्रममें) भी
क्वचित्	कभी
आतप	सूर्यकी किरणोंमें (प्रतीत होते)
उदकनिभान्	जलके समान
पानभोजन	पीने, खाने,
व्यवाय आदि	मैथुन आदि
व्यसन लोलुपः	व्यसनोंके लालचमें
विषयान्	विषयोंकी ओर
उपधावति	दौड़ता है ॥६॥

क्वचिच्चाशेषदोषनिषदनं पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमतिः सुवर्णमुपादित्सत्यग्निकामकातर इवोल्मुकपिशाचम् ॥७॥

क्वचित् च अशेष दोष निषदनं पुरीष विशेषं तत् वर्ण गुण निर्मित मतिः सुवर्णम् उपात् इति असत्य अग्नि काम कातर इव उल्मुक पिशाचम् ॥७॥

क्वचित् च	कभी तो
अशेष दोष	सम्पूर्ण दोषोंके
निषदनं	मूल निवास
पुरीष विशेषं	(अग्निके) मल विशेष

तत् वर्ण गुण	उसके रंग, गुणसे
निर्मित मतिः	आकर्षित बुद्धि
सुवर्णं उपात्	स्वर्ण मिल गया
इति	ऐसा मानता है
अग्नि काम	(जैसे सर्दीसे व्याकुल) अग्नि पीनेकी इच्छासे
कातर	आकुल
उल्मुक	अगिया
पिशाचं	बैताल
इव	(की ओर दौड़ने)की भाँति ॥७॥

अथ कदाचिन्निवासपानीयद्रविणाद्यनेकात्मोपजीवनाभिनिवेश एतस्यां संसाराटव्यामितस्ततः परिधावति ॥८॥

अथ कदाचित् निवास पानीय द्रविण आदि अनेक आत्म उपजीवन अभिनिवेश एतस्यां संसार अटव्यां इतः ततः परिधावति ॥८॥

अथ कदाचित्	फिर कभी
निवास	रहनेके स्थान
पानीय	पीनेके द्रव
द्रविण आदि	धन आदि
अनेक	अनेक
आत्म	अपने जीवन
उपजीवन	निर्वाहकी (वस्तुओंमें)
अभिनिवेश	चित्त लगे होनेसे
एतस्यां	इस
संसार अटव्यां	संसार-वनमें
इतः ततः	इधर-उधर
परिधावति	चारो ओर दौड़ता है ॥८॥

क्वचिच्च वात्योपम्यया प्रमदयाऽऽरोहमारोपितस्तत्कालरजसा रजनीभूत इवासाधुमर्यादो रजस्वलाक्षोऽपि दिग्देवता अतिरजस्वलमतिर्न विजानाति ॥९॥

क्वचित् च वात्या उपम्यया प्रमदया आरोहं आरोपितः तत् काल रजसा रजनीभूत इव असाधु मर्यादः रजस्वल अक्षः अपि दिक् देवता अति रजस्वल मतिः न विजानाति ॥९॥

क्वचित् च	कभी तो
वात्या उपम्यया	बवण्डरके समान कही जाने वाली
प्रमदया	स्त्री द्वारा
आरोहं	गोदमें
आरोपितः	बैठा लेनेपर
तत् काल	उसी समय
रजसा	रजोगुणसे
रजनीभूतः	रात्रिके समान (अन्धकार) अविवेक युक्त होनेके
इव	समान
असाधु	दुष्टोंकी
मर्यादः	मर्यादा (उच्छृंखलता)से
अक्षः	आँखोंमें
रजस्वल	धूल पड़ेके समान
दिक् देवता	दिशाओंके देवता
अपि	(सत्पुरुषों)को भी
अति रजस्वल	अत्यन्त रजोगुणी
मतिः	बुद्धि (हो जाने)से
न विजानाति	नहीं समझ पाता ॥९॥

क्वचित्सकृदवगतविषयवैतथ्यः स्वयं पराभिध्यानेन विभ्रंशितस्मृतिस्तयैव मरीचितोयप्रायांस्तानेवाभिधावति ॥१०॥

क्वचित् सकृत् अवगत विषय वै तथ्यः स्वयं पर अभिध्यानेन विभ्रंशित स्मृतिः तया एव मरीचि तोय प्रायाण् तान् एव अभिधावति ॥१०॥

क्वचित्	कभी
स्वयं	स्वयं
सकृत्	एक बार
विषय वै तथ्यः	विषय भोगोंकी व्यर्थता
अवगत	जानकर भी
पर अभि-	अपनेसे भिन्न (देह)के
ध्यानेन	निरन्तर चिन्तनसे
स्मृतिः	(आत्म) स्मृति
विभ्रंशित	नष्ट होनेसे
तया एव	उन्हीं
मरीचि	मृग-मरीचिकाके
तोय प्रायान्	जल-प्राय
तान् एव	उन्हीं (विषयों)की
अभिधावति	ओर दौड़ता है ॥१०॥

क्वचिदुलूकझिल्लीस्वनवदतिपरुषरभसाटोपं प्रत्यक्षं परोक्षं वा रिपुराजकुलनिर्भर्त्सितेनातिव्यथितकर्णमूलहृदयः ॥११॥

क्वचित् उलूक झिल्ली स्वनवत् अति परुष रभस आटोपं प्रत्यक्षं परोक्षं वा रिपुराजकुल निर्भर्त्सितेन अति व्यथित कर्णमूल हृदयः ॥११॥

कदाचित्	कभी
उलूक झिल्ली	उल्लू, झींगुरों के
स्वनवत्	शब्दके समान
अति परुष	अत्यन्त रूक्ष
रभस आटोपं	वेगवान (तेज) ढंगकी
प्रत्यक्षं	प्रत्यक्ष
वा परोक्षं	अथवा पीछेकी
रिपुराजकुल	शत्रु या शासक वर्गकी
निर्भर्त्सितेन	डांट-डपटसे
कर्णमूल	कान तथा
हृदयः	मन
अति व्यथित	बहुत पीड़ित होता है ॥११॥

स यदा दुग्धपूर्वसुकृतस्तदा कारस्करकाकतुण्डाद्यपुण्यद्रुमलता विषोदपानवदुभयार्थशून्यद्रविणान् जीवन्मृतान् स्वयं जीवन्म्रियमाण उपधावति ॥१२॥

स यदा दुग्ध पूर्व सुकृतः तदा कारस्कर काक तुण्ड आदि अपुण्य द्रुमलता विष उदपानवत् उभय अर्थ शून्य द्रविणान् जीवन् मृतान् स्वयं जीवन् म्रियमाणः उपधावति ॥१२॥

स यदा	उसके जब
पूर्वं सुकृतः	पहलेके पुण्य
दुग्ध	क्षीण हो जाते हैं
तदा	तब
कारस्कर	कारस्कर,
काक तुण्ड	काकतुण्ड
आदि अपुण्य	आदि अपवित्र
द्रुमलता	वृक्ष लताके
विष	विषैले
उदपानवत्	रसको पीनेके समान
उभय अर्थ शून्य	दोनों (लोक परलोक)के प्रयोजनसे रहित
द्रविणान्	धनवाले
जीवन् मृतान्	जीते ही मरेके समान (लोगों)के पास
स्वयं जीवन्	स्वयं जीवित ही
म्रियमाणः	मरेके समान(होकर)
उपधावति	जाता है ॥११॥

एकदासत्प्रसङ्गान्निकृतमतिर्व्युदकस्रोतःस्खलनवदुभयतोऽपि दुःखदं पाखण्डमभियाति ॥१३॥

एकदा असत् प्रसङ्गात् निकृतमतिः व्युदक स्रोतः स्खलनवत् उभयतः अपि दुःखदं पाखण्डं अभियाति ॥१३॥

एकदा	एकबार
असत् प्रसङ्गात्	दुर्जनोंके साथसे
निकृतमतिः	बुद्धि बिगड़ जानेसे
व्युदक स्रोतः	गहरे स्रोतमें
स्खलनवत्	गिरनेके समान
उभयतः अपि	दोनों ओर (लोक-परलोकमें) ही
दुःखदं	दुःखदायी
पाखण्डम्	पाखण्डमें
अभियाति	(फँस) जाता है ॥१३॥

यदा तु परबाधयान्ध आत्मने नोपनमति तदा हि पितृपुत्र-बर्हिष्मतः पितृपुत्रान् वा स खलु भक्षयति ॥१४॥

यदा तु परबाधया अन्ध आत्मने न उपनमति तदा हि पितृपुत्र बर्हिष्मतः पितृपुत्रान् वा स खलु भक्षयति ॥१४॥

यदा तु	जब तो
परबाधया	दूसरोंको सतानेमें
अन्ध	अन्धा (होनेपर भी)
आत्मने	अपनेको
न उपनमति	(कुछ) नहीं मिलता
तदा हि खलु	तब तो निश्चय
स	वह
पितृपुत्र	पिता या पुत्रका
बर्हिष्मतः	तिनका भी रखने-वालोंको
वा	अथवा
पितृपुत्रान्	(सगे) पिता या पुत्रोंको
भक्षयति	खा लेना चाहता है ॥१४॥

क्वचिदासाद्य गृहं दाववत्प्रियार्थविधुरमसुखोदर्कं शोकाग्निना दह्यमानो भृशं निर्वेदमुपगच्छति ॥१५॥

क्वचित् आसाद्य गृहं दाववत् प्रिय अर्थ विधुरं असुख उदर्कं शोक अग्निना दह्यमानः भृशं निर्वेदं उपगच्छति ॥१५॥

क्वचित्	कभी
प्रिय अर्थ विधुरं	प्रिय विषयोंसे रहित
असुख उदर्कं	परिणाममें दुखद,
दाववत्	दावाग्निके समान
गृहं आसाद्य	घरमें पहुँचकर

शोक अग्निना	शोककी आगसे	**निर्वेदं**	खिन्न
भृशं दह्यमानः	अत्यन्त जलता हुआ	**उपगच्छति**	हो जाता है ॥१५॥

क्वचित्कालविषमितराजकुलरक्षसापहृतप्रियतमधनासुः प्रमृतक इव विगतजीवलक्षण आस्ते ॥१६॥

क्वचित् काल विषमित राजकुलरक्षसा अपहृत प्रियतम धन असुः प्रमृतक इव विगत जीव लक्षण आस्ते ॥१६॥

क्वचित्	कभी	**धन असुः**	धन रूपी प्राण
काल विषमित	समयके फेरसे विरोधी बने	**अपहृत**	छीन लिए जानेपर
		अमृतक इव	मर गयेके समान
राजकुलरक्षसा	राजकुल रूपी राक्षस द्वारा	**जीव**	जीवनके
		लक्षण विगत	लक्षणोंसे हीन सा
प्रियतम	अत्यन्त प्रिय	**आस्ते**	हो जाता है ॥१६॥

कदाचिन्मनोरथोपगतपितृपितामहाद्यसत्सदिति स्वप्ननिर्वृति-लक्षणमनुभवति ॥१७॥

कदाचित् मनोरथ उपगत पितृपितामहात् असत् सत् इति स्वप्न निर्वृति लक्षणं अनुभवति ॥१७॥

कदाचित्	कभी	**स्वप्न निर्वृति**	स्वप्नके आनन्दके
मनोरथ	मनोरथ	**लक्षणं**	समान
उपगत	प्राप्त होने जैसे	**अनुभवति**	(आनन्द) अनुभव करता है ॥१७॥
पितृपितामह	पिता-पितामहके		
असत्	मिथ्या साथको		
सत् इति	(यही) सत् है इस प्रकार (मानकर)		

क्वचिद् गृहाश्रमकर्मचोदनातिभरगिरिमारुरुक्षमाणो लोक-व्यसनकर्षितमनाः कण्टकशर्कराक्षेत्रं प्रविशन्निव सीदति ॥१८॥

क्वचित् गृहाश्रमकर्म चोदना अति भर गिरिम् आरुरुक्षमाणः लोकव्यसन कर्षितमनाः कण्टक शर्करा क्षेत्रं प्रविशन् इव सीदति ॥१८॥

क्वचित्	कभी	**गिरिं**	पर्वतपर
लोकव्यसन	लोगों के व्यसन	**आरुरुक्षमाणः**	चढ़नेके प्रयत्नमें
कर्षितमनाः	आकर्षित चित्त	**कण्टक शकर्रा**	कांटे-कंकड़ों से
गृहाश्रमकर्म	गृहस्थाश्रमके कर्मों के	**क्षेत्रं**	(भरी) भूमि में
चोदना	(शास्त्रीय) प्रेरणा रूप	**प्रविशन् इव**	प्रवेश करनेके समान
अति भर	भारी भार सहित	**सीदति**	कष्ट पाता है ॥१८॥

क्वचिच्च दुःसहेन कायाभ्यन्तरवह्निना गृहीतसारः स्वकुटुम्बाय क्रुध्यति ॥१९॥

क्वचित् दुःसहेन काय अभ्यन्तर वह्निना गृहीतसारः स्वकुटुम्बाय क्रुध्यति ॥१९॥

क्वचित्	कभी	**गृहीतसारः**	सारतत्त्व (धृति) छीन लेनेपर
दुःसहेन	दुःसह	**स्वकुटुम्बाय**	अपने कुटुम्बपर
काय	शरीरके	**क्रुध्यति**	क्रोध करता है ॥१९॥
अभ्यन्तर	भीतर की		
वह्निना	आग (भूख) से		

स एव पुनर्निद्राजगरगृहीतोऽन्धे तमसि मग्नः शून्यारण्य इव शेते नान्यत् किञ्चन वेद शव इवापविद्धः ॥२०॥

स एव पुनः निद्रा अजगर गृहीतः अन्धे तमसि मग्नः शून्य अरण्य इव शेते न अन्यत् किञ्चन वेद शव इव अपविद्धः ॥२०॥

स एव पुनः	वही फिर	**अन्धे तमसि**	घोर अन्धकारमें
निद्रा अजगर	निद्रा रूपी अजगरसे	**मग्नः**	डूबा
गृहीतः	पकड़े जानेपर	**अपविद्धः**	फेंके

शव इव	मुर्देके समान	**शेते**	सोता है,
शून्य	सूने	**अन्यत्**	दूसरा
अरण्य इव	जंगलमें (पड़े)की भाँति	**किञ्चन**	कुछ भी
		न वेद	नहीं जानता ॥२०॥

कदाचिद्भग्नमानदंष्ट्रो दुर्जनदन्दशूकैरलब्धनिद्राक्षणो व्यथितहृदयेनानुक्षीयमाणविज्ञानोऽन्धकूपेऽन्धवत्पतति ॥२१॥

कदाचित् भग्न मानदंष्ट्रः दुर्जन दन्दशूकैः अलब्धः निद्राक्षणः व्यथित हृदयेन अनुक्षीयमाण विज्ञानः अन्धकूपे अन्धवत् पतति ॥२१॥

कदाचित्	कभी	**अलब्धः**	नहीं मिलनेसे
मानदंष्ट्रः	अभिमान रूपी दाँत	**व्यथित हृदयेन**	दुःखी चित्तसे
भग्न	टूट जानेसे	**अनुक्षीयमाण**	बराबर क्षय होती
दुर्जन	दुर्जनों रूपी	**विज्ञानः**	चेतनाके कारण
दन्दशूकैः	काटनेवाले (जीवों)से	**अन्धकूपे**	अन्धे कुएँ (नरक)में
		अन्धवत्	अन्धेके समान
निद्राक्षणः	नींद लेनेका समय	**पतति**	गिर पड़ता है ॥२१॥

कर्हि स्म चित्काममधुलवान् विचिन्वन् यदा परदारपरद्रव्याण्यवरुन्धानो राज्ञा स्वामिभिर्वा निहतः पतत्यपारे निरये ॥२२॥

कर्हि स्म चित् काम मधुलवान् विचिन्वन् यदा परदार परद्रव्याणि अवरुन्धानः राज्ञा स्वामिभिः वा निहतः पतति अपारे निरये ॥२२॥

कर्हि स्म चित्	किसी समय	**परद्रव्याणि**	दूसरेके धनका
काम	भोग रूपी	**अवरुन्धानः**	अवरोध करना (उड़ाना) चाहता है (तब)
मधुलवान्	शहद सींकरोंको		
विचिन्वन्	ढूँढ़ता हुआ		
यदा	जब	**राज्ञा**	राजा द्वारा
परदार	परस्त्री या	**वा**	अथवा

स्वामिभिः	(उसके) स्वामी द्वारा	**अपारे निरये**	अपार नरकमें
निहतः	मारा जाकर	**पतति**	गिरता है ॥२२॥

अथ च तस्मादुभयथापि हि कर्मास्मिन्नात्मनः संसारावपनमुदाहरन्ति ॥२३॥

अथ च तस्मात् उभयथा अपि हि कर्म अस्मिन् न आत्मनः संसार आवपनं उदाहरन्ति ॥२३॥

अथ च	इससे भी	**कर्म**	कर्म
तस्मात्	इसलिए	**संसार**	संसारको ही
उभयथा अपि	दोनों (लोक परलोक दृष्टि)से भी	**आवपनं**	बोने (बढ़ाने) वाला
		उदाहरन्ति	बतलाया जाता है ॥२३॥
हि	क्योंकि		
अस्मिन्	इस (प्रवृत्ति मार्ग)में		
न आत्मनः	आत्माको छोड़कर किये गये		

मुक्तस्ततो यदि बन्धाद्देवदत्त उपाच्छिनत्ति तस्मादपि विष्णुमित्र इत्यनवस्थितिः ॥२४॥

मुक्तः ततः यदि बन्धात् देवदत्त उप आच्छिनत्ति तस्मात् अपि विष्णुमित्र इति अनवस्थितिः ॥२४॥

यदि	यदि	**तस्मात् अपि**	उससे भी
ततः	वहाँ (राजा आदिके)	**विष्णुमित्र**	विष्णुमित्र (छीन लेता है)
बन्धात्	बन्धनसे		
मुक्तः	छूट भी गये (तो)	**इति**	इस प्रकार की
उप देवदत्त	पासका देवदत्त	**अनवस्थितिः**	(कहीं) निश्चित स्थिति नहीं है॥२४॥
आच्छिनत्ति	छीन लेता है।		

क्वचिच्च शीतवाताद्यनेकाधिदैविकभौतिकात्मीयानां दशानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरन्तचिन्तया विषण्ण आस्ते ॥२५॥

क्वचित् च शीतवात आदि अनेक आधिदैविक भौतिक आत्मीयानां दशानां प्रतिनिवारणे अकल्पः दुरन्त चिन्तया विषण्ण आस्ते ॥२५॥

क्वचित् च	कभी तो
शीतवात	सर्दी, आँधी
आदि	आदि
अनेक	अनेक
आधिदैविक	आधिदैविक
भौतिक	आधिभौतिक
आत्मीयानां	आध्यात्मिक
दशानां	अवस्थाओंके
प्रतिनिवारणे	दूर करनेमें
अकल्पः	असमर्थ होकर
दुरन्त चिन्तया	दुष्पार चिन्तासे
विषण्ण आस्ते	उदास हो जाता है ॥२५॥

क्वचिन्मिथो व्यवहरन् यत्किञ्चिद्धनमन्येभ्यो वा काकिणिकामात्रमप्यपहरन् यत्किञ्चिद्वाविद्वेषमेति वित्तशाठ्यात् ॥२६॥

क्वचित् मिथः व्यवहरन् यत् किञ्चित् धनं अन्येभ्यः वा काकिणिका मात्रं अपि अपहरन् यत् किञ्चित् वा विद्वेषं एति वित्त शाठ्यात् ॥२६॥

क्वचित्	कभी
मिथः व्यवहरन्	परस्पर व्यवहार करने में
यत् किञ्चित्	जो कुछ भी
धनं	धन
वा	भले
काकिणिका	कौड़ी
मात्रं अपि	बराबर हो
वा	अथवा
यत् किञ्चित्	जो कुछ भी
अन्येभ्यः	दूसरे से
अपहरन्	चुरा लेनेमें
वित्त शाठ्यात्	धनकी शठता (लोभ) से
विद्वेषं एति	शत्रुता कर लेता है ॥२६॥

अध्वन्यमुष्मिन्नित्व उपसर्गास्तथा सुखदुःखरागद्वेषभयाभिमानप्रमादोन्मादशोकमोहलोभमात्सर्येर्ष्यावमानक्षुत्पिपासाधिव्याधिजन्मजरामरणादयः ॥२७॥

अध्वनि अमुष्मिन् नव उपसर्गाः तथा सुखदुःख रागद्वेष भय अभिमान प्रमाद उन्माद शोक मोह लोभ मात्सर्य ईर्ष्या अवमान क्षुत् पिपासा आधि व्याधि जन्मजरा मरण आदयः ॥२७॥

अमुष्मिन्	इस
अध्वनि	(संसारके) मार्गमें
नव उपसर्गाः	नये-नये कष्ट (होते ही रहते हैं)
तथा	जैसे
सुखदुःख	सुख-दुःख,
रागद्वेष	राग-द्वेष,
भय अभिमान	भय-अभिमान,
प्रमाद उन्माद	प्रमाद-उन्माद,
शोक मोह	शोक-मोह,
लोभ मात्सर्य	लोभ-मत्सरता,
ईर्ष्या अवमान	ईर्ष्या-अपमान,
क्षुत् पिपासा	भूख-प्यास,
आधि व्याधि	चिन्ता-रोग,
जन्मजरा	जन्म-बुढ़ापा,
मरण आदयः	मृत्यु आदि ॥२७॥

क्वापि देवमायया स्त्रिया भुजलतोपगूढःप्रस्कन्नविवेकविज्ञानो यद्विहारगृहारम्भाकुलहृदयस्तदाश्रयावसक्तसुतदुहितृकलत्रभाषितावलोकविचेष्टितापहृतहृदय आत्मानमजितात्मापारेऽन्धे तमसि प्रहिणोति ॥२८॥

क्वापि देवमायया स्त्रिया भुजलता उपगूढः प्रस्कन्न विवेक विज्ञानः यत् विहार गृह आरम्भ आकुल हृदयः तत् आश्रय अवसक्त सुत दुहितृ कलत्र भाषित अवलोक विचेष्टित अपहृत हृदय आत्मानं अजित आत्मा अपारे अन्धे तमसि प्रहिणोति ॥२८॥

क्वापि	कभी
देवमायया	देवमाया रुपिणी
स्त्रिया	स्त्रीकी
भुजलता	भुजपाशमें
उपगूढः	आलिंगिन
विवेक विज्ञानः	विवेक विचारके
प्रस्कन्न	नष्ट हो जानेसे
यत् विहार	जिसके साथ विहार करनेसे
गृह आरम्भ	गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ होनेसे
आकुल हृदयः	चित्त व्याकुल हुआ था
तत् आश्रय	उसीके आश्रयमें
अवसक्त	आसक्त होकर
सुत दुहितृ	पुत्र-पुत्री
कलत्र	पत्नीकी
भाषित	मधुर बोली,
अवलोक	देखने तथा
विचेष्टित	चेष्टाओं द्वारा
अपहृत हृदय	चित्त चुरा लिया। गया, (अतः)

अजित आत्मा	मनको वशमें न करने वाला	**अपारे अन्धे**	अपार अन्धकारमय
आत्मानं	अपनेको	**तमसि प्रहिणोति**	नरकमें गिरा देता है ॥२८॥

कदाचिदीश्वरस्य भगवतो विष्णोश्चक्रात्परमाण्वादिद्विपरार्धापवर्गकालोपलक्षणात्परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्मतृणस्तम्बादीनां भूतानामनिमिषतो मिषतां वित्रस्तहृदयस्तमेवेश्वरं कालचक्रनिजायुधं साक्षाद्भगवन्तं यज्ञपुरुषमनादृत्य पाखण्डदेवताः कङ्कगृध्रबकवटप्राया आर्यसमयपरिहृताः साङ्केत्येनाभिधत्ते ॥२९॥

कदाचित् ईश्वरस्य भगवतः विष्णोः चक्रात् परमाणु आदि द्विपरार्ध अपवर्ग काल उपलक्षणात् परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्म तृण स्तम्ब आदीनां भूतानां अनिमिषतः मिषतां वित्रस्त हृदयः तं एव ईश्वरं कालचक्र निज आयुधं साक्षात् भगवन्तं यज्ञपुरुषं अनादृत्य पाखण्ड देवताः कङ्क गृद्ध बक वट प्राया आर्यसमय परिहृताः साङ्केत्येन अभिधत्ते ॥२९॥

ईश्वरस्य	सर्व समर्थ	**पर्यन्त**	तक (सब)
भगवतः	भगवान्	**भूतानां**	प्राणियों के
विष्णोः	विष्णुके	**अनिमिषतः**	पलक न गिराने (सावधान रहने) पर भी
परमाणु आदि	परमाणु (काल)से लेकर	**मिषतां**	देखते हुए
द्विपरार्धं	दोपरार्धके	**भूतानां**	प्राणियोंकी
अपवर्ग काल	(ब्रह्माके) मोक्षकाल तकसे	**वयसा**	आयुको
उपलक्षणात्	उपलक्षित होनेवाले	**रंहसा हरत**	(अपने) वेगसे हरण करता है
चक्रात्	चक्रके	**वित्रस्त हृदयः**	(उस काल-चक्रसे) संत्रस्त चित्त
परिवर्तितेन	घूमनेसे		
आब्रह्म	ब्रह्मासे लेकर	**तं एव**	उन्हीं
तृण स्तम्ब	क्षुद्र तृण		

कालचक्र कालचक्र रूप
निज आयुधं अपने अस्त्रसे युक्त
ईश्वरं सर्वेश्वर
साक्षात् साक्षात्
भगवन्तं भगवान्
यज्ञपुरुषं यज्ञपुरुषका
अनादृत्य अनादर करके
आर्यसमय आर्यकालसे
परिहृताः बहिष्कृत
पाखण्डदेवताः पाखण्डियोंके देवता
प्रायाः कङ्कु गृध्रबकवट (जो) प्रायः कंक, गीध बगुले, वट-वृक्ष आदि हैं
साङ्केत्येन (उनका) संकेत (इशारों-मुद्राओं) द्वारा
अभिधत्ते आश्रय लेता है ॥२९॥

यदा पाखण्डिभिरात्मवञ्चितैस्तैरु वञ्चितो ब्रह्मकुलं समावसंस्तेषां शीलमुपनयनादि श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानेन भगवतो यज्ञपुरुषस्याराधनमेव तदरोचयन् शुद्रकुलं भजते निगमाचारेऽशुद्धितो यस्य मिथुनीभावः कुटुम्बभरणं यथा वानरजातेः ॥३०॥

यदा पाखण्डिभिः आत्म वञ्चितैः तैः उरु वञ्चितः ब्रह्मकुलं समावसन् तेषां शीलं उपनयन आदि श्रौतस्मार्त कर्म अनुष्ठानेन भगवतः यज्ञपुरुषस्य आराधनं एव तत् अरोचयन् शुद्रकुलं भजते निगम आचारे अशुद्धितः यस्य मिथुनीभावः कुटुम्बभरणं यथा वानरजातेः ॥३०॥

आत्म स्वयं
वञ्चितैः धोखेमें रहनेवाले
तैः पाखण्डिभिः उन पाखण्डियों द्वारा
यदा जब
उरु वञ्चितः बहुत ठगा जाता है (तब)
ब्रह्मकुलं ब्राह्मणोंके कुल (के सम्पर्क)में
समावसन् अच्छी प्रकार आश्रय लेता है,
तेषा शीलं (लेकिन) उनका आचार तो
उपनयन आदि यज्ञोपवीत-संस्कार आदि
श्रौतस्मार्त वैदिक, स्मृति विहित
कर्म कर्मोंको
अनुष्ठानेन करके
भगवतः भगवान्

यज्ञपुरुषस्य आराधनं एव निगम आचारे	यज्ञ-पुरुषका आराधना ही है, (उस) वैदिक आचारमें
अशुद्धितः	अपनेमें अशुद्धि होनेसे
तत् अरोचयन्	वह रुचिकर न लगनेसे
शूद्रकुलं	शूद्र कुलका
भजते	आश्रय लेता है
यथा	जैसे
वानरजातेः	वानर-जातिमें
यस्य	जिन (शूद्र-कुलों)में
मिथुनीभावः	स्त्री-पुरुष मिलकर रहना और
कुटुम्बभरणं	(अपने) कुटुम्बका पालन है ॥३०॥

तत्रापि निरवरोधः स्वैरेण विहरन्नतिकृपणबुद्धिरन्योन्य-मुखनिरीक्षणादिना ग्राम्यकर्मणैव विस्मृतकालावधिः ॥३१॥

तत्र अपि निःअवरोधः स्वैरेण विहरन् अति कृपणबुद्धिः अन्योन्य मुखनिरीक्षण आदिना ग्राम्यकर्मणा एव विस्मृत काल अवधिः ॥३१॥

तत्र अपि	वहाँ भी
निःअवरोधः	बिना रोक-टोक
स्वैरेण विहरन्	स्वच्छन्द-विहार करते
अति	अत्यन्त
कृपणबुद्धिः	दीन-बुद्धि (यह)
अन्योन्य	एकदूसरेका
मुखनिरीक्षण	मुख-दर्शन
आदिना	आदिसे
ग्राम्यकर्मणा	विषय-भोगोंमें
एव	ही (लगे रहकर)
काल	मृत्युका
विस्मृत अवधिः	स्मरण भी भूल जाता है ॥३१॥

क्वचिद् द्रुमवदैहिकार्थेषु गृहेषु रंस्यन् यथा वानरः सुतदार-वत्सलो व्यवायक्षणः ॥३२॥

क्वचित् द्रुमवत् ऐहिक अर्थेषु गृहेषु रंस्यन् यथा वानरः सुतदार वत्सलः व्यवायक्षणः ॥३२॥

यथा	जैसे
सुतदार	पुत्र, स्त्रीसे
वत्सलः	स्नेह करता
व्यवायक्षणः	मैथुनमें समय बिताता

वानरः	बन्दरे हो (ऐसे)	**गृहेषु**	घरमें
क्वचित्	कभी	**रंस्यन्**	रमता रहता
द्रुमवत्	वृक्षकी भाँति		है ॥३२॥
ऐहिक अर्थेषु	इसी लोकका सुख देने वाले		

एवमध्वन्यवरुन्धानो मृत्युगजभयात्तमसि गिरिकन्दरप्राये ॥३३॥

एवं अध्वनि अवरुन्धानः मृत्युगज भयात् तमसि गिरिकन्दर प्राये ॥३३॥

एवं	इस प्रकार	**प्राये**	समान
अध्वनि	(संसार) मार्गमें	**तमसि**	अन्धकार (रोगसे
अवरुन्धानः	अटका (भटका) हुआ		ग्रस्त दशा)में
		मृत्युगज	मृत्युरूपी हाथीसे
गिरिकन्दर	पर्वतकी गुफाके	**भयात्**	डरता रहता ॥३३॥

क्वचिच्छीतवाताद्यनेकदैविकभौतिकात्मीयानां दुःखानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरन्तविषयविषण्ण आस्ते ॥३४॥

क्वचित् शीतवात आदि अनेक दैविक भौतिक आत्मीयानां दुःखानां प्रतिनिवारणे अकल्पः दुरन्तविषय विषण्ण आस्ते ॥३४॥

क्वचित्	कभी	**आत्मीयानां**	आध्यात्मिक (शोक-मोहादि)
शीतवात	सर्दी-आँधी	**दुःखानां**	दुःखोंके
आदि	आदि	**प्रतिनिवारणे**	दूर करनेमें
अनेक	अनेक	**अकल्पः**	असमर्थ होकर
दैविक	आधिदैविक (ग्रहबाधादि)	**दुरन्तविषय**	दुष्पार चिन्तासे
		विषण्ण आस्ते	उदास हो जाता है ॥३४॥
भौतिक	आधिभौतिक (रोगादि)		

क्वचिन्मिथो व्यवहरन् यत्किञ्चिद्धनमुपयाति वित्तशाठ्येन ॥३५॥

क्वचित् मिथः व्यवहरन् यत् किञ्चित् धनं उपयाति वित्त-शाठ्येन ॥३५॥

क्वचित्	कभी	**धनं उपयाति**	धन मिलता है (वह भी)
मिथः	परस्पर	**वित्त शाठ्येन**	कञ्जूसीसे ॥३५॥
व्यवहरन्	व्यवहार करनेपर		
यत् किञ्चित्	जो थोड़ा		

क्वचित्क्षीणधनः शय्यासनाशनाद्युपभोगविहीनो यावदप्रति-लब्धमनोरथोपगतादानेऽवसितमतिस्ततस्ततोऽवमानादीनि जना-दभिलभते ॥३६॥

क्वचित् क्षीणधनः शय्या आसन अशन आदि उपभोग विहीनः यावत् अप्रतिलब्ध मनोरथः उपगत आदाने अवसित मतिः ततः ततः अव-मान आदीनि जनात् अभिलभते ॥३६॥

क्वचित्	कभी	**आदाने उपगत**	(अनधिकार) लेने (चुराने आदि)में
क्षीणधनः	धन नष्ट होनेपर	**अवसित मतिः**	बुद्धि लगनेपर
शय्या आसन	सोने, बैठने,	**ततः ततः**	जहाँ-तहाँ
अशन	भोजन	**जनात्**	लोगोंसे
आदि उपभोग	आदि उपभोग सामग्रीसे	**अवमान**	अपमान
विहीनः	रहित हो जाता है।	**आदीनि**	अपमान आदि
यावत्	जब-तक	**अभिलभते**	सब कहीं पाता है ॥३६॥
मनोरथः	मनोरथ (कामनाएँ)		
अप्रतिलब्ध	मिलती (पूरी होती) नहीं		

एवं वित्तव्यतिषङ्गविवृद्धवैरानुबन्धोऽपि पूर्ववासनया मिथ उद्वहत्यथापवहति ॥३७॥

एवं वित्त व्यतिषङ्ग विवृद्ध वैर अनुबन्धः अपि पूर्व वासनया मिथ उद्वहति अथ अपवहति ॥३७॥

एवं	इस प्रकार	**पूर्व वासनया**	पहिलेकी वासनासे
वित्त व्यतिषङ्ग	धनकी आसक्तिसे	**मिथ उद्वहति**	परस्पर विवाह करता है
विवृद्ध	बढ़ी हुई		
वैर अनुबन्धः	दृढ़ शत्रुता	**अथ अपवहति**	अथवा छोड़ता हैं ॥३७॥
अपि	होनेपर भी		

एतस्मिन् संसाराध्वनि नानाक्लेशोपसर्गबाधित आपन्नविपन्नो यत्र यस्तमु ह वावेतरस्तत्र विसृज्य जातं जातमुपादाय शोचन्मुह्यन् बिभ्यद्विवदन् क्रन्दन् संहृष्यन् गायन्नह्यमानः साधुवर्जितो नैवावर्ततेऽद्यापि यत आरब्ध एष नरलोकसार्थो यमध्वनः पारमुपदिशन्ति ॥३८॥

एतस्मिन् संसार अध्वनि नानाक्लेश उपसर्ग बाधित आपन्नविपन्नः यत्र यः तं उ ह वाव इतरः तत्र विसृज्य जातं जातं उपादाय शोचन् मुह्यन् बिभ्यत् विवदन् क्रन्दन् संहृष्यन् गायन् नह्यमानः साधु वर्जितः न एव आवर्तते अद्य अपि यत आरब्ध एष नरलोक सार्थः यं अध्वनः पारं उपदिशन्ति ॥३८॥

एतस्मिन्	इस	**यत्र यः**	जो जहाँ है
संसार अध्वनि	संसार-मार्गमें	**तं उ ह वाव**	उसे निश्चय ही
नानाक्लेश	अनेक प्रकारके क्लेशों,	**इतरः तत्र**	दूसरा वहीं
		विसृज्य	छोड़कर
उपसर्ग बाधित	बाधाओंसे पीड़ित,	**जातं जातं**	(नये) जन्मे हुओंको
आपन्नविपन्नः	आपत्तिग्रस्त तथा मृत (लोगों)को	**उपादाय**	साथ लेकर

शोचन् मुह्यन्	(कभी) शोक करते, मूर्छित होते
बिभ्यत्	डरते,
विवदन्	झगड़ते,
क्रन्दन्	रोते,
संहृष्यन्	हर्ष मनाते,
गायन्	गाते,
नह्यमानः	बन्धनमें पड़ता
साधु वर्जितः	सत्पुरुषोंसे त्यक्त
यत आरब्ध	जहाँसे प्रारम्भ करके
एष	यह
नरलोक सार्थः	मनुष्यरूपी व्यापारी
यं अध्वनः पारं	जिसे मार्गका पार
उपदिशन्ति	कहा जाता है (उस ओर)
अद्य अपि	आज भी
न आवर्तते	नहीं लौटता है ॥३८॥

यदिदं योगानुशासनं न वा एतदवरुन्धते यन्न्यस्तदण्डा मुनय उपशमशीला उपरतात्मानः समवगच्छन्ति ॥३९॥

यत् इदं योग अनुशासनं न वा एतत् अवरुन्धते यत् न्यस्त दण्डा मुनयः उपशमशीलाः उपरत आत्मानः सम अवगच्छन्ति ॥३९॥

यत् इदं	क्योंकि यह जो
योग अनुशासनं	योग-शास्त्र है (वह भी)
एतत्	इस (परमात्मा)को
न वा	नहीं ही
अवरुन्धते	अवरुद्धकर (पकड़) पाता ।
यत्	जिस तक
न्यस्त	परम अहिंसक
दण्डा	(दण्डको त्याग देने वाले)
उपशमशीलाः	निवृत्ति परायण
उपरत	शान्त
आत्मानः	चित्त
मुनयः	मुनिगण
सम	भली प्रकार
अवगच्छन्ति	पहुँचते हैं ॥३६॥

यदपि दिगिभजयिनो यज्विनो ये वै राजर्षयः किं तु परं मृधे शयीरन्नस्यामेव ममेयमिति कृतवैरानुबन्धायां विसृज्य स्वयमुपसंहृताः ॥४०॥

यदपि दिक् अभिजयिनः यज्विनः ये वै राजर्षयः किं तु परं मृधे शयीरन् न अस्यां एव मम इयं इति कृत वैर अनुबन्धायां विसृज्य स्वयं उपसंहृताः ॥४०॥

यदपि	यद्यपि
ये वै	निश्चय जो
राजर्षयः	राजर्षिगण
दिक् अभि-जयिनः	दिग्विजयी हुए
यज्विनः	(बड़े-बड़े) यज्ञ करने वाले हुए
किं तु	किन्तु
मृधे शयीरन्	फिर युद्धमें सो गये (मारे गये)
न परं	परमतत्त्व नहीं (पा सके)
अस्यां एव	इस (पृथ्वी)में ही
इयं मम	यह मेरी है
इति	इस भावनासे
कृत वैर	दृढ़ शत्रुता
अनुबन्धायां	करके
विसृज्य	(इस पृथ्वीको) छोड़कर
स्वयं	स्वयं
उपसंहृताः	समाप्त हो गये ॥४०॥

कर्मवल्लीमवलम्ब्य तत आपदः कथञ्चिन्नरकाद्विमुक्तः पुनरप्येवं संसाराध्वनि वर्तमानो नरलोकसार्थमुपयाति एवमुपरि गतोऽपि ॥४१॥

कर्म वल्लीं अवलम्ब्य तत आपदः कथञ्चित् नरकात् विमुक्तः पुनः अपि एवं संसार अध्वनि वर्तमानः नरलोक सार्थं उपयाति एवं उपरि गतः अपि ॥४१॥

कर्मवल्लीं	(पुण्य) कर्मरूप लताका
अवलम्ब्य	सहारा लेकर
तत आपदः	वहाँ आपत्तियोंसे
कथञ्चित्	किसी प्रकार
नरकात्	नरकसे
विमुक्तः	छूटनेपर
पुनः अपि	फिरसे भी
एवं	इसी प्रकार
संसार अध्वनि	संसार-मार्गमें
वर्तमानः	लगे हुए

नरलोक सार्थं	मनुष्य-समाज रूपी व्यापारी लोगोंके	**उपरि गतः**	ऊपर (स्वर्गादिमें) जानेपर
उपयाति	साथ जाता है,	**अपि**	भी (यही दशा
एवं	इसी प्रकार		होती है।) ॥४१॥

तस्येदमुपगायन्ति—

तस्य इदं उपगायन्ति—

तस्य	उन (भरतके सम्बन्धमें)	**इदं उपगायन्ति**	यह (लोग) कहते हैं--

आर्षभस्येह राजर्षेर्मनसापि महात्मनः ।
नानुवर्त्मार्हति नृपो मक्षिकेव गरुत्मतः ॥४२॥

आर्षभस्य इह राजर्षेः मनसा अपि महात्मनः न अनुवर्त्म कर्हति नृपः मक्षिका इव गरुत्मतः ॥४२॥

मक्षिका	(कोई) मक्खी	**महात्मनः**	महात्मा
गरुत्मतः	(जैसे) गरुड़की (बराबरी नहीं कर सकती)	**आर्षभस्य**	ऋषभ-नन्दन (भरत)का
		नृपः	(कोई) राजा
इव	इसी प्रकार	**मनसा अपि**	मनसे भी
इह	इस संसारमें	**अनुवर्त्म**	अनुकरण
राजर्षेः	राजर्षि	**न अर्हति**	नहीं कर सकता॥४२

यो दुस्त्यजान्दारसुतान् सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः ।
जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालसः॥४३॥

यः दुस्त्यजान् दार सुतान् सुहृत् राज्यं हृदिस्पृशः जहौ युवा एव मलवत् उत्तमश्लोक लालसः ॥४३॥

यः	जिन्होंने
उत्तमश्लोक	पुण्य कीर्ति (श्रीहरिको)
लालसः	(पानेकी) लालसासे
युवा एव	युवावस्थामें ही
दुस्त्यजान्	दुस्त्यज
दार सुतान्	स्त्री, पुत्रोंको,
हृदिस्पृशः	हृदयस्पर्शी
सुहृत्	मित्रों (तथा)
राज्यं	राज्यको
मलवत्	विष्ठाके समान
जहौ	त्याग दिया ॥४३॥

यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान्
प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम् ।
नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट्-
सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥४४॥

यः दुस्त्यजान् क्षिति सुत स्वजन अर्थ दारान् प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदय अवलोकां न इच्छन् नृपः तत् उचितं महतां मधुद्विट् सेवा अनुरक्त मनसां अभवः अपि फल्गुः ॥४४॥

दुस्त्यजान्	दुस्त्यज
क्षिति	पृथ्वी
सुत स्वजन	पुत्र, स्वजन,
अर्थ दारान्	धन, स्त्रियोंको,
सुरवरैः	बड़े-बड़े देवताओंद्वारा
सदय अवलोकां	दया पूर्वक दृष्टि-पात की
प्रार्थ्यां	जिनसे प्रार्थना की जाती है
श्रियं	(उन) लक्ष्मीकी
यः नृपः	जिन राजाने
न इच्छन्	इच्छा नहीं की
तत्	वह (उनके लिए)
उचितं	उचित ही था (क्योंकि)
मधुद्विट्	श्रीमधुसूदनकी
सेवा अनुरक्त	सेवामें अनुरक्त
मनसां	मनवालोंके लिए
अभवः अपि	मोक्ष भी
फल्गुः	तुच्छ है ॥४४॥

यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय
योगाय सांख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय ।
नारायणाय हरये नम इत्युदारं
हास्यन्मृगत्वमपि यः समुदाजहार ॥४५॥

यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय योगाय सांख्यशिरसे प्रकृति ईश्वराय नारायणाय हरये नम इति उदारं हास्यन् मृगत्वं अपि यः समुद आजहार ॥४५॥

मृगत्वं	मृग शरीरको	**प्रकृति ईश्वराय**	प्रकृतेश्वर,
हास्यन्	त्यागते समय	**नारायणाय**	नारायण,
यः	जिन्होंने	**हरये नम**	'हरये नमः'
यज्ञाय	यज्ञस्वरूप,	**इति**	इस प्रकार
धर्मपतये	धर्मेश्वर,	**उदारं**	उच्च स्वरसे
विधिनैपुणाय	विधि निपुण,	**समुदं**	आनन्द पूर्वक
योगाय	योग स्वरूप,	**आजहार**	कहा था ॥४५॥
सांख्यशिरसे	सांख्य प्रतिपाद्य,		

य इदं भागवतसभाजितावदातगुणकर्मणो राजर्षेर्भरतस्यानुचरितं स्वस्त्ययनमायुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यापवर्ग्यं वानुशृणोत्याख्यास्यत्यभिनन्दति च सर्वा एवाशिष आत्मन आशास्ते न काञ्चन परत इति ॥४६॥

य इदं भागवत सभाजित अवदात गुण कर्मणः राजर्षेः भरतस्य अनुचरितं स्वस्त्ययनं आयुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यं अपवर्ग्यं वा अनुशृणोति आख्यास्यति अभिनन्दति च सर्वा एव आशिष आत्मन आशास्ते न काञ्चन परत इति ॥४६॥

भागवत	भक्तों द्वारा	**धन्यं**	धन देनेवाला,
सभाजित	सम्मानित	**यशस्यं**	सुयशदायी,
अवदात	निर्मल	**स्वर्ग्यं अपवर्ग्यं**	स्वर्ग तथा मोक्ष-
गुण कर्मणः	गुण-कर्म वाले		देने वाला है।
राजर्षेः भरतस्य	राजर्षि भरतका	**य इदं**	जो इसको
अनुचरितं	यह (वर्णित)चरित	**अनुशृणोति**	बार-बार सुनता है
स्वस्त्ययनं	कल्याणकारी	**आख्यास्यति**	(या) सुनाता है
आयुष्यं	आयु देनेवाला		

वा	अथवा
अभिनन्दति च	इसका अभिनन्दन ही करता है
सर्वा एव	उसकी सभी
आशिष	कामनायें
आत्मन	स्वयं ही
आशास्ते	पूर्ण हो जाती हैं
काञ्चन	किसी दूसरेसे
न परत	नहीं (माँगना पड़ता
इति	यह ऐसा (प्रभाव-शाली) है ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भरतोपाख्याने पारोक्ष्यविवरणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

शुक उवाच–

भरतस्यात्मजः सुमतिर्नामाभिहितो यमु ह वाव केचित्पाखण्डिन ऋषभपदवीमनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमाम्नातां देवतां स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यन्ति ॥१॥

भरतस्य आत्मजः सुमतिः नाम अभिहितः यं उ ह वाव केचित् पाखण्डिनः ऋषभ पदवीं अनुवर्तमानं च अनार्या अवेद समाम्नातां देवतां स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यन्ति ॥१॥

भरतस्य	भरतजीका	**केचित्**	कुछ
आत्मजः	पुत्र	**पाखण्डिनः**	पाखण्डी
सुमतिः नाम	सुमति नामका था।	**अनार्या**	अनार्य
अभिहितः	(यह) पहिले कहा जा चुका है*	**अवेद सम्माम्नात**	अवैदिक मतके नियमसे
यं उ ह वाव	जिसे निश्चित रूपसे ही	**पापीयस्यां**	पाप-परायण
ऋषभ पदवीं	ऋषभजीकी स्थितिका	**स्वमनीषया**	अपनी बुद्धिसे
अनुवर्तमानं च	अनुसरण करनेके कारण	**कलौ**	कलियुगमें
		देवतां	देवता
		कल्पयिष्यन्ति	कल्पित कर लेंगे ॥१॥

तस्माद् वृद्धसेनायां देवताजिन्नाम पुत्रोऽभवत् ॥२॥

तस्मात् वृद्धसेनायां देवताजित् नाम पुत्रः अभवत् ॥२॥

---

*५ - ७ - ३

तस्मात्	उससे	**देवताजित्**	देवताजित्
वृद्धसेनायां	(उसकी पत्नी) वृद्ध सेनामें	**नाम**	नामक
		पुत्रः अभवत्	पुत्र हुआ ॥२॥

अथासुर्यां तत्तनयो देवद्युम्नस्ततो धेनुमत्यां सुतः परमेष्ठी तस्य सुवर्चलायां प्रतीह उपजातः ॥३॥

अथ असुर्यां तत् तनयः देवद्युम्नः ततः धेनुमत्यां सुतः परमेष्ठी तस्य सुवर्चलायां प्रतीह उपजातः ॥३॥

अथ असुर्यां	फिर असुर्यासे	**सुतः परमेष्ठी**	परमेष्ठी नामक पुत्र हुआ ।
तत् तनयः	उस (देवताजित्का) पुत्र	**तस्य**	उसके
देवद्युम्नः	देवद्युम्न हुआ ।	**सुवर्चलायां**	सुवर्चलासे
ततः	उसके	**प्रतीह**	प्रतीह
धेनुमत्यां	धेनुमतीसे	**उपजातः**	उत्पन्न हुआ ॥३॥

य आत्मविद्यामाख्याय स्वयं संशुद्धो महापुरुषमनुसस्मार ॥४॥

यः आत्मविद्यां आख्याय स्वयं संशुद्धः महापुरुषं अनुसस्मार ॥४॥

यः	जिसने	**महापुरुषं**	भगवान् पुरुषोत्तमका
आत्मविद्यां	आत्मविद्याका	**अनुसस्मार**	बराबर स्मरण किया ॥४॥
आख्याय	उपदेश करके		
स्वयं संशुद्धः	स्वयं अत्यन्त शुद्ध (चित्त) होकर		

प्रतीहात्सुवर्चलायां प्रतिहर्त्रादयस्त्रय आसन्निज्याकोविदाः सूनवः प्रतिहर्तुः स्तुत्यामजभूमानावजनिषाताम् ॥५॥

प्रतीहात् सुवर्चलायां प्रतिहर्त्रा आदयः त्रय आसन् इज्याकोविदाः सूनवः प्रतिहर्तुः स्तुत्यां अजभूमान अवजनिषाताम् ॥५॥

प्रतीहात्	प्रतीहसे
सुवर्चलायां	सुवर्चलामें*
प्रतिहर्त्रा	प्रतिहर्ता
आदयः	आदि
त्रयः	तीन
इज्याकोविदाः	यज्ञ करनेमें निपुण
सूनवः	पुत्र हुए।
प्रतिहर्तुः	प्रतिहर्तासे
स्तुत्यां	स्तुति (नामक पत्नी)में
अजभूमान	अज और भूमा (दो पुत्र)
अवजनिषातां	उत्पन्न हुए ॥५॥

भूम्न ऋषिकुल्यायामुद्गीथस्ततः प्रस्तावो देवकुल्यायां प्रस्तावान्नियुत्सायां हृदयज आसीद्विभुर्विभो रत्यां च पृथुषेणस्तस्मान्नक्त आकूत्यां जज्ञे नक्ताद् द्रुतिपुत्रो गयो राजर्षिप्रवर उदारश्रवा अजायत साक्षाद्भगवतो विष्णोर्जगद्रिरक्षिषया गृहीतसत्त्वस्य कलाऽऽत्मवत्त्वादिलक्षणेन महापुरुषतां प्राप्तः ॥६॥

भूम्न ऋषिकुल्यायां उद्गीथः ततः प्रस्तावः देवकुल्यायां प्रस्तावात् नियुत्सायां हृदयज आसीत् विभुः विभोः रत्यां च पृथुषेणः तस्मात् नक्त आकूत्यां जज्ञे नक्तात् द्रुतिपुत्रः गयः राजर्षिप्रवर उदारश्रवा अजायत साक्षात् भगवतः विष्णोः जगत् रिरक्षिषया गृहीत सत्त्वस्य कला आत्मवत् तु आदि लक्षणेन महापुरुषतां प्राप्तः ॥६॥

भूम्नः	भूमाके
ऋषिकुल्यायां	ऋषिकुल्यासे
उद्गीथः	उद्गीथ
ततः	उनके
देवकुल्यायां	देवकुल्यासे
प्रस्तावः	प्रस्ताव
प्रस्तावात्	प्रस्तावके
नियुत्सायां	नियुत्सासे
विभुः हृदयज	विभु पुत्र
आसीत्	हुए
विभोः रत्यां च	विभुके रतिसे ही
पृथुषेणः	पृथुषेण
तस्मात्	उनसे
आकूत्यां	आकूतिमें

*प्रतीहकी माताका नाम भी इसी अध्यायमें (३) सुवर्चला था, यह कहा गया है।

नक्त जज्ञे	नक्त उत्पन्न हुए।
नक्तात्	नक्तसे
द्रुतिपुत्रः	द्रुतिके पुत्र
राजर्षिप्रवर	राजर्षि श्रेष्ठ
उदरश्रवा	उदार-कीर्ति
गयः अजायत	गय उत्पन्न हुए।
तु साक्षात्	(ये) तो साक्षात्
भगवतः	भगवान्
विष्णोः	विष्णुकी
जगत्	जगतकी
रिरक्षिषया	रक्षाके लिए
गृहीत सत्त्वस्य	सत्वगुण स्वीकार करके
कला	कला (अवतार)थे।
आत्मवत्	संयम
आदि	आदि
लक्षणेन	लक्षणोंसे
महापुरुषतां	महापुरुषताको
प्राप्तः	प्राप्त हुए ॥६॥

स वै स्वधर्मेण प्रजापालनपोषणप्रीणनोपलालनानुशासन-लक्षणेनेज्यादिना च भगवति महापुरुषे परावरे ब्रह्मणि सर्वात्मनार्पितपरमार्थलक्षणे न ब्रह्मविच्चरणानुसेवयाऽऽपादित-भगवद्भक्तियोगेन चाभीक्ष्णशः परिभावितातिशुद्धमतिरुपरतानात्म्य आत्मनि स्वयमुपलभ्यमानब्रह्मात्मानुभवोऽपि निरभिमान एवावनिमजूगुपत् ॥७॥

स वै स्वधर्मेण प्रजापालन पोषण प्रीणन उपलालन अनुशासन लक्षणेन इज्यादिना च भगवति महापुरुषे पर अवरे ब्रह्मणि सर्वात्मना अर्पित परमार्थ लक्षणे न ब्रह्मवित् चरण अनुसेवया आपादित भगवत् भक्तियोगेन च अभीक्ष्णशः परिभावित अतिशुद्ध मतिः उपरत अनात्म्य आत्मनि स्वयं उपलभ्यमान ब्रह्म आत्म अनुभवः अपि निरभिमानः एव अवनिं अजूगुपत् ॥७॥

स वै	उन्होंने तो
प्रजापालन	प्रजाके पालन
पोषण प्रीणन	पोषण, प्रसन्न करने
उपलालन	स्नेह करने
अनुशासन	मर्यादामें रखने
लक्षणेन	स्वरूप
स्वधर्मेण	अपने धर्मपालन
च इज्यादिना	तथा यज्ञादि द्वारा

भगवति	भगवान्
महापुरुषे	परमपुरुष
पर अवरे	कारण कार्य स्वरूप
ब्रह्मणि	ब्रह्ममें
सर्वात्मना	पूरे हृदयसे
अर्पित	अर्पित होकर
परमार्थ	परमार्थ
लक्षणे न	रूप हो गये
ब्रह्मवित्	ब्रह्मवेत्ता (महापुरुष)की
चरण	बराबर चरण-
अनुसेवया	सेवासे
आपादित	प्राप्त हुए
भगवत्	
भक्तियोगेन	भक्तियोग द्वारा
च अभीक्ष्णशः	तथा निरन्तर
परिभावित	(भगवद्) भावनासे
अतिशुद्ध मतिः	अत्यन्त शुद्ध बुद्धि,
उपरत	उपरत (तटस्थ) होकर
अनात्म्य	अनात्म (देहादि) वस्तुओंसे
आत्मनि	अपने भीतर ही
स्वयं	स्वतः
उपलभ्यमान	प्राप्त होते
ब्रह्म आत्म	अपने आत्माके ब्रह्म-
अनुभवः	रूप होनेका अनुभव
अपि	होनेपर भी
निरभिमानः एव	अभिमान रहित होकर ही
अर्वनि अजूगुपत	पृथ्वीका पालन करते रहे ॥७॥

तस्येमां गाथां पाण्डवेय पुराविद् उपगायन्ति ॥८॥

तस्य इमां गाथां पाण्डवेय पुराविद् उपगायन्ति ॥८॥

पाण्डवेय	परीक्षित्
तस्य	उन (गय)के विषयमें
पुराविद्	प्राचीन इतिहासज्ञ
इमां गाथां	इस गाथा (महिमा)का
उपगायन्ति	वर्णन करते हैं ॥८॥

गयं नृपः कः प्रतियाति कर्मभि-
र्यज्वाभिमानी बहुविद्धर्मगोप्ता ।
समागतश्रीः सदसस्पतिः सतां
सत्सेवकोऽन्यो भगवत्कलामृते ॥९॥

गयं नृपः कः प्रतियाति कर्मभिः इज्या अभिमानी बहुवित् धर्मगोप्ता समागतः श्रीः सदसस्पतिः सतां सत् सेवकः अन्यः भगवत् कलां ऋते ॥९॥

कः नृपः	कौन राजा	**सतां**	सज्जनोंके (समाजके)
कर्मभिः	(अपने) कर्मोंसे	**सदसस्पतिः**	शिरोमणि,
गयं प्रतियाति	राजा गयकी समता कर सकता है,	**सत् सेवकः**	सत्पुरुषोंके सेवक
इज्या	(सविधि) यज्ञोंके	**भगवत् कलां**	भगवान्‌की कलाको
अभिमानी	कर्ता,	**ऋते**	छोड़कर (दूसरा कौन हो सकता है।) ॥९॥
बहुवित्	बहुज्ञ,		
धर्मगोप्ता	धर्मरक्षक		
समागतः श्रीः	भलीप्रकार आयी लक्ष्मीसे सम्पन्न,		

यमभ्यषिञ्चन् परया मुदा सतीः
सत्याशिषो दक्षकन्याः सरिद्भिः ।
यस्य प्रजानां दुदुहे धराऽऽशिषो
निराशिषो गुणवत्सस्नुतोधाः ॥१०॥

यं अभ्यषिञ्चन् परया मुदा सतीः सत्य आशिषः दक्षकन्याः सरिद्भिः यस्य प्रजानां दुदुहे धरा आशिषः निराशिषः गुणवत् सस्नुत ओधाः ॥१०॥

यं	जिनका	**यस्य**	जिन
सतीः	साध्वी	**निराशिषः**	जिन निष्कामकी
सत्य आशिषः	सच्चा आशीर्वाद देनेवाली	**गुणवत्**	गुणवत्तासे
		सस्नुत ओधाः	झरते थनों वाली
दक्षकन्याः	दक्षकी कन्याओं (श्रद्धा, मैत्री आदि)ने	**धरा**	पृथ्वीने
		प्रजानां	प्रजाके लिए
		आशिषः	(सब) कामनाएँ
मुदा	प्रसन्नतापूर्वक	**दुदुहे**	दुह दिया (प्रदान किया) ॥१०॥
सरिद्भिः	नदियोंके द्वार		
अभ्यषिञ्चन्	अभिषेक किया था		

छन्दांस्यकामस्य च यस्य कामान्
दुदूहुराजह्रुरथो बलिं नृपाः ।
प्रत्यञ्चिता युधि धर्मेण विप्रा
यदाशिषां षष्ठमंशं परेत्य ॥११॥

छन्दांसि अकामस्य च यस्य कामान् दुदूहुः अथ बलिं नृपाः प्रत्यञ्चिता युधि धर्मेण विप्राः यत् आशिषां षष्ठं अंशं परेत्य ॥११॥

यस्य	जिन	**विप्राः**	ब्राह्मणोंने
अकामस्य च	कामनाहीनको	**यत् धर्मेण**	क्योंकि धर्मपूर्वक
छन्दांसि	वेदों (वैदिक कर्मों)ने	**आशिषां**	(दक्षिणादि) अभीष्ट पाये
कामान् दुदुहुः	सब भोग दुह दिये,	**परेत्य**	परलोकमें
युधि	युद्धमें (वाणोंसे)	**षष्ठं अंशं**	(अपने धर्म तपादिका) छठवां
प्रत्यञ्चिता	सत्कृत होकर		भाग दिया ॥११॥*
अथ नृपाः	फिर राजाओंने		
बलिं	उपहार दिये		

यस्याध्वरे भगवानध्वरात्मा
मघोनि माद्यत्युरुसोमपीथे ।
श्रद्धाविशुद्धाचलभक्तियोग-
समर्पितेज्याफलमाजहार ॥१२॥

यस्य अध्वरे भगवान् अध्वरात्मा मघोनि माद्यति उरु सोमपीथे श्रद्धा विशुद्ध अचल भक्तियोग समर्पित इज्या फलं आजहार ॥१२॥

यस्य अध्वरे	जिनके यज्ञमें		करनेसे
उरु सोमपीथे	बहुत सोमपान	**मघोनि**	इन्द्र

---

*स्मृतियोंके अनुसार राजा (शासक)का भाग (कर) प्रजाके उत्पादनका छठवां भाग होता है ।

माद्यति	उन्मत्त हो गये थे (तथा)	**भक्तियोग**	भक्तिसे
अध्वरात्मा	यज्ञात्मा	**समर्पित**	समर्पित
भगवान्	भगवान्‌ने	**इज्या फलं**	यज्ञके फलको
विशुद्ध श्रद्धा	विशुद्ध श्रद्धा एवं	**आजहार**	(प्रकट होकर) ग्रहण किया ॥१२॥
अचल	निश्चल		

यत्प्रीणनाद्बर्हिषि देवतिर्यङ्-
मनुष्यवीरुत्तृणमाविरिञ्चात् ।
प्रीयेत सद्यः स ह विश्वजीवः
प्रीतः स्वयं प्रीतिमगाद्गयस्य ॥१३॥

यत् प्रीणनात् बर्हिषि देव तिर्यंक् मनुष्य वीरुत् तृणम् आविरिञ्चात् प्रीयेत सद्यः स ह विश्वजीवः प्रीतः स्वयं प्रीतिं अगात् गयस्य ॥१३॥

बर्हिषि	यज्ञमें	**स ह**	निश्चय वही
यत् प्रीणनात्	जिनको तृप्त करनेपर	**प्रीतः**	नित्य तृप्त
देव तिर्यक्	देवता, पशु-पक्षी आदि,	**विश्वजीवः**	भगवान् विश्वात्मा
वीरुत् तृणम्	वृक्ष, घास (से लेकर)	**स्वयं**	स्वयं
आविरिञ्चात्	ब्रह्मापर्यन्त सब	**गयस्य**	गयके (यज्ञमें)
सद्यः प्रीयेत	तत्काल तृप्त हो जाते हैं	**प्रीतिं अगात्**	तृप्त हो गये थे ॥१३॥

गयाद्गयन्त्यां चित्ररथः सुगतिरवरोधन इति त्रयः पुत्रा बभूवुश्चित्ररथादूर्णायां सम्राडजनिष्ट ॥१४॥

गयात् गयन्त्यां चित्ररथः सुगतिः अवरोधनः इति त्रयः पुत्राः बभूवुः चित्ररथात् ऊर्णायां सम्राट् अजनिष्ट ॥१४॥

गयात् गयन्त्यां	राजा गयके गयन्तीसे	**बभूवुः**	हुए ।
चित्ररथः	चित्ररथ,	**चित्ररथात्**	चित्ररथसे
सुगतिः	सुगति	**ऊर्णायां**	ऊर्णामें
अवरोधनः	अवरोधन	**सम्राट्**	सम्राट् (नामका
इति त्रयः	इस प्रकार ये तीन	**अजनिष्ट**	पुत्र) उत्पन्न
पुत्राः	पुत्र		हुआ ॥१४॥

तत उत्कलायां मरीचिर्मरीचेर्बिन्दुमत्यां बिन्दुमानुदपद्यत तस्मात्सरघायां मधुर्नामाभवन्मधोः सुमनसि वीरव्रतस्ततो भोजायां मन्थुप्रमन्थू जज्ञाते मन्थोः सत्यायां भौवनस्ततो दूषणायां त्वष्टाजनिष्ट त्वष्टुर्विरोचनायां विरजो विरजस्य शतजित्प्रवरं पुत्रशतं कन्या च विषूच्यां किल जातम् ॥१५॥

ततः उत्कलायां मरीचिः मरीचेः बिन्दुमत्यां बिन्दुमान् उदपद्यत तस्मात् सरघायां मधुः नाम अभवत् मधोः सुमनसि वीरव्रतः ततः भोजायां मन्थुः प्रमन्थुः जज्ञाते मन्थोः सत्यायां भौवनः ततः दूषणायां त्वष्टा अजनिष्ट त्वष्टुः विरोचनायां विरजः विरजस्य शतजित् प्रवरं पुत्रशतं कन्या च विषूच्यां किल जातम् ॥१५॥

ततः	उससे	**मधोः सुमनसि**	मधुके सुमनासे
उत्कलायां	उत्कलामें	**वीरव्रतः**	वीरव्रत,
मरीचिः	मरीचि,	**ततः भोजायां**	उससे भोजामें
मरीचेः	मरीचिके	**मन्थुः प्रमन्थुः**	मन्थु और प्रमन्थु
बिन्दुमत्यां	बिन्दुमतीसे	**जज्ञाते**	उत्पन्न हुए ।
बिन्दुमान्	बिन्दुमान	**मन्थोः सत्यायां**	मन्थुके सत्यासे
उदपद्यत	उत्पन्न हुआ ।	**भौवनः**	भौवन,
तस्मात्	उससे	**ततः दूषणायां**	उससे दूषणामें
सरघायां	सरघामें	**त्वष्टा**	त्वष्टा
मधुः नाम	मधु नामका	**अजनिष्ट**	उत्पन्न हुआ ।
अभवत्	(पुत्र) हुआ ।	**त्वष्टुः**	त्वष्टाके

विरोचनायां	विरोचनासे	**शतजित् प्रवरं**	शतजित प्रधान
विरजः	विरज,	**पुत्रशतं**	सौ पुत्र
विरजस्य	विरजके	**च कन्या**	और एक कन्या
विषूच्यां किल	विषूचीमें तो	**जातं**	उत्पन्न हुई ॥१५॥

तत्रायं श्लोकः—

तत्र अयं श्लोकः—

तत्र अयं इस सम्बन्धों में यह | **श्लोकः** श्लोक है—

प्रैयव्रतं वंशमिमं विरजश्चरमोद्भवः ।
अकरोदत्यलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥१६॥

प्रैयव्रतं वंशं इमं विरजः चरम उद्भवः अकरोत् अति अलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥१६॥

यथा	जैसे	**चरम उद्भवः**	सबसे अन्तमें*
विष्णुः	भगवान् वामनने		उत्पन्न होकर
सुरगणं	देवताओंमें (अन्तमें	**विरजः**	विरजने
	उत्पन्न होकर वैसेही	**कीर्त्या**	(अपनी) कीर्तिसे
इमं	इस	**अति अलं**	अत्यन्त अलंकृत
प्रैयव्रतं	प्रियव्रतके	**अकरोत्**	किया ॥१६॥
वंशं	वंशको		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे प्रियव्रतवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

---

*वंशावलीमें केवल राज्य पाने वाले पुत्रके वंशकी चर्चाका क्रम है। अतः 'चरमोद्भवः' का अर्थ है कि प्रियव्रतके वंशका अन्तिम राजा विरज हुआ। अन्यथा यहीं उसके सौ पुत्र होना तो कहा ही गया है।

अथ षोडशोऽध्यायः

राजोवाच-

उक्तस्त्वया भूमण्डलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैश्चन्द्रमा वा सह दृश्यते ॥१॥

उक्तः त्वया भूमण्डल आयाम विशेषः यावत् आदित्यः तपति यत्र च असौ ज्योतिषां गणैः चन्द्रमा वा सह दृश्यते ॥१॥*

त्वया	आपने	**सह चन्द्रमा**	साथ चन्द्रमा
यावत्	जहाँ तक	**दृश्यते**	दीखता है
आदित्यः तपति	सूर्य तपता है	**भूमण्डल**	भू-मण्डलका
वा	अथवा	**आयाम**	विस्तार
यत्र च असौ	जहाँ तो यह	**विशेषः**	विशेष
ज्योतिषां गणैः	तारागणोंके	**उक्तः**	बतलाया ॥१॥

तत्रापि प्रियव्रतरथचरणपरिखातैः सप्तभिः सप्त सिन्धव उपक्लृप्ता यत एतस्याः सप्तद्वीपविशेषविकल्पस्त्वया भगवन् खलु सूचित एतदेवाखिलमहं मानतो लक्षणतश्च सर्वं विजिज्ञासामि ॥२॥

तत्र अपि प्रियव्रत रथचरण परिखातैः सप्तभिः सप्तसिन्धवः उपक्लृप्ताः यत एतस्याः सप्तद्वीप विशेष विकल्पः त्वया भगवन् खलु सूचितः एतत् एव अखिलं अहं मानतः लक्षणतः च सर्वं विजिज्ञासामि ॥२॥

---

*यहाँसे लेकर स्कन्धके अन्त तक भूगोल खगोलका जो वर्णन है, वह स्थूल-सूक्ष्म जगतका मिला-जुला वर्णन है। यह वर्णन केवल हमारे स्थूल जगतका नहीं है। अतः इसको ठीक-ठीक समझाना सम्भव नहीं है। केवल शब्दार्थ मात्र दिया जा रहा है। यही भू-मण्डलका विस्तार समस्त तारागणों तक कहा गया—यह विशेष ध्यान देने योग्य है।

तत्र अपि	वहाँ (भू-मण्डल विस्तारमें) भी•	**विकल्पः**	रचना
प्रियव्रत	प्रियव्रतके	**भगवन् त्वया**	भगवन् आपने
रथचरण	रथके पहियेसे	**खलु सूचितः**	जो बतलायी
सप्तभिः	सात बार घूमनेसे	**एतत् एव**	इसी
परिखातैः	खाईं के रूपमें	**अखिलं**	सम्पूर्णको ही
सप्तसिन्धवः	सात समुद्र	**अहं**	मैं
उपक्लृप्ताः	बन गये	**मानतः**	परिमाण तथा
यत एतस्याः	जिससे इस (पृथ्वी)के	**लक्षणतः**	लक्षणों सहित
सप्तद्वीप	सात द्वीप	**सर्वं**	सब (पूरा विवरण)
विशेष	विशेषकी	**विजिज्ञासामि**	जानना चाहता हूँ ॥२॥

भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितुं तदु हैतद् गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥३॥

भगवतः गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनः हि अगुणे अपि सूक्ष्मतम आत्म ज्योतिषि परेब्रह्मणि भगवति वासुदेव आख्ये क्षमं आवेशितुं तत् उ ह एतत् गुरोः अर्हसि अनुवर्णयितुं इति ॥३॥

हि भगवतः	क्योंकि भगवान्के	**आवेशितं**	प्रविष्ट कराया
गुणमये	गुणमय (त्रिगुणात्मक)	**मनः**	मन
स्थूलरूपे	स्थूल (विराट्) रूपमें	**अगुणे**	निर्गुण
		सूक्ष्मतम	अत्यन्त सूक्ष्म

•स्पष्ट है कि ये सात समुद्र और सात द्वीप विशेष वर्तमान ज्ञात पृथ्वीमें ही नहीं हैं। वर्तमान ज्ञात पृथ्वी तो केवल कर्म-क्षेत्र भारतवर्ष ही है। जम्बू द्वीपका शेषभाग और अन्य द्वीप तथा क्षार समुद्रसे भिन्न समुद्रादि सूक्ष्म जगतमें ही होने चाहिए।

आत्म	स्वयं	**आवेशितं**	प्रविष्ट करानेमें
ज्योतिषि	प्रकाश	**क्षमं**	सक्षम हो जाता है*
भगवति	भगवान्	**तत् उ ह**	अतः निश्चय
वासुदेव आख्ये	वासुदेव कहलाने वाले	**एतत्**	इसका
		गुरोः	गुरुदेव ! (आपको)
परेब्रह्मणि	परमब्रह्ममें	**अनुवर्णयितुं**	वर्णन
अपि	भी	**अर्हसि**	करना चाहिए ॥३॥

शुक उवाच- •

न वै महाराज भगवतो मायागुणविभूतेः काष्ठां मनसा वचसा वाधिगन्तुमलं विबुधायुषापि पुरुषस्तस्मात्प्राधान्येनैव भूगोलकविशेषं नामरूपमानलक्षणतो व्याख्यास्यामः ॥४॥

न वै महाराज भगवतः माया गुण विभूतेः काष्ठां मनसा वचसा वा अधिगन्तुं अलं विबुध आयुष अपि पुरुषः तस्मात् प्राधान्येन एव भूगोलक विशेषं नाम रूप मान लक्षणतः व्याख्यास्यामः ॥४॥

महाराज	महाराज !	**विभूतेः**	वैभवकी
भगवतः	भगवान्‌की	**काष्ठां**	पराकाष्ठाका पार
माया गुण	मायाके गुणोंके	**वचसा**	वाणीसे

---

* यहाँ यह स्पष्ट है कि यह भूगोल-खगोलका वर्णन भूगोल-खगोलकी जानकारीके लिए नहीं पूछा गया है। भूगोल तथा खगोलमें परिवर्तन होते ही रहते हैं। ग्रह-नक्षत्रादि भी बनते-नष्ट होते रहते हैं। उनका स्थायी कोई रूप नहीं है। स्थूल जगत तो परिवर्तनशील है। यहाँ विराट् रूपका जो शाश्वत है—ऐसा वर्णन पूछा गया है, जिसमें मन लगने पर भगवान्‌के सूक्ष्म परंब्रह्म रूपमें मनको प्रविष्ट किया जा सके। अतः यहाँका सब वर्णन भावनापूर्वक ध्यानके उपयोगका ही है।

• अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है।

वा मनसा	अथवा मनसे
पुरुषः	पुरुष
विबुध	देवताओंकी
आयुष अपि	आयुसे भी
अधिगन्तुं	पा जानेमें
अलं	पूरा
न वै	नहीं ही है,
तस्मात्	इसलिए
प्राधान्येन एव	प्रधानतासे ही
भूगोलक	भूगोलकी
विशेषं	विशेषताओंको
नाम रूप मान	नाम, रूप, परिमाण
लक्षणतः	(तथा) लक्षणद्वारा
व्याख्यास्यामः	वर्णन करेंगे ॥४॥

यो वायं द्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तरकोशो नियुतयोजन-विशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥५॥

यः वा अयं द्वीपः कुवलय कमलकोश अभ्यन्तर कोशः नियुतयोजन विशालः समवर्तुलः यथा पुष्करपत्रम् ॥५॥

यः वा अयं	जो यह (हमारे रहनेका)
द्वीपः	द्वीप है,
कुवलय	भू-मण्डल रूप
कमलकोश	कमलके भीतरी भागके
अभ्यन्तर	आन्तरिक (सबसे भीतरी)
कोशः	कोशके समान
नियुतयोजन	एक लाख योजन
विशालः	बड़ा
यथा पुष्कर-	जैसे कमल-
पत्रं	पत्र हो
समवर्तुलः	(वैसा) गोलाकार है ॥५॥

यस्मिन्नव वर्षाणि नवयोजनसहस्रायामान्यष्टभिर्मर्यादा-गिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति ॥६॥

यस्मिन् नव वर्षाणि नव योजनसहस्र आयामानि अष्टभिः मर्यादा गिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति ॥६॥

यस्मिन्	जिसमें
नव वर्षाणि	नौ देश
नव	नौ-नौ
योजनसहस्र	सहस्र योजनके
आयामानि	विस्तार वाले

अष्टभिः	आठ	**सुविभक्तानि**	भलीप्रकार बढ़े हुए
मर्यादा	सीमा-विभाजक	**भवन्ति**	हैं ॥६॥
गिरिभिः	पर्वतों द्वारा		

एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुर्द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य मूर्धनि द्वात्रिंशत् सहस्रयोजनविततो मूले षोडशसहस्रं तावतान्तर्भूम्यां प्रविष्टः ॥७॥

एषां मध्ये इलावृतंनाम अभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यां अवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजः मेरुः द्वीपायां असम उन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलय कमलस्य मूर्धनि द्वात्रिंशत् सहस्र योजन विततः मूले षोडश सहस्रं तावता अन्तः भूम्यां प्रविष्टः ॥७॥

एषां मध्ये	इन (देशोंके) बीचमें	**कमलस्य**	कमलकी
इलावृतंनाम	इलावृत नामका	**कर्णिकाभूतः**	कर्णिकाके समान है।
अभ्यन्तरवर्षं	सबसे भीतरी देश है	**मूर्धनि**	शिखर भागमें
यस्य नाभ्यां	जिसके मध्यमें	**द्वात्रिंशत्**	बत्तीस
सर्वतः सौवर्णः	सब ओरसे सोनेका	**सहस्र योजन**	हजार योजन
कुलगिरिराजः	कुल पर्वतोंका राजा	**विततः**	फैला हुआ है।
मेरुः	सुमेरु	**मूले षोडश**	जड़के पास सोलह
अवस्थितः	स्थित है।	**सहस्रं**	सहस्र (योजन) है।
द्वीपायां	द्वीपमें	**तावता**	इतना ही (सोलह सहस्र योजना)
असम उन्नाहः	विषम रूपसे ऊपर उठा है।	**अन्तः भूम्यां**	पृथ्वीके भीतर
कुवलय	भूमण्डल रूप	**प्रविष्टः**	घुसा हुआ है ॥७॥

उत्तरोत्तरेणेलावृतं नीलः श्वेतः शृङ्गवानिति त्रयो रम्यक-हिरण्मयकुरूणां वर्षाणां मर्यादागिरयः प्रागायता उभयतः क्षारो-

दावधयो द्विसहस्रपृथव एकैकशः पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो दशांशाधिकांशेन दैर्घ्य एव ह्रसन्ति ॥८॥

उत्तर उत्तरेण इलावृतं नीलः श्वेतः शृङ्गवान् इति त्रयः रम्यक हिरण्मय कुरूणां वर्षाणां मर्यादा गिरयः प्रागायता उभयतः क्षारोद अवधयः द्विसहस्र पृथवः एक एकशः पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् उत्तर उत्तरः दशांश अधिक अंशेन दैर्घ्य एव ह्रसन्ति ॥८॥

इलावृतं	इलावृतके	**क्षारोद**	खारे पानी(समुद्रके)
उत्तर उत्तरेण	उत्तरके उत्तरमें	**अवधयः**	तक फैले हैं
नीलः श्वेतः	नील, श्वेत,	**द्विसहस्र**	(प्रत्येक) दो सहस्र
शृङ्गवान्	शृंगवान्	**पृथवः**	(योजन) चौड़ा है।
इति त्रयः	इस प्रकार तीन	**एक एकशः**	एक-एक करके
रम्यक	रम्यक,	**पूर्वस्मात्**	पूर्व-
हिरण्मय	हिरण्मय,	**पूर्वस्मात्**	पूर्व वालों से
कुरूणां वर्षाणां	कुरु देशोंके	**उत्तर उत्तरः**	पिछले-पिछले
मर्यादा	सीमा निर्धारक	**दशांश अधिक**	दशांसे कुछ अधिक
गिरयः	पर्वत	**अंशेन**	अंशसे
प्रागायता	बतलाये जाते हैं।	**दैर्घ्यं एव**	लम्बाई में ही
उभयतः	(ये) दोनों ओर (पूर्वसे पश्चिम तक)	**ह्रसन्ति**	कम होते हैं ॥८॥

एवं दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालय इति प्रागायता यथा नीलादयोऽयुतयोजनोत्सेधा हरिवर्षकिम्पुरुषभारतानां यथा सख्यम् ॥९॥

एवं दक्षिणेन इलावृतं निषधः हेमकूटः हिमालयः इति प्रागायता यथा नीलादयः अयुत योजन उत्सेधा हरिवर्ष किम्पुरुष भारतानां यथा संख्यम् ॥९॥

एवं	इसी प्रकार	**दक्षिणेन**	दक्षिणमें
इलावृतं	इलावृतके	**निषधः**	निषध,

हेमकूटः	हेमकूट,	**उत्सेधा**	ऊँचे हैं।
हिमालयः	हिमालय	**हरिवर्षं**	हरिवर्ष
इति	इस प्रकार	**किम्पुरुष**	किम्पुरुष वर्ष
प्रागायता	बतलाये गये हैं।	**भारतानां**	भारतवर्षके
यथा	जैसे	**यथा संख्यं**	क्रमानुसार
नीलादयः	नील आदि पर्वत हैं		(सीमा पर्वत हैं)॥९।
अयुत योजन	(ये भी) दस हजार योजन		

तथैवेलावृतमपरेण पूर्वेण च माल्यवद्गन्धमादनावानील निषधायतौ द्विसहस्रं पप्रथतुः केतुमालभद्राश्वयोः सीमानं विदधाते ॥१०॥

तथा एव इलावृतं अपरेण पूर्वेण च माल्यवत् गन्धमादनः आनील निषध आयतौ द्विसहस्रं पप्रथतुः केतुमाल भद्राश्वयोः सीमानं विदधाते ॥१०॥

तथा एव	इसी प्रकार	**निषध**	निषध पर्वत तक
इलावृतं	इलावृतके	**आयतौ**	फैले हुए
अपरेण	दूसरी (पश्चिम ओर	**द्विसहस्रं**	दो हजार योजन
		पप्रथतुः	चौड़ाई वाले
च पूर्वेण	तथा पूर्वमें	**केतुमाल**	केतुमाल वर्ष
माल्यवत्	माल्यवान तथा	**भद्राश्वयोः**	भद्राश्व वर्षको
गन्धमादनः	गन्धमादन (पर्वत)	**सीमानं**	सीमायें
आनील-	नील और	**विदधातेः**	बनाते हैं ॥१०॥

मन्दरो मेरुमन्दरः सुपार्श्वः कुमुद इत्ययुतयोजनविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशमवष्टम्भगिरय उपक्लृप्ताः ॥११॥

मन्दरः मेरुमन्दरः सुपार्श्वः कुमुदः इति अयुत योजन विस्तार उन्नाहा मेरोः चतुर्दिशं अवष्टम्भ गिरयः उपक्लृप्ताः ॥११॥

मन्दरः	मन्दर,
मेरुमन्दरः	मेरुमन्दर,
सुपार्श्वः	सुपार्श्व
कुमुदः	कुमुद
इति	इस नामके
अयुत	दस-दस हजार
योजन विस्तार	योजन चौड़े
उन्नाहा	(इतने ही) ऊँचे
मेरोः चतुर्दिशं	सुमेरुके चारों ओर
अवष्टम्भ	उसे सम्हालने वाले
गिरयः	पर्वत
उपकल्पृताः	बने हैं ॥११॥

चतुर्ष्वेतेषु चूतजम्बूकदम्बन्यग्रोधाश्चत्वारः पादपप्रवराः पर्वतकेतव इवाधिसहस्रयोजनोन्नाहास्तावद् विटपविततयः शत-योजनपरिणाहाः ॥१२॥

चतुःषु एव तेषु चूत जम्बू कदम्बन्यग्रोधाः चत्वारः पादपप्रवराः पर्वतकेतव इव अधिसहस्र योजन उन्नाहाः तावत् विटप विततयः शतयोजन परिणाहाः ॥१२॥

तेषु चतुःषु	उन चारों ही
एव	(पर्वतों) पर
चूत जम्बू	आम, जामुन,
कदम्ब-	कदम्ब,
न्यग्रोधाः	बटके
चत्वारः	चार
पादपप्रवराः	वृक्षश्रेष्ठ
पर्वतकेतव	पर्वतोंके झण्डोंके
इव	समान हैं
अधिसहस्र	(ये) ग्यारह सौ
योजन	योजन
उन्नाहाः	ऊँचे हैं।
तावत् विटप	इनकी शाखाओंका
विततयः	फैलाव भी इतना ही है।
शतयोजन	(ये) सौ योजन
परिणाहाः	परिधि वाले (मोटे) हैं ॥१२॥

ह्रदाश्चत्वारः पयोमध्विक्षुरसमृष्टजला यदुपस्पर्शिन उपदेव-गणा योगैश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ धारयन्ति ॥१३॥

ह्रदाः चत्वारः पयः मधु इक्षुरस मृष्टजलाः यत् उपस्पर्शिनः उपदेव-गणाः योग ऐश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ धारयन्ति ॥१३॥

भरतर्षभ	भरतवंशमें श्रेष्ठ (परीक्षित)	**उपस्पर्शिनः**	सेवन करने वाले
चत्वारः	(इन पर्वतोंपर) चार	**उपदेवगणाः**	उपदेवगण (गन्धर्व किन्नरादि)
ह्रदाः	सरोवर हैं,	**स्वाभाविकानि**	नैसर्गिक
पयः मधु	दूध, मधु,	**योग ऐश्वर्याणि**	योगकी सिद्धियाँ
ईक्षुरस	गन्नेके रस (तथा)	**धारयन्ति**	धारण करते हैं ॥१३॥
मृष्टजलाः	मीठे पानीके		
यत्	जिनका		

देवोद्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतोभद्रमिति ॥१४॥

देव उद्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतोभद्रं इति ॥१४॥

देव उद्यानानि	देवताओंके बगीचे	**चैत्ररथं**	चैत्ररथ
च चत्वारि	भी चार (इन पर)	**वैभ्राजकं**	वैभ्राजक.
भवन्ति	हैं	**सर्वतोभद्रं**	सर्वतोभद्र
नन्दनं	नन्दन*	**इति**	इस नामके ॥१४॥

येष्वमरपरिवृढाः सह सुरललनाललामयूथपतय उपदेवगणैरुपगीयमानमहिमानः किल विहरन्ति ॥१५॥

येषु अमरपरिवृढाः सह सुरललना ललाम यूथ पतयः उपदेवगणैः उपगीयमान महिमानः किल विहरन्ति ॥१५॥

येषु	जिनमें	**महिमानः**	(अपनी) महिमा
उपदेवगणैः	उपदेवता गण (गन्धर्वादि) द्वारा	**उपगीयमानः**	गाये जाते हुए

---

*स्पष्ट ही है कि यह वर्णन सूक्ष्म-जगतका है। क्योंकि नन्दन-कानन तो स्वर्गका प्रसिद्ध है।

अमरपरिवृढाः	प्रधान प्रधान देवता	**किल**	अहो,
सुरललना ललाम	सुन्दर देवियोंके	**विहरन्ति**	विहार करते
सह	साथ		हैं ॥१५॥

मन्दरोत्सङ्ग एकादशशतयोजनोत्तुङ्गदेवचूतशिरसो गिरिशिखरस्थूलानि फलान्यमृतकल्पानि पतन्ति ॥१६॥

मन्दर उत्सङ्ग एकादशशत योजन उत्तुङ्ग देव चूतशिरसः गिरिशिखर स्थूलानि फलानि अमृत कल्पानि पतन्ति ॥१६॥

मन्दर उत्सङ्ग	मन्दराचलकी गोदमें	**चूतशिरसः**	आम्र-वृक्षके ऊपरसे
एकादशशत	ग्यारह सौ	**गिरिशिखर**	पर्वत शिखरके समान
योजन	योजन	**स्थूलानि**	बड़े
उत्तुङ्ग	ऊँचे	**अमृत कल्पानि**	अमृतके समान
देव	देवताओंके	**फलानि पतन्ति**	फल गिरते हैं ॥१६॥

तेषां विशीर्यमाणानामतिमधुरसुरभिसुगन्धिबहुलारुणरसोदेनारुणोदा नाम नदी मन्दरगिरिशिखरान्निपतन्ती पूर्वेणेलावृतमुपप्लावयति ॥१७॥

तेषां विशीर्यमाणानां अतिमधुर सुरभि सुगन्धि बहुल अरुणरसोदेन अरुणोदा नाम नदी मन्दरगिरि शिखरात् निपतन्ती पूर्वेण इलावृतं उपप्लावयति ॥१७॥

तेषां	उन (आम फलों)के	**नाम नदी**	नामकी नदी
विशीर्य-		**मन्दरगिरि**	मन्दराचलके
माणानां	फटते रहनेसे	**शिखरात्**	शिखरसे
अतिमधुर	बहुत मधुर	**निपतन्ती**	गिरती हुई
सुरभि सुगन्धि	उत्तम सुगन्धिसे	**पूर्वेण इलावृतं**	इलावृतके पूर्वी
बहुल	भरे		भागको
अरुणरसोदेन	लालरस प्रवाहसे	**उपप्लावयति**	सींचती है ॥१७॥
अरुणोदा	अरुणोदा		

यदुपजोषणाद्भवान्या अनुचरीणां पुण्यजनवधूनामवयवस्पर्श सुगन्धवातो दशयोजनं समन्तादनुवासयति ॥१८॥

यत् उपजोषणात् भवानी अनुचरीणां पुण्यजनवधूनां अवयवस्पर्श सुगन्धवातः दशयोजनं समन्तात् अनुवासयति ॥१८॥

यत्	जिसके	**सुगन्धवातः**	सुगन्धित हुआ वायु
उपजोषणात्	सेवनसे	**समन्तात्**	चारों ओर
भवानी	पार्वतीजीकी	**दशयोजनं**	दस योजन तक
अनुचरीणां	सेविका	**अनुवासयति**	सुगन्ध भरता है ॥१८॥
पुण्यजनवधूनां	यक्षपत्नियोंके		
अवयवस्पर्श	अंगोंके स्पर्शसे		

एवं जम्बूफलानामत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणा-मिभकायनिभानां रसेन जम्बू नामनदी मेरुमन्दरशिखरादयुत-योजनादवनितले निपतन्ती दक्षिणेनात्मानं यावदिलावृतमुपस्य-न्दयति ॥१९॥

एवं जम्बू फलानां अत्युच्च निपात विशीर्णानां अनस्थिप्रायाणां इभ-कायनिभानां रसेन जम्बू नाम नदी मेरुमन्दर शिखरात् अयुत योजनात् अवनितले निपतन्ती दक्षिणेन आत्मानं यावत् इलावृतं उपस्यन्दयति ॥१९॥

एवं	इसी प्रकार	**जम्बू नाम नदी**	जम्बू नामकी नदी
मेरुमन्दर	मेरुमन्दरके	**अयुत**	दस हजार
शिखरात्	शिखर से	**योजनात्**	योजन (ऊँचाई) से
इभकायनिभानां	हाथीके शरीर जैसे	**अवनितले**	भूतलपर
अनस्थिप्रायाणां	प्रायः गुठली रहित	**निपतन्ती**	गिरती हुई
जम्बू फलानां	जामुनके फलोंके	**आत्मानं**	अपनेसे
अत्युच्च	बहुत ऊँचेसे	**दक्षिणेन**	दक्षिण भागके
निपात	गिरनेके कारण	**इलावृतं**	इलावृतको
विशीर्णानां	फटे हुओंके	**उपस्यन्दयति**	सींचती है ॥१९॥
रसेन	रससे		

तावदुभयोरपि रोधसोर्या मृत्तिका तद्रसेनानुविध्यमाना वाय्वर्कसंयोगविपाकेन सदामरलोकाभरणं जाम्बूनदं नाम सुवर्ण भवति ॥२०॥

तावत् उभयोः अपि रोधसोः या मृत्तिका तद् रसेन अनुविध्यमाना वायु अर्क संयोग विपाकेन सदा अमरलोक आभरणं जाम्बूनदं नाम सुवर्णं भवति ॥२०॥

उभयोः	(उस नदीके) दोनों	**तावत्**	समय पाकर
अपि	ही	**विपाकेन**	परिपक्व होकर
रोधसोः	किनारे	**सदा**	नित्य
या	जो	**अमरलोक**	देवताओंको
मृत्तिका	मिट्टी है (वह)	**आभरणं**	भुषित करने वाला
तद् रसेन	उसके रससे	**जाम्बूनदं नाम**	जाम्बूनद नामका
अनु विध्यमाना	बराबर भीग कर	**सुवर्णं**	स्वर्ण
वायु	वायु (और)	**भवति**	हो जाती है ॥२०॥
अर्क संयोग	सूर्यकी धूप लगनेसे		

यदु ह वाव विबुधादयः सह युवतिभिर्मुकुटकटककटिसूत्राद्याभरणरूपेण खलु धारयन्ति ॥२१॥

यत् उ ह वाव विबुध आदयः सह युवतिभिः मुकुट कटक कटिसूत्र आदि आभरण रूपेण खलु धारयन्ति ॥२१॥

यत् ह वाव	जिसे निश्चित ही	**कटिसूत्र आदि**	कटिसूत्र आदि
विबुध आदयः	देवता आदि	**आभरण**	आभूषणोंके
युवतिभिः	युवतियों (देवियों) के	**रूपेण**	रूपमें
		खलु	निश्चय ही
सह	साथ	**धारयन्ति**	धारण करते हैं ॥२१॥
मुकुट कटक	मुकुट, कड़े,		

यस्तु महाकदम्बः सुपार्श्वनिरूढो यास्तस्य कोटरेभ्यो विनिःसृताः पञ्चायामपरिणाहाः पञ्च मधुधाराः सुपार्श्वशिखरात्पतन्त्योऽपरेणात्मानमिलावृतमनुमोदयन्ति ॥२२॥

यः तु महाकदम्बः सुपार्श्व निरूढः याः तस्य कोटरेभ्यः विनिःसृताः पञ्च आयाम परिणाहाः पञ्च मधुधाराः सुपार्श्व शिखरात् पतन्त्यः अपरेण आत्मानं इलावृतं अनुमोदयन्ति ॥२२॥

सुपार्श्व	सुपार्श्व पर्वतपर
निरूढः	स्थित
यः तु	जो तो
महाकदम्बः	महाकदम्ब है,
तस्य कोटरेभ्यः	उसके खोखलेसे
विनिःसृताः	निकलती हुई
याः	जो
पञ्च	पांच
आयाम	पुरसा (हाथ ऊपर उठाये पुरुषकी ऊँचाई)
परिणाहाः	जितनी मोटी
पञ्च	पाँच
मधुधाराः	रस धाराएँ हैं (वे)
सुपार्श्व	सुपार्श्वके
शिखरात्	शिखरसे
पतन्त्यः	गिरती हुई
आत्मानं	अपनेसे
अपरेण	भिन्न दिशा (पश्चिम भाग)
इलावृतं	इलावृतको
अनुमोदयन्ति	बराबर सुवासित करती हैं ॥२२॥

या पयुञ्जानानां मुखनिर्वासितो वायुः समन्ताच्छतयोजनमनुवासयति ॥२३॥

या हि उपयुञ्जानानां मुख निर्वासितः वायुः समन्तात् शतयोजनं अनुवासयति ॥२३॥

या हि	जिसके कि
उपयुञ्जानानां	उपयोग करने वालोंके
मुख निर्वासितः	मुखसे निकली
वायुः	वायु
समन्तात्	चारों ओर
शतयोजनं	सौ योजन (तक)
अनुवासयति	सुगन्धि फैलाती है ॥२३॥

एवं कुमुदनिरूढो यः शतवल्शो नाम वटस्तस्य स्कन्धेभ्यो नीचीनाः पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यम्बरशय्यासनाभरणादयः सर्व एव कामदुघा नदाः कुमुदाग्रात्पतन्तस्तमुत्तरेणेलावृतमुपयोजयन्ति ॥२४॥

एवं कुमुद निरूढः यः शतवल्शः नाम वटः तस्य स्कन्धेभ्यः नीचीनाः पयः दधि मधु घृत गुड अन्न आदि अम्बर शय्या आसन आभरण आदयः सर्व एव कामदुघा नदाः कुमुद आग्रात् पतन्तः तं उत्तरेण इलावृतं उपयोजयन्ति ॥२४॥

एवं	इसी प्रकार	**आदि**	आदि
कुमुद	कुमुद पर्वतपर	**अम्बर, शय्या,**	वस्त्र, शय्या,
निरूढः	स्थित	**आसन आभरण**	आसन, आभूषण
यः शतवल्शः	जो शतवल्श	**आदयः**	आदि
नाम	नामका	**सर्व एव**	सभी
वटः	वट वृक्ष है,	**कामदुघा**	कामनाओंके देने वाले
तस्य	उसके		
स्कन्धेभ्यः	स्कन्ध (मुख्य शाखाओं) से	**नदाः**	नद
		कुमुद अग्रात्	कुमुदके शिखरसे
नीचीनाः	निकलने वाले	**पतन्तः**	गिरते हुए
पयः दधि	दूध, दही,	**इलावृतं**	इलावृतके
मधु घृत	शहद, घी	**उत्तरेण**	उत्तरी भागको
गुड अन्न	गुड़, अन्न,	**उपयोजयन्ति**	भिगाते हैं ॥२४॥

यानुपजुषाणानां न कदाचिदपि प्रजानां वलीपलितक्लमस्वेदौर्गन्ध्यजरामयमृत्युशीतोष्णवैवर्ण्योपसर्गादयस्तापविशेषा भवन्ति यावज्जीवं सुखं निरतिशयमेव ॥२५॥

यान् उपजुषाणानां न कदाचित् अपि प्रजानां वली पलित क्लम स्वेद दौर्गन्ध्य जरा आमय मृत्यु शीत उष्ण वैवर्ण्य उपसर्ग आदयः ताप विशेषा भवन्ति यावत् जीवं सुखं निरतिशयं एव ॥२५॥

यान्	जिन (उन नदोंके दिये पदार्थों)का
उपजुषाणानां	उपयोग करनेवाले
प्रजानां	प्रजाजनको
कदाचित् अपि	कभी भी
वली पलित	झुर्रियां पड़ने, केश पकने,
क्लम, स्वेद	थकावट, पसीना,
दौर्गन्ध्य	(शरीरसे) दुर्गन्धि निकलना,
जरा आमय	बुढ़ापा, रोग,
मृत्यु	मृत्यु,
शीत उष्ण	सर्दी-गर्मी (लगना)
वैवर्ण्य	कान्ति हीनता,
आदयः उपसर्ग	आदि कष्ट
ताप विशेषा	(मानसिक) सन्ताप विशेष
न भवन्ति	नहीं होते
यावत् जीवं	जब तक जीते हैं,
निरतिशयं सुखं एव	परिपूर्ण सुख ही (रहता है) ॥२५॥

कुरङ्गकुररकुसुम्भवैकङ्कत्रिकूटशिशिरपतङ्गरुचकनिषधशिनीवासकपिलशङ्खवैदूर्यजारुधिहंसर्षभनागकालञ्जरनारदादयो विंशतिगिरयो मेरोः कर्णिकाया इव केशरभूता मूलदेशे परित उपक्लृप्ताः ॥२६॥

कुरङ्ग, कुरर, कुसुम्भ, वैकङ्क, त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक, निषध, शिनीवास, कपिल, शङ्ख, वैदूर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालञ्जर, नारद* । आदयः विंशति गिरयः मेरोः कर्णिकाया इव केशरभूता मूलदेशे परित उपक्लृप्ताः ॥२६॥

आदयः	आदि (गिनाये गये)
विंशति गिरयः	बीस पर्वत
कर्णिकाया इव	(कमलकी)कर्णिका के समान
मेरोः मूलदेशे	सुमेरुके मूल प्रदेश
केशरभूता	केशरके समान
परित	चारों ओर
उपक्लृप्ताः	समीप स्थित हैं ॥२६॥

---

*ये पर्वतों के नाम हैं। पर्वतोंके नामोंका अन्वय, अर्थ नहीं किया जा सकता।

जठरदेवकूटौ मेरुं पूर्वेणाष्टादशयोजनसहस्रमुदगायतौ द्विसहस्रं पृथुतुङ्गौ भवतः । एवमपरेण पवनपारियात्रौ दक्षिणेन कैलास-करवीरौ प्रागायतावेवमुत्तरस्त्रिशृङ्गमकरावष्टभिरेतैः परिस्तृतो-ऽग्निरिव परितश्चकास्ति काञ्चनगिरिः ॥२७॥

जठर देवकूटौ मेरुं पूर्वेण अष्टादश योजन सहस्रं उदगायतः द्विसहस्रं पृथुतुङ्गौ भवतः एवं अपरेण पवन पारियात्रौ दक्षिणेन कैलास करवीरौ प्रागायताः एवं उत्तरः त्रिशृङ्ग मकर अवष्टभिः एतैः परिस्तृतः अग्नि इव परितः चकास्ति काञ्चनगिरिः ॥२७॥

मेरुं पूर्वेण	सुमेरुके पूर्वकी ओर (इनके अतिरिक्त)
जठर देवकूटौ	जठर तथा देवकूट पर्वत
अष्टादश सहस्रं	अठारह हजार
योजनं	योजन
उदगायतः	लम्बे कहे गये हैं।
द्विसहस्रं	दो सहस्र (योजन)
पृथुतुङ्गौ	मोटे (इतने ही) ऊँचे
भवतः	हैं।
एवं अपरेण	इसी प्रकार पश्चिमकी ओर
पवन	पवन (तथा)
पारियात्रौ	परियात्रा (पर्वत)
दक्षिणेन	दक्षिणकी ओर
कैलास	कलास (एवं)
करवीरौ	करवीर
प्रागायताः	बतलाये गये हैं।
एवं उत्तरः	इसी प्रकार उत्तरमें
त्रिशृङ्ग मकर	त्रिशृङ्ग तथा मकरके
अवष्टभिः	स्थित होनेसे
एतैः परिस्तृतः	इनसे चारों ओरसे घिरा
काञ्चनगिरिः	स्वर्ण-पर्वत (सुमेरु)
अग्निः इव	अग्निके समान
परितः	चारों ओरसे
चकास्ति	चमकता रहता है ॥२७॥

मेरोर्मूर्धनि भगवत आत्मयोनेर्मध्यत उपक्लृप्तां पुरीमयुत-योजनसाहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदन्ति ॥२८॥

मेरोः मूर्धनि भगवत आत्मयोनेः मध्यत उपक्लृप्तां पुरीं अयुतयोजन साहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदन्ति ॥२८॥

मेरोः मूर्धनि	सुमेरुके शिखर पर
मध्यत	बीचमें
उपक्लृप्तां	बनी
भगवत	भगवान्
आत्मयोनेः	ब्रह्माकी
शातकौम्भीं	स्वर्णमयी
समचतुरस्रां	समचतुर्भुज (चौरस)
अयुतयोजन-साहस्रीं पुरीं वदन्ति	करोड़ योजना-(विस्तार)की पुरी बतलायी जाती है ॥२८॥

तामनु परितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं यथारूपं तुरीयमानेन पुरोऽष्टावुपक्लृप्ताः ॥२९॥

तां अनु परितः लोकपालानां अष्टानां यथादिशं यथारूपं तुरीय मानेन पुरः अष्टाः उपक्लृप्ताः ॥२९॥

तां अनु	उस (ब्रह्मपुरी)से नीचे
परितः	सब ओर
अष्टानां	आठो
लोकपालानां	लोकपालोंकी
अष्टाः पुरः	आठ पुरियां
यथादिशं	उन-उनकी दिशाओंमें
यथारूपं	उन-उनके अनुरूप
तुरीय मानेन	(ब्रह्माजीकी पुरीसे) चौथाई परिमाणकी
उपक्लृप्ताः	बनी हैं ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादांगुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरेणान्तःप्रविष्टा या बाह्यजलधारा तच्चरणपङ्कजावनेजनारुणकिञ्जल्कोपरञ्जिताखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनामला साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोऽभिधीयमानातिमहता कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्धन्यवतातार यत्तद्विष्णुपदमाहुः ॥१॥

तत्र भगवतः साक्षात् यज्ञलिङ्गस्य विष्णोः विक्रमतः वामपाद अंगुष्ठ नख निर्भिन्न ऊर्ध्व अण्डकटाह विवरेण अन्तः प्रविष्टा या बाह्य जलधारा तत् चरण पंकजअवनेजन अरुण किञ्जल्क उपरञ्जित अखिल जगत् अघमल अपहा उपस्पर्शन अमला साक्षात् भगवत्पदी इति अनुपलक्षित वचः अभिधीयमान अतिमहता कालेन युगसहस्र उपलक्षणेन दिवः मूर्धनि अवततार यत् तत् विष्णुपदं आहुः ॥१॥

तत्र भगवतः	परम पूज्य भगवान्	**अण्डकटाह**	ब्रह्माण्डावरणके
साक्षात्	साक्षात्	**ऊर्ध्व**	ऊपरी भागके
यज्ञलिङ्गस्य	यज्ञस्वरूप	**विवरेण**	छिद्रसे
विष्णोः	विष्णु (विराट् रूप धारी वामन) के	**या बाह्य**	जो बाहरी
		जलधारा	जलधारा
विक्रमतः	(त्रिलोक) नापते समय	**अन्तः**	(ब्रह्माण्डके) भीतर
		प्रविष्टा	आ गयी
वामपद	बायें पैरके	**तत् चरण पंकज**	वह (भगवान्) के चरण-कमल
अंगुष्ठ नख	अँगूठेके नखसे		
निर्भिन्न	फूटे हुए	**अवनेजन**	धुलनेसे

अरुण	(उनमें लगी) लाल
किञ्जल्क	केशरसे
उपरञ्जित	रंग गयी।
उपस्पर्शन	(वह) स्पर्श मात्रसे
अखिल जगत्	सम्पूर्ण संसारके
अघमल	पाप रूपी मलको
अपहा	दूर करने वाली
अमला	(स्वयं) निर्मल है।
साक्षात्	साक्षात्
भगवत्पदी	भगवत्पदी
इति	इस प्रकार
अनुपलक्षित	सांकेतिक
वचः	वाणीसे
अभिधीयमान	कही जाने वाली
युगसहस्र	सहस्रों युगोंसे
उपलक्षणेन	लक्षित
अतिमहता	बहुत अधिक
कालेन	समय बीतनेपर
यत् तत्	जिसे कि
विष्णुपदं	विष्णुपद
आहुः	कहा जाता है
दिवः मूर्धनि	उस स्वर्गके शिरो भागमें
अवततार	उतरी ॥१॥

यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतोऽस्मत्कुलदेवताचरणारविन्दोदकमिति यामनुसवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्तियोगेन दृढं क्लिद्यमानान्तर्हृदय औत्कण्ठ्यविवशामीलितलोचनयुगलकुड्मलविगलितामलबाष्पकलयाभिव्यज्यमानरोमपुलककुलकोऽधुनापि परमादरेण शिरसा बिभर्ति ॥२॥

यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतः अस्मत् कुलदेवता चरणारविन्द उदकं इति यां अनुसवनं उत्कृष्यमाण भगवत्भक्तियोगेन दृढं क्लिद्यमान अन्तः हृदय औत्कण्ठ्य विवश अमीलित लोचनयुगल कुड्मल विगलित अमल बाष्पकलया अभिव्यज्यमान रोमपुलककुलकः अधुना अपि परम आदरेण शिरसा बिभर्ति ॥२॥

वीरव्रत	वीरव्रत परीक्षित !
यत्र ह वाव	जहाँ निश्चित ही
परम-भागवतः	परम भगवद्-भक्त
औत्तानपादिः	उत्तानपादके पुत्र ध्रुव
अस्मत्	हमारे
कुलदेवता	कुल-देवताके
चरणारविन्द	चरण-कमलोंका
उदकं इति	जल है, इस भावसे

भगवत्भक्ति	भगवद्-भक्ति
योगेन	योगसे
दृढं	बड़े जोरसे
उत्कृष्यमाण	आकर्षित होते
क्लिद्यमान	द्रवित हुए
अन्तः हृदय	अन्तःकरणके कारण
औत्कण्ठ्य	उत्कण्ठासे
विवश	विवश
अमीलित	खुले हुए
लोचनयुगल	दोनों नेत्रोंसे
कुड्मल	कमल कलिका जैसे
विगलित	झरती
अमल	निर्मल
बाष्पकलया	अश्रुधारा तथा
रोमपुलक कुलकः	रोमावलीमें पुलक
अभिव्यज्यमान	प्रकट करते हुए
यां अनुसवनं	जिसे नित्यप्रति
अधुना अपि	आज भी
परम आदरेण	बड़े आदरसे
शिरसा	सिरपर
बिभर्ति	धारण करते हैं ॥२॥

ततः सप्त ऋषयस्तत्प्रभावाभिज्ञा यां ननु तपस आत्यन्तिकी सिद्धिरेतावती भगवति सर्वात्मनि वासुदेवेऽनुपरतभक्तियोगलाभेनैवोपेक्षितान्यार्थात्मगतयो मुक्तिमिवागतां मुमुक्षव इव सबहुमानमद्यापि जटाजूटैरुद्वहन्ति ॥३॥

ततः सप्त ऋषयः तत् प्रभाव अभिज्ञाः यां ननु तपसः आत्यन्तिकी सिद्धिः एतावती भगवति सर्वात्मनि वासुदेवे अनुपरत भक्तियोगलाभेन एव उपेक्षितानि अर्थ आत्मगतयः मुक्ति इव आगतां मुमुक्षव इव सबहुमानं अद्यापि जटाजूटैः उद्वहन्ति ॥३॥

ततः	इसके पश्चात्
सप्त ऋषयः	सप्तर्षिगण
तत् प्रभाव	उनका प्रभाव
अभिज्ञाः	जाननेके कारण
यां ननु	यही निश्चय ही
तपसः	तपस्याकी
आत्यन्तिकी	आत्यन्तिक
सिद्धिः	सिद्धि है,
एतावती	ऐसा मानकर
मुमुक्षव इव	मुमुक्षु जनके समान
आगतां	प्राप्त हुई
मुक्ति इव	मुक्तिकी भांति
आत्मगतयः	आत्मज्ञानकी
उपेक्षितानि अर्थ	उपेक्षा करनेके लिए

सर्वात्मनि	सर्वात्मा	**अद्यापि**	आज भी
भगवति	भगवान्	**सबहुमानं**	अत्यन्त आदर
वासुदेवे	वासुदेवकी		सहित
अनुपरत	निश्चल	**जटाजूटैः**	जटाजूटपर
भक्तियोगलाभेन	भक्ति-प्राप्तिके लिए	**उद्वहन्ति**	धारण करते
एव	ही		हैं ॥३॥

ततोऽनेकसहस्रकोटिविमानानीकसंकुलदेवयानेनावतरन्तीन्दु-मण्डलमावार्य ब्रह्मसदने निपतति ॥४॥

ततः अनेक सहस्र कोटि विमान अनीक संकुल देवयानेन अवतरन्ती इन्दुमण्डलं आवार्य ब्रह्मसदने निपतति ॥४॥

ततः	वहाँसे	**अवतरन्ति**	उतरती हुई
अनेक सहस्र	अनेक सहस्र	**इन्दुमण्डलं**	चन्द्र-मण्डलको
कोटि	करोड़	**आवाय**	प्लावित करती
विमान अनीक	विमान समूहोंसे	**ब्रह्मसदने**	(सुमेरु-शिखरसे)
संकुल	भरे हुए		ब्रह्मपुरीमें
देवयानेन	देवयान-मार्गसे	**निपतति**	गिरती है ॥४॥

तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशमभिस्पन्दन्ती नदनदीपतिमेवाभिनिविशति सीतालकनन्दा चक्षुर्भद्रेति ॥५॥

तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुःभिः नामभिः चतुः दिशं अभिस्पन्दन्ती नदनदीपतिं एव अभिनिविशति सीता अलकनन्दा चक्षुः भद्रा इति ॥५॥

तत्र	वहाँसे	**सीता**	सीता,
चतुर्धा	चार धाराओंमें	**अलकनन्दा**	अलकनन्दा■
भिद्यमाना	बँटकर		

■ भागवतमें ही श्रीबद्रीनाथमें अलकनन्दाका वर्णन है (११-२९-४२) पर यह अलकनन्दा उस समय समुद्र तक जाती थी। भागीरथीके आनेपर उनसे देवप्रयागमें मिली होंगी।

चक्षुः भद्रा	चक्षु, भद्रा
इति चतुःभिः	इस प्रकार चार
नामभिः	नामोंसे
चतुःदिशं	चारों दिशाओंमें
अभिस्पन्दन्ती	बहती हुई
नदनदीपतिं	नद-नदियोंके स्वामी
एव	(समुद्र)में ही
अभिनिविशति	प्रवेश करती हैं ॥५॥

सीता तु ब्रह्मसदनात्केसराचलादिगिरिशिखरेभ्योऽधोऽधः प्रस्रवन्ती गन्धमादनमूर्धसु पतित्वान्तरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्यां दिशि क्षारसमुद्रमभिप्रविशति ॥६॥

सीता तु ब्रह्मसदनात् केसर अचला आदि गिरिशिखरेभ्यः अधः अधः प्रस्रवन्ती गन्धमादन मूर्धसु पतित्वा अन्तरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्यां दिशि क्षार समुद्रं अभिप्रविशति ॥६॥

सीता तु	सीता तो
ब्रह्मसदनात्	ब्रह्मपुरीसे
केसर अचला	केसर भूत पर्वतों
आदि	आदिके
गिरिशिखरात्	एक-से दूसरे पर्वत शिखरपर गिरती
अधः अधः	नीचे ही नीचेकी
प्रस्रवन्ती	ओर बहती
गन्धमादन	गन्धमादनके
मूर्धसु	शिखरपर
पतित्वा	गिरकर
भद्राश्ववर्षं	भद्राश्व वर्षके
अन्तरेण	अन्दर होती
प्राच्यां दिशि	पूर्व दिशामें
क्षार समुद्रं	खारे समुद्रमें
अभिप्रविशति	मिल जाती हैं ॥६॥

एवं माल्यवच्छिखरान्निष्पतन्ती ततोऽनुपरतवेगा केतुमालमभि चक्षुः प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति ॥७॥

एवं माल्यवत् शिखरात् निष्पतन्ती ततः अनुपरतवेगा केतुमालं अभि चक्षुः प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति ॥७॥

एवं चक्षुः	इसी प्रकार चक्षु
माल्यवत्	माल्यवानके
शिखरात्	शिखरपर
निष्पतन्ती	गिरकर
ततः	वहाँसे
अनुपरतवेगाः	वेग कम हुए बिना

केतुमालं अभि	केतुमाल वर्षमें होकर उसी ओर	**सरित्पतिं प्रविशति**	समुद्रमें प्रवेश करती है ॥७॥
प्रतीच्यां दिशि	पश्चिम दिशामें		

भद्रा चोत्तरतो मेरुशिरसो निपतिता गिरिशिखराद्गिरिशिखरमतिहाय शृङ्गवतः शृङ्गादवस्यन्दमाना उत्तरांस्तु कुरूनभित उदीच्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ॥८॥

भद्रा च उत्तरतः मेरु शिरसः निपतिता गिरिशिखरात् गिरिशिखरं अतिहाय शृङ्गवतः शृङ्गात् अवस्यन्दमाना उत्तरान तु कुरून् अभित उदीच्यां दिशि जलधि अभिप्रविशति ॥८॥

भद्रा च	भद्रा भी	**शृङ्गवतः**	शृंगमानके
मेरु उत्तरतः	सुमेरुके उत्तरी	**शृङ्गात्**	शिखरसे
शिरसः	शिखरसे	**अवस्यन्दमाना**	गिरती हुई
निपतिता	गिरकर	**उत्तरान् तु**	उत्तरे कुरु वर्षमें
गिरिशिखरात्	(एक) पर्वत शिखरसे	**कुरून्**	(होकर)
		अभित	उस ओरके
गिरिशिखरं	(दूसरे) पर्वत शिखरको	**उदीच्यां दिशि**	उत्तर दिशाके
		जलधि	समुद्रमें
अतिहाय	पार करती हुई (अन्तमें)	**अभिप्रविशति**	मिल जाती है ॥८॥

तथैवालकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनाद्बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य हेमकूटाद्धैमकूटान्यतिरभसतररंहसा लुठयन्ती भारतमभि वर्षं दक्षिणस्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति यस्यां स्नानार्थं चागच्छतः पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराजसूयादीनां फलं न दुर्लभमिति ॥९॥

तथा एव अलकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनात् बहूनि गिरिकूटानि अतिक्रम्य हेमकूटात् हेमकूटानि अति रभसतर रंहसा लुठयन्ती भारतं अभि वर्षं दक्षि-

यस्यां दिशि जलधिं अभिप्रविशति यस्यां स्नानार्थं च आगच्छतः पुसः पदे-पदे अश्वमेध राजसूय आदीनां फलं न दुर्लभं इति ॥९॥

तथा एव	इसी प्रकार
अलकनन्दा	अलकनन्दा
ब्रह्मसदनात्	ब्रह्मपुरीकी
दक्षिणेन	दक्षिण ओरसे
बहूनि	बहुतसे
गिरिकूटानि	पर्वत-शिखरोंको
अतिक्रम्य	पार करके
हेमकूटात्	हेमकूट पर्वतसे
हेमकूटानि	हिमालयके शिखरोंको■
अति रभसतर	अत्यन्त तीव्र
रंहसा	वेगसे
लुठयन्ती	लुढ़काती (तोड़ती-फोड़ती)
भारतं अभि	भारतवर्षकी ओर
दक्षिणस्यां	दक्षिण
दिशि	दिशामें
जलधि	समुद्रमें
अभिप्रविशति	मिल जाती हैं*
यस्यां	जिनमें
स्नानार्थं	स्नानके लिए
आगच्छतः	आने वाले
पुंसः च	पुरुषके लिए भी (स्नान करनेसे पूर्व ही)
पदे पदे	पद-पदपर
अश्वमेध	अश्वमेघ,
राजसूय	राजसूय
आदीनां	आदि (यज्ञों) का
फलं	फल
दुर्लभं न	दुर्लभ नहीं रहता
इति	ऐसी (महिमा गंगाकी है) ॥९॥

अन्ये च नदा नद्यश्च वर्षे वर्षे सन्ति बहुशो मेर्वादिगिरि-दुहितरः शतशः ॥१०॥

■ केवल यहाँ हिमालयसे भौतिक वर्णन चला है। अतः ब्रह्मपुरीसे चलने वाली शेष तीनों धाराएँ सीता, चक्षु और भद्राका अन्वेषण वर्तमान स्थूल पृथ्वीपर करना सम्भव नहीं।

* जहाँ आज गंगासागर है, वहाँ भागीरथी गंगाकी धारा राजा भगीरथ लाये। अलकनन्दा तब कहाँ समुद्रमें मिलती थीं–पता नहीं है। अब तो भागीरथीमें मिल जाती हैं।

अन्ये च नदा नद्यः च वर्षे वर्षे सन्ति बहुशः मेरु आदि गिरि दुहितरः शतशः ॥१०॥

अन्ये च	दूसरे भी	**दुहितरः**	पुत्रियाँ
नद नद्यः च	नद-नदियाँ भी	**शतशः**	सैकड़ों हैं (वे)
मेरु आदि	मेरु आदि (पर्वतों) की	**वर्षे वर्षे**	प्रत्येक वर्षमें
		बहुशः सन्ति	बहुत-सी हैं ॥१०॥

तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्ट वर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति ॥११॥

तत्र अपि भारतं एव वर्षं कर्मक्षेत्रं अन्यानि अष्ट वर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेष उपभोग स्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति ॥११॥

तत्र अपि	उन देशों) में भी	**पुण्यशेष**	बचे हुए पुण्योंके
भारतं वर्षं एव	भारतवर्ष ही■	**उपभोग**	भोगनेके
कर्मक्षेत्रं	कर्मक्षेत्र है (जहाँके कर्मका फल होता है ।)	**स्थानानि**	स्थान हैं ।
		भौमानि	(इन्हें) 'भूलोकके
		स्वर्गपदानि	स्वर्ग' शब्दसे भी
अन्यानि	दूसरे	**व्यपदिशन्ति**	कहा जाता
अष्टवर्षाणि	आठ वर्ष (देश)		है ॥११॥
स्वर्गिणां	स्वर्ग गये लोगोंके		

एषु पुरुषाणामयुतपुरुषायुर्वर्षाणां देवकल्पानां नागायुत-प्राणानां वज्रसंहननबलवयोमोदप्रमुदितमहासौरतमिथुनव्यवाया-पवर्गवर्षधृतैकगर्भकलत्राणां तत्र तु त्रेतायुगसमः कालो वर्तते ॥१२॥

■ वर्तमान ज्ञात सम्पूर्ण पृथ्वी भारतवर्ष ही है। पृथ्वीके बहुतसे देशोंमें भारतीय मूलके लोग रहते हैं। इस पृथ्वीपर कहीं भी रहने वाले पुरुषको कर्मयोनिका प्राणी ही माना जाता है। अतः यह पूरी पृथ्वी कर्म-क्षेत्र भारतवर्ष है, हमारा यह भारतवर्ष तो भरतखण्ड है।

एषु पुरुषाणां अयुत पुरुष आयुः वर्षाणां देवकल्पानां नाग अयुत प्राणानां वज्र संहनन बल वयः आमोद प्रमुदित महासौरत मिथुन व्यवाय अपवर्ग वर्ष धृत एक गर्भ कलत्राणां तत्र तु त्रेतायुगसमः कालः वर्तते ॥१२॥

एषु	इन (भारतेतर आठ देशों) में
देवकल्पानां	देवताओंके समान (देवोपम)
पुरुषाणां	पुरुषोंकी
पुरुष वर्षाणां	मनुष्यके वर्षसे
अयुत	दस सहस्र वर्षकी
आयुः	आयु होती है
अयुत	दस हजार
नाग	हाथियों जैसा
प्राणानां	बल होता है।
वज्र संहनन	वज्रके समान सुदृढ़
बल वयः	बल, यौवन और
आमोद	उल्लास होनेसे
प्रमुदित	आनन्दित
मिथुन	स्त्री-पुरुषके जोड़े
महासौरत	बहुत समय तक
व्यवाय	मैथुनादि करते रहते हैं
अपवर्ग	मोक्ष (मरण) के
वर्ष	(अन्तिम)वर्षमें
कलत्राणां	उनकी पत्नियाँ
धृत	धारण करती हैं
एक गर्भ	एक ही गर्भ
तत्र तु	वहाँ तो
त्रेतायुगसमः	त्रेतायुगके समान
कालः वर्तते	काल रहता है■ ॥१२॥

यत्र ह देवपतयः स्वैः स्वैर्गणनायकैर्विहितमहार्हणाः सर्वर्तुकुसुमस्तबकफलकिसलयश्रियाऽऽनम्यमानविटपलताविटपिभिरुपशुम्भमानरुचिरकाननाश्रमायतनवर्षगिरिद्रोणीषु तथा चामलजलाशयेषु विकचविविधनववनरुहामोदमुदितराजहंसजलकुक्कुटकारण्डवसारसचक्रवाकादिभिर्मधुकरनिकराकृतिभिरुपकूजितेषु जलक्रीडादिभिर्विचित्रविनोदैः सुललितसुरसुन्दरीणां कामकलिलविलासहासलीलावलोकाकृष्टमनोदृष्टयः स्वैरं विहरन्ति ॥१३॥

■ पृथ्वीके भारतेतर आठ देशोंका यह वर्णन वर्तमान पृथ्वीके किसी देशका तो होना सम्भव नहीं है। अतः वर्तमान पृथ्वी भारतवर्ष है और ये शेष आठ वर्ष दिव्य सूक्ष्म जगतके हैं।

यत्र ह देवपतयः स्वैः स्वैः गणनायकैः विहित महा अर्हणाः सर्व ऋतु कुसुम स्तबक फल किसलय श्रिया आनम्यमान विटपलता विटपिभिः उपशुम्भमान रुचिर कानन आश्रम आयतन वर्षगिरि द्रोणीषु तथा च अमल जलाशयेषु विकच विविध नव वनरुह आमोद मुदित राजहंस जलकुक्कुट कारण्डव सारस चक्रवाक आदिभिः मधुकर निकर आकृतिभिः उपकूजितेषु जलक्रीडाभिः विचित्र विनोदैः सुललित सुरसुन्दरीणां कामकलिल विलास हास लीला अवलोक आकृष्ट मनः दृष्टयः स्वैरं विहरन्ति ॥१३॥

यत्र ह	जहाँ कि
देवपतयः	देवनायक
स्वैः स्वैः	अपने-अपने
गणनायकैः	गणनायकों द्वारा
विहित	महती
महा अर्हणाः	पूजा पाते हुए,
सर्व ऋतु	सभी ऋतुओंमें
कुसुम स्तबक	पुष्प-गुच्छ,
फल किसलय	फल, नवपल्लवकी
श्रिया	शोभासे युक्त
विटपलता	वृक्षों और लताओंकी और
विटपिभिः	डालियोंके
आनम्यमान	झुके हुए
उपशुम्भमान	सुशोभित
रुचिर कानन	सुन्दर वन,
आश्रम	आश्रम,
आयतन	भवन तथा
वर्षगिरि	देशके पर्वतोंकी
द्रोणीषु	घाटियोंमें
तथा	और
विकच विविधि	खिले हुए अनेक
नव वनरुह	नये कमलोंकी
आमोद मुदित	सुगन्धिसे प्रसन्न
राजहंस	राजहंस,
जलकुक्कुट	जलमुर्गे,
कारण्डव	कारण्डव (लेदी)
सारस	सारस
चक्रवाक	चकवा
आदिभिः	आदिके
उपकूजितेषु	समीप कूजन (बोलने)से
मधुकर निकर	भौंरेंके समूहके
आकृतिभिः	गुंजारसे युक्त
अमल	निर्मल
जलाशयेषु	जलाशयोंमें
जलक्रीडाभिः	जलक्रीड़ा द्वारा
विचित्र	अनेक प्रकारके
विनोदैः	विनोदसे,
सुललित	परम सुन्दर
सुरसुन्दरीणां	देवाङ्गनाओंके
कामकलिल	कामावेश सूचक
विलास हास	हाव-भाव, हँसी
लीला अवलोक	लीला कटाक्षसे
मनः दृष्टयः	मन और नेत्र
आकृष्ट	(उनकी ओर) आकर्षित किये
स्वैरं विहरन्ति	स्वच्छन्द विहार करते हैं ॥१३॥

नवस्वपि वर्षेषु भगवान्नारायणो महापुरुषः पुरुषाणां तदनुग्रहायात्मतत्त्वव्यूहेनात्मनाद्यापि संनिधीयते ॥१४॥

नवसु अपि वर्षेषु भगवान् नारायणः महापुरुषः पुरुषाणां तत् अनुग्रहाय आत्मतत्त्व व्यूहेन आत्मन अद्य अपि संनिधीयते ॥१४॥

नवसु	(इन) नौके नौ	**आत्मनः**	**अपनी**
वर्षेषु अपि	देशोंमें ही	**अनुग्रहाय**	कृपा करनेके लिए
महापुरुषः	परमपुरुष	**आत्मतत्त्व**	अपनी विभिन्न
भगवान्	भगवान्	**व्यहेन**	मूर्तियोंके रूपमें
नारायणः	नारायण	**अद्य अपि**	आजभी (इनके)
तत् पुरुषाणां	वहांके पुरुषोंपर	**संनिधीयते**	समीप रहते हैं॥१४॥

इलावृते तु भगवान् भव एक एव पुमान्न ह्यन्यस्तत्रापरो निर्विशति भवान्याः शापनिमित्तज्ञो यत्प्रवेक्ष्यतः स्त्रीभावस्तत्पश्चाद्वक्ष्यामि ॥१५॥

इलावृते तु भगवान् भव एक एव पुमान् न हि अन्यः तत्र अपरः निर्विशति भवान्याः शाप निमित्तज्ञः यत् प्रवेक्ष्यतः स्त्री भावः तत् पश्चात् वक्ष्यामि ॥१५॥

इलावृते तु	इलावृतमें तो	**न हि निर्विशति**	नहीं प्रवेश करता
भगवान् भव	भगवान् शिव	**यत् प्रवेक्ष्यतः**	जहां प्रवेश करनेसे
एक एव पुमान्	अकेले ही पुरुष हैं,	**स्त्री भावः**	स्त्रीत्व (प्राप्त) हो जाता है
भवान्याः	भवानीके		
शाप निमित्तज्ञः	शापका कारण जाननेवाला	**तत्**	उस (के कारण)को
		पश्चात्	पीछे
तत्र अपरः	वहां दूसरा कोई अन्य	**वक्ष्यामि**	बतलाऊँगा ॥१५॥

भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो भगवतश्चतुर्मूर्तेर्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः सङ्कर्षणसंज्ञामात्मसमाधिरूपेण संनिधाप्यैतदभिगृणन् भव उपधावति ॥१६॥

भवानीनाथैः स्त्रीगण अर्बुद सहस्त्रैः अवरुध्यमानः भगवतः चतुःमूर्तेः महापुरुषस्य तुरीयां तामसी मूर्ति प्रकृतिं आत्मनः सङ्कर्षण संज्ञां आत्मसमाधिरूपेण संनिधाप्य एतत् अभिगृणन् भव उपधावति ॥१६॥

स्त्रीगण अर्बुद सहस्त्रैः	अरबों-खरबों स्त्री-गण (पार्वतीकी दासियों)से
अवरुध्यमानः	सेवित
भवानीनाथैः	उमापति द्वारा
चतुः मूर्तेः	चतुर्व्यूहात्मक■ स्वरूपवाले
भगवतः	भगवान्
महापुरुषस्य	परमपुरुषकी
तुरीयां	चौथी
आत्मनः प्रकृतिं	अपनी कारण रूपा
तामसीं मूर्ति	तमः प्रधान मूर्ति
सङ्कर्षण संज्ञां	संकर्षण नामवालो का
आत्मसमाधि-रूपेण	अपनी एकाग्रताके द्वारा
संनिधाप्य	(मनोमय विग्रहके रूपमें) सामीप्य प्राप्त करके
एतत्	यह
अभिगृणन्	कहते हुए
भव उपधावति	शंकरजी स्तुति करते हैं ॥१६॥

*श्रीमहादेव उवाच-**

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसङ्ख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति ॥१७॥

ॐ नमः भगवते महापुरुषाय सर्वगुण सङ्ख्यानाय अनन्ताय अव्यक्ताय नमः इति ॥१७॥

ॐ नमः भगवते	प्राणस्वरूप भगवान् को नमः
सर्वगुण	सब गुणोंको
सङ्ख्यानाय	संख्या देने (प्रकट करने)वाले
अनन्ताय	अनन्त स्वरूप
अव्यक्ताय नमः	अव्यक्तको नमस्कार ।
इति	इस प्रकार(यह भगवान् संकर्षणका मन्त्र है ।) मन्त्रका अनुवाद न करके मूल ही पढ़ा जाना चाहिए॥१७॥

■ वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सङ्कर्षण यह चतुर्व्यूह है ।

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'श्रीभगवानुवाच' है ।

भजे भजन्यारणपादपङ्कजं
भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ।
भक्तेष्वलं भावितभूतभावनं
भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥१८॥

भजे भजन्या अरणपाद पङ्कजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणं भक्तेषु अलं भावित भूतभावनं भव अपहं त्वां भवभावं ईश्वरम् ॥१८॥

कृत्स्नस्य	सम्पूर्ण
भगस्य	ऐश्वर्यके
परं परायणं	परमनिवास
भक्तेषु	भक्तोंके लिए
अलं भूतभावनं	परमप्राणि परि-पालक रूप
भावित	प्रकटकर देने वाले
भव अपहं	(जन्म-मरण रूप) संसारको मिटानेवाले
भवभावं	संसारकी भावना (उत्पत्ति) करनेवाले
ईश्वरं	सर्वसमर्थ
त्वां भजन्या	आज भजनीयके
अरणपाद-	लाल-चरण-
पङ्कजं	कमलका
भजे	(हम) भजन करते हैं ॥१८॥

न यस्य मायागुणचित्तवृत्तिभि-
र्निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ।
ईशे यथा नोऽजितमन्युरंहसां
कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥१९॥

न यस्य मायागुण चित्तवृत्तिभिः निरीक्षतः हि अणु अपि दृष्टिः इज्यते ईशे यथा नः अजित मन्यु रंहसां कः तं न मन्येत जिगीषुः आत्मनः ॥१९॥

मायागुण	मायाके गुणोंवाली
चित्तवृत्तिभिः	चित्तकी वृत्तियोंसे
निरीक्षतः	देखते रहनेपर भी
हि	क्योंकि
यस्य ईशे	जिस आप समर्थकी
अणु अपि	तनिक भी
दृष्टिः	दृष्टि
न इज्यते	संसक्त नहीं होती,
मन्यु रंहसां	क्रोधके वेगको
अ जित	न जीत सकनेवाले

यथा नः	जैसे हमारी (हो जाती है)	**जिगीषुः**	जीतनेकी इच्छावाला
तं	उन (आपका)	**कः न मन्येत**	कौन सम्मान नहीं करेगा ॥१९॥
आत्मनः	चित्तको		

असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया
क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः ।
न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया
यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः ॥२०॥

असत् दृशः यः प्रतिभाति मायया क्षीब इव मधु आसव ताम्रलोचनः न नागवध्वः अर्हण ईशिरे ह्रिया यत् पादयोः स्पर्शन धर्षित इन्द्रियाः॥२०॥

मायया	मायाके द्वारा (वे)	**स्पर्शन**	स्पर्शसे
असत् दृशः	मिथ्या दृष्टि हैं	**धर्षित इन्द्रियाः**	चञ्चल इन्द्रिय हुई
यः	जो (जिनको आप)	**नागवध्वः**	नाग-पत्नियां
मधु आसव	मधु-आसव(पीनेसे)	**ह्रिया**	लज्जाके कारण
ताम्रलोचनः	लाल नेत्रवाले	**अर्हण**	पूजा करनेमें
प्रतिभाति	प्रतीत होते हैं ।	**ईशिरे न**	समर्थ नहीं हुईं ॥२०॥
यत् पादयोः	जिनके चरणोंके		

यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं
त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः ।
न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं
भूमण्डल मूधसहस्रधामसु ॥२१॥

यं आहुः अस्य स्थिति जन्म संयमं त्रिभिः विहीनं यं अनन्तं ऋषयः न वेद सिद्धार्थं इव क्वचित् स्थितं भूमण्डलं मूर्ध सहस्र धामसु ॥२१॥

ऋषयः	ऋषिगण	**अस्य**	इस (संसार) की
यं अनन्तं	जिन्हें अनन्त (कहते हैं)	**स्थिति जन्म**	स्थिति, उत्पत्ति
		संयमं	प्रलय (का हेतु)

यं	(श्रुति) जिसे
आहुः	बतलाती है
त्रिभिः	(वह आप इन) तीनों (उत्पत्ति, स्थिति, लय) से
विहीनं	रहित हैं।
सहस्र	(आपके) सहस्र
धामसु	मस्तकोंपर
सिद्धार्थं	सरसोंके दानेके
इव	समान
क्वचित् स्थितं	कहीं स्थित
भूमण्डलं	भू-मण्डलको(आप)
न वेद	नहीं जान पाते (कि वह कहाँ है) ॥२१॥

यस्याद्य आसीद् गुणविग्रहो महान्
विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल।
यत्सम्भवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा
वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे ॥२२॥

यस्य अद्य आसीत् गुणविग्रहः महान् विज्ञानधिष्ण्यः भगवान् अजः किल यत् सम्भवः अहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसं ऐन्द्रियं सृजे ॥२२॥

यत् सम्भवः	जिनसे उत्पन्न हुआ
अहं	मैं
त्रिवृता	(अहंकार रूप) त्रिविध हो जाने वाले
स्वतेजसा	अपने तेजसे
वैकारिकं	वैकारिक (देवता)
तामसं	तामस (पंच महा-भूत)
ऐन्द्रियं	इन्द्रियोंकी
सृजे	सृष्टि करता हूँ
किल	निश्चय (वे)
विज्ञानधिष्ण्यः	विज्ञानके आश्रय
भगवान् अजः	भगवान् ब्रह्मा (जो)
अद्य	इस समय
आसीत्	हैं
यस्य	जिस (आपके)
महान्	महत्तत्त्वरूप
गुणविग्रहः	प्रथम गुणसे उत्पन्न हैं ॥२२॥

एते वयं यस्य वशे महात्मनः
स्थिताः शकुन्ता इवसूत्र यन्त्रिताः ।
महानहं वैकृततामसेन्द्रियाः
सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम् ॥२३॥

एते वयं यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयन्त्रिताः महान् अहं वैकृत तामस एन्द्रियाः सृजाम सर्वे यत् अनुग्रहात् इदम् ॥२३॥

सूत्रयन्त्रिताः	सूत्रमें बँधे (नियन्त्रित)	**वैकृत**	इन्द्रियाभिमानी देवता,
शकुन्ता इव	पक्षियोंकी भाँति	**तामस**	पञ्चमहाभूत,
एते वयं	ये हम सब	**एन्द्रियाः**	इन्द्रियां
यस्य महात्मनः	जिन महापुरुषके	**सर्वे**	सब (मिलकर)
वशे स्थिताः	वशमें हैं और	**इदं**	इस (जगत) की
यत् अनुग्रहात्	जिनके अनुग्रहसे	**सृजाम**	रचना करते
महान् अहं	महत्तत्त्व, अहंकार,		हैं ॥२३॥

यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं
मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः ।
न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा
तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ॥२४॥

यत् निर्मितां कर्हि अपि कर्म पर्वणीं मायां जनः अयं गुणसर्ग मोहितः न वेद निस्तारण योगं अञ्जसा तस्मै नमः ते विलय उदय आत्मने ॥२४॥

गुणसर्ग	सृष्टिके गुणोंसे	**यत् निर्मितां**	जिनकी निर्मित
मोहितः	मोहित	**मायां**	मायासे
अयं जनः	यह मनुष्य	**कर्हि अपि**	कभी भी
कर्म पर्वणीं	कर्म-ग्रन्थि वाली	**अञ्जसा**	सरलतासे

निस्तारण योगं	पार होनेका उपाय	**आत्मने**	स्वरूप
न वेद	नहीं जानता	**ते नमः**	आपको नमस्कार ॥२४॥
तस्मै	उन		
विलय उदय-	प्रलय सृष्टि-		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

तथा च भद्रश्रवा नाम धर्मसुतस्तत्कुलपतयः पुरुषा भद्राश्ववर्षे साक्षाद्भगवतो वासुदेवस्य प्रियां तनुं धर्ममयीं हयशीर्षाभिधानां परमेण समाधिना संनिधाप्येदमभिगृणन्त उपधावन्ति ॥१॥

तथा च भद्रश्रवा नाम धर्मसुतः तत् कुलपतयः पुरुषाः भद्राश्ववर्षे साक्षात् भगवतः वासुदेवस्य प्रियां तनुं धर्ममयीं हयशीर्ष अभिधानां परमेण समाधिना संनिधाप्य इदं अभिगृणन्त उपधावन्ति ॥१॥

तथा च	इसी प्रकार	**हयशीर्ष**	हयशीर्ष
भद्राश्ववर्षे	भद्राश्व वर्षमें	**अभिधानां**	नामके
भद्रश्रवा नाम	भद्रश्रवा नामके	**प्रियां तनुं**	प्रिय विग्रहका
धर्मसुतः	धर्मके पुत्र (तथा)	**परमेण**	अत्यन्त
तत् कुलपतयः	उनके कुलके	**समाधिना**	एकाग्रतासे
पुरुषाः	प्रमुख पुरुष	**संनिधाप्य**	(हृदयमें) सामीप्य पाकर
साक्षात्	साक्षात		
भगवतः	भगवान्	**इदं अभिगृणन्त**	यह (मन्त्र) बोलते हुए
वासुदेवस्य	वासुदेवके		
धर्ममयीं	धर्ममय	**उपधावन्ति**	स्तुति करते हैं ॥१॥

भद्रश्रवस ऊचुः-

ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥२॥

ॐ नमः भगवते धर्माय आत्म बिशोधनाय नमः इति ॥२॥

आत्म	चित्तको	ॐ	ओंकार स्वरूप
विशोधनाय	शुद्ध करने वाले		

भगवते धर्माय नमः नमः	भगवान् धर्मको बार-बार नमस्कार	**इति**	इस प्रकार (यह मन्त्र है) ॥२॥

अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं
घ्नन्तं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ।
ध्यायन्नसद्यर्हि विकर्म सेवितुं
निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषति ॥३॥

अहो विचित्रं भगवत् विचेष्टितं घ्नन्तं जनः अयं हि मिषन् न पश्यति ध्यायत् असत् यर्हि विकर्म सेवितुं निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषति ॥३॥

अहो	अहो,	**विकर्म सेवितुं**	असत् कर्मके करनेका
भगवत्	भगवान्‌की	**असत् ध्यायत्**	पापमय चिन्तन करता है
विचेष्टितं	लीला	**पुत्रं पितरं**	(तब) पुत्र और पिता (के शवको)
विचित्रं	विचित्र है ।	**निर्हृत्य**	जलाकर आनेपर भी
हि मिषन्	क्योंकि देखते हुए	**जिजीविषति**	(स्वयं) जीवित रहनेकी इच्छा करता है ॥३॥
अयं जनः	यह मनुष्य		
घ्नन्तं	मारनेवाले (काल)को		
न पश्यति	नहीं देखता ।		
यर्हि	जब		

वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं
पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः ।
तथापि मुह्यन्ति तवाज मायया
सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥४॥

वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यन्ति च अध्यात्मविदः विपश्चितः तथापि मुह्यन्ति तव अज मायया सुविस्मितं कृत्यं अजं नतोऽस्मि तम् ॥४॥

कवयः	बुद्धिमान लोग
विश्वं	संसारको
नश्वरं	विनाशशील
वदन्ति स्म	कहते ही हैं,
च अध्यात्म-	तथा अध्यात्म-
विदः	तत्त्वको जाननेवाले
विपश्चितः	विवेकी
पश्यन्ति	(ऐसा ही) देखते भी हैं,
तथापि	फिर भी
तव	आपकी
अज मायया	अनादि मायासे
मुह्यन्ति	मोहित हो जाते हैं
सुविस्मितं	अत्यन्त विस्मयकारी
कृत्यं अजं	कर्मवाले आप अजन्मा
तं नतोऽस्मि	उस आपको (हम) नमस्कार करते हैं ॥४॥

विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते
ह्यकर्तुरङ्गीकृतमप्यपावृतः ।
युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे
सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥५॥

विश्व उद्भव स्थान निरोध कर्म ते हि अकर्तुः अङ्गीकृतं अपि अपावृतः युक्तं न चित्रं त्वयि कार्य कारणे सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥५॥

हि	क्योंकि
ते अकर्तः	आप अकर्ता द्वारा
विश्व उद्भव	संसारकी उत्पत्ति,
स्थान निरोध	स्थित, प्रलय
कर्म अङ्गीकृतः	कर्म स्वीकार किया गया है ।
अपि अपावृतः	फिर भी (आप) आवरण रहित हैं-
त्वयि कार्य	आप कार्य-
कारणे	कारण रूप
सर्वात्मनि	सर्वात्मामें
युक्तं	यह उपयुक्त है,
न चित्रं	(इसमें कुछ) विचित्र नहीं है
वस्तुतः च व्यतिरिक्ते	वस्तुतः तो आप (इन सबसे) अतीत हैं ॥५॥

वेदान् युगान्ते तमसा तिरस्कृतान्
रसातलाद्यो नृतुरङ्गविग्रहः ।

प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते
तस्मै नमस्तेऽवितथेहिताय इति ॥६॥

वेदान् युगान्ते तमसा तिरस्कृतान् रसातलात् यः नृतुरङ्ग विग्रहः प्रति आददे वै कवये अभियाचते तस्मै नमः ते अवितथ ईहिताय इति ॥६॥

युगान्ते	प्रलयके समय	**अभियाचते**	प्रार्थना करने वाले
तमसा	तमोगुणी (राक्षस) द्वारा	**कवये वै**	ब्रह्माजीको
		प्रति आददे	लौटा कर दिया
तिरस्कृतान्	छिपा दिये गये	**इति**	इस प्रकारके
वेदान् यः	वेदोंको जिन	**अवितथ**	अमोघ
नृतुरङ्ग	मनुष्य एवं घोड़ेके सम्मिलित	**ईहिताय**	सङ्कल्प
		तस्मै ते	उस आपको
विग्रहः	स्वरूप वाले (प्रभु) ने	**नमः**	हम) नमस्कार करते हैं ॥६॥

*श्रीशुक उवाच-**

हरिवर्षे चापि भगवान्नरहरिरूपेणास्ते । तद्रूपग्रहणनिमित्तमुत्तरत्राभिधास्ये । तद्दयितं रूपं महापुरुषगुणभाजनो महाभागवतो दैत्यदानवकुलतीर्थीकरणशीलाचरितः प्रह्लादोऽव्यवधानानन्यभक्तियोगेन सह तद्वर्षपुरुषैरुपास्ते इदं चोदाहरति ॥७॥

हरिवर्षे च अपि भगवान् नरहरिरूपेण आस्ते । तत् रूप ग्रहण निमित्तं उत्तरत्र अभिधास्ये । तत् दयितं रूपं महापुरुष गुण भाजनः महाभागवतः दैत्यदानवकुल तीर्थीकरण शील आचरितः प्रह्लादः अव्यवधान अनन्य भक्तियोगेन सह तत् वर्ष पुरुषैः उपास्ते इदं च उदाहरति ॥७॥

हरिवर्षे च अपि	हरिवर्षमें भी	**नरहरिरूपेण**	नृसिंह रूपमें
भगवान्	भगवान्	**आस्ते**	रहते हैं

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तत् रूप	उस रूपके	**शील**	शीलका
ग्रहण	धारणका	**आचरितः**	आचरण करने वाले
निमित्तं	कारण	**प्रह्लादः**	प्रह्लादजी
उत्तरत्र	इसी प्रसंगमें आगे	**अव्यवधान**	निर्बाध
अभिधास्ये	बतलाऊँगा ।	**अनन्य**	अनन्य
तत्	उस (अपने)	**भक्तियोगेन**	भक्ति द्वारा
दयितं रूपं	परमप्रिय रूपकी	**तत् वर्ष**	उस वर्षके
महापुरुष	महापुरुषोचित	**पुरुषैः सह**	पुरुषोंके साथ
गुण भाजनः	गुणोंसे युक्त	**उपास्ते**	उपासना करते हैं,
महाभागवतः	परमभगवद् भक्त	**च इदं**	और इस
दैत्यदानवकुल	दैत्यदानवकुलको		(स्तोत्र) का
तीर्थीकरण	पवित्र करने वाले	**उदाहरति**	पाठ करते हैं ॥७॥

*प्रह्लाद उवाच-**

ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविरविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा । अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐ क्ष्रौम् ॥८॥

ॐ नमः भगवते नरसिंहाय नमः तेजः तेजसे आविः आविः भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्म आशयान् रन्धय रन्धय तमः ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा । अभयं अभयं आत्मनि भूयिष्ठा ॐ क्ष्रौम् ॥८॥

ॐ	ओंकार स्वरूप	**नमः**	(आपको)
भगवते	भगवान्		नमस्कार ।
नरसिंहाय नमः	नृसिंहको नमस्कार	**वज्रनख**	वज्रनख,
तेजः तेजसे	तेजस्वियोंके भी	**वज्रदंष्ट्र**	वज्रदाढों वाले !
	तेज	**आविः**	प्रकट होइये !

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

आविः भव	प्रकट होइये !
कर्म	कर्म संस्कार रूप
आशयान्	चित्तको
रन्धय	भून दीजिये !
रन्धय	भून दीजिये !
तमः	अज्ञान्धकारको
ग्रस	ग्रा लीजिये,
ग्रस	खा लीजिये,
ॐ स्वाहा	ॐ स्वाहा ।
आत्मनि	अन्तःकरणमें
अभयं अभयं	परमअभय
भूयिष्ठा	देने वाले बनिये ।
ॐ क्ष्रौम्	ॐ क्ष्रौम ॥८॥

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥९॥

स्वस्ति अस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथः धिया मनः च भद्रं भजतात् अधोक्षजे आवेश्यतां नः मतिः अपि अहैतुकी ॥९॥

विश्वस्य	विश्वका
स्वति अस्तु	कल्याण हो,
खलः प्रसीदतां	दुष्टोंका (चित्त) निर्मल हों,
भूतानि मिथः	प्राणी परस्पर
धिया	बुद्धिसे (एक-दूसरेका) कल्याण
शिवं ध्यायन्तु	चिन्तन करें ।
च मनः भद्रं	और मन शुभमें
भजतात्	लगे ।
नः मतिः अपि	हमारी बुद्धि भी
अधोक्षजे	भगवान् हृषीकेशमें
अहैतुकी	निष्काम भावसे
आवेश्यतां	प्रवेश करें ॥९॥

मागारदारात्मजवित्तबन्धुषु
सङ्गो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः ।
यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्
सिद्ध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः ॥१०॥

मा आगार दारा आत्मज वित्त बन्धुषु सङ्गः यदि स्यात् भगवत् प्रियेषु नः यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान् सिद्धयति अदूरात् न तथा इन्द्रिय प्रियः ॥१०॥

नः यदि सङ्गः	यदि हमारी
स्यात्	आसक्ति हो
भगवत् प्रियेषु	(तो) भगवान्‌के प्रेमियोंसे हो,
आगार दारा	घर, स्त्री,
आत्मज वित्त	पुत्र, धन,
बन्धुषु मा	सम्बन्धियोंसे न हो।
यः प्राणवृत्त्या	जो जीवन-निर्वाह मात्रसे
परितुष्ट	सन्तुष्ट रहनेवाला
आत्मवान्	संयमी है,
अदूरात्	(वह) शीघ्र
सिद्ध्यति	सिद्ध (सफलता) पा लेता है,
तथा इन्द्रिय	उस प्रकार इन्द्रियोंसे
प्रियः न	प्रेम करनेवाला नहीं (पाता) ॥१०॥

यत्सङ्गलब्धं निजवीर्यवैभवं
तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम्।
हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं
को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम् ॥११॥

यत् सङ्ग लब्धं निजवीर्य वैभवं तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसं हरति अजः अन्तः श्रुतिभिः गतः अङ्गजं कः वै न सेवेत मुकुन्द विक्रमम् ॥११॥

यत् सङ्ग	उन (महापुरुषों)के सत्संगसे
हि	क्योंकि
मुहुः मानसं	बार-बार हृदयको
संस्पृशतां	स्पर्श करनेवाला
तीर्थं	परम-पवित्र
निजवीर्य वैभवं	(आपके) अपने पराक्रम तथा ऐश्वर्यका
लब्धं	(वर्णन सुननेको) मिलता है,
अजः	(जिससे) अजन्मा प्रभु
श्रुतिभिः	श्रवण-मार्गसे
अन्तः गतः	अन्तःकरणमें जाकर
अङ्गजं हरति	दैहिक-मानसिक मल-हरणकर लेते हैं,

मुकुन्द विक्रमं	(ऐसे) श्रीहरिके पराक्रमका	**सेवेत न**	सेवन नहीं करे ॥११॥
वै कः	भला कौन		

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥१२॥

यस्य अस्ति भक्तिः भगवति अकिञ्चना सर्वैः गुणैः तत्र समासते सुराः हराः अभक्तस्य कुतः महत् गुणा मनोरथेन असति धावतः बहिः ॥१२॥

यस्य भगवति	जिसकी भगवान्‌में	**मनोरथेन**	(उस) कामनाओंके कारण
अकिञ्चना	निष्काम		
भक्ति अस्ति	भक्ति है	**असति**	असत् (संसार) में
तत्र सुराः	वहाँ देवता	**बहिः**	बाहर
सर्वैः गुणैः	सब गुणोंके साथ	**धावतः**	भागते हुएमें
समासते	स्थिर रहते हैं ।	**महत् गुणाः**	महान गुण
हराः	जो श्रीहरिका	**कुतः**	कहाँसे (हो सकते है) ॥१२॥
अभक्तस्य	भक्त नहीं हैं		

हरिर्हि साक्षाद्भगवान् शरीरिणा-
मात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ।
हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे
तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम् ॥१३॥

हरिः हि साक्षात् भगवान् शरीरिणां आत्मा झषाणां इव तोयं ईप्सितं हित्वा महान् तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम् ॥१३॥

हि	क्योंकि.	**ईप्सितं**	परम अभीष्ट
झषाणां	मछलियोंके लिए	**तोयं इव**	पानीके समान

साक्षात् भगवान्	साक्षात् भगवान्
हरिः	श्रीहरि
शरीरिणां	शरीर धारियोंकी
आत्मा	आत्मा है
तं महान्	उन महत्तमको
हित्वा	छोड़कर
यदि गृहे	यदि (कोई) घरमें
सज्जते	आसक्त होता है
तदा दम्पतीनां	तब स्त्री-पुरुषका
महत्त्वं	बड़प्पन
वयसा	(केवल) आयुसे (रह जाता) है ॥१३॥

तस्माद्रजोरागविषादमन्यु-
मानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ।
हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं
नृसिंहपादं भजताकुतोभयमिति ॥१४॥

तस्मात् रजः राग विषाद मन्यु मान स्पृहाभय दैन्य आधिमूलं हित्वा गृहं संसृति चक्रवालं नृसिंह पादं भजत अकुतः भयम् इति ॥१४॥

तस्मात्	इसलिए
रजः राग	अतिप्रवृत्ति, राग,
विषाद मन्यु	शोक, क्रोध,
मान स्पृहा	अभिमान, स्पर्धा
भय दैन्य	भय, दीनता आदि
आधिमूलं	चिन्ताओंकी जड़
संसृति	जन्म-मरण
चक्रवालं	चक्रको ढोने वाले
गृहं हित्वा	गृहस्थाश्रमको त्यागकर
अकुतः	(जहाँ) किसी औरका
भयं	भय नहीं है
नृसिंह	(उस) भगवान् नृसिंहके
पादं	चरणोंका
भजत	भजन करो ।
इति	इस प्रकार (स्तुति करते है) ॥१४॥

*श्रीशुक उवाच-**

केतुमालेऽपि भगवान् कामदेवस्वरूपेण लक्ष्म्याः प्रियचिकीर्षया प्रजापतेर्दुहितृणां पुत्राणां तद्वर्षपतीनां पुरुषायुषाहोरात्रपरि-

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

संख्यानानां यासां गर्भा महापुरुषमहास्त्रतेजसोद्वेजितमनसां विध्वस्ता व्यसवः संवत्सरान्ते विनिपतन्ति ॥१५॥

केतुमाले अपि भगवान् कामदेव स्वरूपेण लक्ष्म्याः प्रियचिकीर्षया प्रजापतेः दुहितॄणां पुत्राणां तद्वर्षपतीनां पुरुष आयुष अहोरात्र परिसंख्यानानां यासां गर्भा महापुरुष महास्त्र तेजसा उद्वेजित मनसां विध्वस्ता व्यसवः संवत्सरान्ते विनिपतन्ति ॥१५॥

केतुमाले अपि	केतुमाल वर्षमें भी
लक्ष्म्याः	लक्ष्मीजीका तथा
प्रजापतेः	प्रजापति (संवत्सर) की
दुहितॄणां	पुत्रियों और
पुत्राणां	पुत्रोंका
प्रियचिकीर्षया	प्रिय करनेकी इच्छासे
कामदेव	कामदेवके
स्वरूपेण	रूपमें (रहते हैं)
तद्वर्षपतीनां	उस वर्षके प्रमुखके
पुरुष आयुषः	पुरुषोंकी आयु
अहोरात्र	दिन-रात
परिसंख्यानानां	(मनुष्यकी सौ वर्षकी आयुके) दिन-रातकी संख्याके बराबर (छत्तीस हजार वर्ष) है।
यासां गर्भा	जिनके गर्भ
महापुरुष	परमपुरुष भगवान्‌के
महास्त्र तेजसा	महान अस्त्र (सुदर्शन-चक्र)के तेजसे
उद्वेजित	उद्विग्न
मनसां	मन होनेसे
विध्वस्ता	नष्टप्राय,
व्यसवः	स्थान च्युतहोकर
संवत्सरान्ते	वर्षके अन्तमें
विनिपतन्ति	गिर जाते हैं ॥१५॥

अतीव सुललितगतिविलासविलसितरुचिरहासलेशावलोकलीलया किञ्चिदुत्तम्भितसुन्दरभ्रूमण्डलसुभगवदनारविन्दश्रिया रमां रमयन्निन्द्रियाणि रमयते ॥१६॥

अतीव सुललित गतिविलास विलसित रुचिरहासलेश अवलोक लीलया किञ्चित् उत्तम्भित सुन्दर भ्रू मण्डल सुभग वदनारविन्द श्रिया रमां रमयन् इन्द्रियाणि रमयते ॥१६॥

अतीव सुललित	अत्यन्त सुन्दर
गतिविलास	लीलापूर्ण
विलसित	चेष्टायुक्त
रुचिरहासलेश	मनोहर मुस्कानपूर्वक
अवलोक	देखते हुए
लीलया	कटाक्ष सहित
किञ्चित्	तनिक
उत्तम्भित	उठी हुई
सुन्दर	सुन्दर
भ्रूमण्डल	भौंहोंसे
सुभग	और सुन्दर
वदनारविन्द	मुख-कमल
श्रिया	(की) शोभासे
रमां रमयन्	लक्ष्मीको आनन्दित करते
इन्द्रियाणि	(अपनी) इन्द्रियोंको भी
रमयते	सुखी करते हैं॥१६॥

तद्भगवतो मायामयं रूपं परमसमाधियोगेन रमा देवी संवत्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेर्दुहितृभिरुपेताहःसु च तद्भर्तृभिरुपास्ते इदं चोदाहरति ॥१७॥

तत् भगवतः मायामयं रूपं परम समाधियोगेन रमा देवी संवत्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेः दुहितृभिः उपेता अहःसु च तत् भर्तृभिः उपास्ते इदं च उदाहरति ॥१७॥

भगवतः	भगवान्के
तत् मायामयं	उस मायामय
रूपं	रूपकी
रात्रिषु	रात्रिमें
संवत्सरस्य	प्रजापति संवत्सरकी
दुहितृभिः	पुत्रियोंके
च अहःसु	और दिनमें
तत् भर्तृभिः	उनके पतियोंके
उपेता	साथ
परम	अत्यन्त
समाधियोगेन	एकाग्रतापूर्वक
उपास्ते	उपासना करती हैं।
च इदं	और यह
उदाहरति	स्तुति करती हैं ॥१७॥

*रमा उवाच**

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषै-र्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलायच्छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥१८॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ॐ नमः भगवते हृषीकेशाय सर्व गुणविशेषैः विलक्षित आत्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां च अधिपतये षोडशकलाय छन्दोमयाय अन्नमयाय अमृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमः ते उभयत्र भूयात् ॥१८॥

ॐ भगवते	ओंकार स्वरूप भगवान्	**अधिपतये**	अधिपति
हृषीकेशाय	इन्द्रियोंके नियन्ता,	**षोडशकलाय**	सोलह कलायुक्त,
सर्व	सब	**छन्दोमयाय**	वेदमय,
गुणविशेषैः	विशिष्ठ गुणोंसे	**अन्नमयाय**	अन्नमय.
विलक्षित	जिनकी	**अमृतमयाय**	अमृतमय,
आत्मने	अपनी पहिचान होती है,	**सर्वमयाय**	सर्वमय,
आकूतीनां	क्रिया-शक्ति,	**कान्ताय**	प्रियतम
चित्तीनां	ज्ञान-शक्ति,	**कामाय**	कामदेव
च	तथा	**ह्रां ह्रीं ह्रूँ**	ह्रां ह्रीं ह्रूँ (इन वीज मन्त्रों) से
चेतसां	(संकल्प, धैर्यादि) चित्तकी	**उभयत्र**	सब ओरसे
विशेषाणां	विशेषताओंके	**ते नमः भूयात्**	आपको नमस्कार हो ॥१८॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

स्त्रियो व्रतैस्त्वा हृषिकेश्वरं स्वतो
ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ।
तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं
प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतन्त्रा ॥१९॥

स्त्रियः व्रतैः त्वां हृषीक ईश्वरं स्वतः हि आराध्य लोके पतिं आशासते अन्यं तासां न ते वै परिपान्ति अपत्यं प्रियं धन आयूंषि यतः अस्वतन्त्राः ॥१९॥

हि स्त्रियः	क्योंकि स्त्रियां
स्वतः	स्वयं
त्वां हृषीक	आप इन्द्रियोंके
ईश्वरं	स्वामीकी
व्रतैः	व्रतोंके द्वारा
आराध्य	आराधना करके
लोके	संसारमें
अन्यं पतिं	दूसरा पति
आशासते	चाहती हैं,
ते वै	निश्चय वे
तासां	उन (स्त्रियों) के
प्रियं अपत्यं	प्रिय पुत्रों (तथा)
धन आयूंषि	धन, आयुकी
परिपान्ति न	रक्षा नहीं कर पाते
यतः	क्योंकि (वे)
अस्वतन्त्राः	स्वतन्त्र नहीं हैं ॥१९॥

स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं
समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ।
स एक एवेतरथा मिथो भयं
नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥२०॥

स वै पतिः स्यात् अकुतः भयः स्वयं समन्ततः पाति भय आतुरं जनं स एक एव इतरथा मिथः भयं न एव आत्मलाभात् अधि मन्यते परम् ॥२०॥

स वै	निश्चय वही
पतिः स्यात्	(सच्चा) पति (रक्षक) है
स्वयं अकुतः	(जिसे) स्वयं कहींसे
भय	भय न हो
भय आतुरं	भयसे व्याकुल
जनं	लोगोंकी
समन्ततः	सब ओरसे

पाति	रक्षा करता है,
स एक एव	वह (तो) एक ही है
इतरया	दूसरेकी सत्ता होने पर
मिथः भयं	(उन्हें) परस्पर (एक दूसरेसे) भय होगा

या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं
निकामयेत्साखिलकामलम्पटा ।
तदेव रासोप्सितमीप्सितोर्चितो
यद्भग्नयाश्चा भगवन् प्रतप्यते ॥२१॥

या तस्य ते पाद सरोरुह अर्हणं निकामयेत् सा अखिल काम लम्पटा तत् एव रासि ईप्सितं ईप्सितः अर्चितः यत् भग्न याश्चा भगवन् प्रतप्यते ॥२१

तस्य ते	ऐसे आपके
पाद सरोरुह	चरण-कमलकी
अर्हणं	पूजा ही
या निकामयेत्	जो (स्त्री) चाहती है
सा अखिल	वह समस्त
काम	कामनाएँ
लम्पटा	चाहने वाली है । (उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं ।)
ईप्सितं अर्चितः	अभीष्ट (विशेष) से पूजा किये जानेपर
तत् एव ईप्सितं	वही अभीष्ट (आप)
रासि	दे देते हैं ।
भगवन्	भगवन् (पर)
यत् भग्न याश्चा	क्योंकि वह मांगी वस्तु नष्ट होगी ही (तब वह)
प्रतप्यते	संतप्त होती है ॥२१॥

मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादय-
स्तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रियेधियः ।
ऋते भवत्पादपरायणान्न मां
विन्दन्त्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ॥२२॥

मत् प्राप्तये अज ईश सुर असुरादयः तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रिय एधियः ऋते भगत् पाद परायणात् न मां विन्दन्ति अहं त्वत् हृदया यतः अजित ॥२२॥

अजित	अजित !	**भवत् पाद**	आपके चरणोंके
ऐन्द्रिय एधियः	ऐन्द्रियक-सुखमें लगी बुद्धि वाले	**परायणात्**	परायणोंको
		ऋते	छोड़कर (दूसरे)
अज ईश	ब्रह्मा, शिव,	**न मां विन्दन्ति**	मुझे नहीं पाते
सुर असुरादयः	देवता, असुर आदि	**यतः**	क्योंकि
मत् प्राप्तये	मेरी प्राप्तिके लिए	**अहं त्वत् हृदया**	मेरा हृदय आपमें लगा है ॥२२॥
उग्रं तप	घोर तपस्या		
तप्यन्त	करते हैं (किन्तु)		

स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वन्दितं
कराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्वताम् ।
बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया
क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुरिति ॥२३॥

स त्वं मम अपि अच्युत शीर्ष्णि वन्दितं कराम्बुजं यत्तु अदधायि सात्वतां बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया क ईश्वरस्य ईहितुं अहितुं विभुः इति ॥२३॥

त्वं यत्तु	आप तो जिस	**लक्ष्म वरेण्य**	वरणीय लक्षण (श्रीवत्सके रूपमें)
वन्दितं	वन्दनीय	**मां बिभर्षि**	(आप) मुझे धारण करते हैं (सो)
कराम्बुजं	कर-कमलको	**विभुः ईश्वरस्य**	सर्वव्यापक, सर्व समर्थको
सात्वतां	भक्तोंके (ऊपर)	**ईहितुं**	चेष्टाको
अदधायि	रखते हैं	**क अहितुं**	कौन समझ सकता है
अच्युत	अच्युत !	**इति**	इस प्रकार ॥२३॥
स मम अपि	वह मेरे भी		
शीर्ष्णि	मस्तकपर (रखिये)		
मायया	(अपनी) मायासे		

श्रीशुक उवाच—*

रम्यके च भगवतः प्रियतमं मात्स्यमवतारं रूपं तद्वर्षपुरुषस्य मनोः प्राक्प्रदर्शितं स इदानीमपि महता भक्तियोगेनाराधयतीदं चोदाहरति ॥२४॥

रम्यक च भगवतः प्रियतमं मात्स्यं अवतार रूपं तद् वर्ष पुरुषस्य मनोः प्राक् प्रदर्शितं स इदानीं अपि महता भक्तियोगेन आराधयति इदं च उदाहरति ॥२४॥

रम्यके च	रम्यक वर्षमें भी
तद् वर्ष	उस वर्षके
पुरुषस्य मनोः	पुरुषोंके मनुको
भगवतः	भगवान्‌ने
प्रियतमं रूपं	(अपना) अत्यन्त प्रिय रूप
मात्स्यं अवतार	मत्स्यावतार
प्राक् प्रदर्शितं	पहिले दिखलाया था,
स इदानीं अपि	वे (मनु) अब भी
महता	महान
भक्तियोगेन	भक्तियोगसे
आराधयति	(उसी रूपकी) आराधना करते हैं
च इदं	और यह
उदाहरति	स्तुति करते हैं ॥२४॥

मनुरुवाच—*

ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नम इति ॥२५॥

ॐ नमः भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणाय ओजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नमः इति ॥२५॥

ॐ भगवते	ओंकार रूप भगवान्	**नमः**	नमस्कार ।
मुख्यतमाय	सबसे प्रमुखको		

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सत्त्वाय नमः	सत्त्व स्वरूपको नमस्कार ।
प्राणाय	प्राणस्वरूप
ओजसे	मनोबल,
सहसे	इन्द्रियबल
बलाय	शरीरबल स्वरूप
महामत्स्याय	महामत्स्य भगवान्‌को
नमः	नमस्कार,
इति	इस प्रकार ॥२५॥

अन्तर्बहिश्चाखिललोकपालकै-
रदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ।
स ईश्वरस्त्वं य इदं वशेऽनय-
न्नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥२६॥

अन्तः बहिः च अखिल लोकपालकैः अदृष्ट रूपः विचरसि उरु स्वनः स ईश्वरः त्वं य इदं वशे अनयत् नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥२६॥

अखिल	सब
लोकपालकैः	लोकपालों द्वारा
अदृष्ट रूपः	जिनका रूप दीखता नहीं
अन्तः	(पर प्राणियोंके) भीतर (प्राण रूपसे)
च बहिः	और बाहर (वायु रूपसे)
विचरसि	विचरण करते हैं ।
उरुस्वनः	(वेदरूप) महाशब्द वाले (आप)
यथा नरः	जैसे मनुष्य
दारुमयीं स्त्रियं	कठपुतलीको (नचावे)
य इदं	जो इस जगत्‌को
नाम्ना	नाम (रूपी रस्सी)से
वशे अनयत्	वशमें किये हैं
स ईश्वरः त्वं	वे सर्व संचालक आप ही हैं ॥२६॥

यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा
हित्वा यतन्तोऽपि पृथक् समेत्य च ।
पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः
सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते ॥२७॥

यं लोकपालाः किल मत्सर ज्वराः हित्वा यतन्तः अपि पृथक् समेत्य च पातुं न शेकुः द्विपदः चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यद् अत्र दृश्यते ॥२७॥

किल	अहो,
मत्सर ज्वराः	डाह रूपी ज्वरसे ग्रस्त
लोकपालाः	लोकपाल लोग
यं हित्वा	जिस (प्राण रूप आप) को छोड़कर
यतन्तः अपि	प्रयत्न करते हुए भी
पृथक्	अकेले-अकेले
च समेत्य	और सब मिलकर भी
द्विपदः	दो पैर वाले प्राणियोंको,
चतुष्पदः	चौपायोंको
सरीसृपं	सरकने वालोंको
स्थाणु	स्थावरोंको
यद् अत्र दृश्यते	(जो कुछ) यहाँ संसारमें दिखलायी पड़ता है,
पातुं	(किसीकी भी) रक्षा करनेमें
शेकुः न	समर्थ नहीं हुए ॥२७

भवान् युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनि
क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ।
मया सहोरु क्रमतेऽज ओजसा
तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नम इति ॥२८॥

भवान् युगान्त अर्णव ऊर्मिमालिनि क्षोणीं इमां ओषधि वीरुधां निधिं मया सह उरु क्रमते अज ओजसा तस्मै जगत् प्राणगण आत्मने नमः इति ॥२८॥

अज	अजन्मा प्रभु !
मया सह	मेरे साथ
ओषधि	औषधियों और
वीरुधां	क्षुपोंकी
निधिं	खजाना रूप
इमां क्षोणीं	इस पृथ्वी (रूप नौका) को
ऊर्मिमालिति	उत्ताल तरंगायमान
युगान्त अर्णव	प्रलय-समुद्रमें
ओजसा	उत्साह पूर्वक
उरु क्रमते	बहुत विहार किया
तस्मै	उस
जगत् प्राणगण	संसारके प्राणोंके
आत्मने	स्वरूपको
नमः	नमस्कार
इति	इस प्रकार ॥२८॥

श्रीशुक उवाच■

हिरण्मयेऽपि भगवान्निवसति कूर्मतनुं बिभ्राणस्तस्य तत्प्रियतमां तनुमर्यमा सह वर्षपुरुषैः पितृगणाधिपतिरुपधावति मन्त्रमिमं चानुजपति ॥२९॥

हिरण्मयेऽपि हिरण्मय वर्षमें भी
भगवान् भगवान्
कूर्मतनुं कूर्म शरीर
बिभ्राणः धारण करके
निवसति निवास करते हैं।
तस्य तत् उनके उस
प्रियतमां तनुं अत्यन्त प्रिय स्वरूपकी
पितृगण पितरगणोंके
अधिपतिः अधिपति
अर्यमा अर्यमा
वर्षपुरुषैः सह उस वर्षके पुरुषोंके साथ
उपधावति उपासना करते हैं
च इमं मन्त्रं और इस मन्त्रको
अनुजपति बराबर जपते हैं ॥२९॥

*अर्यमोवाच**

ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणायानुपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते ॥३०॥

ॐ नमः भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुण विशेषणाय अनुपलक्षित स्थानाय नमः वर्ष्मणे नमः भूम्ने नमो नमः अवस्थानाय नमः ते ॥३०॥

■ यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

ॐ भगवते	ओंकार स्वरूप भगवान्
अकूपाराय नमः	कच्छपको नमस्कार
सर्वसत्त्वगुण विशेषणाय	सम्पूर्ण सत्त्वगुणकी विशेषतासे युक्त
अनुपलक्षित स्थानाय	(जलमें रहनेसे) अलक्षित निवास वाले (प्रभुको)
नमः	नमस्कार
वर्ष्मणे नमः	कालातीतको नमस्कार
भूम्ने नमो नमः	सर्व व्यापकको बार-बार नमस्कार
ते अवस्थानाय नमः	आप सर्वाधारको नमस्कार ॥३०॥

यद्रूपमेतन्निजमाययार्पित-
मर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम् ।
संख्या न यस्यास्त्ययथोपलम्भनात्
तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥३१॥

यत् रूपं एतत् निज मायया अर्पितं अर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितं संख्या न यस्य अस्ति अयथा उपलम्भनात् तस्मै नमः ते अव्य पदेश रूपिणे ॥३१॥

निज मायया अर्पितं	अपनी मायासे दिया हुआ (होनेपर भी)
एतत् यत् रूपं	यह जो (कूर्म) रूप है,
अर्थस्वरूपं	परमार्थ स्वरूप है,
बहुरूपरूपितं	(आपके) बहुत रूप (श्रुतिमें) वर्णित हैं
अयथा	अवास्तविक (माया)
उपलम्भनात्	प्रतीति होनेसे
यस्य संख्या न अस्ति	जिनकी गणना नहीं है,
तस्मै	उस
अव्य पदेश	अनिर्देश्य
रूपिणे	रूप
ते नमः	आपको नमस्कार ॥३१॥

जरायुजं स्वेदजमण्डजोद्भिदं
चराचरं देवर्षिपितृभूतमैन्द्रियम् ।
द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्र-
द्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥३२॥

जरायुजं स्वेदजं अण्डज उद्भिदं चर अचरं देवः ऋषि पितृ भूतं ऐन्द्रियं द्यौः खं क्षितिः शैल सरित् समुद्र द्वीप ग्रह ऋक्ष इति अभिधेयः एकः ॥३२॥

जरायुज	जरायुज,
स्वेदजं अण्डज	स्वेदज, अण्डज,
उद्भिदं	उद्भिज,
चर अचरं	चर, अचर,
देवः ऋषि पितृ	देवता, ऋषि, पितर,
भूतं ऐन्द्रियं	पञ्चमहाभूत, इन्द्रियां,
द्यौः खं क्षितिः	स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी,
शैल, सरित्,	पर्वत, नदियां,
समुद्र	समुद्र,
द्वीप, ग्रह, ऋक्ष	द्वीप, ग्रह, नक्षत्र
इति	इस प्रकार (अनेक नाम रूपोंसे)
अभिधेयः	कहे जाने वाले
एकः	एक (आप) ही हैं ॥३२॥

यस्मिन्नसंख्येयविशेषनाम-
रूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् ।
संख्या यया तत्त्वदृशापनीयते
तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते इति ॥३३॥

यस्मिन् असंख्येय विशेष नाम रूप आकृतिः कविभिः कल्पिता इयं संख्या यया तत्त्वदृशा अपनीयते तस्मै नमः सांख्य निदर्शनाय ते इति ॥३३॥

यस्मिन्	जिसमें
अयंख्येय	असंख्य
विशेष	विशेष विशेष
नाम रूप	नाम, रूप
आकृति	आकृति
कविभिः	विद्वानों द्वारा
कल्पिता	कल्पित की गई है,
यया तत्त्वदृशा	जिस तत्त्वको देखने (साक्षात् कर लेने) से
इयं संख्या	यह संख्या
अपनीयते	निवृत्त हो जाती है
तस्मै	उस
सांख्य	संख्याका
निदर्शनाम	तत्त्व निर्दिष्ट करनेवाले
ते नमः	आपको नमस्कार
इति	इस प्रकार ॥३३॥

श्रीशुक उवाच-*

उत्तरेषु च कुरुषु भगवान् यज्ञपुरुषः कृतवराहरूप आस्ते तं तु देवी हैषा भूः सह कुरुभिरस्खलितभक्तियोगेनोपधावति इमां च परमामुपनिषदमावर्तयति ॥३४॥

उत्तरेषु च कुरुषु भगवान् यज्ञपुरुषः कृत वराहरूपः आस्ते तं तु देवी हि एषा भूः सह कुरुभिः अस्खलित भक्तियोगेन उपधावति इमां च परमां उपनिषदं आवर्तयति ॥३४॥

उत्तरेषु	उत्तरमें
कुरुषु च	कुरुमें भी
यज्ञपुरुषः	यज्ञपुरुष
भगवान्	भगवान्
वराहरूपः कृतः	वाराहरूप धारण करके
आस्ते	रहते हैं,
तं तु	उनका तो
एषा हि	यही
भूः देवी	भू देवी
सह कुरुभिः	(वहाँके निवासी) कुरुओंके साथ
अस्खलित	अविचल
भक्तियोगेन	भक्तिभावसे
उपधावति	उपासना करती हैं।
च इमां	और इस
परमां	सर्वश्रेष्ठ
उपनिषदं	उपनिषदकी
आवर्तयति	आवृत्ति (पाठ) करती हैं ॥३४॥

भूमिरुवाच-•

ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रिशुगाय नमस्ते ॥३५॥

ॐ नमः भगवते मन्त्र तत्त्व लिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वर अवयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमः ते ॥३५॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

• यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

ॐ भगवते	ओंकार स्वरूप भगवान्
मन्त्र तत्त्व	मन्त्रोंके तत्त्व (वास्तविक अर्थ)
लिङ्गाय	स्वरूप
नमः	(आप)को नमस्कार।
यज्ञक्रतवे	यज्ञ (हवनात्मक) ऋतु (कथात्मक) स्वरूप
महाध्वर	महायज्ञ रूपी
अवयवाय	अङ्गोंवाले
महापुरुषाय	महापुरुषको
नमः	नमस्कार।
कर्मशुक्लाय	सात्विक कर्मस्वरूप,
त्रियुगाय	त्रियुग मूर्ति
ते नमः	आपको नमस्कार ॥३५॥

यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो
गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम्।
मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो
गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥३६॥

यस्य स्वरूपं कवयः विपश्चितः गुणेषु दारुषु इव जातवेदसं मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवः गूढं क्रिया अर्थैः नमः ईरित आत्मने ॥३६॥

दारुषु	काष्ठमें
मथ्ना	मथानी(अरणि)से
जातवेदसं	अग्नि
इव	की भाँति
विपश्चितः	विवेकी
कवयः	बुद्धिमान
यस्य स्वरूपं	जिसके स्वरूपको
दिदृक्षवः	देखनेकी इच्छासे
गुणेषु	गुणोंमें
क्रिया अर्थैः	क्रिया और उसके प्रयोजन (फल)के
गूढं	(रूपमें) छिपेको
मनसा मथ्नन्ति	मनसे मथते (मनन करते) हैं,
ईरित आत्मने	(इस प्रकार) अपनेको प्रकट करनेवाले
नमः	(आपको) नमस्कार ॥३६॥

द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभि-
र्मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने ।
अन्वीक्षयाङ्गातिशयात्मबुद्धिभि-
र्निरस्तमायाकृतये नमो नमः ॥३७॥

द्रव्य क्रियाहेतु अयन ईश कर्तृभिः मायागुणैः वस्तु निरीक्षित आत्मने अन्वीक्षया अङ्ग अतिशय आत्मबुद्धिभिः निरस्त मायाकृतये नमो नमः ॥३७॥

द्रव्य क्रिया हेतु अयन	पदार्थ, क्रिया, हेतु (इन्द्रिय) अयन (शरीर)	**अङ्ग अतिशय आत्मबुद्धिभिः**	साधनोंकी विशेषतासे (शुद्ध) अपनी बुद्धिसे
ईश कर्तृभिः	ईश्वर और कर्ता (अहंकार)	**मायाकृतये**	मायाकी कृति (रचना)को
मायागुणैः	(आदि) मायाके गुण (कार्य)के द्वारा	**निरस्त**	निरस्तकर देनेपर (शेष)
वस्तु निरीक्षत	वस्तु-तत्त्वको देखनेमें	**नमो नमः**	आपको बार-बार नमस्कार ॥३७॥
आत्मने	अपनेमें ही		
अन्वीक्षया	अन्वेषण (मनन) करनेसे		

करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं
यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितुर्गुणैः ।
माया यथायो भ्रमते तदाश्रयं
ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥३८॥

करोति विश्व स्थिति संयम उदयं यस्य ईप्सितं न ईप्सितं ईक्षितुः गुणैः माया यथा अयः भ्रमते तत् आश्रयं ग्राव्णो नमः ते गुणकर्म साक्षिणे ॥३८॥

यथा अयः	जैसे लोहा	**विश्व**	संसारकी
तत् आश्रयं	उसके आश्रय (चुम्बक) के घूमनेसे	**स्थिति संयम**	स्थिति, प्रलय,
		उदयं	सृष्टि
भ्रमते	घूमता है(ऐसे ही)	**करोति**	करती है,
यस्य ईक्षुतुः	जिस साक्षीके	**गुणकर्म**	उस गुणों एवं
न ईप्सितं	अपने लिए अभीष्ट न होनेपर भी		कर्मोंके
		साक्षिणे	साक्षी
ईप्सितं	(सब प्राणियोंके लिए) अभीष्ट	**ग्राव्णो**	भगवान् वाराह
		ते नमः	आपको
गुणैः	प्रभावसे		नमस्कार ॥३८॥
माया	माया		

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे
यो मां रसाया जगदादिसूकरः ।
कृत्वाग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः
क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुमिति ॥३९॥

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यः मां रसाया जगत् आदि सूकरः कृत्वा अग्र दंष्ट्रे निरगात् उदन्वतः क्रीडन् इव इभः प्रणतः आस्मि तं विभुम् इति ॥३९॥

मृधे	युद्धमें	**यः**	जो
प्रतिवारणं	रोकनेवाले	**जगत् आदि**	जगतके कारण
दैत्यं	दैत्य (हिरण्याक्ष) को	**सूकरः**	भगवान् वाराह
प्रमथ्य	मथ (मार) कर	**मां**	मुझे

अग्र दंष्ट्रे कृत्वा	दाढ़की नोकपर रखकर
रसाया	रसातलसे
उदन्वतः	समुद्रसे
इभः इव	हाथीके समान
क्रीडन्	खेल-सा करते
निरगात्	निकले
तं विभुं	(उस) आप सर्व-व्यापकको
प्रणतः अस्मि	प्रणाम करती हूँ
इति	इस प्रकार ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१६॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसंनिकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥१॥

किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तं आदिपुरुषं लक्ष्मण अग्रजं सीता अभिरामं रामं तत् चरण संनिकर्ष अभिरतः परमभागवतः हनुमान् सह किम्पुरुषैः अविरत भक्तिः उपास्ते ॥१॥

किम्पुरुषे वर्षे	किम्पुरुष वर्षमें	**संनिकर्ष**	सान्निध्यमें
भगवन्तं	भगवान्	**अभिरतः**	भलीप्रकार लगे
आदिपुरुषं	आदिपुरुष	**परमभागवतः**	परमभगवद-भक्त
लक्ष्मण अग्रजं	लक्ष्मणजीके बड़े भाई	**हनुमान्**	हनुमानजी
		किम्पुरुषैः सह	किम्पुरुषोंके साथ
सीता अभिरामं	सीताजीको प्रसन्न करनेवाले	**अविरत भक्तिः**	अविचल भक्तिसे
		उपास्ते	उपासना करते हैं ॥१॥
रामं	श्रीरामकी		
तत् चरण	उनके चरणोंके		

आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृ-भगवत्कथां समुपश्रृणोति स्वयं चेदं गायति ॥२॥

आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैः अनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृ भगवत्-कथां समुपशृणोति स्वयं च इदं गायति ॥२॥

सह गन्धर्वैः	गन्धर्वोंके साथ	**अनुगीयमानां**	नित्य गायी जाती
आर्ष्टिषेणेन	आर्ष्टिसेन द्वारा	**परमकल्याणीं**	परमकल्याणदायिनी

भर्तृ भगवत्कथां समुपशृणोति अपने स्वामी भगवान्‌की कथा भली प्रकार सुनते हैं।

स्वयं च इदं गायति स्वयं भी यह गाते हैं ॥२॥

*श्रीहनुमान उवाच-**

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥३॥

ॐ नमः भगवते उत्तमश्लोकाय नमः आर्य लक्षणशील व्रताय नमः उपशिक्षित आत्मन उपासित लोकाय नमः साधुवाद निकषणाय नमः ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः इति ॥३॥

ॐ भगवते ओंकार स्वरूप भगवान्

उत्तम श्लोकाय उत्तम कीर्तिको

नमः नमस्कार,

आर्य सत्पुरुषोंके

लक्षणशील लक्षण, आचरण,

व्रताय नमः नियमनिष्ठको नमस्कार,

उपशिक्षित संयत

आत्मन चित्त

उपासितलोकाय लोकाराधकको

नमः नमस्कार।

साधुवाद सत्पुरुषताकी (परीक्षाके लिए)

निकषणाय नमः कसौटीके समानको नमस्कार।

ब्रह्मण्यदेवाय ब्राह्मणोंको देवता माननेवाले

महापुरुषाय महापुरुष (पुरुषोत्तम)

महाराजाय महाराजको

नमः नमस्कार।

इति इस प्रकार ॥३॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं
स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं
ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥४॥

यत् तत् विशुद्ध अनुभव मात्रं एकं स्वतेजसा ध्वस्त गुण व्यवस्थं प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियः उपलम्भनं हि अनाम रूपं निः अहं प्रपद्ये ॥४॥

यत्	जो	**प्रत्यक्**	अन्तरात्मा,
विशुद्ध अनुभव	अनुभव	**प्रशान्तं**	अत्यन्त शान्त
मात्रं	स्वरूप,	**सुधियः**	शुद्ध बुद्धिमें
एकं	अद्वितीय	**उपलम्भनं**	लक्षित होनेवाले
स्वतेजसा	अपने तेजसे	**हि अनाम रूपं**	क्योंकि नाम-रूप रहित हैं
गुण व्यवस्थं	त्रिगुणोंकी व्यवस्था (प्रपंच)का	**तत् निः अहं**	उस अहंकारहीनकी
ध्वस्त	निरास किए	**प्रपद्ये**	शरण हूँ ॥४॥

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥५॥

मर्त्य अवतारः तु इह मर्त्यशिक्षणं रक्षः वधाय एव न केवलं विभोः कुतः अन्यथा स्यात् रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानि ईश्वरस्य ॥५॥

विभोः	सर्वव्यापकका	**मर्त्यशिक्षणं**	मनुष्योंको शिक्षा देनेके लिए हुआ ।
इह	इस पृथ्वीपर		
मर्त्य अवतारः	मनुष्यावतार	**केवलं**	केवल
तु	तो		

रक्षः	राक्षसोंको
वधाय एव	मारनेके लिए ही
न	नहीं हुआ,
अन्यथा	नहीं तो
स्व आत्मनः	अपने आत्मामें ही
रमतः	रमण करते हुए
सीताकृतानि	सीताजीके द्वारा (उनके वियोगमें)
व्यसनानि	दुःख
ईश्वरस्य	सर्वेश्वरको
कुतः	कहांसे होंगे ॥५॥

न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः
सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः ।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत
न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥६॥

न वै स आत्मा आत्मवतां सुहृत्तमः सक्तः त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः न स्त्रीकृतं कश्मलं अश्नुवीत न लक्ष्मणं च अपि विहातुं अर्हति ॥६॥

स वै	वे निश्चय ही
आत्मवतां	धीर-पुरुषोंके
आत्मा	आत्मा (तथा)
सुहृत्तमः	परम-सुहृद
भगवान्	भगवान्
वासुदेवः	वासुदेव
त्रिलोक्यां	त्रिलोकीमें (कहीं भी)
सक्तः न	आसक्त नहीं होते (अतः)
स्त्रीकृतं	पत्नीके लिए
कश्मलं	कष्ट
न अश्नुवीत	नहीं पा सकते
च लक्ष्मणं	और लक्ष्मणको
अपि	भी
विहातुं	त्याग
न अर्हति	नहीं सकते ॥६॥

न जन्म नूनं महतो न सौभगं
न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकस-
श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥७॥

न जन्म नूनं महतः न सौभगं न वाङ् न बुद्धिः न आकृतिः तोष हेतुः तैः यत् विसृष्टान् अपि नः वनौकसः चकार सख्ये बत लक्ष्मण अग्रजः ॥७॥

तोष हेतुः	(आपको) सन्तुष्ट करनेका कारण	**यत्**	क्योंकि
नूनं	निश्चय	**तैः**	इन
महतः जन्म न	उत्तम कुलमें जन्म नहीं,	**विसृष्टान्**	सबसे रहित होनेपर
सौभगं न	सुन्दरता नहीं,	**अपि**	भी
वाङ् न	बोलनेकी चतुराई नहीं,	**नः वनौकसः**	हम वन-वासियोंसे
बुद्धिः न	बुद्धिमानी नहीं	**लक्ष्मण अग्रजः**	लक्ष्मणजी के बड़े भाईने
आकृतिः न	आकृति नहीं होती	**बत**	अहो,
		सख्ये चकार	मित्रता की ॥७॥

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः
सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं
य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति ॥८॥

सुरः असुरः वा अपि अथ वानरः नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञं उत्तमं भजेत रामं मनुज आकृतिं हरिं यः उत्तरान् अनयत् कोसलान् दिवं इति ॥८॥

सुरः	देवता हो	**भजेत**	भजन करे
वा असुरः	या असुर,	**मनुज**	(वे) मनुष्य
वानरः	वानर हो	**आकृति**	रूपमें
अथ नरः	या मनुष्य	**हरिं**	श्रीहरि हैं
अपि यः	कोई भी जो	**यः उत्तरान्**	जो उत्तरी
सर्वात्मना	सम्पूर्ण हृदयसे	**कोसलान्**	कोसल (अयोध्या) वासियोंको
उत्तमं	सर्वश्रेष्ठ	**दिवं अनयत्**	अपने धाम ले गये,
सुकृतज्ञं	अत्यन्त कृतज्ञ	**इति**	इस प्रकार ॥८॥
रामं	श्रीरामका		

श्रीशुक उवाच-*

भारतेऽपि वर्षे भगवान्नरनारायणाख्य आकल्पान्तमुपचितधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपशमोपरमात्मोपलम्भनमनुग्रहायात्मवतामनुकम्पया तपोऽव्यक्तगतिश्चरति ॥९॥

भारते अपि वर्षे भगवान् नर नारायण आख्य आकल्पान्तं उपचित धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य उपशमः परमात्म उपलम्भनं अनुग्रहाय आत्मवतां अनुकम्पया तपः अव्यक्त गतिः चरति ॥९॥

भारते वर्षे अपि	भारत वर्षमें भी	**धर्म ज्ञान**	धर्म, ज्ञान,
नर	नर	**वैराग्य**	वैराग्य
नारायण आख्य	नारायण नामसे	**ऐश्वर्य**	ऐश्वर्य,
भगवान्	भगवान्	**उपशमः**	शान्ति (तथा)
अनुग्रहाय	दयावश	**परमात्म**	परमात्माको
आत्मवतां	संयमी पुरुषोंपर	**उपलम्भनं**	प्राप्त कराने वाला
अनुकम्पया	कृपा करके	**तपः**	तप
आकल्पान्तं	कल्पके प्रारम्भसे अन्त तक	**अव्यक्त गतिः**	अव्यक्त रहकर
		चरति	करते हैं ॥९॥

तं भगवान्नारदो वर्णाश्रमवतीभिर्भारतीभिः प्रजाभिर्भगवत्प्रोक्ताभ्यां सांख्ययोगाभ्यां भगवदनुभावोपवर्णनं सावर्णेरुपदेक्ष्यमाणः परमभक्तिभावेनोपसरति इदं चाभिगृणाति ॥१०॥

तं भगवान् नारदः वर्ण आश्रमवतीभिः भारतीभिः प्रजाभिः भगवत् प्रोक्ताभ्यां सांख्य योगाभ्यां भगवत् अनुभाव उपवर्णनं सावर्णेः उपदेक्ष्यमाणः परमभक्ति भावेन उपसरति इदं च अभिगृणाति ॥१०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भगवान् नारदः	भगवान् नारद
भगवत्	(स्वयं) भगवान्के द्वारा
प्रोक्ताभ्यां	उपदिष्ट
सांख्य योगाभ्यां	सांख्य और योग-शास्त्र सहित
भगवत्	भगवान्के
अनुभाव	प्रभावका
उपवर्णनं	वर्णन (करनेवाले पाञ्चरात्र) का
सावर्णेः	(आगामी मनु) सावर्णिको
उपदेक्ष्यमाणः	उपदेश करते हुए
वर्ण आश्रम-वतीभिः	वर्ण-आश्रम धर्मका पालन करनेवाली
भारतीभिः	भारतीय
प्रजाभिः	प्रजाके साथ
परमभक्ति	परमभक्ति
भावेन	भावसे
तं उपसरति	उन (नर-नारायण) के समीप जाकर
इदं च	यह (जप) करते
अभिगृणाति	और गाते हैं ॥१०॥

नारद उवाच■

ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नम इति ॥११॥

ॐ नमः भगवते उपशम शीलाय उपरत अनात्म्याय नमः अकिञ्चन वित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंस परमगुरवे आत्माराम अधिपतये नमो नमः इति ॥११॥

ॐ भगवते	ॐ स्वरूप भगवान्
उपशम शीलाय	शान्त स्वरूपको
नमः	नमस्कार
उपरत	अनात्म
अनात्म्याय	पदार्थोंसे विरक्त
अकिञ्चन	निर्धनोंके
वित्ताय नमः	परम-धनको नमस्कार
ऋषिऋषभाय	ऋषिश्रेष्ठ
परमहंस	परमहंसोंके
परमगुरवे	परमगुरु
आत्माराम	आत्मारामोंके
अधिपतये	अधीश्वर
नरनारायणाय	नर-नारायणको
नमो नमः	बार-बार नमस्कार ॥११॥

■ यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

गायति चेदम्—

गायति च इदं•

इदं यह । **गायति च** गाते भी हैं

कर्तास्य सर्गादिषु यो न बध्यते
न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः ।
द्रष्टुर्न दृग्यस्य गुणैर्विदूष्यते
तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥१२॥

कर्ता अस्य सर्गादिषु यः न बध्यते न हन्यते देहगतः अपि दैहिकैः द्रष्टुः न दृक् यस्य गुणैः विदूष्यते तस्मै नमः असक्त विविक्त साक्षिणे ॥१२॥

अस्य सर्गादिषु	इस संसारकी सृष्टि आदिके	**यस्य द्रष्टुः**	जिस द्रष्टाकी
कर्ता	कर्ता होनेपर भी	**दृक् गुणैः**	दृष्टि गुणोंसे
यः न बध्यते	जो (कर्म) बन्धनमें नहीं पड़ते,	**विदूष्यते न**	दूषित नहीं होती,
देहगतः अपि	शरीरोंमें रहनेपर भी	**तस्मै**	उन
दैहिकैः	शरीरके धर्म (भूख-प्यासादि) से	**असक्त**	अनासक्त
हन्यते न	पीड़ित नहीं होते,	**विविक्त साक्षिणे**	विशुद्ध साक्षी स्वरूपको
		नमः	नमस्कार ॥१२॥

इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं
हिरण्यगर्भो भगवान्जगाद यत् ।
यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो
भक्त्याऽधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥१३॥

• यह वाक्य श्रीशुकदेवजीका है; किन्तु इतने अंशके लिए उवाच पृथक करना उपयुक्त नहीं लगता ।

इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भः भगवान् जगाद यत् यत् अन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनः भक्त्या दधीत उज्झित दुष्कलेवरः ॥१३॥

योगेश्वर	योगेश्वर !
इदं हि	यही
योगनैपुणं	योग साधनकी निपुणता हैं
यत्	जिसे
भगवान्	भगवान्
हिरण्यगर्भः	ब्रह्माने
जगाद	बतलाया है
यत् अन्तकाले	जो अन्त (मरने) के समय
उज्झित	देहाभिमान
दुष्कलेवरः	त्यागकर
भक्त्या	भक्तिसे
त्वयि निर्गुणे	आप निर्गुणमें
मनः दधीत	मन लगावे ॥१३॥

यथैहिकामुष्मिककामलम्पटः
सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् ।
शङ्केत विद्वान् कुकलेवरात्ययाद्
यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥१४॥

यथा ऐहिक अमुष्मिक कामलम्पटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् शङ्केत विद्वान् कुकलेवर अत्ययात् यः तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥१४॥

यथा	जैसे
ऐहिक	लौकिक,
अमुष्मिक	पारलौकिक
कामलम्पटः	भोगेच्छु
सुतेषु दारेषु	पुत्र-स्त्री
धनेषु	धनकी
चिन्तयन्	चिन्ता करता रहता है
विद्वान्	(वैसे ही) विद्वान् (यदि)
कुकलेवर	(इस) निन्दित शरीरकी
अत्ययात्	मरणकी
शङ्केत	चिन्ता करे तो
तस्य यः यत्नः	उसका जो साधन है
केवलं श्रम एव	केवल परिश्रम ही (व्यर्थ) है ॥१४॥

तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितं
त्वन्मायया अहंममतास्पधोक्षज ।

भिन्द्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां
विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावमिति ॥१५॥

तत् नः प्रभो त्वं कुकलेवर अर्पितां त्वत् मायया अहं ममतां अधोक्षज भिन्द्याम येन आशु वयं सुदुर्भिदां विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावम् इति ॥१५॥

अधोक्षज	अधोक्षज !	**येन्**	(गांठको) जिससे
प्रभो	प्रभो !	**वयं आशु**	हम शीघ्र
तत्	अतः	**भिन्द्याम**	काट सकें (वह)
त्वत् मायया	आपकी मायासे	**त्वयि योगं**	आपमें लगे रहें
कुकलेवर	इस निन्दित शरीरमें	**इति**	ऐसा
अर्पितां	लगायी	**नः स्वभावं**	हमारा स्वभाव
नः	हमारी	**विधेहि**	बना दीजिये ॥१५॥
अहं ममतां	अहंता-ममताको		
सुदुर्भिदां	बहुत कठिनाईसे कटनेवाली		

*श्रीशुक उवाच-**

भारतेऽप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवो मलयो मङ्गलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेङ्कटो महेन्द्रो वारिधारो विन्ध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये च शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यश्च सन्त्यसङ्ख्याताः ॥१६॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भारते अपि अस्मिन् वर्षे सरित् शैलाः सन्ति बहवः मलयः मङ्गलप्रस्थः मैनाकः त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यः देवगिरिः ऋष्यमूकः श्रीशैलः वेङ्कटः महेन्द्रः वारिधारः विन्ध्यः शुक्तिमान् ऋक्षगिरिः पारियात्रः द्रोणः चित्रकूटः गोवर्धनः रैवतकः ककुभः नीलः गोकामुखः इन्द्रकीलः कामगिरिः इति च अन्ये च शतसहस्रशः शैलाः तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यः च सन्ति असङ्ख्याताः ॥१६॥

अस्मिन्	इस
भारते वर्षे अपि	भारतवर्षमें भी
सरित् शैलाः	नदियाँ और पर्वत
बहवः सन्ति	बहुतसे हैं (जैसे)
मलयः	मलय,
मङ्गलप्रस्थः	मंङ्गलप्रस्थ,
मैनाकः	मैनाक,
त्रिकूटः	त्रिकूट,
ऋषभः	ऋषभ,
कूटकः	कूटक,
कोल्लकः	कोल्लक,
सह्यः	सह्य,
देवगिरिः	देवगिरि,
ऋष्यमूकः	ऋष्यमूक
श्रीशैलः	श्रीशैल,
वेङ्कटः	वेङ्कट,
महेन्द्रः	महेन्द्र,
वारिधारः	वारिधार,
विन्ध्यः	विन्ध्य,
शुक्तिमान्	शुक्तिमान,
ऋक्षगिरिः	ऋक्षगिरि,
पारियात्रः	परियात्र,
द्रोणः	द्रोण,
चित्रकूटः	चित्रकूट,
गोवर्धनः	गोवर्धन,
रैवतकः	रैवतक,
ककुभः नीलः	ककुभ, नील,
गोकामुखः	गोकामुख,
इन्द्रकीलः	इन्द्रकील,
कामगिरिः	कामगिरि
इति	इसप्रकार (ये)
च अन्ये	और दूसरे
शतसहस्रशः	सैकड़ों-हजारों
शैलाः	पर्वत हैं।
तेषां	उनके
नितम्बप्रभवा	मध्यभागसे निकलनेवाली
नदा नद्यः च	नद और नदियां भी
असंख्याताः	असंख्य
सन्ति	हैं ॥१६॥■

■ पर्वतोंके तथा नदियोंके भी वर्तमान नाम तथा स्थानका पता भूगोलके विद्वानोंके शोधका विषय है। इनमें अनेक लुप्त हो गये हो सकते हैं।

एतासामपो भारत्यः प्रजा नामभिरेव पुनन्तीनामात्मना चोपस्पृशन्ति ॥१७॥

एतासां अपः भारत्यः प्रजा नामभिः एव पुनन्तीनां आत्मना च उपस्पृशन्ति ॥१७॥

नामभिः	(केवल) नामसे	**भारत्यः प्रजा**	भारतीय प्रजा
एव	ही	**आत्मना च**	शरीरसे भी
पुनन्तीनां	पवित्रकर देनेवाली	**उपस्पृशन्ति**	स्पर्श करती है ॥१७॥
एतासां	इनके		
अपः	जल		

चन्द्रवसा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुङ्गभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिन्धुरन्धा शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिर्ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रूश्चन्द्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता असिन्की विश्वेति महानद्यः ॥१८॥

चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावर्ता, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिन्धुः अन्धः, शोणः च नदौ (ये नद हैं।) महानदी, वेदस्मृतिः, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तस्वती, सुषोमा, शतद्रूः चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिन्की, विश्वा, इति महानद्यः ॥१८॥

इति महानद्यः ये महानदियाँ हैं ॥१८॥

अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्व्य आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति ॥१६॥

अस्मिन् एव वर्षे पुरुषैः लब्ध जन्मभिः शुक्ल लोहित कृष्ण वर्णेन स्व आरब्धेन कर्मणा दिव्य मानुष नारक गतयः बह्व्य आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा हि एव सर्वेषां विधीयन्ते यथा वर्ण विधानं अपवर्गः च अपि भवति ॥१६॥

अस्मिन् एव वर्षे	इस वर्षमें ही	**आत्मन**	अपने
लब्ध जन्मभिः	जन्म लेने वाले	**आनुपूर्व्येण**	क्रमानुसार
पुरुषैः	पुरुषोंको	**सर्वा हि एव**	सभी ही (गतियाँ)
स्व आरब्धेन	अपने किये हुये	**सर्वेषां**	सबकी
शुक्ललोहित	सात्त्विक, राजस,	**विधीयन्ते**	होती हैं।
कृष्ण	तामस	**च यथा वर्ण**	और अपने वर्णके
कर्मणा	कर्मोंके अनुसार	**विधानं**	अनुसार (धर्माचरण
दिव्य मानुष	देवता, मनुष्य		करनेसे)
नारक	और नारकीय	**अपवर्गः**	मोक्ष
बह्व्य गतयः	बहुत-सी गतियां	**अपि भवति**	भी होता है ॥१६॥

योऽसौ भगवति सर्वभूतात्मन्यनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने परमात्मनि वासुदेवेऽनन्यनिमित्तभक्तियोगलक्षणो नानागतिनिमित्ताविद्याग्रन्थिरन्धनद्वारेण यदा हि महापुरुषपुरुषप्रसङ्गः ॥२०॥

यः असौ भगवति सर्वभूत आत्मनि अनात्म्ये अनिरुक्ते अनिलयने परमात्मनि वासुदेवे अनन्य निमित्त भक्तियोग लक्षणः नानागति निमित्त अविद्या ग्रन्थि रन्धन द्वारेण यदा हि महापुरुष पुरुष प्रसङ्गः ॥२०

यः असौ	जो यह (मोक्ष है वह)
सर्वभूत आत्मनि	समस्त प्राणियोंके आत्मा
अनात्म्ये अनिरुक्ते अनिलयने परमात्मनि	सर्वदोष रहित, अनिर्वचनीय, निराधार, परमात्मा
वासुदेवे	वासुदेवमें
अनन्य निमित्त	अनन्य निष्काम भावसे
भक्तियोग लक्षणः	भक्ति-योग स्वरूप ही है।
नानागति निमित्त	नाना गतियोंके कारण
अविद्या ग्रन्थि रन्धन द्वारेण	अविद्या ग्रन्थिको भस्म कर देनेके मार्गसे (प्राप्त होती है)
हि यदा	क्योंकि जब
महापुरुष पुरुष प्रसङ्गः	पुरुषोत्तम भगवान्‌के भक्तोंका सङ्ग मिलता है (तब वह भक्ति प्राप्त होती है) ॥२०

एतदेव हि देवा गायन्ति—

एतत् एव हि देवा गायन्ति–

देवा	देवता
हि	इसीलिए
एतत् एव	इसी प्रकार
गायन्ति	गाते हैं।

अहो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥२१॥

अहो अमीषां किं अकारि शोभनं प्रसन्न येषां स्वित् उत स्वयं हरिः यैः जन्म लब्धं नृषु भारत अजिरे मुकुन्दसेवा उपयिकं स्पृहा हि नः ॥२१॥

अहो अमीषां	अहो, इन लोगोंने
किं शोभनं	क्या पुण्य
अकारि	किया है
उत स्वित	अथवा तो
येषां स्वयं हरिः	जिनपर स्वयं श्रीहरि
प्रसन्न	प्रसन्न हैं,
यैः	जिससे

मुकुन्दसेवा	श्रीमुकुन्दकी सेवाके	**जन्म लब्धं**	जन्म पाया,
उपयिकं	उपयुक्त	**हि नः स्पृहा**	क्योंकि हम भी
भारत अजिरे	भारतवर्षके आंगनमें		(इस सौभाग्यकी) स्पृहा करते हैं ॥२१॥
नृषु	मनुष्य-योनिमें		

किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतै-
र्दानादिभिर्वाद्युजयेन फल्गुना ।
न यत्र नारायणपादपङ्कज-
स्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात् ॥२२॥

किं दुष्करैः नः क्रतुभिः तपः व्रतैः दानादिभिः वा द्युजयेन फल्गुना न यत्र नारायण पादपङ्कज स्मृतिः प्रमुष्टा अतिशय इन्द्रिय उत्सवात् ॥२२॥

नः	हमारे	**नारायण**	श्रीनारायणके
फल्गुना	तुच्छ	**पादपङ्कज**	चरण-कमलकी
द्युजयेन	✓ स्वर्गदायी	**स्मृतिः**	स्मृति
दुष्करैः	कठिनाईसे किये गये	**अतिशय**	बहुत अधिक
क्रतुभिः	यज्ञोंसे,	**इन्द्रिय**	ऐन्द्रियक
तपः व्रतैं	तपस्यासे, व्रतसे,	**उत्सवात्**	भोग भोगनेसे
वा दानादिभिः	अथवा दानादिसे,	**प्रमुष्टा**	छिन गयी,
किं	क्या लाभ	**न**	नहीं रही ॥२२॥
यत्र	जहां		

कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्
क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः
संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ॥२३॥

कल्प आयुषां स्थान जयात् पुनर्भवात् क्षण आयुषां भारत भूजयः वरं क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः सन्यस्य संयाति अभयं पदं हरेः ॥२३॥

कल्प आयुषां	कल्प पर्यन्त आयु वालोंके
स्थानजयात्	स्थान (ब्रह्मलोक) पानेसे,
पुनर्भवात्	जहाँसे फिर जन्म लेना पड़ता है
क्षण आयुषां	क्षण जीवियोंकी
भारतभूजयः	भारत भूमि पाना
वरं	श्रेष्ठ है (क्योंकि)
मनस्विनः	मनस्वी
मर्त्येन	मनुष्य
क्षणेन	एक क्षणमें
कृतं संन्यस्य	अपने सब कर्म (भगवत्) अर्पित करके
हरेः अभयं पदं	श्रीहरिके अभय पदको
संयान्ति	पहुँच जाते हैं ॥२३॥

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः ।
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥२४॥

न यत्र वैकुण्ठ कथा सुधा आपगा न साधवः भागवताः तत् आश्रयाः न यत्र यज्ञेश मखा महोत्सवाः सुरेश लोकः अपि न वै स सेव्यताम् ॥२४॥

यत्र	जहाँ
वैकुण्ठ कथा	भगवान् वैकुण्ठनाथ की कथा रूपी
सुधा आपगा न	अमृत-सरिता नहीं है,
तत् आश्रयाः	उनकी ही शरणमें रहने वाले
भागवताः	भगवद्-भक्त
साधवः न	साधु नहीं है,
यत्र यज्ञेश	जहाँ यज्ञेश भगवान्के
मखाः	यज्ञोंका
महोत्सवाः	महोत्सव
न	नहीं होता
स वै	वह निश्चय
सुरेशः लोकः	इन्द्रलोक हो तो
अपि	भी
न सेव्यतां	(उसका) सेवन मत करे ॥२४॥

प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो
ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसम्भृताम् ।

न वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते
भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम् ॥२५॥

प्राप्ता नृजातिं तु इह ये च जन्तवः ज्ञान क्रिया द्रव्य कलाप सम्भृतां न वै यतेरन् अपुनर्भवाय ते भूयः वनौका इव यान्ति बन्धनम् ॥२५॥

इह तु ये	इस भारतमें हो जो	**अपुनर्भवाय**	मोक्षके लिए
जन्तवः	प्राणी	**न च यतेरन्**	प्रयत्न नहीं ही करते
ज्ञान क्रिया	ज्ञान (बुद्धि) कर्म	**ते भूयः**	वे फिरसे
द्रव्य कलाप	पदार्थादि सामग्रीसे	**वनौका इव**	जंगली-पशु-पक्षियोंके समान
सम्भृतां	सम्पन्न		
नृजातिं प्राप्ता	मनुष्य-जन्म पाकर	**बन्धनं यान्ति**	बन्धनमें पड़ते हैं ॥२५॥
वै	निश्चित रूपसे		

यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हवि-
र्निरुप्तमिष्टं विधिमन्त्रवस्तुतः ।
एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा
गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ॥२६॥

यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशः हविः निरुप्तम् इष्टं विधि मन्त्र वस्तुतः एकः पृथङ् नामभिः आहुतः मुदा गृह्णाति पूर्णः स्वयं आशिषां प्रभुः ॥२६॥

यैः	जिन (भारत वासियों) के द्वारा	**मन्त्र वस्तुतः**	मन्त्र, पदार्थ पूर्वक
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक	**निरुप्तं आहुतः**	निरूपित करके आहुति देनेपर
पृथङ् नामभिः	(इन्द्रादि) अलग-अलग नामोंसे	**एकः पूर्णः**	एक परिपूर्ण
बर्हिषि	यज्ञमें	**स्वयं आशिषां**	स्वयं सब कामनाओंके
भागशः हविः	विभाग पूर्वक हवि	**प्रभुः**	स्वामी (प्रदाता)
इष्टं विधि	देवता, विधि,	**मुदा**	प्रसन्नता पूर्वक
		गृह्णाति	ग्रहण करते हैं ॥२६॥

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः ।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता-
मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥२७॥

सत्यं दिशति अर्थितं अर्थितः नृणां न एव अर्थदः यत् पुनः अर्थिता यतः स्वयं विधत्ते भजतां अनिच्छतां इच्छापिधानं निज पादपल्लवम् ॥२७॥

सत्यं	यह सच है कि
नृणां अर्थितः	मनुष्योंके चाहनेसे
अर्थितं	उनके चाहे पदार्थ
न दिशति	(भगवान्) नहीं देते
अर्थदः	भोग-पदार्थ देने वाले (वे)
न एव	नहीं ही हैं।
यतः	क्योंकि (पानेवाला)
पुनः अर्थिता	फिर मंगन ही रह जाता है (अतः)
स्वयं	भगवान् स्वयं
इच्छापिधानं	इच्छाओंको बन्द कर देनेवाले
निज	अपने
पादपल्लवं	चरण-पल्लव
भजतां	भजन करनेवालेको
अनिच्छतां	न चाहनेपर भी
विधत्ते	प्रदान करते हैं ॥२७

यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं
स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम् ।
तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्
वर्षे हरिर्यद्भजतां शं तनोति ॥२८॥

यत् अत्र नः स्वर्गसुख अवशेषितं स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनं तेन अजनाभे स्मृतिमत् जन्म नः स्यात् वर्षे हरिः यत् भजतां शं तनोति ॥२८

अत्र नः	यहाँ हमारा
स्वर्गसुख	स्वर्ग-सुख (भोगनेसे)
यत् स्विष्टस्य	जो (पूर्वकृत) यज्ञका
सूक्तस्य	प्रवचनका,
कृतस्य	कर्मोंका
शोभनं	पुण्य
अवशेषितं	बचा हो
तेन	उस (के फल) से
अजनाभे	अजनाभ (भारत) में

नः स्मृतिमत्	हमारा (भगवान्‌की) स्मृति युक्त	**भजतां**	भजन करनेवालों का
जन्म स्यात्	जन्म हो,	**यत्**	जो
वर्षे	जिस वर्षमें	**हरिः शं तनोति**	श्रीहरि कल्याण करते हैं ॥२८॥

श्रीशुक उवाच-

जम्बूद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशन्ति सगरात्मजैरश्वान्वेषण इमां महीं परितो निखनद्भिरुपकल्पितान् ॥२९॥

जम्बूद्वीपस्य च राजन् उपद्वीपान् अष्टौ ह एक उपदिशन्ति सगर आत्मजैः अश्व अन्वेषण इमां महीं परितः निखनत्भिः उपकल्पितान् ॥२९॥

राजन्	परीक्षित् !	**निखनत्भिः**	खोदते समय
सगर आत्मजैः	राजा सागरके पुत्रों द्वारा	**उपकल्पितान्**	बनाये गये
अश्व अन्वेषण	(यज्ञीय) अश्वके ढूंढ़नेमें	**जम्बूद्वीपस्य**	जम्बूद्वीपके
इमां महीं	इस पृथ्वीको	**ह एक**	निश्चित कोई
परितः	चारों ओरसे	**अष्टौ उपद्वीपान्**	आठ उपद्वीप
		उपदिशन्ति	बतलाते हैं ॥२९॥

तद्यथा स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्ल आवर्तनो रमणको मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः सिंहलो लङ्केति ॥३०॥

तत् यथा स्वर्णप्रस्थः चन्द्रशुक्लः आवर्तनः रमणकः मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः सिंहलः लङ्का इति ॥३०॥

तत् यथा	वे जैसे कि	**मन्दरहरिणः**	मन्दरहरिण,
स्वर्णप्रस्थः	स्वर्णप्रस्थ	**पाञ्चजन्यः**	पाञ्चजन्य
चन्द्रशुक्लः	चन्द्रशुक्ल,	**सिंहलः**	सिंहल
आवर्तनः	आवर्तन,	**लङ्का इति**	लङ्का, इस प्रकार हैं ॥३०॥
रमणकः	रमणक,		

एवं तव भारतोत्तम जम्बूद्वीपवर्षविभागो यथोपदेश-मुपवर्णित इति ॥३१॥

एवं तव भारत उत्तम जम्बूद्वीप वर्षविभागः यथा उपदेशं उपवर्णित इति ॥३१॥

भारत उत्तम	भरतवंशमें श्रेष्ठ परीक्षित !	**जम्बूद्वीप**	जम्बूद्वीपके
		वर्षविभागः	वर्षोंका विभाग
एवं तव	इस प्रकार तुमसे	**उपवर्णित इति**	वर्णन कर दिया है ॥३१॥
यथा उपदेशं	गुरु-मुखसे जैसा सुना था वैसा		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अतः परं प्लक्षादीनां प्रमाणलक्षणसंस्थानतो वर्षविभाग उपवर्ण्यते ॥१॥

अतः परं प्लक्ष आदीनां प्रमाण लक्षण संस्थानतः वर्ष विभाग उपवर्ण्यते ॥१॥

अतः परं	इसके पश्चात्	**संस्थानतः**	स्थितिके अनुसार
प्लक्ष आदीनां	प्लक्ष आदि द्वीपोंका	**वर्षविभाग**	वर्ष-विभाग
प्रमाण	परिमाण	**उपवर्ण्यते**	वर्णन किया जा
लक्षण	चिह्न		रहा है ॥१॥

जम्बूद्वीपोऽयं यावत्प्रमाणविस्तारस्तावता क्षारोदधिना परिवेष्टितो यथा मेरुर्जम्ब्वाख्येन लवणोदधिरपि ततो द्विगुण-विशालेन प्लक्षाख्येन परिक्षिप्तो यथा परिखा बाह्योपवनेन। प्लक्षो जम्बूप्रमाणो द्वीपाख्याकरो हिरण्मय उत्थितो यत्राग्नि-रुपास्ते सप्तजिह्वस्तस्याधिपतिः प्रियव्रतात्मज इध्मजिह्वः स्वं द्वीपं सप्तवर्षाणि विभज्य सप्तवर्षनामभ्य आत्मजेभ्य आकलय्य स्वयमात्मयोगेनोपरराम ॥२॥

जम्बूद्वीपः अयं यावत् प्रमाण विस्तारः तावता क्षार उदधिना परिवेष्टितः यथा मेरुः जम्बू आख्येन लवण उदधिः अपि ततः द्विगुण विशालेन प्लक्ष आख्येन परिक्षिप्तः यथा परिखा बाह्य उपवनेना प्लक्षः जम्बू प्रमाणः द्वीप आख्यकरः हिरण्मय उत्थितः यत्र अग्निः उपास्ते सप्तजिह्वः तस्य अधिपतिः प्रियव्रत आत्मज इध्मजिह्वः स्वं द्वीपं सप्त वर्षाणि विभज्य सप्त वर्षनामभ्यः आत्मजेभ्यः आकलय्य स्वयं आत्मयोगेन उपरराम ॥२॥

अयं जम्बूद्वीपः यह जम्बूद्वीप
यावत् प्रमाण जितने परिमाणमें
विस्तारः विस्तृत है
तावता उतने ही बड़े
क्षार उदधिना खारे समुद्रसे
परिवेष्टितः चारों ओरसे घिरा है,
यथा मेरुः जैसे सुमेरु
जम्बू आख्येन जम्बू नामके द्वीपसे
लवण उदधिः क्षार-समुद्र
अपि भी
ततः उस (समुद्र) से
द्विगुण विशालेन दुगुने बड़े
प्लक्ष आख्येन प्लक्ष नाम वाले (द्वीप) से
परिक्षिप्तः चारों ओरसे घिरा है,
यथा परिखा जैसे परकोटा
बाह्य उपवनेन बाहरी बगीचेसे (घिरा होता है)
द्वीप आख्यकरः उस द्वीपके नामका कारण,
हिरण्मय स्वर्णमय
उत्थितः और ऊँचा
प्लक्षः जम्बू-प्रमाणः (जम्बूद्वीप वाले) जामुनके पेड़के बराबर वहां पाकड़ का पेड़ है।
यत्र सप्तजिह्वः जहां सात जिह्वा वाले
अग्निः उपास्ते अग्निकी उपासना होती है।
तस्य अधिपतिः उस (द्वीप) के स्वामी
प्रियव्रत आत्मज प्रियव्रतके पुत्र
इध्मजिह्वः इध्मजिह्वने
स्वं द्वीपं अपने (इस) द्वीपको
सप्त वर्षाणि सात वर्षों (देशों) में
विभज्य बांटकर
वर्षनामभ्यः उन वर्षोंके ही नाम वाले
सप्त आत्मजेभ्य अपने सात पुत्रोंको
आकलय्य सौंपकर
स्वयं स्वयं
आत्मयोगेन आत्मयोगके द्वारा
उपरराम उपरत हो गये ॥२॥

शिवं यवसं सुभद्रं शान्तं क्षेममभृतमभयमिति वर्षाणि तेषु गिरयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः ॥३॥

शिवं यवसं सुभद्रं शान्तं क्षेमं अमृतं अभयं इति वर्षाणि तेषु गिरयः नद्यः च सप्त एव अभिज्ञाताः ॥३॥

शिवं यवसं	शिव, यवस,
सुभद्रं शान्तं	सुभद्र, शान्त,
क्षेमं अमृतं	क्षेम, अमृत,
अभयं	अभय
इति वर्षाणि	इस नामके वर्ष
	(देश) हैं।
तेषु गिरयः	उनमें पर्वत
च नद्यः	और नदियां
सप्त एव	सात-सात ही
अभिज्ञाताः	प्रसिद्ध हैं ॥३॥

मणिकूटो वज्रकूट इन्द्रसेनो ज्योतिष्मान् सुपर्णो हिरण्यष्ठीवो मेघमाल इति सेतुशैलाः। अरुणा नृम्णाऽऽङ्गिरसी सावित्री सुप्रभाता ऋतम्भरा सत्यम्भरा इति महानद्यः। यासां जलोपस्पर्शनविधूतरजस्तमसो हंसपतङ्गोर्ध्वायनसत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः सहस्रायुषो विबुधोपमसन्दर्शनप्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्या विद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्ते ॥४॥

मणिकूटः वज्रकूटः इन्द्रसेनः ज्योतिष्मान् सुपर्णः हिरण्यष्ठीवः मेघमाल इति सेतुशैलाः। अरुणा नृम्णा आङ्गिरसी सावित्री सुप्रभाता ऋतम्भरा सत्यम्भरा इति महानद्य. यासां जल उपस्पर्शन विधूत रजः तमसः हंस पतङ्ग ऊर्ध्वायन सत्याङ्ग संज्ञाः चत्वारः वर्णाः सहस्र आयुषः विबुध उपम सन्दर्शन प्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्या विद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यं आत्मानं यजन्ते ॥४॥

मणिकूटः	मणिकूट,
वज्रकूटः	वज्रकूट,
इन्द्रसेनः	इन्द्रसेन,
ज्योतिष्मान्	ज्योतिष्मान्
सुपर्णः	सुपर्ण,
हिरण्यष्ठीवः	हिरण्यष्ठीव,
मेघमाल इति	मेघमाल, इस प्रकार
सेतुशैलाः	(सात) मर्यादा गिरि हैं।
अरुणा नृम्णा	अरुणा, नृम्णा,
आङ्गिरसी	आङ्गिरसी,
सावित्री	सावित्री,
सुप्रभाता	सुप्रभाता,
ऋतम्भरा	ऋतम्भरा,
सत्यम्भरा	सत्यम्भरा,
इति महानद्यः	इस प्रकार (ये सात) महानदियां हैं।
यासां जल	जिनके जलमें
उपस्पर्शन	स्नान करनेसे
विधूत रजः	धुले रजोगुण,
तमसः	तमोगुण
हंस पतङ्ग	हंस, पतङ्ग,

उर्ध्वायन	उर्ध्वायन,
सत्याङ्ग संज्ञाः	सत्याङ्ग नामवाले
चत्वारः वर्णाः	चारों वर्णोंके लोग
सहस्र	एक हजार वर्षको
आयुषः	आयुवाले,
विबुध उपम	देवताओंके समान
सन्दर्शन	रूपवाले (तथा उन्हींके समान)
प्रजननाः	सन्तान उत्पन्न करनेवाले
त्रय्या विद्यया	त्रयी (कर्म, ज्ञान, उपासनारूप वेद) विद्या द्वारा
स्वर्गद्वारं	स्वर्गके द्वार भूत
आत्मानं	आत्मस्वरूप
भगवन्तं सूर्यं	भगवान सूर्यकी
यजन्ते	उपासना करते हैं ॥४॥

प्रत्नस्य विष्णो रूपं यत्सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः ।
अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति ॥५॥

प्रत्नस्य विष्णोः रूपं यत् सत्यस्य ऋतस्य ब्रह्मणः अमृतस्य च मृत्योः च सूर्यं आत्मानं ईमहि इति ॥५॥

इति	इस प्रकार (वे स्तुति करते हैं)
यत् प्रत्नस्य विष्णोः	जो पुराण-पुरुष भगवान् विष्णुके,
सत्यस्य	सत्य अनुष्ठान योग्य धर्म) के
ऋतस्य	ऋत (प्रतीत होने वाले धर्म) के,
अमृतस्य च मृत्योः	अमरत्व (मोक्ष) के, तथा मृत्युके
ब्रह्मणः	ब्रह्म (ज्योति-स्वरूप) के
रूपं	रूप हैं
आत्मानं सूर्यं	(उन) आत्मस्वरूप सूर्यकी
ईमहि	(हम) शरण हैं ॥५॥

प्लक्षादिषु पञ्चसु पुरुषाणामायुरिन्द्रियमोजः सहो बलं बुद्धि-विक्रम इति च सर्वेषामौत्पत्तिकी सिद्धिरविशेषेण वर्तते ॥६॥

प्लक्ष आदिषु पञ्चसु पुरुषाणां आयुः इन्द्रियं ओजः सहः बलं बुद्धिः विक्रम इति च सर्वेषां औत्पत्तिकी सिद्धिः अविशेषेण वर्तते ॥६॥

प्लक्ष आदिषु	प्लक्षसे लेकर	**ओजः**	ओज (मनोबल)
पञ्चसु	पांच (द्वीपों) में	**सहः**	सह (इन्द्रिय-बल)
सर्वेषां	सभी	**बलं**	(शरीर) बल,
पुरुषाणां	पुरुषोंको	**बुद्धिः**	बुद्धि,
औत्पत्तिकी	जन्मसे ही	**विक्रम**	पराक्रमकी
अविशेषेण	समान रूपसे	**सिद्धिः**	सिद्धि प्राप्त
आयु इन्द्रिय	आयु, इन्द्रिय,	**वर्तते**	रहती है ॥६॥

प्लक्षः स्वसमानेनेक्षुरसोदेनावृतो यथा तथा द्वीपोऽपि शाल्मलो द्विगुणविशालः समानेन सुरोदेनावृतः परिवृंक्ते ॥७॥

प्लक्षः स्वसमानेन इक्षुरस उदेन आवृतः यथा तथा द्वीपः अपि शाल्मलः द्विगुण विशालः समानेन सुरोदेन आवृतः परिवृङ्क्ते ॥७॥

यथा प्लक्षः	जैसे प्लक्ष-द्वीप	**विशालः**	बड़ा
स्वसमानेन	अपने बराबरके	**समानेन**	अपने बराबरके
इक्षुरस	गन्नेके रसके	**सुरोदेन**	मदिरा-सागरसे
उदेन	समुद्रसे	**आवृतः**	घिरा
आवृतः	घिरा है	**परिवृङ्क्ते**	(इक्षुरस समुद्रके) चारों ओर स्थित है ॥७॥
तथा शाल्मलः	वैसे ही शाल्मली		
द्वीपः अपि	द्वीप भी		
द्विगुण	उससे दोगुना		

यत्र ह वै शाल्मली प्लक्षायामा यस्यां वाव किल निलयमाहुर्भगवतश्छन्दःस्तुतः पतत्त्रिराजस्य सा द्वीपहूतये उपलक्ष्यते ॥८॥

यत्र ह वै शाल्मली प्लक्ष आयामा यस्यां वाव किल निलयं आहुः भगवतः छन्दः स्तुतः पतत्त्रिराजस्य सा द्वीपहूतये उपलक्ष्यते ॥८॥

यत्र ह वै	जहाँ तो निश्चय		बराबरका
प्लक्ष आयामा	प्लक्ष वृक्षके	**शाल्मली**	सेमरका वृक्ष है।

यस्यां	जिसपर
वाव किल	अरे निश्चय ही
भगवतः	भगवान् (विष्णु)की
छन्दः स्तुतः	(अपने पंखोंसे) वेद-मन्त्रोंद्वारा स्तुति करनेवाले
पतत्रिराजस्य	पक्षिराज (गरुड़)का
निलयं आहुः	निवास कहा गया है।
सा	वह (शाल्मलिवृक्ष)
द्वीपहूतये	द्वीपके नामका हेतु
उपलक्ष्यते	दिखायी पड़ता है ॥८॥

तद्द्वीपाधिपतिः प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्त-भ्यस्तन्नामानि सप्तवर्षाणि व्यभजत्सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं देववर्षं पारिभद्रमाप्यायनमविज्ञातमिति ॥९॥

तत् द्वीप अधिपतिः प्रियव्रत आत्मजः यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्तभ्यः तत् नामानि सप्तवर्षाणि व्यभजत् सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं देववर्षं पारिभद्रं आप्यायनं अविज्ञातं इति ॥९॥

तत् द्वीप	उस द्वीपके
अधिपतिः	स्वामी
प्रियव्रत	प्रियव्रतके
आत्मजः	पुत्र
यज्ञबाहुः	यज्ञबाहुने
स्वसुतेभ्यः	अपने पुत्रोंको
तत् नामानि	उनके ही नामवाले
सप्तवर्षाणि	सातवर्ष
व्यभजत्	बाँट दिये,
सुरोचनं	सुरोचन,
सौमनस्यं	सौमनस्य,
रमणकं	रमणक,
देववर्षं	देववर्ष,
पारिभद्रं	पारिभद्र,
आप्यायनं	आप्यायन,
अविज्ञातं इति	अविज्ञात इसप्रकार (उनके नाम हैं) ॥९॥

तेषु वर्षाद्रयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः स्वरसः शतशृङ्गो वामदेवः कुन्दो मुकुन्दः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिरिति । अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहू रजनी नन्दा राकेति ॥१०॥

तेषु वर्ष अद्रयः नद्यः च सप्त एव अभिज्ञाताः स्वरसः शतशृङ्गः वामदेवः कुन्दः मुकुन्दः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिः इति । अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहू रजनी नन्दा राका इति ॥१०॥

तेषु	उन
वर्ष अद्रयः	वर्षोंमें पर्वत
च नद्यः	तथा नदियां
सप्त एव	सात-सात ही
अभिज्ञाताः	प्रसिद्ध हैं ।
स्वरसः	स्वरस,
शतशृङ्गः	शतशृंग,
वामदेवः कुन्दः	वामदेव, कुन्द,
मुकुन्दः	मुकुन्द,
पुष्पवर्षः	पुष्पवर्ष,
सहस्रश्रुतिः	सहस्रश्रुति
इति	ये (पर्वत) हैं ।
अनुमतिः	अनुमति,
सिनीवाली	सिनीवाली,
सरस्वती कुहू	सरस्वती, कुहू,
रजनी नन्दा	रजनी, नन्दा,
राका इति	राका ये (नदियां) हैं ॥१०॥

तद्वर्षपुरुषाः श्रुतधरवीर्यधरवसुन्धरेषन्धरसंज्ञा भगवन्तं वेदमयं सोममात्मानं वेदेन यजन्ते ॥११॥

तद् वर्ष पुरुषाः श्रुतधर वीर्यधर वसुन्धर इषन्धर संज्ञा भगवन्तं वेदमयं सोमं आत्मानं वेदेन यजन्ते ॥११॥

तद्	उस
वर्ष पुरुषाः	वर्षके पुरुष
श्रुतधर	श्रुतधर,
वीर्यधर	वीर्यधर,
वसुन्धर	वसुन्धर,
इषन्धर	इषन्धर,
संज्ञा	नामक (चार वर्णके)
भगवन्तं	भगवान्
वेदमयं	वेदमय
आत्मानं	आत्मस्वरूप
सोमं	चन्द्रमाकी
वेदेन यजन्ते	वेदके द्वारा यजन करते हैं ॥११॥

स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन् कृष्णशुक्लयोः ।
प्रजानां सर्वासां राजान्धः सोमो न आस्त्विति ॥१२॥

स्वगोभिः पितृदेवेभ्यः विभजन् कृष्णशुक्लयोः प्रजानां सर्वासां राजा अन्धः सोमः नः अस्तु इति ॥१२॥

स्व गोभिः	अपनी किरणों द्वारा
कृष्णशुल्कयोः	कृष्णपक्ष और शुक्ल पक्षका
विभजन्	विभाग करके
पितृदेवेभ्यः	पितरों तथा देवताओंको
सर्वासां	सब
प्रजानां	प्रजाको भी
अन्धः	अन्न (आहार) देनेवाले,
सोमः नः	चन्द्रमा हमारे
राजा अस्तु	राजा हों
इति	इसप्रकार (प्रार्थना करते हैं) ॥१२॥

एवं सुरोदाब्दहिस्तद्द्विगुणः समानेनावृतो घृतोदेन यथापूर्वः कुशद्वीपो यस्मिन् कुशस्तम्बो देवकृतस्तद्द्वीपाख्याकरो ज्वलन इवापरः स्वशष्परोचिषा दिशो विराजयति ॥१३॥

एवं सुरोदात् बहिः तत् द्विगुणः समानेन आवृतः घृतोदेन यथा पूर्वः कुशद्वीपः यस्मिन् कुशस्तम्बः देवकृतः तत् द्वीप आख्याकरः ज्वलन इव अपरः स्वशष्परोचिषा दिशः विराजयति ॥१३॥

एवं	इसी प्रकार
सुरोदात्	मदिरा सागरके
बहिः	बाहर
तत् द्विगुणः	उससे दुगुना
समानेन	अपने बराबरके
घृतोदेन	घृत-समुद्रसे
आवृतः	घिरा हुआ
यथा पूर्वः	पहिलोंके समान
कुशद्वीपः	कुश-द्वीप है,
यस्मिन्	जिसमें
तत् द्वीप	उस द्वीपके
आख्याकरः	नामका कारण
देवकृतः	भगवान्का बनाया
अपरः	दूसरे
ज्वलन इव	अग्निके समान
कुशस्तम्बः	कुशका खम्भे जैसा (वृक्ष) है,
स्वशष्परोचिषा	अपनी टहनियोंकी कान्तिसे
दिशः	दिशाओंको
विराजयति	शोभित करता है ॥१३॥

तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतो राजन् हिरण्यरेता नाम स्वं द्वीपं सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत वसु-वसुदानद्दढरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेवनामभ्यः ॥१४॥

तत् द्वीपपतिः प्रैयव्रतः राजन् हिरण्यरेता नाम स्वं द्वीपं सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यः यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत वसु वसुदान दृढ़रुचि नाभिगुप्त स्तुत्यव्रत विविक्त वामदेव नामभ्यः ॥१४॥

राजन्	परीक्षित !	**स्तुत्यव्रत**	स्तुत्यव्रत,
तत् द्वीपपतिः	उस द्वीपके स्वामी	**विविक्त**	विविक्त
प्रैयव्रतः	प्रियव्रतके पुत्र	**वामदेव**	वामदेव,
हिरण्यरेता	हिरण्यरेता	**नामभ्यः**	नामवाले
नाम	नामकने	**स्वपुत्रेभ्यः**	अपने पुत्रोंको
स्वं द्वीपं	अपने द्वीपको	**यथाभागं**	विभागके अनुसार
वसु वसुदान	वसु, वसुदान,	**विभज्य**	बाँटकर
दृढरुचि	दृढरुचि,	**स्वयं**	स्वयं
नाभिगुप्त	नाभिगुप्त,	**तप आतिष्ठत**	तप करने लगे ॥१४॥

तेषां वर्षेषु सीमागिरयो नद्यश्चाभिज्ञाताः सप्त सप्तैव चक्रश्चतुः शृङ्गः कपिलश्चित्रकूटो देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविण इति रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा श्रुतविन्दा देवगर्भा घृतच्युता मन्त्रमालेति ॥१५॥

तेषां वर्षेषु सीमागिरयः नद्यः च अभिज्ञाताः सप्त सप्त एव चक्रः चतुः शृङ्गः कपिलः चित्रकूटः देवानीक, ऊर्ध्वरोमा द्रविण इति रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा श्रुतविन्दा देवगर्भा घृतच्युता मन्त्रमाला इति ॥१५॥

तेषां वर्षेषु	उनके वर्षोंमें	**देवानीक**	देवानीक,
सीमागिरयः	सीमा-पर्वत	**ऊर्ध्वरोमा**	ऊर्ध्वरोम,
च नद्यः	तथा नदियां	**द्रविण**	द्रविण
सप्त सप्त एव	सात-सात ही	**इति**	ये (सात पर्वत) हैं,
अभिज्ञाताः	प्रसिद्ध हैं,	**रसकुल्या**	रसकुल्या,
चक्रः चतुः	चक्र, चतु,	**मधुकुल्या**	मधुकुल्या
शृङ्गः कपिलः	शृंग, कपिल,	**मित्रविन्दा**	मित्रविन्दा,
चित्रकूटः	चित्रकूट,		

श्रुतविन्दा	श्रुतविन्दा	**मंत्र माला इति**	मन्त्रमाला ये (सात
देवगर्भा	देवगर्भा		नदियां) हैं ॥१५॥
घृतच्युता	घृतच्युता.		

यासां पयोभिः कुशद्वीपौकशः कुशलकोविदाभियुक्तकुलक-संज्ञा भगवन्तं जातवेदसरूपिणं कर्मकौशलेन यजन्ते ॥१६॥

यासां पयोभिः कुशद्वीप ओकशः कुशलकोविदाः अभियुक्त कुलक संज्ञा भगवन्तं जातवेदस रूपिणं कर्मकौशलेन यजन्ते ॥१६॥

कुशलकोविदा	कुशल, कोविद,	**जातवेदस**	अग्नि
अभियुक्त कुलक	अभियुक्त, कुलक	**रूपिणं**	स्वरूपकी
संज्ञा	नामके (चार वर्णके)	**कर्मकौशलेन**	(यज्ञादि) कर्म
कुशद्वीप ओकशः	कुशद्वीपवासी		निपुणतासे
यासां पयोभिः	जिनके जलसे	**यजन्ते**	भजन करते हैं ॥१६
भगवन्तं	भगवान्		

परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट् ।
देवानां पुरुषाङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यजेति ॥१७॥

परस्य ब्रह्मणः साक्षात् जातवेदः असि हव्यवाट् देवानां पुरुष अङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यज इति ॥१७॥

जातवेदः	अग्निदेव (आप)	**देवानां**	देवताओंका (तथा)
साक्षात्	साक्षात्	**पुरुषं**	परमपुरुषका
परस्य ब्रह्मणः	परमब्रह्मको	**यज्ञेन यज**	यज्ञके द्वारा भजन
हव्यवाट्	हवि पहुँचानेवाले		कीजिये,
असि	हो अतः	**इति**	इस प्रकार (स्तुति
पुरुष	(विराट्) पुरुषके		करते हैं) ॥१७॥
अङ्गानां	अंगभूत		

तथा घृतोदाब्दहिः क्रौञ्चदीपो द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उपक्लृप्तो वृतो यथा कुशद्वीपो घृतोदेन यस्मिन् क्रौञ्चो नाम पर्वतराजो द्वीपनामनिर्वर्तक आस्ते ॥१८॥

तथा घृतोदात् बहिः क्रौञ्चद्वीपः द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उपक्लृप्तः वृतः यथा कुशद्वीपः घृतोदेन यस्मिन् क्रौञ्चः नाम पर्वतराजः द्वीपनाम निर्वर्तक आस्ते ॥१८॥

यथा	जैसे
कुशद्वीपः	कुशद्वीप
घृतोदेन	घृत-सागरसे (घिरा है)
तथा	वैसे ही
घृतोदात् बहिः	घृत-सागरसे बाहर
क्रौञ्चद्वीपः	क्रौञ्चद्वीप
स्वमानेन	अपने परिमाणसे
द्विगुणः	दो गुने
क्षीरोदेन	क्षीर-समुद्रसे
परित उपक्लृप्तः	चारों ओरसे
वृतः	घिरा है
यस्मिन्	जिसमें
द्वीपनाम	द्वीपके नामका
निर्वर्तक	कारण
क्रौञ्चः नाम	क्रौञ्च नामका
पर्वतराजः	पर्वतराज
आस्ते	है ॥१८॥

योऽसौ गुहप्रहरणोन्मथितनितम्बकुञ्जोऽपि क्षीरोदेनाभिषिच्यमानो भगवता वरुणेनाभिगुप्तो विभयो बभूव ॥१९॥

यः असौ गुहप्रहरण उन्मथित नितम्ब कुञ्जः अपि क्षीरोदेन आसिच्यमानः भगवता वरुणेन अभिगुप्तः विभयः बभूव ॥१९॥

यः असौ	जो यह (पर्वत)
गुहप्रहरण	(पहिले) कुमार कार्तिकके शस्त्र प्रहारसे
उन्मथित	क्षत-विक्षत
नितम्ब	मध्य भाग
कुञ्जः अपि	(तथा) कुञ्जोंके होने पर भी
क्षीरोदेन	क्षीर-समुद्र द्वारा
आसिच्यमानः	सिञ्चित होते रहनेसे
भगवता वरुणेन	(तथा) भगवान् वरुण द्वारा
अभिगुप्तः	संरक्षित होनेसे
विभयः बभूव	निर्भय हो गया ॥१९

तस्मिन्नपि प्रैयव्रतो घृतपृष्ठो नामाधिपतिः स्वे द्वीपे वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु सप्त रिक्थादान् वर्षपान्निवेश्य स्वयं भगवान् भगवतः परमकल्याणयशस आत्मभूतस्य हरेश्चरणारविन्दमुपजगाम ॥२०॥

तस्मिन् अपि प्रैयव्रतः घृतपृष्ठः नाम अधिपतिः स्वे द्वीपे वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु सप्त रिक्थादान् वर्षपान् निवेश्य स्वयं भगवान् भगवतः परमकल्याण यशसः आत्मभूतस्य हरेः चरणारविन्दं उपजगाम ॥२०॥

तस्मिन् अपि	उसमें भी
घृतपृष्ठः नाम	घृतपृष्ठ नामके
प्रैयव्रतः	प्रियव्रतके पुत्र
अधिपतिः	स्वामी थे,
स्वे द्वीपे	अपने द्वीपको
सप्त वर्षाणि	सात वर्षोंमें
विभज्य	विभाजित करके
पुत्रनामसु तेषु	पुत्रोंके नामवाले उनमें
सप्त रिक्थादान्	सात उत्तराधिकारियोंको
वर्षपान् निवेश्य	वर्षपाल नियुक्त करके
स्वयं भगवान्	स्वयं ऐश्वर्य सम्पन्न होनेपर भी
भगवतः	भगवान्
परमकल्याण	परम कल्याणदायी
यशसः	सुयशवाले
आत्मभूतस्य	आत्मस्वरूप
हरेः	श्रीहरिके
चरणारविन्दं	पाद-पद्मोंकी
उपजगाम	शरण ली ॥२०॥

आमो मधुरुहो मेघपृष्ठः सुधामा भ्राजिष्ठो लोहितार्णो वनस्पतिरिति घृतपृष्ठसुतास्तेषां वर्षगिरयः सप्त सप्तैव नद्यश्चाभिख्याताः शुक्लो वर्धमानो भोजन उपबर्हिणो नन्दो नन्दनः सर्वतोभद्र इति अभया अमृतौघा आर्यका तीर्थवती वृत्तिरूपवती पवित्रवती शुक्लेति ॥२१॥

आमः मधुरुहः मेघपृष्ठः सुधामा भ्राजिष्ठः लोहितार्णः वनस्पतिः इति घृतपृष्ठसुताः तेषां वर्षगिरयः सप्त सप्त एव नद्यः च अभिख्याताः शुक्लः वर्धमानः भोजनः उपबर्हिणः नन्दः नन्दनः सर्वतोभद्र इति अभया अमृतौघा आर्यका तीर्थवती वृत्तिरूपवती पवित्रवती शुक्ला इति ॥२१॥

आमः मधुरुहः	आम, मधुरुह,	**सुधामा**	सुधामा,
मेघपृष्ठः	मेघपृष्ठ,	**भ्राजिष्ठः**	भ्राजिष्ठ,

लोहितार्णः	लोहितार्ण
वनस्पतिः इति	वनस्पति इस प्रकार (सात)
घृतपृष्ठसुताः	घृतपृष्ठके पुत्र हैं।
तेषां वर्षगिरयः	उनके वर्षके मर्यादा पर्वत
च नद्यः	और नदियां भी
सप्त सप्त एव	सात सात ही
अभिख्याताः	प्रसिद्ध हैं।
शुक्लः वर्धमानः	शुक्ल, वर्धमान,
भोजन	भोजन,
उपबर्हिणः	उपबर्हिण,
नन्दः नन्दनः	नन्द, नन्दन,
सर्वतोभद्र इति	सर्वतोभद्र ये (पर्वत) हैं
अभया अमृतौघा	अभया, अमृतौघा
आर्यका	आर्यका,
तीर्थवती	तीर्थवती,
वृत्तिरूपवती,	वृत्तिरूपवती,
पवित्रवती	पवित्रवती,
शुक्ला इति	शुक्ला ये (नदियां) हैं ॥२१॥

यासामम्भः पवित्रममलमुपयुञ्जानाः पुरुषऋषभद्रविणदेवकसंज्ञा वर्षपुरुषा आपोमयं देवमपां पूर्णेनाञ्जलिना यजन्ते ॥२२॥

यासां अम्भः पवित्रं अमलं उपयुञ्जानाः पुरुष ऋषभ द्रविण देवक संज्ञा वर्षपुरुषाः आपोमयं देवं अपां पूर्णेन अञ्जलिना यजन्ते ॥२२॥

यासां	जिनके
पवित्रं अमलं	पवित्र निर्मल
अम्भः	जलका
उपयुञ्जानाः	उपयोग करनेवाले
पुरुष ऋषभ	पुरुष, ऋषभ,
द्रविण देवक	द्रविण, देवक नामके
संज्ञा	(चारों वर्णके)
वर्षपुरुषाः	उस वर्षके पुरुष
अपां पूर्णेन	जलसे भरी
अञ्जलिना	अञ्जलिसे
आपोमयं देवं	जलमय परमात्माकी
यजन्ते	पूजा करते हैं ॥२२॥

आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीर्भूर्भुवः सुवः।
ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुव इति ॥२३॥

आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीः भूः भुवः स्वः ता नः पुनीतां इव अघ्नीः स्पृशतां आत्मना भुव इति ॥२३॥

आपः	जल
पुरुषवीर्या. स्थ	विराट्-पुरुषमें स्थित उसका वीर्य है।
भू भुवः स्वः	भू, भुवः स्वर्गको
पुनन्तीः	पवित्र करता है,
ता नः	वह हम
भुव स्पृशतां	शरीरसे स्पर्श करने वालोंको
अघ्नीः इव	पापहारीकी भांति
आत्मना	अपनी शक्तिसे
पुनीतां	पवित्र करें।
इति	इस प्रकार (स्तुति करते हैं) ॥२३॥

एवं पुरस्तात्क्षीरोदात्परित उपवेशितः शाकद्वीपो द्वात्रिंशल्लक्षयोजनायामः समानेन च दधिमण्डोदेन परीतो यस्मिन् शाको नाम महीरुहः स्वक्षेत्रव्यपदेशको यस्य ह महासुरभिगन्धस्तं द्वीपमनुवासयति ॥२४॥

एवं पुरस्तात् क्षीरोदात् परित उपवेशितः शाकद्वीपः द्वात्रिंशत् लक्ष योजन आयामः समानेन च दधिमण्डोदेन परीतः यस्मिन् शाकः नाम महीरुहः स्वक्षेत्र व्यपदेशकः यस्य ह महासुरभि गन्धः तं द्वीपं अनुवासयति ॥२४॥

एवं क्षीरोदात्	इसी प्रकार क्षीर-समुद्रसे
पुरस्तात्	आगे
परित	चारों ओरसे
उपवेशितः	घेरे हुए
शाकद्वीपः	शाकद्वीप
द्वात्रिंशत् लक्ष	बत्तीस लाख
योजन आयामः	योजन विस्तारवाला
समानेन च	अपने बराबरके ही
दधिमण्डोदेन	मट्ठेके समुद्रसे
परीतः	घिरा हुआ है,
स्वक्षेत्र	अपने क्षेत्रके
व्यपदेशकः	नामका सूचक
यस्मिन्	जिसमें
शाकः नाम	शाक नामक
महीरुहः	वृक्ष है,
यस्य ह	जिसकी ही
महासुरभिः	महान् सौरभ
गन्धः	गन्ध
तं द्वीपं	उस द्वीपको
अनुवासयति	सर्वत्र सुवासित करती है ॥२४॥

तस्यापि प्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथिः सोऽपि विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु स्वात्मजान् पुरोजव-मनोजवपवमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपविश्वधारसंज्ञान्निधाप्याधिपतीन् स्वयं भगवत्यनन्त आवेशितमतिस्तपोवनं प्रविवेश ॥२५॥

तस्य अपि प्रैयव्रत एव अधिपतिः नाम्ना मेधातिथिः सः अपि विभज्य सप्त वर्षानि पुत्रनामानि तेषु स्व आत्मजान् पुरोजव मनोजव पवमान धूम्रानीक चित्ररेफ बहुरूप विश्वधार संज्ञान् निधाप्य अधिपतीन् स्वयं भगवति अनन्त आवेशित मतिः तपोवनं प्रविवेश ॥२५॥

तस्य अपि	उस (द्वीप) के भी
मेधातिथिः	मेधा तिथि नामके
नाम प्रैयव्रत	प्रियव्रतके
एव	पुत्र ही
अधिपतिः	स्वामी थे।
स अपि	उन्होंने भी
पूत्र नामानि	पुत्रोंके नामसे
सप्त वर्षानि	सात वर्षोंका
विभज्य	विभाजन करके
तेषु	उनमें
स्व आत्मजान्	अपने पुत्र
पूरोजव	पुरोजव,
मनोजव	मनोजव,
पवमान	पवमान,
धूम्रानीक	धूम्रानीक,
चित्ररेफ	चित्ररेफ,
बहुरूप	बहुरूप,
विश्वधार	विश्वधार
संज्ञान्	नाम वालोंको
अधिपति	अधिपति
निधाप्य	स्थापित करके
स्वयं	स्वयं
भगवयि अनन्त	भगवान् अनन्तमें
आवेशितः मतिः	बुद्धि लगाकर
तपोवनं	तपोवनमें
प्रविवेश	प्रवेश कर लिया ॥२५॥

एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्त सप्तैव ईशान उरुशृङ्गो बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतो देवपालो महानस इति अनघाऽऽयुर्दा उभयस्पृष्टिरपराजिता पञ्चपदी सहस्रस्रुतिर्निज-धृतिरिति ॥२६॥

एतेषां वर्षमर्यादा गिरयः नद्यः च सप्त सप्त एव ईशानः उरुशृङ्गः बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतः देवपालः महानस इति अनघा आयुर्दा उभयस्पृष्टिः अपराजिता पञ्चपदी सहस्रस्रुतिः निजधृतिः इति ॥२६॥

एतेषां	इनमें
वर्षमर्यादा	वर्ष सीमा बनाने वाले
गिरयः	पर्वत
च नद्यः	और नदियां
सप्त सप्त एव	सात-सात ही हैं।
ईशानः	ईशान,
उरुशृङ्गः	उरुशृङ्ग,
बलभद्रः	बलभद्र,
शतकेसरः	शतकेसर,
सहस्रस्रोतः	सहस्रस्रोत,
देवपालः	देवपाल,
महानस इति	महानस ये (पर्वत) हैं,
अनघा आयुर्दा	अनघा, आयुर्दा,
उभयस्पृष्टिः	उभयस्पृष्टि,
अपराजिता	अपराजिता,
पञ्चपदी	पञ्चपदी,
सहस्रस्रुतिः	सहस्रस्रुति,
निजधृतिः इति	निजधृति ये (नदियां हैं ॥२६॥

तद्वर्षपुरुषा ऋतव्रतसत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानो भगवन्तं वाय्वात्मकं प्राणायामविधूतरजस्तमसः परमसमाधिना यजन्ते ॥२७॥

तत् वर्ष पुरुषाः ऋतव्रत सत्यव्रत दानव्रत अनुव्रत नामानः भगवन्तं वायु आत्मकं प्राणायाम विधूत रजः तमसः परम समाधिना यजन्ते ॥२७॥

ऋतव्रत	ऋतव्रत,
सत्यव्रत	सत्यव्रत,
दानव्रत अनुव्रत	दानव्रत, अनुव्रत
नामानः	नामक (चार वर्णोंके)
तत् वर्ष पुरुषाः	उस वर्षके पुरुष
वायु आत्मकं	वायु स्वरूप
भगवन्तं	भगवान्‌की
प्राणायाम	प्राणायाम द्वारा
रजः तमसः	रजोगुण, तमोगुण
विधूत	नष्ट करके
परम समाधिना	परम समाधि द्वारा
यजन्ते	आराधना करते हैं ॥२७॥

अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ।
अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥२८॥

अन्तः प्रविश्य भूतानि यः बिभर्ति आत्मकेतुभिः अन्तर्यामी ईश्वरः साक्षात् पातु नः यत् वशे स्फुटम् ॥२८॥

आत्मकेतुभिः	(प्राणदि रूप) अपनी ध्वजाओं द्वारा	**यत् वशे स्फुटं**	जिसके वशमें जगत है (वह)
भूतानि अन्तः	प्राणियोंके भीतर	**साक्षात्**	साक्षात्
प्रविश्य	प्रवेश करके	**अन्तर्यामी**	अन्तर्यामी
यः बिभर्ति	जो उनका धारण करता है,	**ईश्वरः**	सर्वसञ्चालक
		नः पातु	हमारी रक्षा करें ॥२८॥

एवमेव दधिमण्डोदात्परतः पुष्करद्वीपस्ततो द्विगुणायामः समन्तत उपकल्पितः समानेन स्वादूदकेन समुद्रेण बहिरावृतो यस्मिन् बृहत्पुष्करं ज्वलनशिखामलकनकपत्रायुतायुतं भगवतः कमलासनस्याध्यासनं परिकल्पितम् ॥२९॥

एवं एव दधिमण्डोदात् परतः पुष्कर द्वीपः ततः द्विगुण आयामः समन्ततः उपकल्पितः समानेन स्वादु उदकेन समुद्रेण बहिः आवृतः यस्मिन् बृहत् पुष्करं ज्वलन शिखा अमल कनकपत्र अयुत अयुतं भगवतः कमलासनस्य अध्यासनं परिकल्पितं ॥२९॥

एवं एव	इस प्रकार ही	**समानेन**	(वह) अपने बराबरके
दधिमण्डोदात्	मट्ठेके समुद्रसे	**स्वादु उदकेन**	स्वादिष्ट जलके
परतः	आगे	**समुद्रेण**	समुद्रसे
ततः द्विगुण	उससे दुगुने	**बहिः आवृतः**	बाहरसे घिरा है।
आयामः	विस्तार वाला	**यस्मिन्**	जिसमें
पुष्कर द्वीपः	पुष्कर द्वीप	**अमल ज्वलन**	अग्निकी निर्मल
समन्ततः	चारों ओर	**शिखा**	लपटके समान
उपकल्पितः	स्थित है,	**कनकपत्र**	स्वर्णमय

अयुत अयुतं	लाखों दलोंका	**कमलासनस्य**	ब्रह्माका
वृहत् पुष्करं	बहुत बड़ा कमल है।	**अध्यासनं**	बैठनेका आसन
भगवतः	(वह) भगवान्	**परिकल्पितं**	बनाया गया है ॥२९

तद्द्वीपमध्ये मानसोत्तरनामैक एवार्वाचीनपराचीन-वर्षयोर्मर्यादाचलोऽयुतयोजनोच्छ्रायायामो यत्र तु चतसृषु दिक्षु चत्वारि पुराणि लोकपालानामिन्द्रादीनां यदुपरिष्टात्सूर्यरथस्य मेरु परिभ्रमतः संवत्सरात्मकं चक्रं देवानामहोरात्राभ्यां परि-भ्रमति ॥३०॥

तत् द्वीपमध्ये मानसोत्तर नाम एक एव अर्वाचीन पराचीन वर्षयोः मर्यादा अचलः अयुत योजन उच्छ्राय आयामः यत्र तु चतसृषु दिक्षु चत्वारि पुराणि लोकपालानां इन्द्रादीनां यत् उपरिष्टात् सूर्यरथस्य मेरुं परिभ्रमतः संवत्सर आत्मकं चक्रं देवानां अहः रात्राभ्यां परिभ्रमति ॥३०॥

तत् द्वीपमध्ये	उस द्वीपके बीचमें	**अयुत योजन**	दस हजार योजन
अर्वाचीन	(उसके) पूर्वीय	**उच्छ्राय**	ऊँचा (उतना ही)
पराचीन	और पश्चिमी	**आयामः**	फैलाव वाला है।
वर्षयोः	प्रदेशको (पृथक करनेवाला)	**यत्र तु**	जहाँ तो
		चतसृषु दिक्षु	चारों दिशाओंमें
मानसोत्तर	मानसोत्तर	**इन्द्रादीनां**	इन्द्र आदि
नाम	नामका	**लोकपालानां**	लोकपालोंकी
एक एव	एक ही	**चत्वारि पुराणि**	चार पुरियां हैं■
मर्यादा अचलः	मर्यादा पर्वत है।		

■ यहाँके लोकपालोंकी पुरियां ब्रह्माजीके स्थानका वर्णन इसी स्कन्धके अध्याय १६ के गद्य २८-२९ के साथ देखते योग्य है। वहाँ जम्बू-द्वीपके इलावृतके मध्यमें सुमेरुके ऊपर ब्रह्मपुरी और उसके चारों ओर लोकपाल पुरियोंका वर्णन है।

यत् उपरिष्टात्	जिनके ऊपर
मेरुं परिभ्रमतः	सुमेरुके चारों ओर घूमते
सूर्यरथस्य	सूर्यके रथके
संवत्सर आत्मकं	संवत्सर स्वरूप
चक्रं	चक्र
देवानां	देवताओंका
अहः रात्राभ्यां	दिन-रात बनाता
परिभ्रमति	घूमता है ॥३०॥

तद्द्वीपस्याप्यधिपतिः प्रैयव्रतो वीतिहोत्रो नामैतस्यात्मजौ रमणकधातकिनामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वजवद्भग-वत्कर्मशील एवास्ते ॥३१॥

तत् द्वीपस्य अपि अधिपतिः प्रैयव्रतः वीतिहोत्रः नाम एतस्य आत्मजौ रमणक धातकि नामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वजवत् भगवत् कर्मशील एव आस्ते ॥३१॥

तत् द्वीपस्य	उस द्वीपके
अपि	भी
अधिपतिः	अधिपति
प्रैयव्रतः	प्रियव्रतके पुत्र
वीतिहोत्रः	वीतिहोत्र
नाम	नामक थे।
एतस्य आत्मजौ	उनके पुत्र
रमणक	रमणक और
धातकि	धातकि
नामानौ	नाम वालोंको
वर्षपती	वर्षोंका स्वामी
नियुज्य	बनाकर
स पूर्वजवत्	वे (अपने) पूर्वजोंके समान
भगवत्	भगवान्‌की
कर्मशील	सेवारूप कर्ममें
एव आस्ते	ही लगे रहे ॥३१

तद्वर्षपुरुषा भगवन्तं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेण कर्मणाऽऽ-राधयन्तीदं चोदाहरन्ति ॥३२॥

तत् वर्ष पुरुषा भगवन्तं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेण कर्मणा आराधयन्ति इदं च उदाहरन्ति ॥३२॥

तत् वर्षं पुरुषा	उस वर्षके निवासी
ब्रह्मरूपिणं	ब्रह्मा स्वरूप
भगवन्तं	भगवान्‌की
सकर्मकेण	सकाम
कर्मणा	कर्मों द्वारा
आराधयन्ति	आराधना करते हैं।
च इदं	और यह
उदाहरन्ति	स्तुति करते ॥३२॥

यत्तत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत् ।
एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नम इति ॥३३॥

यत् तत् कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनः अर्चयेत् एकान्तं अद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नमः इति ॥३३॥

यत् कर्ममयं	जो कर्ममय
लिङ्गं	प्रतीक हैं
तत्	उन
ब्रह्मलिङ्गं	ब्रह्मा स्वरूप (भगवान्) की
जनः अर्चयेत्	लोगोंको अर्चना करनी चाहिए।
तस्मै	उन
एकान्तं	नैष्ठिक
अद्वयं	अद्वितीय
शान्तं	शान्त
भगवते	भगवान्को
नमः	नमस्कार।
इति	इस प्रकार (स्तुति करते हैं) ॥३३॥

*श्रीशुक उवाच-**

ततः परस्ताल्लोकालोकनामाचलो लोकालोकयोरन्तराले परित उपक्षिप्तः ॥३४॥

ततः परस्तात् लोकालोक नाम अचलः लोक अलोकयोः अन्तराले परित उपक्षिप्तः ॥३४॥

ततः परस्तात्	उसके आगे
लोक	लोक (सूर्यादि द्वारा प्रकाशित)
अलोकयोः	अलोक (अप्रकाशित भाग) के
अन्तराले	बीचमें
परित	सब ओर
उपक्षिप्तः	(सर्वेश्वर द्वारा) डाला हुआ
लोकालोक नाम	लोकालोक नामक
अचलः	पर्वत है ॥३४॥

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है।

यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्यन्या-ऽऽदर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथञ्चित्पुनः प्रत्युपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्त्वपरिहृताऽऽसीत् ॥३५॥

यावत् मानसोत्तर मेरोः अन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्यन्या आदर्श-तल उपमा यस्यां प्रहितः पदार्थः न कथञ्चित् पुनः प्रति उपलभ्यते तस्मात् सर्व सत्त्व परिहृता आसीत् ॥३५॥

यावत्	जितना	**पदार्थः**	पदार्थ
मानसोत्तर	मानसोत्तरसे	**कथञ्चित् पुनः**	कभी भी फिर
मेरोः अन्तरं	मेरुका अन्तर है	**न प्रति**	लौटकर नहीं
तावती भूमिः	उसका स्थल (शुद्धोदकके पार) है	**उपलभ्यते**	मिलता
		तस्मात्	इसलिए
काञ्चन्यन्या	वह स्वर्णमय है,	**सर्व**	सब
आदर्शतल	दर्पणके समान	**सत्त्व परिहृता**	प्राणियोंने छोड़ी
उपमा	(स्वच्छ) है,	**आसीत्**	है (वहां कोई नहीं रहता) ॥३५॥
यस्यां प्रहितः	जिसमें पहुँचा (गिरा)		

लोकालोक इति समाख्या यदनेनाचलेन लोकालोक-स्यान्तर्वर्तिनावस्थाप्यते ॥३६॥

लोकालोक इति समाख्या यत् अनेन अचलेन लोक अलोकस्य अन्तर्वर्तिना अवस्थाप्यते ॥३६॥

लोकालोक	लोकालोक	**लोक**	लोक और
इति समाख्या	यह नाम पड़नेका कारण है	**अलोकस्य**	अलोकके
		अन्तर्वर्तिना	मध्यमें
यत् अनेन	क्योंकि यह	**अवस्थाप्यते**	स्थित है ॥३६॥
अचलेन	पर्वत		

स लोकत्रयान्ते परित ईश्वरेण विहितो यस्मात्सूर्यादीनां ध्रुवापवर्गणां ज्योतिर्गणानां गभस्तयोऽर्वाचीनांस्त्रींल्लोकान-वितन्वाना न कदाचित्पराचीना भवितुमुत्सहन्ते तावदुन्नहनायामः ॥३७॥

स लोकत्रय अन्ते परित ईश्वरेण विहितः यस्मात् सूर्य आदीनां ध्रुव अपवर्गाणां ज्योतिर्गणानां गभस्तयः अर्वाचीनाः त्रीन्लोकान् अवितन्वाना **न कदाचित् पराचीना भवितुं उत्सहन्ते तावत् उन्नहन आयामः ॥३७॥**

स लोकत्रय	वह (पर्वत) तीनों लोकोंके	**अर्वाचीनाः**	नीचे ही
अन्ते	अन्तमें	**त्रीन्लोकान्**	तीनों लोकोंमें
परति	चारों ओर	**अवितन्वाना**	फैलती हुई
ईश्वरेण	परमेश्वर द्वारा	**कदाचित्**	कभी
विहितः	बनाया है।	**पराचीना भवितुं**	पार होनेका
यस्मात्	जिससे	**उत्सहन्ते न**	उत्साह नहीं करतीं
सूर्य आदीनां	सूर्य आदि	**तावत्**	वहीं तक
ध्रुव अपवर्गाणां	ध्रुव पर्यन्त	**उन्नहन आयामः**	ऊपर जानेका (उनका) विस्तार है ॥३७॥
ज्योतिर्गणानां	ज्योतिर्मण्डलकी		
गभस्तयः	किरणें		

एतावाँल्लोकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिन्तितः कविभिः स तु पञ्चाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः ॥३८॥

एतावान् लोकविन्यासः मान लक्षण संस्थाभिः विचिन्तितः कविभिः स तु पञ्चाशत् कोटि गणितस्य भूगोलस्य तुरीय भागः अयं लोकालोक अचलः ॥३८॥

कविभिः	विद्वानों द्वारा	**एतावान्**	इतना ही
मान लक्षण	परिमाण, लक्षण,	**लोकविन्यासः**	लोकोंकी स्थिति
संस्थाभिः	स्थितिके द्वारा	**विचिन्तितः**	सोची गयी है।

स तु	वह तो
गणितस्य	गणितसे
पञ्चाशत् कोटि	पचास करोड़ योजन है ।

तदुपरिष्टाच्चतसृष्वाशास्वात्मयोनिनाखिलजगद्गुरुणाधिनिवेशिता ये द्विरदपतय ऋषभः पुष्करचूडो वामनोऽपराजित इति सकललोकस्थितिहेतवः ॥३९॥

तत् उपरिष्टात् चतसृषु आशासु आत्मयोनिना अखिल जगत् गुरुणा अधिनिवेशिता ये द्विरद पतयः ऋषभः पुष्कर चूडः वामनः अपराजितः इति सकललोक स्थिति हेतवः ॥३९॥

अखिल जगत्	सम्पूर्ण विश्वके
गुरुणा	गुरु
आत्मयोनिना	स्वयम्भू (ब्रह्माजी) द्वारा
तत् उपरिष्टात्	उस (लोका-लोक) के ऊपर
चतसृषु आशासु	चारों दिशाओंमें
सकललोक	सब लोकोंकी
भूगोलस्य	(समस्त इस) भूगोलका
तुरीय भागः	चौथाई भाग
अयं लोकालोक	यह लोकालोक
अचलः	पर्वत है ॥३८॥
स्थिति हेतवः	स्थितिके लिए
ये द्विरद पतयः	जो गजराज
अधिनिवेशिता	नियुक्त किये हैं
इति	(वे) इस प्रकार हैं
ऋषभः	ऋषभ,
पुष्करचूडः	पुष्करचूड,
वामनः	वामन और
अपराजितः	अपराजित ॥३९॥

तेषां स्वविभूतीनां लोकपालानां च विविधवीर्योपबृंहणाय भगवान् परममहापुरुषो महाविभूतिपतिरन्तर्याम्यात्मनो विशुद्धसत्त्वं धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याद्यष्टमहासिद्ध्युपलक्षणं विष्वक्सेनादिभिः स्वपार्षदप्रवरैः परिवारितो निजवरायुधोपशोभितैर्निजभुजदण्डैः सन्धारयमाणस्तस्मिन् गिरिवरे समन्तात्सकललोकस्वस्तय आस्ते ॥४०॥

तेषां स्वविभूतीनां लोक पालानां च विविधवीर्य उपबृंहणाय भगवान् परम महापुरुषः महाविभूति पतिः अन्तर्यामी आत्मनः विशुद्ध सत्त्वं धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य आदि अष्टमहासिद्धि उपलक्षणं विष्वक्सेन आदिभिः स्वपार्षदप्रवरैः परिवारितः निजवर आयुध उपशोभित निजभुज-दण्डैः सन्धारयमाणः तस्मिन् गिरिवरे समन्तात् सकल लोक स्वस्तय आस्ते ॥४०॥

तेषां	उन (दिग्गजों) की	**वैराग्य ऐश्वर्य**	वैराग्य, ऐश्वर्य
च स्वविभूतीनां	तथा अपनी विभूति रूप	**आदि**	आदि
		अष्टमहासिद्धि	आठ महासिद्धियोंसे
लोक पालानां	लोकपालोंकी	**उपलक्षणं**	उपलक्षित,
विविधवीर्य	अनेक प्रकारकी शक्तियोंको	**स्वपार्षदप्रवरैः**	अपने पार्षद श्रेष्ठ
		विष्वक्सेन	विष्वक्सेन
उपबृंहणाय	बढ़ानेके लिए (तथा)	**आदिभिः**	आदिसे
सकल लोक	सब लोकोंके	**परिवारितः**	घिरे हुए,
स्वस्तय	कल्याणके लिए	**निजवर आयुध**	अपने श्रेष्ठ आयुध (शंखचक्र आदि)
भगवान्	भगवान्	**उपशोभित**	सुशोभित
परम	सर्वोपरि	**निजभुजदण्डैः**	अपनी भुजाओंसे
महापुरुषः	महापुरुष,	**सन्धारयमाणः**	धारण किये
महाविभूति	महान् ऐश्वर्यके	**तस्मिन् गिरिवरे**	उस श्रेष्ठ पर्वत (लोकालोक) पर
पतिः	स्वामी,	**समन्तात् आस्ते**	सब ओर विराज-मान हैं ॥४०॥
अन्तर्यामी	अन्तर्यामी		
विशुद्ध सत्त्वं	विशुद्ध सत्त्व		
आत्मनः	विग्रह (श्रीहरि)		
धर्म ज्ञान	धर्म, ज्ञान,		

आकल्पमेवं वेषं गत एष भगवानात्मयोगमायया विर-चितविविधलोकयात्रागोपीयायेत्यर्थः ॥४१॥

आकल्पं एवं वेषं गतः एष भगवान् आत्म योगमायया विरचित विविध लोकयात्रा गोपीयाय इति अर्थः ॥४१॥

आत्म	अपनी
योगमायया	योगमाया द्वारा
विरचित	निर्मित
विविध	अनेक प्रकारके
लोकयात्रा	लोक-व्यवहारकी
गोपीयाय	रक्षाके लिए
इति अर्थः	इसी प्रयोजनसे
एष भगवान्	ये भगवान्
आकल्पं	कल्प पर्यन्त
एवं वेष गतः	इसी वेशमें रहते हैं ॥४१॥

योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातं यद्बहिर्लोकालोकाचलात् । ततः परस्ताद्योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरन्ति ॥४२॥

यः अन्तः विस्तार एतेन हि अलोक परिमाणं च व्याख्यातं यत् बहिः लोकालोक अचलात् ततः परस्तात् योगेश्वरगतिं विशुद्धां उदाहरन्ति ॥४२॥

यः	जो (लोकालोकके)
अन्तः विस्तार	भीतरी भागका विस्तार है,
एतेन हि	इसके द्वारा ही
यत्	जो
लोकालोक	लोकालोक
अचलात्	पर्वतसे
बहिः	बाहर है (उस)
अलोक	अलोकके
परिमाणं च	परिमाणको भी
व्याख्यातं	बतला दिया (गया)
ततः परस्तात्	उससे आगे
विशुद्धां	ठीक-ठीक
योगेश्वरगतिं	योगेश्वरोंकी ही गति
उदाहरन्ति	कही जाती है ॥४२॥

अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ।
सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोटयः स्युः पञ्चविंशतिः ॥४३॥

अण्डमध्य गतः सूर्यः द्यावा भूम्योः यत् अन्तरं सूर्य अण्डगोलयोः मध्ये कोटयः स्युः पञ्चविंशतिः ॥४३॥

द्यावा	स्वर्ग
भूम्योः	पृथ्वीके
यत् अन्तरं	मध्यका जो भाग है (उस)
अण्डमध्य	ब्रह्माण्डके मध्य (केन्द्र) में

सूर्यः गतः	सूर्य स्थित है।	**पञ्चविंशतिः**	पच्चीस
सूर्य	सूर्य तथा	**कोट्यः स्युः**	करोड़ योजन
अण्डगोलयोः	ब्रह्माण्ड-गोलकके		है ॥४३॥
मध्ये	बीचमें		

मृतेऽण्ड एष एतस्मिन् यदभूत्ततो मार्तण्ड इति व्यपदेशः।
हिरण्यगर्भ इति यद्धिरण्याण्डसमुद्भवः ॥४४॥

मृते अण्ड एष एतस्मिन् यत् अभूत् ततः मार्तण्ड इति व्यपदेशः हिरण्यगर्भ इति यत् हिरण्य अण्ड समुद्भवः ॥४४॥

एष यत्	यह क्योंकि	**हिरण्यगर्भ**	हिरण्यगर्भ
एतस्मिन्	इस	**इति यत्**	इस प्रकार (कहा
मृते अण्ड	मरे हुए अण्ड		गया) क्योंकि
	(ब्रह्माण्ड) से	**हिरण्य अण्ड**	स्वर्णिम (ज्योतिमय)
अभूत्	उत्पन्न हुआ,		अण्डसे
ततः मार्तण्ड	इसलिए मार्तण्ड	**समुद्भवः**	उत्पन्न हुए ॥४४॥
इति व्यपदेशः	इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ।		

सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्मही भिदा।
स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥४५॥

सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौः मही भिदा स्वर्ग अपवर्गौ नरका रसा ओकांसि च सर्वशः ॥४५॥

हि सूर्येण	क्योंकि सूर्यके द्वारा ही	**नरका**	नरक
		रसा ओकांसि	रसातलादि
दिशः खं	दिशाओं, आकाश,	**सर्वशः**	सभी
द्यौः मही	द्युलोक (अन्तरिक्ष) भूलोक	**भिदा**	भागोंका
		विभज्यन्ते	विभाजन होता
स्वर्ग	स्वर्ग		है ॥४५॥
अपवर्गौ	मोक्षके प्रदेश (वैकुण्ठादि)		

देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम् ।
सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥४६॥

देव तिर्यक् मनुष्याणां सरीसृप सवीरुधां सर्वजीव निकायानां सूर्य आत्मा दृक् ईश्वरः ॥४६॥

देव तिर्यक्	देवता, तिर्यक् (पशु-पक्षी)	**निकायानां**	समूहोंका
मनुष्याणां	मनुष्योंके साथ	**सूर्य आत्मा**	सूर्य आत्मा और
सरीसृप	सरकने वाले प्राणी,	**दृक् ईश्वरः**	नेत्रोंके अधिष्ठाता हैं ॥४६॥
सवीरुधां	वनस्पतियोंके साथ		
सर्वजीव	सभी जीव		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने समुद्वर्षसंनिवेशपरिमाणलक्षणो विंशोऽध्यायः ॥४६॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

एतावानेव भूवलयस्य संनिवेशः प्रमाणलक्षणतो व्याख्यातः ॥१॥

एतावान् एव भूवलयस्य संनिवेशः प्रमाण लक्षणतः व्याख्यातः ॥१॥

एतावान् एव	इतना ही	**प्रमाण लक्षणतः**	परिमाण और लक्षण सहित
भूवलयस्य	भू-मण्डलका	**व्याख्यातः**	(वह) बतला दिया गया ॥१॥
सन्निवेशः	विस्तार है,		

एतेन हि दिवो मण्डलमानं तद्विद उपदिशन्ति यथा द्विदलयोर्निष्पावादीनां ते अन्तरेणान्तरिक्षं तदुभयसन्धितम् ॥२॥

एतेन हि दिवः मण्डलमानं तद् विद उपदिशन्ति यथा द्विदलयोः निष्पाः आदीनां ते अन्तरेण अन्तरिक्षं तत् उभय सन्धितम् ॥२॥

हि	क्योंकि	**यथा निष्पाः**	जैसे दालोंवाले
एतेन	इसीके अनुसार	**द्विदलयोः**	(चना, मटर आदि) द्विदलोंमें होते हैं
दिवः	द्युलोक		
मण्डलमानं	मण्डलका परिमाण	**ते अन्तरेण**	उनके मध्यमें
तद् विद	उसे जाननेवाले (विद्वान्)	**अन्तरिक्षं**	अन्तरिक्ष है,
		तत् उभय	वह दोनोंका
उपदिशन्ति	बतलाते हैं,	**सन्धितं**	सन्धि स्थान है ॥२॥

यन्मध्यगतो भगवांस्तपतामधिपतिस्तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपत्यवभासयत्यात्मभासा स एष उदगयनदक्षिणायनवैषुवत-संज्ञाभिर्मान्द्यशैघ्र्यसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमानस्थानेषु यथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणि दीर्घ-ह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥३॥

यत् मध्यगतः भगवान् तपतां पतिः तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपति अवभासयति आत्मभासा स एष उदगयन दक्षिणायन वैषुवत संज्ञाभिः मान्द्य शैघ्र्य समानाभिः गतिभिः आरोहण अवरोहण समान स्थानेषु यथा सवनं अभिपद्यमानः मकर आदिषु राशिषु अहः रात्राणि दीर्घ ह्रस्व समानानि विधत्ते ॥३॥

यत् मध्यगतः	जिसके मध्यमें स्थित	**समानाभिः**	समान
तपतां पतिः	तपाने वालों (ग्रह नक्षत्रादि) के स्वामी	**गतिभिः**	गतिसे
		मकर आदिषु	मकर आदि
भगवान् तपन	भगवान् सूर्य	**राशिषु**	राशियोंमें (चलते हुए)
आतपेन	(अपनी) धूपसे		
त्रिलोकीं	तीनों लोकोंको	**आरोहण**	ऊँचे चढ़ते,
प्रतपति	तपाते हैं,	**अवरोहण**	नीचे उतरते,
आत्मभासा	अपने प्रकाशसे	**समान स्थानेषु**	समान स्थानमें
अवभासयति	प्रकाशित करते हैं।	**यथा सवनं**	समयानुसार
स एष	वह ये	**अभिपद्यमानः**	पहुँचकर
उदगयन	उत्तरायण,	**अहः रात्राणि**	दिन-रात्रिको
दक्षिणायन	दक्षिणायन,	**दीर्घ ह्रस्व**	बड़ी, छोटी या
वैषुवत	विषुवत	**समानानि**	समान
संज्ञाभिः	नामवाली (क्रमशः)	**विधत्ते**	बनाते हैं ॥३॥
मान्द्य शैघ्र्य	मन्द, शीघ्र,		

यदा मेषतुलयोर्वर्तते तदाहोरात्राणि समानानि भवन्ति यदा वृषभादिषु पञ्चसु च राशिषु चरति तदाहान्येव वर्धन्ते ह्रसति च मासि मास्येकैका घटिका रात्रिषु ॥४॥

यदा मेष तुलयोः वर्तते तदा अहः रात्राणि समानानि भवन्ति यदा वृषभ आदिषु पञ्चषु च राशिषु चरति तदा अहानि एव वर्धन्ते ह्रसति च मासि मासि एक एका घटिका रात्रिषु ॥४॥

यदा	जब (सूर्य)		कर्क, सिंह, कन्या)
मेष तुलयोः	मेष या तुला राशिमें	**पञ्चषु राशिषु**	पांच राशियोंमें
वर्तते	रहते हैं,	**चरति**	चलते हैं
तदा	तब	**तदा अहानि एव**	तब दिन ही
अहः रात्राणि	दिन और रात्रियाँ	**वर्धन्ते**	बढ़ते हैं।
समानानि	बराबर	**च मासि मासि**	तथा प्रत्येक महीने
भवन्ति	होते हैं,	**एक एका घटिका**	एक एक घड़ी
च यदा	और जब	**रात्रिषु**	रात्रियोंकी
वृषभ आदिषु	वृषभ आदि (मिथुन,	**ह्रसति**	घटती जाती है ॥४॥

यदा वृश्चिकादिषु पञ्चसु वर्तते तदाहोरात्राणि विपर्ययाणि भवन्ति ॥५॥

यदा वृश्चिक आदिषु पञ्चसु वर्तते तदा अहः रात्राणि विपर्ययाणि भवन्ति ॥५॥

यदा वृश्चिक	जब वृश्चिक	**तदा अहः**	तब दिन और
आदिषु	आदि	**रात्राणि**	रात्रियां
पञ्चसु	पांच (वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन) राशियोंमें	**विपर्ययाणि**	उलटे (दिन घटते, रात्रियां बढ़ती)
वर्तते	रहते हैं	**भवन्ति**	होती हैं ॥५॥

यावद्दक्षिणायनमहानि वर्धन्ते यावदुदगयनं रात्रयः ॥६॥

यावत् दक्षिणायनं अहानि वर्धन्ते यावत् उदगयनं रात्रयः ॥६॥

दक्षिणायनं	(सूर्यके) दक्षिणायन।	**यावत्**	आरम्भ होने तक

अहानि वर्धन्ते	दिन बढ़ते हैं	**रात्रयः**	रात्रियां (बढ़ती हैं) ॥६॥
उदगयनं	उत्तरायण		
यावत्	आरम्भ होने तक		

एवं नव कोटय एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्योपदिशन्ति तस्मिन्नैन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मान्मेरोर्देवधानीं नाम दक्षिणतो याम्यां संयमनीं नाम पश्चाद्वारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासूदयमध्याह्नास्तमयनिशीथानीति भूतानां प्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्तानि समयविशेषेण मेरोश्चतुर्दिशम् ॥७॥

एवं नव कोटय एकपञ्चाशत् लक्षाणि योजनानां मानसोत्तर गिरि परिवर्तनस्य उपदिशन्ति तस्मिन् ऐन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मात् मेरोः देवधानीं नाम दक्षिणतः याम्यां संयमनीं नाम पश्चात् वारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासु उदय मध्याह्न अस्तमय निशीथानि इति भूतानां प्रवृत्ति निवृत्ति निमित्तानि समय विशेषेण मेरोः चतुर्दिशम् ॥७॥

एवं	इस प्रकार	**देवधानीं नाम**	देवधानी नामकी है।
नव कोटि	नौ करोड़	**दक्षिणतः**	दक्षिणकी ओर
एकपञ्चाशत्	इक्यावन	**याम्यां संयमनीं**	यमकी संयमनी
लक्षाणि	लाख	**नाम**	नामक पुरी है।
योजनानां	योजन	**पश्चात्**	पीछे (पश्चिम) की ओर
मानसोत्तर	मानसोत्तर	**वारुणीं**	वरुणकी
गिरि	गिरिकी	**निम्लोचनीं**	निम्लोचनी
परिवर्तनस्य	परिक्रमा (मार्ग) को	**नाम**	नामकी पुरी है।
उपदिशन्ति	(जानकार) बतलाते हैं,	**उत्तरतः**	उत्तरकी ओर
तस्मिन्	उस (पर्वत) पर	**सौम्यां**	चन्द्रमाकी पुरी
मेरोः पूर्वस्मात्	सुमेरुसे पूर्वकी ओर		
ऐन्द्रीं पुरीं	इन्द्रकी पुरी		

विभावरीं नाम विभावरी नामकी है।*
तासु इन (पुरियोंमें)
समय विशेषेण विशेष समयके अनुसार
मेरोः चतुर्दिशं सुमेरुके चारों ओर
उदय मध्याह्न सूर्योदय, मध्याह्न,
अस्तमय सायंकाल,
निशीथानि अर्धरात्रि
इति इस प्रकार
भूतानां प्राणियोंकी
प्रवृत्ति निवृत्ति प्रवृत्ति, निवृत्तिके
निमित्तानि निमित्त (होते रहते हैं) ॥७॥

तत्रत्यानां दिवसमध्यङ्गत एव सदाऽऽदित्यस्तपति सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति ॥८॥

तत्रत्यानां दिवस मध्यंगत एव सदा आदित्यः तपति सव्येन अचलं दक्षिणेन करोति ॥८॥

तत्रत्यानां वहाँ (मानसोत्तर गिरिपर) रहने वालोंके लिए
सदा सर्वदा
दिवस दिनके
मध्यंगत एव मध्याह्न कालीन ही
आदित्यः तपति सूर्य तपते हैं।
सव्येन अचलं पर्वतके बायेंसे (चलते)
दक्षिणेन करोति अपने दाहिने करते हैं ॥८॥

यत्रोदेति तस्य ह समानसूत्रनिपाते निम्लोचति यत्र क्वचन स्यन्देनाभितपति तस्य हैष समानसूत्रनिपाते प्रस्वापयति तत्र गतं न पश्यन्ति ये तं समनुपश्येरन् ॥९॥

यत्र उदेति तस्य ह समान सूत्र निपाते निम्लोचति यत्र क्वचन स्यन्देन अभितपति तस्य हि एष समान सूत्र निपाते प्रस्वापयति तत्र गतं न पश्यन्ति ये तं समनु पश्येरन् ॥९॥

---

* वरुणकी पुरीका नाम विभावरी आया है ३।१७।२६

यत्र उदेति	जहाँ उदय होते हैं	**निपाते**	डालक देखनेके स्थानपर
तस्य ह	उसके ठीक		
सूत्र निपाते	सूत डालकर मापने पर (दूसरी ओर)	**प्रस्वापयति**	(लोगोंको) प्रसुप्त कर देते हैं।
निम्लोचति	अस्त होते लगते हैं।	**तत्र गतं**	वहां रहनेवाले
यत्र क्वचन	जहाँ कहीं	**ये तं समनु**	जो उनको भली प्रकार
स्यन्देन	पसीनेसे भिगाकर		
अभितपति	संतप्त करते हैं	**पश्येरन्**	(दोपहरमें) देखते थे,
एष	ये (सूर्य भगवान्)	**न पश्यन्ति**	(रातके समय) नहीं देखते ॥९॥
तस्य हि	उसके ही		
समान सूत्र	ठीक सामने सूत		

यदा चैन्द्र्याः पुर्याः प्रचलते पञ्चदशघटिकाभिर्याम्यां सपादकोटिद्वयं योजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि चोपयाति ॥१०॥

यदा च ऐन्द्रयाः पुर्याः प्रचलते पञ्चदश घटिकाभिः याम्यां सपाद कोटिद्वयं योजनानां सार्ध द्वादश लक्षाणि स अधिकानि च उपयाति ॥१०॥

यदा च	जब भी (सूर्य)	**सार्ध द्वादश**	साढ़े बारह
ऐन्द्रयाः पुर्याः	इन्द्रकी पुरीसे	**लक्षाणि**	लाखसे
प्रचलते	चलते हैं	**स अधिकानि**	कुछ (पचीस हजार) आदिके
पञ्चदश	पन्द्रह		
घटिकाभिः	घड़ीमें	**योजनानां च**	योजन भी
याम्यां	यमपुरीकी ओर	**उपयाति**	जाते हैं ॥१०॥
सपाद कोटिद्वयं	सवा दो करोड़		

एवं ततो वारुणीं सौम्यामैन्द्रीं च पुनस्तथान्ये च ग्रहाः सोमादयो नक्षत्रैः सह ज्योतिश्चक्रे समभ्युद्यन्ति सह वा निम्लोचन्ति ॥११॥

एवं ततः वारुणीं सौम्यां ऐन्द्रीं च पुनः तथा अन्ये च ग्रहाः सोमादयः नक्षत्रैः सह ज्योतिः चक्रे सम अभ्युद्यन्ति सह वा निम्लोचन्ति ॥११॥

एवं ततः	इसी प्रकार वहांसे	**ज्योतिः चक्रे**	ज्योतिश्चक्रमें
वारुणीं सौम्यां	वरुणकी, चन्द्रमाकी,	**सम अभ्युद्यन्ति**	साथ-साथ उदय होते
च पुनः ऐन्द्रीं	और फिर इन्द्रकी पुरी (पहुँचते हैं)	**वा सह**	अथवा साथ-साथ
सोमादयः ग्रहाः	चन्द्रमा आदि ग्रह	**निम्लोचन्ति**	अस्त होते हैं ॥११॥
नक्षत्रैः सह	नक्षत्रोंके साथ		

एवं मुहूर्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्षयोजनान्यष्टशताधिकानि सौरो रथस्त्रयीमयोऽसौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु ॥१२॥

एवं मुहूर्तेन चतुः त्रिंशत् लक्ष योजनानि अष्टशत अधिकानि सौरो रथः त्रयीमयः असौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु ॥१२॥

एवं	इस प्रकार	**अधिकानि**	अधिक
असौ	यह	**त्रिंशत् लक्ष**	तीस लाख
त्रयीमयः	वेदमय	**योजनानि**	योजन (की गतिसे)
सौरो रथः	सूर्यका रथ	**चतसृषु पुरीषु**	चारों पुरियोंमें
मुहूर्तेन	एक मुहूर्तमें	**परिवर्तते**	घूमता रहता है ॥१२॥
अष्टशत	आठ सौ		

यस्यैकं चक्रं द्वादशारं षण्नेमि त्रिणाभि संवत्सरात्मकं समामनन्ति तस्याक्षो मेरोर्मूर्धनि कृतो मानसोत्तरे कृतेतरभागो यत्र प्रोतं रविरथचक्रं तैलयन्त्रचक्रवद् भ्रमन्मानसोत्तरगिरौ परिभ्रमति ॥१३॥

यस्य एकं चक्रं द्वादशारं षट् नेमिः त्रिणाभि संवत्सर आत्मकं समामनन्ति तस्य अक्षः मेरोः मूर्धनिकृतः मानसोत्तरे कृतः इतर भागः यत्र प्रोतं रविरथचक्रं तैलयन्त्र चक्रवत् भ्रमन् मानसोत्तर गिरौ परिभ्रमति ॥१३॥

यस्य	जिसका
एकं चक्रं	एक चक्र
द्वादशारं	बारह (मासरूप) अरे,
षट् नेमिः	छः (ऋतु रूप) नेमि (हाल)
त्रिणाभि	तीन (चौमासे रूप) नाभि वाला
संवत्सर आत्मकं	संवत्सर स्वरूप
समामनन्ति	मानते हैं।
तस्य अक्षः	उसकी धुरीका एक सिरा
मेरोः मूर्ध्नि कृतः	सुमेरुकी चोटीपर रखा है,
इतर भागः	दूसरा भाग (सिरा)
मानसोत्तरे कृतः	मानसोत्तर गिरि-पर रखा है।
यत्र प्रोतं	जिसमें पिरोया
रविरथचक्रं	सूर्यके रथका पहिया
तैलयन्त्र	कोल्हूके
चक्रवत्	पहियेके समान
भ्रमत्	घूमता हुआ
मानसोत्तर	मानसोत्तर
गिरौ	पर्वतके
परिभ्रमति	चारों ओर घूमता है ॥१३॥

तस्मिन्नक्षे कृतमूलो द्वितीयोऽक्षस्तुर्यमानेन सम्मित-स्तैलयन्त्राक्षवद् ध्रुवे कृतोपरिभागः ॥१४॥

तस्मिन् अक्षे कृतमूलः द्वितीयः अक्षः तुर्यमानेन सम्मितः तैलयन्त्र अक्षवत् ध्रुवे कृत उपरिभागः ॥१४॥

तस्मिन अक्षे	उस धुरीमें
कृतमूलः	मूल भाग जुड़ी
द्वितीयः अक्षः	दूसरी धुरी
तुर्यमानेन	उससे चौथाई परिमाण
सम्मितः	बराबर है
तैलयन्त्र	तेलके कोल्हूके
अक्षवत्	धुरीके समान
उपरिभागः	उसका ऊपरी भाग
ध्रुवे कृत	ध्रुवपर रखा है ॥१४

रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीय भाग-विशालस्तावान् रविरथयुगो यत्र हयाश्छन्दोनामानः सप्तारुण-योजिता वहन्ति देवमादित्यम् ॥१५॥

रथनीडः तु षट्त्रिंशत् लक्ष योजन आयतः तत् तुरीय भाग विशालः तावान् रविरथ युगः यत्र हयाः छन्दो नामानः सप्त अरुण योजिता वहन्ति देवं आदित्यम् ॥१५॥

रथनीडः तु	रथमें बैठनेका स्थान तो	**तावान्**	उतना ही (छत्तीस लाख योजन)
षट्त्रिंशत् लक्ष	छत्तीस लाख	**रविरथ युगः**	सूर्य-रथका जूआ है।
योजन	योजन	**यत्र**	जिसमें
आयतः	लम्बा	**छन्दो नामानः**	(गायत्री आदि) छन्दोंके नाम वाले
तत् तुरीय भाग	उसका चौथाई (नौ लाख योजन) भाग	**सप्त हयाः**	सात घोड़े
		अरुण योजिता	(सारथि) अरुण द्वारा जोते
विशालः	विशाल (चौड़ा) है,	**देवं आदित्यं वहन्ति**	सूर्य देवको ढोते हैं ॥१५॥

पुरस्तात्सवितुररुणः पश्चाच्च नियुक्तः सौत्ये कर्मणि किलास्ते ॥१६॥

पुरस्तात् सवितुः अरुणः पश्चात् च नियुक्तः सौत्ये कर्मणि किल आस्ते ॥१६॥

सवितुः पुरस्तात्	सूर्यके आगे	**नियुक्तः**	नियुक्त
पश्चात् च	पीछेकी (सूर्यकी) ओर (मुख किये)	**अरुणः किल**	अरुण ही
		आस्ते	हैं ॥१६॥
सौत्ये कर्मणि	सारथिके काममें		

तथा वालखिल्या ऋषयोऽङ्गुष्ठपर्वमात्राः षष्टिसहस्राणि पुरतः सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवन्ति ॥१७॥

तथा वालखिल्या ऋषयः अङ्गुष्ठ पर्व मात्राः षष्टि सहस्राणि पुरतः सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवन्ति ॥१७॥

तथा	इसी प्रकार	**मात्राः**	बराबर
षष्टि सहस्राणि	साठ हजार	**वालखिल्या**	वालखिल्य
अङ्गुष्ठ पर्व	अँगूठेके पोर	**ऋषयः**	ऋषिगण

सूर्यं पुरतः सूक्तवाकाय	सूर्यके आगे स्वस्ति वाचनके लिए	**नियुक्ताः संस्तुवन्ति**	नियुक्त (उनकी) स्तुति करते रहते हैं ॥१७॥

तथान्ये च ऋषयो गन्धर्वाप्सरसो नागा ग्रामण्यो यातुधाना देवा इत्येकैकशो गणाः सप्त चतुर्दश मासि मासि भगवन्तं सूर्यमात्मानं नानानामानं पृथङ्नानानामानः पृथक्-कर्मभिर्द्वन्द्वश उपासते ॥१८॥

तथा अन्ये च ऋषयः गन्धर्वाः अप्सरसः नागाः ग्रामण्यः यातुधानाः देवाः इति एक एकशः गणाः सप्त चतुर्दश मासि मासि भगवन्तं सूर्यं आत्मानं नाना नामानं पृथक् नाना नामानः पृथक् कर्मभिः द्वन्द्वशः उपासते ॥१८॥

तथा अन्ये च	इसी प्रकार दूसरे भी	**नाना नामानं**	अनेक नामवाले
ऋषयः गन्धर्वाः	ऋषि, गन्धर्व,	**भगवन्तं सूर्यं**	भगवान् सूर्यकी
नागाः ग्रामण्यः	नाग, यक्ष,	**आत्मानं पृथक्**	अपने भी अलग-अलग
यातु धानाः	राक्षस,	**नाना नामानः**	अनेक नामवाले
देवाः	देवता	**पृथक कर्मभिः**	अलग-अलग कर्मों द्वारा
इति एक एकशः	इस प्रकार प्रत्येक	**द्वन्द्वशः उपासते**	दो-दो मिलकर उपासना करते हैं ॥१८॥
सप्त गणाः	(जोड़ेसे रहनेसे) सात गण		
चतुर्दश	(कुल) चौदह		
मासि मासि	प्रत्येक महीनेमें		

लक्षोत्तरं सार्धनवकोटियोजनपरिमण्डलं भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूत्युत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुङ्क्ते ॥१९॥

लक्ष उत्तरं सार्ध नवकोटि योजन परिमण्डलं भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूति उत्तरं द्विसहस्र योजनानि स भुङ्क्ते ॥१९॥

स	वे (सूर्य भगवान्)
भूवलयस्य	भूमण्डलके
लक्ष उत्तरं	एक लाख ऊपर
सार्ध नवकोटि	आधा अधिक नौ करोड़ (नौ करोड़ इक्यावन लाख)
योजन	योजन
परिमण्डलं	घेरेमें
सगव्यूति उत्तरं	दो ऊपर
द्विसहस्र	दो सहस्र
योजनानि	योजन
क्षणेन भुङ्क्ते	एकक्षणमें भोगते (जाते) हैं ॥१६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे ज्योतिश्चक्रसूर्यरथमण्डलवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

राजोवाच

यदेतद्भगवत आदित्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतो राशीनामभिमुखं प्रचलितं चाप्रदक्षिणं भगवतोपवर्णितममुष्य वयं कथमनुमिमीमहीति ॥१॥

यद् एतद् भगवतः आदि त्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतः राशीनां अभिमुखं प्रचलितं च प्रदक्षिणं भगवतः उपवर्णितं अमुष्य वयं कथं अनुमीमही इति ॥१॥

भगवतः	भगवन्	**राशीनां**	तथा राशियोंके
उपवर्णितं	आपके द्वारा वर्णित	**अभिमुखं**	सम्मुख
यद् एतद्	यह जो	**प्रचलितं**	चलते हुए
भगवतः	भगवान्	**च प्रदक्षिणं**	भी उनके बराबर
आदि त्यस्य	सूर्यके		दाहिने रहते हैं
मेरुं च ध्रुवं	सुमेर और ध्रुवकी	**अमुष्य**	इसका
प्रदक्षिणेन	प्रदक्षिणा करते	**इति वयं कथं**	इस प्रकार हम कैसे
परिक्रामतः	उनके चारों ओर घूमते हैं	**अनुमीमही**	अनुमान करें ॥१॥

श्रीशुक उवाच-*

यथा कुलालचक्रेण भ्रमता सह भ्रमतां तदाश्रयाणां पिपीलिकादीनां गतिरन्यैव प्रदेशान्तरेष्वप्युपलभ्यमानत्वादेवं नक्षत्रराशिभिरुपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन

---

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'स होवाच' है।

परिधावता सह परिधावमानानां तदाश्रयाणां सूर्यादीनां ग्रहाणां गतिरन्यैव नक्षत्रान्तरे राश्यन्तरे चोपलभ्यमानत्वात् ॥२॥

यथा कुलाल चक्रेण भ्रमता सह भ्रमतां तत् आश्रयाणां पिपीलिका आदीनां गतिः अन्य एव प्रदेश अन्तरेषु अपि उपलभ्य मानत्वात् एवं नक्षत्र राशिभिः उपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन परिधावता सह परिधावमानानां तत् आश्रयाणां सूर्य आदीनां ग्रहाणां गतिः अन्य एव नक्षत्र अन्तरे राशि अन्तरे च उपलभ्यमान त्वात् ॥२॥

यथा कुलाल	जैसे कुम्हारके	**ध्रुवं च भेरुं**	ध्रुव और सुमेरुकी
चक्रेण	चाकके	**प्रदक्षिणेन**	प्रदक्षिणा करते
भ्रमता सह	घूमते समय उसके साथ	**परिधावता**	दौड़ते हुएके
		सह	साथ
भ्रमतां	घूमते	**परिधावमानानां**	दौड़नेवाले
तत् आश्रयणां	उसीपर स्थित	**तत् आश्रयाणां**	उसी (काल-चक्र) में
पिपीलिका	चींटी		स्थित रहनेवाले
आदीनां	आदि जीवोंको	**सूर्य आदीनां**	सूर्य आदि
गतिः	चाल	**ग्रहाणां**	ग्रहोंकी
अन्य एव	दूसरे ही	**गतिः अन्य एव**	गति दूसरे ही
प्रदेश अन्तरेषु	भिन्न स्थानसे	**नक्षत्र अन्तरे**	नक्षत्रोंमें
उप लभ्यमान	जान	**च राशि अन्तरे**	तथा भिन्न
त्वात्	पड़ती है		राशियोंमें
एव नक्षत्र	ऐसे ही नक्षत्र तथा	**उपलभ्य**	उपलब्ध
राशिभिः	राशियों द्वारा	**मानत्वात्**	होनेके कारण
उपलक्षितेन	पहिचाने जानेवाले		(इसका अनुमान
कालचक्रेण	काल-चक्रके		होता है) ॥२॥

स एष भगवानादिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्तादिष्वृतुषु यथोपजोषमृतुगुणान् विदधाति ॥३॥

स एष भगवान् आदिपुरुषः एव साक्षात् नारायणः लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धि निमित्तं कविभिः अपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानः द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्त आदिषु ऋतुषु यथा उपजोषं ऋतुगुणान् विदधाति ॥३॥

स एष	वह ये	**वेदेन**	वेदके द्वारा
आदिपुरुषः	आदि-पुरुष	**विजिज्ञास्यमानः**	उनको जाननेकी इच्छा की जाती है
साक्षात्	साक्षात्	**आत्मानं**	अपनेको
भगवान्	भगवान्	**द्वादशधा**	बारह रूपोंमें
नारायणः एव	नारायण ही	**विभज्य**	बाँटकर
लोकानां	लोकोंके	**षट्सु**	छहो
स्वस्तय	कल्याणके लिए	**वसन्त आदिषु**	वसन्त आदि
कर्मविशुद्धि	कर्मोंकी सम्पूर्ण शुद्धिके	**ऋतुषु**	ऋतुओंमें
निमित्तं	निमित्त	**यथा उपजोषं**	उनके योग्य
त्रयीमयं	वेदमय (क्योंकि)	**ऋतुगुणान्**	ऋतुओंके गुणोंका
कविभिः अपि	विद्वानों द्वारा भी	**विदधाति**	विधान करते हैं ॥३

तमेतमिह पुरुषास्त्रय्या विद्यया वर्णाश्रमाचारानुपथा उच्चावचैः कर्मभिराम्नातैर्योगवितानैश्च श्रद्धया यजन्तोऽञ्जसा श्रेयः समधिगच्छन्ति ॥४॥

तं एतं इह पुरुषाः त्रय्या विद्यया वर्ण आश्रम आचार अनुपथाः उच्च अवचैः कर्मभिः आम्नातैः योगवितानैः च श्रद्धया यजन्तः अञ्जसा श्रेयः सम अधिगच्छन्ति ॥४॥

इह	इस (भारतवर्ष) में	**तं एतं**	उन इन (सूर्य भगवान्) की
वर्ण आश्रम	वर्ण आश्रमके	**त्रय्या विद्यया**	वेदत्रयी द्वारा प्रतिपादित
आचार	आचार	**उच्च अवचैः**	बड़े-छोटे
अनुपथाः	मार्गसे चलनेवाले		
पुरुषाः	मनुष्य		

कर्मभिः	कर्मोंसे,	**अञ्जसा**	सरलतासे
✓आम्नातैः	✓वेद विहित	**श्रेयः**	परम कल्याण
योगवितानैः च	योगके साधनोंसे भी	**सम**	भली
श्रद्धया यजन्तः	श्रद्धापूर्वक पूजन करते हुए	**अधिगच्छन्ति**	प्रकार पा लेते हैं ॥४॥

अथ स एष आत्मा लोकानां द्यावापृथिव्योरन्तरेण नभोवलयस्य कालचक्रगतो द्वादश मासान् भुङ्क्ते राशिसंज्ञान् संवत्सरावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवा नक्तं चेति सपादर्क्षद्वय-मुपदिशन्ति यावता षष्ठमंशं भुञ्जीत स वै ऋतुरित्युपदिश्यते संवत्सरावयवः ॥५॥

अथ स एष आत्मा लोकानां द्यावा पृथिव्योः अन्तरेण नभोवलयस्य कालचक्र गतः द्वादश मासान् भुङ्क्ते राशिसंज्ञान् संवत्सर अवयवान् मासः पक्षद्वयं दिवा नक्तं च इति सपाद् अर्क्ष द्वयं उपदिशन्ति यावता षष्ठं अंशं भुञ्जीत स वै ऋतुः इति उपदिश्यते संवत्सर अवयवः ॥५॥

अथ स एष	अतः वे यही (सूर्य भगवान्)	**भुङ्क्ते**	भोगते हैं,
लोकानां आत्मा	सम्पूर्ण लोकोंके आत्मा हैं ।	**मासः पक्षद्वयं**	(इनमें-से प्रत्येक) महीना दो पक्षका होता है ।
द्यावा पृथिव्योः	द्यु लोक और पृथ्वीके	**दिवा च नक्तं**	(पितृ मानसे) दिन और रात
अन्तरेण	मध्यमें	**इति**	इस प्रकार,
नभोवलयस्य	आकाश-मण्डलके	**सपाद् अर्क्ष द्वयं**	(सौरमानसे) सवा दो नक्षत्रका
कालचक्र गतः	कालचक्रमें स्थित होकर	**उपदिशन्ति**	बतलाया जाता है,
संवत्सर	संवत्सरके	**यावता**	जब तक
अवयवान्	अंगरूप	**संवत्सर**	संवत्सरके
राशिसंज्ञान्	राशि कहे जानेवाले	**अवयवः**	अंगका
द्वादश मासान्	बारह महीनोंको	**षष्ठं अंशं**	छठवां भाग

भुञ्जीत	(सूर्य) भोगते हैं,	**उपदिश्यते**	कहा जाता
स वै	वही		है ॥५॥
ऋतुः इति	ऋतु इस प्रकार		

अथ च यावतार्धेन नभोवीथ्यां प्रचरति तं कालमयन-माचक्षते ॥६॥

अथ च यावत् अर्धेन नभः वीथ्यां प्रचरति तं कालं अयनं आ चक्षते ॥६॥

अथ च	ऐसे ही	**प्रचरति**	चलते हैं,
यावत्	जब तक	**तं कालं**	उतने समयको
नभः वीथ्यां	आकाश-मार्गका	**अयनं**	अयन
अर्धेन	आधा भाग	**आचक्षते**	कहते हैं ॥६॥

अथ च यावन्नभोमण्डलं सह द्यावापृथिव्योर्मण्डलाभ्यां कात्स्न्र्येन स ह भुञ्जीत तं कालं संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सर-मनुवत्सरं वत्सरमिति भानोर्मन्द्यशैघ्र्यसमगतिभिः समा-मनन्ति ॥७॥

अथ च यावत् नभोमण्डलं सह द्यावा पृथिव्योः मण्डलाभ्यां कात्स्न्र्येन स ह भुञ्जीत तं कालं संवत्सरं परिवत्सरं इडावत्सरं वत्सरं वत्सरं इति भानो मान्द्य शैघ्र्य सम गतिभिः समामनन्ति ॥७॥

अथ च	इस प्रकार ही	**मण्डलाभ्यां**	मण्डलोंके
भानोः	सूर्य देव (अपनी)	**सह**	सहित
मान्द्य शैघ्र्य	मन्द, तीव्र,	**कात्स्न्र्येन**	सम्पूर्ण
सम	सम	**नभोमण्डलं**	आकाश-मण्डलका
गतिभिः	गतिसे	**स ह**	वे (सूर्य) तो
यावत्	जब तक	**भुञ्जीत**	भोग करते (चक्कर
द्यावा पृथिव्योः	द्युलोक, पृथ्वी		लगा जाते) हैं

तं कालं	उतने समयको	**इडावत्सरं**	इडावत्सर,
संवत्सरं	(भावान्तर भेदसे) संवत्सर,	**अनुवत्सरं**	अनुवत्सर,
		वत्सरं इति	वत्सर इस प्रकार
परिवत्सरं	परिवत्सर,	**समामनन्ति**	कहा जाता है ॥७॥

एवं चन्द्रमा अर्कगभस्तिभ्य उपरिष्टाल्लक्षयोजनत उपलभ्यमानोऽर्कस्य संवत्सरभुक्ति पक्षाभ्यां मासभुक्ति सपादर्क्षाभ्यां दिनेनैव पक्षभुक्तिमग्रचारी द्रुततरगमनो भुङ्क्ते ॥८॥

एवं चन्द्रमा अर्क गभस्तिभ्यः उपरिष्टात् लक्षयोजनतः उपलभ्यमानः अर्कस्य संवत्सरभुक्ति पक्षाभ्यां मासंभुक्ति सपाद् अर्क्षाभ्यां दिनेन एव पक्षभुक्ति अग्रचारी द्रुततरगमनः भुङ्क्ते ॥८॥

एवं	इसीप्रकार	**पक्षाभ्यां**	दोनों पक्षों (एक महीने) में,
अर्क गभस्तिभ्यः	सूर्यकी किरणोंसे	**मासंभुक्ति**	एक महीनेके मार्गको
लक्षयोजनलः	एक लाख योजन	**सपाद्**	सवा दो
उपरिष्टात्	ऊपर	**अर्क्षाभ्यां**	दिनमें,
उपलभ्यमानः	मिलनेवाला	**पक्षभुक्ति**	एक पक्षके मार्गको
चन्द्रमा	चन्द्रमा	**दिनेन एव**	एक दिनमें ही
द्रुततरगमनः	बहुत तीव्र गतिसे चलनेवाला	**भुङ्क्ते**	भोग लेता (पार कर लेता) है ॥८॥
अग्रचारी	सब (ग्रह-नक्षत्रों)से आगे रहनेवाला		
अर्कस्य	सूर्यके		
संवत्सरभुक्ति	एक वर्षके भोग (मार्ग) को		

अथ चापूर्यमाणाभिश्च कलाभिरमराणां क्षीयमाणाभिश्च कलाभिः पितृणामहोरात्राणि पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यां वितन्वानः सर्वजीवनिवहप्राणो जीवश्चैकमेकं नक्षत्रं त्रिंशता मुहूर्तैर्भुङ्क्ते ॥९॥

अथ च आपूर्यमाणाभिः च कलाभिः अमराणां क्षीयमाणाभिः च कलाभिः पितृणां अहः रात्राणि पूर्व पक्ष अपर पक्षाभ्यां वितन्वानः सर्वजीवनिवह प्राणः जीवः च एकं एकं नक्षत्रं त्रिंशता मुहूर्तैः मुङ्क्ते ॥९॥

अथ च	यह तो
पूर्व पक्ष	पहिले कृष्णपक्षमें
क्षीयमाणाभिः	घटती हुई
कलाभिः च	कलाओंके द्वारा ही
पितृणां	पितरोंके
च अपर	और दूसरे
पक्षाभ्यां	(शुक्लपक्षमें)
आपूर्यमाणाभिः	बढ़ती हुई
कलाभिः	कलाओंसे
अमराणां	देवताओंका
अहः रात्राणि	दिन-रात
वितन्वानः	विभाग करता है।
सर्वजीवनिवहः	सम्पूर्ण प्राणि समूहका
प्राणः जीवः च	प्राण और जीवन है।
एकं एकं नक्षत्रं	एक-एक नक्षत्रको
त्रिंशता मुहूर्तैः	तीस मुहूर्तमें
मुङ्क्ते	पार करता है ॥९॥

य एष षोडशकलः पुरुषो भगवान्मनोमयोऽन्नमयोऽमृतमयो देवपितृमनुष्यभूतपशुपक्षिसरीसृपवीरुधां प्राणाप्यायनशीलत्वात्सर्वमय इति वर्णयन्ति ॥१०॥

य एष षोडशकलः पुरुषः भगवान् मनोमयः अन्नमयः अमृतमयः देव पितृ मनुष्य भूत पशु पक्षि सरीसृप वीरुधां प्राण आप्यायन शीलत्वात् सर्वमय इति वर्णयन्ति ॥१०॥

य एष	यह जो
षोडशकलः	सोलह कलाओंवाले
मनोमयः	मनोमय,
अन्नमयः	अन्नमय,
अमृतमयः	अमृतमय
पुरुषः भगवान्	पुरुष भगवान् (चन्द्र) हैं
देव पितृ	देवता, पितर,
मनुष्य,	मनुष्य,
भूत पशु पक्षि	भूत, पशु, पक्षी,
सरीसृप वीरुधां	सरीसृप तथा पौधोंके
प्राण आप्यायन	प्राणोंको परितृप्त करनेवाले
शीलत्वात्	स्वभावके होनेसे (इन्हें)
सर्वमय इति	सर्वमय-इस प्रकार
वर्णयन्ति	वर्णन करते हैं ॥१०॥

तत उपरिष्टात्त्रिलक्षयोजनतो नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैव कालायन ईश्वरयोजितानि सहाभिजिताष्टाविंशतिः ॥११॥

ततः उपरिष्टात् त्रिलक्षयोजनतः नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेन एव काल अयन ईश्वर योजितानि सह अभिजित् अष्ट आविंशतिः ॥११॥

ततः	उन (चन्द्र) से	**योजितानि**	लगाये
त्रिलक्षयोजनतः	तीन लाख योजन	**काल अयन**	कालचक्रमें
उपरिष्टात्	ऊपर	**मेरुं**	सुमेरुको
सह अभिजित्	अभिजित्के साथ	**दक्षिणेन एव**	दाहिनी ओर रखकर ही (घूमते हैं) ॥११॥
अष्ट आविंशतिः	अट्ठाइस		
नक्षत्राणि	नक्षत्र		
ईश्वर	परमेश्वरके		

तत उपरिष्टादुशना द्विलक्षयोजनत उपलभ्यते पुरतः पश्चात्सहैव वार्कस्य शैघ्र्यमान्द्यसाम्याभिर्गतिभिरर्कवच्चरति लोकानां नित्यदानुकूल एव प्रायेण वर्षयंश्चारेणानुमीयते स वृष्टिविष्टम्भग्रहोपशमनः ॥१२॥

ततः उपरिष्टात् उशना द्विलक्ष योजनतः उपलभ्यते पुरतः पश्चात् सह एव व अर्कस्य शैघ्र्य मान्द्य साम्याभिः गतिभिः अर्कवत् चरति लोकानां नित्यदा अनुकूल एव प्रायेण वर्षयत् चारेण अनुमीयते स वृष्टि वृष्टम्भ ग्रह उपशमनः ॥१२॥

ततः द्विलक्ष	उससे दो लाख	**अर्कस्य**	सूर्यकी
योजनतः	योजन	**शैघ्र्य मान्द्य**	शोघ्र, मन्द,
उपरिष्टात्	ऊपर	**साम्याभिः**	समान
उशना	शुक्र पाया	**गतिभिः**	गतिसे
उपलभ्यते	जाता है,	**अर्कवत्**	सूर्यके समान

सह एव	(उनके) साथ ही
पुरतः पश्चात्	आगे, पीछे,
व एव	या साथ ही
चरति	चलता है।
प्रायेण वर्षयत्	प्रायः वर्षा करते
चारेण	चलनेके कारण
लोकानां	लोगोंके
नित्यदा	सदा ही
अनुकूल	अनुकूल ही
अनुमीयते	अनुमान किया जाता है।
वृष्टि विष्टम्भ	वर्षा रोकनेवाले
ग्रह उपशमनः	ग्रहोंको शान्त करनेवाला
स	वह है ॥१२॥

उशनसा बुधो व्याख्यातस्तत उपरिष्टाद् द्विलक्षायोजनतो बुधः सोमसुत उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृद्यदार्कात् व्यतिरिच्येत तदातिवाताभ्रप्रायानावृष्ट्यादिभयमाशंसते ॥१३॥

उशनसा बुधः व्याख्यातः ततः उपरिष्टात् द्विलक्ष योजनतः बुधः सोमसुतः उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृत् यदा अर्कात् व्यतिरिच्येत तदा अतिवात अभ्रप्राय अनावृष्टि आदि भयं आशंसते ॥१३॥

उशनसा	शुक्र (की गति) द्वारा
बुधः	बुध (की गति) की
व्याख्यातः	व्याख्या हो गयी।
ततः	उस
द्विलक्ष योजनतः	(शुक्र) से दो लाख योजन
उपरिष्टात्	ऊपर
सोमसुतः	चन्द्रमाके पुत्र
बुधः	बुध
उपलभ्यमानः	मिलते हैं,
प्रायेण शुभकृत्	प्रायः शुभ करनेवाले हैं।
यदा अर्कात्	जब सूर्यसे
व्यतिरिच्येत	पृथक पड़ते हैं
तदा अतिवात	तब आंधी,
अभ्रप्राय	मेघहीनताप्राय
अनावृष्टि	अनावृष्टि
आदि भयं	आदि भय
आशंसते	सूचित करते हैं ॥१

अत ऊर्ध्वमङ्गारकोऽपि योजनलक्षद्वितय उपलभ्यमानस्त्रिभिस्त्रिभिः पक्षैरेकैकशो राशीन्द्वादशानुभुङ्क्ते यदि न वक्रेणाभिवर्तते प्रायेणाशुभग्रहोऽघशंसः ॥१४॥

अत ऊर्ध्वं अङ्गारकः अपि योजन लक्ष द्वितय उपलभ्यमानः त्रिभिः त्रिभिः पक्षैः एक एकशः राशीन् द्वादश अनुभुङ्क्ते यदि न वक्रेण अभिवर्तते प्रायेण अशुभ ग्रहः अघशंसः ॥१४॥

अत	इस (बुध) से
लक्ष द्वितय	दो लाख
योजन	योजन
ऊर्ध्वं	ऊपर
अङ्गारकः अपि	मगल भी
उपलभ्यमानः	मिलता है,
त्रिभिः त्रिभिः	तीन तीन
पक्षैः	पक्षोंमें
एक एकशः	एक-एक करके
द्वादश राशीन्	बारहो राशियोंको
अनुभुङ्क्ते	पार करता है।
यदि वक्रेण	यदि वक्री होकर
न अभिवर्तते	नहीं चलता तो
प्रायेण	प्रायः
अशुभ ग्रहः	अशुभ ग्रह है,
अधशंसः	अमङ्गल सूचक है ॥१४॥

तत उपरिष्टाद् द्विलक्षायोजनान्तरगतो भगवान् बृहस्पतिरेकैकस्मिन् राशौ परिवत्सरं परिवत्सरं चरति यदि न वक्रः स्यात्प्रायेणानुकूलो ब्राह्मणकुलस्य ॥१५॥

ततः उपरिष्टात् द्विलक्ष योजन अन्तरगतः भगवान् बृहस्पतिः एक एकस्मिन् राशौ परिवत्सरं परिवत्सरं चरति यदि न वक्रः स्यात् प्रायेण अनुकूलः ब्राह्मणकुलस्य ॥१५॥

ततः द्विलक्ष	उस (मंगल) से दो लाख
योजन	योजन
अन्तरगतः	दूरीपर
उपरिष्टात्	ऊपर
भगवान्	भगवान्
बृहस्पतिः	बृहस्पति
एक एकस्मिन्	एक-एक
राशौ	राशिमें
यदि न वक्रः	यदि वक्री न
स्यात्	हों
परिवत्सरं	एक-एक

परिवत्सरं	वर्ष*	**ब्राह्मणकुलस्य**	ब्राह्मण-कुलके
चरति	चलते हैं।	**अनुकूलः**	अनुकूल रहते
प्रायेण	प्रायः		हैं ॥१५॥

तत उपरिष्टाद्योजनलक्षद्वयात्प्रतीयमानः शनैश्चर एकैकस्मिन् राशौ त्रिंशन्मासान् विलम्बमानः सर्वानेवानुपर्येति तावद्भिरनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषामशान्तिकरः ॥१६॥

ततः उपरिष्टात् योजन लक्षद्वयात् प्रतीयमानः शनैःचर एक एकस्मिन् राशौ त्रिंशत् मासान् विलम्बमानः सर्वान् एव अनुपर्येति तावद्भिः अनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषां अशान्तिकरः ॥१६॥

ततः उपरिष्टात्	उस (बृहस्पति) से ऊपर	**विलम्बमानः**	रुकता हुआ
लक्षद्वयात्	दो लाख	**तावद्भिः**	उतने ही (तीस)
योजन	योजनपर	**अनुवत्सरैः**	वर्षोंमें
प्रतीयमानः	प्रतीत होता	**सर्वान् एव**	सभी (राशियों) पर
शनैश्चर	शनिश्चर	**अनुपर्येति**	घूम आता है,
एक एकस्मिन्	एक-एक	**प्रायेण हि**	प्रायः ही (यह)
राशौ	राशिपर	**सर्वेषां**	सबके लिए
त्रिंशत् मासान्	तीस-तीस महीने	**अशान्तिकरः**	अशान्ति कारक है ॥१६॥

तत उत्तरस्माद्दृषय एकादशलक्षयोजनान्तर उपलभ्यन्ते य एव लोकानां शमनुभावयन्तो भगवतो विष्णोर्यत्परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति ॥१७॥

ततः उत्तरस्मात् ऋषयः एकादश लक्ष योजन अन्तर उपलभ्यन्ते य एव लोकानां शं अनुभावयन्तः भगवतः विष्णोः यत् परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति ॥१७॥

---

* बृहस्पतिके एक वर्षको परिवत्सर कहते हैं।

ततः उत्तरस्मात् उस (शनिश्चर) के ऊपर
एकादश लक्ष योजन अन्तर ग्यारह लाख योजनकी दूरीपर
ऋषयः सप्तर्षि
उपलभ्यन्ते मिलते हैं,
य एव लोकानां शं जो सभी लोकोंकी शान्ति
अनुभावयन्तः कामना करते हुए
यत् भगवतः जो भगवान्
विष्णोः विष्णुका
परमं पदं परम-पद (ध्रुव-लोक) है
प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति (उसकी) प्रदक्षिणा करते रहते हैं ॥१७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे ज्योतिश्चक्रवर्णने द्वाविंशोऽध्यायः ॥७१॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

अथ तस्मात्परतस्त्रयोदशलक्षयोजनान्तरतो यत्तद्विष्णोः परमं पदमभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतो ध्रुव औत्तानपादिरग्निनेन्द्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीमपि कल्पजीविनामाजीव्य उपास्ते तस्येहानुभाव उपवर्णितः ॥१॥

अथ तस्मात् परतः त्रयोदशलक्ष योजन अन्तरतः यत् तत् विष्णोः परमं पदं अभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतः ध्रुवः औत्तानपादिः अग्निना इन्द्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीं अपि कल्पजीविनां आजीव्य उपास्ते तस्य इह अनुभावः उपवर्णितः ॥१॥

अथ तस्मात्	फिर उन (सप्त-ऋषियों) से	**तत्**	उनकी
त्रयोदशलक्ष	तेरह लाख	**अग्निना इन्द्रेण**	अग्नि, इन्द्र,
योजन अन्तरतः	योजनकी दूरीपर	**प्रजापतिना**	प्रजापति
यत् विष्णोः	जो भगवान् विष्णुका	**कश्यपेन**	कश्यप
		च धर्मेण	तथा धर्म द्वारा
परमं पदं	परम-पद	**समकालयुग्भिः**	एक ही समय एक साथ
अभिवदन्ति	कहा जाता है	**सबहुमानं**	बहुत आदर सहित
यत्र ह	वहाँ तो	**दक्षिणतः**	प्रदक्षिणा की
महाभागवतः	परम-भगवद्-भक्त	**क्रियमाण**	जाती है।
औत्तानपादिः	उत्तानपादके पुत्र	**इदानीं अपि**	अब भी
ध्रुवः	ध्रुव (रहते हैं)		

कल्पजीविनां	कल्प पर्यन्त जीवन वालोंके	**तस्य इह**	उनके इस लोकका
आजीव्य	आधार रूपसे	**अनुभावः**	प्रभाव
उपास्ते	उपासित होते हैं।	**उपवर्णितः**	(चतुर्थ स्कन्धमें) वर्णन कर चुके हैं।।१

स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्रादीनामनिमिषेणाव्यक्तरंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुरिवावष्टम्भ-ईश्वरेण विहितः शश्वदवभासते ॥२॥

स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्र आदीनां अनिमिषेण अव्यक्तरंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुः इव अवष्टम्भः ईश्वरेण विहितः शश्वत् अवभासते ॥२॥

अनिमिषेण	सदा जागनेवाले	**ईश्वरेण विहितः**	परमात्माके विधानसे बना
अव्यक्तरंहसा	अव्यक्त गति	**स्थाणु इव**	ठूंठके समान
भगवता	भगवान्	**अवष्टम्भः**	रोकनेवाला आधार है,
कालेन	कालके द्वारा	**शश्वत्**	(अतः) सदा (एक स्थानपर रहकर)
भ्राम्यमाणानां	घुमाये जाते हुए	**अवभासते**	प्रकाशित होता है ॥२॥
सर्वेषां	सभी		
ग्रहनक्षत्र	ग्रह, नक्षत्र		
आदीनां	आदि		
ज्योतिर्गणानां	ज्योतिर्गणोंका		
हि स	क्योंकि वही (ध्रुवलोक)		

यथा मेढीस्तम्भ आक्रमणपशवः संयोजितास्त्रिभिस्त्रिभिः सवनैर्यथास्थानं मण्डलानि चरन्त्येवं भगणा ग्रहादय एतस्मिन्नन्तर्बहिर्योगेन कालचक्र आयोजिता ध्रुवमेवावलम्ब्य वायुनोदीर्यमाणा आकल्पान्तं परिचङ्क्रमन्ति नभसि यथा मेघाः श्येनादयो वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते एवं ज्योतिर्गणाः

प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीताः कर्मनिर्मितगतयो भुवि न पतन्ति ॥३॥

यथा मेढी स्तम्भ आक्रमण पशवः संयोजिताः त्रिभिः त्रिभिः सवनैः यथा स्थानं मण्डलानि चरन्ति एवं भगणा ग्रहादयः एतस्मिन् अन्तः बहिः योगेन कालचक्र आयोजिता ध्रुवं एव अवलम्ब्य वायुना उदीर्यमाणा आकल्पान्तं परिचङ्क्रमन्ति, नभसि यथा मेघाः श्येन आदयः वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते एवं ज्योतिर्गणाः प्रकृति पुरुष संयोग अनुगृहीताः कर्मनिर्मित गतयः भुवि न पतन्ति ॥३॥

यथा मेढी	जैसे दाँवके बीचके
स्तम्भ	खम्भेके
आक्रमण पशवः	चारों ओर घूमने-वाले पशु
त्रिभिः त्रिभिः	तीन-तीन
सवनैः	रस्सियोंसे
संयोजिताः	बँधे हुए
यथा स्थानं	अपने स्थानके अनुसार
मण्डलानि	घेरेमें
चरन्ति	चलते हैं
एवं भगणा	इसी प्रकार नक्षत्र और
ग्रहादयः	ग्रह आदि
अन्तः बहिः	भीतर बाहरके
योगेन	क्रमसे
कालचक्र	कालचक्रमें
आयोजिताः	नियुक्त होकर
ध्रुवं एव	ध्रुव-लोकका ही
अवलम्ब्य	सहारा लेकर
वायुना	वायुसे
उदीर्यमाणाः	प्रेरित होकर
आकल्पान्तं	कल्पान्त पर्यन्त
परिचङ्क्रमन्ति	परिक्रमा करते रहते हैं।
यथा मेघाः	जैसे मेघ (और)
श्येन आदयः	बाज आदि (पक्षी)
वायुवशाः	वायुके वशमें रहते,
कर्मसारथयः	अपने कर्मोंके द्वारा संचालित
परिवर्तन्ते	घूमते रहते हैं,
एवं	इसी प्रकार
प्रकृति पुरुष	प्रकृति-पुरुषके
संयोग	संयोगसे
अनुगृहीताः	उत्पन्न
ज्योतिर्गणाः	ज्योतिर्गण
कर्मनिर्मित	कर्मसे बनायी
गतयः	गतिवाले
भुवि न पतन्ति	पृथ्वीपर नहीं गिरते॥३॥

केचनैतज्ज्योतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयन्ति ॥४॥

केचन एतत् ज्योतिः अनीकं शिशुमार संस्थानेन भगवतः वासुदेवस्य योगधारणायां अनुवर्णयन्ति ॥४॥

केचन	कोई लोग	**भगवतः**	भगवान्
एतत्	इस	**वासुदेवस्य**	वासुदेवको
ज्योतिः अनीकं	ज्योतिः-चक्रका	**योगधारणायां**	योग धारणाके अनुसार■
शिशुमार	√ घड़ियालके		
संस्थानेन	रूपमें	**अनुवर्णयन्ति**	वर्णन करते हैं ॥४॥

यस्य पुच्छाग्रेऽवाकशिरसः कुण्डलीभूतदेहस्य ध्रुव उपकल्पितस्तस्य लाङ्गूले प्रजापतिरग्निरिन्द्रो धर्म इति पुच्छमूले धाता विधाता च कट्यां सप्तर्षयः। तस्य दक्षिणावर्तकुण्डलीभूतशरीरस्य यान्युदगयनानि दक्षिणपार्श्वे तु नक्षत्राण्युपकल्पयन्ति दक्षिणायनानि तु सव्ये। यथा शिशुमारस्य कुण्डलाभोगसन्निवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरप्यवयवाः समसंख्या भवन्ति। पृष्ठे त्वजवीथी आकाशगङ्गा चोदरतः ॥५॥

यस्य पुच्छ अग्रे अवाक शिसः कुण्डलीभूत देहस्य ध्रुव उपकल्पितः तस्य लाङ्गूल प्रजापतिः अग्निः इन्द्रः धर्म इति पुच्छमूले धाता विधाता च कट्यां सप्तर्षयः तस्य दक्षिणावर्त कुण्डलीभूत शरीरस्य यानि उदगयनानि दक्षिण पार्श्वे तु नक्षत्राणि उपकल्पयन्ति दक्षिणायनानि तु सव्ये यथा शिशुमारस्य कुण्डल आभोग सन्निवेशस्य पार्श्वयोः उभयोः अपि अवयवाः समसंख्या भवन्ति पृष्ठे तु अजवीथी आकाशगङ्गा च उदरतः ॥५

■ शिशुमार रूपमें यह ज्योतिः-चक्र आकाशमें न स्थित है और न रहता है; क्योंकि ग्रह एक स्थानपर नहीं रहते। कभी-कभी दो या अधिक आठ ग्रह तक एकत्र हो जाते हैं। यह वर्णन धारणा (भावना) द्वारा योग (ध्यान) के सहायक रूपमें करनेके लिए है।

अवाक शिरसः नीचे सिर किये
यस्य जिसके
कुण्डलीभूत कुण्डली मारे
देहस्य शरीरके
पुच्छ अग्रे पूंछकी नोकपर
ध्रुव ध्रुवकी
उपकल्पितः कल्पना की गयी है।
तस्य लाङ्गूले उसकी पूंछपर
प्रजापतिः प्रजापति,
अग्निः अग्नि,
इन्द्रः धर्म इति इन्द्र और धर्म इसी क्रमसे है।
पुच्छमूले पूंछकी जड़के पास
धाता विधाता धाता, विधाता
च कट्यां तथा कमरपर
सप्तर्षयः सप्तर्षि हैं।
तस्य दक्षिणावर्त उसके दाहिनी ओर
कुण्डलीभूत कुण्डली बने
शरीरस्य शरीरपर
यानि जो (अभिजितसे पुनर्वसु तकके)
उदगयनानि उत्तरायणके (चौदह)
नक्षत्राणि नक्षत्रोंको
दक्षिण पार्श्वे तु दाहिने बगलमें ही
दक्षिणायनानि दक्षिणायनके
तु (पुष्यसे उत्तराषाढ़ाके चौदह नक्षत्रोंको) तो
सव्ये बायें (पार्श्वमें)
उपकल्पयन्ति कल्पित करते हैं।
यथा जैसे
कुण्डल आभोग कुण्डली मारे
सन्निवेशस्य पड़े हुए
शिशुमारस्य घड़ियालके
उभयोः दोनों
पार्श्वयोः बगलोंमें
समसंख्या बराबर संख्याके
अवयवाः अंग
भवन्ति होते हैं।
पृष्ठे तु पीठपर तो
अजवीथी अजवीथी
च उदरतः और पेटपर
आकाशगङ्गा आकाशगङ्गा है ॥५॥

पुनर्वसुपुष्यौ दक्षिणवामयोः श्रोण्योरार्द्राश्लेषे च दक्षिणवामयोः पश्चिमयोः पादयोरभिजिदुत्तराषाढे दक्षिणवामयोर्नासिकयोर्यथासंख्यं श्रवणपूर्वाषाढे दक्षिणवामयोर्लोचनयोर्धनिष्ठा मूलं च दक्षिणवामयोः कर्णयोर्मघादीन्यष्ट नक्षत्राणि दक्षिणायनानि वामपार्श्ववङ्क्रिषु युञ्जीत तथैव मृगशीर्षादीन्युदगय-

नानि दक्षिणपार्श्ववङ्क्रिषु प्रातिलोम्येन प्रयुञ्जीत शतभिषाज्येष्ठे स्कन्धयोर्दक्षिणवामयोर्न्यसेत् ॥६॥

पुनर्वसु पुष्यौ दक्षिण वामयोः श्रोण्योः आर्द्रा अश्लेषे च दक्षिण वामयोः पश्चिमयोः पादयोः अभिजित् उत्तराषाढे दक्षिण वामयोः नासिकयोः यथा संख्यं श्रवण पूर्वाषाढे दक्षिण वामयोः लोचनयोः धनिष्ठा मूलं च दक्षिण वामयोः कर्णयोः मघा आदीनि अष्ट नक्षत्राणि दक्षिणायनानि वाम पार्श्ववङ्क्रिषु युञ्जीत तथा एव मृगशीर्ष आदीनि उदगयनानि दक्षिण पार्श्ववङ्क्रिषु प्रातिलोम्येन प्रयुञ्जीत शतभिषा ज्येष्ठे स्कन्धयोः दक्षिण वामयोः न्यसेत् ॥६॥

यथा संख्यं	क्रमशः
पुनर्वसु पुष्यौ	पुनर्वसु, पुष्य
दक्षिण वामयोः	दाहिने, बायें
श्रोण्योः	नितम्ब भागपर
आर्द्रा अश्लेषे	आर्द्रा, अश्लेषा
दक्षिण वामयोः	दाहिने, बायें
पश्चिमयोः	पिछले
पादयोः	पैरोंपर,
अभिजित्	अभिजित्
उत्तराषाढे	उत्तराषाढ़ा
दक्षिण वामयोः	दाहिनी, बायीं
नासिकयोः	नासिका (छिद्र) पर,
श्रवण पूर्वाषाढे	श्रवण पूर्वाषाढ़ा
दक्षिण वामयोः	दाहिने, बायें
लोचनयोः	नेत्रोंपर,
धनिष्ठा मूलं च	धनिष्ठा और मूल
दक्षिण वामयोः	दाहिने, बायें
कर्णयोः	कानोंपर,
मघा आदीनि	मघा आदि
दक्षिणायनानि	दक्षिणायनके
अष्ट नक्षत्राणि	आठ नक्षत्रोंको
वाम	वायीं
पार्श्ववङ्क्रिषु	ओरकी पसलियोंपर
सुञ्जीत	उपयोग करे,
तथा एव	इसी प्रकार
मृगशीर्ष	मृगशीर्ष
आदीनि	आदि
उदगयनानि	उत्तरायणके (आठ नक्षत्रोंको)
प्रातिलोम्येन	विपरीत क्रमसे
दक्षिण	दाहिनी
पार्श्ववङ्क्रिषु	ओरकी पसलियोंपर
प्रयुञ्जीत	प्रयुक्त करे,
शतभिषा ज्येष्ठे	शतभिषा, ज्येष्ठा
दक्षिण वामयोः	दाहिने, बायें
स्कन्धयोः	कन्धोंपर
न्यसेत्	रखे ॥६॥

उत्तराहनावगस्तिरधराहनौ यमो मुखेषु चाङ्गारकः शनैश्चर उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षस्यादित्यो हृदये नारायणो मनसि चन्द्रो नाभ्यामुशना स्तनयोरश्विनौ बुधः प्राणापानयो राहुर्गले केतवः सर्वाङ्गेषु रोमसु सर्वे तारागणाः ॥७॥

उत्तराहनाः अगस्तिः अधराहनौ यमः मुखेषु च अङ्गारकः शनैश्चरः उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षसि आदित्यः हृदये नारायणः मनसि चन्द्रः नाभ्यां उशना स्तनयोः अश्विनौ बुधः प्राण अपानयोः राहुः गले केवतः सर्वाङ्गेषु रोमसु सर्वे तारागणाः ॥७॥

उत्तराहनाः	ऊपरकी थूथनीमें	**मनसि**	मनमें
अगस्तिः	अगस्त्य,	**चन्द्रः**	चन्द्रमा,
अधराहनौ	नीचेकी ठोड़ीमें (नक्षत्र रूप) यम,	**नाभ्यां**	नाभिमें
		उशना	शुक्र,
मुखेषु च	मुखपर तो	**स्तनयोः**	स्तनोंपर
अङ्गारकः	मंगल,	**अश्विनौ**	दानों अश्विनी कुमार
उपस्थे	मूत्रेन्द्रियपर		
शनैश्चरः	शनैश्चर,	**प्राण अपानयोः**	प्राण अपानमें
ककुदि	ककुदपर	**बुधः**	बुध,
बृहस्पतिः	वृहस्पति,	**गले राहुः**	गलेमें राहु,
वक्षसि	वक्षस्थलपर	**सर्वाङ्गेषु**	सब अंगोंमें
आदित्यः	सूर्य	**केतवः**	केतु समूह,
हृदये	हृदयमें	**रोमसु**	रोमोंमें
नारायणः	नारायण,	**सर्वे तारागणाः**	सब तारागण हैं ॥७

एतदु हैव भगवतो विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपमहरहः सन्ध्यायां प्रयतो वाग्यतो निरीक्षमाण उपतिष्ठेत नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहीति ॥८॥

एतत् उ ह एव भगवतः विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपं अहरहः सन्ध्यायां प्रयतः वाक्यतः निरीक्षमाणः उपतिष्ठेत नमः ज्योतिः लोकाय काल अयनाय अनिमिषां पतये महापुरुषाय अभिधीमहि इति ॥८॥

उ ह एव	निश्चय ही यह	**उपतिष्ठेत**	उपासना
भगवतः विष्णोः	भगवान् विष्णुका		करें
सर्वदेवतामयं	सर्वदेवमय	**ज्योतिः लोकाय**	ज्योतिर्गणोंके
रूपं	रूप है।		प्रकाशक,
एतत्	इसको	**काल अयनाय**	कालचक्र स्वरूप,
अहरहः	प्रतिदिन	**अनिमिषां पतये**	सर्वदेवाधिपति,
सन्ध्यायां	सन्ध्याके समय	**महापुरुषाय**	परम पुरुषको
प्रयतः	एकाग्रता पूर्वक	**नमः**	नमस्कार पूर्वक
वाक्यतः	मौन होकर	**अभिधीमहि**	(हम) ध्यान करते
निरीक्षमाणः	देखते हुए		हैं ॥८॥
इति	इस प्रकार		

ग्रहर्क्षतारामयमाधिदैविकं
पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालम्।
नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं
नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ॥९॥

ग्रह अर्क्ष तारामयं आधिदैविकं पाप अपहं मन्त्रकृतां त्रिकालं नमस्यतः स्मरतः वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजं आशु पापम् ॥९॥

ग्रह अर्क्ष	ग्रह, नक्षत्र	**नमस्यतः**	नमस्कार करनेवाले
तारामयं	तारामय	**वा**	अथवा
आधिदैविकं	आधिदैविक	**त्रिकालं**	तीनों समय
पाप अपहं	पाप-नाशक (यह	**स्मरतः**	स्मरण करनेवालेका
	रूप)	**तत् कालजं**	उस समय किया
त्रिकालं	तीनों समय (प्रातः,	**पापं**	पाप
	दोपहर, शाम) को	**आशु**	तुरन्त
मन्त्रकृतां	मन्त्र जप करते	**नश्येत**	नष्ट हो जाता है ॥९

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अधस्तात्सवितुर्योजनायुते स्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके योऽसावमरत्वं ग्रहत्वं चालभत भगवदनुकम्पया स्वयमसुरापसदः सैंहिकेयो ह्यतदर्हस्तस्य तात जन्म कर्माणि चोपरिष्टाद्वक्ष्यामः॥१॥

अधस्तात् सवितुः योजन अयुते स्वर्भानुः नक्षत्रवत् चरति इति एके यः असौ अमरत्वं ग्रहत्वं च अलभत भगवत् अनुकम्पया स्वयं असुर अपसदः सैंहिकेयः हि अतदर्हः तस्य तात जन्म कर्माणि च उपरिष्टात् वक्ष्यामः ॥१

सवितुः	सूर्यसे	**अलभत**	प्राप्त किया है।
योजन अयुते	दस हजार योजन	**हि स्वयं**	क्योंकि स्वयं (तो)
अधस्तात्	नीचे	**सैंहिकेयः**	(यह) सिंहिका का पुत्र
स्वर्भानुः	राहु	**असुर अपसदः**	असुराधम
नक्षत्रवत्	नक्षत्रोंके समान	**अतदर्हः**	इसके योग्य नहीं था।
चरति	घूमता है	**तात**	तात (परीक्षित) !
इति एके	इस प्रकार कोई (कहते हैं)	**तस्य जन्म**	उसको जन्म
यः असौ	जिस इस (राहु) ने	**च कर्माणि**	और कर्मोंका
भगवत्	भगवान्के	**उपरिष्टात्**	आगे
अनुकम्पया	अनुग्रहसे	**वक्ष्यामः**	वर्णन करेंगे ॥१॥
अमरत्वं	अमरता		
च ग्रहत्वं	और ग्रहत्व		

यददस्तरणेर्मण्डलं प्रतपतस्तद्विस्तरतो योजनायुतमाचक्षते द्वादशसहस्रं सोमस्य त्रयोदशसहस्रं राहोर्यः पर्वणि तद्व्यवधानकृद्वैरानुबन्धः सूर्याचन्द्रमसावभिधावति ॥२॥

यत् अदः तरणेः मण्डलं प्रतपतः तत् विस्तरतः योजन अयुतं आचक्षते द्वादश सहस्रं सोमस्य त्रयोदश सहस्रं राहोः यः पर्वणि तत् व्यवधानकृत् वैर अनुबन्धः सूर्याचन्द्रमसाः अभिधावति ॥२॥

यत् अदः	यह जो
प्रतपतः	तपता हुआ
तरणेः मण्डलं	सूर्य-मण्डल है,
तत् विस्तरतः	वह विस्तारमें
योजन अयुतं	दस हजार योजन
आचक्षते	कहा जाता है,
सोमस्य	चन्द्रमाका (मण्डल)
द्वादश सहस्रं	बारह हजार (योजन)*
राहोः	राहुका (मण्डल)
त्रयोदश सहस्रं	तेरह हजार (योजन) है।
तत्	वह (राहु)
व्यवधानकृत्	(अपने अमृतपानमें) बाधा डालने वालेसे
वैर अनुबन्धः	बद्ध वैर होनेसे
पर्वणि	पर्व (अमावस्या-पूर्णिमा) पर
सूर्याचन्द्रमसा	सूर्य या चन्द्रमाकी ओर
अभिधावति	(उन्हें ग्रसने) दौड़ता है ॥२॥

तन्निशम्योभयत्रापि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं नाम भागवतं दयितमस्त्रं तत्तेजसा दुर्विषहं मुहुः परिवर्तमान-मभ्यवस्थितो मुहूर्तमुद्विजमानश्चकितहृदय आरादेव निवर्तते तदुपरागमिति वदन्ति लोकाः ॥३॥

तत् निशम्य उभयत्र अपि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं नाम भागवतं दयितं अस्त्रं तत् तेजसा दुर्विषहं मुहुः परिवर्तमानं अभ्यवस्थितः मुहूर्तं उद्विजमानः चकित हृदयः आरात् एव निवर्तते तत् उपरागं इति वदन्ति लोकाः ॥३॥

---

* पिछले अध्यायका और यहाँका भी यह खगोल-वर्णन वर्तमान विज्ञान तथा भारतीय-ज्योतिषसे भी भिन्न है। यहां चन्द्रमाको सूर्यसे दो हजार योजन स्वतन्त्र ग्रह बतलाया है, जब कि ज्योतिष भी चन्द्रको छोटा तथा पृथ्वीका उपग्रह मानता है। अतः इस पौराणिक खगोलका रहस्य समझमें नहीं आता।

तत् निशम्य	यह देखकर	**तेजसा**	तेजसे
उभयत्र अपि	(सूर्य-चन्द्र) दोनोंकी ही	**उद्विजमानः**	उद्विग्न होकर
		चकित हृदयः	चकित-चित्त
रक्षणाय	रक्षाके लिए	**मुहूर्तं**	एक मुहूर्त
भगवता प्रयुक्तं	भगवान्‌के द्वारा नियुक्त	**अभ्यवस्थितः**	उनके सामने टिककर
भागवतं	भगवान्‌का	**आरात् एव**	समीपसे ही
दयितं अस्त्रं	प्रिय अस्त्र	**निवर्तते**	लौट आता है,
सुदर्शनं नाम	सुदर्शन नामका (चक्र)	**तत् लोकाः**	इसीको लोग
		उपरागं इति	ग्रहण लगा, इस प्रकार
मुहुः परिवर्तमानं	बराबर घूमता रहता है।	**वदन्ति**	कहते हैं ॥३॥
तत् दुर्विषहं	उसके असह्य		

ततोऽधस्तात्सिद्धचारणविद्याधराणां सदनानि तावन्मात्र एव ॥४॥

ततः अधस्तात् सिद्ध चारण विद्याधराणां सदनानि तावत् मात्र एव ॥४॥

ततः	उस (राहु) से	**सिद्ध चारण**	सिद्ध, चारण,
तावत् मात्र एव	उतने ही (दस हजार योजन)	**विद्याधराणां**	विद्याधरोंके
		सदनानि	निवास हैं ॥४॥
अधस्तात्	नीचे		

ततोऽधस्ताद्यक्षरक्षः पिशाचप्रेतभूतगणानां विहारा-जिरमन्तरिक्षं यावद्वायुः प्रवाति यावन्मेघा उपलभ्यन्ते ॥५॥

ततः अधस्तात् यक्ष रक्षः पिशाच प्रेत भूतगणानां विहार अजिरं अन्तरिक्षं यावत् वायुः प्रवाति यावत् मेघाः उपलभ्यन्ते ॥५॥

ततः अधस्तात्	उसके नीचे	**यक्ष रक्षः**	यक्ष, राक्षस,
यावत् वायुः	जहां तक वायु	**पिशाच प्रेत**	पिशाच, प्रेत
प्रवाति	चलता है,	**भूतगणानां**	भूतगणोंका
यावत् मेघाः	जहाँ तक मेघ	**विहार अजिरं**	क्रीड़ाङ्गण
उपलभ्यन्ते	पाये जाते हैं	**अन्तरिक्षं**	अन्तरिक्ष है ॥५॥

ततोऽधस्ताच्छतयोजनान्तर इयं पृथिवी यावद्धंसभासश्येन-सुपर्णादयः पतत्त्रिप्रवरा उत्पतन्तीति ॥६॥

ततः अधस्तात शतयोजन अन्तर इयं पृथिवी यावत् हंस भास श्येन सुपर्ण आदयः पतत्रि प्रवराः उत्पतन्ति इति ॥६॥

ततः अधस्तात	उसके नीचे	**यावत् हंस**	जहाँ तक हंस,
शतयोजन	सौ योजनकी	**भास श्येन**	गिद्ध, बाज,
अन्तरं	दूरीपर	**सुपर्ण आदयः**	गरुड़ आदि
इयं पृथिवी	यह पृथ्वी है।	**पतत्रि प्रवराः**	श्रेष्ठ पक्षी
इति	इस प्रकार	**उत्पतन्ति**	उड़ सकते हैं ॥६॥

उपवर्णितं भूमेर्यथासंनिवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात् सप्त भूविवरा एकैकशो योजनायुतान्तरेणायामविस्तारेणोपक्लृप्ता अतलं वितलं सुतलं तलातलं महातलं रसातलं पाताल-मिति ॥७॥

उपवर्णितं भूमेः यथा संनिवेश अवस्थानं अवनेः अपि अधस्तात् सप्त भूविवराः एक एकशः योजन अयुत अन्तरेण आयाम विस्तारेण उपक्लृप्ताः अतलं वितलं सुतलं तलातलं महातलं रसातलं पातालं इति ॥७

संनिवेश	विस्तार और	**अपि**	भी
अवस्थानं यथा	स्थितिके अनुसार	**सप्त भूविवराः**	सात भू-विवर (भू-गर्भ स्थित लोक) हैं
भूमेः उपवर्णितं	पृथ्वीका वर्णन हो चुका		
अवनेः अधस्तात्	भूमिके नीचे		

अतलं वितलं	अतल, वितल,
सुतलं तलातलं	सुतल, तलातल,
महातलं रसातलं	महातल, रसातल,
पातालं इति	पाताल इस प्रकार
एक एकशः	प्रत्येक
योजन अयुत	दस हजार योजनकी
अन्तरेण	(परस्पर) दूरीपर
आयाम	(इतने ही)
विस्तारेण	लम्बाई-चौड़ाईके
उपल्कृप्ताः	स्थित हैं ॥७॥

एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गादप्यधिककामभोगैश्वर्यानन्दभूति-विभूतिभिः सुसमृद्धभवनोद्यानाक्रीडविहारेषु दैत्यदानवकाद्रवेया नित्यप्रमुदितानुरक्तकलत्रापत्यबन्धुसुहृदनुचरा गृहपतय ईश्वरादप्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा निवसन्ति ॥८॥

एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गात् अपि अधिक कामभोग ऐश्वर्य आनन्द भूति विभूतिभिः सुसमृद्ध भवन उद्यान आक्रीड विहारेषु दैत्य दानव काद्रवेया नित्य प्रमुदित अनुरक्त कलत्र अपत्य बन्धु सुहृत् अनुचराः गृहपतयः ईश्वरात् अपि प्रतिहत कामाः माया विनोदाः निवसन्ति ॥८॥

हि एतेषु	क्योंकि इन
बिलस्वर्गेषु	बिल स्वर्गोंमें
स्वर्गात् अपि	स्वर्गसे भी
अधिक	अधिक
कामभोग	विषय-भोग,
ऐश्वर्य आनन्द	ऐश्वर्य, आनन्द,
भूति विभूतिभिः	सन्तान-सुख, धन-सम्पत्तिसे
सुसमृद्ध	पूर्ण सम्पन्न,
भवन	भवन हैं,
उद्यान आक्रीड	बगीचों, क्रीड़ा-स्थलों,
विहारेषु	घूमनेके मैदानोंमें
दैत्य दानव	दैत्य, दानव
काद्रवेया	कद्रूकी सन्तान (नाग)
नित्य प्रमुदितः	सदा प्रसन्न रहते हैं।
गृहपतयः	(वे) गृहस्वामी (गृहस्थ) हैं,
कलत्र अपत्य	स्त्री, पुत्र,
बन्धु सुहृत्	सम्बन्धी, मित्र
अनुचराः	सेवक-वर्ग
अनुरक्त	(उनसे) प्रेम करते हैं।
ईश्वरात् अपि	ईश्वर द्वारा भी
कामाः	उनके भोगोंमें

प्रतिहत	बाधा नहीं दी जाती ।	**निवसन्ति**	(वहाँ) निवास करते हैं ॥८॥
माया विनोदाः	मायामयी क्रीड़ा करते हुए		

येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरो नाना-मणिप्रवरप्रवेकविरचितविचित्रभवनप्राकारगोपुरसभाचैत्यचत्वरा-यतनादिभिर्नागासुरमिथुनपारावतशुकसारिकाकीर्णकृत्रिमभूमिभि-र्विवरेश्वरगृहोत्तमैः समलकृङ्ताश्चकासति ॥९॥

येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरः नाना मणि प्रवर प्रवेक विरचित विचित्र भवन प्राकार गोपुर सभा चैत्य चत्वर आयतन आदिभिः नाग असुर मिथुन पारावत शुकसारिका कीर्ण कृत्रिम भूमिभिः विवर ईश्वर गृह उत्तमैः समलङ्कृताः चकासति ॥९॥

महाराज	महाराज !	**चत्वर आयतन**	चबूतरे, आँगन
येषु	जिन (लोकों)में	**आदिभिः**	आदिसे
मायाविना	मायावी	**विरचित**	बनी हैं (उनमें)
मयेन	मयके द्वारा	**नाग असुर**	नाग और असुरोंके
विनिर्मिताः	बनायी	**मिथुन**	जोड़े
पुरः चकासति	पुरियां जगमगा रही हैं ।	**पारावत, शुक सारिका कीर्ण**	कबूतर, तोते, मैनासे भरे हैं ।
नाना	अनेक प्रकारके	**कृत्रिम भूमिभिः**	(ये)बनायी गयी भूमि
मणि प्रवर	श्रेष्ठ मणियोंसे	**विवर**	विवर (गुफामें)
प्रवेक	जड़ित	**ईश्वर गृह**	वहाँके स्वामियोंके
विचित्र भवन	विचित्र भवन	**उत्तमैः**	उत्तम भवनोंसे
प्राकार गोपुर	परकोटे, नगर-द्वार,	**समलंकृताः**	भली प्रकार अलंकृत हैं ॥८॥
सभा चैत्य	सभाभवन, मन्दिर		

उद्यानानि चातितरां मनइन्द्रियानन्दिभिःकुसुमफलस्तबक-सुभगकिसलयावनतरुचिरविटपविटपिनां लताङ्गालिङ्गितानां

श्रीभिः समिथुनविविधविहङ्गमजलाशयानाममलजलपूर्णानां झष-कुलोल्लङ्घनक्षुभितनीरनीरजकुमुदकुवलयकह्लारनीलोत्पललोहि-तशतपत्रादिवनेषु कृतनिकेतनानामेकविहाराकुलमधुरविविधस्वना-दिभिरिन्द्रियोत्सवैरमरलोकश्रियमतिशयितानि ॥१०॥

उद्यानानि च अतितरां मन इन्द्रिय आनन्दिभिः कुसुम फल स्तबक सुभग किसलय अवनत रुचिर विटपविटपिनां लता अङ्ग आलिङ्गितानां श्रीभिः समिथुन विविधविहङ्गम जलाशयानां अमल जल पूर्णानां झषकुल उल्लङ्घन क्षुभित नीर नीरज कुमुद कुवलय कह्लार नील उत्पल लोहित शतपत्र आदि वनेषु कृत निकेतनानां एक विहार आकुल मधुर विविध स्वन आदिभिः इन्द्रिय उत्सवैः अमरलोकश्रियं अतिशयितानि ॥१०॥

उद्यानानि च	(वहाँके) बगीचे भी	**जल पूर्णानां**	जलसे भरे
मन इन्द्रिय	मन, इन्द्रियोंको	**जलाशयानां**	जलाशयोंमें
अतितरां	अत्यधिक	**झषकुल**	मछलियोंके
आनन्दिभिः	आनन्द देते हुए	**उल्लङ्घन**	उछलनेसे
अमरलोकश्रियं	स्वर्गकी शोभासे	**क्षुभित नीर**	पानीमें क्षोभ होता है (तथा उसमें लगे)
अतिशयितानि	बहुत बढ़ गये हैं।		
कुसुम फल	पुष्प और फलोंके	**नीरज कुमुद**	कमल, कुमुदिनी,
स्तबक	गुच्छोंसे,	**कुवलय कह्लार**	श्वेत-कमल, रक्त-कमल,
सुभाग किसलय	सुन्दर नव-पल्लवोंसे	**नील उपल**	नील-कमल,
अवनत	झुकी हुई	**लोहित**	लाल-कमल,
लता अंग	लताओंके शरीरसे	**शतपत्र आदि**	शतपत्र आदि (भी हिलते हैं)
आलिङ्गितानां	आलिंगित	**वनेषु**	(उस) वनमें
रुचिर	मनोहर	**कृत निकेतनानां**	घोंसले बनाकर रहनेवाले
विटपविटपिनां	वृक्षोंकी शाखाओंसे	**एक विहार**	अविराम क्रीड़ा करते
श्रीभिः	सुशोभित हैं।	**आकुल**	चञ्चल होकर
विविधविहङ्गम	अनेक प्रकारके पक्षी		(अपने)
समिथुन	अपने जोड़ेके साथ (रहते) हैं		
अमल	निर्मल		

विविध मधुर स्वन आदिभिः	अनेक प्रकारके मधुर बोली आदिसे	**इन्द्रिय उत्सवैः**	इन्द्रियोंको आनन्दित करते हैं ॥१०॥

यत्र ह वाव न भयमहोरात्रादिभिः कालविभागैरुपलक्ष्यते ॥११॥

यत्र ह वाव न भयं अहः रात्र अदिभिः काल विभागैः उपलक्ष्यते ॥११

यत्र ह वाव	जहां तो निश्चित ही	**काल विभागैः**	समय विभागका
अहः रात्र	दिन और रात रूपी	**भयं न**	खटका नहीं
अदिभिः	आदिसे	**उपलक्ष्यते**	दिखाई देता ॥११॥

यत्र हि महाहिप्रवरशिरोमणयः सर्वं तमः प्रबाधन्ते ॥१२

यत्र हि महा अहिप्रवर शिरः मणयः सर्वं तमः प्रबाधन्ते ॥१२॥

हि यत्र	क्योंकि जहां	**सर्वं तमः**	सम्पूर्ण अन्धकार
महा अहिप्रवर	महान् नाग श्रेष्ठोंके	**प्रबाधन्ते**	दूर करती रहती
शिरः मणय:	मस्तकोंकी मणियां		हैं ॥१२॥

न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसरसायनान्नपानस्नानादिभिराधयो व्याधयो वलीपलितजरादयश्च देहवैवर्ण्यदौर्गन्ध्यस्वेदक्लमग्लानिरिति वयोऽवस्थाश्च भवन्ति ॥१३॥

न वा एतेषु वसतां दिव्य औषधि रस रसायन अन्न पान स्नान आदिभिः आधयः व्याधयः वली पलित जरा आदयः च देह वैवर्ण्य दौर्गन्ध्य स्वेद क्लम ग्लानिः इति वयः अवस्थाः च भवन्ति ॥१३॥

एतेषु वसतां	इन (लोकों) में रहनेवालोंके	**रस**	रस
दिव्य औषधि	दिव्य औषधियोंके	**रसायन**	तथा रसायनोंके
		अन्न पान	खाने, पीने (एवं उनसे)

स्नान आदिभिः	स्नान आदि करनेसे	**स्वेद**	पसीना,
आधयः व्याधयः	चिन्ता, रोग	**क्लम**	थकावट,
वली	झुर्रियां पड़ना,	**ग्लानिः**	शिथिलता आना
पलित	केश पकना,	**इति वयः**	इस प्रकार आयु (बढ़नेसे) होनेवाली
जरा आदयः	बुढ़ापा आदि तथा		
देह वैवर्ण्य	शरीरका कान्ति-हीन होना,	**अवस्थाः च न वा भवन्ति**	अवस्थाएँ भी नहीं ही होती हैं ॥१३॥
दौर्गन्ध्य	(देहसे) दुर्गन्धि आना,		

न हि तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युर्विना भगवत्तेजसश्चक्रापदेशात् ॥१४॥

न हि तेषा कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युः विना भगवत् तेजसः चक्र अपदेशात् ॥१४॥

हि	क्योंकि	**तेजसः विना**	तेजके बिना
तेषां कल्याणानां	उन पुण्य-पुरुषोंपर	**कुतश्चन**	किसी प्रकार
मृत्युः	मृत्यु	**न प्रभवति**	नहीं प्रभाव डाल सकती ॥१४॥
भगवत्	भगवान्के		
चक्र अपदेशात्	चक्र स्वरूप		

यस्मिन् प्रविष्टेऽसुरवधूनां प्रायः पुंसवनानि भयादेव स्रवन्ति पतन्ति च ॥१५॥

यस्मिन् प्रविष्टे असुर वधूनां प्रायः पुंसवनानि भयात् एव स्रवन्ति पतन्ति च ॥१५॥

यस्मिन्	जिस (चक्र) के	**भयात् एव**	भयसे ही
प्रविष्टे	प्रवेश करनेपर	**प्रायः स्रवन्ति**	स्रवित होते
असुर वधूनां	असुर-पत्नियोंके	**च पतन्ति**	तथा गिर जाते हैं ॥१५॥
पुंसवनानि	गर्भ		

अथातले मयपुत्रोऽसुरो बलो निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षण्णवतिर्मायाः काश्चनाद्यापि मायाविनो धारयन्ति यस्य च जृम्भमाणस्य मुखतस्त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिण्यः कामिन्यः पुंश्चल्य इति या वै बिलायनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा स्वविलासावलोकनानुरागस्मितसंलापोपगूहनादिभिः स्वैरं किल रमयन्ति यस्मिन्नुपयुक्ते पुरुष ईश्वरोऽहं सिद्धोऽहमित्ययुतमहागजबलमात्मानमभिमन्यमानः कत्थते मदान्ध इव ॥१६॥

अथ अतले मयपुत्रः असुरः बलः निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षट् नवतिः माया काश्चन अद्य अपि मायाविनः धारयन्ति यस्य च जृम्भमाणस्य मुखतः त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिण्यः कामिन्यः पुंश्चल्यः इति या वै बिल अयनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटक आख्येन साधयित्वा स्वविलास अवलोकन अनुराग स्मित संलाप उपगूहन आदिभिः स्वैरं किल रमयन्ति यस्मिन् उपयुक्ते पुरुषः ईश्वरः अहं सिद्धः अहं इति अयुत महागज बलं आत्मानं अभिमन्यमानः कत्थते मद अन्ध इव ॥१६॥

अथ अतले	उस अतलमें	**धारयन्ति**	धारण करते हैं।
मयपुत्रः	मयका पुत्र	**यस्य च**	जिसके कि
असुर बलः	असुर बल	**जृम्भमाणस्य**	जम्हाई लेनेपर
निवसति	रहता है।	**मुखतः**	मुखसे
येन ह वा	जिसको निश्चय ही	**त्रयः स्त्रीगणा**	तीन स्त्रीगण
सृष्टाः	बनायी हुई	**उदपद्यन्त**	उत्पन्न हुआ
षट् नवतिः	छियानबे प्रकारकी	**स्वैरिण्यः**	स्वेच्छा चारिणी (उनकी जिससे इच्छा हो उससे व्यभिचार करानेवाली)
माया	मायामें से		
काश्चन	कोई-कोई		
इह मायाविनः	इस संसारमें मायावी लोग		
अद्य अपि	अब भी		

कामिन्यः	कामिनियां (जब कामावेश हो तब किसीसे भी व्यभिचार करानेवाली)
पुंश्चल्यः	पुंश्चली (किसी भी पुरुषके संकेतपर व्यभिचारको प्रस्तुत)
इति	इस प्रकारके (स्त्री गण)
या वै	जो निश्चय ही
बिल अयनं	इस बिल-निवासमें
प्रविष्टं	प्रविष्ट
पुरुषं	पुरुषको
रसेन साधयित्वा	(हाटक) रस पिलाकर भोग सक्षम बनाकर
स्वविलास अवलोकन अनुराग स्मित	अपने हाव, भाव, कटाक्ष पूर्वक देखने, प्रेमभरी मुस्कान,
संलाप	बातचीत
उपगूहन	आलिंगन
आदिभिः	आदि द्वारा
किल स्वैरं	अरे, स्वेच्छा पूर्वक
रमयन्ति	रमण कराती हैं।
यस्मिन्	जिस (हाटक-रसका)
उपयुक्ते	उपयोग करके
पुरुषः	पुरुष
मद अन्ध इव	मदसे अन्धा-सा होकर
कत्थते	बकवाद करने लगता है कि
अहं ईश्वरः	'मैं ईश्वर हूँ'
अहं सिद्धः	'मैं सिद्ध हूँ'
इति	इस प्रकार
आत्मानं	अपनेको
अयुत महागज	दस हजार बड़े हाथियोंके
बलं अभि	बलका मानने
मन्यमानः	लगता है ॥१६॥

ततोऽधस्ताद्वितले हरो भगवान् हाटकेश्वरः स्वपार्षद-भूतगणावृतः प्रजापतिसर्गोपबृंहणाय भवो भवान्या सह मिथुनी-भूत आस्ते यतः प्रवृत्ता सरित्प्रवरा हाटकी नाम भवयोर्वीर्येण यत्र चित्रभानुर्मातरिश्वना समिध्मान ओजसा पिबति तन्निष्ठ-चूतं हाटकाख्यं सुवर्णं भूषणेनासुरेन्द्रावरोधेषु पुरुषाः सह पुरुषीभिर्धारयन्ति ॥१७॥

ततः अधस्तात् वितले हरः भगवान् हाटकेश्वरः स्वपार्षद भूतगण आवतः प्रजापति सर्ग उपबृंहणाय भवः भवान्या सह मिथुनीभूतं आस्ते

यतः प्रवृत्ता सरित् प्रवरा हाटकी नाम भवयोः वीर्येण यत्र चित्रभानुः मातरिश्वना समिध्मान ओजसा पिबति तत् निष्ठ्यूतं हाटक आख्यं सुवर्ण भूषणेन असुरेन्द्र अवरोधेषु पुरुषाः सह पुरुषीभिः धारयन्ति ॥१७॥

ततः अधस्तात्	उसके नीचे	**सरित् प्रवरा**	श्रेष्ठ-नदी
भगवान्	भगवान्	**यतः प्रवृत्ता**	जहांसे निकलती है,
हाटकेश्वरः	हाटकेश्वर	**यत्र चित्रभानुः**	जहाँ चित्रभानु
स्वपार्षद	अपने पार्षद		नामक अग्नि
भूतगण	भूतगणोंसे	**मातरिश्वना**	वायुके द्वारा
आवृतः	घिरे रहते हैं।	**समिध्मानः**	प्रज्वलित किया
प्रजापति सर्ग	प्रजापतिकी सृष्टिका	**ओजसा पिबति**	उत्साहसे (उसे)
उपबृंहणाय	विस्तार करनेके लिए		पीता है।
		तत् निष्ठ्यूतं	उसका थूका हुआ
भवः	(वे) भगवान् शिव	**हाटक आख्यं**	हाटक नामके
भवान्या सह	भगवतीके साथ	**सुवर्णं**	स्वर्णका
मिथुनीभूतं	विहार करते	**भूषणेन**	आभूषणके रूपमें
आस्ते	रहते हैं।	**असुरेन्द्र**	दैत्यराजके
भवयोः वीर्येण	भगवान् शिवके वीर्यसे	**अवरोधेषु**	अन्तःपुरमें
		पुरुषाः	पुरुष
हाटकी नाम	हाटकी नामक	**पुरुषीभिः सह**	स्त्रियोंके साथ
		धारयन्ति	पहिनते हैं ॥१७॥

ततोऽधस्तात्सुतले उदारश्रवाः पुण्यश्लोको विरोचनात्मजो बलिर्भगवता महेन्द्रस्य प्रियं चिकीर्षमाणेनादितेर्लब्धकायो भूत्वा वटुवामनरूपेण पराक्षिप्तलोकत्रयो भगवदनुकम्पयैव पुनः प्रवेशित इन्द्रादिष्वविद्यमानया सुसमृद्धया श्रियाभिजुष्टः स्वधर्मेणाराधयंस्तमेव भगवन्तमाराधनीयमपगतसाध्वस आस्तेऽधुनापि ॥१८॥

ततः अधस्तात् सुतले उदारश्रवाः पुण्यश्लोकः विरोचन आत्मजः बलिः भगवता महेन्द्रस्य प्रियं चिकीर्षमाणेन अदितेः लब्धकायः भूत्वा

वटु वामन रूपेण पराक्षिप्त लोकत्रयः भगवत् अनुकम्पया एव पुनः प्रवेशित इन्द्र आदिषु अविद्यमानया सुसमृद्धया श्रियाभिजुष्टः स्वधर्मेण आराधयत् तं एव भगवन्तं आराधनीयं अपगत साध्वस आस्ते अधुना अपि ॥१८॥

ततः अधस्तात्	उस (वितल) के नीचे
सुतले	सुतलमें
उदारश्रवाः	महान् यशस्वी
पुण्यश्लोकः	पवित्र कीर्ति
विरोचन आत्मजः	विरोचनके पुत्र
बलिः	बलि रहते हैं।
महेन्द्रस्य	इन्द्रका
प्रियं	प्रिय
चिकीर्षमाणेन	करनेकी इच्छासे
आदितेः	अदितिके (गर्भसे)
लब्धकायः	अवतार लेकर
वटु वामन	वामन ब्रह्मचारी
रूपेण	रूप
भूत्वा	बनकर
लोकत्रयः	(बलिसे) तीनों लोक
पराक्षिप्त	छीन लिया,
भगवत्	भगवान्‌की
अनुकम्पया एव	कृपासे ही
पुनः	फिर
इन्द्र आदिषु	इन्द्र आदिके पास भी (जैसी)
सुसमृद्धया	उत्तम सम्पत्ति
अविद्यमानया	नहीं है (वैसी)
श्रियाभिजुष्टः	लक्ष्मीसे सम्पन्न (लोकमें)
प्रवेशित	प्रविष्ट करानेपर
तं एव	उन्हीं
आराधनीयं	आराधना योग्य
भगवन्तं	भगवान्‌की
स्वधर्मेण	अपने धर्माचरण द्वारा
आराधयत्	आराधना करते हुए
अपगत साध्वस	निर्भयता पूर्वक
अधुना अपि	इस समय भी
आस्ते	रहते हैं ॥१८॥

नो एवैतत्साक्षात्कारो भूमिदानस्य यत्तद्भगवत्यशेष-जीवनिकायानां जीवभूतात्मभूते परमात्मनि वासुदेवे तीर्थतमे पात्र उपपन्ने परया श्रद्धया परमादरसमाहित मनसा सम्प्रति-पादितस्य साक्षादपवर्गद्वारस्य यद्विलनिलयैश्वर्यम् ॥१९॥

नो एव एतत् साक्षात्कारः भूमिदानस्य यत् तत् भगवति अशेष जीव निकायानां जीव भूत आत्मभूते परमात्मनि वासुदेवे तीर्थतमे पात्र

उपपन्ने परया श्रद्धया परम आदर समाहित मनसा सम्प्रति पादितस्य साक्षात् अपवर्ग द्वारस्य यत् बिलनिलय ऐश्वर्यम् ॥१९॥

यत् भगवति	जो भगवान्
अशेष जीव	सम्पूर्ण
निकायानां	जीवोंके
जीव भूत	जीवन रूप
आत्मभूते	आत्मस्वरूप
परमात्मनि	परमात्मा
वासुदेवे	वासुदेवके
तीर्थतमे	पवित्रतम
पात्र उपपन्ने	पात्रके आनेपर
तत्	उस
परया श्रद्धया	परम श्रद्धासे
परम आदर	परम आदर पूर्वक
समाहित मनसा	एकाग्र चित्तसे
सम्प्रति	सम्पन्न
पादितस्य	किए गये
भूमिदानस्य	भूमिदानका
यत्	जो
बिलनिलय	बिलस्वर्ग (सुतल) का
ऐश्वर्यं	ऐश्वर्य मिलना
एतत्	यह (इतना ही)
साक्षात्कारः	साक्षात् फल
नो एव	नहीं ही है,
साक्षात्	(वह) साक्षात्
अपवर्ग द्वारस्य	मोक्षका साधन है ॥१९॥

यस्य ह वाव क्षुतपतनप्रस्खलनादिषु विवशः सकृन्नामाभिगृणन् पुरुषः कर्मबन्धनमञ्जसा विधुनोति यस्य हैव प्रतिबाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते ॥२०॥

यस्य ह वाव क्षुत पतन प्रस्खलन आदिषु विवशः सकृत् नाम अभिगृणन् पुरुषः कर्म बन्धनं अञ्जसा विधुनोति यस्य ह एव प्रतिबाधनं मुमुक्षवः अन्यथा एव उपलभन्ते ॥२०॥

क्षुत पतन	छींकने,
प्रस्खलन	फिसलने,
आदिषु	आदिमें
विवशः	विवश होकर
यस्य ह वाव	जिनके निश्चित ही
सकृत्	एक बार मात्र
नाम अभिगृणन्	नाम लेकरके
पुरुषः	पुरुष
अञ्जसा	सरलतासे
कर्म बन्धनं	कर्मके बन्धनको
विधुनोति	नष्ट कर देता है,
मुमुक्षवः	मुमुक्षु लोग
यस्य	जिस (कर्म-बन्धन) का

ह एव प्रतिबाधनं	निश्चित ही प्रतिकार	**अन्यथा एव उपलभन्ते**	दूसरी ही तरह (बड़े कष्टसे) कर पाते हैं ॥२०॥

तद्भक्तानामात्मवतां सर्वेषामात्मन्यात्मद आत्मतयैव ॥२१॥

तत् भक्तानां आत्मवतां सर्वेषां आत्मनि आत्मतया एव ॥२१॥

तत् आत्मवतां भक्तानां सर्वेषां आत्मनि	अतः संयमी भक्तोंके लिए सबके अन्तःकरणमें	**आत्मतया एव**	आत्मरूपसे ही (स्थित) भगवान्‌को भूमिदानका इतना ही फल नहीं हो सकता ॥२१॥

न वै भगवान्नूनममुष्यानुजग्राह यदुत पुनरात्मानुस्मृति-मोषणं मायामयभोगैश्वर्यमेवाततनुतेति ॥२२॥

न वै भगवान् नूनं अमुष्य अनुजग्राह यत् उत पुनः आत्मानुस्मृति मोषणं मायामय भोग ऐश्वर्यं एव आततनुते इति ॥२२॥

नूनं	निश्चय	**भोग ऐश्वर्यं**	भोग ऐश्वर्य
अमुष्य	इस (बलि) को	**एव इति**	ही इस प्रकार
यत् उत पुनः	यदि वह फिरसे	**√आततनुते**	प्रदान किया तो
आत्मानुस्मृति	अपनी स्मृति	**वै**	निश्चय
मोषणं	चुरा लेनेवाला	**अनुजग्राहन**	कृपा नहीं की ॥२२॥
मायामय	मायिक		

यत्तद्भगवतानधिगतान्योपायेन याच्ञाच्छलेनापहृतस्व-शरीरावशेषितलोकत्रयो वरुणपाशैश्च सम्प्रतिमुक्तो गिरिदर्यां चापविद्ध इति होवाच ॥२३॥

यत् तत् भगवता न अधिगत अन्य उपायेन याच्ञा छलेन अपहृत स्वशरीर अवशेषित लोकत्रयः वरुण पाशैः च सम्प्रतिमुक्तः गिरिदर्यां च अपविद्ध इति ह उवाच ॥२३॥

तत् भगवता	उन भगवान्‌को	**अपहृत**	छीन लिया
अन्य उपायेन	दूसरे उपायसे	**वरुण पाशैः**	वरुणके पाशसे
यत्	क्योंकि जो	**च सम्प्रतिमुक्तः**	बाँधे जाकर
अधिगत न	प्राप्त नहीं हुआ	**गिरिदर्यां**	पर्वतकी गुफामें
याच्ञा छलेन	याचनाके बहाने	**अपविद्धः च**	डाल दिये जानेपर भी
स्वशरीर	उसके अपने शरीरको		
अवशेषित	बचाकर	**इति ह**	इस प्रकार ही
लोकत्रयः	तीनों लोक	**उवाच**	बोला ॥२३॥

बलिरुवाच■

नूनं बतायं भगवानर्थेषु न निष्णातो योऽसाविन्द्रो यस्य सचिवो मन्त्राय वृत एकान्ततो बृहस्पतिस्तमतिहाय स्वयमुपेन्द्रेणात्मानमयाचतात्मनश्चाशिषो नो एव तद्दास्यमतिगम्भीरवयसः कालस्य मन्वन्तर परिवृत्तं कियल्लोकत्रयमिदम् ॥२४॥

नूनं बत अयं भगवान् अर्थेषु न निष्णातः यः असौ इन्द्रः यस्य सचिवः मन्त्राय वृतः एकान्ततः बृहस्पतिः तं अतिहाय स्वयं उपेन्द्रेण आत्मानं अयाचत आत्मनः च आशिषः नो एव तत् दास्यं अति गम्भीर वयसः कालस्य मन्वन्तर परिवृत्तं कियत् लोकत्रयं इदम् ॥२४॥

नूनं बत	निश्चय खेदकी बात है कि	**यः भगवान्**	जो ऐश्वर्य शाली है,
यः असौ इन्द्रः	जो यह इन्द्र है,	**अर्थेषु**	(सच्चे) प्रयोजनमें
		निष्णातः न	निपुण नहीं है,

■ यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

यस्य सचिवः जिसके मन्त्री
मन्त्राय मन्त्रणा करनेके लिए
एकान्ततः अनन्य भावसे स्वीकृत
बृहस्पतिः बृहस्पति हैं
तं अतिहाय उनको छोड़कर
स्वयं उपेन्द्रेण स्वयं भगवान् वामन द्वारा
आत्मानः च अपने लिए
आत्मानं मुझसे
आशिषः कामना
ययाचत पूर्ति मांगी
च तत् दस्यं औरउनका दास्य
नो एव नहीं ही (मांगा)
अति अत्यन्त
गम्भीर वयसः गम्भीर (अनन्त) आयु वाले
कालस्य कालमें
मन्वन्तर एक मन्वन्तर तक
परिवृत्तं सीमित
इदं लोकत्रयं इन तीन लोकोंका राज्यका
कियत् क्या (मूल्य) है ॥२४॥

यस्यानुदास्यमेवास्मत्पितामहः किल वव्रे न तु स्वपित्र्यं यदुताकुतोभयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवतो परते खलु स्वपितरि ॥२५॥

यस्य अनुदास्यं एव अस्मत् पितामहः किल वव्रे न तु स्वपित्र्यं यत् अकुतः भयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवत उपरते खलु स्वपितरि ॥२५॥

अस्मत् हमारे
पितामहः पितामह (प्रह्लाद)ने
स्वपितरि अपने पिता (हिरण्यकशिपु)के
उपरते मर जानेपर
यत् स्वपित्र्यं जो अपने पिताका
अकुतः भयं सब ओरसे निर्भय
पदं स्थान
भगवतः भगवान्के
दीयमानं देनेपर भी
न तु नहीं ही लिया
किल अहो
यस्य जिनका
अनुदास्यं बराबर दासत्व
एव वव्रे ही मांगा ॥२५॥

तस्य महानुभावस्यानुपथममृजितकषायः को वास्मद्विधः परिहीणभगवदनुग्रह उपजिगमिषतीति ॥२६॥

तस्य महानुभावस्य अनुपथं अमृजित कषायः कः वा अस्मत् विधः परिहीण भगवत अनुग्रह उपजिगमिषति इति ॥२६॥

तस्य	उन	**कषायः**	करने वाला
महानुभावस्य	महाप्रभावशालीके	**कः वा**	भला कौन
अनुपथं	पीछे चलनेके मार्गपर	**भगवत अनुग्रह**	भगवान्‌की कृपासे
		परिहीण	वञ्चित
अस्मत् विधः	मेरे समान	**इति**	इस प्रकार
अमृजित	वासना-मलको परिमार्जित न	**उपजिगमिषति**	पहुँच सकता है ॥२६॥

*श्रीशुक उवाच—**

तस्यानुचरितमुपरिष्टाद्विस्तरिष्यते यस्य भगवान् स्वयमखिलजगद्गुरुर्नारायणो द्वारि गदापाणिरवतिष्ठते निजजनानुकम्पितहृदयो येनाङ्गुष्ठेन पदा दशकन्धरो योजनायुतायुतं दिग्विजय उच्चाटितः ॥२७॥

तस्य अनुचरितं उपरिष्टात् विस्तरिष्यते यस्य भगवान् स्वयं अखिल जगद्गुरुः नारायणः द्वारि गदापाणिः अवतिष्ठते निजजन अनुकम्पित हृदयः येन अङ्गुष्ठेन पदा दशकन्धरः योजन अयुत अयुतं दिग्विजय उच्चाटितः ॥२७॥

तस्य	उन (बलि)का	**जगद्गुरुः**	जगतके गुरु
अनुचरितं	चरित	**स्वयं नारायणः**	स्वयं नारायण
उपरिष्टात्	आगे	**निजजन**	अपने भक्तपर
विस्तरिष्यते	विस्तार किया जायगा	**अनुकम्पित**	अनुग्रहपूर्ण
		हृदयः	हृदयसे
यस्य द्वारि	जिनके द्वारपर	**गदापाणिः**	हाथमें गदा लेकर
भगवान्	भगवान्	**अवतिष्ठते**	खड़े रहते हैं।
अखिल	अखिल	**येन पदा**	जिन्होंने पैरके

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

अंगुष्ठेन	अंगूठेसे	**अयुत अयुतं**	लाखों
दिग्विजय	दिग्विजय करने आनेपर)	**योजन**	योजन (दूर)
		उच्चाटितः	फेंक दिया गया ॥२७॥
दशकन्धरः	रावण		

**ततोऽधस्तात्तलातले मयो नाम दानवेन्द्रस्त्रिपुराधिपति-
र्भगवता पुरारिणा त्रिलोकीशं चिकीर्षुणा निर्दग्धस्वपुरत्रयस्त-
त्प्रसादाल्लब्धपदो मायाविनामाचार्यो महादेवेन परिरक्षितो
विगतसुदर्शनभयो महीयते ॥२८॥**

ततः अधस्तात् तलातले मयः नाम दानवेन्द्रः त्रिपुर अधिपतिः भगवता पुरारिणा त्रिलोक ईशं चिकीर्षुणा निर्दग्ध स्वपुरत्रयः तत् प्रसादात् लब्धपदः मायाविनां आचार्यः महादेवेन परिरक्षितः विगत सुदर्शनभयः महीयते ॥२८॥

ततः अधस्तात्	उस (सुतल-लोक) के नीचे	**पुरारिणा**	भगवान् त्रिपुरारि द्वारा
तलातले	तलातल-लोकमें	**स्वपुरत्रयः**	अपने तीनों पुरोंके
मायाविनां	मायावियोंका	**निर्दग्ध**	जला दिये जानेपर
आचार्यः	आचार्य	**महादेवेन**	भगवान् शिवकी
मयः नाम	मय नामका	**प्रसादात्**	कृपासे
दानवेन्द्रः	दानवराज (रहता) है,	**लब्धपदः**	(तलातलमें) स्थान पाकर
त्रिपुर अधिपतिः	(वह) त्रिपुरका स्वामी	**परिरक्षितः**	(शिवजीसे) सुरक्षित
त्रिलोक ईशं	त्रिलोकीका स्वामी	**सुदर्शन**	सुदर्शन-चक्रके
चिकीर्षुणा	बननेकी इच्छा करनेपर	**भयः विगत**	भयसे रहित होकर
		महीयते	(वहांके निवासियों द्वारा) सम्मानित होता है ॥२८॥

ततोऽधस्तान्महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां नैकशिरसां क्रोधवशो नाम गणः कुहकतक्षककालियसुषेणादिप्रधाना महाभोगवन्तः पतत्त्रिराजाधिपतेः पुरुषवाहादनवरतमुद्विजमानाः स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुम्बसङ्गेन क्वचित्प्रमत्ता विहरन्ति ॥२९॥

ततः अधस्तात् महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां न एक शिरसां क्रोधवशः नाम गणः कुहकः तक्षकः कालियः सुषुणः आदि प्रधाना महाभोगवन्तः पतत्त्रिराज अधिपतेः पुरुष वाहात् अनवरतं उद्विजमानाः स्व कलत्र अपत्य सुहृत् कुटुम्बसङ्गेन क्वचित् प्रमत्ता विहरन्ति ॥२९॥

ततः अधस्तात्	उस (तलातल) के नीचे
महातले	महातलमें
काद्रवेयाणां	कद्रूसे उत्पन्न
न एक शिरसां	अनेक सिरवाले
सर्पाणां	सर्पोंका
क्रोधवशः नाम	क्रोधवश नामक
गणः	समूह है,
कुहकः सक्षकः	(उनमें) कुहक, तक्षक
कालियः सुषुणः	कालिय, सुषेण
आदि प्रधाना	आदि प्रधान
महाभोगवन्तः	बड़े शरीरवाले हैं,
पतत्त्रिराज	पक्षियोंके नायकोंके भी
अधिपतेः	स्वामी
पुरुष वाहात्	परम पुरुषके वाहन (गरुड़) से
अनवरतं	निरन्तर
उद्विजसानाः	उद्विग्न रहते भी
स्व कलत्र	अपने स्त्री,
अपत्य सुहृत	पुत्र, मित्र,
कुटुम्बसङ्गेन	कुटुम्बकी आसक्तिसे
क्वचित् प्रमत्ता	कभी प्रमत्त होकर
विहरन्ति	विहार करने लगते हैं ॥२९॥

ततोऽधस्ताद्रसातले दैतेया दानवाः पणयो नाम निवातकवचाः कालेया हिरण्यपुरवासिन इति विबुधप्रत्यनीका उत्पत्त्या महौजसो महासाहसिनो भगवतः सकललोकानुभावस्य हरेरेव तेजसा प्रतिहतबलावलेपा बिलेशया इव वसन्ति ये वै सरमयेन्द्रदूत्या वाग्भिर्मन्त्रवर्णाभिरिन्द्राद्बिभ्यति ॥३०॥

ततः अधस्तात् रसातले दैतेयाः दानवाः पणयः नाम निवात कवचाः कालेयाः हिरण्य पुरवासिनः इति विबुध प्रत्यनीका उत्पत्त्या महा ओजसः महासाहसिनः भगवतः सकल लोक अनुभावस्य हरेः एव तेजसा प्रतिहत बल अवलेपा बिलेशया इव वसन्ति ये वै सरमया इन्द्र दूत्या वाक्भिः मन्त्र वर्णाभिः इन्द्रात् बिभ्यति ॥३०॥

ततः अधस्तात्	उसके नीचे
रसातले	रसातलमें
पणयः नाम	पणि नामक
दैतेयाः दानवाः	दैत्य, दानव (रहते हैं)
निवात कवचाः	निवात कवच,
कालेयाः	कालेय,
हिरण्य	हिरण्य
पुरवासिनः	पुरवासी
इति	इस प्रकार (इनका भेद है।)
विबुध	देवताओंके (ये)
प्रत्यनीका	विरोधी
उत्पत्त्या	जन्मसे
महा ओजसः	बड़े ओजस्वी,
महासाहसिनः	महान् साहसी हैं (किन्तु)
सकल लोक	सब लोकोंमें
अनुभावस्य	प्रभावशाली,
हरेः एव	श्रीहरिके ही
तेजसा	तेजसे
प्रतिहत बल	बलाभिमान नष्ट
अवलेपा	हो जानेसे
बिलेशया इव	बिलमें रहने वालोंके समान (छिपकर)
वसन्ति	रहते हैं।
ये वै	जो निश्चित ही
इन्द्र दूत्या	इन्द्रकी दूती
सरमया	सरमाके
मन्त्र वर्णाभिः	मन्त्राक्षरवाली
वाक्भिः	वाणीके कारण
इन्द्रात्	इन्द्रसे
बिभ्यति	डरते हैं ॥३०॥

ततोऽधस्तात्पातले नागलोकपतयो वासुकिप्रमुखाः शङ्खकुलिकमहाशङ्खश्वेतधनञ्जयधृतराष्ट्रशङ्खचूडकम्बलाश्वतर-देवदत्तादयो महाभोगिनो महामर्षा निवसन्ति येषामु ह वै पञ्च-सप्तदशशतसहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो रोचिष्णवः पातालविवरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा विधमन्ति ॥३१॥

ततः अधस्तात् पाताले नागलोक पतयः वासुकि प्रमुखाः शङ्ख कुलिक महाशङ्ख श्वेत धनञ्जय धृतराष्ट्र शङ्खचूड कम्बल अश्वतर देवदत्त आदयः महाभोगिनः महामर्षा निवसन्ति येषां उ ह व पञ्च सप्त दश शत सहस्र शीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयः रोचिष्णवः पाताल विवर तिमिर निकरं स्वरोचिषा विधमन्ति ॥३१॥

ततः अधस्तात्	उसके नीचे	**निवसन्ति**	रहते हैं।
पाताले	पातालमें	**उ ह वै**	निश्चित रूपसे
नागलोक	नाग-लोकके	**येषां पाञ्च**	जिनके पांच,
पतयः	अधिपति	**सप्त**	सात,
वासुकि प्रमुखाः	जिनमें वासुकी प्रमुख हैं वे	**दश शत**	दस, सौ,
		सहस्र शीर्षाणां	सहस्र मस्तक वालोंके
शङ्ख कुलिक	शङ्ख, कुलिक,	**फणासु**	फणोंमें
महाशङ्ख श्वेत	महाशङ्ख, श्वेत,	**विरचिता**	निर्मित
धनञ्जय	धनञ्जय,	**रोचिष्णवः**	कान्तिमान
धृतराष्ट्र	धृतराष्ट्र,	**महामणयः**	महामणियां
शङ्खचूड कम्बल	शङ्खचूड, कम्बल,	**पाताल विवर**	पाताल रूपी बिलके
अश्वतर देवदत्त	अश्वतर, देवदत्त,	**तिमिर निकरं**	प्रगाढ़ अन्धकारको
आदयः	आदि	**स्वरोचिषा**	अपने प्रकाशसे
महाभोगिनः	महाभोग (सर्प देहवाले)	**विधमन्ति**	नष्ट कर देती हैं ॥३१॥
महामर्षा	बड़े क्रोधी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे शङ्खादिस्थितिबिलस्वर्गमर्यादानिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजनसहस्रान्तर आस्ते या वै कला भगवतस्तामसी समाख्यातानन्त इति सात्वतीया द्रष्टृदृश्ययोः सङ्कर्षणमहमित्यभिमानलक्षणं यं सङ्कर्षणमित्याचक्षते ॥१॥

तस्य मूलदेशे त्रिंशत् योजन सहस्र अन्तर आस्ते या वै कला भगवतः तामसी समाख्याता अनन्त इति सात्वतीया द्रष्टृदृश्ययोः सङ्कर्षणं अहं इति अभिमान लक्षणं यं सङ्कर्षणं इति आचक्षते ॥१॥

तस्य	उस (पाताल) के	**द्रष्टृदृश्ययोः**	द्रष्टा और दृश्यको
मूलदेशे	मूल प्रदेशमें	**सङ्कर्षणं**	खींचकर एक कर देनेवाले
त्रिंशत् सहस्र	तीस हजार	**अहं इति**	अहंकार रूपा
योजन	योजन	**अभिमान लक्षणं**	अभिमान रूपिणी
अन्तर	दूरीपर	**यं**	जिस (कला) को
या वै	जो निश्चित	**सात्वतीया**	पाञ्चरात्रके अनुयायी
भगवतः	भगवान्‌की	**सङ्कर्षणं**	संकर्षण
तामसी कला	तामसी कला	**इति आचक्षते**	इस नामसे कहते हैं ॥१॥
अनन्त इति	अनन्त इस नामसे		
समाख्याता	प्रसिद्ध है		
आस्ते	(वे) हैं ।		

यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥२॥

यस्य इदं क्षितिमण्डलं भगवतः अनन्तमूर्तेः सहस्र शिरसि एकस्मिन् एव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥२॥

यस्य सहस्र	जिन एक सहस्र
शिरसि	सिर वाले
अनन्तमूर्तेः	अनन्त मूर्ति
भगवतः	भगवान्‌के
एकस्मिन् एव	एक ही
शीर्षणिध्रियमाणं	सिरपर रखा हुआ
इदं	यह
क्षितिमण्डलं	भूमण्डल
सिद्धार्थ इव	सरसोंके दानेकी भांति
लक्ष्यते	दिखाई देता है ॥२॥

यस्य ह वा इदं कालेनोपसञ्जिहीर्षतोऽमर्षविरचितरुचिर-भ्रमद्भ्रुवोरन्तरेण साङ्कर्षणो नाम रुद्र एकादशव्यूहस्त्र्यक्ष-स्त्रिशिखं शूलमुत्तम्भयन्नुदतिष्ठत् ॥३॥

यस्य ह वा इदं कालेन उपसञ्जिहीर्षतः अमर्ष विरचित रुचिर भ्रमत् भ्रुवोः अन्तरेण साङ्कर्षणः नाम रुद्र एकादश व्यूहः त्र्यक्षः त्रिशिखं शूलं उत्तम्भयन् उदतिष्ठत् ॥३॥

कालेन	प्रलय काल आनेपर
यस्य ह वा इदं	जिनके इस विश्वका निश्चित
उपसञ्जिहीर्षतः	उपसंहार करनेकी इच्छा करनेपर
अमर्ष भ्रमत्	क्रोधसे घूमती
रुचिर विरचित	मनोहर हो गयी
भ्रुवोः अन्तरेण	भृकुटियोंके मध्य भागसे
साङ्कर्षणः नाम	सांकर्षण नामक
एकादश व्यूहः	ग्यारह व्यूह वाले
त्र्यक्षः रुद्र	त्रिनयन रुद्र
त्रिशिखं शूलं	त्रिशूल
उत्तम्भयन्	उठाये
उदतिष्ठत्	उत्पन्न हो जाते हैं ॥३॥

यस्याङ्घ्रिकमलयुगलारुणविशदनखमणिषण्डमण्डलेष्वहि-पतयः सह सात्वतर्षभैरेकान्तभक्तियोगेनावनमन्तः स्ववदनानि परिस्फुरत्कुण्डलप्रभामण्डितगण्डस्थलान्यतिमनोहराणि प्रमुदित-मनसः खलु विलोकयन्ति ॥४॥

यस्य अङ्घ्रि कमल युगल अरुण विशद नख मणिषण्ड मण्डलेषु अहिपतयः सह सात्वत ऋषभैः एकान्त भक्तियोगेन अवनमन्तः स्ववदनानि परिस्फुरत् कुण्डल प्रभामण्डित गण्डस्थलानि अति मनोहराणि प्रमुदित मनसः खलु विलोकयन्ति ॥४॥

अरुण मणिषण्ड	लाल-मणियोंके समान	**परिस्फुरत्**	चमकते हुए
विशद	स्वच्छ	**कुण्डल**	कुण्डलोंकी
नख मण्डलेषु	नख मण्डलवाले	**प्रभामण्डित**	कान्तिसे शोभित
यस्य अङ्घ्रि	जिनके दोनों	**गण्डस्थलानि**	कपोलोंवाले
कमल युगल	चरण-कमलों	**अति**	अत्यन्त
एकान्त	अनन्य	**मनोहराणि**	सुन्दर
भक्तियोगेन	भक्ति-भावसे	**स्ववदनानि**	अपने मुखोंको
सात्वत ऋषभैः	प्रधान भक्तोंके	**विलोकयन्ति**	देखते हैं तो
सह	साथ	**खलु**	अहो (उनका)
अवनमन्तः	प्रणाम करते समय	**प्रमुदित मनसः**	चित्त प्रसन्न हो जाता है ॥४॥
अहिपतयः	नागराज गण		

यस्यैव हि नागराजकुमार्य आशिष आशासानाश्चार्वङ्गवलयविलसितविशदविपुलधवलसुभगरुचिरभुजरजतस्तम्भेष्वगुरुचन्दनकुङ्कुमपङ्कानुलेपेनावलिम्पमानास्तदभिमर्शनोन्मथितहृदयमकरध्वजावेशरुचिरललितस्मितास्तदनुरागमदमुदितमदविघूर्णितारुणकरुणावलोकनयनवदनारविन्दं सव्रीडं किल विलोकयन्ति ॥५॥

यस्य एव हि नागराज कुमार्यः आशिष आशासानाः चारु अङ्ग वलय विलसित विशद विपुल धवल सुभग रुचिर भुज रजत स्तम्भेषु अगुरु चन्दन कुङ्कुम पङ्क अनुलेपेन अवलिम्पमानाः तत् अभिमर्शन उन्मथित हृदय मकरध्वज आवेश रुचिर ललित स्मिताः तद् अनुराग मद मुदित मद विघूर्णित अरुण करुण अवलोक नयन वद अरविन्दं सव्रीडं किल विलोक यन्ति ॥५॥

नागराज नागराजोंकी
कुमार्यः कुमारियां
हि यस्य एव क्योंकि जिनसे ही
आशिष (अपनी) कामनाओं
(की पूर्ति) को
आशासानाः चाहती हैं,
चारु अङ्ग मनोहर शरीरकी
वलय विलसित कङ्कण भूषित
विशद विपुल स्वच्छ विशाल,
धवल सुभग श्वेत, सुडौल,
रुचिर सुन्दर
रजत चांदीके
स्तम्भेषु खम्भोंके समान
भुज भुजाओंपर
अगुरु चन्दन अरगजा, चन्दन,
कुङ्कुम पङ्क केशरके पङ्क
अनुलेपन अङ्गराग
अवलिम्पमानाः लगाते समय
तत् अभिमर्शन उन (भुजाओं) के
स्पर्शसे
उन्मथित हृदय मथित होते हृदयमें
मकरध्वज काम
आवेश आवेशसे
रुचिर मनोहर
ललित स्मित सुन्दर मुस्कान
सहित
तत् उनके
अनुराग मद प्रेम मदसे
मुदित प्रफुलत
मद विघूर्णित मद-विह्वल
करुण अवलोक कृपावलोकन युक्त
अरुण नयन लाल नेत्रों वाले
बदनारविन्दं मुख-कमलको
किल सव्रीडं सलज्ज ही
विलोकयन्ति देखती हैं ॥५॥

स एव भगवाननन्तोऽनन्तगुणार्णव आदिदेव उपसंहृतामर्षरोषवेगो लोकानां स्वस्तय आस्ते ॥६॥

स एव भगवान् अनन्तः अनन्त गुण अर्णव आदिदेव उपसंहृत अमर्ष रोषवेगः लोकानां स्वस्तय आस्ते ॥६॥

स एव वही
अनन्त गुण अनन्त गुणोंके
अर्णव समुद्र
आदिदेव आदिदेव
भगवान् अनन्तः भगवान् अनन्त
लोकानां लोकोंके (समस्त)
स्वस्तय कल्याणके
लिए
अमर्ष (अपनी) असहन
शीलता और
रोषवेगः क्रोधके वेगको
उपसंहृत रोके हुए
आस्ते विराजमान हैं ॥६॥

ध्यायमानः सुरासुरोरगसिद्धगन्धर्वविद्याधरमुनिगणैरन-वरतमदमुदितविकृतविह्वललोचनः सुललितमुखरिकामृतेनाप्याय-मानः स्वपार्षदविबुधयूथपतीनपरिम्लानरागनवतुलसिकामोद मधवासवेन माद्यन्मधुकरव्रातमधुरगीतश्रियं वैजयन्तीं स्वां वनमालां नीलवासा एककुण्डलो हलककुदि कृतसुभगसुन्दरभुजो भगवान्माहेन्द्रो वारणेन्द्र इव काञ्चनीं कक्षामुदारलीलो बिभर्ति ॥७॥

ध्यायमानः सुर असुर उरग सिद्ध गन्धर्व विद्याधर मुनिगणैः अनवरत मदमुदित विकृत विह्वल लोचनः सुललित मुखरिक अमृतेन आप्यायमानः स्वपार्षद विबुध यूथपतीन् अपरिम्लानराग नवतुलसिका आमोद मधु आसवेन माद्यन् मधुकर व्रात मधुर गीत श्रियं वैजयन्तीं स्वां वनमालां नीलवासा एक कुण्डलः हल ककुदि कृत सुभग सुन्दर भुजः भगवान् माहेन्द्रः वारणेन्द्र इव काञ्चनीं कक्षां उदार लीलः बिभर्ति ॥७॥

सुर असुर	देवता, असुर,	**विबुध यूथपतीन्**	देव-यूथपोंको
उरग सिद्ध	नाग, सिद्ध,	**सुललित**	अत्यन्त सुन्दर
गन्धर्व	गन्धर्व,	**मुखरिक अमृतेन**	वचनामृतसे
विद्याधर	विद्याधर	**आप्यायमानः**	सन्तुष्ट करते रहते हैं।
मुनिगणैः	मुनिगणों द्वारा	**अपरिम्लानराग**	जिसकी शोभा कभी
ध्यायमानः	(उनका) ध्यान किया जाता है।		कुम्हलाती नहीं उस
अनवरत	(वे) निरन्तर	**नवतुलसिका**	नवीन तुलसीकी
मदमुदित	(प्रेम) मदसे मुदित,	**आमोद**	सुगन्धि और
विकृत विह्वल	चञ्चल और विह्वल	**मधु आसवेन**	मधुर-मकरन्द
लोचनः	नेत्र वाले हैं।	**माद्यन्**	पीकर मतवाले हुए
स्वपार्षद	अपने पार्षद	**मधुकर व्रात**	भौंरोंके झुण्डकी

मधुर गीत श्रियं	मधुर गुंजारकी शोभावाली	**नीलवासा**	नीलाम्बर,
स्वां वैजयन्तीं	अपनी वैजयन्ती	**एककुण्डलः**	एक ही कुण्डल
वनमालां	वनमालाको	**कृत हल ककुदि**	पीठके ककुदपर रखा हल
माहेन्द्रः वारणेन्द्र	इन्द्रके गजराज (ऐरावत)	**सुभग सुन्दर**	सुडौल सुन्दर
		भुजः	भुजा (हाथ) में
काञ्चनीं कक्षां	गलेमें पड़ी स्वर्ण शृंखला	**उदार लीलः**	(वे) उदार लीलामय
इव	की भाँति (तथा)	**बिभर्ति**	धारण करते हैं ॥७॥

य एष एवमनुश्रुतो ध्यायमानो मुमुक्षूणामनादिकालकर्म वासनाग्रथितमविद्यामयं हृदयग्रन्थि सत्त्वरजस्तमोमयमन्तर्हृदयं गत आशु निर्भिनत्ति तस्यानुभावान् भगवान् स्वायम्भुवो नारदः सह तुम्बुरुणा सभायां ब्रह्मणः संश्लोकयामास ॥८॥

य एष एवं अनुश्रुतः ध्यायमानः मुमुक्षूणां अनादि काल कर्म वासना ग्रथितं अविद्यामयं हृदयग्रन्थि सत्त्व रजः तमोमयं अन्तः हृदयं गतः आशु निर्भिनत्ति तस्य अनुभावान् भगवान् स्वायम्भुवः नारदः सह तुम्बुरुणा सभायां ब्रह्मणः संश्लोकयामास ॥८॥

य एष	जो ये (भगवान् अनन्त)	**अनादि काल**	अनादि कालसे
		कर्म वासना	कर्म-वासनासे
एवं अनुश्रुतः	इस प्रकार (माहात्म्य) बार-	**ग्रथितं**	उलझी
		सत्त्व रजः	सत्त्व, रज,
	बार सुननेसे तथा	**तमोमयं**	तम गुणमयी
ध्यायमानः	ध्यान करनेसे	**अविद्यामयं**	अविद्यारूपी
अन्तः हृदयं गतः	हृदयके भीतर प्रकट होकर	**हृदयग्रंथि**	हृदय-ग्रन्थिको
		आशु निर्भिनत्ति	शीघ्र काट देते हैं,
मुमुक्षूणां	मोक्षकी इच्छा वालोंकी	**तस्य अनुभावान्**	उनके प्रभावोंका
		ब्रह्मणः सभायां	ब्रह्माकी सभामें

स्वायम्भुवः	ब्रह्माजीके पुत्र
भगवान् नारदः	भगवान् नारदने
तुम्बुरुणा सह	तुम्बुरु (गन्धर्व) के साथ
संश्लोकयामास	गान किया ॥८॥

उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः
सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयाऽऽसन् ।
यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्
नानाधात्कथमु ह वेद तस्य वर्त्म ॥९॥

उत्पत्ति स्थिति लय हेतवः अस्य कल्पाः सत्त्व आद्याः प्रकृति गुणाः यत् ईक्षया आसन् यत् रूपं ध्रुवं अकृतं यत् एकं आत्मन् नानाधात् कथं उ ह वेद तस्य वर्त्म ॥९॥

उत्पत्ति स्थिति	उत्पत्ति, स्थिति,
लय	प्रलयके
हेतवः	कारण
अस्य कल्पाः	इन्होंने ही कल्पित किये हैं,
सत्त्व आद्याः	सत्त्व आदि
प्रकृति गुणाः	प्रकृतिके गुण
यत् ईक्षया	जिनको दृष्टि पड़नेसे
आसन्	उत्पन्न हुए,
यत् रूपं	जिनका स्वरूप
ध्रुवं अकृतं	ध्रुव (अनन्त) अकृत (अनादि) है,
यत् एक आत्मन्	जो अकेले होते हुए
नानाधात्	(इस) नानात्मक (प्रपञ्च) को धारण किए हैं,
तस्य वर्त्म	उनके मार्ग (स्वरूप) को
उ ह	निश्चित रूपसे
कथं वेद	(कोई) कैसे जान सकता है ॥९॥

मूर्ति नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं
संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ।
यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्या-
मादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥१०॥

मूर्ति नः पुरु कृपया बभार सत्त्वं संशुद्धं सद् असद् इदं विभाति यत्र यत् लीलां मृगपतिः आददे अनवद्यां आदातुं स्वजन मनांसि उदार वीर्यः ॥१०

यत्र इदं	जिनमें यह
सद् असद्	कारण कार्य रूप (जगत)
विभाति	भास रहा है,
यत् अनवद्यां	जिनकी निष्कलंक
लीलां	लीलाको (आदर्श मानकर)
मृगवतिः आददे	सिंहने अपनाया है,
स्वजन मनांसि	अपने जनोंके मनको
आदातुं	ग्रहण (आकर्षित) करनेके लिए
नः पुरु कृपया	हमपर बहुत कृपा करके
संशुद्धम् सत्त्वं	शुद्ध सत्त्व-गुणमयी
मूर्ति	श्रीविग्रह
उदार वीर्यः	(उन) उदार पराक्रमने
बभार	धारण किया है ॥१०

यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मा-
दार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ।
हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं
कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥११॥

यत् नाम श्रुतं अनुकीर्तयेत् अकस्मात् आर्तः वा यदि पतितः प्रलम्भनात् वा हन्ति अंहः सपदि नृणां अशेषं अन्यं कं शेषात् भगवतः आश्रयेन् मुमुक्षुः ॥११॥

यत् श्रुतं नाम	जिनका सुना हुआ नाम
अकस्मात्	अचानक
यदि आर्तः	यदि दुःखी
वा पतितः	या पतित (पुरुष)
वा प्रलम्भनात्	अथवा हँसीमें
अनुकीर्तयेत्	ले लेता है तो
सपदि नृणां	तुरन्त उस मनुष्यके
अशेषं अंहः	सम्पूर्ण पापोंको
हन्ति	(वह नाम) नष्ट कर देता है।
मुमुक्षुः	मुमुक्षु (पुरुष)
भगवतः शेषात्	(ऐसे) भगवान् शेषसे
अन्यं	भिन्न
कं आश्रयेन्	किसका आश्रय ले सकता है ॥११॥

मूर्ध्न्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो
भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् ।
आनन्त्यादनिमितविक्रमस्य भूम्नः
को वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ॥१२॥

मूर्धनि अर्पितं अणुवत् सहस्र मूर्ध्नः भूगोलं सगिरि सरित् समुद्र सत्त्वं आनन्त्यात् अनिमित विक्रमस्य भूम्नः कः वीर्याणि अधिगणयेत् सहस्र जिह्वः ॥१२॥

सगिरि सरित् समुद्र सत्त्वं	पर्वतों, नदियों, समुद्रों तथा प्राणियों सहित
भूगोलं	पृथ्वी-मण्डल
सहस्र मूर्ध्नः	(उन) सहस्रशीर्षाके
मूर्धनि	एक मस्तकपर
अणुवत् अर्पितं	एक अणुके समान रखा है,
आनन्त्यात्	अनन्त होनेके कारण
अनिमित	अपरिमित
विक्रमस्य भूम्नः	पराक्रम विभुके
वीर्याणि	पराक्रमोंको
सहस्त्र जिह्वः	सहस्र जीभवाला भी
कः अधिगणयेत्	गणना कौन कर सकता है ॥१२॥

एवम्प्रभावो भगवाननन्तो
दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः ।
मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो
यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ॥१३॥

एवं प्रभावः भगवान् अनन्तः दुरन्त वीर्यः उरु गुण अनुभावः मूले रसायः स्थितः आत्मतन्त्रः यः लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ॥१३॥

एवं प्रभावः	ऐसे प्रभावशाली
दुरन्त वीर्यः	अनन्त पराक्रम
उरुगुण	बहुत (असंख्य) गुण
अनुभावः	प्रभाव वाले
आत्मतन्त्रः	स्वतन्त्र (होनेपर भी)
यः भगवान्	जो भगवान्
अनन्तः	अनन्त
रसायः मूले	रसातलके मूलमें
स्थितः	स्थित होकर
स्थितये	(संसारको) स्थितिके लिए
लीलया	लीला पूर्वक
क्ष्यां बिभर्ति	पृथ्वीको धारण करते हैं ॥१३॥

एता ह्येवेह नृभिरुपगन्तव्या गतयो यथाकर्मविनिर्मिता यथोपदेशमनुवर्णिताः कामान् कामयमानैः ॥१४॥

एता हि एव इह नृभिः उपगन्तव्या गतयः यथा कर्म विनिर्मिता यथा उपदेशं अनुवर्णिताः कामान् कामयमानैः ॥१४॥

कामान्	भोगोंको	**एता हि एव**	इतनी ही मात्र
कामयमानैः	चाहनेवाले	**गतयः**	गतियां हैं,
नृभिः	मनुष्योंकी	**यथा उपदेशं**	जैसा गुरुमुखसे
यथा कर्म	कर्मानुसार		सुना था
विनिर्मिता	बनी हुई	**अनुवर्णिताः**	वर्णन कर
उपगन्तव्या	पहुँचनेकी		दिया ॥१४॥
इह	इस (संसार) में		

एतावतीर्हि राजन् पुंसः प्रवृत्तिलक्षणस्य धर्मस्य विपाकगतय उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये किमन्यत्कथयाम इति ॥१५॥

एतावतीः हि राजन् पुंसः प्रवृत्ति लक्षणस्य धर्मस्य विपाक गतयः उच्च अवचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये किं अन्यत् कथयाम इति ॥१५॥

राजन्	राजन् !	**गतयः**	गतियां
पुंसः	मनुष्यको	**एतावतीः हि**	इतनी ही हैं
प्रवृत्ति लक्षणस्य	प्रवृत्ति रूप	**यथाप्रश्नं**	(तुम्हारे) प्रश्नके
धर्मस्य	धर्मके		अनुसार
विपाक	परिणाममें (प्राप्त होने वाली)	**व्याचख्ये**	बतला दीं ।
		इति	इस प्रकार
उच्च अवचा	ऊँची, नीची,	**अन्यत् किं**	और क्या
विसदृशा	परस्पर विलक्षण	**कथयाम**	बतलाऊँ ? ॥१५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भूविवरविध्युपवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

राजोवाच

महर्ष एतद्वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति ॥१॥

महर्ष एतत् वैचित्र्यं लोकस्य कथं इति ॥१॥

महर्षे	महर्षि !	**इति**	इस प्रकार
लोकस्य	लोगोंकी (इतनी विभिन्न)	**एतत्**	यह
		कथं	क्यों है ॥१॥
वैचित्र्यं	विचित्रता		

श्रीशुक उवाच-*

त्रिगुणतवात्कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वाएव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति ॥२॥

त्रिगुणत्वात् कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथक् विधाः सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति ॥२॥

कर्तुः	कर्ताके	**पृथक् विधाः**	भिन्न-भिन्न प्रकार-
श्रद्धया	(और) श्रद्धाके भी		की
त्रिगुणत्वात्	त्रिगुणात्मक (सात्विक, राजस, तामस) होनेसे	**सर्वा एव**	सभी (गतियां)
		तारतम्येन	कम-अधिक
		सर्वस्य	सबकी
कर्मगतयः	कर्मकी गतियां	**भवन्ति**	होती हैं ॥२॥

---

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है।

अथेदानीं प्रतिषिद्धलक्षणस्याधर्मस्य तथैव कर्तुः श्रद्धया वैसादृश्यात्कर्मफलं विसदृशं भवति या ह्यनाद्यविद्यया कृत-कामानां तत्परिणामलक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्तास्तासां प्राचुर्येणानुवर्णयिष्यामः ॥३॥

अथ इदानीं प्रतिषिद्ध लक्षणस्य अधर्मस्य तथा एव कर्तुः श्रद्धया वैसादृश्यात् कर्मफलं विसदृशं भवति या हि अनादि अविद्यया कृत कामानां तत् परिणाम लक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्ताः तासां प्राचुर्येण अनुवर्ण-यिष्यामः ॥३॥

प्रतिषिद्ध	निषिद्ध
लक्षणस्य	कर्मरूप अधर्मके
कर्तुः श्रद्धया	कर्ताकी श्रद्धाके
वैसादृश्यात्	विषम होनेसे
तथा एव	वैसे ही
कर्मफलं	(उनके) कर्मका फल
विसदृशं भवति	असमान होता है।
या हि	जो कि
अनादि	अनादि
अविद्यया	अविद्याके वशमें
कृत कामानां	कामना पूर्वक किए गये कर्म
तत् परिणाम लक्षणाः सृतयः	उनके परिणाम स्वरूप गतियां
सहस्रशः	हजारों
प्रवृत्ताः	चल रही हैं
अथ इदानीं	अब इस समय
तासां प्राचुर्येण अनुवर्णयिष्यामः	उनका विस्तारसे वर्णन करूँगा ॥३॥

राजोवाच–

नरका नाम भगवन् किं देशविशेषा,अथवा बहिस्त्रिलोक्या आहोस्विदन्तराल इति ॥४॥

नरका नाम भगवन् किं देश विशेषा अथवा बहिः त्रिलोक्या आहो-स्वित् अन्तराल इति ॥४॥

भगवन्	भगवन् !
नरका नाम	नरक नामक
किं देश विशेषा	क्या (पृथ्वीके ही) देश विशेष हैं,

अथवा बहिः त्रिलोक्या अथवा तीनों लोकोंसे बाहर हैं,

आहोस्वित् अन्तराज इति अथवा इसी प्रकार (भूविलोंकी भांति पृथ्वीके) भीतर (कहीं) हैं ॥४॥

*श्रीशुक उवाच-**

अन्तराल एव त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्यामधस्ताद्भूमेरुपरिष्टाच्च जलाद्यस्यामग्निष्वात्तादयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एवाशिष आशासाना निवसन्ति ॥५॥

अन्तराल एव त्रिजगति अस्तु दिशि दक्षिणस्यां अधस्तात् भूमेः उपरिष्टात् च जलात् यस्यां अग्निष्वात्त आदयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एव आशिष आशासाना निवसन्तिः ॥५॥

त्रिजगति	त्रिलोकीके	**आदयः**	आदि
अन्तराल एव	भीतर ही हैं।	**पितृगणा**	पितृगण
अस्तु	अस्तु	**स्वानां गोत्राणां**	अपने वंशजोंके लिए
दिक्षि दक्षिणस्यां	दक्षिण दिशामें	**परमेण**	अत्यन्त
भूमेः अधस्तात्	पृथ्वीसे नीचे	**समाधिना**	एकाग्रता पूर्वक
च जलात्	और जलके	**सत्या एव**	सत्य होनेवाली
उपरिष्टात्	ऊपर हैं।	**आशिष**	मंगल
यस्यां दिशि	जिस दिशामें	**आशासाना**	कामना करते
अग्निष्वात्त	अग्निष्वात्त	**निवसन्ति**	बसते हैं ॥५॥

यत्र ह वाव भगवान् पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जन्तुषु सम्परेतेषु यथाकर्मावद्यं दोषमेवानुल्लङ्घितभगवच्छासनः सगणो दमं धारयति ॥६॥

---

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है।

यत्र ह वाव भगवान् पितृराजः वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैः जन्तुषु सम्परेतेषु यथा कर्म अवद्यं दोषं एव अनुल्लङ्घित भगवत् शासनः सगणः दमं धारयति ॥६॥

यत्र ह वाव	जहां निश्चित ही
पितृराजः	पितृराज
वैवस्वतः	सूर्य-पुत्र (यम)
भगवत् शासनः	भगवान्‌की आज्ञाका
अनुल्लङ्घित	उल्लंघन न करके
स्वपुरुषैः	अपने दूतों द्वारा
सम्परेतेषु जन्तुषु	मृत प्राणियोंको
स्वविषयं	अपने सम्मुख
प्रापितेषु	लानेपर
यथा कर्म अवद्यं	(उनके) दुष्कर्मोंके अनुसार
दोषं एव	पापके ही फलस्वरूप
सगणः	अपने गणोंके साथ
दमं धारयति	दण्ड देते हैं ॥६॥

तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयन्ति अथ तांस्ते राजन्नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामस्तामिस्रोऽन्धतामिस्रो रौरवो महारौरवः कुम्भीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकरमुखमन्धकूपः कृमिभोजनः सन्दंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकण्टकशाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयः पानमिति । किञ्च क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतो दन्दशूकोऽवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमित्यष्टाविंशतिर्नरका विविधयातनाभूमयः ॥७॥

तत्र ह एके नरकान् एकविंशतिं गणयन्ति अथ तांस्ते राजन् नाम रूप लक्षणतः अनुक्रमिष्यामः तामिस्रः अन्धतामिस्रः रौरवः महारौरवः कुम्भीपाकः कालसूत्रं असिपत्रवनं सूकर मुखं अन्धकूपः कृमिभोजनः सन्दंशः तप्तसूर्मिः वज्र कण्टक शाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधः विशसनं लाला भक्षः सारमेयादनं अवीचिः अयः पानं इति किञ्च क्षारकर्दमः रक्षोगण भोजनः शूलप्रोतः दन्दशूकः अवट निरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखं इति अष्टाविंशतिः नरका विविध यातना भूमयः ॥७॥

तत्र ह एके	कोई-कोई वहां तो
नरकान्	नरकोंकी
गणयन्ति	गणना
एकविंशतिं	इक्कीस करते हैं।
राजन्	राजन् !
अथ तांस्ते	अब उनको तुम्हें
नाम रूप	नाम, रूप,
लक्षणतः	लक्षण सहित
अनुक्रमिष्यामः	क्रमशः बतलाता हूँ,
तामिस्रः	तामिस्र,
अन्धतामिस्रः	अन्धतामिस्र
रौरवः	रौरव,
महारौरवः	महारौरव,
कुम्भीपाकः	कुम्भीपाक,
कालसूत्रं	कालसूत्र,
असिपत्रवनं	असिपत्रवन,
सूकरमुखः	सूकरमुख,
अन्धकूपः	अन्धकूप,
कृमिभोजनः	कृमिभोजन,
सन्दंशः	सन्दंश,
तप्तसूर्मिः	तप्तसूर्मि,
वज्रकण्टक	वज्रकण्टक
शाल्मली	शाल्मली,
वैतरणी पूयोदः	वैतरणी, पूयोद
प्राणरोधः	प्राणरोध,
विशसनं	विशसन,
लालाभक्षः	लालाभक्ष,
सारमेयादनं	सारमेयादन
अवीचिः	अवीचि,
अयः पानं	अयः पान
इति	इस प्रकार
किञ्च	इनके अतिरिक्त
क्षारकर्दमः	क्षारकर्दम,
रक्षोगण	रक्षोगण
भोजनः	भोजन,
शूलप्रोतः	शूलप्रोत,
दन्दशूकः	दन्दशूक,
अवट निरोधनः	अवट निरोधन,
पर्यावर्तनः	पर्यावर्तन,
सूचीमुखं	सूचीमुखं
इति	इस प्रकार
अष्टाविंशतिः	अट्ठाइस
नरकाः	नरक
विविध यातना	अनेक प्रकारकी यातनाके
भूमयः	स्थान हैं ॥७॥

तत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि कालपाशबद्धो यमपुरुषैरतिभयानकैस्तामिस्रे नरके बलान्निपात्यते अनशनानुदपानदण्डताडनसंतर्जनादिभिर्यातनाभिर्यत्यिमानो जन्तुर्यत्र कश्मलमासादित एकदैव मूर्च्छामुपयाति तामिस्रप्राये ॥८॥

तत्र यः तु परवित्त अपत्य कलत्राणि अपहरति स हि कालपाश बद्धः यमपुरुषैः अतिभयानकैः तामिस्रे नरके बलात् निपात्यते अनशन अनुदपान

दण्ड ताडन संतर्जन आदिभिः यातनाभिः यात्यमानः जन्तुः यत्र कश्मलं आसादितः एकदैव मूर्छां उपयाति तामिस्रप्राये ॥८॥

तत्र यः तु	वहां जो भी
परवित्त	दूसरेके धन,
अपत्य कलत्राणि	पुत्र, स्त्री आदिका
अपहरति	हरण करता है
स हि	वह निश्चय
अतिभयानकैः	अत्यन्त भयानक
यमपुरुषैः	यमदूतों द्वारा
कालपाश बद्धः	कालपाशमें बाँधकर
तामिस्रे नरके	तामिस्र नरकमें
बलात्	बलपूर्वक
निपात्यते	गिरा दिया जाता है।
तामिस्रप्राये	उस अन्धकार-पूर्ण (नरक) में
अनशन-	अन्न-जल
अनुदपान	न देते,
दंड ताडन	डंडेसे मारने,
संतर्जन	डांटने
आदिभिः	आदि
यातनाभिः	पीड़ाओं द्वारा
यात्यमानः	पीड़ित किए जानेपर
एकदैव	एकाएक
मूर्छां उपयाति	मूर्छित हो जाता है ॥८॥

एवमेवान्धतामिस्रे यस्तु वञ्चयित्वा पुरुषं दारादीनुपयुङ्क्ते यत्र शरीरी निपात्यमानो यातनास्थो वेदनया नष्टमतिर्नष्टदृष्टिश्च भवति यथा वनस्पतिर्वृश्च्यमानमूलस्तस्मादन्धतामिस्रं तमुपदिशन्ति ॥९॥

एवं एव अन्ध तामिस्रे यः तु वञ्चयित्वा पुरुषं दारादीन् उपयुङ्क्ते यत्र शरीरी निपात्यमानः यातनास्थः वेदनया नष्टमतिः नष्ट दृष्टिः च भवति यथा वनस्पतिः वृश्च्यमान मूलः तस्मात् अन्धतामिस्रं तं उपदिशन्ति ॥९॥

एवं एव	इसी प्रकार
यः तु पुरुषं	जो कि पुरुषको
वञ्चयित्वा	धोखा देकर
दारादीन्	(उसकी) पत्नी आदिका
उपयुङ्क्ते	उपभोग करता है (वह)
यत्र अन्ध-	जिस अन्ध-
तामिस्रे	तामिस्र (नरक) में
निपात्यमानः	गिराये जानेपर

शरीरी	प्राणी
यातनास्थः	यातना पाते हुए
वेदनया	पीड़ासे (उसकी)
नष्टमतिः	बुद्धि नष्ट हो जाती है,
च नष्ट दृष्टिः	और दृष्टि नष्ट हो जाती है,
यथा वनस्पतिः	जैसे वृक्ष
वृश्च्यमान मूलः	जड़ काटे जानेपर,
तस्मात् तं	इसलिए उसे
अन्धतामिस्रं	अन्धतामिस्र
उपदिशन्ति	कहते हैं ॥९॥

यस्त्विह वा एतदहमिति ममेदमिति भूतद्रोहेण केवलं स्वकुटुम्बमेवानुदिनं प्रपुष्णाति स तदिह विहाय स्वयमेव तदशुभेन रौरवे निपतति ॥१०॥

यः तु इह वा एतत् अहं इति मम इदं इति भूतद्रोहेण केवलं स्वकुटुम्बं एव अनुदिनं प्रपुष्णाति स तत् इह विहाय स्वयं एव तत् अशुभेन रौरवे निपतति ॥१०॥

यः तु इह वा	जो भी इस (संसार) में
एतत् अहं	'यह शरीर मैं हूँ'
इति	इस प्रकार
मम इदं	'ये मेरे हैं'
इति	इस प्रकार (अहंता ममता करके)
भूतद्रोहेण	प्राणियोंसे द्रोह करके
केवलं	केवल
स्वकुटुम्बं एव	अपने कुटुम्बका ही
अनुदिनं	प्रतिदिन
प्रपुष्णाति	पोषण करता है
स तत्	वह उस (शरीर और परिवार) को
इह विहाय	यहीं छोड़कर
स्वयं एव	स्वयं ही
तत् अशुभेन	उस पापसे
रौरवे निपतति	रौरव नरकमें गिरता है ॥१०॥

ये त्विह यथैवामुना विहिंसिता जन्तवः परत्र यमयातनामुपगतं त एव रुरवो भूत्वा तथा तमेव विहिंसन्ति तस्माद्रौरवमित्याहू रुरुरिति सर्पादतिक्रूरसत्त्वस्यापदेशः ॥११॥

ये तु इह यथा एव अमुना विहिंसिता जन्तवः परत्र यमयातनां उपगतं त एव रुरवः भूत्वा तथा तं एव विहिंसन्ति तस्मात् रौरवं इति आहू रुरुः इति सर्पात् अतिक्रूर सत्त्वस्य अपदेशः ॥११॥

इह	इस लोकमें	**रुरवः भूत्वा**	रुरु होकर
ये तु जन्तवः	जो भी प्राणी	**तथा तं एव**	उसी प्रकार उसे ही
यथा एव	जैसे	**विहिंसन्ति**	मारते हैं,
अमुना	इसके द्वारा	**तस्मात्**	इसलिए
विहिंसिता	मारे गये हैं,	**रौरवं इति आहू**	(उस नरकको) रौरव कहते हैं।
परत्र	परलोकमें		
यमयातनां	यम-यातना	**रुरु इति**	रुरु यह
उपगतं	पाने पहुँचनेपर	**सर्पात् अतिक्रूर**	सर्पसे भी अत्यन्तक्रूर
त एव	वही (उसके द्वारा मारे गये प्राणी)	**सत्त्वस्य अपदेशः**	प्राणीका नाम है ॥११॥

एवमेव महारौरवो यत्र निपतितं पुरुषं क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्येण घातयन्ति यः केवलं देहम्भरः ॥१२॥

एवं एव महारौरवः यत्र निपतितं पुरुषं क्रव्यादा नाम रुरवः तं क्रव्येण घातयन्ति यः केवलं देहम्भरः ॥१२॥

एवं एव	इसी प्रकार	**यत्र निपतितं**	(उसके) जहां गिरनेपर
महारौरवः	महारौरव नरक है	**क्रव्यादा नाम**	क्रव्याद नामके
यः केवलं	जो केवल (दूसरेकी चिन्ता छोड़कर)	**रुरवः**	(कच्चा मांस खाने-वाले) रुरु
देहम्भरः	अपने शरीरका ही पोषक रहा है	**तं क्रव्येण घातयन्ति**	उसे मांसके लोभसे मारते हैं ॥१२॥

यस्त्विह वा उग्रः पशून् पक्षिणो वा प्राणत उपरन्धयति तमपकरुणं पुरुषादैरपि विगर्हितममुत्र यमानुचराः कुम्भीपाके तप्ततैले उपरन्धयन्ति ॥१३॥

यः तु इह वा उग्रः पशून् पक्षिणः वा प्राणत उपरन्धयति तं अपकरुणं पुरुषादैः अपि विगर्हितं अमुत्र यम अनुचराः कुम्भीपाके तप्ततैले उपरन्धयन्ति ॥१३॥

यः तु	जो भी कोई	**पुरुषादैः अपि**	राक्षसोंसे भी (अधिक)
उग्रः	क्रूर	**विगर्हितं**	निन्दितको
इह	इस लोकमें	**अमुत्र**	यमलोकमें
पशून् वा पक्षिणः	पशुओं या पक्षियोंको	**यम अनुचराः**	यमराजके सेवक
प्राणत	जीवित	**कुम्भीपाके**	कुम्भीपाक (नरक) में
उपरन्धयति	पकाता है	**तप्ततैले**	खौलते तेलमें
तं अपकरुणं	उस हृदयहीन	**उपरन्धयन्ति**	राँधते हैं ॥१३॥

यस्त्विह पितृविप्रब्रह्मध्रुक् स कालसूत्रसंज्ञके नरके अयुतयोजनपरिमण्डले ताम्रमये तप्तखले उपर्यधस्तादग्न्यर्काभ्यामतितप्यमानेऽभिनिवेशितः क्षुत्पिपासाभ्यां च दह्यमानान्तर्बहिः शरीर आस्ते शेते चेष्टतेऽवतिष्ठति परिधावति च यावन्ति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्राणि ॥१४॥

यः तु इह पितृ विप्र ब्रह्म ध्रुक् स कालसूत्र संज्ञके नरके अयुत योजन परिमण्डले ताम्रमये तप्तखले उपरि अधस्तात् अग्नि अर्काभ्यां अतितप्यमाने अभिनिवेशितः क्षुत् पिपासाभ्यां च दह्यमानः अन्तः बहिः शरीर आस्ते शेते चेष्टते अवतिष्ठति परिधावति च यावन्ति पशुरोमाणि तावत् वर्ष सहस्राणि ॥१४॥

यः तु इह	जो भी इस लोकमें	**संज्ञके**	नामक
पितृ विप्र	पिता-माता, ब्राह्मण तथा	**नरके**	नरकमें
		अभिनिवेशितः	डाला जाता है।
ब्रह्म ध्रुक्	वेदसे द्रोह करता है,	**ताम्रमये**	(वह) तांबेका
स कालसूत्र	वह काल सूत्र		बना है।

अयुत योजन	दस हजार योजन
परिमण्डले	घेरेका
उपरि अधस्तात्	ऊपर और नीचे
अग्नि अर्काभ्यां	अग्नि और सूर्य द्वारा
तप्तखले	तपता मैदान है,
अतितप्यमाने	अत्यन्त तपाया जाता है।
क्षुत् पिपासाभ्यां	(इसमें) भूख प्याससे
अन्तः बहिः	बाहर-भीतरसे
शरीर च	शरीर भी
दह्यमानः	जलता हुआ
पशुरोमाणि	उस नर पशुमें
यावन्ति च	जितने भी
रोमाणि	रोम हैं,
तावत् वर्ष	उतने वर्ष-
सहस्राणि	सहस्र तक
आस्ते शेते	कभी बैठता है, लेटता है,
चेष्टते	छटपटाता है,
अवतिष्ठति	खड़ा रहता है,
परिधावति	(कभी) दौड़ता है ॥१४॥

यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्डं चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति तत्र ह्यासावितस्ततो धावमान उभयतोधारैस्तालवनासिपत्रैश्छिद्यमानसर्वाङ्गो हा हतोऽस्मीति परमया वेदनया मूर्च्छितः पदे पदे निपतति स्वधर्महा पाखण्डानुगतं फलं भुङ्क्ते ॥१५॥

यः तु इह वै निजवेद पथात् अनापदि अपगतः पाखण्डं च उपगतः तं असिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति तत्र ह असौ इतस्ततः धावमानः उभयतः धारैः तालवन असिपत्रैः छिद्यमान सर्वाङ्गः हा हतोऽस्मि इति परमया वेदनया मूर्च्छितः पदे पदे निपतति स्वधर्महा पाखण्ड अनुगतं फलं भुङ्क्ते ॥१५॥

यः तु इह	जो भी यहां
अनापदि	आपत्तिकाल न होनेपर भी
निजवेद पथात्	अपने वैदिक मार्गको
अपगतः	छोड़कर
च पाखण्डं	अन्य पाखण्ड (धर्म)
उपगतः	अपनाता है,
तं	उसे
असिपत्रवनं	असिपत्रवनमें
प्रवेश्य	ले जाकर
कशया प्रहरन्ति	कोड़ोंसे मारते हैं,
तत्र ह असौ	वहां तो यह

इतस्ततः	इधर-उधर
धावमानः	दौड़ता हुआ
तालवन	तालवनके
असिपत्रैः	तलवारके समान पत्तोंसे
सर्वाङ्गैः	सब
छिद्यमानैः	अंगोंके कटनेसे
'हा हतोऽस्मि'	'हाय मारा गया'
इति	इस प्रकार (चिल्लाता)
परमया वेदनया	घोर पीड़ासे
मूर्च्छितः	मूर्छित होता
पदे पदे	पद-पदपर
निपतति	गिरता है,
स्वधर्महा	(इस प्रकार) अपने धर्मको छोड़नेवाला
पाखण्ड अनुगतं	पाखण्डके पीछे जानेका
फलं भुङ्क्ते	फल भोगता है ॥१५

यस्त्विह वै राजा राजपुरुषो वा अदण्ड्ये दण्डं प्रणयति ब्राह्मणे वा शरीरदण्डं स पापीयान्नरकेऽमुत्र सूकरमुखे निपतति तत्रातिबलैर्विनिष्पिष्यमाणावयवो यथैवेहेक्षुखण्ड आर्तस्वरेण स्वनयन् क्वचिन्मूर्च्छितः कश्मलमुपगतो यथैवेहादृष्टदोषा उपरुद्धाः ॥१६॥

यः तु इह वै राजा राजपुरुषः वा अदण्ड्ये दण्डं प्रणयति ब्राह्मणे वा शरीरदण्डं स पापीयान् नरके अमुत्र सूकरमुखे निपतति तत्र अतिबलैः विनिष्पिष्यमाण अवयवः यथा इव इह इक्षु खण्ड आर्तस्वरेण स्वनयन् क्वचित् मूर्च्छितः कश्मलं उपगतः यथैव इह अदृष्ट दोषा उपरुद्धाः ॥१६॥

यः तु इह वै	जो भी इस लोकमें तो
राजा वा	राजा या
राजपुरुषः	राजकर्मचारी
अदण्ड्ये	निरपराधको
दण्डं वा	दण्ड देते अथवा
ब्राह्मणे	ब्राह्मणको
शरीरदण्डं	शारीरिक दण्ड
प्रणयति	देते हैं,
स पापीयान्	वह पापिष्ठ
अमुत्र	उस लोकमें
सूकरमुखे	सूकर मुख
नरके निपतति	नरकमें गिरता है।
यथा इव इह	जैसे इस लोकमें
इक्षु खण्डः	गन्नोंको (पेरते हैं)
तत्र अतिबलैः	वहाँ बहुत बलवान (यमदूत द्वारा)
विनिष्पिष्यमाण	पीसे (कुचले) जाते

अवयवः	अंगोंसे
यथा इव इह	जैसे इस लोकमें
अदृष्ट दोषा	निरपराध लोग
उपरुद्धाः	सताये जानेपर
कृच्छ्रं उपशमः	कष्ट पाते थे
आर्तस्वरेण	आर्त स्वरसे
स्वनयन्	चिल्लाता हुआ,
क्वचित् मूर्च्छितः	कभी मूर्छित हो जाता है॥१६॥

यस्त्विह वै भूतानामीश्वरोपकल्पितवृत्तीनामविवित्तपरव्यथानां स्वयं पुरुषोपकल्पितवृत्तिर्विविक्त परव्यथो व्यथामाचरति स परत्रान्धकूपे तदभिद्रोहेण निपतति तत्र हासौ तैर्जन्तुभिः पशुमृगपक्षिसरीसृपैर्मशकयूकामत्कुणमक्षिकादिभिर्ये के चाभिद्रुग्धास्तैः सर्वतोऽभिद्रुह्यमाणस्तमसि विहयनिद्रानिर्वृतिरलब्धास्थानः परिक्रामति यथा कुशरीरे जीवः ॥१७॥

यः तु इह वै भूतानां ईश्वर उपकल्पित वृत्तीनां अविवित्त परव्यथानां स्वयं पुरुष उपकल्पित वृत्तिः विविक्त परव्यथः व्यथां आचरति स परत्र अन्धकूपे तत् अभिद्रोहेण निपतति तत्र ह असौ तैः जन्तुभिः पशु मृग पक्षि सरीसृपैः मशक यूका मत्कुण मक्षिकादिभिः ये के च अभिद्रुग्धाः तैः सर्वतः अभिद्रुह्यमाणः तमसि विहत निद्रा निर्वृतिः अलब्ध अवस्थानः परिक्रामति यथा कुशरीरे जीवः ॥१७॥

यः तु इह वै	जो कोई भी इस लोकमें
स्वयं परव्यथः	स्वयं दूसरोंकी पीड़ा
विविक्त	समझनेवाला (होकर)
पुरुष उपकल्पित	परमात्मा द्वारा दी गयी
वृत्तिः	(विधि-निषेधयुक्त) आजीविकावाला
परव्याथानां	दूसरेकी पीड़ा
अविवित्त	न जाननेवाले
ईश्वर	ईश्वर
उपकल्पित	प्रदत्त
वृत्तीनां	आजीविकावाले
भूतानां	प्राणियोंको
व्यथां आचरति	पीड़ा देता है,
स परत्र	वह परलोकमें
तत् अभिद्रोहेण	उस द्रोहके कारण
अन्धकूपे	अन्धकूप नरकमें
निपतति	गिरता है,
तत्र ह असौ	वहां तो यह
जन्तुः	प्राणी

पशु मृगपक्षि	पशु, मृग, पक्षी,
सरीसृपैः मशक	सर्पादि सरकनेवाले, मच्छर
यूका मत्कुण	जोंक, खटमल
मक्षिकादिभिः	मक्खियों द्वारा
ये के च	जिस किसीसे भी
अभिद्रुग्धाः	द्रोह किया था
तैः	उनके द्वारा
सर्वतः	चारों ओरसे
अभिद्रुह्यमाणः	द्रोह किये (सताये) जानेसे
विहत निद्रा	निद्रा और शान्ति
निर्वृतिः	नष्ट हो जाती है,
अलब्ध	स्थान न
अवस्थानः	मिलनेसे
यथा कुशरीरे	जैसे रोगी
जीवः	शरीरमें जीव
परिक्रामति	छटपटाता-घूमता रहता है ॥१७॥

यस्त्विह वा असंविभज्याश्नाति यत्किञ्च नोपनतमनिर्मितपञ्चयज्ञो वायससंस्तुतः स परत्र कृमिभोजने नरकाधमे निपतति तत्र शतसहस्रयोजने कृमिकुण्डे कृमिभूतः स्वयं कृमिभिरेव भक्ष्यमाणः कृमिभोजनो यावत्तदत्ताप्रहुतादोऽनिर्वेशमात्मानं यातयते ॥१८॥

यः तु इह वा असंविभज्य अश्नाति यत् किञ्चित् न उपनतं अनिर्मित पञ्चयज्ञः वायस संस्तुतः स परत्र कृमिभोजने नरक अधमे निपतति तत्र शतसहस्रयोजने कृमिकुण्डे कृमिभूतः स्वयं कृमिभिः एव भक्ष्यमाणः कृमि भोजनः यावत् तत् अत्त अप्रहुत आदो अनिर्वेशं आत्मानं यातयते ॥१८॥

यः तु इह वा	जो भी इस लोकमें ही
यत् किञ्चित्	जो कुछ भी
उपनतं	मिला है उसे
असंविभज्य	बिना बांटे ही
पञ्चयज्ञः	पञ्च-महायज्ञ
अनिर्मित	किये बिना
अश्नाति	खा लेता है,
वायस संस्तुतः	(उसे) कौएके समान कहा गया है
स परत्र	वह परलोकमें
कृमिभोजने	कृमिभोजन नामक
नरक अधमे	अधम नरकमें
निपतति	गिरता है।
तत्र	वहाँ
शतसहस्रयोजने	एक लाख योजनके

कृमिकुण्डे	कीडोंके कुण्डमें
कृमिभूतः	कीड़ा होकर
कृमिभिः एव	कीड़ोंके द्वारा ही
भक्ष्यमाणः	खाया जाता हुआ
स्वयं	स्वयं
कृमि भोजनः	कीड़े ही खाता है।
यावत् तत्	जब तक उस
न अत्त	न बांटने
अप्रहुत	पञ्च-महायज्ञ न करने
आदो आत्मानं	आदि अपने (पापों-का)
अनिर्वेशं	प्रायश्चित नहीं हो जाता
यातयते	कष्ट भोगता रहता है ॥१८॥

यस्त्विह वै स्तेयेन बलाद्वा हिरण्यरत्नादीनि ब्राह्मणस्य वापहरत्यन्यस्य वानापदि पुरुषस्तममुत्र राजन् यमपुरुषा अयस्मयैरग्निपिण्डैः सन्दंशैस्त्वचि निष्कुषन्ति ॥१९॥

यः तु इह वै स्तेयेन बलात् वा हिरण्य रत्न आदीनि ब्राह्मणस्य वा अपहरति अन्यस्य वा अनापदि पुरुषः तं अमुत्र राजन् यमपुरुषाः अयस्मयैः अग्निपिण्डैः सन्दंशैः त्वचि निष्कुषन्ति ॥१९॥

राजन्	राजन् !
यः तु इह वै	जो भी इस लोकमें तो
स्तेयेन	चोरीसे
वा बलात्	अथवा बलपूर्वक
ब्राह्मणस्य	ब्राह्मणका
वा अनापदि	अथवा आपत्ति न होनेपर भी
अन्यस्य	दूसरे किसीका
हिरण्य वा	सोना अथवा
रत्न आदीनि	रत्न आदि
अपहरति	अपहरण करता है
अमुत्र	परलोकमें
तं पुरुषः	उस प्राणीको
यमपुरुषाः	यमराजके सेवक
सन्दंशैः	सन्दंश नरकमें
अयस्मयैः	लोहेसे बने
अग्निपिण्डैः	तप्त गोलेसे
निष्कुषन्ति	चमड़ेको दागते हैं
सन्दंशै	संडासीसे
त्वचि	बाल खींचते हैं ॥१९॥

यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्यं वा पुरुषं योषिदभिगच्छति तावमुत्र कशया ताडयन्तस्तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुषमालिङ्गयन्ति स्त्रियं च पुरुषरूपया सूर्म्या ॥२०॥

यः तु इह वा अगम्यां स्त्रियं अगम्यं वा पुरुषं योषित् अभिगच्छति ताः अमुत्र कशया ताडयन्तः तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुषं आलिङ्ग यन्ति स्त्रियं च पुरुष रूपया सूर्म्या ॥२०॥

यः तु इह वा	जो भी कोई इस लोकमें
अगम्यां स्त्रियं	अगम्या स्त्रीसे
वा अगम्यं पुरुषं	अथवा अगम्य पुरुषसे
योषित्	स्त्री
अभिगच्छति	सहवास करती है
ताः अमुत्र	उन दोनोंको परलोकमें
कशया ताडयन्तः	कोड़ोंसे मारते हुए
लोहमय्या	लोहेसे बनी
तिग्मया सूर्म्या	तप्त स्त्री मूर्तिसे
च स्त्रियं	और स्त्रीको
पुरुष रूपया	पुरुषाकृति
सूर्म्या	तप्त मूर्तिसे
आलिङ्ग यन्ति	आलिंगन कराते हैं ॥२०॥

यस्त्विह वै सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्तमानं वज्र-कण्टकशाल्मलीमारोप्य निष्कषन्ति ॥२१॥

यः तु इह वै सर्व अभिगमः तं अमुत्र निरये वतमानं वज्र कण्टक शाल्मलीं आरोप्य निष्कर्षन्ति ॥२१॥

यः तु इह वै	जो भी तो इस लोकमें
सर्व अभिगमः	(पशु आदि) सभीसे व्यभिचार करता है
अमुत्र तं	परलोकमें उसे
निरये वर्तमानं	नरकमें ले जाकर
वज्र कण्टक	वज्रके समान कांटो वाले
शल्मलीं	सेमर-वृक्षपर
आरोप्य	चढ़ाकर
निष्कर्षन्ति	नीचे खींचते हैं ॥२१॥

ये त्विह वै राजन्या राजपुरुषा वा अपाखण्डा धर्मसेतून् भिन्दन्ति ते सम्परेत्य वैतरण्यां निपतन्ति भिन्नमर्यादास्तस्यां निरयपरिखाभूतायां नद्यां यादोगणैरितस्ततो भक्ष्यमाणा आत्मना न वियुज्यमानाश्चासुभिरुह्यमानाः स्वाघेन कर्मपाकमनुस्मरन्तो विण्मूत्रपूयशोणितकेशनखास्थिमेदोमांसवसावाहिन्यामुपतप्यन्ते ॥२२

ये तु इह वै राजन्या राजपुरुषा वा अपाखण्डा धर्मसेतून् भिन्दन्ति ते सम्परेत्य वैतरण्यां निपतन्ति भिन्न मर्यादाः तस्यां निरय परिखा भूतायां नद्यां यादो गणैः इतः ततः भक्ष्यमाणः आत्मना न वियुज्यमानाः च असुभिः उह्यमानाः स्व अघेन कर्मपाकं अनुस्मरन्तः विट् मूत्र पूय शोणित केश नख अस्थि मेदः मांस वसा वाहिन्यां उपतप्यन्ते ॥२२॥

ये तु इह	जो भी इस लोकमें
वै राजन्या	कोई राजा
वा राजपुरुषा	अथवा राजकर्मचारी
अपाखण्डा	पाखण्डी न होनेपर भी
धर्मसेतून्	धर्मकी मर्यादाको
भिन्दन्ति	तोड़ते हैं,
सम्परेत्य	मरनेपर
ते भिन्न मर्यादाः	वे मर्यादा तोड़नेवाले
वैतरण्यां	वैतरणीमें
निपतन्ति	गिरते हैं,
तस्यां	उस
निरय परिखा	नरककी खाईके
भूतायां	समान
विट् मूत्र पूय	विष्ठा, मूत्र, पीव,
शोणित केश	रक्त केश,
नख	नख,
अस्थि	हड्डी,
मेदः मांस	मज्जा, मांस,
वसा वाहिन्यां	चर्बी बहनेवाली
नद्यां	नदीमें
यादो गणैः	जलचरों द्वारा
इतः ततः	जहां-तहांसे
भक्ष्यमाणा	खाये जाते हुए भी
आत्मना	शरीर
वियुज्यमानाः	छूटता नहीं,
असुभिः	प्राण उसे
उह्यमानाः	ढोये जाते हैं,
स्व अघेन	अपने पापका
कर्म पाकं	कर्म-फल
अनुस्मरन्तः	बार-बार स्मरण करते हुए
उपतप्यन्ते	सन्तप्त होते रहते हैं ॥२२॥

ये त्विह वै वृषलीपतयो नष्टशौचाचारनियमास्त्यक्त-लज्जाः पशुचर्यां चरन्ति ते चापि प्रेत्य पूयविण्मूत्रश्लेष्ममला-पूर्णार्णवे निपतन्ति तदेवातिबीभत्सितमश्नन्ति ॥२३॥

ये तु इह वै वृषलीपतयः नष्ट शौच आचार नियमाः त्यक्त लज्जाः पशुचर्यां चरन्ति ते च अपि प्रेत्य पूय विट् मूत्र श्लेष्म मल आपूर्ण अर्णवे निपतन्ति तत् एव अति बीभत्सितं अश्नन्ति ॥२३॥

ये तु इह वै	जो कोई भी तो इस लोकमें
शौच	पवित्र
आचार नियमाः	आचरणके नियमोंके
नष्ट	नष्ट करके
त्यक्त लज्जाः	निर्लज्ज होकर
वृषलीपतयः	भ्रष्ट शूद्राओंको रखकर
पशुचर्यां चरन्ति	पशुओंके समान आचरण करते हैं,
ते च अपि प्रेत्य	दे भी मरकर
पूय विट् मूत्र	पीव, विष्ठा, मूत्र,
श्लेष्म मल	कफ, मलसे
आपूर्ण अर्णवे	भरे हुए समुद्रमें
निपतन्ति	गिरते हैं
तत् एव	उसी
अति बीभत्सितं	अत्यन्त घृणित वस्तुओंको
अश्नन्ति	खाते हैं ॥२३॥

ये त्विह वै श्वगर्दभपतयो ब्राह्मणादयो मृगयाविहारा अतीर्थे च मृगान्निघ्नन्ति तानपि सम्परेताँल्लक्ष्यभूतान् यमपुरुषा इषुभिर्विध्यन्ति ॥२४॥

ये तु इह वै श्व गर्दभ पतयः ब्राह्मण आदयः मृगया विहाराः अतीर्थे च मृगान् निघ्नन्ति तान् अपि सम्परेतान् लक्ष्य भूतान् यम पुरुषाः इषुभिः विध्यन्ति ॥२४॥

ये तु इह	जो कोई इस लोकमें
ब्राह्मण	ब्राह्मण
आदयः वै	आदि (द्विज) होकर भी
श्व गर्दभ पतयः	कुत्ते या गधे पालते हैं,
मृगया विहाराः	आखेट खेलते हैं,
अतीर्थे अपि	आखेट-शास्त्रके विपरीत भी
मृगान् निघ्नन्ति	पशुओंको मारते हैं,
तान् अपि	उनको भी
सम्परेतान्	मरनेपर
यम पुरुषाः	यमराजके सेवक
लक्ष्य भूतान्	लक्ष्य बनाकर
इषुभिः	वाणोंसे
विध्यन्ति	मारते हैं ॥२४॥

ये त्विह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून् विशसन्ति तानमुष्मिँल्लोके वैशसे नरके पतितान्निरयपतयो यातयित्वा विशसन्ति ॥२५॥

ये तु इह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून् विशसन्ति तान् अमुष्मिन् लोके वैशसे नरके पतितान् निरय पतयः यातयित्वा विशसन्ति ॥२५॥

वै	चाहे	**अमुष्मिन् लोके**	परलोकमें
इह	इस लोकमें	**वैशसे नरके**	वैशस नरकमें
ये तु	जो भी	**पतितान्**	गिराकर
दाम्भिका	पाखण्डी लोग	**निरय पतयः**	उस नरकके नायक-लोग
दम्भयज्ञेषु	पाखण्डपूर्ण यज्ञमें		
पशून् विशसन्ति	पशुओंका वध करते हैं,	**यातयित्वा**	पीड़ा दे देकर
		विशसन्ति	मारते हैं ॥२५॥
तान्	उनको		

यस्त्विह वै सवर्णां भार्यां द्विजो रेतः पाययति काममोहितस्तं पापकृतममुत्र रेतः कुल्यायां पातयित्वा रेतः सम्पाययन्ति ॥२६॥

यः तु इह वै सवर्णां भार्यां द्विजः रेतः पाययति काममोहितः तं पापकृतं अमुत्र रेतः कुल्यायां पातयित्वा रेतः सम्पाययन्ति ॥२६॥

वै	चाहे	**तं पापकृतं**	उस पाप करने वालेको
यः तु द्विजः	जो कोई द्विजाति	**अमुत्र**	परलोकमें
इह	इस लोकमें	**रेतः कुल्यायां**	रेतः कुल्यामें
काममोहितः	कामातुर होकर	**पातयित्वा**	गिराकर
सवर्णा भार्यां	अपने वर्णको पत्नीको	**रेतः**	वीर्य
रेतः पाययति	वीर्यपान कराता है	**सम्पाययन्ति**	पिलाते हैं॥२६॥

ये त्विह वै दस्यवोऽग्निदा गरदा ग्रामान् सार्थान् वा विलुम्पन्ति राजानो राजभटा वा तांश्चापि हि परेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्तशतानि विंशतिश्च सरभसं खादन्ति ॥२७॥

ये तु इह वै दस्यवः अग्निदा गरदा ग्रामान् सार्थान् वा विलुम्पन्ति राजानः राजभटा वा तान् च अपि हि परेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्तशतानि विंशतिः च सरभसं खादन्ति ॥२७॥

ये तु इह	जो भी इस लोकमें
वै दस्यवः	चाहे डाकू हों
वा राजानः	अथवा राजा या
राजभटा	राज-सैनिक,
अग्निदा	कहीं (किसीके घरमें) आग लगा देते हैं
गरदा	(किसीको) विष दे देते हैं,
ग्रामान्	गावोंको
वा सार्थान्	अथवा व्यापारियोंके दलको
विलुम्पन्ति	लूट लेते हैं,
तान् च	उनको भी
अपि हि	निश्चय ही
यमदूता	यमके दूत
सप्तशतानि	सात सौ
वज्रदंष्ट्राः	वज्र जैसे दांत वाले
श्वानः	कुत्ते
सरभसं खादन्ति	बड़े वेगसे काटते हैं ॥२७॥

यस्त्विह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथञ्चित्स वै प्रेत्य नरकेऽवीचिमत्यधः शिरा निरवकाशे योजनशतोच्छ्रायाद् गिरिमूर्ध्नः सम्पात्यते यत्र जलमिव स्थलमश्मपृष्ठमवभासते तदवीचिमत्तिलशो विशीर्यमाणशरीरो न म्रियमाणः पुनरारोपितो निपतति ॥२८॥

यः तु इह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथञ्चित् स वै प्रेत्य नरके अवीचिमति अधः शिरा निरवकाशे योजनशत उच्छ्रायात् गिरिमूर्ध्नः सम्पात्यते यत्र जलं इव स्थलं अश्मपृष्ठं अवभासते तत् अवीचिमत् तिलशः विशीर्यमाण शरीरः नम्रियमाणः पुनः आरोपितः निपतति ॥२८॥

यः तु इह वा	जो भी कोई इस लोकमें
द्रव्यविनिमये	धनके लेन-देनमें
वा दाने	अथवा दानमें
साक्ष्ये	गवाही देनेमें
कथञ्चित्	किसी भी प्रकार

अनृतं वदति	झूठ बोलता है
स वै प्रेत्य	निश्चय वह मरकर
अवीचिमति	अवीचिमान्
नरके	नरकमें
अधः शिरा	नीचे सिर करके
योजनशत	सौ योजन
उच्छ्रायात्	ऊँचाईसे
निरवकाशे	ठोस
गिरिमूर्ध्नः	पहाड़की चोटीपर
सम्पात्यते	गिराया जाता है,
यत्र जलं इव	जहां जलकी भांति
अश्मपृष्ठं	पत्थरका ठोस
स्थलं	स्थल
अवभासते	प्रतीत होता है।
तत् अवीचिमत्	इसीसे उसका नाम अवीचिमान है,
तिलशः	(वहां गिराये जाने पर) तिलके बराबर
विशीर्यमाण	टुकड़े
शरीरः	शरीरके हो जाते हैं; पर
नम्रियमाणः	मरता नहीं
पुनः आरोपितः	बार-बार ऊपर ले जाकर
निपतति	पटका जाता है ॥२८

यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथस्तत्कलत्रं वा सुरां व्रतस्थोऽपि वा पिबति प्रमादस्तेषां निरयं नीतानामुरसि पदाऽऽक्रम्यास्ये वह्निना द्रवमाणं काष्णायसं निषिञ्चन्ति ॥२९॥

यः तु इह वै विप्रः राजन्यः वैश्यः वा सोमपीथः तत् कलत्रं वा सुरां व्रतस्थः अपि वा पिबति प्रमादतः तेषां निरयं नीतानां उरसि पदा आक्रम्य आस्ये वह्निना द्रव्यमाणं काष्णं आयसं निषिञ्चन्ति ॥२९॥

यः तू इह वै	जो भी इस लोकमें कोई
विप्रः राजन्यः	ब्राह्मण, क्षत्रिय
वा वैश्यः	अथवा वैश्य
व्रतस्थः अपि	व्रती होनेपर भी
वा	अथवा
प्रमादतः	प्रमादवश
सोमपीथः	सोमपान करता है
वा तत् कलत्रं	अथवा उसकी पत्नी
सुरां पिबति	मदिरा पीती है
तेषां	उनको
निरय नीतानां	नरक ले जानेपर
उरसि पदा	छातीको पैरसे
आक्रम्य	दबाकर
आस्ये	मुखमें
वह्निना द्रवमाणं	आगसे पिघलाया
काष्णं आयसं	शीशा (काला लोहा)
निषिञ्चन्ति	डालते हैं ॥२९॥

अथ च यस्त्विह वा आत्मसम्भावनेन स्वयमधमो जन्म-तपोविद्याचारवर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽवाक्शिरा निपातितो दुरन्ता यातना ह्यश्नुते ॥३०॥

अथ च यः तु इह वा आत्म सम्भावनेन स्वयं अधमः जन्म तपः विद्या आचार वर्ण आश्रमवतः वरीयसः न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरये अवाक्शिरा निपातितः दुरन्ता यातना हि अश्नुते ॥३०॥

अथ च	और भी,	**न बहु मन्येत**	आदरणीय नहीं मानता
यः तु वा	जो भी कोई	**स मृतक एव**	वह (जीता हुआ भी) मरे जैसा ही है,
इह	इस लोकमें	**मृत्वा**	मरकर
स्वयं अधमः	स्वयं निम्न श्रेणीका होनेपर भी	**क्षरकर्दमे**	क्षार कर्दम
आत्म	अपनेको	**निरये**	नरकमें
सम्भावनेन	बड़ा मानेके कारण	**अवाक्शिरा**	नीचे सिर किये
जन्म तपः विद्या	कुल, तपस्या, विद्या,	**निपातितः**	गिराया जाता है,
आचार	आचार,	**दुरन्ता**	अपार
वर्ण आश्रमवतः	वर्ण, आश्रमसे	**यातना हि**	कष्ट ही
वरीयसः	अपनेसे श्रेष्ठको*	**अश्नुते**	भोगता है ॥३०॥

ये त्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजन्ते याश्च स्त्रियो नृपशून् खादन्ति तांश्च ते पशव इव निहता यमसदने यातयन्तो

---

* सनातन-धर्मके अनुसार त्यागी सबसे बड़ा है। ब्राह्मणोंमें क्रमशः त्याग, तप, विद्या आयुसे बडप्पन होता है।

क्षत्रियोंमें त्याग, तप, विद्या, बल (सैन्यबल एवं शस्त्र-बल, देह-बल) से बडप्पन होता है।

वैश्यमें विद्या, धन तथा आयुसे क्रमशः बडप्पन होता है, शूद्रमें वह जिसका सेवक है उसके बड़प्पनसे और आयुसे बड़प्पन होता है।

रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिनावदायासृक् पिबन्ति नृत्यन्ति च गायन्ति च हृष्यमाणा यथेह पुरुषादाः ॥३१॥

ये तु इह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजन्ते याः च स्त्रियः नृपशून् खादन्ति तात् च ते पशव इव निहता यमसदने यातयन्तः रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिना अवदाय असृक् पिबन्ति नृत्यन्ति च गायन्ति च हृष्यमाणा यथा इह पुरुषादाः ॥३१॥

ये तु वै	जो भी कोई
पुरुषाः इह	पुरुष इस लोकमें
पुरुषमेधेन	नरमेध द्वारा
यजन्ते	यज्ञ करते हैं,
च याः स्त्रियः	और जो स्त्रियां
नृपशून्	पशुओंकी भांति पुरुषोंको
खादन्ति	खा जाती हैं,
तात् च ते	उनको वे ही
पशव इव	पशुके समान
निहताः	मारे गये लोग
यमसदने	यमलोकमें
रक्षोगणाः	राक्षस होकर
यातयन्तः	पीड़ा देते हुए
सौनिका इव	कसाईके समान
यथा इह	जैसे इस लोकमें
पुरुषादाः	नरभक्षी-पुरुष (करते थे)
स्वधितिना	अपनी कुल्हाड़ीसे
अवदाय	काटकर
असृक् पिबन्ति	(उनका) रक्त पीते हैं,
च नृत्यन्ति	और नाचते
च गायन्ति	तथा गाते
हृष्यमाणा	हर्षित होते हैं ॥३१॥

ये त्विह वा अनागसोऽरण्ये ग्रामे वा वैश्रम्भकैरुपसृतानुपविश्रम्भ्य जिजीविषून् शूलसूत्रादिषूपप्रोतान् क्रीडनकतया यातयन्ति तेऽपि च प्रेत्य यमयातनासु शूलादिषु प्रोतात्मानः क्षुत्तृड्भ्यां चाभिहताः कङ्कवटादिभिश्चेतस्ततस्तिग्मतुण्डैराहन्यमाना आत्मशमलं स्मरन्ति ॥३२॥

ये तु इह वा अनागसः अरण्ये ग्रामे वा वैश्रम्भकैः उपसृतान् उपविश्रम्भ्य जिजीविषून् शूल सूत्र आदिषु उपप्रोतान् क्रीडनकतया यातयन्ति ते अपि च प्रेत्य यमयातनासु शूल आदिषु प्रोत आत्मानः क्षुत् तृट्भ्यां च

अभिहताः कङ्क वट आदिभिः च इतः ततः तिग्मतुण्डैः आहन्यमाना आत्म शमलं स्मरन्ति ॥३२॥

ये तु वा	जो कोई भी
इह	इस लोकमें
अनागसः	निरपराध
जिजीविषून्	जीनेकी इच्छा रखनेवाले
ग्रामे वा अरण्ये	गाँव या वनमें
वैश्रम्भकैः	विश्वास दिलानेके उपायोंसे
उपविश्रम्भ्य	विश्वास दिलाकर
उपसृतान्	समीप आयोंको
शूल सूत्र आदिषु	काटें या सूत आदिमें
उपप्रोतान्	बींधकर या बाँधकर
क्रीडनकतया	खिलवाड़ करते हुए
यातयन्ति	पीड़ा देते हैं,
ते अपि च	उनको भी
प्रेत्य	मरनेपर
यमयातनासु	यम-यातनाके समय
शूल आदिषु	शूलप्रोत आदि नरकोंमें
प्रोत आत्मानः	(शूलसे) उनको वेधा जानेपर
क्षुत् तृट्भ्यां	भूख-प्याससे
च अभिहताः	भी सताये जानेपर,
कङ्क वट	कङ्क, वटेर
आदिभिः	आदि द्वारा
च इतः ततः	भी जहां-तहां
तिग्मतुण्डैः	तीखी चोचोंसे
आहन्यमाना	मारे जानेपर
आत्म शमलं	अपने पापोंको
स्मरन्ति	स्मरण करते हैं ॥३२

ये त्विह वै भूतान्युद्वेजयन्ति नरा उल्बणस्वभावा यथा दन्दशूकास्तेऽपि प्रेत्य नरके दन्दशूकाख्ये निपतन्ति यत्र नृप दन्दशूकाः पञ्चमुखाः सप्तमुखा उपसृत्य ग्रसन्ति यथा बिलेशयान् ॥३३॥

ये तु इह वै भूतानि उद्वेजयन्ति नराः उल्बण स्वभावा यथा दन्दशूकाः ते अपि प्रेत्य नरके दन्दशूक आख्ये निपतन्ति यत्र नृप दन्दशूकाः पञ्चमुखाः सप्तमुखाः उपसृत्य ग्रसन्ति यथा बिलेशयान् ॥३३॥

ये तु वै	जो कोई भी
इह	इस लोकमें
नृप	राजन् !
उल्बण स्वभावा	उग्र स्वभाव
नराः	पुरुष

यथा दन्दशूकाः	जैसे सर्पके समान
भूतानि	प्राणियोंको
उद्वेजयन्ति	उद्विग्न करते हैं
ते अपि प्रेत्य	वे भी मरकर
दन्दशूक आख्ये	दन्दशूक नामक
नरके निपतन्ति	नरकमें गिरते हैं
सप्तमुखाः	सात मुख
दन्दशूकाः	वाले सर्प
यथा बिलेशयान्	चूहोंके समान (उन्हें)
उपसृत्य	पास आकर
ग्रसन्ति	निगल लेते हैं ॥३३॥

यत्र पञ्चमुखाः जहां पांच मुखवाले,

ये त्विह वा अन्धावटकुसूलगुहादिषु भूतानि निरुन्धन्ति तथामुत्र तेष्येवोपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुन्धन्ति ॥३४॥

ये तु इह वा अन्ध अवट कुसूल गुहादिषु भूतानि निरुन्धन्ति तथा अमुत्र तेषु एव उपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुन्धन्ति ॥३४॥

ये तु इह	जो कोई इस लोकमें
अन्ध अवट	अँधेरी खत्तियों,
कुसूल	कोठों
वा गुहादिषु	अथवा गुफादिमें
भूतानि	प्राणियोंको
निरुन्धन्ति	बन्द कर देते हैं
अमुत्र	परलोकमें
तथा तेषु एव	वैसे ही उन्हीं स्थानोंमें
उपवेश्य	प्रवेश कराके
सगरेण	विषैले
वह्निना धूमेन	अग्नि-धूममें
निरुन्धन्ति	घुटने डालते हैं ॥३४

यस्त्विह वा अतिथीनभ्यागतान् वा गृहपतिरसकृदुपगतमन्युर्दिधक्षुरिव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य चापि निरये पापदृष्टेरक्षिणी वज्रतुण्डा गृध्राः कङ्ककाकवटादयः प्रसह्योरुबलादुत्पाटयन्ति ॥३५॥

यः तु इह वा अतिथीन् अभ्यागतान् वा गृहपतिः असकृत् उपगतमन्युः दिधक्षुः इव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य च अपि निरये पापदृष्टेः अक्षिणी वज्रतुण्डा गृध्राः कङ्क काक वट आदयः प्रसह्य उरु बलात् उत्पाटयन्ति ॥३५॥

यः तु वा	जो कोई भी
इह	इस लोकमें
गृहपतिः	गृहस्थ
अतिथीन्	अतिथिको
वा अभ्यागतान्	अथवा अभ्यागतको*
असकृत्	बार-बार
उपगतमन्युः	क्रोधमें भरकर
दिधक्षुः इव	मानो जला देगा
	इस प्रकार
पापेन चक्षुषा	पाप दृष्टिसे
निरीक्षते	देखता है,
तस्य च अपि	उसके भी
पापदृष्टेः	पाप-दृष्टि वालेके
अक्षिणी निरये	नेत्र नरकमें
वज्रतुण्डा	वज्रके समान
	चोंचवाले
गृधाः कङ्क	गोध, कंक,
काक वट	कौए, बटेर
आदयः	आदि
प्रसह्य बलात्	अत्यन्त बलात्कार
	से
उत्पाटयन्ति	उखाड़ (निकाल)
	लेते हैं ॥३५॥

यस्त्विह वा आढ्याभिमतिरहङ्कृतिस्तिर्यक्प्रेक्षणः सर्वतोऽभिविशङ्की अर्थव्ययनाशचिन्तया परिशुष्यमाणहृदयवदनो निर्वृतिमनवगतो ग्रह इवार्थमभिरक्षति स चापि प्रेत्य तदुत्पादनोत्कर्षणसंरक्षणशमलग्रहः सूचीमुखे नरके निपतति यत्र ह वित्तग्रहं पापपुरुषं धर्मराजपुरुषा वायका इव सर्वतोऽङ्गेषु सूत्रैः परिवयन्ति ॥३६॥

यः तु इह वा आढ्याभिमतिः अहङ्कृतिः तिर्यक् प्रेक्षणः सर्वतः अभिविशङ्की अर्थव्ययनाश चिन्तया परिशुष्यमाण हृदयवदनः निर्वृति अनवगतःग्रह इव अर्थं अभिरक्षति स च अपि प्रेत्य तत् उत्पादन उत्कर्षण संरक्षण शमल ग्रहः सूचीमुखे नरके निपतति यत्र ह वित्तग्रहं पापपुरुषं धर्मराजपुरुषा वायका इव सर्वतः अङ्गेषु सूत्रैः परिवयन्ति ॥३६॥

---

* बिना सूचना अचानक आये अपरिचितको अतिथि कहते हैं और परिचित, सम्बन्धी सूचना देकर या बिना सूचना आवें तो अभ्यागत कहे जाते हैं; किन्तु भिक्षुक अतिथि या अभ्यागत नहीं माना जाता।

यः तु वा	जो कोई भी
इह आढ्या-	इस लोकमें अपनेको
भिमतिः	धनी माननेवाला
अहङ्कृतिः	अहंकारी
तिर्यक् प्रेक्षणः	टेढी आंखसे देखने-वाला
सर्वतः	सब
अभिविशङ्की	ओरसे सबपर सन्देह करनेवाला,
अर्थव्ययनाश	धनके खर्च या नाशको
चिन्तया	चिन्तासे
परिशुष्यमाण	सूखते
हृदयवदनः	चित्त और मुखसे
निर्वृतिं	चैन न
अनवगतः	पाकर
ग्रह इव अर्थं	यक्षकी भांति धनको
अभिरक्षति	रक्षा किया करता है,
स च अपि प्रेत्य	वह भी मरकर
तत् उत्पादन	उस (धन) के उपार्जन,
उत्कर्षण	बढ़ाने और
संरक्षण	रक्षणमें
शमलग्रह	हुए पापोंसे
सुचीमुखे नरके	सूची मुख नरकमें
निपतति	गिरता है,
यत्र ह वित्तग्रहं	जहां कि (उस) अर्थ-पिशाच
पापपुरुषं	पापी-पुरुषके
सर्वतः अङ्गेषु	सभी अंगोंको
वायका इव	दर्जीकी भांति
धर्मराजपुरुषा	यमराजके सेवक
सूत्रैः परिवयन्ति	धागेसे सीते हैं ॥३६

एवंविधा नरका यमालये सन्ति शतशः सहस्रशस्तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चाव-निपते पर्यायेण विशन्ति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र इह तु पुनर्भवे त उभयशेषाभ्यां निविशन्ति ॥३७॥

एवं विधा नरकः यम आलये सन्ति शतशः सहस्रशः तेषु सर्वेषु च सर्व एव अधर्म वर्तिनः ये केचित् इह उदिता अनुदिताः च अवनिपते पर्यायेण विशन्ति तथा एव धर्म अनुवर्तिनः इतरत्र इह तु पुनः भवे त उभय शेषाभ्यां निविशन्ति ॥३७॥

अवनिपते	राजन् !
एवं विधा	इस प्रकारके
नरकाः	नरक
यम आलये	यमलोकमें
शतशः	सैकड़ों,
सहस्रशः सन्ति	हजारों हैं,

तेषु सर्वेषु च	उन सबमें ही
ये केचित् इह	जो कोई यहां
उदिता	बतलाते गये,
च अनुदिताः	और नहीं बतलाये गये
सर्व एव अधर्म	सभी अधर्म
वर्तिनः	करनेवाले
पर्यायेण	बारी-बारीसे
विशन्ति	जाते हैं
तथा एव	इसी प्रकार
धर्म अनुवर्तिनः	धर्म करनेवाले
इतरत्र	दूसरी ओर (स्वर्गादिमें जाते हैं)
पुनः इह तु भवे	फिर इस लोकमें जन्म लेनेवाले
त उभय	उन दोनों
शेषाभ्यां	(पाप-पुण्य) के बचे भागसे
निविशन्ति	आते हैं ॥३७॥

निवृत्तिलक्षणमार्ग आदावेव व्याख्यातः ॥ एतावानेवाण्डकोशो यश्चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते यत्तद्भगवतो नारायणस्य साक्षान्महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपमात्ममायागुणमयमनुवर्णितमादृतः पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनोऽग्राह्यमपि श्रद्धाभक्तिविशुद्धबुद्धिर्वेद ॥३८॥

निवृत्ति लक्षण मार्गः आदाः एव व्याख्यातः एतावान् एव अण्डकोशः यः चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते यत् तद् भगवतः नारायणस्य साक्षात् महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपं आत्ममाया गुणमयं अनुवर्णितं आदृतः पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनः अग्राह्यं अपि श्रद्धा भक्ति विशुद्ध बुद्धिः वेद ॥३८॥

निवृत्ति लक्षण	निवृत्तिरूप
मार्गः आदाः एव	मार्ग पहिले ही
व्याख्यातः	बतलाया गया है।
एतावान् एव	इतना ही
अण्डकोशः	ब्रह्माण्ड है
यः पुराणेषु	जो पुराणोंमें
चतुर्दशधा	चौदह
विकल्पित	लोकोंके रूपमें
उपगीयते	वर्णन किया जाता है,
यत् तद्	जो कि
साक्षात्	साक्षात्
महापुरुषस्य	परमपुरुष
भगवतः	भगवान्
नारायणस्य	नारायणके

आत्ममाया	अपनी मायाके
गुणमयं	गुणोंसे बना
स्थविष्ठं रूपं	स्थूल रूपके
अनुवर्णितं	वर्णनको
आहृतः पठति	आदर पूर्वक पढ़ता है,
शृणोति	सुनता है,
श्रावयति	सुनाता है,
स उपगेयं	वह शास्त्र वर्णित
परमात्मनः	परमात्माके
अग्राह्यं अपि	अग्राह्य स्वरूपको भी
श्रद्धा भक्ति	श्रद्धा भक्तिसे
विशुद्ध बुद्धिः	शुद्ध हुई बुद्धिसे
वेद	जान सकता है ॥३८

श्रुत्वा स्थूलं तथा सूक्ष्मं रूपं भगवतो यतिः ।
स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मं धिया नयेदिति ॥३९॥

श्रुत्वा स्थूलं तथा सूक्ष्म रूपं भगवतः यतिः स्थूले निर्जितं आत्मानं शनैः सूक्ष्मं धिया नयेत् इति ॥३९॥

यतिः	यत्नशील
भगवतः	भगवान्‌के
स्थूलं तथा	स्थूल तथा
सूक्ष्म	सूक्ष्म
रूपं श्रुत्वा	रूपका (वर्णन) श्रवण करके
स्थूले	स्थूल रूपमें
निर्जितं आत्मानं	चित्त लग जानेपर
धिया शनैः	बुद्धिके द्वारा धीरे-धीरे
इति सूक्ष्मं	इस प्रकार सूक्ष्ममें
नयेत्	ले जाय ॥३९॥

भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभःसमुद्र-
पातालदिङ्नरकभागणलोकसंस्था ।
गीता मया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य
स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ॥४०॥

भूद्वीप वर्ष सरित् अद्रि नभः समुद्र पाताल दिक् नरक भागण लोक संस्था गीता मया तव नृप अद्भुतं ईश्वरस्य स्थूलं वपुः सकल जीव निकाय धाम ॥४०॥

नृप	राजन् !	**सकल जीव**	सब जीव
भूद्वीप	पृथ्वीके द्वीप,	**निकाय**	समूहोंका
वर्ष सरित्	वर्ष, नदियां और	**धाम**	निवास-स्थान
अद्रि	पर्वत,	**ईश्वरस्य**	भगवान्‌के
नभः समुद्र	आकाश, समुद्र,	**स्थूलं**	विराट्
पाताल दिक्	पाताल, दिशाएँ,	**अद्भुतं वपुः**	अद्भुत रूपका
नरक भागण	नरक, ज्योति-मण्डल,	**मया**	मैंने
लोक संस्था	लोकोंकी स्थितिरूपी	**तव गीता**	तुमसे वर्णन कर दिया ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्त्र्यां पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे नरकानुवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ इति पञ्चमः स्कन्धः समाप्तः ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ षष्ठ स्कन्ध ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच-

निवृत्तिमार्गः कथित आदौ भगवता यथा ।
क्रमयोगोपलब्धेन ब्रह्मणा यदसंसृतिः ॥१॥

निवृत्तिमार्गः कथितः आदौ भगवता यथा क्रमयोग उपलब्धेन ब्रह्मणा यत् असंसृतिः ॥१॥

भगवता	भगवन् आपने	**ब्रह्मणा**	ब्रह्माजी(के लोक)को
आदौ	पहिले	**उपलब्धेन**	प्राप्त करके
निवृत्तिमार्गः	निवृत्ति-मार्गका	**यत्**	जिनके द्वारा
कथितः	वर्णन किया	**असंसृतिः**	मोक्ष प्राप्त
यथा	जैसे		करता है ॥१॥
क्रमयोग	क्रमशः		

प्रवृत्तिलक्षणश्चैव त्रैगुण्यविषयो मुने ।
योऽसावलीनप्रकृतेर्गुणसर्गः पुनः पुनः ॥२॥

प्रवृत्ति लक्षणः च एव त्रैगुण्य विषयः मुने यः असाः अवलीन प्रकृतेः गुणसर्गः पुनः पुनः ॥२॥

मुने	मुनिवर !	**अलीन प्रकृतेः**	प्रकृतिका लय न
प्रवृत्ति लक्षणः	प्रवृत्ति स्वरूप		होनेसे
त्रैगुण्य विषयः	त्रिगुणोंके विषय	**पुनः पुनः**	बार-बार
	(स्वर्गादि)	**गुणसर्गः**	त्रिगुणमय संसारमें
एव च	का भी(वर्णन किया)		जन्मता है ॥२॥
यः असाः	(जिनमें) यह जीव		

अधर्मलक्षणा नाना नरकाश्चानुवर्णिताः ।
मन्वन्तरश्चव्याख्यात आद्यः स्वायम्भुवो यतः॥३॥

अधर्मलक्षणा नाना नरकाः च अनुवर्णिताः मन्वन्तरः च व्याख्यातः आद्यः स्वायम्भुवः यतः ॥३॥

अधर्मलक्षणा	अधर्मके (फलसे) मिलनेवाले	**यतः आद्यः**	जिसमें पहिले
नाना	अनेक प्रकारके	**स्वायम्भुवः**	स्वायम्भू मनु हुए
नरकाः च	नरकोंका भी	**मन्वन्तरः च**	उस मन्वन्तरका भी
अनुवर्णिताः	(आपने) वर्णन किया,	**व्याख्यातः**	वर्णन किया ॥३॥

प्रियव्रतोत्तानपदोर्वंशस्तच्चरितानि च ।
द्वीपवर्ष समुद्राद्रिनद्युद्यानवनस्पतीन् ॥४॥

प्रियव्रत उत्तानपदः वंशः तत् चरितानि च द्वीप वर्ष समुद्र अद्रि नदी उद्यान वनस्पतीन् ॥४॥

प्रियव्रत	प्रियव्रत तथा	**द्वीप वर्ष**	द्वीपों, वर्षों
उत्तानपदः	उत्तानपादके	**समुद्र अद्रि**	समुद्रों, पर्वतों,
वंशः	वंशका एवं	**नदी उद्यान**	नदियों, बगीचों
तत्	उनके	**वनस्पतीन्**	वृक्षोंका (वर्णन
चरितानि च	चरित्रोंका भी (वर्णन किया)		किया) ॥४॥

धरामण्डलसंस्थानं भागलक्षणमानतः ।
ज्योतिषां विवराणां च यथेदमसृजद्विभुः ॥५॥

धरामण्डल संस्थानं भाग लक्षण मानतः ज्योतिषां विवराणां च यथा इदं असृजत् विभुः ॥५॥

विभुः	सर्वव्यापक ईश्वरने
यथा इदं	जैसे इस संसारकी
असृजत्	सृष्टि की (उस)
धरामण्डल	भू-मण्डलकी
ज्योतिषां	ग्रह-नक्षत्रोंका
च विवराणां	तथा पातालादि भू-विवरोंका
संस्थानं	स्थितिका
भाग लक्षण	विभाग, लक्षण,
मानतः	परिमाणके साथ (वर्णन किया) ॥५॥

अधुनेह महाभाग यथैव नरकान्नरः ।
नानोग्रयातनान्नेयात्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥६॥

अधुना इह महाभाग यथा इव नरकात् नरः नाना उग्र यातनात् नेयात् तत् मे व्याख्यातुं अर्हसि ॥६॥

महाभाग	महाभाग !
अधुना	इस समय
इह	इसी संसारमें
यथा इव	जैसे भी
नरः	मनुष्य
नाना उग्र	अनेक प्रकारकी दारुण
यातनात्	यातनावाले
नरकात्	नरकोंसे
नेयात्	निकल (बच) सके
तत् मे	वह मुझे (आपको)
व्याख्यातुं	बतलाना
अर्हसि	चाहिए ॥६॥

श्रीशुक उवाच–

न चेदिहैवापचितिं यथांहसः
कृतस्य कुर्यान्मनउक्तिपाणिभिः ।
ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकानुपैति
ये कीर्तिता मे भवतस्तिग्मयातनाः ॥७॥

न चेत् इह एव अपचितिं यथा अंहसः कृतस्य कुर्यात् मन उक्ति पाणिभिः ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकान् उपैति ये कीर्तिता मे भवतः तिग्म यातनाः ॥७॥

मन उक्ति	मन, वचन,
पाणिभिः	हाथसे,
कृतस्य	किये गये
यथा अंहसः	पापोंके अनुसार
इह एव	इस जीवनमें ही
चेत् अपचितिं	यदि प्रायश्चित
न कुर्यात्	नहीं कर लेता तो
वै स प्रेत्य	निश्चय वह मरकर
ये मे	जो मैंने
भवतः	तुमसे
तिग्म यातनाः	तीक्ष्ण यातनादायी
नरकान्	नरक
कीर्तिता	बतलाये हैं (उनमें)
ध्रुवं उपैति	निश्चित रूपसे जाता है ॥७॥

तस्मात्पुरैवाश्विह पापनिष्कृतौ
यतेत मृत्योरविपद्यताऽऽत्मना ।
दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा
भिषक् चिकित्सेत रुजां निदानवित् ॥८॥

तस्मात् पुरा एव आशु इह पाप निष्कृतौ यतेत मृत्योः अविपद्यता आत्मना दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा भिषक् चिकित्सेत रुजां निदानवित् ॥८॥

तस्मात्	इसलिए
मृत्योः	मृत्युसे और
आत्मना	शरीरके
अविपद्यता	रोगी होनेसे
पुरा एव	पहिले ही
आशु	शीघ्र
इह	इसी जीवनमें
दोषस्य	दोषका
गुरुलाघवं	भारी हल्कापन
दृष्ट्वा	देखकर (उसके अनुसार)
पाप निष्कृतौ	पापके प्रायश्चितका
यतेत	प्रयत्न करे,
यथा रुजां	जैसे रोगोंका
निदानवित्	निदान जाननेवाला
भिषक्	वैद्य
चिकित्सेत	चिकित्सा करता है ॥८॥

राजोवाच–

दृष्टश्रुताभ्यां यत्पापं जानन्नप्यात्मनोऽहितम् ।
करोति भूयो विवशः प्रायश्चित्तमथो कथम् ॥९॥

दृष्ट श्रुताभ्यां यत् पापं जानन् अपि आत्मनः अहितं करोति भूयः विवशः प्रायश्चितं अथो कथम् ॥९॥

दृष्ट	(राजदण्ड, निन्दादि) देखकर,	**भूयः**	पुनः
श्रुताभ्यां	(शास्त्रोंमें) सुनकर	**विवशः**	विवश होकर
यत् पापं	क्योंकि पापको	**करोति**	(उसे) करता है
आत्मनः	अपना	**अथो**	अतः उसका
अहितं	शत्रु	**प्रायश्चितं**	प्रायश्चित
जानन् अपि	जानता है, फिर भी	**कथम्**	कैसे हो सकता है ॥९॥

क्वचिन्निवर्ततेऽभद्रात्क्वचिच्चरति तत्पुनः ।
प्रायश्चित्तमतोऽपार्थं मन्ये कुञ्जरशौचवत् ॥१०॥

क्वचित् निवर्तते अभद्रात् क्वचित् चरति तत् पुनः प्रायश्चितं अतः अपार्थं मन्ये कुञ्जर शौचवत् ॥१०॥

क्वचित्	कभी	**कुञ्जर**	हाथीके
अभद्रात्	पापोंसे	**शौचवत्**	स्नानके समान
निवर्तते	निवृत्त हो जाता है,	**प्रायश्चित्तं**	प्रायश्चितको
क्वचित्	कभी	**अपार्थं मन्ये**	व्यर्थ मानता हूँ ॥१०॥
पुनः चरति	फिर करने लगता है,		
अतः	अतः		

श्रीशुक उवाच–

कर्मणा कर्मनिर्हारो न ह्यात्यन्तिक इष्यते ।
अविद्वदधिकारित्वात्प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥११॥

कर्मणा कर्मनिर्हारः न हि आत्यन्तिक इष्यते अविद्वत् अधिकारित्वात् प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥११॥

कर्मणा	कर्मके द्वारा	**अधिकारित्वात्**	अधिकारी होनेसे (कर्मरूप प्रायश्चित विधान है ।)
हि	क्योंकि		
आत्यन्तिक	सम्पूर्ण रूपसे		
कर्मनिर्हरिः	कर्मका निराकरण	**प्रायश्चित्तं**	(ठीक) प्रायश्चित तो)
न इष्यते	नहीं हो सकता		
अविद्वत्	अज्ञानी	**विमर्शनं**	तत्त्व-विचार ही है ॥११॥

नाश्नतः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्ति हि ।
एवं नियमकृद्राजन् शनैः क्षेमाय कल्पते ॥१२॥

न अश्नतः पथ्यं एव अन्नं व्याधयः अभिभवन्ति हि एवं नियमकृत् राजन् शनैः क्षेमाय कल्पते ॥१२॥

राजन्	राजन् !	**एवं**	इसी प्रकार
हि	क्योंकि	**नियमकृत्**	नियमोंका पालन करनेवाला
पथ्यं एव	पथ्य ही		
अन्नं	भोजन	**शनैः**	धीरे-धीरे
न अश्नतः	न करनेपर	**क्षेमाय**	कल्याण
व्याधयः	रोग	**कल्पते**	प्राप्त कर लेता है ॥१२॥
अभिभवन्ति	दबा लेते हैं		

तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च ।
त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन च ॥१३॥

तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च त्यागेन सत्य शौचाभ्यां यमेन नियमेन च ॥१३॥

तपसा	तपस्या,	**त्यागेन**	त्यागसे,
ब्रह्मचर्येण	ब्रह्मचर्य पालन,	**सत्य शौचाभ्यां**	सत्य तथा पवित्रतासे,
च शमेन	तथा मनकी स्थिरता,	**यमेन**	यमों (अहिंसादि) के
		च नियमेन	तथा नियमोंके
च दमेन	और इन्द्रिय-दमन,		पालनसे ॥१३॥

देहवाग्बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञाः श्रद्धयान्विताः ।
क्षिपन्त्यघं महदपि वेणुगुल्ममिवानलः ॥१४॥

देह वाक् बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञाः श्रद्धया अन्विताः क्षिपन्ति अघं महत् अपि वेणुगुल्मं इव अनलः ॥१४॥

धर्मज्ञाः	धर्मको जाननेवाले,	**महत् अघं अपि**	भारी पापको भी
श्रद्धया अन्विताः	श्रद्धालु,	**वेणुगुल्मं**	बाँसके झुरमुटको
धीरा	धीर-पुरुष	**अनलः इव**	अग्निके समान
देह वाक्	शरीर, वाणी तथा	**क्षिपन्ति**	नष्ट कर देते हैं ॥१४
बुद्धिजं	बुद्धिसे उत्पन्न		

केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ।
अघं धुन्वन्ति कात्स्न्र्येन नीहारमिव भास्करः ॥१५॥

केचित् केवलया भक्त्या वासुदेव परायणाः अघं धुन्वन्ति कात्स्न्र्येन नीहारं इव भास्करः ॥१५॥

केचित्	कोई	**नीहारं इव**	जैसे कुहरेको
वासुदेव	भगवान् वासुदेव	**कात्स्न्र्येन**	पूर्णतः
परायणाः	परायण भक्त	**अघं धुन्वन्ति**	पापको नष्ट कर देते हैं ॥१५॥
केवलया भक्त्या	केवल भक्ति द्वारा		
भास्करः	सूर्य		

न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तपआदिभिः ।
यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पुरुषनिषेवया ॥१६॥

न तथा हि अघवान् राजन् पूयेत तप आदिभिः यथा कृष्ण अर्पित प्राणः तत् पूरुष निषेवया ॥१६॥

राजन्	राजन् !	**अघवान्**	पापी
हि	क्योंकि	**तथा न पूयेत**	वैसा पवित्र नहीं होता,
तप आदिभिः	तपस्या आदिसे		

यथा	जैसा	**तत् पूरुष**	उनके भक्तोंकी
कृष्ण अर्पित	श्रीकृष्णको अर्पित	**निषेवया**	सेवासे (होता
प्राणः	जीवन (व्यक्ति)		है) ॥१६॥

सध्रीचीनो ह्ययं लोके पन्थाः क्षेमोऽकुतोभयः ।
सुशीलाः साधवो यत्र नारायणपरायणाः ॥१७॥

सध्रीचीनः हि अयं लोके पन्थाः क्षेमः अकुतः भयः सुशीलाः साधवः यत्र नारायण परायणाः ॥१७॥

लोके हि	संसारमें क्योंकि	**नारायण**	नारायण
अयं क्षेमः	यह कल्याणका	**परायणाः**	परायण
अकुतः भयः	सर्वथा भय-रहित	**सुशीलाः**	सुशील
सध्रीचीनः	√ सर्वश्रेष्ठ	**साधवः**	साधु-पुरुष चलते
पन्थाः	मार्ग है,		हैं ॥१७॥
यत्र	जिसमें		

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम् ।
न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवापगाः ॥१८॥

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायण पराङ्मुखं न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुरा कुम्भं इव आपगाः ॥१८॥

राजेन्द्र	राजेन्द्र !	**नारायण**	भगवान् नारायणसे
सुरा कुम्भं	शराबके घड़ेको	**पराङ्मुखं**	विमुखको
आपगाः इव	नदियोंके समान	**निष्पुनन्ति न**	पवित्र नहीं कर
चीर्णानि	किये गये		पाते ॥१८॥
प्रायश्चित्तानि	प्रायश्चित		

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयो-
र्निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह ।

न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्
स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ॥१९॥

सकृत् मनः कृष्ण पदारविन्दयोः निवेशितं तद् गुणरागि यैः इह न ते यमं पाशभृतः च तत् भटान् स्वप्ने अपि पश्यन्ति हि चीर्ण निष्कृताः ॥१९

यैः	जिन लोगोंने	**निवेशितं**	प्रविष्ट कर दिया
इह	इस जीवनमें	**हि**	क्योंकि (उन्होंने)
तत् गुणरागि	उनके गुणोंके अनुरागी	**चीर्ण निष्कृताः**	समस्त प्रायश्चित कर लिए,
मनः	मनको	**स्वप्ने अपि ते**	स्वप्नमें भी वे
सकृत्	एक बार भी	**पाशभृतः ममं**	पाशधारी यमराजको
कृष्ण	श्रीकृष्णके	**च तद् भटान्**	तथा उनके दूतोंको
पदारविन्दयोः	चरणारविन्दमें	**न पश्यन्ति**	नहीं देखते ॥१९॥

अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
दूतानां विष्णुयमयोः संवादस्तं निबोध मे ॥२०॥

अत्र च उदाहरन्ति इमं इतिहासं पुरातनं दूतानां विष्णु यमयोः संवादः तं निबोध मे ॥२०॥

अत्र च	इस विषयमें तो	**इतिहासं**	इतिहासका
विष्णु यमयोः	विष्णु और यमराज के	**इमं उदाहरन्ति**	यह उदाहरण दिया जाता है,
दूतानां संवादः	दूतोंकी बातचीतके	**तं मे**	उसे मुझसे
पुरातनं	प्राचीन	**निबोध**	सुनो ॥२०॥

कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिद्दासीपतिरजामिलः ।
नाम्ना नष्टसदाचारो दास्याः संसर्गदूषितः ॥२१॥

कान्यकुब्जे द्विजः कश्चित् दासीपतिः अजामिलः नाम्ना नष्ट सदाचारः दास्याः संसर्ग दूषितः ॥२१॥

कान्यकुब्जे	कान्यकुब्ज (कन्नौज) में
कश्चित्	कोई
अजामिलः	अजामिल
नाम्ना	नामका
दासीपतिः	दासीपति
दास्याः संसर्ग	दासीके संसर्गसे
दूषितः	दूषित
नष्ट सदाचारः	सदाचार-भ्रष्ट
द्विजः	ब्राह्मण था ॥२१॥

बन्ध्यक्षकैतवैश्चौर्यैर्गर्हितां वृत्तिमास्थितः ।
बिभ्रत्कुटुम्बमशुचिर्यातयामास देहिनः ॥२२॥

बन्दि अक्ष कैतवैः चौर्यैः गर्हितां वृत्तिं आस्थितः बिभ्रत् कुटुम्बं अशुचिः यातयामास देहिनः ॥२२॥

अशुचिः	वह अपवित्र
देहिनः	प्राणियोंको
बन्दि	बन्दी बनाकर
यातयामास	पीड़ा देता था,
अक्ष कैतवैः	जुएसे, धोखा-धड़ीसे,
चौर्यैः	चोरीसे,
गर्हितां	निन्दिस
वृत्तिं आस्थितः	आजीविका करता
कुटुम्बं	अपने कुटुम्बका
बिभ्रत्	पालन करता था ॥२२॥

एवं निवसतस्तस्य लालयानस्य तत्सुतान् ।
कालोऽत्यगान्महान् राजन्नष्टाशीत्यायुषः समाः ॥२३॥

एवं निवसतः तस्य लालयानस्य तत् सुतान् कालः अत्यगात् महान् राजन् अष्ट अशीति आयुषः समाः ॥२३॥

राजन्	राजन् !
तस्य एवं	उसके इस प्रकार
निवसतः	निवास करते हुए,
तत्	उस (दासी) के
सुतान्	पुत्रोंका
लालयानस्य	लालन करते
आयुषः	आयुके
अष्ट	अट्ठासी
आशीति समाः	वर्षका
महान् कालः	महान् काल
अत्यगात्	बीत गया ॥२३॥

तस्य प्रवयसः पुत्रा दश तेषां तु योऽवमः ।
बालो नारायणो नाम्ना पित्रोश्च दयितो भृशम् ॥२४॥

तस्य प्रवयसः पुत्रा दश तेषां तु यः अवमः बालः नारायणः नाम्ना पित्रोः च दयितः भृशम् ॥२४॥

तस्य दश	उसके दस	**बालः**	बालक था,
पुत्रा	पुत्र	**नाम्ना**	(उसका) नाम
✓प्रवयसः	✓ बड़ी आयुके (हो गये) थे	**नारायणः**	नारायण था,
तेषां तु	उनमें तो	**पित्रोः च**	पिताका भी
यः अवमः	जो (सबसे) छोटा	**भृशं दयितः**	अत्यन्त प्यारा था ॥२४॥

स बद्धहृदयस्तस्मिन्नर्भके कलभाषिणि ।
निरीक्षमाणस्तल्लीलां मुमुदे जरठो भृशम् ॥२५॥

स बद्धहृदयः तस्मिन् अर्भके कलभाषिणि निरीक्षमाणः तत् लीलां मुमुदे जरठः भृशम् ॥२५॥

तस्मिन्	उस	**तत् लीलां**	उसके खेल
कलभाषिणि	मधुरभाषी	**निरीक्षमाणः**	देख देखकर
अर्भके	बालकमें	**भृशं मुमुदे**	बहुत आनन्दित होता था ॥२५॥
बद्धहृदयः	हृदय लगाये		
स जरठः	वह बूढ़ा (अजामिल)		

भुञ्जानः प्रपिबन् खादन् बालकस्नेहयन्त्रितः ।
भोजयन् पाययन्मूढो न वेदागतमन्तकम् ॥२६॥

भुञ्जानः प्रपिबन् खादन् बालक स्नेह यन्त्रितः भोजयन् पाययन् मूढः न वेद आगतं अन्तकम् ॥२६॥

बालक स्नेह	बालकके स्नेहसे	**पाययन्**	पिलानेमें लगा
यन्त्रितः	बँधा हुआ (वह)	**मूढः**	मूर्ख बना
भुञ्जानः	भोजन करते,	**अन्तकं**	कालको
प्रपिबन्	पीते,	**आगतं**	आया
खादन्	कुछ चबाते (समय)	**न वेद**	नहीं जान सका ॥२६
भोजयन्	(बालकको) खिलाने		

स एवं वर्तमानोऽज्ञो मृत्युकाल उपस्थिते ।
मतिं चकार तनये बाले नारायणाह्वये ॥२७॥

स एवं वर्तमानः अज्ञः मृत्युकाल उपस्थिते मतिं चकार तनये बाले नारायण आह्वये ॥२७॥

स अज्ञः	उस अज्ञानीने	**आह्वये**	नामक
एवं वर्तमानः	इसी प्रकार रहता हुआ,	**बाले तनये**	बालक पुत्रमें
मृत्युकाल	मरनेका समय	**मतिं चकार**	बुद्धि लगायी (उसीके सम्बन्धमें सोचने लगा) ॥२७॥
उपस्थिते	आनेपर		
नारायण	नारायण		

स पाशहस्तांस्त्रीन्दृष्ट्वा पुरुषान् भृशदारुणान् ।
वक्रतुण्डानूर्ध्वरोम्ण आत्मानं नेतुमागतान् ॥२८॥

स पाशहस्तान् त्रीन् दृष्ट्वा पुरुषान् भृशदारुणान् वक्रतुण्डान् ऊर्ध्वरोम्ण आत्मानं नेतुं आगतान् ॥२८॥

स	उसने	**वक्रतुण्डान्**	टेढ़े मुँह वाले
आत्मानं	अपनेको	**ऊर्ध्वरोम्ण**	खड़े रोमवाले
नेतुं आगतान्	लेनेको आये,	**त्रीन् पुरुषान्**	तीन पुरुषोंको
पाशहस्तान्	हाथोंमें फन्दा लिए	**दृष्ट्वा**	देखकर ॥२८॥
भृशदारुणान्	बहुत ही भयानक		

दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम् ।
प्लावितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेन्द्रियः ॥२९॥

दूरे क्रीडनक आसक्तं पुत्रं नारायण आह्वयं प्लावितेन स्वरेण उच्चैः आजुहाव आकुल इन्द्रियः ॥२९॥

दूरे	(वहांसे) दूर	**पुत्रं**	अपने पुत्रको
क्रीडनक	खिलौनेमें	**आकुल इन्द्रियः**	व्याकुल इन्द्रिय
आसक्तं	आसक्त (लगे)	**प्लावितेन स्वरेण**	दीर्घ स्वरसे
नारायण	नारायण	**उच्चैः**	जोरसे
आह्वयं	नामवाले	**आजुहाव**	पुकारा ॥२९॥

निशम्य म्रियमाणस्य ब्रुवतो हरिकीर्तनम् ।
भर्तुर्नाम महाराज पार्षदाः सहसाऽपतन् ॥३०॥

निशम्य म्रियमाणस्य ब्रुवतः हरिकीर्तनं भर्तुः नाम महाराज पार्षदाः सहसा अपतन् ॥३०॥

महाराज	महाराज !	**ब्रुवतः**	पुकारना
म्रियमाणस्य	मरते हुए का	**निशम्य**	सुनकर
हरिकीर्तनं	भगवन्नान-कीर्तन	**पार्षदाः**	भगवान्‌के पार्षद
भर्तुः नाम	(विशेषतः) अपने स्वामीका नाम	**सहसा**	अचानक
		अपतन्	झपट पड़े ॥३०॥

विकर्षतोऽन्तर्हृदयाद्दासीपतिमजामिलम् ।
यमप्रेष्यान् विष्णुदूता वारयामासुरोजसा ॥३१॥

विकर्षतः अन्तः हृदयात् दासीपतिम् अजामिलं यमप्रेष्यान् विष्णुदूता वारयामासुः ओजसा ॥३१॥

दासीपतिम्	दासीके पति	**यमप्रेष्यान्**	यमराजके दूतोंको
अजामिलं	अजामिल (के सूक्ष्म-शरीर) को	**विष्णुदूता**	भगवान् विष्णुके दूतोंने
अन्तः हृदयात्	हृदयके भीतरसे	**ओजसा**	बलपूर्वक
विकर्षतः	खींचते हुए	**वारयामासुः**	रोक दिया ॥३१॥

ऊचुर्निषेधितास्तांस्ते वैवस्वतपुरःसराः ।

उचुः निषेधिताः तान् ते वैवस्वतपुरः सराः

ते	वे	**निषेधिताः**	रोके जानेपर
वैवस्वतपुरः सराः	यमराजके आगे चलनेवाले (दूत)	**तान् उचुः**	उन विष्णु-दूतोंसे बोले

यमदूता ऊचु*

के यूयं प्रतिषेद्धारो धर्मराजस्य शासनम् ॥३२॥

के यूयं प्रतिषेद्धारः धर्मराजस्य शासनम् ॥३२॥

धर्मराजस्य	धर्मराजके	**यूयं के**	आप लोग कौन हैं ? ॥३२॥
शासनं	शासन (आदेश) को		
प्रतिषेद्धारः	रोकनेवाले		

कस्य वा कुत आयाताः कस्मादस्य निषेधथ ।
किं देवा उपदेवा वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥३३॥

कस्य वा कुत आयाताः कस्मात् अस्य निषेधथ किं देवाः उपदेवा वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥३३॥

कस्य	किसके (सेवक) हैं ?	**किं यूयं देवाः**	क्या आप लोग देवता हैं ?
वा कुत	अथवा कहांसे	**वा उपदेवा**	अथवा उपदेवता हैं ?
आयाताः	आये हैं ?	**किं सिद्धसत्तमाः**	क्या सिद्धोत्तम हैं ? ॥३३॥
अस्य	इसे (ले जानेसे)		
कस्मात्	किस लिए		
निषेधथ	रोकते हैं ?		

सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः ।
किरीटिनः कुण्डलिनो लसत्पुष्करमालिनः ॥३४॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सर्वे पद्म पलाश अक्षाः पीतकौशेयवाससः किरीटिनः कुण्डलिनः लसत् पुष्कर मालिनः ॥३४॥

सर्वे	(आप) सब
पद्मपलाश-	कमल-दल
अक्षाः	लोचन,
पीतकौशेय-	पीला रेशमी
वाससः	वस्त्र पहिने,
किरीटिनः	मुकुटधारी,
कुण्डलिनः	कुण्डल पहिने
पुष्कर मालिनः	कमल-मालासे
लसत्	सुशोभित हैं ॥३४॥

सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः ।
धनुर्निषङ्गासिगदाशङ्खचक्राम्बुजश्रियः ॥३५॥

सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारु चतुर्भुजाः धनुः निषङ्ग असि गदा शङ्ख चक्र अम्बुज श्रियः ॥३५॥

सर्वे च	सभी
नूत्नवयसः	नयी अवस्थावाले,
सर्वे चारु	सब सुन्दर चार
चतुर्भुजाः	भुजाओंके
धनुः निषङ्ग	धनुष, तरकस,
असि गदा	तलवार, गदा,
शङ्ख चक्र	शङ्ख, चक्र,
अम्बुज श्रियः	कमलसे शोभित हैं ॥३५॥

दिशो वितिमिरालोकाः कुर्वन्तः स्वेन रोचिषा ।
किमर्थं धर्मपालस्य किङ्करान्नो निषेधथ ॥३६॥

दिशः वितिमिर आलोकाः कुर्वन्तः स्वेन रोचिषा किं अर्थं धर्मपालस्य किङ्करान् नः निषेधथ ॥३६॥

स्वेन रोचिषा	अपनी कान्तिसे
दिशः	दिशाओंको
वितिमिर	अन्धकारहीन
आलोकाः	प्रकाशपूर्ण
कुर्वन्तः	कर रहे हैं,
धर्मपालस्य	धर्मराजके
नः किङ्करान्	हम सेवकोंको
किं अर्थं	किस प्रयोजनसे
निषेधथ	रोक रहे हैं ॥३६॥

श्रीशुक उवाच–

इत्युक्ते यमदूतैस्तैर्वासुदेवोक्तकारिणः ।
तान् प्रत्यूचुः प्रहस्येदं मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥३७॥

इति उक्ते यमदूतैः तैः वासुदेव उक्तकारिणः तान् प्रति ऊचुः प्रहस्य इदं मेघ निर्ह्रादया गिरा ॥३७॥

तैः यमदूतैः	उन यमदूतों द्वारा	**तान् प्रति**	उनसे
इति उक्ते	ऐसा कहनेपर	**मेघ निर्ह्रादया**	मेघ गर्जनके समान
वासुदेव	भगवान् वासुदेवके	**गिरा**	वाणीसे
उक्तकारिणः	आज्ञाकारी	**इदं ऊचूः**	यह बोले ॥३७॥
प्रहस्य	हंसकर		

यूयं वै धर्मराजस्य यदि निर्देशकारिणः ।
ब्रूत धर्मस्य नस्तत्त्वं यच्च धर्मस्य लक्षणम् ॥३८॥

यूयं वै धर्मराजस्य यदि निर्देश कारिणः ब्रूत धर्मस्य नः तत्त्वं यत् च धर्मस्य लक्षणम् ॥३८॥

यदि यूयं	यदि तुम लोग	**धर्मस्य तत्त्वं**	धर्मका तत्त्व
वै	सचमुच	**च यत्**	और जो
धर्मराजस्य	धर्मराजके	**धर्मस्य लक्षणं**	धर्मका लक्षग है,
निर्देश कारिणः	आज्ञापालक हो तो	**ब्रूत**	बतलाओ ॥३८॥
नः	हमको		

कथंस्विद् ध्रियते दण्डः किं वास्य स्थानमीप्सितम् ।
दण्डचाः किं कारिणः सर्वे आहोस्वित्कतिचिन्नृणाम् ॥३९॥

कथं स्वित् ध्रियते दण्डः किं वा अस्य स्थानं ईप्सितं दण्डचाः किं कारिणः सर्वे आहोस्वित् कतिचित् नृणाम् ॥३९॥

दण्डः कथं स्वित्	दण्ड किस प्रकार
ध्रियते	दिया जाता है ?
वा किं	अथवा कौन
अस्य ईप्सितं	इसका अभीष्ट
स्थानं	स्थान (पात्र) है ?
किं सर्वे	क्या सब
कारिणः	कर्म करनेवाले
दण्ड्याः	दण्डनीय हैं,
आहोस्वित्	अथवा
नृणां कतिचित्	मनुष्योंमें कुछ (दंडनीय हैं) ॥३९॥

यमदूता ऊचुः—

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ।
वेदो नारायणः साक्षात्स्वयम्भूरिति शुश्रुम ॥४०॥

वेदप्रणिहितः धर्मः हि अधर्मः तत् विपर्ययः वेदः नारायणः साक्षात् स्वयम्भूः इति शुश्रुम ॥४०॥

वेदप्रणिहितः	वेदोंमें जिनका विधान है वे
धर्मः	(कर्म) धर्म हैं,
तत् विपर्ययः	उनसे उलटे (वेदोंमें जिनका निषेध है)
अधर्मः	(वे) अधर्म हैं ।
हि वेदः	क्योंकि वेद
साक्षात्	साक्षात्
नारायणः	नारायण
स्वयम्भू	स्वयं प्रकट हैं ।
इति	ऐसा
शुश्रुम	हम सुनते हैं ॥४०॥

येन स्वधाम्न्यमी भावा रजः सत्त्वतमोमयाः ।
गुणनामक्रियारूपैर्विभाव्यन्ते यथातथम् ॥४१॥

येन स्वधाम्नि अमी भावाः रजः सत्त्व तमः मयाः गुण नाम क्रिया रूपैः विभाव्यन्ते यथातथम् ॥४१॥

येन स्वधाम्नि	जिन स्वयं प्रकाश (वेदों) द्वारा
अमी	ये (संसारके)
रजः सत्त्व	राजसिक सात्त्विक
तमः मयाः	तामसिक
भावाः	भाव
णनागुम	गुण, नाम
क्रिया रूपैः	क्रियाके रूपमें
यथातथं	ठीक-ठीक
विभाव्यन्ते	निश्चित किए जाते हैं ॥४१॥

सूर्योऽग्निः खं मरुद्गावः सोमः सन्ध्याहनी दिशः ।
कं कुः कालो धर्म इति ह्यते दैह्यस्य साक्षिणः ॥४२॥

सूर्यः अग्निः खं मरुत् गावः सोमः सन्ध्या अहनी दिशः कं कुः कालः धर्म इति हि एते दैह्यस्य साक्षिणः ॥४२॥

सूर्यः अग्निः	सूर्य, अग्नि,	**कुः कालः**	पृथ्वी, काल और
खं मरुत्	आकाश, वायु	**धर्म इति**	धर्म, इस प्रकार
गावः सोमः	इन्द्रियां, चन्द्रमा,	**हि एते**	क्योंकि इतने
सन्ध्या अहनी	सन्ध्या, रात, दिन,	**दैह्यस्य**	देहधारीके (कर्मोंके)
दिशः कं	दिशाएँ, जल,	**साक्षिणः**	साक्षी हैं ॥४२॥

एतैरधर्मो विज्ञातः स्थानं दण्डस्य युज्यते ।
सर्वे कर्मानुरोधेन दण्डमर्हन्ति कारिणः ॥४३॥

एतैः अधर्मः विज्ञातः स्थानं दण्डस्य युज्यते सर्वे कर्म अनुरोधेन दण्डं अर्हन्ति कारिणः ॥४३॥

एतैः	इनके द्वारा (जब)	**कर्म अनुरोधेन**	कर्माग्रहके कारण
अधर्मः विज्ञातः	अधर्म जाना जाता है,	**सर्वे कारिणः**	सब कर्मशील (कर्मानुसार)
दण्डस्य	(तब) दण्डके	**दण्डं अर्हन्ति**	दण्डनीय होते हैं ॥४३॥
स्थानं	पात्रका		
युज्यते	निर्णय होता है,		

सम्भवन्ति हि भद्राणि विपरीतानि चानघाः ।
कारिणां गुणसङ्गोऽस्ति देहवान् न ह्यकर्मकृत् ॥४४॥

सम्भवन्ति हि भद्राणि विपरीतानि च अनघाः कारिणां गुण सङ्गः अस्ति देहवान् न हि अकर्मकृत् ॥४४॥

अनघाः	निष्पापो,
हि भद्राणि	क्योंकि पुण्य
च विपरीतानि	और विपरीत (पाप) भी
सम्भवन्ति	होते ही हैं।
हि कारिणां	क्योंकि कर्म करने-वालेका
गुणसंगः अस्ति	गुणोंसे सम्बन्ध रहता ही है (और)
देहवान्	शरीरधारी
अकर्मकृत् न	कर्म किये बिना नहीं रह सकता ॥४४॥

येन यावान् यथाधर्मो धर्मो वेह समीहितः।
स एव तत्फलं भुङ्क्ते तथा तावदमुत्र वै ॥४५॥

येन यावान् यथा अधर्मः धर्मः वा इह समीहितः स एव तत् फलं भुङ्क्ते तथा तावत् अमुत्र वै ॥४५॥

येन यावान्	जिसने, जितना,
यथा	जैसे
अधर्मः	अधर्म
वा धर्मः	अथवा धर्म
इह समीहितः	इस लोकमें किया है,
अमुत्र	परलोकमें
स एव	वही
तत् फलं वै	उसका फल ही
तथा तावत्	वैसे उतना
भुङ्क्ते	भोगता है ॥४५॥

यथेह देवप्रवरास्त्रैविध्यमुपलभ्यते ।
भूतेषु गुणवैचित्र्यात्तथान्यत्रानुमीयते ॥४६॥

यथा इह देव प्रवराः त्रैविध्यं उपलभ्यते भूतेषु गुणवैचित्र्यात् तथा अन्यत्र अनुमीयते ॥४६॥

देव प्रवराः	देव श्रेष्ठो !
यथा इह	जैसे इस लोकमें
भूतेषु	प्राणियोंमें
गुणवैचित्र्यात्	गुणोंकी विचित्रताके कारण
त्रैविध्यं	त्रिविधता (सात्त्विक, राजस, तामस स्वभाव प्राणी)
उपलभ्यते	मिलते हैं,
तथा अन्यत्र	वैसे ही दूसरे लोकोंमें भी
अनुमीयते	अनुमान कर लिया जाता है ॥४६॥

वर्तमानोऽन्ययोः कालो गुणाभिज्ञापको यथा ।
एवं जन्मान्ययोरेतद्धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥४७॥

वर्तमानः अन्ययोः कालः गुण अभिज्ञापकः यथा एवं जन्मानि अयोः एतत् धर्म अधर्म निदर्शनम् ॥४७॥

वर्तमानः कालः	वर्तमान काल	**एवं एतत्**	इसी प्रकार इस (प्राणी) का
यथा अन्ययोः	जैसे दूसरे (भूत भविष्य) के	**धर्म अधर्म**	पाप-पुण्य
गुण	गुणोंका	**अयोः जन्मानि**	अगले-पिछले जन्मोंका
अभिज्ञापकः	सूचक है,	**निदर्शनं**	सूचक है ॥४७॥

मनसैव पुरे देवः पूर्वरूपं विपश्यति ।
अनुमीमांसतेऽपूर्वं मनसा भगवानजः ॥४८॥

मनसा एव पुरे देवः पूर्वरूपं विपश्यति अनुमीमांसते अपूर्वं मनसा भगवान् अजः ॥४८॥

भगवान्	ऐश्वर्यशाली	**विपश्यति**	देख लेते हैं और
अजः	अजन्मा	**मनसा**	मनसे ही
पुरे देवः	सबके हृदयमें विराजमान् (हमारे स्वामी)	**अपूर्वं**	(उसके अगले) प्रारब्धका
मनसा एव	मनसे ही	**अनुमीमांसते**	विचार कर लेते हैं ॥४८॥
पूर्वरूपं	(प्राणीका) पहिला रूप		

यथाज्ञस्तमसा युक्त उपास्ते व्यक्तमेव हि ।
न वेद पूर्वमपरं नष्टजन्मस्मृतिस्तथा ॥४९॥

यथा अज्ञः तमसा युक्तः उपास्ते व्यक्तं एव हि न वेद पूर्वं अपरं नष्ट जन्मस्मृतिः तथा ॥४९॥

यथा अज्ञः	जैसे अज्ञानी पुरुष
तमसा युक्तः	निद्रायुक्त (स्वप्न देखते समय)
व्यक्तं एव हि	(उस समयके) व्यक्त देहको ही
उपास्ते	अपना स्वीकार करता है,
पूर्वं अपरं	(सोनेसे) पहिले और (जागनेके) बादको
न वेद	नहीं जानता
तथा	ऐसे ही
जन्मस्मृतिः	(दूसरे) जन्मोंकी स्मृति
नष्ट	नष्ट हो जाती है ॥४९॥

पञ्चभिः कुरुते स्वार्थान् पञ्च वेदाथ पञ्चभिः ।
एकस्तु षोडशेन त्रीन् स्वयं सप्तदशोऽश्नुते ॥५०॥

पञ्चभिः कुरुते स्व अर्थान् पञ्च वेद अथ पञ्चभिः एकः तु षोडशेन त्रीन् स्वयं सप्तदशः अश्नुते ॥५०॥

पञ्चभिः	पांच (कर्मेन्द्रियों) से (पुरुष)
स्व अर्थान्	अपने प्रयोजन (पूर्ण)
कुरुते	करता है,
अथ पञ्चभिः	और पांच (ज्ञानेन्द्रियों) से
पञ्च वेद	पांच (रूप रसादि विषयों) को जानता है,
षोडशेन	सोलहवें (मन) के द्वारा
स्वयं एकः तु	स्वयं एक (जीव) तो
सप्तदशः	सत्रहवां है जो
त्रीन्	तीनों (गुणों) को
अश्नुते	भोगता है ॥५०॥

तदेतत् षोडशकलं लिङ्गं शक्तित्रयं महत् ।
धत्तेऽनु संसृतिं पुंसि हर्षशोकभयार्तिदाम् ॥५१॥

तत् एतत् षोडशकलं लिङ्गं शक्तित्रयं महत् धत्ते अनु संसृतिं पुंसि हर्ष शोक भय आर्तिदाम् ॥५१॥

तत् एतत्	वह यह
षोडशकलं	सोलह कलावाला
शक्तितत्रयं	(सत्त्व आदि) तीन शक्तियों वाला
लिङ्ग महत्	लिङ्ग शरीर अनादि है,
पुंसि	(यही) पुरुषके लिए
हर्ष शोक	हर्ष, शोक,
भय आर्तिदां	भय, पीड़ा देनेवाले
अनु संसृतिं	बार-बार जन्म-मरण चक्रको
धत्ते	धारण करता है ॥५१॥

देह्यज्ञोऽजितषड्वर्गो नेच्छन् कर्माणि कार्यते ।
कोशकार इवात्मानं कर्मणाऽऽच्छाद्य मुह्यति ॥५२॥

देहि अज्ञः अजित षड्वर्गः न इच्छन् कर्माणि कार्यते कोशकार इव आत्मानं कर्मणा आच्छाद्य मुह्यति ॥५२॥

अज्ञः देही	अज्ञानी जीव
षड्वर्गः	षड्वर्ग (काम-क्रोध, लोभ मोह, मद, मत्सर) को
अजित	न जीतकर
न इच्छन्	न चाहनेपर भी
कर्माणि	कर्मोंको
कार्यते	करना पड़ता है,
कोशकार इव	रेशमके कीड़ेकी भांति
आत्मानं	अपनेको
कर्मणा आच्छाद्य	कर्मोंसे ढककर
मुह्यति	मोहित हो जाता है ॥५२॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत ।
कार्यते ह्यवशः कर्म गुणैः स्वाभाविकैर्बलात् ॥५३॥

न हि कश्चित् क्षणं अपि जातु तिष्ठति अकर्मकृत कार्यते हि अवशः कर्म गुणैः स्वाभाविकैः बलात् ॥५३॥

हि	क्योंकि
कश्चित् जातु	कोई जन्म लेनेवाला
क्षणं अपि	एक क्षण भी
अकर्मकृत	बिना कर्म किये
न तिष्ठति	नहीं रहता,
हि स्वाभाविकैः	क्योंकि नैसर्गिक
गुणैः बलात्	गुणोंसे बलपूर्वक
अवशः	विवश करके
कर्म कार्यते	कर्म कराया जाता है ॥५३॥

लब्ध्वा निमित्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं भवत्युत ।
यथायोनि यथाबीजं स्वभावेन बलीयसा ॥५४॥

लब्ध्वा निमित्तं अव्यक्तं व्यक्त अव्यक्तम् भवति उत यथा योनि यथा बीजं स्वभावेन बलीयसा ॥५४॥

अव्यक्तं	अव्यक्त (पूर्व जन्मके संस्कारों) के	**स्वभावेन**	बलवान स्वभावके अनुसार
निमित्तं लब्ध्वा	निमित्तको पाकर	**अव्यक्तं**	अव्यक्त (लिंग शरीर)
यथा योनि	माताके अनुरूप	**व्यक्त भवति**	व्यक्त (स्थूल देह) हो जाता है ॥५४॥
उत यथा बीजं	अथवा पिताके अनुरूप		
बलीयसा	(अथवा) अपने		

एष प्रकृतिसङ्गेन पुरुषस्य विपर्ययः ।
आसीत् स एव नचिरादीशसङ्गाद्विलीयते ॥५५॥

एष प्रकृति सङ्गेन पुरुषस्य विपर्ययः आसीत् स एव न चिरात् ईश सङ्गात् विलीयते ॥५५॥

एष पुरुषस्य	यह पुरुषकी	**ईश सङ्गात्**	ईश्वरमें आसक्ति होनेसे
विपर्ययः	उलटी दशा	**न चिरात्**	अविलम्ब
प्रकृति सङ्गेन	प्रकृतिमें आसक्तिसे	**विलीयते**	लीन (नष्ट) हो जाती है ॥५५॥
आसीत्	है ।		
स एव	वही		

अयं हि श्रुतसम्पन्नः शीलवृत्तगुणालयः ।
धृतव्रतो मृदुर्दान्तः सत्यवान्मन्त्रविच्छुचिः ॥५६॥

अयं हि श्रुतसम्पन्नः शील वृत्त गुण आलयः धृतव्रतः मृदुः दान्तः सत्यवान् मन्त्रवित् शुचिः ॥५६॥

अयं हि	यह (आजामिल) तो
श्रुतसम्पन्नः	शास्त्रज्ञान सम्पन्न,
शील वृत्त	शील, सदाचार,
गुण आलयः	गुणोंका निवास ही था,
धृतव्रतः	व्रतधारी,
मृदुः दान्तः	विनयी, जितेन्द्रिय
सत्यवान्	सत्यवादी,
मन्त्रवित्	मन्त्रवेत्ता,
शुचिः	पवित्र था ॥५६॥

गुर्वग्न्यतिथिवृद्धानां शुश्रूर्षुर्निरहङ्कृतः ।
सर्वभूतसुहृत्साधुर्मितवागनसूयकः ॥५७॥

गुरु अग्नि अतिथि वृद्धानां शुश्रूषुः निरहङ्कृतः सर्वभूत सुहृत् साधुः मितवाक् अनसूयकः ॥५७॥

गुरु अग्नि	गुरु, अग्नि,
अतिथि वृद्धानां	अतिथि एवं वृद्धोंकी
शुश्रूषुः	सेवा करनेवाला,
निरहङ्कृतः	अहंकारहीन,
सर्वभूत सुहृत्	सब प्राणियोंका मित्र,
साधुः	सज्जन,
मितवाक्	अल्पभाषी तथा
अनसूयकः	किसीके गुणमें दोष न देखने वाला था ॥५७॥

एकदासौ वनं यातः पितृसन्देशकृद् द्विजः ।
आदाय तत आवृत्तः फलपुष्पसमित्कुशान् ॥५८॥

एकदा असौ वनं यातः पितृसन्देशकृत् द्विजः आदाय तत् आवृत्तः फल पुष्प समित् कुशान् ॥५८॥

पितृसन्देशकृत्	पिताका आज्ञा-पालक
असौ द्विजः	यह ब्राह्मण
एकदा	एक बार
वनं यातः	वनमें गया,
तत् फल पुष्प	वहांसे फल, फूल,
समित् कुशान्	समिधाएँ और कुश
आदाय	लेकर
आवृत्तः	लौट रहा था ॥५८॥

ददर्श कामिनं कञ्चिच्छूद्रं सह भुजिष्यया ।
पीत्वा च मधु मैरेयं मदाघूर्णितनेत्रया ॥५९॥

ददर्श कामिनं कञ्चित् शूद्रं सह भुजिष्यया पीत्वा च मधु मैरेयं मदाघूर्णित नेत्रया ॥५९॥

कञ्चित्	किसी	**मदाघूर्णित**	नशेसे घूमते
कामिनं शूद्रं	कामी शूद्रको	**नेत्रया**	नेत्रोंवाली
मैरेयं मधु	महुएकी शराब	**भुजिष्यया**	वेश्याके
पीत्वा च	पीकरके	**सह ददर्श**	साथ देखा ॥५९॥

मत्तया विश्लथन्नीव्या व्यपेतं निरपत्रपम् ।
क्रीडन्तमनु गायन्तं हसन्तमनयान्तिके ॥६०॥

मत्तया विश्लथत् नीव्या व्यपेतं निरपत्रपं क्रीडन्तं अनु गायन्तं हसन्तं अनया अन्तिके ॥६०॥

मत्तया	मतवाली	**अनया अन्तिके**	इसके पास ही
विश्लथत्	फिसलते हुए	**क्रीडन्तं**	खेलते हुए
नीव्या	कटि बन्धनसे	**अनु गायन्तं**	बीच-बीचमें गाता हुआ,
व्यपेतं	(वस्त्र) रहित (स्त्रीके साथ)	**हसन्तं**	हँसता था ॥६०॥
निरपत्रपं	निर्लज्ज (शूद्र)		

दृष्ट्वा तां कामलिप्तेन बाहुना परिरम्भिताम् ।
जगाम हृच्छयवशं सहसैव विमोहितः ॥६१॥

दृष्ट्वा तां कामलिप्तेन बाहुना परिरम्भितां जगाम हृच्छयवशं सहसा एव विमोहितः ॥६१॥

कामलिप्तेन	कामोद्दीपक (अंगरागादिसे) लिप्त	**तां दृष्ट्वा**	उस (वेश्या) को देखकर
बाहुना	(शूद्रकी) भुजाओंसे	**सहसा एव**	अचानक ही
परिरम्भितां	आलिंगित	**विमोहितः**	मोहित होकर
		हृच्छयवशं	कामके वश
		जगाम	हो गया ॥६१॥

स्तम्भयन्नात्मनाऽऽत्मानं यावत्सत्त्वं यथाश्रुतम् ।
न शशाक समाधातुं मनो मदनवेपितम् ॥६२॥

स्तम्भयन् आत्मना आत्मानं यावत् सत्त्वं यथा श्रुतं न शशाक समाधातुं मनः मदन वेपितम् ॥६२॥

यावत् सत्त्वं	जितना धैर्य था,	**आत्मानं**	अपनेको ही
यथा श्रुतं	जितना ज्ञान था (उसके अनुसार)	**स्तम्भयन्**	स्थिर करनेकी चेष्टा की,
मदन वेपितं	कामवेगसे चञ्चल	**समाधातुं**	किन्तु स्थिर करनेमें
मनः	मनको,	**शशाक न**	समर्थ नहीं
आत्मना	अपनी बुद्धिसे		हुआ ॥६२॥

तन्निमित्तस्मरव्याजग्रहग्रस्तो विचेतनः ।
तामेव मनसा ध्यायन् स्वधर्माद्विरराम ह ॥६३॥

तत् निमित्त स्मर व्याज ग्रह ग्रस्तः विचेतनः तां एव मनसा ध्यायन् स्वधर्मात् विरराम ह ॥६३॥

तत् निमित्त	उस (वेश्या) को निमित्त बनाकर	**तां एव मदसा ध्यायन्**	उसीका मनसे चिन्तन करता हुआ
व्याज	इसी बहाने		
स्मर ग्रह	काम पिशाच द्वारा	**स्वधर्मात्**	अपने धर्मसे
ग्रस्तः	पकड़ा जाकार	**विरराम ह**	उपरत (विमुख) हो गया ॥६३॥
विचेतनः	(उसकी) चेतना नष्ट हो गयी,		

तामेव तोषयामास पित्र्येणार्थेन यावता ।
ग्राम्यैर्मनोरमैः कामैः प्रसीदेत यथा तथा ॥६४॥

तां एव तोषयामास पित्र्येण अर्थेन यावता ग्राम्यैः मनोरमैः कामैः प्रसीदेत यथा तथा ॥६४॥

यावता	जितना भी	**मनोरमैः**	सुन्दर
पित्र्येण	पितकाकी	**ग्राम्यैः कामैः**	कामोपभोगकी
अर्थेन	सम्पत्ति थी (उससे)		सम्पत्तियोंसे
यथा	जैसे (वह वेश्या)	**तां एव**	उसीको
प्रसीदेत	प्रसन्न हो	**तोषयामास**	सन्तुष्ट किया ॥६४॥
तथा	उस प्रकारके		

विप्रां स्वभार्यामप्रौढां कुले महति लम्भिताम् ।
विससर्जाचिरात्पापः स्वैरिण्यापाङ्गविद्धधीः ॥६५॥

विप्रां स्वभार्यां अप्रौढां कुले महति लम्भितां विससर्ज अचिरात् पापः स्वैरिण्य अपाङ्ग विद्ध धीः ॥६५॥

स्वैरिण्य	(उस) स्वेच्छा चारिणीके	**लम्भितां**	आयी
		अप्रौढां	युवती
अपाङ्ग	कटाक्षसे	**विप्रां**	ब्राह्मणी
विद्ध धीः	बिंधा बुद्धि	**स्वभार्यां**	अपनी पत्नीको
पापः	(यह) पापी	**अचिरात्**	बहुत समयसे
महति कुले	बड़े कुलमें-से	**विससर्ज**	छोड़ रखा है ॥६५॥

यतस्ततश्चोपनिन्ये न्यायतोऽन्यायतो धनम् ।
बभारास्याः कुटुम्बिन्याः कुटुम्बं मन्दधीरयम् ॥६६॥

यतः ततः च उपनिन्ये न्यायतः अन्यायतः धनं बभार अस्याः कुटुम्बिन्याः कुटुम्बं मन्दधीः अयम् ॥६६॥

न्यायतः	न्याय पूर्वक या	**अस्याः**	इस
अन्यायतः	अन्यायसे	**कुटुम्बिन्याः**	बड़े कुटुम्ब वालीके
यतः ततः	इधर-उधर	**कुटुम्बं**	कुटुम्बका
च	चाहे जहांसे	**बभार**	भरण-पोषण कर
धनं उपनिन्ये	धन उठा लाता था,		रहा था ॥६६॥
अयं मन्दधीः	यह मन्द बुद्धि (इस प्रकार)		

यदसौ शास्त्रमुल्लङ्घ्य स्वैरचार्यार्यगर्हितः ।
अवर्तत चिरं कालमघायुरशुचिर्मलात् ॥६७॥

यत् असौ शास्त्रं उल्लङ्घ्य स्वैर आचार आर्य गर्हितः अवर्तत चिरं कालं अघायुः अशुचिः मलात् ॥६७॥

यत् असौ	क्योंकि इसने	**अवर्तत**	किया है (अतः)
शास्त्रं	शास्त्राज्ञाका	**मलात्**	दूषित कर्म (एवं अन्नसे)
उल्लंघ्य	उलंघन करके		
आर्य गर्हितः	श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा निन्दित	**अघायुः**	इसका जीवन पापमय है,
स्वैर आचार	स्वच्छन्दाचरण	**अशुचिः**	(यह) अपवित्र
चिरं कालं	बहुत समय तक		है ॥६७॥

तत एनं दण्डपाणेः सकाशं कृतकिल्बिषम् ।
नेष्यामोऽकृतनिर्वेशं यत्र दण्डेन शुद्ध्यति ॥६८॥

ततः एनं दण्डपाणेः सकाशं कृतकिल्बिषं नेष्यामः अकृत निर्वेशं यत्र दण्डेन शुद्ध्यति ॥६८॥

अकृत निर्वेशं	(अपने) पापोंका प्रायश्चितन करने-वाले	**कृतकिल्बिषं**	पाप करनेवाले (इसे) को
एनं	इनको	**नेष्यामः**	(हम) ले जाएँगे,
ततः	इसलिए	**यत्र**	जहां
दण्डपाणेः	यमराजके	**दण्डेन**	दण्ड मिलनेसे
सकाशं	समीप	**शुद्ध्यति**	शुद्ध हो जायगा ॥६८

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धेऽजामिलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

एवं ते भगवद्दूता यमदूताभिभाषितम् ।
उपधार्याथ तान् राजन् प्रत्याहुर्नयकोविदाः ॥१॥

एवं ते भगवद्दूता यमदूत अभिभाषितं उपधार्य अथ तान् राजन् प्रति आहुः नयकोविदाः ॥१॥

राजन्	राजन् !	**नयकोविदाः**	नीति-निपुण
एवं	इस प्रकार	**ते भगवद्दूता**	वे भगवान्‌के दूत
यमदूत	यमदूतोंका	**अथ तान् प्रति**	फिर उनसे
अभिभाषितं	अभिभाषण	**आहुः**	बोले ॥१॥
उपधार्य	सुनकर		

विष्णुदूता ऊचुः–

अहो कष्टं धर्मदृशामधर्मः स्पृशते सभाम् ।
यत्रादण्ड्येष्वपापेषु दण्डो यैर्ध्रियते वृथा ॥२॥

अहो कष्टं धर्मदृशां अधर्मः स्पृशते सभां यत्र अदण्ड्येषु अपापेषु दण्डः यैः ध्रियते वृथा ॥२॥

अहो कष्टं	यह आश्चर्य और खेदकी बात है कि	**अदण्ड्येषु**	जो दण्डनीय नहीं है उसे
धर्मदृशां सभां	धर्मज्ञोंकी सभाको	**यैः वृथा**	जिनके द्वारा व्यर्थ
अधर्मः स्पृशते	अधर्म छू रहा है ।	**दण्डः ध्रियते**	दण्ड दिया जाता है ॥२॥
यत्र अपापेषु	जहाँ निष्पाप,		

प्रजानां पितरो ये च शास्तारः साधवः समाः ।
यदि स्यात्तेषु वैषम्यं कं यान्ति शरणं प्रजाः ॥३॥

प्रजानां पितरः ये च शास्तारः साधवः समाः यदि स्यात् तेषु वैषम्यं कं यान्ति शरणं प्रजाः ॥३॥

प्रजानां	प्रजाके	**वैषम्यं स्यात्**	विषमता हो जाय तो
ये च पितरः	जो तो माता-पिता,	**प्रजाः**	प्रजा
शास्तारः	शासक,	**कं शरणं**	किसकी शरण
साधवः	सत्पुरुष,	**यान्ति**	जायगी ॥३॥
समाः	समदर्शी हैं,		
यदि तेषु	यदि उनमें ही		

यद्यदाचरति श्रेयानितरस्तत्तदीहते ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥४॥

यद् यद् आचरति श्रेयान् इतरः तत् तत् ईहते स यत् प्रमाणं कुरुते लोकः तत् अनुवर्तते ॥४॥

श्रेयान्	सत्पुरुष	**स यत् प्रमाणं**	वे जिसे (अपने आचरणसे) प्रामाणिक
यद् यद्	जो जो		
आचरति	आचरण करते हैं,	**कुरुते**	बनाते हैं,
इतरः	दूसरे भी	**लोकः**	लोग
तत् तत्	वही वही	**तत् अनुवर्तते**	उसीका अनुकरण करते हैं ॥४॥
ईहते	करते हैं ।		

यस्याङ्के शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृतः ।
स्वयं धर्ममधर्मं वा न हि वेद यथा पशुः ॥५॥

यस्य अङ्के शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृतः स्वयं धर्मं अधर्मं वा न हि वेद यथा पशुः ॥५॥

लोकः	(साधारण) लोग	**यस्य अङ्के**	(वे) जिसकी गोदमें
धर्मं अधर्मं वा	धर्म या अधर्म	**शिर आधाय**	सिर रखकर
यथा पशुः	पशुओंके समान	**निर्वृतः**	निश्चिन्त
स्वयं न हि वेद	स्वयं नहीं ही जानते	**स्वपिति**	सोते हैं ॥५॥

स कथं न्यर्पितात्मानं कृतमैत्रमचेतनम् ।
विश्रम्भणीयो भूतानां सघृणो द्रोग्धुमर्हति ॥६॥

स कथं न्यर्पित आत्मानं कृतमैत्रं अचेतनं विश्रम्भणीयः भूतानां सघृणः द्रोग्धुं अर्हति ॥६॥

स सघृणः	वह दयालु,	**न्यर्पित**	समर्पण किये
भूतानां	प्राणियोंका	**अचेतनं**	अज्ञानी लोगोंके साथ
विश्रम्भणीयः	विश्वास-पात्र,	**कथं द्रोग्धुं**	कैसे द्रोह (बिश्वास-घात)
कृतमैत्रं	मित्रता करनेवाले,		
आत्मानं	आत्म	**अर्हति**	कर सकता है ॥६॥

अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि ।
यद् व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥७॥

अयं हि कृतनिर्वेशः जन्म कोटि अंहसां अपि यत् व्याजहार विवशः नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥७॥

अयं हि	इसने तो	**यत् विवशः**	क्योंकि विवश होकर (सही)
कोटि जन्म	करोड़ों जन्मोंके		
अंहसां अपि	पापोंका भी	**हरेः**	श्रीहरिका
कृतनिर्वेशः	प्रायश्चित कर लिया,	**स्वस्त्ययनं नाम व्याजहार**	कल्याण-धाम नामका उच्चारण किया ॥७॥

एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् ।
यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥८॥

एतेन एव हि अघोना अस्य कृतं स्यात् अघ निष्कृतं यदा नारायणाय इति जगाद चतुः अक्षरम् ॥८॥

यदा	जब	**एतेन एव हि**	इतनेसे ही
नारायणाय	नारायण	**अघोना अस्य**	इस पापीके
इति चतुः अक्षरं	इस प्रकार चार अक्षर	**अघ निष्कृतं कृतं स्यात्**	पापोंका प्रायश्चित कर लिया गया ॥८॥
जगाद	बोला		

स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग् ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ॥९॥

स्तेनः सुरापः मित्र ध्रुक् ब्रह्म हा गुरुतल्पगः स्त्री राज पितृ गोहन्ता ये च पातकिनः अपरे ॥९॥

स्तेनः	चोर,	**स्त्री राज**	स्त्री, राजा,
सुरापः	शराबी,	**पितृ गोहन्ता**	पिता और गायका हत्यारा
मित्र ध्रुक्	मित्र-द्रोही,		
ब्रह्म हा	ब्रह्म-हत्यारा,	**च ये अपरे**	और जो दूसरे
गुरुतल्पगः	गुरु-पत्नीगामी,	**पातकिनः**	पापी हैं ॥९॥

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥१०॥

सर्वेषां अपि अघवतां इदं एव सुनिष्कृतं नाम व्याहरणं विष्णोः यतः तत् विषया मतिः ॥१०॥

सर्वेषां	सभी	**नाम व्याहरणं**	नाम लिया जाय,
अघवतां अपि	पापियोंके लिए भी	**यतः**	जिससे
इदं एव	यही	**तत् विषया**	उन (श्रीहरि) के विषयकी
सुनिष्कृतं	श्रेष्ठ प्रायश्चित है,		
विष्णोः	भगवान् विष्णुका	**मतिः**	बुद्धि बने ॥१०॥

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि-
स्तथा विशुद्ध्यत्यघवान् व्रतादिभिः ।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै-
स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥११॥

न निष्कृतैः उदितैः ब्रह्मवादिभिः तथा विशुद्ध्यति अघवान् व्रतादिभिः यथा हरेः नाम पदैः उदाहृतैः तत् उत्तम श्लोक गुण उपलम्भकम् ॥११॥

ब्रह्मवादिभिः	वेद-वेत्ताओं द्वारा	यथा	जैसा
उदितैः	बतलाये गये	हरेः नाम पदैः	श्रीहरिके नामके पदोंके
व्रतादिभिः	व्रत आदि	उदाहृतैः	उच्चारणसे,
निष्कृतैः	प्रायश्चितोंसे	तत् उत्तम श्लोक	वे पवित्र कीर्ति भगवान्‌के)
अघवान्	पापी	गुण उपलम्भकं	गुणोंके सूचक हैं ॥११
तथा न	वैसा नहीं		
विशुद्ध्यति	शुद्ध होता		

नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते
मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे ।
तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरे-
र्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥१२॥

न एकान्तिकं तत् हि कृते अपि निष्कृते मनः पुनः धावति चेत् असत् पथे तत् कर्म निर्हारं अभीप्सतां हरेः गुण अनुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥१२॥

हि	क्योंकि	तत्	वह (प्रायश्चित)
निष्कृते	प्रायश्चित	एकान्तिकं न	आत्यन्तिक (पूरा) नहीं है ।
कृते अपि	कर लेनेपर भी		
चेत् मनः	यदि मन	तत्	अतः
पुनः असत् पथे	फिर कुमार्गमें	कर्म निर्हारं	कर्मके नाशको
धावति	दौड़ता हो तो	अभीप्सतां	चाहनेवालेको

सत्त्वभावनः	चित्तको शुद्ध करनेवाला	हरेः	श्रीहरिका
खलु	निश्चय	गुण अनुवादः	गुण-गान है ॥१२॥

अथैनं मापनयत कृताशेषाघनिष्कृतम् ।
यदसौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ॥१३॥

अथ एनं मा अपनयत कृत अशेष अघ निष्कृतं यत् असौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ॥१३॥

अथ	अतः	यत् असौ	क्योंकि इसने
अशेष अघ	सम्पूर्ण पापोंका	म्रियमाणः	मरते समय
निष्कृतं कृत	प्रयश्चित कर चुके	भगवन्नाम	भगवान्का नाम
एनं	इसको	समग्रहीत्	लिया है ॥१३॥
मा अपनयत	मत ले जाओ,		

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥१४॥

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनं एव वा वैकुण्ठ नाम ग्रहणं अशेष अघहरं विदुः ॥१४॥

साङ्केत्यं	संकेतके लिए,	ग्रहणं	लेना
पारिहास्यं	हंसीके लिए,	अशेष अघ	सम्पूर्ण पापोंका
वा स्तोभं	अथवा तान लेनेमें,	हरं	नाशक
वा हेलनं एव	या अवहेलनासे ही	विदुः	जाना गया
वैकुण्ठ नाम	भगवान्का नाम		है ॥१४॥

पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः ।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम् ॥१५॥

पतितः स्खालितः भग्नः सन्दष्टः तप्तः आहतः हरिः इति अवशेन आह पुमान् न अर्हति यातनाम् ॥१५॥

पतितः	गिरते समय,	**हरिः इति**	हरि इस प्रकार
स्खलितः	फिसलते समय,	**आह**	उच्चारण कर लेने
भग्नः	अंग-भंग होते		वाला
	समय,	**पुमान्**	पुरुष
सन्दष्टः	(किसीके) डँसनेपर,	**यातनां**	यम-यातना
तप्तः	जलनेपर,	**न अर्हति**	नहीं पाना
आहतः	घायल होनेपर		चाहिए ॥१५॥
अवशेन	विवश होकर		

गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च ।
प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभिः ॥१६॥

गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वा उक्तानि महर्षिभिः ॥१६॥

महर्षिभिः	महर्षियों द्वारा	**लघूनां च**	छोटे ही
गुरूणां च	बड़े-बड़े	**प्रायश्चित्तानि**	प्रायश्चित
पापानां च	पापोंके लिए तो	**ज्ञात्वा**	(शास्त्रसे) जानकर
गुरूणि च	बड़े-बड़े ही	**उक्तानि**	बतलाये हैं ॥१६॥
च लघूनां	और छोटे (पापों)		
	के लिए		

तैस्तान्यघानि पूयन्ते तपोदानजपादिभिः ।
नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशाङ्घ्रिसेवया ॥१७॥

तैः तानि आघानि पूयन्ते तपः दान जप आदिभिः न अधर्मजं तत् हृदयं तत् अपि ईश अङ्घ्रि सेवया ॥१७॥

तैः	उन	**पूयन्ते**	पवित्र हो जाते हैं,
तपः दान	तपस्या, दान	**तत्**	(पर) उसका
जप आदिभिः	जप आदिसे	**अधर्मजं**	अधर्मको उत्पन्न
तानि अघानि	उन पापोंसे		करनेवाला

हृदयं न	चित्त नहीं (पवित्र) होता,	**ईश अङ्घ्रि सेवया**	भगवान्‌के चरणोंकी सेवासे (पवित्र हो जाता है) ॥१७॥
तत् अपि	वह (चित्त) भी		

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ।
सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः ॥१८॥

अज्ञानात् अथवा ज्ञानात् उत्तम श्लोक नाम यत् संकीर्तितं अघं पुंसः दहेत् एधः यथा अनलः ॥१८॥

अज्ञानात्	अनजानमें	**यथा अनलः**	जैसे अग्नि
अथवा	अथवा	**एधः**	ईंधन (सूखी लकड़ी) को
ज्ञानात्	जान बूझकर	**पुंसः अघं**	(वैसे ही) पुरुषके पापको
संकीर्तितं	लिया गया	**दहेत्**	भस्म कर देता है ॥१८॥
यत् उत्तम श्लोक नाम	क्योंकि पवित्र कीर्ति भगवान्‌का नाम है,		

यथागदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया ।
अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः ॥१९॥

यथा अगदं वीर्यतमं उपयुक्तं यदृच्छया अजानतः अपि आत्मगुणं कुर्यात् मन्त्रः अपि उदाहृतः ॥१९॥

यथा वीर्यतमं	जैसे बहुत शक्ति-शाली	**आत्मगुणं**	अपना गुण (प्रभाव)
अगदं	औषधि	**कुर्यात्**	करती है,
यदृच्छया	अकस्मात्	**मन्त्रः अपि**	(ऐसे ही) मन्त्र भी
अजानतः अपि	अनजानमें भी	**उदाहृतः**	उच्चारण मात्रसे (प्रभाव करता है ।) ॥१९॥
उपयुक्तं	उपयोग कर लेनेपर		

श्रीशुक उवाच-

त एवं सुविनिर्णीय धर्मं भागवतं नृप ।
तं याम्यपाशान्निर्मुच्य विप्रं मृत्योरमूमुचन् ॥२०॥

त एवं सुविनिर्णीय धर्मं भागवतं नृप तं याम्यपाशान् निर्मुच्य विप्रं मृत्योः अमूमुचन् ॥२०॥

नृप	राजन्	**तं विप्रं**	उस ब्राह्मण (अजामिल) को
त	उन (भगवत्पार्षदों) ने	**याम्यपाशान्**	यमराजके फन्दोंको
भागवतं धर्मं	भागवत् धर्मका	**निर्मुच्य**	खोलकर
सुविनिर्णीय	निर्णय सुनाकर	**मृत्योः**	मृत्युसे
		अमूमुचन्	छुड़ा दिया ॥२०॥

इति प्रत्युदिता याम्या दूता यात्वा यमान्तिके ।
यमराज्ञे यथा सर्वमाचचक्षुररिन्दम ॥२१॥

इति प्रति उदिता याम्या दूता यात्वा यम अन्तिके यमराज्ञे यथा सर्वं आच चक्षुः अरिन्दम् ॥२१॥

अरिन्दम	शत्रुनाशक परीक्षित !	**यात्वा**	जाकर
इति	इस प्रकार	**यमराज्ञे**	यमराजसे
प्रति उदिता	प्रत्युत्तर पाकर	**सर्वं आचचक्षुः**	सब ज्योंका त्यों सुना दिया ॥२१॥
याम्या दूता	यमराजके दूत		
यम अन्तिके	यमराजके पास		

द्विजः पाशाद्विनिर्मुक्तो गतभीः प्रकृतिं गतः ।
ववन्दे शिरसा विष्णोः किङ्करान् दर्शनोत्सवः ॥२२॥

द्विजः पाशात् विनिर्मुक्तः गतभीः प्रकृतिं गतः ववन्दे शिरसा विष्णोः किङ्करान् नर्शन उत्सवः ॥२२॥

द्विजः	(वह) ब्राह्मण (अजामिल)
पाशात्	यमपाशसे
विनिर्मुक्तः	छूट जानेपर
गतभीः	निर्भय हो गया,
प्रकृतिं गतः	स्वस्थ होकर
विष्णोः	भगवान् विष्णुके
किङ्करान्	दूतोंको
नर्शन उत्सवः	(उनके) दर्शनसे प्रसन्न होकर
शिरसा ववन्दे	सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥२२॥

तं विवक्षुमभिप्रेत्य महापुरुषकिङ्कराः ।
सहसा पश्यतस्तस्य तत्रान्तर्दधिरेऽनघ ॥२३॥

तं विवक्षुं अभिप्रेत्य महापुरुष किङ्कराः सहसा पश्यतः तस्य तत्र अन्तः दधिरे अनघ ॥२३॥

अनघ	निष्पाप परीक्षित् !
तं विविक्षुं	उसे बोलनेकी इच्छा करते
अभिप्रेत्य	जानकर
महापुरुष	पुरुषोत्तम भगवान्के
किङ्कराः	पार्षद
तस्य पश्यतः	उसके देखते-देखते
सहसा तत्र	अचानक वहीं
अन्तः दधिरे	अन्तर्धान हो गये ॥२३॥

अजामिलोऽप्यथाकर्ण्य दूतानां यमकृष्णयोः ।
धर्मं भागवतं शुद्धं त्रैविद्यं च गुणाश्रयम् ॥२४॥

अजामिलः अपि अथाकर्ण्य दूतानां यम कृष्णयोः धर्मं भागवतं शुद्धं त्रैविद्यं च गुणाश्रयम् ॥२४॥

अजामिलः अपि	अजामिलने भी
कृष्णयोः	भगवान्के (दूतोंसे)
शुद्धं	शुद्ध
भागवतं धर्मं	भागवत् धर्म और
यम दूतानां	यमदूतोंसे उनका
त्रैविद्यं	वेद-प्रतिपादित
गुणाश्रयं	सगुण (प्रवृत्तिपरक) धर्म
अथाकर्ण्य	सुनकर ॥२४॥

भक्तिमान् भगवत्याशु माहात्म्यश्रवणाद्धरेः ।
अनुतापो महानासीत्स्मरतोऽशुभमात्मनः ॥२५॥

भक्तिमान् भगवति आशु माहात्म्य श्रवणात् हरेः अनुतापः महान् आसीत् स्मरतः अशुभं आत्मनः ॥२५॥

हरेः माहात्म्य	श्रीहरिकी महिमा	**आत्मनः अशुभं**	अपने पापोंका
श्रवणात्	सुननेसे	**स्मरतः**	स्मरण करके
भगवति	भगवान्‌में	**महान् अनुतापः**	भारी पश्चाताप
आशु	शीघ्र	**आसीत्**	हुआ ॥२५॥
भक्तिमान्	भक्तिमान् (हो गया तथा)		

*अजमिलोवाच-**

अहो मे परमं कष्टमभूदविजितात्मनः ।
येन विप्लावितं ब्रह्म वृषल्यां जायताऽऽत्मना ॥२६॥

अहो मे परमं कष्टं अभूत् अविजित आत्मनः येन विप्लावितं ब्रह्म वृषल्या जायता आत्मना ॥२६॥

अहो मे	अरे मेरे लिए	**वृषल्यां**	शूद्रा (के गर्भ) से
परमं कष्टं	अत्यन्त दुःखकी बात	**आत्मना जायता**	(पुत्र रूपमें) अपने-को ही उत्पन्न करके
अभूत्	हो गयी कि	**ब्रह्म विप्लाविता**	ब्राह्मणत्व नष्ट कर दिया ॥२६॥
अविजित			
आत्मनः	अजितेन्द्रिय		
येन	जिस मैंने		

धिङ्मां विगर्हितं सद्भिर्दुष्कृतं कुलकज्जलम् ।
हित्वा बालां सतीं योऽहं सुरापामसतीमगाम् ॥२७॥

धिक् मां विगर्हितं सद्भिः दुष्कृतं कुलकज्जलं हित्वा बालां सतीं यः अहं सुरापां असतीं अगाम् ॥२७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है; किन्तु आगे श्लोक ३८ के पश्चात् 'श्रीशुक उवाच' होनेसे इसकी आवश्यकता स्पष्ट है ।

सद्भिः	सत्पुरुषोंसे	**सतीं बालां**	सती अबोध (पत्नी)
विगर्हितं	निन्दित,		को
दुष्कृतं	पापी,	**हित्वा**	त्यागकर
कुलकज्जलं	कुल-कलंक	**सुरापां**	शराब पीने वाली
मां धिक्	मुझे धिक्कार है,	**असतीं**	कुलटाका
यः अहं	जिस मैंने	**अगाम्**	संसर्ग किया ॥२७॥

वृद्धावनाथौ पितरौ नान्यबन्धू तपस्विनौ ।
अहो मयाधुना त्यक्तावकृतज्ञेन नीचवत् ॥२८॥

वृद्धाः अनाथौ पितरौ न अन्य बन्धु तपस्विनौ अहो मया अधुना त्यक्ताः अकृतज्ञेन नीचवत् ॥२८॥

पितरौ	(मेरे) माता-पिता	**तपस्विनौ**	तपस्वी थे,
वृद्धाः	वृद्ध थे,	**अहो नीचवत्**	अरे नीचके समान
अनाथौ	असहाय थे,	**अधुना**	इस समय
न अन्य बन्धु	उनका कोई दूसरा सम्बन्धी भी नहीं था,	**मया अकृतज्ञेन**	मुझ कृतघ्न द्वारा
		त्यक्ताः	त्याग दिये गये ॥२८

सोऽहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे ।
धर्मघ्नाः कामिनो यत्र विन्दन्ति यमयातनाः ॥२९॥

सो अहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे धर्मघ्नाः कामिनः यत्र विन्दन्ति यमयातनाः ॥२९॥

यत्र	जहां	**भृशदारुणे**	अत्यन्त दारुण
धर्मघ्नाः	धर्म-नाशक	**नरके**	नरकमें
कामिनः	कामी	**सो अहं**	ऐसा मैं
यमयातनाः	यम-यातना	**व्यक्तं**	स्पष्ट है कि
विन्दन्ति	पाते हैं	**पतिष्यामि**	गिरूँगा ॥२९॥

किमिदं स्वप्न आहोस्वित् साक्षात् दृष्टमिहाद्भुतम् ।
क्व याता अद्य ते ये मां व्यकर्षन् पाशपाणयः ॥३०॥

किं इदं स्वप्न आहोस्वित् साक्षात् दृष्टं इह अद्भुतं क्व याता अद्य ते ये मां व्यकर्षन् पाशपाणयः ॥३०॥

किं इदं	यह क्या था,	**ये पाशपाणयः**	जो हाथमें फन्दे लिए
इह अद्भुतं	यहां (जो) अद्भुत	**अद्य मां**	आज मुझे
दृष्टं	दीखा	**व्यकर्षन्**	खींच रहे थे
स्वप्न	स्वप्न था	**ते क्व याता**	वे कहां चले
आहोस्वित्	अथवा		गये ? ॥३०॥
साक्षात्	साक्षात् था ।		

अथ ते क्व गताः सिद्धाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः ।
व्यमोचयन्नीयमानं बद्ध्वा पाशैरधो भुवः ॥३१॥

अथ ते क्व गताः सिद्धाः चत्वारः चारु दर्शनाः व्यमोचयन् नीयमानं बद्ध्वा पाशैः अधः भुवः ॥३१॥

अथ	और (जिन)	**भुवः अधः**	पृथ्वीके नीचे
चत्वारः	चारों	**नीयमानं**	ले जाते हुए (मुझे)
चारु दर्शनाः	अत्यन्त सुन्दर	**व्यमोचयन्**	छुड़ाया
सिद्धाः	सिद्धोंने	**ते क्व गताः**	वे कहां चले
पाशैः बद्ध्वा	फ़न्दोंसे बाँधकर		गये ॥३१॥

अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तमदर्शने ।
भवितव्यं मङ्गलेन येनात्मा मे प्रसीदति ॥३२॥

अथ अपि मे दुर्भगस्य विबुध उत्तम दर्शने भवितव्यं मङ्गलेन येन आत्मा मे प्रसीदति ॥३२॥

अथ अपि	फिर भी
मे दुर्भगस्य	मुझ भाग्यहीनको
मङ्गलेन	(किसी पूर्वके) पुण्यसे
विबुध उत्तम	देवश्रेष्ठोंके
दर्शने	दर्शनके
भवितव्यं	हेतु होने चाहिए,
येन मे आत्मा	जिस (दर्शन) से मेरा चित्त
प्रसीदति	प्रसन्न हो रहा है ॥३२॥

अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपतेः ।
वैकुण्ठनाम ग्रहणं जिह्वा वक्तुमिहार्हति ॥३३॥

अन्यथा म्रियमाणस्य न अशुचेः वृषलीपतेः वैकुण्ठ नाम ग्रहणं जिह्वा वक्तुं इह अर्हति ॥३३॥

अन्यथा	नहीं तो
म्रियमाणस्य	मरते हुए
अशुचेः	अपवित्र
वृषलीपतेः	शूद्राके पतिकी
जिह्वा	जीभ
इह	इस जीवनमें
वैकुण्ठ नाम ग्रहणं वक्तुं	भगवन्नाम लेकर उच्चारण करनेमें
न अर्हति	नहीं समर्थ हो सकती ॥३३॥

क्व चाहं कितवः पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रपः ।
क्व च नारायणेत्येतद्भगवन्नाम मङ्गलम् ॥३४॥

क्व च अहं कितवः पापः ब्रह्मघ्नः निरपत्रपः क्व च नारायण इति एतत् भगवन्नाम मङ्गलम् ॥३४॥

क्व च अहं	कहां तो मैं
कितवः पापः	कपटी, पापी,
ब्रह्मघ्न	ब्रह्मतेजका नाशक
निरपत्रपः	निर्लज्ज
क्व च	और कहां
नारायण इति	नारायण इस प्रकार (बोलना)
एतत्	यह
मङ्गलं	मंगलमय
भगवन्नाम	भगवन्नाम ॥३४॥

सोऽहं तथा यतिष्यामि यतचित्तेन्द्रियानिलः ।
यथा न भूय आत्मानमन्धे तमसि मज्जये ॥३५॥

सो अहं तथा यतिष्यामि यत चित्त इन्द्रिय अनिलः यथा न भूयः आत्मानं अन्धे तमसि मज्जये ॥३५॥

स अहं	वह मैं	**यथा भूयः**	जैसे फिर
चित्त इन्द्रिय	चित्त, इन्द्रिय	**आत्मानं**	अपनेको
अनिलः	प्राण-वायुको	**अन्धे तमसि**	अन्धकारपूर्ण नरकमें
यत	संयमित करके	**न मज्जये**	न डुबाऊँ ॥३५॥
तथा	वैसा		
यतिष्यामि	प्रयत्न करूँगा		

विमुच्य तमिमं बन्धमविद्याकामकर्मजम् ।
सर्वभूतसुहृच्छान्तो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥३६॥

विमुच्य तं इमं बन्धं अविद्या काम कर्मजं सर्वभूत सुहृत् शान्तः मैत्रः करुण आत्मवान् ॥३६॥

अविद्या	अविद्या, (अज्ञानके कारण)	**सर्वभूत सुहृत्**	सब प्राणियोंका हितैषी
काम	कामना (होनेसे)	**शान्तः**	शान्त
तं कर्मजं	हुए उन कर्मोंके फलसे	**मैत्रः**	सबका मित्र,
इमं बन्धं	इस बन्धनको	**करुण**	दयावान
विमुच्य	त्यागकर	**आत्मवान्**	धैर्यशाली (बनूँगा) ॥३६॥

मोचये ग्रस्तमात्मानं योषिन्मय्याऽऽत्ममायया ।
विक्रीडितो ययैवाहं क्रीडामृग इवाधमः ॥३७॥

मोचये ग्रस्तं आत्मानं योषिन् मय्या आत्ममायया विक्रीडितः यया एव अहं क्रीडामृग इव अधमः ॥३७॥

यया एव	जिसके द्वारा	**अहं अधमः**	मैं अधम
क्रीडामृग इव	खिलौनेके मृगके समान	**विक्रीडितः**	बहुत खेल खिलाया गया (उस)

योषिन् मय्या	स्त्री रूपिणी	**ग्रस्तं आत्मानं**	ग्रस्त अपनेको
आत्ममायया	भगवान्‌की मायासे	**मोचये**	मुक्त करूँगा ॥३७॥

ममाहमिति देहादौ हित्वामिथ्यार्थधीर्मतिम् ।
धास्ये मनो भगवति शुद्धं तत्कीर्तनादिभिः ॥३८॥

मम अहं इति देह आदौ हित्वा मिथ्या अर्थ धीः मतिं धास्ये मनः भगवति शुद्धं तत् कीर्तन आदिभिः ॥३८॥

मम अहं इति	मेरा-मैं इस प्रकार	**भगवति**	भगवान्‌में
देह आदौ	शरीर आदि	**तत् कीर्तन**	उनके कीर्तन
मिथ्या	असत् तत्त्वोंमें	**आदिभिः**	आदिसे
अर्थ धीः	सत् (प्रयोजनीय) बुद्धि	**शुद्धं मनः**	शुद्ध हुए मनको
		मतिं	और बुद्धिको
हित्वा	छोड़कर	**धास्ये**	लगाऊँगा ॥३८॥

श्रीशुक उवाच–

इति जातसुनिर्वेदः क्षणसङ्गेन साधुषु ।
गङ्गाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धनः ॥३९॥

इति जात सुनिर्वेदः क्षणसङ्गेन साधुषु गङ्गाद्वारं उपेयाय मुक्त सर्व अनुबन्धनः ॥३९॥

साधुषु	सत्पुरुषोंके	**सर्व अनुबन्धनः**	सब पिछले बन्धनोंसे
क्षणसङ्गेन	एकक्षणके संगसे	**मुक्त**	छूटकर
इति	इस प्रकार	**गङ्गाद्वारं**	हरिद्वार
सुनिर्वेदः	उत्तम वैराग्य	**उपेयाय**	चला गया ॥३९॥
जात	उत्पन्न होनेसे		

स तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमाश्रितः ।
प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामो युयोज मन आत्मनि ॥४०॥

स तस्मिन् देवसदन आसीनः योगं आश्रितः प्रत्याहृत इन्द्रियग्रामः युयोज मन आत्मनि ॥४०॥

तस्मिन् देवसदन	वहाँ भगवान्‌के मन्दिरमें	**प्रत्याहृत**	प्रत्याहार करके
स आसीनः	वह बैठ गया,	**परमात्मनि**	परमात्मामें
योगं आश्चितः	योगका सहारा लेकर	**युजोज**	(मन) लगा दिया ॥४०॥
इन्द्रिय ग्रामः	इन्द्रिय समूहका		

ततो गुणेभ्य आत्मानं वियुज्यात्मसमाधिना ।
युयुजे भगवद्धाम्नि ब्रह्मण्यनुभवात्मनि ॥४१॥

ततः गुणेभ्यः आत्मानं वियुज्य आत्म समाधिना युयुजे भगवत् धाम्नि ब्रह्मणि अनुभव आत्मनि ॥४१॥

ततः	फिर	**अनुभव**	अनुभव
आत्मानं	चित्तको	**आत्मनि**	स्वरूप
गुणेभ्यः	गुणोंसे	**ब्रह्मणि**	ब्रह्म
वियुज्य	पृथक् करके	**भगवत् धाम्नि**	भगवान्‌के स्वरूपमें
आत्म	अपनी	**युयुजे**	लगा दिया ॥४१॥
समाधिना	एकाग्रता द्वारा		

यर्ह्युपारतधीस्तस्मिन्नद्राक्षीत्पुरुषान् पुरः ।
उपलभ्योपलब्धान् प्राग् ववन्दे शिरसा द्विजः ॥४२॥

यर्हि उपारत धीः तस्मिन् अद्राक्षीत् पुरुषान् पुरः उपलभ्य उपलब्धान् प्राक् ववन्दे शिरसा द्विजः ॥४२॥

तस्मिन्	उस स्थितिमें	**प्राक् उपलब्धान्**	(तब) पहिले मिले
यर्हि	जब	**पुरुषान्**	पुरुषों (भगवत्पार्षदों) को
धीः उपारत	बुद्धिसे भी उपरामता हो गयी	**पुरः अद्राक्षीत्**	सामने ही देखा,

द्विजः	ब्राह्मणने	**शिरसा ववन्दे**	(उन्हें) शिरसे
उपलभ्य	(उनके) पास जाकर		वन्दना की ॥४२॥

हित्वा कलेवरं तीर्थे गङ्गायां दर्शनादनु ।
सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत्पार्श्ववर्तिनाम् ॥४३॥

हित्वा कलेवरं तीर्थे गङ्गायां दर्शनात् अनु सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत् पार्श्ववर्तिनाम् ॥४३॥

दर्शनात् अनु	उनके दर्शनके पश्चात्	**भगवत्**	भगवान्के
गङ्गायां तीर्थे	गंगाजलमें	**पार्श्ववर्तिनां**	पार्षदोंका
कलेवरं हित्वा	शरीर त्यागकर	**स्वरूपं जगृहे**	स्वरूप धारण कर लिया ॥४३॥
सद्यः	तत्काल		

साकं विहायसा विप्रो महापुरुषकिङ्करैः ।
हैमं विमानमारुह्य ययौ यत्र श्रियः पतिः ॥४४॥

साकं विहायसा विप्रः महापुरुष किङ्करैः हैमं विमानं आरुह्य ययौ यत्र श्रियः पतिः ॥४४॥

महापुरुष	पुरुषोत्तम भगवान्के	**विहायसा**	आकाश-मार्गसे
किङ्करैः साकं	सेवकोंके साथ	**यत्र श्रियः पतिः**	जहां भगवान् लक्ष्मी-पति (रहते हैं)
विप्रः	वह ब्राह्मण		
हैमं विमानं	स्वर्णमय विमानपर	**ययौ**	चला गया ॥४४॥
आरुह्य	चढ़कर		

एवं स विप्लावितसर्वधर्मा
दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा ।
निपात्यमानो निरये हतव्रतः
सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन् ॥४५॥

एवं स विप्लावित सर्व धर्मा दास्याः पतिः पतितः गर्ह्यं कर्मणा निपात्यमानः निरये हतव्रतः सद्यः विमुक्तः भगवन्नाम गृह्णन् ॥४५॥

एवं स	इस प्रकार वह
सर्व धर्मा	सब धर्मोंको
विप्लावित	नष्ट करने वाला
दास्याः पतिः	दासीपति
गर्ह्यं कर्मणा	(अपने) निन्दित कर्मोंसे
पतितः	पतित
हतव्रतः	नियमच्युत होनेसे
निरये	नरकमें
निपात्यमानः	गिराये जाते समय
भगवन्नाम	भगवन्नाम
गृह्णन्	लेनेसे
सद्यः विमुक्तः	तुरन्त छूट गया ॥४५

नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं
मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात् ।
न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो
रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥४६॥

न अतः परं कर्म निबन्ध कृन्तनं मुमुक्षतां तीर्थपद अनुकीर्तनात् न यत् पुनः कर्मसु सज्जते मनः रजः तमः भ्यां कलिलं ततः अन्यथा ॥४६॥

मुमुक्षतां	संसारसे मुक्त होनेकी इच्छा वालोंके लिए
अतःअनुकीर्तनात्	इस (भगवान्) के कीर्तनसे
परं	श्रेष्ठ
कर्म निबन्ध	कर्म बन्धनको
कृन्तनं	काटने वाला (साधन)
न	नहीं है ।
तीर्थपद	तीर्थोंको तीर्थ बनाने वाले
यत् पुनः	जिससे फिर
मनः कर्मसु	मन कर्मोंमें
सज्जते न	आसक्त नहीं होता ।
ततः अन्यथा	इससे भिन्न (साधन) में
रजः तमः भ्यां	रजोगुण तमोगुणसे
कलिलं	मलिन हो जाता है ॥४६॥

य एवं परमं गुह्यमितिहासमघापहम् ।
शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो यश्च भक्त्यानुकीर्तयेत् ॥४७॥

यः एवं परमं गुह्यं इतिहासं अघ अपहं शृणुयात् श्रद्धया युक्तः यः च भक्त्या अनुकीर्तयेत् ॥४७॥

यः एवं	जो इस प्रकारके	**च यः**	और जो
परमं गुह्यं	परम रहस्यमय	**भक्त्या**	भक्ति पूर्वक
अघ अपहं	पापहारी	**अनुकीर्तयेत्**	इसका बार-बार
इतिहासं	इतिहासको		कीर्तन करता
श्रद्धया युक्तः	श्रद्धासहित		है ॥४७॥
शृणुयात्	सुनता है		

न वै स नरकं याति नेक्षितो यमकिङ्करैः ।
यद्यप्यमङ्गलो मर्त्यो विष्णुलोके महीयते ॥४८॥

न वै स नरकं याति न ईक्षितः यमकिङ्करैः यद्यपि अमङ्गलः मर्त्यः विष्णुलोके महीयते ॥४८॥

स वै	वह निश्चय	**अमङ्गलः**	पापी भी हो (तो
नरकं न याति	नरक नहीं जाता,		भी)
यमकिङ्करैः	यमराजके दूतोंद्वारा	**विष्णुलोके**	वैकुण्ठमें
न ईक्षितः	देखा भी नहीं जाता	**महीयते**	सम्मानित होता
यद्यपि मर्त्यः	यद्यपि वह मनुष्य		है ॥४८॥

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम् ।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥४९॥

म्रियमाणः हरेः नाम गृणन् पुत्र उपचारितं अजामिलः अपि अगात् धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥४९॥

म्रियमाणः मरते समय
पुत्र पुत्रके
उपचारितं बहानेसे
हरेः नाम श्रीहरिका नाम
गृणन् पुकार कर
अजामिलः अपि अजामिल (जैसा पापी) भी
धाम अगात् भगवद्धाम चला गया
पुनः श्रद्धया फिर श्रद्धासे
गृणन् किं लेनेपर तो कहना ही क्या ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां षष्ठस्कन्धेऽजामिलोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

राजोवाच-

निशम्य देवः स्वभटोपवर्णितं
प्रत्याह किं तान् प्रति धर्मराजः ।
एवं हताज्ञो विहतान्मुरारे-
र्नैदेशिकैर्यस्य वशे जनोऽयम् ॥१॥

निशम्य देवः स्वभट उपवर्णितं प्रति आह किं तान् प्रति धर्मराजः एवं हत आज्ञः विहतान् मुरारेः नैदेशिकैः यस्य वशे जनः अयम् ॥१॥

यस्य वशे	जिनके वशमें	**एवं हत आज्ञः**	अपनी आज्ञाका इस प्रकार भंग होना
अयं जनः	ये सब लोग हैं,		
स्वभट	अपने सैनिकों द्वारा	**निशम्य**	सुनकर
उपवर्णितं	बतलायी	**देवः धर्मराजः**	देव यमराजने
मुरारेः	श्रीहरिके	**तान् प्रति**	उनसे
नैदेशिकैः	आज्ञा पालकों द्वारा	**किं आह**	क्या कहा ॥१॥
विहतान्	की गयी		

यमस्य देवस्य न दण्डभङ्गः
कुतश्चनर्षे श्रुतपूर्व आसीत् ।
एतन्मुने वृश्चति लोकसंशयं
न हि त्वदन्य इति मे विनिश्चितम् ॥२॥

यमस्य देवस्य न दण्डभङ्गः कुतश्चन् ऋषे श्रुत पूर्वं आसीत् एतत् मुने वृश्चति लोकसंशयं न हि त्वत् अन्य इति मे विनिश्चितम् ॥२॥

ऋषे	महर्षि !
कुतश्चन्	किसी भी प्रकार
यमस्य देवस्य	देव यमराजके
दण्डभङ्गः	दण्डको रोक देना
न श्रुत पूर्वं	पहिले (कभी) नहीं सुना गया
आसीत्	है
मुने	मुनिवर !
एतत्	इस विषयमें
लोकसंशयं	लोगोंके सन्देहका
वृश्चति	निवारण करें
हि	क्योंकि
त्वत् अन्य	आपके अतिरिक्त दूसरा कोई
न	(समर्थ) नहीं है
इति मे	ऐसा मेरा
विनिश्चितं	पूरा निश्चय है ॥२॥

श्रीशुक उवाच-

भगवत्पुरुषैः राजन् याम्याः प्रतिहतोद्यमाः ।
पतिं विज्ञापयामासुर्यमं संयमनीपतिम् ॥३॥

भगवत् पुरुषैः राजन् याम्याः प्रतिहत उद्यमाः पतिं विज्ञापयामासुः यमं संयमनी पतिम् ॥३॥

राजन्	राजन् !
भगवत् पुरुषैः	भगवान्के पार्षदों द्वारा
याम्याः	यमदूतोंका
उद्यमाः	प्रयत्न
प्रतिहत	व्यर्थ कर दिये जानेपर
संयमनी पतिं	संयमनी पुरीके स्वामी
पतिं यमं	अपने स्वामी यमराजको
विज्ञापयामासुः	(उन्होंने) सूचित किया ॥३॥

यमदूता ऊचुः

कति सन्तीह शास्तारो जीवलोकस्य वै प्रभो ।
त्रैविध्यं कुर्वतः कर्म फलाभिव्यक्तिहेतवः ॥४॥

कति सन्ति इह शास्तारः जीवलोकस्य वै प्रभो त्रैविध्यं कुर्वतः कर्मं फल अभिव्यक्ति हेतवः ॥४॥

प्रभो !	प्रभो !
फल अभिव्यक्ति	फल प्रकट होनेके
हेतवः	कारण
त्रैविध्यं	तीनों (सात्त्विक, राजस, तामस) प्रकारके
कर्म कुर्वतः	कर्म करनेवाले
जीवलोकस्य	जीव (मनुष्य) लोकके
इह	इस संसारमें
वै कति	निश्चित कितने
शास्तारः सन्ति	शासक हैं ? ॥४॥

यदि स्युर्बहवो लोके शास्तारो दण्डधारिणः ।
कस्य स्यातां न वा कस्य मृत्युश्चामृतमेव वा ॥५॥

यदि स्युः बहवः लोके शास्तारः दण्डधारिणः कस्य स्यातां न वा कस्य मृत्युः च अमृतं एव वा ॥५॥

यदि लोके	यदि संसारमें
दण्डधारिणः	दण्ड देने वाले
शास्तारः	शासक
बहवः स्युः	बहुत हों तो
मृत्युः	मृत्यु
च अमृतं एव वा	और जीवन ही फिर
कस्य स्यातां	किसका हो
वा कस्य न	अथवा किसका न हो (यह ठीक निर्णय कैसे होगा ?) ॥५॥

किन्तु शास्तृबहुत्वे स्याद्बहूनामिह कर्मिणाम् ।
शास्तृत्वमुपचारो हि यथा मण्डलवर्तिनाम् ॥६॥

किं तु शास्तृ बहुत्वे स्यात् बहूनां इह कर्मिणां शास्तृ त्वं उपचारः हि यथा मण्डल वर्तिनाम् ॥६॥

इह	इस लोकमें
बहूनां कर्मिणां	बहुत कर्म करनेवाले होनेसे
किं तु	यदि तो
बहुत्वे स्यात्	बहुतसे
शास्तृ	शासक हों तो
हि शास्तृ त्वं	फिर शासकपना
उपचारः	औपचारिक (नाम-मात्रका) होगा
यथा	जैसे
मण्डल वर्तिनां	(सम्राटके अधीन) एक-एक मण्डलके स्वामियोंका ॥६॥

अतस्त्वमेको भूतानां सेश्वराणामधीश्वरः ।
शास्ता दण्डधरो नृणां शुभाशुभविवेचनः ॥७॥

अतः त्वं एकः भूतानां स ईश्वराणां अधीश्वरः शास्ता दण्डधरः नृणां शुभ अशुभ विवेचनः ॥७॥

अतः	अत एव	**नृणां**	मनुष्योंके
स ईश्वराणां	(अपने) स्वामियोंके साथ	**शुभ अशुभ**	पाप-पुण्यके
		विवेचनः	निर्णायक
भूतानां	प्राणियोंके	**दण्डधरः**	दण्डदाता (और)
त्वं एकः	आप अकेले	**शास्ता**	शासक (हैं ।) ॥७॥
अधीश्वरः	अधीश्वर हैं ।		

तस्य ते विहतो दण्डो न लोके वर्ततेऽधुना ।
चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैराज्ञा ते विप्रलम्भिता ॥८॥

तस्य ते विहतः दण्डः न लोके वर्तते अधुना चतुः भिः अद्भुतैः सिद्धैः आज्ञा ते विप्रलम्भिता ॥८॥

तस्य ते	ऐसे आपके द्वारा	**अद्भुतैः**	अद्भुत
विहतः दण्डः	विधान किया दण्ड	**चतुः भिः सिद्धैः**	चार सिद्धोंने
अधुना	इस समय	**ते आज्ञा**	आपकी आज्ञाका
लोके न वर्तते	संसारमें नहीं चल रहा है ।	**विप्रलम्भिता**	उल्लंघन किया है ॥८॥

नीयमानं तवादेशादस्माभिर्यातनागृहान् ।
व्यमोचयन् पातकिनं छित्त्वा पाशान् प्रसह्य ते ॥९॥

नीयमानं तव आदेशात् अस्माभिः यातना गृहान् व्यमोचयन् पातकिनं छित्वा पाशान् प्रसह्य ते ॥९॥

तव आदेशात्	आपकी आज्ञासे	**यातना गृहान्**	यातनागार (नरक) में
अस्माभिः	हम लोगों द्वारा		

नीयमानं	लाये जाते	**ते पाशान्**	आपके पाशोंको
पातकिनं	पापीको	**छित्त्वा**	काटकर
प्रसह्य	बलपूर्वक	**व्यमोचयन्**	छुड़ा दिया ॥९॥

तांस्ते वेदितुमिच्छामो यदि नो मन्यसे क्षमम् ।
नारायणेत्यभिहिते मा भैरित्याययुर्द्रुतम् ॥१०॥

तान् ते वेदितुं इच्छामः यदि नः मन्यसे क्षमं नारायण इति अभिहिते मा भैः इति आययुः द्रुतम् ॥१०॥

यदि नः	यदि हमको	**इच्छामः**	इच्छा करते हैं
क्षमं मन्यसे	इसके योग्य मानते हों तो	**नारायणः**	नारायण
		इति अभिहिते	इस प्रकार बोलनेपर
ते	आपसे	**'मा भैः'**	'डरो मत'
तान् वेदितुं	उनको (हम) जाननेको	**इति**	ऐसा कहते
		द्रुतं आययुः	शीघ्र आ पहुँचे ॥१०

श्रीशुक उवाच–

इति देवः स आपृष्टः प्रजासंयमनो यमः ।
प्रीतः स्वदूतान् प्रत्याह स्मरन् पादाम्बुजं हरेः ॥११॥

इति देवः स आपृष्टः प्रजा संयमनः यमः प्रीतः स्वदूतान् प्रति आह स्मरन् पादाम्बुजं हरेः ॥११॥

स देवः	वे देव	**हरेः पादाम्बुजं**	श्रीहरिके चरण कमलोंका
प्रजा संयमनः	पूजाके शासक		
यमः	यमराज	**स्मरन्**	स्मरण करते हुए
इति आपृष्टः	इस प्रकार पूछे जानेपर	**स्वदूतान् प्रति**	अपने दूतोंसे
		आह	बोले ॥११॥
प्रीतः	प्रसन्न होकर		

यम उवाच—

परो मदन्यो जगतस्तम्थुषश्च
ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम् ।
यदंशतोऽस्य स्थितिजन्मनाशा
नस्योतवद् यस्य वशे च लोकः ॥१२॥

परः मत् अन्यः जगतः तम्थुषः च ओतं प्रोतं पटवत् यत्र विश्वं यत् अंशतः अस्य स्थिति जन्म नाशा नसि ओतवत् यस्य वशे च लोकः ॥१२॥

मत् अन्यः	मुझसे भिन्न
जगतः तम्थुषः च	चराचरके
परः	स्वामी (एक हैं)
यत्र विश्वं	जिनमें विश्व
पटवत्	(सूतमें) वस्त्रकी भांति
ओतं प्रोतं	ओत-प्रोत है,
यत् अंशतः	जिनके अंशसे
अस्य	इस संसारकी
स्थिति जन्म	स्थिति, सृष्टि, प्रलय
नाशा	करनेवाले (विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र) हैं,
च नसि ओतवत्	और नाकको रस्सीमें बँधेकी भांति
यस्य वशे	जिसके वशमें
लोकः	सब लोक हैं ॥१२॥

यो नामभिर्वाचि जनान्निजायां
बध्नाति तन्त्यामिव दामभिर्गाः ।
यस्मै बलिं त इमे नामकर्म-
निबन्धबद्धाश्चकिता वहन्ति ॥१३॥

यः नामभिः वाचि जनान् निजायां बन्धनाति तन्त्यां इव दामभिः गाः यस्मै बलिं त इमे नाम कर्म निबन्ध बद्धाः चकिता वहन्ति ॥१३॥

तन्त्यां दामभिः	छोटी रस्सियोंसे बाँधकर फिर बड़ी रस्सीमें बँधे
गाः इव	पशुओंके समान
यः नामभिः	जो नामों द्वारा (बाँधकर)
जनान्	लोगोंको
निजायां वाचि	अपनी (वेदरूप) वाणीसे
बध्नाति	बाँध देता है,
त इमे	वे (लोग) इस
नाम कर्म	नाम और कर्मके

निबन्ध बद्धाः	आग्रहसे बँधे (लोग)	**यस्मै बलिं**	जिसे उपहार
चकिताः	भयभीत होकर	**वहन्ति**	दे रहे हैं ॥१३॥

अहं महेन्द्रो निर्ऋतिः प्रचेताः
सोमोऽग्निरीशः पवनोऽर्को विरिञ्चः ।
आदित्यविश्वे वसवोऽथ साध्या
मरुद्गणा रुद्रगणाः ससिद्धाः ॥१४॥

अहं महेन्द्रः निर्ऋतिः प्रचेताः सोमः अग्निः ईशः पवनः अर्कः विरिञ्चः आदित्य विश्वे वसवः अथ साध्या मरुत्गणाः रुद्रगणाः ससिद्धाः ॥१४॥

अहं महेन्द्रः	मैं (यम) इन्द्र,	**विश्वे**	विश्वे देवा
निर्ऋतिः	निर्ऋति देवता,	**वसवः अथ**	(आठो) वसु और
प्रचेताः सोमः	वरुण, चन्द्रमा,	**साध्या**	साध्यगण,
अग्निः ईशः	अग्नि, शिव,	**मरुतगणाः**	मरुद्गण,
पवनः अर्कः	वायु, सूर्य	**रुद्रगणाः**	रुद्रगण
विरिञ्चः	ब्रह्मा,	**ससिद्धाः**	सिद्धोंके साथ ॥१४॥
आदित्य	आदित्य,		

अन्ये च ये विश्वसृजोऽमरेशा
भृग्वादयोऽस्पृष्टरजस्तमस्काः ।
यस्येहितं न विदुः स्पृष्टमाया
सत्त्वप्रधाना अपि किं ततोऽन्ये ॥१५॥

अन्ये च ये विश्वसृजः अमर ईशाः भृगु आदयः अस्पृष्ट रजः तमस्काः यस्य ईहितं न विदुः स्पृष्टमायाः सत्त्व प्रधाना अपि किं ततः अन्ये ॥१५॥

च ये अन्ये	और जो दूसरे
विश्वसृजः	विश्व-स्रष्टा (प्रजा-पति)
अमर ईशाः	देवताओंके स्वामी
अस्पृष्ट रजः	रजोगुण,
तमस्काः	तमोगुणसे अछूते
भृगु आदयः	भृगु आदि
सत्त्व प्रधाना	सत्त्वगुण प्रधान
अपि	(होनेपर) भी
स्पृष्टमायाः	माया-ग्रस्त होनेसे
यस्य ईहितं	जिनकी चेष्टाको
न विन्दुः	नहीं जानते
ततः अन्ये	तब दूसरे
किं	क्या (जानेंगे) ॥१५॥

यं वै न गोभिर्मनसासुभिर्वा
हृदा गिरा वासुभृतो विचक्षते ।
आत्मानमन्तर्हृदि सन्तमात्मनां
चक्षुर्यथैवाकृतयस्ततः परम् ॥१६॥

यं वै न गोभिः मनसा असुभिः वा हृदा गिरा वा असुभृतः विचक्षते
आत्मनं अन्तः हृदि सन्तं आत्मनां चक्षुः यथा एव आकृतयः ततः परम् ॥१६॥

यथा आकृतयः	जैसे आकृतियां (घट-पटादि)
ततः परं	उनसे परे (प्रकाशक)
चक्षुः	नेत्रोंको (नहीं देख सकते)
असुभृतः	(वैसे ही कोई प्राणी
यं वै	जिसे निश्चय ही
गोभिः मनसा	इन्द्रियोंसे, मनसे,
वा असुभिः	अथवा प्राण (प्राणायाम) से,
हृदा गिरा वा	हृदय या वाणीसे
आत्मनं अन्तः	अपने ही भीतर
हृदि	हृदयमें
आत्मनां सन्तं	आत्मा रूपसे विद्यमान
विचक्षते	नहीं देख सकते॥१६॥

तस्यात्मतन्त्रस्य हरेरधीशितुः
परस्य मायाधिपतेर्महात्मनः ।
प्रायेण भूता इह वै मनोहरा-
श्चरन्ति तद्रूपगुणस्वभावाः ॥१७॥

तस्य आत्म तन्त्रस्य हरेः अधीशितुः परस्य माया अधिपतेः महात्मनः प्रायेण दूता इह वै मनोहराः चरन्ति तद् रूप गुण स्वभावाः ॥१७॥

तस्य आत्म	उन परम
तन्त्रस्य	स्वतन्त्र
अधीशितुः	सर्वेश्वर
माया अधिपतेः	मायापति
परस्य	परमपुरुष,
महात्मनः	महात्मा
हरेः	श्रीहरिके
तद् रूप गुण	उन्हींके रूप, गुण,
स्वभावाः	स्वभाव वाले
मनोहराः	मनोहर
दूता वै	दूत निश्चय ही
प्रायेण इह	प्रायः इस संसारमें
चरन्ति	विचरण करते रहते हैं ॥१७॥

भूतानि विष्णोः सुरपूजितानि
दुर्दर्शलिङ्गानि महाद्भुतानि ।
रक्षन्ति तद्भक्तिमतः परेभ्यो
मत्तश्च मर्त्यानथ सर्वतश्च ॥१८॥

भूतानि विष्णोः सुरपूजितानि दुर्दर्श लिङ्गानि महा अद्भुतानि रक्षन्ति तद् भक्तिमतः परेभ्यः मत्तः च मर्त्यान् अथ सर्वतः च ॥१८॥

सुरपूजितानि	देवताओंसे भी पूजित
दुर्दर्श लिङ्गानि	दुर्लभ दर्शन वाले,
महा अद्भुतानि	अत्यन्त अद्भुत
विष्णोः भूतानि	भगवान् विष्णुके स्वरूप भूत (पार्षद)
तद् भक्तिमतः	उन (भगवान्) के भक्तिमान
मर्त्यान्	मनुष्योंकी
परेभ्यः	शत्रुओंसे
च मत्तः	तथा मुझसे
अथ सर्वतः च	और सब ओरसे ही
रक्षन्ति	रक्षा करते हैं ॥१८॥

धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं
न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः ।
न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः
कुतश्च विद्याधरचारणादयः ॥१९॥

धर्मं तु साक्षात् भगवत् प्रणीतं न वै विदुः ऋषयः न अपि देवाः न सिद्धमुख्याः असुराः मनुष्याः कुतः च विद्याधर चारण आदयः ॥१९॥

साक्षात् भगवत्	साक्षात् भगवान् द्वारा	**असुराः**	असुर,
		मनुष्याः	मनुष्य
प्रणीतं धर्मं	निर्मित (भागवत) धर्मको	**न**	नहीं (जानते)
		विद्याधर चारण	विद्याधर, चारण
ऋषयः न	ऋषि नहीं	**च आदयः कुतः**	आदि तो कहाँसे
वै विदुः	ही जानते,		(जान सकते
देवाः अपि न	देवता भी नहीं,		हैं) ॥१९॥
सिद्धमुख्याः	सिद्ध-प्रधान,		

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः ।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥२०॥

स्वयंभूः नारदः शम्भुः कुमारः कपिलः मनुः प्रह्लादः जनकः भीष्मः बलिः वैयासकिः वयम् ॥२०॥

स्वयम्भूः	ब्रह्माजी,	**प्रह्लादः जनकः**	प्रह्लाद, जनक,
नारद शम्भुः	नारद, शिव,	**भीष्मः बलिः**	भीष्म, राजा बलि,
कुमारः	सनकादि (चारों) कुमार,	**वैयासकिः**	व्यासनन्दन शुक-देवजी और
कपिलः मनुः	कपिल, मनु,	**वयम्**	हम (यमराज) ॥२०

द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः ।
गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥२१॥

द्वादश एते विजानीमः धर्मं भागवतं भटाः गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वा अमृतं अश्नुते ॥२१॥

भटाः	अरे दूतो !	**दुर्बोधं**	जाननेमें कठिन
एते द्वादश	ये बारह ही	**भागवतं धर्मं**	भागवत धर्मको
गुह्यं विशुद्धं	गोपनीय, परमशुद्ध,	**विजानीमः**	जानते हैं,

यं ज्ञात्वा	जिसे जानकर (जाननेवाला)	**अमृतं अश्नुते**	अमरत्व भोगता है ॥२१॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥२२॥

एतावान् एव लोके अस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः भक्तियोगः भगवति तत् नाम ग्रहण आदिभिः ॥२२॥

अस्मिन् लोके	इस (मनुष्य) लोकमें	**भगवति**	भगवान्‌में
एतावान् एव	इतना मात्र ही	**तत् नाम**	उनके नाम
पुंसां परः धर्मः	पुरुषका परम-धर्म	**ग्रहण आदिभिः**	लेने आदिके द्वारा
स्मृतः	कहा गया है	**भक्तियोगः**	भक्ति हो ॥२३॥

नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ।
अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥२३॥

नाम उच्चारण माहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः अजामिलः अपि येन एव मृत्युपाशात् अमुच्यत ॥२३॥

पुत्रकाः	मेरे नन्हे बच्चो,	**अजामिलः अपि**	अजामिल (जैसा पापी) भी
हरेः	श्रीहरिके	**मृत्युपाशात्**	मृत्युके फन्दोंसे
नाम उच्चारण	नाम लेनेकी	**अमुच्यत**	छूट गया ॥२३॥
माहात्म्यं पश्यत	महिमा देखो		
येन एव	केवल जिससे		

एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसां
सङ्कीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ।
विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि
नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥२४॥

एतावत अलं अघ निर्हरणाय पुंसां संकीर्तनं भगवतः गुणकर्मनाम्नां विक्रुश्य पुत्रं अघवान् यत् अजामिलः अपि नारायण इति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥२४॥

भगवतः	भगवान्‌के
गुणकर्मनाम्नां	गुण, कर्म, नामोंका
संकीर्तनं	संकीर्तन
पुंसां	पुरुषके
अघ निर्हरणाय	पाप नष्ट करनेके लिए
एतावत अलं	इतना ही पर्याप्त है,
यत् अघवान्	क्योंकि पापी
अजामिलः अपि	अजामिल भी
म्रियमाण	मरते समय
नारायण इति	'नारायण' इस प्रकार
पुत्रं विक्रुश्य	पुत्रको पुकारकर
मुक्ति इयाय	मुक्ति पा गया ॥२४॥

प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं
देव्या विमोहितमतिर्बत माययालम् ।
त्रय्यां जडीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां
वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ॥२५॥

प्रायेण वेद तत् इदं न महाजनः अयं देव्या विमोहित मतिः बत मायया अलं त्रय्यां जडीकृत मतिः मधुः पुष्पितायां वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ॥२५॥

बत	अहो
मायया देव्या	माया देवी द्वारा
अलं विमोहित	पूर्ण मोहित
मतिः	बुद्धि
मधु पुष्पितायां	मधुर पुष्पिता (अर्थ-वादमयी)
त्रय्यां	वेदत्रयी (की वाणी) से
जडीकृत मतिः	जड़ बनी बुद्धिके कारण
वैतानिके	बड़े यज्ञोंके
महति कर्मणि	महान् (विस्तार-वाले) कर्मोंमें
युज्यमानः	लगकर
अयं महाजनः	ये बड़े विद्वान भी
प्रायेण	प्रायः
तत् इदं	उस इस (भागवत-धर्म) को
न वेद	नहीं जानते ॥२५॥

एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते
सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ।
ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां
स्यात् पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ॥२६॥

एवं विमृश्य सुधियः भगवति अनन्ते सर्व आत्मना विदधते खलु भावयोगं ते मे न दण्डं अर्हन्ति अथ यदि अमीषां स्यात् पातकं तत् अपि हन्ति उरुगाय वादः ॥२६॥

एवं विमृश्य	ऐसा विचार करके	**अथ यदि**	फिर यदि
सुधियः	अच्छी बुद्धिवाले	**अमीषां**	इन लोगोंका
सर्वं आत्मना	सम्पूर्ण मनसे	**पातकं स्यात्**	(कुछ) पाप भी हो
भगवति अनन्ते	भगवान् अनन्तमें	**तत् अपि**	उसे भी
भावयोगं	भक्तिभाव	**उरुगाय**	उत्तम श्लोक भगवान्का
खलु विदधते	ही करते हैं,		
ते मे दण्डं अर्हन्ति न	वे मेरे दण्डके भागी नहीं होते,	**बादः हन्ति**	कीर्तन नष्ट कर देता है ॥२६॥

ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा
ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः ।
तान् नोपसीदत हरेर्गदयाभिगुप्तान्
नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे ॥२७॥

ते देव सिद्ध परिगीत पवित्र गाथा ये साधवः समदृशः भगवत् प्रपन्नाः तान् न उपसीदत हरेः गदया अभिगुप्तान् न एषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे ॥२७॥

ये साधवः	जो सत्पुरुष	**देव सिद्ध**	देवता, सिद्धों द्वारा
समदृशः	समदर्शी और	**परिगीत**	गाया जाता है,
भगवत् प्रपन्नाः	भगवान्की शरणमें हैं	**तान्**	उन
ते गाथा	उनका चरित	**हरेः गदया**	श्रीहरिकी गदासे

अभिगुप्तान्	सुरक्षितोंके	**न वयं**	न हम
उपसीदत न	पास मत जाना,	**च न वयः**	और न काल
एषां दण्डे	इनको दण्ड देनेमें	**प्रभवाम**	समर्थ हैं ॥२७॥

तानानयध्वमसतो विमुखान् मुकुन्द-
पादारविन्दमकरन्दरसादजस्रम् ।
निष्किञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञै-
र्जुष्टाद् गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् ॥२८॥

तान् आनयध्वं असतः विमुखान् मुकुन्द पादारविन्द मकरन्द रसात् अजस्रं निष्किञ्चनैः परम हंस कुलैः रसज्ञैः जुष्टात् गृहे निरयवर्त्मनि बद्ध तृष्णान् ॥२८॥

निष्किञ्चनैः	अकिंचन,	**विमुखान्**	विमुख होकर
रसज्ञैः	रसज्ञ	**निरयवर्त्मनि**	नरकके मार्गरूप
परम हंस कुलैः	परमहंस-गणों द्वारा	**गृहे**	गृहस्थाश्रममें
अजस्रं जुष्टात्	निन्तर सेवित	**बद्ध तृष्णान्**	तृष्णासे बँधे (जो हैं)
मुकुन्द	मुकुन्दके	**तान् असतः**	उन दुष्टोंको
पादारविन्द	चरण-कमल	**आनयध्वं**	ले आओ ॥२८॥
मकरन्द रसात्	मकरन्द-रससे		

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥२९॥

जिह्वा न वक्ति भगवत् गुण नामधेयं चेतः च न स्मरति तत् चरणार-विन्दं कृष्णाय नः नमति यत् शिर एकदा अपि तान् आनयध्वं असतः अकृत विष्णु कृत्यान् ॥२९॥

जिह्वा भगवत्	(जिनकी) जीभ भगवान्के	**गुण नामधेयं न वक्ति**	गुणों और नामोंको नहीं बोलती,

च चेतः	और (जिसका) चित्त
तत्	उनके
चरणारविन्दं	चरण-कमलोंका
न स्मरति	स्मरण नहीं करता
यत् शिर	जिसका मस्तक
एकदा अपि	एक बार भी
कृष्णाय	श्रीकृष्णके लिए
नः नमति	नहीं झुकता
विष्णु कृत्यान्	भगवत्-सेवा
अकृत	न करनेवाले
तान् असतः	उन दुष्टोंको
आनयध्वं	ले आओ ॥२९॥

तत् क्षम्यतां स भगवान् पुरुषः पुराणो
नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः ।
स्वानामहो नविदुषां रचिताञ्जलीनां
क्षान्तिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने ॥३०॥

तत् क्षम्यतां स भगवान् पुरुषः पुराणः नारायणः स्वपुरुषैः यत् असत् कृतं नः स्वानां अहो नविदुषां रचित अञ्जलीनां क्षान्तिः गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने ॥३०॥

स्वपुरुषैः	अपने सेवकों द्वारा
यत् नः	जो हमसे ही
असत् कृतं	(भगवान्का) अपमान हुआ
स भगवान्	वे भगवान्
पुराणः पुरुषः	पुराण-पुरुष
नारानणः	नारायण
तत् क्षम्यतां	उसे क्षमा करें,
अहो	अहो
नविदुषां	अज्ञानी
अञ्जलीनां	हाथ
रचित	जोड़े
स्वानां	अपने जनोंका (अपराध)
क्षान्तिः	क्षमा कर देना (उनकी)
गरीयसि	महानता है,
भूम्ने पुरुषाय	(उन) भूमा-पुरुषको
नमः	नमस्कार ॥३०॥

श्रीशुक उवाच*—

तस्मात् संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम् ।
महतामपि कौरव्य विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतिम् ॥३१॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तस्मात् सङ्कीर्तन विष्णोः जगत् मङ्गलं अंहसां महतां अपि कौरव्य विद्धि ऐकान्तिक निष्कृतिम् ॥३१॥

कौरव्य	परीक्षित !	**महतां**	महा
तस्मात्	इसलिए	**अंहसां अपि**	पापोंका भी
जगत् मङ्गलं	विश्व कल्याणकारी	**ऐकान्तिक**	आत्यन्तिक
विष्णोः	भगवान् विष्णुका	**निष्कृतिं विद्धि**	प्रायश्चित जानो ॥३१॥
सङ्कीर्तनं	कीर्तन		

शृण्वतां गृणतां वीर्याण्युद्दामानि हरेर्मुहुः ।
यथा सुजातया भक्त्या शुद्धयेन्नात्मा व्रतादिभिः ॥३२॥

शृण्वतां गृणतां वीर्याणि उद्दामानि हरेः मुहुः यथा सुजातया भक्त्या शुद्धयेत न आत्मा व्रतादिभिः ॥३२॥

उद्दामानि	निर्बन्ध	**भक्त्या**	भक्तिसे
मुहुः	बार-बार	**यथा आत्मा**	जैसा चित्त
हरेः वीर्याणि	भगवान् श्रीहरिके पराक्रमोंका	**शुद्ध्येत**	शुद्ध होता है
		व्रतादिभिः न	(वैसा) व्रत आदिसे नहीं होता है ॥३२॥
शृण्वतां गृणतां	सुनने, वर्णन करनेसे		
सुजातया	भली प्रकार उत्पन्न		

कृष्णाङ्घ्रिपद्ममधुलिण् न पुनर्विसृष्ट-
मायागुणेषु रमते वृजिनावहेषु ।
अन्यस्तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टु-
मीहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात् ॥३३॥

कृष्ण अङ्घ्रि पद्म मधुलिट् न पुनः विसृष्ट माया गुणेषु रमते वृजिन आवहेषु अन्यः तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टुम् ईहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात् ॥३३॥

कृष्ण अङ्घ्रि	श्रीकृष्णके चरण
पद्म मधुलिट्	कमल-मधुका स्वाद लेनेवाला
वृजिन आवहेषु	कष्टदायी
विसृष्ट माया	त्यागे हुए मायाके
गुणषु	गुणोंमें
पुनः न रमते	फिर नहीं रमता,
कामहत	कामनाओंके मारे
अन्यः तु	दूसरे तो
आत्मरजः	अपने मनोमलको
प्रमार्ष्टुम्	मांजनेके लिए
कर्म ईहेत	कर्म करना चाहते हैं
यत एव पुनः	जिनसे कि फिर
रजः स्यात्	दोष होते हैं ॥३३॥

इत्थं स्वभर्तृ गदितं भगवन्महित्वं
संस्मृत्य विस्मितधियो यमकिङ्करास्ते ।
नैवाच्युताश्रयजनं प्रति शङ्कमाना
द्रष्टुं च बिभ्यति ततः प्रभृति स्म राजन् ॥३४॥

इत्थं स्वभर्तृ गदितं भगवत् महित्वं संस्मृत्य विस्मितधियः यम-किङ्कराः ते न एव अच्युत आश्रयजनं प्रति शङ्कमाना द्रष्टुं च बिभ्यति ततः प्रभृति स्म राजन् ॥३४॥

राजन्	राजन् !
इति	इस प्रकार
स्वभर्तृ गदितं	अपने स्वामीकी कही
भगवत् महित्वं	भगवान्की महिमा-का
संस्मृत्य	स्मरण करके
विस्मितधियः	विस्मित बुद्धि
ते यमकिङ्कराः	वे यमराजके सेवक
ततः प्रभृति स्म	उस समयसे ही
अच्युत	भगवान्के
आश्रयजनं	आश्रितजनसे
प्रति शङ्कमाना	आशङ्कित रहने लगे,
न एव द्रष्टुं	(उन्हें) नहीं ही देखते
च बिभ्यति	और (उनसे) डरते हैं ॥३४॥

इतिहासमिमं गुह्यं भगवान् कुम्भसम्भवः ।
कथयामास मलय आसीनो हरिमर्चयन् ॥३५॥

इतिहासं इमं गुह्यं भगवान् कुम्भ सम्भवः कथयामास मलय आसीनः हरिं अर्चयन् ॥३५॥

इमं गुह्यं इस गोपनीय
इतिहासं इतिहासको
भगवान् भगवान्
कुम्भ सम्भवः अगस्त्यने
मलय आसीनः मलय पर्वतपर बैठकर
हरिं अर्चयन् श्रीहरिकी पूजा करते हुए
कथयामास कहा है ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे यमपुरुषसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

राजोवाच-

देवासुरनृणां सर्गो नागानां मृगपक्षिणाम् ।
सामासिकस्त्वया प्रोक्तो यस्तु स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥१॥

देव असुर नृणां सर्गः नागानां मृग पक्षिणां सामासिकः त्वया प्रोक्तः यः तु स्वायम्भुवे अन्तरे ॥१॥

यः तु	जो तो	**सर्गः**	सृष्टि हुई थी
स्वायम्भुवे	स्वायम्भुव	**त्वया**	आपने
अन्तरे	मन्वन्तरमें	**सामासिकः**	(उसका) संक्षिप्त
देव असुर	देव, असुर,		रूपमें
नृणां नागानां	मनुष्य, नाग,	**प्रोक्तः**	वर्णन किया है ॥१॥
मृग पक्षिणां	पशु, पक्षियोंकी		

तस्यैव व्यासमिच्छामि ज्ञातुं ते भगवन् यथा ।
अनुसर्गं यया शक्त्या ससर्ज भगवान् परः ॥२॥

तस्य एव व्यासं इच्छामि ज्ञातुं ते भगवन् यथा अनुसर्गं यया शक्त्या ससर्ज भगवान् परः ॥२॥

भगवन्	भगवन् !	**अनुसर्गं**	पीछकी सृष्टि
ते तस्य एव	आपसे उसीका	**ससर्ज**	उत्पन्न की
व्यासं	विस्तार	**ज्ञातुं इच्छामि**	जानना चाहता
भगवान् परः	परम पुरुष भगवान्ने		हूँ ॥२॥
यया शक्त्या	जिन शक्तियोंसे		

सूत उवाच–

इति सम्प्रश्नमाकर्ण्य राजर्षेर्बादरायणिः ।
प्रतिनन्द्य महायोगी जगाद मुनिसत्तमाः ॥३॥

इति सम्प्रश्नं आकर्ण्य राजर्षेः बादरायणिः प्रतिनन्द्य महायोगी जगाद मुनिसत्तमाः ॥३॥

मुनिसत्तमाः	(शौनकादि) मुनि-श्रेष्ठो !	**बादरायणिः**	व्यास-नन्दन शुक-देवजी
राजर्षेः	राजर्षि परीक्षितका	**प्रतिनन्द्य**	उसका अभिनन्दन करके
इति सम्प्रश्नं	इस प्रकारका प्रश्न		
आकर्ण्य	सुनकर	**जगाद**	बोले ॥३॥
महायोगी	महायोगी		

श्रीशुक उवाच–

यदा पचेतसः पुत्रा दश प्राचीनबर्हिषः ।
अन्तः समुद्रादुन्मग्ना ददृशुर्गां द्रुमैर्वृताम् ॥४॥

यदा प्रचेतसः पुत्रा दश प्राचीन बर्हिषः अन्तः समुद्रात् उन्मग्ना ददृशुः गां द्रुमैः वृताम् ॥४॥

यदा प्राचीन	जब प्राचीन	**उन्मग्ना**	ऊपर निकले (तो)
बर्हिषः	वर्हिके	**गां द्रुमैः वृतां**	पृथ्वीको वृक्षोंसे घिरी
प्रचेतसः	प्रचेता नामके		
दश पुत्रा	दसो पुत्र	**ददृशुः**	देखा ॥४॥
अन्तः समुद्रात्	समुद्रके भीतरसे		

द्रुमेभ्यः क्रुध्यमानास्ते तपोदीपितमन्यवः ।
मुखतो वायुमग्निं च ससृजुस्तद्विधक्षया ॥५॥

द्रुमेभ्यः क्रुध्यमानाः ते तपः दीपित मन्यवः मुखतः वायुं अग्निं च ससृजुः तत् दिधक्षया ॥५॥

ते द्रुमेभ्यः	वे वृक्षोंपर
क्रुध्यमानाः	क्रोधित होकर
तपः दीपित	तपस्यासे प्रदीप्त
मन्यवः	क्रोधवाले
तत् दिधक्षया	उन (वृक्षों) को भस्म कर देनेकी इच्छासे
मुखतः	अपने मुखसे
वायुं च अग्निं	वायु और अग्नि
ससृजुः	उत्पन्न की ॥५॥

ताभ्यां निर्दह्यमानांस्तानुपलभ्य कुरूद्वह ।
राजोवाच महान् सोमो मन्युं प्रशमयन्निव ॥६॥

ताभ्यां निर्दह्यमानान् तान् उपलभ्य कुरुद्वह राजा उवाच महान् सोमः मन्युं प्रशमयन् इव ॥६॥

कुरुद्वह	परीक्षित !
ताभ्यां	उस (वायु-अग्नि) से
तान्	उन (वृक्षों) को
निर्दह्यमानान्	जलाये जाते
उपलभ्य	पाकर (देखकर)
महान् राजा	राजाधिराज
सोमः	चन्द्रमा
मन्युं	(उनके) क्रोधको
प्रशमयन् इव	शान्त करते हुए-से
उवाच	बोले ॥६॥

*सोम उवाच–**

मा द्रुमेभ्यो महाभागा दीनेभ्यो द्रोग्धुमर्हथ ।
विवर्धयिषवो यूयं प्रजानां पतयः स्मृताः ॥७॥

मा द्रुमेभ्यः महाभागा दीनेभ्यः द्रोग्धुं अर्हथ विवर्धयिषवः यूयं प्रजानां पतयः स्मृताः ॥७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

महाभागा	महाभागो !
दोनेभ्यः	विचारे
द्रुमेभ्य.	वृक्षोंसे (आप सबको)
द्रोग्धुं	शत्रुता
मा अर्हथ	नहीं करना चाहिए (क्योंकि)
विवर्धयिषवः	(प्रजाको) बढ़ाने-वाले
प्रजानां पतयः	(आप) प्रजापति
स्मृताः	कहे गये हैं ॥७॥

अहो प्रजापतिपतिर्भगवान् हरिरव्ययः ।
वनस्पतीनोषधीश्च ससर्जोर्जमिषं विभुः ॥८॥

अहो प्रजापति पतिः भगवान् हरिः अव्ययः वनस्पतीन् ओषधीः च ससर्ज ऊर्जं आमिषं विभुः ॥८॥

अहो	अरे,
प्रजापति पतिः	प्रजापतियोंके स्वामी
अव्ययः	अविनाशी
विभुः	सर्वव्यापक
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरिने
वनस्पतीन्	वृक्षोंको
च ओषधीः	और औषधियों (तृणादि) को
ऊर्जं आमिषं	शक्तिदायी आहार
ससर्ज	बनाया है ॥८॥

अन्नं चराणामचरा ह्यपदः पादचारिणाम् ।
अहस्ता हस्तयुक्तानां द्विपदां च चतुष्पदः ॥९॥

अन्नं चराणां अचराः हि अपदः पादचारिणां अहस्ताः हस्तयुक्तानां द्विपदां च चतुष्पदः ॥९॥

हि	क्योंकि
चराणां	चलने वालों (पक्षी आदि) के
अचराः	स्थावर (वृक्ष आदि)
पादचारिणां	पैरोंसे चलनेवालों (पशुओं) के
अपदः	बिना पैर वाले (तृणादि)
अहस्ताः	बिना हाथ वाले (पशु, फल आदि)
हस्तयुक्तानां	हाथ वालों (बन्दर, गुरिले आदि)

च चतुष्पदः	और चार पैर वाले (पशु)	**अन्नं**	आहार (के साधन) हैं ॥९॥
द्विपवां	दो पैर वाले (मनुष्यों) के		

यूयं च पित्रान्वादिष्टा देवदेवेन चानघाः ।
प्रजासर्गाय हि कथं वृक्षान् निर्दग्धुमर्हथ ॥१०॥

यूयं च पित्रा अन्वादिष्टा देवदेवेन च अनघाः प्रजासर्गाय हि कथ वृक्षान् निर्दग्धुं अर्हथ ॥१०॥

अनघाः	निष्पापो !	**अन्वादिष्टा**	आदेश प्राप्त हैं (फिर)
यूयं च	आप लोग भी		
पित्रा	अपने पिता	**वृक्षान्**	वृक्षोंको
च देवदेवेन	तथा देवाधिदेव भगवान् द्वारा	**निर्दग्धुं**	जलानेके
		कथं अर्हथ	कैसे योग्य हैं ॥१०॥
प्रजासर्गाय	प्रजाकी सृष्टिके लिए		

आतिष्ठत सतां मार्गं कोपं यच्छत दीपितम् ।
पित्रा पितामहेनापि जुष्टं वः प्रपितामहैः ॥११॥

आतिष्ठत सतां मार्गं कोपं यच्छत दीपितं पित्रा पितामहेन अपि जुष्टं वः प्रपितामहैः ॥११॥

वः	आप लोगोंके	**सतां मार्गं**	सत्पुरुषोंके मार्गपर
पित्रा पितामहेन	पिता, पितामह,	**आतिष्ठत**	बने रहिये !
प्रपितामहैः	प्रपितामहसे	**दीपितं कोपं**	प्रदीप्त क्रोधको
अपि	भी	**यच्छत**	शान्त कीजिए ॥११॥
जुष्टं	सेवित		

तोकानां पितरौ बन्धू दृशः पक्ष्म स्त्रियाः पतिः ।
पतिः प्रजानां भिक्षूणां गृह्यज्ञानां बुधः सुहृत् ॥१२॥

तोकानां पितरौ बन्धू दृशः पक्ष्म स्त्रियाः पतिः पतिः प्रजानां भिक्षूणां गृह अज्ञानां बुधः सुहृत् ॥१२॥

तोकानां	शिशुओंके (जैसे)	**भिक्षूणां**	भिक्षुकोंके
बन्धू	सम्बन्धी (रक्षक)	**गृह**	गृहस्थ,
पितरौ	माता, पिता,	**अज्ञानाँ**	अज्ञानियोंके
दृशः	नेत्रोंके	**बुधः**	ज्ञानी (रक्षक) हैं
पक्ष्म	पलक,	**प्रजानां**	प्रजाका (वैसे ही)
स्त्रियाः	स्त्रियोंके	**सुहृत्**	हितैषी
पतिः	(उनके) पति,	**पतिः**	राजा है ॥१२॥

अन्तर्देहेषु भूतानामात्माऽऽस्ते हरिरीश्वरः ।
सर्वं तद्धिष्ण्यमीक्षध्वमेवं वस्तोषितो ह्यसौ ॥१३॥

अन्तः देहेषु भूतानां आत्मा आस्ते हरिः ईश्वरः सर्वं तत् धिष्ण्यं ईक्षध्वं एवं वः तोषितः हि असौ ॥१३॥

भूतानां हि	प्राणियोंके क्योंकि	**ईक्षध्वं**	देखो
अन्तः देहेषु	शरीरके भीतर	**एवं असौ**	इस प्रकार ये (परमात्मा)
ईश्वरः हरिः	सर्व संचालक श्रीहरि		
आत्मा आस्ते	आत्मा रूपसे विराजमान हैं,	**वः तोषितः**	आप लोगों द्वारा सन्तुष्ट कर लिये जाएँगे ॥१३॥
सर्वं तत् धिष्ण्यं	(अतः) सबको उनका मन्दिर		

यः समुत्पतितं देह आकाशान्मन्युमुल्बणम् ।
आत्मजिज्ञासया यच्छेत् स गुणानतिवर्तते ॥१४॥

यः समुत् पतित देह आकाशात् मन्युं उल्बणं आत्मजिज्ञासया यच्छेत् स गुणान् अतिवर्तते ॥१४॥

यः देह	जो हृदय	**समुत् पतितं**	उबलते
आकाशात्	आकाशमें	**उल्बणं मन्युं**	भयंकर क्रोधको

आत्मजिज्ञासया यच्छेत्	आत्म विचारसे नियन्त्रित कर लेता है,	**स गुणान् अतिवर्तते**	वह (प्रकृतिके) गुणोंसे पार हो जाता है ॥१४॥

अलं दग्धैर्द्रुमैर्दीनैः खिलानां शिवमस्तु वः ।
वार्क्षी ह्येषा वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥१५॥

अलं दग्धैः द्रुमैः दीनैः खिलानां शिवं अस्तु वः वार्क्षी हि एषा वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥१५॥

दीनैः द्रुमैः दग्धैः अलं	बिचारे वृक्षोंको जलाना बन्द कीजिए ।	**कन्या हि वरा**	कन्या क्योंकि श्रेष्ठा है
वार्क्षी	वृक्षोंकी	**पत्नीत्वे**	पत्नीके रूपमें
		प्रतिगृह्यतां	ग्रहण कीजिए ॥१५॥

*शौनक उवाच-**

इत्यामन्त्र्य वरारोहां कन्यामाप्सरसीं नृप ।
सोमो राजा ययौ दत्त्वा ते धर्मेणोपयेमिरे ॥१६॥

इति आमन्त्र्य वरारोहां कन्यां आप्सरसीं नृप सोमः राजा ययौ दत्त्वा ते धर्मेण उपयेमिरे ॥१६॥

नृप	राजन् परीक्षित !	**वरारोहां**	सुन्दरी
इति आमन्त्र्य	इस प्रकार समझाकर	**कन्यां दत्त्वा**	कन्या देकर
राजा सोमः	राजा चन्द्र	**ययौ**	चले गये
आप्सरसीं	अप्सरा (प्रम्लोचा) की	**ते धर्मेण उपयेमिरे**	उन्होंने धर्म पूर्वक (उससे) विवाह किया ॥१६॥

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तेभ्यस्तस्यां समभवद् दक्षः प्राचेतसः किल ।
यस्य प्रजाविसर्गेण लोका आपूरितास्त्रयः ॥१७॥

तेभ्यः तस्यां समभवत् दक्षः प्राचेतसः किल यस्य प्रजाविसर्गेण लोकाः आपूरिताः त्रयः ॥१७॥

तेभ्यः	उन (प्रचेताओं) से	**यस्य**	जिनकी
तस्यां	उससे	**प्रजाविसर्गेण**	प्रजा-सृष्टिसे
प्राचेतसः दक्षः	प्राचेतस दक्ष	**त्रयः लोकाः**	तीनों लोक
समभवत्	उत्पन्न हुए	**आपूरिताः**	भर गये ॥१७॥
किल	अरे		

यथा ससर्ज भूतानि दक्षो दुहितृवत्सलः ।
रेतसा मनसा चैव तन्मेमावहितः शृणु ॥१८॥

यथा ससर्ज भूतानि दक्षः दुहितृ वत्सलः रेतसा मनसा च एव तत् मम अवहितः शृणु ॥१८॥

दुहितृ वत्सलः	पुत्रियोंसे स्नेह करनेवाले	**भूतानि ससर्ज**	प्राणियोंकी सृष्टि की
दक्षः	दक्षने	**तत् मम**	वह मेरी बात
यथा मनसा	जैसे मन (संकल्प) से	**अवहितः**	एकाग्र होकर
च रेतसा एव	और वीर्यसे भी	**शृणु**	सुनो ॥१८॥

मनसैवासृजत्पूर्वं प्रजापतिरिमाः प्रजाः ।
देवासुरमनुष्यादीन्नभःस्थलजलौकसः ॥१९॥

मनसा एव असृजत् पूर्वं प्रजापतिः इमाः प्रजाः देव असुर मनुष्य आदीन् नभः स्थल जलौकसः ॥१९॥

पूर्वं	पहिले	**नभः स्थल**	आकाश, पृथ्वी,
प्रजापतिः	प्रजापति (दक्ष) ने	**जलौकसः**	जलमें रहने वाली
मनसा एव	मनसे ही	**इमाः**	इस

देव असुर	देवता, असुर,	**असृजत्**	उत्पन्न
मनुष्य	मनुष्य		किया ॥१९॥
आदीन् प्रजाः	आदि प्रजाको		

तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः ।
विन्ध्यपादानुपव्रज्य सोऽचरद् दुष्करं तपः ॥२०॥

तं अबृंहितं आलोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः विन्ध्यपादान् उपव्रज्य सः अचरत् दुष्करं तपः ॥२०॥

तं प्रजासर्गं	उस प्रजा सृष्टिको	**उपव्रज्य**	पहुँचकर
अबृंहितं	बढ़ते न	**सः दुष्करं**	उन्होंने कठिन
आलोक्य	देखकर	**तपः**	तपस्या
प्रजापतिः	प्रजापति दक्षने	**अचरत्**	की ॥२०॥
विन्ध्यपादान्	विन्ध्याचलके नीचे		

तत्राघमर्षणं नाम तीर्थं पापहरं परम् ।
उपस्पृश्यानुसवनं तपसातोषयद्धरिम् ॥२१॥

तत्र अघमर्षणं नाम तीर्थं पाप हरं परं उपस्पृश्य अनुसवनं तपसा तोषयत् हरिम् ॥२१॥

तत्र अघमर्षणं	वहां अघमर्षण	**अनुसवनं**	त्रिकाल
नाम	नामके	**उपस्पृश्य**	स्नान करके
परं	सम्पूर्ण	**तपसा**	तपस्यासे
पाप	महापापोंको भी	**हरिं**	श्रीहरिको
हरं	नष्ट करने वाले	**तोषयत्**	सन्तुष्ट करने लगे ॥२१॥
तीर्थं	तीर्थमें		

अस्तौषीद्धंसगुह्येन भगवन्तमधोक्षजम् ।
तुभ्यं तदभिधास्यामि कस्यातुष्यद् यतो हरिः ॥२२॥

अस्तौषीत् हंसगुह्येन भगवन्तं अधोक्षजं तुभ्यं तत् अभिधास्यामि कस्य अतुष्यत् यतः हरिः ॥२२॥

हंसगुह्येन	हंसगुह्य स्तोत्रसे	**अभिधास्यामि**	बतलाऊँगा
भगवन्तं	भगवान्	**यतः हरिः**	जिससे श्रीहरि
अधोक्षजं	अधोक्षज की	**कस्य**	प्रजापतिपर
अस्तौषीत्	स्तुति करने लगे	**अतुष्यत्**	सन्तुष्ट हुए ॥२२॥
तत् तुभ्यं	वह तुमको		

प्रजापतिरुवाच -

नमः परायावितथानुभूतये
गुणत्रयाभासनिमित्तबन्धवे ।
अदृष्टधाम्ने गुणतत्त्वबुद्धिभि-
र्निवृत्तमानाय दधे स्वयम्भुवे ॥२३॥

नमः पराय अवितथ अनुभूतये गुणत्रय आभास निमित्त बन्धवे अदृष्ट धाम्ने गुण तत्त्व बुद्धिभिः निवृत्त मानाय दधे स्वयम्भुवे ॥२३॥

पराय	(प्रकृति आदिसे) परस्वरूप,	**गृण तत्त्व**	इन्द्रिय, पञ्चभूत,
अवितथ	अव्यर्थ	**बुद्धिभिः**	बुद्धिके द्वारा तथा
अनुभूतये	अनुभव	**निवृत्त मानाय**	(अन्य) प्रमाणों की पहुँचसे परे,
गुणत्रय	तीनों गुणोंकी	**स्वयंभुवे**	स्वयं प्रकाश
आभास	प्रतीतिके	**दधे नमः**	(आपका) ध्यान करते हुए प्रणाम करते हैं ॥२३॥
निमित्त	निमित्त,		
बन्धवे	(सबके) बन्धु,		
अदृष्ट धाम्ने	अदृश्य स्वरूप,		

न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सख्युः
सखा वसन् संवसतः पुरेऽस्मिन् ।
गुणो यथा गुणिनो व्यक्तदृष्टे-
स्तस्मै महेशाय नमस्करोमि ॥२४॥

न यस्य सख्यं पुरुषः अवैति सख्युः सखा वसन् संवसतः पुरे अस्मिन् गुणः यथा गुणिनः व्यक्त दृष्टेः तस्मै महेशाय नमः करोमि ॥२४॥

यथा गुणः	जैसे (रस रूपादि) गुण	**यस्य सख्युः**	जिस सखाकी
गुणिनः	गुणवान् (रसना नेत्रादि इन्द्रियों को नहीं जानते वैसे ही	**सख्यं**	सहृदयताको
		न अवैति	नहीं जान पाता
		तस्मै	उस
अस्मिन्	इस (देहरूप)	**व्यक्त**	व्यक्त
पुरे	नगरमें	**दृष्टेः**	(संसार) के द्रष्टा
संवसतः	साथ रहते हुए	**महेशाय**	महेश्वरको
सखा	सखा होनेपर भी	**नमः**	नमस्कार
पुरुषः	पुरुष	**करोमि**	करता हूँ ॥२४॥

देहोऽसवोऽक्षा मनवो भूतमात्रा
नात्मानमन्यं च विदुः परंयत् ।
सर्वं पुमान् वेद गुणांश्च तज्ज्ञो
न वेद सर्वज्ञमनन्तमीडे ॥२५॥

देहः असवः अक्षा मनवः भूत मात्रा न आत्मानं अन्यं च विदुः परं यत् सर्वं पुमान् वेद गुणांन् च तत् ज्ञः न वेद सर्वज्ञं अनन्तं इडे ॥२५॥

देहः असवः	देह, प्राण,	**सर्वं गुणांन् च**	इन सबको और त्रिगुणोंको भी
अक्षा मनवः	इन्द्रियां, मन-बुद्धि,		
भूत मात्रा	पंचभूत, तन्मात्राएँ (जड़ होनेसे)	**वेद**	जानता है,
		तत् ज्ञः	वह भी दृश्य होनेसे
आत्मानं	अपने आपको	**न वेद**	(आपको) नहीं
च अन्यं	और दूसरेको		जानता,
न विदुः	नहीं जानतीं,	**सर्वज्ञं**	(आप) सर्वज्ञ
यत् परं पुमान्	जो इनसे परे जीव है	**अनन्तं**	अनन्तकी
		इडे	स्तुति करता हूँ॥२५॥

यदोपरामो मनसो नामरूप-
रूपस्य दृष्टस्मृतिसम्प्रमोषात् ।
य ईयते केवलया स्वसंस्थया
हंसाय तस्मै शुचिसद्मने नमः ॥२६॥

यदा उपरामः मनसः नाम रूप रूपस्य दृष्ट स्मृति सम्प्रमोषात् य ईयते केवलया स्व संस्थया हंसाय तस्मै शुचि सद्मने नमः ॥२६॥

नाम रूप	नाम और रूप	**केवलया**	तब) केवल
रूपस्य	स्वरूप	**स्व संस्थया**	स्वरूप स्थिति में
दृष्ट	देखे और	**य ईयते**	जो प्रकाशित होते हैं
स्मृति	स्मृति संस्कार के	**तस्मै**	उन
सम्प्रमोषात्	लुप्त होनेपर (समाधि में)	**शुचि सद्मने**	शुद्ध हृदय भवनमें रहने वाले
यदा	जब	**हंसाय**	शुद्ध रूप हंसको
मनसः उपरामः	मनसे भी उपरामता हो जाती है	**नमः**	नमस्कार ॥२६॥

मनीषिणोऽन्तर्हृदि संनिवेशितं
स्वशक्तिभिर्नवभिश्च त्रिवृद्भिः ।
वह्निं यथा दारुणि पाञ्चदश्यं
मनीषया निष्कर्षन्ति गूढम् ॥२७॥

मनीषिणः अन्तः हृदि संनिवेशितं स्वशक्तिभिः नवभिः च त्रिवृद्भिः वह्निं यथा दारुणि पाञ्चदश्यं मनीषया निष्कर्षन्ति गूढम् ॥२७॥

यथा	जैसे	**पाञ्चदश्यं**	(सामके) पन्द्रह मंत्रों द्वारा
दारुणि गूढं	काष्ठ में छिपे		
वह्निं	(सामधेनी नामक) अग्निको	**निष्कर्षन्ति**	प्रकट करते (खींचते) हैं,

अन्तः हृदि	हृदयके भीतर	**नवभिः**	नौ (सत्ताइस)
संनिवेशितं	छिपे हुए (आपको)	**स्वशक्तिभिः**	अपनी शक्तियोंसे
मनीषिणः	ज्ञानी लोग	**मनीषया**	बुद्धि द्वारा (ढूँढ़ते
त्रिवृद्भिः	तिगुनी की गयी		हैं) ॥२७॥

स वै ममाशेषविशेषमाया-
निषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः ।
स सर्वनामा स च विश्वरूपः
प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः ॥२८॥

स वै मम अशेष विशेष माया निषेध निर्वाणसुख अनुभूतिः स सर्व-नामा स च विश्वरूपः प्रसीदतां अनिरुक्त आत्मशक्तिः ॥२८॥

अशेष विशेष	समस्त विशेषताओं वाली	**अनिरुक्त**	निरूपण नहीं हो सकता
माया निषेध	मायाका निषेध कर देनेपर	**वै स**	निश्चय वही आप
निर्वाणसुख	परम सुख	**सर्वनामा**	सब नाम वाले,
अनुभूतिः	अनुभव स्वरूप आपकी	**च स**	और वही आप
आत्मशक्तिः	अपनी शक्तिका	**विश्वरूपः**	विश्वरूप हो
		स मम	वह आप मुझपर
		प्रसीदतां	प्रसन्न हों ॥२८॥

यद्यन्निरुक्तं वचसा निरूपितं
धियाक्षभिर्वा मनसा वोत यस्य ।
मा भूत् स्वरूपं गुणरूपं हि तत्तत्
स वै गुणापायविसर्गलक्षणः ॥२९॥

यत् यत् निरुक्तं वचसा निरूपितं धिया आक्षभिः वा मनसा वा उत यस्य मा भूत् स्वरूपं गुणरूपं हि तत् तत् स वै गुण अपाय विसर्ग लक्षणः ॥२९॥

यत् यत्	जो-जो
निरुक्तं	निरूपण होता है,
वचसा	वाणी से
वा	अथवा
धिया	बुद्धिसे
उत अक्षभिः	या इन्द्रियोंसे,
वा मनसा	अथवा मनसे
यस्य निरूपितं	जिसका भी निरूपण हो
तत् तत्	वह सब
हि	क्योंकि
गुणरूपं	गुणोंके ही स्वरूप-का है,
स्वरूपं	स्व (आत्माका रूप
मा भूत्	नहीं हो सकता
स वै	वह तो निश्चय
गुण अपाय	गुणोंके नाश और
विसर्गं	उत्पत्तिका
लक्षणः	स्वरूप है ॥३०॥

यस्मिन् यतो येन च यस्य यस्मै
यद् यो यथा कुरुते कार्यते च ।
परावरेषां परमं प्राक् प्रसिद्धं
तद् ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम् ॥३०॥

यस्मिन् यतः येन च यस्य यस्मै यत् यः यथा कुरुते कार्यं ते च पर अवरेषां परमं प्राक् प्रसिद्धं तत् ब्रह्म तत् हेतुः अनन्यत् एकम् ॥३०॥

यस्मिन्	जिसमें,
यतः	जहाँसे,
येन च	जिसके द्वारा
यस्य	जिसका,
यस्मै	जिसके लिए
यत्	जहां,
यः	जो,
यथा	जैसे
कुरुते	किया जाता है
च कार्य ते	तथा कराया जाता है,
पर अवरेषां	उस कारण-कार्य (रूप विश्व)से
परमं	श्रेष्ठ
प्राक् प्रसिद्धं	पहिलेसे विद्यमान (अनादि)
तत् अनन्यत् हेतुः	वह एकमात्र कारण,
एकं	अद्वितीय है,
तत् ब्रह्म	वही ब्रह्म है ॥३०॥

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै
विवादसंवादभुवो भवन्ति ।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं
तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने ॥३१॥

यत् शक्तयः वदतां वादिनां वै विवाद संवाद भुवः भवन्ति कुर्वन्ति च एषां मुहुः आत्म मोहं तस्मै नमः अनन्त गुणाय भूम्ने ॥३१॥

यत् शक्तयः	जिसकी शक्तियां	**मुहुः**	बार-बार
वै वादिनां	निश्चय वादी-प्रतिवादीके	**आत्म मोहं**	उनको मोहमें
विवाद संवाद	विवाद और संवाद (ऐक्यमत्य) का	**कुर्वन्ति**	डालती हैं,
भुवः भवन्ति	आधार होती हैं,	**तस्मै**	उन
च एषां	और जिनके विषयमें	**अनन्त गुणाय**	अनन्त गुणशाली
		भूम्ने नमः	सर्वव्यापकको नमस्कार ॥३१॥

अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयो-
रेकस्थयोर्भिन्नविरुद्ध धर्मयोः ।
अवेक्षितं किञ्चन योगसांख्ययोः
समं परं ह्यनुकूलं बृहत्तत् ॥३२॥

अस्ति इति न अस्ति इति च वस्तुनिष्ठयोः एकस्थयोः भिन्न विरुद्ध धर्मयोः अवेक्षितं किञ्च न योग सांख्ययोः समं परं हि अनुकूलं बृहत् तत् ॥३२॥

एकस्थयोः	एक ही	**इति**	इस प्रकार
वस्तुनिष्ठयोः	वस्तुके सम्बन्धमें	**विरुद्ध धर्मयोः**	परस्पर विरोधी धर्म
आस्ति	(सगुण ईश्वर) है,	**किञ्च**	क्या
इति	इस प्रकार,	**योग साख्ययोः**	योग और सांख्य
च न अस्ति	और नहीं है,	**न अवेक्षितं**	नहीं देखते ?

हि	क्योंकि	समं	सम
अनुकूलं	(दोनों बातें) उसके अनुरूप हैं	परं	(दोनोंसे) परे (अतिर्वचनीया है ॥३२॥
तत् बृंहत्	वह व्यापक		

योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूल-
मनामरूपो भगवाननन्तः ।
नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभि-
र्भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥३३॥

यः अनुग्रह अर्थं भजतां पादमूलं अनाम अरूपः भगवान् अनन्तः नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभिः भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥३३॥

यः भगवान्	जिन भगवान्	जन्मकर्मभिः	अवतार लेकर लीलाके द्वारा
अनन्तः	अनन्तने	नामानि	नामोंको
अनाम अरूपः	बिना नामका निराकार (होने पर भी)	च रूपाणि	और रूपोंको
पादमूलं	(अपने) चरणोंका	भेजे	स्वीकार किया
भजतां	भजन करने वालों पर	स परमः	वे परम पुरुष
अनुग्रह अर्थं	कृपा करनेके लिए	मह्यं प्रसीदतु	मुझपर प्रसन्न हों ॥३३॥

यः प्राकृतैर्ज्ञानपथैर्जनानां
यथाशयं देहगतो विभाति ।
यथानिलः पार्थिवमाश्रितो गुणं
स ईश्वरो मे कुरुतान्मनोरथम् ॥३४॥

यः प्राकृतैः ज्ञानपथैः जनानां यथा आशयं देहगतः विभाति यथा अनिलः पार्थिवं आश्रितः गुणं स ईश्वरः मे कुरुतात् मनोरथम् ॥३४॥

यथा अनिलः	जैसे वायु	गुणं आश्रितः	गुणोंको अपना लेता है (वैसे ही)
पार्थिवं	पृथ्वीके तत्त्वों (पुष्पादि)के	यः जानानां	जो भक्तोंके

प्राकृतैः ज्ञानपथैः	प्राकृत ज्ञानके मार्ग (नेत्रादि) से
यथा आशयं	अन्तःकरणके भावके अनुसार
देहगतः	शरीर धारण करके (दर्शन देकर,
विभाति	शोभित होता है,
स ईश्वरः	वह सर्वसमर्थ
मे मनोरथं	मेरी कामना
कुरुतात्	पूर्ण करें ॥३४॥

श्रीशुक उवाच–

इति स्तुतः संस्तुवतः स तस्मिन्नघर्षणे ।
आविरासीत् कुरुश्रेष्ठ भगवान् भक्तवत्सलः ॥३५॥

इति स्तुतः संस्तुवतः स तस्मिन् अघमर्षणे आविः आसीत् कुरुश्रेष्ठ भगवान् भक्तवत्सलः ॥३५॥

कुरुश्रेष्ठ	परीक्षित्
तस्मिन्	उस
अघमर्षणे	अघमर्षण तीर्थमें
इति स्तुतः	इस स्तोत्रसे
संस्तुवतः	स्तुति करनेपर
भक्तवत्सलः	भक्तवत्सल
स भगवान्	वे भगवान्
आविः आसीत्	प्रकट हो गये ॥३५॥

कृतपादः सुपर्णांसे प्रलम्बाष्टमहाभुजः ।
चक्रशङ्खासिचर्मेषुधनुः पाशगदाधरः ॥३६॥

कृतपादः सुपर्ण अंसे प्रलम्ब अष्ट महाभुजः चक्रशङ्ख असि चर्म इषु धनुः पाश गदाधरः ॥३६॥

सुपर्ण अंसे	गरुड़के कन्धोंपर
कृतपादः	पैर रखे हुए,
प्रलम्ब अष्ट	लम्बी आठ
महाभुजः	महान् भुजाओंमें
चक्रशङ्ख	चक्र, शङ्ख,
असि चर्म	तलवार, ढाल,
इषु धनुः	बाण, धनुष,
पाश, गदाधरः	पाश, गदा, लिए हुए ॥३६॥

पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदनेक्षणः ।
वनमालानिवीताङ्गो लसच्छ्रीवत्सकौस्तुभः ॥३७॥

पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदन ईक्षणः वनमाला निवीत अङ्गः लसत् श्रीवत्स कौस्तुभः ॥३७॥

पीतवासा	पीताम्बर पहिने,	**वनमाला निवीत**	वनमाला पहिने,
घनश्यामः	मेघके समान श्यामवर्ण,	**श्रीवत्स**	श्रीवत्स चिह्न और
		कौस्तुभः	कौस्तुभ मणिसे
प्रसन्नवदन	प्रसन्न मुख	**लसत् अङ्गः**	सुशोभित शरीर ॥३७॥
ईक्षणः	और नेत्र,		

महाकिरीटकटकः स्फुरन्मकरकुण्डलः ।
काञ्च्यङ्गुलीयवलयनूपुराङ्गदभूषितः ॥३८॥

महाकिरीट कटकः स्फुरन् मकरकुण्डलः काञ्ची अंगुलीय वलय नूपुर अङ्गद भूषितः ॥३८॥

महाकिरीट	बहुमूल्य मुकुट,	**अंगुलीय**	अँगूठी
कटकः	कङ्कण,	**वलय**	कड़े,
स्फुरन्	चमकते	**नूपुर अङ्गद**	नूपुर, अंगदसे
मकरकुण्डल	मकराकृति कुण्डल,	**भूषितः**	आभूषित ॥३८॥
काञ्ची	करधनी		

त्रैलोक्यमोहनं रूपं बिभ्रत् त्रिभुवनेश्वरः ।
वृतो नारदनन्दाद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः ॥३९॥

त्रैलोक्य मोहनं रूपं बिभ्रत् त्रिभुवनेश्वरः वृतः नारद नन्द आद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः ॥३९॥

त्रिभुवनेश्वरः	त्रिभुवनपति	**आद्यैः**	आदि
त्रैलोक्य मोहनं	त्रिलोकीको मोहित करने वाला	**सुरयूथपैः**	देव-यूथप
		पार्षदैः	पार्षदोंसे
रूपं विभ्रत्	धारण किये,	**बृतः**	घिरे हुए ॥३९॥
नारद नन्द	नारद, नन्द		

स्तूयमानोऽनुगायद्भिः सिद्धगन्धर्वचारणैः ।
रूपं तन्महदाश्चर्यं विचक्ष्यागतसाध्वसः ॥४०॥

स्तूयमानः अनुगायत्भिः सिद्ध गन्धर्व चारणैः रूपं तत् महत् आश्चर्यं विचक्ष्य आगत साध्वसः ॥४०॥

अनुगायत्भिः	पीछे गाते चलते,
सिद्ध गन्धर्व	सिद्ध, गन्धर्व,
चारणैः	चारणों द्वारा
स्तूयमानः	स्तुति किये जाते
तत्	उस
महत् आश्चर्यं	महान् आश्चर्यजनक
रूपं विचक्ष्य	रूपको देखकर
आगत साध्वसः	(दक्षको) सहमना आ गया ॥४०॥

ननाम दण्डवद् भूमौ प्रहृष्टात्मा प्रजापतिः ।
न किञ्चनोदीरयितुमशकत् तीव्रया मुदा ।
आपूरितमनोद्वारैर्ह्रदिन्य इव निर्झरैः ॥४१॥

ननाम दण्डवत् भूमौ प्रहृष्ट आत्मा प्रजापतिः न किञ्चन उदीरयितुं अशकत् तीव्रया मुदा आपूरित मनः द्वारैः ह्रदिन्य इव निर्झरैः ॥४१॥

हृष्ट आत्मा	अत्यन्त हर्षित चित्त
प्रजापतिः	प्रजापति दक्ष
भूमौ	पृथ्वीपर
दण्डवत् ननाम	दण्डवत प्रणाम करते पड़ गये
तीव्रया मुदा	तीव्र आनन्दके कारण
किञ्चन	कुछ भी
उदीरमितुं	बोलनेमें
न अशकत्	समर्थ नहीं हुए,
निर्झरैः	झरनों द्वारा
ह्रदिन्य इव	नदीकी भाँति
मनः द्वारैः	मनके ऊपर
आपूरित	परिपूर्ण हो गये ॥४१॥

तं तथावनतं भक्तं प्रजाकामं प्रजापतिम् ।
चित्तज्ञः सर्वभूतानामिदमाह जनार्दनः ॥४२॥

तं तथा अवनतं भक्तं प्रजाकामं प्रजापतिं चित्तज्ञः सर्वभूतानां इदं आह जनार्दनः ॥४२॥

तं तथा	उनको इस प्रकार	**सर्वभूतानां**	सब प्राणियोंके
अवनतं	नम्रतासे झुके	**चित्तज्ञः**	हृदयकी बात
भक्तं	अपने भक्त		जानने वाले
प्रजाकामं	सन्तान चाहनेवाले	**जनार्दनः**	भगवान् जनार्दनने
प्रजापतिं	प्रजापति (दक्ष)से	**इदं आह**	यह कहा ॥४२॥

श्रीभगवानुवाच-

प्राचेतस महाभाग संसिद्धस्तपसा भवान् ।
यच्छ्रद्धया मत्परया मयि भावं परं गतः ॥४३॥

प्राचेतस महाभाग संसिद्धः तपसा भवान् यत् श्रद्धया मत्परया मयि भावं परं गतः ॥४३॥

महाभाग	महाभाग	**यत्**	क्योंकि
प्राचेतस	प्रचेतानन्दन,	**मत्परया**	मुझमें परम
भवान्	तुम	**श्रद्धया**	श्रद्धासे
तपसा	तपस्यासे	**मयि**	मुझमें
संसिद्धः	सिद्ध (सफल) हो गये	**परं भावः**	परम प्रेमभाव
		गतः	प्राप्त हो गया ॥४३

प्रीतोऽहं ते प्रजानाथ यत्तेऽस्योद्बृंहणं तपः ।
ममैष कामो भूतानां यद् भूयासुर्विभूतयः ॥४४॥

प्रीतः अहं ते प्रजानाथ यत् ते अस्य उद्बृंहणं तपः मम एष कामः भूतानां यत् भूय असुः विभूतयः ॥४४॥

प्रजानाथ	प्रजापति	**एष मम**	यह मेरी
ते अहं	तुमपर मैं	**कामः**	इच्छा है
प्रीतः	प्रसन्न हूँ,	**यत् भूतानां**	कि प्राणियोंकी
यत्	क्योंकि	**असुः**	प्राण (वृद्धि)
ते तपः	तुम्हारी तपस्या	**विभूतयः**	समृद्धि
अस्य	इस संसारकी	**भूय**	हो ॥४४॥
उद्बृंहणं	अभिवृद्धिके लिए है ।		

ब्रह्मा भवो भवन्तश्च मनवो विबुधेश्वराः ।
विभूतयो मम ह्येता भूतानां भूतिहेतवः ॥४५॥

ब्रह्मा भवः भवन्तः च मनवः विबुधेश्वराः विभूतयः मम हि एता भूतानां भूतिहेतवः ॥४५॥

हि	क्योंकि	**मनवः**	मनु लोग
भूतानां	प्राणियोंकी	**च विबुधेश्वराः**	तथा देवनायक
भूतिहेतवः	अभिवृद्धिके कारण	**एता**	ये सब
ब्रह्मा भवः	ब्रह्मा, शिव,	**मम विभूतयः**	मेरी विभूतियाँ
भवन्तः	तुम (प्रजापतिगण)		हैं ॥४५॥

तपो मे हृदयं ब्रह्मंस्तनुर्विद्या क्रियाऽऽकृतिः ।
अङ्गानि क्रतवो जाता धर्म आत्मासवः सुराः ॥४६॥

तपः मे हृदयं ब्रह्मन् तनुः विद्या क्रिया आकृतिः अङ्गानि क्रतवःजाता धर्म आत्मा असवः सुराः ॥४६॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**अङ्गानि जाता**	मेरे अङ्ग उत्पन्न हुए हैं,
तपः मे	तपस्या मेरा	**धर्म आत्मा**	धर्म आत्मा है ।
हृदयं	हृदय है,	**सुराः आसवः**	देवता प्राण हैं ॥४६॥
विद्या तनुः	विद्या शरीर है,		
क्रिया आकृतिः	कर्म आकृति है,		
क्रतवः	यज्ञोंसे		

अहमेवासमेवाग्रे नान्यत् किञ्चान्तरं बहिः ।
संज्ञानमात्रमव्यक्तं प्रसुप्तमिव विश्वतः ॥४७॥

अहं एव आसं एव अग्रे न अन्यत् किञ्च अन्तरं बहिः संज्ञानमात्रं अव्यक्तं प्रसुप्तं इव विश्वतः ॥४७॥

अहं एव	मैं ही	**अन्तरं बहिः**	बाहर-भीतर
अग्रे आसं एव	पहिले था ही	**किञ्च**	कुछ भी

अन्यत् न	दूसरा नहीं था	**विश्वतः**	चारों ओर
अव्यक्तं	अव्यक्त	**प्रसुप्तं इव**	सुषुप्तिके समान
संज्ञानमात्रं	ज्ञानमात्र था		था ॥४७॥

मय्यनन्तगुणेऽनन्ते गुणतो गुणविग्रहः ।
यदाऽऽसीत् तत एवाद्यः स्वयम्भूः समभूदजः ॥४८॥

मयि अनन्त गुणे अनन्ते गुणतः गुणविग्रहः यत् आसीत् तत एव आद्यः स्वयम्भूः समभूत् अजः ॥४८॥

मयि अनन्त	मुझ अनन्त	**आसीत्**	उत्पन्न हुआ
गुणे	गुणवाले	**तत एव**	उससे ही
अनन्ते	अनन्तमें	**आद्यः**	आदि पुरुष
गुणतः	(मायाके) गुणोंसे	**स्वयम्भू**	स्वयंभू
यत् गुणविग्रहः	जो गुण स्वरूप (विराट्)	**अजः**	ब्रह्मा
		समभूत्	उत्पन्न हुए ॥४८॥

स वै यदा महादेवो मम वीर्योपबृंहितः ।
मेने खिलमिवात्मानमुद्यतः सर्गकर्मणि ॥४९॥

स वै यदा महादेवः मम वीर्य उपबृंहितः मेने खिलं इव आत्मानं उद्यतः सर्गकर्मणि ॥४९॥

यदा वै	जबकि	**उद्यतः**	उद्यत हुए (तब)
मम वीर्य	मेरे तेजसे	**आत्मानं**	अपनेको
उपबृंहितः	अभिवृद्ध किये गये	**खिलं इव**	अपूर्णकी भांति
स महादेवः	वे देवश्रेष्ठ	**मेने**	मानने लगे ॥४९॥
सर्गकर्मणि	सृष्टि करनेके लिए		

अथ मेऽभिहितो देवस्तपोऽतप्यत दारुणम् ।
नव विश्वसृजो युष्मान् येनादावसृजद् विभुः ॥५०॥

अथ मे अभिहितः देवः तपः अतप्यत दारुणं नव विश्व सृजः युष्मान् येन आदौ असृजत् विभुः ॥

अथ मे	तब मेरे द्वारा
अभिहितः	आदेश दिये जाने पर
देवः	उन देवने
दारुणं तपः	घोर तपस्या
अतप्यत	की
येन	जिसके द्वारा
आदौ	प्रारम्भमें
युष्मान्	तुम
नव विश्व	नौ विश्व
सृजः	सृष्टाओंकी
विभुः असृजत्	उन समर्थने सृष्टि की ॥५०॥

एषा पञ्चजनस्याङ्ग दुहिता वै प्रजापतेः ।
असिन्की नाम पत्नीत्वे प्रजेश प्रतिगृह्यताम् ॥५१॥

एषा पञ्चजनस्य अङ्ग दुहिता वै प्रजापतेः असिन्की नाम पत्नीत्वे प्रजेश प्रतिगृह्यताम् ॥५१॥

अङ्ग	प्रिय दक्ष !
एषा	यह
पञ्चजनस्य	पञ्चजन
प्रजापतेः वै	प्रजापतिकी ही
असिन्की नाम	असिन्की नामकी
दुहिता	पुत्री है,
प्रजेश	प्रजापति !
पत्नीत्वे	इसे पत्नी रूपमें
प्रतिगृह्यतां	ग्रहण करो ॥५१॥

मिथुनव्यवायधर्मस्त्वं प्रजासर्गमिमं पुनः ।
निथुनव्यवायधर्मिण्यां भूरिशो भावयिष्यसि ॥५२॥

मिथुन व्यवाय धर्मः त्वं प्रजासर्गं इमं पुनः मिथुन व्यवाय धर्मिण्यां भूरिशः भावयिष्यसि ॥५२॥

मिथुन व्यवाय	जोड़ेसे स्त्री सहवास रूप
धर्मः	धर्मके द्वारा
त्वं पुनः	तुम फिर
इमं	इस
मिथुन व्यवाय	जोड़ेसे स्त्री सहवास रूप
धर्मिण्यां	धर्मवाली

भूरिशः	बहुत अधिक	**भावयिष्यसि**	करोगे ॥५२॥
प्रजासर्गं	प्रजाकी सृष्टि		

त्वत्तोऽधस्तात् प्रजाः सर्वा मिथुनीभूय मायया ।
मदीयया भविष्यन्ति हरिष्यन्ति च मे बलिम् ॥५३॥

त्वत्तः अधस्तात् प्रजाः सर्वाः मिथुनीभूय मामया मदीयया भविष्यन्ति हरिष्यन्ति च मे बलिम् ॥५३॥

त्वत्तः	तुमसे	**भविष्यन्ति**	होगी
अधस्तात्	पीछे होने वाली	**च मे**	और मुझे
सर्वाः प्रजाः	सब प्रजा	**बलिं**	उपहार
मदीयया मायया	मेरी मायसे	**हरिष्यन्ति**	देगी ॥५३॥
मिथुनीभूय	(स्त्री-पुरुष) जोड़ेसे ही उत्पन्न होने वाली		

श्रीशुक उवाच-

इत्युक्त्वा मिषतस्तस्य भगवान् विश्वभावनः ।
स्वप्नोपलब्धार्थं इव तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥५४॥

इति उक्त्वा मिषतः तस्य भगवान् विश्वभावनः स्वप्न उपलब्ध अर्थ इव अन्तर्दधे हरिः ॥५४॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	**स्वप्न उपलब्ध**	स्वप्नमें मिले
तस्य	उनके	**अर्थं इव**	पदार्थके समान
मिषतः	देखते-देखते	**तत्र एव**	वहीं
विश्वभावनः	विश्वपालक	**अन्तर्दधे**	अन्तर्धान हो
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरि		गये ॥५४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

तस्यां स पाञ्चजन्यां वै विष्णुमायोपबृंहितः ।
हर्यश्वसंज्ञानयुतं पुत्रानजनयद् विभुः ॥१॥

तस्यां स पाञ्चजन्यां वै विष्णुमाया उपबृंहितः हर्यश्व संज्ञान् अयुतं पुत्रान् अजनयत् विभुः ॥१॥

विष्णुमाया	भगवान् विष्णुकी माया (शक्ति)से
वै	निश्चय
उपबृंहित	अभिवृद्धि शक्ति
स विभुः	उन (दक्ष) ने
तस्यां	उस
पाञ्चजन्यां	पञ्चजनकी पुत्रीसे
हर्यश्व संज्ञान्	हर्यश्व नामक
अयुतं	दस सहस्र
पुत्रान् अजनयत्	पुत्र उत्पन्न किये ॥४७॥

अपृथग्धर्मशीलास्ते सर्वे दाक्षायणा नृप ।
पित्रा प्रोक्ताः प्रजासर्गे प्रतीचीं प्रययुर्दिशम् ॥२॥

अपृथक् धर्मशीलाः ते सर्वे दाक्षायणा नृप पित्रा प्रोक्ताः प्रजासर्गे प्रतीचीं प्रययुः दिशम् ॥२॥

नृप	राजन् !
ते सर्वे	वे सब
दाक्षायणा	दक्षपुत्र
अपृथक्	अभिन्न
धर्मशीलाः	आचरण एवं स्वभावके थे,
पित्रा	पिताके
प्रजासर्गे	प्रजा उत्पन्न करनेके लिये
प्रोक्ताः	कहने पर
प्रतीचीं दिशं	पश्चिम दिशामें
प्रययुः	चले गये ॥२॥

तत्र नारायणसरस्तीर्थं सिन्धुसमुद्रयोः ।
सङ्गमो यत्र सुमहन्मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥३॥

तत्र नारायणसरः तीर्थं सिन्धु समुद्रयोः सङ्गमः यत्र सुमहन् मुनि सिद्ध निषेवितम् ॥३॥

यत्र सिन्धु समुद्रयोः	जहाँ सिन्धु नदी और समुद्रका
सङ्गमः तत्र	मिलन होता है वहां
मुनि सिद्ध निषेवितं	मुनियों तथा सिद्धोंसे बराबर सेवन किया जानेवाला
सुमहन्	अत्यन्त महान्
नारायणसरः	नारायण-सरोवर
तीर्थं	तीर्थ है ॥३॥

तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः ।
धर्मे पारमहंस्ये च प्रोत्पन्नमतयोऽप्युत ॥४॥

तत् उपस्पर्शनात् एव विनिर्धूत अमल आशयाः धर्मे पारमहंस्ये च प्रोत्पन्न मतयः अपि उत ॥४॥

तत्	उस (सरोवर) में
उपस्पर्शनात् एव	स्नान करनेसे ही
विनिर्धूंत	धुलकर
अमल आशयाः	निर्मल चित्तवालों-की
उत	यद्यपि
पारमहंस्ये	(वे) परमहंसोंके
धर्मे	(निवृति) धर्ममें ही
प्रोत्पन्न मतयः	बुद्धि लग गयी फिर भी ॥४॥

तेपिरे तप एवोग्रं पित्रादेशेन यन्त्रिताः ।
प्रजाविवृद्धये यत्तान् देवर्षिस्तान् ददर्श ह ॥५॥

ते पिरे तप एव उग्रं पितृ आदेशेन यन्त्रिताः प्रजा विवृद्धये यत्तान् देवर्षिः तान् ददर्श ह ॥५॥

पितृ आदेशेन यन्त्रिताः	पिताकी आज्ञासे नियन्त्रित होनेके कारण
उग्रं तप एव ते पिरे	घोर तपस्या ही तपने (करने)लगे;
प्रजा विवृद्धये	प्रजाकी वृद्धिके लिए

यत्तान् तान्	यत्नवान उनको	**ददर्श**	देखा ॥५॥
देवर्षिः ह	देवर्षिने दयापूर्वक		

उवाच चाथ हर्यश्वाः कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः ।
अदृष्ट्वान्तं भुवो यूयं बालिशा बत पालकाः ॥६॥

उवाच च अथ हर्यश्वाः कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः अदृष्ट्वा अन्तं भुवः यूयं बालिशा बत पालकाः ॥६॥

उवाच च	बोलेभी	**भुवः अन्तं**	पृथ्वीका अन्त
अथ हर्यश्वाः	अरे, हर्यश्वो !	**अदृष्ट्वा**	देखे बिना
पालकाः बत	प्रजापालक होने परभी	**प्रजाः कथं वै**	प्रजाकी कैसे तो
		स्रक्ष्यथ	सृष्टि करोगे ॥६॥
यूयं बालिशा	तुम लोग मूर्खहो,		

तथैकपुरुषं राष्ट्रं बिलं चादृष्टनिर्गमम् ।
बहुरूपां स्त्रियं चापि पुमांसं पुंश्चलीपतिम् ॥७॥

तथा एक पुरुषं राष्ट्रं बिलं च अदृष्ट निर्गमं बहुरूपां स्त्रियं च अपि पुमांसं पुंश्चली पतिम् ॥७॥

तथा	इसी प्रकार	**च बहुरूपां**	तथा बहुत रूप बनाने वाली
एक पुरुषं	एक ही पुरुषवाले	**स्त्रियं**	स्त्रीको
राष्ट्रं	राष्ट्रको	**च पुंश्चली पतिं**	एवं व्यभिचारिणीके पति
अदृष्ट निर्गमं	जिससे निकलनेका मार्ग नहीं दीखता	**पुमांसं**	पुरुषको ॥७॥
बिलं	उस बिलको		

नदीमुभयतोवाहां पञ्चपञ्चाद्भुतं गृहम् ।
क्वचिद्धंसं चित्रकथं क्षौरपव्यं स्वयं भ्रमिम् ॥८॥

नदीं उभयतः वाहां पञ्चपञ्च अद्भुतं गृहं क्वचित् हंसं चित्रकथं क्षौरपव्यं स्वयं भ्रमिम् ॥८॥

उभयतः वाहां	दोनों ओर बहने वाली
नदीं	नदीको,
पञ्चपञ्च	पच्चीस (तत्वों)से बने
अद्भुतं गृहं	अद्भुत घरको,
चित्रकथं हंसं	विचित्र कथावाले हंसको,
स्वयं भ्रमिं	अपने आप घूमते रहनेवाले
क्षौरपव्यं	चक्रको
क्वचित्	कभी देखा है ॥८॥

कथं स्वपितुरादेशमविद्वांसो विपश्चितः ।
अनुरूपमविज्ञाय अहो सर्गं करिष्यथ ॥९॥

कथं स्वपितुः आदेशं अविद्वांसः विपश्चितः अनुरूपं अविज्ञाय अहो सर्गं करिष्यथ ॥९॥

अहो	अहो,
विपश्चितः	सर्वज्ञ
स्वपितुः	अपने पिताकी
आदेशं	आज्ञाको
अविद्वांसः	समझे बिना उसके
अनुरूपं	अनुकूल (तथ्य) को
अविज्ञाय	बिना जाने
कथं	कैसे
सर्गं करिष्यथ	सृष्टि करोगे ॥९॥

*श्रीशुक उवाच-**

तन्निशम्याथ हर्यश्वा औत्पत्तिकमनीषया ।
वाचःकूटं तु देवर्षेः स्वयं विममृशुर्धिया ॥१०॥

तत् निशम्य अथ हर्यश्वाः औत्पत्तिक मनीषया वाचः कूटं तु देवर्षेः स्वयं विममृशुः धिया ॥१०॥

---

* अध्यायके प्रारम्भसे 'श्रीशुक उवाच' ही चल रहा है; किन्तु श्लोक ६ से नारदजी बोलने लगे, अतः वहां 'नारदोवाच' होना चाहिए था, तब यहां 'श्रीशुक उवाच' संगत होता। पर यह उवाच सभी प्रतियोंमें है—श्लोक ६ का प्रारम्भिक शब्द 'उवाच....' शुकदेवजीका होनेसे वहाँ 'नारदोवाच' मैंने बढ़ाया नहीं।

अथ देवर्षेः	तब देवर्षि नारदजी-की	**मनीषया**	प्रतिभाशाली होनेसे
तत् कूटं वाचः	उस कूट वाणीको तो	**स्वयं धिया**	अपनी बुद्धिसे
निशम्य	सुनकर	**विममृशुः**	विचार करने लगे ॥१०॥
औत्पत्तिक	जन्मजात		

भूः क्षेत्रं जीवसंज्ञं यदनादि निजबन्धनम् ।
अदृष्ट्वा तस्य निर्वाणं किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥११॥

भूः क्षेत्रं जीवसंज्ञं यत् अनादि निज बन्धनं अदृष्ट्वा तस्य निर्वाणं किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥११॥

भूः क्षेत्रं	भूमि लिङ्ग शरीर है,	**बन्धनं**	बन्धन है ।
जीवसंज्ञं	जिसे जीव कहा जाता है,	**तस्य निर्वाणं**	उसका मोक्ष
		अदृष्ट्वा	देखे (जाने) बिना
यत्	जिससे	**असत् कर्मभिः**	अनुपयोगी कर्मोंसे
निज अनादि	आत्माका अनादि	**किं भवेत्**	क्या होगा ॥११॥

एक एवेश्वरस्तुर्यो भगवान् स्वाश्रयः परः ।
तमदृष्ट्वाभवं पुंसः किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१२॥

एक एव ईश्वरः तुर्यः भगवान् स्वाश्रयः परः तं अदृष्ट्वा अभवं पुंसः किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१२॥

ईश्वरःएक एव	ईश्वर एक ही हैं,	**तं अभवं**	उन, नित्यमुक्त
तुर्यः	(वे) तुरीय-तत्त्व,	**पुंसः**	परमपुरुषको
स्वाश्रयः	अपने ही आश्रयमें स्थित	**अदृष्ट्वा**	देखे बिना
		असत् कर्मभिः	तथ्यहीन कर्मोंसे
परः	सबसे परे	**किं भवेत्**	क्या लाभ होगा ॥१२॥
भगवान्	भगवान् हैं,		

पुमान् नैवैति यद् गत्वा बिलस्वर्गं गतो यथा ।
प्रत्यग्धामाविद इह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१३॥

पुमान् न एव एति यद् गत्वा बिलस्वर्गं गतः यथा प्रत्यक् धाम आविदः इह किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१३॥

यथा बिलस्वर्गं	जैसे बिल स्वर्ग (अतल-पातालादि)में	**इह आविदः**	इस जीवनमें जाने बिना
गतः	गया हुआ (नहीं लौटता)	**असत् कर्मभिः**	असत् (संसार)के कर्मोंसे
यद् गत्वा	जहाँ जाकर	**किं भवेत्**	क्या लाभ होगा ॥१३॥
पुमान् न एव	पुरुष नहीं ही लौट आता		
एति			
प्रत्यक् धाम	(उस) अन्तःज्योति स्वरूपको		

नानारूपाऽऽत्मनो बुद्धिः स्वैरिणीव गुणान्विता।
तन्निष्ठामगतस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१४॥

नाना रूपा आत्मनः बुद्धिः स्वैरिणी इव गुण अन्विता तत् निष्ठां अमगत् अस्य इह किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१४॥

आत्मनः	अपनी	**तत् निष्ठां**	उसके स्वरूपसे
बुद्धिः	बुद्धि	**अमगत् अस्य**	तादात्म्य करनेवाले इस (पुरुष)का
नाना रूपा	अनेक रूप धारिगी		
स्वैरिणी इव	कुलटाकी भांति	**असत् कर्मभिः**	असत् कर्मोंसे
गुण अन्विता	(सत्त्व, रज, तम) गुणोंसे युक्त होती है,	**किं भवेत्**	क्या कल्याण होगा ॥१४॥
इह	इस जीवनमें		

तत्सङ्गभ्रंशितैश्वर्यं संसरन्तं कुभार्यवत्।
तद्गतीरबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१५॥

तत् संग भ्रंशित ऐश्वर्यं संसरन्तं कुभार्यवत् तत् गतिः अबुधस्य इह किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१५॥

तत् सङ्ग	उस (बुद्धि) में आसक्ति करके
भ्रंशित ऐश्वर्यं	ऐश्वर्य भ्रष्ट
कुभार्यवत्	कुलटा पत्नीके पतिके समान
संसरन्तं	आवागमनमें पड़े
तत्गति	उस (बुद्धि)की चालोंको
अबुधस्य	न जाननेवालेका
इह	इस संसारमें
असत् कर्मभिः	अकल्याणकारी कर्मोंसे
किं भवेत्	क्या हित होगा ॥१५॥

सृष्टचप्ययकरीं मायां वेलाकूलान्तवेगिताम् ।
मत्तस्य तामविज्ञस्य किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१६॥

सृष्टि अप्यय करीं मायां वेला कूलान्तवे गितां मत्तस्य तां अविज्ञस्य किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१६॥

सृष्टि अप्यय करीं मायां	सृष्टि और प्रलय करने वाली माया
वेला कूलान्त	किनारे और किनारों के अन्त (मध्य) में
वेगितां	वेगवाली (नदी) है,
तां अविज्ञस्य	उसके स्वरूपको न जानकर
मत्तस्य	प्रमाद ग्रस्तका
असत् कर्मभिः	असत् (सांसारिक) कर्मोंसे
किं भवेत्	क्या (उद्धार) होगा ॥१६॥

पञ्चविंशतितत्त्वानां पुरुषोऽद्भुतदर्पणम् ।
अध्यात्ममबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१७॥

पञ्च विंशति तत्त्वानां पुरुषः अद्भुत दर्पणं अध्यात्मं अबुधस्य इह किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१७॥

पञ्च विंशति	पच्चीस
तत्त्वानां	तत्वोंका (बना मनुष्य देह)
पुरुषः	इस पुरीमें रहनेवाले का
अद्भुत दर्पणं	अद्भुत दर्पण है। इसीमें आत्म-साक्षात्कार होता है।
अध्यात्मं	इस आध्यात्म-तत्वको

अबुधस्य	न जाननेवाले का	**असत् कर्मभिः**	असत् कर्मोंसे
इह	इस संसारमें	**किं भवेत्**	क्या होगा ॥१७॥

ऐश्वरं शास्त्रमुत्सृज्य बन्धमोक्षानुदर्शनम् ।
विविक्तपदमज्ञाय किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१८॥

ऐश्वरं शास्त्रं उत्सृज्य बन्धमोक्ष अनुदर्शनं विविक्तपदं अज्ञाय किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१८॥

बन्धमोक्ष	बन्धन और मोक्षको	**विविक्तपदं**	ऐकान्तिक-पद (मोक्ष)को
अनुदर्शनं	ठीक-ठीक दिख-लानेवाले	**अज्ञाय**	जाने बिना
ऐश्वरं शास्त्रं	भगवद्वाणी रूप शास्त्रको	**असत् कर्मभिः**	बहिर्मुख करनेवाले कर्मोंसे
उत्सृज्य	(जो हंसके समान है) त्यागकर	**किं भवेत्**	क्या भला होगा ॥१८॥

कालचक्रं भ्रमिस्तीक्ष्णं सर्वं निष्कर्षयज्जगत् ।
स्वतन्त्रमबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१९॥

कालचक्रं भ्रमिः तीक्ष्णं सर्वं निष्कर्षयन् जगत् स्वतन्त्रं अबुधस्य इह किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१९॥

कालचक्रं	कालरूपी चक्र	**इह**	इस लोकमें
तीक्ष्णं भ्रमिः	तीक्ष्णं धारवाला घूमता चक्र है	**अबुधस्य**	इस (कालचक्र)को न जानकर
स्वतन्त्र	स्वतन्त्र है,	**असत् कर्मभिः**	लौकिक असत् कर्मोंसे
सर्वं जगत्	सम्पूर्ण संसारको		
निष्कर्षयन्	अपनी ओर खींचता रहता है	**किं भवेत्**	क्या (रक्षा) सम्भव है ॥१९॥

शास्त्रस्य पितुरादेशं यो न वेद निवर्तकम् ।
कथं तदनुरूपाय गुणविभ्रम्भ्युपक्रमेत् ॥२०॥

शास्त्रस्य पितुः आदेशं यः न वेद निवर्तकं कथं तत् अनुरूपाय गुण विश्रम्भ्य उपक्रमेत् ॥२०॥

शास्त्रस्य पितुः	शास्त्ररूप पिताका	**तत् अनुरूपाय**	उस(शास्त्र तात्पर्य)
आदेशं	आदेश		के अनुकूल
निवर्तकं	निवृत्त करने	**कथं उपक्रमेत्**	कैसे उपराम
	वाला है		होगा ॥२०॥
यः न वेद	जो इसे नहीं		
	जानता,		
गुण विश्रम्भ्य	गुण (शब्दादि		
	विषयों)पर विश्वास		
	करके		

इति व्यवसिता राजन् हर्यश्वा एकचेतसः ।
प्रययुस्तं परिक्रम्य पन्थानमनिवर्तनम् ॥२१॥

इति व्यवसिता राजन् हर्यश्वा एकचेतसः प्रययुः तं परिक्रम्य पन्थानं अनिवर्तनम् ॥२१॥

राजन्	राजन् !	**अनिवर्तनं**	न लौटने वाले
एकचेतसः	अभिन्न हृदय		(मोक्षके)
हर्यश्वा	हर्यश्व	**पन्थानं**	मार्गपर
इति व्यवसिता	ऐसा निश्चय करके	**प्रययुः**	चल पड़े ॥२१॥
तं परिक्रम्य	उन (नारदजी)की		
	परिक्रमा करके		

स्वरब्रह्मणि निर्भातहृषीकेशपदाम्बुजे ।
अखण्डं चित्तमावेश्य लोकाननुचरन्मुनिः ॥२२॥

स्वरब्रह्मणि निर्भात हृषीकेश पदाम्बुजे अखण्डं चित्तं आवेश्य लोकान् अनुचरन् मुनिः ॥२२॥

मुनिः	देवर्षि नारद	**निर्भात**	प्रकाशित
स्वरब्रह्मणि	संगीत-लहरीमें	**हृषीकेश**	हृषीकेशके

पदाम्बुजे	चरण-कमलोंमें	**लोकान्**	लोकोंमें
चित्तं अखण्डं	अखण्ड रूपसे चित्त-को	**अनुचरन्**	विचरने लगे ॥२२॥
आवेश्य	प्रविष्ट करके(तन्मय होकर		

नाशं निशम्य पुत्राणां नारदाच्छीलशालिनाम् ।
अन्वतप्यत कः शोचन सुप्रजस्त्वं शुचां पदम् ॥२३॥

नाशं निशम्य पुत्राणां नारदात् शीलशालिनां अनु अतप्यत कः शोचत् सुप्रजः त्वं शुचां पदम् ॥२३॥

शीलशालिनां	शीलवान्	**अनु अतप्यत**	बार-बार संतप्त होने लगे
पुत्राणां	पुत्रोंका	**सुप्रजः त्वं**	उत्तम सन्तान होना भी
नारदात्	नारद द्वारा	**शुचां पदं**	शोकका स्थान (कारण) है ॥२३॥
नाशं	नाश (के समान कर्तव्यच्युत होना)		
निशम्य	सुनकर		
कः शोचत्	प्रजापति (दक्ष) शोक करके		

स भूयः पाञ्चजन्यायामजेन परिसान्त्वितः ।
पुत्रानजनयद् दक्षः शबलाश्वान् सहस्रशः ॥२४॥

स भूयः पाञ्चजन्यायां अजेन परिसान्त्वितः पुत्रान् अजनयत् दक्षः शबलाश्वान् सहस्त्रशः ॥२४॥

अजेन	ब्रह्माजी द्वारा	**शबलाश्वान्**	शबलाश्व नामक
परिसान्त्वितः	भली प्रकार सम-झानेपर	**सहस्त्रशः**	एक सहस्र
स दक्षः भूयः	उन दक्षने फिर	**पुत्रान् अजनयत्**	पुत्र उत्पन्न किए ॥२४॥
पाञ्चजन्यायां	पाञ्चजनी (पत्नी)से		

तेऽपि पित्रा समादिष्टाः प्रजासर्गे धृतव्रताः ।
नारायणसरो जग्मुर्यत्र सिद्धाः स्वपूर्वजाः ॥२५॥

ते अपि पित्रा समादिष्टाः प्रजासर्गे धृतव्रताः नारायणसरः जग्मुः यत्र सिद्धाः स्वपूर्वजाः ॥२५॥

ते अपि	वे भी	**यत्र स्वपूर्वजाः**	जहां अपने अग्रज
प्रजासर्गे	सन्तान उत्पन्न करनेके लिए	**सिद्धाः**	सिद्ध हुए थे (उसी)
पित्रा	पिताका	**नारायणसरः**	नारायण-सरोवर-पर
समादिष्टाः	आदेश पाकर	**जग्मुः**	गये ॥२५॥
धृतव्रताः	व्रत धारण करके		

तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः ।
जपन्तो ब्रह्म परमं तेपुस्तेऽत्र महत् तपः ॥२६॥

तत् उपस्पर्शनात् एव विनिर्धूतमल आशयाः जपन्तः ब्रह्म परमं तेपुः ते अत्र महत् तपः ॥२६॥

तत् उपस्पर्शनात्	उसमें स्नान करनेसे	**जपन्तः**	जप करते हुए
एव	ही	**अत्र ते**	यहाँ उन्होंने
आशयाः	उनके चित्तका	**महत् तपः तेपुः**	महान् तपस्या की ॥२६॥
विनिर्धूतमल	मल भली प्रकार धुल गया,		
परमं ब्रह्म	परमब्रह्म (स्वरूप प्रणव) का		

अब्भक्षाः कतिचिन्मासान् कतिचिद् वायुभोजनाः ।
आराधयन् मन्त्रमिममभ्यस्यन्त इडस्पतिम् ॥२७॥

अप् भक्षाः कतिचित् मासान् कतिचित् वायुभोजनाः आराधयन् मन्त्रं इमं अभ्यस्यन्तः इडस्पतिम् ॥२७॥

कतिचित्	कुछ	**इमं मन्त्रं**	इस मन्त्रका
मासान्	महीने	**अभ्यस्यन्त**	जप करते हुए
अप्भक्षाः	केवल जल पीकर रहे,	**इडस्पतिं**	मन्त्राधिप (भगवान्)की
कतिचित्	कुछ (महीने)	**आराधयन्**	आराधना करने लगे ॥२७॥
वायु भोजनाः	वायु-भोजन (श्वास लेते) रहे,		

ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने ।
विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥२८॥

ॐ नमः नारायणाय पुरुषाय महात्मने विशुद्धसत्त्व धिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥२८॥

ॐ	ओंकार स्वरूप	**विशुद्धसत्त्व**	शुद्ध अन्त करणमें
नारायणाय	नारायणको	**धिष्ण्याय**	रहने वाले
नमः	नमस्कार	**महाहंसाय**	महाहंसका
महात्मने	महान् आत्मा रूप	**धीमहि**	(हम) ध्यान करते
पुरुषाय	परम-पुरुष जो		हैं ॥२८॥

इति तानपि राजेन्द्र प्रतिसर्गधियो मुनिः ।
उपेत्य नारदः प्राह वाचःकूटानि पूर्ववत् ॥२९॥

इति तान् अपि राजेन्द्र प्रतिसर्गधियः मुनिः उपेत्य नारदः प्राह वाचः कूटानि पूर्ववत् ॥२९॥

राजेन्द्र	राजेन्द्र परीक्षित !	**नारदः मुनिः**	नारद मुनि
इति	इस प्रकार (तपमें लगे)	**उपेत्य**	पास आकर
तान् अपि	उनसे भी	**पूर्ववत्**	पहिलेके समान
प्रतिसर्गधियः	सृष्टिमें उलटी (निवृत्ति) में लगी बुद्धिवाले	**कूटानि वाचः**	कूट-वचन
		प्राह	बोले ॥२९॥

दाक्षायणाः संशृणुत गदतो निगमं मम ।
अन्विच्छतानुपदवीं भ्रातॄणां भ्रातृवत्सलाः ॥३०॥

दाक्षायणाः संशृणुत गदतः निगमं मम अन्विच्छत अनुपदवीं भ्रातृणां भ्रातृवत्सलाः ॥३०॥

दाक्षायणाः	दक्षपुत्रो !	**भ्रातृणां अनुपदवीं**	(अतः) भाइयोंके मार्गका
मम गदतः	मेरे कहे	**अन्विच्छत**	अनुसंधान करो ॥३०॥
निगमं	उपदेशको		
संशृणुत	सुनो,		
भ्रातृवत्सलाः	(तुम) भाइयोंसे प्रेम करनेवाले हो		

भ्रातॄणां प्रायणं भ्राता योऽनुतिष्ठति धर्मवित् ।
स पुण्यबन्धुः पुरुषो मरुद्भिः सह मोदते ॥३१॥

भ्रातृणां प्रायणं भ्राता यः अनुतिष्ठति धर्मवित् स पुण्यबन्धुः पुरुषः मरुत्भिः सह मोदते ॥३१॥

यः धर्भवित्	जो धर्मज्ञ	**पुरुषः मरुत्भिः**	पुरुष मरुद्गणोंके
भ्राता भ्रातृणां	भाई भाइयोंके	**सह मोदते**	साथ आनन्द भोगता है ॥३१॥
प्रायणं	श्रेष्ठ मार्गपर		
अनुतिष्ठति	पीछे चलता है		
स पुण्यबन्धुः	वह पुण्यवान्का भाई		

एतावदुक्त्वा प्रययौ नारदोऽमोघदर्शनः ।
तेऽपि चान्वगमन् मार्गं भ्रातॄणामेव मारिष ॥३२॥

एतावत् उक्त्वा प्रययौ नारदः अमोघ दर्शनः ते अपि च अनु अगमन् मार्गं भ्रातृणां एव मारिष ॥३२॥

अमोघ दर्शनः	जिनका दर्शन व्यर्थ नहीं जाता वे	**नारदः**	नारदजी
		एतावत् उक्त्वा	इतना ही कहकर

प्रययौ	चले गये ।	**भातृणां एव**	भाइयोंके ही
ते मारिष	वे मारिषा	**मार्गं**	मार्गके
अपि च	(असिन्की)के पुत्र भी	**अनु अगमन्**	पीछे चल पड़े ॥३२॥

सध्रीचीनं प्रतीचीनं परस्यानुपथं गताः ।
नाद्यापि ते निवर्तन्ते पश्चिमा यामिनीरिव ॥३३॥

सध्रीचीनं प्रतीचीनं परस्य अनुपथं गताः न अद्य अपि ते निवर्तन्ते पश्चिमा यामिनोः इव ॥३३॥

प्रतीचीनं	अन्तर्मुख होनेवाले	**पश्चिमा**	बीती हुई
सध्रीचीनं	अत्यन्त सुन्दर	**यामिनीः इव**	रात्रिकी भांति
परस्य	परमपुरुषकी	**अद्य अपि**	आज तक भी
अनुपथं	ओर जानेवाले मार्गपर	**न निवर्तन्ते**	(वे) नहीं लौटे हैं ॥३३॥
गताः	गये		

एतस्मिन् काल उत्पातान् बहून् पश्यन् प्रजापतिः ।
पूर्ववन्नारदकृतं पुत्रनाशमुपाश्रृणोत् ॥३४॥

एतस्मिन् काल उत्पातान् बहून् पश्यन् प्रजापतिः पूर्ववत् नारदकृतं पुत्र नाशं उपाश्रृणोत् ॥३४॥

एतस्मिन् काल	इसी समयमें	**नारदकृतं**	नारद द्वारा किया
बहुन् उत्पातान्	बहुतसे अपशकुन	**पुत्र नाशं**	अपने पुत्रोंका चौपट होना
प्रजापतिः	प्रजापति दक्ष	**उपाश्रृणोत्**	सुना ॥३४॥
पश्यन्	देख रहे थे कि		
पूर्ववत्	पहिलेके समान		

चुक्रोध नारदायासौ पुत्रशोकविमूर्च्छितः ।
देवर्षिमुपलभ्याह रोषाद्विस्फुरिताधरः ॥३५॥

चुक्रोध नारदाय असौ पुत्रशोक विमूर्च्छितः देवर्षि उपलभ्य आह रोषात् विस्फुरित अधरः ॥३५॥

असौ	ये दक्ष	**देवर्षि उपलभ्य**	देवर्षिके मिलनेपर
पुत्रशोक	पुत्रोंके शोकसे	**रोषात्**	क्रोधसे
विमूर्च्छितः	अत्यन्त व्याकुल होकर	**विस्फुरित**	फड़कते
		अधरः	ओष्ठ
नारदाय	नारदजीपर	**आह**	बोले ॥३५॥
चुक्रोध	क्रुद्ध हो गये		

दक्ष उवाच–

अहो असाधो साधूनां साधुलिङ्गेन नस्त्वया ।
असाध्वकार्यभकाणां भिक्षोर्मार्गः प्रदर्शितः ॥३६॥

अहो असाधोः साधूनां साधुलिङ्गेन नः त्वया असाधु अकार्यः भकाणां भिक्षोः मार्गः प्रदर्शितः ॥३६॥

अहो असाधोः	अरे दुष्ट !	**असाधु अकार्यः**	अपकार किया है जो
साधुलिङ्गेन	साधुओंके वेशमें रहनेवाले	**भकाणां**	(मेरे) बच्चोंको
		भिक्षोः मार्गः	भिक्षुकोंका मार्ग
त्वया	तुमने	**प्रदर्शितः**	दिखला दिया ॥३६॥
नः साधूनां	हम सज्जनोंका		

ऋणैस्त्रिभिरमुक्तानाममीमांसितकर्मणाम् ।
विद्धातः श्रेयसः पाप लोकयोरुभयोः कृतः ॥३७॥

ऋणैः त्रिभिः अमुक्तानां अमीमांसित कर्मणां विद्धातः श्रेयसः पाप लोकयोः उभयोः कृतः ॥३७॥

ऋणै त्रिभिः	तीनों (पितृ-ऋण, ऋषि-ऋण, देव-ऋण) ऋणोंसे	**कर्मणां**	कर्मों (उनके फलकी नश्वरता) का
अमुक्तानां	(वे) सन्तानोत्पादन, वेदाध्ययन और यज्ञ करके) छूटे नहीं थे,	**अमीमांसित**	(अभी) विचार नहीं किया था,
		पाप	पापी (तूने)

उभयोः लोकयोः	दोनों लोकोंके	**कृतः**	कर दिया ॥३७॥
श्रेयसः विघातः	कल्याणका नाश		

एवं त्वं निरनुक्रोशो बालानां मतिभिद्धरेः ।
पार्षदमध्ये चरसि यशोहा निरपत्रपः ॥३८॥

एवं त्वं निः अनुक्रोशः बालानां मतिभित् हरेः पार्षद मध्ये चरसि यशोहा निरपत्रपः ॥३८॥

त्वं एवं	तू इस प्रकारका	**निरपत्रपः**	निर्लज्ज होकर
निः अनुक्रोशः	निर्दय,	**हरेः पार्षद**	श्रीहरिके पार्षदोंके
बालानां	बालकोंकी	**मध्ये चरसि**	बीचमें घूमता है,
मतिभित्	बुद्धि-भ्रमित करने-वाला	**यशोहा**	(उनके भी) यश-का नाशक है ॥३८॥

ननु भागवता नित्यं भूतानुग्रहकातराः ।
ऋते त्वां सौहृदघ्नं वै वैरङ्करमवैरिणाम् ॥३९॥

ननु भागवता नित्यं भूत अनुग्रह कातराः ऋते त्वां सौहृदघ्नं वै वैरं कृत अवैरिणाम् ॥३९॥

ननु	निश्चय	**वै सौहृदघ्नं**	निश्चय मित्रता नाशक
भागवता	भगवद्भक्त	**अवैरिणां**	शत्रुता न करने वालोंसे भी
नित्यं	सदा	**वैरं कृत**	शत्रुता करनेवाले
भूत अनुग्रह	प्राणियोंपर कृपा करनेके लिए	**त्वां ऋते**	तुझे छोड़कर ॥३९॥
कातराः	आतुर रहते हैं,		

नेत्थं पुंसां विरागः स्यात् त्वया केवलिना मृषा ।
मन्यसे यद्युपशमं स्नेहपाशनिकृन्तनम् ॥४०॥

न इत्थं पुंसां विरागः स्यात् त्वया केवलिना मृषा मन्यसे यत् उपशमं स्नेहपाश निकृन्तनम् ॥४०॥

त्वया मृषा	तुझ झूठे	**यत्**	जो
केवलिना	वैराग्य वेशधारीके द्वारा	**उपशमं**	वैराग्यको ही
		स्नेहपाश	स्नेह-बन्धनको
पुंसां इत्थं	पुरुषको इस प्रकार	**निकृन्तनं**	काटनेवाला
विरागः न	वैराग्य नहीं होता,	**मन्यसे**	मानने हो ॥४०॥

नानुभूय न जानाति पुमान् विषयतीक्ष्णताम् ।
निर्विद्येत स्वयं तस्मान्न तथा भिन्नधीः परैः ॥४१॥

न अनुभूय न जानाति पुमान् विषय तीक्ष्णतां निर्विद्येत स्वयं तस्मात् न तथा भिन्नधीः परैः ॥४१॥

न अनुभूय	बिना अनुभव किये	**निर्विद्येत**	विरक्त हो जाता है,
पुमान्	पुरुष	**तथा परैः**	वैसा (वैराग्य) दूसरों द्वारा
विषय तीक्ष्णतां	विषय-भोगोंकी कटुता	**भिन्नधीः**	बुद्धिभ्रम (उत्पन्न करने) से
न जानाति	नहीं जान पाता	**न**	नहीं होता ॥४१॥
तस्मात्	इसलिए		
स्वयं	स्वयं (कटुताके कारण)		

यन्नस्त्वं कर्मसन्धानां साधूनां गृहमेधिनाम् ।
कृतवानसि दुर्मर्षं विप्रियं तव मर्षितम् ॥४२॥

यत् नः त्वं कर्म सन्धानां साधूनां गृहमेधिनां कृतवान् असि दुर्मर्षं विप्रियं तव मर्षितम् ॥४२॥

कर्म सन्धानां	कर्मयोगमें लगे,	**त्वं कृतवान् असि**	तुमने (पहिले) किया था,
साधूनां	सज्जन	**तव मार्षितं**	(वह) तुम्हारा अपराध हमने सह लिया था ॥४२॥
गृहमेधिनां	गृहस्थ		
नः त्वं	हमारा तुमने		
यत् दुर्मर्षं	जो दुःसह		
विप्रियं	अप्रिय		

तन्तुकृन्तन यन्नस्त्वमभद्रमचरः पुनः ।
तस्माल्लोकेषु ते मूढ न भवेद्भ्रमतः पदम् ॥४३॥

तन्तु कृन्तन यत् नः त्वं अभद्रं अचरः पुनः तस्मात् लोकेषु ते मूढ न भवेत् भ्रमतः पदम् ॥४३॥

यत् त्वं	क्योंकि तुमने	**तस्मात्**	इसलिए
नः तन्तु कृन्तन	हमारी वंश पर-म्पराको काटनेका	**मूढ**	मूर्ख !
		लोकेषु भ्रमतः	लोकेमें घूमते हुए
पुनः अभद्रं	फिर अमंगलकारी	**ते पदं**	तुझे ठहरनेका स्थान
अचरः	आचरण किया है	**न भवेत्**	(कहीं)न हो ॥४३॥

श्रीशुक उवाच–

प्रतिजग्राह तद् बाढं नारदः साधुसम्मतः ।
एतावान् साधुवादो हि तितिक्षेतेश्वरः स्वयम् ॥४४॥

प्रति जग्राह तद् बाढं नारदः साधु सम्मतः एतावान् साधुवादः हि तितिक्षेत् ईश्वरः स्वयम् ॥४४॥

साधु सम्मतः	संत शिरोमणि	**साधुवादः**	साधुताका नाम (स्वरूप) है कि
नारदः	नारदजीने		
तद् वाढं	उस (शाप) को 'अच्छा' कहकर	**स्वयं ईश्वरः**	स्वयं (प्रतिभार में) समर्थ होते हुए भी
प्रति जग्राह	स्वीकार कर लिया ।	**तितिक्षेत्**	(दूसरेका अपकार) सहन करले ॥४४॥
हि एतावान्	क्योंकि इतना ही		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे नारदशापो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्याय

श्रीशुक उवाच-

ततः प्राचेतसोऽसिक्न्यामनुनीतः स्वयम्भुवा ।
षष्टिं सञ्जनयामास दुहितॄः पितृवत्सलाः ॥१॥

ततः प्राचेतसः असिक्न्यां अनुनीतः स्वयम्भुवा षष्टिं सञ्जनयामास दुहितॄः पितृवत्सलाः ॥१॥

ततः	तब	**षष्टिं**	साठ
स्वयम्भुवा	ब्रह्माजी द्वारा	**पितृवत्सलाः**	पितासे प्रेम करने-वाली
अनुनीतः	अनुनय-विनय करनेपर	**दुहितॄः**	पुत्रियाँ
प्राचेतसः	प्रचेतानन्दन दक्षने	**सञ्जनयामास**	उत्पन्न कीं ॥१॥
असिक्न्यां	(अपनी पत्नी) असिन्कीमें		

दश धर्माय कायेन्दोर्द्विषट् त्रिणव दत्तवान् ।
भूताङ्गिरः कृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे तार्क्ष्याय चापराः ॥२॥

दश धर्माय काय इन्दोः द्विषट् त्रिणव दत्तवान् भूत अङ्गिरः कृशाश्वेभ्यः द्वे द्वे तार्क्ष्याय च अपराः ॥२॥

दश धर्माय	दस कन्याएँ धर्मको दीं	**इन्दो त्रिणव**	चन्द्रमाको तीन नव (सत्ताइस)
काय द्विषट्	काय (एक शरीर) और दो छः कश्यपको (बारह-तेरह)	**भूत अङ्गिरः**	भूत, अंगिरा
		कृशाश्वेभ्यः	कृशाश्वको
		द्वे द्वे	दो-दो

च अपराः	और दूसरी शेष (चार)	**तार्क्ष्याय**	तार्क्ष्य (नामधारी) कश्यपको
		दत्तवान्	दीं ॥२॥

नामधेयान्यमूषां त्वं सापत्यानां च मे शृणु ।
यासां प्रसूतिप्रसवैर्लोका आपूरितास्त्रयः ॥३॥

नाम धेयानि अमूषां त्वं स अपत्यानां च मे शृणु यासां प्रसूति प्रसवैः लोका आपूरिताः त्रयः ॥३॥

त्वं	तुम	**यासां**	जिनसे
अमूषां	इनके	**प्रसूति प्रसवैः**	उत्पन्न सन्तानोंके वंशसे
स अपत्यानां	पुत्रोंके साथ	**त्रयः लोका**	तीनों लोक
नाम धेयानि	नाम	**आपूरिताः**	भर गये ॥३॥
मे शृणु	मुझसे सुनो,		

भानुर्लम्बा ककुब्जामिर्विश्वा साध्या मरुत्वती ।
वसुर्मुहूर्ता सङ्कल्पा धर्मपत्न्यः सुताञ्शृणु ॥४॥

भानुः लम्बा ककुभ् जामिः विश्वा साध्या मरुत्वती वसुः मुहूर्ता सङ्कल्पा धर्मपत्न्यः सुतान् शृणु ॥४॥

भानुः लम्बा	भानु, लम्बा,	**मुहूर्ता सङ्कल्पा**	मुहूर्ता संकल्पा
ककुभ् जामिः	ककुभ, जामि	**धर्मपत्न्यः**	ये धर्मकी पत्नियाँ हैं,
विश्वा साध्या	विश्वा, साध्या,	**सुतान् शृणु**	इनके पुत्रोंके (नाम) सुनो ॥४॥
मरुत्वती वसुः	मरुत्वती, वसु,		

भानोस्तु देवऋषभ इन्द्रसेनस्ततो नृप ।
विद्योत आसील्लम्बायास्ततश्च स्तनयित्नवः ॥५॥

भानोः तु देवऋषभ इन्द्रसेनः ततः नृप विद्योत आसीत् लम्बायाः ततः च स्तनयित्नवः ॥५॥

नृप	राजन् !	**लम्बायाः**	लम्बासे
भानोः तुः	भानुका तो (पुत्र)	**विद्योत आसीत्**	विद्योत हुआ,
देवऋषभ	देवऋषभ था,	**च ततः**	और उससे
ततः इन्द्रसेनः	उससे इन्द्रसेन (हुआ)	**स्तनयित्नवः**	मेघगण हुए ॥५॥

ककुभः सङ्कटस्तस्य कीकटस्तनयो यतः ।
भुवो दुर्गाणि जामेयः स्वर्गो नन्दिस्ततोऽभवत् ॥६॥

ककुभः सङ्कटः तस्य कीकटः तनयः यतः भुवः दुर्गाणि जामेयः स्वर्गः नन्दिः ततः अभवत् ॥६॥

तस्य ककुभः	उस ककुभके	**जामेयः स्वर्गः**	जामिका पुत्र स्वर्ग
कीकटः	कीकट	**यतः नन्दिः**	उससे नन्दी
यतः तनयः	जिसके पुत्र	**अभवत्**	हुआ ॥६॥
भुवः दुर्गाणि	पृथ्वीपर किलोंके अभिमानी देवता हुए		

विश्वेदेवास्तु विश्वाया अप्रजांस्तान् प्रचक्षते ।
साध्यो गणस्तु साध्याया अर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ॥७॥

विश्वेदेवाः तु विश्वायाः अप्रजान तान् प्रचक्षते साध्यः गणः तु साध्याया अर्थ सिद्धिः तु तत् सुतः ॥७॥

विश्वायाः तु	विश्वाके तो	**साध्यायां तु**	साध्यासे तो
विश्वेदेवाः	विश्वेदेव हुए,	**साध्यः गणः**	साध्य-गण हुए,
तान् अप्रजान्	उनको निःसन्तान	**तत् सुतः तु**	उनका पुत्र तो
प्रचक्षते	(शास्त्रोंमें) कहा गया है ।	**अर्थ सिद्धिः**	अर्थ सिद्ध हुआ ॥७॥

मरुत्वांश्च जयन्तश्च मरुत्वत्यां बभूवतुः ।
जयन्तो वासुदेवांश उपेन्द्र इति यं विदुः ॥८॥

मरुत्वान् च जयन्तः च मरुत्वत्यां बभूवतुः जयन्तः वासुदेव अंश उपेन्द्र इति यं विदुः ॥८॥

मरुत्वत्यां च	मरुत्वतीमें तो
मरुत्वान्	मरुत्वान्
च जयन्तः	और जयन्त
बभूवतुः	उत्पन्न हुए,
जयन्तः	(इनमें) जयन्त
वासुदेव अंश	वासुदेव भगवान्का अंश है
यं उपेन्द्र	जिसे उपेन्द्र
इति विदुः	इस नामसे भी जाना जाता है ॥८॥

मौहूर्तिका देवगणा मुहूर्तायाश्च जज्ञिरे ।
ये वै फलं प्रयच्छन्ति भूतानां स्वस्वकालजम् ॥९॥

मौहूर्तिका देवगणा मुहूर्तायाः च जज्ञिरे ये वै फलं प्रयच्छन्ति भूतानां स्व स्व कालजम् ॥९॥

मुहूर्तायाः	मुहूर्तासे तो
मौहूर्तिका	मुहूर्ताभिमानी
देवगणा	देवगण
जज्ञिरे	उत्पन्न हुए
ये वै	जो निश्चय
स्व स्व कालजं	अपने-अपने कालमें होनेवाला
फलं	फल
भूतानां	प्राणियोंको
प्रयच्छन्ति	देते हैं ॥९॥

सङ्कल्पायाश्च सङ्कल्पः कामः सङ्कल्पजः स्मृतः ।
वसवोऽष्टौ वसोः पुत्रास्तेषां नामानि मे शृणु ॥१०॥

सङ्कल्पायाः च सङ्कल्पः कामः सङ्कल्पजः स्मृतः वसवः अष्टौ वसोः पुत्राः तेषां नामानि मे शृणु ॥१०॥

सङ्कल्पायाः च	सङ्कल्पासे तो
सङ्कल्पः	संकल्प हुआ,
कामः	काम
सङ्कल्पजः	सङ्कल्पसे उत्पन्न
स्मृतः	बतलाया गया है,
वसोः पुत्राः	वसुके पुत्र
अष्टौ वसवः	आठों वसु हैं
तेषां नामानि	उनके नाम
मे शृणु	मुझसे सुनो ॥१०॥

द्रोणः प्राणो ध्रुवोऽर्कोऽग्निर्दोषो वसुर्विभावसुः ।
द्रोणस्याभिमतेः पत्न्या हर्षशोकभयादयः ॥११॥

द्रोणः प्राणः ध्रुवः अर्कः अग्निः दोषः वसुः विभावसुः द्रोणस्य अभिमतेः पत्न्या हर्ष शोक भय आदयः ॥११॥

द्रोणः प्राणः	द्रोण, प्राण,
ध्रुवः अर्कः	ध्रुव, अर्क,
अग्निः दोषः	अग्नि, दोष,
वसुः विभावसुः	वसु, विभावसु,
द्रोणस्य पत्न्या	(इनमें) द्रोणकी पत्नी
अभिमतेः	असिमतिसे
हर्ष शोक	हर्ष, शोक,
भय आदयः	भय आदि (के अभिमानी देवता) हुए ॥११॥

प्राणस्योर्जस्वती भार्या सह आयुः पुरोजवः ।
ध्रुवस्य भार्या धरणिरसूत विविधाः पुरः ॥१२॥

प्राणस्य उर्जस्वती भार्या सह आयुः पुरोजवः ध्रुवस्य भार्या धरणिः असूत विविधाः पुरः ॥१२॥

प्राणस्य	प्राणकी
भार्या उर्जस्वती	पत्नी उर्जस्वतीने
सह आयुः	सह, आयु,
पुरोजवः	पुरोजवको,
ध्रुवस्य	(और) ध्रुवकी
भार्या धरणिः	पत्नी धरणिने
विविधाः पुरः	नाना प्रकारके नगरोंके अधिदेवताओंको
असूत	जन्म दिया ॥१२॥

अर्कस्य वासना भार्या पुत्रास्तर्षादयः स्मृताः ।
अग्नेर्भार्या वसोर्धारा पुत्रा द्रविणकादयः ॥१३॥

अर्कस्य वासना भार्या पुत्राः तर्ष आदयः स्मृताः अग्नेः भार्या वसोः धारा पुत्राः द्रविणक आदयः ॥१३॥

अर्कस्य	अर्कंकी
भार्या वासना	पत्नी वासनासे
तर्ष आदयः	तर्ष (तृष्णा) आदि
पुत्राः स्मृताः	पुत्र बताये जाते हैं।
अग्ने वसोः	अग्नि नामक वसुकी
भार्या धारा	पत्नी धाराके
पुत्राः	पुत्र
द्रविणक आदयः	द्रविणक आदि हुए ॥१३॥

स्कन्दश्च कृत्तिकापुत्रो ये विशाखादयस्ततः ।
दोषस्य शर्वरीपुत्रः शिशुमारो हरेः कला ॥१४॥

स्कन्दः च कृत्तिकापुत्रः ये विशाखा आदयः ततः दोषस्य शर्वरीपुत्रः शिशुमारः हरेः कला ॥१४॥

कृत्तिकापुत्रः	कृत्तिकाके पुत्र	**विशख आदयः**	विशाख आदि थे (वे हुए)
स्कन्दः च	स्कन्द (कुमार कार्तिक) भी (अग्निसे ही उत्पन्न हुए)	**दोषस्य**	दोषकी
		शर्वरीपुत्रः	पत्नी शर्वरीके पुत्र
		हरेः कला	श्री हरिकी कलासे
ततः	उनसे जो	**शिशुमारः**	शिशुमार (मण्डल) हुआ ॥१४॥

वसोराङ्गिरसीपुत्रो विश्वकर्मा कृतीपतिः ।
ततो मनुश्चाक्षुषोऽभूद् विश्वे साध्या मनोः सुताः ॥१५॥

वसोः आङ्गिरसी पुत्रः विश्वकर्मा कृतीपतिः ततः मनुः चाक्षुषः अभूत् विश्वेसाध्याः मनोः सुताः ॥१५॥

वसोः	वसुकी (पत्नी)	**मनुः अभूत्**	मनु हुए,
आङ्गिरसी	आंगिरसीके	**विश्वेसाध्या**	विश्वेदेव और साध्यगण
पुत्रः कृतीपतिः	पुत्र शिल्पकलाके अधिपति	**मनोः सुताः**	मनुके पुत्र हुए ॥१५॥
विश्वकर्मा	विश्वकर्मा हुए,		
ततः चाक्षुषः	उनसे चाक्षुष		

विभावसोरसूतोषा व्युष्टं रोचिषमातपम् ।
पञ्चयामोऽथ भूतानि येन जाग्रति कर्मसु ॥१६॥

विभावसोः असूत उषा व्युष्टं रोचिषं आतपं पञ्चयामः अथ भूतानि येन जाग्रति कर्मसु ॥१६॥

विभावसोः	विभावसुकी (पत्नी)
उषा व्युष्टं	उषाने व्युष्ट,
रोचिषं आतपं	रोचिष, आतपको
असूत	जन्म दिया,
अथ पञ्चयामः	फिर (उनमेंसे आतप-के) पञ्चयाम (दिवस) नामक पुत्र हुआ
येन भूतानि	जिसके कारण प्राणी
कर्मसु जाग्रति	(अपने) कर्मोंमें जागते (लगे) रहते हैं ॥१६॥

सरूपासूत भूतस्य भार्या रुद्रांश्च कोटिशः ।
रैवतोऽजो भवो भीमो वाम उग्रो वृषाकपिः ॥१७॥

सरूपा असूत भूतस्य भार्या रुद्रान् च कोटिशः रैवतः अजः भवः भीमः वाम उग्रः वृषाकपि ॥१७॥

भूतस्य भार्या	भूतकी पत्नी
सरुपा कोटिशः	सरूपाने करोड़ों
रुद्रान् च	रुद्रोंको
असूत	उत्पन्न किया (इनमें)
रैवतः अजः	रैवत, अज,
भवः भीमः	भव, भीम,
वाम उग्रः	वाम, उग्र,
वृषाकपिः	वृषाकपि ॥१७॥

अजैकपादहिर्बुध्न्यो बहुरूपो महानिति ।
रुद्रस्य पार्षदाश्चान्ये घोरा भूतविनायकाः ॥१८॥

अजैकपादः अहिर्बुध्न्यः बहुरूपः महान् इति रुद्रस्य पार्षदाः च अन्ये घोरा भूत विनायकाः ॥१८॥

अजैकपादः	अजैकपाद
अहिर्बुध्न्यः	अहिर्बुध्न्य
बहुरूपः महान्	बहुरूप, महान्
इति	इस प्रकार (ग्यारह मुख्य) हैं ।
अन्ये	(भूतकी) दूसरी पत्नी (भूता) से
घोरा भूत	भयंकर भूत
च विनायकाः	और विनायक
रुद्रस्य पार्षदाः	(ग्यारहवें) प्रधान रुद्र (महान्) के पार्षद हुए ॥१८॥

प्रजापतेरङ्गिरसः स्वधा पत्नी पितॄनथ ।
अथर्वाङ्गिरसं वेदं पुत्रत्वे चाकरोत् सती ॥१९॥

प्रजापतेः अङ्गिरसः स्वधा पत्नी पितॄन् अथ अथर्वाङ्गिरसं वेदं पुत्रत्वे च अकरोत् सती ॥१९॥

प्रजापतेः	प्रजापति
अङ्गिरसः	अंगिराकी
स्वधा पत्नी	स्वधा नामक पत्नीने
पितॄन्	पितरोंको (जन्म दिया)
अथ सती	और (दूसरी पत्नी) सतीने
अथर्वाङ्गिरसं	अथर्वाङ्गिरस (नामके)
वेदं पुत्रत्वे च अकरोत्	वेदको पुत्र रूपमें ही बना (स्वीकार कर) लिया ॥१९॥

कृशाश्वोऽर्चिषि भार्यायां धूम्रकेशमजीजनत् ।
धिषणायां वेदशिरो देवलं वयुनं मनुम् ॥२०॥

कृशाश्वः अर्चिषि भार्यायां धूम्रकेशं अजीजनत् धिषणायां वेद शिरः देवलं वयुनं मनुम् ॥२०॥

कृशाश्वः	कृशाश्वने
अर्चिषि	अर्चि नामक
भार्यायां	पत्नीसे
धूम्रकेशं	धूम्रकेशको
अजीजनत्	उत्पन्न किया ।
धिषणायां	(दूसरी पत्नी) धिषणासे
वेदशिरः देवलं	वेदशिरा देवल,
वयुनं मनुं	वयुन और मनु- को ॥२०॥

तार्क्ष्यस्य विनता कद्रूः पतङ्गी यामिनीति च ।
पतङ्ग्यसूत पतगान् यामिनी शलभानथ ॥२१॥

तार्क्ष्यस्य विनता कद्रूः पतङ्गी यामिनी इति च पतङ्गी असूत पतगान् यामिनी शलभान् अथ ॥२१॥

तार्क्ष्यस्य	तार्क्ष्य (नामवाले कश्यपजी) की
विनता कद्रूः	विनता, कद्रू
पतङ्गी च	पतङ्गी और
यामिनी	यामिनी
इति	ये (चार पत्नियां) थीं,
पतङ्गी पतगान्	पतंगीने पक्षियोंको
अथ यामिनी	और यामिनीने
शलभान् असूत	शलभों (पतंगों)को उत्पन्न किया ॥२१॥

सुपर्णासूत गरुडं साक्षाद् यज्ञेशवाहनम् ।
सूर्यसूतमनूरुं च कद्रूर्नागाननेकशः ॥२२॥

सुपर्णा असूत गरुडं साक्षात् यज्ञेश वाहनं सूर्यसूतं अनूरुं च कद्रूः नागान् अनेकशः ॥२२॥

साक्षात् यज्ञेश	साक्षात् यज्ञेश भगवान् विष्णुके
वाहनं गरुडं	वाहन गरुड़को
च सूर्यसूतं	और सूर्यके सारथी
अनूरुं	अरुणको
सुपर्णा असूत	सुपर्णाने उत्पन्न किया
कद्रूः अनेकशः	कद्रूने अनेकों
नागान्	नाग (उत्पन्न किये) ॥२२॥

कृत्तिकादीनि नक्षत्राणीन्दोः पत्न्यस्तु भारत ।
दक्षशापात् सोऽनपत्यस्तासु यक्ष्मग्रहार्दितः ॥२३॥

कृत्तिका आदीनि नक्षत्राणि इन्दोः पत्न्यः तु भारत दक्षशापात् सः अनपत्यः तासु यक्ष्मग्रह आर्दितः ॥२३॥

भारत	परीक्षित् !
कृत्तिका आदीनि	कृत्तिकादि
नक्षत्राणि	(सत्ताइस) नक्षत्र
इन्दोः पत्न्यः तु	चन्द्रमाकी पत्नियां तो हैं;
दक्षशापात्	दक्षके शापसे
यक्ष्मग्रह	यक्ष्मा रोगसे
आर्दितः	पीड़ित होनेके कारण
सः तास	वह (चन्द्र) उन पत्नियोंसे
अनपत्यः	बिना सन्तानका है ॥२३॥

पुनः प्रसाद्य तं सोमः कला लेभे क्षयेदिताः ।
शृणु नामानि लोकानां मातॄणां शङ्कराणि च ॥२४॥

पुनः प्रसाद्य तं सोमः कला लेभे क्षयेत् इताः शृणु नामानि लोकानां मातॄणां शङ्कराणि च ॥२४॥

तं पुनः	उन (दक्ष) को फिर	**कला लेभे**	कलाएँ प्राप्त कीं ।
प्रसाद्य	प्रसन्न करके	**लोकानां**	(अब) सब लोकोंका
सोमः	चन्द्रमाने	**शङ्कराणि**	मंगल करनेवाले
क्षयेत् इताः	(कृष्ण पक्षमें) क्षीण होनेपर (शुक्ल-पक्ष-में) बढ़ने वाली	**मातॄणां**	लोक माताओंके
		नामानि च	नामोंको भी
		शृणु	सुनो ॥२४॥

अथ कश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदं जगत् ।
अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठा अरिष्टा सुरसा इला ॥२५॥

अथ कश्यप पत्नीनां यत् प्रसूतं इदं जगत् अदितिः दितिः दनुः काष्ठा अरिष्टा सुरसा इला ॥२५॥

इदं जगत्	यह (पूरा) संसार	**अदितिः दितिः**	अदिति, दिति,
यत् प्रसूतं	जिनसे उत्पन्न हुआ	**दनुः काष्ठा**	दनु, काष्ठा,
अथ कश्यप	अब कश्यपजीकी	**अरिष्टा सुरसा,**	अरिष्टा, सुरसा,
पत्नीनां	पत्नियोंका	**इला**	इला ॥२५॥

मुनिः क्रोधवशा ताम्रा सुरभिः सरमा तिमिः ।
तिमेर्यादोगणा आसन् श्वापदाः सरमासुताः ॥२६॥

मुनिः क्रोधवशा ताम्रा सुरभिः सरमा तिमिः तिमेः यादोगणाः आसन् श्वापदाः सरमासुताः ॥२६॥

मुनिः क्रोधवशा	मुनि, क्रोधवशा,	**सरमा तिमिः**	सरमा और तिमि
ताम्रा सुरभिः	ताम्रा, सुरभि,	**तिमेः**	तिमिसे

यादोगणाः	जलचर जीव	**श्वापदाः**	(कुत्ते, बाघ आदि)
आसन्	हुए,		हिंसक प्राणी
सरमासुताः	सरमाकी सन्तान		हैं ॥२६॥

सुरभेर्महिषा गावो ये चान्ये द्विशफा नृप ।
ताम्रायाः श्येनगृध्राद्या मुनेरप्सरसां गणाः ॥२७॥

सुरभेः महिषा गावः ये च अन्ये द्विशफा नृप ताम्रायाः श्येन गृध्र आद्या मुनेः अप्सरसां गणाः ॥२७॥

नृप	राजन् !	**ताम्रायाः**	ताम्राकी (सन्तति)
सुरभेः	सुरभिके (सन्तान)	**श्येन गृध्र आद्या**	बाज, गीध आदि
महिषा गावः	भैंस, गाय		(शिकारी पक्षी)
च ये अन्ये	और जो दूसरे	**मुनेः**	मुनिकी (सन्तान)
द्विशफा	दो भागमें बँटे खुर	**अप्सरसां गणाः**	अप्सराओंका समूह
	वाले पशु हैं,		है ॥२७॥

दन्द शूकादयः सर्पा राजन् क्रोधवशात्मजाः ।
इलाया भूरुहाः सर्वे यातुधानाश्च सौरसाः ॥२८॥

दन्द शूक आदयः सर्पा राजन् क्रोधवशा आत्मजाः इलायाः भूरुहाः सर्वे यातुधानाः च सौरसाः ॥२८॥

राजन्	राजन् !	**इलायाः**	इलाके
क्रोधवशा	क्रोधवशाके	**सर्वे भूरुहाः**	सब वृक्षादि
आत्मजाः	पुत्र		वनस्पति
दन्द शूक	डंसने वाले बिच्छू	**च सौरसाः**	और सुरसाके
सर्पा आदयः	सांप आदि,	**यातुधानाः**	राक्षस हुए ॥२८॥

अरिष्टायाश्च गन्धर्वाः काष्ठाया द्विशफेतराः ।
सुता दनोरेकषष्टिस्तेषां प्राधानिकाञ् शृणु ॥२९॥

अरिष्टायाः च गन्धर्वाः काष्ठाया द्विशफ इतराः सुता दनोः एक षष्टिः तेषां प्राधानिकान् शृणु ॥२९॥

अरिष्टायाः	अरिष्टाके
गन्धर्वाः	गन्धर्व लोग,
च काष्ठाया	और काष्ठाके
द्विशफ इतराः	दो भागमें बँटे खुर वालोंको छोड़कर (घोड़े, गधे आदि) सब चौपाये
दनोः सुता	दनुके पुत्र
एक षष्टिः	इकसठ हैं
तेषां	उनमें
प्राधानिकान्	प्रधान-प्रधान (के
शृणु	नाम) सुनो ॥२९॥

द्विमूर्धा शम्बरोऽरिष्टो हयग्रीवो विभावसुः ।
अयोमुखः शंकुशिराः स्वर्भानुः कपिलोऽरुणः ॥३०॥

द्विमूर्धा, शम्बरः, अरिष्टः, हयग्रीवः, विभावसुः, अयोमुखः शंकुशिराः स्वर्भानुः, कपिलः, अरुणः ॥३०॥*

पुलोमा वृषपर्वा च एकचक्रोऽनुतापनः ।
धूम्रकेशो विरुपाक्षो विप्रचित्तिश्च दुर्जयः ॥३१॥

पुलोमा, वृषपर्वा, च, एकचक्रः अनुतापनः, धूम्रकेशः विरुपाक्षः, विप्रचित्तिः, च (और), **दुर्जयः ॥३१॥***

स्वर्भानोः सुप्रभां कन्यामुवाह नमुचिः किल ।
वृषपर्वणस्तु शर्मिष्ठां ययातिर्नाहुषो बली ॥३२॥

स्वर्भानोः सुप्रभां कन्यां उवाह नमुचिः किल वृषपर्वणः तु शर्मिष्ठां ययातिः नाहुषः बली ॥३२॥

स्वर्भानोः कन्यां	स्वर्भानुकी कन्या
सुप्रभां	सुप्रभासे
किल नमुचिः	अरे, नमुचिने
उवाह	विवाह किया
तु वृषपर्वणः	तथा वृषपर्वाकी (पुत्री)
शर्मिष्ठां	शर्मिष्ठासे
बली नाहुषः ययातिः	बलवान नहुषनंदन ययातिने ॥३२॥

---

* केवल नाम होनेके कारण इनका अन्वय, अर्थ नहीं हो सकता ।

वैश्वानरसुता याश्च चतस्रश्चारुदर्शनाः ।
उपदानवी हयशिरा पुलोमा कालका तथा ॥३३॥

वैश्वानर सुता याः च चतस्रः चारुदर्शनाः उपदानवी हयशिरा पुलोमा कालका तथा ॥३३॥

वैश्वानर याः	(दनुके पुत्र) वैश्वानरकी जो	**उपदानवी**	उपदानवी,
चतस्रः	चार	**हयशिरा**	हयशिरा,
चारु दर्शनाः	सुन्दरी	**पुलोमा तथा**	पुलोमा तथा
सुता	कन्याएँ	**कालका**	कालका थीं ॥३३॥

उपदानवीं हिरण्याक्षः क्रतुर्हयशिरां नृप ।
पुलोमां कालकां च द्वे वैश्वानरसुते तु कः ॥३४॥

उपदानवीं हिरण्याक्षः क्रतुः हयशिरां नृप पुलोमां कालकां च द्वे वैश्वानर सुते तु कः ॥३४॥

नृप	राजन् ! (उनमें-से)	**तु वैश्वानर**	तथा वैश्वानरकी
उपदानवीं	उपदानवीको	**द्वे सुते**	दो पुत्रियों
हिरण्याक्षः	हिरण्याक्षने,	**पुलोमां च**	पुलोमा और
हयशिरां	हयशिराको	**कालकां**	कालकाको
क्रतुः	क्रतुने (विवाहा)	**कः**	प्रजापति ॥३४॥

उपयेमेऽथ भगवान् कश्यपो ब्रह्मचोदितः ।
पौलोमाः कालकेयाश्च दानवा युद्धशालिनः ॥३५॥

उपयेमे अथ भगवान् कश्यपः ब्रह्मचोदितः पौलोमाः कालकेयाः च दानवा युद्धशालिनः ॥३५॥

कश्यपः अथ	कश्यपजीने फिर	**युद्धशालिनः**	युद्धवीर
भगवान्	समर्थ होनेसे	**पौलोमाः**	पौलोम
ब्रह्मचोदितः	ब्रह्माजीकी प्रेरणासे	**च कालकेयाः**	तथा कालकेय
उपयेमे	विवाह लिया (उनसे)	**दानवा**	दानव हुए ॥३५॥

तयोः पष्टिसहस्राणि यज्ञघ्नांस्ते पितुः पिता ।
जघान स्वर्गतो राजन्नेक इन्द्रप्रियङ्करः ॥३६॥

तयोः षष्टिसहस्राणि यज्ञघ्नान् ते पितुः पिता जघान स्वर्गतः राजन् एक इन्द्रप्रियङ्करः ॥३६॥

राजन्	राजन् !	**ते पितुः पिता**	तुम्हारे पितामह (अर्जुन) ने
तयोः यज्ञघ्नान्	उनमें यज्ञ नाशक	**स्वर्गतः**	स्वर्ग जाकर
षष्टिसहस्राणि	साठ हजार (निवात-कवच नामक दानवों) को	**एक जघान**	अकेली ही मार दिया ॥३६॥
इन्द्रप्रियङ्करः	इन्द्रको प्रसन्न करने-के लिए		

विप्रचित्तिः सिंहिकायां शतं चैकमजीजनत् ।
राहुज्येष्ठं केतुशतं ग्रहत्वं य उपागतः ॥३७॥

विप्रचित्तिः सिंहिकायां शतं च एकं अजीजनत् राहुज्येष्ठं केतुशतं ग्रहत्वं यः उपागतः ॥३७॥

सिंहिकायां	सिंहिका (पत्नी) से	**यः ग्रहत्वं**	जो ग्रहोंके
विप्रचित्तिः	विप्रचित्तिने	**उपागतः**	समकक्ष हो गया
शतं च एकं	एक सौ एक (पुत्र)	**केतुशतं**	(शेष) सौ केतु
अजीजनत्	उत्पन्न किये ।		हुए ॥३७॥
राहुज्येष्ठं	उनमें राहु सबसे बड़ा था		

अथातः श्रूयतां वंशो योऽदितेरनुपूर्वशः ।
यत्र नारायणो देवः स्वांशेनावतरद् विभुः ॥३८॥

अथ अतः श्रूयतां वंशः यः अदितेः अनुपूर्वशः यत्र नारायणः देवः स्व अंशेन आवतरत् विभुः ॥३८॥

अथ	अब
यत्र	जिस (वंश) में
नारायणः देवः	भगवान् नारायणने
विभुः	सर्वव्यापक (होने-पर भी) वे
स्व अंशेन	अपने अंश से
अवतरत्	अवतार लिया
अतः	अतः
यः अदितेः वंशः	जो आदितिका वंश है
अनुपूर्वशः	क्रमानुसार (उसको)
श्रूयतां	सुनो ॥३८॥

विवस्वानर्यमा पूषा त्वष्टाथ सविता भगः ।
धाता विधाता वरुणो मित्रः शक उरुक्रमः ॥३९॥

विवस्वान, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, अथ सविता, भगः, धाता, विधाता, वरुणः,मित्रः,शक,उरुक्रमः (वामन) (यही बारह आदित्य कहलाये) ॥३९॥*

विवस्वतः श्राद्धदेवं संज्ञासूयत वै मनुम् ।
मिथुनं च महाभागा यमं देवं यमीं तथा ।
सैव भूत्वाथ वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि ॥४०॥

विवस्वतः श्राद्धदेवं संज्ञा असूयत वै मनुं मिथुनं च महाभागा यमं देवं यमीं तथा स एव भूत्वा अथ वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि ॥४०॥

विवस्वतः	विवस्वानसे (उनकी पत्नी)
महाभागा संज्ञा	महाभागा संज्ञाने
वै श्राद्धदेवं मनुं	अहो श्राद्धदेव (वैवस्वत) मनु
च मिथुनं	तथा एक जोड़े (युग्मज)
यमं देवं तथा	देव यमराज तथा
यमीं	यमुनाको
असूयत	उत्पन्न किया
अथ	फिर
स एव भुवि	उसने ही पृथ्वीपर
वडवा भूत्वा	घोड़ी बनकर
नासत्यौ	अश्विनी कुमारोंको
सुषुवे	जन्म दिया ॥४०॥

छाया शनैश्चरं लेभे सावर्णि च मनुं ततः ।
कन्यां च तपतीं या वै वव्रे संवरणं पतिम् ॥४१॥

---

* सब संज्ञा (नाम) हैं।

छाया शनैश्चरं लेभे सावर्णि च मनुं ततः कन्यां च तपतीं या वै वव्रे संवरणं पतिम् ॥४१॥

छाया	(संज्ञाकी ही) छायाने	**लेभे**	पाया (पैदा किया)
ततः शनैश्चरं	फिर शनैश्चरको,	**या**	जिस (कन्या)ने
सावर्णि मनुं	और सावर्णि मनुको	**संवरणं**	संवरणको
च तपतीं	तपती (नामकी)	**पतिं वव्रे**	पति रूपमें वरण
कन्यां वै	कन्याको भी		किया ॥४१॥

अर्यम्णो मातृका पत्नी तयोश्चर्षणयः सुताः ।
यत्र वै मानुषी जातिर्ब्रह्मणा चोपकल्पिता ॥४२॥

अर्यम्णः मातृका पत्नी तयोः चर्षणयः सुताः यत्र वै मानुषी जातिः ब्रह्मणा च उपकल्पिता ॥४२॥

अर्यम्णः	अर्यमाकी	**वै यत्र**	निश्चय जिनके (आधार पर)
मातृका पत्नी	पत्नी मातृका थी,	**ब्रह्मणा च**	ब्रह्माजीने भी
तयोः सुताः	उसके पुत्र	**मानुषी जातिः**	मनुष्य जातिकी
चर्षणयः	चर्षणी हुए,	**उपकल्पिता**	कल्पना की ॥४२॥

पूषानपत्यः पिष्टादो भग्नदन्तोऽभवत् पुरा ।
योऽसौ दक्षाय कुपितं जहास विवृतद्विजः ॥४३॥

पूषा अनपत्यः पिष्टादः भग्नदन्तः अभवत् पुरा यः असौ दक्षाय कुपितं जहास विवृत द्विजः ॥४३॥

पूषा अनपत्यः	पूषा सन्तानहीन हैं	**यः असौ**	जिन्होंने
पिष्टादः	पिसा भोजन खाने-वाले हैं, क्योंकि	**दक्षाय कुपितं**	दक्षपर (शिवके) क्रोध करनेपर
पुरा	पहिले ही	**विवृत द्विजः**	दांत खोलकर
भग्नदन्तः	टूटे दांतवाले	**जहास**	हंसे थे ॥४३॥
अभवत्	हो गये,		

त्वष्टुर्दैत्यानुजा भार्या रचना नाम कन्यका ।
संनिवेशस्तयोर्जज्ञे विश्वरूपश्च वीर्यवान् ॥४४॥

त्वष्टुः दैत्य अनुजा भार्या रचना नाम कन्यका संनिवेशः तयोः जज्ञे विश्वरूपः च वीर्यवान् ॥४४॥

दैत्य अनुजा	दैत्योंकी छोटी बहिन
कन्यका रचना	कुमारी रचना
नाम	नामकी
त्वष्टुः भार्या	त्वष्टाकी पत्नी थी
तयोः संनिवेशः	उससे संनिवेश
च वीर्यवान्	और तेजस्वी
विश्वरूपः	विश्वरूप
जज्ञे	उत्पन्न हुए ॥४४॥

तं वव्रिरे सुरगणा स्वस्त्रीयं द्विषतामपि ।
विमतेन परित्यक्ता गुरुणाऽऽङ्गिरसेन यत् ॥४५॥

तं वव्रिरे सुरगणाः स्वस्त्रीयं द्विषतां अपि विमतेन परित्यक्ता गुरुणा आङ्गिरसेन यत् ॥४५॥

द्विषतां	शत्रुओंके
स्वस्त्रीयं अपि	भानजे होनेपर भी
विमतेन	अपमानित होनेसे
गुरुणा	अपने गुरु
आङ्गिरसेन	आङ्गिरानन्दन (बृहस्पति) द्वारा
परित्यक्ता	त्याग दिये जानेपर
सुरगुणाः	देवताओंने
तं	उन (विश्वरूप)को
वव्रिरे	(पुरोहित रूपमें) वरण किया ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

राजोवाच-

कस्य हेतोः परित्यक्ता आचार्येणात्मनः सुराः ।
एतदाचक्ष्वभगवञ्छिष्याणामक्रमं गुरौ ॥१॥

कस्य हेतोः परित्यक्ताः आचार्येण आत्मनः सुराः एतत् आचक्ष्व भगवन् शिष्याणां अक्रमं गुरौ ॥१॥

भगवन्	भगवन् !	**शिष्याणां**	शिष्योंका
आचार्येण	आचार्य द्वारा	**एतत्**	यह
कस्य हेतोः	किस कारणसे	**गुरौ अक्रमं**	गुरुका अतिक्रमण
आत्मनः	अपने (शिष्य)	**आचक्ष्व**	बतलाइये ॥१॥
सुराः	देवता		
परित्यक्ताः	त्यागे गये,		

श्रीशुक उवाच-

इन्द्रस्त्रिभुवनैश्वर्यमदोल्लङ्घितसत्पथः ।
मरुद्भिर्वसुभी रुद्रैरादित्यैर्ऋभुभिर्नृप ॥२॥

इन्द्रः त्रिभुवन ऐश्वर्य मद उल्लङ्घित सत्पथः मरुद्भिः वसुभी रुद्रैः आदित्यैः ऋभुभिः नृप ॥२॥

नृप	राजन् !	**मरुद्भिः वसुभी**	(एक दिन) मरुद्-गणों, वसुओं
त्रिभुवन ऐश्वर्य	त्रिलोकीका ऐश्वर्य पानेके	**रुद्रैः आदित्यैः**	रुद्रों, आदित्यों,
मद	घमण्डसे	**ऋभुभिः**	ऋभुगणों ॥२॥
इन्द्रः सत्पथः	इन्द्र सदाचारका		
उल्लङ्घित	उल्लंघन करने लगे थे,		

विश्वेदेवैश्च साध्यैश्च नासत्याभ्यां परिश्रितः ।
सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥३॥

विश्वेदेवैः च साध्यैः च नासत्याभ्यां परिश्रितः सिद्ध चारण गन्धर्वैः मुनिभिः ब्रह्मवादिभिः ॥३॥

विश्वेदेवैः	विश्वेदेवगण,	**सिद्ध चारण**	सिद्धों, चारणों
च साध्यैः	और साध्यगण	**गन्धर्वैः**	गन्धर्वों,
च नासत्याभ्यां	तथा अश्विनी-कुमारोंसे	**ब्रह्मवादिभिः**	वेदज्ञ
		मुनिभिः	मुनियोंसे ॥३॥
परिश्रितः	चारों ओरसे घिरे,		

विद्याधराप्सरोभिश्च किन्नरैः पतगोरगैः ।
निषेव्यमाणो मघवान् स्तूयमानश्च भारत ॥४॥

विद्याधर अप्सरोभिः च किन्नरैः पतग उरगैः निषेव्यमाणः मघवान् स्तूयमानः च भारत ॥४॥

भारत	परीक्षित !	**पतग**	पक्षियों,
विद्याधर	विद्याधरों,	**उरगैः**	सर्पों द्वारा
अप्सरोभिः	अप्सराओं द्वारा	**निषेव्यमाणः**	सेवित होते
स्तूयमानः	स्तुति किये जाते	**मघवान्**	इन्द्रका ॥४॥
च किन्नरैः	तथा किन्नरों,		

उपगीयमानो ललितमास्थानाध्यासनाश्रितः ।
पाण्डुरेणातपत्रेण चन्द्रमण्डलचारुणा ॥५॥

उपगीयमानः ललितं आस्थान अधि आसन आश्रितः पाण्डुरेण आतपत्रेण चन्द्रमण्डल चारुणा ॥५॥

ललितं	ललित स्वरसे	**आस्थानं**	स्वर्गके
उपगीयमानः	यशोगान हो रहा था,	**अधि आसनं**	सिंहासनपर
		आश्रितः	बैठे हुए

चन्द्रमण्डल	चन्द्रमण्डलके समान	पाण्डुरेण	श्वेत
चारुणा	सुन्दर	आतपत्रेण	छत्रसे ॥५॥

युक्तश्चान्यैः पारमेष्ठ्यैश्चामरव्यजनादिभिः ।
विराजमानः पौलोम्या सहार्धासनया भृशम् ॥६॥

युक्तः च अन्यैः पारमेष्ठ्यैः चामर व्यजन आदिभिः विराजमानः पौलोम्या सह अर्ध आसनया भृशम् ॥६॥

च अन्यै	तथा दूसरे	अर्ध आसनया	आधे आसनपर बैठने वाली
पारमेष्ठ्यैः	महाराजोचित	भृशं पौलोम्या	बराबर शचीके
चामर व्यजन	चँवर, पँखे	सह	साथ
आदिभिः युक्तः	आदिसे युक्त	विराजमानः	सुशोभित ॥६॥

स यदा परमाचार्यं देवानामात्मनश्च ह ।
नाभ्यनन्दत संप्राप्तं प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥७॥

स यदा परम आचार्यं देवानां आत्मनः च ह न अभ्यनन्दत संप्राप्तं प्रत्युत्थान आसन आदिभिः ॥७॥

स	उन (इन्द्र) ने	प्रत्युत्थान	उठकर खड़े होने,
यदा देवानां	जब देवताओंके	आसन	आसन
आत्मनः ह	तथा अपने भी	आदिभिः	आदि देनेके द्वारा
परम आचार्यं	परमाचार्यं (वृहस्पति) का	अभ्यनन्दत न	स्वागत नहीं किया ॥७॥
सम्प्रात	वहां आनेपर		

वाचस्पतिं मुनिवरं सुरासुरनमस्कृतम् ।
नोच्चचालासनादिन्द्रः पश्यन्नपि सभागतम् ॥८॥

वाचस्पतिं मुनिवरं सुर आसुर नमस्कृतं न उच्चचाल आसनात् इन्द्रः पश्यन् अपि सभा आगतम् ॥८॥

मुनिवरं	मुनिश्रेष्ठ	**पश्यन् अपि**	देखकर भी
सुर असुर	देव, असुर सबको	**इन्द्रः**	इन्द्र
नमस्कृतं	नमस्कृत	**आसनात्**	अपने सिंहासनसे
वाचस्पतिं	वृहस्पतिजीको	**न उच्चचाल**	नहीं उठे ॥८॥
सभा आगतं	सभामें आया		

ततो निर्गत्य सहसा कविराङ्गिरसः प्रभुः ।
आययौ स्वगृहं तूष्णीं विद्वान् श्रीमदविक्रियाम् ॥९॥

ततः निर्गत्य सहसा कविः आङ्गिरसः प्रभुः आययौ स्वगृहं तूष्णीं विद्वान् श्रीमद विक्रियाम् ॥९॥

कविः प्रभुः	विद्वान्, समर्थ	**तूष्णीं ततः**	चुपचाप वहांसे
आङ्गिरसः	अंगिरा-नन्दन	**निर्गत्य**	निकलकर
श्रीमद् विक्रियां	ऐश्वर्य मदका दोष	**स्वगृहं आययौ**	अपने घर आ
विद्वान्	जानकर		गये ॥९॥
सहसा	अचानक		

तर्ह्येव प्रतिबुद्ध्येन्द्रो गुरुहेलनमात्मनः ।
गर्हयामास सदसि स्वयमात्मानमात्मना ॥१०॥

तर्हि एव प्रतिबुद्ध्य इन्द्रः गुरु हेलनं आत्मनः गर्हयामास सदसि स्वयं आत्मानं आत्मना ॥१०॥

तर्हि एव	उसी समय	**स्वयं आत्मना**	स्वयं अपने द्वारा
आत्मनः	अपने द्वारा	**आत्मानं**	अपनी
गुरु हेलनं	गुरुकी अवहेलनासे	**गर्हयामास**	निन्दा करने
प्रतिबुद्ध्य	सावधान होकर		लगे ॥१०॥
सदसि	सभामें		

अहो बत ममासाधु कृतं वै दभ्रबुद्धिना ।
यन्मयैश्वर्यमत्तेन गुरुः सदसि कात्कृतः ॥११॥

अहो बत मम असाधु कृतं वै दभ्र बुद्धिना यत् मया ऐश्वर्यमत्तेन गुरुः सदसि कात् कृतः ॥११॥

अहो बत	अहो, बड़े खेदकी बात है
दभ्रबुद्धिना	हीन बुद्धिवाले (मैंने)
वै मम	निश्चय अपना ही
असाधु कृतं	अहित कर लिया,
यत् मया	जो मुझ
ऐश्वर्यमत्तेन	ऐश्वर्यसे मतवालेने
सदसि	सभामें
गुरुः कात् कृतः	गुरुका अपमान किया ॥११॥

को गृध्येत् पण्डितो लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेरपि ।
ययाहमासुरं भावं नीतोऽद्य विबुधेश्वरः ॥१२॥

कः गृध्येत् पण्डितः लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेः अपि यया अहं आसुरं भावं नीतः अद्य विबुध ईश्वरः ॥१२॥

कः पण्डितः	कौन विवेकवान्
त्रिविष्टपपतेः	स्वर्गाधिपकी
अपि	भी
लक्ष्मीं गृध्येत्	सम्पत्तिको चाहेगा,
अद्य यया	आज जिसके द्वारा
अहं	मैं
विबुध ईश्वरः	देवराज भी
आसुरं भावं	असुर भाव (रजोगुण) में
नीतः	पहुँचा दिया गया ॥१२॥

ये पारमेष्ठ्यं धिषणमधितिष्ठन् न कञ्चन ।
प्रत्युत्तिष्ठेदिति ब्रूयुर्धर्मं ते न परं विदुः ॥१३॥

ये पारमेष्ठ्यं धिषणं अधितिष्ठन् न कञ्चन प्रति उत्तेष्ठेत् इति ब्रूयुः धर्मं ते न परं विदुः ॥१३॥

पारमेष्ठ्यं धिषणं	सार्वभौम राज सिंहासनपर
अधितिष्ठन्	बैठा हुआ (सम्राट्)
कञ्चन	किसीके लिए भी
प्रति	आदर
न उत्तेष्ठेत्	देनेके लिए न उठे
ये इति ब्रूयुः	जो ऐसा कहते हैं,
ते परं धर्मं	वे श्रेष्ठ धर्म
न विदुः	नहीं जानते ॥१३॥

तेषां कुपथदेष्टॄणां पततां तमसि ह्यधः ।
ये श्रद्दध्युर्वचस्ते वै मज्जन्त्यश्मप्लवा इव ॥१४॥

तेषां कुपथदेष्टृणां पततां तमसि हि अधः ये श्रद्दधुः वचः ते वै मज्जन्ति अश्मप्लवा इव ॥१४॥

अधः तमसि	नीचे नरकमें	**श्रद्दधुः**	श्रद्धा कर लेते हैं
पततां	गिरते हुए	**वै ते**	निश्चय वे
हि तेषां	क्योंकि उन	**अश्मप्लवा इव**	पत्थरकी नौकाके समान
कुपथदेष्टृणां	कुमार्ग बतलाने वालोंकी	**मज्जन्ति**	डूब जाते हैं ॥१४॥
वचः ये	बातपर जो		

अथाहममराचार्यमगाधधिषणं द्विजम् ।
प्रसादयिष्ये निशठः शीर्ष्णा तच्चरणं स्पृशन् ॥१५॥

अथ अहं अमर आचार्यं अगाधधिषणं द्विजं प्रसादयिष्ये निशठः शीर्ष्णा तत् चरणं स्पृशन् ॥१५॥

अथ अहं	अब मैं	**द्विजं**	विप्रवर (बृहस्पति-जी) को
निशठः	बहुत शठता करने-वाला	**शीर्ष्णा**	सिरसे
अमर आचार्यं	देवगुरु	**तत् चरणं**	उनके चरणोंको
अगाथधिषणं	अथाह बुद्धि	**स्पृशन्**	स्पर्श करके
		प्रसादयिष्ये	प्रसन्न करूँगा ॥१५॥

एवं चिन्तयतस्तस्य मघोनो भगवान् गृहात् ।
बृहस्पतिर्गतोऽदृष्टां गतिमध्यात्ममायया ॥१६॥

एवं चिन्तयतः तस्य मघोनः भगवान् गृहात् बृहस्पतिः गतः अदृष्टां गतिं अध्यात्म मायया ॥१६॥

तस्य मघोनः	उन इन्द्रके	**अध्यात्म मायया**	अपनी योग-शक्तिसे
एवं चिन्तयतः	ऐसा सोचते समय ही	**अदृष्टां**	अन्तर्धान
भगवान्	समर्थ	**गतिं गतः**	हो गये ॥१६॥
बृहस्पतिः	बृहस्पतिजी		

गुरोर्नाधिगतः संज्ञां परीक्षन् भगवान् स्वराट् ।
ध्यायन् धिया सुरैर्युक्तः शर्म नालभतात्मनः ॥१७॥

गुरोः न अधिगतः संज्ञां परीक्षन् भगवान् स्वराट् ध्यायन् धिया सुरैः युक्तः शर्म न अलभत आत्मनः ॥१७॥

भगवान् स्वराट्	समर्थ इन्द्रने	**सुरैः युक्तः**	देवताओंके साथ
परीक्षन्	चारों ओर ढुंढ़वाने पर भी	**धिया ध्यायन्**	(अपनी) बुद्धिसे सोचते हुए
गुरोः संज्ञां	गुरुका पता	**आत्मनः शर्म**	चित्तमें शान्ति
न अधिगतः	न पाकर	**न अलभत**	नहीं पा सके ॥१७॥

तच्छ्रुत्वैवासुराः सर्व आश्रित्यौशनसं मतम् ।
देवान् प्रत्युद्यमं चक्रुर्दुर्मदा आततायिनः ॥१८॥

तत् श्रुत्वा एव असुराः सर्व आश्रित्य औशनसं मतं देवान् प्रति उद्यमं चक्रुः दुर्मदा आततायिनः ॥१८॥

तत्	(देवताओंकी) इस दशाको	**औशनसं मतं**	शुक्राचार्यकी सलाहको
श्रुत्वा एव	सुनकर ही	**आश्रित्य**	मानकर
दुर्मदा	मदोन्मत	**देवान् प्रति**	देवताओंके विरुद्ध
आततायिनः	आततायी	**उद्यमं चक्रुः**	उद्योग प्रारम्भ कर दिया ॥१८॥
सर्व असुराः	सब असुरोंने		

तैर्विसृष्टेषुभिस्तीक्ष्णैर्निर्भिन्नाङ्गोरुबाहवः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुः सहेन्द्रा नतकन्धराः ॥१९॥

तैः विसृष्टैः इषुभिः तीक्ष्णैः निर्भिन्न अङ्ग उरु बाहवः ब्रह्माणं शरणं जग्मुः सह इन्द्रा नतकन्धराः ॥१९॥

तैः विसृष्टैः	उन (असुरों) के द्वारा छोड़े
तीक्ष्णैः इषुभिः	तीक्ष्ण बाणोंसे
निर्भिन्न अङ्ग	कटे-फटे शरीर,
उरु बाहवः	जांघें, भुजा वाले (देवता)
सह इन्द्रा	इन्द्रके साथ
नतकन्धराः	कन्धे (सिर) झुकाये
ब्रह्माणं	ब्रह्माजीकी शरणमें
जग्मुः	गये ॥१९॥

तांस्तथाभ्यर्दितान् वीक्ष्य भगवानात्मभूरजः ।
कृपया परया देव उवाच परिसान्त्वयन् ॥२०॥

तान् तथा अभ्यर्दितान् वीक्ष्य भगवान् आत्मभूः अजः कृपया परया देवः उवाच परिसान्त्वयन् ॥२०॥

तान् तथा	उन (देवताओं) को उस प्रकार
अभ्यर्दितान्	रौंदा हुआ
वीक्ष्य	देखकर
परया कृपया	परम कृपासे
भगवान्	भगवान्
आत्मभूः	स्वयम्भू
अजः देवः	अजन्मा देव
परिसान्त्वयन्	सान्त्वना देते हुए
उवाच	बोले ॥२०॥

ब्रह्मोवाच–

अहो बत सुरश्रेष्ठा ह्यभद्रं वः कृतं महत् ।
ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं दान्तमैश्वर्यान्नाभ्यनन्दत ॥२१॥

अहो बत सुरश्रेष्ठा हि अभद्रं वः कृतं महत् ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं दान्तं ऐश्वर्यात् न अभ्यनन्दत ॥२१॥

सुरश्रेष्ठा	देवनायको !
अहो बत	अरे बड़े खेदकी बात है
हि	क्योंकि
वः महत्	तुम लोगोंने बहुत
अभद्रं	बुरा काम
कृतं	किया है
ऐश्वर्यात्	ऐश्वर्यशाली होनेके कारण
ब्रह्मिष्ठं दान्तं	ब्रह्मज्ञानी, जितेन्द्रिय
ब्राह्मणं	ब्राह्मणका
अभ्यनन्दत न	सत्कार नहीं किया ॥२१॥

तस्यायमनयस्यासीत् परेभ्यो वः पराभवः ।
प्रक्षीणेभ्यः स्ववैरिभ्यः समृद्धानां च यत् सुराः ॥२२॥

तस्य अयं अनयस्य आसीत् परेभ्यः वः पराभवः प्रक्षीणेभ्यः स्ववैरिभ्यः समृद्धानां च यत् सुराः ॥२२॥

सुराः	देवताओ,	**प्रक्षीणेभ्यः**	बहुत दुर्बल होनेपर
तस्य अनयस्य	उसी अन्यायका (फल)	**वः समृद्धानां च**	तुम सम्पन्नोंकी
		स्ववैरिभ्यः	अपने शत्रुओंसे
आसीत्	है कि	**यत् अयं**	जो यह
परेभ्यः	शत्रुओंके	**पराभवः**	पराजय हुई ॥२२॥

मघवन् द्विषतः पश्य प्रक्षीणान् गुर्वतिक्रमात् ।
सम्प्रत्युपचितान् भूयः काव्यमाराध्य भक्तितः ।
आददीरन् निलयनं ममापि भृगुदेवताः ॥२३॥

मघवन् द्विषतः पश्य प्रक्षीणान् गुरुः अतिक्रमात् सं प्रति उपचितान् भूयः काव्यं आराध्य भक्तितः आददीरन् निलयनं मम अपि भृगु देवताः ॥२३॥

मघवन्	इन्द्र,	**उपचितान्**	सम्पन्न हो गये ।
द्विषतः पश्य	(अपने) शत्रुओंको देखो,	**भृगु देवताः**	शुक्राचार्यको आराध्य माननेवाले
गुरुः अतिक्रमात्	गुरुका तिरस्कार करके	**काव्यं आराध्य**	शुक्राचार्यकी आराधना करके
प्रक्षीणान्	दुर्बल हो गये थे,	**मम निलयनं**	मेरा लोक
भूयः सं प्रति	फिर उन (गुरु) के प्रति	**अपि**	भी
		आददीरन्	छीन ले सकते
भक्तितः	भक्ति-भाव होनेसे		हैं ॥२३॥

त्रिविष्टपं किं गणयन्त्यभेद्य-
मन्त्रा भृगूणामनुशिक्षितार्थाः ।

न विप्रगोविन्दगवीश्वराणां
भवन्त्यभद्राणि नरेश्वराणाम् ॥२४॥

त्रिविष्टपं किं गणयन्ति अभेद्य मन्त्रा भृगूणां अनुशिक्षित अर्थाः न विप्र गोविन्द गौ ईश्वराणां भवन्ति अभद्राणि नरेश्वराणां ॥२४॥

अभेद्य मन्त्राः	इनकी मन्त्रणा फूटती नहीं,	**विप्र गोविन्द**	ब्राह्मण, गोविन्द और
भृगूणां	भृगुवंशियों द्वारा	**गौ ईश्वराणां**	गौको आराध्य माननेवाले
अर्थाः	अर्थशास्त्रकी		
अनुशिक्षित	इन्हें शिक्षा दी गयी है,	**नरेश्वराणां**	राजाओंका
		अभद्राणि	अमंगल
त्रिविष्टपं	स्वर्गको (ये)	**न भवन्ति**	नहीं होता ॥२४॥
किं गणयन्ति	क्या गिनते हैं।		

तद् विश्वरूपं भजताशु विप्रं
तपस्विनं त्वाष्ट्रमथात्मवन्तम् ।
सभाजितोऽर्थान् स विधास्यते वो
यदि क्षमिष्यध्वमुतास्य कर्म ॥२५॥

तत् विश्वरूपं भजत आशु विप्रं तपस्विनं त्वाष्ट्रं अथ आत्मवन्तं सभाजितः अर्थान् स विधास्यते वः यदि क्षमिष्यध्वं उत अस्य कर्म ॥२५॥

तत् त्वाष्ट्रं	अतः त्वष्टाके पुत्र	**कर्म क्षमिष्यध्वं**	कर्मको क्षमाकर दोगे तो
तपस्विनं विप्रं	तपस्वी ब्राह्मण		
आत्मवन्तं	संयमी	**सभाजितः**	सम्मानित होनेपर
विश्वरूपं	विश्वरूपकी	**वः अर्थान्**	तुम्हारे प्रयोजनोंको
आशु भजत	शीघ्र सेवा करो,	**स विधास्यते**	वे पूरा करेंगे ॥२५॥
यदि उत अस्य	यदि तो इनके		

श्रीशुक उवाच-

त एवमुदिता राजन् ब्रह्मणा विगतज्वराः ।
ऋषिं त्वाष्ट्रमुपव्रज्य परिष्वज्येदमब्रुवन् ॥२६॥

त एवं उदिता राजन् ब्रह्मणा विगतज्वराः ऋषिं त्वाष्ट्रं उपव्रज्य परिष्वज्य इदं अब्रुवन् ॥२६॥

राजन्	राजन् !	**त्वाष्ट्रं ऋषिं**	त्वष्टानन्दन ऋषि (विश्वरूप) के
एवं ब्रह्मणा	इस प्रकार ब्रह्माजी के	**उपव्रज्य**	पास जाकर
उदिता	कहनेपर	**परिष्वज्य**	(उनका) आलिंगन करके
त विगतज्वराः	वे चिन्ता रहित हो गये ।	**इदं अब्रुवन्**	यह बोले ॥२६॥

देवा ऊचुः-

वयं तेऽतिथयः प्राप्ता आश्रमं भद्रमस्तु ते ।
कामः सम्पाद्यतां तात पितॄणां समयोचितः ॥२७॥

वयं ते अतिथयः प्राप्ता आश्रमं भद्रं अस्तु ते कामः सम्पाद्यतां तात पितॄणां समय उचितः ॥२७॥

तात	तात !	**पितॄणां**	(हम) पितरोंकी
वयं ते अतिथयः	हम तुम्हारे अतिथि	**समय उचितः**	समयके अनुसार उचित
ते आश्रमं प्राप्ता	तुम्हारे आश्रमपर आये हैं ।	**कामः सम्पाद्यतां**	इच्छा पूरी करो ॥२७॥
भद्रं अस्तु	(तुम्हारा) कल्याण हो,		

पुत्राणां हि परो धर्मः पितृशुश्रूषणं सताम् ।
अपि पुत्रवतां ब्रह्मन् किमुत ब्रह्मचारिणाम् ॥२८॥

पुत्राणां हि परः धर्मः पितृ शुश्रूषणं सतां अपि पुत्रवतां ब्रह्मन् किं उत ब्रह्मचारिणाम् ॥२८॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
हि	क्योंकि
पुत्राणां परः	पुत्रोंका परम
धर्मः	धर्म
पितृ शुश्रूषणं	माता-पिताकी सेवा
सतां	सज्जन
पुत्रवतां अपि	पुत्रवानोंके लिये भी है,
ब्रह्मचारिणां	ब्रह्मचारियोंके लिए
किं उत	फिर कहना ही क्या ॥२८॥

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ।
भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिर्माता साक्षात् क्षितेस्तनुः ॥२९॥

आचार्यः ब्रह्मणः मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः भ्राता मरुत्पतेः मूर्तिः माता साक्षात् क्षितेः तनुः ॥२९॥

आचार्यः	आचार्य
ब्रह्मणः मूर्तिः	वेदके स्वरूप,
पिता प्रजापतेः	पिता प्रजापति ब्रह्माके
मूर्तिः	स्वरूप
भ्राता मरुत्पतेः	भाई इन्द्रके
मूर्तिः	स्वरूप,
माता साक्षात्	माता साक्षात्
क्षितेः तनुः	पृथ्वी रूपा ही हैं ॥२९॥

दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्यात्मातिथिः स्वयम् ।
अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चात्मनः ॥३०॥

दयाया भगिनी मूर्तिः धर्मस्य आत्मा अतिथिः स्वयं अग्नेः अभ्यागतः मूर्तिः सर्वभूतानि च आत्मनः ॥३०॥

भगिनी	बहिन
दयाया मूर्तिः	दयाकी मूर्ति,
अतिथिः	अतिथि
धर्मस्य आत्मा	धर्मका स्वरूप,
अभ्यागतः	अभ्यागत
अग्नेः	अग्निकी (मूर्ति)
च सर्वभूतनि	और सब प्राणी
स्वयं आत्मनः	स्वयं अपने आत्माके
मूर्तिः	स्वरूप हैं ॥३०॥

तस्मात् पितृणामार्तानामार्ति परपराभवम् ।
तपसापनयंस्तात सन्देशं कर्तुमर्हसि ॥३१॥

तस्मात् पितृणां आर्तानां आर्ति परपराभवं तपसा अपनयन् तात सन्देशं कर्तुं अर्हसि ॥३१॥

तस्मात् आर्तानां	इसलिए (हम) दुःखी	**अपनयन्**	दूर करके
पितृणां	पितरोंका	**तात सन्देशं**	तात (तुम्हें हमारी) आज्ञा
परपराभवं	शत्रुओंसे पराजय रूप	**कर्तुं अर्हसि**	पालन करना चाहिए ॥३१॥
आर्ति तपसा	दुःख (अपनी) तपस्यासे		

वृणीमहे त्वोपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुम् ।
यथाञ्जसा विजेष्यामः सपत्नांस्तव तेजसा ॥३२॥

वृणीमहे तु उपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुं यथा अञ्जसा विजेष्यामः सपत्नान् तव तेजसा ॥३२॥

ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं	ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण होनेसे	**यथा तव तेजसा**	जैसे तुम्हारे तेजसे
गुरुं	(तुम) श्रेष्ठ हो	**अञ्जसा**	सरलतासे
उपाध्यायं तु	(तुमको हम) उपाध्याय (पुरोहित)	**सपत्नान्**	शत्रुओंको
वृणीमहे	वरण करते हैं	**विजेष्यामः**	(हम) जीत लेंगे ॥३२॥

न गर्हयन्ति ह्यर्थेषु यविष्ठाङ्घ्र्यभिवादनम् ।
छन्दोभ्योऽन्यत्र न ब्रह्मन् वयो ज्यैष्ठ्यस्य कारणम् ॥३३॥

न गर्हयन्ति हि अर्थेषु यविष्ठ अङ्घ्रि अभिवादनं छन्दोभ्यः अन्यत्र न ब्रह्मन् वयः ज्यैष्ठ्यस्य कारणम् ॥३३॥

हि	क्योंकि
अर्थेषु	प्रयोजन होनेपर
यविष्ठ अङ्घ्रि	छोटेके चरणोंमें
अभिवादनं	प्रणाम करना
गर्हयन्ति न	निन्दित नहीं माना जाता और
ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
छन्दोभ्यः	वैदिक-ज्ञानको
अन्यत्र	छोड़कर
वयः ज्यैष्ठ्यस्य	अवस्था बड़े होनेका
कारणं न	कारण नहीं है ॥३३॥

*श्रीशुक उवाच-**

अभ्यर्थितः सुरगणैः पौरोहित्ये महातपाः ।
स विश्वरूपस्तानाह प्रसन्नः श्लक्ष्णया गिरा ॥३४॥

अभ्यर्थितः सुरगणैः पौरोहित्ये महामपाः स विश्वरूपः तान् आह प्रसन्नः श्लक्ष्णया गिरा ॥३४॥

सुरगणैः	देवताओं द्वारा
पौरोहित्ये	पुरोहित बननेके लिये
अभ्यर्थितः	प्रार्थना करनेपर
महामपा	उदार चित्त
विश्वरूपः	विश्वरूप
प्रसन्नः	प्रसन्न होकर
श्लक्ष्णया गिरा	प्रिय वाणीसे
तान् आह	उनसे बोले ॥३४॥

विश्वरूप उवाच-

विगर्हितं धर्मशीलैर्ब्रह्मवर्चउपव्ययम् ।
कथं नु मद्विधो नाथा लोकेशैरभियाचितम् ।
प्रत्याख्यास्यति तच्छिष्यः स एव स्वार्थ उच्यते ॥३५॥

विगर्हितं धर्मशीलैः ब्रह्मवर्च उपव्ययं कथं नु मद्विधः नाथा लोकेशैः अभियाचितं प्रत्याख्यास्यति तत् शिष्यः स एव स्वार्थ उच्यते ॥३५॥

---

*अन्य प्रतियोंमें यहां 'ऋषिरुवाच' है ।

धर्मशीलैः	धर्मशील लोगों द्वारा
ब्रह्मवर्च	ब्रह्मतेजको
उपव्ययं	क्षीण करनेवाले (पौरोहित्यकी)
विगर्हितं	निन्दा की गयी हैं; किन्तु
यत् विधः	मेरे समानके
नाथा	स्वामियों
लोकेशैः	लोकपालों द्वारा
अभियाचितं	प्रार्थना किये जानेपर
तत् शिष्यः	उनका सेवक
कथं नु	कैसे भला
प्रत्याख्यास्यति	मनाकर सकेगा,
स एव	वही (आपकी आज्ञाका पालन)
स्वार्थ उच्यते	(मेरा) स्वार्थ कहा गया है ॥३५॥

अकिञ्चनानां हि धनं शिलोञ्छनं
तेनेह निर्वर्तितसाधुसत्क्रियः ।
कथं विगर्ह्यं नु करोम्यधीश्वराः
पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः ॥३६॥

अकिञ्चनानां हि धनं शिल उञ्छनं तेन एह निर्वर्तित साधु सत् क्रियः कथं विगर्ह्यं नु करोमि अधीश्वराः पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः ॥३६॥

अधीश्वराः	लोकपालो !
अकिञ्चनानां	हम अकिञ्चनोंका
धनं	धन
शिल उञ्छनं	खेत या बाजारमें गिरे दाने हैं,
तेन एह साधु	उससे ही भली प्रकार
सत् क्रियः	आवश्यक कार्य
निर्वर्तित	सम्पन्न हो जाते हैं फिर
विगर्ह्यं	निन्दित
पौरोधसं	पौरोहित्य
नु कथं करोमि	भला कैसे करूँ
येन दुर्मतिः	जिससे दुर्बुद्धि
हृष्यति	बढ़ती है ॥३६॥

तथापि न प्रतिब्रूयां गुरुभिः प्रार्थितं कियत् ।
भवतां प्रार्थितं सर्वं प्राणैरर्थैश्च साधये ॥३७॥

तथा अपि न प्रतिब्रूयां गुरुभिः प्रार्थितं कियत् भवतां प्रार्थितं सर्वं प्राणैः अर्थैः च साधये ॥३७॥

तथा अपि	ऐसा होनेपर भी
न प्रतिब्रूयां	अस्वीकार नहीं करूँगा
गुरुभिः	पूजनीयों द्वारा
प्रार्थितं कियत्	मांगा ही कितना गया है,
भवतां सर्वं	आप लोगोंकी सब
प्रार्थितं	मांग
प्राणैः च अर्थैः	प्राण और धन (तपः शक्ति) से
साधये	सम्पन्न करूँगा ॥३७

श्रीशुक उवाच–

तेभ्य एवं प्रतिश्रुत्य विश्वरूपो महातपाः ।
पौरोहित्यं वृतश्चक्रे परमेण समाधिना ॥३८॥

तेभ्यः एवं प्रतिश्रुत्य विश्वरूपः महातपाः पौरोहित्यं वृतः चक्रे परमेण समाधिना ॥३८॥

तेभ्यः	उन (देवताओं) से
एवं प्रतिश्रुत्य	ऐसी प्रतिज्ञा करके
महातपाः	महातपस्वी
विश्वरूपः	विश्वरूप
पौरोहित्यं वृतः	पुरोहित-पदपर वरण होकर
परमेण	अत्यन्त
समाधिना	एकाग्रता पूर्वक
चक्रे	उसे करने लगे ॥३८॥

सुरद्विषां श्रियं गुप्तामौशनस्यापि विद्यया ।
आच्छिद्यादान्महेन्द्राय वैष्णव्या विद्यया विभुः ॥३९॥

सुरद्विषां श्रियं गुप्तां औशनस्य अपि विद्यया आच्छिद्य अदान् महेन्द्राय वैष्णव्या विद्यया विभुः ॥३९॥

औशनस्य	शुक्राचार्यकी
विद्यया अपि	विद्यासे भी
गुप्तां	रक्षित
सुरद्विषां श्रियं	देव द्वेषियोंकी लक्ष्मी

विभुः	समर्थ (विश्वरूप) ने	**आच्छिद्य**	(शुक्राचार्यकी विद्या)
वैष्णव्या	वैष्णवी		काटकर
विद्यया	विद्यासे	**महेन्द्राय**	इन्द्रको
		अदात्	दे दी ॥३९॥

यया गुप्तः सहस्राक्षो जिग्येऽसुरचमूर्विभुः ।
तां प्राह स महेन्द्राय विश्वरूप उदारधीः ॥४०॥

यया गुप्तः सहस्राक्षः जिग्ये असुर चमूः विभुः तां प्राह स महेन्द्राय विश्वरूपः उदारधीः ॥४०॥

यया गुप्तः	जिससे रक्षित होकर	**उदारधीः**	उदार बुद्धि
विभुः सहस्राक्षः	समर्थ देवराजने	**विश्वरूपः**	विश्वरूपने
असुर चमूः	असुर-सेनाको	**तां महेन्द्राय**	वह (विद्या) इन्द्रको
जिग्ये	जीत लिया	**प्राह**	बतलायी ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

राजोवाच—

यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान् ।
क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥१॥

यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान् क्रीडन् इव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥१॥

सहस्राक्षः	महेन्द्रने	**क्रीडन् इव**	खेलते हुएसे
यया गुप्तः	जिससे रक्षित होकर	**विनिर्जित्य**	जीतकर
सवाहान्	वाहनोंके साथ	**त्रिलोक्या श्रियं**	त्रिभुवनकी लक्ष्मीका
रिपुसैनिकान्	शत्रु सैनिकोंको	**बुभुजे**	उपभोग किया ॥१॥

भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम् ।
यथाऽऽततायिनः शत्रून् येन गुप्तोऽजयन्मृधे ॥२॥

भगवन् तत् मम आख्याहि वर्म नारायण आत्मकं यथा आततायिनः शत्रून् येन गुप्तः अजयत् मृधे ॥२॥

भगवन्	भगवन् !	**अजयत्**	(इन्द्रने) जीता
येन गुप्तः	जिससे रक्षित होकर		(वह और)
आततायिनः	आततायी	**नारायण**	नारायण
शत्रून्	शत्रुओंको	**आत्मकं**	स्वरूप
यथा मृधे	जैसे युद्धमें	**तत् वर्म**	वह कवच
		मम आख्याहि	मुझे सुनाइये ॥२॥

श्रीशुक उवाच-

वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेन्द्रायानुपृच्छते ।
नारायणाख्यं वर्माह तदिहैकमनाः शृणु ॥३॥

वृतः पुरोहितः त्वाष्ट्रः महेन्द्राय अनुपृच्छते नारायण आख्यं वर्म आह तत् इह एकमनाः शृणु ॥३॥

त्वाष्ट्रः	त्वष्ट्रा-नन्दन (विश्वरूप)	**नारायण आख्यं**	नारायण नामक
पुरोहितः वृतः	पुरोहित रूपमें वरण हो जानेपर	**वर्म आह**	कवच कहा
अनुपृच्छते	बार-बार पूछनेवाले	**तत् इह**	वह इस समय
महेन्द्राय	इन्द्रसे	**एकमनाः शृणु**	एकाग्र चित्तसे सुनो ॥३॥

विश्वरूप उवाच-

धौताङ्घ्रिपाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः ।
कृतस्वाङ्गकरन्यासो मन्त्राभ्यां वाग्यतः शुचिः ॥४॥

धौत अङ्घ्रिपाणिः आचम्य सपवित्र उदङ्मुखः कृतः स्वाङ्ग करन्यासः मन्त्राभ्यां वाक्यतः शुचिः ॥४॥

अङ्घ्रिपाणिः	पैर-हाथ	**उदङ्मुखः**	उत्तर मुख होकर
धौत	धोकर,	**वाक्यतः**	मौन होकर
आचम्य	आचमन करके	**स्वाङ्ग**	अपना अंगन्यास,
शुचिः	पवित्र होकर	**करन्यासः**	करन्यास
सपवित्र	पवित्रा पहिनकर	**मन्त्राभ्यां कृतः**	मन्त्रोंसे करके ॥४॥*

---

* 'ॐ नमो नारायणाय' और 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इन मन्त्रोंसे अंगन्यास करना चाहिए ।

नारायणमयं वर्म सन्नह्येद् भय आगते ।
पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि ॥५॥

नारायणमयं वर्म सन्नह्येत् भय आगते पादयोः जानुनोः उर्वोः उदरे हृदि अथ उरसि ॥५॥

भय आगते	भय (का अवसर) आनेपर	**पादयोः जानुनोः**	(क्रमशः) पैरोंमें, घुटनोंमें
नारायणमयं	नारायणमय	**उर्वोः उदरे**	जांघोंमें, पेटमें,
वर्म सन्नह्येत्	कवच धारण करे,	**अथ हृदि उरसि**	और हृदय तथा छातीमें ॥५॥

मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादोङ्कारादीनि विन्यसेत् ।
ॐ नमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ॥६॥

मुखे शिरसि आनुपूर्व्यात् ओंकार आदीनि विन्यसेत् ॐ नमो नारायणाय इति विपर्ययं अथ अपि वा ॥६॥

मुखे शिरसि	मुख और सिर (इन आठ अंगों) में	**आदीनि**	प्रारम्भ करके (एक-एक अक्षर)
ॐ नमो	ॐ नमः	**वा अथ**	अथवा फिर
नारायणाय	नारायणाय	**विपर्ययं**	उलटे क्रमसे (पैरसे प्रारम्भ करके या सिरसे प्रारम्भ करके) ॥६॥
इति	इस (अष्टाक्षर मन्त्र) के		
ओंकार	ओंकारसे		

करन्यासं ततः कुर्याद् द्वादशाक्षरविद्यया ।
प्रणवादियकारान्तमङ्गुल्यङ्गुष्ठपर्वसु ॥७॥

करन्यासं ततः कुर्यात् द्वादशाक्षर विद्यया प्रणव आदि यकार अन्तं अंगुलि अंगुष्ठ पर्वसु ॥७॥

ततः	फिर
द्वादशाक्षर	द्वादशाक्षर
विद्यया	मन्त्रसे
प्रणवादि	प्रणव (ॐ) से प्रारम्भ करके
यकार अन्तं	'य' कार पर्यन्त
अंगुलि	अंगुलियों तथा
अंगुष्ठ पर्वसु	अंगूठेकी गांठोंमें (एक-एक अक्षरसे)
करन्यासं कुर्यात्	करन्यास करे ॥७॥

न्यसेद्धृदय ओङ्कारं विकारमनु मूर्धनि ।
षकारं तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखया दिशेत् ॥८॥

वेकारं नेत्रयोर्युञ्ज्यान्नकारं सर्वसन्धिषु ।
मकारमस्त्रमुद्दिश्य मन्त्रमूर्तिर्भवेद् बुधः ॥९॥

सविसर्गं फडन्तं तत् सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ।
ॐ विष्णवे नम इति ॥१०॥

न्यसेत् हृदय ओङ्कारं विकारं अनु मूर्धनि षकारं तु भ्रुवोः मध्ये णकारं शिखया दिशेत् वेकारं नेत्रयोः युञ्ज्यात् नकारं सर्वसन्धिषु मकारं अस्त्रं उद्दिश्य मन्त्रमूर्तिः भवेत् बुधः सविसर्गं फट् अन्तं तत् सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ॐ विष्णवे नमः इति ॥८,९,१०॥

ॐ विष्णवे नमः इति	ॐ विष्णवे नमः इस मन्त्रसे (फिर इस प्रकार अंगन्यास करे)
हृदय ओङ्कारं न्यसेत्	हृदयमें 'ॐ' का न्यास करे
अनु मूर्धनि	मूर्धाके ऊपर
विकारं	'वि' का,
भ्रुवोः मध्ये	दोनों भौंहोंके बीचमें
षकारं तु शिखया	(पूरे) 'ष' का ही शिखामें
णकारं दिशेत्	'ण' का निर्देश करे,
नेत्रयोः वेकारं युञ्ज्यात्	दोनों नेत्रोंमें 'वे' का (न्यासके लिए) उपयोग करे,
सर्वसान्धिषु	सब सन्धियोंमें
नकारं	'न' का
मकारं अस्त्रं	'म' अस्त्रके
उद्दिश्य	उद्देश्यसे
सविसर्गं	विसर्गके साथ
अन्तं फट्	अन्तमें फट् लगाकर (मः अस्त्राय फट्)

सर्वदिक्षु	सब दिशाओंमें		प्रकार)
विनिर्दिशेत्	संकेत करे।	**मन्त्रमूर्तिः**	मन्त्र-स्वरूप
बुधः	बुद्धिमान (इस	**भवेत्**	हो जाय ॥८,९,१०॥

आत्मानं परमं ध्यायेद् ध्येयं षट्शक्तिभिर्युतम् ।
विद्यातेजस्तपोमूर्तिमिमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥११॥

आत्मानं परमं ध्यायेत् ध्येयं षट्शक्तिभिः युतं विद्या तेजः तपः मूर्तिम् इमं मन्त्रं उदाहरेत् ॥११॥

षट्शक्तिभिः	छः (ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी ज्ञान, वैराग्य) शक्तियोंसे	**आत्मानं परमं**	अपनेको भी उन्हीं-का स्वरूप ध्यान करें।
युतं ध्येयं	युक्त आराध्य-देवका	**विद्या तेजः तपः**	(फिर) विद्या, तेज, तप
ध्यायेत्	ध्यान करे।	**मूर्तिम् इमं मन्त्रं उदाहरेत्**	स्वरूप इस मन्त्रका उच्चारण करे॥११॥

ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां
न्यस्ताङ्घ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे ।
दरारिचर्मासिगदेषुचाप-
पाशान् दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः ॥१२॥

ॐ हरिः विदध्यात् मम सर्वरक्षां न्यस्त अङ्घ्रि पद्मः पतगेन्द्र पृष्ठे दर अरि चर्म असि गद इषु चाप पाशान् दधानः अष्ट गुणः अष्ट बाहुः ॥१२॥

अष्ट गुणः	(अणिमादि) आठो सिद्धिसे युक्त	**असि गद इषु**	तलवार, गदा, बाण,
दर अरि चर्म	शंख, चक्र, ढाल,	**चाप पाशान्**	धनुष, पाश
		दधानः	लिये

अष्ट बाहुः	अष्टभुज,
पतगेन्द्र पृष्ठे	पक्षिराज गरुड़की पीठपर
अङ्घ्रि पद्म	चरण-कमल
न्यस्त	रखे
ॐ हरिः	ओंकार स्वरूप श्रीहरि
मम सर्वरक्षां	मेरी सब प्रकारसे रक्षा
विदध्यात्	करें ॥१२॥

जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्ति-
र्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात् ।
स्थलेषु मायावटुवामनोऽव्यात्
त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः ॥१३॥

जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिः यादोगणेभ्यः वरुणस्य पाशात् स्थलेषु माया वटु वामनः अव्यात् त्रिविक्रमः खे अवतु विश्वरूपः ॥१३॥

जलेषु	जलमें
मत्स्यमूर्तिः	मत्स्य स्वरूप भगवान्
यादोगणेभ्यः	जल जीवोंसे और
वरुणस्य पाशात्	वरुणके पाशसे
मां रक्षतु	मेरी रक्षा करें ।
स्थलेषु	स्थलपर
माया वटु	मायासे
वामनः	वामन ब्रह्मचारी बने
अव्यात्	(भगवान्) रक्षा करें
खे विश्वरूपः	आकाशमें विश्वरूप
त्रिविक्रमः अवतु	त्रिविक्रम भगवान् रक्षा करें ॥१३॥

दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः
पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः ।
विमुञ्चतो यस्य महाट्टहासं
दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः ॥१४॥

दुर्गेषु अटवि आजिमुख आदिषु प्रभुः पायात् नृसिंहः असुर यूथप अरिः विमुञ्चतः यस्य महा अट्टहासं दिशः विनेदुः न्यपतन् च गर्भाः ॥१४॥

यस्य महा	जिनके घोर
अट्टहासं	अट्टहास
विमुञ्चतः	करनेपर
दिशः विनेदुः	दिशाएँ गूंज उठीं
च गर्भाः	और (दैत्य स्त्रियोंके) गर्भ
न्यपतन्	गिर गये
असुर यूथप	दैत्य यूथपोंके
अरिः	शत्रु
प्रभुः नृसिंहः	(वे) भगवान् नृसिंह
दुर्गेषु अटवि	किलों, वनों
आजिमुख	युद्ध भूमि
आदिषु	आदिमें
पायात्	रक्षा करें ॥१४॥

रक्षत्वसौ माध्वनि यज्ञकल्पः
स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराहः ।
रामोऽद्रिकूटेष्वथ विप्रवासे
सलक्ष्मणोऽव्याद् भरताग्रजोऽस्मान् ॥१५॥

रक्षतु असौ मा अध्वनि यज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रया उन्नीतधरः वराहः रामः अद्रिकूटेषु अथ विप्रवासे सलक्ष्मणः अव्यात् भरत अग्रजः अस्मान् ॥१५॥

स्वदंष्ट्रया	अपनी दाढ़ोंपर
उन्नीतधरः	पृथ्वीको उठाये
यज्ञकल्पः	यज्ञ स्वरूप
असौ वराहः	ये वाराह भगवान्
अध्वनि	मार्गमें
मा रक्षतु	मेरी रक्षा करें,
अद्रिकूटेषु	पर्वतोंके शिखरोंपर
रामः	परशुरामजी,
अथ विप्रवासे	और प्रवासके समय
सलक्ष्मणः	लक्ष्मणजीके साथ
भरत अग्रजः	भरतजीके बड़े भाई (श्रीराम)
अस्मान् अव्यात्	हमारी रक्षा करें ॥१५॥

मामुग्रधर्मादखिलात् प्रमादा-
न्नारायणः पातु नरश्च हासात् ।
दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथः
पायाद् गुणेशः कपिलः कर्मबन्धात् ॥१६॥

माम् उग्रधर्मात् अखिलात् प्रमादात् नारायणः पातु नरः च हासात् दत्तः तु अयोगात् अथ योगनाथः पायात् गुणेशः कपिलः कर्मबन्धात् ॥१६॥

उग्रधर्मात्	(मारणादि) भयानक अभिचारोंसे	**योगनाथः**	योगेश्वर
अखिलात्	तथा सब	**दत्तः तु**	दत्तात्रेय तो
प्रमादात्	सावधानियोंसे	**अयोगात्**	योगके विघ्नोंसे,
नारायणः	भगवान् नारायण	**गुणेशः कपिलः**	त्रिगुणाधिप कपिल-जी
माम् पातु	मुझे बचाते रहें,	**कर्मबन्धात्**	कर्म-बन्धनसे
च नरः हासात्	तथा नर गर्वसे	**पायात्**	रक्षा करें ॥१६॥
अथ	तथा		

सनत्कुमारोऽवतु कामदेवा-
द्धयशीर्षा मां पथि देवहेलनात् ।
देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनान्तरात्
कूर्मो हरिर्मां निरयादशेषात् ॥१७॥

सनत्कुमारः अवतु कामदेवात् हयशीर्षा मां पथि देवहेलनात् देवर्षि वर्यः पुरुष अर्चन अन्तरात् कूर्मः हरिः मां निरयात् अशेषात् ॥१७॥

सनत्कुमारः	सनत्कुमारजी	**अर्चन अन्तरात्**	सेवापराधोंसे
कामदेवात्	कामदेवसे	**देवर्षि वर्यः मां**	देवर्षि श्रेष्ठ नारदजी मुझे (बचावें)
अवतु	रक्षा करें,		
पथि	मार्गमें	**कूर्मः हरिः**	कच्छप भगवान्
देवहेलनात्	(प्रणाम आदि न करने रूपी) देवताओंकी उपेक्षासे	**अशेषात्**	समस्त
		निरयात्	नरकोंसे
हयशीर्षा	हयशीर्ष भगवान् तथा	**मां**	मेरी (रक्षा करें) ॥१७॥
पुरुष	भगवत्		

धन्वन्तरिर्भगवान् पात्वपथ्याद्
द्वन्द्वाद् भयादृषभो निर्जितात्मा ।
यज्ञश्च लोकादवताज्जनान्ताद्
बलो गणात् क्रोधवशादहीन्द्रः ॥१८॥

धन्वन्तरिः भगवान् पातु अपथ्यात् द्वन्द्वात् भयात् ऋषभः निर्जित आत्मा यज्ञः च लोकात् अवतात् जनान्तात् बलः गणात् क्रोधवशात् अहीन्द्रः ॥१८॥

भगवान्	भगवान्
धन्वन्तरिः	धन्वन्तरि
अपथ्यात्	कुपथ्यसे
पातु	रक्षा करें,
द्वन्द्वात् भयात्	(सुख-दुःखादि) द्वन्द्वोंके भयसे
निर्जित आत्मा	जितेन्द्रिय
ऋषभः	ऋषभदेवजी
च यज्ञः	और यज्ञ भगवान्
लोकात्	लोकापवादसे,
बलः	बलरामजी
जनान्तात्	लोगों द्वारा मिलने-वाले कष्टोंसे
अहीन्द्रः	शेष भगवान्
क्रोधवशात्	क्रोधवश
गणात्	नामक सर्पोंसे
अवतात्	रक्षा करें ॥१८॥

द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद्
बुद्धस्तु पाखण्डगणात् प्रमादात् ।
कल्किः कलेः कालमलात् प्रपातु
धर्मावनायोरुकृतावतारः ॥१९॥

द्वैपायनः भगवान् अप्रबोधात् बुद्धः तु पाखण्ड गणात् प्रमादात् कल्किः कलेः कालमलात् प्रपातु धर्म अवनाय कृतः अवतारः ॥१९॥

भगवान्	भगवान्
द्वैपायनः	श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास
अप्रबोधात्	अज्ञानसे,
बुद्धः तु	बुद्ध भगवान् तो
पाखण्ड गणात्	पाखण्डी लोगोंसे और
प्रमादात्	प्रमादसे,

धर्म अवनाय कृतः अवतारः	धर्मकी रक्षाके लिए अतवार धारण करनेवाले	**कल्किः कलेः कालमलात् प्रपातु**	भगवान् कल्कि कलिकालके दोषोंसे रक्षा करें ॥१९॥

मां केशवो गदया प्रातरव्याद्
गोविन्द आसङ्गवमात्तवेणुः ।
नारायणः प्राह्ण उदात्तशक्ति-
र्मध्यन्दिने विष्णुररीन्द्रपाणिः ॥२०॥

मां केशवः गदया प्रातः अव्यात् गोविन्द आसङ्गवं आत्तवेणुः नारायणः प्राह्ण उद् आत्त शक्तिः मध्यंदिने विष्णुः अरीन्द्र पाणिः ॥२०॥

केशवः गदया	केशव भगवान् गदासे	**नारायणः**	नारायण
प्रातः	सबेरे,	**प्राह्ण**	पहिले प्रहरमें,
आत्तवेणुः	वंशी लिये	**अरीन्द्र पाणिः**	चक्रराज हाथमें लिए
गोविन्द	गोविन्द	**विष्णुः मध्यंदिने**	विष्णु भगवान् दोपहरमें
आसङ्गवं	दिन निकलनेपर,	**मां अव्यात्**	मेरी रक्षा करें ॥२०॥
उद् आत्त शक्तिः	शक्ति उठाये		

देवोऽपराह्णे मधुहोग्रधन्वा
सायं त्रिधामावतु माधवो माम् ।
दोषे हृषीकेश उतार्धरात्रे
निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभः ॥२१॥

देवः अपराह्णे मधुहा उग्रधन्वा सायं त्रिधामा अवतु माधवः मां दोषे हृषीकेश उत अर्धरात्रे निशीथ एकः अवतु पद्मनाभः ॥२१॥

अपराह्णे	तीसरे प्रहरमें	**सायं त्रिधामा**	सायं काल (ब्रह्मादि) त्रिमूर्तिधारी
उग्रधन्वा	प्रचण्ड धनुष लिए		
मधुहा देवः	मधुसूदन भगवान्,	**माधवः अवतु**	माधव रक्षा करें,

दोषे हृषीकेश	रात्रिके प्रारम्भमें हृषीकेश,	**निशीथ**	तथा उसके बाद तीसरे प्रहरमें
उत अर्धरात्रे	और आधी रात (दूसरे प्रहर) में	**एकः पद्मनाभः**	अकेले कमलनाभ भगवान्
		मां अवतु	मेरी रक्षा करें ॥२१

श्रीवत्सधामापररात्र ईशः
प्रत्यूष ईशोऽसिधरो जनार्दनः ।
दामोदरोऽव्यादनुसन्ध्यं प्रभाते
विश्वेश्वरो भगवान् कालमूर्तिः ॥२२॥

श्रीवत्सधामा पररात्र ईशः प्रत्यूष ईशः असिधरः जनार्दनः दामोदरः अव्यात् अनुसन्ध्यं प्रभाते विश्वेश्वरः भगवान् कालमूर्तिः ॥२२॥

श्रीवत्सधामा	श्रीवत्सलाञ्छन	**दामोदरः**	दामोदर भगवान्
ईशः	भगवान्	**प्रभाते**	अरुणोदयके समय
पररात्र	रात्रिके पिछले प्रहरमें,		तथा
		कालमूर्तिः	कालस्वरूप
असिधरः	तलवार लिए	**विश्वेश्वरः**	विश्वेश्वर भगवान्
जनार्दनः	जनार्दन	**अनुसन्ध्यं**	सब सन्ध्याओंमें
ईशः प्रत्यूष	भगवान् ब्रह्ममुहूर्तमें	**अव्यात्**	रक्षा करें ॥२२॥

चक्रं युगान्तानलतिग्मनेमि
भ्रमत् समन्ताद् भगवत्प्रयुक्तम् ।
दन्दग्धि दन्दग्ध्यरिसैन्यमाशु
कक्षं यथा वातसखो हुताशः ॥२३॥

चक्रं युगान्त अनल तिग्मनेमि भ्रमत् समन्तात् भगवत् प्रयुक्तं दन्दग्धि दन्दग्धि अरि सैन्यं आशु कक्षं यथा वातसखः हुताशः ॥२३॥

युगान्त	प्रलयकालीन
अनल	अग्नि के समान
तिग्मनेमि	प्रज्वलित तीक्ष्ण धार वाले
चक्रं	सुदर्शन चक्र
भगवत्	भगवान्
प्रयुक्तं	द्वार छोड़े गये
समन्तात्	चारों ओर
भ्रमत्	घूमते हुए
आशु	शीघ्र
अरिसैन्यं	शत्रु सेनाको
दन्दग्धि	जलादो,
दन्दग्धि	जलादो,
यथा	जैसे
वातसखः	वायुसे मिलकर
हुताशः कक्षं	अग्नि फूसके झोपड़ेको ॥२३॥

गदेऽशनिस्पर्शनविस्फुलिङ्गे
निष्पिण्ढि निष्पिण्ढ्यजितप्रियासि ।
कूष्माण्डवैनायकयक्षरक्षो-
भूतग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन् ॥२४॥

गदे अशनि स्पर्शन विस्फुलिङ्गे निष्पिण्ढि निष्पिण्ढि अजितप्रिया असि कूष्माण्ड वैनायक यक्ष रक्षः भूत ग्रहान् चूर्णय चूर्णय अरीन् ॥२४॥

अशनि स्पर्शन	वज्र-कठोर
विस्फुलिङ्गे	चिनगारियाँ फेंकती
गदे	गदा ! तुम
अजित	भगवान् अजितको
प्रिया असि	प्यारी हो,
कूष्माण्ड	कूष्माण्ड,
वैनायक	विनायक,
यक्ष रक्षः	यक्ष, राक्षस,
भूत ग्रहान्	भूत और ग्रहोंको
निष्पिण्ढि	कुचल दो,
निष्पिण्ढि	कुचल दो,
अरीन	(हमारे) शत्रओंको
चूर्णय चूर्णय	चूर-चूर कर दो ॥२४॥

त्वं यातुधानप्रमथप्रेतमातृ-
पिशाचविप्रग्रहघोरदृष्टीन् ।
दरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितो
भीमस्वनोऽरेर्हृदयानि कम्पयन् ॥२५॥

त्वं यातुधान प्रमथ प्रेत मातृ पिशाच विप्रग्रह घोर दृष्टीन् दरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितः भीमस्वनः अरेः हृदयानि कम्पयन् ॥२५॥

कृष्णपूरितः	भगवान कृष्णसे बजाये जाते	**यातुधान प्रमथ**	यातुधान, प्रमथ,
		प्रेत मातृ	प्रेत, मातृका
दरेन्द्र त्व	शंखराज तुम	**पिशाच**	पिशाच,
भीमस्वनः	अपने घोर शब्दसे	**विप्रग्रह**	ब्रह्मराक्षस आदि
अरेः हृदयानि	(हमारे) शत्रुओंके हृदयोंको	**घोर दृष्टीन्**	क्रूर दृष्टिवालोंको
		विद्रावय	भगा दीजिए ॥२५॥
कम्पयन्	कम्पित करते		

त्वं तिग्मधारासिवरारिसैन्य-
मीशप्रयुक्तो मम छिन्धि छिन्धि ।
चक्षूंषि चर्मञ्छतचन्द्र छादय
द्विषामघोनां हर पापचक्षुषाम् ॥२६॥

त्वं तिग्मधार असिवर अरिसैन्यं ईश प्रयुक्तः मम छिन्धि छिन्धी चक्षूंषि चर्मन् शतचन्द्र छादय द्विषां अघोनां हर पाप चक्षुषाम् ॥२६॥

तिग्मधार	तीक्ष्ण धार वाली	**चर्मन्**	(भगवान्की) ढाल
असिवर	श्रेष्ठ (भगवान् की) तलवार !	**अघोनां द्विषं**	पापी शत्रुओंकी
		चक्षूंषि	आँखोंको
त्वं मम	तुम मेरे	**छादय**	ढँक दीजिये
अरिसैन्यं ईश	शत्रु सेनाको	**पाप चक्षुषां**	(उन) पाप दृष्टिवालोंके
छिन्धि छिन्धि	टुकड़े-टुकड़े		
प्रयुक्तः	काट दो	**हर**	(नेत्र) हरण कर
शतचन्द्र	सैकड़ों मण्डलवाले		लीजिये ॥२६॥

यन्नो भयं ग्रहेभ्योऽभूत् केतुभ्यो नृभ्य एव च ।
सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योंऽहोभ्य एव वा ॥२७॥

यत् नः भयं ग्रहेभ्यः अभूत् केतुभ्यः नृभ्य एव च सरीसृपेभ्यः दंष्ट्रिभ्यः भूतेभ्यः अहःभ्य एव वा ॥२७॥

नः यत् भयं	हमको जो भय
ग्रहेभ्यः केतुभ्यः	ग्रहोंसे, धूमकेतुसे,
च नृभ्य एव	और मनुष्योंसे,
सरीसृपेभ्यः	(सर्पादि) रेंगने वालोंसे,
दंष्ट्रिभ्यः	हिंसक पशुओंसे,
भूतेभ्यः	भूत-प्रेतोंसे,
वा	अथवा
अहःभ्यः एव अभूत्	पापी-प्राणियोंसे ही होवे ॥२७॥

सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात् ।
प्रयान्तु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयःप्रतीपकाः ॥२८॥

सर्वाणि एतानि भगवत् नाम रूप अस्त्र कीर्तनात् प्रयान्तु संक्षयं सद्यः ये नः श्रेयः प्रतीपकाः ॥२८॥

ये नः	(और) जो हमारे
श्रेयः प्रतीपकाः	मंगलके विरोधी हों
एतानि सर्वाणि	ये सब
भगवत्	भगवान् के
नाम रूप	नाम, रूप तथा
अस्त्र	अस्त्रोंका
कीर्तनात्	कीर्तन करनेसे
सद्यः	तुरन्त
संक्षयं प्रयान्तु	नष्ट हो जायं ॥२८॥

गरुडो भगवान् स्तोत्रस्तोभश्छन्दोमयः प्रभुः ।
रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्सेनः स्वनामभिः ॥२९॥

गरुडः भगवान् स्तोत्रः तोभः छन्दः मयः प्रभुः रक्षतु अशेष कृच्छ्रेभ्यः विष्वक्सेनः स्वनामभिः ॥२९॥

छन्दः मयः	वेदमन्त्रोंकी
स्तोत्रः	स्तुतियोंसे
तोभः	स्तुत होनेवाले
प्रभुः भगवान्	समर्थ भगवान्
गरुडः	गरुड़ और
विष्वक्सेनः	विष्वक्सेनजी
स्वनामभिः	अपने नाम (उच्चारण)के प्रभावसे
अशेष	सब
कृच्छ्रेभ्यः	विपत्तियोंसे
रक्षतु	(हमारी) रक्षा करें ॥२९॥

सर्वापद्भ्यो हरेर्नामरूपयानायुधानि नः ।
बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् पान्तु पार्षदभूषणाः ॥३०॥

सर्व आपत्भ्यः हरेः नाम रूप यान आयुधानि नः बुद्धि इन्द्रिय मनः प्राणान् पान्तु पार्षद भूषणाः ॥३०॥

हरेः नाम	श्रीहरिके नाम,	**नः बुद्धि इन्द्रिय**	हमारी बुद्धि, इन्द्रिय
रूप, यान	रूप, वाहन,	**मनः**	मन
आयुधानि	आयुध	**प्राणान् पान्तु**	और प्राणोंकी रक्षा
पार्षद भूषणाः	श्रेष्ठ-पार्षद		करें ॥३०॥
सर्व आपत्भ्यः	सब विपत्तियोंसे		

यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत् ।
सत्येनानेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः ॥३१॥

यथा हि भगवान् एव वस्तुतः सत् असत् च यत् सत्येन अनेन नः सर्वे यान्तु नाशं उपद्रवाः ॥३१॥

यथा हि	जैसे कि	**अनेन सत्येन**	इस सत्यके प्रभावसे
यत् सत्	जो भी कारण-	**नः सर्वे**	हमारे सब
असत् च	कार्य रूपमें है	**उपद्रवाः**	उपद्रव
वस्तुतः	वस्तुतः	**नाशं यान्तु**	नष्ट हो जायं ॥३१॥
भगवान् एव	भगवान ही हैं,		

यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम् ।
भूषणायुधलिङ्गाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया ॥३२॥

यथा एकात्म्य अनुभावानां विकल्प रहितः स्वयं भूषण आयुध लिङ्ग आख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया ॥३२॥

यथा	जैसे	**अनुभावानां**	अनुभव करनेवालों-
एकात्म्य	(ब्रह्म आत्माकी)		के लिए
	एकताका	**विकल्प रहितः**	भेदोंसे रहित

स्वयं	स्वयं (भगवान् ही)	**लिङ्ग आख्या**	चिह्न (रूप) और नाम
स्वमायया	अपनी माया		
शक्तिः	शक्तिसे	**धत्ते**	धारण करते हैं ॥३२॥
भूषण आयुध	आभूषण, आयुध		

तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान् हरिः ।
पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥३३॥

तेन एव सत्यमानेन सर्वज्ञः भगवान् हरिः पातु सर्वैः स्वरूपैः नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥३३॥

तेन एव	इसी	**सर्वैः स्वरूपैः**	अपने सब रूपोंसे
सत्यमानेन	सच्ची मान्यतासे	**सदा सर्वत्र**	सर्वदा, सर्वत्र
सर्वज्ञः सर्वगः	सर्वज्ञ, सर्वव्यापी	**नः पातु**	हमारी रक्षा करें ॥३३॥
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरि		

विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समन्ता-
दन्तर्बहिर्भगवान् नारसिंहः ।
प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन
स्वतेजसा ग्रस्तसमस्ततेजाः ॥३४॥

विदिक्षु दिक्षु ऊर्ध्वं अधः समन्तात् अन्तः बहिः भगवान् नारसिंहः प्रहापयन् लोक भयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्त समस्त तेजाः ॥३४॥

स्वनेन	अपनी गर्जनासे	**विदिक्षु दिक्षु**	(ईशानादि)कोणोंमें, दिशाओंमें,
लोक भय	सबके भयको		
प्रहापयन्	दूर करते हुए,	**ऊर्ध्वं अधः**	ऊपर, नीचे,
स्वतेजसा	अपने तेजसे	**अन्तः बहिः**	भीतर-बाहर
समस्त तेजाः	सब तेजोंको	**समन्तात्**	सब ओरसे (हमारी रक्षा करें) ॥३४॥
ग्रस्त	ग्रस लेनेवाले		
भगवान्	भगवान्		
नारसिंहः	नृसिंह		

मघवन्निदमाख्यातं वर्म नारायणात्मकम् ।
विजेष्यस्यञ्जसा येन दंशितोऽसुरयूथपान् ॥३५॥

मघवन् इदं आख्यातं वर्म नारायण आत्मकं विजेष्यसि अञ्जसा येन दंशितः असुर यूथपान् ॥३५॥

मघवन्	महेन्द्र !	**अञ्जसा**	सरलतापूर्वक
इदं नारायण	यह नारायण	**असुर यूथपान्**	असुर सेना नायकोंको-
आत्मकं	स्वरूप	**विजेष्यसि**	जीत लोगे ॥३५॥
वर्म आख्यातं	कवच बतला दिया		
येन दंशितः	जिस कवचको धारण करके !		

एतद् धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा ।
पदा वा संस्पृशेत् सद्यः साध्वसात् स विमुच्यते ॥३६॥

एतत् धारयमाणः तु यं यं पश्यति चक्षुषा पदा वा संस्पृशेत् सद्यः साध्वसात् स विमुच्यते ॥३६॥

एतत्	इसको	**स सद्यः**	वह तत्काल
धारयमाणः	धारण करनेवाला	**साध्वसात्**	भयसे
तु	तो	**विमुच्यते**	मुक्त हो जाता है ॥३६॥
यं यं	जिस-जिसको		
चक्षुषा पश्यति	आँखसे देख लेता है,		
वा पदा	अथवा पैरसे		
संस्पृशेत्	छू देता है,		

न कुतश्चिद् भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत् ।
राजदस्युग्रहादिभ्यो व्याघ्रादिभ्यश्च कर्हिचित् ॥३७॥

न कुतश्चित् भयं तस्य विद्यां धारयतः भवेत् राज दस्यु ग्रह आदिभ्यः व्याघ्र आदिभ्यः च कर्हिचित् ॥३७॥

विद्यां धारयतः	इस विद्याको धारण करनेवाले
तस्य	किसीको भी
राज दस्यु	राजा, डाकू
ग्रह आदिभ्यः	ग्रह आदिसे,
च व्याघ्र आदिभ्यः	तथा बाघ आदिसे
कुतश्चित्	कहीं भी,
कर्हिचित्	कभी भी,
भयं न भवेत्	भय नहीं होता ॥३७॥

इमां विद्यां पुरा कश्चित् कौशिको धारयन् द्विजः ।
योगधारणया स्वाङ्गं जहौ स मरुधन्वनि ॥३८॥

इमां विद्यां पुरा कश्चित् कौशिकः धारयन् द्विजः योगधारणया स्व अङ्गम् जहौ स मरुधन्वनि ॥३८॥

पुरा कश्चित्	पुराने समयमें कोई
कौशिकः द्विजः	कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण
इमां विद्यां	इस विद्याको
धारयन्	धारण करते हुए
स मरुधन्वनि	उसने मरुस्थलमें
योगधारणया	योगधारणा द्वारा
स्व अङ्गं	अपना शरीर
जहौ	त्याग दिया ॥३८॥

तस्योपरि विमानेन गन्धर्वपतिरेकदा ।
ययौ चित्ररथः स्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः ॥३९॥

तस्य उपरि विमानेन गन्धर्वपतिः एकदा ययौ चित्ररथः स्त्रीभिः वृतः यत्र द्विजक्षयः ॥३९॥

एकदा	एकबार
गन्धर्वपतिः	गन्धर्वराज
चित्ररथः	चित्ररथ
स्त्रीभिः वृतः	स्त्रियोंसे घिरे
विमानेन	विमानद्वारा
यत्र द्विजक्षयः	जहाँ वह ब्राह्मण मरा था,
तस्य उपरि	उस स्थानके ऊपर
ययौ	गये ॥३९॥

गगनान्न्यपतत् सद्यः सविमानोह्यवाक्शिराः ।
स वालखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः ।
प्रास्य प्राचीसरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वमन्वगात् ॥४०॥

गगनात् न्यपतत् सद्यः सविमानः हि अवाक् शिराः स वालखिल्य वचनात् अस्थीनि आदाय विस्मितः प्रास्य प्राची सरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वं अन्वगात् ॥४०॥

सद्यः गगनात्	तुरन्त आकाशसे	**अस्थीनि आदाय**	उसकी हड्डियाँ लेकर
सविमानः हि	विमानके साथ ही	**प्राची**	पूर्ववाहिनी
अवाक् शिराः	नीचे सिर किये	**सरस्वत्यां**	सरस्वतीमें
न्यपतत्	गिर गये	**प्रास्य**	डालकर वहाँ
विस्मितः	(इससे) विस्मित हो गये	**स्नात्वा**	स्नान करके
वालखिल्य	फिर वालखिल्य	**स्वं धाम**	तब अपने धाम
वचनात्	मुनियोंके कहनेसे	**अन्वगात्**	चले गये ॥४०॥

श्रीशुक उवाच–

य इदं शृणुयात् काले यो धारयति चादृतः ।
तं नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतो भयात् ॥४१॥

य इदं शृणुयात् काले यः धारयति च आदृतः तं नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतः भयात् ॥४१॥

य इदं काले शृणुयात्	जो इसको समयपर सुनता है	**नमस्यन्ति**	झुक जाते हैं
च यः आदृतः धारयति	और जो आदरपूर्वक धारण करता है,	**सर्वतः भयात्**	(वह) सब ओरसे भयसे
तं भूतानि	उसके सामने सब प्राणी	**मुच्यते**	मुक्त हो जाता है ॥४१॥

एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः ।
त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥४२॥

एतां विद्यां अधिगतः विश्वरूपात् शतक्रतुः त्रैलोक्य लक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधे असुरान् ॥४२॥

विश्वरूपात्	विश्वरूपसे	**विनिर्जित्य**	जीतकर
एतां विद्यां	इस विद्याको	**त्रैलोक्य**	त्रिभुवनकी
अधिगतः	प्राप्त करके	**लक्ष्मीं**	लक्ष्मीका
शतक्रतुः	शक्रने	**बुभुजे**	उपभोग करने
मृधे असुरान्	युद्धमें असुरोंको		लगे ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे नारायणवर्मकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

तस्यासन् विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत ।
सोमपीथं सुरापीथमन्नादमिति शुश्रुम ॥१॥

तस्य आसन् विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत सोमपीथं सुरापीथं अन्नादं इति शुश्रुम ॥१॥

भारत	परीक्षित !	**अन्नादं**	अन्न खानेवाला
तस्य	उन	**त्रीणि शिरांसि**	तीन सिर
विश्वरूपस्य	विश्वरूपके	**आसन् इति**	थे ऐसा
सोमपीथं	सोमपान करनेवाला,	**शुश्रुम**	सुना है ॥१॥
सुरापीथं	शराब पीनेवाला और		

स वै बर्हिषि देवेभ्यो भागं प्रत्यक्षमुच्चकैः ।
अवदद् यस्य पितरो देवाः सप्रश्रयं नृप ॥२॥

स वै बर्हिषि देवेभ्यः भागं प्रत्यक्षं उच्चकैः अवदत् यस्य पितरः देवाः सप्रश्रयं नृप ॥२॥

नृप	परीक्षित !	**प्रत्यक्षं उच्चकैः**	प्रत्यक्ष ऊँचे स्वरसे
वै स	निश्चय वे	**देवेभ्यः भागं**	देवताओंका भाग
यस्य पितरः	जिनके पिता (त्वष्टा)	**सप्रश्रयं**	बड़ी नम्रतासे
देवाः	देवता थे ।	**अवदत्**	बोलकर देते थे ॥२॥
बर्हिषि	यज्ञमें		

स एव हि ददौ भागं परोक्षमसुरान् प्रति ।
यजमानोऽवहद् भागं मातृस्नेहवशानुगः ॥३॥

स एव हि ददौ भागं परोक्षं असुरान् प्रति यजमानः अवहत् भागं मातृस्नेहवश अनुग ॥३॥

यजमानः	यज्ञ करते समय	**परोक्षं**	छिपाकर
मातृस्नेहवशः	माताके स्नेहके वश	**असुरान् प्रति**	असुरोंके लिए
अनुगः	उनके अनुयायी होकर	**भागं अवहत्**	भाग उठाकर
		ददौ	दे देते थे ॥३॥
स एव हि	वह (विश्वरूप) ही		

तद् देवहेलनं तस्य धर्मालीकं सुरेश्वरः ।
आलक्ष्य तरसा भीतस्तच्छीर्षाण्यच्छिनद् रुषा ॥४॥

तत् देवहेलनं तस्य धर्म अलीकं सुरेश्वरः आलक्ष्य तरसा भीतः तत् शीर्षाणि अच्छिनत् रुषा ॥४॥

तस्य तत्	उनका वह	**सुरेश्वरः**	इन्द्र
देव-	देवताओंकी	**तरसा भीतः**	सरसा डर गये,
हेलनं	अवहेलना तथा	**रुषा तत्**	क्रोधसे उनके
अलीकं धर्म	कपट पूर्ण धर्म	**शीर्षाणि**	मस्तक
आलक्ष्य	देखकर	**अच्छिनत्**	काट दिये ॥४॥

सोमपीथं तु यत् तस्य शिर आसीत् कपिञ्जलः ।
कलविङ्कः सुरापीथमन्नादं यत् स तित्तिरिः ॥५॥

सोमपीथं तु यत् तस्य शिर आसीत् कपिञ्जलः कलविङ्कः सुरापीथं अन्नादं यत् स तित्तिरिः ॥५॥

तस्य	उनका	**सोमपीथं**	सोमपान करनेवाला
यत् शिर	जो सिर		था वह तो

कपिञ्जलः	पपीहा,	**स तित्तिरिः**	वह तीतर
सुरापोथं	शराब पीनेवाला	**आसीत्**	हो गया ॥५॥
कलविङ्कः	गौरैया		
यत् अन्नादं	जो अन्न खानेवाला था		

ब्रह्महत्यामञ्जलिना जग्राह यदपीश्वरः ।
संवत्सरान्ते तदघं भूतानां स विशुद्धये ।
भूम्यम्बुद्रुमयोषिद्भ्यश्चतुर्धा व्यभजद्धरिः ॥६॥

ब्रह्महत्यां अञ्जलिना जग्राह यदपि ईश्वरः संवत्सर अन्ते तत् अघं भूतानां स विशुद्धये भूमि अम्बु द्रुम योषित्भ्यः चतुर्धा व्यभजत् हरिः ॥६॥

यदपि हरिः ईश्वरः	यद्यपि इन्द्र (वह पाप नष्ट कर देनेमें) समर्थ थे तो भी	**स भूतानां विशुद्धये**	उन्होंने प्राणियोंकी शुद्धताके लिए*
		तत् अघं	उस पापको
		भूमि अम्बु द्रुम	भूमि, जल, वृक्ष
ब्रह्महत्यां	ब्रह्महत्याको	**योषित्भ्यः**	स्त्रियोंमें
अञ्जलिना	हाथ जोड़कर	**चतुर्धा**	चार भागोंमें
जग्राह	ग्रहण कर लिया,	**व्यभजत्**	बाँट दिया ॥६॥
संवत्सर अन्ते	एक वर्षके अन्तमें		

भूमिस्तुरीयं जग्राह खातपूरवरेण वै ।
ईरिणं ब्रह्महत्याया रूपं भूमौ प्रदृश्यते ॥७॥

भूमिः तुरीयं जग्राह खातपूर वरेण वै ईरिणं ब्रह्महत्यायाः रूपं भूमौ प्रदृश्यते ॥७॥

---

* इन्द्र वर्षाके देवता हैं। हत्या लगी रहनेपर वर्षा करते तो ब्रह्म-हत्यारेका छुआ जल पीकर सब प्राणी अपवित्र हो जाते।

वै खातपूर	निश्चय गढ्डा होने-पर (स्वतः क्रमशः) भर जायगा
वरेण	(इस) वरदानको पाकर
भूमिः तुरीयं	भूमि ले (पापका) चौथाई भाग
जग्राह	ग्रहणकर लिया।
ब्रह्महत्याया	ब्रह्महत्याका
रूपं	रूप
भूमौ	पृथ्वीमें
ईरिणं	ऊसर (कहीं-कहीं)
प्रदृश्यते	दिखलायी पड़ता है ॥७॥

तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहुर्द्रुमाः ।
तेषां निर्यासरूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥८॥

तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहुः द्रुमाः तेषां निर्यास रूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥८॥

छेद विरोहेण	(कोई भाग)काटनेपर फिर उग जायगा
वरेण	इस वरदानके बदले
तुर्यं द्रुमाः	चौथाई (पाप)
जगृहुः	वृक्षोंने ग्रहण किया,
तेषां निर्यास	उनमें गोंदके
रूपेण	रूपमें
ब्रह्महत्या	ब्रह्महत्या
प्रदृश्यते	दीखती है ॥८॥

शश्वत्कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुः स्त्रियः ।
रजोरूपेण तास्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते ॥९॥

शश्वत् काम वरेण अंहः तुरीयं जगृहुः स्त्रियः रजःरूपेण ताः सु अंहः मासि मासि प्रदृश्यते ॥९॥

शश्वत् काम	सर्वदा पुरुषसे सह-वासकी शक्ति
वरेण	इस वरदानके बदले
अंहः तुरीयं	पापका चौथाई भाग
स्त्रियः जगृहुः	स्त्रियोंने ग्रहण किया
ताः सु अंहः	उनमें वह पाप
मासि मासि	प्रत्येक महीने
रजः	रजस्वला होनेके
रूपेण	रूपमें
प्रदृश्यते	दिखलायी देता है ॥९॥

द्रव्यभूयोवरेणापस्तुरीयं जगृहुर्मलम् ।
तासु बुद्बुदफेनाभ्यां दृष्टं तद्धरति क्षिपन् ॥१०॥

द्रव्य भूयः वरेण आपः तुरीयं जगृहुः मलं तासु बुद्बुद फेनाभ्यां दृष्टं तत् हरति क्षिपन् ॥१०॥

द्रव्यः भूयः	(किसीमें मिलानेपर वह) द्रव्य बढ़ जायगा	**तासु बुद्बुद फेनाभ्यां**	उसमें बुलबुले और फेनके द्वारा वह
वरेण	इस वरदानसे	**दृष्टं**	दीखता है,
आपः तुरीयं	जलने चौथाई	**तत् क्षिपन्**	उस (फेनादिको) हटाकर
मलं	पाप	**हरति**	(जल) लेते हैं॥१०॥
जगृहुः	ग्रहण किया,		

हतपुत्रस्ततस्त्वष्टा जुहावेन्द्राय शत्रवे ।
इन्द्रशत्रो विवर्धस्व माचिरं जहि विद्विषम् ॥११॥

हतपुत्रः ततः त्वष्टा जुहाव इन्द्राय शत्रवे इन्द्रशत्रुः विवर्धस्व माचिरं जहि विद्विषं ॥११॥

ततः हतपुत्रः	तब पुत्रके मारे जानेपर	**विवर्धस्व**	तुम्हारी अभिवृद्धि हो,
त्वष्टा	त्वष्टाने	**विद्विषं**	अपने शत्रुको
इन्द्राय शत्रवे	शत्रु इन्द्रके (विपरीत)	**माचिरं जहि**	शीघ्र मार डालो,
इन्द्रशत्रुः	हे इन्द्रके शत्रु	**जुहाव**	(इस मन्त्रसे) हवन करने लगे ॥११॥

अथान्वाहार्यपचनादुत्थितो घोरदर्शनः ।
कृतान्त इव लोकानां युगान्तसमये यथा ॥१२॥

अथ अन्वाहार्यपचनात् उत्थितः घोरदर्शनः कृतान्त इव लोकानां युगान्त समये यथा ॥१२॥

अथ	तत्र
अन्वाहार्य-	अन्वाहार्य-
पचनात्	पचन (नामक
	दक्षिणाग्निसे
यथा युगान्त	जैसे प्रलयके
समये	समय
लोकानां	सब लोकोंके लिए
कृतान्त इव	(साक्षात्) काल
	समान
घोरदर्शनः	भयानककृति
उत्थितः	(एक दैत्य) उठ
	खड़ा हुआ ॥१२॥

विष्वग्विवर्धमानं तमिषुमात्रं दिने दिने ।
दग्धशैलप्रतीकाशं सन्ध्याभ्रानीकवर्चसम् ॥१३॥

विष्वक् विवर्धमानं तं इषुमात्रं दिने दिने दग्धशैल प्रतीकाशं सन्ध्या अभ्र अनीक वर्चसम् ॥१३॥

इषुमात्रं	वाणके बराबर
तं दिने दिने	उसे प्रतिदिन
विष्वक्	चारों ओर
विवर्धमानं	बढ़ता,
दग्धशैल	जले हुए पर्वतके
प्रतीकाशं	समान (काला)
सन्ध्या	सन्ध्या कालीन
अभ्र अनीक	मेघ-मण्डलके समान
वर्चसम्	कान्तिवाला
	(देखकर) ॥१३॥

तप्ततामशिखाश्मश्रुं मध्याह्नार्कोग्रलोचनम् ॥१४॥
तप्ततामशिखाश्मश्रुं मध्याह्न अर्क उग्र लोचनं ॥१४॥

तप्ततामशिखाश्मश्रुं	तपाये तांबेके समान सिरके केश और दाढ़ीवाले,
मध्याह्न	दोपहरके
अर्क	सूर्यके समान
उग्र लोचनं	उग्र नेत्रको ॥१४॥

देदीप्यमाने त्रिशिखे शूल आरोप्य रोदसी ।
नृत्यन्तमुन्नदन्तं च चालयन्तं पदा महीम् ॥१५॥

देदीप्यमाने त्रिशिखे शूल आरोप्य रोदसी नृत्यन्तं उन्नदन्तं च चालयन्तं पदा महीम् ॥१५॥

देदीप्यमाने	चमकते हुए
त्रिशिखे शूलं	त्रिशूलको
रोदसी	आकाशमें
आरोप्य	उठाकर
नृत्यन्तं	नाचते,
उन्नदन्तं	चिल्लाते,
च पदा महीं	और पैरोंसे (कूद-कूदकर) पृथ्वीको
चालयन्तं	कँपाते हुए ॥१५॥

दरीगम्भीरवक्त्रेण पिबता च नभस्तलम् ।
लिहता जिह्वयर्क्षाणि ग्रसता भुवनत्रयम् ॥१६॥

दरीगम्भीर वक्त्रेण पिबता च नभस्तलं लिहता जिह्वया अर्क्षाणि ग्रसता भुवनत्रयम् ॥१६॥

दरीगम्भीर	गुफाके समान गहरे
वक्त्रेण	मुखके द्वारा
नभस्तलं च	आकाशको ही
पिबता च	पी जाता सा,
जिह्वया	जिह्वासे
अर्क्षाणि	नक्षत्रोंको
लिहता	चाटता सा,
भुवनत्रयं	तीनों लोकोंको
ग्रसता	निगल जाता सा ॥१६॥

महता रौद्रदंष्ट्रेण जृम्भमाणं मुहुर्मुहुः ।
वित्रस्ता दुद्रुवुर्लोका वीक्ष्य सर्वे दिशो दश ॥१७॥

महता रौद्र दंष्ट्रेण जृम्भमाणं मुहुः मुहुः वित्रस्ता दुद्रुवुः लोका वीक्ष्य सर्वे दिशः दश ॥१७॥

महता रौद्र	बड़े-बड़े भयानक
दंष्ट्रेण	दाँतोंको दिखाते हुए
मुहुः मुहुः	बार-बार
जृम्भमाणं	जम्हाई लेते (उसे)
वीक्ष्य वित्रस्ता	देखकर अत्यन्त डरे हुए
सर्वे लोका	सब लोग
दिशः दश	दसो दिशाओंमें
दुद्रुवुः	आग गये ॥१७॥

येनावृता इमे लोकास्तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना ।
स वै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः ॥१८॥

येन आवृता इमे लोकाः तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना स वै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः ॥१८॥

येन तमसा	जिस तमोगुणी	**परमदारुणः**	अत्यन्त क्रूर
त्वाष्ट्रमूर्तिना	त्वष्टाके पुत्रसे	**पापः**	पापी
इमे लोकाः	ये सब लोक	**वृत्र इति**	वृत्र इस
आवृता	घेर लिये गये,	**प्रोक्तः**	नामसे कहा गया ॥१८॥
वै स	निश्चय वह		

तं निजघ्नुरभिद्रुत्य सगणा विबुधर्षभाः ।
स्वैः स्वैर्दिव्यास्त्रशस्त्रौघैः सोऽग्रसत् तानि कृत्स्नशः ॥१९॥

तं निजघ्नुः अभिद्रुत्य सगणा विबुधर्षभाः स्वैः स्वैः दिव्यास्त्र शस्त्रौघैः सः अग्रसत् तानि कृत्स्नशः ॥१९॥

सगणा	अपने सेवकोंके साथ	**शस्त्रौघैः**	तथा शस्त्र समूहोंसे
विबुधर्षभाः	देवनायकोंने	**तं निजघ्नुः**	उसे मारा
अभिद्रुत्य	दौड़ते हुए पास आकर	**सः तानि**	उसने उन
स्वैः स्वैः	अपने-अपने	**कृत्स्नशः**	सभी (अस्त्र-शस्त्रोंको)
दिव्यास्त्र	दिव्यास्त्रों	**अग्रसत्**	निगल लिया ॥१९॥

ततस्ते विस्मिताः सर्वे विषण्णा ग्रस्ततेजसः ।
प्रत्यञ्चमादि पुरुषमुपतस्थुः समाहिताः ॥२०॥

ततः ते विस्मिताः सर्वे विषण्णा ग्रस्ततेजसः प्रत्यञ्चं आदि पुरुषं उपतस्थुः समाहिताः ॥२०॥

ततः ते	तब तो वे	**समाहिताः**	एकाग्र चित्तसे
सर्वे	सब (देवता)	**प्रत्यञ्चम्**	हृदयमें स्थित
विस्मिताः	आश्चर्यमें पड़ गये ।	**आदि पुरुषं**	आदि पुरुष परमात्माकी
ग्रस्ततेजसः	प्रभाव छीने जानेसे		
विषण्णा	उदास होकर	**उपतस्थुः**	शरणमें गये ॥२०॥

देवा ऊचुः—

वाय्वम्बराग्न्यप्क्षितयस्त्रिलोका
ब्रह्मादयो ये वयमुद्विजन्तः ।
हराम यस्मै बलिमन्तकोऽसौ
बिभेति यस्मादरणं ततो नः ॥२१॥

वायु अम्बर अग्नि अप् क्षितयः त्रिलोका ब्रह्मा आदयः ये वयं उद्विजन्तः हराम यस्मै बलिं अन्तकः असौ बिभेति यस्मात् अरणं ततः नः ॥२१॥

वायु अम्बर	वायु, आकाश,
अग्नि अप्	अग्नि, जल
क्षितयः	पृथ्वी आदि (पञ्चभूत)
त्रिलोका	(इनसे बने) तीनों लोक
ब्रह्मा आदयः	(उनके अधिपति) ब्रह्मा आदि
ये वयं	जो हम लोग हैं,
उद्विजन्तः	उद्विग्न होकर
यस्मै बलिं	जिसे उपहार
हराम	देते हैं,
असौ अन्तकः	वह यह काल
यस्मात् बिभेति	जिससे डरता है
ततः नः अरणं	वही प्रभु अब हमारे रक्षक हैं ॥२१॥

अविस्मितं तं परिपूर्णकामं
स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम् ।
विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः
श्वलाङ्गुलेनातितितर्ति सिन्धुम् ॥२२॥

अविस्मितं तं परिपूर्ण कामं स्वेन एव लाभेन समं प्रशान्तं विना उपसर्पति अपरं हि बालिशः श्वलाङ्गुलेन अतितितर्ति सिन्धुम् ॥२२॥

तं	उन
अविस्मितं	कभी आश्चर्यमें न पड़ने वाले
स्वेन एव	अपने स्वरूपो-
लाभेन	पलब्धिसे ही
परिपूर्ण कामं	सर्वथा पूर्णकाम,

समं प्रशान्तं	सबके प्रति समान, अत्यन्त शान्त
विना अपरं	आपको छोड़कर (कोई)
उपसर्पति	दूसरेके समीप जाता है।
हि बालिशः	क्योंकि मूर्ख है (वह)
श्वलाङ्गुलेन	कुत्ते की पूँछके सहारे
सिन्धुं	समुद्रके
अतितितर्ति	पार जाना चाहता है ॥२२॥

यस्योरुशृङ्गे जगतीं स्वनावं
मनुर्यथाऽऽबध्य ततार दुर्गम्।
स एव नस्त्वाष्ट्रभयाद् दुरन्तात्
त्राताऽऽश्रितान् वारिचरोऽपि नूनम् ॥२३॥

यस्य उरुशृङ्गे जगतीं स्वनावं मनुः यथा आबध्य ततार दुर्गं स एव नः त्वाष्ट्र भयात् दुरन्तात् त्राता आश्रितान् वारिचरः अपि नूनम् ॥२३॥

यस्य उरुशृङ्गे	जिनके बड़े भारी सींगमें
जगतीं	पृथ्वी रूपी
स्वनावं	अपनी नौकाको
आबध्य	बाँधकर
यथा मनुः	जैसे मनु
दुर्गं ततार	(प्रलय) सङ्कटको पारकर गये
वारिचरः अपि	जलचर होनेपर भी
नः आश्रितान्	हम शरणागतोंको
दुरन्तात्	दुस्तर
त्वाष्ट्र भयात्	वृत्रासुरके भयसे
नूनं त्राता	निश्चय बचावेंगे ॥२३॥

पुरा स्वयम्भूरपि संयमाम्भ-
स्युदीर्णवातोर्मिरवैः कराले।
एकोऽरविन्दात् पतितस्ततार
तस्माद् भयाद् येन स नोऽस्तु पारः ॥२४॥

पुरा स्वयम्भूः अपि संयम अम्भसि उदीर्ण वात उर्मिरवैः कराले एकः अरविन्दात् पतितः ततार तस्मात् भयात् येन स नः अस्तु पारः ॥२४॥

पुरा स्वयम्भूः	पहिले ब्रह्माजी	**पतितः**	गिरनेपर भी
अपि	भी	**येन**	जिसके सहारे
उदीर्ण वात	उठती आँधी तथा	**तस्मात् भयात्**	उस भयसे
कराले	भयानक	**ततार**	पार हो गये
उर्मिरवैः	लहरोंके शब्दवाले	**स नः**	वही (प्रभु) हम
संयम अम्भसि	प्रलय समुद्रमें		लोगोंके लिए
एकः	अकेले (अपने आसन)	**पारः अस्तु**	(इस विपत्ति समुद्रमें)
अरविन्दात्	कमलसे		किनारे बनें ॥२४॥

य एक ईशो निजमायया नः
ससर्ज येनानुसृजाम विश्वम् ।
वयं न यस्यापि पुरः समीहतः
पश्याम लिङ्गं पृथगीशमानिनः ॥२५॥

य एक ईशः निजमायया नः ससर्ज येन अनुसृजाम विश्वं वयं न यस्य अपि पुरः समीहतः पश्याम लिङ्गं पृथक् ईश मानिनः ॥२५॥

य एक ईशः	जिन अद्वितीय प्रभने	**पृथक्**	(उससे) पृथक
निजमायया	अपनी मायासे	**ईश मानिनः**	अपनेको समर्थ माननेवाले
नः ससर्ज	हम सबको उत्पन्न किया,	**पुरः समीहतः**	सम्मुख सचेष्ट रहते भी
येन	जिनकी कृपासे (हम)	**यस्य लिङ्गं**	जिसका चिह्न
विश्वं	संसारकी	**न पश्याम**	नहीं देख पाते ॥२५॥
अनुसृजाम	सृष्टि करते हैं		
वयं	हम		

यो नः सपत्नैर्भृशमर्द्यमानान्
देवर्षितिर्यङ्नृषु नित्य एव ।
कृतावतारस्तनुभिः स्वमायया
कृत्वाऽऽत्मसात् पाति युगे युगे च ॥२६॥

यः नः सपत्नैः भृशं अर्द्यमानान् देवः ऋषि तिर्यङ् नृषु नित्य एव कृता अवतारः तनुभिः स्वमायया कृत्वा आत्मसात् पाति युगे युगे च ॥२६॥

सपत्नैः भृशं	शत्रुओं द्वारा बार-बार	**देवः ऋषि**	देवता, ऋषि,
अर्द्यमानान्	रौंदे जाते हुए	**तिर्यङ्**	पशु आदि,
नः	हम लोगोंको	**च नृषु**	तथा मनुष्यका
यः आत्मसात्	जो अपना समझकर	**अवतारः**	अवतार
कृत्वा	बनाकर	**तनुभिः कृतः**	शरीर धारण करके
स्वमायया	अपनी मायासे	**युगे युगे पाति**	युग युगमें रक्षा करता है ॥२६॥

तमेव देवं वयमात्मदैवतं
परं प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यम् ।
व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं
स्वानां स नो धास्यति शं महात्मा॥२७॥

तं एव देवं वयं आत्म दैवतं परं प्रधानं पुरुषं विश्वं अन्यं व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं स्वानां स नः धास्यति शं महात्मा ॥२७॥

यं एव देवं	जो अकेले सबके आराध्य,	**विश्वं**	विश्वरूप एवं
आत्म दैवतं	हमारे भी इष्टदेव हैं	**अन्यं परं**	इनसे भिन्न परम-पुरुष हैं,
प्रधानं पुरुषं	प्रकृति और पुरुष तथा	**शरण्यं**	शरण लेने योग्य उनकी

वयं सर्वे	हम सब	**नः स्वानां**	हम निजजनोंका
शरणं व्रजाम	शरणागत हैं	**शं धास्यति**	कल्याण करेंगे॥२७॥
स महात्मा	वे उदार शिरोमणि		

श्रीशुक उवाच-

इति तेषां महाराज सुराणामुपतिष्ठताम् ।
प्रतीच्यां दिश्यभूदाविः शङ्खचक्रगदाधरः ॥२८॥

इति तेषां महाराज सुराणां उपतिष्ठतां प्रतीच्यां दिशि अभूत आविः शङ्ख चक्र गदाधरः ॥२८॥

महाराज	महाराज !	**शङ्ख चक्र**	शंख, चक्र,
इति	इस प्रकार	**गदाधरः**	गदाधारी (प्रभु)
तेषां सुराणां	उन देवताओंके	**प्रतीच्यां दिशि**	पश्चिम दिशामें
उपतिष्ठतां	स्तुति करनेपर	**आविः अभूत**	प्रकट हुए ॥२८॥

आत्मतुल्यैः षोडशभिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ ।
पर्युपासितमुन्निद्रशरदम्बुरुहेक्षणम् ॥२९॥

आत्मतुल्यैः षोडशभिः विना श्रीवत्स कौस्तुभौ पर्युपासितं उन्निद्र शरत् अम्बुरुह ईक्षणम् ॥२९॥

विना श्रीवत्स कौस्तुभौ	श्रीवत्स और कौस्तुभमणिको छोड़कर	**पर्युपासितं**	चारों ओरसे उपासित
आत्मतुल्यैं	अपने ही समान (रूपके)	**उन्निद्र शरत्**	खिले हुए, शरत्-कालीन
षोडशभिः	सोलह (पार्षदों) द्वारा	**अम्बुरुह ईक्षणं**	कमल-नेत्र (भगवान) को ॥२९॥

दृष्ट्वा तमवनौ सर्व ईक्षणाह्लादविक्लवाः ।
दण्डवत् पतिता राजञ्छनैरुत्थाय तुष्टुवुः ॥३०॥

दृष्ट्वा तं अवनौ सर्व इक्षण आह्लाद विक्लवाः दण्डवत् पतिता राजन् शनैः उत्थाय तुष्टुवुः ॥३०॥

राजन्	राजन् !	**अवनौ दण्डवत्**	पृथ्वीपर दण्डकेसमान
तं दृष्ट्वा	उन (भगवान्)को देखकर	**पतिता**	गिरकर
		शनैः उत्थाय	फिर धीरेसे उठकर
इक्षण आह्लाद	(उनके) दर्शनानन्दसे	**तुष्टुवुः**	स्तुति करने
विक्लवाः	विह्वल होकर		लगे ॥३०॥

देवा ऊचुः -

नमस्ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः ।
नमस्ते ह्यस्तचक्राय नमः सुपुरुहूतये ॥३१॥

नमः ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः नमः ते ह्यस्त चक्राय नमः सुपुरुहूतये ॥३१॥

यज्ञवीर्याय	यज्ञशक्ति स्वरूप	**ह्यस्त चक्राय**	घूमत चक्र लिए
ते नमः	आपको नमस्कार,	**ते नमः**	आपको नमस्कार,
उत वयसे	तथा सर्व सञ्चालक	**सुपुरुहूतये नमः**	अनन्त नामाको
ते नमः	आपको नमस्कार,		नमस्कार ॥३१॥

यत् ते गतीनां तिसृणामीशितुः परमं पदम् ।
नार्वाचीनो विसर्गस्य धातर्वेदितुमर्हति ॥३२॥

यत् ते गतीनां तिसृणां ईशितुः परमं पदं न अर्वाचीनः विसर्गस्य धातः वेदितुं अर्हति ॥३२॥

तिसृणां गतीनां	(उत्तम, मध्यम, अधम) तीनों गतियोके	**परमं पदं**	परमपद है तथा
		धातः	विधाता (आपकी इस)
ईशितुः	नियामक	**विसर्गस्य**	सृष्टिको
यत् ते	जो आपका	**न वेदितुं अर्हति**	(कोई) जान सकने योग्य नहीं है ॥३२॥
अर्वाचीनः	अलौकिक		

ॐ नमस्तेऽस्तु भगवन् नारायण वासुदेवादिपुरुष महापुरुष महानुभाव परममङ्गल परमकल्याण परमकारुणिक केवल जगदाधार लोकैकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथ परमहंसपरिव्राजकैः परमेणात्मयोगसमाधिना परिभावितपरिस्फुटपारमहंस्य धर्मेणोद्घाटिततमः कपाटद्वारे चित्तेऽपावृत आत्मलोके स्वयमुपलब्धनिजसुखानुभवो भवान् ॥३३॥

ॐ नमः ते अस्तु भगवन् नारायण वासुदेव आदिपुरुष महापुरुष महानुभाव परममङ्गल परमकल्याण परमकारुणिक केवल जगदाधार लोक एकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथ परमहंस परिव्राजकैः परमेण आत्मयोग समाधिना परिभावित परिस्फुट पारमहंस्य धर्मेण उद्घाटित तमः कपाट-द्वारे चित्ते अपावृत आत्मलोके स्वयं उपलब्ध निज सुख अनुभवः भवान् ॥३३॥

ॐ भगवन्	ओंकार स्वरूप भगवान्	**परमहंस**	.परमहंस
नारायण	नारायण,	**परिव्राजकैः**	परिव्राजकलोग
वासुदेव	वासुदेव,	**परमेण**	परम
आदिपुरुष	आदिपुरुष,	**आत्मयोग**	आत्मयोगकी
महापुरुष	पुरुषोत्तम,	**समाधिना**	एकाग्रता द्वारा
महानुभाव	महाप्रभावशाली,	**परिभावित**	भली प्रकार चिन्तन करनेसे
परममङ्गल	परम मंगलमय,	**परिस्फुट**	पूर्ण स्पष्ट
परमकल्याण	परम कल्याण रूप,	**पारमहंस्य**	परमहंसोंके
केवल	अद्वितीय,	**धर्मेण**	धर्म द्वारा
जगदाधार	जगतके आधार,	**तमः कपाट-**	अज्ञान रूपी
लोक एकनाथ	लोकके एकमात्र स्वामी,	**द्वारे**	किवाड़ोंके
सर्वेश्वर	सर्वेश्वर,	**उद्घाटित**	खुल जानेपर
लक्ष्मीनाथ	रमापति,	**अपावृत चित्ते**	निरावरण चित्तमें
		आत्मलोके	स्वयं प्रकाश

स्वयं उपलब्ध निजसुख अनुभवः	नित्य प्राप्त आत्मानन्द अनुभव स्वरूप	**भवान् ते नमः अस्तु**	आप हैं, (ऐसे) आपको नमस्कार है ॥३३॥

दुरवबोध इव तवायं विहारयोगो यदशरणोऽशरीर इदमनवेक्षितास्मत्समवाय आत्मनैवाविक्रियमाणेन सगुणमगुणः सृजसि पासि हरसि ॥३४॥

दुरवबोध इव तव अयं विहार योगः यत् अशरणः अशरीरः इदं अनवेक्षित अस्मात् समवाय आत्मना एव अविक्रियमाणेन सगुणं अगुणः सृजसि पासि हरसि ॥३४॥

तव अयं विहार योगः दुरवबोध इव यत् अशरणः अशरीरः अस्मत् समवाय अनवेक्षित	आपका यह लीला-विहार दुर्बोध जैसा है क्योंकि किसीकी सहायताके बिना निराकार रहकर हम (देवता) लोगोंकी सहायताकी अपेक्षा न करके	**आत्मना एव अविक्रियमाणेन अगुणः इदं सगुणः सृजसि पासि हरसि**	अपने द्वारा ही निर्विकार रहते (आप) निर्गुण इस सगुण (जगत-की) सृष्टि, पालन संहार करते हैं ॥३४॥

अथ तत्र भवान् किं देवदत्तवदिह गुणविसर्गपतितः पारतन्त्र्येण स्वकृतकुशलाकुशलं फलमुपाददात्याहोस्विदात्माराम उपशमशीलः समञ्जसदर्शन उदास्त इति ह वाव न विदामः ॥३५॥

अथ तत्र भवान् किं देवदत्त वत् इह गुण विसर्ग पतितः पारतन्त्र्येण स्वकृत कुशल अकुशलं फलं उपाददात्य आहोस्वित् आत्माराम उपशमशीलः समञ्जसदर्शन उदास्त इति ह वाव न विदामः ॥३५॥

अथ तत्र	अतः इस (कर्म) में
किं भवान्	क्या आप
देवदत्त वत्	देवदत्त (सामान्य पुरुष)के समान
गुण विसर्ग	इस गुणोंके कार्य
इह पतितः	इस संसारमें पड़े हुए
पारतन्त्र्येण	परतन्त्र होकर
स्वकृत	अपने किये
कुशल अकुशलं	अच्छे-बुरे (कर्मों)का
फलं उपाददात्य	फल भोगते हैं,
आहोस्वित्	अथवा
आत्माराम	आत्माराम
उपशमशीलः	विरक्त
समञ्जसदर्शन	सबसे उदासीन
उदास्त इति	साक्षी मात्र हैं, इस प्रकार
ह वाह	निश्चित रूपसे
न विदामः	(हम) नहीं जानते ॥३५॥

न हि विरोध उभय भगवत्यपरिगणितगुणगणे ईश्वरेऽनवगाह्यमाहात्म्येऽर्वाचीनविकल्पवितर्कविचारप्रमाणाभासकुतर्कशास्त्रकलिलान्तः करणाश्रयदुरवग्रहवादिनां विवादानवसर उपरतसमस्तमायामये केवल एवात्ममायामन्तर्धाय को न्वर्थो दुर्घट इव भवति स्वरूपद्वयाभावात् ॥३६॥

न हि विरोध उभय भगवति अपरिगणित गुणगणे ईश्वरे अनवगाह माहात्म्ये अर्वाचीन विकल्प वितर्क विचार प्रमाण आभास कुतर्क शास्त्र कलिल अन्तःकरण आश्रय दुरवग्रह वादिनां विवाद अनवसर उपरत समस्त मायामये केवल एव आत्ममायां अन्तर्धाय कः नु अर्थः दुर्घट इव भवति स्वरूप द्वय अभावात् ॥३६॥

भगवति	आप भगवानमें
हि उभय	क्योंकि दोनोंमें
विरोध न	विरोध नहीं है।
अपरिगणित	असंख्य
गुणगणे	गुणगण वाले
अनवगाह	अथाह
माहात्म्ये	महिमाशाली
ईश्वरे	ईश्वरमें
अर्वाचीन	आधुनिक
वितर्क विचार	वितर्क, विचार,
प्रमाण आभास	झूठे प्रमाणोंसे
कुतर्क शास्त्र	कुतर्कपूर्ण शास्त्र पढ़नेसे
कलिल	मलावृत

अन्तःकरण	अन्तःकरणमें
आश्रय दुरवग्रह	बसे दुराग्रहपूर्ण
वादिनां विवाद	तर्क करने वालोंके विवादका
अनवसर	यहां अवसर ही नहीं है,
समस्त	समस्त
मायामये	मायामय (संसार)से
उपरत	उदासीन
केवल एव	अद्वितीय
आत्ममायां	अपनी मायाको
अन्तर्धाय	छिपा लेनेपर
स्वरूप द्वय	दोनों स्वरूप (कर्तृत्व भोक्तृत्व और उदासीनता) का
अभावात्	अभाव हो जाने से
कः नु अर्थः	भला कौन-सी बात (आपमें)
दुर्घट इव भवति	न होने जैसी हो सकती है ॥३६॥

समविषममतीनां मतमनुसरसि यथा रज्जुखण्डः सर्पादिधियाम् ॥३७॥

सम विषम मतीनां मतं अनुसरसि यथा रज्जुखण्डः सर्प आदि धियां ॥३७॥

सम विषम	समान और विषम
मतीनां	बुद्धिवालोंके
मतं अनुसरसि	मतके अनुसार ही आप प्रतीत होते हैं,
यथा रज्जुखण्डः	जैसे रस्सीका टुकड़ा
सर्प आदि	सर्प (माला, लकड़ी) आदि
धियां	समझने वालों-को ॥३७॥

स एव हि पुनः सर्ववस्तुनि वस्तुस्वरूपः सर्वेश्वरः सकलजगत्कारणकारणभूतः सर्वप्रत्यगात्मत्वात् सर्वगुणाभासोपलक्षित एक एव पर्यवशेषितः ॥३८॥

स एव हि पुनः सर्ववस्तुनि वस्तुस्वरूपः सर्वेश्वरः सकल जगत् कारण कारणभूतः सर्वप्रत्यक् आत्मत्वात् सर्वगुण आभास उपलक्षित एक एव परि अवशेषितः ॥३८॥

हि स एव	क्योंकि वही आप	**सर्वप्रत्यक्**	सबके
सर्ववस्तुनि	सब वस्तुओंमें	**आत्मत्वात्**	अन्तरात्मा होनेसे
वस्तुस्वरूपः	उस वस्तुके रूपमें हैं,	**सर्वगुण**	सब गुणोंके
सर्वेश्वरः	सबके स्वामी हैं,	**आभास**	आभाससे
सकल जगत्	सम्पूर्ण जगतके	**उपलक्षित**	संकेतित हैं
कारण	कारण (प्रकृति, ब्रह्मादि) के	**एक एव**	अकेले ही
कारणभूतः	कारण स्वरूप हैं,	**परि अवशेषितः**	अन्तमें बच रहते हैं ॥३८॥

अथ ह वाव तव महिमामृतरससमुद्रविप्रुषा सकृदवलीढया स्वमनसि निष्यन्दमानानवरतसुखेन विस्मारितदृष्टश्रुतविषय-सुखलेशाभासाः परमभागवता एकान्तिनो भगवति सर्वभूतप्रिय-सुहृदि सर्वात्मनि नितरां निरन्तरं निर्वृतमनसः कथमु ह वा एते मधुमथन पुनः स्वार्थकुशला ह्यात्मप्रियसुहृदः साधव-स्त्वच्चरणाम्बुजानुसेवां विसृजन्ति न यत्र पुनरयं संसारपर्या-वतः ॥३९॥

अथ ह वाव तव महिमा अमृतरस समुद्र विप्रुषा सकृत् अवलीढया स्वमनसि निष्यन्दमान अनवरत सुखेन विस्मारित दृष्टश्रुत विषयसुखलेश आभासाः परम भागवता एकान्तिनः भगवति सर्वभूत प्रिय सुहृदि सर्वात्मनि नितरां निरन्तरं निर्वृत मनसः कथं उ ह वा एते मधुमथन पुनः स्वार्थ कुशला हि आत्मप्रिय सुहृदः साधवः त्वत् चरणाम्बुज अनुसेवां विसृजन्ति न यत्र पुनः अयं संसार पर्यावर्तः ॥३९॥

अथ ह वाव	अहो निश्चय ही	**अवलीढया**	चाटनेसे
तव महिमा	आपके माहात्म्यके	**स्वमनसि**	अपने हृदयसे
अमृतरस	अमृतरस	**अनवरत**	अविराम
समुद्र विप्रुषा	सागरके सीकरको	**निष्यन्दमान**	झरते
सकृत्	केवल एक बार	**सुखेन**	सुखके द्वारा

दृष्टश्रुत	देखे (लौकिक) सुने (पारलौकिक)
विषयसुखलेश	विषयोंका लेशमात्र सुख
आभासाः	जो प्रतीतिमात्र हैं,
विस्मारित	विस्मृत कर दिया गया है,
एकान्तिनः	वे अनन्य
परम भागवता	परम भगवत् भक्त,
सर्वभूत	सब प्राणियोंके
प्रिय सुहृदि	प्रिय हितैषी,
सर्वात्मनि	सर्वात्मामें
नितरां निरन्तरां	प्रगाढ़ निरन्तर
निर्वृत मनसः	मन लगाये रहने-वाले
कथं उ ह वा	भला कैसे तो
मधुमथन	मधुसूदन !
एते साधवः	ये सत्पुरुष
पुनः स्वार्थ	फिर अपने स्वार्थमें
कुशला	परम प्रवीण
हि	होकर
आत्मप्रिय	अपने प्रिय
सुहृदः	सुहृद
त्वत् चरणाम्बुज	आपके चरण-कमलोंकी
अनुसेवां	सेवा
विसृजन्ति	छोड़ देंगे,
यत्र पुनः	जहाँ फिर
अयं संसार	इस संसार में
पर्यावर्तः	चक्कर काटना
न	नहीं होता ॥३९॥

त्रिभुवनात्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलोकमनोहरानुभाव तवैव विभूतयो दितिजदनुजादयश्चापि तेषामनुपक्रमसमयोऽयमिति स्वात्ममायया सुरनरमृगमिश्रितजलचराकृतिभिर्यथापराधं दण्डं दण्डधर दधर्थ एवमेनमपि भगवञ्जहि त्वाष्ट्रमुत यदि मन्यसे ॥४०॥

त्रिभुवन आत्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलोक मनोहर अनुभाव तव एव विभूतयः दितिज दनुजः आढ़य च अपि तेषां अनुपक्रम समयः अयं इति स्वात्ममायया सुर नर मृग मिश्रित जलचर आकृतिभिः यथा अपराधं दण्डं दण्डधर दधर्थ एवं एनं अपि भगवन् जहि त्वाष्ट्रं उत यदि मन्यसे ॥४०॥

त्रिभुवन	त्रिलोकीको
आत्मभवन	अपने भीतर रखने-वाले,
त्रिविक्रम	त्रिविक्रम (आप)
त्रिनयन	त्रिनेत्र (शिवस्वरूप)
त्रिलोक मनोहर	त्रिभुवन सुन्दर

अनुभाव प्रभाव वाले हैं।
दितिज दनुज च दैत्य और दानव
आढ्य अपि इत्यादि भी
तव एव आपकी ही
विभूतयः विभूतियाँ हैं,
तेषां अनुपक्रम उनके अवनतिका
अयं समयः यह समय है
इति इसलिए
स्वात्ममायया अपनी मायासे
सुर नर मृग देवता, मनुष्य, पशु,
मिश्रित जलचर मिश्रित, जलचर
आकृतिभिः आकृतियोंके द्वारा
यथा अपराधं अपराधके अनुसार
दण्डधर दण्डं आप दण्डधारी दंड
दधर्थ देते रहे हैं
एवं यदि इसी प्रकार यदि
उतमन्यसे जँचे तो
एनं त्वाष्ट्रं इस वृत्रासुरको
अपि भी
जहि मार दीजिए ॥४०॥

अस्माकं तावकानां तव नतानां तत ततामह तव चरणनलिनयुगलध्यानानुबद्धहृदयनिगडानां स्वलिङ्गविवरणेनात्मसात्कृतानामनुकम्पानुरञ्जितविशदरुचिरशिशिरस्मितावलोकेन विगलितमधुरमुखरसामृतकलया चान्तस्तापमनघार्हसि शमयितुम् ॥४१॥

अस्माकं तावकानां तव नतानां तत ततामह तव चरणनलिन युगल ध्यान अनुबद्ध हृदय निगडानां स्वलिङ्ग विवरणेन आत्मसात् कृतानां अनुकम्पा अनुरञ्जित विशद रुचिर शिशिर स्मित अवलोकेन विगलित मधुर मुखरस अमृत कलया च अन्तः तापं अनघ अर्हसि शमयितुम् ॥४१॥

तव नतानां आपके सम्मुख प्रणत
तावकानां आपके निजजन
तत ततामह आप (हमारे) पिता, पितामह हैं,
अस्माकं हम लोगोंका
तव युगल आपके दोनों
चरण नलिन चरण-कमलोंके
ध्यान निगडानां ध्यानरूपी बेड़ीसे
अनुबद्ध हृदय अनुबद्ध हृदय वालोंको
स्वलिङ्ग अपने स्वरूपका
विवरणेन दर्शन देकर
आत्मसात् (आपने) अपना
कृतानां लिया है,
अनुकम्पा (अब) कृपा से
अनुरञ्जित रंगी हुई
विशद रुचिर विशद, सुन्दर,
शिशिर स्मित शीतल मुस्कानयुक्त
अवलोकेन चितवनसे तथा
विगलित मधुर झरते मधुर

मुखरस अमृत कलया	मुख-रसामृतकी कला (वाणी) से	**शमयितुं**	(आपको) शान्त कर देना
अनघ	निष्पाप प्रभु	**अर्हसि**	चाहिए ॥४१॥
अन्तः तापं च	(हमारे) हृदयके तापको भी		

अथ भगवंस्तवास्माभिरखिलजगदुत्पत्तिस्थितिलयनिमित्तायमानदिव्यमायाविनोदस्य सकलजीवनिकायानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि च ब्रह्मप्रत्यगात्मस्वरूपेण प्रधानरूपेण च यथादेशकालदेहावस्थानविशेषं तदुपादानोपलम्भकतयानुभवतः सर्वप्रत्ययसाक्षिण आकाशशरीरस्य साक्षात्परब्रह्मणः परमात्मनः कियानिह वा अर्थविशेषो विज्ञापनीयः स्याद् विस्फुलिङ्गादिभिरिव हिरण्यरेतसः ॥४२॥

अथ भगवन् तव अस्माभिः अखिल जगत् उत्पत्ति स्थिति लय निमित्तायमान दिव्य माया विनोदस्य सकल जीव निकायानां अन्तः हृदयेषु बहिः अपि च ब्रह्म प्रत्यगात्म स्वरूपेण प्रधान रूपेण च यथा देशकाल देह अवस्थान विशेषं तत् उपादान उपलम्भकतया अनुभवतः सर्वप्रत्यय साक्षिणः आकाश शरीरस्य साक्षात् परब्रह्मणः परमात्मनः कियान् इह वा अर्थ विशेषः विज्ञापनीयः स्यात् विस्फुलिङ्ग आदिभिः इव हिरण्यरेतसः ॥४२॥

विस्फुलिंग	चिनगारियों	**विज्ञापनीयः**	सूचित करने योग्य
आदिभिः	आदि द्वारा	**स्यात्**	हो सकता है क्योंकि
हिरण्यरेतसः	अग्निकी	**अखिल जगत्**	सम्पूर्ण जगतकी
इव	भांति	**उत्पत्ति स्थिति**	उत्पत्ति, स्थिति,
अस्माभिः	हम लोगों द्वारा	**लय**	प्रलयकी
भगवन् तव	भगवान् आपको	**निमित्तायमान**	निमित्त बनने वाली
इह कियान्	इस जगतमें कितना	**माया दिव्य**	मायासे दिव्य
अर्थ विशेषः	प्रयोजन विशेष	**विनोदस्य**	विनोद करनेवाले,

सकल जीव	सम्पूर्ण जीव
निकायानां	समूहोंके
अन्तः हृदयेषु	हृदयके भीतर
ब्रह्म प्रत्यगात्म	ब्रह्म और अन्तर्यामी
स्वरूपेणं	स्व रूप से
च बहिः अपि	और बाहर भी
प्रधान रूपेण च	प्रकृतिके रूपमें भी
देशकाल	देश, काल
देह अवस्थान	शरीर अवस्थाके
यथा	अनुसार
विशेषं	(उनके) विशेष रूपमें,
तत् उपादान	उनके उपादान एवं
उपलम्भकतया	प्रकाशकके रूपमें
अनुभवतः	(अपनेको) अनुभव करते हुए
सर्वप्रत्यय	समस्त वृत्तियोंके
साक्षिणः	साक्षी
आकाश	आकाश
शरीरस्य	शरीरी
साक्षात्	साक्षात्
परब्रह्म	परमब्रह्म
परमात्मनः	परमात्मा आप हैं ॥४२॥

अत एव स्वयं तदुपकल्पयास्माकं भगवतः परमगुरोस्तव चरणशतपलाशच्छायां विविधवृजिनसंसारपरिश्रमोपशमनीमुपसृतानां वयं यत्कामेनोपसादिताः ॥४३॥

अत एव स्वयं तत् उपकल्पय अस्माकं भगवतः परमगुरोः तव चरण शतपलाशच्छायां विविध वृजिन संसार परिश्रम उपशमनीं उपसृतानां वयं यत् कामेन उपसादिताः ॥४३॥

अत एव	अतएव
विविध वृजिन	नाना कष्टोंसे पूर्ण
संसार परिश्रम	संसार रूप परिश्रम-को
उपशमनीं	शान्त कर देने वाली
भगवतः	भगवान्
परमगुरोः	परमगुरु
तव चरण	आपके चरणरूपी
शतपलाशच्छायां	शतदलकी छायामें
उपसृतानां	शरण लेनेवाले
वयं यत् कामेन	हम लोग जिस कामनासे
उपसादिताः	आये हैं
तत् स्वयं	वह स्वयं
अस्माकं	हमारा (प्रयोजन)
उपकल्पय	पूरा कीजिए ॥४३॥

अथो ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसन्तं भुवनत्रयम् ।
ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांस्यस्त्रायुधानि च ॥४४॥

अथः ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसन्तं भुवनत्रयं ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांसि अस्त्र आयुधानि च ॥४४॥

ईश कृष्ण	सर्व समर्थ श्रीकृष्ण !	**ग्रस्तानि**	निगल लिया है,
येन नः	जिसने हमारे	**अथः भुवनत्रयं**	अब तीनों लोकोंको
तेजांसि	तेजको	**ग्रसन्तं**	निगलनेको उद्यत
च अस्त्र	तथा अस्त्र-	**त्वाष्ट्रं जहि**	वृत्रासुरको मार
आयुधानि	शस्त्रोंको		दीजिए ॥४४॥

हंसाय दह्रनिलयाय निरीक्षकाय
कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय ।
सत्संग्रहाय भवपान्थनिजाश्रमाप्ता-
वन्ते परीष्टगतये हरये नमस्ते ॥४५॥

हंसाय दह्रनिलयाय निरीक्षकाय कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय सत् संग्रहाय भवपान्थ निजाश्रम आप्ताः अन्ते पर ईष्ट गतये हरये नमः ते ॥४५॥

हंसाय	शुद्ध स्वरूप,	**भवपान्थ**	संसारके पथिक
दह्रनिलयाय	हृदय गुहामें रहनेवाले,	**निजाश्रम**	अपने परिश्रमसे
		अन्ते	अन्तमें
निरीक्षकाय	साक्षी,	**गतये पर ईष्ट**	चलते-चलते थक
कृष्णाय	श्रीकृष्ण,		जाते हैं,
मृष्टयशसे	उज्ज्वल यशवाले,	**आप्ताः**	तब प्राप्त होनेवाले
निरुपक्रमाय	सब उपक्रमोंसे रहित,	**हरये**	श्रीहरि
सत् संग्रहाय	संत लोगों द्वारा संग्रहणीय,	**ते**	आपको
		नमः	नमस्कार ॥४५॥

श्रीशुक उवाच–

अथैवमीडितो राजन् सादरं त्रिदशैर्हरिः ।
स्वमुपस्थानमाकर्ण्य प्राह तानभिनन्दितः ॥४६॥

अथ एवं ईडितः राजन् सादरं त्रिदशैः हरिः स्वं उपस्थानं आकर्ण्य प्राह तान् अभिनन्दितः ॥४६॥

राजन्	राजन्	**अभिनन्दितः**	(देवताओंसे) सम्मानित होकर
अथ एवं	तब इस प्रकार		
त्रिदशैः सादरं	देवताओं द्वारा आदर सहित	**स्वं उपस्थानं**	अपना स्तवन
		आकर्ण्य	सुनकर
ईडितः	स्तुति करनेपर	**तान् प्राह**	उनसे बोले ॥४६॥
हरिः	श्रीहरि		

श्रीभगवानुवाच–

प्रीतोऽहं वः सुरश्रेष्ठा मदुपस्थानविद्यया ।
आत्मैश्वर्यस्मृतिः पुंसां भक्तिश्चैव यया मयि ॥४७॥

प्रीतः अहं सुरश्रेष्ठा मत् उपस्थान विद्यया आत्म ऐश्वर्य स्मृतिः पुंसां भक्तिः च एव यया मयि ॥४७॥

सुरश्रेष्ठा	देवश्रेष्ठो !	**भक्तिः एव**	भक्ति भी होगी
यया	जिसके द्वारा	**मत् उपस्थान**	मेरी स्तुति रूप
पुंसां	पुरुषोंको	**विद्यया**	इस विद्यासे
आत्म ऐश्वर्य	आत्माके ऐश्वर्यका	**अहं प्रीतः**	मैं प्रसन्न हुआ ॥४७॥
स्मृतिः	स्मरण		
च मयि	और मुझमें		

किं दुरापं मयि प्रीते तथापि विबुधर्षभाः ।
मय्येकान्तमतिर्नान्यन्मत्तो वाञ्छति तत्त्ववित् ॥४८॥

किं दुरापं मयि प्रीते तथा अपि विबुधऋषभाः मयि एकान्त मतिः न अन्यत् मत्तः वाञ्छति तत्त्ववित् ॥४८॥

विबुधऋषभाः	देवनायको,	**तत्त्ववित्**	तत्वज्ञानी
मयि प्रीते	मेरे प्रसन्न होनेपर	**एकान्त मतिः**	अनन्य बुद्धि भक्त
किं दुरापं	क्या दुष्प्राप्य रहता है;	**मत्तः अन्यत्**	मुझसे और कुछ
तथा अपि	फिर भी	**न वाञ्छति**	नहीं चाहता ॥४८॥

न वेद कृपणः श्रेय आत्मनो गुणवस्तुदृक् ।
तस्य तानिच्छतो यच्छेद् यदि सोऽपि तथाविधः ॥४९॥

न वेद कृपणः श्रेयः आत्मनः गुण वस्तु दृक् तस्य तान् इच्छतः यच्छेत् यदि सः अपि तथा विधः ॥४९॥

गुण वस्तु दृक्	गुणमय (संसारको) सत्य देखने वाला	**इच्छतः**	इच्छा करनेपर
कृपणः	अज्ञानी	**यदि सः अपि**	यदि वह (देनेवाला) भी
आत्मनः श्रेयः	अपना कल्याण	**तथा विधः**	उसीके जैसा (अज्ञानी) है
न वेद	नहीं जानता	**यच्छेत्**	तभी (वह वस्तु) देगा ॥४९॥
तस्य तान्	उसके द्वारा उन्हीं (असत् विषयों) का		

स्वयं निःश्रेयसं विद्वान् न वक्त्यज्ञाय कर्म हि ।
न राति रोगिणोऽपथ्यं वाञ्छतो हि भिषक्तमः ॥५०॥

स्वयं निः श्रेयसं विद्वान् न वक्ति अज्ञाय कर्म हि न राति रोगिणः अपथ्यं वाञ्छतः हि भिषक्तमः ॥५०॥

हि	क्योंकि	**अज्ञाय**	अज्ञानीको
स्वयं निः श्रेयसं	स्वयं परमकल्याण-को	**कर्म न वक्ति**	कर्म-मार्ग नहीं बतलाता
विद्वान्	जाननेवाला	**हि**	जैसे

भिषक्तमः	श्रेष्ठ वैद्य	**अपथ्यं**	कुपथ्य
रोगिणः	रोगीका	**न राति**	(उसे) नहीं देता
वाञ्छतः	अभीष्ट		॥५०॥

मघवन् यात भद्रं वो दध्यञ्चमृषिसत्तमम् ।
विद्याव्रततपःसारं गात्रं याचत मा चिरम् ॥५१॥

मघवन् यात भद्रं वः दध्यञ्चं ऋषिसत्तमं विद्या व्रत तपः सारं गात्रं याचत मा चिरम् ॥५१॥

वः भद्रं	तुम लोगोंका कल्याण हो ।	**दध्यञ्चं**	दधीचिसे (उनकी)
मघवन्	इन्द्र !	**विद्या व्रत तपः**	विद्या, व्रत, तपस्या-का
मा चिरं	देर मत करो	**सारं गात्रं**	सारभूत शरीर
यात	जाओ,	**याचत**	मांगो ॥५१॥
ऋषिसत्तमं	परमश्रेष्ठ ऋषि		

स वा अधिगतो दध्यङ्ङश्विभ्यां ब्रह्म निष्कलम् ।
यद् वा अश्वशिरो नाम तयोरमरतां व्यधात् ॥५२॥

स वा अधिगतः दध्यङ् अश्विभ्यां ब्रह्म निष्कलं यद् वा अश्व शिरः नाम तयोः अमरतां व्यधात् ॥५२॥

स वा	उन्होंने निश्चय	**यद् वा**	जिससे कि
निष्कलं	कला रहित शुद्ध	**अश्व सिरः नाम**	उनका नाम अश्व-सिरा हो गया
ब्रह्म	ब्रह्मज्ञान	**तयोः**	(उस विद्याके प्रभाव-से) वे दोनों
अधिगतः	पाया है ।		(अश्विनी कुमार)
दध्यङ्	उन दधीचिने,	**अमरतां व्यधात्**	देवता हो गये ॥५१॥
अश्विभ्यां	घोड़ेके सिरसे (अश्विनी कुमारों-को) उपदेश दिया		

दध्यङ्ङाथर्वणस्त्वष्ट्रे वर्माभेद्यं मदात्मकम् ।
विश्वरूपाय यत् प्रादात् त्वष्टा यत् त्वमधास्ततः ॥५३॥

दध्यङ् आथर्वणः त्वष्ट्रे वर्म अभेद्यं मदात्मकं विश्वरूपाय यत् प्रादात् त्वष्टा यत् त्वं अधाः ततः ॥५३॥

आथर्वणः	अथर्ववेदी	**यत् विश्वरूपाय**	जिसे (उन्होंने) विश्वरूपको
दध्यङ्	दधीचि ने ही	**प्रादात्**	दिया,
मदात्मकं	मेरा स्वरूप भूत	**ततः यत् त्वं**	फिर जिनसे तुमने
अभेद्यं वर्म	अभेद्य (नारायण) कवच	**अधाः**	धारण किया ॥५३॥
त्वष्ट्रे	त्वष्ट्राको (दिया था)		

युष्मभ्यं याचितोऽश्विभ्यां धर्मज्ञोऽङ्गानि दास्यति ।
ततस्तैरायुधश्रेष्ठो विश्वकर्मविनिर्मितः ।
येन वृत्रशिरो हर्ता मत्तेजउपबृंहितः ॥५४॥

युष्मभ्यं याचितः अश्विभ्यां धर्मज्ञः अङ्गानि दास्यति ततः तैः आयुध श्रेष्ठः विश्वकर्म विनिर्मितः येन वृत्र शिरः हर्ता यत् तेज उपबृंहितः ॥५४॥

युष्मभ्यं	तुम लोगों द्वारा (विशेषतः)	**विश्वकर्म**	विश्वकर्मा
अश्विभ्यां	अश्विनी कुमारों द्वारा	**विनिर्मितः**	द्वारा बनाये
याचितः	मांगनेपर	**आयुध श्रेष्ठः**	श्रेष्ठ आयुध (वज्र) होगा,
धर्मज्ञः	वे धर्मज्ञ	**येन**	जिसके द्वारा
अङ्गानि	अपना शरीर	**यत् तेज**	मेरे तेजसे
दास्यति	दे देंगे,	**उपबृंहितः**	अभिवृद्ध होकर
ततः तैः	तब उससे	**वृत्र शिरः हर्ता**	वृत्रके सिरको काटने वाले बनोगे ॥५४॥

तस्मिन् विनिहते यूयं तेजोऽस्त्रायुधसम्पदः ।
भूयः प्राप्स्यथ भद्रं वो न हिंसन्ति च मत्परान् ॥५५॥

तस्मिन् विनिहते यूयं तेजः अस्त्र आयुध सम्पदः भूयः प्राप्स्यथ भद्रं वः न हिंसन्ति च मत् परान् ॥५५॥

तस्मिन्	उसके
विनिहते	मारे जानेपर
यूयं तेजः	तुम लोग तेज,
अस्त्र आयुध	अस्त्र-शस्त्र,
सम्पदः भूयः	सम्पत्ति फिर
प्राप्स्यथ	प्राप्त कर लोगे,
वः भद्रं	तुम लोगोंका कल्याण हो
च	क्योंकि
मत् परान्	मेरे परायण (जनोंको)
हिंसन्ति न	कोई सता नहीं सकता ॥५५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

इन्द्रमेवं समादिश्य भगवान् विश्वभावनः ।
पश्यतामनिमेषाणां तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥ १ ॥

इन्द्रं एवं समादिश्य भगवान् विश्वभावनः पश्यतां अनिमेषाणां तत्र एव अन्तर्दधे हरिः ॥१॥

एवं इन्द्रं	इस प्रकार इन्द्रको	**तत्र एव**	वहीं
समादिश्य	आदेश देकर	**अन्तर्दधे**	अन्तर्धान हो गये ॥१॥
विश्वभावनः	विश्व-रक्षक		
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरि		
अनिमेषाणां	देवताओंके		
पश्यतां	देखते-देखते		

तथाभियाचितो देवैर्ऋषिराथर्वणो महान् ।
मोदमान उवाचेदं प्रहसन्निव भारत ॥ २ ॥

तथा अभियाचितः देवैः ऋषिः आथर्वणः महान् मोदमान उवाच इदं प्रहसन् इव भारत ॥२॥

भारत	परीक्षित !	**मोदमान**	प्रसन्न होकर
तथा	उसी प्रकार	**प्रहसन् इव**	हँसते हुए-से
देवैः	देवताओं द्वारा	**इदं उवाच**	यह बोले ॥२॥
अभियाचितः	माँगे जानेपर		
महान् आथर्वणः	महान् अथर्ववेदी		
ऋषिः	ऋषि (दधीचि)		

दध्यङ् उवाच-*

अपि वृन्दारका यूयं न जानीथ शरीरिणाम् ।
संस्थायां यस्त्वभिद्रोहो दुःसहश्चेतनापहः ॥ ३ ॥

अपि वृन्दारका यूयं न जानीथ शरीरिणां संस्थायां यः तु अभिद्रोहः दुःसहः चेतनापहः ॥३॥

वृन्दारका अपि	देवता होनेपर भी	**संस्थायां**	मरते समय
यूयं न जानीथ	तुम लोग नहीं जानते कि	**चेतनापहः**	चेतना नष्ट कर देनेवाला
शरीरिणां	देहधारीको	**दुःसहः**	असह्य
यः तु	जो तो	**अभिद्रोहः**	कष्ट होता है ॥३॥

जिजीविषूणां जीवानामात्मा प्रेष्ठ इहेप्सितः ।
क उत्सहेत तं दातुं भिक्षमाणाय विष्णवे ॥ ४ ॥

जिजीविषूणां जीवानां आत्मा प्रेष्ठः इह ईप्सितः कः उत्सहेत तं दातुं भिक्षमाणाय विष्णवे ॥४॥

जिजीविषूणां	जीवनकी इच्छा रखने वाले	**विष्णवे**	साक्षात् भगवान विष्णुके
जीवानां	प्राणियोंको	**भिक्षमाणाय**	मांगनेपर भी
इह आत्मा	इस संसारमें शरीर	**तं दातुं**	उसे देनेका
ईप्सितः प्रेष्ठः	अभीष्ट और परम-प्रिय है,	**कः उत्सहेत**	कौन उत्साह करेगा ॥४॥

देवा ऊचुः -

किं नु तद् दुस्त्यजं ब्रह्मन् पुंसां भूतानुकम्पिनाम् ।
भवद्विधानां महतां पुण्यश्लोकेड्यकर्मणाम् ॥ ५ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

किं नु तत् दुस्त्यजं ब्रह्मन् पुंसां भूत अनुकम्पिनां भवत् विधानां महतां पुण्यश्लोक ईड्य कर्मणाम् ॥५॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
भवत् विधानां	आप जैसे
भूत	प्राणियोंपर
अनुकम्पिनां	कृपा करनेवाले
ईड्य कर्मणां	प्रशंसनीय कर्मा
पुण्यश्लोक	पवित्र-कीर्ति
महतां	महापुरुषोंके लिए
किं नु तत्	भला क्या ऐसा है जो
दुस्त्यजं	त्याग देना (उन्हें) कठिन हो ॥५॥

ननु स्वार्थपरो लोको न वेद परसंकटम् ।
यदि वेद न याचेत नेति नाह यदीश्वरः ॥६॥

ननु स्वार्थपरः लोकः न वेद परसङ्कटं यदि वेद न याचेत न इति न आह यत् ईश्वरः ॥६॥

ननु	निश्चय
स्वार्थपरः	स्वार्थ परायण
लोकः	लोग
परसंकटं	दूसरेका कष्ट
न वेद	नहीं समझते
यदि वेद	यदि जानते होते तो
याचेत न	मांगते ही नहीं
यत् ईश्वरः	क्योंकि समर्थ पुरुष
न इति	नहीं (देंगे) ऐसा
न आह	नहीं कहते ॥६॥

दध्यङ् उवाच-*

धर्मं वः श्रोतुकामेन यूयं मे प्रत्युदाहृताः ।
एष वः प्रियमात्मानं त्यजन्तं संत्यजाम्यहम् ॥७॥

धर्मं वः श्रोतुकामेन यूयं मे प्रति उदाहृताः एष वः प्रियं आत्मानं त्यजन्तं संत्यजामि अहम् ॥७॥

वः धर्मं	आप लोगोंसे धर्म
श्रोतुकामेन	सुननेकी इच्छासे
मे यूयं	मैंने आप लोगोंको
प्रति उदाहृताः	प्रत्युत्तर दिया था
त्यजन्तं	(एक दिन स्वयं) छोड़ देनेवाले

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है ।

एष प्रियं आत्मानं	इस प्रिय देहको	**वः अहं संत्यजामि**	आप लोगोंके लिए मैं छोड़ रहा हूँ ॥७॥

योऽध्रुवेणात्मना नाथा न धर्मं न यशः पुमान् ।
ईहेत भूतदयया स शोच्यः स्थावरैरपि ॥८॥

यः अध्रुवेण आत्मना नाथा न धर्मं न यशः पुमान् ईहेत भूतदयया स शोच्यः स्थावरैः अपि ॥८॥

नाथा	जगत् स्वामियो !	**ईहेत**	पाना चाहता
यः अध्रुवेण	जो नश्वर	**स पुमान्**	वह पुरुष
आत्मना	शरीर द्वारा	**स्थावरैः**	स्थावरों (वृक्षादि)से
भूतदयया	प्राणियोंपर दयाके द्वारा	**अपि शोच्यः**	भी शोचनीय (गया-बीता) है ।८।
न धर्मं न यशः	न धर्म, न यश		

एतावानव्ययो धर्मः पुण्यश्लोकैरुपासितः ।
यो भूतशोकहर्षाभ्यामात्मा शोचति हृष्यति ॥९॥

एतावान् अव्ययः धर्मः पुण्यश्लोकैः उपासितः यः भूतशोक हर्षाभ्यां आत्मा शोचति हृष्यति ॥९॥

पुण्यश्लोकैः	पवित्र कर्ति (महा-पुरुषों) द्वारा	**भूतशोक**	प्राणियोंके शोकमें
उपासितः	अपनाया गया	**आत्मा**	स्वयं भी
अव्ययः धर्मः	अविनाशी धर्म	**शोचति**	शोक करता है
एतावान् यः	इतना ही है कि	**हर्षाभ्यां**	उनके हर्षसे
		हृष्यति	हर्षित होता है ॥९॥

अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यैः क्षणभंगुरैः ।
यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्यः स्वज्ञातिविग्रहैः ॥१०॥

अहो दैन्यं अहो कष्टं पारक्यैः क्षण भंगुरैः यत् न उपकुर्यात् अस्वार्थैः मर्त्यः स्वज्ञाति विग्रहैः ॥१०॥

अहो दैन्यं	यह कितनी कृपणता है	**अस्वार्थैः**	किसी स्वार्थमें न आनेवाले इन
अहो	यह कितने	**स्वज्ञाति**	अपनी जाति (धनादि) तथा
कष्टं	दुःखकी बात है	**विग्रहैः**	शरीरसे
यत् पारक्यैः	कि जो पराया है	**उपकुर्यात्**	परोपकार
क्षण	एक क्षणमें	**न**	नहीं करता ॥१०॥
भंगुरैः	नष्ट हो जानेवाला है		
मर्त्यः	मरणधर्मा मनुष्य		

श्रीशुक उवाच-

एवं कृतव्यवसितो दध्यङ्ङाथर्वणस्तनुम् ।
परे भगवति ब्रह्मण्यात्मानं सन्नयञ्जहौ ॥११॥

एवं कृतव्यवसितः दध्यङ् आथर्वणः तनुं परे भगवति ब्रह्मणि आत्मानं सन्नयन् जहौ ॥११॥

आथर्वणः	अथर्ववेदी	**परे ब्रह्मणि**	परम ब्रह्ममें
दध्यङ्	दधीचिने	**आत्मानं**	अपनेको
एवं	ऐसा	**सन्नयन्**	लीन करके
कृतव्यवसितः	निश्चय करके	**तनुं**	शरीर
भगवति	भगवान्	**जहौ**	त्याग दिया ॥११॥

यताक्षासुमनोबुद्धिस्तत्त्वदृग् ध्वस्तबन्धनः ।
आस्थितः परमं योगं न देहं बुबुधे गतम् ॥१२॥

यतः अक्षः असु मनः बुद्धिः तत्त्वदृक् ध्वस्त बन्धनः आस्थितः परमं योगं न देहं बुबुधे गतम् ॥१२॥

अक्षः मनः	इन्द्रिय, मन,	**परमं**	परम दशा (समाधि) में
बुद्धिः	बुद्धिको	**योगं**	योगकी
यतः	संयमित करके	**आस्थितः**	स्थित होनेसे
तत्त्वदृक्	तत्त्व चिन्तनसे	**देहं गतं**	शरीर छूटना
ध्वस्त	नष्ट हो गया,	**न बुबुधे**	ज्ञात नहीं हुआ ॥१२॥
बन्धनः	(कर्म) बन्धन		

अथेन्द्रो वज्रमुद्यम्य निर्मितं विश्वकर्मणा ।
मुनेः शुक्तिभिरुत्सिक्तो भगवत्तेजसान्वितः ॥१३॥

अथ इन्द्रः वज्रं उद्यम्य निर्मितं विश्वकर्मणा मुनेः शुक्तिभिः उत्सिक्तः भगवत् तेजसा अन्वितः ॥१३॥

अथ मुनेः	फिर मुनि (दधीचि) की	**विश्वकर्मणा**	विश्वकर्मा
शुक्तिभिः	हड्डीसे	**निर्मितं**	निर्मित
उत्सिक्तः	बनाया	**वज्रं उद्यम्य**	वज्र उठाकर
		भगवत् तेजसा	भगवान्‌के तेजसे
		अन्वितः इन्द्रः	सम्पन्न इन्द्र ॥१३॥

वृतो देवगणैः सर्वैर्गजेन्द्रोपर्यशोभत ।
स्तूयमानो मुनिगणैस्त्रैलोक्यं हर्षयन्निव ॥१४॥

वृतः देवगणैः सर्वैः गजेन्द्र उपरि अशोभत स्तूयमानः मुनिगणैः त्रैलोक्यं हर्षयन् इव ॥१४॥

सर्वैः देवगणैः	सब देवगणोंसे	**हर्षयन् इव**	हर्षित करते हुएसे
वृतः	घिरे	**गजेन्द्र**	गजराज ऐरावतके
मुनिगणैः	मुनिगणोंसे	**उपरि**	ऊपर
स्तूयमानः	स्तुत होते	**अशोभत**	सुशोभित हुए ॥१४॥
त्रैलोक्यं	त्रिलोकीको		

वृत्रमभ्यद्रवच्छेत्तुमसुरानीकयूथपैः ।
पर्यस्तमोजसा राजन् क्रुद्धो रुद्र इवान्तकम् ॥१५॥

वृत्रं अभ्यद्रवत् छेत्तुं असुर अनीकयूथपैः पर्यस्तं ओजसा राजन् क्रुद्धः रुद्र इव अन्तकम् ॥१५॥

राजन्	राजन् !	**पर्यस्तं वृत्रं**	घिरे हुए वृत्रको
क्रुद्धः	क्रोधमें भरे	**छेत्तुं**	काट डालनेके लिए
रुद्र अन्तकं	रुद्र कालपर (आक्रमण करें)	**ओजसा**	उत्साहपूर्वक
		अभ्यद्रवत्	उसकी ओर दौड़ पड़े ॥१५॥
इव	इस प्रकार		
असुर	असुर		
अनीकयूथपैः	सेनापतियोंसे		

ततः सुराणामसुरैः रणः परमदारुणः ।
त्रेतामुखे नर्मदायामभवत् प्रथमे युगे ॥१६॥

ततः सुराणां असुरैः रणः परमदारुणः त्रेतामुखे नर्मदायां अभवत् प्रथमे युगे ॥१६॥

ततः प्रथमे	तब पहिले (स्वायम्भुव)	**सुराणां**	देवताओंका
		असुरैः	असुरोंसे
युगे	मन्वन्तरके पहिले	**परमदारुणः**	अत्यन्त घोर
त्रेतामुखे	त्रेतायुगके प्रारम्भमें	**रणः**	युद्ध
नर्मदायां	नर्मदा किनारे	**अभवत्**	हुआ ॥१६॥

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां पितृवह्निभिः ।
मरुद्भिर्ऋभुभिः साध्यैर्विश्वेदेवैर्मरुत्पतिम् ॥१७॥

रुद्रैः वसुभिः आदित्यैः अश्विभ्यां पितृ वह्निभिः मरुत्भिः ऋभुभिः साध्यैः विश्वेदेवैः मरुत्पतिम् ॥१७॥

रुद्रैः वसुभिः	रुद्रों, वसुओं,	**अश्विभ्यां**	दोनों अश्विनी कुमारों
आदित्यैः	आदित्यों,		

पितृ वह्निभिः	पितरों, अग्नियों,	**साध्यैः**	साध्यगणों
मरुत्भिः	मरुद्गणों,	**विश्वेदेवैः**	विश्वेदेवोंके साथ
ऋभुभिः	ऋभुओं,	**मरुत्पतिम्**	देवराज ॥१७॥

दृष्ट्वा वज्रधरं शक्रं रोचमानं स्वया श्रिया ।
नामृष्यन्नसुरा राजन् मृधे वृत्रपुरःसराः ॥१८॥

दृष्ट्वा वज्रधरं शक्रं रोचमानं स्वया श्रिया न अमृष्यन् असुराः राजन् मृधे वृत्रपुरःसराः ॥१८॥

शक्रं वज्रधरं	इन्द्रको वज्र लिये	**मृधे वृत्रपुरः**	युद्धमें वृत्र जिनके आगे
स्वया श्रिया	अपने वैभवसे	**सराः**	चलता था वे
रोचमानं	सुशोभित	**असुराः**	असुर
दृष्ट्वा	देखकर	**अमृष्यन् न**	सहन नहीं कर सके ॥१८॥
राजन्	राजन् !		

नमुचिः शम्बरोऽनर्वा द्विमूर्धा ऋषभोऽम्बरः ।
हयग्रीवः शंकुशिरा विप्रचित्तिरयोमुखः ॥१९॥

नमुचिः, शम्बरः, अनर्वा, द्विमूर्धा, ऋषभः, अम्बरः, हयग्रीवः, शंकुशिरा, विप्रचित्तिः, अयोमुखः (ये केवल असुरोंके नाम हैं) ॥१९॥

पुलोमा वृषपर्वा च प्रहेतिर्हेतिरुत्कलः ।
दैतेया दानवा यक्षा रक्षांसि च सहस्रशः ॥२०॥

पुलोमा, वृषपर्वा च प्रहेतिः हेतिः उत्कलः (ये केवल असुरोंके नाम हैं) **दैतेया दानवा यक्षा रक्षांसि च सहस्रशः ॥२०॥**

दैतेया दानवा	दैत्य, दानव,	**सहस्रशः**	हजारों थे ॥२०॥
यक्षा च रक्षांसि	यक्ष और राक्षस		

सुमालिमालिप्रमुखाः कार्तस्वरपरिच्छदाः ।
प्रतिषिध्येन्द्रसेनाग्रं मृत्योरपि दुरासदम् ॥२१॥

सुमालि मालि प्रमुखाः कार्तस्वर परिच्छदाः प्रतिषिध्य इन्द्र सेना अग्रं मृत्योः अपि दुरासदम् ॥२१॥

सुमालि मालि	सुमाली और माली	**मृत्योः अपि**	मृत्युके लिए भी
प्रमुखाः	उनमें प्रमुख थे,	**दुरासदं**	अजेय
कार्तस्वर	स्वर्णकी साज-सज्जासे	**इन्द्र सेना**	इन्द्रकी सेनाको
		अग्रं	आगे आकर
परिच्छदाः	सजे,	**प्रतिषिध्य**	रोका ॥२१॥

अभ्यर्दयन्नसंभ्रान्ताः सिंहनादेन दुर्मदाः ।
गदाभिः परिघैर्बाणैः प्रासमुद्गरतोमरैः ॥२२॥

अभ्यर्दयन् असंभ्रान्ताः सिंहनादेन दुर्मदाः गदाभिः परिघैः बाणैः प्रास मुद्गर तोमरैः ॥२२॥

दुर्मदाः	(वे) घमण्डी	**बाणैः प्रास**	वाण, प्रास,
सिंहनादेन	गर्जना करते हुए	**मुद्गर, तोमरैः**	मुद्गर, तोमरोंसे
असंभ्रान्ताः	सावधान होकर	**अभ्यर्दयन्**	(देवताओंको)रोंदने लगे ॥२२॥
गदाभिः परिघैः	गदा, लाठी,		

शूलैः परश्वधैः खड्गैः शतघ्नीभिर्भुशुण्डिभिः ।
सर्वतोऽवाकिरन् शस्त्रैरस्त्रैश्च विबुधर्षभान् ॥२३॥

शूलैः परश्वधैः खड्गैः शतघ्नीभिः भुशुण्डिभिः सर्वतः अवाकिरन् शस्त्रैः अस्त्रैः च विबुध ऋषभान् ॥२३॥

शूलैः परश्वधैः	भालों, फरसों,	**सर्वतः**	चारों ओरसे
शतघ्नीभिः	तोपों,	**शस्त्रैः च**	शस्त्रों और
भुशुण्डिभिः	बन्दूकोंसे	**अस्त्रैः**	अस्त्रोंकी
विबुध ऋषभान्	देवनायकोंपर	**अवाकिरन्**	झड़ी लगा दी ॥२३॥

न तेऽदृश्यन्त संछन्नाः शरजालैः समन्ततः ।
पुङ्खानुपुङ्खपतितैर्ज्योतींषीव नभोघनैः ॥२४॥

न ते अदृश्यन्त संछन्नाः शरजालैः समन्ततः पुङ्ख अनुपुङ्ख पतितैः ज्योतींषी इव नभः घनैः ॥२४॥

समन्ततः	चारों ओरसे	**नभः घनैः**	आकाशके मेघोंसे घिर जानेपर
पुङ्ख	एककी पूंछसे सटे	**ज्योतींषी इव**	तारोंके समान
अनुपुङ्ख	दूसरे	**ते न अदृश्यन्त**	वे (देवता) दिखाई नहीं पड़ते ॥२४॥
पतितैः	गिरनेवाले		
शरजालैः	बाणोंके जालसे		
संछन्नाः	ढक जानेसे		

न ते शस्त्रास्त्रवर्षौघा ह्यासेदुः सुरसैनिकान् ।
छिन्नाः सिद्धपथे देवैर्लघुहस्तैः सहस्रधा ॥२५॥

न ते शस्त्र अस्त्र वर्षा ओघा हि आसेदुः सुरसैनिकान् छिन्नाः सिद्धपथे देवैः लघुहस्तैः सहस्रधा ॥२५॥

ते शस्त्र अस्त्र वर्षा ओघा हि	वह शस्त्र-अस्त्र वर्षाकी बाढ़ तो	**देवैः**	देवताओंके
लघुहस्तैः	हाथकी स्फूर्तिसे		
सुरसैनिकान्	देव-सैनिकोंके	**सिद्धपथे**	आकाशमें ही
आसेदुः न	पास तक नहीं पहुँच सकी,	**सहस्रधा**	सहस्रों
		छिन्नाः	टुकड़ोंमें काट दी गयी ॥२५॥

अथ क्षीणास्त्रशस्त्रौघा गिरिभृङ्गद्रुमोपलैः ।
अभ्यवर्षन् सुरबलं चिच्छिदुस्तांश्च पूर्ववत् ॥२६॥

अथ क्षीण अस्त्र शस्त्र ओघा गिरिभृङ्ग द्रुम उपलैः अभ्यवर्षन् सुरबलं चिच्छिदुः तान् च पूर्ववत् ॥२६॥

अथ अस्त्र शस्त्र	फिर अस्त्र-शस्त्र
ओघा क्षीण	समूह समाप्त होने पर
सुरबलं	देवताओंकी सेनापर
गिरिशृङ्गः	पर्वत-शिखर
द्रुम उपलैः	वृक्ष, चट्टानोंकी (असुर)
अभ्यवर्षन्	वर्षा करने लगे
तान्	(देवताओंने)उनक
च	भी
पूर्ववत्	पहिलेके समान
चिच्छिदुः	काट दिया ॥२६॥

तानक्षतान् स्वस्तिमतो निशाम्य
शस्त्रास्त्रपूगैरथ वृत्रनाथाः ।
द्रुमैर्दृषद्भिर्विविधाद्रिशृङ्गै-
रविक्षतांस्तत्रसुरिन्द्रसैनिकान् ॥२७॥

तान् अक्षतान् स्वस्तिमतः निशाम्य शस्त्र अस्त्र पूगैः अथ वृत्रनाथाः द्रुमैः दृषद्भिः विविध अद्रिशृङ्गैः अविक्षतान् तत्र सुर इन्द्र सैनिकान् ।२७।

अथ	तब जिनका
वृत्रनाथाः	स्वामी वृत्र था उन असुरोंने
शस्त्र अस्त्र	अस्त्र-शस्त्र
पूगैः	समूहसे
तान् इन्द्र	उन इन्द्रके
सैनिकान् सुरान्	सैनिक देवताओंको
अक्षतान्	घायल न हुआ
स्वस्तिमतः	सकुशल,
द्रुमैः दृषद्भिः	वृक्षों, चट्टानों,
विविध	अनेक
अद्रिशृङ्गैः	पर्वत शिखरोंसे भी
अविक्षतां	घाव रहित
निशाम्य	देखा ॥२७॥

सर्वे प्रयासा अभवन् विमोघाः
कृताः कृता देवगणेषु दैत्यैः ।
कृष्णानुकूलेषु यथा महत्सु
क्षुद्रैः प्रयुक्ता रुशती रुक्षवाचः ॥२८॥

सर्वे प्रयासाः अभवन् विमोघाः कृताः कृता देवगणेषु दैत्यैः कृष्ण अनुकूलेषु यथा महत्सु क्षुद्रैः प्रयुक्ता रुशती रुक्षवाचः ॥२८॥

यथा	जैसे
कृष्ण	कृष्णके
अनुकूलेषु	अनुकूल रहनेवाले
महत्सु	महापुरुषोंपर
क्षुद्रैः	तुच्छ लोगों
प्रयुक्ता	द्वारा कही
रुशती	अमंगलमय
रुक्षवाचः	रूखी-वाणी (निष्क्रियभाव होती है)
देवगणेषु	देवताओंके (विरुद्ध)
दैत्यैः	दैत्यों द्वारा
कृताः कृता	बार-बार किये गये
सर्वे प्रयासाः	सब प्रयत्न
विमोघाः	व्यर्थ
अभवन्	हो गये ॥२८॥

ते स्वप्रयासं वितथं निरीक्ष्य
हरावभक्ता हतयुद्धदर्पाः ।
पलायनायाजिमुखे विसृज्य
पतिं मनस्ते दधुरात्तसाराः ॥२९॥

ते स्वप्रयासं वितथं निरीक्ष्य हराः अभक्ता हतयुद्ध दर्पाः पलायनाय आजिमुखे विसृज्य पतिं मनः ते दधुः आत्तसाराः ॥२९॥

हराः अभक्ता	भगवद् विमुख
ते	वे (असुर)
स्वप्रयासं	अपने प्रयासको
वितथं निरीक्ष्य	व्यर्थ गया देखकर
हतयुद्ध दर्पाः	युद्ध करनेका गर्व नष्ट हो गया
आत्तसाराः	उत्साहहीन हो गये,
आजिमुखे	युद्ध भूमिमें
पतिं	अपने स्वामी (वृत्र) को
विसृज्य	छोड़कर
ते पलायनाय	उन्होंने भागनेका
मनः दधे	संकल्प कर लिया ॥२९॥

वृत्रोऽसुरांस्ताननुगान् मनस्वी
प्रधावतः प्रेक्ष्य बभाष एतत् ।
पलायितं प्रेक्ष्य बलं च भग्नं
भयेन तीव्रेण विहस्य वीरः ॥३०॥

वृत्रः असुरान् तान् अनुगान् मनस्वी प्रधावतः प्रेक्ष्य बभाष एतत् पलायितं प्रेक्ष्य बलं च भग्नं भयेन तीव्रेण विहस्य वीरः ॥३०॥

मनस्वी वीरः	धीर वीर	**भग्नं बलं**	तितर-बितर हुई सेनाको
वृत्रः	वृत्र ने		
तान अनुगान् असुरान्	उन अपने अनुचरों असुरोंको	**पलायितं**	भागते
		प्रेक्ष्य	देखकर
प्रधावतः प्रेक्ष्य	भागते हुए देखकर	**विहस्य**	अट्ठहास करके
च तीव्रेण भयेन	तथा अत्यन्त भयके कारण	**एतत् बभाष**	यह कहा ॥३०॥

कालोपपन्नां रुचिरां मनस्विना-
मुवाच वाचं पुरुषप्रवीरः ।
हे विप्रचित्ते नमुचे पुलोमन्
मयानर्वञ्छम्बर मे शृणुध्वम् ॥३१॥

काल उपपन्नां रुचिरां मनस्विनां उवाच वाचं पुरुष प्रवीरः हे विप्रचित्ते नमुचे पुलोमन् मयान् अर्वन् शम्बर मे शृणुध्वम् ॥३१॥

प्रवीरः पुरुषः	वीर शिरोमणि पुरुष (वृत्र) ने	**हे विप्रचित्ते**	हे विप्रचित्ति,
		नमुचे	नमुचि,
काल उपपन्नां	समयोचित	**पुलोमन् मयान्**	पुलोमा, मय
मनस्विनां	मनस्वियोंको	**अर्वन् शम्बर**	अर्वा, अम्बर,
रुचिरां	सुन्दर लगने वाली	**मे शृणुध्वं**	मेरी बात सुनो ॥३१॥
वाचं उवाच	सार्थक वाणी बोला–		

जातस्य मृत्युर्ध्रुव एष सर्वतः
प्रतिक्रिया यस्य न चेह क्लृप्ता ।
लोको यशश्चाथ ततो यदि ह्यमुं
को नाम मृत्युं न वृणीत युक्तम् ॥३२॥

जातस्य मृत्युः ध्रुवः एष सर्वतः प्रतिक्रिया यस्य न च इह क्लृप्ता लोकः यशः च अथ ततः यदि हि अमुं कः नाम मृत्युं न वृणीत युक्तम् ॥३२॥

इह	क्योंकि
एष ध्रुवः	यह निश्चित है कि
जातस्य	जो उत्पन्न हुआ है
सर्वतः मृत्युः	उसकी मृत्यु कहीं भी होगी,
च इह	और इस लोकमें
यस्य प्रतिक्रिया	जिसका प्रतिकार
न क्लृप्ता	(सृष्टिकर्त्ताने) मनायी ही नहीं है ।
अथ यदि	अब यदि
ततः	उससे
लोकः यशः च	लोकमें यश भी (मिलता हो)
कः नाम	भला कौन ऐसा है जो
अमुं युक्तं मृत्युं	ऐसी उपयुक्त मृत्यु
वृणीत न	वरण नहीं करेगा ॥३२॥

द्वौ संमताविह मृत्यू दुरापौ
यद् ब्रह्मसंधारणया जितासुः ।
कलेवरं योगरतो विजह्याद्
यदग्रणीर्वीरशयेऽनिवृत्तः ॥३३॥

द्वौ संमताः इह मृत्यु दुरापौ यद् ब्रह्म संधारणया जित असुः कलेवरं योगरतः विजह्यात् यत् अग्रणीः वीरशये अनिवृत्तः ॥३३॥

इह	इस लोकमें
द्वौ मृत्यु	दोकी ही मृत्यु
संमताः	चाहने योग्य और
दुरापौ	दुष्प्राप्य है
यद्	जो
ब्रह्म संधारणया	ब्रह्म चिन्तन द्वारा
जित असुः	प्राणोंको जीतकर
योगरतः	योगमें स्थित होकर
कलेवरं	शरीर
विजह्यात्	छोड़ दे,
यत्	अथवा
अग्रणीः	(सेनाके) आगे रहकर
अनिवृत्तः	बिना पीछे लौटे
वीरशये	वीर-शैय्या ले ले ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे इन्द्रवृत्रासुरयुद्धवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

त एवं शंसतो धर्मं वचः पत्युरचेतसः ।
नैवागृह्णन भयत्रस्ताः पलायनपरा नृप ॥ १ ॥

त एवं शंसतः धर्मं वचः पत्युः अचेतसः न एव अगृह्णन् भयत्रस्ताः पलायनपरा नृप ॥१॥

नृप	राजन् !	**पलायनपरा**	भागते हुए
एवं धर्मं	इस प्रकार धर्मकी बात	**पत्युः वचः**	अपने स्वामीकी बात
शंसतः	कहने पर भी	**त न एव**	उन्होंने नहीं ही
भयस्त्रस्ताः	भयभीत	**अगृह्णन्**	ग्रहण की ॥१॥
अचेतसः	अचेत		

विशीर्यमाणां पृतनामासुरीमसुरर्षभः ।
कालानुकूलैस्त्रिदशैः काल्यमानामनाथवत् ॥ २ ॥

विशीर्यमाणां पृतनां आसुरीं असुर ऋषभः काल अनुकूलैः त्रिदशैः काल्यमानां अनाथवत् ॥२॥

अनाथवत्	बिना नायकके समान	**त्रिदशैः**	देवताओं द्वारा
आसुरीं पृतनां	असुरोंकी सेनाको	**काल्यमानां**	खदेड़ी जाती
विशीर्यमाणां	छिन्न-भिन्न होती	**असुर ऋषभः**	असुर श्रेष्ठ वृत्र ॥२॥
काल अनुकूलैः	समयके अनुकूल पड़नेसे		

दृष्ट्वातप्यत संक्रुद्ध इन्द्रशत्रुरमर्षितः ।
तान् निवार्यौजसा राजन् निर्भर्त्स्येदमुवाच ह ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा अतप्यत संक्रुद्धः इन्द्रशत्रुः अमर्षितः तान् निवार्य ओजसा राजन् निर्भर्त्स्य इदं उवाच ह ॥३॥

राजन्	राजन् !	**ओजसा**	उत्साहसे
इन्द्रशत्रुः	इन्द्रका शत्रु	**तान् निवार्य**	उन (देवताओं)को रोककर
दृष्ट्वा	(यह) देखकर	**निर्भर्त्स्य ह**	डांटते हुए ही
संक्रुद्धः	क्रोधमें भरकर	**इदं उवाच**	यह बोला ॥३॥
अमर्षितः	असहिष्णुतासे		
अतप्यत	तप्त होता— तिलमिलाता		

किं व उच्चरितैर्मातुर्धावद्भिः पृष्ठतो हतैः ।
न हि भीतवधः श्लाघ्यो न स्वर्ग्यः शूरमानिनाम् ॥४॥

किं वः उच्चरितैः मातुः धावद्भिः पृष्ठतः हतैः न हि भीतवधः श्लाघ्यः न स्वर्ग्यः शूरमानिनाम् ॥४॥

मातुः उच्चरितैः	माताके मल-मूत्रके समान	**शूरमानिनां**	अपनेको शूर मानने वालोंके लिए
धावद्भिः	इन भागने वालोंको	**भीतवधः**	डरे हुएको मारना
पृष्ठतः हतैः	पीछेसे मारनेमें	**न श्लाघ्यः**	न प्रशंसनीय है,
वः किं	तुम लोगोंका क्या लाभ है ।	**न स्वर्ग्यः**	न स्वर्ग देनेवाला है ॥४॥
हि	क्योंकि		

यदि वः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि ।
अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद् ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥ ५ ॥

यदि वः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेत् ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥५॥

यदि वः	यदि तुम लोगोंमें
प्रधने श्रद्धा	युद्ध करनेका उत्साह है,
वा क्षुल्लका	अथवा क्षुद्रो !
हृदि सारं	(तुम्हारे) हृदयमें साहस है,
ग्राम्यसुखे	भोग-विलासकी
स्पृहा न चेत्	इच्छा नहीं रही है तो
मे अग्रे	मेरे आगे
तिष्ठत मात्रं	खड़े भर रहो ॥५॥

एवं सुरगणान् क्रुद्धो भीषयन् वपुषा रिपून् ।
व्यनदत् सुमहाप्राणो येन लोका विचेतसः ॥ ६ ॥

एवं सुरगणान् क्रुद्धः भीषयन् वपुषा रिपून् व्यनदत् सुमहा प्राणः येन लोका विचेतसः ॥६॥

एवं क्रुद्धः	इस प्रकार, क्रोधमें भरकर
वपुषा रिपून्	अपने शरीरसे ही शत्रु
सुरगणान्	देवताओंको
भीषयन्	डराता हुआ
सुमहा प्राणः	बहुत बड़ी प्राण-शक्तिसे
व्यनदत्	गर्जना की
येन लोका	जिससे सब लोग
विचेतसः	मूर्छित हो गये ॥६॥

तेन देवगणाः सर्वे वृत्रविस्फोटनेन वै ।
निपेतुर्मूर्च्छिता भूमौ यथैवाशनिना हताः ॥ ७ ॥

तेन देवगणाः सर्वे वृत्रविस्फोटनेन वै निपेतुः मूर्च्छिता भूमौ यथा एव अशनिना हताः ॥७॥

वै तेन	निश्चय उस
वृत्रविस्फोटनेन	वृत्रासुरकी गर्जना से ही
सर्वे देवगणाः	सभी देवसमूह
यथा अशनिना	जैसे वज्रसे
हताः	मारे गये हों
मूर्च्छिता	मूर्च्छित होकर
भूमौ निपेतुः	पृथ्वीपर गिर पड़े ॥७॥

ममर्द पद्भ्यां सुरसैन्यमातुरं
निमीलिताक्षं रणरङ्गदुर्मदः ।
गां कम्पयन्नुद्यतशूल ओजसा
नालं वनं यूथपतिर्यथोन्मदः ॥ ८ ॥

ममर्द पद्भ्यां सुरसैन्यं आतुरं निमीलित अक्षं रणरङ्ग दुर्मदः गां कम्पयन् उद्यतशूल ओजसा नालं वेनं यूथपतिः यथा उन्मदः ॥८॥

यथा उन्मदः	जैसे मतवाला
यूथपतिः	यूथपति गजराज
नालं वनं	नरकटके वनको (रौंदे)
ओजसा	उत्साहपूर्वक
उद्यतशूल	त्रिशूल उठाये
रणरङ्ग	युद्धकी धुनमें
दुर्मदः	मतवाला होकर
गां कम्पयन्	पृथ्वी कँपता हुआ
आतुरं	व्याकुल (भयसे)
निमीलित अक्षं	नेत्र बन्द करके (पड़ी)
सुरसैन्यं	देवताओंकी सेनाको
पद्भ्यां ममर्द	पैरोंसे मसलने लगा

॥८॥

विलोक्य तं वज्रधरोऽत्यमर्षितः
स्वशत्रवेऽभिद्रवते महागदाम् ।
चिक्षेप तामापततीं सुदुःसहां
जग्राह वामेन करेण लीलया ॥ ९ ॥

विलोक्य तं वज्रधरः अति अमर्षितः स्वशत्रवे अभिद्रवते महागदां चिक्षेप तां आपततीं सुदुः सहां जग्राह वामेन करेण लीलया ॥९॥

तं स्वशत्रवे	उस अपने शत्रुको
अभिद्रवते	अपनी ओर झपटते
विलोक्य	देखकर
वज्रधरः	इन्द्रने
अति अमर्षितः	अत्यन्त असहनशील होकर
महागदां	अपनी भारी गदा
चिक्षेप	फेंकी

तां सुदुः सहां	उस असह्य (गदा)	वामेन करेण	बायें हाथसे
आपततीं	आती हुईको	जग्राह	(वृत्र ने) पकड़
लीलया	खेलमें		लिया ॥९॥

स इन्द्रशत्रुः कुपितो भृशं तया
महेन्द्रवाहं गदयोग्रविक्रमः ।
जघान कुम्भस्थल उन्नदन् मृधे
तत्कर्म सर्वे समपूजयन्नृप ॥१०॥

स इन्द्रशत्रुः कुपितः भृशं तया महेन्द्रवाहं गदया उग्रविक्रमः जघान कुम्भस्थल उन्नदन मृधे तत् कर्म सर्वे समपूजयन् नृप ॥१०॥

नृप	राजन् !	महेन्द्रवाहं	इन्द्रके वाहन (ऐरावत)के
मृधे	युद्धमें	कुम्भस्थल	मस्तकपर
उग्रविक्रमः	प्रचण्ड पराक्रम	जघान	मारा,
स इन्द्रशत्रुः	उस इन्द्रके शत्रुने	तत् कर्म	उसके इस कर्मकी
उन्नदन्	गर्जना करते हुए	सर्वे समपूजयन्	सब लोग प्रशंसा
भृशं कुपितः	बहुत क्रुद्ध होकर		करने लगे ॥१०॥
तया गदया	उसी गदासे		

ऐरावतो वृत्रगदाभिमृष्टो
विघूर्णितोऽद्रिः कुलिशाहतो यथा ।
अपासरद् भिन्नमुखः सहेन्द्रो
मुञ्चन्नसृक् सप्तधनुर्भृशार्तः ॥११॥

ऐरावतः वृत्रगदा अभिमृष्टः निघूर्णितः अद्रिः कुलिश आहतः यथा अपासरत् भिन्नमुखः सह इन्द्रः मुञ्चन् असृक् सप्त धनुः भृश आर्तः ॥११॥

वृत्रगदा	वृत्रासुर द्वारा (चलाया) गदासे	यथा कुलिश	जैसे वज्रसे
अभिमृष्टः	आहत	आहतः अद्रिः	मारा पर्वत हो
ऐरावतः	ऐरावत	विघूर्णितः	घूमकर
		भिन्नमुखः	फटे सिर

असृक् मुञ्चन्	रक्त फेंकता	सप्त धनुः	सात धनुष
भृश आर्त	बहुत दुःखी होकर		(अट्ठाइस हाथ)
सह इन्द्रः	इन्द्रके साथ	अपासरत्	पीछे हट गया ॥११॥

न सन्नवाहाय विषण्णचेतसे
प्रायुंक्त भूयः स गदां महात्मा ।
इन्द्रोऽमृतस्यन्दिकराभिमर्श-
वीतव्यथक्षतवाहोऽवतस्थे ॥१२॥

न सन्नवाहाय विषण्णचेतसे प्रायुंक्त भूयः स गदां महात्मा इन्द्रः अमृतस्यन्दि कर अभिमर्श वीतव्यथ क्षतवाहः अवतस्थे ॥१२॥

सन्नवाहाय	मूर्छित वाहन (होने से)	क्षतवाहः	घायल वाहनको
विषण्णचेतसे	विषादग्रस्त चित्त (इन्द्रपर)	अमृतस्यन्दि	अमृत-स्पर्शी
		कर अभिमर्श	हाथसे सहलाकर
स महात्मा	उस महात्मा(वृत्र)ने	वीतव्यथः	व्यथाहीन करके
भूयः गदां	फिर गदाका	इन्द्रः अवतस्थे	इन्द्र (युद्धमें) आ डटे
प्रायुंक्त न	प्रयोग नहीं किया,		॥१२॥

स तं नृपेन्द्राहवकाम्यया रिपुं
वज्रायुधं भ्रातृहणं विलोक्य ।
स्मरंश्च तत्कर्म नृशंसमंहः
शोकेन मोहेन हसञ्जगाद ॥१३॥

स तं नृपेन्द्र आहव काम्यया रिपुं वज्रायुधं भ्रातृहणं विलोक्य स्मरन् च तत् कर्म नृशंसं अहः शोकेन मोहेन हसन् जगाद ॥१३॥

नृपेन्द्र	परीक्षित् !	तं वज्रायुधं	उस वज्रधारी
आहव काम्यया	युद्ध करनेकी इच्छा से आये	भ्रातृहणं रिपुं	अपने भाईके हत्यारे शत्रुको

विलोक्य	देखकर	**शोकेन च**	शोक और
तत् नृशंसं	उसके क्रूर	**मोहेन**	मोहसे
अंहः कर्म	पाप कर्मको	**हसन्**	हँसता हुआ
स्मरन्	स्मरण करके	**जगाद**	बोला ॥१३॥
स	वह (वृत्र)		

वृत्र उवाच–

दिष्ट्या भवान् मे समवस्थितो रिपु-
र्यो ब्रह्महा गुरुहा भ्रातृहा च ।
दिष्ट्यानृणोऽद्याहमसत्तम त्वया
मच्छूलनिर्भिन्नदृषद्धृदाचिरात् ॥१४॥

दिष्टचा भवान् मे समवस्थितः रिपुः यः ब्रह्महा गुरुहा भ्रातृहा च दिष्टचा अनृणः अद्य अहं असत्तम त्वया मत् शूल निर्भिन्न दृषत् हृदा अचिरात् ॥१४॥

दिष्टचा	(मेरे लिए) सौभाग्य की बात है कि	**त्वया असत्तम**	तुझ अत्यन्त दुष्टका
भवान् रिपुः	तुम्हारे जैसा शत्रु	**दृषत्**	पाषाण (कठोर)
समवस्थितः	सामने खड़ा है	**हृदा**	हृदय
यः ब्रह्महा	जो ब्रह्म-हत्यारा,	**मत् शूल**	मेरे त्रिशूलसे
गुरुहा	गुरु-हत्यारा	**निर्भिन्न**	फट जानेपर
च भ्रातृहा	और मेरे भाईका हत्यारा है,	**अद्य अहं**	आज मैं
दिष्टचा	सौभाग्यकी ही बात है कि	**अचिरात्**	शीघ्र
		अनृणः	(भाईसे) उऋण हो जाऊँ ॥१४॥

यो नोऽग्रजस्यात्मविदो द्विजाते-
र्गुरोरपापस्य च दीक्षितस्य ।
विश्रभ्य खड्गेन शिरांस्यवृश्चत्
पशोरिवाकरुणः स्वर्गकामः ॥१५॥

यः नः अग्रजस्य आत्मविदः द्विजातेः गुरोः अपापस्य च दीक्षितस्य विश्रभ्य खड्गेन शिरांसि अवृश्चत् पशोः इव अकरुणः स्वर्गकामः ॥१५॥

आत्मविदः	आत्मज्ञानी	**विश्रभ्य**	विश्वास दिलाकर
द्विजातेः	ब्राह्मण	**अकरुणः**	निष्ठुर
गुरोः	अपने गुरु	**स्वर्गकामः**	स्वर्गेच्छु द्वारा
अपापस्य	निष्पाप	**पशोः इव**	बलि पशुकी भाँति
च	और (यज्ञमें)	**खड्गेन**	तलवारसे
दीक्षितस्य	दीक्षित	**शिरांसि**	सिरोंको
यः नः	जिसने मेरे	**अवृश्चत्**	काट दिया ॥१५॥
अग्रजस्य	बड़े भाईका		

ह्रीश्रीदयाकीर्तिभिरुज्झितं त्वां
स्वकर्मणा पुरुषादैश्च गर्ह्यम् ।
कृच्छ्रेण मच्छूलविभिन्नदेह-
मस्पृष्टवह्निं समदन्ति गृध्राः ॥१६॥

ह्री श्री दया कीर्तिभिः उज्झितं त्वां स्वकर्मणा पुरुषादैः च गर्ह्यं कृच्छ्रेण मत् शूल विभिन्न देहं अस्पृष्ट वह्निं समदन्ति गृध्राः ॥१६॥

अस्पृष्ट वह्निं	अग्नि स्पर्श रहित	**स्वकर्मणा**	अपने कर्मसे
मत् शूल	मेरे त्रिशूलसे	**पुरुषादैः च**	राक्षसोंसे भी
विभिन्न देहं	छिन्न-भिन्न शरीर	**गर्ह्यं**	निन्दित
ह्री श्री दया	लज्जा, श्री, दया,	**त्वां गृध्राः**	तुम्हें गीध
कीर्तिभिः	कीर्तिद्वार	**कृच्छ्रेण**	बड़े कष्टसे ही
उज्झितं	परित्यक्त	**समदन्ति**	खायेंगे ॥१६॥

अन्येऽनु ये त्वेह नृशंसमज्ञा
ये ह्युद्यतास्त्राः प्रहरन्ति मह्यम् ।
तैर्भूतनाथान् सगणान् निशात-
त्रिशूलनिर्भिन्नगलैर्यजामि ॥१७॥

अन्ये अनु ये तु इह नृशंसं अज्ञा ये हि उद्यतअस्त्राः प्रहरन्ति मह्यं तैः भूतनाथान् सगणान् निशात त्रिशूल निर्भिन्न गलैः यजामि ॥१७॥

ये अन्ये तु	जो दूसरे तो
अज्ञा	अज्ञानी (देवता)
इह नृशंसं	यहां (तुझ) निर्दयके
अनु	अनुयायी हैं
ये हि	जो कि
उद्यत अस्त्राः	अस्त्र उठाकर
मह्यं प्रहरन्ति	मुझ पर प्रहार कर रहे हैं
निशात त्रिशूल	(अपने) तीक्ष्ण त्रिशूलसे
निर्भिन्न गलैः	कटे गलेवाले उनके द्वारा
सगणान्	गणोंके साथ
भूतनाथान्	(भैरवादि) भूत-नाथोंका
यजामि	यजन करूँगा (बलि दूंगा) ॥१७॥

अथो हरे मे कुलिशेन वीर
हर्ता प्रमथ्यैव शिरो यदीह ।
तत्रानृणो भूतबलिं विधाय
मनस्विनां पादरजः प्रपत्स्ये ॥१८॥

अथो हरे मे कुलिशेन वीर हर्ता प्रमथ्य एव शिरः यत् ईह तत्र अनृणः भूत बलिं विधाय मनस्विनां पादरजः प्रपत्स्ये ॥१८॥

अथो	सम्भव है
यत् ईह	कि यहां (युद्धमें)
वीर	वीर (इन्द्र)
प्रसथ्य एव	(मेरी सेनाको) तितर-बितर करके ही
कुलिशेन	वज्र से
मे शिरः हर्ता	मेरा सिर काट लो
तत्र भूत	तब तो प्राणियोंको (अपने शरीरका)
बलिं विधाय	उपहार देकर
अनृणः	ऋणों से छूटकर
मनस्विनां	महापुरुषोंकी
पादरजः प्रपत्स्ये	चरणरजकी शरण लूंगा (जहाँ महा-पुरुष जाते हैं वहाँ जाऊँगा' ॥१८॥

सुरेश कस्मान्न हिनोषि वज्रं
पुरः स्थिते वैरिणि मय्यमोघम् ।
मा संशयिष्ठा न गदेव वज्रं
स्यान्निष्फलं कृपणार्थेव याच्ञा ॥१९॥

सुरेश कस्मात् न हिनोषि वज्रं पुरः स्थिते वैरिणि मयि अमोघं मा संशयिष्ठा न गदा इव वज्रं स्यात् निष्फलं कृपण अर्थ इव याच्ञा ॥१९॥

सुरेश	इन्द्र !	**कृपण अर्थ**	कृपण (पुरुष) से धनकी
पुरः स्थिते	सामने खड़े	**याच्ञा इव**	याचनाके समान
मयि वैरिणि	मुझ शत्रुपर	**गदा इव**	(पहिले चलायी) गदाके समान
अमोघं वज्रं	(अपना)अमोघ वज्र	**वज्रं निष्फलं न**	वज्र निष्फल नहीं
कस्मात् न	क्यों नहीं	**स्यात्**	होगा ॥१९॥
हिनोषि	चलाते,		
मा संशयिष्ठा	सन्देह मत करोकि		

नन्वेष वज्रस्तव शक्र तेजसा
हरेर्दधीचेस्तपसा च तेजितः ।
तेनैव शत्रुं जहि विष्णुयन्त्रितो
यतो हरिर्विजयः श्रीर्गुणास्ततः ॥२०॥

ननु एष वज्रः तव शक्र तेजसा हरेः दधीचेः तपसा च तेजितः तेन एव शत्रुं जहि विष्णु यन्त्रितः यतः हरिः विजयः श्रीः गुणाः ततः ॥२०॥

शक्र	इन्द्र !	**तेजितः**	तेजस्वी हुआ है,
ननु एष	निश्चय यह	**विष्णु यन्त्रितः**	विष्णु भगवान् से प्रेरित (तुम)
तव वज्रः	तुम्हारा वज्र		
हरेः तेजसा	श्री हरिके	**तेन एव**	उसी (वज्र) से ही
च दधीचेः तपसा	और दधीचि ऋषि-की तपस्यासे	**शत्रुं जहि**	(मुझ) शत्रुको मार दो,

यतः हरिः	जिस पक्षमें श्रीहरि हैं	**श्रीः गुणाः**	लक्ष्मी और सब गुण
ततः विजयः	उसी पक्षमें विजय,		रहते हैं ॥२०॥

अहं समाधाय मनो यथाऽऽह
सङ्कर्षणस्तच्चरणारविन्दे ।
त्वद्वज्रंहोलुलितग्राम्यपाशो
गतिं मुनेर्याम्यपविद्धलोकः ॥२१॥

अहं समाधाय मनः यथा आह सङ्कर्षणः तत् चरणारविन्दे त्वत् वज्र रंहः लुलित ग्राम्यपाशः गतिं मुनेः यामि अपविद्ध लोकः ॥२१॥

सङ्कर्षणः	सङ्कर्षण भगवान्ने	**त्वत् वज्र रंहः**	तुम्हारे वज्रके वेगसे
यथा आह	जैसा आदेश किया है,	**ग्राम्यपाशः**	विषय-भोगरूपी फन्देके
तत्	उनके	**लुलित**	कट जानेसे
चरणारविन्दे	चरण-कमलोंमें	**मुनेः गतिं**	मुनि-जनोचित गति
अहं मनः	मैं मनको	**अपविद्ध लोकः**	अनश्वर लोक
समाधाय	लगाकर	**यामि**	जाऊँगा ॥२१॥

पुंसा किलैकान्तधियां स्वकानां
याः सम्पदो दिवि भूमौ रसायाम् ।
न राति यद् द्वेष उद्वेग आधि-
र्मदः कलिर्व्यसनं संप्रयासः ॥२२॥

पुंसां किल एकान्तधियां स्वकानां याः सम्पदः दिवि भूमौ रसायां न राति यत् द्वेष उद्वेग आधिः मदः कलिः व्यसनं संप्रयासः ॥२२॥

किल	अहो,	**याः दिवि भूमौ**	जो स्वर्ग, पृथ्वी,
एकान्तंधियां	अनन्य बुद्धि	**रसायां**	रसातलकी
स्वकानां पुंसा	अपने जनोंको (भगवान्)	**सम्पदः**	सम्पत्ति है
		न राति	नहीं देते,

यत्	जिस (सम्पत्ति) से	**कलिः व्यसनं**	झगड़ा, दुःख और
द्वेष उद्वेग	द्वेष, उद्विग्नता,	**संप्रभासः**	परिश्रम ही मिलता
आधिः मदः	चिन्ता, अभिमान,		है ॥२२॥

त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्-
पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र ।
ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो
यो दुर्लभोऽकिञ्चनगोचरोऽन्यैः ॥२३॥

त्रैवर्गिक आयास विघातं अस्मत् पतिः विधत्ते पुरुषस्य शक्र ततः अनुमेयः भगवत् प्रसादः यः दुर्लभः अकिञ्चन गोचरः अन्यैः ॥२३॥

शक्र	इन्द्र !	**ततः भगवत्**	उससे भगवान्‌की
अस्मत् पतिः	हमारे स्वामी	**प्रसादः अनुमेयः**	कृपाका अनुमान
पुरुषस्य	(अपने) निज-जनके		करना चाहिए
त्रैवर्गिक	त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म,	**यः अकिञ्चन**	जो (कृपा)अकिञ्चन
	काम) के लिए		(भक्तों) को
आयास	होनेवाले परिश्रमको	**गोचरः**	(ही) दीखती है
विघातं विधत्ते	नष्ट कर दिया	**अन्यैः दुर्लभः**	दूसरोंको दुर्लभ है
	करते हैं,		॥२३॥

अहं हरे तव पादैकमूल-
दासानुदासो भवितास्मि भूयः ।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ॥२४॥

अहं हरे तव पाद एक मूल दास अनुदासः भविता अस्मि भूयः मनः स्मरेत् आसुपतेः गुणान् ते गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ॥२४॥

हरे	श्रीहरि !	**भूयः**	फिर (अगले जन्ममें
तव पाद मूल	आपके श्रीचरणोंके		भी)
अनुदासः	अनन्य सेवकोंका		

एक दासः	एक सेवक	**वाक् गृणीत**	वाणी बोले
भविता अस्मि	हो जाऊँ	**कायः**	(मेरा) शरीर
आसुपतेः	प्राणबल्लभ !	**कर्म करोतु**	(आपकी सेवा) कार्य
ते गुणान्	आपके गुणोंको ही		करता रहे ॥२४॥
मनः स्मरेत्	(मेरा) मन स्मरण करे,		

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥२५॥

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसा आधिपत्यं न योगसिद्धिः अपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥२५॥

समञ्जस	सर्वसौभाग्यनिधे !	**रसा आधिपत्यं**	सम्पूर्ण पृथ्वीका
त्वा विरहय्य	आपसे वियुक्त		साम्राज्य,
	होकर (मैं)	**योगसिद्धिः**	योगकी सिद्धियां
नाकपृष्ठं न	स्वर्ग नहीं,	**वा अपुनर्भवं**	अथवा मोक्ष
पारमेष्ठ्यं च न	ब्रह्मलोक भी नहीं	**न काङ्क्षे**	नहीं चाहता ॥२५॥

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥२६॥

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः प्रियं प्रिया इव व्युषितं विषण्णा मनः अरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥२६॥

अजातपक्षा	जिनके पंख नहीं निकले हैं वे	**मातरं इव**	जैसे माँकी (प्रतीक्षा करते हैं)उस प्रकार,
खगाः	पक्षिशावक	**क्षुधार्ताः**	भूख से व्याकुल

वत्सतराः	नन्हे बछड़े	**प्रिया इव**	पत्नीकी भाँति
यथा स्तन्यं	जैसे दूध पीनेके लिए (उत्सुक) रहते हैं,	**अरविन्दाक्ष**	कमलनयन !
		मनः त्वां	(मेरा) मन आपके
व्युषितं प्रियं	प्रवासमें गये प्रिय-तमके लिए	**दिदृक्षते**	दर्शनके लिए (समुत्सुक) रहो ।२६॥
विषण्णा	खिन्ना		

ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं
संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ।
त्वन्माययाऽऽत्मात्मजदारगेहे-
ष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥२७॥

मम उत्तम श्लोक जनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः त्वत् मायया आत्म आत्मज दारगेहेषु आसक्त चित्तस्य न नाथ भूयात् ॥२७॥

उत्तम श्लोक नाथ	पवित्र कीर्तिप्रभो !	**आत्म आत्मज**	शरीर, पुत्र,
		दारगेहेषु	स्त्री घरमें
त्वत् मायया	आपकी मायासे	**आसक्त चित्तस्य**	आसक्त हृदय
स्वकर्मभिः	अपने कर्मोंके अनुसार	**जनेषु**	लोगों से
संसारचक्रे	संसार-चक्रमें	**मम सख्यं**	मेरी मित्रता
भ्रमतः	भटकते हुए	**न भूयात्**	न हो ॥२७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-*

एवं जिहासुर्नृप देहमाजौ
मृत्युं वरं विजयान्मन्यमानः।
शूलं प्रगृह्याभ्यपतत् सुरेन्द्रं
यथा महापुरुषं कैटभोऽप्सु ॥ १ ॥

एवं जिहासुः नृप देहं आजौ मृत्युं वरं विजयात् मन्यमानः शूलं प्रगृह्य अभ्यपतत् सुरेन्द्रं यथा महापुरुषं कैटभः अप्सु ॥१॥

नृप	राजन् !	**यथा अप्सु**	जैसे (प्रलय समुद्र) जलमें
एवं आजौ	इस प्रकार युद्ध भूमिमें	**कैटभः**	असुर कैटभ
देहं जिहासुः	शरीर त्यागकी इच्छा करता,	**महापुरुषं**	पुरुषोत्तम नारायण पर (दौड़ा था)
विजयात्	विजय से	**शूलं प्रगृह्य**	त्रिशूल लेकर
मृत्युं वरं	मृत्युको श्रेष्ठ	**सुरेन्द्रं**	इन्द्रपर
मन्यमानः	मानता हुआ	**अभ्यपतत्**	टूट पड़ा ॥१॥

ततो युगान्ताग्निकठोरजिह्व-
माविध्य शूलं तरसासुरेन्द्रः ।
क्षिप्त्वा महेन्द्राय विनद्य वीरो
हतोऽसि पापेति रुषा जगाद ॥ २ ॥

---

* अन्य प्रतियोंमें यह 'ऋषिरुवाच' है।

ततः युग अन्त अग्निकठोर जिह्वं आविध्य शूलं तरसा असुरेन्द्रः क्षिप्त्वा महेन्द्राय विनद्य वीरः हतः असि पाप इति रुषा जगाद ॥२॥

ततः युग अन्त	तब प्रलयकालीन	**विनद्य**	गर्जना करके
अग्निकठोर	अग्निके समान	**रुषा**	क्रोध से
जिह्वं	तीक्ष्ण नोकों वाला	**इति जगाद**	यह बोला—
शूलं	त्रिशूल	**पाप हतः असि**	'पापी इन्द्र ! (इस बार तू) मारा गया।' ॥२॥
तरसा आविध्य	वेग से घुमाकर		
महेन्द्राय क्षिप्त्वा	इन्द्रपर फेंककर		
वीरः असुरेन्द्रः	वीर असुरराज वृत्र		

ख आपतत् तद् विचलद् ग्रहोल्कव-
न्निरीक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमजातविल्कवः।
वज्रेण वज्री शतपर्वणाच्छिनद्
भुजं च तस्योरगराजभोगम् ॥ ३ ॥

ख आपतत् तत् विचलत् ग्रह उल्कवत् निरीक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यं अजात-विल्कवः वज्रेण वज्री शतपर्वणा अच्छिनत् भुजं च तस्य उरगराज भोगम् ॥३॥

ग्रह उल्कवत्	ग्रह और उल्काके समान	**वज्री**	इन्द्रने
		शतपर्वणा	सौ गांठवाले
विचलत्	वेग से चलता	**वज्रेण**	वज्र से
दुष्प्रेक्ष्यं	(चमकके कारण) दुष्प्रेक्ष्य	**तत् तस्य**	उस (त्रिशूल)को और उस (वृत्र)की
आपतत्	(त्रिशूलको) अपनी ओर आता	**उरगराज भोगं**	सर्पराजके शरीरकी भाँति
निरीक्ष्य	देखकर	**भुजं च**	भुजाको भी
अजातविल्कवः	व्याकुलता उत्पन्न हुए बिना	**अच्छिनत्**	काट दिया ॥३॥

छिन्नैकबाहुः परिघेण वृत्रः
संरब्ध आसाद्य गृहीतवज्रम् ।
हनौ तताडेन्द्रमथामरेभं
वज्रं च हस्तान्न्यपतन्मघोनः ॥ ४ ॥

छिन्न एकबाहुः परिघेण वृत्रः संरब्ध आसाद्य गृहीतवज्रं हनौ तताड इन्द्रं अथ अमर इभं वज्रं च हस्तात् न्यपतत् मघोनः ॥४॥

छिन्न एकबाहुः	एक भुजा कट जाने-पर	**अमर इभं**	देवताओंके हाथी (ऐरावत)
संरब्ध वृत्रः	क्रोधमें भरे वृत्रने	**च तताड**	को भी मारा (जिससे)
गृहीतवज्रं	वज्र लिये		
इन्द्रं आसाद्य	इन्द्रके पास पहुँचकर	**मघोनः हस्तात्**	इन्द्रके हाथसे
परिघेन	परिघ (डंडे) से	**वज्रं न्यपतत्**	वज्र गिर पड़ा ॥४॥
हनौ अथ	ठुड्ढीपर और		

वृत्रस्य कर्मातिमहाद्भुतं तत्
सुरासुराश्चारणसिद्धसङ्घाः ।
अपूजयंस्तत् पुरुहूतसंकटं
निरीक्ष्य हा हेति विचुक्रुशुर्भृशम् ॥५॥

वृत्रस्य कर्म अति महाद्भुतं तत् सुर असुराः चारण सिद्ध सङ्घाः अपूजयन् तत् पुरुहूत संकटं निरीक्ष्य हा हा इति विचुक्रुशुः भृशम् ॥५॥

वृत्रस्य तत्	वृत्रके उस	**तत् पुरुहूत**	उस इन्द्रके
अति महाद्भुतं	अत्यन्त अद्भुत	**संकटं निरीक्ष्य**	संकटको देखकर
कर्म	कर्मकी	**हा हा इति**	'हाय ! हाय ! इस प्रकार
सुर असुराः	देवता, असुर,		
चारण सिद्ध	चारण, सिद्ध	**भृशं विचुक्रुशुः**	बार-बार चिल्लाने लगे ॥५॥
संघाः	समूहने		
अपूजयन्	पूजा (प्रशंसा) की और		

इन्द्रो न वज्रं जगृहे विलज्जित-
श्च्युतं स्वहस्तादरिसन्निधौ पुनः ।
तमाह वृत्रो हर आत्तवज्रो
जहि स्वशत्रुं न विषादकालः ॥ ६ ॥

इन्द्रः न वज्रं जगृहे विलज्जितः च्युतं स्वहस्तात् अरि सन्निधौ पुनः तं आह वृत्रः हर आत्तवज्रः जहि स्वशत्रुं न विषादकालः ॥६॥

विलज्जितः	अत्यन्त लज्जित	तं वृत्रः आह	उनसे वृत्रने कहा-
इन्द्रः	इन्द्रने	हर आत्तवज्रः	'इन्द्र ! वज्र उठाकर
स्वहस्तात्	अपने हाथसे	स्वशत्रुं जहि	अपने शत्रुको (मुझे)
च्युतं पुनः	गिरे हुए, फिर		मार दो
अरि सन्निधौ	शत्रुके समीप पड़े	विषादकालः न	यह विषाद करनेका
वज्रं न जगृहे	वज्रको नहीं उठाया		समय नहीं है' ॥६॥

युयुत्सतां कुत्रचिदाततायिनां
जयः सदैकत्र न वै परात्मनाम् ।
विनैकमुत्पत्तिलयस्थितीश्वरं
सर्वज्ञमाद्यं पुरुषं सनातनम् ॥ ७ ॥

युयुत्सतां कुत्र चित् आततायिनां जयः सदा एकत्र न वै परात्मनां विना एकं उत्पत्ति लय स्थिति ईश्वरं सर्वज्ञं आद्यं पुरुषं सनातनम् ॥७॥

उत्पत्ति स्थिति	(जगतकी) सृष्टि, स्थिति	परात्मनां	देहाभिमानी
लय एकं ईश्वरं	प्रलयमें एकमात्र समर्थ	युयुत्सतां	परस्पर युद्ध करते
सर्वज्ञं सनातनं	सर्वज्ञ, सनातन	आततायिनां	आततायियोंकी
आद्यं पुरुषं	आदिपुरुषको	कुत्र चित् जयः	कहीं विजय होती है
विना	छोड़कर	वै सदा एकत्र न	निश्चय सदा सब
			कहीं नहीं होती ॥७॥

लोकाः सपाला यस्येमे श्वसन्ति विवशा वशे ।
द्विजा इव शिचा बद्धाः स काल इह कारणम् ॥ ८ ॥

लोकाः सपालाः यस्य इमे श्वसन्ति विवशा वशे द्विजा इव शिचा बद्धाः स काल इह कारणम् ॥८॥

इमे सपालाः	ये लोकपालोंके साथ	**विवशा श्वसन्ति**	विवश होकर श्वास लेते (जीते) हैं
लोकाः	सब लोक		
शिचा बद्धाः	जालमें बँधे	**इह स काल**	इस (जय-पराजय) में वह काल ही
द्विजा इव	पक्षियोंकी भांति		
यस्य वशे	जिसके वशमें	**कारणं**	कारण है ॥८॥

ओजः सहो बलं प्राणममृतं मृत्युमेव च ।
तमज्ञाय जनो हेतुमात्मानं मन्यते जडम् ॥ ९ ॥

ओजः सहः बलं प्राणं अमृतं मृत्युं एव च तं अज्ञाय जनः हेतुं आत्मानं मन्यते जडम् ॥९॥

ओजः सहः	मनोबल, इन्द्रियबल,	**जनः जडं हेतुं**	लोग जड़ (शरीर) को कारण
बलं प्राणं	शरीरबल, प्राण,		
अमृतं च मृत्युं	जीवन और मृत्युके	**मन्यते**	मानते हैं ॥९॥
एव	भी (रहते)		
तं अज्ञाय	उस (काल) को न जानकर		

यथा दारुमयी नारी यथा यन्त्रमयो मृगः ।
एवं भूतानि मघवन्नीशतन्त्राणि विद्धि भोः ॥१०॥

यथा दारुमयी नारी यथा यन्त्रमयः मृगः एवं भूतानि मघवन् ईश तन्त्राणि विद्धि भोः ॥१०॥

भोः मघवन्	हे इन्द्र !
यथा	जैसे
दारुमयी नारी	कठपुतली,
यथा यन्त्रमयः	जैसे यन्त्रका बना
मृगः	हिरन हो
एवं भूतानि	ऐसे ही प्राणियोंको
ईश तन्त्राणि	ईश्वरके वशमें
विद्धि	समझो ॥१०॥

पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमात्मा भूतेन्द्रियाशयाः ।
शक्नुवन्त्यस्य सर्गादौ न विना यदनुग्रहात् ॥११॥

पुरुषः प्रकृतिः व्यक्तं आत्मा भूत इन्द्रिय आशयाः शक्नुवन्ति अस्य सर्ग आदौ न विना यत् अनुग्रहात् ॥११॥

यत् अनुग्रहात्	जिसके अनुग्रहके
विना	बिना
पुरुषः प्रकृतिः	पुरुष (जीव),प्रकृति,
व्यक्त आत्मा	महत्तत्त्व, अहंकार
भूत इन्द्रिय	पंचभूत, इन्द्रियां,
आशयः	अन्तःकरण
सर्ग आदौ	सृष्टि (स्थितिलय) आदि
न शक्नुवन्ति	नहीं कर सकते ॥१॥

अविद्वानेवमात्मानं मन्यतेऽनीशमीश्वरम् ।
भूतैः सृजति भूतानि ग्रसते तानि तैः स्वयम् ॥१२॥

अविद्वान् एवं आत्मानं मन्यते अनीशं ईश्वरं भूतैः सृजति भूतानि ग्रसते तानि तैः स्वयम् ॥१२॥

एवं अविद्वान्	इस (तथ्य) को न जानने वाला
अनीशं आत्मानं	परतन्त्र जीवको
ईश्वरं मन्यते	समर्थ मान लेता है,
भूतैः	(वह परमात्मा) प्राणियोंके द्वारा
भूतानि सृजति	प्राणियोंकी सृष्टि
तानि तैः	उनकेही द्वारा उनको
स्वयं ग्रसते	स्वयं खा लेता है ॥१२॥

आयुः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यमाशिषः पुरुषस्य याः ।
भवन्त्येव हि तत्काले यथानिच्छोर्विपर्ययाः ॥१३॥

आयुः श्रीः कीर्तिः ऐश्वर्यं आशिषः पुरुषस्य याः भवन्ति एव हि तत् काले यथा अनिच्छोः विपर्ययाः ॥१३॥

हि	क्योंकि	**पुरुषस्य याः**	पुरुषकी जो
यथा अनिच्छोः	जैसे इच्छा न होने-पर भी	**आशिषः**	कामनाएँ हैं
विपर्ययाः	उलटी स्थिति आती है,	**आयुः श्रीः**	आयु, लक्ष्मी,
काले	वैसे ही समय आने-पर	**कीर्तिः ऐश्वर्यं**	यश, ऐश्वर्य
		तत् भवन्ति एव	वे भी होते ही हैं ॥१३॥

तस्मादकीर्तियशसोर्जयापजययोरपि ।
समः स्यात् सुखदुःखाभ्यां मृत्युजीवितयोस्तथा ॥१४॥

तस्मात् अकीर्तियशसोः जय अपजयोः अपि समः स्यात् सुख दुःखाभ्यां मृत्युः जीवितयोः तथा ॥१४॥

तस्मात्	इसलिए	**तथा मृत्युः**	और मरण-
अकीर्तियशसः	अयश और यशमें,	**जीवितयोः**	जीवनमें
जयः अपजयोः	जय-पराजयमें	**सुख दुःखाभ्यां**	सुख-दुःखके प्रति
अपि	भी,	**समः स्यात्**	समान रहे ॥१४॥

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ।
तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बध्यते ॥१५॥

सत्त्वं रजः तम इति प्रकृतेः न आत्मनः गुणाः तत्र साक्षिणम् आत्मानं यः वेद न स बध्यते ॥१५॥

सत्त्वं रजः तम	सत्त्व, रज तम,	**यः वेद**	जो जानता है
इति प्रकृतेः	ये प्रकृतिके	**न स बध्यते**	वह कर्म-बन्धनमें नहीं पड़ता ॥१५॥
गुणाः	गुण हैं,		
न आत्मनः	आत्माके नहीं,		
तत्र साक्षिण	इनमें तटस्थ दृष्टा		
आत्मानं	आत्माको		

पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्णायुधभुजं मृधे ।
घटमानं यथाशक्ति तव प्राणजिहीर्षया ॥१६॥

पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्ण आयुध भुजे मृधे घटमानं यथाशक्ति तव प्राण जिहीर्षया ॥१६॥

शक्र	इन्द्र !	**जिहीर्षया**	लेनेके लिए
मृधे निर्जितं	युद्धमें विजितप्राय	**यथाशक्ति**	यथाशक्ति
आयुध वृक्ण	तुम्हारे अस्त्रसे कटी	**घटमानं**	प्रयत्न करते
भुजं	भुजा (होनेपर भी)	**मां पश्य**	मुझे देखो ॥१६॥
तव प्राण	तुम्हारा प्राण		

प्राणग्लहोऽयं समर इष्वक्षो वाहनासनः ।
अत्र न ज्ञायतेऽमुष्य जयोऽमुष्य पराजयः ॥१७॥

प्राणग्लहः अयं समरः इषु अक्षः वाहन आसनः अत्र न ज्ञायते अमुष्य जयः अमुष्यः पराजयः ॥१७॥

अयं समरः	यह युद्ध	**अत्र अमुष्य**	इसमें अमुककी
प्राणग्लहः	प्राणकी बाजीका (जुआ) है,	**जयः**	विजय
इषु अक्षः	(इसमें) वाण पासे हैं,	**अमुष्य पराजयः**	अमुककी पराजय
वाहन आसनः	वाहन चौसर हैं,	**न ज्ञायते**	नहीं जानी जा सकती ॥१७॥

श्रीशुक उवाच—

इन्द्रो वृत्रवचः श्रुत्वा गतालीकमपूजयत् ।
गृहीतवज्रः प्रहसंस्तमाह गतविस्मयः ॥१८॥

इन्द्रः वृत्रवचः श्रुत्वा गत अलीकं अपूजयत् गृहीत वज्रः प्रहसन् तं आह गतविस्मयः ॥१८॥

गत अलीकं	निष्कपट	**गृहीत वज्रः**	फिर वज्र उठाकर
वृत्रवचः श्रुत्वा	वृत्रासुरके बचन सुनकर	**गतविस्मयः**	बिना आश्चर्यके
		प्रहसन्	हँसते हुए
इन्द्रः अपूजयत्	इन्द्रने उसका आदर किया,	**तं आह**	उससे बोले ॥१८॥

इन्द्र उवाच–

अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी ।
भक्तः सर्वात्मनाऽऽत्मानं सुहृदं जगदीश्वरम् ॥१९॥

अहो दानव सिद्धः असि यस्य ते मतिः ईदृशी भक्तः सर्वात्मना आत्मानं सुहृदं जगदीश्वरम् ॥१९॥

अहो दानव	अहो दानवराज !	**आत्मानं सुहृदं**	अपने (सच्चे) सुहृद
सिद्धः असि	(तुम तो) सिद्ध हो,	**जगदीश्वरं**	जगदीश्वरके
यस्य ते	जो तुम्हारी	**सर्वात्मना भक्तः**	सम्पूर्ण हृदयसे भक्त हो ॥१९॥
ईदृशी मतिः	ऐसी बुद्धि है,		

भवानतार्षीन्मायां वै वैष्णवीं जनमोहिनीम् ।
यद् विहायासुरं भावं महापुरुषतां गतः ॥२०॥

भवान् अतार्षीत् मायां वै वैष्णवीं जनमोहिनीं यत् विहाय आसुरं भावं महापुरुषतां गतः ॥२०॥

भवान्	आपने	**यत् आसुरं**	क्योंकि (अपने)असुर
जनमोहिनीं	लोगोंको मोहमें डालने वाली	**भावं**	स्वभावको
		विहाय	छोड़कर
वैष्णवीं मायां	भगवान्की मायाको	**महापुरुषतां गतः**	महापुरुष हो गये हो ॥२०॥
वै अतार्षीत्	निश्चय पारकर लिया,		

खल्विदं महदाश्चर्यं यद् रजःप्रकृतेस्तव ।
वासुदेवे भगवति सत्त्वात्मनि दृढा मतिः ॥२१॥

खलु इदं महत् आश्चर्यं यत् रजः प्रकृतेः तव वासुदेवे भगवति सत्त्व आत्मनि दृढा मतिः ॥२१॥

खलु इदं	अवश्य यह
महत् आश्चर्यं	महान् आश्चर्यकी बात है
यत् रजः प्रकृतेः	जो रजोगुणी स्वभाव
तव सत्त्व	तुम्हारी सत्त्व
आत्मनि	स्वरूप
भगवति वासुदेवे	भगवान् वासुदेवमें
दृढा मतिः	दृढ़ बुद्धि लगी है ॥२१॥

यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे ।
विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः ॥२२॥

यस्य भक्तिः भगवति हरौ निःश्रेयसि ईश्वरे विक्रीडतः अमृत अम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातक उदकैः ॥२२॥

निःश्रेयसि	परम कल्याणके
ईश्वरे	स्वामी
भगवति हरौ	भगवान् श्रीहरिमें
यस्य भक्तिः	जिसकी भक्ति है
अमृत अम्भोधौ	(उस) अमृत-समुद्रमें
विक्रीडतः	खेलते हुएको
क्षुद्रैः खातक	तुच्छ गड्ढोंके
उदकैः किं	जलसे क्या प्रयोजन ॥२२॥

श्रीशुक उवाच

इति ब्रुवाणावन्योन्यं धर्मजिज्ञासया नृप ।
युयुधाते महावीर्यावित्रवृत्रौ युधाम्पती ॥२३॥

इति ब्रुवाणाः अन्यः अन्यं धर्मजिज्ञासया नृप युयुधाते महावीर्याः इन्द्रवृत्रौ युधाम्पती ॥२३॥

नृप	राजन् !
धर्मजिज्ञासया	धर्मको जाननेकी इच्छासे
अन्यः अन्यं	एक दूसरेसे
इति ब्रुवाणः	इस प्रकार कहते हुए
युधाम्पती	योद्धाश्रेष्ठ
महावीर्याः	परम-पराक्रमी
इन्द्रवृत्रौ	इन्द्र और वृत्र
युयुधाते	युद्ध करने लगे ॥२३॥

आविध्य परिघं वृत्रः काष्णायसमरिन्दमः ।
इन्द्राय प्राहिणोद् घोरं वामहस्तेन मारिष ॥२४॥

आविध्य परिघं वृत्रः काष्णं आयसं अरिन्दमः इन्द्राय प्राहिणोत् घोरं वाम हस्तेन मारिष ॥२४॥

मारिष	परीक्षित !	**घोरं परिघं**	भयानक परिघ(दण्ड)
अरिन्दमः	शत्रुदमन	**आविध्य**	उठाकर
वृत्रः	वृत्रने	**वाम हस्तेन**	बायें हाथसे
काष्णं आयसं	कसे लोहे (फौलाद) का बना	**इन्द्राय**	इन्द्रपर
		प्राहिणोत्	प्रहार किया ॥२४॥

स तु वृत्रस्य परिघं करं च करभोपमम् ।
चिच्छेद युगपद् देवो वज्रेण शतपर्वणा ॥२५॥

स तु वृत्रस्य परिघं करं च करभ उपमं चिच्छेद युगपत् देवः वज्रेण शतपर्वणा ॥२५॥

स तु देवः	उन देवराजने तो	**करं च**	(उसके) हाथको भी
शतपर्वणा	सौ गाँठ वाले	**युगपत्**	एक साथ
वज्रेण	वज्रसे	**चिच्छेद**	काट दिया ॥२५॥
वृत्रस्य परिघं	वृत्रके परिघको		
करभ उपमं	और हाथीकी सूंड़के समान		

दोर्भ्यामुत्कृत्तमूलाभ्यां बभौ रक्तस्रवोऽसुरः ।
छिन्नपक्षो यथा गोत्रः खाद् भ्रष्टो वज्रिणा हतः ॥२६॥

दोर्भ्यां उत्कृत्त मूलाभ्यां बभौ रक्तस्रवः असुरः छिन्नपक्षः यथा गोत्रः खात् भ्रष्टः वज्रिणा हतः ॥२६॥

उत्कृत्त मूलाभ्यां	जड़से कटी हुई	**रक्तस्रवः बभौ**	रक्त बहाता ऐसा लगा
दोर्भ्यां असुरः	भुजाओंसे वृत्रासुर		

यथा वज्त्रिणा	जैसे इन्द्र द्वारा	**खात् भ्रष्टः गोत्रः**	आकाशसे गिरा पर्वत हो ॥२६॥
हतः	मारा गया		
छिन्नपक्षः	पंख कटा		

कृत्वाधरां हनुं भूमौ दैत्यो दिव्युत्तरां हनुम् ।
नभोगम्भीरवक्त्रेण लेलिहोल्बणजिह्वया ॥२७॥

कृत्वा अधरां हनुं भूमौ दैत्यः दिवि उत्तरां हनुं नभः गम्भीर वक्त्रेण लेलिहः उल्बण जिह्वया ॥२७॥

दैत्यः	वृत्रासुर	**गम्भीर वक्त्रेण**	गहरे मुखमें स्थित
अधरां हनुं	नीचेको ठोढ़ी	**उल्बण**	भयावनी
भूमौ	पृथ्वीसे तथा	**जिह्वया**	जीभसे
उत्तरां हनुं	ऊपरका ओष्ठ	**नभः लेलिहः**	आकाशको चाटता हुआ ॥२७॥
दिवि कृत्वा	स्वर्गसे लगाकर		

दंष्ट्राभिः कालकल्पाभिर्ग्रसन्निव जगत्त्रयम् ।
अतिमात्रमहाकाय आक्षिपंस्तरसा गिरीन् ॥२८॥

दंष्ट्राभिः कालकल्पाभिः ग्रसन्न इव जगत्त्रयं अतिमात्र महाकाय आक्षिपन् तरसा गिरीन् ॥२८॥

कालकल्पाभि	कालके समान	**तरसा गिरीन्**	अपने वेगसे पर्वतों-को
दंष्ट्राभिः	दाँतोंसे	**आक्षिपन्**	उलटता हुआ ॥२८॥
जगत्त्रयं	त्रिभुवनको		
ग्रसन्न इव	निगलता हुआ-सा		
अतिमात्र	बहुत ही		
महाकाय	बड़े शरीरवाला वह		

गिरिराट् पादचारीव पद्भ्यां निर्जरयन् महीम् ।
जग्रास स समासाद्य वज्त्रिणं सहवाहनम् ॥२९॥

गिरिराट् पादचारी इव पद्भ्यां निर्जरयन् महीं जग्रास स समासाद्य वज्रिणं सहवाहनम् ॥२९॥

पादचारी	पैरोंसे चलनेवाले
गिरिराट् इव	पर्वतराजके समान
पद्भ्यां महीं	पैरोंसे पृथ्वीको
निर्जरयन्	रौंदता
स ममासाद्य	उसने समीप पहुँचकर
सहवाहनं	वाहन (ऐरावत)के साथ
वज्रिणं जग्रास	इन्द्रको निगल लिया ॥२९॥

महाप्राणो महावीर्यो महासर्प इव द्विपम् ।
वृत्रग्रस्तं तमालक्ष्य सप्रजापतयः सुराः ।
हा कष्टमिति निर्विण्णाश्चुक्रुशुः समहर्षयः ॥३०॥

महाप्राणः महावीर्यः महासर्प इव द्विपं वृत्रग्रस्तं तं आलक्ष्य सप्रजापतयः सुराः हा कष्टं इति निर्विण्णाः चुक्रुशुः समहर्षयः ॥३०॥

महाप्राणः	महापराक्रमी
महावीर्यः	महाबलवान
महासर्प	अजगरकी
इव	भाँति
द्विपं	ऐरावत हाथीको
तं	उन (इन्द्र) को
वृत्रग्रस्त	वृत्र द्वारा निगला गया
आलक्ष्य	देखकर
सप्रजापतयः	प्रजापतियोंके साथ
सुराः	देवता
हा कष्टं	'हाय-हाय बड़ा अनर्थ हुआ'
इति	इस प्रकार
समहर्षयः	महर्षियोंके साथ
चुक्रुशुः	चिल्लाने लगे ॥३०॥

निगीर्णोऽप्यसुरेन्द्रेण न ममारोदरं गतः ।
महापुरुषसन्नद्धो योगमायाबलेन च ॥३१॥

निगीर्णः अपि असुरेन्द्रेण न ममार उदरं गतः महापुरुष सन्नद्धः योगमाया बलेन च ॥३१॥

असुरेन्द्रेण	असुरराज (वृत्र) द्वारा
निगोर्णः अपि	निगल लिए जानेपर भी
उदरं गतः	(उसके) पेटमें पहुँचकर
महापुरुष	भगवान नारायण रूपी
सन्नद्धः	कवच धारण करनेसे
च योगमाया	तथा योगमायाके
बलेन	बलसे
न ममार	(इन्द्र) मरे नहीं ॥३१॥

भित्त्वा वज्रेणतत्कुक्षिं निष्क्रम्य बलभिद् विभुः ।
उच्चकर्त शिरः शत्रोर्गिरिशृङ्गमिवौजसा ॥३२॥

भित्त्वा वज्रेण तत् कुक्षिं निष्क्रम्य बलभित् विभुः उच्चकर्त शिरः शत्रोः गिरिशृङ्गं इव ओजसा ॥३२॥

तत् कुक्षिं	उसकी कोख
वज्रेण भित्त्वा	वज्रसे फाड़कर
बलभित्	बल नामक दैत्यको मारनेवाले
विभुः	समर्थ इन्द्र
निष्क्रम्य	(वहांसे) निकलकर
गिरिशृङ्ग इव	पर्वत शिखरके समान
शत्रोः शिरः	शत्रुके सिरको
ओजसा	उत्साहसे
उच्चकर्त	काट डाला ॥३२॥

वज्रस्तु तत्कन्धरमाशुवेगः
कृन्तन् समन्तात् परिवर्तमानः ।
न्यपातयत् तावदहर्गणेन
यो ज्योतिषामयने वार्त्रहत्ये ॥३३॥

वज्रः तु तत् कन्धरं आशुवेगः कृन्तन् समन्तात् परिवतमानः न्यपातयत् तावत् अहर्गणेन यः ज्योतिषां अयने वार्त्रहत्ये ॥३३॥

आशुवेगः	तीव्र-वेग
वज्रः तु	वज्रने तो
समन्तात्	चारों ओरसे
तत् कन्धरं	उसके कण्ठको
कृन्तन्	काटते हुए
परिवर्तमानः	घूमते रहकर
न्यपातयत्	गिरा दिया
यः ज्योतिषां अयने	जो सूर्यादि ग्रहोंका उत्तरायण और दक्षिणायन) हैं
तावत् अहर्गणेन	उतने दिन (एक वर्ष)
वार्त्रहत्ये	वृत्र-वधमें लगे ॥३३॥

तदा च खे दुन्दुभयो विनेदु-
र्गन्धर्वसिद्धाः समहर्षिसङ्घाः ।
वार्त्रघ्नलिङ्गैस्तमभिष्टुवाना
मन्त्रैर्मुदा कुसुमैरभ्यवर्षन् ॥३४॥

तदा च खे दुन्दुभयः विनेदुः गन्धर्वसिद्धाः समहर्षिसङ्गाः वार्त्रघ्न लिङ्गैः तं अभिष्टुवाना मन्त्रैः मुदा कुसुमैः अभ्यवर्षन् ॥३४॥

तदा च खे	उस समय तो आकाशमें
दुन्दुभयः	दुन्दुभियां
विनेदु	बजने लगीं
गन्धर्वसिद्धाः	गन्धर्व और सिद्ध लोग
समहर्षिसङ्घाः	महर्षि समूहके साथ
वार्त्रघ्न लिङ्गैः	वृत्र-वधके पराक्रम सूचक
मन्त्रैः	मन्त्रोंसे
तं	उन
अभिष्टुवाना	इन्द्रकी स्तुति करते हुए
मुदा कुसुमैः	प्रसन्नतासे फूलोंकी
अभ्यवर्षन्	वर्षा करने लगे ॥३४॥

वृत्रस्य देहान्निष्क्रान्तमात्मज्योतिररिन्दम ।
पश्यतां सर्वलोकानामलोकं समपद्यत ॥३५॥

वृत्रस्य देहात् निष्क्रान्तं आत्मज्योतिः अरिन्दम पश्यतां सर्वलोकानां अलोकं समपद्यत ॥३५॥

अरिन्दय	शत्रु-दमन परीक्षित !
वृत्रस्य देहात्	वृत्र के शरीरसे
निष्क्रान्तं	निकली
आत्मज्योति	आत्मज्योति
सर्वलोकानां	सब लोगोंके
पश्यतां	देखते हुए
अलोकं	लोकातीत भगवान्-में
समपद्यत	लीन हो गयी ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे वृत्रवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

वृत्रे हते त्रयो लोका विना शक्रेण भूरिद ।
सपाला ह्यभवन् सद्यो विज्वरा निर्वृतेन्द्रियः ॥ १ ॥

वृत्रे हते त्रयः लोका विना शक्रेण भूरिद सपाला हि अभवन् सद्यः विज्वरा निर्वृत इन्द्रियः ॥१॥

भूरिद	महादानी परीक्षित!	**त्रयः लोका**	तीनों लोक
वृत्रे हते	वृत्रके मारे जानेपर	**सद्यः**	तत्काल
विनाशक्रेण	इन्द्रको छोड़कर	**विज्वरा**	निश्चिन्त
सपाला हि	लोकापालोंके साथ ही	**निर्वृत इन्द्रियः**	प्रसन्नेन्द्रिय
		अभवन्	हो गये ॥१॥

देवर्षिपितृभूतानि दैत्या देवानुगाः स्वयम् ।
प्रतिजग्मुः स्वधिष्ण्यानि ब्रह्मेशेन्द्रादयस्ततः ॥ २ ॥

देव ऋषि पितृ भूतानि दैत्या देव अनुगाः स्वयं प्रतिजग्मुः स्वधिष्ण्यानि ब्रह्मा ईश इन्द्र आदयः ततः ॥२॥

देव ऋषि पितृ	देवता, ऋषि, पितर,	**आदयः ततः**	आदि वहाँसे
भूतानि दैत्या	भूतगण, दैत्य,	**स्वधिष्ण्यानि**	अपने स्थानोंको
देव अनुगाः	देवताओंके अनुचर (गन्धर्वादि)	**स्वयं**	(बिना पूछे)अपने आप
		प्रतिजग्मुः	लौट गये ॥२॥
ब्रह्मा ईश इन्द्र	ब्रह्मा, शिव, इन्द्र		

राजोवाच-

इन्द्रस्यानिर्वृतेर्हेतुं श्रोतुमिच्छामि भो मुने ।
येनासन् सुखिनो देवा हरेर्दुःखंकुतोऽभवत् ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य अनिर्वृतेः हेतुं श्रोतुं इच्छामि भो मुने येन आसन् सुखिनः देवा हरेः दुःखं कुतः अभवत् ॥३॥

भो मुने	हे महामुनि !	**येन देवा**	जिस(घटना)से देवता
इन्द्रस्य	इन्द्रकी	**सुखिनः आसन्**	सुखी हुए
अनिर्वृतेः	अप्रसन्नताका	**हरेः दुःखं**	(उसीसे)इन्द्रको दुःख
हेतुं श्रोतुं	कारण सुनना	**कुतः अभवत्**	कैसे हो गया ?
इच्छामि	चाहता हूँ,		॥३॥

श्रीशुक उवाच-

वृत्रविक्रमसंविग्नाः सर्वे देवाः सहर्षिभिः ।
तद्वधायार्थयन्निन्द्रं नैच्छद् भीतो बृहद्वधात् ॥ ४ ॥

वृत्रविक्रम संविग्नाः सर्वे देवाः सह ऋषिभिः तत् वधाय अर्थयन् इन्द्रं न इच्छत् भीतः बृहत् वधात् ॥४॥

वृत्रविक्रम संविग्नाः	वृत्रके पराक्रमसे अत्यन्त उद्विग्न होकर	**इन्द्रं अर्थयन्**	इन्द्रसे प्रार्थना करने लगे
सह ऋषिभिः	ऋषियोंके साथ	**बृहत् वधात् भीतः**	किन्तु ब्रह्महत्यासे डरकर
सर्वे देवाः	सब देवता	**न इच्छत्**	(उन्होंने मारना) नहीं चाहा ॥४॥
तत् वधाय	उसको मारनेके लिए		

इन्द्र उवाच-

स्त्रीभूजलद्रुमैरेनो विश्वरूपवधोद्भवम् ।
विभक्तमनुगृह्णद्भिर्वृत्रहत्यां क्व मार्ज्म्यहम् ॥ ५ ॥

स्त्री भू जल द्रुमैः एनः विश्वरूप वध उद्भवं विभक्तं अनुगृह्णद्भिः वृत्र हत्यां क्व माऽर्म्य अहं ॥५॥

विश्वरूप	विश्वरूपके	**द्रुमैः विभक्तं**	वृक्षोंने बाँट लिया,
वध उद्भवं	वधसे उत्पन्न	**वृत्र हत्यां**	(अब) वृत्रकी हत्या-को
एनः	पाप		
अनुगृह्णद्भिः	कृपा करके	**अहं क्व**	मैं कैसे
स्त्री भू जल	स्त्री, भूमि, जल,	**माऽर्म्य**	छुड़ाऊँगा ॥५॥

श्रीशुक उवाच-

ऋषयस्तदुपाकर्ण्य महेन्द्रमिदमब्रुवन् ।

ऋषयः तत् उपाकर्ण्य महेन्द्रं इदं अब्रुवन् ।

तत् उपाकर्ण्य	यह सुनकर	**इदं अब्रुवन्**	यह कहा—
ऋषयः महेन्द्रं	ऋषियोंने इन्द्रसे		

ऋषय ऊचुः-*

याजयिष्याम भद्रं ते हयमेधेन मा स्म भैः ॥ ६ ॥

याजयिष्यामि भद्रं ते हयमेधेन मा स्म भैः ॥६॥

ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण	**याजयिष्यामि**	(हम तुमसे) यजन करा देंगे ॥६॥
मा स्म भैः	(इससे) डरो मत,		
हयमेधेन	अश्वमेध-यज्ञ द्वारा		

हयमेधेन पुरुषं परमात्मानमीश्वरम् ।
इष्ट्वा नारायणं देवं मोक्ष्यसेऽपि जगद्वधात् ॥ ७ ॥

हयमेधेन पुरुषं परमात्मानं ईश्वरं इष्ट्वा नारायणं देवं मोक्ष्यसे अपि जगत् वधात् ॥७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

हयमेधेन	अश्वमेध-यज्ञ द्वारा	**इष्ट्वा**	आराधना करके
पुरुषं ईश्वरं	परम पुरुष, सर्व-समर्थ,	**जगत् वधात्**	सारे संसारके वधसे
		अपि	भी
परमात्मानं	परमात्मा	**मोक्ष्यसे**	छूट जाओगे ॥७॥
नारायणं देवं	नारायणदेवकी		

ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाऽऽचार्यहाघवान् ।
श्वादः पुल्कसको वापि शुद्ध्येरन् यस्य कीर्तनात् ॥८॥

ब्रह्महा पितृहा गोघ्नः मातृहा आचार्यहा अघवान् श्वादः पुल्कसकः वा अपि शुद्ध्येरन् यस्य कीर्तनात् ॥८॥

यस्य कीर्तनात्	जिनके (नामका) कीर्तन करनेसे	**आचार्यहा**	आचार्यको मारने-वाला
ब्रह्महा	ब्रह्म-हत्यारा	**वा अघवान्**	अथवा पापी
पितृहा	पिताको मारनेवाला	**श्वादः**	चाण्डाल
गोघ्नः	गौ-हत्या करनेवाला	**पुल्कसकः अपि**	कसाई भी
मातृहा	माताकी हत्या करनेवाला	**शुद्ध्येरन्**	शुद्ध हो जाते हैं ॥८॥

तमश्वमेधेन महामखेन
श्रद्धान्वितोऽस्माभिरनुष्ठितेन ।
हत्वापि सब्रह्म चराचरं त्वं
न लिप्यसे किं खलनिग्रहेण ॥ ९ ॥

तं अश्वमेधेन महामखेन श्रद्धा अन्वितः अस्माभिः अनुष्ठितेन हत्वा अपि स ब्रह्म चर अचरं त्वं न लिप्यसे किं खल निग्रहेण ॥९॥

श्रद्धा अन्वितः	श्रद्धा सहित	**अश्वमेधेन**	अश्वमेध द्वारा
अस्माभिः	हम लोगों द्वारा	**तं अनुष्ठितेन**	उन (नारायणका) अनुष्ठान करके
महामखेन	महायज्ञ		

त्वं स ब्रह्म	तुम ब्रह्माके साथ
चर अचरं	सब जंगम-स्थावर (संसार) को
हत्वा अपि	मारकर भी
लिप्यसे न	(पापसे) लिप्त नहीं होंगे
खल निग्रहेण किं	(फिर) दुष्ट-दलन-की तो बात ही क्या ॥९॥

श्रीशुक उवाच-

एवं सञ्चोदितो विप्रैर्मरुत्वानहनद्रिपुम् ।
ब्रह्महत्या हते तस्मिन्नाससाद वृषाकपिम् ॥१०॥

एवं सञ्चोदितः विप्रैः मरुत्वान् अहनत् रिपुं ब्रह्महत्या हते तस्मिन् आससाद वृषाकपिम् ॥१०॥

एवं विप्रैः	इस प्रकार ब्राह्मणों द्वारा
सञ्चोदितः	प्रेरित किये जानेपर
मरुत्वान्	इन्द्रने
रिपुं अहनत्	शत्रुको मार दिया,
तस्मिन् हते	उसके मारे जानेपर
ब्रह्महत्या	ब्रह्म-हत्या
वृषाकपिं	इन्द्रके
आससाद	पास आयी ॥१०॥

तयेन्द्रः स्मासहत् तापं निर्वृतिर्नामुमाविशत् ।
ह्रीमन्तं वाच्यतां प्राप्तं सुखयन्त्यपि नो गुणाः ॥११॥

तया इन्द्रः स्म असहत् तापं निर्वृतिः न अमुं आविशत् ह्रीमन्तं वाच्यतां प्राप्तं सुखयन्ति अपि नः गुणाः ॥११॥

तया इन्द्रः	उसके कारण इन्द्र-को
तापं असहत् स्म	संताप सहना पड़ा
अमुं निर्वृतिः	उनको शान्ति
न आविशत्	नहीं प्राप्त हुई
ह्रीमन्तं	लज्जाशील (व्यक्ति) को
वाच्यतां प्राप्तं	कलङ्क लग जानेपर
गुणाः अपि	(उसके धैर्यादि) गुण भी
सुखयन्ति नः	सुखी नहीं कर पाते ॥११॥

तां ददर्शानुधावन्तीं चाण्डालीमिव रूपिणीम् ।
जरया वेपमानाङ्गीं यक्ष्मग्रस्तामसृक्पटाम् ॥१२॥

तां ददर्श अनुधावन्तीं चाण्डालीं इव रूपिणीं जरया वेपमान अङ्गीं यक्ष्मग्रस्तां असृक्पटाम् ॥१२॥

तां रूपिणीं	उस साकार हुई (ब्रह्म-हत्या)को	**असृक्पटां**	रक्त लथपथ वस्त्रा
जरया	बुढ़ापेसे	**चाण्डालीं इव**	चाण्डालीके समान
वेपमान अङ्गीं	काँपते शरीर वाली,	**अनुधावन्तीं**	पीछे दौड़ती
यक्ष्मग्रस्तां	यक्ष्मासे ग्रस्त	**ददर्श**	(इन्द्रने) देखा ॥१२॥

विकीर्यपलितान् केशांस्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणीम् ।
मीनगन्ध्यसुगन्धेन कुर्वतीं मार्गदूषणम् ॥१३॥

विकीर्य पलितान् केशान् तिष्ठ तिष्ठ इति भाषिणीं मीनगन्ध्य सुगन्धेन कुर्वतीं मार्गदूषणम् ॥१३॥

पालितान्	पके	**मीनगन्ध्य**	मछली-गन्ध वाली
केशान्	बालोंको	**सुगन्धेन**	श्वाससे
विकीर्य	फैलाये	**मार्गदूषणं**	मार्गको दूषित (दुर्गन्धित)
तिष्ठ तिष्ठ	'ठहर जा ! ठहर जा !'	**कुर्वतीं**	करती हुई ॥१३॥
इति भाषिणीं	ऐसा चिल्लाती		

नभो गतो दिशः सर्वाः सहस्राक्षो विशाम्पते ।
प्रागुदीचीं दिशं तूर्णं प्रविष्टो नृप मानसम् ॥१४॥

नभः गतः दिशः सर्वाः सहस्राक्षः विशाम्पते प्राक् उदीचीं दिशं तूर्णं प्रविष्टः नृप मानसम् ॥१४॥

विशाम्पते नृप	व्यापारियोंके रक्षक राजन् !	**सहस्राक्षः**	इन्द्र (उसके भय-से)

नभः सर्वाः दिश	आकाशमें और सब दिशाओंमें
गतः	गये (अन्तमें)
प्राक् उदीचीं	पूर्वोत्तर (ईशान)
दिशं	दिशामें
मानसं	(स्थित) मान-सरोवरमें
तूर्णं प्रविष्टः	शीघ्रतासे प्रवेश किया ॥१४॥

स आवसत्पुष्करनालतन्तू-
नलब्धभोगो यदिहाग्निदूतः ।
वर्षाणि साहस्रमलक्षितोऽन्तः
स चिन्तयन् ब्रह्मवधाद् विमोक्षम् ॥१५॥

स आवसत् पुष्कर नाल तन्तून् अलब्ध भोगः यत् इह अग्निदूतः वर्षाणि साहस्रं अलक्षितः अन्तः स चिन्तयन् ब्रह्मवधात् विमोक्षम् ॥१५॥

स पुष्कर नाल	वे(वहाँ)कमल-नालके
तन्तून्	तन्तुमें
वर्षाणि साहस्रं	सहस्र वर्ष तक
ब्रह्मवधात्	ब्रह्म-हत्यासे
विमोक्षं	छुटकारे (के उपाय) को
अचिन्तयन्	सोचते हुए
आवसत्	निवास करते रहे।
अलब्ध भोगः	कोई भोग (आहार) नहीं मिला
यत् अग्निदूतः	क्योंकि अग्नि हो (उन्हें) देनेवाले हैं
इह अन्तः	यहाँ (जलके) भीतर
अलक्षितः	वे (अग्नि) दीख नहीं सकते थे ॥१५॥

तावत्त्रिणाकं नहुषः शशास
विद्यातपोयोगबलानुभावः ।
स सम्पदैश्वर्यमदान्धबुद्धि-
र्नीतस्तिरश्चां गतिमिन्द्रपत्न्या ॥१६॥

तावत् त्रिणाकं नहुषः शशास विद्या तपः योगबल अनुभावः स सम्पत् ऐश्वर्य मद अन्ध बुद्धिः नीतः तिरश्चां गतिं इन्द्रपत्न्या ॥१६॥

तावत्	उतने समय तक
विद्या तपः	विद्या, तपस्या
योगबल	योग-बलके
अनुभावः	प्रभावसे
नहुषः	राजा नहुषने
त्रिणाकं शशास	स्वर्गका शासन किया ।
स सम्पत्	वह सम्पत्ति और
ऐश्वर्य	ऐश्वर्यके
मद अन्ध बुद्धिः	मदसे बुद्धिसे अन्धा (अविवेकी) होनेपर
इन्द्रपत्न्या	इन्द्रकी पत्नी शची द्वारा
तिरश्चां गतिं	तिर्यक्योनि (सर्प-योनि)में
नीतः	पहुँचा दिया गया ॥१६॥

ततो गतो ब्रह्मगिरोपहूत
ऋतम्भरध्याननिवारिताघः ।
पापस्तु दिग्देवतया हतौजा-
स्तं नाभ्यभूदवितं विष्णुपत्न्या ॥१७॥

ततः गतः ब्रह्मगिरः उपहूत ऋतम्भर ध्यान निवारित अघः पापः तु दिक् देवतया हत ओजाः तं न अभ्यभूत् अवितं विष्णुपत्न्या ॥१७॥

विष्णुपत्न्या	(कमल-वनस्था) लक्ष्मी द्वारा
अवितं	सुरक्षित
दिक् देवतया	(ईशान) दिशाके देवता (रुद्र) द्वारा
हत ओजाः	निस्तेज किया गया
पापः तु	पाप तो
तं न अभ्यभूत्	उन्हें आक्रान्त नहीं कर सका,
ततः ऋतम्भर	फिर सत्यके पोषक भगवान्के
ध्यान	ध्यानसे
निवारित अघः	पाप दूर हो जाने-पर
ब्रह्मगिर	ब्राह्मणोंके सन्देश द्वारा
उपहूत गतः	बुलानेपर (स्वर्ग) गये ॥१७॥

तं च ब्रह्मर्षयोऽभ्येत्य हयमेधेन भारत ।
यथावद्दीक्षयाञ्चक्रुः पुरुषाराधनेन ह ॥१८॥

तं च ब्रह्मर्षयः अभि एत्य हयमेधेन भारत यथावत् दीक्षयान् चक्रुः पुरुष आराधनेन ह ॥१८॥

भारत	परीक्षित् !	**हयमेधेन**	अश्वमेध यज्ञ द्वारा
ब्रह्मर्षयः	ब्रह्मर्षि लोग	**पुरुष आराधनेन**	परम पुरुषकी आराधना की
तं च	उनके पास	**ह चक्रुः**	निश्चित
अभि एत्य	चारों ओरसे आकार	**दीक्षयान**	दीक्षा दी ॥१८॥
यथावत्	विधिपूर्वक		

अथेज्यमाने पुरुषे सर्वदेवमयात्मनि ।
अश्वमेधे महेन्द्रेण वितते ब्रह्मवादिभिः ॥१९॥

अथ इज्यमाने पुरुषे सर्वं देवमय आत्मनि अश्वमेधे महेन्द्रेण विततेब्रह्मवादिभिः ॥१९॥

अथ	तब	**सर्व देवमय**	सर्व देवमय
ब्रह्मवादिभिः	वेदज्ञ (ऋषियों) द्वारा	**आत्मनि पुरुषे**	पुरुषोत्तम भगवान्-की
महेन्द्रेण वितते	महेन्द्र द्वारा किये	**इज्यमाने**	आराधना होनेपर ॥१९॥
अश्वमेधेन	अश्वमेध यज्ञ द्वारा		

स वै त्वाष्ट्रवधो भूयानपि पापचयो नृप ।
नीतस्तेनैव शून्याय नीहार इव भानुना ॥२०॥

स वै त्वाष्ट्रवधः भूयान् अपि पाप चयः नृप नीतः तेन एव शून्याय नीहार इव भानुना ॥२०॥

नृप	राजन् !	**तेन एव**	उस (अश्वमेध यज्ञ) से ही
वै स	निश्चय वह	**भानुना**	सूर्य द्वारा
त्वाष्ट्रवधः	वृत्र वधकी	**नीहार इव**	कुहरेके समान
भूयान् पाप	बहुत बड़ी पाप	**शून्याय नीतः**	शून्य बना दी गयी ॥२०॥
चयः	राशि थी		
अपि	फिर भी		

स वाजिमेधेन यथोदितेन
वितायमानेन मरीचिमिश्रैः ।
इष्ट्वाधियज्ञं पुरुषं पुराण-
मिन्द्रो महानास विधूतपापः ॥२१॥

स वाजिमेधेन यथा उदितेन विताय मानेन मरीचिमिश्रैः इष्ट्वा अधियज्ञं पुरुषं पुराणं इन्द्रः महानास विधूत पापः ॥२१॥

मरीचिमिश्रैः	मरीचि आदि (ऋषियों) द्वारा	**पुराणं पुरुषं**	पुराण-पुरुषका
यथा उदितेन	विधिपूर्वक	**इष्ट्वा**	यजन करके
विताय मानेन	कराये गये	**इन्द्रः**	इन्द्र
स वाजिमेधेन	उस अश्वमेध-यज्ञसे	**महानास**	ब्रह्म-हत्याके
अधियज्ञं	यज्ञाधिष्ठाता	**विधूत पापः**	पापसे धुल (छूट) गये ॥२१॥

इदं महाख्यानमशेषपाप्मनां
प्रक्षालनं तीर्थपदानुकीर्तनम् ।
भक्त्युच्छ्रयं भक्तजनानुवर्णनं
महेन्द्रमोक्षं विजयं मरुत्वतः ॥२२॥

इदं महा आख्यानं अशेष पाप्मनां प्रक्षालनं तीर्थपद अनुकीर्तनं भक्ति उच्छ्रयं भक्तजन अनुवर्णनं महेन्द्रमोक्षं विजयं मरुत्वतः ॥२२॥

मरुत्वतः विजयं	इन्द्रकी विजय	**इदं महा**	यह श्रेष्ठ
महेन्द्रमोक्षं	उन महेन्द्रकी (पापोंसे) मुक्ति	**आख्यानं**	आख्यान
भक्तजन	भक्त-श्रेष्ठ (वृत्रका)	**अशेष पाप्मनां**	समस्त पापोंको
अनुवर्णनं	वर्णन	**प्रक्षालनं**	धो देनेवाला और
तीर्थपद	पवित्र चरण भगवान्‌का	**भक्ति उच्छ्रयं**	भक्ति-वर्धक है ॥२२॥
अनुकीर्तनं	बार-बार कीर्तन रूप		

पठेयुराख्यानमिदं सदा बुधाः
शृण्वन्त्यथो पर्वणि पर्वणीन्द्रियम् ।
धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं
रिपुञ्जयं स्वस्त्ययनं तथाऽऽयुषम् ॥२३॥

पठेयुः आख्यानं इदं सदा बुधाः शृण्वन्ति अथ पर्वणि पर्वणि इन्द्रियं धन्यं यशस्यं निखिल अघ मोचनं रिपुञ्जयं स्वस्त्ययनं तथा आयुषम् ॥२३॥

इदं इन्द्रियं	यह इन्द्र सम्बन्धी	**स्वस्त्ययनं**	कल्याणकारी
आख्यानं	आख्यानको जो	**तथा आयुषं**	आयु अभिवर्धक है
धन्यं यशस्यं	धन देनेवाला, यश देनेवाला	**बुधाः सदा**	बुद्धिमानोंको सदा
		पठेयुः	पढ़ना चाहिए
निखिल अघ	सम्पूर्ण पापोंसे	**अथ पर्वणि**	अथवा विशेष पर्वों-पर
मोचनं	छुड़ानेवाला		
रिपुञ्जयं	शत्रुपर विजय देने-वाला	**शृण्वन्ति**	(वे बुद्धिमान इसे) सुनते हैं ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे इन्द्रविजयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

राजो उवाच-*

रजस्तमः स्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः ।
नारायणे भगवति कथमासीद् दृढा मतिः ॥१॥

रजः तमः स्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः नारायणे भगवति कथं आसीत् दृढा मतिः ॥१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**भगवति**	भगवान्
रजः तमः	रजो गुणी तमोगुणी	**नारायणे**	नारायणमें
स्वभावस्य	स्वभाव वाले	**दृढा मतिः**	दृढ़ बुद्धि
पाप्मनः वृत्रस्य	पापी वृत्रासुरकी	**कथं आसीत्**	कैसे थी ॥१॥

देवानां शुद्धसत्त्वानामृषीणां चामलात्मनाम् ।
भक्तिर्मुकुन्दचरणे न प्रायेणोपजायते ॥२॥

देवानां शुद्ध सत्त्वानां ऋषीणां च अमल आत्मनां भक्तिः मुकुन्द चरणे न प्रायेण उपजायते ॥२॥

शुद्ध सत्त्वानां	शुद्ध सत्त्वमय	**मुकुन्द चरणे**	भगवान् मुकुन्दके
देवानां	देवताओंकी		चरणोंमें
च अमल	तथा निर्मल	**भक्तिः प्रायेण**	भक्ति प्रायः
आत्मनां	अन्तःकरण	**न उपजायते**	नहीं उत्पन्न
ऋषीणां	ऋषियोंकी		होती ॥२॥

रजोभिः समसंख्याताः पार्थिवैरिह जन्तवः ।
तेषां ये केचनेहन्ते श्रेयो वै मनुजादयः ॥३॥

---

* यहां अन्य प्रतियोंमें 'परीक्षिदुवाच' है ।

रजोभिः सम् असंख्याताः पार्थिवैः इह जन्तवः तेषां ये केचन ईहन्ते श्रेयः वै मनुज आदयः ॥३॥

इह जन्तवः	इस संसारमें प्राणी	**ये केचन**	जो कुछ
पार्थिवैः	पृथ्वीकी	**मनुज आदयः**	मनुष्य आदि हैं
रजोभिः	धूलिकणके	**वै श्रेयः**	निश्चय वही
सम असंख्याताः	समान असंख्य हैं,		कल्याणके लिए
तेषां	उनमें से	**ईहन्ते**	प्रयत्न करते हैं ॥३॥

प्रायो मुमुक्षवस्तेषां केचनैव द्विजोत्तम ।
मुमुक्षूणां सहस्रेषु कश्चिन्मुच्येत सिध्यति ॥४॥

प्रायः मुमुक्षवः तेषां केचन एव द्विजोत्तम मुमुक्षूणां सहस्रेषु कश्चित् मुच्येत सिध्यति ॥४॥

द्विजोत्तम	ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ !	**सहस्रेषु**	हजारों
तेषां केचन एव	उन (मनुष्यों) में कुछ ही	**मुमुक्षूणां**	मुमुक्षुओंमें
मुमुक्षवः	मोक्ष-प्राप्तिकी इच्छा वाले (होते) हैं	**कश्चित्**	कोई
		मुच्येत सिध्यति	सफल होकर मुक्त होता है ॥४॥

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥५॥

मुक्तानां अपि सिद्धानां नारायण परायणः सुदुर्लभः प्रशान्त आत्मा कोटिषु अपि महामुने ॥५॥

महामुने	महामुनि !	**नारायण**	भगवान् नारायणके
सिद्धानां	सफल हुए	**परायणः**	परायण
मुक्तानां अपि	मुक्त-पुरुषोंमें भी	**प्रशान्त आत्मा**	प्रशान्त-चित्त
कोटिषु अपि	करोड़ोंमें भी	**सुदुर्लभः**	अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥५

वृत्रस्तु स कथं पापः सर्वलोकोपतापनः ।
इत्थं दृढमतिः कृष्ण आसीत् संग्राम उल्बणे ॥६॥

वृत्रः तु स कथं पापः सर्वलोक उपतापनः इत्थं दृढमतिः कृष्ण आसीत् संग्राम उल्बणे ॥६॥

सर्वलोक	सब लोकोंको	**संग्राम उल्बणे**	घोर युद्धमें
उपतापनः	सन्तप्त करनेवाला	**कृष्ण**	श्रीकृष्णमें
स पापः	वह पापी	**इत्थं दृढमतिः**	इस प्रकार दृढ़ बुद्धि
वृत्रतु	वृत्र तो	**कथं आसीत्**	कैसे था ॥६॥

अत्र नः संशयो भूयाञ्छ्रोतुं कौतूहलं प्रभो ।
यः पौरुषेण समरे सहस्राक्षमतोषयत् ॥७॥

अत्र नः संशयः भूयान् श्रोतुं कौतूहलं प्रभो यः पौरुषेण समरे सहस्राक्षं अतोषयत् ॥७॥

यः समरे	जिसने युद्धमें	**नः अत्र**	मुझे इस विषयमें
पौरुषेण	अपने पराक्रमसे	**भूयान् सशयः**	बहुत सन्देह है और
सहस्राक्षं	इन्द्रको	**श्रोतुं कौतूहलं**	सुननेका कुतूहल
अतोषयत्	सन्तुष्ट कर दिया,		है ॥७॥
प्रभो	प्रभो !		

सूत उवाच—

परीक्षितोऽथ संप्रश्नं भगवान् बादरायणिः ।
निशम्य श्रद्दधानस्य प्रतिनन्द्य वचोऽब्रवीत् ॥८॥

परीक्षतः अथ सम्प्रश्नं भगवान् बादरायणिः निशम्य श्रद्दधानस्य प्रतिनन्द्य वचः अब्रवीत् ॥८॥

अथ श्रद्दधानस्य	तब श्रद्धा करनेवाले	**बादरायणिः**	व्यास-नन्दनने
परीक्षतः	परीक्षितके	**प्रतिनन्द्य**	उसका अभिनन्दन करके
सम्प्रश्नं	उचित प्रश्नको	**वचः अब्रवीत्**	सार्थक वाणी बोले ॥८॥
निशम्य	सुनकर		
भगवान्	भगवान्		

श्रीशुक उवाच-

शृणुष्वावहितो राजन्नितिहासमिमं यथा ।
श्रुतं द्वैपायनमुखान्नारदाद्देवलादपि ॥९॥

शृणुष्व अवहितः राजन् इतिहासं इमं यथा श्रुतं द्वैपायन मुखात् नारदात् देवलात् अपि ॥९॥

राजन्	राजन् !	**इमं इतिहासं**	इस इतिहासको
द्वैपायन मुखात्	(अपने पिता) व्यासजीके मुखसे	**यथा श्रुतं**	जैसा (मैंने) सुना है (उसे)
नारदात्	नारदजीसे तथा	**अवहितः श्रणुष्व**	सावधान होकर सुनो ॥९॥
देवलात् अपि	महर्षि देवलसे भी		

आसीद्राजा सार्वभौमः शूरसेनेषु वै नृप ।
चित्रकेतुरिति ख्यातो यस्यासीत् कामधुङ्महो ॥१०॥

आसीत् राजा सार्वभौमः शूरसेनेषु वै नृप चित्रकेतुः इति ख्यातः यस्य आसीत् कामधुक् मही ॥१०॥

नृप	राजन् !	**आसीत्**	था ।
शूरसेनेषु	शूरसेन देशमें	**यस्य मही**	जिसके लिए पृथ्वी
वै सार्वभौमः	निश्चय चक्रवर्ती	**कामधुक्**	इच्छानुसार (अन्नादि) देनेवाली
राजा चित्रकेतुः	राजा चित्रकेतु		
इति ख्यातः	इस नामसे प्रसिद्ध	**आसीत्**	थी ॥१०॥

तस्य भार्यासहस्राणां सहस्राणि दशाभवन् ।
सान्तानिकश्चापि नृपो न लेभे तासु सन्ततिम् ॥११॥

तस्य भार्या सहस्राणां सहस्राणि दश अभवन् सान्तानिकः च अपि नृपः न लेभे तासु सन्ततिम् ॥११॥

तस्य	उनके	**च अपि**	पर भी
सहस्राणां-		**नृपः**	राजाने
सहस्राणि दश	एक करोड़	**तासु सन्तति**	उनमें सन्तान
मार्या अभवन्	रानियां थीं ।	**न लेभे**	नहीं पायी ॥११॥
सान्तानिकः	सन्तान उत्पन्न करनेमें समर्थ होने		

रूपौदार्यवयोजन्मविद्यैश्वर्यश्रियादिभिः ।
सम्पन्नस्य गुणैः सर्वैश्चिन्ता वन्ध्यापतेरभूत् ॥१२॥

रूप औदार्य वयः जन्म विद्या ऐश्वर्य श्रिय आदिभिः सम्पन्नस्य गुणैः सर्वैः चिन्ता वन्ध्यापतेः अभूत् ॥१२॥

रूप औदार्य	सुन्दर रूप, उदारता,	**सर्वैः गुणैः**	सब गुणोंसे
वयः जन्म	युवावस्था, उच्च-कुलमें जन्म,	**सम्पन्नस्य**	सम्पन्न
विद्या ऐश्वर्य	विद्या, ऐश्वर्य	**वन्ध्यापतेः**	(उस) वन्ध्याओंके पति हो
श्रिय आदिभिः	श्री आदि	**चिन्ता अभूत्**	चिन्ता हो गयी ॥१

न तस्य संपदः सर्वा महिष्यो वामलोचनाः ।
सार्वभौमस्य भूश्चेयमभवन् प्रीतिहेतवः ॥१३॥

न तस्य सम्पदः सर्वा महिष्यः वामलोचनाः सार्वभौमस्य भूः च इयं अभवन् प्रीति हेतवः ॥१३॥

सर्वा सम्पदः	सब सम्पत्ति,	**तस्य सार्व-**	उस चक्रवर्ती
वामलोचनाः	सुन्दरी	**भौमस्य**	राजाकी
महिष्यः	महारानियां,	**प्रीति हेतवः**	प्रसन्नताके कारण
च इयं भूः	तथा यह पृथ्वी	**न अभवन्**	नहीं हो सके ॥१३॥

तस्यैकदा तु भवनमङ्गिरा भगवानृषिः ।
लोकाननुचरन्नेतानुपागच्छद्यदृच्छया ॥१४॥

तस्य एकदा तु भवनं अङ्गिरा भगवान् ऋषिः लोकान् अनुचरन् एतान् उपागच्छत् यदच्छया ॥१४॥

एतान् लोकान्	इन लोकोंमें	**तस्य भवनं**	उस (राजा) के सदनमें
अनुचरन्	विचरण करते हुए	**भगवान्**	भगवान्
यदृच्छया	संयोगवश	**अङ्गिरा ऋषिः**	अंगिरा ऋषि
एकदा तु	एक समय तो	**उपागच्छत्**	पहुँच गये ॥१४॥

तं पूजयित्वा विधिवत्प्रत्युत्थानार्हणादिभिः ।
कृतातिथ्यमुपासीदत्सुखासीनं समाहितः ॥१५॥

तं पूजयित्वा विधिवत् प्रत्युत्थान अर्हणदिभिः कृत आतिथ्यं उपासीदत् सुखासीनं समाहितः ॥१५॥

विधिवत्	विधि पूर्वक	**सुखासीनं**	सुख-पूर्वक बैठेके
प्रत्युत्थान	सम्मानमें खड़े होने	**समाहितः**	शान्त-भावसे
अर्हणादिभिः	पूजा-सामग्री आदिसे	**उपासीदत्**	(राजा) समीप बैठ
तं पूजयित्वा	उनका पूजन करके		गया ॥१५॥
आतिथ्यं कृत	अतिथि-सत्कार (भोजनादि) करके		

महर्षिस्तमुपासीनं प्रश्रयावनतं क्षितौ ।
प्रतिपूज्य महाराज समाभाष्येदमब्रवीत् ॥१६॥

महर्षिः तं उपासीनं प्रश्रय अवनतं क्षितौ प्रतिपूज्य महाराज सम आभाष्य इदं अब्रवीत् ॥१६॥

महाराज	महाराज !	**महर्षिः**	महर्षिने
प्रश्रय अवनतं	विनम्रतासे झुके	**सम आभाष्य**	(राजाको) सम्बो-
क्षितौ उपासीनं	पृथ्वीपर समीप बैठे		धित करके
तं प्रतिपूज्य	उसका आदर करके	**इदं अब्रवीत्**	यह कहा ॥१६॥

अंगिरा उवाच—

अपि तेऽनामयं स्वस्ति प्रकृतीनां तथाऽऽत्मनः ।
यथा प्रकृतिभिर्गुप्तः पुमान् राजापि सप्तभिः ॥१७॥

अपि ते अनामयं स्वस्ति प्रकृतीनां तथा आत्मनः यथा प्रकृतिभिः गुप्तः पुमान् राजा अपि सप्तभिः ॥१७॥

ते अपि	तुम्हारा (शरीर)	**स्वस्ति**	सकुशल रहनेसे
अनामयं	निरोग तो है ?	**आत्मनः**	स्वयं भी
यथा पुमान्	जैसे जीव	**तथा**	वैसा (सकुशल)
सप्तभिः गुप्तः	सात (महत्तत्त्वादि) से घिरा रहता है		रहता है ॥१७॥
राजा अपि	राजा भी		
प्रकृतिभिः	(सात) प्रकृति (गुरु, मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, सेना तथा मित्र)से		

आत्मानं प्रकृतिष्वद्धा निधाय श्रेय आप्नुयात् ।
राज्ञा तथा प्रकृतयो नरदेवाहिताधयः ॥१८॥

आत्मानं प्रकृतिषु अद्धा निधाय श्रेय आप्नुयात् राज्ञा तथा प्रकृतयः नरदेव आहित आधयः ॥१८॥

नरदेव	राजा	**तथा प्रकृतयः**	वैसे ही प्रकृतियां (प्रजा)
आत्मानं	अपनेको		
प्रकृतिषु	सातों प्रकृतियोंके	**राज्ञा**	राजापर
अद्धा निधाय	अनुकूल रखकर	**आहित आधयः**	अपनी चिन्ता छोड़ देती हैं ॥१८॥
श्रेयः आप्नुयात्	कल्याण पाता है		

अपि दाराः प्रजामात्या भृत्याः श्रेण्योऽथ मन्त्रिणः ।
पौरा जानपदा भूपा आत्मजा वशवर्तिनः ॥१९॥

अपि दाराः प्रजा अमात्या भृत्याः श्रेण्यः अथ मन्त्रिणः पौरा जानपदा भूपा आत्मजा वशवर्तिनः ॥१९॥

दाराः प्रजा	पत्नियां, प्रजा,	**आत्मजा**	पुत्र
अमात्या भृत्याः	सलाहकार, सेवक,	**वशवर्तिनः अपि**	तुम्हारे वशमें तो हैं ॥१९॥
श्रेण्यः अथ	व्यापारी-वर्ग और		
मन्त्रिणः पौरा	मन्त्री, नागरिक,		
जानपदा भूपा	मण्डलेश्वर राजा लोग,		

यस्यात्मानुवशश्चेत्स्यात्सर्वे तद्वशगा इमे ।
लोकाः सपाला यच्छन्ति सर्वे बलिमतन्द्रिताः ॥२०॥

यस्य आत्मा अनुवशः चेत् स्यात् सर्वे तत् वशगा इमे लोकाः सपाला यच्छन्ति सर्वे बलिं अतन्द्रिताः ॥२०॥

यस्य आत्मा	जिसका चित्त	**सपाला**	लोकपालोंके साथ
अनुवशः	अपने वशमें	**सर्वे लोकाः**	सब लोक
चेत् स्यात्	यदि है तो	**अतन्द्रिताः**	सावधानी पूर्वक
इमे सर्वे	ये सब	**तस्मै बलिं**	उसे उपहार
तत् वशगा	उसके वशमें रहते हैं	**यच्छन्ति**	देते हैं ॥२०॥

आत्मनः प्रीयते नात्मा परतः स्वत एव वा ।
लक्षयेऽलब्धकामं त्वां चिन्तया शबलं मुखम् ॥२१॥

आत्मनः प्रीयते न आत्मा परतः स्वत एव वा लक्षये अलब्ध कामं त्वां चिन्तया शबलं मुखम् ॥२१॥

आत्मनः	अपने आपमें	**त्वां अलब्ध**	तुम्हें अप्राप्त
आत्मा	तुम्हारा चित्त	**कामं**	मनोरथ
न प्रीयते	सन्तुष्ट नहीं है,	**चिन्तया शबलं**	चिन्तासे मलिन
परतः वा	यह दूसरेके कारण है अथवा	**मुखं लक्षये**	मुख लक्षित कर रहा हूँ ॥२१॥
स्वत एव	अपने आप ही है,		

श्रीशुक उवाच*

एवं विकल्पितो राजन् विदुषा मुनिनापि सः ।
प्रश्रयावनतोऽभ्याह प्रजाकामस्ततो मुनिम् ॥२२॥

एवं विकल्पितः राजन् विदुषा मुनिना अपि सः प्रश्रय अवनतः अभ्याह प्रजाकामः ततः मुनिम् ॥२२॥

राजन्	राजन् !	**प्रजाकामः**	पुत्रकी कामनासे
मुनिना	मुनिके द्वारा	**ततः मुनिं**	तब मुनिसे
विदुषा अपि	जानते हुए भी	**सः प्रश्रय**	उसने नम्रतासे
एवं विकल्पितः	इस प्रकार विकल्प किये जानेपर	**अवनतः**	झुककर
		अभ्याह	निवेदन किया ॥२२॥

चित्रकेतुरुवाच–

भगवन् किं न विदितं तपोज्ञानसमाधिभिः ।
योगिनां ध्वस्तपापानां बहिरन्तः शरीरिषु ॥२३॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भगवन् किं न विदितं तपः ज्ञान समाधिभिः योगिनां ध्वस्त पापानां बहिः अन्तः शरीरिषु ॥२३॥

भगवन्	भगवन् !
तपः ज्ञान	तपस्या, ज्ञान तथा
समाधिभिः	समाधिके द्वारा
ध्वस्त पापानां	जिनके पाप नष्ट हो गये हैं,
योगिनां	उन योगियोंके लिए
शरीरिषु	शरीर धारियोंके
बहिः अन्तः	बाहर या भीतर
किं न विदितं	क्या अनजान है

॥२३॥

तथापि पृच्छतोब्रूयां ब्रह्मन्नात्मनि चिन्तितम् ।
भवतो विदुषश्चापि चोदितस्त्वदनुज्ञया ॥२४॥

तथा अपि पृच्छतः ब्रूयां ब्रह्मन् आत्मनि चिन्तितं भवतः विदुषः च अपि चोदितः त्वत् अनुज्ञया ॥२४॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
तथा अपि	ऐसा होनेपरभी
विदुषः च अपि	जानते होनेपर भी
पृच्छतः	पूछनेपर
त्वत् अनुज्ञया	आपकी अनुमतिसे
भवतः चोदितः	आपके द्वारा प्रेरित
आत्मनि	अपनी
चिन्तितं	चिन्ता
ब्रूयां	निवेदन करूंगा

॥२४॥

लोकपालैरपि प्रार्थ्याः साम्राज्यैश्वर्यसम्पदः ।
न नन्दयन्त्यप्रजं मां क्षुत्तृट्कामसमिवापरे ॥२५॥

लोकपालैः अपि प्रार्थ्याः साम्राज्य ऐश्वर्य सम्पदः न नन्दयन्ति अप्रजं मां क्षुत् तृट् कामं इव अपरे ॥२५॥

लोकपालैः	लोकपालों द्वारा भी
प्रार्थ्याः	प्रार्थनीय
साम्राज्य ऐश्वर्य	साम्राज्य, ऐश्वर्य
सम्पदः	सम्पत्ति
क्षुत् तृट्	भूखे-प्यासेको
अपरे कामं इव	दूसरे भोगोंके समान
मां अप्रजं	मुझ पुत्रहीनको
न नन्दयन्ति	सुखी नहीं करते

॥२५॥

ततः पाहि महाभाग पूर्वैः सह गतं तमः ।
यथा तरेम दुस्तारं प्रजया तद् विधेहि नः ॥२६॥

ततः पाहि महाभाग पूर्वैः सह गतं तमः यथा तरेम दुस्तारं प्रजया तत् विधेहि नः ॥२६॥

महाभाग	महाभाग (महर्षे) !	**दुस्तारं**	इस दुस्तर (दुःख) से
पूर्वैः सह	पूर्वजोंके साथ	**तरेम**	पार हो जाऊँ
तमः गतं	दुःखमें पड़ेकी	**तत् नः**	वह मेरे लिए
ततः पाहि	इसलिए रक्षा कीजिए	**विधेहि**	विधान कीजिए ॥२६
यथा प्रजया	जैसे पुत्र द्वारा		

श्रीशुक उवाच–

इत्यर्थितः स भगवान् कृपालुर्ब्रह्मणः सुतः ।
श्रपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारमयजद् विभुः ॥२७॥

इति अर्थितः स भगवान् कृपालुः ब्रह्मणः सुतः श्रपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारम् अयजत् विभुः ॥२७॥

इति अर्थितः	इस प्रकार प्रार्थना करनेपर	**त्वाष्ट्रं चरुं**	त्वष्टा देवताके योग्य चरु
स विभुः	उन समर्थ	**श्रपयित्वा**	निर्माण कराके
कृपालुः भगवान्	दयालु भगवान्	**त्वष्टारं अयजत्**	त्वष्टाका यजन किया ॥२७॥
ब्रह्मणः सुतः	ब्रह्माजीके पुत्रने		

ज्येष्ठा श्रेष्ठा च या राज्ञो महिषीणां च भारत ।
नाम्ना कृतद्युतिस्तस्यै यज्ञोच्छिष्टमदाद् द्विजः ॥२८॥

ज्येष्ठा श्रेष्ठा च या राज्ञः महिषीणां च भारत नाम्ना कृतद्युतिः तस्यै यज्ञ उच्छिष्टं अदात् द्विजः ॥२८॥

भारत	परीक्षितः	**च श्रेष्ठा**	और श्रेष्ठ थी
राज्ञः महिषीणां	राजाकी महा-रानियोंमें	**यज्ञ उच्चिष्टं**	यज्ञका शेष प्रसाद
या ज्येष्ठा	जो सबसे बड़ी	**द्विजः**	उन विप्रवरने
		तस्यै अदात्	उसको दिया ॥२८॥

अथाह नृपतिं राजन् भवितैकस्तवात्मजः ।
हर्षशोकप्रदस्तुभ्यमिति ब्रह्मसुतो ययौ ॥२९॥

अथ आह नृपतिं राजन् भविता एकः तव आत्मजः हर्ष शोकप्रदः तुभ्यं इति ब्रह्मसुतः ययौ ॥२९॥

अथ नृपतिं आह	फिर राजासे कहा	**तव एकः**	तुम्हारा एक
राजन्	राजन् !	**आत्मजः भविता**	पुत्र होगा ।'
तुभ्यं	तुमको	**इति**	ऐसा (कहकर)
हर्ष शोकप्रदः	हर्ष और शोक देने वाला	**ब्रह्मसुतः ययौ**	वे ब्रह्माजीके पुत्र चले गये ॥२९॥

सापि तत्प्राशनादेव चित्रकेतोरधारयत् ।
गर्भं कृतद्युतिर्देवी कृत्तिकाग्नेरिवात्मजम् ॥३०॥

सा अपि तत् प्राशनात् एव चित्रकेतोः अधारयत् गर्भं कृतद्युतिः देवी कृत्तिका अग्नेः इव आत्मजम् ॥३०॥

सा कृतद्युतिः	उस कृतद्युति	**प्राशनात् एव**	खानेसे ही
देवी अपि	देवीने भी	**चित्रकेतोः**	चित्रकेतुसे
अग्नेः	अग्निसे	**आत्मजं**	सन्तानको
कृत्तिका इव	कृत्तिकाके समान	**गर्भं अधारयत्**	गर्भमें धारण किया ॥३०॥
तत्	इस यज्ञ प्रसादको		

तस्या अनुदिनं गर्भः शुक्लपक्ष इवोडुपः ।
ववृधे शूरसेनेशतेजसा शनकैर्नृप ॥३१॥

तस्या अनुदिनं गर्भः शुक्लपक्ष इव उडुपः ववृधे शूरसेन ईश तेजसा शनकैः नृप ॥३१॥

नृप	राजन् !	**शुक्लपक्ष**	शुक्ल-पक्षमें
शूरसेन ईश	शूरसेन देशके राजा (चित्रकेतु) के	**उडुपः इव**	चन्द्रमाकी भांति
तेजसा	वीर्यसे (स्थापित)	**शनकैः ववृधे**	धीरे-धीरे बढ़ने लगा ॥३१॥
तस्या गर्भः	उसका गर्भ		

अथ काल उपावृत्ते कुमारः समजायत ।

जनयन् शूरसेनानां शृण्वतां परमां मुदम् ॥३२॥

अथ काल उपावृत्ते कुमारः समजायत जनयन् शूरसेनानां शृण्वतां परमां मुदम् ॥३२॥

अथ काल	फिर समय	**परमां मुदं**	परमानन्द
उपावृत्ते	आनेपर	**जनयन्**	उत्पन्न करता
शृण्वतां	समाचार पानेवाले	**कुमारः**	राजकुमार
शूरसेनानां	शूरसेन देशकी प्रजाको	**समजायत**	उत्पन्न हुआ ॥३२॥

हृष्टो राजा कुमारस्य स्नातः शुचिरलंकृतः ।

वाचयित्वाऽऽशिषो विप्रैः कारयामास जातकम् ॥३३॥

हृष्टः राजा कुमारस्य स्नातः शुचिः अलंकृतः वाचयित्वा आशिषः विप्रैः कारयामास जातकम् ॥३३॥

हृष्टः राजा	राजाने प्रसन्न होकर	**कुमारस्य**	राजकुमारके लिए
स्नातः	स्नान किया	**आशिषः**	स्वास्ति-
शुचिः अलंकृतः	पवित्र होकर आभूषण धारण किया,	**वाचयित्वा**	वाचन कराके
		जातकं	जातकर्म-संस्कार
विप्रैः	ब्राह्मणों द्वारा	**कारयामास**	करवाया ॥३३॥

तेभ्यो हिरण्यं रजतं वासांस्याभरणानि च ।
ग्रामान् हयान् गजान् प्रादाद् धेनूनामर्बुदानि षट् ॥३४॥

तेभ्यः हिरण्यं रजतं वासांसि आभरणानि च ग्रामान् हयान् गजान् प्रादात् धेनूनां अर्बुदानि षट् ॥३४॥

तेभ्यः	उन ब्राह्मणोंको	**ग्रामान् हयान्**	गाँव, घोड़े,
हिरण्यं रजतं	सोना, चांदी,	**गजान्**	हाथी
वासांसि	वस्त्र	**च अर्बुदानि षट्**	तथा छः अरब
आभरणानि	आभूषण	**धेनूनां प्रादात्**	गायें दीं ॥३४॥

ववर्ष काममन्येषां पर्जन्य इव देहिनाम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं कुमारस्य महामनाः ॥३५॥

ववर्ष कामं अन्येषां पर्जन्य इव देहिनां धन्यं यशस्यं आयुष्यं कुमारस्य महामनाः ॥३५॥

महामनाः	परमोदार राजाने	**पर्जन्य इव**	मेघोंके समान
कुमारस्य	राजकुमारके	**अन्येषां**	दूसरे सबकी
धन्यं यशस्यं	धन, यश,	**कामं ववर्ष**	अभीष्ट वस्तुओंकी
आयुष्यं	आयुके लिए		वर्षा कर दी ॥३५॥
देहिनां	शरीर धारियोंके लिए		

कृच्छ्रलब्धेऽथ राजर्षेस्तनयेऽनुदिनं पितुः ।
यथा निःस्वस्य कृच्छ्राप्ते धने स्नेहोऽन्ववर्धत ॥३६॥

कृच्छ्रलब्धे अथ राजर्षेः तनये अनुदिनं पितुः यथा निःस्वस्य कृच्छ्र आप्ते धने स्नेहः अन्ववर्धत ॥३६॥

यथा निःस्वस्य	जैसे निर्धनको
कृच्छ्र आप्ते	कठिनाईसे प्राप्त
धने	धनमें (वैसे ही)
राजर्षेः पितुः	उन राजर्षि पिताका
कृच्छ्रलब्धे	कठिनाईसे प्राप्त
तनये अथ	पुत्रमें फिर
अनुदिनं स्नेहः	दिनों-दिन स्नेह
अन्ववर्धत	बराबर बढ़ता गया

॥३६॥

मातुस्त्वतितरां पुत्रे स्नेहो मोहसमुद्भवः ।
कृतद्युतेः सपत्नीनां प्रजाकामज्वरोऽभवत् ॥३७॥

मातुः तु अतितरां पुत्रे स्नेहः मोह समुद्भवः कृतद्युतेः सपत्नीनां प्रजाकामः ज्वरः अभवत् ॥३७॥

मातुः कृतद्युतेः	माता कृतद्युतिका
तु	तो
पुत्रे	पुत्रसे
मोह समुद्भवः	मोहसे उत्पन्न
अतितरां स्नेहः	बहुत अधिक स्नेह था,
प्रजाकामः	पुत्रेच्छुका
सपत्नीनां	सौतोंको
ज्वरः अभवत्	जलन होने लगी

॥३७॥

चित्रकेतोरतिप्रीतिर्यथा दारे प्रजावति ।
न तथान्येषु सञ्जज्ञे बालं लालयतोऽन्वहम् ॥३८॥

चित्रकेतोः अति प्रीतिः यथा दारे प्रजावति न तथा अन्येषु सञ्जज्ञे बालं लालयतः अन्वहम् ॥३८॥

अन्वहं	प्रतिदिन
बालं लालयतः	पुत्रसे लाड़ करते हुए
चित्रकेतोः	चित्रकेतुका
यथा प्रजावति	जैसा पुत्रवती
दारे अति	पत्नीसे अत्यन्त
प्रीतिः	प्रेम था
तथा अन्येषु	वैसा दूसरी पत्नियों-से
न सञ्जज्ञे	नहीं उत्पन्न हुआ

॥३८॥

ताः पर्यतप्यन्नात्मानं गर्हयन्त्योऽभ्यसूयया ।
आनपत्येन दुःखेन राज्ञोऽनादरेण च ॥३९॥

ताः पर्यतप्यन् आत्मानं गर्हयन्त्यः अभ्यसूयया आनपत्येन दुःखेन राज्ञः अनादरेण च ॥३९॥

अभ्यसूयया	डाहके कारण,	**ताः आत्मानं**	वे सब अपनी
आनपत्येन	निःसन्तान होनेके	**गर्हयन्त्यः**	निन्दा करती हुई
दुःखेन	दुःखसे	**पर्यतप्यन्**	सन्तप्त होने लगीं
च राज्ञः	और राजाके		॥३९॥
अनादरेण	अनादर करनेसे,		

धिगप्रजां स्त्रियं पापां पत्युश्चागृहसम्मताम् ।
सुप्रजाभिः सपत्नीभिर्दासीमिव तिरस्कृताम् ॥४०॥

धिक् अप्रजां स्त्रियं पापां पत्युः च अगृहसम्मतां सुप्रजाभिः सपत्नीभिः दासीं इव तिरस्कृताम् ॥४०॥

अप्रजां पापां	निःसन्तान पापिष्ठा	**दासीं इव**	दासीके समान
पत्युः च	पति भी जिसे	**तिरस्कृतां**	तिरस्कृता
अगृहसम्मतां	पत्नी नहीं मानते ।	**स्त्रियं धिक्**	स्त्रीको धिक्कार है
सुप्रजाभिः	उत्तम सन्तान वाली		॥४०॥
सपत्नीभिः	सौत द्वारा		

दासीनां को नु सन्तापः स्वामिनः परिचर्यया ।
अभीक्ष्णं लब्धमानानां दास्या दासीव दुर्भगाः ॥४१॥

दासीनां कः नु सन्तापः स्वामिनः परिचर्यया अभीक्ष्णं लब्धमानानां दास्या दासी इव दुर्भगाः ॥४१॥

अभीक्ष्णं	बराबर	**लब्धमानानां**	सम्मान पाने वाली
स्वामिनः	स्वामीकी	**दासीनां**	भला दासियोंको
परिचर्यया	सेवा करके	**कः सन्तापः**	क्या दुःख है,

दास्या	(हम तो) दासियों-की	**दासी इव दुर्भगाः**	दासीके समान अभागिनी हैं ॥४१॥

एवं सन्दह्यमानानां सपत्न्याः पुत्रसम्पदा ।
राज्ञोऽसम्मतवृत्तीनां विद्वेषो बलवानभूत् ॥४२॥

एवं सन्दह्यमानानां सपत्न्याः पुत्रसम्पदा राज्ञः असम्मत वृत्तीनां विद्वेषः बलवान् अभूत् ॥४२॥

सपत्न्याः	सौतकी	**वृत्तीनां**	व्यवहारसे (उनका सौतसे)
पुत्रसम्पदा	पुत्र रूप सम्पत्तिसे		
एवं	इस प्रकार	**बलवान्**	प्रबल
सन्दह्य मानानां	जलती रहने वाली	**विद्वेषः अभूत**	द्वेष हो गया ॥४२॥
राज्ञः असम्मत	राजा के उपेक्षित		

विद्वेषनष्टमतयः स्त्रियो दारुणचेतसः ।
गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति ॥४३॥

विद्वेषनष्ट मतयः स्त्रियः दारुण चेतसः गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति ॥४३॥

दिद्वेषनष्ट	अत्यन्त द्वेषसे नष्ट	**दुर्णर्षा**	चिढ़कर
मतयः स्त्रियः	बुद्धि स्त्रियोंकी	**कुमाराय**	राजकुमारको
दारुण चेतसः	चित्त क्रूर हो गया था,	**गरं ददुः**	(उन्होंने) विष दे दिया ॥४३॥
नृपतिं प्रति	राजासे		

कृतद्युतिरजानन्ती सपत्नीनामघं महत् ।
सुप्त एवेति सञ्चिन्त्य निरीक्ष्य व्यचरद् गृहे ॥४४॥

कृतद्युतिः अजानन्ती सपत्नीनां अघं महत् सुप्त एव इति सञ्चिन्त्य निरीक्ष्य व्यचरत् गृहे ॥४४॥

कृतद्युतिः	कृतद्युति	**इति सञ्चिन्त्य**	ऐसा सोचकर
सपत्नीनां	सौतोंका यह	**निरीक्ष्य**	(दूरसे) देखकर
महत् अघं	भारी पाप	**गृहे व्यचरत्**	घरमें घूमती रही
अजानन्ती	जानती नहीं थी,		॥४४॥
सुप्त एव	(बच्चा) सो ही रहा है,		

शयानं सुचिरं बालमुपधार्य मनीषिणी ।
पुत्रमानय मे भद्रे इति धात्रीमचोदयत् ॥४५॥

शयानं सुचिरं बालं उपधार्य मनीषिणी पुत्रं आनय मे भद्रे इति धात्रीं अचोदयत् ॥४५॥

मनीषिणी	बुद्धिमती (रानी)ने	**आनय इति**	ले आओ' इस
बालं सुचिरं	बालक बहुत देरसे		प्रकार
शयानं उपधार्य	सो रहा है, यह विचार करके	**धात्रीं अचोदयत्**	धायको प्रेरित किया ॥४५॥
भद्रे मे पुत्रं	'कल्याणी, मेरे पुत्र-को		

सा शयानमुपव्रज्य दृष्ट्वा चोत्तारलोचनम् ।
प्राणेन्द्रियात्मभिस्त्यक्तं हतास्मीत्यपतद्भुवि ॥४६॥

सा शयानं उपव्रज्य दृष्ट्वा च उत्तार लोचनं प्राण इन्द्रिय आत्मभिः त्यक्तं हता अस्मि इति अपतत् भुवि ॥४६॥

सा	वह (धाय)	**त्यक्तं दृष्ट्वा**	परित्यक्त देखकर
शयानं उपव्रज्य	सोते (बालक)के पास जाकर,	**च**	और
		हता अस्मि	'मैं मारी गयी !'
उत्तार लोचनं	नेत्रोंकी पुतली उलटी हुई,	**इति**	ऐसा (चिल्लाकर)
		भुवि अपतत्	पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥४६॥
प्राण इन्द्रिय	प्राण, इन्द्रिय,		
आत्मभिः	जीवसे		

तस्यास्तदाऽऽकर्ण्य भृशातुरं स्वरं
घ्नन्त्याः कराभ्यामुर उच्चकैरपि ।
प्रविश्य राज्ञी त्वरयाऽऽत्मजान्तिकं
ददर्श बालं सहसा मृतं सुतम् ॥४७॥

तस्याः तदा आकर्ण्य भृश आतुरं स्वरं घ्नन्त्याः कराभ्यां उर उच्चकैः अपि प्रविश्य राज्ञी त्वरया आत्मज अन्तिकं ददर्श बालं सहसा मृतं सुतम् ॥

कराभ्यां	दोनों हाथोंसे	**त्वरया राज्ञी**	शीघ्रतासे महारानी ने
उच्चकैः उर	जोर-जोरसे छाती	**आत्मज अन्तिकं**	पुत्रके पास
घ्नन्त्याः	पीटती	**प्रविश्य**	प्रवेश करके
तस्याः	उस (धाय)को	**सहसा बालं सुतं**	अचानक शिशु-पुत्रको
भृश आतुरं	अत्यन्त व्याकुल	**मृतं ददर्श**	मरा देखा ॥४७॥
तदा स्वरं	उस समय स्वर		
आकर्ण्य	सुनकर		

पपात भूमौ परिवृद्धया शुचा
मुमोह विभ्रष्टशिरोरुहाम्बरा ॥४८॥

पपात भूमौ परिवृद्धया शुचा मुमोह विभ्रष्ट शिरोरुह अम्बरा ॥४८॥

परिवृद्धया शुचा	शोक बहुत बढ़ जानेसे	**अम्बरा**	वस्त्र
मुमोह	मूर्छित हो गयीं ।	**भूमौ पपात**	पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥४८॥
विभ्रष्ट	बिखरे		
शिरोरुह	केश और (अस्त-व्यस्त)		

ततो नृपान्तः पुरवर्तिनो जना
नराश्च नार्यश्च निशम्य रोदनम् ।
आगत्य तुल्यव्यसनाः सुदुःखिता-
स्ताश्च व्यलीकं रुरुदुः कृतागसः ॥४९॥

ततः नृप अन्तःपुर वर्तिनः जना नराः च नार्यः च निशम्य रोदनं आगत्य तुल्य व्यसनाः सुदुःखिताः ताः च व्यलीकं रुरुदुः कृत आगसः ॥४९॥

ततः	तब	**तुल्य व्यसनाः**	सहानुभूतिमें
रोदनं निशम्य	रुदन सुनकर	**सुदुःखिताः**	अत्यन्त दुःखी हुए ।
नृप अन्तःपुर	राजाके अन्तःपुरमें	**ताः कृत आगसः**	वे पापाचारिणी (रानियाँ)
वर्तिनः जना	रहनेवाले लोग		
नराः च	पुरुष और	**च व्यलीकं**	भी झूठमूठको
नार्यः च	स्त्रियां भी	**रुरुदुः**	रोने लगीं ॥४९॥
आगत्य	आकर		

श्रुत्वा मृतं पुत्रमलक्षितान्तकं
विनष्टदृष्टिः प्रपतन् स्खलन् पथि ।
स्नेहानुबन्धैधितया शुचा भृशं
विमूर्च्छितोऽनुप्रकृतिर्द्विजैर्वृतः ॥५०॥

श्रुत्वा मृतं पुत्रं अलक्षित अन्तकं विनष्ट दृष्टिः प्रपतन् स्खलन् पथि स्नेह अनुबन्ध एधितया शुचा भृशं विमूर्छितः अनुप्रकृतिः द्विजैः वृतः ॥५०॥

पुत्रं मृतं श्रुत्वा	पुत्रको मरा सुनकर	**भृशं शुचा**	बहुत अधिक शोकसे
अलक्षित अन्तकं	मारनेवाले का पता था नहीं,	**अनुप्रकृतिः**	मन्त्री आदि और
		द्विजैः वृतः	ब्राह्मणोंसे घिरे
विनष्ट दृष्टिः	आँखोंसे दीखना बन्द हो गया,	**विमूर्छितः**	संज्ञाहीन होकर
		पथि	मार्गमें
अनुबन्ध	स्नेह सम्बन्धसे	**प्रपतन् स्खलन**	गिरते-पड़ते ॥५०॥
एधितया	बढ़े		

पपात बालस्य स पादमूले
मृतस्य विस्रस्तशिरोरुहाम्बरः ।
दीर्घं श्वसन् बाष्पकलोपरोधतो
निरुद्धकण्ठो न शशाक भाषितुम् ॥५१॥

पपात बालस्य स पादमूले मृतस्य विस्रस्त शिरोरुह अम्बरः दीर्घं श्वसन् बाष्प कला उपरोधतः निरुद्ध कण्ठ न शशाक भाषितुम् ॥५१॥

मृतस्य बालस्य	मरे हुए बालकके	**बाष्प कला**	आँसुओंके
पादमूले	पैरोंके समीप	**उपरोधतः**	कारण
स पपात	वे (राजा) गिर पड़े,	**निरुद्ध कण्ठः**	गला भर जानेसे
शिरोरुह अम्बरः	केश और वस्त्र	**भाषितुं न**	(कुछ) बोल नहीं
विस्रस्त	अस्त-व्यस्त हो गये ।	**शशाक**	सके ॥५१॥
दीर्घं श्वसन्	लम्बी श्वास लेते हुए		

पतिं निरीक्ष्योरुशुचार्पितं तदा
मृतं च बालं सुतमेकसन्ततिम् ।
जनस्य राज्ञी प्रकृतेश्च हृद्रुजं
सती दधाना विललाप चित्रधा ॥५२॥

पतिं निरीक्ष्य उरु शुचा अर्पितं तदा मृतं च बालं सुतं एक सन्ततिं जनस्य राज्ञी प्रकृतेः च हृद् रुजं सती दधाना विललाप चित्रथा ॥५२॥

सती राज्ञी	सती महारानी (कृतद्युति)	**एक सन्ततिं**	एकमात्र सन्तान
तदा	उस समय	**बालं सुतं मृतं**	शिशु पुत्रको मरा
उरु शुचा	अत्यन्त शोक	**निरीक्ष्य**	देखकर
अर्पितं	ग्रस्त	**जनस्य**	लोगोंके
पतिं	पतिको तथा	**च प्रकृतेः**	एवं (मन्त्री आदि) प्रकृतिके

हृद् रुजं	हृदयमें रोग (सन्ताप)	**चित्रधा**	अनेक प्रकारसे
दधाना	बढ़ाती हुई	**विललाप**	विलाप करने लगीं ॥५२॥

स्तनद्वयं कुङ्कुमगन्धमण्डितं
निषिञ्चती साञ्जनबाष्पबिन्दुभिः ।
विकीर्य केशान् विगलत्स्रजः सुतं
शुशोच चित्रं कुररीव सुस्वरम् ॥५३॥

स्तनद्वयं कुङ्कुमगन्ध मण्डितं निषञ्चती साञ्जन बाष्प बिन्दुभिः विकीर्य केशान् विगलत् स्रजः सुतं शुशोच चित्रं कुररी इव सुस्वरम् ॥५३॥

कुङ्कुमगन्ध मण्डितं	कुंकुम-केशर चर्चित	**कुररी इव**	कुररी (चील) पक्षी-के समान
स्तनद्वयं	दोनों स्तनोंको	**सुस्वरं**	उच्च-स्वरमें
साञ्जन बाष्प बिन्दुभिः	अञ्जन मिले अश्रु विन्दुओंसे	**चित्रं**	अनेक प्रकारसे
निषञ्चती	भिगोती,	**सुतं शुशोच**	पुत्रके लिए विलाप करने लगीं ॥५३॥
केशान् विकीर्य	केश फैलाये,		
विगलत् स्रजः	(उनमें लगी) माला गिराती		

कृतिद्युति उवाच-

अहो विधातस्त्वमतीव बालिशो
यस्त्वात्मसृष्ट्यप्रतिरूपमीहसे ।
परेऽनुजीवत्यपरस्य या मृति-
र्विपर्ययश्चेत्त्वमसि ध्रुवः परः ॥५४॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अहो विधातः त्वं अतीव बालिशः यस्तु आत्म सृष्टि अप्रति रूपं ईहसे परे अनुजीवति अपरस्य या मृतिः विपर्ययः चेत् त्वं असि ध्रुवः परः ॥५४॥

अहो विधातः	अरे विधाता !
त्वं अतीव	तू अत्यन्त
बालिशः	मूर्ख है,
यस्तु आत्म	क्योंकि अपनी
सृष्टि	सृष्टिके
अप्रति रूप	प्रतिकूल
ईहसे	चेष्टा करता है,
परे अनुजीवति	बड़ोंके जीवित रहते
अपरस्य	पीछे वालोंकी
या मृतिः	जो मृत्यु है,
चेत् विपर्ययः	यह उलटा विधान यदि (तुम्हारा है)
त्वं ध्रुवः	तो निश्चित
त्वं परः असि	तुम (सबके) शत्रु हो ॥५४॥

न हि क्रमश्चेदिह मृत्युजन्मनोः
शरीरिणामस्तु तदाऽऽत्मकर्मभिः ।
यः स्नेहपाशो निजसर्गवृद्धये
स्वयं कृतस्ते तमिमं विवृश्चसि ॥५५॥

न हि क्रमः चेत् इह मृत्यु जन्मनोः शरीरिणां अस्तु तदा आत्म कर्मभिः यः स्नेहपाशः निजसर्ग वृद्धये स्वयं कृतः ते तं इमं विवृश्चसि ॥५५॥

चेत् इह	यद्यपि इस संसारमें
मृत्यु जन्मनोः	मृत्यु और जन्मका
क्रमः न	कोई क्रम नहीं है
हि	क्योंकि
तदा शरीरिणां	तब वह शरीर-धारियोंके
आत्म कर्मभिः	अपने कर्मोंके अनुसार
अस्तु	होवे,
यः स्नेहपाशः	जो स्नेह-बन्धन
निजसर्ग वृद्धये	अपनी सृष्टि-वृद्धिके लिए
ते स्वयं कृतः	तुमने स्वयं बनाया है
तं इमं	उसीको यह
विवृश्चसि	काट रहे हो ॥५५॥

त्वं तात नार्हसि च मां कृपणामनाथां
त्यक्तुं विचक्ष्व पितरं तव शोकतप्तम् ।
अञ्जस्तरेम भवताप्रजदुस्तरं यद्
ध्वान्तं न याह्यकरुणेन यमेन दूरम् ॥५६॥

त्वं तात न अर्हसि च मां कृपणां अनाथां त्यक्तुं विचक्ष्व पितरं तव शोकतप्तं अञ्जः तरेम भवता प्रज दुस्तरं यद् ध्वान्तं न याहि अकरुणेन यमेन दूरम् ॥५६॥

तात त्वं	बेटा तुमको	**यद् दुस्तरं**	जैसे दुस्तर
मां कृपणां	मुझ दुखिया	**ध्वान्तं**	नरकको
अनाथां	अनाथाको	**भवता प्रज**	तुम पुत्रके द्वारा
त्यक्तुं न अर्हसि	त्यागना नहीं चाहिए ।	**अञ्जः तरेम**	हम सरलतासे पार करलें
तव शोकतप्तं	तुम्हारे शोकसे संतप्त	**अकरुणेन**	(अतः) निष्ठुर
पितरं विचक्ष्व	अपने माता-पिता-को देखो	**यमेन दूरं**	यमराजके साथ दूर
		न याहि	मत जाओ ॥५६॥

उत्तिष्ठ तात त इमे शिशवो वयस्या-
स्त्वामाह्वयन्ति नृपनन्दन संविहर्तुम् ।
सुप्तश्चिरं ह्यशनया च भवान् परीतो
भुङ्क्ष्व स्तनं पिब शुचो हर नः स्वकानाम् ॥५७॥

उत्तिष्ठ तात त इमे शिशवः वयस्याः त्वां आह्वयन्ति नृपनन्दन संविहर्तुं सुप्तः चिरं हि अशनया च भवान् परीतः भुङ्क्ष्वस्तनं पिबशुचः हर नः स्वकानां ॥५७॥

तात उत्तिष्ठ	बेटा उठो !	**नृपनन्दन**	राजकुमार !
त वयस्याः	तुम्हारे सखा	**संविहर्तुं**	साथ खेलनेके लिए
इमे शिशवः	ये बालक		

त्वां आह्वयन्ति तुम्हें पुकार रहे हैं,
हि क्योंकि
चिरं सुप्तः बहुत देरसे सोये हो
भवान् अशनया तुम भूखसे
परीतः भुङ्क्ष्व घिरे हो (भूखे हो)
कुछ खाओ
स्तनं पिब स्तनपान करो,
नः स्वकानां हम अपनोंका
शुचः हर शोक दूर करो
॥५७॥

नाहं तनूज दद्दशे हतमङ्गला ते
मुग्धस्मितं मुदितवीक्षणमाननाब्जम् ।
किं वा गतोऽस्यपुनरन्वयमन्यलोकं
नीतोऽघृणेन न शृणोमि कला गिरस्ते ॥५८॥

न अहं तनूज दद्दशे हतमङ्गला ते मुग्धस्मितं मुदितवीक्षणं आननाब्जं किं वा गतः असि अपुनः अन्वयं अन्य लोकं नीतः अघृणेन न शृणोमि कला गिरः ते ॥५८॥

अहं हतमङ्गला मैं अभागिनी
ते मुग्धस्मितं तुम्हारा मनोहर
मुस्कानयुक्त
मुदितवीक्षण आनन्द भरे नेत्रोंसे
देखनेवाला
आननाब्जं कमल-मुख
तनूज न दद्दशे बेटा नहीं देखूंगी ?
ते कला गिरः तुम्हारी तोतली
वाणी
न शृणोमि नहीं सुन रही हूँ,
वा किं अथवा क्या
अघृणेन नीतः निष्ठुर यम द्वारा ले
जाये गये
अपुनः अन्वयं फिर जहाँ से लौटा
नहीं जाता
लोकं उस लोक
गतः असि चले गये हो ॥५८॥

श्रीशुक उवाच—

विलपन्त्या मृतं पुत्रमिति चित्रविलापनैः ।
चित्रकेतुर्भृशं तप्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥५९॥

विलपन्त्या मृतं पुत्रं इति चित्र विलापनैः चित्रकेतुः भृशं तप्तः मुक्तकण्ठः रुरोद ह ॥५९॥

इति	इस प्रकार	**चित्रकेतुः**	चित्रकेतु
चित्रविलापनैः	अनेक प्रकारके विलापोंसे	**भृशं तप्तः**	अत्यन्त संतप्त होकर
मृतं पुत्र	मेरे पुत्रके लिए	**मुक्तकण्ठः**	खुले गलेसे
विलपन्त्या	(रानीके) विलाप करनेसे	**रुरोद ह**	रोने ही लगा ॥५९॥

तयोर्विलपतोः सर्वे दम्पत्योस्तदनुव्रताः ।
रुरुदुः स्म नरा नार्यः सर्वमासीदचेतनम् ॥६०॥

तयोः विलपतोः सर्वे दम्पत्योः तत् अनुव्रताः रुरुदुः स्म नरा नार्यः सर्वं आसीत् अचेतनम् ॥६०॥

तयोः दम्पत्योः	उन पति-पत्नीके	**रुरुदुः**	रोने लगे
विलपतोः	विलाप करनेसे	**सर्वं अचेतनं**	सभी चेतनाहीन
तत् अनुव्रताः	उनके अनुचर	**आसीत्**	हो रहे थे ॥६०॥
सर्वे नरा नार्यः	सब स्त्री-पुरुष		

एवं कश्मलमापन्नं नष्टसंज्ञमनायकम् ।
ज्ञात्वाङ्गिरा नाम मुनिराजगाम सनारदः ॥६१॥

एवं कश्मलं आपन्नं नष्टसंज्ञं अनायकं ज्ञात्वा अङ्गिरा नाम मुनिः आजगाम सनारदः ॥६१॥

एवं कश्मलं	इस प्रकार	**अङ्गिरा नाम**	अङ्गिरा नामके
आपन्नं	संकटमें पड़े,	**मुनिः**	मुनि—
नष्टसंज्ञं	चेतनाहीन	**सनारदः**	नारदजीके साथ
अनायकं	निराश्रय	**आजगाम**	आये ॥६१॥
ज्ञात्वा	(चित्रकेतुको) जानकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे चित्रकेतुविलापो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

ऊचतुर्मृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम् ।
शोकाभिभूतं राजानं बोधयन्तौ सदुक्तिभिः ॥ १ ॥

ऊचतुः मृतक उपान्ते पतितं मृतक उपमं शोक अभिभूतं राजान बोधयन्तौ सद् उक्तिभिः ॥१॥

मृतक उपान्ते	मेरे (पुत्रके) समीप	राजानं	राजाको
मृतक उपमं	मरे हुएके समान	सद् उक्तिभिः	सुन्दर उक्तियोंसे
पतितं	पड़े हुए	बोधयन्तौ	समझाते हुए
शोक अभिभूतं	शोक-ग्रस्त	ऊचतुः	बोले ॥१॥

अंगिरोवाच-*

कोऽयं स्यात् तव राजेन्द्र भवान् यमनुशोचति ।
त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम् ॥ २ ॥

कः अयं स्यात् तव राजेन्द्र भवान् यं अनुशोचति त्वं च अस्य कतमः सृष्टौ पुरा इदानीं अतः परम् ॥२॥

राजेन्द्र भवान्	राजेन्द्र ! आप	अयं तव कः	यह तुम्हारा क्या
त्वं यं	तुम जिसके पीछे	स्यात्	लगता है,
अनुशोचति	शोक कर रहे हो	त्वं च अस्य	तुम्हारा इससे
सृष्टौ	इस सृष्टिमें	कतमः	क्या सम्बन्ध है ?
पुरा इदानीं	पहिले, इस समय		॥२॥
अतः परं	इससे आगे		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतोवेगेन वालुकाः ।
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ॥३॥

यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतः वेगेन वालुकाः संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ॥३॥

यथा स्रोतः	जैसे धाराके	**वियुज्यन्ते**	पृथक हो जाते हैं,
वेगेन	वेगसे	**तथा कालेन**	इसी प्रकार कालके
वालुकाः	रेतके कण		द्वारा
प्रमान्ति	जाते और	**देहिनः**	शरीरधारी भी
संयान्ति	आते हुए		(मिलते-बिछुड़ते
संयुज्यन्ते	परस्पर मिलते हैं और		हैं) ॥३॥

यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च ।
एवं भूतेषु भूतानि चोदितानीशमायया ॥४॥

यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च एवं भूतेषु भूतानि चोदितान् ईश मायया ॥४॥

यथा धानासु	जैसे बीजोंसे	**चोदितान्**	प्रेरित
धाना वै	दूसरे बीज निश्चय	**भूतेषु भूतानि**	प्राणियोंसे प्राणी
भवन्ति	उत्पन्न होते हैं		(सन्तान कभी
च न भवन्ति	और कभी नहीं उत्पन्न होते		होती, कभी नहीं होती) ॥४॥
एवं ईश मायया	इसी प्रकार ईश्वर-की मायासे		

वयं च त्वं च ये चेमे तुल्यकालाश्चराचराः ।
जन्ममृत्योर्यथा पश्चात् प्राङ्नैवमधुनापि भोः ॥५॥

वयं च त्वं च ये च इमे तुल्य कालाः चर अचराः जन्म मृत्योः यथा पश्चात् प्राक् न एवं अधुना अपि भोः ॥५॥

भोः	हे राजन् !
वयं	हम
च त्वं	और तुम
च ये इमे	तथा जो ये लोग हैं
च चर अचराः	एवं सब चराचर
तुल्य कालाः	समकालीन हैं,
यथा जन्म प्राक्	जन्मके पहिले तथा
मृत्योः पश्चात्	मृत्युके बाद
एवं न	इस प्रकार नहीं रहते,
अधुना अपि	इस समय भी (ऐसे देहरूप नहीं हैं) ॥५॥

भूतैर्भूतानि भूतेशः सृजत्यवति हन्त्यजः ।
आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैरनपेक्षोऽपि बालवत् ॥६॥

भूतैः भूतानि भूतेशः सृजति अवति हन्ति अजः आत्म सृष्टैः अस्वतन्त्रैः अनपेक्षः अपि बालवत् ॥६॥

अनपेक्षः अपि	कोई अपेक्षा न होने पर भी
बालवत्	बालक (की क्रीड़ा) के समान
भूतेशः	सब प्राणियोंका स्वामी ईश्वर
अजः	वह अजन्मा
आत्म सृष्टैः	अपने बनाये हुए
अस्वतन्त्रैः	पराधीन
भूतैः भूतानि	पंचभूतों द्वारा प्राणियोंको
सृजति अवति	उत्पन्न करता, पालता
हन्ति	मार देता है ॥६॥

देहेन देहिनो राजन् देहाद्देहोऽभिजायते ।
बीजादेव यथा बीजं देह्यर्थ इव शाश्वतः ॥७॥

देहेन देहिनः राजन् देहात् देहः अभिजायते बीजात् एव यथा बीजं देही अर्थ इव शाश्वतः ॥७॥

राजन्	राजन् !
देहिनः	जीवका
देहेन	शरीर
देहात् देहः	एक शरीरसे दूसरा शरीर
अभिजायते	उत्पन्न होता है ।
यथा बीजात् एव	जैसे एक बीजसे ही
बीजं	दूसरा बीज
देही	जीव
अर्थ इव	(घट आदि कार्योंमें पृथ्वी) तत्त्वके समान
शाश्वतः	नित्य है ॥७॥

देहदेहिविभागोऽयमविवेककृतः पुरा ।
जातिव्यक्तिविभागोऽयं यथा वस्तुनि कल्पितः ॥८॥

देहदेहि विभागः अयं अविवेक कृतः पुरा जाति व्यक्ति विभागः अयं यथा वस्तुनि कल्पितः ॥८॥

यथा वस्तुनि	जैसे वस्तुमें	**अयं**	यह
अयं जाति	यह जाति (घट-जाति)	**देहदेहि**	शरीर और जीवका
व्यक्ति विभागः	और व्यक्ति (एक घड़े) का विभाग	**विभागः**	विभाग
		पुरा	अनादि
कल्पितः	कल्पित है (ऐसे ही)	**अविवेक कृतः**	अज्ञान कृत है ॥८॥

श्रीशुक उवाच–

एवमाश्वासितो राजा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ।
प्रमृज्य पाणिना वक्त्रमाधिम्लानमभाषत ॥९॥

एवं आश्वासितः राजा चित्रकेतुः द्विज उक्तिभिः प्रमृज्य पाणिना वक्त्रं आधिम्लानं अभाषत ॥९॥

एवं	इस प्रकार	**आधिम्लानं**	शोकसे मलिन
राजा चित्रकेतुः	राजा चित्रकेतु	**वक्त्रं**	मुख
द्विज उक्तिभिः	ब्राह्मणकी उक्तिसे	**पाणिना प्रमृज्य**	हाथोंसे पोंछकर
आश्वासितः	समझाए जानेपर	**अभाषत**	बोले ॥९॥

चित्रकेतु उवाच–*

कौ युवां ज्ञानसम्पन्नौ महिष्ठौ च महीयसाम् ।
अवधूतेन वेषेण मूढाविह समागतौ ॥१०॥

---

*अन्य प्रतियोंमें यहां 'राजोवाच' है ।

कौ युवां ज्ञानसम्पन्नौ महिष्ठौ च महीयसां अवधूतेन वेषेण गूढाः इह समागतौ ॥१०॥

ज्ञानसम्पन्नौ	परम ज्ञानवान्	**अवधूतेन**	अवधूत
च महीयसां	और महानोंसे भी	**वेषेण**	वेशमें
महिष्ठौ	महान	**गूढाः इह**	छिपकर यहाँ
युवां	आप दोनों	**समागतौ कौ**	आए कौन हैं ॥१०॥

चरन्ति ह्यवनौ कामं ब्राह्मणा भगवत्प्रियाः ।
माद्दशां ग्राम्यबुद्धीनां बोधायोन्मत्तलिङ्गिनः ॥११॥

चरन्ति हि अवनौ कामं ब्राह्मणा भगवत् प्रियाः माद्दशां ग्राम्य बुद्धीनां बोधाय उन्मत्त लिङ्गिनः ॥११॥

हि	क्योंकि	**ब्राह्मणा**	ब्रह्मवेत्ता
माद्दशां	मेरे जैसे	**उन्मत्त लिङ्गिनः**	पागलों-सा वेश बनाए
ग्राम्य बुद्धीनां	भोगलिप्त बुद्धि वालोंको	**अवनौ**	पृथ्वीपर
बोधाय	समझानेके लिए	**कामं चरन्ति**	इच्छानुसार विचरण करते हैं ॥११॥
भगवत् प्रियाः	भगवान्‌के प्रिय		

कुमारो नारद ऋभुरङ्गिरा देवलोऽसितः ।
अपान्तरतमो व्यासो मार्कण्डेयोऽथ गौतमः ॥१२॥

वसिष्ठो भगवान् रामः कपिलो बादरायणिः ।
दुर्वासा याज्ञवल्क्यश्च जातूकर्ण्यस्तथाऽऽरुणिः ॥१३॥

रोमशश्च्यवनो दत्त आसुरिः सपतञ्जलिः ।
ऋषिर्वेदशिरा बोध्यो मुनिः पञ्चशिरास्तथा ॥१४॥

हिरण्यनाभः कौसल्यः श्रुतदेव ऋतध्वजः ।
एते परे च सिद्धेशाश्चरन्ति ज्ञानहेतवः ॥१५॥

(सनत्) कुमारः, नारदः, ऋभुः, अङ्गिरा, देवलः, असितः, अपान्तरतमः, व्यासः, मार्कण्डेयः, अथ गौतमः, वशिष्ठः, भगवान् रामः (पशुराम) कपिलः, बादरायणिः, (शुकदेव) दुर्वासा, याज्ञवल्क्यः, च जातूकर्ण्यः, तथा आरुणिः, रोमशः (लोमश) च्यवनः, दत्तः (दत्तात्रेय) आसुरिः स पतञ्जलिः, ऋषिः वेदशिरा, बोध्यः मुनिः (बोध्यमुनि) पञ्चशिरा, तथा हिरण्यनाभः, कौसल्यः, श्रुतदेव, ऋतध्वजः।*

एते परे च सिद्धेशाः चरन्ति ज्ञान हेतवः ॥१२,१३,१४-१५॥

एते परे च	ये और दूसरे भी		लिए
सिद्धेशाः	सिद्धेश्वर लोग	चरन्ति	विचरण करते
ज्ञान हेतवः	ज्ञान-दान करनेके		हैं ॥१५॥

तस्माद्युवां ग्राम्यपशोर्मम मूढधियः प्रभू।
अन्धे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदीर्यताम् ॥१६॥

तस्मात् युवां ग्राम्य पशोः मम मूढधियः प्रभू अन्धे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदीर्यताम् ॥१६॥

प्रभू	स्वामियो !	अन्धे तमसि	घने अन्धकारमें
तस्मात्	इसलिए	मग्नस्य मम	डूबे मेरे लिए
मूढधियः	मूढ-बुद्धि	युवां	आप दोनों
ग्राम्य पशोः	भोगोंमें लिप्त पशु-प्राय	ज्ञानदीप	ज्ञान-रूपी दीपक
		उदीर्यतां	जलावें ॥१६॥

अंगिरा उवाच-

अहं ते पुत्रकामस्य पुत्रदोऽस्म्यङ्गिरा नृप।
एष ब्रह्मसुतः साक्षान्नारदो भगवानृषिः ॥१७॥

अहं ते पुत्र कामस्य पुत्रदः अस्मि अङ्गिरा नृप एष ब्रह्मसुतः साक्षात् नारदः भगवान् ऋषिः ॥१७॥

---

*ये केवल नाम हैं।

नृप	राजन् !	**एष साक्षात्**	ये साक्षात्
ते पुत्र कामस्य	तुम पुत्राभिलाषीको	**भगवान्**	भगवान्
पुत्रदः	पुत्र देनेवाला	**ब्रह्मसुतः**	ब्रह्माजीके पुत्र
अहं अङ्गिरा	मैं अंगिरा	**ऋषिः नारदः**	देवर्षि नारद हैं ॥१७॥
अस्मि	हूँ,		

इत्थं त्वां पुत्रशोकेन मग्नं तमसि दुस्तरे ।
अतदर्हमनुस्मृत्य महापुरुषगोचरम् ॥१८॥

इत्थं त्वां पुत्रशोकेन मग्नं तमसि दुस्तरे अतदर्हं अनुस्मृत्य महापुरुष गोचरम् ॥१८॥

महापुरुष गोचरं	भगवान् पुरुषोत्तम-का दर्शन पाने योग्य	**दुस्तरे तमसि**	दुष्पार आज्ञानमें
त्वां इत्थं	तुमको इस प्रकार	**मग्नं अतदर्हं**	मग्न, इस (स्थिति) के अयोग्य
पुत्रशोकेन	पुत्र-शोकसे	**अनुस्मृत्य**	समझकर ॥१८॥

अनुग्रहाय भवतः प्राप्तावावामिह प्रभो ।
ब्रह्मण्यो भगवद्भक्तो नावसीदितुमर्हति ॥१९॥

अनुग्रहाय भवतः प्राप्ता वा आवां इह प्रभो ब्रह्मण्यः भगवद्भक्तः न अवसीदितुं अर्हति ॥१९॥

प्रभो	राजन् !	**ब्रह्मण्यः**	ब्राह्मण-भक्त
भवतः अनुग्रहाय	तुमपर कृपा करनेके लिए	**वा**	अथवा
आवां इह	हम दोनों यहां	**भवद्भक्तः**	भगवद्-भक्तको
प्राप्ता	आये हैं (क्योंकि)	**अवसीदितुं**	शोक
		न अर्हति	नहीं करना चाहिए ॥१९॥

तदैव ते परं ज्ञानं ददामि गृहमागतः ।
ज्ञात्वान्याभिनिवेशं ते पुत्रमेव ददावहम् ॥२०॥

तदा एव ते परं ज्ञानं ददामि गृहं आगतः ज्ञात्वा अन्य अभिनिवेशं ते पुत्रं एव ददाः अहम् ॥२०॥

तदा एव	उसी समय
ते परं ज्ञानं	तुमको परमज्ञान
ददामि	देने
गृहं आगतः	(तुम्हारे) घर आया था,
ते अन्य	तुम्हारा दूसरी बातमें
अभिनिवेशं	चित्त लगा
ज्ञात्वा	जानकर
अहं पुत्रं एव	मैंने पुत्र ही
ददाः	दिया ॥२०॥

अधुना पुत्रिणां तापो भवतैवानुभूयते ।
एवं दारा गृहा रायो विविधैश्वर्यसम्पदः ॥२१॥

अधुना पुत्रिणां तापः भवता एव अनुभूयते एवं दारा गृहा रायः विविध ऐश्वर्य सम्पदः ॥२१॥

अधुना	इस समय
पुत्रिणां तापः	पुत्रवानोंको होने वाला दुःख
भवता एव	तुम स्वयं
अनुभूयते	अनुभव कर रहे हो,
दारा गृहा	स्त्री, घर
रायः	धन
विविध ऐश्वर्य	अनेक प्रकारके ऐश्वर्य
सम्पदः एवं	सम्पत्तियां ऐसी ही हैं ॥२१॥

शब्दादयश्च विषयाश्चला राज्यविभूतयः ।
मही राज्यं बलं कोशो भृत्यामात्याः सुहृज्जनाः ॥२२॥

शब्द आदयः च विषयाः चलाः राज्यविभूतयः मही राज्यं बलं कोशः भृत्य अमात्याः सुहृत् जनाः ॥२२॥

शब्द आदयः	शब्द (स्पर्श) आदि
विषयाः	विषय,
राज्यविभूतयः	राज्य-वैभव,
मही राज्यं	पृथ्वीका राज्य,
बलं कोशः	सेना, खजाना,
भृत्य अमात्याः	सेवक, मन्त्री,
सुहृत् जनाः	इष्ट मित्र,
चलाः	अनित्य हैं ॥२२॥

सर्वेऽपि शूरसेनेमे शोकमोहभयार्तिदाः ।
गन्धर्वनगरप्रख्याः स्वप्नमायामनोरथाः ॥२३॥

सर्वे अपि शूरसेन इमे शोक मोह भय आर्तिदाः गन्धर्व नगर प्रख्याः स्वप्न माया मनोरथाः ॥२३॥

शूरसेन	शूरसेन !	**गन्धर्व नगर**	गन्धर्व-नगरके
इमे सर्वे अपि	ये सभी	**प्रख्याः**	समान,
शोक मोह	शोक, मोह,	**स्वप्न माया**	स्वप्न, जादूके समान
भय आर्तिदाः	भय और दुःख देने वाले हैं,	**मनोरथाः**	मन कल्पित हैं ॥२३॥

दृश्यमाना विनार्थेन न दृश्यन्ते मनोभवः ।
कर्मभिर्ध्यायतो नानाकर्माणि मनसोऽभवन् ॥२४॥

दृश्यमाना विना अर्थेन न दृश्यन्ते मनोभवाः कर्मभिः ध्यायतः नाना कर्माणि मनसः अभवन् ॥२४॥

विना अर्थेन	बिना तथ्यके ही	**कर्मभिःध्यायतः**	कर्मोंके द्वारा चिन्तन करने (पर दीखते हैं)
दृश्यमाना	(ये) दिखाई दे रहे हैं,	**नाना कर्माणि**	नाना प्रकार के कर्म
न दृश्यन्ते	वस्तुतः दीखते भी नहीं	**मनसः अभवन्**	मनकी कामनासे होते हैं ॥२४॥
मनोभवाः	मनसे उत्पन्न हैं,		

अयं हि देहिनो देहो द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ।
देहिनो विविधक्लेशसन्तापकृदुदाहृतः ॥२५॥

अयं हि देहिनः देहः द्रव्य ज्ञान क्रिया आत्मकः देहिनः विविधक्लेश सन्ताप कृत् उदाहृतः ॥२५॥

हि	क्योंकि	**विविधक्लेश**	नाना प्रकारके कष्ट तथा
द्रव्य ज्ञान	पंचभूत, ज्ञानेन्द्रिय,	**सन्ताप कृत्**	सन्ताप देनेवाला
क्रिया आत्मकः	एवं कर्मेन्द्रिय स्वरूप	**उदाहृतः**	कहा गया है ॥२५॥
देहिनः अयं देहः	जीवका यह शरीर		
देहिनः	जीवको		

तस्मात् स्वस्थेन मनसा विमृश्य गतिमात्मनः ।
द्वैते ध्रुवार्थविश्रम्भं त्यजोपशममाविश ॥२६॥

तस्मात् स्वस्थेन मनसा विमृश्य गतिं आत्मनः द्वैते ध्रुव अर्थ विश्रम्भं त्यज उपशमं आविश ॥२६॥

तस्मात्	इसलिए	**ध्रुव अर्थ**	नित्यत्व (सत्यत्व)
स्वस्थेन मनसा	स्वस्थ चित्तसे	**विश्रम्भं**	भ्रमको
आत्मनः गतिं	अपने स्वरूपका	**त्यज**	त्याग दो ।
विमृश्य	विचार करके	**उपशमं आविश**	शान्तिमें प्रवेश करो ॥२६॥
द्वैते	इस द्वैत (संसारमें)		

नारद उवाच–

एतां मन्त्रोपनिषदं प्रतीच्छ प्रयतो मम ।
यां धारयन् सप्तरात्राद् द्रष्टा सङ्कर्षणं प्रभुम् ॥२७॥

एतां मन्त्र उपनिषदं प्रतीच्छ प्रयतः मम यां धारयन् सप्तरात्राद् द्रष्टा सङ्कर्षणं प्रभुम् ॥२७॥

प्रयतः मम	एकाग्र होकर मुझसे	**यां धारयन्**	जिसे धारण करनेसे
एतां	यह	**सप्तरात्राद्**	सात रातमें ही
मन्त्र उपनिषदं	मन्त्रोपनिषद्	**सङ्कर्षणं प्रभुं**	संकर्षण भगवान्का
प्रतीच्छ	ग्रहण करो,	**द्रष्टा**	दर्शन कर सकोगे ॥२७॥

यत्पादमूलमुपसृत्य नरेन्द्र पूर्वे
शर्वादयो भ्रममिमं द्वितयं विसृज्य ।
सद्यस्तदीयमतुलानधिकं महित्वं
प्रापुर्भवानपि परं नचिरादुपैति ॥२८॥

यत् पादमूलं उपसृत्य नरेन्द्र पूर्वे शर्व आदयः भ्रमं इमं द्वितयं विसृज्य सद्यः तदीयं अतुला अनधिकं महित्वं प्रापुः भवान् अपि परं न चिरात् उपैति ॥२८॥

नरेन्द्र	नरेन्द्र !
पूर्वे	प्राचीन कालमें
यत् पादनूलं	जिनके चरणोंके समीप
उपसृत्य	पहुँचकर
शर्व आदयः	भगवान् शंकर आदिने
इमं द्वितयं भ्रमं	इस द्वैतके भ्रमको
विसृज्य	त्यागकर
सद्यः तदीयं	तत्काल उनके
अतुला	अतुलनीय,
अनधिकं	जिससे बड़ा कोई नहीं
महित्वं प्रापुः	उस महिमाको प्राप्त हुए,
भवान् अपि	तुम भी
परं	उसी परमात्माको
न चिरात्	अविलम्ब
उपैति	प्राप्त कर लोगे ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे चित्रकेतु सान्त्वनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अथ देवऋषी राजन् सम्परेतं नृपात्मजम् ।
दर्शयित्वेति होवाच ज्ञातीनामनुशोचताम् ॥ १ ॥

अथ देवऋषी राजन् सम्परेतं नृप आत्मजं दर्शयित्वा इति ह उवाच ज्ञातीनां अनुशोचताम् ॥१॥

राजन्	राजन् !	**सम्परेतं**	मरे हुए
अथ	इसके पश्चात्	**नृप आत्मजं**	राजाके पुत्रको
देवऋषी	देवर्षि नारद	**दर्शयित्वा**	दिखलाकर
अनुशोचतां	शोक करते हुए	**इति ह उवाच**	इस प्रकार ही बोले ॥१॥
ज्ञातीनां	जाति वालोंको		

नारद उवाच-

जीवात्मन् पश्य भद्रं ते मातरं पितरं च ते ।
सुहृदो बान्धवास्तप्ताः शुचा त्वत्कृतया भृशम् ॥ २ ॥

जीवात्मन् पश्य भद्रं मातरं पितरं च ते सुहृदः बान्धवाः तप्ताः शुचा त्वत् कृतया भृशम् ॥२॥

जीवात्मन्	जीवात्मा !	**त्वत् कृतया**	तुम्हारे कारण
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो	**शुचा**	शोकसे
पश्य	देखो,	**भृशं तप्ताः**	अत्यन्त संतप्त हो रहे हैं ॥२॥
ते मातरं पितरं	तुम्हारे माता-पिता		
सुहृदः च	हितैषी और		
बान्धवाः	सम्बन्धी		

कलेवरं स्वमाविश्य शेषमायुः सुहृद्वृतः ।
भुङ्क्ष्व भोगान् पितृप्रत्तानधितिष्ठ नृपासनम् ॥ ३ ॥

कलेवरं स्वं आविश्य शेषं आयुः सुहृत् वृतः भुङ्क्ष्व भोगान् पितृ प्रत्तान् अत्तितिष्ठ नृप आसनम् ॥३॥

स्वं कलेवरं	अपने शरीरमें	**पितृ प्रत्तान्**	पिताके दिये
आविश्य	प्रवेश करके	**भोगान् भुङ्क्ष्व**	भोगोंको भोगो,
शेषं आयुः	बची आयु भर	**नृप आसनं**	राजसिंहासनपर
सुहृत् वृतः	सम्बन्धियोंके साथ रहकर	**अधितिष्ठ**	बैठो ॥३॥

जीव उवाच-

कस्मिञ्जन्मन्यमी मह्यं पितरो मातरोऽभवन् ।
कर्मभिर्भ्राम्यमाणस्य देवतिर्यङ्नृयोनिषु ॥ ४ ॥

कस्मिन् जन्मनि अमी मह्यं पितरः मातरः अभवन् कर्मभिः भ्राम्यमाणस्य देवतिर्यङ् नृयोनिषु ॥४॥

देवतिर्यङ्	देवता, पशु-पक्षी आदि तथा	**मह्यं अमी**	मेरे ये लोग
नृयोनिषु	मनुष्य-योनिमें	**कस्मिन् जन्मनि**	किस जन्ममें
कर्मभिः	(अपने) कर्मके द्वारा	**पितरः मातरः**	पिता-माता
भ्राम्यमाणस्य	घुमाये जाते हुए	**अभवन्**	हुए हैं ॥४॥

बन्धुज्ञात्यरिमध्यस्थमित्रोदासीनविद्विषः ।
सर्व एव हि सर्वेषां भवन्ति क्रमशो मिथः ॥ ५ ॥

बन्धु ज्ञाति अरि मध्यस्थ मित्र उदासीन विद्विषः सर्व एव हि सर्वेषां भवन्ति क्रमशः मिथ ॥५॥

हि	क्योंकि	विद्विषः	द्वेषी
बन्धु ज्ञाति	भाई, जातिवाले,	क्रमशः मिथ	क्रमशः परस्पर
अरि मध्यस्थ	शत्रु, मध्यस्थ,	सर्व एव सर्वेषां	सभी सबके
मित्र उदासीन	मित्र, उदासीन	भवन्ति	होते हैं ॥५॥

यथा वस्तूनि पण्यानि हेमादीनि ततस्ततः ।
पर्यटन्ति नरेष्वेवं जीवो योनिषु कर्तृषु ॥ ६ ॥

यथा वस्तूनि पण्यानि हेम आदीनि ततः ततः पर्यटन्ति नरेषु एवं जीवः योनिषु कर्तृषु ॥६॥

यथा हेम	जैसे स्वर्ण	एवं जीवः	इसी प्रकार जीव
आदीनि	आदि	कर्तृषु योनिषु	कर्मानुसार योनियों-
पण्यानि वस्तूनि	बाजारू वस्तुमें		में (जाता है) ॥६॥
ततः ततः	जहां-तहां		
नरेषु पर्यटन्ति	मनुष्योंके पास घूमती हैं		

नित्यस्यार्थस्य सम्बन्धो ह्यनित्यो दृश्यते नृषु ।
यावद्यस्य हि सम्बन्धो ममत्वं तावदेव हि ॥ ७ ॥

नित्यस्य अर्थस्य सम्बन्धः हि अनित्यः दृश्यते नृषु यावत् यस्य हि सम्बन्धः ममत्वं तावत् एव हि ॥७॥

नित्यस्य	(अपेक्षाकृत) स्थायी	हि	अतः
अर्थस्य	(स्वर्णादि) पदार्थों- का	यावत् यस्य	जब तक जिसका
		सम्बन्धः	सम्बन्ध है
हि	क्योंकि	तावत् एव हि	तब तक ही
नृषु अनित्यः	मनुष्योंसे अस्थायी	ममत्वं	(उसमें) मेरापन
सम्बन्धः	सम्बन्ध		रहता है ॥७॥
दृश्यते	दिखायी देता है		

एवं योनिगतो जीवः स नित्यो निरहंकृतः ।
यावद्यत्रोपलभ्येत तावत्स्वत्वं हि तस्य तत् ॥ ८ ॥

एवं योनिगतः जीवः स नित्यः निरहंकृतः यावत् यत्र उपलभ्येत तावत् स्वत्वं हि तस्य तत् ॥८॥

एवं योनिगतः	इसी प्रकार योनियों-में जानेवाला	**उपलभ्येत**	पाया जाता है,
जीवः	जीव है,	**तानत् हि**	तब तक ही
स नित्यः	वह नित्य और	**तस्य तत्**	उसका उसपर
निरहंकृतः	अहंकारहीन है,	**स्वत्वं**	अधिकार है ॥८॥
यावत् यत्र	जब तक जहां जिसके यहां)		

एष नित्योऽव्ययः सूक्ष्म एष सर्वाश्रयः स्वदृक् ।
आत्ममायागुणैर्विश्वमात्मानं सृजति प्रभुः ॥ ९ ॥

एष नित्यः अव्ययः सूक्ष्मः एष सर्वाश्रयः स्वदृक् आत्म माया गुणैः विश्वं आत्मानं सृजति विभुः ॥९॥

एष	यह	**आत्म माया**	अपनी मायाके
नित्यः अव्ययः	नित्य, अव्यय,	**गुणैः**	गुणों द्वारा
सूक्ष्मः स्वदृक्	सूक्ष्म, स्वयंप्रकाश है	**आत्मानं**	अपनेको ही
एष सर्वाश्रय.	यही सबका आश्रय	**विश्वं सृजति**	विश्वके रूपमें उत्पन्न करता है ॥९॥
विभुः	सर्वव्यापक		

न ह्यस्यातिप्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपिवा ।
एकः सर्वाधियां द्रष्टा कर्तृणां गुणदोषयोः ॥१०॥

न हि अस्य अतिप्रियः कश्चित् न अप्रियः स्वः परः अपि वा एकः सर्वधियां द्रष्टा कर्तृणां गुण दोषयोः ॥१०॥

हि	क्योंकि
अस्य अतिप्रियः	इसका बहुत प्रिय
कश्चित् न	कोई नहीं है,
अप्रियः	कोई अप्रिय,
वा	अथवा
स्वः परः अपि	अपना या पराया भी नहीं है
एकः	यह अद्वितीय
गुण दोषयोः	गुण-दोषोंको
कर्तृणां	करने वाली
सर्वधियां	सब बुद्धियोंका
द्रष्टा	द्रष्टा है ॥१०॥

नादत्त आत्मा हि गुणं न दोषं न क्रियाफलम् ।
उदासीनवदासीनः परावरदृगीश्वरः ॥११॥

न आदत्त आत्मा हि गुणं न दोषं न क्रियाफलं उदासीनवत् आसीनः पर अवर दृक् ईश्वरः ॥११॥

हि आत्मा	क्योंकि आत्मा
न गुणं	न गुण,
न दोषं	न दोष
न क्रियाफलं	न कर्मफल
आदत्त	ग्रहण करता,
उदासीनवत्	उदासीनके समान
आसीनः	स्थित रहता
पर अवर दृक्	कारण-कार्य सबका साक्षी
ईश्वरः	स्वतन्त्र है ॥११॥

श्रीशुक उवाच

इत्युदीर्यं गतो जीवो ज्ञातयस्तस्य ते तदा ।
विस्मिता मुमुचुः शोकं छित्त्वाऽऽत्मस्नेह शृङ्खलाम् ॥१२॥

इति उदीर्य गतः जीवः ज्ञातयः तस्य ते तदा विस्मिता मुमुचुः शोकं छित्त्वा आत्म स्नेह शृङ्खलाम् ॥१३॥

इति उदीर्य	ऐसा कहकर
जीवः गतः	जीव चला गया
तदा तस्य	तब उसके
ते ज्ञातयः	वे जातिवाले
विस्मिता	चकित रह गये,
आत्म	अपने हृदयकी
स्नेह शृङ्खलां	स्नेहरूपी जंजीर
छित्त्वा	काटकर
शोकं मुमुचुः	शोक त्याग दिया ॥१२॥

निर्हृत्य ज्ञातयो ज्ञातेर्देहं कृत्वोचिताः क्रियाः ।
तत्यजुर्दुस्त्यजं स्नेहं शोकमोहभयार्तिदम् ॥१३॥

निर्हृत्य ज्ञातयः ज्ञातेः देहं कृत्वा उचिताः क्रियाः तत्यजुः दुस्त्यजं स्नेहं शोक मोह भय आर्तिदम् ॥१३॥

ज्ञातयः	जाति वालोंने	**कृत्वा**	करके
ज्ञातेः देहं	अपनी जातिके (बालक)के शरीरको	**शोक मोह भय**	शोक, मोह, भय,
		आर्तिदं	दुःख देनेवाले
निर्हृत्य	ले जाकर	**दुस्त्यजं स्नेहं**	दुस्त्याज्य स्नेहको
उचिताः क्रियाः	उचित अन्तिम-संस्कार	**तत्यजुः**	त्याग दिया ॥१३॥

बालघ्न्यो व्रीडितास्तत्र बालहत्याहतप्रभाः ।
बालहत्याव्रतं चेरुर्ब्राह्मणैर्यन्निरूपितम् ।
यमुनायां महाराज स्मरन्त्यो द्विजभाषितम् ॥१४॥

बालघ्न्यः व्रीडिताः तत्र बालहत्या हतप्रभाः बालहत्या व्रतं चेरुः ब्राह्मणैः यत् निरुपितं यमुनायां महाराज स्मरन्त्यः द्विजभाषितम् ॥१४॥

महाराज	महाराज !	**हतप्रभाः**	लुप्त-कान्ति
तत्र	वहां	**बालघ्न्यः**	बालककी हत्या-रिणोंने
द्विजभाषितं	ब्राह्मण अंगिराकी बातका	**ब्राह्मणैः**	ब्राह्मणोंने
		यत् निरूपितं	जो बतलाया
स्मरन्त्यः	स्मरण करके	**बालहत्या**	बाल-हत्याका
तत्र यमुनायां	वहां यमुना-किनारे	**व्रतं चेरुः**	प्रायश्चित किया ॥१४॥
व्रीडिताः	लज्जित होकर		
बालहत्या	बालककी हत्यासे		

स इत्थं प्रतिबुद्धात्मा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ।
गृहान्धकूपान्निष्क्रान्तः सरः पङ्कादिव द्विपः ॥१५॥

स इत्थं प्रतिबुद्ध आत्मा चित्रकेतुः द्विज उक्तिभिः गृह अन्धकूपात् निष्क्रान्तः सरः पङ्कात् इव द्विपः ॥१५॥

इत्थं	इस प्रकार
द्विज उक्तिभिः	ब्राह्मण (अंगिरा-नारद) की बातसे
स चित्रकेतुः	वह राजा चित्रकेतु
प्रतिबुद्ध आत्मा	सावधान चित्त होकर
सरः पङ्कात्	सरोवरके कीचड़से
द्विपः इव	हाथीके समान
गृह अन्धकूपात्	गृहस्थ रूपी अन्धेरे कुएंसे
निष्क्रान्तः	निकल गया ॥१५॥

कालिन्द्यां विधिवत् स्नात्वा कृतपुण्यजलक्रियः ।
मौनेन संयतप्राणो ब्रह्मपुत्रावन्दत ॥१६॥

कालिन्द्यां विधिवत् स्नात्वा कृत पुण्यजलक्रियः मौनेन संयतप्राणः ब्रह्मपुत्राः अवन्दत ॥१६॥

विधिवत्	विधिपूर्वक
कालिन्द्यां	यमुनामें
स्नात्वा	स्नान करके
पुण्यजलक्रियः	(तर्पणादि) पवित्र-जल-क्रिया
कृत	सम्पन्न करके,
मौनेन	मौनके द्वारा
संयतप्राणः	प्राणोंको नियन्त्रित करके
ब्रह्मपुत्राः	ब्रह्माजी पुत्रों (अंगिरा-नारद) को
अवन्दत	प्रणाम किया ॥१६॥

अथ तस्मै प्रपन्नाय भक्ताय प्रयतात्मने ।
भगवान्नारदः प्रीतो विद्यामेतामुवाच ह ॥१७॥

अथ तस्मै प्रपन्नाय भक्ताय प्रयत आत्मने भगवान् नारदः प्रीतः विद्यां एतां उवाच ह ॥१७॥

अथ तस्मै	तब उस
प्रयत आत्मने	संयत चित्त
प्रपन्नाय	शरणागत
भक्ताय	भक्तपर
प्रीतः	प्रसन्न होकर
भगवान् नारदः	भगवान् नारदने
एतां विद्यां	इस विद्याका
ह उवाच	निश्चित उपदेश किया ॥१७॥

*नारद उवाच—**

ॐ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥१८॥

ॐ नमः तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥१८॥

ॐ	ओंकार स्वरूप	**प्रद्युम्नाय**	प्रद्युम्नको
भगवते	भगवान्	**अनिरुद्धाय**	अनिरुद्धको
वासुदेवाय	वासुदेव	**च सङ्कर्षणाय**	और संकर्षणको
तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार,	**नमः**	नमस्कार ॥१८॥
धीमहि	हम आपका ध्यान करते हैं		

नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये ।
आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ॥१९॥

नमः विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये आत्मारामाय शान्ताय निवृत्त द्वैत दृष्टये ॥१९॥

विज्ञानमात्राय	विशुद्ध विज्ञान स्वरूप,	**द्वैत**	द्वैत
परमानन्दमूर्तये	परमानन्दकी मूर्ति,	**दृष्टये निवृत्त**	दृष्टिसे परे
आत्मारामाय	आत्माराम	**नमः**	आपको नमस्कार ॥१९॥
शान्ताय	शान्त स्वरूप		

आत्मानन्दानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः ।
हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये ॥२०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

आत्मानन्द अनुभूति एव न्यस्त शक्ति ऊर्मये नमः हृषीकेशाय महते नमः ते विश्वमूर्तये ॥२०॥

आत्मानन्द	आत्मानन्दकी	**नमः**	आपको नमस्कार,
अनुभूति एव	अनुभूतिसे ही	**हृषीकेशाय**	हृषीकेश
शक्ति ऊर्मये	माया शक्तिकी लहरों (राग-द्वेषादि) को	**महते विश्वमूर्तये**	महान विश्वमूर्ति
न्यस्त	त्यागे हुए	**ते नमः**	आपको नमस्कार ॥२०॥

वचस्युपरतेऽप्राप्य य एको मनसा सह ।
अनामरूपश्चिन्मात्रः सोऽव्यान्नः सदसत्परः ॥२१॥

वचसि उपरते अप्राप्य यः एकः मनसा सह अनाम अरूपः चिन्मात्रः सः अव्यात् नः सत् असत् परः ॥२१॥

मनसा सह	मनके साथ	**चिन्मात्रः**	ज्ञान मात्र
वचसि अप्राप्य	वाणीके बिना पाये ही	**सत् असत् परः**	कारण-कार्यातीत तत्त्व है
उपरते	लौट आनेपर	**सः नः अव्यात्**	वह हमारी रक्षा करे ॥२१॥
यः एकः	जो अद्वितीय		
अनाम अरूपः	नाम रूपसे रहित		

यस्मिन्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यप्येति जायते ।
मृण्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥२२॥

यस्मिन् इदं यतः च इदं तिष्ठति अपि एति जायते मृण्मयेषु इव मृत् जातिः तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥२२॥

मृण्मयेषु	मिट्टीसे बने (घड़े आदि) पदार्थोंमें	**यस्मिन् इदं**	जिसमें यह संसार
मृत् जातिः इव	मिट्टी जातिके समान	**तिष्ठति**	स्थित है
		च यतः इदं	और जिससे यह संसार

एति जायते	आकर उत्पन्न होता है	**ब्रह्मणे नमः**	परम ब्रह्मको नमस्कार ॥२२॥
तस्मै ते	उस आप		

यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः ।
अन्तर्बहिश्च विततं व्योमवत्तन्नतोऽस्म्यहम् ॥२३॥

यत् न स्पृशन्ति न विदुः मनः बुद्धि इन्द्रिय असवः अन्तः बहिः च विततं व्योमवत् तत् नतः अस्मि अहम् ॥२३॥

मनः बुद्धि	मन, बुद्धि,	**अन्तः च बहिः**	भीतर और बाहर
इन्द्रिय असवः	इन्द्रियां, प्राण	**विततं**	एकरस फैले (व्याप्त)
यत् न स्पृशन्ति	जिसे नहीं छूते,	**तत् अहं**	उस आपको मैं
न विदुः	न जानते,	**नतः अस्मि**	नमस्कार करता हूँ ॥२३॥
व्योमवत्	आकाशकी भांति		

देहेन्द्रियप्राणमनोधियोऽमी
यदंशविद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु ।
नैवान्यदा लोहमिवाप्रतप्तं
स्थानेषु तद् द्रष्ट्रपदेशमेति ॥२४॥

देह इन्द्रिय प्राण मनः धियः अमी यत् अंश विद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु न एव अन्यदा लोहं इव आप्रतप्तं स्थानेषु तत् द्रष्ट अपदेशं एति ॥२४॥

अमी	ये	**प्रचरन्ति**	लगे रहते हैं,
देह इन्द्रिय	शरीर, इन्द्रियां,	**अन्यदा**	अन्यथा (जिससे युक्त न होनेपर सुषुप्तिमें)
प्राण मनः	प्राण, मन	**न एव**	नहीं ही (कार्यशील) रहते
धियः	बुद्धि	**आप्रतप्तं लोहं**	तपाये लोहेके
यत् अंश विद्धाः	जिसके अंश (जीव) से मुक्त होकर	**इव**	समान*
कर्मसु	(अपने) कर्मोंमें		

* तपाये लोहेमें जब तक अग्नि व्याप्त है तभी तक जलायेगा अन्यथा नहीं।

स्थानेषु	(जागृतादि) अव-स्थाओंमें	**अपदेशं एति**	नाम स्वीकार कर लेता है ॥२४॥
तत् द्रष्ट	वही द्रष्टा		

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सकलसात्वतपरिवृढनिकरकरकमलकुड्मलोपलालितचरणारविन्द-युगल परम परमेष्ठिन्नमस्ते ॥२५॥

ॐ नमः भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सकल सात्वत परिवृढ निकर कर कमल कुड्मल उपलालित चरण अरविन्द युगल परम परमेष्ठिन् नमः ते ॥२५॥

ॐ भगवते	ओंकार स्वरूप भगवान्	**कर कमल**	कर-कमल
महानुभावाय	महान प्रभावशाली	**कुड्मल**	कलियोंसे
महाविभूतिपतये	महाविभूतिपति	**उपलालित**	संसेवित
महापुरुषाय	महापुरुषको	**युगल चरण**	दोनों चरण-
नमः	नमस्कार,	**अरविन्द**	कमलवाले
सकल सात्वत	समस्त भक्त-	**परम परमेष्ठिन्**	सर्वश्रेष्ठ परम प्रभु
परिवृढ निकर	श्रेष्ठ समुदायके	**ते नमः**	आपको नमस्कार ॥२५॥

श्रीशुक उवाच–

भक्तायैतां प्रपन्नाय विद्यामादिश्य नारदः ।
ययावङ्गिरसा साकं धाम स्वायम्भुवं प्रभो ॥२६॥

भक्ताय एतां प्रपन्नाय विद्यां आदिश्य नारदः ययाः अङ्गिरसा साकं धाम स्वायम्भुवं प्रभो ॥२६॥

प्रभो	परीक्षित !	**नारदः**	देवर्षि नारद
प्रपन्नाय	शरणागत	**अङ्गिरसा साकं**	महर्षि अंगिराके साथ
भक्ताय	भक्त (चित्रकेतु) का		
एतां विद्यां	इस विद्याका	**स्वायम्भुवं धाम**	ब्रह्मलोक
आदिश्य	उपदेश करके	**ययाः**	चले गये ॥२६॥

चित्रकेतुस्तु विद्यां तां यथा नारदभाषिताम् ।
धारयामास सप्ताहमब्भक्षः सुसमाहितः ॥२७॥

चित्रकेतुः तु विद्यां तां यथा नारदः भाषितां धारयामास सप्ताहं अब् भक्षः सुसमाहितः ॥२७॥

यथा नारदः	जैसा नारदजीने	**अब् भक्षः**	केवल जल पीकर
भाषितां	बतलाया था	**सुसमाहितः**	अत्यन्त एकाग्र होकर
तां विद्यां	उस विद्याको		
चित्रकेतुः तु	चित्रकेतुने तो	**धारयामास**	धारण किया ॥२७॥
सप्ताहं	एक सप्ताह तक		

ततश्च सप्तरात्रान्ते विद्यया धार्यमाणया ।
विद्याधराधिपत्यं स लेभेऽप्रतिहतं नृपः ॥२८॥

ततः च सप्तरात्र अन्ते विद्यया धार्यमाणया विद्याधर आधिपत्यं स लेभे अप्रतिहतं नृपः ॥२८॥

ततः च	फिर तो	**अप्रतिहतं**	निर्बाध
सप्तरात्र अन्ते	एक सप्ताहके अन्तमें	**विद्याधर**	विद्याधरोंका
विद्यया	उस विद्याको	**आधिपत्यं**	आधिपत्य
धार्यमाणया	धारण करनेसे	**लेभे**	प्राप्त कर लिया ॥२८॥
स नृपः	उस राजा (चित्रकेतु)ने		

ततः कतिपयाहोभिर्विद्ययेद्धमनोगतिः ।
जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरणान्तिकम् ॥२९॥

ततः कतिपय अहोभिः विद्यया इद्ध मनः गतिः जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरण अन्तिकम् ॥२९॥

ततः कतिपय	फिर कुछ	**विद्यया इद्ध**	उस विद्यासे बढ़ी
अहोभिः	दिनोंमें	**मनः गतिः**	मनकी गतिके द्वारा

देवदेवस्य	देवाधिदेव	**चरण अन्तिकं**	चरणोंके पास
शेषस्य	भगवान शेषके	**जगाम**	पहुँचा ॥२९॥

मृणालगौरं शितिवाससं स्फुरत्-
किरीटकेयूरकटित्रकङ्कणम् ।
प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनं वृतं
ददर्श सिद्धेश्वरमण्डलैः प्रभुम् ॥३०॥

मृणाल गौरं शितिवाससं स्फुरत् किरीट केयूर कटित्र कङ्कणं प्रसन्न-वक्त्र अरुण लोचनं वृतं ददर्श सिद्धेश्वर मण्डलैः प्रभुम् ॥३०॥

मृणाल गौरं	कमल-तन्तु गौर वर्ण,	**प्रसन्नवक्त्रं**	प्रसन्न मुख,
शितिवाससं	नीलाम्बरधारी,	**अरुण लोचनं**	लाल नेत्रोंवाले
स्फुरत किरीट	चमकते मुकुट,	**प्रभुं**	प्रभुको
केयूर कटित्र	अंगद, करधनी	**सिद्धेश्वर**	सिद्धेश्वरोंके
कङ्कणं	कङ्कण पहिने,	**मण्डलैः**	समूहसे
		वृतं ददर्श	घिरा देखा ॥३०॥

तद्दर्शनध्वस्तसमस्तकिल्बिषः
स्वच्छामलान्तःकरणोऽभ्ययान्मुनिः ।
प्रवृद्धभक्त्या प्रणयाश्रुलोचनः
प्रहृष्टरोमानमदादिपूरुषम् ॥३१॥

तत् दर्शन ध्वस्त समस्त किल्बिषः स्वच्छ अमल अन्तःकरणः अभ्ययात् मुनिः प्रवृद्ध भक्तया प्रणय अश्रु लोचनः प्रहृषु रोमा नमत् आदि पूरुषं ॥३१॥

तत् दर्शन	उनके दर्शनसे	**स्वच्छ अमल**	स्वच्छ निर्मल
समस्त	सम्पूर्ण	**अन्तःकरणः**	अन्तःकरण होकर
किल्विषः	पाप	**मुनिः अभ्ययात्**	मौन समीप पहुँचा ।
ध्वस्त	नष्ट हो गये ।	**प्रवृद्ध भक्तया**	भक्तिके बढ़ जानेसे

प्रणय अश्रु लोचनः	नेत्रोंमें प्रेमाश्रु आ गये,	**आदि पूरुषं**	(उन) आदि पुरुष-को
प्रहृषृ रोमा	रोम खड़े हो गये,	**नमत्**	नमस्कार किया ॥३१॥

स उत्तमश्लोकपदाब्जविष्टरं
प्रेमाश्रुलेशैरुपमेहयन्मुहुः ।
प्रेमोपरुद्धाखिलवर्णनिर्गमो
नैवाशकत्तं प्रसमीडितुं चिरम् ॥३२॥

स उत्तम श्लोक पदाब्ज विष्टरं प्रेम अश्रुलेशैः उपमेहयन् मुहुः प्रेम उपरुद्ध अखिल वर्ण निर्गमः न एव अशकत् तं प्रसमीडितुं चिरम् ॥३२॥

स	वह	**अखिल वर्ण**	सम्पूर्ण अक्षरोंका
उत्तम श्लोक	पवित्र कीर्ति (भगवान् शेष) के	**निर्गमः**	निकलना
		उपरुद्ध	रुक जानेसे
पदाब्ज	चरण-कमलोंके	**चिरं**	देर तक
विष्टरं	पाद-पीठको	**तं प्रसमीडितुं**	उनकी स्तुति करनेमें
प्रेम अश्रुलेशैः	प्रेमाश्रु-प्रवाहसे		
मुहुः उपमेहयन्	बार-बार भिगाता रहा ।	**अशकत् न एव**	समर्थ नहीं ही हुआ ॥३२॥
प्रम	प्रेमके कारण		

ततः समाधाय मनो मनीषया
बभाष एतत्प्रतिलब्धवागसौ ।
नियम्य सर्वेन्द्रियबाह्यवर्तनं
जगद्गुरुं सात्वतशास्त्रविग्रहम् ॥३३॥

ततः समाधाय मनः मनीषया बभाष एतत् प्रतिलब्ध वाक् असौ नियम्य सर्वेन्द्रिय बाह्य वर्तनं जगद्गुरुं सात्वत शास्त्र विग्रहं ॥३३॥

ततः मनीषया	फिर बुद्धिके द्वारा
मनः समाधाय	मनको स्थिर करके,
प्रतिलब्ध वाक्	वाणी प्राप्त करके (बोलनेमें समर्थ होकर)
सर्वेन्द्रिय बाह्य वर्तनं	सब इन्द्रियोंका बाहरी व्यवहार
नियम्य	नियन्त्रित करके
सात्वत शास्त्र	पाञ्चरात्र शास्त्र वर्णित
विग्रहं	स्वरूपवाले
जगद्गुरुं	जगद्गुरु भगवान् शेषसे
असौ एतत्	यह इस प्रकार
बभाष	बोला ॥३४॥

चित्रकेतु उवाच–

अजित जितः सममतिभिः
साधुभिर्भवान् जितात्मभिर्भवता ।
विजितास्तेऽपि च भजता-
मकामात्मनां य आत्मदोऽतिकरुणः ॥३४॥

अजित जितः सममतिभिः साधुभिः भवान् जित आत्मभिः भवता विजिताः ते अपि च भजतां अकाम आत्मनां यः आत्मदः अतिकरुणः ॥३४॥

अजित	अजित !
जित आत्मभिः	जितेन्द्रिय
सममतिभिः	समबुद्धि
साधुभि	साधुओं द्वारा
भवान् जितः	आप जीत लिए गये हैं ।
च ते अपिः	और वे भी
भवता विजिताः	आपके द्वारा जीत लिये गये हैं
यः अतिकरुणः	जो अतिशय कृपालु (आप)
अकाम आत्मनां	निष्काम हृदयसे
भजतां	भजन करने वालोंको
आत्मदः	अपनेको ही दे देते हैं ॥३४॥

तव विभवः खलु भगवन्
जगदुदयस्थितिलयादीनि ।
विश्वसृजस्तेऽशांशा-
स्तत्र मृषा स्पर्धन्ते पृथगभिमत्या ॥३५॥

तव विभवः खलु भगवन् जगत् उदय स्थिति लय आदीनि विश्वसृजः ते अंश अंशाः तत्र मृषा स्पर्धन्ते पृथक् अभिमत्या ॥३५॥

भगवन्	भगवन् !
खलु तव	अरे, आपका
विभवः	वैभव
जगत् उदय	विश्वका प्रकट होना,
स्थिति लय	रहना, प्रलय होना
आदीनि	आदि हैं,
विश्वसृजः	दूसरे विश्व-स्रष्टा
ते अंश अंशाः	आपके अंशके भी अंश हैं,
तत्र	सृष्टि आदिमें
पृथक् अभिमत्या	अपनेको पृथक-पृथक (जगत्-कर्ता) मान-कर
मृषा स्पर्धन्ते	झूठे ही स्पर्धा करते हैं ॥३५॥

परमाणुपरममहतो-
स्त्वमाद्यन्तान्तरवर्ती त्रयविधुरः ।
आदावन्तेऽपि च सत्त्वानां
यद् ध्रुवं तदेवान्तरालेऽपि ॥३६॥

परमाणु परम महतोः त्वं आदि अन्त अन्तरवर्ती त्रयविधुरः आदाः अन्ते अपि च सत्त्वानां यत् ध्रुवं तत् एव अन्तराले अपि ॥३६॥

परमाणु	परमाणुसे लेकर
परम महतोः	महत्तत्त्व तक
त्वं	आप ही (सबके)
आदि अन्त	आदि, अन्त और
अन्तरवर्ती	मध्यमें भी हैं (तथा)
त्रयविधुरः	(आदि, अन्त, मध्य) तीनोंसे स्वयं रहित हैं,
सत्त्वानां	वस्तुओंके
आदाः च	आदि और
अन्ते अपि	अन्तमें भी
यत् ध्रुवं	जो स्थिर रहता है
तत् एव	वही
अन्तराले अपि	मध्यमें भी होता है ॥३६॥

क्षित्यादिभिरेष किलावृतः
सप्तभिर्दशगुणोत्तरैराण्डकोशः ।
यत्र पतत्यणुकल्पः
सहाण्डकोटिकोटिभिस्तदनन्तः ॥३७॥

क्षिति आदिभिः एष किल आवृतः सप्तभिः दशगुण उत्तरैः आण्डकोशः यत्र पतति अणु कल्पः सह अण्डकोटि कोटिभिः तत् अनन्तः ॥३७॥

किल एष	अहो, यह
आण्डकोशः	ब्रह्माण्ड
क्षिति आदिभिः	पृथ्वी आदि
दशगुण	(एक दूसरेसे) दस गुने
सप्तभिः	सात (पंचभूत, अहंकार, महत्तत्त्व)
आवृतः	आवरणोंसे घिरा है,
अण्डकोटिः	(अपने समान) करोड़ों ब्रह्माण्डोंकी
कोटिभिः	श्रेणियोंके साथ
यत्र अणु कल्पः	जिसमें अणुके समान
पतति	घूमते रहते हैं
तत् अनन्तः	वह आप अनन्त हैं ॥३७॥

विषयतृषो नरपशवो
य उपासते विभूतीर्न परं त्वाम् ।
तेषामाशिष ईश
तदनु विनश्यन्ति यथा राजकुलम् ॥३८॥

विषय तृषः नरपशवः यः उपासते विभूतीः न परं त्वां तेषां आशिष ईश तत् अनु विनश्यन्ति यथा राजकुलम् ॥३८॥

यः विभूतीः	जो विभूतियों (देवताओं) की
उपासते	उपासना करते हैं
परं त्वां न	परम पुरुष आपकी नहीं
विषय तृषः	विषयोंकी तृष्णावाले
तेषां नरपशवः	उन मनुष्यरूपी पशुओंकी
आशिष	कामनाएँ
ईश	समर्थ प्रभु
यथा राजकुलं	जैसे राजकुलके (दिये गायें आदि उसके नष्ट होनेपर)
तत् अनु	उन (देवताओंके) पीछे ही
विनश्यन्ति	नष्ट हो जाती हैं ॥३८॥

कामधियस्त्वयि रचिता
न परम रोहन्ति यथा करम्भबीजानि ।
ज्ञानात्मन्यगुणमये
गुणगणतोऽस्य द्वन्द्वजालानि ॥३९॥

कामधियः त्वयि रचिता न परम रोहन्ति यथा करम्भ बीजानि ज्ञान आत्मनि अगुणमये गुण गणतः अस्य द्वन्द्वजालानि ॥३९॥

काम धियः	सकाम बुद्धिसे
त्वयि ज्ञान	आप ज्ञान
आत्मनि	स्वरूप,
अगुणमये	निर्गुणकी
रचिता	की गयी उपासना
परम न रोहन्ति	फिर (जन्मादि फल देनेके लिए) नहीं उगती
यथा करम्भ	जैसे भुने
बीजानि	बीज,
अस्य गुण गणतः	इस जगतके ही गुण-गणोंसे
द्वन्द्वजालानि	(सुख-दुःखादि) द्वन्दोंका ज्ञाता उत्पन्न होता है ॥३९॥

जितमजित तदा भवता
यदाऽऽह भागवतं धर्ममनवद्यम् ।
निष्किञ्चना ये मुनय
आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय ॥४०॥

जितं अजित तदा भवता यदा आह भागवतं धर्मं अनवद्यं निष्किञ्चना ये मुनयः आत्मारामा यं उपासते अपवर्गाय ॥४०॥

अजित	अजित !
यदा भवता	जब आपने
अनवद्यं	निर्दोष
भागवतं धर्मं	भागवत-धर्मका
आह	उपदेश किया
ये निष्किञ्चना	जो आकिञ्चन
मुनयः	मुनिगण हैं
अपवर्गाय	मोक्ष प्राप्तिके लिए
यं उपासते	जिस भागवत धर्म-की उपासना करते हैं
तदा जितं	तभी (सबको) जीत लिया ॥४०॥

विषममतिर्न यत्र नृणां
त्वमहमिति मम तवेति च यदन्यत्र ।
विषमधिया रचितो यः
स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः ॥४१॥

विषममतिः न यत्र नृणां त्वं अहं इति मम तव इति च यत् अन्यत्र विषमधिया रचितः यः स हि अविशुद्धः क्षयिष्णुः अधर्म बहुलः ॥४१॥

यत्र	जिस(भागवत-धर्म)में
नृणां	मनुष्योंकी
अहं इति च	'यह मैं हूँ' इस प्रकार और
त्वं	यह तू
मम तव इति	'यह मेरा, यह तुम्हारा' इस प्रकार
विषममतिः न	विषम बुद्धि नहीं होती
यत् अन्यत्र	जो इससे भिन्न
विषमधिया	विषम-बुद्धिसे
रचितः	बनाये गये
यः स हि	जो धर्म हैं वे तो
अविशुद्धः	अशुद्ध हैं,
क्षयिष्णु	नाशवान हैं,
अधर्म बहुलः	अधर्म प्रधान हैं ॥४१॥

कः क्षेमो निजपरयोः
कियानर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण ।
स्वद्रोहात्तव कोपः
परसम्पीडया च तथाधर्मः ॥४२॥

कः क्षेमः निजपरयोः कियान् अर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण स्वद्रोहात् तव कोपः परसम्पीडया च तथा अधर्मः ॥४२॥

निजपरयोः	अपने और परायेपनेमें
कः क्षेमः	क्या कल्याण होने वाला है;
स्वपरद्रुहा	अपने और परायेमें द्वेष उत्पन्न करनेवाले
धर्मेण	धर्मसे

कियान अर्थः	क्या प्रयोजन बनने वाला है,	**तव कोपः**	आप क्रोध करते हैं
स्वद्रोहात्	(सकाम-धर्मसे) अपनेको पीड़ा होने पर	**च तथा**	और वैसे ही
		परसम्पीडया	दूसरेको पीड़ा देनेसे
		अधर्मः	पाप होता है ॥४२॥

न व्यभिचरति तवेक्षा
यया ह्यभिहितो भागवतो धर्मः ।
स्थिरचरसत्त्वकदम्बे-
ष्वपृथग्धियो यमुपासते त्वार्याः ॥४३॥

न व्यभिचरति तव ईक्षा यया हि अभिहितः भागवतः धर्मः स्थिर चर सत्त्व कदम्बेषु अपृथक् धियः यं उपासते तु आर्याः ॥४३॥

यया हि	जिसके द्वारा	**आर्याः तु**	श्रेष्ठ-पुरुष तो
भागवतः धर्मः	भागवत-धर्म	**स्थिर चर**	जड़-चेतन
अभिहितः	निरूपण किया है	**सत्त्व कदम्बेषु**	प्राणि-समूहमें
तव ईक्षा	आपकी वह दृष्टि	**अपृथक् धियः**	समबुद्धि रखकर
व्यभिचरति न	(परमार्थसे) विच-लित नहीं होती	**यं उपासते**	जिसका सेवन करते हैं ॥४३॥

न हि भगवन्नघटितमिदं
त्वद्दर्शनान्नृणामखिलपापक्षयः ।
यन्नामसकृच्छ्रवणात्
पुल्कसकोऽपि विमुच्यते संसारात् ॥४४॥

न हि भगवन् अघटितं इदं त्वत् दर्शनात् नृणां अखिल पाप क्षयः यत् नाम सकृत् श्रवणात् पुल्कसकः अपि विमुच्यते संसारात् ॥४४॥

भगवन्	भगवन्	**नृणां**	मनुष्योंके
त्वत् दर्शनात्	आपके दर्शनसे	**अखिल पाप क्षयः**	समस्त पापोंका नाश

न अघटितं	अशक्य नहीं है	**पुल्कसकः अपि**	कसाई भी
हि यत् नाम	क्योंकि जिनका नाम	**संसारात्**	संसार (चक्र) से
सकृत् श्रवणात्	एक बार ही सुनकर	**विमुच्यते**	छूट जाता है ॥४४॥

अथ भगवन् वयमधुना
त्वदवलोकपरिमृष्टाशयमलाः ।
सुरऋषिणा यदुदितं
तावकेन कथमन्यथा भवति ॥४५॥

अथ भगवन् वयं अधुना त्वत् अवलोक परिमृष्ट आशय मलाः सुर ऋषिणा यत् उदितं तावकेन कथं अन्यथा भवति ॥४५॥

भगवन्	भगवन्,	**तावकेन**	आपके भक्त
अथ अधुना	अब इस समय	**सुर ऋषिणा**	देवर्षिने
वयं	हम	**यत् उदितं**	जो कहा था
त्वत् अवलोक	आपका दर्शन करके	**अन्यथा**	उसके विपरीत
आशय मलाः	अन्तःकरण के दोषों-से	**कथं भवति**	कैसे हो सकता है ॥४५॥
परिमृष्ट	सर्वथा स्वच्छ हो गये हैं।		

विदितमनन्त समस्तं
तव जगदात्मनो जनैरिहाचरितम् ।
विज्ञाप्यं परमगुरोः
कियदिव सवितुरिव खद्योतैः ॥४६॥

विदितं अनन्त समस्तं तव जगत् आत्मनः जनैः इह आचरितं विज्ञाप्यं परमगुरोः कियत् इव सवितुः इव खद्योतैः ॥४६॥

तव	आप	**अनन्त**	हे अनन्त !
जगत् आत्मनः	विश्वरूपको	**जनैः इह**	लोगों द्वारा इस संसारमें

समस्तं आचरितं	किया गया समस्त चरित	**खद्योतैः इव**	जुगनूकी भांति
विदितं	ज्ञात ही है	**परमगुरोः**	आप परमगुरुको
सवितुः	सूर्यको	**कियत् इव**	भला क्या
		विज्ञाप्यं	बतलाना है ॥४६॥

नमस्तुभ्यं भगवते
सकलजगत्स्थितिलयोदयेशाय ।
दुरवसितात्मगतये
कुयोगिनां भिदा परमहंसाय ॥४७॥

नमः तुभ्यं भगवते सकल जगत् स्थिति लय उदय ईशाय दुरवसित आत्मगतये कुयोगिनां भिदा परम हंसाय ॥४७॥

सकल जगत्	सम्पूर्ण संसारकी	**दुरवसित**	दुश्चिन्त्य है,
स्थिति लय	स्थिति, प्रलय,	**परम हंसाय**	परम शुद्ध-स्वरूप
उदय ईशाय	उत्पत्तिके स्वामी	**भगवते**	भगवान्
भिदा कुयोगिनां	भेद-दृष्टिवाले कुयोगियोंके लिए	**तुभ्यं नमः**	आपको नमस्कार ॥४७॥
आत्मगतये	आपका स्वरूप		

यं वै श्वसन्तमनु विश्वसृजः श्वसन्ति
यं चेकितानमनु चित्तय उच्चकन्ति ।
भूमण्डलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि
तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने ॥४८॥

यं वै श्वसन्तं अनु विश्वसृजः श्वसन्ति यं च ईकितानं अनु चित्तय उच्चकन्ति भूमण्डलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि तस्मै नमः भगवते अस्तु सहस्र मूर्ध्ने ॥४८॥

वै यं श्वसन्तं	निश्चय जिनके श्वास लेनेसे (चेष्टा करनेसे)	**अनु विश्वसृजः**	पीछे विश्वसृष्टा (ब्रह्मादि)

श्वसन्ति	श्वास लेते (सचेष्ट होते) हैं,
च यं ईकितानं	और जिनकी दृष्टि-से जीवित
अनु चित्तय	पीछे इन्द्रियां
उच्चकन्ति	अपने विषयोंका ग्रहण कर पाती हैं,
भूमण्डलं	भूमण्डल
यस्य मूर्ध्नि	जिसके सिरपर
सर्षपायति	सरसों जैसा लगता है
तस्मै सहस्रमर्ध्ने	उन सहस्र शीर्षा
भगवते	भगवान्‌को
नमः अस्तु	नमस्कार है ॥४८॥

श्रीशुक उवाच–

संस्तुतो भगवानेवमनन्तस्तमभाषत ।
विद्याधरपतिं प्रीतश्चित्रकेतुं कुरूद्वह ॥४९॥

संस्तुतः भगवान् एवं अनन्तः तं अभाषत विद्याधरपतिं प्रीतः चित्रकेतुं कुरुद्वह ॥४९॥

कुरुद्वह	परीक्षित !
एवं संस्तुतः	इस प्रकार स्तुति करने पर
प्रीतः	प्रसन्न होकर
भगवान् अनन्तः	भगवान् अनन्त
तं विद्याधर-पतिं	उस विद्याधर-पति
चित्रकेतुं	चित्रकेतुसे
अभाषत्	बोले ॥४९॥

श्रीभगवानुवाच–

यन्नारदाङ्गिरोभ्यां ते व्याहृतं मेऽनुशासनम् ॥
संसिद्धोऽसि तया राजन् विद्यया दर्शनाच्च मे ॥५०॥

यत् नारद अङ्गिरः भ्यां ते व्याहृतं मे अनुशासनं संसिद्धः असि तया राजन् विद्यया दर्शनात् च मे ॥५०॥

राजन्	राजन् !
नारद अङ्गिरः	नारद और अंगिरा
भ्यां	द्वारा
ते यत् मे	तुम्हें जो मेरा
अनुशासनं	अनुष्ठान
व्याहृतं	बतलाया गया है,

तया विद्यया	उस विद्यासे	**संसिद्धः असि**	तुम सिद्ध हो गये
च मे दर्शनात्	और मेरे दर्शनसे		हो ॥५०॥

अहं वै सर्वभूतानि भूतात्मा भूतभावनः ।
शब्दब्रह्म परं ब्रह्म ममोभे शाश्वती तनू ॥५१॥

अहं वै सर्वभूतानि भूत आत्मा भूतभावनः शब्दब्रह्म परं ब्रह्म मम उभे शाश्वती तनूः ॥५१॥

वै अहं	निश्चय मैं	**शब्दब्रह्म**	वेद और
सर्वभूतानि	सब प्राणियोंमें	**परम् ब्रह्म**	परमब्रह्म
भूत आत्मा	उनकी आत्मा	**उभे मम**	दोनों मेरे
भूत भावनः	प्राणियोंका पालक हूँ ।	**शाश्वती तनूः**	शाश्वत शरीर हैं ॥५१॥

लोके विततमात्मानं लोकं चात्मनि सन्ततम् ।
उभयं च मया व्याप्तं मयि चैवोभयं कृतम् ॥५२॥

लोके विततं आत्मानं लोकं च आत्मनि सन्ततं उभयं च मया व्याप्तं मयि च उभयं कृतम् ॥५२॥

लोके विततं	लोकोंमें व्याप्त	**मयि व्याप्तं**	मुझसे व्याप्त
आत्मानं	आत्माको	**च उभयं**	एवं दोनों
च आत्मनि	और आत्मामें	**मयि कृतं**	मुझसे बना देखे ॥५२॥
लोकं सन्ततं	लोकोंको व्याप्त		
च उभयं	तथा दोनोंको		

यथा सुषुप्तः पुरुषो विश्वं पश्यति चात्मनि ।
आत्मानमेकदेशस्थं मन्यते स्वप्न उत्थितः ॥५३॥

यथा सुषुप्तः पुरुषः विश्वं पश्यति च आत्मनि आत्मानं एक देशस्थं मन्यते स्वप्न उत्थितः ॥५३॥

यथा सुषुप्तः	जैसे सोया हुआ
पुरुषः	पुरुष
आत्मनि च	अपने भीतर ही
विश्वं पश्यति	विश्वको देखता है,
आत्मानं	उसमें अपनेको
एक देशस्थं	एक स्थानमें (देखता है)
उत्थितः	जागनेपर
स्वप्न मन्यते	इसे स्वप्न मानता है ॥५३॥

एवं जागरणादीनि जीवस्थानानि चात्मनः ।
मायामात्राणि विज्ञाय तद्द्रष्टारं परं स्मरेत् ॥५४॥

एवं जागरण आदीनि जीवस्थानानि च आत्मनः मायामात्राणि विज्ञाय तत् द्रष्टारं परं स्मरेत् ॥५४॥

एवं	इसी प्रकार
जागरण	जागरण
आदीनि	आदि
जीवस्थानानि	जीवकी अवस्थामें
च	भी
आत्मनः	अपनी
मायामात्राणि	माया ही हैं
विज्ञाय	यह जानकर
तत् द्रष्टारं	उसके द्रष्टा
परं स्मरेत्	परमात्माका स्मरण करे ॥५४॥

येन प्रसुप्तः पुरुषः स्वापं वेदात्मनस्तदा ।
सुखं च निर्गुणं ब्रह्म तमात्मानमवेहि माम् ॥५५॥

येन प्रसुप्तः पुरुषः स्वापं वेद आत्मनः तदा सुखं च निर्गुणं ब्रह्म तं आत्मानं अवेहि माम् ॥५५॥

येन	जिसके द्वारा
प्रसुप्तः पुरुषः	सुषुप्ति प्राप्त पुरुष
आत्मनः स्वापं	अपनी सुषुप्तिको
च तदा	और उस समय
सुखं वेद	सुखको भी जानता है,
तं निर्गुणं ब्रह्म	उस निर्गुण-ब्रह्म
आत्मानं मां	आत्माको मुझे
अवेहि	जानो ॥५५॥

उभयं स्मरतः पुंसः प्रस्वापप्रतिबोधयोः ।
अन्वेति व्यतिरिच्येत तज्ज्ञानं ब्रह्म तत् परम् ॥५६॥

उभयं स्मरतः पुंसः प्रस्वाप प्रतिबोधयोः अन्वेति व्यतिरिच्येत तत् ज्ञानं ब्रह्म तत् परम् ॥५६॥

प्रस्वाप	सुषुप्ति और	**व्यतिरिच्येत**	(दोनोंसे) पृथक भी रहता है,
प्रतिबोधयोः	जागरण		
उभयं स्मरतः	दोनोंका स्मरण करने वाला	**तत् ज्ञानं**	वह (सब अवस्थाओं में एकरस रहने-वाला) ज्ञान है
पुंसः	पुरुष		
अन्वेति	(दोनों अवस्थाओंमें) व्याप्त रहता है	**ब्रह्म तत् परं**	वही परब्रह्म है ॥५६॥

यदेतद्विस्मृतं पुंसो मद्भावं भिन्नमात्मनः ।
ततः संसार एतस्य देहाद्देहो मृतेर्मृतिः ॥५७॥

यत् एतत् विस्मृतं पुंसः मत् भावं भिन्नं आत्मनः ततः संसार एतस्य देहात् देहः मृतेः मृतिः ॥५७॥

एतत् यत्	इससे जो	**देहात् देहः**	एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाना
मत् भावं	मेरे स्वरूपको		
विस्मृतं पुंसः	भूलकर पुरुषका	**मृतेः मृतिः**	बार-बार (जन्म लेकर) मरना रूप
आत्मनः भिन्नं	अपनेको पृथक् मानना है	**संसार**	संसार है ॥५७॥
ततः एतस्य	उसीसे इसका		

लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसम्भवाम् ।
आत्मानं यो न बुद्धयेत न क्वचिच्छममाप्नुयात् ॥५८॥

लब्ध्वा इह मानुषीं योनिं ज्ञान विज्ञान सम्भवां आत्मानं यः न बुद्धयेत न क्वचित् शमं आप्नुयात् ॥५८॥

इह	इस संसारमें
ज्ञान विज्ञान	ज्ञान-विज्ञान
सम्भवां	उत्पन्न करने वाली
मानुषीं योनिं	मनुष्य जन्म
लब्ध्वा	पाकर
यः आत्मानं	जो अपने स्वरूपको
न बुद्धयेत	नहीं जान लेता (वह))
क्वचित् शमं	कभी शान्ति
न आप्नुयात्	नहीं पाता ॥५८॥

स्मृत्वेहायां परिक्लेशं ततः फलविपर्ययम् ।
अभयं चाप्यनीहायां सङ्कल्पाद्विरमेत्कविः ॥५९॥

स्मृत्वा ईहायां परिक्लेशः ततः फल विपर्ययं अभयं च अपि अनीहायां सङ्कल्पात् विरमेत् कविः ॥५९॥

कविः	बुद्धिमान
ईहायां	(सांसारिक)चेष्टामें
परिक्लेशं	सब ओर क्लेश है,
ततः	उससे
फल विपर्ययं	उलटा फल (सुखके बदले दुःख मिलता है,
च अनीहायां	और निश्चेष्टता (निष्कामता)में
अपि अभयं	तो अभय है
स्मृत्वा	यह स्मरण करके
संकल्पात्	कर्म-संकल्पसे
विरमेत्	विराम ले ले (त्याग दे) ॥५९॥

सुखाय दुःखमोक्षाय कुर्वाते दम्पती क्रियाः ।
ततोऽनिवृत्तिरप्राप्तिर्दुःखस्य च सुखस्य च ॥६०॥

सुखाय दुःखमोक्षाय कुर्वाते दम्पती क्रियाः ततः अनिवृत्तिः अप्राप्तिः दुःखस्य च सुखस्य च ॥६०॥

दम्पती	स्त्री-पुरुष
सुखाय	सुख पानेके लिए या
दुःखमोक्षाय	दुःखसे छूटनेके लिए
क्रियाः कुर्वाते	कर्म करते हैं,
ततः दुःखस्य च	उससे दुःखसे तो
अनिवृत्तिः	छुटकारा होता नहीं,
सुखस्य च	सुखकी भी
अप्राप्तिः	प्राप्ति नहीं होती ॥६०॥

एवं विपर्ययं बुद्ध्वा नृणां विज्ञाभिमानिनाम् ।
आत्मनश्च गतिं सूक्ष्मां स्थानत्रयविलक्षणाम् ॥६१॥

एवं विपर्ययं बुद्ध्वा नृणां विज्ञ अभिमानिनां आत्मनः च गतिं सूक्ष्मां स्थानत्रय विलक्षणाम् ॥६१॥

एवं	इस प्रकार	**स्थान त्रय**	(जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) तीनों अवस्थाओंसे
विज्ञ	अपनेको		
अभिमानिनां	समझदार माननेवाले		
नृणां	मनुष्योंकी।	**विलक्षणां**	विलक्षण (भिन्न)
विपर्ययं	उलटी दशा	**गतिं बुद्ध्वा**	स्वरूप जानकर ॥६१॥
च आत्मनः	तथा आत्माका		

दृष्टश्रुताभिर्मात्राभिर्निर्मुक्तः स्वेन तेजसा ।
ज्ञानविज्ञानसन्तुष्टो मद्भक्तः पुरुषो भवेत् ॥६२॥

दृष्ट श्रुताभिः मात्राभिः निर्मुक्तः स्वेन तेजसा ज्ञानविज्ञान सन्तुष्टः मद्भक्तः पुरुषः भवेत् ॥६२॥

दृष्ट	(इस लोकके) देखे हुए	**निर्मुक्तः**	छूटकर,
श्रुताभिः	(स्वर्गादिके) सुने हुए	**ज्ञान विज्ञान**	ज्ञान-विज्ञानसे
मात्राभिः	विषय-भोगोंसे	**सन्तुष्टः**	सन्तुष्ट होकर
स्वेन तेजसा	अपने ही तेज (विवेक) से	**पुरुषः**	पुरुष
		मद्भक्तः भवेत्	मेरा भक्त हो जाय ॥६२॥

एतावानेव मनुजैर्योगनैपुणबुद्धिभिः ।
स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनम् ॥६३॥

एतावान् एव मनुजैः योग नैपुण बुद्धिभिः स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयः यत् पर आत्म एक दर्शनम् ॥६३॥

यत्	जो	**एक दर्शनं**	एक दर्शन है
पर आत्म	परमात्मा और आत्माका	**योग नैपुण बुद्धिभिः**	योगमें निपुण बुद्धिसे
		मनुजैः	मनुष्यको

सर्वात्मना	पूरे मनसे	**स्वार्थः ज्ञेयः**	स्वार्थ जानना
एतावान् एव	इतना ही		चाहिए ॥६३॥

त्वमेतच्छ्रद्धया राजन्नप्रमत्तो वचो मम ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो धारयन्नाशु सिध्यसि ॥६४॥

त्वं एतत् श्रद्धया राजन् अप्रमत्तः वचः मम ज्ञानविज्ञान सम्पन्नः धारयन् आशु सिध्यसि ॥६४॥

राजन् त्वं	राजन् तुम	**ज्ञानविज्ञान**	ज्ञान-विज्ञानसे
अप्रमत्तः	प्रमादहीन होकर	**सम्पन्नः**	सम्पन्न होकर
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक	**आशु सिध्यसि**	शीघ्र सिद्ध हो
एतत् मम वचः	इस मेरे उपदेशको		जाओगे ॥६४॥
धारयन्	धारण करके		

श्रीशुक उवाच

आश्वास्य भगवानित्थं चित्रकेतुं जगद्गुरुः ।
पश्यतस्तस्य विश्वात्मा ततश्चान्तर्दधे हरिः ॥६५॥

आश्वास्य भगवान् इत्थं चित्रकेतुं जगद्गुरुः पश्यतः तस्य विश्वात्मा ततः च अन्तर्दधे हरिः ॥६५॥

इत्थं	इस प्रकार	**हरिः भगवान्**	श्रीहरि(शेष)भगवान्
चित्रकेतुं	चित्रकेतुको	**तस्य पश्यतः**	उसके देखते-देखते
आश्वास्य	आश्वासन देकर	**ततः च**	वहांसे
जगद्गुरुः	जगद्गुरु,	**अन्तर्दधे**	अन्तर्धान हो गये
विश्वात्मा	विश्वात्मा		॥६५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे चित्रकेतोः परमात्मदर्शनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

यतश्चान्तर्हितोऽनन्तस्तस्यै कृत्वा दिशे नमः ।
विद्याधरश्चित्रकेतुश्चचार गगनेचरः ॥ १ ॥

यतः च अन्तर्हितः अनन्तः तस्यै कृत्वा दिशे नमः विद्याधरः चित्रकेतुः चचार गगनेचरः ॥१॥

यतः च	जिस ओर	**विद्याधरः**	विद्याधर
अनन्तः	भगवान् अनन्त	**चित्रकेतुः**	चित्रकेतु
अन्तर्हितः	अन्तर्ध्यान हुए थे,	**गगनेचरः**	आकाशचारी होकर
तस्यै दिशे	उस दिशामें	**चचार**	घूमने लगा ॥१॥
नमः कृत्वा	नमस्कार करके		

स लक्षं वर्षलक्षाणामव्याहतबलेन्द्रियः ।
स्तूयमानो महायोगी मुनिभिः सिद्धचारणैः ॥ २ ॥

स लक्षं वर्ष लक्षाणां अव्याहत बल इन्द्रियः स्तूयमानः महायोगी मुनिभिः सिद्ध चारणैः ॥२॥

स महायोगी	वह महायोगी	**अव्याहत**	निर्बाध रहते
मुनिभिः	मुनियों,	**लक्षाणां लक्षं**	करोड़ों
सिद्ध चारणैः	सिद्धों, चारणों द्वारा	**वर्ष**	वर्षों तक ॥२॥
स्तूयमानः	स्तुत होता		
बल इन्द्रियः	शरीर-बल और इन्द्रिय-शक्ति		

कुलाचलेन्द्रद्रोणीषु नानासङ्कल्पसिद्धिषु ।
रेमे विद्याधरस्त्रीभिर्गापयन् हरिमीश्वरम् ॥ ३ ॥

कुलाचलेन्द्र द्रोणीषु नानासङ्कल्प सिद्धिषु रेमे विद्याधर स्त्रीभिः गापयन् हरिम् ईश्वरम् ॥३॥

नानासङ्कल्प	अनेक प्रकारके संकल्पोंको	**स्त्रीभिः**	स्त्रियोंसे
सिद्धिषु	सिद्ध करने वाली	**ईश्वरं हरिं**	सर्वेश्वर श्रीहरिका
कुलाचलेन्द्र	सुमेरु-पर्वतकी	**गापयन्**	(सुयश) गान कराते हुए
द्रोणीषु	घाटियोंमें	**रेमे**	विहार करता रहा
विद्याधर	विद्याधर		॥३॥

एकदा स विमानेन विष्णुदत्तेन भास्वता ।
गिरिशं ददृशे गच्छन् परीतं सिद्धचारणैः ॥ ४ ॥

एकदा स विमानेन विष्णुदत्तेन भास्वता गिरिशं ददृशे गच्छन् परीतं सिद्धचारणैः ॥४॥

एकदा	एक बार	**गच्छन्**	जाते हुए
विष्णुदत्तेन	भगवान् विष्णुके दिए	**सिद्धचारणैः**	सिद्ध-चारणोंसे
भास्वता	तेजोमय	**परीतं**	घिरे
विमानेन	विमानसे	**गिरिशं**	शंकरजीको
		स ददृशे	उसने देखा ॥४॥

आलिङ्ग्याङ्कीकृतां देवीं बाहुना मुनिसंसदि ।
उवाच देव्याः शृण्वत्या जहासोच्चैस्तदन्तिके ॥ ५ ॥

आलिङ्ग्य अङ्कीकृतां देवीं बाहुना मुनिसंसदि उवाच देव्याः शृण्वत्या जहास उच्चैः तदन्ति के ॥५॥

मुनिसंसदि	मुनियोंकी सभामें	**देव्याः शृण्वत्याः**	देवीको सुनाकर
देवीं	देवी पार्वतीको	**तदन्ति के**	उनके समीप
अङ्कीकृतां	गोदमें बैठाकर	**उच्चैः जहास**	उच्च स्वरसे हँसता हुआ
बाहुना	भुजासे		
आलिङ्ग्य	आलिंगन किए (देखकर)	**उवाच**	कहने लगा ॥५॥

चित्रकेतुरुवाच–

एष लोकगुरुः साक्षाद्धर्मं वक्ता शरीरिणाम् ।
आस्ते मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया ॥ ६ ॥

एष लोकगुरुः साक्षात् धर्मं वक्ता शरीरिणां आस्ते मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया ॥६॥

वै	निश्चय	**मुख्यः सभायां**	सभामें प्रमुख होकर
एष शरीरिणां	ये शरीरधारियोंके	**भार्यया**	पत्नीको
धर्मं वक्ता	धर्मोपदेशक	**निथुनी भूय**	छातीसे लगाकर
साक्षात्	प्रत्यक्ष	**आस्ते**	बैठे हैं ॥६॥
लोकगुरुः	जगद्गुरु हैं,		

जटाधरस्तीव्रतपा ब्रह्मवादिसभापतिः ।
अङ्कीकृत्य स्त्रियं चास्ते गतह्रीः प्राकृतो यथा ॥ ७ ॥

जटाधरः तीव्रतपा ब्रह्मवादि सभापतिः अङ्कीकृत्य स्त्रियं च आस्ते गतह्रीः प्राकृतः यथा ॥७॥

जटाधरः	जटाधारी,	**प्राकृतः यथा**	साधारण मनुष्यके जैसे
तीव्रतपा	कठोर तपस्वी,	**स्त्रियं**	पत्नीको
ब्रह्मवादि	वेदज्ञोंके	**अङ्कीकृत्य च**	गोदमें ही लेकर
सभापतिः	सभापति (होकर)	**आस्ते**	बैठे हैं ॥७॥
गतह्रीः	निर्लज्ज		

प्रायशः प्राकृताश्चापि स्त्रियं रहसि बिभ्रति ।
अयं महाव्रतधरो बिभर्ति सदसि स्त्रियम् ॥ ८ ॥

प्रायशः प्राकृताः च अपि स्त्रियं रहसि बिभ्रति अयं महाव्रतधरः बिभर्ति सदसि स्त्रियम् ॥८॥

प्रायशः	प्रायः	**महाव्रतधरः**	बड़े व्रतधारी
प्राकृताः च अपि	साधारण पुरुष भी	**अयं सदसि**	ये सभामें
स्त्रियं रहसि	स्त्रीको एकान्तमें	**स्त्रियं बिभ्रति**	स्त्रीको लिये हैं
बिभ्रति	साथ बैठाते हैं,		॥८॥

श्रीशुक उवाच—

भगवानपि तच्छ्रुत्वा प्रहस्यागाधधीर्नृप ।
तूष्णीं बभूव सदसि सभ्याश्च तदनुव्रताः ॥ ९ ॥

भगवान् अपि तत् श्रुत्वा प्रहस्य अगाध धीः नृप तूष्णीं बभूव सदसि सभ्याः च तत् अनुव्रताः ॥९॥

नृप	राजन् !	**च**	और
अगाध धीः	अगाध बुद्धि	**सदसि सभ्याः**	उस सभामें बैठे सदस्य
भगवान् अपि	भगवान् शंकर भी		
तत् श्रुत्वा	वह बात सुनकर	**तत् अनुव्रताः**	उनके समानाचारी (चुप रहनेवाले)
प्रहस्य	हँस पड़े और		
तूष्णीं बभूव	चुप हो गये,		बने रहे ॥९॥

इत्यतद्वीर्यविदुषि ब्रुवाणे बह्वशोभनम् ।
रुषाऽऽह देवी धृष्टाय निर्जितात्माभिमानिने ॥१०॥

इति तत् वीर्यं अविदुषि ब्रुवाणे बहु अशोभनं रुषा आह देवी धृष्टाय निर्जित आत्मा अभिमानिने ॥१०॥

इति	इस प्रकार	**अभिमानिने**	माननेवाले (चित्रकेतु)के
तत् वीर्यं	उन (शंकरजी) के प्रभावको	**बहु अशोभनं**	बहुत (बुरा-भला) अशोभनीय
अविदुषि	न जाननेवाले		
धृष्टाय	ढीठ	**ब्रुवाणे**	कहने पर
निर्जित आत्मा	(अपनेको) चित्तको जीतनेवाला	**देवी रुषा आह**	देवीने क्रोधसे कहा ॥१०॥

पार्वत्युवाच-

अयं किमधुना लोके शास्ता दण्डधरः प्रभुः ।
अस्मद्विधानां दुष्टानां निर्लज्जानां च विप्रकृत् ॥११॥

अयं किं अधुना लोके शास्ता दण्डधरः प्रभुः अस्मत् विधानां दुष्टानां निर्लज्जानां च विप्रकृत् ॥११॥

किं अधुना	क्या इस समय	**दुष्टानां**	दुष्ट
लोके	संसारमें	**निर्लज्जानां**	निर्लज्जोंका
अयं शास्ता	यही शासक,	**विप्रकृत्**	तिरस्कार करने-
दण्डधरः	दण्ड देने वाला		वाला
च अस्मत्	और हमारे	**प्रभुः**	स्वामी है ॥११॥
विधानां	जैसे		

न वेद धर्मं किल पद्मयोनि-
र्न ब्रह्मपुत्रा भृगुनारदाद्याः ।
न वै कुमारः कपिलो मनुश्च
ये नो निषेधन्त्यतिवर्तिनं हरम् ॥१२॥

न वेद धर्मं किल पद्मयोनिः न ब्रह्मपुत्रा भृगु नारद आद्याः न वै कुमारः कपिलः मनुः च ये नः निषेधन्ति अतिवर्तिनं हरम् ॥१२॥

किल	अरे,	**च मनुः न**	एवं मनु भी नहीं
पद्मयोनिः	ब्रह्माजी		जानते,
धर्मं न वेद	धर्मको नहीं जानते ?	**ये अतिवर्तिनं**	जो मर्यादा उल्लंघन
ब्रह्मपुत्रा	ब्रह्माके पुत्र		करनेवाले
भृगु नारद	भृगु, नारद	**नः हरं**	मुझे और शंकरजी-
आद्याः	आदि		को
वै कुमारः	तथा सनत्कुमारादि,	**निषेधन्ति**	रोकते ॥१२॥
कपिलः	कपिलजी		

एषामनुध्येयपदाब्जयुग्मं
जगद्गुरुं मङ्गलमङ्गलं स्वयम् ।
यः क्षत्रबन्धुः परिभूय सूरीन्
प्रशास्ति धृष्टस्तदयं हि दण्ड्यः ॥१३॥

एषां अनुध्येय पदाब्ज युग्मं जगद्गुरुं मङ्गलमंगलं स्वयं यः क्षत्र-बन्धुः परिभूय सूरीन् प्रशास्ति धृष्टः तत् अयं हि दण्ड्यः ॥१३॥

जगद्गुरुम्	जगद्गुरु
मङ्गलमङ्गलं	मंगलको भी मंगल बनानेवाले
अनुध्येय	ध्यान करने योग्य
पदाब्ज युग्मं	दोनों चरण-कमल
एषां	जिनके हैं,
स्वयं	स्वयं उन प्रभुका और
सूरीन्	विद्वानोंका
परिभूय	तिरस्कार करके
धृष्टः क्षत्रबन्धुः	यह ढीठ क्षत्रियाधम
हि	क्योंकि
प्रशास्ति	शासन कर रहा (आदेश-सा दे रहा) है,
तत् अयं	इसलिए यह
दण्ड्यः	दण्ड देने योग्य है ॥१३॥

नायमर्हति वैकुण्ठपादमूलोपसर्पणम् ।
सम्भावितमतिः स्तब्धः साधुभिः पर्युपासितम् ॥१४॥

न अयं अर्हति वैकुण्ठ पादमूल उपसर्पणं सम्भावित मतिः स्तब्धः साधुभिः पर्युपासितम् ॥१४॥

अयं	यह
सम्भावित मतिः	अपने बड़प्पनके घमण्डवाला
स्तब्धः	मूर्ख
साधुभिः	सत्पुरुषों द्वारा
पर्युपासितं	भली प्रकार सेवित
वैकुण्ठ	भगवान् नारायणके
पादमूल	चरणोंके
उपसर्पणं	समीप पहुँचनेके
अर्हति न	योग्य नहीं है ॥१४॥

अतः पापीयसीं योनिमासुरीं याहि दुर्मते ।
यथेह भूयो महतां न कर्ता पुत्र किल्बिषम् ॥१५॥

अतः पापीयसीं योनिं आसुरीं याहि दुर्मते यथा इह भूयः महतां न कर्ता पुत्र किल्बिषम् ॥१५॥

अतः दुर्मते	अतः दुर्बुद्धि !
पापीयसीं	पापमयी
आसुरीं	असुरोंकी
योनिं याहि	योनिमें जाओ
पुत्र	बेटा !
यथा इह	जिससे यहां
महतां किल्बिषं	महापुरुषोंका अपराध
भूयः न कर्ता	फिर न करो ॥१५॥

श्रीशुक उवाच-

एवं शप्तश्चित्रकेतुर्विमानादवरुह्य सः ।
प्रसादयामास सतीं मूर्ध्ना नम्रेण भारत ॥१६॥

एवं शप्तः चित्रकेतुः विमानात् अवरुह्य सः प्रसादयामास सतीं मूर्ध्ना नम्रेण भारत ॥१६॥

भारत	परीक्षित !
सः चित्रकेतुः	वह चित्रकेतु
एवं शप्तः	इस प्रकार शाप पाकर
विमानात्	विमानसे
अवरुह्य	उतरकर
नम्रेय मूर्ध्ना	मस्तक झुकाकर
सतीं	पार्वतीको
प्रसादयामास	प्रसन्न करने लगा ॥१६॥

चित्रकेतुः उवाच-

प्रतिगृह्णामि ते शापमात्मनोऽञ्जलिनाम्बिके ।
देवैर्मर्त्याय यत्प्रोक्तं पूर्वदिष्टं हि तस्य तत् ॥१७॥

प्रतिगृह्णामि ते शापं आत्मनः अञ्जलिना अम्बिके देवैः मर्त्याय यत् प्रोक्तं पूर्वदिष्टं हि तस्य तत् ॥१७॥

अम्बिके	माता !
आत्मनः ते शापं	अपने लिए मिला आपका शाप
अञ्जलिना	हाथ जोड़कर
प्रतिगृह्णामि	स्वीकार करता हूँ
हि	क्योंकि

देवैः मर्त्याय	देवता मनुष्यके लिए	**पूर्वदिष्टं**	पहिला प्रारब्ध ही है ॥१७॥
यत् प्रोक्तं	जो कहते हैं		
तस्य तत्	उसका वह		

संसारचक्र एतस्मिञ्जन्तुरज्ञानमोहितः ।
भ्राम्यन् सुखं च दुःखं च भुङ्क्ते सर्वत्र सर्वदा ॥१८॥

संसारचक्र एतस्मिन् जन्तुः अज्ञान मोहितः भ्राम्यन् सुखं च दुःखं च भुङ्क्ते सर्वत्र सर्वदा ॥१८॥

एतस्मिन्	इस	**सर्वत्र सर्वदा**	सब कहीं सदा
संसारचक्र	संसार-चक्रमें	**सुखं च दुःखं च**	सुख और दुःख भी
अज्ञान मोहितः	अज्ञानसे मोहित	**भुङ्क्ते**	भोगता रहता है ॥१८॥
जन्तुः भ्राम्यन्	प्राणी भटकता हुआ		

नैवात्मा न परश्चापि कर्ता स्यात् सुखदुःखयोः ।
कर्तारं मन्यतेऽप्राज्ञ आत्मानं परमेव च ॥१९॥

न एव आत्मा न परः च अपि कर्ता स्यात् सुखदुःखयोः कर्तारं मन्यते अप्राज्ञः आत्मानं परं एव च ॥१९॥

सुखदुःखयोः	सुख-दुःखका	**अप्राज्ञः**	अज्ञानी पुरुष
कर्ता	करने (देने) वाला	**आत्मानं**	अपनेको
आत्मा	आत्मा	**च परं एव**	तथा दूसरेको ही
न एव	नहीं ही है,	**कर्तारं मन्यते**	कर्ता मानते हैं ॥१९॥
परः च अपि न	दूसरे भी नहीं		
स्यात्	हैं,		

गुणप्रवाह एतस्मिन् कः शापः को न्वनुग्रहः ।
कः स्वर्गो नरकः को वा किं सुखं दुःखमेव वा ॥२०॥

गुण प्रवाह एतस्मिन् कः शापः कः नु अनुग्रहः कः स्वर्गः नरकः कः वा किं सुखं दुःखं एव वा ॥२०॥

एतस्मिन्	इस
गुण प्रवाह	(सत्त्व, रज, तम) गुणोंके प्रवाहमें
कः शापः	क्या शाप,
कः नु अनुग्रहः	भला क्या कृपा,
कः स्वर्गः	क्या स्वर्ग,
नरकः कः	क्या नरक,
वा किं सुखं	अथवा कैसा सुख,
वा दुःखं एव	या कैसा दुःख ही है ॥२०॥

एकः सृजति भूतानि भगवानात्ममायया ।
एषां बन्धं च मोक्षं च सुखं दुःखं च निष्कलः ॥२१॥

एकः सृजति भूतानि भगवान् आत्ममायया एषां बन्धं च मोक्षं च सुखं दुःखं च निष्कलः ॥२१॥

एकः निष्कलः	अकेले परिपूर्ण
भगवान्	भगवान्
आत्ममायया	अपनी मायासे
भूतानि	प्राणियोंको
च एषां बन्धं	तथा इनके बन्धन,
च मोक्षं	एवं मुक्तिको
च सुखं दुःखं	और सुख-दुःखको
सृजति	उत्पन्न करते हैं ॥२१॥

न तस्य कश्चिद्दयितः प्रतीपो
न ज्ञातिबन्धुर्न परो न च स्वः ।
समस्य सर्वत्र निरञ्जनस्य
सुखे न रागः कुत एव रोषः ॥२२॥

न तस्य कश्चित् दयितः प्रतीपः न ज्ञाति बन्धुः न परः न च स्वः समस्य सर्वत्र निरञ्जनस्य सुखे न रागः कुत एव रोषः ॥२२॥

तस्य कश्चित्	उनका कोई
दयितः न	प्रिय नहीं है,
प्रतीपः न	शत्रु भी नहीं है,
च ज्ञाति बन्धुः	तथा जाति-भाई,
परः स्वः न	पराया-अपना नहीं है,
सर्वत्र समस्य	उन सर्वत्र समान
निरञ्जनस्य	नित्य निर्दोषका
सुखे रागः न	सुखमें प्रीति नहीं है,
रोषः कुत एव	फिर क्रोध कहाँसे होगा ॥२२॥

तथापि तच्छक्तिविसर्ग एषां
सुखाय दुःखाय हिताहिताय ।
बन्धाय मोक्षाय च मृत्युजन्मनोः
शरीरिणां संसृतयेऽवकल्पते ॥२३॥

तथा अपि तत् शक्ति विसर्ग एषां सुखाय दुःखाय हित अहिताय बन्धाय मोक्षाय च मृत्यु जन्मनोः शरीरिणां संसृतये अवकल्पते ॥२३॥

तथा अपि	ऐसा होनेपर भी	**हित अहिताय**	भले-बुरे,
तत् शक्ति विसर्ग	उनकी माया-शक्तिके कार्य (पाप-पुण्य)	**बन्धाय मोक्षाय**	बन्धन-मोक्ष
		च मृत्यु जन्मनोः	तथा मरण-जन्म रूप
एषां शरीरिणां	इन शरीर धारियोंके	**संसृतये**	आवागमनका
सुखाय दुःखाय	सुख-दुःख,	**अवकल्पते**	कारण होते हैं ॥२३॥

अथ प्रसादये न त्वां शापमोक्षाय भामिनि ।
यन्मन्यसे असाधूक्तं मम तत्क्षम्यतां सति ॥२४॥

अथ प्रसादये न त्वां शाप मोक्षाय भामिनि यत् मन्यसे असाधु उक्तं मम तत् क्षम्यतां सति ॥२४॥

अथ सति	अतः पतिप्राणा	**यत् मम उक्तं**	जो मेरे कहेका
भामिनि	देवि,	**असाधु मन्यसे**	(आपने) बुरा माना
त्वां शाप	आपको शापसे		
मोक्षाय	छुड़ानेके लिए	**तत् क्षम्यतां**	उसे क्षमा करें ॥२४॥
प्रसादये न	प्रसन्न नहीं कर रहा हूँ,		

श्रीशुक उवाच–

इति प्रसाद्य गिरिशौ चित्रकेतुररिन्दम ।
जगाम स्वविमानेन पश्यतोः स्मयतोस्तयोः ॥२५॥

इति प्रसाद्य गिरिशौ चित्रकेतुः अरिन्दम जगाम स्वविमानेन पश्यतोः स्मयतोः तयोः ॥२५॥

अरिन्दम	शत्रुदमन परीक्षित् !	**तयोः स्मयतोः**	उनको आश्चर्यमें पड़ा छोड़कर
चित्रकेतुः	चित्रकेतु		
इति गिरिशौ	इस प्रकार उमा-महेश्वरको	**पश्यतोः**	उनके देखते हुए
		स्वविमानेन	अपने विमानसे
प्रसाद्य	प्रसन्न करके	**जगाम**	चला गया ॥२५॥

ततस्तु भगवान् रुद्रो रुद्राणीमिदमब्रवीत् ।
देवर्षिदैत्यसिद्धानां पार्षदानां च शृण्वताम् ॥२६॥

ततः तु भगवान् रुद्रः रुद्राणीं इदं अब्रवीत् देवर्षि दैत्य सिद्धानां पार्षदानां च शृण्वताम् ॥२६॥

ततः तु	इसके पश्चात् ही	**शृण्वतां**	सुनते हुए
भगवान् रुद्रः	भगवान् रुद्रने	**रुद्राणीं**	पार्वतीसे
देवर्षि दैत्य च	देवर्षि, दैत्य और	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥२६॥
सिद्धानां	सिद्ध		
पार्षदानां	पार्षदोंके		

श्रीरुद्र उवाच-

दृष्टवत्यसि सुश्रोणि हरेरद्भुतकर्मणः ।
माहात्म्यं भृत्यभृत्यानां निःस्पृहाणां महात्मनाम् ॥२७॥

दृष्टवति असि सुश्रोणि हरेः अद्भुत कर्मणः माहात्म्यं भृत्यभृत्यानां निःस्पृहाणां महात्मनाम् ॥२७॥

सुश्रोणि	सुन्दरी !	**निःस्पृहाणां**	निस्पृह
अद्भुत कर्मणः	अद्भुतकर्मा	**महात्मनां**	महात्माकी
हरेः	श्री हरिके	**माहात्म्यं**	महिमा
भृत्यभृत्यानां	दासानुदास	**दृष्टवति असि**	देख लिया ॥२७॥

नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति ।
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥२८॥

नारायण पराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति स्वर्ग अपवर्ग नरकेषु अपि तुल्य अर्थ दर्शिनः ॥२८॥

सर्वे नारायण	सब नारायण	**नरकेषु अपि**	नरकमें भी
पराः	परायण-जन	**तुल्य अर्थ**	समान वस्तु भग-
कुतश्चन	कहींसे भी		वान्‌को ही
न बिभ्यति	नहीं डरते,	**दर्शिनः**	देखनेवाले होते हैं
स्वर्ग अपवर्ग	स्वर्ग, मोक्ष		॥२८॥

देहिनां देहसंयोगाद् द्वन्द्वानीश्वरलीलया ।
सुखं दुःखं मृतिर्जन्म शापोऽनुग्रह एव च ॥२९॥

देहिनां देहसंयोगात् द्वन्द्वानि ईश्वरलीलया सुखं दुःखं मृतिः जन्म शापः अनुग्रह एव च ॥२९॥

देहिनां	जीवोंको	**मृतिः जन्म**	मृत्यु-जन्म,
ईश्वरलीलया	ईश्वरकी लीलासे	**च शापः**	तथा शाप
देहसंयोगात्	शरीरका संयोग होनेसे	**अनुग्रह एव**	और कृपा भी मिलती है ॥२९॥
सुखं दुःखं	सुख-दुःख,		

अविवेककृतः पुंसो ह्यर्थभेद इवात्मनि ।
गुणदोषविकल्पश्च भिदेव स्रजिवत्कृतः ॥३०॥

अविवेक कृतः पुंसः हि अर्थभेद इव आत्मनि गुणदोष विकल्पः च भिदा एव स्रजिवत् कृतः ॥३०॥

हि आत्मनि	क्योंकि आत्मामें	**गुणदोष**	गुण-दोषका
अर्थभेद इव	पदार्थ (देवतादि) भेदके समान	**विकल्पः च**	विकल्प भी

स्रजिवत् एव	मालामें (सर्प, रस्सी आदि) भेदके समान ही	**पुंसः अविवेक कृतः**	पुरुषके अज्ञानसे उत्पन्न है ॥३०॥

वासुदेवे भगवति भक्तिमुद्वहतां नृणाम् ।
ज्ञानवैराग्यवीर्याणां नेह कश्चिद् व्यपाश्रयः ॥३१॥

वासुदेवे भगवति भक्तिं उद्वहतां नृणां ज्ञानवैराग्य वीर्याणां न इह कश्चित् व्यपाश्रयः ॥३१॥

भगवति	भगवान्	**इह**	इस संसारमें
वासुदेवे	वासुदेवमें	**कश्चित्**	कोई भी
भक्तिं उद्वहतां	भक्ति करनेवाले	**व्यपाश्रयः**	राग-द्वेष करने योग्य
ज्ञानवैराग्य	ज्ञान-वैराग्यका		
वीर्याणां	पराक्रम रखनेवाले	**न**	नहीं है ॥३१॥
नृणां	मनुष्योंका		

नाहं विरिञ्चो न कुमारनारदौ
न ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशाः ।
विदाम यस्येहितमंशकांशका
न तत्स्वरूपं पृथगीशमानिनः ॥३२॥

न अहं न विरिञ्चः न कुमार नारदौ न ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशाः विदाम यस्य ईहितं अंशक अंशका न तत् स्वरूपं पृथक् ईश मानिनः ॥३२॥

यस्य ईहितं	जिनकी चेष्टाको	**न विदाम**	नहीं जान पाते,
न अहं	न मैं	**अंशक अंशका**	तब (उनके) क्षुद्र अंशके अंशसे उत्पन्न
न विरिञ्चः	न ब्रह्मा,		
कुमार	सनकादि कुमार,	**पृथक् ईश**	अपनेको पृथक समर्थ
नारदौ	देवर्षि नारद,	**मानिनः**	माननेवाले
ब्रह्मपुत्रा मुनयः	ब्रह्माके पुत्र (भृगु आदि) मुनिगण	**तत्स्वरूपं**	उनके स्वरूपको
		न	नहीं जानते (तो आश्चर्य क्या)॥३२॥
सुरेशाः	बड़े-बड़े देवता		

न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा ।
आत्मत्वात्सर्वभूतानां सर्वभूतप्रियो हरिः ॥३३॥

न हि अस्य अस्ति प्रियः कश्चित् न अप्रियः स्वः परः अपि वा आत्मत्वात् सर्वभूतानां सर्वभूत प्रियः हरिः ॥३३॥

हि	क्योंकि
अस्य कश्चित्	इनका कोई
प्रियः	प्रिय या
अप्रियः न	अप्रिय नहीं है,
वा स्वः परः	अथवा अपना पराया
अपि न अस्ति	भी नहीं है
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके
आत्मत्वात्	आत्मा होनेसे
हरिः	श्रीहरि
सर्वभूत प्रियः	सब प्राणियोंके प्रिय हैं ॥३३॥

तस्य चायं महाभागश्चित्रकेतुः प्रियोऽनुगः ।
सर्वत्र समदृक् शान्तो ह्यहं चैवाच्युतप्रियः ॥३४॥

तस्य च अयं महाभागः चित्रकेतुः प्रियः अनुगः सर्वत्र समदृक् शान्तः हि अहं च एव अच्युत प्रियः ॥३४॥

हि	क्योंकि
अयं महाभागः	यह महाभाग
चित्रकेतुः	चित्रकेतु
सर्वत्र समदृक्	सर्वत्र समदर्शी
शान्तः	शान्त
च तस्य	और उन (भगवान्) का
प्रियः अनुगः	प्रिय अनुचर है
च अहं एव	तथा मैं भी
अच्युत प्रियः	उन अच्युतका प्रिय हूँ ॥३४॥

तस्मान्न विस्मयः कार्यः पुरुषेषु महात्मसु ।
महापुरुषभक्तेषु शान्तेषु समदर्शिषु ॥३५॥

तस्मात् न विस्मयः कार्यः पुरुषेषु महात्मसु महापुरुष भक्तेषु शान्तेषु समदर्शिषु ॥३५॥

तस्मात्	इसलिए	**समदर्शिषु**	समदर्शी
महात्मसु	महात्मा	**पुरुषेषु**	पुरुषके विषयमें
महापुरुष	भगवान् पुरुषोत्तमके	**विस्मयः**	आश्चर्य
भक्तेषु	भक्त	**न कार्यः**	नहीं करना चाहिए
शान्तेषु	शान्त		॥३५॥

श्रीशुक उवाच–

इति श्रुत्वा भगवतः शिवस्योमाभिभाषितम् ।
बभूव शान्तधी राजन् देवी विगतविस्मया ॥३६॥

इति श्रुत्वा भगवतः शिवस्य उमा अभिभाषितं बभूव शान्तधी राजन् देवी विगत विस्मया ॥३६॥

राजन्	राजन् !	**देवी उमा**	देवी उमाका
इति	इस प्रकार	**विगत विस्मया**	आश्चर्य चला गया,
भगवतः शिवस्य	भगवान् शिवका	**शान्तधी**	वे शान्त चित्त
अभिभाषितं	अभिभाषण	**बभूव**	हो गयीं ॥३६॥
श्रुत्वा	सुनकर		

इति भागवतो देव्याः प्रतिशप्तुमलन्तमः ।
मूर्ध्ना सञ्जगृहे शापमेतावत्साधुलक्षणम् ॥३७॥

इति भागवतः देव्याः प्रतिशप्तुं अलंतमः मूर्ध्ना सञ्जगृहे शापं एतावत् साधु लक्षणम् ॥३७॥

इति	इस प्रकार	**शापं**	उनके शापको
भागवतः	भगवद्भक्त (चित्रकेतु)	**मूर्ध्ना सञ्जगृहे**	सिर झुकाकर स्वीकार कर लिया
देव्याः प्रतिशप्तुं	देवीको बदलेमें शाप देनेमें	**एतावत्**	इतना ही
अलंतमः	पूर्ण समर्थ होनेपर भी	**साधु लक्षणं**	सत्पुरुषका लक्षण है ॥३७॥

जज्ञे त्वष्टुर्दक्षिणाग्नौ दानवीं योनिमाश्रितः ।
वृत्र इत्यभिविख्यातो ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥३८॥

जज्ञे त्वष्टुः दक्षिण अग्नौ दानवीं योनिं आश्रितः वृत्र इति अभिविख्यातः ज्ञानविज्ञान संयुतः ॥३८॥

त्वष्टुः	त्वष्टाके यहां
दक्षिण अग्नौ	दक्षिणाग्निसे
दानवीं योनिं	दानव-शरीर
आश्रितः	धारण करके
वृत्र इति	वृत्र इस नामसे
अभिविख्यातः	सुप्रसिद्ध
ज्ञानविज्ञान	ज्ञान-विज्ञान
संयुतः जज्ञे	सम्पन्न उत्पन्न हुआ ॥३८॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
वृत्रस्यासुरजातेश्च कारणं भगवन्मतेः ॥३९॥

एतत् ते सर्वं आख्यातं यत् मां त्वं परिपृच्छसि वृत्रस्य असुर जातेः च कारणं भगवत् मतेः ॥३९॥

वृत्रस्य	वृत्रका
असुर जातेः	असुर-कुलमें उत्पन्न होंने
च भगवत् मतेः	तथा भगवान्‌में बुद्धि लगनेका
कारणं	कारण
यत् त्वं	जो तुमने
मां परिपृच्छसि	मुझसे पूछा
एतत् सर्वं	यह सब
आख्यातं	मैंने बतला दिया ॥३९॥

इतिहासमिमं पुण्यं चित्रकेतोर्महात्मनः ।
माहात्म्यं विष्णुभक्तानां श्रुत्वा बन्धाद्विमुच्यते ॥४०॥

इतिहासं इमं पुण्यं चित्रकेतोः महात्मनः माहात्म्यं विष्णुभक्तानां श्रुत्वा बन्धात् विमुच्यते ॥४०॥

इमं महात्मनः	यह महात्मा
चित्रकेतोः	चित्रकेतुका
पुण्यं इतिहासं	पवित्र इतिहास तथा
विष्णुभक्तानां	भगवान् विष्णुके भक्तोंकी

माहात्म्यं	महिमा	**बन्धात्**	(संसार) बन्धनसे
श्रुत्वा	सुनकर (पुरुष)	**विमुच्यते**	मुक्त हो जाता है ॥४०॥

य एतत्प्रातरुत्थाय श्रद्धया वाग्यतः पठेत् ।
इतिहासं हरिं स्मृत्वा स याति परमां गतिम् ॥४१॥

यः एतत् प्रातः उत्थाय श्रद्धया वाक् यतः पठेत् इतिहासं हरिं स्मृत्वा स याति परमां गतिम् ॥४१॥

यः प्रातः	जो सवेरे	**वाक् यतः**	मौन होकर
उत्थाय	उठकर	**एतत् इतिहासं**	इस इतिहासको
हरिं स्मृत्वा	श्रीहरिका स्मरण करके	**पठेत्**	पढ़ेगा
		स परमां गतिं	वह परमगति
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक	**याति**	पावेगा ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे चित्रकेतुशापो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

पृश्निस्तु पत्नी सवितुः सावित्रीं व्याहृतिं त्रयीम् ।
अग्निहोत्रं पशुं सोमं चातुर्मास्यं महामखान् ॥ १ ॥

पृश्निः तु पत्नी सवितुः सावित्रीं व्याहृतिं त्रयीं अग्निहोत्रं पशुं सोमं चातुर्मास्यं महामखान् ॥१॥

सवितुः पत्नी	सविताकी पत्नी
पृश्निः तु	पृश्निने तो
सावित्रीं व्याहृतिं	सावित्री, व्याहृति,
त्रयीं अग्निहोत्रं	त्रयी, अग्निहोत्र,
पशुं सोमं	पशु, सोम,
चातुर्मास्यं	चातुर्मास,
महामखान्	पञ्चमहायज्ञ (उत्पन्न किये) ॥१॥

सिद्धिर्भगस्य भार्याङ्ग महिमानं विभुं प्रभुम् ।
आशिषं च वरारोहां कन्यां प्रासूत सुव्रताम् ॥ २ ॥

सिद्धिः भगस्य भार्या अङ्ग महिमानं विभुं प्रभुं आशिषं च वरारोहां कन्यां प्रासूत सुव्रताम् ॥२॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !
भगस्य भार्या	भगकी पत्नी
सिद्धिः	सिद्धिने
महिमानं विभुं	महिमा, विभु,
प्रभुं	प्रभु
च वरारोहां	और सुन्दरी
सुव्रतां कन्यां	उत्तम व्रत करने-वाली कन्या
आशिषं प्रासूत	आशिषको उत्पन्न किया ॥२॥

धातुः कुहूः सिनीवाली राका चानुमतिस्तथा ।
सायं दर्शमथ प्रातः पूर्णमासमनुक्रमात् ॥ ३ ॥

धातुः कुहूः सिनीवाली राका च अनुमतिः तथा सायं दर्शं अथ प्रातः पूर्णमासं अनुक्रमात् ॥३॥

धातुः	धाताकी (पत्नियां)
कुहूः सिनीवाली	कुहू, सिनीवाली,
राका तथा	राका तथा
अनुमतिः	अनुमतिने
अनुक्रमात्	क्रमके अनुसार
सायं दर्शं अथ	सायं, दर्श और
प्रातः च	प्रातः तथा
पूर्णमासं	पूर्णमास (इनको जन्म दिया) ॥३॥

अग्नीन् पुरीष्यानाधत्त क्रियायां समनन्तरः ।
चर्षणी वरुणस्यासीद्यस्यां जातो भृगुः पुनः ॥ ४ ॥

अग्नीन् पुरीष्यान् आधत्त क्रियायां समनन्तरः चर्षणी वरुणस्य आसीत् यस्यां जातः भृगुः पुनः ॥४॥

क्रियायां	(विधाताने) क्रियासे
समनन्तरः	(पंचक्रिया)के समान ही
पुरीष्यान्	पुरीष नामक (पांच)
अग्नीन् आधत्त	अग्नियोंको उत्पन्न किया,
वरुणस्य	वरुणकी (पत्नी)
चर्षणी आसीत्	चर्षणी थी
यस्यां भृगुः	जिसमें भृगुने (जो पहिले ब्रह्माके पुत्र थे)
पुनः जातः	पुनर्जन्म लिया ॥४॥

वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकादभवत्किल ।
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्रावरुणयोर्ऋषी ॥ ५ ॥

वाल्मीकिः च महायोगी वल्मीकात् अभवत् किल अगस्त्यः च वसिष्ठः च मित्रावरुणयोः ऋषी ॥५॥

महायोगी	महायोगी
वाल्मीकिः	वाल्मीकि
च	भी (पहिले वरुणके पुत्र थे)
किल वल्मीकात्	अरे फिर (दीमककी) बांबीसे
अभवत्	उत्पन्न हुए,
अगस्त्यः च	अगस्त्य और

वसिष्ठः च	वसिष्ठजी भी	**मित्रावरुणयोः**	मित्र और वरुणके
ऋषी	ये दोनों ऋषि		(अंश) थे ॥५॥

रेतः सिषिचतुः कुम्भे उर्वश्याः सन्निधौ द्रुतम् ।
रेवत्यां मित्र उत्सर्गमरिष्टं पिप्पलं व्यधात् ॥ ६ ॥

रेतः सिषिचतुः कुम्भे उर्वश्याः सन्निधौ द्रुतं रेवत्यां मित्र उत्सर्गं अरिष्ट पिप्पलं व्यधात् ॥६॥

उर्वश्याः	उर्वशीके	**मित्र रेवत्यां**	मित्रने अपनी पत्नी रेवतीसे
सन्निधौ	सामीप्यके कारण	**उत्सर्गं अरिष्टं**	उत्सर्ग, अरिष्ट और
द्रुतं रेतः	स्खलित वीर्यको (मित्र और वरुणने)	**पिप्पलं व्यधात्**	पिप्पलको उत्पन्न किया ॥६॥
कुम्भे सिषिचतुः	घड़ेमें डाल दिया । (उसी घड़ेसे अगस्त्य और वसिष्ठ हुए)		

पौलोम्यामिन्द्र आधत्त त्रीन् पुत्रानिति नः श्रुतम् ।
जयन्तमृषभं तात तृतीयं मीढुषं प्रभुः ॥ ७ ॥

पौलोम्यां इन्द्रः आधत्त त्रीन् पुत्रान् इति नः श्रुतं जयन्तं ऋषभं तात तृतीयं मीढुषं प्रभुः ॥७॥

तात	परीक्षित्	**त्रीन् पुत्रान्**	तीन पुत्र
इति नः श्रुतं	ऐसा हमने सुना है कि	**आधत्त**	उत्पन्न किये,
		जयन्तं ऋषभं	जयन्त, ऋषभ तथा
पौलोम्यां	पुलोमाकी पुत्री शचीसे	**तृतीयं मीढुषं**	तीसरे मीढुवान् ॥७॥
प्रभुः इन्द्रः	देवराज इन्द्रने		

उरुक्रमस्य देवस्य मायावामनरूपिणः ।
कीर्तौ पत्न्यां बृहच्छ्लोकस्तस्यासन् सौभगादयः ॥ ८ ॥

उरुक्रमस्य देवस्य माया वामन रूपिणः कीर्तौपत्न्यां बृहत् श्लोकः तस्य आसन् सौभग आदयः ॥८॥

माया वामन	मायासे वामन	**बृहत् श्लोकः**	बृहत् श्लोक नामक
रूपिणः	रूप लेनेवाले		(पुत्र हुआ)
देवस्य	भगवान्	**तस्य सौभग**	उसके सौभग
उरुक्रमस्य	त्रिविक्रमकी	**आदयः**	आदि
कीर्तौपत्न्यां	कीर्ति नामक पत्नीसे	**आसन्**	(पुत्र) हुए ॥८॥

तत्कर्मगुणवीर्याणि काश्यपस्य महात्मनः ।
पश्चाद्वक्ष्यामहेऽदित्यां यथा वावततार ह ॥ ९ ॥

तत् कम गुण वीर्याणि काश्यपस्य महात्मनः पश्चात् वक्ष्यामहे अदित्यां यथा वा अवततार ह ॥९॥

तत् महात्मनः	उन पुरुषोत्तम	**अदित्यां**	अदितिसे
काश्यपस्य	कश्यप नन्दनका	**अवततार**	अवतार लिया
कर्म गुण	कर्म, गुण,	**ह पश्चात्**	निश्चय पीछे
वीर्याणि	पराक्रम	**वक्ष्यामहे**	बतलाऊँगा ॥९॥
वा यथा	अथवा जैसे		

अथ कश्यपदायादान् दैतेयान् कीर्तयामि ते ।
यत्र भागवतः श्रीमान् प्रह्लादो बलिरेव च ॥१०॥

अथ कश्यप दायादान् दैतेयान् कीर्तयामि ते यत्र भागवतः श्रीमान् प्रह्लादः बलिः एव च ॥१०॥

अथ ते	अभी तो तुमसे	**कीर्तयामि**	वर्णन करूँगा
कश्यप दायादान्	कश्यपजीके उत्तराधिकारी	**यत्र श्रीमान्**	जिसमें श्रीमान्
		प्रह्लादः च	प्रह्लाद तथा
दैतेयान्	दितिकी सन्तान परम्पराका	**बलिः एव**	बलि भी (हुए हैं) ॥१०॥

दितेर्द्वावेव दायादौ दैत्यदानववन्दितौ ।
हिरण्यकशिपुर्नाम हिरण्याक्षश्च कीर्तितौ ॥११॥

दितेः द्वा एव दायादौ दैत्य दानव वन्दितौ हिरण्यकशिपुः नाम हिरण्याक्षः च कीर्तितौ ॥११॥

दितेः द्वा एव	दितिके दो ही	दायादौ नाम	पुत्र थे, उनके नाम
दैत्य दानव	दैत्य-दानवोंसे	हिरण्यकशिपुः	हिरण्यकशिपु
वन्दितौ	वन्दित	च हिरण्याक्षः	तथा हिरण्याक्ष
कीर्तितौ	प्रसिद्ध		थे ॥११॥

हिरण्यकशिपोर्भार्या कयाधुर्नाम दानवी ।
जम्भस्य तनया दत्ता सुषुवे चतुरः सुतान् ॥१२॥

हिरण्यकशिपुः भार्या कयाधुः नाम दानवी जम्भस्य तनया दत्ता सुषुवे चतुरः सुतान् ॥१२॥

हिरण्यकशिपुः	हिरण्यकशिपुकी	तनया दत्ता	यह अपनी पुत्री
भार्या	पत्नीकी		(हिरण्यकशिपुको)
नाम दानवी	नाम दानवी		विवाह दी,
कयाधुः	कयाधू था ।	चतुरः सुतान्	उसने चार पुत्र
जम्भस्य	जम्भने	सुषुवे	उत्पन्न किये ॥१२॥

संह्लादं प्रागनुह्लादं ह्लादं प्रह्लादमेव च ।
तत्स्वसा सिंहिका नाम राहुं विप्रचितोऽग्रहीत् ॥१३॥

संह्लादं प्राक् अनुह्लादं ह्लादं प्रह्लादं एव च तत् स्वसा सिंहिका नाम राहुं विप्रचितः अग्रहीत् ॥१३॥

प्राक् संह्लादं	पहिला संह्लाद (फिर)	सिंहिका नाम	सिंहिका नामकी थी
अनुह्लादं ह्लादं	अनुह्लाद, ह्लाद	विप्रचितः	विप्रचित्तिने इसका
च प्रह्लादं एव	तथा प्रह्लाद भी	अग्रहीत्	पाणिग्रहण किया
तत् स्वसा	इनकी बहिन	राहुं	(इनका पुत्र) राहु हुआ ॥१३॥

शिरोऽहरद्यस्य हरिश्चक्रेण पिबतोऽमृतम् ।
संह्लादस्य कृतिर्भार्यासूत पञ्चजनं ततः ॥१४॥

शिरः अहरत् यस्य हरिः चक्रेण पिबतः अमृतं संह्लादस्य कृतिः भार्या असूत पञ्चजनं ततः ॥१४॥

अमृतं पिबतः	अमृत पीते समय	**संह्लादस्य भार्या**	संह्लादकी पत्नी
यस्य शिरः	जिसका सिर	**कृतिः**	कृति थी
हरिः चक्रेण	श्रीहरिने चक्रसे	**ततः पञ्चजनं**	उसने पञ्चजनको
अहरत्	काट दिया था,	**असूत**	जन्म दिया ॥१४॥

ह्लादस्य धमनिर्भार्यासूत वातापिमिल्वलम् ।
योऽगस्त्याय त्वतिथये पेचे वातापिमिल्वलः ॥१५॥

ह्लादस्य धमनिः भार्या असूत वातापिं इल्वलं यः अगस्त्याय तु अतिथये पेचे वातापिं इल्वलः ॥१५॥

ह्लादस्य भार्या	ह्लादकी पत्नी	**यः इल्वलं**	जिस इल्वलने
धमनिः	धमनीने	**अतिथये**	अतिथि रूपमें आए
वातापिं इल्वलं	वातापि और इल्वल-को	**अगस्त्याय तु**	अगस्त्यजीके लिए तो
		वातापिं पेचे	वातापिको पकाया
असूत	जन्म दिया		था ॥१५॥

अनुह्लादस्य सूर्म्यायां बाष्कलो महिषस्तथा ।
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्देव्यास्तस्याभवद्बलिः ॥१६॥

अनुह्लादस्य सूर्म्यायां बाष्कलः महिषः तथा विरोचनः तु प्राह्लादिः देव्याः तस्या अभवत् बलिः ॥१६॥

अनुह्लादस्य	अनुह्लादकी पत्नी	**बाष्कलः तथा**	बाष्कल और
सूर्म्यायां	सूर्म्यासे	**महिषः**	महिषासुर

विरोचनः तु	विरोचन तो		पत्नीसे
प्राह्लादिः	प्रह्लादके पुत्र थे,	**बलिः अभवत्**	बलि उत्पन्न हुए
तस्या देव्याः	उनकी देवी नामक		॥१६॥

बाणज्येष्ठं पुत्रशतमशनायां ततोऽभवत् ।
तस्यानुभावः सुश्लोक्यः पश्चादेवाभिधास्यते ॥१७॥

बाणज्येष्ठं पुत्रशतं अशनायां ततः अभवत् तस्य अनुभावः सुश्लोक्यः पश्चात् एव अभिधास्यते ॥१७॥

ततः अशनायां	उन (बलि) के अशना नामक पत्नीसे	**तस्य**	उन (बलि) का
पुत्रशतं	सौ पुत्र	**सुश्लोक्यः**	गायन योग्य
बाणज्येष्ठं	जिनमें बाणासुर बड़ा था	**अनुभावः**	प्रभाव
अभवत्	उत्पन्न हुए	**पश्चात् एव**	पीछे ही
		अभिधास्यते	वर्णन किया जाएगा ॥१७॥

बाण आराध्य गिरिशं लेभे तद्गणमुख्यताम् ।
यत्पार्श्वे भगवानास्ते ह्यद्यापि पुरपालकः ॥१८॥

बाण आराध्य गिरिशं लेभे तत् गणमुख्यतां यत् पार्श्वे भगवान् आस्ते हि अद्य अपि पुरपालकः ॥१८॥

हि	क्योंकि	**लेभे**	प्राप्त कर लिया
बाण गिरिशं	बाणासुरने शंकर-जीकी	**अद्य अपि**	जिससे आज भी
आराध्य तत्	आराधना करके उनके	**पुरपालकः**	नगरपाल होकर
गणमुख्यतां	गण प्रमुखका पद	**यत् पार्श्वे**	जिसके समीप
		भगवान् आस्ते	भगवान् (शिव) रहते हैं ॥१८॥

मरुतश्च दितेः पुत्राश्चत्वारिंशन्नवाधिकाः ।
त आसन्नप्रजाः सर्वे नीता इन्द्रेण सात्मताम् ॥१९॥

मरुतः च दितेः पुत्राः चत्वारिंशत् नव अधिकाः त आसन् अप्रजाः सर्वे नीता इन्द्रेण सात्मताम् ॥१९॥

नव अधिकाः	नौ अधिक	**आसन्**	रहे,
चत्वारिंशत्	चालिस (उनचास)	**सर्वे इन्द्रेण**	वे सब इन्द्र द्वारा
मरुतः च	मरुद्गण भी	**सात्मतां नीताः**	अपने समान (देवता) बना लिए गए ॥१९॥
दितेः पुत्राः	दितिके ही पुत्र हैं,		
त अप्रजाः	वे निःसन्तान		

राजोवाच–

कथं त आसुरं भावमपोह्यौत्पत्तिकं गुरो ।
इन्द्रेण प्रापिताः सात्म्यं किं तत्साधु कृतं हि तैः ॥२०॥

कथं त आसुरं भावं अपोह्य औत्पत्तिकं गुरो इन्द्रेण प्रापिताः सात्म्यं किं तत् साधु कृतं हि तैः ॥२०॥

गुरो	गुरुदेव !	**प्रापिताः**	बनाये गये,
त औत्पत्तिकं	वे जन्मजात	**तैः तत् हि**	उन्होंने वह ऐसा
आसुरं भावं	आसुरी स्वभाव	**किं साधु कृतं**	क्या सत्कर्म किया ॥२०॥
कथं अपोह्य	कैसे दूर करके		
इन्द्रेण सात्म्यं	इन्द्र द्वारा अपने समान देवता		

इमे श्रद्दधते ब्रह्मन्नृषयो हि मया सह ।
परिज्ञानाय भगवंस्तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥२१॥

इमे श्रद्दधते ब्रह्मन् ऋषयः हि मया सह परिज्ञानाय भगवन् तत् नः व्याख्यातुं अर्हसि ॥२१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**भगवन्**	भगवन् !
हि	क्योंकि	**तत् नः**	इसलिए हम सबकी
मया सह	मेरे साथ	**परिज्ञानाय**	जानकारीके लिए
इमे ऋषयः	ये ऋषिगण	**व्याख्यातुं**	(आपको) बतलाना
श्रद्दधते	(आपके वचनोंपर) श्रद्धा करते हैं,	**अर्हसि**	चाहिए ॥२१॥

सूत उवाच–

तद्विष्णुरातस्य स बादरायणि-
र्वचो निशम्याहृतमल्पमर्थवत् ।
सभाजयन् संनिभृतेन चेतसा
जगाद सत्रायण सर्वदर्शनः ॥२२॥

तत् विष्णुरातस्य स बादरायणिः वचः निशम्य आहृतं अल्पं अर्थवत् सभाजयन् संनिभृतेन चेतसा जगाद सत्रायण सर्वदर्शनः ॥२२॥

तत् आहृतं	वह आदर पूर्वक	सर्वदर्शनः	सर्वज्ञ
अल्पं अर्थवत्	थोड़े शब्दोंमें सारगर्भित	बादरायणिः	शुकदेवजीने
		सभाजयन्	उसका आदर करके
विष्णुरातस्य	परीक्षितकी	संनिभृतेन	प्रसन्न
वचः	वाणी	चेतसा	चित्तसे
निशम्य	सुनकर	जगाद	बोले ॥२२॥
स सत्रायण	उन ज्ञानोपदेशमें लगे		

श्रीशुक उवाच–

हतपुत्रा दितिः शक्रपार्ष्णिग्राहेण विष्णुना ।
मन्युना शोकदीप्तेन ज्वलन्ती पर्यचिन्तयत् ॥२३॥

हतपुत्रा दितिः शक्रपार्ष्णि ग्राहेण विष्णुना मन्युना शोकदीप्तेन ज्वलन्ती पर्यचिन्तयत् ॥२३॥

शक्रपार्ष्णि	इन्द्रका पक्ष	शोकदीप्तेन	शोकसे प्रदीप्त
ग्राहेण	लेकर	मन्युना	क्रोधसे
विष्णुना	भगवान् विष्णुके द्वारा	ज्वलन्ती	जलती हुई
		दितिः	दिति
हतपुत्रा	पुत्रोंके मारे जानेपर	पर्यचिन्तयत्	सोचने लगी ॥२३॥

कदा नु भ्रातृहन्तारमिन्द्रियारामम्मुल्बणम् ।
अक्लिन्नहृदयं पापं घातयित्वा शये सुखम् ॥२४॥

कदा नु भ्रातृ हन्तारं इन्द्रियारामं उल्बणं अक्लिन्न हृदयं पापं घातयित्वा शये सुखम् ॥२४॥

भ्रातृ हन्तारं	भाइयोंके हत्यारे,	**कदा**	कब
इन्द्रियारामं	इन्द्रिय भोग परायण,	**नु घातयित्वा**	तो मरवाकर
उल्बणं	क्रूर	**सुखं शये**	सुखपूर्वक सो
अक्लिन्न हृदयं	निष्ठुर चित्त		सकूँगी ॥२४॥
पापं	पापी (इन्द्र) को		

कृमिविड्भस्मसंज्ञाऽऽसीद्यस्येशाभिहितस्य च ।
भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥२५॥

कृमि विट् भस्म संज्ञा आसीत् यस्य ईश अभिहितस्य च भूतध्रुक् तत् कृते स्वार्थं किं वेद निरयः यतः ॥२५॥

यस्य ईश	जिस प्रभु	**यतः निरयः**	जिसके कारण नरक
अभिहितस्य	कहलाने वाले (शरीर) का		मिलता है वह
कृमि विट् भस्म	कीड़ा, विष्टा या भस्म	**भूतध्रुक्**	प्राणियोंसे द्रोह करने वाले
संज्ञा आसीत्	(पहिले) नाम था,	**किं स्वर्थं वेद**	क्या अपना स्वार्थ
च तत् कृते	अरे उसके लिए		जानते हैं ॥२५॥

आशासानस्य तस्येदं ध्रुवमुन्नद्धचेतसः ।
मदशोषक इन्द्रस्य भूयाद्येन सुतो हि मे ॥२६॥

आशासानस्य तस्य इदं ध्रुवं उन्नद्ध चेतसः मदशोषक इन्द्रस्य भूयात् येन सुतः हि मे ॥२६॥

हि तस्य	क्योंकि उस (दिति) के
ध्रुवं उन्नद्ध	अविचल निश्चय युक्त
चेतसः	चित्तमें
आशासानस्य	(यह) चाह जमी थी,
येन मे	जिस उपायसे मुझे
इन्द्रस्य	इन्द्रके
मदशोषक	घमण्डको सुखा देनेवाला
सुतः भूयात्	पुत्र हो (वह करूँगी) ॥२६॥

इति भावेन सा भर्तुराचचारासकृत्प्रियम् ।
शुश्रूषयानुरागेण प्रश्रयेण दमेन च ॥२७॥

इति भावेन सा भर्तुः आचचार असकृत् प्रियं शुश्रूषया अनुरागेण प्रश्रयेण दमेन च ॥२७॥

इति भावेन	इस भावसे
अनुरागेण	अनुराग पूर्वक
शुश्रुषया	सेवा,
प्रश्रयेण	नम्रता,
च दमेन	तथा इन्द्रिय संयम द्वारा
सा भर्तुः	वह पतिकी
असकृत् प्रियं	निरन्तर प्रसन्नताका कार्य
आचचार	करने लगी ॥२७॥ द्वारा

भक्त्या परमया राजन् मनोज्ञैर्वल्गुभाषितैः ।
मनो जग्राह भावज्ञा सुस्मितापाङ्गवीक्षणैः ॥२८॥

भक्त्या परमया राजन् मनोज्ञैः वल्गु भाषितैः मनः जग्राह भावज्ञा सुस्मित अपाङ्ग वीक्षणैः ॥२८॥

राजन्	राजन् !
भावज्ञा	(पतिके) भावको जाननेवाली
मनोज्ञैः	उनके भावको जानकर
परमया भक्त्या	परम प्रेम भावसे
वल्गु भाषितैः	मधुर भाषणसे
सुस्मित	मनोहर मुसकान सहित
अपाङ्ग वीक्षतैः	कटाक्षपूर्वक देखकर
मनः जग्राह	(उनके) मनको आकर्षित कर लिया ॥२८॥

एवं स्त्रिया जडीभूतो विद्वानपि विदग्धया ।
बाढमित्याह विवशो न तच्चित्रं हि योषिति ॥२९॥

एवं स्त्रिया जडीभूतः विद्वान् अपि विदग्धया बाढं इति आह विवशः न तत् चित्रं हि योषिति ॥२९॥

विदग्धया	चतुरा	**इति आह**	ऐसा कह दिया ।
स्त्रिया एवं	स्त्री द्वारा इस प्रकार	**हि**	क्योंकि
जडीभूतः	विवेकहीन प्राय होकर	**योषिति**	स्त्रियोंके लिए
विद्वान् अपि	विद्वान होनेपर भी	**तत् चित्रं न**	वह आश्चर्यकी बात नहीं है ॥२९॥
विवशः	विवश होकर		
वाढं	'अच्छा' (तुम्हारी इच्छा पूरी करूंगा)		

विलोक्यैकान्तभूतानि भूतान्यादौ प्रजापतिः ।
स्त्रियं चक्रे स्वदेहार्धं यया पुंसां मतिर्हृता ॥३०॥

विलोक्य एकान्त भूतानि भूतानि आदौ प्रजापतिः स्त्रियं चक्रे स्वदेह अर्धं यया पुंसां मतिः हृता ॥३०॥

आदौ	सृष्टिके प्रारम्भमें	**स्त्रियं चक्रे**	स्त्रीका निर्माण किया,
प्रजापतिः	ब्रह्माजीने	**यया पुंसां**	जिसके द्वारा पुरुष- की
एकान्त भूतानि	असङ्ग बने	**मतिः हृता**	बुद्धि हरण कर ली गयी ॥३०॥
भूतानि विलोक्य	प्राणियोंको देखकर		
स्वदेह अर्धं	अपने शरीरके आधे भागसे		

एवं शुश्रूषितस्तात भगवान् कश्यपः स्त्रिया ।
प्रहस्य परमप्रीतो दितिमाहाभिनन्द्य च ॥३१॥

एवं शुश्रूषितः तात भगवान् कश्यपः स्त्रिया प्रहस्य परमप्रीतः दितिं आह अभिनन्द्य च ॥३१॥

तात	तात परीक्षित !
भगवान् कश्यपः	भगवान् कश्यप
एवं स्त्रिया	इस प्रकार पत्नी द्वारा
शुश्रूषितः	सेवा किये जानेपर
परमप्रीतः	अत्यन्त प्रसन्न होकर
च दितिं	और दितिका
अभिनन्द्य	अभिनन्दन करके
प्रहस्य आह	हंसकर बोले ॥३१॥

कश्यप उवाच–

वरं वरय वामोरु प्रीतस्तेऽहमनिन्दिते ।
स्त्रिया भर्तरि सुप्रीते कः काम इह चागमः ॥३२॥

वरं वरय वामोरु प्रीतः ते अहं अनिन्दिते स्त्रिया भर्तरि सुप्रीते कः काम इह च अगमः ॥३२॥

अनिन्दिते	अनिन्द्य
वामोरु	सुन्दरी !
वरं वरय	वरदान मांगो ।
अहं ते प्रीतः	मैं तुमपर प्रसन्न हूँ'
भर्तरि सुप्रीते	पतिके पूर्ण प्रसन्न होनेपर
स्त्रिया कः	स्त्रीकी कौन-सी
कामः	कामना
इह च अगमः	इस लोकमें अप्राप्त रहती है ॥३२॥

पतिरेव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतम् ।
मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः श्रियः पतिः ॥३३॥

पतिः एव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतं मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः श्रियः पतिः ॥३३॥

पति एव	पति ही
नारीणां	स्त्रियोंका
परमं दैवतं	परम आराध्य
स्मृतं	(शास्त्रोंमें) कहा गया है,
हि	क्योंकि
श्रियः पतिः	लक्ष्मीपति
वासुदेवः	भगवान् वासुदेव
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके
मानसः	हृदयमें स्थित हैं ॥३३॥

स एव देवतालिङ्गैर्नामरूपविकल्पितैः ।
इज्यते भगवान् पुम्भिः स्त्रीभिश्च पतिरुपधृक् ॥३४॥

स एव देवता लिङ्गैः नाम रूप विकल्पितैः इज्यते भगवान् पुम्भिः स्त्रीभिः च पतिरूप धृक् ॥३४॥

स एव भगवान्	वही भगवान्	**च स्त्रीभिः**	और स्त्रियों द्वारा
पुम्भिः	पुरुषो द्वारा	**पतिरूप धृक्**	पतिका रूप धारण किये
देवता लिङ्गैः	देवताओंके रूपमें	**इज्यते**	पूजित होते हैं ॥३४॥
नाम विकल्पितैः	अनेक नाम एवं		
रूप	रूपोंमें माने जाकर		

तस्मात्पतिव्रता नार्यः श्रेयस्कामाः सुमध्यमे ।
यजन्तेऽनन्यभावेन पतिमात्मानमीश्वरम् ॥३५॥

तस्मात् पतिव्रता नार्यः श्रेयः कामाः सुमध्यमे यजन्ते अनन्य भावेन पतिं आत्मानं ईश्वरम् ॥३५॥

सुमध्यमे	सुन्दरी !	**आत्मानं ईश्वरं**	अपने परमेश्वर
तस्मात्	इसलिए	**पतिं**	पतिकी
श्रेयः कामाः	अपना कल्याण चाहनेवाली	**अनन्य भावेन**	अनन्य भावसे
पतिव्रता नार्यः	पतिव्रता नारियां	**यजन्ते**	सेवा करती हैं ॥३५॥

सोऽहं त्वयार्चितो भद्रे ईदृग्भावेन भक्तितः ।
तत्ते सम्पादये काममसतीनां सुदुर्लभम् ॥३६॥

स अहं त्वया अर्चितः भद्रे ईदृक् भावेन भक्तितः तत् ते सम्पादये कामं असतीनां सुदुर्लभम् ॥३६॥

भद्रे	कल्याणी !	**स अहं अर्चितः**	वह मैं पूजित हुआ हूँ ।
त्वया ईदृक्	तुम्हारे द्वार ऐसे	**तत् ते कामं**	वह तुम्हारी अभिलाषा
भावेन भक्तितः	अनन्य भावसे भक्ति पूर्वक		

सम्पादये	सम्पन्न कर दूंगा ।	**सुदुर्लभं**	यह अत्यन्त दुर्लभ
असतीनां	जो सती नहीं हैं उनके लिए		है ॥३६॥

दितिरुवाच—

वरदो यदि मे ब्रह्मन् पुत्रमिन्द्रहणं वृणे ।
अमृत्युं मृतपुत्राहं येन मे घातितौ सुतौ ॥३७॥

वरदः यदि मे ब्रह्मन् पुत्रं इन्द्रहणं वृणे अमृत्युं मृतपुत्रा अहं येन मे घातितौ सुतौ ॥३७॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**येन मे सुतौ**	जिसने मेरे पुत्रोंको
यदि मे वरदः	यदि आप मुझे वरदान देना चाहते हैं तो	**घातितौ**	मरवा दिया (उस)
		इन्द्रहणं	इन्द्रको मारनेवाले
		अमृत्युं	अमर
अहं मृतपुत्रा	जिसके पुत्र मर गये हैं वह मैं	**पुत्रं वृणे**	पुत्रका वरदान मांगती हूँ ॥३७॥

श्रीशुक उवाच—*

निशम्य तद्वचो विप्रो विमनाः पर्यतप्यत ।

निशम्य तत् वचः विप्रः विमनाः पर्यतप्यत ।

तत् वचः	उसकी बात	**पर्यतप्यत**	पश्चात्ताप करने लगे ।
निशम्य	सुनकर		
विमनाः विप्रः	खिन्न होकर विप्रवर		

अहो अधर्मः सुमहानद्य मे समुपस्थितः ॥३८॥

अहो अधर्मः सुमहान् अद्य मे समुपस्थितः ॥३८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अहो सुमहान्	अरे, बहुत बड़ा	**अद्य**	आज
अधर्मः मे	अधर्म मेरे लिए	**समुपस्थितः**	आ गया है ॥३८॥

अहो अद्येन्द्रियारामो योषिन्मय्येह मायया ।
गृहीतचेताः कृपणः पतिष्ये नरके ध्रुवम् ॥३९॥

अहो अद्य इन्द्रिय आरामः योषित् मयि इह मायया गृहीतचेताः कृपणः पतिष्ये नरके ध्रुवम् ॥३९॥

अहो	अरे,	**गृहीतचेताः**	आकर्षित चित
अद्य इन्द्रिय	इन्द्रियोंके भोगोंमें	**कृपणः**	दुःखी
आरामः	सुख माननेवाला (मैं)	**ध्रुवं**	निश्चय
इह योषित् मयि	यहाँ स्त्री रूपिणी	**नरके पतिष्ये**	नरकमें गिरूँगा ॥३९॥
मायया	माया द्वारा		

कोऽतिक्रमोऽनुवर्तन्त्याः स्वभावमिह योषितः ।
धिङ् मां बताबुधं स्वार्थे यदहं त्वजितेन्द्रियः ॥४०॥

कः अतिक्रमः अनुवर्तन्त्याः स्वभावं इह योषितः धिक् मां बत अबुधं स्वार्थे यत् अहं तु अजितेन्द्रियः ॥४०॥

इह स्वभावं	यहां स्वभावके	**अबुधं**	न जाननेवाले
अनुवर्तन्त्याः	अनुसार व्यवहार करनेवाली	**मां धिक्**	मुझे धिक्कार है
योषितः कः	स्त्रीका क्या	**यत् अहं तु**	क्योंकि मैं ही तो
अतिक्रमः	अपराध है,	**अजितेन्द्रियः**	इन्द्रियोंको जीत नहीं सका ॥४०॥
बत स्वार्थे	किन्तु अपने वास्तविक स्वार्थको		

शरत्पद्मोत्सवं वक्त्रं वचश्च श्रवणामृतम् ।
हृदयं क्षुरधाराभं स्त्रीणां को वेद चेष्टितम् ॥४१॥

शरत् पद्म उत्सवं वक्त्रं वचः च श्रवण अमृतं हृदयं क्षुरधार आभं स्त्रीणां कः वेद चेष्टितम् ॥४१॥

शरत् पद्म	शरदऋतुके कमलके समान
उत्सवं वक्त्रं	मुख सुन्दर होता है,
वचः च	वाणी भी
श्रवण अमृतं	सुननेमें अमृत-सी होती है;
हृदयं	परन्तु हृदय
क्षुरधार आभं	क्षुरेकी धार जैसा तीक्ष्ण होता है, अतः
स्त्रीणां चेष्टितं	स्त्रियोंके चरित्रको
कः वेद	कौन जान सकता है ॥४१॥

न हि कश्चित्प्रियः स्त्रीणामञ्जसा स्वाशिषात्मनाम् ।
पतिं पुत्रं भ्रातरं वा घ्नन्त्यर्थे घातयन्ति च ॥४२॥

न हि कश्चित् प्रियः स्त्रीणां अञ्जसा स्व आशिष आत्मनां पतिं पुत्रं भ्रातरं वा घ्नन्ति अर्थे घातयन्ति च ॥४२॥

अञ्जसा	सरलतासे
स्व आशिष	अपनी लालसा
आत्मनां	पूरा करना चाहने-वाली
स्त्रीणां	स्त्रियोंका
कश्चित् प्रियः न	कोई भी प्रिय नहीं होता,
हि अर्थे	क्योंकि स्वार्थके लिए (वे)
पतिं पुत्रं भ्रातरं	पति, पुत्र, भाईको
घ्नन्ति वा	मार देती हैं या
घातयन्ति च	मरवा भी देती हैं ॥४२॥

प्रतिश्रुतं ददामीति वचस्तन्न मृषा भवेत् ।
वधं नार्हति चेन्द्रोऽपि तत्रेदमुपकल्पते ॥४३॥

प्रतिश्रुतं ददामि इति वचः तत् न मृषा भवेत् वधं न अर्हति च इन्द्रः अपि तत्र इदं उपकल्पते ॥४३॥

ददामि इति	'दूंगा' इस प्रकार
प्रतिश्रुतं	मैंने वचन दिया है,
तत् वचः	वह वाणी
मृषा न भवेत्	झूठी न हो
च इन्द्रः अपि	और इन्द्र भी
वधं न अर्हति	वधके योग्य नहीं है
तत्र इदं	इस विषयमें यह
उपकल्पते	(युक्ति) करता हूँ ॥४३॥

इति संचिन्त्य भगवान्मारीचः कुरुनन्दन ।
उवाच किञ्चित् कुपित आत्मानं च विगर्हयन् ॥४४॥

इति सञ्चिन्त्य भगवान् मारीचः कुरुनन्दन उवाच किञ्चित् कुपित आत्मानं च विगर्हयन् ॥४४॥

कुरुनन्दन	परीक्षित !	**किञ्चित् कुपित**	कुछ क्रोध करके
भगवान्	भगवान्	**च आत्मानं**	और अपनी
मारीचः	मरीचिनन्दन (कश्यप)	**विगर्हयन्**	भर्त्सना करते
		उवाच	बोले ॥४४॥
इति सञ्चिन्त्य	ऐसा सोचकर		

कश्यप उवाच—

पुत्रस्ते भविता भद्रे इन्द्रहा देवबान्धवः ।
संवत्सरं व्रतमिदं यद्यञ्जो धारयिष्यसि ॥४५॥

पुत्रः ते भविता भद्रे इन्द्रहा देवबान्धवः संवत्सरं व्रतं इदं यदि अञ्जः धारयिष्यसि ॥४५॥

भद्रे	कल्याणी !	**ते पुत्रः**	तुम्हारा पुत्र
यदि अञ्जः	यदि पूरी विधिसे	**इन्द्रहा**	इन्द्रको मारनेवाला
इदं व्रतं	यह नियम	**देवबान्धवः**	देवताओंका भाई
संवत्सरं	एक वर्ष तक	**भविता**	होगा ॥४५॥
धारयिष्यसि	धारण करोगी तो		

दितिरुवाच-

धारयिष्ये व्रतं ब्रह्मन्ब्रूहि कार्याणि यानि मे ।
यानि चेह निषिद्धानि न व्रतं घ्नन्ति यानि तु ॥४६॥

धारयिष्ये व्रतं ब्रह्मन् ब्रूहि कार्याणि यानि मे यानि च इह निषिद्धानि न व्रतं घ्नन्ति यानि तु ॥४६॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
व्रतं धारयिष्ये	मैं व्रत धारण करूँगी,
यानि मे	जो-जो मुझे
कार्याणि	करना है
इह यानि	इसमें जो-जो
निषिद्धानि	निषिद्ध है,
च यानि व्रतं तु	और जो व्रतको तो
घ्नन्ति न	नष्ट नहीं करते
ब्रूहि	यह बतलाइये ॥४६॥

कश्यप उवाच–

न हिंस्याद्भूतजातानि न शपेन्नानृतं वदेत् ।
नच्छिन्द्यान्नखरोमाणि न स्पृशेद्यदमङ्गलम् ॥४७॥

न हिंस्यात् भूत जातानि न शपेत् न अनृतं वदेत् न छिन्द्यात् नख रोमाणि न स्पृशेत् यत् अमङ्गलं ॥४७॥

भूतजातानि न हिंस्यात्	प्राणिमात्रकी हिंसा न करे,
शपेत् न	(किसीको) गाली न दे,
अनृतं न वदेत्	झूठ न बोले,
नख रोमाणि न छिन्द्यात्	नख और रोम न काटे,
यत् अमङ्गलं स्पृशेत् न	जो अशुभ वस्तु हो उसका स्पर्श न करे ॥४७॥

नाप्सु स्नायान्न कुप्येत न सम्भाषेत दुर्जनैः ।
न वसीताधौतवासः स्रजं च विधृतां क्वचित् ॥४८॥

न अप्सु स्नायात् न कुप्येत न सम्भाषेत् दुर्जनैः न वसीत अधौत वासः स्रजं च विधृतां क्वचित् ॥४८॥

अप्सु न स्नायात्	जलमें घुसकर स्नान न करे
कुप्येत न	क्रोध न करे,
दुर्जनैः न सम्भाषेत्	दुष्ट लोगोंसे न बोले
अधौतवासः न वसीत	बिना धोया वस्त्र न पहिने
च क्वचित् विधृतां स्रजं	और किसीकी पहिनी माला (न पहिने) ॥४८॥

नोच्छिष्टं चण्डिकान्नं च सामिषं वृषलाहृतम् ।
भुञ्जीतोदक्यया दृष्टं पिबेदञ्जलिना त्वपः ॥४६॥

न उच्छिष्टं चण्डिका अन्नं च स आमिषं वृषल आहृतं भुञ्जीत उदक्यया दृष्टं पिबेत् अञ्जलिना तु अपः ॥४६॥

उच्छिष्टं	जूठा,	**दृष्टं**	दृष्टि पड़ा
चण्डिका अन्नं	कालीका प्रसाद,	**न भुञ्जीत**	न खाय
स आमिषं	मांसयुक्त,	**अञ्जलिना तु**	अञ्जलिसे ही
वृषल आहृतं	शूद्रका लाया	**अपः न पिबेत्**	पानी न पिये ॥४६॥
च उदक्यया	और रजस्वलाकी		

नोच्छिष्टास्पृष्टसलिला सन्ध्यायां मुक्तमूर्धजा ।
अनर्चितासंयतवाङ् नासंवीता बहिश्चरेत् ॥५०॥

न उच्छिष्टा अस्पृष्ट सलिला सन्ध्यायां मुक्त मूर्धजा अनर्चिता असंयत वाक् न असंवीता बहिः चरेत् ॥५०॥

उच्छिष्टा	जूठे मुख	**असंयत वाक्**	वाणीको संयमित किये बिना
अस्पृष्ट सलिला	जलसे आचमन किये बिना	**न**	न रहे
सन्ध्यायां	सन्ध्याके समय,	**असंवीता**	चद्दर ओढ़े बिना
मुक्त मूर्धजा	बाल खोले	**न बहिः चरेत्**	बाहर न घूमे ॥५०॥
अनर्चिता	बिना शृंगार किये		

नाधौतपादाप्रयता नार्द्रपान्नो उदक्शिराः ।
शयीत नापराङ्नान्यैर्न नग्ना न च सन्ध्ययोः ॥५१॥

न अधौत पादा अप्रयता न आर्द्रपात् न उदक् शिराः शयीत न अपराङ् न अन्यैः न नग्ना न च सन्ध्ययोः ॥५१॥

न अधौत पादा	बिना हाथ-पैर धोये,	**न अन्यैः**	न दूसरेके साथ,
अप्रयता	अपवित्र दशामें,	**न नग्ना**	न नंगी
न आर्द्र पात्	न गीले पैर,	**च न सन्ध्ययोः**	और न प्रातः-सायं
न उदक् शिराः	न उत्तर सिर करके,		सन्ध्या कालमें
न अपराङ्	न पश्चिम करके	**शयीत**	सोवे ॥५१॥

धौतवासाः शुचिर्नित्यं सर्वमङ्गलसंयुता ।
पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्गोविप्राञ् श्रियमच्युतम् ॥५२॥

धौतवासाः शुचिः नित्यं सर्व मङ्गल संयुता पूजयेत् प्रातराशात् प्राक् गोविप्रान् श्रियं अच्युतम् ॥५२॥

धौतवासाः	धुला वस्त्र पहिने,	**प्राक्**	पहिले
नित्यं शुचिः	सदा पवित्र रहे,	**गो विप्रान्**	गौ-ब्राह्मण तथा
सर्व मङ्गल	सब सौभाग्य	**श्रियं अच्युतं**	लक्ष्मी-नारायणकी
संयुता	शृंगार पहिने रहे	**पूजयेत्**	पूजा करें ॥५२॥
प्रातराशात्	कलेऊ करनेसे		

स्त्रियो वीरवतीश्चार्चेत्स्रग्गन्धबलिमण्डनैः ।
पतिं चाचर्योपतिष्ठेत ध्यायेत्कोष्ठगतं च तम् ॥५३॥

स्त्रियः वीरवतीः च अर्चेत् स्रक् गन्ध बलि मण्डनैः पतिं च अर्च्य उपतिष्ठेत ध्यायेत् कोष्ठगतं च तम् ॥५३॥

वीरवतीः	सौभाग्यवती	**च पतिं अर्च्य**	फिर पतिकी पूजा
स्त्रियः च	स्त्रियोंकी भी		करके
स्रक् गन्ध बलि	माला, सुगन्धित-	**उपतिष्ठेत**	उसकी सेवामें लगी
	द्रव्य, उपहार		रहे,
मण्डनैः अर्चेत्	आभूषणादिसे पूजा	**तं कोष्ठगतं च**	उसे अपनी कोखमें
	करें,		पहुँचा
		ध्यायेत्	चिन्तन करें ॥५३॥

सांवत्सरं पुंसवनं व्रतमेतदविप्लुतम् ।
धारयिष्यसि चेत्तुभ्यं शक्रहा भविता सुतः ॥५४॥

सांवत्सरं पुंसवनं व्रतं एतत् अविप्लुतं धारयिष्यसि चेत् तुभ्यं शक्रहा भविता सुतः ॥५४॥

एतत् पुंसवनं	यह पुंसवन
व्रतं	व्रत
चेत् सांवत्सरं	यदि वर्षभर तक
अविप्लुतं	बिना त्रुटिके
धारयिष्यसि	धारण करोगी तो
तुभ्यं शक्रहा	तुमसे इन्द्रको मारनेवाला
सुतः भविता	पुत्र उत्पन्न होगा ॥५४॥

*श्रीरुद्र उवाच-**

बाढमित्यभिप्रेत्याथ दिती राजन् महामनाः ।
काश्यपं गर्भमाधत्त व्रतं चाञ्जो दधार सा ॥५५॥

बाढं इति अभिप्रेत्य अथ दिती राजन् महामनाः काश्यपं गर्भं आधत्त व्रतं च अञ्जः दधार सा ॥५५॥

राजन्	राजन् !
बाढं इति	'बहुत अच्छा' इस प्रकार
अभिप्रेत्य	अपना अभिप्राय बताकर
अथ महामनाः	फिर उत्साह पूर्वक
दिती	दितिने
काश्यपं गर्भं	कश्यपजीसे गर्भ
आधत्त	धारण किया
च अञ्जः व्रतं	और अनायास नियमोंका भी
सा दधार	वह पालन करने लगी ॥५५॥

मातृष्वसुरभिप्रायमिन्द्र आज्ञाय मानद ।
शुश्रूषणेनाश्रमस्थां दितिं पर्यचरत्कविः ॥५६॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

मातृष्वसुः अभिप्रायं इन्द्रः आज्ञाय मानद शुश्रूषणेन आश्रमस्थां दितिं पर्यचरत् कविः ॥५६॥

मानद	सम्मान देनेवाले परीक्षित !
कविः इन्द्रः	बुद्धिमान इन्द्रने
मातृष्वसुः	मौसीका
अभिप्रायं	अभिप्राय
आज्ञाय	जानकर
दितिं	दितिके
आश्रमस्थां	आश्रममें रहकर
शुश्रूषणेन	(उसकी) शुश्रूषा
पर्यचरत्	सेवा करने लगे ॥५६॥

नित्यं वनात्सुमनसः फलमूलसमित्कुशान् ।
पत्राङ्कुरमृदोऽपश्च काले काल उपाहरत् ॥५७॥

नित्यं वनात् सुमनसः फल मूल समित् कुशान् पत्र अङ्कुरमृत् अपः च काले काल उप आहरत् ॥५७॥

नित्यं	प्रतिदिन
काले काल	समय-समयपर
वनात्	वनसे
सुमनसः फल	पुष्प, फल,
मूल समित्	मूल, समिधा,
कुशान् पत्र	कुश, पत्र (तुलसी आदि)
अङ्कुरमृत्	दूर्वाङ्कुर, मिट्टी
च अपः	और जल
उप आहरत्	लाने लगे ॥५७॥

एवं तस्या व्रतस्थाया व्रतच्छिद्रं हरिर्नृप ।
प्रेप्सुः पर्यचरज्जिह्मो मृगहेव मृगाकृतिः ॥५८॥

एवं तस्या व्रतस्थाया व्रतः छिद्रं हरिः नृप प्रेप्सुः पर्यचरत् जिह्मः मृगहा इव मृग आकृतिः ॥५८॥

नृप	राजन् !
एवं	इस प्रकार
तस्या व्रतस्थाया	उस नियम निष्ठा (दिति) के
व्रतः छिद्रं	नियमोंमें त्रुटि
प्रेप्सुः	पकड़नेके लिए
मृग आकृतिः	मृगका आकार धारण करके
मृगहा इव	(मृगोंमें मिले) बहेलियेके समान
जिह्मः हरिः	छली इन्द्र
पर्यचरत्	(उसकी) सेवा करते थे ॥५८॥

नाध्यगच्छद्व्रतच्छिद्रं तत्परोऽथ महीपते ।
चिन्तां तीव्रां गतः शक्रः केन मे स्याच्छिवं त्विह ॥५९॥

न अधिगच्छत् व्रतः छिद्रं तत् परः अथ महीपते चिन्तां तीव्रां गतः शक्रः केन मे स्यात् शिवं तु इह ॥५९॥

महीपते	राजन् !	तीव्रां चिन्तां	बहुत चिन्तित हुए
तत् परः	तत्पर रहनेपर भी जब	गतः	कि
		इह मे	यहाँ मेरा
व्रतः छिद्रं	नियमोंमें त्रुटि	केन	किस उपायसे
न अधिगच्छत्	नहीं पकड़ सके	शिवं	कल्याण हो ॥५९॥
अथ तु शक्रः	तब तो इन्द्र		

एकदा सा तु सन्ध्यायामुच्छिष्टा व्रतकर्शिता ।
अस्पृष्टवार्यधौताङ्घ्रिः सुष्वाप विधिमोहिता ॥६०॥

एकदा सा तु सन्ध्यायां उच्छिष्टा व्रत कर्शिता अस्पृष्ट वारि अधौत अङ्घ्रिः सुष्वाप विधि मोहिता ॥६०॥

एकदा सा तु	एक बार वह तो	उच्छिष्टा	जूठे मुख
विधि मोहिता	दैव वश भूलकर	अस्पृष्ट वारि	बिना कुल्ला किये,
		अधौत अङ्घ्रि	बिना पैर धोये,
व्रत कर्शिता	नियम पालनसे थकी	सुष्वाप	सो गयी ॥६०॥
सन्ध्यायां	सन्ध्याके समय		

लब्ध्वा तदन्तरं शक्रो निद्रापहृतचेतसः ।
दितेः प्रविष्ट उदरं योगेशो योगमायया ॥६१॥

लब्ध्वा तत् अन्तरं शक्रः निद्रा अपहृत चेतसः दितेः प्रविष्ट उदरं योगेशः योगमायया ॥६१॥

तत् अन्तरं	यह अवसर	**निद्रा**	निद्रासे
लब्ध्वा	पाकर	**अपह्नुत चेतसः**	आक्रान्त चित्त
योगेशः शक्रः	योगेश्वर इन्द्र	**दितेः उदरं**	दितिके पेटमें
योगमायया	अपनी योगमायासे	**प्रविष्टः**	प्रवेश कर गये ॥६१॥

चकर्त सप्तधा गर्भं वज्त्रेण कनकप्रभम् ।
रुदन्तं सप्तधैकैकं मा रोदीरिति तान् पुनः ॥६२॥

चकर्त सप्तधा गर्भं वज्त्रेण कनकप्रभं रुदन्तं सप्तधा एकैकं मा रोदीः इति तान् पुनः ॥६२॥

कनकप्रभं गर्भं	सोनेके समान चमकते गर्भको	**मा रोदीः**	'मत रोओ' (यह कह कर)
वज्त्रेण सप्तधा	वज्त्रसे सात टुकड़ोंमें	**तान् पुनः**	उनको फिर
चकर्त	(वहां उन्होंने) काट दिया,	**एकैकं**	एक-एकको
रुदन्तं	(जब वे) रोने लगे (तब)	**सप्तधा**	सात-सात टुकड़े (कर दिए) ॥६२॥

ते तमूचुः पाट्यमानाः सर्वे प्राञ्जलयो नृप ।
नो जिघांससि किमिन्द्र भ्रातरो मरुतस्तव ॥६३॥

ते तं ऊचुः पाट्यमानाः सर्वे प्राञ्जलयः नृप नः जिघांससि किं इन्द्र भ्रातरः मरुतः तव ॥६३॥

नृप	राजन् !	**इन्द्र नः किं**	'इन्द्र' हमें क्यों
पाट्यमानाः	काटे जाते समय	**जिघांससि**	मार रहे हो,
ते सर्वे	वे सब	**तव भ्रातरः**	(हम तो) तुम्हारे भाई
प्राञ्जलयः	हाथ जोड़कर		
तं ऊचुः	उस (इन्द्र) से बोले,	**मरुतः**	मरुद्गण हैं ॥६३॥

मा भैष्ट भ्रातरो मह्यं यूयमित्याह कौशिकः ।
अनन्यभावान् पार्षदानात्मनो मरुतां गणान् ॥६४॥

मा भैष्ट भ्रातरः मह्यं यूयं इति आह कौशिकः अनन्य भावान् पार्षदान् आत्मनः मरुतां गणान् ॥६४॥

अनन्य भावान्	(तब) अनन्य प्रेमी	**आह**	कहा
आत्मनः	अपने उन (भावी)	**मह्यं भ्रातरः**	मेरे भाइयो
पार्षदान्	पार्षदोंसे	**यूयं मा भैष्ट**	तुम लोग डरो मत ॥६४॥
कौशिकः इति	इन्द्रने यह		

न ममार दितेर्गर्भः श्रीनिवासानुकम्पया ।
बहुधा कुलिशक्षुण्णो द्रौण्यस्त्रेण यथा भवान् ॥६५॥

न ममार दितेः गर्भः श्रीनिवास अनुकम्पया बहुधा कुलिश क्षुण्णः द्रौणि अस्त्रेण यथा भवान् ॥६५॥

श्रीनिवास	भगवान् नारायणकी	**कुलिशः**	वज्र द्वारा
अनुकम्पया	कृपासे	**बहुधा क्षुण्णः**	अनेक टुकड़ोंमें कटकर भी
यथा भवान्	जैसे तुम		
द्रौणि अस्त्रेण	अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे (नहीं मरे)	**दितेः गर्भ**	दितिका गर्भ
		ममार न	मरा नहीं ॥६५॥

सकृदिष्ट्वाऽऽदिपुरुषं पुरुषो याति साम्यताम् ।
संवत्सरं किञ्चिदूनं दित्या यद्धरिरर्चितः ॥६६॥

सकृत् इष्ट्वा आदिपुरुषं पुरुषः याति साम्यतां संवत्सरं किञ्चित् ऊनं दित्या यत् हरिः अर्चितः ॥६६॥

यत् दित्या	क्योंकि दितिने	**आदिपुरुषं**	आदिपुरुष भगवान्-की
संवत्सरं	एक वर्षमें		
किञ्चित् ऊनं	कुछ ही कम समय तक	**सकृत् इष्ट्वा**	एक ही बार पूजा करके
हरिः अर्चितः	श्रीहरिकी पूजा की थी,	**साम्यतां याति**	उनकी समानता पा लेता है ॥६६॥
पुरुषः	पुरुष		

सजूरिन्द्रेण पञ्चाशद्देवास्ते मरुतोऽभवन् ।
व्यपोह्य मातृदोषं ते हरिणा सोमपाः कृताः ॥६७॥

सजूः इन्द्रेण पञ्चाशत् देवाः ते मरुतः अभवन् व्यपोह्य मातृदोषं ते हरिणा सोमपाः कृताः ॥६७॥

सजूः इन्द्रेण	वे अब इन्द्रके साथ	**व्यपोह्य**	त्यागकर
ते पञ्चाशत्	वे सब पचास	**इन्द्रेण ते**	इन्द्र द्वारा वे
मरुतः देवाः	मरुत् देवता	**सोमपाः**	सोमपानके अधिकारी देवता
अभवन्	हो गये		
मातृदोषं	माताके दोषको	**कृताः**	बना लिए गए ॥६७॥

दितिरुत्थाय ददृशे कुमारानलप्रभान् ।
इन्द्रेण सहितान् देवी पर्यतुष्यदनिन्दिता ॥६८॥

दितिः उत्थाय ददृशे कुमारान् अनलप्रभान् इन्द्रेण सहितान् देवी पर्यतुष्यत् अनिन्दिता ॥६८॥

दितिः उत्थाय	दितिने उठकर	**ददृशे**	देखा
अनलप्रभान्	अग्निके समान तेजस्वी	**अनिन्दिता देवी**	निन्दा न करने योग्य वह देवी
कुमारान्	बालकोंको	**पर्यतुष्यत्**	इससे बहुत प्रसन्न हुई ॥६८॥
इन्द्रेण सहितान्	इन्द्रके साथ		

अथेन्द्रमाह तातेहमादित्यानां भयावहम् ।
अपत्यमिच्छन्त्यचरं व्रतमेतत्सुदुष्करम् ॥६९॥

अथ इन्द्रं आह तात अहं आदित्यानां भय आवहं अपत्यं इच्छन्ति अचरं व्रतं एतत् सुदुष्करम् ॥६९॥

अथ इन्द्रं आह	फिर इन्द्रसे बोली	**अपत्यं इच्छन्ति**	पुत्र पानेकी इच्छासे
तात अहं	'बेटा' मैंने	**एतत् सुदुष्क व्रतं अचरं**	यह बहुत दुष्कर नियम पालन किया है ॥६९॥
आदित्यानां	अदितिके पुत्रोंके लिए		
भय आवहं	भयदायक		

एकः सङ्कल्पितः पुत्रः सप्त सप्ताभवन् कथम् ।
यदि ते विदितं पुत्र सत्यं कथय मा मृषा ॥७०॥

एकः सङ्कल्पितः पुत्रः सप्त सप्त अभवन् कथं यदि ते विदितं पुत्र सत्यं कथय मा मृषा ॥७०॥

एकः पुत्रः	एक पुत्रका	**विदितं सत्यं**	पता हो तो सच
सङ्कल्पितः	सङ्कल्प किया था,	**कथय**	बता दो,
सप्त सप्त	उनचास	**मृषा मा**	झूठ मत बोलना
कथं अभवन्	कैसे हो गये,		॥७०॥
पुत्र यदि ते	बेटा, यदि तुम्हें		

इन्द्र उवाच-

अम्ब तेऽहं व्यवसितमुपधार्यागतोऽन्तिकम् ।
लब्धान्तरोऽच्छिदं गर्भमर्थबुद्धिर्न धर्मवित् ॥७१॥

अम्ब ते अहं व्यवसितं उपधार्य आगतः अन्तिकं लब्धा अन्तरः अच्छिदं गर्भं अर्थ बुद्धिः न धर्मवित् ॥७१॥

अम्ब	माता !	**धर्मवित् न**	(मैं) धर्मज्ञ नहीं हूँ (अतः)
ते व्यवसितं	आपके उद्योगको	**अन्तरः लब्धा**	(व्रतमें) त्रुटि पाकर
उपधार्य	जानकर	**गर्भं अच्छिदं**	(मैंने) गर्भको काटा
अहं ते अन्तिकं	मैं आपके समीप		॥७१॥
अर्थ बुद्धिः	स्वार्थ बुद्धिसे		
आगतः	आया था		

कृत्तो मे सप्तधा गर्भ आसन् सप्त कुमारकाः ।
तेऽपि चैकैकशो वृक्णाः सप्तधा नापि मन्निरे ॥७२॥

कृत्तः मे सप्तधा गर्भ आसन् सप्त कुमारकाः ते अपि च एक एकशः वृक्णाः सप्तधा न अपि मन्निरे ॥७२॥

मे गर्भ	मैंने गर्भको
सप्तधा कृत्तः	सात टुकड़ोंमें काट दिया तो
सप्त कुमारकाः	सात बालक
आसन्	हो गये
ते अपि च	उनको भी फिर
एक एकशः	एक-एकको
सप्तधा	सात-सात टुकड़ोंमें
वृकणाः अपि	काटे जानेपर भी
न मम्रिरे	नहीं मरे ॥७२॥

ततस्तत्परमाश्चर्यं वीक्ष्याध्यवसितं मया ।
महापुरुषपूजायाः सिद्धिः काप्यनुषङ्गिणी ॥७३॥

ततः तत् परम आश्चर्यं वीक्ष्य अध्यवसितं मया महापुरुष पूजायाः सिद्धिः कापि अनुषङ्गिणी ॥७३॥

ततः	तब
परम आश्चर्यं	अत्यन्त आश्चर्य-जनक
तत् वीक्ष्य	यह (घटना) देखकर
मया अध्यवसितं	मैंने निश्चय किया कि
महापुरुष	भगवान् पुरुषोत्तमकी
पूजायाः	पूजा की
कापि	(यह) कोई
अनुषङ्गिणी	अनिवार्य
सिद्धिः	सिद्धि है ॥७३॥

आराधनं भगवत ईहमाना निराशिषः ।
ये तु नेच्छन्त्यपि परं ते स्वार्थकुशलाः स्मृताः ॥७४॥

आराधनं भगवतः ईहमाना निराशिषः ये तु न इच्छन्ति अपि परं ते स्वार्थ कुशलाः स्मृताः ॥७४॥

निराशिषः	निष्काम भावसे
भगवतः	भगवान्‌की
आराधनं	आराधना
ईहमाना ये तु	करते हुए जो लोग तो
परं अपि	परम-पद भी
न इच्छन्ति	नहीं चाहते
ते कुशलाः	वे वास्तविक
स्वार्थ	स्वार्थ निपुण
स्मृताः	कहे गये हैं ॥७४॥

आराध्यात्मप्रदं देवं स्वात्मानं जगदीश्वरम् ।
को वृणीते गुणस्पर्शं बुधः स्यान्नरकेऽपि यत् ॥७५॥

आराध्य आत्मप्रदं देवं स्व आत्मानं जगत् ईश्वरं कः वृणीते गुणः स्पर्शं बुधः स्यात् नरके अपि यत् ॥७५॥

स्व आत्मानं	अपने आत्मरूप
जगत् ईश्वरं	सम्पूर्ण विश्वके स्वामी
आत्मप्रद देवं	अपनेको दे देनेवाले देवताकी
आराध्य	आराधना करके
यत् नरके अपि	जो नरकमें भी
स्यात्	मिलता है
गुणः स्पर्शं	(वह) इन्द्रिय भोग
कः बुधः वृणीते	कौन बुद्धिमान मांगेगा ॥७५॥

तदिदं मम दौर्जन्यं बालिशस्य महीयसि ।
क्षन्तुमर्हसि मातस्त्वं दिष्ट्या गर्भो मृतोत्थितः ॥७६॥

तत् इदं मम दौर्जन्यं बालिशस्य महीयसि क्षन्तुं अर्हसि मातः त्वं दिष्ट्या गर्भः मृत उत्थितः ॥७६॥

तत् इद	अतः यह
मम बालिशस्य	मुझ मूर्खकी
दौर्जन्यं	दुष्टता
महीयसि मातः	पूजनीया माता
त्वं क्षन्तुं अर्हसि	आपको क्षमा कर देना चाहिए,
दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है कि
मृत गर्भः	मरा प्राय गर्भ
उत्थितः	जीवित हो गया है ॥७६॥

श्रीशुक उवाच-

इन्द्रस्तयाभ्यनुज्ञातः शुद्धभावेन तुष्टया ।
मरुद्भिः सह तां नत्वा जगाम त्रिदिवं प्रभुः ॥७७॥

इन्द्रः तया अभ्यनुज्ञातः शुद्ध भावेन तुष्टया मरुत्भिः सह तां नत्वा जगाम त्रिदिवं प्रभुः ॥७७॥

शुद्ध भावेन	(इन्द्रके) शुद्धभावसे
तुष्टया तया	सन्तुष्ट हुई उस (दिति) से
अभ्यनुज्ञातः	आज्ञा पाकर
मरुत्भिः सह	मरुद्गणोंके साथ
तां नत्वा	उस (दिति) को नमस्कार करके
प्रभुः इन्द्रः	देवराज इन्द्र
त्रिदिवं जगाम	स्वर्ग चले गये ॥७७

एवं ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
मङ्गलं मरुतां जन्म किं भूयः कथयामि ते ॥७८॥

एवं ते सर्वं आख्यातं यत् मां त्वं परिपृच्छसि मङ्गलं मरुतां जन्म किं भूयः कथयामि ते ॥७८॥

यत् मां त्वं	जो मुझसे तुमने	**जन्म सर्वं**	जन्मकी सब कथा
परिपृच्छसि	पूछा था	**आख्यातं**	सुना दी
एवं ते	इस प्रकार तुमसे	**ते भूयः किं**	तुमसे और क्या
मंगलं मरुतां	मंगलमय मरुद्गणोंके	**कथयामि**	वर्णन करूँ ॥७८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे मरुदुत्पत्तिकथनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

राजोवाच-

व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन् भवता यदुदीरितम् ।
तस्य वेदितुमिच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति ॥ १ ॥

व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन् भवता यत् उदीरितं तस्य वेदितुं इच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति ॥१॥

ब्रह्मन्	विप्रवर !	येन विष्णुः	जिससे भगवान् विष्णु
भवता यत्	आपने जो	प्रसीदति	प्रसन्न होते हैं
पुंसवनं व्रतं	पुंसवन व्रत	तस्य वेदितुं	उसीको जानना
उदीरितं	कहा	इच्छामि	चाहता हूँ ॥१॥

श्रीशुक उवाच-

शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषिद्भर्तुरनुज्ञया ।
आरभेत व्रतमिदं सार्वकामिकमादितः ॥ २ ॥

शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषित् भर्तुः अनुज्ञया आरभेत व्रतं इदं सार्वकामिकं आदितः ॥२॥

शुक्ले मार्गशिरे	मार्गशीर्षके शुक्ल	सार्वकामिकं	सम्पूर्ण कामना पूर्ण करनेवाला
पक्षे	पक्षके	व्रतं आरभेत	व्रत आरम्भ करे ॥२॥
आदितः	प्रारम्भसे		
भर्तुः अनुज्ञया	पतिकी आज्ञा लेकर		
योषित् इदं	स्त्री यह		

निशम्य मरुतां जन्म ब्राह्मणाननुमन्त्र्य च ।
स्नात्वा शुक्लदती शुक्ले वसीतालङ्कृताम्बरे ।
पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्भगवन्तं श्रिया सह ॥ ३ ॥

निशम्य मरुतां जन्म ब्राह्मणान् अनुमन्त्र्य च स्नात्वा शुक्लदती शुक्ले वसीत अलङ्कृत अम्बरे पूजयेत् प्रातराशात् प्राक् भगवन्तं श्रिया सह ॥३॥

मरुतां जन्म	मरुद्गणोंके जन्म (की कथा)
निशम्य	सुनकर,
च ब्राह्मणान्	और ब्राह्मणोंकी
अनुमन्त्र्य	अनुमति लेकर
शुक्लदती	दांत स्वच्छ करके,
स्नात्वा शुक्ले	स्नान करके श्वेत
अलङ्कृत	आभूषण और
अम्बरे	वस्त्र
वसीत	पहिने !
प्रातराशात्	कलेऊ करनेसे
प्राक्	पहिले
श्रिया सह	लक्ष्मीके साथ
भगवन्तं पूजयेत्	भगवान्की पूजा करें ॥३॥

अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोऽस्तु ते ।
महाविभूतिपतये नमः सकलसिद्धये ॥ ४ ॥

अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमः अस्तु ते महाविभूति पतये नमः सकल सिद्धये ॥४॥

ते अलं	आप अत्यन्त
निरपेक्षाय	निरपेक्ष
पूर्णकाम	पूर्णकामको
नमः अस्तु	नमस्कार है,
ते महाविभूति-	आप महाविभूति-
पतये	पति
सकल सिद्धये	समस्त सिद्धि स्वरूपको
नमः	नमस्कार ॥४॥

यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिनौजसा ।
जुष्ट ईश गुणैः सर्वैस्ततोऽसि भगवान् प्रभुः ॥ ५ ॥

यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिनः ओजसा जुष्ट ईश गुणैः सर्वैः ततः असि भगवान् प्रभुः ॥५॥

यथा त्वं	जैसे आप	**जुष्टः**	नित्ययुक्त हैं
कृपया भूत्या	कृपा, विभूति,	**ततः प्रभुः**	इसलिए स्वामी (आप)
तेजसा महिनः	तेज, महिमा,	**भगवान् असि**	भगवान् हैं ॥५॥
ओजसा	ओजसे,		
सर्वैः ईश गुणैः	सम्पूर्ण ईश्वरीय गुणोंसे		

विष्णुपत्नि महामाये महापुरुषलक्षणे ।
प्रीयेथा मे महाभागे लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥

विष्णुपत्नि महामाये महापुरुष लक्षणे प्रीयेथा मे महाभागे लोकमातः नमः अस्तु ते ॥६॥

महामाये	महामाया,	**महाभागे**	महाभागा
विष्णुपत्नि	विष्णु भगवान्‌की पत्नी	**मे प्रीयेथा**	मुझपर प्रसन्न हो,
महापुरुष लक्षणे	भगवान् पुरुषोत्तम-की (श्रीवत्सरूपमें) लक्षणभूता,	**लोकमातः**	जगज्जननी
		ते नमः अस्तु	आपको नमस्कार है ॥६॥

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महाविभूतिभिर्बलिमुपहराणीति । अनेनाहरहर्मन्त्रेण विष्णोरावाहनार्घ्यपाद्योपस्पर्शनस्नानवासउपवीतविभूषणगन्ध-पुष्पधूपदीपोपहाराद्युपचारांश्च समाहित उपाहरेत् ॥७॥

ॐ नमः भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महाविभूतिभिः बलिं उपहराणि इति । अनेन अहः अहः मन्त्रेण विष्णोः आवाहन अर्घ्य पाद्य उपस्पर्शन स्नान वास उपवीत विभूषण गन्ध पुष्प धूप दीप उपहार आदि उपचारां च समाहित उपाहरेत् ॥७॥

ॐ	ओङ्कार स्वरूप
भगवते	भगवान्
महापुरुषाय	पुरुषोत्तम
महानुभावाय	महाप्रभाव
महाविभूतिपयते	लक्ष्मीपतिको
नमः	नमस्कार,
सह	आपको
महाविभूतिभिः	श्रीलक्ष्मीजीके साथ
बलिं उपहराणि	उपहार भेंट करती हूँ।
इति	इस प्रकार
अनेन मन्त्रेण	इस मन्त्रसे
अहः अहः	प्रतिदिन
विष्णोः	भगवान् विष्णुको
आवाहन अर्घ्यं	आवाहन करके, अर्घ्य,
पाद्य उपस्पर्शन	पाद्य, आचमन,
स्नान वास	स्नान, वस्त्र,
उपवीत	यज्ञोपवीत,
विभूषण	आभूषण,
गन्ध, पुष्प	चन्दन, पुष्प,
धूप दीप	धूप, दीप
उपहार आदि	नैवेद्य आदि
उपचारान् च	पूजा सामग्रीको भी
समाहित	एकाग्र होकर
उपाहरेत्	अर्पित करे ॥७॥

हविःशेषं तु जुहुयादनले द्वादशाहुतीः ।
ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहेति ॥८॥

हविःशेषं तु जुहुयात् अनले द्वादश आहुतिः । ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूति पतये स्वाहा इति ॥८॥

हविःशेषं तु	बचे हुए नैवेद्यसे ही
अनले	अग्निमें
द्वादश आहुतिः	बारह आहुति
जुहुयात्	हवन करे,
'ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूति पतये स्वाहा'	
इति	इस मन्त्रसे ॥८॥

श्रियं विष्णुं च वरदावाशिषां प्रभवावुभौ ।
भक्त्या सम्पूजयेन्नित्यं यदीच्छेत्सर्वसम्पदः ॥ ९ ॥

श्रियं विष्णुं च वरदाः आशिषां प्रभवाः उभौ भक्त्या सम्पूजयेत् नित्यं यदि इच्छेत् सर्व सम्पदः ॥९॥

यदि सर्व सम्पदः	यदि सब सम्पत्ति
इच्छेत्	पानेकी इच्छा हो तो
श्रियं विष्णुं च	लक्ष्मी और विष्णु भगवान्
उभौ वरदाः	दोनों वरदायी
अशिषां प्रभवाः	अभिलाषाओंके प्रदाताओंकी
भक्त्या नित्यं	भक्तिपूर्वक सदा
सम्पूजयेत्	पूजा करे ॥९॥

प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ भक्तिप्रह्वेण चेतसा ।
दशवारं जपेन्मन्त्रं ततः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥१०॥

प्रणमेत् दण्डवत् मूमौ भक्तिप्रह्वेण चेतसा दशवारं जपेत् मन्त्रं ततः स्तोत्रं उदीरयेत् ॥१०॥

भक्तिप्रह्वेण	भक्ति-भावपूर्ण
चेतसा	चित्तसे
भूमौ दण्डवत्	फिर पृथ्वीपर दण्डवत्
प्रणमेत्	प्रणाम करे,
मन्त्रं	तब मन्त्रका
दशवारं जपेत्	दस बार जप करे,
ततः स्तोत्रं	फिर इस स्तोत्रका
उदीरयेत्	उच्चारण करे ॥१०॥

युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परम् ।
इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा मायाशक्तिर्दुरत्यया ॥११॥

युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परं इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा मायाशक्तिः दुरत्यया ॥११॥

युवां तु	आप दोनों ही
विश्वस्य विभू	विश्वमें व्यापक,
जगतः परं	संसारके परम
कारणं	कारण हैं ।
हि इयं	क्योंकि ये (लक्ष्मी-जी)
सूक्ष्मा प्रकृतिः	सूक्ष्म प्रकृति
दुरत्यया	दुष्पारा
मायाशक्तिः	माया शक्ति हैं ॥११॥

तस्या अधीश्वरः साक्षात्त्मेव पुरुषः परः ।
त्वं सर्वयज्ञ इज्येयं क्रियेयं फलभुग्भवान् ॥१२॥

तस्या अधीश्वरः साक्षात् त्वं एव पुरुषः परः त्वं सर्वयज्ञ इज्या इयं क्रिय इयं फलभुक् भवान् ॥१२॥

तस्या अधीश्वरः	उनके अधीश्वर
त्वं एव	आप ही
साक्षात् परः	साक्षात् परम
पुरुषः	पुरुष हैं,
त्वं सर्वयज्ञ	आप सर्वयज्ञ रूप हैं,
इयं इज्या	ये यज्ञ क्रिया हैं ।
इयं क्रिया	ये कर्म रूपा हैं और
भवान् फलभुक्	(उसके) आप फल भोक्ता हैं ॥१२॥

गुणव्यक्तिरियं देवी व्यञ्जको गुणभुग्भवान् ।
त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेन्द्रियाशया ।
नामरूपे भगवती प्रत्ययस्त्वमपाश्रयः ॥१३॥

गुण व्यक्तिः इयं देवी व्यञ्जकः गुणभुक् भवान् त्वं हि सर्व शरीरी आत्मा श्रीः शरीर इन्द्रिय आशया नामरूपे भगवती प्रत्ययः त्वं अपाश्रयः ॥१३॥

इयं देवी	ये देवी (लक्ष्मी)
गुण व्यक्तिः	गुणोंकी अभिव्यक्ति हैं,
व्यञ्जकः	उनको व्यक्त करने-वाले
भवान् गुणभुक्	आप गुणोंके भोक्ता हैं ।
हि	क्योंकि
सर्व	(आप) सब
शरीरी	शरीरोंमें रहनेवाले
आत्मा	आत्मा हैं,
श्रीः	लक्ष्मीजी
शरीर इन्द्रिय	शरीर, इन्द्रियां और
आशया	अन्तःकरण रूप हैं,
भगवती	भगवती (लक्ष्मी)
नामरूपे	नाम और रूपमें
प्रत्ययः	प्रतीत होने वाली हैं,
त्वं अपाश्रयः	आप (इनके) प्रकाशक हैं ॥१३॥

यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ ।
तथा म उत्तमश्लोक सन्तु सत्या महाशिषः ॥१४॥

यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ तथा म उत्तमश्लोक सन्तु सत्या महा आशिषः ॥१४॥

उत्तमश्लोक	पवित्र कीर्ति प्रभु !	**वरदौ**	वरदाता हैं
यथा युवां	जैसे आप दोनों	**तथा म**	वैसे ही मेरी
परमेष्ठिनौ	परमेश्वर	**महा आशिषः**	बड़ी अभिलाषाएँ
त्रिलोकस्य	त्रिलोकीको	**सत्या सन्तु**	पूर्ण हों ॥१४॥

इत्यभिष्टूय वरदं श्रीनिवासं श्रिया सह ।
तन्निःसार्योपहरणं दत्त्वाऽऽचमनमर्चयेत् ॥१५॥

इति अभिष्टूय वरदं श्रीनिवासं श्रिया सह तत् निःसार्य उपहरणं दत्त्वा आचमनं अर्चयेत् ॥१५॥

इति	इस प्रकार	**तत् उपहरणं**	वहांसे नैवेद्य
वरदं श्रीनिवासं	वरदाता भगवान् नारायणकी	**निःसार्य**	हटाकर
		आचमनं दत्त्वा	आचमन देकर
श्रिया सह	लक्ष्मीके साथ	**अर्चयेत्**	(शेष) पूजा करे ॥१५
अभिष्टूय	स्तुति करके		

ततः स्तुवीत स्तोत्रेण भक्तिप्रह्वेण चेतसा ।
यज्ञोच्छिष्टमवघ्राय पुनरभ्यर्चयेद्धरिम् ॥१६॥

ततः स्तुवीत स्तोत्रेण भक्ति प्रह्वेण चेतसा यज्ञ उच्छिष्टं अवघ्राय पुनः अभ्यर्चयेत् हरिम् ॥१६॥

ततः भक्ति-	तब भक्ति-	**यज्ञ उच्छिष्टं**	यज्ञावशेषको
प्रह्वेण	पूर्ण	**अवघ्राय**	सूंघकर
चेतसा	चित्तसे	**पुनः हरिं**	फिर श्रीहरिकी
स्तोत्रेण स्तुवीत	स्तवों द्वारा स्तुति करे,	**अभ्यर्चयेत्**	पूजा करे ॥१६॥

पतिं च परया भक्त्या महापुरुषचेतसा ।
प्रियैस्तैस्तैरुपनमेत् प्रेमशीलः स्वयं पतिः ।
बिभृयात् सर्वकर्माणि पत्न्या उच्चावचानि च ॥१७॥

पतिं च परया भक्त्या महापुरुष चेतसा प्रियैः तैः तैः उपनमेत् प्रेमशीलः स्वयं पतिः बिभृयात् सर्वकर्माणि पत्न्या उच्च अवचानि च ॥१७॥

च	फिर (भगवान्‌की पूजाके बाद)
परया भक्त्या	परम प्रेमसे
पतिं च	पतिको भी
महापुरुष चेतसा	(उनको) परम पुरुष मानकर
तैः तैः प्रियैः	(उनकी) उन-उन प्रिय वस्तुएँ
उपनमेत्	(सेवामें) उपस्थित करे
स्वयं पतिः	स्वयं पति भी
प्रेमशीलः	(पत्नीसे) प्रेम पूर्वक व्यवहार करे
पत्न्या उच्च	पत्नीके बड़े
अवचानि	छोटे
सर्व कर्माणि	कर्मों (कर्तव्यों) को
बिभृयात्	धारण करे (स्वयं कर दें) ॥१७॥

कृतमेकतरेणापि दम्पत्योरुभयोरपि ।
पत्न्यां कुर्यादनर्हायां पतिरेतत् समाहितः ॥१८॥

कृतं एकतरेण अपि दम्पत्योः उभयोः अपि पत्न्यां कुर्यात् अनर्हायां पतिः एतत् समाहितः ॥१८॥

दम्यत्योः	पति-पत्नीमें-से
एकतरेण कृतं	किसी एकके द्वारा भी किया
उभयोः अपि	दोनोंका ही हो जाता है,
पत्न्यां	पत्नीके
अनर्हायां	(रोग, रजो-धर्मादिके कारण) न करने योग्य हो जानेपर
पतिः समाहितः	पतिको सावधानीसे
एतत् कुर्यात्	यह व्रत करना चाहिए ॥१८॥

विष्णोर्व्रतमिदं बिभ्रन्न विहन्यात् कथञ्चन ।
विप्रान् स्त्रियो वीरवतीः स्रग्गन्धबलिमण्डनैः ।
अर्चेदहरहर्भक्त्या देवं नियममास्थितः ॥१९॥

विष्णोः व्रतं इदं बिभ्रन् न विहन्यात् कथञ्चन विप्रान् स्त्रियः वीरवतीः स्रक् गन्ध बलि मण्डनैः अर्चेत् अहरहः भक्त्या देवं नियमं आस्थितः ॥१९॥

इदं विष्णोः व्रतं	यह विष्णु-व्रत
बिभ्रन्	धारण करके
कथञ्चन	किसी भी तरह (बीचमें)
न विहन्यात्	न छोड़े,
विप्रान्	ब्राह्मणों और
वीरवती स्त्रियः	सुहागिनी स्त्रियोंका
देवं	तथा भगवान्‌की
नियमं	नियम
आस्थितः	निष्ठ होकर
स्रक् गन्ध	माला, चन्दन,
बलि मण्डनैः	नैवेद्य, आभूषणादिसे
भक्त्या अहरहः	भक्ति सहित प्रति-दिन
अर्चेत्	पूजन करे ॥१९॥

उद्वास्य देवं स्वे धाम्नि तन्निवेदितमग्रतः ।
अद्यादात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकामर्द्धये तथा ॥२०॥

उद्वास्य देवं स्वे धाम्नि तत् निवेदितं अग्रतः अद्यात् आत्म विशुद्धि अर्थं सर्वकाम ऋद्धये तथा ॥२०॥

देवं स्वे धाम्नि	(तब) भगवान्‌को उनके धाम (जानेको)
उद्वास्य	विसर्जित करके
आत्म विशुद्धि	चित्त शुद्धिके
अर्थं तथा	लिए तथा
सर्वकाम ऋद्धये	सम्पूर्ण अभिलाषाओं-की पूर्तिके लिए
अग्रतः	पहिले ही
तत् निवेदितं	उन (भगवान्) को निवेदित (प्रसाद)
अद्यात्	ग्रहण करे ॥२०॥

एतेन पूजाविधिना मासान् द्वादश हायनम् ।
नीत्वाथोपचरेत्साध्वी कार्तिके चरमेऽहनि ॥२१॥

एतेन पूजा विधिना मासात् द्वादश हायनं नीत्वा अथ उपचरेत साध्वी कार्तिके चरमे अहनि ॥२१॥

एतेन	इस
पूजा विधिना	पूजा विधिसे
द्वादश मासान्	बारह महीनें,
हायनं	पूरा वर्ष बिताकर
कार्तिके	कार्तिकके बाद
चरमे अहनि	व्रतके अन्तिम दिन (मार्गशीर्ष अमावस्याको)
साध्वी	वह पतिव्रता
उपचरेत्	उद्यापन करे ॥२१॥

श्वोभूतेऽप उपस्पृश्य कृष्णमभ्यर्च्य पूर्ववत् ।
पयःश्रृतेन जुहुयाच्चरुणा सह सर्पिषा ।
पाकयज्ञविधानेन द्वादशैवाहुतीः पतिः ॥२२॥

श्व अभूते अप उपस्पृश्य कृष्णं अभ्यर्च्य पूर्ववत् पयः श्रृतेन जुहुयात् चरुणा सह सर्पिषा पाकयज्ञ विधानेन द्वादश एव आहुतीः पतिः ॥२२॥

श्व अभूते	(उस दिन) सबेरा होते ही
अप उपस्पृश्य	स्नान करके
पूर्ववत् कृष्णं	पहिलेके समान भगवान् विष्णुकी
अभ्यर्च्य	पूजा करके
पतिः	(उसका) पति
पाकयज्ञ	पाक-यज्ञकी
विधानेन	विधिसे
सह सर्पिषा	घीके साथ
पयः श्रृतेन	दूधमें पकायी
चरुणा	खीरसे
द्वादश एव	बारह ही
आहुतीः	आहुतियोंसे
जुहुयात्	हवन करे ॥२२॥

आशिषः शिरसाऽऽदाय द्विजैः प्रीतैः समीरिताः ।
प्रणम्य शिरसा भक्त्या भुञ्जीत तदनुज्ञया ॥२३॥

आशिषः शिरसा आदाय द्विजैः प्रीतैः समीरिताः प्रणम्य शिरसा भक्त्या भुञ्जीत तत् अनुज्ञया ॥२३॥

प्रीतैः द्विजैः	प्रसन्न हुए ब्राह्मणों द्वारा
समीरिताः	दिये गये
आशिषः	आशीर्वादको

शिरसा आदाय	मस्तक झुकाकर स्वीकार करके	**तत् अनुज्ञया**	उनकी अनुमति लेकर
भक्त्या	भक्तिपूर्वक	**भुञ्जीत**	भोजन करे ॥२३॥
शिरसा प्रणम्य	सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके		

आचार्यमग्रतः कृत्वा वाग्यतः सह बन्धुभिः ।
दद्यात्पत्न्यै चरोः शेषं सुप्रजस्त्वं सुसौभगम् ॥२४॥

आचार्यं अग्रतः कृत्वा वाक् यतः सह बन्धुभिः दद्यात् पत्न्यैः चरोः शेषं सुप्रजः त्वं सुसौभगम् ॥२४॥

आचार्यं	आचार्यको	**पत्न्यैः दद्यात्**	पत्नीको (इस संकल्प से) दे
अग्रतः कृत्वा	पहिले (भोजन) कराके	**त्वं सुप्रजः**	तुम (प्रसाद) सत्पुत्र और
सह बन्धुभिः	बन्धु-बान्धवोंके साथ	**सुसौभगं**	सौभाग्य देनेवाले होओ ॥२४॥
वाक् यतः	मौन होकर (भोजन करे) तब		
चरोः शेषं	हवनसे बची खीर		

एतच्चरित्वा विधिवद्व्रतं विभो-
रभीप्सितार्थं लभते पुमानिह ।
स्त्री त्वेतदास्थाय लभेत सौभगं
श्रियं प्रजां जीवपतिं यशो गृहम् ॥२५॥

एतत् चरित्वा विधिवत् व्रतं विभोः अभीप्सित अर्थं लभते पुमान् इह स्त्री तु एतत् आस्थाय लभेत सौभगं श्रियं प्रजां जीवपतिं यशः गृहम् ॥२५॥

एतत् विभोः	यह सर्वेश्वर प्रभु-का	**चरित्वा पुमान्**	करके पुरुष
		इह	इसी जीवनमें
व्रतं विधिवत्	व्रत विधिपूर्वक	**अभीप्सित अर्थं**	अभीष्ट प्रयोजन

लभते	प्राप्त कर लेता है,	**प्रजां जीवपतिं**	पुत्र, पतिका जीवन,
स्त्री तु	स्त्री तो	**यशः गृहं**	यश और घर
एतत् आस्थाय	इसका पालन करके	**लभेत**	पाती है ॥२५॥
सौभगं श्रियं	सौभाग्य, लक्ष्मी,		

कन्या च विन्देत समग्रलक्षणं
वरं त्ववीरा हतकिल्बिषा गतिम् ।
मृतप्रजा जीवसुता धनेश्वरी
सुदुर्भगा सुभगा रूपमग्र्यम् ॥२६॥

कन्या च विन्देत समग्र लक्षणं वरं तु अवीरा हत किल्बिषा गतिं मृतप्रजा जीवसुता धनेश्वरी सुदुर्भगा सुभगा रूपं अग्र्यम् ॥२६॥

च कन्या	और कन्या (इसे करके)	**मृतप्रजा**	जिसकी सन्तान मर जाती हो
समग्र लक्षणं	सम्पूर्ण शुभ लक्षण युक्त	**जीवसुता**	उसके पुत्र जीवित रहते हैं,
वरं	पति (पाती है),	**धनेश्वरी**	धनवान
तु अवीरा	यदि विधवा करे	**सुदुर्भगा**	अभागिनीको
हत किल्बिषा	उसके पाप नष्ट हो जाते हैं,	**सुभगा**	सौभाग्य तथा
गतिं	उत्तम गति(पाती है)	**अग्र्यं रूपं**	श्रेष्ठ रूप मिलता है ॥२६॥

विन्देद् विरूपा विरुजा विमुच्यते
य आमयावीन्द्रियकल्पदेहम् ।
एतत्पठन्नभ्युदये च कर्म-
ण्यनन्ततृप्तिः पितृदेवतानाम् ॥२७॥

विन्देत् विरूपा विरुजा विमुच्यते य आमयाः इन्द्रिय कल्पदेहं एतत् पठन् अभ्युदये च कर्मणि अनन्त तृप्तिः पितृदेवतानाम् ॥२७॥

विरूपा	कुरूपा
(रूपं) विन्देत्	उत्तम रूप पा लेती है,
विरुजा	रोगी
य	जो
आमयाः इन्द्रिय	इन्द्रियोंमें रोग था
विमुच्यते	उससे छूट जाता है।
कल्पदेहं	उसका काया-कल्प हो जाता है।
च अभ्युदये	और मांगलिक
कर्मणि	कर्मोंके अवसरपर
एतत् पठन्	इसका पाठ करनेसे
पितृदेवतानां	पितरों तथा देवताओंकी
अनन्त तृप्तिः	अनन्त तृप्ति होती है ॥२७॥

तुष्टाः प्रयच्छन्ति समस्तकामान्
होमावसाने हुतभुक् श्रीर्हरिश्च।
राजन् महन्मरुतां जन्म पुण्यं
दितेर्व्रतं चाभिहितं महत्ते ॥२८॥

तुष्टाः प्रयच्छन्ति समस्त कामान् होम अवसाने हुतभुक् श्रीः हरिः च राजन् महत् मरुतां जन्म पुण्यं दितेः व्रतं च अभिहितं महत् ते ॥२८॥

होम अवसाने	हवनके अन्तमें
तुष्टाः	सन्तुष्ट होकर
हुतभुक् च	अग्निदेव और
श्रीः हरिः	श्रीलक्ष्मीनारायण
समस्त कामान्	सम्पूर्ण अभिलाषा
प्रयच्छन्ति	प्रदान करते हैं
राजन्	राजन् !
महत् पुण्यं	महान् पुण्यप्रद
मरुतां जन्म	मरुद्गणोंका जन्म
च दितेः	और दितिके
महत् व्रतं	महान् व्रतको
ते अभिहितं	तुम्हें सुना दिया ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे पुंसवनव्रतकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

॥ इति षष्ठः स्कन्धः समाप्तः ॥

हरि ॐ तत्सत्

॥ सप्तमः स्कन्धः ॥

सप्तमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच-

समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन् भूतानां भगवान् स्वयम् ।
इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषमो यथा ॥ १ ॥

समः प्रियः सुहृत् ब्रह्मन् भूतानां भगवान् स्वयं इन्द्रस्य अर्थे कथं दैत्यान् अवधीत् विषमः यथा ॥१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**इन्द्रस्य अर्थे**	फिर इन्द्रके लिए
भगवान् स्वयं	भगवान् स्वभावसे ही	**यथा विषमः**	जैसे कोई भेदभाव रखनेवाला हो
भूतानां समः	सब प्राणियोंके प्रति समान,	**दैत्यान् कथं**	दैत्योंको क्यों
प्रियः सुहृत्	(सबके) प्रिय और सुहृद हैं,	**अवधीत्**	मारा ॥१॥

न ह्यस्यार्थः सुरगणैः साक्षान्निः श्रेयसात्मनः ।
नैवासुरेभ्यो विद्वेषो नोद्वेगश्चागुणस्य हि ॥ २ ॥

न हि अस्य अर्थः सुरगणैः साक्षात् निः श्रेयस आत्मनः न एव असुरेभ्यः विद्वेषः न उद्वेगः च अगुणस्य हि ॥२॥

हि	क्योंकि	**अस्य आत्मनः**	इन परमात्माका
साक्षात्	साक्षात्	**सुरगणैः**	देवताओंसे कोई
निःश्रेयस	कल्याण स्वरूप	**अर्थः न**	प्रयोजन नहीं

च अगुणस्य हि	और इन निर्गुण-को तो	**न उद्वेगः एव**	न उद्वेग ही होता है ॥२॥
असुरेभ्यः	असुरोंसे		
विद्वेषः नः	शत्रुता नहीं है		

इति नः सुमहाभाग नारायणगुणान् प्रति ।
संशयः सुमहाञ्जातस्तद्भवांश्छेत्तुमर्हति ॥ ३ ॥

इति नः सुमहाभाग नारायण गुणान् प्रति संशयः सुमहान् जातः तत् भवान् छेत्तुं अर्हति ॥३॥

सुमहाभाग	परम सौभाग्यवान् प्रभु !	**संशयः जातः**	सन्देह उत्पन्न हो गया है
इति नः	इस प्रकारका मुझे	**तत् भवान्**	उसे आपको
नारायण गुणान्	नारायणके गुणोंके	**छेत्तुं अर्हति**	काट देना चाहिए ॥३॥
प्रति	सम्बन्धमें		
सुमहान्	बहुत बड़ा		

श्रीशुक उवाच–

साधु पृष्टं महाराज हरेश्चरितमद्भुतम् ।
यद् भागवतमाहात्म्यं भगवद्भक्तिवर्धनम् ॥ ४ ॥

साधु पृष्टं महाराज हरेः चरितं अद्भुतं यद् भागवत माहात्म्यं भगवत् भक्ति वर्धनम् ॥४॥

महाराज	महाराज !	**यद् भगवत्**	क्योंकि (इस प्रसङ्ग-में) भगवान्की
हरेः अद्भुतं	श्रीहरिके अद्भुत		
चरितं	चरितके सम्बन्धमें	**भक्तिवर्धनं**	भक्ति बढ़ानेवाला
साधु पृष्टं	तुमने अच्छा प्रश्न किया	**भागवत**	भगवान्के भक्तोंका
		माहात्म्यं	माहात्म्य आवेगा ॥४॥

गीयते परमं पुण्यमृषिभिर्नारदादिभिः ।
नत्वा कृष्णाय मुनये कथयिष्ये हरेः कथाम् ॥ ५ ॥

गीयते परमं पुण्यं ऋषिभिः नारद आदिभिः नत्वा कृष्णाय मुनये कथयिष्ये हरेः कथाम् ॥५॥

परमं पुण्यं	(जो) परम पुण्यप्रद (माहात्म्य)	**नत्वा**	नमस्कार करके
नारद आदिभिः	देवर्षि नारद आदि	**हरेः कथां**	(यह) श्रीहरिकी कथा
ऋषिभिः गीयते	ऋषियों द्वारा वर्णित होता है ।	**कथयिष्ये**	वर्णन करूँगा ॥५॥
कृष्णाय मुनये	मुनि श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजीको		

निर्गुणोऽपि ह्यजोऽव्यक्तो भगवान् प्रकृतेः परः ।
स्वमायागुणमाविश्य बाध्यबाधकतां गतः ॥ ६ ॥

निर्गुणः अपि अजः अव्यक्तः भगवान् प्रकृतेः परः स्वमाया गुणं आविश्य बाध्य बाधकतां गतः ॥६॥

निर्गुणः अजः	निर्गुण, अजन्मा,	**आविश्य**	प्रवेश करके
अव्यक्तः	अव्यक्त	**बाध्य बाधकतां**	मरने और मारनेवाले (परस्पर विरोधी) भावको
प्रकृतेः परः	प्रकृतिसे परे	**गतः**	प्राप्त होते हैं ॥६॥
अपि भगवान्	होनेपर भी भगवान्		
स्व माया गुणं	अपनी मायाके गुणोंमें		

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ।
न तेषां युगपद्राजन् ह्रास उल्लास एव वा ॥ ७ ॥

सत्त्वं रजः तमः इति प्रकृतेः न आत्मनः गुणाः न तेषां युगपत् राजन् ह्रास उल्लास एव वा ॥७॥

राजन्	राजन् !	युगपत् तेषां	एक साथ उनका
सत्त्वः रजः	सत्त्व, रज	ह्रास वा	घटना अथवा
तमः इति	तम, ये	उल्लास	बढ़ना
प्रकृतेः गुणाः	प्रकृतिके गुण हैं,	एव न	ही नहीं होता ॥७॥
आत्मनः न	आत्माके नहीं,		

जयकाले तु सत्त्वस्य देवर्षीन् रजसोऽसुरान् ।
तमसो यक्षरक्षांसि तत्कालानुगुणोऽभजत् ॥ ८ ॥

जयकाले तु सत्त्वस्य देवऋषीन् रजसः असुरान् तमसः यक्ष रक्षांसि तत् काल अनुगुणः अभजत् ॥८॥

सत्त्वस्य	सत्त्वगुणकी	यक्ष रक्षांसि	यक्ष-राक्षसोंका (इस
जयकालेतु	अभिवृद्धिके समय तो		प्रकार)
देव ऋषीन्	देवता और ऋषियोंका	तत् काल	उस समयके
रजसः	रजोगुण (बढ़ने)के समय	अनुगुणः	गुणके अनुसार वर्गोंका
असुरान्	असुरोंका	अभजत्	सेवन (पोषण) करते हैं ॥८॥
तमसः	तमोगुण (वृद्धि) के समय		

ज्योतिरादिरिवाभाति सङ्घातान्न विविच्यते ।
विदन्त्यात्मानमात्मस्थं मथित्वा कवयोऽन्ततः ॥ ९ ॥

ज्योतिः आदिः इव आभाति सङ्घातात् न विविच्यते विन्दन्ति आत्मनि आत्मस्थं मथित्वा कवयः अन्ततः ॥९॥

आदिः ज्योतिः	प्रथम ज्योति अग्नि	सङ्घातात् विविच्यते न	(काष्ठादि) पदार्थोंसे पृथक नहीं प्रतीत होते; किन्तु
इव आभाति	के समान (भगवान्) प्रतीत होते हैं	कवयः	बुद्धिमान साधक

आत्मनि	अपने ही द्वारा	**आत्मस्थं**	अपनेमें ही स्थित
मथित्वा	मन्थन करके	**विन्दन्ति**	जान लेते हैं ॥९॥
अन्ततः	अन्ततः		

यदा सिसृक्षुः पुर आत्मनः परो
रजः सृजत्येष पृथक् स्वमायया ।
सत्त्वं विचित्रासु रिरंसुरीश्वरः
शयिष्यमाणस्तम ईरयत्यसौ ॥१०॥

यदा सिसृक्षुः पुरं आत्मनः परः रजः सृजति एष पृथक् स्वमायया सत्त्वं विचित्रासु रिरंसुः ईश्वरः शयिष्यमाणः तमः ईरयति असौ ॥१०॥

यदा	जब	**रिरंसुः**	रमण (खेलने)की इच्छा होनेपर
परः ईश्वरः	परमेश्वर	**सत्त्वं**	सत्त्व गुण और
आत्मनः पुरः	अपने लिए पुरियां	**शयिष्यमाणः**	सो जानेकी इच्छा होनेपर
सिसृक्षुः	बनाना चाहते हैं तो	**असौ तमः**	ये तमोगुणको
स्वमायया	अपनी मायासे	**ईरयति**	प्रेरित करते हैं ॥१०॥
एष पृथक्	ये अपनेसे भिन्न		
रजः सृजति	रजोगुण उत्पन्न करते हैं		
विचित्रासु	उन विचित्र (पुरियों) में		

कालं चरन्तं सृजतीश आश्रयं
प्रधानपुम्भ्यां नरदेव सत्यकृत् ।
य एष राजन्नपि काल ईशिता
सत्त्वं सुरानीकमिवैधयत्यतः ।
तत्प्रत्यनीकानसुरान् सुरप्रियो
रजस्तमस्कान् प्रमिणोत्युरुश्रवाः ॥११॥

कालं चरन्तं सृजति ईश आश्रयं प्रधान पुम्भ्यां नरदेव सत्यकृत् स एष राजन् अपि काल ईक्षिता सत्त्वं सुर अनीकं इव ऐधयति अतः तत् प्रति अनीकान् असुरान् सुरप्रियः रजः तमस्कान् प्रमिणोति उरुश्रवाः ॥११॥

नरदेव	राजन् !	**सत्त्वं**	सत्त्वगुणकी (वृद्धिके समय)
स एष सत्यकृत्	वही ये सत्य संकल्प		
काल ईक्षिता	कालके दृष्टा होनेपर	**सुर अनीकं**	देवसेनाको
अपि	भी	**ऐधयति इव**	बढ़ाते हुए-से रहते हैं,
ईश	सर्व सञ्चालक		
कालं चरन्तं	कालके अनुसार व्यवहार करते हुए	**अतः सुरप्रियः**	इसलिए देवप्रिय
		तत् प्रति	उनके
प्रधान पुम्भ्यां	प्रकृति और जीवके द्वारा	**अनीकान्**	विरोधी
		रजः तमस्कान्	रजोगुणी-तमोगुणी
आश्रयं	सबके आश्रय जगत-की	**असुरान्**	असुरोंको
		उरुश्रवाः	ये अपार यश
सृजति	सृष्टि करते हैं।	**प्रमिणोति**	मारते हैं ॥११॥
राजन्	राजन् !		

अत्रैवोदाहृतः पूर्वमितिहासः सुरर्षिणा ।
प्रीत्या महाक्रतौ राजन् पृच्छतेऽजातशत्रवे ॥१२॥

अत्र एव उदाहृतः पूर्वं इतिहासः सुरर्षिणा प्रीत्या महाक्रतौ राजन् पृच्छते अजातशत्रवे ॥१२॥

पूर्वं अत्र एव	पहिले इसी सम्बन्ध-में	**पृच्छते**	पूछनेपर
		प्रीत्या	प्रसन्न होकर
महाक्रतौ	महायज्ञ (राजसूय) के समय	**सुरर्षिणा**	देवर्षि नारदने
		इतिहासः	इस इतिहासका
अजातशत्रवे	अजातशत्रु (युधि-ष्ठिर) के	**उदाहृतः**	उदाहरण दिया था ॥१२॥

दृष्ट्वा महाद्भुतं राजा राजसूये महाक्रतौ ।
वासुदेवे भगवति सायुज्यं चेदिभूभुजः ॥१३॥

दृष्ट्वा महा अद्भुतं राजा राजसूये महाक्रतौ वासुदेवे भगवति सायुज्यं चेदिभूभुजः ॥१३॥

महाक्रतौ	महायज्ञ
राजसूये	राजसूयके समय
चेदिभूभुजः	चेदि देशकेराजा शिशुपालका
भगवति वासुदेवे	भगवान् वासुदेवमें
सायुज्यं	लीन हो जाना
महा अद्भुतं	यह अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना
दृष्ट्वा	देखकर
राजा	राजा युधिष्ठिरने (पूछा था) ॥१३॥

तत्रासीनं सुरऋर्षिं राजा पाण्डुसुतः क्रतौ ।
पप्रच्छ विस्मितमना मुनीनां शृण्वतामिदम् ॥१४॥

तत्र आसीनं सुरऋर्षिं राजा पाण्डुसुतः क्रतौ पप्रच्छ विस्मित मना मुनीनां शृण्वतां इदम् ॥१४॥

क्रतौ तत्र	यज्ञमें वहीं
आसीनं	बैठे
सुरऋर्षि	देवर्षि नारदसे
विस्मित मना	आश्चर्यचकित चित्त
राजा पाण्डुसुतः	राजा पाण्डुनन्दनने
मुनीनां शृण्वतां	मुनियोंके सुनते हुए
इदं पप्रच्छ	यह पूछा ॥१४॥

युधिष्ठिर उवाच–

अहो अत्युद्भुतं ह्येतद्दुर्लभैकान्तिनामपि ।
वासुदेवे परे तत्त्वे प्राप्तिश्चैद्यस्य विद्विषः ॥१५॥

अहो अति अद्भुतं हि एतत् दुर्लभ एकान्तिनां अपि वासुदेवे परे तत्त्वे प्राप्तिः चैद्यस्य विद्विषः ॥१५॥

हि	क्योंकि
एकान्तिनां अपि	अनन्य भक्तोंके लिए भी
दुर्लभ	दुर्लभ
परे तत्त्वे	परमतत्त्व
वासुदेवे	वासुदेवमें
विद्विषः	उनसे द्वेष करनेवाले

चैद्यस्य प्राप्तिः शिशुपालका मिल जाना
अहो एतत् अहो यह तो
अति अद्भुतं अत्यन्त अद्भुत घटना है ॥१५॥

एतद्वेदितुमिच्छामः सर्व एव वयं मुने ।
भगवन्निन्दया वेनो द्विजैस्तमसि पातितः ॥१६॥

एतत् वेदितुं इच्छामः सर्व एव वयं मुने भगवत् निन्दया वेनः द्विजैः तमसि पातितः ॥१६॥

मुने महामुनि !
वयं सर्व एव हम सभी
एतत् वेदितुं इस (रहस्य) को जानना
इच्छामः (पुरा) चाहते हैं, पहिले
भगवत् निन्दया भगवान्‌की निन्दा करनेसे
द्विजैः वेनः ब्राह्मणों द्वारा वेन-को
तमसि पातितः नरकमें गिरा दिया गया था ॥१६॥

दमघोषसुतः पाप आरभ्य कलभाषणात् ।
सम्प्रत्यमर्षी गोविन्दे दन्तवक्त्रश्च दुर्मतिः ॥१७॥

दमघोषसुतः पापः आरभ्य कल भाषणात् सम्प्रति अमर्षी गोविन्दे दन्तवक्त्रः च दुर्मतिः ॥१७॥

पापः पापी
दमघोषसुतः दमघोषका पुत्र शिशुपाल
च दुर्मतिः और दुर्बुद्धि
दन्तवक्त्रः दन्तवक्त्र
कल भाषणात् तुतलाकर बोलनेसे
आरभ्य लेकर
सम्प्रति अब तक
गोविन्दे अमर्षी श्रीकृष्णसे द्वेष करते रहे ॥१८॥

शपतोरसकृद्विष्णुं यद्ब्रह्म परमव्ययम् ।
श्वित्रो न जातो जिह्वायां नान्धं विविशतुस्तमः ॥१८॥

शपतोः असकृत् विष्णुं यत् ब्रह्म परम् अव्ययं श्वित्रः न जातः जिह्वायां न अन्धं विवशतुः तमः ॥१८॥

यत् ब्रह्म परम्	जो परम ब्रह्म
अव्ययं	अविनाशी
विष्णुं	श्रीकृष्णको
असकृत शपतोः	बराबर गाली देते रहनेपर भी
जिह्वायां	(इनकी) जीभमें
श्वित्रः न जातः	कोढ़ नहीं हो गया
न अन्धं तमः	न घोर नरकमें
विवशुतुः	गये ॥१८॥

कथं तस्मिन् भगवति दुरवग्राहधामनि ।
पश्यतां सर्वलोकानां लयमीयतुरञ्जसा ॥१९॥

कथं तस्मिन् भगवति दुरवग्राह धामनि पश्यतां सर्वलोकानां लयं इयतुः अञ्जसा ॥१९॥

दुरवग्राह	कठिनाईसे जिनका
धामनि	धाम मिलता है
तस्मिन् भगवति	उन भगवान्‌में
कथं अञ्जसा	कैसे अनायास
लयं इयतुः	लीन हो गये ॥१९॥

एतद् भ्राम्यति मे बुद्धिर्दीपार्चिरिव वायुना ।
ब्रूह्येतद्भुततमं भगवांस्तत्र कारणम् ॥२०॥

एतद् भ्राम्यति मे बुद्धिः दीप अर्चिः इव वायुना ब्रूहि एतत् अद्भुत तमं भगवान् तत्र कारणम् ॥२०॥

एतद्	इस विषयमें
मे बुद्धिः	मेरी बुद्धि
वायुना	वायुसे
दीप अर्चिः इव	दीपककी लौके समान
भ्राम्यति	लड़खड़ा रही है
भगवान्	भगवान् !
एतत्	यह तो
अद्भुत तमं	बहुत अद्भुत है
तत्र कारणं	इसका कारण
ब्रूहि	बतलाइये ॥२०॥

श्रीशुक उवाच–

राज्ञस्तद्वच आकर्ण्य नारदो भगवानृषिः ।
तुष्टः प्राह तमाभाष्य शृण्वत्यास्तत्सदः कथाः ॥२१॥

राज्ञः तत् वचः आकर्ण्य नारदः भगवान् ऋषिः तुष्टः प्राह तं आभाष्य शृण्वत्याः तत् सदः कथाः ॥२१॥

तत् राज्ञःवचः	वह राजाकी बात
आकर्ण्य	सुनकर
भगवान्	भगवान्,
ऋषिः नारदः	देवर्षि नारदने
तुष्टः	प्रसन्न होकर
तं आभाष्य	उनको सम्बोधित करके
तत् सदः	उस सभाके सदस्योंके
शृण्वत्याः	सुनते हुए
कथाः प्राह	यह कथा सुनायी ॥२१॥

नारद उवाच–

निन्दनस्तवसत्कारन्यक्कारार्थं कलेवरम् ।
प्रधानपरयो राजन्नविवेकेन कल्पिताम् ॥२२॥

निन्दनस्तव सत्कार न्यक्कार अर्थं कलेवरं प्रधान परयोः राजन् अविवेकेन कल्पिताम् ॥२२॥

राजन्	राजन् !
निन्दनस्तव	निन्दा-स्तुति,
सत्कार	सत्कार-
न्यक्कार	तिरस्कार
कलेवरं अर्थं	शरीरके लिए ही होता है।
प्रधान परयोः	प्रकृति और जीवका (संयोग रूप शरीर)
अविवेकेन	अज्ञान द्वारा
कल्पिताम्	कल्पित है ॥२२॥

हिंसा तदभिमानेन दण्डपारुष्ययोर्यथा ।
वैषम्यमिह भूतानां ममाहमिति पार्थिव ॥२३॥

हिंसा तत् अभिमानेन दण्ड पारुष्ययोः यथा वैषम्यं इह भूतानां मम अहं इति पार्थिव ॥२३॥

पार्थिव	राजन् !
तत् अभिमानेन	उस (शरीर) को मैं माननेसे
अहं मम इति	'मैं मेरा' इस प्रकार
इह भूतानां	इस शरीरके कारण प्राणियोंमें
वैषम्यं	भेदभाव आता है।
यथा दण्ड	जैसे (शरीरको) ताड़नासे
पारुष्ययोः	(तथा) कठोर वचनोंसे
हिंसा	पीड़ा होती है ॥२३॥

यन्निबद्धोऽभिमानोऽयं तद्वधात्प्राणिनां वधः ।
तथा न यस्य कैवल्यादभिमानोऽखिलात्मनः ।
परस्य दमकर्तुर्हि हिंसा केनास्य कल्प्यते ॥२४॥

यत् निबद्धः अभिमानः अयं तत् वधात् प्राणिनां वधः तथा न यस्य कैवल्यात् अभिमानः अखिल आत्मनः परस्य दमकर्तुः हि हिंसा केन अस्य कल्प्यते ॥२४॥

अयं अभिमानः	यह अभिमान
यत् निबद्धः	जिसमें दृढ़ बँधा है,
तत् वधात्	उसके बधसे
प्राणिनां वधः	प्राणियोंका बध होता है।
तथा	वैसा
अखिल आत्मनः	सर्वात्माका
अभिमानः	अभिमान
यस्य कैवल्यात्	जो अद्वितीय है
न	उसमें नहीं है
हि	क्योंकि वे
दमकर्तुः	सर्वशासक
परस्य	सबसे परे हैं,
अस्य केन	इनकी किस प्रकार
हिंसा कल्प्यते	हिंसाकी कल्पना होगी ॥२४॥

तस्माद्वैरानुबन्धेन निर्वैरेण भयेन वा ।
स्नेहात्कामेन वा युञ्ज्यात् कथञ्चिन्नेक्षते पृथक् ॥२५॥

तस्मात् वैर अनुबन्धेन निर्वैरेण भयेन वा स्नेहात् कामेन वा युञ्ज्यात् कथञ्चित् न ईक्षते पृथक् ॥२५॥

तस्मात्	इसलिए
वैर अनुबन्धेन	सुदृढ़ बैर भावसे,
निर्वैरेण	बिना बैरके
वा भयेन	अथवा भयसे,
वा कामेन	या कामनासे
युञ्ज्यात्	(भगवान्‌में) मन लगा दे,
कथञ्चित्	किसी भी प्रकार लगानेपर
पृथक् न ईक्षते	(वे) इनमें भेद नहीं देखते ॥२५॥

यथा वैरानुबन्धेन मर्त्यस्तन्मयतामियात् ।
न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥२६॥

यथा वैर अनुबन्धेन मर्त्यः तन्मयतां इयात् न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥२६॥

इति मे	ऐसा मेरा
निश्चिता मतिः	निश्चित मत है कि
मर्त्यः यथा	मनुष्य जैसे
वैर अनुबन्धेन	दृढ़ बैरभावसे
तन्मयतां इयात्	तन्मयता प्राप्त करता है
तथा	वैसा
भक्तियोगेन न	भक्तिभावसे नहीं ॥२६॥

कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तमनुस्मरन् ।
संरम्भभययोगेन विन्दते तत्सरूपताम् ॥२७॥

कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तं अनुस्मरन् संरम्भ भययोगेन विन्दते तत् सरूपताम् ॥२७॥

पेशस्कृता	भृंगी द्वारा
कुड्यायां	मिट्टीके नन्हें घोंसलेमें
रुद्धः कीटः	बन्द किया गया कीड़ा
संरम्भ	उद्वेग तथा
भययोगेन	भयसे

तं अनुस्मरन्	उस (भृंगी) का स्मरण करता	**विन्दते**	प्राप्त कर लेता है ॥२७॥*
तत् सरूपतां	उसका स्वरूप		

एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे ।
वैरेण पूतपाप्मानस्तमापुरनुचिन्तया ॥२८॥

एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे वैरेण पूत पाप्मानः तं आपुः अनुचिन्तया ॥२८॥

एवं	इसी प्रकार	**अनुचिन्तया**	बार-बार उनका चिन्तन करनेसे
मायामनुज	मायासे मनुष्य बने		
ईश्वरे	परमेश्वर	**पूत पाप्मानः**	पापोंसे पवित्र होकर
भगवति कृष्णे	भगवान् श्रीकृष्णसे	**तं आपुः**	उन्हें प्राप्त कर लिया ॥२८॥
वैरेण	शत्रुता करके		

कामाद् द्वेषाद्भयात्स्नेहाद्यथा भक्त्येश्वरे मनः ।
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः ॥२९॥

कामात् द्वेषात् भयात् स्नेहात् यथा भक्त्या ईश्वरे मनः आवेश्य तत् अघं हित्वा बहवः तत् गतिं गताः ॥२९॥

कामात् द्वेषात्	कामनासे, द्वेषसे,	**तत् अघं**	उसे (द्वेषादि) के पापको
भयात् स्नेहात्	भयसे, स्नेहसे,		
यथा भक्त्या	जैसे भक्तिसे	**हित्वा**	त्यागकर (नष्ट करके)
ईश्वरे मनः	परमेश्वरमें मन		
आवेश्य	लगाकर		

---

* यह कवि-सत्य है। वस्तुतः कीड़ा भृंगी नहीं बनता। भृंगी हल्का डंक मारकर कीड़ेको मूर्छितप्राय करके उसके शरीरपर अंडा देकर उसे बन्द कर देता है। फिर अंडेसे उत्पन्न भृंगी-शिशु कीड़ेको खाकर बाहर निकलता है।

बहवः तत् गतिं	बहुत लोग उन (ईश्वर) के	**गतिं गताः**	स्वरूपको प्राप्त हुए हैं ॥२९॥

गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः ।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो ॥३०॥

गोप्यः कामात् भयात् कंसः द्वेषात् चैद्य आदयः नृपाः सम्बन्धात् वृष्णयः स्नेहात् यूयं भक्त्या वयं विभो ॥३०॥

विभो	राजन् !	**सम्बन्धात्**	सम्बन्धसे,
गोप्यः कामात्	गोपियाँ कामसे	**यूयं स्नेहात्**	तुम लोग स्नेहसे,
कंसः भयात्	कंस भयसे	**वयं भक्त्या**	हम (भजन करने-
चैद्य आदयः	शिशुपाल आदि		वाले) भक्तिसे (उन्हें
नृपाः द्वेषात्	राजा लोग द्वेषसे,		पाते हैं) ॥३०॥
वृष्णयः	यदुवंशी		

कतमोऽपि न वेनः स्यात्पञ्चानां पुरुषं प्रति ।
तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥३१॥

कतमः अपि न वेनः स्यात् पञ्चानां पुरुषं प्रति तस्मात् केन अपि उपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥३१॥

पुरुषं प्रति पञ्चानां	परम पुरुषके प्रति (भक्तिके अतिरिक्त) पाँचों प्रकारसे (मन लगाने वालों)	**न स्यात्**	नहीं था,
		तस्मात्	इसलिए
		केन अपि	किसी भी
वेनः कतमः	वेन कोई	**उपायेन मनः**	उपायसे मन
अपि	भी	**कृष्णे निवेशयेत्**	श्रीकृष्णमें लगावे ॥३१॥

मातृष्वसेयो वश्चैद्यो दन्तवक्त्रश्च पाण्डव ।
पार्षदप्रवरौ विष्णोर्विप्रशापात्पदाच्च्युतौ ॥३२॥

मातृ स्वस्रेयः वः चैद्यः दन्तवक्त्रः च पाण्डव पार्षद प्रवरौ विष्णोः विप्रशापात् पदात् च्युतो ॥३२॥

पाण्डव	युधिष्ठिर !
वः मातृष्वसेयः	तुम्हारी मौसीके पुत्र
चैद्यः च दन्त	शिशुपाल और दन्त-
वक्त्रः	वक्त्र
विप्र शापात्	ब्राह्मणोंके शापसे
पदात् च्युतौ	अपने स्थानसे गिरे
विष्णोः	भगवान् विष्णुके
पार्षदप्रवरौ	श्रेष्ठ पार्षद थे ॥३२॥

युधिष्ठिर उवाच–

कीदृशः कस्य वा शापो हरिदासाभिमर्शनः ।
अश्रद्धेय इवाभाति हरेरेकान्तिनां भवः ॥३३॥

कीदृशः कस्य वा शापः हरिदास अभिमर्शनः अश्रद्धेय इव आभाति हरेः एकान्तिनां भवः ॥३३॥

हरिदास	भगवान्के भक्तोंको भी
अभिमर्शनः	प्रभावित करनेवाला
शापः कीदृशः	शाप कैसा था
वा कस्य	अथवा किसका था ?
हरेः एकान्तिनां	श्रीहरिके अनन्य भक्तोंका
भवः	संसारमें जन्म
अश्रद्धेय इव	विश्वास न करने जैसा
आभाति	लगता है ॥३३॥

देहेन्द्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम् ।
देहसम्बन्धसम्बद्धमेतदाख्यातुमर्हसि ॥३४॥

देह इन्द्रिय असु हीनानां वैकुण्ठपुर वासिनां देह सम्बन्ध सम्बद्धं एतत् आख्यातुं अर्हसि ॥३४॥

देह इन्द्रिय	शरीर, इन्द्रिय,
असु हीनानां	प्राण रहित(चिद्वपु)
वैकुण्ठपुर	वैकुण्ठपुरीमें
वासिनां	रहने वालोंका
एतत् देह	यह शरीरसे
सम्बन्ध	सम्बन्ध करके
सम्बद्धं	बँध जाना
आख्यातुं अर्हसि	(आपको) बतलाना चाहिए ॥३४॥

नारद उवाच–

एकदा ब्रह्मणः पुत्रा विष्णोर्लोकं यदृच्छया ।
सनन्दनादयो जग्मुश्चरन्तो भुवनत्रयम् ॥३५॥

एकदा ब्रह्मणः पुत्रा विष्णोः लोकं यदृच्छया सनन्दन आदयः जग्मुः चरन्तः भुवनत्रयम् ॥३५॥

एकदा	एक बार	**चरन्तः**	घूमते हुए
ब्रह्मणः पुत्रा	ब्रह्माजीके पुत्र	**यदृच्छया**	अकस्मात्
सनन्दन आदयः	सननन्द आदि	**विष्णोः लोकं**	विष्णुलोक (वैकुण्ठ)
भुवनत्रयं	तीनों लोकोंमें	**जग्मुः**	पहुँच गये ॥३५॥

पञ्चषड्ढायनार्भाभाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ।
दिग्वाससः शिशून् मत्वा द्वाः स्थौ तान् प्रत्यषेधताम् ॥३६॥

पञ्च षट् हायन अर्भ आभाः पूर्वेषां अपि पूर्वजाः दिग्वाससः शिशून् मत्वा द्वाः स्थौ तान् प्रत्यषेधताम् ॥३६॥

पञ्च	पाँच	**पूर्वजाः**	पूर्वज
षट् हायन	छः वर्षके	**दिग्वाससः तान्**	दिगम्बर उनको
अर्भ आभाः	बालक-सी आयुकेसे लगते; पर	**शिशून् मत्वा**	शिशु मानकर
		द्वाः स्थौ	द्वारपालोंने
पूर्वेषां अपि	प्राचीनोंके भी	**प्रत्यषेधताम्**	रोक दिया ॥३६॥

अशपन् कुपिता एवं युवां वासं न चार्हथः ।
रजस्तमोभ्यां रहिते पादमूले मधुद्विषः ।
पापिष्ठामासुरीं योनिं बालिशौ यातमाश्वतः ॥३७॥

अशपन् कुपिता एवं युवां वासं न च अर्हथः रजः तमः भ्यां रहिते पादमूले मधुद्विषः पापिष्ठां आसुरीं योनिं बालिशौ यातं आशु अतः ॥३७॥

एवं	इस प्रकार (रोकने से)
कुपिता	क्रोधित होकर
अशपन्	(उन्होंने) शाप दिया
रजः तमः भ्यां	रजोगुण तमोगुणसे
रहिते मधुद्विषः	रहित भगवान् मधुसूदनके
पादमूले	चरणोंके समीप
युवां वासं	तुम दोनों रहने
अर्हथः न च	योग्य नहीं ही हो,
अतः बालिशौ	अतः मूर्खो
पापिष्ठां	पापमयी
आसुरीं योनिं	आसुरी-योनिमें
आशु यातं	शीघ्र जाओ ॥३७॥

एवं शप्तौ स्वभवनात् पतन्तौ तैः कृपालुभिः ।
प्रोक्तौ पुनर्जन्मभिर्वां त्रिभिर्लोकाय कल्पताम् ॥३८॥

एवं शप्तौ स्वभवनात् पतन्तौ तैः कृपालुभिः प्रोक्तौ पुनः जन्मभिः वां त्रिभिः लोकाय कल्पताम् ॥३८॥

एवं शप्तौ	इस प्रकार शाप पाकर
स्वभवनात्	अपने धामसे
पतन्तौ	गिरते हुए उनसे
तैः कृपालुभिः	उन कृपालुओंने
प्रोक्तौ	कहा—
वां पुनः	'तुम दोनों फिर
त्रिभिः जन्मभिः	तीन जन्म लेकर
लोकाय कल्पतां	इस लोकमें आ जाना ।' ॥३८॥

जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानववन्दितौ ।
हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः ॥३९॥

जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्य दानव वन्दितौ हिरण्यकशिपुः ज्येष्ठः हिरण्याक्षः अनुजः ततः ॥३९॥

तौ दितेः पुत्रौ जज्ञाते	वे दोनों दितिके पुत्र होकर उत्पन्न हुए ।
दैत्य दानव वन्दितौ	दैत्य-दानवोंसे वन्दित उनमें
हिरण्यकशिपुः ज्येष्ठः	हिरण्यकशिपु बड़ा था
ततः अनुजः हिरण्याक्षः	उसका छोटा भाई हिरण्याक्ष था ॥३९॥

हतो हिरण्यकशिपुर्हरिणा सिंहरूपिणा ।
हिरण्याक्षो धरोद्धारे बिभ्रता सौकरं वपुः ॥४०॥

हतः हिरण्यकशिपुः हरिणा सिंह रूपिणा हिरण्याक्षः धरा उद्धारे बिभ्रता सौकरं वपुः ॥४०॥

हिरण्यकशिपुः	हिरण्यकशिपु	**बिभ्रता**	धारण करके
सिंह रूपिणा	नृसिंह रूपधारी और	**हिरण्याक्षः**	हिरण्याक्षको
धरा उद्धारे	पृथ्वीके उद्धारके समय	**हरिणा हतः**	श्रीहरिने मार दिया ॥४०॥
सौकरं वपुः	वाराह शरीर		

हिरण्यकशिपुः पुत्रं प्रह्लादं केशवप्रियम् ।
जिघांसुरकरोन्नाना यातना मृत्युहेतवे ॥४१॥

हिरण्यकशिपुः पुत्रं प्रह्लादं केशवप्रियं जिघांसुः अकरोत् नाना यातना मृत्युहेतवे ॥४१॥

हिरण्यकशिपुः	हिरण्यकशिपुने	**मृत्युहेतवे**	उसकी मृत्युके लिए
केशवप्रियं	भगवान् केशवके प्रिय	**नाना यातना**	अनेक प्रकारसे पीड़ाएँ
पुत्रं प्रह्लादं	अपने पुत्र प्रह्लादको	**अकरोत्**	दीं ॥४१॥
जिघांसुः	मार देनेकी इच्छासे		

सर्वभूतात्मभूतं तं प्रशान्तं समदर्शनम् ।
भगवत्तेजसा स्पृष्टं नाशक्नोद्धन्तुमुद्यमैः ॥४२॥

सर्वभूत आत्मभूतं तं प्रशान्तं समदर्शनं भगवत् तेजसा स्पृष्टं न अशक्नोत् हन्तुं उद्यमैः ॥४२॥

सर्वभूत आत्मभूतं	सब प्राणियोंके आत्मा भगवान्‌के बने,	**प्रशान्तं समदर्शनं**	अत्यन्त शान्त समदर्शी
		भगवत् तेजसा	भगवान्‌के तेजसे

स्पृष्टं तं	सुरक्षित उन (प्रह्लाद)को	हन्तु	मारनेमें
उद्यमैः	अपने प्रयत्नोंसे	न अशक्नोत्	समर्थ नहीं हुआ ॥४२॥

ततस्तौ राक्षसौ जातौ केशिन्यां विश्रवः सुतौ ।
रावणः कुम्भकर्णश्च सर्वलोकोपतापनौ ॥४३॥

ततः तौ राक्षसौ जातौ केशिन्यां विश्रवः सुतौ रावणः कुम्भकर्णः च सर्वलोक उपतापनौ ॥४३॥

ततः तौ	फिर वे दोनों	रावणः च	रावण और
केशिन्यां	केशिनीसे	कुम्भकर्णः	कुम्भकर्ण
विश्रवः सुतौ	विश्रवाके पुत्ररूपमें	राक्षसौ जातौ	राक्षस उत्पन्न हुए ॥४३॥
सर्वलोक	सब लोकोंको		
उपतापनौ	सन्ताप देनेवाले		

तत्रापि राघवो भूत्वा न्यहनच्छापमुक्तये ।
रामवीर्यं श्रोष्यसि त्वं मार्कण्डेयमुखात् प्रभो ॥४४॥

तत्र अपि राघवः भूत्वा न्यहनन् शाप मुक्तये रामवीर्यं श्रोष्यसि त्वं मार्कण्डेय मुखात् प्रभो ॥४४॥

प्रभो	राजन् !	न्यहनन्	मारा ।
तत्र अपि	उस जन्ममें भी	त्वं	तुम
शाप मुक्तये	(इनको) शापसे मुक्त करनेके लिए	मार्कण्डेय	मार्कण्डेय मुनिके
		मुखात्	मुखसे
राघवः भूत्वा	भगवान्ने रामावतार लेकर	रामवीर्यं	श्रीरामका पराक्रम
		श्रोष्यसि	(आगे) सुनोगे ॥४४॥

तावेव क्षत्रियौ जातौ मातृष्वस्रात्मजौ तव ।
अधुनां शापनिर्मुक्तौ कृष्णचक्रहतांहसौ ॥४५॥

ताः एव क्षत्रियौ जातौ मातृष्वस्त्र आत्मजौ तव अधुना शाप निर्मुक्तौ कृष्णचक्र हत अहंसौ ॥४५॥

ताः एव	वही दोनों
तव मातृष्वस्त्र	तुम्हारी मौसीके
आत्मजौ	पुत्र
क्षत्रियौ जातौ	क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुए थे,
अधुना	इस बार
कृष्णचक्र	श्रीकृष्णके चक्रसे
हत अहंसौ	मारे जाकर निष्पाप
शाप निर्मुक्तौ	और शापसे छूट गये ॥४५॥

वैरानुबन्धतीव्रेण ध्यानेनाच्युतसात्मताम् ।
नीतौ पुनर्हरेः पार्श्वं जग्मतुर्विष्णुपार्षदौ ॥४६॥

वैर अनुबन्ध तीव्रेण ध्यानेन अच्युत सात्मतां नीतौ पुनः हरेः पार्श्वं जग्मतुः विष्णुपार्षदौ ॥४६॥

वैर अनुबन्ध	वैर-भावके कारण
तीव्रेण ध्यानेन	तीव्र ध्यानसे
अच्युत सात्मतां	भगवन्मय चित्त होकर
विष्णुपार्षदौ	वे भगवान् विष्णुके पार्षद
पुनः हरेः	फिर श्रीहरिके
पार्श्वं जग्मतुः	समीप चले गये ॥४६॥

युधिष्ठिर उवाच–

विद्वेषो दयिते पुत्रे कथमासीन्महात्मनि ।
ब्रूहि मे भगवन्येन प्रह्लादस्याच्युतात्मता ॥४७॥

विद्वेषः दयिते पुत्रे कथं आसीत् महात्मनि ब्रूहि मे भगवन् येन प्रह्लादस्य अच्युत आत्मता ॥४७॥

भगवन्	भगवन् !
दयिते महात्मनि	प्यारे और महात्मा
पुत्रे कथं	पुत्रसे कैसे
विद्वेष आसीत्	द्वेष हो गया ?

येन प्रह्लादस्य	जिस कारणसे प्रह्लादका	**मे ब्रूहि**	(वह भी) मुझे बतलाइये ॥४७॥
अच्युत आत्मता	चित्त भगवान् अच्युतमें लग गया		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्या संहितायां सप्तस्कन्धे प्रह्लादचरितोपक्रमे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

नारद उवाच—

भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना ।
हिरण्यकशिपू राजन् पर्यतप्यद्रुषा शुचा ॥ १ ॥

भ्रातरि एवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना हिरण्यकशिपू राजन् पर्यतप्यत रुषा शुचा ॥१॥

राजन्	राजन् !	विनिहते	मारे जानेपर
क्रोडमूर्तिना	वाराह रूपधारी	हिरण्यकशिपू	हिरण्यकशिपु
हरिणा	श्रीहरिके द्वारा	रुषा शुचा	क्रोध और शोकसे
एवं भ्रातरि	इस प्रकार भाईके	पर्यतप्यत	संतप्त हो उठे ॥१॥

आह चेदं रुषा घूर्णः सन्दष्टदशनच्छदः ।
कोपोज्ज्वलद्भ्यां चक्षुभ्यां निरीक्षन् धूम्रमम्बरम् ॥ २ ॥

आह च इदं रुषा घूर्णः सन्दष्ट दशनच्छदः कोप उज्ज्वलत् भ्यां चक्षुः भ्यां निरीक्षन् धूम्रं अम्बरम् ॥२॥

सन्दष्ट	ओष्ठको	चक्षुः भ्यां	नेत्रोंसे
दशनच्छदः	दांतोंसे काटता	धूम्रं अम्बरं	धुंधले दीखते आकाशको
रुषा घूर्णः	रोषसे घूमते	निरीक्षन्	घूरता हुआ
कोप	क्रोधसे	इदं च आह	यही बोला ॥२॥
उज्ज्वलत् भ्यां	जलते		

करालदंष्ट्रोग्रदृष्ट्या दुष्प्रेक्ष्यभ्रुकुटीमुखः ।
शूलमुद्यम्य सदसि दानवानिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

कराल दंष्ट्रा उग्र दृष्टचा दुष्प्रेक्ष्य भ्रुकुटी मुखः शूलं उद्यम्य सदसि दानवान् इदं अब्रवीत् ॥३॥

कराल दंष्ट्रा	भयानक दाढ़ों,
उग्र दृष्टचा	उग्र दृष्टिसे उसकी
भ्रुकुटी मुखः	भौंहों और मुखकी ओर
दुष्प्रेक्ष्य	देखा नहीं जाता था,
सदसि	सभामें
शूलं उद्यम्य	भाला उठाकर
दानवान्	दानवोंसे
इदं अब्रवीत्	यह बोला ॥३॥

हिरण्यकशिपुरुवाच-*

भो भो दानवदैतेया द्विमूर्धंस्त्र्यक्ष शम्बर ।
शतबाहो हयग्रीव नमुचे पाक इल्वल ॥ ४ ॥

भो भो दानव दैतेया द्विमूर्धः त्र्यक्ष शम्बर शतबाहो हयग्रीव नमुचे पाक इल्वल ॥४॥

भो भो	हे !
दानव दैतेया	दानवो ! दैत्यो !
द्विमूर्धः त्र्यक्ष	द्विमूर्धा, त्र्यक्ष,
शम्बर शतबाहो	शम्बर, शतबाहु,
हयग्रीव नमुचे	हयग्रीय, नमुचि,
पाक इल्वल	पाक, इल्वल ॥४॥

विप्रचित्ते मम वचः पुलोमन् शकुनादयः ।
शृणुतानन्तरं सर्वे क्रियतामाशु मा चिरम् ॥ ५ ॥

विप्रचित्ते मम वचः पुलोमन् शकुनि आदयः शृणुत अनन्तरं सर्वे क्रियतां आशु मा चिरम् ॥५॥

विप्रचित्ते	विप्रचित्ति,
पुलोमन्	पुलोमा,
शकुनि आदयः	शकुनि आदि
मम वचः शृणुत	मेरी आज्ञा सुनो,
अनन्तरं सर्वे	बादमें सबलोग
आशु क्रियतां	उसका शीघ्र पालन करो
मा चिरं	विलम्ब मत करो ॥५॥

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सपत्नैर्घातितः क्षुद्रैर्भ्राता मे दयितः सुहृत् ।
पार्ष्णिग्राहेण हरिणा समेनाप्युपधावनैः ॥ ६ ॥

सपत्नैः घातितः क्षुद्रैः भ्राता मे दयितः सुहृत् पार्ष्णिग्राहेण हरिणा समेन अपि उपधावनैः ॥६॥

क्षुद्रैः सपत्नैः	क्षुद्र शत्रुओंने	**पार्ष्णिग्राहेण**	अपने पक्षमें करके
समेन अपि	(देव-असुर दोनोंके प्रति) समान होने-पर भी	**हरिणा**	विष्णुके द्वारा
		मे दयितः	मेरे प्यारे
		सुहृत् भ्राता	हितैषी भाईको
उपधावनः	दौड़ धूप करके	**घातितः**	मरवा दिया ॥६॥

तस्य त्यक्तस्वभावस्य घृणेर्मायावनौकसः ।
भजन्तं भजमानस्य बालस्येवास्थिरात्मन ॥ ७ ॥

तस्य त्यक्त स्वभावस्य घृणेः माया वनौकसः भजन्तं भजमानस्य बालस्य इव अस्थिर आत्मनः ॥७॥

स्वभावस्य	अपने स्वाभाव (निष्पक्षता) को	**अस्थिर**	चञ्चल
		आत्मनः	चित्त
त्यक्त	त्याग करके	**तस्य माया**	उस मायासे
बालस्य इव	बालकके समान	**वनौकसः घृणेः**	जंगली सुअर बने ॥७॥
भजन्तं	पक्षधर होनेवाले		
भजमानस्य	सेवा करनेवालोंका		

मच्छूलभिन्नग्रीवस्य भूरिणा रुधिरेण वै ।
रुधिरप्रियं तर्पयिष्ये भ्रातरं मे गतव्यथः ॥ ८ ॥

मत् शूल भिन्न ग्रीवस्य भूरिणा रुधिरेण वै रुधिरप्रियं तर्पयिष्ये भ्रातरं मे गतव्यथः ॥८॥

मत् शूल	मेरे भालेसे	**वै भूरिणा**	निश्चय बहुत
भिन्न ग्रीवस्य	फटे गले वालेके	**रुधिरेण**	रक्तसे

रुधिरप्रियं	रक्तप्रेमी	**गतव्यथः**	तब (मेरी) पीड़ा
मे भ्रातरं	अपने भाईका		जायगी ॥८॥
तर्पयिष्ये	तर्पण करूँगा		

तस्मिन् कूटेऽहिते नष्टे कृत्तमूले ननस्पतौ ।
विटपा इव शुष्यन्ति विष्णुप्राणा दिवौकसः ॥ ९ ॥

तस्मिन् कूटे अहिते नष्टे कृत्तमूले वनस्पतौ विटपा इव शुष्यन्ति विष्णुप्राणा दिवौकसः ॥९॥

तस्मिन् कूटे	उस मायावी	**दिवौकसः**	देवता
अहिते नष्टे	शत्रुके नष्ट हो जाने-पर	**शुष्यन्ति**	सूख जायेंगे
		विष्णुप्राणा	(क्योंकि) उनका प्राण विष्णु ही है ॥९॥
वनस्पतौ	वृक्षकी		
कृत्तमूले	जड़कट जानेपर		
विटपा इव	डालियोंके समान		

तावद्यात भुवं यूयं विप्रक्षत्रसमेधिताम् ।
सूदयध्वं तपोयज्ञस्वाध्यायव्रतदानिनः ॥१०॥

तावत् यात भुवं यूयं विप्रक्षत्र समेधितां सूदयध्वं तपः यज्ञ स्वाध्याय व्रत दानिनः ॥१०॥

तावत् यूयं	तब तक तुम लोग	**तपः यज्ञ**	तपस्या, यज्ञ,
विप्रक्षत्र	ब्राह्मणक्षत्रियोंसे	**स्वाध्वाय**	वेदाध्ययन,
समेधितां	समृद्ध हुई	**व्रत दानिनः**	व्रत और दान करने वालोंको
भुवं यात	पृथ्वीपर जाओ (वहां)	**सूदयध्वं**	मार डालो ॥१०॥

विष्णुर्द्विजक्रियामूलो यज्ञो धर्ममयः पुमान् ।
देवर्षिपितृभूतानां धर्मस्य च परायणम् ॥११॥

विष्णुः द्विज क्रिया मूलः यज्ञः धर्ममयः पुमान् देव ऋषि पितृ भूतानां धर्मस्य च परायणम् ॥११॥

विष्णुः मूलः	विष्णुकी जड़ हैं
द्विज क्रिया	ब्राह्मणोंके कर्म (क्योंकि)
पुमान्	महापुरुष
यज्ञः धर्ममयः	यज्ञ और धर्मस्वरूप है।
देव ऋषि	देवता, ऋषि,
पितृ भूतानां	पितर, सब प्राणी,
च धर्मस्य	और धर्मका भी
परायणं	(यही) आश्रय है ॥११॥

यत्र यत्र द्विजा गावो वेदा वर्णाश्रमाः क्रियाः ।
तं तं जनपदं यात सन्दीपयत वृश्चत ॥१२॥

यत्र यत्र द्विजा गावः वेदा वर्ण आश्रमाः क्रियाः तं तं जनपदं यात सन्दीपयत वृश्चत ॥१२॥

यत्र यत्र	जहां-जहां
द्विजा गावः	ब्राह्मण, गायें,
वेदा	वेद
वर्ण आश्रमाः	वर्ण-आश्रमके अनुसार
क्रियाः	कर्म होते हैं
तं तं जनपदं	उन-उन बस्तियोंमें
यात सन्दीपयत	जाकर उनको जलादो या
वृश्चत	उजाड़ दो ॥१२॥

श्रीशुक उवाच—*

इति ते भर्तृ निर्देशमादाय शिरसाऽऽहृताः ।
तथा प्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः ॥१३॥

इति ते भर्तृ निर्देशं आदाय शिरसा आहृताः तथा प्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः ॥१३॥

ते कदन प्रियाः	वे विनाश प्रिय (असुर)
इति भर्तृ निर्देशं आहृताः	इस प्रकार स्वामीकी आज्ञाको आदरपूर्वक

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

शिरसा आदाय	सिर झुकाकर स्वीकार करके	कदनं विदधुः	नाश करने लगे ॥१३॥
तथा प्रजानां	उसी प्रकार प्रजाका		

पुरग्रामव्रजोद्यानक्षेत्रारामाश्रमाकरान् ।
खेटखर्वटघोषांश्च ददहुः पत्तनानि च ॥१४॥

पुर ग्राम व्रज उद्यान क्षेत्र आरामआश्रम आकरान् खेट खर्वट घोषांन् च ददहुः पत्तनानि च ॥१४॥

पुर ग्राम	कस्बे, गाँव,	खेट खर्वट	खेड़े (छोटे पुरवे), खेतोंपर के झोंपड़े,
व्रज उद्यान	चलती-फिरती बस्तियां, बगीचे,	च घोषांन्	और पशुपालकोंके गाँव,
क्षेत्र आराम	तीर्थस्थान, फुलवारी,	च पत्तनानि	तथा नगरोंको
आश्रम	आश्रम,	ददहुः	जला डाला ॥१४॥
आकरान्	खदान,		

केचित्खनित्रैर्बिभिदुः सेतुप्राकारगोपुरान् ।
आजीव्यांश्चिच्छिदुर्वृक्षान् केचित्परशुपाणयः ।
प्रादहञ् शरणान्यन्ये प्रजानां ज्वलितोल्मुकैः ॥१५॥

केचित् खनित्रैः बिभिदुः सेतु प्राकार गोपुरान् आजीव्यान् चिच्छिदुः वृक्षान् केचित् परशु पाणयः प्रादहन् शरणान् अन्ये प्रजानां ज्वलित उल्मुकैः ॥१५॥

केचित् खनित्रैः	कुछने खोदनेके शस्त्रोंसे	परशु पाणयः	हाथमें कुल्हाड़े लिए (दैत्यों)ने
सेतु प्राकार	पुल, चहार दीवारी,	आजीव्यान्	जीविका देनेवाले
गोपुरान्	नगर-द्वार	वृक्षान्	वृक्षोंको
बिभिदुः	तोड़ दिये,	चिच्छिदुः	काट दिया,
केचित्	कुछ		

अन्ये ज्वलित उल्मुकैः	दूसरोंने जलती लकड़ियोंसे	**प्रजानां शरणान् प्रादहन्**	प्रजाके घरोंको जला दिया ॥१५॥

एवं विप्रकृते लोके दैत्येन्द्रानुचरैर्मुहुः ।
दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुरलक्षिताः ॥१६॥

एवं विप्रकृते लोके दैत्येन्द्र अनुचरैः मुहुः दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुः अलक्षिताः ॥१६॥

एवं	इस प्रकार	**देवाः दिवं**	देवता स्वर्ग
दैत्येन्द्र अनुचरैः	दैत्यराजके अनुयायियों द्वारा	**परित्यज्य**	छोड़कर
		अलक्षिताः	छिपकर
मुहुः लोके विप्रकृते	बार-बार लोगोंको उत्पीड़ित करनेपर	**भुवि चेरुः**	पृथ्वीपर विचरण करने लगे ॥१६॥

हिरण्यकशिपुर्भ्रातुः सम्परेतस्य दुःखितः ।
कृत्वा कटोदकादीनि भ्रातृपुत्रानसान्त्वयत् ॥१७॥

हिरण्यकशिपुः भ्रातुः सम्परेतस्य दुःखितः कृत्वा कट उदक आदीनि भ्रातृपुत्रान् असान्त्वयत् ॥१७॥

दुःखितः	दुखित	**आदीनि**	अन्त्येष्टि क्रिया
हिरण्यकशिपुः	हिरण्यकशिपुने	**कृत्वा**	करके
सम्परेतस्य	मेरे	**भ्रातृपुत्रान्**	भतीजोंको
भ्रातुः	भाईको	**असान्त्वयत्**	सान्त्वना देने लगा ॥१७॥
कट उदक	जलांजलि देना आदि		

शकुनिं शम्बरं धृष्टं भूतसन्तापनं वृकम् ।
कालनाभं महानाभं हरिश्मश्रुमथोत्कचम् ॥१८॥

शकुनिं, शम्बरं, धृष्टं, भूतसन्तापनं, वृकं, कालनाभं, महानाभं, हरिश्मश्रुं, अथ उत्कचं ॥१८॥ (ये हिरण्याक्षके पुत्रोंके नाम हैं ।)

तन्मातरं रुषाभानुं दितिं च जननीं गिरा ।
श्लक्ष्णया देशकालज्ञ इदमाह जनेश्वर ॥१९॥

तत् मातरं रुषाभानुं दितिं च जननीं गिरा श्लक्ष्णया देशकालज्ञ इदं आह जनेश्वरः ॥१९॥

तत् मातरं	उनकी माता
रुषाभानुं	रुषाभानुको,
च जननीं दितिं	और अपनी जननी दितिको
देशकालज्ञ	देशकालके अनुसार
श्लक्ष्णया गिरा	मधुर वाणीसे
जनेश्वरः	उस दैत्यराजने
इदं आह	यह कहा ॥१९॥

हिरण्यकशिपुरुवाच–

अम्बाम्ब हे वधूः पुत्रा वीरं माऽर्थ शोचितुम् ।
रिपोरभिमुखे श्लाघ्यः शूराणां बध ईप्सितः ॥२०॥

अम्ब अम्ब हे वधूः पुत्रा वीरं मा अर्हथ शोचितुं रिपोः अभिमुखे श्लाघ्यः शूराणां वध ईप्सितः ॥२०॥

अम्ब अम्ब	मां, हे मां !
हे वधूः	हे बहू,
पुत्राः	पुत्रो,
वीरं	वीर (हिरण्याक्ष)के लिए
शोचितुं	शोक
मा अर्हथ	नहीं करना चाहिए।
रिपोः अभिमुखे	शत्रुका सामना करते हुए
शूराणां वध	शूरवीरका मारा जाना
श्लाघ्यः	प्रशंसनीय और
ईसिप्तः	अभीष्ट है ॥२०॥

भूतानामिह संवासः प्रपायामिव सुव्रते ।
दैवेनैकत्र नीतानामुन्नीतानां स्वकर्मभिः ॥२१॥

भूतानां इह संवासः प्रपायां इव सुव्रते दैवेन एकत्र नीतानां उन्नीतानां स्वकर्मभिः ॥२१॥

सुव्रते	उत्तम व्रतों वाली देवि !
स्वकर्मभिः	अपने कर्मोंके अनुसार
दैवेन	दैवके द्वारा
एकत्र नीतानां उन्नीतानां	एकत्र किए गए या पृथक कर दिए गये
भूतानां	प्राणियोंका
इह संवासः	यहां (जीवनमें) साथ रहना
प्रपायां इव	प्याऊपर (इकट्ठे होनेके) समान है ॥२१॥

नित्य आत्माव्ययः शुद्धः सर्वगः सर्ववित्परः ।
धत्तेऽसावात्मनो लिङ्गं मायया विसृजन्गुणान् ॥२२॥

नित्य आत्मा अव्ययः शुद्धः सर्वगः सर्ववित् परः धत्ते असौ आत्मनः लिङ्गम् मायया व्यसृजन् गुणान् ॥२२॥

आत्मा	यह आत्मा
नित्य अव्ययः	नित्य, अविनाशी,
शुद्ध सर्वगः	शुद्ध, सर्वव्यापी,
सर्ववित् परः	सर्वज्ञ, सबसे परे है ।
असौ मायया	यही मायासे
गुणान् व्यसृजन्	इन्द्रियोंकी सृष्टि करके
आत्मनः लिङ्गं	अपना (सूक्ष्म)शरीर
धत्ते	धारण करता है ॥२२॥

यथाम्भसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव ।
चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः ॥२३॥

यथा अम्भसा प्रचलता तरवः अपि चला इव चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलती इव भूः ॥२३॥

यथा अम्भसा	जैसे पानीके
प्रचलता	हिलनेसे
तरवः अपि	(उसमें प्रतिविम्बित) वृक्ष भी
चल इव	हिलनेसे लगते हैं,
चक्षुषा	(स्वयं घूमनेसे) नेत्रोंके
भ्राम्यमाणेन	घूमनेसे
भूः चलती इव	पृथ्वी घूमती-सी
दृश्यते	दीखती है ॥२३॥

एवं गुणैर्भ्राम्यमाणे मनस्यविकलः पुमान् ।
याति तत्साम्यतां भद्रे ह्यलिङ्गो लिङ्गवानिव ॥२४॥

एवं गुणैः भ्राम्यमाणे मनसि अविकलः पुमान् याति तत् साम्यतां भद्रे हि अलिङ्गः लिङ्गवान् इव ॥२४॥

भद्रे	कल्याणी !	**लिङ्गवान् इव**	शरीरधारीके समान
एवं	इसी प्रकार	**तत् साम्यतां**	उस (मन) की समानताको
मनसि गुणैः	मनके विषयोंमें	**याति**	पा लेता है ॥२४॥
भ्राम्यमाणैः	भटकनेसे		
अविकलः पुमान्	अविचल पुरुष		
अलिङ्गः हि	अशरीरी होनेपर भी		

एष आत्मविपर्यासो ह्यलिङ्गे लिङ्गभावना ।
एष प्रियाप्रियैर्योगो वियोगः कर्मसंसृतिः ॥२५॥

एष आत्म विपर्यासः हि अलिङ्गे लिङ्गभावना एष प्रिय अप्रियैः योगः वियोगः कर्म संसृतिः ॥२५॥

हि	क्योंकि	**एष**	यही
अलिङ्गे	शरीर रहित होने-पर भी	**प्रिय अप्रियैः**	प्रिय-अप्रियसे
लिङ्गभावना	अपनेको शरीर मान लेना	**योगः वियोगः**	मिलना-बिछुड़ना रूप
एष	यही	**कर्म संसृतिः**	कर्मका आवागमन चक्र है ॥२५॥
आत्म विपर्यासः	आत्माका उलटापन (अज्ञान) है,		

सम्भवश्च विनाशश्च शोकश्च विविधः स्मृतः ।
अविवेकश्च चिन्ता च विवेकास्मृतिरेव च ॥२६॥

सम्भवः च विनाशः च शोकः च विविधः स्मृतः अविवेकः च चिन्ता च विवेक अस्मृतिः एव च ॥२६॥

सम्भवः च	जन्म और	**च विवेक**	तथा विवेककी
विनाशः	मृत्यु	**अस्मृतिः**	विस्मृति
च विविधः	और अनेक प्रकारके	**एव च**	भी (अज्ञानसे ही हैं) ॥२६॥
शोकः च	शोक भी		
स्मृतः	जो कहे जाते हैं,		
अविवेकः च	अविवेक और		
चिन्ता	चिन्ता		

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
यमस्य प्रेतबन्धूनां संवादं तं निबोधत ॥२७॥

अत्र अपि उदाहरन्ति इमं इतिहासं पुरातनं यमस्य प्रेतबन्धूनां संवादं तं निबोधत ॥२७॥

अत्र अपि	इस विषयमें भी	**पुरातनं**	पुराने
यमस्य	यमराजका और	**इमं इतिहासं**	इस इतिहासका
प्रेतबन्धूनां	मरे हुएके सम्बन्धियोंका	**उदाहरन्ति**	उदाहरण दिया जाता है,
संवादं	संवाद रूप	**तं निबोधत**	उसे सुनो ॥२७॥

उशीनरेष्वभूद्राजा सुयज्ञ इति विश्रुतः ।
सपत्नैर्निहतो युद्धे ज्ञातयस्तमुपासत ॥२८॥

उशीनरेषु अभूत् राजा सुयज्ञ इति विश्रुतः सपत्नैः निहतः युद्धे ज्ञातयः त उपासत ॥२८॥

उशीनरेषु	उशीनर देशमें	**निहतः**	मारे जानेपर
सुयज्ञ इति	सुयज्ञ इस नामका	**ज्ञातयः**	उसके जाति-भाई
विश्रुतः राजा	प्रसिद्ध राजा	**तं उपासत**	उसके पास बैठ गये ॥२८॥
अभूत्	हुआ था ।		
युद्धे सपत्नैः	युद्धमें शत्रुओं द्वारा		

विशीर्णरत्नकवचं विभ्रष्टाभरणस्रजम् ।
शरनिर्भिन्नहृदयं शयानमसृगाविलम् ॥२९॥

विशीर्ण रत्न कवचं विभ्रष्ट आभरण स्रजं शरनिर्भिन्न हृदयं शयानं असृक् आविलम् ॥२९॥

रत्न कवचं	रत्न-जटित कवच	**हृदयं**	हृदय
विशीर्ण	छिन्न-भिन्न हो गया था,	**शरनिर्भिन्नं**	वाणसे फट गया था,
आभरण स्रजं	आभूषण तथा माला	**असृक् आविलं**	रक्त लथपथ
विभ्रष्ट	गिर गयी थीं,	**शयानं**	पड़ा था ॥२९॥

प्रकीर्णकेशं ध्वस्ताक्षं रभसा दष्टदच्छदम् ।
रजःकुण्ठमुखाम्भोजं छिन्नायुधभुजं मृधे ॥३०॥

प्रकीर्णकेशं ध्वस्त अक्षं रभसा दष्ट दत् छदं रजः कुण्ठ मुखाम्भोजं छिन्न आयुध भुजं मृधे ॥३०॥

प्रकीर्णकेशं	केश बिखरे थे,	**रजः कुण्ठ**	धुलिसे ढक गया था,
ध्वस्त अक्षं	नेत्र बैठ गये थे,	**मृधे**	युद्धमें
रभसा	क्रोधसे	**छिन्न आयुध**	शस्त्र और
दष्ट दत् छदं	दाँतोंसे ओष्ठ दबाये था,	**भुजं**	भुजा कट गयी थी ॥३०॥
मुखाम्भोजं	मुख-कमल		

उशीनरेन्द्रं विधिना तथा कृतं
पतिं महिष्यः प्रसमीक्ष्य दुःखिताः ।
हताः स्म नाथेति करैरुरो भृशं
घनन्त्यो मुहुस्तत्पदयोरुपापतन् ॥३१॥

उशीनरेन्द्रं विधिना तथा कृतं पतिं महिष्यः प्रसमीक्ष्य दुःखिताः हताः स्म नाथ इति करैः उरः भृशं घनन्त्यः मुहुः तत् पदयोः उप आपतन् ॥३१॥

विधिना	भाग्य द्वारा
तथा कृतं	ऐसी दशामें किये
पतिं उशीनरेन्द्रं	अपने पति उशीनर-नरेशको
प्रसमीक्ष्य	देखकर
दुःखिताः	दुःखी
महिष्यः	रानियां
नाथ हताः स्म	'नाथ हम मारी गयीं'
इति	ऐसा कहकर
करैः भृशं	हाथोंसे बार-बार
उरः घ्नन्त्यः	छाती पीटती
तत् पदयोः	उसके पैरोंके
उप आपतन्	समीप गिर पड़ीं ॥३१॥

रुदत्य उच्चैर्दयिताङ्घ्रि पङ्कजं
सिञ्चन्त्य अस्रैः कुचकुङ्कुमारुणैः ।
विस्रस्तकेशाभरणाः शुचं नृणां
सृजन्त्य आक्रन्दनया विलेपिरे ॥३२॥

रुदत्य उच्चैः दयित अङ्घ्रि पङ्कजं सिञ्चन्त्य अस्रैः कुच कुङ्कुम आरुणैः विस्रस्तकेश आभरणाः शुचं नृणां सृजन्त्य आक्रन्दनया विलेपिरे ॥३२॥

उच्चैः रुदत्य	उच्चस्वरसे रोती हुई
दयित	अपने प्रियतमके
अङ्घ्रि पङ्कजं	चरण-कमलोंको
कुच कुंकुम	स्तनोंपर लगे कुंकुमसे
आरुणैः अस्रैः	लाल हुए आँसुओंसे
सिञ्चन्त्य	भिगाती हुई
विस्रतकेश	बिखरे केश
आभरणाः	आभूषण (वाली वे)
आक्रन्दनया	अपने आर्तनादसे
नृणां शुचं	मनुष्योंमें शोक
सृजन्त्य	उत्पन्न करती हुई
विलेपिरे	विलाप करने लगीं ॥३२॥

अहो विधात्राकरुणेन नः प्रभो
भवान् प्रणीतो दृगगोचरां दशाम् ।
उशीनराणामसि वृत्तिदः पुरा
कृतोऽधुना येन शुचां विवर्धनः ॥३३॥

अहो विधात्रा अकरुणेन नः प्रभो भवान् प्रणीतः दृक् अगोचरां दशां उशी नराणां असि वृत्तिदः पुरा कृतः अधुना येन शुचां विवर्धनः ॥३३॥

अहो अकरुणेन	अरे निष्ठुर
विधात्रा	विधाता !
नः प्रभो	हमारे स्वामीको
दृक् अगोचरां	आँखोंसे न दीखने वाली
दशां भवान्	दशामें तुम
प्रणीतः	ले गये
येन पुरा	जो पहिले
उशी नराणां	उशीनर देश-वासियोंको
वृत्तिदः	आजीविका देते थे,
अधुना	इस समय (उन्हें)
शुचां विवर्धनः	शोकको बढ़ानेवाला
कृतः	बना दिया ॥३३॥

त्वया कृतज्ञेन वयं महीपते
कथं विना स्याम सुहृत्तमेन ते ।
तत्रानुयानं तव वीर पादयोः
शुश्रूषतीनां दिश यत्र यास्यसि ॥३४॥

त्वया कृतज्ञेन वयं महीपते कथं विना स्याम सुहृत्तमेन ते तत्र अनुयानं तव वीर पादयोः शुश्रूषतीनां दिश यत्र यास्यसि ॥३४॥

त्वया कृतज्ञेन	तुम कृतज्ञ
महीपते	नरेश
सुहृत्तमेन	परम प्रियतमके
विना वयं	बिना हम
कथं स्याम	कैसे रहेंगी (अतः)
वीर तव पादयोः	पतिदेव तुम्हारे चरणोंकी
शुश्रूषतीनां	सेवा करने वाली-को
यत्र यास्यसि	जहां जाओगे
तत्र	वहां
ते अनुयानं	तुम्हारे पीछे जाने-की
दिश	आज्ञा दो ॥३४॥

एवं विलपतीनां वै परिगृह्य मृतं पतिम् ।
अनिच्छतीनां निर्हारमर्कोऽस्तं संन्यवर्तत ॥३५॥

एवं विलपतीनां वै परिगृह्य मृतं पतिं अनिच्छतीनां निर्हारं अर्कः अस्तं संन्यवर्तत ॥३५॥

एवं	इस प्रकार	**अनिच्छतीनां**	नहीं चाहती थीं
मृतं पतिं	मेरे पति (देह)को		(इतनेमें)
परिगृह्य वै	पकड़ करके ही	**अर्कः अस्तं**	सूर्य-अस्त होनेके
विलपतीनां	विलाप करती हुई	**संन्यवर्तत**	समीप पहुँच गया
निर्हरिं	(दाहके लिए) ले जाना		॥३५॥

तत्र ह प्रेतबन्धूनामाश्रुत्य परिदेवितम् ।
आह तान् बालको भूत्वा यमः स्वयमुपागतः ॥३६॥

तत्र ह प्रेतबन्धूनां आश्रुत्य परिदेवितं आह तान् बालकः भूत्वा यमः स्वयं उपागतः ॥३६॥

तत्र ह	वहां तो	**बालकः भूत्वा**	बालक बनकर
प्रेतबन्धूनां	मरेके सम्बन्धियोंका	**स्वयं यमः**	स्वयं यमराज
परिदेवितं	विलाप	**उपागतः**	समीप आकर
आश्रुत्य	सुनकर	**तान् आह**	उनसे बोले ॥३७॥

यम उवाच–

अहो अमीषां वयसाधिकानां
विपश्यतां लोकविधि विमोहः ।
यत्रागतस्तत्र गतं मनुष्यं
स्वयं सधर्मा अपि शोचन्त्यपार्थम् ॥३७॥

अहो अमीषां वयसा अधिकानां विपश्यतां लोकविधि विमोहः यत्र आगतः तत्र गतं मनुष्यं स्वयं सधर्मा अपि शोचन्ति अपार्थम् ॥३७॥

अहो अमीषां	अरे इन	**लोकविधि**	लोककी (साधारण)
वयसा-	बड़ी आयुके		रीतिके विषयमें
अधिकानां	लोगोंका	**विमोहः**	इतना अज्ञान तो

विपश्यतां	देखो,
यत्र आगतः	जहांसे आया था
तत्र गतं	वहां चले गये
मनुष्यं	मनुष्यके लिए
स्वयं सधर्मा	स्वयं उसके सहधर्मी (मरणशील)
अपि	होनेपर भी
अपार्थं शोचन्ति	व्यर्थ शोक कर रहे हैं ॥३७॥

अहो वयं धन्यतमा यदत्र
त्यक्ताः पितृभ्यां न विचिन्तयामः ।
अभक्ष्यमाणा अबला वृकादिभिः
स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे ॥३८॥

अहो वयं धन्यतमा यत् अत्र त्यक्ताः पितृभ्यां न विचिन्तयामः अभक्ष्यमाणा अबला वृक आदिभिः स रक्षिता रक्षति यः हि गर्भे ॥३८॥

अहो वयं	अहा, हम
धन्यतमा	परम धन्य हैं
यत् अत्र	क्योंकि यहां
पितृभ्यां त्यक्ताः	माता-पिता द्वारा छोड़ दिये जानेपर भी
विचिन्तयामः न	चिन्ता नहीं करते हैं,
अबला	निर्बल होनेपर भी
वृक आदिभिः	भेड़िये आदि द्वारा
अभक्ष्यमाणाः	खाये नहीं गये
हि	क्योंकि
यः गर्भे रक्षति	जो गर्भमें रक्षा करता है
स रक्षिता	वह रक्षक है ॥३८॥

य इच्छयेशः सृजतीदमव्ययो
य एव रक्षत्यवलुम्पते च यः ।
तस्याबलाः क्रीडनमाहुरीशितु-
श्चराचरं निग्रहसङ्ग्रहे प्रभुः ॥३९॥

यः इच्छया ईशः सृजति इदं अव्ययः यः एव रक्षति अवलुम्पते च यः तस्य अबलाः क्रीडनं आहुः ईशितुः चर अचरं निग्रह संग्रहे प्रभुः ॥३९॥

यः अव्ययः	जो अविनाशी
ईशः	ईश्वर
इच्छया इदं	अपनी इच्छासे इस जगतकी
सृजति	सृष्टि करता है,
यः एव रक्षति	जो रक्षा भी करता है
च यः	और जो
अवलुम्पते	नष्ट भी कर देता है,
अबलाः	स्त्रियों
तस्य ईशितुः	उस लीलामयका
चर अचरं	जंगम-स्थावर सब
क्रीडनम् आहुः	खिलौने कहे गये हैं।
निग्रह संग्रहे	(किसीको भी) दण्ड या पुरस्कार देनेमें
प्रभुः	वही समर्थ है ॥३९॥

पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं
गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यति ।
जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने
गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति ॥४०॥

पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं गृहे स्थितं तत् विहतं विनश्यति जीबति अनाथः अपि तत् ईक्षितः वने गृहे अपि गुप्तः अस्य हतः न जीवति ॥४०॥

पथि च्युतं	(कोई वस्तु) मार्गमें गिरी
दिष्टरक्षितं	प्रारब्धसे रक्षित हो तो
तिष्ठति	वहीं पड़ी रहती है,
गृहे स्थितं	घरमें रखी भी
तत् विहतं	उस (प्रारब्ध) से नष्ट की गयी
विनश्यति	नष्ट हो जाती है,
तत् ईक्षितः	उस (दैव) की दया दृष्टि होनेपर
अनाथः	असहाय
वने अपि	वनमें भी
जीवति	जीवित रहता है; किन्तु
गृहे अपि गुप्तः	घरमें भी सुरक्षित रहनेपर
अस्य हतः	इस (दैव)का मारा
जीवति न	जीवित नहीं रहता ॥४०॥

भूतानि तैस्तैर्निजयोनिकर्मभि-
र्भवन्ति काले न भवन्ति सर्वशः ।
न तत्र ह्यात्मा प्रकृतावपि स्थित-
स्तस्या गुणैरन्यतमो निबध्यते ॥४१॥

भूतानि तैः तैः निज योनि कर्मभिः भवन्ति काले न भवन्ति सर्वशः न तत्र ह आत्मा प्रकृताः अपि स्थितः तस्या गुणैः अन्यतमः निबध्यते ॥४१॥

सर्वशः भूतानि	समस्त प्राणियोंका	**तत्र ह**	इस (जन्म-मृत्यु)-में तो
तैः तैः	उन उनके	**आत्मा**	आत्मा
निज कर्मभिः	अपने कर्मोंके अनुसार	**प्रकृताः**	प्रकृतिमें
काले योनिः	समयपर भिन्न-भिन्न योनियोंमें	**स्थितः अपि**	स्थित रहता हुआ भी
		अन्यतमः	उनसे पृथक होनेके
भवन्ति	जन्म होता है या		कारण
न भवन्ति	न होना (मरण) होता है।	**तस्या गुणैः निबध्यते न**	उस प्रकृतिके गुणोंसे बँधता नहीं है ॥४१॥

इदं शरीरं पुरुषस्य मोहजं
यथा पृथग्भौतिकमीयते गृहम् ।
यथौदकैः पार्थिवतैजसैर्जनः
कालेन जातो विकृतो विनश्यति ॥४२॥

इदं शरीरं पुरुषस्य मोहजं यथा पृथक् भौतिकं ईयते गृहं यथा उदकैः पार्थिव तैजसैः जनः कालेन जातः विकृतः विनश्यति ॥४२॥

यथा गृहं	जैसे मकानको	**यथा उदकैः**	जैसे जलके (बुलबुले आदि)
भौतिकं पृथक्	मिट्टीसे बना अपने-से पृथक्	**पार्थिव**	मिट्टीके (घड़े आदि)
ईयते	समझता है,		

तैजसैः	तेज (सोने) के (गहने आदि)
कालेन जातः	समयपर उत्पन्न होकर
विकृतः	विकृत होते हैं (वैसे ही)
पुरुषस्य	पुरुषका
इदं शरीरं	यह शरीर भी
मोहजं	मोहके कारण (अपना स्वरूप) लगता है ।
जनः	जन्म लेने वाला है अतः
विनश्यति	नष्ट होगा ही ॥४२॥

यथानलो दारुषु भिन्न ईयते
यथानिलो देहगतः पृथक् स्थितः ।
यथा नभः सर्वगतं न सज्जते
तथा पुमान् सर्वगुणाश्रयः परः ॥४३॥

यथा अनलः दारुषु भिन्न ईयते यथा अनिलः देहगतः पृथक् स्थितः यथा नभः सर्वगतं न सज्जते तथा पुमान् सर्वगुण आश्रयः परः ॥४३॥

यथा अनलः	जैसे अग्नि
दारुषु भिन्न ईयते	लकड़ियोंसे पृथक जाना जाता है,
यथा अनिलः	जैसे वायु
देहगतः	शरीरमें रहनेपर भी
पृथक् स्थितः	(उससे) अलग रहता है,
यथा नभः	जैसे आकाश
सर्वगतं	सर्वव्यापक होकर भी
न सज्जते	(किसीसे) संसक्त नहीं होता
तथा पुमान्	वैसे ही आत्मा
सर्वगुण आश्रयः	सब (देह) इन्द्रियादिका आश्रय होकर भी
परः	उनसे परे (निर्लिप्त) है ॥४३॥

सुयज्ञो नन्वयं शेते मूढा यमनुशोचथ ।
यः श्रोता योऽनुवक्तेह स न दृश्येत कर्हिचित् ॥४४॥

सुयज्ञः ननु अयं शेते मूढा यं अनु शोचथ यः श्रोता यः अनुवक्ता इह स न दृश्येत कर्हिचित् ॥४४॥

मूढा	मूर्खो !
यं अनु	जिसके पीछे
शोचथ	(तुम लोग) शोक कर रहे हो
ननु सुयज्ञः	निश्चय वह सुयज्ञ
अयं शेते	यह (शरीर) सो रहा है,
इह यः श्रोता	इसमें जो सुननेवाला,
(च) यः अनुवक्ता	और जो बोलनेवाला था,
स कर्हिचित्	वह तो कभी भी
दृश्येत न	दीखता नहीं है ॥४४॥

न श्रोता नानुवक्तायं मुख्योऽप्यत्र महानसुः ।
यस्त्विहेन्द्रियवानात्मा स चान्यः प्राणदेहयोः ॥४५॥

न श्रोता न अनुवक्ता अयं मुख्यः अपि अत्र महान् असुः यः तु इह इन्द्रियवान् आत्मा स च अन्यः प्राण देहयोः ॥४५॥

अत्र	इस देहमें
मुख्यः अपि	प्रधान होनेपर भी
अयं महान् असुः	यह महान् प्राण
न श्रोता	न सुननेवाला है
न अनुवक्ता	न सुनकर बोलनेवाला है
इह यः तु	इस शरीरमें जो तो
इन्द्रियवान्	इन्द्रियोंका स्वामी
आत्मा	आत्मा है
स च प्राण	वह तो प्राण और
देहयोः	देहसे
अन्यः	भिन्न है ॥४५॥

भूतेन्द्रियमनोलिङ्गान् देहानुच्चावचान् विभुः ।
भजत्युत्सृजति ह्यन्यस्तच्चापि स्वेन तेजसा ॥४६॥

भूत इन्द्रिय मनः लिङ्गात् देहान् उच्च अवचान् विभुः भजति उत् सृजति हि अन्यः तत् च अपि स्वेन तेजसा ॥४६॥

भूत इन्द्रिय	पंचभूत, इन्द्रिय,
मनः लिङ्गात्	मनसे युक्त होकर
उच्च अवचान्	श्रेष्ठ-नीच
देहान् विभुः	शरीरोंको वह समर्थ
भजति	स्वीकार करता है, या

उत् सृजति	छोड़ देता है	**च तत् अपि**	और वह (शरीरोंको
हि अन्यः	क्योंकि वह (इन शरीरोंसे) पृथक है	**स्वेन तेजसा**	पकड़ना-छोड़ना) भी अपने तेजसे ही करता है ॥४६॥

यावल्लिङ्गान्वितो ह्यात्मा तावत् कर्म निबन्धनम् ।
ततो विपर्ययः क्लेशो मायायोगोऽनुवर्तते ॥४७॥

यावत् लिङ्ग अन्वितः हि आत्मा तावत् कर्म निबन्धनं ततः विपर्ययः क्लेशः माया योगः अनुवर्तते ॥४७॥

यावत् आत्मा	जब तक आत्मा	**ततः विपर्ययः**	उसीसे यह उलटी दशा
लिङ्ग अन्वितः	सूक्ष्म शरीरके साथ है	**क्लेशः**	(अविद्य अस्मितादि) क्लेश
तावत्	तब तक	**माया योगः**	मायाके संयोगसे
कर्म निबन्धनं	कर्म-बन्धन है,	**अनुवर्तते**	पीछे लगे हैं ॥४७॥
हि	क्योंकि		

वितथाभिनिवेशोऽयं यद् गुणेष्वर्थदृग्वचः ।
यथा मनोरथः स्वप्नः सर्वमैन्द्रियकं मृषा ॥४८॥

वितथ अभिनिवेशः अयं यत् गुणेषु अर्थ दृक् वचः यथा मनोरथः स्वप्नः सर्वं ऐन्द्रियकं मृषा ॥४८॥

यत् गुणेषु	जो प्रकृतिके गुणोंको	**यथा मनोरथः**	जैसे मनोरथ या
अर्थ दृक् वचः	सत्य देखना या कहना है	**स्वप्नः**	स्वप्न हो (वैसे ही)
अयं वितथ	यह व्यर्थ	**सर्वं ऐन्द्रियकं**	इन्द्रियोंसे प्रतीत होनेवाला सब
अभिनिवेशः	दुराग्रह है	**मृषा**	झूठा है ॥४८॥

अथ नित्यमनित्यं वा नेह शोचन्ति तद्विदः ।
नान्यथा शक्यते कर्तुं स्वभावः शोचतामिति ॥४९॥

अथ नित्यं अनित्यं वा न इह शोचन्ति तद् विदः न अन्यथा शक्यते कर्तुं स्वभावः शोचतां इति ॥४९॥

अथ नित्यं	यह शरीर नित्य हो	**इति स्वभावः**	ऐसा (शोक करने-
वा अनित्यं	या अनित्य		का) स्वभाव ही है
तद् विदः	उस आत्माको	**अन्यथा कर्तुं**	उसे विपरीत बना
	जाननेवाले		देना
इह न शोचन्ति	इसके विषयमें शोक	**शक्यते न**	शक्य नहीं होता
	नहीं करते		॥४९॥
शोचतां	शोक करने वालोंका		

लुब्धको विपिने कश्चित्पक्षिणां निर्मितोऽन्तकः ।
वितत्य जालं विदधे तत्र तत्र प्रलोभयन् ॥५०॥

लुब्धकः विपिने कश्चित् पक्षिणां निर्मितः अन्तकः वितत्य जालं विदधे तत्र तत्र प्रलोभयन् ॥५०॥

पक्षिणां	पक्षियोंके लिए	**तत्र तत्र**	जहां-तहां
अन्तकः निर्मितः	काल बनाया हुआ	**प्रलोभयन्**	(पक्षियोंको) लल-
विपिने कश्चित्	वनमें कोई		चानेकी
लुब्धकः	बहेलिया	**विदधे**	व्यवस्था करता
जालं वितत्य	जाल फैलाकर		था ॥५०॥

कुलिङ्गमिथुनं तत्र विचरत्समदृश्यत ।
तयोः कुलिङ्गी सहसा लुब्धकेन प्रलोभिता ॥५१॥

कुलिङ्ग मिथुनं तत्र विचरत् सम् अदृश्यत तयोः कुलिङ्गी सहसा लुब्धकेन प्रलोभिता ॥५१॥

तत्र	उस वनमें	**विचरत्**	घूमता
कुलिङ्ग मिथुनं	कुलिंग पक्षीका	**सम् अदृश्यत**	दिखायी पड़ा,
	जोड़ा	**तयोः सहसा**	उनमें-से अचानक

लुब्धकेन	व्याध द्वारा	कुलिङ्गी	कुलिंगी ॥५१॥
प्रलोभिता	ललचायी गयी		

सासञ्जत शिचस्तन्त्यां महिषी कालयन्त्रिता ।
कुलिङ्गस्तां तथाऽऽपन्नां निरीक्ष्य भृशदुःखितः ।
स्नेहादकल्पः कृपणः कृपणां पर्यदेवयत् ॥५२॥

सा असञ्जत शिचः तन्त्यां महिषी काल यन्त्रिता कुलिङ्गः तां तथा आपन्नां निरीक्ष्य भृश दुःखितः स्नेहात् अकल्पः कृपणः कृपणां पर्यदेवयत् ॥५२॥

काल यन्त्रिता	कालकी प्रेरणासे	स्नेहात् भृश	स्नेहके कारण अत्यंत
सा महिषी	वह मादा पक्षी	दुःखितः	दुःखी होकर
शिचः तन्त्यां	जालकी तांतोंमें	कृपणः	अभागा वह
असञ्जत	बँध गयी	अकल्पः	कुछ करनेमें असमर्थ
तां तथा	उसे इस	कृपणां	उस अभागिनीके
आपन्नां	विपत्तिमें पड़ी		लिए
निरीक्ष्य	देखकर	पर्यदेवयत्	विलाप करने लगा
कुलिङ्गः	नर कुलिग		॥५२॥

अहो अकरुणो देवः स्त्रियाऽऽकरुणया विभुः ।
कृपणं मानुशोचन्त्या दीनया किं करिष्यति ॥५३॥

अहो अकरुणः देवः स्त्रिया आकरुणया विभुः कृपणं मा अनुशोचन्त्या दीनया किं करिष्यति ॥५३॥

देवः विभुः	विधाता समर्थ होनेपर भी	आकरुणया	छटपटाती
		दीनया स्त्रिया	दीना मेरी स्त्रीका
अहो अकरुणः	अहो, निष्ठुर है	किं करिष्यति	वह क्या करेगा
मा कृपणं	मुझ दुःखीके लिए		॥५३॥
अनुशोचन्त्या	शोक करती		

कामं नयतु मां देवः किमर्धेनात्मनो हि मे ।
दीनेन जीवता दुःखमनेन विधुरायुषा ॥५४॥

कामं नयतु मां देवः किं अर्धेन आत्मनः हि मे दीनेन जीवता दुःखं अनेन विधुर आयुषा ॥५४॥

देवः कामं	दैव इच्छानुसार
मां नयतु	मुझे भी ले जाय
हि	क्योंकि
मे दीनेन	मैं दुःखिया
विधुर	विधुर होकर
दुःखं जीवता	दुःखी होकर जीते रहकर
आत्मनः अर्धेन	अपने आधे
अनेन आयुषा	इस जीवनको
किं	लेकर क्या करूंगा ॥५४॥

कथं त्वजातपक्षांस्तान् मातृहीनान् बिभर्म्यहम् ।
मन्दभाग्याः प्रतीक्षन्ते नीडे मे मातरं प्रजाः ॥५५॥

कथं तु अजात पक्षान् तान् मातृहीनान् बिभर्मि अहं मन्द भाग्याः प्रतीक्षन्ते नीडे मे मातरं प्रजाः ॥५५॥

तान्	उन
अजात पक्षान्	पंख न निकले
मातृहीनान्	मातृहीन
प्रजाः कथं तु	शावकोंका भला कैसे
अहं बिभर्मि	मैं पालन-पोषण करूंगा
मे नीडे	मेरे घोंसलेमें
मन्द भाग्याः	वे अभागे
मातरं प्रतीक्षन्ते	अपनी माताकी प्रतीक्षा करते होंगे ॥५५॥

एवं कुलिङ्गं विलपन्तमारात्
प्रियावियोगातुरमश्रुकण्ठम् ।
स एव तं शाकुनिकः शरेण
विव्याध कालप्रहितो विलीनः ॥५६॥

एवं कुलिग विलपन्तं आरात् प्रियावियोग आतुरं अश्रुकण्ठं स एव तं शाकुनिकः शरेण विव्याध कालप्रहितः विलीनः ॥५६॥

एवं कुलिग	इस प्रकार कुलिग	**आरात् विलीनः**	समीप ही छिपे
प्रियावियोग	पत्नीके वियोगमें	**स एव**	उसी
आतुरं	व्याकुल	**शाकुनिकः**	पक्षियोंके शिकारीने
अश्रुकण्ठं	आंसू भरे गलेसे	**कालप्रहितः**	काल प्रेरित
विलपन्तं	विलाप कर रहा था तभी	**तं शरेण**	उसे बाणसे
		विव्याध	बींध दिया ॥५६॥

एवं यूयमपश्यन्त्य आत्मापायमबुद्धयः ।
नैनं प्राप्स्यथ शोचन्त्यः पतिं वर्षशतैरपि ॥५७॥

एवं यूयं अपश्यन्त्यः आत्म अपायं अबुद्धयः न एनं प्राप्स्यथ शोचन्त्यः पतिं वर्षशतैः अपि ॥५७॥

एवं	इस प्रकार	**पतिं**	पतिके लिए
आत्म अपायं	अपनी मृत्यु	**शोचन्त्यः**	शोक करती हुई
अपश्यन्त्यः	न देखती हुईं	**वर्षशतैः अपि**	सौ वर्षमें भी
अबुद्धयः	मूर्खाओ	**एनं न प्राप्स्यथ**	इसे नहीं पाओगी ॥५७॥
यूयं	तुम सब		

हिरण्यकशिपुरुवाच—

बाल एवं प्रवदति सर्वे विस्मितचेतसः ।
ज्ञातयो मेनिरे सर्वमनित्यमयथोत्थितम् ॥५८॥

बाल एवं प्रवदति सर्वे विस्मित चेतसः ज्ञातयः मेनिरे सर्वं अनित्यं अयथा उत्थितम् ॥५८॥

बाल एवं	बालकके इस प्रकार	**सर्वे ज्ञातयः**	सब जातिके भाई-बन्धु
प्रवदति	कहनेपर		

विस्मित चेतसः	चकित चित्त रह गये	**अयथा उत्थितं मेनिरे**	मिथ्या प्रतीत होता मान लिया ॥५८॥
सर्वं अनित्यं	(उन्होंने) सब संसारको अनित्य		

यम एतदुपाख्याय तत्रैवान्तरधीयत ।
ज्ञातयोऽपि सुयज्ञस्य चक्रुर्यत्साम्परायिकम् ॥५९॥

यम एतत् उपाख्याय तत्र एव अन्तः अधीयत ज्ञातयः अपि सुयज्ञस्य चक्रुः यत् साम्परायिकम् ॥५९॥

यम एतत्	यमराज यह	**सुयज्ञस्य**	सुयज्ञकी
उपाख्याय	कहकर	**यत्**	जो
तत्र एव	वहीं	**साम्परायिकं**	मरणोत्तर क्रिया थी
अन्तः अधीयत	अन्तर्धान हो गये ।	**चक्रुः**	किया ॥५९॥
ज्ञातयः अपि	जाति वालोंने भी		

ततः शोचत मा यूयं परं चात्मानमेव च ।
क आत्मा कः परो वात्र स्वीयः पारक्य एव वा ।
स्वपराभिनिवेशेन विनाज्ञानेन देहिनाम् ॥६०॥

ततः शोचत मा यूयं परं च आत्मानं एव च कः आत्मा कः परः वा अत्र स्वीयः पारक्य एव वा स्व पर अभिनिवेशेन विना ज्ञानेन देहिनाम् ॥६०॥

ततः यूयं	इसलिए तुम लोग	**स्व पर**	अपना-पराया
परं च	दूसरेके लिए और	**अभिनिवेशेन**	माननेसे ही
आत्मानं एव च	अपने लिए भी	**देहिनां**	शरीर धारियोंको
मा शोचत	शोक मत करो ।	**विना ज्ञानेन**	ज्ञान न होनेसे
अत्र कः आत्मा	इस संसारमें कौन अपना	**स्वीयः वा**	अपने या
		पारक्य एव	परायेका भी (भेद-भाव) है ॥६०॥
वा कः परः	या कौन पराया है ।		

नारद उवाच—

इति दैत्यपतेर्वाक्यं दितिराकर्ण्य सुस्नुषा ।
पुत्रशोकं क्षणात्त्यक्त्वा तत्त्वे चित्तमधारयत् ॥६१॥

इति दैत्यपतेः वाक्यं दितिः आकर्ण्य सुस्नुषा पुत्रशोकं क्षणात् त्यक्त्वा तत्त्वे चित्तं अधारयत् ॥६१॥

इति दैत्यपतेः	इस प्रकार दैत्य-राजकी	**पुत्र शोकं**	पुत्रका (मरण) शोक
वाक्यं आकर्ण्य	बात सुनकर	**त्यक्त्वा**	त्यागकर
सुस्नुषा दितिः	पुत्र-वधुओंके साथ दितिने	**चित्तं**	अपना चित्त
क्षणात्	एक क्षणमें	**तत्त्वे अधारयत्**	(परमात्म) तत्त्वमें लगाया ॥६१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे दितिशोकापनयनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

नारद उवाच–

हिरण्यकशिपू राजन्नजेयमजरामरम् ।
आत्मानमप्रतिद्वन्द्वमेकराजं व्यधित्सत ॥ १ ॥

हिरण्यकशिपू राजन् अजेयं अजरं अमरं आत्मानं अप्रति द्वन्द्वं एकराजं व्यधित्सत ॥१॥

राजन्	राजन् !
हिरण्यकशिपू	हिरण्यकशिपुने
आत्मानं	अपनेको
अजेयं अजरं	अजेय, अजर
अमरं अप्रति	अमर, प्रति
द्वन्द्वं	द्वन्दी रहित,
एकराजं	एकछत्र सम्राट्
व्यधित्सत	बनानेकी इच्छासे ॥१॥

स तेपे मन्दरद्रोण्यां तपः परमदारुणम् ।
ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादाङ्गुष्ठाश्रितावनिः ॥ २ ॥

स तेपे मन्दर द्रोण्यां तपः परम दारुणं उर्ध्व बाहुः नभः दृष्टिः पाद अङ्गुष्ठ आश्रिता अवनिः ॥२॥

मन्दर द्रोण्यां	मन्दराचलकी घाटीमें
स पाद अङ्गुष्ठ	वह पैरके अंगूठेसे
अवनि आश्रिता	पृथ्वीका सहारा लेकर
ऊर्ध्व बाहुः	दोनों भुजा उठाकर
नभः दृष्टिः	आकाशको देखता
परम दारुणं	अत्युग्र
तपः तेपे	तपस्या करने लगा ॥२॥

जटादीधितिभी रेजे संवर्तार्क इवांशुभिः ।
तस्मिंस्तपस्तप्यमाने देवाः स्थानानि भेजिरे ॥ ३ ॥

जटा दीधितिभिः रेजे संवर्त अर्क इव अंशुभिः तस्मिन् तपः तप्यमाने देवाः स्थानानि भेजिरे ॥३॥

अंशुभिः	किरणोंसे
संवर्त अर्क	प्रलयकालीन सूर्यके
इव	समान
जटा	जटाकी
दीधितिभिः	चमकसे
रेजे	शोभित हुआ
तस्मिन् तपः	उसके तपस्या
तप्यमाने	करते समय
देवाः स्थानानि	देवता अपने स्थानों-पर
भेजिरे	प्रतिष्ठित हो गये ॥३॥

तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः ।
तिर्यगूर्ध्वमधोलोकानतपद्विष्वगीरितः ॥ ४ ॥

तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतः सधूमः अग्निः तपोमयः तिर्यक् उर्ध्वं अधः लोकान् अतपत् विष्वक् ईरितः ॥

तस्य मूर्ध्नः	उसके मस्तकसे
तपोमय अग्निः	तपस्यामयी अग्नि
समुद्भूतः	निकलती हुई
विष्वक् ईरितः	चारों ओर फैलकर
तिर्यक् उर्ध्वं	आस-पास बगलमें, ऊपर,
अधः लोकान्	नीचेके लोकोंको
अतपत्	संतप्त करने लगी ॥४॥

चुक्षुभुर्नद्युदन्वन्तः सद्वीपाद्रिश्चचाल भूः ।
निपेतुः सग्रहास्तारा जज्वलुश्च दिशो दश ॥ ५ ॥

चुक्षुभुः नद्य उदन्वन्तः सद्वीप अद्रिः चचाल भूः निपेतुः सग्रहाः तारा जज्वलुः च दिशः दश ॥५॥

नद्य उदन्वतः	नदियां और समुद्र
चुक्षुभुः	खौलने लगे,
सद्वीप अद्रिः	द्वीपों और पर्वतों सहित
भूः चचाल	पृथ्वी डगमगाने लगी,
सग्रहाः ताराः	ग्रहोंके साथ तारे
निपेतुः	गिरने लगे,
च दश दिशः	और दसों दिशाएँ
जज्वलुः	जलने लगीं ॥५॥

तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः ।
धात्रे विज्ञापयामासुर्देवदेव जगत्पते ॥ ६ ॥

तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः धात्रे विज्ञापया मासुः देवदेव जगत् पते ॥६॥

तेन तप्ता	उस (तप) से संतप्त होकर	**धात्रे**	ब्रह्माजीको
दिवं त्यक्त्वा	स्वर्ग छोड़कर	**विज्ञापया मासुः**	सूचना दी
सुराः ब्रह्मलोकं	देवता ब्रह्मलोक	**देवदेव जगत् पते**	'हे देवदेव, जगत्पति !' ॥६॥
ययुः	गये,		

दैत्येन्द्रतपसा तप्ता दिवि स्थातुं न शक्नुमः ।
तस्य चोपशमं भूमन् विधेहि यदि मन्यसे ।
लोका न यावन्नङ्क्ष्यन्ति बलिहारास्तवाभिभूः ॥७॥

दैत्येन्द्र तपसा तप्ता दिवि स्थातुं न शक्नुमः तस्य च उपशमं भूमन् विधेहि यदि मन्यसे लोकाः न यावत् नङ्क्ष्यन्ति बलिहाराः तव अभिभूः ।७।

दैत्येन्द्र तपसा	दैत्यराजकी तपस्या-से	**यावत् तव**	जब तक आपको
तप्ता दिवि	तपते स्वर्गमें	**बलिहाराः**	भेंट देनेवाले
स्थातुं न	हम ठहर नहीं	**लोका**	लोक
शक्नुमः	पाते हैं,	**नङ्क्ष्यन्ति न**	नष्ट नहीं हो जाते
विभुः अभिभूः	सर्व व्यापक, सर्वाध्यक्ष !	**तस्य उपशमं**	उस (ज्वाला) को शान्त करनेका
यदि मन्यसे	यदि उचित समझें तो	**विधेहि**	उपाय कीजिए ॥७॥

तस्यायं किल सङ्कल्पश्चरतो दुश्चरं तपः ।
श्रूयतां किं न विदितस्तवाथापि निवेदितः ॥ ८ ॥

तस्य अयं किल सङ्कल्पः चरतः दुश्चरं तपः श्रूयतां किं न विदितः तव अथ अपि निवेदितः ॥८॥

तस्य दुश्चरं	उसका दुश्चर तप	**तव किं**	आपको क्या
चरतः	करते हुए	**विदितः न**	ज्ञात नहीं है
अयं सङ्कल्पः	यह संकल्प	**अथ अपि**	परन्तु फिर भी
किल	तो	**निवेदितः**	(हम) निवेदन कर रहे हैं ॥८॥
श्रूयतां	सुनिये,		

सृष्ट्वा चराचरमिदं तपोयोगसमाधिना ।
अध्यास्ते सर्वधिष्ण्येभ्यः परमेष्ठी निजासनम् ॥ ९ ॥

सृष्ट्वा चर अचरं इदं तपः योग समाधिना अधि आस्ते सर्वधिष्ण्येभ्यः परमेष्ठी निज आसनम् ॥९॥

तपः योग	'तपस्या, योग,	**परमेष्ठी**	ब्रह्माजी,
समाधिना	एकाग्रताके द्वारा	**सर्वधिष्ण्येभ्यः**	सब लोकोंसे
इदं चर अचरं	इस जंगम स्थावर जगतकी	**अधि निज आसनं**	ऊपर अपने लोकमें
सृष्ट्वा	सृष्टि करके	**आस्ते**	(जैसे) हैं ॥९॥

तदहं वर्धमानेन तपोयोगसमाधिना ।
कालात्मनोश्च नित्यत्वात्साधयिष्ये तथाऽऽत्मनः ॥१०॥

तत् अहं वर्धमानेन तप योग समाधिना काल आत्मनः च नित्यत्वात् साधयिष्ये तथा आत्मनः ॥१०॥

तत्	इसलिए	**समाधिना**	एकाग्रतासे
काल	काल	**वर्धमानेन**	बढ़ता हुआ
आत्मनः च	और आत्माके	**तथा आत्मनः**	वैसा ही अपनेको
नित्यत्वात्	नित्य होनेसे	**साधयिष्ये**	बना लूंगा ॥१०॥
अहं तपः योग	मैं तपस्या, योग,		

अन्यथेदं विधास्येऽहमयथापूर्वमोजसा ।
किमन्यैः कालनिर्धूतैः कल्पान्ते वैष्णवादिभिः ॥११॥

अन्यथा इदं विधास्ये अहं अयथा पूर्वं ओजसा किं अन्यैः काल निर्धूतैः कल्प अन्ते वैष्णव आदिभिः ॥११॥

ओजसा	अपने तेजसे	**विधास्ये**	बनाऊँगा ।
इदं	इस संसारको	**कल्प अन्ते**	कल्पके अन्तमें
अयथा पूर्वं	जैसा पहिले नहीं था	**काल निर्धूतैः**	कालके द्वारा नष्ट होनेवाले
अन्यथा	दूसरे ढंगका (पाप-पुण्यके नियम पलटकर)	**वैष्णव आदिभिः**	वैष्णव आदि
		अन्यैः किं	दूसरे पदोंमें क्या रखा है ॥११॥

इति शुश्रुम निर्बन्धं तपः परममास्थितः ।
विधत्स्वानन्तरं युक्तं स्वयं त्रिभुवनेश्वर ॥१२॥

इति शुश्रुम निर्बन्धं तपः परमं आस्थितः विधत्स्व अनन्तरं युक्तं स्वयं त्रिभुवनेश्वर ॥१२॥

इति निर्बन्धं	ऐसा दृढ़ आग्रह	**स्वयं**	आप स्वयं
शुश्रुम	(उसका हम) सुनते हैं,	**त्रिभुवनेश्वर**	त्रिलोकीके स्वामी हैं
परमं तपः	घोर तपस्यामें	**अनन्तरं**	अब इसके बाद
आस्थितः	लगा है'	**युक्तं विधत्स्व**	उचित उपाय कीजिए ॥१२॥

तवासनं द्विजगवां पारमेष्ठ्यं जगत्पते ।
भवाय श्रेयसे भूत्यै क्षेमाय विजयाय च ॥ १३ ॥

तव आसनं द्विज गवां पारमेष्ठ्यं जगत्पते भवाय श्रेयसे भूत्यै क्षेमाय विजयाय च ॥१३॥

जगत्पते	विश्वस्वामी !	**भवाय श्रेयसे**	वृद्धि, कल्याण,
तव पारमेष्ठ्यं	आपका यह ब्रह्माका	**भूत्यै क्षेमाय**	विभूति, कल्याण,
आसनं	पद	**च विजयाय**	और विजयके लिए
द्विज गवां	ब्राह्मण और गायोंके		है ।१३॥

[यदि यह हिरण्यकशिपूने ले लिया तो गौ-ब्राह्मणोंका क्या होगा ?]

इति विज्ञापितो देवैर्भगवानात्मभूर्नृप ।
परीतो भृगुदक्षाद्यैर्ययौ दैत्येश्वराश्रमम् ॥१४॥

इति विज्ञापितः देवैः भगवान् आत्मभूः नृप परीतः भृगु दक्ष आद्यैः ययौ दैत्येश्वर आश्रमम् ॥१४॥

नृप	राजन् !	**भृगु दक्ष**	भृगु, दक्ष
इति देवैः	इस प्रकार देवताओं द्वारा	**आद्यैः परीतः**	आदिसे घिरे
		दैत्येश्वर आश्रमं	दैत्यराजके आश्रम-पर
विज्ञापितः	सूचना देनेपर		
भगवान्	भगवान्	**ययौ**	गये ॥१४॥
आत्मभूः	स्वयम्भू		

न ददर्श प्रतिच्छन्नं वल्मीकतृणकीचकैः ।
पिपीलिकाभिराचीर्णमेदस्त्वङ्मांसशोणितम् ॥१५॥

न ददर्श प्रतिच्छन्नं वल्मीक तृण कीचकैः पिपीलिकाभिः आचीर्ण मेदः त्वक् मांस शोणितम् ॥१५॥

पिपीलिकाभिः	चींटियों द्वारा	**कीचकैः**	बांसोंसे
मेद त्वक् मांस	चर्बी, चमड़ा, मांस,	**प्रतिच्छन्नं**	ढक गये उसे
शोणितं आचीर्णं	रक्त चाट लिया गया था,	**न ददर्श**	नहीं देख सके ॥१५॥
वल्मीक तृण	दीमकोंकी बांबीपर उगे तृण		

तपन्तं तपसा लोकान् यथाभ्रापिहितं रविम् ।
विलक्ष्य विस्मितः प्राह प्रहसन् हंसवाहनः ॥१६॥

तपन्तं तपसा लोकान् यथा अभ्र अपिहितं रविः विलक्ष्य विस्मितः प्राह प्रहसन् हंसवाहनः ॥१६॥

यथा अभ्र	जैसे बादलोंसे	**विस्मितः**	चकित
अपिहितं रविः	ढका सूर्य हो	**प्रहसन्**	हँसते हुए
तपसा लोकान्	अपनी तपस्यासे लोकोंको	**हंसवाहनः प्राह**	हंसवाहन ब्रह्माजी बोले ॥१६॥
तपन्तं विलक्ष्य	संतप्त करते देखकर		

ब्रह्मोवाच–

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपः सिद्धोऽसि काश्यप ।
वरदोऽहमनुप्राप्तो व्रियतामीप्सितो वरः ॥१७॥

उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ भद्रं ते तपः सिद्धः असि काश्यप वरदः अहं अनुप्राप्तः व्रियतां ईप्सितः वरः ॥१७॥

काश्यप	कश्यपनन्दन !	**अहं वरदः**	मैं वरदान देने
उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ	उठो ! उठो !	**अनुप्राप्तः**	आया हूँ,
तपः सिद्धः असि	तपस्यासे सिद्ध हो गये हो,	**ईप्सितः वरः**	अभीष्ट वरदान
		व्रियतां	मांग लो ॥१७॥

अद्राक्षमहमेतत्ते हृत्सारं महदद्भुतम् ।
दंशभक्षितदेहस्य प्राणा ह्यस्थिषु शेरते ॥१८॥

अद्राक्षं अहं एतत् ते हृत् सारं महत् अद्भुतं दंश भक्षित देहस्य प्राणा हि अस्थिषु शेरते ॥१८॥

अहं	मैंने	**ते हृत् सारं**	तुम्हारे हृदयका बल
महत् अद्भुतं	महान् अद्भुत		

अद्राक्षं	देख लिया	**भक्षित**	खा लेनेपर भी
हि	क्योंकि	**प्राणा अस्थिषु**	प्राण हड्डियोंमें
देहस्य दंश	शरीरके डांसोंके	**शेरते**	टिके हुए हैं ॥१८॥

नैतत्पूर्वर्षयश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे ।
निरम्बुर्धारयेत्प्राणान् को वै दिव्यसमाः शतम् ॥१९॥

न एतत् पूर्व ऋषयः चक्रुः न करिष्यन्ति च अपरे निरम्बुः धारयेत् प्राणान् कः वै दिव्य समाः शतम् ॥१९॥

पूर्व ऋषयः	पहिलेके ऋषियोंने	**दिव्य शतं समाः**	देवताओंके सौ वर्ष तक
एतत् न चक्रुः	इतना (कठिन तप) नहीं किया है	**निरम्बुः**	निर्जल रहकर
अपरे न	दूसरे भी आगे नहीं	**प्राणान् धारतेत्**	प्राणोंको बचाये
करिष्यन्ति	करेंगे		रहेगा ॥१९॥
वै कः	भला कौन		

व्यवसायेन तेऽनेन दुष्करेण मनस्विनाम् ।
तपोनिष्ठेन भवता जितोऽहं दितिनन्दन ॥२०॥

व्यवसायेन ते अनेन दुष्करेण मनस्विनां तपः निष्ठेन भवता जितः अहं दितिनन्दन ॥२०॥

मनस्विनां	धीर पुरुषों द्वारा भी	**व्यवसायेन**	उद्योगसे
दुष्करेण	दुष्कर	**दितिनन्दन**	दिति-नन्दन !
ते अनेन	तुम्हारे इस	**भवता**	तुम्हारे द्वारा
तपः निष्ठेन	तपस्यामें तत्परता रूप	**अहं जितः**	मैं जीत लिया गया ॥२०॥

ततस्त आशिषः सर्वा ददाम्यसुरपुङ्गव ।
मर्त्यस्य ते अमर्त्यस्य दर्शनं नाफलं मम ॥२१॥

ततः त आशिषः सर्वा ददामि असुर पुङ्गव मर्त्यस्य ते अमर्त्यस्य दर्शनं न अफलं मम ॥२१॥

असुर पुङ्गव	असुरश्रेष्ठ !
ततः	इसलिए
त सर्वा आशिषः	तुम्हारी सब अभिलाषाएँ
ददामि	दूंगा
ते मर्त्यस्य	तुम मरण धर्माके लिए
मम अमर्त्यस्य	मुझ अमरका
दर्शनं न अफलं	दर्शन निष्फल नहीं होगा ॥२१॥

नारद उवाच–

इत्युक्त्वाऽऽदिभवो देवो भक्षिताङ्गं पिपीलिकैः ।
कमण्डलुजलेनौक्षद्दिव्येनामोघराधसा ॥२२॥

इति उक्त्वा आदिभवः देवः भक्षित अङ्गम् पिपीलिकैः कमण्डलु जलेन औक्षत् दिव्येन अमोघ राधसा ॥२२॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर
आदिभवः देवः	सबसे प्रथम उत्पन्न उन देव ब्रह्माजीने
पिपीलिकैः	चींटियों द्वारा
भक्षित अङ्गम्	खाये शरीरको
अमोघ राधसा	अमोघ प्रभाव
दिव्येन	दिव्य (अपने)
कमण्डलु जलेन	कमण्डलुके जलसे
औक्षत्	छीटा मार दिया ॥२२॥

स तत्कोचकवल्मीकात् सह ओजोवलान्वितः ।
सर्वावयवसम्पन्नो वज्रसंहननो युवा ।
उत्थितस्तप्तहेमाभो विभावसुरिवैधसः ॥२३॥

स तत् कोचक वल्मीकात् सह ओज बल अन्वितः सर्व अवयव सम्पन्नः वज्र संहननः युवा उत्थितः तप्त हेम आभः विभावसुः इव एधसः ॥२३॥

स तत् कोचक वल्मीकात्	वह उस बांस और दीमकोंकी बांबीसे
सह ओज बल	मनोबल, इन्द्रियबल, शरीरबल

अन्वितः	युक्त
सर्व अवयव	सब अंगोंसे
सम्पन्नः	सम्पन्न
वज्र संहननः	वज्रके समान कठोर
युवा तप्त हेम	युवा, तपाये स्वर्ण
आभः	कान्ति वाला
एधस	सूखी लकड़ीमें
विभावसुः इव	अग्निके समान
उत्थितः	उठ खड़ा हुआ ॥२३॥

स निरीक्ष्याम्बरे देवं हंसवाहमवस्थितम् ।
ननाम शिरसा भूमौ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥२४॥

स निरीक्ष्य अम्बरे देवं हंसवाहं अवस्थितं ननाम शिरसा भूमौ तत् दर्शन महोत्सवः ॥२४॥

स अम्बरे	उसने आकाशमें
हंसवाहं	अपने हंसवाहनपर
अवस्थितं	बैठे
देवं निरीक्ष्य	ब्रह्माजीको देखकर
तत् दर्शन	उनके दर्शनसे
महोत्सवः	बहुत प्रसन्न होकर
भूमौ शिरसा	पृथ्वीपर सिर रखकर
ननाम	प्रणाम किया ॥२४॥

उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व ईक्षमाणो दृशा विभुम् ।
हर्षाश्रुपुलकोद्भेदो गिरा गद्गदयागृणात् ॥२५॥

उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व ईक्षमाणः दृशा विभुं हर्ष अश्रु पुलक उद्भेदः गिरा गद्गदया गृणात् ॥२५॥

उत्थाय प्रह्व	उठकर नम्रतासे
प्राञ्जलिः	हाथ जोड़कर
दृशा विभुं	नेत्रोंसे उन प्रभुको
ईक्षमाणः	देखते हुए
हर्ष अश्रु	हर्षसे आंसू,
पुलक-उद्भेदः	रोमाञ्च युक्त
गद्गद्या गिरा	गद्गद् वाणीसे
गृणात्	स्तुति करने लगा ॥२५॥

हिरण्यकशिपु उवाच–

कल्पान्ते कालसृष्टेन योऽन्धेन तमसाऽऽवृतम् ।
अभिव्यनग् जगदिदं स्वयञ्ज्योतिः स्वरोचिषा ॥२६॥

कल्पान्ते कालसृष्टेन यः अन्धेन तमसा आवृतं अभिव्यनक् जगत् इदं स्वयं ज्योतिः स्वरोचिषा ॥२६॥

कल्पान्ते	कल्पके अन्तमें	**यः स्वयं ज्योतिः**	जिन स्वयं प्रकाशने
कालसृष्टेन	कालके द्वारा प्रेरित	**स्वरोचिषा**	अपने तेजसे
तमसा	तमोगुण द्वारा	**अभिव्यनक्**	अभिव्यक्त किया
अन्धेन आवृतं	अन्धकारसे ढके		॥२६॥
इदं जगत्	इस विश्वको		

आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुम्पति ।
रजः सत्त्वतमोधाम्ने पराय महते नमः ॥२७॥

आत्मना त्रिवृता च इदं सृजति अवति लुम्पति रजः सत्त्व तमः धाम्ने पराय महते नमः ॥२७॥

च आत्मना	और अपनेको	**रजः सत्त्व**	(उन) रजोगुण,
त्रिवृता	त्रिविध बनाकर		सत्त्वगुण,
इदं	इस जगतकी	**तमः धाम्ने**	तमोगुण स्वरूप
सृजति	सृष्टि करते हैं,	**पराय**	इनसे परे
अवति	रक्षा करते हैं	**महते नमः**	महान्‌को नमस्कार
लुम्पति	लय करते हैं,		॥२७॥

नम आद्याय बीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्तये ।
प्राणेन्द्रियमनोबुद्धिविकारैर्व्यक्तिमीयुषे ॥२८॥

नमः आद्याय बीजाय ज्ञान विज्ञान मूर्तये प्राण इन्द्रिय मनः बुद्धिः विकारैः व्यक्ति ईयुषे ॥२८॥

आद्याय बीजाय	जगतसे आदि बीज (कारण)	**विकारैः**	आदि विकारोंके द्वारा
ज्ञान विज्ञान	ज्ञान-विज्ञान	**व्यक्ति ईयुषे**	व्यक्ति रूपमें प्रकट हुए
मूर्तये	स्वरूप		
प्राण इन्द्रिय	प्राण, इन्द्रिय,	**नमः**	(आपको) नमस्कार
मनः बुद्धिः	मन, बुद्धि,		॥२८॥

त्वमीशिषे जगतस्तस्थुषश्च
प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानाम् ।
चित्तस्य चित्तेर्मनइन्द्रियाणां
पतिर्महान् भूतगुणाशयेशः ॥२९॥

त्वं ईशिषे जगतः तस्थुषः च प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानां चित्तस्य चित्तेः मन इन्द्रियाणां पतिः महान् भूत गुण आशय ईशः ॥२९॥

त्वं जगतः	आप चर
च तस्थुषः	तथा अचर
प्रजानां	प्रजाके
मुख्येन प्राणेन	मुख्य प्राण (सूत्रात्मा) के रूपमें
ईशिषे पतिः	नियन्त्र करनेवाले स्वामी हैं
चित्तस्य चित्तेः	चित्त और चेतनाके,
मन, इन्द्रियाणां	मन, इन्द्रियों,
भूत, गुण,	पञ्चभूत, त्रिगुण,
आशय	अन्तःकरणके
ईशः महान्	संचालक महत्तत्त्व- के रूपमें
पतिः	स्वामी हैं ॥२९॥

त्वं सप्ततन्तून् वितनोषि तन्वा
त्रय्या चातुर्होत्रकविद्यया च ।
त्वमेक आत्माऽऽत्मवतामनादि-
रनन्तपारः कविरन्तरात्मा ॥३०॥

त्वं सप्ततन्तून् वितनोषि तन्वा त्रय्या चातुर्होत्रक विद्यया च त्वं एक आत्मा आत्मवतां अनादिः अनन्त अपारः कविः अन्तरात्मा ॥३०॥

चातुर्होत्रक	(होता, उद्गाता, अध्वर्यु, ब्रह्मा इन) चारसे सम्पन्न होने- वाले यज्ञ
त्रय्या	त्रयी (कर्म, ज्ञान, उपासना प्रतिपादक)
विद्यया तन्वा	वेद रूपी शरीरसे
त्वं सप्ततन्तून	आप सात (अग्नि- ष्टोम आदि) तन्तुओंका
वितनोषि	विस्तार करते हैं,
च एक त्वं	तथा एकमात्र आप

आत्मवतां	प्राणधारियोंके	**अपारः कविः**	अपार, सर्वज्ञ,
आत्मा	आत्मा हैं,	**अन्तरात्मा**	अन्तर्यामी हैं ॥३०॥
अनादिः अनन्त	अनादि, अनन्त,		

त्वमेव कालोऽनिमिषो जनाना-
मायुर्लवाद्यावयवैः क्षिणोषि ।
कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महां-
स्त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा ॥३१॥

त्वं एव कालः अनिमिषः जनानां आयुः लव आदि अवयवैः क्षिणोषि कूटस्थ आत्मा परमेष्ठि अजः महान् त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा ॥३१॥

त्वं एव कालः	आप ही काल हैं,	**आत्मा, परमेष्ठि**	आत्मा, परमेश्वर,
अनिमिषः	सावधान रहकर	**अजः महान्**	अजन्मा, महान्
लव आदि	लव-निमेषादि	**च त्वं**	और आप
अवयवैः	अपने अंगोंसे	**जीवलोकस्य**	सब जीवोंके
जनानां आयुः	लोगोंकी आयु	**जीव आत्मा**	जीवन तथा आत्मा
शिणोषि	क्षीण करते रहते हैं,		हैं ॥३१॥
कूटस्थ	(फिर भी) कूटस्थ,		

त्वत्तः परं नापरमप्यनेज-
देजच्च किञ्चिद् व्यतिरिक्तमस्ति ।
विद्याः कलास्ते तनवश्च सर्वा
हिरण्यगर्भोऽसि बृहत्त्रिपृष्ठः ॥३२॥

त्वत्तः परं न अपरं अपि नेजत् एजत् च किञ्चित् व्यतिरिक्तं अस्ति विद्याः कलाः ते तनवः च सर्वा हिरण्यगर्भः असि बृहत् त्रिपृष्ठः ॥३२॥

त्वत्तः	आपसे	**किञ्चित्**	कुछ भी
परं अपरं	कारण-कार्य	**व्यतिरिक्तं न**	भिन्न नहीं है
नेजत् एजत्	अचर-चर	**सर्वा विद्याः**	सब विद्या

च कलाः	और कला	**हिरण्यगर्भः**	स्वर्णमय ब्रह्माण्डको
ते तनवः	आपका शरीर हैं।		अपने भीतर रखने-
त्रिपृष्ठः	त्रिगुणातीत्		वाले
बृहत्	(आप) ब्रह्म हैं।	**असि**	हैं ॥३२॥

व्यक्तं विभो स्थूलमिदं शरीरं
येनेन्द्रियप्राणमनोगुणांस्त्वम् ।
भुङ्क्षे स्थितो धामनि पारमेष्ठ्ये
अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥३३॥

व्यक्तं विभो स्थूलं इदं शरीरं येन इन्द्रिय प्राण मनः गुणान् त्वं भुङ्क्षे स्थितः धामनि पारमेष्ठ्ये अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥३३॥

येन	जिससे	**भुङ्क्षे**	भोग करते हैं
पारमेष्ठ्ये-	ब्रह्म-	**इदं स्थूलं शरीरं**	(आपका) यह स्थूल
धामनि	लोकमें		देह
स्थितः	रहकर	**व्यक्तं**	प्रगट है, किन्तु
विभो	प्रभो !		(आप)
इन्द्रिय प्राण	इन्द्रिय, प्राण,	**अव्यक्त आत्मा**	अव्यक्त, आत्मा,
मनः	मनके	**पुराणः पुरुषः**	पुराण पुरुष हैं
गुणान् त्वं	गुणोंका आप		॥३३॥

अनन्ताव्यक्तरूपेण येनेदमखिलं ततम् ।
चिदचिच्छक्तियुक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥३४॥

अनन्त अव्यक्त रूपेण येन इदं अखिलं ततं चित् अचित् शक्ति युक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥३४॥

अनन्त अव्यक्त	अनन्त अव्यक्त	**चित् अचित्**	चेतन-अचेतन
रूपेण येन	रूपसे जिसने		(दोनों)
इदं अखिलं	इस सम्पूर्ण (दृश्य)	**शक्ति युक्ताय**	शक्तियोंसे युक्त
	को	**तस्मै भगवते**	उन भगवान्को
ततं	व्याप्त कर रखा है	**नमः**	नमस्कार ॥३४॥

यदि दास्यस्यभिमतान् वरान्मे वरदोत्तम ।
भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मा भून्मम प्रभो ॥३५॥

यदि दास्यसि अभिमतान् वरान् मे वरद उत्तम भूतेभ्यः त्वत् विसृष्टेभ्यः मृत्युः मा भूत् मम प्रभो ॥३५॥

वरद	वरदान देने वालोंमें	**दास्यसि**	देना चाहते हैं तो
उत्तम प्रभो	श्रेष्ठ प्रभो !	**त्वत् विसृष्टेभ्यः**	आपके बनाये
यदि मे	यदि मेरे	**भूतेभ्यः**	किसी भी प्राणीसे
अभिमतान्	अभीष्ट	**मम मृत्युः**	मेरी मृत्यु
वरान्	वरदान	**मा भूत्**	न होवे ॥३५॥

नान्तर्बहिर्दिवा नक्तमन्यस्मादपि चायुधैः ।
न भूमौ नाम्बरे मृत्युर्न नरैर्न मृगैरपि ॥३६॥

न अन्तः बहिः दिवा नक्तं अन्य स्मात् अपि च आयुधैः न भूमौ न अम्बरे मृत्युः न नरैः न मृगैः अपि ॥३६॥

अन्तः बहिः	भीतर या बाहर	**न भूमौ**	न पृथ्वीमें,
दिवा नक्तं	दिनको या रातको,	**न अम्बरे**	न आकाशमें,
च अन्य स्मात्	तथा किसी दूसरे	**न नरैः**	न मनुष्यसे,
आयुधैः अपि	हथियारसे भी	**न मृगैः अपि**	न पशुसे ही
न	न हो	**मृत्युः**	मृत्यु हो ॥३६॥

व्यसुभिर्वासुमद्भिर्वा सुरासुरमहोरगैः ।
अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे ऐकपत्यं च देहिनाम् ॥३७॥

वि असुभिः वा असुमत् भिः वा सुर असुर महा उरगैः अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे ऐकपत्यं च देहिनाम् ॥३७॥

वि असुभिः	निष्प्राण तत्त्वसे	**महा उरगैः**	महानागोंसे (मृत्यु न हो)
वा असुमत्भिः	अथवा सप्राणोंसे		
वा सुर असुर	या देवता, असुर,	**युद्धे**	युद्धमें

अप्रतिद्वद्वतां	मेरा कोई प्रतिद्वन्दी न हो,	**ऐकपत्यं**	एकछत्र सम्राट् होऊँ ॥३७॥
देहिनां	सब प्राणियोंका		

सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथाऽऽत्मनः ।
तपोयोगप्रभावाणां यन्न रिष्यति कर्हिचित् ॥३८॥

सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथा आत्मनः तपः योग प्रभावाणां यत् न रिष्यति कर्हिचित् ॥३८॥

सर्वेषां	सब	**तपः योग**	तपस्या, योगके
लोकपालानां	लोकपालोंका	**प्रभावाणां**	प्रभाव वालों जैसा
महिमानं	प्रभाव	**यत् कर्हिचित्**	पर जो कभी भी
यथा आत्मनः	जैसा है, मेरा रहे ।	**रिष्यति न**	घटे नहीं ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे हिरण्यकशिपोर्वरयाचनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नारद उवाच–

एवं वृतः शतधृतिर्हिरण्यकशिपोरथ ।
प्रादात्तत्तपसा प्रीतो वरांस्तस्य सुदुर्लभान् ॥ १ ॥

एवं वृतः शतधृतिः हिरण्यकशिपोः अथ प्रादात् तत् तपसा प्रीतः वरान् तस्य सुदुर्लभान् ॥१॥

अथ एवं	तब इस प्रकार	**तत् तपसा**	उसकी तपस्यासे
हिरण्यकशिपोः	हिरण्यकशिपुके द्वारा	**प्रीतः शतधृतिः**	प्रसन्न ब्रह्माजीने
वृतः	वरदान मांगनेपर	**तस्य सुदुर्लभान्**	उसके अत्यन्त दुर्लभ
		वरान् प्रादात्	वरदान दे दिये ॥१॥

ब्रह्मोवाच–

तातेमे दुर्लभाः पुंसां यान् वृणीषे वरान् मम ।
तथापि वितराम्यङ्ग वरान् यदपि दुर्लभान् ॥ २ ॥

तात इमे दुर्लभाः पुंसां यान् वृणीषे वरान् मम तथापि वितरामि अङ्ग वरान् यदपि दुर्लभान् ॥२॥

तात् पुंसां	वत्स ! पुरुषोंके लिए	**तथापि अङ्ग**	फिर भी तुम प्रिय हो
यान् वरान्	जो वरदान	**वरान्**	अतः ये वरदान
मम वृणीषे	मुझसे मांग रहे तो	**वितरामि**	दे रहा हूँ ॥२॥
इमे दुर्लभाः	ये दुर्लभ हैं,		
यदपि दुर्लभान्	यद्यपि दुर्लभ हैं ।		

ततो जगाम भगवानमोघानुग्रहो विभुः ।
पूजितोऽसुरवर्येण स्तूयमानः प्रजेश्वरैः ॥ ३ ॥

ततः जगाम भगवान् अमोघ अनुग्रहः विभुः पूजितः असुर वर्येण स्तूयमानः प्रजेश्वरैः ॥३॥

असुर वर्येण	असुरश्रेष्ठके	**विभुः**	समर्थ
पूजितः	पूजा कर लेनेपर,	**ततः जगाम**	वहांसे चले गये
प्रजेश्वरैः	प्रजापतियों द्वारा		॥३॥
स्तूयमानः	स्तुत होते		
अमोघ अनुग्रहः	जिनकी कृपा व्यर्थ नहीं होती वे		

एवं लब्धवरो दैत्यो बिभ्रद्धेममयं वपुः ।
भगवत्यकरोद् द्वेषं भ्रातुर्वधमनुस्मरन् ॥ ४ ॥

एवं लब्धवरः दैत्यः बिभ्रत् हेममयं वपुः भगवति अकरोत् द्वेषं भ्रातुः वधं अनुस्मरन् ॥४॥

एवं लब्धवरः	इस प्रकार वरदान पाकर	**अनुस्मरन्**	बार-बार स्मरण करके
हेममयं वपुः	स्वर्णमय शरीर	**भगवति**	भगवान (विष्णु) से
बिभ्रत् दैत्यः	धारण किये उस दैत्यने	**द्वेषं अकरोत्**	द्वेष करने लगा ॥४॥
भ्रातुः वधं	भाईके वधको		

स विजित्य दिशः सर्वा लोकांश्च त्रीन् महासुरः ।
देवासुरमनुष्येन्द्रान् गन्धर्वगरुडोरगान् ॥ ५ ॥

स विजित्य दिशः सर्वा लोकान् च त्रीन् महा असुरः देव असुर मनुष्य इन्द्रान् गन्धर्व गरुड उरगान् ॥५॥

स महा असुरः	उस महादैत्यने	**च त्रीन् लोकान्**	तथा तीनों लोकोंको
सर्वा दिशः	सब दिशाओंको	**विजित्य**	जीतकर,

देव असुर	देवता, असुर,	**गरुड उरगान्**	गरुड़, सर्पोंके
मनुष्य गन्धर्व	मनुष्य, गन्धर्व,	**इन्द्रान्**	प्रधानोंको ॥५॥

सिद्धचारणविद्याध्रानृषीन् पितृपतीन् मनून् ।
यक्षरक्षः पिशाचेशान् प्रेतभूतपतीनथ ॥ ६ ॥

सिद्ध चारण विद्याध्रान् ऋषीन् पितृपतीन् मनून् यक्ष रक्षः पिशाच ईशान् प्रेत भूतपतीन् अथ ॥६॥

सिद्ध चारण	सिद्ध, चारण,	**यक्ष रक्षः**	यक्ष, राक्षस,
विद्याध्रान्	विद्याधरों,	**पिशाच ईशान्**	पिशाचोंके नायकों,
ऋषीन्	ऋषियों,	**अथ प्रेत**	तथा प्रेत-
पितृपतीन्	पितरोंके स्वामियों,	**भूतपतीन्**	भूतोंके सरदारोंको
मनून्	मनुओं,		॥६॥

सर्वसत्त्वपतीञ्जित्वा वशमानीय विश्वजित् ।
जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा ॥ ७ ॥

सर्व सत्त्व पतीन् जित्वा वशं आनीय विश्वजित् जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा ॥७॥

सर्व सत्त्व	सब प्राणियोंके	**विश्वजित्**	विश्वविजयी होकर
पतीन्	नायकोंको	**लोकपालानां**	सब लोकपालोंके
जित्वा	जीतकर	**तेजसा सह**	तेजके साथ
वशं आनीय	उन्हें अपने वशमें करके	**स्थानानि जहार**	स्थानोंको भी छीन लिया ॥७॥

देवोद्यानश्रिया जुष्टमध्यास्ते स्म त्रिविष्टपम् ।
महेन्द्रभवनं साक्षान्निर्मितं विश्वकर्मणा ।
त्रैलोक्यलक्ष्म्यायतनमध्युवासाखिलर्द्धिमत् ॥ ८ ॥

देव उद्यान श्रिया जुष्टं अध्यास्ते स्म त्रिविष्टपं महेन्द्रभवनं साक्षात् निर्मितं विश्वकर्मणा त्रैलोक्य लक्ष्म्या आयतनं अधि उवास अखिल ऋद्धिमत् ॥८॥

देव उद्यान	देव उद्यान (नन्दन-कानन) की	**निर्मितं**	बनाये गये
श्रिया जुष्टं	शोभासे सुशोभित	**अखिल**	सम्पूर्ण
त्रिविष्टपं	स्वर्गके	**ऋद्धिमत्**	सम्पत्तियोंसे भरे
अध्यास्ते स्म	सिंहासनपर बैठता था,	**त्रैलोक्य लक्ष्म्या**	त्रिभुवनके सौन्दर्यके
साक्षात्	साक्षात्	**आयतनं**	निवास भूत
विश्वकर्मणा	विश्वकर्मा द्वारा	**महेन्द्रभवनं**	इन्द्रके भवनमें
		अधि उवास	रहने लगा ॥८॥

यत्र विद्रुमसोपाना महामारकता भुवः ।
यत्र स्फाटिककुड्यानि वैदूर्यस्तम्भपङ्क्तयः ॥ ९ ॥

यत्र विद्रुम सोपाना महामारकता भुवः यत्र स्फाटिक कुड्यानि वैदूर्यस्तम्भ पङ्क्तयः ॥९॥

यत्र विद्रुम	जहां मूंगेसे बनी	**यत्र स्फाटिक**	जहां स्फटिककी
सोपाना	सीढ़ियां	**कुड्यानि**	भित्तियां
महामारकता	(और) महा मरकत मणिका	**वैदूर्यस्तभ**	वैदूर्य-मणिके खम्भोंकी
भुवः	फर्श है ।	**पङ्क्तयः**	पंक्तियाँ हैं ॥९॥

यत्र चित्रवितानानि पद्मरागासनानि च ।
पयः फेननिभाः शय्या मुक्तादामपरिच्छदाः ॥१०॥

यत्र चित्र वितानानि पद्मराग आसनानि च पयः फेन निभाः शय्या मुक्तादाम परिच्छदाः ॥१०॥

यत्र चित्र	जहां चित्र-विचित्र	**च पद्मराग**	और पद्मराग-
वितानानि	चँदोवे लगे हैं,		मणिके

आसनानि	आसन हैं,	**पयः फेन निभाः**	दूधके फेनके समान
मुक्तादाम	मोतियोंकी झालरों-		कोमल
	से	**शय्या**	पलंग हैं ॥१०॥
परिच्छदाः	सजी हुई		

कूजद्भिर्नूपुरैर्देव्यः शब्दयन्त्य इतस्ततः ।
रत्नस्थलीषु पश्यन्ति सुदतीः सुन्दरं मुखम् ॥११॥

कूजद्भिः नूपुरैः देव्यैः शब्दयन्त्य इतः ततः रत्न स्थलीषु पश्यन्ति सुदतीः सुन्दरं मुखम् ॥११॥

देव्यैः	देवियां	**रत्न स्थलीषु**	रत्नोंसे बने स्थानोंमें
कूजद्भिः नूपुरैः	झंकार करनेवाले	**सुदतीः**	सुन्दर दांतोंवाले अपने
	नूपुरोंसे	**सुन्दरं मुखं**	सुन्दर मुख
इतः ततः	सब कहीं	**पश्यन्ति**	देखती थीं ॥११॥
शब्दयन्त्यः	(रुनझुन) शब्द		
	करती		

तस्मिन्महेन्द्रभवने महाबलो
महामना निर्जितलोक एकराट् ।
रेमेऽभिवन्द्याङ्घ्रियुगः सुरादिभिः
प्रतापितैरूर्जितचण्डशासनः ॥१२॥

तस्मिन् महेन्द्र भवने महाबलः महामना निर्जित लोक एकराट् रेमे अभिवन्द्य अङ्घ्रि युगः सुर आदिभिः प्रतापितैः ऊर्जित चण्डशासनः ॥१२॥

महाबलः	महाबली,	**महेन्द्र भवने**	इन्द्रके राजभवनमें
महामना	महामनस्वी,	**रेमे**	विहार करता था ।
निर्जित लोक	त्रिभुव विजयी,	**चण्डशासनः**	उसके कठोर
एकराट्	एकछत्र सम्राट् वह		शासनसे
तस्मिन्	उस	**अर्जित**	प्रभावित

प्रतापितैः	भयभीत
सुर आदिभिः	देवतादि द्वारा
अङ्घ्रि युगः	(उसके) दोनों चरणोंमें
अभिवन्द्य	प्रणाम किया जाता था ॥१२॥

तमङ्ग मत्तं मधुनोरुगन्धिना
विवृत्ततामाक्षमशेषधिष्ण्यपाः ।
उपासतोपायनपाणिभिर्विना
त्रिभिस्तपोयोगबलौजसां पदम् ॥१३॥

तं अङ्ग मत्तं मधुना उरुगन्धिना विवृत्ततामा अक्षं अशेष धिष्ण्यपाः उपासत उपायन पाणिभिः विना त्रिभिः तपः योग बल औजसां पदम् ॥१३॥

अङ्ग	प्रिय युधिष्ठिर !
तपः योग	तपस्या, योग,
बल औजसां	शारीरिक तथा मानसिक बलके
पदं	भण्डार
उरुगन्धिना	उत्कट गन्धवाली
मधुना मत्तं	मदिरा पीकर मत्त
विवृत्ततामा अक्षं	चढ़े लाल-लाल नेत्रवाले
तं	उसकी
त्रिभिः विना	तीन (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) को छोड़कर
अशेष धिष्ण्यपाः	सभी देवता
उपायन पाणिभिः	हाथोंमें भेंट लेकर
उपासत	उपासना करते थे ॥१३॥

जगुर्महेन्द्रासनमोजसा स्थितं
विश्वावसुस्तुम्बुरुरस्मदादयः ।
गन्धर्वसिद्धा ऋषयोऽस्तुवन्मुहु-
र्विद्याधरा अप्सरसश्च पाण्डव ॥१४॥

जगुः महेन्द्र आसनं ओजसा स्थितं विश्वावसुः तुम्बुरुः अस्मत् आदयः गन्धर्व सिद्धा ऋषयः अस्तुवन् मुहुः विद्याधरा अप्सरसः च पाण्डव ॥१४॥

पाण्डव	युधिष्ठिर !
ओजसा	अपने उत्साहसे
महेन्द्र आसन	इन्द्रासनपर
स्थितं	बैठे उसका
विश्वावसुः	विश्वावसु,
तुम्बुरुः	तुम्बुरु,
अस्मत् आदयः	हम सब लोग
जगुः	(यश) गाते थे,
गन्धर्व सिद्धा	गन्धर्व, सिद्ध,
ऋषयः	ऋषिगण,
विद्याधरा	विद्याधर,
च अप्सरसः	और अप्सराएँ
मुहुः स्तुवन्	बार-बार स्तुति करते थे ॥१४॥

स एव वर्णाश्रमिभिः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
इज्यमानो हविर्भागानग्रहीत् स्वेन तेजसा ॥१५॥

स एव वर्णं आश्रमिभिः क्रतुभिः भूरि दक्षिणैः इज्यमानः हविः भागान् अग्रहीत् स्वेन तेजसा ॥१५॥

वर्ण आश्रमिभिः	वर्ण-आश्रम धर्म मानने वालों द्वारा
भूरि दक्षिणैः	बहुत दक्षिणा दिये जानेवाले
क्रतुभिः	यज्ञों द्वारा
इज्यमानः	यजन करनेपर
स एव	वही
स्वेन तेजसा	अपने तेजसे
हविः भागान्	हविष्यका सब भाग
अग्रहीत्	ग्रहण कर लेता था ॥१५॥

अकृष्टपच्या तस्यासीत् सप्तद्वीपवती मही ।
तथा कामदुघा द्यौस्तु नानाश्चर्यपदं नभः ॥१६॥

अकृष्टपच्या तस्य आसीत् सप्तद्वीपवती मही तथा कामदुघा द्यौः तु नाना आश्चर्य पद नभः ॥१६॥

तस्य	उसके लिए
सप्तद्वीपवती	सातों द्वीपों वाली
मही	पृथ्वी
अकृष्टपच्या	बिना जोते फसल देने वाली
आसीत्	हो गयी थी ।
द्यौः कामदुघा	अन्तरिक्ष इच्छानुसार पदार्थ देनेवाला था ।

नभः	आकाश	**पदं**	दिखानेका स्थान
नाना आश्चर्य	अनेकों आश्चर्य		हो गया था ॥१६॥

रत्नाकराश्च रत्नौघांस्तत्पत्न्यश्चोहुरूर्मिभिः ।
क्षारसीधुघृतक्षौद्रदधिक्षीरामृतोदकाः ॥१७॥

रत्नाकराः च रत्न ओघान् तत् पत्न्यः च उहुः उर्मिभिः क्षार सीधु घृत क्षौद्र दधि क्षीर अमृत उदकाः ॥१७॥

क्षार सीधु	खारे पानी, सुरा,	**च तत् पत्न्यः**	और उसकी पत्नी नदियां
घृत क्षौद्र	घी, इक्षुरस,		
दधि क्षीर	दही, दूध,	**उर्मिभिः**	अपनी लहरोंसे
अमृत उदकाः	मीठे पानीके	**रत्न ओघत्**	रत्नोंकी राशि
रत्नाकराः च	समुद्र भी	**उहुः**	ढोती थीं ॥१७॥

शैला द्रोणीभिराक्रीडं सर्वर्तुषु गुणान् द्रुमाः ।
दधार लोकपालानामेक एव पृथग्गुणान् ॥१८॥

शैला द्रोणीभिः आक्रीडं सर्व ऋतुषु गुणान् द्रुमाः दधार लोकपालानां एक एव पृथक् गुणान् ॥१८॥

शैलाः द्रोणीभिः	पर्वत अपनी घाटियोंमें	**लोकपालानां**	सब लोकपालोंके
आक्रीडं	खेलके स्थान (देते थे)	**पृथक् गुणान्**	भिन्न-भिन्न गुणोंको
द्रुमाः	वृक्ष	**एक एव दधार**	उसने अकेले ही धारण किया ॥१८॥
सर्व ऋतुषु	सब ऋतुओंमें		
गुणान्	सब गुणोंको धारण करते		

स इत्थं निर्जितककुबेकराड् विषयान् प्रियान् ।
यथोपजोषं भुञ्जानो नातृप्यदजितेन्द्रियः ॥१९॥

स इत्थं निर्जित ककुब् एकराट् विषयान् प्रियान् यथा उपजोषं भुञ्जानः न अतृप्यत अजित इन्द्रियः ॥१९॥

स इत्थं	वह इस प्रकार	**भुञ्जानः**	भोगता हुआ
निर्जित ककुब्	दिग्विजयी,	**अजित इन्द्रियः**	इन्द्रियोंको न जीतनेसे
एकराट्	एकछत्र सम्राट्	**अतृप्यत न**	तृप्त नहीं हुआ ॥१९
प्रियान् विषयान्	अपने प्रिय भोगोंको		
यथा उपजोषं	यथेच्छ		

एवमैश्वर्यमत्तस्य दृप्तस्योच्छास्त्रवर्तिनः ।
कालो महान् व्यतीयाय ब्रह्मशापमुपेयुषः ॥२०॥

एवं ऐश्वर्य मत्तस्य दृप्तस्य उच्छास्त्र वर्तिनः कालः महान् व्यतीयाय ब्रह्मशापं उपेयुषः ॥२०॥

ब्रह्मशापं	ब्राह्मण (सनकादि) द्वारा शाप	**दृप्तस्य**	घमंडमें चूर
उपेयुषः	प्राप्त	**उच्छास्त्र**	शास्त्र मर्यादाका
एवं ऐश्वर्य	इस प्रकारके ऐश्वर्य-से	**वर्तिनः**	उलंघन करके चलते हुए
मत्तस्य	मतवाला होकर	**महान् कालः**	बहुत अधिक समय
		व्यतीयाय	बीत गया ॥२०॥

तस्योग्रदण्डसंविग्नाः सर्वे लोकाः सपालकाः ।
अन्यत्रालब्धशरणाः शरणं ययुरच्युतम् ॥२१॥

तस्य उग्र दण्ड संविग्नाः सर्वे लोकाः सपालकाः अन्यत्र अलब्ध शरणाः शरणं ययुः अच्युतम् ॥२१॥

तस्य उग्र दंड	उसके घोर दण्डसे	**अन्यत्र शरणाः**	दूसरे किसीसे शरण
संविग्नाः	घबड़ाकर	**अलब्ध**	न पाकर
सपालकाः	लोकपालोंके साथ	**अच्युतं**	भगवान् अच्युतकी
सर्वे लोकाः	सब लोग	**शरणं ययुः**	शरणमें गये ॥२१॥

तस्यै नमोऽस्तु काष्ठायै यत्रात्मा हरिरीश्वरः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥२२॥

तस्यै नमः अस्तु काष्ठायै यत्र आत्मा हरिः ईश्वरः यद् गत्वा न न निवर्तन्ते शान्ताः संन्यासिनः अमलाः ॥२२॥

यत्र आत्मा	जहां परमात्मा	**संन्यासिनः**	संन्यासी
ईश्वरः हरिः	सर्वेश्वर श्रीहरि रहते हैं,	**न निवर्तन्ते**	नहीं लौटते
		तस्यै काष्ठायै	उस भगवद्धामको
यद् गत्वा	जहां जाकर	**नमः अस्तु**	नमस्कार है ॥२२॥
शान्ताः अमलाः	शान्त, निर्मल,		

इति ते संयतात्मानः समाहितधियोऽमलाः ।
उपतस्थुर्हृषीकेशं विनिद्रा वायुभोजनाः ॥२३॥

इति ते संयत आत्मानः समाहित धियः अमलाः उपतस्थुः हृषीकेशं विनिद्राः वायु भोजनाः ॥२३॥

इति	इस प्रकारसे	**वायु भोजनाः**	केवल श्वास लेते हुए
संयत आत्मानः	मनको संयमित करके	**हृषीकेशं**	भगवान् हृषीकेशकी
समाहित धियः	एकाग्र बुद्धिसे	**उपतस्थुः**	उपासना करने लगे ॥२३॥
ते अमलाः	वे निर्मल लोग		
विनिद्राः	निद्रा त्यागकर		

तेषामाविरभूद्वाणी अरूपा मेघनिस्वना ।
सन्नादयन्ती ककुभः साधूनामभयङ्करी ॥२४॥

तेषां आविः अभूत् वाणी अरूपा मेघनिः स्वना सन्नादयन्ती ककुभः साधूनां अभयङ्करी ॥२४॥

तेषां	उनके पास	**अभयङ्करी**	अभयदायिनी
अरूपा मेघनिः	रूपहीन मेघ गम्भीर	**वाणी ककुभः**	वाणी दिशाओंको
स्वना	ध्वनि,	**सन्नादयन्ती**	गुंजित करती
साधूनां	सत्पुरुषोंको	**आविः अभूत्**	प्रकट हुई ॥२४॥

श्रीभगवानुवाच–*

मा भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां भद्रमस्तु वः ।
मद्दर्शनं हि भूतानां सर्वश्रेयोपपत्तये ॥२५॥

मा भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां भद्रं अस्तु वः मत् दर्शनं हि भूतानां सर्वश्रेय उपपत्तये ॥२५॥

विबुधश्रेष्ठाः	देवश्रेष्ठो !	**मत् दर्शनं**	मेरा दर्शन
मा भैष्ट	डरो मत,	**भूतानां**	प्राणियोंको
वः सर्वेषां	तुम सब लोगोंका	**सर्वश्रेय**	सम्पूर्ण कल्याण
भद्रं अस्तु	कल्याण हो !	**उपपत्तये**	प्रदान करनेवाला
हि	क्योंकि		है ॥२५॥

ज्ञातमेतस्य दौरात्म्यं दैतेयापसदस्य च ।
तस्य शान्तिं करिष्यामि कालं तावत्प्रतीक्षत ॥२६॥

ज्ञातं एतस्य दौरात्म्यं दैतेय अपसदस्य च तस्य शान्तिं करिष्यामि कालं तावत् प्रतीक्षत ॥२६॥

एतस्य	इस	**करिष्यामि**	कर दूंगा,
दैतेय अपसदस्य	दुष्ट दैत्यकी	**तावत् कालं**	उस समयकी
दौरात्म्यं ज्ञातं	दुष्टता जानता हूँ,	**प्रतीक्षत**	(आप लोग) प्रतीक्षा
तस्य शान्तिं	उसकी शान्ति		करें ॥२६॥

यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु ।
धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति ॥२७॥

यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति ॥२७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

यदा	जब कोई	**विद्वेषः**	विशेष द्वेष करता है,
देवेषु वेदेषु	देवताओं, वेदों,		
गोषु विप्रेषु	गौओं, ब्राह्मणों,	**स वा आशु**	वह निश्चय शीघ्र
साधुषु धर्मे	सत्पुरुषों, धर्म	**विनश्यति**	नष्ट हो जाता है ॥२७॥
च मयि	तथा मुझसे		

निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने ।
प्रह्लादाय यदा द्रुह्येद्धनिष्येऽपि वरोर्जितम् ॥२८॥

निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने प्रह्लादाय यदा द्रुह्येत् हनिष्ये अपि वर अर्जितम् ॥२८॥

निर्वैराय	शत्रुताहीन,	**यदा द्रुह्येत्**	जब द्रोह करेगा
प्रशान्ताय	अत्यन्त शान्त	**वर अर्जितं अपि**	तब वरदानसे शक्ति-शाली होनेपर भी
स्वसुताय	अपने पुत्र	**हनिष्ये**	(उसे) मार दूंगा ॥२८॥
महात्मने	महात्मा		
प्रह्लादाय	प्रह्लादसे		

नारद उवाच—

इत्युक्ता लोकगुरुणा तं प्रणम्य दिवौकसः ।
न्यवर्तन्त गतोद्वेगा मेनिरे चासुरं हतम् ॥२९॥

इति उक्ता लोकगुरुणा तं प्रणम्य दिव ओकसः न्यवर्तन्त गत उद्वेगा मेनिरे च असुरं हतम् ॥२९॥

लोकगुरुणा	त्रिलोक गुरु भगवान्‌के	**तं प्रणम्य**	उनको प्रणाम करके
		न्यवर्तन्त	लौट आये,
इति उक्ता	ऐसा कहनेपर	**च असुरं**	तथा असुरको
दिव ओकसः	स्वर्गके निवासी (देवता)	**हतं मेनिरे**	मारा गया मान लिया ॥२९॥

तस्य दैत्यपतेः पुत्राश्चत्वारः परमाद्भुताः ।
प्रह्लादोऽभून्महांस्तेषां गुणैर्महदुपासकः ॥३०॥

तस्य दैत्यपतेः पुत्राः चत्वारः परम अद्भुताः प्रह्लादः अभूत् महान् तेषां गुणैः महत् उपासकः ॥३०॥

तस्य दैत्यपतेः	उस दैत्यराजके	**महत् उपासकः**	महापुरुषोंके उपासक
परम अद्भुताः	अत्यन्त अद्भुत	**प्रह्लादः**	प्रह्लाद
चत्वारः पुत्राः	चार पुत्र थे	**महान् अभूत्**	महापुरुष हो गये
तेषां गुणैः	उनमें-से अपने गुणोंसे		॥३०॥

ब्रह्मण्यः शीलसम्पन्नः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।
आत्मवत्सर्वभूतानामेकः प्रियसुहृत्तमः ॥३१॥

ब्रह्मण्यः शीलसम्पन्नः सत्यसन्धः जितेन्द्रियः आत्मवत् सर्वभूतानां एकः प्रिय सुहृत्तमः ॥३१॥

ब्रह्मण्यः	ब्राह्मण-भक्त,	**आत्मवत्**	अपने समान सम-
शीलसम्पन्नः	शीलवान्,		झनेवाले,
सत्यसन्धः	सत्यप्रतिज्ञ,	**एकः प्रिय**	सबके एकमात्र
जितेन्द्रियः	इन्द्रियजयी,		प्रिय और
सर्वभूतेषु	सब प्राणियोंको	**सुहृत्तमः**	अत्यन्त हितैषी थे
			॥३१॥

दासवत्संनतार्याङ्घ्रिः पितृवद्दीनवत्सलः ।
भ्रातृवत्सदृशे स्निग्धो गुरुष्वीश्वरभावनः ।
विद्यार्थरूपजन्माढ्यो मानस्तम्भविवर्जितः ॥३२॥

दासवत् सन्नतः आर्य अङ्घ्रिः पितृवत् दीनवत्सलः भ्रातृवत् सदृशे स्निग्धः गुरुषु ईश्वर भावनः विद्या अर्थ रूप जन्म आढ्यः मान स्तम्भ विवर्जितः ॥३२॥

आर्य अङ्घ्रि	बड़ोंके चरणोंमें	**गुरुषु**	गुरुको
दासवत् सन्नतः	दासके समान विनम्र	**ईश्वर भावनः**	ईश्वर माननेवाले थे।
पितृवत्	पिताके समान	**विद्या अर्थ**	विद्या, धन,
दीनवत्सलः	दीनोंपर वात्सल्य रखनेवाले,	**रूप जन्म**	सौन्दर्य, उच्च-कुलमें जन्मसे
सदृशे	बराबरवालोंसे	**आढ्यः**	सम्पन्न होनेपर भी
भ्रातृवत् स्निग्धः	भाईके समान प्रेम रखनेवाले	**मान स्तम्भः**	घमण्ड और हेकड़ीसे
		विवर्जितः	रहित थे ॥३२॥

नोद्विग्नचित्तो व्यसनेषु निःस्पृहः
श्रुतेषु दृष्टेषु गुणेष्ववस्तुदृक्।
दान्तेन्द्रियप्राणशरीरधीः सदा
प्रशान्तकामो रहितासुरोऽसुरः ॥३३॥

न उद्विग्न चित्तः व्यसनेषु निःस्पृहः श्रुतेषु दृष्टेषु गुणेषु अवस्तु दृक् दान्त इन्द्रिय प्राण शरीर धीः सदा प्रशान्त कामः रहित आसुरः असुरः ॥३३॥

व्यसनेषु	कष्टोंमें	**इन्द्रिय प्राण**	इन्द्रियों, प्राण,
उद्विग्न चित्तः न	उनका चित्त घबड़ाता नहीं था,	**शरीर धीः**	शरीर और बुद्धिका
श्रुतेषु दृष्टेषु	सुने हुए और देखे (पारलौकिक-लौकिक)	**सदा दान्त**	सदा दमन किये थे,
		प्रशान्त कामः	कामनामें शान्त हो गयी थीं
गुणेषु	भोगोंको	**असुरः**	असुर (होनेपर भी)
अवस्तु दृक्	असत् देखकर उनसे	**आसुरः रहितः**	आसुरी भावसे
निःस्पृहः	निस्पृह थे।		रहित थे ॥३३॥

यस्मिन्महद्गुणा राजन् गृह्यन्ते कविभिर्मुहुः।
न तेऽधुनापिधीयन्ते यथा भगवतीश्वरे ॥३४॥

यस्मिन् महत् गुणा राजन् गृह्यन्ते कविभिः मुहुः न ते अधुना अपि धीयन्ते यथा भगवति ईश्वरे ॥३४॥

राजन्	राजन् !
यथा ईश्वरे	जैसे सर्वेश्वर
भगवति	भगवान्‌में
अधुना अपि	इस समय भी
यस्मिन्	जिनके
महत् गुणा	महान् गुण
कविभिः	बुद्धिमानों द्वारा
मुहुः गृह्यन्ते	बार-बार अपनाए जाते हैं,
ते धीयन्ते न	वे (अनन्त होनेसे) ध्यानमें नहीं आते ॥३४॥

यं साधुगाथासदसि रिपवोऽपि सुरा नृप ।
प्रतिमानं प्रकुर्वन्ति किमुतान्ये भवादृशाः ॥३५॥

यं साधुगाथा सदसि रिपवः अपि सुरा नृप प्रतिमानं प्रकुर्वन्ति किं उत अन्ये भवादृशाः ॥३५॥

नृप	राजन् !
रिपवः अपि	शत्रु होनेपर भी
सुरा सदसि	देवता सभामें
साधुगाथा	सत्पुरुषोंकी चर्चामें
यं प्रयिमानं	जिनको प्रमाण
प्रकुर्वन्ति	मानकर उद्धृत करते हैं,
भवादृशाः अन्ये	फिर आप जैसे दूसरोंका
किं उत	क्या कहना ॥३५॥

गुणैरलमसंख्येयैर्माहात्म्यं तस्य सूच्यते ।
वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः ॥३६॥

गुणैः अलं असंख्येयैः माहात्म्यं तस्य सूच्यते वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः ॥३६॥

असंख्येयैः	असंख्य
गुणैं	गुणोंसे (क्या प्रयोजन)
तस्य माहात्म्यं	उनकी महिमा
सूच्यते	सूचित करनेको
अलं	इतना ही पर्याप्त है
यस्य	जिनकी
भगवति वासुदेवे	भगवान् वासुदेवमें
नैसर्गिकी रतिः	स्वाभाविक प्रीति थी ॥३६॥

न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत्तन्मनस्तया ।
कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम् ॥३७॥

न्यस्त क्रीडनकः बालः जडवत् तन् मनः तया कृष्णग्रह गृहीत आत्मा न वेद जगत् ईदृशम् ॥३७॥

बालः क्रीडनकः	शैशवमें भी खिलौनोंको	**जड़वत्**	पागलके समान
न्यस्त	त्यागकर	**तन् मनः तया**	तन्मय होनेसे
कृष्णग्रह	श्रीकृष्ण रूपी ग्रहसे	**जगत् ईदृशं**	जगत्को इस रूपमें
गृहीत आत्मा	पकड़े चित्त,	**वेद न**	जानते ही नहीं थे ॥३७॥

आसीनः पर्यटन्नश्नन् शयानः प्रपिबन् ब्रुवन् ।
नानुसन्धत्त एतानि गोविन्दपरिरम्भितः ॥३८॥

आसीनः पर्यटन् अश्नन् शयानः प्रपिबन् ब्रुवन् न अनुसन्धत्त एतानि गोविन्द परिरम्भितः ॥३८॥

गोविन्द	गोविन्दसे	**प्रपिबन् ब्रुवन्**	पीते, बोलते
परिरम्भितः	आलिंगित	**एतानि**	इन सबका
आसीनः पर्यटन्	बैठे, घूमते,	**अनुसन्धत्त**	ध्यान नहीं रहता था ॥३८॥
अश्नन् शयानः	खाते, सोते,		

क्वचिद्रुदति वैकुण्ठचिन्ताशबलचेतनः ।
क्वचिद्धसति तच्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित् ॥३९॥

क्वचित् रुदति वैकुण्ठ चिन्ता शबल चेतनः क्वचित् हसति तत् चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित् ॥३९॥

क्वचित् वैकुण्ठ	कभी भगवान्की	**हसति**	हँसते थे,
चिन्ता शबल	चिन्तासे व्याकुल	**क्वचित्**	कभी
चेतनः रुदति	चित्त रोते थे,	**उद्गायति**	उच्च स्वरसे गाते थे ॥३९॥
क्वचित् तत्	कभी उनके		
चिन्ताह्लाद	चिन्तनके आनन्दसे		

नदति क्वचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्यति क्वचित् ।
क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह ॥४०॥

नदति क्वचित् उत्कण्ठः विलज्जः नृत्यति क्वचित् क्वचित् तत् भावनायुक्तः तन्मयः अनुचकार ह ॥४०॥

क्वचित् उत्कण्ठः	कभी खुले गलेसे	**भावनायुक्तः**	भावना करके
नदति	चिल्ला पड़ते थे,	**तन्मयः**	तन्मय होकर
क्वचित् विलज्ज	कभी लज्जा छोड़कर	**अनुचकार ह**	उनका अनुकरण ही करने लगते थे ॥४०॥
नृत्यति	नाचने लगते थे,		
क्वचित् तत्	कभी उनकी		

क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्वृतः ।
अस्पन्दप्रणयानन्दसलिलामीलितेक्षणः ॥४१॥

क्वचित् उत्पुलकः तूष्णीं आस्ते संस्पर्श निर्वृतः अस्पन्द प्रणय आनन्द सलिल आमीलित ईक्षणः ॥४१॥

क्वचित् संस्पर्श	कभी (भीतर ही भगवान्‌का) स्पर्श करके	**सलिल**	अश्रु बहाते
आनन्द निर्वृतः	आनन्दमग्न	**आमीलित**	नेत्र बन्द
उत्पुलकः	रोमाञ्चित	**ईक्षणः**	किये
प्रणय आनन्द	प्रेमके आनन्दसे	**अस्पन्द तूष्णीं**	बिना हिले-डुले चुप
		आस्ते	रह जाते ॥४१॥

स उत्तमश्लोकपदारविन्दयो-
र्निषेवयाकिञ्चनसङ्गलब्धया ।
तन्वन् परां निर्वृतिमात्मनो मुहु-
र्दुःसङ्गदीनान्यमनःशमं व्यधात् ॥४२॥

स उत्तम श्लोक पदार विन्दयोः निषेवया अकिञ्चन सङ्ग लब्धया तन्वन् परां निर्वृतिं आत्मनः मुहुः दुःसङ्ग आदीना अमनः शमं व्यधात् ॥४२॥

अकिञ्चन सङ्ग	अकिञ्चन भक्तोंके सङ्गसे	**आत्मनः**	अपने चित्तके
लब्धया	प्राप्त होनेवाली	**परां निर्वृतिं**	परमानन्दमें
उत्तम श्लोक	पवित्र कीर्ति भगवान्‌के	**तन्वन्**	मग्न रखते ही थे
पदार विन्दयोः	चरण-कमलोंकी	**दुःसंग आदीना**	कुसंग आदिसे
निषेवया	सेवासे	**अमनः**	खिन्नोंजो
		मुहुः शमं	बार-बार शान्ति
		व्यधात्	देते थे ॥४२॥

तस्मिन्महाभागवते महाभागे महात्मनि ।
हिरण्यकशिपू राजन्नकरोदघमात्मजे ॥४३॥

तस्मिन् महाभागवते महाभागे महात्मनि हिरण्यकशिपू राजन् अकरोत् अघं आत्मजे ॥४३॥

राजन्	राजन्,	**आत्मजे**	अपने पुत्रका
तस्मिन्	उस	**हिरण्यककशिपू**	हिरण्यकशिपु
महाभागवते	महाभागवत	**अघं अकरोत्**	अनिष्टकी चेष्टा
महाभागे	महाभाग		करने लगा ॥४३॥
महात्मनि	महात्मा		

युधिष्ठिर उवाच—

देवर्ष एतदिच्छामो वेदितुं तव सुव्रत ।
यदात्मजाय शुद्धाय पितादात् साधवे ह्यघम् ॥४४॥

देवर्ष एतत् इच्छामः वेदितुं तव सुव्रत यत् आत्मजाय शुद्धाय पिता अदात् साधवे हि अघम् ॥४४॥

सुव्रत देवर्ष	उत्तमव्रती देवर्षि !	**शुद्धाय साधवे**	शुद्ध सत्पुरुष
एतत् वेदितुं	यह जाननेकी	**आत्मजाय**	अपने पुत्रका
इच्छामः	हम सब इच्छा करते हैं,	**पिता अघं**	पिता ही अनिष्ट
		अदात्	करने लगा ॥४४॥
यत्	जिस कारण		

पुत्रान् विप्रतिकूलान् स्वान् पितरः पुत्रवत्सलाः ।
उपालभन्ते शिक्षार्थं नैवाघमपरो यथा ॥४५॥

पुत्रान् विप्रतिकूलान् स्वान् पितरः पुत्रवत्सलाः उपालभन्ते शिक्षा अर्थं न एव अघं अपरः यथा ॥४५॥

पुत्रवत्सलाः	पुत्रपर स्नेह रखने-वाले	**अर्थं**	देनेके लिए
पितरः स्वान्	पिता अपने	**उपालभन्ते**	डाँटते हैं,
विप्रतिकूलान्	अधिक उलटे चलनेवाले	**अपरः यथा**	परायेके समान
		अघं न एव	अनिष्ट नहीं ही करते ॥४५॥
पुत्रान् शिक्षा	पुत्रोंको शिक्षा		

किमुतानुवशान् साधूंस्तादृशान् गुरुदेवतान् ।
एतत् कौतूहलं ब्रह्मन्नस्माकं विधम प्रभो ।
पितुः पुत्राय यद् द्वेषो मरणाय प्रयोजितः ॥४६॥

किं उत अनुवशान् साधून् तादृशान् गुरुदेवतान् एतत् कौतूहलं ब्रह्मन् अस्माकं विधम प्रभो पितुः पुत्राय यत् द्वेषः मरणाय प्रयोजितः ॥४६॥

अनुवशान्	अपने वशमें रहने-वाले,	**तादृशान्**	उस प्रकारके
साधून्	सत्पुरुष	**गुरुदेवतान्**	गुरुजनोंको देवता माननेवाले

किं उत	की तो बात ही क्या	**पितुः पुत्राय**	पिताका पुत्रसे
प्रभो	प्रभो !	**यत् द्वेषः**	जिस कारणसे
एतत् अस्माकं	यह हम लोगोंका		इतना द्वेष कि
कौतूहलं विधम	कौतूहल शान्त	**मरणाय**	उसे मार डालनेका
	कीजिए	**प्रयोजितः**	प्रयत्न किया ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

नारद उवाच–

पौरोहित्याय भगवान् वृतः काव्यः किलासुरैः ।
शण्डामर्कौ सुतौ तस्य दैत्यराजगृहान्तिके ॥१॥

पौरोहित्याय भगवान् वृतः काव्यः किल असुरैः शण्ड अमर्कौ सुतौ तस्य दैत्यराज गृह अन्तिके ॥१॥

भगवान् काव्यः	भगवान् शुक्राचार्य
किल असुरैः	अरे, असुरों द्वारा
पौरोहित्याय	पुरोहिती करनेके लिए
वृतः	वरण किये गये थे,
तस्य सुतौ	उनके दो पुत्र
शण्ड अमर्कौ	शण्ड और अमर्क
दैत्यराज गृह	दैत्यराजके भवनके
अन्तिके	समीप (रहते थे) ॥१॥

तौ राज्ञा प्रापितं बालं प्रह्लादं नयकोविदम् ।
पाठयामासतुः पाठ्यानन्यांश्चासुरबालकान् ॥२॥

तौ राज्ञा प्रापितं बालं प्रह्लादं नयकोविदं पाठयामासतुः पाठ्यान् अन्यान् च असुर बालकान् ॥२॥

तौ राज्ञा प्रापितं	वे दोनों राजाके भेजे
नयकोविदं	नीति-निपुण
बालं प्रह्लादं	बालक प्रह्लादको
च अन्यान्	और दूसरे
असुर बालकान्	असुर बालकोंको
पाठ्यान्	पढ़ाने योग्य विषयों-को
पाठयामासतुः	पढ़ाते थे ॥२॥

यत्तत्र गुरुणा प्रोक्तं शुश्रुवेऽनु पपाठ च ।
न साधु मनसा मेने स्वपरासद्ग्रहाश्रयम् ॥३॥

यत् तत्र गुरुणा प्रोक्तं शुश्रुवे अनु पपाठ च न साधु मनसा मेने स्व पर असत् ग्रह आश्रयम् ॥३॥

तत्र यत्	वहां जो	**स्वपर**	अपने-परायेके
गुरुणा प्रोक्तं	गुरुजी कहते थे	**असत् ग्रह**	झूठे आग्रहपर
शुश्रुवे	उसे (प्रह्लाद) सुनते थे	**आश्रयं**	अवलम्बित (उस विद्या) को
च अनु पपाठ	और दुहराते भी थे; किन्तु	**मनसा**	मनसे
		साधु न मेने	अच्छा नहीं मानते

एकदासुरराट् पुत्रमङ्कमारोप्य पाण्डव ।
पप्रच्छ कथ्यतां वत्स मन्यते साधु यद्भवान् ॥४॥

एकदा असुरराट् पुत्रं अङ्कं आरोप्य पाण्डव पप्रच्छ कथ्यतां वत्स मन्यते साधु यत् भवान् ॥४॥

पाण्डव	युधिष्ठिर !	**पप्रच्छ वत्स**	पूछा 'बेटा !
एकदा असुरराट्	एक बार असुर-राजने	**भवान् यत्**	तुम जो
पुत्रं अङ्कं	पुत्रको गोदमें	**साधु मन्यते**	उत्तम मानते हो
आरोप्य	बैठाकर	**कथ्यतां**	वह बतलाओ' ॥४॥

प्रह्लाद उवाच—

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां
सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ।
हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं
वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥५॥

तत् साधु मन्ये असुर वर्य देहिनां सदा समुद्विग्न धियां असत् ग्रहात् हित्वा आत्मपातं गृहं अन्धकूपं वनं गतः यत् हरिं आश्रयेत ॥५॥

असुरवर्य	असुरश्रेष्ठ !
असत् ग्रहात्	असत् पदार्थोंको पकड़नेसे
सदा समुद्विग्न धियां	सदा उद्विग्न चित्त रहने वाले
देहिनां	शरीरधारियोंके लिए
तत् साधु मन्ये	मैं यही उत्तम मानता हूँ
यत् आत्मपातं	जो अपना पतन कराने वाले
अन्ध कूपं गृहं	अन्धे कुएँके समान घरको
हित्वा वनं गतः	त्याग कर वनमें जाकर
हरिं आश्रयेत	श्रीहरिका आश्रय ले ॥५॥

नारद उवाच—

श्रुत्वा पुत्रगिरो दैत्यः परपक्षसमाहिताः ।
जहास बुद्धिर्बालानां भिद्यते परबुद्धिभिः ॥ ६ ॥

श्रुत्वा पुत्रगिरः दैत्यः परपक्ष समाहिताः जहास बुद्धिः बालानां भिद्यते परबुद्धिभिः ॥६॥

दैत्यः	दैत्य (हिरण्यकशिपु)
परपक्ष	शत्रुपक्षका
समाहिताः	समर्थन करने वाली
पुत्रगिरः	पुत्रकी बात
श्रुत्वा जहास	सुनकर ठठाकर हँसा
परबुद्धिभिः	दूसरों के बहकानेसे
बालानां बुद्धिः	बालकोंकी बुद्धि
भिद्यते	बहक जाती है ॥६॥

सम्यग्विधार्यतां बालो गुरुगेहे द्विजातिभिः ।
विष्णुपक्षैः प्रतिच्छन्नैर्न भिद्येतास्य धीर्यथा ॥ ७ ॥

सम्यक् विधार्यतां बालः गुरुगेहे द्विजातिभिः विष्णुपक्षैः प्रतिच्छन्नैः न भिद्येत अस्य धीः यथा ॥७॥

गुरुगेहे	गुरुजीके घरमें
प्रतिच्छन्नैः	छिपे हुए
विष्णुपक्षैः	विष्णुके पक्षपाती
द्विजातिभिः	ब्राह्मणों द्वारा
अस्य धीः	इसकी बुद्धि
यथा न भिद्येत	जैसे न बहके
बालः	बालककी (वैसे)
सम्यक्	भली प्रकार देख-
विधार्यतां	रेख करो ॥७॥

गृहमानीतमाहूय प्रह्लादं दैत्ययाजकाः ।
प्रशस्य श्लक्ष्णया वाचा समपृच्छन्त सामभिः ॥ ८ ॥

गृहं आनीतं आहूय प्रह्लादं दैत्ययाजकाः प्रशस्य श्लक्ष्णया वाचा सामपृच्छन्त सामभिः ॥६॥

गृहं आनीतं	घर पहुँचाये गये	**सामभिः**	फुसलाकर
प्रह्लादं आहूय	प्रह्लादको (पास) बुलाकर	**श्लक्ष्णया वाचा**	मधुर-वाणीसे
		प्रशस्य	प्रशंसा करके
दैत्ययाजकाः	दैत्य पुरोहितोंने	**समपृच्छन्त**	पूछने लगे ॥८॥

गुरुपुत्रोवाच*—

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते सत्यं कथय मा मृषा ।
बालानति कुतस्तुभ्यमेष बुद्धिविपर्ययः ॥ ९ ॥

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते सत्यं कथय मा मृषा बालान् अति कुतः तुभ्यं एष बुद्धि विपर्ययः ॥९॥

वत्स प्रह्लाद	बेटा प्रह्लाद !		छोटे बालक हो
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो	**तुभ्यं बुद्धि**	तुम्हारी बुद्धि
सत्यं कथय	सच बतला दो	**एष कुतः**	यह कैसे
मृषा मा	झूठ मत बोलना	**विपर्ययः**	उलटी हो गयी ॥९॥
बालान् अति	(अभी तुम) बहुत		

बुद्धिभेदः परकृत उताहो ते स्वतोऽभवत् ।
भण्यतां श्रोतुकामानां गुरूणां कुलनन्दन ॥१०॥

बुद्धिभेदः परकृतः उत अहो ते स्वतः अभवत् भण्यतां श्रोतुकामनां गुरूणां कुलनन्दन ॥१०॥

कुलनन्दन	कुलनन्दन !	**अहो**	अहो
गुरूणां	(हम तुम्हारे) गुरुजन	**स्वतः अभवत्**	स्वयं हो गयी है
श्रोतुकामानां	सुनना चाहते हैं कि	**उत परकृतः**	अथवा दूसरोंने कर (बहका) दिया है ॥१०॥
ते बुद्धिभेदः	तुम्हारी (दूसरों से)		

* यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

प्रह्लाद उवाच–

स्वः परश्चेत्यसद्ग्राहः पुंसां यन्मायया कृतः ।
विमोहितधियां दृष्टस्तस्मै भगवते नमः ॥११॥

स्वः परः च इति असत् ग्राहः पुंसां यन् मायया कृतः विमोहितधियां दृष्टः तस्मै भगवते नमः ॥११॥

विमोहितधियां	मोहग्रस्त बुद्धिवाले	**असत् ग्राहः**	झूठा दुराग्रह
पुंसां	पुरुषोंको	**कृतः दृष्टः**	उत्पन्न होता देखा गया है
यन् मायया	जिनकी मायासे		
स्वः पर इति	'अपना-पराया' इस प्रकारका	**तस्मै भगवते**	उन भगवान्‌को
		नमः	नमस्कार ॥११॥

स यदानुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते ।
अन्य एष तथान्योऽहमिति भेदगतासती ॥१२॥

स यदा अनुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिः विभिद्यते अन्य एष तथा अन्यः अहं इति भेदगता असती ॥१२॥

एष अन्यः	'यह दूसरा है	**पशुबुद्धिः**	पशुबुद्धि
तथा अन्यः	और इससे भिन्न	**स यदा अनुव्रतः**	वे जब अनुग्रह करते हैं
अहं इति	मैं हूँ' इस प्रकारकी		
भेदगता	भेदभावापन्ना	**विभिद्यते**	(तब) नष्ट होती है ॥१२॥
पुंसां असती	पुरुषोंकी झूठी		

स एष आत्मा स्वपरेत्यबुद्धिभि-
र्दुरत्ययानुक्रमणो निरूप्यते ।
मुह्यन्ति यद्वर्त्मनि वेदवादिनो
ब्रह्मादयो ह्येष भिनत्ति मे मतिम् ॥१३॥

स एष आत्मा स्वपर इति अबुद्धिभिः दुरत्यय अनुक्रमणः निरूप्यते मुह्यन्ति यद् वर्त्मनि वेदवादिनः ब्रह्मा आदयः हि एष भिनत्ति मे मतिम् ॥१३॥

स एष आत्मा	वही (परमात्मा) यह आत्मा है,
अबुद्धिभिः	अज्ञानी लोगों द्वारा
स्वपर इति	'अपने-पराये' इस रूपमें
निरूप्यते	निरूपण किया जाता है
हि	क्योंकि
अनुक्रमणः	(इसका ठीक) अनुगमन
दुरत्यय	दुष्पार है
यद् वर्त्मनि	जिसके मार्गमें
ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मा आदि
वेदवादिनः	वेदवक्ता भी
मुह्यन्ति	मोहित हो जाते हैं,
एष मे	(वही) यह (परमात्मा) मेरी
मतिं भिनत्ति	बुद्धिको (दूसरोंसे) भिन्न करता है ॥१३॥

यथा भ्राम्यत्ययो ब्रह्मन् स्वयमाकर्षसन्निधौ ।
तथा मे भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया ॥१४॥

यथा भ्राम्यति अयः ब्रह्मन् स्वयं आकर्ष सन्निधौ तथा मे भिद्यते चेतः चक्रपाणेः यदृच्छया ॥१४॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
यथा अयः	जैसे लोहा
आकर्ष सन्निधौ	चुम्बकके समीप
स्वयं भ्राम्यति	स्वयं खिंच जाता है
तथा मे चेतः	वैसे ही मेरा चित्त
चक्रपाणेः	भगवान् चक्र-पाणिकी
यदृच्छया	स्वतंत्र इच्छासे
भिद्यते	(उनकी ओर) खिंच जाता है ॥१४॥

नारद उवाच-

एतावद्ब्राह्मणायोक्त्वा विरराम महामतिः ।
तं निर्भर्त्स्यार्थ कुपितः स दीनो राजसेवकः ॥१५॥

एतावत् ब्राह्मणाय उक्त्वा विरराम महामतिः तं निर्भर्त्स्य अर्थ कुपितः स दीनः राजसेवकः ॥१५॥

ब्राह्मणाय	ब्राह्मणों (गुरुपुत्रों) से	**अथ स**	तब वे
एतवत् उक्त्वा	इतना ही कहकर	**दीनः राजसेवकः**	बेचारे राजाके सेवक
महामतिः	महाबुद्धिवान (प्रह्लाद)	**कुपितः**	क्रोध करके
विरराम	रुक (चुप हो) गये,	**तं निर्भर्त्स्य**	उनको डांटने लगे ॥१५॥

गुरुपुत्रौवाच*

आनीयतामरे वेत्रमस्माकमयशस्करः ।
कुलाङ्गारस्य दुर्बुद्धेश्चतुर्थोऽस्योदितो दमः ॥१६॥

आनीयतां अरे वेत्रं अस्माकं अयशः करः कुलाङ्गारस्य दुर्बुद्धेः चतुर्थः अस्य उदितः दमः ॥१६॥

अरे वेत्रं	अरे (कोई) बेंत तो	**कुलाङ्गारस्य**	कुलांगारके लिए
आनीयतां	लाओ,	**चतुर्थः दमः**	चौथा उपाय दण्ड ही
अस्माकं	(यह) हम लोगोंको		
अयशः करः	अपयश देनेवाला है,	**उदितः**	उपयुक्त है ॥१६॥
अस्य दुर्बुद्धेः	इस कुबुद्धि		

दैतेयचन्दनवने जातोऽयं कण्टकद्रुमः ।
यन्मूलोन्मूलपरशोर्विष्णोर्नालायितोऽर्भकः ॥१७॥

दैतेय चन्दनवने जातः अयं कण्टकद्रुमः यत् मूल उन्मूल परशोः विष्णोः नालायितः अर्भकः ॥१७॥

दैतेय	दैत्यवंश रूपी	**अयं कण्टक द्रुमः**	यह कांटेका वृक्ष (बबूल)
चन्दनवने	चन्दनवनमें		

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

जातः	(होकर) उत्पन्न हुआ है,	**विष्णोः**	विष्णुका
यत् मूल	जिसे जड़से	**अर्भकः**	यह बालक
उन्मूल परशोः	काटनेके लिए कुल्हाड़ेके समान	**नालायितः**	बेंट (हत्था) बन रहा है ॥१७॥

नारद उवाच–*

इति तं विविधोपायैर्भीषयंस्तर्जनादिभिः ।
प्रह्लादं ग्राहयामास त्रिवर्गस्योपपादनम् ॥१८॥

इति तं विविधः उपायैः भीषयत् तर्जन आदिभिः प्रह्लादं ग्राहयामास त्रिवर्गस्य उपपादनम् ॥१८॥

इति	इस प्रकार	**त्रिवर्गस्य**	त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म,
विविधः उपायैः	अनेक प्रकारके उपाय		काम) को
भीषयत् तर्जन	डराने-धमकाने	**उपपादनं**	प्राप्त करनेकी शिक्षा
आदिभिः	आदिसे	**ग्राहयामास**	ग्रहण करायी ॥१८॥
तं प्रह्लादं	उन प्रह्लादजीको		

तत एनं गुरुर्ज्ञात्वा ज्ञातज्ञेयचतुष्टयम् ।
दैत्येन्द्रं दर्शयामास मातृमृष्टमलङ्कृतम् ॥१९॥

तत एनं गुरुः ज्ञात्वा ज्ञात ज्ञेय चतुष्टयं दैत्येन्द्रं दर्शयामास मातृमृष्टं लअङ्कृत ॥१९॥

तत एनं	तब फिर (कुछ दिनपर) इनको	**ज्ञेय चतुष्टयं**	जानने योग्य चारों (साम, दान, अर्थ,
गुरुः	गुरुने		भेद) को

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ज्ञात ज्ञात्वा	जाना हुआ जानकर	**अलङ्कृतं**	आभूषित
मातृमृष्टं	माता द्वारा स्नान कराके	**दैत्येन्द्रं शयामास**	दैत्यराजको दिखलाया ॥१९॥

पादयोः पतितं बालं प्रतिनन्द्याशिषासुरः ।
परिष्वज्य चिरं दोर्भ्यां परमामाप निर्वृतिम् ॥२०॥

पादयोः पतितं बालं प्रतिनन्द्य आशिषः असुरः परिष्वज्य चिरं दोर्भ्यां परमां आप निर्वृतिम् ॥२०॥

पादयोः पतितं	चरणोंपर गिरे	**दोर्भ्यां चिरं**	भुजाओंसे उठाकर देर तक
बालं आशिषः	बालकको आशीर्वाद देकर	**परिष्वज्य**	आलिंगन करके
प्रतिनन्द्य	अभिनन्दित करके	**परमां निर्वृतिं**	परम शान्ति
असुरः	असुरराजने	**आप**	प्राप्त की ॥२०॥

आरोप्याङ्कमवघ्राय मूर्धन्यश्रुकलाम्बुभिः ।
आसिञ्चन् विकसद्वक्त्रमिदमाह युधिष्ठिर ॥२१॥

आरोप्य अङ्कम् अवघ्राय मूर्धनि अश्रुकला अम्बुभिः आसिञ्चन् विकसत् वक्त्रं इदं आह युधिष्ठिर ॥२१॥

युधिष्ठिर	युधिष्ठिर !	**आसिञ्चन्**	सींचते हुए
अङ्कम् आरोप्य	गोदमें बैठाकर	**अवघ्राय**	सूंघकर
अश्रुकला	आंसूकी बूंदोंके	**विकसत् वक्त्रं**	खिले (प्रसन्न) मुखसे
अम्बुभिः मूर्धनि	जलसे सिरको	**इदं आह**	यह बोला ॥२१॥

हिरण्यकशिपुरुवाच–

प्रह्लादानूच्यतां तात स्वधीतं किञ्चिदुत्तमम् ।
कालेनैतावताऽऽयुष्मन् यदशिक्षद् गुरोर्भवान् ॥२२॥

प्रह्लादन् ऊच्यतां तात स्वधीतं किञ्चित् उत्तमं कालेन एतावता आयुष्मन् यत् अशिक्षत् गुरोः भवान् ॥२२॥

आयुष्मन् तात	आयुष्मन् बेटा	**गुरोः अशिक्षत्**	गुरुसे सीखा है
प्रह्लादन्	प्रह्लाद !	**स्वधीतं**	उस अपने पढ़ेमें-से
एतावता कालेन	इतने समय तक	**किञ्चित् उत्तमं**	कोई श्रेष्ठ बात
यत् भवान्	जो तुमने	**ऊच्यतां**	सुनाओ ॥२२॥

प्रह्लाद उवाच--

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥२३॥

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनं अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्म निवेदनम् ॥२३॥

विष्णोः	श्रीहरिका	**अर्चनं वन्दनं**	अर्चन, वन्दन,
श्रवणं कीतनं	श्रवण, कीर्तन,	**दास्यं सख्यं**	दास्य, सख्य
स्मरणं पाद-	स्मरण, पाद-	**आत्म निवेदनं**	आत्म निवेदन ॥२३॥
सेवनं	सेवन,		

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥२४॥

इति पुंसा अर्पिता विष्णौ भक्तिः चेत् नव लक्षणा क्रियते भगवति अद्धा तत् मन्ये अधीतं उत्तमम् ॥२४॥

इति नव लक्षणा	इस प्रकार नौ लक्षणोंवाली	**चेत् भक्तिः**	यदि भक्ति
पुंसा भगवति	पुरुषोंकी भगवान्	**अद्धा क्रियते**	भली प्रकार की जाय
विष्णौः अर्पिता	विष्णुके प्रति समर्पित	**तत् उत्तमं**	तो उसे उत्तम
		अधीतं मन्ये	अध्ययन मानता हूँ ॥२४॥

नारद उवाच—*

निशम्यैतत्सुतवचो हिरण्यकशिपुस्तदा ।
गुरुपुत्रमुवाचेदं रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥२५॥

निशम्य एतत् सुतवचः हिरण्यकशिपुः तदा गुरुपुत्रं उवाच इदं रुषा प्रस्फुरित अधरः ॥२५॥

एतत् सुतवचः	यह पुत्रकी बात	**प्रस्फुरित अधरः**	फड़कते ओष्ठ
निशम्य	सुनकर	**गुरुपुत्रं**	गुरुपुत्रोंसे
हिरण्यकशिपुः	हिरण्यकशिपु	**इदं उवाच**	यह बोला ॥२५॥
तदा रुषा	उस समय क्रोधसे		

हिरण्यकशिपुरुवाच—*

ब्रह्मबन्धो किमेतत्ते विपक्षं श्रयतासता ।
असारं ग्राहितो बालो मामनादृत्य दुर्मते ॥२६॥

ब्रह्मबन्धो किं एतत् ते विपक्षं श्रयता असता असारं ग्राहितः बालः मां अनादृत्य दुर्मते ॥२६॥

ब्रह्मबन्धो	अधम ब्राह्मण !	**असता**	तुझ दुष्टने
दुर्मते	दुर्बुद्धि	**मां अनादृत्य**	मेरी उपेक्षा करके
किं एतत् ते	क्या यह तेरा काम है ?	**बालः**	बालकको
विपक्षं श्रयता	विरोधी पक्ष अपना-कर	**असारं ग्राहितः**	निःसार शिक्षा दी ॥२६॥

सन्ति ह्यसाधवो लोके दुर्मैत्राश्छद्मवेषिणः ।
तेषामुदेत्यघं काले रोगः पातकिनामिव ॥२७॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सन्ति हि असाधवः लोके दुः मैत्राः छद्मवेषिणः तेषां उदेति अघं काले रोगः पातकिनां इव ॥२७॥

हि	क्योंकि
लोके	संसारमें
दुः मैत्राः	बुरे मित्रके
छद्मवेषिणः	कपट-वेशमें
असाधवः सन्ति	दुष्ट लोग हैं
पातकिनां	पाप करनेवालोंके
रोगः इव	रोगके समान
तेषां अघः	उनका पाप
काले उदेति	समयपर प्रगट हो जाता है ॥२७॥

गुरुपुत्र उवाच—

न मत्प्रणीतं न परप्रणीतं
सुतो वदत्येष तवेन्द्रशत्रो ।
नैसर्गिकीयं मतिरस्य राजन्
नियच्छ मन्युं कददाः स्म मा नः ॥२८॥

न मत् प्रणीतं न परप्रणीतं सुतः वदति एष तव इन्द्र शत्रो नैसर्गिकी इयं मतिः अस्य राजन् नियच्छ मन्युं कददाः स्म मा नः ॥२८॥

इन्द्रशत्रो	इन्द्रशत्रो !
राजन्	महाराज !
न मत् प्रणीतं	न मेरा पढ़ाया,
न परप्रणीतं	न किसी दूसरेका पढ़ाया
एष तव सुतः	यह तुम्हारा पुत्र
वदति	कह रहा है,
अस्य इयं मतिः	इसकी यह बुद्धि
नैसर्गिकी	स्वाभाविक है,
मन्युं नियच्छ	(अतः) क्रोध रोकिये
नः मा कददाः	हमरा अपमान मत कीजिए ॥२८॥

नारद उवाच—

गुरुणैवं प्रतिप्रोक्तो भूय आहासुरः सुतम् ।
न चेद्गुरुमुखीयं ते कुतोऽभद्रासती मतिः ॥२९॥

गुरुणा एवं प्रतिप्रोक्तः भूय आह असुरः सुतं न चेत् गुरुमुखी इयं ते कुतः अभद्रासती मतिः ॥२९॥

एवं गुरुणा	इस प्रकार गुरुके	**गुरुमुखी न**	गुरुमुखसे सुनी बात नहीं है ।
प्रतिप्रोक्तः	प्रत्युत्तर देनेपर	**ते**	तो तुम्हारी
असुरः सुतं	असुरराजने पुत्रसे	**अभद्रासती मतिः**	कुबुद्धि
भूय आह	फिर पूछा	**कुतः अभूत्**	कहांसे हो गयी ॥२९॥
चेत् इयं	यदि यह		

प्रह्लाद उवाच—

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा
मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम् ।
अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं
पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥३०॥

मतिः न कृष्णे परतः स्वतः वा मिथः अभिपद्येत गृहव्रतानां अदान्त गोभिः विशतां तमिस्रं पुनः पुनः चर्वित चर्वणानाम् ॥३०॥

अदान्त गोभिः	अजित इन्द्रियों द्वारा	**मतिः परतः**	बुद्धि दूसरेके द्वारा
पुनः पुनः	बार-बार	**वा स्वतः**	अथवा स्वतः
चर्वित चर्वणानां	भोगे हुएको ही भोगनेवाले	**मिथः**	या दोनों मिलकर भी
तमिस्रं विशतां	नरककी ओर जाते	**कृष्णे**	भगवान् कृष्णमें
गृहव्रतानां	गृहासक्त लोगोंकी	**न अभिपद्येत**	नहीं लगती ॥३०॥

न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं
दुराशया ये बहिरर्थमानिनः ।
अन्धा यथान्धैरुपनीयमाना
वाचीशतन्त्यामुरुदाम्नि बद्धाः ॥३१॥

न ते विदुः स्वार्थ गतिं हि विष्णुं दुराशया ये बहिः अर्थ मानिनः अन्धा यथा अन्धैः उपनीय माना वाचि ईश तन्त्यां उरुदाम्नि बद्धाः ॥३१॥

यथा अन्धा	जैसे अन्धे
अन्धैः	अन्धे द्वारा
उपनीय माना	ले जाये जाते हो
ईश वाचि	ईश्वरकी वाणी वेदरूपी
तन्त्यां	रस्सीमें लगी
उरुदाम्नि	बहुत-सी रस्सियोंसे
बद्धाः	बाँधे हुए
हि	क्योंकि
बहिः अर्थ	बाह्य विषयोंको ही
मानिनः	माननेवाले
ये दुराशया	जो दुरभिप्राय लोग
स्वार्थ गतिं	अपने परम पुरुषार्थ स्वरूप
ते विष्णुं	वे भगवान् विष्णुको
न विदुः	नहीं जानते ॥३१॥

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं
निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ॥३२॥

न एषां मतिः तावत् उरुक्रम अङ्घ्रिं स्पृशति अनर्थ अपगमः यत् अर्थः महीयसां पादरजः अभिषेकं निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ॥३२॥

एषां मतिः	इनकी बुद्धि
अनर्थ अपगमः	अनर्थ निवारक
उरुक्रम अङ्घ्रिं	भगवान् अनन्त पराक्रमके चरणोंको
यत् अर्थः	जो सच्चे स्वार्थ हैं
तावत्	तब-तक
न स्पृशति	स्पर्श नहीं करती
यावत्	जब-तक
निष्किञ्चनानां	अकिञ्चन
महीयसां	महापुरुषोंकी
पादरजः	चरणरजमें
अभिषेकं	स्नान करना
न वृणीत	नहीं वरण कर लेती ॥३२॥

नारद उवाच-*

इत्युक्त्वोपरतं पुत्रं हिरण्यकशिपू रुषा ।
अन्धीकृतात्मा स्वोत्सङ्गान्निरस्यत महीतले ॥३३॥

इति उक्त्वा उपरतं पुत्रं हिरण्यकशिपू रुषा अन्धीकृत आत्मा स्व उत्सङ्गात् निरस्यत महीतले ॥३३॥

इति उक्त्वा	इतना कहकर	**आत्मा**	बुद्धिके कारण
उपरतं पुत्रं	चुप हुए पुत्रको	**स्व उत्सङ्गात्**	अपनी गोदसे
हिरण्यकशिपू	हिरण्यकशिपुने	**महीतले**	पृथ्वीपर
रुषा अन्धीकृत	क्रोधसे अन्धी बनी	**निरस्यत**	पटक दिया ॥३३॥

आहामर्षरुषाविष्टः कषायीभूतलोचनः ।

आह अमर्ष रुषा आविष्टः कषायी भूत लोचनः

अमर्ष रुषा	असहनशीलता और क्रोधसे	**लोचनः**	नेत्रोंवाला
कषायी भूत	लाल हो गये	**आह**	बोला

हिरण्यकशिपुरुवाच-*

वध्यतामाश्वयं वध्यो निःसारयत नैर्ऋताः ॥३४॥

बध्यतां आशु अयं वध्यः निःसारयत नैर्ऋताः ॥३४॥

नैर्ऋताः	दैत्यो	**आशु बध्यतां**	शीघ्र मार दो
अयं निःसारयत	इसे निकाल दो ।	**बध्यः**	यह मार ही देने योग्य है ॥२४॥

अयं मे भ्रातृहा सोऽयंहित्वा स्वान् सुहृदोऽधमः ।
पितृष्यहन्तुर्यः पादौ विष्णोर्दासवदर्चति ॥३५॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अयं मे भ्रातृ हा सः अयं हित्वा स्वान् सुहृदः अधमः पितृव्य हन्तुः यः पादौ विष्णोः दासवत् अर्चति ॥३५॥

अयं अधमः	यह अधम	**सः पितृव्य**	उसी चाचाको
स्वान् सुहृदः	अपने सम्बन्धियोंको	**हन्तुः**	मारनेवाले
हित्वा	छोड़कर	**विष्णोः पादौ**	विष्णुके चरणोंकी
यः मे भ्रातृ हा	जो मेरे भाईको मारनेवाला है	**अयं दासवत्**	यह दासके समान
		अर्चति	पूजा करता है ॥५३॥

विष्णोर्वा साध्वसौ किं नु करिष्यत्यसमञ्जसः ।
सौहृदं दुस्त्यजं पित्रोरहाद्यः पञ्चहायनः ॥३६॥

विष्णोः वा साधु असौ किं नु करिष्यति असमञ्जसः सौहृदं दुस्त्यजं पित्रोः अहः अद्यः पञ्च हायनः ॥३६॥

अहः अद्यः	दिनोंके हिसाबसे अभी यह	**असमञ्जसः**	(त्यागकर) अविश्वसनीय हो गया
पञ्च हायनः	पांच वर्षका है (पर)	**असौ विष्णोः**	यह विष्णुका ही
पित्रोः	माता-पिताके	**नु किं साधु**	भला क्या हित
दुस्त्यजं सौहृदं	दुस्त्याज्य सौहार्द्रको	**करिष्यति**	करेगा ॥३६॥

परोऽप्यपत्यं हितकृद्यथौषधं
स्वदेहजोऽप्यामयवत्सुतोऽहितः ।
छिन्द्यात्तदङ्गं यदुतात्मनोऽहितं
शेषं सुखं जीवति यद्विवर्जनात् ॥३७॥

परः अपि अपत्यं हित कृत् यथा औषधं स्वदेहजः अपि आमयवत् सुतः अहितः छिन्द्यात् तत् अङ्गं यद् उत आत्मनः अहितं शेषं सुखं जीवति यत् विवर्जनात् ॥३७॥

परः अपि	दूसरेका भी	**अपत्यं**	पुत्र
हित् कृत	भला करनेवाला	**औषधं यथा**	औषधिके समान है,

अहितः	अहित करनेवाला
स्वदेहजः	अपने शरीरसे
अपि सुतः	उत्पन्न पुत्रभी
आमयवत्	रोगके समान है,
यद् उत	जो कहीं
आत्मनः	अपनेको ही
अहितं	हानिकारक हो
तत् अङ्गं	उस अंगको
छिन्द्यात्	काट दें
यत् विवर्जनात्	जिसको त्याग देनेसे
शेषं सुखं	शेष सब सुखसे
जीवति	जीवित रहते हैं

॥३७॥

सर्वैरुपायैर्हन्तव्यः सम्भोजशयनासनैः ।
सुहृल्लिङ्गधरः शत्रुर्मुनेर्दुष्टमिवेन्द्रियम् ॥३८॥

सर्वैः उपायैः हन्तव्यः सम्भोज शयन आसनैः सुहृत् लिङ्ग धरः शत्रुः मुनेः दुष्टं इव इन्द्रियम् ॥३८॥

दुष्टं इन्द्रियं	दुष्ट (भोग लोलुप) इन्द्रियां
मुनेः इव	मुनिके लियेके समान
सुहृत् लिङ्ग धरः शत्रुः	सम्बन्धीका रूप धारण किये (यह) शत्रु है ।
सम्भोज शयन आसनैः	भोजन करते, सोते, बैठे (किसी दशामें)
सर्वैः उपायैः	सब उपायोंसे
हन्तव्यः	मार डालने योग्य है ॥३८॥

नारद उवाच–*

नैर्ऋतास्ते समादिष्टा भर्त्रा वै शूलपाणयः ।
तिग्मदंष्ट्रकरालास्यास्ताम्रश्मश्रुशिरोरुहाः ॥३९॥

नैर्ऋताः ते समादिष्टा भर्त्रा वै शूलपाणयः तिग्म दंष्ट्र कराल आस्याः ताम्रश्मश्रु शिरोरुहाः ॥३९॥

ते शूलपाणयः	वे हाथमें भाला लिए
तिग्म दंष्ट्र	तीक्ष्ण दाढ़ोंवाले
कराल आस्याः	भयानक मुख
ताम्रश्मश्रु	लाल दाढ़ी और

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

शिरोरुहाः	केशोंवाले	**वै समादिष्टा**	निश्चित आदेश दिये जानेपर ॥३९॥
नैर्ऋताः	दैत्य		
भर्त्रा	अपने स्वामी द्वारा		

नदन्तो भैरवान्नादांश्छिन्धि भिन्धीति वादिनः ।
आसीनं चाहनज् शूलैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु ॥४०॥

नदन्तः भैरवान् नादान् छिन्धि भिन्धि इति वादिनः आसीनं च अहनज् शूलैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु ॥४०॥

छिन्धि भिन्धि	'काट दो, छेद डालो'	**नदन्तः**	चिल्लाते हुए
इति वादिनः	ऐसा कहते	**आसीनं प्रह्लादं**	बैठे हुए प्रह्लादको
च भैरवान्	तथा भयंकर	**सर्वमर्मसु**	सब मर्म स्थानोंमें
नादान्	गर्जनासे	**शूलैः अहनज्**	भालोंसे मारा ॥४०॥

परे ब्रह्मण्यनिर्देश्ये भगवत्यखिलात्मनि ।
युक्तात्मन्यफला आसन्नपुण्यस्येव सत्क्रियाः ॥४१॥

परे ब्रह्मणि अनिर्देश्ये भगवति अखिल आत्मनि युक्त आत्मनि अफला आसन् अपुण्यस्य इव सत् क्रियाः ॥४१॥

अपुण्यस्य	पुण्यहीनके	**भगवति**	भगवान्में
सत् क्रियाः इव	सत् कर्मोंके समान	**युक्त आत्मनि**	चित्त लगाये (प्रह्लादके)
अनिर्देश्ये	जिनका निर्देश नहीं हो सकता	**अफला आसन्**	(ऊपर किये आघात) निष्फल हो गये ॥४१॥
परे ब्रह्मणि	उन परमब्रह्म		
अखिल आत्मनि	सर्वात्मा		

प्रयासेऽपहते तस्मिन् दैत्येन्द्रः परिशङ्कितः ।
चकार तद्वधोपायान्निर्बन्धेन युधिष्ठिर ॥४२॥

प्रयासे अपहते तस्मिन् दैत्येन्द्रः परिशङ्कितः चकार तत् वध उपायान् निर्बन्धेन युधिष्ठिर ॥४२॥

युधिष्ठिर	युधिष्ठिर !	**परिशङ्कितः**	अत्यन्त शंकित होकर
तस्मिन्	उन (प्रह्लाद) पर		
प्रयासे अपहृते	(किये गये) प्रयत्नके विफल हो जानेपर	**निर्बन्धेन**	हठ पूर्वक
		तत् वध	उसके बधके
दैत्येन्द्रः	दैत्यराजने	**उपायान्**	उपाय
		चकार	किये ॥४२॥

दिग्गजैर्दन्दशूकैश्च अभिचारावपातनैः ।
मायाभिः संनिरोधैश्च गरदानैरभोजनैः ॥४३॥

दिग्गजैः दन्दशूकैः च अभिचारैः अवपातनः मायाभिः सन्निरोधैः च गरदानैः अभोजनैः ॥४३॥

दिग्गजैः	हाथियोंसे (कुचल-वाकर)	**अवपातनैः**	(ऊँचेसे) गिराकर,
		मायाभिः	माया-प्रयोग करके,
दन्दशूकैः	सर्पों द्वारा (उनके बीचमें डालकर)	**सन्निरोधैः**	(कोठरीमें) बन्द करके,
च अभिचारैः	और अभिचार (मारण-प्रयोग) करके	**गरदानैः**	विष देकर
		च अभोजनैः	तथा भोजन न देकर ॥४३॥

हिमवाय्वग्निसलिलैः पर्वताक्रमणैरपि ।
न शशाक यदा हन्तुमपापमसुरः सुतम् ।
चिन्तां दीर्घतमां प्राप्तस्तत्कर्तुं नाभ्यपद्यत ॥४४॥

हिम वायु अग्नि सलिलैः पर्वत आक्रमणैः अपि न शशाक यदा हन्तुं अपापं असुरः सुतम् चिन्तां दीर्घतमां प्राप्तः तत् कर्तुं न अभ्यपद्यत ॥४४॥

हिम	बरफसे (दबाकर)	**सलिलैः**	जलमें (डुबाकर)
वायु	अन्धड़ (में डालकर)	**पर्वत**	पर्वतोंसे
अग्नि	अग्निसे (जलती चितामें डालकर)	**आक्रमणैः अपि**	दबाकर-कर भी
		यदा असुरः	जब वह दैत्य

अपापं सुतं	अपने निष्पाप पुत्रको	**तत् कर्तुं**	उसे (दूर) करनेका
हन्तुं न शशाक	मार नहीं सका,	**न अभ्यपद्यत**	(उपाय) नहीं पाता
दीर्घतमां चिन्तां	बहुत बड़ी चिन्ता		था ॥४४॥
प्राप्तः	मिल गयी (हो गयी)		

एष मे बह्वसाधूक्तो वधोपायाश्च निर्मिताः ।
तैस्तैर्द्रोहैरसद्धर्मैर्मुक्तः स्वेनैव तेजसा ॥४५॥

एष मे बहु असाधु उक्तः वधः उपायाः च निर्मिताः तैः तैः द्रोहैः असत् धर्मैः मुक्तः स्वेन एव तेजसा ॥४५॥

मे एष	मैंने इसे	**तैः तैः द्रोहैः**	उन-उन शत्रुतापूर्ण
बहु असाधु	बहुत बुरा-भला	**असत् धर्मैः**	दुर्व्यवहारोंसे
उक्तः	कहा	**स्वेन एव**	अपने ही
च वधः उपायाः	और मारनेके उपाय	**तेजसा मुक्तः**	तेजसे बच गया
निर्मिताः	भी किये		॥४५॥

वर्तमानोऽविदूरे वै बालोऽप्यजडधीरयम् ।
न विस्मरति मेऽनार्यं शुनःशेप इव प्रभुः ॥४६॥

वर्तमानः अविदूरे वै बालः अपि अजडधीः अयं न विस्मरति मे अनार्यं शुनः शेप इव प्रभुः ॥४६॥

अयं बालः अपि	यह बालक होनेपर भी	**प्रभुः**	समर्थ है,
अजडधीः	समझदार है,	**शुनः शेप इव**	शुनःशेपकी भांति*
अविदूरे वै	समीप ही डटा	**मे अनार्यं**	मेरी बुराइयोंको
वर्तमानः	रहता है,	**न विस्मरति**	नहीं भूलेगा ॥४६॥

---

* शुनःशेपको उसके पिताने बलि देनेके लिए बेच दिया था; किन्तु वह वरुणकी स्तुति करके बच गया और फिर पिताके पास नहीं लौटा। उसने विश्वामित्रको पिता बना लिया।

अप्रमेयानुभावोऽयमकुतश्चिद्भयोऽमरः ।
नूनमेतद्विरोधेन मृत्युर्मे भविता न वा ॥४७॥

अप्रमेय अनुभावः अयं अकुतश्चित् भयः अमरः नूनं एतत् विरोधेन मृत्युं मे भविता न वा ॥४७॥

अयं अप्रमेय	यह अमाप	**नूनं एतत्**	निश्चय इसके
अनुभावः	प्रभाव वाला है,	**विरोधेन**	विरोधसे
अकुतश्चित्	किसीसे भी नहीं	**मे मृत्युं भविता**	मेरी मृत्यु होगी,
भयः	डरता	**वा न**	अथवा न भी हो
अमरः	अमर है,		॥४७॥

इति तं चिन्तया किञ्चिन्म्लानश्रियमधोमुखम् ।
शण्डामर्कावौशनसौ विविक्त इति होचतुः ॥४८॥

इति तं चिन्तया किञ्चित् म्लान श्रियं अधोमुखं शण्ड अमर्काः औशनसौ विविक्त इति ह ऊचतुः ॥४८॥

इति तं	इस प्रकार उसे	**विविक्त**	एकान्तमें
चिन्तया	चिन्तासे	**औशनसौ**	शुक्राचार्यके पुत्र
किञ्चित्	कुछ	**शण्ड अमर्काः**	शण्ड और अमर्कने
म्लान श्रियं	मलिन कान्ति	**इति ह**	इस प्रकार निश्चयसे
अधोमुखं	मुख लटकाये-से	**ऊचतुः**	कहा ॥४८॥

जितं त्वयैकेन जगत्त्रयं भ्रुवो-
र्विजृम्भणत्रस्तसमस्तधिष्ण्यपम् ।
न तस्य चिन्त्यं तव नाथ चक्ष्महे
न वै शिशूनां गुणदोषयोः पदम् ॥४९॥

जितं त्वया एकेन जगत् त्रयं भ्रुवोः विजृम्भण त्रस्त समस्त धिष्ण्यपं न तस्य चिन्त्यं तव नाथ चक्ष्महे न वै शिशूनां गुण दोषयोः पदम् ॥४९॥

नाथ	स्वामी !
एकेन त्वया	अकेले आपने
जगत् त्रयं जितं	त्रिभुवन विजय किया है,
विजृम्भण	(आपके) जम्हाई लेनेपर
समस्त धिष्ण्यपं	सब देवता
त्रस्त	डर जाते हैं,
तस्य	उस (आप) के लिए
चिन्त्यं	चिन्ता करने योग्य
चक्ष्महे न	(हम कुछ) देखते नहीं
शिशूनां	बच्चोंके
गुण दोषयोः	गुण-दोषोंका
पदं वै न	स्थिर स्थिति नहीं ही होती ॥४९॥

इमं तु पाशैर्वरुणस्य बद्ध्वा
निधेहि भीतो न पलायते यथा ।
बुद्धिश्च पुंसो वयसाऽऽर्यसेवया
यावद् गुरुर्भार्गव आगमिष्यति ॥५०॥

इमं तु पाशैः वरुणस्य बद्ध्वा निधेहि भीतः न पलायते यथा बुद्धिः च पुंसः वयसा आर्य सेवया यावत् गुरुः भार्गव आगमिष्यति ॥५०॥

इमं तु	इसे तो
वरुणस्य पाशैः	वरुणके पाशमें
बद्ध्वा निधेहि	बाँध रखिये
भीतः यथा	डरकर जिससे
पलायते न	भाग न जाय
यावत् गुरुः	जब तक गुरु
भार्गव	शुक्राचार्य
आगमिष्यति	आ न जायँ
पुंसः बुद्धिः	पुरुषोंको बुद्धि
वयसा	बड़ी आयु होनेपर
च आर्य सेवया	तथा श्रेष्ठ पुरुषोंकी सेवासे आती है ॥५०॥

तथेति गुरुपुत्रोक्तमनुज्ञायेदमब्रवीत् ।
धर्मा ह्यस्योपदेष्टव्या राज्ञां ये गृहमेधिनाम् ॥५१॥

तथा इति गुरु पुत्र उक्तं अनुज्ञाय इदं अब्रवीत् धर्मा हि अस्या उपदेष्टव्या राज्ञां ये गृहमेधिनाम् ॥५१॥

गुरु पुत्र उक्तं	गुरुपुत्रोंके कहेको
तथा इति	'ऐसा ही हो'
अनुज्ञाय	अनुमति देकर
इदं अब्रवीत्	यह बोला
ये धर्मा	'जो धर्म
गृहमेधिनां	गृहस्थ
राज्ञां	राजाओंके हैं
हि अस्या	वही इसको
उपदेष्टव्या	उपदेश करना चाहिए ॥५१॥

धर्ममर्थं च कामं च नितरां चानुपूर्वशः ।
प्रह्लादायोचतू राजन् प्रश्रितावनताय च ॥५२॥

धर्मं अर्थं च कामं च नितरां च अनुपूर्वशः प्रह्लादाय ऊचतू राजन् प्रश्रित अवनताय च ॥५२॥

राजन्	राजन् !
प्रश्रित	विनयसे
अवनताय	झुके हुए
प्रह्लादाय च	प्रह्लादको तो
धर्मं अर्थं	धर्म, अर्थ,
च कामं	और कामको
नितरां च	आत्यन्तिक बतलाते हुए ही
च अनुपूर्वशः	तथा क्रमशः
ऊचतुः	शिक्षा देने लगे ॥५२॥

यथा त्रिवर्गं गुरुभिरात्मने उपशिक्षितम् ।
न साधु मेने तच्छिक्षां द्वन्द्वारामोपवर्णिताम् ॥५३॥

यथा त्रिवर्गं गुरुभिः आत्मने उपशिक्षितं न साधु मेने तत् शिक्षां द्वन्द्व आराम उपवर्णिताम् ॥५३॥

द्वन्द्व आराम	(राग-द्वेषादि) द्वन्दोंमें सुख लेने वालोंके लिए
उपवर्णितां	वर्णन की गयी
त्रिवर्गं	अर्थ, धर्म, कामकी
उपशिक्षितं	शिक्षा
गुरुभिः	गुरुओं द्वारा
यथा आत्मने	जैसी अपनेको दी गयी
तत् शिक्षां	उस शिक्षाको
साधु न मेने	अच्छा नहीं माना ॥५३॥

यदाऽऽचार्यः परावृत्तो गृहमेधीयकर्मसु ।
वयस्यैर्बालकैस्तत्र सोपहूतः कृतक्षणैः ॥५४॥

यदा आचार्यः परावृत्तः गृहमेधीय कर्मसु वयस्यैः बालकैः तत्र स उपहूतः कृतक्षणैः ॥५४॥

यदा आचार्यः	जब आचार्य
गृहमेधीय	गृहस्थोचित
कर्मसु	किसी कामसे
परावृत्तः	(कहीं) बाहर चले गये
कृतक्षणैः	छुट्टी मिलनेपर
वयस्यैः बालकैः	समवयस्क बालकोंने
स उपहूतः	वे (प्रह्लाद) बुलाये गये ॥५४॥

अथ ताञ् श्लक्ष्णया वाचा प्रत्याहूय महाबुधः ।
उवाच विद्वांस्तन्निष्ठां कृपया प्रहसन्निव ॥५५॥

अथ तान् श्लक्ष्णया वाचा प्रति आहूय महाबुधः उवाच विद्वान् तत् निष्ठां कृपया प्रहसन् इव ॥५५॥

महाबुधः	परम बुद्धिमान् (प्रह्लाद) ने
अथ तान्	तब उनको
श्लक्ष्णया वाचा	मधुर वाणीसे
प्रति आहूय	अपने पास बुलाकर
तत् निष्ठां	उन सबकी गति (आन्तरिक स्थिति)
विद्वान्	जानकर
कृपया	कृपासे
प्रहसन् इव	हँसते हुएसे
उवाच	बोले ॥५५॥

ते तु तद्गौरवात्सर्वे त्यक्तक्रीडापरिच्छदाः ।
बाला नदूषितधियो द्वन्द्वारामेरितेहितैः ॥५६॥

ते तु तत् गौरवात् सर्वे त्यक्त क्रीडा परिच्छदाः बाला न दूषित धियः द्वन्द्व आराम ईरितैः इहितैः ॥५६॥

द्वन्द्व आराम	(मुख दुःखादि) विषय भोगोंमें सुख माननेवालोंके
ईरितैः ईहितैः	उपदेशों और चेष्टाओंसे
न दूषित धियः	(अभी) बुद्धि दूषित नहीं हुई थी
ते बाला तु	वे बालक तो
सर्वे	सबने
तत् गौरवात्	उन (प्रह्लाद) में आदर बुद्धि होनेसे
क्रीडा परिच्छदाः	खेलनेके उपकरण
त्यक्त	छोड़ दिये ॥५६॥

पर्युपासत राजेन्द्र तन्न्यस्तहृदयेक्षणाः ।
तानाह करुणो मैत्रो महाभागवतोऽसुरः ॥५७॥

पर्युपासत राजेन्द्र तत् न्यस्त हृदय ईक्षणाः तान् आह करुणः मैत्रः महाभागवतः असुरः ॥५७॥

राजेन्द्र	महाराज !	**महाभागवतः**	परम भगवद्-भक्त
तत्	उन (प्रह्लाद) में	**असुरः**	असुर प्रह्लाद
हृदय ईक्षणाः	चित्त और नेत्र	**मैत्रः करुणः**	(उनके) मित्र होनेसे
न्यस्त	लगाकर (वे)		कृपापूर्वक
पर्युपासत	(उनके) चारों ओर पास बैठ गये ।	**तान् आह**	उनसे बोले ॥५७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते पञ्चमोऽध्यायः ॥५७॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

प्रह्लाद उवाच—

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥१॥

कौमार आचरेत् प्राज्ञः धर्मान् भागवतान् इह दुर्लभं मानुषं जन्म तत् अपि अध्रुवं अर्थदम् ॥१॥

प्राज्ञः	समझदारको	**मानुषं जन्म**	मनुष्य जन्म
इह कौमार	इस कुमारावस्थामें ही	**दुर्लभं**	दुर्लभ है,
		तत् अपि	वह भी
भागवतान्	भागवत्	**अध्रुवं**	अनित्य है; पर
धर्मान्	धर्मोंका	**अर्थदं**	परमार्थ देनेवाला है ॥१॥
आचरेत्	आचरण करना चाहिए ।		

यथा हि पुरुषस्येह विष्णोः पादोपसर्पणम् ।
यदेष सर्वभूतानां प्रिय आत्मेश्वरः सुहृत् ॥२॥

यथा हि पुरुष अस्य इह विष्णोः पाद उपसर्पणं यत् एष सर्वभूतानां प्रिय आत्मा ईश्वरः सुहृत् ॥२॥

अस्य पुरुष	इस पुरुषका	**यत्**	क्योंकि
विष्णोः पाद	भगवान् विष्णुके चरणों तक	**एष सर्वभूतानां**	ये सब प्राणियोंके
		प्रिय आत्मा	प्रिय, आत्मा,
यथा इह	जैसे भी इसी जीवनमें	**ईश्वरः सुहृत्**	स्वामी और हितैषी हैं ॥२॥
उपसर्पणं	पहुँचना हो		

सुखमैन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम् ।
सर्वत्र लभ्यते दैवाद्यथा दुःखमयत्नतः ॥३॥

सुखं ऐन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनां सर्वत्र लभ्यते दैवात् यथा दुःख अयत्नतः ॥३॥

दैत्या	दैत्यो !	**सुखं सर्वत्र**	सुख सब कहीं
देहयोगेन	शरीर मिलनेपर	**लभ्यते**	मिल जाता है,
देहिनां	शरीर धारियोंको	**यथा अयत्नतः**	जैसे बिना प्रयत्नके ही
दैवात्	भाग्यके अनुसार		
ऐन्द्रियकं	इन्द्रियों द्वारा मिलनेवाला	**दुःखं**	दुःख (मिलता है) ॥३॥

तत्प्रयासो न कर्तव्यो यत आयुर्व्ययः परम् ।
न तथा विन्दते क्षेमं मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥४॥

तत् प्रयासः न कर्तव्यः यत आयुः व्ययः परं न तथा विन्दते क्षेमं मुकुन्द चरणाम्बुजम् ॥४॥

तत् प्रयासः	उस (ऐन्द्रिक सुखके लिए) प्रयत्न	**तथा क्षेमं**	और कल्याणस्वरूप
		मुकुन्द	श्रीमुकुन्दके
न कर्तव्यः	नहीं करना चाहिए	**चरणाम्बुजं**	चरण-कमल
यत परं	क्योंकि उसमें लगकर	**न विन्दते**	नहीं मिल पाते ॥४॥
आयुः व्ययः	आयु बीत जाती है		

ततो यतेत कुशलः क्षेमाय भयमाश्रितः ।
शरीरं पौरुषं यावन्न विपद्येत पुष्कलम् ॥५॥

ततः यतेत कुशलः क्षेमाय भयं आश्रितः शरीरं पौरुषं यावत् न विपद्येत पुष्कलम् ॥५॥

ततः कुशलः	इसलिए चतुर व्यक्ति	**शरीरं**	यह शरीर
भयं आश्रितः	(रोग-मृत्यु आदिका) भय मानकर	**पुष्कलं**	(इसके लिए) पर्याप्त है; किन्तु
क्षेमाय यतेत	कल्याणके लिए प्रयत्न करे,	**यावत्**	जब तक यह
		न विपद्येत	न मर जाय ॥५॥

पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्धं चाजितात्मनः ।
निष्फलं यदसौ रात्र्यां शेतेऽन्धं प्रापितस्तमः ॥६॥

पुंसः वर्षशतं हि आयुः तत् अर्धं च अजित आत्मनः निष्फलं यत् असौ रात्र्यां शेते अन्धं प्रापितः तमः ॥६॥

हि	क्योंकि	**यत् असौ**	क्योंकि यह
पुंसः वर्षशतं	पुरुषकी सौ वर्षकी	**रात्र्यां**	रातको
आयुः	आयु है,	**अन्धं तमः**	अज्ञानसे
अजित आत्मनः	अजित चित्त वालेकी	**प्रापितः**	ग्रस्त
तत् अर्धं च	उसकी आधी तो	**शेते**	सोता रहता है ॥६॥
निष्फलं	व्यर्थ है		

मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतो याति विंशतिः ।
जरया ग्रस्तदेहस्य यात्यकल्पस्य विंशतिः ॥७॥

मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतः याति विंशतिः जरया ग्रस्त देहस्य याति अकल्पस्य विंशतिः ॥७॥

मुग्धस्य	अज्ञान दशामें	**जरया ग्रस्त**	बुढ़ापेसे आक्रान्त
बाल्ये	शैशवमें और	**अकल्पास्य**	असमर्थ
क्रीडतः	खेलते हुए	**देहस्य**	शरीरमें
कौमारे	कुमारावस्थामें	**विंशतिः याति**	बीस वर्ष बीत जाते हैं ॥७॥
विंशतिः याति	बीस वर्ष (आयु) बीत जाती है,		

दुरापूरेण कामेन मोहेन च बलीयसा ।
शेषं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्यापयाति हि ॥८॥

दुरापूरेण कामेन मोहेन च बलीयसा शेषं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्य अपयाति हि ॥८॥

हि	क्योंकि	**गृहेषु**	घरोंमें
दुरापूरेण	जिसका पेट कभी नहीं भरता उस	**सक्तस्य**	आसक्तकी
		प्रमत्तस्य	प्रमादग्रस्तकी
कामेन च	कामनासे और	**शेषं**	बची (आयु)
बलीयसा	बलवान	**अपयाति**	व्यर्थ बीत जाती है ॥८॥
मोहेन	मोहसे		

को गृहेषु पुमान्सक्तमात्मानमजितेन्द्रियः ।
स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेत विमोचितुम् ॥९॥

कः गृहेषु पुमान् सक्तं अत्मानं अजित इन्द्रियः स्नेह पाशैः दृढैः बद्धं उत्सहेत विमोचितुम् ॥९॥

अजित इन्द्रियः	इन्द्रियोंको न जीतनेवाला	**बद्धं**	बँधे
		गृहेषु सक्तं	घरोंमें आसक्त
कः पुमान्	कौन पुरुष	**आत्मानं**	अपनेको
दृढैः स्नेह पाशैः	मजबूत स्नेहसे बन्धनसे	**विमोचितुं**	छुड़ानेका
		उत्सहेत	उत्साह करेगा ॥९॥

को न्वर्थतृष्णां विसृजेत् प्राणेभ्योऽपि य ईप्सितः ।
यं क्रीणात्यसुभिः प्रेष्ठैस्तस्करः सेवको वणिक् ।१०॥

कः नु अर्थ तृष्णां विसृजेत् प्राणेभ्यः अपि य ईप्सितः यं क्रीणाति असुभिः प्रेष्ठैः तस्करः सेवकः वणिक् ॥१०॥

यं प्रेष्ठैः	जिस परम प्रियको	**असुभिः**	प्राणोंके (मूल्य) द्वारा

तस्करः	चोर
सेवकः	सेवक (और)
वणिक्	व्यापारी
क्रीणाति	खरीदते हैं,
य प्राणेभ्यः	जो प्राणोंसे
अपि ईप्सितः	भी अभीष्ट है
अर्थ तृष्णां	(उस) धनकी तृष्णाको
नु कः	भला कौन
विसृजेत्	छोड़ सकता है ॥१०॥

कथं प्रियाया अनुकम्पितायाः
सङ्गं रहस्यं रुचिरांश्च मन्त्रान् ।
सुहृत्सु च स्नेहसितः शिशूनां
कलाक्षराणामनुरक्तचित्तः ॥११॥

कथं प्रियायाः अनुकम्पितायाः सङ्गं रहस्यं रुचिरान् च मन्त्रान् सुहृत्सु च स्नेहसितः शिशूनां कल अक्षराणां अनुरक्त चित्तः ॥११॥

अनुकम्पितायाः	प्रेम करनेवाली
प्रियायाः	प्रिय पत्नीके
रहस्यं	एकान्त
संङ्गं	सहवास
च रुचिरान्	तथा मधुर
मन्त्रान् च	सलाह और
सुहृत्सु	हितैषी जनोंसे
स्नेहसितः	प्रेमोज्वल
शिशूनां	बालकोंकी
कल अक्षराणां	तोतली बोलीमें
अनुरक्त	आसक्त
चित्तः	चित्त
कथं	कैसे (छूट सकता है) ॥११॥

पुत्रान्स्मरंस्ता दुहितृर्हृदय्या
भ्रातृन् स्वसृर्वा पितरौ च दीनौ ।
गृहान् मनोज्ञोरुपरिच्छदांश्च
वृत्तीश्च कुल्याः पशुभृत्यवर्गान् ॥१२॥

पुत्रान् स्मरन् ता दुहितृः हृदय्या भ्रातृन् स्वसृः वा पितरौ च दीनौ गृहान् मनोज्ञः उरु परिच्छदान् च वृत्तीः च कुल्याः पशु भृत्यवर्गान् ॥१२॥

पुत्रान्	पुत्रोंको
ता हृदय्या	उन अत्यन्त प्रिय
दुहितृः	पुत्रियोंको,
भ्रातॄन्	भाइयोंको,
वा स्वसृः	या बहिनोंको,
च दीनौ	तथा दीन अवस्था प्राप्त
पितरौ	माता-पिताको,
मनोज्ञः	मनोहर
उरु परिच्छदान्	बहुत-सी सामग्रियों-वाले
गृहान्	घरोंको,
च कुल्याः	एवं कुल परम्परा प्राप्त
वृत्तीः	आजीविकाको,
च पशु	और पशुओं,
भृत्यवर्गान्	सेवक-वर्गको
स्मरन्	स्मरण करता (कैसे छूट सकता है) ॥१२॥

त्यजेत कोशस्कृदिवेहमानः
कर्माणि लोभादवितृप्तकामः ।
औपस्थ्यजैह्व्यं बहु मन्यमानः
कथं विरज्येत दुरन्तमोहः ॥१३॥

त्यजेत कोशः कृत इव ईहमानः कर्माणि लोभात् अवितृप्तकामः औपस्थ्य जैह्व्यं बहु मन्यमानः कथं विरज्येत दुरन्तमोहः ॥१३॥

औपस्थ्य	उपस्थके और
जैह्व्यं	जिह्वाके भोगोंको
बहु	बहुत (प्रिय)
मन्यमानः	मानता हुआ
कोशः कृत	रेशमके कीड़ेके
इव	समान
लोभात्	लोभसे
अवितृप्तकामः	अतृप्त कमना
कर्माणि	कर्मोंको
ईहमानः	करनेकी चेष्टा करता
विरज्येत	(उनसे) विरक्त
कथं	कैसे होगा
दुरन्तमोहः	सीमाहीन मोह
त्यजेत	(कैसे) छोड़ेगा ॥१३॥

कुटुम्बपोषाय वियन् निजायु-
र्न बुध्यतेऽर्थं विहतं प्रमत्तः ।

सर्वत्र तापत्रयदुःखितात्मा
निर्विद्यते न स्वकुटुम्बरामः ॥१४॥

कुटुम्ब पोषाय वियन् निज आयुः न बुध्यते अर्थं विहतं प्रमत्तः सर्वत्र तापत्रय दुःखित आत्मा निर्विद्यते न स्वकुटुम्बरामः ॥१४॥

कुटुम्ब	कुटुम्बके
पोषाय	पोषणके लिये
निज आयुः	अपनी आयु
वियन्	व्यय करता
प्रमत्तः	असावधान
विहतं	दैवका मारा
अर्थं	वास्तविक हित
न बुध्यते	नहीं जानता।
स्वकुटुम्बरामः	अपने कुटुम्बमें ही सुखी
सर्वत्र	सब कहीं
तापत्रय	तीनों (दैहिक, दैविक, भौतिक) तापोंसे
दुःखित आत्मा	दुःखित चित्त (रहनेपर भी)
निर्विद्यते न	विरक्त नहीं होता ॥१४॥

वित्तेषु नित्याभिनिविष्टचेता
विद्वांश्च दोषं परवित्तहर्तुः।
प्रेत्येह चाथाप्यजितेन्द्रियस्त-
दशान्तकामो हरते कुटुम्बी ॥१५॥

वित्तेषु नित्य अभिनिविष्ट चेता विद्वान् च दोषं परवित्त हर्तुः प्रेत्य इह च अथ अपि अजित इन्द्रियः तत् अशान्तकामः हरते कुटुम्बी ॥१५॥

वित्तेषु	धनमें
नित्य	सदा
अभिनिविष्ट	लगे हुए
चेता	चित्तके कारण
इह	इस लोकमें
च प्रेत्य	तथा मरनेके बाद भी
परवित्त	दूसरेके धनको
हर्तुः	हरण करनेवालेके
दोषं	दोषको
विद्वान्	जानता है,
अथ अपि	फिर भी
अजित इन्द्रियः	इन्द्रियां वशमें न होनेसे

अशान्तकामः	कामनाओंसे व्याकुल	हरते	(परधन) हरण
कुटुम्बी	कुटुम्बमें आसक्त		करता है ॥१५॥

विद्वानपीत्थं दनुजाः कुटुम्बं
पुष्णन्स्वलोकाय न कल्पते वै ।
यः स्वीयपारक्यविभिन्नभाव-
स्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः ॥१६॥

विद्वान् अपि इत्थं दनुजाः कुटुम्बं पुष्णन् स्वलोकाय न कल्पते वै यः स्वीय पारक्य विभिन्न भावः तमः प्रपद्येत यथा विमूढः ॥१६॥

दनुजाः	दानवो !	पुष्णन्	पोषण करता हुआ
यः स्वीय	जो अपने	वै	निश्चय
पारक्य	परायेपनके	स्वलोकाय	अपने स्वरूपकी
विभिन्नः	भेद	कल्पते न	कल्पना भी नहीं
भाव	भाववाला है (वह)		करता,
इत्थं	इस प्रकार	विमूढः यथा	अज्ञानीके समान
विद्वान् अपि	जानता हुआ भी	तमः प्रपद्येत	नरक जाता है ॥१६॥
कुटुम्बं	कुटुम्बका		

यतो न कश्चित् क्व च कुत्रचिद् वा
दीनः स्वमात्मानमलं समर्थः ।
विमोचितुं कामदृशां विहार-
क्रीडामृगो यन्निगडो विसर्गः ॥१७॥

यतः न कश्चित् क्व च कुत्रचित् वा दीनः स्वं आत्मानं अलं समर्थः विमोचितुं कामदृशां विहार क्रीडामृगः यत् निगडः विसर्गः ॥१७॥

कामदृशां	काम-दृष्टिवाली स्त्रियोंका	यत् विसर्गः	जिसने सन्तानकी
		निगडः	बेड़ी पहिन ली है
क्रीडामृगः	खेलनेका मृग	क्व च	वह कहींका हो,

कश्चित्	कोई हो,	विमोचितुं	मुक्त करनेमें
वा कुत्रचित्	या कहीं भी हो	अलं	पूर्ण
यतः दीनः	क्योंकि दीन हो गया है	समर्थः न	समर्थ नहीं हो सकता ॥१७॥
स्वं आत्मानं	अपने आपको		

ततो विदूरात् परिहृत्य दैत्या
दैत्येषु सङ्गं विषयात्मकेषु ।
उपेत नारायणमादिदेवं
स मुक्तसङ्गैरिषितोऽपवर्गः ॥१८॥

ततः विदूरात् परिहृत्य दैत्या दैत्येषु सङ्गं विषय आत्मकेषु उपेत नारायणं आदिदेवं स मुक्तसङ्गैः इषितः अपवर्गः ॥१८॥

ततः दैत्या	अतः दैत्यो !	आदिदेवं	आदिदेव
विषय	विषय भोगोंमें	नारायणं	नारायणकी
आत्मकेषु	आसक्त चित्त	उपेत	शरण लो
दैत्येषु	दैत्योंका	स मुक्तसङ्गैः	वही आसक्तिहीन महात्माओंके
संङ्गं	साथ		
विदूरात्	दूरसे	इषितः	अभीष्ट
परिहृत्य	परित्याग करके	अपवर्गः	मोक्षस्वरूप हैं ॥१८॥

न ह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः ।
आत्मत्वात् सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः ॥१९॥

न हि अच्युतं प्रीणयतः बहु आयासः असुरात्मजाः आत्मत्वात् सर्व भूतानां सिद्धत्वात् इह सर्वतः ॥१९॥

असुरात्मजाः	दैत्य-पुत्रो !	आत्मत्वात्	आत्मा होनेसे,
हि	क्योंकि	इह सर्वतः	यहां सब कहीं
सर्व भूतानां	सब प्राणियोंके	सिद्धत्वात्	स्वतः सिद्ध (विद्यमान) होनेसे

अच्युत प्रीणयतः	भगवान् अच्युत्‌को प्रसन्न करनेमें	**बहु आयासः न**	बहुत परिश्रम नहीं होता ॥१९॥

परावरेषु भूतेषु ब्रह्मान्तस्थावरादिषु ।
भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च ॥२०॥

पर अवरेषु भूतेषु ब्रह्म अन्तः स्थावर आदिषु भौतिकेषु विकारेषु भूतेषु अथ महत्सु च ॥२०॥

पर अवरेषु	बड़े-छोटे	**विकारेषु**	विकारोंमें
भूतेषु	प्राणियोंमें	**भूतेषु**	पंचभूतोंमें
ब्रह्म अन्तः	ब्रह्मासे लेकर	**अथ च**	और फिर
स्थावर आदिषु	अचर वृक्षादिमें,	**महत्सु**	महत् तत्त्वमें ॥२०॥
भौतिकेषु	पंचभूतोंके (सब)		

गुणेषु गुणसाम्ये च गुणव्यतिकरे तथा ।
एक एव परो ह्यात्मा भगवानीश्वरोऽव्ययः ॥२१॥

गुणेषु गुणसाम्ये च गुणव्यतिकरे तथा एक एव परः हि आत्मा भगवान् ईश्वरः अव्ययः ॥२१॥

गुणेषु	(सत्व-रज-तम) गुणोंमें	**परः**	इस (सृष्टि-प्रलय) से परे भी
च गुण साम्ये	और गुणोंकी साम्या-वस्था (प्रलय) में	**हि एक एव**	क्योंकि एक ही
तथा	तथा	**अव्ययः**	अविनाशी
गुणव्यतिकरे	गुणोंमें विकार (सृष्टि) के समय	**आत्मा**	परमात्मा
		भगवान्	भगवान्
		ईश्वरः	सर्व नियन्ता हैं ॥२१॥

प्रत्यगात्मस्वरूपेण दृश्यरूपेण च स्वयम् ।
व्याप्यव्यापकनिर्देश्यो ह्यनिर्देश्योऽविकल्पितः ॥२२॥

प्रत्यक् आत्मस्वरूपेण दृश्य रूपेण च स्वयं व्याप्यव्यापक निर्देश्यः हि अनिर्देश्यः अविकल्पितः ॥२२॥

प्रत्यक्	भीतर
आत्मस्वरूपेण	आत्माके रूपमें,
च स्वयं	और बाहर
दृश्य रूपेण	दृश्यके रूपमें
हि	क्योंकि
व्याप्यव्यापक	व्याप्य और व्यापक रूपमें
निर्देश्यः	निर्दिष्ट होनेवाले (वे)
अनिर्देश्यः	अनिर्वचनीय
अविकल्पितः	कल्पनातीत हैं ॥२२॥

केवलानुभवानन्दस्वरूपः परमेश्वरः ।
मायया अन्तर्हितैश्वर्य ईयते गुणसर्गया ॥२३॥

केवल अनुभव आनन्द स्वरूपः परमेश्वरः मायया अन्तर्हित ऐश्वर्य ईयते गुणसर्गया ॥२३॥

परमेश्वरः	परमेश्वर
केवल	अद्वितीय,
अनुभव	ज्ञान,
आनन्द	आनन्द
स्वरूपः	स्वरूप हैं ।
गुणसर्गया	गुणोंकी सृष्टि करनेवाली
मायया	मायाके द्वारा
ऐश्वर्य	अपने ऐश्वर्यको
अन्तर्हित	छिपाये हैं ॥२३॥

तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदम् ।
आसुरं भावमुन्मुच्य यया तुष्यत्यधोक्षजः ॥२४॥

तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदं आसुरं भावं उन्मुच्य यया तुष्यति अधोक्षजः ॥२४॥

तस्मात्	इसलिए
आसुरं भावं	आसुरी स्वभावको
उन्मुच्य	त्यागकर
सर्वेषु भूतेषु	सब प्राणियोंपर
दयां	दया और
सौहृदं	मित्रता
कुरुत	करो
यया	जिससे
अधोक्षजः	भगवान् हृषीकेश
तुष्यति	सन्तुष्ट होते हैं ॥२४॥

तुष्टे च तत्र किमलभ्यमनन्त आद्ये
किं तैर्गुणव्यतिकरादिह ये स्वसिद्धाः ।
धर्मादयः किमगुणेन च काङ्क्षितेन
सारंजुषां चरणयोरुपगायतां नः ॥२५॥

तुष्टे च तत्र किं अलभ्यम् अनन्त आद्ये किं तैः गुणव्यतिकरात् इह ये स्वसिद्धाः धर्म आदयः किं अगुणेन च काङ्क्षितेन सारंजुषां चरणयोः उपगायतां नः ॥२५॥

तत्र	वहां (उन)	**स्वसिद्धाः**	स्वयं प्राप्त होते हैं,
अनन्त	अनन्त	**सारंजुषां**	सारतत्त्व ग्रहण करनेवाले
आद्ये	आदिपुरुषके	**चरणयोः**	(भगवान्‌के) चरणों- का (सुयश)
तुष्टे च	संन्तुष्ट होनेपर तो	**उपगायतां**	गायन करनेवाले
किं अलभ्यं	क्या अप्राप्य रहता है,	**नः**	हम लोगोंको
धर्म आदयः	धर्म (अर्थ नाम) आदिका	**अगुणेन च**	निर्गुण (मोक्ष) को भी
ये इह	जो इस लोकमें	**काङ्क्षितेन**	कामनासे
गुण व्यतिकरात्	गुणोंके विकारसे (कालके अनुसार)	**किं**	क्या प्रयोजन ॥२५॥

धर्मार्थकाम इति योऽभिहितस्त्रिवर्ग
ईक्षात्रयी नयदमौ विविधा च वार्ता ।
मन्ये तदेतदखिलं निगमस्य सत्यं
स्वात्मार्पणं स्वसुहृदः परमस्य पुंसः ॥२६॥

धर्म अर्थ काम इति यः अभिहितः त्रिवर्ग ईक्षात्रयी नय दमौ विविधा च वार्ता मन्ये तत् एतत् अखिलं निगमस्य सत्यं स्व आत्म अर्पणं स्व सुहृदः परमस्य पुंसः ॥२६॥

धर्म अर्थ काम	धर्म, अर्थ, काम
इति यः	इस प्रकार जो
त्रिवर्ग	त्रिवर्ग
अभिहितः	(शास्त्रमें) बतलाया गया है,
ईक्षा	अध्यात्म-विद्या,
त्रयी	कर्मकाण्ड
नय	नीति (न्यायशास्त्र)
दमौ	दण्डशास्त्र
तत् एतत्	वे ये
अखिलं	सब
स्व सुहृदः	अपने सुहृद
परमस्य पुंसः	परम पुरुषको
स्व आत्म अर्पणं	अपने आत्म समर्पण के
निगमस्य	प्रतिपादक होनेसे
सत्यं मन्ये	सत्य मानता हूँ ॥२६॥

ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह
नारायणो नरसखः किल नारदाय ।
एकान्तिनां भगवतस्तदकिञ्चनानां
पादारविन्दरजसाऽऽप्लुतदेहिनां स्यात् ॥२७॥

ज्ञानं तत् एतत् अमलं दुरवापं आह नारायणः नरसखः किल नारदाय एकान्तिनां भगवतः तत् अकिञ्चनानां पादारविन्द रजसा आप्लुत देहिनां स्यात् ॥२७॥

तत् एतत्	वह यह
अमलं	निर्मल
दुरवापं	दुष्प्राप्य
ज्ञानं	ज्ञान
नरसखः	नरके सखा
नारायणः किल	नारायणने तो
नारदाय	नारदजीको
आह	उपदेश किया था ।
तत्	वह (ज्ञान)
भगवतः	भगवान्‌के
एकान्तिनां	अनन्य
अकिञ्चनानां	अकिञ्चन-भक्तोंकी
पादारविन्द	चरण-कमलकी
रजसा आप्लुत	धूलिमें लोट-पोट होनेवाले
देहिनां स्यात्	शरीर-धारियोंको होता है ॥२७॥

श्रुतमेतन्मया पूर्वं ज्ञानं विज्ञानसंयुतम् ।
भर्म भागवतं शुद्धं नारदाद् देवदर्शनात् ॥२८॥

श्रुतं एतत् मया पूर्वं ज्ञानं विज्ञान संयुतं धर्मं भागवतं शुद्धं नारदात् देवदर्शनात् ॥२८॥

एतत्	यह
ज्ञानं संयुतं	विज्ञान सहित
विज्ञान	ज्ञानवाला
शुद्ध	शुद्ध
भागवतं धर्मं	भागवत-धर्म
देवदर्शनात्	देवताओंको दर्शन देनेवाले
नारदात्	नारदजीसे
मया	मैंने
पूर्वं श्रुतं	सुना था ॥२८॥

दैत्यपुत्रा ऊचुः

प्रह्लाद त्वं वयं चापि नर्तेऽन्यं विद्महे गुरुम् ।
एताभ्यां गुरुपुत्राभ्यां बालानामपि हीश्वरौ ॥२९॥

प्रह्लाद त्वं वयं च अपि न ऋते अन्यं विद्महे गुरुं एताभ्यां गुरुपुत्राभ्यां बालानां अपि हि ईश्वरौ ॥२९॥

प्रह्लाद	प्रह्लाद !
त्वं	तुम
च वयं अपि	और हम लोग भी
एताभ्यां	इन दोनों
गुरुपुत्राभ्यां	गुरु-पुत्रोंको
ऋते	छोड़कर
अन्यं गुरुं	दूसरे गुरुको
न विद्महे	नहीं जानते,
बालानां अपि	हम सब बालकोंके ही
ईश्वरौ	ये शासक हैं ॥२९॥

बालस्यान्तः पुरस्थस्य महत्सङ्गो दुरन्वयः ।
छिन्धि नः संशयं सौम्य स्याच्चेद्विश्रम्भकारणम् ॥३०॥

बालस्य अन्तः पुरस्थस्य महत् सङ्गः दुरन्वयः छिन्धि नः संशयं सौम्य स्यात् चेत् विश्रम्भ कारणम् ॥३०॥

सौम्य	सौम्य !
अन्तःपुरस्थस्य	अन्तःपुरमें रहनेवाले

बालस्य	बालकके लिए	**कारणं**	कारण
महत् सङ्गः	महापुरुष (नारदजी) से मिलना	**स्यात् चेत्**	यदि कुछ हो तो
		नः संशयं	हमारे संशयको
दुरन्वयः	असंगत-सा है,	**छिन्धि**	काट दो ॥६॥
विश्रम्भ	(इसमें) विश्वासका		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

नारद उवाच–

एवं दैत्यसुतैः पृष्टो महाभागवतोऽसुरः ।
उवाच स्मयमानस्तान्स्मरन् मदनुभाषितम् ॥१॥

एवं दैत्यसुतैः पृष्टः महाभागवतः असुरः उवाच स्मयमानः तान् स्मरन् मत् अनुभाषितम् ॥१॥

एवं	इस प्रकार	**अनुभाषितं**	बातका
दैत्यसुतैः	दैत्यपुत्रोंके	**स्मरन्**	स्मरण करते हुए
पृष्टः	पूछनेपर	**स्मयमानः**	मुस्कराते हुए
महाभागवतः	परमभगवद्भक्त	**तान्**	उनसे
असुरः	असुर प्रह्लादजीने	**उवाच**	बोले ॥१॥
मत्	मेरी		

प्रह्लाद उवाच–

पितरि प्रस्थितेऽस्माकं तपसे मन्दराचलम् ।
युद्धोद्यमं परं चक्रुर्विबुधा दानवान्प्रति ॥२॥

पितरि प्रस्थिते अस्माकं तपसे मन्दराचलं युद्ध उद्यमं परं चक्रुः विबुधा दानवान् प्रति ॥२॥

अस्माकं	हमारे	**विबुधाः**	देवताओंने
पितरि	पिताके	**दानवान् प्रति**	दानवोंसे
तपसे	तप करनेके लिए	**परं**	भारी
मन्दराचलं	मन्दराचलपर	**युद्ध उद्यमं**	युद्धका उद्योग
प्रस्थिते	चले जानेपर	**चक्रुः**	किया ॥२॥

पिपीलिकैरहिरिव दिष्ट्या लोकोपतापनः ।
पापेन पापोऽभक्षीतिवादिनो वासवादयः ॥३॥

पिपीलिकैः अहिः इव दिष्ट्या लोक उपतापनः पापेन पापः अभक्षि इति वादिनः वासव आदयः ॥३॥

अहिः	'सांपको	**पापेन**	(उसके) पापने
पिपीलिकैः इव	चींटियोंके समान	**अभक्षि**	खा लिया'
दिष्ट्या	सौभाग्यसे	**इति वादिनः**	ऐसा कहनेवाले
पापः	पापी (हिरण्यकशिपु) को	**वासव आदयः**	इन्द्र आदिने ॥३॥

तेषामतिबलोद्योगं निशम्यासुरयूथपाः ।
वध्यमानाः सुरैर्भीता दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥४॥

तेषां अतिबल उद्योगं निशम्य असुर यूथपाः वध्यमानः सुरैः भीता दुद्रुवुः सर्वतः दिशम् ॥४॥

तेषां	उन (देवताओं) का	**वध्यमानाः**	मार खाकर
अतिबल	भारी सेना और	**असुर यूथपाः**	असुर सेना-नायक
उद्योगं	प्रयत्न	**भीताः**	डरकर
निशम्य	सुनकर (तथा)	**सर्वतः दिशं**	दिशाओंमें सब ओर
सुरैः	देवताओं द्वारा	**दुद्रुवुः**	भाग गये ॥४॥

कलत्रपुत्रमित्राप्तान्गृहान्पशुपरिच्छदान् ।
नावेक्षमाणास्त्वरिताः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥५॥

कलत्र पुत्र मित्र आप्तान् गृहान् पशु परिच्छदान् न अवेक्षमाणाः त्वरिताः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥५॥

प्राणपरीप्सवः	प्राण बचानेके लिए	**गृहान् पशु**	भवन, पशु,
सर्वे	सबके सब	**परिच्छदान्**	साज सामानकी
कलत्र पुत्र	स्त्री-पुत्र,	**अवेक्षमाणाः न**	चिन्ता न करके
मित्र आप्तान्	मित्र, गुरुजन,	**त्वरिताः**	जल्दीमें (भागे) ॥५॥

व्यलुम्पन् राजशिबिरममरा जयकाङ्क्षिणः ।
इन्द्रस्तु राजमहिषीं मातरं मम चाग्रहीत् ॥६॥

व्यलुम्पन् राजशिबिरं अमरा जयकाङ्क्षिणः इन्द्रः तु राज महिषीं मातरं मम च अग्रहीत् ॥६॥

जयकाङ्क्षिणः	विजयेच्छु	**च इन्द्रः तु**	और इन्द्रने तो
अमरा	देवताओंने	**मम मातरं**	मेरी माता
राजशिबिरं	राजमहलको	**राज महिषीं**	महारानीको
व्यलुम्पन्	लूट लिया	**अग्रहीत्**	पकड़ लिया ॥६॥

नीयमानां भयोद्विग्नां रुदतीं कुररीमिव ।
यदृच्छयाऽऽगतस्तत्र देवर्षिर्ददृशे पथि ॥७॥

नीयमानां भय उद्विग्नां रुदतीं कुररीम् इव यदृच्छया आगतः तत्र देवर्षिः ददृशे पथि ॥७॥

भय उद्विग्नां	भय विह्वला	**तत्र**	वहां
कुररीं इव	कुररी पक्षीकी भांति	**यदृच्छया**	संयोगवश
रुदतीं	रोती हुई	**आगतः**	आये
नीयमानां	(इन्द्र द्वारा) ले जायी जातीको	**देवर्षिः**	देवर्षि नारदजीने
		पथि ददृशे	मार्गमें देखा ॥७॥

प्राह मैनां सुरपते नेतुमर्हस्यनागसम् ।
मुञ्च मुञ्च महाभाग सतीं परपरिग्रहम् ॥८॥

प्राह मा एनां सुरपते नेतुं अर्हसि अनागसम् मुञ्च मुञ्च महाभाग सतीं परपरिग्रहम् ॥८॥

प्राह	बोले	**अनागसम्**	निरपराध
महाभाग	महाभाग्यवान	**एनां**	इसको
सुरपते	देवराज !	**मा नेतुं**	(तुम्हें) नहीं ले जाना

अर्हसि	चाहिए	सतीं	पतिव्रता है,
परपरिग्रहं	दूसरेकी पत्नी है,	मुञ्च मुञ्च	छोड़ो-छोड़ो ॥८॥

इन्द्र उवाच—

आस्तेऽस्या जठरे वीर्यमविषह्यं सुरद्विषः ।
आस्यतां यावत्प्रसवं मोक्ष्येऽर्थपदवीं गतः ॥९॥

आस्ते अस्या जठरे वीर्यं अविषह्यं सुरद्विषः आस्यतां यावत् प्रसवं मोक्ष्ये अर्थ पदवीं गतः ॥९॥

अस्या जठरे	इसके पेटमें	यावत् प्रसवं	प्रसव होने तक
सुरद्विषः	देवद्रोही (हिरण्य-कशिपु) का	आस्यतां	मेरे पास रहे,
अविषह्यं	असह्य प्रभाव	अर्थ	प्रयोजन
वीर्यं आस्ते	वीर्य है	पदवीं गतः	पूरा हो जानेपर
		मोक्ष्ये	छोड़ दूंगा ॥९॥

नारद उवाच—

अयं निष्किल्बिषः साक्षान्महाभागवतो महान् ।
त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनन्तानुचरो बली ॥१०॥

अयं निष्किल्बिषः साक्षात् महाभागवतः महान् त्वया न प्राप्स्यते संस्थां अनन्त अनुचरः बली ॥१०॥

अयं	यह (गर्भस्थ शिशु)	महान् बली	महाबलवान है,
निष्किल्बिषः	निष्पाप,	त्वया	तुम्हारे द्वारा
महाभागवतः	परम भगवद्भक्त,	संस्थां न	मारा नहीं
साक्षात्	साक्षात्	प्राप्स्यते	जा सकेगा ॥१०॥
अनन्त अनुचरः	भगवान्का सेवक,		

इत्युक्तस्तां विहायेन्द्रो देवर्षेर्मानयन्वचः ।
अनन्तप्रियभक्त्यैनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥११॥

इति उक्तः तां विहाय इन्द्रः देवर्षेः मानयन् वचः अनन्तप्रिय भक्त एनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥११॥

इति उक्तः	(नारदजीके) ऐसा कहनेपर	**विहाय**	छोड़कर
देवर्षेः	देवर्षिकी	**एनां**	इसके (पेटमें)
वचः मानयन्	बात मानकर	**अनन्तप्रिय**	भगवान्‌का प्यारा
इन्द्रः	इन्द्रने	**भक्त**	भक्त है (इस भावसे)
तां	उसे	**परिक्रम्य**	परिक्रमा करके
		दिवं ययौ	स्वर्ग चले गये ॥११॥

ततो नो मातरमृषिः समानीय निजाश्रमम् ।
आश्वास्येहोष्यतां वत्से यावत् ते भर्तुरागमः ॥१२॥

ततः नः मातरं ऋषिः समानीय निज आश्रमं आश्वास्य इह उष्यतां वत्से यावत् ते भर्तुः आगमः ॥१२॥

ततः	तब	**वत्से**	'बेटी
नः मातरं	हमारी माताको	**यावत्**	जब तक
ऋषिः	देवर्षिने	**ते भर्तुः**	तुम्हारे पति
निज आश्रमं	अपने आश्रमपर	**आगमः**	आवें
समानीय	साथ लाकर	**इह उष्यतां**	यहां रहो' ॥१२॥
आश्वास्य	आश्वासन देकर कहा		

तथेत्यवात्सीद् देवर्षेरन्ति साप्यकुतोभया ।
यावद् दैत्यपतिर्घोरात् तपसा न न्यवर्तत ॥१३॥

तथा इति अवात्सीत् देवर्षेः अन्ति सा अपि अकुतः भया यावत् दैत्यपतिः घोरात् तपसा न न्यवर्तत ॥१३॥

तथा इति	'ऐसा ही हो' (कहकर)	**यावत्**	जब तक
		घोरात् तपसा	उग्र तपस्यासे

दैत्यपतिः	दैत्यराज	**अकुतः भया**	सब ओरसे निर्भय
न न्यवर्तत	लौट नहीं आये	**अवात्सीत्**	निवास करती रही
सा अपि	वह भी		॥१३॥
देवर्षेः अन्ति	देवर्षिके समीप		

ऋषिं पर्यचरत् तत्र भक्त्या परमया सती ।
अन्तर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमायेच्छाप्रसूतये ॥१४॥

ऋषिं पर्यचरत् तत्र भक्त्या परमया सती अन्तर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमाय इच्छा प्रसूतये ॥१४॥

तत्र	वहाँ	**प्रसूतये**	प्रसव करनेके लिए
अन्तर्वत्नी	गर्भवती	**परमया भक्त्या**	परम भक्ति भावसे
सती	पतिव्रता (मेरी मां)	**ऋषिं**	ऋषिकी
स्वगर्भस्य	अपने गर्भके	**पर्यचरत्**	सेवा करने लगी
क्षेमाय	कल्याणके लिए और		॥१४॥
इच्छा	इच्छानुसार		

ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रादादुभयमीश्वरः ।
धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम् ॥१५॥

ऋषिः कारुणिकः तस्याः प्रादात् उभयं ईश्वरः धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मां अपि उद्दिश्य निर्मलम् ॥१५॥

ईश्वरः	समर्थ	**धर्मस्य तत्त्वं**	भागवत धर्मका रहस्य
ऋषिः	देवर्षि	**च निर्मलं**	और निर्मल
कारुणिकः	परम दयालु हैं,	**ज्ञानं उभयं**	ज्ञान दोनों
तस्याः	उसको	**प्रादात्**	प्रदान किया ॥१५॥
मां अपि	मुझको भी		
उद्दिश्य	लक्षित करके		

तत्तु कालस्य दीर्घत्वात् स्त्रीत्वान्मातुस्तिसोदधे ।
ऋषिणानुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात् स्मृतिः ॥१६॥

तत् तु कालस्य दीर्घत्वात् स्त्रीत्वात् मातुः तिरोदधे ऋषिणा अनुगृहीतं मां न अधुना अपि जहात् स्मृतिः ॥१६॥

तत् तु	वह तो	**ऋषिणा**	देवर्षि द्वारा
कालस्य	समयके	**अनुगृहीतं**	अनुग्रह किये गये
दीर्घत्वात्	बहुत बीत जानेसे,	**मां**	मुझे
स्त्रीत्वात्	स्त्री होनेके कारण	**अधुना अपि**	आज भी
मातुः	माताको	**स्मृतिः**	उसकी स्मृति
तिरोदधे	भूल गया,	**न अजहात्**	नहीं छोड़ती ॥१६॥

भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः ।
वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्रीबालानां च मे यथा ॥१७॥

भवतां अपि भूयात् मे यदि श्रद्दधते वचः वैशारदीः धीः श्रद्धातः स्त्री बालानां च मे यथा ॥१७॥

यदि मे	यदि मेरी	**स्त्री च बालानां**	स्त्रियों और बालकोंकी
वचः	बातपर	**धीः**	बुद्धि
श्रद्दधते	श्रद्धा करो तो	**मे यथा**	मेरी जैसी
भवतां अपि	तुम लोगोंको भी	**वैशारदीः**	निपुणा (हो जाती है) ॥१७॥
भूयात्	(वह ज्ञान) हो सकता है		
श्रद्धातः	श्रद्धा करनेपर		

जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः ।
फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वरमूर्तिना ॥१८॥

जन्म आद्याः षट् इमे भावा दृष्टा देहस्य न आत्मनः फलानां इव वृक्षस्य कालेन ईश्वर मूर्तिना ॥१८॥

ईश्वर मूर्तिना	ईश्वर स्वरूप	**वृक्षस्य**	वृक्षोंके
कालेन	कालके द्वारा	**फलानां इव**	फलोंके समान

इमे षट्	ये छः (जन्म-मृत्यु, वृद्धि-ह्रास परिवर्तन-स्थिति)	**भावा**	भाव
		देहस्य दृष्टा	शरीरके ही देखे जाते हैं
जन्म आद्याः	जन्मादि	**आत्मनः न**	आत्माके नहीं ॥१८॥

आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः ।
अविक्रियः स्वदृग् हेतुर्व्यापकोऽसङ्गनावृतः ॥१९॥

आत्मा नित्यः अव्ययः शुद्धः एकः क्षेत्रज्ञः आश्रयः अविक्रियः स्वदृक् हेतुः व्यापकः असङ्गि अनावृतः ॥१९॥

आत्मा	आत्मा	**स्वदृक्**	स्वय प्रकाश
नित्यः अव्ययः	नित्य, अविनाशी,	**हेतुः व्यापकः**	सर्वकारण, व्यापक,
शुद्धः एकः	शुद्ध, अद्वितीय,	**असङ्गि**	अनासक्त,
क्षेत्रज्ञः आश्रयः	क्षेत्रज्ञ, सर्वाश्रय,	**अनावृतः**	निरावरण है ॥१९॥
अविक्रियः	निर्विकार,		

एतैर्द्वादशभिर्विद्वानात्मनो लक्षणैः परैः ।
अहं ममेत्यसद्भावं देहादौ मोहजं त्यजेत् ॥२०॥

एतैः द्वादशभिः विद्वान् आत्मनः लक्षणैः परैः अहं मम इति असत् भावं देह आदौ मोहजं त्यजेत् ॥२०॥

एतैः द्वादशभिः	इन बारह	**मोहजं**	मोहसे उत्पन्न
आत्मनः	आत्माके	**अहं मम**	मैं-मेरा
परैः लक्षणैः	श्रेष्ठ लक्षणोंको	**इति असत्**	इस मिथ्या
विद्वान्	जानकर	**भावं त्यजेत्**	भावको छोड़ दे ॥२०॥
देह आदौ	शरीर आदिमें		

स्वर्णं यथा ग्रावसु हेमकारः
क्षेत्रेषु योगैस्तदभिज्ञ आप्नुयात् ।

क्षेत्रेषु देहेषु तथाऽऽत्मयोगै-
रध्यात्मविद् ब्रह्मगतिं लभेत ॥२१॥

स्वर्णं यथा ग्रावसु हेमकारः क्षेत्रेषु योगैः तत् अभिज्ञ आप्नुयात् क्षेत्रेषु देहेषु तथा आत्मयोगैः अध्यात्मविद् ब्रह्मगतिं लभेत् ॥२१॥

यथा क्षेत्रेषु	जैसे खदानोंमें	**तथा**	वैसे ही
ग्रावसु	ढेलोंमें-से	**देहेषु क्षेत्रेषु**	देह रूपी क्षेत्रमें
तत् अभिज्ञ	उसे जाननेवाला	**आत्मयोगैः**	अपनी साधनासे
हेमकारः	स्वर्णकार	**अध्यात्मविद्**	अध्यात्म तत्त्ववेत्ता
यथा योगैः	जैसे उपायों द्वारा	**ब्रह्मगतिं**	ब्रह्मपदको
स्वर्णं आप्नुयात्	सोना प्राप्त कर लेता है	**लभेत**	प्राप्त कर लेता है ॥२१॥

अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्तास्त्रय एव हि तद्गुणाः ।
विकाराः षोडशाचार्यैः पुमानेकः समन्वयात् ॥२२॥

अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्ताः त्रय एव हि तत् गुणाः विकाराः षोडश आचार्यैः पुमान् एकः समन्वयात् ॥२२॥

हि आचार्यैः	क्योंकि आचार्योंने	**तत् गुणाः**	उनके गुण हैं,
अष्टौ	आठ (मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार और रूपरसादि पञ्च तन्मात्रा)	**षोडश**	सोलह (पञ्च महाभूत, दस इन्द्रियां, एक मन) ये
		विकाराः	विकार हैं,
प्रकृतयः	(इनको) प्रकृति	**एकः पुमान्**	एक पुरुष
प्रोक्ताः	बतलाया है ।	**समन्वयात्**	सबमें व्यापक है ॥२२॥
त्रय एव	तीन ही (सत्त्व, रज, तम)		

देहस्तु सर्वसंघातो जगत् तस्थुरिति द्विधा ।
अत्रैव मृग्यः पुरुषो नेति नेतीत्यतत् त्यजन् ॥२३॥

देहः तु सर्वसंघातः जगत् तस्थुः इति द्विधा अत्र एव मृग्यः पुरुषः न इति न इति इति अतत् त्यजन् ॥२३॥

जगत् तस्थुः	सचर और अचर	**इति**	इस प्रकार
इति द्विधा	इस प्रकार दो भेदका	**अतत्**	अनात्म वस्तुओं (अन्तःकरण आदि-को)
देहः तु	शरीर तो	**त्यजन्**	छोड़ते हुए
सर्वसंघातः	इन सबका समुदाय है,	**पुरुषः**	पुरुषको
अत्र एव	इसी (देहमें ही)	**मृग्यः**	ढूंढ़ना चाहिए
न इति न इति	यह नहीं, यह नहीं		॥२३॥

अन्वयव्यतिरेकेण विवेकेनोशताऽऽत्मना ।
सर्गस्थानसमाम्नायैर्विमृशद्भिरसत्वरैः ॥२४॥

अन्वय व्यतिरेकेण विवेकेन उशता आत्मना सर्गस्थान समाम्नायैः विमृशद्भिः असत्वरैः ॥२४॥

असत्वरैः	बिना उतावली किये	**अन्वय**	सृष्टि क्रमसे,
सर्गस्थान	(संसारकी) सृष्टि स्थिति (प्रलय) का	**व्यतिरेकेण**	प्रलय क्रमसे
समाम्नायैः	शास्त्र प्रतिपादित रीतिसे	**विवेकेन**	विवेक शक्तिसे
उशता आत्मना	शुद्ध बुद्धिसे	**विमृशद्भिः**	विचार करते हुए ॥२४॥

बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः ।
ता येनैवानुभूयन्ते सोऽध्यक्षः पुरुषः परः ॥२५॥

बुद्धेः जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिः इति वृत्तयः ता येन एव अनुभूयन्ते सः अध्यक्षः पुरुषः परः ॥२५॥

जागरणं	जागृति,	**सुषुप्तिः**	सुषुप्ति
स्वप्नः	स्वप्न,	**इति**	ये

बुद्धेः वृत्तयः	बुद्धिकी वृत्तियां हैं,		अध्यक्ष,
ता येन	वे जिसके द्वारा	**परः**	(इनसे) परे
अनुभूयन्ते	अनुभवकी जाती हैं,	**पुरुषः**	पुरुष है ॥२५॥
सः अध्यक्षः	वह (इनका)		

एभिस्त्रिवर्णैः पर्यस्तैर्बुद्धिभेदैः क्रियोद्भवैः ।
स्वरूपमात्मनो वुध्येद् गन्धैर्वायुमिवान्वयात् ॥२६॥

एभिः त्रिवर्णैः पर्यस्तैः बुद्धिभेदैः क्रिया उद्भवैः स्वरूपं आत्मनः वुध्येत् गन्धैः वायुः इव अन्वयात् ॥२६॥

गन्धैः	गन्धके द्वारा	**बुद्धिभेदैः**	बुद्धिकी विभिन्न स्थितियोंसे
वायुम् इव	वायुके समान	**अन्वयात्**	(इनमें साक्षी रूपसे) अनुगत
एभिः	इन	**आत्मनः**	आत्माका
क्रिया उद्भवैः	क्रिया जन्य	**स्वरूपं**	स्वरूप
त्रिवर्णैः	तीन रूपोंमें	**वुध्येत्**	जाने ॥२६॥
पर्यस्तैः	बदलनेवाली		

एतद्द्वारो हि संसारो गुणकर्मनिबन्धनः ।
अज्ञानमूलोऽपार्थोऽपि पुंसः स्वप्न इवेष्यते ॥२७॥

एतत् द्वारः हि संसारः गुण कर्म निबन्धनः अज्ञान मूलः अपार्थः अपि पुंसः स्वप्न इव इष्यते ॥२७॥

गुण कर्म	गुण और कर्मोंके	**अपार्थः अपि**	अवास्तविक होनेपर भी
निबन्धनः	कारण	**पुंसः**	पुरुषके लिए
हि एतत्	क्योंकि यह	**स्वप्न इव**	स्वप्नके समान
संसारः	संसार (जन्म-मृत्यु) का	**इष्यते**	प्रतीत हो रहा है ॥२७॥
द्वारः	द्वार		
अज्ञान मूलः	अज्ञान-मूलक,		

तस्माद्भवद्भिः कर्तव्यं कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ।
बीजनिर्हरणं योगः प्रवाहोपरमो धियः ॥२८॥

तस्मात् भवत्भिः कर्तव्यं कर्मणां त्रिगुण आत्मनां बीज निर्हरणं योगः प्रवाह उपरमः धियः ॥२८॥

तस्मात्	इसलिए	**त्रिगुण आत्मनां**	त्रिगुण स्वरूप
भवत्भिः	तुम लोगों द्वारा	**कर्मणां**	कर्मोंके
धियः	बुद्धिकी	**बीज निर्हरणं**	बीजनाशका
प्रवाह	वृत्तियोंके प्रवाहको	**योगः**	साधन
उपरमः	शान्त कर देनेके लिए	**कर्तव्यं**	करना चाहिए ॥२८॥

तत्रोपायसहस्राणामयं भगवतोदितः ।
यदीश्वरे भगवति यथा यैरञ्जसा रतिः ॥२९॥

तत्र उपाय सहस्राणां अयं भगवता उदितः यत् ईश्वरे भगवति यथा यैः अञ्जसा रतिः ॥२९॥

तत्र	इस सम्बन्धके	**यथा अञ्जसा**	जिस प्रकार सरलतासे
उपाय सहस्राणां	सहस्रों साधनोंमें	**भगवति**	भगवान्
अयं	यह	**ईश्वरे**	सर्वेश्वरमें
भगवता उदितः	भगवान्का बतलाया है	**यत् रतिः**	जो प्रीति हो ॥२९॥
यैः	जिसके द्वारा		

गुरुशुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च ।
सङ्गेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च ॥३०॥

गुरु शुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्ध अर्पणेन च सङ्गेन साधुभक्तानां ईश्वर आराधनेन च ॥३०॥

गुरु	गुरुकी
भक्त्या	भक्तिपूर्वक
शुश्रूषया	सेवा करनेसे,
च	तथा
सर्वलब्ध	(अपनेको) जो सब
	मिले
अर्पणेन	उसे (भगवान्‌को)
	अर्पित करनेसे
साधुभक्तानां	सच्चरित्र-भक्तोंके
सङ्गेन	साथसे
च	एवं
ईश्वर	ईश्वरकी
आराधनेन	आराधनासे ॥३०॥

श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनैर्गुणकर्मणाम् ।
तत्पादाम्बुरुहध्यानात् तल्लिङ्गेक्षार्हणादिभिः ॥३१॥

श्रद्धया तत् कथायां च कीर्तनैः गुण कर्मणां तत् पादाम्बुरुह ध्यानात् तत् लिङ्ग ईक्षा अर्हण आदिभिः ॥३१॥

तत् कथायां	उन (भगवान्) की
	कथामें
श्रद्धया	श्रद्धा होनेसे
च गुण	एवं (उनके) गुणों
कर्मणां	कर्मों (अवतार
	चरितों) का
कीर्तनैः	कीर्तन करनेसे
तत्	उनके
पादाम्बुरुह	चरण-कमलका
ध्यानात्	ध्यान करनेसे
तत् लिङ्ग	उनकी मूर्तियोंका
ईक्षा	दर्शन तथा
अर्हण आदिभिः	पूजनादि करनेसे
	॥३१॥

हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः ।
इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत् ॥३२॥

हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवान् आस्त ईश्वरः इति भूतानि मनसा कामैः तैः साधु मानयेत् ॥३२॥

सर्वेषु भूतेषु	सब प्राणियोंमें
ईश्वरः	सर्वशक्तिमान
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरि
आस्त	विराजमान हैं
इति मनसा	ऐसा मनमें समझकर
भूतानि	प्राणियोंको

तैः कामैः	उनकी इच्छा पूर्ण करके,	**मानयेत्**	सम्मानित करें ॥३२॥
साधु	श्रेष्ठ मानकर		

एवं निर्जितषड्वर्गैः क्रियते भक्तिरीश्वरे ।
वासुदेवे भगवति यया संलभते रतिम् ॥३३॥

एवं निर्जित षट्वर्गैः क्रियते भक्तिः ईश्वरे वासुदेवे भगवति यया संलभते रतिम् ॥३३॥

एवं	इस प्रकार	**भगवति**	भगवान्
षट्वर्गैः	छः (काम-क्रोध, लोभमोह, मद-मत्सर) वर्गोंको	**वासुदेवे**	वासुदेवकी
		भक्तिः क्रियते	भक्ति की जाती है
		यया	जिसके द्वारा
निर्जित	जीतकर	**रतिं**	(भगवान्‌में) प्रीति
ईश्वरे	सर्वसमर्थ	**संलभते**	प्राप्त होती है ॥३३॥

निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्
वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि ।
यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं
प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति ॥३४॥

निशम्य कर्माणि गूणान् अतुल्यान् वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि यदा अतिहर्षः उत्पुलक अश्रु गद्गदं प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति ॥३४॥

लीलातनुभिः	लीलासे अवतार धारण करके	**यदा अतिहर्षः**	जब अत्यन्त हर्षसे
		उत्पुलक	रोमांच,
कृतानि	किये हुए	**अश्रु**	अश्रु,
कर्माणि	कर्मों तथा	**गद्गदं प्रोत्कण्ठ**	गद्गद् कण्ठसे
अतुल्यान्	अतुलनीय	**उद्गायति**	उच्च स्वरसे गाता,
गूणान्	गुणों एवं	**रौति**	रोता,
वीर्याणि	पराक्रमोंको	**नृत्यति**	नाचता है ॥३४॥
निशम्य	सुनकर		

यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धस-
त्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम् ।
मुहुः श्वसन्वक्ति हरे जगत्पते
नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः ॥३५॥

यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचित् हसति आक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनं मुहुः श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते नारायण इति आत्ममतिः गतत्रपः ॥३५॥

यदा	जब
ग्रहग्रस्त इव	ग्रहग्रस्तके समान
क्वचित्	कभी
गतत्रपः	निर्लज्ज होकर
हसति	हँसता है,
आक्रन्दते	फूटफूटकर रोता है,
ध्यायति	ध्यान करने लगता है,
जनं वन्दते	लोगोंको प्रणाम करता है,
मुहुः श्वसन्	बार-बार लम्बी श्वास लेकर
हरे जगत्पते	हरे ! जगत्पते !
नारायण	नारायण !
इति वक्ति	ऐसा पुकारता है
आत्ममतिः	तन्मय हो जाता है ॥३५॥

तदा पुमान्मुक्तसमस्तबन्धन-
स्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः ।
निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा
भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ॥३६॥

तदा पुमान् मुक्त समस्त बन्धनः तत् भाव भाव अनुकृत आशय आकृतिः निर्दग्ध बीज अनुशयः महीयसा भक्ति प्रयोगेण समेति अधोक्षजम् ॥३६॥

तदा	उस समय
भक्ति	भक्तिके
महीयसा	महान
ययोगेण	प्रयोगसे
पुमान्	पुरुष
समस्त बन्धनः	सम्पूर्ण बन्धनोंसे
मुक्त	मुक्त हो जाता है,
तत् भाव	उस भगवद् भावकी

भाव	भावनासे
आशय आकृतिः	अन्तःकरणका स्वरूप
अनुकृत	तदाकार हो जाता है,
अनुशयः	उसमें रहनेवाले
बीज निर्दग्ध	(कर्म-संस्कार) बीज जल जाते हैं।
अधोक्षजं समेति	(वह) अन्तर्यामीके पास पहुँच जाता है ॥३६॥

अधोक्षजालम्भमिहाशुभात्मनः
शरीरिणः संसृतिचक्रशातनम् ।
तद् ब्रह्म निर्वाणसुखं विदुर्बुधा-
स्ततो भजध्वं हृदये हृदीश्वरम् ॥३७॥

अधोक्षज आलम्भं इह अशुभ आत्मनः शरीरिणः संसृति चक्र शातनं तत् ब्रह्म निर्वाण सुखं विदुः बुधाः ततः भजध्वं हृदये हृदि ईश्वरम् ॥३७॥

अधोक्षज	अन्तर्यामीकी
आलम्भं	प्राप्ति
इह	इस संसारमें
अशुभ आत्मनः	अशुभ-चित्त
शरीरिणः	शरीरधारी जीवके
संसृति चक्र	आवागमनके चक्रको
शातनं	काट देनेवाला है।
तत्	इसीको
बुधाः	ज्ञानी-पुरुष
ब्रह्म निर्वाण	ब्रह्म-निर्वाण
सुखं	सुख
विदुः	जानते हैं
ततः हृदये	इसलिए हृदयमें
हृदि ईश्वरं	हृदयके स्वामी (भगवान्) का
भजध्वं	भजन करो ॥३७॥

कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरे-
रुपासने स्वे हृदि छिद्रवत् सतः ।
स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनां
सामान्यतः किं विषयोपपादनैः ॥३८॥

कः अति प्रयासः असुर बालका हरेः उपासने स्वे हृदि छिद्रवत् सतः स्वस्य आत्मनः सख्युः अशेष देहिनां सामान्यतः किं विषय उपपादनैः ॥३८॥

असुर बालका	असुर-पुत्रो !	**हरेः उपासने**	श्रीहरिकी उपासना में
स्वे हृदि	अपने हृदयके	**कः**	कौन-सा
छिद्रवत्	आकाशके समान	**अति प्रयासः**	बहुत प्रयत्न करना है ।
सतः	विद्यमान		
सामान्यतः	साधारण रूपसे		
स्वस्य आत्मनः	अपने ही आत्मा,	**विषय**	(और) विषय-भोगोंको
अशेष देहिनां	समस्त शरीर-धारियोंके	**उपपादनैः**	जुटानेमें
सख्युः	सखा	**किं**	क्या लाभ है ॥३८॥

रायः कलत्रं पशवः सुतादयो
गृहा मही कुञ्जरकोशभूतयः ।
सर्वेऽर्थकामाः क्षणभङ्गुरायुषः
कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत् प्रियं चलाः ॥३९॥

रायः कलत्रं पशवः सुत आदयः गृहा मही कुञ्जर कोशभूतयः सर्वे अर्थ कामाः क्षणभङ्गुः आयुषः कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत् प्रियं चलाः ॥३९॥

रायः कलत्रं	धन, स्त्री,	**अर्थ कामाः**	अर्थ और काम
पशवः	पशु,	**चलाः**	अस्थिर हैं,
सुत आदयः	पुत्र आदि,	**क्षणभङ्गुः**	एक क्षणमें नष्ट होनेवाली
गृहा मही	भवन, भूमि,		
कुञ्जर	हाथी,	**आयुषः**	आयु वाले
कोशभूतयः	खजाना आदि वैभव,	**मर्त्यस्य**	मरण-धर्मा मनुष्यका
		कियत् प्रियं	कितना प्रिय
सर्वे	सब	**कुर्वन्ति**	कर सकते हैं ॥३९॥

एवं हि लोकाः क्रतुभिः कृता अमी
क्षयिष्णवः सातिशया न निर्मलाः ।

तस्माददृष्टश्रुतदूषणं परं
भक्त्यैकयेशं भजतात्मलब्धये ॥४०॥

एवं हि लोकाः क्रतुभिः कृता अमी क्षयिष्णवः स अतिशया न निर्मलाः तस्मात् अदृष्ट श्रुत दूषणं परं भक्ति एक ईशं भजत आत्म लब्धये ॥४०॥

हि	क्योंकि
क्रतुभिः कृता	यज्ञों द्वारा बनाये (पाये) गये
अमी लोकाः	ये (स्वर्गादि) लोक भी
एवं क्षयिष्णवः	ऐसे ही नाशवान हैं,
स अतिशया	एक दूसरेसे बड़े-छोटे हैं,
निर्मलाः न	निर्मल नहीं हैं,
तस्मात्	इसलिए
दूषणं	(जिसमें) दोष
अदृष्ट श्रुत	देखे-सुने नहीं गये
परं ईशं	परमेश्वरकी
आत्म लब्धये	आत्म प्राप्तिके लिए
एक भक्ति	अनन्य भक्तिसे
भजत	भजन करो ॥४०॥

यदध्यर्थ्येह कर्माणि विद्वन्मान्यसकृन्नरः ।
करोत्यतो विपर्यासममोघं विन्दते फलम् ॥४१॥

यत् अधि अर्थे इह कर्माणि विद्वन् मान्य असकृत् नरः करोति अतः विपर्यासं अमोघं विन्दते फलम् ॥४१॥

विद्वन् मान्य	अपनेको विद्वान मानकर
इह	इस संसारमें
यत् अधि अर्थे	जिस प्रयोजनसे
नरः	मनुष्य
असकृत्	बार-बार
कर्माणि	कर्मोंको
करोति	करता है
अतः विपर्यासं	उससे उलटा
अमोघं फलं	निश्चित फल
विन्दते	पाता है ॥४१॥

सुखाय दुःखमोक्षाय सङ्कल्प इह कर्मिणः ।
सदाऽऽप्नोतीहया दुःखमनीहायाः सुखावृतः ॥४२॥

सुखाय दुःखमोक्षाय सङ्कल्प इह कर्मिणः सदा आप्नोति ईहया दुःखं अनीहायाः सुख आवृतः ॥४२॥

अनीहायाः	कामना न होनेपर	**इह**	इस संसारमें
सुख आवृतः	(जो) सुखमें निमग्न रहता था,	**कर्मिणः**	कर्म करनेवाले
		सुखाय	सुखके लिए और
ईहया	कामनासे	**दुःखमोक्षाय**	दुःखसे छूटनेके लिए
सदा	सदा	**सङ्कल्प**	संकल्प करते हैं ॥४२॥
दुःखं आप्नोति	दुःख पाता है (फिर भी)		

कामान्कामयते काम्यैर्यदर्थमिह पूरुषः ।
स वै देहस्तु पारक्यो भङ्गुरो यात्युपैति च ॥४३॥

कामान् कामयते काम्यैः यत् अर्थं इह पूरुषः स वै देहः तुपारक्यः भङ्गुरः याति उपैति च ॥४३॥

यत् अर्थं	जिसके लिए	**पारक्यः**	पराया है,
पूरुषः इह	पुरुष इस संसारमें	**भङ्गुरः**	नाशवान है,
काम्यैः	सकाम कर्मों द्वारा	**याति**	छूट जाता है,
कामान् कामयते	भोगोंको चाहता है,	**च उपैति**	और फिर मिल जाता है ॥४३॥
वै स देहः तु	निश्चित वह देह तो		

किमु व्यवहितापत्यदारागारधनादयः ।
राज्यं कोशगजामात्यभृत्याप्ता ममतास्पदाः ॥४४॥

किं उ व्यवहित अपत्य दारा आगार धन आदयः राज्यं कोश गज अमात्य भृत्य आप्तता ममता आस्पदाः ॥४४॥

उ	फिर	**अपत्य दारा**	पुत्र, स्त्री
व्यवहित	इस (देह) से पृथक	**आगार धन**	भवन, धन,
ममता आस्पदाः	मेरा कहे जानेवाले	**आदयः**	आदि

राज्यं कोश	राज्य, खजाना,	**किं**	का क्या कहना
गज अमात्य	हाथी, मन्त्री,		॥४४॥
भृत्य आप्त	सेवक, गुरुजन		

किमेतैरात्मनस्तुच्छैः सह देहेन नश्वरैः ।
अनर्थैरर्थसंकाशैर्नित्यानन्दमहोदधेः ॥४५॥

किं एतैः आत्मनः तुच्छैः सह देहेन नश्वरैः अनर्थैः अर्थ संकाशैः नित्य आनन्द महोदधेः ॥४५॥

सह देहेन	शरीरके साथ	**नित्य आनन्द**	नित्य आनन्द
नश्वरैः	नष्ट हो जानेवाले	**महोदधेः**	महासागर
अर्थ संकाशैः	पुरुषार्थसे लगनेवाले	**आत्मनः**	आत्माका
अनर्थैः	अनर्थ रूप	**किं**	क्या प्रयोजन ॥४५॥
एतैः तुच्छैः	इन छुद्रोंसे		

निरूप्यतामिह स्वार्थः कियान्देहभृतोऽसुराः ।
निषेकादिष्ववस्थासु क्लिश्यमानस्य कर्मभिः ॥४६॥

निरूप्यतां इह स्वार्थः कियान् देहभृतः असुराः निषेकादिषु अवस्थासु क्लिश्यमान् अस्य कर्मभिः ॥४६॥

असुराः	असुरो !	**अस्य**	इस (शरीर) के
निरूप्यतां	विचार करो,	**कर्मभिः**	कर्मोंके द्वारा
इह	इस संसारमें	**क्लिश्यमान्**	कष्ट भोगते हुए
निषेकादिषु	गर्भाधानसे लेकर	**देहभृतः**	देहधारी जीवका
अवस्थासु	सब दशाओंमें	**कियान् स्वार्थः**	क्या स्वार्थ है ॥४६॥

कर्माण्यारभते देही देहेनात्मानुवर्तिना ।
कर्मभिस्तनुते देहमुभयं त्वविवेकतः ॥४७॥

कर्माणि आरभते देही देहेन आत्म अनुवर्तिना कर्मभिः तनुते देहं उभयं तु अविवेकतः ॥४७॥

आत्म	अपने
अनुवर्तिना	पीछे चलनेवाले
देहेन	सूक्ष्म शरीरसे
देही	जीव
कर्माणि	कर्मोंका
आरभते	प्रारम्भ करता है
कर्मभिः	फिर कर्मोंके (फलसे) द्वारा
देहं तनुते	शरीर पाता है,
उभयं तु	(कर्मसे शरीर और शरीरसे कर्म) दोनों ही तो
अविवेकतः	अज्ञान (अविचार) के कारण हैं ॥४७॥

तस्मादर्थाश्च कामाश्च धर्माश्च यदपाश्रयाः ।
भजतानीहयाऽऽत्मानमनीहं हरिमीश्वरम् ॥४८॥

तस्मात् अर्थाः च कामाः च धर्माः च यत् अपाश्रयाः भजत अनीहया आत्मानं अनीहं हरिं ईश्वरं ॥४८॥

तस्मात्	इसलिए
अर्थाः च	धन और
कामाः च	भोग तथा
धर्माः च	धर्म भी
यत् अपाश्रयाः	जिनके आश्रयसे होते हैं उस
आत्मानं	आत्म स्वरूप
अनीहं ईश्वरं	निष्काम सर्वसमर्थ
हरिं	श्रीहरिका
अनीहया भजत	निष्काम भावसे भजन करो ॥४८॥

सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मेश्वरः प्रियः ।
भूतैर्महद्भिः स्वकृतैः कृतानां जीवसंज्ञितः ॥४९॥

सर्वेषां अपि भूतानां हरिः आत्मा ईश्वरः प्रियः भूतैः महद्भिः स्वकृतैः कृतानां जीवसंज्ञितः ॥४९॥

महद्भिःभूतैः	पञ्च महाभूतोंसे बने
स्वकृतैः	अपने ही बनाये
सर्वेषां	सब
भूतानां अपि	प्राणियोंमें ही
जीवसंज्ञितः	जीव नामसे
हरिः	श्रीहरि ही
प्रियः आत्मा	(उनके) प्रिय आत्मा
ईश्वरः	(तथा) संचालक हैं ॥४९॥

देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एव च ।
भजन् मुकुन्दचरणं स्वस्तिमान् स्याद् यथा वयम् ॥५०॥

देवः असुरः मनुष्यः वा यक्षः गन्धर्व एव च भजन् मुकुन्दचरणं स्वस्तिमान् स्यात् यथा वयम् ॥५०॥

देवः असुरः	देवता, असुर,	**भजन**	भजन करनेसे
वा मनुष्यः	या मनुष्य,	**वयं यथा**	हमारे ही समान
यक्षः च	यक्ष अथवा	**स्वस्तिमान्**	कल्याण भजन
गन्धर्व एव	गन्धर्व ही हो	**स्यात्**	होता है ॥५०॥
मुकुन्दचरणं	श्रीमुकुन्दके चरणों-का		

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः ।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥५१॥

न अलं द्विजत्वं देवत्वं ऋषित्वं वा असुर आत्मजाः प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥५१॥

असुर आत्मजाः	असुर पुत्रो !	**वा ऋषित्वं**	ऋषि होना
मुकुन्दस्य	श्रीमुकुन्दको	**अलं न**	पर्याप्त नहीं है,
प्रीणनाय	प्रसन्न करनेके लिए	**न वृत्तं**	न आचरण
द्विजत्वं	द्विज होना,	**न बहुज्ञता**	न बहुत जानकारी (पर्याप्त है) ॥५१॥
देवत्वं	देवता होना,		

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च ।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम् ॥५२॥

न दानं न तपः न इज्या न शौचं न व्रतानि च प्रीयते अमलया भक्त्या हरिः अन्यत् विडम्बनम् ॥५२॥

न दानं न तपः	न दान, न तपस्या,	**न व्रतानि च**	न व्रत ही
न इज्या	न यज्ञ	**हरिः**	श्रीहरि

अमलया	निर्मल	**अन्यत् विडम्बनं**	दूसरे सब (साधन)
भक्त्या	भक्तिसे		विडंबना हैं ॥५२॥
प्रीयते	प्रसन्न होते हैं		

ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः ।
आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे ॥५३॥

ततः हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः आत्म औपमम्येन सर्वत्र सर्वभूत आत्मनि ईश्वरे ॥५३॥

दानवाः	दानवो !	**औपमम्येन**	समान समझकर
ततः	इसलिए	**ईश्वरे**	सर्वेश्वर
सर्वत्र	सब कहीं	**भगवति हरौ**	भगवान् श्रीहरिकी
सर्वभूत	सब प्राणियोंको	**आत्मनि**	हृदयसे
आत्म	अपने ही	**भक्तिं कुरुत**	भक्ति करे ॥५३॥

दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः ।
खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गताः ॥५४॥

दैतेया यक्ष रक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रज ओकसः खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति हि अच्युततां गताः ॥५४॥

हि	क्योंकि	**खगा मृगाः**	पशु-पक्षी
दैतेया	दैत्य,	**पापजीवाः**	पापी जीव भी,
यक्ष रक्षांसि	यक्ष, राक्षस,	**अच्युततां गताः**	भगवद् भावको प्राप्त
स्त्रियः शूद्रा	स्त्रियां, शूद्र,		
व्रज ओकसः	सब ब्रजवासी,	**सन्ति**	हुए हैं ॥५४॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः ।
एकान्त भक्तिर्गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम् ॥५५॥

एतावान् एव लोके अस्मिन् पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः एकान्त भक्तिः गोविन्दे यत् सर्वत्र तत् ईक्षणम् ॥५५॥

अस्मिन् लोके इस लोकमें
एतावान् एव इतना ही
पुंसः पुरुषका
परः स्वार्थः परम स्वार्थ
स्मृतः कहा गया है कि
गोविन्दे श्रीगोविन्दमें
एकान्त भक्तिः अनन्य भक्ति हो
यत् जिससे
सर्वत्र सब कहीं
तत् उन भगवान्‌का
ईक्षणं दर्शन हो ॥५५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते दैत्यपुत्रानुशासनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

नारद उवाच–

अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वा तदनुवर्णितम् ।
जगृहुर्निरवद्यत्वान्नैव गुर्वनुशिक्षितम् ॥१॥

अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वा तत् अनुवर्णितं जगृहुः निरवद्यत्वात् न एव गुरु अनुशिक्षितम् ॥१॥

अथ	तब	**जगृहुः**	(उसे) ग्रहण कर लिया,
सर्वे दैत्यसुताः	सब दैत्य पुत्रोंने	**गुरु अनुशिक्षितं**	गुरु द्वारा दी गयी शिक्षा
तत्	उन (प्रह्लाद) के		
अनुवर्णितं	वर्णनको	**न एव**	नहीं ही (ग्रहणकी)
श्रुत्वा	सुनकर		॥१॥
निरवद्यत्वात्	निर्दोष होनेके कारण		

अथाचार्यसुतस्तेषां बुद्धिमेकान्तसंस्थिताम् ।
आलक्ष्य भीतस्त्वरितो राज्ञ आवेदयद् यथा ॥२॥

अथ आचार्य सुतः तेषां बुद्धि एकान्त संस्थितां आलक्ष्य भीतः त्वरितः राज्ञ आवेदयत् यथा ॥२॥

अथ	फिर	**आचार्य सुतः**	शुक्राचार्यके पुत्रोंने
तेषां बुद्धि	उन सबकी बुद्धि	**भीतः**	डरकर
एकान्त	दृढता पूर्वक (भगवान्‌में)	**त्वरितः**	शीघ्र
		यथा	जैसा था
संस्थितां	लगी	**राज्ञ आवेदयत्**	राजासे निवेदन किया ॥२॥
आलक्ष्य	देखकर		

श्रुत्वा तदप्रियं दैत्यो दुःसहं तनयानयम् ।
कोपावेशचलद्गात्रः पुत्रं हन्तुं मनो दधे ॥३॥

श्रुत्वा तत् अप्रियं दैत्यः दुःसहं तनय अनयं कोप आवेश चलत् गात्रः पुत्रं हन्तुं मनः दधे ॥३॥

तत् अप्रियं	वह अप्रिय	**दैत्यः**	दैत्य हिरण्यकशिपुने
तनय अनयं	पुत्रकी अनीति	**पुत्रं हन्तुं**	पुत्रको मार देनेका
श्रुत्वा	सुनकर	**मनः दधे**	मनमें निश्चय किया
कोप आवेश	क्रोधावेशसे		॥३॥
चलत् गात्रः	कांपते शरीरवाले		

क्षिप्त्वा परुषया वाचा प्रह्लादमतदर्हणम् ।
आहेक्षमाणः पापेन तिरश्चीनेन चक्षुषा ॥४॥

क्षिप्त्वा परुषया वाचा प्रह्लादं अतत् अर्हणं आह ईक्षमाणः पापेन तिरश्चीनेन चक्षुषा ॥४॥

परुषया वाचा	कठोर वाणीसे	**पापेन**	पाप भरी
क्षिप्त्वा	डाँटते हुए	**तिरश्चीनेन**	तिरछी दृष्टिसे
अतत् अर्हणं	इस (डांटने) के अयोग्य	**ईक्षमाणः**	देखता हुआ
		आह	बोला ॥४॥
प्रह्लादं	प्रह्लादको		

प्रश्रयावनतं दान्तं बद्धाञ्जलिमवस्थितम् ।
सर्पः पदाहत इव श्वसन्प्रकृतिदारुणः ॥५॥

प्रश्रय अवनतं दान्तं बद्ध अञ्जलि अवस्थितं सर्पः पद आहतः इव श्वसन् प्रकृति दारुणः ॥५॥

प्रश्रय अवनतं	नम्रतासे झुके	**दान्तं**	जितेन्द्रिय (प्रह्लाद) से
बद्ध अञ्जलि	हाथ जोड़े		
अवस्थितं	सामने खड़े	**पद आहतः**	पैरसे कुचले

सर्पः इव	सर्पके समान	**प्रकृति दारुणः**	स्वभावसे ही क्रूर (बोला) ॥५॥
श्वसन्	फुफकारता		

हिरण्यकशिपुरुवाच—*

हे दुर्विनीत मन्दात्मन्कुलभेदकराधम ।
स्तब्धं मच्छासनोद्धूतं नेष्ये त्वाद्य यमक्षयम् ॥६॥

हे दुर्विनीत मन्द आत्मन् कुल भेदकर अधम स्तब्धं मत् शासन उद् धूतं नेष्ये त्वा अद्य यम क्षयम् ॥६॥

हे दुर्विनीत	अरे उद्दण्ड,	**मत् शासन**	मेरी आज्ञाकी
मन्द आत्मन्	मन्द-बुद्धि,	**उद् धूतं**	अवहेलना करने-वाला
कुल भेदकर	कुलमें फूट डालने-वाला,	**अद्य त्वा**	आज तुझे
अधम	अधम,	**यम क्षयं**	यमराजके लोक
स्तब्धं	मूर्ख	**नेष्ये**	भेज देता हूँ ॥६॥

क्रुद्धस्य यस्य कम्पन्ते त्रयो लोकाः सहेश्वराः ।
तस्य मेऽभीतवन्मूढ शासनं किम्बलोऽत्यगाः ॥७॥

क्रुद्धस्य यस्य कम्पन्ते त्रयः लोकाः सह ईश्वराः तस्य मे अभीतवन् मूढ शासनं किं बलः अत्यगाः ॥७॥

यस्य क्रुद्धस्य	जिसके क्रोध करनेपर	**शासनं**	आदेशका
त्रयः लोकाः	तीनों लोक	**मूढ**	मूर्ख !
सह ईश्वराः	अपने स्वामियोंके साथ	**अभीतवन्**	निर्भयके समान
		किं बलः	किस बलपर (तूने)
कम्पन्ते	काँपने लगते हैं	**अत्यगाः**	उलंघन किया है ॥७॥
तस्य मे	उस मेरे		

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

प्रह्लाद उवाच–

न केवलं मे भवतश्च राजन्
स वै बलं बलिनां चापरेषाम् ।
परेऽवरेऽमी स्थिरजङ्गमा ये
ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः ॥८॥

न केवलं मे भवतः च राजन् स वै बलं बलिनां च अपरेषां परे अवरे अमी स्थिर जङ्गमा ये ब्रह्मा आदयः येन वशं प्रणीताः ॥८॥

राजन्	राजन् !
ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मा आदि
अमी मरे अवरे	ये बड़े-छोटे
ये स्थिर	जितने स्थावर
जङ्गमा	जंगम हैं
येन	जिसके द्वारा
वशं प्रणीताः	वशमें किये गये हैं
वै स	निश्चय वही
केवलं मे न	केवल मेरा ही नहीं
भवतः च	आपका भी
च अपरेषां	तथा दूसरे भी
बलिनां बलं	बलवानोंका बल है

॥८॥

स ईश्वरः काल उरुक्रमोऽसा-
वोजःसहः सत्त्वबलेन्द्रियात्मा ।
स एव विश्वं परमः स्वशक्तिभिः
सृजत्यवत्यत्ति गुणत्रयेशः ॥९॥

स ईश्वरः कालः उरुक्रमः असाः ओजः सहः सत्त्व बल इन्द्रिय आत्मा स एव विश्वं परमः स्वशक्तिभिः सृजति अवति अत्ति गुणत्रय ईशः ॥९॥

स उरुक्रमः	वही अनन्त पराक्रम
ईश्वरः	सर्वसमर्थ
कालः	काल है,
असाः	वही
ओजः सहः	इन्द्रिय-बल, मनोबल
सत्त्व बल	देह-बल,
इन्द्रिय आत्मा	इन्द्रिय तथा बुद्धि हैं
स एव परमः	वही परमात्मा

गुणत्रय	तीनों गुणोंके	**विश्वं सृजति**	संसारकी सृष्टि करते हैं,
ईशः	स्वामी		
स्वशक्तिभिः	अपनी शक्तियोंसे	**अवति**	रक्षा करते हैं और
		अत्ति	खा लेते हैं ॥९॥

जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः
समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः ।
ऋतेऽजितादात्मन उत्पथस्थितात्
तद्धि ह्यनन्तस्य महत् समर्हणम् ॥१०॥

जहि आसुरं भावं इमं त्वं आत्मनः समं मनः धत्स्व न सन्ति विद्विषः ऋते अजित आदात्मन उत्पथ स्थितात् तत् हि हि अनन्तस्य महत् समर्हणम् ॥१०॥

त्वं	आप	**विद्विषः**	(दूसरा कोई) शत्रु
इमं आत्मनः	यह अपना	**न सन्ति**	नहीं है,
आसुरं भावं	आसुरी स्वभाव	**मनः समं**	मनको समतामें
जहि	त्याग दीजिए,	**धत्स्व**	धारण कीजिए
हि	क्योंकि	**हि**	क्योंकि
उत्पथ स्थितात्	कुमार्गमें लगे	**तत् अनन्तस्य**	वह भगवान् अनन्त-
अजित आदात्मन	बिना जीते मनको		की
ऋते	छोड़कर	**महत् समर्हणं**	महती पूजा है ॥१०॥

दस्यून्पुरा षण्ण विजित्य लुम्पतो
मन्यन्त एके स्वजिता दिशो दश ।
जितात्मनो ज्ञस्य समस्य देहिनां
साधोः स्वमोहप्रभवाः कुतः परे ॥११॥

दस्यून् पुरा षट् न विजित्य लुम्पतः मन्यन्त एके स्वजिता दिशः दश जित आत्मनः ज्ञस्य समस्य देहिनां साधोः स्वमोह प्रभवाः कुतः परे ॥११॥

पुरा	पहिले	**जित आत्मनः**	मनको जीते
लुम्पतः	लूटनेमें लगे	**ज्ञस्य**	तत्त्वज्ञानी,
षट् दस्यून्	(काम-क्रोधादि) छः डाकुओंको	**देहिनां समस्य**	सब प्राणियोंके प्रति समान रहनेवाले
न विजित्य	बिना जीते ही	**साधोः**	साधु-पुरुषके लिए
एके	कोई	**स्वमोह**	अपने अज्ञानसे
दश दिशः	दसो दिशाओंको	**प्रभवाः**	उत्पन्न
स्वजिता	अपनी जीती	**परे कुतः**	ये शत्रु कहाँसे होंगे ॥११॥
मन्यन्त	मानते हैं,		

हिरण्यकशिपुरुवाच—

व्यक्तं त्वं मर्तुकामोऽसि योऽतिमात्रं विकत्थसे ।
मुमूर्षूणां हि मन्दात्मन् ननु स्युर्विप्लवा गिरः ॥१२॥

व्यक्तं त्वं मर्तु कामः असि यः अतिमात्रं विकत्थसे मुमूर्षूणां हि मन्द आत्मन् ननु स्युः विप्लवा गिरः ॥१२॥

व्यक्तं	स्पष्ट है कि	**हि**	क्योंकि
त्वं मर्तु कामः	तू मरनेकी इच्छा वाला	**मन्द आत्मन्**	मन्दबुद्धे !
असि	है,	**मुमूर्षूणां**	मरनेवालोंकी
यः अतिमात्रं	जो बहुत अधिक	**गिरः**	वाणी
विकत्थसे	बकबाद कर रहा है	**विप्लवाः स्युः**	बेसिर-पैरकी होती है ॥१२॥

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः ।
क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते ॥१३॥

यः त्वया मन्द भाग्य उक्तः मत् अन्यः जगत् ईश्वरः क्व असौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते ॥१३॥

मन्द भाग्य	अभागे !	**मत् अन्यः**	मुझसे भिन्न
त्वया यः	तूने जो	**जगत् ईश्वरः**	संसारका स्वामी

उक्तः	बतलाया	स्तम्भे	इस खम्भेमें
असौ क्व	यह कहाँ है ?	कस्मात्	क्यों
स यदि	वह यदि	न दृश्यते	नहीं दीखता ॥१३॥
सर्वत्र	सर्वत्र है तो		

सोऽहं विकत्थमानस्य शिरः कायाद्धरामि ते ।
गोपायेत हरिस्त्वाद्य यस्ते शरणमीप्सितम् ॥१४॥

सः अहं विकत्थ मानस्य शिरः कायात् हरामि ते गोपायेत हरिः तु अद्य यः ते शरणं ईप्सितम् ॥१४॥

सः अहं	वह मैं	यः ते	जो तेरी
विकत्थ मानस्य	बकवाद करते	ईप्सितं शरणं	अभीष्ट शरण है
ते शिरः	तेरा सिर	तु हरिः	वह हरि
कायात्	शरीरसे	अद्य ते	आज तेरी
हरामि	पृथक कर देता हूँ'	गोपायेत	रक्षा करे ॥१४॥

नारद उवाच–*

एवं दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन्रुषा
सुतं महाभागवतं महासुरः ।
खड्गं प्रगृह्योत्पतितो वरासनात्
स्तम्भं ताडातिबलः स्वमुष्टिना ॥१५॥

एवं दुरुक्तैः मुहुः अर्दयन् रुषा सुतं महाभागवतं महासुरः खड्गं प्रगृह्य उत्पतितः वरासनात् स्तम्भं ताड अतिबलः स्वमुष्टिना ॥१५॥

महाभागवतं	परम भगवद् भक्त	मुहुः अर्दयन्	बार-बार रौंदता
सुतं	पुत्र (प्रह्लाद) को		हुआ
एवं दुरुक्तैः	इस प्रकार दुर्वचनोंसे	महासुरः	वह महादैत्य

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

खड्गं प्रगृह्य	तलवार लेकर	अतिबलः	बड़े जोरसे
वरासनात्	श्रेष्ठ सिंहासनसे	स्वमुष्टिना	अपने घसेसे
रुषा उत्पतितः	क्रोधके मारे कूद पड़ा	स्तम्भं ताडत	खम्भेको मारा ॥१५॥

तदैव तस्मिन् निनदोऽतिभीषणो
बभूव येनाण्डकटाहमस्फुटत् ।
यं वै स्वधिष्ण्योपगतं त्वजादयः
श्रुत्वा स्वधामाप्ययमङ्ग मेनिरे ॥१६॥

तत् एव तस्मिन् निनदः अति भीषणः बभूव येन अण्ड कटाहं अस्फुटत् यं वै स्वधिष्ण्य उपगतं तु अजादयः श्रुत्वा स्वधाम अप्ययं अङ्ग मे निरे ॥१६॥

अङ्ग	प्रिय युधिष्ठिर !	अस्फुटत्	(लगा कि) फट गया,
तत् एव	उसी समय		
तस्मिन्	उस (खम्भे) से	यं स्वधिष्ण्य	जिसे अपने धाम
अति भीषणः	बहुत भयंकर	उपगतं	पहुँचनेपर
निनदः बभूव	शब्द हुआ,	अजादयः तु	ब्रह्मादिने तो
येन	जिससे	श्रुत्वा	सुनकर
अण्ड कटाहं	ब्रह्माण्ड रूपी कड़ाहा	वै	निश्चित
		स्वधाम अप्ययं	अपने धामकी प्रलय
		मेनिरे	मान लिया ॥१६॥

स विक्रमन् पुत्रवधेप्सुरोजसा
निशम्य निर्ह्रादमपूर्वमद्भुतम् ।
अन्तःसभायां न ददर्श तत्पदं
वितत्रसुर्येन सुरारियूथपाः ॥१७॥

स विक्रमन् पुत्र वध इप्सुः ओजसा निशम्य निर्ह्रादं अपूर्वं अद्भुतं अन्तःसभायां न ददर्श तत् पदं वितत्रसुः येन सुर अरि यूथपाः ॥१७॥

स	वह (हिरण्यकशिपु)
पुत्र वध	पुत्रको मारना
इप्सुः	चाहता हुआ
ओजसा विक्रमन्	वेगसे झपटा था; किन्तु
येन	जिससे
सुर अरि यूथपाः	देवशत्रुओंके सेना-नायक
वितत्रसुः	बहुत डर गये थे, उस
अपूर्वं अद्भुतं	अपूर्व, अद्भुत
निर्ह्रादं	घोर शब्दको
निशम्य	सुनकर
सनायां	सभामें
तत् पदं	उस (शब्द) का स्थान
न ददर्श	नहीं देख सका

॥१७॥

ऽ सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं
व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ।
अदृश्यताद्भुतरूपमुद्वहन्
स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥१८॥

सत्यं विधातुं निज भृत्य भाषितं व्याप्तिं च भूतेषु अखिलेषु च आत्मनः अदृश्यत अति अद्भुतं रूपं उद्वहन् स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥१८॥

निज भृत्य	अपने सेवक (प्रह्लाद) का
भाषितं	कहा
सत्यं विधातुं	सत्य करनेके लिए
च अखिलेषु	तथा समस्त
भूतेषु	प्राणि-पदार्थोंमें
आत्मनः	अपनी
व्याप्तिं च	व्यापकता भी (प्रकट करनेके लिये)
न मृगं	न पशुका
न मानुषं	न मनुष्यका
अति अद्भुतं	अत्यन्त अद्भुत
रूपं	रूप (नृसिंह)
उद्वहन्	धारण करके
सभायां स्तम्भे	सभाके खम्भेमें
अदृश्यत	दिखलायी पड़े

॥१८॥

स सत्त्वमेनं परितोऽपि पश्यन्
स्तम्भस्य मध्यादनु निर्जिहानम् ।

नायं मृगो नापि नरो विचित्र-
महो किमेतन्नृमृगेन्द्ररूपम् ॥१९॥

स सत्त्वं एनं परितः अपि पश्यन् स्तम्भस्य मध्यात् अनु निर्जिहानं न अयं मृगः न अपि नरः विचित्रं अहो किं एतत् नृमृगेन्द्र रूपम् ॥१९॥

स एनं	वह (हिरण्यकशिपु) इस	**निर्जिहानं**	निकलते हुए (देखकर सोचने लगा)
सत्त्वं परितः	प्राणीको चारों ओर	**अहो**	अरे,
पश्यन् अपि	देख (ढूंढ़) ही रहा था कि	**अयं न मृगः**	यह न पशु है,
		न नरः	न मनुष्य है,
अनु	पीछे	**विचित्रं**	विचित्र
स्तम्भस्य	खम्भेके	**नृमृगेन्द रूपं**	नृसिंह रूप
मध्यात्	बीचसे	**एतत् किं**	यह क्या है ?

॥१९॥

मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो
नृसिंहरूपस्तदलं भयानकम् ।
प्रतप्तचामीकरचण्डलोचनं
स्फुरत्सटाकेसरजृम्भिताननम् ॥२०॥

मीमांसमानस्य समुत्थितः अग्रतः नृसिंहरूपः तत् अलं भयानकं प्रतप्त चामीकर चण्ड लोचनं स्फुरत् सटा केशर जृम्भित आननम् ॥२०॥

मीमांसमानस्य	उधेड़-बुनमें पड़े (हिरण्यकशिपुके)	**प्रतप्त चामीकर**	तपाये सोनेके समान
		चण्ड लोचनं	उग्र नेत्र,
अग्रतः	सामने	**सटा केशर**	गर्दनके बाल
समुत्थितः	उठकर खड़े हुए	**जृम्भित आननं**	जम्हाई लेनेसे फैले मुखके कारण
नृसिंहरूपः	भगवान् नृसिंहका रूप	**स्फुरत्**	हिल रहे थे ॥२०॥
भयानकं तत् अलं	भयंकरताकी वह सीमा है,		

करालदंष्ट्रं करवालचञ्चल-
क्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणम् ।
स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकन्दराद्भुत-
व्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम् ॥२१॥

करालदंष्ट्रं करवालचञ्चल क्षुरान्तजिह्वं भृकुटी मुख उल्बणं
स्तब्धऊर्ध्वकर्णं गिरिकन्दर अद्भुत व्यात्त आस्य नासं हनुभेद भीषणम्
॥२१॥

करालदंष्ट्रं	विकराल दाढ़ें,	स्तब्धऊर्ध्वकर्णं	कान ऊपर स्थिर उठे थे,
करवाल	तलवारके समान	नासं हनुभेद	फूली नासिकासे
चञ्चल	लपलपाती	गिरिकन्दर	पर्वतकी गुफाके समान
क्षुरान्त जिह्वं	छुरेकी धारके समान तीखी जीभ,	अद्भुत	अद्भुत
भृकुटी मुख उल्बणं	(टेढ़ी) भौंहोंसे मुख और भयानक हो रहा था,	व्यात्त आस्य भीषणं	फैला मुख और भयंकर लगता था ॥२१॥

दिविस्पृशत्कायमदीर्घपीवर-
ग्रीवोरुवक्षः स्थलमल्पमध्यमम् ।
चन्द्रांशुगौरैश्छुरितं तनूरुहै-
र्विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधम् ॥२२॥

दिविस्पृशत् कायं अदीर्घ पीवर ग्रीव उरु वक्षः स्थलं अल्प मध्यमं
चन्द्र अंशु गौरैः छुरितं तनूरुहैः विष्वक् भुज अनीक शतं नखा आयुधम्
॥२२॥

कायं	शरीर	ग्रीव	गर्दन थी,
दिविस्पृशत्	स्वर्गको छू रहा था,	उरु वक्षः स्थलं	छाती चौड़ी,
अदीर्घ पीवर	नाटी और मोटी	अल्पं मध्यमं	कमर पतली थी,

चन्द्र अंशु गौरैः	चन्द्र किरणोंके समान श्वेत
तनूरुहै छुरितं	रोमोंसे मानो पोते गये हों,
विष्वक्	चारों ओर
शतं भुज अनीक	सैकड़ों भुजाओं रूपी सेना
नखा आयुधं	नखों रूपी शस्त्र लिए थी ॥२२॥

दुरासदं सर्वनिजेतरायुध-
प्रवेकविद्रावितदैत्यदानवम् ।
प्रायेण मेऽयं हरिणोरुमायिना
वधः स्मृतोऽनेन समुद्यतेन किम् ॥२३॥

दुरासदं सर्व निज इतर आयुध प्रवेक विद्रावित दैत्य दानवं प्रायेण मे अयं हरिणा उरु मायिना वधः स्मृतः अनेन समुद्यतेन किम् ॥२३॥

दुरासदं	उनके पास जाया नहीं जा सकता था
निज सर्व इतर	अपने सभी(चक्रादि) तथा दूसरे (वज्रादि)
आयुध	आयुधोंके
प्रवेक	आधातसे
दैत्य दानवं	दैत्यों दानवोंको
विद्रावित	भगा दिया (तब हिरण्यकशिपुने सोचा)
उरु मायिना	अत्यन्त मायावी
हरिणा	हरिने
मे वधः	मेरे वधके लिए
अयं प्रायेण	यह ढंग
स्मृतः	सोचा है (पर)
अनेन	इसकी
समुद्यतेन	इस चालसे
किम्	क्या होनेवाला है ॥२३॥

एवं ब्रुवंस्त्वभ्यपतद् गदायुधो
नदन् नृसिंहं प्रति दैत्यकुञ्जरः ।
अलक्षितोऽग्नौ पतितः पतङ्गमो
यथा नृसिंहौजसि सोऽसुरस्तदा ॥२४॥

एवं ब्रुवन् तु अभ्यपतत् गदा आयुधः नदन् नृसिंहं प्रति दैत्य कुञ्जरः अलक्षितः अग्नौ पतितः पतङ्गमः यथा नृसिंह ओजसि सः असुरः तदा ॥२४॥

एवं ब्रुवन्	ऐसा कहता हुआ
गदा आयुधः	गदा रूपी शस्त्र लेकर
नदन्	गर्जना करता हुआ
नृसिंहं प्रति	नृसिंहकी ओर
दैत्य कुञ्जरः तु	दैत्य रूपी गजराज तो
अभ्यपतत्	झपट पड़ा,
यथा अग्नौ	जैसे अग्निमें
पतितः पतङ्गमः	गिरा पतंग
तदा	उस समय
सः असुरः	वह असुर
नृसिंह ओजसि	नृसिंहके तेजमें (वैसे ही)
अलक्षितः	अलक्षित हो गया ॥२४॥

न तद् विचित्रं खलु सत्त्वधामनि
स्वतेजसा यो नु पुरापिबत् तमः ।
ततोऽभिपद्याभ्यहनन्महासुरो
रुषा नृसिंहं गदयोरुवेगया ॥२५॥

न तत् विचित्रं खलु सत्त्व धामनि स्वतेजसा यः नु पुरा अपिबत् तमः ततः अभिपद्य अभ्यहनत् महा असुरः रुषा नृसिंहं गदया उरु वेगया ॥२५॥

सत्त्व धामनि	समस्त शक्तिके धाम (भगवान्‌के लिए)
यः नु	जिन्होंने तो
पुरा	पहिले (सृष्टिके समय)
स्वतेजसा	अपने तेजसे
तमः	(प्रलय कालीन) अन्धकार
अपिबत्	पी लिया था
तत् खलु	यह तो कोई
विचित्रं न	विचित्र बात नहीं है ।
ततः महा असुरः	फिर असुरराज (हिरण्यकशिपु) ने
नृसिंहं	नृसिंहके
अभिपद्य	समीप पहुँचकर
रुषा गदया	क्रोधमें भरकर गदासे
उरु वेगया	बड़े वेगसे
अभ्यहनत्	प्रहार किया ॥२५॥

तं विक्रमन्तं सगदं गदाधरो
महोरगं तार्क्ष्यसुतो यथाग्रहीत् ।
स तस्य हस्तोत्कलितस्तदासुरो
विक्रीडतो यद्वदहिर्गरुत्मतः ॥२६॥

तं विक्रमन्तं सगदं गदाधरः महा उरगं तार्क्ष्यसुतः यथा अग्रहीत् स तस्य हस्त उत्कलितः तदा असुरः विक्रीडतः यत्वत् अहिः गरुत्मतः ॥२६॥

तं विक्रमन्तं	उसे प्रहार करते समय ही
महा उरगं	भारी सर्पको
यथा तार्क्ष्यसुतः	जैसे गरुड़ (पकड़ें)
गदाधरः	भगवान्ने
सगदं	गदाके साथ
अग्रहीत्	पकड़ लिया,
गरुत्मतः	गरुड़ द्वारा
यत्वत्	जैसे
अहिः	सर्पसे
विक्रीडतः	खेल करते समय (सर्प छूट जाय)
तदा स असुरः	उस समय वह असुर
तस्य हस्त	उनके हाथसे
उत्कलितः	निकल गया ॥२६॥

असाध्वमन्यन्त हृतौकसोऽमरा
घनच्छदा भारत सर्वधिष्ण्यपाः ।
तं मन्यमानो निजवीर्यशङ्कितं
यद्धस्तमुक्तो नृहरिं महासुरः ।
पुनस्तमासज्जत खड्गचर्मणी
प्रगृह्य वेगेन जितश्रमो मृधे ॥२७॥

असाध्व मन्यन्त हृत ओकसः अमरा घनच्छदा भारत सर्वधिष्ण्यपाः तं मन्यमानः निजवीर्यं शंकितं यत् हस्तमुक्तः नृहरिं महा असुरः पुनः तं आसज्जत खड्ग चर्मणी प्रगृह्य वेगेन जितश्रमः मृधे ॥२७॥

भारत	युधिष्ठिर !
घनच्छदा	मेघोंकी आड़में छिपे
सर्वधिष्ण्यपाः	सब लोकपाल

हृत ओकसः	जिनके घर छीन लिये गये थे
अमरा	वे देवता
असाध्व मन्यन्त	अच्छा नहीं माना,
महा असुरः	महादैत्यने
तं निजवीर्य	उन (नृसिंह) को अपने पराक्रमसे
शंकितं	डरा
मन्यमानः	माना
यत्	क्योंकि
नृहरि	नृसिंहके
हस्तमुक्तः	हाथसे छूट गया था,
पुनः	फिर
खड्ग चर्मणी	ढाल-तलवार
प्रगृह्य	लेकर
जितश्रमः	थकावट जीतकर
मृधे वेगेन	युद्धमें वेग पूर्वक
तं आसज्जत	उनकी ओर दौड़ा ॥२७॥

तं श्येनवेगं शतचन्द्रवर्त्मभि-
श्चरन्तमच्छिद्रमुपर्यधो हरिः ।
कृत्वाट्टहासं खरमुत्स्वनोल्बणं
निमीलिताक्षं जगृहे महाजवः ॥२८॥

तं श्येनवेगं शतचन्द्र वर्त्मभिः चरन्तं अच्छिद्रं उपरि अधः हरिः कृत्वा अट्टहासं खरं उत्स्वन उल्बणं निमीलित अक्षं जगृहे महाजवः ॥२८॥

श्येनवेगं	बाजके समान गतिसे
उपरि अधः	ऊपर-नीचे
शतचन्द्र	तलवारके
वर्त्मभिः	पैंतरे
चरन्तं	बदलता
अच्छिद्रं	(पकड़नेके अवकाश-की त्रुटि न करता
तं	उस (हिरण्यकशिपु) को देखकर
खरं उत्स्वन	तीक्ष्ण उच्चस्वरसे
उल्बणं अट्टहासं	भयंकर अट्टहास
कृत्वा	करके
निमीलित अक्षं	(उसके) नेत्र बन्द होते ही
महाजवः	बड़े वेगसे
जगृहे	पकड़ लिया ॥२८॥

विष्वक् स्फुरन्तं ग्रहणातुरं हरि-
व्यालो यथाऽऽखुं कुलिशाक्षतत्वचम् ।

द्वार्यूर आपात्य ददार लीलया
नखैर्यथाहिं गरुडो महाविषम् ॥२९॥

विष्वक् स्फुरन्तं ग्रहण आतुरं हरिः व्यालः यथा आखुं कुलिश अक्षत त्वचं द्वाः यूर आपात्य ददार लीलया नखैः यथा अहिं गरुडः महाविषम् ॥२९॥

यथा आखुं	जैसे चूहेको	**त्वचं**	चमड़ीको
व्यालः	सर्प (पकड़ ले)	**यथा**	जैसे
ग्रहण आतुरं	पकड़े जानेसे व्याकुल	**महाविषं**	अत्यन्त विषैले
विष्वक् स्फुरन्तं	चारों ओर छटपटाते-को	**अहिं गरुडः**	सर्पको गरुड़ (फाड़ दें)
द्वाः यूर	द्वारकी चौखटपर	**लीलया**	खेलमें ही
आपात्य	गिराकर	**हरिः ददार**	नृसिंहने फाड़ दिया ॥२९॥
कुलिश अक्षत	वज्रसे भी घाव न लगने वाला		

संरम्भदुष्प्रेक्ष्यकराललोचनो
व्यात्ताननान्तं विलिहन्स्वजिह्वया ।
असृग्लवाक्तारुणकेसराननो
यथान्त्रमाली द्विपहत्यया हरिः ॥३०॥

संरम्भ दुष्प्रेक्ष्य कराल लोचनः व्यात्त आनन अन्तं विलिहन् स्वजिह्वया असृक् लव आक्त अरुण केसर आननः यथा अन्त्रमाली द्विप हत्यया हरिः ॥३०॥

संरम्भ	क्रोधसे भरे	**अन्तं**	किनारोंको
कराल लोचनः	भयानक नेत्रोंकी ओर	**स्वजिह्वया**	अपनी जीभसे
दुष्प्रेक्ष्य	देखा नहीं जाता था,	**विलिहन्**	चाट रहे थे,
व्यात्त आनन	फैले मुखकी	**असृक् लव**	रक्त छीटोंसे

केसर आननः	सटाके केश और मुख
आक्त	लथपथ होकर
अरुण	लाल हो रहे थे,
यथा	जैसे
द्विप हत्यया	हाथीको मारकर
हरिः	सिंह
आन्त्रमाली	आँतोंकी माला पहिने हो ॥३०॥

नखाङ्कुरोत्पाटितहृत्सरोरुहं
विसृज्य तस्यानुचरानुदायुधान् ।
अहन् समन्तान्नखशस्त्रपार्ष्णिभि-
र्दोर्दण्डयूथोऽनुपथान् सहस्रशः ॥३१॥

नख अङ्कुर उत्पाटित हृत् सरोरुहं विसृज्य तस्य अनुचरान् उदायुधान् अहन् समन्तात् नखशस्त्र पार्ष्णिभिः दोर्दण्ड यूथः अनुपथान् सहस्रशः ॥३१॥

नख अङ्कुर हृत् सरोरुहं	नखकी नोकसे (उसके) हृदय-कमलको
उत्पाटित	उखाड़कर
विसृज्य	फेंक दिया
तस्य उदायुधान्	उसके हथियार उठाये
सहस्रशः	हजारों
यूथः अनुपथान्	सेना-नायक
अनुचरान्	सेवकोंको
नखशस्त्र	नख रूपी शस्त्र युक्त
दोर्दण्ड	भुजाओं रूपी
पार्ष्णिभिः	सेनासे
समन्तात् अहन्	चारों ओर खदेड़ कर मार दिया ॥३१॥

सटावधूता जलदाः परापतन्
ग्रहाश्च तद्दृष्टिविमुष्टरोचिषः ।
अम्भोधयः श्वासहता विचुक्षुभु-
र्निर्ह्रादभीता दिगिभा विचुक्रुशुः ॥३२॥

सटा अवधूता जलदाः परापतन् ग्रहाः च तत् दृष्टि विमुष्ट रोचिषः अम्भोधयः श्वासहता विचुक्षुभुः निर्ह्राद भीता दिगिभा विचुक्रुशुः ॥३२॥

सटा अवधूता	गर्दनके केश फट-कारनेसे	**श्वासहता**	श्वासके आघातसे
जलदाः	मेघ	**अम्भोधयः**	समुद्रमें
परापतन्	तितर-बितर होने लगे,	**विचुक्षुभुः**	क्षोभ होने लगा,
च तत् दृष्टि	और उनकी दृष्टिसे	**निर्ह्रादि भीता**	(उनकी) गर्जनासे डरकर
ग्रहाः	ग्रहोंकी	**दिगिभा**	दिग्गज
रोचिषः विमुष्ट	कान्ति फीकी पड़ गयी	**विचुक्रुशुः**	चिल्लाने लगे ॥३२॥

द्यौस्तत्सटोत्क्षिप्तविमानसङ्कुला
प्रोत्सर्पत क्ष्मा च पदातिपीडिता ।
शैलाः समुत्पेतुरमुष्य रंहसा
तत्तेजसा खं ककुभो न रेजिरे ॥३३॥

द्यौः तत् सटा उत्क्षिप्त विमान सङ्कुला प्रोत्सर्पत क्ष्मा च पदा अतिपीडिता शैलाः समुत्पेतुः अमुष्य रंहसा तत् तेजसा खं ककुभः न रेजिरे ॥३३॥

तत् सटा	उनके गरदनके बालोंसे	**अमुष्य रंहसा**	उनके वेगसे
द्यौः सङ्कुला	आकाशमें भरे	**शैलाः समुत्पेतुः**	पर्वत उड़ने लगे,
विमान उत्क्षिप्त	(देवताओंके) विमान अस्त-व्यस्त हो गये,	**तत् तेजसा**	उनके तेजसे
पदा	चरणोंसे	**खं ककुभः**	आकाश और दिशायें
अतिपीडिता	बहुत दबी	**न रेजिरे**	नहीं दीखती थीं ॥३३॥
क्ष्मा प्रोत्सर्पत	पृथ्वी डगमगाने लगी,		

ततः सभायामुपविष्टमुत्तमे
नृपासने संभृततेजसं विभुम् ।

अलक्षितद्वैरथमत्यमर्षणं
प्रचण्डवक्त्रं न बभाज कश्चन ॥३४॥

ततः सभायां उपविष्टं उत्तमे नृप आसने संभृततेजसं विभुं अलक्षित द्वैरथं अति अमर्षणं प्रचण्डवक्त्रं न बभाज कश्चन ॥३४॥

ततः	तब	**संभृततेजसं**	तेजपूर्ण
द्वैरथं	शत्रुओंके	**प्रचण्डवक्त्रं**	भयानक मुख
अलक्षित	न दिखलायी देनेपर	**विभुं**	प्रभु नृसिंहकी
सभायां	सभामें	**कश्चन**	कोई भी
उत्तमे	श्रेष्ठ	**बभाज**	सेवा करने
नृप आसने	राजसिंहासनपर	**न**	नहीं गया ॥३४॥
उपविष्टं	बैठे हुए		

निशम्य लोकत्रयमस्तकज्वरं
तमादिदैत्यं हरिणा हतं मृधे ।
प्रहर्षवेगोत्कलितानना मुहुः
प्रसूनवर्षैर्ववृषुः सुरस्त्रियः ॥३५॥

निशम्य लोकत्रय मस्तकज्वरं तं आदिदैत्यं हरिणा हतं मृधे प्रहर्ष-वेग उत्कलित आनना मुहुः प्रसूनवर्षैः ववृषुः सुरस्त्रियः ॥३५॥

लोकत्रय	तीनों लोकोंके	**उत्कलित**	खिले
मस्तकज्वरं	सिरकी पीड़ा स्वरूप	**आनना**	मुखवाली
तं आदिदैत्यं	उस आदिदैत्यको	**सुरस्त्रियः**	देवाङ्गनाएँ
हरिणा	भगवान् नृसिंह द्वारा	**मुहुः**	बार-बार
मृधे हतं	युद्धमें मारा गया	**प्रसूनवर्षैः**	पुष्प-राशियोंकी
निशम्य	सुनकर	**ववृषुः**	वर्षा करने लगीं
प्रहर्ष-वेग	अत्यन्त हर्षावेशसे		॥३५॥

तदा विमानावलिभिर्नभस्तलं
दिदृक्षतां सङ्कुलमास नाकिनाम् ।

सुरानका दुन्दुभयोऽथ जघ्निरे
गन्धर्वमुख्या ननृतुर्जगुः स्त्रियः ॥३६॥

तदा विमान अवलिभिः नभः तलं दिदृक्षतां सङ्कुलं आस नाकिनां
सुर आनका दुन्दुभयः अथ जघ्निरे गन्धर्वमुख्याः ननृतुः जगुः स्त्रियः ॥३६॥

तदा	उस समय	**सुर आनका**	देवताओंके नगाड़ों
दिदृक्षतां	दर्शनार्थ आये	**अथ दुन्दुभयः**	और दुन्दुभियोंपर
नाकिनां	स्वर्गके देवताओंके	**जघ्निरे**	चोट पड़ने लगी
विमान	विमानोंके	**गन्धर्वमुख्याः**	प्रमुख गन्धर्व
अवलिभिः	झुंडोंसे	**स्त्रियः**	और उनकी स्त्रियां
नभः तलं	आकाश मण्डल	**ननृतुः जगुः**	नाचने, गाने लगे
सङ्कुलं आस	भर गया,		॥३६॥

तत्रोपव्रज्य विबुधा ब्रह्मेन्द्रगिरिशादयः ।
ऋषयः पितरः सिद्धा विद्याधरमहोरगाः ॥३७॥

तत्र उपव्रज्य विबुधा ब्रह्म इन्द्र गिरिश आदयः ऋषयः पितरः सिद्धा विद्याधर महोरगाः ॥३७॥

तत्र	वहाँ	**सिद्धा**	सिद्ध-लोग,
ब्रह्म इन्द्र	ब्रह्मा, इन्द्र,	**विद्याधर**	विद्याधर,
गिरिश आदयः	शंकर आदि	**महोरगाः**	महानाग
विबुधा	देवता,	**उपव्रज्य**	समीप आकर ॥३७॥
ऋषयः पितरः	ऋषिगण, पितर,		

मनवः प्रजानां पतयो गन्धर्वाप्सरचारणाः ।
यक्षाः किम्पुरुषास्तात वेताला: सिद्धकिन्नराः ॥३८॥

मनवः प्रजानां पतयः गन्धर्वा, अप्सर, चारणाः, यक्षाः, किंपुरुषाः तात वेताला: सिद्ध किन्नराः ॥३८॥

तात	तात युधिष्ठिर !
मनवः	सब मनु
प्रजानां पतयः	प्रजापतिगण,
गन्धर्वा अप्सर	गन्धर्व, अप्सराएँ
चारणाः यक्षाः	चारण, यथा,
किम्पुरुषाः	किम्पुरुष,
वेतालाः सिद्ध	वेताल, सिद्ध,
किन्नराः	किन्नर ॥३८॥

ते विष्णुपार्षदाः सर्वे सुनन्दकुमुदादयः ।
मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटा आसीनं तीव्रतेजसम् ।
ईडिरे नरशार्दूलं नातिदूरचराः पृथक् ॥३९॥

ते विष्णुपार्षदाः सर्वे सुनन्द कुमुद आदयः मूर्ध्निबद्ध अञ्जलि-पुटा आसीनं तीव्रतेजसं ईडिरे नरशार्दूलं न अतिदूर चराः पृथक् ॥३९॥

ते सर्वे	वे सब
सुनन्द कुमुद	सुनन्द, कुमुद
आदयः	आदि
विष्णुपार्षदाः	विष्णुपार्षद
अञ्जलि-पुटा	हाथ जोड़कर
मूर्ध्निबद्ध	उसे सिरसे लगाये
तीव्रतेजसं	उग्र तेजवाले
आसीनं	बैठे हुए
नरशार्दूलं	नृसिंह भगवान्से
न अतिदूर	बहुत दूर नहीं (थोड़ी दूर)
चराः	रहते हुए
पृथक् ईडिरे	अलग-अलग स्तुति करने लगे ॥३९॥

ब्रह्मोवाच-

नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये
विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ।
विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान् गुणैः
स्वलीलया संदधतेऽव्ययात्मने ॥४०॥

नतः अस्मि अनन्ताय दुरन्तशक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे विश्वस्य सर्गं स्थिति संयमान् गुणैः स्वलीलया संदधते अव्यय आत्मने ॥४०॥

दुरन्तशक्तये	जिनकी शक्तियोंका अन्त पाना कठिन है,
अनन्ताय	उन अनन्त
विचित्रवीर्याय	अद्भुत पराक्रम,
पवित्रकर्मणे	पवित्रकर्मा,
विश्वस्य	विश्वकी
सर्ग स्थिति	सृष्टि, स्थिति,
संयमान्	प्रलयको
स्वलीलया	अपनी लीलासे
गुणैः संदधते	(सत्त्वादि) गुणोंके द्वारा सम्पन्न करते,
अव्यय आत्मने	अविनाशी स्वरूपको
नतः अस्मि	नमस्कार करता हूँ ॥४०॥

श्रीरुद्र उवाच–

कोपकालो युगान्तस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः ।
तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥४१॥

कोपकालः युगान्तः ते हतः अयं असुरः अल्पकः तत् सुतं पाहि उपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥४१॥

ते कोपकालः	आपके क्रोधका समय
युगान्तः	युगोंके अन्तमें (प्रलयके समय) आवेगा
अयं अल्पकः	यह क्षुद्र
असुरः हतः	असुर मार दिया गया,
भक्तवत्सल	भक्तवत्सल !
उपसृतं	शरण आये
ते भक्तं	आपके भक्त
तत् सुतं	उसके पुत्र (प्रह्लाद) की
पाहि	रक्षा कीजिए ॥४१॥

इन्द्र उवाच–

प्रत्यानीताः परम भवता त्रायता नः स्वभागा
दैत्याक्रान्तं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि ।
कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते
मुक्तिस्तेषां न हि बहुमता नारसिंहापरैः किम् ॥४२॥

प्रति आनीताः परम भवता त्रायता नः स्व भागा दैत्य आक्रान्तं हृदय-कमलं त्वत् गृहं प्रत्यबोधि कालग्रस्तं कियत् इदं अहो नाथ शुश्रूषतां ते मुक्तिः तेषां न हि बहुमता नारसिंह अपरैः किम् ॥४२॥

परम	परमपुरुष !
नः त्रायता	हम लोगोंकी रक्षा करते हुए
प्रति आनीताः	(ये) लौटाये गये
भागा	(यज्ञ) भाग तो
भवता स्व	आपके अपने ही हैं,
दैत्य आक्रान्तं	दैत्य (के आतङ्क) से ग्रस्त
हृदय-कमलं	(हमारे) हृदय-कमलको
प्रत्यबोधि	(आपने) प्रफुल्ल कर दिया
त्वत् गृहं	(वह) आपका निवास स्थान है,
नाथ ते	स्वामी ! आपको
शुश्रूषतां	सेवा करने वालोंके लिए
इदं कालग्रस्तं	यह (स्वर्गादि) कालका ग्रास
अहो कियत्	भला क्या महत्त्व रखता है।
हि	क्योंकि
नारसिंह	नृसिंह प्रभु !
तेषां मुक्तिः	उनके लिए मुक्ति भी
बहुमता न	आदरणीय नहीं है,
अपरैः किं	(फिर) अन्य भोगों-की तो बात ही क्या ॥४२॥

ऋषय ऊचुः

त्वं नस्तपः परममात्थ यदात्मतेजो
येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज ।
तद् विप्रलुप्तममुनाद्य शरण्यपाल
रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ॥४३॥

त्वं नः तपः परमं आत्थ यत् आत्मतेजः येन इदं आदिपुरुष आत्मगतं ससर्ज तत् विप्रलुप्तं अमुना अद्य शरण्यपाल रक्षा गृहीत वपुषा पुनः अन्वमंस्थाः ॥४३॥

परमं पुरुषोत्तम !
आदिपुरुष आदिपुरुष !
येन जिसके द्वारा
आत्मगतं अपनेमें लीन
इदं ससर्ज इस जगतकी (आपने) सृष्टिकी
आत्मतेजः तपः उस अपने ही तेज-तपका
त्वं नः आत्थ आपने हमको उपदेश किया था,
यत् अमुना क्योंकि इस (दैत्य) ने
तत् विप्रलुप्तं उसका उच्छेद कर दिया था
शरण्यपाल शरणागत पालक !
रक्षा उसकी रक्षाके लिए
वपुषा गृहीत यह शरीर धारण करके
पुनः (आपने) फिर
अन्वमंस्थाः (उस तपका) अनुमोदन कर दिया ॥४३॥

पितर ऊचुः

श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजै-
र्दत्तानि तीर्थसमयेऽप्यपिबत् तिलाम्बु ।
तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद् य आर्च्छत्
तस्मै नमो नृहरयेऽखिलधर्मगोप्त्रे ॥४४॥

श्राद्धानि नः अधिबुभुजे प्रसभं तनूजैः दत्तानि तीर्थ समये अपि अपिबत् तिलाम्बु तस्य उदरात् नख विदीर्णः वपात् य आर्च्छत् तस्मै नमः नृहरये अखिल धर्म गोप्त्रे ॥४४॥

नः तनूजैः हमारे पुत्रों द्वारा (हमारे लिए) किये गये
श्राद्धानि श्राद्धोंको
प्रसभं बलपूर्वक
अधिबुभुजे खा लेता था और
तीर्थसमये पवित्र समय (संक्रान्ति आदि) पर
दत्तानि तिलाम्बु अपि दिये गये (तर्पणकी) तिलाञ्जलिको भी
अपिबत् पी जाता था,
तस्य उदरात् उसका पेट
नख विदीर्ण नखसे फाड़कर
य वपात् जिन्होंने वह सब
आर्च्छत् लौटा दिया

तस्मै अखिल	उन सम्पूर्ण	**गोप्त्रे नृहरये**	रक्षक नृसिंह
धर्म	धर्मोंके		भगवान्‌को
		नमः	नमस्कार ॥४४॥

सिद्धा ऊचुः

यो नो गतिं योगसिद्धामसाधु-
रहार्षीद् योगतपोबलेन ।
नानादपं तं नखैर्निर्ददार
तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह ॥४५॥

यः नः गतिं योगसिद्धां असाधुः अहार्षीत् योगतपः बलेन नाना दपं तं नखैः निर्ददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मः नृसिंह ॥४५॥

नः योगसिद्धां	हमारी योगसे सिद्ध हुई	**तं नाना दपं**	उस अनेक प्रकारसे घमंडीको
गतिं	गतिको	**नखैः निर्ददार**	नखोंसे फाड़ दिया,
यः असाधुः	जिस दुष्टने	**तस्मै तुभ्यं**	उस आप
योगतपः	योग और तपके	**नृसिंह**	नरहरिको
बलेन अहार्षीत्	बलसे छीन लिया था,	**प्रणताः स्म**	हम प्रणाम करते हैं ॥४५॥

विद्याधरा ऊचुः

विद्यां पृथग्धारणयानुराद्धां
न्यषेधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः ।
स येन संख्ये पशुवद्धृतस्तं
मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ॥४६॥

विद्यां पृथक् धारणया अनुराद्धां न्यषेधत् अज्ञः बल वीर्य दृप्तः स येन संख्ये पशुवत् हृतः तं माया नृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ॥४६॥

पृथक् धारणया	(हमारी) विविध धारणाओंसे
अनुराद्धां विद्यां	प्राप्त की गयी विद्याओंको
बल वीर्य दृप्तः	बल और वीरताके घमंडमें
अज्ञः न्यषेधत्	जिस मूर्खने रोक दिया,
स येन	वह जिसके द्वारा
संख्ये	युद्धमें
पशुवत् हतः	पशुके समान मार दिया गया
तं माया नृसिंहं	उन मायासे नृसिंह बने भगवान्को
नित्यं प्रणताः स्म	हम नित्य प्रणाम करते हैं ॥४६॥

नागा ऊचुः

येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः ।
तद्वक्षः पाटनेनासां दत्तानन्द नमोऽस्तु ते ॥४७॥

येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः तद् वक्षः पाटनेन आसां दत्त आनन्द नमः अस्तु ते ॥४७॥

येन पापेन	जिस पापीने
नः रत्नानि	हमारे रत्न और
स्त्रीरत्नानि	श्रेष्ठ सुन्दरी स्त्रियोंको
हृतानि	छीन लिया था
तद् वक्षः	उसकी छाती
पाटनेन	फाड़कर
आसां	हम लोगोंको
आनन्द दत्त	आनन्द देनेवाले
ते नमः अस्तु	आपको नमस्कार है ॥४७॥

मनव ऊचुः

मनवो वयं तव निदेशकारिणो
दितिजेन देव परिभूतसेतवः ।
भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो
करवाम ते किमनुशाधि किङ्करान् ॥४८॥

मनवः वयं तव निदेश कारिणः दितिजेन देव परिभूत सेतवः भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो करवाम ते किं अनुशाधि किंकरान् ॥४८॥

देव	देव !
तव निदेश	आपके आदेशका
कारिणः	पालन करनेवाले
वयं मनवः	हम मनु हैं,
दितिजेन	इस दैत्यने
सेतवः परिभूत	(हमारी) धर्म-मर्यादा नष्ट कर दी थी,
स खलः	वह दुष्ट
भवता	आपके द्वारा
उपसंहृतः	समाप्त कर दिया गया,
प्रभो	प्रभो !
किंकरान्	हम सेवकोंको
अनुशाधि	आज्ञा दीजिये
ते किं करवाम	आपकी क्या सेवा करें ॥४८॥

प्रजापतय ऊचुः

प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा
न येन प्रजा वै सृजामो निषिद्धाः ।
स एष त्वया भिन्नवक्षा नु शेते
जगन्मङ्गलं सत्त्वमूर्तेऽवतारः ॥४९॥

प्रजेशा वयं ते परेश अभिसृष्टा न येन प्रजा वै सृजामः निषिद्धाः स एष त्वया भिन्नवक्षा नु शेते जगत् मङ्गलं सत्त्वमूर्ते अवतारः ॥४९॥

परेश अभिसृष्टा	आप परमेश्वरके बनाये
वयं प्रजेशा	हम प्रजापति
येन वै	जिसके द्वारा निश्चित रूपसे
निषिद्धाः	रोक दिये जानेसे
प्रजा	प्रजाकी
सृजामः न	उत्पत्ति नहीं कर पाते थे
स एष	वही यह
त्वया भिन्नवक्षा	आपके द्वारा छाती-फाड़ देनेसे
नु शेते	सर्वदाको सो गया है,
सत्त्वमूर्ते	सत्त्वमय मूर्ति !
अवतारः	(आपका) अवतार
जगत् मङ्गलं	संसारके कल्याणके लिए है ॥४९॥

गन्धर्वा ऊचुः

वयं विभो ते नटनाट्यगायका
येनात्मसाद् वीर्यबलौजसा कृताः ।
स एष नीतो भवता दशामिमां
किमुत्पथस्थः कुशलाय कल्पते ॥५०॥

वयं विभो ते नटनाट्यगायका येन आत्मसात् वीर्य बल ओजसा कृताः स एष नीतः भवता दशां इमां किं उत्पथस्थः कुशलाय कल्पते ॥५०॥

विभो ते	प्रभो ! आपके
नटनाट्य	नाचने, अभिनय करनेवाले,
गायका वयं	गानेवाले हम (सेवक) हैं,
येन वीर्य बल	जिसने (अपने) वीर्य, बल
ओजसा	पराक्रमसे
आत्मसात् कृताः	(हमें) अपना (सेवक) बना लिया था,
भवता स	आपके द्वारा वह
एष दशां	इस दशामें
नीतः	पहुँचा दिया गया,
उत्पथस्थः	कुमार्गपर चलने-वाला
किं कुशलाय	क्या कुशलपूर्वक
कल्पते	रह सकता है ॥५०॥

चारण ऊचुः

हरे तवाङ्घ्रिपङ्कजं भवापवर्गमाश्रिताः ।
यदेष साधुहृच्छयस्त्वयासुरः समापितः ॥५१॥

हरे तव अङ्घ्रि पङ्कजं भव अपवर्गं आश्रिताः यत् एष साधुहृत् छयः त्वया असुरः समापितः ॥५१॥

हरे	हरे !
साधुहृत् छयः	सत्पुरुषोंके हृदयको कष्ट देनेवाला
असुरः	असुर
त्वया समापितः	आपके द्वारा समाप्त कर दिया गया

भव अपवर्गं	(अतः) संसारसे मोक्ष देनेवाले	अङ्घ्रि पङ्कजं	चरण-कमलोंके
तव	आपके	आश्रिताः	(हम) आश्रित हैं ॥५१॥

यक्षा ऊचुः

वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञै-
स्त इह दितिसुतेन प्रापिता वाहकत्वम् ।
स तु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते
नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंश ॥५२॥

वयं अनुचर मुख्याः कर्मभिः ते मनोज्ञैः त इह दिति सुतेन प्रापिता वाहकत्वं स तु जन परितापं तत् कृतं जानता ते नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंश ॥५२॥

मनोज्ञैः	उत्तम	जन परितापं	अपने भक्तोंका संताप
कर्मभिः	कर्मोंके कारण		
वयं ते	हम लोग आपके	जानता	जानकर
अनुचर मुख्या	सेवकोंमें प्रमुख हैं,	पञ्चविंश	पच्चीसवें (आत्म) तत्त्व
त इह	वही यहां		
दिति सुतेन	दितिके पुत्र द्वारा	ते नरहर	आप नृसिंहने
वाहकत्वं	(पालकी) ढोनेवाले	पञ्चतां	पञ्चत्व (मृत्यु) को
प्रापिता	बना दिये गये।	उपनीतः	प्राप्त करा दिया ॥५२॥
स तु	वह तो		

किम्पुरुषा ऊचुः

वयं किम्पुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः ।
अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥५३॥

वयं किम्पुरुषाः त्वं तु महापुरुष ईश्वरः अयं कुपुरुषः नष्टः धिक्कृतः साधुभिः यदा ॥५३॥

वयं किम्पुरुषाः	हम किम्पुरुष हैं	**यदा साधुभिः**	जब सत्पुरुषों द्वारा
त्वं तु	आप तो	**धिक्कृतः**	धिक्कारा गया तो
ईश्वरः	सर्वसमर्थ	**अयं कुपुरुषः**	यह कुपुरुष
महापुरुष	महापुरुष हैं,	**नष्टः**	नष्ट हो गया ॥५३॥

वैतालिका ऊचुः

सभासु सत्रेषु तवामलं यशो
गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे ।
यस्तां व्यनैषीद् भृशमेष दुर्जनो
दिष्ट्या हतस्ते भगवन्यथाऽऽमयः ॥५४॥

सभासु सत्रेषु तव अमलं यशः गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे यः तां व्यनैषीत् भृशं एष दुर्जनः दिष्ट्या हतः ते भगवन् यथा आमयः ।.५४॥

सभासु	सभाओंमें तथा	**दुर्जनः भृशं**	दुष्टने पूर्णतः
सत्रेषु	ज्ञान-यज्ञोंमें	**व्यनैषीत्**	नष्ट कर दिया था,
तव अमलं	आपके निर्मल	**दिष्ट्या**	सौभाग्यवश
यशः गीत्वा	यशको गाकर	**यथा आमयः**	जैसे रोग हो वैसे
महतीं सपर्यां	बड़ी पूजा-भेंट	**भगवन्**	भगवान्
लभामहे	हम पाते थे	**ते हतः**	आपने उसे मार
तां एष	उसे इस		दिया ॥५४॥

किन्नरा ऊचुः

वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा
दितिजेन विष्टिममुनानु कारिताः ।
भवता हरे स वृजिनोऽवसादितो
नरसिंह नाथ विभवाय नो भव ॥५५॥

वयं ईश किन्नरगणाः तव अनुगा दितिजेन विष्टि अमुना नु कारिताः भवता हरे स वृजिनः अवसादितः नरसिंह नाथ विभवाय नः भव ॥५५॥

ईश	स्वामी !
वयं	हम
तव अनुगा	आपके अनुगामी
किन्नरगणाः	किन्नरगण
अमुना दितिजेन	इस दैत्य द्वारा
विष्टि नु	बेगारमें ही
कारिताः	काममें लगाये जाते थे
हरे भवता	श्रीहरि आप द्वारा
स वृजिनः	वह पापी
अवसादिता	नष्ट कर दिया गया,
नाथ नरसिंह	स्वामी नृसिंह
नः विभवाय	(ऐसे ही) हमारा अभ्युदय करनेवाले
भव	(आप) हों ॥५५॥

विष्णुपार्षदा ऊचुः

अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते
दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म ।
सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्त-
स्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः ॥५६॥

अद्य एतत् हरिनर रूपं अद्भुतं ते दृष्टं नः शरणद सर्वलोक शर्म सः अयं ते विधिकर ईश विप्रशप्तः तस्य इदं निधनं अनुग्रहाय विद्मः ॥५६॥

अद्य	आज
ते एतत्	आपका यह
अद्भुतं	अद्भुत
सर्वलोक	सब लोकोंको
शर्म	शान्ति देनेवाला
हरिनर रूपं	नृसिंह रूप
दृष्टं	देखा है
नः शरणद	हमको शरण देनेवाले
ईश	स्वामी !
विप्रशप्तः	ब्राह्मणों द्वारा प्रशप्त
अयं ते	यह आपका
विधिकर	आज्ञाकारी सेवक है
विद्मः	हम जानते हैं
तस्य इदं निधनं	उसकी यह मृत्यु
अनुग्रहाय	(उसपर) कृपा करनेके लिए है ॥५६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते दैत्यराजवधे नृसिंहस्तवो नामाष्मोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

नारद उवाच–

एवं सुरादयः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरःसराः ।
नोपैतुमशकन्मन्युसंरम्भं सुदुरासदम् ॥१॥

एवं सुर आदयः सर्वे ब्रह्म रुद्र पुरः सराः न उपेतुं अशकन् मन्युं संरम्भं सुदुरासदम् ॥१॥

एवं	इस प्रकार	**सुदुरासदं**	अत्यन्त असह्य
ब्रह्म रुद्र	ब्रह्मा और रुद्रको	**संरम्भं**	आवेशपूर्ण
पुरः सराः	आगे करके चलने-वाले	**मन्युं**	(नृसिंहके) क्रोधको
		उपेतुं	दूर करनेमें
सर्वे सुर आदयः	सभी देवतादि	**अशकन् न**	समर्थ नहीं हुए ॥१॥

साक्षाच्छ्रीः प्रेषिता देवैर्दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ।
अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात् सा नोपेयाय शङ्किता ॥२॥

साक्षात् श्रीः प्रेषिता देवैः दृष्ट्वा तत् महत् अद्भुतं अदृष्ट अश्रुत पूर्व त्वात् सा न उपेयाय शङ्किता ॥२॥

देवैः	देवताओंने	**पूर्व**	पहिले (कभी)
साक्षात् श्रीः	साक्षात् लक्ष्मीजीको	**अदृष्ट**	अनदेखे
प्रेषिता	भेजा (किन्तु)	**अश्रुत त्वात्**	अनसुने होनेसे
तत् महत्	उस महान्	**सा शङ्किता**	वे आशंकाके कारण
अद्भुतं	अद्भुत (रूप) को	**उपेयाय न**	समीप नहीं गयीं ॥२॥
दृष्ट्वा	देखकर		

प्रह्लादं प्रेषयामास ब्रह्मावस्थितमन्तिके ।
तात प्रशमयोपेहि स्वपित्रे कुपितं प्रभुम् ॥३॥

प्रह्लादं प्रेषयामास ब्रह्मा अवस्थितं अन्तिके तात प्रशमय उपेहि स्वपित्रे कुपितं प्रभुम् ॥३॥

अन्तिके	अपने समीप	**स्वपित्रे**	अपने पितापर
अवस्थितं	खड़े	**कुपितं**	क्रुद्ध
प्रह्लादं	प्रह्लादजीको	**प्रभुं**	प्रभुके
ब्रह्मा	ब्रह्माजीने	**उपेहि**	समीप जाओ,
प्रेषयामास	भेजा कि	**प्रशमय**	(उन्हें) शान्त करो
तात	'बेटा !		

तथेति शनकै राजन्महाभागवतोऽर्भकः ।
उपेत्य भुवि कायेन ननाम विधृताञ्जलिः ॥४॥

तथा इति शनकैः राजन् महाभागवतः अर्भकः उपेत्य भुवि कायेन ननाम विधृत अञ्जलिः ॥४॥

राजन् !	राजन् !	**विधृत अञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
महाभागवतः	परम भगवद् भक्त	**कायेन**	शरीरसे
अर्भकः	(उस) बालकने	**भुवि ननाम**	पृथ्वीपर लोट गये
तथा इति	'जो आज्ञा' कहकर		॥४॥
उपेत्य	समीप जाकर		

स्वपादमूले पतितं तमर्भकं
विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः ।
उत्थाप्य तच्छीर्ष्ण्यदधात् कराम्बुजं
कालाहि वित्रस्तधियां कृताभयम् ॥५॥

स्वपादमूले पतितं तं अर्भकं विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः उत्थाप्य तत् शीर्ष्णि अदधात् कराम्बुजं काल अहि वित्रस्तधियां कृत अभयम् ॥५॥

स्वपादमूले	अपने चरणोंके पास
पतितं तं	पड़े हुए उस
अर्भकं विलोक्य	बालकको देखकर
देवः कृपया	श्रीनृसिंहदेव कृपासे
परिप्लुतः	भर गये
उत्थाप्य	उठाकर
तत् शीर्ष्णि	उसके सिरपर
काल अहि	कालरूपी सर्पसे
वित्रस्तधियां	सन्त्रस्त बुद्धि लोगों-को
अभयं कृत	अभय देनेवाले
कराम्बुजं	अपना कर-कमल
अदधात्	रख दिया ॥५॥

स तत्करस्पर्शधुताखिलाशुभः
सपद्यभिव्यक्तपरात्मदर्शनः ।
तत्पादपद्मं हृदि निर्वृतो दधौ
हृष्यत्तनुः क्लिन्नहृदश्रुलोचनः ॥६॥

स तत् करस्पर्श धुत अखिल अशुभः सपदि अभिव्यक्त पर आत्म दर्शनः तत् पादपद्मं हृदि निर्वृतः दधौ हृष्यत् तनुः क्लिन्न हृत् अश्रुलोचनः ॥६॥

तत् करस्पर्श	उन भगवान्के हस्तस्पर्शसे
अखिल अशुभः	समस्त अशुभ संस्कार
धुत स	धुले वे प्रह्लादजीको
सपदि	तत्काल
पर आत्म	परमात्म-तत्त्वका
दर्शनः	साक्षात्कार
अभिव्यक्त	हो गया
तत् पादपद्मं	उन भगवान्के चरण-कमलोंको
निर्वृतः दधौ	आनन्द-मग्न होकर धारण किया
तनुः हृष्यत्	शरीर रोमांचित हो गया,
हृत् क्लिन्न	हृदय द्रवित हो गया
अश्रुलोचनः	नेत्रोंसे आँसू बहने लगा ॥६॥

अस्तौषोद्धरिमेकाग्रमनसा सुसमाहितः ।
प्रेमगद्गदया वाचा तन्नयस्तहृदयेक्षणः ॥७॥

अस्तौषीत् हरिं एकाग्र मनसा सुसमाहितः प्रेम गद्गदया वाचा तन्न्यस्त हृदय ईक्षणः ॥७॥

तत् हृदय	उन भगवान्में हृदय और
ईक्षणः न्यस्त	दृष्टि लगाये
एकाग्र मनसा	एकाग्र मनसे
सुसमाहितः	अत्यन्त संयत होकर
प्रेम गद्गदया वाचा हरिं	प्रेमके कारण गद्गद वाणीसे नृसिंह भगवान्की
अस्तौषीत्	स्तुति करने लगे ॥७॥

प्रह्लाद उवाच—

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः
सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः ।
नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः
किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥८॥

ब्रह्मा आदयः सुरगणाः मुनयः अथ सिद्धाः सत्त्व एकतान मतयः वचसां प्रवाहैः न आराधितुं पुरुगुणैः अधुना अपि पिप्रुः किं तोष्टुं अर्हति स मे हरिः उग्रजातेः ॥८॥

सत्त्व एकतान मतयः	सदा सत्वगुणमें लगी बुद्धिवाले
ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मादिक
सुरगणाः मुनयः	देवता, मुनिजन,
अथ सिद्धाः	और सिद्ध लोग
वचसां प्रवाहैः	वाणीकी धारासे तथा
पुरुगुणैः	अपने बहुतसे गुणोंसे
अधुना अपि आराधितुं	अब तक भी (आपको) प्रसन्न करनेमें
पिप्रुः न	समर्थ नहीं हुए (तब)
मे उग्रजातेः	मुझ घोर (असुर) जातिमें उत्पन्नपर
तोष्टुं अर्हति किं	(आप) सन्तुष्ट होंगे क्या ॥८॥

मन्ये धनाभिजनरूपतपः श्रुतौज-
स्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो
भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय ॥६॥

मन्ये धन अभिजन रूप तपः श्रुत ओजः तेजः प्रभाव बल पौरुष बुद्धि योगाः न आराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसः भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय ॥६॥

मन्ये	मानता हूँ कि	**परस्य पुंसः**	परमपुरुषको
धन अभिजन	धन, परिवार,	**आराधनाय**	प्रसन्न करनेके हेतु
रूप तपः	सौन्दर्य, तप,	**न भवन्ति**	नहीं होते;
श्रुत ओजः	विद्या, ओज,	**भगवान्**	भगवान् (आप)
तेजः प्रभाव	तेज, प्रभाव,	**हि भक्त्या**	क्योंकि भक्तिके द्वारा
बल पौरुष	बल, पुरुषार्थ,	**गजयूथपाय**	गजेन्द्रपर
बुद्धि योगाः	बुद्धि, साधन,	**तुतोष**	प्रसन्न हो गये ॥६॥

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थं-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥१०॥

विप्रात् द्विषट् गुण युतात् अरविन्दनाभ पादारविन्द विमुखात् श्वपचं वरिष्ठं मन्ये तत् अर्पित मनः वचन ईहित अर्थ प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥१०॥

द्विषट् गुण	बारह गुणोंसे	**विप्रात्**	ब्राह्मणसे
युतात्	युक्तपर	**श्वपचं वरिष्ठं**	चाण्डालको श्रेष्ठ
अरविन्दनाभ	भगवान् पद्मनाभके	**मन्ये**	मानता हूँ
पादारविन्द	चरण-कमलोंसे	**तत् अर्पित**	उन (भगवान्) को अर्पित
विमुखात्	विमुख		

मनः वचन	मन, वाणी,	**पुनाति**	पवित्र कर लेता है
ईहित अर्थ	कर्म, धन,	**भूरिमानः**	बडप्पनके अभिमान
प्राणं	प्राणवाला		वाला
स कुलं	कुल सहित (अपने) को	**तु न**	तो नहीं ॥१०॥

नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो
मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते ।
यद् यज्जनो भगवते विदधीत मानं
तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः ॥११॥

न एव आत्मनः प्रभुः अयं निजलाभ पूर्णः मानं जनात् अनिदुषः करुणः वृणीते यत् यत् जनः भगवते विदधीत मानं तत् च आत्मने प्रति-मुखस्य यथा मुखश्रीः ॥११॥

अयं	ये	**यत्**	क्योंकि
आत्मनः प्रभुः	जीवात्माओंके स्वामी	**यथा**	जैसे
		मुखश्रीः	मुखकी शोभा
निजलाभ	अपने स्वरूपो-पलब्धिसे ही	**प्रति-मुखस्य**	मुखके प्रतिविम्बकी होती है
पूर्णः	परिपूर्ण हैं,	**जनः यत्**	मनुष्य जो
अविदुषः जनात्	अज्ञानी लोगोंसे	**भगवते मानं**	भगवान्‌का सम्मान
मानं न एव	सम्मान नहीं ही	**विदधीत**	करता है
वृणीते	चाहते हैं	**तत् च**	वह तो
करुणः	कृपा करके ही (स्वीकार करते हैं)	**आत्मने**	अपने लिये ही होता है ॥११॥

तस्मादहं विगतविक्लव ईश्वरस्य
सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम् ।
नीचोऽजया गुणविसर्गमनुप्रविष्टः
पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥१२॥

तस्मात् अहं विगतविक्लव ईश्वरस्य सर्वात्मना महि गृणामि यथा मनीषं नीचः अजया गुणविसर्गं अनुप्रविष्टः पूयेत येन हि पुमान् अनुवर्णितेन ॥१२॥

तस्मात्	इसलिए
विगतविक्लव	व्याकुलता छोड़कर
अहं सर्वात्मना	मैं सम्पूर्ण मनसे
मनीषं यथा	अपनी बुद्धिके अनुसार
ईश्वरस्य महि	भगवान्‌की महिमाका
अहं गृणामि	मैं वर्णन कर रहा हूँ,
हि	क्योंकि
येन अनुवर्णितेन	जिसके बार-बार वर्णनसे
अजया	मायाके द्वारा
गुणविसर्गं	गुणोंकी सृष्टि (संसार) में
अनुप्रविष्टः	प्रवेश किया (पड़ा)
नीचः पुमान्	नीच पुरुष भी
पूयेत	पवित्र हो जाता है ॥१२॥

सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो
ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः ।
क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य
विक्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः ॥१३॥

सर्वे हि अमी विधिकराः तव सत्त्वधाम्नः ब्रह्मा आदयः वयं एश इव न च उद्विजन्तः क्षेमाय भूतय उत आत्म सुखाय च अस्य विक्रीडितं भगवतः रुचिर अवतारैः ॥१३॥

हि	क्योंकि
अमी सर्वे	ये सब
ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मादिक (देवता)
सत्त्वधाम्नः	सत्त्वस्वरूप
तव विधिकराः	आपके आज्ञाकारी हैं,
वयं एश इव	हम दैत्योंके समान
उद्विजन्तः च न	(आपसे) शत्रुता तो नहीं करते
भगवतः	भगवन् आपकी
रुचिर अवतारैः	सुन्दर अवतार धारण करके
विक्रीडितं	(की गयी) लीलाएँ
अस्य	इस संसारके
क्षेमाय च	कल्याणके लिए और
भूतय	अभ्युदयके लिए

उत आत्म	अथवा आत्मानन्दकी	सुखाय	प्राप्ति करानेके लिए है ॥१३॥

तद् यच्छ मन्युमसुरश्च हतस्त्वयाद्य
मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या ।
लोकाश्च निर्वृतिमिताः प्रतियन्ति सर्वे
रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरन्ति ॥१४॥

तत् यच्छ मन्युं असुरः च हतः त्वया अद्य मोदेत साधुः अपि वृश्चिक सर्प हत्या लोकाः च निर्वृति इताः प्रतियन्ति सर्वे रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरन्ति ॥१४॥

त्वया अद्य	आपने आज	**सर्वे लोकाः च**	सब लोक भी
असुरः च	असुरको भी	**निर्वृति इताः**	शान्त हुए (आपकी)
हतः	मार दिया	**प्रतियन्ति**	प्रतीक्षा कर रहे हैं,
तत्	इसलिए	**नृसिंह**	नृसिंह (प्रभु)
मन्युं यच्छ	क्रोध त्याग दीजिये,	**विभयाय**	भयसे छूटनेके लिए
साधुः अपि	सत्पुरुष भी	**जनाः रूपं**	लोग (आपके) इस
वृश्चिक सर्प	विच्छू, सांपको		रूपका
हत्या मोदेत	मार देनेसे प्रसन्न ही होते हैं,	**स्मरन्ति**	स्मरण किया करेंगे ॥१४॥

नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्य-
जिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात् ।
आन्त्रस्रजः क्षतजकेसरशङ्कुकर्ण-
न्निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥१५॥

न अहं बिभेमि अजित ते अति भयानक आस्य जिह्वा अर्कनेत्र भ्रुकुटी रभस उग्रदंष्ट्रात् आन्त्रस्रजः क्षतजकेसर शङ्कु कर्णात् निर्ह्रादभीत दिगिभात् अरिभिन्न नख अग्रात् ॥१५॥

अजित	अजित !
ते अति	आपके अत्यन्त
भयानक आस्य	भयानक मुख,
जिह्वा	जिह्वा,
अर्कनेत्र	सूर्यके समान नेत्र,
भ्रुकुटी रभस	भौंहोंके चढ़ने,
उग्रदंष्ट्रात्	घोर दाढ़ों,
आन्त्रस्रजः	आंतोंकी माला,
क्षतजकेसर	रक्त भींगे अयाल
शङ्कु कर्णात्	खूंटेसे खड़े कानों तथा
अरिभिन्न	शत्रुको फाड़ देनेवाले
नख अग्रात्	नखोंकी नोकसे
अहं न	मैं नहीं
बिभेमि	डरता ॥१५॥

त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्र-
संसारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः ।
बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं
प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ॥१६॥

त्रस्तः अस्मि अहं कृपणवत्सल दुःसह उग्र संसारचक्र कदनात् ग्रसतां प्रणीतः बद्धः स्वकर्मभिः उशत्तम ते अङ्घ्रिमूलं प्रीतः अपवर्ग शरणं ह्वयसे कदा नु ॥१६॥

कृपणवत्सल	दीनवत्सल !
स्वकर्मभिः	अपने कर्मोंसे
बद्धः	बँधा,
उग्र दुःसह	घोर असह्य
संसारचक्र	संसारके (आवा-गमन) चक्रमें
प्रणीतः	डाला हुआ
ग्रसतां	उससे निगला जाता
कदनात्	रौंदे जानेसे
अहं त्रस्तः	मैं भयभीत
अस्मि	हूँ,
उशत्तम	पुरुषोत्तम !
ते अङ्घ्रि मूलं	आपके चरणोंमें
अपवर्ग शरणं	मोक्ष-शरणके लिए
प्रीतः	प्रसन्न होकर
नु कदा	भला कब (आप)
ह्वयसे	पुकारेंगे ॥१६॥

यस्मात् प्रियाप्रियवियोगसयोगजन्म-
शोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः ।

दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाहं
भूमन्भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम् ॥१७॥

यस्मात् प्रिय अप्रिय वियोग संयोग जन्म शोक अग्निना सकल योनिषु दह्यमानः दुःख औषधं तत् अपि दुःखं अतत् धिया अहं भूमन् भ्रमामि वद मे तव दास्य योगम् ॥१७॥

भूमन्	सर्वव्यापक प्रभु !	**दुःख औषधं**	(वहां जो) दुःखकी दवा है
यस्मात्	क्योंकि	**तत् अपि दुःखं**	वह भी दुःखदायी है,
प्रिय अप्रिय	प्रिय-अप्रियके	**अतत् धिया**	अतथ्य बुद्धि
वियोग-संयोग	वियोग-मिलनसे	**अहं भ्रमामि**	मैं भटक रहा हूँ,
जन्म	होनेवाली	**तव दास्य**	आप अपनी सेवाका
शोक-अग्निना	शोकाग्निसे	**योगं वद**	उपाय बतलाइये
सकल योनिषु	सब योनियोंमें		॥१७॥
दह्यमानः	जलता रहा हूँ,		

सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया
लीलाकथास्तव नृसिंह विरिञ्चगीताः ।
अञ्जस्ततर्म्यनुगृणन्गुणविप्रमुक्तो
दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससङ्गः ॥१८॥

सः अहं प्रियस्य सुहृदः पर देवताया लीला कथाः तव नृसिंह विरिञ्चगीताः अञ्जः तितर्मि अनुगृणन् गुण विप्रमुक्तः दुर्गाणि ते पद युग आलय हंस सङ्गः ॥१८॥

सः अहं	वह मैं (अपने)	**तव लीला कथाः**	आपके अवतार चरितोंका
प्रियस्य सुहृदः	प्रिय हितैषी	**अनुगृणन्**	बार-बार गान करता हुआ
पर देवताया	परम आराध्य देव	**गुण विप्रमुक्तः**	गुणों (संसार) से छूटकर
नृसिंह	भगवान् नृसिंह !		
विरिञ्चिगीताः	ब्रह्माजी द्वारा वर्णित		

ते पद युग	आपके चरणद्वयमें	**अञ्जः**	सरलतासे
आलय हंस	रहनेवाले हंस (महापुरुषों) के	**दुर्गाणि**	कठिनाइयोंसे
सङ्गः	संगसे	**तितर्मि**	पार हो जाऊँगा ॥१८॥

बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह
नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः ।
तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्ट-
स्तावद् विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ॥१९॥

बालस्य न इह शरणं पितरौ नृसिंह न आर्तस्य च अगदं उदन्वति मज्जतः नौः तप्तस्य तत् प्रतिविधिः य इह अञ्जसा इष्टः तावत् विभो तनुभृतां त्वत् उपेक्षितानाम् ॥१९॥

नृसिंह	नृसिंह प्रभो !	**उदन्वति**	जलाशयमें
त्वत्	आपके द्वारा	**मज्जतः नौः**	डूबते हुएकी नौका
उपेक्षितानां	उपेक्षा किये गये	**तप्तस्य**	संतप्तका
तनुभृतां	शरीर धारियोंके लिए	**तत् प्रतिविधिः**	वह कोई प्रतिकार
		य इह	जो यहाँ
तावत्	तब तक	**अञ्जसा इष्टः**	सरलतासे अभीष्ट हो
न बालस्य	न बालकी		
पितरौ	माता-पिता,	**शरणं न**	रक्षक नहीं है ॥१९॥
च आर्तस्य अगदं	और रोगीकी दवा,		

यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद्
यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा ।
भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः
सञ्चोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम् ॥२०॥

यस्मिन् यतः यर्हि येन च यस्य यस्मात् यस्मै यथा यत् उत यः तु स्वपरः परः वा भावः करोति विकरोति पृथक् स्वभावः सञ्चोदितः तत् अखिलं भवतः स्वरूपम् ॥२०॥

पृथक् स्वभावः	भिन्न-भिन्न स्वभावके
परः वा	श्रेष्ठ (ब्रह्मादि) अथवा
स्वपरः	(कालादि) अपने ही स्वरूपवाले
यस्मिन्	जिस आधारमें
यतः	जिस निमित्तसे,
येन	जिन (पञ्च भूतादि) उपकरणोंसे
च यस्य	तथा जिस (जीव) का
यस्मात्	जिन साधनोंसे
यस्मै	जिस प्रयोजनके लिए
यथा	जिस विधिसे
यत्	जिस कारण
यः भावः	जो भाव उत्पन्न
करोति	करते हैं,
उत वा यत्	अथवा जो कुछ
विकरोति	रूपान्तरित करते हैं,
तत् सञ्चोदितः	उनके द्वारा प्रेरित
अखिलं	सब कुछ
भवतः स्वरूपं	आपका स्वरूप है

॥२०॥

माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः
कालेन चोदितगुणानुमतेन पुंसः ।
छन्दोमयं यदजयार्पितषोडशारं
संसारचक्रमज कोऽतितरेऽत् त्वदन्यः ॥२१॥

माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः कालेन चोदित गुण अनुमतेन पुंसः छन्दः मयं यत् अजया अर्पित षोडश अरं संसार चक्रं अज कः अतितरेत् त्वत् अन्यः ॥२१॥

पुंसः अनुमतेन	पुरुषकी अनुमतिसे
कालेन चोदित	काल द्वारा प्रेरित (क्षोभित)
गुण माया	गुणवाली माया
कर्ममयं बलीयः	कर्ममय बलवान
मनः सृजति	मन (लिङ्ग-शरीर) को उत्पन्न करती है,
यत् अजया	यह जो माया द्वारा
अर्पित	दिया गया
छन्दः मयं	वेदमय
षोडश	सोलह (मन, दस इन्द्रिय, पंच तन्मात्र) रूप
अरं	आरोंका
संसार चक्र	संसार-चक्र है,
अज	अजन्मा प्रभु !

त्वत् अन्यः आपसे पृथक रहकर / **कः अतितरेत्** कौन पारकर सकता है ॥२१॥

स त्वं हि नित्यविजितात्मगुणः स्वधाम्ना
कालो वशीकृतविसृज्यविसर्गशक्तिः ।
चक्रे विसृष्टमजयेश्वर षोडशारे
निष्पीड्यमानमुपकर्ष विभो प्रपन्नम् ॥२२॥

स त्वं हि नित्यविजित आत्मगुणः स्वधाम्ना कालः वशीकृत विसृज्य विसर्ग शक्तिः चक्रे विसृष्टं अजय ईश्वर षोडश अरे निष्पीड्यमानं उपकर्ष विभो प्रपन्नम् ॥२२॥

हि	क्योंकि	**विसर्ग शक्तिः**	सृष्टि करनेवाली शक्ति मायाको
अजय ईश्वर	अजेय, सर्वसमर्थ,	**विसृज्य**	त्यागकर
विभो	प्रभो !	**षोडश अरे**	सोलह अरोंवाले
स त्वं	वे आप	**चक्रे विसृष्टं**	चक्रमें डालकर
स्वधाम्ना	अपने चित् प्रकाशसे	**निष्पीड्यमानं**	कुचले जाते हुए
आत्मगुणः	बुद्धिके गुणोंको	**(मां) प्रपन्नं**	मुझ शरणागतको
नित्यविजित	सदा जीते हुए हैं,	**उपकर्ष**	(अपने पास) खींच लीजिये ॥२२॥
कालः वशीकृत	कालको वशमें किये हैं,		

दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपाना-
मायुः श्रियो विभव इच्छति यान्जनोऽयम् ।
येऽस्मत्पितुः कुपितहासविजृम्भितभ्रू-
विस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ॥२३॥

दृष्टा मया दिवि विभो अखिल धिष्ण्यपानां आयुः श्रियः विभव इच्छति यान् जनः अयं ये अस्मत् पितुः कुपित हास विजृम्भित भ्रू विस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ॥२३॥

विभो	प्रभो !
दिवि	स्वर्गमें
अखिल	सब
धिष्ण्यपानां	लोकपालोंकी
आयु श्रियः	आयु, लक्ष्मी,
विभव	वैभव
यान् अयं जनः	जिनको ये (संसारी) लोग
इच्छति	(पानेकी) इच्छा करते हैं,
ये अस्मत्	जो मेरे
पितुः कुपित	पिताके क्रोध करके
हास	हँसी सहित
भ्रू विजृम्भित	भौंह टेढ़ी करके
विस्फूर्जितेन	संकेत करने मात्रसे
लुलिताः	लूट ली जाती थीं
स तु ते	उनको तो आपने
निरस्तः	मार दिया
मया दृष्टा	यह मैंने देख लिया ॥२३॥

तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषो ज्ञ
आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिञ्चात् ।
नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण
कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ॥२४॥

तस्मात् अमूः तनुभृतां अहं आशिषः ज्ञः आयुः श्रियं विभवं ऐन्द्रियं आविरिञ्चात् न इच्छामि ते विलुलितान् उरु विक्रमेण कालात्मनः उपनय मां निजभृत्य पार्श्वम् ॥२४॥

तस्मात्	इसलिए
अमूः तनुभृतां	इन शरीर धारियों-की
आशिषः	अभिलाषाएँ
आविरिञ्चात्	ब्रह्मलोक तककी
आयुः श्रियं	आयु, लक्ष्मी,
विभवं ऐन्द्रियं	वैभव, ऐन्द्रिक भोग (की वास्तविकता)
अहं ज्ञः	मैं जानता हूँ,
ते उरु विक्रमेण	आप अनन्त पराक्रम
कालात्मनः	कालस्वरूप द्वारा
विलुलितान्	नष्ट की गयी उनकी
इच्छामि न	इच्छा नहीं करता,
निजभृत्य	अपने सेवकोंकी
पार्श्वं मां	सन्निधिमें मुझे
उपनय	ले चलिये ॥२४॥

कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः
क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ।

निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्
कामानलं मधुलवैः शमयन्दुरापैः ॥२५॥

कुत्र आशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः क्व इदं कलेवरं अशेष रुजां विरोहः निर्विद्यते न तु जनः यत् अपि इति विद्वान् काम अनलं मधुलवैः शमयन् दुरापैः ॥२५॥

श्रुतिसुखा	सुननेमें ही सुखद लगनेवाली	**यत् इति**	क्योंकि इस प्रकार
आशिषः	(भोग-सुखकी) अभिलाषाएँ जो	**विद्वान् अपि**	जानते हुए भी
मृगतृष्णिरूपाः	मृगतृष्णके समान हैं,	**जनः दुरापैः**	लोग दुष्प्राप्य
कुत्र	कहां और	**मधुलवैः**	मधु-कणों (भोगों) से
अशेष रुजां	सम्पूर्ण रोगोंका	**काम अनलं**	कामाग्निको
विरोहः	उत्पत्ति स्थान	**शमयन्**	शान्त करनेमें (लगे रहकर)
इदं कलेवरं क्व	यह शरीर कहां,	**निर्विद्यते न तु**	विरक्त नहीं ही होते ॥२५॥

क्वाहं रजःप्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन्
जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकम्पा ।
न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया
यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः ॥२६॥

क्व अहं रजःप्रभव ईश तमः अधिके अस्मिन् जातः सुर इतर कुले क्व तव अनुकम्पा न ब्रह्मणः न तु भवस्य न वै रमाया यत् मे अर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः ॥२६॥

ईश	स्वामी !	**रजःप्रभव**	रजोगुण प्रधान
तमः अधिके	तमोगुण प्रधान	**क्व अहं**	कहां मैं
अस्मिन्	इस	**क्व तव**	कहां आपकी (यह)
सुर इतर कुले	असुर-कुलमें	**अनुकम्पा**	कृपा !
जातः	उत्पन्न	**यत् प्रसादः**	जो कृपा

ब्रह्मणः न	ब्रह्माजीको नहीं,
भवस्य तु न	शंकरजी को भी नहीं,
वै रमाया न	अरे लक्ष्मीको भी नहीं (कह)
मे शिरसि	मेरे मस्तकपर
पद्मकरः	(आपने अपना) कमलकर
अर्पितः	रखा ॥२६॥

नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्या-
ज्जन्तोर्यथाऽऽत्मसुहृदो जगतस्तथापि ।
संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः
सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम् ॥२७॥

न एषा पर अवर मतिः भवतः ननु स्यात् जन्तोः यथा आत्म सुहृदः जगतः तथा अपि संसेवया सुरतरोः इव ते प्रसादः सेवा अनुरूपं उदयः न परअवर त्वम् ॥२७॥

जन्तोः यथा	सामान्य जनोंके समान
एषा पर अवर	यह बड़े-छोटीकी
मतिः भवतः	बुद्धि आपमें
ननु न स्यात्	निश्चय नहीं है,
जगतः	सम्पूर्ण विश्वके आप
आत्म सुहृदः	आत्मा और सुहृद हैं
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी
सुरतरोः इव	कल्प-वृक्षके समान
संसेवया	सेवा (भजन) करनेसे
ते प्रसादः	आपकी कृपा होती है,
सेवा अनुरूपं	सेवाके अनुसार
उदयः	(कृपाका) प्राकट्य होता है,
त्वं पर अवर	आपको (कोई) बड़ा या छोटा
न	नहीं है ॥२७॥

एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे
कामाभिकाममनु यः प्रपतन्प्रसङ्गात् ।
कृत्वाऽऽत्मसात् सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः
सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम् ॥२८॥

एवं जनं निपतितं प्रभव अहि कूपे काम अभिकामं अनु यः प्रपतन् प्रसङ्गात् कृत्वा आत्मसात् सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः सः अहं कथं नु विसृजे तव भृत्य सेवाम् ॥२८॥

एवं जनं	इस प्रकार लोग	**सुरर्षिणा**	देवर्षिने
अहि प्रभव	(काल) सर्पके प्रभाववाले	**आत्मसात्**	अपना
		कृत्वा	बना कर
कूपे	कुएँमें	**गृहीतः**	बचा लिया,
कामं अनु	एक कामनाके पीछे	**सः अहं**	वह मैं
अभिकामं	दूसरी कामनासे	**तव भृत्य**	आपके सेवककी
यः निपतितं	जो गिरे हुए हैं	**सेवां नु कथं**	सेवा भला कैसे
प्रसङ्गात्	उनके संसर्गसे	**विसृजे**	छोड़ सकता हूँ
प्रपतन्	गिरते हुए (मुझे)		॥२८॥

मत्प्राणरक्षणमनन्त पितुर्वधश्च
मन्ये स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं विधातुम् ।
खड्गं प्रगृह्य यदवोचदसद्विधित्सु-
स्त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं हरामि ॥२९॥

मत् प्राण रक्षणं अनन्त पितुः वधः च मन्ये स्वभृत्य ऋषि वाक्यं ऋतं विधातुं खड्ग प्रगृह्य यत् अवोचत् असत् विधित्सुः त्वां ईश्वरः मत् अपरः अवतु कं हरामि ॥२९॥

अनन्त	अनन्त !	**विधातुं**	करनेके लिए (आपने किया)
मन्ये	(मैं) मानता हूँ कि		
मत् प्राण	मेरे प्राणकी	**यत्**	क्योंकि (मेरे पिताने)
रक्षणं च	रक्षा और	**खड्ग प्रगृह्य**	तलवार लेकर
पितुः वधः	मेरे पिताका वध	**असत् विधित्सुः**	अन्याय करनेकी इच्छासे
स्वभृत्य ऋषि	अपने सेवक सनकादि ऋषियोंके	**अवोचत्**	बोला
वाक्यं ऋतं	वचन सच	**मत् अपरः**	'मुझसे भिन्न

ईश्वरः त्वं अवतु	कोई ईश्वर है तो तेरी रक्षा करें (मैं तेरा)	**कं हरामि**	सिर काटता हूँ।' ॥२६॥

एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत् त्व-
माद्यन्तयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च ।
सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमाययेदं
नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः ॥३०॥

एकः त्वं एव जगत् एतत् अमुष्य यत् त्वं आदि अन्तयोः पृथक् अवस्यसि मध्यतः च सृष्ट्वा गुण व्यतिकरं निजमायया इदं नाना इव तैः अवसितः तत् अनु प्रविष्टः ॥३०॥

एतत् जगत्	यह जगत्	**इदं गुण**	इस गुणोंके
एकः त्वं एव	एकमात्र आप ही हैं,	**व्यतिकरं**	विकार (विश्व) को
		निजमायया	अपनी मायासे
यत्	क्योंकि	**सृष्ट्वा**	निर्मित करके
अमुष्य आदि	इसकी आदि,	**तैः नाना इव**	उनके द्वारा नानाकी भांति
अन्तयोः	अन्तमें		
च मध्यतः च	तथा मध्यमें भी	**अवसितः**	प्रतीत होते हुए
पृथक्	इससे पृथक	**तत् अनु**	उन सबमें
अवस्यसि	रहते हैं,	**प्रविष्टः**	प्रविष्ट हैं ॥३०॥

त्वं वा इदं सदसदीश भवांस्ततोऽन्यो
माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था ।
यद् यस्य जन्म निधनं स्थितिरीक्षणं च
तद् वै तदेव वसुकालवदष्टितर्वोः ॥३१॥

त्वं वा इदं सत् असत् ईश भवान् ततः अन्यः माया यत् आत्म पर बुद्धिः इयं हि अपार्था यत् यस्य जन्म निधनं स्थितिः ईक्षणं च तद् वै तत् एव वसु काल वत् अष्टि तर्वोः ॥३१॥

ईश	स्वामी
त्वं	आप
वा इदं	अथवा यह संसार
सत् असत्	कारण-कार्य
ततः अन्यः	और उससे भिन्न भी
भवान्	आप ही हैं,
हि यत् इयं	क्योंकि यह जो
आत्म पर	अपना-पराया
बुद्धिः	बुद्धि है
अपार्था	तथ्यहीन है,
यत् यस्य	क्योंकि जिससे
	जिसकी
जन्म-निधनं	जन्म, लय,
स्थितिः	स्थिति
च ईक्षणं	और प्रकाश होता है,
तद् वै	वह निश्चय ही
तत् एष	वही है
तर्वोः	वृक्षके
अष्टि	गन्ध तन्मात्राकी दृष्ठिसे
वसु काल	फल और वृक्षके
वत्	समान ॥३१॥

न्यस्येदमात्मनि जगद् विलयाम्बुमध्ये
शेषेऽऽत्मना निजसुखानुभवो निरीहः ।
योगेन मीलितदृगात्मनिपीतनिद्र-
स्तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणांश्च युङ्क्ते ॥३२॥

न्यस्य इदं आत्मनि जगत् विलय अम्बु मध्ये शेषे आत्मना निज सुख अनुभवः निरीहः योगेन मीलित दृक् आत्मनि पीत निद्रः तुर्ये स्थितः न तु तमः न गुणान् च युङ्क्ते ॥३२॥

इदं जगत्	इस विश्वको
आत्मनि न्यस्य	अपनेमें लीन करके
विलय अम्बु	प्रलय पयोधि
मध्ये	के भीतर
निज सुख	आत्मानन्दका
अनुभवः	अनुभव करते हुए
आत्मना योगेन	अपने योगसे
मीलित दृक्	दृष्टि बन्द करके
निरीहः शेषे	निष्क्रिय सोते हैं,
आत्मनि	अपने स्वरूपमें
पीत निद्रः	निद्राको पीकर
तुर्ये स्थितः	तुरीय (ब्रह्मपद) में स्थित
न तु तमः	न तो तमोगुणसे
च न गुणान्	और न विषयोंको ही
युङ्क्ते	उपभोग करते ॥३२॥

तस्यैव ते वपुरिदं निजकालशक्त्या
सञ्चोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम् ।
अम्भस्यनन्तशयनाद् विरमत्समाधे-
र्नाभेरभूत् स्वकणिकावटवन्महाब्जम् ॥३३॥

तस्य एव ते वपुः इदं निजकाल शक्त्या सञ्चोदितः प्रकृतिधर्मण आत्मगूढं अम्भसि अनन्त शयनात् विरमत् समाधेः नाभेः अभूत् स्वकणिका वट वत् महाब्जम् ॥३३॥

अम्भसि	(प्रलय) समुद्र जलमें	**आत्मगूढं**	अपनेमें लीन
अनन्त शयनात्	शेष-शय्यापर सोये	**वट स्वकणिका**	वटके अपने बीजके
समाधेः विरमत्	आपकी समाधि टूटनेपर	**वत्**	समान
		नाभेः	नाभिसे
निजकाल	अपनी काल	**महाब्जं**	ब्रह्माण्ड कमल
शक्त्या	शक्तिसे	**अभूत्**	उत्पन्न हुआ
सञ्चोदितः	प्रेरित	**तस्य ते**	उसी आपका
प्रकृति धर्मण	प्रकृतिके धर्म (गुणों) से	**इदं वपुः**	यह (ब्रह्माण्ड) शरीर है ॥३३॥

तत्सम्भवः कविरतोऽन्यदपश्यमान-
स्त्वां बीजमात्मनि ततं स्वबहिर्विचिन्त्य ।
नाविन्ददब्दशतमप्सु निमज्जमानो
जातेऽङ्कुरे कथमुहोपलभेत बीजम् ॥३४॥

तत् सम्भवः कविः अतः अन्यत् अपश्यमानः त्वां बीजं आत्मनि ततं स्व बहिः विचिन्त्य न अविन्दत् अब्द शतं अप्सु निमज्जमानः जाते अङ्कुरे कथं उह उपलभेत बीजम् ॥३४॥

तत् सम्भवः	उस (नाभि-कमल) से उत्पन्न	**अतः अन्यत्**	उस (कमल) से भिन्न दूसरेको
कविः	बुद्धिमान ब्रह्माजीने	**अपश्यमानः**	न देखकर

आत्मनि ततं	अपनेमें व्याप्त	न अविन्दत्	नहीं पा सके
त्वां बहिः	आपको बाहर	शङ्कुरे जाते	अङ्कुर उत्पन्न हो जानेपर
विचिन्त्य	सोचकर		
शतं अब्दं	सौ वर्ष तक	उह कथं	अरे भला कैसे
अप्सु	(प्रलय) जलमें	बीजं उपलभेत	बीज पाया जा सकता है ॥३४॥
निमज्जमानः	डुबकी लगानेपर भी		

स त्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितोऽब्जं
कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः ।
त्वामात्मनीश भुवि गन्धमिवातिसूक्ष्मं
भूतेन्द्रियाशयमये विततं ददर्श ॥३५॥

स तु आत्मयोनिः अतिविस्मित आस्थितः अब्जं कालेन तीव्रतपसा परिशुद्ध भावः त्वां आत्मनि ईश भुवि गन्धं इव अतिसूक्ष्मं भूत इन्द्रिय आशयमये विततं ददर्श ॥३५॥

स आत्मयोनिः	वे स्वयम्भू (ब्रह्मा)	भुवि गन्धं इव	पृथ्वीमें गन्धके समान
तु	तो		
अतिविस्मित	बहुत चकित होकर	आत्मनि	अपने भीतर
अब्जं आस्थितः	(उसी) कमलपर बैठ गये,	ईश त्वां	स्वामी आपको
		अतिसूक्ष्मं	अत्यन्त सूक्ष्म रूपसे
तीव्रतपसा	कठोर तपस्यासे	विततं	व्याप्त
कालेन	दीर्घकालमें	भूत इन्द्रिय	पंचभूत, इन्द्रिय,
परिशुद्ध भावः	हृदय शुद्ध होनेपर	आशयमये	अन्तःकरणमय
		ददर्श	देखा ॥३५॥

एवं सहस्रवदनाङ्घ्रिशिरःकरोरु-
नासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम् ।
मायामयं सदुपलक्षितसन्निवेशं
दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं विरिञ्चः ॥३६॥

एवं सहस्रवदन अङ्घ्रि शिरः कर उरु नासा आस्य कर्ण नयन आभरण आयुध आढ्यं मायामयं सत् उपलक्षित सन्निवेशं दृष्ट्वा महापुरुषं आप मुदं विरिञ्चः ॥३६॥

एवं	इसी प्रकार	**आढ्यं**	सम्पन्न
सहस्रवदन	हजारों मुख,	**सत् उपलक्षित**	सत् कहे जानेवाले
अङ्घ्रि शिरः	पैर, सिर,	**मायामयं**	मायामय
कर उरु	हाथ, जांघें,	**महापुरुषं**	विराट् पुरुषको
नासा आस्य	नाक मुँह,	**दृष्ट्वा**	देखकर
कर्ण नयन	नाक, कान वाले,	**विरिञ्चः**	ब्रह्माजीको
आभरण	आभूषण,	**मुदं आप**	आनन्द प्राप्त हुआ ॥३६॥
आयुध	आयुधोंसे		

तस्मै भवान्हयशिरस्तनुवं च बिभ्रद्
वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ ।
हत्वाऽऽनयच्छ्रुतिगणांस्तु रजस्तमश्च
सत्त्वं तव प्रियतमां तनुमामनन्ति ॥३७॥

तस्मै भवान् हयशिरः तनुवं च बिभ्रत् वेद द्रुहाः अतिबलौ मधु कैटभ आख्यौ हत्वा अनयत् श्रुतिगणान् तु रजः तमः च सत्त्वं तव प्रियतमां तनुं आमनन्ति ॥३७॥

तस्मै	उसी (प्रलय-समुद्र) में	**आख्यौ**	नामवाले (असुरों) को
भवान्	आपने	**हत्वा**	मारकर
हयशिरः	हयग्रीव	**श्रुति गणान् तु**	वेदोंको तो
तनुवं च	शरीर भी	**अनयत्**	ले आये (ब्रह्माको दिया)
विभ्रत्	धारण करके		
रजः तमः	रजोगुण और तमोगुण रूप	**सत्त्वं तव**	सत्त्वगुणको आपका
		प्रियतमां तनुं	अत्यन्त प्रिय शरीर
अतिबलौ	अत्यन्त बलवान	**आमनन्ति**	माना जाता है ॥३७॥
वेद द्रुहाः	वेद-द्रोही		
मधु कैटभ	मधु-कैटभ		

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारै-
र्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान् ।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥३८॥

इत्थं नृ तिर्यक् ऋषि देव झषअवतारैः लोकान् विभावयसि हंसि जगत् प्रतीपान् धर्मं महापुरुष पासि युग अनुवृत्तं छन्नः कलौ यत् अभवः त्रियुगः अथ स त्वम् ॥३८॥

महापुरुष	पुरुषोत्तम !	**हंसि**	संहार करते हैं,
इत्थं	इसी प्रकार	**युग अनुवृत्तं**	युगानुरूप
नृ तिर्यक्	मनुष्य, पशु-पक्षी,	**धर्मं पासि**	धर्मकी रक्षा करते हैं,
ऋषि देव	ऋषि, देवता तथा	**अथ यत्**	फिर क्योंकि
झषअवतारैः	मत्स्यावतार लेकर	**स त्वं त्रियुगः**	वह आप त्रियुग हैं,
लोकान्	लोकोंका	**कलौ छन्नः**	कलियुगमें छिपे
विभावयसि	पालन और		रहते हैं ॥३८॥
जगत् प्रतीपान्	विश्व द्रोहियोंका		

नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ
सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम् ।
कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं
तस्मिन्कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥३९॥

न एतत् मनः तव कथासु विकुण्ठनाथ सम्प्रीयते दुरित दुष्टं असाधु तीव्रं काम आतुरं हर्ष शोक भय ईषणा आतं तस्मिन् कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥३९॥

विकुण्ठनाथ	वैकुण्ठनाथ !	**काम आतुरं**	कामातुर,
दुरित दुष्टं	पाप कलुषित,	**हर्ष शोक**	हर्ष-शोक
तीव्रं असाधु	अत्यन्त दुष्ट,	**भय ईषणा**	भय, चिन्तासे

आर्तं	व्याकुल
एतत् मनः	यह (मेरा) मन
तव कथासु	आपकी चर्चामें
सम्प्रीयते न	प्रसन्न नहीं होता,
दीनः तस्मिन्	विवश मैं उसमें
तव गतिं	आपके स्वरूपका
कथं विमृशामि	कैसे विचार करूँगा ॥३९॥

जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्ति-
र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥४०॥

जिह्वा एकतः अच्युत विकर्षति मा अवितृप्ता शिश्नः अन्यतः त्वक् उदरं श्रवणं कुतश्चित् घ्राणः अन्यतः चपल दृक् क्व च कर्मशक्तिः बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥४०॥

अच्युत	अच्युत !
अवितृप्ता	कभी तृप्त न होने-वाली
जिह्वा	जीभ
एकतः	एक ओर
अन्यतः शिश्नः	दूसरी ओर उपस्थ
त्वक् उदरं	स्पर्शेन्द्रिय, पेट,
श्रवणं	कर्ण
कुतश्चित्	किसी भिन्न ओर,
घ्राणः चपल	नासिका, चंचल
दृक्	नेत्र
अन्यतः	किसी और ओर,
च कर्मशक्तिः	और क्रिया-शक्ति
क्व मा	कहीं मुझे
विकर्षति	खींचती है,
बह्व्यः	बहुत-सी ये
सपत्न्य इव	सौतोंके समान
गेहपतिं	गृहस्वामी (जीव) को
लुनन्ति	लूट लेती हैं ॥४०॥

एवं स्वकर्मपतितं भववैतरण्या-
मन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम् ।
पश्यञ्जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं
हन्तेति पारचर पीपृहि मूढमद्य ॥४१॥

एवं स्वकर्म पतितं भववैतरण्यां अन्योन्य जन्म मरण अशन भीत भीतं पश्यन् जनं स्व पर विग्रह वैरं मैत्रं हन्त इति पारचर पीपृहि मूढं अद्य ॥४१॥

एवं	इस प्रकार	**विग्रह**	आग्रह करके
स्वकर्म	अपने कर्मोंसे	**वैरं मैत्रं**	शत्रुता-मित्रता करते
भववैतरण्यां	संसार रूपी वैतरिणी नदीमें	**इति हन्त**	इस प्रकार हाय,
		जनं पश्यन्	लोगोंको देखता हूँ
पतितं	गिरे हुए	**पारचर**	इससे पार रहनेवाले प्रभु !
जन्म मरण	जन्म, मृत्यु,		
अन्योन्य	एक दूसरे द्वारा	**अद्य मूढं**	अब इन अज्ञानियों- को
अशन भीत	खालिये जानेके डरसे		
भीतं	भयभीत	**पीपृहि**	पार लगा दीजिए ॥४१॥
स्व पर	अपना-परायाका		

कोन्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन्प्रयास
उत्तारणेऽस्य भवसम्भवलोपहेतोः ।
मूढेषु वै महदनुग्रह आर्तबन्धो
किं तेन ते प्रियजनाननुसेवतां नः ॥४२॥

कः नु अत्र ते अखिलगुरो भगवन् प्रयास उत्तारणे अस्य भव सम्भव लोप हेतोः मूढेषु वै महत् अनुग्रह आर्तबन्धो किं तेन ते प्रियजनान् अनुसेवतां नः ॥४२॥

आर्तबन्धो	दीनबन्धु !	**भगवन् अत्र**	भगवन् इसमें (सबका उद्धार कर देनेमें)
अस्य भव	इस विश्वकी		
सम्भव लोप	उत्पत्ति-प्रलयके		
हेतोः ते	कारण आप	**नु कः प्रयासः**	भला कौन-सा प्रयत्न करना है
अखिलगुरो	समस्त विश्वके गुरुको		

वै मूढेषु	लेकिन अज्ञानी जनोंपर
महत् अनुग्रह	(यह) महती कृपा होगी,
ते प्रियजनान्	आपके प्रिय भक्तोंकी

नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्या-
स्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः ।
शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थ-
मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान् ॥४३॥

न एव उद्विजे पर दुरत्यय वैतरण्याः त्वत् वीर्य गायन महा अमृत मग्न चित्तः शोचे ततः विमुख चेतस इन्द्रिय अर्थ माया सुखाय भरं उद्वहतः विमूढान् ॥४३॥

पर	परमपुरुष !
त्वत् वीर्य	आपके पराक्रमोंके
गायन	गायन रूपी
महा अमृत	महा अमृतमें
मग्न चित्तः	निमग्न चित्त (मैं)
दुरत्यय	(इस भव) दुष्पार
वैतरण्याः	वैतरणीसे
उद्विजे न एव	(मैं) उद्विग्न नहीं ही होता हूँ,
अनुसेवतां	बराबर सेवा करने-वाले
नः तेन किं	हमें उस (अनुग्रह) का क्या प्रयोजन है ॥४२॥
ततः विमुख	उस (आपके सुयश गानसे) विमुख
चेतस	चित्त
इन्द्रिय अर्थ	इन्द्रियोंके लिए
माया सुखाय	मायिक सुखोंको पानेके लिए
भरं उद्वहतः	भार ढोनेवाले
विमूढान्	अज्ञानियोंके लिए
शोचे	चिन्ता करता हूँ ॥४३॥

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा
मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः ।
नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको
नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥४४॥

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्ति कामा मौनं चरन्ति विजने न पर अर्थ निष्ठाः न एतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एकः न अन्यं त्वत् अस्य शरणं भ्रमतः अनुपश्ये ॥४४॥

देव	देव !
प्रायेण मुनयः	प्रायः मुनिगण
स्वविमुक्ति	अपने मोक्षकी
कामा विजने	इच्छासे निर्जन वनमें
मौनं चरन्ति	मौन धारण कर लेते हैं,
पर अर्थ	दूसरोंकी भलाईकी
निष्ठाः न	लगनवाले नहीं होते,
एतान् कृपणान्	इन विचारे लोगोंको
विहाय एकः	छोड़कर (मैं) अकेले
विमुमुक्ष न	मुक्त नहीं होना चाहता,
अस्य भ्रमतः	इन भटकते लोगोंके लिए
त्वत् अन्यः	आपके अतिरिक्त
अनु शरणं	पीछे शरण देनेवाला
अन्यं न अनुपश्ये	दूसरा नहीं देखता हूँ ॥४४॥

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं
कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ।
तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः
कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः ॥४५॥

यत् मैथुन आदि गृहमेधि सुखं हि तुच्छं कण्डूयनेन करयोः इव दुःख-दुःखं तृप्यन्ति न इह कृपणा बहुदुःखभाजः कण्डूतिवत् मनसिजं विषहेत धीरः ॥४५॥

हि	क्योंकि
यत् गृहमेधि	जो गृहस्थोंका
तुच्छं मैथुन	तुच्छ स्त्री सहवास
आदि	आदि
सुखं	सुख है,
करयोः	दादको
कण्डूयनेन इव	खुजलानेके समान
दुःखदुःखं	क्रिया तथा परिणाम दोनोंमें दुखदायी है,
बहुदुःखभाजः	बहुत दुःख भोगकर भी
कृपणा	वेचारे (अज्ञानी)
इह	इस संसारमें
तृप्यन्ति न	तृप्त नहीं होते,
धीरः	धीर-पुरुष
कण्डूतिवत्	खुजलाहटके समान
मनसिजं	कामवेगको
विषहेत	सह ले ॥४५॥

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म-
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां
वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम् ॥४६॥

मौन व्रत श्रुत तपः अध्ययन स्वधर्म व्याख्या रहः जप समाधय आपवर्ग्याः प्रायः परं पुरुष ते तु अजित इन्द्रियाणां वार्ता भवन्ति उत न वा तु अत्र दाम्भिकानाम् ॥४६॥

परं पुरुष	पुरुषोत्तम !	**प्रायः ते तु**	प्रायः ये (साधन) तो
मौन व्रत	मौन, ब्रह्मचर्य-व्रत,	**इन्द्रियाणां**	इन्द्रिय
श्रुत तपः	शास्त्र-श्रवण, तपस्या,	**अजित**	न जीतने वालोंके लिए
अध्ययन	वेदाध्ययन	**वार्ता**	जीविकाके साधन (व्यापार)
स्वधर्म	अपने धर्मका पालन,	**भवन्ति**	बन जाते हैं,
व्याख्या रहः	शास्त्र व्याख्या, एकान्त सेवन	**अत्र तु**	किन्तु यहां
जप समाधय	जप और समाधि (ये)	**दाम्भिकानां**	पाखण्डियोंके लिए
आपवर्ग्याः	मोक्षके साधन हैं	**उत वा न**	(जीविका) देते भी हैं अथवा नहीं देते ॥४६॥

रूपे इमे सदसती तव वेदसृष्टे
बीजाङ्कुराविव न चान्यदरूपकस्य ।
युक्ताः समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वां
योगेन वह्निमिव दारुषु नान्यतः स्यात् ॥४७॥

रूपे इमे सत् असती तव वेद सृष्टे बीज अङ्कुराः इव न च अन्यत् अरूप कस्य युक्ताः समक्षं उभय अत्र विचिन्वते त्वां योगेन वह्निम् इव दारुषु न अन्यतः स्यात् ॥४८॥

तव इमे	आपके ये
सत् असती	कारण-कार्य
रूपे वेद सृष्टे	रूप वेद प्रतिपादित हैं,
बीज	बीज और
अङ्कुराः इव	अंकुरके समान,
अरूपकस्य	निराकारको (जाननेका)
च अन्यत् न	और दूसरा उपाय नहीं है,
अत्र उभय	यहां ये दोनों (रूप)
समक्षं	प्रत्यक्ष हैं
दारुषु	काष्टोंसे
अन्यतः न स्यात्	पृथक न होनेपर
वह्नि इव	अग्निके समान
त्वां युक्ताः	आपको युक्तजन
योगेन	योग
विचिन्वते	(उपायों) से ढूँढ़ते हैं ॥४७॥

त्वं वायुरग्निरवनिर्वियदम्बुमात्राः
प्राणेन्द्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहश्च ।
सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन्
नान्यत् त्वदस्त्यपि मनोवचसा निरुक्तम् ॥४८॥

त्वं वायुः अग्निः अवनिः वियत् अम्बु मात्राः प्राण इन्द्रियाणि हृदयं चित् अनुग्रहः च सर्वं त्वं एव सगुणः विगुणः च भूमन् न अन्यत् त्वत् अस्ति अपि मनः वचसा निरुक्तम् ॥४८॥

भूमन्	अनन्त !
त्वं	आप ही
वायुः अग्निः	वायु, अग्नि,
अवनिः वियत्	पृथ्वी, आकाश,
अम्बु मात्राः	जल, तन्मात्रा,
प्राण इन्द्रियाणि	प्राण, इन्द्रिय,
हृदयं चित्	मन, चित्त,
च अनुग्रहः	और अहंकार हो,
त्वं एव सर्वं	आप ही सब
सगुणः च	सगुण और
विगुणः	निर्गुण हो,
मनः वचसा	मन और वाणीसे
निरुक्तं	निरूपित
त्वत् अन्यत्	आपसे पृथक
अस्ति अपि न	कुछ भी नहीं है ॥४८॥

नैते गुणा न गुणिनो महदादयो ये
सर्वे मनः प्रभृतयः सहदेवमर्त्याः ।

आद्यन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वा-
मेवं विमृश्य सुधियो विरमन्ति शब्दात् ॥४९॥

न एते गुणा न गुणिनः महत् आदयः ये सर्वे मनः प्रभृतयः सहदेव मर्त्याः आदि अन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वां एवं विमृश्य सुधियः विरमन्ति शब्दात् ॥४९॥

एते गुणा	ये (सत्त्वादि) गुण
न ये गुणिनः	न जो इन गुणों के परिणाम
महत् आदयः	महत्तत्त्वादि
सर्वे मनःप्रभृतयः	सब मन आदि
देवसह मर्त्याः	देवताओंके साथ मनुष्य
हि	क्योंकि
आदि अन्तवन्त	आदि अन्तवाले हैं
उरुगाय	अनन्त कीर्ति
त्वां विदन्ति न	आपको जानते नहीं हैं,
एवं विमृश्य	ऐसा विचार करके
सुधियः	बुद्धिमान
शब्दात्	शब्दोंसे
विरमन्ति	उपरत हो जाते हैं ॥४९॥

तत् तेऽर्हत्तम नमःस्तुतिकर्मपूजाः
कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ।
संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किं
भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ॥५०॥

तत् ते अर्हत्तम नमः स्तुति कर्म पूजाः कर्म स्मृतिः चरणयोः श्रवणं कथायां संसेवया त्वयि विना एति षट् अङ्गया किं भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ॥५०॥

अहत्तम	परमपूज्य
तत् ते	उस आपकी
संसेवया	सेवाकी
षट् अंगया	छः अंगों वाली
नमः	नमस्कार,
स्तुति	स्तुति,
कर्म पूजा	पूजादि कर्म,
कर्म	कर्मोंका समर्पण
चरणयोः स्मृतिः	श्रीचरणोंका चिन्तन,
कथायां श्रवणं	कथाका श्रवण
विना किं	(इनके) बिना क्या

त्वयि भक्तिं	आपमें भक्ति	**परमहंस गतौ**	परमहंस गतिको
एति	होती है,	**लभेत**	प्राप्त कर लेता है
जनः	(इनके द्वारा) भक्त		॥५०॥

नारद उवाच–

एतावद्वर्णितगुणो भक्त्या भक्तेन निर्गुणः ।
प्रह्लादं प्रणतं प्रीतो यतमन्युरभाषत ॥५१॥

एतावत् वर्णित गुणः भक्त्या भक्तेन निर्गुणः प्रह्लादं प्रणतं प्रीतः यतमन्युः अभाषत ॥५१॥

भक्त्या भक्तेन	भक्ति पूर्वक भक्तके द्वारा	**यतमन्युः**	क्रोध शान्त हुए
एतावत्	इतने ही	**निर्गुणः**	निर्गुण भगवान्
गुणः वर्णित	गुणोंका वर्णन करके	**प्रीतः**	प्रसन्न होकर
प्रणतं प्रह्लादं	प्रणाम करते प्रह्लादसे	**अभाषत**	बोले ॥५१॥

श्रीभगवानुवाच–

प्रह्लाद भद्र भद्रं ते प्रीतोऽहं तेऽसुरोत्तम ।
वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम् ॥५२॥

प्रह्लाद भद्र भद्रं ते प्रीतः अहं ते असुर उत्तम वरं वृणीष्व अभिमतं कामपूरः अस्मि अहं नृणाम् ॥५२॥

असुर उत्तम	असुरश्रेष्ठ	**वृणीष्व**	मांग लो,
भद्रं प्रह्लाद	भद्र प्रह्लाद !	**अहं नृणां**	मैं मनुष्योंकी
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो,	**कामपूरः अस्मि**	कामनाओंको पूर्ण करनेवाला हूँ ॥५२॥
अभिमतं वरं	अभीष्ट वरदान		

मामप्रीणत आयुष्मन्दर्शनं दुर्लभं हि मे ।
दृष्ट्वा मां न पुनर्जन्तुरात्मानं तप्तुमर्हति ॥५३॥

मां अप्रीणत आयुष्मन् दर्शनं दुर्लभं हि मे दृष्ट्वा मां न पुनः जन्तुः आत्मानं तप्तुं अर्हति ॥५३॥

आयुष्मन्	आयुष्मन् !	**मां दृष्ट्वा**	मेरा दर्शन करके
हि	क्योंकि	**पुनः जन्तुः**	फिर कोई प्राणी
मां अप्रीणत	मुझे प्रसन्न किए बिना	**आत्मानं तप्तुं**	अपनेको संतप्त करने
मे दर्शनं	मेरा दर्शन	**अर्हति न**	योग्य नहीं रहता ॥५३॥
दुर्लभं	दुर्लभ है		

प्रीणन्ति ह्यथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः ।
श्रेयस्कामा महाभागाः सर्वासामाशिषां पतिम् ॥५४॥

प्रीणन्ति हि अथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः श्रेयस्कामा महाभागाः सर्वासां आशिषां पतिम् ॥५४॥

धीराः साधवः	जितेन्द्रिय, सत्पुरुष,	**सर्वासां आशिषां**	समस्त अभिलाषाओंका
महाभागाः	महाभाग	**पतिं**	स्वामी हूँ,
श्रेयस्कामा	कल्याण चाहनेवाले	**अथ मां**	अतः मुझे
सर्वभावेन	सम्पूर्ण वृत्तियोंसे	**प्रीणन्ति**	प्रसन्न करते हैं ॥५४॥
हि	क्योंकि		

नारद उवाच—*

एवं प्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः ।
एकान्तित्वाद् भगवति नैच्छत् तानसुरोत्तमः ॥५५॥

एवं प्रलोभ्यमानः अपि वरैः लोक प्रलोभनैः एकान्तित्वात् भगवति न इच्छत् तान् असुर उत्तमः ॥५५॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

एवं	इस प्रकार
लोक प्रलोभनैः	लोगोंको लोभमें डालनेवाले
वरैः	वरदानों द्वारा
प्रलोभ्यमानः	ललचाये जानेपर
अपि	भी
भगवति	भगवान्‌के
एकान्तित्वात्	अनन्य भक्त होनेसे
असुर उत्तमः	असुर श्रेष्ठ प्रह्लादने
तान् इच्छत् न	उनकी इच्छा नहीं-की ॥५५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते भगवत्स्तवो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

नारद उवाच–

भक्तियोगस्य तत् सर्वमन्तरायतयार्भकः ।
मन्यमानो हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह ॥१॥

भक्तियोगस्य तत् सर्वं अन्तरायतया अर्भकः मन्यमानः हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह ॥१॥

अर्भकः	बालक (प्रह्लाद)ने	**मन्यमानः**	मानकर
तत् सर्वं	उस सब (वरदानों)-को	**हृषीकेशं**	भगवान् नृसिंहसे
		स्मयमान	मुस्कराते हुए
भक्तियोगस्य	भक्तियोगका	**ह उवाच**	निश्चित स्वरमें
अन्तरायतया	विघ्नरूप		कहा ॥१॥

प्रह्लाद उवाच–

मा मां प्रलोभयोत्पत्त्याऽऽसक्तं कामेषु तैर्वरैः ।
तत्सङ्गभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः ॥२॥

मा मां प्रलोभय उत्पत्त्या आसक्तं कामेषु तैः वरैः तत् सङ्ग भीतः निर्विण्णः मुमुक्षुः त्वां उपाश्रितः ॥२॥

मां प्रलोभय मा	मुझे ललचाइये मत,	**भीतः निर्विण्णः**	डरकर विरक्त होकर
तैः कामेषु	उन भोगोंको		
वरैः उत्पत्त्या	पानेके लिए जन्मसे ही	**मुमुक्षुः**	छूटनेकी इच्छासे
		त्वां उपाश्रितः	आपकी शरण आया हूँ ॥२॥
आसक्तं	आसक्त हूँ,		
तत् सङ्ग	उनकी आसक्तिसे		

भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेष्वचोदयत् ।
भवान् संसारबीजेषु हृदयग्रन्थिषु प्रभो ॥ ३ ॥

भृत्यलक्षण जिज्ञासुः भक्तं कामेषु अचोदयत् भवान् संसारबीजेषु हृदयग्रन्थिषु प्रभो ॥३॥

प्रभो	प्रभो !	**हृदयग्रन्थिषु**	हृदयकी गांठ दृढ़ करनेवाले
भृत्यलक्षण	सेवककी योग्यता	**कामेषु**	भोगोंके लिए
जिज्ञासुः	जाननेकी इच्छासे	**अचोदयत्**	प्रेरित किया है ॥३॥
भवान्	आपने		
संसारबीजेषु	संसार (आवागमन) के बीज		

नान्यथा तेऽखिलगुरो घटेत करुणात्मनः ।
यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥४॥

न अन्यथा ते अखिलगुरो घटेत करुण आत्मनः यः त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥४॥

अन्यथा ते	नहीं तो आप	**आशास्ते**	पूरी करना चाहता है
करुण आत्मनः	दयामूर्ति		
अखिलगुरो	जगद्गुरुके लिए	**स भृत्यः न**	वह सेवक नहीं है
घटेत न	यह शक्य नहीं है,	**वै स वणिक्**	निश्चय वह बनिया हैं ॥४॥
यः त आशिष	जो उन कामनाओं-को		

आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ।
न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः ॥५॥

आशासानः न वै भृत्यः स्वामिनि आशिष आत्मनः न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यं इच्छन् यः राति च आशिषः ॥५॥

स्वामिनि	स्वामीसे	**भृत्यतः यः**	सेवकसे जो,
आत्मनः	अपनी	**स्वाम्यं इच्छन्**	स्वामित्व चाहता हुआ
आशिषः	कामनाएँ (जो)		
आशासानः	(पूरी होनेकी) आशा करता है	**आशिषः च**	उसकी कामनाएँ भी
		राति	प्रदान करता है
वै भृत्यः न	वह निश्चय सेवक नहीं है,	**स्वामी न**	वह स्वामी नहीं है ॥५॥

अहं त्वकामस्त्वदुक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः ।
नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव ॥६॥

अहं तु अकामः त्वत् भक्तः त्वं च स्वामि अनपाश्रयः न अन्यथा इह आवयोः अर्थः राजसेवकयोः इव ॥६॥

अहं तु त्वत्	मैं तो आपका	**इव**	समान
अकामः भक्तः	निष्काम भक्त हूँ,	**इह आवयोः**	यहां हम दोनोंका
च त्वं	और आप	**अन्यथा अर्थः**	भिन्न प्रकारका प्रयोजन
अनपाश्रयः	निरपेक्ष		
स्वामि	स्वामी हैं	**न**	नहीं है ॥६॥
राजसेवकयोः	राजा और सेवकके		

✓ **यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ ।**
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥७॥

यदि रासि ईश मे कामान् वरान् त्वं वरद ऋषभ कामानां हृदि असंरोहं भवतः तु वृणे वरम् ॥७॥

वरद ऋषभ	वरदानि शिरोमणि !	**तु भवतः**	तो आपसे
ईश	स्वामी !	**हृदि कामनां**	हृदयमें कामनाओंका
यदि मे	यदि मेरी	**असंरोहं**	उत्पन्न न होना
कामान् वरान्	इच्छानुसार वरदान	**वरं वृणे**	वरदानके रूपमें
त्वं रासि	आप देना चाहते हैं		मांगता हूँ ॥७॥

इन्द्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः ।
ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना ॥८॥

इन्द्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मः धृतिः मतिः ह्रीः श्रीः तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना ॥८॥

यस्य जन्मना	जिस (कामनाके) उत्पन्न होनेसे	**मतिः ह्रीः**	बुद्धि, लज्जा,
इन्द्रियाणि मनः	इन्द्रियाँ, मन	**तेजः स्मृतिः**	तेज, स्मृति और
प्राण आत्मा	प्राण, शरीर	**सत्यं नश्यन्ति**	सत्य नष्ट हो जाते हैं ॥८॥
धर्मः धृतिः श्रीः	धर्म, धैर्य, श्री		

विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् ।
तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ॥९॥

विमुञ्चति यदा कामान् मानवः मनसि स्थितान् तर्हि एव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ॥९॥

पुण्डरीकाक्ष	कमल-नयन !	**विमुञ्चति**	छोड़ देता है
मानवः यदा	मनुष्य जब	**तर्हि एव**	उसी समय
मनसि स्थितान्	मनमें रहनेवाली	**भगवत्त्वाय**	भगवत्स्वरूप
कामान्	कामनाओंको	**कल्पते**	हो जाता है ॥९॥

नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने ।
हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥१०॥

नमः भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने हरये अद्भुत सिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥१०॥

तुभ्यं महात्मने	आप महान् आत्मा	**परमात्मने**	परमात्मा
पुरुषाय भगवते	परमपुरुष भगवान्	**हरये नमः**	श्रीहरिको नमस्कार ॥१०॥
अद्भुत सिंहाय	अद्भुत सिंह रूप,		
ब्रह्मणे	परम ब्रह्म		

श्रीभगवानुवाच—*

नैकान्तिनो मे मयि जात्विहाशिष
आशासतेऽमुत्र च ये भवद्विधाः ।
अथापि मन्वन्तरमेतदत्र
दैत्येश्वराणामनुभुङ्क्ष्व भोगान् ॥११॥

न एकान्तिनः मे मयि जातु इह आशिषः आशासते अमुत्र च ये भवत् विधाः अथ अपि मन्वन्तरं एतत् अत्र दैत्येश्वराणां अनुभुङ्क्ष्व भोगान् ॥११॥

ये भवत् विधाः	जो तुम्हारे समान
मे एकान्तिनः	मेरे अनन्य भक्त हैं
इह अमुत्र	इस लोक और परलोक सम्बन्धी
मयि जातु	मुझसे कोई
आशिषः	अभिलाषा
आशासते न	पाना नहीं चाहते,
अथ अपि	फिर भी
एतत् मन्वन्तरं	इस मन्वन्तरमें
इह	इस लोकमें
दैत्येश्वराणां	सभी दैत्यपतियोंके
भोगान्	भोगोंको
अनुभुङ्क्ष्व	भोगो ॥११॥

कथा मदीया जुषमाणः प्रियास्त्व-
मावेश्य मामात्मनि सन्तमेकम् ।
सर्वेषु भूतेष्वधियज्ञमीशं
यजस्व योगेन च कर्म हिन्वन् ॥१२॥

कथा मदीया जुषमाणः प्रियाः त्वं आवेश्य मां आत्मनि सन्तं एकं सर्वेषु भूतेषु अधियज्ञं ईशं यजस्व योगेन च कर्म हिन्वन् ॥१२॥

सर्वेषु भूतेषु	समस्त प्राणियोंमें
अधियज्ञं ईशं	अधियज्ञ ईश्वर रूपसे
सन्तं एकं	विराजमान अद्वितीय
मां आत्मनि	मुझमें चित्त

---

* गीता प्रेसकी प्रतिमें यहां 'नृसिंह उवाच' है ।

आवेश्य	लगाकर	**त्वं योगेन**	तुम योगके द्वारा
मदीया प्रियाः	मेरी प्रिय	**कर्म हिन्वन् च**	प्रारब्ध क्षय करते हुए ही
कथा जुषमाणः	कथाका आस्वादन करते,	**यजस्व**	यजन करो ॥१२॥

भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं
कलेवरं कालजवेन हित्वा ।
कीर्तिं विशुद्धां सुरलोकगीतां
बिताय मामेष्यसि मुक्तबन्धः ॥१३॥

भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं कलेवरं कालजवेन हित्वा कीर्तिं विशुद्धां सुरलोक गीतां बिताय मां एष्यसि मुक्तबन्धः ॥१३॥

भोगेन पुण्यं	भोगके द्वारा पुण्य व	**सुरलोक गीतां**	देवताओं द्वारा गायी जानेवाली
कुशलेन	निष्काम-कर्मों द्वारा	**कीर्तिं बिताय**	कीर्तिका विस्तार करके
पापं	पापोंका	**मुक्तबन्धः**	कर्म-बन्धनसे छूटकर
कालजवेन	कालके वेगसे (समयपर)	**मां एष्यसि**	मेरे पास आ जाओगे ॥१३॥
कलेवरं	शरीरको		
हित्वा	त्यागकर		

य एतत् कीर्तयेन्मह्यं त्वया गीतमिदं नरः ।
त्वां च मां च स्मरन्काले कर्मबन्धात् प्रमुच्यते ॥१४॥

यः एतत् कीर्तयेत् मह्यं त्वया गीतं इदं नरः त्वां च मां च स्मरेत् काले कर्मबन्धात् प्रमुच्यते ॥१४॥

यः नरः	जो मनुष्य	**च मां स्मरेत्**	तथा मेरा स्मरण करेगा,
त्वया गीतं	तुम्हारे द्वारा की गयी	**काले**	समयपर
मह्यं इदं	मेरी इस स्तुतिका	**कर्मबन्धात्**	कर्मोंके बन्धनसे
कीर्तयेत्	कीर्तन करेगा	**प्रमुच्यते**	छूट जायगा ॥१४॥
च त्वं	और तुम्हारा		

प्रह्लाद उवाच–

वरं वरय एतत् ते वरदेशान्महेश्वर ।
यदनिन्दत् पिता मे त्वामविद्वांस्तेज ऐश्वरम् ॥१५॥

वरं वरय एतत् ते वरद ईशात् महेश्वर यत् अनिन्दत् पिता मे त्वां अविद्वान् तेज ऐश्वरम् ॥१५॥

महेश्वर	महेश्वर !
ते वरद ईशात्	आप वरदाता-स्वामीसे
एतत् वरं	यह वरदान
वरय	मांगता हूँ
यत् मे पिता	क्योंकि मेरे पिताने
तेज ऐश्वरं	आपके ईश्वरीय तेजको
अविद्वान्	न जानकर
त्वां अनिन्दत्	आपकी निन्दा की ॥१५॥

विद्धामर्षाशयः साक्षात् सर्वलोकगुरुं प्रभुम् ।
भ्रातृहेति मृषादृष्टिस्त्वद्भक्ते मयि चाघवान् ॥१६॥

विद्ध अमर्ष आशयः साक्षात् सर्वलोक गुरुं प्रभुं भ्रातृहा इति मृषा दृष्टिः त्वत् भक्ते मयि च अघवान् ॥१६॥

अमर्ष विद्ध	असहनशीलतासे ग्रस्त
आशयः	चित्त (होनेसे)
भ्रातृहा	'भाईको मारने वाला है'
इति	इस प्रकारकी
मृषा दृष्टिः	मिथ्या समझसे
सर्वलोक गुरुं	सब लोकोंमें सर्व-श्रेष्ठ
साक्षात् प्रभुं	साक्षात् सर्वेश्वरसे
च त्वत्	तथा आपके भक्त
मयि अघवान्	मुझसे द्रोह किया ॥१६॥

तस्मात् पिता मे पूयेत दुरन्ताद् दुस्तरादघात् ।
पूतस्तेऽपाङ्गसंदृष्टस्तदा कृपणवत्सल ॥१७॥

तस्मात् पिता मे पूयेत दुरन्तात् दुस्तरात् आघात् पूतः ते अपाङ्ग संदृष्टः तदा कृपणवत्सल ॥१७॥

कृपणवत्सल	दीनवत्सल !	**मे पिता**	मेरे पिता
ते अपाङ्ग	आपने तिरछी दृष्टिसे	**तस्मात्**	उस
		दुरन्तात्	कठिनाईसे समास होनेवाले
संदृष्टः तदा	देखा तभी		
पूतः	पवित्र हो गये (फिर भी)	**दुस्तरात् अघात्**	दुस्तर पापसे
		पूयेत	पवित्र हो जाय ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच–

त्रिः सप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ ।
यत् साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावनः ॥१८॥

त्रिः सप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह ते अनघ यत् साधु अस्य गृहे जातः भवान् वै कुल पावनः ॥१८॥

अनघ	निष्पाप प्रह्लाद !	**गृहे वै**	घरमें तो
त्रिः सप्तभिः	इक्सीस	**भवान्**	तुम (जैसा)
पितृभिः सह	पीढ़ियोंके साथ	**कुल पावनः**	कुलको पवित्र करने वाला
ते पिता	तुम्हारे पिता		
पूतः	पवित्र हो गये	**साधुः जातः**	सत्पुरुष उत्पन्न हुआ ॥१८॥
यत् अस्य	क्योंकि इनके		

यत्र यत्र च मद्भक्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः ।
साधवः समुदाचारास्ते पूयन्त्यपि कीकटाः ॥१९॥

यत्र यत्र च मद् भक्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः साधवः समुद आचाराः ते पूयन्ति अपि कीकटाः ॥१९॥

प्रशान्ताः	अत्यन्त शान्त,	**समुद आचाराः**	प्रसन्नता पूर्वक सदाचारका पालन करनेवाले
समदर्शिनः	समदर्शी,		

मद् भक्ताः	मेरे भक्त	ते कीकटाः	वे कीकट प्रदेश
साधवः	सत्पुरुष	अपि पूयन्ति	भी पवित्र हो जाते
यत्र यत्र च	जहां-जहां भी (रहते हैं)		हैं ॥१६॥

सर्वात्मना न हिंसन्ति भूतग्रामेषु किञ्चन ।
उच्चावचेषु दैत्येन्द्र मद्भावेन गतस्पृहाः ॥२०॥

सर्व आत्मना न हिंसन्ति भूतग्रामेषु किञ्चन उच्च अवचेषु दैत्येन्द्र मद् भावेन गत स्पृहाः ॥२०॥

दैत्येन्द्र	दैत्यराज !	किञ्चन	किसीको भी
मद् भावेन	मेरी भावनासे	सर्व आत्मना	सम्पूर्ण हृदयसे
गत स्पृहाः	स्पर्धा नष्ट हुए जन	हिंसन्ति न	पीड़ा नहीं देते ॥२०॥
उच्च अवचेषु	बड़े-छोटे		
भूत ग्रामेषु	प्राणि-समूहोंमें		

भवन्ति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः ।
भवान्मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक् ॥२१॥

भवन्ति पुरुषाः लोके मद् भक्ताः त्वां अनुव्रताः भवान् मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक् ॥२१॥

लोके	संसारमें	खलु भवान्	अरे, तुम
मद् भक्ताः	मेरे भक्त	मे सर्वेषां	मेरे सभी
पुरुषाः	पुरुष	भक्तानां	भक्तोंके
त्वां अनुव्रताः	तुम्हारा अनुकरण करनेवाले	प्रतिरूपधृक्	आदर्श स्वरूप होगे ॥२१॥
भवन्ति	होंगे		

कुरु त्वं प्रेतकार्याणि पितुः पूतस्य सर्वशः ।
मदङ्गस्पर्शनेनाङ्ग लोकान्यास्यति सुप्रजाः ॥२२॥

कुरु त्वं प्रेत कर्याणि पितुः पूतस्य सर्वशः मत् अङ्ग स्पर्शनेन अङ्ग लोकान् यास्यति सुप्रजाः ॥२२॥

अङ्ग	प्रिय प्रह्लाद !	**कर्याणि**	क्रिया
मत् अङ्ग	मेरे शरीरके	**त्वं कुरु**	तुम करो,
स्पर्शनेन	स्पर्शसे	**सुप्रजाः**	(तुम्हारे जैसे) उत्तम पुत्र होनेसे
सर्वशः पूतस्य	सर्वथा पवित्र हो गये	**लोकान् यास्यति**	उत्तम लोकमें जायँगे ॥२२॥
पितुः प्रेत	पिताकी मरणोत्तर		

पित्र्यं च स्थानमातिष्ठ यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ।
मय्यावेश्य मनस्तात कुरु कर्माणि मत्परः ॥२३॥

पित्र्यं च स्थानं आतिष्ठ यथा उक्तं ब्रह्मवादिभिः मयि आवेश्य मनः तात कुरु कर्माणि मत् परः ॥२३॥

तात	तात !	**मत् परः**	मेरे परायण रहकर
पित्र्यं स्थानं च	पिताके पदपर भी	**ब्रह्मवादिभिः**	वेदवादी (ब्राह्मण)
आतिष्ठ	बैठो,	**यथा उक्तं**	जैसे आज्ञा दें (उस प्रकार)
मनः मयि	मनको मुझमें		
आवेश्य	लगाकर	**कर्माणि कुरु**	कर्म करो ॥२३॥

नारद उवाच—

प्रह्लादोऽपि तथा चक्रे पितुर्यत्साम्परायिकम् ।
यथाऽऽह भगवान् राजन्नभिषिक्तो द्विजोत्तमैः ॥२४॥

प्रह्लादः अपि तथा चक्रे पितुः यत् साम्परायिकं यथा आह भगवान् राजन् अभिषिक्तः द्विज उत्तमैः ॥२४॥

राजन्	राजन् !	**। द्विज उत्तमैः**	श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा

राजन्	राजन् !	**प्रह्लादः अपि**	प्रह्लादजीने भी
द्विज उत्तमैः	श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा	**पितुः यत्**	पिताकी जो
अभिषिक्तः	अभिषेक हो जानेपर*	**साम्परायिकं**	मरणोत्तर क्रिया
भगवान् यथा	भगवान्ने जैसी		थी,
आह तथा	आज्ञा दी थी, उसके अनुसार	**चक्रे**	सम्पन्न की ॥२४॥

प्रसादसुमुखं दृष्ट्वा ब्रह्मा नरहरिं हरिम् ।
स्तुत्वा वाग्भिः पवित्राभिः प्राह देवादिभिर्वृतः ॥२५॥

प्रसादसुमुखं दृष्ट्वा ब्रह्मा नरहरिं हरिं स्तुत्वा वाग्भिः पवित्राभिः प्राह देवादिभिः वृतः ॥२५॥

नरहरिं हरिं	नृसिंह रूपधारी श्रीहरिको	**ब्रह्मा**	ब्रह्माजी
प्रसादसुमुखं	कृपापूर्ण प्रसन्न मुख	**पवित्राभिः**	पवित्र
दृष्ट्वा	देखकर	**वाग्भिः**	वाणीसे
देवादिभिः वृतः	देवतादिसे घिरे	**स्तुत्वा प्राह**	स्तुति करके बोले ॥२५॥

ब्रह्मोवाच–

देवदेवाखिलाध्यक्ष भूतभावन पूर्वज ।
दिष्ट्या ते निहतः पापो लोकसन्तापनोऽसुरः ॥२६॥

देवदेव अखिल अध्यक्ष भूतभावन पूर्वज दिष्ट्या ते निहतः पापः लोक सन्तापनः असुरः ॥२६॥

देवदेव	देवताओं के आराध्यदेव,	**अखिल अध्यक्ष**	सर्वेश्वर,
		भूतभावन	जीवोंके पालक,

---

* मूर्धाभिषिक्त राजाको सूतक नहीं लगता, अतः कंस वधके पश्चात् श्रीकृष्णने उग्रसेनका पहिले अभिषेक किया । (भगवान वासुदेव)

पूर्वज	आदिपुरुष !
दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है कि
लोक सन्तापनः	समस्त लोकोंको पीड़ा देनेवाले
पापः असुरः	पापी दैत्यको
ते निहतः	आपने मार दिया ॥२६॥

योऽसौ लब्धवरो मत्तो न वध्यो मम सृष्टिभिः ।
तपोयोगबलोन्नद्धः समस्तनिगमानहन् ॥२७॥

यः असौ लब्ध वरः मत्तः न वध्यः मम सृष्टिभिः तपः योगबल उन्नद्धः समस्त निगमान् अहन् ॥२७॥

यः असौ	जो यह
मत्तः	मुझसे
वरः लब्ध	वरदान पाकर
मम सृष्टिभिः	मेरे उत्पन्न किये (किसी) से
वध्यः न	मारा नहीं जा सकता था,
तपः योगबल	तपस्या और योगके बलसे
उन्नद्धः	उच्छृखल होकर
समस्त निगमान्	सभी मर्यादाओंका
अहन्	उच्छेद कर दिया था ॥२७॥

दिष्ट्यास्य तनयः साधुर्महाभागवतोऽर्भकः ।
त्वयाविमोचितो मृत्योर्दिष्ट्या त्वां समितोऽधुना ॥२८॥

दिष्ट्या अस्य तनयः साधुः महाभागवतः अर्भकः त्वया विमोचितः मृत्योः दिष्ट्या त्वां समितः अधुना ॥२८॥

दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है कि
अस्य तनयः	इसके पुत्र
साधुः	सत्पुरुष
महाभागवतः	परम भगवद् भक्त
अर्भकः	बालकको
त्वया मृत्योः	आपने मृत्युसे
विमोचितः	छुड़ा लिया,
दिष्ट्या	(यह भी) सौभाग्य-की बात है कि
अधुना	इस समय (वह)
त्वां समितः	आपकी शरणमें है ॥२८॥

एतद् वपुस्ते भगवन्ध्यायतः प्रयतात्मनः ।
सर्वतो गोप्तृ संत्रासान्मृत्योरपि जिघांसतः ॥२९॥

एतत् वपुः ते भगवन् ध्यायतः प्रयत आत्मनः सर्वतः गोप्तृ संत्रासात् मृत्योः अपि जिघांसतः ॥२९॥

भगवन्	भगवन् !	**सर्वतः**	सब ओरसे
प्रयत आत्मनः	एकाग्र चित्तसे	**संत्रासात्**	भयोंसे और
ध्यायतः	ध्यान करनेवालेको	**जिघांसतः**	मारने आयी
ते एतत्	आपका यह	**मृत्योः अपि**	मृत्युसे भी
वपुः	श्रीविग्रह	**गोप्तृ**	रक्षा करेगा ॥२९॥

श्रीभगवानुवाच—*

मैवं वरोऽसुराणां ते प्रदेयः पद्मसम्भवः ।
वरः क्रूरनिसर्गाणामहीनाममृतं यथा ॥३०॥

मा एवं वरः असुराणां ते प्रदेयः पद्म सम्भवः वरः क्रूर निसर्गाणां अहीनां अमृतं यथा ॥३०॥

पद्म सम्भवः	कमलोद्भव ब्रह्मा !	**वरः**	वरदान (वैसा ही है)
ते एवं	तुम्हें ऐसा		
वरः असुराणां	वरदान असुरोंको	**यथा**	जैसे
मा प्रदेयः	नहीं देना चाहिए	**अहीनां अमृतं**	सर्पोंको अमृत ॥३०॥
क्रूर निसर्गाणां	स्वभावसे क्रूरोंके लिए		

नारद उवाच-

इत्युक्त्वा भगवान्राजंस्तत्रैवान्तर्दधे हरिः ।
अदृश्यः सर्वभूतानां पूजितः परमेष्ठिना ॥३१॥

---

* गीताप्रेसकी प्रतिमें यहां 'नृसिंह उवाच' है ।

इति उक्त्वा भगवान् राजन् तत्र एव अन्तर्दधे हरिः अदृश्यः सर्व-भूतानां पूजितः परमेष्ठिना ॥३१॥

राजन्	राजन् !	**सर्वभूतातां**	सब प्राणियोंके लिए
परमेष्ठिना	ब्रह्माजी द्वारा	**अदृश्यः**	अदृश्य होकर
पूजितः	पूजित होकर,	**तत्र एव**	वहीं
भगवान् हरिः	भववान् श्रीहरि	**अन्तर्दधे**	अन्तर्धान हो गये
इति उक्त्वा	इतना कहकर		॥३१॥

ततः सम्पूज्य शिरसा ववन्दे परमेष्ठिनम् ।
भवं प्रजापतीन्देवान्प्रह्लादो भगवत्कलाः ॥३२॥

ततः सम्पूज्य शिरसा ववन्दे परमेष्ठिनं भवं प्रजापतीन् देवान् प्रह्लादः भगवत् कलाः ॥३२॥

ततः	तब	**देवान् सम्पूज्य**	देवताओंका सत्कार करके
भगवत् कलाः	भगवत्स्वरूप	**शिरसा ववन्दे**	मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥३२॥
प्रह्लादः	प्रह्लादने		
परमेष्ठिनं	ब्रह्माजी,		
भवं प्रजापतीन्	शंकरजी, प्रजा-पतियों,		

ततः काव्यादिभिः सार्धं मुनिभिः कमलासनः ।
दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादमकरोत् पतिम् ॥३३॥

ततः काव्य आदिभिः सार्धं मुनिभिः कमलासनः दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादं अकरोत् पतिम् ॥३३॥

ततः काव्य	फिर शुक्राचार्य	**दैत्यानां च**	दैत्यों और
आदिभिः	आदि	**दानवानां**	दानवोंका
मुनिभिः सार्धं	मुनियोंके साथ	**प्रह्लादं**	प्रह्लादको
कमलासनः	ब्रह्माजीने	**पति अकरोत्**	स्वामी बनाया ॥३३॥

प्रतिनन्द्य ततो देवाः प्रयुज्य परमाशिषः ।
स्वधामानि ययू राजन्ब्रह्माद्याः प्रतिपूजिताः ॥३४॥

प्रतिनन्द्य ततः देवाः प्रयुज्य परम आशिषः स्वधामानि ययू राजन् ब्रह्मा आद्याः प्रति पूजिताः ॥३४॥

राजन्	राजन् !	**ब्रह्मा आद्याः**	ब्रह्मा आदि
ततः प्रतिनन्द्य	तब उनका अभि-नन्दन करके	**देवाः प्रति**	देवता फिर
		पूजिताः	पूजित होकर
परम आशिषः	महान् आशीर्वाद	**स्वधामानि**	अपने धामोंको
प्रयुज्य	देकर	**ययू**	चले गये ॥३४॥

एवं तौ पार्षदौ विष्णोः पुत्रत्वं प्रापितौ दितेः ।
हृदि स्थितेन हरिणा वैरभावेन तौ हतौ ॥३५॥

एवं तौ पार्षदौ विष्णोः पुत्रत्वं प्रापि तौ दितेः हृदि स्थितेन हरिणा वर भावेन तौ हतौ ॥३५॥

एवं तौ	इस प्रकार वे दोनों	**हृदि स्थितेन**	हृदयमें स्थित
विष्णोः पार्षदौ	विष्णुके पार्षद	**हरिणा तौ हतौ**	श्रीहरि द्वारा वे दोनों मारे गये ॥३५॥
दितेः पुत्रत्वं	दितिके पुत्रत्वको		
प्रापि तौ	पहुँचाये जाकर		
वैर भावेन	वैर भावसे		

पुनश्च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः ।
कुम्भकर्णदशग्रीवौ हतौ तौ रामविक्रमैः ॥३६॥

पुनः च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः कुम्भकर्ण दशग्रीवौ हतौ तौ रामविक्रमैः ॥३६॥

विप्रशापेन	ब्राह्मणों (सनकादि) के शापसे	**कुम्भकर्ण दक्षग्रीवौ**	कुम्भकर्ण दशग्रीव (रावण)
पुनः च तौ	फिरसे वे दोनों		नामके

राक्षसौ बभूवतुः राक्षस हो गये

तौ रामविक्रमैः वे दोनों श्रीरामके पराक्रमसे
हतौ मारे गये ॥३६॥

शयानौ युधि निर्भिन्नहृदयौ रामसायकैः ।
तच्चित्तौ जहतुर्देहं यथा प्राक्तनजन्मनि ॥३७॥

शयानौ युधि निर्भिन्न हृदयौ रामसायकैः तत् चित्तः जहतुः देहं यथा प्राक्तन जन्मनि ॥३७॥

रामसायकैः श्रीरामके बाणोंसे
युधि हृदयौ युद्धमें हृदयके
निर्भिन्न शयातौ फट जानेसे सोये
यथा प्राक्तन जैसे पहिले

जन्मनि तत् उन (श्रीराम) में तन्मय
चित्तः चित्त
देहं जहतुः शरीर त्याग दिया ॥३७॥

ताविहाथ पुनर्जातौ शिशुपालकरूषजौ ।
हरौ वैरानुबन्धेन पश्यतस्ते समीयतुः ॥३८॥

ताः इह अथ पुनः जातौ शिशुपाल करूषजौ हरौ वैर अनुबन्धेन पश्यतः ते समीयतुः ॥३८॥

अथ **ताः इह** अब वही दोनों
शिशुपाल शिशुपाल और
करूषजौ करूष देशमें उत्पन्न दन्तवक्त्र
पुनः जातौ (रूपमें) फिर उत्पन्न हुए थे

हरौ वैर श्रीहरिमें शत्रुताके द्वारा
अनुबन्धेन बँधे होनेसे
ते पश्यतः तुम्हारे देखते
समीयतुः (उनमें) लीन हो गये ॥३८॥

एनः पूर्वकृतं यत् तद् राजानः कृष्णवैरिणः ।
जहुस्त्वन्ते तदात्मानः कीटः पेशस्कृतो यथा ॥३९॥

एनः पूर्व कृतं यत् तत् राजानः कृष्ण वैरिणः जहुः तु अन्ते तत् आत्मानः कीटः पेशस्कृतः यथा ॥३९॥

यथा पेशस्कृतः	जैसे भृंगी द्वारा
कीटः	(पकड़ा) कीड़ा (उसका रूप भयसे पा लेता है
कृष्ण वैरिणः	श्रीकृष्णके शत्रु
राजानः	राजा लोग भी
अन्ते	अन्त समयमें
तत् आत्मानः	उनमें चित्त लगे होनेसे
यत् पूर्वं	जो पहिले
एनः कृतं	पाप किया था
तत् जहुः	उससे छूट गये ॥३९॥

यथा यथा भगवतो भक्त्या परमयाभिदा ।
नृपाश्चैद्यादयः सात्म्यं हरेस्तच्चिन्तया ययुः ॥४०॥

यथा यथा भगवतः भक्त्या परमया अभिदा नृपाः चैद्य आदयः सात्म्यं हरेः तत् चिन्तया ययुः ॥४०॥

यथा यथा	जैसे-जैसे
भगवतः	भगवान्‌की
परमया	परम
अभिदा भक्त्या	भेदभाव रहिता भक्तिसे
तत् चिन्तया	(वैसे ही) उनके चिन्तनसे
चैद्य आदयः	शिशुपाल आदि
नृपाः हरेः	राजालोग श्रीहरिके
सात्म्यं ययुः	स्वरूपको प्राप्त हुए ॥४०॥

आख्यातं सर्वमेतत् ते यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ।
दमघोषसुतादीनां हरेः सात्म्यमपि द्विषाम् ॥४१॥

आख्यातं सर्वं एतत् ते यत् मां त्वं परिपृष्टवान् दमघोष सुत आदीनां हरेः सात्म्यं अपि द्विषाम् ॥४१॥

दमघोष सुत	दमघोषके पुत्र शिशुपाल
आदीनां	आदिका
द्विषां अपि	द्वेष करनेवाले होनेपर भी
हरेः सात्म्यं	श्रीहरिकी स्वरूपत्व प्राप्ति
यत् मां	जो मुझसे
त्वं परिपृष्टवान्	तुमने पूछा था,
एतत् सर्वं	यह सब
ते आख्यातं	तुमसे कह दिया ॥४१॥

एषा ब्रह्मण्यदेवस्य कृष्णस्य च महात्मनः ।
अवतारकथा पुण्या वधो यत्रादिदैत्ययोः ॥४२॥

एषा ब्रह्मण्य देवस्य कृष्णस्य च महात्मनः अवतार कथा पुण्या वधः यत्र आदिदैत्ययोः ॥४२॥

एषा	यह	**अवतार कथा**	अवतार-कथा है,
ब्रह्मण्ड दैवस्य	ब्राह्मणोंको देवता माननेवाले	**यत्र**	जिसमें
		आदिदैत्ययोः	आदिदैत्य हिरण्य-कशिपुका
महात्मनः	पुरुषोत्तम		
कृष्णस्य	श्रीकृष्णकी	**वधः**	वध (वर्णित) है
च पुण्या	ही पवित्र		॥४२॥

प्रह्लादस्यानुचरितं महाभागवतस्य च ।
भक्तिर्ज्ञानं विरक्तिश्च याथात्म्यं चास्य वै हरेः ॥४३॥

प्रह्लादस्य अनुचरितं महाभागवतस्य च भक्तिः ज्ञानं विरक्तिः च याथात्म्यं च अस्य वै हरेः ॥४३॥

अस्य	इस प्रसंगमें	**भक्तिः ज्ञानं**	भक्ति, ज्ञान
महाभागवतस्य	परम भगवद्-भक्त	**च विरक्तिः**	एवं वैराग्य
प्रह्लादस्य	प्रह्लादका	**च वै हरेः**	और निश्चयपूर्वक श्रीहरिसे
अनुचरितं	चरित भी साथ ही है	**याथात्म्यं**	तादात्म्य कर लेना है ॥४३॥
च अस्य	तथा इनकी		

सर्गस्थित्यप्ययेशस्य गुणकर्मानुवर्णनम् ।
परावरेषां स्थानानां कालेन व्यत्ययो महान् ॥४४॥

सर्ग स्थिति अप्यय ईशस्य गुण कर्म अनुवर्णनं पर अवरेषां स्थानानां कालेन व्यत्ययः महान् ॥४४॥

सर्ग स्थिति	सृष्टि, स्थिति,	**स्थानानां**	स्थानोंका
अप्यय ईशस्य	प्रलयके स्वामीके	**कालेन महान्**	कालक्रमसे हुए महान्
गुण कर्म	गुण, चरितोंका		
अनुवर्णनं	वर्णन है,	**व्यत्यय**	उलटफेरका (भी वर्णन है) ॥४४॥
पर अवरेषां	श्रेष्ठ-कनिष्ठ (देव-दैत्यों) के		

धर्मो भागवतानां च भगवान्येन गम्यते ।
आख्यानेऽस्मिन्समाम्नातमाध्यात्मिकमशेषतः ॥४५॥

धर्मः भागवतानां च भगवान् येन गम्यते आख्याने अस्मिन् समाम्नातं आध्यात्मिकं अशेषतः ॥४५॥

येन भगवान्	जिसके द्वारा भगवान्की	**आध्यात्मिकं**	आध्यात्मिक तथ्य
गम्यते	प्राप्ति होती है (वह)	**अस्मिन्**	इस
भागवतानां	भगवद्-भक्तोंका	**आख्याने**	आख्यानमें
धर्मः	धर्म	**समाम्नातं**	भली प्रकार कहे गये हैं ॥४५॥
च अशेषतः	तथा सम्पूर्ण रूपसे		

य एतत् पुण्यमाख्यानं विष्णोर्वीर्योपबृंहितम् ।
कीर्तयेच्छ्रद्धया श्रुत्वा कर्मपाशैर्विमुच्यते ॥४६॥

यः एतत् पुण्यं आख्यानं विष्णोः वीर्यं उपबृंहितं कीर्तयेत् श्रद्धया श्रुत्वा कर्मपाशैः विमुच्यते ॥४६॥

विष्णोः वीर्यं	भगवान् विष्णुके पराक्रमसे	**यः श्रद्धया**	जो श्रद्धापूर्वक
		श्रुत्वा कीर्तयेत्	सुनकर वर्णन करता है
उपबृंहितं	परिपूर्ण		
एतत् पुण्यं	इस पवित्र	**कर्मपाशैः**	(वह) कर्म-बन्धनसे
आख्यानं	आख्यानको	**विमुच्यते**	छूट जाता हूँ ॥४६॥

एतद् य आदिपुरुषस्य मृगेन्द्रलीलां
दैत्येन्द्रयूथपवधं प्रयतः पठेत ।
दैत्यात्मजस्य च सतां प्रवरस्य पुण्यं
श्रुत्वानुभावमकुतोभयमेति लोकम् ॥४७॥

एतत् यः आदिपुरुषस्य मृगेन्द्रलीलां दैत्येन्द्र यूथप वधं प्रयतः पठेत दैत्यात्मजस्य च सतां प्रवरस्य पुण्यं श्रुत्वा अनुभावं अकुतः भयं एति लोकम् ॥४७॥

यः एतत्	जो इस	**च सतां प्रवरस्य**	तथा सज्जनोत्तम
आदिपुरुषस्य	आदिपुरुषके	**दैत्यात्मजस्य**	दैत्यपुत्र प्रह्लादका
दैत्येन्द्र यूथप	दैत्य-नायकोंके अध्यक्ष हिरण्य-कशिपुका	**पुण्यं अनुभावं**	पवित्र प्रभाव
		श्रुत्वा	सुनकर
		अकुतः भयं	जहां कहींसे भय नहीं उस
वधं	वध रूप	**लोकं एति**	लोकमें जाता है ॥४७॥
मृगेन्द्रलीलां	नृसिंह-चरित		
प्रयतः पठेत	एकाग्र होकर पढ़ता है		

यूयं नृलोके बत भूरिभागा
लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ।
येषां गृहानावसतीति साक्षाद्
मूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥४८॥

यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयः अभियन्ति येषां गृहान् आवसति इति साक्षात् गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥४८॥

नृलोके	मनुष्य लोकमें	**मनुष्यलिङ्गं**	मनुष्य रूपमें
बत यूयं	अहो तुम लोग	**गूढं साक्षात्**	छिपे साक्षात्
भूरिभागा	बड़भागी हो,	**परं ब्रह्म इति**	परमब्रह्म इस प्रकार
येषां गृहान्	जिनके घरोंमें		

आवसति	रहते हैं (इसीसे)	अभियन्ति	चारों ओरसे
लोकं पुनाना	लोकोंको पवित्र करनेवाले		(तुम्हारे यहां) आते हैं ॥४८॥
मुनयः	मुनिगण		

स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्य-
कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ।
प्रियः सुहृद् वः खलु मातुलेय
आत्मार्हणीयो विधिकृद् गुरुश्च ॥४९॥

स वा अयं ब्रह्म महत् विमृग्य कैवल्य निर्वाण सुख अनुभूतिः प्रियः सुहृत् वः खलु मातुलेयः आत्मा अर्हणीयः विधिकृत् गुरुः च ॥४९॥

महत् विमृग्य	महापुरुषों द्वारा ढूंढ़े जाते,	प्रियः सुहृत्	प्रिय सुहृद
कैवल्य निर्वाण	कैवल्य-मोक्ष	खलु मातुलेयः	अरे, मामाके पुत्र,
सुख अनुभूतिः	सुखानुभव स्वरूप	आत्मा	आत्मा,
स ब्रह्म वा	वह ब्रह्म निश्चय	अर्हणीयः	पूज्य,
वः अयं	तुम लोगोंके ये	विधिकृत्	आदेश पालक
		च गुरुः	और गुरु भी हैं ॥४९

न यस्य साक्षाद् भवपद्मजादिभी
रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ।
मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः
प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः ॥५०॥

न यस्य साक्षात् भव पद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतया उपवर्णितं मौनेन भक्त्या उपशमेन पूजितः प्रसीदतां एष स सात्वतां पतिः ॥५०॥

भव पद्मजादिभी	शिव-ब्रह्मा आदि भी	धिया	बुद्धि लगाकर भी
यस्य	जिसके	वस्तुतया	ठीक तथ्यके रूपमें
साक्षात् रूपं	साक्षात् रूपका	उपवर्णितं च	वर्णन नहीं कर पाते

स एष	वे ये	**उपशमेन**	संयमके द्वारा
सात्वतां पतिः	भक्तोंके स्वामी	**पूजितः**	पूजित होकर
मौनेन भक्त्या	मौन होनेसे, भक्तिसे,	**प्रसीदतां**	प्रसन्न हों ॥५०॥

स एष भगवान्राजन्व्यतनोद् विहतं यशः ।
पुरा रुद्रस्य देवस्य मयेनानन्तमायिना ॥५१॥

स एष भगवान् राजन् व्यतनोत् विहतं यशः पुरा रुद्रस्य देवस्य मयेन अनन्त मायिना ॥५१॥

राजन्	राजन् !	**यशः विहतं**	यशमें बाधा देनेपर
पुरा अनन्त	पहिले अनन्त	**स एष भगवान्**	उन इन्हीं भगवान्ने
मायिना	मायावी	**व्यतनोत्**	उस (यश) का
मयेन	मयके द्वारा		विस्तार किया ॥५१॥
रुद्रस्य देवस्य	रुद्रदेवके		

युधिष्ठिर उवाच–*

कस्मिन् कर्मणि देवस्य मयोऽहञ्जगदीशितुः ।
यथा चोपचिता कीर्तिः कृष्णेनानेन कथ्यताम् ॥५२॥

कस्मिन् कर्मणि देवस्य मयः अहन् जगदीशितुः यथा च उपचिता कीर्तिः कृष्णेन अनेन कथ्यताम् ॥५२॥

मयः	मय	**कृष्णेन कीर्तिः**	श्रीकृष्ण द्वारा वह
कस्मिन् कर्मणि	किस कर्ममें		कीर्ति
जगदीशितुः	जगदीश शिवकी	**उपचिता**	बचायी गयी
अहन्	(कीर्ति) नष्ट कर	**कथ्यतां**	(इसका) वर्णन
	रहा था ।		कीजिए ॥५२॥
यथा अनेन	जैसे इन		

*अन्य प्रतियोंमें यहां 'राजोवाच' है ।

नारद उवाच–

निर्जिता असुरा देवैर्युध्यनेनोपबृंहितैः ।
मायिनां परमाचार्यं मयं शरणमाययुः ॥५३॥

निर्जिता असुरा देवैः युधि अनेन उपबृंहितैः मायिनां परमाचार्यं मयं शरणं आययुः ॥५३॥

अनेन	इन भगवान्
उपबृंहितैः	द्वारा संवर्धित
देवैः युधि	देवताओंसे युद्धमें
निर्जिता असुरा	जीते गये असुर
मायिनां	मायावियोंके
परमाचार्यं	परमाचार्य
मयं शरणं	मय दानवकी शरणमें
आययुः	आये ॥५३॥

स निर्माय पुरस्तिस्रो हैमीरौप्यायसीर्विभुः ।
दुर्लक्ष्यापायसंयोगा दुर्वितर्क्यपरिच्छदाः ॥५४॥

स निर्माय पुरः तिस्रः हैमी रौप्य आयसीः विभुः दुर्लक्ष्य अपाय संयोगा दुर्वितर्क्य परिच्छदाः ॥५४॥

स विभुः	उस समर्थने
हैमी रौप्य	सोनेकी, चांदीकी
आयसीः तिस्रः	लोहेकी तीन
पुरः निर्माय	पुरियां (विमान) बनाये,
अपाय संयोगा	(उनका) जाना-आना
दुर्लक्ष्य	कठिनाईसे दीखता था,
दुर्वितर्क्य	अनुमानमें कठिनाईसे आवें इतनी
परिच्छदाः	सामग्रियां उनमें थीं ॥५४॥

ताभिस्तेऽसुरसेनान्यो लोकांस्त्रीन् सेश्वरान् नृप ।
स्मरन्तो नाशयाञ्चक्रुः पूर्ववैरमलक्षिताः ॥५५॥

ताभिः ते असुर सेनान्यः लोकान् त्रीन् स ईश्वरान् नृप स्मरन्तः नाशयान् चक्रुः पूर्व वैरं अलक्षिताः ॥५५॥

नृप	राजन् !	**अलक्षिताः**	अदृश्य रहकर
ताभिः ते	उन (पुरों) के द्वारा वे	**स ईश्वरान्**	लोकपालों सहित
असुर सेनान्यः	असुर-सेना-नायक	**त्रीन् लोकान्**	तीनों लोकोंका
पूर्व वैरं	पहिलेकी शत्रुताका	**नाशयान् चक्रुः**	नाश करने लगे ॥५५॥
स्मरन्तः	स्मरण करके		

ततस्ते सेश्वरा लोका उपासाद्येश्वरं विभो ।
त्राहि नस्तावकान्देव विनष्टांस्त्रिपुरालयैः ॥५६॥

ततः ते स ईश्वरा लोकाः उपासाद्य ईश्वरं विभो त्राहि नः तावकान् देव विनष्टान् त्रिपुर आलयैः ॥५६॥

ततः ते	तब वे	**विभो देव**	प्रभो, महादेव !
स ईश्वरा	अपने स्वामियोंके साथ	**त्रिपुर आलयैः**	त्रिपुरोंमें रहनेवालों द्वारा
लोकाः	सब लोक	**विनष्टान्**	नष्ट किये जाते
ईश्वरं उपासाद्य	शंकरजीके पास जाकर (बोले)	**नः तावकान्**	हम अपनोंकी,
		त्राहि	रक्षा कीजिए ॥५६॥

अथानुगृह्य भगवान्मा भैष्टेति सुरान्विभुः ।
शरं धनुषि सन्धाय पुरेष्वस्त्रं व्यमुञ्चत ॥५७॥

अथ अनुगृह्य भगवान् मा भैष्ट इति सुरान् विभुः शरं धनुषि सन्धाय पुरेषु अस्त्रं व्यमुञ्चत ॥५७॥

अथ विभुः	तब समर्थ	**धनुषि शरं**	धनुषपर बाण
भगवान्	भगवान्ने	**सन्धाय**	चढ़ाकर
अनुगृह्य	अनुग्रह करके	**पुरेषु**	(उन) त्रिपुरोंपर
'मा भैष्ट'	'डरो मत'	**अस्त्रं व्यमुञ्चत**	अस्त्र छोड़ा ॥५७॥
इति सुरान्	इस प्रकार देवताओं-से (कहकर)		

ततोऽग्निवर्णा इषव उत्पेतुः सूर्यमण्डलात् ।
यथा मयूखसंदोहा नादृश्यन्त पुरो यतः ॥५८॥

ततः अग्निवर्णाः इषवः उत्पेतुः सूर्यमण्डलात् यथा मयूख सन्दोहाः न अदृश्यन्त पुरः यतः ॥५८॥

ततः	तब	**इषवः उत्पेतुः**	बाण गिरने लगे
सूर्यमण्डलात्	सूर्य-मण्डलसे	**यतः पुरः**	जिससे वे पुरियां
यथा मयूख	जैसे किरणोंके	**न अदृश्यन्त**	नहीं दीखती थीं
सन्दोहाः	समान हों		॥५८॥
अग्निवर्णाः	अग्नि वर्णके		

तैः स्पृष्टा व्यसवः सर्वे निपेतुः स्म पुरौकसः ।
तानानीय महायोगी मयः कूपरसेऽक्षिपत् ॥५९॥

तैः स्पृष्टा व्यसवः सर्वे निपेतुः स्म पुर ओकसः तान् आनीय महायोगी मयः कूपरसे अक्षिपत् ॥५९॥

तैः स्पृष्टा	उन (बाणों) के लगनेसे	**स्म**	थे ।
पुर ओकसः सर्वे	उन पुरियोंमें रहने-वाले सब	**महायोगी मयः**	महायोगी मयने
व्यसवः निपेतुः	निष्प्राण होकर गिर पड़े	**तान् आनीय**	उनको लाकर
		कूपरसे	कुएँके रसमें
		अक्षिपत्	डाल दिया ॥५९॥

सिद्धामृतरसस्पृष्टा वज्रसारा महौजसः ।
उत्तस्थुर्मेघदलना वैद्युता इव वह्नयः ॥६०॥

सिद्ध अमृत रस स्पृष्टा वज्रसारा महा ओजसः उत् तस्थुः मेघ-दलना वैद्युता इव वह्नयः ॥६०॥

सिद्ध अमृत रस	(उस) सिद्ध अमृत-रसका	**स्पृष्टा**	स्पर्श करके
		महा ओजसः	अत्यन्त तेजस्वी

वज्रसारा	वज्रसार (फौलाद) के समान	**वैद्युता वह्नयः इव**	बिजलीकी आगके समान
मेघदलना	बादलोंको चीरकर निकला	**उत् तस्थुः**	उठ खड़े हुए ॥६०॥

विलोक्य भग्नसंकल्पं विमनस्कं वृषध्वजम् ।
तदायं भगवान्दिष्णुस्तत्रोपायमकल्पयत् ॥६१॥

विलोक्य भग्न संकल्पं विमनस्कं वृषध्वजं तदा अयं भगवान् विष्णुः तत्र उपायं अकल्पयत् ॥६१॥

वृषध्वजं	(इससे) शंकरजीको	**तदा अयं**	तब इन
भग्न संकल्पं	संकल्प टूट जानेसे	**भगवान् विष्णुः**	भगवान् विष्णुने
विमनस्कं	उदास हुआ	**तत्र उपायं**	उस विषयमे उपाय
विलोक्य	देखकर	**अकल्पयत्**	सोच लिया ॥६१॥

वत्स आसीत्तदा ब्रह्मा स्वयं विष्णुरयं हि गौः ।
प्रविश्य त्रिपुरं काले रसकूपामृतं पपौ ॥६२॥

वत्स आसीत् तदा ब्रह्मा स्वयं विष्णुः अयं हि गौः प्रविश्य त्रिपुरं काले रस कूप अमृतं पपौ ॥६२॥

हि	क्योंकि	**काले त्रिपुरं**	(मध्याह्नके) समय त्रिपुरमें
तदा ब्रह्मा	उस समय ब्रह्मा	**प्रविश्य**	प्रवेश करके
वत्स आसीत्	बछड़ा हो गये	**कूप रस अमृतं**	कुएँका रसरूप अमृत
अयं स्वयं	ये स्वयं	**पपौ**	पी गये ॥६२॥
विष्णुः गौः	विष्णु गाय (बनकर)		

तेऽसुरा ह्यपि पश्यन्तो न न्यषेधन्विमोहिताः ।
तद् विज्ञाय महायोगी रसपालानिदं जगौ ॥६३॥

ते असुरा हि अपि पश्यन्तः न न्यषेधन् विमोहिताः तद् विज्ञाय महायोगी रसपालान् इदं जगौ ॥६३॥

ते असुरा	वे असुर
पश्यन्तः अपि	देखते हुए भी
हि विमोहिताः	क्योंकि बहुत मोहित किये गये थे*
न्यषेधन् न	(उन्होंने) रोका नहीं
तद् विज्ञाय	यह जानकर
महायोगी	महायोगी (मय) ने
रसपालान्	रस-रक्षकोंसे
इदं जगौ	यह कहा ॥६३॥

स्वयं विशोकः शोकार्तान्स्मरन्दैवगतिं च ताम् ।
देवोऽसुरो नरोऽन्यो वा नेश्वरोऽस्तीह कश्चन ॥६४॥

स्वयं विशोकः शोक आर्तान् स्मरन् दैवगतिं च तां देवः असुरः नरः अन्यः वा न ईश्वरः अस्ति इह कश्चन ॥६४॥

स्वयं विशोकः	(वह) स्वयं शोक-हीन था ।
शोक आर्तन्	शोकसे दुःखी (रक्षकोंसे)
तां दैवगतिं	उस दैवकी गति
च स्मरन्	को भी स्मरण करके (बोला)
देवः असुरः	'देवता, असुर,
नरः अन्यः	मनुष्य या कोई दूसरा
इह कश्चन	इस जगतमें कोई भी
ईश्वरः न	समर्थ नहीं है ॥६४॥

आत्मनोऽन्यस्य वा दिष्टं दैवेनापोहितुंद्वयोः ।
अथासौ शक्तिभिः स्वाभिः शम्भोः प्राधनिकं व्यधात् ॥६५॥

आत्मनः अन्यस्य वा दिष्टं दैवेन अपोहितं द्वयोः अथ असौ शक्तिभिः स्वाभिः शम्भोः प्राधनिकं व्यधात् ॥६५॥

दैवेन आत्मनः	दैवने अपना
वा अन्यस्य	अथवा दूसरेका
द्वयोः दिष्टं	दोनोंका जो प्रारब्ध (बना दिया)

*'शिव-चरित' में त्रिपुर-दलनकी कथामें पूरा विस्तार है ।

अपोहितं	(उसे) मिटा देनेमें (समर्थ नहीं)	**शक्तिभिः**	**शक्तियोंसे**
अथ असौ	फिर इन (भगवान्) ने	**शम्भोः**	शंकरजीकी
स्वाभिः	अपनी	**प्राधनिकं**	युद्ध-सामग्री
		व्यधात्	बनायी ॥६५॥

धर्मज्ञानविरक्त्यृद्धितपोविद्याक्रियादिभिः ।
रथं सूतं ध्वजं वाहान्धनुर्वर्म शरादि यत् ॥६६॥

धर्म ज्ञान विरक्ति ऋद्धि तपः विद्या क्रिया आदिभिः रथं सूतं ध्वजं वाहान् धनुः वर्म शरादि यत् ॥६६॥

धर्मं रथं	धर्मसे रथ	**क्रिया आदिभिः**	क्रिया आदि शक्तियोसे
ज्ञान सूतं	ज्ञानसे सारथि	**यत् शरादि**	जो बाण आदि (आवश्यक थे बनाये) ॥६६॥
विरक्ति ध्वजं	वैराग्यसे ध्वजा,		
ऋद्धि वाहान्	ऐश्वर्यसे घोड़े,		
तपः धनुः	तपस्यासे धनुष,		
विद्या वर्म	विद्यासे कवच		

सन्नद्धो रथमास्थाय शरं धनुरुपाददे ।
शरं धनुषि सन्धाय मुहूर्तेऽभिजितीश्वरः ॥६७॥

सन्नद्धः रथं आस्थाय शरं धनुः उप आददे शरं धनुषि सन्धाम मुहूर्ते अभिजिति ईश्वरः ॥६७॥

अथ सन्नद्धः	तब कवच धारण करके	**अभिजिति**	अभित
रथं आस्थाय	रथपर बैठकर	**मुहूर्ते**	मुहूर्तमें
धनुः शरं	धनुष बाण	**ईश्वरः**	शंकरजीने
उप आददे	उठाया	**धनुषि शरं**	धनुषपर बाण
		सन्धाय	चढ़ाकर ॥६७॥

ददाह तेन दुर्भेद्या हरोऽथ त्रिपुरो नृप ।
दिवि दुन्दुभयो नेदुर्विमानशतसङ्कुलाः ॥६८॥

ददाह तेन दुर्भेद्या हरः अथ त्रिपुरः नृप दिवि दुन्दुभयः नेदुः विमान शत सङ्कुलाः ॥६८॥

नृप	राजन् !
तेन हरः	उसके द्वारा शंकर-जीने
दुर्भेद्या त्रिपुरः	दुर्भेद्य तीनों पुरोंको
ददाह	भस्म कर दिया,
अथ विमान शत	तब सैकड़ों विमानों-से
सङ्कुलाः दिवि	भरे स्वर्गमें
दुन्दुभयः नेदुः	दुन्दुभियां बजने लगीं ॥६८॥

देवर्षिपितृसिद्धेशा जयेति कुसुमोत्करैः ।
अवाकिरञ्जगुर्हृष्टा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६९॥

देव ऋषि पितृ सिद्धेशा जय इति कुसुम उत्करैः अवाकिरन् जगुः हृष्टा ननृतुः च अप्सरः गणाः ॥६९॥

देव ऋषि	देवता, ऋषि,
पितृ सिद्धेशा	पितर, सिद्धेश
जय इति जगुः	'जय हो' यह कहने लगे,
उत्करैः	हाथ उठाकर
कुसुम	पुष्प
अवाकिरन्	बिखेरने लगे,
च हृष्टाः	और प्रसन्न होकर
अप्सरः गणाः	अप्सराओंका वर्ग
ननृतुः	नाचने लगा ॥६९॥

एवं दग्ध्वा पुरस्तिस्रो भगवान्पुरहा नृप ।
ब्रह्मादिभिः स्तूयमानः स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥७०॥

एवं दग्ध्वा पुरः तिस्रः भगवान् पुरहा नृप ब्रह्मादिभिः स्तूयमानः स्वधाम प्रति अपद्यत ॥७०॥

नृप	राजन् !
एवं तिस्रः	इस प्रकार तीनों
पुरः दग्ध्वा	पुरियां भस्म करके
ब्रह्मादिभिः	ब्रह्मा आदि द्वारा
स्तूयमानः	स्तुति किये जाते
भगवान् पुरहा	भगवान् पुरारि
स्वधाम प्रति	अपने धामको
अपद्यत	चले गये ॥७०॥

एवंविधान्यस्य हरेः स्वमायया
विडम्बमानस्य नृलोकमात्मनः ।

वीर्याणि गीतान्यृषिभिर्जगद्गुरो-
र्लोकान् पुनानान्यपरं वदामि किम् ॥७१॥

एवं विधानि अस्य हरेः स्वमायया विडम्बमानस्य नृलोकं आत्मनः वीर्याणि गीतानि ऋषिभिः जगद्गुरोः लोकान् पुनानानि अपरं वदामि किम् ॥७१॥

नृलोकं	मनुष्य लोकमें	**लोकान्**	लोकोंको
स्वमायया	अपनी मायासे	**पुनानानि**	पवित्र करने वाले
आत्मनः	अपनी	**वीर्याणि**	पराक्रम
विडम्बमानस्य	लीलाएँ करते हुए	**ऋषिभिः**	ऋषियों द्वारा
अस्य जगद्गुरोः	इन जगद्गुरु श्रीहरिकी	**गीतानि**	गाये गये हैं।
		अपरं किं	और क्या
एवं विधानि	इस प्रकारके	**वदामि**	कहूँ ॥७१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे त्रिपुरविजयो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

श्रुत्वेहितं साधुसभासभाजितं
महत्तमाग्रण्य उरुक्रमात्मनः ।
युधिष्ठिरो दैत्यपतेर्मुदा युतः
पप्रच्छ भूयस्तनयं स्वयम्भुवः ॥१॥

श्रुत्वा ईहितं साधु सभा सभाजितं महत्तम अग्रण्य उरुक्रम आत्मनः युधिष्ठिरः दैत्यपतेः मुदा युतः पप्रच्छ भूयः तनयं स्वयम्भुवः ॥१॥

साधु सभा	सत्पुरुषोंके समाजमें	**ईहितं**	चेष्टा (चरित)
सभाजितं	सम्मानित	**श्रुत्वा**	सुनकर
महत्तम	महापुरुषोंके	**मुदा युतः**	प्रसन्न होकर
अग्रण्य	अग्रणी	**युधिष्ठिरः**	युधिष्ठिरने
उरुक्रम आत्मनः	अनन्त पराक्रम भगवन्मय चित्त	**स्वयम्भुवं तनयं**	ब्रह्माजीके पुत्र नारदजीसे
दैत्यपतेः	दैत्यराज प्रह्लादकी	**भूयः पप्रच्छ**	फिर पूछा ॥१॥

युधिष्ठिर उवाच–

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि नृणां धर्मं सनातनम् ।
वर्णाश्रमाचारयुतं यत् पुमान्विन्दते परम् ॥२॥

भगवन् श्रोतुं इच्छामि नृणां धर्मं सनातनं वर्ण आश्रम आचारयुतं यत् पुमान् विन्दते परम् ॥२॥

भगवन्	भगवन् !	**वर्ण आश्रम**	वर्ण-आश्रमके
नृणां	मनुष्योंका	**आचारयुतं**	आचार वाला

सनातनं धर्मं	सनातन धर्म	**परं विन्दते**	परमात्माको पा
श्रोतुं इच्छामि	सुनना चाहता हूँ,		लेता है ॥२॥
पुमान् यत्	पुरुष जिसके द्वारा		

भवान्प्रजापतेः साक्षादात्मजः परमेष्ठिनः ।
सुतानां सम्मतो ब्रह्मंस्तपोयोगसमाधिभिः ॥३॥

भवान् प्रजापतेः साक्षात् आत्मजः परमेष्ठिनः सुतानां सम्मतः ब्रह्मन् तपः योग समाधिभिः ॥३॥

भवान् साक्षात्	आप साक्षात्	**योग समाधिभिः**	योग तथा एकाग्रता-
प्रजापतेः	प्रजापति		के कारण
परमेष्ठिनः	ब्रह्माजीके	**सुतानां सम्मतः**	(उनको) पुत्रोंमें
आत्मजः	पुत्र हैं		सबसे प्रिय हैं ॥३॥
ब्रह्मन् तपः	(और) ब्रह्मन् ! तपस्या,		

नारायणपरा विप्रा धर्मं गुह्यं परं विदुः ।
करुणाः साधवः शान्तास्त्वद्विधा न तथापरे ॥४॥

नारायण परा विप्रा धर्मं गुह्यं परं विदुः करुणाः साधवः शान्ताः त्वद्विधा न तथा अपरे ॥४॥

त्वद्विधा	आपके समान	**परं गुह्यं धर्मं**	परम रहस्यमय
नारायण परा	नारायण परायण,		धर्मको
करुणाः साधवः	दयालु, सत्पुरुष,	**विदुः तथा**	जानते हैं, वैसा
शान्ताः विप्रा	शान्त ब्राह्मण	**अपरे न**	दूसरे नहीं (जानते) ॥४॥

नारद उवाच–

नत्वा भगवतेऽजाय लोकानां धर्महेतवे ।
वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥५॥

नत्वा भगवते अजाय लोकानां धर्महेतवे वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायण मुखात् श्रुतम् ॥५॥

भगवते अजाय	भगवान् अजन्माको	**मुखात्**	मुखसे
नत्वा लोकानां	नमस्कार करके, लोकोंको	**श्रुतं सनातनं**	सुने सनातन (शाश्वत)
धर्महेतवे	धर्ममें स्थित रखनेके लिए	**धर्मं वक्ष्ये**	धर्मका वर्णन करूँगा ॥५॥
नारायण	ऋषि नारायणके		

योऽवतीर्यात्मनोंऽशेन दाक्षायण्यां तु धर्मतः ।
लोकानां स्वस्तयेऽध्यास्ते तपो बदरिकाश्रमे ॥६॥

यः अवतीर्य आत्मनः अंशेन दाक्षायण्यां तु धर्मत लोकानां स्वस्तये अध्यास्ते तपः बदरिकाआश्रमे ॥६॥

यः आत्मः	जो अपने	**लोकानां**	लोकोंके
अंशेन	अंश (नर) सहित	**स्वस्तय**	कल्याणके लिए
धर्मतः	धर्मसे (उनकी पत्नी)	**बदरिका आश्रमे**	बदरीनाथमें
दाक्षायण्यां तु	दक्षकन्या मूर्तिमें तो	**तपः अध्यास्ते**	तपस्या कर रहे हैं ॥६॥
अवतीर्य	अवतार लेकर		

धर्ममूलं हि भगवान्सर्ववेदमयो हरिः ।
स्मृतं च तद्विदां राजन्येन चात्मा प्रसीदति ॥७॥

धर्ममूलं हि भगवान् सर्व वेदमयः हरिः स्मृतं च तत् विदां राजन् येन च आत्मा प्रसीदति ॥७॥

राजन्	राजन् !	**स्मृतं**	स्मृतियां,
सर्व वेदमयः	सर्व वेदमय	**च येन**	तथा जिससे
हरिः	श्रीहरि,	**आत्मा प्रसीदति**	चित्त निर्मल हो
च तत् विदां	और उन (वेदों) को जाननेवाले (ऋषियों) की	**हि धर्ममूलं**	यही धर्मका मूल हैं ॥७॥

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः ।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥८॥

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षा ईक्षा शमः दमः अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥८॥

सत्यं दया	सत्य, दया,	**अहिंसा**	अहिंसा,
तपः शौचं	तप, पवित्रता,	**ब्रह्मचर्यं**	ब्रह्मचर्य,
तितिक्षा ईक्षा	तितीक्षा, विवेक,	**त्यागः**	त्याग,
शमः दमः	मनकी शान्ति, इन्द्रियोंका दमन,	**स्वाध्याय च आर्जवं**	स्वाध्याय तथा सरलता ॥८॥

सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥९॥

सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्य ईहा उपरमः शनैः नृणां विपर्यय इह ईक्षा मौनं आत्म विमर्शनम् ॥९॥

सन्तोषः समदृक्	सन्तोष, समदर्शिता,	**इह नृणां**	इस संसारमें मनुष्योंकी
सेवा	सेवा	**विपर्यय ईक्षा**	उलटी दशा देखना,
शनैः ग्राम्य ईहा	धीरे-धीरे सांसारिक भोगोंकी चेष्टासे	**मौनं**	मौन
उपरमः	उपरामता,	**आत्म विमर्शनं**	आत्म-तत्त्वका विचार ॥९॥

अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥१०॥

अन्न आदि आदेः संविभागः भूतेभ्यः च यथा अर्हतः तेषु आत्म देवता बुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥१०॥

पाण्डव	युधिष्ठिर !	**अर्हतः**	योग्य
भूतेभ्यः यथा	प्राणियोंमें यथा	**अन्न आदि**	अन्न आदिको

आदेः संविभागः	पहिले ही बाँट देना,	**देवता**	इष्टदेवका
च तेषु सुतरां	तथा उनमें विशेषतः	**बुद्धिः**	भाव ॥१०॥
नृषु आत्म	मनुष्योंमें अपने		

श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥११॥

श्रवणं कीर्तनं च अस्य स्मरणं महतां गतेः सेवा इज्या अवनतिः दास्यं सख्यं आत्मसमर्पणम् ॥११॥

अस्य महतां गतेः	इन महापुरुषोंके परम गति भगवान्-का	**स्मरणं**	स्मरण,
		सेवा इज्या	सेवा, पूजा,
		अवनतिः	बन्दन,
श्रवणं कीर्तनं	(यश-चरित) श्रवण, कीर्तन,	**दास्यं सख्यं**	दास्य, सख्य,
		आत्मसमर्पणं	आत्मसमर्पण ॥११॥

नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।
त्रिंशल्लक्षणवान्राजन्सर्वात्मा येन तुष्यति ॥१२॥

नृणां अयं परः धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः त्रिंशत् लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥१२॥

राजन्	राजन् !	**सर्वेषां**	सबके लिए
अयं नृणां	यह मनुष्योंका	**समुदाहृतः**	कहा गया है
त्रिंशत्	तीस	**येन सर्वात्मा**	जिससे सर्वात्मा भगवान्
लक्षणवान्	लक्षणोंवाला		
परः धर्मः	परम धर्म	**तुष्यति**	सन्तुष्ट होते हैं ॥१२॥

संस्कारा यदविच्छिन्नाः स द्विजोऽजो जगाद यम् ।
इज्याध्ययनदानानि विहितानि द्विजन्मनाम् ।
जन्मकर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिताः ॥१३॥

संस्कारा यत् अविच्छिन्नाः स द्विजः अजः जमाद यं इज्या अध्ययन दानानि विहितानि द्विजन्मनां जन्मकर्म अवदातानां क्रियाः च आश्रम चोदिताः ॥१३॥

अजः यं	ब्रह्माजीने जिनको	**अवदातानां**	शुद्ध
जगाद	(संस्कार) बतलाये	**द्विजन्मनां**	द्विजोंके लिए
यत् अविच्छिन्नाः	क्योंकि (उनसे ही) अखण्ड रूपसे	**इज्या अध्ययन**	यज्ञ, वेदाध्ययन,
		दानानि च	दान और
संस्कारा	संस्कार (चलते) आ रहे हैं	**आश्रम**	आश्रमोंके लिए
		चोदिताः	बतलायी गयी
स द्विजः	वे द्विज हैं	**क्रियाः**	कर्मोंका
जन्मकर्म	जन्म तथा कर्मसे	**विहितानि**	विधान है ॥१३॥

विप्रस्याध्ययनादीनि षडन्यस्याप्रतिग्रहः ।
राज्ञो वृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद् वा करादिभिः ॥१४॥

विप्रस्य अध्ययन आदीनि षट् अन्यस्य अप्रतिग्रहः राज्ञः वृत्तिः प्रजागोप्तुः अविप्रात् वा कर आदिभिः ॥१४॥

विप्रस्य	ब्राह्मणके लिए	**अप्रतिग्रहः**	दान लेना नहीं है ।
अध्ययन	अध्ययन	**वा प्रजागोप्तुः**	तथा प्रजाके रक्षक
आदीनि षट्	आदि (अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ करना-कराना, दान देना-लेना)ये छः	**राज्ञः वृत्तिः**	राजाकी जीविका
		अविप्रात्	ब्राह्मणको छोड़कर
		कर आदिभिः	कर आदिसे (चलाना) है ॥१४॥
अन्यस्य	दूसरों (क्षत्रिय-वैश्य) के लिए		

वैश्यस्तु वार्तावृत्तिश्च नित्यं ब्रह्मकुलानुगः ।
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा वृत्तिश्च स्वामिनो भवेत् ॥१५॥

वैश्यः तु वार्ता वृत्तिः च नित्यं ब्रह्मकुल अनुगः शूद्रस्य द्विज शुश्रूषा वृत्तिः च स्वामिनः भवेत् ॥१५॥

वैश्यः तु	वैश्यको तो
नित्यं ब्रह्मकुल	सदा ब्राह्मण कुलोंका
अनुगः	अनुगामी होकर
च वार्ता	तथा व्यापारसे
वृत्तिः	जीविका करनी चाहिए
शूद्रस्य	शूद्रका (कर्तव्य)
द्विज शुश्रूषा	द्विजोंकी सेवा है,
च वृत्तिः	और आजीविका
स्वामिनः भवेत्	उसके स्वामीसे होती है ॥१५॥

वार्ता विचित्रा शालीनयायावरशिलोञ्छनम् ।
विप्रवृत्तिश्चतुर्धेयं श्रेयसी चोत्तरोत्तरा ॥१६॥

कर्ता विचित्रा शालीन यायावर शिल उञ्छनं विप्रः वृत्तिः चतुर्धा इयं श्रेयसी च उत्तर उत्तरा ॥१६॥

विप्रः विचित्रा	ब्राह्मणकी विचित्र
इयं चतुर्धा	यह चार प्रकारकी
वृत्तिः	आजीविका है,
कर्ता	कर्ता (यज्ञादि कराकर)
शालीन	बिना मांगे जो मिले उसे लेकर,
यायावर	प्रतिदिन उसी दिन-के लिए मांग लाना
शिल उञ्छनं	फसल कट जानेपर गिरे दाने या अन्न पड़े दाने उठ जानेपर बाजार चुन लाना,
उत्तर उत्तरा च	पीछे-पीछेकी (वृत्तियां)
श्रेयसी च	कल्याण कारिणी हैं ॥१६॥

जघन्यो नोत्तमां वृत्तिमनापदि भजेन्नरः ।
ऋते राजन्यमापत्सु सर्वेषामपि सर्वशः ॥१७॥

जघन्यः न उत्तमां वृत्तिं अनापदि भजेत् नरः ऋते राजन्यं आपत्सु सर्वेषां अपि सर्वशः ॥१७॥

राजन्यं ऋते	राजाको छोड़कर
अनापदि	आपत्ति-काल न होनेपर
जघन्यः नरः	निम्न वर्णका पुरुष
उत्तमां वृत्तिं	अपनेसे श्रेष्ठ वर्णकी जीविका
न भजेत्	न अपनावे
आपत्सु	आपत्ति-कालमें
सर्वेषां अपि	सब लोगोंके लिए ही
सर्वशः	सभी (आजीविकाएँ) हैं ॥१७॥

ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा ।
सत्यानृताभ्यां जीवेत न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥१८॥

ऋतां अमृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा सत्य अनृताभ्यां जीवेत न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥१८॥

ऋतां	ऋता,	**श्ववृत्त्या**	किन्तु कुत्तेकी वृत्तिसे
अमृताभ्यां	अमृतासे	**कथञ्चन**	कभी भी
मृतेन	मृतसे,	**न जीवेत**	जीवन न चलावे ॥१८॥
प्रमृतेन वा	प्रमृतसे अथवा		
सत्य अनृताभ्यां	सत्य अनृतासे		

ऋतमुञ्छशिलं प्रोक्तममृतं यदयाचितम् ।
मृतं तु नित्ययाच्ञा स्यात् प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥१९॥

ऋतं उञ्छ शिलं प्रोक्तं अमृतं यत् अयाचितं मृतं तु नित्य याञ्चा स्यात् प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥१९॥

उञ्छ शिलं	बाजार या खेतमें से उनके उठ जानेपर दाने बीन लेना	**अमृतं**	अमृत है,
		मृतं तु	मृत तो
		नित्य	रोज
ऋतं प्रोक्तं	ऋत कहा गया है,	**याञ्चा स्यात्**	मांगना है,
यत् अयाचितं	जो बिना मांगे मिल जाय	**कर्षणं प्रमृतं**	खेतीको प्रमृत
		स्मृतं	कहा गया है ॥१९॥

सत्यानृतं तु वाणिज्यं श्ववृत्तिर्नीचसेवनम् ।
वर्जयेत् तां सदा विप्रो राजन्यश्च जुगुप्सिताम् ।
सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो नृपः ॥२०॥

सत्य अनृतं तु वाणिज्यं श्ववृत्तिः नीच सेवनं वर्जयेत् तां सदा विप्रः राजन्यः च जुगुप्सिताम् सर्ववेदमयः विप्रः सर्वदेवमयः नृपः ॥२०॥

सत्य अनृतं तु	सत्य अनृता तो
वाणिज्यं	व्यापार है,
श्ववृत्तिः	कुत्ते की वृत्ति
नीच सेवनं	अपनेसे निम्न वर्ण-
	की सेवा है,
तां जुगुप्सितां	उस निन्दिता
	(वृत्ति) को
सदा विप्रः	सदा ब्राह्मण
च राजन्यः	तथा राजा
वर्जयेत्	त्याग दे (क्योंकि)
विप्रः	ब्राह्मण
सर्ववेदमयः	सब वेदमय है,
नृपः सर्वदेवमयः	राजा सब देवतामय
	है ॥२०॥

शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षान्तिरार्जवम् ।

ज्ञानं दयाच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मलक्षणम् ॥२१॥

शमः दमः तपः शौचं सन्तोषः क्षान्तिः आर्जवं ज्ञानं दया अच्युत आत्मत्वं सत्यं च ब्रह्म लक्षणम् ॥२१॥

शमः दमः	शम, दम,
तपः शौचं	तप, शौच,
सन्तोषः क्षान्तिः	सन्तोष, क्षमा-
	शीलता,
आर्जवं ज्ञानं	सरलता, ज्ञान,
दया अच्युत	दया, भगवान्में
आत्मत्वं च	चित्त लगाना और
सत्यं	सत्य बोलना
ब्रह्म लक्षणं	ब्राह्मणका लक्षण है
	॥२१॥

शौर्यं वीर्यं धृतिस्तेजस्त्याग आत्मजयः क्षमा ।

ब्रह्मण्यता प्रसादश्च रक्षा च क्षत्रलक्षणम् ॥२२॥

शौर्यं वीर्यं धृतिः तेजः त्यागः आत्मजयः क्षमा ब्रह्मण्यता प्रसादः च रक्षा च क्षत्र लक्षणम् ॥२२॥

शौर्यं वीर्यं	शूरता, पराक्रम,
धृतिः तेजः	धैर्य, तेजस्विता,
त्यागः	त्याग,
आत्मजयः	मनको जीतना,
क्षमा ब्रह्मण्यता	क्षमा, ब्राह्मण-
	भक्ति,
च प्रसादः	और कृपा करना
च रक्षा	तथा रक्षा करना
क्षत्र लक्षणं	क्षत्रियका लक्षण है
	॥२२॥

देवगुर्वच्युते भक्तिस्त्रिवर्गपरिपोषणम् ।
आस्तिक्यमुद्यमो नित्यं नैपुणं वैश्यलक्षणम् ॥२३॥

देव गुरु अच्युते भक्तिः त्रिवर्ग परिपोषणं आस्तिक्यं उद्यमः नित्यं नैपुण्यं वैश्य लक्षणम् । २३॥

देव गुरु	देवता, गुरु,	**आस्तिक्यं**	आस्तिकता,
अच्युते	भगवान्‌में	**नित्यं उद्यमः**	सदा उद्योग करना,
भक्तिः	भक्ति,	**नैपुण्यं**	निपुण होना,
त्रिवर्ग	त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम) को	**वैश्य लक्षणं**	वैश्यका लक्षण है ॥२३॥
परिपोषणं	भली प्रकार पुष्ट करना,		

शूद्रस्य संनतिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया ।
अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्यं गोविप्ररक्षणम् ॥२४॥

शूद्रस्य संनतिः शौचं सेवा स्वामिनि अमायया अमन्त्र यज्ञः हि अस्तेयं सत्यं गोविप्र रक्षणम् ॥२४॥

शूद्रस्य	शूद्रके (लक्षण) हैं	**हि अस्तेयं**	निश्चय ही चोरी न करना,
संनतिः शौचं	विनम्रता, पवित्रता,	**सत्यं गोविप्र**	सत्य, गाय-ब्राह्मणों- की
अमायया	छलहीन	**रक्षणं**	रक्षा करना ॥२४॥
स्वामिनि सेवा	स्वामीकी सेवा,		
अमन्त्र यज्ञः	वैदिक मन्त्रोंसे रहित यज्ञ,		

स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषानुकूलता ।
तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम् ॥२५॥

स्त्रीणां च पति देवानां तत् शुश्रूषा अनुकूलता तत् बन्धुषु अनुवृत्तिः च नित्यं तत् व्रत धारणम् ॥२५॥

पति देवानां	पतिको परमेश्वर माननेवाली
स्त्रीणां च	स्त्रियोंके भी (लक्षण हैं)
तत् शुश्रूषा	उस (पति) की सेवा,
अनुकूलता	उसके अनुकूल रहना,
तत् बन्धुषु अनुवृत्तिः	उसके सम्बन्धियोंके अनुकूल व्यवहार करना,
च नित्यं	तथा सदा
तत् व्रत धारणं	उसके नियमोंकी रक्षा करना ॥२५॥

संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः ।
स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा ॥२६॥

सम्मार्जन उपलेपाभ्यां गृह मण्डल वर्तनैः स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्ट परिच्छदा ॥२६॥

सम्मार्जन	झाड़ने,
उपलेपाभ्यां	लीपने तथा
मण्डल वर्तनैः	चौक पूरने आदिसे
गृह च स्वयं	घरको तथा अपने-को भी
नित्यं मण्डिता	सदा अलंकृत रखना
परिच्छदा	सामग्रियोंको
परिमृष्ट	स्वच्छ रखना ॥२६॥

कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च ।
वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत् पतिम् ॥२७॥

कामैः उच्च अवचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत् पतिम् ॥२७॥

काले काले	समय-समयपर
उच्च अवचैः	बड़े-छोटे
कामैः	कार्यों में योग देकर
प्रश्रयेण च	नम्रता तथा
दमेन	इन्द्रिय संयमसे
सत्यैः प्रियैः	सत्य और प्रिय
वाक्यैः प्रेम्णा	वचनोंसे प्रेमपूर्वक
साध्वी पति	पतिव्रता स्त्री पतिकी
भजेत्	सेवा करे ॥२७॥

संतुष्टालोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक् ।
अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत् ॥२८॥

संतुष्टा अलोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रिय सत्यवाक् अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं तु अपतितं भजेत् ॥२८॥

सन्तुष्टा	सन्तोषी,
अलोलुपा	लालच न करनेवाली,
दक्षा धर्मज्ञा	कार्य निपुणा, धर्म जाननेवाली,
प्रिय सत्यवाक्	प्रिय सत्य बोलनेवाली,
अप्रमत्ता	असावधान न रहनेवाली,
शुचिः स्निग्धा	पवित्र, स्नेहमयी (स्त्री)
तु अपतितं पतिं भजेत्	यदि पतित न हो तो पतिसे सहवास करें ॥२८॥

या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा ।
हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते ॥२९॥

या पतिं हरि भावेन भजेत् श्रीः इव तत् परा हरि आत्मना हरेः लोके पत्या श्रीः इव मोदते ॥२९॥

या हरि आत्मना	जो भगवत् चित्ता
श्रीः इव	लक्ष्मीकी भांति
हरि भावेन	भगवान् मानकर
तत् परा	उसके परायणा होकर
पतिं भजेत्	पतिकी सेवा करती है,
हरेः लोकं	वह श्रीहरिके धाममें
पत्या	पतिके साथ
श्रीः इव	लक्ष्मीकी भाँति
मोदते	आनन्दित होती है ॥२९॥

वृत्तिः सङ्करजातीनां तत्तत्कुलकृता भवेत् ।
अचौराणामपापानामन्त्यजान्तेऽवसायिनाम् ॥३०॥

वृत्तिः सङ्कर जातीनां तत् तत् कुल कृता भवेत् अचौराणां अपापानां अन्त्यज अन्ते अवसायिनाम् ॥३०॥

अचौराणां	चोरी न करनेवाले,
अपापानां	पाप न करनेवाले,
अन्त्यज	अन्त्यज तथा
अन्ते	अन्ते
अवसायिनां	अवसायी (बस्तीके बाहर रहनेवाले)
सङ्कर जातीनां	वर्ण-सङ्कर जातियोंकी
वृत्तिः	आजीविका
तत् तत् कुल	उनके अपने कुलके
कृता	अनुसार
भवेत्	होती है ॥३०॥

प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे युगे ।
वेदद्दग्भिः स्मृतो राजन्प्रत्य चेह च शर्मकृत् ॥३१॥

प्रायः स्वभाव विहितः नृणां धर्मः युगे युगे वेदद्दक्भिः स्मृतः राजन् प्रेत्य च इह च शर्मकृत् ॥३१॥

राजन्	राजन् !
वेदद्दक्भिः	वेददर्शी (मुनियों) ने
युगे युगे	प्रत्येक युगमें
प्रायः स्वभाव	प्रायः स्वभावके
विहितः	अनुसार
धर्मः स्मृतः	धर्म बतलाया है
नृणां प्रेत्य च	मनुष्योंके लिए मरनेके बाद
च इह शर्मकृत	और इस लोकमें भी वह कल्याणकारी है ॥३१॥

वृत्त्या स्वभावकृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत् ।
हित्वा स्वभावजं कर्म शनैर्निर्गुणतामियात् ॥३२॥

वृत्त्या स्वभावकृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत् हित्वा स्वभावजं कर्म शनैः निर्गुणतां इयात् ॥३२॥

स्वभावकृतया	स्वभावके द्वारा मिली
वृत्त्या वर्तमानः	वृत्तिसे चलता हुआ
स्वकर्मकृत्	अपना कर्तव्य पालन करनेवाला
शनैः	धीरे-धीरे
स्वभावजं कर्म	स्वाभाविक कर्मको
हित्वा	त्यागकर
निर्गुणतां	गुणातीत
इयात्	हो जाता है ॥३२॥

उप्यमानं मुहुः क्षेत्रं स्वयं निर्वीर्यतामियात् ।
न कल्पते पुनः सूत्यै उप्तं बीजं च नश्यति ॥३३॥

उप्यमानं मुहुः क्षेत्रं स्वयं निर्वीर्यतां इयात् न कल्पते पुनः सूत्यै उप्तं बीजं च नश्यति ॥३३॥

मुहुः उप्यमानं	बार-बार बोनेसे	**कल्पते न**	योग्य नहीं रहता,
क्षेत्रं स्वयं	खेत स्वतः	**उप्तं बीजं च**	बोया गया बीज भी
निर्वीर्यतां	शक्तिहीन	**नश्यति**	नष्ट हो जाता है
इयात्	हो जाता है,		॥३३॥
सूत्यै पुनः	उत्पादनके फिर		

एवं कामाशयं चित्तं कामानामतिसेवया ।
विरज्येत यथा राजन्नाग्निवत् कामबिन्दुभिः ॥३४॥

एवं काम आशयं चित्तं कामानां अतिसेवया विरज्येत यथा राजन् न आग्निवत् काम बिन्दुभिः ॥३४॥

राजन्	राजन् !	**अतिसेवया**	बहुत अधिक सेवन करनेसे
एवं	इसी प्रकार	**यथा विरज्येत**	जैसा ऊब जाता है
काम आशयं	कामनाओंका निवास	**आग्निवत्**	अग्निके समान
चित्तं कामानां	चित्त विषयोंका	**काम विन्दुभिः न**	भोगोंकी बूँदोंसे नहीं ॥३४॥

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत् तेनैव विनिर्दिशेत् ॥३५॥

यस्य यत् लक्षणं प्रोक्तं पुंसः वर्णं अभिव्यञ्जकं यत् अन्यत्र अपि दृश्येत् तत् तेन एव विनिर्दिशेत् ॥३५॥

पुंसः वर्ण	पुरुषोंका वर्ण	यत् अन्यत्र	यदि दूसरेमें
अभिव्यञ्जकं	सूचित करनेवाले	अपि	भी
यस्य यत्	जिसके जो	दृश्येत् तत्	दीखें तो उसे भी
लक्षणं प्रोक्तं	लक्षण बतलाये गये हैं	तेन एव	उसी वर्णका
		विनिर्दिशेत्	बतलावे ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

नारद उवाच–

ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दान्तो गुरोर्हितम् ।
आचरन्दासवन्नीचो गुरौ सुदृढसौहृदः ॥१॥

ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन् दान्तः गुरोः हितं आचरन् दासवत् नीचः गुरौ सुदृढ सौहृदः ॥१॥

गुरुकुले वसन्	गुरुकुलमें रहते हुए
ब्रह्मचारी दान्तः	ब्रह्मचारी इन्द्रियों-को वशमें रखे,
दासवत् नीचः	दासके समान विनम्र रहे
गुरौ सुदृढ सौहृदः	गुरुमें सुदृढ़ प्रीति रखकर
गुरोः हितं आचरन्	गुरुकी भलाई करता रहे ॥१॥

सायं प्रातरुपासीत गुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान् ।
उभे सन्ध्ये च यतवाग् जपन्ब्रह्म समाहितः ॥२॥

सायं प्रातः उपासीत गुरु अग्नि अर्क सुर उत्तमान् उभे सन्ध्ये च यत वाक् जपन् ब्रह्म समाहितः ॥२॥

सायं प्रातः	शाम-सुबह
गुरु अग्नि	गुरु, अग्नि,
अर्क सुर	सूर्य तथा प्रधान
उत्तमान्	देवताओंकी
उपासीत	उपासना करे,
च उभे सन्ध्ये	तथा दोनों सन्ध्या समय
यत वाक्	मौन तथा एकाग्र
समाहितः	चित्त होकर
ब्रह्म जपन्	गायत्री जप करे ॥२॥

छन्दांस्यधीयीत गुरोराहूतश्चेत् सुयन्त्रितः ।
उपक्रमेऽवसाने च चरणौ शिरसा नमेत् ॥३॥

छन्दांसि अधीयीत गुरोः आहूतः चेत् सुयन्त्रितः उपक्रमे अवसाने च चरणौ शिरसा नमेत् ॥३॥

चेत् गुरोः	यदि गुरुदेव	**उपक्रमे च**	उसके प्रारम्भमें तथा
आहूतः	बुलावें।	**अवसाने**	अन्तमें
सुयन्त्रितः	तो उनके अनुशासन-में रहकर	**चरणौ शिरसा**	(गुरुदेवके) चरणों-पर मस्तक रखकर
छन्दांसि	वेदोंका	**नमेत्**	प्रणाम करे ॥३॥
अधीयीत	अध्ययन करें,		

मेखलाजिनवासांसि जटादण्डकमण्डलून्।
बिभृयादुपवीतं च दर्भपाणिर्यथोदितम् ॥४॥

मेखला अजिन वासांसि जटा दण्ड कमण्डलून् बिभृयात् उपवीतं च दर्भपाणिः यथा उदितम् ॥४॥

यथा उदितं	शास्त्रीय विधानके अनुसार	**दण्ड कमण्डलून्**	दण्ड, कमण्डलु,
मेखला अजिन	मेखला, मृग चर्म.	**उपवीतं च**	यज्ञोपवीत तथा
वासांसि जटा	वस्त्र, जटा,	**दर्भपाणिः**	हाथमें कुश,
		बिभृयात्	धारण करे ॥४॥

सायं प्रातश्चरेद्भैक्षं गुरवे तन्निवेदयेत्।
भुञ्जीत यद्यनुज्ञातो नो चेदुपवसेत् क्वचित् ॥५॥

सायं प्रातः चरेत् भैक्षं गुरवेतत् निवेदयेत् भुञ्जीत यत् अनुज्ञातः नो चेत् उपवसेत् क्वचित् ॥५॥

सायं प्रातः	शाम-सुबह	**भुञ्जीत**	तो भोजन करें,
भैक्षं चरेत्	भिक्षा मांग लावे,	**क्वचित् नो चेत्**	कभी यदि आज्ञा न दें,
तत् गुरवे	उसे गुरुको		
निवेदयेत्	निवेदन कर दे,	**उपवसेत्**	तो उपवास कर ले ॥५॥
यत् अनुज्ञातः	यदि वे आज्ञा दें		

सुशीलो मितभुग् दक्षः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।
यावदर्थं व्यवहरेत् स्त्रीषु स्त्रीनिर्जितेषु च ॥६॥

सुशीलः मितभुक् दक्षः श्रद्दधानः जितेन्द्रियः यावत् अर्थं व्यवहरेत् स्त्रीषु स्त्री निर्जितेषु च ॥६॥

सुशीलः	सदाचारी रहे,	**स्त्रीषु च**	स्त्रियोंसे तथा
मितभुक्	थोड़ा खाय,	**स्त्री निर्जितेषु**	स्त्रियोंके वशमें रहनेवालोंसे
दक्षः श्रद्दधानः	कर्म निपुण बने, श्रद्धालु रहे,	**यावत् अर्थं**	जितना प्रयोजन हो उतना ही
जितेन्द्रियः	इन्द्रियोंको वशमें रखे,	**व्यवहरेत्**	व्यवहार करे ॥६॥

वर्जयेत् प्रमदागाथामगृहस्थो बृहद्व्रतः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्त्यपि यतेर्मनः ॥७॥

वर्जयेत् प्रमदागाथां अगृहस्थः बृहत् व्रतः इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति अपि यतेः मनः ॥७॥

अगृस्थः	जो गृहस्थ नहीं है	**प्रमाथीनि**	मथ देनेवाली है,
बृहत् व्रतः	वह ब्रह्मचारी	**यतेः अपि**	ये यत्न शीलका भी
प्रमदागाथां	स्त्री-चर्चासे	**मनः हरन्ति**	मन हरण कर लेती हैं ॥७॥
वर्जयेत्	पृथक रहे,		
इन्द्रियाणि	इन्द्रियां		

केशप्रसाधनोन्मर्दस्नपनाभ्यञ्जनादिकम् ।
गुरुस्त्रीभिर्युवतिभिः कारयेन्नात्मनो युवा ॥८॥

केश प्रसाधन उन्मर्द स्नपन अभ्यञ्जन आदिकं गुरु स्त्रीभिः युवतिभिः कारयेत् न आत्मनः युवा ॥८॥

युवा आत्मनः	युवा (ब्रह्मचारी) अपना	**केश प्रसाधन**	बाल सुलझवाना,
		उन्मर्द	उबटन लगवाना,

अभ्यञ्जन	शरीर मलवाना	**गुरु स्त्रीभिः**	गुरु-पत्नीसे
आदिकं	आदि	**न कारयेत्**	न करवाये ॥८॥
युवतिभिः	युवती		

नन्वग्निः प्रमदा नाम घृतकुम्भसमः पुमान् ।
सुतामपि रहो जह्यादन्यदा यावदर्थकृत् ॥९॥

ननु अग्निः प्रमदा नाम घृतकुम्भ समः पुमान् सुतां अपि रहः जह्यात् अन्यदा यावत् अर्थ कृत् ॥९॥

ननु प्रमदा नाम अग्निः पुमान् घृतकुम्भ समः	निश्चय स्त्री नामक अग्नि है और पुरुष घीके घड़ेके समान है	**अन्यदा**	अन्नयथा (जब वह एकान्तमें न हो)
		यावत् अर्थ कृत्	प्रयोजन मात्रका ही (व्यवहार) करें ॥९॥
सुतां अपि रहः जह्यात्	अतः पुत्रीको भी एकान्तमें (साथ रखना) छोड़ दें,		

कल्पयित्वाऽऽत्मना यावदाभासमिदमीश्वरः ।
द्वैतं तावन्न विरमेत् ततो ह्यस्य विपर्ययः ॥१०॥

कल्पयित्वा आत्मना यावत् आभासं इदं ईश्वरः द्वैतं तावत् न विरमेत् ततः हि अस्य विपर्ययः ॥१०॥

यावत् आत्मना	जब तक आत्मामें	**न विरमेत्**	(यह कल्पना) नहीं मिटती
इदं आभासं	यह आभास		
द्वैतं	द्वैत (स्त्री-पुरुष भेद) की	**हि**	क्योंकि
		ततः	उसी (स्त्री-पुरुष भाव) से
कल्पयित्वा	कल्पना बनी है		
तावत् ईश्वरः	तब तक समर्थ होनेपर भी	**अस्य विपर्ययः**	इसकी उलटी स्थिति (नित्य मुक्तका बन्धन) है ॥१०॥

एतत् सर्वं गृहस्थस्य समाम्नातं यतेरपि ।
गुरुवृत्तिर्विकल्पेन गृहस्थस्यर्तुगामिनः ॥११॥

एतत् सर्वं गृहस्थस्य सम आम्नातं यतेः अपि गुरुवृत्तिः विकल्पेन गृहस्थस्य ऋतुगामिनः ॥११॥

एतत् सर्वं	ये सब (शील-रक्षादि)	**विकल्पेन**	वैकल्पिक (ऐच्छिक है)
गृहस्थस्य	गृहस्थके लिए तथा	**गृहस्थस्य**	गृहस्थके लिए
यतेः अपि	संन्यासीके लिए भी	**ऋतुगामिनः**	ऋतु-गमन करना विहित है ॥११॥
सम आम्नातं	शास्त्र विहित हैं		
गुरुवृत्तिः	गुरुकी सेवा (इनके लिए)		

अञ्जनाभ्यञ्जनोन्मर्दस्त्र्यवलेखामिषं मधु ।
स्रग्गन्धलेपालंकारांस्त्यजेयुर्ये धृतव्रताः ॥१२॥

अञ्जन अभ्यञ्जन उन्मर्द स्त्र्यवलेख आमिषं मधु स्रक् गन्धलेप अलंकारान् त्यजेयुः ये धृत व्रताः ॥१२॥

ये धृतव्रताः	जो व्रतधारी (ब्रह्मचारी) हैं उन्हें	**आमिषं मधु**	मांस, शराब,
अञ्जन	सुरमा या	**स्रक् गन्धलेप**	माला, चन्दन लगाना,
अभ्यञ्जन	तेल लगाना,	**अलंकारान्**	आभूषण
उन्मर्द	उबटन लगाना,	**त्यजेयुः**	छोड़ देने चाहिए ॥१२॥
स्त्र्यवलेख	स्त्रियोंके चित्र बनाना,		

उषित्वैवं गुरुकुले द्विजोऽधीत्यावबुध्य च ।
त्रयीं साङ्गोपनिषदं यावदर्थं यथाबलम् ॥१३॥

उषित्वा एवं गुरुकुले द्विजः अधीत्य अवबुध्य च त्रयीं साङ्ग उपनिषदं यावत् अर्थं यथा बलम् ॥१३॥

एवं गुरुकुले	इस प्रकार गुरुकुलमें
उषित्वा	रहकर
यावत् अर्थं	जितना प्रयोजन हो,
यथा बलं	जितनी अपनेमें
	शक्ति हो (उसके
	अनुसार)
द्विजः त्रयीं	द्विजाति वेदोंका
साङ्गं	(छः) अंग (कल्प,
	शिक्षा, व्याकरण,
	ज्योतिष, निरुक्त,
	छन्द, सहित
च उपनिषदं	तथा उपनिषदोंका
अधीत्य	अध्ययन करके
अवबुध्य	उन्हें समझकर

॥१३॥

दत्त्वा वरमनुज्ञातो गुरोः कामं यदीश्वरः ।
गृहं वनं वा प्रविशेत् प्रव्रजेत् तत्र वा वसेत् ॥१४॥

दत्त्वा वरं अनुज्ञातः गुरोः कामं यत् ईश्वरः गृहं वनं वा प्रविशेत् प्रव्रजेत् तत्र वा वसेत् ॥१४॥

यत् ईश्वरः	यदि सामर्थ्य हो तो
गुरोः कामं	गुरुको (उनकी)
	इच्छानुसार
वरं दत्त्वा	दक्षिणा देकर
अनुज्ञातः	(उनकी) अनुमति
	लेकर
गृहं वा वनं	गृहस्थाश्रम अथवा
	वानप्रस्थमें
प्रविशेत्	प्रवेश करे
प्रव्रजेत्	संन्यासी हो जाय
वा तत्र वसेत्	अथवा (नैष्ठिक
	ब्रह्मचारी होकर)
	वहीं रह जाय ॥१४॥

अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेष्वधोक्षजम् ।
भूतैः स्वधामभिः पश्येदप्रविष्टं प्रविष्टवत् ॥१५॥

अग्नौ गुराः आत्मनि च सर्व भूतेषु अधोक्षजं भूतैः स्वधामभिः पश्येत् अप्रविष्टं प्रविष्टवत् ॥१५॥

अग्नौ गुराः	अग्निमें, गुरुदेवमें,
आत्मनि च	अपनेमें भी
सर्व भूतेषु	सब प्राणियोंमें
स्वधामभिः	अपने तेजसे
अप्रविष्टं	प्रवेश न करनेपर
	भी
प्रविष्टवत्	प्रवेश कियेके
	समान
अधोक्षजं पश्येत्	अन्तर्यामी भगवान्-
	को देखें ॥१५॥

एवंविधो ब्रह्मचारी वानप्रस्थो यतिर्गृही ।
चरन्विदितविज्ञानः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥१६॥

एवं विधः ब्रह्मचारी वानप्रस्थः यतिः गृही चरन् विदित विज्ञानः परं ब्रह्म अधिगच्छति ॥१६॥

एवं विधः चरन्	इस प्रकार आचरण करके	**विदित विज्ञानः**	विज्ञानको जानकर
ब्रह्मचारी	ब्रह्मचारी,	**परं ब्रह्म**	परंब्रह्मका
वानप्रस्थः	वानप्रस्थ,	**अधिगच्छति**	अनुभव कर लेते हैं ॥१६॥
यतिः गृही	संन्यासी और गृहस्थ		

वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमान्मुनिसम्मतान् ।
यानातिष्ठन् मुनिर्गच्छेदृषिलोकमिहाञ्जसा ॥१७॥

वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमान् मुनिसम्मतान् यान् आतिष्ठन् मुनिः गच्छेत् ऋषिलोकं इह अञ्जसा ॥१७॥

मुनिसम्मतान्	ऋषियोंके मतानुसार	**आतिष्ठन्**	ठीक-ठीक पालन करनेसे
वानप्रस्थस्य	वानप्रस्थाश्रमके	**मुनिः अञ्जसा**	वानप्रस्थी सरलतासे
नियमान्	नियम	**ऋषिलोकं**	ऋषि-लोक
वक्ष्यामि	बतलाता हूँ	**गच्छेत्**	जाता है ॥१७॥
यान् इह	जिनका इस लोकमें		

न कृष्टपच्यमश्नीयादकृष्टं चाप्यकालतः ।
अग्निपक्वमथामं वा अर्कपक्वमुताहरेत् ॥१८॥

न कृष्टपच्यं अश्नीयात् अकृष्टं च अपि अकालतः अग्नि पक्वं अथ आमं वा अर्कपक्वं उत आहरेत् ॥१८॥

कृष्टपच्यं	खेतीसे उत्पन्न	**अकृष्टं च अपि**	बिना जोती भूमिमें भी हुए,
अकालतः	असमयमें		

अग्निपक्वं	आगमें पकाये	उत अर्कपक्वं	केवल सूर्यकी धूपसे
वा आमं	अथवा कच्चे ही		पके
न अश्नीयात्	न खावे,	आहरेत्	(कन्द, मूल, फल) भोजन करे ॥१८॥

वन्यैश्चरुपुरोडाशान् निर्वपेत् कालचोदितान् ।
लब्धे नवे नवेऽन्नाद्ये पुराणं तु परित्यजेत् ॥१९॥

वन्यैः चरु पुरोडाशान् निर्वपेत् काल चोदितान् लब्धे नवे नवे अन्न आद्ये पुराणं तु परित्यजेत् ॥१९॥

वन्यैः	वनमें (अपने आप) हुए	निर्वपेत्	हवन करे ।
काल चोदितान्	समयानुसार प्राप्तसे	अन्न आद्ये	अन्न (बीज आदि)
चरु पुरोडाशान्	चरु और पुरोडाश-का*	नवे नवे लब्धे	नये-नये मिलनेपर
		पुराणं तु	पुरानोंको तो
		परित्यजेत्	त्याग दे ॥१९॥

अग्न्यर्थमेव शरणमुटजं वाद्रिकन्दराम् ।
श्रयेत हिमवाय्वग्निवर्षार्कातपषाट् स्वयम् ॥२०॥

अग्नि अर्थं एव शरणं उटजं वा अद्रिकन्दरां श्रयेत हिम वायु अग्नि वर्षा अर्क आतप षाट् स्वयम् ॥२०॥

अग्नि शरणं	अग्निकी रक्षा	स्वयं हिम वायु	स्वयं सर्दी, आंधी,
अर्थं एव	के लिए ही	अग्नि वर्षा	अग्नि, वर्षा
उटजं वा	कुटिया या	अर्क आतप	सूर्यकी धूप
अद्रिकन्दरां	पर्वतकी गुफाका	षाट्	सहन करें ॥२०॥
श्रयेत	आश्रय ले		

केशरोमनखश्मश्रुमलानि जटिलो दधत् ।
कमण्डल्वजिने दण्डवल्कलाग्निपरिच्छदान् ॥२१॥

---

*कन्द, मूल, फलका हवन सम्भव नहीं है, अतः जंगली सावांको दो आदि तृण बीज हवनके लिए संग्रह करनेका विधान है ।

केश रोम नख श्मश्रु मलानि जटिलः दधत् कमण्डलु अजिने दण्ड वल्कल अग्नि परिच्छदान् ॥२१॥

जटिलः केश	जटाधारी, केश,	**दण्ड वल्कल**	दण्ड, वल्कल,
रोम	रोम,	**अग्नि**	अग्नि-
नख श्मश्रु	नख, दाढ़ी-मूँछ,	**परिच्छदान्**	होत्रकी सामग्री
मलानि	(शरीरका) मैल	**दधत्**	पास रखे ॥२१॥
कमण्डलु अजिने	कमण्डलु, मृग-चर्म,		

चरेद् वने द्वादशाब्दानष्टौ वा चतुरो मुनिः ।
द्वावेकं वा यथा बुद्धिर्न विपद्येत कृच्छ्रतः ॥२२॥

चरेत् वने द्वादश अब्दान् अष्टौ वा चतुरो मुनिः द्वाः एकं वा यथा बुद्धिः न विपद्येत कृच्छ्रतः ॥२२॥

यथा कृच्छ्रतः	जैसे कष्ट भोगनेसे	**वा चतुरः द्वाः**	अथवा चार, दो,
बुद्धिः न	बुद्धि न	**वा एकं अब्दान्**	या एक वर्ष
विपद्येत	बिगड़ जाय (वैसे)	**चरेत्**	(इन नियमोंका)
मुनिः वने	वानप्रस्थी वनमें		पालन करें ॥२२॥
द्वादश अष्टौ	बारह, आठ,		

यदाकल्पः स्वक्रियायां व्याधिभिर्जरयाथवा ।
आन्वीक्षिक्यां वा विद्यायां कुर्यादनशनादिकम् ॥२३॥

यदा अकल्पः स्वक्रियायां व्याधिभिः जरया अथवा आन्वीक्षिक्यां वा विद्यायां कुर्यात् अनशन आदिकम् ॥२३॥

स्वक्रियायां	अपनी क्रियाओंमें	**व्याधिभिः**	रोगसे
वा	अथवा	**अथवा**	अथवा
आन्वीक्षिक्यां	आत्मदर्शनकी	**जरया**	बुढ़ापेसे
विद्यायां	विद्या (तत्त्व-विचार) में	**यदा अकल्पः**	जब असमर्थ हो जाय

अनशन आदिकं अनशन आदि । कुर्यात् करें ॥२३॥*

आत्मन्यग्नीन् समारोप्य संन्यस्याहंममात्मताम् ।
कारणेषु न्यसेत् सम्यक् संघातं तु यथार्हतः ॥२४॥

आत्मनि अग्नीन् समारोप्य संन्यस्य अहंमम आत्मतां कारणेषु न्यसेत् सम्यक् संघातं तु यथा अर्हतः ॥२४॥

अग्नीन्	(आवहनीय आदि) अग्नियोंको	संघातं तु	शरीरके तत्त्वोंको तो
आत्मनि	आत्मामें	यथा अर्हतः	यथा योग्य
समरोप्य	आरोपित करके	कारणेषु	उनके कारणोंमें
अहंमम	'मैं-मेरा'	सम्यक्	ठीक-ठीक
आत्मतां	भाव	न्यसेत्	लीन करें ॥२४॥
संन्यस्य	त्यागकर		

खे खानि वायौ निःश्वासांस्तेजस्यूष्माणमात्मवान् ।
अप्स्वसृक्श्लेष्मपूयानि क्षितौ शेषं यथोद्भवम् ॥२५॥

खे खानि वायौ निःश्वासान् तेजसि उष्माणं आत्मवान् अप्सुः असृक श्लेष्म पूयानि क्षितौ शेषं यथा उद्भवम् ॥२५॥

आत्मवान्	धैर्यशाली	तेजसि उष्माणं	तेज तत्त्वमें (शरीरकी) गर्मी,
यथा उद्भवं	जो जिससे उत्पन्न हुए हैं,	अप्सु श्लेष्म	जलमें कफ,
खानि खे	महाकाशमें देहाकाश,	असृक	पीब
		पूयानि	रक्तादि,
वायौ	वायुमें	शेषं क्षितौ	शेष (हड्डी आदि) पृथ्वीमें (लय करे) ॥२५॥
निश्वासान्	श्वास वायु,		

---

*यहां ध्यान देनेकी विशेष बात है कि वानप्रस्थको रोगके कारण नियम-त्यागकी अनुमति नहीं है। अनशन करके देह त्याग करनेका आदेश है।

वाचमग्नौ सवक्तव्यामिन्द्रे शिल्पं करावपि ।
पदानि गत्या वयसि रत्योपस्थं प्रजापतौ ॥२६॥

वाचां अग्नौ सवक्तव्यां इन्द्रे शिल्पं कराः अपि पदानि गत्या वयसि रत्या उपस्थं प्रजापतौ ॥२६॥

सवक्तव्यां वाचां	वक्तृत्व शक्तिके साथ वाणीको	**गत्या पदानि**	गति-क्रिया सहित पैरोंको
अग्नौ	(उसके अधिष्ठान) अग्निमें	**वयसि**	आकाशमें
शिल्पं	कला-कौशल सहित	**रत्या उपस्थं**	रति-क्रिया सहित उपस्थको
कराः अपि	हाथोंको भी	**प्रजापतौ**	प्रजापतिमें ॥२६॥
इन्द्रे	इन्द्रमें,		

मृत्यौ पायुं विसर्गं च यथास्थानं विनिर्दिशेत् ।
दिक्षु श्रोत्रं सनादेन स्पर्शमध्यात्मनि त्वचम् ॥२७॥

मृत्यौ पायुं विसर्गं च यथास्थानं विनिर्दिशेत् दिक्षु श्रोत्रं सनादेन स्पर्शं अध्यात्मनि त्वचम् ॥२७॥

पायुं विसर्गं च	पायु इन्द्रिय और मलत्याग क्रियाको	**सनादेन श्रोत्रं**	शब्द सहित कर्णेन्द्रियको
मृत्यौ	मृत्युमें	**दिक्षु**	दिशाओंमें,
यथास्थानं	उनके अधिष्ठान स्थानके अनुसार	**स्पर्शं त्वचं**	स्पर्श सहित त्वक् इन्द्रियको
विनिर्दिशेत्	लीन करनेकी भावना करे	**अध्यात्मनि**	वायुमें ॥२७॥

रूपाणि चक्षुषा राजन् ज्योतिष्यभिनिवेशयेत् ।
अप्सु प्रचेतसा जिह्वां घ्रेयैर्घ्राणं क्षितौ न्यसेत् ॥२८॥

रूपाणि चक्षुषा राजन् ज्योतिषि अभिनिवेशयेत् अप्सु प्रचेतसा जिह्वां घ्रेयैः घ्राणं क्षितौ न्यसेत् ॥२८॥

राजन्	राजन् !
रूपाणि चक्षुषा	रूपोंको नेत्रोंके साथ
ज्योतिषि	ज्योतिमें
अभिनिवेशयेत्	प्रवेश करावे,
प्रचेतसा जिह्वां	रसोंके साथ रस-नेन्द्रियको
अप्सु	जलमें,
घ्रेयैः घ्राणं	गन्धोंके साथ नासिकाको
क्षितौ न्यसेत्	पृथ्वीमें न्यास करें ॥२८॥

मनो मनोरथैश्चन्द्रे बुद्धिं बोध्यैः कवौ परे ।
कर्माण्यध्यात्मना रुद्रे यदहंममताक्रिया ।
सत्त्वेन चित्तं क्षेत्रज्ञे गुणैर्वैकारिकं परे ॥२९॥

मनः मनोरथैः चन्द्रे बुद्धिं बोध्यैः कवौ परे कर्माणि अध्यात्मना रुद्रे यत् अहं ममता क्रिया सत्त्वेन चित्तं क्षेत्रज्ञे गुणैः वैकारिकं परे ॥२९॥

मनोरथैः मनः	मनोरथोंके साथ मनको
चन्द्रे	चन्द्रमामें
बोध्यैः बुद्धिं	विचारोंके साथ बुद्धिको
परे कवौ	परम बुद्धिमान ब्रह्ममें,
यत् अहं ममता	जिससे अहंता ममता रूप
क्रिया	क्रिया होती है
अध्यात्मना	उस अहंकारको
रुद्रे	रुद्रमें
सत्त्वेन चित्तं	चेतना सहित चित्तको
क्षेत्रज्ञे	जीवमें,
गुणैः वैकारिकं	गुणोंके कारण विकारवान् (लगते जीव) को
परे	परमात्मामें ॥२९॥

अप्सु क्षितिमपो ज्योतिष्यदो वायौ नभस्यमुम् ।
कूटस्थे तच्च महति तदव्यक्तेऽक्षरे च तत् ॥३०॥

अप्सु क्षितिं अपः ज्योतिषि अदः वायौ नभसि अमुं कूटस्थे तत् च महति तत् अव्यक्ते अक्षरे च तत् ॥३०॥

क्षितिं अप्सुः	पृथ्वीको जलमें,
अपः ज्योतिषि	जलको ज्योतिमें,
अदः वायौ	उसको वायुमें,
अमुं नभसि	इसको आकाशमें;

च तत् कूटस्थे	और उसको कूटस्थ अहंकारमें,	तत् अव्यक्ते च अक्षरे	उसे अव्यक्त प्रकृतिमें और अविनाशी परमात्मामें ॥३०॥
च तत् महति	उसे महत्तत्त्वमें;		

इत्यक्षरतयाऽऽत्मानं चिन्मात्रमवशेषितम् ।
ज्ञात्वाद्वयोऽथ विरमेद् दग्धयोनिरिवानलः ॥३१॥

इति अक्षरतया आत्मानं चिन् मात्रं अवशेषितं ज्ञात्वा अद्वयः अथ विरमेत् दग्धयोनिः इव अनलः ॥३१॥

इति	इस प्रकार	इव	जैसे
अक्षरतया	अविनाशी रूपसे	दग्धयोनिः	जिस (काष्ठ) में प्रगट हुआ उसके जल जानेपर
चिन् मात्रं	ज्ञान मात्र		
अवशेषितं	बचे हुएको		
अद्वयः ज्ञात्वा	अद्वितीय जानकर	अनलः	अग्नि (शान्त हो जाता है) ॥३१॥
अथ विरमेत्	फिर शान्त हो जाय		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

नारद उवाच–

कल्पस्त्वेवं परिव्रज्य देहमात्रावशेषितः ।
ग्रामैकरात्रविधिना निरपेक्षश्चरेन्महीम् ॥१॥

कल्पः तु एवं परिव्रज्य देहमात्र अवशेषितः ग्राम एक रात्र विधिना निरपेक्षः चरेत् महीम् ॥१॥

तु एवं कल्पः	यदि (वानप्रस्थीमें) इस प्रकारकी (विचार) सामर्थ्य हो तो	**ग्राम एक रात्र विधिना**	एक ग्राममें एक रात रहनेका नियम करके
परिव्रज्य	संन्यास लेकर	**निरपेक्षः महीं चरेत्**	सब अपेक्षा त्यागकर पृथ्वीमें विचरण करे ॥१॥
देहमात्र	शरीर मात्र		
अवशेषितः	बचाकर		

बिभृयाद् यद्यसौ वासः कौपीनाच्छादनं परम् ।
त्यक्तं न दण्डलिङ्गादेरन्यत् किञ्चिदनापदि ॥२॥

बिभृयात् यदि असौ वासः कौपीन आच्छादनं परं त्यक्तं न दण्ड लिङ्ग आदेः अन्यत् किञ्चित् अनापदि ॥२॥

यदि असौ वासः बिभृयात्	यदि यह वस्त्र पहिने तो	**अनापदि**	आपत्ति काल न हो तो
कौपीन आच्छादनं परं	कौपीनको ढकलेनेवाला दूसरा वस्त्र रखे,	**दण्ड लिङ्ग आदेः त्यक्तं अन्यत् किञ्चित् न**	दण्ड तथा आश्रम चिह्नोंको छोड़कर दूसरा कुछ भी न रखें ॥२॥

एक एव चरेद् भिक्षुरात्मारामोऽनपाश्रयः ।
सर्वभूतसुहृच्छान्तो नारायणपरायणः ॥३॥

एक एव चरेत् भिक्षुः आत्मारामः अनपाश्रयः सर्वभूत सुहृत् शान्तः नारायण परायणः ॥३॥

भिक्षुः	संन्यासी	**शान्तः**	शान्त
आत्मारामः	आत्मामें ही संतुष्ट	**नारायण**	नारायण
अनपाश्रयः	बिना किसीका आश्रय लिए	**परायणः**	परायण होकर
		एक एव	अकेला ही
सर्वभूत सुहृत्	सब प्राणियोंका हितैषी,	**चरेत्**	विचरण करें ॥३॥

पश्येदात्मदो विश्वं परे सदसतोऽव्यये ।
आत्मानं च परं ब्रह्म सर्वत्र सदसन्मये ॥४॥

पश्येत् आत्मनि अदः विश्वं परे सत् असत् अव्यये आत्मानं च परं ब्रह्म सर्वत्र सत् असत् मये ॥४॥

अदः विश्वं	इस विश्वको	**सर्वत्र**	सर्वत्र
सत् असत् परे	कारण-कार्यातीत	**सत् असत् मये**	कारण-कार्यमय
अव्यये आत्मनि	अविनाशी आत्मामें	**परं ब्रह्म**	परम ब्रह्म (स्वरूप
पश्येत्	देखे		देखे) ॥४॥
च आत्मानं	और आत्माको		

सुप्तप्रबोधयोः सन्धावात्मनो गतिमात्मदृक् ।
पश्यन्बन्धं च मोक्षं च मायामात्रं न वस्तुतः ॥५॥

सुप्त प्रबोधयोः सन्धाः आत्मनः गतिं आत्मदृक् पश्यन् बन्धं च मोक्षं च माया मात्रं न वस्तुतः ॥५॥

आत्मदृक्	आत्मदर्शी	**सुप्त प्रबोधयोः**	निद्रा और जागरण-की

सन्धाः आत्मनः गतिं पश्यन्	सन्धिमें आत्माके स्वरूपका अनुसन्धान करे,
च बन्धं च मोक्षं	और बन्धन तथा मोक्ष तो
माया मात्रं वस्तुतः न	केवल माया हैं, वास्तविक नहीं हैं ॥५॥

नाभिनन्देद् ध्रुवं मृत्युमध्रुवं वास्य जीवितम् ।
कालं परं प्रतीक्षेत भूतानां प्रभवाप्ययम् ॥६॥

न अभिनन्देत् ध्रुवं मृत्युं अध्रुवं वा अस्य जीवितं कालं परं प्रतीक्षेत भूतानां प्रभव अप्ययम् ॥६॥

अस्य ध्रुवं मृत्युं	इस शरीरकी निश्चित मृत्युका
वा जीवितं अभिनन्देत् न	अथवा जीवनका अभिनन्दन न करें,
भूतानां प्रभव	प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले
अप्ययं परं	तथा मारनेवाले कारण
कालं प्रतीक्षेत	कालकी प्रतीक्षा करें ॥६॥

नासच्छास्त्रेषु सज्जेत नोपजीवेत जीविकाम् ।
वादवादांस्त्यजेत् तर्कान्पक्षं कंच न संश्रयेत् ॥७॥

न असत् शास्त्रेषु सज्जेत न उपजीवेत जीविकां वाद वादान् त्यजेत् तर्कान् पक्षं कंच न संश्रयेत् ॥७॥

असत् शास्त्रेषु	अनात्म वस्तुओंके प्रतिपादक शास्त्रोंमें
सज्जेत न	आसक्ति न करें,
जीविकां	कोई आजीविका करके
उपजीवेत न	जीवन निर्वाह न करे,
वाद वादान्	केवल बाद-विवादके लिए
तर्कान् त्यजेत्	तर्क करना छोड़ दे,
कंच पक्षं	किसी भी पक्षका
संश्रयेत् न	समर्थन न करें ॥७॥

न शिष्याननुबध्नीत ग्रन्थान्नैवाभ्यसेद् बहून् ।
न व्याख्यामुपयुञ्जीत नारम्भानारभेत् क्वचित् ॥८॥

न शिष्यान् अनुबध्नीत ग्रन्थान् न एव अभ्यसेत् बहून् न व्याख्यां उपयुञ्जीत न आरम्भान् आरभेत् क्वचित् ॥८॥

शिष्यान्	शिष्योंको	**व्याख्यां**	(शास्त्र) व्याख्या का
अनुबध्नीत न	अपने साथ बांधे न रखे,	**उपयुञ्जीत न**	उपयोग न करे,
बहून् ग्रन्थान्	बहुतसे ग्रन्थोंका	**क्वचित्**	कभी भी (नवीन)
न एव अभ्यसेत्	नहीं ही अभ्यास करे,	**आरभान्**	बड़े कार्योंका
		आरभेत न	(स्वयं) प्रारम्भ न करे ॥८॥

न यतेराश्रमः प्रायो धर्महेतुर्महात्मनः ।
शान्तस्य समचित्तस्य बिभृयादुत वा त्यजेत् ॥९॥

न यतेः आश्रमः प्रायः धर्महेतुः महात्मनः शान्तस्य समचित्तस्य बिभृयात् उत वा त्यजेत् ॥९॥

शान्तस्य	शान्त	**धर्महेतु**	धर्मका कारण
समचित्तस्य	समदर्शी	**न**	नहीं है ।
महात्मनः	महात्माके लिए	**उत**	इसे
यतेः	संन्यासीका	**बिभृयात्**	धारण करे
आश्रमः	आश्रम	**वा**	अथवा
प्रायः	प्रायः	**त्यजेत्**	छोड़ दे ॥९॥

अव्यक्तलिङ्गो व्यक्तार्थो मनीष्युन्मत्तबालवत् ।
कविर्मूकवदात्मानं स दृष्ट्या दर्शयेन्नृणाम् ॥१०॥

अव्यक्त लिङ्गः व्यक्त अर्थः मनीषी उन्मत्त बालवत् कविः मूकवत् आत्मानं स दृष्टया दर्शयेत् नृणाम् ॥१०॥

अव्यक्त लिङ्गः	कोई आश्रमका चिह्न भले न हो,
व्यक्त अर्थः	किन्तु प्रयोजन (आत्म-चिन्तन) स्पष्ट हो,
मनीषी उन्मत्त	बुद्धिमान होकर भी पागल-सा
कविः बालवत्	चतुर होकर भी बालक जैसा
मूकवत्	गूंगेके समान
स दृष्ट्या नृणां	मनुष्योंकी दृष्टिमें
आत्मानं	अपनेको
दर्शयेत्	दिखलावे ॥१०॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च ॥११॥

अत्र अपि उदाहरन्ति इमं इतिहासं पुरातनं प्रह्लादस्य च संवादं मुनेः आजगरस्य च ॥११॥

अत्र अपि	इस विषयमें भी
इमं पुरातनं	इस पुराने
इतिहासं	इतिहासका
उदाहरन्ति	उदाहरण दिया जाता है
प्रह्लादस्य च	यह प्रह्लादका और
आजगरस्य	अजगर वृत्तिसे रहनेवाले
मुनेः च संवादं	मुनिका भी संवाद है ॥११॥

तं शयानं धरोपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि ।
रजस्वलैस्तनूदेशैर्निगूढामलतेजसम् ॥१२॥

तं शयानं धरा उपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि रजस्वलैः तनू देशैः निगूढ अमल तेजसम् ॥१२॥

सह्यसानुनि	सह्य पर्वतकी तल-हटीमें
कावेर्यां	कावेरी नदीके किनारे
रजस्वलैः तनू	धूलिध सरित शरीरसे
अमल तेजसं	(अपने) निर्मल तेजको
देशैः निगूढ	प्रगट होनेसे छिपाकर
धरा उपस्थे	पृथ्वीके ऊपर
तं शयानं	उनके लेटे रहनेपर ॥१२॥

ददर्श लोकान्विचरँल्लोकतत्त्वविवित्सया ।
वृतोऽमात्यैः कतिपयैः प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥१३॥

ददर्श लोकान् विचरन् लोकतत्त्व विवित्सया वृतः अमात्यैः कतिपयैः प्रह्लादः भगवत् प्रियः ॥१३॥

भगवत् प्रियः	भगवान्‌के प्रेमी	लोकतत्त्व	लोगोंके हृदयकी बात
प्रह्लादः	प्रह्लादजीने	विवित्सया	जाननेके लिए
कतिपयैः	कुछ	लोकान् विचरन्	लोकोंमें घूमते हुए
अमात्यैः वृतः	मन्त्रियोंसे घिरे	ददर्श	उन्हें देखा ॥१३॥

कर्मणाऽऽकृतिभिर्वाचा लिङ्गैर्वर्णाश्रमादिभिः ।
न विदन्ति जना यं वै सोऽसाविति न वेति च ॥१४॥

कर्मणा आकृतिभिः वाचा लिङ्गैः वर्ण आश्रम आदिभिः न विदन्ति जना यं वै सः असाः इति न वा इति च ॥१४॥

कर्मणा	कर्मसे,	सः असाः इति	'वह यह हैं' इस प्रकार
आकृतिभिः	आकृतिसे,	वा न इति	अथवा 'ये' ऐसे नहीं हैं' इस प्रकार
वाचा	बोलनेसे,	जना यं	लोग जिनको
वर्ण आश्रम	वर्ण-आश्रम	वै न विदन्ति	ठीक-ठीक नहीं जान पाते ॥१४॥
आदिभिः	आदिके		
लिङ्गैः	चिह्नोंसे		

तं नत्वाभ्यर्च्य विधिवत् पादयोः शिरसा स्पृशन् ।
विवित्सुरिदमप्राक्षीन्महाभागवतोऽसुरः ॥१५॥

तं नत्वा अभ्यर्च्य विधिवत् पादयोः शिरसा स्पृशन् विवित्सुः इदं अप्राक्षीत् महाभागवतः असुरः ॥१५॥

तं नत्वा	उनको प्रणाम करके	अभ्यर्च्य	अर्चन करके
विधिवत्	विधि पूर्वक	पादयोः शिरसा	चरणोंका मस्तकसे

स्पृशन्	स्पर्श करते हुए	**असुरः विवित्सुः**	असुर प्रह्लादजीने जाननेकी इच्छासे
महाभागवतः	परम भगवद्भक्त	**इदं अप्राक्षीत्**	यह पूछा ॥१५॥

प्रह्लाद उवाच—*

बिभर्षि कायं पीवानं सोद्यमो भोगवान्यथा ।
वित्तं चैवोद्यमवतां भोगो वित्तवतामिह ।
भोगिनां खलु देहोऽयं पीवा भवति नान्यथा ॥१६॥

विभर्षि कायं पीवानं स उद्यमः भोगवान् यथा वित्तं च एव उद्यमवतां भोगः वित्तवतां इह भोगिनां खलु देहः अयं पीवा भवति न अन्यथा ॥१६॥

पीवानं कायं	मोटा शरीर	**इह वित्तवतां**	इस संसारमें धनी-को ही
विभर्षि यथा	आप धारण करते हैं जैसा	**भोगः**	भोग भी मिलते हैं,
स उद्यमः	उद्योगी	**खलु भोगिनां**	अरे भोगियोंका ही
भोगवान्	भोगियोंका होता है,	**अयं देहः**	यह (स्थूल) शरीर
उद्यमवतां	उद्योग करनेवालोंके पास ही	**पीवा भवति**	मोटा होता है
वित्तं च एव	धन भी होता है,	**अन्यथा न**	दूसरा कोई (उपाय) नहीं है ॥१६॥

न ते शयानस्य निरुद्यमस्य
ब्रह्मन् नु हार्थो यत एव भोगः ।
अभोगिनोऽयं तव विप्र देहः
पीवा यतस्तद्वद नः क्षमं चेत् ॥१७॥

न ते शयानस्य निः उद्यमस्य ब्रह्मन् नु ह अर्थः यत एव भोगः अभोगिनः अयं तव विप्र देहः पीवा यतः तत् वद नः क्षमं चेत् ॥१७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
निः उद्यमस्य	उद्योग रहित
शयानस्य ते	सोते हुए आपके पास
नु ह अर्थः न	क्योंकि निश्चय धन नहीं है
यत एव भोगः	जिस (धन) से ही भोग मिलते हैं,
विप्र	ब्राह्मण देव !
तव अयं देहः	आपका यह शरीर
अभोगिनः	भोग न मिलनेपर भी
यतः पीवा	जिससे मोटा है
चेत् नः क्षमं	यदि हम सुनने योग्य हों तो
तत् वद	वह (कारण) बतलाइये ॥१७॥

कविः कल्पो निपुणदृक् चित्रप्रियकथः समः ।
लोकस्य कुर्वतः कर्म शेषे तद्वीक्षितापि वा ॥१८॥

कविः कल्पः निपुणदृक् चित्रप्रियकथः समः लोकस्य कुर्वतः कर्म शेषे तत् वीक्षिता अपि वा ॥१८॥

कविः कल्पः	(आप) विद्वान्, समर्थ,
निपुणदृक्	चतुर दृष्टिवाले,
चित्रप्रियकथः	विचित्र प्रिय बातें करनेवाले हैं
लोकस्य कर्म	लोगोंको कर्म
कुर्वतः वीक्षिता	करते हुए देखते हैं
वा अपि समः	फिर भी समभावसे
शेषे तत्	पड़े हैं इसका कारण क्या है ॥१८॥

नारद उवाच—

स इत्थं दैत्यपतिना परिपृष्टो महामुनिः ।
स्मयमानस्तमभ्याह तद्वागमृतयन्त्रितः ॥१९॥

स इत्थं दैत्य पतिना परिपृष्टः महामुनिः स्मयमानः तं अभ्याह तत् वाक् अमृत यन्त्रितः ॥१९॥

इथं दैत्य पतिना	इस प्रकार दैत्यराज प्रह्लाद द्वारा
परिपृष्टः	पूछे जानेपर

तत् वाक् अमृत	उनकी अमृतमयी वाणीसे	**महामुनिः**	महामुनि
यन्त्रितः स	प्रेरित होकर वे	**स्मयमानः**	मुस्कराते हुए
		तं अभ्याह	उनसे बोले ॥१९॥

ब्रह्मणउवाच–

वेदेदमसुरश्रेष्ठ भवान् नन्वार्यसम्मतः ।
ईहोपरमयोर्नृणां पदान्यध्यात्मचक्षुषा ॥२०॥

वेद इदं असुरश्रेष्ठ भवान् ननु आर्यसम्मतः ईहा उपरमः यः नृणां पदानि अध्यात्म चक्षुषा ॥२०॥

असुरश्रेष्ठ	असुरोत्तम !	**नृणां ईहा**	मनुष्योंकी काम-नाओंकी
ननु भवान्	निश्चय तुम	**पदानि उपरमः**	स्थिति और उनसे उपरामता
आर्यसम्मतः	श्रेष्ठ पुरुषोंसे सम्मानित हो	**इदं वेद**	इसे (स्वयं) जानते हो ॥२०॥
यः	जो		
अध्यात्म	आध्यात्मिक		
चक्षुषा	दृष्टिसे		

यस्य नारायणो देवो भगवान्हृद्गतः सदा ।
भक्त्या केवलयाज्ञानं धुनोति ध्वान्तमर्कवत् ॥२१॥

यस्य नारायणः देवः भगवान् हृद्गतः सदा भक्त्या केवलया अज्ञानं धुनोति ध्वान्तं अर्कवत् ॥२१॥

यस्य केवलया	जिनकी अनन्य	**ध्वान्तं अर्कवत्**	अन्धकारको सूर्यके समान
भक्त्या	भक्तिसे	**अज्ञानं धुनोति**	अज्ञानको नष्ट करते रहते हैं ॥२१॥
सदा हृद्गतः	सदा हृदयमें विराजमान		
देवः नारायणः	भगवान् नारायण		

अथापि ब्रूमहे प्रश्नांस्तव राजन्यथाश्रुतम् ।
सम्भावनीयो हि भवानात्मनः शुद्धिमिच्छताम् ॥२२॥

अथ अपि ब्रूमहे प्रश्नात् तव राजन् यथा श्रुतं सम्भावनीयः हि भवान् आत्मनः शुद्धि इच्छताम् ॥२२॥

राजन्	राजन् !
अथ अपि	फिर भी
तव प्रश्नात्	तुम्हारे प्रश्नोंका (उत्तर)
यथा श्रुतं	जैसा मैंने सुना है
ब्रूमहे	कहूंगा ।
हि भवान्	क्योंकि तुम
आत्मनः शुद्धि	अपने चित्तकी शुद्धि
इच्छतां	चाहने वालोंके लिए
सम्भावनीयः	आदरणीय हो ॥२२॥

तृष्णया भववाहिन्या योग्यैः कामैरपूरया ।
कर्माणि कार्यमाणोऽहं नानायोनिषु योजितः ॥२३॥

तृष्णया भव वाहिन्या योग्यैः कामै. अपूरया कर्माणि कार्यमाणः अहं नाना योनिषु योजितः ॥२३॥

योग्यैः कामैः	भरपूर भोगोंसे भी
अपूरया	पूरी (तृप्त) न होनेवाली
भव वाहिन्या	संसार-प्रवाहको चलानेवाली
तृष्णया	तृष्णाके द्वारा
अहं कार्यमाणः	मैं कराया जाता हुआ
नाना योनिषु	अनेक योनियोंमें
योजितः	डाला गया ॥ ३।

यदृच्छया लोकमिमं प्रापितः कर्मभिर्भ्रमन् ।
स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तिरश्चां पुनरस्य च ॥२४॥

यदृच्छया लोकं इमं प्रापितः कर्मभिः भ्रमन् स्वर्ग अपवर्गयोः द्वारं तिरश्चां पुनः अस्य च ॥२४॥

कर्मभिः भ्रमन्	कर्मोंके कारण भटकता हुआ
यदृच्छया	संयोगवश
स्वर्ग अपवर्गयोः	स्वर्ग मोक्ष
तिरश्चां च	पशु-पक्षी आदि तथा
पुनः अस्य	फिर इसी (योनि) के
द्वारं इमं	द्वार इस
लोकं प्रापितः	(मनुष्य) लोकमें पहुँचा ॥२४॥

अत्रापि दम्पतीनां च सुखायान्यापनुत्तये ।
कर्माणि कुर्वतां दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि विपर्ययम् ॥२५॥

अत्र अपि दम्पतीनां च सुखाय अन्य अपनुत्तये कर्माणि कुर्वतां दृष्ट्वा निवृत्तः अस्मि विपर्ययम् ॥२५॥

अत्र अपि	यहां भी
दम्पतीनां	दम्पतियोंका
सुखाय च	सुखपानेके लिए तथा
अन्य अपनुत्तये	दूसरे (दुःख) को दूर करनेके लिए
कर्माणि कुर्वतां	कर्म करते हुए
विपर्ययं दृष्ट्वा	उलटा फल होते देखकर
निवृत्तः अस्मि	मैं (कर्मसे) निवृत्त हो गया हूँ ॥२५॥

सुखमस्यात्मनो रूपं सर्वेहोपरतिस्तनुः ।
मनः संस्पर्शजान् दृष्ट्वा भोगान्स्वप्स्यामि संविशन् ॥२६॥

सुखं अस्य आत्मनः रूपं सर्व ईहा उपरतिः तनुः मनः संस्पर्श जान् दृष्ट्वा भोगान् स्वप्स्यामि संविशन् ॥२६॥

सुखं अस्य	सुख तो इस
आत्मनः रूपं	आत्माका स्वरूप है
सर्व ईहा	सब चेष्टाओंसे
उपरतिः तनुः	उपरामता (उसका) शरीर है,
भोगान्	भोगोंको
मनः संस्पर्श	मनके संस्पर्श (कल्पना) से
जान्	उत्पन्न
दृष्ट्वा संविशन्	देखकर चुपचाप बैठाया
स्वप्स्यामि	सोता (पड़ा) रहता हूँ ॥२६॥

इत्येतदात्मनः स्वार्थं सन्तं विस्मृत्य वै पुमान् ।
विचित्रामसति द्वैते घोरामाप्नोति संसृतिम् ॥२७॥

इति एतत् आत्मनः स्वार्थं सन्तं विस्मृत्य वै पुमान् विचित्रां असति द्वैते घोरां आप्नोति संसृतिम् ॥२७॥

इति एतत्	इस प्रकारके इस
आत्मनः स्वार्थं	अपने (सच्चे) स्वार्थके
सन्तं पुमान्	सुलभ होनेपर भी पुरुष
वै विस्मृत्य	निश्चय इसे भूलकर
द्वैते असति	द्वैतके न होनेपर भी
विचित्रां घोरां	विचित्र और घोर
संसृतिं आप्नोति	जन्म-मृत्युका क्रम पाता है ॥२७॥

जलं तदुद्भवैश्छन्नं हित्वाज्ञो जलकाम्यया ।
मृगतृष्णामुपाधावेद् यथान्यत्रार्थदृक् स्वतः ॥२८॥

जलं तत् उद्भवैः छन्नं हित्वा अज्ञः जल काम्यया मृगतृष्णां उपाधावेत् यथा अन्यत्र अर्थदृक् स्वतः । २८॥

यथा अज्ञः	जैसे (कोई) अज्ञानी
तत् उद्भवैः	उसीसे उत्पन्न (कोई आदि) से
छन्नं जलं	ढके जलको
हित्वा जल	छोड़कर जलकी
काम्यया	इच्छासे
मृगतृष्णां	मृग-तृष्णाकी ओर
उपाधावेत्	दौड़े
स्वतः अन्यत्र	अपनेसे पृथक
अर्थदृक्	स्वार्थ देखनेवाला (वैसा ही है ।) ॥२८॥

देहादिभिर्दैवतन्त्रै रात्मनः सुखमीहतः ।
दुःखात्ययं चानीशस्य क्रिया मोघाः कृताः कृताः ॥२९॥

देवादिभिः दैवतन्त्रैः आत्मनः सुखं ईहतः दुःख अत्ययं च अनीशस्य क्रिया मोघाः कृताः कृताः ॥२९॥

दैवतन्त्रैः	प्रारब्धाधीन
अनीशस्य	असमर्थ द्वारा
देवादिभिः	इन्द्रियादिसे
आत्मनः सुखं	अपने लिए सुख
च दुःख अत्ययं	तथा दुःख दूर करना
ईहतः क्रिया	चाहते हुए किये गये कर्म
कृताः कृताः	बार-बार करनेपर भी
मोघाः	व्यर्थ हो जाते हैं ॥२९॥

आध्यात्मिकादिभिर्दुःखैरविमुक्तस्य कर्हिचित् ।
मर्त्यस्य कृच्छ्रोपनतैरर्थैः कामैः क्रियेत किम् ॥३०॥

आध्यात्मिक आदिभिः दुःखैः अविमुक्तस्य कर्हिचित् मर्त्यस्य कृच्छ्र उपनतैः अर्थैः कामैः क्रियेत किम् ॥३०॥

आध्यात्मिक	आध्यात्मिक	**कर्हिचित्**	किसी समय
आदिभिः	आदि	**कृच्छ्र उपनतैः**	कष्टसे पाये गये
दुःखैः	दुःखोंसे	**अर्थैः कामैः**	धन और भोगोंका
अविमुक्तस्य	बिना छूटे,	**क्रियेतकिं**	करना भी क्या है
मर्त्यस्य	मरणधर्माको		॥३०॥

पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनाम् ।
भयादलब्धनिद्राणां सर्वतोऽभिविशङ्किनाम् ॥३१॥

पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानां अजित आत्मनां भयात् अलब्ध निद्राणां सर्वतः अभिविशङ्किनाम् ॥३१॥

लुब्धानां	लोभी,	**अभिविशङ्किनां**	सभीके प्रति शङ्कित रहनेवाले,
अजित आत्मनां	अजितेन्द्रिय	**धनिनां क्लेशं**	धनियोंका कष्ट
भयात्	भयके कारण	**पश्यामि**	देखता हूँ ॥३१॥
अलब्ध निद्राणां	निद्रा न पानेवाले,		
सर्वतः	सब ओरसे		

राजतश्चोरतः शत्रोः स्वजनात्पशुपक्षितः ।
अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मान्नित्यं प्राणार्थवद्भयम् ॥३२॥

राजतः चोरतः शत्रोः स्वजनात् पशु पक्षितः अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मात् नित्यं प्राण अर्थवत् भयम् ॥३२॥

प्राण अर्थवत्	प्राणके समान धन मानने वालोंके लिए	**शत्रोः स्वजनात्**	शत्रुओंसे, स्वजनोंसे
राजतः चोरतः	शासकसे, चोरोंसे,	**पशु पक्षितः**	पशु-पक्षियोंसे,
		अर्थिभ्यः	याचकोंसे,

कालतः	समय परिवर्तनसे	**नित्यं भयं**	सदा ही भय है ॥३२॥
स्वस्मात्	अपनेसे भी		

शोकमोहभयक्रोधरागक्लैब्यश्रमादयः ।
यन्मूलाः स्युर्नृणां जह्यात् स्पृहां प्राणार्थयोर्बुधः ॥३३॥

शोक मोह भय क्रोध राग क्लैब्य श्रम आदयः यत् मूलाः स्युः नृणां जह्यात् स्पृहां प्राण अर्थयोः बुधः ॥३३॥

यत् मूलाः	जिसकी जड़से	**नृणां स्युः**	मनुष्यको होते हैं,
शोक मोह	शोक मोह,	**बुधः प्राण**	बुद्धिमान उस जीवन और
भय क्रोध	भय, क्रोध,	**अर्थयोः**	धनकी
राग क्लैब्य	राग, कायरता,	**स्पृहां जह्यात्**	स्पृहा त्याग दे ॥३३॥
श्रम आदयः	श्रम आदि		

मधुकारमहासर्पौ लोकेऽस्मिन्नो गुरूत्तमौ ।
वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता यच्छिक्षया वयम् ॥३४॥

मधुकार महासर्पं लोके अस्मिन् गुरु उत्तमौ वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता यत् शिक्षया वयं ॥३४॥

अस्मिन् लोके	इस लोकमें	**यत् शिक्षया वयं**	जिनकी शिक्षासे मैंने।
मधुकार	मधुमक्खी और	**वैराग्यं च**	वैराग्य और
महासर्पं	अजगर	**परितोषं**	सन्तोष
गुरु उत्तमौ	(मेरे) श्रेष्ठ गुरु हैं,	**प्राप्ता**	पाया है ॥३४॥

विरागः सर्वकामेभ्यः शिक्षितो मे मधुव्रतात् ।
कृच्छ्राप्तं मधुवद् वित्तं हृत्वाप्यन्यो हरेत्पतिम् ॥३५॥

विरागः सर्वकामेभ्यः शिक्षितः मे मधुव्रतात् कृच्छ्र आप्तं मधुवत् वित्तं हृत्वा अपि अन्यः हरेत् पतिम् ॥३५॥

सर्वकामेभ्यः	सब भोगोंसे
विरागः मे	वैराग्य मैंने
मधुव्रतात्	मधुमक्खीसे
शिक्षितः	सीखा है
मधुवत् वित्तं	शहदकी भांति धनको
पतिं हत्वा अपि	स्वामीको मारकर भी
अन्यः हरेत्	दूसरे छीन लेते हैं ॥३५॥

अनीहः परितुष्टात्मा यदृच्छोपनतादहम् ।
नो चेच्छये बह्वहानि महाहिरिव सत्त्ववान् ॥३६॥

अनीहः परितुष्ट आत्मा यदृच्छया उपनतात् अहं नो चेत् शये बहु अहानि महा अहिः इव सत्त्ववान् ॥३६॥

यदृच्छया	संयोगवश
उपनतात् अहं	प्राप्त हुएसे मैं
परितुष्ट आत्मा	सन्तुष्ट चित्त रहता हूँ,
चेत् नो	यदि कुछ न मिले,
महा अहिः इव	अजगरके समान
सत्त्ववान्	धैर्य पूर्वक
बहु अहानि	बहुत दिनों तक
अनीहः	बिना चेष्टा,
शये	पड़ा रहता हूँ ॥३६॥

क्वचिदल्पं क्वचिद् भूरि भुञ्जेऽन्नं स्वाद्वस्वादु वा ।
क्वचिद् भूरिगुणोपेतं गुणहीनमुत क्वचित् ॥३७॥

क्वचित् अल्पं क्वचित् भूरि भुञ्जे अन्नं स्वादु अस्वादु वा क्वचित् भूरि गुण उपेतं गुणहीनं उत क्वचित् ॥३७॥

क्वचित् अल्पं	कभी थोड़ा,
क्वचित् भूरि	कभी बहुत,
क्वचित् भूरि	कभी बहुत
गुण उपेतं	गुण युक्त
उत क्वचित्	या कभी
गुणहीनं	गुण रहित
स्वादु वा	स्वादिष्ट अथवा
अस्वादु	स्वादहीन
अन्नं भुञ्जे	आहार खा लेता हूँ ॥३७॥

श्रद्धयोपाहृतं क्वापि कदाचिन्मानवर्जितम् ।
भुञ्जे भुक्त्वाथ कस्मिंश्चिद् दिवा नक्तं यदृच्छया ॥३८॥

श्रद्धया उपाहृतं क्वापि कदाचित् मान वर्जितं भुञ्जे भुक्त्वा अथ कस्मिन् चित् दिवा नक्तं यदृच्छया ॥३८॥

क्वापि श्रद्धया	कभी श्रद्धापूर्वक
उपाहृतं	लाया हुआ
कदाचित्	तथा कभी
मान वर्जितं	कभी अपमानके साथ,
कस्मिन् चित्	कभी तो
यदृच्छया	संयोगवश प्राप्त
दिवा नक्तं	दिन या रातको
भुक्त्वा अथ	भोजन करनेपर भी (दुबारा कभी)
भुञ्जे	खा लेता हूँ ॥३८॥

क्षौमं दुकूलमजिनं चीरं वल्कलमेव वा ।
वसेऽन्यदपि सम्प्राप्तं दिष्टभुक् तुष्टधीरहम् ॥३९॥

क्षौमं दुकूलं अजिनं चीरं वल्कलं एव वा वसे अन्यत् अपि सम्प्राप्तं दिष्टभुक् तुष्ट धीः अहम् ॥३९॥

दिष्टभुक्	प्रारब्ध भोगता
अहं तुष्ट धीः	मैं सन्तुष्ट बुद्धि
क्षौमं दुकूलं	रेशमी या सूती वस्त्र,
अजिनं चीरं	मृग-चर्म, चिथड़े,
वल्कलं एव	छाल हो
वा अन्यत् अपि	अथवा दूसरा कुछ भी
सम्प्राप्तं वसे	मिलनेपर पहिन लेता हूँ ॥३९॥

क्वचिच्छये धरोपस्थे तृणपर्णाश्मभस्मसु ।
क्वचित् प्रासादपर्यङ्के कशिपौ वा परेच्छया ॥४०॥

क्वचित् शये धरा उपस्थे तृण पर्ण अश्म भस्मसु क्वचित् प्रासाद पर्यङ्के कशिपौ वा पर इच्छया ॥४०॥

क्वचित् धरा	कभी पृथ्वीके
उपस्थे	ऊपर
तृण पर्ण अश्म	तिनके, पत्ते, पत्थर
भस्मसु वा	भस्ममें अथवा
पर इच्छया	दूसरोंकी इच्छाएँ
प्रासाद पर्यङ्के	महलमें पलंगपर
क्वचित् कशिपौ	कभी गद्दे पर
शये	सोता हूँ ॥४०॥

क्वचित् स्नातोऽनुलिप्ताङ्गः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः ।
रथेभाश्वैश्चरे क्वापि दिग्वासा ग्रहवद् विभो ॥४१॥

क्वचित् स्नातः अनुलिप्त अङ्गः सुवासाः स्रक् अलंकृतः रथ इभ अश्वैः चरे क्वापि दिग्वासा ग्रहवत् विभो ॥४१॥

विभो	दैत्यराज !
क्वचित् स्नातः	कभी स्नान करके
अनुलिप्त अङ्गः	शरीरमें अंगराग लगाकर
सुवासाः स्रक्	उत्तम वस्त्र, माला,
अलङ्कृतः	आभूषण पहिनकर
रथ इभ अश्वैः	रथ, हाथी या घोड़े-पर
चरे क्वापि	विचरण करता हूँ और कभी
ग्रहवत्	पिशाचकी भांति
दिग्वासा	दिगम्बर (घूमता हूँ) ॥४१॥

नाहं निन्दे न च स्तौमि स्वभावविषमं जनम् ।
एतेषां श्रेय आशासे उतैकात्म्यं महात्मनि ॥४२॥

न अहं निन्दे न च स्तौमि स्वभावं विषमं जनं एतेषां श्रेय आशासे उत ऐकात्म्यं महात्मनि ॥४२॥

जनं स्वभावं विषमं	मनुष्य स्वभावसे भिन्न प्रकारके (होते ही हैं,)
अहं न निन्दे	मैं न (उनकी) निन्दा करता,
च न स्तौमि	और न प्रशंसा करता
एतेषां श्रेय उत महात्मनि	इन सबका कल्याण अथवा परमात्मासे
ऐकात्म्यं आशासे	एकात्मता चाहता हूँ ॥४२॥

विकल्पं जुहुयाच्चित्तौ तां मनस्यर्थविभ्रमे ।
मनो वैकारिके हुत्वा तन्मायायां जुहोत्यनु ॥४३॥

विकल्पं जुहुयात् चित्तौ तां मनसि अर्थ विभ्रमे मनः वैकारिके हुत्वा तत् मायायां जुहुयात् अनु ॥४३॥

विकल्पं	भेद प्रतीतिको	**मनसि**	मनमें
चित्तौ जुहुयात्	चित्तवृत्तिमें हवन कर दे,	**मनः वैकारिके**	मनको सात्त्विक अहंकारमें
तां	उन (वृत्तियों) को	**हुत्वा अनु**	हवन करके पीछे
अर्थं विभ्रमे	पदार्थोंके विषयमें भ्रम उत्पन्न करने-वाले	**तत् मायायां जहुयात्**	उसे मायामें हवन कर दे ॥४३॥

आत्मानुभूतौ तां मायां जुहुयात् सत्यदृङ्मुनिः ।
ततो निरीहो विरमेत् स्वानुभूत्याऽऽत्मनि स्थितः ॥४४॥

आत्म अनुभूतौ तां मायां जुहुयात् सत्यदृक् मुनिः ततः निरीहः विरमेत् स्वअनुभूत्या आत्मनि स्थितः ॥४४॥

सत्यदृक् मुनिः	सत्यद्रष्टा मुनि	**स्वअनुभूत्या**	आत्मानुभव करके
तां मायां	उस मायाको	**आत्मनि स्थितः**	आत्मामें स्थित
आत्म अनुभूतौ	आत्मानुभवमें	**निरीहः विरमेत्**	चेष्टाहीन उपरत हो जाय ॥४४॥
जुहुयात्	हवन कर दे,		
ततः	तब		

स्वात्मवृत्तं मयेत्थं ते सुगुप्तमपि वर्णितम् ।
व्यपेतं लोकशास्त्राभ्यां भवान् हि भगवत्परः ॥४५॥

स्व आत्मवृत्तं मया इत्थं ते सुगुप्तं अपि वर्णितं व्यपेतं लोक-शास्त्राभ्यां भवान् हि भगवत् परः ॥४५॥

हि भवान्	क्योंकि तुम	**अपि**	भी
भगवत् परः	भगवान्के परायण हो	**स्व आत्मवृत्तं**	अपने आचरणका रहस्य
लोक-	लोकाचार और	**इत्थं ते**	इस प्रकार तुमसे
शास्त्राभ्यां	शास्त्रसे	**मया वर्णितं**	मैंने बतला दिया ॥४५॥
व्यपेतं सुगुप्तं	परे अत्यन्त छिपा होनेपर		

नारद उवाच–

धर्मं पारमहंस्यं वै मुनेः श्रुत्वासुरेश्वरः ।
पूजयित्वा ततः प्रीत आमन्त्र्य प्रययौ गृहम् ॥४६॥

धर्मं पारमहंस्यं वै मुनेः श्रुत्वा असुरेश्वरः पूजयित्वा ततः प्रीतः आमन्त्र्य प्रययौ गृहम् ॥४६॥

असुरेश्वरः	दैत्यराज प्रह्लादने	**ततः पूजयित्वा**	तब उनकी पूजा करके
वै मुनेः	निश्चय मुनियोंको		
पारमहंस्यं	परमहंस	**आमन्त्र्य**	अनुमति लेकर
धर्मं श्रुत्वा	धर्म सुनकर	**प्रीतः गृहं प्रययौ**	प्रसन्न होकर घर लौट गये ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे यतिधर्मे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

युधिष्ठिर उवाच–

गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन चाञ्जसा ।
याति देवऋषे ब्रूहि मादृशो गृहमूढधीः ॥१॥

गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन च अञ्जसा याति देवऋषे ब्रूहि मादृशः गृहमूढधीः ॥१॥

देवऋषे	देवर्षि !
मादृशः	मेरे जैसा
गृहमूढधीः	गृहमें मूढ बुद्धि
गृहस्थ एतां	गृहस्थ इस (परम-हंस)
पदवीं	पदको
येन विधिना च	जिस विधिसे तो
अञ्जसा याति	सरलतापूर्वक पाता है
ब्रूहि	(वह) बतलाइये ॥१॥

नारद उवाच–

गृहेष्ववस्थितो राजन्क्रियाः कुर्वन्गृहोचिताः ।
वासुदेवार्पणं साक्षादुपासीत महामुनीन् ॥२॥

गृहेषु अवस्थितः राजन् क्रियाः कुर्वन् गृह उचिताः वासुदेव अर्पणं साक्षात् उपासीत महामुनीन् ॥२॥

राजन्	राजन् !
गृहेषु अवस्थितः	घरमें रहता हुआ
गृह उचिताः	गृहस्थ धर्मोचित
क्रियाः	कर्म
वासुदेव अर्पणं	भगवान् वासुदेवको अर्पित
कुर्वन्	करते हुए
साक्षात्	प्रत्यक्ष (जीवित)
महामुनीन्	महात्माओंकी
उपासीत	सेवा-पूजा करे ॥२॥

शृण्वन्भगवतोऽभीक्ष्णमवतारकथामृतम् ।
श्रद्दधानो यथाकालमुपशान्तजनावृतः ॥३॥

शृण्वन् भगवतः अभीक्ष्णं अवतार कथा अमृतं श्रद्दधानः यथा कालं उपशान्त जन आवृतः ॥३॥

यथा काल	समयानुसार	**भगवतः**	भगवान्‌की
श्रद्दधानः	श्रद्धा सहित	**अवतार कथा**	अवतार कथा-
उपशान्त जन	शान्त लोगोंके	**अमृतं**	सुधा
आवृतः	साथ	**शृण्वन्**	सुनता रहे ॥३॥
अभीक्ष्णं	बार-बार		

सत्सङ्गाच्छनकैः सङ्गमात्मजायात्मजादिषु ।
बिमुच्येन्मुच्यमानेषु स्वयं स्वप्नवदुत्थितः ॥४॥

सत्सङ्गात् शनकैः सङ्गं आत्म जाया आत्मज आदिषु बिमुच्येत् मुच्यमानेषु स्वयं स्वप्नवत् उत्थितः ॥४॥

उत्थितः	जागनेपर	**सङ्गं स्वयं**	आसक्ति स्वयं
स्वप्नवत्	स्वप्नके समान	**सत्सङ्गात्**	सत्संगके द्वारा
मुच्यमानेषु	छोड़ ही देनेवाले	**शनकैः**	धीरे-धीरे
आत्म जाया	शरीर, पत्नी,	**विमुच्येत्**	छोड़ दे ॥४॥
आत्मज जादिषु	पुत्रादिमें		

यावदर्थमुपासीनो देहे गेहे च पण्डितः ।
विरक्तो रक्तवत् तत्र नृलोके नरतां न्यसेत् ॥५॥

यावत् अर्थं उपासीनः देहे गेहे च पण्डितः विरक्तः रक्तवत् तत्र नृलोके नरतां न्यसेत् ॥५॥

पण्डितः यावत् अर्थं	बुद्धिमान व्यक्ति प्रयोजन मात्र	**देहे च गेहे उपासीनः**	शरीर और घरकी सेवा करे,

तत्र विरक्तः	इनसे विरक्त रहकर	**नरतां न्यसेत्**	मनुष्योचित व्यवहार
नृलोके	मानव समाजमें		करे ॥५॥
रक्तवत्	आसक्तकी भांति		

ज्ञातयः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदोऽपरे ।
यद् वदन्ति यदिच्छन्ति चानुमोदेत निर्ममः ॥६॥

ज्ञातयः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदः अपरे यत् वदन्ति यत् इच्छन्ति च अनुमोदेत निर्ममः ॥६॥

ज्ञातयः पितरौ	जातिके लोग, माता-पिता,	**च यत् इच्छन्ति**	और जो चाहते हैं,
पुत्रा भ्रातरः	पुत्र, भाई,	**निर्ममः**	ममताहीन होकर
अपरे सृहृदः	दूसरे सबन्धी मित्र	**अनुमोदेत**	उसका समर्थन करे ॥६॥
यत् वदन्ति	जो कहते हैं,		

दिव्यं भौमं चान्तरिक्षं वित्तमच्युतनिर्मितम् ।
तत् सर्वमुपभुञ्जान एतत् कुर्यात् स्वतो बुधः ॥७॥

दिव्यं भौमं च अन्तरिक्षं वित्तं अच्युत निर्मितं तत् सर्वं उपभुञ्जान एतत् कुर्यात् स्वतः बुधः ॥७॥

दिव्यं	(वर्षादि) दैवी कृपासे प्राप्त,		बनाया है,
भौमं	पृथ्वी (खान आदि) से मिले,	**बुधः तत् सर्वं**	बुद्धिमान उस सबका
		उपभुञ्जानः	उपभोग करता हुआ
च अन्तरिक्षं	तथा आकाशसे (वरदान आदि रूपसे) प्राप्त	**स्वतः**	स्वयं (बिना किसीके कहे)
		एतत् कुर्यात्	एतत् (यह कथा, साधु-सेवादि) करे ॥७॥
वित्तं	(सब) धन		
अच्युत निर्मितं	भगवान्‌का ही		

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥८॥

यावत् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनां अधिकं यः अभिमन्येत स स्तेनः दण्डं अर्हति ॥८॥

यावत् जठरं	जितनेसे पेट	**यः अधिकं**	जो अधिकको
भ्रियेत	भर जाय	**अभिमन्येत**	अपना मानता है,
तावत् देहिनां	उतने तक शरीर धारियोंका	**स स्तेनः**	वह चोर है
		दण्डं अर्हति	दण्ड पाने योग्य है ॥८॥
स्वत्वं	अधिकार है,		
हि	क्योंकि		

मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः ।
आत्मनः पुत्रवत् पश्येत्तेषामन्तरं कियत् ॥९॥

मृग उष्ट्र खर मर्क आखु सरीसृप् खग मक्षिकाः आत्मनः पुत्रवत् पश्येत् तैः एषां अन्तरं कियत् ॥९॥

मृग उष्ट्र	हिरण, ऊँट,	**पश्येत्**	देखे
खर मर्क	गधे, बन्दर,	**तैः एषां**	उनमें और इन (पुत्रों) में
आखु सरीसृप्	चूहे, सर्पादि,	**अन्तरं कियत्**	अन्तर ही क्या है ॥९॥
खग मक्षिकाः	पक्षी, मक्खियोंको		
आत्मनः पुत्रवत्	अपने पुत्रोंके समान		

त्रिवर्गं नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि ।
यथादेशं यथाकालं यावद्दैवोपपादितम् ॥१०॥

त्रिवर्गं न अति कृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्य अपि यथा देशं यथा कालं यावत् दैव उपपादितम् ॥१०॥

गृहमेध्य अपि	गृहस्थ होनेपर भी	**अति कृच्छ्रेण**	बहुत कष्ट उठाकर
त्रिवर्गं	अर्थ, धर्म कामका	**भजेत न**	सेवन न करे

यथा देशं	देशके अनुसार,	**उपपादितं**	जो प्राप्त हो जाय
यथा कालं	समयके अनुसार,		(उसीसे सन्तोष करे
यथा दैव	प्रारब्धके अनुसार		॥१०॥

आश्वाघान्तेऽवसायिभ्यः कामान्संविभजेद् यथा ।
अप्येकामात्मनो दारां नृणां सत्वग्रहो यतः ॥११॥

आश्व अघ अन्ते अवसायिभ्यः कामान् संविभजेत् यथा अपि एकात्मनः दारां नृणां सत्व ग्रहः यतः ॥११॥

कामान्	भोग पदार्थोंको	**सत्व ग्रहः**	अधिकार प्राप्त है
आश्व अघ	कुत्ते, पतित, चाण्डाल पर्यन्त	**एकात्मनः**	उस अभिन्न चित्त
		दारां अपि	स्त्रीको भी (दूसरों-
यथासंविभजेत्	(सब प्राणियोंको) यथा योग्य बांटे		की सेवामें लगावे) ॥११॥
नृणां यतः	मनुष्यको जिसपर		

जह्याद् यदर्थे स्वप्राणान्हन्याद् वा पितरं गुरुम् ।
तस्यां स्वत्वं स्त्रियां जह्याद् यस्तेन ह्यजितो जितः ॥१२॥

जह्यात् यत् अर्थे स्व प्राणान् हन्यात् वा पितरं गुरुं तस्यां स्वत्वं स्त्रियां जह्यात् यः तेन हि अजितः जितः ॥१२॥

यत् अर्थे	जिसके लिए	**स्त्रियां यः**	स्त्रीको जो
स्व प्राणान्	अपने प्राण	**जह्यात् तेन**	त्याग सके उसके द्वारा
जह्यात्	त्याग देता है		
वा पितरं	अथवा माता-पिता,	**अजितः जितः**	अजित भगवान् भी जीत लिए जाते हैं ॥१२॥
गुरुं हन्यात्	या गुरुको मार देता है		
मस्यां स्वत्वं	उस अपने अधिकार रूपा		

कृमिविड्भस्मनिष्ठान्तं क्वेदं तुच्छं कलेवरम् ।
क्व तदीयरतिर्भार्या क्वायमात्मा नभश्छदिः ॥१३॥

कृमि बिट् भस्मनिष्ठा अन्तं क्व इदं तुच्छं कलेवरं क्व तदीय रतिः भार्या क्वायं आत्मा नभः छदिः ॥१३॥

अन्तं	अन्तमें	**भार्या रतिः**	पत्नीसे प्रीति और
कृमि विट्	कीड़े, विष्ठा या	**क्व इदं**	कहां यह
भस्मनिष्ठा	भस्म हो जानेवाला	**नभः**	आकाशको भी
क्व इदं	कहां यह	**छदिः आत्मा**	ढक लेनेवाला
तुच्छं कलेवरं	तुच्छ शरीर,		आत्मा ॥१३॥
क्व तदीय	कहां उसी (शरीर) की		

सिद्धैर्यज्ञावशिष्टार्थैः कल्पयेद् वृत्तिमात्मनः ।
शेषे स्वत्वं त्यजन्प्राज्ञः पदवीं महतामियात् ॥१४॥

सिद्धैः यज्ञ अवशिष्ट अर्थैः कल्पयेत् वृत्ति आत्मनः शेषे स्वत्वं त्यजन् प्राज्ञः पदवीं महतां इयात् ॥१४॥

सिद्धैः	प्रारब्ध प्राप्त	**प्राज्ञः शेषे**	प्रज्ञावान् बचे
यज्ञ अवशिष्ट	पञ्चमहायज्ञादिसे बचे		(पदार्थ) पर
अर्थैः	धनसे	**स्वत्वं त्यजन्**	अपना अधिकार छोड़कर
आत्मनः वृत्ति	अपनी जीविका	**महतां पदवीं**	महापुरुषोंका पद
कल्पयेत्	चलावे	**इयात्**	प्राप्त कर लेता है

॥१४॥

देवानृषीन् नृभूतानि पितॄनात्मानमन्वहम् ।
स्ववृत्त्यागतवित्तेन यजेत पुरुषं पृथक् ॥१५॥

देवान् ऋषीन् नृ भूतानि पितॄन् आत्मानं अनु अहं स्व वृत्त्या त्याग वित्तेन यजेत पुरुषं पृथक् ॥१५॥

स्ववृत्त्या	अपनी (वर्ण-आश्रम विहिता) वृत्तिसे (प्राप्त)	**नृ भूतानि**	मनुष्य (अतिथि) अन्य प्राणी,
वित्तेन त्याग	धनसे त्याग पूर्वक	**पितृन्**	पितर और
अनु अहं	प्रतिदिन	**आत्मानं**	अपनी (पूजा)
देवान् ऋषीन्	देवता, ऋषि,	**पृथक् पुरुषं**	भिन्न-भिन्न रूपमें परमपुरुषकी पूजा है ॥१५॥

यर्ह्यात्मनोऽधिकाराद्याः सर्वाः स्युर्यज्ञसम्पदः ।
वैतानिकेन विधिना अग्निहोत्रादिना यजेत् ॥१६॥

यर्हि आत्मनः अधिकार आद्याः सर्वाः स्युः यज्ञ सम्पदः वैतानिकेन विधिना अग्निहोत्र आदिना यजेत् ॥१६॥

यर्हि आत्मनः अधिकार	यदि अपना अधिकार	**वैतानिकेन विधिना**	महायज्ञोंके विधानसे
आद्याः	आदि	**अग्निहोत्र**	हवन आदि
सर्वाः यज्ञ	सब यज्ञके लिए	**आदिना**	करके
सम्पदः	आवश्यक धनादि हो तो	**यजेत्**	(भगवान्का) यजन करे ॥१६॥

न ह्यग्निमुखतोऽयं वै भगवान्सर्वयज्ञभुक् ।
इज्येत हविषा राजन्यथा विप्रमुखे हुतैः ॥१७॥

न हि अग्नि मुखतः अयं वै भगवान् सर्वयज्ञभुक् इज्यते हविषा राजन् यथा विप्रमुखे हुतैः ॥१७॥

राजन्	राजन् !	**न इज्यते**	नहीं आराधित होते,
वै अयं	निश्चय ये	**यथा विप्रमुखे**	जैसा ब्राह्मणके मुखमें
सर्वयज्ञभुक्	सर्व यज्ञ भोक्ता		
भगवान् हि	भगवान् क्योंकि	**हुतैः**	आहुति (आहार) देनेसे ॥१७॥
अग्नि मुखतः	अग्नि रूपी मुखमें		
हविषा	हविष्यसे वैसे		

तस्माद् ब्राह्मणदेवेषु मर्त्यादिषु यथार्हतः ।
तैस्तैः कामैर्यजस्वैनं क्षेत्रज्ञं ब्राह्मणाननु ॥१८॥

तस्मात् ब्राह्मण देवेषु मर्त्यादिषु यथा अर्हतः तैः तैः कामैः यजस्व एनं क्षेत्रज्ञं ब्राह्मणा ननु ॥१८॥

तस्मात्	इसलिए	**तैः तैः कामैः**	उन-उन भोगों द्वारा
ब्राह्मण देवेषु	ब्राह्मणों, देवताओं,	**एनं यजस्व**	इनकी आराधना
मर्त्य आदिषु	मनुष्यादिकोंकी		करो
यथा अर्हतः	जो जिस, क्रमसे	**ननु क्षेत्रज्ञं**	निश्चय इनमें प्रधान
	पूज्य हैं	**ब्राह्मणा**	ब्राह्मण हैं ॥१८॥

कुर्यादापरपक्षीयं मासि प्रौष्ठपदे द्विजः ।
श्राद्धं पित्रोर्यथावित्तं तद्बन्धूनां च वित्तवान् ॥१९॥

कुर्यात् अपर पक्षीयं मासि प्रौष्ठ पदे द्विजः श्राद्धं पित्रोः यथा वित्तं तद् बन्धूनां च वित्तवान् ॥१९॥

वित्तवान् द्विजः	धनवान द्विजाति	**पित्रोः**	माता-पिताका
यथा वित्तं	अपने धनके अनुसार	**च तद् बन्धूनां**	और उनके बन्धु
प्रौष्ठ पदे मासि	आश्विन मासमें		वान्धवोंका
अपर पक्षीयं	कृष्णपक्षमें (महा-	**श्राद्धं कुर्यात्**	श्राद्ध करे ॥१९॥
	लयमें)		

अयने विषुवे कुर्याद् व्यतीपाते दिनक्षये ।
चन्द्रादित्योपरागे च द्वादशीश्रवणेषु च ॥२०॥

अयने बिषुवे कुर्यात् व्यतीपाते दिनक्षये चन्द्र आदित्य उपरागे च द्वादशी श्रवणेषु च ॥२०॥

अयने	(कर्क एवं मकर संक्रान्ति) अयन- परिवर्तनके समय,	**विषुवे**	(सूर्यके) विषुवत् रेखाके समय (तुला एवं मेषकी संक्रान्ति- पर)

व्यतीपाते	व्यतिपात योगमें	**उपरागे**	ग्रहण लगनेपर
दिनक्षये	तिथिक्षय होनेपर,	**च द्वादशी**	द्वादशी तिथिको,
चन्द्र आदित्य	चन्द्र-सूर्यको	**श्रवणेषु**	श्रवण नक्षत्रमें ॥२०॥

तृतीयायां शुक्लपक्षे नवम्यामथ कार्तिके ।
चतसृष्वप्यष्टकासु हेमन्ते शिशिरे तथा ॥२१॥

तृतीयायां शुक्ल पक्षे नवम्यां अथ कार्तिके चतसृषु अपि अष्टकासु हेमन्ते शिशिरे तथा ॥२१॥

शुक्ल	(वैशाख) शुक्ल	**हेमन्ते तथा**	हेमन्त तथा
पक्षे	पक्षकी	**शिशिरे**	शिशिर ऋतुकी
तृतीयायां	तृतीया (अक्षय तृतीया) को	**चतसृषु**	चारों (मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन)
अथ कार्तिके	और कार्तिक (शुक्ल)		महीनोंकी
नवम्यां	नवमीको	**अष्टकासु अपि**	अष्टमी तिथियोंको, भी ॥२१॥

माघे च सितसप्तम्यां मघाराकासमागमे ।
राकया चानुमत्या वा मासर्क्षाणि युतान्यपि ॥२२॥

माघे च सित सप्तम्यां मघा राका समागमे राकया च अनुमत्या वा मास ऋक्षाणि युतानि अपि ॥२२॥

माघे च	माघ महीनेमें तो	**अनुमत्या**	चन्द्रमा पूर्ण हों या नहीं,
सित सप्तम्यां	शुक्ल पक्षकी सप्तमीको,	**मास ऋक्षाणि**	उस महीनेके नक्षत्र (जैसे ज्येष्ठका ज्येष्ठा)
मघा राका	जब पूर्णिमाको	**युतानि अपि**	से युक्त (पूर्णिमा) होनेपर भी ॥२२॥
समागमे	मघा नक्षत्र मिलता हो		
वा राकया	अथवा पूर्णिमाको		

द्वादश्यामनुराधा स्याच्छ्रवणस्तिस्र उत्तराः ।
तिसृष्वेकादशी वाऽऽसु जन्मर्क्षश्रोणयोगयुक् ॥२३॥

द्वादश्यां अनुराधा स्यात् श्रवणः तिस्र उत्तराः तिसृषु एकादशी वा आसु जन्म ऋक्ष श्रोण योग युक् ॥२३॥

द्वादश्यां	द्वादशी तिथिको
अनुराधा श्रवणः	अनुराधा, श्रवण
तिस्र उत्तराः	तीनोंमें कोई उत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढा या उत्तर भाद्रपदा)
स्यात्	होवे,
वा एकादशी	अथवा एकादशी तिथिका
तिसृषु	तीनों (उत्तरामें-से) किसीसे
आसु जन्म ऋक्ष	अपने जन्म नक्षत्रसे या
श्रोण योग युक्	श्रवण नक्षत्रसे योग होता हो ॥२३॥

ए एते श्रेयसः काला नृणां श्रेयोविवर्धनाः ।
कुर्यात् सर्वात्मनैतेषु श्रेयोऽमोघं तदायुषः ॥२४॥

त एते श्रेयसः काला नृणां श्रेयः विवर्धनाः कुर्यात् सर्व आत्मना एतेषु श्रेयः अमोघं तत् आयुषः ॥२४॥

एते त श्रेयसः	इतने ये सब कल्याणकारी
काला नृणां	समय मनुष्योंके
श्रेयः विवर्धनाः	मंगलकी अभिवृद्धि करनेवाले हैं;
एतेषु	इन (समयों) में
सर्व आत्मना	सम्पूर्ण चित्तसे
श्रेयः कुर्यात्	शुभ कर्म करे
तत् आयुषं	यही जीवनकी
अमोघं	अव्यर्थता (सफलता) है ॥२४॥

एषु स्नानं जपो होमो व्रतं देवद्विजार्चनम् ।
पितृदेवनृभूतेभ्यो यद् दत्तं तद्ध्यनश्वरम् ॥२५॥

एषु स्नानं जपः होमः व्रतं देव द्विज अर्चनं पितृ देव नृ भूतेभ्यः यत् दत्तं तत् हि अनश्वरम् ॥२५॥

एषु हि	इन (समयों) में क्योंकि
स्नानं जपः	स्नान, जप,
होमः व्रतं	हवन, व्रत,
देव द्विज अर्चनं	देवता-ब्राह्मणोंकी पूजा
पितृ देव नृ भूतेभ्यः	पितर, देवता, मनुष्य तथा दूसरे प्राणियोंको
यत् दत्तं तत् अनश्वरं	जो दिया जाता है उसका फल अक्षय होता है ॥२५॥

संस्कारकालो जायाया अपत्यस्यात्मनस्तथा ।
प्रेतसंस्था मृताहश्च कर्मण्यभ्युदये नृप ॥२६॥

संस्कारकालः जाया याः अपत्यस्य आत्मनः तथा प्रेतसंस्था मृत अहः च कर्मणि अभ्युदये नृप ॥२६॥

नृप	राजन् !
जायायाः	स्त्रीके (पुंसवनादि)
अपत्यस्य	पुत्रके (जात कर्म, यज्ञोपवीतादि)
तथा आत्मनः	और अपने
संस्कारकालः	संस्कारके समय
प्रेतसंस्था	शवदाहके दिन,
मृत अहः	किसी (माता-पितादिकी) मरण तिथिको,
च अभ्युदये	तथा किसी उत्सव-मय
कर्मणि	कर्मके समय (श्राद्ध, देव पूजादि करे) ॥२६॥

अथ देशान्प्रवक्ष्यामि धर्मादिश्रेयआवहान् ।
स वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं यत्र लभ्यते ॥२७॥

अथ देशान् प्रवक्ष्यामि धर्म आदि श्रेय आवहान् स वै पुण्यतमः देशः सत् पात्रं यत्र लभ्यते ॥२७॥

अथ धर्म आदि	अब धर्म आदि
श्रेय आवहन्	कल्याण धारक
देशान्	स्थानोंको
प्रवक्ष्यामि	बतलाता हूँ
वै स	निश्चय वह
पुण्यतमः देशः	पवित्रतम स्थान है
यत्र सत् पात्रं	जहां सत्पात्र
लभ्यते	मिलते हों ॥२७॥

विम्बं भगवतो यत्र सर्वमेतच्चराचरम् ।
यत्र ह ब्राह्मणकुलं तपोविद्यादयान्वितम् ॥२८॥

विम्बं भगवतः यत्र सर्वं एतत् चर अचरं यत्र ह ब्राह्मणकुलं तपः विद्या दया अन्वितम् ॥२८॥

एतत्	जिनमें यह
सर्वं चर अचरं	सब जंगम-स्थावर जगत है,
भगवतः विम्बं	उन भगवान्‌की मूर्ति
यत्र	जहां है,
यत्र ह	जहां कि
तपः विद्या	तपस्या, विद्या,
दया अन्वितम्	दया युक्त
ब्राह्मणकुलं	ब्राह्मण-परिवार हैं ॥२८॥

यत्र यत्र हरेरर्चा स देशः श्रेयसां पदम् ।
यत्र गङ्गादयो नद्यः पुराणेषु च विश्रुताः ॥२९॥

यत्र यत्र हरेः अर्चा स देशः श्रेयसां पदं यत्र गङ्गा आदयः नद्यः पुराणेषु च विश्रुताः ॥२९॥

यत्र यत्र	जहां-जहां
हरेः अर्चा	श्रीहरिकी पूजा होती हो
च पुराणेषु	तथा पुराणोंमें
विश्रुताः	प्रसिद्ध
गङ्गा आदयः	गङ्गा आदि
नद्यः	नदियाँ हों
स देशः	वह स्थान
श्रेयसां पदं	कल्याण धाम है ॥२९॥

सरांसि पुष्करादीनि क्षेत्राण्यर्हाश्रितान्युत ।
कुरुक्षेत्रं गयशिरः प्रयागः पुलहाश्रमः ॥३०॥

सरांसि पुष्कर आदीनि क्षेत्राणि अर्ह आश्रितानि उत कुरुक्षेत्रं गयशिरः प्रयागः पुलह आश्रमः ॥३०॥

पुष्कर आदीनि पुष्कर आदि । **सरांसि** सरोवर,

अर्हं आश्रितानि	पूज्य (ऋषियोंके)	**गयशिरः**	गया,
क्षेत्राणि	सेवित क्षेत्र,	**प्रयागः**	प्रयाग,
कुरुक्षेत्रं	कुरुक्षेत्र,	**पुलह आश्रमः**	पुलह आश्रम ॥३०॥

नैमिषं फाल्गुनं सेतुः प्रभासोऽथ कुशस्थली ।
वाराणसी मधुपुरी पम्पा बिन्दुसरस्तथा ॥३१॥

नैमिषं फाल्गुनं सेतुः प्रभासः अथ कुशस्थली वाराणसी मधुपुरी पम्पा विन्दुसरः तथा ॥३१॥

नैमिषं	नैमिषारण्य	**मधुपुरी**	मथुरा
फाल्गुनं	फाल्गुन क्षेत्र	**पम्पा**	पम्पा (हम्पी)
सेतुः	सेतुबन्ध (रामेश्वर)	**तथा**	तथा
प्रभासः	प्रभास (पोरबन्दर)	**विन्दुसरः**	विन्दु सरोवर (सिद्धपुर) ॥३१॥
अथ कुशस्थली	और द्वारिका		
वाराणसी	वाराणसी		

नारायणाश्रमो नन्दा सीतारामाश्रमादयः ।
सर्वे कुलाचला राजन्महेन्द्रमलयादयः ॥३२॥

नारायण आश्रमः नन्दा सीताराम आश्रम आदयः सर्वे कुल अचला राजन् महेन्द्र मलय आदयः ॥३२॥

राजन्	राजन् !	**महेन्द्र**	महेन्द्र गिरि,
नारायण आश्रमः	बदरीनाथ,	**मलय आदयः**	मलय पर्वत आदि
नन्दा	नन्दा गिरि	**सर्वे कुल अचला**	सब कुल पर्वत ॥३२॥
सीताराम	सीतारामके		
आश्रम आदयः	आश्रम आदि (अयोध्या, चित्रकूट, पंचवटी)		

एते पुण्यतमा देशा हरेरर्चाश्रिताश्च ये ।
एतान्देशान् निषेवेत श्रेयस्कामो ह्यभीक्ष्णशः ।
धर्मो ह्यत्रेहितः पुंसां सहस्राधिफलोदयः ॥३३॥

एते पुण्यतमा देशा हरेः अर्चा आश्रिताः च ये एतान् देशान् निषेवेत श्रेयः कामः हि अभीक्ष्णशः धर्मः हि अत्र ईहितः पुंसां सहस्र अधि फल उदयः ॥३३॥

आश्रिताः ये	जहां हैं वे,	**निषेवेत**	सेवन करे
एते देशा	ये स्थान	**हि**	क्योंकि
पुण्यतमा	परम पवित्र हैं,	**पुंसां**	पुरुषों द्वारा
श्रेयः कामः	कल्याणेच्छु (पुरुष)	**अत्र धर्मः**	यहां धर्म
अभीक्ष्णशः	बार-बार	**ईहितः**	करनेपर
एतान् देशान्	इन स्थानोंका	**सहस्र अधि**	सहस्र गुना अधिक
हि	ही	**फल उदयः**	फल देता है ॥३३॥

पात्रं त्वत्र निरुक्तं वै कविभिः पात्रवित्तमैः ।
हरिरेवैक उर्वीश यन्मयं वै चराचरम् ॥३४॥

पात्रं तु अत्र निरुक्तं वै कविभिः पात्र वित्तमैः हरिः एव एक उर्वीश यत् मयं वै चर अचरम् ॥३४॥

उर्वीश	भूपते !	**वै**	निश्चय है
अत्र	इस विषयमें	**एक एव हरिः**	एक मात्र श्रीहरि ही को
पात्र वित्तमैः	पात्रको समझने-वालोंमें श्रेष्ठोंने	**पात्रं तु वै**	पात्रके रूपमें निश्चय पूर्वक
यत् मयं	जिनका स्वरूप	**निरुक्तं**	निरूपण किया है ॥३४॥
चर अचरं	जगम-स्थावर (पूरा जंगत)		

देवर्ष्यर्हत्सु वै सत्सु तत्र ब्रह्मात्मजादिषु ।
राजन्यदग्रपूजायां मतः पात्रतयाच्युतः ॥३५॥

देव ऋषि अर्हत्सु वै सत्सु तत्र ब्रह्म आत्मज आदिषु राजन् यत् अग्रपूजायां मतःपात्र तया अच्युतः ॥३५॥

राजन्	राजन् ! (अभी तुम्हारे इसी यज्ञमें)
वै अर्हत्सु	निश्चित रूपसे पूजनीय
देव ऋषि ब्रह्म आत्मज आदिषु	देवता, ऋषि, ब्रह्माके पुत्र (सनक) आदिके
तत्र सत्सु	वहां रहते हुए
यत्	क्योंकि
अग्रपूजायां पात्रतया	प्रथम पूजाके अधिकारीके रूपमें
अच्युतः मतः	अच्युत श्रीकृष्ण माने गये ॥३५॥

जीवराशिभिराकीर्ण आण्डकोशाङ्घ्रिपो महान् ।
तन्मूलत्वादच्युतेज्या सर्वजीवात्मतर्पणम् ॥३६॥

जीवराशिभिः आकीर्ण आण्डकोश अङ्घ्रिपः महान् तत् मूलत्वात् अच्युत ईज्या सर्वजीव आत्म तर्पणम् ॥३६॥

जीवराशिभिः	जीव-समूहोंसे
आकीर्णं	भरा हुआ
आण्डकोश	यह ब्रह्माण्ड
महान्	महा
अङ्घ्रियः	वृक्ष है
तत् मूलत्वात्	उसकी जड़ होनेसे
अच्युत ईज्या	भगवान् अच्युतकी पूजा
सर्वजीव	सब जीवोंको
आत्म	और अपनेको भी
तर्पणं	तृप्त करनेवाली है ॥३६॥

पुराण्यनेन सृष्टानि नृतिर्यगृषिदेवताः ।
शेते जीवेन रूपेण पुरेषु पुरुषो ह्यसौ ॥३७॥

पुराणि अनेन सृष्टानि नृ तिर्यक् ऋषि देवताः शेते जीवेनरूपेण पुरेषु पुरुषः हि असौ ॥३७॥

अनेन	इन भगवान्ने
नृ तिर्यक	मनुष्य, पशु-पक्षी,
ऋषि देवताः	ऋषि-देवतादि
पुराणि सृष्टानि	पुरोंकी रचना करके
हि असौ	क्योंकि यही
पुरेषु	उन पुरोंमें
जीवेनरूपेण	जीव रूपमें
शेते	सोते हैं
पुरुषः	(इसलिए इनका नाम) पुरुष है ॥३७॥

तेष्वेषु भगवान्राजंस्तारतम्येन वर्तते ।
तस्मात् पात्रं हि पुरुषो यावानात्मा यथेयते ॥३८॥

तेषु एषु भगवान् राजन् तारतम्येन वर्तते तस्मात् पात्रं हि पुरुषः यावान् आत्मा यथा ईयते ॥३८॥

हि राजन्	क्योंकि राजन् !	**पात्रं पुरुषः**	मनुष्य पात्र है,
तेषु एषु	उन इन (पुरों) में	**आत्मा यावान्**	(उसमें भी) आत्मा-
भगवान्	भगवान्		का जितना
तारतम्येन	न्यूनाधिक रूपमें	**यथा ईयते**	जैसा प्रकाश है (वह
वर्तते	प्रकाशित होते हैं,		वैसा श्रेष्ठ है)
तस्मात्	इसलिए		॥३८॥

दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणामवज्ञानात्मतां नृप ।
त्रेतादिषु हरेरर्चा क्रियायै कविभिः कृता ॥३९॥

दृष्ट्वा तेषां मिथः नृणां अवज्ञान् आत्मतां नृप त्रेता आदिषु हरेः अर्चा क्रियायै कविभिः कृता ॥३९॥

त्रेता आदिषु	त्रेता आदि युगोंमें	**कविभिः**	बुद्धिमानोंने
नृणां मिथः	मनुष्योंको परस्पर	**तेषां क्रियायै**	उनकी (उपासना)
आत्मतां	एक दूसरेका		क्रियाके लिए
अवज्ञान्	अपमान करते	**हरेः आर्चा कृता**	श्रीहरिकी मूर्ति
दृष्ट्वा	देखकर		प्रतिष्ठा की ॥३९॥

ततोऽर्चायां हरिं केचित् संश्रद्धाय सपर्यया ।
उपासत उपास्तापि नार्थदा पुरुषद्विषाम् ॥४०॥

ततः अर्चायां हरिं केचित् संश्रद्धाय सपर्यया उपासत उपास्ता अपि न अर्थदा पुरुष द्विषाम् ॥४०॥

ततः केचित्	तबसे कुछ लोग	**संश्रद्धाय**	श्रद्धा करके
अर्चायां	मूर्तिमें	**सपर्यया**	पूजा-सामग्रीसे

उपासत	पूजा करते हैं	**अर्थदा न**	प्रयोजन पूरा करने-
पुरुष द्विषां	(किन्तु) लोगोंसे द्वेष करनेवालोंको		वाली नहीं होता ॥४०॥
उपास्ता अपि	उपासना करनेपर भी (मूर्ति)		

पुरुषेष्वपि राजेन्द्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः ।
तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुम् ॥४१॥

पुरुषेषु अपि राजेन्द्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेः तनुम् ॥४१॥

राजेन्द्र	महाराज !	**तुष्ट्या**	संतोषसे
पुरुषेषु अपि	मनुष्योंमें भी	**हरेः वेदं तनुम्**	श्रीहरिके वेदमय शरीरको
सुपात्रं ब्राह्मणं	उत्तम पात्र ब्राह्मण	**धत्ते**	धारण करता है ॥४१॥
विदुः	जाना गया है (क्योंकि वह)		
तपसा विद्यया	तपस्या, विद्या,		

नन्वस्य ब्राह्मणा राजन्कृष्णस्य जगदात्मनः ।
पुनन्तः पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत् ॥४२॥

ननु अस्य ब्राह्मणा राजन् कृष्णस्य जगत् आत्मनः पुनन्तः पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत् ॥४२॥

राजन्	राजन् !	**पादरजसा**	(वे) अपनी चरण-रजसे
ननु अस्य	निश्चय इन	**त्रिलोकीं पुनन्तः**	तीनों लोकोंको पवित्र करते हैं ॥४२॥
जगत् आत्मनः	विश्वात्मा		
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके		
ब्राह्मणा	ब्राह्मण		
महत् दैवतं	परमाराध्य हैं		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे सदाचारनिर्णयो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

नारद उवाच–

कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित् तपोनिष्ठा नृपापरे ।
स्वाध्यायेऽन्ये प्रवचने ये केचिज्ज्ञानयोगयोः ॥१॥

कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित् तपः निष्ठा नृप अपरे स्वाध्याये अन्ये प्रवचने ये केचित् ज्ञान योगयोः ॥१॥

नृप	राजन्
केचित् द्विजाः	कोई ब्राह्मण
कर्मनिष्ठा	कर्ममें निष्ठा रखते हैं,
अपरे तपः	दूसरे तपस्यामें,
अन्ये स्वाध्याये	अन्य स्वाध्यायमें या
प्रवचने	प्रवचन करनेमें,
ये केचित्	कुछ थोड़े
ज्ञान योगयोः	ज्ञान या योगमें
निष्ठा	निष्ठा वाले होते हैं ॥१॥

ज्ञाननिष्ठाय देयानि कव्यान्यानन्त्यमिच्छता ।
दैवे च तदभावे स्यादितरेभ्यो यथार्हतः ॥२॥

ज्ञाननिष्ठाय देयानि कव्यानि आनन्त्यं इच्छता दैवे च तत् अभावे स्यात् इतरेभ्यः यथा अर्हतः ॥२॥

आनन्त्यं	अनन्त
इच्छता	फल चाहनेवालेको
कव्यानि	श्राद्धका भाग
दैवे च	देव-पूजनका भी (भाग)
ज्ञाननिष्ठाय	ज्ञाननिष्ठको
देयानि	देना चाहिए
स्यात् तत्	यदि वह न
अभावे	मिलता हो तो
यथा अर्हतः	पूज्योंके तारतम्यके अनुसार
इतरेभ्यः	दूसरोंको (देना चाहिए) ॥२॥

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ।
भोजयेत् सुसमृद्धोऽपि श्राद्धे कुर्यान्न विस्तरम् ॥३॥

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीन् एक एक उभयत्र वा भोजयेत् सुसमृद्धः अपि श्राद्धे कुर्यात् न विस्तरम् ॥३॥

दैवे द्वौ	देव (कार्य) में दो तथा	**भोजयेत्**	भोजन करावे
पितृकार्ये त्रीन्	पितर-कार्यमें तीन	**सुसमृद्धः अपि**	बहुत सम्पन्न होने-पर भी
वा उभयत्र	अथवा दोनोंमें	**श्राद्धे विस्तरं**	श्राद्धमें विस्तार
एक एक	एक-एक (ब्राह्मणों-को)	**न कुर्यात्**	नहीं करे ॥३॥

देशकालोचितश्रद्धाद्रव्यपात्रार्हणानि च ।
सम्यग् भवन्ति नैतानि विस्तरात् स्वजनार्पणात् ॥४॥

देशकाल उचित श्रद्धा द्रव्य पात्र अर्हणानि च सम्यक् भवन्ति न एतानि विस्तरात् स्वजन अर्पणात् ॥४॥

विस्तरात्	विस्तार करनेसे तथा	**पात्र च**	पात्र तथा
स्वजन अर्पणात्	सगे-सम्बन्धियोंको देनेसे	**अर्हणानि**	पूजन आदि
देशकाल उचित	देशकालोचित	**एतानि**	ये सब
श्रद्धा द्रव्य	श्रद्धा, पदार्थ,	**सम्यक् न**	ठीक-ठीक नहीं
		भवन्ति	होते ॥४॥

देशे काले च सम्प्राप्ते मुन्यन्नं हरिदैवतम् ।
श्रद्धया विधिवत् पात्रे न्यस्तं कामधुगक्षयम् ॥५॥

देशे काले च सम्प्राप्ते मुनि अन्नं हरि दैवतं श्रद्धया विधिवत् पात्रे न्यस्तं कामधुक् अक्षयम् ॥५॥

देशे च काले	देश और कालके	**पात्रे**	पात्रको
सम्प्राप्ते	प्राप्त होनेपर	**श्रद्धया**	श्रद्धा सहित
मुनि अन्नं	मुनियोंके भोजन योग्य आहार	**विधिवत् न्यस्तं**	विधिपूर्वक दिया हुआ
हरि दैवतं	श्रीहरिको इष्टदेव माननेवाले (वैष्णव)	**अक्षयं कामधुक्**	अक्षय अभीष्ट देने-वाला होता है ॥५॥

देवर्षिपितृभूतेभ्य आत्मने स्वजनाय च ।
अन्नं संविभजन्पश्येत् सर्वं तत् पुरुषात्मकम् ॥६॥

देव ऋषि पितृ भूतेभ्यः आत्मने स्वजनाय च अन्नं संविभजन् पश्येत् सर्वं तत् पुरुष आत्मकम् ॥६॥

देव ऋषि	देवता, ऋषि,	**अन्नं संविभजन्**	आहार बांटते समय
पितृ भूतेभ्यः	पितर तथा प्राणियों-को	**तत् सर्वं**	उन सबको
		पुरुष आत्मकं	भगवत्स्वरूप
आत्मने	अपने आपको,	**पश्येत्**	देखे ॥६॥
च स्वजनाय	तथा सम्बन्धियोंको		

न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद् धर्मतत्त्ववित् ।
मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया ॥७॥

न दद्यात् आमिषं श्राद्धे न च अद्यात् धर्मतत्त्ववित् मुनि अन्नैः स्यात् परा प्रीतिः यथा न पशु हिंसया ॥७॥

धर्मतत्त्ववित्	धर्मके तत्त्वको जाननेवाला	**यथा परा**	जैसी परम
		प्रीतिः	प्रसन्नता
श्राद्धे आमिषं	श्राद्धमें मांस	**स्यात्**	होती है,
न दद्यात्	न देवे	**पशु हिंसया**	पशु-बधसे
च न अद्यात्	और न खावे,	**न**	नहीं होती ॥७॥
मुनि अन्नैः	हविष्यान्नसे		

नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम् ।
न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः ॥८॥

न एतादृशः परः धर्मः नृणां सत् धर्मं इच्छतां न्यासः दण्डस्य भूतेषु मनः वाक कायजस्य यः ॥८॥

भूतेषु	प्राणियोंको	**सत् धर्मं**	उत्तम धर्म
मनः वाक्	मन, वाणी,	**इच्छतां**	चाहनेवाले
कायजस्य	शरीर द्वारा दिये जानेवाले	**नृणां**	मनुष्योंके लिए
		एतादृशः परः	इसके समान परम
यः दण्डस्य	जो दण्डको	**धर्मः**	धर्म
न्यासः	छोड़ देता है	**न**	नहीं है ॥८॥

एके कर्ममयान् यज्ञान् ज्ञानिनो यज्ञवित्तमाः ।
आत्मसंयमनेऽनीहा जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥९॥

एके कर्ममयान् यज्ञान् ज्ञानिनः यज्ञवित्तमाः आत्मसंयमने अनीहा जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥९॥

एके	कोई	**अनीहा**	निश्चेष्टता (रूप अग्निमें)
यज्ञवित्तमाः	यज्ञ-तत्त्वके श्रेष्ठ ज्ञाता	**कर्ममयान्**	कर्मात्मक
		यज्ञान जुह्वति	यज्ञोंका हवन कर देते हैं ॥९॥
ज्ञानिनः	तत्त्व-ज्ञानी लोग		
आत्मसंयमने	चित्त-संयमरूप		
ज्ञानदीपिते	ज्ञानसे प्रज्वलित		

द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति ।
एष मा करुणो हन्यादतज्ज्ञो ह्यसुतृब् ध्रुवम् ॥१०॥

द्रव्य यज्ञैः यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति एष मा करुणः हन्यात् अतज्ज्ञः हि असुतृब् ध्रुवं ॥१०॥

द्रव्ययज्ञै:	द्रव्यमय यज्ञोंसे	अतज्ज्ञ:	तत्त्व न जाननेवाला
यक्ष्यमाणं	यज्ञ करते हुएको	हि असुतृप्	क्योंकि (अपने)
दृष्ट्वा	देखकर		प्राणोंको ही तृप्त
भूतानि	प्राणी		करनेवाला है,
बिभ्यति	डर जाते हैं कि	ध्रुवं मा	निश्चय हमें
एष अकरुण:	यह निर्दय	हन्यात्	मार देगा ॥१०॥

तस्माद् दैवोपपन्नेन मुन्यन्नेनापि धर्मवित् ।
सन्तुष्टोऽहरह: कुर्यान्नित्यनैमित्तिकी: क्रिया: ॥११॥

तस्मात् दैव उपपन्नेन मुनि अन्नेन अपि धर्मवित् सन्तुष्ट: अहर अह: कुर्यात् नित्य नैमित्तिकी: क्रिया: ॥११॥

तस्मात्	इसलिए	अहर अह:	प्रतिदिन
धर्मवित्	धर्मज्ञ-पुरुष	नित्य	नित्य और
दैव उपपन्नेन	प्रारब्ध प्राप्त	नैमित्तिकी:	नैमित्तिकी
मुनि अन्नेन	हविष्यान्नसे	क्रिया: कुर्यात्	क्रिया (सम्पन्न) करे
अपि	ही		॥११॥
सन्तुष्ट:	सन्तुष्ट होकर		

विधर्म: परधर्मश्च आभास उपमा छल: ।
अधर्मशाखा: पञ्चेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत् त्यजेत् ॥१२॥

विधर्म: परधर्म: च आभास उपमा छल: अधर्मशाखा: पञ्च इमा धर्मज्ञ: अधर्मवत् त्यजेत् ॥१२॥

विधर्म:	विधर्म,	अधर्मशाखा:	अधर्मकी शाखाएँ हैं
परधर्म:	परधर्म,	धर्मज्ञ:	धर्मको जाननेवाला
आभास उपमा	आभास, उपमा,		(इन्हें)
च छल:	तथा छल	अधर्मवत्	अधर्मके समान
इमा पञ्च	ये पांच	त्यजेत्	त्याग दे ॥१२॥

धर्मबाधो विधर्मः स्यात् परधर्मोऽन्यचोदितः ।
उपधर्मस्तु पाखण्डो दम्भो वा शब्दभिच्छलः ॥१३॥

धर्मबाधः विधर्मः स्यात् परधर्मः अन्य चोदितः उपधर्मः तु पाखण्डः दम्भः वा शब्दभिः छलः ॥१३॥

धर्मबाधः	(जो अपने) धर्ममें बाधा डाले	**पाखण्डः**	पाखण्ड (या उपमा)
विधर्मः स्यात्	(वह) विधर्म है,	**वा दम्भः**	अथवा दम्भ है,
अन्य चोदितः	(अपने धर्मसे भिन्न) दूसरेके द्वारा प्रेरित	**शब्दभिः**	शब्दों द्वारा (शास्त्र वचनका दूसरे प्रकारका अर्थकर देना)
परधर्मः	परधर्म है,		
उपधर्मः तु	उपधर्म तो	**छलः**	छल है ॥१३॥

यस्त्विच्छया कृतःपुम्भिराभासो ह्याश्रमात् पृथक् ।
स्वभावविहितो धर्मः कस्य नेष्टः प्रशान्तये ॥१४॥

यः तु इच्छया कृतः पुम्भिः आभासः हि आश्रमात् पृथक् स्वभाव-विहितः धर्मः कस्य न इष्टः प्रशान्तये ॥१४॥

पुम्भिः यः तु	मनुष्य द्वारा जो भी	**स्वभावविहितः**	अपने स्वभावके अनुकूल
आश्रमात् पृथक्	अपने आश्रम-धर्मसे भिन्न	**धर्मः कस्य**	धर्म किसको
इच्छया कृतः	स्वेच्छा पूर्वक किया जाता है	**प्रशान्तये**	शान्ति पानेके लिए
आभासः	वह धर्माभास है ।	**इष्टः न**	अभीष्ट नहीं होगा ॥१४॥
हि	क्योंकि		

धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाधनो धनम् ।
अनीहानीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा ॥१५॥

धर्म अर्थं अपि न ईहेत यात्रा अर्थं वा अधनः धनं अनीहा अनीह-मानस्य महा अहेः इव वृत्तिदा ॥१५॥

अधनः	निर्धन (पुरुष)
धर्म अर्थं अपि	धर्मके लिए भी
वा यात्रा अर्थं	अथवा जीविकाके लिए
धनं न ईहेत	धन पानेकी चेष्टा न करे,
महा अहेः इव	अजगरके समान
अनीहमानस्य	चेष्टा न करनेवाले-की
अनीहा वृत्तिदा	निश्चेष्टता ही जीविका देती है ॥१५॥

सन्तुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत् सुखम् ।
कुतस्तत् कामलोभेन धावतोऽर्थेहया दिशः ॥१६॥

सन्तुष्टस्य निरीहस्य स्व आत्मारामस्य यत् सुखं कुतः तत् कामलोभेन धावता अर्थ ईहया दिशः ॥१६॥

सन्तुष्टस्य	सन्तुष्ट,
निरीहस्य	निश्चेष्ट,
स्व	अपने
आत्मारामस्य	आत्मारामको
यत् सुखं	जो सुख (प्राप्त) है,
कामलोभेन	भोगोंके लोभसे
अर्थ ईहया	धन पानेके प्रयत्नमें
दिशः धावता	दिशाओंमें दौड़ने-वालेको
तत् कुतः	वह (सुख) कहां ॥१६॥

सदा सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ।
शर्कराकण्टकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम् ॥१७॥

सदा सन्तुष्ट मनसः सर्वाः सुखमया दिशः शर्करा कण्टक आदिभ्यः यथा उपानत् पदः शिवम् ॥१७॥

सदा सन्तुष्ट	सदा सन्तुष्ट
मनसः	चित्तवालेके लिए
सर्वाः दिशः	सब दिशाएँ
सुखमया	सुखपूर्ण ही हैं ।
यथा पदः	जैसे जिसके पैरमें
उपानत्	जूता है,
शकर्रा कण्टक	कंकड़ी-काटों
आदिभ्यः	आदिसे (उसकी)
शिवं	सुरक्षा है ॥१७॥

सन्तुष्टः केन वा राजन्न वर्तेतापि वारिणा ।
औपस्थ्यजैह्वचकार्पण्याद् गृहपालायते जनः ॥१८॥

सन्तुष्टः केन वा राजन् न वर्तेत अपि वारिणा औपस्थ्य जैह्वच्य कार्पण्यात् गृहपालायते जनः ॥१८॥

राजन्	राजन् !
केन वा	न जानें क्यों
जनः वारिणा	मनुष्य केवल जलसे
अपि	भी
सन्तुष्टः	सन्तोष करके
वर्तेत न	अपना निर्वाह नहीं कर पाता
औपस्थ्य	जननेन्द्रियके और
जैह्वच्य	जिह्वाके (फेरमें पड़ कर) इनके द्वारा
कार्पण्यात्	विचारा (वेवश) बनकर
गृहपालायते	कुत्तेके समान बन जाता है ॥१८॥

असन्तुष्टस्य विप्रस्य तेजो विद्या तपो यशः ।
स्रवन्तीन्द्रियलौल्येन ज्ञानं चैवावकीर्यते ॥१९॥

असन्तुष्टस्य विप्रस्य तेजः विद्या तपः यशः स्रवति इन्द्रिय लौल्येन ज्ञानं च एव अवकीर्यते ॥१९॥

असुन्तुष्टस्य	असन्तोषी
विप्रस्य	ब्राह्मणका
तेजः विद्या	तेज, विद्या,
तपः यशः	तप, यश
इन्द्रिय लौल्येन	इन्द्रियोंकी लोलुपतासे
स्रवति	चू जाता (नष्ट हो जाता) है ।
ज्ञानं च	विवेक भी
अवकीर्यते	बिखर जाता है ॥१९॥

कामस्यान्तं च क्षुत्तृड्भ्यां क्रोधस्यैतत्फलोदयात् ।
जनो याति न लोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशो भुवः ॥२०॥

कामस्य अन्तं च क्षुत् तृट्भ्यां क्रोधस्य एतत् फल उदयात् जनः याति न लोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशः भुवः ॥२०॥

क्षुत् तृट्भ्यां	भूख-प्याससे
कामस्य अन्तं	भोग-वासनाका अन्त हो जाता है
च	और
क्रोधस्य	क्रोधका (अन्त)
एतत् फल	उसका फल

उदयात्	प्रकट होनेपर (हो जाता है, किन्तु)
भुवः दिशः	पृथ्वीकी सब दिशाएँ
जित्वा भुक्त्वा	जीतकर और भोग-कर भी
जनः लोभस्य न याति	मनुष्य लोभका पार नहीं पाता ॥२०॥

पण्डिता बहवो राजन्बहुज्ञाः संशयच्छिदः ।
सदस्पतयोऽप्येके असन्तोषात् पतन्त्यधः ॥२१॥

पण्डिता बहवः राजन् बहुज्ञाः संशयच्छिदः सदसः पतयः अपि एके असन्तोषात् पतन्ति अधः ॥२१॥

राजन्	राजन् !
बहवः पण्डिता	बहुतसे शास्त्रोंके विद्वान हैं
बहुज्ञाः	अनेक विषयोंके ज्ञाता हैं,
संशयच्छिदः	शंकाओंका समाधान करनेवाले हैं
एके सदसः	कोई उनमें विद्वानों-की सभाके
पतयः अपि	सभापति भी हैं, किन्तु
असन्तोषात्	असन्तोषके कारण
पतन्ति अधः	उनका अधःपतन होता है ॥२१॥

असङ्कल्पाज्जयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात् ।
अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात् ॥२२॥

असङ्कल्पात् जयेत् कामं क्रोधं काम विवर्जनात् अर्थात् अनर्थ ईक्षया लोभं भयं तत्त्व अवमर्शनात् ॥२२॥

असङ्कल्पात्	संकल्पका त्याग करके
कामं क्रोधं	कामको और क्रोध-को
काम विवर्जनात्	काम त्यागके द्वारा,
अर्थान् अनर्थ	सम्पत्तियोंमें अनर्थ
ईक्षया	देखकर
लोभं	लोभको तथा
तत्त्व	आत्मतत्त्वका
अवमर्शनात्	विचार करके
भयं जयेत्	भयको जीत ले ॥२२॥

आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महदुपासया ।
योगान्तरायान् मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया ॥२३॥

आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महत् उपासया योग अन्तरायान् मौनेन हिंसां कायात् अनीहया ॥२३।

आन्वीक्षिक्या	अध्यात्म-विद्यासे	**अन्तरायान्**	विघ्नोपर
शोकमोहौ	शोक और मोहपर	**मौनेन**	मौनके द्वारा
महत् उपासया	महापुरुषोंकी उपासनासे	**कायात्**	शरीरसे
		अनीहया	निःचेष्ट होकर
दम्भं	दम्भपर	**हिंसां**	हिंसाको (जीत ले) ॥२३॥
योग	योगके		

कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात् समाधिना ।
आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया ॥२४॥

कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात् समाधिना आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया ॥२४॥

भूतजं दुःखं	आधिभौतिक दुःख	**योगवीर्येण**	योग बलसे और
कृपया	(प्राणियोंपर) कृपा- के द्वारा,	**निद्रां**	निद्राको
		सत्त्वनिषेवया	सात्विक (आहा- रादि) के सेवनसे
दैवं	आधिदैविक (दुःख)		
समाधिना	समाधिके द्वारा,	**जह्यात्**	त्याग देना चाहिए ॥२४॥
आत्मजं	आध्यात्मिक (दुःख)		

रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च ।
एतत् सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत् ॥२५॥

रजः तमः च सत्त्वेन सत्त्वं च उपशमेन च एतत् सर्वं गुरौः भक्त्या पुरुषः हि अञ्जसा जयेत् ॥२५॥

रजः च तमः	रजोगुण और तमोगुणको
सत्त्वेन	सत्त्व गुणसे,
च सत्त्वं	और सत्त्वगुणको
उपशमेन	उपरतिके द्वारा
च एतत् सर्वं	तथा इन सबको
हि	क्योंकि
पुरुषः अञ्जसा	पुरुष सरलतासे
गुरौः भक्त्या	गुरुमें भक्ति होनेसे
जयेत्	जीत लेता है ॥२५॥

यस्य साक्षाद् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ ।
मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत् ॥२६॥

यस्य साक्षात् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ मर्त्य असत् धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत् ॥२६॥

ज्ञानदीपप्रदे	ज्ञानका प्रदीप देने-वाले
साक्षात्	साक्षात
भगवति	भगवान्
गुरौ यस्य	गुरुदेवमें जिसकी
मर्त्य असत् धीः	मनुष्य माननेकी दुर्बुद्धि
तस्य सर्वं श्रुतं	उसका सब शास्त्र श्रवण
कुञ्जरशौचवत्	हाथीके स्नानके समान (व्यर्थ) है ॥२६॥

एष वै भगवान्साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ।
योगेश्वरैर्विमृग्याङ्घ्रिर्लोको यं मन्यते नरम् ॥२७॥

एष वै भगवान् साक्षात् प्रधान पुरुष ईश्वरः योगेश्वरैः विमृग्य अङ्घ्रिः लोकः यं मन्यते नरम् ॥२७॥

योगेश्वरैः	योगेश्वरों द्वारा
विमृग्य अङ्घ्रिः	जिनके चरण ढूंढ़े जाते हैं
प्रधान पुरुष ईश्वरः	प्रकृति और जीवके स्वामी
वै एष	निश्चय ये (श्रीकृष्ण)
साक्षात्	साक्षात्
भगवान्	भगवान् हैं
यं लोकः	जिनको लोग
नरं मन्यते	मनुष्य मानते हैं ॥२७॥

षड्वर्गसंयमैकान्ताः सर्वा नियमचोदनाः ।
तदन्ता यदि नो योगानावहेयुः श्रमावहाः ॥२८॥

षड्वर्ग संयम ऐकान्ताः सर्वाः नियम चोदनाः तत् अन्ता यदि नः योगा न आवहेयुः श्रमावहाः ॥२८॥

नियम सर्वाः	(शास्त्रोंकी) नियम सम्बन्धी सब	**संयम**	नियन्त्रित करनेके लिए है,
चोदनाः	प्रेरणा	**यदि नः योगा**	यदि हमारे साधन
ऐकान्ताः	एकमात्र	**तत् अन्ता**	उनका अन्त
षड्वर्ग	छः वर्ग (काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर) को	**यदि न आवहेयुः**	यदि न ला सकें तो
		श्रमावहाः	(तब तो वे) केवल परिश्रम करानेवाले हैं ॥२८॥

यथा वार्तादयो ह्यर्था योगस्यार्थं न बिभ्रति ।
अनर्थाय भवेयुस्ते पूर्तमिष्टं तथासतः ॥२९॥

यथा वार्ता आदयः हि अर्था योगस्य अर्थं न बिभ्रति अनर्थाय भवेयुः ते पूर्तं इष्टं तथा असतः ॥२९॥

यथा वार्ता आदयः	जैसे व्यापार (खेती) आदि	**पूर्वं**	(कुआं आदि बनवाना) परोपकारके कर्म
अर्था हि योगस्य अर्थं	प्रयोजन तो योगका प्रयोजन (भगवत् प्राप्ति)	**इष्टं**	और देवाराधन, यज्ञादि
न बिभ्रति	नहीं धारण करते,	**ते अनर्थाय**	वे भी अनर्थके कारण
तथा असतः	वैसे ही दुष्ट पुरुष द्वारा किये	**भवेयुः**	होते हैं ॥२९॥

यश्चित्तविजये यत्तः स्यान्निःसङ्गोऽपरिग्रहः ।
एको विविक्तशरणो भिक्षुर्भिक्षामिताशनः ॥३०॥

यः चित्त विजये यत्तः स्यात् निः सङ्गः अपरिग्रहः एकः विविक्तः शरणः भिक्षुः भिक्षा मित अशनः ॥३०॥

यः चित्त विजये	जो चित्तको जीतने-के लिए
यत्तः स्यात्	प्रयत्न करता हो (उसे)
निः सङ्गः	आसक्तिहीन,
अपरिग्रहः	संग्रह रहित
एकः	अकेले
विविक्तः शरणः	एकान्तमें रहना चाहिए,
भिक्षुः	संन्यास लेकर
भिक्षा	भिक्षा मांगकर
मित अशनः	थोड़ा खाना चाहिए ॥३०॥

देशे शुचौ समे राजन्संस्थाप्यासनमात्मनः ।
स्थिरं समं सुखं तस्मिन्नासीतर्ज्वङ्ग ओमिति ॥३१॥

देशे शुचौ समे राजन् संस्थाप्य आसनं आत्मनः स्थिरं समं सुखं तस्मिन् आसीत् ऋजु अङ्ग ओम् इति ॥३१॥

राजन्	राजन् !
शुचौ समे देशे	पवित्र और समतल स्थानमें
आत्मनः आसनं	अपना आसन
संस्थाप्य	स्थापित करके
तस्मिन् सुखं	उसपर सुखपूर्वक
स्थिरं समं	स्थिर, समान,
ऋजु अंग	शरीरको सीधा करके
ओम इति	ओंकारका जप करते हुए
आसीत्	बैठे ॥३१॥

प्राणापानौ सन्निरुन्ध्यात् पूरकुम्भकरेचकैः ।
यावन्मनस्त्यजेत् कामान् स्वनासाग्रनिरीक्षणः ॥३२॥

प्राण अपानौ सन्निरुन्ध्यात् पूर कुम्भक रेचकैः यावत् मनः त्यजेत् कामान् स्वनासाग्र निरीक्षणः ॥३२॥

यावत् मनः	जब तक मन
कामान् त्यजेत्	कामना (संकल्प-विकल्प) न छोड़ दे,
स्वनासाग्र	अपनी नाकके अग्र-भागको (भ्रूमध्य)
निरीक्षणः	देखता हुआ

पूर कुम्भक	पूरक, कुम्भक,	**प्राण अपानौ**	प्राण अपानको
रेचकैः	रेचक द्वारा	**सन्निरुन्ध्यात्**	रोक दे ॥३२॥

यतो यतो निःसरति मनः कामहतं भ्रमत् ।
ततस्तत उपाहृत्य हृदि रुन्ध्याच्छनैर्बुधः ॥३३॥

यतः यतः निःसरति मनः कामहतं भ्रमत् ततः तत उप आहृत्य हृदि रुन्ध्यात् शनैः बुधः ॥३३॥

कामहतं भ्रमत्	कामनाओंसे मारा घूमता	**उप आहृत्य**	पास खींचकर
मनः यतः यतः	मन जहां-जहां	**बुधः शनैः**	बुद्धिमान पुरुष धीरे-धीरे
निःसरति	निकल कर जाता है	**रुन्ध्यात्**	उसका निरोध करे ॥३३॥
ततः तत	वहां-वहांसे		

एवमभ्यसतश्चित्तं कालेनाल्पीयसा यतेः ।
अनिशं तस्य निर्वाणं यात्यनिन्धनवह्निवत् ॥३४॥

एवं अभ्यसतः चित्तं कालेन अल्पीयसा यतेः अनिशं तस्य निर्वाणं याति अनिन्धन वह्निवत् ॥३४॥

एवं यतेः	इस प्रकार प्रयत्न-शील (साधक) के	**अनिन्धन**	बिना ईंधनके
अनिशं	निरन्तर	**वह्निवत्**	आगके समान
अभ्यसतः	अभ्यास करनेपर	**तस्य निर्वाणं**	उस (चित्त) का निर्वाण (निरोध)
अल्पीयसा	थोड़े ही	**याति**	हो जाता है ॥३४॥
कालेन	समयमें		

कामादिभिरनाविद्धं प्रशान्ताखिलवृत्ति यत् ।
चित्तं ब्रह्मसुखस्पृष्टं नैवोत्तिष्ठेत कर्हिचित् ॥३५॥

काम आदिभिः अनाविद्धं प्रशान्त अखिल वृत्ति यत् चित्तं ब्रह्मसुख-स्पृष्टं न एव उत्तिष्ठेत कर्हिचित् ॥३५॥

काम आदिभिः काम आदि (वासनाओं) द्वारा
अनाविद्धं जब बींधा नहीं जाता और
यत् अखिल क्योंकि समस्त
वृत्ति प्रशान्त वृत्तियां शान्त हो गयी हैं
ब्रह्मसुखंस्पृष्टं ब्रह्मसुखमें निमग्न
चित्तं कर्हिचित् चित्तका कभी भी
न एव नहीं ही
उत्तिष्ठेत उत्थान होता ॥३५॥

यः प्रव्रज्य गृहात् पूर्वं त्रिवर्गावपनात् पुनः ।
यदि सेवेत तान्भिक्षुः स वै वान्ताश्यपत्रपः ॥३६॥

यः प्रव्रज्य गृहात् पूर्वं त्रिवर्ग अवपनात् पुनः यदि सेवेत तान् भिक्षुः स वै वान्ताशि अपत्रपः ॥३६॥

यः त्रिवर्ग जो त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम) के
अवपनात् गृहात् बोनेके स्थान गृहस्थाश्रमसे
पूर्वं प्रव्रज्य पहिले संन्यास लेकर
भिक्षुः यदि संन्यासी यदि
पुनः तान् सेवेत फिर उनका सेवन करे तो
वै स निश्चय वह
अपत्रपः निर्लज्ज
वान्ताशि वमन करके खानेवाला (कुत्ता) है ॥३६॥

यैः स्वदेहः स्मृतो नात्मा मर्त्यो विट्कृमिभस्मसात् ।
त एनमात्मसात्कृत्वा श्लाघयन्ति ह्यसत्तमाः ॥३७॥

यैः स्वदेहः स्मृतः न आत्मा मर्त्यः विट् कृमि भस्मसात् त एनं आत्मसात् कृत्वा श्लाघयन्ति हि असत्तमाः ॥३७॥

यैः स्वदेहः जिस अपने देहको
आत्मा न स्मृतः आत्मा नहीं है यह समझ लिया,
मर्त्यः मरणधर्मा है,
विट् कृमि विष्ठा, कीड़ा या
भस्मसात् भस्म होनेवाला है,
हि असत्तमाः क्योंकि बहुत दुर्जन हैं, इससे
त एनं वे इस (देह) को
आत्मसात् अपना स्वरूप
कृत्वा मानकर
श्लाघयन्ति (इसकी) प्रशंसा करते हैं ॥३६॥

गृहस्थस्य क्रियात्यागो व्रतत्यागो वटोरपि ।
तपस्विनो ग्रामसेवा भिक्षोरिन्द्रियलोलता ॥३८॥

गृहस्थस्य क्रियात्यागः व्रतत्यागः वटोः अपि तपस्विनः ग्रामसेवा भिक्षोः इन्द्रिय लोलता ॥३८॥

गृहस्थस्य	गृहस्थका	**तपस्विनः**	तपस्वी (वानप्रस्थ) का
क्रियात्यागः	(नित्य नैमित्तिक) कर्म त्याग देना	**ग्रामसेवा**	ग्राम (बस्ती) में रहना तथा
वटोः अपि	ब्रह्मचारीका भी	**भिक्षोः**	संन्यासीकी
व्रतत्यागः	ब्रह्मचर्य-व्रत छोड़ देना,	**इन्द्रिय लोलता**	इन्द्रिय-लोलुपता ॥३८॥

आश्रमापसदा ह्येते खल्वाश्रमविडम्बकाः ।
देवमायाविमूढांस्तानुपेक्षेतानुकम्पया ॥३९॥

आश्रमा अपसदा हि एते खलु आश्रम विडम्बकाः देवमाया विमूढान् तान् उपेक्षेत् अनुकम्पया ॥३९॥

हि एते	क्योंकि ये	**देवमाया**	भगवान्‌की मायासे
आश्रमा	आश्रमोंके	**विमूढान् तान्**	मोहग्रस्त उनपर
अपसदा	कलंक हैं	**अनुकम्पया**	तरस खाकर
खलु आश्रम	व्यर्थ आश्रमकी	**उपेक्षेत्**	(उनकी) उपेक्षा कर दे ॥३९॥
विडम्बकाः	बिडाम्बना करने-वाले हैं		

आत्मानं चेद् विजानीयात् परं ज्ञानधुताशयः ।
किमिच्छन्कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति लम्पटः ॥४०॥

आत्मानं चेत् विजानीयात् परं ज्ञानधुत आशयः किं इच्छन् कस्य वा हेतोः देहं पुष्णाति लम्पटः ॥४०॥

ज्ञानधुत	तत्त्व-ज्ञानसे स्वच्छ
आशयः	अन्तःकरण होकर
चेत् आत्मानं	यदि अपनेको
परं	(देहादिसे) परे
विजानीयात्	जान लिया है तो
किं इच्छन्	किस (विषय) की इच्छासे
वा कस्य हेतोः	अथवा किस कारणसे
लम्पटः	इन्द्रिय लोलुप होकर
देहं पुष्णाति	शरीरका पोषण करता है ॥४०॥

आहुः शरीरं रथमिन्द्रियाणि
हयानभीषून् मन इन्द्रियेशम् ।
वर्त्मानि मात्रा धिषणां च सूतं
सत्त्वं बृहद् बन्धुरमीशसृष्टम् ॥४१॥

आहुः शरीरं रथं इन्द्रियाणि हयान् अभीषून मन इन्द्रिय ईशं वर्त्मानि मात्रा धिषणां च सूतं सत्त्वं बृहत् बन्धुरं अमी ईश सृष्टम् ॥४१॥

आहुः	(उपनिषदोंमें) कहा गया है कि
शरीरं रथं	शरीर रथ है,
इन्द्रियाणि	इन्द्रियां
हयान्	घोड़े हैं,
इन्द्रिय ईशं	इन्द्रियोंका स्वामी
मन अभीषून	मन लगाम है
मात्रा वर्त्मानि	(रूप-रसादि) तन्मात्राएँ मार्ग हैं
च धिषणां सूतं	और बुद्धि सारथी है,
ईश सृष्टं	ईश्वर द्वारा निर्मित
अमी सत्त्वं	ये चित्त आदि
बृहत् बन्धुरं	(बाँधनेवाली) विशाल रस्सी है ॥४१॥

अक्षं दशप्राणमधर्मधर्मौ
चक्रेऽभिमानं रथिनं च जीवम् ।
धनुर्हि तस्य प्रणवं पठन्ति
शरं तु जीवं परमेव लक्ष्यम् ॥४२॥

अक्षं दश प्राणं अधर्म धर्मौ चक्रे अभिमानं रथिनं च जीवं धनुः हि तस्य प्रणवं पठन्ति शरं तु जीवं परं एव लक्ष्यम् ॥४२॥

दश प्राणं अक्षं	दस प्राण धुरी हैं•	**हि तस्य धनुः**	क्योंकि उसका धनुष
अधर्म धर्मौ	अधर्म और धर्म	**प्रणवं पठन्ति**	प्रणव कहा गया है
चक्रे च	पहिए हैं तथा	**जीवः तु शरं**	जीव ही वाण है,
अभिमानं जीवं	अभिमानी जीव	**परं एव लक्ष्यं**	परमात्मा ही लक्ष्य
रथिनं	रथी है		है ॥४२॥

रागो द्वेषश्च लोभश्च शोकमोहौ भयं मदः ।
मानोऽवमानोऽसूया च माया हिंसा च मत्सरः ॥४३॥

रागः, द्वेषः च, लोभः च, शोकः, मोहः भयं, मदः मानः अवमानः, असूया च, माया, हिंसा च, मत्सरः ॥४३॥*

रजः प्रमादः क्षुन्निद्रा शत्रवस्त्वेवमादयः ।
रजस्तमःप्रकृतयः सत्त्वप्रकृतयः क्वचित् ॥४४॥

रजः प्रमादः क्षुत् निद्रा शत्रवः तु एवं आदयः रजः तमः प्रकृतयः सत्त्व प्रकृतयः क्वचित् ॥४४॥

रजः प्रमादः	रजोगुण, असाव-धानी,	**रजः तमः**	ये रजो गुण, तमो-गुण
क्षुत् निद्रा	भूख, नींद	**प्रकृतयः**	स्वभावके
आदयः तु	आदि तो	**क्वचित्**	कभी कोई
एवं शत्रवः	इस प्रकारके (मनुष्यके) शत्रु हैं,	**सत्त्व प्रकृतयः**	सत्त्वगुण स्वभावके भी होते हैं ॥४४॥

यावन्न कायरथमात्मवशोपकल्पं
धत्ते गरिष्ठचरणार्चनया निशातम् ।

•दस प्राणोंमें पांच सामान्य-१-प्राण २-अपान ३-उदान ४-यान ५-समान और पांच योगोपयोगी-१-नाग २-कूर्म ३-कृकल ४-देवदत्त ५-धन भय ।

*केवल दुर्गुणोंके नाम हैं—अतः अर्थ अनावश्यक है ।

ज्ञानासिमच्युतबलो दधदस्तशत्रुः
स्वाराज्यतुष्ट उपशान्त इदं विजह्यात् ॥४५॥

यावत् नृ काय रथं आत्मवश उपकल्पं धत्ते गरिष्ठ चरण अर्चनया निशातं ज्ञान असि अच्युत बलः दधदः त शत्रुः स्वाराज्य तुष्ट उपशान्त इदं विजह्यात् ॥४५॥

यावत् नृ काय	जब तक मनुष्य शरीर रूपी	**अर्चनया निशातं**	अर्चनासे तीक्ष्ण की गयी
रथं आत्मवश	रथ अपने वशमें है और	**ज्ञान असि**	ज्ञानकी तलवारसे
उपकल्पं धत्ते	इसके (इन्द्रियादि) उपकरण ठीक है (तभी तक)	**अच्युत बलः**	भगवान्‌के बलसे
		त शत्रुः	उन शत्रुओंको
		दधदः	मारकर
गरिष्ठ चरण	गुरुदेवके चरणोंकी	**उपशान्त**	अत्यन्त शान्त भावसे
		इदं विजह्यात्	इस (शरीर) को छोड़े ॥४५॥

नो चेत् प्रमत्तमसदिन्द्रियवाजिसूता
नीत्वोत्पथं विषयदस्युषु निक्षिपन्ति ।
ते दस्यवः सहयसूतममुं तमोऽन्धे
संसारकूप उरुमृत्युभये क्षिपन्ति ॥४६॥

नो चेत् प्रमत्तं असत् इन्द्रिय वाजिसूता नीत्वा उत्पथं विषयदस्युषु निक्षिपन्ति ते दस्यवः सहय सूतं अमुं तमः अन्धे संसारकूप उरुमृत्युभये क्षिपन्ति ॥४६॥

नो चेत्	नहीं तो	**वाजिसूत**	घोड़े सारथी सहित इसे
प्रमत्तं	असावधान होते ही		
असत् इन्द्रिय	दुष्ट इन्द्रियरूपी	**उत्पथं नीत्वा**	कुमार्गमें ले जाकर

विषयदस्युषु	विषय रूपी डाकुओं-में	**तमः अन्धे**	घोर अन्धकारसे पूर्ण
निक्षिपन्ति	फेंक देते हैं	**उरुमृत्युभये**	भयानक मृत्यु भय-वाले
ते दस्यवः	वे डाकू		
सहय सूतं अमुं	सारथीके साथ इसे	**संसारकूपं क्षिपन्ति**	संसाररूपी कुएँमें फेंक देते हैं ॥४६॥

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ।
आवर्तेत प्रवृत्तेन निवृत्तेनाश्नुतेऽमृतम् ॥४७॥

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकं आवर्तेत प्रवृत्तेन निवृत्तेन अश्नुते अमृतम् ॥४७॥

वैदिकं कर्म	वेद प्रतिपादित कर्म	**आवर्तेत**	(जन्म-मृत्युमें) घूमता रहता है,
प्रवृत्तं च	प्रवृत्ति परक और		
निवृत्तं च	निवृत्ति परक भी	**निवृत्तेन**	निवृत्तिपरकसे
द्विविधं	दो प्रकारके हैं,	**अमृतं**	अमृतत्वका
प्रवृत्तेन	प्रवृत्ति परक (कर्म) से	**अश्नुते**	उपभोग करता है ॥४७॥

हिंस्रं द्रव्यमयं काम्यमग्निहोत्राद्यशान्तिदम् ।
दर्शश्च पूर्णमासश्च चातुर्मास्यं पशुः सुतः ॥४८॥

हिंस्रं द्रव्यमयं काम्यं अग्निहोत्रादि अशान्तिदं दर्शः च पूर्ण मासः च चातुर्मास्यं पशुः सुतः ॥४८॥

द्रव्यमयं	पदार्थोंसे होनेवाले	**चातुर्मास्यं**	चातुर्मास्य,
काम्यं	सकाम	**हिंस्रम् पशुः सुतः**	हिंसा प्रधान पशु याग
अग्निहोत्रादि	अग्नि होत्रादि,		
च दर्शः	और दर्श,	**अशान्तिदं**	अशान्तिदायी हैं ॥४८॥
च पूर्णमासः	और पूर्णमास,		

एतदिष्टं प्रवृत्ताख्यं हुतं प्रहुतमेव च ।
पूतं सुरालयारामकूपाजीव्यादिलक्षणम् ॥४९॥

एतत् इष्टं प्रवृत्ति आख्यं हुतं प्रहुतं एव च पूतं सुरालय आराम कूप आजीव्य आदिलक्षणम् ॥४९॥

एतत् प्रवृत्ति आख्यं	ये प्रवृत्तिपरक कहे जानेवाले	**आजीव्य**	उसमें जीविका लगा देना,
हुतं च प्रहुतं एव	हवनात्मक तथा बड़े यज्ञरूप	**आराम कूप**	बगीचा लगाना, कुआं बनवाना
इष्टं	ही 'इष्ट' कहे जाते हैं;	**आदिलक्षणं**	आदि रूपका (धर्म)
सुरालय	देवमन्दिर बनवाना,	**पूतं**	पूर्त (कहा जाता) है ॥४९॥

द्रव्यसूक्ष्मविपाकश्च धूमो रात्रिरपक्षयः ।
अयनं दक्षिणं सोमो दर्श ओषधिवीरुधः ॥५०॥

द्रव्यसूक्ष्म विपाकः च धूमः रात्रिः अपक्षयः अयनं दक्षिणं सोमः दर्श औषधिवीरुधः ॥५०॥

द्रव्यसूक्ष्म	(प्रवृत्ति-परायण यज्ञीय हवन किये) द्रव्योंके सूक्ष्म		क्रमसे)
विपाकः च	परिणामसे बना (शरीर धारण) करके ही	**सोमः**	चन्द्रमा तक जाता है (फिर)
धूमः रात्रिः	धूम्र, रात्रि,	**दर्श**	(भोग क्षीण होनेपर) अमावस्यासे
अपक्षयः	कृष्णपक्ष,	**औषधिवीरुधः**	(वृष्टिमें आकर) औषधि या पौधे
दक्षिणं अयनं	दक्षिणायन (के		होता है ॥५०॥

अन्नं रेत इति क्ष्मेश पितृयानं पुनर्भवः ।
एकैकशयेनानुपूर्वं भूत्वा भूत्वेह जायते ॥५१॥

अन्नं रेत इति क्ष्मेश पितृयानं पुनः भवः एक एकशः अनेन अनुपूर्वं भूत्वा भूत्वा इह जायते ॥५१॥

क्ष्मेश	राजन् !
अन्नं	(फिर) अन्न (आहार बनकर)
रेत	वीर्य बनता है,
इति	इस प्रकार
पितृयानं	पितृयान (मार्ग) से गया
पुनः भवः	फिर संसारमें आ जाता है,
अनेन	इस मार्गसे होता
अनुपूर्वं एक	पहिलेके क्रमसे
एकशः	एक-एकमें
भूत्वा भूत्वा	बार-बार जाता हुआ
इह जायते	इस संसारमें उत्पन्न होता है ॥५१॥

निषेकादिश्मशानान्तैः संस्कारैः संस्कृतो द्विजः ।
इन्द्रियेषु क्रियायज्ञान् ज्ञानदीपेषु जुह्वति ॥५२॥

निषेक आदि श्मशान अन्तैः संस्कारैः संस्कृतः द्विजः इन्द्रियेषु क्रिया-यज्ञान् ज्ञानदीपेषु जुह्वति ॥५२॥

निषेक आदि	गर्भाधानसे लेकर
श्मशान अन्तैः	श्मशानके अन्त्येष्टि तक
संस्कारैः संस्कृतः	संस्कारोंसे सम्पन्न
द्विजः	द्विज कहा जाता है,
क्रियायज्ञान्	(उनमें कुछ) क्रियामय यज्ञों (इष्ट और पूर्त) को
ज्ञानदीपेषु	(विषयोंका) ज्ञान करानेवाली
इन्द्रियेषु	इन्द्रियोंमें
जुह्वति	हवन कर देते हैं ॥५२॥

इन्द्रियाणि मनस्यूर्मौ वाचि वैकारिकं मनः ।
वाचं वर्णसमाम्नाये तमोङ्कारे स्वरे न्यसेत् ।
ओङ्कारं बिन्दौ नादे तं तं तु प्राणे महत्यमुम् ॥५३॥

इन्द्रियाणि मनसि ऊर्मौ वाचि वैकारिकं मनः वाचं वर्ण समाम्नाये तं ओङ्कारे स्वरे न्यसेत् ओङ्कारं बिन्दौ नादे तं तं तु प्राणे महति अमुं ॥५३॥

इन्द्रियाणि	इन्द्रियोंको
मनसि ऊर्मौ	मनकी लहरों (संकल्प) में,
वैकारिकं मनः	विकारवान मनको
वाचि	परावाणीमें,
वाचं वर्ण	वाणीको अक्षर
समाम्नाये	समूहमें
तं ओङ्कारे	उन्हें ओंकारके
स्वरे	स्वर अ, उ, ममें
ओंङ्कारं बिन्दौ	ओंकारको बिन्दुमें
तं नादे	उसे नादमें,
तं तु प्राणे	उस (नाद) को तो प्राणमें
अमुं महति	इस (प्राण) को महान् ब्रह्ममें
न्यसेत्	न्यास कर दे ॥५३॥

अग्निः सूर्यो दिवा प्राह्णः शुक्लो राकोत्तरं स्वराट् ।
विश्वश्च तैजसः प्राज्ञस्तुर्य आत्मा समन्वयात् ॥५४॥

अग्निः सूर्यः दिवा प्राह्णः शुक्लः राका उत्तरं स्वराट् विश्वः च तैजसः प्राज्ञः तुर्य आत्मा सम अन्वयात् ॥५४॥

अग्निः	(इस क्रमसे जाने वाला) अग्नि,
सूर्यः दिवा	सूर्य, दिन,
प्राह्णः शुक्लः	सायंकाल, शुक्ल-पक्ष,
राका उत्तरं	पूर्णिमा, उत्तरायण (होता)
स्वराट्	ब्रह्मलोक जाता है,
विश्वः	(वहांसे) विराट्,
तैजसः प्राज्ञ	तैजस, प्राज्ञ (रूपसे स्थित होता)
च	और
तुर्य आत्मा	तुरीयतत्त्व आत्मासे
सम अन्वयात्	समन्वित हो जाता है ॥५४॥

देवयानमिदं प्राहुर्भूत्वा भूत्वानुपूर्वशः ।
आत्मयाज्युपशान्तात्मा ह्यात्मस्थो न निवर्तते ॥५५॥

देवयानं इदं प्राहुः भूत्वा भूत्वा अनुपूर्वशः आत्मयाजि उपशान्त आत्मा हि आत्मस्थः न निवर्तते ॥५५॥

इदं देवयानं	इसे देवयान मार्ग
प्राहुः	कहते हैं,
अनुपूर्वशः	पहिले-पहिलेके क्रमसे
भूत्वा भूत्वा	एक दूसरी स्थितिमें होता
हि	क्योंकि
आत्मयाजि	आत्मयज्ञ करनेवाला

उपशान्त आत्मा	निवृत्त चित्त है	**न निवर्तते**	(अतः संसारमें)
आत्मस्थः	आत्मामें ही स्थित है		नहीं लौटता ॥५५॥

य एते पितृदेवानामयने वेदनिर्मिते ।
शास्त्रेण चक्षुषा वेद जनस्थोऽपि न मुह्यति ॥५६॥

य एते पितृदेवानां अयने वेदनिर्मिते शास्त्रेण चक्षुषा वेद जनस्थः अपि न मुह्यति ॥५६॥

य एते	जो इन	**वेद**	जानता है (वह)
वेदनिर्मिते	वेद सम्मत	**जनस्थः अपि**	लोगोंमें रहता हुआ भी
पितृ-	पितृयान और		
देवानां अयने	देवयानको	**मुह्यति न**	मोहमें नहीं पड़ता ॥५६॥
शास्त्रेण चक्षुषा	शास्त्र रूपी नेत्रोंसे		

आदावन्ते जनानां सद् बहिरन्तः परावरम् ।
ज्ञानं ज्ञेयं वचो वाच्यं तमो ज्योतिस्त्वयं स्वयम् ॥५७॥

आदाः अन्ते जनानां सत् बहिः अन्तः पर अवरं ज्ञानं ज्ञेयं वचः वाच्यं तमः ज्योतिः तु अयं स्वयम् ॥५७॥

जनानां	उत्पन्न होनेवाले सबके	**ज्ञानं ज्ञेयं**	ज्ञान तथा ज्ञेय रूपमें,
आदाः	आदिमें (कारण रूपसे)	**वचः वाच्यं**	वाणी और वर्ण्य रूपमें
अन्ते	अन्तमें (परिणाम-अवधिरूपसे)	**तमः ज्योति तु**	अन्धकार और प्रकाश रूपमें तो
सत्	(वर्तमानमें) सत्ता रूपसे;	**अयं स्वयं**	यह स्वयं है (अतः इसे मोह कैसे होगा।) ॥५७॥
बहिः अन्तः	बाहर-भीतर,		
पर अवरं	बड़े-छोटे		

आबाधितोऽपि ह्याभासो यथा वस्तुतया स्मृतः ।
दुर्घटत्वादैन्द्रियकं तद्वदर्थविकल्पितम् ॥५८॥

आबाधितः अपि हि आभासः यथा वस्तुतया स्मृतः दुर्घटत्वात् ऐन्द्रियकं तद्वत् अर्थ विकल्पितम् ॥५८॥

आभासः	प्रतिबिम्ब	**ऐन्द्रियक**	इन्द्रियोंसे प्रतीत
आबाधितः अपि	(विचारसे) बाधित होनेपर भी		होनेवाला संसार
		दुर्घटत्वात्	(विचारसे)
हि	क्योंकि		असम्भव होनेसे
यथा वस्तुतया	जैसे वस्तुके रूपमें	**अर्थ**	पदार्थके रूपमें
स्मृतः	समझा जाता है	**विकल्पितं**	कल्पित हुए हैं ॥५८॥
तद्वत्	उसीके समान		

क्षित्यादीनामिहार्थानां छाया न कतमापि हि ।
न संघातो विकारोऽपि न पृथङ् नान्वितो मृषा ॥५९॥

क्षिति आदीनां इह अर्थानां छाया न कतमा अपि हि न संघातः विकारः अपि न पृथक् न अन्वितः मृषा ॥५९॥

इह	यहां संसारमें	**अपि विकारः**	या विकार हैं,
क्षिति आदीनां	पृथ्वी आदि	**न पृथक्**	न अलग-अलग हैं,
अर्थानां	पदार्थोंकी	**न अन्वितः**	न एक दूसरेमें मिले हैं,
हि	क्योंकि		
कतमा	कहीं	**मृषा**	असत् प्रतीति हैं ॥५९॥
छाया अपि न	छाया भी नहीं है		
न संघातः	(अतः) न ये समूह हैं,		

धातवोऽवयवित्वाच्च तन्मात्रावयवैर्विना ।
न स्युर्ह्यसत्यवयविन्यसन्नवयवोऽन्ततः ॥६०॥

धातवः अवयवित्वात् च तन्मात्रा अवयवैः विना न स्युः हि सति अवयवित् असत् अवयवः अन्ततः ॥६०॥

धातवः	(पृथ्वी आदि) मूल धातुएँ	**हि**	क्योंकि
अवयवित्वात्	मूल आंगवान होनेसे	**अवयवित्**	अंगवान मूल धातुएँ
तन्मात्रा	तन्मात्रा रूप	**असत् सति**	असत् हैं (अतः)
अवयवैः	अंगोंके	**अन्ततः**	अन्ततः
विना न स्युः	बिना नहीं हो सकते	**अवयवः**	अंग भी असत् हैं ॥६०॥

स्यात् साहश्यभ्रमस्तावद् विकल्पे सति वस्तुनः ।
जाग्रत्स्वापौ यथा स्वप्ने तथा विधिनिषेधता ॥६१॥

स्यात् साहश्य भ्रमः तावत् विकल्पे सति वस्तुनः जाग्रत् स्वापौ यथा स्वप्ने तथा विधि निषेधता ॥६१॥

जाग्रत स्वापौ	जाग्रत और स्वप्न दशामें	**यथा वस्तुनः**	जैसा वस्तुओंकी (समानता होती है)
साहश्य	समानताका	**स्वप्ने तथा**	स्वप्नमें भी वैसे ही
भ्रमः स्यात्	भ्रम हो	**विधि निषेधता**	विधि-निषेधपना भी होता है ॥६१॥
तावत् विकल्पे	तो भी दोनोंके विकल्पमें		

भावाद्वैतं क्रियाद्वैतं द्रव्याद्वैतं तथाऽऽत्मनः ।
वर्तयन्स्वानुभूत्येह त्रीन्स्वप्नान्धुनुते मुनिः ॥६२॥

भाव अद्वैतं क्रिया अद्वैतं द्रव्य अद्वैतं तथा आत्मनः वर्तयन् स्वानुभूत्या इह त्रीन् स्वप्नान् धुनुते मुनि ॥६२॥

भाव अद्वैतं	भाव अद्वैत	**त्रीन्**	तीनों (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति) के
क्रिया अद्वैत	क्रिया अद्वैत	**स्वप्नान्**	स्वप्नोंको
तथा आत्मनः	तथा अपने	**धुनुते**	नष्ट कर देता है ॥६२॥
द्रव्य अद्वैतं	द्रव्यसे अद्वैत		
वर्तयन्	व्यवहार करते हुए		
मुनिः	मननशील (ज्ञानी)		

कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्शनं पटतन्तुवत् ।
अवस्तुत्वाद् विकल्पस्य भावाद्वैतं तदुच्यते ॥६३॥

कार्यकारण वस्तु ऐक्य मर्शनं पट तन्तुवत् अवस्तुत्वात् विकल्पस्य भाव अद्वैतं तत् उच्यते ॥६३॥

पट तन्तुवत्	वस्त्र और सूतके समान	**विकल्पस्य**	भेदका
कार्यकारण	कार्य और उसके कारण	**अवस्तुत्वात्**	असत् होनेके कारण (निश्चय)
वस्तु ऐक्यं	वस्तुकी एकताका	**तत्**	उसे
मर्शनं	विचार,	**भाव अद्वैतं**	भावाद्वैत
		उच्यते	कहा जाता है ॥६३॥

यद् ब्रह्मणि परे साक्षात् सर्वकर्मसमर्पणम् ।
मनोवाक्तनुभिः पार्थ क्रियाद्वैतं तदुच्यते ॥६४॥

यत् ब्रह्मणि परे साक्षात् सर्वकर्म समर्पणं मनः वाक् तनुभिः पार्थ क्रिया अद्वैतं तत् उच्यते ॥६४॥

पार्थ	युधिष्ठिर !	**सर्वकर्म**	सब कर्मोंका
यत् साक्षात्	जो साक्षात्	**समर्पणं**	समर्पण है,
परे ब्रह्मणि	परमब्रह्ममें	**तत् क्रिया**	उसे क्रिया
मनः वाक्	मन, वाणी	**अद्वैतं**	अद्वैत
तनुभिः	शरीरसे हुए	**उच्यते**	कहा जाता है ॥६४॥

आत्मजायासुतादीनामन्येषां सर्वदेहिनाम् ।
यत् स्वार्थकामयोरैक्यं द्रव्याद्वैतं तदुच्यते ॥६५॥

आत्म जाया सुत आदीनां अन्येषां सर्वदेहिनां यत् स्व अर्थ कामयोः ऐक्यं द्रव्य अद्वैतं तत् उच्यते ॥६५॥

आत्म जाया	अपने शरीर, स्त्री,	**सर्वदेहिनां**	सब शरीर धारियों-
सुत आदीनां	पुत्र आदिका और		का
अन्येषां	दूसरे	**यत् स्व**	जो अपने

अर्थ कामयोः	धन और भोगोंमें	**द्रव्य अद्वैतं**	द्रव्याद्वैत
ऐक्यं तत्	एकत्व है उसे	**उच्यते**	कहा जाता है ॥६५॥

यद् यस्य वानिषिद्धं स्याद् येन यत्र यतो नृप ।
स तेनेहेत कर्माणि नरो नान्यैरनापदि ॥६६॥

यत् यस्य वा अनिषिद्धं स्यात् येन यत्र यतः नृप स तेन ईहेत कर्माणि नरः न अन्यः अनापदि ॥६६॥

नृप	राजन् !	**स नरः तेन**	वह पुरुष उसी (धन) से
यत् यस्य	जो जिसके लिये		
येन यत्र	जिस उपायसे, जहां	**कर्माणि ईहेत**	कर्मोंको करे
वा यतः	अथवा जिससे	**अनापदि**	आपत्तिकाल न होनेपर
अनिषिद्धं स्यात्	शास्त्राज्ञासे निषिद्ध न हो,	**अन्यः न**	दूसरा वैसा न करे ॥६६॥

एतैरन्यैश्च वेदोक्तैर्वर्तमानः स्वकर्मभिः ।
गृहेऽप्यस्य गतिं यायाद् राजंस्तद्भक्तिभाङ्नरः ॥६७॥

एतैः अन्यैः च वेद उक्तैः वर्तमानः स्वकर्मभिः गृहे अपि अस्य गतिं यायात् राजन् तत् भक्ति भाङ्नरः ॥६७॥

एतैः च अन्यैः	इन और दूसरे भी	**भक्ति**	(परमात्माकी)
वेद उक्तैः	वेद वर्णित (साधनों) से		भक्तिका
स्वकर्मभिः	अपना कर्तव्य कर्म करते हुए	**भाङ्नरः**	भाजन पुरुष
		राजन्	राजन् !
गृहे अपि	घरमें भी	**तत् गतिं**	उसकी गतिको
वर्तमानः	रहते हुए	**यायात्**	जाता है ॥६७॥

यथा हि यूयं नृपदेव दुस्त्यजा-
दापद्गणादुत्तरतात्मनः प्रभोः ।
यत्पादपङ्केरुहसेवया भवा-
नहार्षीन्निर्जितदिग्गजः क्रतून् ॥६८॥

यथा हि यूयं नृपदेव दुस्त्य जात् आपत् गणात् उत्तरत आत्मनः प्रभोः यत् पादपङ्केरुह सेवया भवान् अहार्षीत् निर्जित दिग्गजः क्रतून् ॥६८॥

नृपदेव	महाराज !
हि यथा यूयं	क्योंकि जैसे तुम लोग
आत्मनः प्रभोः	अपने स्वामी श्रीकृष्णके द्वारा
दुस्त्य	दुष्पार
आपत् गणात्	आपत्तियोंसे
उत्तरतः	पार हो गये और
यत्	जिनके
पादपङ्केरुह	चरण-कमलोंकी
सेवया भवान्	सेवासे तुमने
दिग्गजः	दिग्गजों (पूरे भूमण्डल) को
निर्जित	जीतकर
क्रतून अहार्षीत	(बड़े-बड़े) यज्ञ किये ॥६८॥

अहं पुराभवं कश्चिद् गन्धर्व उपबर्हणः ।
नाम्नातीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सुसम्मतः ॥६९॥

अहं पुराभवं कश्चित् गन्धर्व उपबर्हणः नाम्ना अतीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सुसम्मतः ॥६९॥

अतीते	बीते हुए
महाकल्पे	महाकल्पमें
पुराभवं	पूर्व जन्ममें
अहं	मैं
गन्धर्वाणां	गन्धर्वोंमें
सुसम्मतः	अत्यन्त सम्मानित
कश्चित्	कोई
उपबर्हणः	उपबर्हण
नाम्ना गन्धर्व	नामका गन्धर्व था ॥६९॥

रूपपेशलमाधुर्यसौगन्ध्यप्रियदर्शनः ।
स्त्रीणां प्रियतमो नित्यं मत्तस्तु पुरुलम्पटः ॥७०॥

रूप पेशल माधुर्य सौगन्ध्य प्रियदर्शनः स्त्रीणां प्रियतमः नित्यं मत्तः तु पुरुलम्पटः ॥७०॥

रूप पेशल	सौन्दर्य, सुकुमारता,	**नित्यं स्त्रीणां**	सदा स्त्रियोंका
माधुर्य	मधुरता,	**प्रियतमः**	बहुत प्यारा था,
सौगन्ध्य	सुगन्धिसे	**तु मत्तः**	किन्तु प्रमादी और
प्रियदर्शनः	देखनेमें बहुत प्यारा था	**पुरुलम्पटः**	बहुत लम्पट था ॥७०॥

एकदा देवसत्रे तु गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
उपहूता विश्वसृग्भिर्हरिगाथोपगायने ॥७१॥

एकदा देवसत्रे तु गन्धर्व अप्सरसां गणाः उपहूता विश्वसृक्भिः हरिगाथा उपगायने ॥७१॥

एकदा	एक बार	**अप्सरसां गणाः**	अप्सराओंका समूह
देवसत्रे तु	देवताओंके ज्ञान यज्ञमें तो	**हरिगाथा**	भगवच्चरित गानेके
		उपगायने	लिए
विश्वसृक्भिः	ब्रह्माजी द्वारा	**उपहूता**	बुलाये गये ॥७१॥
गन्धर्व	गन्धर्वों और		

अहं च गायंस्तद्विद्वान् स्त्रीभिः परिवृतो गतः ।
ज्ञात्वा विश्वसृजस्तन्मे हेलनं शेपुरोजसा ।
याहि त्वं शूद्रतामाशु नष्टश्रीः कृतहेलनः ॥७२॥

अहं च गायन् तत् विद्वान् स्त्रीभिः परिवृतः गतः ज्ञात्वा विश्वसृजः तत् मे हेलनं शेपुः ओजसा याहि त्वं शूद्रतां आशु नष्टश्रीः कृतहेलनः ॥७२॥

अहं च तत्	मैं भी उस	**परिवृतः**	घिरा हुआ
गायन् विद्वान्	गायनके उद्देश्यको जानता हुआ	**गत**	वहां गया,
		तत् मे हेलनं	वह मेरी अवहेलना
स्त्रीभिः	स्त्रियोंसे		

ज्ञात्वा ओजसा	जानकर तेजसे	नष्टश्रीः	शोभा नष्ट हुआ;
विश्वसृजः शेपुः	ब्रह्माजीने शाप दिया	त्वं आशु	तुम शीघ्र
		शूद्रतां याहि	शूद्रत्वको जाओ ॥७२॥
कृतहेलनः	अवहेलना करनेके कारण		

तावद्दास्यामहं जज्ञे तत्रापि ब्रह्मवादिनाम् ।
शुश्रूषयानुषङ्गेण प्राप्तोऽहं ब्रह्मपुत्रताम् ॥७३॥

तावत् दास्यां अहं जज्ञे तत्र अपि ब्रह्मवादिनां शुश्रूषया अनुषङ्गेण प्राप्तः अहं ब्रह्मपुत्रताम् ॥७३॥

तावत् अहं	तब मैं	शुश्रूषया	सेवाके प्रभावसे
दास्यां जज्ञे	दासीसे उत्पन्न हुआ	अहं ब्रह्मपुत्रतां	मुझे ब्रह्माजीका पुत्रत्व
तत्र अपि	वहां भी		
अनुषङ्गेण	प्रसंगवश	प्राप्तः	प्राप्त हो गया ॥७३॥
ब्रह्मवादिनां	ब्रह्मज्ञानियोंकी		

धर्मस्ते गृहमेधीयो वर्णितः पापनाशनः ।
गृहस्थो येन पदवीमञ्जसा न्यासिनामियात् ॥७४॥

धर्मः ते गृहमेधीयः वर्णितः पापनाशनः गृहस्थः येन पदवीं अञ्जसा न्यासिनां इयात् ॥७४॥

ते गृहमेधीयः	तुमसे गृहस्थके	अञ्जसा	सरलतापूर्वक
पापनाशनः	पाप नाशक	न्यासिनां पदवीं	संन्यासियोंकी गति-को
धर्मः वर्णितः	धर्मका वर्णन कर दिया	इयात्	प्राप्त कर लेता है ॥७४॥
येन गृहस्थः	जिसके द्वारा गृहस्थ		

यूयं नृलोके बत भूरिभागा
लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ।

येषां गृहानावसतीति साक्षाद्
गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥७५॥

यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयः अभियन्ति येषां गृहान् आवसति इति साक्षात् गूढं परम् ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥७५॥

नृलोके यूयं	मनुष्य-लोकमें तुम लोग	**गूढं आवसति इति लोकं**	छिपकर रहते हैं इसलिए तीनों लोकोंको
बत भूरिभागा	अहो बड़भागी हो	**पुनाना मुनयः**	पवित्र करनेवाले मुनिगण
येषां गृहान्	जिनके घरोंमें	**अभियन्ति**	चारों ओरसे यहां आते हैं ॥७५॥
साक्षात्	साक्षात्		
परम् ब्रह्म	परमब्रह्म		
मनुष्यलिङ्गं	मनुष्यरूपमें		

स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्यं
कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ।
प्रियः सुहृद् वः खलु मातुलेय
आत्मार्हणीयो विधिकृद् गुरुश्च ॥७६॥

स वा अयं ब्रह्म महत् विमृग्यं कैवल्य निर्वाण सुख अनुभूतिः प्रियः सुहृत् वः खलु मातुलेय आत्मा अर्हणीयः विधिकृत् गुरुः च ॥७६॥

स वा अयं	वह निश्चय यही	**सुहृत् खलु**	सुहृद अरे,
महत् विमृग्यं	महापुरुषों द्वारा अन्वेषणीय	**मातुलेय**	मामाके लड़के,
कैवल्य निर्वाण	कैवल्य मोक्षके	**आत्मा**	आत्मा,
सुख अनुभूतिः	सुखानुभव स्वरूप	**अर्हणीयः**	पूजनीय,
ब्रह्म	ब्रह्म	**विधिकृत्**	आज्ञापालक
वः प्रियः	तुम लोगोंके प्रिय	**च गुरुः**	और गुरु भी हैं ॥७६॥

न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी
रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ।

मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः
प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः ॥७७॥

न यस्य साक्षात् भव पद्मज आदिभिः रूपं धिया वस्तुतया उपवर्णितं मौनेन भक्त्या उपशमेन पूजितः प्रसीदतां एष स सात्वतां पतिः ॥७७॥

भव पद्मज	शंकर-ब्रह्मादि
आदिभिः	द्वारा भी
वस्तुतया	वास्तविक रूपमें
यस्य साक्षात्	जिनके साक्षात्
रूपं	रूपको
धिया	बुद्धिसे
उपवर्णितं न	वर्णन नहीं हो सका है
स एष	वे ये
सात्वतां पतिः	भक्तोंके स्वामी
मौनेन भक्त्या	मौनसे, भक्तिसे और
उपशमेन	वैराग्यके द्वारा
पूजितः	पूजित होकर
प्रसीदतां	प्रसन्न हो जायँ ॥७७॥

श्रीशुक उवाच—

इति देवर्षिणा प्रोक्तं निशम्य भरतर्षभः ।
पूजयामास सुप्रीतः कृष्णं च प्रेमविह्वलः ॥७८॥

इति देवर्षिणा प्रोक्तं निशम्य भरत ऋषभः पूजयामास सुप्रीतः कृष्णं च प्रेमविह्वलः ॥७८॥

इति	इस प्रकार
देवर्षिणा प्रोक्तं	देवर्षिकी बातको
निशम्य	सुनकर
भरत ऋषभः	भरत वंशमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरने
प्रेमविह्वलः	प्रेमसे विह्वल होकर
कृष्णं च	श्रीकृष्णकी भी
पूजयामास	पूजा की ॥७८॥

कृष्णपार्थावुपामन्त्र्य पूजितः प्रययौ मुनिः ।
श्रुत्वा कृष्णं परं ब्रह्म पार्थः परमविस्मितः ॥७९॥

कृष्ण पार्थाः उपामन्त्र्य पूजितः प्रययौ मुनिः श्रुत्वा कृष्णं परं ब्रह्म पार्थः परमविस्मिताः ॥७९॥

पूजितः मुनिः	पूजित होकर मुनि नारदजी
कृष्ण पार्थाः	श्रीकृष्ण तथा पाण्डवोंसे
उपामन्त्र्य	अनुमति लेकर
प्रययौ	प्रस्थान कर गये,
कृष्णं	श्रीकृष्णको
परं ब्रह्म श्रुत्वा	परमब्रह्म सुनकर
पार्थः	पाण्डव
परमविस्मिताः	बहुत विस्मित हुए ॥७६॥

इति दाक्षायणीनां ते पृथग्वंशाः प्रकीर्तिताः ।
देवासुरमनुष्याद्या लोका यत्र चराचराः ॥८०॥

इति दाक्षायणीनां ते पृथक् वंशाः प्रकीर्तिताः देव असुर मनुष्याद्या लोका यत्र चर अचराः ॥८०॥

इति	इस प्रकार
यत्र	जिनसे
देव असुर	देवता, असुर,
मनुष्याद्य	मनुष्य आदि,
चर अचराः	जंगम स्थावर
लोका	लोक उत्पन्न हुए (उन)
दाक्षायणीनां	दक्ष-कन्याओंका
पृथक वंशाः	अलग-अलग वंश
ते प्रकीर्तिताः	तुमसे वर्णन कर दिया ॥८०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादश साहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते युधिष्ठिरनारद संवादे सदाचारनिर्णयो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

॥ इति सप्तमः स्कन्धः समाप्तः ॥

हरि ॐ तत्सत्

॥ अष्टम स्कन्ध ॥

अष्टमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच—

स्वायम्भुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः ।
यत्र विश्वसृजां सर्गो मनूनन्यान्वदस्व नः ॥१॥

स्वायम्भुवस्य इह गुरो वंशः अयं विस्तरात् श्रुतः यत्र विश्वसृजां सर्गः मनून् अन्यान् वदस्व नः ॥१॥

गुरो	गुरुवर !
इह	इस लोकमें
स्वायम्भुवस्य	स्वायम्भुव मनुका
अयं वंशः यत्र	यह वंश जिसमें
विश्वसृजां	प्रजापतियोंकी
सर्गः	वंश-परम्परा चली
विस्तरात्	विस्तारसे
श्रुतः	सुन लिया
अन्यान् मनून्	(अब) दूसरे मनुओं-का
नः वदस्व	मुझसे वर्णन कीजिए ॥१॥

यत्र यत्र हरेर्जन्म कर्माणि च महीयसः ।
गृणन्ति कवयो ब्रह्मंस्तानि नो वद शृण्वताम् ॥२॥

यत्र यत्र हरेः जन्म कर्माणि च महीयसः गृणन्ति कवयः ब्रह्मन् तानि नः वद शृण्वताम् ॥२॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
यत्र यत्र	जिस-जिस प्रसंगमें
महीयसः	महामहिम
हरेः जन्म च	श्रीहरिके अवतार और
कर्माणि	(चरित्रों) कर्मोंका
कवयः गृणन्ति	कवि लोग वर्णन करते हैं
नः शृण्वतां	हम सुननेवालोंसे
तानि वद	उनको कहिए ॥२॥

यद्यस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्भगवान्विश्वभावनः ।
कृतवान्कुरुते कर्ता ह्यतीतेऽनागतेऽद्य वा ॥३॥

यत् यस्मिन् अन्तरे ब्रह्मन् भगवान् विश्वभावनः कृतवान् कुरुते कर्ता हि अतीते अनागते अद्य वा ॥३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
विश्वभावनः	विश्वरक्षक
भगवान्	भगवान्ने
यत् यस्मिन्	जो जिसमें
अतीते	बीते हुए
अनागते वा अद्य	आनेवाले या वर्तमान
अन्तरे कृतवान्	मन्वन्तरोंमें किया है,
कर्ता कुरुते	करेंगे या कर रहे हैं ॥३॥

श्रीशुक उवाच*

मनवोऽस्मिन्व्यतीताः षट् कल्पे स्वायम्भुवादयः ।

आद्यस्ते कथितो यत्र देवादीनां च सम्भवः ॥४॥

मनवः अस्मिन् व्यतीताः षट् कल्पे स्वायम्भुव आदयः आद्यः ते कथितः यत्र देव आदीनां च संभवः ॥४॥

अस्मिन् कल्पे	इस कल्पमें
स्वायम्भुव	स्वायम्भुव
आदयः	आदि
षट् मनवः	छः मन्वन्तर
व्यतीताः	बीत चुके हैं
यत्र	जिसमें
देव आदीनां च	देवतादिकोंकी भी
संभवः आद्यः	उत्पत्ति हुई वह पहिले मन्वन्तरका
ते कथितः	वर्णन तुमसे कर दिया ॥४॥

आकूत्यां देवहूत्यां च दुहित्रोस्तस्य वै मनोः ।

धर्मज्ञानोपदेशार्थं भगवान्पुत्रतां गतः ॥५॥

आकूत्यां देवहूत्यां च दुहित्रोः तस्य वै मनोः धर्मज्ञान उपदेश अर्थं भगवान् पुत्रतां गतः ॥५॥

---

*अन्य प्रतियोंमें यहां 'ऋषिरुवाच' है ।

मनोः दुहित्रोः	स्वायम्भुव मनुकी पुत्री
आकूत्यां च	आकूति और
देवहूत्यां	देवहूतिसे
वै तस्य	निश्चय उनको
धर्मज्ञान	धर्म तथा ज्ञानका
उपदेश अर्थं	उपदेश करनेके लिए
भगवान्	भगवान् उनके
पुत्रतां गतः	पुत्र रूपमें अवतीर्ण हुए ॥५॥

कृतं पुरा भगवतः कपिलस्यानुवर्णितम् ।
आख्यास्ये भगवान्यज्ञो यच्चकार कुरूद्वह ॥६॥

कृतं पुरा भगवतः कपिलस्य अनुवर्णितं आख्यास्ये भगवान् यज्ञः यत् चकार कुरुद्वह ॥६॥

कुरुद्वह	कुरुकुल पालक परीक्षित !
भगवतः	(इनमें) भगवान्
कपिलस्य	कपिलका
कृतं पुरा	किया (चरित) पहिले
अनुवर्णितं	वर्णन कर चुका हूँ,
भगवान् यज्ञः	(अब आकूति नन्दन) भगवान् यज्ञने
यत् चकार	जो किया,
आख्यास्ये	उसका वर्णन करूँगा ॥६॥

विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापतिः प्रभुः ।
विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यो वनमाविशत् ॥७॥

विरक्तः कामभोगेषु शतरूपा पतिः प्रभुः विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यः वनं आविशत् ॥७॥

शतरूपा पतिः	शतरूपाके पति स्वायम्भुव मनु
कामभोगेषु	कामना और भोगों-से
विरक्तः	विरक्त होकर
प्रभुः राज्यं	स्वामी होने पर भी राज्यको
विसृज्य	छोड़कर
सभार्यः तपसे	पत्नीके साथ तपके लिये
वनं आविशत्	वनमें प्रवेश कर गये ॥७॥

सुनन्दायां वर्षशतं पदैकेन भुवं स्पृशन् ।
तप्यमानस्तपो घोरमिदमन्वाह भारत ॥८॥

सुनन्दायां वर्षशतं पदा एकेन भुवं स्पृशन् तप्यमानः तपः घोरं इदं अनु आह भारत ॥८॥

भारत	परीक्षित !	**घोरं तपः**	उग्र तप
सुनन्दायां	सुनन्दा नदीके किनारे	**तप्यमानः**	तपते (करते) हुए
एकेन पदा	एक पैरसे	**इदं अनु आह**	इसका बार-बार पाठ करते थे ॥८॥
भुवं स्पृशन्	पृथ्वीको छूते हुए		

मनुरुवाच—

येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम् ।
यो जागर्ति शयानेऽस्मिन्नायं तं वेद वेद सः ॥९॥

येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यं यः जागर्ति शयाने अस्मिन् न अयं तं वेद वेद सः ॥९॥

विश्वं येन चेतयते	विश्व जिसके द्वारा चेतना प्राप्त करता है; किन्तु	**शयाने**	(प्रलय-निद्रामें) सो जानेपर भी
यं विश्वं चेतयते न	जिसे विश्व चेतना नहीं दे पाता,	**जागर्ति**	जागता रहता है,
यः अस्मिन्	जो इस जगतके	**अयं वेद न तं**	यह जगत उसको नहीं जानता
		सः वेद	वह (सबको) जानता है ॥९॥

आत्मावास्यमिदं विश्वं यत् किञ्चिज्जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥१०॥

आत्मा आवास्यं इदं विश्वं यत् किञ्चित् जगत्यां जगत् तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्वित् धनम् ॥१०॥

जगत्यां यत्	संसारमें जो
किञ्चित्	कुछ
जगत्	उत्पत्तिशील प्राणि समुदाय है
इदं विश्वं	यह सब विश्व
आत्मा आवास्यं	आत्मासे व्याप्त है,
तेन त्यक्तेन	उसीके दिये (प्रसाद) का
भुञ्जीथा	उपभोग करो
कस्यस्वित् धनं	किसीके भी धनके
गृधः मा	गीध (लोभी) मत बनो ॥१०॥

यं न पश्यति पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति ।
तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत ॥११॥

यं न पश्यति पश्यन्तं चक्षुः यस्य न रिष्यति तं भूतनिलयं देवं सुपर्णं उपधावत ॥११॥

यं पश्यन्तं	जिन द्रष्टाको
न पश्यति	कोई देख नहीं पाता;
यस्य चक्षुः	जिसका ज्ञान
रिष्यति न	क्षीण नहीं होता
तं भूतनिलयं	उस सर्वान्तर्यामी
सुपर्णं देवं	असंग परमात्माका
उपधावत	भजन करो ॥११॥

न यस्याद्यन्तौ मध्यं च स्वः परो नान्तरं बहिः ।
विश्वस्यामूनि यद् यस्माद् विश्वं च तदृतं महत् ॥१२॥

न यस्य आदि अन्तौ मध्यं च स्वः परः न अन्तरं बहिः विश्वस्य अमूनि यत् यस्मात् विश्वं च तत् ऋतं महत् ॥१२॥

यस्य आदि	जिसका आदि
अन्तौ मध्यं	अन्त, मध्य
च स्वः परः न	तथा अपना-पराया नहीं है,
अन्तरं बहिः न	भीतर-बाहर नहीं है,
यत् अमूनि	क्योंकि ये (आदि-अन्त, भीतर-बाहर)
विश्वस्य	जो संसारका है,
च यस्मात्	तथा इसीसे
विश्वं	विश्व उत्पन्न है,
तत् ऋतं महत्	वही सत्य ब्रह्म है ॥१२॥

स विश्वकायः पुरुहूत ईशः
सत्यः स्वयंज्योतिरजः पुराणः ।
धत्तेऽस्य जन्माद्यजयाऽऽत्मशक्त्या
तां विद्ययोदस्य निरीह आस्ते ॥१३॥

स विश्वकायः पुरुहूत ईशः सत्यः स्वयं ज्योतिः अजः पुराणः धत्ते अस्य जन्म आदि अजया आत्म शक्त्या तां विद्यया उदस्य निरीह आस्ते ॥१३॥

स विश्वकायः	वह विश्वरूप,
पुरुहूत	अनन्त नामा
ईशः सत्यः	ईश्वर, सत्य,
स्वयंज्योतिः	स्वयंप्रकाश,
अजः पुराणः	अजन्मा और पुरातन
आत्म शक्त्या	अपनी शक्ति
अजया आत्म	मायासे इस जगतका
जन्म आदि धत्ते	जन्म आदि धारण करता है
तां विद्यया	फिर उस (माया) को ज्ञानशक्तिसे
उदस्य	त्यागकर
निरीह आस्ते	निश्चेष्ट स्थित रहता है ॥१३॥

अथाग्रे ऋषयः कर्माणीहन्तेऽकर्महेतवे ।
ईहमानो हि पुरुषः प्रायोऽनीहां प्रपद्यते ॥१४॥

अथ अग्रे ऋषयः कर्माणि ईहन्ते अकर्म हेतवे ईहमानः हि पुरुषः प्रायः अनीहां प्रपद्यते ॥१४॥

अथ अग्रे	इसलिए पहिले
अकर्म हेतवे	नैष्कर्म्म सिद्धिके लिए
ऋषयः कर्माणि	ऋषि लोग भी कर्मोंको
ईहन्ते	करते हैं
हि ईहमानः	क्योंकि चेष्टा करता हुआ
पुरुषः प्रायः	पुरुष प्रायः (थककर)
अनीहां प्रपद्यते	निश्चेष्टिताकी शरण लेता है ॥१४॥

ईहते भगवानीशो न हि तत्र विषज्जते ।
आत्मलाभेन पूर्णार्थो नावसीदन्ति येऽनु तम् ॥१५॥

ईहते भगवान् ईशः न हि तत्र विषज्जते आत्म लाभेन पूर्ण अर्थः न अवसीदन्ति ये अनु तम् ॥१५॥

ईशः भगवान्	सर्वसमर्थ भगवान् भी	**पूर्ण अर्थः**	पूर्ण प्रयोजन हैं,
ईहते तत्र	चेष्टा करते हैं; किन्तु उसमें	**ये तं अनु**	जो उनके पीछे चलते हैं वे
विषज्जते न हि	आसक्त नहीं होते	**अवसीदन्ति न**	कष्ट नहीं पाते ॥१५॥
आत्म लाभेन	आत्मलाभसे ही वे		

तमीहमानं निरहङ्कृतं बुधं
निराशिषं पूर्णमनन्यचोदितम् ।
नृञ् शिक्षयन्तं निजवर्त्मसंस्थितं
प्रभुं प्रपद्येऽखिलधर्मभावनम् ॥१६॥

तं ईहमानं निः अहंकृतं बुधं निःआशिषं पूर्णं अनन्य चोदितं नृञ् शिक्षयन्तं निजवर्त्म संस्थितं प्रभुं प्रपद्ये अखिल धर्म भावनम् ॥१६॥

तं निः अहंकृतं	उन अहंकारहीन	**निजवर्त्म**	अपने मार्गपर
बुधं निःआशिषं	ज्ञानघन, निष्काम,	**संस्थितं**	स्थित होकर
पूर्णं	परिपूर्ण,	**ईहमानं**	कर्म करनेवाले
अनन्य चोदितं	अन्यसे प्रेरित न होनेवाले,	**अखिल धर्म**	समस्त धर्मोंके
		भावनं	प्रवर्तक
नृञ् शिक्षयन्तं	मनुष्योंको शिक्षा देनेके लिए	**प्रभुं प्रपद्ये**	प्रभुकी मैं शरण लेता हूँ ॥१६॥

श्रीशुकउवाच—

इति मन्त्रोपनिषदं व्याहरन्तं समाहितम् ।
दृष्ट्वासुरा यातुधाना जग्धुमभ्यद्रवन् क्षुधा ॥१७॥

इति मन्त्र उपनिषदं व्याहरन्तं समाहितं दृष्ट्वा असुरा यातुधाना जग्धुं अभ्यद्रवन् क्षुधा ॥१७॥

इति	इस प्रकार
मन्त्र उपनिषदं	मन्त्रात्मक उपनिषद्-का
व्याहरन्तं	(उनको) उच्चारण करते
दृष्ट्वा	देखकर
असुरा	असुर और
यातुधाना	राक्षस
क्षुधा जग्धुं	भूखसे व्याकुल (उन्हें) खानेके लिए
अभ्यद्रवन्	उनकी ओर दौड़े ॥१७॥

तांस्तथावसितान् वीक्ष्य यज्ञः सर्वगतो हरिः ।
यामैः परिवृतो देवैर्हत्वाशासत् त्रिविष्टपम् ॥१८॥

तान् तथा अवसितान् वीक्ष्य यज्ञः सर्वगतः हरिः यामैः परिवृतः देवैः हत्वा अशासत् त्रिविष्टपम् ॥१८॥

सर्वगतः हरिः	सर्वव्यापक श्रीहरि
यज्ञः तान्	यज्ञने उनको
तथा अवसितान्	ऐसा निश्चय करते
वीक्ष्य	देखकर
यामैः देवैः	याम नामक देवताओंसे
परिवृतः हत्वा	घिरे हुए वहां आकर उनको मार-कर
त्रिविष्टपं	स्वर्गका
अशासत्	शासन किया ॥१८॥

स्वारोचिषो द्वितीयस्तु मनुरग्नेः सुतोऽभवत् ।
द्युमत्सुषेणरोचिष्मत्प्रमुखास्तस्य चात्मजाः ॥१९॥

स्वारोचिषः द्वितीयः तु मनुः अग्नेः सुतः अभवत् द्युमत् सुषेण रोचिष्मत् प्रमुखाः तस्य च आत्मजाः ॥१९॥

अग्नेः सुतः	अग्निके पुत्र
स्वारोचिषः	स्वारोचिष
द्वितीयः तु मनुः	दूसरे ही मनु
अभवत्	हुए
द्युमत् सुषेण च	द्युमत्, सुषेण और
रोचिष्मत् तस्य	रोचिष्मान् उनके
प्रमुखाः	मुख्य
आत्मजाः	पुत्र हुए ॥१९॥

तत्रेन्द्रो रोचनस्त्वासीद् देवाश्च तुषितादय: ।
ऊर्जस्तम्भादय: सप्त ऋषयो ब्रह्मवादिन: ॥२०॥

तत्र इन्द्र: रोचन: तु आसीत् देवा: च तुषित आदय: ऊर्जस्तम्भ आदय: सप्त ऋषय: ब्रह्म वादिन: ॥२०॥

तत्र रोचन: तु	उस मन्वन्तरमें रोचन तो	**ऊर्जस्तम्भ**	ऊर्जस्तम्भ
इन्द्र: आसीत्	इन्द्र था,	**आदय:**	आदि
च देवा:	और देवता	**ब्रह्म वादिन:**	वेदवादी
तुषित आदय:	तुषित आदि थे,	**सप्त ऋषय:**	सप्तर्षि हुए ॥२०॥

ऋषेस्तु वेदशिरसस्तुषिता नाम पत्न्यभूत् ।
तस्यां जज्ञे ततो देवो विभुरित्यभिविश्रुत: ॥२१॥

ऋषे: तु वेद शिरस: तुषिता नाम पत्नि अभूत् तस्यां जज्ञे तत: देव: विभु: इति अभिविश्रुत: ॥२१॥

वेदशिरस:	वेदशिरा	**विभु: इति**	विभु इस
ऋषे: तु	ऋषिकी तो	**अभिविश्रुत:**	नामसे अत्यन्त प्रसिद्ध
तुषिता नाम	तुषिता नामकी		
पत्नि अभूत्	पत्नी थी,	**जज्ञे**	अवतार लिया ॥२१॥
तत: तस्यां देव:	उस युगमें उससे भगवान्ने		

अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो ये धृतव्रता: ।
अन्वशिक्षन्व्रतं तस्य कौमारब्रह्मचारिण: ॥२२॥

अष्ट अशीति सहस्राणि मुनय: ये धृतव्रता: अन्वशिक्षन् व्रतं तस्य कौमार ब्रह्म चारिण: ॥२२॥

कौमार	कुमारावस्थासे	**ये मुनयः**	जो मुनि
ब्रह्मचारिणः	ब्रह्मचारी	**धृतव्रताः**	व्रतधारी थे (उन्होंने)
अष्ट अशीति	अट्ठासी	**तस्य व्रतं**	उनके ही व्रतसे
सहस्राणि	हजार	**अन्वशिक्षन्**	शिक्षा ली थी ॥२२

तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः ।
पवनः सृञ्जयो यज्ञहोत्राद्यास्तत्सुता नृप ॥२३॥

तृतीय उत्तमः नाम प्रियव्रतसुतः मनुः पवनः सृञ्जयः यज्ञहोत्र आदयः तत् सुता नृप ॥२३॥

नृप	राजन् !	**पवनः सृञ्जयः**	पवन, सृंजय,
प्रियव्रतसुतः	प्रियव्रतके पुत्र	**अग्निहोत्र**	अग्निहोत्र
उत्तमः नाम	उत्तम नामके	**आदयः**	आदि
तृतीय मनुः	तीसरे मनु हुए	**तत् सुता**	उनके पुत्र थे ॥२३॥

वसिष्ठतनयाः सप्त ऋषयः प्रमदादयः ।
सत्या वेदश्रुता भद्रा देवा इन्द्रस्तु सत्यजित् ॥२४॥

वसिष्ठतनयाः सप्त ऋषयः प्रमद आदयः सत्या वेदश्रुता भद्रा देवा इन्द्रः तु सत्यजित् ॥२४॥

वसिष्ठतनयाः	वशिष्ठजीके पुत्र	**भद्रा देवा**	भद्र ये देवता हुए,
प्रमद आदयः	प्रमद आदि	**सत्यजित् तु**	सत्यजित् तो
सप्त ऋषयः	सप्तर्षि हुए,	**इन्द्रः**	इन्द्र हुए ॥२४॥
सत्या वेदश्रुता	सत्य, वेदश्रुत,		

धर्मस्य सूनृतायां तु भगवान्पुरुषोत्तमः ।
सत्यसेन इति ख्यातो जातः सत्यव्रतैः सह ॥२५॥

धर्मस्य सूनृतायां तु भगवान् पुरुषोत्तमः सत्यसेन इति ख्यातः जातः सत्यव्रतैः सह ॥२५॥

भगवान्	भगवान्	**सत्यव्रतैः सह**	सत्यव्रतोंके साथ
पुरुषोत्तमः	पुरुषोत्तम,	**सत्यसेन**	सत्यसेन
धर्मस्य तु	धर्मकी तो (पत्नी)	**इति ख्यातः**	इस नामसे प्रसिद्ध
सूनृतायां	सूनृतासे	**जातः**	उत्पन्न हुए ॥२५॥

सोऽनृतव्रतदुःशीलानसतो यक्षराक्षसान् ।
भूतद्रुहो भूतगणांस्त्ववधीत् सत्यजित्सखः ॥२६॥

सः अनृतव्रत दुःशीलान् असतः यक्ष राक्षसान् भूतद्रुहः भूतगणान् तु अवधीत् सत्यजित् सखः ॥२६॥

सत्यजित् सखः	देवराज सत्यजित्के मित्र होकर	**राक्षसान्**	राक्षस तथा
अनृतव्रत	असत्य परायण,	**भूतद्रुहः**	प्राणियोंके द्रोही
दुःशीलान्	दुराचारी	**भूतगणान् तु**	भूतगणोंको तो
असतः यक्ष	दुष्ट यक्ष	**सः अवधीत्**	उन्होंने मार दिया ॥२६॥

चतुर्थ उत्तमभ्राता मनुर्नाम्ना च तामसः ।
पृथुः ख्यातिर्नरः केतुरित्याद्या दश तत्सुताः ॥२७॥

चतुर्थ उत्तम भ्राता मनुः नाम्ना च तामसः पृथुः ख्यातिः नरः केतुः इति आद्या दश तत् सुताः ॥२७॥

तामसः नाम्ना	तामस नामके	**नरः केतुः**	नर, केतु
उत्तम भ्राता	उत्तमके भाई	**आद्या इति**	आदि इस प्रकार
चतुर्थ मनुः	चौथे मनु हुए	**तत् दश सुताः**	उनके दस पुत्र थे ॥२७॥
च पृथुः ख्यातिः	तथा पृथु, ख्याति,		

सत्यका हरयो वीरा देवास्त्रिशिख ईश्वरः ।
ज्योतिर्धामादयः सप्त ऋषयस्तामसेऽन्तरे ॥२८॥

सत्यका हरयः वीरा देवाः त्रिशिख ईश्वरः ज्योतिः धाम आदयः सप्त ऋषयः तामसे अन्तरे ॥२८॥

तामसे अन्तरे	तामस मन्वन्तरमें	**त्रिशिख ईश्वरः**	त्रिशिख इन्द्र था,
सत्यका हरयः	सत्यका, हरि,	**ज्योतिः धाम**	ज्योतिधाम
वीरा	वीर,	**आदयः**	आदि
देवाः	ये देवगण थे,	**सप्त ऋषयः**	सप्तर्षि थे ॥२८॥

देवा वैधृतयो नाम विधृतेस्तनया नृप ।
नष्टाः कालेन यैर्वेदा विधृताः स्वेन तेजसा ॥२९॥

देवा वैधृतयः नाम विधृतेः तनया नृप नष्टाः कालेन यैः वेदा विधृताः स्वेन तेजसा ॥२९॥

नृप	राजन ! (उस समय)	**यैः स्वेन तेजसा**	जिन्होंने अपने तेजसे
विधृतेः तनया	विधृतिके पुत्र	**कालेन नष्टाः**	बहुत समय बीतने-से लुप्त हुए
वैधृतयः नाम देवा	वैधृति नामके (कुछ और) देवता हुए	**वेदा विधृताः**	वेदोंकी रक्षा की ॥२९॥

तत्रापि जज्ञे भगवान्हरिण्यां हरिमेधसः ।
हरिरित्याहृतो येन गजेन्द्रो मोचितो ग्रहात् ॥३०॥

तत्र अपि जज्ञे भगवान् हरिण्यां हरिमेधसः हरिः इति आहृतः येन गजेन्द्रः मोचितः ग्रहात् ॥३०॥

तत्र अपि	उस मन्वन्तरमें भी	**आहृतः**	नामसे प्रसिद्ध
हरिमेधसः	हरिमेधा ऋषिकी पत्नी	**भगवान् जज्ञे**	भगवान् अवतीर्ण हुए,
हरिण्यां	हरिणीसे	**येन गजेन्द्रः**	जिन्होंने गजेन्द्रको
हरिः इति	हरि इस	**ग्रहात् मोचितः**	ग्राहसे छुड़ाया ॥३०॥

राजोवाच—

बादरायण एतत् ते श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।
हरिर्यथा गजपतिं ग्राहग्रस्तममूमुचत् ॥३१॥

बादरायण एतत् ते श्रोतुं इच्छामहे वयं हरिः यथा गजपतिं ग्राह-ग्रस्तं अमूमुचत् ॥३१॥

बादरायण	शुकदेवजी !	**हरिः अमूमुचत्**	श्रीहरिने छुड़ा दिया
यथा ग्राहग्रस्तं	जैसे मगर द्वारा पकड़े	**एतत् ते**	यह आपसे
		वयं श्रोतुं	हम सब सुनना
गजपतिं	गजेन्द्रको	**इच्छामहे**	चाहते हैं ॥३१॥

तत्कथा सुमहत् पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभम् ।
यत्र यत्रोत्तमश्लोको भगवान्गीयते हरिः ॥३२॥

तत् कथा सु महत् पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभं यत्र यत्र उत्तम श्लोकः भगवान् गीयते हरिः ॥३२॥

यत्र यत्र	जहां-जहां	**महत् पुण्यं**	बहुत पुण्यप्रद,
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरिका	**धन्यं स्वस्त्ययनं**	धन्य, कल्याणकारी
गीयते तत्	वर्णन होता है, वह	**शुभं**	शुभ है ॥३२॥
कथा सु	कथा तो		

सूत उवाच–

परीक्षितैवं स तु बादरायणिः
प्रायोपविष्टेन कथासु चोदितः ।
उवाच विप्राः प्रतिनन्द्य पार्थिवं
मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम् ॥३३॥

परीक्षिता एवं स तु बादरायणिः प्रायोपविष्टेन कथासु चोदितः उवाच विप्राः प्रतिनन्द्य पार्थिवं मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम् ॥३३॥

विप्राः	विप्रगणो !	**प्रायोपविष्टेन**	निर्जल व्रत करके बैठे

परीक्षिता	परीक्षित द्वारा	**सदसि स्म**	सभामें ही
एवं कथासु	इस प्रकार कथाके लिए	**शृण्वतां**	सबके सुनते हुए
		पार्थिवं	राजाका
चोदितः	प्रेरित किये जानेपर	**प्रतिनन्द्य**	अभिनन्दन करके
स तु	तो उन	**मुदा उवाच**	प्रसन्नतासे कहा
बादरायणिः	शुकदेवजीने		॥३३॥
मुनीनां	मुनियोंकी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायांअष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुचरिते प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

आसीद् गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः ।
क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्योजनायुतमुच्छ्रितः ॥१॥

आसीत् गिरिवरः राजन् त्रिकूट इति विश्रुतः क्षीरोदेन आवृतः श्रीमान् योजन अयुतं उच्छ्रितः ॥१॥

राजन्	राजन् !	**श्रीमान्**	शोभा सम्पन्न
क्षीरोदेन	क्षीरसागरसे	**त्रिकूट इति**	त्रिकूट इस नामसे
आवृतः	घिरा,	**विश्रुतः**	प्रसिद्ध
योजन अयुतं	दस हजार योजन	**गिरिवरः**	श्रेष्ठपर्वत
उच्छ्रितः	ऊँचा	**आसीत्**	था ॥१॥

तावता विस्तृतः पर्यक् त्रिभिः शृङ्गैः पयोनिधिम् ।
दिशः खं रोचयन्नास्ते रौप्यायसहिरण्मयैः ॥२॥

तावता विस्तृतः पर्यक् त्रिभिः शृङ्गैः पयोनिधिं दिशः खं रोचयन् आस्ते रौप्य आयस हिरण्मयैः ॥२॥

पर्यक् तावता	चारों ओर उतना ही	**पयोनिधिं**	क्षीरसागर,
विस्तृतः	फैला हुआ था,	**दिशः खं**	दिशाओं तथा आकाशको
रौप्य आयस	चांदी, लोहे,	**रोचयन् आस्ते**	सुशोभित करता था ॥२॥
हिरण्मयैः	स्वर्णमय		
त्रिभिः शृङ्गैः	तीनों शिखरोंसे		

अन्यैश्च ककुभः सर्वा रत्नधातुविचित्रितैः ।
नानाद्रुमलतागुल्मैर्निर्घोषैर्निर्झराम्भसाम् ॥३॥

अन्यैः च ककुभः सर्वा रत्न धातु विचित्रितैः नाना द्रुम लता गुल्मैः निर्घोषैः निर्झर अम्भसाम् ॥३॥

रत्न धातु विचित्रितैः	रत्न-धातुओंके अनेक प्रकारके	**लता गुल्मैः**	लता, झुरमुटोंसे तथा
अन्यैः सर्वा ककुभः च	दूसरे सब शिखरोंसे भी (युक्त था)	**निर्झर अम्भसां निर्घोषैः**	झरनोंके जलकी ध्वनिसे (गूंजता था) ॥३॥
नाना द्रुम	(उसपर) अनेक प्रकारके वृक्ष,		

स चावनिज्यमानाङ्घ्रिः समन्तात् पयउर्मिभिः ।
करोति श्यामलां भूमिं हरिन्मरकताश्मभिः ॥४॥

स च अवनिज्यमान अङ्घ्रिः समन्तात् पयउर्मिभिः करोति श्यामलां भूमिं हरिन् मरकत अश्मभिः ॥४॥

पयउर्मिभिः	क्षीरसागरकी लहरोंसे	**हरिन् मरकत अश्मभिः**	हरे रंगकी मरकत शिलाओंसे
समन्तात्	चारों ओरसे	**स च भूमिं**	वह तो पृथ्वीको
अङ्घ्रिः	निचला भाग	**श्यामलां**	सांवली
अवनिज्यमान	सींचे जाते हुए	**करोति**	बनाता था ॥४॥

सिद्धचारणगन्धर्वविद्याधरमहोरगैः ।
किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिर्जुष्टकन्दरः ॥५॥

सिद्ध चारण गन्धर्व विद्याधर महा उरगैः किन्नरैः अप्सरः भिः च क्रीडत् भिः जुष्ट कन्दरः ॥५॥

क्रीडत् भिः	खेलते हुए	किन्नरैः च	किन्नरों तथा
सिद्ध चारण	सिद्ध, चारण,	अप्सरः भिः	अप्सराओं द्वारा
गन्धर्व विद्याधर	गन्धर्व, विद्याधर	कन्दरः जुष्ट	(उसकी) गुफाएँ
महा उरगैः	महा नाग,		भरी रहती थीं ॥५॥

यत्र संगीतसन्नादैर्नदद्गुहममर्षया ।
अभिगर्जन्ति हरयः श्लाघिनः परशङ्कया ॥६॥

यत्र संगीत सन्नादैः नदत् गुहं अमर्षया अभिगर्जन्ति हरयः श्लाघिनः परशङ्कया ॥६॥

यत्र संगीत	जहां संगीतके	परशङ्कया	दूसरे (सिंह) की
सन्नादैः नदत्	उच्च ध्वनिसे		आशङ्कासे
	गूंजती	श्लाघिनः	गरबीले
गुहं अमर्षया	गुफाओंकी असहि-	हरयः	सिंह
	ष्णुतासे,	अभिगर्जन्ति	बार-बार गर्जना
			करते थे ॥६॥

नानारण्यपशुव्रातसङ्कुलद्रोण्यलङ्कृतः ।
चित्रद्रुमसुरोद्यानकलकण्ठविहङ्गमः ॥७॥

नाना अरण्य पशुव्रात संकुल द्रोणि अलंकृतः चित्रद्रुम सुरउद्यान कलकण्ठ विहङ्गमः ॥७॥

नाना अरण्य	अनेक प्रकारके	चित्रद्रुम	अनेक प्रकारके
	जंगली		वृक्षोंके
पशुव्रात	पशुओंके झुण्डोंसे	सुरउद्यान	देवोद्यानमें
संकुल द्रोणि	भरी हुई घाटी	कलकण्ठ	मधुर स्वरवाले
अलंकृतः	सुशोभित थी,	विहङ्गमः	पक्षी थे ॥७॥

सरित्सरोभिरच्छोदैः पुलिनैर्मणिवालुकैः ।
देवस्त्रीमज्जनामोदसौरभाम्ब्वनिलैर्युतः ॥८॥

सरित् सरोभिः अच्छोदैः पुलिनैः मणिवालुकैः देवस्त्री मज्जन आमोद सौरभ अम्बु अनिलैः युतः ॥८॥

अच्छोदैः	स्वच्छ जलवाले
मणिवालुकैः	मणिमय रेतवाले
पुलिनैः	पुलिनोंसे युक्त
सरित् सरोभिः	नदियों, सरोवरोंमें
देवस्त्री मज्जन	देवियोंके स्नान करनेसे
आमोद सौरभ	सुगन्धसे सुवासित
अम्बु अनिलैः	जलसे चलती वायुसे
युतः	युक्त था ॥८॥

तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः ।
उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीडं सुरयोषिताम् ॥९॥

तस्य द्रोण्यां भगवतः वरुणस्य महात्मनः उद्यानं ऋतुमन् नाम आक्रीडं सुरयोषिताम् ॥९॥

तस्य द्रोण्यां	उसकी घाटीमें
महात्मनः	महामना
वरुणस्य	वरुणका
सुरयोषितां	देवस्त्रियोंका
आक्रीडं	क्रीडा-स्थान
ऋतुमन् नाम	ऋतुमत् नामका
उद्यानं	क्रीडोद्यान था ॥९॥

सर्वतोऽलङ्कृतं दिव्यैर्नित्यं पुष्पफलद्रुमैः ।
मन्दारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचम्पकैः ॥१०॥

सर्वतः अलंकृतं दिव्यैः नित्यं पुष्पफल द्रुमैः मन्दारैः पारिजातैः च पाटल अशोक चम्पकैः ॥१०॥

नित्यं पुष्पफलैः	सदा पुष्प, फलवाले
दिव्यैः द्रुमैः	दिव्य वृक्षोंसे
सर्वतः अलंकृतं	चारों ओरसे सुसज्जित था,
मन्दारैः	मन्दार,
पारिजातैः	पारिजात,
च पाटल,	तथा गुलाब,
अशोक	अशोक
चम्पकैः	चम्पासे ॥१०॥

चूतैः प्रियालैः पनसैराम्रै राम्रातकैरपि ।
क्रमुकैर्नालिकेरैश्च खर्जूरैर्बीजपूरकैः ॥११॥

चूतैः प्रियालैः पनसैः आम्रैः आम्रातकैः अपि क्रमुकैः नालिकेरैः च खर्जूरैः बीज पूरकैः ॥११॥*

चूतैः	स्वयं पककर टपकने-वाला आम,	**क्रमुकैः**	सुपारी
प्रियालैः पनसैः	पयाल, कटहल	**नालिकेरैः**	नारियल,
आम्रैः	आम	**च खर्जूरैः**	तथा खजूर,
आम्रातकैः अपि	आमड़ा,	**बीज पूरकैः**	बिजौरा ॥११॥

मधूकैः सालतालैश्च तमालैरसनार्जुनैः ।
अरिष्टोदुम्बरप्लक्षैर्वटैः किंशुकचन्दनैः ॥१२॥

मधूकैः (महुआ) साल, (साखू) तालैः (ताड) च तमालैः असन, अर्जुनैः, अरिष्ट (बहेड़ा) उदुम्बर (गूलर) प्लक्षैः (पाकर) वटैः (बरगद) किंशुक (पलाश) चन्दनैः ॥१२॥

पिचुमन्दैः कोविदारैः सरलैः सुरदारुभिः ।
द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बूभिर्बदर्यक्षाभयामलैः ॥१३॥

पिचुमन्दैः (नीम) **कोविदारैः** (कचनार) **सरलैः** (साल) **सुरदारुभिः** (देवदार) **द्राक्षा** (मुनक्का) **इक्षुः** (ईख) **अम्भा** (केला) **जम्बूभिः** (जामुन) **बदरी** (बेर) **यक्षा** (बहेड़ा) **अभया** (हर्र) **आमलैः** (आंवला) ॥१३॥

बिल्वैः कपित्थैर्जम्बीरैर्वृतो भल्लातकादिभिः ।
तस्मिन्सरः सुविपुलं लसत्काञ्चनपङ्कजम् ॥१४॥

---

* दिव्य सुरोद्यानका वर्णन है, अतः वहां पृथ्वीके सब प्रदेशोंके वृक्ष हैं। वृक्षोंके सब नाम परिचित नहीं हैं। जो परिचित हैं उनके नाम आगे कोष्टकमें हैं।

बिल्वैः (बेल) कपित्थैः (कैथ) जम्बीरैः (नीबू) वृतः मल्लातक (भिलावा) आदिभिः तस्मिन् सरः सुविपुलं लसत् काञ्चन पङ्कजम् ॥१४॥

काञ्चन पङ्कजं	स्वर्ण-कमलसे
लसत् तस्मिन्	शोभित उसमें
सुविपुलं सरः	बहुत बड़ा सरोवर था ॥१४॥

कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रश्रियोर्जितम् ।
मत्तषट्पदनिर्घुष्टं शकुन्तैश्च कलस्वनैः ॥१५॥

कुमुद उत्पल कह्लार शतपत्र श्रिया उर्जितं मत्तषट्पद निर्घुष्टं शकुन्तैः च कलस्वनैः ॥१५॥

कुमुद	कुमुदिनी,
उत्पल	श्वेत-कमल,
कह्लार	लाल कमल
शतपत्र	शतदल कमलसे
श्रिया उर्जितं	बहुत शोभा हो गयी थी ।
मत्तषट्पद	मतवाले भौंरे
निर्घुष्टं	गुंजार करते थे ।
च कलस्वनैः	तथा मधुर स्वरवाले
शकुन्तैः	पक्षी भी थे ॥१५॥

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि ।
जलकुक्कुटकोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम् ॥१६॥

हंस कारण्डव आकीर्णं चक्राह्वैः सारसैः अपि जलकुक्कुट कोयष्टिः आत्यूहकुल कूजितम् ॥१६॥

हंस कारण्डव	हंस, टिटिहरी,
चक्राह्वैः	चकोरों,
सारसैः अपि	सारसोंसे भी
आकीर्णं	भरा हुआ था,
जलकुक्कुट	जलमुर्ग
कोयष्टिः	कोयल तथा
आत्यूहकुल	पपीहोंके समूहसे
कूजितं	कूजित था ॥१६॥

मत्स्यकच्छपसञ्चारचलत्पद्मरजःपयः ।
कदम्बवेतसनलनीपवञ्जुलकैर्वृतम् ॥१७॥

मत्स्य कच्छप संचार चलत् पद्मरजः पयः कदम्ब वेतस नल नीप वञ्जुलकैः वृतम् ॥१७॥

मत्स्य	मछलियों तथा
कच्छप	कछुओंके
संचार चलत्	चलनेसे हिलते
पद्मरज पयः	कमल परागसे जल
	युक्त था,
कदम्ब वेतस	कदम्ब, बेत,
नल नीप	नरकुल, नीप,
वञ्जुलकैः वृतं	बकुलसे घिरा था ॥१७॥

कुन्दैः कुरबकाशोकैः शिरीषैः कुटजेङ्गुदैः ।
कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिर्नागपुन्नागजातिभिः ॥१८॥

कुन्दैः कुरबक अशोकैः शिरीषैः कुटज इङ्गुदैः कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिः नाग पुन्नाग जातिभिः ॥१८॥

कुन्दैः कुरबक	कुन्द, कुरबक,
अशोकैः शिरीषैः	अशोक, सिरस,
कुटज इङ्गुदैः	कुटज, इंगुदी,
कुब्जकैः	बेला,
स्वर्णयूथीभिः	सोनजुहीसे,
नाग पुन्नाग	नाग, पुन्नाग
जातिभिः	जाती (कुन्दी) से ॥१८॥

मल्लिकाशतपत्रैश्च माधवीजालकादिभिः ।
शोभितं तीरजैश्चान्यैर्नित्यर्तुभिरलं द्रुमैः ॥१९॥

मल्लिका शतपत्रैः च माधवी जालक आदिभिः शोभितं तीरजैः च अन्यैः नित्य ऋतुभिः अलं द्रुमैः ॥१९॥

मल्लिका च	चमेली तथा
शतपत्रैः	शतपत्र,
माधवी जालक	माधवी, मोगरा
आदिभिः	आदिसे
अन्यैः च	दूसरे भी
तीरजैः	किनारेके
नित्य ऋतुभिः	सभी ऋतुओंके
द्रुमैः अलं	वृक्षोंसे बहुत
शोभितं	शोभित था ॥१९॥

तत्रैकदा तद्गिरिकाननाश्रयः
करेणुभिर्वारणयूथपश्चरन् ।
सकण्टकान् कीचकवेणुवेत्रवद्
विशालगुल्मं प्ररुजन्वनस्पतीन् ॥२०॥

तत्र एकदा तद् गिरिकानन आश्रयः करेणुभिः वारण यूथपः चरन् सकण्टकान् कीचक वेणु वेत्रवत् विशाल गुल्मं प्ररुजन् वनस्पतीन् ॥२०॥

तत्र एकदा	वहां एक बार
तद्	उस
गिरिकाननं	पर्वतके वनमें
आश्रयः	रहनेवाला
वारण यूथपः	यूथपति गजराज
सकण्टकान्	कांटेवाले
कीचक वेणु	कीचक बांस तथा
वेत्रवत्	बेंतोवाले
विशाल गुल्मं	बड़े झुरमुटोंके
वनस्पतीन्	पौधोंको
प्ररुजन्	रौदता
करेणुभिः चरन्	हथिनियोंके साथ घूमता था

यद्गन्धमात्राद्धरयो गजेन्द्रा
व्याघ्रादयो व्यालमृगाः सखड्गाः ।
महोरगाश्चापि भयाद् द्रवन्ति
सगौरकृष्णाः शरभाश्चमर्यः ॥२१॥

यत् गन्धमात्रात् हरयः गजेन्द्रा व्याघ्रआदयः व्याल मृगाः सखड्गाः महोरगाः च अपि भयात् द्रवन्ति स गौर कृष्णाः शरभाः चमर्यः ॥२१॥

यद्	जिसकी
गन्धमात्रात्	गन्धमात्रसे
हरयः गजेन्द्रा	सिंह, दूसरे गजराज,
व्याघ्र आदयः	बाघ आदि
मृगाः	जंगली पशु
सखड्गाः	गैंडेके साथ
व्याल च	सर्प और
महोरगाः	अजगर
अपि	भी
स गौर कृष्णाः	गौर, (भूरे) काले
शरभाः चमर्यः	सांभर और चमरी (याक)
भयात् द्रवन्ति	भयसे भाग जाते थे ॥२१॥

वृका वराहा महिषर्क्षशल्या
गोपुच्छसालावृकमर्कटाश्च ।
अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शशादय-
श्चरन्त्यभीता यदनुग्रहेण ॥२२॥

वृका वराहा महिष ऋक्ष शल्या गोपुच्छ सालावृक मर्कटाः च अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शश आदयः चरन्ति अभीता यत् अनुग्रहेण ॥२२॥

यत् अनुग्रहेण	जिसकी कृपासे	**मर्कटाः**	बन्दर
वृका वराहा	भेड़िये, सुअर,	**च अन्यत्र क्षुद्रा**	तथा दूसरे छोटे प्राणी
महिष ऋक्ष	भैंसे, रीछ,		
शल्या गोपुच्छ	सेही, गोपुच्छ (बानर विशेष)	**हरिणाः शश**	हिरन, खरगोश
		आदयः	आदि
सालावृक	कुत्ते तथा	**अभीता चरन्ति**	निर्भय घूमते थे ॥२२

स घर्मतप्तः करिभिः करेणुभि-
र्वृतो मदच्युत्कलभैरनुद्रुतः ।
गिरिं गरिम्णा परितः प्रकम्पयन्
निषेव्यमाणोऽलिकुलैर्मदाशनैः ॥२३॥

स घर्मतप्तः करिभिः करेणुभिः वृतः मदच्युत् कलभैः अनुद्रुतः गिरिं गरिम्णा परितः प्रकम्पयन् निषेव्यमाणः अलिकुलैः मद अशनैः ॥२३॥

स घर्मतप्तः	वह धूपसे संतप्त होकर	**अलिकुलैः**	भौरोंके झुण्डोंसे
		निषेव्यमाणः	सेवित
करिभिः	दूसरे हाथियों	**कलभैः**	हाथियोंके बच्चे
करेणुभिः	हथिनियोंसे	**अनुद्रुतः**	उसके पीछे भाग रहे थे,
वृतः	घिरा हुआ,		
मदच्युत्	(कपोलों) से मद बहाता;	**गरिम्णा**	अपने भारी भारसे
		परितः गिरिं	चारों ओरसे पर्वतको
मद अशनैः	उस मदको पीनेवाले	**प्रकम्पयन्**	कंपाता हुआ ॥३२॥

सरोऽनिलं पङ्कजरेणुरूषितं
जिघ्रन्विदूरान्मदविह्वलेक्षणः ।
वृतः स्वयूथेन तृषार्दितेन तत्
सरोवराभ्याशमथागमद् द्रुतम् ॥२४॥

सरः अनिलं पङ्कजरेणु रूषितं जिघ्रन् विदूरात् मद विह्वल ईक्षणः
वृतः स्वयूथेन तृषा अर्दितेन तत् सरोवर अभ्याशं अथ आगमत् द्रुतम् ॥२४॥

पङ्कजरेणु	कमल-पराग
रूषितं	सुवासित
सरः अनिलं	सरोवरकी वायुको
विदूरात् जिघ्रन्	दूरसे सूंघता हुआ
मद विह्वल	मदसे चञ्चल
ईक्षणः	नेत्र,
तृषा अर्दितेन	प्याससे पीड़ित
स्वयूथेन वृतः	अपने यूथसे घिरा,
तत्	उस (पूर्व वर्णित)
सरोवर	सरोवरके
अभ्याशं द्रुतं	समीप वेगसे चलता
अथ आगमत्	तब जा पहुँचा ॥२४॥

विगाह्य तस्मिन्नमृताम्बु निर्मलं
हेमारविन्दोत्पलरेणुवासितम् ।
पपौ निकामं निजपुष्करोद्धृत-
मात्मानमद्भिः स्नपयन्गतक्लमः ॥२५॥

विगाह्य तस्मिन् अमृत अम्बु निर्मलं हेम अरविन्द उत्पल रेणु वासितं
पपौ निकामं निजपुष्कर उद्धृतं आत्मानं अद्भिः स्नपयन् गत क्लमः ॥२५॥

तस्मिन्	उस (सरोवर) में
विगाह्य	घुसकर
हेम अरविन्द	स्वर्ण-कमल तथा
उत्पल	श्वेत कमलोंके
रेणु	परागसे
वासितं निर्मलं	सुवासित निर्मल
अमृत अम्बु	अमृतके समान जल
निजपुष्कर	अपनी सूंड़से
उद्धृतं	उठाकर
निकामं पपौ	जीभरकर पिया,
अद्भिः आत्मानं	फिर जलसे अपनेको
स्नपयन्	स्नान कराकर
गत क्लमः	श्रमहीन हो गया ॥२५॥

स्वपुष्करेणोद्धृतशीकराम्बुभि-
र्निपाययन्संस्नपयन्यथा गृही ।
घृणी करेणूः कलभांश्च दुर्मदो
नाचष्ट कृच्छ्रं कृपणोऽजमायया ॥२६॥

स्वपुष्करेण उद्धृ त शीकर अम्बुभिः निपाययन् संस्नपयन् यथा गृही घृणीः करेणूः कलभात् च दुर्मदः न अचष्ट कृच्छ्रं कृपणः अजमायया ॥२६॥

गृही यथा	गृहस्थके समान	**कलभात्**	हाथीके बच्चोंको
घृणीः	मोहग्रस्त होकर	**निपाययन्**	जल पिलाने और
स्वपुष्करेण	अपनी सूँड़में	**संस्नपयन्**	स्नान करानेमें लगा
उद्धृत	उठाये	**दुर्मदः कृपणः**	मदमत्त बेचारा
अम्बुभिः	जलकी	**अजमायया**	भगवान्‌की मायासे
शीकर	फुहारसे	**कृच्छ्रं न अचष्ट**	अपने संकटको नहीं
करेणूः च	हथिनियों और		देख सका ॥२६॥

तं तत्र कश्चिन्नृप दैवचोदितो
ग्राहो बलीयांश्चरणे रुषाग्रहीत् ।
यदृच्छयैवं व्यसनं गतो गजो
यथाबलं सोऽतिबलो विचक्रमे ॥२७॥

तं तत्र कश्चित् नृप दैव चोदितः ग्राहः बलीयान् चरणे रुषा अग्रहीत् यदृच्छया एवं व्यसनं गतः गजः यथा बलं सः अतिबलः विचक्रमे ॥२७॥

नृप	राजन् !	**तं चरणे**	उसको पैरसे
तत्र दैव	वहां दैवकी	**अग्रहीत्**	पकड़ लिया
चोदितः	प्रेरणासे	**यदृच्छया एवं**	अचानक इस प्रकार
कश्चित्	किसी	**व्यसनं गतः**	संकटमें पड़कर
बलीयान्	बलवान	**सः अतिबलः**	वह अत्यन्त बलवान
ग्राहः रुषा	मगरने क्रोधसे	**गज यथाः**	गजराज भी अपने

बलं	बलके अनुसार	**विचक्रमे**	(छूटनेका) उद्योग करने लगा ॥२७॥

तथाऽऽतुरं यूथपतिं करेणवो
विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा ।
विचुक्रुशुर्दीनधियोऽपरे गजाः
पार्ष्णिग्रहास्तारयितुं न चाशकन् ॥२८॥

तथा आतुरं यूथपतिं करेणवः विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा विचुक्रुशुः दीनधियः अपरे गजाः पार्ष्णि ग्रहाः तारयितुं न च अशकन् ॥२८॥

यूथपतिं	यूथपतिको	**अपरे गजाः**	दूसरे हाथी और
तथा आतुरं	उस प्रकार व्याकुल,	**करेणवः**	हथिनियाँ
बलीयसा	बलवान् (ग्राह द्वारा)	**तारयितुं**	निकाल देनेमें
		अशकन् न	समर्थ नहीं हुए
तरसा	बलपूर्वक	**च दीनधियः**	और आतुर बुद्धि
विकृष्यमाणं	खींचे जानेसे	**विचुक्रुशुः**	चिल्लाने लगे ॥२८॥
पार्ष्णि ग्रहाः	समीप खड़े		

नियुध्यतोरेवमिभेन्द्रनक्रयो-
र्विकर्षतोरन्तरतो बहिर्मिथः ।
समाः सहस्रं व्यगमन्न महीपते
सप्राणयोश्चित्रममंसतामराः ॥२९॥

नियुध्यतः एवं इभेन्द्र नक्रयोः विकर्षतः अन्तरतः बहिः मिथः समाः सहस्रं व्यगमन् महीपते स प्राणयोः चित्रं अमंसता अमराः ॥२९॥

महीपते	राजन्	**एवं नियुध्यतः**	इस प्रकार युद्ध करते हुए
स प्राणयोः	अत्यन्त बलवान		
इभेन्द्र नक्रयोः	गजराज और मगर-के	**मिथः अन्तरतः**	परस्पर भीतर और
		बहिः	बाहर

विकर्षतः	खींचते हुए	**अमराः**	देवताओंने भी (इसे)
सहस्रं समाः	एक सहस्र वर्ष	**चित्रं अमंसता**	आश्चर्य जनक माना ॥२९॥
व्यगमन्	बीत गये		

ततो गजेन्द्रस्य मनोबलौजसां
कालेन दीर्घेण महानभूद् व्ययः ।
विकृष्यमाणस्य जलेऽवसीदतो
विपर्ययोऽभूत् सकलं जलौकसः ॥३०॥

ततः गजेन्द्रस्य मनः बल ओजसां कालेन दीर्घेण महान् अभूत् व्ययः विकृष्यमाणस्य जले अवसीदतः विपर्ययः अभूत् सकलं जल ओकसः ॥३०॥

ततः जले	तब जलमें	**ओजसां**	तेजस्विताका
दीर्घेण कालेन	बहुत लम्बे समय तक	**महान् व्ययः**	भारी व्यय
		अभूत्	हुआ; किन्तु
विकृष्यमाणस्य	खींचे जाते हुए	**जल ओकसः**	जलचर मगरका
अवसीदतः	कष्ट पाते हुए	**सकलं**	सब
गजेन्द्रस्य	गजेन्द्रके	**विपर्ययः**	उलटा (बढ़ना)
मनः बल	मनोबल,	**अभूत्**	हुआ ॥३०॥

इत्थं गजेन्द्रः स यदाऽऽप संकटं
प्राणस्य देही विवशो यदृच्छया ।
अपारयन्नात्मविमोक्षणे चिरं
दध्याविमां बुद्धिमथाभ्यपद्यत ॥३१॥

इत्थं गजेन्द्रः स यदा आप संकटं प्राणस्य देही विवशः यदृच्छया अपारयन् आत्मविमोक्षणे चिरं दध्याः इमां बुद्धि अथ अभ्यपद्यत ॥३१॥

यदा स गजेन्द्रः	जब उस गजेन्द्रने	**संकटं देही**	संकट जीवने
इत्थं प्राणस्य	इस प्रकार प्राणका	**यदृच्छया**	अचानक

आप	पाया तो
आत्मविमोक्षणे	अपने छुड़ानेमें
अपारयन्	असमर्थ होकर
चिरं दध्याः	देर तक सोचनेपर
अथ इमां बुद्धिं	तब इस विचारको
अभ्यपद्यत	प्राप्त कर सका ॥३१॥

न मामिमे ज्ञातय आतुरं गजाः
कुतः करिण्यः प्रभवन्ति मोचितुम् ।
ग्राहेण पाशेन विधातुरावृतो-
ऽप्यहं च तं यामि परं परायणम् ॥३२॥

न मां इमे ज्ञातय आतुरं गजाः कुतः करिण्यः प्रभवन्ति मोचितुं ग्राहेण पाशेन विधातुः आवृतः अपि अहं च तं यामि परं परायणम् ॥३२॥

विधातुः	विधाताके
ग्राहेण पाशेन	मगर रूपी फन्देमें
आवृतः मां	फँसे हुए मुझे
आतुरं ज्ञातयः	व्याकुल मेरी जातिके
गजाः मोचितुं	हाथी छुड़ानेमें (जब)
प्रभवन्ति न	समर्थ नहीं हो रहे (तब)
करिण्यः कुतः	हथिनियां कैसे (सफल) होंगी,
च अहं अपि	अतः मैं भी
तं परं परायणं	उन परम पुरुषकी शरण
यामि	जाऊँगा ॥३२॥

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्
प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम् ।
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भया-
न्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥३३॥

यः कश्चन ईशः बलिनः अन्तक उरगात् प्रचण्डवेगात् अभिधावतः भृशं भीतं प्रपन्नं परिपाति यद् भयात् मृत्युः प्रधावति अरणं तं ईमहि ॥३३॥

यः बलिनः जो बलवान
प्रचण्डवेगात् भयंकर वेगसे
भृशं बराबर
अभिधावतः चारों ओर दौड़ते
अन्तक उरगात् कालरूपी सर्पसे
भीतं प्रपन्नं डरे हुए शरणागत-की
परिपाति रक्षा करता है,
यद् भयात् जिसके भयसे
मृत्युः प्रधावति मौत दौड़ती है
तं कश्चन ईशः उस किसी सर्व-समर्थ
अरणं रक्षककी
ईमहि मैं शरण लेता हूँ
॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुवर्णने गजेन्द्रोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

एवं व्यवसितो बुद्धचा समाधाय मनो हृदि ।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

एवं व्यवसितः बुद्ध्या समाधाय मनः हृदि जजाप परमं जाप्यं प्राक् जन्मनि अनुशिक्षितम् ॥१॥

एवं बुद्ध्या	इस प्रकार बुद्धिसे	**अनुशिक्षितं**	सीखे हुए
व्यवसितः	निश्चय करके	**परमं जाप्यं**	इस उत्तम स्तोत्रका
मनः हृदि	मनको हृदयमें	**जजाप**	पाठ करने लगा
समाधाय	एकाग्र करके,		॥१॥
प्राक् जन्मनि	पूर्व जन्ममें		

गजेन्द्र उवाच–

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥ २ ॥

ॐ नमः भगवते तस्मै यत एतत् चिदात्मकं पुरुषाय आदि बीजाय पर ईशाय अभिधीमहि ॥२॥

ॐ तस्मै	ओंकार स्वरूप उस	**आदि बीजाय**	(सृष्टिके) आदि
भगबते	भगवान्‌को		कारण
नमः	नमस्कार	**पुरुषाय**	पुरुष
यत एतत्	जिनसे इस	**पर ईशाय**	परमेश्वरका
	(शरीरादिको)	**अभिधीमहि**	मैं ध्यान करता हूँ
चिदात्मकं	चेतन स्वरूपता		॥२॥
	मिलती है,		

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ।
योऽस्मात् परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम् ॥ ३ ॥

यस्मिन् इदं यतः च इदं येन इदं य इदं स्वयं यः अस्मात् परस्मात् च परं तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम् ॥३॥

यस्मिन् इदं	जिनमें यह जगत् है,
च यतः इदं	और जिनसे यह (उत्पन्न) है,
येन इदं	जिनसे यह (व्याप्त) है,
य स्वयं इदं	जो स्वयं इस (जगत) के रूपमें है
यः अस्मात्	जो इस कार्यरूप
च	तथा
परस्मात्	(इसके) कारणसे
परं	परे है
तं स्वयम्भुवं	उन स्वयम्भूकी
प्रपद्ये	(मैं) शरण लेता हूँ ॥३॥

यः स्वात्मनेदं निजमाययार्पितं
क्वचिद् विभातं क्व च तत् तिरोहितम् ।
अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते
स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥ ४ ॥

यः स्व आत्मनि इदं निज मायया अर्पितं क्वचित् विभातं क्व च तत् तिरोहितं अविद्ध दृक् साक्षि उभयं तत् ईक्षते स आत्ममूलः अवतु मां परात् परः ॥४॥

यः अविद्ध दृक्	जो अलुप्त ज्ञान
स्व आत्मनि	अपने भीतर ही
क्वचित् विभातं	कभी प्रकट रहने-वाले,
च क्व तत्	और कभी उसके
तिरोहितं	अदृश्य रहनेपर
इदं	इस (विश्व) को
निज मायया	अपनी मायासे
अर्पितं	बनाये
तत् उभयं	इसके उन दोनों रूपोंके
साक्षि	साक्षी होकर (उसे)
ईक्षते	देखते हैं
स आत्ममूलः	वे अपने स्वयं कारण
परात्	(प्रकृति आदि) परसे
परः	भी पर
मां अवतु	मेरी रक्षा करें ॥४॥

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो
लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ।
तमस्तदाऽऽसीद् गहनं गभीरं
यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥ ५ ॥

कालेन पञ्चत्वं इतेषु कृत्स्नशः लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु तमः तदा आसीत् गहनं गभीरं यः तस्य पारे अभिविराजते विभुः ॥५॥

कालेन	कालक्रमसे
कृत्स्नशः	सम्पूर्ण
लोकेषु पालेषु	लोकों, लोकपालों
च सर्वहेतुषु	और सभी कारणोंके
पञ्चत्वं इतेषु	नाशको प्राप्त हो जानेपर
तदा गहनं	तब घोर
गभीरं	गम्भीर
तमः आसीत्	अन्धकार रह जाता है
यः विभुः	जो सर्वव्यापक
तस्य पारे	उसके पार
अभिविराजते	विराजमान रहते हैं ॥५॥

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदु-
र्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो
दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥ ६ ॥

न यस्य देवाः ऋषयः पदं विदुः जन्तुः पुनः कः अर्हति गन्तुं ईरितुम् यथा नटस्य आकृतिभिः विचेष्टतः दुरत्यय अनुक्रमणः स मा अवतु ॥६॥

देवाः ऋषयः	देवता और ऋषि
यस्य पदं	जिनका स्वरूप
न विदुः	नहीं जानते
पुनः कः	फिर दूसरा कौन
जन्तुः	प्राणी
ईरितुं गन्तुं	(उनकी) चेष्टा जान
अर्हति	सकता है,
यथा	जैसे
आकृतिभिः	आकारों द्वारा
नटस्य	नटकी
विचेष्टितः	चेष्टाओंको
दुरत्यय	दुर्गम
अनुक्रमणः	लीलामय
स मा अवतु	वे (प्रभु) मेरी रक्षा करें ॥६॥

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं
विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने
भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥ ७ ॥

दिदृक्षवः यस्य पदं सुमङ्गलं विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः चरन्ति अलोक व्रतं अव्रणं वने भूत आत्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥७॥

यस्य सुमङ्गलं	जिनके मंगलमय	**मुनयः**	मुनिगण
पदं दिदृक्षवः	स्वरूपको देखनेकी इच्छासे	**वने अव्रणं**	वनमें रहकर त्रुटि रहित
विमुक्तसङ्गा	आसक्ति हीन	**अलोक व्रतं**	लोकोत्तर व्रत
भूत	समस्त प्राणियोंके	**चरन्ति**	करते हैं
आत्मभूताः	आत्मा हुए,	**स सुहृदः**	वे सर्वसुहृद
सुसाधवः	अच्छे सत्पुरुष	**मे गतिः**	मेरी गति है ॥७॥

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा
न नामरूपे गुणदोष एव वा ।
तथापि लोकाप्ययसंभवाय यः
स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥ ८ ॥

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नाम रूपे गुण दोष एव वा तथा अपि लोक अप्यय संभवाय यः स्वमायया तानि अनुकालं ऋच्छति ॥८॥

यस्य जन्म	जिनका जन्म	**लोकस्य**	लोकोंकी
वा कर्म	अथवा कर्म	**सम्भवाय**	सृष्टि और
विद्यते न	उपस्थित नहीं है,	**अप्यय**	प्रलयके लिए
नाम रूपे	नाम और रूप,	**यः स्वमायया**	जो अपनी मायासे
वा गुण-दोष	अथवा गुण दोष	**अनुकालं तानि**	समयानुसार उनको
एव न	भी नहीं है	**ऋच्छति**	धारण करते हैं ॥८॥
तथा अपि	फिर भी		

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥ ९ ॥

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणे अनन्त शक्तये अरूपाय उरु रूपाय नमः आश्चर्य कर्मणे ॥९॥

तस्मै परेशाय	उन परमेश्वर	**उरु रूपाय**	अनन्ताकार,
अनन्त शक्तये	अनन्त शक्ति	**आश्चर्य कर्मणे**	आश्चर्य कर्माको
ब्रह्मणे नमः	ब्रह्मको नमस्कार,	**नमः**	नमस्कार ॥९॥
अरूपाय	निराकार,		

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥१०॥

नमः आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने नमः गिरां विदूराय मनसः चेतसां अपि ॥१०॥

आत्मप्रदीपाय	स्वयं प्रकाश,	**गिरां मनसः**	वाणी, मन,
साक्षिणे	सर्वसाक्षी	**चेतसां अपि**	चित्तसे भी
परमात्मने	परमात्माको	**विदूराय**	अत्यन्त दूरको
नमः	नमस्कार	**नमः**	नमस्कार ॥१०॥

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ।
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥११॥

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता नमः कैवल्य नाथाय निर्वाण सुख संविदे ॥११॥

विपश्चिता	विवेकी पुरुषों द्वारा	**संविदे**	अनुभूति रूप
नैष्कर्म्येण	कर्मत्याग द्वारा	**कैवल्य**	कैवल्य मोक्षके
सत्त्वेन	चित्तमें	**नाथाय**	स्वामीको
प्रतिलभ्याय	मिलनेवाले	**नमः**	नमस्कार ॥११॥
निर्वाण सुख	निर्वाण मोक्ष-सुख		

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे ।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥१२॥

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे निर्विशेषाय साम्याय नमः ज्ञानघनाय च ॥१२॥

शान्ताय घोराय	शान्त, घोर,	**निर्विशेषाय**	(स्वयं) निर्विशेष,
मूढाय	मूढ	**साम्याय**	समत्वरूप
गुणधर्मिणे	गुणोंके धर्मको स्वीकार करने-वालेको	**च ज्ञानघनाय**	तथा घनीभूत-ज्ञानको
नमः	नमस्कार,	**नमः**	नमस्कार ॥१२॥

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ।
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥१३॥

क्षेत्रज्ञाय नमः तुभ्यं सर्व अध्यक्षाय साक्षिणे पुरुषाय आत्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥१३॥

क्षेत्रज्ञाय	क्षेत्रज्ञ,	**आत्ममूलाय**	जीवोंके मूल कारण,
सर्व अध्यक्षाय	सबके अध्यक्ष,	**मूलप्रकृतये**	मूल प्रकृति स्वरूप-को
साक्षिणे	साक्षी		
तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार,	**नमः**	नमस्कार ॥१३॥

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे ।
असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥१४॥

सर्व इन्द्रिय गुण द्रष्ट्रे सर्व प्रत्यय हेतवे असताच्छायया उक्ताय सदा भासाय ते नमः ॥१४॥

सर्व इन्द्रिय	सब इन्द्रियोंके	**हेतवे**	कारण,
गुण द्रष्ट्रे	विषयोंके देखनेवाले,	**असताच्छायया**	छायाके समान असत् (अहंकार)
सर्व प्रत्यय	समस्त प्रतीतियोंके		

उक्ताय	कहे जानेवाले	**ते नमः**	आपको नमस्कार ॥१४॥
सदा	नित्य सत् रूपसे		
भासाय	प्रकाशित		

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय
निष्कारणायाद्भुतकारणाय ।
सर्वागमाम्नायमहार्णवाय
नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥१५॥

नमः नमः ते अखिल कारणाय निष्कारणाय अद्भुत कारणाय सर्व आगम आम्नाय महार्णवाय नमः अपवर्गाय परायणाय ॥१५॥

अखिल	सबके	**ते नमः नमः**	आपको बार-बार नमस्कार
कारणाय	कारण तथा		
निष्कारणाय	जिनका कोई कारण नहीं है,	**सर्व आगम आम्नाय**	सम्पूर्ण वेद तथा शास्त्रोंके
अद्भुत	(निर्विकार रहते हुए) अद्भुत	**महार्णवाय**	समुद्र स्वरूप,
कारणाय	कारण रूप	**अपवर्गाय**	मोक्ष स्वरूप
		परायणाय	सर्वाश्रयको
		नमः	नमस्कार ॥१५॥

गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय
तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ।
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम-
स्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥१६॥

गुण अरणिच्छन् चित् उष्मपाय तत् क्षोभ विस्फूर्जित मानसाय नैष्कर्म्य भावेन विवर्जित आगम स्वयं प्रकाशाय नमः करोमि ॥१६॥

गुण	गुणों रूप	**चित् उष्मपाय**	ज्ञानाग्नि स्वरूप,
अरणिच्छन्	अरणिमें छिपे हुए	**तत्**	उन (गुणों) के
		क्षोभ	क्षोभसे

विस्फूर्जित	(जिनमें) प्रगट होता है.
मानसाय	मनको
नैष्कर्म्य	निष्कर्मत्वकी
भावेन	भावनासे
विवर्जित आगम	शास्त्रकी उपेक्षा कर देने वालोंको
स्वयं प्रकाशाय	स्वयं प्रकाशित होनेवाले
नमः	(प्रभुको) नमस्कार
करोमि	करता हूँ ॥१६॥

माद्दक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय

मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय ।

स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत-

प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥१७॥

माद्दक् प्रपन्न पशुपाश विमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरुणाय नमः आलयाय स्व अंशेन सर्व तनुभृत् मनसि प्रतीत प्रत्यक् दृशे भगवते बृहते नमः ते ॥१७॥

माद्दक प्रपन्न	मेरे जैसे शरणागत
पशुपाश	पशुके बन्धनको
विमोक्षणाय	खोल देनेवाले
मुक्ताय	मुक्त स्वरूप
भूरिकरुणाय	अतिशय दयालु
आलयाय नमः	सर्वाश्रयको नमस्कार
स्व अंशेन	अपने अंशसे
सर्व तनुभृत्	सब शरीर-धारियोंके
मनसि प्रतीत	अन्तःकरणमें प्रतीत होनेवाले
प्रत्यक् दृशे	अन्तर्यामी
बृहते	अपरिच्छिन्न
भगवते	भगवान्
ते नमः	आपको नमस्कार ॥१७॥

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तै-

र्दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय ।

मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय

ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥१८॥

आत्म आत्मज आप्त गृह वित्त जनेषु सक्तैः दुष्प्रापणाय गुणसंग विवर्जिताय मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय ज्ञानात्मने भगवते नमः ईश्वराय ॥१८॥

आत्म आत्मज	शरीर; पुत्र,	**स्व हृदये**	अपने हृदयमें
आप्त गृह	गुरुजन, घर,	**परिभाविताय**	चिन्तन किये जाने-
वित्त जनेषु	धन, स्वजनोंमें		वाले
सक्तैः	आसक्त लोगोंके लिए	**ज्ञानात्मने**	ज्ञान स्वरूप
दुष्प्रापणाय	दुष्प्राप्य,	**भगवते**	भगवान्
गुण सर्ग	गुणोंकी सृष्टिसे	**ईश्वराय**	परमेश्वरको
विवर्जिताय	रहित,	**नमः**	नमस्कार ॥१८॥
मुक्तात्मभिः	मुक्तात्माओं द्वारा		

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा
भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।
किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं
करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥१९॥

यं धर्म काम अर्थ विमुक्ति कामा भजन्त इष्टां गतिं आप्नुवन्ति किं तु आशिषः राति अपि देहं अव्ययं करोतु मे अदभ्रदयः विमोक्षणम् ॥१९॥

धर्म काम	धर्म, काम,	**किं तु**	और भी (जो)
अर्थ विमुक्ति	अर्थ, मोक्ष	**आशिषः**	अभिलाषाएँ तथा
कामा	चाहनेवाले	**अव्ययं देहं राति**	सुदृढ़ शरीर देते हैं वे
यं भजन्त	जिसका भजन करके	**अदभ्रदयः**	परम दयालु
इष्टां गतिं	अभीष्ट गति	**मे विमोक्षणं**	मेरा उद्धार
आप्नुवन्ति	पाते हैं,	**करोतु**	करें ॥१९॥

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं
वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं
गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥२०॥

एकान्तिनः यस्य न कञ्चन अर्थं वाञ्छन्ति ये वै भगवत् प्रपन्नाः अति अद्भुतं तत् चरितं सुमङ्गलं गायन्ति आनन्दसमुद्र मग्नाः ॥२०॥

यस्य भगवत्	जिन भगवान्के	**गायन्ति**	गाते हुए
ये प्रपन्नाः	जो शरणागत	**आनन्दसमुद्र**	आनन्द-सागरमें
एकान्तिनः	अनन्य भक्त हैं	**मग्नाः**	निमग्न रहकर
तत् अति	उनके अत्यन्त	**वै कञ्चन**	निश्चय कोई भी
अद्भुतं	विचित्र	**अर्थं नः**	भोग नहीं
सुमङ्गलं	मंगलमय	**वाञ्छन्ति**	चाहते ॥२०॥
चरितं	चरितोंको		

तमक्षरं ब्रह्म परं परेश-
मव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् ।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूर-
मनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥२१॥

तं अक्षरं ब्रह्म परं परेशं अव्यक्तं आध्यात्मिक योग गम्यं अतीन्द्रियं सूक्ष्मं इव अतिदूरं अनन्तं आद्यं परिपूर्णं ईडे ॥२१।

तं अक्षरं	उन अविनाशी,	**अतीन्द्रियं**	इन्द्रियातीत,
परं ब्रह्म	परम ब्रह्म,	**सूक्ष्मं इव**	सूक्ष्म जैसे,
परेशं	परमेश्वर,	**अतिदूरं**	अत्यन्त दूर,
अव्यक्तं	अव्यक्त,	**अनन्तं आद्यं**	अनन्त, आदि पुरुष,
आध्यात्मिक	आध्यात्मिक	**परिपूर्णं ईडे**	परिपूर्णकी स्तुति
योग	योगसे		करता हूँ ॥२१॥
गम्यं	जानने योग्य,		

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ।
नामरूपविभेदेन फल्गव्या च कलया कृताः ॥२२॥

यस्य ब्रह्मा आदयः देवा वेदा लोकाः चर अचराः नाम रूप विभेदेन फल्गव्या च कलया कृताः ॥२२॥

ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मादि
देवा	देवता,
वेदा	सब वेद,
चर अचराः	जंगम-स्थावर
लोकाः	सब लोक
नाम च रूप	नाम और रूपके
विभेदेन	भेदसे
यस्य फल्ग्व्या	जिसकी अत्यन्त क्षुद्र
कलया कृताः	कलासे बने हैं ॥२२॥

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो
निर्यान्ति संयान्त्यसकृत् स्वरोचिषः ।
तथा यतोऽयं गुणसंप्रवाहो
बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥२३॥

यथा अर्चिषः अग्नेः सवितुः गभस्तयः निर्यान्ति संयान्ति असकृत् स्वरोचिषः तथा यतः अयं गुण संप्रवाहः बुद्धिः मनः खानि शरीर सर्गाः ॥२३॥

यथा स्वरोचिषः	जैसे स्वयं प्रकाश
अग्नेः अर्चिषः	अग्निसे लपटें या
सवितुः	सूर्यसे
गभस्तयः	किरणें
असकृत्	निरन्तर
निर्यान्ति	निकलती हैं
संयान्ति	(तथा उन्हींमें) मिलती है,
तथा यतः	उसी प्रकार जिनसे
अयं गुण	यह गुणोंका
संप्रवाहः	प्रवाह रूप
बुद्धिः मनः	बुद्धि, मन,
खानि शरीर	इन्द्रिय, शरीर रूप
सर्गाः	सृष्टि है ॥२३॥

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्
न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः ।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्-
निषेधशेषो जयतादशेषः ॥२४॥

स वै न देव असुर मर्त्यतिर्यक् न स्त्री न षण्ढः न पुमान् न जन्तुः न अयं गुणः कर्म न सत् न च असत् निषेध शेषः जयतात् अशेषः ॥२४॥

वै स न	निश्चय वे न
देव असुर	देवता, असुर,
मर्त्यतिर्यक्	मनुष्य या पशु-पक्षी हैं,
न स्त्री न	न स्त्री है, न
षण्ढः	नपुंसक,
न पुमान्	न पुरुष हैं,
न जन्तुः	न कोई जीव,
अयं गुणः	यह गुण-
कर्म न	कर्म भी नहीं हैं,
न सत्	न सत् हैं,
च न असत्	और न असत्
निषेध शेषः	निषेधावधि रूपसे बचे
अशेषः	सर्वरूपकी
जयतात्	जय हो ॥२४॥

जिजीविषे नाहमिहामुया कि-
मन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लव-
स्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥२५॥

जिजीविषे न अहं इह अमुया किं अन्तः बहिः च आवृतये भय योन्या इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवः तस्य आत्मलोक आवरणस्य मोक्षम् ॥२५॥

अन्तः च बहिः	भीतर और बाहरसे
भय आवृतये	भयसे घिरी
अमुया	इस (हाथीकी)
योन्या किं	योनिसे क्या लाभ
इह जिजीविषे	इस योनिमेंजीनेकी इच्छा
अहं न	मैं नहीं करता हूँ,
कालेन यस्य	कालके द्वारा जिसका
विप्लवः न	विनाश नहीं होता
आत्मलोक	आत्मप्रकाशको
तस्य आवरणस्य	उस ढकनेवाले अज्ञासे
मोक्षं इच्छामि	छूटना चाहता हूँ ॥२५॥

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥२६॥

सः अहं विश्वसृजं विश्वं अविश्वं विश्ववेदसं विश्व आत्मानं अजं ब्रह्म प्रणतः अस्मि परं पदम् ॥२६॥

सः	ऐसा (अज्ञानसे छूटना चाहनेवाला)	**विश्ववेदसं**	विश्वके ज्ञाता,
अहं	मैं	**विश्व आत्मानं**	विश्वात्मा
		अजं परं पदं	अजन्मा, परम गति
विश्वसृजं	विश्वके निर्माता,	**ब्रह्म**	परम ब्रह्मको
विश्वं	विश्वरूप,	**प्रणतः अस्मि**	प्रणाम करता हूँ ॥२६॥
अविश्वं	विश्वातीत,		

योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते ।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥२७॥

योग रन्धित कर्माणः हृदि योग विभाविते योगिनः यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतः अस्मि अहम् ॥२७॥

योग कर्माणः	योगाभ्याससे कर्मों-को	**यं प्रपश्यन्ति**	जिनका साक्षात्कार करते हैं
रन्धित	भस्म करके	**तं योगेशं**	उन योगेश्वरको
योग विभाविते	योग द्वारा परिशुद्ध	**अहं नतः अस्मि**	मैं प्रणाम करता हूँ ॥२७॥
हृदि योगिनः	हृदयमें योगीगण		

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग-
शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ।
प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये
कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥२८॥

नमो नमः तुभ्यं असह्यवेग शक्तित्रयाय अखिलधी गुणाय प्रपन्न पालाय दुरन्त शक्तये कद् इन्द्रियाणां अनवाप्यवर्त्मने ॥२८॥

असह्यवेग	असह्य वेगवाली	**अनवाप्यवर्त्मने**	जिनकी प्राप्तिका मार्ग नही पाया जा सकता उन
शक्तित्रयाय	तीन शक्तियोंवाले,		
अखिलधी	सम्पूर्ण बुद्धि एवं		
गुणाय	गुण स्वरूप,	**दुरन्त शक्तये**	अपार शक्ति
प्रपन्न पालाय	शरणागत रक्षक,	**तुभ्यं नमो नमः**	आपको बार-बार नमस्कार ॥२८॥
कद् इन्द्रियाणां	अजितेन्द्रियों द्वारा		

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहंधिया हतम् ।
तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥२९॥

न अयं वेद स्वम् आत्मानं यत् शक्त्या अहंधिया हतं तं दुरत्यय माहात्म्यं भगवन्तं इतः अस्मि अहम् ॥२९॥

यत् शक्त्या	जिनकी शक्ति (माया) से	**अयं न**	यह (जीव) नहीं
अहंधिया	(उत्पन्न) अहं बुद्धि द्वारा	**वेद**	जानता
हतं	आहत (ढका)	**तं दुरत्ययं**	उन अपार
स्वं आत्मानं	अपने आत्माको	**माहात्म्यं**	महिमामय
		भगवन्तं	भगवान्‌को
		अहं इतः अस्मि	मैं नमस्कार करता हूँ ॥२९॥

श्रीशुक उवाच–

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं
ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः ।
नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्
तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥३०॥

एवं गजेन्द्रं उपवर्णित निर्विशेषं ब्रह्मा आदयः विविधलिङ्ग भिदा अभिमानाः न एते यदा उपससृपुः निखिल आत्मकत्वात् तत्र अखिल अमरमयः हरिः आविः आसीत् ॥३०॥

एवं गजेन्द्रं	इस प्रकार गजेन्द्रके	**एते ब्रह्मा**	ये ब्रह्मा
निर्विशेषं	बिना किसी विशेषताके	**आदयः**	आदि
उपवर्णितं	स्तुति करनेपर	**यदा उपससृपुः**	जब समीप
विविधलिङ्ग	भिन्न-भिन्न रूप	**न**	नहीं आए,
भिदा	भेदोंका	**निखिल**	तब सभी
अभिमानाः	अभिमान करनेवाले	**आत्मकत्वात्**	सर्वात्मा होनेके कारण

अखिल	अखिल	**तत्र आविः**	वहां प्रगट
अमरमयः	देवमय	**आसीत्**	हो गये ॥३०॥
हरिः	श्रीहरि		

तं तद्वदार्त्तमुपलभ्य जगन्निवासः
स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः ।
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमान-
श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥३१॥

तं तद्वत् आर्तं उपलभ्य जगत् निवासः स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमानः चक्र आयुधः अभ्यगमत् आशु यतः गजेन्द्रः ॥३१॥

तं तद्वत्	उस (गजेन्द्रको) इस प्रकार	**समुह्यमानः**	ढोये जाते
आर्तं उपलभ्य	आर्त देखकर	**चक्र आयुधः**	अपना अस्त्र चक्र लेकर
स्तोत्रं	(उसकी) स्तुतिको	**स्तुवद्भिः**	स्तुति करते
निशम्य	सुनकर	**दिविजैः सह**	देवताओंके साथ
छन्दोमयेन	वेदमय	**यतः गजेन्द्रः**	जहां गजेन्द्र थे,
गरुडेन	गरुड़से	**आशु अभ्यगमत्**	शीघ्र आ गये ॥३१॥

सोऽन्तः सरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्त चक्रम् ।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा-
न्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते ॥३२॥

सः अन्तः सरसि उरुबलेन गृहीतः आर्तः दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्त चक्रं उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरं आह कृच्छात् नारायण अखिल गुरो भगवन् नमः ते ॥३२॥

अन्तः सरसि	सरोवरके भीतर	**गृहीत आर्तः**	पकड़नेसे व्याकुल
उरुबलेन	अत्यन्त बलवान (मगर) के	**सःख**	उसने आकाशमें
		उपात्त चक्रं	चक्र उठाये

गरुत्मति	गरुड़पर बैठे	**गिरं आह**	यह वाणी बोला
हरिं	श्रीहरिको	**अखिल गुरो**	अखिल गुरो !
दृष्ट्वा	देखकर	**भगवन्**	भगवान्
साम्बुजकरं	कमल लिए सूँडको	**नारायण**	नारायण
उत्क्षिप्य	ऊपर उठाकर	**ते नमः**	आपको नमस्कार
कृच्छात्	कष्टपूर्वक		॥३२॥

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं
संपश्यतां हरिरमूमुचदुस्रियाणाम् ॥३३॥

तं वीक्ष्य पीडितं अजः सहसा अवतीर्य सग्राहं आशु सरसः कृपया उज्जहार ग्राहात् विपाटित मुखात् अरिणा गजेन्द्रं संपश्यतां हरिः अमूमुचत् उस्रियाणाम् ॥३३॥

तं पीडितं	उसको पीड़ित	**विपाटित**	फाड़े गये
वीक्ष्य अजः	देखकर अजन्मा प्रभु	**मुखात्**	मुखसे
सहसा अवतीर्य	सहसा उतर पड़े	**उस्रियाणां**	देवताओंके
कृपया	कृपापूर्वक	**सम्पश्यतां**	देखते हुए
सग्राहं	मगरके साथ (उसे)	**अरिणा गजेन्द्रं**	शत्रुसे गजेन्द्रको
सरसः	सरोवरसे	**हरिः अमूमुचत्**	श्रीहरिने छुड़ा दिया
उज्जहारः	ऊपर निकाल लिया		॥३३॥
ग्राहात्	ग्राहके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टस्कन्धे
गजेन्द्रमोक्षणे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

तदा देवर्षिगन्धर्वा ब्रह्मेशानपुरोगमाः ।
मुमुचुः कुसुमासारं शंसन्तः कर्म तद्धरेः ॥ १ ॥

तदा देव ऋषि गन्धर्वा ब्रह्म ईशान पुरः अगमाः मुमुचुः कुसुम आसारं शंसन्तः कर्म तत् हरेः ॥१॥

तदा देव ऋषि	तब देवता, ऋषि,	**तत् हरेः**	उस श्रीहरिके
गन्धर्वा ब्रह्म	गन्धर्व, ब्रह्मा और	**कर्म शंसन्तः**	कर्मकी प्रशंसा
ईशान पुरः	शंकरजीको आगे		करते हुए
	करके	**कुसुम आसारं**	पुष्पोंकी वर्षा
अगमाः	वहां आए तथा	**मुमुचुः**	करने लगे ॥१॥

नेदुर्दुन्दुभयो दिव्या गन्धर्वा ननृतुर्जगुः ।
ऋषयश्चारणाः सिद्धास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥

नेदुः दुन्दुभयः दिव्या गन्धर्वा ननृतुः जगुः ऋषयः चारणाः सिद्धाः तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥२॥

दिव्या	देवताओंके	**पुरुषोत्तमं**	भगवान् पुरुषोत्तम-
दुन्दुभयः नेदुः	नगाड़े बजने लगे,		की
गन्धर्वा ननृतुः	गन्धर्व नाचने लगे,	**तुष्टुवुः**	स्तुति करने लगे
चारणाः जगुः	चारण गाने लगे,		॥२॥
ऋषयः सिद्धाः	ऋषि एवं सिद्ध गण		

योऽसौ ग्राहः स वै सद्यः परमाश्चर्यरूपधृक् ।
मुक्तो देवलशापेन हूहूर्गन्धर्वसत्तमः ॥ ३ ॥

यः असौ ग्राहः स वै सद्यः परम आश्चर्यं रूप धृक् मुक्तः देवलशापेन हूहू गन्धर्व सत्तमः ॥३॥

यः असौ ग्राहः	जो यह मगर था	**परम आश्चर्यं**	अत्यन्त विचित्र
स वै सद्यः	वह तो तत्काल	**रूप धृक्**	रूप धारण करके
देवलशापेन	देवल ऋषिके शापसे	**गन्धर्व सत्तम**	गन्धर्व श्रेष्ठ
मुक्तः	छूटकर	**हूहू**	हूहू हो गया ॥३॥

प्रणम्य शिरसाधीशमुत्तमश्लोकमव्ययम् ।
अगायत यशोधाम कीर्तन्यगुणसत्कथम् ॥ ४ ॥

प्रणम्य शिरसा अधीशं उत्तम श्लोकं अव्ययं अगायत यशोधाम कीर्तन्य गुण सत् कथं ॥४॥

शिरसा अधीशं	मस्तक झुकाकर उन सर्वेश,	**यशोधाम**	उन कीर्तिधामके
उत्तम श्लोकं	उत्तम कीर्ति,	**कीर्तन्य गुण**	कीर्तनीय गुण एवं
अव्ययं प्रणम्य	अविनाशीको प्रणाम करके	**सत् कथं**	पवित्र चरितोंको
		अगायत	गाने लगा ॥४॥

सोऽनुकम्पित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्यतम् ।
लोकस्य पश्यतो लोकं स्वमगान्मुक्तकिल्बिषः ॥ ५ ॥

सः अनुकम्पित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्य तं लोकस्य पश्यतः लोकं स्वं अगात् मुक्त किल्बिषः ॥५॥

सः ईशेन	वह सर्वेश्वरके	**लोकस्य पश्यतः**	सब लोगोंके देखते हुए
अनुकम्पित	अनुग्रहको पाकर	**स्वं लोकं**	अपने लोक
मुक्त किल्बिषः	पापोंसे छूटकर	**अगात्**	चला गया ॥५॥
तं प्रणम्य	उनको प्रणाम करके		
परिक्रम्य	परिक्रमा करके,		

गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद् विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात् ।
प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ ६ ॥

गजेन्द्रः भगवत् स्पर्शात् विमुक्तः अज्ञान बन्धनात् प्राप्तः भगवतः रूपं पीतवासाः चतुर्भुजः ॥६॥

भगवत् स्पर्शात्	भगवान्‌के स्पर्शसे	**पीतवासाः**	पीताम्बरधारी,
गजेन्द्रः	गजेन्द्र	**चतुर्भुजः**	चतुर्भुज
अज्ञान	अज्ञानके	**भगवतः रूपं**	भगवान्‌के रूपको
बन्धनात्	बन्धनसे	**प्राप्तः**	पा गया ॥६॥
विमुक्तः	छूटकर		

स वै पूर्वमभूद् राजा पाण्ड्यो द्रविडसत्तमः ।
इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः ॥ ७ ॥

स वै पूर्वम् अभूत् राजा पाण्ड्यः द्रविड सत्तमः इन्द्रद्युम्न इति ख्यातः विष्णुव्रत परायणः ॥७॥

स वै पूर्वं	वह तो पहिले जन्ममें	**विष्णुव्रत**	विष्णुव्रत
इन्द्रद्युम्न	इन्द्रद्युम्न	**परायणः**	परायण
इति ख्यातः	इस नामसे प्रसिद्ध	**पाण्ड्यः राजा**	पाण्ड्य देशका राजा
द्रविड सत्तमः	द्रविड़ श्रेष्ठ	**अभूत्**	था ॥७॥

स एकदाऽऽराधनकाल आत्मवान्
गृहीतमौनव्रत ईश्वरं हरिम् ।
जटाधरस्तापस आप्लुतोऽच्युतं
समर्चयामास कुलाचलाश्रमः ॥ ८ ॥

स एकदा आराधनकाल आत्मवान् गृहीतमौनव्रत ईश्वरं हरिं जटाधरः तापस आप्लुतः अच्युतं समर्चयामास कुलाचल आश्रमः ॥८॥

स आत्मवान्	वह मनस्वी
जटाधरः	जटा धारणकर,
तापस	तपस्वी बनकर
कुलाचल	मलय पर्वतपर
आश्रमः	आश्रममें
आराधनकाल	उपासनाके समय
आप्लुतः	स्नान करके
गृहीतमौनव्रत	मौन व्रत धारण करके
ईश्वरं अच्युतं	सर्वेश्वर अच्युत
हरिं	श्रीहरिकी
समर्चयामास	अर्चनाकर रहा था ॥८॥

यदृच्छया तत्र महायशा मुनिः
समागमच्छिष्यगणैः परिश्रितः ।
तं वीक्ष्य तूष्णीमकृतार्हणादिकं
रहस्युपासीनमृषिश्चुकोप ह ॥ ९ ॥

यदृच्छया तत्र महायशा मुनिः समागमत् शिष्यगणैः परिश्रितः तं वीक्ष्य तूष्णीं अकृत अर्हण आदिकं रहसि उपासीनं ऋषिः चुकोप ह ॥९॥

यदृच्छया तत्र	संयोगवश वहां
शिष्यगणैः	शिष्य समुदायके
परिश्रितः	सहित
महायशा	अत्यन्त यशस्वी
मुनिः	मुनि (अगस्त्य)
समागमत्	आ गये और
अर्हण आदिकं	पूजा आदि
अकृत	न करके
तं	उस (राजा) को
तूष्णीं	चुपचाप
रहसि उपासीनं	एकान्तमें बैठा
वीक्ष्य ऋषिः ह	देखकर ऋषि तो
चुकोप	क्रुद्ध हो गये ॥९॥

तस्मा इम शापमदादसाधु-
रयं दुरात्माकृतबुद्धिरद्य ।
विप्रावमन्ता विशतां तमोऽन्धं
यथा गजः स्तब्धमतिः स एव ॥१०॥

तस्मात् इमं शापं अदात् असाधुः अयं दुरात्मा अकृतबुद्धिः अद्य विप्र अवमन्ता विशतां तमः अन्धं यथा गजः स्तब्धमतिः स एव ॥१०॥

तस्मात् इमं	इसलिए यह
शापं अदात्	शाप दिया---
अयं असाधुः	'यह असाधु
दुरात्मा	दुष्टचित्त,
अकृतबुद्धिः	बुद्धिहीन है,
अद्य विप्र	आज ब्राह्मणका
अवमन्ता	अपमान इसने किया
यथा स्तब्धमतिः	जैसे जड़ बुद्धि हो,
गजः	हाथी हो,
अन्धं तमः	घोर अज्ञानमय
स एव विशतां	उसी (हाथीकी योनि) में प्रवेश करे ॥१०॥

श्रीशुक उवाच—

एवं शप्त्वा गतोऽगस्त्यो भगवान् नृप सानुगः ।
इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिर्दिष्टं तदुपधारयन् ॥११॥

एवं शप्त्वा गतः अगस्त्यः भगवान् नृप सानुगः इन्द्रद्युम्नः अपि राजर्षिः दिष्टं तत् उपधारयन् ॥११॥

नृप	राजन् !
एवं शप्त्वा	इस प्रकार शाप देकर
सानुगः	अनुयायियोंके साथ
भगवान्	भगवान्
अगस्त्यः	अगस्त्य
गतः	चले गये
राजर्षिः	राजर्षि
इन्द्रद्युम्नः अपि	इन्द्रद्युम्नने भी
तत् दिष्टं	उसे प्रारब्ध
उपधारयन्	समझ लिया ॥११॥

आपन्नः कौञ्जरीं योनिमात्मस्मृतिविनाशिनीम् ।
हर्यर्चनानुभावेन यद्गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः ॥१२॥

आपन्नः कौञ्जरीं योनिम् आत्मस्मृति विनाशिनीम् हरि अर्चना अनुभावेन यत् गजत्वे अपि अनुस्मृतिः ॥१२॥

आत्मस्मृति	आत्मज्ञानको
विनाशिनीं	नष्ट कर देनेवाली
कौञ्जरीं योनिं	हाथीकी योनिमें
आपन्नः	पहुँच गये, किन्तु
यत्	क्योंकि भगवान्
हरि अर्चना	श्रीहरिकी पूजाके
अनुभावेन	प्रभावसे
गजत्वे अपि	हाथी होनेपर भी
अनुस्मृतिः	पिछली स्मृति (बनी रही) ॥१२॥

एवं विमोक्ष्य गजयूथपमब्जनाभ-
स्तेनापि पार्षदगतिं गमितेन युक्तः ।
गन्धर्वसिद्धविबुधैरुपगीयमान-
कर्माद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात् ॥१३॥

एवं गज यूथपं अब्जनाभः तेन अपि **पार्षद गतिं गमितेन युक्तः गन्धर्व सिद्ध विबुधैः उपगीयमान कर्म अद्भुतं स्वभवनं गरुडासनः अगात् ॥१३॥**

एवं गज यूथपं	इस प्रकार गजराज-को	**गन्धर्व सिद्ध**	गन्धर्व, सिद्ध,
विमोक्ष्य	छुड़ाकर (उसे अपना)	**विबुधैः**	देवताओं द्वारा
पार्षद	पार्षद	**अद्भुतं कर्म**	(इस) अद्भुत कर्म-का
गतिं गमितेन	बना लिया	**उपगीयमानः**	गान होते समय ही
अब्जनाभः	भगवान् कमलनाभ	**गरुडासनः**	गरुड़पर बैठकर
तेन अपि युक्तः	उसके भी साथ	**स्वभवनं अगात्**	अपने धाम चले गये ॥१३॥

एतन्महाराज तवेरितो मया
कृष्णानुभावो गजराजमोक्षणम् ।
स्वर्ग्यं यशस्यं कलिकल्मषापहं
दुःस्वप्ननाशं कुरुवर्य शृण्वताम् ॥१४॥

एतत् महाराज तव ईरितः मया कृष्ण अनुभावः गजराज मोक्षणं स्वर्ग्यं यशस्यं कलि कल्मष अपहं दुःस्वप्न नाशं कुरुवर्य शृण्वताम् ॥१४॥

कुरुवर्य	कुरुश्रेष्ठ	**तव ईरितः**	तुमको सुनाया गया
महाराज	महाराज !	**कृष्ण**	श्रीकृष्णका
मया एतत्	मेरे द्वारा यह	**अनुभावः**	प्रभाव

गजराज मोक्षणं	गजराजको छुड़ाना
शृण्वतां	सुननेवालोंको
स्वर्ग्यं	स्वर्ग तथा
यशस्यं	यश देनेवाला है,
कलि	कलियुगके
कल्मष अपहं	दोषोंको दूर करने-वाला है और
दुःस्वप्न नाशं	बुरे स्वप्न (के फल) को नष्ट करने वाला है ॥१४॥

यथानुकीर्तयन्त्येतच्छ्रेयस्कामा द्विजातयः ।
शुचयः प्रातरुत्थाय दुःस्वप्नाद्युपशान्तये ॥१५॥

यथा अनुकीर्तयन्ति एतत् श्रेयः कामा द्विजातयः शुचयः प्रातः उत्थाय दुःस्वप्न आदि उपशान्तये ॥१५॥

यथा	जैसे
श्रेयः	अपना कल्याण
कामाः	चाहनेवाले
द्विजातयः	द्विजातिके लोग
प्रातः उत्थाय	सबेरे उठकर
शुचयः	पवित्र होकर
दुःस्वप्न आदि	बुरे स्वप्नादिकी
उपशान्तये	शान्तिके लिए
एतत्	इसका
अनुकीर्तयन्ति	प्रतिदिन कीर्तन करते हैं ॥१५॥

इदमाह हरिः प्रीतो गजेन्द्रं कुरुसत्तम ।
शृण्वतां सर्वभूतानां सर्वभूतमयो विभुः ॥१६॥

इदं आह हरिः प्रीतः गजेन्द्रं कुरुसत्तम शृण्वतां सर्वभूतानां सर्व भूतमयः विभुः ॥१६॥

कुरुसत्तम	कुरुश्रेष्ठ परीक्षित
सर्वभूतमयः	सर्व प्राणिमय,
विभुः	सर्व व्यापक
हरिः प्रीतः	श्रीहरिने प्रसन्न होकर
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके
शृण्वतां गजेन्द्रं	सुनते हुए गजेन्द्रसे
इदं आह	यह कहा ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच–

ये मां त्वां च सरश्चेदं गिरिकन्दरकाननम् ।
वेत्रकीचकवेणूनां गुल्मानि सुरपादपान् ॥१७॥

ये मां त्वां च सरः च इदं गिरि कन्दर काननं वेत्र कीचक वेणूनां गुल्मानि सुरपादपान् ॥१७॥

ये मां त्वां	जो लोग मुझे, तुम्हें	**काननं**	(यहांके) बनको
च	और	**वेत्र कीचक**	बेत, कीचक
इदं सरः	इस सरोवरको	**वेणूनां**	बांसोंके
च गिरि	तथा पर्वतकी	**गुल्मानि**	झुरमुटोंको,
कन्दर	गुफाओंको,	**सुरपादपान्**	देववृक्षोंको ॥१७॥

शृङ्गाणीमानि धिष्ण्यानि ब्रह्मणो मे शिवस्य च ।
क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम् ॥१८॥

शृङ्गाणि इमानि धिष्ण्यानि ब्रह्मणः मे शिवस्य च क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम् ॥१८॥

इमानि	इन (पर्वत)	**मे प्रियं धाम**	मेरे प्रिय धाम
शृङ्गाणि	शिखरोंको,	**क्षीरोदं च**	क्षीरसागरको तथा
ब्रह्मणः मे	ब्रह्माजी, मेरे,	**भास्वरं**	तेजोमय
च शिवस्य	और शंकरजीके	**श्वेतद्वीपं**	श्वेत द्वीपको ॥१८॥
धिष्ण्यानि	निवास-स्थानोंको,		

श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम ।
सुदर्शनं पाञ्चजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ॥१९॥

श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम सुदर्शनं पाञ्चजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ॥१९॥

मम श्रीवत्सं	मेरी श्रीवत्सचिह्न,	**सुदर्शनं**	सुदर्शन-चक्र,
कौस्तुभं	कौस्तुभ मणि,	**पाञ्चजन्यं**	पांचजन्य शंख,
मालां	वनमाला,	**पतगेश्वरं**	पक्षिराज
कौमोदकीं गदां	कौमोदकी गदा,	**सुपर्णं**	गरुण ॥१९॥

शेषं च मत्कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं मदाश्रयाम् ।
ब्रह्माणं नारदमृषिं भवं प्रह्लादमेव च ॥२०॥

शेषं च मत् कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं मत् आश्रयां ब्रह्माणं नारदं ऋषिं भवं प्रह्लादं एव च ॥२०॥

मत् सूक्ष्मां कलां	मेरी सूक्ष्म कला	**ब्रह्माणं**	ब्रह्मा,
शेषं	शेष,	**नारदं ऋषिं**	देवर्षि नारद,
च मत्	तथा मेरे	**भवं च**	शंकरजी तथा
आश्रयां	आश्रयमें रहनेवाली	**प्रह्लादं एव**	प्रह्लादको भी ॥२०॥
देवीं श्रियं	देवी लक्ष्मी,		

मत्स्यकूर्मवराह्याद्यैरवतारैः कृतानि मे ।
कर्माण्यनन्तपुण्यानि सूर्यं सोमं हुताशनम् ॥२१॥

मत्स्य कूर्म वराह आद्यैः अवतारैः कृतानि मे कर्माणि अनन्त पुण्यानि सूर्यं सोमं हुताशनं ॥२१॥

मत्स्य कूर्म	मत्स्य, कच्छप,	**पुण्यानि**	पुण्यदायी
वराह आद्यैः	वाराह आदि	**कर्माणि**	कर्म (चरित),
अवतारैः	अवतार लेकर	**सूर्यं सोमं**	सूर्य, चन्द्र,
मे कृतानि	मेरे किये	**हुताशनं**	अग्नि ॥२१॥
अनन्त	अनन्त		

प्रणवं सत्यमव्यक्तं गोविप्रान् धर्ममव्ययम् ।
दाक्षायणीर्धर्मपत्नीः सोमकश्यपयोरपि ॥२२॥

प्रणवं सत्यं अव्यक्तं गो विप्रान् धर्मं अव्ययं दाक्षायणीः धर्मपत्नीः सोम कश्यपयोः अपि ॥२२॥

प्रणवं सत्यं	ओंकार, सत्य,	**धर्मपत्नीः**	धर्मकी पत्नियां हैं
अव्यक्तं गो	अव्यक्त, गायें,		तथा
अव्ययं धर्मं	अविनाशी धर्म,	**सोम**	चन्द्रमा एवं
दाक्षायणीः	दक्षकी जो कन्याएँ	**कश्यपयोः अपि**	कश्यपकी भी (पत्नियां) ॥२२॥

गङ्गां सरस्वतीं नन्दां कालिन्दीं सितवारणम् ।
ध्रुवं ब्रह्मऋषीन्सप्त पुण्यश्लोकांश्च मानवान् ॥२३॥

गङ्गां सरस्वतीं नन्दां कालिन्दीं सितवारणं ध्रुवं ब्रह्मऋषीन् सप्त पुण्य श्लोकान् च मानवान् ॥२३॥

गङ्गां सरस्वतीं	गङ्गा, सरस्वती,	**ब्रह्मऋषीन्**	ब्रह्मर्षि,
नन्दां कालिन्दीं	नन्दा, यमुना,	**च पुण्य**	तथा पवित्र
सितवारणं	श्वेतगज ऐरावत,	**श्लोकान्**	कीर्ति
ध्रुवं सप्त	ध्रुव, सात	**मानवान्**	मनुष्योंको ॥२३॥

उत्थायापररात्रान्ते प्रयताः सुसमाहिताः ।
स्मरन्ति मम रूपाणि मुच्यन्ते ह्येनसोऽखिलात् ॥२४॥

उत्थाय पररात्र अन्ते प्रयताः सुसमाहिताः स्मरन्ति मम रूपाणि मुच्यन्ते हि एनसः अखिलात् ॥२४॥

हि मम	क्योंकि ये सब मेरे	**सुसमाहिताः**	खूब एकाग्र होकर
रूपाणि	स्वरूप हैं	**स्मरन्ति**	(जो) स्मरण करते हैं (वे)
पररात्र	पिछली रात्रिके		
अन्ते	अन्त (ब्रह्म मुहूर्त) में	**अखिलात्**	समस्त
उत्थाय	उठकर	**एनसः**	पापोंसे
प्रयताः	प्रयत्न पूर्वक	**मुच्यन्ते**	छूट जाते हैं ॥२४॥

ये मां स्तुवन्त्यनेनाङ्ग प्रतिबुध्य निशात्यये ।
तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां मतिम् ॥२५॥

ये मां स्तुवन्ति अनेन अङ्ग प्रतिबुध्य निशा अत्यये तेषां प्राण अत्यये च अहं ददामि विमलां मतिम् ॥२५॥

अङ्ग	प्रिय गजेन्द्र !	**अहं च**	मैं भी
ये निशा	जो रात्रि	**तेषां प्राण**	उनको प्राणान्तके
अत्यये	व्यतीत होनेपर	**अत्यये**	समय
प्रतिबुध्य	जागकर	**विमलां मतिं**	निर्मल बुद्धि
अनेन मां	इस (स्तोत्र) मे मेरी	**ददामि**	देता हूँ ॥२५॥
स्तुवन्ति	स्तुति करते हैं		

श्रीशुक उवाच–

इत्यादिश्य हृषीकेशः प्रध्माप्य जलजोत्तमम् ।
हर्षयन्विबुधानीकमारुरोह खगाधिपम् ॥२६॥

इति आदिश्य हृषीकेशः प्रध्माय जलज उत्तमं हर्षयन् विबुध अनीकं आरुरोह खग अधिपम् ॥२६॥

हृषीकेशः	हृषीकेश भगवान्ने	**हर्षयन्**	हर्षित करके
इति आदिश्य	ऐसा आदेश देकर	**खग अधिपं**	पक्षिराजपर
जलज उत्तमं	शंख श्रेष्ठको	**आरुरोह**	आरोहण किया ॥१६॥
प्रध्माय	बजाकर		
विबुध अनीकं	देवताओंके समूहको		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे गजेन्द्रमोक्षणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीशुकउवाच—

राजन्नुदितमेतत् ते हरेः कर्माघनाशनम् ।
गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं त्वन्तरं शृणु ॥ १ ॥

राजन् उदितं एतत् ते हरेः कर्म अघनाशनं गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं तु अन्तरं शृणु ॥१॥

राजन्	राजन् !	**ते उदितं**	तुमको सुना दिया,
एतत् पुण्यं	यह पवित्र	**रैवतं**	(अब) रैवत
अघनाशनं	पाप नाशक	**अन्तरं तु**	मन्वन्तरको तो
गजेन्द्रमोक्षणं	गजेन्द्रको छुड़ानेरूप	**शृणु**	सुनो ॥१॥
हरेः कर्म	श्रीहरिका कर्म		

पञ्चमो रैवतो नाम मनुस्तामससोदरः ।
बलिविन्ध्यादयस्तस्य सुता अर्जुनपूर्वकाः ॥ २ ॥

पञ्चमः रैवतः नाम मनुः तामस सोदरः बलि विन्ध्य आदयः तस्य सुता अर्जुन पूर्वकाः ॥२॥

पञ्चमः	पांचवे	**अर्जुन पूर्वकाः**	अर्जुन जिनमें पहिले हुए वे
रैवतः नाम	रैवत नामके	**बलि विन्ध्य**	बलि, विन्ध्य
तामसः सोदरः	तामसके सहोदर भाई	**आदयः**	आदि
मनुः	मनु थे	**तस्य सुताः**	उनके पुत्र थे ॥२॥

विभुरिन्द्रः सुरगणा राजन्भूतरयादयः ।
हिरण्यरोमा वेदशिरा ऊर्ध्वबाह्वादयो द्विजाः ॥ ३ ॥

विभुः इन्द्रः सुरगणा राजन् भूतरय आदयः हिरण्यरोमा वेदशिरा अर्ध्वबाहु आदयः द्विजाः ॥३॥

राजन्	राजन् !
विभुः इन्द्रः	विभु इन्द्र थे,
भूतरय आदयः	भूतरय आदि
सुरगणा	देवगण थे,
हिरण्यरोमा	हिरण्यरोमा
वेदशिरा	वेदशिरा
अर्ध्वबाहु	ऊर्ध्वबाहु
आदयः	आदि
द्विजाः	ब्राह्मण सप्तर्षि) थे ॥३॥

पत्नी विकुण्ठा शुभ्रस्य वैकुण्ठैः सुरसत्तमैः ।
तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुण्ठो भगवान्स्वयम् ॥ ४ ॥

पत्नी विकुण्ठा शुभ्रस्य वैकुण्ठैः सुरसत्तमैः तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुण्ठः भगवान् स्वयम् ॥४॥

शुभ्रस्य पत्नी	शुभ्रकी पत्नी
विकुण्ठा	विकुण्ठा थी,
तयोः	उससे
वैकुण्ठैः	वैकुण्ठ नामक
सुरसत्तमैः	देव श्रेष्ठोंके साथ
स्वकलया	अपनी कलासे
स्वयं भगवान्	स्वयं भगवान्
वैकुण्ठः जज्ञे	वैकुण्ठने अवतार लिया ॥४॥

वैकुण्ठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः ।
रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया ॥ ५ ॥

वैकुण्ठः कल्पितः येन लोकः लोक नमस्कृतः रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत् प्रिय काम्यया ॥५॥

देव्या रमया	देवी रमाके
प्रार्थ्यमानेन	प्रार्थना करनेपर
तत् प्रिय	उनको प्रसन्न
काम्यया	करनेके लिए
येन	जिन्होंने
लोक	सब लोकोंसे
नमस्कृतः	प्रणम्य
वैकुण्ठः लोकः	वैकुण्ठ लोककी
कल्पितः	रचना की ॥५॥

तस्यानुभावः कथितो गुणाश्च परमोदयाः ।
भौमान्रेणून्स विममे यो विष्णोर्वर्णयेद् गुणान् ॥ ६ ॥

तस्य अनुभावः कथितः गुणाः च परम उदयाः **भौमान् रेणून् स विममे यः विष्णोः वर्णयेत् गुणान् ॥६॥**

तस्य अनुभावः	उनके प्रभाव	**गुणान् वर्णयेत्**	गुणोंका वर्णन कर सकेगा,
च गुणाः	तथा गुणोंका		
परम उदयाः	परमोत्कर्ष	**स भौमान्**	वह तो पृथ्वीके
कथितः	वर्णन कर चुके हैं,	**रेणून्**	रज कणोंको
यः विष्णोः	जो विष्णु भगवान्के	**विममे**	गिन सकेगा ॥६॥

षष्ठश्च चक्षुषः पुत्रश्चाक्षुषो नाम वै मनुः ।
पूरुपूरुषसुद्युम्नप्रमुखाश्चाक्षुषात्मजाः ॥ ७ ॥

षष्ठः च चक्षुषः पुत्रः चाक्षुषः नाम वै मनुः पूरु पुरुष सुद्युम्न प्रमुखाः चाक्षुष आत्मजाः ॥७॥

चक्षुषः पुत्रः	चक्षुषके पुत्र	**सुद्युम्न**	सुद्युम्न
चाक्षुषः नाम	चाक्षुष नामके	**चाक्षुष**	चाक्षुषके
वै षष्ठः च	निश्चय छठवें ही	**आत्मजाः**	पुत्रोंमें
मनुः	मनु हुए ।	**प्रमुखाः**	मुख्य थे ॥७॥
पूरु पुरुष	पुरु, पुरुष,		

इन्द्रो मन्त्रद्रुमस्तत्र देवा आप्यादयो गणाः ।
मुनयस्तत्र वै राजन्हविष्मद्वीरकादयः ॥ ८ ॥

इन्द्रः मन्त्रद्रुमः तत्र देवा आप्य आदयः गणाः मुनयः तत्र वै राजन् हविष्मत् वीरक आदयः ॥८॥

राजन्	राजन् !	**वै तत्र**	निश्चय उस समय
तत्र इन्द्रः	उस समय इन्द्र	**मुनयः**	मुनि (सप्तर्षि)
मन्त्रद्रुमः	मन्त्रद्रुम था,	**हविष्मत्**	हविष्मत्
आप्य आदयः	आप्य आदि	**वीरक आदय**	वीरक आदि थे ॥८॥
देवा गणाः	देवताओंके समूह थे,		

तत्रापि देवः सम्भूत्यां वैराजस्याभवत् सुतः ।
अजितो नाम भगवानंशेन जगतः पतिः ॥ ९ ॥

तत्र अपि देवः सम्भूत्यां वैराजस्य अभवत् सुतः अजितः नाम भगवान् अंशेन जगतः पतिः ॥९॥

तत्र अपि	उस समय भी	**सम्भूत्यां**	सम्भूतिमें
जगतः पतिः	जगतके स्वामी	**वैराजस्य सुतः**	विराजके पुत्र
देवः भगवान्	लीलामय भगवान्	**अजितः नाम**	अजित नामसे
अंशेन	अपने अंशसे	**अभवत्**	अवतीर्ण हुए ॥९॥

पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा ।
भ्रममाणोऽम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मन्दरः ॥१०॥

पयोधिं येन निर्मथ्य सराणां साधिता सुधा भ्रममाणः अम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मन्दरः ॥१०॥

येन	जिन्होंने	**अम्भसि**	जलमें
पयोधि	क्षीर समुद्रका	**भ्रममाणः**	घूमते
निर्मथ्य	मन्थन करके	**मन्दरः**	मन्दराचलको
सुराणां सुधा	देवताओंको अमृत	**कूर्मरूपेण**	कच्छप रूपसे
साधिता	प्राप्त कराया	**धृतः**	धारण किया ॥१०॥

राजोवाच—

यथा भगवता ब्रह्मन्मथितः क्षीरसागरः ।
यदर्थं वा यतश्चाद्रिं दधाराम्बुचरात्मना ॥११॥

यथा भगवता ब्रह्मन् मथितः क्षीरसागरः यत् अर्थं वा यतः च अद्रिं दधार अम्बुचर आत्मना ॥११॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**क्षीरसागरः**	क्षीरसागरका
यथा भगवता	जैसे भगवान्ने	**मथितः**	मन्थन किया,

वा यत्	अथवा जिस	**आत्मना**	रूपसे
अर्थं	प्रयोजनसे	**अद्रिं दधार**	पर्वतको धारण
च यतः	तथा जिस प्रकार		किया ॥११॥
अम्बुचर	जलचर (कच्छप)		

यथामृतं सुरैः प्राप्तं किञ्चान्यदभवत् ततः ।
एतद् भगवतः कर्म वदस्व परमाद्भुतम् ॥१२॥

यथा अमृतं सुरैः प्राप्तं किञ्च अन्यत् अभवत् ततः एतत् भगवतः कर्म वदस्व परम अद्भुतम् ॥१२॥

यथा सुरैः	जैसे देवताओंने	**एतत् परम**	यह परम
अमृतं प्राप्तं	अमृत पाया,	**अद्भुतं**	आश्चर्यमय
ततः	वहां जो	**भगवतः कर्म**	भगवान्का कर्म
किञ्च अन्यत्	कुछ दूसरा	**वदस्व**	बतलाइये ॥१२॥
अभवत्	हुआ,		

त्वया सङ्कथ्यमानेन महिम्ना सात्वतां पतेः ।
नातितृप्यति मे चित्तं सुचिरं तापतापितम् ॥१३॥

त्वया संकथ्यमानेन महिम्ना सात्वतां पतेः न अति तृप्यति मे चित्तं सुचिरं ताप तापितम् ॥१३॥

सात्वतां	भक्तोंके	**ताप तापितं**	(त्रि) ताप संतप्त
पतेः	स्वामी भगवान्की	**मे चित्तं**	मेरा चित्त
महिम्ना	महिमा	**अति**	बहुत
त्वया	आप द्वारा	**तृप्यति न**	तृप्त नहीं होता है
संकथ्यमानेन	वर्णन करनेसे		॥१३॥
सुचिरं	दीर्घकालसे		

सूत उवाच–

सम्पृष्टो भगवानेवं द्वैपायनसुतो द्विजाः ।
अभिनन्द्य हरेर्वीर्यमभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥१४॥

सम्पृष्टः भगवान् एवं द्वैपायनसुतः द्विजाः अभिनन्द्य हरेः वीर्यं अभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥१४॥

द्विजाः	ब्राह्मणो !	**अभिनन्द्य**	(परीक्षितका) अभिनन्दन करके
भगवान्	भगवान्	**हरेः वीर्यं**	श्रीहरिके पराक्रम- को
द्वैपायनसतः	व्यासनन्दन	**अभ्याचष्टुं**	प्रारम्भसे बतलाना
एवं सम्पृष्टः	इस प्रकार पूछे जानेपर	**प्रचक्रमे**	प्रारम्भ किया ॥१४॥

श्रीशुक उवाच

यदा युद्धेऽसुरैर्देवा बाध्यमानाः शितायुधैः ।
गतासवो निपतिता नोत्तिष्ठेरन्स्म भूयशः ॥१५॥

यदा युद्धे असुरैः देवा बाध्यमानाः शित आयुधैः गत असवः **निपतिता न उत्तिष्ठेरन् स्म** भूयशः ॥१५॥

यदा युद्धे	जब युद्धमें	**गत असवः**	निष्प्राण होकर
शित आयुधैः	तीक्ष्ण शस्त्रोंसे	**निपतिता**	गिर पड़े और
असुरैः	असुरों द्वारा	**भूयशः**	उनमें बहुतसे
बाध्यमानाः	मारे जानेपर	**न उत्तिष्ठेरन्**	नहीं उठ
देवाः	देवता	**स्म**	सके ॥१५॥

यदा दुर्वाससः शापात् सेन्द्रा लोकास्त्रयो नृप ।
निःश्रीकाश्चाभवंस्तत्र नेशुरिज्यादयः क्रियाः ॥१६॥

यदा दुर्वाससः शापात् स इन्द्राः लोकाः त्रयः नृप निःश्रीकान् च **अभवन् तत्र नेशुः** इज्या आदयः **क्रियाः** ॥१६॥

नृप	राजन् !	**अभवन् तत्र**	हो गये
यदा दुर्वाससः	जब दुर्वासाजीके	**इज्या आदयः**	वहां यज्ञादि
शापात् स इन्द्राः	शापसे इन्द्रके साथ	**क्रियाः नेशुः**	कर्म नष्ट हो गये ॥१६॥
त्रयः लोकाः च	तीनों लोक ही		
निःश्रीकान्	कान्तिहीन		

निशाम्यैतत् सुरगणा महेन्द्रवरुणादयः ।
नाध्यगच्छन्स्वयं मन्त्रैर्मन्त्रयन्तो विनिश्चयम् ॥१७॥

निशाम्य एतत् सुरगणा महेन्द्र वरुण आदयः न अध्यगच्छन् स्वयं मन्त्रैः मन्त्रयन्तः विनिश्चयम् ॥१७॥

एतत् निशाम्य	यह देखकर	**स्वयं विनिश्चयं**	स्वयं निश्चित
महेन्द्र वरुण	महेन्द्र वरुण	**मन्त्रैः**	निर्णयको
आदयः	आदि	**न**	नहीं
सुरगणा	देवता लोग,	**अध्यगच्छन्**	पा सके ॥१७॥
मन्त्रयन्तः	सलाह करनेपर भी		

ततो ब्रह्मसभां जग्मुर्मेरोर्मूर्धनि सर्वशः ।
सर्वं विज्ञापयाञ्चक्रुः प्रणताः परमेष्ठिने ॥१८॥

ततः ब्रह्मसभां जग्मुः मेरोः मूर्धनि सर्वशः सर्वं विज्ञापयान् चक्रुः प्रणताः परमेष्ठिने ॥१८॥

ततः मेरोः	तब सुमेरुके	**प्रणताः**	प्रणाम करके
मूर्धनि	शिखरपर*	**सर्वं**	सब
ब्रह्मसभां	ब्रह्माजीकी सभामें	**विज्ञापयान्**	विज्ञापित
सर्वशः जग्मुः	सब गये,	**चक्रुः**	किया ॥१८॥
परमेष्ठिने	ब्रह्माजीको		

स विलोक्येन्द्रवाय्वादीन् निःसत्त्वान्विगतप्रभान् ।
लोकानमङ्गलप्रायानसुरानयथा विभुः ॥१९॥

स विलोक्य इन्द्र वायु आदीन् निःसत्त्वान् विगतप्रभान् लोकान् अमङ्गल प्रायान् असुरान् अयथा विभुः ॥१९॥

---

* पञ्चम स्कन्धमें ब्रह्माजीके दो स्थानोंका वर्णन है ।

१—जम्बूद्वीपके केन्द्रमें स्थित सुमेरुके शिखरपर और २—सबसे अन्तिम पुष्करद्वीपमें ।

स विभुः	उन समर्थने	**अमङ्गल**	दुर्वशाग्रस्त
इन्द्र वायु	इन्द्र, वायु	**प्रायान्**	स्थिति
आदीन्	आदिको	**असुरान्**	असुरोंको
निःसत्त्वान्	निःसत्व एवं	**अयथा**	इससे विपरीत
विगतप्रभान्	कान्तिहीन तथा		दशामें
लोकान्	सब लोकोंको	**विलोक्य**	देखकर ॥१९॥

समाहितेन मनसा संस्मरन्पुरुषं परम् ।
उवाचोत्फुल्लवदनो देवान्स भगवान्परः ॥२०॥

समाहितेन मनसा संस्मरन् पुरुषं परं उवाच उत्फुल्ल वदनः देवान् स भगवान् परः ॥२०॥

स परः	उन परमेष्ठी	**संस्मरन्**	स्मरण करते हुए
भगवान्	भगवान्ने	**उत्फुल्ल वदनः**	प्रसन्न मुखसे
समाहितेन	एकाग्र	**देवान् उवाच**	देवताओंसे बोले
मनसा	चित्तसे		॥२०॥
परं पुरुषं	परम पुरुषका		

ब्रह्मोवाच-*

अहं भवो यूयमथोऽसुरादयो
मनुष्यतिर्यग्द्रुमघर्मजातयः ।
यस्यावतारांशकलाविसर्जिता
व्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम् ॥२१॥

अहं भवः यूयं अथः असुर आदयः मनुष्य तिर्यक् द्रुम घर्म जातयः यस्य अवतार अंश कला विसर्जिता व्रजाम सर्वे शरणं तं अव्ययम् ॥२१॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अहं भवः	**मैं**, शंकरजी,
यूयं	तुम लोग
अथः	और
असुर आदयः	असुर आदि
मनुष्य तिर्यक्	मनुष्य, पशु-पक्षी,
द्रुम घर्म	वृक्ष, स्वेदज
जातयः	प्राणी,
यस्य अवतार	जिनके अवतारके
अंश कला	अंशकी कलासे
विसर्जिता	उत्पन्न हैं,
सर्वे तं	हम सब उन
अव्ययं	अविनाशीकी
शरणं व्रजाम	शरणमें चलें ॥२१॥

न यस्य वध्यो न च रक्षणीयो
नोपेक्षणीयादरणीयपक्षः
अथापि सर्गस्थितिसंयमार्थं
धत्ते रजःसत्त्वतमांसि काले ॥२२॥

न यस्य वध्यः न च रक्षणीयः न उपेक्षणीय आदरणीय पक्षः अथ अपि सर्ग स्थिति संयमार्थं धत्ते रजः सत्त्व तमांसि काले ॥२२॥

यस्य	जिसके लिए
न वध्यः	न कोई मारने योग्य है,
च न	और न
रक्षणीयः	रक्षा करने योग्य,
न उपेक्षणीय	न उपेक्षा करने योग्य या
आदरणीय	आदरणीय
पक्षः	पक्ष है,
अथ अपि	ऐसा होनेपर भी
सर्ग स्थिति	सृष्टि, स्थिति,
संयमार्थं	प्रलयके लिए
काले रजः	समयपर रजोगुण,
सत्त्व	सत्त्वगुण
तमांसि धत्ते	तमोगुणको धारण करते हैं ॥२२॥

अयं च तस्य स्थितिपालनक्षणः
सत्त्वं जुषाणस्य भवाय देहिनाम्
तस्माद् व्रजामः शरणं जगद्गुरुं
स्वानां स नो धास्यति शं सुरप्रियः ॥२३॥

अयं च तस्य स्थिति पालन क्षणः सत्त्वं जुषाणस्य भवाय देहिनां तस्मात् व्रजामः शरणं जगद्गुरुं स्वानां स नः धास्यति शं सुरप्रियः ॥२३॥

देहिनां	प्राणियोंके	**क्षणः**	समय है
भवाय	अभ्युदयके लिए	**तस्मात्**	इसलिए
सत्त्वं	सत्त्वगुण	**जगद्गुरुं**	उन जगद्गुरुकी
जुषाणस्य	स्वीकार किये	**शरणं व्रजामः**	शरण हम चलें,
तस्य अयं	उनका यह	**स सुरप्रियः**	वे देवप्रिय
स्थिति च	स्थिति और	**नः स्वानां**	हम अपनोंका
पालन	पालनका	**शं धास्यति**	कल्याण करेंगे ॥२३॥

श्रीशुक उवाच–

इत्याभाष्य सुरान्वेधाः सह देवैररिन्दम ।
अजितस्य पदं साक्षाज्जगाम तमसः परम् ॥२४॥

इति आभाष्य सुरान् वेधाः सह देवैः अरिन्दम अजितस्य पदं साक्षात् जगाम तमसः परम् ॥२४॥

अरिन्दम	शत्रु-नाशक परीक्षित !	**देवैः सह**	देवताओंके साथ
वेधाः इति	ब्रह्माजीने इस प्रकार	**तमस परं**	तमोगुणके पार
सुरान्	देवताओंसे	**अजितस्य**	भगवान् अजितके
आभाष्य	कहकर	**साक्षात् पदं**	प्रत्यक्ष स्थानपर
		जगाम	गये ॥२४॥

तत्रादृष्टस्वरूपाय श्रुतपूर्वाय वै विभो ।
स्तुतिमब्रूत दैवीभिर्गीभिस्त्ववहितेन्द्रियः ॥२५॥

तत्र अदृष्ट स्वरूपाय श्रुत पूर्वाय वै विभो स्तुतिं अब्रूत दैवीभिः गीः भिः तु अवहित इन्द्रियः ॥२५॥

तत्र	वहां	**वै विभो**	निश्चय उन सर्व-
इन्द्रियः	इन्द्रियोंको		व्यापककी
अवहित	एकाग्र करके,	**दैवीभिः**	दिव्य (वेदकी)
स्वरूपाय	जिनका स्वरूप	**गीः भिः तु**	वाणीसे ही
अदृष्ट	देखा नहीं था	**स्तुति**	स्तुति
श्रुत पूर्वाय	किन्तु पहिले सुना था	**अब्रूत**	बोलने (करने) लगे ॥२५॥

ब्रह्मोवाच–

अविक्रियं सत्यमनन्तमाद्यं
गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम् ।
मनोऽग्रयानं वचसानिरुक्तं
नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥२६॥

अविक्रियं सत्यं अनन्तं आद्यं गुहाशयं निष्कलं अप्रतर्क्यं मनः अग्रयानं वचसा अनिरुक्तं नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥२६॥

अविक्रियं सत्यं	निर्विकार, सत्य,	**अग्रयानं**	आगे चलनेवाले,
अनन्तं आद्यं	अनन्त, आदिपुरुष,	**वचसा अनिरुक्तं**	अनिर्वचनीय,
गुहाशयं	अन्तर्यामी,	**वरेण्यं देववरं**	वरणीय देवश्रेष्ठको
निष्कलं	निष्कल,	**नमामहे**	हम नमस्कार करते हैं ॥२६॥
अप्रतर्क्यं	अतर्क्य,		
मनः	मनसे भी		

विपश्चितं प्राणमनोधियात्मना-
मर्थेन्द्रियाभासमनिद्रमव्रणम् ।
छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ
तमक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे ॥२७॥

विपश्चितं प्राण मनः धिया आत्मनां अर्थ इन्द्रिय आभासं अनिद्रं अव्रणं छाया आतपौ यत्र न गृध्रपक्षौ तं अक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे ॥२७॥

प्राण मनः	प्राण, मन,	**छाया**	छाया (अविद्या)
धिया आत्मनं	बुद्धि, अहंकारके	**आतपौ**	आतप (विद्या)
विपश्चितं	जाननेवाले,	**यत्र**	जिनमें (दोनों)
अर्थ इन्द्रिय	विषय, इन्द्रियसे	**न**	नहीं हैं,
आभासं	आभासित होने-वाले,	**तं अक्षरं**	उन अविनाशी
		खं	आकाश रूप
अनिद्रं	अज्ञान निद्रासे रहित,	**त्रियुगं**	त्रियुगकी
		व्रजामहे	हम शरण लेते हैं ॥२७॥
अव्रणं	देहहीन हैं,		
गृध्रपक्षौ	जीवके पक्ष		

अजस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणं
मनोमयं पञ्चदशारमाशु ।
त्रिणाभि विद्युच्चलमष्टनेमि
यदक्षमाहुस्तमृतं प्रपद्ये ॥२८॥

अजस्य चक्रं तु अजया ईर्यमाणं मनः मयं पञ्चदश अरं आशु त्रिणाभि विद्युत् चलं अष्ट नेमि यत् अक्षं आहुः तं अमृतं प्रपद्ये ॥२८॥

पञ्चदश	पन्द्रह (दस इन्द्रिय और पंच प्राण)	**अजया**	माया द्वारा
		ईर्यमाणं	प्रेरित
अरं	अरोंवाले,	**मनः मयं**	मनोमय
त्रिणाभि	तीन (गुण रूप) नाभिका	**चक्रं**	(शरीर रूपी) चक्र-का
विद्युत्	बिजलीके समान	**यत् अक्षं आहुः**	जिन्हें आधार कहा गया है,
आशु चलं	तीव्र वेग		
अष्ट	आठ (प्रकृति रूप)	**तं अमृतं**	उन अमृत स्वरूपकी
नेमिः	नेमिका	**प्रपद्ये**	हम शरण लेते हैं ॥२८॥
अजस्य तु	अजन्मा जीवका ही		

य एकवर्णं तमसः परं त-
दलोकमव्यक्तमनन्तपारम् ।
आसाञ्चकारोपसुपर्णमेन-
मुपासते योगरथेन धीराः ॥२६॥

य एकवर्णं तमसः परं तत् अलोकं अव्यक्तं अनन्त पारं आसान् चकार उपसुपर्णं येनं उपासते योग रथेन धीराः ॥२६॥

य एकवर्णं	जो एकमात्र ज्ञान स्वरूप,	**उपसुपर्णं**	जीवके समीप
तमसः परं	प्रकृतिसे परे हैं,	**आसान्**	आसन
तत् अलोकं	उन अदृश्य,	**चकार**	जमाये (नित्यस्थि त) की
अव्यक्तं	अव्यक्त,	**धीराः**	धीर (विवेकी) जन
येनं	जो	**योग रथेन**	योग-मार्गसे
अनन्त पारं	अनन्त (देशातीत कालातीत)	**उपासते**	उपासना करते हैं ॥२८॥

न यस्य कश्चातितितर्ति मायां
यया जनो मुह्यति वेद नार्थम् ।
तं निर्जितात्मात्मगुणं परेशं
नमाम भूतेषु समं चरन्तम् ॥३०॥

न यस्य कश्चित् अतितितर्ति मायां यया जनः मुह्यति वेद न अर्थं तं निर्जित आत्म आत्मगुणं परेशं नमाम भूतेषु समं चरन्तम् ॥३०॥

यया	जिस (माया) के	**मायां**	उस मायाको
जनः	(द्वारा) मनुष्य	**अतितितर्ति न**	पार नहीं कर सकता
मुह्यति	मोहित होकर		
अर्थं	अपने (ठीक) प्रयोजनको	**तं आत्म**	उस अपनी
		आत्म गुणं	अपनी गुण रूपा मायाको
न वेद	नहीं जानता		
कश्चित् यस्य	कोई भी जिनकी		

निर्जित	जीत लेनेवाले	**परेशं**	परमेश्वरको हम
भूतेषु	समस्त प्राणियोंमें	**नमाम**	नमस्कार करते हैं
समं चरन्तं	समान रूपसे व्याप्त		॥३०॥

इमे वयं यत्प्रिययैव तन्वा
सत्त्वेन सृष्टा बहिरन्तराविः ।
गतिं न सूक्ष्मामृषयश्च विद्महे
कुतोऽसुराद्या इतरप्रधानाः ॥३१॥

इमे वयं यत् प्रिय एव तन्वा सत्त्वेन सृष्टा बहिः अन्तः आविः गतिं न सूक्ष्मां ऋषयः च विद्महे कुतः असुर आद्याः इतर प्रधानाः ॥३१॥

प्रिय एव	जिनके प्रिय ही	**गतिं**	स्वरूपको
सत्त्वेन तन्वा	सत्त्वगुणके अंशसे	**न विद्महे**	नहीं जान पाते
सृष्टा	उत्पन्न	**इतर**	तब जिनमें दूसरे
इमे वयं	ये हम (देवता)		गुण (रजः तमः)
च ऋषयः	और ऋषिगण	**प्रधानाः**	प्रधान हैं वे
बहिः अन्तः	अपने बाहर भीतर	**असुर आद्याः**	असुरादि
आविः	विराजमान	**कुतः**	कैसे (जान सकते
यत् सूक्ष्मां	जिनके सूक्ष्म		हैं) ॥३१॥

पादौ महीयं स्वकृतैव यस्य
चतुर्विधो यत्र हि भूतसर्गः ।
स वै महापूरुष आत्मतन्त्रः
प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥३२॥

पादौ मही इयं स्वकृत एव यस्य चतुर्विधः यत्र हि भूतसर्गः स वै महापूरुषः आत्मतन्त्रः प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥३२॥

यत्र	जिसमें
चतुर्विधः	चारों (स्वेदज, अंडज, उद्भिज, जरायुग) प्रकारकी
भूतसर्गः	प्राणि सृष्ट है (वह)
हि इयं मही	क्योंकि यह पृथ्वी
स्वकृत एव	उनकी अपनी बनायी ही है,
यस्य पादौ	जिनका पैर है,
वै स	निश्चय वे
महापूरुषः	महापुरुष
आत्मतन्त्रः	परम स्वतन्त्र
महाविभूतिः	परम ऐश्वर्यशाली
ब्रह्म	परम ब्रह्म
प्रसीदतां	(हमपर) प्रसन्न हों ॥३२॥

अम्भस्तु यद्रेत उदारवीर्यं
सिध्यन्ति जीवन्त्युत वर्धमानाः ।
लोकास्त्रयोऽथाखिललोकपालाः
प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥३३॥

अम्भः तु यद् रेत उदारवीर्यं सिध्यन्ति जीवन्ति उत वर्धमानाः लोकाः त्रयः अथ अखिल लोकपालाः प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥३३॥

त्रयः लोकाः	तीनों लोक
अथ	और
लोकपालाः	लोकपाल भी (जिससे)
सिध्यन्ति	उत्पन्न होते,
जीवन्ति	जीते
उत वर्धमानाः	तथा बढ़ते हैं
उदारवीर्यः	वह शक्तिशाली
अम्भः तु	जल ही
यत् रेत	जिनका वीर्य है (वे)
महाविभूतिः	परमैश्वर्य
ब्रह्म प्रसीदतां	परम ब्रह्म प्रसन्न हों ॥३३॥

सोमं मनो यस्य समामनन्ति
दिवौकसां वै बलमन्ध आयुः ।
ईशो नगानां प्रजनः प्रजानां
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३४॥

सोमं मनः यस्य सम आमनन्ति दिवौकसां वै बलं अन्ध आयुः ईशः नगानां प्रजनः प्रजानां प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३४॥

दिवौकसां	देवताओंकी जिसे	**प्रजनः**	उत्पन्न करनेवाला
वै बलं	निश्चित रूपसे बल,	**सोमं**	चन्द्रमा
अन्धः	अन्न	**यस्य मनः**	जिनका मन है,
आयुः	आयु	**स**	वे
सम आमनन्ति	कहते हैं,	**महाविभूतिः**	महाऐश्वर्यशाली
नगानां	जो वृक्षोंका	**नः प्रसीदतां**	हमपर प्रसन्न हों
ईशः	आधीश्वर,		॥३४॥
प्रजानां	प्रजाओंको		

अग्निर्मुखं यस्य तु जातवेदा
जातः क्रियाकाण्डनिमित्तजन्मा ।
अन्तःसमुद्रेऽनुपचन्स्वधातून्
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३५॥

अग्निः मुखं यस्य तु जातवेदा जातः क्रियाकाण्ड निमित्त जन्मा अन्तः समुद्रे अनुपचन् स्वधातून् प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३५॥

क्रियाकाण्ड	(यज्ञादि) कर्मकाण्ड-के	**अनुपचन्**	पचाता हुआ
		जातवेदा अग्निः	वह जातवेदा अग्नि
निमित्त जन्मा	निमित्त जन्म लेने-वाले,	**यस्य तु मुखं**	जिसका तो मुख है,
		स	वे
अन्तः	शरीरके भीतर और	**महाविभूतिः**	महाऐश्वर्यमय
समुद्रे	समुद्रमें	**नः प्रसीदतां**	हमपर प्रसन्न हों
स्वधातून्	वहां विद्यमान धातुओंको		॥३५॥

यच्चक्षुरासीत् तरणिर्देवयानं
त्रयीमयो ब्रह्मण एष धिष्ण्यम् ।

द्वारं च मुक्तेरमृतं च मृत्युः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३६॥

यत् चक्षुः आसीत् तरणिः देवमानं त्रयीमयः ब्रह्मच एष धिष्ण्यं द्वारं च मुक्तेः अमृतं च मृत्युः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३६॥

देवयानं	देवयान मार्गके अधिष्ठाता	**मृत्युः**	मृत्यु स्वरूप
त्रयीमयः	वेदमय	**एष तरणिः**	ये सूर्य
ब्रह्मण	परं ब्रह्मकी	**यत् चक्षुः**	जिनके नेत्र
धिष्ण्यं	उपासनाके स्थान,	**आसीत्**	हैं
च मुक्तेः द्वारं	और मोक्षके द्वार,	**स महाविभूतिः**	वे महाऐश्वर्यमय
अमृतं च	अमृत और	**नः प्रसीदतां**	हमपर प्रसन्न हों ॥३६॥

प्राणादभूद् यस्य चराचराणां
प्राणः सहो बलमोजश्च वायुः ।
अन्वास्म सम्राजमिवानुगा वयं
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३७॥

प्राणात् अभूत् यस्य चर अचराणां प्राणः सहः बलं ओजः च वायुः अनु अवास्म सम्राजं इव अनुगा वयं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३७॥

चर अचराणां	जंगम-स्थावर सब प्राणियोंका	**अनु अवास्म**	पीछे चलते हैं,
सहः बलं	जो मनोबल, देहबल	**वायुः यस्य**	वह वायु जिसके
च ओजः	और इन्द्रिय बल है,	**प्राणात् अभूत्**	प्राणसे उत्पन्न हुआ,
सम्राजं इव	सम्राटके समान जिसके	**स**	वे
वयं	हम (देवता)	**महाविभूतिः**	परमैश्वर्य
अनुगा	अनुयायियोंके समान	**नः प्रसीदतां**	हमपर प्रसन्न हों ॥३७॥

श्रोत्राद् दिशो यस्य हृदश्च खानि
प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः ।
प्राणेन्द्रियात्मासुशरीरकेतं
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३८॥

श्रोत्रात् दिशः यस्य हृदः च खानि प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः प्राण इन्द्रिय आत्म असु शरीरकेतं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३८॥

यस्य पुरुषस्य	जिन परम पुरुषके	**असु**	सूक्ष्मप्राण (नाग,
श्रोत्रात्	कानोंसे		कूर्म, कृकल, देवदत्त,
दिशः	विशाएँ,		धनंजय)
हृदः च खानि	हृदयसे इन्द्रियां,	**शरीरकेतं**	तथा शरीरका
नाभ्याः	नाभिसे		आधार
प्राण	प्राण (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान)	**खं प्रजज्ञिरे**	आकाश उत्पन्न हुआ
इन्द्रिय आत्म	इन्द्रियां, मन,	**स महाविभूतिः**	वे परमैश्वर्य
		नः प्रसीदतां	हमपर प्रसन्न हों ॥३८॥

बलान्महेन्द्रस्त्रिदशाः प्रसादा-
न्मन्योर्गिरीशो धिषणाद् विरिञ्चः ।
खेभ्यश्च छन्दांस्यृषयो मेढ्रतः कः
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३९॥

बलात् महेन्द्रः त्रिदशाः प्रसादात् मन्योः गिरीशः धिषणात् विरिञ्चः खेभ्यः च छन्दांसि ऋषयः मेढ्रतः कः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३९॥

बलात् महेन्द्रः	(जिनके) बलसे इन्द्र,	**मन्योः गिरीशः**	क्रोधसे रुद्र,
प्रसादात्	कृपासे	**धिषणात्**	बुद्धिसे
त्रिदशाः	देवता.	**विरिञ्चः**	ब्रह्मा,

खेभ्यः छन्दांसि	इन्द्रियोंसे वेद	**स महाविभूतिः**	वे महाविभूति
च ऋषयः	और ऋषिगण.	**नः प्रसीदतां**	हमपर प्रसन्न हों
मेढतः कः	शिश्नसे प्रजापति (उत्पन्न हुए)		॥३६॥

श्रीर्वक्षसः पितरश्छाययाऽऽसन्
धर्मः स्तनादितरः पृष्ठतोऽभूत् ।
द्यौर्यस्य शीर्ष्णोऽप्सरसो विहारात्
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४०॥

श्रीः वक्षसः पितरः छायया आसन् धर्मः स्तनात् इतरः पृष्ठतः अभूत् द्यौः यस्य शीर्ष्णः अप्सरसः विहारात् प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४०॥

छायया पितरः	छायासे पितर	**विहारात्**	विहारसे
आसन्	उत्पन्न हुए,	**अप्सरसः**	अप्सराएँ,
स्तनात् धर्मः	स्तनोंसे धर्म	**अभूत्**	उत्पन्न हुई
पृष्ठतः इतरः	पीठसे दूसरा (अधर्म)	**स महाविभूतिः**	वे महाविभूति
यस्य शीर्ष्णः	जिनके मस्तकसे	**नः प्रसीदतां**	हमपर प्रसन्न हों
द्यौ	द्युलोक,		॥४०॥

विप्रो मुखं ब्रह्म च यस्य गुह्यं
राजन्य आसीद् भुजयोर्बलं च ।
ऊर्वोर्विडोजोऽङ्घ्रिरवेदशूद्रौ
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४१॥

विप्रः मुखं ब्रह्म च यस्य गुह्यं राजन्य आसीत् भुजयोः बलं च उर्वोः विड् ओजः अङ्घ्रिः अवेद शूद्रौ प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४१॥

यस्य मुखं	जिनके मुखसे	**गुह्यं ब्रह्म**	रहस्यात्मक वेद,
विप्रः च	ब्राह्मण तथा	**भुजयोः**	भुजाओंसे

राजन्य	क्षत्रिय	**अवेद शूद्रौ**	वेदबाह्य तथा शूद्र
च बलं	तथा बल	**आसीत्**	उत्पन्न हुए
ऊर्वोः	उरु (जांघ) से	**स महाविभूतिः**	वे महाविभूति
विड् ओजः	वैश्य और (उनकी वृत्ति) ओज	**नः प्रसीदतां**	हमपर प्रसन्न हों ॥४१॥
अङ्घ्रिः	पैरसे		

लोभोऽधरात् प्रीतिरुपर्यभूद् द्युति-

र्नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः ।

भ्रुवोर्यमः पक्ष्मभवस्तु कालः

प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४२॥

लोभः अधरात् प्रीतिः उपरि अभूत् द्युतिः नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः भ्रुवोः यमः पक्ष्म भवः तु कालः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४२॥

अधरात्	(जिनके) नीचेके ओष्ठसे	**अभूत्**	उत्पन्न हुआ
लोभः	लोभ	**भ्रुवोः यमः**	भौंहोंसे यमराज,
उपरि	ऊपरी ओष्ठसे	**पक्ष्म भवः तु**	पलकोंसे तो
प्रीतिः	प्रीति,	**कालः**	काल उत्पन्न हुआ
नस्तः द्युतिः	नासिकासे कान्ति,	**स महाविभूतिः**	वे महाविभूति
स्पर्शेन	स्पर्शसे	**नः प्रसीदतां**	हमपर प्रसन्न हों ॥४२॥
पशव्यः कामः	पाशव धर्म काम,		

द्रव्यं वयः कर्म गुणान्विशेषं

यद्योगमायाविहितान्वदन्ति ।

यद् दुर्विभाव्यं प्रबुधापबाधं

प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४३॥

द्रव्यं वयः कर्म गुणान् विशेषं यत् योगमाया अविहितान् वदन्ति यत् दुर्विभाव्यं प्रबुध अपबाधं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४३॥

द्रव्यं	पञ्चभूत,
वयः	काल
कर्म	कर्म,
गुणान्	सत्त्वादि गुण तथा
यत् योगमाया	जो योगमाया द्वारा
अविहितान्	निषिद्ध धर्म प्रगट हुए हैं,
यत् दुर्विभाव्यं	जो अचिन्त्य
प्रबुध	विद्वानों द्वारा
अपबाधं	अनात्म रूपसे त्याज्य हैं, उन सब रूपोंवाले
स महाविभूतिः	वे महाविभूति
नः प्रसीदतां	हमपर प्रसन्न हों ॥४३॥

नमोऽस्तु तस्मा उपशान्तशक्तये
स्वाराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने ।
गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभि-
र्न सज्जमानाय नभस्वदूतये ॥४४॥

नमः अस्तु तस्मा उपशान्त शक्तये स्वाराज्य लाभ प्रतिपूरित आत्मने गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभिः न सज्जमानाय नभस्व दूतये ॥४४॥

शक्तये	सम्पूर्ण शक्तियां
उपशान्त	जिनमें शान्त हैं.
स्वाराज्य	आत्मराज्य
लाभ	प्राप्तिमे
प्रतिपूरित	परिपूर्ण
आत्मने	स्वरूप,
मायरचितेषु	माया निर्मित
गुणेषु वृत्तिभिः	गुणोंकी वृत्तियोंमें
न सज्जमानाय	संसक्त न होनेवाले
नभस्व	वायुके समान
दूतये	विचरण करनेवाले
तस्मा नमः	उन (परमात्मा) को
अस्तु	नमस्कार हो ॥४४॥

स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम् ।
प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम् ॥४५॥

स त्वं नः दर्शय आत्मानं अस्मत् करण गोचरं प्रपन्नानां दिदृक्षुणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम् ॥४५॥

स त्वं	ऐसे आप	**ते आत्मानं**	वह आपका
नः दिदृक्षुणां	हम दर्शनाभिलाषी	**सस्मितं**	मुस्कराता
प्रपन्नानां	शरणागतोंके	**मुखाम्बुजं**	मुख-कमल
अस्मत् करण	हमारी इन्द्रियोंको	**दर्शय**	दिखलाइए ॥४५॥
गोचरं	दीख सके		

तैस्तैः स्वेच्छाधृतै रूपैः काले काले स्वयं विभो ।
कर्म दुर्विषहं यन्नो भगवांस्तत् करोति हि ॥४६॥

तैः तैः स्वेच्छा धृतै रूपैः काले काले स्वयं विभो कर्म दुर्विषहं यत् नः भगवान् तत् करोति हि ॥४६॥

विभो भगवान्	प्रभो ! भगवन् !	**स्वेच्छा**	अपनी इच्छासे
यत् नः	जो हमारे लिए	**धृतैः**	धारण किये
दुर्विषहं कर्म	दुःसह कर्म होते हैं	**रूपैः तत्**	रूपोंसे उसे
हि काले काले	क्योंकि समय-समयपर	**स्वयं करोति**	आप स्वयं सम्पन्न कर देते हैं ॥४६॥
तैः तैः	उन-उन		

क्लेशभूर्यल्पसाराणि कर्माणि विफलानि वा ।
देहिनां विषयार्तानां न तथैवार्पितं त्वयि ॥४७॥

क्लेश भूरि अल्पसाराणि कर्माणि विफलानि वा देहिनां विषय आर्तानां न तथा एव अर्पितं त्वयि ॥४७॥

विषय	भोगोंके लिए	**भूरि क्लेश**	बहुत कष्ट तथा
आर्तानां	व्याकुल	**अल्पसाराणि**	तुच्छ सारवाले
देहिनां	शरीरधारियोंके	**वा विफलानि**	अथवा निष्फल होते हैं
कर्माणि	कर्म		

तथा त्वयि	उस प्रकार आपको	एव	होनेवाले (कर्म)
अर्पितं	अर्पित	न	नहीं होते ॥४७॥

नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः ।
कल्पते पुरुषस्यैष स ह्यात्मा दयितो हितः ॥४८॥

न अवमः कर्म कल्पः अपि विफलाय ईश्वर अर्पितः कल्पते पुरुषस्य एष स हि आत्मा दयितः हितः ॥४८॥

हि स आत्मा	क्योंकि वे परमात्मा	अवमः कल्पः	थोड़ा किया
दयितः हितः	प्रिय और हितकारी हैं,	कर्म अपि	कर्म भी
		विफलाय न	निष्फल नहीं
एष पुरुषस्य	अतः इस पुरुषका	कल्पते	होता ॥४८॥
ईश्वर अर्पितः	भगवान्‌को अर्पित		

यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् ।
एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि ॥४९॥

यथा हि स्कन्ध शाखानां तरोः मूल अवसेचनं एवं आराधनं विष्णोः सर्वेषां आत्मनः च हि ॥४९॥

हि यथा	क्योंकि जैसे	विष्णोः	विष्णु भगवान्‌की
तरोः मूल	वृक्षकी जड़को	आराधनं	आराधना
अवसेचनं	सींचना	सर्वेषां च	सबकी तथा
स्कन्ध	तने तथा डालियोंको	आत्मनः	अपनी भी (सेवा)
शाखानां	(भी सींचना है)		है ॥४९॥
एवं	इसी प्रकार		

नमस्तुभ्यमनन्ताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे ।
निर्गुणाय गुणेशाय सत्त्वस्थाय च साम्प्रतम् ॥५०॥

नमः तुभ्यं अनन्ताय दुर्वितर्क्य आत्मकर्मणे निर्गुणाय गुण ईशाय सत्त्वस्थाय च साम्प्रतम् ॥५०॥

अनन्ताय	अनन्त	**च**	और
आत्मकर्मणे	अपने कर्मोंसे	**साम्प्रतं**	इस समय
दुर्वितर्क्य	अचिन्त्य	**सत्त्वस्थाय**	सत्त्वगुणमें स्थित
निर्गुणाय	निर्गुण,	**तुभ्यं नमः**	आपको नमस्कार
गुण ईशाय	गुणोंके स्वामी,	**(अस्तु)**	हो ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टस्कन्धे-
ऽमृतमथने पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

एवं स्तुतः सुरगणैर्भगवान् हरिरीश्वरः ।
तेषामाविरभूद् राजन्सहस्रार्कोदयद्युतिः ॥ १ ॥

एवं स्तुतः सुरगणैः भगवान् हरिः ईश्वरः तेषां आविः अभूत् राजन् सहस्र अर्क उदय द्युतिः ॥१॥

राजन्	राजन् !	**उदय**	उदय होनेके समान
सुरगणैः	देवताओं द्वारा	**द्युतिः**	तेजस्वी
एवं स्तुतः	इस प्रकार स्तुति करनेपर	**ईश्वरः भगवान्**	सर्वसमर्थ भगवान्
		हरिः तेषां	श्रीहरि उनके सामने
सहस्र अर्क	सहस्रों सूर्योंके	**आविः अभूत्**	प्रकट हो गये ॥१॥

तेनैव महसा सर्वे देवाः प्रतिहतेक्षणाः ।
नापश्यन्खं दिशः क्षोणिमात्मानं च कुतो विभुम् ॥ २ ॥

तेन एव महसा सर्वे देवाः प्रतिहत ईक्षणाः न अपश्यन् दिशः खं क्षोणीं आत्मानं च कुतः विभुम् ॥२॥

तेन एव महसा	(भगवान्‌के) उसी तेजसे	**दिशः क्षोणीं**	दिशाओंको, पृथ्वीको
ईक्षणाः	आखोंमें	**च आत्मानं**	तथा अपनेको भी
प्रतिहत	चकाचौंध होनेसे	**न अपश्यन्**	नहीं देख सके
सर्वे देवाः	सब देवता	**विभुं कुतः**	तब उन सर्वव्यापकको कैसे देखते ॥२॥

विरिञ्चो भगवान्दृष्ट्वा सह शर्वेण तां तनुम् ।
स्वच्छां मरकतश्यामां कञ्जगर्भारुणेक्षणाम् ॥ ३ ॥

विरिञ्चः भगवान् दृष्ट्वा सह शर्वेण तां तनुं स्वच्छां मरकत श्यामां कञ्ज गर्भ अरुण ईक्षणाम् ॥३॥

सह शर्वेण	शंकरजीके साथ	**स्वच्छां**	निर्मल
भगवान्	भगवान्	**मरकत**	नीलम मणिके समान
विरिञ्चः	ब्रह्माने	**श्यामां**	श्याम,
तां तनुं	उस (भगवान्के) रूपको	**कञ्ज**	कमलके
		गर्भ	भीतरी भागके समान
दृष्ट्वा	देखा,	**अरुण ईक्षणां**	लाल नेत्रवाले ॥३॥

तप्तहेमावदातेन लसत्कौशेयवाससा ।
प्रसन्नचारुसर्वाङ्गीं सुमुखीं सुन्दरभ्रुवम् ॥ ४ ॥

तप्त हेम अवदातेन लसत् कौशेय वाससा प्रसन्न चारु सर्वाङ्गीं सुमुखीं सुन्दर भ्रुवम् ॥४॥

तप्त हेम	तपाये हुए स्वर्णके	**चारु सर्वाङ्गीं**	सर्वाङ्ग सुन्दर,
अवदातेन	समान आभावाले	**सुमुखीं**	सुन्दर मुख,
कौशेय वाससा	रेशमी वस्त्रसे	**सुन्दर**	सुन्दर
लसत्	सुशोभित	**भ्रुवं**	भौंहोंवाली (मूर्ति)
प्रसन्न	प्रसन्न,		थी ॥४॥

महामणिकिरीटेन केयूराभ्यां च भूषिताम् ।
कर्णाभरणनिर्भातकपोलश्रीमुखाम्बुजाम् ॥ ५ ॥

महामणि किरीटेन केयूराभ्यां च भूषितां कर्ण आभरण निर्भात कपोल श्रीमुख अम्बुजाम् ॥५॥

महामणि	महामणि जड़ित	**कपोल**	कपोलोंवालासे
किरीटेन	मुकुट	**श्रीमुख अम्बुजां**	श्रीमुख-कमल
च केयूराभ्यां	तथा अंगदोंसे	**निर्भात**	अत्यन्त शोभित था
भूषितां	भूषित थी,		॥५॥
कर्ण आभरण	कानोंके आभूषण (कुंडल) से		

काञ्चीकलापवलयहारनूपुरशोभिताम् ।
कौस्तुभाभरणां लक्ष्मीं बिभ्रतीं वनमालिनीम् ॥ ६ ॥

काञ्चीकलाप वलय हार नूपुर शोभितां कौस्तुभ आभरणां लक्ष्मीं बिभ्रतीम् वनमालिनीम् ॥६॥

काञ्चीकलाप	करधनी,	**आभरणां**	भूषित किये,
वलय हार	कङ्कण, हार,	**लक्ष्मीं**	श्रीवत्सचिह्न
नूपुर शोभितां	नूपुरसे सुशोभित,	**वनमालिनीं**	तथा वनमाला
कौस्तुभ	कौस्तुभमणिसे	**बिभ्रतीं**	धारण किये ॥६॥

सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपासिताम् ।
तुष्टाव देवप्रवरः सशर्वः पुरुषं परम् ।
सर्वामरगणैः साकं सर्वाङ्गैरवनिं गतैः ॥ ७ ॥

सुदर्शन आदिभिः स्व अस्त्रैः मूर्तिमत्भिः उपासितां तुष्टाव देवप्रवरः सशर्वः पुरुषं परं सर्व अमरगणैः साकं सर्वाङ्गैः अवनिं गतैः ॥७॥

सुदर्शन	सुदर्शन	**साकं**	साथ
आदिभिः	आदि	**सर्वाङ्गैः**	सम्पूर्ण अंगसे
मूर्तिमत्भिः	मूर्तिमान	**अवनिं गतैः**	पृथ्वीपर पड़कर (साष्टाङ्ग प्रणाम करके)
स्व अस्त्रैः	अपने अस्त्रोंसे		
उपासितां	उपासित (उस मूर्तिको देखकर)	**परं पुरुषं**	परम पुरुषकी
		तुष्टाव	स्तुति करने लगे ॥७॥
सशर्वः	शंकरजीके साथ		
देवप्रवरः	देवश्रेष्ठ ब्रह्माजीने		
सर्व अमरगणैः	सब देवताओंके		

ब्रह्मोवाच–

अजातजन्मस्थितिसंयमाया-
गुणाय निर्वाणसुखार्णवाय ।

अणोरणिम्नेऽपरिगण्यधाम्ने

महानुभावाय नमो नमस्ते ॥ ८ ॥

अजात जन्म स्थिति संयमाय अगुणाय निर्वाण सुख अर्णवाय अणोः अणिम्ने अपरिगण्य धाम्ने महानुभावाय नमो नमः ते ॥८॥

जन्म	जन्म,	**अणोः अणिम्ने**	अणुसे भी अणु,
स्थिति संयमाय	स्थिति, प्रलय	**अपरिगण्य**	अपरिगणित
अजात	जिनका होता ही नहीं,	**धाम्ने**	स्वरूप,
		महानुभावाय	महा प्रभावशाली प्रभु
अगुणाय	उन निर्गुण		
निर्वाण सुख	मोक्ष सुख	**ते नमो**	आपको बार-बार
अर्णवाय	सागर	**नमः**	नमस्कार ॥८॥

रूपं तवैतत् पुरुषर्षभेज्यं

श्रेयोऽर्थिभिर्वैदिकतान्त्रिकेण ।

योगेन धातः सह नस्त्रिलोकान्

पश्याम्यमुष्मिन् नु ह विश्वमूर्तौ ॥ ९ ॥

रूपं तव एतत् पुरुष ऋषभ इज्यं श्रेयः अर्थिभिः वैदिक तान्त्रिकेण योगेन धातः सह नः त्रिलोकान् पश्यामि अमुष्मिन् नु ह विश्वमूर्तौ ॥९॥

पुरुष ऋषभ	पुरुषोत्तम !	**धातः अमुष्मिन्**	त्राता ! आपके इस
श्रेयः	अपना कल्याण	**विश्वमूर्तौ**	विश्वरूपमें
अर्थिभिः	चाहनेवालों द्वारा	**नु ह**	निश्चय ही
तव एतत् रूपं	आपका यह रूप	**नः**	हम देवताओंके
वैदिक	वैदिक और	**सह**	साथ
तान्त्रिकेण	तान्त्रिक	**त्रिलोकान्**	तीनों लोकोंको
योगेन	विधिसे	**पश्यामि**	देख रहा हूँ ॥९॥
इज्यं	पूजनीय हैं		

त्वय्यग्र आसीत् त्वयि मध्य आसीत्
त्वय्यन्त आसीदिदमात्मतन्त्रे ।
त्वमादिरन्तो जगतोऽस्य मध्यं
घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात् ॥१०॥

त्वयि अग्र आसीत् त्वयि मध्य आसीत् त्वयि अन्त आसीत् इदं आत्मतन्त्रे त्वं आदिः अन्तः जगतः अस्य मध्यं घटस्य मृत्स्ना इव परः परस्मात् ॥१०॥

परस्मात्	इसपर (प्रकृति) से भी	**त्वयि अन्त**	आपमें ही अन्त
परः	आप परे हैं,	**आसीत्**	है
आत्मतन्त्रे	परम स्वतन्त्र आपमें	**घटस्य मृत्स्ना**	घड़ेका मिट्टीके
इदं त्वयि	इस जगत्का आप ही	**इव**	समान
अग्र आसीत्	आदि है,	**अस्य जगतः**	इस जगत्के
त्वयि मध्य	आपमें ही मध्य	**त्वं**	आप ही
आसीत्	है,	**आदिः अन्तः**	आदि, अन्त और
		मध्यं	मध्य भी हो ॥१०॥

त्वं माययाऽऽत्माश्रयया स्वयेदं
निर्माय विश्वं तदनुप्रविष्टः ।
पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणो
गुणव्यवायेऽप्यगुणं विपश्चितः ॥११॥

त्वं मायया आत्म आश्रयया स्वया इदं निर्माय विश्वं तत् अनुप्रविष्टः पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणः गुणव्यवाये अपि अगुणं विपश्चितः ॥११॥

त्वं स्वया	आप अपना	**निर्माय तत्**	बनाकर फिर
आत्म	अपने	**अनुप्रविष्टः**	इसमें प्रविष्ट हो गये हैं,
आश्रयया	आश्रयमें रहनेवाली		
मायया इदं	मायासे इस विश्व-को	**विपश्चितः**	विवेकी
		मनीषिणः	बुद्धिमान

युक्ता	युक्ति जाननेवाले	**अपि**	भी
मनसा	मनसे	**अगुणं**	आपको निर्गुण
गुणव्यवाये	गुणोंकी सृष्टिमें	**पश्यन्ति**	देखते हैं ॥११॥

यथाग्निमेधस्यमृतं च गोषु
भुव्यन्नमम्बूद्यमने च वृत्तिम् ।
योगैर्मनुष्या अधियन्ति हि त्वां
गुणेषु बुद्ध्या कवयो वदन्ति ॥१२॥

यथा अग्नि एधस्य अमृतं च गोषु भुवि अन्नं अम्बु उद्यमने च वृत्तिं योगैः मनुष्याः अधियन्ति हि त्वां गुणेषु बुद्ध्या कवयः वदन्ति ॥१२॥

यथा एधस्य	जैसे लकड़ीमें-से	**मनुष्याः**	मनुष्य
अग्नि	अग्नि	**अधियन्ति**	पालेते है
च गोषु	और गायोंमें-से	**हि त्वां**	क्योंकि आपको
अमृतं	अमृत (थी)		(वैसे ही)
भुवि अन्नं	पृथ्वीमें-से अन्न और	**कवयः**	बुद्धिमान
अम्बु	जल,	**बुद्ध्या**	बुद्धि द्वारा
च उद्यमने	तथा उद्यमसे	**गुणेषु**	गुणोंमें पालते और
वृत्तिं	आजीविका	**वदन्ति**	वर्णन करते हैं
योगैः	उपायों द्वारा		॥१२॥

तं त्वां वयं नाथ समुज्जिहानं
सरोजनाभातिचिरेप्सितार्थम् ।
दृष्ट्वा गता निर्वृतिमद्य सर्वे
गजा दवार्ता इव गाङ्गमम्भः ॥१३॥

तं त्वां वयं नाथ सम उज्जिहानं सरोजनाभ अतिचिर ईप्सित अर्थं दृष्ट्वा गता निर्वृतिं अद्य सर्वे गजा दव आर्ता इव गाङ्गं अम्भः ॥१३॥

सरोजनाभ	पद्मनाभ !
अतिचिर	वहुत समयसे
ईप्सित	अभीष्ट
अर्थं	प्रयोजन रूप
नाथ तं त्वां	स्वामी उस आपको
'सम उज्जिहानं	सम्मुख प्रकट हुए
दृष्ट्वा	देखकर
दव आर्ता	दावाग्नि संतप्त
गजा	हाथीके
गाङ्गं अम्भः	गंगा जल पानेके
इव	समान
अद्य वयं सर्वे	आज हम सब
निर्वृतिं गता	परमानन्द प्राप्त हुए ॥१३॥

स त्वं विधत्स्वाखिललोकपाला
वयं यदर्थास्तव पादमूलम् ।
समागतास्ते बहिरन्तरात्मन्
किं वान्यविज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः ॥१४॥

स त्वं विधत्स्व अखिल लोकपाल वयं यत् अर्थाः तव पादमूलं समागताः ते बहिः अन्तः आत्मनि किं वा अन्य विज्ञाप्यं अशेष साक्षिणः ॥१४॥

वयं अखिल	हम सब
लोकपाल	लोकपाल
यत् अर्थाः	जिस प्रयोजनसे
तव पादमूलं	आपके चरणोंके समीप
समागताः	आए हैं
स त्वं विधत्स्व	उसे आप पूरा कर दो,
ते अशेष	आप सबके ही
आत्मनि बहिः	शरीरके बाहर-
अन्तः	भीतरके
साक्षिणः	साक्षीसे
वा अन्य किं	फिर दूसरा क्या
विज्ञाप्यं	सूचित करना रहा है ॥१४॥

अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये
दक्षादयोऽग्नेरिव केतवस्ते ।
किं वा विदामेश पृथग्विभाता
विधत्स्व शं नो द्विजदेवमन्त्रम् ॥१५॥

अहं गिरित्रः च सुरादयः ये दक्ष आदयः अग्नेः इव केतवः ते किं वा विदाम ईश पृथक् विभाता विधत्स्व शं नः द्विज देव मन्त्रम् ॥१५॥

अहं गिरित्रः	मैं, शंकरजी,	**किं वा**	अथवा क्या (अपना
च ये	तथा जो		कल्याण)
सुरादयः	देवतादि,	**विदाम**	जान सकते हैं
दक्ष आदयः	दक्ष आदि (प्रजा-	**ईश नः**	अतः स्वामी ! हम
	पति)	**देव द्विज**	देवता, ब्राह्मणोंके-
अग्नेः	अग्निकी	**शं मन्त्रं**	कल्याणका उपाय
केतवः	चिनगारियोंके	**विधत्स्व**	(आप ही) कीजिए
इव	समान		॥१५॥
ते पृथक्	आपसे पृथक्		
विभाता	प्रकाशित		

श्रीशुक उवाच

एवं विरिञ्चादिभिरीडितस्तद्
विज्ञाय तेषां हृदयं तथैव ।
जगाद जीमूतगभीरया गिरा
बद्धाञ्जलीन्संवृतसर्वकारकान् ॥१६॥

एवं विरिञ्च आदिभिः ईडितः तत् विज्ञाय तेषां हृदयं तथा एव जगाद जीमूत गभीरया गिरा बद्ध अंजलीन् संवृत सर्व कारकान् ॥१६॥

एवं	इस प्रकार	**विज्ञाय**	जानकर
विरिञ्च	ब्रह्मा	**सर्व कारकान्**	सब इन्द्रियोंको
आदिभिः	आदि द्वारा	**संवृत**	रोककर
ईडितः	स्तुति करनेपर	**अंजलीन् बद्ध**	हाथ जोड़े
तत् हृदयं	उनके हृदयकी	**तेषां**	उन (देवताओं)से
	इच्छा	**तथा**	और (उनकी
			इच्छाके)

एव	अनुसार ही	**जगाद**	(भगवान्) बोले
जीमूत गभीरया	मेघ गम्भीर		॥१६)
गिरा	वाणीसे		

एक एवेश्वरस्तस्मिन्सुरकार्ये सुरेश्वरः ।
विहर्तुकामस्तानाह समुद्रोन्मथनादिभिः ॥१७॥

एक एव ईश्वरः तस्मिन् सुर कार्ये सुर ईश्वरः विहर्तु कामः तान् आह समुद्र उन्मथन आदिभिः ॥१७॥

सुर ईश्वरः	वे देवताओंके स्वामी	**समुद्र उन्मथन**	समुद्र-मन्थन
सुर	देवताओंके	**आदिभिः**	आदिके द्वारा
तस्मिन् कार्ये	उस काममें	**विहर्तु**	क्रीड़ा करनेकी
एक एव	अकेले ही	**कामः**	इच्छासे
ईश्वरः	समर्थ होनेपर भी	**तान् आह**	उनसे बोले ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच—

हन्त ब्रह्मन्नहो शम्भो हे देवा मम भाषितम् ।
शृणुतावहिताः सर्वे श्रेयो वः स्याद् यथा सुराः ॥१८॥

हन्त ब्रह्मन् अहो शम्भो हे देवा मम भाषितं शृणुता अवहिताः सर्वे श्रेयः वः स्यात् यथा सुराः ॥१८॥

हन्त ब्रह्मन्	हे ब्रह्माजी,	**शृणुता**	सुनो,
अहो शम्भो	हे शङ्कर,	**सुराः यथा**	देवताओ, जिससे
हे देवा सर्वे	हे देवगण सब लोग	**वः श्रेयः स्यात्**	तुम लोगोंका कल्याण
अवहिताः	सावधान होकर		हो ॥१८॥
मम भाषितं	मेरा भाषण		

यात दानवदैतेयैस्तावत् सन्धिर्विधीयताम् ।
कालेनानुगृहीतैस्तैर्यावद् वो भव आत्मनः ॥१९॥

यात दानव दैतेयैः तावत् सन्धिः विधीयतां कालेन अनुगृहीतैः तैः यावत् वः भव आत्मनः ॥१९॥

यात यावत्	जाओ, जब तक	**तावत् दानव**	तब तक दानव
वः आत्मनः	तुम लोगोंके अपने	**दैतेयैः**	दैत्योंसे
भव तैः	अभ्युदयका वह	**सन्धिः**	सन्धि
अनुगृहीतैः	अनुकूल	**विधीयतां**	कर लो ॥१९॥
कालेन	समय न आवे		

अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे ।
अहिमूषकवद् देवा ह्यर्थस्य पदवीं गतैः ॥२०॥

अरयः अपि हि सन्धेयाः सति कार्य अर्थ गौरवे अहि मूषकवत् देवा हि अर्थस्य पदवीं गतैः ॥२०॥

हि देवा	क्योंकि देवताओं	**पदवीं गतैः**	अवसर आनेपर
गौरवे कार्य	बड़ा कार्य सिद्ध करनेका	**अहि मूषकवत्**	सर्प चूहेके समान
		अरयः अपि हि	शत्रु भी तो
अर्थ सति	प्रयोजन होनेपर	**सन्धेयाः**	सन्धि कर लेने योग्य होते हैं ॥२०॥
अर्थस्य	प्रयोजन पूर्तिका		

अमृतोत्पादने यत्नः क्रियतामविलम्बितम् ।
यस्य पीतस्य वै जन्तुर्मृत्युग्रस्तोऽमरो भवेत् ॥२१॥

अमृत उत्पादने यत्नः क्रियतां अविलम्बितं यस्य पीतस्य वै जन्तुः मृत्युग्रस्तः अमरः भवेत् ॥२१॥

अविलम्बितं	बिना बिलम्ब किये	**मृत्युग्रस्तः**	मृत्युग्रस्त
अमृत उत्पादने	अमृत उत्पन्न करनेका	**जन्तुः**	प्राणी
		वै अमरः भवेत्	निश्चय अमर हो जाता है ॥२१॥
यत्नः क्रियतां	प्रयत्न करो		
यस्य पीतस्य	जिसको पीनेपर		

क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ सर्वा वीरुत्तृणलतौषधीः ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥२२॥

क्षिप्त्वा क्षीर उदधौ सर्वा वीरुत् तृण लता औषधिः मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥२२॥

क्षीर उदधौ	क्षीर-सागरमें	**मन्थानं कृत्वा**	मथानी बनाकर
सर्वा वीरुत्	सब पौधे	**तु वासुकिं**	तथा वासुकी-नाग-को
तृण लता	घास, लता तथा	**नेत्रं कृत्वा**	मन्थन-रज्जु बनाकर ॥२२॥
औषधिः	औषधियां		
क्षिप्त्वा	डालकर		
मन्दरं	मन्दराचलको		

सहायेन मया देवा निर्मन्थध्वमतन्द्रिताः ।
क्लेशभाजो भविष्यन्ति दैत्या यूयं फलग्रहाः ॥२३॥

सहायेन मया देवा निर्मन्थध्वं अतन्द्रिताः क्लेशभाजः भविष्यन्ति दैत्या यूयं फलग्रहाः ॥२३॥

देवा मया	देवताओ, मेरी	**क्लेश भाजः**	क्लेशभागी और
सहायेन	सहायतासे	**यूयं फलग्रहाः**	तुम लोग फल लेने वाले
अतन्द्रिताः	आलस्य त्यागकर	**भविष्यन्ति**	होओगे ॥२३॥
निर्मन्थध्वं	मन्थन करो		
दैत्याः	दैत्य		

यूयं तदनुमोदध्वं यदिच्छन्त्यसुराः सुराः ।
न संरम्भेण सिध्यन्ति सर्वेऽर्थाः सान्त्वया यथा ॥२४॥

यूयं तत् अनुमोदध्वं यत् इच्छन्ति असुराः सुराः न संरम्भेण सिध्यन्ति सर्वे अर्थाः सान्त्वया यथा ॥२४॥

यत् असुराः	जो असुर	**सुराः यूयं**	देवताओ ! तुम लोग
इच्छन्ति	चाहते हैं,	**तत्**	उसे

अनुमोदध्वं	स्वीकार कर लो	**सिध्यन्ति**	सिद्ध होते हैं
सर्वे अर्थाः	सब प्रयोजन	**संरम्भेण**	वैसे (क्रोधसे)
यथा सान्त्वया	जैसे शान्तिपूर्वक	**न**	नहीं ॥२४॥

न भेतव्यं कालकूटाद् विषाज्जलधिसम्भवात् ।
लोभ कार्यो न वो जातु रोषः कामस्तु वस्तुषु ॥२५॥

न भेतव्यं कालकूटात् विषात् जलधि सम्भवात् लोभः कार्यः न वः जातुः रोषः कामः तु वस्तुषु ॥२५॥

जलधि	समुद्रसे	**वस्तुषु**	वस्तुके लिए
सम्भवात्	उत्पन्न होनेवाले	**लोभः कामः तु**	लोभ, कामना भी
कालकूटात्	कालकूट	**रोषः वः**	या क्रोध तुम लोगों-को
विषात्	विषसे		
भेतव्यं न	डरना नहीं चाहिए,	**न कार्यः**	नहीं करना चाहिए
जातुः	उत्पन्न होनेवाली झिल्ली		॥२५॥

श्रीशुक उवाच—

इति देवान्समादिश्य भगवान्पुरुषोत्तमः ।
तेषामन्तर्दधे राजन्स्वच्छन्दगतिरीश्वरः ॥२६॥

इति देवान् समादिश्य भगवान् पुरुषोत्तमः तेषां अन्तः दधे राजन् स्वच्छन्द गतिः ईश्वरः ॥२६॥

देवान् इति	देवताओंको इस प्रकार	**ईश्वरः भगवान्**	सर्वसमर्थ भगवान्
समादिश्य	भली प्रकार आदेश देकर	**पुरुषोत्तमः**	पुरुषोत्तम
स्वच्छन्द गतिः	स्वच्छन्द गति	**तेषां**	उनके सामनेसे
		अन्तः दधे	अन्तर्धान हो गये ॥२६॥

अथ तस्मै भगवते नमस्कृत्य पितामहः ।
भवश्च जग्मतुः स्वं स्वं धामोपेयुर्बलिं सुराः ॥२७॥

अथ तस्मै भगवते नमः कृत्य पितामहः भवः च जग्मतुः स्वं स्वं धाम उपेयुः बलिं सुराः ॥२७॥

अथ तस्मै	तब उन	**स्वं स्वं धाम**	अपने-अपने धाम
भगवते	भगवान्‌को	**जग्मतुः**	चले गये
नमः कृत्य	प्रणाम करके	**सुराः**	देवता
पितामहः च	ब्रह्मा और	**बलिं**	दैत्यराज बलिके
भवः	शंकरजी	**उपेयुः**	समीप पहुँचे ॥२७॥

दृष्ट्वारीनप्यसंयत्ताञ्जातक्षोभान्स्वनायकान् ।
न्यषेधद् दैत्यराट् श्लोक्यः सन्धिविग्रहकालवित् ॥२८॥

दृष्ट्वा अरीन् अपि संयत्तान् जातक्षोभान् स्वनायकान् न्यषेधत् दैत्यराट् श्लोक्यः सन्धिविग्रह कालवित् ॥२८॥

अरीन्	शत्रुओंको	**सन्धि विग्रह**	सन्धि और युद्धके
संयत्तान् अपि	संयमित (निःशस्त्र) भी	**कालवित्**	समयको जाननेवाले
		श्लोक्यः	यशस्वी
दृष्ट्वा	देखकर	**दैत्यराट्**	दैत्यराजने
जातक्षोभान्	क्रुद्ध हुए	**न्यषेधत्**	रोक दिया ॥२८॥
स्वनायकान्	अपने सेनानायकोंको		

ते वैरोचनिमासीनं गुप्तं चासुरयूथपैः ।
श्रिया परमया जुष्टं जिताशेषमुपागमन् ॥२९॥

ते वैरोचनिं आसीनं गुप्तं च असुरयूथपैः श्रिया परमया जुष्टं जित अशेषं उप आगमन् ॥२९॥

असुरयूथपैः	असुर सेना नायकोंसे	**परमया श्रिया**	परम शोभा
गुप्तं च	सुरक्षित तथा	**जुष्टं**	सम्पन्न

आसीनं	बैठे हुए	**जित अशेषं**	पराजित
वैरोचनिं	विरोचननन्दन	**उप आगमन्**	समीप आए ॥२८॥
ते	वे सम्पूर्ण रूपसे		

महेन्द्रः श्लक्ष्णया वाचा सान्त्वयित्वा महामतिः ।
अभ्यभाषत तत् सर्वं शिक्षितं पुरुषोत्तमात् ॥३०॥

महेन्द्रः श्लक्ष्णया वाचा सान्त्वयित्वा महामतिः अभ्यभाषत तत् सर्वं शिक्षितं पुरुषोत्तमात् ॥३०॥

महामतिः	महाबुद्धिमान	**पुरुषोत्तमात्**	पुरुषोत्तमसे
महेन्द्रः	इन्द्रने	**शिक्षितं तत्**	सीखा था, वह
श्लक्ष्णया वाचा	मधुर वाणीसे	**सर्वं**	सब
सान्त्वयित्वा	सान्त्वना देकर	**अभ्यभाषत**	सुनाया ॥३०॥
(यत्)	जो भगवान्		

तदरोचत दैत्यस्य तत्रान्ये येऽसुराधिपाः ।
शम्बरोऽरिष्टनेमिश्च ये च त्रिपुरवासिनः ॥३१॥

तत् अरोचत दैत्यस्य तत्र अन्ये ये असुर अधिपाः शम्बरः अरिष्टनेमिः च ये च त्रिपुरवासिनः ॥३१॥

तत्	यह बात	**च ये**	तथा जो
दैत्यस्य	दैत्यराजको और	**त्रिपुरवासिनः**	त्रिपुरवासी
तत्र ये अन्ये	वहां जो दूसरे	**असुर अधिपाः**	असुर-नायक थे
शम्बरः	शम्बर,		उनको
अरिष्टनेमिः	अरिष्टनेमि	**अरोचत**	अच्छी लगी ॥३१॥

ततो देवासुराः कृत्वा संविदं कृतसौहृदाः ।
उद्यमं परमं चक्रुरमृतार्थे परन्तप ॥३२॥

ततः देव असुराः कृत्वा संविदं कृत सौहृदाः उद्यमं परमं चक्रुः अमृत अर्थे परंतप ॥३२॥

परंतप	शत्रुको संतप्त करने-वाले परीक्षित !
ततः देव	तब देवता और
असुराः	असुरोंने
संविदं कृत्वा	सलाह करके
सौहृदाः	परस्पर मित्रता
कृत	करके,
अमृत अर्थे	अमृतके लिए
परमं उद्यमं	भारी उद्योग
चक्रुः	(प्रारम्भ) किया ॥३२॥

ततस्ते मन्दरगिरिमोजसोत्पाटच दुर्मदाः ।
नदन्त उदधिं निन्युः शक्ताः परिघबाहवः ॥३३॥

ततः ते मन्दरगिरिं ओजसा उत्पाटच दुर्मदाः नदन्त उदधिं निन्युः शक्ताः परिघ बाहवः ॥३३॥

ततः ते	तब वे
शक्ताः दुर्मदाः	शक्तिशाली, गर्विष्ठ
परिघ	परिघके समान
बाहवः	भुजाओं वालोंने
ओजसा	बलपूर्वक
मन्दरगिरिं	मन्दराचलको
उत्पाटच	उखाड़कर
नदन्त	गर्जना करते हुए
उदधिं निन्युः	समुद्रकी ओर ले चले ॥३३॥

दूरभारोद्वहश्रान्ताः शक्रवैरोचनादयः ।
अपारयन्तस्तं वोढुं विवशा विजहुः पथि ॥३४॥

दूर भार उद्वह श्रान्ताः शक्र बैरोचन आदयः अपारयन्तः तं वोढुं विवशा विजहुः पथि ॥३४॥

दूर भार उद्वह	दूर तक भार ढोनेसे
श्रान्ताः शक्र	थककर इन्द्र
वैरोचन	बलि
आदयः	आदिने
तं वोढुं	उसे ढोनेमें
अपारयन्तः	असमर्थ होकर
विवशा पथि	विवश होकर मार्गमें
विजहुः	छोड़ दिया ॥३४॥

निपतन्स गिरिस्तत्र बहूनमरदानवान् ।
चूर्णयामास महता भारेण कनकाचलः ॥३५॥

निपतन् स गिरिः तत्र बहून् अमर दानवान् चूर्णयामास महता भारेण कनक अचलः ॥३५॥

तत्र निपतन्	वहां गिरते समय	**बहून् अमर**	वहुतसे देव-
स गिरिः	उस पर्वतने	**दानवान्**	दानवोंको
महता भारेण	अपने भारी भारसे	**चूर्णयामास**	पीस डाला ॥३५॥
कनक अचलः	उस स्वर्ण पर्वतने		

तांस्तथा भग्नमनसो भग्नबाहूरुकन्धरान् ।
विज्ञाय भगवांस्तत्र बभूव गरुडध्वजः ॥३६॥

तान् तथा भग्न मनसः भग्न बाहु उरु कन्धरान् विज्ञाय भगवान् तत्र बभूव गरुडध्वजः ॥३६॥

तान्	उन लोगोंको	**भग्न विज्ञाय**	टूटा जानकर
तथा	उस प्रकार	**तत्र गरुडध्वजः**	वहां गरुडध्वज
भग्न मनसः	भग्न संकल्प तथा	**भगवान् बभूव**	भगवान् प्रगट हो
बाहु उरु	भुजा, जांघें,		गये ॥३६॥
कन्धरान्	कन्धे		

गिरिपातविनिष्पिष्टान्विलोक्यामरदानवान् ।
ईक्षया जीवयामास निर्जरान् निर्व्रणान्यथा ॥३७॥

गिरिपात विनिष्पिष्टान् विलोक्य अमर दानवान् ईक्षया जीवयामास निर्जरान् निर्व्रणान् यथा ॥३७॥

गिरिपात	पर्वतके गिरनेसे	**निर्जरान्**	थकावट और
विनिष्पिष्टान्	अत्यधिक कुचले हुए	**निर्व्रणान्**	चोटोंसे रहित
अमर दानवान्	देवता-दानवोंको	**यथा**	के समान करके
विलोक्य	देखकर	**जीवयामास**	जीवित कर दिया
ईक्षया	अपनी दृष्टिसे ही		॥३७॥

गिरिं चारोप्य गरुडे हस्तेनैकेन लीलया ।
आरुह्य प्रययावब्धिं सुरासुरगणैर्वृतः ॥३८॥

गिरिं च आरोप्य गरुडे हस्तेन एकेन लीलया आरुह्य प्रययाः अब्धिं सुर असुर गणैः वृतः ॥३८॥

एकेन हस्तेन	एक ही हाथसे	**सुर असुर गणैः**	देवता-असुर गणोंसे
गिरिं च गरुडे	पर्वतको भी गरुड़पर	**वृतः अब्धिं**	घिरे हुए समुद्रकी
लीलया	खेल-खेलमें		ओर
आरोप्य	रखकर	**प्रययाः**	चल पड़े ॥३८॥
आरुह्य	स्वयं भी बैठकर		

अवरोप्य गिरिं स्कन्धात् सुपर्णः पततां वरः ।
ययौ जलान्त उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः ॥३९॥

अवरोप्य गिरिं स्कन्धात् सुपर्णः पततां वरः ययौ जलान्त उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः ॥३९॥

पततां वरः	पक्षि-श्रेष्ठ	**जलान्त**	जलके समीप
सुपर्णः	गरुड़	**उत्सृज्य**	छोड़कर
गिरिं	पर्वतको अपने	**स हरिणा**	वे श्रीहरिके द्वारा
स्कन्धात्	कन्धेसे	**विसर्जितः**	विदा किये जानेपर
अवरोप्य	उतारकर	**ययौ**	चले गये ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
क्षीरसमुद्रमथने मन्दराचलानयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीशक उवाच—

ते नागराजमामन्त्र्य फलभागेन वासुकिम् ।
परिवीय गिरौ तस्मिन् नेत्रमब्धिं मुदान्विताः ॥ १ ॥

ते नागराजं आमन्त्र्य फलभागेन वासुकि परिवीय गिरौ तस्मिन् नेत्रं अब्धिं मुदा अन्विताः ॥१॥

ते	उन्होंने (समुद्र मन्थनसे प्राप्त होने-वाले)	**वासुकि**	वासुकीको
		तस्मिन् गिरौ	उस पर्वतमें
फलभागेन	फलमें भाग देना	**नेत्रं परिवीय**	मन्थन-रज्जुके समान लपेटकर
आमन्त्र्य	स्वीकार करके	**मुदा अन्विताः**	प्रसन्न होकर ॥१॥
नागराजं	नागराज		

आरेभिरे सुसंयत्ता अमृतार्थं कुरूद्वह ।
हरिः पुरस्ताज्जगृहे पूर्वं देवास्ततोऽभवन् ॥ २ ॥

आरेभिरे सुसंयत्ता अमृत अर्थं कुरुद्वह हरिः पुरस्तात् जगृहे पूर्वं देवाः ततः अभवन् ॥२॥

कुरुद्वह	कुरुकुल पालक परीक्षित !	**हरिः पुरस्तात्**	श्रीहरिने सबसे पहिले
सुसंयत्ता	अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक	**पूर्वं जगृहे**	अगला भाग पकड़ा,
अमृत अर्थं	अमृतके लिए	**ततः देवाः**	तब देवता (उनके पीछे)
आरेभिरे	प्रयत्न प्रारम्भ किया,	**अभवन्**	हो गये ॥२॥

तन्नैच्छन् दैत्यपतयो महापुरुषचेष्टितम् ।
न गृह्णीमो वयं पुच्छमहेरङ्गममङ्गलम् ॥ ३ ॥

तत् न इच्छन् दैत्यपतयः महापुरुष चेष्टितं न गृह्णीमः वयं पुच्छं अहेः अङ्गं अमङ्गलम् ॥३॥

दैत्यपतयः	दैत्यनायकोंने	अहेः अमङ्गलं	सर्पका अशुभ
तत् महापुरुष	उस पुरुषोत्तमकी	अङ्गं पुच्छं	अंग पूँछ
चेष्टितं	चेष्टाको स्वीकार	वयं न	हम नहीं
न इच्छन्	नहीं किया कि	गृह्णीमः	पकड़ेंगे ॥३॥

स्वाध्यायश्रुतसम्पन्नाः प्रख्याता जन्मकर्मभिः ।
इति तूष्णीं स्थितान्दैत्यान् विलोक्य पुरुषोत्तमः ।
स्मयमानो विसृज्याग्रं पुच्छं जग्राह सामरः ॥ ४ ॥

स्वाध्याय श्रुत सम्पन्नाः प्रख्याता जन्मकर्मभिः इति तूष्णीं स्थितान् दैत्यान् विलोक्य पुरुषोत्तमः स्मयमानः विसृज्य अग्रं पुच्छं जग्राह स अमरः ॥४॥

श्रुत स्वाध्याय	वेदाध्यनसे (हम)	विलोक्य	देखकर (भगवान्)
सम्पन्नाः	सम्पन्न हैं,	पुरुषोत्तमः	पुरुषोत्तमने
जन्मकर्मभिः	जन्म तथा कर्मसे	स्मयमानः	मुस्कराते हुए
प्रख्याता	प्रसिद्ध हैं ।	अग्रं विसृज्य	अगल भाग छोड़कर
इति दैत्यान्	यह मानकर दैत्यों-को	स अमरः	देवताओंके साथ
		पुच्छं जग्राह	पूंछ पकड़ लिया ॥४॥
तूष्णीं स्थितान्	चुपचाप बैठे		

कृतस्थानविभागास्त एवं कश्यपनन्दनाः ।
ममन्थुः परमायत्ता अमृतार्थं पयोनिधिम् ॥ ५ ॥

कृत स्थान विभागाः त एवं कश्यप नन्दनाः ममन्थुः परम आयत्ता अमृत अर्थं पयोनिधिम् ॥५॥

एवं स्थान	इस प्रकार स्थानका	**अमृत अर्थं**	अमृतके लिए
विभागाः	बटवारा	**पयोनिधिं**	क्षीरसागरका
कृत त	करके वे	**ममन्थुः**	मन्थन करने लगे
कश्यप नन्दनाः	कश्यपजीके पुत्र		॥५॥
परम आयत्ता	अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक		

मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ।
ध्रियमाणोऽपि बलिभिर्गौरवात् पाण्डुनन्दन ॥ ६ ॥

मथ्यमाने अर्णवे सः अद्रिः अनाधारः हि अपः आविशत् ध्रियमाणः अपि बलिभिः गौरवात् पाण्डुनन्दन ॥६॥

पाण्डु-	पाण्डव-वंशको	**सः अनाधारः**	वह आधार रहित
नन्दन	आनन्द देनेवाले परीक्षित	**अद्रिः**	पर्वत
		हि	क्योंकि
बलिभिः	बलवानों द्वारा	**गौरवात्**	भारी होनेसे
ध्रियमाणः अपि	पकड़े रहनेपर भी	**अपः आविशत्**	पानीमें डूब गया
अर्णवे	समुद्र		॥७॥
मथ्यमाने	मन्थन करते समय		

ते सुनिर्विण्णमनसः परिम्लानमुखश्रियः ।
आसन् स्वपौरुषे नष्टे दैवेनातिबलीयसा ॥ ७ ॥

ते सुनिर्विण्ण मनसः परिम्लान मुख श्रियः आसन् स्वपौरुषे नष्टे दैवेन अतिबलीयसा ॥७॥

अतिबलीयसा	अत्यन्त बलवान	**सुनिर्विण्ण**	अत्यन्त खिन्न
दैवेन	दैव द्वारा	**मनसः**	चित्त,
स्वपौरुषे	अपना पुरुषार्थ	**मुख श्रियः**	मुखकी शोभा
नष्टे	नष्ट होनेपर	**परिम्लान**	मलिन
ते	उन (देवता-असुर) की	**आसन्**	हो गये ॥७॥

विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो
दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसन्धिः ।
कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत्
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ॥ ८ ॥

विलोक्य विघ्नेश विधिं तत् ईश्वरः दुरन्त वीर्यः अवितथ अभिसन्धिः कृत्वा वपुः काच्छपं अद्भुतं महत् प्रविश्य तोयं गिरिं उज्जहार ॥८॥

तत् विघ्नेश	उस विघ्नेश्वर (गणेशजी) के	**ईश्वरः महत्**	सर्वसमर्थने
विधि	(विघ्नरूप) उपायको	**अद्भुतं**	महा अद्भुत
विलोक्य	देखकर	**काच्छपं वपुः**	कच्छप शरीर
दुरन्त वीर्यः	अनन्त पराक्रम	**कृत्वा**	धारण करके
अवितथ	अमोघ	**तोयं प्रविश्य**	जलमें प्रवेश करके
अभिसन्धिः	संकल्प	**गिरिं उज्जहार**	पर्वतको ऊपर उठा लिया ॥८॥

तमुत्थितं वीक्ष्य कुलाचलं पुनः
समुत्थिता निर्मथितुं सुरासुराः ।
दधार पृष्ठेन स लक्षयोजन-
प्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान् ॥ ९ ॥

तं उत्थितं वीक्ष्य कुल अचलं पुनः समुत्थिता निर्मथितुं सुर असुराः दधार पृष्ठेन स लक्षयोजनः प्रस्तारिणा द्वीप इव अपरः महान् ॥९॥

तं कुल अचलं	उस कुल पर्वतको	**प्रस्तारिणा**	विस्तारवाला (कच्छप)
उत्थितं वीक्ष्य	ऊपर आया देखकर	**अपरः महान्**	दूसरे महा-
सुर असुराः	देवता और असुर	**द्वीप इव**	द्वीपके समान
पुनः निर्मथितुं	फिर मन्थन करनेके लिए	**पृष्ठेन**	(उस पर्वतको) पीठपर
समुत्थिता	उठ खड़े हुए,	**दधार**	धारण किया ॥९॥
स लक्षयोजनः	वह एक लाख योजन		

सुरासुरेन्द्रैर्भुजवीर्यवेपितं
परिभ्रमन्तं गिरिमङ्ग पृष्ठतः ।
बिभ्रत् तदावर्तनमादिकच्छपो
मेनेऽङ्गकण्डूयनमप्रमेयः ॥१०॥

सुर असुर इन्द्रैः भुजवीर्य वेपितं परिभ्रमन्तं गिरिं अङ्ग पृष्ठतः बिभ्रत् तत् आवर्तनं आदि कच्छपः मेने अङ्ग कण्डूयनं अप्रमेयः ॥१०॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	**पृष्ठतः बिभ्रत्**	पीठपर धारण करके
सुर असुर	देवता और असुर	**तत् आवर्तनं**	उसके घूमनेको
इन्द्रैः	नायकोंकी	**अप्रमेयः**	उन अपरिमित (बलशाली) ने
भुजवीर्य	भुजाओंके बलसे		
वेपितं	हिलाये जाते	**अङ्ग कण्डूयनं**	शरीर खुजलाना
परिभ्रमन्तं	घूमते	**मेने**	माना ॥१०॥
गिरिं	पर्वतको		

तथासुरानाविशदासुरेण
रूपेण तेषां बलवीर्यमीरयन् ।
उद्दीपयन् देवगणांश्च विष्णु-
र्दैवेन नागेन्द्रमबोधरूपः ॥११॥

तथा असुरान् आविशत् आसुरेण रूपेण तेषां बलवीर्यं ईरयन् उद्दीपयन् देवगणान् च विष्णुः दैवेन नागेन्द्रं अबोध रूपः ॥११॥

तथा विष्णुः	फिर श्रीहरिने	**च देवगणान्**	तथा देगवणोंको
असुरान्	असुरोंमें	**उद्दीपयन्**	उद्दीप्त करते
तेषां बलवीर्यं	उनके बल-पराक्रम-को	**दैवेन**	देव रूपमें,
		नागेन्द्रं	नागराज वासुकीमें
ईरयन्	बढ़ाते हुए	**अबोध रूपः**	निद्राके रूपमें
आसुरेण	असुरके	**आविशत्**	प्रवेश किया ॥११॥
रूपेण	रूपमें,		

उपर्यगेन्द्रं गिरिराडिवान्य
आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहुः ।
तस्थौ दिवि ब्रह्मभवेन्द्रमुख्यै-
रभिष्टुवद्भिः सुमनोऽभिवृष्टः ॥१२॥

उपरि अगेन्द्रं गिरिराट् इव अन्यः आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहुः तस्थौ दिवि ब्रह्म भव इन्द्र मुख्यैः अभिष्टुवत् भिः सुमनः अभिवृष्टः ॥१२॥

अगेन्द्रं	उस पर्वत राजके
उपरि	ऊपर
दिवि	आकाशमें
सहस्रबाहुः	हजारों हाथोंवाले
अन्यः	दूसरे
गिरिराट् इव	पर्वतराजके समान
हस्तेन	हाथसे
आक्रम्य	(पर्वतको) दबाकर
तस्थौ	स्थित हुए
ब्रह्म भव	ब्रह्मा, शंकर,
इन्द्र मुख्यैः	इन्द्रादि प्रमुख देवता
अभिष्टुवत् भिः	स्तुति करते हुए
सुमनः	पुष्प
अभिवृष्टः	वर्षा कर रहे थे ॥१२॥

उपर्यधश्चात्मनि गोत्रनेत्रयोः
परेण ते प्राविशता समेधिताः ।
ममन्थुरब्धिं तरसा मदोत्कटा
महाद्रिणा क्षोभितनक्रचक्रम् ॥१३॥

उपरि अधः च आत्मनि गोत्र नेत्रयोः परेण ते प्राविशता समेधिताः ममन्थुः अब्धिं तरसा मद उत्कटा महा अद्रिणा क्षोभित नक्र चक्रम् ॥१३॥

उपरि अधः	ऊपर और नीचे
च आत्मनि	तथा अपनेमें,
गोत्र नेत्रयोः	पर्वतमें, नेती (वासुकी) में
प्राविशता	प्रविष्ट हुए
परेण	परमात्मासे
समेधिताः	बहुत बढ़ाये गये
मद उत्कटा	मदोन्मन्त होकर
महा अद्रिणा	महापर्वतके द्वारा
नक्र चक्रं	मगर आदि जीव समूहोंको
क्षोभित	व्याकुल करते हुए
ते तरसा	वे वेगपूर्वक
अब्धिं ममन्थुः	समुद्र-मन्थन करने लगे ॥१३॥

अहीन्द्रसाहस्रकठोरदृङ्मुख-
श्वासाग्निधूमाहतवर्चसोऽसुराः ।
पौलोमकालेयबलील्वलादयो
दवाग्निदग्धाः सरला इवाभवन् ॥१४॥

अहीन्द्र साहस्र कठोर दृक् मुख श्वास अग्नि धूम आहत वर्चसः असुराः पौलोम कालेय बलि इल्वल आदयः दवाग्निदग्धाः सरला इव अभवन् ॥१४॥

अहीद्र	नागराज वासुकिके	**बलि इल्वल**	बलि, इल्वल,
साहस्र	सहस्र	**आदयः असुराः**	आदि असुर
कठोर दृक्	भयंकर नेत्रों,	**दवाग्निदग्धा**	दावाग्निसे जले
मुख श्वास	मुखों तथा श्वासकी	**सरला**	साखूके वृक्षोंकी
अग्नि धूम	अग्नि और धुएँसे	**इव**	भांति
आहत वर्चसः	निस्तेज हुए	**अभवन्**	हो गये ॥१४॥
पौलोम कालेय	पौलोम, कालेय,		

देवांश्च तच्छ्वासशिखाहतप्रभान्
धूम्राम्बरस्रग्वरकञ्चुकाननान् ।
समभ्यवर्षन्भगवद्वशा घना
ववुः समुद्रोर्म्युपगूढवायवः ॥१५॥

देवान् च तत् श्वास शिखा हतप्रभान् धूम्र अम्बर स्रक् वर कञ्चुक आननान् सम् अभ्यवर्षन् भगवत् वशा घना ववुः समुद्र ऊर्मि उपगूढ वायवः ॥१५॥

तत्	उस (वासुकी) की	**अम्बर स्रक्**	वस्त्र, माला,
श्वास	श्वासकी	**वर कञ्चुक**	श्रेष्ठ कुर्ते,
शिखा	ज्वालासे	**आननान्**	मुख
हतप्रभान्	कान्तिहीन हुए	**धूम्र**	धूसर (मैले पड़े)

देवान् च	देवताओंके ऊपर	**च समुद्र**	तथा समुद्रकी
भगवत् वशा	भगवान्के वशमें रहनेवाले	**ऊर्मि**	लहरोंको
		उपगूढ	छूकर
घना सम्	मेघ भली प्रकार	**वायवः ववुः**	वायु चलने लगी
अभ्यवर्षन्	बरसने लगे,		॥१५॥

मथ्यमानात् तथा सिन्धोर्देवासुरवरूथपैः ।

यदा सुधा न जायेत निर्ममन्थाजितः स्वयम् ॥१६॥

मथ्यमानात् तथा सिन्धोः देव असुर वरूथपैः यदा सुधा न जायेत निर्ममन्थ अजितः स्वयम् ॥१६॥

तथा	इस प्रकार	**न जायेत**	नहीं उत्पन्न हुआ,
देव असुर	देवता और असुर	**स्वयं**	तब स्वयं
वरूथपैः	सेनानायकों द्वारा	**अजितः**	अजित भगवान्
मथ्यमानात्	मन्थन करनेपर भी	**निर्ममन्थ**	मन्थन करने लगे
यदा सुधा	जब अमृत		॥१६॥

मेघश्यामः कनकपरिधिः कर्णविद्योतविद्यु-

न्मूर्घ्नि भ्राजद्विलुलितकचः स्रग्धरो रक्तनेत्रः ।

जैत्रैर्दोर्भिर्जगदभयदैर्दन्दशूकं गृहीत्वा

मथ्नन् मथ्ना प्रतिगिरिरिवाशोभताथो धृताद्रिः ॥१७

मेघश्यामः कनक परिधिः कर्ण विद्योत विद्युत् मूर्घ्नि भ्राजत् विलुलित कचः स्रक्धरः रक्तनेत्रः जैत्रैः दोः भिः जगत् अभयदैः दन्दशूकं गृहीत्वा मथ्नन् मथ्ना प्रतिगिरिः इव अशोभत अथ उद्धृत अद्रिः ॥१७॥

अथ	उस समय	**परिधिः**	पीताम्बरधारी,
मेघश्यामः	मेघके समान श्याम वर्ण	**कर्ण**	कानोंमें
		विद्योत	बिजलीके समान
कनक	स्वर्णके समान	**विद्युत्**	कुंडल पहिने,

विलुलित कचः	हिलते हुए केश
मूर्ध्नि भ्राजत्	सिरपर शोभित हो रहे हैं,
स्रक्धरः	वनमालाधारी
रक्तनेत्रः	अरुण-नयन
जगत्	विश्वको
अभयदैः	अभय देनेवाले
जैत्रैः दोः भिः	जयशील भुजाओंसे
दन्दशूकं	सर्पको
गृहीत्वा	पकड़कर
मथ्ना मथ्नन्	मथानीसे मन्थन करते समय
उद्धृत अद्रिः	वे गिरिधारी
प्रतिगिरिः	दूसरे पर्वतके
इव	समान
अशोभत	सुशोभित हुए ॥१७॥

निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं
महोल्बणं हालहलाह्वमग्रतः ।
सम्भ्रान्तमीनोन्मकराहिकच्छपात्
तिमिद्विपग्राहतिमिङ्गिलाकुलात् ॥१८॥

निर्मथ्यमानात् उदधेः अभूत् विषं महा उल्बणं हालहल अह्वं अग्रतः सम्भ्रान्त मीन उन्न मकर अहि कच्छपात् तिमि द्विप ग्राह तिमिङ्गिल आकुलात् ॥१८॥

निर्मथ्यमानात्	(इस प्रकार) मन्थन करनेसे
मीन	मछलियां,
मकर	घड़ियाल,
अहि कच्छपात्	सर्प, कछुए
उन्न	ऊपर आ गये,
तिमि	तिमि मछली,
द्विप ग्राह	समुद्री हाथी, मगर,
तिमिङ्गिल	तिमिङ्गल (ह्वेल ?)
आकुलात्	व्याकुल हो गये ऐसे
उदधेः अग्रतः	समुद्रसे पहिले
महा उल्बणं	अत्यन्त तीक्ष्ण
हालहल अह्वं	हालाहल नामका
विषं अभूत्	विष उत्पन्न हुआ ॥१८॥

तदुग्रवेगं दिशि दिश्युपर्यधो
विसर्पदुत्सर्पदसह्यमप्रति ।
भीताः प्रजा दुद्रुवुरङ्ग सेश्वरा
अरक्ष्यमाणाः शरणं सदाशिवम् ॥१९॥

तत् उग्रवेगं दिशि दिशि उपरि अधः विसर्पत् उत्सर्पत् असह्यं अप्रति भीताः प्रजा दुद्रुवुः अङ्ग स ईश्वराः अरक्ष्यमाणाः शरणं सदाशिवम् ॥१६॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	**भीताः**	भयभीत होकर
तत् उग्रवेगं	उस उग्रवेगवाले,	**अरक्ष्यमाणाः**	रक्षाका मार्ग न देखकर
असह्यम्	असह्य,	**स ईश्वराः**	प्रजापतियोंके साथ
अप्रति	प्रतिकारहीन	**प्रजाः**	प्रजा
दिशि	(विषके) दिशा-	**सदाशिवं**	भगवान् सदाशिवकी
दिशि	विदिशाएँ	**शरणं दुद्रुवुः**	शरणमें भागकर गयी ॥१६॥
विसर्पत्	बढ़ने,		
उत्सर्पत्	फैलनेसे		

विलोक्य तं देववरं त्रिलोक्या

भवाय देव्याभिमतं मुनीनाम् ।

आसीनमद्रावपवर्गहेतो-

स्तपो जुषाणं स्तुतिभिः प्रणेमुः ॥२०॥

विलोक्य तं देववरं त्रिलोक्या भवाय देव्या अभिमतं मुनीनां आसीनं अद्राः अपवर्ग हेतोः तपः जुषाणम् स्तुतिभिः प्रणेमुः ॥२०॥

त्रिलोक्या	त्रिलोकीके		प्रदान
भवाय	अभ्युदयके लिए	**हेतोः**	करनेके लिए
देव्या	देवी पार्वतीजीके साथ	**तपः जुषाणं**	तपस्या करनेवाले
अद्राः	कैलास पर्वतपर	**तं देववरं**	उन देवश्रेष्ठको
आसीनं	विराजमान	**विलोक्य**	देखकर
मुनीनां	मुनियोंके	**स्तुतिभिः**	स्तुति करते हुए
अभिमतं	माननीय	**प्रणेमुः**	उन्हें प्रणाम किया ॥२०॥
अपवर्ग	(जीवोंको) मोक्ष		

प्रजापतय ऊचुः

देवदेव महादेव भूतात्मन् भूतभावन ।
त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद् विषात् ॥२१॥

देवदेव महादेव भूत आत्मन् भूतभावन त्राहि नः शरण आपन्नान् त्रैलोक्य दहनात् विषात् ॥२१॥

देवदेव	देवताओंके आराध्य	**विषात्**	इस विषसे
महादेव	महादेव !	**शरण**	शरणमें
भूतआत्मन्	प्राणियोंके आत्मा,	**आपन्नान्**	आये
भूतभावन	प्राणियोंके पालक !	**नः त्राहि**	हम लोगोंकी रक्षा
त्रैलोक्य	त्रिलोकीको		कीजिए ॥२१॥
दहनात्	जलानेवाले		

त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः ।
तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम् ॥२२॥

त्वं एकः सर्वजगत ईश्वरः बन्ध मोक्षयोः तं त्वां अर्चन्ति कुशलाः प्रपन्न आर्ति हरं गुरुं ॥२२॥

त्वं एकः	आप अकेले ही	**प्रपन्न**	शरणागतके
सर्वजगत	सपूर्ण विश्वको	**आर्ति**	दुःखको
बन्ध	बन्धन या	**हरं**	दूर करनेवाले
मोक्षयोः	मुक्ति देनेमें	**गुरुं**	विश्व गुरुकी
ईश्वरः	समर्थ हो,	**कुशलाः**	चतुर लोग
तं त्वां	उन आप	**अर्चन्ति**	पूजा करते हैं ॥२३॥

गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यप्ययान्विभो ।
धत्से यदा स्वदृग् भूमन्ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥२३॥

गुणमय्या स्वशक्त्या अस्य सर्ग स्थिति अप्ययान् विभो धत्से यदा स्वदृक् भूमन् ब्रह्म विष्णु शिव अभिधाम् ॥२३॥

विभो भूमन्	प्रभो ! सर्वव्यापक आप	**अप्ययान्**	प्रलय करना चाहते हैं तव
गुणमय्या	त्रिगुणमयी	**स्वदृक्**	स्वयं प्रकाश रूपसे
स्वशक्त्या	अपनी माया शक्तिसे	**ब्रह्म विष्णु**	ब्रह्मा, विष्णु,
यदा अस्य	जब इस (जगत) की	**शिव**	शिव
सर्ग स्थिति	सृष्टि स्थिति,	**अभिधां धत्से**	नाम धारण करते हैं ॥२३॥

त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः ।
नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः ॥२४॥

त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सत् असत् भाव भावनः नाना शक्तिभिः आभातः त्वं आत्मा जगत् ईश्वरः ॥२४॥

सत् असत्	कारण-कार्य	**नाना**	अपनी अनेक
भाव	भावोंको	**शक्तिभिः**	शक्तियों द्वारा
भावनः	उत्पन्न करनेवाले	**आभातः**	आभासित होते
त्वं परमं	आप ही परम	**त्वं जगत्**	आप ही संसारके
गुह्यं	रहस्यमय	**ईश्वरः**	स्वामी
ब्रह्म	ब्रह्म हैं	**आत्मा**	परमात्मा हो ॥२४॥

त्वं शब्दयोनिर्जगदादिरात्मा
प्राणेन्द्रियद्रव्यगुणस्वभावः ।
कालः क्रतुः सत्यमृतं च धर्म-
स्त्वय्यक्षरं यत् त्रिवृदामनन्ति ॥२५॥

त्वं शब्द योनिः जगत् आदिः आत्मा प्राण इन्द्रिय द्रव्य गुण स्वभावः कालः क्रतुः सत्यं ऋतं च धर्मः त्वयि अक्षरं यत् त्रिवृत् आमनन्ति ॥२५॥

त्वं शब्द	आप वेदके उत्पत्ति	**आदिः**	आदि कारण
योनिः	स्थान,		महत्तत्त्व,
जगत्	जगत्के	**आत्मा प्राण**	अहंकार प्राण

इन्द्रिय द्रव्य	इन्द्रिय, पञ्चभूत,	**यत् त्रिवृत्**	जो त्रिगुणात्मिका
गुण	सत्त्वादि गुणोंके	**अक्षरं**	अविनाशी
स्वभावः	कारण,		प्रकृति है
कालः क्रतुः	काल, सङ्कल्प,	**त्वयि**	उसे भी आपके
सत्यं ऋतं	सत्य, ऋत	**आमनन्ति**	आश्रित (वेदोंमें)
च धर्मः	तथा धर्म हैं		कहा जाता है ॥२५॥

अग्निर्मुखं तेऽखिलदेवतात्मा
क्षितिं विदुर्लोकभवाङ्घ्रिपङ्कजम् ।
कालं गतिं तेऽखिलदेवतात्मनो
दिशश्च कर्णौ रसनं जलेशम् ॥२६॥

अग्निः मुखं ते अखिल देवता आत्मा क्षितिं विदुः लोकं अव अङ्घ्रि पङ्कजं कालं गतिं ते अखिल देवता आत्मनः दिशः च कर्णौ रसनं जलेशम् ॥२६॥

अखिल देवता	सर्व देवमय	**विदुः**	जाना जाता है,
आत्मा	आत्मा	**ते अखिल**	आप सर्व
अग्निः ते	अग्नि आपका	**देवता आत्मनः**	देवस्वरूपकी
मुखं	मुख है,	**गतिं कालः**	गति काल है,
क्षितिं लोकं	पृथ्वीलोक	**दिशः कर्णौ**	दिशाएँ कान हैं,
अङ्घ्रि पङ्कज	चरण-कमलोंका	**च जलेशं**	तथा वरुण
अव	तलवा	**रसनं**	रसना हैं ॥२६॥

नाभिर्नभस्ते श्वसनं नभस्वान्
सूर्यश्च चक्षूंषि जलं स्म रेतः ।
परावरात्माश्रयणं तवात्मा
सोमो मनो द्यौर्भगवञ्छिरस्ते ॥२७॥

नाभिः नभः ते श्वसनं नभस्वान् सूर्यः च चक्षूंषि जलं स्म रेतः पर अवर आत्म आश्रयणं तव आत्मा सोमः मनः द्यौः भगवन् शिरः ते ॥२७॥

भगवन् ते	भगवान् आपकी
नाभिः नभः	नाभि आकाश है,
श्वसनं	श्वास
नभस्वान्	वायु है,
सूर्यः चक्षूंषि	सूर्य नेत्र हैं,
जलं रेतः स्म	जल वीर्य है,
पर अवर	बड़े छोटे जीवोंका
आत्म आश्रयणं	अपना निवास
तव आत्मा	आपका अहंकार है,
सोमः मनः	चन्द्रमा मन है
च द्यौः	तथा स्वर्ग
ते शिरः	आपका सिर है ॥२७॥

कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसङ्घा
रोमाणि सर्वौषधिवीरुधस्ते ।
छन्दांसि साक्षात् तव सप्त धातव-
स्त्रयीमयात्मन् हृदयं सर्वधर्मः ॥२८॥

कुक्षिः समुद्राः गिरयः अस्थिसंङ्घा रोमाणि सर्व औषधि वीरुधः ते छन्दांसि साक्षात् तव सप्त धातवः त्रयीमय आत्मन् हृदयं सर्वधर्मः ॥२८॥

ते कुक्षिः	आपकी कुक्षि
समुद्राः	समुद्र हैं,
गिरयः	पर्वत
अस्थिसंङ्घा	अस्थि-समूह हैं,
सर्व	सब
औषधि	औषधियां और
वीरुधः	पौध
रोमाणि	रोम हैं,
छन्दांसि	(गायत्री आदि) छन्द
साक्षत् तव	साक्षात् आपकी
सप्त	(रक्तादि) सात
धातवः	धातुएँ हैं,
सर्वधर्मः	सब धर्म
हृदयं	हृदय हैं ॥२८॥

मुखानि पञ्चोपनिषदस्तवेश
यैस्त्रिंशदष्टोत्तरमन्त्रवर्गः ।
यत् तच्छिवाख्यं परमार्थतत्त्वं
देव स्वयंज्योतिरवस्थितिस्ते ॥२९॥

मुखानि पञ्च उपनिषदः तव ईश यैः त्रिंशत् अष्ट उत्तर मन्त्रवर्गः यत् तत् शिव आख्यं परमार्थतत्त्वं देव स्वयंज्योतिः अवस्थितिः ते ॥२९॥

ईश	स्वामी,
त्रिंशत अष्ट उत्तर	अड़तीस
मन्त्रवर्गः	मन्त्रोंका समूह
यैः	जिनसे (परिच्छेद होनेपर) उत्पन्न होता है,
पञ्च	वे पांच
उपनिषदः	उपनिषद् (तत् पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव, ईशान)
मुखानि	(आपके पांच) मुख हैं,
यत् शिव आख्यं	जो शिव नामक
स्वयंज्योतिः	स्वयं प्रकाश
परमार्थतत्त्वं	परमार्थ सत्ता है,
तत् ते	वह आपकी
अवस्थितिः	स्थिति है ॥२९॥

छाया त्वधर्मोर्मिषु यैर्विसर्गो
नेत्रत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि ।
सांख्यात्मनः शास्त्रकृतस्तवेक्षा
छन्दोमयो देव ऋषिः पुराणः ॥३०॥

छाया तु अधर्म उर्मिषु यैः विसर्गः नेत्रत्रयं सत्त्व रजः तमांसि सांख्य आत्मनः शास्त्र कृतः तव ईक्षा छन्दः मयः देव ऋषिः पुराणः ॥३०॥

अधर्म उर्मिषु	अधर्मकी लहरोंमें
तु	तो
छाया	(आपकी) छाया है,
यैः	जिसमे विविध प्रकारकी
विसर्गः	सृष्टि होती है,
नेत्रत्रयं	तीनों नेत्र
सत्त्व रजः	सत्त्व, रज,
तमांसि	तमोगुण हैं,
छन्दः	(गायत्री आदि) छन्द
मयः	मय,
देव ऋषिः	देवता तथा ऋषि युक्त
पुराणः	सनातन वेद
सांख्य आत्मनः	सांख्य स्वरूप
तव शास्त्र	आप शास्त्र
कृतः	निर्माताका
ईक्षा	विचार हैं ॥३०॥

न ते गिरित्राखिललोकपाल-
विरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम् ।
ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च
सत्त्वं न यद् ब्रह्म निरस्तभेदम् ॥३१॥

न ते गिरित्र अखिल लोकपाल विरिञ्च वैकुण्ठ सुरेन्द्र गम्यं ज्योतिः परं यत्र रजः तमः च सत्त्वं न यत् ब्रह्म निरस्तभेदम् ॥३१॥

गिरित्र	कैलासेश्वर !	**ब्रह्म**	ब्रह्म है
यत्र रजः	जिसमें रजोगुण	**अखिल**	वह समस्त
तमः च	तमोगुण और	**लोकपाल**	लोकपालों,
सत्त्वं	सत्त्वगुण •	**विरिञ्च**	ब्रह्मा,
न	नहीं हैं,	**वैकुण्ठ**	विष्णु तथा
यत् निरस्तभेदं	जो भेदरहित	**सुरेन्द्र गम्यं न**	इन्द्र भी उसे नहीं
ते परं ज्योतिः	आपका परम प्रकाश		जान सकते ॥३१॥

कामाध्वरत्रिपुरकालगराद्यनेक-
भूतद्रुहः क्षपयतः स्तुतये न तत् ते ।
यस्त्वन्तकाल इदमात्मकृतं स्वनेत्र-
वह्निस्फुलिङ्गशिखया भसितं न वेद ॥३२॥

काम अध्वर त्रिपुर कालगर आदि अनेक भूतद्रुहः क्षपयतः स्तुतये न तत् ते यः तु अन्तकाल इदं आत्मकृतं स्वनेत्र वह्नि स्फुलिङ्ग शिखया भसितं न वेद ॥३२॥

यः तु	जो तो	**वह्नि**	अग्निकी
अन्तकाल	प्रलयके समय	**स्फुलिङ्ग**	लपट
आत्मकृतं	अपने बनाये	**शिखया**	शिखासे
इदं	इस जगतको	**भसितं**	भस्म होना
स्वनेत्र	अपने नेत्रसे निकले	**वेद न**	जान ही नहीं पाते

तत् ते	उस आपके लिए	**भूतद्रुहः**	प्राणि-द्रोहियोंको
काम अध्वर	मदन, दक्ष-यज्ञ,	**क्षपयतः**	नष्ट करते रहना
त्रिपुर कालगर	त्रिपुर कालकूट विष,	**स्तुतये**	स्तुतिके योग्य
		न	नहीं है ॥३२॥
अनेक	अनेक		

ये त्वात्मरामगुरुभिर्हृदि चिन्तिताङ्घ्रि-
द्वन्द्वं चरन्तमुमया तपसाभितप्तम् ।
कत्थन्त उग्रपरुषं निरतं श्मशाने
ते नूनमूतिमविदंस्तव हातलज्जाः ॥३३॥

ये तु आत्मराम गुरुभिः हृदि चिन्तित अङ्घ्रि द्वन्द्वं चरन्तं उमया तपसा अभितप्तं कत्थन्त उग्रपरुषं निरतं श्मशाने ते नूनं ऊर्तिं अविदन् तव हातलज्जाः ॥३३॥

आत्मराम	आत्माराम	**अभितप्तं**	लगे रहनेवाले
गुरुभिः	गुरुजनों द्वारा	**ते**	आपको
हृदि	हृदयमें	**श्मशाने निरतं**	श्मशानमें रहनेसे
चिन्तित	ध्यान किये जाने-वाले	**उग्रपरुषं**	क्रूर तथा रूक्ष
		कत्थन्त	वकते हैं
अङ्घ्रि द्वन्द्वं	युगल-चरणको	**ते हातलज्जा**	वे लज्जाहीन
ये तु	जो तो	**नूनं तव**	निश्चय आपकी
उमया	देवी उमाके साथ	**ऊर्तिं**	लीलाको
तपसा	तपस्यामें	**अविदन्**	नहीं जानते ॥३३॥

तत् तस्य ते सदसतोः परतः परस्य
नाञ्जः स्वरूपगमने प्रभवन्ति भूम्नः ।
ब्रह्मादयः किमुत संस्तवने वयं तु
तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम् ॥३४॥

तत् तस्य ते सत् असतोः परतः परस्य न अञ्जः स्वरूप गमने प्रभवन्ति भूम्नः ब्रह्मा आदयः किं उत संस्तवने वयं तु तत् सर्ग सर्ग विषया अपि शक्तिमात्रम् ॥३४॥

तत् तस्य	अतः उस	**सर्ग विषया**	बनाए हुए
सत् असतोः	कारण-कार्य जगत्से	**वयं तु**	हम सब तो
परतः परस्य	परे मायासे भी पर	**संस्तवने**	आपकी स्तुति करने योग्या
भूम्नः ते	सर्वव्यापक आपके		
स्वरूप गमने	स्वरूपको जाननेमें	**किं**	कहां है
ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मा आदि भी	**उत अपि**	फिर भी
अञ्जः न	सरलतासे नहीं	**शक्तिमात्रं**	शक्तिके अनुसार (गुणगान)
प्रभवन्ति	समर्थ होते		किया है ॥३४॥
तत् सर्ग	उनके बनायेके		

एतत् परं प्रपश्यामो न परं ते महेश्वर ।
मृडनाय हि लोकस्य व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः ॥३५॥

एतत् परं प्रपश्यामः न परं ते महेश्वर मृडनाय हि लोकस्य व्यक्तिः ते अव्यक्त कर्मणः ॥३५॥

महेश्वर	महेश्वर !	**कर्मणः**	कर्मका
एतत्	इस (आपके रूप) से	**व्यक्तिः**	यह आविर्भाव
परं	श्रेष्ठ	**लोकस्य**	लोकोंके
प्रपश्यामः न	हम कुछ नहीं देखते	**मृडनाय**	कल्याणके लिए ही है ॥३५॥
हि	क्योंकि		
ते अव्यक्त-	आप अव्यक्त-		

श्रीशुक उवाच–

तद्वीक्ष्य व्यसनं तासां कृपया भृशपीडितः ।
सर्वभूतसुहृद् देव इदमाह सतीं प्रियाम् ॥३६॥

तत् वीक्ष्य व्यसनं तासां कृपया भृशपीडितः सर्वभूत सुहृत् देवः इदं आह सतीं प्रियाम् ॥३६॥

तासां	उन (प्रजापतियों) का	**देवः**	महादेवजी
तत्	वह	**कृपया**	कृपाके कारण
व्यसनं वीक्ष्य	संकट देखकर	**भृशपीडितः**	अत्यन्त व्यथित होकर
सर्वभूत	सब प्राणियोंके	**प्रियां सतीं**	अपनी प्रिया सतीसे
सुहृत्	हितैषी	**इदं आह**	यह बोले ॥३६॥

शिव उवाच–

अहो बत भवान्येतत् प्रजानां पश्य वैशसम् ।
क्षीरोदमथनोद्भूतात् कालकूटादुपस्थितम् ॥३७॥

अहो बत भवानि एतत् प्रजानां पश्य वैशसं क्षीरोद मथन उद्भूतात् कालकूटात् उपस्थितम् ॥३७॥

अहो बत भवानि	अहो, अरे भवानी !	**कालकूटात्**	कालकूट विष द्वारा
क्षीरोद	क्षीर सागरके	**उपस्थितं**	उपस्थित
मथन	मन्थनसे	**प्रजानां एतत्**	प्रजाका यह
उद्भूतात्	उत्पन्न हुए	**वैशसं पश्य**	संकट देखो ॥३७॥

आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे ।
एतावान्हि प्रभोरर्थो यद् दीनपरिपालनम् ॥३८॥

आसां प्राण परीप्सूनां विधेयं अभयं हि मे एतावान् हि प्रभोः अर्थः यत् दीन परिपालनम् ॥३८॥

आसां प्राण	इन प्राण	**यत् दीन**	जो दीनोंकी
परीप्सूनां	रक्षा चाहनेवालोंको	**परिपालनं**	रक्षा-पालन है,
हि मे	निश्चय मुझे	**प्रभोः**	समर्थ होनेका
अभयं विधेयं	अभय देना चाहिए	**एतावान्**	इतना ही
हि	क्योंकि	**अर्थः**	प्रयोजन है ॥३८॥

प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभङ्गुरैः ।
बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया ॥३९॥

प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभङ्गुरैः बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेषु आत्ममायया ॥३९॥

आत्ममायया	परमात्माकी मायासे	**स्वैः**	अपने
मोहितेषु	मोहित	**प्राणैः**	प्राणोंके द्वारा
बद्धवैरेषु	बद्ध बैर	**साधवः**	सत्पुरुष
भूतेषु	प्राणियोंमें	**प्राणिनः**	प्राणियोंकी
क्षणभङ्गुरैः	क्षण-विनाशी	**पान्ति**	रक्षा करते हैं ॥३९॥

पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः ।
प्रीते हरौ भगवति प्रीयेऽहं सचराचरः ।
तस्मादिदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे ॥४०॥

पुंसः कृपयतः भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः प्रीते हरौ भगवति प्रीये अहं सचर अचरः तस्मात् इदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिः अस्तु मे ॥४०॥

भद्रे	कल्याणी !	**सचर अचरः**	जंगम-स्थावरके साथ
पुंसः कृपयतः	लोगोंपर कृपा करनेसे	**अहं प्रीये**	मैं सन्तुष्ट होता हूँ,
सर्वात्मा हरिः	सर्वात्मा श्रीहरि	**तस्मात् इदं**	इसलिए यह
प्रीयते	प्रसन्न होते हैं,	**गरं भुञ्जे**	विष भक्षण करूँगा,
हरौ प्रीते	श्रीहरिके प्रसन्न होनेपर	**मे प्रजानां**	मेरी प्रजाका
		स्वस्तिः अस्तु	कल्याण हो ॥४०॥

श्रीशुक उवाच–

एवमामन्त्र्य भगवान्भवानीं विश्वभावनः ।
तद् विषं जग्धुमारेभे प्रभावज्ञान्वमोदत ॥४१॥

एवं आमन्त्र्य भगवान् भवानीं विश्वभावनः तत् विषं जग्धुं आरेभे प्रभावज्ञा अन्वमोदत ॥४१॥

एवं भवानीं	इस प्रकार देवी पार्वतीसे	**आरेभे**	प्रारम्भ किया
आमन्त्र्य	सलाह करके	**प्रभावज्ञा**	(भगवान् शंकरके) प्रभावको जानने-
विश्वभावनः	विश्वरक्षक		वाली
भगवान्	भगवान्ने	**अन्वमोदत**	(देवीने उनकी
तत् विषं	उस विषको		बातका) अनुमोदन
जग्धुम्	भक्षण करना		कर दिया ॥४१॥

ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम् ।
अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः ॥४२॥

ततः करतली कृत्य व्यापि हालाहलं विषं अभक्षयन् महादेवः कृपया भूतभावनः ॥४२॥

ततः व्यापि	तब उस फैले हुए	**महादेवः**	महादेवजीने
हालाहलं विषं	हालाहल विषको	**कृपया**	कृपा पूर्वक
करतली	हथेलीपर	**अभक्षयन्**	भक्षण कर लिया
कृत्य	समेटकर		॥४२॥
भूतभावनः	प्राणियोंके रक्षक		

तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः ।
यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम् ॥४३॥

तस्य अपि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः यत् चकार गले नीलं तत् च साधोः विभूषणम् ॥४३॥

जलकल्मषः	जलके मल (उस विष) ने	**स्ववीर्यं**	अपना प्रभाव
		दर्शयामास	दिखला दिया
तस्य	उन (शंकरजी) पर	**यत् गले**	जो कण्ठको
अपि	भी	**नीलं**	नीला

चकार	बना दिया किन्तु	**विभूषणं**	अलंकार ही हुआ ॥४३॥
तत् च	वह तो		
साधोः	साधु शिरोमणि (शंकरजी) के लिए		

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः ।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ॥४४॥

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशः जनाः परम आराधनं तत् हि पुरुषस्य अखिल आत्मनः ॥४४॥

प्रायशः	प्रायः	**अखिल आत्मनः**	सर्वात्मा
साधवः जनाः	सत्पुरुष लोग	**पुरुषस्य**	परमपुरुषकी
लोकतापेन	लोगोंके संतापसे	**परम आराधनं**	सर्वोत्तम आराधना है ॥४४॥
तप्यन्ते	सन्तप्त होते हैं,		
हि तत्	क्योंकि वह		

निशम्य कर्म तच्छम्भोर्देवदेवस्य मीढुषः ।
प्रजा दाक्षायणी ब्रह्मा वैकुण्ठश्च शशंसिरे ॥४५॥

निशम्य कर्म तत् शम्भोः देवदेवस्य मीढुषः प्रजा दाक्षायणी ब्रह्मा वैकुण्ठः च शशंसिरे ॥४५॥

मीढुषः	सबकी कामना पूर्ण करनेवाले	**दाक्षायणी प्रजा**	दक्ष-कन्या सती,
देवदेवस्य	देवोंके देव	**ब्रह्मा च**	ब्रह्मा तथा
शम्भोः	शंकरजीका	**वैकुण्ठः**	भगवान् विष्णुने भी
तत् कर्म	वह कर्म	**शशंसिरे**	(उनकी) प्रशंसा की ॥४५॥
निशम्य	देखकर		

प्रस्कन्नं पिबतः पाणेर्यत् किञ्चिज्जगृहुः स्म तत् ।
वृश्चिकाहिविषौषध्यो दन्दशूकाश्च येऽपरे ॥४६॥

प्रस्कन्नं पिबतः पाणेः यत् किञ्चित् जगृहुः स्म तत् वृश्चिक अहि विष औषध्यः दन्दशूकाः च ये अपरे ॥४६॥

पिबतः	पीते समय (शंकर-जी) के	**औषध्यः**	औषधियों
		च ये अपरे	तथा जो दूसरे
पाणेः	हाथसें	**दन्दशूकाः**	डसनेवाले हैं
यत् किञ्चित्	जो थोड़ा-सा	**तत्**	उसे उन्होंने
प्रस्कन्नं	छलक गया,	**जगृहुः स्म**	ग्रहण कर लिया
वृश्चिक	बिच्छू,		॥४६॥
अहि विष	सर्प, विषैली		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे अमृतमथनेसप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

पीते गरे वृषाङ्केण प्रीतास्तेऽमरदानवाः ।
ममन्थुस्तरसा सिन्धुं ह्विर्धानी ततोऽभवत् ॥ १ ॥

पीते गरे वृष अङ्केण प्रीताः ते अमर दानवाः ममन्थुः तरसा सिन्धुं ह्विर्धानी ततः अभवत् ॥१॥

वृष अङ्केण	भगवान् वृषभध्वज द्वारा	**तरसा**	वेग पूर्वक
गरे पीते	विष पी लेनेपर	**सिन्धुं ममन्थुः**	समुद्र-मन्थन करने लगे,
ते अमर	वे देवता	**ततः ह्विर्धानी**	तब कामधेनु
दानवाः	दानव	**अभवत्**	प्रकट हुई ॥१॥
प्रीताः	प्रसन्न होकर		

तामग्निहोत्रीमृषयो जगृहुर्ब्रह्मवादिनः ।
यज्ञस्य देवयानस्य मेध्याय ह्विषे नृप ॥ २ ॥

तां अग्निहोत्रीं ऋषयः जगृहुः ब्रह्मवादिनः यज्ञस्य देवयानस्य मेध्याय ह्विषे नृप ॥२॥

नृप	राजन् !	**ह्विषे यज्ञस्य**	यज्ञके ह्विष्य (घृतादि) के लिए तथा
तां अग्निहोत्रीं	उस अग्निहोत्रकी सामग्री देनेवालीको	**मेध्याय**	(गोमूत्रादिसे) पवित्रताके लिए
ब्रह्मवादिनः	वेदवादी	**जगृहुः**	ले लिया ॥२॥
ऋषयः	ऋषियोंने		
देवयानस्य	ब्रह्मलोकके मार्ग स्वरूप		

तत उच्चैःश्रवा नाम हयोऽभूच्चन्द्रपाण्डुरः ।
तस्मिन्बलिः स्पृहां चक्रे नेन्द्र ईश्वरशिक्षया ॥ ३ ॥

ततः उच्चैःश्रवा नाम हयः अभूत् चन्द्रपाण्डुरः तस्मिन् बलिः स्पृहां चक्रे न इन्द्र ईश्वर शिक्षया ॥३॥

ततः उच्चैःश्रवा	तब उच्चैःश्रवा	**तस्मिन् बलिः**	उसके लिए बलिने
नाम	नामक	**स्पृहां चक्रे**	अभिलाषा की,
चन्द्रपाण्डुरः	चन्द्रमाके समान श्वेत	**ईश्वर शिक्षया**	श्रीहरि सिखलानेसे
हयः अभूत्	अश्व उत्पन्न हुआ,	**इन्द्र न**	इन्द्रने (इच्छा) नहीं की ॥३॥

तत ऐरावतो नाम वारणेन्द्रो विनिर्गतः ।
दन्तैश्चतुर्भिः श्वेताद्रेर्हरन्भगवतो महिम् ॥ ४ ॥

ततः ऐरावतः नाम वारण इन्द्रः विनिर्गतः दन्तैः चतुःभिः श्वेत अद्रेः हरन् भगवतः महिम् ॥४॥

तत चतुःभिः	फिर चार	**महिं हरन्**	कान्तिको छीनता हुआ सा
दन्तैः भगवतः	दांतोंसे भगवान् (शिव) के	**ऐरावतः नाम**	ऐरावत नामक
श्वेत अद्रेः	श्वेत-पर्वत कैलास-की	**वारण इन्द्रः**	गजेन्द्र
		विनिर्गतः	निकला ॥४॥

कौस्तुभाख्यमभूद् रत्नं पद्मरागो महोदधेः ।
तस्मिन्हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलङ्करणे मणौ ॥ ५ ॥

कौस्तुभ आख्यं अभूत् रत्नं पद्मरागः महा उदधेः तस्मिन् हरिः स्पृहां चक्रे वक्षः अलङ्करणे मणौ ॥५॥

महा उदधेः	महा समुद्रसे	**पद्मरागः रत्नं**	पद्मराग रत्न
कौस्तुभ आख्यं	कौस्तुभ नामका	**अभूत्**	उत्पन्न हुआ

वक्षः	वक्षस्थलको	**हरिः**	श्रीहरिने लेनेकी
अलंकरणे	अलंकृत करनेके लिए	**स्पृहां**	इच्छा
		चक्रे	की ॥५॥
तस्मिन् मणौ	उस मणिको		

ततोऽभवत् पारिजातः सुरलोकविभूषणम् ।

पूरयत्यर्थिनो योऽर्थैः शश्वद् भुवि यथा भवान् ॥ ६ ॥

ततः अभवत् पारिजातः सुरलोक विभूषणं पूरयति अर्थिनः यः अर्थैः शश्वत् भुवि यथा भवान् ॥६॥

ततः सुरलोक	फिर देवलोकको	**भवान्**	वैसे
विभूषणं	सुशोभित करने-वाला	**यः शश्वत्**	जो बराबर
		अर्थिनः	चाहनेवालोंकी
पारिजातः	कल्पवृक्ष	**अर्थैः**	कामनाएँ
अभवत्	उत्पन्न हुआ	**पूरयति**	पूरी करता रहता
भुवि यथा	पृथ्वीपर जैसे तुम हो		है ॥६॥

ततश्चाप्सरसो जाता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ।

रमण्यः स्वर्गिणां वल्गुगतिलीलावलोकनैः ॥ ७ ॥

ततः च अप्सरसः जाता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः रमण्यः स्वर्गिणां वल्गु गति लीला अवलोकनैः ॥७॥

ततः च	उसके पश्चात् तो	**रमण्यः**	रमण करानेवाली
स्वर्गिणां	स्वर्गमें रहनेवालों-को	**निष्ककण्ठ्यः**	गलेमें पदक पहिने
		सुवाससः	उत्तम-वस्त्रोंवाली
वल्गु गति	अपनी सुन्दर गति,	**अप्सरसः**	अप्सराएँ
लीला	विलास पूर्ण	**जाता**	उत्पन्न हुईं ॥७॥
अवलोकनैः	चितवनसे देखने		

ततश्चाविरभूत् साक्षाच्छ्री रमा भगवत्परा ।
रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत् सौदामनी यथा ॥ ८ ॥

ततः चः आविः अभूत् साक्षात् श्रीरमा भगवत् परा रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत् सौदामनी यथा ॥८॥

ततः च	उसके बाद फिर	**कान्त्या**	कान्तिसे
यथा	जैसे	**दिशः**	दिशाओंको
सौदामनी	मेघमें प्रकट होने-वाली	**रञ्जयन्ती**	रंगती हुई
		भगवत् परा	भगवत् परायणा
विद्युत्	बिजली हो वैसे अपनी	**साक्षात् श्रीरमा**	साक्षात् श्रीरमा
		आविः अभूत्	प्रकट हुईं ॥८॥

तस्यां चक्रुः स्पृहां सर्वे ससुरासुरमानवाः ।
रूपौदार्यवयोवर्णमहिमाक्षिप्तचेतसः ॥ ९ ॥

तस्यां चक्रुः स्पृहां सर्वे ससुर असुर मानवाः रूप औदार्य वयः वर्ण महिमा आक्षिप्त चेतसः ॥९॥

रूप औदार्य	सौन्दर्य, उदारता,	**मानवाः सर्वे**	मनुष्यादि सब
वयः वर्ण	आयु, शरीरका रंग,	**तस्यां**	उनके लिए
महिमा	महिमासे	**स्पृहां चक्रुः**	अभिलाषा करने लगे ॥९॥
आक्षिप्त	मुग्ध चित्त		
ससुर असुर	देवता-असुरोंके साथ		

तस्या आसनमानिन्ये महेन्द्रो महदद्भुतम् ।
मूर्तिमत्यः सरिच्छ्रेष्ठा हेमकुम्भैर्जलं शुचि ॥१०॥

तस्या आसनं आनिन्ये महेन्द्रः महत् अद्भुतं मूर्तिमत्यः सरित् श्रेष्ठा हेमकुम्भैः जलं शुचि ॥१०॥

महेन्द्रः महत्	इन्द्र अत्यन्त	**आसनं तस्या**	आसन उनके लिए
अद्भुतं	अद्भुत	**आनिन्ये**	ले आये

सरित् श्रेष्ठा	श्रेष्ठ नदियां	**जलं शुचि**	(अपना) पवित्र जल
मूर्तिमत्यः	मूर्तिमती होकर		लायीं ॥१०॥
हेमकुम्भैः	स्वर्णकलशोंमें		

आभिषेचनिका भूमिराहरत् सकलौषधीः ।
गावः पञ्च पवित्राणि वसन्तो मधुमाधवौ ॥११॥

आभिषेचनिका भूमिः आहरत् सकल औषधीः गावः पञ्च पवित्राणि वसन्तः मधुमाधवौ ॥११॥

भूमिः	पृथ्वी	**वसन्तः**	वसन्तने
अभिषेचनिका	अभिषेकोपयोगी	**मधुमाधवौ**	चैत्र-वैशाखमें होने-
सकल औषधिः	सर्वोषधि,		वाले फल
गावः	गाएँ	**आहरत्**	प्रदान किए ॥११॥
पञ्च पवित्राणि	पवित्र पञ्चगव्य,		

ऋषयः कल्पयाञ्चक्रुरभिषेकं यथाविधि ।
जगुर्भद्राणि गन्धर्वा नटयश्च ननृतुर्जगुः ॥१२॥

ऋषयः कल्पयान् चक्रुः अभिषेकम् यथाविधि जगुः भद्राणि गन्धर्वा नटयः च ननृतुः जगुः ॥१२॥

ऋषयः	ऋषियोंने	**जगुः च**	गान करने लगे तथा
यथाविधि	विधिपूर्वक	**नटयः**	नट लोग
अभिषेकं	अभिषेक	**ननृतुः जगुः**	नाचने-गाने लगे
कल्पयान् चक्रुः	सम्पन्न कराया		॥१२॥
गन्धर्वा भद्राणि	गन्धर्व मंगल		

मेघा मृदङ्गपणवमुरजानकगोमुखान् ।
व्यनादयञ्छङ्खवेणुवीणास्तुमुलनिःस्वनान् ॥१३॥

मेघा मृदङ्ग पणव मुरज आनक गोमुखान् व्यनादयन् शङ्खवेणु वीणाः तुमुल निःस्वनान् ॥१३॥

मेघा तुमुल	मेघ जैसे उच्च	**गोमुखान् शङ्ख**	गोमुख, शंख,
निःस्वनान्	स्वरवाले	**वेणु वीणाः**	वंशी, वीणा
मृदङ्ग पणव	मृदंग, नगाड़े,	**व्यनादयन्**	बजाने लगे ॥१३॥
मुरज आनक	मुरज, बड़े नगाड़े,		

ततोऽभिषिषिचुर्देवीं श्रियं पद्मकरां सतीम् ।
दिगिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितैः ॥१४॥

ततः अभिषिषिचुः देवीं श्रियं पद्मकरां सतीं दिगिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैः द्विज ईरितैः ॥१४॥

ततः द्विज	तब ब्राह्मणों द्वारा	**पूर्णकलशैः**	भरे कलशोंसे
ईरितैः	किए	**सतीं पद्मकरां**	परमसती पद्महस्ता
सूक्त	स्तुति (श्रीसूक्त)	**देवीं श्रियं**	देवी लक्ष्मीका
वाक्यैः	वचनों सहित	**अभिषिषिचुः**	अभिषेक किया
दिगिभाः	दिग्गजोंने		॥१४॥

समुद्रः पीतकौशेयवाससी समुपाहरत् ।
वरुणः स्रजं वैजयन्तीं मधुना मत्तषट्पदाम् ॥१५॥

समुद्रः पीतकौशेय वाससी सम उपाहरत् वरुणः स्रजं वैजयन्तीं मधुना मत्त षट्पदाम् ॥१५॥

समुद्रः	समुद्रने	**वैजयन्तीं स्रजं**	वैजयन्तीमाला
पीतकौशेय	पीले रेशमी	**सम**	अच्छे
वाससी	दो वस्त्र,	**उपाहरत्**	उपहाररूपमें दिए
वरुणः मधुना	वरुणने अपने मधुसे		॥१५॥
मत्त षट्पदां	भ्रमरोंको मतवाला बना देनेवाली		

भूषणानि विचित्राणि विश्वकर्मा प्रजापतिः ।
हारं सरस्वती पद्ममजो नागाश्च कुण्डले ॥१६॥

भूषणानि विचित्राणि विश्वकर्मा प्रजापतिः हारं सरस्वती पद्मं अजः नागाः च कुण्डले ॥१६॥

प्रजापतिः	प्रजापति	**सरस्वती हारं**	सरस्वतीजीने हार,
विश्वकर्मा	विश्वकर्माने	**अजः पद्मं**	ब्रह्माजीने कमल
विचित्राणि	विचित्र	**च नागाः**	तथा नागोंने
भूषणानि	आभूषण,	**कुण्डले**	कुण्डल दिए ॥१६॥

ततः कृतस्वस्त्ययनोत्पलस्रजं
नदद्द्विरेफां परिगृह्य पाणिना ।
चचाल वक्त्रं सुकपोलकुण्डलं
सव्रीडहासं दधती सुशोभनम् ॥१७॥

ततः कृत स्वस्त्ययन उत्पल स्रजं नदत् द्विरेफां परिगृह्य पाणिना चचाल वक्त्रं सुकपोल कुण्डलं सव्रीडहासं दधती सुशोभनम् ॥१७॥

ततः	तब	**दधती**	धारण किये
स्वस्त्ययन	स्वस्तिवाचन	**नदत् द्विरेफां**	गुंजार करते भ्रमरों-
कृत	हो जानेपर		से युक्त
सुशोभनं	अत्यन्त सुन्दर	**उत्पल**	श्वेत कमलोंकी
सुकपोल	उत्तम कपोलोंवाले	**स्रजं**	माला
कुण्डलं	कुण्डल मंडित	**पाणिना**	हाथमें
वक्त्रं	मुखपर	**परिगृह्य**	लेकर
सव्रीडहासं	लज्जा युक्त मुस्कराहट	**चचाल**	चलीं ॥१७॥

स्तनद्वयं चातिकृशोदरी समं
निरन्तरं चन्दनकुङ्कुमोक्षितम् ।
ततस्ततो नूपुरवल्गुशिञ्जितै-
र्विसर्पती हेमलतेव सा बभौ ॥१८॥

स्तनद्वयं च अतिकृश उदरी समं निरन्तरं चन्दन कुङ्कुम उक्षितं ततः ततः नूपुर वल्गुशिञ्चितैः विसर्पती हेमलता इव सा बभौ ॥१८॥

अतिकृश	अत्यन्त कृश
उदरी	पेटवाली,
च निरन्तरं	तथा परस्तर सटे,
समं	बराबर,
चन्दन कुंकुम	चन्दन केशरसे
उक्षितं	उपलिप्त
स्तनद्वयं	दोनों स्तनोंसे युक्त,
नूपुर	नूपुरोंकी
वल्गुशिञ्जितैः	मधुर झंकार करती
ततः ततः	इधर-उधर
विसर्पती	चलती हुई
सा हेमलता	वे (लक्ष्मी) स्वर्ण-लताके
इव बभौ	समान जान पड़ीं ॥१८॥

विलोकयन्ती निरवद्यमात्मनः
पदं ध्रुवं चाव्यभिचारिसद्गुणम् ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धचारण-
त्रैविष्टपेयादिषु नान्वविन्दत ॥१९॥

विलोकयन्ती निः अवद्यं आत्मनः पदं ध्रुवं च अव्यभिचारि सद्गुणं गन्धर्व यक्ष असुर सिद्ध चारण त्रैविष्टपेय आदिषु न अविन्दत ॥१९॥

आत्मनः	अपने लिए
निः अवद्यं	निर्दोष,
च सद्गुणं	तथा सद्गुण
अव्यभिचारि	जिससे कभी हटते न हों ऐसा
ध्रुवं पदं	निश्चित (पतिरूप) आश्रय
विलोकयन्ती	देखती हुई (उन्हें)
गन्धर्व यक्ष	गन्धर्व, यक्ष,
असुर सिद्ध	असुर, सिद्ध,
चारण	चारण,
त्रैविष्टपेय	देवता
आदिषु	आदिमें
न अविन्दत	नहीं मिला ॥१९॥

नूनं तपो यस्य न मन्युनिर्जयो
ज्ञानं क्वचित् तच्च न सङ्गवर्जितम् ।
कश्चिन्महांस्तस्य न कामनिर्जयः
स ईश्वरः किं परतोव्यपाश्रयः ॥२०॥

नूनं तपः यस्य न मन्यु निर्जयः ज्ञानं क्वचित् तत् च न सङ्ग वर्जितं कश्चित् महान् तस्य न काम निर्जयः स ईश्वरः किं परतः व्यपाश्रयः ॥२०॥

नूनं	(उन्होंने देखा) निश्चय
यस्य	जिनमें
तपः	तपस्या है (दुर्वासादिमें)
न मन्यु	वहाँ क्रोध-
निर्जयः	विजय नहीं है,
क्वचित्	कहीं (वृहस्पति आदिमें)
ज्ञानं	ज्ञान है,
तत् च सङ्ग	वह तो आसक्ति
वर्जितं न	रहित नहीं है,
कश्चित्	कोई (ब्रह्मादि)
महान्	महत्त्वशाली हैं,
तस्य काम	उनके द्वारा काम-देवको
निर्जयः न	जीता नहीं गया है,
परतः	दूसरोंके
व्यपाश्रयः	आश्रयको चाहने-वाले
स ईश्वरः	वे (इन्द्रादि) समर्थ स्वामी
किं	कैसे हो सकते हैं

॥२०॥

धर्मः क्वचित् तत्र न भूतसौहृदं
त्यागः क्वचित् तत्र न मुक्तिकारणम् ।
वीर्यं न पुंसोऽस्त्यजवेगनिष्कृतं
न हि द्वितीयो गुणसङ्गवर्जितः ॥२१॥

धर्मः क्वचित् तत्र न भूत सौहृदं त्यागः क्वचित् तत्र न मुक्ति कारणं वीर्यं न पुंसः अस्ति अजवेग निष्कृतं न हि द्वितीयः गुणसंग वर्जितः ॥२१॥

क्वचित्	कहीं (परशुराम आदिमें)
धर्मः	धर्म है
तत्र भूत	पर वहां प्राणियोंसे
सौहृदं न	सौहार्द्र नहीं है
क्वचित्	कहीं (शिवि आदिमें)
त्यागः	त्याग है
तत्र मुक्ति	पर वहाँ मोक्षका
कारणं न	कारण नहीं है,
पुंसः	पुरुषों
वीर्यं अस्ति	(सहस्रार्जुनादिमें) बल है

अजवेग	पर वे कालके वेगसे	**गुणसङ्ग**	गुणोंकी आसक्तिसे
निष्कृतं न	निकले (छूटे) नहीं हैं,	**वर्जितः**	छूटे हैं,
हि द्वितीयः	निश्चय दूसरे (सनकादि)	**न**	परन्तु (शिशु होनेसे योग्य) नहीं हैं ॥२१॥

क्वचिच्चिरायुर्न हि शीलमङ्गलं
क्वचित् तदप्यस्ति न वेद्यमायुषः ।
यत्रोभयं कुत्र च सोऽप्यमङ्गलः
सुमङ्गलः कश्च न काङ्क्षते हि माम् ॥२२॥

क्वचित् चिरआयुः न हि शीलमङ्गलं क्वचित् तदपि अस्ति न वेद्यं आयुषः यत्र उभयं कुत्र च सः अपि अमङ्गलः सुमङ्गलः कश्च न काङ्क्षते हि माम् ॥२२॥

क्वचित्	कहीं (मार्कण्डेयादि-में)	**च यत्र**	और यदि
चिरआयुः	दीर्घायु है	**कुत्र**	कहीं (महादेवादिमें)
शीलमङ्गलं	मंगलमय शील-व्यवहार	**सः अपि**	वह भी है तो
हि न	निश्चय नहींहै,	**अमङ्गलः**	वह अमङ्गल रूप दीखते हैं,
तत् अपि	वह (शील) भी	**कश्चन्**	तथा कोई एक
क्वचित्	कहीं (बलि आदिमें)	**सुमङ्गलः**	उत्तम मङ्गलमय हैं,
अस्ति	है तो (उनकी)	**हि मां**	किन्तु वह मुझे
आयुषः	आयुका	**काङ्क्षते न**	चाहता नहीं है ॥२२॥
वेद्यं न	पता नहीं है,		

एवं विमृश्याव्यभिचारिसद्गुणै-
र्वरं निजैकाश्रयतयागुणाश्रयम् ।
वव्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षितं
रमा मुकुन्दं निरपेक्षमीप्सितम् ॥२३॥

एवं विमृश्य अव्यभिचारि सद्गुणैः वरं निज एक आश्रयतया अगुण आश्रयं ववे वरं सर्वगुणैः अपेक्षितं रमा मुकुन्दं निरपेक्षं ईप्सितम् ॥२३॥

एवं विमृश्य	इस प्रकार विचार करके	**निज एक वरं**	अपने एकमात्र पति
अव्यभिचारि	नित्य	**ईप्सितं**	अपने अभीष्ट
सद् गुणैः	सद्गुण सम्पन्न	**मुकुन्दं**	श्रीहरिको
अगुण आश्रय	निर्गुणत्वको	**निरपेक्षं**	अपेक्षा रहित होने-
आश्रयतया	स्वीकार किये (प्राकृत गुणातीत)		पर भी
		रमा वरं	लक्ष्मीने पति रूपमें
सर्वगुणैः	सम्पूर्ण गुणोंके	**ववे**	वरण कर लिया
अपेक्षितं	अभीष्ट		॥२३॥

तस्यांसदेश उशतीं नवकञ्जमालां
माद्यन्मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टाम् ।
तस्थौ निधाय निकटे तदुरः स्वधाम
सव्रीडहासविकसन्नयनेन याता ॥२४॥

तस्य अंसदेश उशतीं नव कञ्जमालां माद्यन् मधुव्रत वरूथ गिरः उपघुष्टां तस्थौ निधाय निकटे तत् उरः स्वधाम सव्रीड हास विकसत् नयनेन याता ॥२४॥

माद्यन् मधुव्रत	मतवाले भ्रमर	**तत् उरः**	उनके वक्षस्थलको
वरूथ गिरः	समूहोंकी गुंजारसे	**सव्रीड हास**	लज्जापूर्ण मुसकान- से
उपधुष्टां	गुंजायमान		
उशतीं नव	मनोहर नये	**विकसत्**	खिले नेत्रोंसे
कञ्जमालां	कमलोंकी माला	**नययेन**	देखती
तस्य अंसदेश	उनके गलेमें	**याता निकटे तस्थौ**	जाकर पास खड़ी हो गईं ॥२४॥
निधाय	डालकर		
स्वधाम	अपने निवासस्थान		

तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या
वक्षोनिवासमकरोत् परमं विभूतेः ।
श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेन निरीक्षणेन
यत्र स्थितैधयत साधिपतींस्त्रिलोकान् ॥२५॥

तस्याः श्रियः त्रिजगतः जनकः जनन्या वक्षः निवासं अकरोत् परमं विभूतेः श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेन निरीक्षणेन यत्र स्थित एधयत स अधिपतीन् त्रिलोकान् ॥२५॥

त्रिजगतः जनकः	त्रिलोकके पिताने	**श्रीः**	लक्ष्मीजी
तस्या परमं	उन महैश्वर्य	**स्वाः प्रजाः**	अपनी प्रजा
विभूतेः	शालिनी	**स अधिपतीन्**	लोकपालोंके साथ
जनन्या	जगज्जननीका	**त्रिलोकान्**	तीन लोकोंको
निवासं	निवासस्थान अपने	**सकरुणेन**	अपनी कृपामयी
वक्षः श्रियः	वक्ष स्थलकी शोभा	**निरीक्षणेन**	दृष्टिसे
अकरोत्	बनाया	**एधयत**	अभिवृद्धि करती
यत्र स्थिताः	जहां स्थित होकर		हैं ॥२५॥

शङ्खतूर्यमृदङ्गानां वादित्राणां पृथुः स्वनः ।
देवानुगानां सस्त्रीणां नृत्यतां गायतामभूत् ॥२६॥

शङ्ख तूर्य मृदङ्गानां वादित्राणां पृथुः स्वनः देव अनुगानां सस्त्रीणां नृत्यतां गायतां अभूत् ॥२६॥

शङ्ख तूर्य	शंख, तुरही,	**अनुगानां**	अनुचरोंकी
मृदङ्गानां	मृदङ्ग	**नृत्यतां गायतां**	नाचते-गातोंकी
वादित्राणां	आदि बाजोंकी	**पृथुः स्वनः**	तुमुल-ध्वनि
सस्त्रीणां	तथा स्त्रियोंके साथ	**अभूत्**	हुई ॥२६॥
देव	देवताओंके		

ब्रह्मरुद्राङ्गिरोमुख्याः सर्वे विश्वसृजो विभुम् ।
ईडिरेऽवितथैर्मन्त्रैस्तल्लिङ्गैः पुष्पवर्षिणः ॥२७॥

ब्रह्म रुद्र अङ्गिरः मुख्याः सर्वे विश्वसृजः विभुं ईडिरे अवितथैः मन्त्रैः तत् लिङ्गैः पुष्पवर्षिणः ॥२७॥

पुष्पवर्षिणः	पुष्पवर्षा करने-वाले	**तत् लिङ्गैः**	उन विष्णु प्रति-पादक
ब्रह्म रुद्र	ब्रह्मा, शंकर	**अवितथैः मन्त्रैः**	अमोघ मन्त्रोंसे
अङ्गिरः मुख्याः	अंगिरा प्रमुख	**विभुं ईडिरे**	उन भूमा पुरुषकी स्तुति करने लगे ॥२७॥
सर्वे विश्वसृजः	सब विश्वस्रष्टा प्रजापति		

श्रिया विलोकिता देवाः सप्रजापतयः प्रजाः ।
शीलादिगुणसम्पन्ना लेभिरे निर्वृतिं पराम् ॥२८॥

श्रिया विलोकिता देवाः सप्रजापतयः प्रजाः शील आदि गुण सम्पन्ना लेभिरे निर्वृतिं पराम् ॥२८॥

देवाः	देवता,	**शील आदि गुण**	शीलादि गुण
सप्रजापतयः	प्रजापतियोंके साथ	**सम्पन्ना परां**	सम्पन्न होकर परम
प्रजाः श्रिया	प्रजा लक्ष्मीजी द्वारा	**निर्वृतिं लेभिरे**	आनन्दको प्राप्त हुई ॥२८॥
विलोकिता	देखे जानेसे		

निःसत्त्वा लोलुपा राजन् निरुद्योगा गतत्रपाः ।
यदा चोपेक्षिता लक्ष्म्या बभूवुर्दैत्यदानवाः ॥२९॥

निः सत्त्वा लोलुपा राजन् निरुद्योगा गतत्रपाः यदा च उपेक्षिता लक्ष्म्या बभूवुः दैत्य दानवाः ॥२९॥

राजन्	राजन् !	**लोलुपा**	लालची,
यदा च लक्ष्म्या	जब कि लक्ष्मीजीने	**निरुद्योगा**	उद्योगहीन,
उपेक्षिता	उपेक्षा कर दी (तब)	**गतत्रपाः**	निर्लज्ज,
दैत्य दानवाः	दैत्य-दानव	**बभूवुः**	हो गये ॥२९॥
निःसत्त्वा	सत्त्वहीन,		

अथासीद् वारुणी देवी कन्या कमललोचना ।
असुरा जगृहुस्तां वै हरेरनुमतेन ते ॥३०॥

अथ आसीत् वारुणी देवी कन्या कमल लोचना असुरा जगृहुः तां वै हरेः अनुमतेन ते ॥३०॥

अथ	इसके अनन्तर	**आसीत्**	उत्पन्न हुई
कमल	कमलके समान	**ते असुरा**	वे असुर
लोचना	नेत्रोंवाली	**हरेः अनुमतेन**	श्रीहरिकी अनुमतिसे
कन्या वारुणी	कन्या वारुणी	**तां वै**	उसे निश्चय
देवी	देवी	**जगृहुः**	ले लिया ॥३०॥

अथोदधेर्मथ्यमानात् काश्यपैरमृतार्थिभिः ।
उदतिष्ठन्महाराज पुरुषः परमाद्भुतः ॥३१॥

अथ उदधेः मथ्यमानात् काश्यपैः अमृत अर्थिभिः उदतिष्ठन् महाराज पुरुषः परम अद्भुतः ॥३१॥

महाराज	महाराज परीक्षित !	**मथ्यमानात्**	मथे जाते हुए
अथ अमृत	फिर अमृत	**उदधेः**	समुद्रसे
अर्थिभिः	चाहनेवाले	**परम अद्भुतः**	अत्यन्त अद्भुत
काश्यपैः	कश्यपजीके पुत्रों द्वारा	**पुरुषः**	पुरुष
		उदतिष्ठन्	ऊपर निकला ॥३१॥

दीर्घपीवरदोर्दण्डः कम्बुग्रीवोऽरुणेक्षणः ।
श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः ॥३२॥

दीर्घ पीवर दोर्दण्डः कम्बुग्रीवः अरुण ईक्षणः श्यामलः तरुणः स्रग्वी सर्व आभरण भूषितः ॥३२॥

दीर्घ पीवर	लम्बी मोटी	**अरुण ईक्षणः**	रतनारे, नेत्र,
दोर्दण्डः	भुजाएँ,	**श्यामलः**	साँवला,
कम्बुग्रीवः	शंखके समान कण्ठ	**तरुणः**	तरुण वयका,

स्रग्वी	वनमालाधारी,	**आभरण**	आभूषणोंसे
सर्व	सब	**भूषितः**	अलंकृत ॥३२॥

पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणिकुण्डलः ।
स्निग्धकुञ्चित केशान्तः सुभगः सिंहविक्रमः ॥३३॥

पीतवासा महा उरस्कः सुमृष्ट मणि कुण्डलः स्निग्ध कुञ्चित केश अन्तः सुभगः सिंह विक्रमः ॥३३॥

पीतवासा	पीताम्बरधारी,	**कुञ्चित**	घुंघराली
महा उरस्कः	विशाल वक्षस्थल,	**केश अन्तः**	अलकोंवाला,
सुमृष्ट मणि	स्वच्छ मणिमय	**सुभगः सिंह**	सुन्दर, सिंहके समान
कुण्डलः	कुंडल पहिने	**विक्रमः**	पराक्रमी ॥३३॥
स्निग्ध	चिकनी		

अमृतापूर्णकलशं बिभ्रद् वलयभूषितः ।
स बै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसम्भवः ॥३४॥

अमृत आपूर्ण कलशं बिभ्रत् वलय भूषितः स वै भगवतः साक्षात् विष्णोः अंशांश सम्भवः ॥३४॥

वलय	कंकणसे	**साक्षात् भगवतः**	साक्षात् भगवान्
भूषितः	आभूषित (हाथोंमें)	**विष्णोः**	विष्णुके छोटे
अमृत आपूर्ण	अमृतसे पूरा भरा	**अंशांश**	अंशसे
कलशं बिभ्रत्	कलश लिये	**सम्भवः**	उत्पन्न हुए थे ॥३४॥
वै स	निश्चय वे		

धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेदद्दगिज्यभाक् ।
तमालोक्यासुराः सर्वे कलशं चामृताभृतम् ॥३५॥

धन्वन्तरिः इति ख्यातः आयुर्वेदद्दक् इज्यभाक तं आलोक्य असुराः सर्वे कलशं च अमृत आभृतम् ॥३५॥

इज्यभाक्	यज्ञमें भाग पाने-वाले,	**तं च अमृत आभृतं**	उनको तथा अमृतसे पूरे भरे
धन्वन्तरिः इति	धन्वन्तरि इस नामसे	**कलशं**	कलशको
ख्यातः	प्रसिद्ध	**सर्वे असुराः**	सब असुरोंने
आयुर्वेददृक्	आयुर्वेदप्रवर्तक	**आलोक्य**	देखकर ॥३५॥

लिप्सन्तः सर्ववस्तूनि कलशं तरसाहरन् ।
नीयमानेऽसुरैस्तस्मिन्कलशेऽमृतभाजने ॥३६॥

लिप्सन्तः सर्ववस्तूनि कलशं तरसा आहरन् नीयमाने असुरैः तस्मिन् कलशे अमृत भाजने ॥३६॥

सर्ववस्तूनि	सब वस्तुओंपर	**आहरन्**	छीन लिया
लिप्सन्तः	ललचाते रहनेवाले (उन्होंने)	**तस्मिन् अमृत**	उस अमृत
		भाजने	पात्रको
तरसा	झपट कर वेगसे	**असुरैः**	असुरोंके
कलशं	कलशको	**नीयमाने**	ले लेनेपर ॥३६॥

विषण्णमनसो देवा हरिं शरणमाययुः ।
इति तद्दैन्यमालोक्य भगवान्भृत्यकामकृत् ।
मा खिद्यत मिथोऽर्थं वः साधयिष्ये स्वमायया ॥३७॥

विषण्ण मनसः देवाः हरिं शरणं आययुः इति तत् दैन्यं आलोक्य भगवान् भृत्य कामकृत् मा खिद्यत मिथः अर्थं वः साधयिष्ये स्वमायया ॥३७॥

विषण्ण मनसः	खिन्न चित्त	**भृत्य**	सेवकोंका
देवाः हरिं	देवता श्रीहरिको	**कामकृत्**	काम कर देनेवाले
शरणं आययुः	शरणमें आये,	**भगवान्**	भगवान् (ने कहा)
इति तत्	इस प्रकार उनकी	**मा खिद्यत**	'खेद मत करो
दैन्यं आलोक्य	दीनता देखकर	**स्वमायया**	अपनी मायासे

वः अर्थं	तुम्हारा प्रयोजन	साधयिष्ये	सिद्ध कर दूंगा'
मिथः	(असुरोंके) परस्पर झगड़ेसे		॥३७॥

मिथः कलिरभूत्तेषां तदर्थे तर्षचेतसाम् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वमिति प्रभो ॥३८॥

मिथः कलिः अभूत् तेषां तत् अर्थे तर्ष चेतसां अहं पूर्वं अहं पूर्वं न त्वं न त्वं इति प्रभो ॥३८॥

प्रभो	राजन् !	अहं पूर्वं	मैं पहिले'
तर्ष चेतसां	तृष्णालोलुप चित्त-वाले	न त्वं न त्वं	तुम नहीं, तुम नहीं
तेषां तत् अर्थे	उनमें उस (अमृत)-के लिए	इति मिथः	इस प्रकार परस्पर
अहं पूर्वं	'मैं पहिले,	कलिः अभूत्	झगड़ा होने लगता ॥३८॥

देवाः स्वं भागमर्हन्ति ये तुल्यायासहेतवः ।
सत्रयाग इवैतस्मिन्नेष धर्मः सनातनः ॥३९॥

देवाः स्वं भागं अर्हन्ति ये तुल्य आयास हेतवः सत्रयाग इव एतस्मिन् एष धर्मः सनातनः ॥३९॥

ये तुल्य आयास	'जो समान परिश्रम को	स्वं भागं अर्हन्ति	अपना भाग पानेके अधिकारी हैं,
हेतवः देवाः	करने वाले देवता हैं,	एष सनातनः	यही सनातन
सत्रयाग इव	यज्ञभागके समान	धर्मः	धर्म है ॥३९॥
एतस्मिन्	इसमें		

इति स्वान्प्रत्यषेधन्वै दैतेया जातमत्सराः ।
दुर्बलाः प्रबलान् राजन् गृहीतकलशान् मुहुः ॥४०॥

इति स्वान् प्रत्यषेधन् वै दैतेया जात मत्सराः दुर्बलाः प्रबलान् राजन् गृहीत कलशान् मुहुः ॥४०॥

राजन्	राजन् !
इति	इस प्रकार
गृहीत कलशान्	कलश ले जाने वाले
प्रबलान् स्वान्	बलवान अपनों को
जात मत्सराः	ईर्षा उत्पन्न होनेके कारण
दुर्बलाः दैतेया	दुर्बल दैत्य
वै मुहुः	निश्चय बार बार
प्रत्यषेधन्	रोकने लगे ॥४०॥

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः ।
योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधार परमाद्भुतम् ॥४१॥

एतस्मिन् अन्तरे विष्णुः सर्व उपायवित् ईश्वरः योषित् रूपं अनिर्देश्यं दधार परम अद्भुतम् ॥४१॥

एतस्मिन् अन्तरे	इसी बीचमें
सर्व उपायवित्	सब उपायोंको जाननेवाले
ईश्वरः विष्णुः	सर्वसमर्थ विष्णुने
परम अद्भुतं	अत्यन्त अद्भुत
अनिर्देश्यं	अवर्णनीय
योषित् रूपं	स्त्रीका रूप
दधार	धारण किया ॥४१॥

प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं सर्वावयवसुन्दरम् ।
समानकर्णाभरणं सुकपोलोन्नसाननम् ॥४२॥

प्रेक्षणीय उत्पलश्यामं सर्व अवयव सुन्दरं समान कर्ण आभरणं सुकपोल उन्नस आननम् ॥४२॥

प्रेक्षणीय	दर्शनीय
उत्पलश्यामं	नीलकमलके समान श्याम वर्ण,
सर्व अवयव	सर्वांग
सुन्दरं	सुन्दर
समान कर्ण	बराबरके कानोंमें
आभरणं	आभूषण (कुंडल) पहिने,
सुकपोल	सुन्दर कपोल,
उन्नस आननं	उठी नासिकावाला मुख ॥४२॥

नवयौवननिर्वृत्तस्तनभारकृशोदरम् ।
मुखामोदानुरक्तालिझङ्कारोद्विग्नलोचनम् ॥४३॥

नवयौवन निर्वृत्त स्तन भारकृश उदरं मुख आमोद अनुरक्त अलि झङ्कार उद्विग्न लोचनम् ॥४३॥

नवयौवन	नये यौवनसे	**मुख आमोद**	मुखकी सुगन्धिमें
निर्वृत्त	गोलाकार हुए	**अनुरक्त अलि**	अनुरक्त भौंरोंकी
स्तन	स्तनोंके	**झङ्कार उद्विग्न**	गुंजारसे चंचल
भारकृश	भारसे दुबला पड़ा	**लोचनं**	नेत्रवाली ॥४३॥
उदरं	पेट,		

बिभ्रत् स्वकेशभारेण मालामुत्फुल्लमल्लिकाम् ।
सुग्रीवकण्ठाभरणं सुभुजाङ्गदभूषितम् ॥४४॥

बिभ्रत् स्वकेश भारेण मालां उत्फुल्ल मल्लिकां सुग्रीव कण्ठ आभरणं सुभुज अङ्गद भूषितं ॥४४॥

स्वकेश	अपने केश	**सुग्रीव कण्ठ**	सुन्दर ग्रीवामें गलेके
भारेण	भार (जूड़े) में	**आभरणं**	आभूषण पहिने,
उत्फुल्ल	फूली	**सुभुज**	सुन्दर भुजाएँ
मल्लिकां	चमेलीकी	**अंगद**	बाजूबन्दसे
मालां बिभ्रत्	माला धारण किये	**भूषितं**	अलंकृत थीं ॥४४॥

विरजाम्बरसंवीतनितम्बद्वीपशोभया ।
काञ्च्या प्रविलसद्वल्गुचलच्चरणनूपुरम् ॥४५॥

विरज अम्बर संवीत नितम्ब द्वीप शोभया काञ्च्या प्रविलसत् वल्गु चलत् चरण नूपुरम् ॥४५॥

विरज अम्बर	निर्मल वस्त्र	**प्रविलसत्**	सुशोभित था,
संवीत	पहिने	**वल्गु चलत्**	सुन्दर चंचल
शोभया	शोभाशाली	**चरण**	चरणोंमें
नितम्ब द्वीप	नितम्ब द्वीप	**नूपुरं**	नूपुर पहिने थी ॥४५॥
काञ्च्या	करधनीसे		

सव्रीडस्मितविक्षिप्तभ्रू विलासावलोकनैः ।
दैत्ययूथपचेतःसु काममुद्दीपयन् मुहुः ॥४६॥

सव्रीड स्मित विक्षिप्त भ्रू विलास अवलोकनैः दैत्य यूथप चेतःसु कामं उद्दीपयन् मुहुः ॥४६॥

सव्रीड	लज्जा पूर्वक
स्मित	मुस्कराहटके साथ
भ्रू विलास	भौंहें चलाकर
विक्षिप्त	कटाक्ष पूर्वक
अवलोकनैः	देखनेसे
दैत्य यूथप	दैत्य-दलपतियोंके
चेतःसु मुहुः	चित्तमें बार-बार
कामं उद्दीपयन्	कामोद्दीपन करते हुए ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भगवन्मायोपलम्भनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीशक उवाच-

तेऽन्योन्यतोऽसुराः पात्रं हरन्तस्त्यक्तसौहृदाः ।
क्षिपन्तो दस्युधर्माण आयान्तीं ददृशुः स्त्रियम् ॥ १ ॥

ते अन्य अन्यतः असुराः पात्रं हरन्तः त्यक्त सौहृदाः क्षिपन्तः दस्यु धर्माण आयान्तीं ददृशुः स्त्रियम् ॥१॥

ते असुराः	वे असुर
त्यक्त सौहृदाः	सौहार्द्र त्यागकर
दस्यु धर्माण	डाकुओंके धर्ममें लगे
क्षिपन्तः	परस्पर आक्षेप करते
पात्रं	अमृत-पात्रको
अन्य अन्यतः	एक दूसरेसे
हरन्तः	छीन रहे थे कि
स्त्रियं आयान्तीं	स्त्रीको आते हुए
ददृशुः	देखा ॥१॥

अहो रूपमहो धाम अहो अस्या नवं वयः ।
इति ते तामभिद्रुत्य पप्रच्छुर्जातहृच्छयाः ॥ २ ॥

अहो रूपं अहो धाम अहो अस्या नवं वयः इति ते तां अभिद्रुत्य पप्रच्छुः जात हृत् छयाः ॥२॥

जात हृत् छयाः	हृदयको क्षीण करने-वाले काम-वेगके उत्पन्न होनेसे
अहो	'अहो
अस्या	इसका कैसा विचित्र
रूपं	रूप है,
अहो धाम	कैसा अद्भुत कान्ति है,
अहो नवं वयः	कैसी नवीन अवस्था है'
ते इति	वे इस प्रकार कहते
तां अभिद्रुत्य	उसके पास दौड़ गये और
पप्रच्छुः	पूछने लगे ॥२॥

का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कुतो वा किं चिकीर्षसि ।
कस्यासि वद वामोरु मथ्नन्तीव मनांसि नः ॥ ३ ॥

का त्वं कञ्ज पलाश अक्षि कुतः वा किं चिकीर्षसि कस्य असि वद वामोरु मथ्नन्ति इव मनांसि नः ॥३॥*

कञ्ज पलाश अक्षि	'कमल-दल लोचने !	**कस्य असि**	किसको हो ?
का त्वं	तुम कौन हो ?	**वामोरु वद**	सुन्दरी ! बतलाओ,
वा कुतः	अथवा कहांसे आयी हो ?	**नः मनांसि मथ्नन्ति इव**	हमारे चित्तको मानो मथे दे रही हो ॥३॥
किं चिकीर्षसि	क्या करना चाहती हो ?		

न वयं त्वामरैर्दैत्यैः सिद्धगन्धर्वचारणैः ।
नास्पृष्टपूर्वां जानीमो लोकेशैश्च कुतो नृभिः ॥ ४ ॥

न वयं त्वा अमरैः दैत्यैः सिद्ध गन्धर्व चारणैः न अस्पृष्ट पूर्वां जानीमः लोक ईशैः च कुतः नृभिः ॥४॥

वयं त्वा	हम लोग तुम्हें	**पूर्वां**	पहिले
अमरैः दैत्यैः	देवता, दैत्यों,	**न अस्पृष्ट न**	बिना अछूती नहीं (अछूती)
सिद्ध गन्धर्व	सिद्ध, गन्धर्व,	**जानीमः**	जानते हैं,
चारणैः	चारणों	**कुतः नृभिः**	फिर मनुष्योंकी क्या चर्चा ॥४॥
च लोक	तथा लोकपालों		
इशैः	द्वारा भी		

नूनं त्वं विधिना सुभ्रूः प्रेषितासि शरीरिणाम् ।
सर्वेन्द्रियमनः प्रीतिं विधातुं सघृणेन किम् ॥ ५ ॥

---

*यहां 'असुरोवाच' देना अनावश्यक है; क्योंकि आगे श्लोक ८ के लिए 'श्रीशुक उवाच' नहीं है

नूनं त्वं विधिना सुभ्रूः प्रेषिता असि शरीरिणां सर्व इन्द्रिय मनः प्रीतिं विधातुं सघृणेन किम् ॥५॥

सुभ्रूः	सुन्दर भौंहों वाली !	**सर्व इन्द्रिय**	सब इन्द्रियों तथा
नूनं किं त्वं	निश्चय क्या तुम	**मनः प्रीतिं**	मनकी प्रसन्नता
सघृणेन	दयालु	**विधातुं**	सम्पन्न करनेके लिए
विधिना	विधाता द्वारा	**प्रेषिता असि**	भेजी गयी हो ॥५॥
शरीरिणां	शरीरधारियोंकी		

सा त्वं नः स्पर्धमानानामेकवस्तुनि मानिनि ।
ज्ञातीनां बद्धवैराणां शं विधत्स्व सुमध्यमे ॥ ६ ॥

सा त्वं नः स्पर्धमानानां एक वस्तुनि मानिनि ज्ञातीनां बद्ध वैराणां शं विधत्स्व सुमध्यमे ॥६॥

सुमध्यमे	सुमध्यमे !	**नः ज्ञातीनां**	हम जाति भाइयोंमें
मानिनि	मानिनि !	**सा त्वं**	वह तुम
एक वस्तुनि	एक ही वस्तुके लिए	**शं विधत्स्व**	शान्ति स्थापित कर
बद्ध वैराणां	दृढ़ शत्रुता करके		दो ॥६॥
स्पर्धमानानां	डाह करनेवाले		

वयं कश्यपदायादा भ्रातरः कृतपौरुषाः ।
विभजस्व यथान्यायं नैव भेदो यथा भवेत् ॥ ७ ॥

वयं कश्यप दायादा भ्रातरः कृत पौरुषाः विभजस्व यथान्यायं न एव भेदः यथा भवेत् ॥७॥

वयं कश्यप	हम लोग कश्यपजीके	**यथान्यायं**	न्यायपूर्वक
दायादा	पुत्र अतः	**विभजस्व**	बाँट दो
भ्रातरः	परस्पर भाई हैं,	**यथा भेदः**	जिससे फिर झगड़ा
कृत पौरुषाः	(हम सबने) पुरुषार्थ किया हैं,	**न एव भवेत्**	नहीं ही हो' ॥७॥

इत्युपामन्त्रितो दैत्यैर्मायायोषिद्वपुर्हरिः ।
प्रहस्य रुचिरापांगैर्निरीक्षन्निदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

इति उपामन्त्रितः दैत्यैः माया योषित् वपुः हरिः प्रहस्य रुचिर अपांगैः निरीक्षन् इदं अब्रवीत् ॥८॥

दैत्यैः इति	दैत्योंके इस प्रकार	**हरिः प्रहस्य**	श्रीहरि हँसकर
उपामन्त्रितः	आमन्त्रण देनेपर	**रुचिर अपांगैः**	सुन्दर कटाक्ष पूर्वक
माया	मायासे	**निरीक्षन्**	देखते हुए
योषित् वपुः	स्त्री शरीरधारी	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥८॥

श्रीभगवानुवाच–

कथं कश्यपदायादाः पुंश्चल्यां मयि संगताः ।
विश्वासं पण्डितो जातु कामिनीषु न याति हि ॥ ९ ॥

कथं कश्यपदायादाः पुंश्चल्यां मयि संगताः विश्वासं पण्डितः जातु कामिनीषु न याति हि ॥९॥

कश्यपदायादाः	कश्यपकुमारो !	**हि पण्डितः**	क्योंकि विद्वान
मयि	मुझ	**कामिनीषु जातु**	स्त्रियोंका कभी
पुंश्चल्यां	व्यभिचारिणीके	**विश्वासं न**	विश्वास नहीं
कथं संगताः	क्यों साथ होते हो,	**याति**	करते ॥९॥

सालावृकाणां स्त्रीणां च स्वैरिणीनां सुरद्विषः ।
सख्यान्याहुरनित्यानि नूत्नं नूत्नं विचिन्वताम् ॥१०॥

सालावृकाणां स्त्रीणां च स्वैरिणीनां सुरद्विषः सख्यानि आहुः अनित्यानि नूत्नं नूत्नं विचिन्वताम् ॥१०॥

सुरद्विषः	देवद्रोहियो !	**नूत्नं नूत्नं**	नये-नयोंको
सालावृकाणां	कुत्तोंका	**विचिन्वतां**	ढूंढ़नेवालियोंकी
च स्वैरिणीनां	तथा स्वेच्छा चारिणी	**सख्यानि**	मित्रता
		अनित्यानि	अस्थायी
स्त्रीणां	स्त्रियोंका	**आहुः**	कही गयी है ॥१०॥

श्रीशुक उवाच–

इति ते क्ष्वेलितैस्तस्या आश्वस्तमनसोऽसुराः ।
जहसुर्भावगम्भीरं ददुश्चामृतभाजनम् ॥११॥

इति ते क्ष्वेलितैः तस्या आश्वस्त मनसः असुराः जहसुः भाव गम्भीरं ददुः च अमृत भाजनम् ॥११॥

इति तस्या	इस प्रकार उसके	**भाव गम्भीरं**	गम्भीर भावसे
क्ष्वेलितैः	परिहास करनेपर	**जहसुः च**	हँसे और
ते असुराः	वे असुर	**अमृत भाजनं**	अमृतका पात्र
आश्वस्त मनसः	विशस्त चित्त होकर	**ददुः**	दे दिया ॥११॥

ततो गृहीत्वामृतभाजनं हरि-
र्बभाष ईषत्स्मितशोभया गिरा ।
यद्यभ्युपेतं क्व च साध्वसाधु वा
कृतं मया वो विभजे सुधामिमाम् ॥१२॥

ततः गृहीत्वा अमृत भाजनं हरिः बभाष ईषत् स्मित शोभया गिरा यद् अभ्युपेतं क्व च साधु असाधु वा कृतं मया वः विभजे सुधां इमाम् ॥१२॥

ततः	तब	**क्व च साधु**	कुछ अच्छा
अमृत भाजनं	अमृत-पात्रको	**वा असाधु**	अथवा बुरा
गृहीत्वा हरिः	लेकर श्रीहरिने	**यद् अभ्युपेतं**	यदि स्वीकार हो तो
ईषत् स्मित	तनिक मुस्कानसे	**इमां सुधां**	यह अमृत
शोभया गिरा	शोभित वाणीसे	**वः विभजे**	तुम लोगोंमें
बभाष	बोले		बांटूंगी' ॥१२॥
मया कृतं	'मेरे द्वारा किया		

इत्यभिव्याहृतं तस्या आकर्ण्यासुरपुङ्गवाः ।
अप्रमाणविदस्तस्यास्तत् तथेत्यन्वमंसत ॥१३॥

इति अभिव्याहृतं तस्या आकर्ण्य असुर पुङ्गवाः अप्रमाणविदः तस्याः तत् तथा इति अन्वमंसत ॥१३॥

इति तस्या	इस प्रकार उसका	**असुर पुङ्गवाः***	असुरश्रेष्ठोंने
अभिव्याहृतं	साभिप्राय कहना	**तत् तथा**	यह ऐसा ठीक है,
आकर्ण्य	सुनकर	**इति**	इस प्रकार
तस्याः	उसके	**अन्वमंसत**	उसे मान लिया
अप्रमाणविदः	स्वरूपको न जाननेवाले		॥१३॥

अथोपोष्य कृतस्नाना हुत्वा च हविषानलम् ।
दत्त्वा गोविप्रभूतेभ्यः कृतस्वस्त्ययना द्विजैः ॥१४॥

अथ उपोष्य कृतस्नाना हुत्वा च हविषा अनलं दत्त्वा गो विप्र भूतेभ्यः कृतस्वस्त्यनाः द्विजैः ॥१४॥

अथ उपोष्य	फिर उपवास करके	**च भूतेभ्यः**	तथा अन्य प्राणियों-को
कृतस्नाना	स्नान करनेके पश्चात	**दत्त्वा द्विजैः**	देकर, ब्राह्मणों द्वारा
हविषा अनलं	हविसे अग्निमें	**कृतस्वस्त्यनाः**	स्वस्ति वाचन करा-कर ॥१४॥
हुत्वा	हवन करके		
गो-विप्र	गौ-ब्राह्मणों		

यथोपजोषं वासांसि परिधायाहतानि ते ।
कुशेषु प्राविशन्सर्वे प्रागग्रेष्वभिभूषिताः ॥१५॥

यथा उपजोषं वासांसि परिधाय अहतानि ते कुशेषु प्राविशन् सर्वे प्राक् अग्रेषु अभिभूषिताः ॥१५॥

यथा उपजोषं	अपनी रुचिके अनुसार	**अहतानि वासांसि**	बिना फटे वस्त्र

*पुंगवा—बैल, यह श्लेष है ।

परिधाय	पहिन कर	**अग्रेषु**	नोक करके बिछाए
अभिभूषिताः	आभूषण धारण करके	**कुशेषु ते**	कुशोंपर वे
प्राक्	पूर्वकी ओर	**सर्वे प्राविशन्**	सब बैठ गये ॥१५॥

प्राङ्मुखेषूपविष्टेषु सुरेषु दितिजेषु च ।
धूपामोदितशालायां जुष्टायां माल्यदीपकैः ॥१६॥

प्राक् मुखेषु उपविष्टेषु सुरेषु दितिजेषु च धूप आमोदित शालायां जुष्टायां माल्य दीपकैः ॥१६॥

माल्य	माला और	**प्राक् मुखेषु**	पूर्वकी ओर मुख करके
दीपकैः	दीपकोंसे	**सुरेषु च**	देवता और
जुष्टायां	सुशोभित	**दितिजेषु**	दैत्योंके
धूप	धूपसे	**उपविष्टेषु**	बैठ जानेपर ॥१६॥
आमोदित	सुगन्धित		
शालायां	बडे कक्षमें		

तस्यां नरेन्द्र करभोरुरुशद्दुकूल-
श्रोणी तटालसगतिर्मदविह्वलाक्षी ।
सा कूजती कनकनूपुरशिञ्जितेन
कुम्भस्तनी कलशपाणिरथाविवेश ॥१७॥

तस्यां नरेन्द्र कर भ उरुः उशत् दुकूल श्रोणी तट अलस गतिः मद विह्वल अक्षी सा कूजती कनकनूपुर शिञ्जितेन कुम्भस्तनी कलशपाणिः अथ आविवेश ॥१७॥

नरेन्द्र	राजेन्द्र परीक्षित !	**अलस गतिः**	मन्द गति
अथ तस्यां	फिर उस (कक्ष) में	**मद विह्वल**	मदमत्त
उशत् दूकूल	सुन्दर वस्त्र पहिने	**अक्षी**	नयनी
श्रोणी तट	नितम्बोंके भारसे	**करभ**	गजशुण्ड-सी

उरुः	जंघाओंवाली,	**कूजती**	कूजन करती
कुम्भस्तनी	कलश जैसे स्तन-वाली	**सा**	वह
		कलशपाणि	हाथोंमें कलश लिये
कनकनूपुर शिञ्जितेन	स्वर्णनूपुरोंके झंकारसे	**आविवेश**	प्रविष्ट हुई ॥१७॥

तां श्रीसखीं कनककुण्डलचारुकर्ण-
नासाकपोलवदनां परदेवताख्याम् ।
संवीक्ष्य संमुमुहुरुत्स्मितवीक्षणेन
देवासुरा विगलितस्तनपट्टिकान्ताम् ॥१८॥

तां श्रीसखीं कनककुण्डल चारुकर्ण नासा कपोल वदनां परदेवता आख्यां संवीक्ष्य संमुमुहुः उत् स्मित वीक्षणेन देव असुरा विगलिता स्तन पट्टिकान्ताम् ॥१८॥

कनक कुण्डल	स्वर्ण कुंडलवाले	**आख्यां**	नाम्नी
चारुकर्ण	सुन्दर कर्ण,	**श्रीसखीं**	लक्ष्मीजीकी सखी-को
नासा	नासिका		
कपोल	कपोल युक्त	**संवीक्ष्य**	देखकर
वदनां	मुखवाली,	**उत् स्मित**	(उसकी) मुसकान भरी
स्तन	स्तनोंपरके		
पट्टिकान्ता	अंचलका किनारेका भाग	**वीक्षणेन**	चितवनसे
		देव असुरा	देवता असुर
विगलिता	हटा हुआ है ऐसी	**संमुमुहुः**	मोहित हो गये ॥१८॥
तां परदेवता	उसपर देवता		

असुराणां सुधादानं सर्पाणामिव दुर्नयम् ।
मत्वा जातिनृशंसानां न तां व्यभजदच्युतः ॥१९॥

असुराणां सुधादानं सर्पाणां इव दुर्नयं मत्वा जाति नृशंसानां न तां व्यभजत् अच्युतः ॥१९॥

जाति	स्वभावसे ही	**दुर्नयं मत्वा**	अन्याय मानकर
नृशंसानां	निर्दय	**अच्युतः**	श्रीहरिने
सर्पाणां इव	सर्पोंके समान	**तां न**	उनको (अमृत) नहीं
असुराणां	असुरोंको	**व्यभजत्**	बांटा ॥१९॥
सुधादानं	अमृत देना		

कल्पयित्वा पृथक् पङ्क्तीरुभयेषां जगत्पतिः ।
तांश्चोपवेशयामास स्वेषु स्वेषु च पङ्क्तिषु ॥२०॥

कल्पयित्वा पृथक् पङ्क्तिः उभयेषां जगत् पतिः तान् च उपवेशयामास स्वेषु स्वेषु च पङ्क्तिषु ॥२०॥

जगत् पतिः	उन जगत्पतिने	**तान् च**	फिर उनको तो
उभयेषां	दोनों (देव-दानवों) की	**स्वेषु स्वेषु च**	अपनी-अपनी ही
पृथक् पङ्क्तिः	अलग-अलग पंक्ति	**पङ्क्तिषु**	पंक्तियोंमें
कल्पयित्वा	बनवाकर	**उपवेशयामास**	बैठाया ॥२०॥

दैत्यान्गृहीतकलशो वञ्चयन्नुपसञ्चरैः ।
दूरस्थान् पाययामास जरामृत्युहरां सुधाम् ॥२१॥

दैत्यान् गृहीतकलशः वञ्चयन् उपसञ्चरैः दूरस्थान् पाययामास जरामृत्यु हरां सुधाम् ॥२१॥

गृहीतकलशः	हाथमें कलश लिये	**दूरस्थान्**	दूर बैठे (देवताओं) को
उपसञ्चरैः	समीप चलने तथा कटाक्षादिसे	**जरामृत्यु**	बुढ़ापे और मृत्युको
दैत्यान्	दैत्योंको	**हरां**	हरण करनेवाला
वञ्चयन्	ठगते हुए	**सुधां**	अमृत
		पाययामास	पिला दिया ॥२१॥

ते पालयन्तः समयमसुराः स्वकृतं नृप ।
तूष्णीमासन्कृतस्नेहाः स्त्रीविवादजुगुप्सया ॥२२॥

ते पालयन्तः समयं असुराः स्वकृतं नृप तूष्णीं आसन् कृतस्नेहाः स्त्री विवाद जुगुप्सया ॥२२॥

नृप	राजन् !	**स्वकृतं**	अपने साथकी गयी
ते असुराः	वे असुर	**समयं**	शर्तका
स्त्री विवाद	स्त्रीसे झगड़ा करना	**पालयन्तः**	पालन करते हुए
जुगुप्सया	निन्दनीय समझकर	**तूष्णीं आसन्**	चुपचाप बैठे रहे
कृतस्नेहाः	इसने स्नेह किया है इसलिए		॥२२॥

तस्यां कृतातिप्रणयाः प्रणयापायकातराः ।

बहुमानेन चाबद्धा नोचुः किञ्चन विप्रियम् ॥२३॥

तस्यां कृत अति प्रणयाः प्रणय अपाय कातराः बहु मानेन च आबद्धा न ऊचुः किञ्चन विप्रियम् ॥२३॥

तस्यां अति	उससे बहुत	**च**	तथा (उसके द्वारा)
प्रणया :	प्रेम	**बहु मानेन**	बहुत सम्मान पानेसे
कृत	किया था,	**आबद्धा**	बँधे हुए थे, अतः
प्रणय	उस प्रेमके नष्ट होनेके	**विप्रियं**	अप्रिय
		किञ्चन	कुछ भी
अपाय	भयसे	**न ऊचुः**	नहीं बोले ॥२३॥
कातराः	कातर थे,		

देवलिङ्गप्रतिच्छन्नः स्वर्भानुर्देवसंसदि ।

प्रविष्टः सोममपिबच्चन्द्रार्काभ्यां च सूचितः ॥२४॥

देवलिङ्ग प्रतिच्छन्नः स्वर्भानुः देवसंसदि प्रविष्टः सोमं अपिबत् चन्द्र अर्काभ्यां च सूचितः ॥२४॥

देवलिङ्ग	देवताके रूपमें	**प्रविष्टः**	घुसकर
प्रतिच्छन्नः	छिपकर	**स्वर्भानुः**	स्वर्भानु दैत्यने
देवसंसदि	देव समूहमें	**सोमं अपिबत्**	अमृत पीलिया

च चन्द्र अर्काभ्यां	किन्तु चन्द्रमा-सूर्य द्वारा	सूचितः	(इसका) संकेत कर दिया ॥२४॥

चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः ।
हरिस्तस्य कबन्धस्तु सुधयाप्लावितोऽपतत् ॥२५॥

चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः हरिः तु तस्य कबन्धः तु सुधया अप्लावितः अपतत् ॥२५॥

हरिः	श्रीहरिने अमृत	तु तस्य	किन्तु उसका
पिबतः	पीते समय	कबन्धः	धड़
क्षुरधारेण	तीक्ष्ण धारवाले	सुधया	अमृत
चक्रेण	चक्रसे	अप्लावितः	न सींचे जानेसे
शिरः	उसका सिर	अपतत्	गिर गया ॥२५॥
जहार	काट दिया		

शिरस्त्वमरतां नीतमजो ग्रहमचीक्लृपत् ।
यस्तु पर्वणि चन्द्रार्कावभिधावति वैरधीः ॥२६॥

शिरः तु अमरतां नीतं अजः ग्रहं अचीक्लृपत् यः तु पर्वणि चन्द्र अर्काः अभिधावति वैरधीः ॥२६॥

तु शिरः	किन्तु सिर	यः तु पर्वणि	जो कि पूर्णिमा-अमावस्याको
अमरतां नीतः	अमरत्व प्राप्त हो गया,	वैरधीः	बैर बुद्धिसे
अजः ग्रहं	ब्रह्माजीने (उसे) ग्रह	चन्द्र अर्काः	चन्द्रमा-सूर्यपर
अचीक्लृपत्	बना दिया,	अभिधावति	आक्रमण करता है ॥२६॥

पीतप्रायेऽमृते देवैर्भगवाँल्लोकभावनः ।
पश्यतामसुरेन्द्राणां स्वं रूपं जगृहे हरिः ॥२७॥

पीतप्राये अमृते देवैः भगवान् लोकभावनः पश्यतां असुरेन्द्राणां स्वं रूपं जगृहे हरिः ॥२७॥

देवैः अमृते	देवताओंके अमृत	**असुरेन्द्राणां**	असुर-नायकोंके
पीतप्राये	प्रायः पीलेनेपर	**पश्यतां**	देखते हुए
लोकभावनः	लोकरक्षक	**स्वं रूपं**	अपना रूप
भगवान्	भगवान्	**जगृहे**	ग्रहण कर लिया
हरिः	श्रीहरिने		॥२७॥

एवं सुरासुरगणाः समदेशकाल-
हेत्वर्थकर्ममतयोऽपि फले विकल्पाः ।
तत्रामृतं सुरगणाः फलमञ्जसाऽऽपु-
र्यत्पादपङ्कजरजः श्रयणान्न दैत्याः ॥२८॥

एवं सुर असुर गणाः समदेश काल हेतु अर्थ कर्म मतयः अपि फले विकल्पाः तत्र अमृतं सुरगणाः फलं अञ्जसा आपुः यत् पादपङ्कजरजः श्रयणात् न दैत्याः ॥२८॥

एवं	इस प्रकार	**श्रयणात्**	आश्रय लेनेसे
सुर असुर गणाः	देव-असुर गणमें	**सुरगणाः**	देवता लोग
समदेश काल	समान देश, काल,	**अञ्जसा**	सरलतासे
हेतु अर्थ	कारण, प्रयोजन,	**तत्र फलं**	वहां फलरूप
मतयः कर्म अपि	बुद्धि, कर्म होनेपर भी	**अमृतं आपुः**	अमृत पा गये
फले विकल्पाः	फलमें भेद हो गया	**न दैत्याः**	(पर उनका आश्रय
यत्	जिनकी		नहीं लेनेसे) दैत्य
पादपङ्कजरजः	चरण-कमल रज-का		नहीं पा सके ॥२८॥

यद् युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभि-
र्देहात्मजादिषु नृभिस्तदसत् पृथक्त्वात् ।
तैरेव सद् भवति यत् क्रियतेऽपृथक्त्वात्
सर्वस्य तद् भवति मूलनिषेचनं यत् ॥२९॥

यत् युज्यते असु वसु कर्म मनः वचः भिः देह आत्मज आदिषु नृभिः तत् असत् पृथक्त्वात् तैः एव सत् भवति यत् क्रियते अपृथक्त्वात् सर्वस्य तत् भवति मूल निषेचनं यत् ॥२९॥

नृभिः यत्	मनुष्यों द्वारा जो	**भवति**	हो जाता है
असु वसु	प्राण और धनसे	**यत्**	यदि
कर्म	कर्म	**अपृथक्त्वात्**	अभेद बुद्धिसे
मनः वचः	मन, वाणी द्वारा	**क्रियते**	किया जाय
देह	शरीर,	**यत् मूल**	क्योंकि जड़को
आत्मज आदिषु	पुत्रादिके लिए	**निषेचनं**	सींचना
पृथक्त्वात्	भेद बुद्धिसे	**तत्**	वह
क्रियते	किया जाता है	**सर्वस्य**	सब (पूरे वृक्ष) के लिए
तत् असत्	वह व्यर्थ होता है		
तैः एव सत्	वही सार्थक	**भवति**	हो जाता है ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे ऽमृतमथने नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

इति दानवदैतेया नाविन्दन्नमृतं नृप ।
युक्ताः कर्मणि यत्ताश्च वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १ ॥

इति दानव दैतेया न अविन्दन् अमृतं नृप युक्ताः कर्मणि यत्ताः च वासुदेव पराङ्मुखाः ॥१॥

नृप	राजन् !	कर्मणि युक्ताः	कर्ममें लगने
इति	इस प्रकार	च यत्ताः	और प्रयत्न करने-पर भी
वासुदेव	श्रीहरिसे		
पराङ्मुखाः	विमुख	अमृतं न	अमृत नहीं
दानव दैतेया	दानव-दैत्य	अविन्दन्	पा सके ॥१॥

साधयित्वामृतं राजन्पाययित्वा स्वकान्सुरान् ।
पश्यतां सर्वभूतानां ययौ गरुडवाहनः ॥ २ ॥

साधयित्वा अमृतं राजन् पाययित्वा स्वकान् सुरान् पश्यतां सर्व-भूतानां ययौ गरुडवाहनः ॥२॥

राजन्	राजन् !	सुरान्	देवताओंको
गरुडवाहनः	गरुड वाहन श्रीहरि	पाययित्वा	पिलाकर
अमृतं	अमृत	सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके
साधयित्वा	सिद्ध करके,	पश्यतां ययौ	देखते हुए चले गये ॥२॥
स्वकान्	अपने आश्रित		

सपत्नानां परामृद्धिं दृष्ट्वा ते दितिनन्दनाः ।
अमृष्यमाणा उत्पेतुर्देवान्प्रत्युद्यतायुधाः ॥ ३ ॥

सपत्नानां परां ऋद्धिं दृष्ट्वा ते दितिनन्दनाः अमृष्यमाणा उत्पेतुः देवान् प्रति उद्यत आयुधाः ॥३॥

ते दितिनन्दनाः	वे दैत्य
सपत्नानां	अपने शत्रुओंका
परां ऋद्धिं	परमैश्वर्य
दृष्ट्वा	देखकर
अमृष्यमाणाः	उसे सहन न करके
उद्यत आयुधाः	अस्त्र-शस्त्र उठाकर
देवान् प्रति	देवताओंपर
उत्पेतुः	चढ़ दौड़े ॥३॥

ततः सुरगणाः सर्वे सुधया पीतयैधिताः ।
प्रतिसंयुयुधुः शस्त्रैर्नारायणपदाश्रयाः ॥ ४ ॥

ततः सुरगणाः सर्वे सुधया पीत एधिताः प्रति संयुयुधुः शस्त्रैः नारायण पद आश्रयाः ॥४॥

ततः नारायण	तब श्रीनारायणके
पद आश्रयाः	प्रेरणाश्रित
सर्वे सुरगणाः	सब देववृन्द
सुधया पीत	अमृत पीनेसे
एधिताः	सबल हुए
शस्त्रैः	शस्त्र लेकर
प्रति	प्रतिकारमें
संयुयुधुः	युद्ध करने लगे ॥४॥

तत्र दैवासुरो नाम रणः परमदारुणः ।
रोधस्युदन्वतो राजंस्तुमुलो रोमहर्षणः ॥ ५ ॥

तत्र दैव असुरः नाम रणः परमदारुणः रोधसि उदन्वतः राजन् तुमुलः रोमहर्षणः ॥५॥

राजन्	राजन् !
तत्र	वहां
उदन्वतः रोधसि	क्षीरसमुद्र किनारे
दैव असुरः नाम	देवासुर नामक
परमदारुणः	अत्यन्त भयंकर
रोमहर्षणः	रोमाञ्चकारी
तुमुलः रणः	घोर युद्ध (हुआ) ॥५॥

तत्रान्योन्यं सपत्नास्ते संरब्धमनसो रणे ।
समासाद्यासिभिर्बाणैर्निजघ्नुर्विविधायुधैः ॥ ६ ॥

तत्र अन्यः अन्यं सपत्नाः ते संरब्ध मनसः रणे सम आसाद्य असिभिः बाणैः निजघ्नुः विविध आयुधैः ॥६॥

तत्र ते	वहां वे दोनों	**असिभिः बाणैः**	तलवारों, बाणों,
सपत्नाः	विपक्षी लोग	**विविध**	अनेक प्रकारके
संरब्ध मनसः	क्रोध पूर्ण चित्त	**आयुधैः**	अस्त्र-शस्त्रोंसे
अन्यः अन्यं	एक दूसरेको	**निजघ्नुः**	प्रहार करने लगे
रणे	युद्धमें		॥६॥
सम आसाद्य	ठीक सामने पाकर		

शङ्खतूर्यमृदङ्गानां भेरीडमरिणां महान् ।
हस्त्यश्वरथपत्तीनां नदतां निस्वनोऽभवत् ॥ ७ ॥

शङ्ख तूर्य मृदङ्गानां भेरी डमरिणां महान् हस्ति अश्व रथ पत्तीनां नदतां निस्वनः अभवत् ॥७॥

शङ्ख तूर्यं	शंख, तुरही,	**रथ पत्तीनां**	रथारोही एवं पैदल सेनाका
मृदङ्गानां	मृदङ्गों,	**महान्**	भारी
भेरी	नगाडों,	**निस्वनः**	कोलाहल
डमरिणां	डमरुओं तथा	**अभवत्**	होने लगा ॥७॥
नदतां हस्ति	गर्जना करते हाथी,		
अश्व	घोड़े,		

रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः ।
हया हयैरिभाश्चेभैः समसज्जन्त संयुगे ॥ ८ ॥

रथिनः रथिभिः तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः हया हयैः इभाः च इभैः सम सज्जन्त संयुगे ॥८॥

तत्र संयुगे	वहां युद्धमें	**च इभाः**	और गजरोही
रथिनः रथिभिः	रथी-रथियोंसे,	**इभैः**	गजा रोहियोंसे
पत्तयः पत्तिभिः	पैदल पैदलोंसे	**सम सज्जन्त**	भली प्रकार भिड़ गये ॥८॥
हयाः	घुड़सवार		
हयैः	घुड़सवारोंसे,		

उष्ट्रैः केचिदिभैः केचिदपरे युयुधुः खरैः ।
केचिद् गौरमृगैर्ऋक्षैर्द्वीपिभिर्हरिभिर्भटाः ॥ ९ ॥

उष्ट्रैः केचित् इभैः केचित् अपरे युयुधुः खरैः केचित् गौरः मृगैः ऋक्षैः द्वीपिभिः हरिभिः भटाः ॥९॥

केचित भटाः	कोई वीर	**केचित गौरः**	अरना सांडपर
उष्ट्रैः केचित्	ऊँटपर, कोई	**ऋक्षैः द्वीपिभिः**	रीछ, बाघों या
इभैः	हाथीपर,	**हरिभिः**	सिंहोंपर बैठकर
अपरे खरैः	दूसरे गधेपर,	**युयुधुः**	युद्ध करने लगे ॥९॥

गृध्रैः कङ्कैर्बकैरन्ये श्येनभासैस्तिमिङ्गिलैः ।
शरभैर्महिषैः खड्गैर्गोवृषैर्गवयारुणैः ॥१०॥

गृध्रै कङ्कैः बकैः अन्ये श्येन भासैः तिमिङ्गिलैः शरभैः महिषैः खड्गैः गोवृषैः गवय अरुणैः ॥१०॥

गृध्रैः कङ्कैः	गीधों, कांकों,	**शरभैः**	शरभों,
बकैः	बगुलोंपर,	**महिषैः खड्गै**	भैंसों, गेंड़ों,
अन्ये श्येन	दूसरे बाज,	**गोवृषै**	बैलों
भासैः	टिटिहरी,	**गवयः**	नीलगायों,
तिमिङ्गिलैः	तिमिंगल,	**अरुणैः**	सांडोंपर बैठे ॥१०॥

शिवाभिराखुभिः केचित् कृकलासैः शशैर्नरैः ।
बस्तैरेके कृष्णसारैर्हंसैरन्ये च सूकरैः ॥११॥

शिवाभिः आखुभिः केचित् कृकलासैः शशै नरैः बस्तैः एके कृष्णसारैः हंसैः अन्ये च सूकरैः ॥११॥

केचित्	कोई	**एके बस्तैः**	कोई बकरेपर,
शिवाभिः	शृगालीपर,	**कृष्णसारैः**	कस्तूरी मृगपर,
आखुभिः	चूहेपर,	**हंसैः च अन्यैः**	हंसपर और दूसरे
कृकलासैः	गिरगिटपर,	**सूकरैः**	सुअरपर ॥११॥
शशैः नरैः	चूहेपर, मनुष्यपर,		

अन्ये जलस्थलखगैः सत्त्वैर्विकृतविग्रहैः ।
सेनयोरुभयो राजन्विविशुस्तेऽग्रतोऽग्रतः ॥१२॥

अन्ये जल स्थल खगैः सत्त्वैः विकृत विग्रहैः सेनयोः उभयोः राजन् विविशुः ते अग्रतः अग्रतः ॥१२॥

राजन्	राजन् !
अन्ये जल	दूसरे जलचर,
स्थल	स्थलचर,
खगैः	नभचर
विकृत विग्रहैः	भयानकाकार
सत्त्वैः	प्राणियोंपर बैठकर
उभयोः सेनयोः	दोनों सेनाओंमें
ते अग्रतः अग्रतः	वे आगेसे आगे
विविशुः	घुसने लगे ॥१२॥

चित्रध्वजपटैः राजन्नातपत्रैः सितामलैः ।
महाधनैर्वज्रदण्डैर्व्यजनैर्बर्हिचामरैः ॥१३॥

चित्रध्वज पटैः राजन् आतपत्रैः सित अमलैः महाधनैः वज्रदण्डैः व्यजनैः बार्ह चामरैः ॥१३॥

राजन्	राजन् !
चित्रध्वज	विचित्र झंड़ोंके
पटैः	वस्त्रोंसे,
सित अमलैः	श्वेत निर्मल
आतपत्रैः	छत्रोंसे
महाधनैः	बहुमूल्य
वज्रदण्डैः	हीरे जड़े दण्डवाले
बार्ह	मोरछलों तथा
चामरैः	चमरसे ॥१३॥

वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैरर्चिर्भिर्वर्मभूषणैः ।
स्फुरद्भिर्विशदैः शस्त्रैः सुतरां सूर्यरश्मिभिः ॥१४॥

वात उद्धूत उत्तर उष्णीषैः अर्चिभिः वर्म भूषणैः स्फुरद्भिः विशदैः शस्त्रैः सुतरां सूर्यरश्मिभिः ॥१४॥

वात उद्धूत	वायुसे उड़ते
उत्तर	उत्तरीय तथा
उष्णीषैः	पगड़ियोंसे,
वर्म भूषणैः	कवच एवं आभूषणों-पर
सूर्यरश्मिभिः	सूर्यकी किरणोंके द्वारा
सुतरां	अधिक
अर्चिभिः	निकलती किरणोंसे
विशदैः शस्त्रैः	निर्मल शस्त्रोंके
स्फुरद्भिः	दमकनेसे ॥१४॥

देवदानववीराणां ध्वजिन्यौ पाण्डुनन्दन ।
रेजतुर्वीरमालाभिर्यादसामिव सागरौ ॥१५॥

देव दानव वीराणां ध्वजिन्यौ पाण्डुनन्दन रेजतुः वीरमालाभिः यादसां इव सागरौ ॥१५॥

पाण्डुनन्दन	पाण्डवोंको हर्षित करनेवाले परीक्षित	**वीरमालाभिः**	वीरोंकी श्रेणीसे युक्त
देव दानव	देव-दानव	**यादसां**	जलचरोंसे भरे
वीराणां	वीरोंकी	**सागरौ इव**	दो समुद्रोंके सम्मान
ध्वजिन्यौ	वे सेनाएँ	**रेजतुः**	शोभित थी ॥१५॥

वैरोचनो बलिः संख्ये सोऽसुराणां चमूपतिः ।
यानं वैहायसं नाम कामगं मयनिर्मितम् ॥१६॥

वैरोचनः बलिः संख्ये सः असुराणां चमूपतिः यानं वैहायसं नाम कामगं मयनिर्मितं ॥१६॥

सः असुराणां	वह असुरोंका	**वैहायसं नाम**	वैहायस नामक
चमूपतिः	सेनापति	**कामगं**	इच्छानुसार चलनेवाले
वैरोचनः	विरोचनका पुत्र	**यानं**	विमान ॥१६॥
बलिः	बलि		
मयनिर्मितं	मयके द्वारा बनाये		

सर्वसाङ्ग्रामिकोपेतं सर्वाश्चर्यमयं प्रभो ।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं दृश्यमानमदर्शनम् ॥१७॥

सर्व साङ्ग्रामिक उपेतं सर्व आश्चर्यमयं प्रभो अप्रतर्क्यं अनिर्देश्यं दृश्यमानं अदर्शनम् ॥१७॥

प्रभो	राजन् !	**अप्रतर्क्यं**	समझमें न आने-वाला,
सर्व	जो युद्धकी सब	**दृश्यमानं**	कभी दीखने कभी
साङ्ग्रामिक	सामग्रियोंसे	**अदर्शनं**	न दीखनेवाला
उपेतं	भरा था,	**अनिर्देश्यं**	निर्देश करने योग्य नहीं था ॥१७॥
सर्व आश्चर्यमयं	सर्वाश्चर्यमय था,		

आस्थितस्तद् विमानाग्र्यं सर्वानीकाधिपैर्वृतः ।
वालव्यजनछत्राग्र्यै रेजे चन्द्र इवोदये ॥१८॥

आस्थितः तत् विमान अग्र्यं सर्व अनीक अधिपैः वृतः वालव्यजन छत्र अग्र्यैः रेजे चन्द्र इव उदये ॥१८॥

तत् विमान	उस विमान	**वालव्यजन**	छोटे पंखों और
अग्र्यं	श्रेष्ठपर	**छत्र अग्र्यैः**	श्रेष्ठ छत्रसे
सर्व अनीक	समस्त सेना	**उदये**	उदय कालीन
अधिपैः	नायकोंसे	**चन्द्र इव**	चन्द्रमाके समान
वृतः आस्थितः	घिरे बैठे हुए (बलि)	**रेजे**	शोभित हुए ॥१८॥

तस्यासन्सर्वतो यानैर्यूथानां पतयोऽसुराः ।
नमुचिः शम्बरो बाणो विप्रचित्तिरयोमुखः ॥१९॥

तस्य आसन् सर्वतः यानैः यूथानां पतयः असुराः नमुचिः शम्बरः बाणः विप्रचित्तिः अयोमुखः ॥१९॥

तस्य सर्वतः	उनके चारों ओर	**नमुचिः शम्बरः**	नमुचि, शम्बर,
यूथानां पतयः	सेनाओंके नायक	**बाणः**	बाण,
असुराः यानैः	असुर विमानोंपर बैठे	**विप्रचित्तिः**	विप्रचित्ति,
आसन्	थे	**अयोमुखः**	अयोमुख ॥१९॥

द्विमूर्धा कालनाभोऽथ प्रहेतिर्हेतिरिल्वलः ।
शकुनिर्भूतसंतापो वज्रदंष्ट्रो विरोचनः ॥२०॥
हयग्रीवः शङ्कुशिराः कपिलो मेघदुन्दुभिः ।
तारकश्चक्रदृक् शुम्भो निशुम्भो जम्भ उत्कलः ॥२१॥

द्विमूर्धा, कालनाभः, अथ प्रहेतिः, हेतिः, इल्वलः, शकुनिः, भूतसंतापः, वज्रदंष्ट्रः, विरोचनः, हयग्रीवः, शङ्कुशिराः, कपिलः, मेघदुन्दुभिः, तारकः, चक्रदृक्, शुम्भः, निशुम्भः, जम्भ, उत्कलः ॥२०-२१॥*

---

*ये केवल नाम हैं ।

अरिष्टोऽरिष्टनेमिश्च मयश्च त्रिपुराधिपः ।
अन्ये पौलोमकालेया निवातकवचादयः ॥२२॥

अरिष्टः अरिष्टनेमिः च मयः च त्रिपुर अधिपः अन्ये पौलोम कालेया निवात कवच आदयः ॥२२॥

अरिष्टः च	अरिष्ट और	**अन्ये पौलोम**	दूसरे पौलोम,
अरिष्टनेमिः	अरिष्टनेमि,	**कालेया**	कालेय,
च त्रिपुर	तथा त्रिपुरोंका	**निवातकवच**	निवातकवच
अधिपः	स्वामी	**आदयः**	आदि ॥२२॥
मयः	मय,		

अलब्धभागाः सोमस्य केवलं क्लेशभागिनः ।
सर्व एते रणमुखे बहुशो निर्जितामराः ॥२३॥

अलब्ध भागाः सोमस्य केवलं क्लेश भागिनः सर्व एते रणमुखे बहुशः निर्जिता अमराः ॥२३॥

सोमस्य	अमृतमें	**रणमुखे**	युद्धमें
अलब्धभागाः	भाग न पाकर	**बहुशः**	बहुत बार
केवलं	केवल	**अमराः**	देवताओंको
क्लेश भागिनः	कष्ट भागी हुए थे,	**निर्जिता**	जीत चुके थे ॥२३॥
एते सर्व	ये सभी		

सिंहनादान्विमुञ्चन्तः शङ्खान्दध्मुर्महारवान् ।
दृष्ट्वा सपत्नानुत्सिक्तान्बलभित् कुपितो भृशम् ॥२४॥

सिंहनादा विमुञ्चन्तः शङ्खान् दध्मुः महारवान् दृष्ट्वा सपत्नान् उत्सिक्तान् बलभित् कुपितः भृशम् ॥२४॥

सिंहनादां	सिंहनाद	**शङ्खान्**	शंख
विमुञ्चन्तः	करते हुए	**दध्मुः**	बजाने लगे,
महारवान्	उच्च ध्वनिवाले	**सपत्नान्**	(तब) शत्रुओंको

उत्सिक्तान्	गर्वमें आया	**भृशं कुपितः**	बहुत क्रुद्ध हुए ॥२४॥
दृष्ट्वा	देखकर		
बलभित्	बल नामक दानव-को मारनेवाले इन्द्र		

ऐरावतं दिक्करिणमारूढः शुशुभे स्वराट् ।
यथा स्रवत्प्रस्रवणमुदयाद्रिमहर्पतिः ॥२५॥

ऐरावतं दिक्करिणं आरूढः शुशुभे स्वराट् यथा स्रवत् प्रस्रवणं उदय अद्रिं अहर्पतिः ॥२५॥

प्रस्रवणं	मद बहाते	**यथा स्रवत्**	जैसे झरने-झरते
ऐरावतं	ऐरावत नामक	**उदय अद्रिं**	उदयाचलपर
दिक्करिणं	दिग्गजपर	**अहर्पतिः**	दिवानाथ सूर्य हों ॥२५॥
आरूढः स्वराट्	चढ़कर इन्द्र		
शुशुभे	(ऐसे) शोभित हुए		

तस्यासन्सर्वतो देवा नानावाहध्वजायुधाः ।
लोकपालाः सह गणैर्वाय्वग्निवरुणादयः ॥२६॥

तस्य आसन् सर्वतः देवा नाना वाह ध्वज आयुधाः लोकपालाः सह गणैः वायु अग्नि वरुण आदयः ॥२६॥

तस्य सर्वतः	उनके चारों ओर	**वरुण आदयः**	वरुण आदि
नाना वाह	अनेक प्रकारके वाहन	**लोकपालाः**	लोकपाल
ध्वज आयुधाः	ध्वजा तथा आयुध-वाले	**सह गणैः**	अपने गणोंके साथ
		आसन्	थे ॥२६॥
वायु अग्नि	वायु, अग्नि,		

तेऽन्योन्यमभिसंसृत्य क्षिपन्तो मर्मभिर्मिथः ।
आह्वयन्तो विशन्तोऽग्रे युयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः ॥२७॥

ते अन्य अन्यं अभिसंसृत्य क्षिपन्तः मर्मभिः मिथः आह्वयन्तः विशन्तः अग्रे युयुधुः द्वन्द्वयोधिनः ॥२७॥

ते अन्य	वे (देव-दानव) एक	अग्रे विशन्तः	आगे बढ़ते हुए
अन्यं	दूसरेके	द्वन्द्वयोधिनः	दो-दो मिलकर लड़ते हुए
अभिसंसृत्य	सामने पहुँचकर		
मिथः मर्मभिः	परस्पर मर्मवेधी	युयुधुः	युद्ध करने लगे ॥२७॥
क्षिपन्तः	आक्षेप करते हुए		
आह्वयन्तः	ललकारते हुए		

युयोध बलिरिन्द्रेण तारकेण गुहोऽस्यत ।
वरुणो हेतिनायुध्यन्मित्रो राजन्प्रहेतिना ॥२८॥

युयोध बलिः इन्द्रेण तारकेण गुहः अस्यतः वरुणः हेतिना युध्यत् मित्रः राजन् प्रहेतिना ॥२८॥

राजन्	राजन् !	वरुणः	वरुणने
बलिः इन्द्रेण	बलिने इन्द्रसे	हेतिना	हेतिसे
युयोध	युद्ध किया,	मित्रः	मित्र देवता
अस्यतः	प्रहार करते	प्रहेतिना	प्रहेतिसे
तारकेण	तारकासुरसे	युध्यत्	युद्ध करने लगे ॥२८॥
गुहः	कुमार कार्तिक,		

यमस्तु कालनाभेन विश्वकर्मा मयेन वै ।
शम्बरो युयुधे त्वष्ट्रा सवित्रा तु विरोचनः ॥२९॥

यमः तु कालनाभेन विश्वकर्मा मयेन वै शम्बरः युयुधे त्वष्ट्रा सवित्रा तु विरोचनः ॥२९॥

यमः तु	यमराजने तो	तु सवित्रा	तथा सविता
कालनाभेन	कालनाभसे,	विरोचनः	विरोचनसे
वै विश्वकर्मा	निश्चय विश्वकर्मा	युयुधे	युद्ध करने लगे ॥२९॥
मयेन	मयसे		
त्वष्ट्रा शम्बरः	त्वष्ट्राने शम्बरसे		

अपराजितेन नमुचिरश्विनौ वृषपर्वणा ।
सूर्यो बलिसुतैर्देवो बाणज्येष्ठैः शतेन च ॥३०॥

अपराजितेन नमुचिः अश्विनौ वृषपर्वणा सूर्यः बलि सुतैः देवः वाण ज्येष्ठैः शतेन च ॥३०॥

अपराजितेन	अपराजितके साथ	**बाण ज्येष्ठैः**	बाणासुर बड़ा था उन
नमुचिः	नमुचि		
अश्विनौ	अश्विनीकुमार	**बलि**	उन बलिके
वृषपर्वणा	वृषपर्वाके साथ,	**शतेन सुतैः**	सौ पुत्रोंसे
च	तथा जिनमें	**सूर्यः देवः**	सूर्य देवता ॥३०॥

राहुणा च तथा सोमः पुलोम्ना युयुधेऽनिलः ।
निशुम्भशुम्भयोर्देवी भद्रकाली तरस्विनी ॥३१॥

राहुणा च तथा सोमः पुलोम्ना युयुधे अनिलः निशुम्भ शुम्भयोः देवी भद्रकाली तरस्विनी ॥३१॥

तथा राहुणा	ऐसे ही राहुसे	**शुम्भयोः**	शुम्भसे
सोमः च	चन्द्रमाने और	**तरस्विनी देवी**	वेगवती देवी
पुलोम्ना	पुलोमासे	**भद्रकाली**	भद्रकाली
अनिलः	वायुने,	**युयुधे**	युद्ध करने लगीं ॥२१॥
निशुम्भ-	निशुम्भ-		

वृषाकपिस्तु जम्भेन महिषेण विभावसुः ।
इल्वलः सह वातापिर्ब्रह्मपुत्रैररिन्दम ॥३२॥

वृषाकपिः तु जम्भेन महिषेण विभावसुः इल्वलः सह वातापिः ब्रह्मपुत्रैः अरिन्दम ॥३२॥

अरिन्दम	शत्रु नाशक परीक्षित् !	**वृषाकपिः**	महादेवजी,
		महिषेण	महिषसे
जम्भेन तु	जम्भसे तो	**विभावसु**	अग्निदेव,

इल्वलः	इल्वल और	ब्रह्मपुत्रैः	ब्रह्माजीके पुत्रोंके
वातापिः	वातापि	सह	साथ ॥३२॥

कामदेवेन दुर्मर्ष उत्कलो मातृभिः सह ।
बृहस्पतिश्चोशनसा नरकेण शनैश्चरः ॥३३॥

कामदेवेन दुर्मर्ष उत्कलः मातृभिः सह बृहस्पतिः च उशनसा नरकेण शनैश्चरः ॥३३॥

कामदेवेन	कामदेवके साथ	उशनसा	शुक्राचार्यके साथ
दुर्मर्ष	दुर्मर्ष,	च	तथा
मातृभिः सह	मातृगणके साथ	नरकेण	नरकासुरके साथ
उत्कलः	उत्कल,	शनैश्चरः	शनैश्चर ॥३३॥
बृहस्पतिः	बृहस्पति		

मरुतो निवातकवचैः कालेयैर्वसवोऽमराः ।
विश्वेदेवास्तु पौलोमैः रुद्राः क्रोधवशैः सह ॥३४॥

मरुतः निवातकवचैः कालेयैः वसवः अमराः विश्वेदेवाः तु पौलोमैः रुद्राः क्रोधवशैः सह ॥३४॥

निवातकवचैः	निवातकवचोंसे	पौलोमैः तु	पौलोमोंसे तो
मरुतः	मरुद्गण,	विश्वेदेवाः	विश्वेदेवा,
कालेयैः	कालेयोंसे	क्रोधवशैः सह	क्रोधवशोंके साथ
वसवः अमराः	अमर वसुगण,	रुद्राः	रुद्रगण ॥३४॥

त एवमाजावसुराः सुरेन्द्रा
द्वन्द्वेन संहत्य च युध्यमानाः ।
अन्योन्यमासाद्य निजघ्नुरोजसा
जिगीषवस्तीक्ष्णशरासितोमरैः ॥३५॥

त एवं आजाः असुराः सुरेन्द्रा द्वन्द्वेन संहत्य च युध्यमानाः अन्यः अन्यं आसाद्य निजघ्नुः ओजसा जिगीषवः तीक्ष्ण शर असि तोमरैः ॥३५॥

आजाः	युद्ध भूमिमें
त असुराः	वे असुर (और)
सुरेन्द्रा	देवनायक
एवं द्वन्द्वेन	इस प्रकार दो-दो
संहत्य	भिड़कर
अन्यः अन्यं	एक दूसरेके
आसाद्य	सम्मुख पहुँचकर
युध्यमानाः	युद्ध करते हुए
च जिगीषवः	तथा जीतनेकी इच्छासे
तीक्ष्ण शर	तीक्ष्ण बाण,
असि तोमरैः	तलवार, भालोंसे
ओजसा	आवेशसे
निजघ्नुः	प्रहार करने लगे ॥३५॥

भुशुण्डिभिश्चक्रगदर्ष्टिपट्टिशैः
शक्त्युल्मुकैः प्रासपरश्वधैरपि ।
निस्त्रिंशभल्लैः परिघैः समुद्गरैः
सभिन्दिपालैश्च शिरांसि चिच्छिदुः ॥३६॥

भुशुण्डिभिः चक्र गद अर्ष्टि पट्टिशैः शक्ति उल्मुकैः प्रास परश्वधैः अपि निस्त्रिंश भल्लैः परिघैः समुद्गरैः सभिन्दिपालैः च शिरांसि चिच्छिदुः ॥३६॥

भुशुण्डिभिः	भुशुण्ड (बन्दूक) से,
चक्र गद	चक्र, गदा,
अर्ष्टि पट्टिशैः	ऋष्टि, पट्टिश,
शक्ति उल्मुकैः	शक्ति, जलती लकड़ी,
प्रास परश्वधैः	प्रास, परश्वध,
अपि	से भी,
निस्त्रिंश भल्लैः	निस्त्रिंश, भाला,
समुद्गरैः	मुद्गरों युक्त
च	तथा
सभिन्दिपालैः	भिन्दिपाल युक्त
परिघैः	डंडोंसे
शिरांसि	सिरोंको
चिच्छिदुः	काटने लगे ॥३६॥

गजास्तुरङ्गाः सरथाः पदातयः
सारोहवाहा विविधा विखण्डिताः ।
निकृत्तबाहूरुशिरोधराङ्घ्रय-
श्छिन्नध्वजेष्वासतनुत्रभूषणाः ॥३७॥

गजाः तुरङ्गाः सरथाः पदातयः स आरोहवाहा विविधा विखण्डिताः निकृत्त बाहु उरु शिरः अधर अङ्घ्रयः छिन्न ध्वज इष्वास तनुत्र भूषणाः ॥३७॥

गजाः तुरङ्गाः	हाथी, घोड़े,
सरथाः	रथके साथ
पदातयः	पैदल,
स आरोहवाहा	सवारके साथ वाहन,
विविधा	अनेक प्रकारसे
विखण्डिताः	कट गए,
बाहु उरु शिरः	भुजाएँ, जांघें, सिर,
अधर अङ्घ्रयः	नीचेके पैर,
निकृत्त	कट गये,
ध्वज,	ध्वजाएँ,
इष्वास	धनुष,
तनुत्र भूषणाः	कवच, आभूषण
छिन्न	टुकड़े हो गये। ३७॥

तेषां पदाघातरथाङ्गचूर्णिता-
दायोधनादुल्बण उत्थितस्तदा।
रेणुर्दिशः खं द्युमणिं च छादयन्
न्यवर्ततासृक्स्रुतिभिः परिप्लुतात् ॥३८॥

तेषां पद आघात रथाङ्ग चूर्णितात् आयोधनात् उल्बण उत्थितः तदा रेणुः दिशः खं द्युमणिं च छादयन् न्यवर्तत असृक् स्रुतिभिः परिप्लुतात् ॥३८॥

तेषां पद	उनके पैरोंके
आघात	पटकने और
रथाङ्ग	रथ चक्रोंसे
चूर्णितात्	चूर्ण बनी
तदा	उस समय
आयोधनात्	युद्धभूमिसे
दिशः खं	दिशाओं, आकाश,
च द्युमणिं	तथा सूर्यको
छादयन्	ढकती हुई
उल्बण रेणुः	प्रचण्ड धूलि
उत्थितः	उठी
असृक्	(किन्तु) रक्तकी
स्रुतिभिः	धाराओंसे
परिप्लुतात्	भींग जानेके कारण
न्यवर्तत	लौट आयी (बैठ गयी) ॥३८॥

शिरोभिरुद्धूतकिरीटकुण्डलैः
संरम्भदृग्भिः परिदष्टदच्छदैः।

महाभुजैः साभरणैः सहायुधैः
सा प्रास्तृता भूः करभोरुभिर्बभौ ॥३९॥

शिरोभिः उद्धूत किरीट कुण्डलैः संरम्भदृक्भिः परिदष्ट दत् छदैः महाभुजैः साभरणैः सह आयुधैः सा प्रास्तृता भूः करभ उरुभिः बभौ ॥३९॥

उद्धूत किरीट	गिरे हुए मुकुट	**सह आयुधैः**	हथियार लिए
कुण्डलैः	कुण्डलोंवाले,	**महाभुजैः**	विशाल भुजाओं एवं
संरम्भदृक्भिः	क्रोध भरे नेत्र और	**करभ उरुभिः**	हाथीकी सूँड़के
परिदष्ट दत्	दांतों ओठ		समान
छदैः	दबाये	**प्रास्तृता भूः**	बिछी हुई वह भूमि
शिरोभिः	मस्तकोंसे तथा	**बभौ**	भर गयी ॥३९॥
साभरणैः	आभूषण युक्त		

कबन्धास्तत्र चोत्पेतुः पतितस्वशिरोऽक्षिभिः ।
उद्यतायुधदोर्दण्डैराधावन्तो भटान् मृधे ॥४०॥

कबन्धाः तत्र च उत्पेतुः पतितः स्वशिरः अक्षिभिः उद्यत आयुध दोर्दण्डैः आधावन्तः भटान् मृधे ॥४०॥

तत्र मृधे	उस युद्धभूमिमें	**दोर्दण्डैः**	भुजाओंमें
पतितः	गिरे हुए	**उद्यत आयुध**	हथियार उठाये
कबन्धाः	धड़	**भटान्**	दूसरे योधाओंकी
स्वशिरः	अपने सिरके		ओर
अक्षिभिः	नेत्रोंसे (देखकर)	**आधावन्तः**	दौड़ने लगे ॥४०॥

बलिर्महेन्द्रं दशभिस्त्रिभिरैरावतं शरैः ।
चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकेनारोहमार्च्छयत् ॥४१॥

बलिः महेन्द्रं दशभिः त्रिभिः ऐरावतं शरैः चतुर्भिः चतुरः वाहान् एकेन आरोहं अर्च्छयत् ॥४१॥

बलिः महेन्द्रं	बलिने इन्द्रको
दशभिः	दस
त्रिभिः ऐरावतं	तीनसे ऐरावतको,
चतुर्भिः वाहान्	चारसे ऐरावतके
चतुरः	चारों चरण-रक्षकों-को
एकेन शरैः	एक वाणसे एक
आरोहं	महावतको
आर्च्छयत्	मारनेके लिए (अठारह वाण) छोड़े ॥४१॥

स तानापततः शक्रस्तावद्भिः शीघ्रविक्रमः ।
चिच्छेद निशितैर्भल्लैरसम्प्राप्तान्हसन्निव ॥४२॥

स तान् आपततः शक्रः तावद्भिः शीघ्रविक्रमः चिच्छेद निशितैः भल्लैः असम्प्राप्तान् हसन् इव ॥४२॥

शीघ्रविक्रमः	शीघ्र पराक्रमी
स शक्रः	उन इन्द्रने
तान्	उन (वाणों) को
आपततः	आते समय
असम्प्राप्तान्	पहुँचनेके पहिले ही
तावद्भिः	उतने ही
निशितैः	तीक्ष्ण
भल्लैः	भल्ल नामक वाणोंसे
हसन् इव	हँसते हुएसे
चिच्छेद	काट दिया ॥४२॥

तस्य कर्मोत्तमं वीक्ष्य दुर्मर्षः शक्तिमाददे ।
तां ज्वलन्तीं महोल्काभां हस्तस्थामच्छिनद्धरिः ॥४३॥

तस्य कर्म उत्तमं वीक्ष्य दुर्मर्षः शक्तिं आददे तां ज्वलन्तीं महा उल्का आभां हस्तस्थां अच्छिनत् हरिः ॥४३॥

तस्य उत्तमं	उनका वह श्रेष्ठ
कर्म	पराक्रम
वीक्ष्य	देखकर
दुर्मर्षः	असहन शीलतासे
शक्तिं	(बलिने) शक्ति
आददे	उठायी
तां महा उल्का	उस बड़े उल्काके
आभां	समान
ज्वलन्तीं	प्रज्वलितको
हस्तस्थां	हाथमें रहते ही
हरिः अच्छिनत्	इन्द्रने काट दिया ॥४३॥

ततः शूलं ततः प्रासं ततस्तोमरमृष्टयः ।
यद् यच्छस्त्रं समादद्यात्सर्वं तदच्छिनद् विभुः ॥४४॥

ततः शूलं ततः प्रासं ततः तोमरं ऋष्टयः यत् यत् शस्त्रं सम आदद्यात् सर्वं तत् अच्छिनत् विभुः ॥४४॥

ततः शूलं	फिर भाला,	**सम आदद्यात्**	(बलि) उठाते गये,
ततः प्रासं	फिर प्रास,	**तत् सर्वं**	उन सबको
ततः तोमरं	फिर तोमर एवं	**विभुः**	समर्थ इन्द्रने
ऋष्टयः	ऋष्टियों	**अच्छिनत्**	काट दिया ॥४४॥
यत् यत् शस्त्रं	जो जो शस्त्र		

ससर्जाथासुरीं मायामन्तर्धानगतोऽसुरः ।
ततः प्रादुरभूच्छैलः सुरानीकोपरि प्रभो ॥४५॥

ससर्ज अथ आसुरीं मायां अन्तर्धान गतः असुरः ततः प्रादुः अभूत् शैलः सुर अनीक उपरि प्रभो ॥४५॥

प्रभो	राजन् !	**ससर्ज**	उत्पन्न की (जिससे)
अथ असुरः	इसके बाद असुरराज बलिने	**सुर अनीक**	देव-सेनाके
		उपरि	ऊपर
अन्तर्धान गतः	अदृश्य होकर	**शैलः प्रादुः**	(एक) पर्वत
आसुरीं मायां	आसुरी माया	**अभूत्**	प्रकट हुआ ॥४५॥

ततो निपेतुस्तरवो दह्यमाना दवाग्निना ।
शिलाः सटङ्कशिखराश्चूर्णयन्त्यो द्विषद्बलम् ॥४६॥

ततः निपेतुः तरवः दह्यमाना दवाग्निना शिलाः सटङ्क शिखराः चूर्णयन्त्यः द्विषत् बलम् ॥४६॥

ततः दवाग्निना	उससे दावाग्निसे	**सटङ्क**	तीखी धारवाली
दह्यमाना	जलते हुए	**शिलाः**	शिलाएँ
तरवः	वृक्ष तथा	**शिखराः**	एवं शिखर

द्विषत्	शत्रु (देवताओं) की	चूर्णयन्त्यः	कुचलते हुए
बलं	सेनाको	निपेतुः	गिरने लगे ॥४६॥

महोरगाः समुत्पेतुर्दन्दशूकाः सवृश्चिकाः ।
सिंहव्याघ्रवराहाश्च मर्दयन्तो महागजान् ॥४७॥

महा उरगाः सम उत्पेतुः दन्दशूकाः सवृश्चिकाः सिंह व्याघ्र वराहाः च मर्दयन्तः महागजान् ॥४७॥

महा उरगाः	बड़े-बड़े सर्प,	च वराहाः	तथा सुअर
सवृश्चिकाः	बिच्छुओंके साथ	महागजान्	बड़े-बड़े गजराजोंको
दन्दशूकाः	अन्य डँसनेवाले जीव,	मर्दयन्तः	मारते हुए
		सम उत्पेतुः	चारों ओर उत्पन्न
सिंह व्याघ्र	सिंह, बाघ,		हो गये ॥४७॥

यातुधान्यश्च शतशः शूलहस्ता विवाससः ।
छिन्धि भिन्धीति वादिन्यस्तथा रक्षोगणाः प्रभो ॥४८॥

यातुधान्यः च शतशः शूलहस्ताः विवाससः छिन्धि भिन्धि इति वादिन्यः तथा रक्षः गणाः प्रभो ॥४८॥

प्रभो	राजन् !	शतशः	सैकड़ों
शूलहस्ताः	त्रिशूल हाथमें लिये	यातुधान्यः	राक्षसियां
विवाससः	नग्ना	तथा	तथा
छिन्धि भिन्धि	'छेदो-काटो'	रक्षः गणाः	राक्षस गण उत्पन्न
इति	इस प्रकार		हो गये ॥४८॥
वादिन्यः	बोलनेवाली		

ततो महाघना व्योम्नि गम्भीरपरुषस्वनाः ।
अङ्गारान्मुमुचुर्वातैराहताः स्तनयित्नवः ॥४९॥

ततः महाघना व्योम्नि गम्भीर परुष स्वनाः अङ्गारान् मुमुचुः वातैः आहताः स्तनयित्नवः ॥४९॥

ततः गम्भीर	फिर गम्भीर	**स्तनयित्नवः**	विजलियोंके साथ
परुष स्वनाः	कठोर शब्द करने-वाले	**वातैः आहताः**	वायुसे आहत
		अङ्गारान्	अंगारोंकी
महाघनाः	महामेघ	**मुमुचुः**	वर्षा करने लगे ॥४९॥

सृष्टो दैत्येन सुमहान्वह्निः श्वसनसारथिः ।
सांवर्तक इवात्युग्रो विबुधध्वजिनीमधाक् ॥५०॥

सृष्टः दैत्येन सुमहान् वह्निः श्वसन सारथिः सांवर्तक इव अति उग्रः विबुध ध्वजिनीं अधाक् ॥५०॥

दैत्येन	दैत्यराजके द्वारा	**अति उग्रः**	अत्यन्त प्रचण्ड
सृष्टः	उत्पन्न	**वह्निः**	अग्नि
श्वसन	वायुरूपी	**विबुध**	देवताओंकी
सारथिः	सारथि युक्त	**ध्वजिनीं**	सेनाको
सांवर्तक	प्रलयकालीन अग्निके	**अधाक्**	भस्म करने लगा
इव	समान		॥५०॥

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्रत्यदृश्यत ।
प्रचण्डवातैरुद्धूततरङ्गावर्तभीषणः ॥५१॥

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्रत्यदृश्यत प्रचण्डवातैः उद्धूत तरङ्ग आवर्त भीषणः ॥५१॥

ततः	तब	**समुद्र**	समुद्र
प्रचण्डवातैः	प्रबल प्रभञ्जनके	**उद्वेलः**	किनारा छोड़कर
उद्धूत	थपेड़ोंसे उठी	**सर्वतः**	सब ओर
तरंग	तरंगों तथा	**प्रत्यदृश्यत**	दीखने लगा ॥५१॥
आवर्त	भँवरोंके कारण		
भीषणः	भयंकर		

एवं दैत्यैर्महामायैरलक्ष्यगतिभीषणैः ।
सृज्यमानासु मायासु विषेदुः सुरसैनिकाः ॥५२॥

एवं दैत्यैः महामायैः अलक्ष्यगति भीषणैः सृज्यमानासु मायासु विषेदुः सुरसैनिकाः ॥५२॥

एवं	इस प्रकार	**सृज्यमानासु**	उत्पन्न की जाती
महामायैः	महामायावी	**मायासु**	मायाओंसे
अलक्ष्यगति	अदृश्य गतिवाले	**सुरसैनिकाः**	देव-सैनिकगण
भीषणैः दैत्यैः	भयानक दैत्य द्वारा	**विषेदुः**	दुःखी हो गये ॥५२॥

न तत्प्रतिविधिं यत्र विदुरिन्द्रादयो नृप ।
ध्यातः प्रादुरभूत् तत्र भगवान्विश्वभावनः ॥५३॥

न तत् प्रतिविधिं यत्र विदुः इन्द्र आदयः नृप ध्यातः प्रादुः अभूत् तत्र भगवान् विश्वभावनः ॥५३॥

नृप	राजन् !	**तत्**	तब (उनके)
यत्र इन्द्र	जब इन्द्र	**ध्यातः**	ध्यान करनेपर
आदयः	आदि	**तत्र**	वहां
तत्	उसके	**विश्वभावनः**	विश्वरक्षक
प्रतिविधिं	प्रतिकारका उपाय	**भगवान्**	भगवान्
न विदुः	नहीं जान सके	**प्रादुः अभूत्**	प्रकट हो गये ॥५३॥

ततः सुपर्णांसकृताङ्घ्रिपल्लवः
पिशङ्गवासा नवकञ्जलोचनः ।
अदृश्यताष्टायुधबाहुरुल्लस-
च्छ्रीकौस्तुभानर्घ्यकिरीटकुण्डलः ॥५४॥

ततः सुपर्ण अंस कृत अङ्घ्रि पल्लवः पिशङ्गवासा नवकञ्ज लोचनः अदृश्यत अष्ट आयुध बाहुः उल्लसत् श्रीकौस्तुभ अनर्घ्य किरीट कुण्डलः ॥५४॥

ततः	तब	**अङ्घ्रि-**	चरण-
सुपर्ण अंस	गरुड़के कन्धेपर	**पल्लवः कृत**	पल्लव रखे

पिशङ्गवासा	पीताम्बरधारी,
नवकञ्ज-	नवीन पद्म-
लोचनः	लोचन,
अष्ट आयुध	आठ आयुधोंसे
उल्लसत्	शोभित
बाहुः	भुजाओंवाले,
श्री	श्रीवत्स,
कौस्तुभ	कौस्तुभ-मणि,
अनर्घ्य किरीट	महामूल्य मुकुट
कुण्डलः	कुण्डलधारी
अदृश्यत	(श्रीहरि) दिखायी पड़े ॥५४॥

तस्मिन्प्रविष्टेऽसुरकूटकर्मजा
माया विनेशुर्महिना महीयसः ।
स्वप्नो यथा हि प्रतिबोध आगते
✓ हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम् ॥५५॥

तस्मिन् प्रविष्टे असुर कूटकर्मजा माया विनेशुः महिना महीयसः स्वप्नः यथा हि प्रतिबोध आगते हरिस्मृतिः सर्वविपत् विमोक्षणम् ॥५५॥

तस्मिन्	उन
महीयसः	महिमामयके
प्रविष्टे	प्रवेश करते ही
असुर	असुरके
कूटकर्मजा	छलपूर्व कर्मोंसे उत्पन्न
माया	माया (भगवान्‌की)
महिना	महिमासे
विनेशुः	नष्ट हो गयी
हि यथा	क्योंकि जैसे
प्रतिबोध आगते	जागरण आनेपर
स्वप्नः	स्वप्न (लुप्त हो जाता है, वैसे ही)
हरिस्मृतिः	भगवान्‌का स्मरण
सर्वविपत्	सब विपत्तियोंसे
विमोक्षणं	मुक्त कर देनेवाला है ॥५५॥

दृष्ट्वा मृधे गरुडवाहमिभारिवाह
आविध्य शूलमहिनोदथ कालनेमिः ।

तल्लीलया गरुडमूर्ध्नि पतद् गृहीत्वा
तेनाहनन्नृप सवाहमरिं व्यधीशः ॥५६॥

दृष्ट्वा मृधे गरुडवाहं इभ अरिवाह आविध्य शूलं अहिनोत् अथ कालनेमिः तत् लीलया गरुड मूर्ध्नि पतत् गृहीत्वा तेन अहनन् नृप सवाहं अरिं व्यधीशः ॥५६॥

नृप	राजन् !	**अहिनोत्**	प्रहार किया,
इभ अरिवाह	सिंहवाहन	**तत् गरुड़**	उसे गरुड़के
कालनेमिः	कालनेमिने	**मूर्ध्नि**	सिरपर
अथ मृधे	उस समय युद्धस्थल-में	**पतत् लीलया**	गिरते हुए खेलपूर्वक
		गृहीत्वा	पकड़कर
गरुडवाहं	गरुड़वाहन	**तेन सवाहं**	उसीसे वाहनके साथ
दृष्टवा	(भगवान्) को देख-कर	**अरिं व्यधीशः**	शत्रुको त्रिलोकी-नाथने
शूलं	त्रिशूल	**अहनन्**	मार दिया ॥५६॥
आविध्य	फेंककर		

माली सुमाल्यतिबलौ युधि पेततुर्य-
च्चक्रेण कृत्तशिरसावथ माल्यवांस्तम् ।
आहत्य तिग्मगदयाहनदण्डजेन्द्रं
तावच्छिरोऽच्छिनदरेर्नदतोऽरिणाऽऽद्यः ॥५७॥

माली सुमालि अति बलौ युधि पेततुः यत् चक्रेण कृत्तशिरसाः अथ माल्यवान् तं आहत्य तिग्म गदया अहनत् अण्डज इन्द्रं तावत् शिरः अच्छिनत् अरेः नदतः अरिणा आद्यः ॥५७॥

अति बलौ	अत्यन्त बलवान	**कृत्तशिरसाः**	उनके सिर काट दिये गये
माली सुमालि	माली और सुमाली		
यत् चक्रेण	क्योंकि चक्रसे	**युधि पेततुः**	युद्धमें गिर पड़े

अथ	तब	**नदतः**	गर्जना करते
माल्यवान्	माल्यवान्ने	**अरिणा**	शत्रुका
तिग्म गदया	तीक्ष्ण गदासे	**शिरः तावत्**	मस्तक उसी समय
तं	उन (भगवान्) तथा	**आद्यः**	आदिपुरुषने
अण्डज इन्द्रं	पक्षिराजपर	**अच्छिनत्**	काट दिया। ५७॥
अहनत्	प्रहार करके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
देवासुरसंग्रामे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अथो सुराः प्रत्युपलब्धचेतसः
परस्य पुंसः परयानुकम्पया ।
जघ्नुर्भृशं शक्रसमीरणादय-
स्तांस्तान्रणे यैरभिसंहताः पुरा ॥ १ ॥

अथो सुराः प्रति उपलब्ध चेतसः परस्य पुंसः परया अनुकम्पया जघ्नुः भृशं शक्र समीरण आदयः तान् तान् रणे यैः अभिसंहताः पुरा ॥१॥

परस्य पुंसः	परम पुरुषकी	**शक्र समीरण**	इन्द्र वायु
परया	परम	**आदयः**	आदि
अनुकम्पया	कृपासे	**रणे यैः पुरा**	युद्धसे जिनसे पहिले
अथो सुराः	तब देवता	**अभिसंहताः**	भिड़े हुए थे
प्रति	जैसे फिर	**तान् तान्**	उन-उनपर
उपलब्ध	पा गये हों	**भृशं**	प्रबल प्रहार
चेतसः	चित्तको (ऐसे सावधान होकर)	**जघ्नुः**	करने लगे ॥१॥

वैरोचनाय संरब्धो भगवान्पाकशासनः ।
उदयच्छद् यदा वज्रं प्रजा हा हेति चुक्रुशुः ॥ २॥

वैरोचनाय संरब्धः भगवान् पाक शासनः उदयच्छत् यदा वज्रं प्रजा हा हा इति चुक्रुशुः ॥२॥

भगवान्	भगवान्	**यदा संरब्धः**	जब कुपित होकर
पाक शासनः	पाक दैत्य नाशक इन्द्रने	**वैरोचनाय**	विरोचन-नन्दन बलिपर

वज्रं	वज्र	**इति**	यह
उदयच्छत्	उठाया (तब)	**चुक्रुशः**	चिल्लाने लगी ॥२॥
प्रजा हा हा	प्रजा 'हाय-हाय'		

वज्रपाणिस्तमाहेदं तिरस्कृत्य पुरःस्थितम् ।
मनस्विनं सुसम्पन्नं विचरन्तं महामृधे ॥ ३ ॥

वज्रपाणिः तं आह इदं तिरस्कृत्य पुरः स्थितं मनस्विनं सुसम्पन्नं विचरन्तं महामृधे ॥३॥

वज्रपाणिः	वज्रहस्त इन्द्रने	**सुसम्पन्नं**	(अस्त्र-शस्त्रोंसे) सम्पन्न
महामृधे	उस महायुद्धमें		
विचरन्तं	विचरण करते हुए	**तं**	उस बलिका
पुरः स्थितं	अपने सामने खड़े	**तिरस्कृत्य**	तिरस्कार करते हुए
मनस्विनं	मनस्वी	**इदं आह**	यह कहा ॥३॥

इन्द्र उवाच-*

नटवन्मूढ मायाभिर्मायेशान् नो जिगीषसि ।
जित्वा बालान् निबद्धाक्षान् नटो हरति तद्धनम् ॥ ४ ॥

नटवत् मूढ मायाभिः माया ईशान् नः जिगीषसि जित्वा बालान् निबद्ध अक्षात् नटः हरति तत् धनम् ॥४॥

मूढ	मूर्ख ! (जैसे)	**नटवत्**	(वैसे ही) नटकी भांति
निबद्ध अक्षान्	आंखें बाँधे हुए		
बालान्	बालकोंको अपने	**मायाभिः**	मायाके द्वारा
जित्वा	वशमें करके	**नः**	हम
नटः तत्	नट उनके	**माया ईशान्**	मायापतियोंको
धनं हरति	धनको हर लेते हैं	**जिगीषसि**	जीतना चाहता है ॥४॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

आरुरुक्षन्ति मायाभिरुत्सिसृप्सन्ति ये दिवम् ।
तान्दस्यून्विधुनोम्यज्ञान्पूर्वस्माच्च पदादधः ॥ ५ ॥

आरुरुक्षन्ति मायाभिः उत्सिसृप्सन्ति ये दिवं तान् दस्यून् विधुनोमि अज्ञान् पूर्वस्मात् च पदात् अधः ॥५॥

ये मायाभिः	जो मायाके द्वारा	**तान् अज्ञान्**	उन मूर्ख
दिवं	स्वर्गपर	**दस्यून्**	डाकुओंको
आरुरुक्षन्ति	चढ़ना चाहते हैं या	**पूर्वस्मात्**	(उनके) पहिले
उत्सिसृप्सन्ति	उससे भी ऊपर (ब्रह्मलोक) उठना चाहते हैं	**पदात् च अधः**	स्थानसे भी नीचे
		विधुनोमि	फेंक देता हूँ ॥५॥

सोऽहं दुर्मायिनस्तेऽद्य वज्रेण शतपर्वणा ।
शिरो हरिष्ये मन्दात्मन्घटस्व ज्ञातिभिः सह ॥ ६ ॥

सः अहं दुर्मायिनः ते अद्य वज्रेण शतपर्वणा शिरः हरिष्ये मन्द आत्मन् घटस्व ज्ञातिभिः सह ॥६॥

मन्द आत्मन्	मन्द बुद्धिः	**हरिष्ये**	काट लूंगा,
ते दुर्मायिनः	तुझ दुष्ट माया करनेवालेका	**ज्ञातिभिः**	अपने जाति भाइयोंके
		सह	साथ
सः अहं	वह मैं	**घटस्व**	(तुझसे जो हो सके)
अद्य शतपर्वणा	आज सौ गांठोंवाले		कर ले ॥६॥
वज्रेण शिरः	वज्रसे मस्तक		

बलिरुवाच–

सङ्ग्रामे वर्तमानानां कालचोदितकर्मणाम् ।
कीर्तिर्जयोऽजयो मृत्युः सर्वेषां स्युरनुक्रमात् ॥ ७ ॥

संग्रामे वर्तमानानां कालचोदित कर्मणां कीर्तिः जयः अजयः मृत्युः सर्वेषां स्युः अनुक्रमात् ॥७॥

कालचोदित	कालसे प्रेरित
कर्मणां	कर्मवाले
संग्रामे	युद्धमें
वर्तमानानां	लगे हुए
सर्वेषां	सबकी ही
कीर्तिः जयः	कीर्ति, जय,
अजयः मृत्युः	पराजय, मृत्यु,
अनुक्रमात् स्युः	क्रमशः होती रहती है ॥७॥

तदिदं कालरशनं जनाः पश्यन्ति सूरयः ।
न हृष्यन्ति न शोचन्ति तत्र यूयमपण्डिताः ॥ ८ ॥

तत् इदं कालरशनं जनाः पश्यन्ति सूरयः न हृष्यन्ति न शोचन्ति तत्र यूयं अपण्डिताः ॥८॥

इदं	इस जगतको
कालरशनं	काल-नियन्त्रित
पश्यन्ति	देखते हैं,
तत् न	इसलिए न
हृष्यन्ति	हर्षित होते,
न शोचन्ति	न शोक करते,
तत्र यूयं	इस विषयमें तुम लोग
अपण्डिताः	अज्ञानी हो ॥८॥

न वयं मन्यमानानामात्मानं तत्र साधनम् ।
गिरो वः साधुशोच्यानां गृह्णीमो मर्मताडनाः ॥ ९ ॥

न वयं मन्यमानानां आत्मानं तत्र साधनं गिरः वः साधु शोच्यानां गृह्णीमः मर्मताडनाः ॥९॥

तत्र	उस (जय-पराजय) का
आत्मानं साधनं	अपनेको साधन
मन्यमानानां	माननेवाले
साधु	सत्पुरुषों द्वारा
शोच्यानां	शोचनीय
वः मर्मताडनाः	तुम्हारी मर्मवेधी
गिरः	बाणीको
वयं न गृह्णीमः	हम नहीं ग्रहण करते ॥९॥

श्रीशुक उवाच–

इत्याक्षिप्य विभुं वीरौ नाराचैर्वीरमर्दनः ।
आकर्णपूर्णैरहनदाक्षेपैराहतं पुनः ॥१०॥

इति आक्षिप्य विभुं वीरः नाराचैः वीर मर्दनः आकर्ण पूर्णैः अहनत् आक्षेपैः आहतं पुनः ॥१०॥

इति विभुं	इस प्रकार इन्द्रको	**पूर्णैः**	धनुष खींचकर
आक्षिप्य	तिरस्कृत करके	**आक्षेपैः**	आक्षेपोंसे
वीरः मर्दनः	वीरोंको रौंदनेवाले	**आहतं**	घायल (इन्द्र) को
वीरः	वीर बलिने	**पुनः नाराचैः**	फिर बाणोंसे
आकर्ण	कान तक	**अहतं**	मारा ॥१०॥

एवं निराकृतो देवो वैरिणा तथ्यवादिना ।
नामृष्यत् तदधिक्षेपं तोत्राहत इव द्विपः ॥११॥

एवं निराकृतः देवः वैरिणा तथ्य वादिना न अमृष्यत् तत् अधिक्षेपं तोत्र आहत इव द्विपः ॥११॥

एवं	इस प्रकार	**आहत**	मारे
तथ्य वादिना	तथ्य कहनेवाले		जानेपर
वैरिणा	शत्रु द्वारा	**द्विपः इव**	हाथीके समान
निराकृतः	तिरस्कृत होनेपर	**तत् अधिक्षेपं**	उस आक्षेपको
तोत्र	चाबुक (अंकुश) से	**अमृष्यत् न**	सहन नहीं कर सके ॥११॥

प्राहरत् कुलिशं तस्मा अमोघं परमर्दनः ।
सयानो न्यपतद् भूमौ छिन्नपक्ष इवाचलः ॥१२॥

प्राहरत् कुलिशं तस्मा अमोघं परमर्दनः सानः न्यपतत् भूमौ छिन्न पक्ष इव अचलः ॥१२॥

तस्मा	उन (बलिपर)	**अचलः**	पर्वतके
अमोघं	अमोघ	**इव**	समान (बलि)
परमर्दनः	शत्रुनाशक	**सयानः**	अपने विमानके साथ
कुलिशं	वज्रका	**भूमौ न्यपतत्**	पृथ्वीपर गिर पड़े ॥१२॥
प्राहरत्	प्रहार किया,		
छिन्न पक्ष	पंख कटे		

सखायं पतितं दृष्ट्वा जम्भो बलिसखः सुहृत् ।
अभ्ययात् सौहृदं सख्युर्हतस्यापि समाचरन् ॥१३॥

सखा अयं पतितं दृष्ट्वा जम्भः बलिसखः सुहृत् अभ्ययात् सौहृदं सख्युः हतस्य अपि समाचरन् ॥१३॥

बलिसखः	बलिका सखा और	**हतस्य अपि**	मारे जानेपर भी
सुहृत् जम्भः	सुहृद जम्भ	**सख्युः सौहृदं**	सखाकी मित्रता
अयं सखा	यह सखा	**समाचरन्**	निभाते हुए
पतितं दृष्ट्वा	गिर गया यह देख-कर	**अभ्ययात्**	सामने आया ॥१३॥

स सिंहवाह आसाद्य गदामुद्यम्य रंहसा ।
जत्रावताडयच्छक्रं गजं च सुमहाबलः ॥१४॥

स सिंहवाह असाद्य गदां उद्यम्य रंहसा जत्राः अताडयत् शक्रं गजं च सुमहाबलः ॥१४॥

स सिंहवाह	वह सिंहवाहन	**रंहसा शक्रं**	वेगपूर्वक इन्द्रके
सुमहाबलः	अत्यन्त बलवान	**जत्राः च**	जत्रुपर तथा
आसाद्य	समीप आकर	**गजं**	गज ऐरावतको
गदां उद्यम्य	गदा उठाकर	**अताडयत्**	मारा ॥१४॥

गदाप्रहारव्यथितो भृशं विह्वलितो गजः ।
जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ ॥१५॥

गदाप्रहार व्यथितः भृशं विह्वलितः गजः जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ ॥१५॥

गदाप्रहार	गदाके प्रहारसे	**जानुभ्यां**	घुटने
भृशं	बहुत	**स्पृष्ट्वा**	टेककर
विह्वलितः	व्यथित	**परमं कश्मलं**	परम व्याकुलताको
गजः	ऐरावत हाथी पृथ्वीपर	**ययौ**	प्राप्त हुआ ॥१५॥

ततो रथो मातलिना हरिभिर्दशशतैर्वृतः ।
आनीतो द्विपमुत्सृज्य रथमारुरुहे विभुः ॥१६॥

ततः रथः मातलिना हरिभिः दशशतैः वृतः आनीतः द्विपं उत्सृज्य रथं आरुरुहे विभुः ॥१६॥

ततः	तब (इन्द्रके सारथि)	**रथः आनीतः**	रथ लाया गया,
मातलिना	मातलि द्वारा	**द्विपं उत्सृज्य**	(तब) हाथी छोड़कर
दशशतैः	एक सहस्र	**विभुः रथं**	इन्द्र रथपर
हरिभिः	अश्वोंसे	**आरुरुहे**	चढ़ गये ॥६॥
वृतः	जुता हुआ		

तस्य तत् पूजयन् कर्म यन्तुर्दानवसत्तमः ।
शूलेन ज्वलता तं तु स्मयमानोऽहनन्मृधे ॥१७॥

तस्य तत् पूजयन् कर्म यन्तुः दानव सत्तमः शूलेन ज्वलता तं तु स्मयमानः अहनन् मृधे ॥१७॥

दानव सत्तमः	दानवश्रेष्ठ जम्भने	**शूलेन**	शूलसे
तस्य यन्तुः	उस सारथिके	**तं तु स्मयमानः**	उसे तो मुस्कराते हुए
तत् कर्म	उस कर्मकी		
पूजयन्	प्रशंसा करके	**अहनन्**	मारा ॥१७॥
मृधे ज्वलता	युद्धमें प्रज्वलित		

सेहे रुजं सुदुर्मर्षां सत्त्वमालम्ब्य मातलिः ।
इन्द्रो जम्भस्य संक्रुद्धो वज्रेणापाहरच्छिरः ॥१८॥

सेहे रुजं सुदुर्मर्षां सत्त्वं आलम्ब्य मातलिः इन्द्रः जम्भस्य संक्रुद्धः वज्रेण अपाहरत् शिरः ॥१८॥

मातलिः	मातलिने	**संक्रुद्धः**	(तब) अत्यन्त क्रुद्ध होकर
सत्त्वं आलम्ब्य	धैर्य धारण करके		
सुदुर्मर्षां	उस दुस्सह	**इन्द्रः वज्रेण**	इन्द्रने वज्रसे
रुजं सेहे	चोटको सह लिया,	**जम्भस्य शिरः**	जम्भका सिर
		अपाहरत्	काट दिया ॥१८॥

जम्भं श्रुत्वा हतं तस्य ज्ञातयो नारदादृषेः ।
नमुचिश्च बलः पाकस्तत्रापेतुस्त्वरान्विताः ॥१९॥

जम्भं श्रुत्वा हतं तस्य ज्ञातयः नारदात् ऋषेः नमुचिः च बलः पाकः तत्र अपेतुः त्वर अन्विताः ॥१९॥

नारदात् ऋषेः	देवर्षि नारदसे	**नमुचिः बलः च**	नमुचि, बल और
जम्भं हतं	जम्भको मारा गया	**पाकः तत्र**	पाक वहां
श्रुत्वा	सुनकर	**त्वर अन्विताः**	शीघ्रता पूर्वक
तस्य ज्ञातयः	उसकी जातिके	**अपेतुः**	आये ॥१९॥

वचोभिः परुषैरिन्द्रमर्दयन्तोऽस्य मर्मसु ।
शरैरवाकिरन् मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥२०॥

वचः भिः परुषैः इन्द्रं अर्दयन्तः अस्य मर्मसु शरैः अवाकिरन् मेघा धाराभिः इव पर्वतम् ॥२०॥

परुषैः वचःभिः	कठोर वचनोंसे	**धाराभिः**	धारासे वर्षाके
अस्य इन्द्रं	इस इन्द्रके	**इव**	समान
मर्मसु	मर्म (हृदय) को	**शरैः**	वाणोंकी झड़ी
अर्दयन्तः	पीड़ित करते हुए	**अवाकिरन्**	लगा दी ॥२०॥
मेघा पर्वतं	मेघोंकी पर्वतोंपर		

हरीन्दशशतान्याजौ हर्यश्वस्य बलः शरैः ।
तावद्भिरर्दयामास युगपल्लघुहस्तवान् ॥२१॥

हरीन् दशशतानि आजौ हर्यश्वस्य बलः शरैः तावद्भिः अर्दयामास युगपत् लघु हस्तवान् ॥२१॥

लघु हस्तवान्	हस्त लाघववाले	**हरीन्**	घोड़ोंको
बलः	बलने	**तावद्भिः शरैः**	उतने ही बाणोंसे
आजौ	युद्धमें	**युगपत्**	एक साथ
हर्यश्वस्य	इन्द्रके	**अर्दयामास**	घायल किया ॥२१॥
दशशतानि	एक हजार		

शताभ्यां मातलिः पाको रथं सावयवं पृथक् ।
सकृत्सन्धानमोक्षेण तदद्भुतमभूद् रणे ॥२२॥

शताभ्यां मातलिः पाकः रथं स अवयवं पृथक् सकृत् सन्धान मोक्षेण तत् अद्भुतं अभूत् रणे ॥२२॥

पाकः	पाकने	रथं पृथक्	रथको पृथक्-पृथक् बींधा,
शताभ्यां सकृत्	सौ बाण एक साथ		
सन्धान मोक्षेण	चढ़ाते-छोड़ते हुए	तत् रणे	यह युद्धमें
मातलिः स	मातलि तथा	अद्भुतं अभूत	अद्भुत बात हुई ॥२२॥
अवयवं	अंगोंके साथ		

नमुचिः पञ्चदशभिः स्वर्णपुङ्खैर्महेषुभिः ।
आहत्य व्यनदत्संख्ये सतोय इव तोयदः ॥२३॥

नमुचिः पञ्चदशभिः स्वर्ण पुङ्खैः महा इषुभिः आहत्य व्यनदत् संख्ये सतोय इव तोयदः ॥२३॥

पञ्चदशभिः	पन्द्रह	नमुचिः संख्ये	नमुचिने युद्धमें
स्वर्ण पुङ्खैः	सोनेके पूँछवाले	सतोय तोयदः	पानी भरे बादलके
महा इषुभिः	बड़े भारी बाणोंसे	इव	समान
आहत्य	आघात करके	व्यनदत्	गर्जना की ॥२३॥

सर्वतः शरकूटेन शक्रं सरथसारथिम् ।
छादयामासुरसुराः प्रावृट्सूर्यमिवाम्बुदाः ॥२४॥

सर्वतः शरकूटेन शक्रं सरथ सारथि छादयामासुः असुराः प्रावृट् सूर्यं इव अम्बुदाः ॥२४॥

प्रावृट्	वर्षा कालीन	सरथ सारथिं	रथ और सारथि सहित
अम्बुदाः	बादलों द्वारा	शक्रं सर्वतः	इन्द्रको चारों ओरसे
सूर्यं इव	सूर्यके समान	शरकूटेन	बाण समूहोंसे
असुराः	असुरोंने	छादयामासुः	ढक दिया ॥२४॥

अलक्षयन्तस्तमतीव विह्वला
विचुक्रुशुर्देवगणाः सहानुगाः ।
अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिता
वणिक्पथा भिन्नवो यथार्णवे ॥२५॥

अलक्षयन्तः तं अतीव विह्वला विचुक्रुशुः देवगणाः सह अनुगाः अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिताः वणिक् पथा भिन्न नवः यथा अर्णवे ॥२५॥

यथा अर्णवे	जैसे समुद्रमें	**देवगणाः**	देवता लोग
पथा	मार्गमें ही	**सह**	साथ
भिन्न नवः	नौका टूट जानेपर	**तं अलक्षयन्तः**	उन इन्द्रको न देखकर
वणिक्	व्यापारी (वैसे)	**अतीव**	अत्यन्त
शत्रुबलेन	शत्रु-सेना द्वारा	**विह्वला**	व्याकुल होकर
निर्जिताः	पराजित	**विचुक्रुशः**	क्रन्दन करने लगे ॥२५॥
अनायकाः	नायकहीन		
अनुगाः	अपने अनुचरोंके		

ततस्तुराषाडिषुबद्धपञ्जराद्
विनिर्गतः साश्वरथध्वजाग्रणीः ।
बभौ दिशः खं पृथिवीं च रोचयन्
स्वतेजसा सूर्य इव क्षपात्यये ॥२६॥

ततः तुषारात् इषु बद्ध पञ्जरात् विनिर्गतः साश्वरथ ध्वजा अग्रणीः बभौ दिशः खं पृथिवीं च रोचयन् स्व तेजसा सूर्य इव क्षपा अत्यये ॥२६॥

साश्वरथ	घोड़ों सहित रथ	**पञ्जरात्**	पिंजड़ेसे
ध्वजा	ध्वजा	**विनिर्गतः**	निकलकर
अग्रणीः	सारथिके साथ इन्द्र	**दिशः खं**	दिशाओं, आकाश,
ततः	उस	**च पृथिवीं**	तथा पृथ्वीको
इषु बद्ध	बाणोंसे बने	**रोचयन्**	प्रकाशित करते

स्व तेजसा	अपने तेजसे	**सूर्य इव**	सूर्यके समान
क्षपा अत्यये	रात्रिके अन्तमें	**बभौ**	शोभित हुए ॥३६॥
तुषारात्	कुहरेसे निकले		

निरीक्ष्य पृतनां देवः परैरभ्यर्दितां रणे ।
उदयच्छद् रिपुं हन्तुं वज्रं वज्रधरो रुषा ॥२७॥

निरीक्ष्य पृतनां देवः परैः अभ्यर्दितां रणे उदयच्छत् रिपुं हन्तुं वज्रं वज्रधरः रुषा ॥२७॥

वज्रधरः देवः	वज्रधारी इन्द्रदेवने	**निरीक्ष्य रुषा**	देखकर क्रोधपूर्वक
रणे पृतनां	युद्धमें अपनी सेनाको	**रिपुं हन्तुं**	शत्रुको मारनेके लिए
परैः	शत्रुओं द्वारा	**वज्रं**	वज्र
अभ्यर्दितां	चारों ओरसे रौंदी गयी	**उदयच्छत्**	उठाया ॥२७॥

स तेनैवाष्टधारेण शिरसी बलपाकयोः ।
ज्ञातीनां पश्यतां राजञ्जहार जनयन्भयम् ॥२८॥

स तेन एव अष्ट धारेण शिरसी बल पाकयोः ज्ञातीनां पश्यतां राजन् जहार जनयन् भयम् ॥२८॥

राजन्	राजन् !	**भयं जनयन्**	भय उत्पन्न करते हुए
स तेन एव	उन्होंने उसी	**बल पाकयोः**	बल और पाकके
अष्ट	आठ	**शिरसी**	सिरोंको
धारेण	धारोंवाले वज्रसे	**जहार**	काट दिया ॥२८॥
पश्यतां	देखनेवाले		
ज्ञातीनां	जाति-भाइयोंको		

नमुचिस्तद्वधं दृष्ट्वा शोकामर्षरुषान्वितः ।
जिघांसुरिन्द्रं नृपते चकार परमोद्यमम् ॥२९॥

नमुचिः तत् वधं दृष्ट्वा शोक अमर्ष रुषा अन्वितः जिघांसुः इन्द्रं नृपते चकार परम उद्यमम् ॥२९॥

नृपते	राजन् !	**रुषा अन्वितः**	क्रोधसे भुक्त
तत् वधं	उनका मारा जाना	**इन्द्रं जिघांसुः**	इन्द्रको मारनेके लिए
दृष्ट्वा	देखकर	**नमुचिः**	नमुचिने
शोक	शोक,	**परम**	महान
अमर्ष	असहनशीलता,	**उद्यमं चकार**	उद्योग किया ॥२९॥

अश्मसारमयं शूलं घण्टावद्धेमभूषणम् ।
प्रगृह्याभ्यद्रवत् क्रुद्धो हतोऽसीति वितर्जयन् ।
प्राहिणोद् देवराजाय निनदन् मृगराडिव ॥३०॥

अश्मसारमयं शूलं घण्टावद्ध हेम भूषणं प्रगृह्य अभ्यद्रवत् क्रुद्धः हतः असि इति वितर्जयन् प्राहिणोत् देवराजाय निनदन् मृगराट् इव ॥३०॥

क्रुद्धः	क्रोधमें भरकर	**इति**	इस प्रकार
हेम	स्वर्णके	**वितर्जयन्**	डांटता हुआ
भूषणं	आभूषणोंसे सजे	**अभ्यद्रवत्**	इन्द्रकी ओर दौड़ा,
घण्टावद्ध	घण्टा बँधे	**मृगराट् इव**	सिंहके समान
अश्मसारमयं	लोहेके बने	**निनदन्**	गर्जना करता हुआ
शूलं प्रगृह्य	त्रिशूलको लेकर	**देवराजाय**	देवराजपर
हतः असि	'तू मारा ही गया'	**प्राहिणोत्**	उसे फेंका ॥३०॥

तदापतद् गगनतले महाजवं
विचिच्छिदे हरिरिषुभिः सहस्रधा ।
तमाहनन्नृप कुलिशेन कन्धरे
रुषान्वितस्त्रिदशपतिः शिरो हरन् ॥३१॥

तत् अपतत् गगनतले महाजवं विचिच्छिदे हरिः इषुभिः सहस्रधा तम अहनन् नृप कुलिशेन कन्धरे रुषा अन्वितः त्रिदशपतिः शिरः हरन् ॥३१॥

नृप	राजन्	**गगनतले**	आकाशमें
तत्	वह (त्रिशूल)	**महाजवं**	बड़े वेगसे

अपतत्	आ रहा था
हरिः इषुभिः	इन्द्रने (उसे) बाणोंसे
सहस्रधा	हजारों टुकड़ोंमें
विचिच्छिदे	काट दिया
त्रिदशपतिः	फिर देवराजने
रुषा अन्वितः	क्रोधमें भरकर
शिरः हरन्	उसका सिर काटने-के लिए
कुलिशेन कन्धरे	वज्रसे गलेपर
तं अहनन्	उसे मारा ॥३२॥

न तस्य हि त्वचमपि वज्र ऊर्जितो
बिभेद यः सुरपतिनौजसेरितः ।
तदद्भुतं परमतिवीर्यवृत्रभित्
तिरस्कृतो नमुचिशिरोधरत्वचा ॥३२॥

न तस्य हि त्वचं अपि वज्र ऊर्जितः बिभेद यः सुरपतिना ओजसा ईरितः तत् अद्भुतं परम् अतिवीर्य वृत्रभित् तिरस्कृतः नमुचि शिरोधर त्वचा ॥३२॥

सुरपतिना	देवराज इन्द्र द्वारा
ओजसा	बड़े वेगसे
ईरितः	छोड़ा गया
हि ऊर्जितः	क्योंकि वह तेजस्वी
वज्रः	वज्र
तस्य त्वचं अपि	उसके चमड़ेको भी
न बिभेद	नहीं काट सका
तत् परम्	यह बहुत
अद्भुतं	विचित्र बात हुई
यः	जिसने
अतिवीर्य	महापराक्रमी
वृत्रभित्	वृत्रासुरको काट दिया था
नमुचि	वह नमुचिके
शिरोधर	सिरके नीचे (गले) की
त्वचा	चमड़ीसे
तिरस्कृतः	तिरस्कृत हो गया ॥३२॥

तस्मादिन्द्रोऽबिभेच्छत्रोर्वज्रः प्रतिहतो यतः ।
किमिदं दैवयोगेन भूतं लोकविमोहनम् ॥३३॥

तस्मात् इन्द्रः अबिभेत् शत्रोः वज्रः प्रतिहतः यतः किं इदं दैवयोगेन भूतं लोक विमोहनं ॥३३॥

यतः वज्रः	क्योंकि वज्र
प्रतिहतः	असफल हो गया
तस्मात् इन्द्रः	इसलिए इन्द्र
शत्रोः अबिभेत्	शत्रुसे डर गये
दैवयोगेन	दैवयोगसे
लोक	लोगोंको
विमोहनं	मोहमें डालनेवाला
इदं किं भूतं	यह क्या हो गया ॥३३॥

येन मे पूर्वमद्रीणां पक्षच्छेदः प्रजात्यये ।
कृतो निविशतां भारैः पतत्त्रैः पततां भुवि ॥३४॥

येन मे पूर्वं अद्रीणां पक्षच्छेदः प्रजा अत्यये कृतः निविशतां भारैः पततां भुवि ॥३४॥

पूर्वं पतत्रैः	पूर्व कालमें पंखों द्वारा
निविशतां	(चाहे जहां) जाते और
भारैः भुवि	भारवश पृथ्वीपर
पततां	गिरते
प्रजा	प्रजाके
अत्यये	नाशका कारण बनते
अद्रीणां मे	पर्वतोंका मैंने
येन	जिस (वज्र) से
पक्षच्छेदः	पंख काट
कृतः	दिये ॥३४॥

तपः सारमयं त्वाष्ट्रं वृत्रो येन विपाटितः ।
अन्ये चापि बलोपेताः सर्वास्त्रैरक्षतत्वचः ॥३५॥

तपः सारमयं त्वाष्ट्रं वृत्रः येन विपाटितः अन्ये च अपि बल उपेताः सर्व अस्त्रैः अक्षत त्वचः ॥३५॥

त्वाष्ट्र	त्वष्टाकी
तपः	तपस्याके
सारमयं	फल-स्वरूप उत्पन्न
वृत्रः	वृत्रासुरको
च अन्ये	तथा दूसरे
सर्व अस्त्रैः	सब अस्त्रोंसे
अक्षत त्वचः	अनिर्भिन्न त्वचा-वाले
बल उपेताः	बल सम्पन्नोंको
येन	जिससे (मैंने)
विपाटितः	वध किया ॥३५॥

सोऽयं प्रतिहतो वज्रो मया मुक्तोऽसुरेऽल्पके ।
नाहं तदाददे दण्डं ब्रह्मतेजोऽप्यकारणम् ॥३६॥

सः अयं प्रतिहतः वज्रः मया मुक्तः असुरे अल्पके न अहं तत् आददे दण्डं ब्रह्मतेजः अपि कारणम् ॥३६॥

सः अयं वज्रः	वही यह वज्र	**कारणं अपि**	उत्पन्न होनेपर भी
मया अल्पके	मेरे द्वारा तुच्छ	**अहं तत्**	मैं इस
असुरे मुक्तः	असुरपर चलानेपर	**दण्डं**	दण्ड (अस्त्र) को
प्रतिहतः	असफल हो गया	**न आददे**	नहीं लूंगा ॥३६॥
तत् ब्रह्मतेजः	अतः ब्रह्मतेजसे		

इति शक्रं विषीदन्तमाह वागशरीरिणी ।
नायं शुष्कैरथो नार्द्रैर्वधमर्हति दानवः ॥३७॥

इति शक्रं विषीदन्तं आह वाक् अशरीरिणी न अयं शुष्कैः अथ न आर्द्रैः वधं अर्हति दानवः ॥३७॥

इति	इस प्रकार	**अयं दानवः**	'यह दानव
विषीदन्तं	विषाद करते हुए	**न शुष्कैः**	न सूखी (वस्तु) से
शक्रं	इन्द्रसे	**अथ न आर्द्रैः**	और न गीलीसे
अशरीरिणी	शरीर रहित	**वधं अर्हति**	मारने योग्य है ॥३७॥
वाक् आह	वाणीने कहा—		

मयास्मै यद् वरो दत्तो मृत्युर्नैवार्द्रशुष्कयोः ।
अतोऽन्यश्चिन्तनीयस्ते उपायो मघवन् रिपोः ॥३८॥

मया अस्मै यद् वरः दत्तः मृत्युः न एव आर्द्र शुष्कयोः अतः अन्यः चिन्तनीयः ते उपायः मघवन् रिपोः ॥३८॥

मया अस्मै	मैंने इसे	**मृत्युः न**	(तेरी) मृत्यु नहीं
वरः दत्तः	वरदान दिया है	**एव**	'ही होगी'
यद्	जिससे	**अतः मघवन्**	अतः इन्द्र !
आर्द्र शुष्कयोः	गीली या सूखी (वस्तु) से	**ते रिपोः**	तुम्हें शत्रुके लिए

अन्यः उपायः	दूसरा कोई उपाय	**चिन्तनीयः**	सोचना चाहिए' ॥३८॥

तां दैवीं गिरमाकर्ण्य मघवान्सुसमाहितः ।
ध्यायन् फेनमथापश्यदुपायमुभयात्मकम् ॥३९॥

तां दैवीं गिरं आकर्ण्य मघवान् सुसमाहितः ध्यायन् फेनं अथ अपश्यत् उपायं उभय आत्मकम् ॥३९॥

तां दैवीं गिरं	उस दिव्य वाणीको	**मघवान्**	इन्द्रने
आकर्ण्य	सुनकर	**अथ फेनं**	तब फेनको
सुसमाहितः	अत्यन्त एकाग्र होकर	**उभय आत्मकं**	दोनों प्रकारका
		उपायं अपश्यत्	उपाय देखा ॥३९॥
ध्यायन्	ध्यान करते हुए		

न शुष्केण न चार्द्रेण जहार नमुचेः शिरः ।
तं तुष्टुवुर्मुनिगणा माल्यैश्चावाकिरन्विभुम् ॥४०॥

न शुष्केण न च आर्द्रेण जहार नमुचेः शिरः तं तुष्टवुः मुनिगणा माल्यैः च अवाकिरन् विभुम् ॥४०॥

न शुष्केण	न सूखेसे	**तं विभुं**	तब उन इन्द्रकी
च न	और न	**मुनिगणा**	मुनि लोग
आर्द्रेण	गीले (फेन) से	**तुष्टवुः**	स्तुति करने लगे
नमुचेः शिरः	नमुचिका सिर	**च माल्यैः**	तथा पुष्पावली
जहार	काट दिया	**अवाकिरन्**	बरसाने लगे ॥४०॥

गन्धर्वमुख्यौ जगतुर्विश्वावसुपरावसू ।
देवदुन्दुभयो नेदुर्नर्तक्यो ननृतुर्मुदा ॥४१॥

गन्धर्व मुख्यौ जगतुः विश्वावसु परावसू देव दुन्दुभयः नेदुः नर्तक्यः ननृतुः मुदा ॥४१॥

विश्वावसु	विश्वावसु,	**देव दुन्दुभयः**	देव-दुन्दुभियां
परावसू	परावसु आदि	**नेदुः**	बजने लगीं
गन्धर्व मुख्यौ	प्रमुख गन्धर्व	**मुदा नर्तक्यः**	आनन्दसे नर्तकियां
जगतुः	(यश) गाने लगे,	**ननृतुः**	नाचने लगीं ॥४१॥

अन्येऽप्येवं प्रतिद्वन्द्वान्वाय्वग्निवरुणादयः ।
सूदयामासुरस्त्रौघैर्मृगान्केसरिणो यथा ॥४२॥

अन्ये अपि एवं प्रतिद्वन्द्वान् वायु अग्नि वरुण आदयः सूदयामासुः अस्त्र ओघैः मृगान् केसरिणः यथा ॥४२॥

एवं अन्ये अपि	इसी प्रकार दूसरे भी	**यथा केसरिणः**	जैसे सिंह
वायु अग्नि	वायु, अग्नि,	**मृगान्**	हिरणोंको (नष्ट करें)
वरुण आदयः	वरुण आदिने	**प्रतिद्वन्द्वान्**	अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको
अस्त्र ओघैः	शस्त्रोंकी वर्षासे	**सूदयामासुः**	मार दिया ॥४२॥

ब्रह्मणा प्रेषितो देवान्देवर्षिर्नारदो नृप ।
वारयामास विबुधान्दृष्ट्वा दानवसंक्षयम् ॥४३॥

ब्रह्मणा प्रेषितः देवान् देवर्षिः नारदः नृप वारयामास विबुधान् दृष्ट्वा दानव संक्षयम् ॥४३॥

नृप	राजन् !	**दानव संक्षयं**	दानवोंका विनाश
ब्रह्मणा	ब्रह्मा द्वारा	**दृष्ट्वा**	देखकर
देवान्	देवताओंके पास	**विबुधान्**	देवताओंको
प्रेषितः	भेजे गये	**वारयामास**	मनाकर दिया
देवर्षिः नारदः	देवर्षि नारदने		॥४३॥

नारद उवाच–

भवद्भिरमृतं प्राप्तं नारायणभुजाश्रयैः ।
श्रिया समेधिताः सर्व उपारमत विग्रहात् ॥४४॥

भवद्भिः अमृतं प्राप्तं नारायण भुज आश्रयैः श्रिया सम एधिताः सर्व उपारमत विग्रहात् ॥४४॥

नारायण	श्रीनारायणके	**सम**	भली प्रकार
भुज आश्रयैः	बाहुबलके सहारेसे	**एधिताः**	समृद्ध किये गये हो
भवद्भिः	तुम लोगों द्वारा	**विग्रहात्**	अतः युद्धसे
अमृतं प्राप्तं	अमृत पा लिया गया	**उपारमत**	अब उपराम हो
सर्वे श्रिया	तुम सब लक्ष्मीजी द्वारा		जाओ ॥४४॥

श्रीशुक उवाच–

संयम्य मन्युसंरम्भं मानयन्तो मुनेर्वचः ।
उपगीयमानानुचरैर्ययुः सर्वे त्रिविष्टपम् ॥४५॥

संयम्य मन्यु संरम्भं मानयन्तः मुनेः वचः उपगीयमाना अनुचरैः ययुः सर्वे त्रिविष्टपम् ॥४५॥

मुनेः	मुनि (नारद) की	**अनुचरैः**	अनुचरों द्वारा
वचः	बात	**उपगीयमाना**	प्रशंसित होते
मानयन्तः	मानते हुए	**सर्वे**	सब
मन्यु संरम्भं	क्रोधावेशको	**त्रिविष्टपं ययुः**	स्वर्ग चले गये ॥४५॥
संयम्य	नियन्त्रित करके		

येऽवशिष्टा रणे तस्मिन् नारदानुमतेन ते ।
बलिं विपन्नमादाय अस्तं गिरिमुपागमन् ॥४६॥

ये अवशिष्टा रणे तस्मिन् नारद अनुमतेन ते बलिं विपन्नं आदाय अस्तं गिरिं उपागमन् ॥४६॥

तस्मिन् रणे	उस युद्धमें	**विपन्नं बलिं**	मरे हुए बलिको
ये अवशिष्टा	जो (असुर) बच गये थे	**आदाय**	लेकर
		अस्तं गिरिं	अस्ताचलपर
ते नारद	उन्होंने नारदजीकी	**उपागमन्**	चले गये ॥४६॥
अनुमतेन	अनुमतिसे		

तत्राविनष्टावयवान् विद्यमानशिरोधरान् ।
उशना जीवयामास संजीविन्या स्वविद्यया ॥४७॥

तत्र अविनष्ट अवयवान् विद्यमान शिरः अधरान् उशना जीवयामास संजीविन्या स्व विद्यया ॥४७॥

तत्र	वहां	**स्व संजीविन्या**	अपनी संजीवनी
अवयवान्	(जिनके) अंग	**विद्यया**	विद्यासे
अविनष्ट	नष्ट नहीं हुए थे	**उशना**	शुक्राचार्यने
शिरः	सिर और	**जीवयामास**	जीवित कर दिया
अधरान्	नीचेके धड़		॥४७॥
विद्यमान	विद्यमान थे (उन्हें)		

बलिश्चोशनसा स्पृष्टः प्रत्यापन्नेन्द्रियस्मृतिः ।
पराजितोऽपि नाखिद्यल्लोकतत्त्वविचक्षणः ॥४८॥

बलिः च उशनसा स्पृष्टः प्रति आपन्न इन्द्रियस्मृतिः पराजितः अपि न अखिद्यत् लोक तत्त्व विचक्षणः ॥४८॥

उशनसा स्पृष्टः	शुक्राचार्यके छूते ही	**विचक्षणः**	जाननेवाले होनेसे
बलिः च	बलिकी भी		वे
इन्द्रियस्मृतिः	इन्द्रिय और स्मरण	**पराजितः**	पराजित होनेपर
	शक्ति	**अपि**	भी
प्रति आपन्नः	लौट आयी,	**अखिद्यत् न**	खेदग्रस्त नहीं हुए
लोक तत्त्व	संसारका तत्त्व		॥४८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
देवासुरसंग्रामे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच*

वृषध्वजो निशम्येदं योषिद्रूपेण दानवान् ।
मोहयित्वा सुरगणान्हरिः सोममपाययत् ॥ १ ॥

वृषध्वजः निशम्य इदं योषित् रूपेण दानवान् मोहयित्वा सुरगणान् हरिः सोमं अपाययत् ॥१॥

योषित् रूपेण	स्त्री रूपीसे	**सुरगणान्**	देवताओंको
दानवान्	दानवोंको	**सोमं अपाययत्**	अमृत पिलाया
मोहयित्वा	सम्मोहित करके	**वृषध्वजः**	शंकरजीने
हरिः	श्रीहरिने	**इदं निशम्य**	इसे सुना ॥१॥

वृषमारुह्य गिरिशः सर्वभूतगणैर्वृतः ।
सह देव्या ययौ द्रष्टुं यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ २ ॥

वृषं आरुह्य गिरिशः सर्वभूतगणैः वृतः सह देव्या ययौ द्रष्टुं यत्र आस्ते मधुसूदनः ॥२॥

सर्वभूतगणैः	सब भूत-समूहोंसे	**द्रष्टुं**	देखनेके लिए
वृतः	घिरे हुए	**यत्र**	जहां
देव्या सह	देवी पार्वतीके साथ	**मधुसूदनः**	भगवान् मधुसूदन
वृषं आरुह्य	बैलपर बैठकर	**आस्ते ययौ**	थे वहां गये ॥२॥
गिरिशः	कैलासवासी भगवान् शिव (उस रूपको)		

---

*यहाँ गीता प्रेसकी प्रतिमें 'श्रीबादरायणिरुवाच' है ।

सभाजितो भगवता सादरं सोमया भवः ।
सूपविष्ट उवाचेदं प्रतिपूज्य स्मयन्हरिम् ॥ ३ ॥

सभाजितः भगवता सादरं स उमया भवः सु उपविष्ट उवाच इदं प्रतिपूज्य स्मयन् हरिम् ॥३॥

स उमया	देवी उमाके साथ	**सु उपविष्ट**	भली प्रकार बैठ जानेपर
भवः	शंकरजी	**प्रतिपूज्य**	प्रशंसा करते हुए
भगवता	भगवान् श्रीहरि द्वारा	**स्मयन् हरिं**	मुस्कराकर श्रीहरिसे
सादरं	आदरपूर्वक	**इदं उवाच**	यह बोले ॥३॥
सभाजितः	सत्कृत होकर		

श्रीमहादेव उवाच–

देवदेव जगद्व्यापिञ्जगदीश जगन्मय ।
सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः ॥ ४ ॥

देवदेव जगत् व्यापिन् जगदीश जगन्मय सर्वेषां अपि भावानां त्वं आत्मा हेतुः ईश्वरः ॥४॥

देवदेव	देवाधिदेव !	**भावानां अपि**	भावोंके ही
जगत् व्यापिन्	जगत् व्यापिन !	**त्वं आत्मा**	आप स्वरूप,
जगदीश	जगत्-स्वामी !	**हेतुः ईश्वरः**	कारण और स्वामी हो ॥४॥
जगन्मय	जगत् स्वरूप !		
सर्वेषां	सभी		

आद्यन्तावस्य यन्मध्यमिदमन्यदहं बहिः ।
यतोऽव्ययस्य नैतानि तत् सत्यं ब्रह्म चिद् भवान् ॥५॥

आदि अन्त अव अस्य यत् मध्यं इदं अन्यत् अहं बहिः यतः अव्ययस्य न एतानि तत् सत्यं ब्रह्म चित् भवान् ॥५॥

यत् अस्य	जिससे इस जगतके
आदि अन्त	आदि, अन्त और
अव	अवस्थान (वर्तमान)
मध्यं	मध्य होते हैं,
यतः	क्योंकि
अव्ययस्य	जिस अविनाशीमें
एतानि	यह सब (आदि, अन्त, मध्य और)
इदं अहं	यह मैं हूँ
अन्यत्	यह दूसरा है,
बहिः न	यह बाहरी भेद नहीं है
तत् सत्यं	वह सत्य
चित् ब्रह्म	चेतन स्वरूप ब्रह्म
भवान्	आप हैं ॥५॥

तवैव चरणाम्भोजं श्रेयस्कामा निराशिषः ।
विसृज्योभयतः सङ्गं मुनयः समुपासते ॥ ६ ॥

तव एव चरण अम्भोजं श्रेयः कामा निः आशिषः विसृज्य उभयतः सङ्गं मुनयः समुपासते ॥६॥

श्रेयः कामा	अपना कल्याण चाहनेवाले
निः आशिषः	निष्काम
मुनयः	मुनिगण
उभयतः	दोनों ओर (लोक-परलोक) की
सङ्गं विसृज्य	आसक्ति त्यागकर
तव एव	आपके ही
चरण अम्भोजं	चरण-कमलोंकी
समुपासते	भली प्रकार उपासना करते हैं ॥६॥

त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विगुणं विशोक-
मानन्दमात्रमविकारमनन्यदन्यत् ।
विश्वस्य हेतुरुदयस्थितिसंयमाना-
मात्मेश्वरश्च तदपेक्षतयानपेक्षः ॥ ७ ॥

त्वं ब्रह्म पूर्णं अमृतं विगुणं विशोकं आनन्दमात्रं अविकारं अनन्यत् अन्यत् विश्वस्य हेतुः उदय स्थिति संयमानां आत्मा ईश्वरः च तत् अपेक्षतया अनपेक्षः ॥७॥

त्वं अमृतं	आप अमृत स्वरूप
विगुणं विशोकं	निर्गुण, निःशोक,
आनन्दमात्रं	आनन्द मात्र,
अविकारं	निर्विकार,
अन्यत्	दूसरेकी
अनन्यत्	सत्तासे रहित (अद्वितीय)
पूर्णं ब्रह्म	पूर्ण ब्रह्म हैं,
विश्वस्य	संसारकी
उदय स्थिति	उत्पत्ति, स्थिति,
संयमानां हेतुः	प्रलयके कारण हैं,
च आत्मा	तथा उसके स्वरूप
ईश्वरः	और शासक हैं
अनपेक्षः	स्वयं निरपेक्ष हैं,
तत्	उन (जीवों) की
अपेक्षतया	अपेक्षा (कामना) के अनुसार (फल देते हैं) ॥७॥

एकस्त्वमेव सदसद् द्वयमद्वयं च
स्वर्णं कृताकृतमिवेह न वस्तुभेदः ।
अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विहितो विकल्पो
यस्माद् गुणैर्व्यतिकरो निरुपाधिकस्य ॥८॥

एकः त्वं एव सत् असत् द्वयं अद्वयं च स्वर्णं कृत अकृतं इव इह न वस्तु भेदः अज्ञानतः त्वयि जनैः विहितः विकल्पः यस्मात् गुणैः व्यतिकरः निरुपाधिकस्य ॥८॥

एकः त्वं एव	एक मात्र आप ही
सत्	कारण स्वरूप
अद्वयं	अद्वितीय
च असत्	तथा कार्यरूप
द्वयं	द्वैत हैं,
स्वर्णं	सोनेमें
कृत	बनाये गये (आभूषणादि)
अकृतं	न बनाये (मूल स्वर्णधातु)
इव	के समान
इह वस्तु	यहां वस्तुओंका (विकारोत्पन्न)
भेदः न	भेद नहीं है
अज्ञानतः	अज्ञानके कारण
त्वयि जनैः	आपमें लोगोंने
विकल्पः	भेद
विहितः	आरोपित कर लिया है,
यस्मात्	क्योंकि
निरुपाधिकस्य	आप उपाधिहीनमें
गुणैः	गुणोंके कारण
व्यतिकरः	विकार (भेद) प्रतीत होता है ॥८॥

त्वां ब्रह्म केचिदवयन्त्युत धर्ममेके
एके परं सदसतोः पुरुषं परेशम् ।
अन्येऽवयन्ति नवशक्तियुतं परं त्वां
केचिन्महापुरुषमव्ययमात्मतन्त्रम् ॥ ६ ॥

त्वां ब्रह्म केचित् अवयन्ति उत धर्मं एके एके परं सत् असतोः पुरुषं परेशं अन्ये अवयन्ति नवशक्तियुतं परं त्वां केचित् महापुरुषं अव्ययं आत्मतन्त्रम् ॥६॥

केचित्	कोई (अद्वैतवादी)	**अन्ये**	दूसरे (पाञ्चरात्र-वाले)
त्वां	आपको	**नवशक्तियुतं**	नौ शक्तियोंसे युक्त*
ब्रह्म	ब्रह्म	**परं**	परमपुरुष,
अवयन्ति	समझते हैं,	**केचित्**	और कोई
उत एके	और कोई(मीमासक)	**त्वां**	(पातंजल-योगवाले)
धर्मं	धर्म,		आपको
एके	कोई (सांख्यवादी)	**अव्ययं**	अविनाशी,
सत् असतोः	कारण-कार्यसे	**आत्मतन्त्रं**	परम स्वतन्त्र
परं परेशं	परे परमेश्वर	**महापुरुषं**	महापुरुष
पुरुषं	परम पुरुष	**अवयन्ति**	समझते हैं ॥६॥

नाहं परायुर्ऋषयो न मरीचिमुख्या
जानन्ति यद्विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः ।
यन्माययामुषितचेतस ईश दैत्य-
मर्त्यादयः किमुत शश्वदभद्रवृत्ताः ॥१०॥

न अहं पर आयुः ऋषयः न मरीचि मुख्याः जानन्ति यत् विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः यत् माययामुषितचेतस ईश दैत्य मर्त्य आदयः किं उत शश्वत् अभद्र वृत्ताः ॥१०॥

---

*पाञ्चरात्रमें नौ शक्तियाँ हैं--१. विमला २. उत्कर्षिणी ३. ज्ञाना ४. क्रिया ५. योगा ६. प्रह्वी ७. सत्या ८. ईशाना ९. अनुग्रहा ।

ईश	प्रभो !
खलु	अरे,
सत्त्वसर्गाः	सत्वगुणसे उत्पन्न
मुषितचेतस	चुराये गये चित्तवाले
अहं	मैं,
पर आयुः	दोपरार्ध आयुवाले ब्रह्माजी,
यत् विरचितं	जिनकी लीलाको
न जानन्ति	नहीं जानते
न मरीचि	न मरीचि
मुख्याः	आदि प्रमुख ऋषि जानते
यत् मायया	जिनकी मायासे
शश्वत्	निरन्तर
अभद्र वृत्ताः	असदाचारी
दैत्य मर्त्य	असुर मनुष्य
आदयः	आदि
किं उत	फिर कैसे (जान सकते हैं) ॥१०॥

स त्वं समोहितमदः स्थितिजन्मनाशं
भूतेहितं च जगतो भवबन्धमोक्षौ ।
वायुर्यथा विशति खं च चराचराख्यं
सर्वं तदात्मकतयावगमोऽवरुन्त्से ॥११॥

स त्वं समीहितं अदः स्थितिः जन्म नाशं भूत इहितं च जगतः भव बन्ध मोक्षौ वायुः यथा विशति खं च चर अचर आख्यं सर्वं तत् आत्मकतया अवगमः अवरुन्त्से ॥११॥

यथा वायुः	जैसे वायु
चर अचर	चर-अचर
आख्यं	कहलानेवाले
सर्वं च खं	सबमें तथा आकाश-में
विशति	प्रविष्ट रहता है (उसी प्रकार)
स त्वं	वह आप
अदः जगतः	इस जगतकी
स्थिति	स्थिति,
जन्म नाशं	उत्पत्ति और प्रलय
समीहितं	तथा चेष्टाको
च भूत	तथा प्राणियोंके
इहितं	कर्मोंको
भव	उनके जन्म,
बन्ध मोक्षौ	बन्धन, मोक्षको
तत् सर्वं	इस सबको
तत्	उनके
आत्मकतया	स्वरूप होनेसे
अवगमः	इनका ज्ञान
अवरुन्त्से	रखते हैं ॥११॥

अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः ।
सोऽहं तद् द्रष्टुमिच्छामि यत् ते योषिद्वपुर्धृतम् ॥१२॥

अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः सः अहं तत् द्रष्टुं इच्छामि यत् ते योषित् वपुः धृतम् ॥१२॥

गुणैः	गुणोंके साथ	**योषित् वपुः**	स्त्रीका रूप
रममाणस्य	क्रीड़ा करते हुए	**धृतं**	धारण किया
ते अवतारा	आपके जो अवतार हुए उन्हें	**सः अहं**	वह मैं
		तत् द्रष्टुं	उसे देखना
मया दृष्टा	मैंने देखा है,	**इच्छामि**	चाहता हूँ ॥१२॥
यत् ते	जो आपने		

येन सम्मोहिता दैत्याः पायिताश्चामृतं सुराः ।
तद्दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः ॥१३॥

येन सम्मोहिता दैत्याः पायिताः च अमृतं सुराः तत् दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः ॥१३॥

येन	जिस (रूप) से	**दिदृक्षव**	देखनेकी इच्छासे
दैत्याः	दैत्योंको	**आयाताः**	हम आये हैं
सम्मोहिता	मोहित किया	**हि नः**	क्योंकि हमको
च सुराः	तथा देवताओंको	**परम् कौतूहलं**	अत्यन्त कुतूहल है ॥१३॥
अमृतं पायिताः	अमृत पिलाया		
तत्	उसे		

श्रीशुक उवाच–

एवमभ्यर्थितो विष्णुर्भगवान् शूलपाणिना ।
प्रहस्य भावगम्भीरं गिरिशं प्रत्यभाषत ॥१४॥

एवं अभ्यर्थितः विष्णुः भगवान् शूलपाणिना प्रहस्य भाव गम्भीरं गिरिशं प्रति अभाषत ॥१४॥

एवं	इस प्रकार
शूलपाणिना	शूलपाणि शंकरजी द्वारा
भगवान् विष्णुः	भगवान् विष्णु
अभ्यर्थितः	प्रार्थना किये जाने-पर
भाव गम्भीरं	गम्भीर भावसे
प्रहस्य	हँसकर
गिरिशं प्रति	शंकरजीसे
अभाषत	बोले ॥१४॥

श्रीभगवानुवाच—

कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो मया कृतः ।
पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥१५॥

कौतूहलाय दैत्यानां योषित् वेषः मया कृतः पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥१५॥

पीयूषभाजने	अमृत-पात्रके
गते	छिन जानेपर
सुरकार्याणि	देवताओंके कामको
पश्यता	देखते हुए
दैत्यानां	दैत्योंको
कौतूहलाय	कुतूहलमें डालनेको
मया	मैंने
योषित् वेषः	स्त्रीका रूप
कृतः	धारण किया था ॥१५॥

तत्तेऽहं दर्शयिष्यामि दिदृक्षोः सुरसत्तम ।
कामिनां बहु मन्तव्यं सङ्कल्पप्रभवोदयम् ॥१६॥

तत् ते अहं दर्शयिष्यामि दिदृक्षोः सुरसत्तम कामिनां बहु मन्तव्यं सङ्कल्पप्रभव उदयम् ॥१६॥

तत् कामिनां	वह कामी पुरुषोंका
बहु मन्तव्यं	बहुत माननीय तथा
सङ्कल्पप्रभव	कामका
उदयं	उद्दीपक (रूप)
सुरसत्तम	देवश्रेष्ठ !
ते	आप
दिदृक्षोः	देखना चाहते हैं अतः
अहं	मैं
दर्शयिष्यामि	दिखलाऊंगा ॥१६॥

श्रीशुक उवाच–

इति ब्रुवाणो भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ।
सर्वतश्चारयंश्चक्षुर्भव आस्ते सहोमया ॥१७॥

इति बुवाणः भगवान् तत्र एव अन्तः अधीयत सर्वतः चारयन् चक्षुः भव आस्ते सह उमया ॥१७॥

इति बुवाणः	ऐसा कहकर	**उमया सह**	देवी उमाके साथ
भगवान्	भगवान्	**भवः सर्वतः**	शंकरजी चारों ओर
तत्र एव	वहीं	**चक्षुः चारयन्**	आँख घुमाकर
अन्तः अधीयत	अन्तर्धान हो गये	**आस्ते**	देखने लगे ॥१७॥

ततो ददर्शोपवने वरस्त्रियं
विचित्रपुष्पारुणपल्लवद्रुमे ।
विक्रीडतीं कन्दुकलीलया लसद्-
दुकूलपर्यस्तनितम्बमेखलाम् ॥१८॥

ततः ददर्श उपवने वरस्त्रियं विचित्र पुष्प अरुण पल्लव द्रुमे विक्रीडतीं कन्दुक लीलया लसत् दुकूल पर्यस्त नितम्ब मेखलाम् ॥१८॥

ततः विचित्र	तभी अनेक प्रकारके	**विक्रीडतीं**	खेलती
पुष्प	पुष्पों तथा	**पर्यस्त दुकूल**	दुकूलसे आच्छादित
अरुण पल्लव	लाल-लाल नये पत्तोंवाले	**नितम्ब**	नितम्बोंपर
		मेखलां	करधनी पहिने
द्रुमे उपवने	वृक्षोंके बगीचेमें	**वरस्त्रियं**	एक श्रेष्ठ स्त्रीको
लसत्	उछालकर	**ददर्श**	देखा ॥१८॥
कन्दुक लीलया	गेंदका खेल		

आवर्तनोद्वर्तनकम्पितस्तन-
प्रकृष्टहारोरुभरैः पदे पदे ।

प्रभज्यमानामिव मध्यतश्चलत्-
पदप्रवालं नयतीं ततस्ततः ॥१९॥

आवर्तन उद्वर्तन कम्पित स्तन प्रकृष्ट हार उरुभरैः पदे पदे प्रभज्यमानां इव मध्यतः चलत् पद प्रवालं नयतीं ततः ततः ॥१९॥

आवर्तन	(गेंदको) लपकने और	**प्रभज्यमानां इव**	टूटी जाती-सी
उद्वर्तन	उछालनेसे	**चलत् पद**	चञ्चल चरण-
कम्पित स्तन	हिलते स्तन तथा	**प्रवालं**	पल्लवोंको
प्रकृष्ट हार	श्रेष्ठ हारोंके	**ततः ततः**	इधर-उधर
उरुभरैः	भारी भारसे	**नयतीं**	ले जा रही थी ॥१९॥
मध्यतः	बीचसे		

दिक्षु भ्रमत्कन्दुकचापलैर्भृशं
प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम् ।
स्वकर्णविभ्राजितकुण्डलोल्लसत्-
कपोलनीलालकमण्डिताननाम् ॥२०॥

दिक्षु भ्रमत् कन्दुक चापलैः भृशं प्रोद्विग्न तार आयत लोल लोचनां स्वकर्ण विभ्राजित कुण्डल उल्लसत् कपोल नील अलक मण्डित आननाम् ॥२०॥

दिक्षु भ्रमत्	दिशाओंमें घूमते	**विभ्राजित**	चमकते
कन्दुक	गेंदकी	**कुण्डल**	कुण्डलोंसे
चापलैः	चञ्चलतासे	**उल्लसत्**	सुशोभित
भृशं प्रोद्विग्न	अत्यन्त चंचल	**कपोल**	कपोल तथा
तार आयत	पुतलीवाले बड़े	**नील अलक**	काली अलकोंसे
लोल लोचनां	चपल नेत्रोंवाली,	**मण्डित**	मण्डित
स्वकर्ण	अपने कानोंमें	**आननां**	मुखवाली ॥२०॥

श्लथद् दुकूलं कबरीं च विच्युतां
सन्नह्यतीं वामकरेण वल्गुना ।
विनिघ्नतीमन्यकरेण कन्दुकं
विमोहयन्तीं जगदात्ममायया ॥२१॥

श्लथत् दुकूलं कबरीं च विच्युतां सन्नह्यतीं वाम करेण वल्गुना विनिघ्नतीं अन्य करेण कन्दुकं विमोहयन्तीं जगत् आत्ममायया ॥२१॥

श्लथत् दुकूलं	खिसकती साड़ी
च	तथा
विच्युतां कबरीं	खिसकते जूड़ेको
वल्गुना	मनोहर
वाम करेण	बायें हाथसे
सन्नह्यतीं	सम्हालती हुई
अन्य करेण	दूसरे हाथसे
कन्दुकं	गेंदको
विनिघ्नतीं	बार-बार मारती
आत्ममायया	अपनी मायासे
जगत्	विश्वको
विमोहयन्तीं	विमोहित कर रही थी ॥२१॥

तां वीक्ष्य देव इति कन्दुकलीलयेषद्-
व्रीडास्फुटस्मितविसृष्टकटाक्षमुष्टः ।
स्त्रीप्रेक्षणप्रतिसमीक्षणविह्वलात्मा
नात्मानमन्तिक उमां स्वगणांश्च वेद ॥२२॥

तां वीक्ष्य देव इति कन्दुक लीलया ईषत् व्रीडा स्फुटस्मित विसृष्ट कटाक्ष मुष्टः स्त्रीप्रेक्षण प्रतिसमीक्षण विह्वल आत्मा न आत्मानं अन्तिक उमां स्वगणान् च वेद ॥२२॥

इति	इस प्रकार
कन्दुक लीलया	गेंद खेलती हुई
ईषत् व्रीडा	तनिक लज्जा तथा
स्फुटस्मित	प्रकट मुस्कानयुक्त
कटाक्ष विसृष्ट	कटाक्ष पातसे
मुष्टः देव	मोहित महादेव
तां वीक्ष्य	उसे देखकर
स्त्रीप्रेक्षण	उस स्त्रीके देखते हुए
प्रतिसमीक्षण	वह फिर देखे इससे
विह्वल आत्मा	व्याकुल चित्त

आत्मानं	अपने	स्वगणं	अपने गणोंका भी
अन्तिकं	पास	वेद न	ज्ञान नहीं रहा
उमां च	देवी उमा तथा		॥२२॥

तस्याः कराग्रात् स तु कन्दुको यदा
गतो विदूरं तमनुव्रजत्स्त्रियाः ।
वासः ससूत्रं लघु मारुतोऽहरद्
भवस्य देवस्य किलानुपश्यतः ॥२३॥

तस्याः कराग्रात् स तु कन्दुकः यदा गतः विदूरं तं अनुव्रजत् स्त्रियाः वासः ससूत्रं लघु मारुतः अहरत् भवस्य देवस्य किल अनुपश्यतः ॥२३॥

भवस्य देवस्य	महादेव शंकरजीके	तं अनुव्रजत्	उसके पीछे दौड़ती हुई
किल	अहो,	स्त्रियाः लघु	स्त्रीकी झीनी
अनुपश्यतः	देखते हुए ही	वासः	साड़ी
यदा तस्याः	जब उसके	ससूत्रं	कटि सूत्रके साथ
कराग्रात्	हाथकी अंगुलियोंसे	मारुतः अहरत्	वायुने खींच ली
स तु कन्दुकः	वह गेंद तो		॥२३॥
विदूरं गतः	कुछ दूर चला गया तब		

एवं तां रुचिरापाङ्गीं दर्शनीयां मनोरमाम् ।
दृष्ट्वा तस्यां मनश्चक्रे विषज्जन्त्यां भवः किल ॥२४॥

एवं तां रुचिर अपाङ्गीं दर्शनीयां मनोरमां दृष्ट्वा तस्यां मनः चक्रे विषज्जन्त्यां भवः किल ॥२४॥

एवं तां	इस प्रकार उस	विषज्जन्त्यां	(कटाक्षके कारण) आसक्ता (जानकर)
रुचिर अपाङ्गीं	सुन्दर कटाक्षवाली	किल भवः	अहो, शंकरजीने
दर्शनीयां	दर्शनीया,	तस्यां मनः	उसमें मन लगा
मनोरमां	मनोहारिणीको	चक्रे	दिया ॥२४॥
दृष्ट्वा	देखकर		

तयापहृतविज्ञानस्तत्कृतस्मरविह्वलः ।
भवान्या अपि पश्यन्त्या गतह्रीस्तत्पदं ययौ ॥२५॥

तया अपहृत विज्ञानः तत् कृत स्मरविह्वलः भवान्या अपि पश्यन्त्या गतह्रीः तत् पदं ययौ ॥२५॥

तया विज्ञानः	उसके द्वारा विवेक	**पश्यन्त्या**	देखते हुए
अपहृत	छीने जानेसे	**गतह्रीः**	निर्लज्ज होकर
तत् कृत	उसके लिए	**तत् पदं**	उसकी ओर
स्मरविह्वलः	काम-व्याकुल होकर	**ययौ**	चल दिये ॥२५॥
भवान्या अपि	पार्वतीजीके भी		

सा तमायान्तमालोक्य विवस्त्रा व्रीडिता भृशम् ।
निलीयमाना वृक्षेषु हसन्ती नान्वतिष्ठत ॥२६॥

सा तं आयान्तं आलोक्य विवस्त्रा व्रीडिता भृशं निलीयमाना वृक्षेषु हसन्ती न अन्वतिष्ठत ॥२६॥

तं आयान्तं	उन्हें आता हुआ	**निलीयमाना**	पीछे छिपती हुई
आलोक्य सा	देखकर वह	**हसन्ती**	हँसती हुई
विवस्त्रा	वस्त्रहीना	**अन्वतिष्ठत न**	कहीं ठहरी नहीं ॥२६॥
भृशं व्रीडिता	बहुत लज्जित होकर		
वृक्षेषु	वृक्षोंके		

तामन्वगच्छद् भगवान् भवः प्रमुषितेन्द्रियः ।
कामस्य च वशं नीतः करेणुमिव यूथपः ॥२७॥

तां अनु अगच्छत् भगवान् भवः प्रमुषित इन्द्रियः कामस्य च वशं नीतः करेणुं इव यूथपः ॥२७॥

इन्द्रियः	इन्द्रियोंके (उसके द्वारा)	**करेणुं यूथपः**	हथिनीके पीछे गजराजके
प्रमुषित	चुरा लिए जानेसे	**इव**	समान
भगवान् भवः	भगवान शिव	**तां अनु**	उसके पीछे
कामस्य च	कामके भी	**अगच्छत्**	चल पड़े ॥२७॥
वशं नीतः	वशमें लाये जाकर		

सोऽनुव्रज्यातिवेगेन गृहीत्वानिच्छतीं स्त्रियम् ।
केशबन्ध उपानीय बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥२८॥

सः अनुव्रज्य अतिवेगेन गृहीत्वा अनिच्छतीं स्त्रियं केशबन्ध उप आनीय बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥२८॥

सः अतिवेगेन	वे बहुत वेगसे	**गृहीत्वा**	पकड़कर
अनुव्रज्य	पीछे दौड़कर	**उप आनीय**	समीप लाकर
अनिच्छतीं	इच्छा न करनेवाली	**बाहुभ्यां**	भुजाओंसे
स्त्रियं	स्त्रीको	**परिषस्वजे**	आलिंगन कर लिया
केशबन्ध	उसका जूड़ा		॥२८॥

सोपगूढा भगवता करिणा करिणी यथा ।
इतस्ततः प्रसर्पन्ती विप्रकीर्णशिरोरुहा ॥२९॥

स उपगूढा भगवता करिणा करिणी यथा इतः ततः प्रसर्पन्ती विप्रकीर्ण शिरोरुहा ॥२९॥

करिणा	गजेन्द्रके द्वारा	**इतः ततः**	इधर-उधर
करिणी यथा	हथिनीके समान	**प्रसर्पन्ती**	खिसकती हुई
सा भगवता	वह भगवान् शंकर द्वारा	**शिरोरुहा**	(उसके) केश
		विप्रकीर्ण	बिखर गये ॥२९॥
उपगूढा	आलिंगिता		

आत्मानं मोचयित्वाङ्ग सुरर्षभभुजान्तरात् ।
प्राद्रवत्सा पृथुश्रोणी माया देवविनिर्मिता ॥३०॥

आत्मानं मोचयित्वा अङ्ग सुर ऋषभ भुज अन्तरात् प्राद्रवत् सा पृथु श्रोणी माया देव विनिर्मिता ॥३०॥

अङ्ग	प्रिय परिक्षित !	**विनिर्मिता**	बनायी
सा देव	वह विष्णु भगवान्-की	**पृथु श्रोणी**	स्थूल नितम्बोंवाली
		माया	माया

सुर ऋषभ	महादेवजीकी	**मोचयित्वा**	छुड़ाकर
भुज अन्तरात्	भुजाओंके बीचसे	**प्राद्रवत्**	भागी ॥३०॥
आत्मानं	अपनेको		

तस्यासौ पदवीं रुद्रो विष्णोरद्भुतकर्मणः ।
प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणेव विनिर्जितः ॥३१॥

तस्य असौ पदवीं रुद्रः विष्णोः अद्भुत कर्मणः प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणा इव विनिर्जितः ॥३१॥

तस्य	उन	**कामेन**	कामदेव द्वारा
अद्भुत कर्मणः	अद्भुत कर्मा	**विनिर्जितः इव**	पराजितकी भांति
विष्णोः पदवीं	विष्णुके पीछे	**असौ रुद्रः**	ये रुद्रदेव
वैरिणा	अपने शत्रु	**प्रत्यपद्यत**	चल पड़े ॥३१॥

तस्यानुधावतो रेतश्चस्कन्दामोघरेतसः ।
शुष्मिणो यूथपस्येव वासितामनु धावतः ॥३२॥

तस्य अनुधावतः रेतः चस्कन्द अमोघ रेतसः शुष्मिणः मूथपस्य इव वासितां अनु धावतः ॥३२॥

वासितां	ऋतुमती (हथिनी) के	**अनुधावतः**	पीछे दौड़ते हुए
अनुधावतः	पीछे दौड़ते हुए	**अमोघ**	अमोघ
शुष्मिणः	मदोन्मत्त	**रेतसः**	वीर्य (शंकरजी) का
यूथपस्य	यूथपति गजराजके	**रेतः**	वीर्य-
इव	समान	**चस्कन्द**	स्खलित हो गया ॥३२॥
तस्य	उसके		

यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः ।
तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते ॥३३॥

यत्र यत्र अपतन् महयां रेतः तस्य महात्मनः तानि रूप्यस्य हेम्नः च क्षेत्राणि आसन् महीपते ॥३३॥

महीपते	राजन् !	**तानि रूप्यस्य**	वही चांदी
तस्य महात्मनः	उन महापुरुषका	**च हेम्नः**	तथा स्वर्णके
महयां यत्र यत्र	पृथ्वीपर जहां-जहां	**क्षेत्राणि आसन्**	क्षेत्र हो गये ॥३३॥
रेतः अपतन्	वीर्य गिरा		

सरित्सरस्सु शैलेषु वनेषूपवनेषु च ।
यत्र क्व चासन्नृषयस्तत्र संनिहितो हरः ॥३४॥

सरित् सरः सु शैलेषु वनेषु उपवनेषु च यत्र क्व च आसन् ऋषयः तत्र संनिहितः हरः ॥३४॥

सरित् सरः सु	नदी, सरोवरपर	**यत्र क्व च**	अथवा जहां कहीं
शैलेषु	पर्वतोंपर,	**ऋषयः आसन्**	ऋषि लोग थे
च वनेषु	तथा वनोंमें,	**तत्र हरः**	वहां शंकरजी
उपवनेषु	उपवनोंमें	**संनिहितः**	गये ॥३४॥

स्कन्ने रेतसि सोऽपश्यदात्मानं देवमायया ।
जडीकृतं नृपश्रेष्ठ संन्यवर्तत कश्मलात् ॥३५॥

स्कन्ने रेतसि सः अपश्यत् आत्मानं देवमायया जडीकृतं नृपश्रेष्ठ सन्यवर्तत कश्मलात् ॥३५॥

नृपश्रेष्ठ	नृपश्रेष्ठ !	**जडीकृतं**	मुग्ध हुआ
स्कन्ने रेतसि	वीर्यपात हो जानेपर	**अपश्यत्**	देखा तब
सः आत्मानं	उन्होंने अपनेको	**कश्मलात्**	(विषया सक्तिरूप)
देवमायया	भगवान्‌की माया द्वारा		इस मलिनतासे
		संन्यवर्तत	निवृत्त हो गए ॥३५॥

अथावगतमाहात्म्य आत्मनो जगदात्मनः ।
अपरिज्ञेयवीर्यस्य न मेने तदु हाद्भुतम् ॥३६॥

अथ अवगत माहात्म्य आत्मनः जगदात्मनः अपरिज्ञेय वीर्यस्य न मेने तत् उ ह अद्भुतम् ॥३६॥

अथ	तब	**माहात्म्य**	महिमा
जगदात्मनः	जगदात्मा	**अवगत**	जानकर
अपरिज्ञेय	अचिन्त्य	**तत् उ ह**	उसे निश्चय ही
वीर्यस्य आत्मनः	पराक्रम परमात्मा- की	**अद्भुतं न मेने**	अद्भुत नहीं माना ॥३६॥

तमविक्लवमव्रीडमालक्ष्य मधुसूदनः ।
उवाच परमप्रीतो बिभ्रत्स्वां पौरुषीं तनुम् ॥३७॥

तं अविक्लवं अव्रीडं आलक्ष्य मधुसूदनः उवाच परमप्रीतः बिभ्रत् स्वां पौरुषीं तनुम् ॥३७॥

तं	उन (महादेवजी, को	**बिभ्रत्**	धारण करके
अविक्लवं	विषाद रहित	**परमप्रीतः**	अत्यन्त प्रसन्न होकर
अव्रीडं	और लज्जा रहित	**मधुसूदनः**	भगवान् मधुसूदन
आलक्ष्य	देखकर	**उवाच**	बोले ॥३७॥
स्वां पौरुषीं तनुं	अपना पुरुष रूप		

श्रीभगवानुवाच–

दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थितः ।
यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यङ्ग मायया ॥३८॥

दिष्टया त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठां आत्मना स्थितः यत् मे स्त्री रूपया स्वैरं मोहितः अपि अंग मायया ॥३८॥

अङ्ग-	प्रिय-	**यत् मे**	जो मेरी
विबुधश्रेष्ठ	महादेवजी !	**स्त्री रूपया**	स्त्री रूपिणी
दिष्टया	आनन्दकी बात है कि	**मायया**	माया द्वारा
		मोहितः अपि	मोहित होनेपर भी

त्वं अधुना	आप इस समय	**आत्मना निष्ठां**	आत्म निष्ठामें
स्वां	अपनी	**स्थितः**	स्थित हो गये ।।३८।।

को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान् ।
तांस्तान्विसृजतीं भावान्दुस्तरामकृतात्मभिः ।।३९।।

कः नु मे अतितरेत् मायां विषक्तः त्वत् ऋते पुमान् तान् तान् विसृजतीं भावान् दुस्तरां अकृत् आत्मभिः ।।३९।।

अकृत् आत्मभिः	अजितेन्द्रियके लिए	**त्वत् ऋते**	आपको छोड़कर
दुस्तरां	दुस्तर	**नु कः पुमान्**	भला कौन पुरुष
तान् तान्	उन-उन हाव	**विषक्तः**	उसमें आसक्त होकर
भावान्	भावोंको		फिर
विसृजतीं	प्रकट करती	**अतितरेत्**	पार कर सकता है
मे मायां	मेरी मायाको		।।३९।।

सेयं गुणमयी माया न त्वामभिभविष्यति ।
मया समेता कालेन कालरूपेण भागशः ।।४०।।

स इयं गुणमयी माया न त्वां अभिभविष्यति मया समेता कालेन कालरूपेण भागशः ।।४०।।

कालरूपेण	काल-स्वरूप	**माया त्वां**	माया आपको
मया	मेरे द्वारा		(अब)
कालेन भागशः	कालके एक अंशसे	**अभिभविष्यति**	पराभव
समेता	संयुक्त हुई	**न**	नहीं कर सकेगी
स इयं गुणमयी	वह यह गुणमयी		।।४०।।

श्रीशुक उवाच–

एवं भगवता राजन् श्रीवत्साङ्केन सत्कृतः ।
आमन्त्र्य तं परिक्रम्य सगणः स्वालयं ययौ ।।४१।।

एवं भगवता राजन् श्रीवत्स अङ्केन सत्कृतः आमन्त्र्य तं परिक्रम्य सगणः स्व आलयं ययौ ॥४१॥

राजन्	राजन् !	**तं आमन्त्र्य**	उनकी अनुमति लेकर
एवं भगवता	इस प्रकार भगवान्	**परिक्रम्य**	परिक्रमा करके
श्रीवत्स अङ्केन	श्रीविष्णु द्वारा	**सगणः**	गणोंके साथ
सत्कृतः	सत्कृत होकर	**स्व आलयं**	अपने निवासको
		ययौ	चले गये ॥४१॥

आत्मांशभूतां तां मायां भवानीं भगवान्भवः ।
शंसतामृषिमुख्यानां प्रीत्याऽऽचष्टाथ भारत ॥४२॥

आत्म अंशभूतां तां मायां भवानीं भगवान् भवः शंसतां ऋषिमुख्यानां प्रीत्या आचष्ट अथ भारत ॥४२॥

भारत	परीक्षित !	**अंशभूतां**	अंशसे उत्पन्न
अथ	फिर	**तां मायां**	उस मायाकी
भगवान् भवः	भगवान् शंकर	**शंसतां**	प्रशंसा करते हुए
भवानीं	पार्वतीजीसे तथा	**प्रीत्या**	प्रसन्नता पूर्वक
ऋषि मुख्यानां	प्रमुख ऋषियोंसे	**आचष्ट**	बोले ॥४२॥
आत्म	परमात्माके		

श्रीमहादेव उवाच–*

अपि व्यपश्यस्त्वमजस्य मायां
परस्य पुंसः परदेवतायाः ।
अहं कलानामृषभो विमुह्ये
ययावशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः ॥४३॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अपि व्यपश्यसि त्वं अजस्य मायां परस्य पुंसः पर देवतायाः अहं कलानां ऋषभः विमुह्ये ययावशः अन्ये किं उत अस्वतन्त्राः ॥४३॥

परस्य पुंसः	परम पुरुष
पर देवतायाः	परम देवता
अजस्य मायां	अजन्माकी माया
त्वं	तुमने
अपि व्यपश्यसि	क्या भली प्रकार देखी,
कलानां	(भगवान्‌की)कलाओं में
ऋषभः	सर्वश्रेष्ठ
अहं ययावशः	मैं जिसके वशमें होकर
विमुह्ये	मोहित हो गया
उत	फिर जो
अस्वतन्त्राः	पराधीन (जीव) हैं
किं	उनकी क्या चर्चा ॥४३॥

यं मामपृच्छस्त्वमुपेत्य योगात्
समासहस्रान्त उपारतं वै ।
स एष साक्षात् पुरुषः पुराणो
न यत्र कालो विशते न वेदः ॥४४॥

यं मां अपृच्छसि त्वं उपेत्य योगात् समा सहस्र अन्त उपारतं वै स एष साक्षात् पुरुषः पुराणः न यत्र कालः विशते न वेदः ॥४४॥

समा सहस्र	एक सहस्र वर्षके
अन्त	पश्चात्
योगात्	योग साधनसे
उपारतं	उपरत
मां उपेत्य	मेरे पास आकर
त्वं यं	तुम जिनके विषयमें
अपृच्छसि	पूछती थीं
वै स एष	निश्चय वे यही
साक्षात्	साक्षात्
पुराणः पुरुषः	पुराण पुरुष हैं
यत्र न कालः	न कालका
विशते न वेदः	प्रवेश है, न वेदका ॥४४॥

श्रीशुक उवाच–

इति तेऽभिहितस्तात विक्रमः शार्ङ्गधन्वनः ।
सिन्धोर्निर्मथने येन धृतः पृष्ठे महाचलः ॥४५॥

इति ते अभिहितः तात विक्रमः शार्ङ्ग धन्वनः सिन्धोः निर्मथने येन धृतः पृष्ठे महा अचलः ॥४५॥

तात	तात परीक्षित !
इति ते	इस प्रकार तुमसे
शार्ङ्ग धन्वनः	शारङ्ग धन्वाका
विक्रमः	पराक्रम
अभिहितः	मैंने वर्णन किया
सिन्धोः निर्मथने	समुद्र-मन्थनके लिए
येन पृष्ठे	जिन्होंने पीठपर
महा अचलः	महापर्वत (मन्दर)
धृतः	धारण किया ॥४५॥

एतन्मुहुः कीर्तयतोऽनुशृण्वतो
न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित् ।
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं
समस्तसंसारपरिश्रमापहम् ॥४६॥

एतत् मुहुः कीर्तयतः अनुशृण्वतः न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित् यत् उत्तमश्लोक गुण अनुवर्णनं समस्त संसार परिश्रम अपहम् ॥४६॥

एतत् मुहुः	इसका बार-बार
कीर्तयतः	वर्णन करनेसे तथा
अनुशृण्वतः	बार-बार श्रवण करनेसे
समुद्यमः	उद्योग
क्वचित्	कभी
रिष्यते न	निष्फल नहीं होता,
यत्	क्योंकि
उत्तमश्लोक	श्रेष्ठकीर्ति
गुण	भगवान्‌के गुणोंका
अनुवर्णनं	बार-बार वर्णन
संसार समस्त	संसारके सम्पूर्ण
परिश्रम	परिश्रमोंको
अपहं	दूर करनेवाला है ॥४६॥

असदविषयमङ्घ्रि भावगम्यं प्रपन्ना-
नमृतममरवर्यानाशयत् सिन्धुमथ्यम् ।
कपटयुवतिवेषो मोहयन्यः सुरारीं-
स्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि ॥४७॥

असत् अविषयं अङ्घ्रिं भावगम्यं प्रपन्नान् अमृतं अमरवर्यान् आशयत् सिन्धुमथ्यं कपट युवति वेषः मोहयन् यः सुर अरिन् तं अहं उपसृतानां कामपूरं नतः अस्मि ॥४७॥

कपट युवति	मायासे मोहिनी	**असत् अविषयं**	असत् पुरुषोंके लिए
वेषः	रूप धारण करके		अप्राट्य
यः सुर अरिन्	देव-शत्रुओंको	**उपसृतानां**	शरणागतोंकी
मोहयन्	मोहित करके	**कामपूरं**	कामनाएँ पूर्ण
सिन्धुमथ्यं	समुद्र-मन्थनसे		करनेवाले
	उत्पन्न	**भावगम्यं**	भावनासे प्राप्त
अमृतं	अमृत		होनेवाले उन
प्रपन्नान्	शरणागत	**अङ्घ्रि नतः**	चरणोंमें नमस्कार
अमरवर्यान्	देवश्रेष्ठोंको	**अस्मि**	करता हूँ । ४७॥
आशयत्	पिलाया,		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे शङ्करमोहनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

मनुर्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः ।
सप्तमो वर्तमानो यस्तदपत्यानि मे शृणु ॥ १ ॥

मनुः विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः सप्तमः वर्तमानः यः तत् अपत्यानि मे शृणु ॥१॥

यः विवस्वतः-	जो सूर्य-	**वर्तमानः**	इस समयके
पुत्रः	पुत्र	**सप्तमः मनुः**	सातवें मनु हैं
श्राद्धदेव	श्राद्धदेव	**तत् अपत्यानि**	उनके पुत्रोंका वर्णन
इति श्रुतः	इस नामसे प्रसिद्ध	**मे शृणु**	मुझसे सुनो ॥१॥

इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च ।
नरिष्यन्तोऽथ नाभागः सप्तमो दिष्ट उच्यते ॥ २ ॥

इक्ष्वाकुः नभगः च एव धृष्टः शर्यातिः एव च नरिष्यन्तः अथ नाभागः सप्तमः दिष्ट उच्यते ॥२॥

इक्ष्वाकुः च	इक्ष्वाकु और	**नाभागः**	नाभाग
नभगः	नभग,	**सप्तमः**	सातवेंको
धृष्टः एव	धृष्ट भी	**दिष्ट उच्यते**	दिष्ट कहा जाता है ॥२॥
च शर्यातिः एव	तथा शर्याति भी,		
अथ नरिष्यन्तः	और नरिष्यन्त,		

करूषश्च पृषध्रश्च दशमो वसुमान्स्मृतः ।
मनोर्वैवस्वतस्यैते दश पुत्राः परन्तप ॥ ३ ॥

करूषः च पृषध्रः च दशमः वसुमान् स्मृतः मनोः वैवस्वतस्य एते दश पुत्राः परन्तप ॥३॥

करूषः च	करूष और	**परन्तप**	शत्रु-संतापी परीक्षि !
पृषध्रः	पृषध्र		
च दशमः	तथा दसवें	**वैवस्वतस्य**	वैवस्वत
वसुमान स्मृतः	वसुमान् कहलाते हैं,	**मनोः**	मनुके
		एते दश पुत्राः	ये दस पुत्र हुए ॥३॥

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ।
अश्विनावृभवो राजन्निन्द्रस्तेषां पुरन्दरः ॥ ४ ॥

आदित्या वसवः रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः अश्विना ऋभवः राजन् इन्द्रः तेषां पुरन्दरः ॥४॥

राजन्	राजन् !	**अश्विना**	दोनों अश्विनी कुमार
आदित्या	(द्वादश) आदित्य,		
वसवः	(आठ) वसुगण,	**ऋभवः**	तथा ऋभु लोग (देवता) हैं,
रुद्रा	(एकादश) रुद्र,		
विश्वेदेवा	विश्वेदेवा,	**पुरन्दरः**	पुरन्दर
मरुद्गणाः	(उनचास) मरुद्गण,	**तेषां इन्द्रः**	इनके इन्द्र हैं ॥४॥

कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः ।
जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः ॥ ५ ॥

कश्यपः अत्रिः वसिष्ठः च विश्वामित्रः अथ गौतमः जमदग्निः भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः ॥५॥

कश्यपः अत्रिः	कश्यप, अत्रि,	**भरद्वाज**	भरद्वाज
अथ गौतमः	गौतमके साथ	**इति**	इस प्रकार
विश्वामित्रः	विश्वामित्र	**सप्तर्षयः**	सप्तर्षि
जमदग्निः च	जमदग्नि तथा	**स्मृताः**	माने गये हैं ॥५॥

अत्रापि भगवज्जन्म कश्यपाददितेरभूत् ।
आदित्यानामवरजो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ ६ ॥

अत्र अपि भगवत् जन्म कश्यपात् अदितेः अभूत् आदित्यानां अवरजः विष्णुः वामन रूप धृक् ॥६॥

अत्र अपि	इस मन्वन्तरमें भी	**अवरजः**	सबसे छोटे पुत्रके रूपमें
कश्यपात्	कश्यपजीसे	**वामन रूप धृक्**	वामन रूपधारी
अदितेः	अदितिमें	**भगवत् विष्णुः**	भगवान् विष्णुका
आदित्यानां	अतिदि-पुत्रोंमें	**जन्म अभूत्**	अवतार हुआ ॥६॥

संक्षेपतो मयोक्तानि सप्त मन्वन्तराणि ते ।
भविष्याण्यथ वक्ष्यामि विष्णोः शक्त्यान्वितानि च ॥७॥

संक्षेपतः मया उक्तानि सप्त मन्वन्तराणि ते भविष्याणि अथ वक्ष्यामि विष्णोः शक्ति अन्वितानि च ॥७॥

मया ते	मैंने तुमसे	**मन्वन्तराणि**	मन्वन्तरोंका
संक्षेपतः	संक्षिप्त रूपसे	**उक्तानि**	वर्णन किया
विष्णोः	भगवान् विष्णुकी	**अथ**	अब
शक्ति	शक्तिसे	**भविष्याणि च**	होनेवाले (मन्वन्तरों) का भी
अन्वितानि	युक्त	**वक्ष्यामि**	वर्णन करता हूँ ॥७॥
सप्त	सात		

विवस्वतश्च द्वे जाये विश्वकर्मसुते उभे ।
संज्ञा छाया च राजेन्द्र ये प्रागभिहिते तव ॥ ८ ॥

विवस्वतः च द्वे जाये विश्वकर्म सुते उभे संज्ञा छाया च राजेन्द्र ये प्राक् अभिहिते तव ॥८॥

विश्वकर्म	विश्वकर्माकी	**द्वे जाये**	दो पत्नियां थीं
उभे सुते	दोनों पुत्रियां	**ये तव**	जिनका वर्णन तुमसे
संज्ञा च छाया	संज्ञा और छाया	**प्राक् अभिहिते**	पहिले कर चुका हूँ ॥८॥
विवस्वतः च	विवस्वानके तो		

तृतीयां वडवामेके तासां संज्ञासुतास्त्रयः ।
यमो यमी श्राद्धदेवश्छायायाश्च सुताञ्छृणु ॥ ९ ॥

तृतीयां वडवां एके तासां संज्ञा सुताः त्रयः यमः यमी श्राद्धदेवः छायायाः च सुतान् शृणु ॥९॥

वडवां	बडवा नामकी	**यमः यमी**	यमराज, यमुना,
एके तृतीयां	एकतीसरी पत्नी थी	**श्राद्धदेवः**	श्रादद्धेव मनु
तासां संज्ञा	उनमें संज्ञाके	**छायायाः च**	अब छायाके भी
त्रयः सुताः	तीन सन्तान हुई,	**सुतान् शृणु**	पुत्रोंको सुनो ॥९॥

सावर्णिस्तपती कन्या भार्या संवरणस्य या ।
शनैश्चरस्तृतीयोऽभूदश्विनौ वडवात्मजौ ॥१०॥

सावर्णिः तपती कन्या भार्या संवरणस्य या शनैश्चरः तृतीयः अभूत् अश्विनौ वडवा आत्मजौ ॥१०॥

सावर्णिः	सावर्णि और	**शनैश्चरः**	शनैश्चर
तपती कन्या	तपती नामकी कन्या	**अभूत्**	हुए
या संवरणस्य	जो संवरणकी	**वडवा आत्मजौ**	बड़वाके दो पुत्र
भार्या	पत्नी हुई	**अश्विनौ**	अश्विनी कुमार हुए
तृतीयः	तीसरे		॥१०॥

अष्टमेऽन्तर आयाते सावर्णिर्भविता मनुः ।
निर्मोकविरजस्काद्याः सावर्णितनया नृप ॥११॥

अष्टमे अन्तर आयाते सावर्णिः भविता मनुः निर्मोक विरजस्क आद्याः सावर्णि तनया नृप ॥११॥

नृप	राजन् !	**सावर्णिः मनुः**	सावर्णि मनु
अष्टमे अन्तरे	आठवें मन्वन्तरके	**भविता**	होंगे
आयाते	आनेपर	**निर्मोक**	निर्मोक

विरजस्क	विरजस्क	**सार्वणि तनया**	सार्वणिके पुत्र होंगे ॥११॥
आघाः	आदि		

तत्र देवाः सुतपसो विरजा अमृतप्रभाः ।
तेषां विरोचनसुतो बलिरिन्द्रो भविष्यति ॥१२॥

तत्र देवाः सुतपसः विरजा अमृत प्रभाः तेषां विरोचन सुतः बलिः इन्द्रः भविष्यति ॥१२॥

तत्र सुतपसः	उस समय सुतपा,	**विरोचन**	विरोचनके
विरजा	विरज और अमृत	**सुतः बलिः**	पुत्र बलि
अमृतप्रभाः	अमृतप्रभ	**तेषां इन्द्रः**	उनके इन्द्र
देवाः	(नामके) देवता होंगे	**भविष्यति**	होंगे ।१२॥

दत्त्वेमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयम् ।
राद्धमिन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति ॥१३॥

दत्त्वा इमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयं राद्धं इन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिं अवाप्स्यति ॥१३॥

पदंत्रयं	तीन पद (पृथ्वी)	**हित्वा**	छोड़कर
याचमानाय	मांगनेवाले	**इमां दत्त्वा**	यह त्रिलोकी दे दिया
विष्णवे	भगवान् विष्णुको	**ततः**	उससे (वे फिर)
यः	जिन्होंने	**सिद्धिं**	सफलता
राद्धं इन्द्रपदं	समृद्ध इन्द्र-पद	**अवाप्स्यसि**	प्राप्त करेंगे ॥१३॥

योऽसौ भगवता बद्धः प्रीतेन सुतले पुनः ।
निवेशितोऽधिके स्वर्गादधुनाऽऽस्ते स्वराडिव ॥१४॥

यः असौ भगवता बद्धः प्रीतेन सुतले पुनः निवेशितः अधिके स्वर्गात् अधुना आस्ते स्वराट् इव ॥१४॥

यः असौ	जो यह (बलि)
भगवता	भगवान् द्वारा
बद्धः	बाँध लिया गया,
पुनः प्रीतेन	फिर प्रसन्न होकर
स्वर्गात् अधिके	स्वर्गसे अधिक (ऐश्वर्यमय)
सुतले	सुतलमें
निवेशितः	प्रविष्ट कराया गया
अधुना	इस समय
स्वराट् इव	वहां इन्द्रके समान
आस्ते	रहता है ॥१४॥

गालवो दीप्तिमान्रामो द्रोणपुत्रः कृपस्तथा ।
ऋष्यशृङ्गः पितास्माकं भगवान्बादरायणः ॥१५॥

गालवः दीप्तिमान् रामः द्रोणपुत्रः कृपः तथा ऋष्यशृङ्गः पिता अस्माकं भगवान् बादरायणः ॥१५॥

गालवः	गालव,
दीप्तिमान्	दीप्तिमान्,
रामः	परशुराम,
द्रोणपुत्रः	अश्वत्थामा,
कृपः	कृपाचार्य,
ऋष्यशृङ्गः	ऋष्यशृंग,
तथा अस्माकं	तथा मेरे
पिता	पिता
भगवान्	भगवान्
बादरायणः	वेदव्यास ॥१५॥

इमे सप्तर्षयस्तत्र भविष्यन्ति स्वयोगतः ।
इदानीमासते राजन् स्वे स्व आश्रममण्डले ॥१६॥

इमे सप्तर्षयः तत्र भविष्यन्ति स्वयोगतः इदानीं आसते राजन् स्वे स्व आश्रममण्डले ॥१६॥

राजन्	राजन्
तत्र इमे	उस मन्वन्तरमें ये
स्वयोगतः	अपने योग प्रभावसे
सप्तर्षयः	सप्तर्षि
भविष्यन्ति	होंगे,
इदानीं	इस समय
स्वे स्व	अपने अपने
आश्रममण्डले	आश्रम-स्थानोंमें
आसते	रहते हैं ॥१६॥

देवगुह्यात्सरस्वत्यां सार्वभौम इति प्रभुः ।
स्थानं पुरन्दरादृधृत्वा बलये दास्यतीश्वरः ॥१७॥

देवगुह्यात् सरस्वत्यां सार्वभौम इति प्रभुः स्थानं पुरन्दरात् हित्वा बलये दास्यति ईश्वरः ॥१७॥

देवगुह्यात्	देवगुह्य नामक (ब्राह्मण) से	**ईश्वरः**	परमेश्वर (अवतार लेकर)
सरस्वत्यां	(उसकी पत्नी) सरस्वतीसे	**प्रभुः**	वे समर्थ
सार्वभौम इति	सार्वभौम इस नामसे	**पुरन्दरात्**	पुरन्दरसे उनका
		स्थानं	स्थान स्वर्ग
		हित्वा	छीनकर
		बलये दास्यति	बलिको दे देंगे ॥१७॥

नवमो दक्षसावर्णिर्मनुर्वरुणसम्भवः ।
भूतकेतुर्दीप्तकेतुरित्याद्यास्तत्सुता नृप ॥१८॥

नवमः दक्ष सावर्णिः मनुः वरुण सम्भवः भूतकेतुः दीप्तकेतुः इति आद्याः तत् सुता नृप ॥१८॥

नृप	राजन् !	**दीप्तकेतुः**	दीप्तकेतु
नवमः मनुः	नौवे मनु	**आद्याः**	आदि
वरुण सम्भवः	वरुणसे उत्पन्न	**इति तत्**	इस प्रकार उनके
दक्षसावर्णिः	दक्षसावर्णि होंगे	**सुता**	पुत्र होंगे ॥१८॥
भूतकेतुः	भूतकेतु		

पारा मरीचिगर्भाद्या देवा इन्द्रोऽद्भुतः स्मृतः ।
द्युतिमत्प्रमुखास्तत्र भविष्यन्त्यृषयस्ततः ॥१९॥

पारा मरीचिगर्भ आद्या देवा इन्द्रः अद्भुतः स्मृतः द्युतिमत् प्रमुखाः तत्र भविष्यन्ति ऋषयः ततः ॥१९॥

तत्र पारा	उस समयके पार,	**अद्भुतः इन्द्रः**	अद्भुत नामक इन्द्र
मरीचिगर्भ	मरीचिगर्भ	**स्मृतः**	कहे गये हैं,
आद्या देवा	आदि देवता और	**ततः**	उस मन्वन्तरमें

द्युतिमत् प्रमुखाः	द्युतिमान् आदि मुख्य	ऋषयः भविष्यन्ति	सप्तर्षि होंगे ॥१९॥

आयुष्मतोऽम्बुधारायामृषभो भगवत्कला ।
भविता येन संराद्धां त्रिलोकीं भोक्ष्यतेऽद्भुतः ॥२०॥

आयुष्मतः अम्बुधारायां ऋषभः भगवत् कला भविता येन संराद्धां त्रिलोकीं भोक्ष्यते अद्भुतः ॥२०॥

आयुष्मतः	आयुष्मानसे	ऋषभः भविता	ऋषभ नामसे होगा
अम्बुधारायां	(उनकी पत्नी) अम्बुधारामें	येन संराद्धां	जिनका प्रदत्त
		त्रिलोकीं	त्रिलोकीका राज्य
भगवत् कला	भगवान्का कलावतार	अद्भुतः	अद्भुत नामा इन्द्र
		भोक्ष्यते	भोगेंगे ॥२०॥

दशमो ब्रह्मसावर्णिरुपश्लोकसुतो महान् ।
तत्सुता भूरिषेणाद्या हविष्मत्प्रमुखा द्विजाः ॥२१॥

दशमः ब्रह्म सावर्णिः उपश्लोक सुतः महान् तत् सुता भूरिषेण आद्या हविष्मत् प्रमुखा द्विजाः ॥२१॥

उपश्लोक	उपश्लोकके	भूरिषेण आद्या	भूरिषेण आदि और
महान् सुतः	महान् पुत्र	हविष्मत्	हविष्मान् आदि
ब्रह्मसावर्णिः	ब्रह्मसावर्णि	प्रमुखा	प्रधान
दशमः	दसवें मनु होंगे	द्विजाः	ब्राह्मण होंगे ॥२१॥
तत् सुता	उनके पुत्र		

हविष्मान्सुकृतिः सत्यो जयो मूर्तिस्तदा द्विजाः ।
सुवासनविरुद्धाद्या देवाः शम्भुः सुरेश्वरः ॥२२॥

हविष्मान् सुकृतिः सत्यः जयः मूर्तिः तदा द्विजाः सुवासन विरुद्ध आद्या देवाः शम्भुः सुरेश्वरः ॥२२॥

हविष्मान्	हविष्मान्,
सुकृतिः	सुकृति
सत्यः जयः	सत्य, जय,
मूर्तिः	मूर्ति आदि
द्विजाः	ब्राह्मण (सप्तर्षि) होंगे
सुवासन विरुद्ध	सुवासन, विरुद्ध
आद्या देवाः	आदि देवता तथा
शम्भुः	शम्भु नामक
सुरेश्वरः	इन्द्र होंगे ॥२२॥

विष्वक्सेनो विषूच्यां तु शम्भोः सख्यं करिष्यति ।
जातः स्वांशेन भगवान्गृहे विश्वसृजो विभुः ॥२३॥

विष्वक्सेनः विषूच्यां तु शम्भोः सख्यं करिष्यति जातः स्व अंशेन भगवान् गृहे विश्वसृजः विभुः ॥२३॥

विश्वसृजः गृहे	विश्वसृजके घर
विषूच्यां तु	विषूचीसे ही
जातः स्व अंशेन	अपने अंशसे उत्पन्न
विभुः भगवान्	सर्वव्यापक भगवान्
विष्वक्सेनः	विष्वक्सेन
शम्भोः	शम्भु नामक इन्द्रसे
सख्यं	मित्रता
करिष्यति	करेंगे ॥२३॥

मनुर्वै धर्मसावर्णिरेकादशम आत्मवान् ।
अनागतास्तत्सुताश्च सत्यधर्मादयो दश ॥२४॥

मनुः वै धर्म सावर्णिः एकादशम आत्मवान् अनागताः तत् सुताः च सत्य धर्म आदयः दश ॥२४॥

एकादशम मनुः	ग्यारहवें मनु
वै आत्मवान्	निश्चय मनस्वी
धर्मसावर्णिः	धर्मसावर्णि होंगे,
अनागताः तत्	आगे होनेवाले उनके
सत्य च धर्म	सत्य तथा धर्म
आदयः	आदि
दश सुताः	दस पुत्र होंगे ॥२४॥

विहङ्गमाः कामगमा निर्वाणरुचयः सुराः ।
इन्द्रश्च वैधृतस्तेषामृषयश्चारुणादयः ॥२५॥

विहङ्गमाः कामगमा निर्वाणरुचयः सुराः इन्द्रः च वैधृतः तेषां ऋषयः च अरुण आदयः ॥२५॥

विहङ्गमाः	विहंगम,	**च तेषां इन्द्रः**	और उनका इन्द्र
कामगमा	कामगम,	**वैधृतः च**	वैधृत तथा
निर्वाणरुचयः	निर्वाणरुचि	**अरुण आदयः**	अरुण आदि
सुराः	देवता होंगे,	**ऋषयः**	सप्तर्षि होंगे ॥२५॥

आर्यकस्य सुतस्तत्र धर्मसेतुरिति स्मृतः ।
वैधृतायां हरेरंशस्त्रिलोकीं धारयिष्यति ॥२६॥

आर्यकस्य सुतः तत्र धर्म सेतुः इति स्मृतः वैधृतायां हरेः अंशः त्रिलोकीं धारयिष्यति ॥२६॥

तत्र	उस मन्वन्तरमें	**धर्म सेतुः इति**	धर्मसेतु इस नामसे
आर्यकस्य	आर्यकका	**स्मृतः**	प्रसिद्ध होकर
वैधृतायं	वैधृतासे उत्पन्न	**त्रिलोकीं**	तीनों लोकोंका
हरेः अंशः	श्रीहरिका अंश	**धारयिष्यति**	धारण करेगा ॥२६॥

भविता रुद्रसावर्णी राजन्द्वादशमो मनुः ।
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठादयः सुताः ॥२७॥

भविता रुद्रसावर्णि राजन् द्वादशमः मनुः देववान् उपदेवः च देव श्रेष्ठ आदयः सुताः ॥२७॥

राजन्	राजन् !	**च देव श्रेष्ठ**	तथा देवश्रेष्ठ
रुद्रसावर्णिः	रुद्रसावर्णि	**आदयः**	आदि
द्वादशमः मनुः	बारहवें मनु	**सुताः**	उनके पुत्र होंगे ॥२७॥
भविता	होंगे		
देववान् उपदेवः	देववान्, उपदेव		

ऋतधामा च तत्रेन्द्रो देवाश्च हरितादयः ।
ऋषयश्च तपोमूर्तिस्तपस्व्याग्नीध्रकादयः ॥२८॥

ऋतधामा च तत्र इन्द्रः देवाः च हरित आदयः ऋषयः च तपोमूर्तिः तपस्वी अग्नीध्रक आदयः ॥२८॥

तत्र	उस मन्वन्तरमें	**च ऋषयः**	और सप्तर्षि
ऋतधामा	ऋतधामा	**तपोमूर्तिः**	तपोमूर्ति,
इन्द्रः	इन्द्र	**तपस्वी च**	तपस्वी तथा
च देवाः	तथा देवता	**अग्नीध्रक**	अग्नीध्रक
हरित आदयः	हरित आदि	**आदयः**	आदि होंगे ॥२८॥

स्वधामाख्यो हरेरंशः साधयिष्यति तन्मनोः ।
अन्तरं सत्यसहसः सूनृतायाः सुतो विभुः ॥२९॥

स्वधाम आख्यः हरेः अंशः साधयिष्यति तत् मनोः अन्तरं सत्यसहसः सूनृतायाः सुतः विभुः ॥२९॥

सत्यसहसः	सत्यसहासे उत्पन्न	**विभुः तत्**	समर्थ होनेसे उसमें
सूनृतायाः सुतः	सूनृताका पुत्र	**मनोः अन्तरं**	मन्वन्तरका
स्वधाम आख्यः	स्वधामा नामक	**साधयिष्यति**	पालन करेगा ॥२९॥
हरेः अंशः	भगवान्‌का अंश		

मनुस्त्रयोदशो भाव्यो देवसावर्णिरात्मवान् ।
चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिदेहजाः ॥३०॥

मनुः त्रयोदशः भाव्यः देवसावर्णिः आत्मवान् चित्रसेन विचित्र आद्या देवसावर्णि देहजाः ॥३०॥

आत्मवान्	जितेन्द्रिय	**चित्रसेन**	चित्रसेन
देवसावर्णि	देवसावर्णि	**विचित्र आद्या**	विचित्र आदि
त्रयोदशः मनुः	तेरहवें मनु	**देवसावर्णिः**	देवसावर्णिके
भाव्यः	होंगे	**देहजाः**	पुत्र होंगे ॥३०॥

देवाः सुकर्मसुत्रामसंज्ञा इन्द्रो दिवस्पतिः ।
निर्मोकतत्त्वदर्शाद्या भविष्यन्त्यृषयस्तदा ॥३१॥

देवाः सुकर्म सुत्राम संज्ञा इन्द्रः दिवस्पतिः निर्मोक तत्त्वदर्श आद्या भविष्यन्ति ऋषयः तदा ॥३१॥

तदा सुकर्म	उस समय सुकर्म,	**निर्मोक**	निर्मोक,
सुत्राम	सुत्राम,	**तत्त्वदर्श**	तत्त्वदर्श
संज्ञा देवाः	नामक देवता,	**आद्या ऋषयः**	आदि सप्तर्षि
दिवस्पतिः	दिवस्पति नामक	**भविष्यन्ति**	होंगे ॥३१॥
इन्द्रः	इन्द्र		

देवहोत्रस्य तनय उपहर्ता दिवस्पतेः ।
योगेश्वरो हरेरंशो बृहत्यां सम्भविष्यति ॥३२॥

देवहोत्रस्य तनयः उपहर्ता दिवस्पतेः योगेश्वरः हरेः अंशः बृहत्यां सम्भविष्यति ॥३२॥

देवहोत्रस्य	देवहोत्रका	**सम्भविष्यति**	उत्पन्न होगा,
तनयः	पुत्र	**दिवस्पतेः**	वह दिवस्पति
हरेः अंशः	श्रीहरिका अंश	**उपहर्ता**	(इन्द्रत्व) देनेवाला
योगेश्वरः	योगेश्वर नामसे		होगा ॥३२॥
बृहत्यां	बृहतीसे		

मनुर्वा इन्द्रसावर्णिश्चतुर्दशम एष्यति ।
उरुगम्भीरबुद्ध्याद्या इन्द्रसावर्णिवीर्यजाः ॥३३॥

मनुः वा इन्द्र सावर्णिः चतुर्दशम एष्यति उरु गम्भीर बुद्धि आद्या इन्द्र सावर्णि वीर्यजाः ॥३३॥

चतुर्दशम मनुः	चौदवां मनु	**गम्भीरबुद्धि**	गम्भीरबुद्धि
वा	तो	**आद्या**	आदि
इन्द्रसावर्णिः	इन्द्रसावर्णि	**इन्द्रसावर्णि**	इन्द्रसावर्णिके
एष्यति	आवेगा	**वीर्यजाः**	पुत्र होंगे ॥३३॥
उरु	उरु,		

पवित्राश्चाक्षुषा देवाः शुचिरिन्द्रो भविष्यति ।
अग्निर्बाहुः शुचिः शुद्धो मागधाद्यास्तपस्विनः ॥३४॥

पवित्राः चाक्षुषा देवाः शुचिः इन्द्रः भविष्यति अग्निर्बाहुः शुचिः शुद्धः मागध आद्याः तपस्विनः ॥३४॥

पवित्राः चाक्षुषा पवित्र, चाक्षुष
देवाः देवता होंगे,
शुचिः इन्द्रः शुचि नामक इन्द्र
भविष्यति होंगे,
अग्निर्बाहुः अग्नि बाहु,
शुचिः शुद्धः शुचि, शुद्ध,
मागध आद्याः मागध आदि
तपस्विनः तपस्वी (सप्तर्षि) होंगे ॥३४॥

सत्रायणस्य तनयो बृहद्भानुस्तदा हरिः ।
वितानायां महाराज क्रियातन्तून्वितायिता ॥३५॥

सत्रायणस्य तनयः बृहद् भानुः तदा हरिः वितानायां महाराज क्रियातन्तून् वितायिता ॥३५॥

महाराज महाराज !
तदा उस मन्वन्तरमें
सत्रायणस्य सत्रायणके
वितानायां वितानासे हुए
तनयः पुत्र
हरिः श्रीहरि
बृहद् भानुः बृहद्भानु नामसे
क्रियातन्तून् कर्मकाण्डका
वितायिता विस्तार करनेवाले होंगे ॥३५॥

राजंश्चतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते ।
प्रोक्तान्येभिर्मितः कल्पो युगसाहस्रपर्ययः ॥३६॥

राजन् चतुर्दश एतानि त्रिकाल अनुगतानि ते प्रोक्तानि येभिः मितः कल्पः युगसाहस्र पर्ययः ॥३६॥

राजन् राजन् !
त्रिकाल तीनों कालोंमें
अनुगतानि होनेवाले
एतानि चतुर्दश ये चौदह मन्वन्तर
ते प्रोक्तानि तुम्हें सुना दिये,
येभिः इन्हींसे
युगसाहस्र सहस्र युगों (चतुर्युगियों) का
पर्ययः परिमित काल (एक कल्प)
मितः मापा जाता है ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टस्कन्धे मन्वन्तरानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

राजोवाच–

मन्वन्तरेषु भगवन्यथा मन्वादयस्त्विमे ।
यस्मिन्कर्मणि ये येन नियुक्तास्तद्वदस्व मे ॥ १ ॥

मन्वन्तरेषु भगवन् यथा मनु आदयः तु इमे यस्मिन् कर्मणि ये येन नियुक्ताः तत् वदस्व मे ॥१॥

भगवन्	भगवन् !	**ये यस्मिन्**	जो जिस
इमे मनु आदयः	ये मनु आदि	**कर्मणि**	कर्ममें
तु	तो	**नियुक्ताः**	लगाये गये हैं
मन्वन्तरेषु	मन्वन्तरोंमें	**तत् मे वदस्व**	वह मुझे बतलाइये
यथा येन	जैसे जिसके द्वारा		॥१॥

श्रीशुक उवाच–*

मनवो मनुपुत्राश्च मुनयश्च महीपते ।
इन्द्राः सुरगणाश्चैव सर्वे पुरुषशासनाः ॥ २ ॥

मनवः मनुपुत्राः च मुनयः च महीपते इन्द्राः सुरगणाः च एव सर्वे पुरुष शासनाः ॥२॥

महीपते	राजन् !	**इन्द्राः**	इन्द्र
मनवः च	मनु तथा	**सुरगणाः एव**	देवगण भी
मनुपुत्राः	मनुके पुत्र,	**सर्वे पुरुष**	सब परम पुरुषसे
च मुनयः	और सप्तर्षि एवं	**शासनाः**	शासित हैं ॥२॥

---

*यहाँ गीता प्रेसकी प्रतिमें 'ऋषिरुवाच' है ।

यज्ञादयो याः कथिताः पौरुष्यस्तनवो नृप ।
मन्वादयो जगद्यात्रां नयन्त्याभिः प्रचोदिताः ॥ ३ ॥

यज्ञ आदयः याः कथिताः पौरुष्यः तनवः नृप मनु आदयः जगत् यात्रां नयन्ति आभिः प्रचोदिताः ॥३॥

नृप	राजन् !	**आभिः**	इन्हींसे
याः यज्ञ आदयः	जो यज्ञ आदि	**प्रचोदिताः**	प्रेरित होकर
पौरुष्यः	परम पुरुषके	**मनु आदयः**	मनु आदि
तनवः	अवतार	**जगत् यात्रां**	संसार-व्यवहारको
कथिताः	बतलाये गए	**नयन्ति**	चलाते हैं ॥३॥

चतुर्युगान्ते कालेन ग्रस्ताञ्छ्रुतिगणान्यथा ।
तपसा ऋषयोऽपश्यन्यतो धर्मः सनातनः ॥ ४ ॥

चतुः युगान्ते कालेन ग्रस्तान् श्रुति गणान् यथा तपसा ऋषयः अपश्यन् यतः धर्मः सनातनः ॥४॥

चतुः युगान्ते	चारों युगोंका अन्त होनेपर	**यथा पश्यन्**	यथावत देखते (साक्षात् करते) हैं,
कालेन	समयके द्वारा	**यतः सनातनः**	जिससे सनातन
ग्रस्तान्	ग्रस्त (लुप्त) हुई	**धर्मः**	धर्म (चलता है) ॥४॥
श्रुति गणान्	श्रुतियोंको		
तपसा ऋषयः	तपस्यासे ऋषिगण		

ततो धर्मं चतुष्पादं मनवो हरिणोदिताः ।
युक्ताः सञ्चारयन्त्यद्धा स्वे स्वे काले महीं नृप ॥ ५ ॥

ततः धर्मं चतुष्पादं मनवः हरिणा उदिताः युक्ताः सञ्चारयन्ति अद्धा स्वे स्वे काले महीं नृप ॥५॥

नृप	राजन् !	**उदियः**	प्रेरणासे
ततः हरिणा	तब श्रीहरिकी	**युक्ताः**	सावधानी पूर्वक

स्वे स्वे काले	अपने-अपने समयमें	**अद्धा**	पूर्णतः
मनवः महीं	मनु लोग पृथ्वीपर	**सञ्चारयन्ति**	सञ्चार करते हैं ॥५॥
चतुष्पादं	चार चरणोंवाले		
धर्मं	धर्मका		

पालयन्ति प्रजापाला यावदन्तं विभागशः ।
यज्ञभागभुजो देवा ये च तत्रान्विताश्च तैः ॥ ६ ॥

पालयन्ति प्रजा पाला यावत् अन्तं विभागशः यज्ञ भाग भुजः देवा ये च तत्र अन्विताः च तैः ॥६॥

पाला	मनुपुत्र	**च ये तत्र**	तथा जो वहां पंच-यज्ञमें
विभागशः	पुत्र-पौत्रादिके क्रम विभाग द्वारा	**अन्विताः**	ऋषि, पितरादि साथ होते हैं,
यावत् अन्तं	मन्वन्तरके अन्त तक	**तैः च**	उनके साथ ही
प्रजा	प्रजाका	**यज्ञ भाग भुजः**	यज्ञका भाग भोगते हैं ॥६॥
पालयन्ति	पालन करते हैं		
देवा	देवता		

इन्द्रो भगवता दत्तां त्रैलोक्यश्रियमूर्जिताम् ।
भुञ्जानः पाति लोकांस्त्रीन् कामं लोके प्रवर्षति ॥ ७ ॥

इन्द्रः भगवता दत्तां त्रैलोक्य श्रियं ऊर्जितां भुञ्जानः पाति लोकान् त्रीन् कामं लोके प्रवर्षति ॥७॥

भगवता दत्तां	भगवान्‌की दी हुई	**त्रीन् लोकान्**	तीनों लोकोंकी
ऊर्जितां	उत्कृष्ट	**पाति**	रक्षा करते हैं
त्रैलोक्य श्रियं	त्रिलोकीकी लक्ष्मी-को	**लोके कामं**	तथा संसारमें पर्याप्त
भुञ्जानः इन्द्रः	भोगते हुए इन्द्र	**प्रवर्षति**	वर्षा करते हैं ॥७॥

ज्ञानं चानुयुगं ब्रुते हरिः सिद्धस्वरूपधृक् ।
ऋषिरूपधरः कर्म योगं योगेशरूपधृक् ॥ ८ ॥

ज्ञानं च अनुयुगं ब्रूते हरिः सिद्धस्वरूप धृक् ऋषिरूपधरः कर्म योगं योगेश रूपधृक् ॥८॥

अनुयुगं हरिः	प्रत्येक युगमें श्रीहरि	**कर्म**	कर्मकाण्डका,
सिद्धस्वरूप	सिद्धस्वरूप	**योगेश**	योगेश्वरका
धृक्	धारण करके	**रूपधृक्**	रूप धारण करके
ज्ञानं च	ज्ञानका तथा	**योगं ब्रूते**	योगका उपदेश करते हैं ॥८॥
ऋषिरूपधरः	ऋषिरूप धारण करके		

सर्गं प्रजेशरूपेण दस्यून्हन्यात् स्वराड्वपुः ।
कालरूपेण सर्वेषामभावाय पृथग्गुणः ॥ ९ ॥

सर्गं प्रजेशरूपेण दस्यून् हन्यात् स्वराट् वपुः कालरूपेण सर्वेषां अभावाय पृथक् गुणः ॥९॥

प्रजेश रूपेण	प्रजापति रूपसे	**गुणः**	गुण (सर्दी-गर्मी आदि) से
सर्गं	सृष्टि करते हैं	**कालरूपेण**	कालरूपमें
स्वराट् वपुः	सम्राट् रूपमें	**सर्वेषां**	सबके नाशका
दस्यून् हन्यात्	दस्युओंको मारते हैं,	**अभावाय**	कारण होते हैं ॥९॥
पृथक्	अलग-अलग		

स्तूयमानो जनैरेभिर्मायया नामरूपया ।
विमोहितात्मभिर्नानादर्शनैर्न च दृश्यते ॥१०॥

स्तूयमानः जनैः एभिः मायया नामरूपया विमोहित आत्मभिः नाना दर्शनैः न च दृश्यते ॥१०॥

एभिः	इस	**नाना दर्शनैः**	अनेक दर्शनशास्त्रों द्वारा
नामरूपया	नाम-रूपात्मिका	**स्तूयमानः**	वर्णित होनेपर भी
मायया	मायासे	**दृश्यते न च**	जाने नहीं ही जाते हैं ॥१०॥
विमोहित	विमोहित		
आत्मभिः जनैः	चित्त लोगों द्वारा		

एतत् कल्पविकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् ।
यत्र मन्वन्तराण्याहुश्चतुर्दश पुराविदः ॥११॥

एतत् कल्प विकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितं यत्र मन्वन्तराणि आहुः चतुर्दश पुराविदः ॥११॥

एतत् कल्प	इस प्रकार महाकल्प और	पुराविदः	पुरातत्त्व-ज्ञाताओंने
विकल्पस्य	अवान्तर कल्पोंका	चतुर्दश	चौदह
प्रमाणं	स्वरूप	मन्वन्तराणि	मन्वन्तर
परिकीर्तितं	बतला दिया	आहुः	(प्रत्येक अवान्तर कल्पमें) बतलाये
यत्र	जिनमें		हैं ॥११॥*

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

---

*यहां कल्पका अर्थ ब्रह्माजीकी पूरी आयु दो परार्ध है और विकल्पका अर्थ उनका एक दिन है।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

राजोवाच

बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धरिरयाचत ।
भूत्वेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबन्ध तम् ॥ १ ॥

बलेः पदत्रयं भूमेः कस्मात् हरिः अयाचत भूत्वा ईश्वरः कृपणवत् लब्ध अर्थः अपि बबन्धतम् ॥१॥

ईश्वरः	जगदीश्वर	**अयाचत**	मांगी
भूत्वा	होकर भी	**लब्ध अर्थः**	मनोरथ प्राप्त होनेपर
कृपणवत्	दरिद्रके समान		
हरिः बलेः	श्रीहरिने बलिसे	**अपि**	भी
पदत्रयं भूमेः	तीन-पद पृथ्वी	**तं बबन्ध**	उसे क्यों बन्धनमें डाला ॥१॥
कस्मात्	क्यों		

एतद् वेदितुमिच्छामो महत् कौतूहलं हि नः ।
यज्ञेश्वरस्य पूर्णस्य बन्धनं चाप्यनागसः ॥ २ ॥

एतत् वेदितुं इच्छामः महत् कौतूहलं हि नः यज्ञेश्वरस्य पूर्णस्य बन्धनं च अपि अनागसः ॥२॥

पूर्णस्य	पूर्णकाम	**एतत् नः**	यह हम
यज्ञेश्वरस्य	यज्ञेश्वरका (भिक्षा मांगना)	**वेदितुं**	सब जानना
		इच्छामः	चाहते हैं
अनागसः अपि	निरपराधको भी	**हि महत्**	क्योंकि हमें बहुत
बन्धनं च	बाँधना भी	**कौतूहलं**	कुतूहल है ॥२॥

श्रीशुक उवाच–

पराजितश्रीरसुभिश्च हापितो
हीन्द्रेण राजन्भृगुभिः स जीवितः ।
सर्वात्मना तानभजद् भृगून्बलिः
शिष्यो महात्मार्थनिवेदनेन ॥ ३ ॥

पराजितः श्रीः असुभिः च हापितः हि इन्द्रेण राजन् भृगुभिः स जीवितः सर्वं आत्मना तान् अभजत् भृगून् बलिः शिष्यः महात्मा अर्थ निवेदनेन ॥३॥

राजन्	राजन्	**शिष्यः**	अतः उनके शिष्य
इन्द्रेण	इन्द्र द्वारा	**महात्मा बलिः**	महात्मा बलि
पराजितः	पराजित	**सर्वं आत्मना**	सब प्रकारसे
च श्रीः	तथा लक्ष्मी एवं	**अर्थ निवेदनेन**	सर्व स्वसमर्पण
असुभिः	प्राणोंसे		करके
हापितः स	हीन किये गये वे	**तान् भृगून्**	उन भृगुनन्दन
भृगुभिः	क्योंकि वे शुक्राचार्य द्वारा		शुक्राचार्यजी
		अभजत्	सेवा करने लगे ॥३॥
जीवितः	जीवित कर दिये गये थे		

तं ब्राह्मणा भृगवः प्रीयमाणा
अयाजयन्विश्वजिता त्रिणाकम् ।
जिगीषमाणं विधिनाभिषिच्य
महाभिषेकेण महानुभावाः ॥ ४ ॥

तं ब्राह्मणा भृगवः प्रीयमाणा अयाजयन् विश्वजिता त्रिणाकं जिगीषमाणं विधिना अभिषिच्य महाभिषेकेण महानुभावाः ॥४॥

महानुभावाः	महान् प्रभावशाली	**महाभिषेकेण**	महाअभिषेक विधि-
भृगवः ब्राह्मणा	भृगुवंशी ब्राह्मणोंने		से
प्रीयमाणा	प्रसन्न होकर	**अभिषिच्य**	अभिषेक करके
त्रिणाकं	स्वर्ग विजयकी		उनसे
जिगीषमाणं	कामनासे	**विश्वजिता**	विश्वजित
तं विधिना	उन बलिकी विधि पूर्वक	**अयाजयन्**	यज्ञ कराया ॥४॥

ततो रथः काञ्चनपट्टनद्धो
हयाश्च हर्यश्वतुरङ्गवर्णाः ।
ध्वजश्च सिंहेन विराजमानो
हुताशनादास हविर्भिरिष्टात् ॥ ५ ॥

ततः रथः काञ्चन पट्टनद्धः हयाः च हर्यश्व तुरङ्ग वर्णाः ध्वजः च सिंहेन विराजमानः हुताशन आदास हविर्भिः इष्टात् ॥५॥

ततः हविर्भिः	तब हविसे	**वर्णाः**	रंगवाले
इष्टात् हुताशन	पूजित अग्निने	**हयाः च**	घोड़े तथा
काञ्चन	स्वर्णकी	**सिंहेन**	सिंहके
पट्टनद्धः	चद्दरसे मढ़ा	**विराजमानः**	चिह्नसे सुशोभि
रथः च	रथ और	**ध्वजः आदास**	ध्वजा प्रदान किया ॥५॥
हर्यश्व तुरंग	इन्द्रके घोड़ोंके समान		

धनुश्च दिव्यं पुरटोपनद्धं
तूणावरिक्तौ कवचं च दिव्यम् ।
पितामहस्तस्य ददौ च माला-
मम्लानपुष्पां जलजं च शुक्रः ॥ ६ ॥

धनुः च दिव्यं पुरट उपनद्धं तूणाः अरिक्तौ कवचं च दिव्यं पितामहः तस्य ददौ च मालां अम्लान पुष्पां जलजं च शुक्रः ॥६॥

पुरट उपनद्धं	स्वर्ण जटित
दिव्यं धनुः च	दिव्य धनुष और
अरिक्तौ तूणाः	दो अक्षय तरकश
च दिव्यं कवचं	तथा दिव्य कवच (दिया)
च पितामहः	एवं पितामह
तस्य	(प्रह्लादने) उनको
अम्लान	कभी न कुम्हलाने-वाले
पुष्पां	पुष्पोंकी
मालां ददौ च	माला दी तथा
शुक्रः	शुक्राचार्यने
जलजं	शंख दिया ॥६॥

एवं स विप्रार्जितयोधनार्थ-
स्तैः कल्पितस्वस्त्ययनोऽथ विप्रान् ।
प्रदक्षिणीकृत्य कृतप्रणामः
प्रह्लादमामन्त्र्य नमश्चकार ॥ ७ ॥

एवं स विप्र अर्जित योधन अर्थः तैः कल्पितः स्वस्त्ययनः अथ विप्रान् प्रदक्षिणीकृत्य कृत प्रणामः प्रह्लादं आमन्त्र्य नमः चकार ॥७॥

एवं विप्र	इस प्रकार ब्राह्मणों द्वारा
अर्जित	प्राप्त
योधन अर्थः	युद्ध-सामग्री तथा
तैः स्वस्त्ययनः	उनके ही द्वारा स्वस्ति वाचन
कल्पितः	किये जानेपर
अथ स	फिर उन्होंने
विप्रान्	ब्राह्मणोंकी
प्रदक्षिणीकृत्य	प्रदक्षिणा कर उन्हें
कृत प्रणामः	प्रणाम करनेके पश्चात्
प्रह्लादं	प्रह्लादजीसे
आमन्त्र्य	अनुमति लेकर
नमः चकार	उन्हें नमस्कार किया ॥७॥

अथारुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः ।
सुस्रग्धरोऽथ संनह्य धन्वी खड्गी धृतेषुधिः ॥ ८ ॥

अथ आरुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः सुस्रक् धरः अथ संनह्य धन्वी खड्गी धृत इषुधिः ॥८॥

अथ भृगुदत्तं	फिर भृगुवंशी ब्राह्मणों द्वारा प्रदत्त	**अथ संनह्य**	फिर कवच धारण किया,
दिव्यं रथं	दिव्य रथपर	**धन्वी खड्गी**	धनुष, तलवार तथा
महारथः	महारथी	**धृत इषुधिः**	तरकश धारण
आरुह्य	(बलि) चढ़कर		किया ॥८॥
सुस्रक् धरः	उत्तम माला धारण करके		

हेमाङ्गदलसद्बाहुः स्फुरन्मकरकुण्डलः ।
रराज रथमारूढो धिष्ण्यस्थ इव हव्यवाट् ॥ ९ ॥

हेम अङ्गद लसत् बाहुः स्फुरन् मकरकुण्डलः रराज रथमारूढः धिष्ण्यस्थ इव हव्यवाट् ॥९॥

हेम अङ्गद	स्वर्णके बाजूबन्दसे	**धिष्ण्यस्थ**	अग्नि कुण्डमें
लसत् बाहुः	भुजाएँ सुशोभित थीं		प्रज्वलित
मकरकुण्डलः	मकराकृति कुण्डल	**हव्यवाट् इव**	अग्निके समान
स्फुरन्	चमक रहे थे,	**रराज**	शोभित हुए ॥९॥
रथमारूढः	रथपर बैठकर		

तुल्यैश्वर्यबलश्रीभिः स्वयूथैर्दैत्ययूथपैः ।
पिबद्भिरिव खं दृग्भिर्दहद्भिः परिधीनिव ॥१०॥

तुल्य ऐश्वर्य बल श्रीभिः स्वयूथैः दैत्ययूथपैः पिबद्भिः इव खं दृक्भिः दहद्भिः परिधीन् इव ॥१०॥

खं इव	आकाशको मानो	**आत्म तुल्य**	अपने समान
पिबद्भिः	पी जायँगे	**ऐश्वर्य बल**	ऐश्वर्य, बल,
दृक्भिः	नेत्रोंसे	**श्रीभिः**	धनवाले
परिधीन्	दिशाओंको	**दैत्ययूथपैः**	दैत्य-सेनायकों रूपी
दहद्भिः इव	मानो भस्म कर देंगे ऐसे	**स्वयूथैः**	अपने दलसे ॥१०॥

वृतो विकर्षन् महतीमासुरीं ध्वजिनीं विभुः ।
ययाविन्द्रपुरीं स्वृद्धां कम्पयन्निव रोदसी ॥११॥

वृतः विकर्षन् महतीं आसुरीं ध्वजिनीं विभुः ययाः इन्द्रपुरीं स्वृद्धां कम्पयन् इव रोदसी ॥११॥

वृतः	घिरे हुए	**रोदसी**	पृथ्वीको
विभुः	समर्थ बलि	**कम्पयन् इव**	कम्पित करते हुएसे
महतीं आसुरीं	विशाल आसुरी	**स्वृद्धां इन्द्रपुरीं**	समृद्ध इन्द्रपुरीकी ओर
ध्वजिनीं	सेनाको	**ययाः**	गये ॥११॥
विकर्षन्	साथ लिए		

रम्यामुपवनोद्यानैः श्रीमद्भिर्नन्दनादिभिः ।
कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥१२॥

रम्यां उपवन उद्यानैः श्रीमद्भिः नन्दन आदिभिः कूजत् विहङ्ग-मिथुनैः गायन् मत्त मधुव्रतैः ॥१२॥

श्रीमद्भिः	शोभाशाली	**विहङ्ग-मिथुनैः**	पक्षियोंके जोड़े
नन्दन आदिभिः	नन्दन आदि	**कूजत्**	कलख करते तथा
उपवन	पुष्प-वाटिका	**मत्त मधुव्रतैः**	मतवाले भ्रमर
उद्यानैः	तथा बगीचोंसे	**गायन्**	गुंजार करते थे ॥१२॥
रम्यां	रमणीय (जिसमें)		

प्रवालफलपुष्पोरुभारशाखामरद्रुमैः ।
हंससारसचक्राह्वकारण्डवकुलाकुलाः ।
नलिन्यो यत्र क्रीडन्ति प्रमदाः सुरसेविताः ॥१३॥

प्रवाल फल पुष्प उरु भार शाखा अमरद्रुमैः हंस सारस चक्राह्व कारण्डव कुल आकुलाः नलिन्यः यत्र क्रीडन्ति प्रमदाः सुरसेविताः ॥१३॥

प्रवाल फल	पल्लव, फल,	**भार**	भारसे (झुकी)
पुष्प	पुष्पोंके	**शाखा**	डालोंवाले

अमरद्रुमैः	कल्पवृक्षोंसे (युक्त) हैं	**कुल आकुलाः**	समूहसे हलचलमय
हंस सारस	हंस, सारस,	**नलिन्यः यत्र**	सरोवरोंमें जहां
चक्राह्व	चकोर,	**सुरसेविताः**	देवताओंसे सत्कृता
कारण्डव	कारण्डव	**प्रमदाः क्रीडन्ति**	स्त्रियां क्रीडा करती हैं ॥१३॥

आकाशगङ्गया देव्या वृतां परिखभूतया ।
प्राकारेणाग्निवर्णेन साट्टालेनोन्नतेन च ॥१४॥

आकाश-गङ्गया देव्या वृतां परिखभूतया प्राकारेण अग्नि वर्णेन स अट्टालेन उन्नतेन च ॥१४॥

परिखभूतया	खाईं की भांति बनी	**उन्नतेन**	उच्च
देव्या आकाश	देवी आकाश-	**अग्नि वर्णेन**	अग्निवर्ण
गङ्गया	गङ्गासे	**प्राकारेण वृतां**	परकोटेसे घिरी हुई ॥१४॥
च	तथा		
स अट्टालेन	अट्टालिकाओं सहित		

रुक्मपट्टकपाटैश्च द्वारैः स्फटिकगोपुरैः ।
जुष्टां विभक्तप्रपथां विश्वकर्मविनिर्मिताम् ॥१५॥

रुक्मपट्ट कपाटैः च द्वारैः स्फटिक गोपुरैः जुष्टां विभक्त प्रपथां विश्वकर्म विनिर्मितां ॥१५॥

विश्वकर्म	विश्वकर्मा द्वारा	**गोपुरैः**	तोरण द्वारोंसे- युक्त है,
विनिर्मितां	बनायी हुई	**विभक्त**	(जिसमें) पृथक-पृथक
रुक्मपट्ट	स्वर्ण-पत्रसे	**प्रपथां**	मार्ग
कपाटैः	मढ़े किवाड़ोंवाले		बने हैं ॥१५॥
द्वारैः च	द्वारों तथा		
स्फटिक	स्फटिक-मणिके		

सभाचत्वररथ्याढ्यां विमानैर्न्यर्बुदैर्युताम् ।
शृङ्गाटकैर्मणिमयैर्वज्रविद्रुमवेदिभिः ॥१६॥

सभा चत्वर रथ्या आढ्यां विमानैः न्यर्बुदैः युतां शृङ्गाटकैः मणिमयैः वज्र विद्रुम वेदिभिः ॥१६॥

सभा चत्वर	सभा-भवन, चौराहों
रथ्या आढ्यां	गलियोंसे भरी हुई,
न्यर्बुदैः	दस करोड़
विमानैः युतां	विमानोंसे युक्त है,
मणिमयैः	मणिमय
शृङ्गाटकैः	कंगूरों तथा
वज्र विद्रुम	हीरे और मूंगेकी
वेदिभिः	वेदियोंसे (शोभित) है ॥१६॥

यत्र नित्यवयोरूपाः श्यामा विरजवाससः ।
भ्राजन्ते रूपवन्नार्यो ह्यर्चिर्भिरिव वह्नयः ॥१७॥

यत्र नित्य वयः रूपाः श्यामा विरजवाससः भ्राजन्ते रूपवत् नार्याः हि अर्चिभिः इव वह्नयः ॥१७॥

यत्र नित्य	जहाँ नित्य
रूपाः	नव-यौवना
श्यामा वयः	षोडश-वर्षीया
रूपवत् नार्याः	रूपवती नारियां
विरज वाससः	निर्मल वस्त्र पहिने
अर्चिभिः	ज्वालासे युक्त
वह्नयः इव	अग्निके समान
हि भ्राजन्ते	निश्चय शोभित होती हैं ॥१७॥

सुरस्त्रीकेशविभ्रष्टनवसौगन्धिकस्रजाम् ।
यत्रामोदमुपादाय मार्गं आवाति मारुतः ॥१८॥

सुरस्त्री केश विभ्रष्ट नव सौगन्धिक स्रजां यत्र आमोदं उप आदाय मार्ग आवाति मारुतः ॥१८॥

सुरस्त्री केश	देवांगनाओंके केशसे
विभ्रष्ट	गिरी हुई
नव सौगन्धिक	नवीन सुगन्धित
स्रजां आमोदं	मालाओंकी सुगन्धि
उप आदाय	ग्रहण करके
मारुतः मार्ग	पवन मार्गोंमें
आवाति	बहता है ॥१८॥

हेमजालाक्षनिर्गच्छद्धूमेनागुरुगन्धिना ।
पाण्डुरेण प्रतिच्छन्नमार्गे यान्ति सुरप्रियाः ॥१९॥

हेमजाल अक्षनिर्गच्छत् धूमेन अगुरुगन्धिना पाण्डुरेण प्रतिच्छन्न मार्गे यान्ति सुरप्रियाः ॥१९॥

हेमजाल	स्वर्णकी जाली लगी	**प्रतिच्छन्न मार्गे**	ढके मार्गोंसे
अक्षनिर्गच्छत्	खिड़कियोंसे निकलते	**सुरप्रियाः**	देव-स्त्रियां
अगुरुगन्धिना	अगुरुकी गन्धवाले	**यान्ति**	जाती हैं ॥१९॥
पाण्डुरेण धूमेन	पीले धुएँसे		

मुक्तावितानैर्मणिहेमकेतुभि-
र्नानापताकावलभीभिरावृताम् ।
शिखण्डिपारावतभृङ्गनादितां
वैमानिकस्त्रीकलगीतमंगलाम् ॥२०॥

मुक्ता वितानैः मणिहेम केतुभिः नाना पताका अवलभिः अभिः आवृतां शिखण्डि पारावत भृङ्ग नादितां वैमानिक स्त्री कलगीत मङ्गलाम् ॥२०॥

मुक्ता	मोतीकी झालरोंवाले	**शिखण्डि**	मयूर,
वितानैः	वितानोंसे	**पारावत**	कबूतर तथा
मणि हेम	मणि जटित स्वर्णकी	**भृङ्ग**	भौरोंके शब्दसे
केतुभिः	ध्वजाओंपर लगी	**नादितां**	गूंजती
नाना	अनेक प्रकारकी	**वैमानिक स्त्री**	देवांगनाओंके
पताका	पताकाओंके	**कलगीत**	मनोहर गानसे
अवलिभिः	समूहसे	**मङ्गलां**	मङ्गलमयी ॥२०॥
अभिः आवृतां	चारों ओरसे घिरी हुई,		

मृदंगशङ्खानकदुन्दुभिस्वनैः
सतालवीणामुरजर्ष्टिवेणुभिः ।

नृत्यैः सवाद्यैरुपदेवगीतकै-
मनोरमां स्वप्रभया जितप्रभाम् ॥२१॥

मृदङ्ग शङ्ख आनक दुन्दुभिः स्वनैः सताल वीणा मुरज अर्ष्टि वेणुभिः नृत्यैः सवाद्यैः उपदेव गीतकैः मनोरमां स्वप्रभया जितप्रभाम् ॥२१॥

मृदङ्ग शङ्ख	मृदंग, शंख,	**सवाद्यैः**	वाद्योंके साथ
आनक	आनक तथा	**नृत्यैः**	नृत्यों एवं
दुन्दुभिः	दुन्दुभीके	**गीतकैः**	गायनसे
स्वनैः सताल	घोषसे तालयुक्त	**मनोरमां**	मनोहर
वीणा मुरज	वीणा, मुरज,	**स्वप्रभया**	अपनी कान्तिसे
अर्ष्टि वेणुभिः	अर्ष्टि, वेणु-वंशीसे और	**जितप्रभां**	प्रभाकी अधिदेवीको भी जीत लिया है ॥२१॥
उपदेव	उपदेवताओंके		

यां न व्रजन्त्यधर्मिष्ठाः खला भूतद्रुहः शठाः ।
मानिनः कामिनो लुब्धा एभिर्हीना व्रजन्ति यत् ॥२२॥

यां न व्रजन्ति अधर्मिष्ठाः खला भूतद्रुहः शठाः मानिनः कामिनः लुब्धा एभिः हीना व्रजन्ति यत् ॥२२॥

यां अधर्मिष्ठाः	जहां अधर्मी,	**न व्रजन्ति**	नहीं जा सकते,
खला भूतद्रुहः	दुष्ट, प्राणिद्रोही,	**एभिः हीना**	इन (दोषों) से रहित लोग
शठाः मानिनः	ठग, अभिमानी,	**यत् व्रजन्ति**	जहां जाते हैं ॥२२॥
कामिनः लुब्धा	कामी, लोभी		

तां देवधानीं स वरूथिनीपति-
र्बहिः समन्ताद् रुरुधे पृतन्यया ।
आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं
दध्मौ प्रयुञ्जन्भयमिन्द्रयोषिताम् ॥२३॥

तां देवधानीं स वरूथिनीपतिः बहिः समन्तात् रुरुधे पृतन्यया आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं दध्मौ प्रयुञ्जन् भयं इन्द्र योषिताम् ॥२३॥

स	उस	**इन्द्र**	फिर इन्द्रकी
वरूथिनीपतिः	सेनापति बलिने	**योषितां**	पत्नियोंको
तां	उस	**भयं प्रयुञ्जन्**	भयभीत करते हुए
देवधानीं	देवराजधानीको	**आचार्यदत्तं**	शुक्राचार्यका दिया
बहिः समन्तात्	बाहर चारों ओरसे	**महास्वनं**	बहुत शब्द करने-
पृतन्यया	सेना द्वारा		वाला
रुरुधे	रोक (घेर) दिया	**जलजं दध्मौ**	शंख बजाया ॥२३॥

मघवांस्तमभिप्रेत्य बलेः परममुद्यमम् ।
सर्वदेवगणोपेतो गुरुमेतदुवाच ह ॥२४॥

मघवान् तं अभिप्रेत्य बलेः परमं उद्यमं सर्व देवगण उपेतः गुरुं एतत् उवाच ह ॥२४॥

तं बलेः	उस बलिका	**गुरुं उपेतः**	गुरु वृहस्पतिके पास
परमं उद्यमं	महान उद्योग		जाकर
अभिप्रेत्य	जानकर	**ह एतत् उवाच**	निश्चय यह बोले
मघवान्	इन्द्र		॥२४॥
सर्व देवगण	सब देवताओंके साथ		

इन्द्र उवाच—*

भगवन्नुद्यमो भूयान्बलेर्नः पूर्ववैरिणः ।
अविषह्यमिमं मन्ये केनासीत्तेजसोर्जितः ॥२५॥

भगवन् उद्यमः भूयान् बलेः नः पूर्व वैरिणः अविषह्यं इमं मन्ये केन आसीत् तेजसा ऊर्जितः ॥२५॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भगवन्	भगवन् !	मन्ये	मानता हूँ
नः पूर्वं वैरिणः	हमारे पहिलेके शत्रु	केन तेजसा	किसके तेजसे यह
बलेः भूयान्	बलिका बड़ा भारी	ऊर्जितः	अभिवृद्ध हुआ है
उद्यमः	उद्योग है,		॥२५॥
इमं अविषह्यं	इसे (मैं) असहनीय		

नैनं कश्चित् कुतो वापि प्रतिव्योढुमधीश्वरः ।
पिबन्निव मुखेनेदं लिहन्निव दिशो दश ।
दहन्निव दिशो दृग्भिः संवर्ताग्निरिवोत्थितः ॥२६॥

न एनं कश्चित् कुतः वा अपि प्रतिव्योढुं अधीश्वरः पिबन् इव मुखेन इदं लिहन् इव दिशः दश दहन् इव दिशः दृक्भिः संवर्त अग्निः इव उत्थितः ॥२६॥

मुखेन इदं	मुखके द्वारा इस संसारको	अधीश्वरः न	समर्थ नहीं है
		दृक्भि दिशः	नेत्रोंसे दिशाओंको
पिबन् इव	पी जातेके समान	दहन् इव	जलाता हुआ-सा
दिशः दश	दसो दिशाओंको	संवर्त	प्रलयकालीन
लिहन् इव	चाट जातेके समान	अग्निः इव	अग्निके समान
कश्चित् वा	कोई भी या	उत्थितः	उठा आ रहा है
कुतः अपि	किसी भी		॥२६॥
प्रतिव्योढुं	(इसे) रोकनेमें		

ब्रूहि कारणमेतस्य दुर्धर्षत्वस्य मद्रिपोः ।
ओजः सहो बलं तेजो यत एतत्समुद्यमः ॥२७॥

ब्रूहि कारणं एतस्य दुर्धर्षत्वस्य मत् रिपोः ओजः सहः बलं तेजः यत एतत् समुद्यमः ॥२७॥

एतस्य मत्	इस मेरे	तेजः कारणं	तेजका कारण
रिपोः	शत्रुके	ब्रूहि	बतलाइये
दुर्धर्षत्वस्य	दुर्धर्षताका और	यत एतत्	जिससे यह
ओजः सहः	इन्द्रिय बल, मनोबल,	समुद्यमः	महान् उद्योग कर
बलं	देहबल एवं		रहा है ॥२७॥

वृहस्पतिरुवाच—*

जानामि मघवञ्छत्रोरुन्नतेरस्य कारणम् ।
शिष्यायोपभृतं तेजो भृगुभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥२८॥

जानामि मघवन् शत्रोः उन्नतेः अस्य कारणं शिष्याय उपभृतं तेजः भृगुभिः ब्रह्मवादिभिः ॥२८॥

मघवन् शत्रोः	इन्द्र ! शत्रुकी	**भृगुभिः**	भृगुवंशी ब्राह्मणोंने
अस्य उन्नतेः	इस उन्नतिका	**शिष्याय तेजः**	शिष्यके लिए तेजक
कारणं जानामि	कारण मैं जानता हूँ	**उपभृतं**	सम्पादन किया है ॥२८॥
ब्रह्मवादिभिः	वेदवादी		

भवद्विधो भवान्वापि वर्जयित्वेश्वरं हरिम् ।
नास्य शक्तः पुरः स्थातुं कृतान्तस्य यथा जनाः ॥२९॥

भवत् विधः भवान् वा अपि वर्जयित्वा ईश्वरं हरिं न अस्य शक्तः पुरः स्थातुं कृतान्तस्य यथा जनाः ॥२९॥

ईश्वरं हरिं	सर्वेश्वर श्रीहरिको	**जनाः**	साधारण लोग,
वर्जयित्वा	छोड़कर	**अस्य पुरः**	इसके सामने
भवत् विधः	तुम्हारे समान	**स्थातुं शक्तः**	ठहरनेमें समर्थ
वा भवान् अपि	अथवा तुम स्वयं भी	**न**	नहीं हो ॥२९॥
यथा कृतान्तस्य	जैसे कालके सामने		

तस्मान्निलयमुत्सृज्य यूयं सर्वे त्रिविष्टपम् ।
यात कालं प्रतीक्षन्तो यतः शत्रोर्विपर्ययः ॥३०॥

तस्मात् निलयं उत्सृज्य यूयं सर्वे त्रिविष्टपं यात कालं प्रतीक्षन्तः यतः शत्रोः विपर्ययः ॥३०॥

---

*यहां अन्य प्रतियोंमें 'गुरुरुवाच' है ।

तस्मात्	इसलिए	**कालं**	उस समयकी
त्रिविष्टपं	स्वर्गके	**प्रतीक्षन्तः**	प्रतीक्षा करते हुए
निलयं	घरको	**यूयं सर्वे**	तुम सब लोग
उत्सृज्य	छोड़कर	**यात**	कहीं चले जाओ
यतः शत्रोः	जिससे शत्रुका		॥३०॥
विपर्ययः	उलटा समय आवे		

एष विप्रबलोदर्कः सम्प्रत्यूर्जितविक्रमः ।
तेषामेवापमानेन सानुबन्धो विनङ्क्षयति ॥३१॥

एष विप्रबल उदर्कः सम्प्रति ऊर्जित विक्रमः तेषां एव अपमानेन स अनुबन्धः विनङ्क्ष्यति ॥३१॥

विप्रबल उदर्कः	ब्राह्मणोंके बलका सूर्योदय होनेके कारण	**तेषां एव**	उन (ब्राह्मणों) का ही
		अपमानेन	अपमान करनेसे
सम्प्रति एष ऊर्जित विक्रमः	इस समय यह पराक्रम प्राप्त है,	**स अनुबन्धः**	सम्बन्धियों सहित
		विनङ्क्ष्यति	नष्ट हो जायगा ॥३१॥

श्रीशुक उवाच—*

एवं सुमन्त्रितार्थास्ते गुरुणार्थानुदर्शिना ।
हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुर्गीर्वाणाः कामरूपिणः ॥३२॥

एवं सुमन्त्रित अर्थाः ते गुरुणा अर्थ अनुदर्शिना हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुः गीर्वाणाः कामरूपिणः ॥३२॥

एवं	इस प्रकार	**गुरुणा**	गुरुसे
अर्थ अनुदर्शिना	ठीक सच्चा स्वार्थ जाननेवाले	**सुमन्त्रित**	प्रयोजनका भली प्रकार

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अर्थाः	विचार करके	**गीर्वाणाः**	देवता
ते	वे	**त्रिविष्टपं**	स्वर्ग
कामरूपिणः	इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले	**हित्वा**	छोड़कर
		जग्मुः	चले गये ॥३२॥

देवेष्वथ निलीनेषु बलिर्वैरोचनः पुरीम् ।
देवधानीमधिष्ठाय वशं निन्ये जगत्त्रयम् ॥३३॥

देवेषु अथ निलीनेषु बलिः वैरोचनः पुरीं देवधानीं अधिष्ठाय वशं निन्ये जगत् त्रयम् ॥३३॥

अथ देवेषु निलीनेषु	तब देवताओंके भली प्रकार छिप-जानेपर	**पुरीं**	पुरीपर
		अधिष्ठाय	अधिकार करके
वैरोचनः	विरोचननन्दन	**जगत् त्रयं**	त्रिलोकीको
बलिः	बलिने	**वशं निन्ये**	वशमें कर लिया ॥३३॥
देवधानीं	देवराजधानी		

तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः ।
शतेन हयमेधानामनुव्रतमयाजयन् ॥३४॥

तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः शतेन हयमेधानां अनुव्रतं अयाजयन् ॥३४॥

शिष्यवत्सलाः	शिष्यपर प्रेम रखने-वाले	**विश्वजयिनं**	विश्व-विजयी
		शिष्यं	शिष्यसे
भृगवः	भृगुवंशी ब्राह्मणोंने	**हयमेधानां शतेन**	सौ अश्वमेघ-यज्ञ
तं अनुव्रतं	उस अनुगत	**अयाजयन्**	कराने लगे ॥३४॥

ततस्तदनुभावेन भुवनत्रयविश्रुताम् ।
कीर्तिं दिक्षु वितन्वानः स रेज उडुराडिव ॥३५॥

ततः तत् अनुभावेन भुवनत्रय विश्रुतां कीर्तिं दिक्षु वितन्वानः स रेज उडुराड इव ॥३५॥

ततः तत्	तब उन (यज्ञों) के	**कीर्तिं दिक्षु**	कीर्तिको दिशाओंमें
अनुभावेन	प्रभावसे	**वितन्वानः**	फैलाते हुए
भुवनत्रय	त्रिलोक	**उडुराड इव**	चन्द्रमाके समान
विश्रुतां	विख्यात	**स रेज**	वे शोभित हुए ॥३५॥

बुभुजे च श्रियं स्वृद्धां द्विजदेवोपलम्भिताम् ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामनाः ॥३६॥

बुभुजे च श्रियं स्वृद्धां द्विजदेव उपलम्भितां कृतकृत्यं इव आत्मानं मन्यमानः महामनाः ॥३६॥

कृतकृत्यं इव	कृतकृत्यके समान	**उपलम्भितां**	प्राप्त करायी हुई
आत्मानं	अपनेको	**च स्वृद्धां**	तथा स्वयं बढ़ायी हुई
मन्यमानः	मानते हुए		
महामनाः	उदारचित्त बलि	**श्रियं बुभुजे**	लक्ष्मीको भोगने लगे ॥
द्विजदेव	ब्राह्मण देवताओं द्वारा		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्याय: ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीशक उवाच-

एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमातादितिस्तदा ।
हृते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्यतप्यदनाथवत् ॥ १ ॥

एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमाता अदितिः तदा हृते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्यतप्यत् अनाथवत् ॥१॥

एवं	इस प्रकार	**तदा देवमाता**	तब देवताओंकी माता
पुत्रेषु नष्टेषु	पुत्रोंके छिप जानेपर	**अदितिः**	अदिति
त्रिविष्टपे	स्वर्गके	**अनाथवत्**	अनाथाकी भांति
दैत्यैः हृते	दैत्यों द्वारा छीन लिये जानेपर	**पर्यतप्यत्**	संताप करने लगीं ॥१॥

एकदा कश्यपस्तस्या आश्रमं भगवानगात् ।
निरुत्सवं निरानन्दं समाधेर्विरतश्चिरात् ॥ २ ॥

एकदा कश्यपः तस्य आश्रमं भगवान् अगात् निरुत्सवं निरानन्दं समाधेः विरतः चिरात् ॥२॥

चिरात्	बहुत समयसे	**तस्य निरुत्सवं**	उसके उत्सवहीन,
समाधेः	समाधिमें रहकर	**निरानन्दं**	आनन्दहीन
विरतः	उपरत हुए	**आश्रमं**	आश्रममें
भगवान् कश्यपः	भगवान् कश्यप	**अगात्**	आये ॥२॥

स पत्नीं दीनवदनां कृतासनपरिग्रहः ।
सभाजितो यथान्यायमिदमाह कुरूद्वह ॥ ३ ॥

स पत्नीं दीनवदनां कृत आसन परिग्रहः सभाजितः यथा न्यायं इदं आह कुरुद्वह ॥३॥

कुरुद्वह	कुरुनन्दन परीक्षित !	**परिग्रहः कृतः**	स्वीकार करके
यथा न्यायं	नियमानुसार	**दीनवदनां**	खिन्नमुखी
सभाजितः	सत्कार पाकर	**पत्नीं**	पत्नीसे
आसन	आसन	**स इदं आह**	वे यह बोले ॥३॥

कश्यप उवाच—*

अप्यभद्रं न विप्राणां भद्रे लोकेऽधुनाऽऽगतम् ।
न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योश्छन्दानुवर्तिनः ॥ ४ ॥

अपि अभद्रं न विप्राणां भद्रे लोके अधुना आगतं न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योः छन्द अनुवर्तिनः ॥४॥

भद्रे	कल्याणी !	**अनुवर्तिनः**	रहनेवाले
विप्राणां	ब्राह्मणोंका तो कहीं	**लोकस्य न**	लोकका तो नहीं
न	नहीं,	**अधुना**	इस समय कोई
अपि	अथवा	**अभद्रं**	अमङ्गल
धर्मस्य न	धर्मका तो नहीं या	**आगतं**	आ गया है ॥४॥
मृत्योः छन्द	मृत्युके वशमें		

अपि वाकुशलं किञ्चित् गृहेषु गृहमेधिनि ।
धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम् ॥ ५ ॥

अपि वा अकुशलं किञ्चित् गृहेषु गृहमेधिनि धर्मस्य अर्थस्य कामस्य यत्र योगः हि अयोगिनाम् ॥५॥

गृहमेधिनि	गृहस्वामिनी !	**यत्र गृहेषु**	जिस घरमें (रहनेसे)
हि	क्योंकि	**अयोगिनां**	योग न करनेवालों-को भी

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

योगः	योगका फल मिल जाता है, वहां	**किञ्चित्**	कुछ
धर्मस्य अर्थस्य	धर्मका, अर्थका या	**अपि वा**	भी क्या
कामस्य	कामके मिलनेमें	**अकुशलं**	हानि हुई है ॥५॥

अपि वातिथयोऽभ्येत्य कुटुम्बासक्तया त्वया ।
गृहादपूजिता याताः प्रत्युत्थानेन वा क्वचित् ॥ ६ ॥

अपि वा अतिथयः अभि एत्य कुटुम्ब आसक्तया त्वया गृहात् अपूजिता याताः प्रत्युत्थानेन वा क्वचित् ॥६॥

वा क्वचित्	अथवा कभी	**प्रत्युत्थानेन**	स्वागतमें उठकर खड़े होनेसे
कुटुम्ब	कुटुम्बमें	**अपि**	भी
आसक्तया	आसक्त	**अपूजिता**	सत्कार पाये बिना
त्वया गृहात्	तुम्हारे द्वारा घरसे	**याताः**	चले गये ॥६॥
अतिथयः	अतिथि		
अभि एत्य	यहां आकर		

गृहेषु येष्वतिथयो नार्चिताः सलिलैरपि ।
यदि निर्यान्ति ते नूनं फेरुराजगृहोपमाः ॥ ७ ॥

गृहेषु येषु अतिथयः न अर्चिताः सलिलैः अपि यदि निर्यान्ति ते नूनं फेरुराज गृह उपमाः ॥७॥

येषु गृहेषु	जिन घरोंमें	**नूनं ते**	निश्चय वे
अतिथयः	अतिथिगण	**फेरुराज**	शृगालके
सलिलैः अपि	जलसे भी	**गृह उपमा**	घर (बिल) के समान हैं ॥७॥
अर्चिताः न	सत्कृत हुए बिना		
यदि निर्यान्ति	यदि चले जाते हैं तो		

अप्यग्नयस्तु वेलायां न हुता हविषा सति ।
त्वयोद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मयि कर्हिचित् ॥ ८ ॥

अपि अग्नयः तु वेलायां न हुता हविषा सति त्वया उद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मयि कर्हिचित् ॥८॥

भद्रे	कल्याणी !
मयि प्रोषिते	मेरे प्रवासमें चले जानेपर
कर्हिचित् अपि	किसी समय भी
उद्विग्नधिया	उद्विग्न चित्त होनेसे
त्वया वेलायां	तुमने (हवन) समय पर
अग्नयः तु	अग्निको तो
हविषा सति	हविष्य होनेपर भी
हुता न	कहीं आहुति न दी हो ॥८॥

यत्पूजया कामदुघान्याति लोकान्गृहान्वितः ।
ब्राह्मणोऽग्निश्च वै विष्णोः सर्वदेवात्मनो मुखम् ॥ ९ ॥

यत् पूजया कामदुघानि याति लोकान् गृह अन्वितः ब्राह्मणः अग्निः च वै विष्णोः सर्वदेव आत्मनः मुखम् ॥९॥

कामदुघानि	सब कामना पूर्ण करनेवाले
यत् पूजया	जिनकी पूजासे
गृह अन्वितः	गृहस्थ पुरुष
लोकान् याति	उत्तम लोकोंको जाता है ।
वै ब्राह्मणः	निश्चय वे ब्राह्मण
च अग्निः	तथा अग्नि
सर्वदेव	सर्वदेव
आत्मनः	स्वरूप
विष्णोः	भगवान् विष्णुके
मुखं	मुख हैं ॥९॥

अपि सर्वे कुशलिनस्तव पुत्रा मनस्विनि ।
लक्षयेऽस्वस्थमात्मानं भवत्या लक्षणैरहम् ॥१०॥

अपि सर्वे कुशलिनः तव पुत्रा मनस्विनि लक्षये अस्वस्थं आत्मानं भवत्या लक्षणैः अहम् ॥१०॥

मनस्विनि	मनस्विनी !
तव सर्वे पुत्रा	तुम्हारे सब पुत्र
कुशलिनः अपि	कुशलसे तो हैं ?
अहं लक्षणैः	मैं लक्षणोंसे
भवत्या	तुमको
अस्वस्थं	अस्वस्थ
आत्मानं	चित्त
लक्षये	लक्षित कर रहा हूँ ॥१०॥

अदितिरुवाच—

भद्रं द्विजगवां ब्रह्मन्धर्मस्यास्य जनस्य च ।
त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रं गृहमेधिन्गृहा इमे ॥११॥

भद्रं द्विजगवां ब्रह्मन् धर्मस्य अस्य जनस्य च त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रं गृहमेधिन् गृहा इमे ॥११॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन !
गृहमेधिन्	गृहस्वामी !
द्विजगवां	ब्राह्मणों, गायों,
धर्मस्य	धर्मका
च अस्य जनस्य	तथा इस लोकका
भद्रं	कुशल है,
इमे गृहा	ये घर
त्रिवर्गस्य	त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम) के
परं क्षेत्रं	मुख्य स्थान (यथावत्) हैं ॥११॥

अग्नयोऽतिथयो भृत्या भिक्षवो ये च लिप्सवः ।
सर्वं भगवतो ब्रह्मन्ननुध्यानान्न रिष्यति ॥१२॥

अग्नयः अतिथयः भृत्या भिक्षवः ये च लिप्सवः सर्वं भगवतः ब्रह्मन् अनुध्यानात् न रिष्यति ॥१२॥

ब्रह्मन् भगवतः	ब्रह्मन् ! भगवन्
अनुध्यानात्	आपका बराबर स्मरण रहनेसे
अग्नयः	अग्नि,
अतिथयः	अतिथि,
भृत्या	सेवक-वर्ग
च ये लिप्सवः	तथा जो दूसरे चाहनेवाले
भिक्षवः	भिक्षुक हैं वे
रिष्यति न	खाली (हाथ) नहीं जाते ॥१२॥

को नु मे भगवन्कामो न सम्पद्येत मानसः ।
यस्या भवान्प्रजाध्यक्ष एवं धर्मान्प्रभाषते ॥१३॥

कः नु मे भगवन् कामः न सम्पद्येत मानसः यस्या भवान् प्रजाअध्यक्ष एवं धर्मान् प्रभाषते ॥१३॥

भगवन्	भगवन्
भवान्	आप
प्रजाध्यक्ष	प्रजापति
यस्या एवं	जिसको इस प्रकार
धर्मान् प्रभाषते	धर्मोपदेश करते हैं
नु मे	भला मेरी
कः मानसः	कौन-सी मानसिक
कामः न	कामना नहीं
सम्पद्येत	पूरी होगी ॥१३॥

तवैव मारीच मनःशरीरजाः
प्रजा इमाः सत्त्वरजस्तमोजुषः ।
समो भवांस्तास्वसुरादिषु प्रभो
तथापि भक्तं भजते महेश्वरः ॥१४॥

तव एव मारीच मनः शरीर-जाः प्रजा इमाः सत्त्व रजः तमः जुषः समः भवान् तासु असुर आदिषु प्रभो तथा अपि भक्तं भजते महेश्वरः ॥१४॥

मारीच	मरीचि-नन्दन !
सत्त्व रजः तमः	सत्त्व, रज, तम
जुषः	गुणोंसे युक्त
इमाः प्रजा	यह (सम्पूर्ण) प्रजा
तव एव	आपके ही
मनः शरीर-	मन या शरीरसे
जाः	उत्पन्न है,
तासु असुर	उन असुर
आदिषु	आदिके प्रति
भवान् समः	आप समान हैं,
प्रभो तथा अपि	प्रभो ! ऐसा होनेपर भी
महेश्वरः	(स्वयं) महेश्वर भी
भक्तं	अपने भक्तोंकी
भजते	अनुकूलता रखते हैं ॥१४॥

तस्मादीश भजन्त्या मे श्रेयश्चिन्तय सुव्रत ।
हृतश्रियो हृतस्थानान्सपत्नैः पाहि नः प्रभो ॥१५॥

तस्मात् ईश भजन्त्या मे श्रेयः चिन्तय सुव्रत हृतश्रियः हृत स्थानान् सपत्नैः पाहि नः प्रभो ॥१५॥

तस्मात् ईश	इसलिए समर्थ
सुव्रत	उत्तम व्रतवाले
प्रभो	स्वामी,
मे भजन्त्या	मुझ सेवा करने-वालीके

श्रेयः चिन्तय	हितका विचार कीजिए,	**हृत स्थानान्**	पदच्युत किये गये
सपत्नैः	शत्रुओं द्वारा	**नः पाहि**	हम लोगोंकी रक्षा कीजिए ॥१५॥
हृतश्रियः	श्रीहीन		

परैर्विवासिता साहं मग्ना व्यसनसागरे ।
ऐश्वर्यं श्रीर्यशः स्थानं हृतानि प्रबलैर्मम ॥१६॥

परैः विवासिता स अहं मग्ना व्यसन सागरे ऐश्वर्यं श्रीः यशः स्थानं हृतानि प्रबलैः मम ॥१६॥

स अहं	वह मैं	**मम ऐश्वर्यं**	मेरा ऐश्वर्य
परैः	शत्रुओं द्वारा	**श्रीः यशः**	लक्ष्मी, यश,
विवासिता	निर्वासिता	**स्थानं**	स्थान
व्यसन सागरे	दुःखके समुद्रमें	**प्रबलैः**	बलवान (दैत्यों) ने
मग्ना	डूब रही हूँ	**हृतानि**	छीन लिया है ॥१६॥

यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन् ममात्मजाः ।
तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्याणकृत्तम ॥१७॥

यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन् मम आत्मजाः तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्याणकृत्तम ॥१७॥

मम आत्मजाः	मेरे पुत्र	**साधो**	साधो !
यथा तानि	जैसे उनको	**तथा धिया**	वैसा अपनी बुद्धिसे
पुनः प्रपद्येरन्	प्राप्त कर सकें	**विधेहि**	विधान कीजिए ॥१७॥
कल्याणकृत्तम	कल्याणकर्ताओंमें श्रेष्ठ		

श्रीशुक उवाच–

एवमभ्यर्थितोऽदित्या कस्तामाह स्मयन्निव ।
एवं अभ्यर्थितः अदित्या कः तां आह स्मयन् इव ।

एवं	इस प्रकार	कः तां	प्रजापति कश्यपजी
अदित्या	अदितिके द्वारा		उससे
अभ्यर्थितः	प्रार्थना करनेपर	स्मयन् इव	चकित होतेसे
		आह	बोले

कश्यप उवाच—*

अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं जगत् ॥१८॥

अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धं इदं जगत् ॥१८॥

अहो	अहो,	इदं जगत्	यह सारा संसार
विष्णोः	भगवान् विष्णुकी	स्नेहबद्धं	स्नेहके बन्धनसे
मायाबलं	मायाका कैसा बल है कि		बँधा है ॥१८॥

क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृतेः परः ।
कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम् ॥१९॥

क्व देहः भौतिकः अनात्मा क्व च आत्मा प्रकृतेः परः कस्य के पति पुत्र आद्या मोह एव हि कारणम् ॥१९॥

क्व भौतिकः	कहां तो पञ्चभूतोंसे बना	आत्मा	आत्मा,
अनात्मा देहः	अनात्मा (जड़) यह शरीर	पति पुत्र आद्या	पति-पुत्र आदि
		कस्य के	किसके कौन हैं;
च क्व प्रकृतेः	और कहाँ प्रकृतिसे	हि मोह एव	लेकिन मोह ही
परः	परे	कारणं	इसमें कारण है ॥९१॥

उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवन्तं जनार्दनम् ।
सर्वभूतगुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम् ॥२०॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवन्तं जनार्दनं सर्वभूत गुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुं ॥२०॥

भगवन्तं	भगवद्भक्त	**जगद्गुरुं**	जगद्गुरु
पुरुषं	पुरुषोंको	**जनार्दनं**	जनार्दन
सर्वभूत	सब प्राणियोंके	**वासुदेवं**	वासुदेवकी
गुहावासं	हृदय गुफामें रहने-वाले	**उपतिष्ठस्व**	उपासना करनी चाहिए ॥२०॥

स विधास्यति ते कामान्हरिर्दीनानुकम्पनः ।
अमोघा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम ॥२१॥

स विधास्यति ते कामान् हरिः दीन अनुकम्पनः अमोघा भगवद्-भक्तिः न इतर एति मतिः मम ॥२१॥

स दीन	वे दीनोंपर	**भगवद्भक्तिः**	भगवान्की भक्ति
अनुकम्पनः	दया करनेवाले	**अमोघा**	अव्यर्थ है ।
हरिः ते	श्रीहरि तुम्हारी	**इतर**	दूसरा कोई उपाय
कामान्	कामनाएँ	**मम मतिः**	मेरी बुद्धिमें
विधास्यति	पूरी करेंगे,	**न एति**	नहीं आता ॥२१॥

अदितिरुवाच–

केनाहं विधिना ब्रह्मन्नुपस्थास्ये जगत्पतिम् ।
यथा मे सत्यसङ्कल्पो विदध्यात् स मनोरथम् ॥२२॥

केन अहं विधिना ब्रह्मन् उपस्थास्ये जगत् पतिं यथा मे सत्य सङ्कल्पः विदध्यात् स मनोरथम् ॥२२॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**यथा स**	जिससे वे
अहं केन	मुझे किस	**सत्य सङ्कल्पः**	सत्य संकल्प
विधिना	विधिसे	**मे मनोरथं**	मेरा मनोरथ
जगत् पतिं	जगदीश्वरकी	**विदध्यात्**	पूर्ण करें ॥२२॥
उपस्थास्ये	उपासना करनी चाहिए		

आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तदुपधावनम् ।
आशु तुष्यति मे देवः सीदन्त्याः सह पुत्रकैः ॥२३॥

आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तत् उपधावनं आशु तुष्यति मे देवः सीदन्त्याः सह पुत्रकैः ॥२३॥

द्विजश्रेष्ठ	द्विजश्रेष्ठ !	**सीदन्त्याः मे**	कष्टपाती हुई मुझ-
त्वं तत्	आप वह		पर
उपधावनं	उपासनाकी	**देवः आशु**	(जिससे) भगवान्
विधिं आदिश	विधि बतलाइये		शीघ्र
सह पुत्रकैः	पुत्रोंके साथ	**तुष्यति**	प्रसन्न हों ॥२३॥

कश्यप उवाच—

एतन्मे भगवान्पृष्ट प्रजाकामस्य पद्मजः ।
यदाह ते प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोषणम् ॥२४॥

एतत् मे भगवान् पृष्टः प्रजा कामस्य पद्मजः यत् आह ते प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोषणम् ॥२४॥

मे प्रजा	मुझ सन्तान	**केशवतोषणं**	केशवको सन्तुष्ट
कामस्य	चाहनेवाले द्वारा		करनेवाला
भगवान् पद्मजः	भगवान् ब्रह्माने	**व्रतं आह**	व्रत बतलाया
एतत् पृष्टः	यही पूछनेपर	**ते**	(वह) तुमसे
यत्	जो (भगवान्)	**प्रवक्ष्यामि**	बतलाता हूँ ॥२४॥

फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतः ।
अर्चयेदरविन्दाक्षं भक्त्या परमयान्वितः ॥२५॥

फाल्गुनस्य अमले पक्षे द्वादश अहं पयोव्रतः अर्चयेत् अरविन्दाक्षं भक्त्या परमया अन्वितः ॥२५॥

फाल्गुनस्य	फाल्गुन
अमले पक्षे	शुक्ल पक्षमें
द्वादश अहं	बारह दिनका
पयोव्रतः	पयोव्रत करके
परमया भक्त्या	परम भक्ति
अन्वितः	सहित
अरविन्दाक्षं	कमल-नयन भगवान्‌की
अर्चयेत्	पूजा करे ॥२५॥

सिनीवाल्यां मृदाऽऽलिप्य स्नायात् क्रोडविदीर्णया ।
यदि लभ्येत वै स्रोतस्येतं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२६॥

सिनीवाल्यां मृदा आलिप्य स्नायात् क्रोडविदीर्णया यदि लभ्येत वै स्रोतसि एतं मन्त्रं उदीरयेत् ॥२६॥

सिनीवाल्यां	अमावस्याके दिन
यदि लभ्येत	यदि मिल सके तो
क्रोडविदीर्णया	सूकरकी खोदी हुई
मृदा आलिप्य	मिट्टी शरीरमें लगाकर
स्रोतसि	नदीमें
स्नायात्	स्नान करे,
एतं मन्त्रं	इस मन्त्रको
उदीरयेत्	बोले ॥२६॥

त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता ।
उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥२७॥

त्वं देवि आदि वराहेण रसायाः स्थानं इच्छता उद्धृतासि नमः तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥२७॥

देवि त्वं	'देवि ! तुम
स्थानं	(प्राणियोंको) स्थान देनेकी
इच्छता	इच्छावाले
आदि वराहेण	आदि वाराह द्वारा
रसायाः	पातालसे
उद्धृतासि	उठायी (निकाली) गई हो
तुभ्यं नमः	तुमको नमस्कार
मे पाप्मानं	मेरे पापोंको
प्रणाशय	नष्ट कर दो ॥२७॥

निर्वर्तितात्मनियमो देवमर्चेत् समाहितः ।
अर्चायां स्थण्डिले सूर्ये जले वह्नौ गुरावपि ॥२८॥

निर्वर्तित आत्म नियमः देवं अर्चेत् समाहितः अर्चायां स्थण्डिले सूर्ये जले वह्नौ गुराः अपि ॥२८॥

आत्म नियमः	अपने (नित्य-नैमित्तिक) नियम
निर्वर्तित	निपटा (पूरा) करके
समाहितः	एकाग्र-चित्तसे
अर्चायां	मूर्तिमें,
स्थण्डिले	वेदीपर,
सूर्ये जले	सूर्यमें, जलमें,
वह्नौ	अग्निमें
गुराः अपि	और गुरुमें भी
देवं अर्चेत्	भगवान्‌की पूजा करे ॥२८॥

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ।
सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥२९॥

नमः तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे सर्वभूत निवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥२९॥

सर्वभूत	समस्त प्राणियोंके
निवासाय	निवास-स्थान
साक्षिणे	सर्व साक्षी
महीयसे	सर्व व्यापक
पुरुषाय	पुरुष
भगवते	भगवान्
वासुदेवाय	वासुदेव
तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार ॥३०॥

नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च ।
चतुर्विशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे ॥३०॥

नमः अव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधान पुरुषाय च चतुर्विशत् गुणज्ञाय गुण संख्यान हेतवे ॥३०॥

अव्यक्ताय	अव्यक्त,
सूक्ष्माय	अति सूक्ष्म,
च प्रधान	तथा प्रकृति-
पुरुषाय	पुरुष रूप
चतुर्विशत्	चौबीस तत्त्वोंको
गुणज्ञाय	जाननेवाले
गुण संख्यान	गुणोंकी संख्या करनेके
हेतवे	कारण (सांख्य-शास्त्रकर्ता)
नमः	आपको नमस्कार ॥३०॥

नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःशृङ्गाय तन्तवे ।
सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ॥३१॥

नमः द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुः शृङ्गाय तन्तवे सप्त हस्ताय यज्ञाय त्रयी विद्या आत्मने नमः ॥३१॥

द्विशीर्ष्णे	(प्रायणीय एवं उदयनीय नामक यज्ञीय दो कर्म रूप) दो सिरवाले,
त्रिपदे	तीन पद (प्रातः, मध्याह्न तथा तृतीय सवन) वाले
चतुः	चार (चार वेद रूप)
शृङ्गाय	सीगोंवाले,
सप्त हस्ताय	(गायत्री आदि सात वैदिक छन्द रूप) सात हाथवाले
नमः	आपको नमस्कार
तन्तवे	परम्परा बनाये रखनेवाले
यज्ञाय	यज्ञमूर्ति
त्रयीविद्या	वेददिद्या
आत्मने	स्वरूप
नमः	आपको नमस्कार ॥३१॥

नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च ।
सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ॥३२॥

नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च सर्व विद्या अधिपतये भूतानां पतये नमः ॥३२॥

शक्तिधराय	शक्तिधर (अर्ध-नारीश्वर) को
नमः	नमस्कार
च सर्व	तथा सम्पूर्ण
विद्या अधिपतये	विद्याओंके अधीश्वर
भूतानां पतये	भूतोंके स्वामीको
नमः	नमस्कार,
रुद्राय शिवाय	रुद्र तथा शिव स्वरूप
नमः	आपको नमस्कार ॥३२॥

नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने ।
योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे ॥३३॥

नमः हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगत् आत्मने योग ऐश्वर्य शरीराय नमः ते योग हेतवे ॥३३॥

जगत् आत्मने	जगन्मय	**योग हेतवे**	योगके कारण रूप
प्राणाय	प्राण स्वरूपको	**ते हिरण्यगर्भाय**	आप हिरण्यगर्भको
नमः	नमस्कार,	**नमः**	नमस्कार ॥३३॥
योग ऐश्वर्य	योग तथा ऐश्वर्य		
शरीराय	मूर्ति		

नमस्त आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः ।
नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ॥३४॥

नमः त आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ॥३४॥

त आदिदेवाय	आप आदिदेवको	**ऋषये नराय**	ऋषिरूप नर
नमः	नमस्कार	**नारायणाय**	नारायण
ते साक्षिभूताय	आप सर्वसाक्षीको	**हरये नमः**	श्रीहरिको नमस्कार ॥३४॥
नमः	नमस्कार		

नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये ।
केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ॥३५॥

नमः मरकत श्याम वपुषे अधिगत श्रिये केशवाय नमः तुभ्यं नमः ते पीतवाससे ॥३५॥

अधिगत	लक्ष्मीको (वक्षपर)	**नमः**	नमस्कार,
श्रिये	धारण किये	**तुभ्यं केशवाय**	आप केशवको
मरकत	मरकत मणिके समान	**नमः**	नमस्कार,
		ते	आप
श्याम	श्याम	**पीतवाससे**	पीताम्बरधारीको
वपुषे	शरीर आपको	**नमः**	नमस्कार ॥३५॥

त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ ।
अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते ॥३६॥

त्व सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरद ऋषभ अतः ते श्रेयसे धीराः पादरेणुं उपासते ॥३६॥

त्वं वरद	आप वरदानियोंमें	**अतः धीराः**	अतः धीर पुरुष
ऋषभ	श्रेष्ठ,	**ते पादरेणुं**	आपकी चरणरजकी
वरेण्य	वरण करने योग्य,	**उपासते**	उपासना करते हैं
पुंसा	पुरुषोंको		॥३६॥
सर्ववरदः	सब प्रकारके वरदान देनेवाले हो,		

अन्ववर्तन्त यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः ।
स्पृहयन्त इवामोदं भगवान्मे प्रसीदताम् ॥३७॥

अनु अवर्तन्त यं देवाः श्रीः च तत् पादपद्मयोः स्पृहयन्त इव आमोदं भगवान् मे प्रसीदताम् ॥३७॥

तत् पादपद्मयोः	उनके चरण-कमलों-की	**यं अनु अवर्तन्त**	जिनके पीछे चलते हैं
आमोदं	सुगन्धिकी	**भगवान्**	वे भगवान्
स्पृहयन्त	लालसा करते हुए	**मे प्रसीदतां**	मुझपर प्रसन्न हों
इव	के समान		॥३७॥
देवाः च श्रीः	देवता तथा लक्ष्मी		

एतैर्मन्त्रैर्हृषीकेशमावाहनपुरस्कृतम् ।
अर्चयेच्छ्रद्धया युक्तः पाद्योपस्पर्शनादिभिः ॥३८॥

एतैः मन्त्रैः हृषीकेशं आवाहन पुरस्कृतं अर्चयेत् श्रद्धया युक्तः पाद्य उपस्पर्शन आदिभिः ॥३८॥

एतैः मन्त्रैः	इन मन्त्रों द्वारा	**आदिभिः**	आदिके द्वारा
आवाहन	पहिले आवाहन	**श्रद्धया युक्तः**	श्रद्धा सहित
पुरस्कृतं	करते हुए	**हृषीकेशं**	भगवान् हृषीकेशकी
पाद्य उपस्पर्शन	पाद्य, आचमन	**अर्चयेत्**	अर्चना करें ॥३८॥

अर्चित्वा गन्धमाल्याद्यैः पयसा स्नपयेद् विभुम् ।
वस्त्रोपवीताभरणपाद्योपस्पर्शनैस्ततः ।
गन्धधूपादिभिश्चार्चेद् द्वादशाक्षरविद्यया ॥३९॥

अर्चित्वा गन्ध माल्य आद्यैः पयसा स्नपयेत् विभुं वस्त्र उपवीत आभरण पाद्य उपस्पर्शनैः ततः गन्ध धूप आदिभिः च अर्चेत् द्वादशाक्षर विद्यया ॥३९॥

गन्ध माल्य	चन्दन, पुष्पमाला	**वस्त्र उपवीत**	वस्त्र, यज्ञोपवीत,
आद्यैः	आदिसे	**आभरण**	आभूषण,
अर्चित्वा	पूजन करके	**पाद्य उपस्पर्शनैः**	पाद्य, आचमन,
विभुं पयसा	प्रभुको दूधसे	**च गन्ध धूप**	और चन्दन, धूप
स्नपयेत्	स्नान करावे	**आदिभिः**	आदि द्वारा
ततः द्वादशाक्षर	फिर द्वादशाक्षर	**अर्चेत्**	(दुबारा) पूजन करे
विद्यया	मन्त्रसे		॥३९॥

श्रृतं पयसि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति ।
ससर्पिः सगुडं दत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥४०॥

शृतं पयसि नैवेद्यं शालि अन्नं विभवे सति ससर्पिः सगुडं दत्त्वा जुहुयात् मूल विद्यया ॥४०॥

सति विभवे	यदि (इतना) वैभव हो तो	**नैवेद्यं दत्त्वा**	नैवेद्य भोग लगाकर
पयसि शृतं	दूधमें पकाये	**मूल विद्यया**	मूल विद्या (द्वादशाक्षर) से
शालि अन्नं	शालिके चावलोंमें	**जुहुयात्**	(उस खीरसे) हवन
ससर्पिः सगुडं	घीके साथ गुड भी मिलाकर		करे ॥४०॥

निवेदितं तद् भक्ताय दद्याद् भुञ्जीत वा स्वयम् ।
दत्त्वाऽऽचमनमर्चित्वा ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥४१॥

निवेदितं तत् भक्ताय दद्यात् भुञ्जीत वा स्वयं दत्त्वा आचमनं अर्चित्वा ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥४१॥

तत् निवेदितं	वह भोग लगाया प्रसाद	आचमनं दत्त्वा	आचमन देकर
भक्ताय दद्यात्	भगवद् भक्तोंको दे दें	अर्चित्वा	पूजा करनेके पश्चात्
वा स्वयं	अथवा स्वयं	ताम्बूलं च	पान भी
भुञ्जीत	खाले,	निवेदयेत्	समर्पण करें ॥४१॥

जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेद् दण्डवन्मुदा ॥४२॥

जपेत् अष्टोत्तर शतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुं कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेत् दण्डवत् मुदा ॥४२॥

अष्टोत्तर शतं	एक सौ आठ बार	प्रदक्षिणं कृत्वा	प्रदक्षिणा करके
जपेत्	जप करे	मुदा	आनन्दपूर्वक
स्तुतिभिः	स्तुतिके द्वारा	भूमौ	पृथ्वीपर
प्रभुं	प्रभुका	दण्डवत् प्रणमेत्	दडवत् प्रणाम करे ॥४२॥
स्तुवीत	स्तवन करे,		

कृत्वा शिरसि तच्छेषां देवमुद्वासयेत् ततः ।
द्व्यवरान्भोजयेद् विप्रान्पायसेन यथोचितम् ॥४३॥

कृत्वा शिरसि तत् शेषां देवं उद्वासयेत् ततः द्व्य अवरान् भोजयेत् विप्रान् पायसेन यथा उचितम् ॥४३॥

तत् शेषां	उस पूजनके निर्माल्यको	शिरसि कृत्वा	मस्तकसे लगाकर
		ततः देवं	तब भगवान्का

उद्वासयेत्	विसर्जन करे,	**यथा उचितं**	यथोचित रूपमें
द्वच अवरान्	कमसे कम दो	**पायसेन**	खीरका
विप्रान्	ब्राह्मणोंको	**भोजयेत्**	भोजन करावे ॥४३॥

भुञ्जीत तैरनुज्ञातः शेषं सेष्टः सभाजितैः ।
ब्रह्मचार्यथ तद्रात्र्यां श्वोभूते प्रथमेऽहनि ॥४४॥

भुञ्जीत तैः अनुज्ञातः शेषं स इष्टः सभाजितैः ब्रह्मचार्य अथ तत् रात्र्यां श्वः भूते प्रथमे अहनि ॥४४॥

सभाजितैः	(उनको दक्षिणादिसे) सत्कृत् करके	**अथ तत् रात्र्यां**	और उस रातमें
		ब्रह्मचार्य	ब्रह्मचर्य पूर्वक रहे,
तैः अनुज्ञातः	उनसे अनुमति लेकर	**प्रथमे अहनि**	पहिले दिनका
स इष्टः	अभीष्ट जनोंके साथ	**श्वः भूते**	सवेरा होनेपर ॥४४॥
भुञ्जीत	भोजन करे,		

स्नातः शुचिर्यथोक्तेन विधिना सुसमाहितः ।
पयसा स्नापयित्वार्चेद् यावद्व्रतसमापनम् ॥४५॥

स्नातः शुचिः यथा उक्तेन विधिना सुसमाहितः पयसा स्नापयित्वा अर्चेत् यावत् व्रत समापनम् ॥४५॥

स्नातः शुचिः	स्नानादिसे पवित्र होकर	**पयसा**	दूधसे
		स्नापयित्वा	स्नान कराकर
सुसमाहितः	अत्यन्त एकाग्र-चित्तसे	**यावत् व्रत**	व्रतकी
		समापनं	समाप्ति तक
यथा उक्तेन	जैसे पहिले बतलायी गयी है	**अर्चेत्**	(प्रतिदिन) पूजा करता रहे ॥४५॥
विधिना	उस विधिसे		

पयोभक्षो व्रतमिदं चरेद् विष्ण्वर्चनादृतः ।
पूर्ववज्जुहुयादग्निं ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥४६॥

पयः भक्षः व्रतं इदं चरेत् विष्णु अर्चन आहृतः पूर्ववत् जुहुयात् अग्निं ब्राह्मणान् च अपि भोजयेत् ॥४६॥

विष्णु	भगवान् विष्णुकी	**पूर्ववत्**	पहिले (दिन) के
अर्चन	पूजामें		समान
आहृतः	आदर बुद्धि रखने-वाला	**अग्नि जुहुयात्**	अग्निमें हवन करता रहे
पयः भक्षः	दुग्ध (खीर) खाता हुआ	**च ब्राह्मणान्**	तथा ब्राह्मणोंको
इदं व्रतं चरेत्	यह व्रत करे,	**अपि**	भी
		भोजयेत्	भोजन कराया करे ॥४६॥

एवं त्वहरहः कुर्याद् द्वादशाहं पयोव्रतः ।
हरेराराधनं होममर्हणं द्विजतर्पणम् ॥४७॥

एवं तु अहः अहः कुर्यात् द्वादश अहं पयः व्रतः हरेः आराधनं होमं अर्हणं द्विज तर्पणम् ॥४७॥

एवं तु	इसी प्रकार तो	**हरेः**	श्रीहरिकी
द्वादश अहं	बारह दिन तक	**आराधनं**	आराधनाके लिए
अहः अहः	प्रत्येक दिन	**होमं अर्हणं**	हवन, पूजन,
पयः व्रतः	दुग्धाहार करता हुआ	**द्विज तर्पणं**	ब्राह्मणोंको भोजन
		कुर्यात्	कराता रहे ॥४७॥

प्रतिपद्दिनमारभ्य यावच्छुक्लत्रयोदशी ।
ब्रह्मचर्यमधःस्वप्नं स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥४८॥

प्रतिपत् दिनं आरभ्य यावत् शुक्ल त्रयोदशी ब्रह्मचर्यं अधः स्वप्नं स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥४८॥

प्रतिपत् दिनं	प्रतिपदा तिथिसे	**शुक्ल**	शुक्ल पक्षकी
आरभ्य यावत्	प्रारम्भ करके जब तक	**त्रयोदशी**	त्रयोदशी आवे
		ब्रह्मचर्यं	ब्रह्मचर्य पालन करे,

अधः स्वप्नं	नीचे (भूमिमें) सोवे,	**स्नानं चरेत्**	स्नान करे ॥४८॥
त्रिषवणं	तीनों समय (प्रातः दोपहर, शाम)		

वर्जयेदसदालापं भोगानुच्चावचांस्तथा ।
अहिंस्रः सर्वभूतानां वासुदेवपरायणः ॥४९॥

वर्जयेत् असत् आलापं भोगान् उच्च अवचान् तथा अहिंस्रः सर्वभूतानां वासुदेव परायणः ॥४९॥

असत् आलापं	मिथ्या एवं अनुचित बातचीत	**सर्वभूतानां**	सब प्राणियोंके प्रति
तथा	तथा	**अहिंस्रः**	अहिंसक रहे,
उच्च अवचान्	बड़े-छोटे	**वासुदेव**	भगवान् वासुदेवमें ही
भोगान् वर्जयेत्	भोगोंको त्याग दे,	**परायणः**	मन रखें ॥४९॥

त्रयोदश्यामथो विष्णोः स्नपनं पञ्चकैर्विभोः ।
कारयेच्छास्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदैः ॥५०॥

त्रयोदश्यां अथो विष्णोः स्नपनं पञ्चकैः विभोः कारयेत् शास्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदैः ॥५०॥

अथो त्रयोदश्यां	फिर त्रयोदशीको	**विधिना**	विधिसे
विधिकोविदैः	विधान जाननेवाले (ब्राह्मणों) द्वारा	**विभोः विष्णोः**	भगवान् विष्णुका
शास्त्रदृष्टेन	शास्त्र वर्णित	**पञ्चकैः स्नपनं**	पञ्चामृतसे स्नान
		कारयेत्	करवावे ॥५०॥

पूजां च महतीं कुर्याद् वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
चरुं निरूप्य पयसि शिपिविष्टाय विष्णवे ॥५१॥

पूजां च महतीं कुर्यात् वित्तशाठ्य विवर्जितः चरुं निरूप्य पयसि शिपिविष्टाय विष्णवे ॥५१॥

वित्तशाठ्य	धनकी कृपणता	**महतीं पूजां च**	महान् पूजा ही
विवर्जितः	बिना किये	**कुर्यात्**	करे

शिपिविष्टाय विष्णवे	यज्ञमें आविष्ट भगवान् विष्णुके लिए	**पयसि चरुं निरूप्य**	दूधमें खीर पकाकर ॥५१॥

शृतेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः ।
नैवेद्यं चातिगुणवद् दद्यात्पुरुषतुष्टिदम् ॥५२॥

शृतेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः नैवेद्यं च अति गुणवत् दद्यात् पुरुष तुष्टिदम् ॥५२॥

सुसमाहितः	अत्यन्त एकाग्र चित्तसे	**च पुरुष**	तथा भगवान्को
तेन शृतेन	उस शीतल हुई (खीर) से	**तुष्टिदं**	तृप्ति देनेवाला
पुरुषं यजेत	पुरुषोत्तमका यज्ञ करे	**अति गुणवत्**	अति गुणवान्
		नैवेद्यं दद्यात्	नैवेद्य निवेदन करे ॥५२॥

आचार्यं ज्ञानसम्पन्नं वस्त्राभरणधेनुभिः ।
तोषयेदृत्विजश्चैव तद्विद्ध्याराधनं हरेः ॥५३॥

आचार्यं ज्ञान सम्पन्नं वस्त्र आभरण धेनुभिः तोषयेत् ऋत्विजः च एव तत् विद्यात् आराधनं हरेः ॥५३॥

ज्ञान सम्पन्नं	ज्ञान सम्पन्न	**तोषयेत्**	सन्तुष्ट करे,
आचार्यं च	आचार्यको तथा	**तत् हरेः**	इसको श्रीहरिकी
ऋत्विजः एव	ऋत्विजोंको भी	**आराधनं**	आराधना
वस्त्र आभरण	वस्त्र, आभूषण,	**विद्यात्**	समझे ॥५३॥
धेनुभिः	गाय देकरके		

भोजयेत् तान् गुणवता सदन्नेन शुचिस्मिते ।
अन्यांश्च ब्राह्मणाञ्छक्त्या ये च तत्र समागताः ॥५४॥

भोजयेत् तान् गुणवता सत् अन्नेन शुचिस्मिते अन्यान् च ब्राह्मणान् शक्त्या ये च तत्र समागताः ॥५४॥

शुचिस्मिते	पवित्र मुस्कान-वाली !
च ये तत्र	तथा जो वहाँ
समागताः	आ गये हों
अन्यान्	दूसरे
ब्राह्मणान्	ब्राह्मणोंको
शक्त्या	अपनी शक्तिके अनुसार
तान् गुणवता	उनको गुणवाले
सत् अन्नेन	उत्तम अन्नका
भोजयेत्	भोजन करावे ॥५४॥

दक्षिणां गुरवे दद्यादृत्विग्भ्यश्च यथार्हतः ।
अन्नाद्येनाश्वपाकांश्च प्रीणयेत्समुपागतान् ॥५५॥

दक्षिणां गुरवे दद्यात् ऋत्विक्भ्यः च यथा अर्हतः अन्न आदिना आश्वपाकान् च प्रीणयेत् समुपागतान् ॥५५॥

यथा अर्हतः	यथा योग्य
गुरवे च	गुरुको तथा
ऋत्विक्भ्यः	ऋत्विजोंको
दक्षिणां दद्यात्	दक्षिणा देवे,
समुपागतान्	वहां आये हुए
आश्वपाकान्	चाण्डाल पर्यन्त सबको
अन्न आदिना	अन्न आदि द्वारा
प्रीणयेत्	प्रसन्न करे ॥५५॥

भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीनान्धकृपणेषु च ।
विष्णोस्तत्प्रीणनं विद्वान्भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥५६॥

भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीन अन्ध कृपणेषु च विष्णोः तत् प्रीणनं विद्वान् भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥५६॥

सर्वेषु	सब
दीन अन्ध	गरीब, अन्धे
च कृपणेषु	तथा दुःखियोंके
भुक्तवत्सु च	भोजन कर लेनेपर ही
तत्	उसे
विष्णोः	भगवान् विष्णुकी
प्रीणनं विद्वान्	तृप्ति जानकर
सह बन्धुभिः	अपने सम्बधियोंके साथ
भुञ्जीत	भोजन करे ॥५६॥

नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः ।
कारयेत्तत्कथाभिश्च पूजां भगवतोऽन्वहम् ॥५७॥

नृत्य वादित्र गीतैः च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः कारयेत् तत् कथाभिः च पूजां भगवतः अनु अहम् ॥५७॥

अनु अहं	(व्रत कालमें) प्रति-दिन	**च तत्**	तथा उन भगवान्-की
नृत्य वादित्र	नृत्य, वाद्य	**कथाभिः**	कथा द्वारा
गीतैः च	गायनसे तथा	**भगवतः पूजां**	भगवान्‌की पूजा
स्तुतिभिः	स्तुतियोंसे,	**कारयेत्**	करवाता रहे ॥५७॥
स्वस्तिवाचकैः	स्वस्तिवाचनसे,		

एतत्पयोव्रतं नाम पुरुषाराधनं परम् ।
पितामहेनाभिहितं मया ते समुदाहृतम् ॥५८॥

एतत् पयोव्रतं नाम पुरुष आराधनं परं पितामहेन अभिहितं मया ते समुदाहृतम् ॥५८॥

पितामहेन	पितामह ब्रह्माजीने	**परं आराधनं**	सर्वोत्तम आराधना
मया	मुझसे	**अभिहितं**	बतलायी थी
एतत्	यह	**ते समुदाहृतं**	वह तुम्हें बतला दी ॥५८॥
पयोव्रतं नाम	पयोव्रत नामक		
पुरुष	भगवान् पुरुषोत्तम-की		

त्वं चानेन महाभागे सम्यक्चीर्णेन केशवम् ।
आत्मना शुद्धभावेन नियतात्मा भजाव्ययम् ॥५९॥

त्वं च अनेन महाभागे सम्यक् चीर्णेन केशवं आत्मना शुद्ध भावेन नियत आत्मा भज अव्ययम् ॥५९॥

महाभागे	महाभागे !	**नियत आत्मा**	एकाग्र मनसे
आत्मना शुद्ध	अपने शुद्ध	**त्वं च अनेन**	तुम भी इसका
भावेन	भावसे	**सम्यक्**	भली प्रकार

चीर्णेन	आचरण करती	**भज**	आराधना करो
अव्ययं	अविनाशी		॥५९॥
केशवं	भगवान् केशवकी		

अयं वै सर्वयज्ञाख्यः सर्वव्रतमिति स्मृतम् ।
तपःसारमिदं भद्रे दानं चेश्वरतर्पणम् ॥६०॥

अयं वै सर्वयज्ञ आख्यः सर्वव्रतं इति स्मृतं तपः सारं इदं भद्रे दानं च ईश्वर तर्पणम् ॥६०॥

भद्रे	कल्याणी !	**सर्वव्रतं इति**	'सर्वव्रत' इस प्रकार
ईश्वर तर्पणं	सर्वेश्वरको सन्तुष्ट करनेवाला	**स्मृतं**	कहा गया है
		इदं तपः सारं	यह तपस्याका सार
वै अयं	निश्चय यही	**च दानं**	तथा नुख्य दान है
सर्वयज्ञ आख्यः	'सर्वयज्ञ' नामक		॥६०॥

त एव नियमाः साक्षात्त एव च यमोत्तमाः ।
तपो दानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यत्यधोक्षजः ॥६१॥

त एव नियमाः साक्षात् त एव च यम उत्तमाः तपः दानं व्रतं यज्ञः येन तुष्यति अधोक्षजः ॥६१॥

येन	जिनसे	**यम उत्तमाः**	उत्तम यम,
अधोक्षजः	अन्तर्यामी भगवान्	**तपः दानं**	तपस्या, दान,
तुष्यति	सन्तुष्ट हों	**व्रतं यज्ञः च**	व्रत, यज्ञ भी
त एव साक्षात्	वे ही सचमुच	**त एव**	वही हैं ॥६१॥
नियमाः	नियम हैं,		

तस्मादेतद्व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर ।
भगवान्परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति ॥६२॥

तस्मात् एतत् व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर भगवान् परितुष्टः ते वरान् आशु विधास्यति ॥६२॥

तस्मात् भद्रे	इसलिए कल्याणी !	**भगवान्**	भगवान्
प्रयता श्रद्धया	संयत चित्त श्रद्धा पूर्वक	**परितुष्टः**	सन्तुष्ट होकर
		आशु ते	शीघ्र तुम्हारी
एतत् व्रतं	इस व्रतका	**वरान्**	कामनाएँ
चर	आचरण करो	**विधास्यति**	पूर्ण करेंगे ॥६२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे ऽदितिपयोव्रतकथनं नाम षडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

इत्युक्ता सादिती राजन्स्वभर्त्रा कश्यपेन वै ।
अन्वतिष्ठद् व्रतमिदं द्वादशाहमतन्द्रिता ॥ १ ॥

इति उक्ता सा आदिती राजन् स्वभर्त्रा कश्यपेन वै अन्वतिष्ठत् व्रतं इदं द्वादश अहं अतन्द्रिता ॥१॥

राजन्	राजन्
स्वभर्त्रा	अपने पति
कश्यपेन	कश्यप द्वारा
वै इति	निश्चय पूर्वक
उक्ता	यह कहे जानेपर
अतन्द्रिता	आलस्य त्यागकर
इदं द्वादश अहं	यह बारह दिनके
व्रतं अन्वतिष्ठत्	व्रतका पालन करने लगी ॥१॥

चिन्तयन्त्येकया बुद्धया महापुरुषमीश्वरम् ।
प्रगृह्येन्द्रियदुष्टाश्वान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ २ ॥

चिन्तयन्ति एकया बुद्धया महापुरुषं ईश्वरं प्रगृह्य इन्द्रिय दुष्ट अश्वान् मनसा बुद्धिसारथिः ॥२॥

बुद्धिसारथिः	बुद्धि रूपी सारथि द्वारा
मनसा	मनके माध्यमसे
इन्द्रिय दुष्ट	इन्द्रिय रूपी
अश्वान्	बिगड़े घोड़ोंको
प्रगृह्य	नियन्त्रित करके
एकया बुद्धया	अनन्य बुद्धिसे
ईश्वरं	सर्वेश्वर
महापुरुषं	पुरुषोत्तमका
चिन्तयन्ति	चिन्तन करने लगी ॥२॥

मनश्चैकाग्रया बुद्धया भगवत्यखिलात्मनि ।
वासुदेवे समाधाय चचार ह पयोव्रतम् ॥ ३ ॥

मनः च एकाग्रया बुद्धया भगवति अखिल आत्मनि वासुदेवे समाधाय चचार ह पयोव्रतम् ॥३॥

एकाग्रया बुद्धया	एकनिष्ठ बुद्धि द्वारा
मनः च	मनको भी
अखिल आत्मनि	सर्वात्मा
वासुदेवे	वासुदेवमें
समाधाय	पूर्णतः लगाकर
ह	निश्चय पूर्वक
पयोव्रतं	पयोव्रत
चचार	करने लगी ॥३॥

तस्याः प्रादुरभूत्तात भगवानादिपूरुषः ।
पीतवासाश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ४ ॥

तस्याः प्रादुः अभूत् तात भगवान् आदिपूरुषः पीतवासाः चतुः बाहुः शङ्ख चक्र गदाधरः ॥४॥

तात	प्रिय परीक्षित !
तस्याः	उसके सम्मुख
पीतवासाः	पीताम्बरधारी
शंख चक्र	शंख, चक्र,
गदाधरः	गदाधारी
चतुः बाहुः	चतुर्भुज
आदिपुरुषः	आदिपुरुष
भगवान् प्रादुः	भगवान् प्रकट
अभूत्	हुए ॥४॥

तं नेत्रगोचरं वीक्ष्य सहसोत्थाय सादरम् ।
ननाम भुवि कायेन दण्डवत् प्रीतिविह्वला ॥ ५ ॥

तं नेत्र गोचरं वीक्ष्य सहसा उत्थाय सादरं ननाम भुवि कायेन दण्डवत् प्रीति विह्वला ॥५॥

तं नेत्र	उनको नेत्रोंके
गोचरं	सम्मुख
सहसा वीक्ष्य	अचानक देखकर
सादरं उत्थाय	आदर पूर्वक उठकर
प्रीति विह्वला	प्रेमसे विह्वल होकर
कायेन भुवि	शरीरसे पृथ्वीपर
दण्डवत्	दण्डवत
ननाम	नमस्कार किया ॥५॥

सोत्थाय बद्धाञ्जलिरीडितुं स्थिता
नोत्सेह आनन्दजलाकुलेक्षणा ।
बभूव तूष्णीं पुलकाकुलाकृति-
स्तद्दर्शनात्युत्सवगात्रवेपथुः ॥ ६ ॥

स उत्थाय बद्ध अञ्जलिः ईडितुं स्थित न उत्सेह आनन्दजल आकुल ईक्षणा बभूव तूष्णीं पुलक आकुला आकृतिः तत् दर्शन अति उत्सव गात्रवेपथुः ॥६॥

स उत्थाय	(फिर) वह उठकर	पुलक आकुल	रोमाञ्चसे पूर्ण
बद्ध अञ्जलिः	हाथ जोड़कर	आकृतिः	सम्पूर्ण शरीर
ईडितुं स्थिता	स्तुति करने खड़ी हुई; किन्तु	तत् दर्शन	उनके दर्शनके
		उत्सव	उल्लाससे
न उत्सेह	उत्साह नहीं कर सकी,	गात्रवेपथुः	कम्पित शरीर होनेसे
आनन्दजल	आनन्दाश्रुसे	तूष्णीं बभूव	चुप रह गयी ॥६॥
आकुल ईक्षणा	भरे (डबडबाये) नेत्र होनेसे,		

प्रीत्या शनैर्गद्गदया गिरा हरिं
तुष्टाव सा देव्यदितिः कुरूद्वह ।
उदीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा
रमापतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ॥ ७ ॥

प्रीत्या शनैः गद्गदया गिरा हरिं तुष्टाव सा देवी अदितिः कुरुद्वह उदीक्षती सा पिबती इव चक्षुषा रमापतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ॥७॥

कुरुद्वह	कुरुकुल पालक परीक्षित !	यज्ञपतिं	यज्ञेश्वर
		जगत्पतिं	जगन्नाथ
सा देवी	वह देवी	रमापतिं	भगवान् लक्ष्मीनाथ-
अदितिः	अदिति		को

चक्षुषा	नेत्रोंसे	**गद्गदया**	गद्गद्
पिबती इव	मानो पी जायगी	**गिरा शनैः**	वाणीसे धीरे-धीरे
उदीक्षती	(इस प्रकार) देखती हुई	**तुष्टाव**	स्तुति करने लगी ॥७॥
प्रीत्याः	प्रेमसे		

अदितिः उवाच—

यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद
तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ।
आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्य
शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥ ८ ॥

यज्ञेश यज्ञपुरुष अच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवण मङ्गल नामधेय आपन्नलोक वृजिन उपशम उदय अद्य शं नः कृधीश भगवन् असि दीननाथः ॥८॥

आपन्नलोक	शरणागत लोगोंके	**श्रवण**	सुननेसे ही
वृजिन	कष्टको	**मङ्गल**	मङ्गल करनेवाले
उपशम	दूर करनेके लिए	**नामधेय**	नामोंवाले,
अद्य उदय	आज प्रगट हुए	**कृधीश भगवन्**	अधीश्वर भगवान् (क्योंकि आप)
यज्ञेश	यज्ञेश्वर,		
यज्ञपुरुष	यज्ञपुरुष,	**दीननाथः**	दीनोंके नाथ
अच्युत	अच्युत,	**असि**	हो
तीर्थपाद	पवित्र-चरण,	**नः शं**	हमारा कल्याण करो ॥८॥
तीर्थश्रवः	पवित्रकीर्ति,		

विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय
स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय भूम्ने ।
स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोध-
व्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥ ९ ॥

विश्वाय विश्वभवन स्थिति संयमाय स्वैरं गृहीत पुरुशक्ति गुणाय भूम्ने स्वस्थाय शश्वत् उपबृंहित पूर्णबोध व्यापादित आत्मतमसे हरये नमः ते ॥९॥

विश्वभवन	विश्वकी उत्पत्ति,	**स्वस्थाय**	अपने स्वरूपमें स्थित
स्थिति संयमाय	स्थिति, प्रलयके लिए,	**शश्वत्**	निरन्तर
स्वैरं	स्वेच्छासे	**उपबृंहित**	अभिवृद्ध
पुरुशक्ति	बहुत-सी शक्तियों	**पूर्णबोध**	पूर्णज्ञानसे
गुणाय	(तथा) गुणोंको	**आत्मतमसे**	आत्मान्धकारको
गृहीत	ग्रहण करनेवाले	**व्यापादित**	नष्ट करनेवाले
विश्वाय भूम्ने	विश्व रूप, सर्व व्यापक,	**हरये ते**	श्रीहरि, आपको
		नमः	नमस्कार ॥९॥

आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मी-
र्द्यौर्भूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः ।
ज्ञानं च केवलमनन्त भवन्ति तुष्टात्
त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥१०॥

आयुः परं वपुः अभीष्टं अतुल्य लक्ष्मीः द्यौः भूः रसाः सकल योग गुणाः त्रिवर्गः ज्ञानं च केवलं अनन्त भवन्ति तुष्टात् त्वत्तः नृणां किमु सपत्न जय आदिः आशीः ॥१०॥

अनन्त भवन्ति	अनन्त ! आपके	**लक्ष्मीः**	ऐश्वर्य,
तुष्टात्	सन्तुष्ट होनेपर	**सकल योग**	योगके सब
नृणां	मनुष्योंको	**गुणाः**	गुण (सिद्धियाँ)
परम् आयुः	परमायु,	**त्रिवर्गः**	त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम)
अभीष्टं वपुः	ईच्छित शरीर,		
अतुल्य	अतुलनीय	**च केवलं**	तथा कैवल्य मोक्ष
द्यौः भूः	स्वर्ग, पृथ्वी,	**ज्ञानं**	देनेवाला ज्ञान
रसाः	पातालका		

भवन्ति	प्राप्त हो जाता है (फिर)	**आदिः**	आदि
सपत्न जय	शत्रुओंपर विजय	**आशीः किमु**	कामनोंकी तो बात ही क्या ॥१०॥

श्रीशुक उवाच-

अदित्यैवं स्तुतो राजन्भगवान्पुष्करेक्षणः ।
क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानामिति होवाच भारत ॥११॥

अदित्या एवं स्तुतः राजन् भगवान् पुष्कर ईक्षणः क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानां इति ह उवाच भारत ॥११॥

राजन् भारत	राजन् परीक्षित !	**पुष्कर ईक्षणः**	कमलनयन
अदित्या एवं	अदितिके इस प्रकार	**भगवान्**	भगवान्
स्तुतः	स्तुति करनेपर	**ह इति**	निश्चय पूर्वक यह
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके	**उवाच**	बोले ॥१६॥
क्षेत्रज्ञः	अन्तर्यामी		

श्रीभगवानुवाच-

देवमातर्भवत्या मे विज्ञातं चिरकाङ्क्षितम् ।
यत् सपत्नैर्हृतश्रीणां च्यावितानां स्वधामतः ॥१२॥

देवमातः भवत्या मे विज्ञातं चिरकाङ्क्षितं यत् सपत्नैः हृत श्रीणां च्यावितानां स्वधामतः ॥१२॥

देवमातः	देवमाता	**यत् सपत्नैः**	क्योंकि शत्रुओं द्वारा
भवत्या	आपकी	**हृत श्रीणां**	ऐश्वर्य छीने जाकर
चिरकाङ्क्षितं	पुरानी अभिलाषा	**स्वधामतः**	अपने धामसे
मे विज्ञातं	मैं जानता हूँ	**च्यावितानां**	गिराये गये ॥१२॥

तान्विनिर्जित्य समरे दुर्मदानसुरर्षभान् ।
प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासितुम् ॥१३॥

तान् विनिर्जित्य समरे दुर्मदान् असुर ऋषभान् प्रतिलब्ध जय श्रीभिः पुत्रैः इच्छसि उपासितुम् ॥१३॥

पुत्रैः	अपने पुत्रोंके द्वारा	**जय श्रीभिः**	विजय और ऐश्वर्य
तान् दुर्मदान्	उन मदमत्त	**प्रतिलब्ध**	पुनः प्राप्त करके
असुर ऋषभान्	असुरश्रेष्ठोंको	**उपासितुं**	सेवित होना
समरे	युद्धमें	**इच्छसि**	चाहती हो ॥१३॥
विनिर्जित्य	जीतकर		

इन्द्रज्येष्ठैः स्वतनयैर्हतानां युधि विद्विषाम् ।
स्त्रियो रुदन्तीरासाद्य द्रष्टुमिच्छसि दुःखिताः ॥१४॥

इन्द्र ज्येष्ठैः स्वतनयैः हतानां युधि विद्विषां स्त्रियः रुदन्तीं आसाद्य द्रष्टुं इच्छसि दुःखिताः ॥१४॥

इन्द्र ज्येष्ठैः	जिनमें इन्द्र ज्येष्ठ हैं उन	**दुःखिताः**	दुःखी होकर
स्वतनयैः	अपने पुत्रों द्वारा	**आसाद्य**	उनके पास आकर
युधि हतानां	युद्धमें मारे गये	**रुदतीं**	रोती हुई
विद्विषां	शत्रुओंकी	**द्रष्टुं इच्छसि**	देखना चाहती हो ॥१४॥
स्त्रियः	स्त्रियोंको		

आत्मजान्सुसमृद्धांस्त्वं प्रत्याहृतयशःश्रियः ।
नाकपृष्ठमधिष्ठाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छसि ॥१५॥

आत्मजान् सुसमृद्धान् त्वं प्रति आहृत यशः श्रियः नाक पृष्ठं अधिष्ठाय क्रीडतः द्रष्टुं इच्छसि ॥१५॥

प्रति आहृत	फिर लौटाये हुए	**नाक पृष्ठं**	स्वर्गपर
यशः श्रियः	यश और लक्ष्मीसे	**अधिष्ठाय**	अधिकार करके
सुसमृद्धान्	भली प्रकार सम्पन्न हुए	**क्रीडतः**	खेलते हुए
आत्मजान्	अपने पुत्रोंको	**द्रष्टुं इच्छसि**	देखना चाहती हो ॥१५॥

प्रायोऽधुना तेऽसुरयूथनाथा
अपारणीया इति देवि मे मतिः ।
यत्तेऽनुकूलेश्वरविप्रगुप्ता
न विक्रमस्तत्र सुखं ददाति ॥१६॥

प्रायः अधुना ते असुर यूथनाथा अपारणीया इति देवि मे मतिः यत् ते अनुकूल ईश्वर विप्र गुप्ता न विक्रमः तत्र सुखं ददाति ॥१६॥

देवि	देवि !
ते असुर यूथ-	वे असुर सेना-
नाथा	नायक
अधुना	इस समय
प्रायः	प्रायः
अपारणीया	पार न पाने योग्य हैं,
इति मे मतिः	ऐसा मैं समझता हूँ,
यत् ते	क्योंकि वे
अनुकूल	अपने अनुकूल
ईश्वर	समर्थ
विप्र	ब्राह्मण (शुक्राचार्य) द्वारा
गुप्ता	रक्षित हैं,
तत्र विक्रमः	वहां पराक्रम करना
सुखं न ददाति	सुख नहीं देगा ॥१६॥

अथाप्युपायो मम देवि चिन्त्य
सन्तोषितस्य व्रतचर्यया ते ।
ममार्चनं नार्हति गन्तुमन्यथा
श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात् ॥१७॥

अथ अपि उपायः मम देवि चिन्त्यः संतोषितस्य व्रतचर्यया ते मम अर्चनं न अर्हति गन्तुं अन्यथा श्रद्धा अनुरूपं फल हेतु कत्वात् ॥१७॥

देवि अथ अपि	देवि ! फिर भी
ते	तुम्हारे
व्रतचर्यया	व्रताचरणसे
सन्तोषितस्य	सन्तुष्ट हुए
मम उपायः	मुझे उपाय
चिन्त्यः	सोचना होगा,
श्रद्धा अनुरूपं	श्रद्धाके अनुसार
फल	फल देनेवाला
हेतु कत्वात्	होनेके कारण
मम अर्चनं	मेरा पूजन
अन्यथा गन्तुं	निष्फल होना
न अर्हति	नहीं चाहिए ॥१७॥

त्वयार्चितश्चाहमपत्यगुप्तये
पयोव्रतेनानुगुणं समीडितः ।
स्वांशेन पुत्रत्वमुपेत्य ते सुतान्
गोप्तास्मि मारीचतपस्यधिष्ठितः ॥१८॥

त्वया अर्चितः च अहं अपत्य गुप्तये पयोव्रतेन अनुगुणं समीडितः स्व अंशेन पुत्रत्वं उपेत्य ते सुतान् गोप्ता अस्मि मारीच तपसि अधिष्ठितः ॥१८॥

अनुगुणं	यथोचित विधिसे
समीडितः	भली प्रकार अभिवृद्ध
पयोव्रतेन	पयोव्रतके द्वारा
त्वया	तुम्हारे द्वारा
अपत्य	अपने पुत्रोंकी
गुप्तये	रक्षाके लिए
अहं अर्चितः	मैं पूजित हुआ हूँ (अतः)
मारीच	मरीचि-नन्दन कश्यपजीके
तपसि	तपरूप वीर्यमें
अधिष्ठितः	स्थित होकर
स्व अंशेन	अपने अंशसे
ते पुत्रत्वं	तुम्हारा पुत्रत्व
उपेत्य	प्राप्त करके
सुतान् गोप्ता अस्मि	तुम्हारे पुत्रोंका रक्षक होऊंगा ॥१८॥

उपधाव पतिं भद्रे प्रजापतिमकल्मषम् ।
मां च भावयती पत्यावेवंरूपमवस्थितम् ॥१९॥

उपधाव पतिं भद्रे प्रजापतिं अकल्मषं मां च भावयती पत्या एवं रूपं अवस्थितम् ॥१९॥

भद्रे	कल्याणी !
अकल्मषं	निष्पाय
प्रजापतिं	प्रजापति
पत्या एवं	अपने पतिमें
रूपं	इसी रूपमें
अवस्थितं	स्थित
मां च भावयती	मेरी भी भावना करती हुई
पतिं उपधाव	पतिका सेवन करो ॥१९॥

नैतत् परस्मा आख्येयं पृष्टयापि कथंचन ।
सर्वं सम्पद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृतम् ॥२०॥

न एतत् परस्मा आख्येयं पृष्टया अपि कथञ्चन सर्वं सम्पद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृतम् ॥२०॥

देवि	देवि !	**सुसंवृतं**	भली प्रकार सम्हालनेसे
पृष्टया अपि	पूछनेपर भी		
एतत् परस्मा	इस विषयमें दूसरेसे	**देवगुह्यं**	देवताओंके गोपनीय
कथञ्चन न	कुछ भी नहीं	**सर्वं**	सब काम
आख्येयं	कहना चाहिए,	**सम्पद्यते**	सम्पन्न होते हैं ॥२०॥

श्रीशुक उवाच–

एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ।
अदितिर्दुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभोः ॥२१॥

एतावत् उक्त्वा भगवान् तत्र एव अन्तः अधीयत अदितिः दुर्लभं लब्ध्वा हरेः जन्म आत्मनि प्रभोः ॥२१॥

एतावत् उक्त्वा	इतना कहकर	**दुर्लभं**	दुर्लभ
तत्र एव	वहीं	**जन्म आत्मनि**	आविर्भाव अपनेसे
भगवान्	भगवान्	**लब्ध्वा**	प्राप्त होनेका आश्वासन पाकर ॥२१॥
अन्तः अधीयत	अन्तर्धान हो गये,		
अदितिः	अदितिने		
प्रभोः हरेः	सर्वेश्वर श्रीहरिका		

उपाधावत् पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् ।
स वै समाधियोगेन कश्यपस्तदबुध्यत ॥२२॥

उपाधावत् पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् स वै समाधियोगेन कश्यपः तत् अबुध्यत ॥२२॥

कृतकृत्यवत्	कृतकृत्यसी होकर	**पतिं उपाधावत्**	पतिकी सेवा करने लगी,
परया भक्त्या	परम भक्ति पूर्वक		

वै समाधि-	निश्चय समाधि-	तत्	वह (रहस्य)
योगेन	योगसे	अबुध्यत	समझ गये ॥२२॥
स कश्यपः	वे कश्यपजी		

प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः ।
सोऽदित्यां वीर्यमाधत्त तपसा चिरसंभृतम् ।
समाहितमना राजन्दारुण्यग्निं यथानिलः ॥२३॥

प्रविष्टं आत्मनि हरेः अंशं हि अवितथ ईक्षणः सः अदित्यां वीर्यं आधत्त तपसा चिर संभृतं समाहितमना राजन् दारुणि अग्निं यथा अनिलः ॥२३॥

राजन्	राजन् !	हरेः अंशं	श्रीहरिके अंशको (जानकर)
यथा दारुणि	जैसे काष्ठमें (संघर्षसे)	तपसा	तपस्याके द्वारा
अनिलः अग्निं	वायु अग्नि (उत्पन्न कर देता है)	चिर सम्भृतं	चिरकालसे सुरक्षित
		वीर्यं सः	वीर्यको उन्होंने
हि अवितथ	क्योंकि अमोघ	समाहितमना	एकाग्र मनसे
ईक्षणः	दृष्टिसे	अदित्यां	अदितिमें
आत्मनि	अपने भीतर	आधत्त	आधान किया ॥२३॥
प्रविष्टं	प्रविष्ट		

अदितेर्धिष्ठितं गर्भं भगवन्तं सनातनम् ।
हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः ॥२४॥

अदितेः अधिष्ठितं गर्भं भगवन्तं सनातनं हिरण्यगर्भः विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः ॥२४॥

अदितेः गर्भं	अदितिके गर्भमें	हिरण्यगर्भः	ब्रह्माजी
सनातनं	सनातन पुरुष	गुह्यनामभिः	गोपनीय नामों द्वारा
भगवन्तं	भगवान्‌को	समीडे	स्तुति करने लगे ॥२४॥
अधिष्ठितं	स्थित		
विज्ञाय	जानकर		

ब्रह्मोवाच—

जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तु ते ।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः ॥२५॥

जय उरुगाय भगवन् उरुक्रम नमः अस्तु ते नमः ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः ॥२५॥

उरुगाय	वृहत् कीर्तिशाली	**ब्रह्मण्यदेवाय**	ब्राह्मणोंको देवता माननेवाले आपको
भगवन् जय	भगवान्, आपकी जय हो,	**नमः**	नमस्कार
उरुक्रम	अनन्त पराक्रम	**त्रिगुणाय**	त्रिगुण स्वरूप
ते नमः अस्तु	आपको नमस्कार हो,	**नमो नमः**	आपको बारम्बार नमस्कार ॥२५॥

नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे ।
त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥२६॥

नमः ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥२६॥

पृश्निगर्भाय	पृश्निके पुत्र बनने-वाले,	**शिपिविष्टाय**	(पशुरूप) सब प्राणियोंमें विराज-मान
वेदगर्भाय	वेदोंमें निहित,		
वेधसे	सबके विधाता,	**विष्णवे**	भगवान् विष्णु
त्रिनाभाय	जिनकी नाभिमें त्रिलोकी स्थित है,	**ते नमः**	आपको नमस्कार ॥२६॥
त्रिपृष्ठाय	त्रिलोकीके पृष्ठ भाग वैकुण्ठके स्वामी,		

त्वमादिरन्तो भुवनस्य मध्य-
मनन्तशक्तिं पुरुषं यमाहुः ।

कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं
स्रोतो यथान्तःपतितं गभीरम् ॥२७॥

त्वं आदिः अन्तः भुवनस्य मध्यं अनन्त शक्ति पुरुषं यं आहुः कालः भवान् अक्षिपति ईश विश्वं स्रोतः यथा अन्तः पतितं गभीरम् ॥२७॥

यं अनन्त शक्ति	जिसे अन्तन्त शक्ति	**पतितं**	गिरे हुएको (जल बहाता है)
पुरुषं आहुः	पुरुष (शास्त्रमें) कहा गया है	**अक्षिपति ईश**	इन्द्रियोंके स्वामी !
अस्य भुवनस्य	इस जगतके	**गभीरं**	गम्भीर (वेग)
त्वं आदिः	आप ही आदि,	**कालः**	काल रूपसे
अन्तः मध्यं	अन्त और मध्य हैं	**भवान् विश्वं**	आप विश्वको (चला रहे हैं)
यथा स्रोतः	जैसे स्रोतके		॥२७॥
अन्तः	भीतर		

त्वं वै प्रजानां स्थिरजङ्गमानां
प्रजापतीनामसि सम्भविष्णुः ।
दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां
परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥२८॥

त्वं वै प्रजानां स्थिर जङ्गमानां प्रजापतीनां असि सम्भविष्णुः दिवौकसां देव दिवः च्युतानां परायणं नौः इव मज्जतः अप्सु ॥२८॥

वै त्वं	निश्चय आप	**दिवः च्युतानां**	स्वर्गसे भ्रष्ट हुए
स्थिर जङ्गमानां	स्थावर-जंगम	**दिवौकसां**	देवताओंके लिए
प्रजानां	प्रजाको तथा	**अप्सु**	जलमें
प्रजापतीनां	प्रजापतियोंको	**मज्जतः**	डूबते हुएके लिए
सम्भविष्णुः	उत्पन्न करनेवाले	**नौः इव**	नौकाके समान
असि	हैं,	**परायणं**	आश्रय हैं ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

इत्थं विरिञ्चस्तुतकर्मवीर्यः
प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् ।
चतुर्भुजः शङ्खगदाब्जचक्रः
पिशङ्गवासा नलिनायतेक्षणः ॥ १ ॥

इत्थं विरिञ्च स्तुत कर्म वीर्यः प्रादुः बभूव अमृत भूः अदित्यां चतुर्भुजः शङ्ख गदा अब्ज चक्रः पिशङ्गवासा नलिन आयत ईक्षणः ॥१॥

इत्थं	इस प्रकार	**पिशङ्गवासा**	पीताम्बरधारी
विरिञ्च	ब्रह्मा द्वारा	**नलिन आयत**	कमलके समान
कर्म वीर्यः	कर्म और पराक्रमकी	**ईक्षणः**	विशाल लोचन
स्तुत	स्तुति करनेपर	**अमृत भूः**	देवमाता
चतुर्भुजः	चतुर्भुज	**अदित्यां प्रादुः**	अदितिसे प्रकट
शङ्ख गदा	शंख, गदा,	**बभूव**	हुए ॥१॥
अब्ज चक्रः	कमल, चक्र लिए		

श्यामावदातो झषराजकुण्डल-
त्विषोल्लसच्छ्रीवदनाम्बुजः पुमान् ।
श्रीवत्सवक्षा वलयाङ्गदोल्लस-
त्किरीटकाञ्चीगुणचारुनूपुरः ॥ २ ॥

श्याम अवदातः झषराज-कुण्डल त्विषा उल्लसत् श्रीवदन अम्बुजः पुमान् श्रीवत्सवक्षा वलय अङ्गद उल्लसत् किरीट काञ्ची गुण चारुनूपुरः ॥२॥

श्याम अवदातः	श्याम सुन्दर शरीर,
झषराज-	मकराकृति
कुण्डल	कुण्डलोंकी
त्विषा उल्लसत्	कान्तिसे दमकती
श्रीवदन	शोभावाले
अम्बुजः	कमल-मुख
पुमान्	परम पुरुष
श्रीवत्सवक्षा	वक्ष-स्थलपर श्रीवत्स,
वलय अङ्गद	कंकण, केयूर,
उल्लसत् किरीट	चमकते मुकुट,
काञ्ची गुण	कटि सूत्र
चारुनूपुरः	सुन्दर नूपुरोंसे (शोभित थे ॥२॥

मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया
विराजितः श्रीवनमालया हरिः ।
प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा
विनाशयन् कण्ठनिविष्टकौस्तुभः ॥ ३ ॥

मधुव्रतव्रात विघुष्टया स्वया विराजितः श्री वनमालया हरिः प्रजापतेः वेश्मतमः स्वरोचिषा विनाशयन् कण्ठ निविष्ट कौस्तुभः ॥३॥

मधुव्रतव्रात	भ्रमरावलीकी
विघुष्टया	गुंजारसे युक्त
स्वया	अपनी
वनमालया	वनमालासे
श्री विराजितः	अत्यन्त सुशोभित
हरिः	श्रीहरि
कण्ठ निविष्ट	गलेमें पहिनी
कौस्तुभः	कौस्तुभ-मणि तथा
स्वरोचिषा	अपनी कान्तिसे
प्रजापतेः	प्रजापति कश्यपके
वेश्मतमः	घरके अन्धकारको
विनाशयन्	नष्ट कर रहे थे ॥३॥

दिशः प्रसेदुः सलिलाशयास्तदा
प्रजाः प्रहृष्टा ऋतवो गुणान्विताः ।
द्यौरन्तरिक्षं क्षितिरग्निजिह्वा
गावो द्विजाः संजहृषुर्नगाश्च ॥ ४ ॥

दिशः प्रसेदुः सलिल आशयाः तदा प्रजाः प्रहृष्टाः ऋतवः गुण अन्विताः द्यौः अन्तरिक्षं क्षितिः अग्निजिह्वा गावः द्विजाः संजहृषुः नगाः च ॥४॥

तदा	उस समय	**द्यौः अन्तरिक्षं**	स्वर्ग, आकाश,
दिशः	दिशाएँ और	**क्षितिः**	पृथ्वी,
सलिल आशयाः	जलाशय	**अग्निजिह्वा**	देवता,
प्रसेदुः	निर्मल हो गये	**गावः द्विजाः**	गौ, ब्राह्मण
प्रजाः	सब प्रजा	**च नगाः**	तथा पर्वत
प्रहृष्टाः	अत्यन्त हर्षित हुई	**संजहृषुः**	खूब प्रसन्न हो गये ॥४॥
ऋतवः गुण	ऋतुएँ अपने गुणोंसे		
अन्विताः	युक्त हो गयीं,		

श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः ।
सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ ५ ॥

श्रोणायां श्रवण द्वादश्यां मुहूर्ते अभिजिति प्रभुः सर्वे नक्षत्र तारा आद्याः चक्रुः तत् जन्म दक्षिणम् ॥५॥

श्रोणायां	(चन्द्रमाके) श्रवण-नक्षत्रमें रहनेपर	**सर्वे नक्षत्र तारा आद्याः**	सब नक्षत्रों, तारा आदिने
श्रवण	श्रवण (भाद्रशुक्ल)	**तत् जन्म**	उनके जन्म (के समय)
द्वादश्यां	द्वादशीको	**दक्षिणं चक्रुः**	(अपनेको) अनुकूल बना लिया ॥५॥
अभिजिति	अभिजित		
मुहूर्ते	मुहूर्त (दोपहर) में		
प्रभुः	प्रभु (प्रकट हुए)		

द्वादश्यां सवितातिष्ठन्मध्यंदिनगतो नृप ।
विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ॥ ६ ॥

द्वादश्यां सविता तिष्ठन् मध्यं दिन गतः नृप विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुः हरेः ॥६॥

नृप	राजन् !	**नाम**	नामसे
यस्यां द्वादश्यां	जिस द्वादशीको	**प्रोक्ता**	कही गयी है,
हरेः जन्म	श्रीहरिका जन्म	**सविता**	(उस समय) सूर्य
विदुः	जाना जाता है,	**मध्यं दिन गतः**	मध्य दिनमें
सा विजया	वह 'विजया'	**तिष्ठन्**	स्थित थे ॥६॥

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवानकाः ।
चित्रवादित्रतूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ॥ ७ ॥

शङ्ख दुन्दुभयः नेदुः मृदङ्ग पणव आनकाः चित्र वादित्र तूर्याणां निर्घोषः तुमुलः अभवत् ॥७॥

शङ्ख दुन्दुभयः	शंख, दुन्दुभियां,	**चित्र**	अनेक प्रकारके
मृदङ्ग पणव	मृदङ्ग, पणव (छोटे नगाड़े)	**वादित्र**	वाद्यों तथा
		तूर्याणां	तुरहियोंका
आनकाः	आनक (बड़े नगाड़े)	**तुमुलः निर्घोषः**	तुमुल शब्द
नेदुः	बजने लगे,	**अभवत्**	होने लगा ॥७॥

प्रीताश्चाप्सरसोऽनृत्यन्गन्धर्वप्रवरा जगुः ।
तुष्टुवुर्मुनयो देवा मनवः पितरोऽग्नयः ॥ ८ ॥

प्रीताः च अप्सरसः अनृत्यन् गन्धर्वप्रवरा जगुः तुष्टुवुः मुनयः देवा मनवः पितरः अग्नयः ॥८॥

प्रीताः	प्रसन्न होकर	**मुनयः देवा**	मुनिगण, देवता,
अप्सरसः	अप्सराएँ	**मनवः पितरः**	मनु लोग, पितर,
अनृत्यन्	नाचने लगीं,	**अग्नयः**	अग्निदेव
च	तथा	**तुष्टुवुः**	स्तुति करने लगे ॥८॥
गन्धर्वप्रवराः	श्रेष्ठ गन्धर्व		
जगुः	गाने लगे		

सिद्धविद्याधरगणाः सकिंपुरुषकिन्नराः ।
चारणा यक्षरक्षांसि सुपर्णा भुजगोत्तमाः ॥ ९ ॥

सिद्ध विद्याधर गणाः स किंपुरुष किन्नवाः चारणा यक्ष रक्षांसि सुपर्णा भुजग उत्तमाः ॥९॥

सिद्ध विद्याधर गणाः	सिद्ध, विद्याधर गण,	**किंपुरुष स किन्नराः**	किंपुरुष और किन्नरोंके साथ

यक्ष रक्षांसि	यक्ष-राक्षस,	**भुजग उत्तमा**	प्रमुख नागगण
सुपर्णा	पक्षीगण,		॥९॥

गायन्तोऽतिप्रशंसन्तो नृत्यन्तो विबुधानुगाः ।
अदित्या आश्रमपदं कुसुमैः समवाकिरन् ॥१०॥

गायन्तः अति प्रशंसन्तः नृत्यन्तः विबुध अनुगाः अदित्या आश्रमपदं कुसुमैः सम् अवाकिरन् ॥१०॥

विबुध	देवताओंके	**अदित्या**	अदितिके
अनुगाः	अनुचर गण,	**आश्रमपदं**	आश्रम-स्थानपर
गायन्तः	गाते	**कुसुमैः**	पुष्पोंको
नृत्यन्तः	नाचते	**सम् अवाकिरन्**	खूब बिखेरने लगे
अति प्रशंसन्तः	अत्यन्त प्रशंसा करते हुए		॥१०॥

दृष्ट्वादितिस्तं निजगर्भसम्भवं
परं पुमांसं मुदमाप विस्मिता ।
गृहीतदेहं निजयोगमायया
प्रजापतिश्चाह जयेति विस्मितः ॥११॥

दृष्ट्वा अदितिः तं निजगर्भ सम्भवं परं पुमांसं मुदं आप विस्मिता गृहीतदेहं निज योग मायया प्रजापतिः च आह जय इति विस्मितः ॥११॥

निज गर्भ	अपने गर्भसे	**निज योग**	अपनी योग
सम्भवं	उत्पन्न	**मायया**	मायासे
तं परं पुमांसं	उन परम पुरुषको	**गृहीतदेहं**	शरीर धारण किये (देखकर)
दृष्ट्वा अदितिः	देखकर अदिति	**विस्मितः**	चकित होकर
विस्मिता	चकित और	**जय इति आह**	'जय हो' ऐसा बोले
मुदं आप	आनन्दित हुई		॥११॥
च	तथा		
प्रजापतिः	प्रजापति कश्यप		

यत् तद् वपुर्भाति विभूषणायुधै-
रव्यक्तचिद् व्यक्तमधारयद्धरिः ।
बभूव तेनैव स वामनो वटुः
संपश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः ॥१२॥

यत् तत् वपुः भाति विभूषण आयुधैः अव्यक्त चिद् व्यक्तं अधारयत् हरिः बभूव तेन एव स वामनः वटुः सम्पश्यतः दिव्य गतिः यथा नटः ॥१२॥

अव्यक्त	अव्यक्त	**तत् तेन एव**	वे उसीसे
चिद् व्यक्तं	चित्स्वरूप	**नटः यथा**	नटके समान
हरिः	श्रीहरिने	**दिव्य गतिः**	दिव्य गतिसे
यत् विभूषण	जो आभूषण	**सम्पश्यतः**	सबके देखते हुए
आयुधैः भाति	आयुधोंसे शोभित	**वामनः वटुः**	वामन ब्रह्मचारी
वपुः अधारयत्	शरीर धारण किया था	**बभूव**	हो गये ॥१२॥

तं वटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः ।
कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥१३॥

तं वटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥१३॥

तं वामनं	उस बौने	**प्रजापतिं**	प्रजापति कश्यपको
वटुं	ब्रह्मचारीको	**पुरस्कृत्य**	आगे करके
दृष्ट्वा	देखकर	**कर्माणि**	सब संस्कार
महर्षयः	महर्षियोंने	**कारयामासुः**	करवाये ॥१३॥
मोदमानाः	प्रसन्न होकर		

तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सविताब्रवीत् ।
बृहस्पतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात् ॥१४॥

तस्य उपनीयमानस्य सावित्रीं सविता ब्रवीत् वृहस्पतिः ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपः अददात् ॥१४॥

तस्य	उनका	**वृहस्पतिः**	वृहस्पतिने
उपनीयमानस्य	उपनयन होते समय	**ब्रह्मसूत्रं**	यज्ञोपवीत और
सविता	सविता देवताने	**कश्यपः**	कश्यपने
सावित्रीं ब्रवीत्	गायत्रीका उपदेश किया	**मेखलां**	मेखला
		अददात्	प्रदान की ॥१४॥

ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दण्डं सोमो वनस्पतिः ।
कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्रं जगतः पतेः ॥१५॥

ददौ कृष्ण अजिनं भूमिः दण्डं सोमः वनस्पतिः कौपीन आच्छादनं माता द्यौः छत्रं जगतः पतेः ॥१५॥

जगतः पतेः	(उन) जगत् पतिको	**कौपीन**	कौपीन तथा
भूमिः कृष्ण-	भूमिने कृष्ण-	**आच्छादनं**	ओढ़नेका वस्त्र
अजिनं	मृगचर्म,	**माता**	माता अदितिने
वनस्पतिः	वनस्पतियोंके राजा	**द्यौः छत्रं ददौ**	स्वर्गने छत्र दिया ॥१५॥
सोमः	सोमने		
दण्डं	दण्ड		

कमण्डलुं वेदगर्भः कुशान्सप्तर्षयो ददुः ।
अक्षमालां महाराज सरस्वत्यव्ययात्मनः ॥१६॥

कमण्डलुं वेदगर्भः कुशान् सप्तर्षयः ददुः अक्षमालां महाराज सरस्वति अव्यय आत्मनः ॥१६॥

महाराज	महाराज !	**सप्तर्षयः**	सप्तर्षियोंने
अव्यय	उन अविनाशी	**कुशान्**	कुश
आत्मनः	परमात्माको	**सरस्वति**	सरस्वतीने
वेदगर्भः	ब्रह्माजीने	**अक्षमालां**	रुद्राक्षकी माला
कमण्डलुं	कमण्डलु,	**ददुः**	दी ॥१६॥

तस्मा इत्युपनीताय यक्षराट् पात्रिकामदात् ।
भिक्षां भगवती साक्षादुमादादम्बिका सती ॥१७॥

तस्मा इति उपनीताय यक्षराट् पात्रिकां अदात् भिक्षां भगवती साक्षात् उमा अदात् अम्बिका सती ॥१७॥

इति	इस प्रकार	**पात्रिकां अदात्**	भिक्षापात्र दिया
उपनीताय	उपनयन संस्कार हो जानेपर	**साक्षात् सती**	साक्षात् सती
		अम्बिका	अम्बिका
तस्मा	उनको	**उमा**	भगवती उमाने
यक्षराट्	यक्षराक्ष कुबेरने	**भिक्षां अदात्**	भिक्षा दी ॥१७॥

स ब्रह्मवर्चसेनैवं सभां संभावितो वटुः ।
ब्रह्मर्षिगणसञ्जुष्टामत्यरोचत मारिषः ॥१८॥

स ब्रह्मवर्चसेन एवं सभां संभावितः वटुः ब्रह्मर्षिगण संजुष्टां अत्यरोचत मारिषः ॥१८॥

एवं	इस प्रकार	**ब्रह्मर्षिगण**	ब्रह्मर्षिगणोंसे
संभावितः	सम्मानित होकर	**संजुष्टां**	युक्त
स मारिषः	वे श्रेष्ठ	**सभां**	सभामें
वटुः	ब्रह्मचारी (वामन)	**अत्यरोचत**	अत्यन्त शोभित हुए ॥१८॥
ब्रह्मवर्चसेन	ब्रह्मतेजके कारण		

समिद्धमाहितं वह्निं कृत्वा परिसमूहनम् ।
परिस्तीर्य समभ्यर्च्य समिद्भिरजुहोद् द्विजः ॥१९॥

समिद्धं आहितं वह्निं कृत्वा परिसमूहनं परिस्तीर्य समभ्यर्च्य समित्भिः अजुहोत् द्विजः ॥१९॥

द्विजः	उन द्विजश्रेष्ठने (उपनयनके लिए)	**आहितं समिद्धं वह्निं**	स्थापित प्रज्वलित अग्निका

परिसमूहनं परिसमूहन,
परिस्तीर्य कृत्वा परिस्तरण करके
समभ्यर्च्य पूजन करके
समित्भिः समिधाओंसे
अजुहोत् हवन किया ॥१९॥

श्रुत्वाश्वमेधैर्यजमानमूर्जितं
बलिं भृगूणामुपकल्पितैस्ततः ।
जगाम तत्राखिलसारसंभृतो
भारेण गां सन्नमयन्पदे पदे ॥२०॥

श्रुत्वा अश्वमेधैः यजमानं ऊर्जितं बलिं भृगूणां उपकल्पितैः ततः जगाम तत्र अखिलसार सम्भृतः भारेण गां सन्नमयन् पदे पदे ॥२०॥

ऊर्जितं बलिं समृद्ध बलिको
भृगूणां भृगुवंशी ब्राह्मणों द्वारा
उपकल्पितैः निर्दिष्ट की जाती विधिसे
अश्वमेधैः अश्वमेध यज्ञों द्वारा
यजमानं (भगवानका) यजन करते
श्रुत्वा सुनकर
अखिलसार सर्वशक्ति
सम्भृतः समन्वित
ततः वहांसे
भारेण गां अपने भारसे पृथ्वी को
पदे पदे पद-पदपर
सन्नमयन् झुकाते हुए
तत्र जगाम वहां गये ॥२०॥

तं नर्मदायास्तट उत्तरे बले-
र्य ऋत्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके ।
प्रवर्तयन्तो भृगवः क्रतूत्तमं
व्यचक्षतारादुदितं यथा रविम् ॥२१॥

तं नर्मदायाः तट उत्तरे बलेः य ऋत्विजः ते भृगुकच्छ संज्ञके प्रवर्तयन्तः भृगवः क्रतूत्तमं व्यचक्षत आरात् उदितं तथा रविम् ॥२१॥

नर्मदायाः नर्मदाके
उत्तरे तट उत्तरी किनारेपर
भृगुकच्छ संज्ञके भृगुकच्छ नामक स्थानपर
भृगवः भृगुवंशी ब्राह्मण

क्रतूत्तमं	श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ	**ते आरात्**	उनको समीप ही
प्रवर्तयन्तः	करा रहे थे (उसी समय)	**रविम् उदितं**	सूर्योदय हुआ हो
		तथा	इस प्रकार
बलेः य	बलिके जो	**व्यचक्षत**	देखा ॥२१॥
ऋत्विजः	ऋत्विकोंने		

त ऋत्विजो यजमानः सदस्या
हतत्विषो वामनतेजसा नृप ।
सूर्यः किलायात्युत वा विभावसुः
सनत्कुमारोऽथ दिदृक्षया क्रतोः ॥२२॥

त ऋत्विजः यजमानः सदस्या हतत्विषः वामन तेजसा नृप सूर्यः किल आयति उतवा विभावसुः सनत्कुमारः अथ दिदृक्षया क्रतोः ॥२२॥

नृप	राजन् !	**दिदृक्षया**	देखनेके लिए
वामन तेजसा	वामनजीके तेजसे	**सूर्यः आयति**	सूर्यदेव आ रहे हैं
हतत्विषः	कान्तिहीन हुए	**उत वा**	अथवा
त ऋत्विजः	वे ऋत्विक्,	**विभावसुः**	अग्निदेव
यजमानः	यजमान और	**अथ**	या
सदस्या	सदस्य (सोचने लगे)	**सनत्कुमारः**	सनत्कुमारजी
किल क्रतोः	क्या यज्ञ		॥२२॥

इत्थं सशिष्येषु भृगुष्वनेकधा
वितर्क्यमाणो भगवान्स वामनः ।
छत्रं सदण्डं सजलं कमण्डलुं
विवेश बिभ्रद्धयमेधवाटम् ॥२३॥

इत्थं सशिष्येषु भृगुषु अनेकधा वितर्क्यमाणः भगवान् स वामनः छत्रं सदण्डं सजलं कमण्डलुं बिवेश विभ्रत् हयमेध वाटम् ॥२३॥

सशिष्येषु भृगुषु	शिष्योंके साथ भृगुवंशी ब्राह्मणों द्वारा
इत्थं	इस प्रकार
अनेकधा	अनेक प्रकारके
वितर्क्यमाणः	तर्क-वितर्क करते समय
स वामनः	वे वामन
भगवान्	भगवान्
सदण्डं छत्रं	दण्डके साथ छत्र तथा
सजलं	जल भरा
कमण्डलुं	कमण्डलु
बिभ्रत्	लिए हुए
हयमेध	अश्वमेध यज्ञके
वाटं	मण्डपमें
विवेश	प्रविष्ट हुए ॥२३॥

मौञ्ज्या मेखलया वीतमुपवीताजिनोत्तरम् ।
जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम् ॥२४॥

मौञ्ज्या मेखलया वीतं उपवीत अजिन उत्तरं जटिलं वामनं विप्रं माया माणवकं हरिम् ॥२४॥

मौञ्ज्या	मूंजकी
मेखलया	मेखला तथा
उपवीत वीतं	यज्ञोपवीत पहिने,
अजिन	कृष्ण-मृग चर्मका
उत्तरं	उत्तरीय बनाये
जटिलं वामनं	जटाधारी बौने
विप्रं	ब्राह्मणके रूपमें
माया माणवकं	मायासे मनुष्य बने
हरिं	श्रीहरिको ॥२४॥

प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सशिष्यास्ते सहाग्निभिः ।
प्रत्यगृह्णन्समुत्थाय संक्षिप्तास्तस्य तेजसा ॥२५॥

प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सशिष्याः ते सह अग्निभिः प्रत्यगृह्णन् समुत्थाय संक्षिप्ताः तस्य तेजसा ॥२५॥

प्रविष्टं	(यज्ञ मंडपमें) प्रवेश किए
वीक्ष्य	देखकर
तस्य तेजसा	उनके तेजसे
संक्षिप्ताः	छोटे पड़ गये
ते भृगवः	वे भृगुवंशी ब्राह्मण
सशिष्याः	शिष्योंके साथ
सह अग्निभिः	अपनी अग्नियोंके साथ
समुत्थाय	उठकर खड़े होकर
प्रत्यगृह्णन्	सत्कार करने लगे ॥२५॥

यजमानः प्रमुदितो दर्शनीयं मनोरमम् ।
रूपानुरूपावयवं तस्मा आसनमाहरत् ॥२६॥

यजमानः प्रमुदितः दर्शनीयं मनोरमं रूप अनुरूप अवयवं तस्मा आसनं आहरत् ॥२६॥

रूप अनुरूप	उस रूपके अनुसार	**तस्मा**	उनको (देखकर)
अवयवं	अंगोंवाले	**प्रमुदितः**	आनन्दित
दर्शनीयं	दर्शनीय	**यजमानः**	यजमान बलिने
मनोरमं	मनोहर	**आसनं आहरत्**	आसन दिया ॥२७॥

स्वागतेनाभिनन्द्याथ पादौ भगवतो बलिः ।
अवनिज्यार्चयामास मुक्तसङ्गमनोरमम् ॥२७॥

स्वागतेन अभिनन्द्य अथ पादौ भगवतः बलिः अवनिज्य अर्चयामास मुक्तसंङ्गं मनोरमम् ॥२७॥

स्वागतेन	स्वागत वाक्योंसे	**अवनिज्य**	धोकर
अभिनन्द्य	अभिनन्दन करके	**अथ**	फिर
मुक्तसंगं	निःसंग	**बलिः**	बलिने
मनोरमं	मनोहर	**अर्चयामास**	(उनका) पूजन किया ॥२७॥
भगवतः पादौ	भगवान्के चरण		

तत्पादशौचं जनकल्मषापहं
स धर्मवित्मूर्ध्न्यदधात् सुमङ्गलम् ।
यद् देवदेवो गिरिशश्चन्द्रमौलि-
र्दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या ॥२८॥

तत् पादशौचं जन कल्मष अपहं स धर्मवित् मूर्ध्नि अदधात् सुमङ्गलं यत् देवदेवः गिरिशः चन्द्रमौलिः दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या ॥२८॥

स धर्मवित्	उन धर्मज्ञ बलिने	**यत् परया**	जिसे परम
जन	लोगोंके	**भक्त्या**	भक्ति सहित
कल्मष अपहं	पापहारी	**देवदेवः**	देवदेव
सुमंगलं	परम मंगलमय	**चन्द्रमौलिः**	चन्द्रशेखर
तत् पादशौचं	उनके चरणोदकको	**गिरिशः च**	शङ्करजी ने भी
मूर्ध्नि अदधात्	सिर पर धारण किया	**मूर्ध्ना दधार**	सिर पर धारण किया है ॥२८॥

बलिरुवाच–

स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन्किं करवाम ते ।
ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वाऽऽर्य वपुर्धरम् ॥२९॥

स्वागतं ते नमः तुभ्यं ब्रह्मन् किं करवाम ते ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षात् मन्ये त्वा आर्य वपुः धरम् ॥२९॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन्	**आर्य वपुः धरं**	आपका शरीर धारण करके
ते स्वागतं	आपका स्वागत है,	**साक्षात्**	प्रत्यक्ष हो गया है
तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार,	**त्वा मन्ये**	ऐसा मानता हूँ ॥२९॥
ते किं करवाम	आपकी क्या सेवा करूँ ?		
ब्रह्मर्षीणां तपः	ब्रह्मर्षियोंका तप		

अद्य नः पितरस्तृप्ता अद्य नः पावितं कुलम् ।
अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद् भवानागतो गृहान् ॥३०॥

अद्य नः पितरः तृप्ता अद्य नः पावितं कुलं अद्य सु इष्टः क्रतुः अयं यत् भवान् आगतः गृहान् ॥३०॥

यत् भवान्	क्योंकि आप	**नः पितरः**	हमारे पितर
गृहान् आगतः	(हमारे) घर आये हैं, अतः	**अद्य तृप्ताः**	आज तृप्त हो गये,
		नः कुलं	हमारा कुल

अद्य पावितं	आज पवित्र हो गया,	**अद्य सु इष्टः**	आज भली प्रकार गया ॥३०॥
अयं क्रतुः	यह यज्ञ		

अद्याग्नयो मे सुहुता यथाविधि
द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः ।
हतांहसो वार्भिरियं च भूरहो
तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव ॥३१॥

अद्य अग्नयः मे सुहुता यथाविधि द्विज आत्मज त्वत् चरण अवने जनैः हत अंहसः वारिभिः इयं च भूः अहो तथा पुनीताः तनुभिः पदैः तव ॥३१॥

द्विज आत्मज	विप्रकुमार !	**तथा तव**	तथा आपके
त्वत् चरण	आपके चरणोंका	**तनुभिः पदैः**	नन्हें चरणोंसे
अवने जनैः	प्रक्षालन कर लेनेसे	**अहो इयं भूः**	अहो यह पृथ्वी
अद्य मे	आज मैंने	**हत अंहसः**	निष्पाप होकर
यथाविधि	विधिपूर्वक	**पुनीता**	पवित्र हो गयी ॥३१॥
अग्नयः सुहुता	अग्निमें उत्तम आहुति दे ली,		

यद् यद् वटो वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ मे ।
त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये ।
गां काञ्चनं गुणवद् धाम मृष्टं
तथान्नपेयमुत वा विप्र कन्याम् ।
ग्रामान् समृद्धांस्तुरगान् गजान् वा
रथांस्तथार्हत्तम सम्प्रतीच्छ ॥३२॥

यत् यत् वटो वाञ्छसि तत् प्रतीच्छ मे त्वां अर्थिनं विप्रसुतानु तर्क ये गां काञ्चनं गुणवत् धाम मृष्टं तथा अन्न पेयं उत वा विप्र कन्यां ग्रामान् समृद्धान् तुरगान् गजान् वा रथान् तथा अर्हत्तम सम्प्रतीच्छ ॥३२॥

त्वां अर्थिनं	आपको कुछ चाहने-वाला	**गां काञ्चनं**	गौएँ, स्वर्ण,
विप्रसुतानु	ब्राह्मण-पुत्र ही	**गुणवत् धाम**	सामग्री सहित घर,
तर्कं ये	समझता हूँ अतः	**तथा मृष्टं**	तथा पवित्र
अर्हत्तम	परम पूजनीय	**अन्न पेयं**	अन्न, जल,
वटो	ब्रह्मचारीजी !	**वा विप्र कन्यां**	अथवा विप्रकन्या,
यत् तत्	आप जो-जो	**समृद्धान् ग्रामान्**	सम्पत्तिशाली गांव,
वाञ्छसि	चाहते हों—	**तुरगान् गजान्**	घोड़े, हाथी
तत् मे प्रतीच्छ	वह मुझसे मांग लीजिए ।	**वा रथान्**	अथवा रथ
		सम्प्रतीच्छ	वही मांग लीजिए ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे बलिवामनसंवादेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

श्रीशक उवाच–

इति वैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तं स सूनृतम् ।
निशम्य भगवान्प्रीतः प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥

इति वैरोचनेः वाक्यं धर्मयुक्तं स सुनृतं निशम्य भगवान् प्रीतः प्रतिनन्द्य इदं अब्रवीत् ॥१॥

धर्मयुक्तं	धर्मयुक्त तथा	**प्रीतः**	प्रसन्न होकर
स सूनृतं	सत्य सहित मधुर	**भगवान्**	भगवान्
इति वैरोचनेः	इस विरोचन-नन्दनकी	**प्रतिनन्द्य**	उसका अभिनन्दन करके
वाक्यं निशम्य	बात सुनकर	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥१॥

श्रीभगवानुवाच–

वचस्तवैतञ्जनदेव सूनृतं
कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम् ।
यस्य प्रमाणं भृगवः सांपराये
पितामहः कुलवृद्धः प्रशान्तः ॥ २ ॥

वचः तव एतत् जनदेव सूनृतं कुल उचितं धर्मयुतं यशः करं यस्य प्रमाणं भृगवः सांपराये पितामहः कुलवृद्धः प्रशान्तः ॥२॥

जनदेव	राजन् !	**कुल उचितं**	(आपके) कुलके लिए उचित:
तव एतत् वचः	आपकी यह बात		
सूनृतं	मधुर और सत्य,	**धर्मयुतं**	धर्मयुक्त,

यशः करं	यश दायिनी है,	**कुलवृद्ध**	तुम्हारे कुलमें बड़े
यस्य सांपराये	जिसके पारलौकिक धर्म होनेमें	**प्रशान्तः**	अत्यन्त शान्त
भृगवः	(ये) भृगुवंशी ब्राह्मण तथा	**पितामहः**	तुम्हारे पितामह (प्रह्लादजी) भी
		प्रमाणं	प्रमाण हैं ॥२॥

न ह्येतस्मिन्कुले कश्चिन्निःसत्त्वः कृपणः पुमान् ।
प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यो वादाता द्विजातये ॥ ३ ॥

न हि एतस्मिन् कुले कश्चित् निःसत्त्वः कृपणः पुमान् प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यः वा अदाता द्विजातये ॥३॥

हि एतस्मिन्	क्योंकि इस	**यः अदाता**	जो दान न करता
कुले कश्चित्	कुलमें कोई		हो
निःसत्त्वः	सत्त्वहीन	**वा द्विजातये**	अथवा ब्राह्मणको
कृपणः	कृपण	**प्रतिश्रुत्य**	देनेको कहकर
पुमान् न	पुरुष नहीं हुआ	**प्रत्याख्याता**	अस्वीकार करदे ॥३॥

न सन्ति तीर्थे युधि चार्थिनार्थिताः
पराङ्मुखा ये त्वमनस्विनो नृपाः ।
युष्मत्कुले यद्यशसामलेन
प्रह्लाद उद्भाति यथोडुपः खे ॥ ४ ॥

न सन्ति तीर्थे युधि च अर्थिना अर्थिताः पराङ्मुखाः ये तु अमनस्विनः नृपाः युष्मत् कुले यत् यशसा अमलेन प्रह्लाद उद्भाति यथा उडुपः खे ॥४॥

युष्मत् यत् कुले	आपके जिस कुलमें	**अमलेन यशसा**	अपने निर्मल यशसे
यथा खे	जैसे आकाशमें	**प्रह्लाद उद्भाति**	प्रह्लादजी देदीप्यमान हैं
उडुपः	चन्द्रमा	**तीर्थे च युधि**	तीर्थ और युद्धमें

अर्थिना	अर्थियों द्वारा	**नृपाः**	राजा
अर्थिताः	याचना करनेपर	**पराङ्मुखा**	विमुख हो जायँ
ये तु	जो तो	**न सन्ति**	नहीं हैं ॥४॥
अमनस्विनः	धैर्यहीन		

यतो जातो हिरण्याक्षश्चरन्नेक इमां महीम् ।
प्रतिवीरं दिग्विजये नाविन्दत गदायुधः ॥ ५ ॥

यतः जातः हिरण्याक्षः चरन् एक इमां महीं प्रतिवीरं दिग्विजये न अविन्दत गदायुधः ॥५॥

यतः जातः	जिस कुलमें उत्पन्न	**एक इमां महीं**	अकेला इस पृथ्वीपर
हिरण्याक्षः	हिरण्याक्ष	**चरन्**	घूमता हुआ
गदायुधः	गदारूप शस्त्र लेकर	**प्रतिवीरं**	प्रतिपक्षी
दिग्विजये	दिग्विजय करनेके लिए	**न अविन्दत**	नहीं पा सका ॥५॥

यं विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णुः क्ष्मोद्धार आगतम् ।
नात्मानं जयिनं मेने तद्वीर्यं भूर्यनुस्मरन् ॥ ६ ॥

यं विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णुः क्ष्म उद्धार आगतं न आत्मानं जयिनं मेने तत् वीर्यं भूरि अनुस्मरन् ॥६॥

क्ष्म उद्धार	पृथ्वीके उद्धारके लिए	**भूरि वीर्यं**	महान् पराक्रमका
आगतं विष्णुः	आये विष्णु वे	**अनुस्मरन्**	बार-बार स्मरण करते हुए
यं कृच्छ्रेण	जिसे बहुत कष्टसे	**आत्मानं**	अपनेको
विनिर्जित्य	जीत कर	**जयिनं न मेने**	विजयी नहीं माना ॥६॥
तत्	उसके		

निशम्य तद्वधं भ्राता हिरण्यकशिपुः पुरा ।
हन्तुं भ्रातृहणं क्रुद्धो जगाम निलयं हरेः ॥ ७ ॥

निशम्य तत् वधं भ्राता हिरण्य कशिपुः पुरा हन्तुं भ्रातृहणं क्रुद्धः जगाम निलयं हरेः ॥७॥

पुरा	प्राचीन समयमें	**हन्तुं**	मारनेके लिए
तत् भ्राता वधं	उस भाईके वधको	**हिरण्य कशिपुः**	हिरण्यकशिपु
निशम्य	सुनकर	**हरेः निलयं**	हरिके धाम
क्रुद्धः	क्रुद्ध होकर	**जगाम**	गया ॥७॥
भ्रातृहणं	भाईके हत्यारेको		

तमायान्तं समालोक्य शूलपाणिं कृतान्तवत् ।
चिन्तयामास कालज्ञो विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ ८ ॥

तं आयान्तं सम आलोक्य शूलपाणिं कृतान्तवत् चिन्तयामास कालज्ञः विष्णुः मायाविनां वरः ॥८॥

कृतान्तवत्	कालके समान	**कालज्ञः**	समय पहिचाननेवाले
तं शूलपाणिं	उसे हाथमें त्रिशूल लिए	**मायाविनां**	मायावियोंमें
सम आयान्तं	पास आता	**वरः**	श्रेष्ठ
आलोक्य	देखकर	**विष्णुः**	विष्णुने
		चिन्तयामास	सोचा ॥८॥

यतो यतोऽहं तत्रासौ मृत्युः प्राणभृतामिव ।
अतोऽहमस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि पराग्दृशः ॥ ९ ॥

यतः यतः अहं तत्र असौ मृत्युः प्राणभृतां इव अतः अहं अस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि पराक् दृशः ॥९॥

अहं यतः यतः	'मैं जहां जहां (जाऊँगा)	**अतः**	अतः
प्राणभृतां	प्राणियोंके लिए	**पराक् दृशः**	बाहर देखनेवाले
मृत्युः इव	मृत्युके समान	**अस्य हृदयं**	इसके हृदयमें
असौ तत्र	यह भी वहां (पहुँच जायगा)	**अहं**	मैं
		प्रवेक्ष्यामि	प्रवेश करूंगा' ॥९॥

एवं स निश्चित्य रिपोः शरीर-
माधावतो निर्विविशेऽसुरेन्द्र ।
श्वासानिलान्तर्हितसूक्ष्मदेह-
स्तत्प्राणरन्ध्रेण विविग्नचेताः ॥१०॥

एवं स निश्चित्य रिपोः शरीरं आधावतः निर्विविशे असुरेन्द्र श्वास अनिल अन्तर्हित सूक्ष्मदेहः तत् प्राण रन्ध्रेण विविग्न चेताः ॥१०॥

असुरेन्द्र	असुरेन्द्र !	**रन्ध्रेण**	छिद्र नासिकासे
स विविग्न	उन उद्विग्न	**सूक्ष्मदेहः**	सूक्ष्म शरीरसे
चेताः	चित्तने	**श्वास अनिल**	श्वास वायुमें
एवं निश्चित्य	ऐसा निश्चय करके	**अन्तर्हित**	छिपकर
आधावतः रिपोः	दौड़ते हुए शत्रुके	**निर्विविशे**	प्रवेश कर लिया
शरीरं	शरीरमें		॥१०॥
तत् प्राण	उसके प्राण		

स तन्निकेतं परिमृश्य शून्य-
मपश्यमानः कुपितो ननाद ।
क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान्समुद्रान्
विष्णुं विचिन्वन् न ददर्श वीरः ॥११॥

स तत् निकेतं परिमृश्य शून्यं अपश्यमानः कुपितः ननाद क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान् समुद्रान् विष्णुं विचिन्वन् न ददर्श वीरः ॥११॥

तत् शून्यं	उनके सूने	**दिशः**	दिशाओं,
निकेतं	भवनको	**खं**	आकाश तथा
परिमृश्य	ढूंढकर	**विवरान्**	पातालमें
स कुपितः	वह क्रोधसे	**विष्णुं**	विष्णुको
ननाद	गरजने लगा	**विचिन्वन्**	ढूंढ़ता हुआ
वीरः	वह वीर	**न ददर्श**	नहीं देख सका
क्ष्मां द्यां	पृथ्वी, स्वर्ग,		॥११॥

अपश्यन्निति होवाच मयान्विष्टमिदं जगत् ।
भ्रातृहा मे गतो नूनं यतो नावर्तते पुमान् ॥१२॥

अपश्यन् इति ह उवाच मया अन्विष्टं इदं जगत् भ्रातृहा मे गतः नूनं यतः न आर्वते पुमान् ॥१२॥

अपश्यन्	(उनको) न देखकर	**नूनं मे भ्रातृहा**	निश्चय मेरे भाईका हत्यारा
इति ह	इस प्रकार निश्चय करके	**यतः**	जहाँ जाकर (जीव)
उवाच	बोला	**न आवर्तते**	नहीं लौटता
मया इदं	'मैंने इस	**पुमान्**	(वहां) चला गया ॥१२॥
जगत् अन्विष्टं	पूरे विश्वको ढूंढ़ लिया		

वैरानुबन्ध एतावानामृत्योरिह देहिनाम् ।
अज्ञानप्रभवो मन्युरहंमानोपबृंहितः ॥१३॥

वैर अनुबन्ध एतावान् आमृत्योः इह देहिनां अज्ञान प्रभवः मन्युः अहंमान उपबृंहितः ॥१३॥

आमृत्योः	मृत्यु पर्यन्त	**अहंमान**	अह मन्यतासे
एतावान्	जितना ही	**उपबृंहितः**	बढ़ा हुआ
इह	इस लोकमें	**मन्युः**	क्रोध
देहिनां	प्राणियोंका	**अज्ञान**	अज्ञानसे
वैर	शत्रुताका	**प्रभवः**	उत्पन्न होता है ॥१३॥
अनुबन्ध	सम्बन्ध रहता है		

पिता प्रह्लादपुत्रस्ते तद्विद्वान्द्विजवत्सलः ।
स्वमायुर्द्विजलिङ्गेभ्यो देवेभ्योऽदात् स याचितः ॥१४॥

पिता प्रह्लादपुत्रः ते तत् विद्वान् द्विजवत्सलः स्वं आयुः द्विजलिङ्गेभ्यः देवेभ्यः अदात् स याचितः ॥१४॥

प्रह्लादपुत्रः	प्रह्लादके पुत्र
ते पिता	तुम्हारे पिता (विरोचन) ने
द्विजलिङ्गेभ्यः	ब्राह्मण वेशधारी
देवेभ्यः	देवताओंके
याचितः	मांगनेपर
तत् विद्वान्	उन्हें पहिचान करके भी
द्विजवत्सलः	ब्राह्मणोंसे प्रेम करनेवाले होनेसे
स स्वं आयुः	उन्होंने अपनी आयु
अदात्	दे दी ॥१४॥

भवानाचरितान्धर्मानास्थितो गृहमेधिभिः ।
ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैरन्यैश्चोद्दामकीर्तिभिः ॥१५॥

भवान् आचरितान् धर्मान् आस्थितः गृहमेधिभिः ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैः अन्यैः च उद्दाम कीर्तिभिः ॥१५॥

पूर्वजैः	पहिले उत्पन्न हुए
ब्राह्मणैः	ब्राह्मणों,
अन्यैः उद्दाम	दूसरे परम
कीर्तिभिः	यशस्वी
गृहमेधिभिः	गृहस्थ
शूरैः च	वीरों द्वारा भी
आचरितान्	आचरण किये
धर्मान्	धर्मोंपर
भवान्	आप
आस्थितः	स्थित हैं ॥१५॥

तस्मात् त्वत्तो महीमीषद् वृणेऽहं वरदर्षभात् ।
पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पदा मम ॥१६॥

तस्मात् त्वत्तः महीं ईषत् वृणे अहं वरद ऋषभात् पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पदा मम ॥१६॥

दैत्येन्द्र	दैत्येन्द्र !
तस्मात्	इसलिए
वरद	वरदान देने वालोंमें
ऋषभात्	श्रेष्ठ
त्वत्तः	तुमसे
मम पदानि	मेरे पैरोंसे
संमितानि	नापी हुई
त्रीणि पदानि	तीन पद
ईषत् महीं	थोड़ी-सी पृथ्वी
अहं वृणे	मैं मांगता हूँ ॥१६॥

नान्यत् ते कामये राजन्वदान्याज्जगदीश्वरात् ।
नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थप्रतिग्रहः ॥१७॥

न अन्यत् ते कामये राजन् वदान्यात् जगदीश्वरात् न एनः प्राप्नोति वै विद्वान् यावत् अर्थ प्रतिग्रहः ॥१७॥

राजन्	राजन्	**यावत् अर्थ**	प्रयोजन मात्रके लिए
ते वदान्यात्	तुम उदार तथा	**प्रतिग्रहः**	दान स्वीकार करने-
जगदीश्वरात्	सम्पूर्ण जगतके स्वामीसे		से
अन्यत् न	दूसरा कुछ नहीं	**विद्वान् वै**	विद्वान् निश्चय
कामये	चाहता	**एनः न**	पाप भागी नहीं
		प्राप्नोति	होता ॥१७॥

बलिरुवाच–

अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसंमताः ।
त्वं बालो बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा ॥१८॥

अहो ब्राह्मण दायाद वाचः ते वृद्ध संमताः त्वं बालः बालिशमतिः स्वार्थं प्रति अबुधः यथा ॥१८॥

अहो ब्राह्मण	हे ब्राह्मण	**बालः**	बालक हो,
दायाद	कुमार !	**यथा**	क्योंकि अपने
ते वाचः	तुम्हारी बातें	**स्वार्थं प्रति**	स्वार्थको भी
वृद्ध संमताः	वृद्धों जैसी हैं; किन्तु	**अबुधः**	नहीं जानते हो
त्वं	तुम		॥१८॥
बालिशमतिः	अज्ञबुद्धि		

मां वचोभिः समाराध्य लोकानामेकमीश्वरम् ।
पदत्रयं वृणीते योऽबुद्धिमान् द्वीपदाशुषम् ॥१९॥

मां वचःभिः समाराध्य लोकानां एकं ईश्वरं पदत्रयं वृणीते यः अबुद्धिमान् द्वीपद आशुषम् ॥१९॥

लोकानां	(तीनों) लोकोंके	**द्वीपद**	द्वीप देनेमें
एकं ईश्वरं	एक मात्र स्वामी	**आशुषं**	समर्थ

मां वचःभिः	मुझे स्तुतिसे	**यः**	जो (केवल)
समाराध्य	भली प्रकार प्रसन्न करके	**पदत्रयं**	तीन पद
		वृणीते	मांगता है (वह)
		अबुद्धिमान्	बुद्धिहीन है ॥१९॥

न पुमान् मामुपव्रज्य भूयो याचितुमर्हति ।
तस्माद् वृत्तिकरीं भूमिं वटो कामं प्रतीच्छ मे ॥२०॥

न पुमान् मां उपव्रज्य भूयः याचितुं अर्हति तस्मात् वृत्तिकरीं भूमिं वटोः कामं प्रतीच्छ मे ॥२०॥

मां उपव्रज्य	मेरे पास आकर	**वृत्तिकरीं**	आजीविका देने योग्य
पुमान् भूयः	पुरुषको फिर	**कामं भूमिं**	इच्छानुसार भूमि
याचितुं न	मांगना नहीं	**मे प्रतीच्छ**	मुझसे मांग लो ॥२०॥
अर्हति	चाहिए		
तस्मात् वटो	इसलिए ब्रह्मचारीजी		

श्रीभगवानुवाच—

यावन्तो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेन्द्रियम् ।
न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥२१॥

यावन्तः विषयाः प्रेष्ठाः त्रिलोक्यां अजित इन्द्रियं न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥२१॥

नृप	राजन् !	**ते सर्वे**	वे सब
त्रिलोक्यां	तीनों लोकोंमें	**अजित इन्द्रियं**	अजितेन्द्रियको
यावन्तः	जितने	**प्रतिपूरयितुं**	परिपूर्ण करनेमें
प्रेष्ठाः विषयाः	प्रिय विषय हैं,	**शक्नुवन्ति न**	समर्थ नहीं हैं ॥२१॥

त्रिभिः क्रमैरसंतुष्टो द्वीपेनापि न पूर्यते ।
नववर्षसमेतेन सप्तद्वीपवरेच्छया ॥२२॥

त्रिभिः क्रमैः असन्तुष्टः द्वीपेन अपि न पूर्यते नववर्ष समेतेन सप्तद्वीप वर इच्छया ॥२२॥

त्रिभिः क्रमैः	तीन पग (पृथ्वी) से	**इच्छया**	इच्छासे
असन्तुष्टः	जो सन्तुष्ट नहीं है, वह	**नववर्ष समेतेन**	नववर्षों सहित
सप्तद्वीप	सातों द्वीपोंका	**द्वीपेन अपि**	एक द्वीपसे भी
वर	वरदान पानेकी	**पूर्यते न**	परितुष्ट नहीं होगा ॥२२॥

सप्तद्वीपाधिपतयो नृपा वैन्यगयादयः ।
अर्थैः कामैर्गता नान्तं तृष्णाया इति नः श्रुतम् ॥२३॥

सप्तद्वीप अधिपतयः नृपा वैन्य गय आदयः अर्थैः कामैः गता न अन्तं तृष्णाया इति नः श्रुतम् ॥२३॥

इति नः	ऐसा हमने	**आदयः**	आदि
श्रुतं	सुना है कि	**नृपा**	राजा लोग
सप्तद्वीप	सातों द्वीपोंके	**अर्थैः कामैः**	धन और भोगसे
अधिपतयः	अधिपति	**तृष्णाया अन्तं**	तृष्णाका अन्त
वैन्य गद	वैन्य गद	**न गता**	नहीं पा सके ॥२३॥

यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टो वर्तते सुखम् ।
नासंतुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥२४॥

यदृच्छया उपपन्नेन सन्तुष्टः वर्तते सुखं न असन्तुष्टः त्रिभिः लोकैः अजितात्मा उपसादितैः ॥२४॥

यदृच्छया	(प्रारब्धवश) अपने आप	**असन्तुष्टः**	असन्तुष्ट
उपपन्नेन	प्राप्त हुएसे	**अजितात्मा**	अजितेन्द्रिय (व्यक्ति)
सन्तुष्टः	सन्तुष्ट रहनेवाला	**त्रिभिः लोकैः**	तीनों लोकोंके
सुखं वर्तते	सुखपूर्वक रहता है; किन्तु	**उपसादितैः**	मिलनेपर भी
		न	(सुखी) नहीं (होता) ॥२४॥

पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसंतोषोऽर्थकामयोः ।
यदृच्छयोपपन्नेन संतोषो मुक्तये स्मृतः ॥२५॥

पुंसः अयं संसृतेः हेतुः असंतोषः अर्थ कामयोः यदृच्छया उपपन्नेन संतोषः मुक्तये स्मृतः ॥२५॥

अर्थ	धन और	**यदृच्छया**	अपने आप
कामयोः	भोगके सम्बन्धमें	**उपपन्नेन**	प्राप्तसे
असंतोषः	असंतोष	**संतोषः**	संतोष
अयं पुंसः	यह पुरुषके	**मुक्तये स्मृतः**	मुक्तिका हेतु कहा गया है ॥२५॥
संसृतेः हेतुः	जन्म-मरणका कारण है,		

यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्धते ।
तत् प्रशाम्यत्यसंतोषादम्भसेवाशुशुक्षणिः ॥२६॥

यदृच्छा लाभ तुष्टस्य तेजः विप्रस्य वर्धते तत् प्रशाम्यति असन्तोषात् अम्भसा इव आशु शुक्षणिः ॥२६॥

यदृच्छा लाभ	अपने आप मिलेसे	**अम्भसा**	पानीसे
तुष्टस्य	सन्तुष्ट रहनेवाले	**शुक्षणिः**	सींचे हुए की
विप्रस्य	ब्राह्मणका	**इव आशु**	भांति शीघ्र
तेजः वर्धते	तेज बढ़ता है,	**प्रशाम्यति**	शान्त हो जाता है ॥२६॥
असन्तोषात्	असन्तोषसे (वह तेज)		

तस्मात् त्रीणि पदान्येव वृणे त्वद् वरदर्षभात् ।
एतावतैव सिद्धोऽहं वित्तं यावत्प्रयोजनम् ॥२७॥

तस्मात् त्रीणि पदानि एव वृणे त्वत् वरद ऋषभात् एतावता एव सिद्धः अहं वित्तं यावत् प्रयोजनम् ॥२७॥

तस्मात्	इसलिए	**वरद**	वरदान देनेवालोंमें
त्वत्	तुम	**ऋषभात्**	श्रेष्ठसे

त्रीणि पदानि	तीन पद	**एतावता एव**	(उसके अनुसार) इतने ही
एव	(भूमि) ही		
वृणे	मांगता हूँ,	**वित्तं अहं**	धनसे मैं
यावत् प्रयोजनं	जितना प्रयोजन है	**सिद्धः**	सफल हो जाऊँगा ॥२७॥

श्रीशुक उवाच–

इत्युक्तः स हसन्नाह वाञ्छातः प्रतिगृह्यताम् ।
वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥२८॥

इति उक्तः स हसन् आह वाञ्छातः प्रतिगृह्यतां वामनाय महीं दातुं जग्राह जल भाजनम् ॥२८॥

इति उक्तः	ऐसा कहनेपर	**वामनाय**	भगवान् वामनको
स	वह (बलि)	**महीं दातुं**	पृथ्वी दानके लिए (संकल्प करनेको)
हसन्	हंसते हुए		
आह	बोला	**जल भाजनम्**	जल-पात्र
वाञ्छातः	'इच्छानुसार	**जग्राह**	उठाया ॥२८॥
प्रतिगृह्यतां	दान लो ।'		

विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यन्तमुशना असुरेश्वरम् ।
जानंश्चिकीर्षितं विष्णोः शिष्यं प्राह विदां वरः ॥२९॥

विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यन्तं उशना असुर ईश्वरं जानन् चिकीर्षितं विष्णोः शिष्यं प्राह विदां वरः ॥२९॥

विदां वरः	ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ	**विष्णवे**	विष्णु भगवान्को
उशना	शुक्राचार्यने	**क्ष्मां प्रदास्यन्तं**	पृथ्वी देते हुए
विष्णोः	विष्णु भगवान्	**असुर ईश्वरं**	असुरोंके स्वामी
चिकीर्षितं	जो करना चाहते थे वह	**शिष्यं प्राह**	अपने शिष्य बलिसे कहा ॥२९॥
जानन्	जानकर		

श्रीशुक उवाच—

एष वैरोचने साक्षाद् भगवान्विष्णुरव्ययः ।
कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः ॥३०॥

एष वैरोचने साक्षात् भगवान् विष्णुः अव्ययः कश्यपात् अदितेः जातः देवानां कार्यसाधकः ॥३०॥

वैरोचने	विरोचन-नन्दन !	**अदितेः जातः**	अदितिके पुत्र
देवानां	देवताओंका	**एष साक्षात्**	ये साक्षात्
कार्यसाधकः	कार्य सिद्ध करने-वाले	**अव्ययः**	अविनाशी
		भगवान्	भगवान्
कश्यपात्	कश्यपसे	**विष्णुः**	विष्णु हैं ॥३०॥

प्रतिश्रुतं त्वयैतस्मै यदनर्थमजानता ।
न साधु मन्ये दैत्यानां महानुपगतोऽनयः ॥३१॥

प्रतिश्रुतं त्वया एतस्मै यत् अनर्थं अजानता न साधु मन्ये दैत्यानां महान् उपगतः अनयः ॥३१॥

यत् अनर्थं	जो (भावी) अनर्थ-को	**न मन्ये**	नहीं मानता
		दैत्यानां	दैत्योंके साथ
अजानता	न जाननेके कारण	**महान् अनयः**	महान् अन्यायाय
त्वया एतस्मै	तुमने इनको	**उपगतः**	उपस्थित हो गया
प्रतिश्रुतं	वचन दे दिया		है ॥३१॥
साधु	(उसे मैं) अच्छा		

एष ते स्थानमैश्वर्यं श्रियं तेजो यशः श्रुतम् ।
दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणवको हरिः ॥३२॥

एष ते स्थानं ऐश्वर्यं श्रियं तेजः यशः श्रुतं दास्यति आच्छिद्य शक्राय माया माणवकः हरिः ॥३२॥

एष माणवकः	ये मायासे मनुष्य बने
हरिः	विष्णु
ते स्थानं	तुम्हारा स्थान,
ऐश्वर्यं श्रियं	ऐश्वर्य, लक्ष्मी
तेजः	तेज,
श्रुतं यशः	(विश्व) विख्यात यश
आच्छिद्य	छीनकर उसे
शक्राय दास्यति	इन्द्रको दे देंगे ॥३२॥

त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकान्विश्वकायः क्रमिष्यति ।

सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढ वर्तिष्यसे कथम् ॥३३॥

त्रिभिः क्रमैः इमान् लोकान् विश्वकायः क्रमिष्यति सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढ वर्तिष्यसे कथम् ॥३३॥

विश्वकायः	ये विश्वरूप होकर
इमान् लोकान्	इन सब लोकोंको
त्रिभिः क्रमैः	तीन पदमें
क्रमिष्यति	माप लेंगे
मूढ	(अरे) मूर्ख
सर्वस्वं	अपना सर्वस्व
विष्णवे दत्त्वा	विष्णुको देकर
वर्तिष्यसे	(अपना) निर्वाह
कथं	कैसे करेगा ॥३३॥

क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभोः ।

खं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतो गतिः ॥३४॥

क्रमतः गां पद एकेन द्वितीयेन दिवं विभोः खं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतः गतिः ॥३४॥

एकेन पद	एक पैरसे
गां	पृथ्वी
द्वितीयेन दिवं	दूसरे (पदसे) स्वर्ग
विभोः	इन सर्वव्यापकके
क्रमतः	नापते समय
महता	इनके विशाल
कायेन	शरीरसे
खं च	आकाश भी (नप जायगा)
तार्तीयस्य	फिर तीसरे (पद) के लिए
गतिः कुतः	स्थान कहां रहेगा ॥३४॥

निष्ठां ते नरके मन्ये ह्यप्रदातुः प्रतिश्रुतम् ।
प्रतिश्रुतस्य योऽनीशः प्रतिपादयितुं भवान् ॥३५॥

निष्ठां ते नरके मन्ये हि अप्रदातुः प्रतिश्रुतं प्रतिश्रुतस्य यः अनीशः प्रतिपादयितुं भवान् ॥३५॥

भवान्	तुम	**प्रतिश्रुतं**	प्रतिज्ञा करके
प्रतिश्रुतस्य	प्रतिज्ञा करके	**अप्रदातुः**	न देनेवालेका
प्रतिपादयितुं	उसे पूरा करनेमें	**निष्ठां नरके**	स्थान नरकमें
हि अनीशः	क्योंकि असमर्थ हो,	**मन्ये**	मानता हूँ ॥३५॥
यः ते	उस तुम्हारी		

न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते ।
दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः ॥३६॥

न तत् दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिः विपद्यते दानं यज्ञः तपः कर्म लोके वृत्तिमतः यतः ॥३६॥

तत् दानं	उस दानकी	**यतः लोके**	क्योंकि संसारमें
प्रशंसन्ति न	प्रशंसा नहीं की जाती	**दानं यज्ञः**	दान, यज्ञ,
		तपः कर्म	तपस्यादि कर्म
येन वृत्तिः	जिससे आजीविका	**वृत्तिमतः**	आजीविका वालेके
विपद्यते	नष्ट होती हो		लिए ही हैं ॥३६॥

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ।
पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥३७॥

धर्माय यशसे अर्थाय कामाय स्वजनाय च पञ्चधा विभजन् वित्तं इह अमुत्र च मोदते ॥३७॥

धर्माय	धर्मके लिए,	**कामाय**	अपने उपभोगके लिए
यशसे	यशके लिए		
अर्थाय	फिर धन कमानेके लिए	**च स्वजनाय**	तथा अपने संबन्धी लोगोंके लिए

वित्तं	(इस प्रकार) धनको	**अमुत्र**	परलोकमें
पञ्चधा	पांच भागोंमें	**मोदते**	आनन्द करता है ॥३७॥
विभजन्	बांटनेवाला		
इह च	इस लोक और		

अत्रापि बह्वृचैर्गीतं शृणु मेऽसुरसत्तम ।
सत्यमोमिति यत् प्रोक्तं यन्नेत्याहानृतं हि तत् ॥३८॥

अत्र अपि बह्व ऋचैः गीतं शृणु मे असुर सत्तम सत्यं ओम् इति यत् प्रोक्तं यत् नेति आह अनृतं हि तत् ॥३८॥*

असुर सत्तम	असुर श्रेष्ठ !	**यत् प्रोक्तं**	जो कहा (स्वीकार किया) जाय
अत्र	इस (सत्य-मिथ्या) के सम्बन्धमें	**सत्यं**	वह सत्य है और
अपि	भी	**हि**	क्योंकि
बह्व ऋचैः	ऋग्वेदकी श्रुतियोंमें	**यत् नेति**	जिसे 'नहीं है'
गीतं	वर्णित बात	**आह**	इस प्रकार कहा गया
मे शृणु	मुझसे सुनो		
ओम् इति	'हां' इस प्रकार	**तत् अनृतं**	वह झूठ है ॥३८॥

सत्यं पुष्पफलं विद्यादात्मवृक्षस्य गीयते ।
वृक्षेऽजीवति तन्न स्यादनृतं मूलमात्मनः ॥३९॥

सत्यं पुष्पफलं विद्यात् आत्मवृक्षस्य गीयते वृक्षे अजीवति तत् न स्यात् अनृतं मूलं आत्मनः ॥३९॥

आत्मवृक्षस्य	शरीर रूपी वृक्षका	**पुष्पफलं**	पुष्प और फल
सत्यं	सत्यको	**विद्यात्**	समझे

---

*शुक्राचार्य नीतिके आचार्य होनेसे जानबूझकर यहां श्रुतिका अर्थ अपने पक्षमें कर रहे हैं। नहीं तो जो वस्तु आपके पास है ही नहीं, उसे 'नहीं है' कहना झूठ कैसे होगा। श्रुति वस्तुतः परमार्थ सत्ता प्रतिपादक है। जिसे सदा 'ॐ' अथवा सत्तारूप है कहते हैं, वह सत्य है और 'नेति' कहकर जिसका निषेध कर देते हैं, वह मिथ्या-तथ्यहीन है।

गीयते	ऐसा ही श्रुतिमें कहा है,	**तत्**	वह (सत्य) भी
		न स्यात्	नहीं रहेगा
वृक्षे अजीवति	वृक्षके जीवित न रहनेपर	**आत्मनः मूलं अनृतं**	शरीरकी तो जड़ ही उन सत्य है ॥३९॥

तद् यथा वृक्ष उन्मूलः शुष्यत्युद्वर्ततेऽचिरात् ।
एवं नष्टानृतः सद्य आत्मा शुष्येन्न संशयः ॥४०॥

तत् यथा वृक्ष उन्मूलः शुष्यति उद्वर्तते अचिरात् एवं नष्ट अनृतः सद्य आत्मा शुष्येत् संशयः ॥४०॥

तत् यथा	अतः जैसे	**नष्ट**	असत्यके नष्ट
वृक्ष उन्मूलः	वृक्ष जड़से उखड़कर	**अनृतः**	हो जानेपर
अचिरात्	शीघ्र	**संशयः न**	(इसमें) सन्देह नहीं कि
शुष्यति	सूखकर	**आत्मा शुष्येत्**	शरीर सूख जाता है ॥४०॥*
उद्वर्तते	गिर पड़ता है		
एवं	इस प्रकार		

पराग रिक्तमपूर्णं वा अक्षरं यत् तदोमिति ।
यत् किञ्चिदोमिति ब्रूयात् तेन रिच्येत वै पुमान् ।
भिक्षवे सर्वमोंकुर्वन्नालं कामेन चात्मने ॥४१॥

पराक् रिक्तं अपूर्णं वा अक्षरं यत् तत् ओम् इति यत् किञ्चित् ओम् इति ब्रूयात् तेन रिच्येत वै पुमान् भिक्षवे सर्वं ओंकुर्वन न अलं कामेन च आत्मने ॥४१॥

---

*केवल सत्यसे शरीर-निर्वाह भी नहीं होगा, यह समझानेके लिए सत्यके दोष एवं असत्यके गुण नीति शास्त्रके अनुसार बतला रहे हैं; किन्तु ध्यान रखना चाहिए कि धर्म-विरुद्ध-नीति त्याज्य है। यही बलि करनेवाले हैं।

यत् ओम	जो ओम् (हां देंगे)	**तेन वै**	उस वस्तुसे निश्चय
अक्षरं	यह अक्षर है	**पुमान् रिच्येत**	वह पुरुष रिक्त हो जाता है
तत् पराक्	वह (धनको) दूर ले जानेवाला,	**भिक्षवे**	याचकको
रिक्तं वा	खाली या	**सर्वं**	सब कुछ
अपूर्णं	अधूरा कर देनेवाला है,	**ओंकुर्वन**	देना स्वीकार कर लेते हैं
यत् किञ्चित्	जिस कुछके लिए भी	**च**	और
		आत्मने	अपने
ओम्	ओम् (हां दूँगा)	**कामेन**	उपभोगके लिए
इति	इस प्रकार	**न**	नहीं रखते ॥४१॥
ब्रूयात्	कह देता है,		

अथैतत् पूर्णमभ्यात्मं यच्च नेत्यनृतं वचः ।
सर्वं नेत्यनृतं ब्रूयात् स दुष्कीर्तिः श्वसन्मृतः ॥४२॥

अथ एतत् पूर्णं अभि आत्मं यत् च नेति अनृतं वचः सर्वं नेति अनृतं ब्रूयात् स दुष्कीर्तिः श्वसन् मृतः ॥४२॥

यत् नेति	तो 'नहीं' इस प्रकारकी	**नेति**	नहीं दूंगा इस प्रकार
अनृतं वचः	मिथ्या वाणी है	**अनृतं**	जो झूठी वाणी ही
अथ एतत्	अतः यह	**ब्रूयात्**	बोलता है
अभि आत्मं	शरीरके अनुकूल और	**स दुष्कीर्तिः**	वह अपयश भागी होता है
पूर्णं	(धनको) पूरा रखनेवाली है; किन्तु	**श्वसन्**	श्वास लेते हुए भी
		मृतः	मरेके समान है ॥४२॥
सर्वं	सबके लिए 'नहीं' है,		

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे ।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥४३॥

स्त्रीषु नर्म विवाहे च वृत्ति अर्थे प्राण सङ्कटे गो ब्राह्मण अर्थे हिंसायां न अनृतं स्यात् जुगुप्सितम् ॥४३॥

स्त्रीषु	स्त्रियोंके साथ (उनको अनुकूल रखनेको)	**सङ्कटे**	संकट होनेपर
नर्म	परिहासमें	**गो ब्राह्मण**	गाय तथा ब्राह्मण
च विवाहे	तथा विवाहमें,	**अर्थे**	हितके लिए
वृत्ति	आजीविका	**हिंसायां**	किसीकी हिंसा होती हो तो
अर्थे	रक्षा के लिए	**अनृतं**	झूठ बोल देना
प्राण	प्राणोंपर	**जुगुप्सितं**	निन्दनीय
		न स्यात्	नहीं है ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अथ विंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः ।
तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम् ॥ १ ॥

बलिः एवं गृहपतिः कुल आचार्येण भाषितः तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन् उवाच अवहितः गुरुम् ॥१॥

राजन्	राजन् !	**क्षणं तूष्णीं**	एक क्षण चुप
एवं	इस प्रकार	**भूत्वा**	रहकर
कुल आचार्येण	कुल गुरु द्वारा	**अवहितः**	सावधानी पूर्वक
भाषितः	कहनेपर	**गुरुं उवाच**	गुरुसे बोले ॥१॥
गृहपतिः बलिः	गृहस्थ राजा बलि		

बलिरुवाच-

सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् ।
अर्थं कामं यशो वृत्तिं यो न बाधेत कर्हिचित् ॥ २ ॥

सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मः अयं गृहमेधिनां अर्थं कामं यशः वृत्तिं यः न बाधेत कर्हिचित् ॥२॥

भगवता प्रोक्तं	भगवन् ! आपका कहा	**यः अर्थं कामः**	जिससे धन, भोग;
गृहमेधितां	गृहस्थोंका	**यशः वृत्ति**	यश आजीविकामें
अयं धर्मः सत्यं	यह धर्म ठीक है कि	**कर्हिचित्**	कभी भी
		बाधेत न	बाधा न पड़े ॥२॥

स चाहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजम् ।
प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्रादिः कितवो यथा ॥ ३ ॥

स च अहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजं प्रतिश्रुत्य ददामि इति प्राह्रादिः कितवः यथा ॥३॥

च स अहं	किन्तु वह मैं	**कितवः यथा**	कपटीकी भांति
प्राह्रादिः	प्रह्लाद-नन्दन विरोचनका पुत्र होकर	**वित्तलोभेन**	धनके लोभसे
		कथं	कैसे
		प्रत्याचक्षे	प्रत्याख्यान (अस्वीकार)
द्विजं ददामि	ब्राह्मणसे 'दूंगा'		करूँगा ॥३॥
इति	इस प्रकार		
प्रतिश्रुत्य	प्रतिज्ञा करके		

न ह्यसत्यात् परोऽधर्म इति होवाच भूरियम् ।
सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम् ॥ ४ ॥

न हि असत्यात् परः अधर्म इति ह उवाच भूः इयं सर्वं सोढुं अलं मन्ये ऋते अलीक परं नरम् ॥४॥

इयं भूः	इस पृथ्वीने	**सर्वं सोढुं**	मैं और सबका भार सहनेमें
ह इति उवाच	निश्चयपूर्वक ऐसा कहा है	**अलं**	समर्थ हूँ,
अलीक परं	असत्य परायण	**हि**	क्योंकि
नरं ऋते	मनुष्यको छोड़कर	**असत्यात् परः**	असत्यसे बड़ा कोई
		अधर्मः न	अधर्म नहीं है ॥४॥

नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात् ।
न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रलम्भनात् ॥ ५ ॥

न अहं बिभेमि निरयात् न अधन्यात् असुख अर्णवात् न स्थान च्यवनात् मृत्योः यथा विप्र प्रलम्भनात् ॥५॥

विप्र	ब्राह्मणकी	**यथा बिभेमि**	जैसा डरता हूँ (वैसा)
प्रलम्भनात्	वंचना करनेसे		

निरयात् न	नरकसे नहीं,	**स्थान च्यवनात्**	पदच्युति तथा
असुख अर्णवात्	दुःखोंके समुद्रके समान	**मृत्योः न**	मृत्युसे नहीं (डरता) ॥५॥
अधन्यात् न	धनहीनतासे नहीं,		

यद् यद्धास्यति लोकेऽस्मिन्संपरेतं धनादिकम् ।
तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रस्तुष्येन्न तेन चेत् ॥ ६ ॥

यत् यत् हास्यति लोके अस्मिन् सम्परेतं धन आदिकं तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रः तुष्येत् न तेन चेत् ॥६॥

अस्मिन् लोके	इस लोकमें	**विप्रः**	ब्राह्मण
यत् यत्	जो जो	**न तुष्येत्**	सन्तुष्ट नहीं हुआ
धन आदिकं	धन आदि	**तस्य त्यागे**	उसको छोड़ देनेमें कारणका
सम्परेतं	मरनेपर	**किं निमित्तं**	क्या विचार करना है ॥६॥
हास्यति	छोड़ ही देगा		
तेन चेत्	उससे यदि		

श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः ।
दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पो धरादिषु ॥ ७ ॥

श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां साधवः दुस्त्यज असुभिः दध्यङ् शिबि प्रभृतयः कः विकल्पः धरा आदिषु ॥७॥

दध्यङ्	दधीचि	**भूतानां श्रेयः**	प्राणियोंका कल्याण
शिबि प्रभृतयः	शिबि आदि	**कुर्वन्ति**	किया है (तब)
साधवः	सत्पुरुषोंने	**धरा आदिषु**	पृथ्वी आदि (देने) में
दुस्त्यज	दुस्त्याज्य	**विकल्पः कः**	सोचना क्या है ॥७॥
असुभिः	प्राणोंको भी देकर		

यैरियं बुभुजे ब्रह्मन्दैत्येन्द्रैरनिवर्तिभिः ।
तेषां कालोऽग्रसील्लोकान् न यशोऽधिगतं भुवि ॥ ८ ॥

यः इयं बुभुजे ब्रह्मन् दैत्येन्दैः अनिवर्तिभिः तेषां कालः अग्रसीत् लोकान् न यशः अधिगतं भुवि ॥८॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**लोकान्**	परलोकको
यैः	जिन (युद्धसे पीछे)	**कालः**	कालने
अनिवर्तिभिः	न लोटनेवाले	**अग्रसीत्**	खा लिया; किन्तु
दैत्येन्दैः	दैत्य-सम्राटोंने	**भुवि अधिगतं**	पृथ्वीपर प्राप्त
इयं बुभुजे	इस पृथ्वीको भोग है	**यशः न**	यशको नहीं (खा
तेषां	उनके इस और		सका) ॥८॥

सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनिवृत्तास्तनुत्यजः ।
न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥ ९ ॥

सुलभा युधि विप्रर्षे हि अनिवृत्ताः तनुत्यजः न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥९॥

विप्रर्षे	ब्रह्मर्षि !	**तीर्थ आयाते**	पवित्र पात्र आनेपर
हि युधि	क्योंकि युद्धमें	**श्रद्धया**	श्रद्धापूर्वक
अनिवृत्ताः	पीछे न लौटकर	**ये धनत्यजः**	जो धन त्याग दें
तनुत्यजः	शरीर छोड़ देनेवाले	**तथा**	वैसे (सुलभ)
सुलभा	सरलतासे मिलते हैं; किन्तु	**न**	नहीं हैं ॥९॥

मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं
यदर्थिकामोपनयेन दुर्गतिः ।
कुतः पुनर्ब्रह्मविदां भवादृशां
ततो वटोरस्य ददामि वाञ्छितम् ॥१०॥

मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं यत् अर्थि काम उपनयेन दुर्गतिः कुतः पुनः ब्रह्मविदां भवादृशां ततः वटोः अस्य ददामि वाञ्छितम् ॥१०॥

मनस्विनः	धैर्यशाली
कारुणिकस्य	करुणमय (पुरुष) के लिए (चाहे जिस)
अर्थि	याचककी
काम उपनयेन	कामना पूरी करनेसे
यत् दुर्गतिः	जो दुर्गति होती है वह
शोभनं	शोभास्पद है,
पुनः भवादृशां	फिर आपके समान
ब्रह्मविदां	वेद वेत्ताओंको (देकर तो)
कुतः	कहना ही क्या
ततः अस्य वटोः	अतः इस ब्रह्मचारी-को
अस्य वाञ्छितं	इसका चाहा
ददामि	दूंगा ॥१०॥

यजन्ति यज्ञक्रतुभिर्यमादृता
भवन्त आम्नायविधानकोविदाः ।
स एव विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो
दास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने ॥११॥

यजन्ति यज्ञक्रतुभिः यं आदृता भवन्त आम्नाय विधान कोविदाः स एव विष्णुः वरदः अस्तु वा परः दास्यामि अमुष्मै क्षितिं ईप्सितां मुने ॥११॥

मुने	महामुनिजी !
आम्नाय विधान	शास्त्रीय विधिके
कोविदाः	मर्मज्ञ
भवन्त	आप लोग
यज्ञक्रतुभिः	छोटे-बड़े यज्ञों द्वारा
यं	जिनका
आदृता	आदर पूर्वक
यजन्ति	पूजन करते हैं
स एव वरदः	वही वरदायक
विष्णुः अस्तु	विष्णु हों
वा परः	अथवा कोई दूसरा
अमुष्मै	इनको
ईप्सितां क्षितिं	इनकी चाही पृथ्वी
दास्यामि	दूँगा ॥११॥

यदप्यसावधर्मेण मां बध्नीयादनागसम् ।
तथाप्येनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनुं रिपुम् ॥१२॥

यत् अपि असाः अधर्मेण मां बध्नीयात् अनागसं तथा अपि एनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनुं रिपुम् ॥१२॥

यत् अपि	यदि कहीं
मां अनागसं	मुझ निरपराधको
अधर्मेण	अधर्मपूर्वक
असाः	ये
बध्नीयात्	बाँध लें
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी
भीतं	भयभीत होकर
ब्रह्मतनुं	ब्राह्मण शरीरधारी
रिपुं	शत्रु
एनं	इनको
हिंसिष्ये न	मारूंगा नहीं ॥१२॥

एष वा उत्तमश्लोको न जिहासति यद् यशः ।
हत्वा मैनां हरेद् युद्धे शयीत निहतो मया ॥१३॥

एष वा उत्तमश्लोकः न जिहासति यत् यशः हत्वा म एनां हरेत् युद्धे शयीत निहतः मया ॥१३॥

एष	ये
उत्तमश्लोकः	पवित्र-कीर्ति
यत् यशः	यदि अपना यश
न जिहासति	नहीं छोड़ेंगे तो
म युद्धे हत्वा	मुझे युद्धमें मारकर
एनां	इस पृथ्वीको
हरेत्	छीन लेंगे
वा	अथवा
मया	मेरे द्वारा
निहतः	मारे जाकर
शयीत	सो जायँगे ॥१३॥

श्रीशुक उवाच–

एवमश्रद्धितं शिष्यमनादेशकरं गुरुः ।
शशाप दैवप्रहितः सत्यसन्धं मनस्विनम् ॥१४॥

एवं अश्रद्धितं शिष्यं अनादेशकरं गुरुः शशाप दैवप्रहितः सत्यसन्धं मनस्विनम् ॥१४॥

एवं	इस प्रकार
अश्रद्धितं	श्रद्धा न करनेवाले
अनादेशकरं	आदेशका पालन न करनेवाले,
सत्यसन्धं	सत्यपरायण,
मनस्विनं	धैर्यशाली
शिष्यं	शिष्यको
दैवप्रहितः	दैवकी प्रेरणासे
गुरुः शशाप	गुरुने शाप दे दिया ॥१४॥

दृढं पण्डितमान्यज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया ।
मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद् भ्रश्यसे श्रियः ॥१५॥

दृढं पण्डितमान् अज्ञः स्तब्धः असि अस्मत् उपेक्षया मत् शासन अतिगः यः त्वं अचिरात् भ्रश्यसे श्रियः ॥१५॥

अज्ञः	अज्ञानी	**मत् शासन**	मेरी आज्ञाका
स्तब्धः असि	मूढ़मति होकर भी	**अतिगः**	अतिक्रमण किया है,
दृढं पण्डितमान्	बड़ा पण्डित मानने लगा है ?	**अचिरात्**	शीघ्र
		श्रियः	ऐश्वर्य
अस्मत् उपेक्षया	मेरी उपेक्षा करके	**भ्रश्यसे**	भ्रष्ट हो जायगा ॥१५॥
यः त्वं	क्योंकि तूने		

एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यान्न चलितो महान् ।
वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम् ॥१६॥

एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यात् न चलितः महान् वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥१६॥

स्वगुरुणा	अपने गुरु द्वारा	**चलितः**	विचलित
एवं	इस प्रकार	**न**	नहीं हुआ,
शप्तः	शाप दिये जानेपर भी	**वामनाय**	वामन भगवान्को
		महीं दातुं	पृथ्वी देनेके लिए
महान्	महात्मा (बलि)	**जल भाजनं**	जल-पात्र
सत्यात्	सत्यसे	**जग्राह**	उठाया ॥१६॥

विन्ध्यावलिस्तदाऽऽगत्य पत्नी जालकमालिनी ।
आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम् ॥१७॥

विन्ध्यावलिः तदा आगत्य पत्नी जालक मालिनी आनिन्ये कलशं हैमं अवनेजन् अपां भृतम् ॥१७॥

तदा	उस समय	**आगत्य**	वहां आकर
जालक	केशोंमें मोतियोंकी झालर तथा	**अवनेजन्**	चरण धोनेके लिए
		अपां भृतं	जलसे भरा
मालिनी	माला पहिने	**हैमं कलशं**	स्वर्ण-कलश
पत्नी	(बलिकी) पत्नी	**आनिन्ये**	ले आयी ॥१७॥
विन्ध्यावलिः	विन्ध्यावलि		

यजमानः स्वयं तस्य श्रीमत् पादयुगं मुदा ।
अवनिज्यावहन्मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः ॥१८॥

यजमानः स्वयं तस्य श्रीमत् पादयुगं मुदा अवनिज्य आवहत् मूर्ध्नि तत् अपः विश्वपावनीः ॥१८॥

स्वयं यजमानः	स्वयं यजमान बलिने	**विश्वपावनीः**	भुवनपावन
तस्य श्रीमत्	उनके शोभाशाली	**अपः**	जलको
पादयुगं	दोनों चरणोंको	**मूर्ध्नि**	सिरपर
अवनिज्य	प्रक्षालित करके	**आवहत्**	धारण किया ॥१८॥
तत्	उस		

तदासुरेन्द्रं दिवि देवतागणा
गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ।
तत्कर्म सर्वेऽपि गृणन्त आर्जवं
प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदान्विताः ॥१९॥

तदा असुरेन्द्रं दिवि देवतागणा गन्धर्व विद्याधर सिद्ध चारणाः तत् कर्म सर्वे अपि गृणन्त आर्जवं प्रसूनवर्षैः ववृषुः मुद अन्विताः ॥१९॥

तदा	उस समय	**सर्वे अपि**	सभी
दिवि	आकाशमें स्थिति	**तत् कर्म**	उस कर्म और
देवतागणा	देवता लोग,	**आर्जवं**	सरलताकी
गन्धर्व विद्याधर	गन्धर्व, विद्याधर	**गृणन्त**	प्रशंसा करते हुए
सिद्ध चारणाः	सिद्ध तथा चारण	**मुद अन्विताः**	प्रसन्न होकर

असुरेन्द्रं	असुरराज बलिके ऊपर	प्रसूनवर्षैः ववृषुः	पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥१९॥

नेदुर्मुहुर्दुन्दुभयः सहस्रशो
गन्धर्वकिंपूरुषकिन्नरा जगुः ।
मनस्विनानेन कृतं सुदुष्करं
विद्वानदाद् यद् रिपवे जगत्त्रयम् ॥२०॥

नेदुः मुहुः दुन्दुभयः सहस्रशः गन्धर्व किंपूरुष किन्नरा जगुः मनस्विना अनेन कृतं सुदुष्करं विद्वान् अदात् यत् रिपवे जगत् त्रयम् ॥२०॥

सहस्रशः	हजारों	मनस्विना	धैर्यशालीने
दुन्दुभयः	दुन्दुभियां	सुदुष्करं	अत्यन्त कठिन
मुहुः नेदुः	बार-बार बजने लगीं,	कृतं	काम किया
		यत् विद्वान्	जो जानते हुए
गन्धर्व	गन्धर्व,	रिपवे	शत्रुको
किंपूरुष	किंपुरुष,	जगत् त्रयं	त्रिलोकी
किन्नरा जगुः	किन्नर गाने लगे कि	अदात्	दे दी ॥२०॥
अनेन	इस		

तद् वामनं रूपमवर्धताद्भुतं
हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम् ।
भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयोधय-
स्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत ॥२१॥

तत् वामनं रूपं अवर्धत अद्भुतं हरेः अनन्तस्य गुणत्रय आत्मकं भूः खं दिशः द्यौः विवराः पयोधयः तिर्यक् नृ देवा ऋषयः यत् आसत ॥२१॥

तत् अनन्तस्य	वह अनन्त	अद्भुतं	अद्भुत
हरेः	श्रीहरिका	अवर्धत	रूपसे बढ़ने लगा,
गुणत्रय आत्मकं	त्रिगुणात्मक	भूः खं	पृथ्वी, आकाश,
वामनं रूपं	वामन रूप	दिशः	दिशाएँ,

द्यौः विवराः	स्वर्ग, पाताल,	देवा ऋषयः	देवता, ऋषि,
पयोधयः	समुद्र,	यत् आसत	जिसमें आ गये
तिर्यक् नृ	पशु-पक्षी, मनुष्य,		॥२१॥

काये बलिस्तस्य महाविभूतेः
सहर्त्विगाचार्यसदस्य एतत् ।
ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुणात्मके
भूतेन्द्रियार्थाशयजीवयुक्तम् ॥२२॥

काये बलिः तस्य महाविभूतेः सह ऋत्विक् आचार्य सदस्य एतत् ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुण आत्मके भूत इन्द्रिय अर्थ आशय जीवयुक्तम् ॥२२॥

तस्य	उन	सदस्य सह	सदस्योंके साथ
महाविभूतेः	महाऐश्वर्यशालीके	भूत	पंच महाभूत,
गुण	गुणमय	इन्द्रिय	इन्द्रिय,
आत्मके काये	शरीरमें	अर्थ आशय	विषय, अन्तःकरण
बलिः	बलिने	जीवयुक्तं	जीवसे युक्त
ऋत्विक्	ऋत्विक्,	एतत् त्रिगुणं	यह त्रिगुणमय
आचार्य	आचार्य,	विश्वं ददर्श	विश्व देखा ॥२२॥

रसामचष्टाङ्घ्रितलेऽथ पादयो-
र्महीं महीध्रान्पुरुषस्य जङ्घयोः ।
पतत्त्रिणो जानुनि विश्वमूर्ते-
रूर्वोर्गणं मारुतमिन्द्रसेनः ॥२३॥

रसां अचष्ट अङ्घ्रितले अथ पादयोः महीं महीध्रान् पुरुषस्य जङ्घयोः पतत्त्रिणः जानुनि विश्वमूर्तेः उर्वोः गणं मारुतं इन्द्रसेनः ॥२३॥

इन्द्रसेनः	बलिने	अङ्घ्रितले	पैरके तलवोंमें
विश्वमूर्तेः	विश्वमूर्ति	रसां	पाताल,
पुरुषस्य	परम पुरुषके	अथ पादयोः	फिर पैरोंमें

महीं	पृथ्वी	**पतत्त्रिणः**	पक्षियोंको
जङ्घयोः	पिंडलियोंमें	**उर्वो**	जांघोंमें
महीध्रान्	पर्वतोंको,	**मारुतं गणं**	मरुद्गणोंको
जानुनि	घुटनोंमें	**अचष्ट**	देखा ॥२३॥

सन्ध्यां विभोर्वाससि गुह्य ऐक्षत्
प्रजापतीञ्जघने आत्ममुख्यान् ।
नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्तसिन्धू-
नुरुक्रमस्योरसि चर्क्षमालाम् ॥२४॥

सन्ध्यां विभोः वाससि गुह्य ऐक्षत् प्रजापतीन् जघने आत्म मुख्यान् नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्तसिन्धून् उरुक्रमस्य उरसि च अर्क्षमालाम् ॥२४॥

उरुक्रमस्य	अनन्त पराक्रम	**मुख्यान्**	सब मुख्य असुरगण,
विभोः	उन सर्वव्यापकके	**नाभ्यां नभः**	नाभिमें आकाश
वाससि सन्ध्यां	वस्त्रोंमें सन्ध्या,	**कुक्षिषु**	कोखमें
गुह्य	गुह्य देशमें	**सप्तसिन्धून्**	सातो समुद्र
प्रजापतीन्	प्रजापति-गण	**च उरसि**	तथा हृदयपर
जघने	जांघोंमें	**अर्क्षमालां**	नक्षत्र-मालाको
आत्म	अपने सहित	**ऐक्षत्**	देखा ॥२४॥

हृद्यङ्ग धर्मं स्तनयोर्मुरारे-
र्ऋतं च सत्यं च मनस्यथेन्दुम् ।
श्रियं च वक्षस्यरविन्दहस्तां
कण्ठे च सामानि समस्तरेफान् ॥२५॥

हृदि अङ्ग धर्मं स्तनयोः मुरारेः ऋतं च सत्यं च मनसि अथ इन्दुं श्रियं च वक्षसि अरविन्द हस्तां कण्ठे च सामानि समस्त रेफान् ॥२५॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित् !	**हृदि धर्मं**	हृदयमें धर्म,
मुरारेः	श्रीमुरारिके	**स्तनयोः**	दोनों स्तनोंमें

ऋतं च सत्यं	ऋत और सत्य,	**अरविन्द श्रियं**	कमल लिए लक्ष्मी-
अथ मनसि च	तथा मनमें		को
इन्दुं	चन्द्रमाको	**च कण्ठे**	और कण्ठमें
च वक्षसि	एवं वक्षस्थलमें	**सामानि**	सामश्रुति
हन्तां	हाथमें	**समस्त रेफान्**	तथा सम्पूर्ण शब्द
			राशि ॥२५॥

इन्द्रप्रधानानमरान्भुजेषु
तत्कर्णयोः ककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि ।
केशेषु मेघाञ्छ्वसनं नासिकाया-
मक्ष्णोश्च सूर्यं वदने च वह्निम् ॥२६॥

इन्द्र प्रधानान् अमरान् भुजेषु तत् कर्णयोः ककुभः द्यौः च मूर्ध्नि केशेषु मेघान् श्वसनं नासिकायां अक्ष्णोः च सूर्यं वदने च वह्निम् ॥२६॥

तत् भुजेषु	उनकी भुजाओंमें	**नासिकायां**	नाकमें
इन्द्र प्रधानान्	इन्द्र प्रमुख	**श्वसनं च**	वायु तथा
अमरान्	देवताओंको,	**अक्ष्णोः सूर्यं**	नेत्रोंमें सूर्य
कर्णयोः ककुभः	कानोंमें दिशाएँ,	**च वदने**	एवं मुखमें
च मूर्ध्नि द्यौः	और मस्तकमें स्वर्ग,	**वह्निं**	अग्नि ॥२६॥
केशेषु मेघान्	बालोंमें मेघ,		

वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं
भ्रुवोर्निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु ।
अहश्च रात्रिं च परस्य पुंसो
मन्युं ललाटेऽधर एव लोभम् ॥२७॥

वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं भ्रुवोः निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु अहः च रात्रिं च परस्य पुंसः मन्युं ललाटे अधर एव लोभम् ॥२७॥

परस्य पुंसः	परम-पुरुषकी	**च रसे जलेशं**	और रसनामें वरुण,
वाण्यां छन्दांसि	वाणीमें वेद	**च भ्रुवोः**	एवं भौंहोंमें

निषेधं च विधिं	विधान और निषेध,	**मन्युं**	क्रोध,
च पक्ष्मसु	तथा पलकोंमें	**अधर एव**	अधरमें ही
अहः च रात्रिं	दिन और रात्रि,	**लोभं**	लोभ ॥२७॥
च ललाटे	और ललाटमें		

स्पर्शे च कामं नृप रेतसोऽम्भः
पृष्ठे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम् ।
छायासु मृत्युं हसिते च मायां
तनूरुहेष्वोषधिजातयश्च ॥२८॥

स्पर्शे च कामं नृप रेतसः अम्भः पृष्ठे तु अधर्मं क्रमणेषु यज्ञं छायासु मृत्युं हसिते च मायां तनूरुहेषु ओषधि जातयः च ॥२८॥

नृप	राजन् !	**क्रमणेषु यज्ञं**	गतिमें यज्ञ,
स्पर्शे कामं	स्पर्शमें काम,	**छायासु मृत्युं**	छायामें मृत्यु,
च रेतसः	और वीर्यमें	**च हसिते मायां**	तथा हास्यमें माया,
अम्भः	जल,	**च तनूरुहेषु**	एवं रोमोंमें
पृष्ठे तु अधर्मं	पीठमें तो अधर्म,	**औषधि जातयः**	औषधियां ॥२८॥

नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु
बुद्धावजं देवगणानृषींश्च ।
प्राणेषु गात्रे स्थिरजङ्गमानि
सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः ॥२९॥

नदीः च नाडीषु शिला नखेषु बुद्धाः अजं देवगणान् ऋषीन् च प्राणेषु गात्रे स्थिर जङ्गमानि सर्वाणि भूतानि ददर्श बीरः ॥२९॥

नाडीषु नदीः	नाड़ियोंमें नदियां,	**देवगणान् च**	देवता और
च नखेषु	और नखोंमें	**ऋषीन्**	ऋषिगण,
शिला	शिलाएँ	**वीरः**	वीर बलिने
बुद्धाः अजं	बुद्धिमें ब्रह्मा,	**प्राणेषु**	(भगवान्के) प्राण

गात्रे	तथा शरीरमें	**जङ्गमानि**	जंगम आदि
सर्वाणि	सब	**भूतानि**	प्राणियोंको
स्थिर	स्थावर-	**ददर्श**	देखा ॥२९॥

सर्वात्मनोदं भुवनं निरीक्ष्य
सर्वेऽसुराः कश्मलमापुरङ्ग ।
सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो
धनुश्च शार्ङ्गं स्तनयित्नुघोषम् ॥३०॥

सर्वात्मनि इदं भुवनं निरीक्ष्य सर्वे असुराः कश्मलं आपुः अङ्ग सुदर्शनं चक्रं असह्यतेजः धनुः च शार्ङ्गं स्तनयित्नु घोषम् ॥३०॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित् !	**कश्मलं आपुः**	भयभीत हो गये
सर्वात्मनि	सर्वात्मा (भगवान्) में	**असह्यतेजः**	असह्य तेजवाला
		सुदर्शनं चक्रं	सुदर्शन चक्र,
इदं भुवनं	इस त्रिभुवनको	**च स्तनयित्नु**	तथा मेघ
निरीक्ष्य	देखकर	**घोषं**	गर्जन करनेवाला
सर्वे असुराः	सब असुर	**शार्ङ्गं धनुः**	शारंग धनुष ॥३०॥

पर्जन्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः
कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी ।
विद्याधरोऽसिः शतचन्द्रयुक्त-
स्तूणोत्तमावक्षयसायकौ च ॥३१॥

पर्जन्यघोषः जलजः पाञ्चजन्यः कौमोदकी विष्ण गदा तरस्विनी विद्याधरः असिः शतचन्द्रयुक्तः तूण उत्तमाः अक्षय सायकौ च ॥३१॥

पर्जन्यघोषः	मेघ गम्भीर ध्वनि-वाला	**विष्णु**	भगवान् विष्णुकी
		गदा	गदा
पाञ्चजन्यः	पाञ्चजन्य	**कौमोदकी**	कौमोदकी
जलजः	शंख,	**शतचन्द्रयुक्तः**	ढालके साथ
तरस्विनी	वेगवती	**विद्याधरः**	विद्याधर नामक

असिः	खड्ग	**उत्तमाः**	दोनों श्रेष्ठ
च	तथा	**तूण**	तरकश ॥३१॥
अक्षय सायकौ	अक्षय बाणवाले		

सुनन्दमुख्या उपतस्थुरीशं
पार्षदमुख्याः सहलोकपालाः ।
स्फुरत्किरीटाङ्गदमीनकुण्डल-
श्रीवत्सरत्नोत्तममेखलाम्बरैः ॥३२॥

सुनन्द मुख्याः उपतस्थुः ईशं पार्षद मुख्याः सह लोकपालाः स्फुरत् किरीट अङ्गद मीन कुण्डल श्रीवत्स रत्न उत्तम मेखला अम्बरैः ॥३२॥

सह लोकपालाः	लोक पालोंके साथ	**अङ्गद**	केयूर,
सुनन्द मुख्याः	सुनन्द प्रमुख	**मीन कुण्डल**	मत्स्या कृति कुण्डल,
पार्षद मुख्याः	मुख्य-मुख्य पार्षद	**श्रीवत्स**	श्रीवत्स लाञ्छन,
ईशं	उन सर्वेश्वरके समीप	**उत्तम रत्न**	उत्तम रत्न जडित
उपतस्थुः	उपस्थित हो गये,	**मेखला अम्बरैः**	काञ्ची तथा वस्त्र ॥३२॥
स्फुरत् किरीट	देदीप्यमान मुकुट,		

मधुव्रतस्रग्वनमालया वृतो
रराज राजन्भगवानुरुक्रमः ।
क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे
नभः शरीरेण दिशश्च बाहुभिः ॥३३॥

मधुव्रत स्रक् वनमालया वृतः रराज राजन् भगवान् उरुक्रमः क्षितिं पद एकेन बलेः विचक्रमे नभः शरीरेण दिशः च बाहुभिः ॥३३॥

राजन्	राजन् !	**उरुक्रमः**	अनन्त पराक्रम
मधुव्रत स्रक्	भ्रमर युक्त माला	**भगवान्**	भगवान् अत्यन्त
वनमालया	वनमाला	**रराज**	शोभित हुए,
वृतः	धारण किये	**एकेन पदेन**	एक पदसे

बलेः क्षितिं	बलिकी पृथ्वी,	**बाहुभिः दिशः**	भुजाओंसे दिशामें
शरीरेण नभः	शरीर द्वारा आकाश और	**विचक्रमे**	नाप लीं ॥३३॥

पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं
न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि ।
उरुक्रमस्याङ्घ्रिरुपर्युपर्यथो
महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥३४॥

पदं द्वितीयं क्रमतः त्रिविष्टपं न वै तृतीयाय तदीयं अणु अपि उरुक्रमस्य अङ्घ्रिः उपरि उपरि अथो महः जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥३४॥

द्वितीयं पदं	दूसरे पैरसे	**उरुक्रमस्य**	अनन्त पराक्रम भगवान्का
त्रिविष्टपं	स्वर्ग नापते	**अङ्घ्रिः**	चरण
क्रमतः	समय	**उपरि उपरि**	ऊपर-ऊपर उठता
वै तृतीयाय	निश्चय तीसरेके लिए	**महः**	महर्लोक,
तदीयं अणु अपि	उन (बलि) का एक अणु भी	**जनाभ्यां**	जनलोक होता
		तपसः	तपोलोकसे भी
न	नहीं बचा,	**परं गतः**	ऊपर चला गया ॥३४॥
अथो	फिर भी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टस्कन्धे विश्वरूपदर्शनं विंशोऽध्यायः ॥२०॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेन्दुभि-
र्हतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात् ।
मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः
सनन्दनाद्या नरदेव योगिनः ॥ १ ॥

सत्यं समीक्ष्य अब्जभवः नख इन्दुभिः हत स्वधामद्युतिः आवृतः अभ्यगात् मरीचिमिश्रा ऋषयः बृहद् व्रताः सनन्दन आद्या नरदेव योगिनः ॥१॥

नरदेव	राजन् !	मरीचिमिश्रा	मरीचि आदि
सत्यं	सत्य लोकमें पहुँचे	ऋषयः	ऋषियों तथा
नख	(भगवान्के) चरण नख	बृहद् व्रताः	आजीवन ब्रह्मचारी
		सनन्दन आद्या	(सनक) सन्दन आदि
इन्दुभिः	चन्द्रों द्वारा	योगिनः आवृतः	योगियोंसे घिरे
स्वधामद्युति	अपने धामकी कान्ति	अब्जभवः	ब्रह्माजी
हत समीक्ष्य	मन्द पड़ गयी देख-कर	अभ्यगात्	वहां आये ॥१॥

वेदोपवेदा नियमान्विता यमा-
स्तर्केतिहासाङ्गपुराणसंहिताः ।
ये चापरे योगसमीरदीपित-
ज्ञानग्निना रन्धितकर्मकल्मषाः ।
ववन्दिरे यत्स्मरणानुभावतः
स्वायम्भुवं धाम गता अकर्मकम् ॥ २ ॥

वेद उपवेदा नियम अन्विता यमाः तर्क इतिहास अङ्ग पुराण संहिताः ये च अपरे योगसमीर दीपित ज्ञानाग्निना रन्धित कर्म कल्मषाः ववन्दिरे यत् स्मरण अनुभावतः स्वायंभुवं धाम गता अकर्मकम् ॥२॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !
वेद उपवेदा	वेद, उपवेद,
नियम अन्विता	नियमोंके साथ
यमाः	यम,
तर्क	दर्शनशास्त्र,
इतिहास	इतिहास
पुराण संहिताः	पुराण संहिता,
च अपरे	तथा जो दूसरे
योगसमीर	योगरूप वायुसे
दीपित	प्रज्वलित
ज्ञानाग्निना	ज्ञानाग्नि द्वारा
कर्म कल्मषाः	कर्मोंके मलको
रन्धित	भस्म कर चुके थे
यत् स्मरण	जिनके स्मरणके
अनुभावतः	प्रभावसे
अकर्मकं	कर्मके द्वारा न प्राप्त होनेवाले
स्वायम्भुवं	ब्रह्माजीके
धाम गता	लोक पहुँचे थे
ववन्दिरे	(उन चरणोंकी) वन्दना की ॥२॥

अथाङ्घ्रये प्रोन्नमिताय विष्णो-
रुपाहरत् पद्मभवोऽर्हणोदकम् ।
समर्च्य भक्त्याभ्यगृणाच्छुचिश्रवा
यन्नाभिपङ्केरुहसंभवः स्वयम् ॥ ३ ॥

अथ अङ्घ्रये प्रोन्नमिताय विष्णोः उप आहरत् पद्मभवः अर्हण उदकं समर्च्य भक्त्या अभि गृणात् शुचिश्रवा यत् नाभिपङ्केरुह संभवः स्वयम् ॥३॥

अथ	फिर
प्रोन्नमिताय	ऊपर उठे
विष्णोः	भगवान् विष्णुके
अङ्घ्रये	चरणके लिए
पद्मभवः	कमल संभव ब्रह्माजी
अर्हण उदकं	पूजनका जल
उप आहरत्	समीप ले आये
यत्	जिनकी
नाभिपङ्केरुह	नाभि-कमलसे
स्वयं संभवः	स्वयं उत्पन्न हुए थे

समर्च्य	(उनके चरणका) भली प्रकार पूजन करके	**भक्त्या अभि गृणात्**	भक्ति पूर्वक स्तुति करने लगे ॥३॥
शुचिश्रवाः	उन पवित्र कीर्ति भगवान्‌की		

धातुः कमण्डलुजलं तदुरुक्रमस्य
पादावनेजनपवित्रतया नरेन्द्र ।
स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतति निमार्ष्टि
लोकत्रयं भगवतो विशदेव कीर्तिः ॥ ४ ॥

धातुः कमण्डलु जलं तत् उरुक्रमस्य पाद अवनेजन पवित्रतया नरेन्द्र स्वर्धुनी अभूत् नभसि सा पतति निमार्ष्टि लोकत्रयं भगवतः विशद एव कीर्तिः ॥४॥

नरेन्द्र	महाराज !	**भगवतः**	भगवान्‌की
तत्	वह	**विशद**	निर्मल
उरुक्रमस्य	अनन्त पराक्रम भगवान्‌के	**एव कीर्तिः**	कीर्तिके समान
		सा नभसि	वे आकाशसे
पाद अवनेजन	पाद-प्रक्षालनसे	**पतति**	गिरती हुई
पवित्रतया	पवित्र हुआ	**लोकत्रयं**	तीनों लोकोंको
धातुः कमण्डलु	ब्रह्माके कमंडलुका	**निमार्ष्टि**	पवित्र कर दिया ॥४॥
जलं	जल		
स्वर्धुनी अभूत्	सुरसरि हो गया		

ब्रह्मादयो लोकनाथाः स्वनाथाय समाहृताः ।
सानुगा बलिमाजह्रुः संक्षिप्तात्मविभूतये ॥ ५ ॥

ब्रह्मा आदयः लोकनाथाः स्वनाथाय सम आहृताः सानुगा बलिं आजह्रुः संक्षिप्त आत्म विभूतये ॥५॥

आत्म विभूतये	अपने ऐश्वर्यके लिए	स्वनाथाय	अपने स्वामीको
संक्षिप्त ब्रह्मा	छोटे ब्रह्मा	सम आहृताः	अत्यन्त आदरके साथ
आदयः	आदि		
लोकनाथाः	लोकपालोंने	बलिं	उपहार
सानुगा	अपने अनुचरोंके साथ	आजह्रुः	अर्पित किये ॥५॥

तोयैः समर्हणैः स्रग्भिर्दिव्यगन्धानुलेपनैः ।
धूपैर्दीपैः सुरभिभिर्लाजाक्षतफलाङ्कुरैः ॥ ६ ॥

तोयैः समर्हणैः स्रक्भिः दिव्य गन्ध अनुलेपनैः धूपैः दीपैः सुरभिभिः लाज अक्षत फल अङ्कुरैः ॥६॥

तोयैः	जल,	सुरभिभिः	सुगन्धित (इत्रादि) से,
समर्हणैः	पूजोपहार,	लाज अक्षत	लाजा, अक्षत,
स्रक्भिः	मालाओं द्वारा,	फल	फल तथा
दिव्य गन्ध	दिव्य सुगन्धित	अङ्कुरैः	दूर्वाङ्कुरसे ॥६॥
अनुलेपनैः	अंगरागसे		
धूपैः दीपैः	धूप-दीप		

स्तवनैर्जयशब्दैश्च तद्वीर्यमहिमाङ्कितैः ।
नृत्यवादित्रगीतैश्च शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ७ ॥

स्तवनैः जयशब्दैः च तद् वीर्य महिमा अङ्कितैः नृत्य वादित्र गीतैः च शङ्ख दुन्दुभि निःस्वनैः ॥७॥

तद्	उन (भगवान्के)	च जयशब्दैः	तथा जयध्वनिसे
वीर्य	पराक्रम तथा	नृत्य गीतैः	नृत्य, गायन,
महिमा	महिमा	वादित्र	वाद्योंसे
अङ्कितैः	सूचित करनेवाले	शङ्ख दुन्दुभि	शंख, नगाड़ोंके
स्तवनैः	स्तुतियोंसे	निःस्वनैः	तुमुल घोषसे ॥७॥

जाम्बवानृक्षराजस्तु भेरीशब्दैर्मनोजवः ।
विजयं दिक्षु सर्वासु महोत्सवमघोषयत् ॥ ८ ॥

जाम्बवान् ऋक्षराजः तु भेरी शब्दैः मनः जवः विजयं दिक्षु सर्वासु महोत्सवं अघोषयत् ॥८॥

मनः जवः	मनके समान गति-वाले	**भेरी शब्दैः**	भेरीके शब्द द्वारा
ऋक्षराजः	रीछराज	**विजयं**	विजय
जाम्बवान् तु	जाम्बवानने तो	**महोत्सवं**	महोत्सवकी
सर्वासु दिक्षु	सब दिशाओंमें	**अघोषयत्**	घोषणा कर दी ॥८॥

महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपदव्याजयाच्ञया ।
ऊचुः स्वभर्तुरसुरा दीक्षितस्यात्यमर्षिताः ॥ ९ ॥

महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपदव्याज याञ्चया ऊचुः स्वभर्तुः असुरा दीक्षितस्य अति अमर्षिताः ॥९॥

दीक्षितस्य	यज्ञ दीक्षा लिए	**हृतां**	हरण की गयी
स्वभर्तुः	अपने स्वामीकी	**दृष्ट्वा**	देखकर
सर्वां महीं	सम्पूर्ण पृथ्वी	**अति अमर्षिताः**	अत्यन्त कुपित होकर
त्रिपदव्याज	तीन पैरके बहाने	**असुरा ऊचुः**	असुर बोले ॥९॥
याञ्चया	मांगकर		

न वा अयं ब्रह्मबन्धुर्विष्णुर्मायाविनां वरः ।
द्विजरूपप्रतिच्छन्नो देवकार्यं चिकीर्षति ॥१०॥

न वा अयं ब्रह्म बन्धुः विष्णुः मायाविनां वरः द्विज रूप प्रतिच्छन्नः देवकार्यं चिकीर्षति ॥१०॥

वा अयं	निश्चय यह	**द्विज रूप**	ब्राह्मणके रूपमें
ब्रह्म बन्धुः	ब्राह्मणाधम भी	**प्रतिच्छन्नः**	छिपकर (यह)
न	नहीं है	**देवकार्यं**	देवताओंका काम
मायाविनां वरः	मायावियोंमें श्रेष्ठ	**चिकीर्षति**	करना चाहता है ॥१०॥
विष्णुः	विष्णु हैं,		

अनेन याचमानेन शत्रुणा वटुरूपिणा ।
सर्वस्वं नो हृतं भर्तुर्न्यस्तदण्डस्य बर्हिषि ॥११॥

अनेन याचमानेन शत्रुणा वटुरूपिणा सर्वस्वं नः हृतं भर्तुः न्यस्त दण्डस्य बर्हिषि ॥११॥

बर्हिषि	यज्ञमें	**अनेन शत्रुणा**	इस शत्रुने
न्यस्त दण्डस्य	दण्ड देना त्यागे हुए	**याचमानेन**	याचना करते हुए
नः भर्तुः	हमारे स्वामीका	**हृतं**	हरण कर लिया
सर्वस्वं	सर्वस्व		॥११॥
वटुरूपिणा	ब्रह्मचारी वेशधारी		

सत्यव्रतस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः ।
नानृतं भाषितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः ॥१२॥

सत्यव्रतस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः न अनृतं भाषितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः ॥१२॥

ब्रह्मण्यस्य	ब्राह्मणपर	**दीक्षितस्य**	दीक्षित होनेपर
दयावतः	दया करनेवाले	**अनृतं**	(हमारे स्वामीके लिए) झूठ
सततं	सदा		
सत्यव्रतस्य	सत्यका व्रत रखने वाले	**भाषितुं**	बोलना
		शक्यं न	सम्भव नहीं है
विशेषतः	विशेषतः		॥१२॥

तस्मादस्य वधो धर्मो भर्तुः शुश्रूषणं च नः ।
इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचरासुराः ॥१३॥

तस्मात् अस्य वधः धर्मः भर्तुः शुश्रूषणं च नः इति आयुधानि जगृहुः बलेः अनुचरा असुराः ॥१३॥

तस्मात्	इसलिए	**नः धर्मः**	हमारा धर्म है
अस्य वधः	इसका वध	**च भर्तुः**	तथा स्वामीकी

शुश्रूषणं	सेवा भी है।	असुराः	असुरोंने
इति	इस प्रकार (निश्चय करके)	आयुधानि	शस्त्र
बलेः अनुचरा	बलिके अनुचर	जगृहुः	उठा लिये ॥१३॥

ते सर्वे वामनं हन्तुं शूलपट्टिशपाणयः।
अनिच्छतो बले राजन् प्राद्रवञ्जातमन्यवः ॥१४॥

ते सर्वे वामनं हन्तुं शूल पट्टिश पाणयः अनिच्छतः बलेः राजन् प्राद्रवन् जातमन्यवः ॥१४॥

राजन्	राजन् !	शूल पट्टिश	त्रिशूल, पट्टिश आदि
बलेः	बलिके		
अनिच्छतः	न चाहनेपर भी	पाणयः	हाथमें लेकर
जातमन्यवः	क्रुद्ध होकर	वामनं	वामनको
ते सर्वे	वे सब	हन्तुं	मारनेके लिए
		प्राद्रवन्	दौड़ पड़े ॥१४॥

तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान् नृप।
प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः ॥१५॥

तान् अभिद्रवतः दृष्ट्वा दितिज अनीकपान् नृप प्रहस्य अनुचराः विष्णोः प्रत्यषेधन् उद आयुधाः ॥१५॥

नृप	राजन् !	विष्णोः	भगवान् विष्णुके
तान् दितिज	उन दैत्य	अनुचराः	सेवकोंने
अनीकपान्	सेनानायकोंको	उद आयुधाः	शस्त्र उठाकर
अभिद्रवतः	अपनी ओर दौड़े आते	प्रहस्य	हंसकर
		प्रत्यषेधन्	रोक दिया ॥१५॥
दृष्ट्वा	देखकर		

नन्दः सुनन्दोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्त्रिराट् ॥१६॥

जयन्तः श्रुतदेवश्च पुष्पदन्तोऽथ सात्वतः ।
सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम् ॥१७॥

नन्दः सुनन्दः, अथ जयः, विजयः, प्रबलः, बलः, कुमुदः, कुमुदाक्षः, च विष्वक्सेनः, पतत् त्रिराट् (पक्षिराग गरुड़) जयन्तः, श्रुतदेवः च पुष्पदन्तः अथ सात्वत* सर्वे नाग अयुत प्राणाः चमूं ते जघ्नुः आसुरीम् ॥१६-१७॥

सर्वे	ये सब	**ते**	उन्होंने
अयुत नाग	दस हजार हाथियोंके समान	**आसुरीं चमूं**	असुर सेनाको
प्राणाः	बलवाले हैं,	**जघ्नुः**	मारने लगा ॥१७॥

हन्यमानान् स्वकान् दृष्ट्वा पुरुषानुचरैर्बलिः ।
वारयामास संरब्धान् काव्यशापमनुस्मरन् ॥१८॥

हन्यमानान् स्वकान् दृष्ट्वा पुरुष अनुचरैः बलिः वारयामास संरब्धान् काव्यशापं अनुस्मरन् ॥१८॥

पुरुष	परम पुरुषके	**दृष्ट्वा**	देखकर
अनुचरैः	सेवकों द्वारा	**काव्यशापं**	शुक्राचार्यके शापको
संरब्धान्	कुपित	**अनुस्मरन्**	स्मरण करके
स्वकान्	अपने सेवकोंको	**बलिः**	बलिने
हन्यमानान्	मारे जाते हुए	**वारयामास**	मना किया ॥१८॥

श्रीशुक उवाच—*

हे विप्रचित्ते हे राहो हे नेमे श्रूयतां वचः ।
मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालोऽयमर्थकृत् ॥१९॥

---

*भगवत् पार्षदोंके केवल नाम हैं। इनमें 'अथ' ही नाम नहीं है उसका तथा 'च' का अर्थ 'और' होता है।

*यह अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

हे विप्रचित्ते हे राहुः हे नेमे श्रूयतां वचः मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालः अयं अर्थकृत् ॥१९॥

हे विप्रचित्ते	हे विप्रचित्ति,	**अयं कालः**	यह समय
हे राहुः	हे राहु,	**नः**	हमारा
हे नेमे	हे नेमि,	**अर्थकृत्**	प्रयोजन सिद्ध करनेवाला
वचः श्रूयतां	(मेरी) बात सुनो !	**न**	नहीं है ॥१९॥
मा युध्यत	युद्ध मत करो,		
निवर्तध्वं	लौट आओ !		

यः प्रभुः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये ।
तं नातिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैरीश्वरः पुमान् ॥२०॥

यः प्रभुः सर्वभूतानां सुख दुःख उपपत्तये तं न अतिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैः ईश्वरः पुमान् ॥२०॥

दैत्याः	दैत्यो !	**पुमान्**	कोई पुरुष अपने
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंको	**पौरुषैः**	पुरुषार्थसे
सुख दुःख	सुख-दुःख	**अतिवर्तितुं**	अतिक्रमण
उपपत्तये	देनेमें	**न**	नहीं कर सकता ॥२०॥
यः प्रभुः	जो समर्थ है		
तं ईश्वरः	उस सर्वसमर्थको		

यो नो भवाय प्रागासीदभवाय दिवौकसाम् ।
स एव भगवानद्य वर्तते तद्विपर्ययम् ॥२१॥

यः नः भवाय प्राक् आसीत् अभवाय दिव ओकसां स एव भगवान् अद्य वर्तते तत् विपर्ययं ॥२१॥

यः नः भवाय	जो हमारी उन्नतिके तथा	**प्राक् आसीत्**	पहिले थे
दिव ओकसां	स्वर्गवासी देवताओं-की	**स एव भगवान्**	वही भगवान्
अभवाय	अवनतिके (कारण)	**अद्य तत्**	इस समय
		विपर्ययं	उससे उलटे
		वर्तते	बरत रहे हैं ॥२१॥

बलेन सचिवैर्बुद्ध्या दुर्गैर्मन्त्रौषधादिभिः ।
सामादिभिरुपायैश्च कालं नात्येति वै जनः ॥२२॥

बलेन सचिवैः बुद्ध्या दुर्गैः मन्त्र औषध आदिभिः साम आदिभिः उपायैः च कालं न अति एति वै जनः ॥२२॥

वै जनः	निश्चय कोई पुरुष	**च साम**	तथा साम
बलेन सचिवैः	बलसे, मन्त्रियों द्वारा,	**आदिभिः**	आदि
		उपायै	उपायोंसे
बुद्ध्या	बुद्धिसे	**कालं अति**	कालका पार
दुर्गैः मन्त्र	दुर्गसे, मन्त्र,	**एति न**	नहीं पा सकता
औषध	औषधि		॥२२॥
आदिभिः	आदिसे		

भवद्भिर्निर्जिता ह्येते बहुशोऽनुचरा हरेः ।
दैवेनर्द्धैस्त एवाद्य युधि जित्वा नदन्ति नः ॥२३॥

भवद्भिः निर्जिता हि एते बहुशः अनुचरा हरेः दैवे नर्द्धैः त एव अद्य युधि जित्वा नदन्ति नः ॥२३॥

हि दैवे	क्योंकि विधाताकी	**निर्जिता**	जीते गये हैं,
नर्द्धैः	अनुकूलता होनेपर	**अद्य त एव**	आज वही
भवद्भिः	तुम लोगों द्वारा	**नः युधि**	हमको युद्धमें
हरेः एते	हरिके ये	**जित्वा**	जीतकर
अनुचरा	अनुचर	**नदन्ति**	गर्जना कर रहे हैं
बहुशः	बहुत बार		॥२३॥

एतान् वयं विजेष्यामो यदि दैवं प्रसीदति ।
तस्मात् कालं प्रतीक्षध्वं यो नोऽर्थत्वाय कल्पते ॥२४॥

एतान् वयं विजेष्यामः यदि दैवं प्रसीदति तस्मात् कालं प्रतीक्षध्वं यः नः अर्थ त्वाय कल्पते ॥२४॥

यदि दैवं	यदि दव	**यः नः**	जो हमारे
प्रसीदति	प्रसन्न होगा तो	**अर्थं त्वाय**	प्रयोजनको
वयं एतान्	हम इनको फिर	**कल्पते**	पूर्ण करनेवाला हो
विजेष्यामः	जीत लेंगे	**कालं**	उस कालकी
तस्मात्	इसलिए	**प्रतीक्षध्वं**	प्रतीक्षा करो ॥२४॥

श्रीशुक उवाच–

पत्युर्निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः ।
रसां निविविशू राजन् विष्णुपार्षदताडिताः ॥२५॥

पत्युः निगदितं श्रुत्वा दैत्य दानव यूथपाः रसां निविविशू राजन् विष्णु पार्षद ताडिताः ॥२५॥

राजन्	राजन् !	**पत्युः निगदितं**	अपने स्वामीकी बात
विष्णु	भगवान् विष्णुके	**श्रुत्वा**	सुनकर
पार्षद	पार्षदों द्वारा	**रसां**	रसातलमें
ताडिताः	पीटे जानेपर	**निदिविशू**	प्रवेश कर गये ॥२५॥
दैत्य दानव	दैत्य-दानव		
यूथपाः	सेनानायक		

अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट् प्रभुचिकीर्षितम् ।
बबन्ध वारुणैः पाशैर्बलिं सौत्येऽहनि क्रतौ ॥२६॥

अथ तार्क्ष्य सुतः ज्ञात्वा विराट् प्रभु चिकीर्षितं बबन्ध वारुणैः पाशैः बलिं सौत्ये अहनि क्रतौ ॥२६॥

अथ	फिर	**क्रतौ**	यज्ञमें
तार्क्ष्य सुतः	तार्क्ष्य-नन्दन गरुड़ने	**सौत्ये अहनि**	सोमाभिषवके दिन
विराट् प्रभु	विराट् भगवान्की	**वारुणैः पाशैः**	वरुणके पाशोंमें
चिकीर्षितं	करनेकी इच्छा	**बलिं**	बलिको
ज्ञात्वा	जानकर	**बबन्ध**	बाँध दिया ॥२६॥

हाहाकारो महानासीद् रोदस्योः सर्वतोदिशम् ।
गृह्यमाणेऽसुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२७॥

हाहाकारः महान् आसीत् रोदस्योः सर्वतः दिशं गृह्यमाणे असुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२७॥

प्रभविष्णुना	सर्वसमर्थ	**रोदस्योः**	पृथ्वीमें
विष्णुना	भगवान् विष्णु द्वारा	**सर्वतः दिशं**	चारों ओर
असुरपतौ	दैत्याराज बलिको	**महान्**	महा
गृह्यमाणे	पकड़ (बाँध) लेनेपर	**हाहाकारः**	हा-हाकार
		आसीत्	होने लगा ॥२७॥

तं बद्धं वारुणैः पाशैर्भगवानाह वामनः ।
नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप ॥२८॥

तं बद्धं वारुणैः पाशैः भगवान् आह वामनः नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञं उदारयशसं नृप ॥२८॥

नृप	राजन् !	**स्थिरप्रज्ञं**	स्थिर बुद्धि
वारुणैः पाशैः	वरुणके पाशोंसे	**उदारयशसं**	उदार कीर्ति
बद्धं	बँधे,	**तं**	उन बलिसे
नष्टश्रियं	लक्ष्मी नष्ट होनेपर भी	**भगवान्**	भगवान्
		वामनः आह	वामनने कहा ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच—*

पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेर्मह्यं त्वयासुर ।
द्वाभ्यां क्रान्ता मही सर्वा तृतीयमुपकल्पय ॥२९॥

पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेः मह्यं त्वया असुर द्वाभ्यां क्रान्ता मही सर्वा तृतीयं उपकल्पय ॥२९॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

असुर	असुर !	**सर्वा मही**	सम्पूर्ण पृथ्वी
त्वया मह्यं	तुमरे मुझे	**क्रान्ता**	(मैंने) माप ली,
त्रीणि पदानि	तीन पद	**तृतीयं**	अब तीसरेकी
भूमेः दत्तानि	पृथ्वी दिया था,	**उपकल्पय**	व्यवस्था करो
द्वाभ्यां	दो (पद) से		॥२९॥

यावत् तपत्यसौ गोभिर्यावदिन्दुः सहोडुभिः ।
यावद् वर्षति पर्जन्यस्तावती भूरिय तव ॥३०॥

यावत् तपति असौ गोभिः यावत् इन्दुः सह उडुभिः यावत् वर्षति पर्जन्यः तावती भूः इयं तव ॥३०॥

यावत्	जहां तक	**यावत्**	जहां तक (प्रकाशित
असौ	यह (सूर्य)		होता है)
गोभिः	किरणोंसे	**यावत् पर्यन्यः**	जहां तक मेघ
तपति	ताप पहुँचाता है,	**वर्षति**	वर्षा करते हैं,
सह उडुभिः	तारागणोंके साथ	**तावती इयं**	वहां तक यह
इन्दुः	चन्द्रमा	**तव भूः**	तुम्हारी पृथ्वी है
			॥३०॥

पदैकेन मया क्रान्तो भूर्लोकः खं दिशस्तनोः ।
स्वर्लोकस्तु द्वितीयेन पश्यतस्ते स्वमात्मना ॥३१॥

पदा एकेन मया क्रान्तः भूः लोकः खं दिशः तनोः स्वः लोकः तु द्वितीयेन पश्यतः ते स्वं आत्मना ॥३१॥

ते पश्यतः	तुम्हारे देखते हुए	**दिशः**	दिशाएँ,
स्वं आत्मना	मैंने अपने	**तु द्वितीयेन**	तथा दूसरे (पद) से
एकेन पदा	एक पैरसे	**स्वः लोक**	स्वर्ग लोक
भूः लोकः	(सम्पूर्ण) भूलोक	**क्रान्तः**	माप लिया है
तनोः	शरीरसे		॥३१॥
खं	आकाश और		

प्रतिश्रुतमदातुस्ते निरये वास इष्यते ।
विश त्वं निरयं तस्माद् गुरुणा चानुमोदितः ॥३२॥

प्रतिश्रुतं अदातुः ते निरये वास इष्यते विश त्वं निरयं तस्मात् गुरुणा च अनुमोदितः ॥३२॥

प्रतिश्रुतं	प्रतिज्ञाकी वस्तु	**त्वं निरयं**	तुम नरकमें
अदातुः	न देनेवाले	**विश**	प्रवेश करो,
ते वास	तुम्हारे निवास	**च**	तथा तुम्हारे
निरये	नरकमें	**गुरुणा**	गुरुने भी
इष्यते	होना चाहिए,	**अनुमोदितः**	(इसका) अनुमोदन
तस्मात्	इसलिए		किया है ॥३२॥

वृथा मनोरथस्तस्य दूरे स्वर्गः पतत्यधः ।
प्रतिश्रुतस्यादानेन योऽर्थिनं विप्रलम्भते ॥३३॥

वृथा मनोरथः तस्य दूरे स्वर्गः पतति अधः प्रतिश्रुतस्य दानेन यः अर्थिनं विप्रलम्भते ॥३३॥

यः	जो	**मनोरथः**	अभिलाषाएँ
प्रतिश्रुतस्य	प्रतिज्ञा की हुई (वस्तु) के	**वृथा**	व्यर्थ हैं
		स्वर्गः दूरे	स्वर्ग तो दूर रहा
दानेन	दानमें	**अधः**	वह नीचे
आर्थिनं	याचकको	**पतति**	गिरता है
विप्रलम्भते	ठग लेता है,		॥३३॥
तस्य	उसकी		

विप्रलब्धो ददामीति त्वयाहं चाढ्यमानिना ।
तद् व्यलीकफलं भुङ्क्ष्व निरयं कतिचित् समाः ॥३४॥

विप्रलब्धः ददामि इति त्वया अहं च आढ्य मानिना तत् व्यलीक फलं भुङ्क्ष्व निरयं कतिचित् समाः ॥३४॥

आढ्य	(अपनेको) बड़ा धनी	**विप्रलब्धः**	ठगा गया हूँ
मानिना	माननेवाले	**ततः**	अतः
त्वया	तुम्हारे द्वारा	**कतिचित् समाः**	कुछ वर्ष
ददामि	'मैं दूंगा'	**व्यलीक**	उस झूठ बोलनेके
इति	इस प्रकार कहकर	**फलं**	फलसे
अहं च	मैं भी	**निरयं**	नरक
		भुङ्क्ष्व	भोगो ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
बामनप्रादुर्भावे बलिनिग्रहो नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

श्रीशक उवाच–

एवं विप्रकृतो राजन् बलिर्भगवतासुरः ।
भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः ॥ १ ॥

एवं विप्रकृतः राजन् बलिः भगवता असुरः भिद्यमानः अपि अभिन्न आत्मा प्रति आह अविक्लवं वचः ॥१॥

राजन्	राजन्	**अभिन्न आत्मा**	अविचल चित्त
एवं	इस प्रकार	**असुरः बलिः**	असुरराज बलि
भगवता	भगवान द्वारा	**अविक्लवं**	व्याकुलता रहित
विप्रकृतः	तिरस्कृत और	**वचः**	वाणीसे
भिद्यमानः अपि	डिगाये जानेपर भी	**प्रति आह**	उत्तरमें बोले ॥१॥

बलिरुवाच–

यद्युत्तमश्लोक भवान् ममेरितं
वचो व्यलीकं सुरवर्य मन्यते ।
करोम्यृतं तन्न भवेत् प्रलम्भनं
पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम् ॥ २ ॥

यदि उत्तम श्लोक भवान् मम ईरितं वचः व्यलीकं सुरवर्य मन्यते करोमि ऋतं तत् न भवेत् प्रलम्भनं पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम् ॥२॥

सुरवर्य	देवश्रेष्ठ	**वचः व्यलीकं**	बातको झूठी
उत्तम श्लोक	पवित्र कीर्ति !	**मन्यते**	मानते हैं तो
यदि भवान्	यदि आप	**तत् ऋतं**	उसे सच्ची
मम ईरितं	मेरी कही हुई	**करोमि**	करता हूँ

प्रलंभनं	(वह) ठगना	**पदं**	पद
न भवेत्	न होवे	**मे शीर्ष्णि**	मेरे सिरपर
निजं तृतीयं	अपना तीसरा	**कुरु**	रखिये ॥२॥

बिभेमि नाहं निरयात् पदच्युतो
न पाशबन्धाद् व्यसनाद् दुरत्ययात् ।
नैवार्थकृच्छ्राद् भवतो विनिग्रहा-
दसाधुवादाद् भशमुद्विजे यथा ॥ ३ ॥

विभेमि न अहं निरयात् पदच्युतः न पाश बन्धात् व्यसनात् दुरत्ययात् न एव अर्थ कृच्छ्रात् भवतः विनिग्रहात् असाधु वादात् भृशं उद्विजे यथा ॥३॥

यथा	जैसा	**बन्धात्**	बन्धनसे,
असाधु वादात्	अपकीर्तिसे	**दुरत्ययात्**	दुस्तर
भृशं	बहुत	**व्यसनात् न**	दुःखोंसे नहीं
उद्विजे	उद्विग्न होता हूँ, वैसा	**अर्थ कृच्छ्रात्**	अर्थ-कष्ट और
		भवतः	आपके
निरयात्	नरकसे,	**विनिग्रहात्**	दण्डसे
पदच्युतः	पद भ्रष्ट होनेसे	**न एव**	नहीं ही
न	नहीं,	**विभेमि**	डरता हूँ ॥३॥
पाश	इन पाशोंके		

पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम् ।
यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशन्ति हि ॥ ४ ॥

पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दण्डं अर्हत्तम अर्पितं यं न माता पिता भ्राता सुहृदः च आदिशन्ति हि ॥४॥

अर्हत्तम	पूज्यतम पुरुषोंका	**पुंसां**	पुरुषोंके लिए
अर्पितं	दिया	**श्लाघ्यतमं**	अत्यन्त प्रशंसनीय
दण्डं	दण्ड	**मन्ये**	मानता हूँ,

हि	क्योंकि	**यं न आदिशन्ति**	जिस (प्रकारका दण्ड) नहीं देते ॥४॥
माता पिता	माता-पिता,		
भ्राता च सुहृदः	भाई तथा सुहृद		

त्वं नूनमसुराणां नः पारोक्ष्यः परमो गुरुः ।
यो नोऽनेकमदान्धानां विभ्रंशं चक्षुरादिशत् ॥ ५ ॥

त्वं नूनं असुराणां नः पारोक्ष्यः परमः गुरुः यः नः अनेक मद अन्धानां विभ्रंशं चक्षुः आदिशत् ॥५॥

नूनं त्वं	निश्चय आप	**अन्धानां**	अन्धे हुए
नः असुराणां	हम असुरोंके	**यः नः**	जो हम लोगोंको
पारोक्ष्यः	परोक्ष रूपसे	**विभ्रंशं**	ऐश्वर्य भ्रष्ट रूपी
परमः गुरुः	परम गुरु हैं,	**चक्षु**	नेत्र
अनेक	अनेक प्रकारके	**आदिशत्**	प्रदान करते हैं ॥५॥
मद	मदोंसे		

यस्मिन् वैरानुबन्धेन रूढेन विबुधेतराः ।
बहवो लेभिरे सिद्धिं यामु हैकान्तयोगिनः ॥ ६ ॥

यस्मिन् वैर अनुबन्धेन रूढेन विबुध इतराः बहवः लेभिरे सिद्धिं यां उ ह एकान्त योगिनः ॥६॥

यस्मिन्	जिनसे	**सिद्धिं**	परम सिद्धि
रूढेन	दृढ़	**लेभिरे**	प्राप्त की
वैर	बैर	**उ ह यां**	निश्चय ही जिसे
अनुबन्धेन	बाँध लेनेसे	**एकान्त**	अनन्य
बहवः	बहुतसे	**योगिनः**	योगी पाते हैं ॥६॥
विबुध इतराः	असुरोंने (वह)		

तेनाहं निगृहीतोऽस्मि भवता भूरिकर्मणा ।
बद्धश्च वारुणैः पाशैर्नातिव्रीडे न च व्यथे ॥ ७ ॥

तेन अहं निगृहीतः अस्मि भवतभूरि कर्मणा बद्धः च वारुणैः पाशैः न अति व्रीडे न च व्यथे ॥७॥

तेन	उन्हीं	**पाशैः**	पाशोंसे
भूरि कर्मणा	अनन्तकर्मा	**बद्धः**	बांधा गया हूँ अतः
भवत अहं	आपके द्वारा मैं	**न अति व्रीडे**	न विशेष लज्जित हूँ
निगृहीतः अस्मि	पकड़ा गया हूँ	**च न**	और न
च वारुणैः	तथा वरुणके	**व्यथे**	व्यथित हूँ ॥७॥

पितामहो मे भवदीयसंमतः
प्रह्लाद आविष्कृतसाधुवादः ।
भवद्विपक्षेण विचित्रवैशसं
संप्रापितस्त्वत्परमः स्वपित्रा ॥ ८ ॥

पितामहः मे भवदीय संमतः प्रह्लाद आविष्कृत साधुवादः भवत् विपक्षेण विचित्र वैशसं संप्रापितः त्वत् परमः स्वपित्रा ॥८॥

आविष्कृत	प्रसिद्ध	**परमः**	परायण होनेसे
साधुवादः	कीर्ति प्राप्त		(उन्हें)
मे पितामहः	मेरे पितामह	**स्वपित्रा**	अपने पिता द्वारा
प्रह्लाद	प्रह्लादजी	**विचित्र**	नाना प्रकारके
भवदीय	आपके निजजनोंमें	**वैशसं**	कष्ट
संमतः	माने गये हैं,	**संप्रापितः**	दिये गये थे ॥८॥
त्वत्	आपके		

किमात्मनानेन जहाति योऽन्ततः
किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ।
किं जायया संसृतिहेतुभूतया
मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥ ९ ॥

किं आत्मना अनेन जहाति यः अन्ततः किं रिक्थ हारैः स्वजन आख्य दस्युभिः किं जायया संसृति हेतु भूतया मर्त्यस्य गेहैः किं इह आयुषः व्ययः ॥९॥

यः अन्ततः	जो अन्ततः
जहाति	छोड़ ही देता है उस
अनेन आत्मना	इस शरीरसे
किं	क्या लाभ,
रिक्थ	धन
हारैः	हरण करनेवाले
स्वजन	स्वजन
आख्य	कहे जानेवाले
दस्युभिः	डाकुओंसे
किं	क्या लाभ,
संसृति	आवागमनका
हेतु	कारण
भूतया	रूपा
जायया	पत्नीसे
किं	क्या लाभ,
इह	इस संसारमें
आयुष	आयुको
व्ययः	(व्यर्थ) नष्ट करने-वाले
गेहैः किं	गृहादिसे क्या लाभ ॥८॥

इत्थं स निश्चित्य पितामहो महा-
नगाधबोधो भवतः पादपद्मम् ।
ध्रुवं प्रपेदे ह्यकुतोभयं जनाद्
भीतः स्वपक्षक्षपणस्य सत्तमः ॥१०॥

इत्थं स निश्चित्य पितामहः महान् अगाधबोधः भवतः पादपद्मं ध्रुवं प्रपेदे हि अकुतः भयं जनात् भीतः स्वपक्ष क्षपणस्य सत्तमः ॥१०॥

अगाधबोधः	अगाध ज्ञान
सत्तमः	सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ
महान् स	महान् उन
पितामहः	पितामहने
इत्थं	ऐसा
निश्चित्य	निश्चय करके
जनात्	जन संसर्गसे
भीतः	डरकर
अकुतः	जहां कहींसे
भयं	भय नहीं उन
स्वपक्ष	अपने (असुर) पक्षके
क्षपणस्य	नाशक
भवतः	आपके
पादपद्मं	चरण-कमलकी
ध्रुवं	दृढ़ता पूर्वक
प्रपेदे	शरण ली ॥१०॥

अथाहमप्यात्मरिपोस्तवान्तिकं
दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः ।

इदं कृतान्तान्तिकवर्ति जीवितं
यथाध्रुवं स्तब्धमतिर्न बुध्यते ॥११॥

अथ अहं अपि आत्मरिपोः तव अन्तिकं दैवेन नीतः प्रसभं त्याजित श्रीः इदं कृतान्त अन्तिक वर्ति जीवितं यथा अध्रुवं स्तब्ध मतिः न बुध्यते ॥११॥

इदं कृतान्त	इस मृत्युके	**प्रसभं**	बलपूर्वक
अन्तिक वर्ति	समीप पैंड़े	**त्याजितः**	छुड़ाकर
जीवितं	जीवनको	**दैवेन**	दैवने
यथा	जिससे	**अहं अपि**	मुझको भी
स्तब्ध	जड़ हुई	**आत्मरिपोः**	अपने शत्रु
मतिः	बुद्धिके कारण	**तव अन्तिकं**	आपके पास
अध्रुवं	अनिश्चित	**नीतः**	पहुँचा दिया है
न बुध्यते	नहीं समझ पाता		॥११॥
श्रीः	उस लक्ष्मीसे		

श्रीशुक उवाच–

तस्येत्थं भाषमाणस्य प्रह्लादो भगवत्प्रियः ।
आजगाम कुरुश्रेष्ठ राकापतिरिवोत्थितः ॥१२॥

तस्य इत्थं भाषमाणस्य प्रह्लादः भगवत् प्रियः आजगाम कुरुश्रेष्ठ राकापतिः इव उत्थितः ॥१२॥

कुरुश्रेष्ठ	परीक्षित् !	**राकापतिः इव**	चन्द्रमाके समान
तस्य	उन (बलि) के	**भगवत् प्रियः**	भगवान्‌के प्रिय
इत्थं	इस प्रकार	**प्रह्लादः**	प्रह्लादजी
भाषमाणस्य	कहते समय ही	**आजगाम**	आ गये ॥१२॥
उत्थितः	उगते हुए		

तमिन्द्रसेनः स्वपितामहं श्रिया
विराजमानं नलिनायतेक्षणम् ।

प्रांशुं पिशङ्गाम्बरमञ्जनत्विषं
प्रलम्बबाहुं सुभगं समैक्षत ॥१३॥

तं इन्द्रसेनः स्वपितामहं श्रिया विराजमानं नलिन आयत ईक्षणं प्राशुं पिशङ्ग अम्बरं अञ्जन त्विषं प्रलंबबाहुं सुभगं समैक्षत ॥१३॥

इन्द्रसेनः	दैत्यराज बलिने	**पिशङ्ग अम्बरं**	पीताम्बरधारी
श्रिया	शोभा	**अञ्जन त्विषं**	कृष्णकान्ति
विराजमानं	सम्पन्न	**सुभगं**	मनोहर
नलिन आयल	कमलके समान	**तं स्वपितामहं**	उन अपने पितामह-को
ईक्षणं	विशाल लोचन		
प्राशुं	उन्नत काय,	**समैक्षत**	देखा ॥१३॥

तस्मै बलिर्वारुणपाशयन्त्रितः
समर्हणं नोपजहार पूर्ववत् ।
ननाम मूर्ध्नाश्रुविलोललोचनः
सव्रीडनीचीनमुखो बभूव ह ॥१४॥

तस्मै बलिः वारुणपाश यन्त्रितः समर्हणं न उपजहार पूर्ववत् ननाम मूर्ध्ना अश्रु विलोल लोचनः सव्रीड नीचीन मुखः बभूव ह ॥१४॥

वारुणपाश	वरुणके पाशोंसे	**अश्रु**	आंसू भरनेसे
यन्त्रितः	बँधे हुए	**विलोल लोचनः**	चंचल नेत्र
बलिः तस्मैः	बलि उन (प्रह्लाद-जी)के लिए	**मूर्ध्ना ननाम**	सिर झुकाकर प्रणाम किया
पूर्ववत्	पहिलेके समान	**सव्रीड**	लज्जा सहित
समर्हणं	पूजाकी उत्तम सामग्री	**नीचीन मुखः**	नीचे मुख कर लिया ॥१४॥
		बभूव ह	
न उपजहार	नहीं ला सके		

स तत्र हासीनमुदीक्ष्य सत्पतिं
सुनन्दनन्दाद्यनुगैरुपासितम् ।

उपेत्य भूमौ शिरसा महामना
ननाम मूर्ध्ना पुलकाश्रुविक्लवः ॥१५॥

स तत्र ह आसीनं उद्वीक्ष्य सत् पतिं सुनन्द नन्द आदि अनुगैः उपासितं उपेत्य भूमौ शिरसा महामना ननाम मूर्ध्ना पुलक अश्रु विक्लवः ॥१५॥

तत्र	वहां
सुनन्दनन्द	सुनन्द, नन्द
आदि	आदि
अनुगैः उपासितं	अनुचरों द्वारा सेवित
ह सत्	निश्चय सत्पुरुषोंके
पतिं	स्वामी भगवान्को
आसीनं	बैठा
उद्वीक्ष्य	देकर
उपेत्य	उनके समीप जाकर
महामना	महामनस्वी
पुलक अश्रु	रोमांच तथा अश्रु
विक्लवः	छलक आये
स	उन (प्रह्लादजी)ने
मूर्ध्नो	मस्तक और
शिरसा	ललाटसे
भूमौ ननाम	पृथ्वीपर (भूमिसे स्पर्श कराके)प्रणाम किया ॥१५॥

प्रह्लाद उवाच–

त्वयैव दत्तं पदमैन्द्रमूर्जितं
हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम् ।
मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो
विभ्रंशितो यच्छ्रय आत्ममोहनात् ॥१६॥

त्वयि एव दत्तं पदं ऐन्द्रं ऊर्जितं हृतं तत् एव अद्य तथा एव शोभनं मन्ये महान् अस्य कृतः हि अनुग्रहः विभ्रंशितः यत् श्रिय आत्ममोहनात् ॥१६॥

त्वयि एव	आपने ही
ऊर्जितं	समृद्धशाली
ऐन्द्रं पदं दत्तं	इन्द्र पद दिया था,
तत् अद्य एव	वह आज
हृतं	छीन लिया,
तथा एव	(यह भी) उस देने-के समान ही
शोभनं	अच्छा है,
मन्ये	मैं मानता हूँ कि
अस्य	इस (बलि) पर

हि	क्योंकि	श्रिय	ऐश्वर्यसे
महान् अनुग्रहः	(आपने) महती कृपा	विभ्रंशितः	भ्रष्ट कर दिया है
कृतः	की है		॥१६॥
यत्	जिसने		
आत्ममोहनात्	बुद्धिको मोहमें डालने वाली		

यया हि विद्वानपि मुह्यते यत-
स्तत् को विचष्टे गतिमात्मनो यथा ।
तस्मै नमस्ते जगदीश्वराय वै
नारायणायाखिललोकसाक्षिणे ॥१७॥

यया हि विद्वान् अपि मुह्यते यतः तत् कः विचष्टे गतिं आत्मनः यथा तस्मै नमः ते जगत् ईश्वराय वै नारायणाय अखिललोकः साक्षिणे ॥१७॥

हि यया	क्योंकि जिस (लक्ष्मी)के द्वारा	विचष्टे	जान सकता है
		वै तस्मै	निश्चय उन
विद्वान् अपि	विद्वान पुरुष भी	जगत् ईश्वराय	विश्वके स्वामी
मुह्यते	मोहित हो जाते हैं	अखिललोक	समस्त लोकोंके
तत् यतः	उस (लक्ष्मी)के रहते	साक्षिणे ते	साक्षी आप
कः यथा	कौन यथावत्	नारायणाय	नारायणको
आत्मनः गतिं	अपने स्वरूपको	नमः	नमस्कार ॥१७॥

श्रीशुक उवाच-

तस्यानुशृण्वतो राजन् प्रह्लादस्य कृताञ्जलेः ।
हिरण्यगर्भो भगवानुवाच मधुसूदनम् ॥१८॥

तस्य अनुशृण्वतः राजन् प्रह्लादस्य कृत अञ्जलेः हिरण्यगर्भः भगवान् उवाच मधुसूदनम् ॥१८॥

राजन्	राजन् !	प्रह्लादस्य	प्रह्लादजीके
तस्य कृत	उन हाथ	अनुशृण्वतः	सुनते हुए
अञ्जलेः	जोड़े	हरण्यगर्भः	ब्रह्माजीने

भगवान् मधुसूदनं	भगवान् मधुसूदनसे	**उवाच**	कहा ॥१८॥

बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत्पत्नी भयविह्वला ।
प्राञ्जलिः प्रणतोपेन्द्रं बभाषेऽवाङ्मुखी नृप ॥१९॥

बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत् पत्नी भयविह्वला प्राञ्जलिः प्रणत उपेन्द्रं बभाषे अवाङ् मुखी नृप ॥१९॥

नृप	राजन् !	**अवाङ् मुखी**	नीचे सिर किये
पतिं बद्धं	पतिको बँधा हुआ	**प्राञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
वीक्ष्य	देखकर	**प्रणत**	प्रणाम कर
तत् पत्नी	उन (बलि)की पत्नीने	**उपेन्द्रं**	वामन भगवान्से
भयविह्वला	भयसे व्याकुल होकर	**बभाषे**	बोली ॥१९॥

विन्ध्यावलिरुवाच—

क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते
स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः ।
कर्तुः प्रभोस्तव किमस्यत आवहन्ति
त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥२०॥

क्रीडार्थः आत्मन् इदं त्रिजगत् कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियः अपर ईश कुर्युः कर्तुः प्रभोः तव किं अस्यत आवहन्ति त्यक्त ह्रियः त्वत् अवरोपित कर्तृवादाः ॥२०॥

ईश	ईश !	**स्वाम्यं कुर्युः**	(इस पर अपना) स्वामित्व मानने लगे ।
इदं त्रिजगत्	यह त्रिलोकी		
आत्मन् क्रीडार्थः	अपनेमें ही क्रीड़ाके लिए	**प्रभोः तव**	प्रभो ! आप
कृतं	(आपने) बनाया	**अस्यत कर्तुः**	इस जगत् कर्ताको
अपर कुधियः	दूसरे दुर्बुद्धि लोग	**त्वत्**	आपके द्वारा

कर्तृवादाः	कर्तृत्वको	त्यक्त ह्रियः	निर्लज्ज लोग
अवरोपित	आरोपित किये	किं आवहन्ति	क्या अर्पित करेंगे

॥२०॥

ब्रह्मोवाच–

भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय ।
मुञ्चैनं हृतसर्वस्वं नायमर्हति निग्रहम् ॥२१॥

भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय मुञ्च एनं हृतसर्वस्वं न अयं अर्हति निग्रहम् ॥२१॥

भूतभावन	प्राणियोंके पालक !	हृतसर्वस्वं	इसका सर्वस्व हरण हो चुका है
भूतेश	भूतेश्वर !	एनं मुञ्च	इसे छोड़ दीजिए
देवदेव	देवाधिदेव !	अयं निग्रहं	यह दण्ड पाने योग्य
जगन्मय	विश्वरूप !	न अर्हति	नहीं है ॥२१॥

कृत्स्ना तेऽनेन दत्ता भूर्लोकाः कर्मार्जिताश्च ये ।
निवेदितं च सर्वस्वमात्माविक्लवया धिया ॥२२॥

कृत्स्ना ते अनेन दत्ता भूः लोकाः कर्म अर्जिताः च ये निवेदितं च सर्वस्वं आत्मा अविक्लवया धिया ॥२२॥

अनेन ते	इस (बलि) ने आपको	दत्ता	दे दिये,
कृत्स्ना भूः	सम्पूर्ण पृथ्वी	सर्वस्वं	(अपना) सर्वस्व
च ये	तथा जो	च आत्मा	और शरीर भी
कर्म	अपने कर्मसे	अविक्लवया-	बुद्धिको बिना
अर्जिताः	उपार्जित	धिया	व्याकुल किये
लोकाः	लोक थे वे	निवेदितं	निवेदन कर दिया ॥२२॥

यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय
दूर्वांकुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् ।
अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं
दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत् ॥२३॥

यत् पादयोः अशठधीः सलिलं प्रदाय दूर्वा अंकुरैः अपि विधाय सतीं सपर्यां अपि उत्तमां गतिं असौ भजते त्रिलोकीं दाश्वान् अविक्लवमनाः कथं आर्तिम् ऋच्छेत् ॥२३॥

यत् पादयोः	जिनके चरणोंमें	**भजते**	पा लेते हैं (उस आपको)
अशठधीः	निष्कपट भावसे	**अविक्लवमनाः**	अखिन्न चित्त
सलिलं प्रदाय	जलका अर्घ्य देकर	**त्रिलोकीं**	त्रिलोकी
अपि दूर्वा	तथा दूबके	**दाश्वान्**	दे देनेवाला
अंकुरैः	अंकुरोंसे	**असौ**	यह (बलि)
सतीं सपर्यां	श्रेष्ठ पूजा	**आर्तिम् कथं**	कष्ट कैसे
विधाय	करके	**ऋच्छेत्**	पा सकता है ॥२३॥
अपि	भी		
उत्तमां गतिं	लोग उत्तम गति		

श्रीभगवानुवाच—

ब्रह्मन् यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् ।
यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥२४॥

ब्रह्मन् यं अनुगृह्णामि तत् विशः विधुनोमि अहं यत् मदः पुरुषः स्तब्धः लोकं मां च अवमन्यते ॥२४॥

ब्रह्मन्	ब्रह्माजी !	**यत्**	जिस (धन)के
अहं यं	मैं जिसपर	**मदः**	घमण्डसे
अनुगृह्णामि	अनुग्रह करता हूँ,	**पुरुषः**	पुरुष
तत् विशः	उसका धन	**लोकं च मां**	लोगोंका तथा मेरा
विधुनोमि	नष्ट कर देता हूँ,	**अवमन्यते**	अपमान करता है ॥२४॥

यदा कदाचिज्जीवात्मा संसरन् निजकर्मभिः ।
नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत् ॥२५॥

यदा कदाचित् जीवात्मा संसरन् निजकर्मभिः नाना योनिषु अनीशः अयं पौरुषीं गतिं आव्रजेत् ॥२५॥

अयं अनीशः	यह असमर्थ	**योनिषु**	योनियोंमें
जीवात्मा	जीव	**संसरन्**	घूमता हुआ
निजकर्मभिः	अपने कर्मोंके अनुसार	**यदा कदाचित्**	जब कभी
		पौरुषीं गतिं	मनुष्य स्वरूपमें
नाना	अनेक प्रकारकी	**आव्रजेत्**	आ पाता है ॥२५॥

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ।
यद्यस्य न भवेत् स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥२६॥

जन्म कर्म वयः रूप विद्या ऐश्वर्य धन आदिभिः यदि अस्य न भवेत् स्तम्भः तत्र अयं मत् अनुग्रहः ॥२६॥

तत्र	उस (मनुष्य देह) में	**विद्या ऐश्वर्य**	विद्या, प्रभुत्व,
यदि	यदि	**धन आदिभिः**	धन आदिसे
जन्म	(उत्तम कुलमें) जन्म	**अस्य स्तम्भः**	इसे गर्व
कर्म	(श्रेष्ठ) कर्म,	**न भवेत्**	न हो जाय तो
वयः	(युवा) आयु,	**अयं मत्**	यह मेरी
रूप	सौन्दर्य,	**अनुग्रहः**	कृपा है ॥२६॥

मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः ।
सर्वश्रेयः प्रतीपानां हन्त मुह्येन्न मत्परः ॥२७॥

मान स्तम्भ निमित्तानां जन्म आदीनां समन्ततः सर्वश्रेयः प्रतीपानां हन्त मुह्येत न मत् परः ॥२७॥

सर्वश्रेयः	सब प्रकारके श्रेयके	**मान**	अभिमान और
प्रतीपानां	विरोधी	**स्तम्भ**	उद्धतताके

निमित्तानां	कारण	**परः**	परायण जन
जन्म आदीनां	जन्म आदिसे	**मुह्येत न**	मोहित नहीं होते ॥२७॥
समन्ततः	चारों ओरसे ही		
हन्त मत्	अहो, मेरे		

एष दानवदैत्यानामग्रणीः कीर्तिवर्धनः ।
अजैषीदजयां मायां सीदन्नपि न मुह्यति ॥२८॥

एष दानव दैत्यानां अग्रणीः कीर्तिवर्धनः अजैषीत् अजयां मायां सीदन् अपि न मुह्यति ॥२८॥

दानव दैत्यानां	दानव-दैत्योंमें	**अजैषीत्**	जीत लिया (क्योंकि)
अग्रणीः	प्रमुख,	**सीदन् अपि**	कष्ट पाते हुए भी
कीर्तिवर्धनः	अपना सुयश बढ़ाने-वाला	**मुह्यति न**	मोहमें नहीं पड़ा ॥२८॥
एष	इस (बलि) ने		
अजयां मायां	अजेय मायाको		

क्षीणरिक्थश्च्युतः स्थानात् क्षिप्तो बद्धश्च शत्रुभिः ।
ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनुयापितः ॥२९॥

क्षीण रिक्थः च्युतः स्थानात् क्षिप्तः बद्धः च शत्रुभिः ज्ञातिभिः च परित्यक्तः यातनां अनुयापितः ॥२९॥

क्षीण रिक्थः	धन नष्ट हो गया,	**च ज्ञातिभिः**	एवं जातिवालों द्वारा
स्थानात्	अपने स्थानसे	**परित्यक्तः**	त्याग दिया गया;
च्युतः	भ्रष्ट हो गया		किन्तु
शत्रुभिः	(इसके) शत्रु (मेरे) द्वारा		(इस प्रकार अनेक)
क्षिप्तः	अपमानित हुआ	**यातनां**	यातनाएँ
च बद्धः	तथा बांधा गया	**अनुयापितः**	दी गयीं ॥२९॥

गुरुणा भर्त्सितः शप्तो जहौ सत्यं न सुव्रतः ।
छलैरुक्तो मया धर्मो नायं त्यजति सत्यवाक् ॥३०॥

गुरुणा भर्त्सितः शप्तः जहौ सत्यं न सुव्रतः छलैः उक्तः मया धर्मः न अयं त्यजति सत्यवाक् ॥३०॥

गुरुणा	गुरुके द्वारा	**मया छलैः**	मैंने छलपूर्ण
भर्त्सितः	डांटा गया,	**उक्तः**	बातें कहीं,
शप्तः	शाप दिया गया (फिर भी)	**अयं**	किन्तु यह
		सत्यवाक्	सत्यवादी
सुव्रतः	(इस) दृढ़ प्रतिज्ञने	**धर्मः न**	(अपना) धर्म नहीं
सत्यं न जहौ	सत्यको नहीं त्यागा,	**त्यजति**	छोड़ता है ॥३०॥

एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि ।
सावर्णेरन्तरस्यायं भवितेन्द्रो मदाश्रयः ॥३१॥

एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापं अमरैः अपि सावर्णेः अन्तरस्य अयं भविता इन्द्रः मत् आश्रयः ॥३१॥

अमरैः अपि	देवताओं द्वारा भी	**अन्तरस्य**	मन्वन्तरका
दुष्प्रापं	दुष्प्राप्य	**मत् आश्रयः**	मेरे आश्रयसे
मे स्थानं	मेरा स्थान (धाम)	**इन्द्रः भविता**	(यह) इन्द्र होगा ॥३१॥
एष प्रापितः	इसे (मैंने) दिया,		
सावर्णेः	सावर्णि		

तावत् सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिर्मितम् ।
यन्नाधयो व्याधयश्च क्लमस्तन्द्रा पराभवः ।
नोपसर्गा निवसतां संभवन्ति ममेक्षया ॥३२॥

तावत् सुतलं अध्यास्तां विश्वकर्म विनिर्मितं यत् न आधयः व्याधयः च क्लमः तन्द्रा पराभवः न उपसर्गाः निवसतां संभवन्ति मम ईक्षया ॥३२॥

तावत्	तब तक	**आधयः**	चिन्ता,
विश्वकर्म	विश्वकर्माके	**व्याधयः**	रोग,
विनिर्मितं	बनाये	**च क्लमः तन्द्रा**	तथा श्रान्ति, तन्द्रा
सुतलं	सुतल लोकमें	**पराभवः न**	पराजय नहीं होती
अध्यास्तां	निवास करें,	**न उपसर्गाः**	न किसी प्रकारके
यत्	जहां		विघ्न
निवसतां	निवास करनेवाले-को	**संभवन्ति**	उत्पन्न होते हैं ॥३२॥
मम ईक्षया	मेरी कृपा-दृष्टिसे		

इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते ।
सुतलं स्वर्गिभिः प्राथ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः ॥३३॥

इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रं अस्तु ते सुतलं स्वर्गिभिः प्राथ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः ॥३३॥

भो महाराज	हे महाराज	**स्वर्गिभिः**	देवताओं द्वारा भी
इन्द्रसेन	इन्द्रसेन !	**प्राथ्यं**	प्रार्थनीय
ज्ञातिभिः	अपने जाति-	**सुतलं याहि**	सुतल-लोक जाओ,
परिवारितः	परिवारवालोंके साथ	**ते**	तुम्हारा
		भद्रं अस्तु	कल्याण हो ॥३३॥

न त्वामभिभविष्यन्ति लोकेशाः किमुतापरे ।
त्वच्छासनातिगान् दैत्यांश्चक्रं मे सूदयिष्यति ॥३४॥

न त्वां अभिभविष्यन्ति लोकेशाः किं उत अपरे त्वत् शासन अतिगान् दैत्यान् चक्रं मे सूदयिष्यति ॥३४॥

अपरे उत किं	दूसरे तो क्या	**त्वत्**	तुम्हारे
लोकेशाः	लोकपाल भी	**शासन**	अनुशासनका
त्वां	तुम्हारा	**अतिगान्**	अतिक्रमण करने-वाले
अभिभविष्यन्ति	पराभाव		
न	नहीं कर सकेंगे,	**दैत्यान्**	दैत्योंको

मे चक्रं	मेरा चक्र	सूदयिष्यति	मार दिया करेगा ॥३४॥

रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम् ।
सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥३५॥

रक्षिष्ये सर्वतः अहं त्वां सानुगं सपरिच्छदं सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥३५॥

सानुगं	अनुचरों और	वीर भवान्	वीरवर आप
सपरिच्छदं	सामग्री सहित	तत्र सदा	वहां सर्वदा
त्वां सर्वतः	तुम्हारी सब ओरसे	मां सन्निहितं	मुझे अपने पास
अहं रक्षिष्ये	मैं रक्षा करूँगा	द्रक्ष्यते	देखोगे ॥३५॥

तत्र दानवदैत्यानां सङ्गात् ते भाव आसुरः ।
दृष्ट्वा मदनुभावं वै सद्यः कुण्ठो विनङ्क्ष्यति ॥३६॥

तत्र दानव दैत्यानां सङ्गात् ते भाव आसुरः दृष्ट्वा मत् अनुभावं वै सद्यः कुण्ठः विनङ्क्ष्यति ॥३६॥

दानव दैत्यानां	दानव-दैत्योंके	दृष्ट्वा	देखकर
सङ्गात्	संसर्गसे	सद्यः	तुरन्त
ते	तुम्हारा	कुण्ठः	कुण्ठित होकर
आसुरः भावः	आसुर भाव	विनङ्क्ष्यति	नष्ट हो जायगा ॥३६॥
तत्र मत्	वहां मेरा		
अनुभावं	प्रभाव		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे बलिवामनसंवादो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

इत्युक्तवन्तं पुरुषं पुरातनं
महानुभावोऽखिलसाधुसंमतः ।
बद्धाञ्जलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो
भक्त्युद्गलो गद्गदया गिराब्रवीत् ॥ १ ॥

इति उक्तवन्तं पुरुषं पुरातनं महा अनुभावः अखिल साधु संमतः बद्ध अञ्जलिः बाष्पकला आकुल ईक्षणः भक्ति उद्गलः गद्गदया गिराब्रवीत् ॥१॥

पुरुषं	पुराण-पुरुष	**बद्ध अञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
पुरातनं	भगवान्के	**बाष्पकला**	अश्रुओंसे
इति उक्तवन्तं	ऐसा कहनेपर	**आकुल ईक्षणः**	डबडबाये नेत्र
अखिल साधु	समस्त सत्पुरुषों द्वारा	**भक्ति**	भक्ति भावसे
		उद्गलः	भरे कण्ठ
सम्मतः	सम्मानित	**गद्गद्या**	गद्गद्
महा अनुभावः	महा प्रभावशाली (बलि)	**गिराब्रवीत**	वाणीसे बोले ॥१॥

बलिरुवाच-

अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः
प्रपन्नभक्तार्थविधौ समाहितः ।
यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहोऽमरै-
रलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेऽर्पितः ॥ २ ॥

अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः प्रपन्न भक्त अर्थ विधौ समाहितः यत् लोकपालैः तुवत् अनुग्रहः अमरैः अलब्ध पूर्वः अपसदे असुरे अर्पितः ॥२॥

अहो	अहो,
प्रणामाय	प्रणाम करनेके लिए
कृतः समुद्यमः	किया हुआ प्रयत्न
प्रपन्न भक्त	शरणागत भक्तको
अर्थ विधौ	प्राप्त होनेवाले फल-को
समाहितः	देनेवाला हो गया
यत्	क्योंकि
लोकपालैः	लोकपालों
अमरैः	देवताओंको
तुवत्	तो भी
अलब्ध पूर्वः	पहिले कभी न मिला
अनुग्रहः	अनुग्रह (आपने)
असुरे अपसदे	(मुझ) असुराधमको
अर्पितः	प्रदान किया ॥२॥

श्रीशुक उवाच-

इत्युक्त्वा हरिमानम्य ब्रह्माणं सभवं ततः ।
विवेश सुतलं प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरैः ॥ ३ ॥

इति उक्त्वा हरिं आनम्य ब्रह्माणं सभवं ततः विवेश सुतलं प्रीतः बलिः मुक्तः सह असुरैः ॥३॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर
हरिं	श्रीहरिको,
सभवं	शंकरजीके साथ
ब्रह्माणं आनम्य	ब्रह्माजीको प्रणाम करके
मुक्तः	(बन्धनसे) छूटे
बलिः	बलि
प्रीतः	प्रसन्न होकर
सह असुरैः	असुरोंके साथ
सुतलं	सुतलमें
विवेश	प्रवेश कर गये ॥३॥

एवमिन्द्राय भगवान् प्रत्यानीय त्रिविष्टपम् ।
पूरयित्वादितेः काममशासत् सकलं जगत् ॥ ४ ॥

एवं इन्द्राय भगवान् प्रत्यानीय त्रिविष्टपं पूरयित्वा अदितेः कामं अशासत् सकलं जगत् ॥४॥

एवं	इस प्रकार	**अदितेः कामं**	अदितिकी कामना
भगवान्	भगवान्ने	**पूरयित्वा**	पूर्ण करके
इन्द्राय	इन्द्रको	**सकलं जगत्**	सम्पूर्ण संसारका
त्रिविष्टपं	स्वर्ग	**अशासत्**	शासन किया ॥४॥
प्रत्यानीय	पुनः लौटाकर		

लब्धप्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिम् ।
निशाम्य भक्तिप्रवणः प्रह्लाद इदमब्रवीत् ॥ ५ ॥

लब्धं प्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिं निशाम्य भक्तिप्रवणः प्रह्लादः इदं अब्रवीत् ॥५॥

वंशधरं	अपने वंशको चलानेवाले	**निशाम्य**	देखकर
पौत्रं बलिं	पौत्र बलिको	**भक्तिप्रवणः**	भक्तिसे विनम्र होकर
निर्मुक्तं	पाशसे छूटे हुए	**प्रह्लादः**	प्रह्लादजी
लब्ध प्रसादं	भगवत् कृपा प्राप्त	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥५॥

प्रह्लाद उवाच–

नेमं विरिञ्चो लभते प्रसादं
न श्रीर्न शर्वः किमुतापरे ते ।
यन्नोऽसुराणामसि दुर्गपालो
विश्वाभिवन्द्यैरपि वन्दिताङ्घ्रिः ॥ ६ ॥

न इमं विरिञ्चः लभते प्रसादं न श्रीः न शर्वः किं उत अपरे ते यत् नः असुराणां असि दुर्गपालः विश्व अभिवन्द्यैः अपि वन्दित अङ्घ्रिः ॥६॥

इमं प्रसादं	(आपकी) यह कृपा	**लभते**	प्राप्त करते हैं,
न विरिञ्चः	न ब्रह्माजी,	**ते अपरे**	फिर उन किन्ही दूसरोंकी
न श्रीः	न लक्ष्मीजी,		
न शर्वः	न शंकरजी	**किं उत**	क्या बात

विश्व	विश्व	**अङ्घ्रिः**	चरण
अभिवन्द्यैः	वन्द्योंके द्वारा	**यत् नः**	जो हम
अपि	भी	**असुराणां**	असुरोंके (आप)
वन्दित	वन्दित-	**दुर्गपालः असि**	दुर्गपाल हैं ॥६॥

यत्पादपद्ममकरन्दनिषेवणेन
ब्रह्मादयः शरणदाश्नुवतेविभूतीः ।
कस्माद् वयं कुसृतयः खलयोनयस्ते
दाक्षिण्यदृष्टिपदवीं भवतः प्रणीताः ॥ ७ ॥

यत् पादपद्म मकरन्द निषेवणेन ब्रह्मा आदयः शरणदा अश्नुवते विभूतीः कस्मात् वयं कुसृतयः खलयोनयः ते दाक्षिण्य दृष्टि पदवीं भवतः प्रणीताः ॥७॥

शरणदा	शरणदाता प्रभो !	**ते दाक्षिण्य**	उन्हीं आपकी
यत्	जिनके	**दृष्टि**	दया दृष्टिके
पादपद्म	चरण-कमलोंके	**पदवीं**	पात्र
मकरन्द	मकरन्दकी	**वयं कुसृतयः**	हम कुमार्गी
निषेवणेन	सेवासे	**खलयोनयः**	दुष्ट योनिमें उत्पन्न
ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मा आदि	**भवतः**	आपके द्वारा
विभूतीः	वैभव	**कस्मात्**	क्यों
अश्नुवते	भोगते हैं,	**प्रणीताः**	बना लिये गये ॥७॥

चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमाया-
लीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य ।
सर्वात्मनः समदृशो विषमः स्वभावो
भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः ॥ ८ ॥

चित्रं तव ईहितं अहो अमित योगमाया लीला विसृष्ट भुवनस्य विशारदय सर्वात्मनः समदृशः विषमः स्वभावः भक्तप्रियः यत् असि कल्पतरु स्वभावः ॥८॥

अहो तव ईहितं	अहो, आपकी लीला	**सर्वात्मनः**	सर्वात्मा
चित्रं	विचित्र है,	**समदृशः**	समदर्शीका
अमित	अपरमित	**स्वभावः**	स्वभाव
योगमाया	योगमाया द्वारा	**विषमः**	विषम है
लीला	लीला पूर्वक	**यत् कल्पतरु**	क्योंकि कल्पवृक्षके
भुवनस्य	त्रिभुवनकी	**स्वभावः**	समान स्वभाववाले
विसृष्ट	सृष्टिमें	**भक्तप्रियः**	भक्तवत्सल
विशारदस्य	परम निपुण	**असि**	हैं ॥८॥

श्रीभगवानुवाच–

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतलालयम् ।
मोदमानः स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखमावह ॥ ९ ॥

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतल आलयं मोदमानः स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखं आवह ॥९॥

वत्स प्रह्लाद	वत्स प्रह्लाद !	**मोदमानः**	आनन्द पूर्वक रहते हुए
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो,	**ज्ञातीनां**	अपनी जाति वालों-को
सुतल आलयं	सुतल-लोक	**सुखं आवह**	सुखी करो ॥९॥
प्रयाहि	प्रस्थान करो,		
स्वपौत्रेण	अपने पौत्रके साथ		

नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमवस्थितम् ।
मद्दर्शनमह्लादध्वस्तकर्मनिबन्धनः ॥१०॥

नित्यं द्रष्टा असि मां तत्र गदापाणिं अवस्थितं मत् दर्शन महाह्लाद ध्वस्त कर्मनिबन्धनः ॥१०॥

तत्र नित्यं	वहां सदा	**अवस्थितं**	उपस्थित
गदापाणि	हाथमें गदा लिये	**मां द्रष्टा असि**	मुझे देखोगे

मत् दर्शन	मेरे दर्शनके	**ध्वस्त**	नष्ट हो जायँगे ॥१०॥
महाह्लाद	परमानन्दसे		
कर्मनिबन्धनः	(तुम्हारे) कर्म-बन्धन		

श्रीशुक उवाच—

आज्ञां भगवतो राजन्प्रह्लादो बलिना सह ।
बाढमित्यमलप्रज्ञो मूर्ध्न्याधाय कृताञ्जलिः ॥११॥

आज्ञां भगवतः राजन् प्रह्लादः बलिना सह बाढं इति अमल प्रज्ञः मूर्ध्ना आधाय कृत अञ्जलिः ॥११॥

राजन्	राजन् !	**बलिना सह**	बलिके साथ
भगवतः	भगवान्की	**बाढं इति**	'बहुत अच्छा' कह-कर
आज्ञां	आज्ञाको		
अमल प्रज्ञः	निर्मल बुद्धि	**कृत अञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
प्रह्लादः	प्रह्लादने	**मूर्ध्ना आधाय**	शिरोधार्य की ॥११॥

परिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपतिः ।
प्रणतस्तदनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥१२॥

परिक्रम्य आदिपुरुषं सर्व असुर चमूपतिः प्रणतः तत् अनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥१२॥

आदिपुरुषं	उन आदिपुरुषकी	**अनुज्ञातः**	अनुमति पाकर
सर्व असुर	सब असुर	**महाबिलं**	सुतल लोकमें
चमूपतिः	सेना-नायकोंके साथ	**प्रविवेश**	प्रवेश कर गये ॥१२॥
प्रणतः	प्रणाम करके		
तत्	उन (भगवान्) से		

अथाहोशनसं राजन् हरिर्नारायणोऽन्तिके ।
आसीनमृत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥१३॥

अथ आह उशनसं राजन् हरिः नारायणः अन्तिके आसीनं ऋत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥१३॥

अथ हरिः	फिर श्रीहरि	**ऋत्विजां मध्ये**	ऋत्विजके बीचमें
नारायणः	नारायणने	**अन्तिके आसीनं**	समीप बैठे
ब्रह्मवादिनां	वेदवादियोंकी	**उशनसं आह**	शुक्राचार्यसे कहा ॥१३॥
सदसि	सभामें		

श्रीभगवानुवाच–*

ब्रह्मन् संतनु शिष्यस्य कर्म च्छिद्रं वितन्वतः ।
यत् तत् कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥१४॥

ब्रह्मन् संतनु शिष्यस्य कर्म च्छिद्रं वितन्वतः यत् तत् कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥१४॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**तत्**	जो
शिष्यस्य	(आपके) शिष्यके	**वैषम्यं**	विषमता रह जाय तो
वितन्वतः	यज्ञमें		
कर्म च्छिद्रं	जो कर्ममें त्रुटि रही हो	**ब्रह्मदृष्टं**	ब्राह्मणोंकी दृष्टि पड़नेसे ही
संतनु	उसे पूर्ण कीजिए	**समं भवेत्**	बराबर हो जाती है ॥१४॥
यत् कर्मसु	क्योंकि कर्ममें		

श्रीशुक उवाच–

कुतस्तत्कर्मवैषम्यं यस्य कर्मेश्वरो भवान् ।
यज्ञेशो यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजितः ॥१५॥

कुतः तत् कर्म वैषम्यं यस्य कर्म ईश्वरः भवान् यज्ञेशः यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजितः ॥१५॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तत् कर्म	उसके कर्ममें	**ईश्वर**	स्वामी
वैषम्यं	विषमता होगी	**यज्ञेशः**	यज्ञेश्वर,
कुतः	कहांसे	**यज्ञपुरुषः**	यज्ञ-पुरुष
यस्य	जिसके द्वारा	**सर्वभावेन**	सब प्रकारसे
भवान् कर्म	आप कर्मोंके	**पूजितः**	पूजित हुए हैं ॥१५॥

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥१६॥

मन्त्रतः तन्त्रतः छिद्रं देश काल अर्ह वस्तुतः सर्वं करोति निच्छिद्रं नाम संकीर्तनं तव ॥१६॥

मन्त्रतः तन्त्रतः	मन्त्रोंमें, विधिमें,	**सर्वं निच्छिद्रं**	सबको त्रुटिहीन
देश काल	स्थान, समय,	**तव नाम**	आपके नामका
अर्हं वस्तुतः	पूज्यवर्ग तथा पदार्थोंमें	**संकीर्तनं**	संकीर्तन
		करोति	कर देता है ॥१६॥
छिद्रं	जो त्रुटियां (रह जाती हैं)		

तथापि वदतो भूमन् करिष्याम्यनुशासनम् ।
एतच्छ्रेयः परं पुंसां यत् तवाज्ञानुपालनम् ॥१७॥

तथा अपि वदतः भूमन् करिष्यामि अनुशासनं एतत् श्रेयः परं पुंसां यत् तव आज्ञा अनुपालनम् ॥१७॥

भूमन्	सर्वव्यापी प्रभो !	**आज्ञा**	आज्ञाका
तथा अपि	फिर भी	**अनुपालनं**	पालन ही
वदतः	(आप) कहते हैं तो	**एतत् पुसां**	यह पुरुषका
अनुशासनं	आज्ञा पालन	**परं श्रेयः**	परम कल्याण है ॥१७॥
करिष्यामि	करूंगा,		
यत् तव	क्योंकि आपकी		

श्रीशुक उवाच—

अभिनन्द्य हरेराज्ञामुशना भगवानिति ।
यज्ञच्छिद्रं समाधत्त बलेर्विप्रर्षिभिः सह ॥१८॥

अभिनन्द्य हरेः आज्ञां उशना भगवान् इति यज्ञः छिद्रं सम आधत्त बलेः विप्रर्षिभिः सह ॥१८॥

इति	इस प्रकार	**विप्रर्षिभिः सह**	ब्रह्मर्षियोंके साथ
हरेः आज्ञां	श्रीहरिकी आज्ञाका	**बलेः यज्ञः**	बलिके यज्ञकी
अभिनन्द्य	अभिनन्दन करके	**छिद्रं**	त्रुटियोंको
भगवान्	भगवान्	**सम आधत्त**	बराबर (दूर) कर
उशना	शुक्राचार्यने		दिया ॥१८॥

एवं बलेर्महीं राजन् भिक्षित्वा वामनो हरिः ।
ददौ भ्रात्रे महेन्द्राय त्रिदिवं यत् परैर्हृतम् ॥१९॥

एवं बलेः महीं राजन् भिक्षित्वा वामनः हरिः ददौ भ्रात्रे महेन्द्राय त्रिदिवं यत् परैः हृतम् ॥१९॥

राजन्	राजन् !	**भिक्षित्वा**	भिक्षामें लेकर
यत् परैः	जो शत्रुओंने	**वामनः**	वामन रूपधारी
हृतं	छीन लिया था	**हरिः**	श्रीहरिने
त्रिदिवं	वह स्वर्ग और	**भ्रात्रे**	अपने बड़े भाई
बलेः महीं	बलिकी पृथ्वी	**महेन्द्राय**	इन्द्रको
एवं	इस प्रकार	**ददौ**	दे दिया ॥१९॥

प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा देवर्षिपितृभूमिपैः ।
दक्षभृग्वङ्गिरोमुख्यैः कुमारेण भवेन च ॥२०॥

प्रजापति पतिः ब्रह्मा देव ऋषि पितृ भूमिपैः दक्ष भृगुः अङ्गिरः मुख्यैः कुमारेण भवेन च ॥२०॥

देव ऋषि पितृ	देवता, ऋषि, पितर,	**च भवेन**	तथा शंकरजीके
भूमिपैः भृगुः	राजाओं, भृगु,		साथ
अङ्गिरः मुख्यैः	अङ्गिरा प्रमुख	**प्रजापति**	प्रजापतियोंके
कुमारेण	सनत्कुमारादि	**पतिः**	स्वामी
		ब्रह्मा	ब्रह्माजीने ॥२०॥

कश्यपस्यादितेः प्रीत्यै सर्वभूतभवाय च ।
लोकानां लोकपालानामकरोद् वामनं पतिम् ॥२१॥

कश्यपस्य अदितेः प्रीत्यै सर्वभूत भवाय च लोकानां लोकपालानां अकरोत् वामनं पतिम् ॥२१॥

कश्यपस्य	कश्यप तथा	**लोकानां**	लोकों तथा
अदितेः	अदितिकी	**लोकपालानां**	लोकपालोंका
प्रीत्यै	प्रसन्नताके लिए	**वामनं**	भगवान् वामनको
च सर्वभूत	तथा सब प्राणियोंके	**पतिं अकरोत्**	स्वामी बना दिया
भवाय	हितके लिए		॥२१॥

वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः ।
मङ्गलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्गापवर्गयोः ॥२२॥

वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः मङ्गलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्ग अपवर्गयोः ॥२२॥

वेदानां	वेदोंकी	**च**	तथा
सर्वदेवानां	सब देवताओंकी	**अपवर्गयोः**	मोक्षकी (वामन
धर्मस्य यशसः	धर्म, यश,		भगवान्‌को)
श्रियः	लक्ष्मी,	**कल्पं**	रक्षा करनेमें समर्थ
मङ्गलानां	मंगल,		॥२२॥
व्रतानां स्वर्ग	व्रत, स्वर्ग		

उपेन्द्रं कल्पयाञ्चक्रे पतिं सर्वविभूतये ।
तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप ॥२३॥

उपेन्द्रं कल्पयाञ्चक्रे पतिं सर्व विभूतये तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप ॥२३॥

नृप	राजन् !	**कल्पयाञ्चक्रे**	बनाया
सर्व	सबके	**तदा**	उस समय
विभूतये	वैभवके लिए	**सर्वाणि भूतानि**	सभी प्राणी
पतिं	सबका स्वामी	**भृशं**	अत्यन्त
उपेन्द्रं	उपेन्द्र	**मुमुदिरे**	प्रसन्न हुए ॥२३॥

ततस्त्विन्द्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनम् ।
लोकपालैर्दिवं निन्ये ब्रह्मणा चानुमोदितः ॥२४॥

ततः तु इन्द्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनं लोकपालैः दिवं निन्ये ब्रह्मणा च अनुमोदितः ॥२४॥

ततः तु	इसके पश्चात् तो	**वामनं**	वामन भगवान्को
लोकपालैः	लोकपालों	**पुरस्कृत्य**	आगे करके
च ब्रह्मणा	तथा ब्रह्माजी द्वारा	**देवयानेन**	स्वर्गीय विमानसे
अनुमोदितः	समर्थन पाकर	**दिवं निन्ये**	(उनको) स्वर्ग ले गये ॥२४॥
इन्द्रः	इन्द्रने		

प्राप्य त्रिभुवनं चेन्द्र उपेन्द्रभुजपालितः ।
श्रिया परमया जुष्टो मुमुदे गतसाध्वसः ॥२५॥

प्राप्य त्रिभुवनं च इन्द्र उपेन्द्र भुज पालितः श्रिया परमया जुष्टः मुमुदे गत साध्वसः ॥२५॥

इन्द्र	इन्द्र	**गत साध्वसः**	निर्भय होकर
उपेन्द्र भुज	उपेन्द्रके भुजा बलसे	**च परमया**	तथा परम
पालितः	रक्षित	**श्रिया**	ऐश्वर्य
त्रिभुवनं	तीनों लोक	**जुष्टः**	सम्पन्न होकर
प्राप्य	पाकर	**मुमुदे**	आनन्दित हुए ॥२५॥

ब्रह्मा शर्वः कुमारश्च भृग्वाद्या मुनयो नृप ।
पितरः सर्वभूतानि सिद्धा वैमानिकाश्च ये ॥२६॥

ब्रह्मा शर्वः कुमारः च भृगु आद्या मुनयः नृप पितरः सर्व भूतानि सिद्धाः वैमानिकाः च ये ॥२६॥

नृपः	राजन् !	**पितरः**	पितृगण,
ब्रह्मा शर्वः	ब्रह्मा, शिव,	**च सर्व**	एवं सभी
कुमारः	सनकादि कुमार	**भूतानि**	प्राणी
भृगु आद्या	भृगु आदि	**च ये सिद्धाः**	तथा जो सिद्ध,
मुनयः	मुनिगण,	**वैमानिकाः**	देवता थे ॥२६॥

सुमहत् कर्म तद् विष्णोर्गायन्तः परमाद्भुतम् ।
धिष्ण्यानि स्वानि ते जग्मुरदितिं च शशंसिरे ॥२७॥

सुमहत् कर्म तत् विष्णोः गायन्तः परम अद्भुतं धिष्ण्यानि स्वानि ते जग्मुः अदितिं च शशंसिरे ॥२७॥

तत्	उस	**अदितिं च**	तथा अदितिकी भी
विष्णोः	विष्णु भगवान्के	**शशंसिरे**	प्रशंसा की
सुमहत्	अत्यन्त महान	**ते स्वानि**	फिर वे अपने
अद्भुतं कर्म	अद्भुत कार्यका	**धिष्ण्यानि**	स्थानोंको
गायन्तः	गायन करते हुए	**जग्मुः**	चले गये ॥२७॥

सर्वमेतन्मयाऽऽख्यातं भवतः कुलनन्दन ।
उरुक्रमस्य चरितं श्रोतॄणामघमोचनम् ॥२८॥

सर्वं एतत् मया आख्यातं भवतः कुलनन्दन उरुक्रमस्य चरितं श्रोतॄणां अघमोचनम् ॥२८॥

कुलनन्दन	कुलनन्दन परीक्षित !	**अघमोचनं**	पाप नष्ट करनेवाला
श्रोतॄणां	सुनने वालोंका	**उरुक्रमस्य**	अनन्त पराक्रम श्रीहरिका

एतत् सर्वं	यह सब	**आख्यातं**	वर्णन कर दिया ॥२८॥
चरितं	चरित		
मया भवतः	मैंने तुमसे		

पारं महिम्न उरु विक्रमतो गृणानो
यः पार्थिवानि विममे स रजांसि मर्त्यः।
किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य
इत्याह मन्त्रदृगृषिः पुरुषस्य यस्य ॥२९॥

पारं महिम्न उरु विक्रमतः गृणानः यः पार्थिवानि विममे स रजांसि मर्त्यः किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य इति आह मन्त्रदृक् ऋषिः पुरुषस्य यस्य ॥२९॥

यः मर्त्यः	जो मनुष्य	**पुरुषस्य**	पुरुषके विषयमें
उरु	अनन्त	**मन्त्रदृक्**	मन्त्रद्रष्टा
विक्रमतः	पराक्रमशाली भगवान्‌की	**ऋषिः**	ऋषि (वशिष्ठ) ने
		इति आह	यह कहा है
महिम्नः	महिमाका	**किं**	'क्या आगे
गृणानः	वर्णन करके	**जायमान**	उत्पन्न होनेवाले
पारं	पार पाना चाहता है	**उत जात**	अथवा उत्पन्न हुए
स	वह (सम्भवतः)	**मर्त्य**	मनुष्य
पार्थिवानि	पृथ्वीके	**उपैति**	(आपकी महिमाका पार) पा सकता है' ॥२९॥
रजांसि	धूलि कणोंको		
विममे	गिन लें,		
यस्य	जिन परम		

य इदं देवदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः।
अवतारानुचरितं शृण्वन् याति परां गतिम् ॥३०॥

यः इदं देवदेवस्य हरेः अद्भुत कर्मणः अवतार अनुचरितं शृण्वन् याति परां गतिम् ॥३०॥

अद्भुत	अद्भुत
कर्मणः	कर्म करनेवाले
देवदेवस्य	देवाधिदेव
हरेः	श्रीहरिके
इदं अवतार	इस अवतार
अनुचरितं	चरितको
यः शृण्वन्	जो सुनता रहता है (वह)
परां गतिं	परमपद
याति	पाता है ॥३०॥

क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे ।
यत्र यत्रानुकीर्त्येत तत् तेषां सुकृतं विदुः ॥३१॥

क्रियमाणे कर्मणि इदं दैवे पित्र्ये अथ मानुषे यत्र यत्र अनुकीर्त्येत तत् तेषां सुकृतं विदुः ॥३१॥

दैवे पित्र्ये	देवयज्ञ, पितृयज्ञ,
अथ मानुषे	अथवा मनुष्ययज्ञ
कर्मणि	कर्मोंको
क्रियामाणे	करते समय
इदं	इस चरितका
यत्र यत्र	जहां-जहां
अनुकीर्त्येत	बार-बार वर्णन-कीर्तन किया जाता है,
तत्	वह (कीर्तन)
तेषां	उन (कर्मों) का
सुकृतं	पुण्य (वर्धक)
विदुः	जाना जाता है ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टस्कन्धे वामनावतारचरिते त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

राजोवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मणः ।
अवतारकथामाद्यां मायामत्स्यविडम्बनम् ॥ १ ॥

भगवन् श्रोतुं इच्छामि हरेः अद्भुत कर्मणः अवतार कथां आद्यां मायामत्स्य विडम्बनम् ॥१॥

भगवन्	भगवन् !	**विडम्बनं**	बननेकी नकल करनेकी
अद्भुत कर्मणः	अद्भुत कर्म करनेवाले	**आद्यां**	पहिली*
हरेः	श्रीहरिकी	**अवतार कथां**	अवतार-कथा
मायामत्स्य	मायासे मछली	**श्रोतुं इच्छामि**	सुनना चाहता हूँ ॥१॥

यदर्थमदधाद् रूपं मात्स्यं लोकजुगुप्सितम् ।
तमः प्रकृति दुर्मर्षं कर्मग्रस्त इवेश्वरः ॥ २ ॥

यत् अर्थं अदधात् रूपं मात्स्यं लोक जुगुप्सितं तमः प्रकृति दुर्मर्षं कर्म ग्रस्त इव ईश्वरः ॥२॥

ईश्वरः	सर्व समर्थ (होते हुए भी)	**कर्म ग्रस्त इव**	कर्म-बन्धनमें पड़ेके समान

---

*मत्स्यावतारको पहिला अवतार अधिक लोग इस 'आद्यां' के कारण मानते हैं; किन्तु इसी वर्णनमें स्पष्ट है कि यह अवतार वामनावतारके भी पीछे हुआ। क्योंकि इस वैवस्वत-मन्वन्तरका यह पहिला अवतार है, इस मन्वन्तरसे पहिलेकी जल-प्रलयमें हुआ-इसीसे इसे यहां आदि अवतार कहा गया है।

यत् अर्थं	जिस प्रयोजनसे	दुर्मर्षं	अत्यन्त असहनशील
लोक जुगुप्सितं	लोकमें निन्दित	मात्स्यं रूपं	मछलीका रूप
तमः प्रकृति	तमोगुणी स्वभाव	अदधात्	धारण किया ॥२॥

एतन्नो भगवान् सर्वं यथावद् वक्तुमर्हसि ।
उत्तमश्लोकचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥ ३ ॥

एतत् नः भगवान् सर्वं यथावत् वक्तुं अर्हसि उत्तम श्लोक चरितं सर्वलोक सुख आवहम् ॥३॥

भगवान्	भगवन् !	उत्तम श्लोक	पवित्र कीर्ति भगवान्का
एतत् सर्वं	यह सब	चरितं	चरित
यथावत्	ठीक-ठीक	सर्वलोक	सभी लोगोंको
नः वक्तुं	मुझसे (आपको) बतलाना	सुख आवहं	सुख देनेवाला है ॥३॥
अर्हति	चाहिए (क्योंकि)		

सूत उवाच–

इत्युक्तो विष्णुरातेन भगवान् बादरायणिः ।
उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत् कृतम् ॥ ४ ॥

इति उक्तः विष्णुरातेन भगवान् बादरायणिः उवाच चरितं विष्णोः मत्स्य रूपेण यत् कृतम् ॥४॥

विष्णुरातेन	परीक्षितके	यत् कृतं	जो किया था वह
इति उक्तः	इस प्रकार कहनेपर	विष्णोः	भगवान् विष्णुका
भगवान्	भगवान्	चरितं	चरित
बादरायणिः	व्यासनन्दन शुक-देवजीने	उवाच	वर्णन करने लगे ॥४॥
मत्स्य रूपेण	मत्स्य रूप द्वारा		

श्रीशुक उवाच–

गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः ।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि ॥ ५ ॥

गो विप्र सुर साधूनां छन्दसां अपि च ईश्वरः रक्षां इच्छन् तनूः धत्ते धर्मस्य अर्थस्य च एव हि ॥५॥

हि	क्योंकि	**एव**	की ही
ईश्वरः	सर्वसमर्थ प्रभु	**रक्षां**	रक्षा करनेकी
गो विप्र सुर	गौ, ब्राह्मण, देवता	**इच्छन्**	इच्छासे
च छन्दसां	तथा वेदोंकी	**तनूः**	अवतार देह
अपि	भी	**धत्ते**	धारण करते हैं ॥५॥
धर्मस्य अर्थस्य	धर्म तथा सम्पत्ति		

उच्चावचेषु भूतेषु चरन् वायुरिवेश्वरः ।
नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धियो गुणैः ॥ ६ ॥

उच्च अवचेषु भूतेषु चरन् वायुः इव ईश्वरः न उच्च आवचत्वं भजते निर्गुणत्वात् हि यः गुणैः ॥६ ॥

हि यः	क्योंकि जो	**चरन्**	घूमते हुए
निर्गुणत्वात्	निर्गुण होनेके कारण	**ईश्वरः**	सर्वसमर्थ
		गुणैः	गुणोंके द्वारा
वायुः इव	वायुके समान	**उच्च अवचत्वं**	बड़ा-छोटापन
उच्च अवचेषु	बड़े-छोटे	**न भजते**	नहीं स्वीकार करते ॥६॥
भूतेषु	प्राणियोंमें		

आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ।
समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप ॥ ७ ॥

आसीत् अतीत कल्प अन्ते ब्राह्मः नैमित्तिकः लयः समुद्रः उपप्लुताः तत्र लोका भूः आदयः नृप ॥७॥

नृप	राजन् !
अतीत कल्प	पिछले कल्पके
अन्ते	अन्तमें*
ब्राह्मः	ब्राह्म नामक
नैमित्तिकः	नैमित्तिक
लयः आसीत्	प्रलय हुआ था ।
तत्र	उस समय
भूः आदयः	भूर्लोक आदि
समुद्रः	समुद्रमें
उपप्लुताः	डूब गये थे ॥७॥

कालेनागतनिद्रस्य धातुः शिशयिषोर्बली ।
मुखतो निःसृतान् वेदान् हयग्रीवोऽन्तिकेऽहरत् ॥ ८ ॥

कालेन आगत निद्रस्य धातुः शिशयिषोः बली मुखतः निःसृतान् वेदान् हयग्रीवः अन्तिके अहरत् ॥८॥

कालेन	कालक्रमसे
धातुः	ब्रह्माजीको
आगत निद्रस्य	नींद आ जानेपर
शिशयिषः	उनके सोते समय
मुखतः	मुखसे
निःसृतान्	निकले
अन्तिके वेदान्	पास पड़े वेदोंको
हयग्रीवः	हयग्रीव दानव
अहरत्	हरणकर लिया ॥८॥

ज्ञात्वा तद् दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम् ।
दधार शफरीरूपं भगवान् हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥

ज्ञात्वा तत् दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितं दधार शफरी रूपं भगवान् हरिः ईश्वरः ॥९॥

तत् दानवेन्द्रस्य	उस दानवेन्द्र
हयग्रीवस्य	हयग्रीवकी
चेष्टितं ज्ञात्वा	चेष्टा जानकर
ईश्वरः	सर्वसमर्थ
भगवान्	भगवान्
हरिः	श्रीहरिने
शफरी रूपं	मछलीका रूप
दधार	धारण किया ॥९॥

---

*मत्स्यावतार इस कल्पके प्रारम्भमें प्रलय कालमें हुआ, इसलिए इस कल्पके लिए तो आद्यावतार है; कि भागवतमें अष्टम स्कन्धसे पहिले के सब अवतारोंका वर्णन प्रथम कल्पके स्वायम्भुव मन्वन्तर है, यह अष्टम स्कन्धके प्रारम्भमें राजाके प्रश्नमें स्पष्ट है ।

तत्र राजऋषिः कश्चिन्नाम्ना सत्यव्रतो महान् ।
नारायणपरोऽतप्यत् तपः स सलिलाशनः ॥१०॥

तत्र राजऋषिः कश्चित् नाम्ना सत्यव्रतः महान् नारायण परः अतप्यत् तपः स सलित अशनः ॥१०॥

तत्र कश्चित्	उस समय कोई	**परः**	परायण
सत्यव्रतः	सत्यव्रत	**सलिल**	केवल जल
नाम्ना	नामक	**अशनः**	पीकर
महान्	महान्	**तपः**	तपस्या
राजऋषिः	राजर्षि थे,	**अतप्यत्**	कर रहे थे ॥१०॥*
स नारायण	वे नारायण		

योऽसावस्मिन् महाकल्पे तनयः स विवस्वतः ।
श्राद्धदेव इति ख्यातो मनुत्वे हरिणार्पितः ॥११॥

यः असौ अस्मिन् महाकल्पे तनयः स विवस्वतः श्राद्धदेव इति ख्यातः मनुत्वे हरिणा अर्पितः ॥११॥

यः असौ	जो इस	**इति**	इस नामसे
महाकल्पे	महाकल्पमें	**ख्यातः**	प्रसिद्ध हुए,
विवस्वतः	सूर्यके	**हरिण**	श्रीहरिने (उन्हें)
तनयः	पुत्र	**मनुत्वे**	मनुपद
स श्राद्धदेव	वही श्राद्धदेव	**अर्पितः**	प्रदान किया ॥११॥

एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् ।
तस्याञ्जल्युदके काचिच्छफर्येकाभ्यपद्यत ॥१२॥

---

*क्योंकि प्रलय समीप है—केवल ६ दिन बाद, अतः यह उस (इससे पूर्वके) कल्पकी अन्तिम चतुर्युगीका अन्तिम कलियुग समाप्त होनेवाला होगा और दक्षिण भारतका स्थान होगा; क्योंकि कृतमाल कावेरीसे भी नीचेकी नदी है।

एकदा कृतमालायां कुर्वतः जलतर्पणं तस्य अञ्जलि उदके काचित् शफरी एका अभ्यपद्यत ॥१२॥

एकदा	एक बार	**उदके**	जलमें
कृतमालायां	कृतमाला नदीमें	**काचित् एका**	कोई अकेली
जलतर्पणं	जलसे तर्पण	**शफरी**	छोटी मछली
कुर्वतः	करते समय	**अभ्यपद्यत**	आ गयी ॥१२॥
तस्य अञ्जलि	उनकी अञ्जलिके		

सत्यव्रतोऽञ्जलिगतां सह तोयेन भारत ।
उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविडेश्वरः ॥१३॥

सत्यव्रतः अञ्जलि गतां सह तोयेन भारत उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविड ईश्वरः ॥१३॥

भारत	परीक्षित् !	**शफरीं**	उस छोटी मछलीको
द्रविड ईश्वरः	द्रविड़ देशके राजा	**सह तोयेन**	जलके साथ
सत्यव्रतः	सत्यव्रतने	**नदीतोये**	नदीके जलमें
अञ्जलि	अपनी अञ्जलिमें	**उत्ससर्ज**	छोड़ दिया ॥१३॥
गतां	आयी		

तमाह सातिकरुणं महाकारुणिकं नृपम् ।
यादोभ्यो ज्ञातिघातिभ्यो दीनां मां दीनवत्सल ।
कथं विसृजसे राजन् भीतामस्मिन् सरिज्जले ॥१४॥

तं आह स अतिकरुणं महाकारुणिकं नृपं यादोभ्यः ज्ञाति घातिभ्यः दीनां मां दीन वत्सल कथं विसृजसे राजन् भीतां अस्मिन् सरित् जले ॥१४॥

महाकारुणिकं	परम दयालु	**दीन**	दीनोंपर
तं नृपं	उस राजासे	**वत्सल**	स्नेह करनेवाले
स	वह (मछली)	**राजन्**	राजन्
अतिकरुणं	अत्यन्त दीनतापूर्वक	**अस्मिन् सरित्**	इस नदीके
आह	बोली	**जले**	जलमें

ज्ञाति	अपनी जातिवालों-को ही	**भीतां**	(मैं) डरी हुई
घातिभ्यः	मारनेवाले	**मां**	मुझे
यादोभ्यः	जल-जीवोंसे	**दीनां कथं**	दीनाको कैसे
		विसृजसे	त्याग रहे हैं ॥१४॥

तमात्मनोऽनुग्रहार्थं प्रीत्या मत्स्यवपुर्धरम् ।
अजानन् रक्षणार्थाय शफर्याः स मनो दधे ॥१५॥

तं आत्मनः अनुग्रह अर्थं प्रीत्या मत्स्यवपुः धरं अजानन् रक्षणार्थाय शफर्याः स मनः दधे ॥१५॥

प्रीत्या	प्रसन्न होकर	**अजानन्**	न जानते हुए
आत्मनः	अपनेपर	**शफर्याः**	उस मछलीकी
अनुग्रह अर्थं	कृपा करनेके लिए	**रक्षणार्थाय**	रक्षाके लिए
मत्स्यवपुः धरं	मत्स्य-शरीर-धारी	**स मनः**	उन्होंने मन
तं	उन (भगवान्) को	**दधे**	किया ॥१५॥

तस्या दीनतरं वाक्यमाश्रुत्य स महीपतिः ।
कलशाप्सु निधायैनां दयालुर्निन्य आश्रमम् ॥१६॥

तस्या दीनतरं वाक्यं आश्रुत्य स महीपतिः कलश अप्सु निधाय एनां दयालुः निन्य आश्रमम् ॥१६॥

स दयालुः	उन दयालु	**एनां**	इस (मछली) को
महीपतिः	राजाने	**कलश अप्सु**	कलशके जलमें
तस्या	उसकी अत्यन्त	**निधाय**	डालकर
दीनतरं	दीनतापूर्ण	**आश्रमं**	(अपने) आश्रम
वाक्यं आश्रुत्य	वाणी सुनकर	**निन्य**	ले आये ॥१६॥

सा तु तत्रैकरात्रेण वर्धमाना कमण्डलौ ।
अलब्ध्वाऽऽत्मावकाशं वा इदमाह महीपतिम् ॥१७॥

सा तु तत्र एक रात्रेण वर्धमाना कमण्डलौ अलब्ध्वा आत्म अवकाशं वा इदं आह महीपतिम् ॥१७॥

तत्र सातु	वहां तो वह	**आत्म अवकाशं**	अपने लिए स्थान
एक रात्रेण	एक रातमें	**वा अलब्ध्वा**	और न पा करके
वर्ध माना	बढ़कर	**महीपतिं**	राजासे
कमण्डलौ	कमण्डलुमें	**इदं आह**	यह बोली ॥१७॥

नाहं कमण्डलावस्मिन् कृच्छ्रं वस्तुमिहोत्सहे ।
कल्पयौकः सुविपुलं यत्राहं निवसे सुखम् ॥१८॥

न अहं कमण्डलौ अस्मिन् कृच्छ्रं वस्तुं इह उत्सहे कल्पय ओकः सुविपुलं यत्र अहं निवसे सुखम् ॥१८॥

अस्मिन्	इस	**सुविपुलं**	(मेरे लिए) अच्छा
कमण्डलौ	कमण्डलुमें	**ओकः**	बड़ा निवास
इह	यहां	**कल्पय**	दीजिये
कृच्छ्रं वस्तुं	कठिनाईसे भी रहने-में	**यत्र अहं**	जहां मैं
		सुखं	सुखपूर्वक
अहं उत्सहे न	मैं उत्सुक नहीं हूँ,	**निवसे**	निवास करूँ ॥१८॥

स एनां तत आदाय न्यधादौदञ्चनोदके ।
तत्र क्षिप्ता मुहूर्तेन हस्तत्रयमवर्धत ॥१९॥

स एनां तत आदाय न्यधात् औदञ्चन उदके तत्र क्षिप्ता मुहूर्तेन हस्तत्रयं अवर्धत ॥१९॥

स	उस (राजा) ने	**तत्र क्षिप्ता**	वहां डाली हुई (वह)
एनां	इस (मछली) को	**मुहूर्तेन**	एक मुहूर्तमें
तत आदाय	वहांसे लेकर	**हस्तत्रयं**	तीन हाथ
औदञ्चन	बड़े मटके के	**अवर्धत**	बढ़ गई ॥१९॥
उदके न्यधात्	जलमें डाला; किन्तु		

न म एतदलं राजन् सुखं वस्तुमुदञ्चनम् ।
पृथु देहि पदं मह्यं यत् त्वाहं शरणं गता ॥२०॥

न म एतत् अलं राजन् सुखं वस्तुं उदञ्चनं पृथु देहि पदं मह्यं यत् त्वा अहं शरणं गताः ॥२०॥

राजन्	राजन् !	**पृथु पदं**	बड़ा स्थान
म सुखं वस्तुं	मेरे सुखपूर्वक रहनेके लिए	**देहि**	दीजिए
		यत् अहं	क्योंकि मैं
एतत् उदञ्चनं	यह मटका	**त्वा शरणं**	आपकी शरण
अलं न	पर्याप्त नहीं है	**गताः**	आयी हूँ ॥२०॥
मह्यं	मुझे		

तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन् सरोवरे ।
तदावृत्यात्मना सोऽयं महामीनोऽन्ववर्धत ॥२१॥

तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन् सरोवरे तदा आवृत्य आत्मना सः अयं महामीनः अन्ववर्धत ॥२१॥

राजन्	राजन् !	**आत्मना**	अपने शरीरसे
सा तत आदाय	उसे वहांसे लेकर	**आवृत्य**	(सरोवरको) घेरकर
राज्ञा सरोवरे	राजाने सरोवरमें		
क्षिप्ता	डाल दिया	**अयं**	यह
तदा सः	तब वह	**अन्ववर्धत**	बहुत बढ़ गया ॥२१॥
महामीनः	महामत्स्य		

नैतन्मे स्वस्तये राजन्नुदकं सलिलौकसः ।
निधेहि रक्षायोगेन ह्रदे मामविदासिनि ॥२२॥

न एतत् मे स्वस्तये राजन् उदकं सलिल ओकसः निधेहि रक्षायोगेन ह्रदे मां अविदासिनि ॥२२॥

राजन्	राजन् !
मे	मुझे
सलिल ओकसः	जलचरके लिए
एतत्	यह (सरोवर)
स्वस्तये न	सुखकर नहीं
रक्षायोगेन	रक्षाके योग्य
अविदासिनि	अक्षय
ह्रदे मां	सरोवरमें मुझे
निधेहि	डाल दीजिए ॥२२॥

इत्युक्तः सोऽनयन्मत्स्यं तत्र तत्राविदासिनि ।
जलाशये संमितं तं समुद्रे प्राक्षिपज्झषम् ॥२३॥

इति उक्तः सः अनयत् मत्स्यं तत्र तत्र अविदासिनि जलाशये संमितं तं समुद्रे प्राक्षिपत् झषम् ॥२३॥

इति उक्तः	ऐसा कहनेपर
सः मत्स्यं	वे राजा मत्स्यको
तत्र तत्र	जहां-तहां कई
अविदासिनि	अक्षय सरोवरोंमें
अनयत्	ले गये
जलाशये	उन जलाशयोंके
संमितं	बरावर बढ़ जानेसे
तं झषं	उस मत्स्यको
समुद्रे	समुद्रमें
प्राक्षिपत्	डाल दिया ॥२३॥

क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां मकरादयः ।
अदन्त्यतिबला वीर मां नेहोत्स्रष्टुमर्हसि ॥२४॥

क्षिप्यमाणः तं आह इदं इह मां मकर आदयः अदन्ति अतिबला वीर मां न इह उत्स्रष्टुं अर्हसि ॥२४॥

क्षिप्यमाणः	(समुद्रमें) डालते समय
तं इदं	उस (राजा) से यह
आह	बोला
वीर इह	वीरवर ! यहां
अतिबला	अत्यन्त बलवान
मकर आदयः	मगर आदि
अदन्ति	खा लेंगे
मां इह	मुझे यहां (आपको)
न उत्स्रष्टुं	नहीं छोड़ना
अर्हसि	चाहिए ॥२४॥

एवं विमोहितस्तेन वदता वल्गुभारतीम् ।
तमाह को भवानस्मान् मत्स्यरूपेण मोहयन् ॥२५॥

एवं विमोहितः तेन वदता वल्गु भारतीं तं आह कः भवान् अस्मान् मत्स्यरूपेण मोहयन् ॥२५॥*

एवं	इस प्रकार
वल्गु भारतीं	मधुर वाणी
वदता	बोलते हुए
तेन	उस मत्स्य द्वारा
विमोहितः	मोहमें डाले गये राजा
तं आह	उससे बोले
मत्स्यरूपेण	मत्स्यके रूपसे
मोहयन्	मोहित करनेवाले
भवान् कः	आप कौन हैं ॥२५॥

नैवंवीर्यो जलचरो दृष्टोऽस्माभिः श्रुतोऽपि च ।
यो भवान् योजनशतमह्नाभिव्यानशे सरः ॥२६॥

न एवं वीर्यः जलचरः दृष्टः अस्माभिः श्रुतः अपि च यः भवान् योजन शतं अह्नाभिः व्यानशे सरः ॥२६॥

अस्माभिः	हम लोगों द्वारा
एवं	इस प्रकार
वीर्यः	वीर्यशाली
जलचरः	जलजीव
दृष्टः च	देखा अथवा
श्रुतः अपि न	सुना भी नहीं है
यः भवान्	जो आपने
शतं योजन	सौ योजनका
सरः	सरोवर
अह्नाभिः	एक दिनमें
व्यानशे	व्याप्त कर लिया ॥२६॥

नूनं त्वं भगवान् साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः ।
अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम् ॥२७॥

नूनं त्वं भगवान् साक्षात् हरिः नारायणः अव्ययः अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जल ओकसाम् ॥२७॥

---

*यह सम्पूर्ण संवाद 'श्रीशुक उवाच' के अन्तर्गत श्लोक १८ से चल रहा है। श्लोक ३० के आगे फिर 'श्रीशुक उवाच' है; किन्तु यहां इस श्लोकके पंक्तिके बीचसे ही 'सत्यव्रत उवाच' आरम्भ होनेसे उसे पृथक नहीं किया जा सका ।

नूनं त्वं	निश्चय आप	**अनुग्रहाय**	कृपा करनेके लिए
साक्षात्	साक्षात्	**जल ओकसां**	जलचरका
अव्ययः	अविनाशी	**रूपं**	रूप
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरि	**धत्से**	धारण किया है
नारायणः	नारायण हैं,		॥२७॥
भूतानां	प्राणियोंपर		

नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर ।
भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो ॥२८॥

नमः ते पुरुषश्रेष्ठ स्थिति उत्पत्ति अप्यय ईश्वर भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यः हि आत्म गतिः विभो ॥२८॥

स्थिति	(जगतकी) स्थिति,	**विभो हि**	प्रभो ! क्योंकि
उत्पत्ति	उत्पत्ति,	**नः प्रपन्नानां**	हम शरणागत
अप्यय ईश्वर	प्रलयमें समर्थ	**भक्तानां**	भक्तोंके (आप)
पुरुषश्रेष्ठ	पुरुषोत्तम !	**मुख्यः आत्मा**	मुख्य आत्मा और
ते नमः	आपको नमस्कार	**गतिः**	गति हैं ॥२८॥

सर्वे लीलावतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः ।
ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ॥२९॥

सर्वे लीला अवताराः ते भूतानां भूति हेतवः ज्ञातुं इच्छामि अदो रूपं यत् अर्थं भवता धृतम् ॥२९॥

ते सर्वे	आपके सब	**अदो रूपं**	यह रूप
लीला अवतारा:	लीलावतार	**भवता धृतं**	आपने धारण किया है
भूतानां	प्राणियोंके		
भूति	अभ्युदयके	**ज्ञातुं**	उसे जानना
हेतवः	लिये होते हैं,	**इच्छामि**	चाहता हूँ ॥२९॥
यत् अर्थं	जिस प्रयोजनसे		

न तेऽरविन्दाक्ष पदोपसर्पणं
मृषा भवेत् सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ।
यथेतरेषां पृथगात्मनां सता-
मदीदृशो यद् वपुरद्भुतं हि नः ॥३०॥

न ते अरविन्द अक्ष पदा उपसर्पणं मृषा भवेत् सर्व सुहृत् प्रिय आत्मनः यथा इतरेषां पृथक् आत्मनां सतां अदीदृशः यत् वपुः अद्भुतं हि नः ॥३०॥

अरविन्द अक्ष	कमल-नयन !	**हि अद्भुतं**	क्योंकि अद्भुत
आत्मनां पृथक्	अपनेको पृथक्	**वपुः**	(यह मत्स्य) शरीर
सतां	माननेवालोंके	**नः**	हमको
यथा	समान	**यत् अदीदृशः**	जो दर्शन कराया
ते सर्व सुहृत्	आप सबके सुहृद		उससे (हम आपके
प्रिय आत्मनः	प्रिय आत्माके		चरणोंमें पहुँचे, यह
पदा उपसर्पणं	चरणोंमें पहुँचना		व्यर्थ नहीं होना
मृषा न भवेत्	व्यर्थ नहीं होता,		चाहिए) ॥३०॥

श्रीशुक उवाच–

इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत्पतिः
सत्यव्रतं मत्स्यवपुर्युगक्षये ।
विहर्तुकामः प्रलयार्णवेऽब्रवी-
च्चिकीर्षुरेकान्तजनप्रियः प्रियम् ॥३१॥

इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत् पतिः सत्यव्रतं मत्स्यवपुः युगक्षये विहर्तुकामः प्रलय अर्णवे अब्रवीत् चिकीर्षुः एकान्त जनप्रियः प्रियम् ॥३१॥

एकान्त	अनन्य	**मत्स्यवपुः**	मत्य-शरीर-धारी
जनःप्रियः	भक्तोंके प्रिय	**जगत् पतिः**	जगदीश्वर

युगक्षये	युगान्तमें	**नृपति**	राजा
प्रलय अर्णवे	प्रलय समुद्रमें	**सत्यव्रतं**	सत्यव्रतसे
विहर्तु-	विहार करनेकी	**प्रियं**	उनका प्रिय
कामः	इच्छासे	**चिकीर्षुः**	करनेकी इच्छासे
इति ब्रुवाणं	ऐसा करते हुए	**अब्रवीत्**	बोले ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच–

सप्तमेऽह्यतनादूर्ध्वमहन्येतदरिन्दम ।
निमङ्क्षत्यप्ययाम्भोधौ त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ॥३२॥

सप्तमे अह्यतनात् उर्ध्वं अहनि एतत् अरिन्दम निमङ्क्ष्यति अप्यय अम्भोधौ त्रैलोक्यं भूः भुवः आदिकम् ॥३२॥

अरिन्दम	शत्रुदमनकर्ता राजन् !	**एतत् भूः भुवः**	ये भूः भुवः
अह्यतनात्	आजसे	**आदिकं**	आदि
ऊर्ध्वं सप्तमे	आगे सातवें	**त्रैलोक्यं**	तीनों लोक
अहनि	दिन	**अप्यय अम्भोद्यौ**	प्रलय समुद्रमें
		निमङ्क्ष्यति	डूब जायँगे ॥३२॥

त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्ताम्भसि वै तदा ।
उपस्थास्यति नौः काचिद् विशाला त्वां मयेरिता ॥३३॥

त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्त अम्भसि वै तदा उपस्थास्यति नौः काचित् विशाला त्वां मया ईरिता ॥३३॥

संवर्त अम्भसि	प्रलय जलमें	**काचित्**	कोई
त्रिलोक्यां	त्रिभुवनके	**विशाला**	बहुत बड़ी
लीयमानायां	डूबते हुए	**नौः त्वां**	नौका तुम्हारे
वै तदा	निश्चय उस समय	**उपस्थास्यति**	समीप आवेगी ॥३३॥
मया ईरिता	मेरे द्वारा प्रेरित		

त्वं तावदोषधीः सर्वा बीजान्युच्चावचानि च ।
सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥३४॥

त्वं तावत् ओषधीः सर्वा बीजानि उच्च अवचानि च सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्व सत्त्व उपबृंहितः ॥३४॥

तावत् त्वं	तब तक तुम	**उपबृंहितः**	समृद्ध हो जाओ इन्हें (एकत्र कर लो)
सर्वा ओषधीः	सब औषधियां,		
उच्च अवचानि	बड़े-छोटे सब		
बीजानि	बीज तथा	**सप्तर्षिभिः**	तब सप्तर्षियोंसे
सर्वा सत्त्व	सब प्राणियों (के जोड़े) से	**परिवृतः**	घिरे हुए ॥३४॥

आरुह्य बृहतीं नावं विचरिष्यस्यविक्लवः ।
एकार्णवे निरालोके ऋषीणामेव वर्चसा ॥३५॥

आरुह्य बृहतीं नावं विचरिष्यसि अविक्लवः एक अर्णवे निः आलोके ऋषीणां एव वर्चसा ॥३५॥

बृहतीं नावं	उस बड़ी नौकापर	**ऋषीणां एव**	ऋषियोंके ही
आरुह्य	चढ़कर	**वर्चसा**	तेज (आलोक) में
निः आलोके	प्रकाशहीन	**अविक्लवः**	बिना व्याकुलताके
एक	उस एक ही	**विचरिष्यसि**	विचरण करोगे ॥३५॥
अर्णवे	प्रलय सागरमें		

दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा ।
उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महाहिना ॥३६॥

दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महा अहिना ॥३६॥

बलीयसा	प्रचण्ड	**तां नावं**	उस नावके
समीरेण	पवनसे	**दोधूयमानां**	झकझोरे जानेपर

महा	महा	**मे शृङ्गे**	मेरे सींगमें
अहिना	सर्प (वासुकी) द्वारा	**निबध्नीहि**	बाँध देना ॥३६॥
उपस्थितस्य	आये हुए		

अहं त्वामृषिभिः साकं सहनावमुदन्वति ।
विकर्षन् विचरिष्यामि यावद् ब्राह्मी निशा प्रभो ॥३७॥

अहं त्वां ऋषिभिः साकं सहनावं उदन्वति विकर्षन् विचरिष्यामि यावत् ब्राह्मी निशा प्रभो ॥३७॥

प्रभो	राजन् !	**यावत्**	जब तक
ऋषिभिः साकं	ऋषियोंके साथ	**ब्राह्मी**	ब्रह्माजीकी
त्वां सहनावं	तुम्हें नाव सहित	**निशा**	रात रहेगी
उदन्वति	उस (प्रलय) समुद्रमें	**विचरिष्यामि**	घूमता रहूँगा ॥३७॥
विकर्षन्	खींचते हुए		

मदीयं महिमानं च परं ब्रह्मेति शब्दितम् ।
वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे संप्रश्नैर्विवृतं हृदि ॥३८॥

मदीयं महिमानं च परं ब्रह्म इति शब्दितं वेत्स्यसि अनुगृहीतं मे संप्रश्नैः विवृतं हृदि ॥३८॥

संप्रश्नैः	प्रश्नोंके द्वारा	**इति**	इस
मे	मेरे	**शब्दितं**	शब्दसे कही जाने-
अनुगृहीतं	अनुग्रह करके		वाली
	(उत्तर देनेसे)	**मदीयं**	मेरी
हृदि विवृतं	हृदयमें अपरोक्ष हुए	**महिमानं**	महिमाको
परं ब्रह्म	परम ब्रह्म	**वेत्स्यसि**	जानोगे ॥३८॥

इत्थमादिश्य राजानं हरिरन्तरधीयत ।
सोऽन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत् ॥३९॥

इत्थं आदिश्य राजानं हरिः अन्तः अधीयत सः अन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत् ॥३९॥

इत्थं	इस प्रकार	**कालं**	समयकी
राजानं	राजा सत्यव्रतको	**अन्ववैक्षत**	प्रतीक्षा करने लगे
आदिश्य	आदेश देकर	**यं**	जिसे भगवान्
हरिः	श्रीहरि	**हृषीकेश**	हृषीकेशने
अन्तः अधीयत	अन्तर्धान हो गये	**आदिशत्**	सूचित किया था
सः तं	वे राजा उस		॥३९॥

आस्तीर्य दर्भान् प्राक्कूलान् राजर्षिः प्रागुदङ्मुखः ।
निषसाद हरेः पादौ चिन्तयन् मत्स्यरूपिणः ॥४०॥

आस्तीर्य दर्भान् प्राक् कूलान् राजर्षिः प्राक् उदङ्मुखः निषसाद हरेः पादौ चिन्तयन् मत्स्यरूपिणः ॥४०॥

प्राक्	पूर्वकी ओर	**पादौ**	स्वरूपका*
कूलान्	नोंक करके	**चिन्तयन्**	चिन्तन करते हुए
दर्भान्	कुशोंको	**राजर्षिः**	राजर्षि सत्यव्रत
आस्तीर्य	बिछाकर	**प्राक् उदङ्**	पूर्वोत्तर (ईशान)
मत्स्यरूपिणः	मत्स्य रूपधारी	**मुखः**	मुख
हरेः	श्रीहरिके	**निषसाद**	बैठ गये ॥४०॥

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्लावयन् महीम् ।
वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भिः समदृश्यत ॥४१॥

ततः समुद्रः उद्वेलः सर्वतः प्लावयन् महीं वर्धमानः महामेघैः वर्षद्भिः समदृश्यत ॥४१॥

ततः महामेघैः	तब महामेघोंके	**वर्धमानः**	बढ़ता हुआ
वर्षद् भिः	वर्षा करनेसे	**उद्वेलः**	किनारा छोड़कर

---

* क्योंकि मत्स्य भगवान्‌के चरण नहीं हैं 'पादौ' का अर्थ स्वरूप होना चाहिए ।

सर्वतः	सब ओरसे	समदृश्यत	दिखलायी पड़ा ॥४१॥
महीं	पृथ्वीको		
प्लावयन्	डुबाता		

ध्यायन् भगवदादेशं ददृशे नावमागताम् ।
तामारुरोह विप्रेन्द्रै रादायौषधिवीरुधः ॥४२॥

ध्यायन् भगवत आदेशं ददृशे नावं आगतां तां आरुरोह विप्रेन्दैः आदाय औषधि वीरुधः ॥४२॥

भगवत आदेशं	भगवान्‌के आदेशको	तां विप्रेन्द्रैः	उसमें सप्तर्षियोंके साथ
ध्यायन्	स्मरण कर ही रहे थे कि	औषधि	औषधियां
नावं आगतां	नौका आयी हुई	वीरुधः	और पौधे (बीज)
ददृशे	देखा	आदाय	लेकर
		आरुरोह	चढ़ गये ॥४२॥

तमूचुर्मनयः प्रीता राजन् ध्यायस्व केशवम् ।
स वै नः संकटादस्मादविता शं विधास्यति ॥४३॥

तं ऊचुः मुनयः प्रीता राजन् ध्यायस्व केशवं स वै नः संकटात् अस्मात् अविता शं विधास्यति ॥४३॥

प्रीता	प्रसन्न होकर	सः	सबकी
मुनयः	मुनियोंने (सप्तर्षि)	अस्मात्	इस
तं ऊचुः	उनसे कहा	संकटात्	संकटसे
राजन्	राजन् !	अविता	रक्षा करेंगे और
केशवं	भगवान् केशवका	शं विधास्यति	कल्याण करेंगे ॥४३॥
ध्यायस्व	ध्यान करो		
वै नः	निश्चय वे हम		

सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे ।
एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः ॥४४॥

सः अनुध्यातः ततः राज्ञा प्रादुः आसीत् महार्णवे एकशृङ्गधरः मत्स्यः हैमः नियुत योजनः ॥४४॥

ततः राज्ञा	तब राजा द्वारा
अनुध्यातः	ध्यान करनेपर
सः हैमः	वह स्वर्णिम
नियुत	एक लाख
योजनः	योजनवाला
एकशृङ्गधरः	एक सींगधारी
मत्स्यः	मत्स्य
महार्णवे	(उस प्रलय) महा-सागरमें
प्रादुः आसीत्	प्रकट हो गया

॥४४॥

निबध्य नावं तच्छृङ्गे यथोक्तो हरिणा पुरा ।
वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनम् ॥४५॥

निबध्य नावं तत् शृङ्गे यथा उक्तः हरिणा पुरा वरत्रेण अहिना तुष्टः तुष्टाव मधुसूदनम् ॥४५॥

यथा पुरा	जैसा पहिले
हरिणा उक्तः	श्रीहरिने कथा था
अहिना	(वासुकि) नाग रूपी
वरत्रेण	रस्सीसे
तत्	उस (मत्स्य) के
शृङ्गे	सींगमें
नावं निबध्य	नौकाको बाँधकर
तुष्टः	सन्तुष्ट चित्तसे
मधुसूदनं	भगवान् मधुसूदनकी
तुष्टाव	स्तुति करने लगे

॥४५॥

सत्यव्रत उवाच—*

अनाद्यविद्योपहतात्मसंविद-
स्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः ।
यदृच्छयेहोपसृता यमाप्नुयु-
र्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥४६॥

---

*अन्य प्रतियोंमें यहां 'राजोवाच' है ।

अनादि अविद्या अपहत आत्म संविदः तत् मूल संसार परिश्रम आतुराः यदृच्छया इह उपसृता यं आप्नुयुः विमुक्तिदः नः परमः गुरुः भवान् ॥४६॥

अनादि	अनादि	**यदृच्छया**	संयोगवश
अविद्या	अविद्या द्वारा	**इह**	इस
आत्म संविदः	आत्मज्ञान (जिनका)	**उपसृता**	मनुष्य-योनिमें
अपहत	आच्छादित हो		आकर
	गया है	**यं विमुक्तिदः**	जिनको मोक्षदाता
तत् मूल	उस (अविद्या) मूलक	**आप्नुयुः**	पाते हैं
संसार परिश्रम	संसार-श्रमसे	**भवान् नः**	(वे) आप हमारे
आतुराः	व्याकुल लोग	**परमः गुरुः**	परम गुरु हैं ॥४६॥

जनोऽबुधोऽयं निजकर्मबन्धनः
सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुखम् ।
यत्सेवया तां विधुनोत्यसन्मतिं
ग्रन्थिं स भिन्द्याद्धृदयं स नो गुरुः ॥४७॥

जनः अबुधः अयं निजकर्म बन्धनः सुख इच्छया कर्म समीहते असुखं यत् सेवया तां विधुनोति असत् मतिं ग्रन्थि स भिन्द्यात् हृदयं स नः गुरुः ॥४७॥

निजकर्म	अपने कर्मोंके	**यत् सेवया**	जिनकी सेवासे
बन्धनः	बन्धनमें पड़ा	**तां असत् मतिं**	उस दुर्बुद्धिको
अयं	यह	**विधुनोति**	नष्ट करता है
अबुधः जनः	अज्ञानी मनुष्य	**स नः गुरुः**	वे हमारे गुरु आप
सुख	सुख पानेकी	**स**	उस (अविद्या रूप)
इच्छया	इच्छासे	**हृदयं ग्रन्थिं**	हृदय ग्रन्थिका
असुखं कर्म	दुःख रूप कर्म	**भिन्द्यात्**	छेदन करें ॥४७॥
समीहते	करता रहता है,		

यत्सेवयाग्नेरिव रुद्ररोदनं
पुमान् विजह्यान्मलमात्मनस्तमः ।
भजेत वर्ण निजमेष सोऽव्ययो
भूयात् स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ॥४८॥

यत् सेवया अग्नेः इव रुद्ररोदनं पुमान् विजह्यात् मलं आत्मनः तमः भजेत वर्ण निजं एष सः अव्ययः भूयात् स ईशः परमः गुरोः गुरुः ॥४८॥

अग्नेः	अग्निके द्वारा
रुद्ररोदनं	सोने-चाँदीके
मलं इव	मलकी भांति
आत्मनः तमः	अपने अज्ञानको
पुमान्	पुरुष
यत् सेवया	जिनकी सेवासे
विजह्यात्	त्याग देता है और
निजं वर्ण	अपने स्वरूपको
भजेत्	पा लेता
एष सः अव्ययः	ये वही अविनाशी
परमः गुरो	परम गुरु
स ईशः	वही सर्वेश
गुरुः	हमारे गुरु
भूयात्	होवें ॥४८॥

न यत्प्रसादायुतभागलेश-
मन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ।
कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंस-
स्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥४९॥

न यत् प्रसाद अयुत भाग लेशं अन्ये च देवा गुरवः जनाः स्वयं कर्तुं: समेताः प्रभवन्ति पुंसः तं ईश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥४९॥

देवा	देवता,
गुरवः	गुरु लोग,
च अन्ये जनाः	तथा दूसरे लोग
समेताः	सब मिल कर भी
यत् प्रसाद	जिनकी कृपाके
अयुत	दस हजारवें
भाग लेशं	भागके लेश बराबर भी
पुंसः स्वयं	पुरुषपर स्वयं
प्रभवन्ति	(कृपा करनेमें) सम नहीं हैं
न	
तं त्वां	उस आप
ईश्वरं	सर्वेश्वरकी
शरणं प्रपद्ये	शरणापन्न हूँ ॥४९॥

अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृत-
स्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ।
त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो
वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥५०॥

अचक्षुः अन्धस्य यथा अग्रणीः कृतः तथा जनस्य अविदुषः अबुधः गुरुः त्वं अर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणः वृतः गुरुः नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥५०॥

यथा अचक्षुः	जैसे नेत्रहीन व्यक्ति	**अर्कदृक्**	सूर्यके समान
अन्धस्य	अन्धेको	**सर्वदृशां**	सबकी दृष्टियोंको भी
अग्रणी	आगे चलनेवाला	**समीक्षणः**	सम्पूर्ण रूपसे देखने-वाले हैं
कृतः	बना लें,		
तथा	उसी प्रकार		
अविदुषः	अज्ञानीका	**स्वगतिं**	अतः अपने स्वरूपको
अबुधः	अज्ञानी	**बुभुत्सतां**	जाननेके इच्छुक
गुरुः	गुरु बना लेना है,	**नः**	हमने (आपको)
त्वं	आप	**गुरुः वृतः**	गुरु बनाया है ॥५०॥

जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं
यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः ।
त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा
प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥५१॥

जनः जनस्य आदिशते असतीं मतिं यया प्रपद्यते दुरत्ययं तमः त्वं तु अव्ययं ज्ञानं अमोघं अञ्जसा प्रपद्यते येन जनः निजं पदम् ॥५१॥

जनः	लोग तो	**असतीं**	(अर्थ-कामादि विषयक्) असत्
जनस्य	दूसरे लोगोंको	**मतिं**	बुद्धिका

आदिशते	उपदेश करते हैं,	**ज्ञानं**	ज्ञानका (उपदेश
यया दुरत्ययं	जिससे दुष्पार		करते हैं)
तमः	अन्धकार (संसार)	**येन जनः**	जिससे पुरुष
	में	**अञ्जसा**	सरलतापूर्वक
प्रपद्यते	वह जाता है,	**निजं पदं**	अपने स्वरूपको
तु त्वं	किन्तु आप	**प्रपद्यते**	प्राप्त कर लेता है
अव्ययं अमोघं	अक्षय अमोघ		॥५१॥

त्वं सर्वलोकस्य सुहृत् प्रियेश्वरो
ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः ।
तथापि लोको न भवन्तमन्धधी-
र्जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ॥५२॥

त्वं सर्वलोकस्य सुहृत् प्रिय ईश्वरः हि आत्मा गुरुः ज्ञानं अभीष्ट सिद्धिः तथा अपि लोकः न भवन्तं अन्धधीः जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ॥५२॥

सर्वलोकस्य	सम्पूर्ण लोकोंके	**अन्धधीः लोकः**	अन्ध बुद्धि लोग
त्वं सुहृत्	आप सुहृद,	**बद्धकामः**	कामनाओंसे बँधे
प्रिय ईश्वरः	प्रिय स्वामी हैं		हुए
हि	क्योंकि (सबके)	**हृदि**	अपने हृदयमें
आत्मा	आत्मा,	**सन्तं**	विराजमान
गुरुः ज्ञानं	गुरु, ज्ञान तथा	**भवन्तं न**	आपको नहीं
अभीष्ट सिद्धिः	इच्छित फलरूप हैं,	**जानाति**	जानते ॥५२॥
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी		

तं त्वामहं देववरं वरेण्यं
प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय ।
छिन्ध्यर्थदीपैर्भगवन् वचोभि-
र्ग्रन्थीन् हृदय्यान् विवृणु स्वमोकः ॥५३॥

तं त्वां अहं देववरं वरेण्यं प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय छिन्धि अर्थ दीपैः भगवन् वचः भिः ग्रन्थीन् हृदय्यान् विवृणु स्वं ओकः ॥५३॥

प्रतिबोधनाय	तत्त्वज्ञान पानेके लिए
तं त्वां देववरं वरेण्यं ईशं	उस आप देवश्रेष्ठ पूजनीय परमेश्वर-की
अहं प्रपद्य	**मैं** शरण आया हूँ,
भगवन्	भगवन् !
अर्थ	परमार्थको
दीपैः	प्रकाशित करनेवाले
वचः भिः	अपने वचनोंसे
हृदय्यान्	हृदयकी
ग्रन्थीन् छिन्धि	गाठोंको काट दीजिए
स्वं ओकः	अपने धाम (स्वरूप) को
विवृणु	प्रकाशित कीजिए ॥५३॥

श्रीशुक उवाच–

इत्युक्तवन्तं नृपतिं भगवानादिपूरुषः ।
मत्स्यरूपी महाम्भोधौ विहरंस्तत्त्वमब्रवीत् ॥५४॥

इति उक्तवन्तं नृपतिं भगवान् आदिपूरुषः मत्स्यरूपी महा अम्भोधौ विहरन् तत्त्वं अब्रवीत् ॥५४॥

इति	इस प्रकार
उक्तवन्तं	कहनेपर
नृपतिं	राजा (सत्यव्रत) से
आदिपूरुषः	आदिपुरुष
भगवान्	भगवान्ने
महा अम्भोधौ	(प्रलय) महासागरमें
मत्स्यरूपी	मत्स्यरूपसे
विहरन्	विचरण करते हुए
तत्त्वं अब्रवीत्	तत्त्वोपदेश किया ॥५४॥

पुराणसंहितां दिव्यां सांख्ययोगक्रियावतीम् ।
सत्यव्रतस्य राजर्षेरात्मगुह्यमशेषतः ॥५५॥

पुराण संहितां दिव्यां सांख्य योग क्रियावतीं सत्यव्रतस्य राजर्षेः आत्म गुह्यं अशेषतः ॥५५॥

सांख्य योग	सांख्य, योग,	**सत्यव्रतस्य**	सत्यव्रतको
क्रियावतीं	क्रियावाली	**दिव्यां**	दिव्या
अशेषतः	सम्पूर्ण रूपसे	**पुराण**	(मत्स्य) पुराण
आत्म गुह्यं	आत्म रहस्य युक्त	**संहितां**	संहिता (सुनायी)
राजर्षेः	राजर्षि		॥५५॥

अश्रौषीदृषिभिः साकमात्मतत्त्वमसंशयम् ।
नाव्यासीनो भगवता प्रोक्तं ब्रह्म सनातनम् ॥५६॥

अश्रौषीत् ऋषिभिः साकं आत्मतत्त्वं असंशयं नाव्या आसीनः भगवता प्रोक्तं ब्रह्म सनातनम् ॥५६॥

ऋषिभिः साकं	ऋषियोंके साथ	**सनातनं**	सनातन (नित्य)
नाव्या आसीनः	नौकामें बैठे हुए	**ब्रह्म**	ब्रह्मतत्त्व
भगवता प्रोक्तं	भगवान्‌के द्वारा कहा	**असंशयं**	सन्देहहीन होकर
		अश्रौषीत्	श्रवण किया ॥५६॥
आत्मतत्त्वं	आत्मतत्त्व		

अतीतप्रलयापाय उत्थिताय स वेधसे ।
हत्वासुरं हयग्रीवं वेदान् प्रत्याहरद्धरिः ॥५७॥

अतीत प्रलय अपाय उत्थिताय वेधसे हत्वा असुरं हयग्रीवं वेदान् प्रत्यर्पयत् हरिः ॥५७॥

अतीत प्रलय	अतीत प्रलयका	**हत्वा**	मारकर
अपाय	अन्त होनेपर	**स हरिः**	उन श्रीहरिने
उत्थिताय	उठे हुए	**वेदान्**	वेद
वेधसे	ब्रह्माको	**प्रत्यर्पयत्**	लौटा दिए ॥५७॥
असुरं हयग्रीवं	असुर हयग्रीवको		

स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः ।
विष्णोः प्रसादात् कल्पेऽस्मिन्नासीद् वैवस्वतो मनुः ॥५८॥

स तु सत्यव्रतः राजा ज्ञान विज्ञान संयुतः विष्णोः प्रसादात् कल्पे अस्मिन् आसीत् वैवस्वतः मनुः ॥५८॥

ज्ञान विज्ञान	ज्ञान-विज्ञानसे	**प्रसादात्**	कृपासे
संयुतः	सम्पन्न	**अस्मिन् कल्पे**	इस कल्पमें
स राजा	वे राजा	**वैवस्वतः मनुः**	वैवस्वत मनु
सत्यव्रतः तु	सत्यव्रत तो	**आसीत्**	हुए ॥५८॥
विष्णोः	भगवान् विष्णुकी		

सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मायामत्स्यस्य शार्ङ्गिणः ।
संवादं महदाख्यानं श्रुत्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥५९॥

सत्यव्रतस्य राजर्षेः माया मत्स्यस्य शार्ङ्गिणः संवादं महत् आख्यानं श्रुत्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥५९॥

राजर्षेः	राजर्षि	**संवादं**	संवाद रूप (यह)
सत्यव्रतस्य	सत्यव्रतका और	**महत् आख्यानं**	महान् आख्यान्
माया मत्स्यस्य	मायासे मत्स्य बने	**श्रुत्वा**	सुनकर (मनुष्य)
शार्ङ्गिणः	भगवान् शारं-गधन्वाका	**किल्बिषात्**	पापोंसे
		मुच्येत	छूट जाता है ॥५९॥

अवतारो हरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहं नरः ।
सङ्कल्पास्तस्य सिध्यन्ति स याति परमां गतिम् ॥६०॥

अवतारः हरेः यः अयं कीर्तयेत् अनु अहं नरः सङ्कल्पाः तस्य सिध्यन्ति स याति परमां गतिम् ॥६०॥

यः नरः	जो पुरुष	**तस्य सङ्कल्पाः**	उसके संकल्प
अयं हरेः	इस श्रीहरिके	**सिध्यन्ति**	पूर्ण होते हैं और
अवतारः	अवतारका	**स परमां गतिं**	वह परमगति
अनु अहं	प्रत्येक दिन	**याति**	जाता है ॥६०॥
कीर्तयेत्	कीर्तन करता है		

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः
श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ।
दितिजमकथयद् यो ब्रह्म सत्यव्रतानां
तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥६१॥

प्रलय पयसि धातुः सुप्तशक्तेः मुखेभ्यः श्रुतिगणं अपनीतं प्रति उपादत्त हत्वा दितिजं अकथयत् यः ब्रह्म सत्यव्रतानां तं अहं अखिल हेतुं जिह्ममीनं नतः अस्मि ॥६१॥

प्रलय पयसि	प्रलय समुद्रमें
सुप्तशक्तेः	अपनी शक्तियों सहित सोये
धातुः मुखेभ्यः	ब्रह्माके मुखसे (निकले)
श्रुतिगणं	वेदोंको
अपनीतं	चुराकर ले गये
दितिजं	दैत्य हयग्रीवको
हत्वा	मारकर
प्रति उपादत्त	फिर लौटा दिया तथा
सत्यव्रतानां	सत्यव्रत आदिको
यः ब्रह्म	जिन्होंने ब्रह्म-ज्ञानका
अकथयत्	उपदेश किया
तं अखिल हेतुं	उन निखिल जगत् कारण
जिह्ममीनं	माया मत्स्यको
अहं नतः अस्मि	मैं प्रणाम करता हूँ ॥६१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टमस्कन्धे मत्स्यावतारचरितानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

॥ अष्टमस्कन्ध समाप्त ॥

॥ नवम स्कन्ध ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण

नवम स्कन्ध

क्र०		पृ०
१.	प्रथमोऽध्यायः	३
२.	द्वितीयोऽध्यायः	१६
३.	तृतीयोऽध्यायः	३३
४.	चतुर्थोऽध्यायः	४७
५.	पञ्चमोऽध्यायः	७६
६.	षष्ठोऽध्यायः	८८
७	सप्तमोऽध्यायः	१०६
८.	अष्टमोऽध्यायः	१२०
९.	नवमोऽध्यायः	१३३
१०.	दशमोऽध्यायः	१५३
११.	एकादशोऽध्यायः	१८०
१२.	द्वादशोऽध्यायः	१९५
१३.	त्रयोदशोऽध्यायः	२०१
१४.	चतुर्दशोऽध्यायः	२१२
१५.	पञ्चदशोऽध्यायः	२३१
१६.	षोडशोऽध्यायः	२४८
१७.	सप्तदशोऽध्यायः	२६२
१८.	अष्टदशोऽध्यायः	२६९
१९.	एकोनविंशोऽध्यायः	२८९
२०.	विंशोऽध्यायः	३०१
२१.	एकविंशोऽध्यायः	३१६
२२.	द्वाविंशोऽध्यायः	३३०
२३.	त्रयोविंशोऽध्यायः	३४९
२४.	चतुर्विंशोऽध्यायः	३६४

—: ●● :—

नवम स्कन्ध

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच

मन्वन्तराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे ।
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च ॥१॥

मन्वन्तराणि सर्वाणि त्वया उक्तानि श्रुतानि मे वीर्याणि अनन्त वीर्यस्य हरेः तत्र कृतानि च ॥१॥

त्वया उक्तानि	आपके कहे हुए	**अनन्त वीर्यस्य**	अनन्त पराक्रम
सर्वाणि	सब	**हरेः वीर्याणि**	श्रीहरिके पराक्रमों-
मन्वन्तराणि	मन्वन्तरोंको		को
च तत्र कृतानि	और वहां किये	**मे श्रुतानि**	मैंने सुना ॥१॥

योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षिर्द्रविडेश्वरः ।
ज्ञानं योऽतीतकल्पान्ते लेभे पुरुषसेवया ॥२॥

यः असौ सत्यव्रतः नाम राजर्षिः द्रविड ईश्वरः ज्ञानं यः अतीत कल्प अन्ते लेभे पुरुष सेवया ॥२॥

असौ सत्यव्रतः	ये सत्यव्रत	**यः पुरुष**	जिन्होंने परम पुरुषीक
नाम राजर्षिः	नामक राजर्षि	**सेवया**	सेवासे
द्रविड ईश्वरः	द्रविडदेशके स्वामी थे	**ज्ञानं लेभे**	ज्ञान प्राप्त किया
यः अतीत कल्प	जो बीते कल्पके		॥३॥
अन्ते	अन्तमें		

स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम् ।
त्वत्तस्तस्य सुताश्चोक्ता इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः ॥३॥

स वै विवस्वतः पुत्रः मनुः आसीत् इति श्रुतं त्वत्तः तस्य सुताः च उक्ता इक्ष्वाकु प्रमुखा नृपाः ॥३॥

स वै	वही
विवस्वतः पुत्रः	सूर्यके पुत्र
मनुः आसीत्	मनु हुए
त्वत्तः	आपसे
इति श्रुतं	ऐसा (हमने) सुना
तस्य	उनके
इक्ष्वाकु प्रमुखा	इक्ष्वाकु प्रमुख
नृपाः च	राजा और
तस्य सुताः	उनके पुत्र
उक्ता	(आपने) बतलाये ॥३॥

तेषां वंशं पृथग् ब्रह्मन् वंश्यानुचरितानि च ।
कीर्तयस्व महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हि नः ॥४॥

तेषां वंशं पृथक् ब्रह्मन् वंश्य अनुचरितानि च कीर्तयस्व महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हि नः ॥४॥

महाभाग ब्रह्मन्	महाभाग ! ब्रह्मन् !
हि नित्यं	क्योंकि सदा
नः शुश्रूषतां	हम कथा-श्रवणको (उत्सुक) हैं
तेषां वंशं	उनका वंश
च वंशं	तथा वंशमें होने वालोंका
अनुचरितानि	चरित
कीर्तयस्व	सुनाइये ॥४॥

ये भूता ये भविष्याश्च भवन्त्यद्यतनाश्च ये ।
तेषां नः पुण्यकीर्तीनां सर्वेषां वद विक्रमान् ॥५॥

ये भूता ये भविष्याः च भवन्ति अद्यतनाः च ये तेषां नः पुण्यकीर्तीनाँ सवषां वद विक्रमान् ॥५॥

ये भूता	जो हो गये
च ये भविष्याः	तथा जो भविष्यमें
भवन्ति	होंगे
च ये	एवं जो
अद्यतनाः	इस समय है
तेषां	उन
पुण्यकीर्तीनां	पवित्र कीर्ति लोगोंके
विक्रमान्	पराक्रम
नः वद	हमें बतलाइये ॥५॥

सूत उवाच

एवं परीक्षिता राज्ञा सदसि ब्रह्मवादिनाम् ।
पृष्टः प्रोवाच भगवाञ्छुकः परमधर्मवित् ॥६॥

एवं परीक्षिता राज्ञा सदसि ब्रह्मवादिनां पृष्टः प्रोवाच भगवान् शुकः परमधर्मवित् ॥६॥

ब्रह्मवादिनां	ब्रह्मवादी मुनियोंकी	**एवं पृष्टः**	इस प्रकार पूछे जानेपर
सदसि	सभामें		
राज्ञा	राजा	**परमधर्मवित्**	परमधर्मज्ञ
परीक्षिता	परीक्षित द्वारा	**भगवान् शुकः**	भगवान् शुकदेवजी
		प्रोवाच	बोले ॥६॥

श्रीशुक उवाच

श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परंतप ।
न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि ॥७॥

श्रूयतां मानवः वंशः प्राचुर्येण परंतप न शक्यते विस्तरतः वक्तुं वर्षशतैः अपि ॥७॥

परंतप	शत्रुसंतापी परीक्षित !	**विस्तरतः**	विस्तारसे
		वर्षशतैः अपि	सौ वर्षमें भी
प्राचुर्येण	प्रधानतासे	**वक्तुं शक्यते**	वर्णन सम्भव
मानवः वंशः	मनुवंशको	**न**	नहीं है ॥७॥
श्रूयतां	सुनो		

परावरेषां भूतानामात्मा यः पुरुषः परः ।
स एवासीदिदं विश्वं कल्पान्तेऽन्यन्न किञ्चन ॥८॥

पर अवरेषां भूतानां आत्मा यः पुरुषः परः स एव आसीत् इदं विश्वं कल्पान्ते अन्यत् न किञ्चन् ॥८॥

यः पुरुषः परः	जो परम पुरुष	**इदं विश्वं**	यह विश्व भी हैं
पर अवरेषां	बड़े-छोटे	**कल्पान्ते**	कल्पके अन्तमें
भूतानां आत्मा	प्राणियोंके आत्मा हैं	**अन्यत् किञ्चन**	दूसरा कुछ
स एव	वही	**न आसीत्**	नहीं था ॥८॥

तस्य नाभेः समभवत् पद्मकोशो हिरण्मयः ।
तस्मिञ्जज्ञे महाराज स्वयंभूश्चतुराननः ॥९॥

तस्य नाभेः सम् अभवत् पद्म कोशः हिरण्मयः तस्मिन् जज्ञे महाराज स्वयं भूः चतुराननः ॥९॥

महाराज	महाराज !	**सम् अभवत्**	उत्पन्न हुआ
तस्य	उन (भगवान्) की	**तस्मिन्**	उसमें
नाभेः	नाभिसे	**चतुराननः**	चतुर्मुख
हिरण्मयः	स्वर्णमय	**स्वयं भूः जज्ञे**	ब्रह्माजी उत्पन्न
पद्मकोशः	कमल पुष्प		हुए ॥९॥

मरीचिर्मनसस्तस्य जज्ञे तस्यापि कश्यपः ।
दाक्षायण्यां ततोऽदित्यां विवस्वानभवत् सुतः ॥१०॥

मरीचिः मनसः तस्य जज्ञे तस्य अपि कश्यपः दाक्षायण्यां ततः अदित्यां विवस्वान् अभवत् सुतः ॥१०॥

तस्य	उन (ब्रह्मा) के	**ततः**	उनसे
मनसः	मनसे	**दाक्षायण्यां**	दक्ष-कन्या
मरीचिः जज्ञे	मरीचि उत्पन्न हुए	**अदित्यां**	अदितिसे
तस्य अपि	उनसे भी	**विवस्वान्**	विवस्वान नामक
कश्यपः	कश्यप हुए	**सुतः अभवत्**	पुत्र हुआ ॥१०॥

ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत ।
श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान् स आत्मवान् ॥११॥

ततः मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायां आस भारत श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान् स आत्मवान् ॥११॥

भारत	परीक्षित !	**स आत्मवान्**	उन धैर्यशालीने
ततः	उन (विवस्वान्) से	**श्रद्धायां**	श्रद्धा नामक पत्नीसे
संज्ञायां	संज्ञा नामक पत्नीसे	**दश पुत्रान्**	दस पुत्र
श्राद्धदेवः मनुः	श्राद्धदेव मनु हुए	**जनयामास**	उत्पन्न किये ॥११॥

इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरूषकान् ।
नरिष्यन्तं पृषध्रं च नभगं च कविं विभुः ॥१२॥

इक्ष्वाकुः, नृग, शर्यातिः, दिष्ट, धृष्ट, करूषकान्, नरिष्यन्तं, च (और) **पृषध्रं, नभगं, च** (और) **कविं, विभुः** (उन समर्थने) ॥१२॥*

अप्रजस्य मनोः पूर्वं वसिष्ठो भगवान् किल ।
मित्रावरुणयोरिष्टिं प्रजार्थमकरोत् प्रभुः ॥१३॥

अप्रजस्य मनोः पूर्वं वसिष्ठः भगवान् किल मित्रावरुणयोः इष्टिं प्रजार्थं अकरोत् प्रभुः ॥१३॥

किल प्रभुः	अरे, समर्थ	**पूर्वं अप्रजस्य**	पहिले सन्तानहीन
भगवान्	भगवान्	**मनोः**	मनुके
वशिष्ठः	वशिष्ठने	**प्रजार्थं**	सन्तानके लिए
मित्रावरुणयोः	मित्रावरुणका	**इष्टिं अकरोत्**	यज्ञ किया ॥१३॥

तत्र श्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयाचत ।
दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ॥१४॥

तत्र श्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयाचत दुहित्र अर्थं उपागम्य प्रणिपत्य पयः व्रता ॥१४॥

तत्र	उस (यज्ञ) में	**होतारं**	होताके
मनोः पत्नी	मनुकी पत्नी	**उपागम्य**	पास जाकर
पयः व्रता	दूध पीकर व्रत करने वाली	**प्रणिपत्य**	प्रणाम करके
		दुहित्र अर्थं	पुत्री (प्राप्ति) के लिए
श्रद्धा	श्रद्धा	**समयाचत**	याचना की ॥१४॥

---

* 'विभुः' समर्थ मनुके लिए आया है । शेष उनके दस पुत्रोंके नाम हैं ।

प्रेषितोऽध्वर्युणा होता ध्यायंस्तत् सुसमाहितः ।
हविषि व्यचरत् तेन वषट्कारं गृणन्द्विजः ॥१५॥

प्रषितः अध्वर्युणा होता ध्यायन् तत् सुसमाहितः हविषि व्यचरत् तेन वषट्कारं गृणन् द्विजः ॥१५॥

अध्वर्युणा	अध्वर्युके द्वारा	**सुसमाहितः**	अत्यन्त एकाग्र चित्त-से
प्रेषितः	प्रेरित होकर	**वषट्कारं**	'वषट्' कार
तेन द्विजः	उस ब्राह्मण	**गृणन्**	उच्चारण करते हुए
होता	होता ने	**हविषि व्यचरत्**	हवि छोड़ी ॥१५॥
तत् ध्यायन्	उस (मनु पत्नीकी प्रार्थना) का स्मरण करके		

होतुस्तद्व्यभिचारेण कन्येला नाम साभवत् ।
तां विलोक्य मनुः प्राह नातिहृष्टमना गुरुम् ॥१६॥

होतुः तत् व्यभिचारेण कन्या इला नाम सा अभवत् तां विलोक्य मनुः प्राह न अति हृष्टमना गुरुम् ॥१६॥

तत् होतुः	उस होताके	**न अति**	कुछ अधिक नहीं
व्यभिचारेण	विपरीत कर्ममे	**हृष्टमना**	प्रसन्न चित्त होकर
सा इला नाम	वह इला नामकी	**मनुः गुरुम्**	मनुने गुरु (वशिष्ठ) से
कन्या अभवत्	कन्या हुई,		
तां विलोक्य	उसे देखकर	**प्राह**	कहा ॥१६॥

भगवन् किमिदं जातं कर्म वो ब्रह्मवादिनाम् ।
विपर्ययमहो कष्टं मैवं स्याद् ब्रह्मविक्रिया ॥१७॥

भगवन् किं इदं जातं कर्म वः ब्रह्म वादिनां विपर्ययं अहो कष्टं मा एवं स्यात् ब्रह्मविक्रिया ॥१७॥

भगवन्	भगवन् !	**। वः ब्रह्म**	आप वेद

वादिनां	वादियोंका	**एवं**	इस प्रकार
इदं विपर्ययं	इस प्रकार उलटा फल देनेवाला	**ब्रह्मविक्रिया**	वैदिक कर्मका विपरीत फल
किं जातं	कैसे हो गया,	**मा स्यात्**	नहीं होना चाहिए ॥१७॥
अहो कष्टं	अहो, दुःखकी बात है,		

यूयं मन्त्रविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ।
कुतः संकल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव ॥१८॥

यूयं मन्त्रविदः युक्ताः तपसा दग्ध किल्बिषाः कुतः सङ्कल्प वैषम्यं अनृतं विबुधेषु इव ॥१८॥

यूयं मन्त्रविदः	आप लोग मन्त्र-वेत्ता हैं,	**विबुधेषु**	देवताओंमें
युक्ताः	जितेन्द्रिय हैं,	**अनृतं इव**	असत्यकी भाँति
तपसा	तपस्यासे	**संकल्प**	(आपके) संकल्पका
दग्ध किल्बिषाः	पापोंको जला चुके हैं,	**वैषम्यं**	उलटा फल
		कुतः	कैसे हो गया ॥१८॥

तन्निशम्य वचस्तस्य भगवान् प्रपितामहः ।
होतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे रविनन्दनम् ॥१९॥

तत् निशम्य वचः तस्य भगवान् प्रपितामहः होतुः व्यतिक्रमं सात्वा बभाषे रविनन्दनम् ॥१९॥

तस्य तत्	उन (मनु) की वह	**होतुः व्यतिक्रमं**	होताका उलटा काम
वचः निशम्य	बात सुनकर	**ज्ञात्वा**	जानकर
भगवान्	भगवान्	**रविनन्दनं**	सूर्यकुमार
प्रपितामहः	प्रपितामह वशिष्ठने*	**बभाषे**	मनुसे कहा ॥१९॥

---

* मनुके पिता सूर्य, उनके पिता कश्यप और कश्यपजीके पिता मरीचिके वशिष्ठजी भाई हैं; क्योंकि दोनों ब्रह्माजी के पुत्र हैं ।

एतत् संकल्पवैषम्यं होतुस्ते व्यभिचारतः ।
तथापि साधयिष्ये ते सुप्रजास्त्वं स्वतेजसा ॥२०॥

एतत् संकल्प वैषम्यं होतुः ते व्यभिचारतः तथा अपि साधयिष्ये ते सुप्रजाः त्वं स्व तेजसा ॥२०॥

ते होतुः	आपके होताके	**तथा अपि**	ऐसा होनेपर भी
व्यभिचारतः	उलटे कर्मसे	**स्व तेजसा**	अपने तेजसे
एतत्	यह	**सुप्रजाः त्वं**	श्रेष्ठ पुत्रवाला
संकल्प	संकल्पके	**ते साधयिष्ये**	आपको बनाऊँगा
वैषम्यं	विपरीत फल (हुआ)		॥२०॥

एवं व्यवसितो राजन् भगवान् स महायशाः ।
अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥२१॥

एवं व्यवसितः राजन् भगवान् स महायशाः अस्तौषीत् आदि पुरुषं इलायाः पुंस्त्व काम्यया ॥२१॥

राजन्	राजन् !	**पुंस्त्व**	पुरुषत्वकी
स महायशाः	उन महायशस्वी	**काम्यया**	कामनासे
भगवान्	भगवान् वशिष्ठने	**आदि पुरुषं**	आदि पुरुष भगवान्-
एवं व्यवसितः	ऐसा निश्चय करके		की
इलायाः	इलाके	**अस्तौषीत्**	स्तुति की ॥२१॥

तस्मै कामवरं तुष्टो भगवान् हरिरीश्वरः ।
ददाविलाभवत् तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः ॥२२॥

तस्मै काम वरः तुष्टः भगवान् हरिः ईश्वरः ददौ इला अभवत् तेन सुद्युम्नः पुरुष ऋषभः ॥२२॥

ईश्वरः भगवान्	सर्वसमर्थ भगवान्	**वरः ददौ**	वरदान दे दिया
हरिः	श्रीहरिने	**तेन इला**	उससे इला
तस्मै	उन (वशिष्ठजी) पर	**पुरुष ऋषभः**	पुरुषश्रेष्ठ
तुष्टः	सन्तुष्ट होकर	**सुद्युम्नः अभवत्**	सुद्युम्न हो गयी
काम	(उनकी) इच्छानुसार		॥२२॥

स एकदा महाराज विचरन् मृगयां वने ।
वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य सैन्धवम् ॥२३॥

स एकदा महाराज विचरन् मृगयां वने वृतः कतिपय अमात्यैः अश्वं आरुह्य सैन्धवम् ॥२३॥

महाराज	महाराज !	**सैन्धवं अश्वं**	सिन्धु देशीय घोड़ों-पर
एकदा स	एक बार वह (सुद्यम्न)	**आरुह्य वने**	चढ़कर वनमें
कतिपय	कुछ	**मृगयां विचरन्**	आखेट करता घूम रहा था ॥२३॥
अमात्यैः	मन्त्रियोंके साथ		

प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान् ।
दंशितोऽनुमृगं वीरो जगाम दिशमुत्तराम् ॥२४॥

प्रगृह्य रुचिरं चापं शरान् च परम अद्भुतान् दंशितः अनुमृगं वीरः जगाम दिशं उत्तराम् ॥२४॥

रुचिरं चापं	सुन्दर धनुष	**दंशितः**	कवच धारण करके
च परम	तथा अत्यन्त	**वीरः अनुमृगं**	वह वीर मृगके पीछे
अद्भुतान्	अद्भुत	**उत्तरां दिशं**	उत्तर दिशामें
शरान्	वाणोंके	**जगाम**	गया ॥२४॥
प्रगृह्य	लेकर		

स कुमारो वनं मेरोरधस्तात् प्रविवेश ह ।
यत्रास्ते भगवाञ्छर्वो रममाणः सहोमया ॥२५॥

स कुमारः वनं मेरोः अधस्तात् प्रविवेश ह यत्र आस्ते भगवान् शर्वः रममाणः सह उमया ॥२५॥

स कुमारः	वह राजकुमार	**यत्र भगवान्**	जहां भगवान
मेरोः	सुमेरुसे	**शर्वः**	शिव
अधस्तात्	नीचेके	**उमया सह**	देवी उमाके साथ
वनं ह	वनमें निश्चय	**रममाणः आस्ते**	रमण कर रहे थे ॥२५॥
प्रविवेश	प्रविष्ट हो गया		

तस्मिन् प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्नः परवीरहा ।
अपश्यत् स्त्रियमात्मानमश्वं च वडवां नृप ॥२६॥

तस्मिन् प्रविष्ट एव असौ सुद्युम्नः परवीरहा अपश्यत् स्त्रियं आत्मानं अश्वं च वडवां नृप ॥२६॥

नृप	राजन् !	**सुद्युम्नः**	सुद्युम्नने
तस्मिन्	उस (वन) में	**आत्मानं**	अपनेको
प्रविष्ट एव	प्रवेश करते ही	**स्त्रियं च अश्वं**	स्त्री तथा घोड़ेको
असौ परवीरहा	यह शत्रुवीरोंका नाशक	**वडवां अपश्यत्**	घोड़ी हुआ देखा ॥२६॥

तथा तदनुगाः सर्वे आत्मलिङ्गविपर्ययम् ।
दृष्ट्वा विमनसोऽभूवन् वीक्षमाणाः परस्परम् ॥२७॥

तथा तत् अनुगाः सर्वे आत्मलिंग विपर्ययं दृष्ट्वा विमनसः अभूवन् वीक्षमाणाः परस्परम् ॥२७॥

तथा तत्	इसी प्रकार उसके	**परस्परं**	परस्पर एक दूसरेको
सर्वे अनुगाः	सब अनुचर भी	**वीक्षमाणाः**	देखते हुए
आत्मलिंग	अपने स्वरूपको	**विमनसः**	उदास
विपर्ययं	उलटा हुआ	**अभूवन्**	हो गये ॥२७॥
दृष्ट्वा	देखकर		

राजोवाच

कथमेवंगुणो देशः केन वा भगवन् कृतः ।
प्रश्नमेनं समाचक्ष्व परं कौतूहलं हि नः ॥२८॥

कथं एवं गुणः देशः केन वा भगवन् कृतः प्रश्नं एनं सम आचक्ष्व परं कौतूहलं हि नः ॥२८॥

भगवन्	भगवन् !
देशः एवं	यह स्थान इस प्रकारके
गुणः कथं	गुणवाला कैसे है
वा केन कृतः	अथवा किसने बना दिया,
हि नः	क्योंकि हमें
परं कौतूहलं	बहुत कुतूहल है
एनं प्रश्नं	इस प्रश्नका
सम आचक्ष्व	भली प्रकार उत्तर दीजिए ॥२८॥

श्रीशुक उवाच

एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः ।
दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन् ॥२९॥

एकदा गिरिशं द्रष्टुं ऋषयः तत्र सुव्रताः दिशः वितिमिर आभासाः कुर्वन्तः समुपागमन् ॥२९॥

एकदा दिशः	एक बार दिशाओंको
आभासाः	अपने तेजसे
वितिमिर	अन्धकारहीन
कुर्वन्तः सुव्रताः	करते हुए उत्तम व्रत वाले
ऋषयः तत्र	ऋषि लोग वहां
गिरिशं द्रष्टु	शंकरजी का दर्शन करने
समुपागमन्	उनके समीप आये ॥२९॥

तान् विलोक्याम्बिका देवी विवासा व्रीडिता भृशम् ।
भर्तुरङ्कात् समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात् ॥३०॥

तान् विलोक्य अम्बिका देवी विवासा व्रीडिता भृशं भर्तुः अङ्कात् समुत्थाय नीवीं आशु अथ पर्यधात् ॥३०॥

तान् विलोक्य	उनको देखकर
विवासा	वस्त्रहीना
अम्बिकादेवी	देवी अम्बिकाने
भृशं व्रीडिता	बहुत लज्जित होकर
भर्तुः अङ्कात्	पतिकी गोदसे
समुत्थाय	झट उठकर
आशु नीवीं	शीघ्र वस्त्र
पर्यधात्	पहिन लिया ॥३०॥

ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसङ्गं रममाणयोः ।
निवृत्ताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥३१॥

ऋषयः अपि तयोः वीक्ष्य प्रसंगं रममाणयोः निवृत्ताः प्रययुः तस्मात् नरनारायण आश्रमम् ॥३१॥

ऋषयः अपि	ऋषियोंने भी	**निवृत्ताः**	लौटकर
तयोः	उन (उमा महेश्वर)	**नरनारायण**	नर-नारायणके
रममाणयोः	रमणका	**आश्रमं प्रययुः**	आश्रम चले गये ॥३१॥
प्रसंगं वीक्ष्य	प्रसंग देखकर		
तस्मात्	वहांसे		

तदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया ।
स्थानं यः प्रविशेदेतत् स वै योषिद् भवेदिति ॥३२॥

तत इदं भगवान् आह प्रियायाः प्रिय काम्यया स्थानं यः प्रविशेत् ऐतत् स वै योषित् भवेत् इति ॥३२॥

तत् प्रियायाः	तब अपनी प्रियाका	**स्थानं प्रविशेत्**	स्थानमें प्रवेश करेगा
प्रिय काम्यया	प्रिय करनेकी इच्छासे	**स वै**	वह निश्चय
भगवान्	भगवान् शिवने	**योषित् भवेत्**	स्त्री हो जायगा' ॥३२॥
इदं इति आह	यह इस प्रकार कहा		
यः एतत्	जो इस		

तत ऊर्ध्वं वनं तद् वै पुरुषा वर्जयन्ति हि ।
सा चानुचरसंयुक्ता विचचार वनाद् वनम् ॥३३॥

तत् ऊर्ध्वं वनं तत् वै पुरुषा वर्जयन्ति हि सा च अनुचर संयुक्ता विचचार वनात् वनम् ॥३३॥

हि वै	क्योंकि निश्चय	**सा च**	वह भी
तत् ऊर्ध्वं	उसके बादसे	**अनुचर संयुक्ता**	अनुचरोंके साथ
पुरुषा	पुरुषोंने	**वनात्**	एक वनसे दूसरे
तत् वनं	उस वनको	**वनं**	वनमें
वर्जयन्ति	त्याज्य कर रखा था ।	**विचचार**	घूमने लगी ॥३३॥

अथ तामाश्रमाभ्याशे चरन्तीं प्रमदोत्तमाम् ।
स्त्रीभिः परिवृतां वीक्ष्य चकमे भगवान् बुधः ॥३४॥

अथ तां आश्रम अभ्याशे चरतीं प्रमदा उत्तमां स्त्रीभिः परिवृतां वीक्ष्य चकमे भगवान् बुधः ॥३४॥

अथ	फिर अपने	**परिवृतां**	घिरी हुई
आश्रम अभ्याशे	आश्रमके समीप	**वीक्ष्य**	देखकर
तां प्रमदा	उस उत्तम	**भगवान् बुधः**	भगवान् बुध
उत्तमां	स्त्रीको	**चकमे**	चाहने लगे ॥३४॥
स्त्रिभिः	स्त्रियोंसे		

सापि तं चकमे सुभ्रूः सोमराजसुतं पतिम् ।
स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥३५॥

सा अपि तं चकमे सुभ्रूः सोमराज सुतं पतिं स तस्यां जनयामास पुरूरवस आत्मजम् ॥३५॥

सः अपि	वह भी	**स तस्यां**	उन्होंने उससे
सुभ्रूः तं	सुन्दर भौंवाली उन्हें	**आत्मजं**	अपने पुत्र
पतिं चकमे	पतिरूपमें चाहने लगी,	**पुरूरवसं**	पुरूरवाको
		जनयामास	उत्पन्न किया ॥३५॥

एवं स्त्रीत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नो मानवो नृपः ।
सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठमिति शुश्रुम ॥३६॥

एवं स्त्री त्वं अनुप्राप्तः सुद्युम्नः मानवः नृपः सस्मार स्वकुल आचार्यं वशिष्ठं इति शुश्रुम ॥३६॥

इति शुश्रुम	ऐसा (हमने) सुना है कि	**अनुप्राप्तः**	पानेपर
मानवः नृपः	मनु पुत्र राजा	**स्वकुल**	अपने कुलके
सुश्रुम्न एवं	सुद्युम्नने इस प्रकार	**आचार्य**	आचार्य
स्त्रीत्वं	स्त्रीत्वको	**वशिष्ठं**	वशिष्ठका
		सस्मार	स्मरण किया ॥३६॥

स तस्य तां दशां दृष्ट्वा कृपया भृशपीडितः ।
सुद्युम्नस्याशयन् पुंस्त्वमुपाधावत शंकरम् ॥३७॥

स तस्य तां दशां दृष्ट्वा कृपया भृश पीडितः सुद्युम्नस्य आशयन् पुंस्त्वं उपाधावत शङ्करम् ॥३७॥

स	उन (विशिष्ठजी) ने	**सुद्युम्नस्य**	सुद्युम्नके
तस्य	उसकी	**पुंस्त्वं**	पुरुषत्वको
तां दशां	वह दशा	**आशयन्**	चाहते हुए
दृष्ट्वा	देखकर	**शंकरं**	शंकरजी की
कृपया	कृपा द्वारा	**उपाधावत्**	उपासना करने लगे
भृश पीडितः	बहुत दुःखी होकर		॥३७॥

तुष्टस्तस्मै स भगवानृषये प्रियमावहन् ।
स्वां च वाचमृतां कुर्वन्निदमाह विशांपते ॥३८॥

तुष्टः तस्मै स भगवान् ऋषये प्रियं आवहन् स्वां च वाचां ऋतां कुर्वन् इदं आह विशांपते ॥३८॥

विशांपते	राजन् !	**प्रियं**	प्रिय
स भगवान्	वे भगवान शिव	**आवहन्**	करते हुए
तस्मै	उनपर	**स्वां वाचां च**	अपनी बातको भी
तुष्टः	प्रसन्न हुए और	**ऋतां कुर्वन्**	सत्य करते
ऋषये	ऋषि (वशिष्ठ) का	**इदं आह**	यह बोले ॥३८॥

मासं पुमान्स भविता मासं स्त्री तव गोत्रजः ।
इत्थं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नोऽवतु मेदिनीम् ॥३९॥

मासं पुमान् स भविता मासं स्त्री तव गोत्रजः इत्यं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नः अवतु मेदिनीं ॥३९॥

तव गोत्रजः	'तुम्हारे गोत्रमें उत्पन्न	**स मासं**	वह एक महीना
		पुमान्	पुरुष और

मासं	एक महीना
स्त्री भविता	स्त्री रहेगा,
इत्थं व्यवस्थया	इस व्यवस्थासे
सुद्युम्नः	सुद्युम्न
कामं	इच्छानुसार
मेदिनीं अवतु	पृथ्वीकी रक्षा करें'

॥३९॥

आचार्यानुग्रहात् कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया ।
पालयामास जगतीं नाभ्यनन्दन् स्म तं प्रजाः ॥४०॥

आचार्य अनुग्रहात् कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया पालयामास जगतीं न अभ्यनन्दन् स्म तं प्रजाः ॥४०॥

आचार्य	आचार्य (वशिष्ठ) को
अनुग्रहात्	कृपासे
व्यवस्थया	व्यवस्थाके अनुसार
कामं	अभीष्ट
पुंस्त्व लब्ध्वा	पुरुषत्व पाकर
जगतीं	संसारका
पालयामास	पालन करने लगा
	किन्तु
प्रजाः तं	प्रजाने उसको
अभ्यनन्दन् न	पसन्द नहीं किया

॥४०॥

तस्योत्कलो गयो राजन् विमलश्च सुतास्त्रयः ।
दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मवत्सलाः ॥४१॥

तस्य उत्कलः गयः राजन् विमलः च सुताः त्रयः दक्षिणापथ राजानः बभूवुः धर्मवत्सलाः ॥४१॥

राजन्	राजन् !
तस्य उत्कलः	उसके उत्कल,
गयः च विमलः	गय तथा विमल
त्रयः सुताः	तीनों पुत्र
धर्मवत्सलाः	धर्म-प्रेमी और
दक्षिणापथ	दक्षिणा पथके
राजानः बभूवुः	राजा हुए ॥४१॥

ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः ।
पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम् ॥४२॥

ततः परिणते काले प्रतिष्ठान पतिः प्रभुः पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतः वनम् ॥४२॥

ततः काले	फिर समयके	पुत्राय	अपने पुत्र
परिणते	आनेपर (बुढ़ापेमें)	पुरूरवस	पुरूरवाको
प्रतिष्ठान	प्रतिष्ठानपुरके	गां उत्सृज्य	पृथ्वी सौंपकर
पतिः	स्वामी	वनं गतः	वन चले गये ॥४२॥
प्रभुः	राजा (सुद्युम्न)		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे इलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

एवं गतेऽथ सुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते ।
पुत्रकामस्तपस्तेपे यमुनायां शतं समाः ॥१॥

एवं गते अथ सुद्युम्ने मनुः वैवस्वतः सुते पुत्रकामः तपः तेपे यमुनायां शतं समाः ॥१॥

एवं सुते	इस प्रकार अपने पुत्र	पुत्रकामः	पुत्रकी कामनासे
सुद्युम्ने	सुद्युम्नके	यमुनायां	यमुना किनारे
गते अथ	चले जानेपर फिर	शतं समाः	सौ वर्ष तक
वैवस्वतः मनुः	वैवस्वत मनुने	तपः तेपे	तपस्या की ॥१॥

ततोऽयजन्मनुर्देवमपत्यार्थं हरिं प्रभुम् ।
इक्ष्वाकुपूर्वजान् पुत्रांल्लेभे स्वसदृशान् दश ॥२॥

ततः अयजन् मनुः देवं अपत्य अर्थं हरिं प्रभुं इक्ष्वाकु पूर्वजान् पुत्रान् लेभे स्वसदृशान् दश ॥२॥

ततः मनुः	फिर मनुने	स्वसदृशान्	(उससे) अपने समान
अपत्य अर्थं	पुत्र प्राप्तिके लिए	इक्ष्वाकु	जिनमें इक्ष्वाकु
देवं	देवाधिदेव	पूर्वजान्	पहिले उत्पन्न हुए
प्रभुं हरिं	सर्वेश्वर श्रीहरिकी	दश पुत्रान् लेभे	दस पुत्र प्राप्त किये
अयजन्	आराधना की		॥२॥

पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः ।
पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥३॥

पृषध्रः तु मनोः पुत्रः गोपालः गुरुणा कृतः पालयामास गा यत्तः रात्र्यां वीरासन व्रतः ॥३॥

मनोः पुत्रः	(उनमेंसे) मनुके पुत्र
पृषध्रः तु	पृषध्रको तो
गुरुणा	गुरु (वशिष्ठ) ने
गोपालः	(अपना) गोरक्षक
कृतः	बनाया
रात्र्यां	वह रात्रिको
यत्तः	सावधान होकर
वीरासन	वीरासनसे बैठनेका
व्रतः	नियम बनाकर
गा	गायोंकी
पालयामास	रक्षा करने लगा

॥३॥

एकदा प्राविशद् गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति ।
शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुव्रजे ॥४॥

एकदा प्राविशत् गोष्ठं शार्दूलः निशि वर्षति शयाना गाव उत्थाय भीताः ता बभ्रमुः व्रजे ॥४॥

एकदा वर्षति	एक बार वर्षा होते समय
निशि शार्दूलः	रातमें सिंह
गोष्ठं प्राविशत्	गोष्ठमें घुस आया
शयाना गाव	सोती गायें
भीताः उत्थाय	डरकर उठ गयीं और
ता व्रजे	वे गोष्ठमें
बभ्रमुः	घूमने लगीं ॥४॥

एकां जग्राह बलवान् सा चुक्रोश भयातुरा ।
तस्यास्तत् क्रन्दितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससार ह ॥५॥

एकां जग्राह बलवान् सा चुक्रोश भय आतुरा तस्य आक्रन्दितं श्रुत्वा पृषध्रः अभिससार ह ॥५॥

बलवान्	उस बलवान (सिंह)ने
एकां	एकको
जग्राह	पकड़ लिया
भय आतुरा	भयसे व्याकुल होकर
सा चुक्रोश	वह चिल्ला पड़ी
तस्य	उसका
आक्रन्दितं	उच्च क्रन्दन
श्रुत्वा	सुनकर
पृषध्रः	पृषध्र
ह	निश्चय पूर्वक
अभिससार	उसकी ओर गया ॥५॥

खड्गमादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि ।
अजानन्नहनद् बभ्रोः शिरः शार्दूलशङ्कया ॥६॥

खड्गं आदाय तरसा प्रलीनः उडुगणे निशि अजानन् अहनत् बभ्रोः शिरः शार्दूल शङ्कया ॥६॥

तरसा	वेग पूर्वक
खड्गं आदाय	तलवार लेकर गया
निशि उडुगणे	रात्रिमें तारोंके भी
प्रलीनः	(बादलोंमें) छिप जानेसे
शार्दूल	(घोर अन्धकारके कारण) सिंह
शंकया	समझकर
बभ्रोः शिरः	कपिला गायका सिर
अहनत्	काट डाला ॥६॥

व्याघ्रोऽपि वृक्णश्रवणो निस्त्रिंशाग्राहतस्ततः ।
निश्चक्राम भृशं भीतो रक्तं पथि समुत्सृजन् ॥७॥

व्याघ्रः अपि वृक्णश्रवणः निःत्रिंश अग्राहतः ततः निः चक्राम भृशं भीतः रक्तं पथि समुत्सृजन् ॥७॥

निःत्रिंश	तलवारके
अग्राहतः	अगले भागके आघातसे
वृक्णश्रवणः	कान कट जानेसे
भृशं भीतः	अत्यन्त डरकर
पथि रक्तं	मार्गमें रक्त
समुत्सृजन्	टपकाता हुआ
व्याघ्रः अपि	बाघ भी
ततः	वहांसे
निः चक्राम	निकल गया ॥७॥

मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा ।
अद्राक्षीत् स्वहतां बभ्रुं व्युष्टायां निशि दुःखितः ॥८॥

मन्यमानः हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा अद्राक्षीत् स्वहतां बभ्रुं व्युष्टायां निशि दुःखितः ॥८॥

परवीरहा	शत्रु वीरोंको मारने-वाला
पृषध्रः	पृषध्र
व्याघ्रं हतं	बाघको मारा गया
मन्यमानः	मानता था; किन्तु
निशि व्युष्टायां	रात्रि बीत जानेपर
स्वहतां	अपने द्वारा मारी गयी
बभ्रुं अद्राक्षीत्	कपिला गौ को देखकर
दुःखितः	दुःखी हो गया ॥८॥

तं शशाप कुलाचार्यः कृतागसमकामतः ।
न क्षत्रबन्धुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भवितामुना ॥९॥

तं शशाप कुल आचार्यः कृत आगसं अकामतः न क्षत्र बन्धुः शूद्रः त्वं कर्मणा भविता अमुना ॥९॥

अकामतः	अनिच्छासे	**अमुना कर्मणा**	'इस कर्मसे
कृत आगसं	अपराध करनेवाले	**त्वं क्षत्र**	तुम क्षत्रियोंके
तं कुल	उसे कुलगुरु	**बन्धुः न**	बन्धु भी नहीं रहे'
आचार्यः	वशिष्ठने	**शूद्रः भविता**	शूद्र हो जाओगे ॥९॥
शशाप	शाप दे दिया		

एवं शप्तस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णात् कृताञ्जलिः ।
अधारयद् व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम् ॥१०॥

एवं शप्तः तु गुरुणा प्रत्य गृह्णात् कृत अञ्जलिः अधारयत् व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम् ॥१०॥

एवं	इस प्रकार	**गृह्णात्**	ग्रहण कर लिया और
गुरुणा तु	गुरुके द्वारा तो		
शप्तः	शापित होकर उस	**मुनिप्रियं**	मुनियोंके प्रिय
वीर	वीरने	**ऊर्ध्वरेता**	ब्रह्मचर्य
कृत अञ्जलिः	हाथ जोड़कर	**व्रतं अधारयत्**	व्रत धारण कर लिया ॥१०॥
प्रत्य	(उस शापको) उलटे		

वासुदेवे भगवति सर्वात्मनि परेऽमले ।
एकान्तित्वं गतो भक्त्या सर्वभूतसुहृत् समः ॥११॥

वासुदेवे भगवति सर्व आत्मनि परे अमले एकान्ति त्वं गतः भक्त्या सर्वभूत सुहृत् समः ॥११॥

सर्वभूत	सब प्राणियोंके प्रति	**भक्त्या**	भक्तिके द्वारा
सुहृत्	सुहृद एवं	**सर्व आत्मनि**	सर्वात्मा
समः	समदर्शी होकर	**परे अमले**	परम निर्मल

भगवति	भगवान्	**एकान्ति त्वं**	अनन्य भावको
वासुदेवे	वासुदेवमें	**गतः**	प्राप्त हो गया ॥११॥

विमुक्तसङ्गः शान्तात्मा संयताक्षोऽपरिग्रहः ।
यदृच्छयोपपन्नेन कल्पयन् वृत्तिमात्मनः ॥१२॥

विमुक्त संगः शान्त आत्मा संयत अक्षः अपरिग्रहः यदृच्छया उपपन्नेन कल्पयन् वृत्तिं आत्मनः ॥१२॥

विमुक्त संगः	आसक्तिहीन,	**उपपन्नेन**	मिले हुए से
शान्त आत्मा	शान्त चित्त,	**आत्मनः**	अपना
संयत अक्षः	जितेन्द्रिय,	**वृत्तिं**	जीवन-निर्वाह
अपरिग्रहः	परिग्रह रहित,	**कल्पयन्**	करते हुए ॥१२॥
यदृच्छया	अपने आप		

आत्मन्यात्मानमाधाय ज्ञानतृप्तः समाहितः ।
विचचार महीमेतां जडान्धबधिराकृतिः ॥१३॥

आत्मनि आत्मानं आधाय ज्ञानतृप्तः समाहितः विचचार महीं एतां जड अन्ध बधिर आकृतिः ॥१३॥

आत्मनि	आत्मामें	**जड अन्ध**	मूर्ख, अन्धे,
आत्मानं	चित्तको	**बधिर आकृतिः**	बहिरेके समान रहते
आधाय	लगाकर	**एतां महीं**	इस पृथ्वीपर
ज्ञानतृप्तः	ज्ञानसे तृप्त	**विचचार**	विचरण करता रहा ॥१३॥
समाहितः	एकाग्रमन		

एवंवृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्निमुत्थितम् ।
तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥१४॥

एवं वृत्तः वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्निम् उत्थितं तेन उपयुक्त करणः ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥१४॥

एवं वृत्तः	इस वृत्तिसे
वनं गत्वा	वनमें जाकर
उत्थितं	उठे (जलते)
दावाग्निं	दावाग्निको
दृष्ट्वा	देखकर
तेन उपयुक्त	उसमें इन्द्रियादिको
करणः	लगा (भस्म) करके
मुनिः	उस मुनिने
परं ब्रह्म	परम ब्रह्मको
प्राप	प्राप्त किया ॥१४॥

कविः कनीयान् विषयेषु निःस्पृहो
विसृज्य राज्यं सह बन्धुभिर्वनम् ।
निवेश्य चित्ते पुरुषं स्वरोचिषं
विवेश कैशोरवयाः परं गतः ॥१५॥

कविः कनीयान् विषयेषु निःस्पृहः विसृज्य राज्यं सह बन्धुभिः वनं निवेश्य चित्ते पुरुषं स्वरोचिषं विवेश कैशोरवयाः परं गतः ॥१५॥

कनीयान्	(मनुका) छोटा पुत्र
कविः	कवि
विषयेषु	भोगोंसे
निःस्पृहः	उदासीन था
बन्धुभिः सह	भाइयोंके साथ
राज्यं विसृज्य	राज्यको छोड़कर
कैशोरवयाः	किशोरावस्थामें ही
स्वरोचिषं	स्वयं प्रकाश
पुरुषं	परम पुरुषमें
चित्ते निवेश्य	चित्त प्रविष्ट करके
वनं विवेश	वनमें जाकर
परं गतः	परमात्माको प्राप्त हो गया ॥१५॥

करूषान्मानवादासन् कारूषाः क्षत्रजातयः ।
उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्या धर्मवत्सलाः ॥१६॥

करूषात् मानवात् आसन् कारूषाः क्षत्रजातयः उत्तरा पथ गोप्तारः ब्रह्मण्या धर्मवत्सलाः ॥१६॥

मानवात्	मनु-पुत्र
करूषात्	करूषसे
उत्तरा पथ	उत्तरा-पथके
गोप्तारः	रक्षक
ब्रह्मण्या	ब्राह्मण भक्त,
धर्मवत्सलाः	धर्मप्रेमी
कारूषाः	कारूष नाम
क्षत्रजातयः	क्षत्रिय जातिके लोग
आसन्	हुए ॥१६॥

धृष्टाद् धार्ष्टमभूत् क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ ।
नृगस्य वंशः सुमतिर्भूतज्योतिस्ततो वसुः ॥१७॥

धृष्टात् धार्ष्टं अभूत् क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ नृगस्य वंशः सुमतिः भूतज्योतिः ततः वसुः ॥१७॥

धृष्टात् धार्ष्टं	धृष्टसे धार्ष्ट नामक	**नृगस्य वंशः**	नृगके वंशमें
क्षत्रं अभूत्	क्षत्रिय हुए जो	**सुमतिः**	सुमति उसका
क्षितौ	पृथ्वीपर पीछे	**भूतज्योतिः**	भूतज्योति
ब्रह्मभूयं	ब्राह्मणत्वको	**ततः वसुः**	उसका पुत्र वसु हुआ ॥१७॥
गतं	प्राप्त हो गये		

वसोः प्रतीकस्तत्पुत्र ओघवानोघवत्पिता ।
कन्या चौघवती नाम सुदर्शन उवाह ताम् ॥१८॥

वसोः प्रतीकः तत् पुत्रः ओघवान् ओघवत् पिता कन्या च ओघवती नाम सुदर्शन उवाह ताम् ॥१८॥

वसोः प्रतीकः	वसुसे प्रतीक हुआ,	**कन्या**	एक कन्या भी
तत् पुत्रः	उसका पुत्र ओघवान्	**ओघवती नाम**	ओघवती नामक हुई
ओघवत्	ओघवत्का	**तां सुदर्शन**	उससे सुदर्शनने
पिता	पिता हुआ	**उवाह**	विवाह कर लिया ॥१८॥
च	तथा उसके		

चित्रसेनो नरिष्यन्तादृक्षस्तस्य सुतोऽभवत् ।
तस्य मीढ्वांस्ततः कूर्च इन्द्रसेनस्तु तत्सुतः ॥१९॥

चित्रसेनः नरिष्यन्तात् ऋक्षः तस्य सुतः अभवत् तस्य मीढ्वान् ततः कूर्चः इन्द्रसेनः तु तत् सुतः ॥१९॥

नरिष्यन्तात्	(मनु पुत्र) नरिष्यन्त-से	**तस्य सुतः**	उसका पुत्र
चित्रसेनः	चित्रसेन हुआ,	**ऋक्षः अभवत्**	ऋक्ष हुआ,
		तस्य	उसका पुत्र

मीढ्वान्	मीढ्वान्,	**ततः सुतः तु**	उसका पुत्र तो
ततः कूर्चः	उससे कूर्च	**इन्द्रसेनः**	इन्द्रसेन था ॥१९॥

वीतिहोत्रस्त्विन्द्रसेनात् तस्य सत्यश्रवा अभूत् ।
उरुश्रवाः सुतस्तस्य देवदत्तस्ततोऽभवत् ॥२०॥

वीतिहोत्रः तु इन्द्रसेनात् तस्य सत्यश्रवा अभूत् उरुश्रवा. सुतः तस्य देवदत्तः ततः अभवत् ॥२०॥

इन्द्रसेनात् तु	इन्दसेनसे तो	**तस्य सुतः**	उसका पुत्र
वीतिहोत्रः	वीतिहोत्र	**उरुश्रवाः**	उरुश्रवा
तस्य सत्यश्रवा	उसके सत्यश्रवा	**ततः देवदत्तः**	उससे देवदत्त
अभूत्	हुआ,	**अभवत्**	उत्पन्न हुआ ॥२०॥

ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत् सुतः ।
कानीन इति विख्यातो जातूकर्ण्यो महानृषिः ॥२१॥

ततः अग्निवेश्यः भगवान् अग्निः स्वयं अभूत् सुतः कानीन इति विख्यातः जातूकर्ण्यः महान् ऋषिः ॥२१॥

ततः	उससे	**कानीन**	कानीन और
अग्निवेश्यः	अग्निवेश्य नामसे	**जातूकर्ण्यः**	जातूकर्ण्य
स्वयं भगवान्	स्वयं भगवान्	**इति विख्यातः**	इन नामोंसे प्रसिद्ध
अग्निः सुतः	अग्नि पुत्र रूपमें	**महान् ऋषिः**	महर्षि हुए ॥२१॥
अभूत्	उत्पन्न हुए, जो		

ततो ब्रह्मकुलं जातमाग्निवेश्यायनं नृप ।
नरिष्यन्तान्वयः प्रोक्तो दिष्टवंशमतः शृणु ॥२२॥

ततः ब्रह्मकुलं जातं अग्निवेश्यायनं नृप नरिष्यन्त अन्वयः प्रोक्तः दिष्टवंशं अतः शृणु ॥२२॥

नृप	राजन्	**अग्निवेश्यायनं**	अग्निवेश्यायन
ततः	आगे उससे	**ब्रह्मकुलं**	नामक ब्राह्मण कुल

जातं	उत्पन्न हुआ ।	**अन्वयः प्रोक्तः**	वंश सुना दिया,
नरिष्यन्त	(इस प्रकार) नरि-	**अतः दिष्टवंशं**	अब दिष्टका वंश
	ष्यन्तका	**शृणु**	सुनो ॥२२॥

नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः ।
भलन्दनः सुतस्तस्य वत्सप्रीतिर्भलन्दनात् ॥२३॥

नाभागः दिष्टपुत्रः अन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः भलनन्दन सुतः तस्य वत्सप्रीतिः भलनन्दनात् ॥२३॥

दिष्टपुत्रः	दिष्टका पुत्र	**तस्य सुतः**	उसका पुत्र
नाभागः	नाभाग (आगे ना-	**भलनन्दनः**	भलनन्दन हुआ,
	भागका वर्णन होगा,	**भलनन्दनात्**	भलनन्दनसे
अन्यः	उनसे) भिन्न है ।	**वत्सप्रीतिः**	वत्सप्रीति हुआ
कर्मणा	अपने कर्मसे यह		॥२३॥
वैश्यतां गतः	वैश्यत्वको प्राप्त हो गया,		

वत्सप्रीतेः सुतः प्रांशुस्तत्सुतं प्रमतिं विदुः ।
खनित्रः प्रमतेस्तस्माच्चक्षुषोऽथ विविंशतिः ॥२४॥

वत्सप्रीतेः सुतः प्रांशुः तत् सुतं प्रमतिं विदुः खनित्रः प्रमतेः तस्मात् चाक्षुषः अथ विविंशतिः ॥२४॥

वत्सप्रीतेः	वत्सप्रीतिका	**प्रमतेः खनित्रः**	प्रमतिके खनित्र,
सुतः	पुत्र	**तस्मात् चाक्षुषः**	उससे चाक्षुष
प्राशुः तत् सुतं	प्राशु और उसका पुत्र	**अथ विविंशतिः**	फिर उससे विविंशति हुआ ॥२४॥
प्रमतिं विदुः	प्रमति जाना जाता है,		

विविंशतिसुतो रम्भः खनिनेत्रोऽस्य धार्मिकः ।
करन्धमो महाराज तस्यासीदात्मजो नृप ॥२५॥

विविंशति सुत; रम्भः खनिनेत्रः अस्य धार्मिकः करन्धमः महाराज तस्य आसीत आत्मजः नृप ॥२५॥

नृप	राजन् !	**तस्य आत्मजः**	उनके पुत्र
विविंशति सुतः	विविंशतिका पुत्र	**महाराज**	महाराज
रम्भः	रम्भ	**करन्धम**	करन्धम
अस्य धार्मिकः	इसके धार्मिक	**आसीत**	थे ॥२५॥
खनिनेत्रः	खनिनेत्र		

तस्यावीक्षित् सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत् ।
संवर्तोऽयाजयद् यं वै महायोग्यङ्गिरःसुतः ॥२६॥

तस्य अविक्षित् सुतः यस्य मरुतः चक्रवर्ति अभूत् संवर्त अयाजयत् यं वै महायोगि अंगिरः सुतः ॥२६॥

तस्य सुतः	उनके पुत्र	**महायोगि**	महायोगी
अवीक्षित्	अवीक्षित हुए	**अंगिरः सुतः**	महर्षि अंगिराके पुत्र
यस्य चक्रवर्ति	जिनके चक्रवर्ती	**संवर्तः**	संवर्तने
मरुतः अभूत्	मरुत् हुए,	**अयाजयत्**	यज्ञ कराया ॥२६॥
वै यं	निश्चय जिनसे		

मरुत्तस्य यथा यज्ञो न तथान्यस्य कश्चन ।
सर्वं हिरण्मयं त्वासीद् यत् किञ्चिच्चास्य शोभनम् ॥२७॥

मरुत्तस्य यथा यज्ञः न तथा अन्यस्य कश्चन सर्वं हिरण्मयं तु आसीत् यत् किञ्चित् च अस्य शोभनम् ॥२७॥

यथा मरुत्तस्य	जैसा मरुत्का	**अस्य शोभनं**	इस यज्ञमें सजावट
यज्ञः	यज्ञ हुआ		थी,
अन्यस्य कश्चन	दूसरे किसीका	**सर्वं तु**	वह सब तो
तथा न	वैसा नहीं हुआ	**हिरण्मयं**	स्वर्णमय
यत् किञ्चित्	जो कुछ	**आसीत्**	थी ॥२७॥
च	भी		

अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ।
मरुतः परिवेष्टारो विश्वेदेवाः सभासदः ॥२८।

अमाद्यत् इन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिः द्विजातयः मरुतः परिवेष्टारः विश्वेदेनाः सभासदः ॥२८॥

इन्द्रः सोमेन	इन्द्र सोमपानसे तथा	**मरुतः**	मरुद्गण
द्विजातयः	ब्राह्मण	**परिवेष्टारः**	परसनेवाले थे,
दक्षिणाभिः	दक्षिणासे	**विश्वेदेवाः**	विश्वेदेव
अमाद्यत्	मतवाले हो गये थे ।	**सभासदः**	सभासद थे ॥२८॥

मरुत्तस्य दमः पुत्रस्तस्यासीद् राज्यवर्धनः ।
सुधृतिस्तत्सुतो जज्ञे सौधृतेयो नरः सुतः ॥२९॥

मरुत्तस्य दमः पुत्रः तस्य आसीत् राज्यवर्धनः सुधृतिः तत् सुतः जज्ञे सौधृतेयः नरः सुतः ॥२९॥

मरुत्तस्य	मरुत्का	**तत् सुतः**	उसका पुत्र
पुत्रः दमः	पुत्र दम	**सुधृतिः जज्ञे**	सुधृति उत्पन्न हुआ
तस्य	उसका	**सौधृतेयः सुतः**	सुधृतिका पुत्र
राज्यवर्धनः	राज्यवर्धन	**नरः**	नर हुआ ॥२९॥
आसीत्	पुत्र था,		

तत्सुतः केवलस्तस्माद् बन्धुमान् वेगवांस्ततः ।
बन्धुस्तस्याभवद् यस्य तृणबिन्दुर्महीपतिः ॥३०॥

तत् सुतः केवलः तस्मात् बन्धुमान् वेगवान् ततः बन्धुः तस्य अभवत् यस्य तृणबिन्दुः महीपतिः ॥३०॥

तत सुतः	उसका पुत्र	**अभवत् यस्य**	उत्पन्न हुआ जिसके
केवलः तस्मात्	केवल था, उससे	**महीपतिः**	पृथ्वोपति
बन्धुमान्	बन्धुमान्	**तृणबिन्दुः**	तृणबिन्दु हुआ ॥३०॥
ततः वेगवान्	उससे वेगवान		
तस्य बन्धुः	उसके बन्धु		

तं भेजेऽलम्बुषा देवी भजनीयगुणालयम् ।
वराप्सरा यतः पुत्राः कन्या चेडविडाभवत् ॥३१॥

त भेजे अलम्बुषा देवी भजनीयं गुण आलयं वर अप्सरा यतः पुत्राः कन्या च इडविडा अभवत् ॥३१॥

तं भजनीयं	उन सेवनीय	**यतः पुत्राः**	जिससे कई पुत्र
गुण आलयं	गुणागारको	**च इडविडा**	तथा इडविडा नाम-
वर अप्सरा	अप्सरा श्रेष्ठा		की
देवी अलम्बुषा	देवी अलम्बुषाने	**कन्या अभवत्**	कन्या उत्पन्न हुई
भेजे	सेवन (वरण) किया		॥३१॥

तस्यामुत्पादयामास विश्रवा धनदं सुतम् ।
प्रादाय विद्यां परमामृषिर्योगेश्वरात् पितुः ॥३२॥

तस्यां उत्पादयामास विश्रवा धनदं सुतं प्रादाय विद्यां परमां ऋषिः योगेश्वरात् पितुः ॥३२॥

पितुः	अपने	**प्रादाय तस्यां**	प्राप्त करके उस
योगेश्वरात्	योगेश्वर पिता		(इडविडा) में
	पुलस्त्यजी से	**ऋषिः विश्रवा**	विश्रवा ऋषिने
परमां विद्यां	उत्तम विद्या	**धनदं सुतं**	धनाधीश कुवेर पुत्र
		उत्पादयामास	उत्पन्न किया ॥३२॥

विशालः शून्यबन्धुश्च धूम्रकेतुश्च तत्सुताः ।
विशालो वंशकृद् राजा वैशालीं निर्ममे पुरीम् ॥३३॥

विशालः शून्यबन्धुः च धूम्रकेतुः च तत् सुताः विशालः वंश कृत् राजा वैशालीं निर्ममे पुरीम् ॥३३॥

विशालः च	विशाल और	**तत्**	उन (राजा तृण-
शून्य वन्धुः च	शून्य वन्धु तथा		विन्दु) के
धूम्रकेतुः	धूम्रकेतु	**सुताः**	पुत्र थे

वंश	(उनमें) वंश वृद्धि	**वैशालीं पुरीं**	वैशाली पुरीका
कृत्	करनेवाले	**निर्ममे**	निर्माण किया ॥३३॥
राजा विशालः	राजा विशालने		

हेमचन्द्रः सुतस्तस्य धूम्राक्षस्तस्य चात्मजः ।
तत्पुत्रात् संयमादासीत् कृशाश्वः सहदेवजः ॥३४॥

हेमचन्द्रः सुतः तस्य धूम्राक्षः तस्य च आत्मजः तत् पुत्रात् संयमात् आसीत् कृशाश्वः सह देवजः ॥३४॥

तस्य सुतः	उनके पुत्र	**तत् पुत्रात्**	उनके पुत्र
हेमचन्द्रः	हेमचन्द्र	**संयमात्**	संयमसे
च तस्य	और उनके	**कृशाश्वः सह**	कृशाश्व तथा उसके
आत्मजः	पुत्र		साथ
धूम्राक्षः	धूम्राक्ष हुए ।	**देवजः आसीत्**	देवज थे ॥३४॥

कृशाश्वात् सोमदत्तोऽभूद् योऽश्वमेधैरिडस्पतिम् ।
इष्ट्वा पुरुषमापाग्र्यां गतिं योगेश्वराश्रितः ॥३५॥

कृशाश्वात् सोमदत्तः अभूत् यः अश्वमेधः इडस्पतिं इष्ट्वा पुरुषं आप अग्र्यां गतिं योगेश्वर आश्रितः ॥३५॥

कृशाश्वात्	कृशाश्वसे	**पुरुषं**	परम पुरुषकी
सोमदत्तः	सोमदत्त	**इष्ट्वा**	आराधना करके
अभूत्	उत्पन्न हुआ	**योगेश्वर**	योगेश्वरोंका
यः	जिसने	**आश्रितः**	आश्रय लेकर
अश्वमेधैः	अश्वमेध यज्ञों द्वारा	**अग्र्यां गतिं**	उत्तम गति
इडस्पतिं	यज्ञपति	**आप**	प्राप्त की ॥३५॥

सौमदत्तिस्तु सुमतिस्तत्सुतो जनमेजयः ।
एते वैशालभूपालास्तृणबिन्दोर्यशोधराः ॥३६॥

सौमदत्तिः तु सुमतिः तत् सुतः जनमेजयः एते वैशाल भूपालाः तृणबिन्दोः यशः धराः ॥३६॥

सौमदत्तिः तु	सोमदत्तका पुत्र तो	**तृणबिन्दोः**	तृणविन्दुके
सुमतिः	सुमति था	**यशः धराः**	सुयश धारक
तत् सुतः	उसका पुत्र	**वैशाल**	वैशाली
जनमेजयः	जनमेजय हुआ,	**भूपालाः**	नरेश हुए ॥३६॥
एते	ये इतने		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
नवमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह ।
यो वा अङ्गिरसां सत्रे द्वितीयमह ऊचिवान् ॥१॥

शर्यातिः मानवः राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह यः वा अंगिरसां सत्रे द्वितीयं अह ऊचिवान् ॥१॥

मानवः	मनुका पुत्र
राजा शर्यातिः	राजा शर्याति
स ह वा	निश्चय ही वह
ब्रह्मिष्ठः बभूव	वेदोंका तत्त्वज्ञ हुआ
यः	जिसने
अंगिरसां	अंगिरा गोत्रीय ब्राह्मणोंके
सत्रे	यज्ञमें
द्वितीयं अह	दूसरे दिनका कर्म
ऊचिवान्	बतलाया ॥१॥

सुकन्या नाम तस्यासीत् कन्या कमललोचना ।
तया सार्धं वनगतो ह्यगमच्च्यवनाश्रमम् ॥२॥

सुकन्या नाम तस्य आसीत् कन्या कमललोचना तया सार्धं वनगतः हि अगमत् च्यवन आश्रमम् ॥२॥

तस्य	उसकी
सुकन्या नाम	सुकन्या नामकी
कमललोचना	पद्मनयनी
कन्या आसीत्	एक पुत्री थी,
तया सार्धं	उसके साथ
वनगतः	वनमें जानेपर
हि	क्योंकि
च्यवन	च्यवन ऋषियोंके
आश्रमं	आश्रममें
अगमत्	चला गया ॥२॥

सा सखीभिः परिवृता विचिन्वत्यंघ्रिपान् वने ।
वल्मीकरन्ध्रे ददृशे खद्योते इव ज्योतिषी ॥३॥

सा सखीभिः परिवृता विचिन्वती अंघ्रिपान् वने वल्मीक रन्ध्रे दद्दशे खद्योते इव ज्योतिषी ॥३॥

सा	वह (सुकन्या)	**वल्मीक**	दीमकोंकी बांबीके
सखीभिः	सखियोंसे	**रन्ध्रे**	छिद्रमें
परिवृता	घिरी हुई	**खद्योत इव**	जुगुनूकी भांति
वने	वनमें	**ज्योतिषी**	दो चमकदार
अंघ्रिपान्	(विशेष) बृक्षोंको	**ददृशे**	वस्तु देखीं ॥३॥
विचिन्वती	ढूंढ़ती हुई (एक जगह)		

ते दैवचोदिता बाला ज्योतिषी कण्टकेन वै ।

अविध्यन्मुग्धभावेन सुस्रावासृक ततो बहु ॥४॥

ते दैव चोदिते बाला ज्योतिषी कण्टकेन वै अविध्यत् मुग्ध भावेन सुस्राव असृक ततः बहु ॥४॥

दैव चोदिते	दैवकी प्रेरणासे	**ज्योतिषी**	उन ज्योतियोंको
ते बाला	उस कन्याने	**अविध्यत्**	बींध दिया
मुग्ध भावेन	बाल अज्ञान वश	**ततः बहु**	इससे उनसे बहुत
वै कण्टकेन	अरे, काँटेसे	**असृक सुस्राव**	रक्त बहने लगा ॥४॥

शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत् सैनिकानां च तत्क्षणात् ।
राजर्षिस्तमुपालक्ष्य पुरुषान् विस्मितोऽब्रवीत् ॥५॥

शकृन् मूत्र निरोधः अभूत् सैनिकानां च तत् क्षणात् राजर्षिः तं उपालक्ष्य पुरुषान् विस्मितः अब्रवीत् ॥५॥

तत् क्षणात्	उसी क्षणसे	**विस्मितः**	चकित
सैनिकानां च	सैनिकोंका तो	**राजर्षिः**	राजर्षि शर्यातिने
शकृन् मूत्र	मल-मूत्र	**पुरुषान्**	चकित सेवकोंसे
निरोधः अभूत्	निरोध हो गया,	**अब्रवीत्**	कहा ॥५॥
तं उपालक्ष्य	इसे देखकर		

अप्यभद्रं न युष्माभिर्भार्गवस्य विचेष्टितम् ।
व्यक्तं केनापि नस्तस्य कृतमाश्रमदूषणम् ॥६॥

अपि अभद्रं न युष्माभिः भार्गवस्य विचेष्टितं व्यक्तं केन अपि नः तस्य कृतं आश्रम दूषणम् ॥६॥

युष्माभिः	तुम लोगोंने	**न विचेष्टितं**	नहीं किया है ?
भार्गवस्य	भृगुनन्दन च्यवन ऋषिका	**व्यक्तं नः**	स्पष्ट है कि हममें से
		केन अपि	किसीने भी
अपि अभद्रं	कहीं कोई अमंगल तो	**तस्य आश्रम**	उनके आश्रमको
		दूषणं कृतम्	दूषित किया है ॥६॥

सुकन्या प्राह पितरं भीता किञ्चित् कृतं मया ।
द्वे ज्योतिषी अजानन्त्या निर्भिन्नेकण्टकेन वै ॥७॥

सुकन्या प्राह पितरं भीता किञ्चित् कृतं मया द्वे ज्योतिषी अजानन्त्या निर्भिन्ने कण्टकेन वै ॥७॥

भीता सुकन्या	डरकर सुकन्याने	**अजानन्त्या**	अनजानमें
पितरं प्राह	पितासे कहा	**कण्टकेन**	काँटोंसे
वै मया	निश्चय मैंने	**द्वे ज्योतिषी**	दो ज्योतियोंको
किञ्चित् कृत	कुछ किया है	**निर्भिन्ने**	वींध दिया है ॥७॥

दुहितुस्तद् वचः श्रुत्वा शर्यातिर्जातसाध्वसः ।
मुनिं प्रसादयामास वल्मीकान्तर्हितं शनैः ॥८॥

दुहितुः तत् वचः श्रुत्वा शर्यातिः जात साध्वसः मुनिं प्रसादयामास बल्मीक अन्तर्हितं शनैः ॥८॥

दुहितुः तत्	पुत्रीकी वह	**बल्मीक**	दीमकोंकी
वचः	बात	**अन्तर्हितं**	बांबीमें छिपे
श्रुत्वा	सुनकर	**मुनिं**	मुनि च्यवनको
शर्यातिः	राजा शर्यातिको	**शनैः**	धीरे-धीरे
साध्वसः जात	घबडाहट उत्पन्न हुई,	**प्रसादयामास**	(उन्होंने) प्रसन्न किया ॥८॥

तदभिप्रायमाज्ञाय प्रादाद् दुहितरं मुनेः ।
कृच्छ्रान्मुक्तस्तमामन्त्र्य पुरं प्रायात् समाहितः ॥९॥

तत् अभिप्रायं आज्ञाय प्रादात् दुहितरं मुनेः कृच्छ्रात् मुक्तः तं आमन्त्र्य पुरं प्रायात् समाहितः ॥९॥

तत् मुनेः	तब मुनिका	**मुक्तः**	छूटकर
अभिप्रायं	अभिप्राय	**तं**	उन (मुनि) से
आज्ञाय	जानकर	**आमन्त्र्य**	अनुमति लेकर
दुहितरं	(उन्हें) पुत्री	**समाहितः**	एकाग्रचित्तसे
प्रादात्	प्रदान कर दी	**पुरं प्रायात्**	अपने नगर चले गये
कृच्छ्रात्	(इस प्रकार) संकटसे		॥९॥

सुकन्या च्यवनं प्राप्य पतिं परमकोपनम् ।
प्रीणयामास चित्तज्ञा अप्रमत्तानुवृत्तिभिः ॥१०॥

सुकन्या च्यवनं प्राप्य पतिं परम कोपनं प्रीणयामास चित्तज्ञा अप्रमत्ता अनुवृत्तिभिः ॥१०॥

परम कोपनं	महाक्रोधी	**सुकन्या**	सुकन्याने
च्यवनं पतिं	च्यवनजीको पति रूपमें	**अनुवृत्तिभिः**	सेवा करके
		प्रीणयामास	(उन्हें) प्रसन्न कर लिया ॥११॥
प्राप्य	पाकर		
चित्तज्ञा	उनके चित्तका भाव जाननेवाली		

कस्यचित् त्वथ कालस्य नासत्यावाश्रमागतौ ।
तौ पूजयित्वा प्रोवाच वयो मे दत्तमीश्वरौ ॥११॥

कस्यचित् तु अथ कालस्य नासत्याः आश्रम आगतौ तौ पूजयित्वा प्रोवाच वयः मे दत्तं ईश्वरौः ॥११॥

अथ तु	फिर तो	**कालस्य**	समय
कस्यचित्	किसी	**नासत्याः**	दोनों अश्विनी कुमार

आश्रम आगतौ तौ पूजयित्वा प्रोवाच	च्यवनाश्रम आये, उनका सत्कार करके (च्यवन ऋषिने) कहा	**ईश्वरौ मे वयः दत्तं**	आप दोनों समर्थ हैं मुझे युववस्था दीजिए ॥११॥

ग्रहं ग्रहीष्ये सोमस्य यज्ञे वामप्यसोमपोः ।
क्रियतां मे वयो रूपं प्रमदानां यदीप्सितम् ॥१२॥

ग्रहं ग्रहीष्ये सोमस्य यज्ञे वां अपि असोमपोः क्रियतां मे वयः रूपं प्रमदानां यत् ईप्सितम् ॥१२॥

यत् प्रमदानां ईप्सितं मे वयः रूपं क्रियतां असोमपोः	जो युवतियोंको अभीष्ट हो मेरी आयु और रूप वैसा बना दो, सोमपानका	**अपि यज्ञे वां सोमस्य ग्रहं ग्रहीष्ये**	अधिकारी न होने पर भी यज्ञमें आप दोनोंको सोम ग्रहणका अधिकारी बनाऊँगा ॥१२॥

बाढमित्यूचतुर्विप्रमभिनन्द्य भिषक्तमौ ।
निमज्जतां भवानस्मिन् ह्रदे सिद्धविनिर्मिते ॥१३॥

बाढं इति ऊचतुः विप्रं अभिनन्द्य भिषक् तमौ निमज्जतां भवान् अस्मिन् ह्रदे सिद्ध विनिर्मिते ॥१३॥

भिषक् तमौ विप्रं अभिनन्द्य 'बाढं' इति ऊचतुः	उन श्रेष्ठ वैद्योंने ब्राह्मण च्यवनका अभिनन्दन करके 'ठीक है' ऐसा कहा	**सिद्ध विनिर्मिते अस्मिन् ह्रदे भवान् निमज्जतां**	सिद्धोंके द्वारा बनाये* इस कुण्डमें आप डुबकी लगायें ॥१३॥

---

*श्रीधर स्वामी आदि ने 'सिद्ध विनिर्मिते' का अर्थ तो सिद्धों द्वारा निर्मित ही दिया है; किन्तु सिद्धौषधियों द्वारा निर्मित अर्थ भी चिन्तनीय है ।

इत्युक्त्वा जरया ग्रस्तदेहो धमनिसन्ततः ।
ह्रदं प्रवेशितोऽश्विभ्यां वलीपलितविप्रियः ॥१४॥

इति उक्त्वा जरया ग्रस्त देहः धमनि संततः ह्रदं प्रवेश्य अश्विभ्यां वलीपलित विप्रियः ॥१४॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	**धमनि संततः**	नसोंसे भरा हुआ
अश्विभ्यां	अश्विनी कुमारों द्वारा	**विप्रियः देहः**	अप्रिय शरीर
जरया ग्रस्त	बुढ़ापेसे आक्रान्त	**ह्रदं प्रवेश्य**	कुण्डमें प्रवेश कराया गया ॥१४॥

पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरपीच्या वनिताप्रियाः ।
पद्मस्रजः कुण्डलिनस्तुल्यरूपाः सुवाससः ॥१५॥

पुरुषाः त्रय उत्तस्थुः अपीच्या वनिताप्रियाः पद्मस्रजः कुण्डलिनः तुल्यरूपाः सुवाससः ॥१५॥

अपीच्या	अत्यन्त सुन्दर	**सुवाससः**	उत्तम वस्त्रोंवाले
वनितप्रियाः	कामिनियोंको प्रिय लगनेवाले	**तुल्य रूपा**	समान रूपवाले
कुण्डलिनः	कुण्डलधारी	**त्रयः पुरुषाः**	तीन पुरुष
पद्मस्रजः	कमलोंकी माला पहिने	**उत्तस्थुः**	(उस कुण्डसे) ऊपर आये ॥१५॥

तान् निरीक्ष्य वरारोहा सरूपान् सूर्यवर्चसः ।
अजानती पतिं साध्वी अश्विनौ शरणं ययौ ॥१६॥

तान् निरीक्ष्य वरारोहा सरूपान् सूर्यवर्चसः अजानती पतिं साध्वी अश्विनौ शरणं ययौ ॥१६॥

सूर्यवर्चसः	सूर्यके समान कान्ति-वाले	**सरूपान्**	समान रूपका
तान्	उनको	**निरीक्ष्य**	देखकर
		वरारोहा	सुन्दरी पतिव्रता

साध्वी	सुकन्या	**अश्विनौ**	अश्विनी कुमारोंकी
पतिं	पतिको	**शरणं ययौ**	शरणमें गयी ॥१६॥
अजानती	न पहिचानकर		

दर्शयित्वा पतिं तस्यै पातिव्रत्येन तोषितौ ।
ऋषिमामन्त्र्य ययतुर्विमानेन त्रिविष्टपम् ॥१७॥

दर्शयित्वा पतिं तस्य पातिव्रत्येन तोषितौ ऋषिं आमन्त्र्य ययतुः विमानेन त्रिविष्टपम् ॥१७॥

तस्य	उसके	**ऋषिं**	ऋषिसे
पातिव्रत्येन	पतिव्रत-धर्मसे	**अमन्त्र्य**	अनुमति लेकर
तोषितौ	सन्तुष्ट होकर	**विमानेन**	विमान द्वारा
तस्यै पतिं	उसे उसके पतिको	**त्रिविष्टपं**	स्वर्ग
दर्शयित्वा	दिखलाकर	**ययतुः**	चले गये ॥१७॥

यक्ष्यमाणोऽथ शर्यातिश्च्यवनस्याश्रमं गतः ।
ददर्श दुहितुः पार्श्वे पुरुषं सूर्यवर्चसम् ॥१८॥

यक्ष्यमाणः अथ शर्यातिः च्यवनस्य आश्रमं गतः ददशे दुहितुः पार्श्वे पुरुषं सूर्य वर्चसम् ॥१८॥

अथ	फिर जब	**दुहितुः पार्श्वे**	(वहां) पुत्रीकी बगलमें
शर्यातिः	राजा शर्याति	**सूर्य**	सूर्यके समान
यक्ष्यमाणः	यज्ञ करनेको उद्यत हुए तब	**वर्चसं**	कान्तिमान
च्यवनस्य	महर्षि च्यवनके	**पुरुषं ददशे**	पुरुषको देखा ॥१८॥
आश्रमं गतः	आश्रम पहुँचे,		

राजा दुहितरं प्राह कृतपादाभिवन्दनाम् ।
आशिषश्चाप्रयुञ्जानो नातिप्रीतमना इव ॥१९॥

राजा दुहितरं प्राह कृत पाद अभिवन्दनां आशिषः च अप्रयुञ्जानः न अति प्रीतमना इव ॥१९॥

पाद	अपने
अभिवन्दनां	चरणोंमें प्रणाम
कृत दुहितरं	करनेपर पुत्रीको
आशिषः च	आशीर्वाद भी
अप्रयुञ्जानः	न देकर
अति	बहुत
प्रीतमना न	प्रसन्न मन न
इव	होनेकी भाँति
राजा	राजा शर्यातिने
दुहितरं प्राह	पुत्रीसे कहा ॥१॥

चिकीर्षितं ते किमिदं पतिस्त्वया
प्रलम्भितो लोकनमस्कृतो मुनिः ।
यत् त्वं जराग्रस्तमसत्यसम्मतं
विहाय जारं भजसेऽमुमध्वगम् ॥२०॥

चिकीर्षितं ते किं इदं पतिः त्वया प्रलम्भितः लोक नमस्कृतः मुनिः यत् त्वं जराग्रस्तं असति असम्मतं विहाय जारं भजसे अमुं अध्वगम् ॥२०॥

ते इदं	तुम यह
किं चिकीर्षितं	क्या करना चाहती हो
लोक	सब लोक
नमस्कृतः	जिन्हें प्रणाम करते हैं
मुनिः	ऐसे मुनिको
त्वया	तुमने
प्रलम्भितः	धोखा दिया
यः त्वं असति	जो तू असती
जराग्रस्तं	बुढ़ापे ग्रस्त होनेसे
असम्मतं	पसन्द न आनेवाले
पतिं विहाय	पतिको छोड़कर
अमुं अध्वगं	इस राह चलते
जारं	परपुरुषका
भजसे	सेवन कर रही है ॥२०॥

कथं मतिस्तेऽवगताऽन्यथा सतां
कुलप्रसूते कुलदूषणं त्विदम् ।
बिभर्षि जारं यदपत्रपा कुलं
पितुश्च भर्तुश्च नयस्यधस्तमः ॥२१॥

कथं मतिः ते अवगता अन्यथा सतां कुल प्रसूते कुल दूषणं तु इदं बिभर्षि जारं यत् अपत्रपा कुलं पितुः च भर्तुः च नयसि अधः तमः ॥२१॥

सतां कुल	सत् पुरुषोंके कुलमें
प्रसूते	उत्पन्ने !
ते मतिः	तेरी बुद्धि
कथं अन्यथा	कैसे विपरीत
अवगता	हो गयी
इदं तु	यह (आचरण) तो
कुल	कुलमें
दूषणं	कलंक लगानेवाला है,
यत्	जो
अपत्रपा	निर्लज्ज होकर
जारं	परपुरुषको
विभर्षि	आश्रय दे रही है,
पितुः च	पिताके और
भर्तुः च कुलं	पतिके भी कुलको
अधः तमः	नीचे नरकमें
नयसि	ले जायगी ॥२१॥

एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता ।
उवाच तात जामाता तवैष भृगुनन्दनः ॥२२॥

एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता उवाच तात जामाता तव एष भृगुनन्दनः ॥२२॥

एवं ब्रुवाणं	इस प्रकार कहते हुए
पितरं	पितासे
स्मयमाना	मुस्कराती हुई
शुचिस्मिता	पवित्र मुस्कानवाली (सुकन्याने)
उवाच	कहा
तात तव	'पिताजी ! आपके
जामाता एव	जामाता यही
भृगुनन्दनः	भृगु-नन्दन हैं' ॥२२॥

शशंस पित्रे तत् सर्वं वयोरूपाभिलम्भनम् ।
विस्मितः परमप्रीतस्तनयां परिषस्वजे ॥२३॥

शशंस पित्रे तत् सर्वं वयः रूप अभिलम्भनं विस्मितः परम प्रीतः तनयां परिषस्वजे ॥२३॥

वयः रूप	अवस्था और सौन्दर्य
अभिलम्भनं	प्राप्त होनेकी
तत् सर्वं	वह सब (घटना)
पित्रे शसंस	(उसने) पिताको बतलायी
विस्मितः	(इससे राजा) चकित हुए और
परम प्रीतः	अत्यन्त प्रसन्न होकर
तनयां	पुत्रीका
परिषस्वजे	आलिंगन किया ॥२३॥

सोमेन याजयन् वीरं ग्रहं सोमस्य चाग्रहीत् ।
असोमपोरप्यश्विनोश्च्यवनः स्वेन तेजसा ॥२४॥

सोमेन याजयन् वीरं ग्रहं सोमस्य च अग्रहीत् असोमपोः अपि अश्विनोः च्यवनः स्वेन तेजसा ॥२४॥

वीरं	वीरवर (शर्माति) से	**अश्विनोः**	अश्विनी कुमारोंको
सोमेन	सोम	**सोमस्य च**	सोमका भी
याजयन्	यज्ञ करवाकर	**ग्रहं**	ग्रहण करनेके लिए
च्यवनः स्वेन	च्यन ऋषिने अपने	**अग्रहीत्**	(सोमकी) आहुति
तेजसा	तेजसे		उठायी ॥२४॥
असोमपोः	सोमपान न करनेवाले		

हन्तुं तमाददे वज्रं सद्योमन्युरमर्षितः ।
सवज्रं स्तम्भयामास भुजमिन्द्रस्य भार्गवः ॥२५॥

हन्तुं तं आददे वज्रं सद्यः मन्युः अमर्षितः सवज्रं स्तम्भयामास भुजं इन्द्रस्य भार्गवः ॥२५॥

सद्यः मन्युः	शीघ्र कुपित होनेवाले	**भार्गवः**	भृगु-नन्दन च्यवनने
अमर्षितः	(इन्द्रने) चिढ़कर	**सवज्रं**	वज्रके साथ
तं	उन (च्यवनजी) को	**इन्द्रस्य भुजं**	इन्द्रकी भुजाको
हन्तुं	मारनेके लिए	**स्तम्भयामास**	स्तम्भित (स्थिर)
वज्रं आददे	वज्र लिया; किन्तु		कर दिया ॥२५॥

अन्वजानंस्ततः सर्वे ग्रहं सोमस्य चाश्विनोः ।
भिषजाविति यत् पूर्वं सोमाहुत्या बहिष्कृतौ ॥२६॥

अन्वजानन् ततः सर्वे ग्रहं सोमस्य च अश्विनोः भिषजाः इति यत् पूर्वं सोम आहुत्या बहिष्कृतौ ॥२६॥

यत् पूर्वं	जिनका पहिले	**सोम आहुत्या**	सोमकी आहुतिसे
भिषजाः इति	'ये वैद्य हैं' यह कह-कर	**बहिष्कृतौ**	बहिष्कार कर दिया था

ततः सर्वे	तबसे सब (देवताओं) ने	**अश्विनोः अन्वजानन्**	अश्विनी कुमारोंको अनुमति दे दी।।२६।।
सोमस्य च ग्रहं	सोमके ग्रहणमें भी		

उत्तानबर्हिरानर्तो भूरिषेण इति त्रयः ।
शर्यातिरभवन् पुत्रा आनर्ताद् रेवतोऽभवत् ।।२७।।

उत्तानबर्हिः आनर्तः भूरिषेणः इति त्रयः शर्यातेः अभवन् पुत्रा आनर्तात् रेवतः अभवत् ।।२७।।

उत्तानबर्हिः	उत्तानबर्हि,	**शर्यातेः पुत्रा**	शर्यातिके पुत्र
आनर्तः	आनर्त,	**अभवन्**	हुए,
भूरिषेणः	भूरिषेण	**आनर्तात्**	(इनमें) आनर्तसे
इति त्रयः	इस प्रकार तीन	**रेवतः अभवत्**	रेवत हुए ।।२७।।

सोऽन्तः समुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ।
आस्थितोऽभुङ्क्त विषयानानर्तादीनरिन्दम् ।।२८।।

सः अन्तः समुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीं आस्थितः अभुङ्क्त विषयान् आनर्त आदीन् अरिन्दम् ।।२८।।

अरिन्दम	शत्रुदमन परीक्षित !	**आस्थितः**	उसमें रहते हुए
सः	उन (रेवत) ने	**आनर्त आदीन्**	आनर्त आदि प्रदेशों-का
समुद्रे अन्तः	समुद्रके बीचमें		
कुशस्थलीं	कुशस्थली	**विषयान्**	राज्य
नगरीं	नगरीका	**अभुङ्क्त**	भोगते रहे ।।२८।।
विनिर्माय	निर्माण करके		

तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् ।
ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः ।।२९।।

तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मि ज्येष्ठं उत्तमं ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वां आदाय विभुं गतः ।।२९।।

तस्य पुत्रशतं	उनके सौ पुत्र
जज्ञे	उत्पन्न हुए
ककुद्मी ज्येष्ठ	उनमें ककुद्मी बड़ा और
उत्तमं	श्रेष्ठ था
ककुद्मी स्वां	ककुद्मी अपनी
कन्यां रेवतीं	पुत्री रेवतीको
आदाय	साथ लेकर
विभुं गतः	ब्रह्माजीके पास गये ॥२९॥

कन्यावरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृतम् ।
आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितोऽलब्धक्षणः क्षणम् ॥३०॥

कन्या वरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकं अपावृतं आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितः अलब्ध क्षणः क्षणम् ॥३०॥

कन्यां वरं	कन्याके लिए वर
परि प्रष्टुं	पूछने
अपावृतं	(उनके लिए) रोक-टोक रहित
ब्रह्मलोकं	ब्रह्म लोक गये; किन्तु
तत्र गान्धर्वे	वहां गाना-बजाना
आवर्तमाने	चलता होनेके कारण
अलब्ध क्षणः	अवसर न मिलनेके कारण
क्षणं स्थितः	क्षण भर खड़े रहे ॥३०॥

तदन्त आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ।
तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ॥३१॥

तत् अन्त आद्यं आनम्य स्वं अभिप्रायं न्यवेदयत् तत् श्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा प्रहस्य तं उवाच ह ॥३१॥

तत्	उस (गाने-बजाने) की
अन्त	समाप्ति होनेपर
आद्यं	आदि पुरुष ब्रह्माजी को
आनम्य	प्रणाम करके
स्वं अभिप्रायं	अपने अभिप्राय
न्यवेदयत्	निवेदन किया
तत् श्रुत्वा	उसे सुनकर
प्रहस्य	हंसकर
भगवान् ब्रह्मा	भगवान् ब्रह्माने
ह तं	निश्चय पूर्वक
उवाच	उससे बोले ॥३१॥

अहो राजन् निरुद्धास्ते कालेन हृदि ये कृताः ।
तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणां गोत्राणि च न शृण्महे ॥३२॥

अहो राजन् निरुद्धाः ते कालेन हृदि ये कृताः तत् पुत्र पौत्र नप्तृणाँ गोत्राणि च न शृण्महे ॥३२॥

अहो राजन्	अहो राजन् !	**तत् पुत्र**	उनके पुत्र,
ये	तुमने जिनके	**पौत्र नप्तृणां**	पौत्र, नातियोंके
हृदि कृताः	सम्बन्धमें मनमें सोचा था	**गोत्राणि**	वंशधरोंके
ते काले न निरुद्धाः	वे कालके द्वारा समाप्त कर दिये गये,	**च**	विषयमें भी
		न शृण्महे	(हम) कुछ नहीं सुनते ॥३२॥

कालोऽभियातस्त्रिणवचतुर्युगविकल्पितः ।
तद् गच्छ देवदेवांशो बलदेवो महाबलः ॥३३॥

कालः अभियातः त्रिणव चतुर्युग विकल्पितः तत् गच्छ देवदेव अंशः बलदेवः महाबलः ॥३३॥

त्रिणव	(तीन नव) सत्ताइस	**तत् गच्छ**	अतः जाइये
चतुर्युग	चतुर्युगो	**देवदेव**	देवाधिदेव भगवानके
विकल्पितः	जितना	**अंशः**	अंश
कालः	काल	**महाबलः**	महाबली
अभियातः	अब तक बीत चुका है,	**बलदेवः**	बलरामजी हैं ॥३३॥

कन्यारत्नमिदं राजन् नररत्नाय देहि भोः ।
भुवो भारावताराय भगवान् भूतभावनः ॥३४॥

कन्या रत्नं इदं राजन् नररत्नाय देहि भोः भुवः भार अवताराय भगवान् भूतभावनः ॥३४॥

भोः राजन्	हे राजन् !	**भुवः भार**	पृथ्वीका भार
इदं कन्या	इस कन्या	**अवताराम**	उतारनेके लिए
रत्नं	रत्नको	**भगवान्**	भगवान्
नररत्नाय	उन मनुष्यरत्नको	**भूतभावनः**	मधुसूदन ॥३४॥
देहि	दे दीजिए,		

अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
इत्यादिष्टोऽभिवन्द्याजं नृपः स्वपुरमागतः ।
त्यक्तं पुण्यजनत्रासाद् भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः ॥३५॥

अवतीर्णः निज अंशेन पुण्य श्रवण कीर्तनः इति आदिष्टः अभिवन्द्य अजं नृपः स्वपुरं आगतः त्यक्तं पुण्यजन त्रासात् भ्रातृभिः दिक्षु अवस्थितैः ॥३५॥

श्रवण	जिनका (नाम यशादि) सुनना
कीर्तनः पुण्य	तथा कीर्तन पवित्र है वे
निज अंशेन	अपने अंशसे
अवतीर्णः	अवतरित हुए हैं ।
इति आदिष्टः	ऐसा आदेश पाकर
अजं	ब्रह्माजी को
अभिवन्द्य	अभिवादन करके
नृपः स्वपुरं	राजा अपने नगर
आगतः	आ गये (जिसे)
पुण्यजन	यक्षोंके
त्रासात्	भयसे
दिक्षु अवस्थितैः	दिशाओं (जहां-तहां) रहनेवाले
भ्रातृभिः	उनके भाई-बन्धुओंने
त्यक्तं	त्याग दिया था ॥३५॥

सुतां दत्त्वानवद्याङ्गीं बलाय बलशालिने ।
बदर्याख्यं गतो राजां तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥३६॥

सुतां दत्त्वा अनवद्य अङ्गीं बलाय बलशालिने बदरि आख्यं गतः राजा तप्तुं नारायण आश्रमम् ॥३६॥

बलशालिने	महा बलवान
बलाय	वलरामजीको
अनवद्य अङ्गीं	निर्दोष अंगोंवाली
सुतां दत्त्वा	(अपनी) पुत्री देकर
राजा तप्तुं	राजा तप करनेके लिए
बदरि आख्यं	बदरी नामवाले
नारायण	नारायण
आश्रमं	आश्रमको
गतः	चले गये ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

नाभागो नभगापत्यं यं ततं भ्रातरः कविम् ।
यविष्ठं व्यभजन् दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥१॥

नाभागः नभग अपत्यं यं ततं भ्रातरः कविं यविष्ठं व्यभजन् दायं ब्रह्मचारिणं आगतम् ॥१॥

नभग	(मनुपुत्र) नभगके
अपत्यं	पुत्र
नाभागः	नाभाग थे,
यं	जिनको
भ्रातरः	भाइयोंने
ब्रह्मचारिणं	ब्रह्मचर्य आश्रमसे
आगतं	आनेपर
कविं	विद्वान्
यविष्ठं भ्रातरं	छोटे भाईको
ततं दायं	(पिताको ही) दाय भागके रूपमें
व्यभजन्	बांटा था ॥१॥

भ्रातरोऽभाङ्क्त किं मह्यं भजाम पितरं तव ।
त्वां ममार्यास्तताभाङ्क्षुर्मा पुत्रक तदादृथाः ॥२॥

भ्रातरः अभांक्त किं मह्यं भजाम पितरं तव त्वां मम आर्याः तता भाङ्क्षुः मा पुत्रक तत् आदृथाः ॥२॥

भ्रातरः	(उसने आनेपर पूछा) भाइयो !
मह्यं किं	'मुझे क्या
अभांक्त	भाग दिया है ?'
तव	(उन्होंने उत्तर दिया) 'तुम्हें
पितरं	पिताजीको
भजाम	भागमें देते हैं ।'
तता	(उसने पितासे कहा) 'तात !
मम आर्याः	मेरे बड़े भाइयोंने
त्वां भाङ्क्षुः	आपको भागमें दिया है ।'
पुत्रक	(पिताने कहा) 'मेरे नन्हें बच्चे
तत् मा आदृथाः	उसको मत स्वीकार करो ॥२॥

इमे अङ्गिरसः सत्रमासतेऽद्य सुमेधसः ।
षष्ठं षष्ठमुपेत्याहः कवे मुह्यन्ति कर्मणि ॥३॥

इमे अंगिरसः सत्रं आसते अद्य सुमेधसः षष्ठं षष्ठं उपेत्य अहः कवे मुह्यन्ति कर्मणि ॥३॥

इमे सुमेधसः	ये परमबुद्धिमान	**षष्ठं षष्ठं**	छठवें-छठवें
अंगिरसः	अंगिरा गोत्रीय ब्राह्मण	**अहः उपेत्य**	दिन आनेपर
		कर्मणि	उस कर्ममें
अद्य सत्रं	इस समय यज्ञ	**मुह्यन्ति**	मोहित (भ्रान्त) हो
आसते	कर रहे हैं ।		जाते हैं ॥३॥
कवे	ये बुद्धिमान्		

तांस्त्वं शंसय सूक्ते द्वे वैश्वदेवे महात्मनः ।
ते स्वर्यन्तो धनं सत्रपरिशेषितमात्मनः ॥४॥

तान् त्वं शंसय सूक्ते द्वे वैश्वदेवे महात्मनः ते स्वः यन्तः धनं सत्र परिशेषितं आत्मनः ॥४॥

तान् महात्मनः	उन महात्माओंको	**ते स्वः यन्तः**	वे स्वर्ग जाते समय
त्वं द्वे	तुम दो	**आत्मनः सत्र**	अपने यज्ञका
वैश्वदेवे	विश्वेदेवा सम्बन्धी	**परिशेषितं**	बचा हुआ
सूक्ते शंसय	सूक्त सुनाओ	**धनं**	धन ॥४॥

दास्यन्ति तेऽथ तान् गच्छ तथा स कृतवान् यथा ।
तस्मै दत्वा ययुः स्वर्गं ते सत्रपरिशेषितम् ॥५॥

दास्यन्ति ते अथ तान् गच्छ तथा स कृतवान् यथा तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं ते सत्र परिशेषितम् ॥५॥

ते दास्यन्ति	वे (तुमको) दे देंगे,	**ते सत्र**	वे (ब्राह्मण)
अथ तान् गच्छ	अब वहां जाओ,	**परिशेषितं**	यज्ञसे बचा धन
यथा	जैसा (पिताने कहा)	**तस्मै दत्त्वा**	उसे देकर
तथा स	वैसा ही उसने	**स्वर्गं ययुः**	स्वर्ग चले गये ॥५॥
कृतवान्	किया		

तं कश्चित् स्वीकरिष्यन्तं पुरुषः कृष्णदर्शनः ।
उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य ममेदं वास्तुकं वसु ॥६॥

तं कश्चित् स्वीकरिष्यन्तं पुरुषः कृष्णदर्शनः उवाच उत्तरतः अभिः एत्य मम इदं वास्तुकं वसु ॥६॥

तं	उस (धन) को	**उत्तरतः**	उत्तर दिशासे
स्वीकरिष्यन्तं	स्वीकार करते समय	**अभि एत्य**	वहां आकर
कश्चित्	किसी	**उवाच**	कहा
कृष्णदर्शनः	काले रंगके	**इदं वास्तुकं**	'यह यज्ञ भूमिका
पुरुषः	पुरुषने	**वसु मम**	धन मेरा है' ॥६॥

ममेदमृषिभिर्दत्तमिति तर्हि स्म मानवः ।
स्थान्नौ ते पितरि प्रश्नः पृष्टवान् पितरं तथा ॥७॥

मम इदं ऋषिभिः दत्तं इति तर्हि स्म मानवः स्यात् नौ ते पितरि प्रश्नः पृष्टवान् पितरं तथा ॥७॥

ऋषिभिः	(उसने कहा) ऋषियों का	**मानवः**	मनु-पुत्र
		ते पितरि	तुम्हारे पितासे
दत्तं	दिया हुआ	**नौ**	हम दोनोंको
इदं मम	यह मेरा है'	**प्रश्नः स्यात्**	पूछना चाहिए'
इति	(वह पुरुष बोला) 'ऐसा है	**तथा पितरं**	इसी प्रकार पितासे
		पृष्टवान्	(जाकर उसने) पूछा ॥७॥
तर्हि स्म	तब तो		

यज्ञवास्तुगतं सर्वमुच्छिष्टमृषयः क्वचित् ।
चक्रुर्विभागं रुद्राय स देवः सर्वमर्हति ॥८॥

यज्ञ वास्तु गतं सर्वं उच्छिष्टं ऋषयः क्वचित् चक्रुः विभागं रुद्राय स देवः सर्वं अर्हति ॥८॥

यज्ञ	(पिताने कहा) यज्ञ	**गतं सर्वं**	आयी सब वस्तु
वास्तु	मंडपमें	**उच्छिष्टं**	बच जानेपर

क्वचित्	कभी	**स देवः**	(अतः) वही देव
ऋषयः	ऋषियोंने	**सर्वं अर्हति**	सब पाने योग्य हैं ॥८॥
रुद्राय विभागं	रुद्रका भाग		
चक्रुः	बना दिया था,		

नाभागस्तं प्रणम्याह तवेश किल वास्तुकम् ।
इत्याह मे पिता ब्रह्मञ्छिरसा त्वां प्रसादये ॥९॥

नाभागः तं प्रणम्य आह तव ईश किल वास्तुकं इति आह मे पिता ब्रह्मन् शिरसा त्वां प्रसादये ॥९॥

तं प्रणम्य	उनको प्रणाम करके	**पिता आह**	पिताने कहा है,
नाभागः आह	नाभागने कहा–	**ब्रह्मन्**	ब्रह्मन् !
ईश किल	'भगवन् ! निश्चय	**शिरसा त्वां**	मस्तक झुकाकर
वास्तुकं	यह यज्ञ शेष		आपको
तव	आपका है,	**प्रसादये**	मैं प्रसन्न करता हूँ' ॥९॥
इति मे	ऐसा मेरे		

यत् ते पितावदद् धर्मं त्वं च सत्यं प्रभाषसे ।
ददामि ते मन्त्रदृशे ज्ञानं ब्रह्म सनातनम् ॥१०॥

यत् ते पिता अवदत् धर्मं त्वं च सत्यं प्रभाषसे ददामि ते मन्त्रदृशे ज्ञानं ब्रह्म सनातनम् ॥१०॥

यत् ते	(रुद्रने कहा) क्योंकि तुम्हारे	**ते मन्त्रदृशे**	तुम वेदार्थ जानने-वालेको
पिता	पिताने	**सनातनं ब्रह्म**	सनातन ब्रह्मका
धर्मं अवदत्	धर्म-सम्मत बात कही	**ज्ञानं ददामि**	मैं ज्ञान दे रहा हूँ ॥१०॥
च त्वं	और तुम		
सत्यं प्रभाषसे	सच बोल रहे हो (अतः)		

गृहाण द्रविणं दत्तं मत्सत्रे परिशेषितम् ।
इत्युक्त्वान्तर्हितो रुद्रो भगवान् सत्यवत्सलः ॥११॥

गृहाण द्रविणं दत्तं मत् सत्रे परिशेषितं इति उक्त्वा अन्तर्हितः रुद्रः भगवान् सत्यवत्सलः ॥११॥

सत्रे परिशेषितं	यज्ञसे बचा हुआ	**सत्यवत्सलः**	सत्यवत्सल
द्रविणं	यह धन	**भगवान् रुद्रः**	भगवान् रुद्र
मत् दत्तं	मेरा दिया हुआ	**अन्तर्हितः**	अन्तर्धान हो गये ॥११॥
गृहाण	ग्रहण करो ।'		
इति उक्त्वा	ऐसा कहकर		

य एतत् संस्मरेत् प्रातः सायं च सुसमाहितः ।
कविर्भवति मन्त्रज्ञो गतिं चैव तथाऽऽत्मनः ॥१२॥

य एतत् संस्मरेत् प्रातः सायं च सुसमाहितः कविः भवति मन्त्रज्ञः गतिं च एव तथा आत्मनः ॥१२॥

य सुसमाहितः	जो भली प्रकार एकाग्र चित्तसे	**भवति**	हो जाता है,
		तथा च	और
एतत् प्रातः	इसका सबेरे	**आत्मनः**	आत्मस्वरूपको
च सायं	तथा शामको	**गतिं**	प्राप्त करता है ॥१२॥
संस्मरेत्	स्मरण करता है		
कविः मन्त्रज्ञः	वह विद्वान और वेदज्ञ		

नाभागादम्बरीषोऽभून्महाभागवतः कृती ।
नास्पृशद् ब्रह्मशापोऽपि यं न प्रतिहतः क्वचित् ॥१३॥

नाभागात् अम्बरीषः अभूत् महाभागवतः कृती न अस्पृशत् ब्रह्मशापः अपि यं न प्रतिहतः क्वचित् ॥१३॥

नाभागात्	नाभागसे	**यं क्वचित्**	जिन्हें कभी
कृती	पुण्यात्मा	**न प्रतिहतः**	व्यर्थ न होनेवाला
महाभागवतः	परम भगवद्भक्त	**ब्रह्मशापः अपि**	ब्राह्मणका शाप भी
अम्बरीषः	अम्बरीष	**न अस्पृशत्**	नहीं छू सका ॥१३॥
अभूत्	उत्पन्न हुए		

राजोवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि राजर्षेस्तस्य धीमतः ।
न प्राभूद् यत्र निर्मुक्तो ब्रह्मदण्डो दुरत्ययः ॥१४॥

भगवन् श्रोतुं इच्छामि राजर्षेः तस्य धीमतः न प्राभुः अभूत यत्र निर्मुक्तः ब्रह्मदण्डः दुः त्ययः ॥१४॥

भगवन् तस्य	भगवन् ! उन	**ब्रह्मदण्डः**	ब्रह्म दण्ड भी
धीमतः राजर्षेः	बुद्धिमान राजर्षिका	**प्राभुः**	प्रभाव
श्रोतुं	(चरित) सुनना	**अभूत् न**	नहीं डाल सका
इच्छामि	चाहता हूँ		॥१४॥
यत्र दुः त्ययः	जिनपर दुस्तर		

श्रीशुक उवाच

अम्बरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् ।
अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ॥१५॥

अम्बरीषः महाभागः सप्त द्वीपवतीं महीं अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं च अतुलं भुवि ॥१५॥

महाभागः	महाभाग	**अव्ययां श्रियं**	अक्षय लक्ष्मी
अम्बरीषः	अम्बरीषने	**च भुवि**	एवं पृथ्वीपर
सप्त द्वीपवतीं	सातो द्वीपवाली	**अतुलं विभवं**	अतुलनीय वैभव
महीं च	पृथ्वी तथा	**लब्ध्वा**	पाकर ॥१५॥

मेनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत् स्वप्नसंस्तुतम् ।
विद्वान् विभवनिर्वाणं तमो विशति यत् पुमान् ॥१६॥

मेने अतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत् स्वप्न संस्तुतं विद्वान् विभव निर्वाणं तमः विशति यत् पुमान् ॥१६॥

यत्: पुमान्	जिससे पुरुष	**तमः विशति**	अज्ञानान्धकारमें डूब जाता है

विभव	उस वैभवकी	पुंसां	जो पुरुषके लिए
निर्वाणं	विनश्वरता	अतिदुर्लभं	अत्यन्त दुर्लभ है
विद्वान्	जानकर	स्वप्न संस्तुतं	स्वप्नके समान
तत् सर्वं	उस सब (वैभव) को	मेने	माना ॥१६॥

वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु ।
प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्टवत् स्मृतम् ॥१७॥

वासुदेवे भगवति तद् भक्तेषु च साधुषु प्राप्तः भावं परं विश्वं येन इदं लोष्टवत् स्मृतम् ॥१७॥

भगवति	भगवान्	प्राप्तः	प्राप्त था
वासुदेवे	वासुदेवमें	येन इदं	जिससे यह जगत
च तद् भक्तेषु	तथा उनके भक्त	लोष्टवत्	मिट्टीके डलेके समान
साधुषु	सत्पुरुषोंमें	स्मृतं	समझा जाता है
परं भावं	परम भक्तिभाव		॥१७॥

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो-
र्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु
श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥१८॥

स वै मनः कृष्ण पदारविन्दयोः वचांसि वैकुण्ठ गुण अनुवर्णने करौ हरेः मन्दिर मार्जन आदिषु श्रुतिं चकार अच्युत सत् कथा उदये ॥१८॥

वै स	निश्चय उन्होंने	मार्जन	मार्जन (पोंछा
कृष्ण	श्रीकृष्णके		लगाना)
पदारविन्दयोः	चरण-कमलोंमें	आदिषु	आदिमें
मनः	अपने मनको,	करौ	हाथोंको,
वैकुण्ठ गुण	भगवान्के गुणोंका	अच्युत	श्रीअच्युतकी
अनुवर्णने	बार-बार वर्णन	सत् कथा	उत्तम कथाका
	करनेमें	उदये	अभ्युदय सुननेमें
वचांसि	वाणीको,	श्रुतिं	कानोंको
हरेः मन्दिर	श्रीहरिके मन्दिरकी	चकार	लगा दिया ॥१८॥

मुकुन्दलिंगालयदर्शने दृशौ
तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसंगमम् ।
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे
श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥१९॥

मुकुन्दलिंग आलय दर्शने दृशौ तत् भृत्य गात्रस्पर्शे अंग संगमं घ्राणं च तत् पाद सरोज सौरभे श्रीमत् तुलस्या रसनां तत् अर्पिते ॥१९॥

मुकुन्दलिंग आलय दर्शने	भगवन्मूर्ति तथा मन्दिरोंका दर्शन करनेमें
दृशौ	नेत्रोंको,
तत् भृत्य	उनके सेवकों (भक्तों) के
गात्रस्पर्शे	शरीर स्पर्शमें
अंग संगमं	अपने अंगोंको लगाया,
तत् पाद	उन भगवानके चरणों परकी
श्रीमत् तुलस्या	श्रीमती तुलसीकी
सौरभे घ्राणं	सुगन्धि लेनेमें नासिकाको
च	तथा
तत् अर्पिते	उन (भगवान) को अर्पित
रसनां	(नैवेद्य-प्रसाद) में रसनाको ॥१९॥

पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे
शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने ।
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया
यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः ॥२०॥

पादौ हरेः क्षेत्र पद अनुसर्पणे शिरः हृषीकेश पद अभिवन्दने कामं च दास्ये न तु काम काम्यया यथा उत्तम श्लोक जन आश्रया रतिः ॥२०॥

हरेः	भगवानके
क्षेत्र पद	पवित्र तीर्थोंकी
अनुसर्पणे	यात्रा करनेमें
पादौ	पैरोंको,
हृषीकेश	श्रीहृषीकेशके
पद	चरणोंकी
अभिवन्दने	वन्दना करनेमें
शिरः	मस्तकको

च कामं	तथा भोग-सामग्रीको
दास्ये	भगवत् सेवामें,
काम	अपने
काम्यया न	उपभोगमें नहीं
	लगाया था,
यथा	जिससे
उत्तम	पवित्र कीर्ति
श्लोक जन	भगवानके भक्तोंके
आश्रया	आश्रममें
रतिः	रहनेवाली भगवत्
	प्रीति प्राप्त हो ॥२०॥

एवं सदा कर्मकलापमात्मनः
परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ।
सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां
तन्निष्ठविप्राभिहितः शशास ह ॥२१॥

एवं सदा कर्म कलापं आत्मनः परे अधियज्ञे भगवति अधोक्षजे सर्व आत्मभावं विदधत् महीं इमां तत् निष्ठ विप्र अभिहितः शशासह ॥२१॥

अधियज्ञे	अधियज्ञ पुरुष
भगवति	भगवान्
अधोक्षजे	हृषीकेश
परे	परमात्मामें
एवं सदा	इस प्रकार सदा
आत्मनः	अपना
कर्म कलापं	सब कर्म
सर्व आत्मभावं	सर्वात्म भावसे
विदधत्	समर्पित करते हुए
तत्	उन (भगवान) में
निष्ठ	निष्ठा रखनेवाले
विप्र	ब्राह्मणोंके
अभिहतः ह	आदेशानुसार ही
महीं शशास	पृथ्वीपर शासन करते
	थे ॥२१॥

ईजेऽश्वमेधैरधियज्ञमीश्वरं
महाविभूत्योपचितांगदक्षिणैः ।
ततैर्वसिष्ठासितगौतमादिभि-
र्धन्वन्यभिस्रोतमसौ सरस्वतीम् ॥२२॥

ईजे अश्वमेधैः अधियज्ञं ईश्वरं महाविभूति उपचित अंग दक्षिणैः ततैः वसिष्ठ असित गौतम आदिभिः धन्वनि अभिस्रोतं असौ सरस्वतीम् ॥२२॥

धन्वनि मरुधन्व (मारवाड़) में
सरस्वतीं सरस्वतीके
अभिस्रोतं प्रवाहकी सीधमें*१
वसिष्ठ असित वसिष्ठ, असित,
गौतम गौतम
आदिभिः आदि ऋषियों द्वारा
ततैः विस्तारित किये गये
महाविभूति महान ऐश्वर्यसे बढ़े
अंग अंग तथा*२
उपचित बड़ी
दक्षिणैः दक्षिणाओंवाले
अश्वमेधैः अश्वमेधादि यज्ञोंसे
अधियज्ञं यज्ञ-पुरुष
ईश्वरं सर्वेश्वरकी
ईजे आराधना की ॥२२॥

यस्य क्रतुषु गीर्वाणैः सदस्या ऋत्विजो जनाः ।
तुल्यरूपाश्चानिमिषा व्यदृश्यन्त सुवाससः ॥२३॥

यस्य क्रतुषु गीर्वाणैः सदस्या ऋत्विजः जनाः तुल्य रूपाः च अनिमिषाः व्यदृश्यन्त सुवाससः ॥२३॥

यस्य क्रतुषु जिसके यज्ञमें
गीर्वाणैः देवताओंके साथ
सदस्या सदस्य एवं
ऋत्विजः जनाः ऋत्विक् लोग
सुवाससः उत्तम वस्त्रोंके कारण
तुल्य उन्हीं (सुरों) के
रूपाः समान रूपवान
च अनिमिषा तथा निमेषहीन
व्यदृश्यन्त दीखते थे ॥२३॥

स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य मनुजैरमरप्रियः ।
शृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोकचेष्टितम् ॥२४॥

स्वर्गः न प्रार्थितः यस्य मनुजैः अमरप्रियः शृण्वत् भिः उपगायत् भिः उत्तम श्लोक चेष्टितम् ॥२४॥

उत्तम श्नोक पवित्र कीर्ति भगवान-की
चेष्टितं लीलाओंको
शृण्वत् भिः सुनते हुए एवं
उपगायत् भिः गाते हुए
यस्य जिनके
मनुजैः मनुष्यों (सेवकों) ने भी
अमरप्रियः देवताओंके प्रिय
स्वर्ग स्वर्गको
न प्रार्थितः नहीं पानाचाहा ॥२४॥

१* क्योंकि मारवाड़में सरस्वतीका प्रवाह सूख जाता है ।
२* अनुयाज, प्रयाजादि अंग यज्ञमें बढ़ाये जा सकते हैं ।

समर्द्धयन्ति तान् कामाः स्वाराज्यपरिभाविताः ।
दुर्लभा नापि सिद्धानां मुकुन्दं हृदि पश्यतः ॥२५॥

सम अर्द्धयन्ति तान् कामाः स्वाराज्य परिभाविताः दुर्लभा न अपि सिद्धानां मुकुन्दं हृदि पश्यतः ॥२५॥

तान् कामाः	वे (स्वर्गीय) भोग	**मुकुन्दं**	(किन्तु) श्रीमुकुन्दको
स्वाराज्य	आत्मानन्द	**हृदि**	हृदयमें
परिभाविताः	प्राप्त	**पश्यतः**	दर्शन करनेवालोंको
सिद्धानां अपि	सिद्ध पुरुषोंको भी	**दुर्लभा न**	(वे) दुर्लभ नहीं हैं ॥२५॥
सम	अत्यन्त		
अर्द्धयन्ति	उल्लसित करते हैं,		

स इत्थं भक्तियोगेन तपोयुक्तेन पार्थिवः ।
स्वधर्मेण हरिं प्रीणन् संगान् सर्वाञ्छनैर्जहौ ॥२६॥

स इत्थं भक्तियोगेन तपः युक्तेन पार्थिवः स्वधर्मेण हरिं प्रीणन् सङ्गान् सर्वान् शनैः जहौ ॥२६॥

इत्थं	इस प्रकार	**प्रीणन्**	प्रसन्न करते हुए
स	उन अम्बरीषने	**सर्वान्**	समस्त
तपः युक्तेन	तपस्यायुक्त	**संगान्**	आसक्तियोंको
भक्तियोगेन	भक्तियोग तथा	**शनैः जहौ**	धीरे-धीरे त्याग दिया ॥२६॥
स्वधर्मेण	अपने धर्माचरण द्वारा		
हरिं	श्रीहरिको		

गृहेषु दारेषु सुतेषु बन्धुषु
द्विपोत्तमस्यन्दनवाजिपत्तिषु ।
अक्षय्यरत्नाभरणायुधादि-
ष्वनन्तकोशेष्वकरोदसन्मतिम् ॥२७॥

गृहेषु दारेषु सुतेषु बन्धुषु द्विप उत्तम स्यन्दन वाजि पत्तिषु अक्षय्य रत्न आभरण आयुध आदिषु अनन्त कोशेषु अकरोत् असत् मतिम् ॥२७॥

गृहेषु दारेषु	भवन, पत्नी,
सुतेषु बन्धुषु	पुत्र, सम्बन्धी,
उत्तम द्विप	उत्तम गजराज,
स्यन्दन वाजि	रथ, घोड़े वाली
पत्तिषु	सेना
अक्षय्य रत्न	अक्षय रत्न,
आभरण	आभूषण,
आयुध आदिषु	आयुध आदिके
अनन्त कोशेषु	अनन्त कोशमें
असत् मतिं	असत् बुद्धि
अकरोत्	कर ली ॥२७॥

तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं प्रत्यनीकभयावहम् ।
एकान्तभक्तिभावेन प्रीतो भृत्याभिरक्षणम् ॥२८॥

तस्मा अदात् हरिः चक्रं प्रत्यनीक भय आवहं एकान्त भक्ति भावेन प्रीतः भृत्य अभिरक्षणम् ॥२८॥

एकान्त	अनन्य
भक्ति भावेन	भक्तिभावसे
प्रीतः	प्रसन्न होकर
हरिः	श्रीहरिने
भृत्य	उस अपने सेवककी
अभिरक्षणं	सम्पूर्ण रक्षाके लिए
तस्मा	उन (अम्बरीष) को
प्रत्यनीक	शत्रुसेनाको
भय आवहं	भयदायी
चक्रं	अपना सुदर्शन चक्र
अदात्	दे दिया ॥२८॥

आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या तुल्यशीलया ।
युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम् ॥२९॥

आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या तुल्य शीलया युक्तः सांवत्सरं वीरः दधार द्वादशीव्रतम्* ॥२९॥

---

*एकादशी-व्रत स्मार्त-वैष्णव भेदसे दो प्रकार का है । स्मार्त व्रतीको पारणके लिए द्वादशी अवश्य चाहिए, जैसा राजा अम्बरीषके लिए था । इसमें दशमी-विद्धा एकादशी व्रत करना दोष नहीं माना जाता । वैष्णव दशमी विद्धा एकादशी व्रत नहीं करते, भले व्रत द्वादशीमें करके त्रयोदशी-को पारण करना पड़े ।

तुल्य	अपने समान
शीलया	शीलवती
महिष्या युक्तः	महारानीके साथ
वीरः	वीरवर अम्बरीषने
कृष्णं	श्रीहरिकी
आरिराधयिषुः	आराधनाकी इच्छासे
सांवत्सरं	एक वर्षके लिए
द्वादशीव्रतं	द्वादशीका व्रत
दधार	धारण किया ॥२९॥

व्रतान्ते कार्तिके मासि त्रिरात्रं समुपोषितः ।
स्नातः कदाचित् कालिन्द्यां हरिं मधुवनेऽर्चयत् ॥३०॥

व्रत अन्ते कार्तिके मासि त्रिरात्रं सम् उपोषितः स्नातः कदाचित् कालिन्द्यां हरिं मधुवने अर्चयत् ॥३०॥

व्रत अन्ते	व्रतकी समाप्तिपर
कार्तिके मासि	कार्तिक महीनेमें
त्रिरात्रं	तीन रात-दिनका
सम्	पूर्ण (निर्जल)
उपोषितः	उपवास करके
कदाचित्	(उन तीनमें से) किसी दिन
कालिन्द्यां	यमुनामें
स्नात्वा	स्नान करके
मधुवने	मथुरामें
हरिं अर्चयत्	श्रीहरिकी पूजा की ॥३०॥

महाभिषेकविधिना सर्वोपस्करसम्पदा ।
अभिषिच्याम्बराकल्पैर्गन्धमाल्यार्हणादिभिः ॥३१॥

महा अभिषेक विधिना सर्व उपस्कर सम्पदा अभिषिच्य अम्बर आकल्पैः गन्ध माल्य अर्हण आदिभिः ॥३१॥

महा अभिषेक	महा अभिषेककी
विधिना	विधिसे
सर्व	सब प्रकारकी
उपस्कर	सामग्री एवं
सम्पदा	सम्पत्ति द्वारा
अम्बर	वस्त्र,
आकल्पैः	आभूषण
गन्ध माल्य	चन्दन, माला आदि
अर्हण आदिभिः	पूजा द्रव्यों द्वारा ॥३१॥

तद्गतान्तरभावेन पूजयामास केशवम् ।
ब्राह्मणांश्च महाभागान् सिद्धार्थानपि भक्तितः ॥३२॥

तद्गत अन्तर भावेन पूजयामास केशवं ब्राह्मणान् च महाभागान् सिद्ध अर्थान् अपि भक्तितः ॥३२॥

तद्गत	उन्हींमें लगे
अन्तर भावेन	चित्तसे
केशवं	श्रीकेशवका
पूजयामास	पूजन किया
च महाभागान्	तथा महाभाग
सिद्ध अर्थान्	आप्तकाम
ब्राह्मणान् अपि	ब्राह्मणोंका भी
भक्तितः	भक्तिपूर्वक (सत्कार किया) ॥३२॥

गवां रुक्मविषाणीनां रूप्याङ्घ्रीणां सुवाससाम् ।
पयः शीलवयोरूपवत्सोपस्करसम्पदाम् ॥३३॥

गवां रुक्म विषाणीनां रूप्य अङ्घ्रीणां सुवाससां पयः शील वयः रूप वत्स उपस्कर सम्पदाम् ॥३३॥

रुक्म	सोनेसे
विषाणीनां	मढ़ी सींग,
रूप्य अङ्घ्रीणां	चांदीसे मढ़े खुर,
सुवाससां	उत्तम वस्त्रोंसे आच्छादित,
पयः शील	दूध देनेवाली, गुणवती,
वयः रूप	कम आयुकी, सुन्दर,
वत्स उपस्कर	बछड़े, सामग्री तथा
सम्पदां गवां	सम्पत्ति सहित गायें ॥३३॥

प्राहिणोत् साधु विप्रेभ्यो गृहेषु न्यर्बुदानिषट् ।
भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम् ॥३४॥

प्राहिणोत् साधु विप्रेभ्यः गृहेषु न्यर्बुदानि षट् भोजयित्वा द्विजान् अग्र स्वादु अन्न गुणवत्तमम् ॥३४॥

साधु विप्रेभ्यः	(उन) साधु ब्राह्मणोंके
गृहेषु	घरोंमें
षट् न्यर्बुदानि	साठ करोड़
प्राहिणोत्	भेज दी
अग्रे	पहिले
द्विजान्	उन ब्राह्मणोंको
गुणवत्तमं	अत्यन्त गुणवान
स्वादु अन्नं	स्वादिष्ट अन्न
भोजयित्वा	भोजन कराके ॥३४॥

लब्धकामैरनुज्ञातः पारणायोपचक्रमे ।
तस्य तर्ह्यतिथिः साक्षाद् दुर्वासा भगवानभूत् ॥३५॥

लब्धकामैः अनुज्ञातः पारणाय उपचक्रमे तस्य तर्हि अतिथिः साक्षात् दुर्वासा भगवान् अभूत ॥३५॥

लब्धकामैः	इच्छित (पदार्थ) पाकर	**तर्हि**	उसी समय
अनुज्ञातः	(ब्राह्मणोंके) अनुमति देनेपर	**साक्षात्**	साक्षात्
पारणाम	(व्रतका) पारण करनेके लिए	**भगवान्**	भगवान
उपचक्रमे	उपक्रम करने लगे	**दुर्वासा तस्य**	दुर्वासा उनके
		अतिथिः अभूत	अतिथि होकर आ गये ॥३५॥

तमानर्चातिथिं भूपः प्रत्युत्थानासनार्हणैः ।
ययाचेऽभ्यवहाराय पादमूलमुपागतः ॥३६॥

तं आनर्च अतिथिं भूपः प्रत्युत्थान आसन अर्हणैः ययाचे अभ्यवहाराय पादमूलं उपागतः ॥३६॥

भूपः	राजाने	**आनर्च**	पूजन किया
तं अतिथिं	उन अतिथिका	**पादमूलं**	(फिर उनके)चरणोंके
प्रत्युत्थान	स्वागतमें उठकर खड़े होना,	**उपागतः**	पास जाकर
आसन	आसन देना तथा	**अभ्यवहाराय**	भोजन ग्रहण करनेके लिए
अर्हणैः	पूजा द्रव्योंसे	**ययाचे**	प्रार्थना की ॥३६॥

प्रतिनन्द्य स तद्याच्ञां कर्तुमावश्यकं गतः ।
निममज्ज बृहद् ध्यायन् कालिन्दीसलिले शुभे ॥३७॥

प्रतिनन्द्य स तत् याञ्चां कर्तुं आवश्यकं गतः निममज्ज बृहत् ध्यायन् कालिन्दी सलिले शुभे ॥३७॥

स तत्	उन्होंने उस (राजा) की	**गतः**	चले गये तथा
याञ्चां	प्रार्थना	**बृहत् ध्यायन्**	परम ब्रह्मका ध्यान करते
प्रतिनन्द्य	स्वीकार करके	**कालिन्दी**	यमुनाके
आवश्यकं	आवश्यक	**शुभे सलिले**	पवित्र जलमें
कर्तुं	(दैनिक कृत्य) करने	**निममज्ज**	डुबकी लगायी ॥३७॥

मुहूर्तार्धावशिष्टायां द्वादश्यां पारणं प्रति ।
चिन्तयामास धर्मज्ञो द्विजैस्तद्धर्मसङ्कटे ॥३८॥

मुहूर्त अर्ध अवशिष्टायां द्वादश्यां पारणं प्रति चिन्तयामास धर्मज्ञः द्विजैः तत् धर्म सङ्कटे ॥३८॥

पारणं प्रति	पारणके लिए	**सङ्कटे**	संकटके विषयमें
मूहूर्त अर्धं	आधा मुहूर्त	**धर्मज्ञः**	धर्मज्ञ राजा
द्वादश्यां	द्वादशीके	**द्विजैः**	ब्राह्मणोंके साथ
अवशिष्टायां	बच रहनेपर	**चिन्तयामास**	विचार करने लगे ॥३८॥
तत् धर्म	उस धर्म		

ब्राह्मणातिक्रमे दोषो द्वादश्यां यदपारणे ।
यत् कृत्वा साधु मे भूयादधर्मो वान मां स्पृशेत् ॥३९॥

ब्राह्मण अतिक्रमे दोषः द्वादश्यां यत् अपारणे यत् कृत्वा साधु मे भूयात् अधर्मः वा न मां स्पृशेत् ॥३९॥

ब्राह्मण अतिक्रमे	ब्राह्मणका अतिक्रमण (उससे पहिले भोजन करने) में	**दोषः**	दोष है,
		यत् कृत्वा	जो करनेसे
		मे साधु भूयात्	मेरा भला हो
		वा मां	तथा मुझे
द्वादश्यां अपारणे यत्	तथा द्वादशीमें पारण न करनेमें क्योंकि (दोनोंमें ही)	**अधर्मः न स्पृशेत्**	अधर्म न लगे (वह बतलावें) ॥३९॥

अम्भसा केवलेनाथ करिष्ये व्रतपारणम् ।
प्राहुरब्भक्षणं विप्रा ह्यशितं नाशितं च तत् ॥४०॥

अम्भसा केवलेन अथ करिष्ये व्रत पारणं प्राहुः अप्भक्षणं विप्रा हि अशितं न अशितं च तत् ॥४०॥

विप्रा अथ	ब्राह्मणो ! अतः	**हि तत्**	क्योंकि उसे
केवलेन	केवल	**अशितं च**	भोजन करना तथा
अम्भसा	जलसे	**अशितं न**	भोजन न करना
व्रत पारणं	व्रतका पारण	**प्राहुः**	(श्रुतिने) कहा है ॥४०॥
करिष्ये	करूँगा		

इत्यपः प्राश्य राजर्षिश्चिन्तयन् मनसाच्युतम् ।
प्रत्यचष्ट कुरुश्रेष्ठ द्विजागमनमेव सः ॥४१॥

इति अपः प्राश्य राजर्षिः चिन्तयन् मनसा अच्युतं प्रति आचष्ट कुरु श्रेष्ठ द्विज आगमनं एव सः ॥४१॥

कुरु श्रेष्ठ	कुरुश्रेष्ठ परीक्षित !	**चिन्तयन्**	चिन्तन करते हुए
इति	इस प्रकार (कहकर)	**द्विज**	ब्राह्मण दुर्वासाके
सः राजर्षिः	वे राजर्षि	**आगमनं एव**	आनेकी ही
अपः प्राश्य	जल पीकर	**प्रति आचष्ट**	प्रतीक्षा करने लगे ॥४१॥
मनसा अच्युतं	मनसे अच्युत भगवान्‌का		

दुर्वासा यमुनाकूलात् कृतावश्यक आगतः ।
राज्ञाभिनन्दितस्तस्य बुबुधे चेष्टितं धिया ॥४२॥

दुर्वासा यमुना कूलात् कृत आवश्यक आगतः राज्ञः अभिनन्दितः तस्य बुबुधे चेष्टितं धिया ॥४२॥

यमुना कूलात्	यमुना किनारेसे	**अभिनन्दितः**	स्वागत किये जानेपर
कृत आवश्यक	आवश्यक कृत्य करके	**धिया तस्य**	बुद्धि द्वारा उनकी
आगतः दुर्वासा	आये दुर्वासाने	**चेष्टितं बुबुधे**	चेष्टा समझ लीं ॥४२॥
राज्ञः	राजाके द्वारा		

मन्युना प्रचलद्गात्रो भ्रुकुटीकुटिलाननः ।
बुभुक्षितश्च सुतरां कृताञ्जलिमभाषत ॥४३॥

मन्युना प्रचलत् गात्रः भ्रुकुटी कुटिल आननः बुभुक्षितः च सुतरां कृताञ्जलि अभाषत ॥४३॥

बुभुक्षितः च	भूखे होनेके कारण	**आननः**	मुख
सुतरां मन्युना	और भी आये क्रोधसे	**कृताञ्जलि**	हाथ जोड़े
प्रचलत् गात्रः	काँपते शरीर		(राजा) से
भ्रुकुटी कुटिल	टेढ़ी भौंहोंवाले	**अभाषत**	बोले ॥४३॥

अहो अस्य नृशंसस्य श्रियोन्मत्तस्य पश्यत ।
धर्मव्यतिक्रमं विष्णोरभक्तस्येशमानिनः ॥४४॥

अहो अस्य नृशंसस्य श्रिय उन्मत्तस्य पश्यत धर्म व्यतिक्रमं विष्णोः अभक्तस्य ईश मानिनः ॥४४॥

अहो	'अरे,	**अस्य**	इस
विष्णोः	हरि-	**श्रिय उन्मत्तस्य**	धनोन्मत्तका
अभक्तस्य	भक्तिहीन	**धर्म व्यतिक्रमं**	धर्मोल्लंघन तो
ईश	अपनेको समर्थ	**पश्यत**	देखो ॥४४॥
मानिनः	माननेवाले		

यो मामतिथिमायातमातिथ्येन निमन्त्र्य च ।
अदत्त्वा भुक्तवांस्तस्य सद्यस्ते दर्शये फलम् ॥४५॥

यः मां अतिथि आयातं आतिथ्येन निमन्त्र्य च अदत्त्वा भुक्तवान् तस्य सद्यः ते दर्शये फलम् ॥४५॥

मां अतिथि	मेरे अतिथि रूपमें	**भुक्तवान्**	भोजन कर लिया
आयातं च	आनेपर तथा	**तस्य ते सद्यः**	उसका तुझे तत्काल
आतिथ्येन	आतिथ्य भावसे	**फलं दर्शये**	फल दिखलाता हूँ'
निमन्त्र्य	निमन्त्रित करके		॥४५॥
यः अदत्त्वा	जिसने बिना दिये		

एवं ब्रुवाण उत्कृत्य जटां रोषविदीपितः ।
तया स निर्ममे तस्मै कृत्यां कालानलोपमाम् ॥४६॥

एवं ब्रुवाणं उत्कृत्य जटां रोष विदीपितः तया स निर्ममे तस्मै कृत्यां काल अनल उपमाम् ॥४६॥

एवं ब्रुवाणं	इस प्रकार कहते हुए	**तस्मै**	उस (राजा) के लिए
स रोष	उन्होंने क्रोधसे	**काल अनल**	कालाग्निके
विदीपितः	प्रज्वलित होकर	**उपमां**	समान
जटां उत्कृत्य	जटा उखाड़कर	**कृत्यां**	कृत्या (राक्षसी)
स तया	उन्होंने उससे	**निर्ममे**	बनायी ॥४६॥

तामापतन्तीं ज्वलतीमसिहस्तां पदा भुवम् ।
वेपयन्तीं समुद्वीक्ष्य न चचाल पदान्नृपः ॥४७॥

तां आपतन्तीं ज्वलतीं असिहस्तां पदा भुवं वेपयन्तीं समुद्वीक्ष्य न चचाल पदात् नृपः ॥४७॥

तां ज्वलतीं	उस प्रज्वलित	**समुद्वीक्ष्य**	ठीक-ठीक देखकर
असिहस्तां	हाथमें तलवार लिये		भी
पदा भुवं	पैरोंसे पृथ्वीको	**नृपः पदात्**	राजा अपने स्थानसे
वेपयन्तीं	कँपातीको	**चचाल न**	हिले नहीं ॥४७॥
आपतन्तीं	झपटती आती		

प्राग्दिष्टं भृत्यरक्षायां पुरुषेण महात्मना ।
ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्धाहिमिव पावकः ॥४८॥

प्राक् दिष्टं भृत्य रक्षायां पुरुषेण महात्मना ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्ध अहिं इव पावकः ॥४८॥

महात्मना	परमात्मा	**तां कृत्यां**	उस कृत्याको
पुरुषेण	परम पुरुष द्वारा	**क्रुद्ध अहिं**	क्रोधित सर्पको
भृत्य	अपने सेवककी	**पावकः इव**	दावाग्निके समान
रक्षायां	रक्षाके लिए	**ददाह**	भस्म कर दिया
प्राक् दिष्टं	पहिलेसे निर्दिष्ट		॥४८॥
चक्रं	चक्रने		

तदभिद्रवदुद्वीक्ष्य स्वप्रयासं च निष्फलम् ।
दुर्वासा दुद्रुवे भीतो दिक्षु प्राणपरीप्सया ॥४९॥

तत् अभिद्रवत् उद्वीक्ष्य स्वप्रयासं च निष्फलं दुर्वासा दुद्रुवे भीतः दिक्षु प्राण परीप्सया ॥४९॥

तत् अभिद्रवत्	उसे अपनी ओर आते	**भीतः**	डरकर
च	तथा	**प्राण परीप्सया**	प्राण रक्षाके लिए
स्वप्रयासं	अपने प्रयत्नको	**दुर्वासा दिक्षु**	दुर्वासा दिशाओंमें
निष्फलं	व्यर्थ हुआ	**दुद्रुवे**	दौड़ने लगे ॥४९॥
उद्वीक्ष्य	देखकर		

तमन्वधावद् भगवद्रथाङ्गं
दावाग्निरुद्धूतशिखो यथाहिम् ।
तथानुषक्तं मुनिरीक्षमाणो
गुहां विविक्षुः प्रससार मेरोः ॥५०॥

तं अन्वधावत् भगवत् रथाङ्गं दाव अग्निः उद्धूत शिखः यथा अहिं तथा अनुषक्तं मुनिः ईक्षमाणः गुहां विविक्षुः प्रससार मेरोः ॥५०॥

यथा अहिं	जैसे सर्पके पीछे	**अनुषक्तं**	उसे पीछे लगा
उद्धूत शिखः	उठती लपटों वाला	**ईक्षमाणः**	देखकर
दाव अग्निः	दावानल (दौड़े)	**मुनिः**	दुर्वासा
भगवत्	भगवान्का	**मेरोः गुहां**	सुमेरुकी गुफामें
रथाङ्गं	चक्र	**विविक्षुः**	घुसनेकी
तं अन्वधावत्	उनके पीछे दौड़ पड़ा	**प्रससार**	इच्छासे दौड़े ॥५०॥
तथा	इस प्रकार		

दिशो नभः क्ष्मां विवरान् समुद्रां-
ल्लोकान् सपालांस्त्रिदिवं गतः सः ।
यतो यतो धावति तत्र तत्र
सुदर्शनं दुष्प्रसहं ददर्श ॥५१॥

दिशः नभः क्ष्मां विवरान् समुद्रान् लोकान् सपालान् त्रिदिवं गतः सः यतः यतः धावति तत्र तत्र सुदर्शनं दुःप्रसहं ददर्श ॥५१॥

दिशः	दिशाओंमें,	**त्रिदिवं गतः**	स्वर्ग गये; किन्तु
नभः	आकाशमें,	**सः यतः**	वे जहां
क्ष्मां	पृथ्वीपर,	**यतः धावति**	जहां दौड़े
विवरान्	पातालादिमें,	**तत्र तत्र**	वहां-वहां
समुद्रान्	समुद्रोंमें	**दुःप्रसहं**	दुःसह
सपालान्	लोकपालोंके	**सुदर्शनं ददर्श**	सुदर्शन-चक्रको देखा ॥५१॥
लोकान्	लोकोंमें,		

अलब्धनाथः स यदा कुतश्चित्
संत्रस्तचित्तोऽरणमेषमाणः ।
देवं विरिञ्चं समगाद् विधात-
स्त्राह्यात्मयोनेऽजिततेजसो माम् ॥५२॥

अलब्ध नाथः स यदा कुतश्चित् संत्रस्त चित्तः अरणं एषमाणः देवं विरिञ्चं सम अगात् विधातः त्राहि आत्मयोने अजित तेजसः माम् ॥५२॥

संत्रस्त चित्तः	भय विह्वल चित्त	**सम अगात्**	समीप गये,
स यदा	जब उन्हें	**विधातः**	(बोले) 'हे सृष्टि कर्ता !
अरणं	रक्षक		
एषमाणः	ढूंढ़ते हुए	**आत्मयोने**	स्वयंभू !
कुतश्चित्	कहीं भी	**अजित**	अजित श्रीहरिके
नाथः	रक्षक स्वामी	**तेजसः**	तेजसे
अलब्ध	नहीं मिला	**मां त्राहि**	मेरी रक्षा कीजिए' ॥५२॥
देवं विरिञ्चं	ब्रह्मदेवके		

ब्रह्मोवाच

स्थानं मदीयं सहविश्वमेतत्
क्रीडावसाने द्विपरार्धसंज्ञे ।

भ्रूभङ्गमात्रेण हि संदिधक्षोः
कालात्मनो यस्य तिरोभविष्यति ॥५३॥

स्थानं मत् इयं सह विश्वं एतत् क्रीडा अवसाने द्विपरार्ध संज्ञे भ्रू भंग मात्रेण हि संदिधक्षोः काल आत्मनः यस्य तिरो भविष्यति ॥५३॥

द्विपरार्ध संज्ञे	द्विपरार्ध संज्ञक	**यस्य**	जिन
क्रीडा	भगवतल्लीला	**काल आत्मनः**	कालस्वरूपकी
अवसाने	समाप्तिके समय	**भ्रू भंग**	भ्रू संकेत
मत् इयं स्थानं	मेरा यह स्थान	**मात्रेण हि**	मात्रसे ही
सह एतत् विश्वं	इस विश्वके साथ	**तिरो**	तिरोहित
संदिधक्षोः	भस्म कर देनेकी इच्छा करनेपर	**भविष्यति**	हो जायगा ॥५३॥

अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः
प्रजेशभूतेशसुरेशमुख्याः ।
सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्ना
मूर्ध्न्यर्पितं लोकहितं वहामः ॥५४॥

अहं भवः दक्ष भृगु प्रधानाः प्रजेश भूतेश सुरेश मुख्याः सर्वे वयं यत् नियमं प्रपन्ना मूर्ध्नि अर्पितं लोकहितं वहामः ॥५४॥

अहं भवः	मैं, शंकरजी,	**यत् नियमं**	जिनके नियमोंकी
दक्ष भृगु	दक्ष, भृगु	**प्रपन्ना**	शरणमें रहकर
प्रधानाः	जिनमें प्रधान हैं वे	**मूर्ध्नि अर्पितं**	सिरपर दिये
प्रजेश, भूतेश	प्रजापति, भूतेश्वर,	**लोकहितं**	लोकहितको
सुरेश मुख्याः	सुरेश्वर प्रमुख	**वहामः**	ढोते हैं ॥५४॥
वयं सर्वे	हम सब		

श्रीशुक उवाच–*

प्रत्याख्यातो विरिञ्चेन विष्णुचक्रोपतापितः ।
दुर्वासाः शरणं यातः शर्वं कैलासवासिनम् ॥५५॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

प्रत्याख्यातः विरिञ्चेन विष्णु चक्र उपतापितः दुर्वासाः शरणं यातः शर्वं कैलास वासिनम् ॥५५॥

विरिञ्चेन	ब्रह्माजी द्वारा
प्रत्याख्यातः	प्रत्युत्तर दे देनेपर
विष्णु	भगवान् बिष्णुके
चक्र	चक्रसे
उपतापितः	संतप्त किये गये
दुर्वासाः	दुर्वासा
कैलास वासिनं	कैलासवासी
शर्वं	शंकरजी की
शरणं यातः	शरण गये ॥५५॥

श्रीरुद्र उवाच

वयं न तात प्रभवाम भूम्नि
यस्मिन् परेऽन्येऽप्यजजीवकोशाः ।
भवन्ति काले न भवन्ति हीदृशाः
सहस्रशो यत्र वयं भ्रमामः ॥५६॥

वयं न तात प्रभवाम भूम्नि यस्मिन् परे अन्ये अपि अज जीवकोशाः भवन्ति काले न भवन्ति हि ईदृशाः सहस्रशः यत्र वयं भ्रमामः ॥५६॥

तात	तात !
यस्मिन् परे	जिन परम पुरुषमें
अन्ये अपि	दूसरे भी
अज जीवकोशाः	ब्रह्मादिके ब्रह्मण्ड
काले भवन्ति	समयपर उत्पन्न होते
न भवन्ति	तथा लीन हो जाते हैं
यत्र वयं	जिनमें हम जैसे
सहस्रशः	सहस्रों
भ्रमामः	भटकते रहते हैं,
भूम्नि	उन भूमाके सम्बन्धमें
वयं न प्रभवाम	हम नहीं समर्थ हैं ॥५६॥

अहं सनत्कुमारश्च नारदो भगवानजः ।
कपिलोऽपान्तरतमो देवलो धर्म आसुरिः ॥५७॥

अहं सनत् कुमारः च नारदः भगवान् अजः कपिलः अपान्तरतमः देवलः धर्म आसुरिः ॥५७॥

अहं	मै,	**कपिलः**	कपिल,
सनत् कुमारः	सनत्कुमारादि,	**अपान्तरतमः**	अपान्तरतम,
च नारदः	तथा नारदजी,	**देवलः धर्म**	देवल, धर्मराज,
भगवान् अजः	भगवान् ब्रह्मा,	**आसुरिः**	आसुरि ॥५७॥

मरीचिप्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशाः पारदर्शनाः ।
विदाम न वयं सर्वे यन्मायां मायायाऽऽवृताः ॥५८॥

मरीचि प्रमुखाः च अन्ये सिद्धेशाः पारदर्शनाः विदाम न वयं सर्वे यत् मायां मायया आवृताः ॥५८॥

मरीचि प्रमुखाः	मरीचि प्रधान	**मायया आवृताः**	मायासे आवृत होनेसे
अन्ये च	दूसरे भी	**वयं सर्वे**	हम सब
पारदर्शनाः	सर्वज्ञ	**यत् मायां**	जिनकी मायाको
सिद्धेशाः	सिद्धेश्वर गण	**न विदाम**	नहीं जानते ॥५८॥

तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः ।
तमेव शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति ॥५९॥

तस्य विश्वेश्वरस्य इदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः तं एव शरणं याहि हरिः ते शं विधिास्यति ॥५९॥

हि तस्य	क्योंकि उन	**तं एव**	उन्हींकी ही
विश्वेश्वरस्य	विश्वेश्वरका	**शरणं याहि**	शरणमें जाओ,
इदं शस्त्रं	यह शस्त्र है	**हरिः ते**	श्रीहरि तुम्हारा
नः	हम सबके लिए	**शं विधास्यति**	कल्याण करेंगे ॥५९॥
दुर्विषहं	दुस्सह है,		

श्रीशुक उवाच*

ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ ।
वैकुण्ठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह ॥६०॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ततः निराशः दुर्वासाः पदं भगवतः ययौ वैकुण्ठ आख्यं यत् अध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह ॥६०॥

ततः निराशः	तब निराश होकर	**श्रिया सह**	लक्ष्मीजीके साथ
दुर्वासाः	दुर्वासाजी	**श्रीनिवासः**	भगवान श्रीनिवास
वैकुण्ठ आख्यं	वैकुण्ठ नामक	**अध्यास्ते**	विराजते हैं,
भगवतः पदं	भगवानके धाम	**ययौ**	गये ॥६०॥
यत्	जहां		

संदह्यमानोऽजितशस्त्रवह्निना
तत्पादमूले पतितः सवेपथुः ।
आहाच्युतानन्त सदीप्सित प्रभो
कृतागसं माव हि विश्वभावन ॥६१॥

सन्दह्यमानः अजित शस्त्र वह्निना तत् पादमूले पतितः स वेपथुः आह अच्युत अनन्त सत् ईप्सित प्रभो कृत आगसं मा अव हि त्रिश्व भावन ॥६१॥

अजित शस्त्र	भगवान्‌के शस्त्रकी	**सत् ईप्सित**	भक्तप्रिय !
वह्निना	अग्निसे	**प्रभो**	प्रभो !
सन्दह्यमानः	जलते हुए	**मा कृत आगसं**	मुझ अपराधीकी
तत्	उन भगवानके	**अव**	रक्षा कीजिए
पादमूले	चरणोंपर	**हि**	क्योंकि आप
स वेपथुः	वे काँपते हुए	**विश्वभावन**	विश्वरक्षक हैं
पतितः आह	गिरकर बोले–		॥६१॥
अच्युत अनन्त	'अच्युत ! अनन्त !		

अजानता ते परमानुभावं
कृतं मयाघं भवतः प्रियाणाम् ।
विधेहि तस्यापचितिं विधात-
र्मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि ॥६२॥

अजानता ते परम अनुभावं कृतं मया अघं भवतः प्रियाणां विधेहि तस्य अपचितिं विधातः मुच्येत यत् नाम्नि उदिते नारकः अपि ॥६२॥

ते परम	आपका परम	**विधातः**	क्योंकि आप ही निर्माता है
अनुभावं	प्रभाव		
अजानता	न जाननेके कारण	**यत् नाम्नि**	और जिनके नामको
भवतः प्रियाणां	आपके प्रिय भक्तका	**उदिते**	उच्चारण करके
मया अघं कृतं	मैंने अपराध किया है,	**नारक अपि**	नारकीय जीव भी
तस्य अपचितिं	उसका प्रतिकार	**मुच्येत**	(नरकसे) छूट जाता है' ॥६२॥
विधेहि	कीजिए,		

श्रीभगवानुवाच

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥६३॥

अहं भक्त पराधीनः हि अस्वतन्त्र इव द्विज साधुभिः ग्रस्त हृदयः भक्तैः भक्तजन प्रियः ॥६३॥

द्विज	ब्राह्मण !	**पराधीनः**	पराधीन हूँ,
हि	क्योंकि	**साधुभिः भक्तैः**	साधु भक्तों द्वारा
अस्वतन्त्र इव	अस्वतन्त्रके समान	**ग्रस्त हृदयः**	मेरा हृदय पकड़ लिया गया है ॥६३॥
भक्तजन प्रियः	भक्तोंका प्रिय		
अहं भक्त	मैं भक्तोंके		

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा ॥६४॥

न अहं आत्मानं आशासे मद् भक्तैः साधुभिः विना श्रियं च आत्यन्तिकीं ब्रह्मन् एषां गतिः अहं परा ॥६४॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन !	**अहं**	मैं ही हूँ उन
एषां परा गतिः	जिनकी परम गति	**मद् भक्तैः**	मेरे भक्त

साधुभिः विना	सत्पुरुषोंके बिना	**श्रियं न**	लक्ष्मीको भी नहीं
अहं आत्मानं	मैं अपना आत्मा	**आशासे**	चाहता ॥६४॥
च आत्यन्तिकीं	तथा अनपायिनी		

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥६५॥

ये दारा आगार पुत्र आप्तान् प्राणान् वित्तं इमं परं हित्वा मां शरणं याताः कथं तान् त्यक्तुम् उत्सहे ॥६५॥

ये दारा	जो स्त्री,	**हित्वा मां**	(सब) छोड़कर मेरी
आगार	घर,	**शरणं याताः**	शरण आये हैं,
पुत्र आप्तान्	पुत्र, गुरुजन,	**तान् त्यक्तुं**	उन्हें त्यागनेका
प्राणान् वित्तं	प्राण, धन,	**कथं उत्सहे**	कैसे उत्साह कर
इमं परं	यह लोक, परलोक		सकता हूँ ॥६५॥

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः ।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥६६॥

मयि निर्बद्ध हृदयाः साधवः समदर्शनाः वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत् स्त्रियः सत् पतिं यथा ॥६६॥

मयि निर्बद्ध	मुझमें बँधे	**वशीकुर्वन्ति**	वशमें कर लेते हैं
हृदयाः	हृदयवाले	**यथा सत्**	जैसे सती
समदर्शनाः	समदर्शी	**स्त्रियः**	स्त्री
साधवः	सत्पुरुष	**सत पतिं**	सत्पुरुष पतिको
भक्त्या मां	भक्ति द्वारा मुझे		॥६६॥

मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम् ।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम् ॥६७॥

मत् सेवया प्रतीतं च सालोक्य आदि च तुष्टयं न इच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतः अन्यत्ः कालविद्रुतम् ॥६७॥

मत् सेवया	मेरी सेवासे	**च तुष्टयं**	चारों प्रकारके (मोक्ष) भी
पूर्णाः	आप्तकाम	**न इच्छन्ति**	नहीं चाहते
सेवया	उस सेवासे	**कालविद्रुतं**	काल द्वारा नष्ट होने-
प्रतीतं	प्राप्त होनेवाले		वाले (इन्द्रादि पदों)
सालोक्य	सालोक्य (सारूप्य, सामीप्य, सार्ष्टि)	**अन्यतः कुतः**	दूसरे (पदों) की चर्चा क्या ॥६७॥
आदि	आदि		

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥६८॥

साधवः हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं तु अहं मत् अन्यत् ते न जानन्ति न अहं तेभ्यः मनाक् अपि ॥६८॥

साधवः मह्यं	साधु पुरुष मेरे	**न जानन्ति**	कुछ नहीं जानते,
हृदयं	हृदय हैं	**अहं तेभ्यः**	मैं उनसे
तु साधूनां	और साधुओंका	**मनाक् अपि**	तनिक भी
हृदयं अहं	हृदय मैं हूँ,	**न**	(पृथक प्रिय) नहीं है ॥६८॥
ते मत् अन्यत्	वे मुझसे भिन्न		

उपायं कथयिष्यामि तव विप्र शृणुष्व तत् ।
अयं ह्यात्माभिचारस्ते यतस्तं यातु वै भवान् ॥६९॥

उपायं कथयिष्यामि तव विप्र शृणुष्व तत् अयं हि आत्म अभिचारः ते यतः तं यातु वै भवान् ॥६९॥

विप्र तव	ब्रह्मन् ! तुमसे	**अभिचारः**	अभिचारका
उपायं	उपाय	**अयं**	यह फल मिला है
कथयिष्यामि	बतलाता हूँ	**वै भवान्**	निश्चय तुम
तत् शृणुष्व	उसे सुनो	**तं यातु**	उसीके पास जाओ ॥६९॥
हि यतः ते	क्योंकि जहाँसे तुम्हें		
आत्म	अपने		

तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥७०॥

तपः विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुः अन्यथा ॥७०॥

तपः च विद्या	तपस्या तथा विद्या	**दुर्विनीतस्य**	अविनयी धृष्टके लिए
उभे विप्राणां	दोनों ब्राह्मणोंके लिए	**कर्तुः**	प्रयोग करनेवालेको
		अन्यथा कल्पेते	उलटा फल देते हैं ॥७०॥
निःश्रेयसकरे	परम कल्याणकारी हैं		
ते एव	किन्तु वही		

ब्रह्मंस्तद् गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् ।
क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति ॥७१॥

ब्रह्मन् तत् गच्छ भद्रं ते नाभाग तनयं नृपं क्षमापय महाभागं ततः शान्तिः भविष्यति ॥७१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**नृपं गच्छ**	राजाके पास जाइये
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो	**क्षमापय**	उनसे क्षमा कराओ
तत् महाभाग	अतः महाभाग	**ततः शान्तिः**	इससे (तुम्हें) शान्ति
नाभाग तनयं	नाभागनन्दन	**भविष्यति**	होगो ॥७१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
नवमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

एवं भगवताऽऽदिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापितः ।
अम्बरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत् ॥१॥

एवं भगवता आदिष्टः दुर्वासाः चक्र तापितः अम्बरीषं उप आवृत्य तत् पादौ दुःखितः अग्रहीत् ॥१॥

एवं	इस प्रकार	**अम्बरीषं**	अम्बरीषके
भगवता	भगवानके	**उप आवृत्य**	समीप लौटकर
आदिष्टः	आदेश देनेपर	**दुःखितः**	दुःखी होकर
चक्र तापितः	चक्र द्वारा संतप्त किये गये	**तत् पादौ**	उनके पैर
		अग्रहीत्	पकड़ लिए ॥१॥
दुर्वासाः	दुर्वासाने		

तस्य सोद्यमनं वीक्ष्य पादस्पर्शविलज्जितः ।
अस्तावीत् तद्धरेरस्त्रं कृपया पीडितो भृशम् ॥२॥

तस्य स उद्यमनं वीक्ष्य पादस्पर्श विलज्जितः अस्तावीत् तत् हरेः अस्त्रं कृपया पीडितः भृशम् ॥२॥

तस्य स	उन (दुर्वासाजी) की वह	**भृशं पीडितः**	अत्यन्त पीड़ित होकर
उद्यमनं वीक्ष्य	चेष्टा देखकर	**तत् हरेः**	उस श्रीहरिके
पादस्पर्श	पैर छूनेसे	**अस्त्रं**	अस्त्रकी
विलज्जितः	बहुत लज्जित होकर	**अस्तावीत्**	स्तुति करने लगे ॥२॥
कृपया	कृपाके कारण		

अम्बरीष उवाच

त्वमग्निर्भगवान् सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः ।
त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च ॥३॥

त्वं अग्निः भगवान् सूर्यः त्वं सोमः ज्योतिषां पतिः त्वं आपः त्वं क्षितिः व्योम वायुः मात्रा इन्द्रियाणि च ॥३॥

त्वं अग्निः	तुम अग्नि हो,	**त्वं क्षितिः**	तुम पृथ्वी,
भगवान् सूर्यः	भगवान् सूर्य हो,	**व्योम वायुः**	आकाश, वायु,
ज्योतिषां पतिः	तारागणोंके स्वामी	**मात्रा च**	तन्मात्राएँ तथा
सोमः त्वं	चन्द्रमा तुम्ही हो,	**इन्द्रियाणि**	इन्द्रियां हो ॥३॥
त्वं आपः	तुम जल हो,		

सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय ।
सर्वास्त्रघातिन् विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते ॥४॥

सुदर्शन नमः तुभ्यं सहस्र अर अच्युत प्रिय सर्व अस्त्रघातिन् विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते ॥४॥

सहस्र अर	सहस्र अरों वाले !	**सुदर्शन**	सुदर्शन !
अच्युत प्रिय	श्रीअच्युतके प्रिय !	**तुभ्यं नमः**	तुमको नमस्कार !
सर्व	सर्व	**विप्राय**	विप्रवरको
अस्त्रघातिन्	अस्त्र नाशक !	**स्वस्ति भूया**	शान्ति हो ॥४॥
इडस्पते	पृथ्वी रक्षक !		

त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् ।
त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥५॥

त्वं धर्मः त्वं ऋतं सत्यं त्वं यज्ञः अखिल यज्ञ भुक् त्वं लोकपालः सर्व आत्मा त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥५॥

त्वं धर्मः	तुम धर्म हो,	**त्वं लोकपालः**	तुम लोकोंके पालक
त्वं ऋतं	तुम ऋत और	**सर्व आत्मा**	सबके आत्मा हो
सत्यं	सत्य हो,	**त्वं परं पौरुषं**	तुम परम पुरुषके
त्वं अखिल यज्ञ	तुम सब यज्ञोंके	**तेजः**	तेज हो ॥५॥
भुक् यज्ञः	भोक्ता यज्ञपुरुष हो,		

नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे
ह्यधर्मशीलासुरधूमकेतवे ।
त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे
मनोजवायाद्भुतकर्मणे गृणे ॥६॥

नमः सुनाभ अखिल धर्म सेतवे हि अधर्मशील असुर धूमकेतवे त्रैलोक्य गोपाय विशुद्ध वर्चसे मनोजवाय अद्भुत कर्मणे गृणे ॥६॥

अखिल धर्म	समस्त धर्मोंकी
सेतवे	मर्यादा स्वरूप
हि	क्योंकि
अधर्मशील	अधर्माचारी
असुर	असुरोंके लिए
धूमकेतवे	धूमकेतु के समान,
त्रैलोक्य	त्रिलोकीकी
गोपाय	रक्षाके लिए
विशुद्ध वर्चसे	शुद्ध तेजोमय
सुनाभ नमः	चक्रको नमस्कार,
मनोजवाय	मनके समान वेगवाले
अद्भुत कर्मणे	अद्भुतकर्मा
गृणे	तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥६॥

त्वत्तेजसा धर्ममयेन संहृतं
तमः प्रकाशश्च धृतो महात्मनाम् ।
दुरत्ययस्ते महिमा गिरां पते
त्वद्रूपमेतत् सदसत् परावरम् ॥७॥

त्वत् तेजसा धर्ममयेन संहृतं तमः प्रकाशः च धृतः महात्मनां दुरत्ययः ते महिमा गिरां पते त्वत् रूपं एतत् सत् असत् पर अवरम् ॥७॥

गिरां पते	वाणीके अधीश्वर !
त्वत्	तुम्हारे
धर्ममयेन	धर्ममय
तेजसा	तेजने
महात्मनां	महात्माओंके
तमः	अज्ञानको (नष्ट करके)
प्रकाशः च	ज्ञानको
धृतः	धारण किया है,
ते महिमा	तुम्हारी महिमा
दुरत्ययः	अपार है,
एतत् सत्	यह कारण
असत्	कार्य रूप
पर अवरं	श्रेष्ठ-कनिष्ठ जगत्
त्वत्	तुम्हारी ही
रूपं	स्वरूप है ॥७॥

यदा विसृष्टस्त्वमनञ्जनेन वै
बलं प्रविष्टोऽजित दैत्यदानवम् ।
बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि
वृक्णन्नजस्रं प्रधने विराजसे ॥८॥

यदा विसृष्टः त्वं अनञ्जनेन वै बलं प्रविष्टः अजित दैत्य दाननं बाहु उदर उरु अङ्घ्रि शिरः धराणि वृक्णन् अजस्रं प्रधने विराजसे ॥८॥

अजित त्वं	अजित ! तुम	**उरु अङ्घ्रि**	जांघें, पैर,
यदा	जब	**शिरः धराणि**	सिर, धड़
अनञ्जनेन	निरञ्जन प्रभु द्वारा	**अजस्रं**	निरन्तर
विसृष्टः	छोड़े जानेपर	**वृक्णन्**	काटने लगते हो
दैत्य दानवं	दैत्य-दानवोंकी	**वै**	तब
बलं	सेनामें	**प्रधने**	निश्चय रणभूमिमें
प्रविष्टः	प्रवेश करके	**विराजसे**	सुशोभित होते हो
बाहु उदर	भुजाएँ पेट,		॥८॥

स त्वं जगत्त्राण खलप्रहाणये
निरूपितः सर्वसहो गदाभृता ।
विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे
विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥९॥

स त्वं जगत् त्राण खल प्रहाणये निरूपितः सर्व सहः गदाभृता विप्रस्य च अस्मत् कुलदैव हेतवे विधेहि भद्रं तत् अनुग्रहः हि नः ॥९॥

स त्वं	वह तुम	**अस्मत्**	हमारे
जगत् त्राण	जगत् रक्षक	**कुलदैव**	कुल-देवताके
सर्व	सब (प्रत्याघात)	**हेतवे विप्रस्य**	लिये ब्राह्मणका
सहः	सह लेनेवाले	**भद्रं विधेहि**	कल्याण कीजिये
गदाभृता	भगवान गदाधर द्वारा	**हि तत्**	क्योंकि वह
		नः	हमपर
खल प्रहाणये	दुष्ट-दमनके लिए	**अनुग्रहः**	अनुग्रह होगा ॥९॥
निरूपितः च	नियुक्त हो और		

यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ।
कुलं नो विप्रदैवं चेद् द्विजो भवतु विज्वरः ॥१०॥

यदि अस्ति दत्तं इष्टं वा स्वधर्मः वा स्व अनुष्ठितः कुलं नः विप्र दैवं चेत् द्विजः भवतु विज्वरः ॥१०॥

यदि दत्तं	यदि दान	**चेत् नः कुलं**	यदि हमारे कुल
इष्टं वा	यज्ञ अथवा	**विप्र दैवं**	ब्राह्मणको देवता
स्वधर्मः वा	अपने धर्मका ही		मानता है तो
स्व	भली प्रकार	**द्विजः**	ये ब्राह्मणदेव
अनुष्ठितः	(हमने) पालन किया है,	**विज्वरः भवतु**	तापहीन हो जायँ ॥१०॥

यदि नो भगवान् प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः ।
सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥११॥

यदि नः भगवान् प्रीत एकः सर्वगुण आश्रयः सर्वभूत आत्म भावेन द्विजः भवतु विज्वरः ॥११॥

सर्वभूत	सब प्राणियोंको	**एकः भगवान्**	अद्वितीय भगवान्
आत्म	आत्मरूपसे	**यदि नः प्रीतः**	यदि हमपर प्रसन्न
भावेन	देखनेके कारण		हैं तो
सर्वगुण	सब गुणोंके	**द्विजः विज्वरः**	विप्रवर तापहीन
आश्रयः	आधार	**भवतु**	हो जायँ ॥११॥

श्रीशुक उवाच—

इति संस्तुवतो राज्ञो विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ।
अशाम्यत् सर्वतो विप्रं प्रदहद् राजयाच्ञया ॥१२॥

इति संस्तुवतः राज्ञः विष्णु चक्रं सुदर्शनं अशाम्यत् सर्वतः विप्रं प्रदहत् राजयाञ्चया ॥१२॥

इति राज्ञः	इस प्रकार राजाके
संस्तुवतः	स्तुति करनेपर
विष्णु	भगवान विष्णुका
चक्रं	चक्र
सुदर्शनं	सुदर्शन जो
विप्रं	ब्राह्मणको
प्रदहत्	जला रहा था
राजयाञ्चया	राजाकी प्रार्थनासे
सर्वतः	सब ओरसे
अशाम्यत्	शान्त हो गया ॥१२॥

स मुक्तोऽस्त्राग्नितापेन दुर्वासाः स्वस्तिमांस्ततः ।
प्रशशंस तमुर्वीशं युञ्जानः परमाशिषः ॥१३॥

स मुक्तः अस्त्र अग्नि तापेन दुर्वासाः स्वस्तिमान् ततः प्रशशंस तं उर्वी ईशं युञ्जानः परम आशिषः ॥१३॥

स दुर्वासाः	वे दुर्वासाजी
अस्त्र अग्नि	अस्त्रकी अग्निके
तापेन मुक्तः	तापसे छूटकर
ततः	तब
स्वस्तिमान्	स्वस्थ-चित्त होकर
परम आशिषः	परम आशीर्वाद
युञ्जानः	देते हुए
तं उर्वी ईशं	उन भूपति अम्बरीष की
प्रशशंस	प्रशंसा करने लगे ॥१३॥

दुर्वासा उवाच

अहो अनन्तदासानां महत्वं दृष्टमद्य मे ।
कृतागसोऽपि यद् राजन् मङ्गलानि समीहसे ॥१४॥

अहो अनन्त दासानां महत्त्वं दृष्टं अद्य मे कृत आगसः अपि यत् राजन् मंगलानि सम ईहसे ॥१४॥

अहो राजन्	अहो, राजन् !
अनन्त	भगवान्के
दासानां	दासोंकी
महत्त्वं अद्य	महिमा आज
मे दृष्टं	मैंने देखी,
यत् आगसः	क्योंकि अपराध
कृत अपि	करनेपर भी (मेरा)
मंगलानि	मंगल भली प्रकार
सम ईहसे	चाहते हो ॥१४॥

दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम् ।
यैः संगृहीतो भगवान् सात्वतामृषभो हरिः ॥१५॥

दुष्करः कः नु साधूनां दुस्त्यजः वा महात्मनां यैः संगृहीतः भगवान् सात्वतां ऋषभः हरिः ॥१५॥

यैः	जिन्होंने
सात्वतां	भक्तोंके
ऋषभः	परमाराध्य
हरिः	श्रीहरिको
संगृहीतः	पकड़ लिया है, उन
साधूनां	सत्पुरुष
महात्मनां	महात्माओंके लिए
नु कः दुष्करः	भला क्या कठिन कार्य है
वा दुस्त्यजः	अथवा क्या त्यागना कठिन है ॥१५॥

यन्नाम श्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः ।
तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते ॥१६॥

यत् नाम श्रुति मात्रेण पुमान् भवति निर्मलः तस्य तीर्थपदः किं वा दासानां अवशिष्यते ॥१६॥

यत् नाम	जिनका नाम
श्रुति मात्रेण	सुनने मात्रसे
पुमान् निर्मलः	पुरुष निर्मल
भवति	हो जाता है
तस्य तीर्थपदः	उन पवित्र चरणके
दासानां वा	दासोंके लिए भला
किं	क्या
अवशिष्यते	कर्तव्य शेष रहता है ॥१६॥

श्रीशुक उवाच*

राजन्ननुगृहीतोऽहं त्वयातिकरुणात्मना ।
मदघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणा यन्मेऽभिरक्षिताः ॥१७॥

राजन् अनुगृहीतः अहं त्वया अति करुण आत्मना मत् अघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणा यत् मे अभिरक्षिताः ॥१७॥

राजन्	राजन् !
अति करुण	अत्यन्त करुणामय
आत्मना	स्वभावाले
त्वया यत्	आपने क्योंकि
मत् अघं	मेरे अपराधको
पृष्ठतः कृत्वा	पीठ पीछे करके
मे प्राणा	मेरे प्राणोंकी
अभिरक्षिताः	पूरी रक्षाः की है
अहं अनुगृहीतः	मैं उपकृत हुआ ॥१७॥

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

राजा तमकृताहारः प्रत्यागमनकाङ्क्षया ।
चरणावुपसंगृह्य प्रसाद्य समभोजयत् ॥१८॥

राजा तं अकृत आहारः प्रत्यागमन काङ्क्षया चरणाः उपसंगृह्य प्रसाद्य सम भोजयत् ॥१८॥

तं आहारः	उन भोजन
अकृत	किये बिनाके
प्रत्यागमन	लौटनेकी
काङ्क्षया	इच्छावाले
राजा चरणाः	राजाने चरण
उपसंगृह्य	पकड़ कर
प्रसाद्य	प्रसन्न करके
सम भोजयत्	भली प्रकार भोजन कराया ॥१८॥

सोऽशित्वाऽऽदृतमानीतमातिथ्यं सार्वकामिकम् ।
तृप्तात्मा नृपतिं प्राह भुज्यतामिति सादरम् ॥१९॥

सः अशित्वा आदृतं आनीतं आतिथ्यं सार्वकामिकं तृप्तात्मा नृपतिं प्राह भुज्यतां इति सादरम् ॥१९॥

आदृतं आनीतं	आदरपूर्वक लाये हुए
सार्वकामिकं	सब कामनापूर्ण करनेवाले
आतिथ्यं	अतिथि-सत्कारके अन्नको
सः अशित्वा	उन दुर्वासाजी ने खाकर
तृप्तात्मा	सन्तुष्ट चित्त होकर
नृपतिं सादरं	राजासे आदर पूर्वक
इति प्राह	यह कहा
भुज्यतां	आप भी भोजन करो ॥१९॥

दुर्वासा उवाच*

प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै ।
दर्शनस्पर्शनालापैरातिथ्येनात्ममेधसा ॥२०॥

प्रीतः अस्मि अनुगृहीतः अस्मि तव भागवतस्य वै दर्शन स्पर्शन आलापैः आतिथ्येन आत्म मेधसा ॥२०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें न होनेपर भी आगे 'श्रीशुक उवाच' होनेसे आवश्यक है ।

वै तव	निश्चय तुम जैसे	**आतिथ्येन**	अतिथि-सत्कारसे
भागवतस्य	भगवद्भक्तके	**प्रीतः अस्मि**	प्रसन्न हुआ और
दर्शन स्पर्श न	दर्शन, स्पर्श,	**अनुगृहीतः**	अनुगृहीत
आलापैः	बातचीत तथा	**अस्मि**	हूँ ॥२०॥
आत्म मेधसा	चित्त शुद्ध करने-वाले		

कर्मावदातमेतत् ते गायन्ति स्वःस्त्रियो मुहुः ।
कीर्ति परमपुण्यां च कीर्तयिष्यति भूरियम् ॥२१॥

कर्म अवदातं एतत् ते गायन्ति स्वः स्त्रियः मुहुः कीर्ति परम पुण्यां च कीर्तयिष्यति भूः इयम् ॥२१॥

ते एतत्	तुम्हारे इस	**च परम**	तथा परम
अवदातं कर्म	निर्मल कर्मको	**पुण्यां**	पवित्र (तुम्हारी)
स्वः स्त्रियः	स्वर्गीय देवियां	**कीर्ति इयं भूः**	कीर्तिका यह पृथ्वी
मुहुः गायन्ति	बार-बार गायन करेंगी,	**कीर्तयिष्यति**	वर्णन करती रहेगी ॥२१॥

श्रीशुक उवाच

एवं संकीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः ।
ययौ विहायसाऽऽमन्त्र्य ब्रह्मलोकमहैतुकम् ॥२२॥

एवं संकीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः ययौ विहायसा आमन्त्र्य ब्रह्मलोकं अहैतुकम् ॥२२॥

परितोषितः	परम सन्तुष्ट हुए	**अहैतुकं**	निष्काम कर्मसे ही प्राप्त होनेवाले
दुर्वासाः एवं	दुर्वासाजी इस प्रकार	**ब्रह्मलोकं**	ब्रह्म लोक
राजानं	राजाकी	**विहायसा ययौ**	आकाश-मार्गसे चले गये ॥२२॥
संकीर्त्य	प्रशंसा करके		
आमन्त्र्य	उनसे अनुमति लेकर		

संवत्सरोऽत्यगात् तावद् यावता नागतो गतः ।
मुनिस्तद्दर्शनाकाङ्क्षो राजाऽभक्षो बभूव ह ॥२३॥

संवत्सरः अत्यगात् तावत् यावता न आगतः गतः मुनिः तत् दर्शन आकाङ्क्षः राजा अप् भक्षः बभूव ह ॥२३॥

यावता गतः	जब तक गये हुए	**तत् दर्शन**	उनके दर्शनकी
मुनिः	मुनि दुर्वासा	**आकाङ्क्षः**	इच्छासे
आगतः न	आ नहीं गये,	**राजा ह**	राजा निश्चय पूर्वक
तावत्	तब तक	**अप् भक्षः**	केवल जल पीकर
संवत्सरः	एक वर्ष	**बभूव**	रहे ॥२३॥
अत्यगात्	बीत गया,		

गते च दुर्वाससि सोऽम्बरीषो
द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत् ।
ऋषेर्विमोक्षं व्यसनं च बुद्ध्वा
मेने स्ववीर्यं च परानुभावम् ॥२४॥

गते च दुर्वाससि सः अम्बरीषः द्विज उपयोग अति पवित्रं आहरत् ऋषेः विमोक्षं व्यसनं च बुद्ध्वा मेने स्ववीर्यं च पर अनुभावम् ॥२४॥

दुर्वाससि गते च	दुर्वासाजीके चले जानेपर	**ऋषेः व्यसनं च विमोक्षं**	ऋषिके कष्ट तथा उससे छूटनेके
सः अम्बरीषः	उन अम्बरीषने	**बुद्ध्वा**	जानकर
द्विज उपयोग	ब्राह्मणके उपयोगमें आये	**स्ववीर्यं च पर अनुभावं मेने**	अपने तेजको भी परम पुरुष ही का प्रभाव
अति पवित्रं आहरत्	(बचे) अत्यन्त पवित्र (अन्नका) भोजन किया		माना ॥२४॥

एवंविधानेकगुणः स राजा
परात्मनि ब्रह्मणि वासुदेवे ।

क्रियाकलापैः समुवाह भक्तिं
ययाऽऽविरिञ्च्यान् निरयांश्चकार ॥२५॥

एवं विधान् अनेक गुणः स राजा पर आत्मनि ब्रह्मणि वासुदेवे क्रिया कलापैः सम उवाह भक्तिं यया विरिञ्चात् निरयान् चकार ॥२५॥

एवं विधान्	इस प्रकारके	**भक्तिं**	भक्तिको
अनेक गुणः	अनेक गुणोंवाले	**समुवाह**	बढ़ाया
स राजा	उस राजाने	**यया**	जिससे
पर आत्मनि	परमात्मा	**विरिञ्चात्**	ब्रह्मलोकको भी
ब्रह्मणि	परम ब्रह्म	**निरयान्**	नरक
वासुदेवे	वासुदेवमें	**चकार**	समझने लगे ॥२५॥
क्रियाकलापैः	अपने कर्म कलापों द्वारा		

अथाम्बरीषस्तनयेषु राज्यं
समानशीलेषु विसृज्य धीरः ।
वनं विवेशात्मनि वासुदेवे
मनो दधद् ध्वस्तगुणप्रवाहः ॥२६॥

अथ अम्बरीषः तनयेषु राज्यं समान शीलेषु विसृज्य धीरः वनं विवेश आत्मनि वासुदेवे मनः दधत् ध्वस्त गुण प्रवाहः ॥२६॥

अथ धीरः	फिर धैर्यवान्	**वासुदेवे**	वहां भगवान वासुदेवमें
अम्बरीषः	अम्बरीषने	**आत्मनि मनः**	अपना चित्त
समान	समान	**दधत्**	लगाकर
शीलेषु	स्वभाववाले	**गुण प्रवाहः**	गुणोंके प्रवाहको
तनयेषु राज्यं	पुत्रोंको राज्य	**ध्वस्त**	नष्ट कर दिया (मुक्त हो गये) ॥२६॥
विसृज्य	सौंपकर		
वनं विवेश	वनमें प्रवेश किया		

इत्येतत् पुण्यमाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः ।
संकीर्तयन्ननुध्यायन् भक्तो भगवतो भवेत् ॥२७॥

इति एतत् पुण्यं आख्यानं अम्बरीषस्य भूपतेः संकीर्तयन् अनुध्यायन् भक्तः भगवतः भवेत् ॥२७॥

इति एतत्	इस प्रकारका यह
भूपतेः	राजा
अम्बरीषस्य	अम्बरीषका
पुण्यं आख्यानं	पवित्र आख्यान
संकीर्तयन	वर्णन करनेवाला तथा
अनुध्यायन्	बार-बार चिन्तन करनेवाला
भगवतः भक्तः	भगवानका भक्त
भवेत्	हो जाता है ॥२७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे-अम्बरीषचरितं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

विरूपः केतुमाञ्छम्भुरम्बरीषसुतास्त्रयः ।
विरूपात् पृषदश्वोऽभूत् तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥१॥

विरूपः केतुमान् शम्भुः अम्बरीष सुताः त्रयः विरूपात् पृषदश्वः अभूत् तत् पुत्रः तु रथीतरः ॥१॥

अम्बरीष	अम्बरीषके	**विरूपात्**	विरूपसे
त्रयः सुताः	तीन पुत्र थे,	**पृषदश्वः**	पृषदश्व
विरूपः	विरूप,	**अभूत्**	हुआ,
केतुमान्	के तुमान्	**तत् पुत्रः तु**	उसका पुत्र तो
शम्भुः	और शम्भु,	**रथीतरः**	रथीतर था ॥१॥

रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां तन्तवेऽर्थितः ।
अङ्गिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥२॥

रथीतरस्य अप्रजस्य भार्यायां तन्तवे अर्थितः अङ्गिरा जनयामास ब्रह्म वर्चस्विनः सुतान् ॥२॥

अप्रजस्य	सन्तानहीन	**अङ्गिरा**	महर्षि अंगिराने
रथीतरस्य	रथीतरकी	**ब्रह्म**	ब्रह्म
भार्यायां	पत्नीसे	**वर्चस्विनः**	तेज सम्पन्न
तन्तवे	सन्तानके लिए	**सुतान्**	पुत्र
अर्थितः	प्रार्थना करनेपर	**जनयामास**	उत्पन्न किये ॥२॥

एते क्षेत्रे प्रसूता वै पुनस्त्वाङ्गिरसाः स्मृताः ।
रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥३॥

एते क्षेत्रे प्रसूता वै पुनः तु आङ्गिरसाः स्मृताः रथीतराणां प्रवराः क्षत्र उपेता द्विजातयः ॥३॥

एते	इस रथीतरकी	**स्मृताः**	कहलाये,
क्षेत्रे	भार्यासे	**रथीतराणां**	रथीतर वंशमें उत्पन्नोंमें
वै प्रसूता	निश्चय उत्पन्न हुए पर	**प्रवराः**	श्रेष्ठ
पुनः तु	फिर भी	**क्षत्र उपेता**	क्षत्रिय कर्मयुक्त
आंगिरसाः	अंगिरा गोत्रीय	**द्विजातयः**	ब्राह्मण हुए ॥३॥

क्षुवतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः ।
तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदण्डकाः ॥४॥

क्षुवतः तु मनोः जज्ञे इक्ष्वाकुः घ्राणतः सुतः तस्य पुत्रशत ज्येष्ठा विकुक्षिनिमि दण्डकाः ॥४॥

मनोः	मनुके	**तस्य पुत्रशत**	उनके सौ पुत्रोंमें
क्षुवतः तु	छींकते समय तो	**विकुक्षिनिमि**	विकुक्षि, निमि,
घ्राणतः	उनकी नासिकासे	**दण्डकाः**	दण्डक
इक्ष्वाकुः सुतः	इक्ष्वाकु नामका पुत्र	**ज्येष्ठा**	सबसे बड़े थे ॥४॥
जज्ञे	उत्पन्न हुआ		

तेषां पुरस्तादभवन्नार्यावर्ते नृपा नृप ।
पञ्चविंशतिः पश्चाच्च त्रयो मध्ये परेऽन्यतः ॥५॥

तेषां पुरस्तात् अभवन् आर्यावर्ते नृपा नृपा पञ्चविंशतिः पश्चात् च त्रयः मध्ये परे अन्यतः ॥५॥

नृप	राजन् !	**च**	भागके
तेषां	उनसे (छोटे)	**त्रयः**	(पूर्वोक्त) तीन
पञ्चविंशतिः	पच्चीस (पुत्र)	**मध्ये**	मध्य भागके
आर्यावर्ते	आर्यावर्तके	**परे**	शेष (सैंतालीस)
पुरस्तात्	पूर्वी भागके	**अन्यतः**	अन्य देशोंके
पश्चात्	(पच्चीस) पश्चिमी	**नृपा अभवन्**	राजा हुए ॥५॥

स एकदाष्टकाश्राद्धे इक्ष्वाकुः सुतमादिशत् ।
मांसमानीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छ माचिरम् ॥६॥

स एकदा अष्टका श्राद्धे इक्ष्वाकुः सुतं आदिशत् मासं आनीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छ मा चिरम् ॥६॥

एकदा स	एक बार उन	**विकुक्षे**	'विकुक्षि'
इक्ष्वाकुः	राजा इक्ष्वाकुने	**मेध्यं मासं**	पवित्र मांस
अष्टका श्राद्धे	अष्टका श्राद्धके समय	**आनीयतां**	ले आओ,
सुतं	(बड़े) पुत्रको	**मा चिरं**	देर मत करो' ॥६॥
आदिशत्	आदेश दिया		

तथेति स वनं गत्वा मृगान् हत्वा क्रियार्हणान् ।
श्रान्तो बुभुक्षितो वीरः शशं चाददपस्मृतिः ॥७॥

तथा इति स वनं गत्वा मृगान् हत्वा क्रिया अर्हणान् श्रान्तः बुभुक्षितः वीरः शशं च अदत् अपस्मृतिः ॥७॥

तथा इति	'अच्छा' इस प्रकार	**अपस्मृतिः**	स्मरण न रहनेसे
स वनं	(कहकर) उसने वनमें		(कि श्राद्धके लिए
गत्वा	जाकर		मारे पशुओंको नहीं
क्रिया अर्हणान्	श्राद्ध क्रियाके योग्य		खाना चाहिए)
मृगान् हत्वा	पशुओंको मारकर	**शशं च**	एक खरगोशको ही
वीरः श्रान्तः	वह वीर थक गया,	**अदत्**	खा लिया ॥७॥
बुभुक्षितः	भूखा होनेसे		

शेषं निवेदयामास पित्रे तेन च तद्गुरुः ।
चोदितः प्रोक्षणायाह दुष्टमेतदकर्मकम् ॥८॥

शेषं निवेदया मास पित्रे तेन च तत् गुरुः चोदितः प्रोक्षणाय आह दुष्टं एतत् अकर्मकम् ॥८॥

शेषं पित्रे	वचा हुआ पिताको
निवेदया मास	निवेदन कर दिया,
तेन च	उसीके द्वारा
प्रोक्षणाय	प्रोक्षण करनेके लिए
तत्	उन (इक्ष्वाकु) के द्वारा
गुरुः चोदितः	गुरुको प्रेरित करने-पर
आह एतत्	गुरुने कहा—'यह
अकर्मकं	श्राद्ध-कर्मके अयोग्य
दुष्टं	दूषित है ॥८॥

ज्ञात्वा पुत्रस्य तत् कर्म गुरुणाभिहितं नृपः ।
देशान्निःसारयामास सुतं त्यक्तविधिं रुषा ॥९॥

ज्ञात्वा पुत्रस्य तत् कर्म गुरुणा अभिहितं नृप. देशात् निःसारयामास सुतं त्यक्तविधिं रुषा ॥९॥

गुरुणा	गुरु (वशिष्ठ) के
अभिहितं	बतलानेसे
तत् पुत्रस्य	वह पुत्रका
कर्म ज्ञात्वा	कर्म जानकर
नृपः रुषा	राजाने क्रोधवश
त्यक्तविधिं	शास्त्र विधिका त्याग करनेवाले
सुतं देशात्	पुत्रको अपने देशसे
निःसारयामास	निकाल दिया ॥९॥

स तु विप्रेण संवादं जापकेन समाचरन् ।
त्यक्त्वा कलेवरं योगी स तेनावाप यत् परम् ॥१०॥

स तु विप्रेण संवादं जापकेन समाचरन् त्यक्त्वा कलेवरं योगी स तेन अवाप यत् परम् ॥१०॥

स तु	और स्वयं उन्होंने तो
जापकेन	जप करनेवाले
विप्रेण	ब्राह्मणसे
संवादं	तत्व ज्ञानकी
समाचरन्	चर्चा करते हुए
स योगी	उन योगीने
कलेवरं	शरीर
त्यक्त्वा	त्यागकर
यत् परं	जो परम-तत्व है
तेन	उस सत्संग द्वारा
अवाप	उसे प्राप्त किया ॥१०॥

पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिः पृथिवीमिमाम् ।
शासदीजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः ॥११॥

पितरि उपरते अभि एत्य विकुक्षिः पृथिवीं इमां शासत् ईजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः ॥११॥

पितरि उपरते	पिताके शरीरान्तके बाद	**इमां पृथिवीं**	इस पृथ्वीका
अभि एत्य	फिर लौटकर	**शासत्**	शासन किया और
शशाद इति	शशाद इस नामसे	**यज्ञैः हरिं**	यज्ञोंके द्वारा श्रीहरिकी
विश्रुतः	प्रसिद्ध	**ईजे**	आराधना की ॥११॥
बिकुक्षिः	विकुक्षिने		

पुरञ्जयस्तस्य सुत इन्द्रवाह इतीरितः ।
ककुत्स्थ इति चाप्युक्तः शृणु नामानि कर्मभिः ॥१२॥

पुरञ्जयः तस्य सुतः इन्द्रवाह इति ईरितः ककुत्स्थ इति च अपि उक्तः शृणु नामानि कर्मभिः ॥१२॥

तस्य सुतः	उनके पुत्र	**इति**	इस नामसे
पुरञ्जयः	पुरञ्जय	**अपि उक्तः**	भी कहा गया
इन्द्रवाह इति	इन्द्रवाह इस नामसे	**कर्मभिः**	जिन कर्मोंसे
ईरितः	कहे गये	**नामानि**	ये नाम पड़े
च ककुत्स्थ	तथा ककुस्थ	**शृणु**	उन्हें सुनो ॥१२॥

कृतान्त आसीत् समरो देवानां सह दानवैः ।
पार्ष्णिग्राहो वृतो वीरो देवैर्दैत्यपराजितैः ॥२३॥

कृत अन्त आसीत् समरः देवानां सह दानवैः पार्ष्णिग्राहः वृतः वीरः देवैः दैत्य पराजितैः ॥१३॥

कृत अन्त	सतयुगके अन्तमें	**पराजितैः**	पराजित
देवानां	देवताओंका	**देवैः**	देवताओं द्वारा
दानवैः सह	दानवोंके साथ	**वीरः**	वीर पुरञ्जय
समरः आसीत्	युद्ध हुआ,	**पार्ष्णिग्राहः**	सहायक
दैत्य	(उसमें) दैत्योंसे	**वृतः**	चुना गया ॥१३॥

वचनाद् देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभोः ।
वाहनत्वे वृतस्तस्य बभूवेन्द्रो महावृषः ॥१४॥

वचनात् देवदेवस्य विष्णोः विश्व आत्मनः प्रभोः वाहनत्वे वृतः तस्य बभूव इन्द्रः महावृषः ॥१४॥

तस्य वाहनत्वे	उनके वाहनके रूपमें	**प्रभोः विष्णोः**	सर्वेश्वर विष्णु भागवानके
वृतः इन्द्रः	चुने जानेपर इन्द्र	**वचनात्**	कहनेसे
देवदेवस्य	देवाधिदेव	**महावृषः बभूव**	महान् वृषभ बन गये ॥१४॥
विश्व आत्मनः	विश्वात्मा		

स संनद्धो धनुर्दिव्यमादाय विशिखाञ्छितान् ।
स्तूयमानः समारुह्य युयुत्सुः ककुदि स्थितः ॥१५॥

स सन्नद्धः धनुः दिव्यं आदाय विशिखान् सितान् स्तूयमानः समारुह्य युयुत्सुः ककुदि स्थितः ॥१५॥

स	तब वे	**स्तूयमानः**	स्तुत होते हुए
सन्नद्धः	(पुरंजय) कवच पहिन कर	**युयुत्सुः**	युद्ध करनेके लिए (उस महावृषभपर)
दिव्यं धनुः	दिव्य धनुष तथा	**समारुह्य**	चढ़कर
सितान्	तीक्ष्ण	**ककुदि**	(उसके) ककुत्पर
विशिखान्	वाण लेकर	**स्थितः**	बैठ गये ॥१५॥

तेजसाऽऽप्यायितो विष्णोः पुरुषस्य परात्मनः ।
प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत् त्रिदशैः पुरम् ॥१६॥

तेजसा आप्यायितः विष्णोः पुरुषस्य परात्मनः प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत् त्रिदशैः पुरम् ॥१६॥

परात्मनः	परमात्मा	**त्रिदशैः**	देवताओंके साथ
पुरुषस्य	परम पुरुष	**प्रतीच्यां दिशि**	पश्चिम दिशासे
विष्णोः	विष्णुके	**दैत्यानां पुरं**	दैत्योंके नगरको
तेजसा	तेजसे	**न्यरुणत्**	घेर लिया ॥१६॥
आप्यायितः	समृद्ध होकर		

तैस्तस्य चाभूत् प्रधनं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
यमाय भल्लैरनयद् दैत्यान् येऽभिययुर्मृधे ॥१७॥

तैः तस्य च अभूत् प्रधनं तुमुलं लोमहर्षणं यमाय भल्लैः अनयत् दैत्यान् ये अभिययुः मृधे ॥१७॥

तस्य	उस (पुरञ्जय) का	**मृधे ये**	युद्धमें जो
तैः	उन (दैत्यों) के साथ	**अभिययुः**	सम्मुख आये
तुमुलं च	घोर तथा	**दैत्यान् भल्लैः**	उन दैत्योंको बाणोंसे
लोमहर्षणं	रोमाञ्चकारी	**यमाय**	यमराजके पास
प्रधनं अभूत्	युद्ध हुआ	**अनयत्**	पहुँचा दिया ॥१७॥

तस्येषुपाताभिमुखं युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ।
विसृज्य दुद्रुवुर्दैत्या हन्यमानाः स्वमालयम् ॥१८॥

तस्य इषुपात अभिमुखं युगान्त अग्नि इव उल्बणं विसृज्य दुद्रुवुः दैत्या हन्यमानाः स्वं आलयम् ॥१८॥

युगान्त	प्रलय कालीन	**हन्यमानाः**	मारे जाते हुए
अग्नि	अग्निके	**दैत्या स्वं**	दैत्य अपने
इव उल्बणं	समान प्रचण्ड	**आलयं**	घर
तस्य इषुपात	उनकी बाण वर्षाके	**विसृज्य दुद्रुवुः**	छोड़कर भाग गये ॥१८॥
अभिमुखं	सामनेसे		

जित्वा पुरं धनं सर्वं सश्रीकं वज्रपाणये ।
प्रत्ययच्छत् स राजर्षिरिति नामभिराहृतः ॥१९॥

जित्वा पुरं धनं सर्वं सश्रीकं वज्रपाणये प्रत्ययच्छत् स राजर्षिः इति नामभिः आहृतः ॥१९॥

स राजर्षिः	उन राजर्षिने	**वज्रपाणये**	इन्द्रको
सश्रीकं	(दैत्योंकी) सम्पत्ति सहित	**प्रत्ययच्छत्**	लौटा दिया
पुरं सर्वं धनं	नगरी तथा सब धन	**इति नामभिः**	इस प्रकार उन नामों-से
जित्वा	जीतकर	**आहृतः**	कहे जाते हैं ॥१९॥

पुरञ्जयस्य पुत्रोऽभूदनेनास्तत्सुतः पृथुः ।
विश्वरन्धिस्ततश्चन्द्रो युवनाश्वश्च तत्सुतः ॥२०॥

पुरञ्जयस्य पुत्रः अभूत् अनेनाः तत् सुतः पृथुः विश्वरन्धिः ततः चन्द्रः युवनाश्वः च तत् सुत. ॥२०॥

पुरञ्जयस्य	पुरंजयका	**विश्वरन्धिः**	विश्वरन्धि
पुत्रः	पुत्र	**ततः चन्द्रः**	उससे चन्द्र
अनेनाः तत्	अनेना, उसका	**च तत् सुतः**	तथा उसका पुत्र
सुतः	पुत्र	**युवनाश्वः**	युवनाश्व
पृथुः	पृथु, उसका	**अभूत्**	हुआ ॥२०॥

शाबस्तस्तत्सुतो येन शाबस्ती निर्ममे पुरी ।
बृहदश्वस्तु शाबस्तिस्ततः कुवलयाश्वकः ॥२१॥

शाबः तत् सुतः येन शाबस्ती निर्ममे पुरी बृहदश्वः तु शाबस्तिः ततः कुवलयाश्वकः ॥२१॥

तत् सुतः	उसका पुत्र	**बृहदश्वः तु**	बृहदश्व था,
शाबः येन	शाव हुआ, जिसने	**ततः**	उससे
शाबस्ती पुरी	शावस्ती पुरीका	**कुवलयाश्वकः**	कुवलयाश्व हुआ ॥२१॥
निर्ममे	निर्माण किया,		
शाबस्तिः	शावस्तिका पुत्र तो		

यः प्रियार्थमुतङ्कस्य धुन्धुनामासुरं बली ।
सुतानामेकविंशत्या सहस्रैरहनद् वृतः ॥२२॥

यः प्रिय अर्थं उत्तङ्कस्य धुन्धुनाम असुरं बली सुतानां एक विंशत्या सहस्रैः अहनत् वृतः ॥२२॥

यः	जिसने	**सुतानां वृतः**	अपने पुत्रोंके साथ
उत्तङ्कस्य	उत्तङ्क ऋषिका	**धुन्धुनाम**	धुन्धु नामक
प्रिय अर्थं	प्रिय करनेके लिए	**बली असुरं**	बलवान असुरको
एक विंशत्या	इक्कीस	**अहनत्**	मारा था ॥२२॥
सहस्रैः	हजार		

धुन्धुमार इति ख्यातस्तत्सुतास्ते च जज्वलुः ।
धुन्धोर्मुखाग्निना सर्वे त्रय एवावशेषिताः ॥२३॥

धुन्धुमार इति ख्यातः तत् सुताः ते च जज्वलुः धुन्धोः मुख अग्निना सर्वे त्रय एव अवशेषिताः ॥२३॥

इति	इसलिए	**तत् ते सुताः**	उनके वे पुत्र
धुन्धुमार	धुन्धुमार नामसे	**च**	भी
ख्यातः	प्रसिद्ध हुए	**सर्वे जज्वलुः**	सब जल गये
धुन्धोः	धुन्धुकी	**त्रय एव**	केवल तीन ही
मुख अग्निना	मुखसे निकली अग्नि-से	**अवशेषिताः**	बच रहे ॥२३॥

दृढाश्वः कपिलाश्वश्च भद्राश्व इति भारत ।
दृढाश्वपुत्रो हर्यश्वो निकुम्भस्तत्सुतः स्मृतः ॥२४॥

दृढाश्वः कपिलाश्वः च भद्राश्व इति भारत दृढाश्व पुत्रः हर्यश्वः निकुम्भः तत् सुतः स्मृतः ॥२४॥

भारत	परीक्षित !	**हर्यश्वः**	हर्यश्व
दृढाश्व	दृढाश्व,	**तत् सुतः**	उसका पुत्र
कपिलाश्वः	कपिलाश्व,	**निकुम्भः स्मृतः**	निकुम्भ कहा जाता है ॥२४॥
भद्राश्व इति	भद्राश्व इस प्रकार,		
दृढाश्व पुत्रः	दृढाश्वका पुत्र		

बर्हणाश्वो निकुम्भस्य कृशाश्वोऽथास्य सेनजित् ।
युवनाश्वोऽभवत् तस्य सोऽनपत्यो वनं गतः ॥२५॥

बर्हणाश्वः निकुम्भस्य कृशाश्वः अथ अस्य सेनजित् युवनाश्वः अभवत् तस्य सः अनपत्यः वन गतः ॥२५॥

निकुम्भस्य	निकुम्भका पुत्र	**अभवत्**	हुआ
बर्हणाश्वः	वर्हणाश्व	**सः अनपत्यः**	वह सन्तानहीन होनेसे
कृशाश्वः	उसका कृशाश्व		
अथ अस्य	फिर इसका पुत्र	**वनं गतः**	वनमें चला गया ॥२५॥
सेनजित् तस्य	सेनजित्, उसका पुत्र		
युवनाश्वः	युवनाश्व		

भार्याशतेन निर्विण्ण ऋषयोऽस्य कृपालवः ।
इष्टिं स्म वर्तयाञ्चक्रु रैन्द्रीं ते सुसमाहिताः ॥२६॥

भार्या शतेन निर्विण्ण ऋषयः अस्य कृपालव इष्टिं स्म वर्तयान् चक्रुः ऐन्द्रीं ते सुसमाहिताः ॥२६॥

निर्विण्ण	खिन्न होकर	**ऋषयः**	ऋषियोंने
भार्या शतेन	सौ पत्नियोंके साथ (गया था)	**सुसमाहितः**	अत्यन्त एकाग्र होकर
अस्य	इसपर	**ते ऐन्द्रीं इष्टिं**	उन्होंने इन्द्र यज्ञ
कृपालवः	वहां दयालु	**वर्तयान् चक्रुः**	करवाया ॥२६॥

राजा तद् यज्ञसदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः ।
दृष्ट्वा शयानान् विप्रांस्तान् पपौ मन्त्रजलं स्वयम् ॥२७॥

राजा तत् यज्ञसदनं प्रविष्टः निशि तर्षितः दृष्ट्वा शयानान् विप्रान् तान् पपौ मन्त्रजलं स्वयम् ॥२७॥

निशि तर्षितः	रातमें प्यास लगनेपर	**शयानान्**	सोये हुए
राजा तत्	राजा उस	**दृष्ट्वा**	देखकर (कलशका)
यज्ञसदनं	यज्ञ-मण्डपमें	**मन्त्र जलं**	अभिमन्त्रित जल
प्रविष्टः	गये और	**स्वयं पपौ**	स्वयं पीलिया ॥२७॥
तान् विप्रान्	उन ब्राह्मणोंको		

उत्थितास्ते निशाम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो ।
पप्रच्छुः कस्य कर्मेदं पीतं पुंसवनं जलम् ॥२८॥

उत्थिताः ते निशाम्य अथ व्युदकं कलशं प्रभो पप्रच्छुः कस्य कर्म इदं पीतं पुंसवनं जलम् ॥२८॥

प्रभो	राजन् !	**इदं कस्य कर्म**	यह किसका काम है कि
ते उत्थिताः	वे (ब्राह्मण जब) उठे	**पुंसवनं**	पुत्रोत्पत्तिके लिए अभिमंत्रित
अथ व्युदकं	तब जलरहित	**जलं पीतं**	जल पीलिया ॥२८॥
कलशं	कलश		
निशाम्य	देखकर		
पप्रच्छुः	पूछा		

राज्ञा पीतं विदित्वाथ ईश्वरप्रहितेन ते ।
ईश्वराय नमश्चक्रुरहो दैवबलं बलम् ॥२९॥

राज्ञा पीतं विदित्वा अथ ईश्वर प्रहितेन ते ईश्वराय नमः चक्रुः अहो दैवबलं बलम् ॥२९॥

ईश्वर	ईश्वरकी	**नमः चक्रुः**	नमस्कार किया (और बोले)
प्रहितेन	प्रेरणासे		
राज्ञा पीतं	राजाने पिया है	**अहो दैवबलं**	'अहो, दैव-बल ही
अथ विदित्वा	तब यह जानकर	**बलं**	मुख्य बल है ।' ॥२९॥
ते	उन (मुनियों) ने		
ईश्वराय	ईश्वरको		

ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम् ।
युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जजान ह ॥३०॥

ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणं युवनाश्वस्य तनयः चक्रवर्ती जजान ह ॥३०॥

ततः काल	तब समय	**युवनाश्वस्य**	युवनाश्वके
उपावृत्ते	आनेपर	**ह चक्रवर्ती**	निश्चय चक्रवर्ती
दक्षिणं कुक्षिं	दाहिनी कोख	**तनयः जजान**	पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३०॥
निर्भिद्य	फाड़कर		

कं धास्यति कुमारोऽयं स्तन्यं रोरूयते भृशम् ।
मां धाता वत्स मा रोदीरितीन्द्रो देशिनीमदात् ॥३१॥

कं धास्यति कुमारः अयं स्तन्यं रोरूयते भृशं मां धाता वत्स मा रोदीः इति इन्द्रः देशिनीं अदात् ॥३१॥

अयं	(ऋषियोंने कहा) 'यह	**वत्स मा रोदीः**	बेटा, रोओ मत !'
कुमारः	कुमार	**इति इन्द्रः**	ऐसा कहकर इन्द्रने
कं धास्यति	किसका दूध पियेगा,	**देशिनीं**	तर्जनी अंगुली
स्तन्यं भृशं	दूध पीनेके लिए बहुत	**अदात्**	(उसके मुखमें) दे दी ॥३१॥
रोरूयते	रो रहा है ।'		
मां धाता	'मुझे पियेगा,		

न ममार पिता तस्य विप्रदेवप्रसादतः ।
युवनाश्वोऽथ तत्रैव तपसा सिद्धिमन्वगात् ॥३२॥

न ममार पिता तस्य विप्र देव प्रसादतः युवनाश्वः अथ तत्र एव तपसा सिद्धिं अन्वगात् ॥३२॥

विप्र	ब्राह्मणों तथा	**अथ युवनाश्वः**	फिर युवनाश्वने
देव	देवताकी	**तत्र एव तपसा**	वहीं तपस्या करके
प्रसादतः	कृपासे	**सिद्धिं**	सिद्धि
तस्य पिता	उसका पिता	**अन्वगात्**	प्राप्त कर ली ॥३२॥
ममार न	मरा नहीं,		

त्रसद्दस्युरितीन्द्रोऽङ्ग विदधे नाम तस्य वै ।
यस्मात् त्रसन्ति ह्युद्विग्ना दस्यवो रावणादयः ॥३३॥

त्रसत् दस्युः इति इन्द्रः अङ्ग विदधे नाम तस्य वै यस्मात् त्रसन्ति हि उद्विग्ना दस्यवः रावण आदयः ॥३३॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	**रावण आदयः**	रावण आदि
त्रसत् दस्यु इति	त्रसत दस्यु यह	**दस्यवः**	दस्यु
वै तस्य नाम	निश्चय उनका नाम	**उद्विग्ना**	उद्विग्न होकर
इन्द्रः विदधे	इन्द्रने निश्चित किया	**त्रसन्ति**	डरते रहते थे ॥३३॥
हि यस्मात्	क्योंकि जिससे		

यौवनाश्वोऽथ मान्धाता चक्रवर्त्यवनीं प्रभुः ।
सप्तद्वीपवतीमेकः शशासाच्युततेजसा ॥३४॥

यौवनाश्वः अथ मान्धाता चक्रवर्ति अवनीं प्रभुः सप्तद्वीपवतीं एकः शशास अच्युत तेजसा ॥३४॥

अथ	फिर	**सप्त द्वीपवतीं**	सात द्वीपोंवाली
यौवनाश्वः	युवनाश्व कुमार	**अवनीं एकः**	पृथ्वीका अकेले ही
मान्धाता	मान्धाता	**शशास**	शासन करने लगे
चक्रवर्ति प्रभुः	चक्रवर्ती नरेश होकर		॥३४॥
अच्युत तेजसा	भगवानके तेजसे		

ईजे च यज्ञं क्रतुभिरात्मविद् भूरिदक्षिणैः ।
सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकमतीन्द्रियम् ॥३५॥

ईजे च यज्ञं क्रतुभिः आत्मवित् भूरिदक्षिणैः सर्वदेवमयं देवं सर्व आत्मकं अतीन्द्रियम् ॥३५॥

आत्मवित्	आत्मज्ञानी होकर भी	**अतीन्द्रियं**	इन्द्रियागीत
भूरिदक्षिणैः	बड़ी दक्षिणाओं वाले	**देवं यज्ञं**	देव यज्ञ पुरुषकी
क्रतुभिः	यज्ञों द्वारा	**इजे च**	आराधना भी की ॥३५॥
सर्वदेवमयं	सर्वदेव स्वरूप		
सर्व आत्मकं	सर्व स्वरूप		

द्रव्यं मन्त्रो विधिर्यज्ञो यजमानस्तथर्त्विजः ।
धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतद् यदात्मकम् ॥३६॥

द्रव्यं मन्त्रः विधिः यज्ञः यजमानः अथ ऋत्विजः धर्मः देशः च कालः च सर्वं एतत् यत् आत्मकम् ॥३६॥

द्रव्यं मन्त्रः	सामग्री, मन्त्र,	**च कालः**	तथा काल,
विधिः यज्ञः	विधि, यज्ञ,	**एतत् सर्वं**	यह सब
यजमानः	यजमान	**यत् आत्मकं**	जिन (भगवान) का
अथ ऋत्विजः	तथा ऋत्विक् लोग,		स्वरूप है ॥३६॥
धर्मः च देशः	धर्म एवं देश,		

यावत् सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति ।
सर्वं तद् यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ॥३७॥

यावत् सूर्यं उदेति स्म यावत् च प्रतितिष्ठति सर्वं तत् यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रं उच्यते ॥३७॥

यावत् सूर्यं	जहाँसे सूर्य	**तत् सर्वं**	वह सब स्थान
उदेति स्म	उदय होता है	**यौवनाश्वस्य**	युवनाश्व नन्दन
च यावत्	तथा जहां	**मान्धातुः क्षेत्रं**	मान्धाताकी भूमि
प्रतितिष्ठति	अस्त होता है	**उच्यते**	कही जाती है ॥३७॥

शशबिन्दोर्दुहितरि बिन्दुमत्यामधान्नृपः ।
पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च योगिनम् ।
तेषां स्वसारः पञ्चाशत् सौभरिं वव्रिरे पतिम् ॥३८॥

शशबिन्दोः दुहितरि बिन्दुमत्यां अधात् नृपः पुरुकुत्सं अम्बरीषं मुचुकुन्दं च योगिनं तेषां स्वसारः पञ्चाशत् सौभरिं वव्रिरे पतिम् ॥३८॥

शशविन्दोः	शशविन्दुकी
दुहितरि	पुत्री
बिन्दुमत्यां	विन्दुमतीसे
नृपः	राजा मान्धाताने
पुरुकुत्सं	पुरुकुत्स,
अम्बरीषं च	अम्बरीष तथा
योगिनं	योगी
मुचुकुन्दं	मुचुकुन्दको
अधात्	उत्पन्न किया
तेषां पञ्चाशत्	उनकी पचास
स्वसारः	बहिनोंने
सौभरिं	सौभरि ऋषिको
पति वव्रिरे	पति वरण किया

॥३८॥

यमुनान्तर्जले मग्नस्तप्यमानः परंतपः ।
निर्वृतिं मीनराजस्य वीक्ष्य मैथुनधर्मिणः ॥३९॥

यमुना अन्तः जले मग्नः तप्यमानः परंतपः निर्वृतिं मीनराजस्य वीक्ष्य मैथुनधर्मिणः ॥३९॥

परंतपः	परम तपस्वी सौभरि
यमुना	यमुनाके
अन्तः	भीतर
जले मग्नः	जलमें डूबकर
तप्यमानः	तपस्या करते हुए
मैथुनधर्मिणः	मैथुनधर्मा
मीनराजस्य	मत्स्यराजका
निर्वृतिं वीक्ष्य	आनन्द देखकर

॥३९॥

जातस्पृहो नृपं विप्रः कन्यामेकामयाचत ।
सोऽप्याह गृह्यतां ब्रह्मन् कामं कन्या स्वयंवरे ॥४०॥

जातस्पृहः नृपं विप्रः कन्यां एकां अयाचत सः अपि आह गृह्यतां ब्रह्मन् कामं कन्या स्वयंवरे ॥४०॥

जातस्पृहः	(विवाह करनेकी) इच्छा उत्पन्न होनेसे	**सः अपि आह**	उन (राजा) ने भी कहा
विप्रः	उन ब्राह्मणने	**ब्रह्मन्**	ब्रह्मन !
नृपं	राजा मान्धातासे	**स्वयंवरे**	स्वयंवरमें
एकां कन्यां	एक कन्या	**कामं कन्या**	इच्छानुसार कन्या
अयाचत	मांगी,	**गृह्यतां**	ले सकते हैं ॥४०॥

स विचिन्त्याप्रियं स्त्रीणां जरठोऽयमसंमतः ।
वलीपलित एजत्क इत्यहं प्रत्युदाहृतः ॥४१॥

स विचिन्त्य अप्रियं स्त्रीणां जरठः अयं असंमतः वली पलित एजत् क इति अहं प्रति उदाहृतः ॥४१॥

स विचिन्त्य	उन (ऋषि) ने सोचा	**पलित**	केश पक गये हैं,
अयं जरठः	'यह बुड्ढा	**एजत् क**	सिर हिलता है,
स्त्रीणां अप्रियं	स्त्रियोंको अप्रिय	**इति अहं**	यह समझकर मुझे
असंमतः	अरुचिकर है,	**प्रति उदाहृतः**	अस्वीकार किया गया है ।' ॥४१॥
वली	झुर्रियां पड़ी हैं,		

साधयिष्ये तथाऽऽत्मानं सुरस्त्रीणामपीप्सितम् ।
किं पुनर्मनुजेन्द्राणामिति व्यवसितः प्रभुः ॥४२॥

साधयिष्ये तथा आत्मानं सुरस्त्रीणां अपि ईप्सितं किं पुनः मनुज इन्द्राणां इति व्यवसितः प्रभुः ॥४२॥

आत्मानं तथा साधयिष्ये	अपने शरीरको वैसा बनाऊँगा कि	**मनुज इन्द्राणां**	राजाओंकी कन्याओं-को
सुरस्त्रीणां	देवाङ्गनाओं	**किं**	क्या बात !'
अपि ईप्सितं	को भी अभीष्ट हो,	**इति प्रभुः**	ऐसा सोचकर उन समर्थने
पुनः	फिर	**व्यवसितः**	वैसा ही किया ॥४२॥

मुनिः प्रवेशितः क्षत्त्रा कन्यान्तः पुरमृद्धिमत् ।
वृतश्च राजकन्याभिरेकः पञ्चाशता वरः ॥४३॥

मुनिः प्रवेशितः क्षत्त्रा कन्या अन्तः पुरं ऋद्धिमत् वृतः च राज-कन्याभिः एकः पञ्चाशता वरः ॥४३॥

क्षत्त्रा मुनिः	रक्षकोंने मुनिको	**पञ्चाशता**	पचासो
ऋद्धिमत्	सम्पन्न	**राजकन्याभिः**	राजकन्याओं द्वारा
कन्या	कन्याओंके	**एकः वरः**	वे अकेले वर
अन्तः पुरं	अन्तःपुरमें	**वृतः च**	वरण कर लिए गये
प्रवेशितः	प्रवेश कराया		॥४३॥

तासां कलिरभूद् भूयांस्तदर्थेऽपोह्य सौहृदम् ।
ममानुरूपो नायं व इति तद्गतचेतसाम् ॥४४॥

तासां कलिः अभूत् भूयान् तत् अर्थे अपोह्य सौहृदं मम अनुरूपः न अयं व इति तत् गत चेतसाम् ॥४४॥

सौहृदं अपोह्य	सौहार्द्र त्यागकर	**अयं मम**	'ये मेरे
तत् गत चेतसां	उनमें लगे चित्तवाली	**अनुरूपः**	अनुरूप हैं'
तासां भूयान्	उन सबोंमें बहुत	**व न**	'तुम्हारे योग्य नहीं'
कलिः अभूत्	झगड़ा होने लगा	**इति**	इस प्रकार ॥४४॥

स बहृवृचस्ताभिरपारणीय-
तपः श्रियानर्घ्यपरिच्छदेषु ।
गृहेषु नानोपवनामलाम्भः-
सरस्सु सौगन्धिककाननेषु ॥४५॥

स वहृवृचः ताभिः अपारणीय तपः श्रिया अनर्घ्य परिच्छदेषु गृहेषु नाना उपवन अमल अम्भः सरः सु सौगन्धिक काननेषु ॥४५॥

स	वे ऋग्वेदी	**श्रिया**	प्रभावसे
वहृवृचः	ब्राह्मण सौभरि	**अनर्घ्य**	बहुमूल्य
अपारणीय तपः	अपने अपार तपके	**परिच्छदेषु**	सामग्री युक्त

गृहेषु	घरोंमें	**सौगन्धिक**	सुगन्धि युक्त
नाना उपवन	अनेक उपवनों,	**काननेषु ताभिः**	वनोंमें उनके साथ
अमल अम्भः	निर्मल जलके		॥४५॥
सरः सु	सरोवरोंमें,		

महार्हशय्यासनवस्त्रभूषण-
स्नानानुलेपाभ्यवहारमाल्यकैः ।
स्वलङ्कृतस्त्रीपुरुषेषु नित्यदा
रेमेऽनुगायद्द्विजभृङ्गवन्दिषु ॥४६॥

महा अर्ह शय्या आसन वस्त्र भूषण स्नान अनुलेप अभ्यवहार माल्यकैः स्वलंकृतः स्त्री पुरुषेषु नित्यदा रेमे अनुगायत् द्विजभृंग वन्दिषु ॥४६॥

महा अर्ह	महामूल्यवान	**स्वलंकृतः**	स्वयं अलंकृत रहने-वाले
शय्या	शय्या	**स्त्री-पुरुषेष**	स्त्री-पुरुषोंसे युक्त
आसन वस्त्र	आसन, वस्त्र	**द्विजभृंग**	पक्षी और भ्रमर
भूषण	आभूषण,		रूपी
स्नान अनुलेप	स्नान, अंगराग	**वन्दिषु**	बन्दीजनोंके
अभ्यवहार	आहार,	**अनुगायत्**	कूजनसे मंडित
माल्यकैः	मालाओंसे (सुशोभित)	**रेमे**	विहार करते रहे ॥४६॥
नित्यदा	सदा		

यद्गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य सप्तद्वीपवतीपतिः ।
विस्मितः स्तम्भमजहात् सार्वभौमश्रियान्वितम् ॥४७॥

यत् गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य सप्तद्वीपवती पतिः विस्मितः स्तम्भं अजहात् सार्वभौम श्रिया अन्वितः ॥४७॥

सार्वभौम श्रिया	चक्रवर्तित्वकी लक्ष्मी-से	**सप्तद्वीपवती**	सातों द्वीपों वाली
अन्वितः	युक्त	**पतिः**	पृथ्वीके स्वामीने

यत् गार्हस्थ्यं तु	जिनके गुहस्थ सुखको तो	**विस्मितः**	चकित होकर
संवीक्ष्य	देखकर	**स्तम्भं**	अपना गर्व
		अजहात्	त्याग दिया ॥४७॥

एवं गृहेष्वभिरतो विषयान् विविधैः सुखैः ।
सेवमानो न चातुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः ॥४८॥

एवं गृहेषु अभिरतः विषयान् विविधैः सुखैः सेवमानः न च अतुष्यत् आज्यः तोकैः इव अनलः ॥४८॥

एवं	इस प्रकार	**सुखैः सेवमानः**	सुख पूर्वक सेवन करते हुए
गृहेषु	गृहस्थ-धर्ममें	**आज्यः तोकैः**	धृतकी बूँदोंसे
अभिरतः	आसक्त होकर	**अनलः इव**	अग्निके समान
विविधैः	अनेक प्रकारके	**अतुष्यत् न च**	सन्तुष्ट नहीं ही हुए ॥४८॥
विषयान्	भोगोंको		

स कदाचिदुपासीन आत्मापह्नवमात्मनः ।
ददर्श बह्वृचाचार्यो मीनसङ्गसमुत्थितम् ॥४९॥

स कदाचित् उपासीन आत्मा अपह्नवं आत्मनः ददर्श बह्वृच आचार्यः मीनसंग समुत्थितम् ॥४९॥

स बह्वृच	उन ऋग्वेदी	**समुत्थितं**	उठ खड़े हुए
आचार्यः	आचार्यने	**आत्मनः**	अपने
कदाचित्	किसी समय	**आत्मा अपह्नवं**	चित्तके ठगे जानेको
उपासीन	स्वस्थ बैठे हुए,	**ददर्श**	देखा ॥४९॥
मीनसंग	मछलियोंके साथसे		

अहो इमं पश्यत मे विनाशं
तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य ।
अन्तर्जले वारिचरप्रसङ्गात्
प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत् ॥५०॥

अहो इमं पश्यत मे विनाशं तपस्विनः सत् चरित व्रतस्य अन्तः जले वारिचर प्रसंगात् प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत् ॥५०॥

अहो मे	अरे, मुझ	**धृतं**	धारण किया
तपस्विनः	तपस्वी,	**ब्रह्म**	ब्रह्मचर्य
सत् चरित	सच्चरित्र,	**अन्तः जले**	पानीके भीतर
व्रतस्य	व्रतनिष्ठका	**वारिचर**	जल जीवोंके
इमं विनाशं	यह पतन	**प्रसंगात्**	साथसे
पश्यत यत्	देखो, क्योंकि	**प्रच्यावितं**	मैंने स्खलित कर
चिरं	बहुत समयका		दिया ॥५०॥

सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः
सर्वात्मना न विसृजेद् बहिरिन्द्रियाणि ।
एकश्चरन् रहसि चित्तमनन्त ईशे
युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत् प्रसंगः ॥५१॥

संग त्यजेत मिथुन व्रतिनां मुमुक्षुः सर्व आत्मना न विसृजेत् बहिः इन्द्रियाणि एकः चरन् रहसि चित्तं अनन्त ईशे युञ्जीत तत् व्रतिषु साधुषु चेत् प्रसंगः ॥५१॥

मुमुक्षुः	मुक्त होनेका इच्छुक	**चरन्**	रहते हुए
मिथुन	जोड़ा बनाकर	**अनन्त ईशे**	अनन्त ईश्वरमें
व्रतिनां	रहनेवालों का	**चित्तं युञ्जीत**	चित्त लगाता रहे,
संग त्यजेत्	साथ त्याग दे,	**चेत् प्रसंगः**	यदि साथ करना ही
सर्व आत्मना	सब प्रकार से		हो तो
इन्द्रियाणि	अपनी इन्द्रियोंको	**तत्**	उन भगवानमें
बहिः न	बाहर न	**व्रतिषु**	निष्ठावाले
विसृजेत्	छोड़े.	**साधुषु**	सत्पुरुषोंका करे
रहसि एकः	एकान्तमें अकेले		॥५१॥

एकस्तपस्व्यहमथाम्भसि मत्स्यसंगात्
पञ्चाशदासमुत पञ्चसहस्रसर्गः ।

नान्तं व्रजाम्युभयकृत्यमनोरथानां
मायागुणैर्हृतमतिर्विषयेऽर्थभावः ॥५२॥

एकः तपसि अहं अथ अम्भसि मत्स्य संगात् पञ्चाशत आसं उत पञ्च सहस्र सर्गः न अन्तं व्रजामि उभय कृत्य मनोरथानां माया गुणैः हृत मतिः विषये अर्थ भावः ॥५२॥

अहं एकः	मैं अकेला	**अर्थ भावः**	सत्यत्व बुद्धि हो गया
तपसि	तपस्वी था,	**माया गुणैः**	अतः मायाके गुणोंसे
अथ अम्भसि	फिर जलमें	**हृत मतिः**	बुद्धि हरण होनेसे
मत्स्य संगात्	मछलियोंके साथसे	**उभय**	दोनों (लौकिक-पार लौकिक)
पञ्चाशत	(पति रूपमें) पचास		
आसं	हो गया	**कृत्य**	करणीय
उत सर्गः	फिर सन्तान रूपसे	**मनोरथानां**	कामनाओंका
पञ्च सहस्र	पांच हजार हो गया,	**अन्तं न व्रजामि**	पार नहीं पाता हूँ ॥५२॥
विषये	अब विषयोंमें		

एवं वसन् गृहे कालं विरक्तो न्यासमास्थितः ।
वनं जगामानुययुस्तत्पत्न्यः पतिदेवताः ॥५३॥

एवं वसन् गृहे कालं विरक्तः न्यासं आस्थितः वनं जगाम अनुययुः तत् पत्न्यः पतिदेवताः ॥५३॥

एवं गृहे	इस प्रकार घरमें	**वनं जगाम**	वन चले गये'
वसन्	रहते हुए	**पतिदेवताः**	पतिको आराध्या माननेवाला
कालं	कुछ समयमें		
विरक्तः	विरक्त होकर	**तत् पत्न्यः**	उनकी पत्नियां
न्यासं	संन्यास	**अनुययुः**	उनके पीछे गयीं ॥५३॥
आस्थितः	स्वीकार करके		

तत्र तप्त्वा तपस्तीक्ष्णमात्मकर्शनमात्मवान् ।
सहैवाग्निभिरात्मानं युयोज परमात्मनि ॥५४॥

तत्र तप्त्वा तपः तीक्ष्णं आत्मकर्शनं आत्मवान् सह एव अग्निभिः आत्मानं युयोज परमात्मनि ॥५४॥

आत्मवान्	उन धैर्यशालीने	**अग्निभिः**	आवहनीय अग्निके
तत्र	वहां	**सह एव**	साथ ही
आत्मकर्शनं	शरीरको कृश करने वाला	**आत्मानं**	अपनेको
		परमात्मनि	परमात्मामें
तीक्ष्णं तपः	उग्रतप	**युयोज**	लगा दिया ॥५४॥
तप्त्वा	करके		

ताः स्वपत्युर्महाराज निरीक्ष्याध्यात्मिकीं गतिम् ।
अन्वीयुस्तत्प्रभावेण अग्निं शान्तमिवार्चिषः ॥५५॥

ताः स्वपत्युः महाराज निरीक्ष्य आध्यात्मिकीं गतिं अनु ईयुः तत् प्रभावेण अग्निं शान्तं इव अर्चिषा ॥५५॥

महाराज	महाराज !	**तत् प्रभावेण**	उनके प्रभावसे
ताः	वे (उनकी पत्नियां)	**शान्तं अर्चिषा**	ज्योति शान्त हुए
स्वपत्युः	अपने पतिकी	**अग्नि इव**	अग्निके समान
आध्यात्मिकीं	अध्यात्मिक	**अनु ईयुः**	अनुगामिनी हुईं ॥५५॥
गतिं निरीक्ष्य	गति देखकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे सौभर्युपाख्याने षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

मान्धातुः पुत्रप्रवरो योऽम्बरीषः प्रकीर्तितः ।
पितामहेन प्रवृतो यौवनाश्वश्च तत्सुतः ।
हारीतस्तस्य पुत्रोऽभून्मान्धातृप्रवरा इमे ॥१॥

मान्धातुः पुत्रप्रवरः यः अम्बरीषः प्रकीर्तितः पितामहेन प्रवृत्तः यौवनाश्वः च तत् सुतः हारीतः तस्य पुत्रः अभूत् मान्धातृ प्रवरा इमे ॥१॥

मान्धातुः	मान्धाताका	**च यौवनाश्वः**	तथा यौवनाश्व
यः पुत्रप्रवरः	जो ज्येष्ठ पुत्र	**तत् सुतः**	उसका पुत्र हुआ,
अम्बरीषः	अम्बरीष	**तस्य पुत्रः**	उसका पुत्र
प्रकीर्तितः	कहा गया है,	**हारीतः अभूत्**	हारीत हुआ
पितामहेन	अपने पितामह द्वारा	**इमे**	ये तीनों
प्रवृत्तः	(पुत्र रूपसे) स्वीकार किया गया था	**मान्धातृ प्रवरा**	मान्धान्तृ प्रवर* हुए ॥१॥

नर्मदा भ्रातृभिर्दत्ता पुरुकुत्साय योरगैः ।
तया रसातलं नीतो भुजगेन्द्रप्रयुक्तया ॥२॥

नर्मदा भ्रातृभिः दत्ता पुरुकुत्साय यः उरगैः तया रसातलं नीतः भुजगेन्द्र प्रयुक्तया ॥२॥

भुजगेन्द्र	नागराज द्वारा	**उरगैः**	नागों द्वारा
प्रयुक्तया	प्रेरित	**पुरुकुत्साय**	पुरुकुत्सको
यः भ्रातृभिः	जो अपने भाई	**दत्ता**	विवाह दी गयी

---

* अवान्तर गोत्र प्रवर्तक

नर्मदा	नर्मदा थी	**रसातलं नीतः**	रसातल ले जाया
तया	उसके द्वारा (पुरुकुत्स)		गया ॥२॥

गन्धर्वानवधीत् तत्र वध्यान् वै विष्णुशक्तिधृक् ।
नागाल्लब्धवरः सर्पादभयं स्मरतामिदम् ॥३॥

गन्धर्वान् अवधीत् तत्र वध्यान् वै विष्णु शक्ति धृक् नागात् लब्धवरः सर्पात् अभयं स्मरतां इदम् ॥३॥

विष्णु	भगवान् विष्णुकी	**नागात्**	नागराजसे
शक्ति	शक्ति	**लब्धवरः**	यह वरदान पाया
धृक् तत्र	धारण करके वहां	**इदं**	'इस आख्यानको
वै वध्यान्	निश्चय मार देने योग्य	**स्मरतां**	स्मरण करने वालेको
		सर्पात् अभयं	सर्पोंसे भय न हो'
गन्धर्वान्	गन्धर्वोंको		॥३॥
अवधीत्	मार दिया		

त्रसद्दस्युः पौरुकुत्सो योऽनरण्यस्य देहकृत् ।
हर्यश्वस्तत्सुतस्तस्मादरुणोऽथ त्रिबन्धनः ॥४॥

त्रसद्दस्युः पौरुकुत्सः यः अनरण्यस्य देहकृत् हर्यश्वः तत् सुतः तस्मात् अरुणः अथ त्रिबन्धनः ॥४॥

पौरुकुत्सः	पुरुकुत्सका पुत्र	**तत् सुतः**	उस (अनरण्य) का पुत्र
त्रसद्दस्युः	त्रसद्दस्यु हुआ		
यः अनरण्यस्य	जो अनरण्यको	**हर्यश्वः**	हर्यश्व हुआ
देहकृत्	शरीर देनेवाला पिता हुआ	**तस्मात्**	उससे
		अरुणः अथ	अरुण और उससे
		त्रिबन्धनः	त्रिबन्धन हुआ ॥४॥

तस्य सत्यव्रतः पुत्रस्त्रिशङ्कुरिति विश्रुतः ।
प्राप्तश्चाण्डालतां शापाद् गुरोः कौशिकतेजसा ॥५॥

तस्य सत्यव्रतः पुत्रः त्रिशंकुः इति विश्रुतः प्राप्तः चाण्डालतां शापात् गुरोः कौशिक तेजसा ॥५॥

तस्य	उस (त्रिबन्धन) का	**शापात्**	शापसे
पुत्रः	पुत्र	**चाण्डालतां**	चाण्डालता
सत्यव्रतः	सत्यव्रत	**प्राप्तः**	प्राप्त हो गया,
त्रिशङ्कु इति	त्रिशंकु इस नामसे	**कौशिक**	फिर विश्वामित्रके
विश्रुतः	प्रसिद्ध है	**तेजसा**	तेजसे ॥५॥
गुरोः	गुरु (वशिष्ट) के		

सशरीरो गतः स्वर्गमद्यापि दिवि दृश्यते ।
पातितोऽवाक्शिरा देवैस्तेनैव स्तम्भितो बलात् ॥६॥

सशरीरः गतः स्वर्गं अद्य अपि दिवि दृश्यते पातितः अवाक् शिरा देवैः तेन एव स्तम्भितः बलात् ॥६॥

सशरीरः	इसी शरीरसे	**बलात्**	बल पूर्वक
स्वर्गं गतः	स्वर्ग गया,	**स्तम्भितः**	रोक दिया
देवैः	देवताओंने	**अद्य अपि**	आज भी (वह)
अवाक् शिरा	नीचे सिर करके	**दिवि दृश्यते**	आकाशमें दीखता है ॥६॥
पातितः	गिरा दिया		
तेन एव	उन्होंने (विश्वामित्र-ने) ही		

त्रैशङ्कवो हरिश्चन्द्रो विश्वामित्रवसिष्ठयोः ।
यन्निमित्तमभूद् युद्धं पक्षिणोर्बहुवार्षिकम् ॥७॥

त्रैशङ्कवः हरिश्चन्द्रः विश्वामित्र वसिष्ठयोः यत् निमित्तं अभूत् युद्धं पक्षिणोः बहुवार्षिकम् ॥७॥

त्रैशङ्कवः	त्रिशंकुका पुत्र	**विश्वामित्र**	विश्वामित्र और
हरिश्चन्द्रः	हरिश्चन्द्र हुआ	**वसिष्ठयोः**	वसिष्ठजीका
यत् निमित्तं	जिसके कारण	**बहुवार्षिकं**	बहुत वर्षों तक
पक्षिणोः	पक्षी बने	**युद्धं अभूत्**	युद्ध होता रहा ॥७॥

सोऽनपत्यो विषण्णात्मा नारदस्योपदेशतः ।
वरुणं शरणं यातः पुत्रो मे जायतां प्रभो ॥८॥

सः अनपत्यः विषण्ण आत्मा नारदस्य उपदेशतः वरुणं शरणं यातः पुत्रः मे जायतां प्रभो ॥८॥

सः अनपत्यः	वह सन्तानहीन होनेसे	**वरुणं शरणं**	वरुणकी शरणमें
विषण्ण आत्मा	खिन्न चित्त था,	**यातः**	जाकर बोला—
नारदस्य	नारदजीके	**प्रभो मे पुत्रः**	प्रभो ! मेरे पुत्र
उपदेशतः	उपदेशसे	**जायतां**	उत्पन्न हो ॥८॥

यदि वीरो महाराज तेनैव त्वां यजे इति ।
तथेति वरुणेनास्य पुत्रो जातस्तु रोहितः ॥९॥

यदि वीरः महाराज तेन एव त्वां यजे इति तथा इति वरुणेन अस्य पुत्रः जातः तु रोहितः ॥९॥

महाराज	महाराज !	**वरुणेन तथा**	वरुण ने 'तथास्तु'
यदि वीरः	यदि वीर (पुरुष) हुआ तो	**इति**	कहा
		अस्य पुत्रः	इससे उसका पुत्र
तेन एव त्वां	उसीके द्वारा आपका	**रोहितः**	रोहित
यजे इति	यजन करूँगा' ऐसा कहनेपर	**जातः तु**	उत्पन्न तो हो गया ॥९॥

जातः सुतो ह्यनेनाङ्ग मां यजस्वेति सोऽब्रवीत् ।
यदा पशुर्निर्दशः स्यादथ मेध्यो भवेदिति ॥१०॥

जातः सुतः हि अनेन अंग मां यजस्व इति सः अब्रवीत् यदा पशुः निर्दशः स्यात् अथ मेध्यः भवेत् इति ॥१०॥

हि सुतः	'क्योंकि पुत्र	**मां यजस्व**	मेरा यजन करो'
जातः	उत्पन्न हो गया	**इति**	ऐसा (वरुणने कहा)
अंग अनेन	प्रिय ! इसके द्वारा	**सः**	तब उस

अब्रवीत्	हरिश्चन्द्रने ऐसा कहा—	**निर्दशः स्यात्**	दस दिनका हो जायगा
यदा पशुः	'जब पशु	**अथ मेध्यः भवेत्**	तब पवित्र हो गया' ॥१०॥

निर्दशे च स आगत्य यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ।
दन्ताः पशोर्यज्जायेरन्नथ मेध्यो भवेदिति ॥११॥

निर्दशे च स आगत्य यजस्व आह इति सः अब्रवीत् दन्ताः पशोः यत् जायेरन् अथ मेध्यः भवेत् इति ॥११॥

निर्दशे च	दस दिनका हो जाने-पर	**इति अब्रवीत्**	इस प्रकार बोला—
स आगत्य	वे (वरुण) आकर	**यत् पशोः**	जब पशुके
इति आह	यह बोले—	**दन्ताः जायेरन्**	दांत उत्पन्न होंगे
यजस्व	'अब यजन करो'	**अथ**	तब
सः	वह	**मेध्यः भवेत्**	पवित्र होगा' ॥११॥

जाता दन्ता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ।
यदा पतन्त्यस्य दन्ता अथ मेध्यो भवेदिति ॥१२॥

जाता दन्ता यजस्व इति स प्रति आह अथ सः अब्रवीत् यदा पतन्ति अस्य दन्ता अथ मेध्यः भवेत् इति ॥१२॥

जाता दन्ता	दांत उत्पन्न होनेपर	**अब्रवीत्**	बोला—
स प्रति	उन (वरुण) ने फिर	**यदा अस्य**	जब इसके
आह	कहा	**दन्ता**	दांत
यजस्व इति	'अब यजन करो ।'	**पतन्ति अथ**	गिर जायँगे तब
अथ सः इति	फिर वह इस प्रकार	**मेध्यः भवेत्**	पवित्र होगा' ॥१२॥

पशोर्निपतिता दन्ता यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ।
यदा पशोः पुनर्दन्ता जायन्तेऽथ पशुः शुचिः ॥१३॥

पशोः निपतिता दन्ता यजस्व इति आह सः अब्रवीत् यदा पशोः पुनः दन्ता जायन्ते अथ पशुः शुचिः ।।१३।।

पशोः दन्ता	पशुके दांत
निपतिता	गिर जानेपर
यजस्व	'यजन करो'
इति आह	ऐसा कहा तो
सः अब्रवीत्	वह बोला—
यदा पशोः	'जब पशुके
पुनः दन्ता	फिर दांत आ जायँगे
अथ पशुः	तब पशु
शुचिः	पवित्र होगा' ।।१३।।

पुनर्जाता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ।
सान्नाहिको यदा राजन् राजन्योऽथ पशुः शुचिः ।।१४।।

पुनः जाता यजस्व इति स प्रति आह अथ सः अब्रवीत् सान्नाहिकः यदा राजन् राजन्यः अथ पशुः शुचिः ।।१४।।

पुनः जाता	फिर दांत निकल आनेपर
स प्रति	उन राजासे
इति आह	यह (वरुणने) कहा–
यजस्व	:यजन करो ।'
सः अब्रवीत्	वह बोला
राजन् यदा	'राजन् जब
सान्नाहिकः	कवच धारण करने योग्य हो
अथ राजन्यः	तब राज पुरुष-रूप
पशुः शुचिः	पशु पवित्र होता है' ।।१४।।

इति पुत्रानुरागेण स्नेहयन्त्रितचेतसा ।
कालं वञ्चयता तं तमुक्तो देवस्तमैक्षत ।।१५।।

इति पुत्र अनुरागेण स्नेह यन्त्रित चेतसा कालं वञ्चयता तं तं उक्तः देवः तं ऐक्षत ।।१५।।

इति	इस प्रकार
पुत्र अनुरागेण	पुत्रके अनुरागवश
स्नेह यन्त्रित	स्नेह-नियन्त्रित
चेतसा तं तं	चित्तसे उस-उस
कालं	समयको
वञ्चयता	टालते हुए
उक्तः देवः	कहता रहा, देव वरुण
तं ऐक्षत	उसकी प्रतीक्षा करते रहे ।।१५।।

रोहितस्तदभिज्ञाय पितुः कर्म चिकीर्षितम् ।
प्राणप्रेप्सुर्धनुष्पाणिररण्यं प्रत्यपद्यत ॥१६॥

रोहितः तत् अभिज्ञाय पितुः कर्म चिकीर्षितं प्राणप्रेप्सुः धनुः पाणिः अरण्यं प्रत्यपद्यत ॥१६॥

पितुः	पिता जो	**प्राणप्रेप्सुः**	प्राण बचानेके लिए
चिकीर्षितं	करना चाहते थे	**धनुः पाणिः**	हाथमें धनुष लेकर
तत् कर्म	उस कर्मको	**रोहितः अरण्यं**	रोहित वनमें
अभिज्ञाय	जानकर	**प्रत्ययद्यत**	चला गया ॥१६॥

पितरं वरुणग्रस्तं श्रुत्वा जातमहोदरम् ।
रोहितो ग्राममेयाय तमिन्द्रः प्रत्यषेधत ॥१७॥

पितरं वरुण ग्रस्तं श्रुत्वा जात महोदरं रोहितः ग्रामं एयाम तं इन्द्रः प्रत्यषेधत ॥१७॥

वरुण ग्रस्तं	वरुणसे ग्रस्त	**एयाय**	आने लगा; किन्तु
महोदरं	महोदर (जलोदर)	**तं इन्द्रः**	उसे इन्द्रने
जात	रोग हुआ	**प्रत्यषेधत**	मना कर दिया
पितरं श्रुत्वा	पिताको सुनकर		॥१७॥
रोहितः ग्रामं	रोहित अपने नगर		

भूमेः पर्यटनं पुण्यं तीर्थक्षेत्रनिषेवणैः ।
रोहितायादिशच्छक्रः सोऽप्यरण्येऽवसत् समाम् ॥१८॥

भूमेः पर्यटनं पुण्यं तीर्थक्षेत्र निषेवणैः रोहिताय आदिशत् शक्रः सः अपि अरण्ये अवसत् समाम् ॥१८॥

तीर्थक्षेत्र	पवित्र क्षेत्रोंका	**रोहिताय**	रोहितको यह
निषेवणैः	भली प्रकार सेवन करते हुए	**सक्रः आदिशत्**	इन्द्रने आदेश दिया,
		सः अपि	वह भी
भूमेः पर्यटनं	पृथ्वीपर घूमना	**अरण्ये**	वनमें
पुण्यं	पुण्यप्रद है	**समां अवसत्**	एक वर्ष रहा ॥१८॥

एवं द्वितीये तृतीये चतुर्थे पञ्चमे तथा ।
अभ्येत्य।भ्येत्य स्थविरो विप्रो भूत्वाऽऽह वृत्रहा ॥१९॥

एवं द्वितीये तृतीये चतुर्थे पञ्चमे तथा अभ्येत्य अभ्येत्य स्थविरः विप्रः भूत्वा आह वृत्रहा ॥१९॥

एवं द्वितीये	इसी प्रकार दूसरे,	**भूत्वा**	बनकर
तृतीये चतुर्थे	तीसरे, चौथे,	**अभ्येत्य**	बार-बार
तथा पञ्चमे	तथा पांचवें (वर्ष भी)	**अभ्येत्य**	पास आकर
स्थविरः विप्रः	वृद्ध ब्राह्मण	**वृत्रहा आह**	इन्द्रने कहा ॥१९॥

षष्ठं संवत्सरं तत्र चरित्वा रोहितः पुरीम् ।
उपव्रजन्नजीगर्तादक्रीणान्मध्यमं सुतम् ॥२०॥

षष्ठं संवत्सरं तत्र चरित्वा रोहितः पुरीं उपव्रजन् अजीगर्तात् अक्रीणान् मध्यमं सुतम् ॥२०॥

तत्र षष्ठं	वहां छः	**पुरीं उपव्रजन्**	अपने नगर लौटते समय
संवत्सरं	वर्ष		
चरित्वा	रहकर	**अजीगर्तात्**	अजीगर्तसे
रोहितः	रोहितने	**मध्यमं सुतं**	उसका मझला पुत्र
		अक्रीणान्	खरीद लिया ॥२०॥

शुनःशेपं पशुं पित्रे प्रदाय समवन्दत ।
ततः पुरुषमेधेन हरिश्चन्द्रो महायशाः ॥२१॥

शुनःशेपं पशुं पित्रे प्रदाय समवन्दत ततः पुरुषमेधेन हरिश्चन्द्रः महायशाः ॥२१॥

शुनः शेपं	उस शुनःशेपको	**ततः महायशाः**	तब महान् यशस्वी
पित्रे पशुं	पिताको पशु रूपमें	**हरिश्चन्द्रः**	हरिश्चन्द्रने
प्रदाय	देकर	**पुरुषमेधेन**	नरमेध यज्ञ द्वारा ॥२१॥
समवन्दत	वन्दना की		

मुक्तोदरोऽयजद् देवान् वरुणादीन् महत्कथः ।
विश्वामित्रोऽभवत् तस्मिन् होता चाध्वर्युरात्मवान् ॥२२॥

मुक्त उदरः अयजत् देवान् वरुण आदीन् महत् कथः विश्वामित्रः अभवत् तस्मिन् होता च अध्वर्युः आत्मवान् ॥२२॥

महत्	महापुरुषोंमें जिनकी	**अयजत्**	यज्ञ किया
कथः	चर्चा है उन हरि-	**तस्मिन् होता**	उस यज्ञमें होता
	श्चन्द्रने	**विश्वामित्रः**	विश्वामित्रजी
उदरः मुक्त	उदर रोगसे छूटकर	**अभवत्**	हुए
वरुण आदीन्	वरुणादि	**च आत्मवान्**	तथा आत्मज्ञ
देवान्	देवताओंका	**अध्वर्युः**	अध्वर्यु ॥२२॥

जमदग्निरभूद् ब्रह्मा वसिष्ठोऽयास्यसामगः ।
तस्मै तुष्टो ददाविन्द्रः शातकौम्भमयं रथम् ॥२३॥

जमदग्निः अभूत् ब्रह्मा वसिष्ठः अयास्य सामगः तस्मै तुष्टः ददाः इन्द्रः शातकौम्भमयं रथम् ॥२३॥

जमदग्निः	जमदग्नि,	**तस्मै तुष्टः**	उनपर सन्तुष्ट होकर
वसिष्ठः ब्रह्मा	वशिष्ठ ब्रह्मा,	**इन्द्रः**	इन्द्रने
अयास्य	अयास्य	**शातकौम्भमयं**	स्वर्णमय
सामगः	सामगायक	**रथं ददाः**	रथ प्रदान किया
	(उद्गाता)		॥२३॥
अभूत्	हुए		

शुनःशेपस्य माहात्म्यमुपरिष्टात् प्रचक्ष्यते ।
सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः ॥२४॥

शुनःशेपस्य माहात्म्यं उपरिष्टात् प्रचक्ष्यते सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः ॥२४॥

शुनःशेपस्य	शुनःशेपकी
माहात्म्यं	महिमा
उपरिष्टात्	आगे कही
प्रचक्ष्यते	जायगी,
च सभार्यस्य	तथा पत्नी सहित
भूपतेः	राजा हरिश्चन्द्रकी
सत्यसारां धृतिं	सत्य निष्ठामें धैर्य
दृष्ट्वा	देखकर ॥२४॥

विश्वामित्रो भृशं प्रीतो ददावविहतां गतिम् ।
मनः पृथिव्यां तामद्भिस्तेजसापोऽनिलेन तत् ॥२५॥

विश्वामित्रः भृशं प्रीतः ददा अवविहतां गतिं मनः पृथिव्यां तां अद्भिः तेजस् आपः अनिलेन तत् ॥२५॥

विश्वामित्रः	विश्वामित्रने
भृशं प्रीतः	अत्यन्त प्रसन्न होकर
अवविहतां गतिं	अव्याहत गति
ददा	प्रदान की
मनः	(हरिश्चन्द्रने) मनको
पृथिव्यां	पृथ्वीमें,
तां अद्भिः	उस (पृथ्वी) को जल में,
आपः तेजस्	जलको अग्निमें,
तत्	उस (अग्नि) को
अनिलेन	वायुसे ॥२५॥

खे वायुं धारयंस्तच्च भूतादौ तं महात्मनि ।
तस्मिञ्ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाज्ञानं विनिर्दहन् ॥२६॥

खे वायुं धारयन् तत् च भूत आदौ तं मह आत्मनि तस्मिन् ज्ञान कलां ध्यात्वा तया अज्ञानं विनिर्दहन् ॥२६॥

वायुं खे	वायुको आकाशमें,
तत् च	उस (आकाश) को भी
भूत आदौ	भूतादि (अहंकार) में
तं मह आत्मनि	उसे महत्तत्वमें
धारयन्	धारण कराके
तस्मिन्	उस (महत्तत्त्व) में
ज्ञान कलां	ज्ञान कलाका
ध्यात्वा तया	ध्यान करके उसके द्वारा
अज्ञानं	अज्ञानको
विनिर्दहन्	भस्म करके ॥२६॥

हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाणसुखसंविदा ।
अनिर्देश्याप्रतर्क्येण तस्थौ विध्वस्तबन्धनः ॥२७॥

हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाण सुख संविदा अनिर्देश्य अप्रतर्क्येण तस्थौ विध्वस्त बन्धनः ॥२७॥

निर्वाण सुख	निर्वाण सुखके	**विध्वस्त**	नष्ट करके
संविदा	सम्बोध द्वारा	**अनिर्देश्य**	निर्देश (वर्णन) से
तां	उस (ज्ञान कला) को भी		अतीत,
		अप्रतर्क्येण	अनुमानातीत
हित्वा	त्यागकर	**स्वेन भावेन**	अपने स्वरूपमें
बन्धनः	सब बन्धन	**तस्थौ**	स्थित हो गये ॥२७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
नवमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

हरितो रोहितसुतश्चम्पस्तस्माद् विनिर्मिता ।
चम्पापुरी सुदेवोऽतो विजयो यस्य चात्मजः ॥१॥

हरितः रोहित सुतः चम्पः तस्मात् विनिर्मिता चम्पापुरी सुदेवः अतः विजयः यस्य च आत्मजः ॥१॥

रोहित सुतः	रोहितका पुत्र	**च अतः**	फिर इससे
हरितः तस्मात्	हरित हुआ, उससे	**सुदेवः**	सुदेव हुआ
चम्पः	चम्प हुआ (जिसने)	**यस्य आत्मजः**	जिसका पुत्र
चम्पापुरी	चम्पापुरी	**विजयः**	विजय हुआ ॥१॥
विनिर्मिता	निर्माण की		

भरुकस्तत्सुतस्तस्माद् वृकस्तस्यापि बाहुकः ।
सोऽरिभिर्हृतभूः राजा सभार्यो वनमाविशत् ॥२॥

भरुकः तत् सुतः तस्मात् वृकः तस्या अपि बाहुकः सः अरिभिः हृत भूः राजा सभार्यः वनं आविशत् ॥२॥

तत् सुतः	उसका पुत्र	**अरिभिः**	शत्रु द्वारा
भरुकः	भरुक हुआ	**हृत भूः**	भूमि छीन लिए जाने पर
तस्मात् वृकः	उससे वृक,	**सभार्यः**	पत्नीके साथ
तस्या अपि	उसका भी	**वनं**	वनमें
बाहुकः	बाहुक हुआ,	**आविशत्**	प्रवेश कर गया ॥२॥
सः राजा	वह राजा		

वृद्धं तं पञ्चतां प्राप्तं महिष्यनु मरिष्यती ।
और्वेण जानताऽऽत्मानं प्रजावन्तं निवारिता ॥३॥

वृद्धं तं पञ्चतां प्राप्तं महिष्य अनु मरिष्यती और्वेण जानता आत्मानं प्रजावन्तं निवारिता ॥३॥

तं वृद्धं	उस (राजा) के वृद्ध होकर
पञ्चतां प्राप्तं	मर जानेपर
महिष्य	महारानी
अनु मरिष्यती	उसके पीछे मरने लगीं तब
आत्मानं	उसके शरीरको
प्रजावन्तं	सन्तानवान्
जानता	जानकर
और्वेण	और्वने
निवारिता	रोक दिया ॥३॥

आज्ञायास्यै सपत्नीभिर्गरो दत्तोऽन्धसा सह ।
सह तेनैव संजातः सगराख्यो महायशाः ॥४॥

आज्ञाय अस्यै सपत्नीभिः गरः दत्तः अन्धसा सह सह तेन एव संजातः सगर आख्यः महायशाः ॥४॥

सपत्नीभिः	सौतोंने
आज्ञाय	(यह बात) जानकर
अन्धसा सह	भोजनके साथ
अस्यै गरः दत्तः	इसको विष दे दिया
तेन एव सह	उस (गरल) के साथ ही
संजातः	उत्पन्न
महायशाः	महायशस्वी बालक
सगर	सगर
आख्यः	नामवाला हुआ ॥४॥

सगरश्चक्रवर्त्यासीत् सागरो यत्सुतैः कृतः ।
यस्तालजङ्घान् यवनाञ्छकान् हैहयबर्बरान् ॥५॥

सागरः चक्रवर्ति आसीत् सागरः यत् सुतैः कृतः यः तालजङ्घान् यवनान् शकान् हैहय बर्बरान् ॥५॥

सगरः चक्रवर्ति	सगर चक्रवर्ती राजा
आसीत्	हुआ,
यत् सुतैः	जिसके पुत्रोंने
सागरः कृतः	सागर बनाया,
यः	जिसने
तालजङ्घान्	ताल जंघ,
यवनान् शकान्	यवन, शक,
हैहय बर्बरान्	हैहय आदि बर्बर लोगोंको ॥५॥

नावधीद् गुरुवाक्येन चक्रे विकृतवेषिणः ।
मुण्डाञ्छ्मश्रुधरान् कांश्चिन्मुक्तकेशार्धमुण्डितान् ॥६॥

न अवधीत् गुरु वाक्येण चक्रे विकृत वेषिणः मुण्डान् श्मश्रुधरान् कांश्चित् मुक्तकेश अर्धमुण्डितान् ॥६॥

गुरु वाक्येण	गुरु (और्व) के कहनेसे	**श्मश्रुधरान्**	दाढ़ी-मूँछ रखनेवाले,
अवधीत् न	मारा नहीं,	**मुक्तकेश**	केश खुले रखनेवाले और
विकृत	विकृत	**अर्धमुण्डितान**	अर्ध मुण्डित
वेषिणः	वेष वाला	**चक्रे**	बना दिये ॥६॥
मुण्डान्	घुटे सिर वाले,		
कांश्चित्	कुछको		

अनन्तर्वाससः कांश्चिदबहिर्वाससोऽपरान् ।
सोऽश्वमेधैरयजत सर्ववेदसुरात्मकम् ॥७॥

अनन्तः वाससः कांश्चित् अबहिः वाससः अपरान् सः अश्वमेधैः अयजत सर्ववेद सुर आत्मकम् ॥७॥

अनन्तः	बिना भीतरी	**सः**	उन्होंने
वाससः	वस्त्रके (लुंगीवाले)	**अश्वमेधैः**	अश्वमेघ यज्ञ द्वारा
कांश्चित्	किन्हींको	**सर्ववेद**	सर्ववेद
अपरान्	तथा दूसरोंको	**सुर आत्मकं**	एवं देव स्वरूप
अबहिः	बिना बाहरी	**अयजत**	(भगवान) की
वाससः	वाले (केवल लंगोटी) वस्त्र (बना दिया)		आराधना की ॥७॥

और्वोपदिष्टयोगेन हरिमात्मानमीश्वरम् ।
तस्योत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहाराश्वं पुरन्दरः ॥८॥

और्व उपदिष्ट योगेन हरिं आत्मानं ईश्वरं तस्य उत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहार अश्वं पुरन्दरः ॥८॥

आत्मानं	परमात्मा,	**योगेन**	विधिसे (अर्चा की)
ईश्वरं	जगदीश्वर	**तस्य यज्ञे**	उनके यज्ञमें
हरिं	श्रीहरिका	**उत्सृष्टं पशुं**	छोड़े गये पशु
और्वं	अर्व	**अश्वं पुरन्दरः**	घोड़ेको इन्द्रने
उपदिष्ट	ऋषि द्वारा बतलायी	**जहार**	हरण कर लिया ॥८॥

सुमत्यास्तनया दृप्ताः पितुरादेशकारिणः ।
हयमन्वेषमाणास्ते समन्तान्न्यखनन् महीम् ॥९॥

सुमत्याः तनया दृप्ताः पितुः आदेश कारिणः हयं अन्वेषमाणाः ते समन्तात् न्यखनन् महीम् ॥९॥

सुमत्याः तनया	रानी सुमतिके पुत्र	**दृप्ताः**	गर्वमें आकर
पितुः	पिताके	**समन्तात्**	चारों ओरसे
आदेश कारिणः	आज्ञापालक थे,	**महीं**	पृथ्वीको
ते हयं	उन्होंने घोड़ेको	**न्यखनन्**	खोद डाला ॥९॥
अन्वेषमाणाः	ढूंढ़ते हुए		

प्रागुदीच्यां दिशि हयं ददृशुः कपिलान्तिके ।
एष वाजिहरश्चौर आस्ते मीलितलोचनः ॥१०॥

प्राक् उदीच्यां दिशि हयं ददृशुः कपिल अन्तिके एष वाजिहरः चौरः आस्ते मीलित लोचनः ॥१०॥

प्राक् उदीच्यां	पूर्वोत्तर (ईशान)	**एष वाजिहरः**	'यही घोड़ा चुराने-वाला
दिशि हयं	दिशामें घोड़ेको	**चौरः**	चोर है,
कपिल	महर्षि कपिलके	**मीलित लोचनः**	नेत्र बन्द करके
अन्तिके	समीप	**आस्ते**	बैठा है ॥१०॥
ददृशुः	देखा (तब बोल उठे)		

हन्यतां हन्यतां पाप इति षष्टिसहस्त्रिणः ।
उदायुधा अभिययुरुन्मिमेष तदा मुनिः ॥११॥

हन्यतां हन्यतां पाप इति षष्टि सहस्त्रिणः उद् आयुधा अभिययुः उन्मिमेष तदा मुनिः ॥११॥

पाप	इस पापीको	**उद् आयुधा**	हथियार उठाकर
हन्यतां हन्यतां	मार दो ! मार दो !'	**अभिययुः**	उनकी ओर झपटे
इति	ऐसा कहते	**तदा मुनिः**	तब कपिल मुनिने
षष्टि सहस्रिणः	वे साठ हजार	**उन्मिमेष**	पलकें खोलीं ॥११॥

स्वशरीराग्निना तावन्महेन्द्रहृतचेतसः ।
महद्व्यतिक्रमहता भस्मसादभवन् क्षणात् ॥१२॥

स्व शरीर अग्निना तावत् महेन्द्र हृत चेतसः महत् व्यतिक्रम हता भस्मसात् अभवन् क्षणात् ॥१२॥

महेन्द्र हृत	इन्द्रकी मायासे	**स्व शरीर**	अपने शरीरसे
चेतसः	मोहित चित्त	**अग्निना**	प्रगट अग्निसे
महत्	महापुरुषका	**क्षणात्**	क्षण भरमें ही
व्यतिक्रम	अपराध करनेसे	**भस्मसात्**	भस्म
हता तावत्	मारे गये उसी स	**अभवन्**	हो गये ॥१२॥

न साधुवादो मुनिकोपभर्जिता
नृपेन्द्रपुत्रा इति सत्वधामनि ।
कथं तमो रोषमयं विभाव्यते
जगत्पवित्रात्मनि खे रजो भुवः ॥१३॥

न साधुवादः मुनिकोप भर्जिता नृपेन्द्रपुत्रा इति सत्त्व धामनि कथं तमः रोषमयं विभाव्यते जगत् पवित्र आत्मनि खे रजः भुवः ॥१३॥

नृपेन्द्रपुत्रा	'राजा सगरके पुत्र	**जगत्**	संसारको
मुनिकोप	कपिल मुनिके क्रोधसे	**पवित्र**	पवित्र करनेवाले
भर्जिता	भून दिये गये'	**आत्मनि**	श्रीविग्रह वाले
इति	इस प्रकार	**सत्व धामनि**	सत्त्व स्वरूपमें
साधुवादः	कहना अच्छा	**रोषमयं तमः**	क्रोध रूप तमो गुण-
न	नहीं है		की

विभाव्यते	सम्भावना	भुवः रजः	पृथ्वीकी धूलिके
कथं	कैसे की जा सकती	खे	आकाशमें होनेके
	है,		समान ॥१३॥

यस्येरिता सांख्यमयी दृढेह नौ-
र्यया मुमुक्षुस्तरते दुरत्ययम् ।
भवार्णवं मृत्युपथं विपश्चितः
परात्मभूतस्य कथं पृथङ्मतिः ॥१४॥

यस्य ईरिता सांख्यमयी दृढ़ इह नौः यया मुमुक्षुः तरते दुरत्ययं भव अर्णवं मृत्यु पथं विपश्चितः परात्म भूतस्य कथं पृथक् मतिः ॥१४॥

यया	जिसके द्वारा	दृढ नौः	दृढ़ नौका
मुमुक्षुः	मुक्त होनेका इच्छुक	यस्य	जिन्होंने
विपश्चितः	विवेकशील	ईरिता	प्रवृत्त किया है
मृत्यु पथं	मृत्युका मार्ग रूप	परात्म	उन परमात्म
दुरत्ययं	दुष्पार	भूतस्य	स्वरूपमें
भव	संसार सागरसे	पृथक् मतिः	भेद बुद्धि
अर्णवं तरते	पार हो जाते हैं	कथं	कैसे हो सकती है
इह	इस जगतमें		॥१४॥
सांख्यमयी	सांख्य शास्त्ररूपी		

योऽसमञ्जस इत्युक्तः स केशिन्या नृपात्मजः ।
तस्य पुत्रोंऽशुमान् नाम पितामहहिते रतः ॥१५॥

यः असमञ्जस इति उक्तः स केशिन्या नृप आत्मजः तस्य पुत्रः अंशुमान् नाम पितामह हिते रतः ॥१५॥

यः असमञ्जस	जो असमञ्जस	तस्य पुत्रः	उसका पुत्र
इति उक्तः	इस नामसे कहा गया	अंशुमान् नाम	अंशुमान् नामका
स	वह महारानी	पितामह हिते	पितामहकी भलाईमें
केशिन्या	केशिनीसे उत्पन्न	रतः	लगा रहता था
नृप	राजा सगरका		॥१५॥
आत्मजः	पुत्र था,		

असमञ्जस आत्मानं दर्शयन्नसमञ्जसम् ।
जातिस्मरः पुरा सङ्गाद् योगी योगाद् विचालितः ॥१६॥

असमञ्जस आत्मानं दर्शयन् असमञ्जसं जाति स्मरः पुरा सङ्गात् योगी योगात् विचालितः ॥१६॥

असमञ्जस	असमञ्जस	**जाति**	जन्मसे पूर्व जन्मका
पुरा योगी	पूर्व जन्ममें योगी था	**स्मरः**	उसे स्मरण था
सङ्गात्	आसक्तिके कारण	**आत्मानं**	अतः अपनेको
योगात्	योगसे	**असमञ्जसं**	सामंजस्यहीन
विचालितः	विचलित कर दिया	**दर्शयन्**	दिखलाते हुए ॥१६॥

आचरन् गर्हितं लोके ज्ञातीनां कर्म विप्रियम् ।
सरय्वां क्रीडतो बालान् प्रास्यदुद्वेजयज्जनम् ॥१७।

आचरन् गर्हितं लोके ज्ञातीनां कर्म विप्रियं सरय्वां क्रीडतः बालान् प्रास्यत् उद्वेजयत् जनम् ॥१७॥

लोके गर्हितं	लोकमें निन्दित	**बालान्**	बालकोंको
ज्ञातीनां	जाति वालोंको	**प्रास्यत्**	(नदीमें) फेंककर
विप्रियं	अप्रिय	**जनं**	लोगोंको
कर्म आचरन्	कर्म करते हुए	**उद्वेजयत्**	उद्विग्न कर दिया ॥०७॥
सरय्वां क्रीडतः	सरयू किनारे खेलते		

एवंवृत्तः परित्यक्तः पित्रा स्नेहमपोह्य वै ।
योगैश्वर्येण बालांस्तान् दर्शयित्वा ततो ययौ ॥१८॥

एवंवृत्तः परित्यक्तः पित्रा स्नेहं अपोह्य वै योग ऐश्वर्येण बालान् तान् दर्शयित्वा ततः ययौ ॥१८॥

एवंवृत्तः	ऐसा आचरण होनेसे	**ततः योग**	तब योगके
पित्रा वै	पिताने निश्चय	**ऐश्वर्येण**	प्रभावसे
स्नेहं	स्नेह,	**तान् बालान्**	उन बालकोंको
अपोह्य	छोड़कर	**दर्शयित्वा**	दिखलाकर
परित्यक्तः	त्याग दिया,	**ययौ**	चला गया ॥१८॥

अयोध्यावासिनः सर्वे बालकान् पुनरागतान् ।
दृष्ट्वा विसिस्मिरे राजन् राजा चाप्यन्वतप्यत ॥१९॥

अयोध्या वासिनः सर्वे बालकान् पुनः आगतान् दृष्ट्वा विसिस्मिरे राजन् राजा च अपि अन्वतप्यत ॥१९॥

राजन्	राजन् !	**दृष्ट्वा**	देखकर
सर्वे अयोध्या	सब अयोध्या	**विसिस्मिरे**	आश्चर्यमें पड़ गये,
वासिनः	वासी	**च राजा**	और राजा
पुनः आगतान्	फिर आये	**अन्वतप्यत**	बहुत संतप्त हुए ॥१९॥
बालकान् अपि	बालकोंको भी		

अंशुमांश्चोदितो राज्ञा तुरंगन्वेषणे ययौ ।
पितृव्यखातानुपथं भस्मान्ति ददृशे हयम् ॥२०॥

अंशुमानः चोदितः राज्ञा तुरंग अन्वेषणे ययौ पितृव्यखात अनुपथं भस्मान्ति ददृशे हयम् ॥२०॥

राज्ञा चोदितः	राजाके प्रेरणा देने-पर	**पितृव्यखात**	चाचा लोगोंके द्वारा बनासे गड्ढेके
तुरंग अन्वेषणे	घोड़ा ढूंढ़ने	**अनुपथं**	मार्गके पीछे चलकर
अंशुमानः ययौ	अंशुमान् गया,	**भस्मान्ति**	उनकी भस्मके समीप
		हयं ददृशे	घोड़ेको देखा ॥२०॥

तत्रासीनं मुनिं वीक्ष्य कपिलाख्यमधोक्षजम् ।
अस्तौत् समाहितमनाः प्राञ्जलिः प्रणतो महान् ॥२१॥

तत्र आसीनं मुनिं वीक्ष्य कपिल आख्यं अधोक्षजं अस्तौत् समाहित मनाः प्राञ्जलिः प्रणतः महान् ॥२१॥

तत्र कपिल	वहां कपिल	**अधोक्षजं**	भगवानके अवतार
आख्यं	नामवाले	**महान् मुनिं**	महामुनिको

आसीनं वीक्ष्य	बैठा देखकर	**समाहित मनाः**	एकाग्र चित्तसे
प्रणतः	प्रणाम करके	**अस्तौत्**	स्तुति की ॥२१॥
प्राञ्जलिः	हाथ जोड़कर		

अंशुमान उवाच

न पश्यति त्वां परमात्मनोऽजनो
न बुध्यतेऽद्यापि समाधियुक्तिभिः ।
कुतोऽपरे तस्य मनःशरीरधी-
विसर्गसृष्टा वयमप्रकाशाः ॥२२॥

न पश्यति त्वां परमात्मनः अजनः न बुध्यते अद्य अपि समाधि युक्तिभिः कुतः अपरे तस्य मनः शरीर धीः विसर्ग सृष्टा वयं अप्रकाशाः ॥२२॥

त्वां	आप	**तस्य मनः**	उनके मन,
परमात्मनः	परमात्माको	**शरीर धीः**	शरीर, बुद्धिसे
अद्य अपि	अब तक भी	**विसर्ग सृष्टा**	होनेवाली सृष्टिके
समाधि	समाधि और	**अपरे**	दूसरे
युक्तिभिः	युक्तियों द्वारा	**वयं अप्रकाशाः**	हम आज्ञानी लोग
अजनः	अजन्मा (ब्रह्माजी)	**कुतः**	कहांसे जानेंगे ॥२२॥
न बुध्यते	नहीं जान सके		

ये देहभाजस्त्रिगुणप्रधाना
गुणान् विपश्यन्त्युत वा तमश्च ।
यन्मायया मोहितचेतसस्ते
विदुः स्वसंस्थं न बहिःप्रकाशाः ॥२३॥

ये देह भाजः त्रिगुण प्रधाना गुणान् विपश्यन्ति उत वा तमः च यत् मायया मोहित चेतसः ते विदुः स्व संस्थं न बहिः प्रकाशाः ॥२३॥

यत् मायया	जिनकी मायासे	**त्रिगुण प्रधाना**	त्रिगुण प्रधान
मोहित चेतसः	मोहित चित्तवाले	**ये देह भाजः**	जो शरीरधारी हैं

गुणान्	गुणोंको ही	**बहिः प्रकाशाः**	बहिर्मुख होनेके
विपश्यन्ति	देखते हैं		कारण
उतवा	अथवा	**स्वसंस्थं**	अपनेमें स्थित
तमः च	(सुषुप्तिमें) अज्ञान-	**ते न**	आपको नहीं
	को भी देखते हैं,	**विदुः**	जानते ॥२३॥

तं त्वामहं ज्ञानघनं स्वभाव-
प्रध्वस्तमायागुणभेदमोहैः ।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यं
कथं हि मूढः परिभावयामि ॥२४॥

तं त्वां अहं ज्ञानघनं स्वभाव प्रध्वस्त मायागुण भेद मोहैः सनन्दन आद्यैः मुनिभिः विभाव्यं कथं हि मूढः परिभावयामि ॥२४॥

तं त्वां	उस आप	**आद्यैः**	आदि
ज्ञानघनं	ज्ञानघन,	**मुनिभिः**	मुनियों द्वारा
मायागुण	मायाके गुणोंसे	**विभाव्यं**	चिन्तनीयको
	उत्पन्न	**हि अहं मूढः**	क्योंकि मैं अज्ञानी हूँ
भेद मोहैः	भेद रूप मोह	**कथं**	कैसे
स्वभाव	अपने स्वरूपानुभवसे	**परिभावयामि**	भावना कर सकता
प्रध्वस्त	विनष्ट किये		हूँ ॥२४॥
सनन्दन	सनन्दन		

प्रशान्तमायागुणकर्मलिङ्ग-
मनामरूपं सदसद्विमुक्तम् ।
ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं
नमामहे त्वां पुरुषं पुराणम् ॥२५॥

प्रशान्त माया गुण कर्मलिगं अनाम अरूपं सत् असत् विमुक्तं ज्ञान उपदेशाय गृहीत देहं नमामहे त्वां पुरुषं पुराणम् ॥२५॥

माया गुण	मायाके गुण,	**प्रशान्त**	जिनमें अत्यन्त शान्त-
कर्मलिगं	कर्म, लिंग		(अदृश्य) हैं,

अनाम अरूपं	नाम-रूपसे रहित	**त्वां पुराणं**	आप पुराण
सत्-असत्	कारण-कार्य भावसे	**पुरुषं**	पुरुषको
विमुक्तं	छूटे हुए	**नमामहे**	हम नमस्कार करते
ज्ञान उपदेशाय	ज्ञानोपदेशके लिए		हैं ॥२५॥
गृहीत देहं	शरीर धारण किए		

त्वन्मायारचिते लोके वस्तुबुद्धया गृहादिषु ।
भ्रमन्ति कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रान्तचेतसः ॥२६॥

त्वत् माया रचिते लोके वस्तु बुद्ध्या गृह आदिषु भ्रमन्ति काम लोभ ईर्ष्या मोह विभ्रान्त चेतसः ॥२६॥

काम लोभ	कामना, लोभ,	**रचिते लोके**	निर्मित संसारमें
ईर्ष्या मोह	ईर्ष्या, मोहसे	**वस्तु बुद्ध्या**	सत्यत्व बुद्धि करके
विभ्रान्त	अत्यन्त भ्रान्त	**गृह आदिषु**	गृह आदिमें
चेतसः	चित्त लोग	**भ्रमन्ति**	भटकते रहते हैं
त्वत् माया	आपकी मायासे		॥२६॥

अद्य नः सर्वभूतात्मन् कामकर्मेन्द्रियाशयः
मोहपाशो दृढश्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात् ॥२७॥

अद्य नः सर्वभूत आत्मन् काम कर्म इन्द्रिय आशयः मोहपाशः दृढः छिन्नः भगवन् तव दर्शनात् ॥२७॥

भगवन्	भगवन् !	**इन्द्रिय**	इन्द्रिय चित्तका
सर्वभूत	समस्त प्राणियोंके	**आशयः**	आधार रूप
आत्मन्	आत्मरूप	**दृढः मोहपाशः**	दृढ मोहपाश
तव दर्शनात्	आपके दर्शनसे	**अद्य नः**	आज मेरा
काम कर्म	कामना, कर्म और	**छिन्नः**	कट गया ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

इत्थंगीतानुभावस्तं भगवान् कपिलो मुनिः ।
अंशुमन्तमुवाचेदमनुगृह्य धिया नृप ॥२८॥

इत्थं गीतः अनुभावः तं भगवान् कपिलः मुनिः अंशुमन्तं उवाच इदं अनुगृह्य धिया नृप ॥२८॥

नृप	राजन् !	**कपिलः मुनिः**	कपिल मुनि
इत्थं	इस प्रकार	**धिया अनुगृह्य**	हृदयसे अनुग्रह करके
अनुभावः	प्रभाव	**तं अंशुमन्तं**	उस अंशुमानसे
गीतः	वर्णन करनेपर	**इदं उवाच**	यह बोले ॥२८॥
भगवान्	भगवान्		

श्रीभगवानुवाच

अश्वोऽयं नीयतां वत्स पितामहपशुस्तव ।
इमे च पितरो दग्धा गंगाम्भोऽर्हन्ति नेतरत् ॥२९॥

अश्वः अयं नीयतां वत्स पितामह पशुः तव इमे च पितरः दग्धा गंगा अम्भः अर्हन्ति न इतरत् ॥२९॥

वत्स अयं	वत्स ! यह	**पितरः**	पितृगण
अश्वः	घोड़ा	**गंगा अम्भः**	गङ्गा-जल
तव पितामह	तुम्हारे पितामहका	**अर्हन्ति**	पाने योग्य हैं,
पशुः नीयतां	यज्ञ पशु है, इसे ले जाओ,	**इतरत्**	दूसरा और कुछ
		न	नहीं ॥२९॥
अयं ते दग्धा	ये तुम्हारे जल गये		

श्रीशुक उवाच*

तं परिक्रम्य शिरसा प्रसाद्य हयमानयत् ।
सगरस्तेन पशुना क्रतुशेषं समापयत् ॥३०॥

तं परिक्रम्य शिरसा प्रसाद्य हयं आनयत् सगरः तेन पशुना क्रतुशेषं समापयत् ॥३०॥

तं	उन (कपिल) की	**शिरसा**	सिर झुकाकर
परिक्रम्य	परिक्रमा करके	**प्रसाद्य**	प्रसन्न करके

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

हयं आनयत्	घोड़ा ले आया,	**क्रतुशेषं**	यज्ञका बचा भाग
तेन पशुना	उस पशु द्वारा	**समापयत्**	सम्पन्न किया ॥३०॥
सगरः	राजा सगरने		

राज्यमंशुमति न्यस्य निःस्पृहो मुक्तबन्धनः ।
और्वोपदिष्टमार्गेण लेभे गतिमनुत्तमाम् ॥३१॥

राज्यं अंशुमति न्यस्य निःस्पृहः मुक्तबन्धनः और्व उपदिष्ट मार्गेण लेभे गतिं अनुत्तमम् ॥३१॥

अंशुमति	अंशुमानको	**उपदिष्ट**	उपदेश किये
राज्यं न्यस्य	राज्य सौंपकर	**मार्गेण**	मार्गसे
निःस्पृहः	स्पृहा रहित तथा	**अनुत्तमां**	परम श्रेष्ठ
मुक्तबन्धनः	बन्धनहीन होकर	**गतिं लेभे**	पद प्राप्त किया
और्व	और्व ऋषिके		॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे सगरोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

अंशुमांश्च तपस्तेपे गङ्गानयनकाम्यया ।
कालं महान्तं नाशक्नोत् ततः कालेन संस्थितः ।१।।

अंशुमान् च तपः तेपे गंगा आनयन् काम्यया कालं महान्तं न शक्नोत् ततः कालेन संस्थितः ।।१।।

अंशुमान् च	अंशुमानने भी	**तपः तेपे**	तपस्या की; किन्तु
गंगा	गंगाजीको	**शक्नोत् न**	समर्थ नहीं हुआ
आनयन्	लानेकी	**ततः कालेन**	फिर समय आनेपर
काम्यया	कामनासे	**संस्थितः**	मर गया ।।१।।
महान्तं कालं	बहुत दीर्घ समय तक		

दिलीपस्तत्सुतस्तद्वदशक्तः कालमेयिवान् ।
भगीरथस्तस्य पुत्रस्तेपे स सुमहत् तपः ।।२।।

दिलीपः तत् सुतः तद्वत् अशक्तः कालं एयिवान् भगीरथः तस्य पुत्रः तेपे स सुमहत् तपः ।।२।।

तत् सुतः	उसका पुत्र	**तस्य पुत्रः**	उसका पुत्र
दिलीपः	दिलीप भी	**भागीरथः**	भगीरथ था
तद्वत्	उसीकी भांति	**स सुमहत्**	उसने बहुत बड़ी
कालं एयिवान्	कालको प्राप्त हुआ,	**तपः तेपे**	तपस्या की ।।२।।

दर्शयामास तं देवी प्रसन्ना वरदास्मि ते ।
इत्युक्तः स्वमभिप्रायं शशंसावनतो नृपः ।।३।।

दर्शयामास तं देवी प्रसन्ना वरदा अस्मि ते इति उक्तः स्वं अभिप्रायं शशंस अवनतः नृपः ।।३।।

तं देवी दर्शयामास	उन्हें देवी गंगाने दर्शन दिया (और बोलीं)	**इति उक्तः अवनतः नृपः स्वं अभिप्रायं शशंस**	उनके ऐसा कहनेपर विनीत राजाने अपना अभिप्राय निवेदन किया ॥३॥
ते प्रसन्ना वरदा अस्मि	'तुमपर प्रसन्न हूँ, वरदान देने वाली हूँ।'		

कोऽपि धारयिता वेगं पतन्त्या मे महीतले ।
अन्यथा भूतलं भित्त्वा नृप यास्ये रसातलम् ॥४॥

कः अपि धारयिता वेगं पतन्त्या मे महीतले अन्यथा भूतलं भित्त्वा नृप यास्ये रसातलम् ॥४॥

नृप कः	(गंगाजीने कहा) राजन् कोई	**धारयिता**	धारण करने वाला (चाहिए)
अपि	भी	**अन्यथा**	नहीं तो
महीतले	पृथ्वीपर	**भूतलं भित्त्वा**	पृथ्वीको फोड़कर
पतन्त्या	गिरते समय	**रसातलं**	रसातल
मे वेगं	मेरे वेगको	**यास्ये**	चली जाऊँगी ॥४॥

किं चाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजन्त्यघम् ।
मृजामि तदघं कुत्र राजंस्तत्र विचिन्त्यताम् ॥५॥

किं च अहं न भुवं यास्ये नरा मयि आमृजन्ति अघं मृजामि तत् अघं कुत्र राजन् तत्र विचिन्त्यताम् ॥५॥

किं च अहं भुवं न यास्ये	अथवा तो मैं पृथ्वीपर जाऊँगी ही नहीं	**आमृजन्ति**	धो दगे,
		तत् अघं	उस पापको
		कुत्र मृजामि	मैं कहां धोऊँगी
नरा मयि	मनुष्य मुझमें	**राजन् तत्र**	राजन् ! इस विषयमें
अघं	अपने पाप	**विचिन्त्यतां**	विचार कर लो ॥५॥

भगीरथ उवाच

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसंगात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥६॥

साधवः न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोक पावनाः हरन्ति अघं ते अंग संगात् तेषु आस्ते हि अघभित् हरिः ॥६॥

न्यासिनः	सभी कामनाओंको त्यागनेवाले	**ते**	आपका
शान्ता साधवः	शान्त सत्पुरुष,	**अघं हरन्ति**	पाप हरण कर लेंगे
ब्रह्मिष्ठा	ब्रह्मनिष्ठ	**हि तेषु**	क्योंकि उनके हृदयमें
लोक	समस्त लोकोंको	**अघभित्**	पाप-नाशक
पावनाः	पवित्र करनेवाले	**हरिः आस्ते**	श्रीहरि निवास करते हैं ॥६॥
अंग संगात्	अपने शरीर स्पर्शसे		

धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणाम् ।
यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तन्तुषु ॥७॥

धारयिष्यति ते वेगं रुद्रः तु आत्मा शरीरिणां यस्मिन् ओतं इदं प्रोतं विश्वं शाटी इव तन्तुषु ॥७॥

शरीरिणां	शरीर धारियोंके	**इव**	भांति
आत्मा रुद्रः	आत्मा रुद्र	**ओतं प्रोतं**	ओत प्रोत है
यस्मिन्	जिनमें	**ते वेगं**	आपका बेग
इदं विश्वं	यह विश्व	**धारयिष्यति**	धारण करेंगे ॥७॥
तन्तुषु शाटी	सूतमें वस्त्रकी		

श्रीशुक उवाच*

इत्युक्त्वा स नृपो देवं तपसातोषयच्छिवम् ।
कालेनाल्पीयसा राजंस्तस्येशः समतुष्यत ॥८॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इति उक्त्वा स नृपः देवं तपसा तोषयत् शिवं कालेन अल्पीयसा राजन् तस्य ईशः समतुष्यत ॥८॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर
स नृपः	उस राजा भगीरथने
तपसा शिवं	तपस्यासे शंकरजी को
तोषयत्	सन्तुष्ट किया
राजन्	राजन् !
अल्पीयसा	थोड़े से ही
कालेन तस्य	समयमें उसपर
ईशः	शंकरजी
समतुष्यत	सन्तुष्ट हो गये ॥८॥

तथेति राज्ञाभिहितं सर्वलोकहितः शिवः ।
दधारावहितो गंगां पादपूतजलां हरेः ॥९॥

तथा इति राज्ञ अभिहितं सर्वलोकहितः शिवः दधार अवहितः गंगा पादपूत जलां हरेः ॥९॥

सर्वलोकहितः	लोकहितकारी
शिवः	शंकरजीने
राज्ञ अभिहितं	पाजाके कथनको
तथा इति	'अच्छा' ऐसा कहकर
हरेः पादपूत	श्रीहरिके चरणोंसे पवित्र
जलां गंगा	जलवाली गंगाको
अवहितः	समाहित चित्तसे (सिरपर)
दधार	धारण किया ॥९॥

भगीरथः स राजर्षिर्निन्ये भुवनपावनीम् ।
यत्र स्वपितृणां देहा भस्मीभूताः स्म शेरते ॥१०॥

भगीरथः स राजर्षिः निन्ये भुवन पावनीं यत्र स्वपितृणां देहा भस्मीभूताः स्म शेरते ॥१०॥

स राजर्षिः	फिर वे राजर्षि
भगीरथः	भगीरथ
भुवन पावनीं	त्रिभुवन पावनी गंगाको
स्वपितृणां देहा	अपने पितरोंके शरीर
यत्र	जहां
भस्मीभूता	भस्म होकर
शेरते स्म	पड़े हुए थे
निन्ये	(वहां) ले गये ॥१०॥

रथेन वायुवेगेन प्रयान्तमनुधावती ।
देशान् पुनन्ती निर्दग्धानासिञ्चत् सगरात्मजान् ॥११॥

रथेन वायुवेगेन प्रयान्तं अनुधावती देशान् पुनन्ती निर्दग्धान् आसिञ्चत् सगर आत्मजान् ॥११॥

रथेन वायुवेगेन	वायुवेग वाले रथसे	**पुनन्ती**	पवित्र करती
प्रयान्तं	जाते हुए (भगीरथ) के पीछे	**निर्दग्धान्**	(गंगाने) जले हुए
अनुधावती	दौड़ती हुई	**सगर**	राजा सगरके
देशान्	(मार्ग के) देशोंको	**आत्मजान्**	पुत्रोंको
		आसिञ्चत्	सींच दिया ॥११॥

यञ्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मदण्डहता अपि ।
सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः ॥१२॥

यत् जल स्पर्श मात्रेण ब्रह्मदण्ड हता अपि सगर आत्मजा दिवं जग्मुः केवलं देह भस्मभिः ॥१२॥

ब्रह्मदण्ड	ब्रह्मदण्डसे	**भस्मभिः**	भस्मसे
हता अपि	मारे जानेपर भी	**यत् जल**	जिनके जलका
सगर आत्मजा	राजा सगरके पुत्र	**स्पर्श मात्रेण**	स्पर्श हो जाने मात्रसे
केवलं देह	केवल शरीरकी	**दिवं जग्मुः**	स्वर्ग चले गये ॥१२॥

भस्मीभूतांगसंगेन स्वर्याताः सगरात्मजाः ।
किं पुनः श्रद्धया देवीं ये सेवन्ते धृतव्रताः ॥१३॥

भस्मीभूत अंगसंगेन स्वः याताः सगर आत्मजाः किं पुनः श्रद्धया देवीं ये सेवन्ते धृतव्रताः ॥१३॥

सगर आत्मजाः	राजा सगरके पुत्र	**श्रद्धया**	श्रद्धा पूर्वक
भस्मीभूत	भस्म हो गये	**देवीं**	देवी गंगाका
अंगसंगेन	अंगसे साथ होनेसे	**सेवन्ते**	सेवन करते हैं
स्वः	(जब) स्वर्ग	**किं पुनः**	उनकी क्या चर्चा है ॥१३॥
याताः	चल गये तो		
ये धृतव्रताः	जो व्रत धारण करके		

न ह्येतत् परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम् ।
अनन्तचरणाम्भोजप्रसूताया भवच्छिदः ॥१४॥

न हि एतत् परम आश्चर्यं स्वर्धुन्या यत् इह उदितं अनन्त चरण अम्भोज प्रसूताया भवच्छिदः ॥१४॥

हि एतत्	क्योंकि यह	**अनन्त**	श्रीभगवानके
स्वर्धुन्या	सुरसरिका	**चरण अम्भोज**	चरण-कमलसे
यत्	जो (माहात्म्य)	**प्रसूताया**	उत्पन्न हुई गंगाकी
इह उदितं	यहां कहा गया	**भवच्छिदः**	(महिमा तो) संसार
परम	बहुत		बन्धन काटनेवाली
आश्चर्यं	आश्चर्यजनक		है ॥१४॥
न	नहीं है		

संनिवेश्य मनो यस्मिञ्छ्रद्धया मुनयोऽमलाः ।
त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो यातास्तदात्मताम् ॥१५॥

संनिवेश्य मनः यस्मिन् श्रद्धया मुनयः अमलाः त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यः याताः तत् आत्मताम् ॥१५॥

अमलाः मुनयः	निर्मल मुनिगण	**त्रैगुण्यं**	त्रिगुणमय जगतको
श्रद्धया यस्मिन्	श्रद्धापूर्वक जिनमें	**हित्वा सद्यः**	त्यागकर तत्काल
मनः	मनको	**तत्**	उन भगवानके
संनिवेश्य	भली प्रकार प्रविष्ट करके	**आत्मतां**	स्वरूपको
		याताः	प्राप्त हो गये ॥१५॥
दुस्त्यजं	दुस्त्यज		

श्रुतो भगीरथाज्जज्ञे तस्य नाभोऽपरोऽभवत् ।
सिन्धुद्वीपस्ततस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥१६॥

श्रुतः भगीरथात् जज्ञे तस्य नाभः अपरः अभवत् सिन्धुद्वीपः ततः तस्मात् अयुतायुः ततः अभवत् ॥१६॥

भगीरथात्	भगीरथसे
श्रुतः जज्ञे	श्रुत उत्पन्न हुआ
तस्य	उससे
अपरः नाभः	दूसरा नाभ
अभवत्	उत्पन्न हुआ,
ततः	उससे
सिन्धुद्वीपः	सिन्धुद्वीप
ततः तस्मात्	फिर उससे
अयुतायुः	अयुतायु
अभवत्	उत्पन्न हुआ ॥१६॥

ऋतुपर्णो नलसखो योऽश्वविद्यामयान्नलात् ।
दत्वाक्षहृदयं चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतः ॥१७॥

ऋतुपर्णः नल सखः यः अश्वविद्यां अयात् नलात् दत्त्वा अक्ष हृदयं च अस्मै सर्वकामः तु तत् सुतः ॥१७॥

नल	उससे राजा नलका
सखः	मित्र
ऋतुपर्णः	ऋतुपर्ण हुआ
यः अस्मै च	जिसने इस (नल) को तो
अक्ष हृदयं	पासा फेंकनेका रहस्य
दत्त्वा नलात्	देकर नलसे
अश्वविद्यां	अश्वविद्या
अयात्	सीखी
तत् सुतः तु	उसका पुत्र तो
सर्वकामः	सर्वकाम हुआ ॥१७॥

ततः सुदासस्तत्पुत्रो मदयन्तीपतिर्नृप ।
आहुर्मित्रसहं यं वै कल्माषांघ्रिमुत क्वचित् ।
वसिष्ठशापाद् रक्षोऽभूदनपत्यः स्वकर्मणा ॥१८॥

ततः सुदासः तत् पुत्रः मदयन्ती पतिः नृप आहुः मित्र सहं यं वै कल्माष अंघ्रिम् उतक्वचित् वसिष्ठ शापात् रक्षः अभूत् अनपत्यः स्वकर्मणा ॥१८॥

नृप	राजन् !
ततः सुदासः	उससे सुदास
तत् पुत्रः	उसका पुत्र
मदयन्ती	मदयन्तीका
पतिः	पति हुआ
यं वै	जिसे निश्चय
मित्रसहं	मित्रसह
आहुः	कहा जाता है
उतक्वचित्	और कहीं
कल्माष	कल्माषपाद

अंघ्रिं	भी (कहा गया है)	**स्वकर्मणा**	अपने कर्मसे
वसिष्ठ	महर्षि वशिष्ठके	**अनपत्यः अभूत्**	सन्तानहीन हो गया ॥१८॥
शापात्	शापसे		
रक्षः	राक्षस तथा		

राजोवाच

किं निमित्तो गुरोः शापः सौदासस्य महात्मनः ।
एतद् वेदितुमिच्छामः कथ्यतां न रहो यदि ॥१९॥

किं निमित्तः गुरोः शापः सौदासस्य महात्मनः एतत् वेदितुं इच्छामः कथ्यतां न रहः यदि ॥१९॥

महात्मनः	महात्मा	**इच्छामः**	चाहते हैं
सौदासस्य	सौदासको	**यदि रहः**	यदि गोपनीय
किं निमित्तः	किस कारणसे	**न**	न हो तो
गुरोः शापः	गुरुका शाप मिला	**कथ्यतां**	वर्णन कीजिए ॥१९॥
एतत् वेदितुं	(हम) इसे जानना		

श्रीशुक उवाच–

सौदासो मृगयां किञ्चिच्चरन् रक्षो जघान ह ।
मुमोच भ्रातरं सोऽथ गतः प्रतिचिकीर्षया ॥२०॥

सौदासः मृगयां किञ्चित् चरन् रक्षः जघान ह मुमोच भ्रातरं सः अथ गतः प्रतिचिकीर्षया ॥२०॥

सौदासः	राजा सौदासने	**भ्रातरं**	भाईको
मृगयां	आखेट खेलते समय	**मुमोच**	छोड़ दिया
किञ्चित् चरन्	कुछ करते हुए	**सः**	वह
रक्षः	राक्षसको	**प्रतिचिकीर्षया**	बदला लेनेकी इच्छासे
जघान ह	मार डाला	**गतः**	चला गया ॥२०॥
अथ	किन्तु तब उसके		

स चिन्तयन्नघं राज्ञः सूदरूपधरो गृहे ।
गुरवे भोक्तुकामाय पक्त्वा निन्ये नरामिषम् ॥२१॥

स चिन्तयत् अघं राज्ञः सूदरूप धरः गृहे गुरवे भोक्तु कामाय पक्त्वा निन्ये नर आमिषम् ॥२१॥

स राज्ञः अघं	वह राजाका अपराध	**भोक्तु कामाय**	भोजनकी इच्छावाले
चिन्तयत्	विचार करता हुआ	**गुरवे**	गुरु वशिष्ठको
सूद रूप	रसोइयेका रूप	**नर आमिषं**	मनुष्य-मांस
धरः	बनाकर	**पक्त्वा निन्ये**	पकाकर दिया ॥२१॥
गृहे	उनके घर आया,		

परिवेक्ष्यमाणं भगवान् विलोक्याभक्ष्यमञ्जसा ।
राजानमशपत् क्रुद्धो रक्षो ह्येवं भविष्यसि ॥२२॥

परिवेक्ष्यमाणं भगवान् विलोक्य अभक्ष्यं अञ्जसा राजानं अशपत् क्रुद्धः रक्षः हि एवं भविष्यसि ॥२२॥

भगवान्	भगवान् वशिष्ठने	**हि**	'क्योंकि
परिवेक्ष्यमाणं	परोसे जाते समय	**एवं**	इस प्रकार (अभक्ष्य
अञ्जसा	सरलतासे		देते हो)
अभक्ष्यं	अभक्ष्य	**रक्षः**	राक्षस
विलोक्य क्रुद्धः	देखकर कुपित होकर	**भविष्यति**	जो जाओगे ॥२२॥
अशपत्	शाप दिया		

रक्षः कृतं तद् विदित्वा चक्रे द्वादशवार्षिकम् ।
सोऽप्यपोऽञ्जलिनाऽऽदाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥२३॥

रक्षः कृतं तत् विदित्वा चक्रे द्वादश वार्षिकं सः अपि अपः अञ्जलिना आदाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥२३॥

तत् रक्षः	वह काम राक्षसने	**द्वादश**	(शापको) बारह
कृतं	किया है,	**वार्षिकं**	वर्षके लिए
विदित्वा	यह जानकर	**चक्रे**	बना दिया

सः अपि अपः	वह (राजा) भी जल	**गुरुं शप्तुं**	गुरुको शाप देनेके
अञ्जलिना	अंजलिमें		लिए
आदाय	लेकर	**समुद्यतः**	उद्यत हुआ ॥२३॥

वारितो मदयन्त्यापो रुशतीः पादयोर्जहौ ।
दिशः खमवनीं सर्वं पश्यञ्जीवमयं नृपः ॥२४॥

वारितः मदयन्त्या आपः रुशतीः पादयोः जहौ दिशः खं अवनीं सर्वं पश्यन् जीवमयं नृपः ॥२४॥

मदयन्त्या	रानी मदयन्तीके	**पश्यन्**	देखकर
वारितः	रोकनेपर	**नृपः रुशतीः**	राजाने वह तीक्ष्ण
दिशः खं	दिशाओं, आकाश,		जल
अवनीं सर्वं	पृथ्वी सबको	**पादयोः**	अपने पैरोंपर
जीवमयं	जीवमय	**जहौ**	डाल दिया ॥२४॥

राक्षसं भावमापन्नः पादे कल्माषतां गतः ।
व्यवायकाले ददृशे वनौकोदम्पती द्विजौ ॥२५॥

राक्षसं भावं आपन्नः पादे कल्माषतां गतः व्यवाय काले ददृशे वनौकः दम्पती द्विजौ ॥२५॥

पादे कल्माषतां	पैर काले	**वनौकः**	वनवासी
गतः	पड़ गये,	**द्विजौ दम्पती**	ब्राह्मण दम्पति
राक्षसं भावं	राक्षस भावको	**व्यवाय काले**	मैथुन करते हुए
आपन्नः	प्राप्त होनेपर	**ददृशे**	उसने देखा ॥२५॥

क्षुधार्तो जगृहे विप्रं तत्पत्न्याहाकृतार्थवत् ।
न भवान् राक्षसः साक्षादिक्ष्वाकूणां महारथः ॥२६॥

क्षुधार्तः जगृहे विप्रं तत् पत्न्या आह अकृतार्थवत् न भवान् राक्षसः साक्षात् इक्ष्वाकूणां महारथः ॥२६॥

क्षुधार्तः	भूखसे व्याकुल होकर	**भवान् राक्षसः**	'आप राक्षस
विप्रं	ब्राह्मणको (उसने)	**न**	नहीं हैं,
जगृहे	पकड़ लिया	**साक्षात्**	साक्षात्
अकृतार्थवत्	अपूर्ण कामासी	**इक्ष्वाकूणां**	इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न
तत् पत्न्या	उसकी पत्नी	**महारथः**	महारथी हैं ॥२६॥
आह	बोली—		

मदयन्त्याः पतिर्वीर नाधर्मं कर्तुमर्हसि ।
देहि मेऽपत्यकामाया अकृतार्थं पतिं द्विजम् ॥२७॥

मदयन्त्याः पतिः वीर न अधर्म कर्तुं अर्हसि देहि मे अपत्य कामाया अकृत अर्थं पतिं द्विजम् ॥२७॥

मदयन्त्याः पतिः	मदयन्तीके पति	**अपत्य कामाया**	सन्तानेच्छुका को
वीर	वीर !	**अर्थं**	प्रयोजन
अधर्मं कर्तुं	आपको अधर्म करना	**अकृत**	पूरा न करनेवाला
न अर्हसि	नहीं चाहिए,	**द्विजं पतिं**	ब्राह्मण पति
मे	मुझ	**देहि**	दे दीजिए ॥२७॥

देहोऽयं मानुषो राजन् पुरुषस्याखिलार्थदः ।
तस्मादस्य वधो वीर सर्वार्थवध उच्यते ॥२८॥

देहः अयं मानुषः राजन् पुरुषस्य अखिल अर्थदः तस्मात् अस्य वधः वीर सर्व अर्थ वध उच्यते ॥२८॥

राजन् अयं	राजन् ! यह	**वीर तस्मात्**	वीर ! इसलिए
मानुषः देहः	मनुष्य शरीर	**अस्य वधः**	इसका वध
पुरुषस्य	पुरुषको	**सर्व अर्थ वधः**	सब पुरुषार्थोंका वध
अखिल	समस्त	**उच्यते**	कहा जाता है ॥२८॥
अर्थदः	पुरुषार्थ देनेवाला है,		

एष हि ब्राह्मणो विद्वाँस्तपः शीलगुणान्वितः ।
आरिराधयिषुर्ब्रह्म महापुरुषसंज्ञितम् ।
सर्वभूतात्मभावेन भूतेष्वन्तर्हितं गुणैः ॥२९॥

एष हि ब्राह्मणः विद्वान् तपः शील गुण अन्वितः आरिरा धयिषुः ब्रह्म महापुरुष संज्ञितं सर्वभूत आत्मभावेन भूतेषु अन्तर्हितं गुणैः ॥२९॥

हि एष	क्योंकि ये	**महापुरुष**	परम पुरुष
ब्राह्मणः	ब्राह्मण हैं,	**संज्ञितं**	संज्ञक
विद्वान् तपः	विद्वान् तप,	**ब्रह्म**	परम ब्रह्मकी
शील गुण	शीलादि गुण	**सर्वभूत**	सब प्राणियोंमें
अन्वितः	युक्त है,	**आत्मभावेन**	आत्म भाव द्वारा
गुणैः	गुणोंके द्वारा	**आरिरा**	आराधना
भूतेषु	प्राणियोंमें	**धयिषुः**	करना चाहते हैं
अन्तर्हितं	छिपे हुए		॥२९॥

सोऽयं ब्रह्मर्षिवर्यस्ते राजर्षिप्रवराद् विभो ।
कथमर्हति धर्मज्ञ वधं पितुरिवात्मजः ॥३०॥

सः अयं ब्रह्मर्षि वर्यः ते राजर्षि प्रवरात् विभो कथं अर्हति धर्मज्ञ वधं पितुः इव आत्मजः ॥३०॥

विभो धर्मज्ञ	समर्थ धर्मज्ञ !	**सः अयं**	वह ये
ते राजर्षि	आप राजर्षि	**ब्रह्मर्षि वर्यः**	ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ
प्रवरात्	श्रेष्ठ द्वारा	**वधं कथं**	वध कैसे
पितुः आत्मजः	पिता द्वारा पुत्रके	**अर्हति**	पात्र हो सकते हैं
इव	समान		॥३०॥

तस्य साधोरपापस्य भ्रूणस्य ब्रह्मवादिनः ।
कथं वधं यथा बभ्रोर्मन्यते सन्मतो भवान् ॥३१॥

तस्य साधोः अपापस्य भ्रूणस्य ब्रह्मवादिनः कथं वधं यथा बभ्रोः मन्यते सन्मतः भवान् ॥३१॥

सन्मतः	साधु समाजमें सम्मानित	**ब्रह्मवादिनः**	वेदवादी
भवान्	आप	**बभ्रोः**	कपिला गौ के
तस्य साधोः	उस सत्पुरुष,	**यथा**	समानका
अपापस्य	निष्पाप,	**वधं कथं**	वध कैसे
भ्रूणस्य	श्रोत्रिय,	**मन्यते**	उचित मानते हैं॥३१॥

यद्ययं क्रियते भक्षस्तर्हि मां खाद पूर्वतः ।
न जीविष्ये विना येन क्षणं च मृतकं यथा ॥३२॥

यदि अयं क्रियते भक्षः तर्हि मां खाद पूर्वतः न जीविष्ये बिना येन क्षणं च मृतकं यथा ॥३२॥

यदि अयं	यदि इनको	**येन विना**	जिनके बिना
भक्षः	भक्ष्य बनाना ही	**मृतकं यथा**	मृतके समान होकर
क्रियते	चाहते हैं	**क्षणं च**	एक क्षण भी
तर्हि मां	तो मुझे	**जीविष्ये न**	जीवित नहीं रहूँगी'
पूर्वतः खाद	पहिले खा लीजिए		॥३२॥

एवं करुणभाषिण्या विलपन्त्या अनाथवत् ।
व्याघ्रः पशुमिवाखादत् सौदासः शापमोहितः ॥३३॥

एवं करुण भाषिण्या विलपन्त्या अनाथवत् व्याघ्रः पशुं इव अखादत् सौदासः शाप मोहितः ॥३३॥

करुण	दीन	**शाप मोहितः**	शापसे मोहित
भाषिण्या	वचन कहती	**सौदासः**	सौदास (ब्राह्मणको)
एवं	इस प्रकार	**पशुं**	पशुको
अनाथवत्	अनाथाके समान	**व्याघ्रः इव**	बाघके समान
विलपन्त्या	विलाप करती रहने पर भी	**अखादत्**	खा गया ॥३३॥

ब्राह्मणी वीक्ष्य दिधिषुं पुरुषादेन भक्षितम् ।
शोचन्त्यात्मानमुर्वीशमशपत् कुपिता सती ॥३४॥

ब्राह्मणी वीक्ष्य दिधिषुं पुरुषादेन भक्षितं शोचन्त्या आत्मानं उर्वीशं अशपत् कुपिता सती ॥३४॥

सती ब्राह्मणी	पतिव्रता ब्राह्मणीने	**पुरुषादेन**	नरभक्षी द्वारा
दिधिषुं	गर्भाधान करनेवाले पतिको	**भक्षितं वीक्ष्य**	खाया गया देखकर

आत्मानं	अपने लिए	**कुपिता उर्वीशं**	कुपित होकर राजा-
शोचन्त्या	शोक करती हुई		को
		अशपत्	शाप दिया ।।३४।।

यस्मान्मे भक्षितः पाप कामार्तायाः पतिस्त्वया ।
तवापि मृत्युराधानादकृतप्रज्ञ दर्शितः ।।३५।।

यस्मात् मे भक्षितः पाप काम आर्तायाः पतिः त्वया तव अपि मृत्युः आधानात् अकृत प्रज्ञ दर्शितः ।।३५।।

पाप	'पापी !	**अकृत प्रज्ञ**	मन्दमते
यस्मात्	क्योंकि	**तव अपि**	तेरी भी
मे	मुझ	**आधानात्**	गर्भाधानसे
काम आर्तायाः	कामातुराका	**मृत्युः**	मृत्यु
पतिः त्वया	पति तेरे द्वारा	**दर्शितः**	दिखायी देगी' ।।३५।।
भक्षितः	खा लिया गया		

एवं मित्रसहं शप्त्वा पतिलोकपरायणा ।
तदस्थीनि समिद्धेऽग्नौ प्रास्य भर्तुर्गतिं गता ।।३६।।

एवं मित्रसहं शप्त्वा पतिलोक परायणा तत् अस्थीनि समिद्धे अग्नौ प्रास्य भर्तुः गतिं गता ।।३६।।

एवं	इस प्रकार	**अस्थीनि**	हड्डियोंको
मित्रसहं	मित्रसहको	**समिद्धे अग्नौ**	प्रज्वलित अग्निमें
शप्त्वा	शाप देकर	**प्रास्य भर्तुः**	डालकर पतिकी
पतिलोक	पतिलोक	**गतिं गता**	गतिको चली गयी
परायणा	परायणा		।।३६।।
तत्	उस (पति) की		

विशापो द्वादशाब्दान्ते मैथुनाय समुद्यतः ।
विज्ञाय ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः ।।३७।।

विशापः द्वादश अब्द अन्ते मैथुनाय समुद्यतः विज्ञाय ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः ॥३७॥

द्वादश अब्द	बारह वर्ष	**ब्राह्मणीशापं**	ब्राह्मणीका शाप
अन्ते	बीतनेपर	**विज्ञाय स**	जानकर उसे
विशापः	शापसे छूटकर	**महिष्या**	महारानीने
मैथुनाय	मैथुन करनेको	**निवारितः**	रोक दिया ॥३७॥
समुद्यतः	उद्यत होनेपर		

तत ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाप्रजाः ।
वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयन्त्यां प्रजामधात् ॥३८॥

तत ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणा अप्रजः वसिष्ठः तत् अनुज्ञातः मदयन्त्यां प्रजां अधात् ॥३८॥

तत् ऊर्ध्वं	उससे आगेके लिए	**तत् अनुज्ञातः**	उसकी अनुमतिसे
स स्त्रीसुखं	उसने स्त्री-सुखका	**मदयन्त्यां**	मदयन्तीमें
तत्याज	त्याग कर दिया,	**वसिष्ठः**	वशिष्ठने
कर्मणा	इस कर्मसे	**प्रजां**	सन्तान
अप्रजाः	सन्तानहीन होनेपर	**अधात**	स्थापन किया ॥३८॥

सा वै सप्त समा गर्भमविभ्रन्न व्यजायत ।
जघ्नेऽश्मनोदरं तस्याः सोऽश्मकस्तेन कथ्यते ॥३९॥

सा वै सप्त समा गर्भं अबिभ्रत् न व्यजायत जघ्ने अश्मना उदरं तस्याः सः अश्मकः तेन कथ्यते ॥३९॥

वै सा	निश्चय उस मदयन्तीने	**तस्याः**	उस पत्नीके
सप्त समा	सात वर्ष	**उदरं अश्मना**	पेटको पत्थरसे
गर्भं अबिभ्रत्	गर्भ धारण किये रही	**जघ्ने**	मारा,
व्यजायत	जब उत्पन्न	**तेन**	इससे (उत्पन्न पुत्रको)
न	नहीं हुआ		
सः	तब उस राजाने	**अश्मकः**	अश्मक
		कथ्यते	कहते हैं ॥३९॥

अश्मकान्मूलको जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः ।
नारीकवच्च इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत् ॥४०॥

अश्मकात् मूलकः जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः नारीकवच इति उक्तः निःक्षत्रे मूलकः अभवत् ॥४०॥

अश्मकात्	अश्मकसे	**नारीकवच्च**	उसे नारीकवच
मूलकः जज्ञे	मूलक उत्पन्न हुआ,	**इति**	इस नामसे
यः	जो	**उक्तः**	कहा गया
स्त्रीभिः	स्त्रियों द्वारा (परशुरामके क्षत्रिय संहारके समय)	**निःक्षत्रे**	(पृथ्वीके) क्षत्रिय हीन होनेपर
		मूलकः	(क्षत्रियोंका) मूल
परिरक्षितः	चारों ओरसे रक्षित किया गया, इसीसे	**अभवत्**	वह हुआ ॥४०॥

ततो दशरथस्तस्मात् पुत्र ऐडविडस्ततः ।
राजा विश्वसहो यस्य खट्वाङ्गश्चक्रवर्त्यभूत् ॥४१॥

ततः दशरथः तस्मात् पुत्र ऐडविडः ततः राजा विश्वसहः यस्य खट्वाङ्गः चक्रवर्ति अभूत् ॥४१॥

ततः दशरथः	उससे दशरथ हुए,	**बिश्वसहः**	विश्वसह हुए,
तस्मात् पुत्र	उनके पुत्र	**यस्य चक्रवर्ति**	जिनके चक्रवर्ती
ऐडविडः	ऐडविड हुए	**खट्वाङ्गः**	खट्वाङ्ग
ततः राजा	उनसे राजा	**अभूत्**	हुए ॥४१॥

यो देवैरर्थितो दैत्यानवधीद् युधि दुर्जयः ।
मुहूर्तमायुर्ज्ञात्वैत्य स्वपुरं संदधे मनः ॥४२॥

यः देवैः अर्थितः दैत्यान् अवधीत् युधि दुर्जयः मुहूर्तं आयुः ज्ञात्वा एत्य स्वपुरं सन्दधे मनः ॥४२॥

यः दुर्जयः	जिन दुर्जय वीरने
देवैः	देवताओंके
अर्थितः	प्रार्थना करनेपर
युधि दैत्यान्	युद्धमें दैत्योंका
अवधीत्	वध किया,
मुहूर्तं आयुः	एक मुहूर्त आयु (शेष)
ज्ञात्वा	जानकर
स्वपुरं एत्य	अपने नगर आकर
मनः	मनको
सन्दधे	भगवानमें लगा दिया ॥४२॥

न मे ब्रह्मकुलात् प्राणाः कुलदैवान्न चात्मजाः ।
न श्रियो न मही राज्यं न दाराश्चातिवल्लभाः ॥४३॥

न मे ब्रह्मकुलात् प्राणाः कुलदैवात् न च आत्मजाः न श्रियः न मही राज्यं न दाराः च अतिवल्लभाः ॥४३॥

मे	मुझे अपने
कुलदैवात्	कुलदेवता
ब्रह्मकुलात्	ब्राह्मण वंशसे अधिक
न प्राणाः	न प्राण
च न	और न
आत्मजाः	पुत्र
न श्रियः	न लक्ष्मी
न मही राज्यं	न पृथ्वीका राज्य
च न दाराः	तथा न पत्नियां
अतिवल्लभाः	बहुत प्रिय हैं ॥४३॥

न बाल्येऽपि मतिर्मह्यमधर्मे रमते क्वचित् ।
नापश्यमुत्तमश्लोकादन्यत् किञ्चन वस्त्वहम् ॥४४॥

न बाल्ये अपि मतिः मह्यं हि अधर्मे रमते क्वचित् न अपश्यं उत्तम श्लोकात् अन्यत् किञ्चन यः तु अहम् ॥४४॥

बाल्ये अपि	बचपनमें भी
मह्यं मतिः	मेरी बुद्धि
क्वचित्	कभी
अधर्मे	अधर्ममें
न रमते	नहीं लगती थी
हि	क्योंकि
उत्तम श्लोकात्	पवित्रकीर्ति भगवानसे
अन्यत्	पृथक
किञ्चन	कुछ
यः तु अहं	भी तो मैंने
न अपश्यं	नहीं देखा ॥४४॥

देवैः कामवरो दत्तो मह्यं त्रिभुवनेश्वरैः ।
न वृशे तमहं कामं भूतभावनभावनः ॥४५॥

देवैः कामवरः दत्तः मह्यं त्रिभुवन ईश्वरैः न वृणे तं अहं कामं भूत भावन भावनः ॥४५॥

त्रिभुवन ईश्वरैः	त्रिभुवनके स्वामी	**भावनः**	भावना रखने वाले
देवैः मह्यं	देवताओंने मुझे	**अहं**	मैने
कामवरः	इच्छानुसार वरदान	**तं कामं**	उन भोगोंको
दत्तः	देनेको कहा	**न वृणे**	नहीं मांगा ॥४५॥
भूत भावन	भूत भावन भगवान्-में		

ये विक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् ।
न विन्दन्ति प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे ॥४६॥

ये विक्षिप्त इन्द्रिय धियः देवाः ते स्वहृदि स्थितं न विन्दन्ति प्रियं शश्वत् आत्मानं किं उत अपरे ॥४६॥

ये विक्षिप्त	जो चंचल	**शश्वत् प्रियं**	नित्य प्रिय
इन्द्रिय धियः	इन्द्रियों और बुद्धि-वाले	**आत्मान**	आत्माको
		न विन्दन्ति	नहीं जानते
देवाः ते	देवता हैं वे	**उत अपरे**	फिर दूसरे
स्वहृदि	अपने हृदयमें	**किं**	कैसे जानगे ॥४६॥
स्थितं	स्थित		

अथेशमायारचितेषु सङ्गं
गुणेषु गन्धर्वपुरोपमेषु ।
रूढं प्रकृत्याऽऽत्मनि विश्वकर्तु-
र्भविन हित्वा तमहं प्रपद्ये ॥४७॥

अथ ईश माया रचितेषु संगं गुणेषु गन्धर्वपुर उपमेषु रूढं प्रकृत्या आत्मनि विश्वकर्तुः भावेन हित्वा तं अहं प्रपद्ये ॥४७॥

अथ ईश	अतः ईश्वरकी	**संगं**	आसक्तिको
माया	मायासे	**विश्वकर्तुः**	विश्वकर्ता भगवान्-
रचितेषु	निर्मित		की
गन्धर्वपुर	गन्धर्वनगरीके	**भावेन हित्वा**	भक्ति-भावसे त्याग-
उपमेषु	समान		कर
प्रकृत्या	स्वभावसे ही	**अहं तं**	मैं उनकी
आत्मनि रूढं	अपनेपर चढ़े हुए	**प्रपद्ये**	शरण लेता हूँ ॥४७॥
गुणेषु	त्रिगुणोंकी		

इति व्यवसितो बुद्धया नारायण गृहीतया ।
हित्वान्यभावमज्ञानं ततः स्वं भावमाश्रितः ॥४८॥

इति व्यवसितः बुद्धया नारायण गृहीतया हित्वा अन्य भावं अज्ञानं ततः स्वं भावं आश्रितः ॥४८॥

नारायण	भगवान नारायणमें	**अन्य भावं**	अन्य भाव (भेद
गृहीतया	आकृष्ट		बुद्धि)
बुद्ध्या इति	बुद्धिसे इस प्रकार	**हित्वा ततः**	त्यागकर फिर
व्यवसितः	निश्चय करके	**स्वं भावं**	आत्म स्वरूपमें
अज्ञानं	अज्ञान जन्य	**आश्रितः**	स्थित हो गये

॥४८॥

यत् तद् ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम् ।
भगवान् वासुदेवेति यं गृणन्ति हि सात्वताः ॥४९॥

यत् तत् ब्रह्म परं सूक्ष्मं अशून्यं शून्य कल्पितं भगवान् वासुदेव इति यं गृणन्ति हि सात्वताः ॥४९॥

यत् सूक्ष्मं	जो सूक्ष्म	**सात्वताः हि**	भगवद्भक्त-जन तो
अशून्यं	सत्य स्वरूप	**भगवान्**	भगवान
शून्य कल्पितं	शून्य समान प्रतीत	**वासुदेव**	वासुदेव
तत् परं ब्रह्म	वह परम ब्रह्म है	**इति गृणन्ति**	इस प्रकार कहते हैं
यं	जिसे		॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे सूर्यवंशानुवर्णने नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

खट्वांगाद् दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात् पृथुश्रवाः ।
अजस्ततो महाराजस्तस्माद् दशरथोऽभवत् ॥१॥

खट्वांगात् दीर्घबाहुः च रघुः तस्मात् पृथुश्रवाः अजः ततः महाराजः तस्मात् दशरथः अभवत् ॥१॥

खट्वांगात्	खट्वांगसे	**अजः च तस्मात्**	अज, और उनसे
दीर्घबाहुः	दीर्घबाहु	**महाराजः**	महाराज
तस्मात्	उनसे	**दशरथः**	दशरथ
पृथुश्रवाः	महायशस्वी	**अभवत्**	उत्पन्न हुए ॥१॥
रघुः ततः	रघु, उनसे		

तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः ।
अंशांशेन चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ।
रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया ॥२॥

तस्य अपि भगवान् एष साक्षात् ब्रह्ममयः हरिः अंश अंशेन चतुर्धा अगात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्ना इति संज्ञया ॥२॥

सुरैः	देवताओं द्वारा	**चतुर्धा**	चार रूपसे
प्रार्थितः	प्रार्थना करनेपर	**पुत्रत्वं**	पुत्र रूपमें
तस्य अपि	उन (दशरथज) से भी	**राम लक्ष्मण**	राम, लक्ष्मण,
		भरत शत्रुघ्ना	भरत, शत्रुघ्न
एष साक्षात्	यह साक्षात्	**इति संज्ञया**	इन नामोंसे
ब्रह्ममयः हरिः	ब्रह्म स्वरूप श्रीहरि	**अगात्**	प्रकट हुए ॥२॥
अंश अंशेन	अपने अंशांशसे		

तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्वदर्शिभिः ।
श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः ॥३॥

तस्य अनुचरितं राजन् ऋषिभिः तत्त्वदर्शिभिः श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेः मुहुः ॥३॥

राजन्	राजन् !	**हि**	क्योंकि
तस्य सीतापतेः	उन सीतापतिका	**भूरि**	विस्तार पूर्वक
अनुचरितं	चरित	**वर्णितं**	वर्णन किया गया
तत्त्वदर्शिभिः	तत्त्वदर्शी	**त्वया मुहुः**	तुमने बार-बार
ऋषिभिः	ऋषियों द्वारा	**श्रुतं**	सुना है ॥३॥

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं
पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो
यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् ।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषा-
ऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः
कोसलेन्द्रोऽवतान्नः ॥४॥

गुरु अर्थे त्यक्तराज्यः व्यचरत् अनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणि स्पर्श अक्षमाभ्यां मृजित पथरुजः यः हरीन्द्र अनुजाभ्यां वैरूप्यात् शूर्पणख्याः प्रिय विरह रुषा आरोपित भ्रूविजृम्भ त्रस्त अब्धिः बद्ध सेतुः खलदव दहनः कोसलेन्द्रः अवतात् नः ॥४॥

गुरु अर्थे	पिताके लिए	**अक्षमाभ्यां**	सहनेमें असमर्थ
त्यक्तराज्यः	राज्य त्यागकर	**पद्मपद्भ्यां**	कमल-कोमल-चरणों-से
प्रियायाः	अपनी प्रियाके भी		
पाणि स्पर्श	कर-स्पर्शको	**अनुवनं**	एकसे दूसरे वनमें

व्यचरत्	घूमते रहे,
हरीन्द्र	उस समय कपिराज हनुमान
अनुजाभ्यां	और छोटे भाई लक्ष्मण
यः पथरुजः	जिनकी मार्गकी थकावट
मृजित	दूर करते थे,
शूर्पणख्याः	शूर्पणखाको
वैरूप्यात्	कुरूप करनेके कारण
प्रियायाः	प्राप्त प्रियाके
विरह	वियोग जन्य
रुषा आरोपित	रोषसे चढ़ी
भ्रू विजृम्भ	भ्रुकुटियोंसे
त्रस्त अब्धिः	भयभीत समुद्रपर
बद्ध सेतुः	पुल बाँधकर
खलदव	दुष्टोंके दलरूपी वनको
दहनः	दावानल समान बने
कोसलेन्द्रः	कोशलेन्द्र
नः अवतात्	हमारी रक्षा करें ॥४॥

विश्वामित्राध्वरे येन मारीचाद्या निशाचराः ।
पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैर्ऋतपुंगवाः ॥५॥

विश्वामित्र अध्वरे येन मारीच आद्या निशाचराः पश्यतः लक्ष्मणस्य एव हता नैर्ऋत पुंगवाः ॥५॥

विश्वामित्र	विश्वामित्रके
अध्वरे	यज्ञमें
येन	जिन्होंने
लक्ष्मणस्य	लक्ष्मणजी के
एव पश्यतः	ही देखते हुए
नैर्ऋत पुंगवाः	राक्षसश्रेष्ठ
मारीच आद्या	मारीच आदि
निशाचराः	निशाचरोंको
हता	मारा ॥५॥

यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं
सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम् ।
आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं
सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये ॥६॥

यः लोकवीर समितौ धनुः ऐशं उग्रं सीता स्वयंवर गृहे त्रिशतः उपनीतं आदाय बालगज लील इव इक्षुयष्टिं सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये ॥६॥

नृप	राजन् !
लोकवीर	संसारके वीरोंकी
समितौ	सभामें
सीता स्वयंवर	सीता स्वयंवर
गृहे	भवनमें
त्रिशतः	तीन सौ
उपनीतं	व्यक्तियों द्वारा लाया गया
उग्रं ऐशं धनुः	प्रचण्ड शिव धनुष
इक्षुयष्टि	गन्नेकी छड़ीकी
इव	भांति
बालगज	गज शिशुके समान
लील	खेलमें
आदाय	उठाकर,
सज्जीकृतं	प्रत्यंचा चढाकर
विकृष्यय:	खींचकर जिन्होंने
मध्ये बभञ्ज	बीचसे तोड़ दिया ॥६॥

जित्वानुरूपगुणशीलवयोऽङ्गरूपां
सीताभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम् ।
मार्गे व्रजन् भृगुपतेर्व्यनयत् प्ररूढं
दर्पं महीमकृत यस्त्रिरराजबीजाम् ॥७॥

जित्वा अनुरूप गुण शील वयः अंग रूपां सीता अभिधां श्रियं उरसि अभिलब्धमानां मार्गे व्रजन् भृगुपतेः व्यनयत् प्ररूढं दर्पं महीं अकृत यः त्रिः अराज बीजाम् ॥७॥

उरसि	हृदयपर
अभिलब्धमानां	पहिलेसे प्राप्त
सीता अभिधां	सीता नामक
गुण शील	गुण, आचरण,
वयः अंग रूपां	आयु, शरीर, सौन्दर्य-में
अनुरूप	अपने अनुरूप
श्रियं जित्वा	लक्ष्मीको जीतकर
मार्गे व्रजन्	मार्गमें जाते हुए
यः महीं	जिन्होंने पृथ्वीको
त्रिः	तीन (इक्कीस*) वार
अराज	राजाओंके
बीजां	बीजसे हीन

*गीता प्रेसकी सटीक प्रतिमें 'त्रि' का अर्थ इक्कीस दिया गया है; किन्तु उन्होंने ही प्राप्त प्राचीन प्रतिका पाठ-भेद यहां 'त्रिः अराज' के स्थान पर' स्थिर राजण दिया है जो अधिक उपयुक्त लगता है ।

अकृत	कर दिया था, उन	प्ररूढं दर्पं	बहुत बढ़े गर्वको
भृगुपतेः	परशुरामजीके	व्यनयत्	दूर कर दिया ॥७॥

यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं
स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः ।
राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं
त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसंगः ॥८॥

यः सत्यपाश परिवीत पितुः निदेशं स्त्रैणस्य च अपि शिरसा जगृहे सभार्यः राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदः निवासं त्यक्त्वा ययौ वनं असून् इव मुक्तसंगः ॥८॥

सत्यपाश	सत्यके पाशसे	मुक्तसंगः	आसक्तिहीन होकर
परिवीत	बँधे हुए	राज्यं श्रियं	राज्य लक्ष्मी,
स्त्रैणस्य	स्त्रीजित्	प्रणयिनः	प्रेम करनेवाले
च अपि	होनेपर भी	सुहृदः	सम्बन्धी,
पितुः निदेशं	पिताके आदेशको	निवासं	तथा घर
यः सभार्यः	जिन्होंने पत्नीके साथ	त्यक्त्वा	त्यागकर
शिरसा जगृहे	सिरपर धारण किया,	वनं ययौ	वनमें चले गये ॥८॥
असून् इव	प्राणोंके समान		

रक्षःस्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धे-
स्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून् ।
जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीय-
कोदण्डपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम् ॥९॥

रक्षः स्वसुः व्यकृत रूपं अशुद्ध बुद्धेः तस्याः खर त्रिशिर दूषण मुख्य बन्धून् जघ्ने चतुर्दश सहस्रं अपारणीय कोदण्डपाणिः अटमान उवास कृच्छ्रम् ॥९॥

अशुद्ध बुद्धेः	अशुद्ध बुद्धिवाली	**मुख्य**	प्रमुख थे उस
रक्षः	राक्षस (रावण) की	**चतुर्दश सहस्रं**	चौदह सहस्र
स्वसुः	बहिनके	**अपारणीय**	अपारणीय सेनाको
रूपं	रूपको	**जघ्ने**	मारा
व्यकृत	विकृत कर दिया,	**कोदण्डपाणिः**	हाथमें धनुष लिए
तस्याः खर	उसके खर,	**कृच्छ्रं उवास**	फिर बड़े कष्टसे रहे
त्रिशिर दूषण	त्रिशिरा, दूषण		॥९॥
बन्धूत्	भाई जिसमें		

सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन
सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण ।
जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाऽऽश्रमतोऽपकृष्टो
मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः ॥१०॥

सीताकथा श्रवण दीपित हृच्छयेन सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण जघ्ने अद्भुत एण वपुषा अश्रमतः आपकृष्टः मारीचं आशु विशिखेन यथा कं उग्रः ॥१०॥

नृपते	राजन् !	**सृष्टं मारीचं**	बनाये मारीचको
सीताकथा	सीताकी चर्चा	**यथा कं**	जैसे प्रजापति दक्षको
श्रवण	सुननेसे	**उग्र**	वीरभद्रने
दीपित	प्रदीप्त	**आश्रमतः**	बिना परिश्रमके
हृच्छयेन	काम	**अपकृष्टः**	खींचे गये
दशकन्धरेण	दशग्रीव द्वारा (प्रेरित)	**विशिखेन**	वाणसे
		आशु जघ्ने	शीघ्र मार दिया
अद्भुत	अद्भुत		॥१०॥
एण वपुषा	मृग शरीर		

रक्षोऽधमेन वृकवद् विपिनेऽसमक्षं
वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् ।

भ्रात्रा वने कृपणवत् प्रियया वियुक्तः
स्त्रीसंगिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार ॥११॥

रक्षः अधमेन वृकवत् विपिने असमक्षं वैदेहराज दुहितरि अपयापितायां भ्रात्रा वने कृपणवत् प्रियया वियुक्तः स्त्री संगिनां गतिं इति प्रथयन् चचार ॥११॥

अधमेन	अधम	**स्त्री संगिनां**	'स्त्रियसक्तोंकी
रक्षः	राक्षस रावण द्वारा	**इति गतिं**	यही दशा होती है'
असमक्षं	परोक्षमें	**प्रथयन्**	यह प्रसिद्ध करते हुए
विपिने	वनमें	**प्रियया वियुक्तः**	प्रियासे वियुक्त होकर
वृकवत्	भेड़ियेके समान	**भ्रात्रा वने**	भाईके साथ वनमें
वैदेहराज	विदेहराज-	**कृपणवत्**	दीनसे होकर
दुहितरि	नन्दिनीके	**चचार**	घूमते रहे ॥११॥
अपयापितायां	हरण कर लिये जाने पर		

दग्ध्वाऽऽत्मकृत्यहतकृत्यमहन् कबन्धं
सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागतिं तैः ।
बुद्ध्वाथ वालिनि हते प्लवगेन्द्र सैन्यै-
र्वेलामगात् स मनुजोऽजभवार्चितांघ्रिः ॥१२॥

दग्ध्व आत्मकृत्य हत कृत्यं अहन् कबन्धं सख्यं विधाय कपिभिः दयिता गतिं तैः बुद्ध्वा अथ वालिनि हते प्लवगेन्द्र सैन्यैः वेलां अगात् स मनुजः अज भव अर्चित अंघ्रिः ॥१२॥

आत्मकृत्य	अपने (विचित्र) कर्म के कारण	**दग्ध**	(जटायु) का दाह-संस्कार करके
हत कृत्यं	कर्मोंका नष्ट कर देनेवाले	**कबन्धं अहन्**	कबन्धको मारा,
		कपिभिः	वानरोंसे

सख्यं विधाय	मित्रता करके	**प्लवगेन्द्र**	वानरेन्द्र सुग्रीवकी
बालिनि	बालिके	**सैन्यैः**	सेनाके साथ
हते	मारे जानेपर	**स अज भव**	वे ब्रह्मा, शिव
तैः दयिता	उन कपियों द्वारा	**अर्चित अंघ्रिः**	पूजित चरण
	प्रियाकी	**मनुजः**	मनुष्य रूपधारी
गतिं	स्थिति	**वेलां अगात्**	समुद्र किनारे गये
बुद्ध्वा अथ	जानकर फिर		॥१२॥

यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपात-
संभ्रान्तनक्रमकरो भयगीर्णघोषः ।
सिन्धुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी
पादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत् ॥१३॥

यत् रोष विभ्रम विवृत्त कटाक्षपात संभ्रान्त नक्र मकरः भयगीर्ण घोषः सिन्धुः शिरसि अर्हणं परिगृह्य रूपी पादारविन्दं उपगम्य बभाष एतत् ॥१३॥

यत् रोष	जिनके क्रोधसे	**सिन्धुः**	समुद्र
विवृत्त	फैले	**शिरसि अर्हणं**	सिरपर पूजा सामग्री
कटाक्षपात	कटाक्षपातसे	**परिगृह्य**	लेकर
नक्र करमः	घड़ियाल-मगर आदि	**पादारविन्दं**	उनके चरण-कमलों-
सम्भ्रान्त	व्याकुल हो गये,		के
भयगीर्ण	भयसे स्तम्भित	**उपगम्य**	समीप आकर
घोषः	गर्जन	**एतत् बभाष**	यह बोला ॥१३॥
रूपी	मूर्तिमान होकर		

न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन्
कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम् ।
यत्सत्वतः सुरगणा रजसःप्रजेशा
मन्योश्च भूतपतयः स भवान् गुणेशः ॥१४॥

न त्वां वयं जडधियः नु विदाम भूमन् कूटस्थं आदिपुरुषं जगतां अधीशं यत् सत्वतः सुरगणाः रजसः प्रजेशा मन्योः च भूतपतयः स भवान् गुण ईशः ॥१४॥

वयं जड़धियः	हम जड़ बुद्धि	**सुरगणाः**	देवगण,
भूमन्	सर्वव्यापक,	**रजसः**	रजोगुणसे
कूटस्थं	कूटस्थ	**प्रजेशा**	प्रजापति वर्ग
आदिपुरुषं	आदिपुरुष	**च मन्योः**	तथा क्रोधरूप (तमो-गुण) से
जगतां	समस्त जगतके	**भूतपसयः**	भूतेश्वर उत्पन्न हुए
अधीशं	अधीश्वर	**स भवान्**	वह आप
त्वां नु	आपको तो	**गुण ईशः**	गुणोंके अधीश्वर हैं ॥१४॥
न विदाम	जानते ही नहीं		
यत् सत्वतः	जिनके सत्व गुणसे		

कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं
त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीर पत्नीम् ।
बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै
गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥१५॥

कामं प्रयाहि जहि विश्रवसः अवमेहं त्रैलोक्य रावणं अवाप्नुहि वीर पत्नीं बध्नीहि सेतुं इह ते यशसः वितत्यै गायन्ति दिक् विजयिनः यं उपेत्य भूपाः ॥१५॥

कामं	प्रसन्नता पूर्वक	**वीर पत्नीं**	वीर ! अपनी पत्नी-को
प्रयाहि	जाइये,	**अवाप्नुहि**	प्राप्त कीजिए
त्रैलोक्य रावणं	त्रिलोकीको रुलाने-वाले	**यशसः**	अपने यश-
विश्रवसः	विश्रवा मुनिके	**वितत्यै**	विस्तारके लिए
अवमेहं	बुरे मूत्ररूप रावणको	**इह सेतुं**	यहां सेतु
जहि	मार दीजिए	**बध्नीहि**	बाँधिए

यं उपेत्य	जिसके समीप आकर	**ते गायान्ति**	आपका यश गान
दिक् विजयिनः	दिग्विजयी		करेंगे ॥१५॥
भूपाः	राजा लोग		

बद्ध्वोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः
सेतुं कपीन्द्रकरकम्पितभूरुहांगैः ।
सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकै-
र्लङ्कां विभीषणदृशाऽऽविशदग्रदग्धाम् ॥१६॥

बद्ध्वा उदधौ रघुपतिः विविध अद्रि कूटैः सेतुं कपीन्द्र कर कम्पित भूरुह अंगैः सुग्रीव नील हनुमत् प्रमुखैः अनीकैः लङ्कां विभीषण दृशा आविशत् अग्रदग्धाम् ॥१६॥

कपीन्द्र कर	वानर सेनानायकोंके हाथों	**अग्रदग्धां**	पहिलेसे (हनुमानजी द्वारा) जलाई गयी
कम्पित	(लाये जानेसे) हिलते	**लंकां**	लंकामें
भूरुह अंगैः	वृक्षोंवाले	**विभीषण**	विभीषणके
विविध	नाना	**दृशा**	दिखलाये मार्गसे
अद्रिकूटैः	पर्वत शिखरों द्वारा	**सुग्रीव नील**	सुग्रीव, नील,
उदधौ सेतुं	समुद्रपर सेतु	**हनुमत् प्रमुखैः**	हनुमान प्रमुख
बद्ध्वा	बाँधकर	**अनीकैः**	सेनाके साथ
रघुपतिः	श्रीरघुनाथजीने	**आविशत्**	प्रवेश किया । १६॥

सा वानरेन्द्रबलरुद्धविहारकोष्ठ-
श्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटंका ।
निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भ-
शृंगाटका गजकुलैर्ह्रदिनीव घूर्णा ॥१७॥

सा वानरेन्द्र बल रुद्ध विहार कोष्ठ श्रीद्वार गोपुर सदोवल भीविटङ्का निर्भज्यमान धिषण ध्वज हेमकुम्भ शृंग आटका गजकुलैः ह्रदिनी इव घूर्णा ॥१७॥

सा वानरेन्द्र	वह लंका कपिपति-की
बल रुद्ध	सेनासे घेरी गयी
विहार कोष्ठ	क्रीड़ा-स्थल, कोठे,
श्रीद्वार	कोषागार,
गोपुर	नगर द्वार
सदोवल	पशुशाला,
भीविटङ्का	मल्लशालादि तथा
धिषण ध्वज	भवनोंकी ध्वजा,
हेमकुम्भ शृंग	स्वर्णकलश, शिखर
आटका	रुकावटें (परिखादि)
निर्भज्यमान	तोड़ी जाती हुई
गजकुलैः	हाथियोंके समूहसे
ह्रदिनी इव	सरिताके समान
घूर्णा	मथी जा रही थी ॥१७॥

रक्षःपतिस्तदवलोक्य निकुम्भकुम्भ-
धूम्राक्षदुर्मुखसुरान्तनरान्तकादीन् ।
पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकम्पनादीन्
सर्वानुगान् समहिनोदथ कुम्भकर्णम् ॥१८॥

रक्षःपतिः तत् अवलोक्य निकुम्भ कुम्भ धूम्राक्ष दुर्मुख सुरान्त नरान्तक आदीन् पुत्रं प्रहस्तं अतिकाय विकम्पन आदीन् सर्व अनुगान् समहिनोत् अथ कुम्भकर्णम् ॥१८॥

रक्षःपतिः	राक्षसराज (रावण) ने
तत् अवलोक्य	यह देखकर
निकुम्भ कुम्भ	निकुम्भ, कुम्भ,
धूम्राक्ष दुर्मुख	धूम्राक्ष, दुर्मुख,
सुरान्त	सुरान्त,
नरान्तक	नरान्तक
आदीन्	आदिको एवं
पुत्रं प्रहस्तं	अपने पुत्र प्रहस्त
अतिकाय	अतिकाय,
विकम्पन	विकम्पन
आदीन्	आदिको
सर्व अनुगान्	सब अनुचरोंको
अथ	तथा
कुम्भकर्णं	कुम्भकर्णको भी
समहिनोत्	(युद्ध करने) साथ भेज दिया ॥१८॥

तां यातुधानपृतनामसिशूलचाप-
प्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमरखंगदुर्गाम् ।

सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगन्धमाद-
नीलांगदर्क्षपनसादिभिरन्वितोऽगात् ॥१९॥

तां यातुधान पृतनां असि शूल चाप प्रास ऋष्टि शक्ति शर तोमर खंग दुर्गां सुग्रीव लक्ष्मण मरुत्सुत गन्धमाद नील अंगद ऋक्ष पनस आदिभिः अन्वितः अगात् ॥१९॥

असि शूल	तलवार, भाला,	**सुग्रीव लक्ष्मण**	सुग्रीव, लक्ष्मण,
चाप प्रास	धनुष, प्रास,	**मरुत्सुत**	हनुमान,
ऋष्टि शक्ति	ऋष्टि, शक्ति,	**गन्धमाद**	गन्ध मादन,
शर तोमर	वाण, गदा,	**नील अंगद**	नील, अंगद,
खंग दुर्गां	खंगसे दुर्गम	**ऋक्ष पनस**	जाम्बवान, पनस
तां यातुधान	उस राक्षसोंकी	**आदिभिः**	आदिके
पृतनां	सेनाके सामने (श्रीराम)	**अन्वितः**	साथ
		अगात्	गये ॥१९॥

तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे
द्वन्द्वं वरूथमिभपत्तिरथाश्वयोधैः ।
जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरंगदाद्याः
सीताभिमर्शहतमंगलरावणेशान् ॥२०॥

ते अनीकपा रघुपतेः अभिपत्य सर्वे द्वन्द्वं वरूथं इभ पत्ति रथ अश्व योधैः जघ्नुः द्रुमैः गिरि गद इषुभिः अंगद आद्याः सीता अभिमर्श हत मंगल रावण ईशान् ॥२०॥

ते रघुपतेः	वे श्रीरघुनाथजीके	**योधैः**	युद्ध करनेवाली
अनीकपा	सेनानायक	**वरूथं**	राक्षस-सेनाके
अंगद आद्याः	अंगद आदि	**अभिपत्य सर्वे**	सम्मुख जाकर सबने
इभ पत्ति	गजसेना,	**द्वन्द्वं**	द्वन्द्व युद्ध करते हुए
रथ अश्व	रथ, अश्वोंपर चढ़-कर	**द्रुमैः गिरि**	वृक्षों, पर्वत,
		गद इषुभिः	गदा तथा वाणोंसे

सीता अभिमर्श	सीताजी का स्पर्श करनेके कारण	रावण ईशान्	रावण जिनका स्वामी था
हत मंगल	मंगलहीन हुए	जघ्नुः	(उन्हें) मारने लगे ॥२०॥

रक्षः पतिः स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट
आरुह्ययानकमथाभिससार रामम् ।
स्वःस्यन्दनेद्युमति मातलिनोपनीते
विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरप्रैः ॥२१॥

रक्षः पतिः स्वबल नष्टि अवेक्ष्य रुष्ट आरुह्य यानकं अथ अभिससार रामं स्वः स्यन्दनेद्युमति मातलिना उपनीते विभ्राजमानं अहनन् निशितैः क्षुरप्रैः ॥२१॥

स्वबल	अपनी सेनाका	विभ्राजमानं	तेजोमय
नष्टि	विनाश	स्वः	स्वर्गीय
अवेक्ष्य रुष्ट	देखकर क्रुद्ध	स्यन्दनेद्यु	रथपर (विराजमान)
रक्षःपतिः	राक्षसराज	रामं	श्रीरामकी
यानकं	विमानपर	अभिससार	ओर वेगसे चला
आरुह्य	चढ़कर (आया)	निशितैः क्षुरप्रैः	और तीक्ष्ण बाणोंसे
अथ मातलिना	फिर मातालि द्वारा	अहनन्	(उनपर) आघात
उपनीते	लाये गये		किया ॥२१॥

रामस्तमाह पुरुषादपुरीष यन्न
कान्तासमक्षमसतापहृता श्ववत् ते ।
त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य
यच्छामि काल इव कर्तुरलङ्घ्यवीर्यः ॥२२॥

रामः तं आह पुरुषाद पुरीष यत् नः कान्ता असमक्षं असता अपहृता श्ववत् ते त्यक्त त्रपस्य फलं अद्य जुगुप्सितस्य यच्छामि काल इव कर्तुः अलङ्घ्यवीर्यः ॥२२॥

रामः तं आह	श्रीरामने उससे कहा—
पुरुषाद	अरे नरभक्षियोंकी
पुरीष	विष्ठारूप !
ते असता	तुझ पापीने
श्ववत्	कुत्तेकी भांति
असमक्षं	मेरी अनुपस्थितिमें
कान्ता	मेरी प्रियाका
अपहृता	हरण कर लिया
त्यक्त	अतः (तुझ)
त्रपस्य	लज्जाहीनको
जुगुप्सितस्य	उस निन्दित कर्मका
फलं अद्य	फल आज
अमोघवीर्यः	अमोघ पराक्रम
काल इव	कालकी भांति
कर्तुः यच्छामि	(पाप) कर्माको देता हूँ ॥२२॥

एवं क्षिपन् धनुषि संधितमुत्ससर्ज
बाणं स वज्रमिव तद्धृदयं बिभेद ।
सोऽसृग् वमन् दशमुखैर्न्यपतद् विमाना-
द्धाहेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः ॥२३॥

एवं क्षिपन् धनुषि सन्धितं उत्ससर्ज बाणं स वज्रं इव तत् हृदयं बिभेद सः असृक् वमन् दशमुखैः न्यपतत् विमानात् हा हा इति जल्पति जने सुकृती इव रिक्तः ॥२३॥

एवं	इस प्रकार
क्षिपन्	आक्षेप करते हुए
धनुषि	धनुषपर
सन्धितं	चढ़ाया हुआ
बाणं उत्ससर्ज	बाण छोड़ दिया
स	उस (बाण) ने
वज्रं इव	वज्रकी भांति
तत् हृदयं	उसके हृदयको
बिभेद	विदीर्ण कर दिया
स दशमुखैः	वह दसो मुखोंसे
असृक् वमन्	रक्त वमन करता हुआ
जने हा हा	लोगोंके 'हाय-हाय'
इति	इस प्रकार
जल्पति	पुकारते हुए
रिक्तः सुकृती	क्षीण पुण्य पुण्यात्माके
इव	समान
विमानात्	विमानसे
न्यपतत्	गिर पड़ा ॥२३॥

ततो निष्क्रम्य लंकाया यातुधान्यः सहस्रशः ।
मन्दोदर्या समं तस्मिन् प्ररुदत्य उपाद्रवन् ॥२४॥

ततः निष्क्रम्य लङ्कायाः यातु धान्यः सहस्रशः मन्दोदर्या समं तस्मिन् प्ररुदत्य उप आद्रवन् ॥२४॥

ततः लङ्कायाः	तब लंकासे	**प्ररुदत्य**	रोती हुई
निष्क्रम्य	निकलकर	**तस्मिन्**	उस (रणभूमिमें)
सहस्रशः	सहस्रों	**उप**	उसके पास
यातु धान्यः	राक्षसियां	**आद्रवन्**	दौड़ी आयीं ॥२४॥
मन्दोदर्या समं	मन्दोदरीके समान		

स्वान् स्वान् बन्धून् परिष्वज्य लक्ष्मणेषुभिरर्दितान् ।
रुरुदुः सुस्वरं दीना घ्नन्त्य आत्मानमात्मना ॥२५॥

स्वान्-स्वान् बन्धून् परिष्वज्य लक्ष्मण इषुभिः अर्दितान् रुरुदुः सुस्वरं दीना घ्नन्त्य आत्मान आत्मना ॥२५॥

लक्ष्मण	लक्ष्मणके	**आत्मना**	अपने आप
इषुभिः	बाणोंसे	**आत्मानं**	अपनेको
अर्दितान्	दलित	**घ्नन्त्य दीना**	पीटती हुई वे बेचारी
स्वान्-स्वान्	अपने-अपने	**सुस्वरं**	उच्च स्वरसे
बन्धून्	सम्बन्धियोंका	**रुरुदुः**	रोने लगीं ॥२५॥
परिष्वज्य	आलिंगन करके		

यातुधान्यः उचु*

हा हताः स्म वयं नाथ लोकरावण रावण ।
कं यायाच्छरणं लंका त्वद्विहीना परार्दिता ॥२६॥

हा हताः स्म वयं नाथ लोकरावण रावण कं यायात् शरणं लंका त्वत् विहीना पर अर्दिता ॥२६॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

हा नाथ	'हा स्वामी !
वयं हताः	हम मारी गयीं,
लोकरावण	लोकोंको रुलानेवाले
रावण	रावण
त्वत् विहीना	तुम्हारे बिना
पर अर्दिता	शत्रुओं द्वारा रौंदी गयी
लङ्का कं शरणं	किसकी शरणमें
यायात्	जायगी ॥२६॥

नैवं वेद महाभाग भवान् कामवशं गतः ।
तेजोऽनुभावं सीताया येन नीतो दशामिमाम् ॥२७॥

न एवं वेद महाभाग भवान् कामवशं गतः तेजः अनुभावं सीताया येन नीतः दशां इमाम् ॥२७॥

महाभाग	महाभाग
भवान्	आप
कामवंश गतः	कामके वशमें होकर
सीताया एवं	सीताके इस प्रकारके
तेजः अनुभावं	तेज और प्रभावको
न वेद	नहीं जान सके
येन इमां	जिसने इस
दशां नीतः	दशामें पहुँचा दिया

कृतैषा विधवा लंका वयं च कुलनन्दन ।
देहः कृतोऽन्नं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे ॥२८॥

कृता एषा विधवा लङ्का वयं च कुलनन्दन देहः कृतः अन्नं गृध्राणां आत्मा नरक हेतवे ॥२८॥

कुलनन्दन	कुलनन्दन !
एषा लंका च	यह लंका और
वयं	हम सबको (तुमने)
विधवा कृता	विधवा बना दिया,
देहः गृध्राणां	शरीरको गीधोंका
अन्नं आत्मा	भोजन तथा अपनेको
नरक हेतवे	नरक जाने योग्य
कृतः	बना दिया ॥२८॥

श्रीशुक उवाच

स्वानां विभीषणश्चक्रे कोसलेन्द्रानुमोदितः ।
पितृमेधविधानेन यदुक्तं साम्परायिकम् ॥२९॥

स्वानां विभीषणः चक्रे कोसलेन्द्र अनुमोदितः पितृमेध विधानेन यत् उक्तं साम्परायिकम् ॥२६॥

पितृमेध	पितृयज्ञकी
विधानेन	विधिसे
यत्	जो
साम्परायिकं	मरणोत्तर क्रिया
उक्तं	शास्त्रने कही है वह
कोसलेन्द्र	श्रीरामकी
अनुमोदितः	अनुमतिसे
विभीषणः	विभीषणने
स्वानां	अपने संबन्धियोंकी
चक्रे	सम्पन्न की ॥२६॥

ततो ददर्श भगवानशोकवनिकाश्रमे ।
क्षामां स्वविरहव्याधिं शिंशपामूलमास्थिताम् ॥३०॥

ततः ददर्श भगवान् अशोक वनिका आश्रमे क्षामां स्वविरह व्याधिं शिंशुपामूलं आस्थिताम् ॥३०॥

ततः भगवान्	तब भगवान् श्रीरामने
अशोक वनिका	अशोक वाटिकाके
आश्रमे	आश्रममें
शिंशुपामूल	शीशमकी जड़के पास
आस्थितां	बैठी हुई
स्वविरह	अपने विरह
व्याधि	रूपी रोगसे
क्षामां	दुबली पड़ी
ददर्श	(सीताजी) को देखा ॥३०॥

रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्यान्वकम्पत ।
आत्मसंदर्शनाह्लादविकसन्मुखपंकजाम् ॥३१॥

रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्य अन्वकम्पत आत्म संदर्शन आह्लाद विकसन् मुखपङ्कजाम् ॥३१॥

आत्म संदर्शन	अपने दर्शनके
आह्लाद	आनन्दसे
विकसन्	खिले हुए
मुखपङ्कजां	मुख कमलवाली
प्रियतमां भार्यां	अत्यन्त प्रिया पत्नी-को
दीनां वीक्ष्य	दीना देखकर
रामः	श्रीरामने
अन्वकम्पत	उनपर कृपा की ॥३१॥

आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः ।
विभीषणाय भगवान् दत्वा रक्षोगणेशताम् ॥३२॥

आरोप्य आरुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमत् युतः विभीषणाय भगवान् दत्त्वा रक्षः गण ईशताम् ॥३२॥

विभीषणाय	विभीषणको	**हनुमत् युतः**	हनुमानजीके साथ
रक्षः गण	राक्षसोंका	**भगवान् यानं**	भगवान् (पुष्पक) विमानपर
ईशतां दत्त्वा	स्वामित्व देकर	**आरुरुहे**	चढ़े ॥३२॥
आरोप्य	(उनको) चढ़ाकर		
भ्रातृभ्यां	भाई तथा		

लंकामायुश्च कल्पान्तं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम् ।
अवकीर्यमाणः कुसुमैर्लोकपालार्पितैः पथि ॥३३॥

लङ्कां आयुः च कल्पान्तं ययौ चीर्ण व्रत. पुरीं अवकीर्यमाणः कुसुमैः लोकपाल अर्पितैः पथि ॥३३॥

लङ्कां	लङ्का तथा	**अवकीर्यमाण**	वर्षा होते हुए
कल्पान्तं	कल्प पर्यन्तकी	**चीर्ण व्रतः**	(चौदह वर्ष वनमें रहनेका) व्रत पूर्ण करके
आयुः	आयु (भी देकर)		
पथि	मार्गमें	**पुरीं ययौ**	अयोध्यपुरी गये ॥३३॥
लोकपाल	लोकपालों द्वारा		
अर्पितैः	की गयी		
कुसुमैः	पुष्प		

उपगीयमानचरितः शतधृत्यादिभिर्मुदा ।
गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम् ॥३४॥

उपगीयमान चरितः शतधृति आदिभिः मुदा गोमूत्र यावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कल अम्बरम् ॥३४॥

मुदा शतधृति आनन्दपूर्वक ब्रह्मा । **आदिभिः** आदि द्वारा

चरितः	जिनका चरित	**गोमूत्र**	गोमूत्र
उपगीयमान	गाया जाता है	**यावकं**	यावक व्रती* तथा
	उन्होंने	**वल्कल अम्बरं**	वल्कल-वस्त्रधारी
भ्रातरं	भाई भरतको	**श्रुत्वा**	सुनकर ॥३४॥

महाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थण्डिलेशयम् ।
भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः ॥३५॥

महाकारुणिकः अतप्यत् जटिलं स्थण्डिलेशयं भरतः प्राप्तं आकर्ण्य पौर अमात्य पुरोहितैः ॥३५॥

जटिलं	जटाधारी,	**भरतः**	भरतने
स्थण्डिलेशयं	वेदीपर सोनेवाला (जानकर)	**प्राप्तं आकर्ण्य**	उनको आया सुनकर
महाकारुणिकः	महाकरुणामय (रघुनाथजी)	**पौर अमात्य पुरोहितैः**	नगरजन, मन्त्री तथा पुरोहितके साथ ॥३५॥
अतप्यत्	अत्यन्त संतप्त हुए ।		

पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम् ।
नन्दिग्रामात् स्वशिबिराद् गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥३६॥

पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रति उद्यतः अग्रजं नन्दिग्रामात् स्वशिबिरात् गीत वादित्र निःस्वनैः ॥३६॥

स्वशिबिरात्	अपने शिविर	**पादुके**	(श्रीरामकी) चरण पादुकाओंको
नन्दिग्रामात्	नन्दिग्रामसे	**शिरसि न्यस्य**	सिरपर रखकर
गीत वादित्र	गायन, वाद्यकी	**अग्रजं रामं**	बड़े भाई श्रीरामकी
निःस्वनैः	ध्वनिके साथ	**प्रति उद्यतः**	ओर चले ॥३६॥

---

* गौ को जौ खिलानेपर जब वह गोवरमें निकलता है तब उसका दलिया बनाकर गोमूत्रमें ही पकाकर खाना 'गोमूत्र यावक' व्रत है ।

ब्रह्मघोषेण च मुहुः पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ।
स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमैश्चित्रध्वजै रथैः ॥३७॥

ब्रह्मघोषेण च मुहुः पठत् भिः ब्रह्मवादिभिः स्वर्ण कक्ष पताकाभिः हेमैः चित्रध्वजै रथैः ॥३७॥

च मुहुः	तथा बार-बार	**पताकाभिः**	पताकाओंसे (अलंकृत)
ब्रह्मवादिभिः	वेदज्ञों द्वारा	**हेमैः**	स्वर्णके
ब्रह्मघोषेण	उच्च स्वरसे	**चित्रध्वजैः**	अनेक प्रकारके ध्वजोंसे युक्त
पठद्भिः	वेदपाठ करते हुए,	**रथैः**	रथोंके साथ ॥३७॥
स्वर्ण कक्ष	सुनहरी कामदार		

सदश्वै रुक्मसन्नाहैर्भटैः पुरटवर्मभिः ।
श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्भृत्यैश्चैव पदानुगैः ॥३८॥

सत् अश्वैः रुक्मसन्नाहैः भटैः पुरटवर्मभिः श्रेणीभिः वारमुख्याभिः भृत्यैः च एव पद अनुगैः ॥३८॥

रुक्म सन्नाहैः	स्वर्ण साज-सज्जा सज्जित	**वारमुख्याभिः**	वारांनाओंकी
		श्रेणीभिः	मण्डलियों
सत् अश्वैः	उत्तम अश्वों,	**च पद अनुगैः**	तथा पैदल चलनेवाले
पुरटवर्मभिः	स्वर्ण-कवचधारी	**भृत्यैः एव**	सेवकोंके साथ भी ॥३८॥
भटैः	सैनिक गण,		

पारमेष्ठ्यान्युपादाय पण्यान्युच्चावचानि च ।
पादयोर्न्यपतत् प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः ॥३९॥

पारमेष्ठ्यात् उपादाय पण्यानि उच्च अवचानि च पादयोः न्यपतत् प्रेम्णा प्रक्लिन्न हृदय ईक्षणः ॥३९॥

पारमेष्ठ्यात्	महाराजाओंके योग्य तथा	**उच्च अवचानि**	बड़ी-छोटी

पण्यानि च	बाजारमें बिकनेवाली सामग्री भी	**प्रक्लिन्न हृदय**	आर्द्र हृदय तथा
उपादाय	साथ लेकर	**ईक्षणः**	नेत्र
प्रेम्णा	प्रेमके कारण	**पादयोः**	चरणोंपर
		न्यपतत्	गिर पड़े ॥३९॥

पादुके न्यस्य पुरतः प्राञ्जलिर्वाष्पलोचनः ।
तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन् नेत्रजैर्जलैः ॥४०॥

पादुके न्यस्य पुरतः प्राञ्जलिः वाष्पलोचनः तं आश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयत् नेत्रजैः जलैः ॥४०॥

पादुके पुरतः	पादुकाओंको सम्मुख	**नेत्रजैः**	(श्रीरामने) अपने नेत्रोंके
न्यस्य	रखकर	**जलैः**	जलसे
प्राञ्जलिः	हाथ जोड़े	**स्नापयत्**	स्नान करा दिया ॥४०॥
वाष्पलोचनः	आँसू भरे नेत्र		
तं दोर्भ्यां	उनको भुजाओंसे		
आश्लिष्य	आलिंगन करके		

रामो लक्ष्मणसीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः ।
तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः ॥४१॥

रामः लक्ष्मण सीताभ्यां विप्रेभ्यः ये अर्हसत्तमाः तेभ्यः स्वयं नमः चक्रे प्रजाभिः च नमस्कृतः ॥४१॥

लक्ष्मण	लक्ष्मण,	**विप्रेभ्यः तेभ्यः**	जो ब्राह्मण थे उनको
सीताभ्यां	सीताके साथ	**नमः चक्रे**	प्रणाम किया
रामः स्वयं	श्रीरामने स्वयं	**च प्रजाभिः**	तथा प्रजा द्वारा
ये अर्हसत्तमाः	जो परम पूजनीय	**नमस्कृतः**	नमस्कृत हुए ॥४१॥

धुन्वन्त उत्तरासङ्गान् पतिं वीक्ष्य चिरागतम् ।
उत्तराः कोसला माल्यैः किरन्तो ननृतुर्मुदा ॥४२॥

धुन्वन्त उत्तर आसङ्गान् पतिं वीक्ष्य चिर आगतं उत्तराः कोसला माल्यैः किरन्तः ननृतुः मुदा ॥४२॥

चिर आगतं	बहुत दिनों बाद आये
पतिं	अपने स्वामीको
वीक्ष्य	देखकर
उत्तराः	उत्तर
कोसला	कोशलके लोग
उत्तराः	उत्तरीय
आसङ्गान्	वस्त्रोंको
मुदा धुन्वन्त	हर्षसे हिलाते हुए
माल्यैः किरन्तः	मालाओंकी वर्षा करते हुए
ननृतुः	नाचने लगे ॥४२॥

पादुके भरतोऽगृह्णाच्चामरव्यजनोत्तमे ।
विभीषणः ससुग्रीवः श्वेतच्छत्रं मरुत्सुतः ॥४३॥

पादुके भरतः अगृह्णात् चामर व्यजन उत्तमे विभीषणः ससुग्रीवः श्वेतछत्रं मतत्सुतः ॥४३॥

भरतः पादुके	भरतने पादुकाओं-को,
ससुग्रीवः	सुग्रीवके साथ
विभीषणः	विभीषणने
उत्तमे चामर	श्रेष्ठ चमर तथा
व्यजन	व्यजनको
मरुत्सुतः	पवनपुत्रने
श्वेतछत्रं	श्वेत छत्र
अगृह्णत्	ग्रहण किया ॥४३॥

धनुर्निषङ्गाञ्छत्रुघ्नः सीता तीर्थकमण्डलुम् ।
अबिभ्रदङ्गदः खड्गं हैमं चर्मर्क्षराण् नृप ॥४४॥

धनुः निषंगान् शत्रुघ्नः सीता तीर्थ कमण्डलुं अबिभ्रत् अंगदः खड्गं हैमं चर्म ऋक्षरट् नृप ॥४४॥

नृप	राजन !
धनुः निषंगान्	धनुष तथा तरकशों-को
शत्रुघ्नः	शत्रूघ्नने,
तीर्थ	तीर्थ जलके
कण्डलु	कमण्डलुको
सीता	सीताजी ने
खड्गं अंगदः	खड्ग अंगदने
हैमं चर्म	स्वर्णिम ढाल
ऋक्षराट्	जाम्बवानने
अबिभ्रत्	धारण किया ॥४४॥

पुष्पकस्थोऽन्वितः स्त्रीभिः स्तूयमानश्च वन्दिभिः ।
विरेजे भगवान् राजन् ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः ॥४५॥

पुष्पकस्थः अन्वितः स्त्रीभिः स्तूयमानः च वन्दिभिः विरेजे भगवान् राजन् ग्रहैः चन्द्र इव उदितैः ॥४५॥

राजन्	राजन् !
स्त्रीभिः	स्त्रियोंसे
अन्वितः	घिरे
पुष्पकस्थः	पुष्पकमें बैठे
च वन्दिभिः	तथा बन्दीजनों द्वारा
स्तूयमानः	स्तुत होते
ग्रहैः उदितैः	ग्रह मण्डलमें उदित
चन्द्र इव	चन्द्रमाके समान
भगवान्	भगवान्
विरेजे	राम शोभित हुए ॥४५॥

भ्रातृभिर्नन्दितः सोऽपि सोत्सवां प्राविशत् पुरीम् ।
प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरम् ॥४६॥

भ्रातृभिः नन्दितः सः अपि स उत्सवां प्राविशत् पुरीं प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरम् ॥४६॥

भ्रातृभिः	भाइयों द्वारा
नन्दितः	सम्मानित होकर
स उत्सवां पुरीं	उत्सव युक्ता पुरीमें
सः अपि	वे भी
राजभवनं	राजभवनमें
प्रविश्य	प्रवेश करके
गुरुपत्नीः	गुरुजनोंकी पत्नियों
स्वमातरं	तथा अपनी माताको ॥४६॥

गुरून् वयस्यावरजान् पूजितः प्रत्यपूजयत् ।
वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत् समुपेयतुः ॥४७॥

गुरून् वयस्य अवरजान् पूजितः प्रत्यपूजयत् वैदेही लक्ष्मणः च एव यथावत् सम उपेयतुः ॥४७॥

गुरून्	गुरुजनोंका
प्रत्यपूजयत्	सत्कार किया,
वयस्य	सखाओं तथा
अवरजान्	छोटों द्वारा
पूजितः	सत्कृत हुए
वैदेही च	सीता तथा
लक्ष्मणः एव	लक्ष्मण भी
यथावत्	यथोचित रूपसे
सम	भली प्रकार
उपेयतुः	सबसे मिले ॥४७॥

पुत्रान् स्वमातरस्तास्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः ।
आरोप्यांकेऽभिषिञ्चन्त्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः ॥४८॥

पुत्रान् स्वमातरः ताः तु प्राणान् तन्व इव उत्थिताः आरोप्य अङ्के अभिषिञ्चन्त्यः वाष्प ओघैः विजहुः शुचः ॥४८॥

तन्वः प्राणान्	शरीरमें प्राणोंके	**आरोप्य**	बैठाकर
उत्थिताः इव	जाग उठनेके समान	**वाष्प्य औघैः**	आंसूकी बाढ़से
ताः तु	वे तो उनकी	**अभिषिञ्चन्त्यः**	स्नान कराती हुई
स्वमातरः	अपनी माताओंने	**शुचः विजहुः**	शोक त्याग दिया
पुत्रान् अङ्के	पुत्रोंको गोदमें		॥४८॥

जटा निर्मुच्य विधिवत् कुलवृद्धैः समं गुरुः ।
अभ्यषिञ्चद् यथेवेन्द्रं चतुःसिन्धुजलादिभिः ॥४९॥

जटा निर्मुच्य विधिवत् कुलवृद्धैः समं गुरुः अभ्यसिञ्चत् यथा इन्द्रं चतुःसिन्धु जल आदिभिः ॥४९॥

जटा निर्मुच्य	जटाएँ सुलझाकर	**जल**	जल
कुलवृद्धैः समं	कुलके बड़ोंके साथ	**आदिभिः**	आदिसे
गुरुः	गुरु वशिष्ठने	**यथा इन्द्रं**	जैसे इन्द्रका
विधिवत्	विधिपूर्वक	**अभ्यषिञ्चत्**	अभिषेक किया
चतुःसिन्धु	चारों समुद्रोंके		॥४९॥

एवं कृतशिरःस्नानः सुवासाः स्रग्व्यलङ्कृतः ।
स्वलङ्कृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ ॥५०॥

एवं कृत शिरः स्नानः सुवासाः स्रक्वि अलङ्कृतः स्वलंकृतैः सुवासोभिः भ्रातृभिः भार्यया बभौ ॥५०॥

एवं शिरः	इस प्रकार सिरसे	**स्वलंकृतैः**	आभूषण धारण किए
स्नानः कृत	स्नान करके,	**सुवासोभिः**	उत्तम वस्त्रवाले
सुवासाः	उत्तम वस्त्र तथा	**मातृभिः**	भाइयों तथा
स्रक्वि	माला और	**भार्यया**	पत्नीके साथ
अलंकृतः	आभूषण धारण करके	**बभौ**	शोभित हुए ॥५०॥

अग्रहीदासनं भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः ।
प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ।
जुगोप पितृवद् रामो मेनिरे पितरं च तम् ॥५१॥

अग्रहीत् आसनं भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः प्रजाः स्वधर्म निरता वर्ण आश्रम गुण अन्विताः जुगोप पितृवत् रामः मेनिरे पितरं च तम् ॥५१॥

भ्रात्रा	भाई (भरत) द्वारा	**गुण अन्विताः**	धर्मयुक्त
प्रणिपत्य	प्रणाम करके	**प्रजाः रामः**	प्रजाकी श्रीरामने
प्रसादितः	प्रसन्न किये जानेपर	**पितृवत्**	पिताकी भांति
आसनं	राजसिंहासन	**जुगोप**	रक्षा की
अग्रहीत्	ग्रहण किया,	**च तं**	तथा (प्रजाने)
स्वधर्म	अपने-अपने धर्ममें	**पितरं**	उनको पिता
निरता	तत्पर	**मेनिरे**	माना ॥५१॥
वर्ण आश्रम	वर्ण-आश्रम		

त्रेतायां वर्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत् ।
रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ॥५२॥

त्रेतायां वर्तमानायां कालः कृतसमः अभवत् रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूत सुख आवहे ॥५२॥

सर्वभूत सुख	सब प्राणियोंको सुख	**वर्तमानायां**	रहनेपर भी
आवहे धर्मज्ञे	सुख देनेवाले धर्मज्ञ	**कृतसमः**	सतयुगके समान
रामे	श्रीरामके	**कालः**	समय
राजनि	राजा होनेपर	**अभवत्**	हो गया था ॥५२॥
त्रेतायां	त्रेता युगके		

वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिन्धवः ।
सर्वे कामदुघा आसन् प्रजानां भरतर्षभ ॥५३॥

वनानि नद्यः गिरयः वर्षाणि द्वीप सिन्धवः सर्वे कामदुधा आसन् प्रजानां भरतर्षभ ॥५३॥

भरतर्षभ	भरत वंशमें श्रेष्ठ परीक्षित् !	**प्रजानां**	प्रजाके लिए
वनानि नद्यः	वन, नदियां,	**कामदुधा**	कामनाएँ पूर्ण करने-वाले
गिरयः वर्षाणि	पर्वत, प्रदेश,	**आसन**	हो गये थे ॥५३॥
द्वीप सिन्धवः	(सातों) द्वीप और समुद्र		

नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः ।
मृत्युश्चानिच्छतां नासीद् रामे राजन्यधोक्षजे ॥५४॥

न आधिव्याधि जरा ग्लानि दुःख शोक भयः क्लमाः मृत्युः च अनिच्छतां न आसीत् रामे राजनि अधोक्षजे ॥५४॥

अधोक्षजे	भगवान् हृषीकेश	**न च**	नहीं थे तथा
रामे राजनि	श्रीरामके राज्यमें	**अनिच्छतां**	इच्छा न करनेवालों-की
आधिव्याधि	चिन्ता, रोग,		
जरा ग्लानि	बुढ़ापा, ग्लानि,	**मृत्युः न**	मृत्यु नहीं
दुःख शोक	दुःख, शोक,	**आसीत्**	होती थी ॥५४॥
भय क्लमाः	भय और श्रान्ति		

एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः ।
स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयमाचरत् ॥५५॥

एकपत्नी व्रतधरः राजर्षि चरितः शुचिः स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयं आचरन् ॥५५॥

एकपत्नी	एकपत्नी	**गृहमेधीयं**	गृहस्थाश्रमोचित
व्रतधरः	व्रत धारण करके	**स्वधर्मं स्वयं**	अपने धर्मका स्वयं
शुचिः राजर्षि	पवित्र राजर्षिके समान	**आचरन्**	आचरण करते हुए
		शिक्षयन्	(लोगोंको) शिक्षा
चरितः	चरितवाले (श्रीराम)		देते थे ॥५५॥

प्रेम्णानुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती ।
धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताहरन्मनः ॥५६॥

प्रेम्णा अनुवृत्त्या शीलेन प्रश्रया अवनता सती धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीता हरन् मनः ॥५६॥

प्रेम्णा	प्रेमपूर्ण
अनुवृत्त्या	अनुकूलाचरणसे,
शीलेन प्रश्रया	शीलसे, विनम्रतासे
अवनता	झुके रहकर
भावज्ञा	(पतिके) भावको जाननेवाली
सती सीता	पतिव्रता सीताजीने
धिया च ह्रिया	अपनी बुद्धि और लज्जासे
भर्तुः मनः	पतिदेवके मनका
हरन्	हरण कर लिया ॥५६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे रामचरिते दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

भगवानात्मनाऽऽत्मानं राम उत्तमकल्पकैः ।
सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान् मखैः ॥१॥

भगवान् आत्माना आत्मानं राम उत्तम कल्पकैः सर्वदेवमयं देवं ईज आचार्यवान् मखैः ॥१॥

भगवान् राम	भगवान श्रीरामने	**सर्वदेवमयं**	सर्वदेवमय
आचार्यवान्	आचार्य (वसिष्ठ) जी को बनाकर	**देवं**	प्रकाश स्वरूप
		आत्मानं	अपना ही
उत्तम कल्पकैः	उत्तम सामग्रियों द्वारा	**आत्मान ईजे**	स्वयं ही यजन किया ॥१॥
मखैः	यज्ञोंसे		

होत्रेऽददाद् दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः ।
अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः ॥२॥

होत्रे अददात् दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः ॥२॥

सः प्रभुः	उन समर्थने	**च**	तथा
होत्रे प्राचीं	होताको पूर्व,	**सामगाय**	सामगान करनेवाले उद्गाताको
ब्रह्मणे दक्षिणां	ब्रह्माको दक्षिण,	**उदीचीं दिशं**	उत्तर दिशाका
अध्वर्यवे	अध्वर्युको	**अदात्**	(राज्य) दे दिया ॥२॥
प्रतीचीं	पश्चिम		

आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदन्तरा ।
मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निःस्पृहः ॥३॥

आचार्याय ददौ शेषां यावती भूः तत् अन्तरा मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणः अर्हति निःस्पृहः ॥३॥

तत् अन्तरा	उसके बीचकी	**कृत्स्नं**	सम्पूर्ण (भूमण्डल)
यावती शेषां	जितनी भी बची	**निःस्पृहः**	निस्पृह
भूः	भूमि थी	**ब्राह्मणः**	ब्राह्मण ही
आचार्याय ददौ	आचार्यको दे दी	**अर्हति**	पाने योग्य है ॥३॥
मन्यमान इदं	यह मानते हुए कि यह		

इत्ययं तदलङ्कारवासोभ्यामवशेषितः ।
तथा राज्ञयपि वैदेह्यो सौमंगल्यावशेषिता ॥४॥

इति अयं तत् अलङ्कार वासःभ्यां अवशेषितः तथा राज्ञि अपि वैदेह्यो सौमंगल्य अवशेषिता ॥४॥

इति	इसी प्रकार	**तथा**	इसी प्रकार
अयं	इन (श्रीराम) ने	**राज्ञिवैदेह्यो**	महारानी जानकीने
तत् अलंकार	अपने आभूषण	**अपि सौमंगल्य**	भी केवल मांगलिक वस्त्राभरण
वासः भ्यां	वस्त्रोंको ही		
अवशेषितः	बचा रखा,	**अवशेषिता**	बचाये ॥४॥

ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम् ।
प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्येदं बभाषिरे ॥५॥

ते तु ब्रह्मण्य देवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतं प्रीताः क्लिन्नधियः तस्मै प्रत्यर्प्य इदं बभाषिरे ॥५॥

ब्रह्मण्य	ब्राह्मणोंके	**प्रीताः**	प्रसन्नतासे
देवस्य	देवता माननेवाले श्रीरामका	**क्लिन्नधियः**	आर्द्र हृदय
संस्तुतं वात्सल्यं	प्रशंसनीय वात्सल्य	**तस्मै प्रत्यर्प्य**	उन्हींको लौटाकर
वीक्ष्य ते तु	देखकर वे ब्राह्मण भी	**इदं बभाषिरे**	यह कहने लगे ॥५॥

अप्रक्तं नस्त्वया किं नु भगवन् भुवनेश्वर ।
यन्नोऽन्तर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा ॥६॥

अप्रक्तं नः त्वया किं नु भगवन् भुवनेश्वर यत् नः अन्तः हृदयं विश्य तमः हंसि स्वरोचिषा ॥६॥

भुवनेश्वर	त्रिभुवनके स्वामी	**यत् नः हृदयं**	जो हमारे हृदयमें
भगवन्	भगवान	**विश्य**	प्रवेश करके
त्वया नः	आपने हम लोगोंको	**स्वरोचिषा**	अपने तेजसे
नु किं	भला क्या नहीं	**तमः हंसि**	अज्ञान नष्ट कर रहे
अप्रक्तं	देखा है		हैं ॥६॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे ।
उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये ॥७॥

नमः ब्रह्मण्य देवाय रामाय अकुण्ठ मेधसे उत्तम श्लोक धुर्याय न्यस्तदण्ड अर्पित अङ्घ्रये ॥७॥

ब्रह्मण्य	ब्राह्मणोंको	**न्यस्तदण्ड**	परपीड़ा त्यागी
देवाय	देवता माननेवाले,		लोगोंको
अकुण्ठ मेधसे	अकुण्ठ बुद्धि	**अङ्घ्रये**	अपने श्रीचरण
उत्तम श्लोक	पुण्यश्लोक	**अर्पित**	प्रदान करनेवाले
धुर्याय	शिरोमणि,	**रामाय नमः**	श्रीरामको नमस्कार ॥७॥

कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः ।
चरन् वाचोऽशृणोद् रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित् ॥८॥

कदाचित् लोक जिज्ञासुः गूढः रात्र्यां अलक्षितः चरन् वाचः अशृणोत् रामः भार्यां उद्दिश्य कस्यचित् ॥८॥

कदाचित्	किसी समय	**रात्र्यां**	रातमें किसीके
लोक	लोगोंकी स्थिति	**अलक्षितः**	देखे बिना
जिज्ञासुः	जाननेकी इच्छासे	**गूढः चरन्**	छिपकर घूमते हुए

भार्यां	अपनी पत्नीको	**कस्यचित् वाचः**	किसीकी बात
उद्दिश्य	उद्देश बनाकर	**रामः अशृणोत्**	श्रीरामने सुनी ।८।।

नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ।
स्त्री लोभी बिभृयात् सीतां रामो नाहं भजे पुनः ।।९।।

न अहं बिभर्मि त्वां दुष्टां असतीं परवेश्मगां स्त्री लोभी बिभृयात् सीतां रामः न अहं भजे पुनः ।।९।।

अहं त्वां दुष्टां	'मैं तुझ दुष्टा	**अहं रामः न**	मैं राम नहीं हूँ
असतीं	असती,	**सीतां**	जिन्होंने सीताको
परवेश्मगां	दूसरे घर जानेवाली-को	**विभृयात्**	रख लिया
		पुनः भजे	कि फिर सेवन
न बिभर्मि	नहीं धारण करूँगा।		करूँगा' ।।९।।
स्त्री लोभी	स्त्रीका लोभी		

इति लोकाद् बहुमुखाद् दुराराध्यादसंविदः ।
पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ।।१०।।

इति लोकात् बहु मुखात् दुराराध्यात् असंविदः पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतस आश्रमम् ।।१०।।

इति	इस प्रकार	**भीतेन पत्या**	डरे हुए पति द्वारा
दुराराध्यात्	जिन्हें प्रसन्न करना बहुत कठिन हैं	**सा त्यक्ता**	वे त्यागी गयी सीताजी
असंविदः	अज्ञानी	**प्राचेतस**	महर्षि वाल्मीकिके
लोकात्	लोगोंके	**आश्रमं**	आश्रमपर
बहु मुखात्	बहुत मुखोंसे सुनकर	**प्राप्ता**	पहुँचीं ।।१०।।

अन्तर्वत्न्यागते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ ।
कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः ।।११।।

अन्तर्वत्नि आगते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ कुशः लव इति ख्यातौ तयोः चक्रे क्रिया मुनिः ।।११।।

सा अन्तर्वत्नि	वे गर्भवती थीं	सुषुवे	उत्पन्न किये
काले कुशः	समयपर कुश	तयोः मुनिः	उनका मुनि
लव	और लव		वाल्मीकिने
इति ख्यातौ	इस नामसे प्रसिद्ध	क्रिया चक्रे	जात-कर्मादि संस्कार
यमौ सुतौ	दो जुड़वां पुत्र		किये ॥११॥

अंगदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ ।
तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते ॥१२॥

अंगदः चित्रकेतुः च लक्ष्मणस्य आत्मनौ स्मृतौ तक्षः पुष्कल इति आस्तां वभूवतुः भरतस्य महीपते ॥१२॥

महीपते	राजन !	स्मृतौ	(पुत्र) हुए,
अंगदः च	अंगद और	तक्षः पुष्कल	तक्ष और पुष्कल
चित्रकेतुः	चित्रकेतु	इति भरतस्य	ये भरतके
लक्ष्मणस्य	लक्ष्मणके	आत्मजौ आस्तां	पुत्र हुए ॥१२॥

सुबाहुः श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः ।
गन्धर्वान् कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम् ॥१३॥

सुबाहुः श्रुतसेनः च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः गन्धर्वान् कोटिशः जघ्ने भरतः विजये दिशाम् ॥१३॥

सुबाहुः च	सुबाहु और	दिशां विजये	दिग्विजयके समय
श्रुतसेनः	श्रुतसेन	कोटिशः	करोड़ों
शत्रुघ्नस्य	शत्रुघ्नके (पुत्र)	गन्धर्वान्	गन्धर्वोंको
बभूवतु.	उत्पन्न हुए ।	जघ्ने	मारा ॥१३॥
भरतः	भरतने		

तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ।
शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् ।
हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम् ॥१४॥

तदीयं धनं आनीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् शत्रुघ्नः च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसं हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम् ॥१४॥

तदीयं सर्वं	उनका सब	**लवणं नाम**	लवण नामक
धनं आनीय	धन लाकर	**राक्षसं हत्वा**	राक्षसको मारकर
राज्ञे	राजा श्रीरामको	**वै मथुरां**	निश्चित ही मथुरा
न्यवेदयत्	निवेदन कर दिया,	**नाम**	नामक
शत्रुघ्नः च	शत्रुघ्नने भी	**पुरीं मधुवने**	पुरी मधुवनमें
मधोः पुत्रं	मधुके पुत्र	**चक्रे**	बसायी ॥१४॥

मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता ।
ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ॥१५॥

मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता ध्यायन्ती राम चरणौ विवरं प्रविवेश ह ॥१५॥

तनयौ	पुत्रोंको	**चरणौ**	चरणोंका
मुनौ	मुनि वाल्मीकिको	**ध्यायन्ती**	ध्यान करती हुई
निक्षिप्य	सौंपकर	**ह विवरं**	निश्चित रूपसे पृथ्वी-
भर्त्रा	पति द्वारा		के छिद्रमें
विवासिता	निर्वासिता	**प्रविवेश**	प्रवेश कर गयीं
सीता राम	सीता श्रीरामके		॥१५॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् रामो रुन्धन्नपि धिया शुचः ।
स्मरं स्तस्या गुणांस्तांस्तान्नाशक्नोद् रोद्धुमीश्वरः ॥१६॥

तत् श्रुत्वा भगवान् रामः रुन्धन् अपि धिया शुचः स्मरन् तस्या गुणान् तान् तान् न शक्नोत् रोद्धुं ईश्वरः ॥१६॥

तत् श्रुत्वा	उसे सुनकर	**गुणान् स्मरन्**	गुणोंको स्मरण करके
भगवान् रामः	भगवान् श्रीराम	**ईश्वरः**	ईश्वर होनेपर भी
धिया शुचः	बुद्धिसे शोकको	**रोद्धुं**	(शोकको) रोकनेमें
रुन्धन् अपि	रोकते हुए भी	**न**	नहीं
तस्या	उन (श्रीसीता) के	**शक्नोत्**	समर्थ हुए ॥१६॥
तान् तान्	उन-उन		

स्त्रीपुंप्रसङ्ग एतादृक्सर्वत्र त्रासमावहः ।
अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः ॥१७॥

स्त्रीपुंप्रसङ्ग एतादृक् सर्वत्र त्रासं आवहः अपि ईश्वराणां किं उत ग्राम्यस्य गृहचेतसः ॥१७॥

ईश्वराणां	सामर्थ्य वानोंके लिए	**आवहः**	देनेवाला है,
अपि	भी	**गृहचेतसः**	गृहासक्त चित्त
स्त्रीपुंप्रसंग	स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध	**ग्राम्यस्य**	विषयी पुरुषोंकी
एतादृक्	इसी प्रकारका	**उत किं**	फिर क्या चर्चा
सर्वत्र त्रासं	सर्वत्र त्रास		॥१७॥

तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत् प्रभुः ।
त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखण्डितम् ॥१८॥

तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन् अजुहोत् प्रभुः त्रयोदश अब्द साहस्रं अग्निहोत्रं अखण्डितम् ॥१८॥

तत ऊर्ध्वं	इसके पश्चात्	**अब्द साहस्रं**	हजार वर्ष तक
प्रभुः	प्रभु (श्रीराम) ने	**अखण्डितं**	अखण्डित रूपसे
ब्रह्मचर्यं	ब्रह्मचर्य	**अग्निहोत्रं**	अग्नि होत्र किया
धारयन्	धारण करके		॥१८॥
त्रयोदश	तेरह		

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः ।
स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात् ततः ॥१९॥

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः स्वपाद पल्लवं राम आत्मज्योतिः अगात् ततः ॥१९॥

ततः राम	तब श्रीराम	**हृदि**	हृदयमें
दण्डककण्टकैः	दण्डक वनके कांटोंसे	**विन्यस्य**	स्थापित करके
विद्धं स्वपाद	विंधे अपने चरण	**आत्मज्योतिः**	अपनी ज्योति (धाम) में
पल्लवं	पल्लवोंको		
स्मरतां	स्मरण करनेवालोंके	**अगात्**	चले गये ॥१९॥

नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयाऽऽत्त-
लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ।
रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः
किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ॥२०॥

न इदं यशः रघुपतेः सुरयाञ्चया आत्त लीलातनोः अधिक साम्य विमुक्त धाम्नः रक्षः वधः जलधि बन्धनं अस्त्रपूगैः किं तस्य शत्रु हनने कपयः सहायाः ॥२०॥

अधिक	जिनसे अधिक	**जलधि बन्धनं**	समुद्रको बाँधना
साम्य	और समान	**इदं यशः**	यह कोई सुयशकी बात
धाम्नः	शक्ति धाम		
विमुक्त	कोई नहीं है	**न**	नहीं है (नहीं तो)
सुरयाञ्चया	देवताओंकी प्रार्थनासे	**तस्य शत्रु**	उनको शत्रुको
लीलातनोः	लीला शरीर	**हनने**	मारनेमें
आत्त	धारण किये	**किं कपयः**	क्या कपि
रघुपतेः	श्रीरघुनाथके लिए	**सहायाः**	सहायक हो सकते थे ॥२०॥
अस्त्रपूगैः	अस्त्र समूहोंसे		
रक्षः वधः	राक्षसोंको मार देना और		

यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि
गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ।
तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्ट-
पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥२१॥

यस्य अमलं नृप सदः सु यशः अधुना अपि गायन्ति अघघ्नं ऋषयः दिगिभेन्द्र पट्टं तं नाकपाल वसुपाल किरीट जुष्टं पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥२१॥

दिग्गिभेन्द्र पट्टं	दिग्गजोंको आच्छादित करने-वाले वस्त्रके समान	**गायन्ति**	वर्णन करते हैं
		तं नाकपाल वसुपाल	उन देवेन्द्र तथा धनाध्यक्ष कुबेरके
यस्य अमलं	जिनके निर्मल	**किरीट जुष्टं**	मुकुटोंसे सेवित
अघघ्नं यशः	पापहारी सुयशको	**रघुपतिं**	श्रीरघुनाथके
अधुना अपि	आज भी	**पादाम्बुजं**	चरण-कमलोंकी
नृप सदः सु	राजाओंकी सभामें	**शरणं प्रपद्ये**	हम शरण लेते हैं ॥२१॥
ऋषयः	ऋषि लोग		

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा ।
कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥२२॥

स यैः स्पृष्टः अभिदृष्टः वा संविष्टः अनुगतः अपि वा कोसलाः ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥२२॥

स यैः	वे जिनके द्वारा	**ते कोसलाः**	वे अयोध्यावासी
स्पृष्टः	छुए या	**यत्र योगिनः**	जहां योगी लोग
अभिदृष्टः	देखे गये,	**गच्छन्ति**	जाते हैं उस
वा संविष्टः	अथवा साथ बैठे	**स्थानं**	स्थान (पद) को
अपि	अथवा जो	**ययुः**	गये ॥२२॥
वा अनुगतः	पीछे भी चले		

पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन् ।
आनृशंस्यपरो राजन् कर्मबन्धैर्विमुच्यते ॥२३॥

पुरुषः रामचरितं श्रवणैः उपधारयन् आनृशंस्य परः राजन् कर्म बन्धैः विमुच्यते ॥२३॥

राजन्	राजन् !	**पुरुषः**	पुरुष
रामचरितं	श्रीरामचरितको	**परः**	परमात्माको प्राप्त
श्रवणैः	कानोंसे		करके
उपधारयन्	धारण करनेवाला	**कर्म बन्धैः**	कर्म-बन्धनसे
आनृशंस्य	अत्यन्त क्रूर तक	**विमुच्यते**	छूट जाता है ॥२३॥

राजोवाच

कथं स भगवान् रामो भ्रातॄन् वा स्वयमात्मनः ।
तस्मिन् वा तेऽन्ववर्तन्त प्रजाः पौराश्च ईश्वरे ॥२४॥

कथं स भगवान् रामः भ्रातॄन् वा स्वयं आत्मनः तस्मिन् वा ते अन्ववर्तन्त प्रजाः पौराः च ईश्वरे ॥२४॥

स भगवान्	वे भगवान	**च प्रजाः पौराः**	तथा प्रजा, पुरवासी
रामः स्वयं	राम स्वयं	**तस्मिन्**	उन
आत्मनः	अपने अंश	**ईश्वरे च**	ईश्वरके साथ भी
भ्रातॄन्	भाइयोंके साथ	**अन्ववर्तन्त**	व्यवहार करते थे
कथं ते	कैसे और वे		॥२४॥

श्रीशुक उवाच–

अथादिशद् दिग्विजये भ्रातॄंस्त्रिभुवनेश्वरः ।
आत्मानं दर्शयन् स्वानां पुरीमैक्षत सानुगः ॥२५॥

अथ आदिशत् दिग्विजये भ्रातॄन् त्रिभुवन ईश्वरः आत्मानं दर्शयन् स्वानां पुरीं ऐक्षत स अनुगः ॥२५॥

त्रिभुवन	उन तीनों लोकोंके	**आत्मानं**	अपना
ईश्वरः	स्वामीने	**दर्शयन्**	दर्शन देनेके लिए
अथ भ्रातॄन्	फिर भाइयोंको	**स अनुगः**	अनुचरोंके साथ
दिग्विजये	दिग्विजय करनेका	**पुरीं ऐक्षत**	नगर-दर्शन किया
आदिशत्	आदेश दिया		॥२५॥
स्वानां	अपने जनोंको		

आसिक्तमार्गां गन्धोदैः करिणां मदशीकरैः ।
स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव ॥२६॥

आसिक्त मार्गां गन्धोदैः करिणां मदशीकरैः स्वामिनं प्राप्तं आलोक्य मत्तां वा सुतरां इव ॥२६॥

गन्धोदैः	सुगन्धित जलसे तथा	**स्वामिनं प्राप्तं**	स्वामीको आया
करिणां	हाथियोंके	**आलोक्य सुतरां**	देखकर उस समय
मदशीकरैः	मद-विन्दुओंसे	**इव मत्तां वा**	वहां मतवाली-सी
आसिक्त	सींचे गये		लग रही थी ॥२६॥
मार्गां	मार्गोंवाली अयोध्या		

प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु ।
विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मण्डिताम् ॥२७॥

प्रसाद गोपुर सभा चैत्य देवगृह आदिषु विन्यस्त हेम कलशैः पताकाभिः च मण्डिताम् ॥२७॥

प्रासाद गोपुर	भवन, नगर-द्वार,	**विन्यस्त**	लगे
चैत्य	सभा-भवन,	**हेम कलशैः**	स्वर्ण कलशोंसे
देवगृह	देव-मन्दिर	**च पताकाभिः**	तथा झण्डोंसे
आदिषु	आदिपर	**मण्डितां**	सुसज्जित थी ॥२७॥

पूगैः सवृन्तैरम्भाभिः पट्टिकाभिः सुवाससाम् ।
आदर्शैरंशुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम् ॥२८॥

पूगैः सवृन्तै रम्भाभिः पट्टिकाभिः सुवाससां आदर्शैः अंशुकैः स्रक्भिः कृत कौतुक तोरणाम् ॥२८॥

सवृन्तैः	फलोंके गुच्छों सहित	**आदर्शैः अंशुकैः**	दर्पण, वस्त्र,
पूगैः	सुपारी,	**स्रक्भिः कृत**	मालाओंसे बने
रम्भाभिः	केलेके वृक्ष,	**कौतुक**	उत्सवके सिए
सुवाससां	उत्तम वस्त्रोंकी	**तोरणां**	तोरण द्वारोंसे सजी
पट्टिकाभिः	पट्टियों		थी ॥२८॥

तमुपेयुस्तत्र तत्र पौरा अर्हणपाणयः ।
आशिषो युयुजुर्देव पाहीमां प्राक् त्वयोद्धृताम् ॥२९॥

तं उपेयुः तत्र तत्र पौरा अर्हण पाणयः आशिषः युयुजुः देव पाहि इमां प्राक् त्वया उद्धृताम् ॥२६॥

तत्र तत्र	जहां-तहां
अर्हण पाणयः	हाथोंमें पूजोपहार लिए
पौरा तं	नागरिक उनके
उपेयुः	समीप आये और
आशिषः युयुजुः	आशीर्वाद दिया
देव प्राक्	'देव ! पहिले
त्वया	आपके द्वारा ही
उद्धृतां	उद्धार की गयी
इमां	इस (पृथ्वी) का
पाहि	पालन कीजिए' ॥२६॥

ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं
दिदृक्षयोत्सृष्टगृहाः स्त्रियो नराः ।
आरुह्य हर्म्याण्यरविन्दलोचन-
मतृप्तनेत्राः कुसुमैरवाकिरन् ॥३०॥

ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिर आगतं दिदृक्षय उत्सृष्ट गृहाः स्त्रियः नराः आरुह्य हर्म्याणि अरविन्द लोचनं अतृप्त नेत्राः कुसुमैः अवाकिरन् ॥३०॥

ततः प्रजा	तब प्रजाके
स्त्रियः नराः	स्त्री-पुरुषोंने
चिर	बहुत दिनों पर
आगतं	आये
पतिं वीक्ष्य	स्वामीको देखकर
दिदृक्षय	दर्शन करनेकी इच्छासे
उत्सृष्ट गृहाः	घर छोड़कर
हर्म्याणि	कोठोंपर
आरुह्य	चढ़कर
अरविन्द	उन कमल-
लोचन	लोचनको (देखकर) क्योंकि
नेत्राः अतृप्त	नेत्र तृप्त नहीं होते थे
कुसुमैः	(उनपर) पुष्पोंकी
अवाकिरन्	वर्षा करने लगे ॥३०॥

अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वराजभिः ।
अनन्ताखिलकोशाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥३१॥

अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्व राजभिः अनन्त अखिल कोश आढ्यं अनर्घ्यैः उरु परिच्छदम् ॥३१॥

अथ स्वैः	फिर अपनेसे	**अनर्घ्यैः**	बहुमूल्य
पूर्व राजभिः	पहिलेके नरेशोंसे	**उरु**	बहुत अधिक
जुष्टं	सेवित	**परिच्छदं**	सामग्री वाले
अनन्त	अनन्त	**स्वगृहं**	अपने भवनमें
अखिल	सब प्रकारके	**प्रविष्टः**	प्रवेश किया ॥३१॥
कोश आढ्यं	कोशोंसे परिपूर्ण		

विद्रुमोदुम्बरद्वारैर्वैदूर्यस्तम्भपङ्क्तिभिः ।
स्थलैर्मारकतैः स्वच्छैर्भातस्फटिकभित्तिभिः ॥३२॥

विद्रुम औदुम्बर द्वारैः वैदूर्य स्तम्भ पंक्तिभिः स्थलैः मारकतैः स्वच्छैः भात स्फटिक भित्तिभिः ॥३२॥

विद्रुम	विद्रुमकी देहलियोंमें	**मारकतैः**	मरकत मणियोंसे
औदुम्बर	उदुम्बरके		बना
द्वारैः	किवाड़ लगे थे,	**स्थलैः**	फर्श था,
वैदूर्य	वैदूर्य मणिके	**स्फटिक**	स्फटिककी
स्तम्भ	खम्भोंकी	**भित्तिभिः**	दीवारोंसे
पङ्क्तिभिः	पंक्तियां थीं,	**भात**	सुशोभित था ॥३२॥
स्वच्छैः	स्वच्छ		

चित्रस्रग्भिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः ।
मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कान्तकामोपपत्तिभिः ॥३३॥

चित्र स्रक्भिः पट्टिकाभिः वासः मणिगण अंशुकैः मुक्ताफलैः विदुल्लासैः कान्त काम उपपत्तिभिः ॥३३॥

चित्र	अनेक रंगोंकी	**वासः**	वस्त्रकी
स्रक्भिः	मालाओं	**पट्टिकाभिः**	पट्टिकाओं,

मणिगण	मणियोंकी	मुक्ताफलैः	मोतियोंसे
अंशुकैः	किरणोंसे	कान्तकाम	प्रिय भोग
चिदुल्लासैः	शुद्ध चेतनके समान झलमलाती	उप पत्तिभिः	सामग्रियोंसे भरा था ॥३३॥

धूपदीपैः सुरभिभिर्मण्डितं पुष्पमण्डनैः ।
स्त्रीपुम्भिः सुरसंकाशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः ॥३४॥

धूपदीपैः सुरभिभिः मण्डितं पुष्पमण्डनैः स्त्री पुम्भिः सुरसंकाशैः जुष्टं भूषण भूषणैः ॥३४॥

धूपदीपैः	धूप, दीप,	भूषण	आभूषणोंको भी
सुरभिभिः	सुगन्धियोंसे तथा	भूषणैः	भूषित करनेवाले
पुष्पमण्डनैः	पुष्पोंकी सजावटसे	स्त्री पुम्भिः	स्त्री-पुरुषोंसे
मण्डितं	सजा हुआ था,	जुष्टं	सेवित था ॥३४॥
सुरसंकाशैः	देवताओंके समान		

तस्मिन् स भगवान् रामः स्निग्धया प्रिययेष्टया ।
रेमे स्वारामधीराणामृषभः सीतया किल ॥३५॥

तस्मिन् स भगवान् रामः स्निग्धया प्रियया इष्टया रेमे स्वाराम धीराणां ऋषभः सीतया किल ॥३५॥

स्वाराम	आत्मराम	स्निग्धया	प्रेमपूर्ण
धीराणां	धीरजनोंमें	इष्टया प्रियया	अपनी अभीष्ट प्रिया
ऋषभः	सर्वश्रेष्ठ	सीतया किल	अहो, सीताजीके साथ
स भगवान्	वे भगवान्	रेमे	विहार करते रहे ॥३५॥
रामः	राम		
तस्मिन्	उस भवनमें		

बुभुजे च यथाकालं कामान् धर्ममपीडयन् ।
वर्षपूगान् बहून् नृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः ॥३६॥

बुभुजे च यथाकालं कामान् धर्मं अपीडयन् वर्षपूगान् बहून् नृणां अभिध्यात अङ्घ्रि पल्लवः ॥३६॥

नृणां	मनुष्यों द्वारा	**धर्मं**	धर्मको
अङ्घ्रि पल्लवः	चरण-पल्लवोंका	**अपीडयन्**	क्षति पहुँचाये बिना
अभिध्यात	ध्यान किये जानेवाले (रामने)	**कामान् च**	भोगोंको भी
		बहून् वर्षपूगान्	बहुत वर्षों तक
यथाकालं	समयानुसार	**बुभुजे**	भोगा ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे श्रीरामपाख्याने एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः ।
पुण्डरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाभवत्ततः ॥१॥

कुशस्य च अतिथिः तस्मात् निषधः तत् सुतः नभः पुण्डरीकः अथ तत् पुत्रः क्षेमधन्वा अभवत् ततः ॥१॥

कुशस्य च	कुशके तो	**अथ तत् पुत्रः**	फिर उसका पुत्र
अतिथिः	अतिथि हुआ,	**पुण्डरीकः**	पुण्डरीक
तस्मात् निषधः	उससे निषध,	**ततः क्षेमधन्वा**	उससे क्षेमधन्वा
तत् सुतः नभः	उसका पुत्र नभ,	**अभवत्**	उत्पन्न हुआ ॥१॥

देवानीकस्ततोऽनीहः पारियात्रोऽथ तत्सुतः ।
ततो बलस्थलस्तस्माद् वज्रनाभोऽर्कसंभवः ॥२॥

देवानीकः ततः अनीहः पारियात्रः अथ तत् सुतः ततः बलस्थलः तस्मात् वज्रनाभः अर्क सम्भवः ॥२॥

ततः देवानीकः	उससे देवानीक,	**बलस्थलः**	बलस्थल
अनीहः	(उससे) अनीह,	**तस्मात्**	उससे
अथ तत् सुतः	फिर उसका पुत्र	**अर्क सम्भवः**	सूर्यके अंशसे उत्पन्न
पारियात्रः	पारियात्र,	**वज्रनाभः**	वज्रनाभ हुआ ॥२॥
ततः	उसका		

खगणस्तत्सुतस्तस्माद् विधृतिश्चाभवत् सुतः ।
ततो हिरण्यनाभोऽभूद् योगाचार्यस्तु जैमिनेः ॥३॥

खगणः तत् सुतः तस्मात् विधृतिः च अभवत् सुतः ततः हिरण्यनाभः अभूत् योगाचार्यः तु जैमिनेः ॥३॥

तत् सुतः	उसका पुत्र	**ततः**	उससे
खगणः	खगण	**तु जैमिनेः**	तो जैमिनीका शिष्य
तस्मात्	उससे भी	**योगाचार्यः**	योगाचार्य
विधृतिः	विधृति	**हिरण्यनाभः**	हिरण्यनाभ
सुतः अभवत्	पुत्र उत्पन्न हुआ,	**अभूत्**	उत्पन्न हुआ ॥३॥

शिष्यः कौसल्य आध्यात्मं याज्ञवल्क्योऽध्यगाद् यतः ।
योगं महोदयमृषिर्हृदयग्रन्थिभेदकम् ॥४॥

शिष्यः कौसल्य आध्यात्मं याज्ञवल्क्यः अध्यगात् यतः योगं महोदयं ऋषिः हृदय ग्रन्थि भेदकम् ॥४॥

यतः शिष्यः	जिससे शिष्य होकर	**भेदकं**	नाशक
कौसल्य	कोशल देशवासी	**महोदयं**	महान् उन्नतिप्रद
याज्ञवल्क्यः	याज्ञवल्क्य	**आध्यात्मं योगं**	अध्यात्म योग
ऋषिः	ऋषिने	**आध्यगात्**	प्राप्त किया था ॥४॥
हृदय ग्रन्थि	हृदय-ग्रन्थि		

पुष्यो हिरण्यनाभस्य ध्रुवसन्धिस्ततोऽभवत् ।
सुदर्शनोऽथाग्निवर्णः शीघ्रस्तस्य मरुः सुतः ॥५॥

पुष्यः हिरण्यनाभस्य ध्रुवसन्धिः ततः अभवत् सुदर्शनः अथ अग्नि वर्णः शीघ्रः तस्य मरुः सुतः ॥५॥

हिरण्यनाभस्य	हिरण्यनाभ (पुत्र)	**सुदर्शनः अथ**	सुदर्शन फिर
पुष्यः ततः	पुष्य, उससे	**अग्निवर्णः**	अग्नि वर्ण, (उससे)
ध्रुवसन्धिः	ध्रुवसन्धि	**शीघ्रः तस्य सुतः**	शीघ्र, उसका पुत्र
अभवत्	उत्पन्न हुआ (उससे)	**मरुः**	मरु हुआ ॥५॥

योऽसावास्ते योगसिद्धः कलापग्राममाश्रितः ।
कलेरन्ते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः ॥६॥

यः असाः आस्ते योगसिद्धः कलाप ग्रामं आश्रितः कलेः अन्ते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः ॥६॥

यः योगसिद्धः	जो योगसे सिद्ध होकर
असाः कलाप	इस कलाप
ग्रामं	ग्राममें
आश्रितः आस्ते	रह रहा है,
कलेः अन्ते	कलियुगके अन्तमें
नष्टं	नष्ट हुए
सूर्यवंशं	सूर्यवशको
पुनः भावयिता	फिर चलानेवाला होगा ॥६॥

तस्मात् प्रसुश्रुतस्तस्य सन्धिस्तस्याप्यमर्षणः ।
महस्वांस्तत्सुतस्तस्माद् विश्वसाह्वोऽन्वजायत ॥७॥

तस्मात् प्रसुश्रुतः तस्य सन्धिः तस्य अपि अमर्षणः महस्वान् तत् सुतः तस्मात् विश्वसाह्वः अन्वजायत ॥७॥

तस्मात् प्रसुश्रुतः	उससे प्रसुश्रुत,
तस्य सन्धिः	उसका सन्धि,
तस्य अपि	उसका भी
अमर्षणः	अमर्षण,
तत् सुतः	उसका पुत्र
महस्वान्	महस्वान्,
तस्मात्	उससे
विश्वसाह्वः	विश्वसाह्व
अन्वजायत	उत्पन्न हुआ ॥७॥

ततः प्रसेनजित् तस्मात् तक्षको भविता पुनः ।
ततो बृहब्दलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः ॥८॥

ततः प्रसेनजित् तस्मात् तक्षकः भविता पुनः ततः बृहब्दलः यः तु पित्रा ते समरे हतः ॥८॥

ततः प्रसेनजित्	उससे प्रसेनजित्
तस्मात् पुनः	उससे फिर
तक्षकः भविता	तक्षक उत्पन्न होगा,
ततः	उससे
बृहब्दलः	बहद्बल हुआ,
यः तु	जिसे तो
ते पित्रा	तुम्हारे पिता (अभिमन्यु) ने
समरे हतः	युद्धमें मारा था ॥८॥

एते हीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान् ।
बृहब्दलस्य भविता पुत्रो नाम बृहद्रणः ॥९॥

एते हि इक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृणु अनागतान् बृहद्बलस्य भविता पुत्रः नाम बृहद्रणः ॥९॥

इक्ष्वाकुभूपाला	इक्ष्वाकुवंशी राजा	**शृणु**	सुनो
एते हि	इतने ही	**बृहद्बलस्य**	बृहद्बलको
अतीताः	बीत चुके हैं	**बृहद्रणः नाम**	बृहद्रण नामक
अनागतान्	आगे होने वालोंको	**पुत्रः भविता**	पुत्र होगा ॥९॥

उरुक्रियस्ततस्तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति ।
प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः ॥१०॥

उरुक्रियः ततः तस्य वत्सवृद्धः भविष्यति प्रतिव्योमः ततः भानुः दिवाकः वाहिनीपतिः ॥१०॥

ततः उरुक्रियः	उसका उरुक्रिय	**ततः प्रतिव्योमः**	उससे प्रतिव्योम
तस्य	उसका पुत्र	**वाहिनीपतिः**	(उससे) सेनापति
वत्सवृद्धः	वत्सवृद्ध	**दिवाकः**	दिवाक होगा ॥१०॥
भविष्यति	होगा,		

सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान् ।
प्रतीकाश्वो भानुमतः सुप्रतीकोऽथ तत्सुतः ॥११॥

सहदेवः ततः वीरः बृहदश्वः अथ भानुमान् प्रतीकाश्वः भानुमतः सुप्रतीकः अथ तत् सुतः ॥११॥

ततः वीरः	उससे वीर	**भानुमान्**	(उससे) भानुमान्
सहदेवः	सहदेव	**भानुमतः**	भानुमानसे
अथ	फिर (उससे)	**अथ तत् सुतः**	फिर उसका पुत्र
बृहदश्वः	वृहदश्व	**सुप्रतीकः**	सुप्रतीक होगा ॥११॥

भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः ।
तस्यान्तरिक्षस्तत्पुत्रः सुतपास्तदमित्रजित् ॥१२॥

भविता मरुदेवः अथ सुनक्षत्रः अथ पुष्करः तस्य अन्तरिक्षः तत् पुत्रः सुतपाः तत् अमित्रजित् ॥१२॥

मरुदेवः भविता	उससे मरुदेव होगा,	**सुतपाः**	सुतपा,
अथ सुनक्षत्रः	फिर सुनक्षत्र,	**तत्**	उससे
अथ पुष्करः	फिर पुष्कर,	**अमित्रजित्**	अमित्रजित् होगा ॥१२॥
तस्य अन्तरिक्षः	उसका अन्तरिक्ष,		
तत् पुत्रः	उसका पुत्र		

बृहद्राजस्तु तस्यापि बर्हिस्तस्मात् कृतञ्जयः :
रणञ्जयस्तस्य सुतः सञ्जयो भविता ततः ॥१३॥

बृहद्राजः तु तस्य अपि बर्हिः तस्मात् कृतञ्जयः रणञ्जयः तस्य सुतः सञ्जयः भविता ततः ॥१३॥

बृहद्राजः तु	उसका तो बृहद्राज,	**तस्य तः**	उसका पुत्र
तस्य अपि	उसका भी	**रणञ्जयः**	रणञ्जय,
बर्हिः तस्मात्	बर्हि, उससे	**ततः सञ्जयः**	उससे सञ्जय
कृतञ्जयः	कृतञ्जय	**भविता**	होगा ॥१३॥

तस्माच्छाक्योऽथ शुद्धोदो लाङ्गलस्तत्सुतः स्मृतः ।
ततः प्रसेनजित् तस्मात् क्षुद्रको भविता ततः ॥१४॥

तस्मात् शाक्यः अथ शुद्धोदः लांगलः तत् सुतः स्मृतः ततः प्रसेनजित् तस्मात् क्षुद्रकः भविता ततः ॥१४॥

तस्मात् शाक्यः	उससे शाक्य,	**ततः प्रसेनजित्**	उससे प्रसेनजित्
अथ शुद्धोदः	फिर शुद्धोद,	**ततः तस्मात्**	फिर उससे
तत् सुतः	उसका पुत्र	**क्षुद्रकः भविता**	क्षुद्रक उत्पन्न होगा ॥१४॥
लांगलः स्मृतः	लाङ्गल कहा गया है,		

रणको भविता तस्मात् सुरथस्तनयस्ततः ।
सुमित्रो नाम निष्ठान्त एते बार्हद्बलान्वयाः ॥१५॥

रणकः भविता तस्मात् सुरथः तनयः ततः सुमित्रः नाम निष्ठान्त एते बार्हद्बल अन्वयाः ॥१५॥

तस्मात् रणकः	उससे रणक	**सुमित्रः नाम**	सुमित्र नामक
भविता	होगा (उससे)	**निष्ठान्त**	अन्तिम राजा होगा।
सुरथः ततः	सुरथ, उसका	**एते बार्हद्वल**	इतने बार्हद्बलके
तनयः	पुत्र	**अन्वयाः**	वंशधर होंगे ॥१५॥

इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति ।
यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥१६॥

इक्ष्वाकूणां अयं वंशः सुमित्र अन्तः भविष्यति यतः तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥१६॥

अयं इक्ष्वाकूणां	यह इक्ष्वाकुका	**राजानं प्राप्य**	राजा होनेपर
वंशः	वंश	**वै कलौ**	निश्चय कलियुगमें
सुमित्र अन्तः	सुमित्र पर्यन्त	**संस्थां**	समाप्त
भविष्यति	रहेगा	**प्राप्स्यति**	हो जायगा ॥१६॥
यतः तं	क्योंकि उसके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
नवमस्कन्धे इक्ष्वाकुवंशवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् ।
आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग्वृतोऽस्मि भोः ॥१॥

निमिः इक्ष्वाकु तनयः वसिष्ठं अवृत ऋत्विजम् आरभ्य सत्रं सः अपि आह शक्रेण प्राक् वृतः अस्मि भोः ॥१॥

इक्ष्वाकु तनयः	इक्ष्वाकुके पुत्र
निमिः	निमिने
सत्रं आरभ्य	यज्ञ प्रारम्भ करके
वसिष्ठं	उसके लिए वसिष्ठ-जीको
ऋत्विजं	ऋत्विज
अवृत	वरण किया,
सः अपि	किन्तु उन्होंने भी
आह	कहा—
भोः प्राक्	'हे राजन् ! पहिलेसे
शक्रेण	इन्द्र द्वारा मैं
वृतः अस्मि	वरण किया गया हूँ ॥१॥

तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय ।
तूष्णीमासीद् गृहपतिः सोऽपीन्द्रस्याकरोन्मखम् ॥२॥

तं निर्वर्त्य आगमिष्यामि तावत् मां प्रतिपालय तूष्णीं आसीत् गृहपतिः सः अपि इन्द्रस्य अकरोत् मखम् ॥२॥

तं निर्वर्त्य	उसे पूरा करके
आगमिष्यामि	आऊँगा
तावत् मां	तब तक मेरी
प्रतिपालय	प्रतीक्षा करो'
गृहपतिः	(यह सुनकर) यजमान (निमि)
तूष्णीं आसीत्	चुप रह गये,
सः अपि	वे भी
इन्द्रस्य	इन्द्रका
मखं अकरोत्	यज्ञ करने लगे ॥२॥

निमिश्चलमिदं विद्वान् सत्रमारभतात्मवान् ।
ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद् यावता गुरुः ॥३॥

निमिः चलं इदं विद्वान् सत्रं आरभत आत्मवान् ऋत्विक् भिः अपरैः तावत् न आगमत् यावता गुरुः ॥३॥

आत्मवान्	आत्मज्ञानी	**न आगमत्**	नहीं आये थे
निमिः	निमिने	**अपरैः**	दूसरे
इदं चलं	इस जीवनको चञ्चल	**ऋत्विक् भिः**	ऋत्विजों द्वारा
विद्वान्	समझकर	**सत्रं आरभत**	यज्ञ आरम्भ कर दिया ॥३॥
यावता गुरुः	जब तक गुरु वसिष्ठ		

शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य निर्वर्त्य गुरुरागतः ।
अशपत् पतताद् देहो निमेः पण्डितमानिनः ॥४॥

शिष्य व्यतिक्रमं वीक्ष्य निर्वर्त्य गुरुः आगतः अशपत् पतताद् देहः निमेः पण्डित मानिनः ॥४॥

निर्वर्त्य	(इन्द्र यज्ञ) निबटाकर	**अशपत्**	शाप दिया
आगतः गुरुः	आये गुरु (वसिष्ठ) ने	**पण्डित**	'अपनेको पण्डित
शिष्य	शिष्यका	**मानिनः**	माननेवाले
व्यतिक्रमं	आज्ञोल्लंघन	**निमेः देहः**	निमिका शरीर
वीक्ष्य	देखकर	**अपतात्**	गिर जाय' ॥४॥

निमिः प्रतिदद्यौ शापं गुरवेऽधर्मवर्तिने ।
तवापि पतताद् देहो लोभाद् धर्ममजानतः ॥५॥

निमिः प्रति ददौ शापं गुरवे अधर्म वर्तिने तव अपि पतताद् देहः लोभात् धर्म अजानतः ॥५॥

अधर्म वर्तिने	अधर्म करनेवाले	**धर्म**	धर्म
गुरवे निमिः	गुरुको निमिने भी	**अजानतः**	न समझनेवाले
प्रति शापं ददौ	बदलेमें शाप दिया	**तव अपि देहः**	तुम्हारा भी शरीर
लोभात्	'लोभके कारण	**पतताद्**	गिर जाय' ॥५॥

इत्युत्ससर्ज स्वं देहं निमिरध्यात्मकोविदः ।
मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥६॥

इति उत्ससर्ज स्वं देहं निमिः अध्यात्म कोविदः मित्रावरुणयोः जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥६॥

इति	इस प्रकार (शाप मिलनेपर)	**प्रपितामहः**	हमारे वृद्ध प्रपितामह (वसिष्ठ) जी भी
अध्यात्म	आत्मविद्यामें	**उर्वश्यां**	(देह त्यागकर) उर्वशीसे
कोबिदः	निपुण	**मित्रावरुणयोः**	मित्रावरण द्वारा
निमिः स्वं देहं	निमिने अपने शरीर-को	**जज्ञे**	उत्पन्न हुए ॥६॥
उत्ससर्ज	त्याग दिया तथा		

गन्धवस्तुषु तद्देहं निधाय मुनिसत्तमाः ।
समाप्ते सत्रयागेऽथ देवानूचुः समागतान् ॥७॥

गन्धवस्तुषु तत् देहं निधाय मुनि सत्तमाः समाप्ते सत्रयागे अथ देवान् ऊचुः समागतान् ॥७॥

तत्	(राजा निमिके) उस	**अथ सत्रयागे**	जब सत्रयाग
देहं	शरीरको	**समाप्ते**	समाप्त हुआ तब
गन्धवस्तुषु	सुगन्धित वस्तुमें	**समागतान्**	वहां आये हुए
निधाय	सुरक्षित रखकर	**देवान् ऊचुः**	देवताओंसे कहा ॥७॥
मुनि सत्तमाः	श्रेष्ठ मुनियोंने		

राज्ञो जीवतु देहोऽयं प्रसन्नाः प्रभवो यदि ।
तथेत्युक्ते निमिः प्राह मा भून्मे देहबन्धनम् ॥८॥

राज्ञः जीवतु देहः अयं प्रसन्नाः प्रभवः यदि तथा इति उक्ते निमिः प्राह मा भूत् मे देह बन्धनम् ॥८॥

यदि प्रभवः	'यदि आप समर्थ लोग
प्रसन्नाः	प्रसन्न हैं तो
राज्ञः अयं देहः	राजाका यह शरीर
जीवतु	जीवित हो जाय।'
तथा इति	'ऐसा हो' इस प्रकार
उक्ते	(देवताओंके) कहने-पर
निमिः प्राह	निमिने कहा—
मे देह	'मुझे शरीरका
बन्धनं	बन्धन
मा भूत्	न प्राप्त हो ॥८॥

यस्य योगं न वाञ्छन्ति वियोगभयकातराः ।
भजन्ति चरणाम्भोजं मुनयो हरिमेधसः ॥९॥

यस्य योगं न वाञ्छन्ति वियोग भय कातराः भजन्ति चरणाम्भोजं मुनयः हरिमेधसः ॥९॥

हरिमेधसः	श्रीहरिमें लगी बुद्धि-वाले
मुनयः	मुनिगण
वियोग	जिसके वियोगके
भय	भयसे
कातराः	व्याकुल होकर
यस्य योगं	जिसका संयोग
न वाञ्छन्ति	नहीं चाहते
चरणाम्भोजं	(श्रीहरिके) चरण-कमलोंका
भजन्ति	भजन करते हैं ॥९॥

देहं नावरुरुत्सेऽहं दुःखशोकभयावहम् ।
सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा ॥१०॥

देहं न अवरुरुत्से अहं दुःख शोक भय आवहं सर्वत्र अस्य यतः मृत्युः मत्स्यानां उदके यथा ॥१०॥

दुःख शोक	दुःख, शोक
भय आवहं	भय ढोनेवाले
देहं	शरीरमें
न	नहीं
अवरुरुत्से	आरूढ़ होना चाहता
यतः	क्योंकि
यथा उदके	जैसे पानीमें
मत्स्यानां	मछलियोंकी (है)
अस्य सर्वत्र	इस (शरीर) की सर्वत्र
मृत्युः	मृत्यु ही है' ॥१०॥

देवा ऊचुः

विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम् ।
उन्मेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः ॥११॥

विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणां उन्मेषण निमेषाभ्यां लक्षितः अध्यात्म संस्थितिः ॥११॥

कामं	(आप) इच्छानुसार	**उन्मेषण**	पलकोंके
शरीरिणां	देहधारियोंके	**निमेषाभ्यां**	उठने गिरनेसे
लोचनेषु	नेत्रोंमें	**अध्यात्म**	शरीरमें आपकी
विदेह	बिना शरीरके	**संस्थितिः**	उपस्थिति
उष्यतां	निवास करें ।	**लक्षितः**	जानी जायगी ॥११॥

श्रीशुक उवाच*

अराजकभयं नृणां मन्यमाना महर्षयः ।
देहं ममन्थुः स्म निमेः कुमारः समजायत ॥१२॥

अराजक भयं नृणां मन्यमाना महर्षयः देहं ममन्थुः स्म निमेः कुमारः सम् अजायत ॥१२॥

महर्षयः	महर्षियोंने	**निमेः देहं**	निमिके शरीरका
नृणां	मनुष्योंमें	**ममन्थुः स्म**	मन्थन किया
अराजक	अराजकताका	**कुमारः**	उससे एक कुमार
भयं मन्यमाना	भय मानकर	**सम् अजायत**	उत्पन्न हुआ ॥१२॥

जन्मना जनकः सोऽभूद् वैदेहस्तु विदेहजः ।
मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ॥१३॥

जन्मना जनकः सः अभूत् वैदेहः तु विदेहजः मिथिलः मथनात् जातः मिथिला येन निर्मिता ॥१३॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

जन्मना	जन्म लेनेके कारण	**मथनात्**	मन्थनसे
जनकः	जनक	**जातः**	उत्पन्न होनेसे
विदेहजः	(माताके) शरीरसे न उत्पन्न होनेके कारणसे	**सः मिथिलः**	वह मिथिल
		अभूत्	हुआ,
तु		**येन मिथिला**	जिसने मिथिलापुरी
वैदेहः	वैदेह और	**निर्मिता**	निर्माण की ॥१३॥

तस्मादुदावसुस्तस्य पुत्रोऽभून्नन्दिवर्धनः ।
ततः सुकेतुस्तस्यापि देवरातो महीपते ॥१४॥

तस्मात् उदावसुः तस्य पुत्रः अभूत् नन्दिवर्धनः ततः सुकेतः तस्य अपि देवरातः महीपते ॥१४॥

महीपते	राजन् !	**अभूत्**	हुआ,
तस्मात्	उससे	**ततः सुकेतः**	उससे सुकेत
उदावसुः	उदावसु,	**तस्य अपि**	उसका भी
तस्य पुत्रः	उसका पुत्र	**देवरातः**	देवरात हुआ ॥१४॥
नन्दिवर्धनः	नन्दिवर्धन		

तस्माद् बृहद्रथस्तस्य महावीर्यः सुधृत्पिता ।
सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वै हर्यश्वोऽथ मरुस्ततः ॥१५॥

तस्मात् बृहद्रथः तस्य महावीर्यः सुधृत् पिता सुधृतेः धृष्टकेतुः वै हर्यश्वः अथ मरुः ततः ॥१५॥

तस्मात् बृहद्रथः	उससे बृहद्रथ	**धृष्टकेतुः**	धृष्टकेतु
तस्य सुधृत्	उससे सुधृतिका	**अथ हर्यश्वः**	फिर हर्यश्व
पिता	पिता	**ततः मरुः**	उससे मरु हुआ ॥१५॥
महावीर्यः	महावीर्य,		
सुधृतेः वै	सुधृतिसे तो		

मरोः प्रतीपकस्तस्माज्जातः कृतिरथो यतः ।
देवमीढस्तस्य सुतो विश्रुतोऽथ महाधृतिः ॥१६॥

मरो. प्रतीपकः तस्मात् जातः कृतिरथः यतः देवमीढः तस्य सुतः विश्रुतः अथ महाधृतिः ॥१६॥

मरोः प्रतीपकः	मरुमे प्रतीपक,	**तस्य सुतः**	उसका पुत्र
तस्मात् कृतिरथः	उससे कृति रथ	**बिश्रुतः**	विश्रुत
जातः	उत्पन्न हुआ	**अथ**	फिर उससे
अतः यतः	फिर जिससे	**महाधृतिः**	महाधृति हुआ ॥१६॥
देवमीढः	देवमीढ		

कृतिरातस्ततस्तस्मान्महारोमाथ तत्सुतः ।
स्वर्णरोमा सुतस्तस्य ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥१७॥

कृतिरातः ततः तस्मात् महारोमा अथ तत् सुतः स्वर्णरोमा सुतः तस्य ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥१७॥

तत् कृतिरातः	उससे कृतिरात	**स्वर्ण रोमा**	स्वर्णरोमा
तस्मात्	उससे	**तस्य सुतः**	उसका पुत्र
महारोमा	महारोमा	**ह्रस्वरोमा**	ह्रस्वरोमा
अथ तत् सुतः	फिर उसका पुत्र	**व्यजायत**	उत्पन्न हुआ ॥१७॥

ततः सीरध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम् ।
सीता सीराग्रतो जाता तस्मात् सीरध्वजः स्मृतः ॥१८॥

ततः सीरध्वजः जज्ञे यज्ञ अर्थं कर्षतः महीं सीता सीराग्रतः जाता तस्मात् सीरध्वजः स्मृतः ॥१८॥

ततः	उससे	**सीराग्रतः**	सीर (हल) के नोकसे
सीरध्वजः	सीरध्वज उत्पन्न	**सीता जाता**	सीताजी उत्पन्न हुईं
जज्ञे	हुए	**तस्मात्**	इसलिए वे
यश अर्थ	यज्ञके लिए	**सीरध्वजः**	सीरध्वज
महीं कर्षतः	पृथ्वी जोतते समय	**स्मृतः**	कहलाये ॥१८॥

कुशध्वजस्तस्य पुत्रस्ततो धर्मध्वजो नृपः ।
धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ ॥१९॥

कुशध्वजः तस्य पुत्रः ततः धर्मध्वजः नृपः धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वज मितध्वजौ ॥१९॥

तस्य पुत्रः	उनके पुत्र	**द्वौ पुत्रौ**	दो पुत्र हुए
कुशध्वजः	कुश ध्वज	**कृतध्वज**	कृतध्वज
ततः नृपः	उनसे राजा	**मितध्वजौ**	और मितध्वज
धर्मध्वजः	धर्मध्वज हुए,		॥१९॥
धर्मध्वजस्य	धर्मध्वजके		

कृतध्वजात् केशिध्वजः खाण्डिक्यस्तु मितध्वजात् ।
कृतध्वजसुतो राजन्नात्मविद्याविशारदः ॥२०॥

कृतध्वजात् केशिध्वजः खाण्डिक्यः तु मितध्वजात् कृतध्वज सुतः राजन् आत्मविद्या विशारदः ॥२०॥

कृतध्वजात्	कृतध्वजसे	**कृतध्वज**	कृतध्वजका पुत्र
केशिध्वजः	केशिध्वज और	**सुतः**	(केशिध्वज)
मितध्वजः	मितध्वजसे	**आत्मविद्या**	अध्यात्मविद्यामें
खाण्डिक्यः तु	खाण्डिक्य हुआ	**विशारदः**	निपुण था ॥२०॥
राजन्	राजन् !		

खाण्डिक्यः कर्मतत्त्वज्ञो भीतः केशिध्वजाद् द्रुतः ।
भानुमांस्तस्य पुत्रोऽभूच्छतद्युम्नस्तु तत्सुतः ॥२१॥

खाण्डिक्यः कर्म तत्त्वज्ञः भीतः केशिध्वजात् द्रुतः भानुमान् तस्य पुत्रः अभूत् शतद्युम्नः तु तत् सुतः ॥२१॥

खाण्डिक्यः	खाण्डिक्य	**तत्त्वज्ञः**	तत्वज्ञ था,
कर्म	कर्म-मार्गका	**केशिध्वजात्**	केशिध्वजसे

भीतः द्रुतः	डरकर भाग गया,	अभूत्	हुआ,
तस्य	उस (केशिध्वज) का	तु तत् सुतः	फिर उसका पुत्र
पुत्रः	पुत्र	शतद्युम्नः	शतद्युम्न हुआ
भानुमान्	भानुमान		॥२१॥

शुचिस्तत्तनयस्तस्मात् सनद्वाजस्ततोऽभवत् ।
ऊर्ध्वकेतुः सनद्वाजादजोऽथ पुरुजित्सुतः ॥२२॥

शुचिः तत् तनयः तस्मात् सनद्वाजः ततः अभवत् ऊर्ध्वकेतुः सनद्वाजात् अजः अथ पुरुजित् सुतः ॥२२॥

तस्मात तनयः	उससे पुत्र	ऊर्ध्वकेतुः	उर्ध्वकेतु
शुचिः ततः	शुचि, उससे	अथ अजः	फिर अज,
सनद्वाजः	सनद्वाज	तत् सुतः	उसका पुत्र
अभवत्	उत्पन्न हुआ	पुरुजित	पुरुजित हुआ ॥२२॥
सनद्वाजत्	सनद्वाजसे		

अरिष्टनेमिस्तस्यापि श्रुतायुस्तत्सुपार्श्वकः ।
ततश्चित्ररथो यस्य क्षेमधिर्मिथिलाधिपः ॥२३॥

अरिष्टनेमिः तस्य अपि श्रुतायुः तत् सुपार्श्वकः ततः चित्ररथः यस्य क्षेमधिः मिथिशाधिपः ॥२३॥

तस्य अपि	उसका भी	ततः चित्ररथः	उससे चित्ररथ
अरिष्टनेमिः	अरिष्टनेमि	यस्य	जिसके
श्रतायुः	(उसके) श्रुतायु	मिथिलाधिपः	मिथिलाका राजा
तत् सुपार्श्वकः	उससे सुपार्श्वक	क्षेमधिः	क्षेमधी हुआ ॥२३॥

तस्मात् समरथस्तस्य सुतः सत्यरथस्ततः ।
आसीदुपगुरुस्तस्मादुपगुप्तोऽग्निसंभवः ॥२४॥

तस्मात् समरथः तस्य सुतः सत्यरथः ततः आसोत् उपगुरुः तस्मात् उपगुप्तः अग्नि सम्भवः ॥२४॥

तस्मात्	उससे
समरथः	समरथ,
तस्य सुतः	उसका पुत्र
सत्यरथः	सत्यरथ,
ततः	उससे
उपगुरुः आसीत्	उपगुरु हुआ
तस्मात्	उससे
अग्नि सम्भवः	अग्निके अंशसे उत्पन्न
उपगुप्तः	उपगुप्त हुआ ॥२४॥

वस्वनन्तोऽथ तत्पुत्रो युयुधो यत् सुभाषणः ।
श्रुतस्ततो जयस्तस्माद् विजयोऽस्मादृतः सुतः ॥२५॥

वस्वनन्तः अथ तत् पुत्रः युयुधः यत् सुभाषणः श्रुतः ततः जयः तस्मात् विजयः अस्मात् ऋतः सुतः ॥२५॥

अथ	फिर
वस्वनन्तः	वस्वनन्त
तत् पुत्रः	उसका पुत्र
युयुधः	युयुध,
यत् सुभाषणः	जिससे सुभाषण,
ततः श्रुतः	उससे श्रुत
जयः	(उससे) जय,
तस्मात् विजयः	उससे विजय,
अस्मात सुतः	इसका पुत्र
ऋतः	ऋत हुआ ॥२५॥

शुनकस्तत्सुतो जज्ञे वीतहव्यो धृतिस्ततः ।
बहुलाश्वो धृतेस्तस्य कृतिरस्य महावशी ॥२६॥

शुनकः तत् सुतः जज्ञे वीतहव्यः धृतिः ततः बहुलाश्वः धृतेः तस्य कृतिः अस्य महावशी ॥२६॥

तत सुतः	उसका पुत्र
शुनकः जज्ञे	शुनक उत्पन्न हुआ,
वीतहव्यः	(उससे) वीतहव्य
ततः धृतिः	उससे धृति
धृतेः बहुलाश्वः	धृतिके बहुलाश्व
तस्य कृतिः	उसके कृति
अस्य	इसके
महावशी	महावशी हुआ ॥२६॥

एते वै मैथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः ।
योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥२७॥

एते वै मैथिला राजन् आत्मविद्या विशारदाः योगेश्वर प्रसादेन द्वन्द्वैः मुक्ता गृहेषु लपि ॥२७॥

राजन्	राजन् !	योगेश्वर	योगेश्वरोंकी
एते मैथिला	ये मिथिला नरेश	प्रसादेन	कृपासे
वै	निश्चय	गृहेषु अपि	घरमें रहते हुए भी
आत्मविद्या	अध्यात्मविद्यामें	द्वन्द्वै मुक्ता	द्वन्द्वोंसे मुक्त थे
विशारदाः	निपुण थे,		॥२७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे निमिवंशानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

अथातः श्रूयतां राजन् वंशः सोमस्य पावनः ।
यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥१॥

अथ अतः श्रूयतां राजन् वंशः सोमस्य पावनः यस्मिन् ऐल आदयः भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥१॥

राजन् अथ	राजन् ! अब	**पुण्यकीर्तयः**	पवित्रकीर्ति
अतः सोमस्य	इसलिए चन्द्रमाका	**ऐल आदयः**	पुरुखा आदि
पावनः वंशः	पवित्र वंश	**भूपाः**	राजाओंका
श्रूयतां	सुनो	**कीर्त्यन्ते**	वर्णन किया गया
यस्मिन्	जिसमें		है ॥१॥

सहस्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात् ।
जातस्यासीत् सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः ॥२॥

सहस्रशिरसः पुंसः नाभिह्रद सरोरुहात् जातस्य आसीत् सुतः धातुः अत्रिः पितृसमः गुणैः ॥२॥

सहस्रशिरसः	सहस्र सिरवाले	**जातस्य धातुः**	उत्पन्न ब्रह्माजी के
पुंसः	परम पुरुषकी	**गुणैः पितृसमः**	गुणोंसे पिताके समान
नाभिह्रद	नाभि-कुण्ड	**सुतः अत्रिः**	पुत्र अत्रि
सरोरुहात्	कमलसे	**आसीत्**	हुए ॥२॥

तस्य दृग्भ्योऽभवत् पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल ।
विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः ॥३॥

तस्य दृक्भ्यः अभवत् पुत्रः सोमः अमृतमयः किल विप्र औषधि उडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः ॥३॥

तस्य दृक्भ्यः	उनके नेत्रोंसे
किल	अहो,
अमृतमयः	अमृतमय
विप्र	ब्राह्मणों,
औषधि	औषधियों एवं
उडुगणानां	तारागणोंका
ब्रह्मणा	ब्रह्माजी द्वारा
कल्पितः	बनाया गया
पतिः सोमः	स्वामी चन्द्रमा
पुत्रः	पुत्र रूपसे
अभवत्	उत्पन्न हुआ ॥३॥

सोऽयजद् राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम् ।
पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात् तारां नामाहरद् बलात् ॥४॥

सः अयजत् राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयं पत्नीं बृहस्पतेः दर्पात् तारां नाम अहरत् बलात् ॥४॥

सः भुवनत्रयं	उसने तीनों लोकों-को
विजित्य	जीतकर
राजसूयेन	राजसूय-यज्ञ द्वारा
अयजत्	यजन किया,
दर्पात्	फिर घमण्डवश
तारां नाम	तारा नामक
बृहस्पतेः पत्नीं	बृहस्पतिकी पत्नीका
बलात्	बलपूर्वक
अहरत्	हरण कर लिया ॥४॥

यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात् ।
नात्यजत् तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रहः ॥५॥

यदा स देवगुरुणा याचितः अभीक्ष्णशः मदात् न अत्यजत् तत् कृते जज्ञे सुर दानव विग्रहः ॥५॥

देवगुरुणा	देवगुरु बृहस्पति द्वारा
अभीक्ष्णशः	बार-बार
याचितः	मांगनेपर भी
स यदा	उस (चन्द्र) ने जब
मदात् न	गर्ववश नहीं
अत्यजत्	(ताराको) छोड़ा तब
तत् कृते	उस (तारा) के लिए
सुर-दानव	देव-दानवोंका
विग्रहः जज्ञे	युद्ध आरम्भ हो गया ॥५॥

शुक्रो हरो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत् गुरुसुतं स्नेहात् सासुरोडुपम् ।
सर्वभूतगणावृतः ॥६॥

शुक्रः बृहस्पतेः द्वेषात् अग्रहीत् स असुरः उडुपं हरः गरुसुतं स्नेहात् सर्वभूतगण आवृतः ॥६॥

बृहस्पतेः	बृहस्पतिसे	**हरः**	शंकरजीने
द्वेषात्	द्वेष होनेके कारण	**स्नेहात्**	स्नेहवश
स असुरः	असुरोंके साथ	**सर्वभूतगण**	सब भूतगणोंसे
शुक्रः उडुपं	शुक्राचार्यने चन्द्रमा-का	**आवृतः**	घिरे हुए
		गुरुसुतं	गुरुपुत्र* का (पक्ष लिया) ॥६॥
अग्रहीत्	पक्ष ग्रहण किया,		

सर्वदेवगणोपेतो महेन्द्रो गुरुमन्वयात् ।
सुरासुरविनाशोऽभूत् समरस्तारकामयः ॥७॥

सर्वदेवगण उपेतः महेन्द्रः गुरुं अनु अगात् सुर असुर विनाशः अभूत् समरः तारकामयः ॥७॥

सर्वदेवगण	सभी देवगणोंके	**समरः**	युद्धमें
उपेतः महेन्द्रः	साथ इन्द्र	**सुर असुर**	देव-असुरोंका
गुरुं अनु	गुरुके पीछे	**विनाशः**	(बहुत) बिनाश
अगात्	गये,	**अभूत्**	हुआ ॥७॥
तारकामयः	इस ताराके लिए होनेवाले		

निवेदितोऽथाङ्गिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत् ।
तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदन्तर्वत्नीमवैत् पतिः ॥८॥

निवेदितः अथ आंगिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत् तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छत् अन्तर्वत्नीं अवैत् पतिः ॥८॥

---

* शंकरजीने महर्षि अंगिरासे विद्या पढ़ी है, अतः अंगिराके पुत्र बृहस्पतिजी उनके गुरुभाई हैं ।

अथ आंगिरसा निवेदितः फिर अंगिराजीके निवेदन करनेपर
विश्वकृत विश्वस्रष्टा ब्रह्मा-जीने
सोमं चन्द्रमाको
निर्भत्स्य झिड़कर
तारां तारा
स्वभर्त्रे अपने पति (वृहस्पति) को
प्रायच्छत् दिलवा दी,
पत्नीं पत्नीको
अन्तर्वत्नि गर्भवती
पतिः पति (वृहस्पति) ने
अवैत् जाना ॥८॥

त्यज त्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः ।
नाहं त्वां भस्मसात् कुर्यां स्त्रियं सान्तानिकः सति ॥९॥

त्यज त्यज आशु दुष्प्रज्ञे मत् क्षेत्रं आहितं परैः न अहं त्वां भस्मसात् कुर्यां स्त्रियं सान्तानिकः सति ॥९॥

दुष्प्रज्ञे (बोले) दुर्बुद्धिवाली !
मत् क्षेत्रं मेरे क्षेत्रमें
परैः दूसरे द्वारा
आहितं स्थापित (इस गर्भको)
त्यज आशु त्यज त्याग, शीघ्र त्याग
सान्तानिकः सन्तान देनेवाली
स्त्रियं सति स्त्री होनेके कारण
अहं त्वां मैं तुझे
भस्मसात् न भस्म नहीं
कुर्यां करूँगा' ॥९॥

तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम् ।
स्पृहामाङ्गिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ॥१०॥

तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभं स्पृहां आङ्गिरसः चक्रे कुमारे सोम एव च ॥१०॥

व्रीडिता लज्जित होकर
तारा ताराने
कनकप्रभं स्वर्ण-सी कान्तिवाला
कुमारं कुमार
तत्याज त्यागा (उत्पन्न किया)
कुमारे उस कुमारके लिए
आंगिरसः बृहस्पतिने
च सोम एव तथा चन्द्रमाने भी
स्पृहां चक्रे लेनेकी इच्छा की ॥१०॥

ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन् विवदमानयोः ।
पप्रच्छुर्ऋषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ॥११॥

मम अयं न तव इति उच्चैः तस्मिन् विवदमानयोः पप्रच्छुः ऋषयः देवा न एव ऊचे व्रीडिता तु सा ॥११॥

अयं मम	यह मेरा (पुत्र) है
तव न	तुम्हारा नहीं'
इति उच्चैः	इस प्रकार जोर-जोरसे
तस्मिन्	उस (बालक) के सम्बन्धमें
विवदमानयोः	(दोनोंके) विवाद करते समय
ऋषयः	ऋषियों और
देवा	देवताओंने
पप्रच्छुः	(तारासे) पूछा
तु सा व्रीडिता न एव ऊचे	किन्तु वह लज्जावश नहीं ही बोली ॥११॥

कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया ।
किं न वोचस्यसद्वृत्ते आत्मावद्यं वदाशु मे ॥१२॥

कुमारः मातरं प्राह कुपितः अलीकलज्जया किं न वोचसि दुर्वृत्ते आत्म अवद्यं वद आशु मे ॥१२॥

कुमारः	(तब वह) कुमार
अलीकलज्जया	व्यर्थ लज्जासे
कुपितः	क्रुद्ध होकर
मातरं प्राह	मातासे बोला
दुर्वृत्ते	'दुराचारिणी, !
वोचसि	बोलती
किं न	क्यों नहीं,
आत्म अवद्यं	अपना पाप
आशु मे वद	शीघ्र मुझे बता' ॥१२॥

ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सान्त्वयन् ।
सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ॥१३॥

ब्रह्मा तां रह आहूय सम प्राक्षीत् च सान्त्वयन् सोमस्य इति आह शनकैः सोमः तं तावत् अग्रहीत् ॥१३॥

ब्रह्मा तां	ब्रह्माजीने उसे
रह आहूय	एकान्तमें बुलाकर
सान्त्वयन्	सान्त्वना देते हुए
सम प्राक्षीत्	समझाकर पूछा
च	और
शनकैः सोमस्य	धीरेसे 'चन्द्रमाका'
इति आह	यह कहा
तावत् सोमः	इसलिए चन्द्रमाने
तं अग्रहीत्	उस (बालक) को ले लिया ॥१३॥

तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्यभिधां नृप ।
बुद्धया गम्भीरया येन पुत्रेणापोडुराण् मुदम् ॥१४॥

तस्य आत्मयोनिः अकृत बुध इति अभिधां नृप बुद्धया गम्भीरया येन पुत्रेण आप उडुराड् मुदम् ॥१४॥

नृप	राजन् !	**गम्भीरया**	गम्भीर
आत्मयोनिः	ब्रह्माजीने	**बुद्धया**	बुद्धि
तस्य अभिधां	उस (बालक) का नाम	**येन पुत्रेण**	जिस पुत्रसे
		उडुराड्	चन्द्रमाने
बुध इति अकृत	बुध ऐसा रखा,	**मुदं आप**	आनन्द पाया ॥१४॥

ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः ।
तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ॥१५॥

ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः तस्य रूप गुण उदार्य शील द्रविण विक्रमान् ॥१५॥

य उदाहृतः	जिसका वर्णन हो चुका है,	**तस्य रूप**	उनके सौन्दर्य,
		गुण उदार्य	गुण, उदारता,
इलायां	उस इलासे	**शील द्रविण**	शील, धन तथा
ततः	इस (बुध) को	**विक्रमान्**	पराक्रमों को ॥१५॥
पुरूरवा जज्ञे	पुरूरवा उत्पन्न हुए,		

श्रुत्वोर्वशीन्द्रभवने गीयमानान् सुरर्षिणा ।
तदन्तिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता ॥१६॥

श्रुत्वा उर्वशी इन्द्रभवने गीयमानान् सुरर्षिणा तत् अन्तिकं उपेयाय देवी स्मरशर अर्दिता ॥१६॥

सुरर्षिणा	देवर्षि नारद द्वारा	**स्मरशर**	कामदेवके वाणसे
इन्द्रभवने	इन्द्रके भवनमें	**अर्दिता**	पीड़ित होकर
गीयमानान्	गाया जाता	**तत्**	उस (पुरूरवा) के
उर्वशी	उर्वशी	**अन्तिक**	समीप
श्रुत्वा देवी	देवीने सुनकर	**उपेयाय**	उपस्थित हुई ॥१६॥

मित्रावरुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम् ।
निशम्य पुरुषश्रेष्ठं कन्दर्पमिव रूपिणम् ।
धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तदन्तिके ॥१७॥

मित्रावरुणयोः शापात् आपन्ना नरलोकतां निशम्य पुरुषश्रेष्ठं कन्दर्पं इव रूपिणम् धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तत् अन्तिके ॥१७॥

मित्रावरुणयोः	मित्रावरुणके	**पुरुषश्रेष्ठं**	पुरुषोंमें श्रेष्ठ
शापात्	शापसे	**निशम्य**	सुनकर
नरलोकतां	मनुष्य-लोकमें	**धृतिं विष्टभ्य**	धैर्य धारण करके
आपन्ना	आ पहुँचो	**ललना**	वह सुन्दरी
रूपिणं	रूपधारी	**तत् अन्तिके**	उसके समीप
कन्दर्पं इव	कामदेवके समान	**उपतस्थे**	उपस्थित हुई ॥१७॥

स तां विलोक्य नृपतिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवीं हृष्टतनूरुहः ॥१८॥

स तां विलोक्य नृपतिः हर्षेण उत्फुल्ल लोचनः उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवीं हृष्ट तनूरुहः ॥१८॥

स नृपतिः	वह राजा	**उत्फुल्ल लोचनः**	खिले नेत्र
तां देवीं	उस देवीको	**हृष्ट तनूरुहः**	पुलकित शरीर
विलोक्य	देखकर	**श्लक्ष्णया वाचा**	मधुर वाणीसे
हर्षेण	हर्षसे	**उवाच**	बोला ॥१८॥

पुरूरवोवाच*

स्वागतं ते वरारोहे आस्यतां करवाम किम् ।
संरमस्व मया साकं रतिर्नौ शाश्वतीः समाः ॥१९॥

स्वागतं ते वरारोहे आस्यतां करवाम किं संरमस्व मया साकं रतिः नौ शाश्वतीः समाः ॥१९॥

---

* अन्य प्रतियोंमें यहां 'राजोवाच' है ।

वरारोहे	वरारोहे !
ते स्वागतं	तुम्हारा स्वागत है !
आस्यतां	आओ,
किं	(तुम्हारी) क्या
करवाम	(सेवा) करूँ
मया साकं	मेरे साथ
संरमस्व	भली प्रकार रमण करो,
नौ रतिः	हम दोनोंका विहार
शाश्वतीः समाः	अनन्त काल तक रहे ॥१६॥

उर्वश्युवाच

कस्यास्त्वयि न सज्जेत मनो दृष्टिश्च सुन्दर ।
यदंगान्तरमासाद्य च्यवते ह रिरंसया ॥२०॥

कस्याः त्वयि न सज्जेत मनः दृष्टिः च सुन्दर यत् अंग अन्तरं आसाद्य च्यवते ह रिरंसया ॥२०॥

सुन्दर	सुन्दर !
त्वयि कस्याः	तुममें किसकी
मनः च दृष्टिः	मन और दृष्टि
सज्जेत न	आसक्त नहीं होगी,
यत्	जिनकी
अंग अन्तरं	भुजाके मध्य
आसाद्य	पहुँचकर
ह रिरंसया	निश्चय ही रमणेच्छासे
च्यवते	(स्त्री) स्खलित होने लगती है ॥२०॥

एतावुरणकौ राजन् न्यासौ रक्षस्व मानद ।
संरंस्ये भवता साकं श्लाघ्यः स्त्रीणांवरः स्मृतः ॥२१॥

एताः उरणकौ राजन् न्यासौ रक्षस्व मानद संरंस्ये भवता साकं श्लाघ्यः स्त्रीणां वरः स्मृतः ॥२१॥

स्त्रीणां	स्त्रियोंके लिए
श्लाघ्यः	प्रशंसनीय (पुरुष)
वरः स्मृतः	वर कहा गया है,
मानद	अतः मानद !
एताः उरणकौ	ये भेड़के दो बच्चे
न्यासौ	(मेरी) धरोहर हैं,
रक्षस्व	इनकी रक्षा करो,
भवता साकं	आपके साथ
संरंस्ये	रमण करूँगी ॥२१॥

घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यान्नेक्षे त्वान्यत्र मैथुनात् ।
विवाससं तत तथेति प्रतिपेदे महामनाः ॥२२॥

घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यात् न ईक्षे त्वा अन्यत्र मैथुनात् विवाससं तत तथा इति प्रतिपेदे महामनाः ॥२२॥*

वीर मे भक्ष्यं	वीर ! मेरा आहार	**तत तथा**	इसको 'बहुत अच्छा'
घृतं स्यात्	केवल घी होगा,	**इति**	इस प्रकार
मैथुनात्	मैथुनके	**महामनाः**	उदारता पूर्वक (पुरूरवाने)
अन्यत्र त्वा	अतिरिक्त तुमको		
विवाससं न	वस्त्रहीननहीं	**प्रतिपेदे**	स्वीकार कर लिया
ईक्षे	देख सकूँगी'		॥२२॥

अहो रूपमहो भावो नरलोकविमोहनम् ।
को न सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम् ॥२३॥

अहो रूपं अहो भावः नरलोक विमोहनं कः न सेवेत मनुजः देवीं त्वां स्वयं आगताम् ॥२३॥

अहो	(बोला) 'अहो कैसा	**आगतां**	आयी
रूपं	रूप है,	**देवीं कः**	देवीका कौन
नरलोक	मनुष्य-लोकको	**मनुजः**	मनुष्य
विमोहनं	सम्मोहित करनेवाला	**सेवेत न**	सेवन नहीं करेगा'
अहो भावः	कैसी चेष्टा है,		॥२३॥
तां स्वयं	तुम स्वयं		

तया स पुरुषश्रेष्ठो रमयन्त्या यथार्हतः ।
रेमे सुरविहारेषु कामं चैत्ररथादिषु ॥२४॥

---

* इस श्लोकमें दूसरे चरणके 'विवाससं' के बाद 'श्रीशुक उवाच' प्रारम्भ हो जाता है; किन्तु चरणके मध्यमें होनेसे पृथक नहीं दिया जा सकता ।

तया स पुरुषश्रेष्ठः रमयन्त्या यथा अर्हतः रेमे सुर विहारेषु कामं चैत्ररथ आदिषु ॥२४॥

यथा अर्हतः	यथायोग्य	**सुर**	देवताओंके
रमयन्त्या	रमण करनेवाली	**विहारेषु**	विहारस्थलोंमें
तया स	उसके साथ वह	**कामं रेमे**	यथेच्छ विहार करता रहा ॥२४॥
पुरुषश्रेष्ठः	पुरुषश्रेष्ठ		
चैत्ररथ आदिषु	चैत्ररथ आदि		

रममाणस्तया देव्या पद्मकिञ्जल्कगन्धया ।
तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान् बहून् ॥२५॥

रममाणः तया देव्या पद्मकिञ्जल्क गन्धया तत् मुख आमोद मुषितः मुमुदे अहर्गणान् बहून् ॥२५॥

तया	उस	**आमोद**	सुगन्धिसे
पद्मकिञ्जल्क	पद्म-पराग जैसी	**मुषितः**	चुराये चित्तवाला वह
गन्धया	सुगन्धवाली	**बहून्**	बहुत
देव्या	देवीके साथ	**अहर्गणान्**	वर्षों तक
रममाणः	रमण करते हुए	**मुमुदे**	आनन्द भोगता रहा ॥२५॥
तत् मुख	उसके मुखकी		

अपश्यन्नुर्वशीमिन्द्रो गन्धर्वान् समचोदयत् ।
उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते ॥२६॥

अपश्यत् उर्वशीं इन्द्रः गन्धर्वान् समचोदयत् उर्वशी रहितं मह्यं आस्थानं न अतिशोभते ॥२६॥

उर्वशीं	उर्वशीको	**आस्थानं**	स्वर्ग
अपश्यत्	न देखकर	**अतिशोभते**	बहुत शोभित
इन्द्रः	इन्द्रने	**न**	नहीं लगता'
मह्यं	(यह कहकर कि) मुझे	**गन्धर्वान्**	गन्धर्वोंको
उर्वशी रहितं	उर्वशीसे रहित	**समचोदयत**	(बुलाने) भेजा ॥२६॥

ते उपेत्य महारात्रे तमसि प्रत्युपस्थिते ।
उर्वश्या उरणौ जह्रुर्न्यस्तौ राजनि जायया ॥२७॥

ते उपेत्य महारात्रे तमसि प्रति उपस्थिते उर्वश्या उरणौ जह्रुः न्यस्तौ राजनि जायया ॥२७॥

ते	उन्होंने	**जायया**	उस पत्नी द्वारा
महारात्रे	महारात्रिको*	**राजनि**	राजाके पास
प्रति तमसि	उसमें अन्धकार	**न्यस्तौ**	धरोहर रूपमें रखे हुओंको
उपस्थिते	हो जानेपर	**जह्रुः**	हरण कर लिया ॥२७॥
उपेत्य	पहुँचकर		
उर्वश्या	उर्वशीके		
उरणौ	भेड़के बच्चोंको		

निशम्याक्रन्दितं देवी पुत्रयोर्नीयमानयोः ।
हतास्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना ॥२८॥

निशम्य आक्रन्दितं देवी पुत्रयोः नीयमानयोः हता अस्मि अहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना ॥२८॥

नीयमानयोः	ले जाये जाते	**वीरमानिना**	वीराभिमानी
पुत्रयोः	उन पुत्र तुल्य (भेड़ों) का	**नपुंसा**	इस नपुंसक
		कुनाथेन	निन्दित पति द्वारा
आक्रन्दितं	उच्च क्रन्दन	**अहं हता**	मैं मारी
निशम्य	सुनकर वह	**अस्मि**	गयी हूँ ॥२८॥
देवी	देवी (बोली)		

यद्विश्रम्भादहं नष्टा हृतापत्या च दस्युभिः ।
यः शेते निशि संत्रस्तो यथा नारी दिवा पुमान् ॥२९॥

यत विश्रम्भात् अहं नष्टा हृत अपत्या च दस्युभिः यः शेते निशि संत्रस्तः यथा नारी दिवा पुमान् ॥२९॥

---

* दीपावलीकी रातको शास्त्र महारात्रि कहते हैं ।

यत् विश्रम्भात्	जिसके विश्वासपर
दस्युभिः	डाकुओं द्वारा
अपत्य च	पुत्रोंके
हृत	हरण होनेसे
अहं नष्टा	मैं नष्ट हो गयी
यः दिवा	जो दिनमें
पुमान्	मर्द बननेवाला
नारी यथा	स्त्रीके समान
संत्रस्तः	भयभीत होकर
निशि शेते	रातमें सो रहा है' ॥२९॥

इति वाक्सायकैर्विद्धः प्रतोत्त्रैरिव कुञ्जरः ।
निशि निर्स्त्रिंशमादाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद् रुषा ॥३०॥

इति वाक् सायकैः विद्धः प्रतोत्त्रैः इव कुञ्जरः निशि निर्स्त्रिंशं आदाय विवस्त्रः अभ्यद्रवत् रुषा ॥३०॥

प्रतोत्त्रैः	अंकुशसे
कुञ्जरः इव	हाथीके समान
इति	इस प्रकार
वाक् सायकैः	वाग्वाणोंसे
विद्धः निशि	बींधे जानेपर रातमें
रुषा	क्रोधके कारण
विवस्त्रः	वस्त्रहीन हो
निर्स्त्रिंशं	तलवार
आदाय	लेकर
अभ्यद्रवत्	उनके पीछे दौड़ पड़ा ॥३०॥

ते विसृज्योरणौ तत्र व्यद्योतन्त स्म विद्युतः ।
आदाय मेषावायान्तं नग्नमैक्षत सा पतिम् ॥३१॥

ते विसृज्य उरणौ तत्र व्यद्योतन्त स्म विद्युतः आदाय मेषाः आयान्तं नग्नं ऐक्षत सा पतिम् ॥३१॥

ते	उन (गन्धर्वोंने)
उरणौ	भेड़के बच्चोंको
तत्र विसृज्य	वहीं छोड़कर
विद्युतः	बिजलीको
व्यद्योतन्त स्म	प्रकाशित करने लगे
सा	उस (उर्वशी) ने
मेषाः आदाय	भेड़ोंको लेकर
आयान्तं पतिं	आते हुए पतिको
नग्नं ऐक्षत	नंगा देखा ॥३१॥

ऐलोऽपि शयने जायामपश्यन् विमना इव ।
तच्चित्तोविह्वलः शोचन् बभ्रामोन्मत्तवन्महीम् ॥३२॥

ऐलः अपि शयने जायां अपश्यन् विमना इव तत् चित्तः विह्वलः शोचन् बभ्राम उन्मत्तवत् महीम् ॥३२॥

ऐलः	इलानन्दन	**विह्वलः**	व्याकुल होकर
अपि	(पुरुखाने) भी	**तत् चित्तः**	उसीमें आसक्ति चित्त
जायां शयने	पत्नीको शयनागारमें	**उन्मत्तवत्**	पागलके समान
अपश्यन्	न देखकर	**महीं बभ्राम**	पृथ्वीपर घूमने
विमना इव	अनमना सा होकर		लगा ॥३२॥
शोचन्	शोकसे		

स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां च तत्सखीः ।
पञ्च प्रहृष्टवदनाः प्राह सूक्तं पुरूरवाः ॥३३॥

स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां च तत् सखीः पञ्च प्रहृष्ट वदनाः प्राह सूक्तं पुरूरवाः ॥३३॥

स कुरुक्षेत्रे	उसने कुरुक्षेत्रमें	**पञ्च सखीः**	पांच सखियोंको
सरस्वत्यां	सरस्वतीके किनारे	**च तां वीक्ष्य**	तथा उसे देखकर
प्रहृष्ट वदनाः	प्रसन्नमुखी	**पुरूरवाः**	पुरूरवाने
तत्	उसकी	**सूक्तं प्राह**	सूक्त कहा ॥३३॥*

अहो जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि ।
मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै ॥३४॥

अहो जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुं अर्हसि मां त्वं अद्य अपि अनिर्वृत्य वचांसि कृणव आवहै ॥३४॥

अहो जाये	अरी प्रिये !	**अद्य अपि**	आज भी
तिष्ठ तिष्ठ	ठहर ! ठहर !	**घोरे**	इस घोर दुःखमें

---

* यह आख्यान वेदोंमें है । वहां पुरूरवाके वचन सूक्त हैं ।

मां त्वं	मुझे तू	**आवहै**	हम दोनों
अनिर्वृत्य	आनन्दित किये बिना	**वचांसि**	कुछ बातचीत
त्यक्तुं	तुम्हें त्यागना	**कृणव**	कर लें ॥३४॥
न अर्हसि	नहीं चाहिए,		

सुदेहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया ।
खादन्त्येनं वृका गृध्रास्त्वत्प्रसादस्य नास्पदम् ॥३५॥

सुदेहः अयं पतति अत्र देवि दूरं हृतः त्वया खादन्ति एनं वृका गृध्राः त्वत् प्रसादस्य न आस्पदम् ॥३५॥

देवि त्वया	देवि ! तुम्हारे द्वारा	**वृका गृध्राः**	भेड़िये-गीध
दूरं हृतः	दूर छोड़ा गया	**खादन्ति**	खा लेंगे
अयं सुदेहः	यह सुन्दर शरीर	**त्वत् प्रसादस्य**	तुम्हारी कृपाका
अत्र पतति	यहीं गिर आयगा,	**आस्पदं न**	(यह) पात्र नहीं
एनं	इसे		रहा ॥३५॥

उर्वश्युवाच

मा मृथाः पुरुषोऽसि त्वं मा स्म त्वाद्युर्वृका इमे ।
क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा ॥३६॥

मा मृथाः पुरुषः असि त्वं मा स्म तु अद्युः वृका इमे क्व अपि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा ॥३६॥

मृथाः मा	मरो मत,	**वै क्व अपि**	निश्चय कहीं भी
त्वं पुरुषः असि	तुम पुरुष हो,	**सख्यं न**	मित्रता नहीं होती,
इमे वृका तु	ये भेड़िये तो	**वृकाणां यथा**	भेड़ियोंके समान
मा अद्युः स्म	मत खावें,	**हृदयं**	(इनका) हृदय (क्रूर)
स्त्रीणां	स्त्रियोंकी		होता है ॥३६॥

स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः ।
घ्नन्त्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥३७॥

स्त्रियः हि अकरुणाः क्रूरा दुर्मषाः प्रिय साहसाः घ्नन्ति अल्प अर्थे अपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरं अपि उत ॥३७॥

हि स्त्रियः	क्योंकि स्त्रियां	**अपि**	भी
अकरुणाः	निष्ठुर,	**विश्रब्धं**	विश्वास करनेवाले
क्रूरा	क्रूर, अत्यन्त	**पतिं**	पति
दुर्मषाः	असहनशील,	**उत भ्रातरं**	अथवा भाईको
प्रिय साहसाः	साहसका काम पसन्द करनेवाली	**अपि घ्नन्ति**	भी मार देती हैं ॥३७॥
अल्प अर्थे	थोड़ेसे स्वार्थके लिए		

विधायालीकविश्रम्भमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः ।
नवं नवमभीप्सन्त्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥३८॥

विधाय अलीक विश्रम्भं अज्ञेषु त्यक्त सौहृदाः नवं नवं अभीप्सन्त्यः पुंश्चल्यः स्वैर वृत्तयः ॥३८॥

अलीक	झूठे	**त्यक्त सौहृदाः**	सौहार्द्र त्यागकर
विश्रम्भं	विश्वास	**नवं नवं**	नया-नया (पुरुष)
अज्ञेषु विधाय	अज्ञ लोगोंको देकर	**अभीप्सन्त्यः**	चाहती रहती हैं ॥३८॥
स्वैर वृत्तयः	स्वेच्छा चारिणी		
पुंश्चल्यः	कुलटा स्त्रियां		

संवत्सरान्ते हि भवानेकरात्रं मयेश्वर ।
वत्स्यत्यपत्यानि च ते भविष्यन्त्यपराणि भोः ॥३९॥

संवत्सर अन्ते हि भवान् एकरात्रं मया ईश्वर वत्स्यसि अपत्यानि च ते भविष्यन्ति अपराणि भोः ॥३९॥

भोः ईश्वर	हे (राजराजेश्वर) !	**मया वत्स्यसि**	मेरे साथ रहोगे,
भवान्	आप	**च ते**	और आपके
संवत्सर	एक वर्षके	**अपराणि**	दूसरी भी
अन्ते	बीतनेपर	**अपत्यानि**	सन्तानें
एकरात्रं	एक रात्रि	**भविष्यन्ति**	होंगी ॥३९॥

श्रीशुक उवाच*

अन्तर्वत्नीमुपालक्ष्य देवीं स प्रययौ पुरम् ।
पुनस्तत्र गतोऽब्दान्ते उर्वशीं वीरमातरम् ॥४०॥

अन्तर्वत्नीं उपालक्ष्य देवीं स प्रययौ पुरं पुनः तत्र गतः अब्द अन्ते उर्वशीं वीर मातरम् ॥४०॥

स देवीं	वह देवी (उर्वशी) को	**पुनः तत्र**	फिर वहां
अन्तर्वत्नीं	गर्भवती	**अब्द अन्ते**	एक वर्ष बीतनेपर
उपालक्ष्य	जानकर	**गतः**	गया और
पुरं प्रययौ	अपने नगर चला गया,	**वीर मातरं**	वीर माता
		उर्वशीं	उर्वशी को ॥४०॥

उपलभ्य मुदा युक्तः समुवास तया निशाम् ।
अथैनमुर्वशी प्राह कृपणं विरहातुरम् ॥४१॥

उपलभ्य मुदा युक्तः सम उवास तया निशां अथ एनं उर्वशी प्राह कृपणं विरह आतुरम् ॥४१॥

उपलभ्य	पाकरके	**अथ एनं**	फिर इस
मुदा युक्तः	आनन्द पूर्वक	**विरह आतुरं**	विरह व्याकुल
तया निशां	उसके साथ रातमें	**कृपणं**	दीन हुएसे
सम उवास	भली प्रकार रहा,	**उर्वशी प्राह**	उर्वशीने कहा ॥४१॥

गन्धर्वानुपधावेमांस्तुभ्यं दास्यन्ति मामिति ।
तस्य संस्तुवतस्तुष्टा अग्निस्थालीं ददुर्नृप ।
उर्वशीं मन्यमानस्तां सोऽबुध्यत चरन् वने ॥४२॥

गन्धर्वान् उपधाव इमान् तुभ्यं दास्यन्ति मां इति तस्य संस्तुवतः तुष्टा अग्नि स्थालीं ददुः नृप उर्वशीं मन्यमानः तां सः अबुध्यत चरन् वने ॥४२॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

नृप इमान्	'राजन् इन	**अग्नि**	(उन्होंने) अग्नि
गन्धर्वान्	गन्धर्वोंकी	**स्थालीं**	स्थाली
उपधाव	स्तुति करो,	**ददुः**	दी
मां तुभ्यं	(ये) मुझको तुम्हें	**तां उर्वशीं**	उसे उर्वशी
दास्यन्ति	दे देंगे ।'	**मन्यमानः**	मानता हुआ
इति	(उर्वशीके) ऐसा कहनेपर	**सः वने**	वह वनमें
स्तुवतः	स्तुति करते हुए	**चरन्**	घूमता रहा,
तस्य तुष्टा	उसपर प्रसन्न होकर	**अबुध्यत**	जब होश आया ॥४२॥

स्थालीं न्यस्य वने गत्वा गृहानाध्यायतो निशि ।
त्रेतायां संप्रवृत्तायां मनसि त्रय्यवर्तत ॥४३॥

स्थालीं न्यस्य वने गत्वा गृहान् आध्यायतः निशि त्रेतायां संप्रवृत्तायां मनसि त्रयि अवर्तत ॥४३॥

स्थालीं वने	उस स्थालीको वनमें	**संप्रवृत्तायं**	ठीक प्रारम्भ होनेसे
न्यस्य निशि	रखकर रातको	**मनसि**	उसके मनमें
गृहान् गत्वा	घर जाकर	**त्रयि**	वेदत्रयीका
आध्यायतः	(उर्वशीका) प्रगाढ़ ध्यान करनेसे	**अवर्तत**	आविर्भाव हुआ ॥४३॥
त्रेतायां	त्रेतायुगका		

स्थालीस्थानं गतोऽश्वत्थं शमीगर्भं विलक्ष्य सः ।
तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशीलोककाम्यया ॥४४॥

स्थाली स्थानं गतः अश्वत्थं शमीगर्भं विलक्ष्य सः तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशी लोक काम्यया ॥४४॥

स्थाली	उस स्थालीके	**तेन द्वे**	उससे दो अरणि (मन्थन-काष्ठ)
स्थानं	स्थानपर	**कृत्वा**	बनाकर
गतः सः	जाकर उसने	**उर्वशी**	उर्वशीका
शमीगर्भं	शमी वृक्षके भीतर	**लोक काम्यया**	लोक पानेकी इच्छा-से ॥४४॥
अश्वत्थं	पीपल उगा		
विलक्ष्य	देखकर		

उर्वशीं मन्त्रतो ध्यायन्नधरारणिमुत्तराम् ।
आत्मानमुभयोर्मध्ये यत् तत् प्रजननं प्रभुः ॥४५॥

उर्वशीं मन्त्रतः ध्यायन् अधर अरणि उत्तरां आत्मानं उभयोः मध्ये यत् तत् प्रजननं प्रभुः ॥४५॥

अधर अरणि	नीचेकी अरणिको	**तत्**	उसे उत्पन्न होनेवाले
उर्वशीं उत्तरां	उर्वशी और ऊपरकी को	**प्रजननं**	पुत्रके रूपमें
		मन्त्रतः	मन्त्रपूर्वक
आत्मानं	अपना स्वरूप	**प्रभुः**	उस समर्थने (मन्थन किया) ॥४५॥
ध्यायन्	ध्यान करने		
यत् मध्ये	जो बीचका स्थान था		

तस्य निर्मन्थनाज्जातो जातवेदा विभावसुः ।
त्रय्या स विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितस्त्रिवृत् ॥४६॥

तस्य निर्मन्थनात् जातः जातवेदा विभावसुः त्रय्या स विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितः त्रिवृत् ॥४६॥

तस्य	उसके	**त्रिवृत्**	तीन (आवहनीय, गार्हस्पत्य, दक्षिणा) रूपोंमें
निर्मन्थनात्	मन्थन करनेसे		
जातः जातवेदा	उत्पन्न जातवेदा नामक	**पुत्रत्वे**	पुत्र बनाकर
विभावसुः	अग्निको	**कल्पितः**	स्वीकार कर लिया ॥४६॥
स राज्ञा	उस राजाने		
त्रय्या विद्यया	त्रयी विद्याके द्वारा		

तेनायजत यज्ञेशं भगवन्तमधोक्षजम् ।
उर्वशीलोकमन्विच्छन् सर्वदेवमयं हरिम् ॥४७॥

तेन अयजत यज्ञेशं भगवन्तं अधोक्षजं उर्वशीलोकं अन्विच्छन् सर्वदेवमयं हरिम् ॥४७॥

तेन	उसके द्वारा	**अन्विच्छन्**	पानेकी कामनासे
उर्वशीलोकं	उर्वशीके लोकको	**यज्ञेशं भगवन्तं**	यज्ञेश भगवान

अधोक्षजं	हृषीकेश	**हरिं अयजत**	श्रीहरिकी आराधना
सर्वदेवमयं	सर्वदेवमय		की ॥४७॥

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ।
देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥४८॥

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः देवः नारायणः न अन्य एकः अग्निः वर्ण एव च ॥४८॥

पुरा	इससे पूर्व (सतयुगमें)	**देवः**	देवता (आराध्य) थे
सर्ववाङ्मयः	सर्ववाणीमय	**अन्य न**	दूसरा कोई नहीं था
प्रणवः	प्रणव ही	**अग्निः**	अग्नि और
एक एव वेदः	एकमात्र वेद था,	**वर्ण एव एकः**	वर्ण भी एक (हस
नारायणः	(एक मात्र) नारायण		नामक) था ॥४८॥

पुरूरवस एवासीत् त्रयी त्रेतामुखे नृप ।
अग्निना प्रजया राजा लोकं गान्धर्वमेयिवान् ॥४९॥

पुरूरवस एव आसीत् त्रयी त्रेतामुखे नृप अग्निना प्रजया राजा लोकं गान्धर्वं एयिवान् ॥४९॥

नृप	राजन् !	**राजा**	उस राजाने
पुरूरवस एव	पुरूरवासे ही	**अग्निना प्रजया**	अग्नि रूपी पुत्र द्वारा
त्रेतामुखे	त्रेताके प्रारम्भमें	**गान्धर्वं लोकं**	गन्धर्व-लोकको
त्रयी	वेदत्रयी	**एयिवान्**	प्राप्त किया ॥४९॥
आसीत्	विद्या प्रारम्भ हुई*		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे ऐलोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

---

*वेद तो नित्य हैं। वे पहिले भी पूरे थे; किन्तु सतयुगके तपस्वी पुरुष केवल प्रणवका उपयोग करते थे। त्रेताके प्रारम्भमें कर्म, ज्ञान, उपासनात्मक वैदिक भागका उपयोग प्रारम्भ हुआ।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

ऐलस्य चोर्वशीगर्भात् षडासन्नात्मजा नृप ।
आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः ॥१॥

ऐलस्य च उर्वशी गर्भात् षट् आसन् आत्मजा नृप आयुः श्रुतायुः सत्यायूः रयः अथ विजयः जयः ॥१॥

नृप	राजन् !	**आयुः श्रुतायुः**	आयु, श्रुतायु,
उर्वशी गर्भात्	उर्वशीके गर्भसे	**सत्यायूः रयः**	सत्यायु, रय,
ऐलस्य च	पुरूरवाके भी	**विजयः अथ**	विजय और
षट् आत्मजा	छः पुत्र	**जयः**	जय ॥१॥
आसन्	थे,		

श्रुतायोर्वसुमान् पुत्रः सत्यायोश्च श्रुतञ्जयः ।
रयस्य सुत एकश्च जयस्य तनयोऽमितः ॥२॥

श्रुतायोः वसुमान् पुत्रः सत्यायोः च श्रुतञ्जयः रयस्य सुत एकः च जयस्य तनयः अमितः ॥२॥

श्रुतायोः पुत्रः	श्रुतायुका पुत्र	**रयस्य सुत**	रयका पुत्र
वसुमान्	वसुमान हुआ,	**एकः च जवस्य**	एक, और जयका
च सत्यायोः	तथा सत्यायुका	**तनयः अमितः**	पुत्र अमित हुआ
श्रुतञ्जयः	श्रुतंजय,		॥२॥

मीमस्तु विजयस्याथ काञ्चनो होत्रकस्ततः ।
तस्य जह्नुः सुतो गङ्गां गण्डूषीकृत्य योऽपिबत् ।
जह्नोस्तु पूरुस्तत्पुत्रो बलाकश्चात्मजोऽजकः ॥३॥

भीमः तु विजयस्य अथ काञ्चनः होत्रकः ततः तस्य जह्नुः सुतः गंगां गण्डूषीकृत्य यः अपिबत् जह्नोः तु पुरुः तत् पुत्रः बलाकः च आत्मजः अजकः ॥३॥

विजयस्य	विजयका तो
भीमः	भीम
अथ काञ्चनः	उससे काञ्चन,
ततः होत्रकः	उससे होत्रक,
तस्य सुतः	उसका पुत्र
जह्नुः	जह्नु हुआ
यः गंगां	जिसने गंगाको
गण्डूषीकृत्य	अञ्जलीमें लेकर
अपिबत्	पी लिया था,
जह्नो तु पुरुः	जह्नुका तो पुरु,
तत् पुत्रः	उसका पुत्र
बलाकः	बलाक
च आत्मजः	और उसका पुत्र
अजकः	अजक हुआ ॥३॥

ततः कुशः कुशस्यापि कुशाम्बुस्तनयो वसुः ।
कुशनाभश्च चत्वारो गाधिरासीत् कुशाम्बुजः ॥४॥

ततः कुशः कुशस्य अपि कुशाम्बुः तनयः वसुः कुशनाभः च चत्वारः गाधिः आसीत् कुशाम्बुजः ॥४॥

ततः कुशः	उसके कुश,
कुशस्य अपि	कुशके भी
कुशाम्बुः तनयः	कुशाम्बु, तनय,
वसुः च	वसु तथा
कुशनाभः	कुशनाभ
चत्वारः	चार पुत्र हुए,
कुशाम्बुजः	कुशाम्बुसे उत्पन्न
गाधिः आसीत्	गाधि हुए ॥४॥

तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचत द्विजः ।
वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत् ॥५॥

तस्य सत्यवतीं कन्यां ऋचीकः अयाचत द्विजः वरं विसदृशं मत्वा गाधिः भार्गवं अब्रवीत् ॥५॥

तस्य कन्यां	उनकी कन्या
सत्यवतीं	सत्यवतीको
द्विजः ऋचीकः	ब्राह्मण ऋचीकने
अयाचत	मांगा,
विसदृशं	असमान
वरं मत्वा	वरको मानकर
भार्गवं	उस भृगुवंशी ब्राह्मणसे
गाधिः अब्रवीत्	गाधिने कहा ॥५॥

एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम् ॥६॥

एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसां सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम् ॥६॥

वयं	हम लोग	**श्यामकर्णानां**	कान श्याम हो ऐसे
कुशिकाः	कुशिक-वंशी हैं,	**सहस्रं हयानां**	सहस्र घोड़े
चन्द्रवर्चसां	चन्द्रोज्वल	**कन्यायाः**	कन्याका
एकतः	एक	**शुल्कं दीयतां**	मूल्य दीजिए ॥६॥

इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणान्तिकम् ।
आनीय दत्त्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम् ॥७॥

इति उक्तः तत् मतं ज्ञात्वा गतः स वरुण अन्तिकं आनीय दत्त्वा तान् अश्वान् उपयेमे वराननाम् ॥७॥

इति उक्तः	ऐसा कहनेपर	**तान् अश्वान्**	उन अश्वोंको
तत् मतं ज्ञात्वा	उनकी इच्छा समझकर	**आनीय दत्त्वा**	लाकर देकर
		वरानना	उस सुमुखीसे
वरुणस्य	वरुणके	**उपयेमे**	विवाह किया ॥७॥
अन्तिकं गतः	समीप जाकर		

स ऋषिः प्रार्थितः पत्न्या श्वश्र्वा चापत्यकाम्यया ।
श्रपयित्वोभयैर्मन्त्रैश्चरुं स्नातुं गतो मुनिः ॥८॥

स ऋषिः प्रार्थितः पत्न्या श्वश्र्वा च अपत्य काम्यया श्रपयित्वा उभयैः मन्त्रैः चरुं स्नातुं गतः मुनिः ॥८॥

स ऋषिः	वे ऋषि	**अपत्य**	सन्तानकी
पत्न्या	पत्नी द्वारा	**काम्यया**	कामनासे
श्वश्र्वा च	अपने और उनकी सासके (अपनी माताके) लिए भी	**प्रार्थितः**	प्रार्थना करनेपर
		मन्त्रैः	मन्त्रों द्वारा
		उभयैः	दोनोंके लिए

चरुं श्रपयित्वा	चरु अभिमन्त्रित करके	**स्नातुं गतः**	स्नान करने चले गये ॥८॥
मुनिः	मौन होकर		

तावत् सत्यवती मात्रा स्वचरुं याचिता सती ।
श्रेष्ठं मत्वा तयायच्छन्मात्रे मातुरदत् स्वयम् ॥९॥

तावत् सत्यवती मात्रा स्वचरुं याचिता सती श्रेष्ठं मत्वा तया यच्छत् मात्रे मातुः अदत् स्वयम् ॥९॥

तावत्	तब तक	**स्वचरुं**	अपना चरु
श्रेष्ठं मत्वा	श्रेष्ठ मानकर	**तया यच्छत्**	उसको दे दिया
मात्रे	माता द्वारा	**मातुः**	माताका (चरु)
याचिता सती	मांगे जानेपर	**स्वयं अदत्**	स्वयं खा लिया ॥९॥

तद् विज्ञाय मुनिः प्राह पत्नीं कष्टमकारषीः ।
घोरो दण्डधरः पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः ॥१०॥

तद् विज्ञाय मुनिः प्राह पत्नीं कष्टं अकारषीः घोरः दण्डधरः पुत्रः भ्राता ते ब्रह्मवित् तमः ॥१०॥

तद् विज्ञाय	उसे जानकर	**घोरः**	उग्र और
मुनिः पत्नीं	मुनिने पत्नीसे	**दण्डधरः**	दण्डधारी होगा,
प्राह	कहा	**भ्राता**	और भाई
कष्टं	'तुमने	**ब्रह्मवित्**	ब्रह्म-ज्ञानियोंमें
अकारषीः	अनर्थ कर डाला,	**तमः**	श्रेष्ठ होगा ॥१०॥
ते पुत्रः	तुम्हारा पुत्र		

प्रसादितः सत्यवत्या मैवं भूदिति भार्गवः ।
अथ तर्हि भवेत् पौत्रो जमदग्निस्ततोऽभवत् ॥११॥

प्रसादितः सत्यवत्या मा एवं भूत् इति भार्गवः अथ तर्हि भवेत् पौत्रः जमदग्निः ततः अभवत् ॥११॥

एवं मा भूत्	ऐसा न हो,
इति	ऐसा कहकर
सत्यवत्या	सत्यवती द्वारा
प्रसादितः	प्रसन्न किये जानेपर
भार्गवः	उन भृगुवंशीने कहा-
अथ तर्हि	'अच्छा तब
पौत्रः भवेत्	ऐसा पौत्र हो'
ततः	इससे उनके
जमदग्निः	जमदग्नि
अभवत्	उत्पन्न हुए ॥११॥

सा चाभूत् सुमहापुण्या कौशिकी लोकपावनी ।
रेणोः सुता रेणुकां वै जमदग्निरुवाह याम् ॥१२॥

सा च अभूत् सुमहत् पुण्या कौशिकी लोकपावनी रेणोः सुता रेणुकां वै जमदग्निः उवाह याम् ॥१२॥

सा च	वह सत्यवती भी
लोकपावनी	लोकको पवित्र करने- वाली
सुमहत् पुण्या	महान् पुण्य प्रदायिनी
कौशिकी अभूत्	कौशिकी नदी हो गयी,
रेणोः सुता	रेणुकी पुत्री
वै रेणुकां	तो थी रेणुका
यां जमदग्निः	जिसे जमदग्निने
उवाह	विवाहित किया ॥१२॥

तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमदादयः ।
यवीयाञ्जज्ञ एतेषां राम इत्यभिविश्रुतः ॥१३॥

तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमत् आदयः यवीयान् जज्ञ एतेषां राम इति अभिविश्रुतः ॥१३॥

तस्यां	उसमें उन
भार्गवऋषेः	भृगुवंशी ऋषिसे
वै	तो
वसुमत् आदयः	वसुमान आदि
सुता जज्ञ	पुत्र उत्पन्न हुए,
एतेषां	इनमें
यवीयान्	सबसे छोटे
राम इति	राम इस नामसे
अभिविश्रुतः	अत्यन्त प्रसिद्ध हुए ॥१३॥

यमाहुर्बासुदेवांशं हैहयानां कुलान्तकम् ।
त्रिःसप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम् ॥१४॥

यं आहुः वासुदेव अंशं हैहयानां कुल अन्तकं त्रिः सप्त कृत्वः य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम् ॥१४॥

हैहयानां	हैहयवंशी क्षत्रियोंके
कुल अन्तकं	कुलका अन्त करने-वाले
यं वासुदेव	जिनको वासुदेवका
अंशं आहुः	अंश कहा गया है
य इमां महीं	जिन्होंने इस पृथ्वीको
त्रिः सप्त कृत्वः	इक्कीस बार
निःक्षत्रियां	क्षत्रिय रहित
चक्रे	बना दिया ॥१४॥

दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत् ।
रजस्तमोवृतमहन् फल्गुन्यपि कृतेंऽहसि ॥१५॥

दुष्टं क्षत्रं भुवः भारं अब्रह्मण्यं अनीनशत् रजः तमः वृतं अहन् फल्गूनि अपि कृते अंहसि ॥१५॥

फल्गूनि अपि	छोटेसे ही
अंहसि कृते	अपराध करनेपर
रजः तमः वृतं	रजोगुण-तमोगुण युक्त
अब्रह्मण्यं	ब्राह्मण विरोधी
भुवः भारं	पृथ्वीके भाररूप
दुष्टं क्षत्रं	दुष्ट क्षत्रियोंको
अहन्	मारकर
अनीनशत्	नष्ट कर दिया ॥१५॥

राजोवाच-

किं तदंहो भगवतो राजन्यैरजितात्मभिः ।
कृतं येन कुलं नष्टं क्षत्रियाणामभीक्ष्णशः ॥१६॥

किं तत् अंहः भगवतः राजन्यैः अजितात्मभिः कृतं येन कुलं नष्टं क्षत्रियाणां अभीक्ष्णशः ॥१६॥

अजितात्मभिः	अजितेन्द्रिय
राजन्यैः	राजाओंने
भगवतः	भगवान (परशुराम) का
तत् किं	वह क्या
अंहः कृतं	अपराध किया
येन क्षत्रियाणां	जिससे क्षत्रियोंका
कुलं	कुल
अभीक्ष्णशः	बार-बार
नष्टं	नष्ट हुआ ॥१६॥

श्रीशुक उवाच–

हैहयानामधिपतिरर्जुनः क्षत्रियर्षभः ।
दत्तं नारायणस्यांशमाराध्य परिकर्मभिः ॥१७॥

हैहयानां अधिपतिः अर्जुनः क्षत्रिय ऋषभः दत्तं नारायणस्य अंशं आराध्य परिकर्मभिः ॥१७॥

क्षत्रिय ऋषभः	क्षत्रिय श्रेष्ठ
हैहयानां	हैहय-
अधिपतिः	राज
अर्जुनः	अर्जुनने
परिकर्मभिः	अनेक प्रकारसे सेवा करके
नारायणस्य	श्रीनारायणके
अंशं दत्तं	अंश दत्तात्रेयजीकी
आराध्य	आराधना करके ॥१७॥

बाहून् दशशतं लेभे दुर्धर्षत्वमरातिषु ।
अव्याहतेन्द्रियौजःश्रीतेजोवीर्यं यशोबलम् ॥१८॥

बाहून् दशशतं लेभे दुर्धर्षत्वं अरातिषु अव्याहत इन्द्रिय ओजः श्री तेजः वीर्य यशः बलम् ॥१८॥

दशशतं बाहून्	एक सहस्र भुजाएँ,
अरातिषु	शत्रुओंसे
दुर्धर्षत्वं	अपराजिता,
अव्याहत	अप्रतिहत
इन्द्रिय ओजः	इन्द्रिय बल,
श्री तेजः वीर्य	लक्ष्मी, तेज, वीर्य
यशः बलं	यश, शारीरिक बल
लेभे	प्राप्त किया ॥१८॥

योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः ।
चचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा ॥१९॥

योगेश्वरत्वं ऐश्वर्यं गुणा यत्र अणिमा आदयः चचार अव्याहत गतिः लोकेषु पवनः यथा ॥१९॥

यत्र अणिमा आदयः गुणा	जिसमें अणिमा आदि गुण होते हैं,
योगेश्वरत्वं	योगेश्वरत्वके
ऐश्वर्यं	उस ऐश्वर्यको (पाकर)
पवनः यथा	वायुके समान

अव्याहत गतिः	अप्रतिरुद्ध गति	चचार	विचरण करने लगा
लोकेषु	लोकोंमें		॥१९॥

स्त्रीरत्नैरावृतः क्रीडन् रेवाम्भसि मदोत्कटः ।
वैजयन्तीं स्रजं बिभ्रद् रुरोध सरितं भुजैः ॥२०॥

स्त्री रत्नैः आवृतः क्रीडन् रेवा अम्भसि मद उत्कटः वैजयन्तीं स्रजं विभ्रत् रुरोध सरितं भुजैः ॥२०॥

वैजयन्तीं स्रजं	वैजवन्ती माला	मद उत्कटः	मदोन्मत्त
विभ्रत्	धारण करके	क्रीडन्	क्रीड़ा करता हुआ
रेवा अम्भसि	नर्मदाके जलमें	भुजैः सरितं	भुजाओंसे नदीको
स्त्री रत्नैः	स्त्री रत्नोंसे	रुरोध	रोक दिया ॥२०॥
आवृतः	घिरा		

विप्लावितं स्वशिबिरं प्रतिस्रोतः सरिज्जलैः ।
नामृष्यत् तस्य तद् वीर्यं वीरमानी दशाननः ॥२१॥

विप्लावितं स्वशिबिरं प्रति स्रोतः सरित् जलैः न अमृष्यत् तस्य तत् वीर्यं वीरमानी दशाननः ॥२१॥

सरित्	(इससे) सरिताका	दशाननः	दशग्रीव रावण
जलैः	जल	तस्य तत्	उसके उस
प्रति स्रोतः	उलटा बहनेसे	वीर्यं	पराक्रमको
स्वशिबिरं	अपने शिविरको	अमृश्यत् न	सहन नहीं कर सका
विप्लावितं	डूबता देखकर		॥२१॥
वीरमानी	अपनेको वीर मानने वाला		

गृहीतो लीलया स्त्रीणां समक्षं कृतकिल्बिषः ।
माहिष्मत्यां संनिरुद्धो मुक्तो येन कपिर्यथा ॥२२॥

गृहीतः लीलया स्त्रीणां समक्षं कृत किल्विषः माहिष्मत्यां सन्निरुद्धः मुक्तः येन कपिः यथा ॥२२॥

येन कृत	जिसने अपना	गृहीतः	पकड़कर
किल्बिषः	अपराध करनेपर	माहिष्मत्यां	माहिष्मती पुरीमें
स्त्रीणां समक्षं	स्त्रियोंके सामने ही	संनिरुद्धः	बन्दी कर दिया
कपिः यथा	बन्दरके समान	मुक्तः	फिर छोड़ दिया
लीलया	(रावणको) खेलमें		॥२२॥

स एकदा तु मृगयां विचरन् विपिने वने ।
यदृच्छयाऽऽश्रमपदं जमदग्नेरुपाविशत् ॥२३॥

स एकदा तु मृगयां विचरन् विपिने वने यदृच्छया आश्रमपदं जमदग्नेः उप आविशत् ॥२३॥

एकदा स तु	एक बार वह तो	जमदग्नेः	ऋषि जमदग्निके
विपिने वने	गहन वनमें	आश्रमपदं	आश्रम-स्थानके
मृगयां विचरन्	आखेट खेलते घूमता	उप आविशत्	समीप पहुँच गया
यदृच्छया	संयोगवश		॥२३॥

तस्मै स नरदेवाय मुनिरर्हणमाहरत् ।
ससैन्यामात्यवाहाय हविष्मत्या तपोधनः ॥२४॥

तस्मै स नरदेवाय मुनिः अर्हणं आहरत् स सैन्य अमात्य वाहाय हविष्मत्या तपोधनः ॥२४॥

तस्मै नरदेवाय	उस राजाका	मुनिः	मुनिने
सैन्य अमात्य	सेना, मन्त्री एवं	हविष्मत्या	अपनी गौ के द्वारा
स वाहाय	वाहनों सहित	अर्हणं आहरत्	सत्कार किया
स तपोधनः	उन तपस्वी		॥२४॥

स वीरस्तत्र तद् दृष्ट्वा आत्मैश्वर्यातिशायनम् ।
तन्नाद्रियताग्निहोत्र्यां साभिलाषः स हैहयः ॥२५॥

स वीरः तत्र तत् दृष्ट्वा आत्म ऐश्वर्य अतिशायनं तत् न अद्रियत् अग्निहोत्र्यां साभिलाषः स हैहयः ॥२५॥

स हैहयः	दूसरे हैहय-वंशियोंके साथ
स वीरः	उस वीर (सहस्रार्जुन) ने
तत्र आत्म	वहाँ अपने
ऐश्वर्य	ऐश्वर्यसे
तत् अतिशायनं	वह अतिशयता
दृष्ट्वा	देखकर
अग्निहोत्र्यां	उस होम-धेनुके लिए
साभिलाषः	अभिलाषा वाला होकर
तत्	उस
अद्रियत्	सत्कारका आदर
न	नहीं किया ॥२५॥

हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान् हर्तुमचोदयत् ।
ते च माहिष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रन्दतीं बलात् ॥२६॥

हविर्धानीं ऋषेः दर्पात् नरान् हर्तुं अचोदयत् ते च माहिष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रन्दतीं बलात् ॥२६॥

दर्पात् ऋषेः	घमण्डवश ऋषिकी
हविर्धानीं	कामधेनुको
हर्तुं	हरण करनेके लिए
नरान्	अपने सेवकोंको
अचोदयत्	प्रेरणा दी
ते च क्रन्दन्तीं	वे भी डकराती हुई
सवत्सां बलात्	बछड़ेके साथ उसे
बलात्	बलपूर्वक
माहिष्मतीं	माहिष्मती पुरी
निन्युः	ले गये ॥२६॥

अथ राजनि निर्याते राम आश्रम आगतः ।
श्रुत्वा तत् तस्य दौरात्म्यं चुक्रोधाहिरिवाहतः ॥२७॥

अथ राजनि निर्याते राम आश्रम आगतः श्रुत्वा तत् तस्य दौरात्म्यं चुक्रोध अहिः इव आहतः ॥२७॥

अथ राजनि	फिर राजाके
निर्याते	निकल जानेपर
राम आश्रम	परशुरामने आश्रममें
आगतः	आकर
तस्य तत्	उस (सहस्रार्जुन) की वह
दौरात्म्यं श्रुत्वा	दुष्टता सुनकर
आहतः अहिः	घायल सर्पके
इव	समान
चुक्रोध	कुपित हो गये ॥२७॥

घोरमादाय परशुं सतूणं चर्म कार्मुकम् ।
अन्वधावत दुर्धर्षो मृगेन्द्र इव यूथपम् ॥२८॥

घोरं आदाय परशुं सतूणं चर्म कार्मुकं अन्वधावत दुर्धर्षः मृगेन्द्र इव यूथपम् ॥२८॥

घोरं परशुं	भयंकर परशु एवं	**यूथपं**	गजराजकी ओर
सतूणं	तरकशके साथ	**मृगेन्द्र इव**	सिंहके समान
कार्मुकं	धनुष	**दुर्धर्षः**	असह्य वेग वे
आदाय	लेकर	**अन्वधावत**	पीछे दौड़ पड़े ॥२८॥
चर्म	मृगचर्म पहिने		

तमापतन्तं भृगुवर्यमोजसा
धनुर्धरं बाणपरश्वधायुधम् ।
ऐणेयचर्माम्बरमर्कधामभि-
र्युतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन् ॥२९॥

तं आपतन्तं भृगुवर्यं ओजसा धनुःधरं बाण परश्वध आयुधं ऐणेय चर्म अम्बरं अर्कधामभिः युतं जटाभिः ददृशे पुरीं विशन् ॥२९॥

धनुःधरं	धनुषधारी	**जटाभिः**	जटाजूटवाले
बाण परश्वध	बाण, परशु	**तं भृगुवर्यं**	उन भृगु श्रेष्ठको
आयुधं	आयुधवाले	**ओजसा**	बड़े वेगसे
ऐणेय चर्म	कृष्ण-मृग-चर्मके	**आपतन्तं**	आते
अम्बरं	वस्त्रवाले,	**पुरीं विशन्**	पुरीमें प्रवेश करते
अर्कधामभिः	सूर्यके समान तेजो-मयी	**ददृशे**	(सहस्रार्जुनने) देखा ॥२९॥

अचोदयद्धस्तिरथाश्वपत्तिभि-
र्गदासिबाणर्ष्टिशतघ्निशक्तिभिः ।
अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणा-
स्ता राम एको भगवानसूदयत् ॥३०॥

अचोदयत् हस्ति रथ अश्व पत्तिभिः गदा असि बाण ऋष्टि शतघ्नि शक्तिभिः अक्षौहिणीः सप्तदश अति भीषणाः ता रामः एकः भगवान् असूदयत् ॥३०॥

गदा असि	गदा, तलवार,	**अति भीषणाः**	अत्यन्त भयंकर
बाण ऋष्टि	बाण, ऋष्टि,	**सप्तदश**	सत्रह
शतघ्नि	शतघ्नी,	**अक्षौहिणीः**	अक्षौहिणी सेना
शक्तिभिः	शक्तिवाली	**अचोदयत्**	प्रेरित की
हस्ति रथ	हाथी, रथ,	**ता एकः**	उसे अकेले
अश्व	घोड़े,	**भगवान् राम**	भगवान रामने
पत्तिभिः	पैदलवाली चतुरंगिणी	**असूदयत्**	मार डाला ॥३०॥

यतो यतोऽसौ प्रहरत्परश्वधो
मनोऽनिलौजाः परचक्रसूदनः ।
ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकन्धरा
निपेतुरुर्व्यां हतसूतवाहनाः ॥३१॥

यतः यतः असौ प्रहरत् परश्वधः मनः अनिल ओजाः पर चक्रसूदनः ततः ततः छिन्न भुज उरु कन्धरा-निपेतुः उर्व्यां हत सूत वाहनाः ॥३१॥

मनः	मन तथा	**ततः ततः**	वहां-वहां
अनिल	वायुके समान	**भुज उरु**	भुजा, जांघे,
ओजाः	वेगवाले	**कन्धरा**	कन्धे
पर चक्रसूदनः	शत्रु सेनाके संहारक	**छिन्न सूत**	कटे, सारथि तथा
असौ	ये (परशुरामजी)	**वाहनाः**	वाहन
यतः यतः	जहां-जहां	**हत**	मारे जानेसे
परश्वधः	परशुका	**उर्व्यां निपेतुः**	शत्रु पृथ्वीपर गिर
प्रहरत्	प्रहारते करते थे		पड़े ॥३१॥

दृष्ट्वा स्वसैन्यं रुधिरौघकर्दमे
रणाजिरे रामकुठारसायकैः ।

विवृक्णचर्मध्वजचापविग्रहं
निपातितं हैहय आपतद् रुषा ॥३२॥

दृष्ट्वा स्वसैन्यं रुधिर ओघ कर्दमे रण अजिरे राम कुठार सायकैः विवृक्ण चर्मध्वज चाप विग्रहं निपातितं हैहय आपतत् रुषा ॥३२॥

राम कुठार	परशुरामके परशू तथा	**रुधिर ओघ**	रक्तकी बाढ़ एवं
सायकैः	वाणों द्वारा	**कर्दमे निपातितं**	कीचड़में गिराये गये
चमध्वज	छाल, ध्वजा,	**स्वसैन्यं**	अपनी सेनाको
चाप विग्रहं	धनुष एवं शरीरोंको	**दृष्ट्वा रुषा**	देखकर क्रोधसे
विवृक्ण	छिन्न-भिन्न होनेसे	**हैहय**	हैहयराज स्वय
रण अजिरे	रणाङ्गनमें	**आपतत्**	आ धमका ॥३२॥

अथार्जुनः पञ्चशतेषु बाहुभि-
र्धनुःषु बाणान् युगपत् स सन्दधे ।
रामाय रामोऽस्त्रभृतां समग्रणी-
स्तान्येकधन्वेषुभिराच्छिनत् समम् ॥३३॥

अथ अर्जुनः पञ्चशतेषु बाहुभिः धनुःषु बाणान् युगपत् स सन्दधे रामाय रामः अस्त्रभृतां समग्रणीः तान् एकधन्व इषुभिः आच्छिनत् समम् ॥३३॥

अथ अर्जुनः	फिर सहस्रार्जुनने	**अस्त्रभृतां**	अस्त्र-धारियोंमें
बाहुभिः	भुजाओंसे	**समग्रणीः**	सर्वाग्रगण्य
पञ्चशतेषु	पांच सौ	**रामः**	परशुरामजीने
धनुःषु	धनुषोंपर	**एकधन्व**	एक ही धनुषसे
स युगपत्	सबपर एक साथ	**इषुभिः**	बाणोंसे उनको
बाणान् सन्दधे	बाण चढ़ाकर	**समं आच्छिनत्**	एक साथ ही काट
रामाय	परशुरामके लिए छोड़े		डाला ॥३३॥

पुनः स्वहस्तैरचलान् मृधेऽङ्घ्रिपा-
नुत्क्षिप्य वेगादभिधावतो युधि ।
भुजान् कुठारेण कठोरनेमिना
चिच्छेद रामः प्रसभं त्वहेरिव ॥३४॥

पुनः स्वहस्तैः अचलान् मृधे अङ्घ्रिपान् उत्क्षिप्य वेगात् अभिधावतः युधि भुजान् कुठारेण कठोर नेमिना चिच्छेद रामः प्रसभं तु अहेः इव ॥३४॥

पुनः मृधे	फिर युद्धमें
स्वहस्तैः	अपने हाथोंसे
अचलान्	पर्वतोंको तथा
अङ्घ्रिपान्	वृक्षोंको
उत्क्षिप्य	उठाकर फेंकते हुए
वेगात्	वेगपूर्वक
युधि	युद्ध करने सामने
अभिधावतः	दौड़े आते (सहस्र अर्जुन) की
अहेः इव	सर्पोंके समान
भुजान्	भुजाओंको
कठोर नेमिना	तीक्ष्ण धारवाले
कुठारेण	परशूसे
प्रसभं चिच्छेद	फुर्तीसे काट डाला ॥३४॥

कृत्तबाहोः शिरस्तस्य गिरेः शृङ्गमिवाहरत् ।
हते पितरि तत्पुत्रा अयुतं दुद्रुवुर्भयात् ॥३५॥

कृत्तबाहोः शिरः तस्य गिरेः शृङ्गं इव आहरत् हते पितरि तत् पुत्रा अयुतं दुद्रुवुः भयात् ॥३५॥

कृत्त बाहोः	भुजाएँ कट जानेपर
गिरेः शृंग	पर्वत शिखरके
इव	समान
तस्य शिरः	उसका सिर
आहरत्	काट लिया,
पितरि हते	पिताके मारे जानेपर
तत् अयुतं	उसके दस सहस्र
पुत्रा	पुत्र
भयात् दुद्रुवुः	भयसे भाग गये ॥३५॥

अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा ।
समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत् ॥३६॥

अग्निहोत्रीं उपावर्त्य सवत्सां परवीरहा सम उपेत्य आश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत् ॥३६॥

परवीरहा	शत्रुवीरोंके हन्ता (परशुरामजी)	**उपावर्त्य**	लौटाकर
सवत्सां	बछड़े के साथ	**आश्रमं**	उसके साथ आश्रममें
परिक्लिष्टां	अत्यन्त पीड़िता	**समुपेत्य**	आकर
अग्निहोत्रीं	होमधेनुको	**पित्रे समर्पयत्**	पिताको दे दिया ॥३६॥

स्वकर्म तत्कृतं रामः पित्रे भ्रातृभ्य एव च ।
वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जमदग्निरभाषत ॥३७॥

स्व कर्म तत् कृतं रामः पित्रे भ्रातृभ्य एव च वर्ण यामास तत् श्रुत्वा जमदग्निः अभाषत ॥३७॥

तत्	उस (गौ) के लिए	**रामः**	परशुरामने
कृतं	किया हुआ	**वर्णयामास**	वर्णन किया
स्व कर्म	अपना कर्म	**तत् श्रुत्वा**	उसे सुनकर
पित्रे च	पितासे और	**जमदग्निः**	जमदग्निजी
भ्रातृभ्य एव	भाइयोंसे भी	**अभाषत**	बोले ॥३७॥

राम राम महाबाहो भवान् पापमकारषीत् ।
अवधीन्नरदेवं यत् सर्वदेवमयं वृथा ॥३८॥

राम राम महाबाहो भवान् पापं अकारषीत् अवधीत् नरदेवं यत् सर्व देवमयं वृथा ॥३८॥

राम राम	हे राम, हे राम,	**यत् सर्वदेवमयं**	क्योंकि सर्वदेवमय
महाबाहो	महाबाहो !	**नरदेवं वृथा**	राजाको व्यर्थ
भवान्	तुमने	**अवधीत्**	मारा है ॥३८॥
पापं अकारषीत्	पाप किया है,		

वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतां गताः ।
यया लोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमगात् पदम् ॥३९॥

वयं हि ब्राह्मणाः तात क्षमया अर्हणतां गताः यया लोकगुरुः देवः पारमेष्ठ्यं अगात् पदम् ॥३९॥

तात वयं	तात ! हम	**लोकगुरुः**	लोकगुरु
ब्राह्मणाः हि	ब्राह्मण क्योंकि	**पारमेष्ठ्यं**	ब्रह्माके
क्षमया	क्षमाके द्वारा	**पदं अगात्**	पद पर पहुँचे हैं
अर्हणतां गताः	पूजनीय हुए हैं,		॥३९॥
यया देवः	जिससे पूज्य		

क्षमया रोचते लक्ष्मीर्ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा ।
क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः ॥४०॥

क्षमया रोचते लक्ष्मीः ब्राह्मीः सौरी यथा प्रभा क्षमिणां आशु भगवान् तुष्यते हरिः ईश्वरः ॥४०॥

क्षमया	क्षमाके द्वारा	**भगवान् ईश्वरः**	भगवान् सर्वेश्वर
ब्राह्मीः लक्ष्मीः	ब्रह्म-सम्पति	**हरिः क्षमिणां**	श्रीहरि क्षमावानोंसे
सौरी प्रभा	सूर्यकी प्रभाके	**आशु तुष्यते**	शीघ्र प्रसन्न होते हैं
यथा	समान		॥४०॥
रोचते	प्रकाशित होती है		

राज्ञो मूर्धाभिषिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद् गुरुः ।
तीर्थसंसेवया चांहो जह्यङ्गाच्युतचेतनः ॥४१॥

राज्ञः मूर्धा अभिषिक्तस्य दधः ब्रह्मवधात् गुरुः तीर्थ संसेवया च अंहः जहि अच्युत चेतनः ॥४१॥

मूर्धा	सिरसे	**राज्ञः वधः**	राजाका वध
अभिषिक्तस्य	अभिषेक सम्पन्न	**ब्रह्मवधात्**	ब्रह्म-हत्यासे भी

गुरुः	बड़ा (पाप) है,	तीर्थ संसेवया	तीर्थोंके सेवनसे
अच्युत	अच्युत भगवान्‌में	अंहः च जहि	इस पापको भी नष्ट
चेतनः	चित्त लगाकर		करो ॥४१॥
	(अथवा) भगवदीय		
	अंश होनेपर भी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीशक उवाच

पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनन्दन ।
संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वाऽऽश्रममाव्रजत् ॥१॥

पित्रः उपशिक्षितः रामः तथा इति कुरुनन्दन संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वा आश्रमं आव्रजत् ॥१॥

कुरुनन्दन	परीक्षित !	**इति**	इस प्रकार (स्वीकार करके)
पित्रः	पिता द्वारा		
उपशिक्षितः	उपदेश कियेको	**संवत्सरं**	एक वर्ष तक
रामः तथा	परशुरामजीने 'अच्छा'	**तीर्थयात्रां**	तीर्थयात्रा
		चरित्वा आश्रमं	करके आश्रमपर
		आव्रजत्	लौट आये ॥१॥

कदाचिद् रेणुका याता गंगायां पद्ममालिनम् ।
गन्धर्वराजं क्रीडन्तमप्सरोभिरपश्यत ॥२॥

कदाचित् रेणुका याता गंगायां पद्ममालिनं गन्धर्वराजं क्रीडन्तं अप्सरः भिः अपश्यत ॥२॥

कदाचित्	किसी समय	**गन्धर्वराजं**	गन्धर्वराजको
रेणुका गंगायां	रेणुका गंगातटपर	**अप्सरःभिः**	अप्सराओंके साथ
याता	गयीं (वहां)	**क्रीडन्तं**	क्रीड़ा करते हुए
पद्ममालिनं	कमल-मालाधारी	**अपश्यत**	देखा ॥२॥

विलोकयन्ती क्रीडन्तमुदकार्थं नदीं गता ।
होमवेलां न सस्मार किञ्चित्तत्ररथस्पृहा ॥३॥

विलोकयन्ती क्रीडन्तं उदक अर्थं नदीं गता होमवेलां न सस्मार किञ्चित् चित्ररथ स्पृहा ॥३॥

उदक अर्थं	जल लेनेके लिए	**चित्ररथ स्पृहा**	चित्ररथकी इच्छासे
नदीं गता	नदी-तटपर जाकर	**होमवेलां**	हवनके समयका
क्रीडन्तं	(उसे) क्रीड़ा करते	**सस्मार न**	स्मरण नहीं कर
विलोकयन्ती	देखते हुए		सकीं ॥३॥
किञ्चित्	कुछ-कुछ		

कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशङ्किता ।
आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृताञ्जलिः ॥४॥

काल अत्ययं तं विलोक्य मुनेः शाप विशङ्किता आगत्य कलशं तस्थौ पुरः आधाय कृत अञ्जलिः ॥४॥

तं काल	उस हवन कालको	**आगत्य**	आकर
अत्ययं	बीता	**कलशं पुरः**	कलश सम्मुख
विलोक्य	देखकर	**आधाय**	रखकर
मुनेः शाप	मुनिके शापसे	**कृत अञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
विशङ्किता	शंकित होकर	**तस्थौ**	खड़ी हो गयीं ॥४॥

व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा पत्न्याः प्रकुपितोऽब्रवीत् ।
घ्नतैनां पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे ॥५॥

व्यभिचारं मुनिः ज्ञात्वा पत्न्याः प्रकुपितः अब्रवीत् घ्नत एनां पुत्रकाः पापां इति उक्ताः ते न चक्रिरे ॥५॥

मुनिः पत्न्याः	मुनि-पत्नीका	**पुत्रकाः एनां**	'पुत्रो ! इस
व्यभिचारं	(मानसिक) व्यभि-चार	**पापां घ्नत**	पापिनीको मार दो !'
ज्ञात्वा	जानकर बहुत	**इति उक्ताः**	ऐसा कहनेपर
प्रकुपितः	क्रुद्ध होकर	**ते न चक्रिरे**	उन्होंने ऐसा नहीं
अब्रवीत्	बोले		किया ॥५॥

रामः सञ्चोदितः पित्रा भ्रातॄन् मात्रा सहावधीत् ।
प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक् समाधेस्तपसश्च सः ॥६॥

रामः सञ्चोदितः पित्रा भ्रातॄन् मात्रा सह अवधीत् प्रभावज्ञः मुनेः सम्यक् समाधेः तपसः च सः ॥६॥

पित्राः	पिता द्वारा	**सः मुनेः**	वे मुनिकी
सञ्चोदितः	प्रेरित किये जानेपर	**समाधेः**	समाधि
रामः भ्रातॄन्	परशुरामने भाइयोंका	**च तपसः**	तथा तपस्याका
मात्रा सह	माताके साथ	**सम्यक्**	भली प्रकार
अवधीत्	वध कर दिया; क्योंकि	**प्रभावज्ञः**	प्रभाव जाननेवाले थे ॥६॥

वरेणच्छन्दयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः ।
वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं वधे ॥७॥

वरेण छन्दयामास प्रीतः सत्यवती सुतः वव्रे हतानां रामः अपि जीवितं च अस्मृतिं वधे ॥७॥

सत्यवती सुतः	सत्यवतीनन्दन (जमदग्नि) ने	**हतानां जीवितं च वधे**	मारे लोगोंका जीवन तथा वधके सम्बन्ध-की
प्रीतः	प्रसन्न होकर		
वरेण	इच्छानुसार वरदान	**अस्मृतिं वव्रे**	स्मृतिहीनता मांगी ॥७॥
छन्दयामास	मांगनेको कहा—		
रामः अपि	परशुरामने भी		

उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवाञ्जसा ।
पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्वधम् ॥८॥

उत्तस्थुः ते कुशलिनः निद्रा अपाय इव अञ्जसा पितुः विद्वान् तपः वीर्यं रामः चक्रे सुहृत् वधम् ॥८॥

निद्रा अपाय	निद्रा टूटनेके	**अञ्जसा ते**	सरलतासे वे
इव	समान	**कुशलिनः**	कुशलपूर्वक

उत्तस्थुः	उठ गये,	**रामः सुहृत्**	परशुरामने सुहृदोंका
पितुः तपः	पिताके तपके	**वधं चक्रे**	वध किया था ॥८॥
वीर्यं विद्वान्	प्रभावको जानकर		

येऽर्जुनस्य सुता राजन् स्मरन्तः स्वपितुर्वधम् ।
रामवीर्यपराभूता लेभिरे शर्म न क्वचित् ॥९॥

ये अर्जुनस्य सुता राजन् स्मरन्त. स्वपितुः वधं रामवीर्यं पराभूता लेभिरे शर्म न क्वचित् ॥९॥

राजन्	राजन् !	**स्वपितुः वधं**	अपने पिताके वधका
ये अर्जुनस्य सुता	जो सहस्रार्जुनके पुत्र	**स्मरन्तः**	स्मरण करते हुए
रामवीर्य	परशुरामके पराक्रमसे	**क्वचित् शर्म**	कभी शान्ति
पराभूता	पराजित हो गये थे,	**न लेभिरे**	नहीं पा सके ॥९॥

एकदाऽऽश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते ।
वैरं सिसाधयिषवो लब्धच्छिद्रा उपागमन् ॥१०॥

एकदा आश्रमतः रामे सभ्रातरि वनं गते वैरं सिसाधयिषवः लब्ध छिद्रा उप आगमन् ॥१०॥

एकदा	एक बार	**लब्धछिद्रा**	वे अवसर पाकर
आश्रमतः	आश्रमसे	**वैरं**	शत्रुता
सभ्रातरि	भाइयोंके साथ	**सिसाधयिषवः**	चुकानेकी इच्छावाले
रामे वनं	परशुरामके वनमें	**उप आगमन्**	समीप आ गये
गते	चले जानेपर		॥१०॥

दृष्ट्वाग्न्यगार आसीनमावेशितधियं मुनिम् ।
भगवत्युत्तमश्लोके जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः ॥११॥

दृष्ट्वा अग्न्य आगार आसीनं आवेशितधियं मुनि भगवति उत्तम श्लोके जघ्नुः ते पाप निश्चयाः ॥११॥

अग्न्य आगार	अग्निशालामें	**भगवति**	भगवान
आसीनं	बैठे हुए	**उत्तम श्लोके**	पवित्र कीर्तिमें

आवेशितधियं	बुद्धि लगाये	**निश्चयाः**	निश्चय करके
मुनिं	मुनि जमदग्निको	**जघ्नुः**	(उनको) मार दिया ॥११॥
दृष्ट्वा	देखकर		
ते पाप	वे पापका		

याच्यमानाः कृपणया राममात्रातिदारुणाः ।
प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युस्ते क्षत्रबन्धवः ॥१२॥

याच्यमानाः कृपणया राम मात्रा अतिदारुणाः प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युः ते क्षत्रबन्धवः ॥१२॥

अतिदारुणाः	अत्यन्त क्रूर	**याच्यमानाः**	प्रार्थना करनेपर भी
क्षत्रबन्धवः	क्षत्रियाधम	**ते प्रसह्य**	उन्होंने बलात्कारसे
कृपणया	दीनतापूर्वक	**शिर**	(उन मुनिका) सिर
राम	परशुरामकी	**उत्कृत्य**	काटकर
मात्रा	माता द्वारा	**निन्युः**	ले गये ॥१२॥

रेणुका दुःखशोकार्ता निघ्नन्त्याऽऽत्मानमात्मना ।
राम रामेहि तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती ॥१३॥

रेणुका दुःख शोक आर्ता निघ्नन्ति आत्मानं आत्मना राम राम एहि तात इति विचुक्रोश उच्चकैः सती ॥१३॥

दुःख शोक	दुःख-शोक	**राम राम एहि**	'राम ! राम आओ !
आर्ता सती	व्याकुल सती	**तात इति**	बेटा आओ !'
रेणुका	रेणुका	**उच्चकैः**	यह उच्च स्वरसे
आत्मानं	अपने आप	**विचुक्रोश**	चिल्लाने लगी ॥१३॥
आत्मना	अपना देह (छाती)		
निघ्नन्ति	पीटती हुई		

तदुपश्रुत्य दूरस्थो हा रामेत्यार्तवत्स्वरम् ।
त्वरयाऽऽश्रममासाद्य ददृशे पितरं हतम् ॥१४॥

तत् उपश्रुत्य दूरस्थः हा राम इति आर्तवत् स्वरं त्वरया आश्रमं आसाद्य ददृशे पितरं हतम् ॥१४॥

दूरस्थः	दूरपर स्थित (परशुरामने)
तत् हा राम	वह 'हा राम'
इति आर्तवत्	ऐसा आर्तनाद जैसा
स्वरं उपश्रुत्य	स्वर सुनकर
त्वरया	शीघ्रता पूर्वक
आश्रमं	आश्रमपर
आसाद्य	पहुँचकर
हतं पितरं	मारे गये पिताको
ददृशे	देखा ॥१४॥

तद् दुःखरोषामर्षार्तिशोकवेगविमोहितः ।
हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वास्मान् स्वर्गतो भवान् ॥१५॥

तत् दुःख रोष अमर्ष आर्ति शोक वेग विमोहितः हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वा अस्मान् स्वः गतः भवान् ॥१५॥

तत् दुःख	उस दुःख
रोष	क्रोध,
अमर्ष	असहनशीलता,
आर्ति शोक	व्याकुलता, शोकके
वेग	वेगसे
विमोहितः	मूर्छित हो गये,
हा तात	(फिर बोले) हा तात !
साधो धर्मिष्ठः	साधो ! धर्मिष्ठ !
अस्मान्	हम लोगोंको
त्यक्त्वा	त्यागकर
भवान् स्वः:	आप स्वर्ग चले
गतः	गये !' ॥१५॥

विलप्यैवं पितुर्देहं निधाय भ्रातृषु स्वयम् ।
प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्रान्ताय मनो दधे ॥१६॥

विलप्य एवं पितुः देहं निधाय भ्रातृषु स्वयं प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्र अन्ताय मनः दधे ॥१६॥

एवं	इस प्रकार
विलप्य	विलाप करके
पितुः देहं	पिताका शरीर
भ्रातृषु निधाय	भाइयोंको सौंपकर
स्वयं रामः	स्वयं परशुरामने
परशुं प्रगृह्य	परशु लेकर
क्षत्र	क्षत्रियोंका
अन्ताय	अन्त कर डालनेका
मनः दधे	निश्चय कर लिया ॥१६॥

गत्वा माहिष्मतीं रामो ब्रह्मघ्नविहतश्रियम् ।
तेषां स शीर्षभी राजन् मध्ये चक्रे महागिरिम् ॥१७॥

गत्वा माहिष्मतीं रामः ब्रह्मघ्न विहतश्रियं तेषां स शीर्षभी राजन् मध्ये चक्रे महागिरिम् ॥१७॥

राजन्	राजन् !	**मध्ये**	बीचमें
रामः	रामने	**तेषां शीर्षभी**	उनके सिरोंसे
गत्वा	जाकर	**स महागिरिं**	उन्होंने बड़ा भारी पर्वत
ब्रह्मघ्न	ब्रह्महत्यासे		
विहतश्रियं	श्रीहीन हुई	**चक्रे**	बना दिया ॥१७॥
माहिष्मतीं	माहिष्मती पुरीके		

तद्रक्तेन नदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम् ।
हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रेऽमंगलकारिणि ॥१८॥

तत् रक्तेन नदीं घोरां अब्रह्मण्य भय आवहां हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रे अमंगल कारिणी ॥१८॥

पितृवधं	पिताके वधको	**कारिणी**	करनेवाली
हेतुं कृत्वा	कारण बनाकर	**घोरां नदीं**	एक घोर नदी
क्षत्रे	क्षत्रियोंके लिए	**तत् रक्तेन**	उनके रक्तसे (बहा दी) ॥१८॥
अमंगल	अमंगल		

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ।
समन्तपञ्चके चक्रे शोणितोदान् ह्रदान् नृप ॥१९॥

त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः समन्त पञ्चके चक्रे शोणित उदान् ह्रदान् नव ॥१९॥

प्रभुः	समर्थ परशुरामने	**समन्त**	समन्तक
पृथिवीं	पृथ्वीको	**पञ्चके**	पञ्चक क्षेत्रमें
त्रिः सप्तकृत्वः	इक्कीस बार	**शोणित उदान्**	रक्त रूप जलके
निःक्षत्रियां	क्षत्रियहीन	**नव ह्रदान्**	नौ सरोवर
कृत्वा	बनाकर	**चक्रे**	बना दिये ॥१९॥

पितुः कायेन सन्धाय शिर आदाय बर्हिषि ।
सर्वदेवमयं देवमात्मानमयजन्मखैः ॥२०॥

पितुः कायेन सन्धाय शिर आदाय बर्हिषि सर्वदेवमयं देवं आत्मानं अयजन् मखैः ॥२०॥

पितुः कायेन	पिताके शरीरसे	**देवं आत्मानं**	आराध्य आत्म स्वरूप (श्रीहरिका)
शिर आदाय	उनका सिर लाकर	**मखैः अयजन्**	यज्ञों द्वारा यजन किया ॥२०॥
बर्हिषि सन्धाय	कुशसे जोड़कर		
सर्वदेवमयं	सर्व देवमय		

ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् ।
अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम् ॥२१॥

ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशं अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम् ॥२१॥

प्राचीं दिशं	पूर्व दिशा	**अध्वर्यवे**	अध्वर्यु को
होत्रे	होताको,	**उत्तरां दिशं**	उत्तर दिशा
दक्षिणां दिशां	दक्षिण दिशा	**उद्गात्रे ददौ**	उद्गाताको दे दी ॥२१॥
ब्रह्मणे	ब्रह्माको		
वै प्रतीचीं	फिर पश्चिम		

अन्येभ्योऽवान्तरदिशः कश्यपाय च मध्यतः ।
आर्यावर्तमुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततः परम् ॥२२॥

अन्येभ्यः अवान्तर दिशः कश्यपाय च मध्यतः आर्यावर्तं उपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यः ततः परम् ॥२२॥

अन्येभ्यः	अन्य ऋत्विजोंको	**मध्यतः**	बीचकी भूमि
अवान्तर	(ईशान आदि) कोणोंकी	**उपद्रष्ट्रे**	उपद्रष्ट्राको
		आर्यावर्तं	आर्यावर्त
दिशः	दिशाएँ	**ततः सदस्येभ्यः**	फिर सदस्योंको
च कश्यपाय	और कश्यपजी को	**परं**	अन्य देश दिये ॥२२॥

ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः ।
सरस्वत्यां ब्रह्मनद्यां रेजे व्यभ्र इवांशुमान् ॥२३॥

ततः च अवभृथ स्नान विधूत अशेष किल्बिषः सरस्वत्यां ब्रह्मनद्यां रेजे व्यभ्र इव अंशुमान् ॥२३॥

ततः	फिर	**विधूत च**	पूर्ण धुल जानेसे
ब्रह्मनद्यां	ब्रह्म नदी	**व्यभ्र**	मेघावरणहीन
सरस्वत्यां	सरस्वतीमें	**अंशुमान् इव**	सूर्यके समान
अवभृथ स्नान	अवभृथ स्नान करके	**रेजे**	शोभित हुए ॥२३॥
अशेष किल्बिषः	समस्त पापोंके		

स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षणम् ।
ऋषीणां मण्डले सोऽभूत् सप्तमो रामपूजितः ॥२४॥

स्वदेहं जमदग्निः तु लब्ध्वा संज्ञान लक्षणं ऋषीणां मण्डले सः अभूत् सप्तमः राम पूजितः ॥२४॥

राम पूजितः	परशुरामजीसे पूजित	**ऋषीणां मण्डले**	सप्तर्षियोंके मण्डलमें
जमदग्निः तु	जमदग्नि भी	**सः सप्तमः**	वे सातवें
संज्ञान लक्षणं	सङ्कल्पमय	**अभूत्**	हो गये ॥२४॥
स्वदेहं लब्ध्वा	अपना शरीर पाकर		

जामदग्न्योऽपि भगवान् रामः कमललोचनः ।
आगामिन्यन्तरे राजन् वर्तयिष्यति वै बृहत् ॥२५॥

जामदग्न्यः अपि भगवान् रामः कमललोचनः आगामिनि अन्तरे राजन् वर्तयिष्यति वै बृहत् ॥२५॥

राजन्	राजन् !	**अन्तरे**	मन्वन्तरेमें
कमललोचनः	कमल-लोचन	**वै**	निश्चय (सप्तर्षियोंमें होकर)
जामदग्न्यः	जमदग्नि-नन्दन	**बृहत्**	वेदोंका
भगवान्	भगवान्	**वर्तयिष्यति**	प्रचार करेंगे ॥२५॥
रामः अपि	परशुराम भी		
आगामिनि	अगले		

आस्तेऽद्यापि महेन्द्रादौ न्यस्तदण्डः प्रशान्तधीः ।
उपगीयमानचरितः सिद्धगन्धर्वचारणैः ॥२६॥

आस्ते अद्य अपि महेन्द्र अदौ न्यस्त दण्डः प्रशान्त धीः उपगीयमान चरितः सिद्ध गन्धर्व चारणैः ॥२६॥

सिद्ध गन्धर्व	सिद्ध, गन्धर्व,	**न्यस्त दण्डः**	किसीको भी दण्ड देना त्यागकर
चारणैः	चारणों द्वारा	**प्रशान्त धीः**	अत्यन्त शान्त चित्त
चरितः	उनके चरित	**अद्य अपि**	आज भी
उपगीयमान	गाये जाते हैं	**आस्ते**	विराजमान हैं ॥२६॥
महेन्द्र अदौ	महेन्द्राचलपर		

एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः ।
अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन् बहुशो नृपान् ॥२७॥

एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान् हरिः ईश्वरः अवतीर्य परं भारं भुवः अहन् बहुशः नृपान् ॥२७॥

विश्वात्मा	विश्वात्मा	**भुवः परं**	पृथ्वीके अत्यधिक
भगवान् ईश्वरः	भगवान सर्वसमर्थ	**भारं**	भार रूपं
हरिः एवं	श्रीहरिने इस प्रकार	**बहुशः नृपान्**	बहुतसे राजाओंका
भृगुषु अवतीर्य	भृगुवंशमें अवतार लेकर	**अहन्**	वध कर दिया ॥२७॥

गाधेरभून्महातेजाः समिद्ध इव पावकः ।
तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम् ॥२८॥

गाधेः अभूत् महातेजाः समिद्ध इव पावकः तपसा क्षात्रं उत्सृज्य यः लेभे ब्रह्मवर्चसम् ॥२८॥

गाधेः समिद्ध	गाधिसे प्रज्वलित	**यः क्षात्रं**	जिन्होंने क्षत्रियत्व
पावकः इव	अग्निके समान	**उत्सृज्य**	त्यागकर
महातेजाः	महान तेजस्वी (विश्वामित्र)	**तपसा**	तपस्या द्वारा
		ब्रह्मवर्चसं	ब्रह्मतेज
अभूत्	उत्पन्न हुए,	**लेभे**	प्राप्त किया ॥२८॥

विश्वामित्रस्य चैवासन् पुत्रा एकशतं नृप ।
मध्यमस्तु मधुच्छन्दा मधुच्छन्दस एव ते ॥२९॥

विश्वामित्रस्य च एव आसन् पुत्रा एकशतं नृप मध्यमः तु मधुच्छन्दा मधुच्छन्दस एव ते ॥२९॥

नृप	राजन् !	**मध्यमः तु**	उनमें मध्यम पुत्र तो
विश्वामित्रस्य	विश्वामित्र	**मधुच्छन्दा**	मधुच्छन्दा था
च एव	के भी तो	**ते मधुच्छन्दस**	वे मधुच्छन्दस
एकशतं	एक सौ	**एव**	ही कहलाये ॥२९॥
पुत्रा आसन्	पुत्र थे,		

पुत्रं कृत्वा शुनःशेपं देवरातं च भार्गवम् ।
आजीगर्तं सुतानाह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम् ॥३०॥

पुत्रं कृत्वा शुनःशेपं देवरातं च भार्गवं आजीगर्तं सुतान् आह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम् ॥३०॥

भार्गवं	भृगुवंशी	**पुत्रं कृत्वा**	पुत्र बनाकर और
आजीगर्तं	अजीगर्तके पुत्र	**च**	(विश्वामित्रने)
देवरातं	देवता (वरुण) द्वारा बचाये गये	**सुतान् आह**	अपने पुत्रोंसे कहा
		एष ज्येष्ठ	इसे बड़ा भाई
शुनःशेपं	शुनःशेपको	**प्रकल्प्यतां**	मान लो ॥३०॥

यो वै हरिश्चन्द्रमखे विक्रीतः पुरुषः पशुः ।
स्तुत्वा देवान् प्रजेशादीन् मुमुचे पाशबन्धनात् ॥३१॥

यः वै हरिश्चन्द्र मखे विक्रीतः पुरुषः पशुः स्तुत्वा देवान् प्रजेश आदीन् मुमुचे पाशबन्धनात् ॥३१॥

वैः यः	निश्चय जो	**पुरुषः पशुः**	पुरुष पशुके रूपमें
हरिश्चन्द्र	राजा हरिश्चन्द्रके	**विक्रीतः**	बेचा गया था और
मखे	यज्ञमें	**प्रजेश आदीन्**	प्रजापति आदि

देवान्	देवताओंकी	**सुमुचे**	(विश्वामित्रने जिसे)
स्तुत्वा	स्तुति करके		छुड़ाया था ॥३१॥
पाशबन्धनात्	पाशके बन्धनसे		

यो रातो देवयजने देवैर्गाधिषु तापसः ।
देवरात इति ख्यातः शुनःशेपः स भार्गवः ॥३२॥

यः रातः देवयजने देवैः गाधिषु तापसः देवरात इति ख्यातः शुनःशेपः स भार्गव ॥३२॥

स भार्गवः	वह भृगुवंशी	**गाधिषु रातः**	गाधिकुलमें दिये
शुनःशेपः	शुनःशेप		जानेपर
यः देवयजने	जो देवताओंके यज्ञमें	**देवरात**	देवरात
देवैः	देवताओं द्वारा	**इति ख्यातः**	इस नामसे प्रसिद्ध
		तापसः	तपस्वी हुआ ।३२॥

ये मधुच्छन्दसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् ।
अशपत् तान्मुनिः क्रुद्धो म्लेच्छा भवत दुर्जनाः ॥३३॥

ये मधुच्छन्दसः ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् अशपत् तान् मुनिः क्रुद्धः म्लेच्छा भवत दुर्जनाः ॥३३॥

ये	जो	**क्रुद्धः**	(इससे) कुपित होकर
मधुच्छन्दसः	मधुच्छान्दाओंमें	**मुनिः**	मुनि (विश्वामित्र)
ज्येष्ठाः	बड़े थे	**अशपत्**	शाप दे दिया
तत् कुशलं	(उन्होंने) इसको अच्छा	**दुर्जनाः**	'दुष्टो (तुम लोग)
		म्लेच्छा भवत	म्लेच्छ हो जाओ'
न मेनिरे	नहीं माना		॥३३॥

स होवाच मधुच्छन्दाः सार्धं पञ्चाशता ततः ।
यन्नो भवान् संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम् ॥३४॥

स ह उवाच मधुच्छन्दाः स अर्धं पञ्चाशता ततः यत् नः भवान् संजानीते तस्मिन् तिष्ठामहे वयम् ॥३४॥

अर्धं	सबके आधे	**भवान् यत् नः**	'आप जो हमारे लिए
पञ्चाशता स	पचास (छोटे) भाइयों सहित	**सञ्जानीते**	उत्तम बतलावेंगे
		वयं तस्मिन्	हम उसीपर
स मधुच्छन्दाः	वह मधुच्छन्दा	**तिष्ठामहे**	स्थित होंगे ॥३४॥'
ह उवाच	निश्चय पूर्वक बोला		

ज्येष्ठं मन्त्रदृशं चक्रुस्त्वामन्वञ्चो वयं स्म हि।
विश्वामित्रः सुतानाह वीरवन्तो भविष्यथ।
ये मानं मेऽनुगृह्णन्तो वीरवन्तमकर्त मास् ॥३५॥

ज्येष्ठं मन्त्रदृशं चक्रुः त्वां अन्वञ्चः वयं स्म हि विश्वामित्रः सुतान् आह वीरवन्तः भविष्यथ ये मानं मे अनुगृह्णन्तः वीरवन्तं अकर्तं मास् ॥३५॥

मन्त्रदृशं	मन्त्र द्रष्टा (देवरात) को	**सुतान् आह**	(उन) पुत्रोंसे बोले—
ज्येष्ठं चक्रुः	बड़ा भाई बना लिया,	**हि मां**	'क्योंकि (तुम लोगों-ने) मुझे
वयं त्वां	(बोले) 'हम सब तुम्हारे	**वीरवन्तं**	पुत्रवान्
		अकर्त	बनाया है
अन्वञ्चः स्म	अनुयायी हैं'	**अथ वीरवन्तः**	अतः (तुम भी) पुत्र-वान्
विश्वामित्रः	तब विश्वामित्रजी	**भविष्यथ**	होओगे' ॥३५॥

एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित।
अन्ये चाष्टकहारीतजयक्रतुमदादयः ॥३६॥

एष वः कुशिका वीरः देवरातः तं अन्वित अन्ये च अष्टक हारीत जय क्रतुमत् आदयः ॥३६॥

कुशिका	कुशिक गणो !	**वः**	तुम्हारा (सगोत्रीय) है,
एष वीरः	यह वीर		
देवरातः	देवरात भी	**तं अन्वित**	उसका अनुगमन करो'

अन्ये च	(विश्वामित्रके) दूसरे भी	**जय क्रतुमत् आदयः**	जय, क्रतुमान्, आदि (पुत्र) थे ॥३६॥
अष्टक हारीत	अष्टक, हारीत		

एवं कौशिकगोत्रं तु विश्वामित्रैः पृथग्विधम् ।
प्रवरान्तरमापन्नं तद्धि चैवं प्रकल्पितम् ॥३७॥

एवं कौशिकगोत्रं तु विश्वामित्रैः पृथक् विधं प्रवरान्तरं आपन्नं तत् हि च एवं प्रकल्पितम् ॥३७॥

एवं	इस प्रकार	**तत् च**	उस (देवरात) को जो
विश्वामित्रैः	विश्वामित्र द्वारा	**एवं**	इस प्रकार
कौशिकगोत्रं	कौशिक गोत्र	**प्रकल्पितं**	(कौशिक गोत्रीय) बना दिया
तु	तो	**प्रवरान्तरं**	वह दूसरे प्रवरका
पृथक् विधं	कई प्रकारका हो गया,	**आपन्नं**	बन गया ॥३७॥
हि	क्योंकि		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे षोडदशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

यः पुरूरवसः पुत्र आयुस्तस्याभवन् सुताः ।
नहुषः क्षत्रवृद्धश्च रजी रम्भश्च वीर्यवान् ॥१॥

यः पुरुरवसः पुत्र आयुः तस्य अभवन् सुताः नहुषः क्षत्रवृद्धः च रजी रम्भः च वीर्यवान् ॥१॥

यः पुरूरवसः	जो पुरूरवाका	**नहुषः क्षत्रवृद्धः**	नहुषः, क्षत्रवृद्ध
पुत्रः आयुः	पुत्र आयु था	**च रजी**	तथा रजी
तस्य सुताः	उसके पुत्र	**च वीर्यवान्**	एवं पराक्रमी
अभवन्	हुए	**रम्भः**	रम्भ ॥१॥

अनेना इति राजेन्द्र शृणु क्षत्रवृधोऽन्वयम् ।
क्षत्रवृद्धसुतस्यासन् सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः ॥२॥

अनेना इति राजेन्द्र शृणु क्षत्रवृधः अन्वयं क्षत्रवृद्ध सुतस्य आसन् सुहोत्रस्य आत्मजाः त्रयः ॥२॥

अनेना	और अनेना,	**क्षत्रवृद्ध**	क्षत्रवृद्धके
इति	इस प्रकार (पांच)	**सुतस्य**	पुत्र
राजेन्द्र	महाराज परीक्षित !	**सुहोत्रस्य**	सुहोत्रके
क्षत्रवृधः	क्षत्रवृद्धका	**त्रयः आत्मजाः**	तीन पुत्र
अन्वयं शृणु	वंश सुनो	**आसन्**	थे ॥२॥

काश्यः कुशो गृत्समद इति गृत्समदादभूत् ।
शुनकः शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनिः ॥३॥

काश्यः कुशः गृत्समद इति गृत्समदात् अभूत् शुनकः शौनकः यस्य बह्वृच प्रवरः मुनिः ॥३॥

काश्यः कुशः	काश्य कुश,	**यस्य**	जिससे
गृत्समद इति	गृत्समद इस प्रकार,	**वह्वृच**	ऋग्वेदियोंमें
गृत्समदात्	गृत्समदसे	**प्रवरः मुनिः**	श्रेष्ठ मुनि
शुनकः अभूत्	शुनक उत्पन्न हुआ	**शौनकः**	शौनक हुए ॥३॥

काश्यस्य काशिस्तत्पुत्रो राष्ट्रो दीर्घतमःपिता ।
धन्वन्तरिर्दैर्घतम आयुर्वेदप्रवर्तकः ॥४॥

काश्यस्य काशिः तत् पुत्रः राष्ट्रः दीर्घतमः पिता धन्वन्तरिः दैर्घतम आयुर्वेद प्रवर्तकः ॥४॥

काश्यस्य	काश्यके	**दैर्घतम**	दीर्घतमाके पुत्र
काशिः तत्	काशि, उसके	**आयुर्वेद**	आयुर्वेदके
पुत्रः	पुत्र	**प्रवर्तकः**	प्रवर्तक
दीर्घतमः पिता	दीर्घतमाके पिता	**धन्वन्तरिः**	धन्वन्तरि हुए ॥४॥
राष्ट्रः	राष्ट्र,		

यज्ञभुग् वासुदेवांशः स्मृतमात्रार्तिनाशनः ।
तत्पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीमरथस्ततः ॥५॥

यज्ञभुक् वासुदेव अंशः स्मृतिमात्र आर्ति नाशनः तत् पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीमरथः ततः ॥५॥

यज्ञभुक्	वे यज्ञभोक्ता,	**तत् पुत्रः**	उनके पुत्र
वासुदेव	भगवान वासुदेवके	**केतुमानस्य**	केतुमानके
अंशः	अंश,	**ततः भीमरथः**	फिर भीमरथ
स्मृतिमात्र	स्मरण मात्रसे	**जज्ञे**	उत्पन्न हुआ ॥५॥
आर्ति नाशनः	रोगोंके नाशक हैं,		

दिवोदासो द्युमांस्तस्मात् प्रतर्दन इति स्मृतः ।
स एव शत्रुजिद् वत्स ऋतध्वज इतीरितः ।
तथा कुवलयाश्वेति प्रोक्तोऽलर्कादयस्ततः ॥६॥

दिवोदासः द्युमान् तस्मात् प्रतर्दन इति स्मृतः स एव शत्रुजित् वत्स ऋतध्वज इति ईरितः तथा कुवलयाश्व इति प्रोक्तः अलर्क आदयः ततः ॥६॥

दिवोदासः	(उससे) दिवोदास
तस्मात् द्युमान्	उससे द्युमान्
प्रतर्दन	जो प्रतर्दन
इति स्मृतः	इस नामसे भी कहा गया है,
वत्स स एव	वत्स परीक्षित ! वही
शत्रुजित्	शत्रुजित,
ऋतध्वज	ऋतध्वज
इति ईरितः	इस नामसे कहा गया है
तथा	तथा
कुवलयाश्व	कुवलयाश्व
इति	इस नामसे भी
प्रोक्तः	कहा गया है,
ततः	उससे
अलर्क आदयः	अलर्क आदि हुए ॥६॥

षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।
नालर्कादपरो राजन् मेदिनीं बुभुजे युवा ॥७॥

षष्टि वर्ष सहस्राणि षष्टि वर्ष शतानि च न अलर्कात् अपरः राजन् मेदिनीं बुभुजे युवा ॥७॥

राजन्	राजन् !
अलर्कात्	अलर्कसे
अपरः	भिन्न किसीने
षष्टि	साठ
वर्ष सहस्राणि	सहस्र वर्ष
च षष्टि वर्ष	तथा साठ
शतानि	सौ वर्ष (छियासठ सहस्र वर्ष)
युवा	युवा रहकर
मेदिनीं	पृथ्वीका
बुभुजे न	उप भोग नहीं किया ॥७॥

अलर्कात् सन्ततिस्तस्माद् सुनीथोऽथ सुकेतनः ।
धर्मकेतुः सुतस्तस्मात् सत्यकेतुरजायत ॥८॥

अलर्कात् सन्ततिः तस्मात् सुनीथः अथ सुकेतनः धर्मकेतुः सुतः तस्मात् सत्यकेतुः अजायत ॥८॥

अलर्कात्	अलर्कसे
सन्ततिः	सन्तति,
तस्मात् सुनीथः	उससे सुनीथ,
अथ सुकेतनः	फिर सुकेतन
सुतः	उसका पुत्र
धर्मकेतुः	धर्मकेतु
तस्मात्	उससे
सत्यकेतुः	सत्यकेतु
अजायत	उत्पन्न हुआ ॥८॥

धृष्टकेतुः सुतस्तस्मात् सुकुमारः क्षितीश्वरः ।
वीतिहोत्रस्य भर्गोऽतो भार्गभूमिरभून्नृपः ॥९॥

धृष्टकेतुः सुतः तस्मात् सुकुमारः क्षितीश्वरः वीतिहोत्रस्य भर्गः अतः भार्गभूमिः अभूत् नृपः ॥९॥

सुतः	उसका पुत्र
धृष्टकेतुः	धृष्टकेतु,
तस्मात्	उससे
क्षितीश्वरः	पृथ्वीपति
सुकुमारः	सुकुमार,
वीतिहोत्रस्य	उसके पुत्र वीतिहोत्र का
भर्गः अतः	भर्ग उससे
नृपः	राजा
भार्गभूमिः	भार्गभूमि
अभूत्	उत्पन्न हुआ ॥९॥

इतीमे काशयो भूपाः क्षत्रवृद्धान्वयायिनः ।
रम्भस्य रभसः पुत्रो गम्भीरश्चाक्रियस्ततः ॥१०॥

इति इमे काशयः भूपाः क्षत्रवृद्ध अनुयायिनः रम्भस्य रभसः पुत्रः गम्भीरः च अक्रियः ततः ॥१०॥

इति इमे	इस प्रकार ये
क्षत्रवृद्ध	क्षत्रवृद्धके
अनुयायिनः	वंशमें
काशयः	काशि* से उत्पन्न
भूपाः	राजा हुए ।
रम्भस्य पुत्रः	रम्भका पुत्र
रभसः गम्भीर	रभस उसके गम्भीर
च ततः	और उससे
अक्रियः	अक्रिय हुआ ॥१०॥

तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशमनेनसः ।
शुद्धस्ततः शुचिस्तस्मात् त्रिककुद् धर्मसारथिः ॥११॥

---

* ये काशी (वाराणसी) के राजा हुए, यह अर्थ भी इतिहास-पुराणसे समर्थित है । दिवोदास प्रसिद्ध काशी-नरेश थे ।

तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशं अनेनसः शुद्धः ततः शुचिः तस्मात् त्रिककुत् धर्म सारथिः ॥११॥

तस्य क्षेत्रे	उसकी पत्नीसे	**ततः शुचिः**	उससे शुचि
ब्रह्म जज्ञे	ब्राह्मण सन्तान हुई,	**तस्मात्**	उससे
अनेनसः	अनेनाका	**त्रिककुत्**	त्रिककुत्
वंशं शृणु	वंश सुनो	**धर्म-**	(उससे) धर्म-
ततः शुद्धः	उस (अनेना) से शुद्ध,	**सारथिः**	सारथि हुआ ॥११॥

ततः शान्तरयो जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान् ।
रजेः पञ्चशतान्यासन् पुत्राणाममितौजसाम् ॥१२॥

ततः शान्तरयः जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान् रजेः पञ्चशतानि आसन् पुत्राणां अमित ओजसाम् ॥१२॥

ततः शान्तरयः	उससे शान्तरय	**रजेः**	रजिके
जज्ञे स	उत्पन्न हुआ, वह	**पञ्चशतानि**	पाँच सौ
आत्मवान्	आत्मज्ञानी	**अमित ओजसां**	अपार तेजस्वी
कृतकृत्यः	कृतकृत्य था'	**पुत्राणां आसन्**	पुत्र हुए ॥१२॥

देवैरभ्यर्थितो दैत्यान् हत्वेन्द्रायाददाद् दिवम् ।
इन्द्रस्तस्मै पुनर्दत्त्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः ॥१३॥

देवैः अभ्यर्थितः दैत्यान् हत्वा इन्द्राय अददात् दिवं इन्द्रः तस्मै पुनः दत्त्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः ॥१३॥

देवैः	देवताओं द्वारा	**रजेः चरणौ**	रजिके चरण
अभ्यर्थितः	प्रार्थना किये जानेपर	**गृहीत्वा इन्द्रः**	पकड़कर इन्द्रने
दैत्यान् हत्वा	दैत्योंको मारकर	**पुनः तस्मै**	फिर उनको ही
इन्द्राय	इन्द्रको	**दत्त्वा**	(स्वर्ग) देकर ॥१३॥
दिवं अददात्	स्वर्ग दे दिया,		

आत्मानमर्पयामास प्रह्लादद्यरिशंकितः ।
पितर्युपरते पुत्रां याचमानाय नो ददुः ॥१४॥

आत्मानं अर्पयामास प्रह्लाद आदि अरिशङ्कितः पितरि उपरते पुत्रा याचमानाय नो ददुः ॥१४॥

आत्मानं	अपनेको भी
अर्पयामास	अर्पित कर दिया,
प्रह्लाद	(क्योंकि) प्रह्लाद
आदि	आदि
अरिशङ्कितः	शत्रुओंसे शंकित थे,
पितरि उपरते	पिताके मर जानेपर
याचमानाय	मांगनेपर भी
पुत्रा	(रजिके) पुत्रोंने
नो ददुः	नहीं दिया ॥१४॥

त्रिविष्टपं महेन्द्राय यज्ञभागान् समाददुः ।
गुरुणा हूयमानेऽग्नौ बलभित् तनयान् रजेः ॥१५॥

त्रिविष्टपं महेन्द्राय यज्ञभागान् सम आददुः गुरुणा हूयमाने अग्नौ बलभित् तनयान् रजेः ॥१५॥

महेन्द्राय	इन्द्रको
त्रिविष्टपं	स्वर्ग (तो नहीं दिया ही और)
गुरुणा	गुरु वृहस्पति द्वारा
अग्नौ	अग्निमें
हूयमाने	हवन करनेपर
यज्ञभागान्	यज्ञके भागोंको
सम आददुः	पूरा ही ले लिया (तब)
बलभित्	बल दैत्यको मारने-वाले इन्द्रने
रजेः तनयान्	रजिके पुत्रोंका ॥१५॥

अवधीद् भ्रंशितान् मार्गान्न कश्चिदवशेषितः ।
कुशात् प्रतिः क्षात्रवृद्धात् सञ्जयस्तत्सुतो जयः ॥१६॥

अवधीत् भ्रंशितान् मार्गात् न कश्चित् अवशेषितः कुशात् प्रतिः क्षात्रवृद्धात् सञ्जयः तत् सुतः जयः ॥१६॥

अवधीत्	वध कर दिया,
मार्गात्	(क्योंकि वे) सन्मार्ग से
भ्रंशितान्	भ्रष्ट हो गये थे
कश्चित्	उनमें कोई भी
न अवशेषितः	नहीं बचा
क्षात्रवृद्धात्	क्षत्रवृद्धके वंशज
कुशात् प्रतिः	कुशसे प्रति,
तत् सञ्जयः	उसके संजय
सुतः जयः	उसका पुत्र जय हुआ ॥१६॥

ततः कृतः कृतस्यापि जज्ञे हर्यवनो नृपः ।
सहदेवस्ततो हीनो जयसेनस्तु तत्सुतः ॥१७॥

ततः कृतः कृतस्य अपि जज्ञे हर्यवनः नृपः सहदेवः ततः हीनः जयसेनः तु तत् सुतः ॥१७॥

ततः कृतः	उससे कृत,	**सहदेवः**	सहदेव,
कृतस्य अपि	कृतका भी	**ततः हीनः**	उससे हीन
नृपः हर्यवनः	राजा हर्यवन	**तु तत् सुतः**	फिर तो उसका पुत्र
जज्ञे ततः	उत्पन्न हुआ, उससे	**जयसेनः**	जयसेन हुआ ॥१७॥

संकृतिस्तस्य च जयः क्षत्रधर्मा महारथः ।
क्षत्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात् ॥१८॥

सङ्कृतिः तस्य च जयः क्षत्रधर्मा महारथः क्षत्रवृद्ध अन्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात् ॥१८॥

सङ्कृतिः तस्य	संकृतिके	**अन्वया भूपाः**	वंशज राजा हुए,
च जयः	भी जय	**नाहुषात्**	नहुषसे चला
महारथः	उसके महारथी	**वंशं च**	वंश भी
क्षत्रधर्मा	क्षत्रधर्मा हुआ	**शृणु**	सुनो ॥१८॥
क्षत्रवृद्ध	ये क्षत्रवृद्धके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्ध
चन्द्रवंशानुवर्णने सप्तदशोऽध्यायः ॥१८॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

यतिर्ययातिः संयातिरायतिर्वियतिः कृतिः ।

षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीव देहिनः ॥१॥

यतिः ययातिः संयातिः आयतिः वियतिः कृतिः षट् इमे नहुषस्य आसन् इन्द्रियाणि इव देहिनः ॥१॥

देहिनः	देह धारियोंके	**संयातिः**	संयाति,
इन्द्रियाणि	इन्द्रियोंके	**आयतिः**	आयति,
इव	समान	**वियतिः कृतिः**	वियति और कृति
नहुषस्य	नहुषके	**इमे षट्**	ये छ (पुत्र)
यतिः ययातिः	यति, ययाति,	**आसन्**	थे ॥१॥

राज्यं नेच्छद् यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित् ।

यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुध्यते ॥२॥

राज्यं न इच्छत् यतिः पित्रा दत्तं तत् परिणामवित् यत्र प्रविष्टः पुरुषः आत्मानं न अवबुध्यते ॥२॥

पित्रा दत्तं	पिताके देनेपर	**यत्र प्रविष्टः**	जिसमें प्रवेश करके
यतिः राज्यं	यतिने राज्य (लेने)की	**पुरुषः**	पुरुष
तत् परिणाम-	उसके परिणामको	**आत्मानं**	आत्मतत्त्वको
वित्	जाननेवाला होनेसे	**न**	नहीं
इच्छत् न	इच्छा नहीं की	**अवबुध्यते**	जान सकता ॥२॥

पितरि भ्रंशिते स्थानादिन्द्राण्या धर्षणाद् द्विजैः ।

प्रापितेऽजगरत्वं वै ययातिरभवन्नृपः ॥३॥

पितरि भ्रंशिते स्थानात् इन्द्राण्या धर्षणात् द्विजैः प्रापिते अजगरत्वं वै ययातिः अभवत् नृपः ॥३॥

इन्द्राण्या	इन्द्राणी (शची) के साथ	**भ्रंशिते**	भ्रष्ट किये जानेपर और
धर्षणात्	धृष्टता करनेसे	**वै**	निश्चित रूपसे
द्विजैः	ब्राह्मणों द्वारा	**अजगरत्वं**	अजगर योनिको
पितरि	पिताके	**प्रापिते**	पहुँचा दिये जानेपर
स्थानात्	अपने स्थान (स्वर्ग) से	**ययातिः**	ययाति
		नृपः अभवत्	राजा हुआ ॥३॥

चतसृष्वादिशद् दिक्षु भ्रातॄन् भ्राता यवीयसः ।
कृतदारो जुगोपोर्वीं काव्यस्य वृषपर्वणः ॥४॥

चतसृषु आदिशत् दिक्षु भ्रातॄन् भ्राता यवीयसः कृतदारः जुगोप उर्वीं काव्यस्य वृषपर्वणः ॥४॥

भ्राता	उस (बड़े) भाईने	**काव्यस्य**	शुक्राचार्य तथा
यवीयसः	छोटे	**वृषपर्वणः**	वृषपर्वाकी
भ्रातॄन्	भाइयोंको	**कृतदारः**	पुत्रियोंको पत्नी वनाकर
चतसृषु	चारो		
दिक्षु	दिशाओंमें	**उर्वीं जुगोप**	पृथ्वीका पालन किया ॥४॥
आदिशत्	नियुक्त कर दिया		

राजोवाच-

ब्रह्मर्षिर्भगवान् काव्यः क्षत्रबन्धुश्च नाहुषः ।
राजन्यविप्रयोः कस्माद् विवाहः प्रतिलोमकः ॥५॥

ब्रह्मर्षिः भगवान् काव्यः क्षत्रबन्धुः च नाहुषः राजन्य विप्रयोः कस्मात् विवाहः प्रतिलोमकः ॥५॥

भगवान् काव्यः	भगवान् शुक्राचार्य	**च**	और
ब्रह्मर्षि	ब्रह्मर्षि थे	**नाहुषः**	नहुष कुमार ययाति

क्षत्रबन्धुः	सामान्य क्षत्रिय था,	**प्रतिलोमकः**	प्रतिलोम (विपरीत)
राजन्य	फिर क्षत्रिय और	**विवाहः**	विवाह
विप्रयोः	ब्राह्मणका	**कस्मात्**	क्यों हुआ ॥५॥

श्रीशुक उवाच–

एकदा दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा नाम कन्यका ।
सखीसहस्रसंयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥६॥

एकदा दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा नाम कन्यका सखी सहस्र संयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥६॥

एकदा	एक बार	**दानवेन्द्रस्य**	दानवेन्द्र (वृषपर्वा) की
गुरुपुत्र्या	गुरुकी पुत्री	**शर्मिष्ठा नाम**	शर्मिष्ठा नामक
च सखी-	तथा एक-	**भामिनी**	सुन्दरी
सहस्र	सहस्र सखियोंके	**कन्यका**	कन्या ॥६॥
संयुक्ता	साथ		

देवयान्या पुरोद्याने पुष्पितद्रुमसङ्कुले ।
व्यचरत् कलगीतालिनलिनीपुलिनेऽबला ॥७॥

देवयान्या पुर उद्याने पुष्पित द्रुम सङ्कुले व्यचरत् कलगीत अलि नलिनी पुलिने अबला ॥७॥

देवयान्या	देवयानीके	**नलिनी पुलिने**	सरोवरके किनारे
पुष्पित द्रुम	फूले वृक्षोंसे	**अबला**	वह कन्या
सङ्कुले उद्याने	भरे बगीचेमें	**व्यचरत्**	विचरण कर रही थी ॥७॥
अलि	भ्रमरोंकी		
कलगीत	मधुर गुंजार युक्त		

ता जलाशयमासाद्य कन्याः कमललोचनाः ।
तीरे न्यस्य दुकूलानि विजह्रुः सिञ्चतीर्मिथः ॥८॥

ता जलाशयं आसाद्य कन्याः कमल लोचनाः तीरे न्यस्य दुकूलानि विजह्रुः सिञ्चतीः मिथः ॥८॥

ता कमल-	वे कमल-	**तीरे न्यस्य**	किनारे रखकर
लोचनाः	नयनी	**मिथः**	परस्पर
कन्याः	कन्याएँ	**सिञ्चतीः**	जल उलीचती
जलाशयं	जलाशयके	**विजह्रुः**	क्रीड़ा करने लगीं
आसाद्य	समीप पहुँचकर		॥८॥
दुकूलानि	अपनी साड़ियां		

वीक्ष्य व्रजन्तं गिरिशं सह देव्या वृषस्थितम् ।
सहसोत्तीर्यं वासांसि पर्यधुर्व्रीडिताः स्त्रियः ॥९॥

वीक्ष्य व्रजन्तं गिरिशं सह देव्या वृष स्थितं सहसा उत्तीर्य स्व वासांसि पर्यधुः व्रीडिताः स्त्रियः ॥९॥

सह देव्या	देवी उमाके साथ	**व्रीडिताः**	लज्जित होकर
वृष स्थितं	वृषभपर बैठे	**सहसा**	सहसा जलसे
गिरिशं	शंकरजी को	**उत्तीर्य**	निकलकर
व्रजन्तं	जाते हुए	**स्व वासांसि**	अपने वस्त्र
वीक्ष्य स्त्रियः	देखकर वे स्त्रियां	**पर्यधुः**	पहिन लिए ॥९॥

शर्मिष्ठाजानती वासो गुरुपुत्र्याः समव्ययत् ।
स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानीदमब्रवीत् ॥१०॥

शर्मिष्ठा अजानती वासः गुरुपुत्र्याः समव्ययत् स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानी इदं अब्रवीत् ॥१०॥

शर्मिष्ठा	शर्मिष्ठाने	**समव्ययत्**	उपयोग कर लिया
अजानती	अनजानमें	**प्रकुपिता**	इससे अत्यन्त कुपित
स्वीयं मत्वा	अपना समझकर		होकर
गुरुपुत्र्याः	गुरु-पुत्रीका	**देवयानी**	देवयानी
वासः	वस्त्र	**इदं अब्रवीत्**	यह बोली ॥१०॥

अहो निरीक्ष्यतामस्या दास्याः कर्म ह्यसाम्प्रतम् ।
अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हविरध्वरे ॥११॥

अहो निरीक्ष्यतां अस्या दास्याः कर्म हि असाम्प्रतं अस्मत् धार्यं धृतवती शुनी इव हविः अध्वरे ॥११॥

अहो अस्या	'अहो, इस
दास्याः	दासीका
असाम्प्रतं	असामयिक
कर्म हि	कर्म तो
निरीक्ष्यतां	देखो,
अध्वरे हविः	यज्ञमें हविको
शुनी इव	कुतियाके समान
अस्मत्	हमारे
धार्यं	धारण करने योग्यको
धृतवती	इसने धारण कर लिया ॥११॥

यैरिदं तपसा सृष्टं मुखं पुंसः परस्य ये ।
धार्यते यैरिह ज्योतिः शिवः पन्थाश्च दर्शितः ॥१२॥

यैः इदं तपसा सृष्टं मुखं पुंसः परस्य ये धार्यते यैः इह ज्योतिः शिवः पन्थाः च दर्शितः ॥१२॥

यैः तपसा	जिन्होंने तपोबलसे
इदं	इस जगतको
सृष्टं	उत्पन्न किया है
ये परस्य पुंसः	जो परम पुरुषके
मुखं	मुख हैं,
यैः इह	जो इस लोकमें
ज्योतिः	ज्योति स्वरूप परमात्माको
धार्यते	(हृदयमें) धारण करते हैं
च	तथा
शिवः पन्थाः	कल्याणकारी मार्ग
दर्शितः	दिखलाया है ॥१२॥

यान् वन्दन्त्युपतिष्ठन्ते लोकनाथाः सुरेश्वराः ।
भगवानपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः ॥१३॥

यान् वन्दन्ति उपतिष्ठन्ते लोकनाथाः सुर ईश्वराः भगवान् अपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः ॥१३॥

यान्	जिनकी	**पावनः**	परम पवित्र
लोकनाथाः	लोकपालगण,	**भगवान् अपि**	भगवान भी
सुर ईश्वराः	देवेश्वर गण	**वन्दन्ति**	वन्दना करते हैं,
विश्वात्मा	विश्वात्मा	**उपतिष्ठन्ति**	समीप खड़े होते हैं
श्रीनिकेतनः	लक्ष्मी-निवास,		॥१३॥

वयं तत्रापि भृगवः शिष्योऽस्या नः पितासुरः ।
अस्मद्धार्यं धृतवती शूद्रो वेदमिवासती ॥१४॥

वयं तत्र अपि भृगवः शिष्यः अस्या नः पिता असुरः अस्मत् धार्यं धृतवती शूद्रः वेदं इव असती ॥१४॥

तत्र अपि	उनमें भी	**धार्यं**	धारण करने योग्यको
वयं भृगवः	हम भृगुवंशी हैं,	**शूद्रः**	शूद्र द्वारा
अस्या असुरः	इसका असुर	**वेदं इव**	वेदके समान
पिता	पिता	**असती**	इस दुष्टाने
नः शिष्यः	हमारा शिष्य है	**धृतवती**	धारण कर लिया,
अस्मत्	फिर भी हमारे		॥१४॥

एवं शपन्तीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीमभाषत ।
रुषा श्वसन्त्युरङ्गीव धर्षिता दष्टदच्छदा ॥१५॥

एवं शपन्तीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीं अभाषत रुषा श्वसन्ति उरंगी इव धर्षिता दष्टदत् छदा ॥१५॥

एवं शपन्तीं	इस प्रकार गाली देती हुई	**रुषा**	क्रोधसे लम्बी
		श्वसन्ति	श्वास छोड़ती
गुरुपुत्रीं	गुरुपुत्रीसे	**दष्टदत् छदा**	दांतोंसे ओष्ठ दबाये
धर्षिता	चोट खायी	**शर्मिष्ठा**	शर्मिष्ठा
उरंगी इव	सर्पिणीके समान	**अभाषत**	बोली ॥१५॥

आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसे बहु भिक्षुकि ।
किं न प्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान् बलिभुजो यथा ॥१६॥

आत्मवृत्तं अविज्ञाय कत्थसे बहु भिक्षुकि किं न प्रतीक्षसे अस्माकं गृहान् बलिभुजः यथा ॥१६॥

भिक्षुकि	'भिक्षुकी !	**बलिभुजः**	बलि-भोजी कौए-कुत्ते
आत्मवृत्तं	अपना हाल	**अस्माकं गृहान्**	हमारे घरोंकी
अविज्ञाय	न जानकर	**प्रतीक्षसे न**	प्रतीक्षा नहीं करती' ॥१६॥
बहु कत्थसे	बहुत बकवाद कर रही है		
यथा	जैसे		

एवंविधैः सुपरुषैः क्षिप्त्वाऽऽचार्यसुतां सतीम् ।
शर्मिष्ठा प्राक्षिपत् कूपे वास आदाय मन्युना ॥१७॥

एवंविधैः सुपरुषैः क्षिप्त्वा आचार्य सुतां सतीं शर्मिष्ठा प्राक्षिपत् कूपे वास आदाय मन्युना ॥१७॥

एवंविधैः	इस प्रकारके	**मन्युना**	क्रोधशश
सुपरुषैः	अत्यन्त कठोर वचनोंसे	**वास आदाय**	उसका वस्त्र छीनकर
सतीं आचार्य	सती आचार्य	**शर्मिष्ठा**	शर्मिष्ठाने (उसे)
सुतां	पुत्रीका	**कूपे**	कुएँमें
क्षिप्त्वा	तिरस्कार करके	**प्राक्षिपत्**	फेंक दिया ॥१७॥

तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिर्मृगयां चरन् ।
प्राप्तो यदृच्छया कूपे जलार्थी तां ददर्श ह ॥१८॥

तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिः मृगयां चरन् प्राप्तः यदृच्छया कूपे जल अर्थी तां ददर्श ह ॥१८॥

तस्यां स्वगृहं	उसके अपने घर	**ययातिः प्राप्तः**	ययाति वहां आया
गतायां	चले जानेपर	**जल अर्थी**	जलके लिए
मृगयां चरन्	आखेट खेलता हुआ	**कूपे तां**	कुएँपर जाकर उसे
यदृच्छया	संयोगवश	**ह ददर्श**	निश्चय देखा ॥१८॥

दत्वा स्वमुत्तरं वासस्तस्यै राजा विवाससे ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः ॥१९॥

दत्वा स्वं उत्तरं वासः तस्यै राजा विवाससे गृहीत्वा पाणिना पाणिं उज्जहार दयापरः ॥१९॥

तस्यै विवाससे	उस वस्त्रहीनाको	**पाणिना**	अपने हाथसे
स्वं उत्तरं	अपना उत्तरीय	**पाणिं**	उसका हाथ
वासः	वस्त्र	**गृहीत्वा**	पकड़कर
दत्त्वा दयापरः	देकर दयालु होकर	**उज्जहार**	ऊपर खींच लिया
राजा	राजाने		॥१९॥

तं वीरमाहौशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा ।
राजंस्त्वया गृहीतो मे पाणिः परपुरञ्जय ॥२०॥

तं वीरं आह औशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा राजन् त्वया गृहीतः मे पाणिः परपुरञ्जयः ॥२०॥

औशनसी	शुक्राचार्यकी पुत्री	**परपुरञ्जयः**	'शत्रु-पुरियोंके विजेता
तं वीरं	उस वीरसे	**राजन्**	राजन् !
प्रेमनिर्भरया	प्रेमसे परिपूर्ण	**त्वया मे पाणिः**	आपने मेरा हाथ
गिरा आह	वाणीसे बोली	**गृहीतः**	पकड़ लिया है ॥२०॥

हस्तग्राहोऽपरो मा भूद् गृहीतायास्त्वया हि मे ।
एष ईशकृतो वीर सम्बन्धो नौ न पौरुषः ।
यदिदं कूपलग्नाया भवतो दर्शनं मम ॥२१॥

हस्तग्राहः अपरः मा भूत् गृहीतायाः त्वया हि मे एष ईशकृतः वीर सम्बन्धः नौ न पौरुषः यत् इदं कूपलग्नाया भवतः दर्शनं मम ॥२१॥

हि त्वया	क्योंकि तुम्हारे द्वारा	**अपरः मे**	दूसरा मेरा
गृहीतायाः	ग्रहण की गयी हूँ'	**हस्तग्राहः**	पाणिग्रहण करने-वाला

मा भूत्	मत होवे,	**पौरुषः न**	किसी पुरुषका नहीं
वीर एष	वीर ! यह	**यत् इदं**	क्योंकि यह
नौ	हम दोनोंका	**कूपलग्नाया**	कुएँमें गिरी
सम्बन्धः	सम्बन्ध	**मम भवतः**	मुझे आपका
ईशकृतः	ईश्वरका बनाया है,	**दर्शनं**	दर्शन हुआ है ॥२१॥

न ब्राह्मणो मे भविता हस्तग्राहो महाभुज ।
कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापाद् यमशपं पुरा ॥२२॥

न ब्राह्मणः मे भविता हस्तग्राहः महाभुज कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापात् यं अशपं पुरा ॥२२॥

महाभुज	महाबाहो !	**शापात्**	शापके कारण
यं पुरा	जिसे मैंने पहिले	**ब्राह्मणः मे**	कोई ब्राह्मण मेरा
अशपं	शाप दिया (उस)	**हस्तग्राहः**	पाणिग्रहण करने-
बार्हस्पत्यस्य	वृहस्पतिके पुत्र		वाला
कचस्य	कचके	**न भविता**	नहीं होगा ॥२२॥

ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहृतमात्मनः ।
मनस्तु तद्गतं बुद्ध्वा प्रतिजग्राह तद्वचः ॥२३॥

ययातिः अनभिप्रेतं दैव उपहृतं आत्मनः मनः तु तत् गतं बुद्ध्वा प्रतिजग्राह तत् वचः ॥२३॥

ययातिः	ययातिने	**तत् गतं**	उसमें लगा
अनभिप्रेतं	अनिच्छित	**बुद्ध्वा**	जानकर
दैव	दैवके द्वारा	**तत् वचः**	उसकी बातको
आत्मनः	अपनेको	**प्रतिजग्राह**	स्वीकार कर लिया
उपहृतं	दिये गये		॥२३॥
मनः तु	अपने मनको भी		

गते राजनि सा वीरे तत्र स्म रुदती पितुः ।
न्यवेदयत् ततः सर्वमुक्तं शर्मिष्ठया कृतम् ॥२४॥

गते राजनि सा वीरे तत्र स्म रुदती पितुः न्यवेदयत् ततः सर्वं यत् उक्तं शर्मिष्ठया कृतम् ॥२४॥

वीरे राजनि	उस वीर राजाके	**यत् उक्तं**	जो कहा और
गते सा	चले जानेपर वह	**कृतं**	किया गया था
रुदती ततः	रोती हुई वहां	**सर्वं पितुः**	सब पितासे
शर्मिष्ठया	शर्मिष्ठा द्वारा	**न्यवेदयत्**	निवेदन किया ॥२४॥

दुर्मना भगवान् काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन् ।
स्तुवन् वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात् ॥२५॥

दुर्मना भगवान् काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन् स्तुवन् वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात् ॥२५॥

भगवान्	(इससे) भगवान्	**वृत्तिं**	वृत्तिकी
काव्यः	शुक्राचार्य	**स्तुवन्**	प्रशंसा करते हुए
दुर्मना	दुःखी होकर	**स दुहित्रा**	पुत्रीके साथ
पौरोहित्यं	पुरोहिती-कर्मकी	**पुरात् ययौ**	नगरसे चल दिये
विगर्हयन्	निन्दा करते हुए		॥२५॥
च कापोतीं	तथा कबूतरकी शिलोञ्छ		

वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम् ।
गुरुं प्रसादयन् मूर्ध्ना पादयोः पतितः पथि ॥२६॥

वृषपर्वा तं आज्ञाय प्रत्यनीक विवक्षितं गुरुं प्रसादयन् मूर्ध्ना पादयोः पतितः पथि ॥२६॥

वृषपर्वा	वृषपर्वाने	**मूर्ध्ना**	सिरके बल
तं प्रत्यनीक	उस शत्रु-सेना द्वारा	**पथि**	मार्गमें
विवक्षितं	अभीष्ट (कि शुक्राचार्य दानवोंको त्याग दें)	**पादयोः पतितः**	चरणोंपर गिरकर
		गुरुं	गुरुको
		प्रसादयन्	प्रसन्न करने लगा
आज्ञाय	जानकर		॥२६॥

क्षणार्धमन्युर्भगवान् शिष्यं व्याचष्ट भार्गवः ।
कामोऽस्याः क्रियतां राजन् नैनां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥२७॥

क्षणार्धमन्युः भगवान् शिष्यं व्याचष्ट भार्गवः कामः अस्याः क्रियतां राजन् न एनां त्यक्तुं इह उत्सहे ॥२७॥

भगवान्	भगवान्	**अस्याः**	इस (देवयानी) की
भार्गवः	शुक्राचार्यका	**कामः क्रियतां**	इच्छा पूरी कीजिए
क्षणार्धमन्युः	क्रोध तो आधेक्षण रहता है	**एनां इह**	इसको यहां
		त्यक्तुं	छोड़ देनेका
शिष्यं	(वे) शिष्य	**उत्सहे**	उत्साह मैं
व्याचष्ट	(वृषपर्वा) से बोले	**न**	नहीं कर सकता'
राजन्	'राजन् !		॥२७॥

तथेत्यवस्थिते प्राह देवयानी मनोगतम् ।
पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा यातु मामनु ॥२८॥

तथा इति अवस्थिते प्राह देवयानी मनः गतं पित्रा दत्ता यतः यास्ये सानुगा यातु मां अनु ॥२८॥

तथा इति	'अच्छा' इस प्रकार	**पित्रा दत्ता**	'पिताके देनेपर
अवस्थिते	कहकर खड़े (वृषपर्वा) से	**यतः यास्ये**	जहां जाऊँगी
		सानुगा	अनुचरियोंके साथ (शर्मिष्ठा)
देवयानी	देवयानीने		
मनः गतं	अपने मनका भाव	**मां अनु यातु**	मेरे पीछे जावे'
प्राह	बतलाया		॥२८॥

स्वानां तत् सङ्कटं वीक्ष्य तदर्थस्य च गौरवम् ।
देवयानीं पर्यचरत् स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥२९॥

स्वानां तत् सङ्कटं वीक्ष्य तत् अर्थस्य च गौरवं देवयानीं पर्यचरत् स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥२९॥

स्वानां तत्	अपने लोगोंका वह	**दासवत्**	दासीकी भांति
सङ्कटं	संकट तथा		(शर्मिष्ठा)
च तत्	तथा उनके	**देवयानीं**	देवयानीकी
अर्थस्य	प्रयोजनकी	**पर्यचरत्**	सेवा करने लगी
गौरवं वीक्ष्य	गम्भीरता देखकर		॥२९॥
स्त्रीसहस्रेण	एक सहस्र सखियोंके साथ		

नाहुषाय सुतां दत्वा सह शर्मिष्ठयोशना ।
तमाह राजञ्छर्मिष्ठामाधास्तल्पे न कर्हिचित् ॥३०॥

नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठया उशना तं आह राजन् शर्मिष्ठां आधाः तल्पे न कर्हिचित् ॥३०॥

सह शर्मिष्ठया	शर्मिष्ठाके साथ	**राजन्**	'राजन् !
नाहुषाय	नहुषकुमार ययाति-को	**शर्मिष्ठां**	शर्मिष्ठाको
		कर्हिचित्	कभी भी
सुतां दत्त्वा	पुत्री देकर	**तल्पे**	अपनी शय्यापर
उशना तं	शुक्राचार्यने उनसे	**न आधाः**	नहीं लेना ॥३०॥
आह	कहा		

विलोक्यौशनसीं राजञ्छर्मिष्ठा सप्रजां क्वचित् ।
तमेव वव्रे रहसि सख्याः पतिमृतौ सती ॥३१॥

विलोक्य औशनसीं राजन् शर्मिष्ठा सप्रजां क्वचित् तं एव वव्रे रहसि सख्याः पतिं ऋतौ सती ॥३१॥

क्वचित्	कभी	**सख्याः पतिं**	सखीके पतिसे
औशनसीं	उशना-नन्दिनी देवयानीको	**रहसि**	एकान्तमें
		शर्मिष्ठा	शर्मिष्ठाने
सप्रजां	पुत्रवती	**ऋतौ सती**	ऋतुदानके लिए
विलोक्य	देखकर	**वव्रे**	प्रार्थना की ॥३१॥
तं एव	उसी		

राजपुत्यार्थितोऽपत्ये धर्मं चावेक्ष्य धर्मवित् ।
स्मरञ्छुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्यपद्यत ॥३२॥

राजपुत्रि अर्थितः अपत्ये धर्मं च अवेक्ष्य धर्मवित् स्मरन् शुक्रवचः काले दिष्टं एव अभ्यपद्यत ॥३२॥

राजपुत्रि	राजपुत्री द्वारा	**शुक्रवचः**	शुक्राचार्यकी बातका
अपत्ये अर्थितः	सन्तानके लिए प्रार्थना करनेपर	**काले स्मरन्**	उस समय स्मरण करके
धर्मवित्	धर्मज्ञ (ययाति) ने	**दिष्टं एव**	भाग्य विधानको ही
धर्मं अवेक्ष्य च	अपना धर्म देखकर तथा	**अभ्यपद्यत**	अपनाया ॥३२॥

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥३३॥

यदुं च तुर्वसुं च एव देवयानी व्यजायत द्रुह्युं च अनुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणो ॥३३॥

यदुं च	यदुको	**च अनुं**	तथा अनु
च तुर्वसुं	तथा तुर्वसुको	**च पुरुं**	और पुरुको
एव	भी	**वार्षपर्वणी**	वृषपर्वा-पुत्री
देवयानी	देवयानीने,	**शर्मिष्ठा**	शर्मिष्ठाने
च द्रुह्युं	एवं द्रुह्यु	**व्यजायत**	उत्पन्न किया ॥३३॥

गर्भसम्भवमासुर्या भर्तुर्विज्ञाय मानिनी ।
देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्च्छिता ॥३४॥

गर्भं सम्भवं आसुर्या भर्तुः विज्ञाय मानिनी देवयानी पितुः गेहं ययौ क्रोध विमूर्छिता ॥३४॥

आसुर्या	असुर-पुत्री शर्मिष्ठा-को	**गर्भ सम्भवं**	गर्भ रहा
भर्तुः	अपने पतिसे	**विज्ञाय**	जानकर
		मानिनी	मानिनी

देवयानी	देवयानी	**पितुः गेहं ययौ**	पिताके घर चल पड़ी ॥३४॥
क्रोध	क्रोधसे		
विमूर्छिता	मूर्छितप्राय होकर		

प्रियामनुगतः कामी वचोभिरुपमन्त्रयन् ।
न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः ॥३५॥

प्रियां अनुगतः कामी वचः भिः उपमन्त्रयन् न प्रसादयितुं शेके पाद संवाहन आदिभिः ॥३५॥

कामी	कामी (ययति)	**पाद संवाहन**	चरण दबाने (पकड़ने)
प्रियां	प्रिया (देवयानी) के	**आदिभिः**	आदि द्वारा
अनुगतः	पीछे जाकर	**प्रसादयितुं**	प्रसन्न करनेमें
वचः भिः	वाणीके द्वारा	**शेके न**	समर्थ नहीं हुआ ॥३५॥
उपमन्त्रयन्	मनाता हुआ		

शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामानृतपूरुष ।
त्वां जरा विशतां मन्द विरूपकरणी नृणाम् ॥३६॥

शुक्रः तं आह कुपितः स्त्रीकाम अनृत पूरुष त्वां जरा विशतां मन्द विरूपकरणी नृणाम् ॥३६॥

कुपितः शुक्रः	कुपित शुक्राचार्यने	**नृणां**	मनुष्योंको
तं आह	उससे कहा—	**विरूपकरणी**	कुरूप करनेवाला
स्त्रीकाम	'स्त्री कामी	**जरा त्वां**	वृद्धावस्था तुझमें
मन्द	मूर्ख,	**विशतां**	प्रवेश कर जाय ॥३६॥
अनृत पूरुष	मिथ्याभाषी पुरुष !		

ययातिरुवाच

अतृप्तोऽस्म्यद्य कामानां ब्रह्मन् दुहितरि स्म ते ।
व्यत्यस्यतां यथाकामं वयसा योऽभिधास्यति ॥३७॥

अतृप्तः अस्मि अद्य कामानां ब्रह्मन् दुहितरि स्म ते व्यत्यस्यतां यथा कामं वयसा यः अभिधास्यति ॥३७॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**अस्मि**	हूँ (तब शुक्रने कहा)
ते दुहितरि	आपकी पुत्रीके साथ	**यः यथा कामं**	'जो इच्छानुसार
कामानां	विषय भोगोंसे	**वयसा**	अपनी अवस्था
अद्य	अभी तक	**अभिधास्यति**	देता हो (उससे)
अतृप्तः	अतृप्त	**व्यत्यस्यतां**	बदल लो' ॥३७॥

श्रीशुक उवाच*

इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत ।

इति लब्ध व्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठं अवोचत

इति	ऐसी	**ज्येष्ठं पुत्रं**	बड़े पुत्र (यदु) से
व्यवस्थानं	व्यवस्था	**अवोचत**	बोला
लब्ध	पाकर		

ययातिरुवाच*

यदो तात प्रतीच्छेमां जरां देहि निजं वयः ॥३८॥

यदो तात प्रतीच्छ इमां जरां देहि निजं वयः ॥३८॥

तात यदो	तात यदु !	**निजं वयः**	अपनी अवस्था
इमां जरां	यह बुढ़ापा	**देहि**	(मुझे) दे दो । ३८॥
प्रतीच्छ	ले लो, और		

मातामहकृतां वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम् ।

वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः ॥३९॥

मातामह कृता वत्स न तृप्तः विषयेषु अहं वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः ॥३९॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

मातामह	तुम्हारे नानाका	**भवदीयेन**	तुम्हारी
कृतां	बनाया (यह विधान) है,	**वयसा**	अवस्थासे
		कतिपयाः समाः	कुछ वर्षों तक
वत्स विषयेषु	वत्स ! विषय भोगोंसे	**रंस्ये**	रमण करूँगा ॥३९॥
अहं तृप्तः न	मैं तृप्त नहीं हुआ हूँ,		

यदुरुवाच

नोत्सहे जरसा स्थातुमन्तरा प्राप्तया तव ।
अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पूरुषः ॥४०॥

न उत्सहे जरसा स्थातुं अन्तरा तव त्वया अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं न एति पूरुषः ॥४०॥

अन्तरा	बीचमें ही	**पूरुषः**	पुरुष
प्राप्तया	प्राप्त हुए	**ग्राम्यं सुखं**	काम-सुखको
तव जरसा	आपके बुढ़ापेमें	**अविदित्वा**	जाने बिना
स्थातुं	स्थित होनेका	**वैतृष्ण्यं**	उनसे विरक्त
न उत्सहे	उत्साह नहीं करता	**न एति**	नहीं होता ॥४०॥

श्रीशुक उवाच*

तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत ।
प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्ये नित्यबुद्धयः ॥४१॥

तुर्वसुः चोदितः पित्रा द्रुह्युः च अनुः च भारत प्रत्याचख्युः अधर्मज्ञा हि अनित्ये नित्य बुद्धयः ॥४१॥

भारत	परीक्षित !	**अनित्ये**	अनित्य (विषयों) को
पित्रा तुर्वसुः	पिता द्वारा तुर्वसु,	**नित्य बुद्धयः**	नित्य मानते थे,
द्रुह्युः च अनुः	द्रुह्यु तथा अनु	**अधर्मज्ञा**	धर्मको न जाननेवाले
चोदितः	प्रेरित किये गये;		उन्होंने
	किन्तु	**प्रत्याचख्युः**	उलटा उत्तर दे
हि	क्योंकि		दिया ॥४१॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अपृच्छत् तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम् ।
न त्वमग्रजवद् वत्स मां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥४२॥

अपृच्छत् तनयं पूरुं वयसा ऊनं गुण अधिकं न त्वं अग्रजवत् वत्स मां प्रत्याख्यातुं अर्हसि ॥४२॥

वयसा ऊनं	आयुसे छोटेपर	**अग्रजवत्**	अपने बड़े भाइयों-की भांति
गुण अधिकं	गुणोंमें बड़े	**मां प्रत्याख्यातुं**	मुझे उलटा उत्तर
तनयं पूरुं	अपने पुत्र पुरुसे	**न अर्हसि**	नहीं देना चाहिए ॥४२॥
अपृच्छत्	(ययातिने) पूछा—		
वत्स त्वं	बेटा ! तुमको		

पूरुरुवाच

को नु लोके मनुष्येन्द्र पितुरात्मकृतः पुमान् ।
प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद् विन्दते परम् ॥४३॥

कः नु लोके मनुष्येन्द्र पितुः आत्मकृतः पुमान् प्रति कर्तुं क्षमः यस्य प्रसादात् विन्दते परम् ॥४३॥

मनुष्येन्द्र	नरेन्द्र !	**कर्तुं**	चुकानेमें
लोके नु कः	संसारमें भला कौन	**क्षमः**	समर्थ है
पुमान्	पुरुष	**यस्य प्रसादात्**	जिनकी कृपासे
आत्मकृतः	शरीर देनेवाले	**परं विन्दते**	परम पद प्राप्त होता है ॥४३॥
पितुः प्रति	पिताका बदला		

उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात् प्रोक्तकारी तु मध्यमः ।
अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चरितं पितुः ॥४४॥

उत्तमः चिन्तितं कुर्यात् प्रोक्तकारी तु मध्यमः अधमः अश्रद्धया कुर्यात् अकर्तः उच्चरितं पितुः ॥४४॥

उत्तमः	उत्तम (पुत्र वह है जो)	**कुर्यात्**	कार्यको (स्वयं) कर दे,
चिन्तितं	(पिताके) सोचे	**प्रोक्तकारी**	कहनेपर करनेवाला

तु	तो	अकर्तः	जो करे ही नहीं वह
मध्यम	मध्यम है,	पितुः उच्चरितं	पिताका उत्सर्जित
अश्रद्धया कुर्यात्	जो बिना श्रद्धाके करे		मल-मूत्र है ॥४४॥
अधमः	वह अधम है,		

श्रीशक उवाच*

इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरां पितुः ।
सोऽपि तद्वयसा कामान् यथावज्जुजुषे नृप ॥४५॥

इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णात् जरां पितुः सः अपि तत् वयसा कामान् यथावत् जुजुषे नृप ॥४५॥

नृप	राजन् !	तत् वयसा	उस (पुरु) की अवस्था से
इति	ऐसा कहकर	यथावत्	यथोचित रूपसे
प्रमुदितः	प्रसन्न होकर	कामान्	काम-भोगोंका
पूरुः पितुः	पुरुने पिताकी	जुजुषे	सेवन करते रहे ॥४५॥
जरां	वृद्धावस्था		
प्रत्यगृह्णात्	उनसे ले ली,		
सः अपि	वे (ययाति) भी		

सप्तद्वीपपतिः सम्यक् पितृवत् पालयन् प्रजाः ।
यथोपजोषं विषयाञ्जुजुषेऽव्याहतेन्द्रियः ॥४६॥

सप्तद्वीपपतिः सम्यक् पितृवत् पालयन् प्रजाः यथा उपजोषं विषयान् जुजुषे अव्याहत इन्द्रियः ॥४६॥

सप्तद्वीपपतिः	वह सातों द्वीपोंका स्वामी	अव्याहत	अक्षुण्ण
		इन्द्रियः	इन्द्रिय-शक्ति
पितृवत्	पिताकी भांति	विषयान्	विषयोंका
प्रजाः पालयन्	प्रजाका पालन करते हुए	यथा उपजोषं	यथेच्छ उपभोग
		जुजुषे	करता रहा ॥४६॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

देवयान्यप्यनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः ।
प्रेयसः परमां प्रीतिमुवाह प्रेयसी रहः ॥४७॥

देवयानि अपि अनुदिनं मनः वाक् देह वस्तुभिः प्रेयसः परमां प्रीतिं उवाह प्रेयसी रहः ॥४७॥

प्रेयसी	प्रियतमा	**प्रेयसः**	अपने प्रियतमकी
देवयानि अपि	देवयानी भी	**परमां प्रीतिं**	परम प्रीति
अनुदिनं रह	प्रतिदिन एकान्तमें	**उवाह**	सम्पन्न करती रही ॥४७॥
मनः वाक्	मन, वाणी,		
देह वस्तुभिः	शरीर तथा पदार्थोंसे		

अयजद् यज्ञपुरुषं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम् ॥४८॥

अयजत् यज्ञपुरुषं क्रतुभिः भूरिदक्षिणैः सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम् ॥४८॥

सर्वदेवमयं	सर्वदेवस्वरूप,	**भूरिदक्षिणैः**	बहुत दक्षिणावाले
सर्ववेदमयं	सर्ववेदमय	**क्रतुभिः**	यज्ञों द्वारा
यज्ञपुरुषं	यज्ञ-पुरुष	**अयजत्**	(उसने) यजन किया ॥४८॥
देवं हरिं	परमाराध्य श्रीहरिका		

यस्मिन्निदं विरचितं व्योम्नीव जलदावलिः ।
नानेव भाति नाभाति स्वप्नमायामनोरथः ॥४९॥

यस्मिन् इदं विरचितं व्योम्नि इव जलद अवलिः नाना इव भाति न आभाति स्वप्न माया मनोरथः ॥४९॥

व्योम्नि	आकाशमें	**विरचितं**	बना हुआ
जलद	मेघ	**इदं नाना**	यह नानापनाकी
अवलिः इव	समूहके समान	**इव**	भांति
स्वप्न माया	स्वप्न, माया तथा	**भाति**	कभी प्रतीत होता है,
मनोरथाः	मनोरथोंके समान	**न आभाति**	कभी नहीं प्रतीत होता ॥४९॥
यस्मिन्	जिसमें		

तमेव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयम् ।
नारायणमणीयांसं निराशीरयजत् प्रभुम् ॥५०॥

तं एव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयं नारायणं अणीयांसं निराशीः अयजत् प्रभुम् ॥५०॥

तं एव	उसी	**प्रभुं नारायणं**	सर्वेश नारायणको
गुहाशयं	सर्वान्तर्यामी	**हृदि विन्यस्य**	हृदयमें धारण करके
वासुदेवं	वासुदेव	**निराशीः**	निष्काम भावसे
अणीयांसं	अत्यन्त सूक्ष्म	**अयजत्**	आराधना की ॥५०॥

एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनः सुखम् ।
विदधानोऽपि नातृप्यत् सार्वभौमः कदिन्द्रियैः ॥५१॥

एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैः मन सुखं विदधानः अपि न अतृप्यत् सार्वभौमः कद इन्द्रियैः ॥५१॥

मनःषष्ठै	जिनमें मन छठवां है उन	**मनः सुखं**	अपने मनको सुख
		विदधानः अपि	देता हुआ भी
कद इन्द्रियैः	दुष्ट इन्द्रियों द्वारा	**सार्वभौमः**	वह सार्वभौम राजा
वर्षसहस्राणि	एक सहस्र वर्ष तक	**अतृप्यत् न**	तृप्त नहीं हुआ ॥५१॥
एवं	इस प्रकार		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

स इत्थमाचरन् कामान् स्त्रैणोऽपह्नवमात्मनः ।
बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ॥१॥

स इत्थं आचरन् कामान् स्त्रैणः अपह्नवं आत्मनः बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णः गाथां एतां अगायत ॥१॥

इत्थं	इस प्रकार	**स**	वह (ययाति उन भोगोंसे)
स्त्रैणः	स्त्रीके वश होकर	**निर्विण्णः**	खिन्न होकर
कामान्	भोगोंको	**प्रियायै**	अपनी प्रिया (देव-यानी) से
आचरन्	भोगता हुआ	**एतां गाथां**	यह गाथा (कल्पित कथा)
आत्मनः	अपना	**अगायत**	कहने लगा ॥१॥
अपह्नवं	अधःपतन		
बुद्ध्वा	जानकर		

ययाति रुवाच*

शृणु भार्गव्यमूं गाथां मद्विधाचरितां भुवि ।
धीरा यस्यानुशोचन्ति वने ग्रामनिवासिनः ॥२॥

शृणु भार्गवि अमूं गाथां मत् विधा आचरितं भुवि धीरा यस्य अनुशोचन्ति वने ग्राम निवासिनः ॥२॥

भार्गवि	देवयानी !	**यस्य**	जिनके विषयमें
भुवि धीरा	पृथ्वीपर जितेन्द्रिय पुरुष	**अनुशोचन्ति**	बराबर चिन्ता करते हैं वैसे

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

मत् विधा	मेरे समान	अमूं गाथां	इस गाथाको
ग्राम निवासिनः	ग्राम निवासीकी	शृणु	सुनो ॥२॥
आचरितां	आचरण की हुई		

बस्त एको वने कश्चिद् विचिन्वन् प्रियमात्मनः ।
ददर्श कूपे पतितां स्वकर्मवशगामजाम् ॥३॥

बस्त एकः वने कश्चित् विचिन्वन् प्रियं आत्मनः ददर्श कूपे पतितां स्वकर्म वशगां अजाम् ॥३॥

कश्चित् एकः	किसी एक	स्वकर्म	अपने कर्मके
बस्त वने	बकरेने वनमें	वशगां	वशमें हुई
आत्मनः प्रियं	अपने प्रिय भोगोंको	कूपे पतितां	कुएँमें गिरी
विचिन्वन्	ढूंढ़ते हुए	अजां ददर्श	बकरीको देखा ॥३॥

तस्या उद्धरणोपायं बस्तः कामी विचिन्तयन् ।
व्यधत्त तीर्थमुद्धृत्य विषाणाग्रेण रोधसी ॥४॥

तस्य उद्धरण उपायं बस्तः कामी विचिन्तयन् व्यधत्त तीर्थं उद्धृत्य विषाण अग्रेण रोधसी ॥४॥

कामी तस्य	उस कामीने उसके	रोधसी तीर्थं	कुएँके पासका जल
उद्धरण उपायं	उद्धारका उपाय	उद्धृत्य	खोदकर
विचिन्तयन्	सोचकर	व्यधत्त	बनाया ॥४॥
विषाण अग्रेण	अपनी सींगकी नोकसे		

सोत्तीर्य कूपात् सुश्रोणी तमेव चकमे किल ।
तया वृतं समुद्वीक्ष्य बह्व्योऽजाः कान्तकामिनीः ॥५॥

स उत्तीर्य कूपात् सुश्रोणी तं एव चकमे किल तया वृतं समुद् वीक्ष्य बह्व्यः अजाः कान्त कामिनीः ॥५॥

स सुश्रोणी	वह सुन्दरी	उत्तीर्य	ऊपर तैरकर
कूपात्	कुएँसे (जल भरजाने-से)	किल तं एव	अरे उसीको
		चकमे	चाहने लगी,

तया वृतं	उसके द्वारा वरण किया गया	**बह्व्यः अजाः**	बहुत-सी बकरियां (उसके साथ हो गयी) ॥५॥
समुद् वीक्ष्य	उसे देखकर		
कान्त कामिनी:	पति चाहनेवाली		

पीवानं श्मश्रुलं प्रेष्ठं मीढ्वांसं याभकोविदम् ।
स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्धनः ।
रेमे कामग्रहग्रस्त आत्मानं नावबुध्यत ॥६॥

पीवानं श्मश्रुलं प्रेष्ठं मीढ्वांसं याभकोविदं स एकः अजवृषः तासां बह्वीनां रतिवर्धनः रेमे कामग्रह ग्रस्त आत्मानं न अवबुध्यत ॥६॥

पीवानं	मोटे	**तासां बह्वीनां**	उन बहुत-सी का
श्मश्रुलं	दाढ़ीवाले,	**रतिवर्धनः**	रतिसुख बढ़ानेवाला होकर
प्रेष्ठं	प्रिय,		
मीढ्वांसं	रति सुख दायक,	**कामग्रह**	कामरूपी ग्रहसे
याभकोविदं	मैथुन-शब्द करनेमें कुशल	**ग्रस्त रेमे**	ग्रस्त होकर रमण करने लगा,
स एकः	वह अकेला	**आत्मानं**	अपनेको
अजवृषः	बकरा सांड़	**न अवबुध्यत**	नहीं जान सका ॥६॥

तमेव प्रेष्ठतमया रममाणमजान्यया ।
विलोक्य कामसंविग्ना नामृष्यद् बस्तकर्म तत् ॥७॥

तं एव प्रेष्ठतमया रममाणं अजान्यया विलोक्य काम संविग्ना न अमृष्यत् बस्त कम तत् ॥७॥

प्रेष्ठतमया	प्रियतमाके	**काम**	कामसे
अजान्यया	अनजानमें	**संविग्ना**	उद्विग्न होकर
एव रममाणं	इस प्रकार रमण करते	**बस्त तत् कर्म**	बकरेके उस कर्मको
		अमृष्यत् न	सहन नहीं कर सकी ॥७॥
तं विलोक्य	उसे देखकर		

तं दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम् ।
इन्द्रियारामसुत्सृज्य स्वामिनं दुःखिता ययौ ॥८॥

तं दुर्हृदं सुहृत् रूपं कामिनं क्षण सौहृदं इन्द्रियारामं उत्सृज्य स्वामिनं दुःखिता ययौ ॥८॥

तं कामिनं	उस कामी,	**इन्द्रियारामं**	इन्द्रिय लोलुपको
क्षण	क्षणिक	**दुःखिता**	दुःखी होकर
सौहृदं	प्रीति करनेवाले,	**उत्सृज्य**	त्यागकर
सुहृद रूपं	सुहृद रूपी	**स्वामिनं**	अपने स्वामीके पास
दुर्हृदं	दुष्ट हृदय	**ययौ**	जाने लगी ॥८॥

सोऽपि चानुगतः स्त्रैणः कृपणस्तां प्रसादितुम् ।
कुर्वन्निडविडाकारं नाशक्नोत् पथि संधितुम् ॥९॥

सः अपि च अनुगतः स्त्रैणः कृपणः तां प्रसादितुं कुर्वन् इडविडाकारं नाशक्नोत् पथि सन्धितुम् ॥९॥

सः स्त्रैणः अपि	वह स्त्रीजित भी	**इडविडाकारं**	इडविडाकार (बकरे का शब्द विशेष)
कृपणः तां	दीन होकर उसे	**कुर्वन्**	करके भी
प्रसादितुं	प्रसन्न करनेके लिए	**पथि संधितुं**	मार्गमें मनानेमें
अनुगतः	उसके पीछे गया	**ना शक्नोत्**	सफल नहीं हुआ ॥९॥
च	तथा		

तस्यास्तत्र द्विजः कश्चिदजास्वाम्यच्छिनद् रुषा ।
लम्बन्तं वृषणं भूयः सन्दधेऽर्थाय योगवित् ॥१०॥

तस्याः तत्र द्विजः कश्चित् अजास्वामि अच्छिनत् रुषा लम्बन्तं वृषणं भूयः सन्दधे अर्थाय योगवित् ॥१०॥

तत्र तस्याः	वहां उस	**लम्बन्तं**	लटकते
अजास्वामि	बकरीके स्वामी	**वृषणं**	अण्डकोशको
कश्चित् द्विजः	किसी ब्राह्मणने	**अच्छिनत्**	काट दिया
रुषा	क्रोधमें आकर		

योगवित्	उस उपाय जानने-वालेने	अर्थाय भूयः सन्दधे	प्रयोजनवश फिर जोड़ दिया ॥१०॥

सम्बद्धवृषणः सोऽपि ह्यजया कूपलब्धया ।
कालं बहुतिथं भद्रे कामैर्नाद्यापि तुष्यति ॥११॥

सम्बद्ध वृषणः सः अपि हि अजया कूप लब्धया कालं बहुतिथं भद्रे कामैः न अद्य अपि तुष्यति ॥११॥

सः अपि	वह भी	बहुतिथं	बहुत लम्बे समयके
सम्बद्ध वृषणः	अंडकोश जुड़जाने-पर	कालं	कालमें
		कामैः	भोगोंसे
हि कूप लब्धया	क्योंकि कुएँसे मिली	अद्य अपि	अब तक भी
अजया	बकरीके साथ	तुष्यति न	सन्तुष्ट नहीं होता
भद्रे	कल्याणी !		है ॥११॥

तथाहं कृपणः सुभ्रु भवत्याः प्रेमयन्त्रितः ।
आत्मानं नाभिजानामि मोहितस्तव माययाः ॥१२॥

तथा अहं कृपणः सुभ्रु भवत्याः प्रेम यन्त्रितः आत्मानं न अभि जानामि मोहितः तव माययाः ॥१२॥

सुभ्रु	सुन्दर भौंहों वाली !	तव माययाः	तुम्हारी मायासे
तथा अहं	उसी प्रकार मैं	मोहितः	मोहित होकर
भवत्याः	तुम्हारे	आत्मानं	अपने आपको
प्रेम यन्त्रितः	प्रेमके वश हुआ	न	नहीं
कृपणः	दीन हुआ	अभि जानामि	पहिचानता हूँ ॥१२॥

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥१३॥

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः न दुह्यन्ति मनः प्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥१३॥

पृथिव्यां यत्	पृथ्वीमें जितना	पुंसः ते	पुरुष हैं उनकी
व्रीहियवं	जौ आदि अन्न है,	मनः प्रीतिं	मनकी प्रसन्नता
हिरण्यं पशवः	स्वर्ण, पशु और		(तृप्ति)
स्त्रियः	स्त्रियां हैं (वे सब)	न दुह्यन्ति	नहीं दे सकते ॥१३॥
कामहतस्य	जो विषय-पीड़ित		

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥१४॥

न जातु कामः कामानां उपभोगेन शाम्यति हविषा कृष्णवर्त्मा इव भय एव अभिवर्धते ॥१४॥

कामानां	भोगोंको	हविषा	घीसे
उपभोगेन	भोगनेसे	कृष्णवर्त्मा इव	अग्निके समान
कामः जातु	कामना कभी	भूय एव	अधिक ही
शाम्यति न	शान्त नहीं हो सकती,	अभिवर्धते	बढ़ती है ॥१४॥

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमङ्गलम् ।
समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥१५॥

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु अमङ्गलं समदृष्टेः तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥१५॥

यदा	जब	तदा समदृष्टेः	तब उस समदर्शी
सर्वभूतेषु	सब प्राणियोंके प्रति	पुंसः सर्वाः	पुरुषके लिए सब
अमंगलं	अमंगलकी	दिशः	दिशाएँ
भावं	भावना	सुखमया	सुखमय हो जाती
न कुरुते	नहीं करता		हैं ॥१५॥

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते ।
तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥१६॥

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिः जीर्यतः या न जीर्यते तां तृष्णां दुःख निवहां शर्मकामः द्रुतं त्यजेत् ॥१६॥

दुर्मतिभिः	दुर्बुद्धि लोगों द्वारा
या	जो त्यागने में
दुस्त्यजा	बहुत कठिन है,
या	जो (शरीरके)
जीर्यतः	वृद्ध होनेपर भी
जीर्यते न	बूढ़ी (शिथिल) नहीं होती
तां दुःख	उस दुःख
निवहां	बहुल
तृष्णां	तृष्ण को
शर्मकामः	शान्ति चाहनेवाला
द्रुतं त्यजेत्	शीघ्र त्याग दे ॥१६॥

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥१७॥

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा ना विविक्त आसनः भवेत् बलवान् इन्द्रिय-ग्रामः विद्वांसं अपि कर्षति ॥१७॥

मात्रा स्वस्रा	माता, बहिन
वा दुहित्रा	अथवा पुत्रीके साथ
विविक्त	एकान्तमें
आसनः	बैठनेवाला
ना भवेत्	न बने,
इन्द्रियग्रामः	इन्द्रिय समूह
बलवान्	बलवान् है,
विद्वांसं अपि	विद्वानको भी
कर्षति	अपनी ओर खींच लेते हैं ॥१७॥

पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयान् सेवतोऽसकृत् ।
तथापि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते ॥१८॥

पूर्णं वर्ष सहस्रं मे विषयान् सेवतः असकृत् तथा अपि च अनुसवनं तृष्णा तेषु उपजायते ॥१८॥

मे असकृत्	मुझे निरन्तर
विषयान्	भोगोंका
सेवतः	सेवन करते हुए
सहस्रं	सहस्र
वर्षं पूर्णं	वर्ष पूरे हो गये
तथा अपि च	ऐसा होनेपर भी
तेषु अनुसवनं	उनमें नित्यप्रति
तृष्णा	तृष्णा
उपजायते	बढ़ती जाती है ॥१८॥

तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् ।
निर्द्वन्द्वो निरहंकारश्चरिष्यामि मृगैः सह ॥१९॥

तस्मात् एतां अहं त्यक्त्वा ब्रह्मणि आधाय मानसं निर्द्वन्द्वः निरहंकारः चरिष्यामि मृगैः सह ॥१६॥

तस्मात्	इसलिए	**निर्द्वन्द्वः**	(शीत-उष्णादि) द्वन्द्वों को छोड़कर
अहं एतां	मैं इसको	**निरहंकारः**	अहंकारहीन होकर
त्यक्त्वा	त्यागकर	**मृगैः सह**	मृगोंके साथ (वनमें)
मानसं	चित्तको	**चरिष्यामि**	विचरण करूँ ॥१६॥
ब्रह्मणि	परमब्रह्ममें		
आधाय	लगाकर		

दृष्टं श्रुतमसद् बुद्ध्वा नानुध्यायेन्न संविशेत् ।
संसृतिं चात्मनाशं च तत्र विद्वान् स आत्मदृक् ॥२०॥

दृष्टं श्रुतं असत् बुद्ध्वा न अनुध्यायेत् न संविशेत् संसृतिं च आत्मनाशं च तत्र विद्वान् स आत्मदृक् ॥२०॥

दृष्टं	देखे (लौकिक)	**च**	तथा
श्रुतं	सुने (पार लौकिक)	**आत्मनाशं च**	अपने पतनको भी
असत् बुद्ध्वा	(भोगोंको) असत् जानकर	**तत्र**	उस
		विद्वान्	(चिन्तन तथा सेवन) में जाननेवाला
न अनुध्यायेत्	न उनका चिन्तन करे		
न संविशेत्	न उनमें स्थित हो,	**स**	वही
संसृतिं	(इससे) जन्म-मरण	**आत्मदृक्**	आत्मज्ञानी है ॥२०॥

श्रीशुक उवाच—*

इत्युक्त्वा नाहुषो जायां तदीयं पूरवे वयः ।
दत्त्वा स्वां जरसं तस्मादाददे विगतस्पृहः ॥२१॥

इति उक्त्वा नाहुषः जायां तदीयं पूरवे वयः दत्त्वा स्वां जरसं तस्मात् आददे विगतस्पृहः ॥२१॥

जायां इति	पत्नीसे यह	**पूरवे तदीयं**	पुरुको उसकी
उक्त्वा	यहकर	**वयः दत्त्वा**	युवावस्था देकर

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

विगतस्पृहः	लालसाहीन होकर	जरसं आददे	बुढ़ापा ले लिया
तस्मात् स्वां	उससे अपना		॥२१॥

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां द्रुह्युं दक्षिणतो यदुम् ।
प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्र उदीच्यामनुमीश्वरम् ॥२२॥

दिशि दक्षिण पूर्वस्यां द्रुह्युं दक्षिणतः यदुं प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्रे उदीच्यां अनुं ईश्वरम् ॥२२॥

दक्षिण	दक्षिण-	तुर्वसुं	तुर्वसुको
पूर्वस्यां	पूर्व (आग्नेय कोण)	उदीच्यां अनुं	उत्तरका अनुको
दिशि द्रुह्युं	दिशा या द्रुह्युको,	ईश्वरं चक्रे	राजा बना दिया
दक्षिणतः यदुं	दक्षिणका यदुको,		॥२२॥
प्रतीच्यां	पश्चिमका		

भूमण्डलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम् ।
अभिषिच्याग्रजांस्तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥२३॥

भूमण्डलस्य सर्वस्य पूरुं अर्हत्तमं विशां अभिषिच्य अग्रजान् तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥२३॥

सर्वस्य	सम्पूर्ण	अभिषिच्य	अभिषेक करके
भूमण्डलस्य	पृथ्वी-मण्डलके	अग्रजान्	बड़े भाइयोंको
विशां	व्यापारियोंके	तस्य वेश स्थाप्य	उसके अधीन बनाकर
अर्हत्तमं	परमपूजनीय पदपर	वनं ययौ	वनमें चले गये ॥२३॥
पूरुं	पुरुका		

आसेवितं वर्षपूगान् षड्वर्गं विषयेषु सः ।
क्षणेन मुमुचे नीडं जातपक्ष इव द्विजः ॥२४॥

आसेवितं वर्ष पूगान् षड्वर्गं विषयेषु सः क्षणेन मुमुचे नीडं जात पक्ष इव द्विजः ॥२४॥

जात पक्ष	पंख उत्पन्न हो जाने पर	**आसेवितं**	भली प्रकार भोगे हुए
नीडं द्विजः	घोंसलेको पक्षीकी	**विषयेषु**	भोगोंको
इव	भांति	**सः**	उन्होंने एक
वर्ष पूगान्	बहुत वर्षों तक	**क्षणेन मुमुचे**	क्षणमें त्याग दिया ॥२४॥
षड्वर्गं	शब्दादि छहो वर्गके		

स तत्र निर्मुक्तसमस्तसङ्गः
आत्मानुभूत्या विधुतत्रिलिङ्गः ।
परेऽमले ब्रह्मणि वासुदेवे
लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः ॥२५॥

स तत्र निर्मुक्त समस्त संगः आत्म अनुभूत्या विधुत त्रिलिगः परे अमले ब्रह्मणि वासुदेवे लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः ॥२५॥

स	उन (राजा ययाति)ने	**परे अमले**	परम निर्मल
तत्र	वहां (वनमें)	**ब्रह्मणि**	परमब्रह्म
समस्त संगः	सम्पूर्ण आसक्तियोंसे	**वासुदेवे**	वासुदेवमें
निर्मुक्त	छूटकर	**प्रतीतः**	प्रत्यक्ष
आत्म अनुभूत्या	आत्मानुभव द्वारा	**भागवतीं गतिं**	भागवती गति
त्रिलिगः	त्रिगुणमय देहसे	**लेभे**	प्राप्त की ॥२५॥
विधुत	मुक्त होकर		

श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभमात्मनः ।
स्त्रीपुंसोः स्नेहवैक्लव्यात् परिहासमिवेरितम् ॥२६॥

श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभं आत्मनः स्त्री पुंसोः स्नेह वैक्लव्यात् परिहासं इव इरितम् ॥२६॥

देवयानी	देवयानीने	**आत्मनः**	अपनेको
गाथां श्रुत्वा	उस गाथाको सुनकर	**प्रस्तोभं मेने**	उलाहना समझा

स्त्री पुंसोः	स्त्री पुरुषकी	परिहासं इव	परिहासके समान
स्नेह	स्नेह जन्य	इरितं	(यह गाथा) कही
वैक्लव्यात्	व्याकुलतासे		गयी है ॥२६॥

सा संनिवासं सुहृदां प्रपायामिव गच्छताम् ।
विज्ञायेश्वरतन्त्राणां मायाविरचितं प्रभोः ॥२७॥

सा सन्निवासं सुहृदां प्रपायां इव गच्छतां विज्ञाय ईश्वर तन्त्राणां माया विरचितं प्रभोः ॥२७॥

ईश्वर तन्त्राणां	ईश्वराधीन	इव	समान
सुहृदां	सुहृदोंका	प्रभोः माया	भगवानकी मायासे
सन्निवासं	एक साथ रहना	विरचितं	निर्मित
गच्छतां	जानेवालों (यात्रियों)	सा विज्ञाय	उसने जान लिया
प्रपायां	प्याऊपर (मिलने) के		॥२७॥

सर्वत्र संगमुत्सृज्य स्वप्नौपम्येन भार्गवी ।
कृष्णे मनः समावेश्य व्यधुनोल्लिगमात्मनः ॥२८॥

सर्वत्र संगं उत्सृज्य स्वप्न औपम्येन भार्गवी कृष्णे मनः सम आवेश्य व्यधुनोत् लिगं आत्मनः ॥२८॥

भार्गवी	भृगुवंशीया देवयानी	मनः कृष्णे	मनको श्रीकृष्णमें
सर्वत्र संगं	सब कहींकी आसक्ति	सम आवेश्य	भली प्रकार लगाकर
स्वप्न	स्वप्नके समान	आत्मनः लिगं	अपना लिग देह
औपम्येन	समझकर	व्यधुनोत्	नष्ट कर दिया ॥२८॥
उत्सज्य	त्यागकर		

नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ।
सर्वभूताधिवासाय शान्ताय बृहते नमः ॥२९॥

नमः तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे सर्वभूत अधिवासाय शान्ताय बृहते नमः ॥२९॥

वेधसे	जगन्निर्माता,	**भगवते**	भगवान
सर्वभूत	सम्पूर्ण प्राणियोंमें	**वासुदेवाय**	वासुदेव
अधिवासाय	निवास करनेवाले	**तुभ्यं नमः**	आपको नमस्कार
शान्ताय	शान्त		॥२६॥
बृहते नमः	ब्रह्म स्वरूपको नम-स्कार		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ विंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत ।
यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे ॥१॥

पूरोः वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातः असि भारत यत्र राजर्षयः वंश्या ब्रह्म वंश्याः च जज्ञिरे ॥१॥

भारत	परीक्षित !	**ब्रह्म वंश्या**	ब्राह्मण वंशधर
यत्र	जिसमें (तुम)	**जज्ञिरे**	उत्पन्न हुए हैं
जातः आसि	उत्पन्न हुए हो	**पूरोः वंशं**	उस पुरुका वंश
यत्र राजर्षयः	जिसके राजर्षि लोग	**प्रवक्ष्यामि**	वर्णन करता हूँ ॥१॥
वंश्या च	वंशधर तथा		

जनमेजयोह्यभूत् पूरोः प्रचिन्वांस्तत्सुतस्ततः ।
प्रवीरोऽथ नमस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत् ॥२॥

जनमेजयः हि अभूत् पूरोः प्रचिन्वान् तत् सुतः ततः प्रवीरः अथ नमस्युः वै तस्मात् चारुपदः अभवत् ॥२॥

पूरोः हि	पुरुका तो	**ततः प्रवीरः**	उससे प्रवीर
जनमेजयः	जनमेजय	**अथ वै नमस्युः**	फिर तो नमस्यु
अभूत्	उत्पन्न हुआ,	**तस्मात्**	उससे
तत् सुतः	उसका पुत्र	**चारुपदः**	चारुपद
प्रचिन्वान्	प्रचिन्वान्	**अभवत्**	उत्पन्न हुआ ॥२॥

तस्य सुदच्युरभूत् पुत्रस्तस्माद् बहुगवस्ततः ।
संयातिस्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्तत्सुतः स्मृतः ॥३॥

तस्य सुद्युः अभूत् पुत्रः तस्मात् बहुगवः ततः संयातिः तस्य अहंयातिः रौद्राश्वः तत् सुतः स्मृतः ॥३॥

तस्य पुत्रः	उसका पुत्र
सुद्युः अभूत	सुद्यु हुआ,
तस्मात् बहुगवः	उससे बहुगव
ततः संयातिः	उससे संयाति
तस्य अहंयातिः	उससे अहंयाति
तत् सुतः	उसका पुत्र
रौद्राश्वः स्मृतः	रौद्राश्व कहा गया है ॥३॥

ऋतेयुस्तस्य कुक्षेयुः स्थण्डिलेयुः कृतेयुकः ।
जलेयुः सन्ततेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः ॥४॥

ऋतेयुः तस्य कुक्षेयुः स्थण्डिलेयुः कृतेयुकः जलेयुः सन्ततेयुः च धर्म सत्य व्रतेयवः ॥४॥

तस्य ऋतेयुः	उसके ऋतेयु,
कुक्षेयुः	कुक्षेयु,
स्थण्डिलेयुः	स्थण्डिलेयु,
कृतेयुकः जलेयुः	कृतेयु, जलेयु,
सन्ततेयुः च	सन्ततेयु तथा
धर्म सत्य	धर्मेयु, सत्येयु,
व्रतेयवः	व्रतेयु ॥४॥

दशैतेऽप्सरसः पुत्रा वनेयुश्चावमः स्मृतः ।
घृताच्यामिन्द्रियाणीव मुख्यस्य जगदात्मनः ॥५॥

दश एते अप्सरसः पुत्रा वनेयुः च अवमः स्मृतः घृताच्यां इन्द्रियाणि इव मुख्यस्य जगत आत्मनः ॥५॥

जगत आत्मनः	विश्वात्मा
मुख्यस्य	मुख्य प्राणसे
इन्द्रियाणि इव	इन्द्रियोंके समान
अप्सरसः	अप्सरा
घृताच्यां एते	घृताचीसे इतने
दश पुत्रा	ये दस पुत्र हुए
च अवमः	तथा उनमें सबसे छोटा
वनेयुः स्मृतः	वनेयु कहा गया है ॥५॥

ऋतेयो रन्तिभारोऽभूत् त्रयस्तस्यात्मजा नृप ।
सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः ॥६॥

ऋतेयोः रन्तिभारः अभूत् त्रयः तस्य आत्मजा नृप सुमतिः ध्रुवः अप्रतिरथः कण्वः अप्रतिरथ आत्मजः ॥६॥

नृप	राजन् !	**आत्मजाः**	पुत्र हुए
ऋतेयोः	ऋतेयुसे	**सुमतिः ध्रुवः**	सुमति, ध्रुव,
रन्तिभारः	रन्तिभार	**अप्रतिरथः**	अप्रतिरथ,
अभूत्	उत्पन्न हुआ	**अप्रतिरथ**	अप्रतिरथका
तस्य त्रयः	उसके तीन	**आत्मजः कण्वः**	पुत्र कण्व हुआ ॥६॥

तस्य मेधातिथिस्तस्मात् प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः ।
पुत्रोऽभूत् सुमते रैभ्यो दुष्यन्तस्तत्सुतो मतः ॥७॥

तस्य मेधातिथिः तस्मात् प्रस्कण्व आद्या द्विजातयः पुत्र अभूत् सुमते रैभ्यः दुष्यन्तः तत् सुतः मतः ॥७॥

तस्य	उसके	**सुमते पुत्रः**	सुमतिका पुत्र
मेधातिथिः	मेधातिथि	**रैभ्यः अभूत्**	रैभ्य हुआ
तस्मात्	उससे	**तत् मतः सुतः**	उसका प्रिय पुत्र
प्रस्कण्व आद्या	प्रस्कण्व आदि	**दुष्यन्तः**	दुष्यन्त था ॥७॥
द्विजातयः	अनेक ब्राह्मण हुए		

दुष्यन्तो मृगयां यातः कण्वाश्रमपदं गतः ।
तत्रासीनां स्वप्रभया मण्डयन्तीं रमामिव ॥८॥

दुष्यन्तः मृगयां यातः कण्व आश्रम पदं गतः तत्र आसीनां स्वप्रभया मण्डयन्तीं रमां इव ॥८॥

दुष्यन्तः	दुष्यन्त	**गतः**	पहुँचा तो
मृगयां यातः	आखेट खेलने जाकर	**तत्र रमां इव**	वहां लक्ष्मीके समान
कण्व आश्रम	कण्वाश्रम	**मण्डयन्तीं**	शोभा सम्पन्ना
पदं	स्थानपर	**आसीनां**	बैठी हुई ॥८॥

विलोक्य सद्यो मुमुहे देवमायामिव स्त्रियम् ।
बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैर्वृतः ॥९॥

विलोक्य सद्यः मुमुहे देवमायां इव स्त्रियं बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैः वृतः ॥९॥

देवमायां	भगवानकी मायाके	**भटैः कतिपयैः**	कुछ सैनिकोंसे
इव	समान	**वृतः तां**	घिरा हुआ उस
स्त्रियं विलोक्य	स्त्रीको देखकर	**वरारोहां**	सुन्दरीसे
सद्यः मुमुहे	तत्काल मोहित हो गया	**बभाषे**	बोला ॥९॥

तद्दर्शनप्रमुदितः संनिवृत्तपरिश्रमः ।
पप्रच्छ कामसन्तप्तः प्रहसञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥१०॥

तत् दर्शन प्रमुदितः संनिवृत्त परिश्रमः पप्रच्छ काम सन्तप्तः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा ॥१०॥

तत्	उसको	**संनिवृत्त**	दूर करके
दर्शन	देखनेसे	**प्रहसन्**	मुस्कुराकर
प्रमुदितः	आनन्द मिला,	**श्लक्ष्णया**	कोमल
काम	कामवासना	**गिरा**	वाणीमें
संतप्तः	जागृत हो गई,	**पप्रच्छ**	पूछा ॥१०॥
परिश्रमः	थकावट		

दुष्यन्तोवाच*

का त्वं कमलपत्राक्षि कस्यासि हृदयङ्गमे ।
किं वा चिकीर्षितं त्वत्र भवत्या निर्जने वने ॥११॥

का त्वं कमलपत्र अक्षि कस्य असि हृदयंगमे किं वा चिकीर्षितं तु अत्र भवत्या निर्जने वने ॥११॥

कमलपत्र	पद्म-पत्र	**का त्वं**	तुम कौन हो ?
अक्षि	लोचने !	**कस्य असि**	किसकी (पुत्री) हो ?

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

हृदयंगमे	मनोरमे !	भवत्या किं	तुम्हारी क्या
अत्र	इस	चिकीर्षितं	करनेकी इच्छा है ?
निर्जने वने तु	निर्जन वनमें तो		॥११॥

व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्म्यहं त्वां सुमध्यमे ।
न हि चेतः पौरवाणामधर्मे रमते क्वचित् ॥१२॥

व्यक्तं राजन्य तनयां वेद्मि अहं त्वां सुमध्यमे न हि चेतः पौरवाणां अधर्मे रमते क्वचित् ॥१२॥

सुमध्यमे	सुमध्यमे !	हि	क्योंकि
अहं त्वां	मैं तुम्हें	पौरवाणां	पुरुवंशियोंका
व्यक्तं	स्पष्ट ही	चेतः क्वचित्	चित्त कभी भी
राजन्य तनयां	राज-पुत्री	अधर्मे	अधर्ममें
वेद्मि	समझता हूँ	न रमते	नहीं लगता ॥१२॥

शकुन्तलोवाच

विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने ।
वेदैतद् भगवान् कण्वो वीर किं करवाम ते ॥१३॥

विश्वामित्र आत्मजा एव अहं त्यक्ता मेनकया वने वेद एतत् भगवान् कण्वः वीर किं करवाम ते ॥१३॥

अहं	मैं	भगवान् कण्वः	भगवान् कण्व
मेनकया	मेनका अप्सरा द्वारा	एतत् वेद	यह बात जानते हैं,
वने त्यक्ता	वनमें छोड़ी गयी	वीर ते	वीर ! तुम्हारा
विश्वामित्र	विश्वामित्रकी	किं करवाम	क्या कार्य करूँ
एव	ही		॥१३॥
आत्मजा	पुत्री हूँ		

आस्यतां ह्यरविन्दाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः ।
भुज्यतां सन्ति नीवारा उष्यतां यदि रोचते ॥१४॥

आस्यतां हि अरविन्द अक्ष गृह्यतां अर्हणं च नः भुज्यतां सन्ति नीवारा उष्यतां यदि रोचते ॥१४॥

अरविन्द अक्ष	कमल-लोचन !
हि आस्यतां	अवश्य पधारिये
च नः अर्हणं	तथा हमारा सत्कार
गृह्यतां	ग्रहण कीजिए,
नीवारा सन्ति	कुछ नीवार (वन्य अन्न) हैं
भुज्यतां	उन्हें भोजन कीजिए और
यदि रोचते	यदि रुचि हो तो
उष्यतां	यहां निवास कीजिए ॥१४॥

दुष्यन्तोवाच

उपपन्नमिदं सुभ्रु जातायाः कुशिकान्वये ।
स्वयं हि वृणते राज्ञां कन्यकाः सदृशं वरम् ॥१५॥

उपपन्नं इदं सुभ्रु जातायाः कुशिक अन्वये स्वयं हि वृणते राज्ञां कन्यकाः सदृशं वरम् ॥१५॥

सुभ्रु	सुन्दर भौंहों वाली !
कुशिक अन्वये	कुशिक वंशमें
जातायाः	उत्पन्न हुई (तुम्हारी)
इदं उपपन्नं	यह बात उचित ही है
हि राज्ञां	क्योंकि राज
कन्यकाः	कन्याएँ
सदृशं वरं	अपने समान वरको
स्वयं वृणते	स्वयं वरण कर लेती हैं ॥१५॥

श्रीशुक उवाच*

ओमित्युक्ते यथाधर्ममुपयेमे शकुन्तलाम् ।
गान्धर्वविधिना राजा देशकालविधानवित् ॥१६॥

ओम् इति उक्ते यथा धर्मं उपयेमे शकुन्तलां गन्धर्व विधिना राजा देश काल विधानवित् ॥१६॥

ओम् इति	'अच्छा' इस प्रकार
उक्ते	कहनेपर
देश काल	देश, काल तथा
विधानवित्	शास्त्र-विधानको जाननेवाले

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

राजा यथा धर्मं	राजाने धर्मके अनुसार
गान्धर्व	गान्धर्व
विधिना	विधिसे
शकुन्तलां	शकुन्तलासे
उपयेमे	विवाह कर लिया ॥१६॥

अमोघवीर्यो राजर्षिर्महिष्यां वीर्यमादधे ।
श्वोभूते स्वपुरं यातः कालेनासूत सा सुतम् ॥१७॥

अमोघ वीर्यः राजर्षिः महिष्यां वीर्यं आदधे श्वभूते स्वपुरं यातः कालेन असूत सा सुतम् ॥१७॥

अमोघ वीर्यः	अव्यर्थ वीर्य
राजर्षिः	उस राजर्षिने
महिष्यां	उस महारानीमें
वीर्यं आदधे	वीर्याधान किया और
श्वभूते	सवेरा होनेपर
स्वपुरं यातः	अपने नगर चला गया
सा कालेन	उस (शकुन्तला) ने समयपर
सुतं असूत	पुत्र उत्पन्न किया ॥१७॥

कण्वः कुमारस्य वने चक्रे समुचिताः क्रियाः ।
बद्ध्वा मृगेन्द्रांस्तरसा क्रीडति स्म स बालकः ॥१८॥

कण्वः कुमारस्य वने चक्रे समुचिताः क्रियाः बद्ध्वा मृगेन्द्रान् तरसा क्रीडति स्म स बालकः ॥१८॥

वने कण्वः	वनमें कण्व ऋषिने
कुमारस्य	उस कुमारके
समुचिताः	सब उचित
क्रियाः	संस्कार
चक्रे	सम्पन्न किये,
स बालकः	वह बालक
तरसा	बलपूर्वक
मृगेन्द्रान्	सिंहोंको
बद्ध्वा	बाँधकर
क्रीडति स्म	उनके साथ खेलता था ॥१८॥

तं दुरत्ययविक्रान्तमादाय प्रमदोत्तमा ।
हरेरंशांशसम्भूतं भर्तुरन्तिकमागमत् ॥१९॥

तं दुरत्यय विक्रान्तं आदाय प्रमदा उत्तमा हरेः अंशांश सम्भूतं भर्तुः अन्तिकं आगमत् ॥१६॥

प्रमदा उत्तमा	नारीश्रेष्ठ (शकुन्तला)
तं दुरत्यय	उस दुष्पार
विक्रान्तं	पराक्रम वाले
हरेः अंशांश	श्रीहरिके अंशांशसे
सम्भूतं	उत्पन्न (बालक) को
आदाय	लेकर
भर्तुः अन्तिकं	पतिके समीप
आगमत्	आयी ॥१६॥

यदा न जगृहे राजा भार्यापुत्रावनिन्दितौ ।
शृण्वतां सर्वभूतानां खे वागाहाशरीरिणी ॥२०॥

यदा न जगृहे राजा भार्या पुत्राः अनिन्दितौ शृण्वतां सर्वभूतानां खे वाक् आह अशरीरिणी ॥२०॥

यदा राजा	जब राजाने
अनिन्दितौ	निर्दोष
भार्या पुत्राः	पत्नी तथा पुत्रको
न जगृहे	नहीं स्वीकार किया तब
अशरीरिणी	बिना शरीरके
खे वाक्	आकाशवाणीने
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके
शृण्वतां आह	सुनते हुए कहा ॥२०॥

माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ।
भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम् ॥२१॥

माता भस्त्रा पितुः पुत्रः येन जातः स एव सः भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मा अवमंस्थाः शकुन्तलाम् ॥२१॥

माता भस्त्रा	'माता तो धौंकनीके समान है
पुत्रः पितुः	पुत्र पिताका होता है,
स येन जातः	वह जिससे उत्पन्न होता है
सः स एव	वह उसीका स्वरूप होता है,
दुष्यन्त	दुष्यन्त !
पुत्रं भरस्व	पुत्रका भरण-पोषण करो,
शकुन्तलां	शकुन्तलाका
अवमंस्था मा	अपमान मत करो ॥२१॥

रेतोधाः पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात् ।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥२२॥

रेतः धाः पुत्रः नयति नरदेव यमक्षयात् त्वं च अस्य धाता गर्भस्य सत्यं आह शकुन्तला ॥२२॥

नरदेव	नरदेव !	**शकुन्तला**	शकुन्तलाने
रेतः धाः	अपने वीर्याधानसे उत्पन्न	**सत्यं आह**	सच कहा है कि
		अस्य गर्भस्य	इस गर्भका
पुत्रः	पुत्र	**त्वं च धाता**	तुम्हीं आधान करने वाले हो' ॥२२॥
यमक्षयात्	नरकसे		
नयति	निकाल लेता है,		

पितर्युपरते सोऽपि चक्रवर्ती महायशाः ।
महिमा गीयते तस्य हरेरंशभुवो भुवि ॥२३॥

पितरि उपरते सः अपि चक्रवर्ती महायशाः महिमा गीयते तस्य हरेः अंशभुवः भुवि ॥२३॥

पितरि	पिता (दुष्यन्त)के	**भुवि**	पृथ्वीपर
उपरते	मर जानेपर	**हरेः**	श्रीहरिके
सः अपि	वह (भरत) भी	**अंशभुवः**	अंशसे उत्पन्नके रूपमें
महायशाः	महान यशस्वी		
चक्रवर्ती	चक्रवर्ती हुआ	**गीयते**	वर्णन होती है ॥२३॥
तस्य महिमा	उसकी महिमा		

चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः ।
ईजे महाभिषेकेण सोऽभिषिक्तोऽधिराड्विभुः ॥२४॥

चक्रं दक्षिण हस्ते अस्य पद्मकोशः अस्य पादयोः ईजे महा अभिषेकेण सः अभिषिक्तः अधिराट् विभुः ॥२४॥

अस्य	इसके	**चक्रं**	चक्रका चिह्न तथा
दक्षिण हस्ते	दाहिने हाथमें	**अस्य पादयोः**	इसके चरणोंमें

पद्मकोशः	कमल पुष्पका चिह्न था	**अधिराट्**	सार्वभौम सम्राट् पदपर
विभुः सः	समर्थ वह	**अभिषिक्तः**	अभिषेक होनेपर
महा अभिषेकेण	महा अभिषेक विधिसे	**ईजे**	यज्ञ करने लगा ॥२४॥

पञ्चपञ्चाशता मेध्यैर्गङ्गायामनु वाजिभिः ।
मामतेयं पुरोधाय यमुनायामनु प्रभुः ॥२५॥
अष्टसप्ततिमेध्याश्वान् बबन्ध प्रददद् वसु ।
भरतस्य हि दौष्यन्तेरग्निः साचीगुणे चितः ।
सहस्रं बद्वशो यस्मिन् ब्राह्मणा गा विभेजिरे ॥२६॥

पञ्चपञ्चाशता मेध्यैः गङ्गायां अनु वाजिभिः मामतेयं पुरः आधाय यमुनायां अनु प्रभुः ॥२५॥

अष्टसप्तति मेध्य अश्वान् बबन्ध प्रददत् वसु सहस्रं बद्वश. यस्मिन् ब्राह्मणा गा विभेजिरे ॥२६॥

मामतेयं	ममताके पुत्र दीर्घतमा मुनिको	**अश्वान् मेध्य**	अश्वमेध यज्ञ
पुरः आधाय	आगे करके (आचार्य बनाकर)	**वसु प्रददत्**	धन देते हुए
प्रभुः	उस समर्थने	**बबन्ध**	बाँधे (सम्पन्न किये)
गंगायां अनु	गंगाके किनारे	**यस्मिन्**	जिन (यज्ञों) में
पञ्चपञ्चाशता	पचपन	**सहस्रं**	एक सहस्र
वाजिभिः मेध्यैः	अश्वमेध तथा	**ब्राह्मणा**	ब्राह्मणोंने
यमुनायां अनु	यमुना किनारे	**बद्वशः**	एक-एक बद्व*
अष्टसप्तति	अठहत्तर	**गा विभेजिरे**	(परस्पर) गायें बांटी थीं ॥२५-२६॥

* चतुर्दशानां लक्षाणां सप्ताधिक शतांशकः बद्व चतुर शीत्यग्र सहस्राणि चतुर्दश । चौदह लाखका एक सौ सत्तवां भाग तेरह हजार चौरासी (१३०८४) एक बद्व होता है ।

त्रयस्त्रिंशच्छतं ह्यश्वान् बद्ध्वा विस्मापयन् नृपान् ।
दौष्यन्तिरत्यगान्मायां देवानां गुरुमाययौ ॥२७॥

त्रयः त्रिंशत् शतं हि अश्वान् बद्ध्वा विस्मापयन् नृपान् दौष्यन्तिः अत्यगान् मायां देवानां गुरुं आययौ ॥२७॥

दौष्यन्तिः	दुष्यन्तकुमार भरतने	**विस्मापयन्**	चकित कर दिया
त्रयः त्रिंशत् शतं	तैंतीस सौ	**देवानां**	देवताओंसे
अश्वान्	घोड़ोंको (उन यज्ञों-में)	**गुरुं**	बड़े (ऐश्वर्यशाली) हो गये तथा
बद्ध्वा	बाँधकर	**मायां**	मायाको
नृपान्	राजाओंको	**अत्यागान्**	पार कर गये ॥२७॥

मृगाञ्छुक्लदतः कृष्णान् हिरण्येन परीवृतान् ।
अदात् कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश ॥२८॥

मृगान् शुक्लदतः कृष्णान् हिरण्येन परीवृतान् अदात् कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश ॥२८॥

मष्णारे	मष्णार* (यज्ञ कार्य विशेष) में	**परीवृतान्**	विभूषित
शुक्लदतः	श्वेत दांतवाले	**चतुर्दश**	चौदह
कृष्णान् मृगान्	काले रंगके हाथी	**नियुतानि**	लाख
हिरण्येन	स्वर्ण	**अदात्**	दान किये ॥२८॥

भरतस्य महत् कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः ।
नैवापुर्नैव प्राप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ॥२९॥

भरतस्य महत् कर्म न पूर्वे न अपरे नृपाः न एव आपुः न एव प्राप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ॥२९॥

---

* मष्णार स्थान अफ्रिकाके पश्चिमी तटपर कांगोंके पास समुद्र किनारे अब 'मस्नार' के नामसे है। यह मष्णार यज्ञ-कार्यके नामपर भी पड़ा हो सकता है।

यथा बाहुभ्यां	जैसे भुजाओंसे	न एव आपुः	नहीं ही पा सके
त्रिदिवं	स्वर्ग (नहीं छुआ जा सकता)	न अपरे	न आगे होनेवाले दूसरे
भरतस्य	भरतके	न एव	नहीं ही
महत् कर्म	महान् कर्मको	प्राप्स्यन्ति	पा सकेंगे ॥२९॥
न पूर्वे नृपाः	न पहिले हुए राजा		

किरातहूणान् यवनानन्ध्रान् कङ्कान् खशाञ्छकान् ।
अब्रह्मण्यान् नृपांश्चाहन् म्लेच्छान् दिग्विजयेऽखिलान् ॥३०

किरात हूणान् यवनान् अन्ध्रान् कङ्कान् खशान् शकान् अब्रह्मण्यान् नृपान् च अहन् म्लेच्छान् दिग्विजये अखिलान् ॥३०॥

दिग्विजये	दिग्विजयके समय	म्लेच्छान्	म्लेच्छ
किरात हूणान्	किरात, हूण,	अब्रह्मण्यान्	ब्राह्मण विरोधी
यवनान्	यवन,	अखिलान्	सब
आन्ध्रान्	आन्ध्र,	नृपान्	राजाओंको
कङ्कान् खशान्	कंक, खश,	अहन्	मार दिया ॥३०॥
शकान् च	शक तथा		

जित्वा पुरासुरा देवान् ये रसौकांसि भेजिरे ।
देवस्त्रियो रसां नीताः प्राणिभिः पुनराहरत् ॥३१॥

जित्वा पुरा असुरा देवान् ये रसौकांसि भेजिरे देवस्त्रियः रसां नीताः प्राणिभिः पुनः आहरत् ॥३१॥

ये	जो	रसां नीताः	रसातल ले जाकर
रसौकांसि	रसातलमें रहनेवाले	भेजिरे	रह रहे थे,
असुरा देवान्	असुर देवताओंको	पुनः प्राणिभिः	फिर प्राणियोंके साथ
पुरा जित्वा	पहिले जीतकर	आहरत्	(भरत उन्हें) छुड़ा लाये ॥३१॥
देवस्त्रियः	देवांगनाओंको		

सर्वकामान् दुदुहतुः प्रजानां तस्य रोदसी ।
समास्त्रिणवसाहस्त्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् ॥३२॥

सर्वकामान् दुदुहतुः प्रजानां तस्य रोदसी समाः त्रिणव साहस्रीः दिक्षु चक्रं अवर्तयत् ॥३२॥

तस्य प्रजानां	उनकी प्रजाके लिए
रोदसी	पृथ्वी
सर्वकामान्	सब कामनाएँ
दुदुहतुः	दुहदेती (पूर्ण करती) थी,
त्रिणव साहस्रीः	सत्ताइस सहस्र
समाः दिक्षु	वर्ष तक दिशाओंमें
चक्रं अवर्तयत्	(उनका) शासन-चक्र चलता रहा ॥३२॥

स सम्राड् लोकपालाख्यमैश्वर्यमधिराट् श्रियम् ।
चक्रं चास्खलितं प्राणान् मृषेत्युपरराम ह ॥३३॥

स सम्राट् लोकपाल आख्यं ऐश्वर्यं अधिराट् श्रियं चक्रं च अस्खलितं प्राणान् मृषा इति उपरराम ह ॥३३॥

स सम्राट्	वे सम्राट्
लोकपाल	लोकपाल
आख्यं	कहे जाने वालोंके
ऐश्वर्यं	ऐश्वर्य,
अधिराट् श्रियं	सार्वभौमकी सम्पत्ति
च	तथा
अस्खलितं चक्रं	अटल अनुशासन
प्राणान्	और प्राणोंको भी
मृषा	'ये मिथ्या हैं'
इति	ऐसा मानकर
ह उपरराम	निश्चित उपरत हो गये ॥३३॥

तस्यासन् नृप वैदर्भ्यः पत्न्यस्तिस्रः सुसम्मताः ।
जघ्नुस्त्यागभयात् पुत्रान् नानुरूपा इतीरिते ॥३४॥

तस्य आसन् नृप वैदर्भ्यः पत्न्यः तिस्रः सुसम्मताः जघ्नुः त्याग भयात् पुत्रान् न अनुरूपा इति ईरिते ॥३४॥

नृप	राजन् !
तस्य वैदर्भ्यः	उनके विदर्भ देशीय
तिस्त्र	तीन
सुसम्मताः	अत्यन्त प्रिय
पत्न्यः आसन्	पत्नियां थीं,
न अनुरूपा	'ये मेरे अनुरूप नहीं हैं'
इति ईरिते	(राजाके) ऐसा कहने पर
त्याग	अपने त्यागे जानेके
भयात्	भयसे
पुत्रान्	(उन्होंने) पुत्रोंको
जघ्नुः	मार दिया ॥३४॥

तस्यैवं वितथे वंशे तदर्थं यजतः सुतम् ।
मरुत्स्तोमेन मरुतो भरद्वाजमुपाददुः ॥३५॥

तस्य एवं वितथे वंशे तत् अर्थं यजतः सुतं मरुत्स्तोमेन मरुतः भरद्वाजं उप आददुः ॥३५॥

एवं तस्य	इस प्रकार उसके	**यजतः**	यज्ञ करते समय
वंशे वितथे	वंशके व्यर्थ हो जाने पर	**मरुतः**	मरुतने
		भरद्वाजं सुतं	भरद्वाज नामक पुत्र
तत् अर्थं	उस प्रयोजनसे	**उप आददुः**	लाकर दिया ॥३५॥
मरुत्स्तोमेन	मरुत्स्तोम नामक		

अन्तर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः ।
प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥३६॥

अन्तर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः प्रवृत्तः वारितः गर्भं शप्त्वा वीर्यं अवासृजत् ॥३६॥

अन्तर्वत्न्यां	गर्भवती	**वारितः**	रोकनेपर
भ्रातृपत्न्यां	भाईकी पत्नीसे	**गर्भं शप्त्वा**	गर्भको शाप देकर
मैथुनाय	मैथुन करनेको	**वीर्यं अवासृजत्**	वीर्य-त्याग कर दिया ॥३६॥
बृहस्पतिः	बृहस्पति		
प्रवृत्तः	प्रवृत्त हुए तब (गर्भ द्वारा)		

तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तृत्यागविशंकिताम् ।
नामनिर्वचनं तस्य श्लोकमेनं सुरा जगुः ॥३७॥

तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तृत्याग विशङ्कितां नाम निर्वचनं तस्य श्लोकं एनं सुरा जगुः ॥३७॥

भर्तृत्याग	पति द्वारा त्यागे जानेकी	**त्यक्तुकामां**	छोड़नेकी इच्छा वाली
विशङ्कितां	आशंका करके	**ममतां**	ममतासे
तं	उस (बालक) को	**तस्य नाम**	उसके नामका

निर्वचनं	निर्देश करनेवाला	**सुरा जगुः**	देवताओंने कहा
एनं श्लोकं	यह श्लोक		॥३७॥

मूढे भर द्वाजमिमं भर द्वाजं बृहस्पते ।
यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥३८॥

मूढे भर द्वाजं इमं भर द्वाजं बृहस्पतेः यातौ यत् उक्त्वा पितरौ भरद्वाजः ततः त्वयम् ॥३८॥

मूढे इमं	'मूर्खे ! इस	**उक्त्वा पितरौ**	यह कहकर माता-पिता
द्वाजं	दोनोंसे उत्पन्नका		
भर	भरण-पोषण कर'	**यत् यातौ**	क्योंकि चले गये
बृहस्पतेः	बृहस्पति !	**ततः स्वयं**	इसलिए यह स्वयं
भर द्वाजं	'दोनोंसे उत्पन्नका तुम भरण करो'	**भरद्वाजः**	भरद्वाज नामका है' ॥३८॥

चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् ।
व्यसृजन् मरुतोऽबिभ्रन् दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥३९॥

चोद्यमाना सुरैः एवं मत्वा वितथं आत्मजं व्यसृजन् मरुतः अबिभ्रन् दत्तः अयं वितथे अन्वये ॥३९॥

सुरैः एवं	देवताओंके इस प्रकार	**मरुतः**	मरुद्गणोंने
		अबिभ्रन्	उसको धारण किया
चोद्यमाना	प्रेरित करनेपर	**वितथे**	फिर (भरत वंशके)
आत्मजं	पुत्रको	**अन्वये**	व्यर्थ होनेपर
वितथं	वितथ (अन्यायज)	**दत्तः**	(इसे लाकर) दे दिया ॥३९॥
मत्वा	मानकर		
व्यसृजन्	(ममताने) त्याग दिया		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

वितथस्य सुतो मन्युर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः ।
महावीर्यो नरो गर्गः सङ्कृतिस्तु नरात्मजः ॥१॥

वितथस्य सुतः मन्युः बृहत्क्षत्रः जयः ततः महावीर्यः नरः गर्गः सङ्कृतिः तु नर आत्मजः ॥१॥

वितथस्य सुतः	वितथका पुत्र
मन्युः ततः	मन्यु, उससे
बृहत्क्षत्रः	वृहत्क्षत्र,
जयः	जय,
महावीर्यः नरः	महावीर्य, नर,
गर्गः	और गर्ग (ये पांच पुत्र) हुए
नर आत्मजः तु	नरका पुत्र तो
संकृतिः	संकृति हुआ ॥१॥

गुरुश्च रन्तिदेवश्च सङ्कृतेः पाण्डुनन्दन ।
रन्तिदेवस्य हि यश इहामुत्र च गीयते ॥२॥

गुरुः च रन्तिदेवः च सङ्कृतेः पाण्डुनन्दन रन्तिदेवस्य हि यशः इह अमुत्र च गीयते ॥२॥

पाण्डु-	पाण्डुवंशके
नन्दन	कुमार !
गुरुः च	गुरु और
रन्तिदेवः च	रन्तिदेव भी
सङ्कृतेः	संकृतिके पुत्र थे,
रन्तिदेवस्य हि	रन्तिदेवका तो
यशः	यश
इह	इस लोक
अमुत्र च	और स्वर्गमें भी
गीयते	वर्णन होता है ॥२॥

वियद्वित्तस्य ददतो लब्धं लब्धं बुभुक्षतः ।
निष्किञ्चनस्य धीरस्य सकुटुम्बस्य सीदतः ॥३॥

वियत् वित्तस्य ददतः लब्धं लब्धं बुभुक्षतः निष्किञ्चनस्य धीरस्य सकुटुम्बस्य सीदतः ॥३॥

वियत्	आकाश-
वित्तस्य	वृत्ति (बिना उद्योग किये प्रारब्ध प्राप्त)
लब्धं लब्धं	बार-बार मिलेको भी
ददतः	दान कर देनेसे
बुभुक्षतः	भूखे
निष्किञ्चनस्य	निष्किञ्चन,
धीरस्य	धैर्यशाली,
सकुटुम्बस्य	कुटुम्बके साथ
सीदतः	कष्ट पाते हुए ॥३॥

व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपिवतः किल ।
घृतपायससंयावं तोयं प्रातरुपस्थितम् ॥४॥

व्यतीयुः अष्टचत्वारिंशत् अहानि अपिवतः किल धृत पायस संयावं तोयं प्रातः उपस्थितम् ॥४॥

किल अपिवतः	अहो जल पिये बिना
अष्टचत्वारिंशत्	अड़तालिस
अहानि व्यतीयुः	दिन बीत गये, तब
प्रातः	सबेरे (उनके पास)
धृत पायस	घी, खीर,
संयावं तोयं	लप्सी और जल
उपस्थितं	आया ॥४॥

कृच्छ्रप्राप्तकुटुम्बस्य क्षुत्तृड्भ्यां जातवेपथोः ।
अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागमत् ॥५॥

कृच्छ्र प्राप्त कुटुम्बस्य क्षुत् तृट्भ्यां जातवेपथोः अतिथिः ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य च आगमत् ॥५॥

कृच्छ्र प्राप्त	कष्टमें पड़े,
क्षुत् तृट्भ्यां	भूख, प्याससे
जातवेपथोः	काँपते हुए
कुटुम्बस्य	कुटुम्बके
भोक्तु	भोजन करनेकी
कामस्य	इच्छा करनेके
काले च	समय ही
ब्राह्मणः	ब्राह्मण
अतिथिः	अतिथि
आगमत्	आ गया ॥५॥

तस्मै संव्यभजत् सोऽन्नमादृत्य श्रद्धयान्वितः ।
हरिं सर्वत्र संपश्यन् स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः ॥६॥

तस्मै संव्यभजत् सः अन्नं आहृत्य श्रद्धया अन्वितः हरिं सर्वत्र सम्पश्यन् स मुक्त्वा प्रययौ द्विजः ॥६॥

सः सर्वत्र	उन्होंने सर्वत्र	**संव्यभजत्**	कुछ बांटकर दिया
हरिं	श्रीहरिको	**मुक्त्वा**	उसे खाकर
सम्पश्यन्	ठीक-ठीक देखते हुए	**स द्विजः**	वह ब्राह्मण
श्रद्धया अन्वितः	श्रद्धापूर्वक	**प्रययौ**	चला गया ॥६॥
तस्मै अन्नं	उसे भोजन		

अथान्यो भोक्ष्यमाणस्य विभक्तस्य महीपते ।
विभक्तं व्यभजत् तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन् ॥७॥

अथ अन्यः भोक्षमाणस्य विभक्तस्य महीपते विभक्तं व्यभजत् तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन् ॥७॥

महीपते	राजन् !	**अन्यः**	दूसरा आ गया
विभक्तम्	(परस्पर) बांटे हुए को	**हरिं**	श्रीहरिका
		स्मरन्	स्मरण करते हुए
भोक्षमाणस्य	भोजन करनेको उद्यत	**तस्मै वृषलाय**	उस शूद्रको भी
		व्यभजत्	बाँट दिया ॥७॥
अथ	के पास फिर		

याते शूद्रे तमन्योऽगादतिथिः श्वभिरावृतः ।
राजन् मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षते ॥८॥

याते शूद्रे तं अन्यः अगात् अतिथि. श्वभिः आवृतः राजन् मे दीयतां अन्नं सगणाय बुभुक्षिते ॥८॥

शूद्रे याते	शूद्रके चले जानेपर	**राजन्**	'राजन् !
श्वभिः आवृतः	कुत्तोंसे घिरा	**सगणाय**	इन गणोंके साथ
अन्यः अतिथिः	दूसरा अतिथि	**बुभुक्षिते मे**	भूखे मुझे
तं अगात्	उनके पास आकर	**अन्नं दीयतां**	भोजन दीजिये' ॥८॥
	बोला		

स आदृत्यावशिष्टं यद् बहुमानपुरस्कृतम् ।
तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे श्वभ्यः श्वपतये विभुः ॥९॥

स आदृत्य अवशिष्टं यत् बहुमान पुरस्कृतं तत् च दत्त्वा नमः चक्रे श्वभः श्वपतये विभुः ॥९॥

स विभुः	वे समर्थ (रन्तिदेव)	**तत् च दत्त्वा**	उसे भी देकर
आदृत्य	आदर करके	**श्वभ्यः**	कुत्तों और
बहुमान	बहुत	**श्वपतये**	उनके स्वामीको
पुरस्कृतं	सम्मान सहित	**नमः चक्रे**	नमस्कार कर लिया
यत् अवशिष्टं	जो कुछ बचा था		॥९॥

पानीयमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम् ।
पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभस्य मे ॥१०॥

पानीय मात्रं उच्छेषं तत् च एक परितर्पणं पास्यतः पुल्कसः अभि अगात् अपः देहि अशुभस्य मे ॥१०॥

पानीय मात्रं	अब केवल जल	**पुल्कसः**	कसाई
उच्छेषं	बच रहा	**अभि अगात्**	सामने आ गया
तत् च	वह भी	**मे अशुभस्य**	(बोला) मुझ नीचको
एक परितर्पणं	एकको ही तृप्त करने योग्य था	**अपः देहि**	जल दीजिये !' ॥१०॥
पास्यतः	उसे पीनेके समय		

तस्य तां करुणां वाचं निशम्य विपुलश्रमाम् ।
कृपया भृशसन्तप्त इदमाहामृतं वचः ॥११॥

तस्य तां करुणां वाचं निशम्य विपुल श्रमां कृपया भृशसंतप्तः इदं आह अमृतं वचः ॥११॥

तस्य तां करुणां	उसकी वह दीनतापूर्ण	**विपुल श्रमां**	बहुत श्रमसे बोली गयी

वाचं निशम्य	वाणी सुनकर	**इदं**	यह
कृपया	कृपासे	**अमृतं वचः**	अमृतमय वाणी
भृशसंतप्तः	अत्यन्त संतप्त होकर	**आह**	बोले ॥११॥

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परा-
मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा ।
आर्ति प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-
मन्तः स्थितो येन भवन्त्यदुःखाः ॥१२॥

न कामये अहं गतिं ईश्वरात् परां अष्ट ऋद्धि युक्तां अपुनर्भवं वा आर्ति प्रपद्ये अखिल देहभाजां अन्तः स्थितः येन भवन्ति अदुःखाः ॥१२॥

ईश्वरात्	परमेश्वरसे	**अखिल**	सब
अहं	मैं	**देहभाजां**	शरीर धारियोंके
अष्ट ऋद्धि	आठो ऐश्वर्योंसे	**अन्तः स्थितः**	अन्तः करणमें रहकर
युक्तां	युक्त	**आर्ति प्रपद्ये**	उनका क्लेश मैं पाता रहूँ
परां गतिं	परमगति		
वा अपुनर्भवं	अथवा मोक्ष	**येन अदुःखाः**	जिससे वे दुःखहीन
न कामये	नहीं चाहता,	**भवन्ति**	हो जायँ ॥१२॥

क्षुत्तृट्श्रमो गात्रपरिश्रमश्च
दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः ।
सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तो-
र्जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ॥१३॥

क्षुत् तृट् श्रमः गात्र परिश्रमः च दैन्यं क्लमः शोक विषाद मोहाः सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तोः जिजीविषोः जीव जल अर्पणात् मे ॥१३॥

जिजीविषोः	जीवनकी इच्छावाले	**मे क्षुत् तृट्**	मेरी भूख-प्यास,
जीव	इस प्राणीको	**श्रमः गात्र**	श्रम, शारीरिक
जल अर्पणात्	जल दे देनेसे	**परिश्रमः**	शिथिलता,

च दैन्यं क्लमः	तथा दीनता, ग्लानि,	मोहाः सर्वे	मोहादि सब
शोक विषाद	शोक, विषाद,	निवृत्ताः	दूर हो गये हैं ॥१३॥

इति प्रभाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया ।
पुल्कसायाददाद्धीरो निसर्गकरुणो नृपः ॥१४॥

इति प्रभाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया पुल्कसाय अददात् धीरः निसर्गकरुणः नृपः ॥१४॥

इति प्रभाष्य	ऐसा कहकर	नृपः	राजा (रन्तिदेव) ने
पिपासया	प्याससे	पुल्कसाय	कसाईको
म्रियमाणः	(स्वयं) मरणासन्न	पानीयं अददात्	वह जल दे दिया ॥१४॥
धीरः	धैर्यवान्		
निसर्गकरुणः	स्वभावसे दयालु		

तस्य त्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम् ।
आत्मानं दर्शयाञ्चक्रुर्माया विष्णुविनिर्मिताः ॥१५॥

तस्य त्रिभुवन अधीशाः फलदाः फलं इच्छतां आत्मानं दर्शयान् चक्रुः माया विष्णु विर्निमिताः ॥१५॥

विष्णु	भगवान् विष्णु द्वारा	फलदाः	फल देनेवाले
विर्निमिताः	उत्पन्न	त्रिभुवन	त्रिलोकीके
माया	मायासे (वे शूद्र चाण्डालादि रूप) दिखाकर	अधीशाः	अधीश्वर (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) ने
		तस्य आत्मानं	उनको अपनेको
फलं	फल	दर्शयान् चक्रुः	दिखलाया ॥१५॥
इच्छतां	चाहनेवालोंको		

स वै तेभ्यो नमस्कृत्य निःसङ्गो विगत स्पृहः ।
वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे मनः परम् ॥१६॥

स वै तेभ्यः नमः कृत्य निःसंगः विगत स्पृहः वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे मनः परम् ॥१६॥

निःसङ्गः	अनासक्त,	**कृत्य**	करके
विगत स्पृहः	लालसारहित	**भगवति परं**	भगवान् परमपुरुष
वै स	निश्चय उस (रन्ति देव) ने	**वासुदेवे**	वासुदेवमें
		भक्त्या	भक्ति द्वारा
तेभ्यः नमः	उनको नमस्कार	**मनः चक्रे**	मन लगाया ॥१६॥

ईश्वरालम्बनं चित्तं कुर्वतोऽनन्यराधसः ।
माया गुणमयी राजन् स्वप्नवत् प्रत्यलीयत ॥१७॥

ईश्वर आलम्बनं चित्तं कुर्वतः अनन्य राधसः माया गुणमयी राजन् स्वप्नवत् प्रत्यलीयत ॥१७॥

राजन्	राजन् !	**कुर्वतः**	लगानेपर
अनन्य	अनन्य भावसे	**गुणमयी माया**	त्रिगुणमयी माया
ईश्वर	ईश्वरका	**स्वप्नवत्**	स्वप्नके समान
आलम्बनं	सहारा लेकर	**प्रत्यलीयत**	विलीन हो गयी
चित्तं राधसः	चित्तको आराधनामें		॥१७॥

तत्प्रसङ्गानुभावेन रन्तिदेवानुवर्तिनः ।
अभवन् योगिनः सर्वे नारायणपरायणाः ॥१८॥

तत् प्रसंग अनुभावेन रन्तिदेव अनुवर्तिनः अभवन् योगिनः सर्वे नारायण परायणाः ॥१८॥

तत् प्रसंग	उनके सत्संगके	**सर्वे**	सब
अनुभावेन	प्रभावसे	**नारायण**	नारायण
रन्तिदेव	रन्तिदेवके	**परायणाः**	परायण
अनुवर्तिनः	अनुयायी	**योगिनः अभवन्**	योगी हो गये ॥१८॥

गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद् ब्रह्म ह्यवर्तत ।
दुरितक्षयो महावीर्यात् तस्य त्रय्यारुणिः कविः ॥१९॥

गर्गात् शिनिः ततः गार्ग्यः क्षत्रात् ब्रह्म ह्यवर्तत दुरितक्षयः महावीर्यात् तस्य त्रय्यारुणिः कविः ॥१९॥

गर्गात् शिनिः	(मन्यु पुत्र) गर्गसे शिनि	**महावीर्यात्**	महावीर्यसे
ततः गार्ग्यः	उससे गार्ग्य हुआ	**दुरितक्षयः**	दुरितक्षय,
क्षत्रात्	इस क्षत्रियसे	**तस्य**	उसके
ब्रह्म	ब्राह्मण वंश	**त्रय्यारुणिः**	त्रय्यारुणि,
ह्यवर्तत	चला,	**कविः**	कवि और ॥१९॥

पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः ।
बृहत्क्षत्रस्य पुत्रोऽभूद्धस्ती यद्धस्तिनापुरम् ॥२०॥

पुष्करारुणिः इतित्रय ये ब्राह्मण गतिं गताः बृहत् क्षत्रस्य पुत्रः अभूत् हस्ती यत् हस्तिनापुरम् ॥२०॥

पुष्करारुणिः	पुष्करारुणि	**पुत्रः अभूत**	पुत्र हुआ
इतित्रय	ये तीन पुत्र हुए	**हस्ती यत्**	हस्ती जिसने
ये ब्राह्मण	जो ब्राह्मण	**हस्तिनापुरं**	हस्तिनापुर बसाया ॥२०॥
गतिं गताः	स्वरूपको प्राप्त हुए,		
बृहत्क्षत्रस्य	वृहत्क्षत्रका		

अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च हस्तिनः ।
अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः ॥२१॥

अजमीढः द्विमीढः च पुरुमीढः च हस्तिनः अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेध आदयः द्विजाः ॥२१॥

हस्तिनः	हस्तिके	**अजमीढस्य**	अजमीढके
अजमीढः च	अजमीढ तथा	**प्रियमेध आदयः**	प्रियमेध आदि
द्विमीढः च	द्विमीढ एवं	**द्विजाः**	ब्राह्मण
पुरुमीढः	पुरुमीढ हुए	**वंश्याः स्युः**	वंशधर हुए ॥२१॥

अजमीढाद् बृहदिषुस्तस्य पुत्रो बृहद्धनुः ।
बृहत्कायस्ततस्तस्य पुत्र आसीज्जयद्रथः ॥२२॥

अजमीढात् बृहत्इषुः तस्य पुत्रः बृहत्हनुः वृहत्कायः ततः तस्य पुत्र आसीत् जयद्रथः ॥२२॥

अजमीढात्	अजमीढसे	**ततः बृहतकायः**	उससे वृहत्काय
बृहत्इषु	बृहत्इषु,	**तस्य पुत्र**	उसका पुत्र
तस्य पुत्रः	उसका पुत्र	**जयद्रथः**	जयद्रथ
बृहत्हनुः	वृहत्हनु,	**आसीत्**	हुआ ॥२२॥

तत्सुतो विशदस्तस्य सेनजित् समजायत ।
रुचिराश्वो दृढहनुः काश्यो वत्सश्च तत्सुताः ॥२३॥

तत् सुतः विशदः तस्य सेनजित् समजायत रुचिराश्वः दृढहनुः काश्यः वत्सः च तत् सुताः ॥२३॥

तत् सुतः	उसका पुत्र	**दृढहनुः**	दृढहनु,
विशदः तस्य	विशद, उसका	**काश्यः च**	काश्य और
सेनजित्	सेनजित्	**वत्सः**	वत्स
समजायत	उत्पन्न हुआ,	**तत् सुताः**	उसके (चार) पुत्र
रुचिराश्वः	रुचिराश्व,		हुए ॥२३॥

रुचिराश्वसुतः पारः पृथुसेनस्तदात्मजः ।
पारस्य तनयो नीपस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥२४॥

रुचिराश्व सुतः पारः पृथुसेनः तत् आत्मजः पारस्य तनयः नीपः तस्य पुत्रशतं तु अभूत् ॥२४॥

रुचिराश्व	रुचिराश्वका	**पारस्य तनयः**	पारका (दूसरे) पुत्र
सुतः	पुत्र	**नीपः**	नीप हुआ
पारः	पार था,	**तस्य तु**	उसके तो
तत् आत्मजः	उसका पुत्र	**पुत्रशतं अभूत्**	सौ पुत्र हुए ॥२४॥
पृथुसेनः	पृथुसेन हुआ		

स कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तमजीजनत् ।
स योगी गवि भार्यायां विष्वक्सेनमधात् सुतम् ॥२५॥

स कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तं अजीजनत् स योगी गवि भार्यायां विष्वक्सेनं अधात् सुतम् ॥२५॥

स	उस (नीप) ने	**योगी**	योगी था
शुककन्यायां	शुककी पुत्री*	**गवि भार्यायां**	उसने अपनी भार्या सरस्वतीसे
कृत्व्यां	कृत्वीसे		
ब्रह्मदत्तं	ब्रह्मदत्तको	**विष्वक्सेनं**	विष्वक्सेन
अजीजनत्	उत्पन्न किया	**सुतं अधात्**	पुत्र उत्पन्न किया ॥२५॥
स	वह (ब्रह्मदत्त)		

जैगीषव्योपदेशेन योगतन्त्रं चकार ह ।
उदक्स्वनस्ततस्तस्माद् भल्लादो बार्हदीषवाः ॥२६॥

जैगीषव्य उपदेशेन योगतन्त्रं चकार ह उदक्स्वनः ततः तस्मात् भल्लादः बार्हदीषवाः ॥२६॥

जैगीषव्य	मुनि जैगीषव्यके	**उदक्स्वनः**	उदक्स्वन,
उपदेशेन	उपदेशसे	**तस्मात्**	उससे
योगतन्त्र	योगशास्त्रकी	**भल्लादः**	भल्लाद
ह चकार	निश्चित रचना की,	**बार्हदीषवाः**	ये सब बृहदिषुके वंशज हुए ॥२६॥
ततः	उससे		

यवीनरो द्विमीढस्य कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः ।
नाम्ना सत्यधृतिर्यस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत् ॥२७॥

यवीनरः द्विमीढस्य कृतिमान् तत् सुतः स्मृतः नाम्ना सत्यधृतिः यस्य दृढनेमिः सुपार्श्व कृत् ॥२७॥

द्विमीढस्य	द्विमीढका	**कृतिमान्**	कृतिमान्
यवीनरः	यवीनर	**स्मृतः**	कहा गया है,
तत् सुतः	उसका पुत्र	**यस्य**	जिसका

---

* शुकदेवजीने वन जाते समय पिता व्यासजीको व्याकुल देखकर अपनी एक छाया मूर्ति उनके पास छोड़ दी। वे छाया शुक ही गृहस्थ हुए।

सत्य धृतिः	सत्य धृति	**सुपार्श्व**	सुपार्श्वका
नाम्ना	नामक (पुत्र) हुआ,	**कृत्**	जन्म दाता हुआ
दृढनेमिः	(उसका) दृढनेमि		॥२७॥

सुपार्श्वात् सुमतिस्तस्य पुत्रः सन्नतिमांस्ततः ।
कृतिर्हिरण्यनाभाद् यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट् ॥२८॥

सुपार्श्वात् सुमतिः तस्य पुत्रः सन्नतिमान् ततः कृतिः हिरण्यनाभात् यः योगं प्राप्य जगौ स्म षट् ॥२८॥

सुपार्श्वात्	सुपार्श्वसे	**हिरण्यनाभात्**	हिरण्यनाभसे
सुमतिः	सुमति,	**योगं प्राप्य**	योग-विद्या प्राप्त करके
तस्य पुत्रः	उसका पुत्र		
सन्नतिमान्	सन्नतिमान्	**षट् जगौ स्म**	छ (संहिताएँ) कही थीं ॥२८॥
ततः कृतिः	उससे कृति हुआ		
यः	जिसने		

संहिता प्राच्यसाम्नां वै नीपो ह्युग्रायुधस्ततः ।
तस्य क्षेम्यः सुवीरोऽथ सुवीरस्य रिपुञ्जयः ॥२९॥

संहिता प्राच्य साम्नां वै नीपः हि उग्रायुधः ततः तस्य क्षेम्यः सुवीरः अथ सुवीरस्य रिपुञ्जयः ॥२९॥

वै	निश्चित ही	**क्षेम्यः**	क्षेम्य
प्राच्य साम्नां	प्राच्य सामकी	**अथ सुवीरः**	फिर (उससे) सुवीर
संहिताएँ	संहिताएँ,	**सुवीरस्य**	सुवीरका
नीपः हि	नीपका ही पुत्र	**रिपुञ्जयः**	रिपुञ्जय हुआ ॥२९॥
उग्रायुधः	उग्रायुध हुआ,		
ततः तस्य	फिर उसका		

ततो बहुरथो नाम पुरमीढोऽप्रजोऽभवत् ।
नलिन्यामजमीढस्य नीलः शान्तिः सुतस्ततः ॥३०॥

ततः बहुरथः नाम पुरमीढः अप्रजः अभवत् नलिन्यां अजमीढस्य नीलः शान्तिः सुतः ततः ॥३०॥

ततः बहुरथः	उससे बहुरथ
नाम	नामक पुत्र हुआ
पुरमीढः	पुरमीढ
अप्रजः अभवत्	निःसन्तान हो गया,
अजमीढस्य	अजमीढके
नलिन्यां	नलिनी (नामक पत्नी) से
नीलः ततः	नील, उससे
सुतः	उसका पुत्र
शान्तिः	शान्ति हुआ ॥३०॥

शान्तेः सुशान्तिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत् ।
भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पञ्चासन्मुद्गलादयः ॥३१॥

शान्तेः सुशान्तिः तत् पुत्रः पुरुजः अर्कः ततः अभवत् भर्म्याश्वः तनयः तस्य पञ्च आसन् मुद्गल आदयः ॥३१॥

शान्तेः	शान्तिका
सुशान्तिः	सुशान्ति
तत् पुत्रः	उसका पुत्र
पुरुजः	पुरुज
ततः अर्कः	उससे अर्क
अभवत्	हुआ,
तनयः	उसका पुत्र
भर्म्याश्वः	भर्म्याश्व
तस्य	उससे
मुद्गल आदयः	मुद्गल आदि
पञ्च आसन्	पांच पुत्र थे ॥३१॥

यवीनरो बृहदिषुः काम्पिल्यः संजयः सुताः ।
भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पञ्चानां रक्षणाय हि ॥३२॥

यवीनरः बृहदिषुः काम्पिल्यः सञ्जयः सुताः भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पञ्चानां रक्षणाय हि ॥३२॥

यवीनरः	यवीनर,
बृहदिषुः	बृहदिषु
काम्पिल्यः	काम्पिल्य और
सञ्जयः	सञ्जय
सुताः	ये (पांच) पुत्र थे,
भर्म्याश्वः प्राह	भर्म्याश्वने कहा
हि	'क्योंकि
पञ्चानां	पांचों (प्रदेशों) की
रक्षणाय	रक्षाके लिए
मे पुत्रा	मेरे पुत्र ॥३२॥

विषयाणामलमिमे इति पञ्चालसंज्ञिताः ।
मुद्गलाद्न ब्रह्म निर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम् ॥३३॥

विषयाणां अलं इमे इति पञ्चाल संज्ञिताः मुद्गलात् ब्रह्म निर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्य संज्ञितम् ॥३३॥

इमे	ये	**मुद्गलात्**	(उनमें) मुद्गलसे
विषयाणां	प्रदेशोंके लिए	**मौद्गल्य**	मौद्गल्य
अलं	पर्याप्त हैं'	**संज्ञितं**	नामक
इति	इस प्रकार वे	**गोत्रं ब्रह्म**	गोत्रके ब्राह्मणोंकी
पञ्चाल	पञ्चाल	**निर्वृत्तं**	प्रवृत्ति हुई ॥३३॥
संज्ञिताः	कहे गये'		

मिथुनं मुद्गलाद् भाम्र्याद् दिवोदासः पुमानभूत् ।
अहल्या कन्यका यस्यां शतानन्दस्तु गौतमात् ॥३४॥

मिथुनं मुद्गलात् भाम्र्यात् दिवोदासः पुमान् अभूत् अहल्या कन्यका यस्यां शतानन्दः तु गौतमात् ॥३४॥

भाम्र्यात्	भम्र्याश्वके पुत्र	**कन्यका**	कन्या
मुद्गलात्	मुद्गलसे	**अहल्या**	अहल्या थी,
मिथुनं	एक जोड़ा जुड़वां	**यस्यां**	जिसमें
अभूत्	उत्पन्न हुआ	**गौतमात्**	महर्षि गौतमसे
पुमान्	उसमें पुत्र	**शतानन्दः तु**	शतानन्द ऊत्पन्न
दिवोदासः	दिवोदास और		हुए ॥३४॥

तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेदविशारदः ।
शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात् किल ॥३५॥

तस्य सत्यधृतिः पुत्रः धुनुर्वेद विशारदः शरद्वान् तत् सुतः यस्मात् उर्वशी दर्शनात् किल ॥३५॥

तस्य	उस (दिवोदास) का	**धनुर्वेद**	धनुर्वेदका
पुत्रः	पुत्र	**विशारदः**	विद्वान था,
सत्यधृतिः	सत्यधृति	**तत् सुतः**	उसका पुत्र

शरद्वान्	शरद्वान हुआ	दर्शनात्	देखनेसे
किल उर्वशी	अहो, ऊर्वशीको	यस्मात्	जिससे ॥३५॥

शरस्तम्बेऽपतद् रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् ।
तद् दृष्ट्वा कृपयागृह्णाच्छन्तनुर्मृगयां चरन् ।
कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत् कृपी ॥३६॥

शरस्तम्बे अपतत् रेतः मिथुनं तत् अभूत् शुभं तत् दृष्ट्वा कृपया गृह्णात् शन्तनुः मृगयां चरन् कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्नि अभवत् कृपी ॥३६॥

शरस्तम्बे	कांसके झुरमुटमें	तत् दृष्ट्वा	उसे देखकर
अपतत् रेतः	वीर्य-स्खलित होनेसे	कृपया गृह्णात्	कृपावश ले आये,
तत् शुभं	उससे शुभ लक्षण वाला	कुमारः	उसमें जो बालक था
		कृपः	वह कृपाचार्य
मिथुनं अभूत्	एक जोड़ा उत्पन्न हुआ	कन्या	और जो कन्या थी वह
मृगयां चरन्	आखेट करते घूमते हुए	कृपी द्रोणपत्नि	कृपी द्रोणाचार्यकी पत्नी
शन्तनुः	महाराज शन्तनु	अभवत्	हुई ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

श्रीशक उवाच

मित्रेयुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तत्सुतो नृप ।
सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जन्तुजन्मकृत् ॥१॥

मित्रेयुः च दिवोदासात् च्यवनः तत् सुतः नृप सुदासः सहदेवः अथ सोमकः जन्तु जन्मकृत् ॥१॥

नृप	राजन् !
दिवोदासात्	दिवोदाससे
मित्रेयुः	मित्रेयु
च तत् सुतः	और उसके पुत्र
च्यवनः सुदासः	च्यवन, सुदास
सहदेवः अथ	सहदेव तथा
जन्तु जन्मकृत्	जन्तुको जन्म देने-वाला
सोमकः	सोमक हुआ ॥१॥

तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान् पृषतः सुतः ।
द्रुपदो द्रौपदी तस्य धृष्टद्युम्नादयः सुताः ॥२॥

तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान् पृषतः सुतः द्रुपदः द्रौपदी तस्य धृष्टद्युम्न आदयः सुताः ॥२॥

तस्य	उस (सोमक) के
पुत्रशतं	सौ पुत्र थे,
तेषां यवीयान्	उनमें सबसे छोटे
पृषतः सुत	पृषतका पुत्र
द्रुपदः	द्रुपद हुए
तस्य द्रौपदी	उनकी पुत्री द्रौपदी और
सुताः	पुत्र
धृष्टद्युम्न	धृष्टद्युम्न
आदयः	आदि हुए ॥२॥

धृष्टद्युम्नाद् धृष्टकेतुर्भार्म्यः पञ्चालका इमे ।
योऽजमीढसुतो ह्यन्य ऋक्षः संवरणस्ततः ॥३॥

धृष्टद्युम्नात् धृष्टकेतुः भार्म्याः पञ्चालका इमे यः अजमीढ सुतः हि अन्य ऋक्षः संवरणः तत ॥३॥

धृष्टद्युम्नात्	धृष्टद्युम्नसे
धृष्टकेतुः	धृष्टकेतु उत्पन्न हुआ
भार्म्याः इमे	भर्म्यके वंशमें ये
पञ्चालका	पञ्चाल (कहलाते) हैं,
हि यः अन्य	फिर जो दूसरा
अजमीढ	अजमीढका
सुतः ऋक्षः	पुत्र ऋक्ष था
ततः संवरणः	उससे संवरण हुआ ॥३॥

तपत्यां सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः ।
परीक्षित् सुधनुर्जह्नुर्निषधाश्चः कुरोः सुताः ॥४॥

तपत्यां सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः परीक्षित् सुधनुः जह्नुः निषधाश्वः कुरोः सुताः ॥४॥

सूर्यकन्यायां	सूर्य-पुत्री
तपत्यां	तपतीसे
कुरुक्षेत्रपतिः	कुरुक्षेत्रके स्वामी
कुरुः	कुरु हुए
कुरोः सुताः	कुरुके पुत्र
परीक्षित्	परीक्षित,
सुधनुः	सुधनु,
जह्नुः	जह्नु और
निषधाश्वः	निषधाश्व हुए ॥४॥

सुहोत्रोऽभूत् सुधनुषश्च्यवनोऽथ ततः कृती ।
वसुस्तस्योपरिचरो बृहद्रथमुखास्ततः ॥५॥

सुहोत्रः अभूत् सुधनुषः च्यवनः अथ ततः कृती वसुः तस्य उपरिचरः बृहद्रथ मुखाः ततः ॥५॥

सुधनुषः	सुधनुसे
सुहोत्रः अभूत्	सुहोत्र हुआ,
अथ च्यवनः	फिर उससे च्यवन
ततः कृती	उससे कृती
तस्य	उसके
उपरिचर वसुः	उपरिचर वसु
ततः बृहद्रथ	उससे बृहद्रथ
मुखाः	प्रमुख हुए ॥५॥

कुशाम्बमत्स्यप्रत्यग्रचेदिपाद्याश्च चेदिपाः ।
बृहद्रथात् कुशाग्रोऽभूदृषभस्तस्य तत्सुतः ॥६॥

कुशाम्ब मत्स्य प्रत्यग्र चेदिप आद्याः च चेदिपाः बृहद्रथात् कुशाग्रः अभूत् ऋषभः तस्य तत् सुतः ॥६॥

चेदिपाः	वे चेदि नरेश
कुशाम्ब मत्स्य	कुशाम्ब, मत्स्य,
प्रत्यग्र च चेदिप	प्रत्यग्र और चेदिप
आद्याः	आदि थे
बृहद्रथात्	बृहद्रथसे
कुशाग्रः अभूत्	कुशाग्र हुआ,
तस्य ऋषभः	उसका ऋषभ,
तत् सुतः	उसका पुत्र ॥६॥

जज्ञे सत्यहितोऽपत्यं पुष्पवांस्तत्सुतो जहुः ।
अन्यस्यां चापि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात् ॥७॥

जज्ञे सत्यहितः अपत्यं पुष्पवान् तत् सुतः जहुः अन्यस्यां च अपि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात् ॥७॥

सत्यहितः	सत्यहित
जज्ञे	उत्पन्न हुआ,
अपत्यं	उसका पुत्र
पुष्पवान्	पुष्पवान्
तत् सुतः	उसका पुत्र
जहुः	जहु हुआ
बृहद्रथात्	बृहद्रथसे
अन्यस्यां	दूसरी
भार्यायां अपि	पत्नीसे भी
शकले द्वे	दो टुकड़े उत्पन्न हुए ॥७॥

ते मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभिसन्धिते ।
जीव जीवेति क्रीडन्त्या जरासन्धोऽभवत् सुतः ॥८॥

ते मात्रा बहिः उत्सृष्टे जरया च अभिसन्धिते जीव जीव इति क्रीडन्त्या जरासन्धः अभवत् सुतः ॥८॥

ते मात्रा	वे (टुकड़े) माता द्वारा
बहिः उत्सृष्टे	बाहर फेंक देनेपर
जरया च	जरा नामक राक्षसी द्वारा
अभिसन्धिते	जोड़कर
जीव जीव	'जीजा जीवित हो जा !'
इति	इस प्रकार कहकर
क्रीडन्त्या	खेलती हुई से
सुतः	(जीवित होकर) पुत्र
जरासन्धः	जरासन्ध
अभवत्	हो गया ॥८॥

ततश्च सहदेवोऽभूत् सोमापिर्यत्श्रुतश्रवाः ।
परीक्षिदनपत्योऽभूत् सुरथो नाम जाह्नवः ॥९॥

ततः च सहदेवः अभूत् सोमापिः यत् श्रुतश्रवाः परीक्षित् अनपत्यः अभूत् सुरथः नाम जाह्नवः ॥९॥

ततः	उससे	**परीक्षित्**	(कुरुका पुत्र) परीक्षित
सहदेवः	सहदेव	**अनपत्यः**	सन्तानहीन
अभूत् च	हुआ और	**अभूत्**	हुआ,
सोमापिः	उससे सोमापि	**जाह्नवः**	जह्नुका पुत्र
यत्	जिससे	**सुरथः नाम**	सुरथ नामक हुआ ॥९॥
श्रुतश्रवाः	श्रुतश्रवा हुआ,		

ततो विदूरथस्तस्मात् सार्वभौमस्ततोऽभवत् ।
जयसेनस्तत्तनयो राधिकोऽतोयुतो ह्यभूत् ॥१०॥

ततः विदूरथः तस्मात् सार्वभौमः ततः अभवत् जयसेनः तत् तनयः राधिकः अतः अयुतः हि अभूत् ॥१०॥

ततः विदूरथः	उससे विदूरथ	**अभवत्**	हुआ,
तस्मात्	उससे	**तत् तनयः**	उसका पुत्र
सार्वभौमः	सार्वभौम	**राधिकः**	राधिक
ततः	उससे	**अतः हि**	इससे फिर
जयसेनः	जयसेन	**अयुतः अभूत्**	अयुत हुआ ॥१०॥

ततश्च क्रोधनस्तस्माद् देवातिथिरमुष्य च ।
ऋष्यस्तस्यदिलीपोऽभूत् प्रतीपस्तस्य चात्मजः ॥११॥

ततः च क्रोधनः तस्मात् देवातिथिः अमुष्य च ऋष्यः तस्य दिलीपः अभूत् प्रतीपः तस्य च आत्मजः ॥११॥

ततः च	उससे तो	**तस्मात्**	उससे
क्रोधनः	क्रोधन	**देवातिथिः**	देवातिथि

अमुष्य च	इसका भी	**तस्य च**	उसका भी
ऋष्यः तस्य	ऋष्य, उसका	**आत्मजः**	पुत्र
दिलीपः अभूत्	दिलीप हुआ	**प्रतीपः**	प्रतीप हुआ ॥११॥

देवापिः शन्तनुस्तस्य बाह्लीक इति चात्मजाः ।
पितृराज्यं परित्यज्य देवापिस्तु वनं गतः ॥१२॥

देवापिः शन्तनुः तस्य बाह्लीक इति च आत्मजाः पितृराज्यं परित्यज्य देवापिः तु वनं गतः ॥१२॥

तस्य च	उसके भी	**देवापिः तु**	(इनमें) देवापि तो
आत्मजाः	पुत्र	**पितृराज्यं**	पिताका राज्य
देवापिः शन्तनुः	देवापि, शन्तनु,	**परित्यज्य**	छोड़कर
बाह्लीक इति	और बाह्लीक ये हुए,	**वनं गतः**	वनमें चला गया ॥१२॥

अभवच्छन्तनू राजा पाङ्महाभिषसंज्ञितः ।
यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः ॥१३॥

अभवत् शन्तनू राजा प्राक् महाभिष संज्ञितः यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनं एति सः ॥१३॥

शन्तनू राजा	शन्तनु राजा	**यं यं जीर्णं**	वह जिस-जिस बूढ़े को
अभवत्	हुआ (जो)		
प्राक्	पूर्वजन्ममें	**कराभ्यां**	हाथसे
महाभिष	महाभिष	**स्पृशति**	छू देता था
संज्ञितः	नामक था,	**सः यौवनं**	वह युवा
		एति	हो जाता था ॥१३॥

शान्तिमाप्नोति चैवाग्र्यां कर्मणा तेन शन्तनुः ।
समा द्वादश तद्राज्ये न ववर्ष यदा विभुः ॥१४॥

शान्ति आप्नोति च एव अग्र्यां कर्मणा तेन शन्तनुः समा द्वादश तत्त्व राज्ये न ववर्ष यदा विभुः ॥१४॥

च एव अग्र्यां	तथा उसे परम	**तत् राज्ये**	उसके राज्यमें
शान्ति	शान्ति	**द्वादश समा**	बारह वर्ष तक
आप्नोति	मिल जाती थी	**यदा विभुः**	जब समर्थ इन्द्रने
तेन कर्मणा	इसी कर्मसे	**ववर्ष न**	वर्षा नहीं की ॥१४॥
शन्तनुः	(उसका नाम) शन्तनु पड़ा।		

शन्तनुर्ब्राह्मणैरुक्तः परिवेत्तायमग्रभुक् ।
राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये ॥१५॥

शन्तनुः ब्राह्मणैः उक्तः परिवेत्ता अयं अग्रभुक् राज्यं देहि अग्रजाय आशु पुरराष्ट्र विवृद्धये ॥१५॥

ब्राह्मणैः	ब्राह्मणों द्वारा	**विवृद्धये**	वृद्धिके लिए
शन्तनुः उक्तः	शन्तनुसे कहा गया	**अग्रजाय**	बड़े भाईको
अयं अग्रभुक्	'यह अग्रभोजी	**आशु राज्यं**	शीघ्र राज्य
परिवेत्ता	परिवेत्ता है* (अतः)	**देहि**	दे दो' ॥१५॥
पुरराष्ट्र	नगर तथा राष्ट्रकी		

एवमुक्तो द्विजैर्ज्येष्ठं छन्दयामास सोऽब्रवीत् ।
तन्मन्त्रिप्रहितैर्विप्रैर्वेदाद् विभ्रंशितो गिरा ॥१६॥

एवं उक्तः द्विजैः ज्येष्ठं छन्दयामास सः अब्रवीत् तत् मन्त्रि प्रहितैः विप्रैः वेदात् विभ्रंशितः गिरा ॥१६॥

द्विजैः एवं	ब्राह्मणोंके ऐसा	**प्रहितैः विप्रैः**	भेजे गये ब्राह्मणोंने
उक्तः	कहनेपर	**गिरा**	(अपनी) बातोंसे
ज्येष्ठं	बड़े भाईसे	**वेदात्**	वैदिक-मार्गसे
छन्दयामास	(राज्य स्वीकार करनेकी) प्रार्थना की,	**विभ्रंशितः**	भ्रष्ट कर दिया (अतः)
तत्	किन्तु उस (शन्तनु) के	**सः अब्रवीत्**	वह बोला ॥१६॥
मन्त्रि	मन्त्री द्वारा		

---

* छोटा भाई यदि बड़े भाईसे पहिले विवाह कर ले तो उसे 'परिवेत्ता' कहते हैं। यह पाप माना जाता है।

वेदवादातिवादान् वै तदा देवो ववर्ष ह ।
देवापिर्योगमास्थाय कलापग्राममाश्रितः ॥१७॥

वेदवादात् अतिवादान् वै तदा देवः ववर्ष ह देवापिः योगं आस्थाय कलाप ग्रामं आश्रितः ॥१७॥

वै वेदवादात	निश्चय वेदवादको	**देवापिः**	देवापि
अतिवादन्	अतिवाद (असंगत बातें) हैं,	**योगं**	योग साधनमें
		आस्थाय	स्थित होकर
तदा देवः	तब इन्द्रदेवने (देवापिको राज्यका अधिकार न रहनेसे)	**कलाप ग्रामं**	कलाप ग्राममें*
		आश्रितः	(अब भी) रहते हैं ॥१७॥
ह ववर्ष	फिर वर्षा की		

सोमवंशे कलौ नष्टे कृतादौ स्थापयिष्यति ।
बाह्लीकात् सोमदत्तोऽभूद् भूरिभूरिश्रवास्ततः ॥१८॥

सोमवंशे कलौ नष्टे कृत आदौ स्थापयिष्यति बाह्लीकात् सोमदत्तः अभूत् भूरि भूरिश्रवाः ततः ॥१८॥

कलौ सोमवंशे	कलियुगमें चन्द्रवंशके	**सोमदत्तः**	सोमदत्त
नष्टे	नष्ट हो जानेपर	**अभूत्**	हुआ
कृत आदौ	सतयुगके प्रारम्भमें	**ततः भूरिः**	उससे भूरि,
स्थापयिष्यति	स्थापित करेगा ।	**भूरिश्रवाः**	भूरिश्रवा ॥१८॥
बाह्लीकात्	बाह्लीकसे		

शलश्च शन्तनोरासीद् गङ्गायां भीष्म आत्मवान् ।
सर्वधर्मविदां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः ॥१९॥

शलः च शन्तनोः आसीत् गङ्गायां भीष्म आत्मवान् सर्वधर्मविदां श्रेष्ठः महाभागवतः कविः ॥१९॥

---

* श्रीबद्रीनाथसे आगे माना गांवके आस-पास कहीं अदृश्य सिद्धोंका यह अदृश्य आवास है ।

च शलः	तथा शल (तीन पुत्र) हुए,	सर्वधर्मविदां	सब धर्मज्ञोंमें
गंगायां	गंगासे	श्रेष्ठः	श्रेष्ठ
शन्तनोः	शन्तनुके	महाभागवतः	परम भगवद् भक्त
आत्मवान्	परमधीर	कविः भीष्मः	बिद्वान भीष्म हुए ॥१९॥

वीरयूथाग्रणीर्येन रामोऽपि युधि तोषितः ।
शन्तनोर्दाशकन्यायां जज्ञे चित्राङ्गदः सुतः ॥२०॥

वीरयूथ अग्रणीः येन रामः अपि युधि तोषितः शन्तनोः दाश कन्यायां जज्ञे चित्रांगदः सुतः ॥२०॥

वीरयूथ	वीर-समूहोंके	दाश	दाश (मछुए) की
अग्रणीः	नेता थे,	कन्यायां	कन्यासे
येन युधि	जिन्होंने युद्धमें	चित्रांगदः	चित्रांगद नामक
रामः अपि	परशुरामको भी	सुतः जज्ञे	पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२०॥
तोषितः	सन्तुष्ट कर दिया		
शन्तनोः	शन्तनुको		

विचित्रवीर्यश्चावरजो नाम्ना चित्रांगदो हतः ।
यस्यां पराशरात् साक्षादवतीर्णो हरेः कला ॥२१॥

विचित्रवीर्यः च अवरजः नाम्ना चित्रांगदः हतः यस्यां पराशरात् साक्षात् अवतीर्णः हरेः कला ॥२१॥

च अवरजः	तथा उसका छोटा भाई	यस्यां	जिस (दाश कन्या सत्यवती) में
विचित्रवीर्य	विचित्रवीर्य था	पराशरात्	पराशरजीसे
चित्रांगदः	चित्रांगद	साक्षात् हरेः	साक्षात् श्रीहरिकी
नाम्ना	अपने नामवाले (गन्धर्व) द्वारा	कला अवतीर्णः	कलावतार रूप ॥२१॥
हतः	मारा गया ।		

वेदगुप्तो मुनिः कृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम् ।
हित्वा स्वशिष्यान् पैलादीन् भगवान् बादरायणः ॥२२॥

वेदगुप्तः मुनिः कृष्णः यतः अहं इदं अध्यगां हित्वा स्वशिष्यान् पैल आदीन् भगवान् बादरायणः ॥२२॥

वेदगुप्तः	वेदोंकी रक्षा करने वाले	**अध्यगां**	अध्ययन किया,
मुनिः कृष्ण	मुनि कृष्णद्वैपायन हुए	**स्वशिष्यान्**	अपने शिष्यों
यतः अहं	जिनसे मैंने	**पैल आदीन्**	पैल आदिको
इदं	यह (श्रीमद्भागवत)	**हित्वा**	छोड़कर
		भगवान्	भगवान
		बादरायणः	बादरायणने ॥२२॥

मह्यं पुत्राय शान्ताय परं गुह्यमिदं जगौ ।
विचित्रवीर्योऽथोवाह काशिराजसुते बलात् ॥२३॥

मह्यं पुत्राय शान्ताय परं गुह्यं इदं जगौ विचित्रवीर्यः अथ उवाह काशिराज सुते बलात् ॥२३॥

मह्यं शान्ताय	मुझ शान्त	**विचित्रवीर्यः**	विचित्रवीर्यने
पुत्राय	अपने पुत्रको	**अथ बलात्**	फिर बलपूर्वक
इदं परं	इस परम	**काशिराज**	काशिराजकी
गुह्यं	रहस्यमय (संहिता)को	**सुते**	दो पुत्रियोंसे
जगौ	पढ़ाया,	**उवाह**	विवाह किया ॥२३॥

स्वयंवरादुपानीते अम्बिकाम्बालिके उभे ।
तयोरासक्तहृदयो गृहीतो यक्ष्मणा मृतः ॥२४॥

स्वयं वरात् उप आनीते अम्बिका अम्बालिके उभे तयोः आसक्त हृदयः गृहीतः यक्ष्मणा मृतः ॥२४॥

स्वयं वरात्	स्वयंवरसे	**अम्बालिके**	अम्बालिका
उप आनीते	अपने पास लायी हुई	**उभे**	दोनोंके साथ (विवाह
अम्बिका	अम्बिका		किया)

तयोः आसक्त	उनमें आसक्त	गृहीतः मृतः	ग्रस्त होकर मर गया ॥२४॥
हृदयः	चित्त		
यक्ष्मणा	क्षय-रोगसे		

क्षेत्रेऽप्रजस्य वै भ्रातुर्मात्रोक्तो बादरायणः ।
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥२५॥

क्षेत्रे अप्रजस्य वै भ्रातुः मात्रा उक्तः बादरायणः धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं च अपि अजीजनत् ॥२५॥

वै अप्रजस्य	निश्चित सन्तानहीन	धृतराष्ट्रं	धृतराष्ट्र,
भ्रातुः क्षेत्रे	भाईकी पत्नियोंसे	च पाण्डुं	तथा पाण्डु
मात्रा उक्तः	माताके कहनेसे	च विदुरं	एवं विदुर
बादरायणः	भगवान् बादरायण व्यासजीने	च अपि	को भी
		अजीजनत्	उत्पन्न किया ॥२५॥

गान्धार्यां धृतराष्ट्रस्य जज्ञे पुत्रशतं नृप ।
तत्र दुर्योधनो ज्येष्ठो दुःशला चापि कन्यका ॥२६॥

गान्धार्यां धृतराष्ट्रस्य जज्ञे पुत्रशतं नृप तत्र दुर्योधनः ज्येष्ठः दुःशला च अपि कन्यका ॥२६॥

नृप	राजन् !	तत्र दुर्योधनः	उनमें दुर्योधन
धृतराष्ट्रस्य	धृतराष्ट्रकी (पत्नी)	ज्येष्ठः	सबसे बड़ा था,
गान्धार्यां	गान्धारीने	च दुःशला	और दुःशला नामकी
पुत्रशतं जज्ञे	सौ पुत्र उत्पन्न किये	कन्यका अपि	कन्या भी हुई ॥२६॥

शापान्मैथुनरुद्धस्य पाण्डोः कुन्त्यां महारथाः ।
जाता धर्मानिलेन्द्रेभ्यो युधिष्ठिरमुखास्त्रयः ॥२७॥

शापात् मैथुन रुद्धस्य पाण्डोः कुन्त्यां महारथाः जाता धर्म अनिल इन्द्रेभ्यः युधिष्ठिर मुखाः त्रयः ॥२७॥

शापात्	शापके कारण	पाण्डोः	पाण्डुकी पत्नी
मैथुन रुद्धस्य	मैथुनसे रोके गये	कुन्त्यां	कुन्तीसे

धर्म अनिल	धर्म, वायु,	मुखाः	प्रमुख
इन्द्रेभ्यः	इन्द्रके द्वारा	त्रयः महारथाः	तीन महारथी
युधिष्ठिर	युधिष्ठिर	जाता	उत्पन्न हुए ॥२७॥

नकुलः सहदेवश्च माद्र्यां नासत्यदस्रयोः ।
द्रौपद्यां पञ्च पञ्चभ्यः पुत्रास्ते पितरोऽभवन् ॥२८॥

नकुलः सहदेवः च माद्र्यां नासत्यदस्रयोः द्रौपद्यां पञ्च पञ्चभ्यः पुत्राः ते पितरः अभवन् ॥२८॥

माद्र्यां	माद्रीसे	द्रौपद्यां	द्रौपदीसे
नासत्यदस्रयोः	दोनों अश्विनी कुमारों द्वारा	पञ्चभ्यः	पांचो पाण्डवोंसे
		ते पञ्च	तुम्हारे पांच
नकुलः च	नकुल और	पितरः	पितर
सहदेवः	सहदेव,	अभवन्	उत्पन्न हुए ॥२८॥

युधिष्ठिरात् प्रतिविन्ध्यः श्रुतसेनो वृकोदरात् ।
अर्जुनात्श्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥२९॥

युधिष्ठिरात् प्रतिविन्ध्यः श्रुतसेनः वृकोदरात् अर्जुनात् श्रुतकीर्तिः तु शतानीकः तु नाकुलिः ॥२९॥

युधिष्ठिरात्	युधिष्ठिरसे	अर्जुनात् तु	अर्जुनसे तो
प्रतिविन्ध्यः	प्रतिविन्ध्य,	श्रुतकीर्तिः	श्रुतकीर्ति,
वृकोदरात्	भीमसेनसे	नाकुलिः तु	नकुलसे तो
श्रुतसेनः	श्रुतसेन,	शतानीकः	शतानीक ॥२९॥

सहदेवसुतो राजन्श्रुतकर्मा तथापरे ।
युधिष्ठिरात् तु पौरव्यां देवकोऽथ घटोत्कचः ॥३०॥

सहदेवसुतः राजन् श्रुतकर्मा तथा अपरे युधिष्ठिरात् तु पौरव्यां देवकः अथ घटोत्कचः ॥३०॥

राजन्	राजन् !	श्रुतकर्मा	श्रुतकर्मा था ।
सहदेवसुतः	सहदेवका पुत्र	तथा	इसी प्रकार

अपरे	दूसरे थे
युधिष्ठिरात्	युधिष्ठिरके
पौरव्यां	पौरवीसे
देवकः	देवक
अथ घटोत्कचः	फिर घटोत्कच ॥३०॥

भीमसेनाद्धिडिम्बायां काल्यां सर्वगतस्ततः ।
सहदेवात् सुहोत्रं तु विजयासूत पार्वती ॥३१॥

भीमसेनात् हिडिम्बायां काल्यां सर्वगतः ततः सहदेवात् सुहोत्रं तु विजया असूत पार्वती ॥३१॥

भीमसेनात्	भीमसेनके
हिडिम्बायां	हिडिम्बासे हुआ,
ततः काल्यां	और कालीसे
सर्वगतः	सर्वगत हुआ,
सहदेवात्	सहदेवसे
पार्वती	पर्वतीय कन्या
विजया	विजयाने
सुहोत्रंतु	सुहोत्रको
असूत	उत्पन्न किया ॥३१॥

करेणुमत्यां नकुलो निरमित्रं तथार्जुनः ।
इरावन्तमुलूप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम् ।
मणिपूरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥३२॥

करेणुमत्यां नकुलः निरमित्रं तथा अर्जुनः इरावन्तं उलूप्यां वै सुतायां बभ्रु वाहनं मणिपूरपतेः सः अपि तत् पुत्रः पुत्रिका सुतः ॥३२॥

नकुलः	नकुलने
करेणुमत्यां	करेणुमतीसे
निरमित्रं	निरमित्रको,
तथा	इसी प्रकार
अर्जुनः	अर्जुनने
वै	निश्चय (नाग कन्या)
उलूप्यां	उलूपीसे
इरावन्तं	इरावान् तथा
मणिपूरपतेः	मणिपुर नरेशकी
सुतायां	पुत्री (चित्रांगदा) से
बभ्रुवाहनं	बभ्रुवाहनको
सः अपि	वह भी
पुत्रिका	पुत्रिका धर्मसे
सुतः	उत्पन्न पुत्र
तत्	उन्हीं (मणिपुर नरेश) का
पुत्रः	पुत्र हो गया ॥३२॥

तव तातः सुभद्रायामभिमन्युरजायत ।
सर्वातिरथजिद् वीर उत्तरायां ततो भवान् ॥३३॥

तव तातः सुभद्रायां अभिमन्युः अजायत सर्व अतिरथ जित् वीर उत्तरायां ततः भवान् ॥३३॥

सुभद्रायां	सुभद्रासे	**अभिमन्युः**	अभिमन्यु
सर्व	सम्पूर्ण	**अजायत**	उत्पन्न हुए
अतिरथ	अतिरथियोंको	**ततः उत्तरायां**	उनसे उत्तरामें
जित् वीर	जीतनेवाला वीर	**भवान्**	तुम उत्पन्न हुए
तव तातः	तुम्हारे पिता		॥३३॥

परिक्षीणेषु कुरुषु द्रौणेर्ब्रह्मास्त्रतेजसा ।
त्वं च कृष्णानुभावेन सजीवो मोचितोऽन्तकात् ॥३४॥

परिक्षीणेषु कुरुषु द्रौणेः ब्रह्मास्त्र तेजसा त्वं च कृष्ण अनुभावेन सजीवः मोचितः अन्तकात् ॥३४॥

कुरुषु	कौरवोंके	**कृष्ण**	श्रीकृष्णके
परिक्षीणेषु	नष्ट हो जानेपर	**अनुभावेन**	प्रभावसे
द्रौणेः	अश्वत्थामाके	**त्वं चं सजीवः**	तुम तो सप्राण
ब्रह्मास्त्र	ब्रह्मास्त्रके	**मोचितः**	छुड़ा लिये गये
तेजसा	तेजरूपी		॥३४॥
अन्तकात्	कालसे		

तवेमे तनयास्तात जनमेजयपूर्वकाः ।
श्रुतसेनो भीमसेन उग्रसेनश्च वीर्यवान् ॥३५॥

तव इमे तनयाः तात जनमेजय पूर्वका श्रुतसेनः भीमसेनः उग्रसेनः च वीर्यवान् ॥३५॥

तात	तात !	**जनमेजय**	जनमेजय
तव इमे	तुम्हारे ये	**पूर्वकाः तनयाः**	जिनमें बड़ा है वे पुत्र

श्रुतसेनः	श्रुतसेन,	**च वीर्यवान्**	तथा पराक्रमी
भीमसेनः	भीमसेन	**उग्रसेनः**	उग्रसेन हैं ॥३५॥

जनमेजयस्त्वां विदित्वा तक्षकान्निधनं गतम् ।
सर्पान् वै सर्पयागाग्नौ स होष्यति रुषान्वितः ॥३६॥

जनमेजयः त्वां विदित्वा तक्षकात् निधनं गतं सर्पान् वै सर्पयाग अग्नौ स होष्यति रुषा अन्वितः ॥३६॥

त्वां तक्षकात्	तुम्हें तक्षक द्वारा	**वै सर्पान्**	निश्चय सर्पोंको
निधनं गतं	मृत्युप्राप्त	**सर्पयाग अग्नौ**	सर्पयज्ञकी अग्निमें
विदित्वा	जानकर	**स**	वे
जनमेजयः	जनमेजय	**होष्यति**	हवन कर देंगे ॥३६॥
रुषा अन्वितः	क्रोधपूर्वक		

कावषेयं पुरोधाय तुरं तुरगमेधयाट् ।
समन्तात् पृथिवीं सर्वां जित्वा यक्ष्यति चाध्वरैः ॥३७॥

कावषेयं पुरः आधाय तुरं तुरगमेधयाट् समन्तात् पृथिवीं सर्वां जित्वा यक्ष्यति च अध्वरैः ॥३७॥

तुरगमेधयाट्	अश्वमेध-यज्ञ करनेके लिए	**सर्वां पृथिवीं**	सम्पूर्ण पृथ्वीको
कावषेयं	कावषेय गोत्रीय	**जित्वा**	जीतकर
तुरं	तुरको	**अध्वरैः च**	यज्ञों द्वारा ही
पुरः आधाय	पुरोहित बनाकर	**यक्ष्यति**	(भगवानकी) आराधना करेगा ॥३७॥
समन्तात्	चारों ओरसे		

तस्य पुत्रः शतानीको याज्ञवल्क्यात् त्रयीं पठन् ।
अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात् परमेष्यति ॥३८॥

तस्य पुत्रः शतानीकः याज्ञवल्क्यात् त्रयीं पठन् अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात् परम् एष्यति ॥३८॥

तस्य पुत्रः	उसका पुत्र	**याज्ञवल्क्यात्**	याज्ञवल्क्यसे
शतानीकः	शतानीक	**त्रयीं**	वेदत्रयी और

क्रियाज्ञानं पठन्	क्रियाज्ञान पढ़कर	शौनकात्	शौनकसे
अस्त्रज्ञानं	(कृपाचार्यसे) अस्त्र-	परम्	आत्मज्ञान
	ज्ञान	एष्यति	प्राप्त करेगा ॥३८॥

सहस्रानीकस्ततपुत्रस्ततश्चैवाश्वमेधजः ।
असीमकृष्णस्तस्यापि नेमिचक्रस्तु तत्सुतः ॥३९॥

सहस्रानीकः तत् पुत्रः ततः च एव अश्वमेधजः असीमकृष्णः तस्य अपि नेमिचक्रः तु तत्सुतः ॥३९॥

तत् पुत्रः	उसका पुत्र	असीमकृष्णः	असीमकृष्ण
सहस्रानीकः	सहस्रानीक	तत्सुतः तु	उसका पुत्र तो
ततः च	उससे भी	नेमिचक्रः	नेमिचक्र होगा
अश्वमेधजः	अश्वमेधज		॥३९॥
तस्य अपि	उसका भी		

गजाह्वये हृते नद्या कौशाम्ब्यां साधु वत्स्यति ।
उक्तस्ततश्चित्ररथस्तस्मात् कविरथः सुतः ॥४०॥

गजाह्वये हृते नद्या कौशाम्ब्यां साधु वत्स्यति उक्तः ततः चित्ररथः तस्मात् कविरथः सुतः ॥४०॥

गजाह्वये	हस्तिनापुरके	ततः	उसका पुत्र
नद्या	गंगा नदी द्वारा	चित्ररथः उक्तः	चित्ररथ कहा गया
हृते	हरण कर लेनेपर		है,
कौशाम्ब्यां	कौशाम्बीमें	तस्मात् सुतः	उसका पुत्र
साधु	भली प्रकार	कविरथः	कविरथ होगा ॥४०॥
वत्स्यति	जा बसेगा,		

तस्माच्च वृष्टिमांस्तस्य सुषेणोऽथ महीपति ।
सुनीथस्तस्य भविता नृचक्षुर्यत् सुखीनलः ॥४१॥

तस्मात् च वृष्टिमान् तस्य सुषेणः अथ महीपति सुनीथः तस्य भविता नृचक्षुः यत् सुखीनलः ॥४१॥

तस्मात् च	उससे तो
वृष्टिमान्	वृष्टिमान्
तस्य अथ	उससे फिर
महीपति:	पृथ्वीपति
सुषेण:	सुषेण,
तस्य सुनोथ:	उसका सुनोथ
भविता नृचक्षु:	उससे होगा नृचक्षु
यत्	जिससे
सुखीनल:	सुखीनल होगा

॥४१॥

परिप्लव: सुतस्तस्मान्मेधावी सुनयात्मज: ।
नृपञ्जयस्ततो दूर्वस्तिमिस्तस्माज्जनिष्यति ॥४२॥

परिप्लव: सुत: तस्मात् मेधावी सुनय आत्मज: नृपञ्जय: तत: दूर्व: तिमि: तस्मात् जनिष्यति ॥४२॥

सुत:	उसका पुत्र
परिप्लव:	परिप्लव,
तस्मात्	उससे
मेधावी	मेधावी,
आत्मज:	उसका पुत्र
सुनय	सुनय,
नृपञ्जय:	(उससे) नृपञ्जय
तत: दूर्व:	उससे दूर्व
तस्मात् तिमि:	उससे तिमि
जनिष्यति	उत्पन्न होगा ॥४२॥

तिमेर्बृहद्रथस्तस्माच्छतानीक: सुदासज: ।
शतानीकाद् दुर्दमनस्तस्यापत्यं वहीनर: ॥४३॥

तिमे: बृहद्रथ: तस्मात् शतानीक: सुदासज: शतानीकात् दुर्दमन: तस्य अपत्यं वहीनर: ॥४३॥

तिमे: बृहद्रथ:	तिमिसे बृहद्रथ,
तस्मात्	उससे
सुदासज:	सुदाससे उत्पन्न
शतानीक:	शतानीक,
शतानीकात्	शतानीकसे
दुर्दमन:	दुर्दमन
तस्य अपत्यं	उसका पुत्र
वहीनर:	वहीनर होगा ॥४३॥

दण्डपाणिर्निमिस्तस्य क्षेमको भविता नृप: ।
ब्रह्मक्षत्रस्य वै प्रोक्तो वंशो देवर्षिसत्कृत: ॥४४॥

दण्डपाणिः निमिः तस्य क्षेमकः भविता नृपः ब्रह्मक्षत्रस्य वै प्रोक्तः वंशः देव ऋषि सत् कृतः ॥४४॥

दण्डपाणिः	उसका दण्डपाणि,	**ऋषि**	ऋषियों द्वारा
तस्य निमिः	उसका निमि,	**सत्कृतः**	सम्मानित
भविता	होगा (उससे)	**ब्रह्म शत्रस्य**	वृहत् क्षत्रका
नृपः क्षेमकः	राजा क्षेमक,	**वंशः प्रोक्तः**	वंश वर्णन किया ॥४४॥
वै	निश्चय		
देव	देवताओं और		

क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ।
अथ मागधराजानो भवितारो वदामि ते ॥४५॥

क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ अथ मागध राजानः भवितारः वदामि ते ॥४५॥

क्षेमकं राजानं	क्षेमकके राजा	**अथ भवितारः**	अब होनेवाले
प्राप्य वै	होनेपर निश्चय	**मागध**	मगधके
कलौ	कलियुगमें	**राजानः**	राजाओंका
संस्थां प्राप्स्यति	(यह वंश) समाप्त हो जायगा,	**ते वदामि**	तुमसे वर्णन करता हूँ ॥४५॥

भविता सहदेवस्य मार्जारिर्यत् श्रुतश्रवाः ।
ततोऽयुतायुस्तस्यापि निरमित्रोऽथ तत्सुतः ॥४६॥

भविता सहदेवस्य मार्जारिः यत् श्रुतश्रवाः ततः अयुतायुः तस्य अपि निरमित्रः अथ तत् सुतः ॥४६॥

सहदेवस्य	(जरासंध पुत्र) सहदेवका	**भविता**	होगा,
मार्जारि	(पुत्र) मार्जारि	**यत्**	जिससे
		श्रुतश्रवाः	श्रुतश्रवा होगा,

तत् श्रुतायुः	उससे श्रुतायु,	अथ तत् सुतः	फिर उसका पुत्र ॥४६॥
तस्य अपि	उसका भी		
निरमित्रः	निरमित्र,		

सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद् बृहत्सेनोऽथ कर्मजित् ।
ततः सृतञ्जयाद् विप्रः शुचिस्तस्य भविष्यति ॥४७॥

सुनक्षत्रः सुनक्षत्रात् बृहत्सेनः अथ कर्मजित् ततः सृतञ्जयात् विप्रः शुचिः तस्य भविष्यति ॥४७॥

सुनक्षत्रः	सुनक्षत्र,	सृतञ्जयात्	सृतञ्जयसे
सुनक्षत्रात्	सुनक्षत्रसे	विप्रः	विप्र,
बृहत्सेनः	बृहत्सेन,	तस्य शुचिः	उससे शुचि
अथ कर्मजित्	फिर कर्मजित्	भविष्यति	उत्पन्न होगा ॥४७॥
ततः	उससे		

क्षेमोऽथ सुव्रतस्तस्माद् धर्मसूत्रः शमस्ततः ।
द्युमत्सेनोऽथ सुमतिः सुबलो जनिता ततः ॥४८॥

क्षेमः अथ सुव्रतः तस्मात् धर्मसूत्रः शमः ततः द्युमत्सेनः अथ सुमतिः सुबलः जनिता ततः ॥४८॥

क्षेमः	उससे क्षेम,	द्युमत्सेनः	द्युमत्सेन
अथ सुव्रतः	फिर सुव्रत,	अथ सुमतिः	फिर सुमति
तस्मात्	उससे	जनिता	उससे उत्पन्न होगा
धर्मसूत्रः	धर्मसूत्र,	सुबलः	सुबल
शमः	(उससे) शम	ततः	उससे ॥४८॥
ततः	उससे		

सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद् यद् रिपुञ्जयः ।
बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम् ॥४९॥

सुनीथः सत्यजित् अथ विश्वजित् यत् रिपुञ्जयः बार्हद्रथाः च भूपाला भाव्याः साहस्र वत्सरम् ॥४९॥

सुनीथः	सुनीथ
सत्यजित्	(उससे) सत्यजित्
अथ	फिर
विश्वजित्	विश्वजित्
यत् रिपुञ्जयः	जिससे रिपुञ्जय होगा,
बार्हद्रथाः	ये वृहद्रथके वंशमें उत्पन्न
भूपालाः च	राजा लोग भी
साहस्र	एक सहस्र
वत्सरं	वर्षके भीतर
भाव्याः	होंगे ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अनोः सभानरश्चक्षुः परोक्षश्च त्रयः सुताः ।
सभानरात् कालनरः सृञ्जयस्तत्सुतस्ततः ॥१॥

अनोः सभानरः चक्षुः परोक्षः च त्रयः सुताः सभानरात् कालनरः सृञ्जयः तत् सुतः ततः ॥१॥

अनोः	(ययाति पुत्र) अनुके	**सभानरात्**	सभानरसे
सभानरः चक्षुः	सभानर, चक्षु,	**कालनरः**	कालनर,
च परोक्षः	और परोक्ष	**तत् सृञ्जयः**	उससे सृञ्जय,
त्रयः सुताः	ये तीन पुत्र थे,	**ततः सुतः**	उसका पुत्र ॥१॥

जनमेजयस्तस्य पुत्रो महाशीलो महामनाः ।
उशीनरस्तितिक्षुश्च महामनस आत्मजौ ॥२॥

जनमेजयः तस्य पुत्रः महाशीलः महामनाः उशीनरः तितिक्षुः च महामनस आत्मजौ ॥२॥

जनमेजयः	जनमेजय,	**महामनस**	महामनाके
तस्य पुत्रः	उसका पुत्र	**आत्मजौ**	दो पुत्र
महाशीलः	महाशील,	**उशीनरः च**	उशीनर और
महामनाः	(उसका) महामना,	**तितिक्षुः**	तितिक्षु हुए ॥२॥

शिबिर्वनः शमिर्दक्षश्चत्वारोशीनरात्मजाः ।
वृषादर्भः सुवीरश्च मद्रः कैकेय आत्मजाः ॥३॥

शिबिः वनः शमिः दक्षः चत्वारः उशीनर आत्मजाः वृषादर्भः सुवीरः च मद्रः कैकेय आत्मजाः ॥३॥

शिबिः वनः	शिबि, वन,
शमिः दक्षः	शमी और दक्ष,
चत्वारः	ये चार
उशीनर	उशीनरके
आत्मजाः	पुत्र हुए ।
वृषादर्भः	वृषादर्भ
सुवीरः मद्रः	सुवीर, मद्र,
च कैकय	और कैकय
आत्मजाः	ये पुत्र हुए ॥३॥

शिबेश्चत्वार एवासंस्तितिक्षोश्च रुशद्रथः ।
ततो हेमोऽथ सुतपा बलिः सुतपसोऽभवत् ॥४॥

शिबेः चत्वार एव आसन् तितीक्षोः च रुशद्रथः ततः हेमः अथ सुतपा बलिः सुतपसः अभवत् ॥४॥

शिबेः चत्वार	शिबिके ये चार
एव आसन्	ही हुए,
च तितीक्षोः	और तितीक्षुसे
रुशद्रथः	रुशद्रथ,
ततः हेमः	उससे हेम,
अथ सुतपा	फिर सुतपा
सुतपसः	सुतपासे
बलिः अभवत्	बलि हुआ ॥४॥

अंगबंगकलिंगाद्याः सुह्मपुण्ड्रान्ध्रसंज्ञिताः ।
जज्ञिरे दीर्घतमसो बलेः क्षेत्रे महीक्षितः ॥५॥

अंग बंग कलिंग आद्याः सुह्म पुण्ड्र आन्ध्र संज्ञिताः जज्ञिरे तमसः बलेः क्षेत्रे महीक्षितः ॥५॥

महीक्षितः बलेः	राजा बलिकी
क्षेत्रे	पत्नीमें
दीर्घतमसः	दीर्घतमा मुनिसे
अंग बंग	अंग, बंग,
कलिंग	कलिंग,
सुह्म पुण्ड्र	सुह्म, पुण्ड्र,
आन्ध्र आद्याः	आन्ध्र आदि
संज्ञिताः	नामवाले
जज्ञिरे	उत्पन्न हुए ॥५॥

चक्रुः स्वनाम्ना विषयान् षडिमान् प्राच्यकांश्च ते ।
खनपानोऽङ्गतो जज्ञे तस्माद् दिविरथस्ततः ॥६॥

चक्रुः स्वनाम्ना विषयान् षट् इमान् प्राच्यकान् च ते खनपानः अंगतः जज्ञे तस्मात् दिविरथः ततः ॥६॥

च ते	और उन
इमान् षट्	इन छ ने
प्राच्यकान्	पूर्व देशके
स्वनाम्ना	अपने नामवाले
विषयान् चक्रुः	प्रदेश बसाये
अंगतः	अंगसे
खनपानः जज्ञे	खनपान उत्पन्न हुआ,
तस्मात्	उससे
दिविरथः	दिविरथ
ततः	उससे ॥६॥

सुतो धर्मरथो यस्य जज्ञे चित्ररथोऽप्रजाः ।
रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ॥७॥

सुतः धर्मरथः यस्य जज्ञे चित्ररथः अप्रजाः रोमपाद इति ख्यातः तस्मै दशरथः सखा ॥७॥

सुतः धर्मरथः	उसका पुत्र धर्मरथ
यस्य अप्रजाः	जिससे सन्तानहीन
चित्ररथः	चित्ररथ
जज्ञे	उत्पन्न हुआ,
रोमपाद इति	रोमपाद इस
ख्यातः तस्मै	नामसे प्रसिद्ध उसे
सखा	उसके मित्र
दशरथः	दशरथने ॥७॥

शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छदृष्यश्रृंग उवाह ताम् ।
देवेऽवर्षति यं रामा आनिन्युर्हरिणीसुतम् ॥८॥

शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छत् ऋष्यशृंग उवाह तां देवे अवर्षति यं रामा आनिन्युः हरिणी सुतम् ॥८॥

स्वकन्यां	अपनी पुत्री
शान्तां	शान्ता
प्रायच्छत्	(गोद) दे दी,
तां ऋष्यशृंग	उसे शृष्यशृंगने
उवाह	विवाह कर लिया,
यं हरिणी	जिन हरिणीके
सुतं	पुत्रको
देवे अवर्षति	देवके वर्षा न करने-पर
रामा	स्त्रियां ले
आनिन्युः	आयी थीं ॥८॥

नाट्यसंगीतवादित्रैर्विभ्रमालिंगनार्हणैः ।
स तु राज्ञोऽनपत्यस्य निरूप्येष्टिं मरुत्वतः ॥९॥

नाट्य संगीत वादित्रैः विभ्रम आलिगन अर्हणैः स तु राज्ञः अनपत्यस्य निरूप्य इष्टि मरुत्वतः ॥९॥

नाट्य संगीत	नृत्य, संगीत,
वादित्रैः विभ्रम	बाद्य, हावभाव,
आलिगन	आलिगन तथा
अर्हणैः	उपहारोंसे (ले आयी थीं)
स तु	उन्होंने ही
अनपत्यस्य	सन्तानहीन
राज्ञः	राजा (दशरथा) से
मरुत्वतः इष्टि	इन्द्रयाग
निरूप्य	करवा कर ॥९॥

प्रजामदाद् दशरथो येन लेभेऽप्रजाः प्रजाः ।
चतुरंगो रोमपादात् पृथुलाक्षस्तु तत्सुतः ॥१०॥

प्रजां अदात् दशरथः येन लेभे अप्रजाः प्रजाः चतुरंगः रोमपादात् पृथुलाक्षः तु तत् सुतः ॥१०॥

प्रजां अदात्	पुत्र दिया,
येन अप्रजाः	जिससे सन्तानहीन
दशरथः	महाराज दशरथने
प्रजाः लेभे	पुत्र पाये,
रोमपादात्	रोमपादसे
चतुरंगः	चतुरंग,
तत् सुतः तु	उसका पुत्र तो
पृथुलाक्षः	पृथुलाक्ष हुआ ॥१०॥

बृहद्रथो बृहत्कर्मा बृहद्भानुश्च तत्सुताः ।
आद्याद् बृहन्मनास्तस्माज्जयद्रथ उदाहृतः ॥११॥

बृहद्रथः बृहत्कर्मा बृहद्भानुः च तत् सुताः आद्यात् बृहन्मनाः तस्मात् जयद्रथ उदाहृतः ॥११॥

तत् सुताः	उसके पुत्र
बृहद्रथ	बृहद्रथ,
बृहत्कर्मा	बृहत्कर्मा,
च बृहद्भानुः	तथा बृहद्भानु हुए,
आद्यात्	उनमें पहिले (बृहद्रथ) से
बृहन्मनाः	बृहन्मना
तस्मात् जयद्रथ	उससे जयद्रथ
उदाहृतः	कहा गया हैं ॥११॥

विजयस्तस्य सम्भूत्यां ततो धृतिरजायत ।
ततो धृतव्रतस्तस्य सत्कर्माधिरथस्ततः ॥१२॥

विजयः तस्य सम्भूत्यां ततः धृतिः अजायत ततः धृतव्रतः तस्य सत्कर्मा अधिरथः ततः ॥१२॥

तस्य	उसकी	**ततः धृतव्रतः**	उससे धृतव्रत,
सम्भूत्यां	संभूति नामक पत्नीसे	**तस्य सत्कर्मा**	उसके सत्कर्मा
विजयः	विजय	**ततः**	उससे
ततः धृतिः	उससे धृति	**अधिरथः**	अधिरथ हुआ ॥१२॥
अजायत	उत्पन्न हुआ,		

योऽसौ गंगातटे क्रीडन् मञ्जूषान्तर्गतं शिशुम् ।
कुन्त्यापविद्धं कानीनमनपत्योऽकरोत् सुतम् ॥१३॥

यः असौ गंगातटे क्रीडन् मञ्जूषा अन्तर्गतं शिशुं कुन्त्या अपविद्धं कानीनं अनपत्यः अकरोत् सुतम् ॥१३॥

कुन्त्या	कुन्ती द्वारा	**गंगातटे**	गंगा किनारे
कानीनं	कन्यावस्थामें उत्पन्न	**क्रीडन्**	खेलते समय (पाकर)
अपविद्धं	त्यागे हुए	**अनपत्यः**	सन्तानहीन होनेके कारण
मञ्जूषा	पेटिकाके		
अन्तर्गतं	भीतर रखे	**सुतं**	अपना पुत्र
शिशुं	बालकको	**अकरोत्**	बना लिया
असौ यः	इन जिन्होंने		॥१३॥

वृषसेनः सुतस्तस्य कर्णस्य जगतीपतेः ।
द्रुह्योश्च तनयो बभ्रुः सेतुस्तस्यात्मजस्ततः ॥१४॥

वृषसेनः सुतः तस्य कर्णस्य जगतीपतेः द्रुह्युः च तनयः बभ्रुः सेतुः तस्य आत्मजः ततः ॥१४॥

तस्य	उस	**द्रुह्युः**	(ययाति पुत्र) द्रुह्यु का
जगतीपतेः	पृथ्वीपति		
कर्णस्य तनयः	कर्णका पुत्र	**तनयः बभ्रुः**	पुत्र बभ्रु हुआ,
वृषसेनः	वृषसेन,	**तस्य आत्मजः**	उसका पुत्र
च	और	**सेतुः**	सेतु हुआ,
		ततः	उससे ॥१४॥

आरब्धस्तस्य गान्धारस्तस्य धर्मस्ततो धृतः ।
धृतस्य दुर्मनास्तस्मात् प्रचेताः प्राचेतसं शतम् ॥१५॥

आरब्धः तस्य गान्धारः तस्य धर्मः ततः धृतः धृतस्य दुर्मनाः तस्मात् प्रचेताः प्राचेतसं शतम् ॥१५॥

आरब्धः	आरब्ध,	**तस्मात्**	उससे
तस्य गान्धारः	उसका गान्धार	**प्रचेताः**	प्रचेता,
तस्य धर्मः	उसका धर्म	**प्राचेतसं**	प्रचेताके
ततः धृतः	उसका पुत्र धृत,	**शतं**	सौ पुत्र हुए ॥१५॥
धृतस्य दुर्मनाः	धृतका दुर्मना,		

म्लेच्छाधिपतयोऽभूवन्नुदीचीं दिशमाश्रिताः ।
तुर्वसोश्च सुतो वह्निर्वह्नेर्भर्गोऽथ भानुमान् ॥१६॥

म्लेच्छ अधिपतयः अभूवन् उदीचीं दिशं आश्रिताः तुर्वसोः च सुतः वह्निः वह्नेः भर्गः अथ भानुमान् ॥१६॥

उदीचीं दिशं	उत्तर दिशामें	**सुतः च**	पुत्र तो
आश्रिताः	रहनेवाले (ये सब)	**वह्निः**	वह्नि हुआ,
म्लेच्छ	म्लेच्छोंके	**वह्नेः भर्गः**	वह्निसे भर्ग
अधिपतयः	अधिपति	**अथ**	फिर उससे
अभूवन्	हुए,	**भानुमान्**	भानुमान हुआ ॥१६॥
तुर्वसोः	(ययाति-पुत्र) तुर्वसु का		

त्रिभानुस्तत्सुतोऽस्यापि करन्धम उदारधीः ।
मरुतस्तत्सुतोऽपुत्रः पुत्रं पौरवमन्वभूत् ॥१७॥

त्रिभानुः तत् सुतः अस्य अपि करन्धम उदारधीः मरुतः तत् सुतः अपुत्रः पुत्रं पौरवं अनु अभूत् ॥१७॥

तत् सुतः	उसका पुत्र	**अस्य अपि**	इसका भी
त्रिभानुः	त्रिभानु,	**उदारधीः**	उदार बुद्धि

करन्धम	करन्धम हुआ,	पौरवं	पुरुवंशी
तत् सुतः	उसका पुत्र	पुत्रं	(दुष्यन्त) के पुत्र
मरुतः	मरुत	अनु अभूत्	अनुको किया
अपुत्रः	पुत्रहीन हुआ,		(बनाया) ॥१७॥

दुष्यन्तः स पुनर्भेजे स्वं वंशं राज्यकामुकः ।
ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशं नरर्षभ ॥१८॥

दुष्यन्तः स पुनः भेजे स्वं वंशं राज्यकामुकः ययातेः ज्येष्ठ पुत्रस्य यदोः वंशं नर ऋषभ ॥१८॥

राज्यकामुकः	राज्यकामुक	ऋषभ	परीक्षित,
स दुष्यन्तः	वह दुष्यन्त	ययातेः	ययातिके
पुनः स्वं वंशं	फिर अपने वंशमें	ज्येष्ठ पुत्रस्य	बड़े पुत्र
भेजे	चला गया ।	यदोः वंशं	यदुका वंश ॥१८॥
नर	पुरुष श्रेष्ठ		

वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम् ।
यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१९॥

वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणां यदोः वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१९॥

महापुण्यं	परम पवित्र	वंशं	वंशका
नृणां	मनुष्योंका	श्रुत्वा	श्रवण करके
सर्वपापहरं	सर्वपापहारी	सर्वपापैः	सब पापोंसे
वर्णयामि	वर्णन करता हूँ,	प्रमुच्यते	छूट जाता है ॥१९॥
नरः यदोः	मनुष्य यदु		

यत्रावतीर्णो भगवान् परमात्मा नराकृतिः ।
यदोः सहस्रजित्क्रोष्टा नलो रिपुरिति श्रुताः ॥२०॥

यत्र अवतीर्णः भगवान् परमात्मा नर आकृतिः यदोः सहस्रजित् क्रोष्टा नलः रिपुः इति श्रुताः ॥२०॥

यत्र	जिस वंशमें
भगवान्	भगवान्
परमात्मा	परमात्मा
नर आकृतिः	मनुष्य रूपमें
अवतीर्णः	अवतरित हुए,
यदोः	यदुके
सहस्रजित्	सहस्रजित्
क्रोष्टा नलः	क्रोष्टा, नल,
रिपुः इति	रिपु ये
श्रुताः	विख्यात हैं ॥२०॥

चत्वारः सूनवस्तत्र शतजित् प्रथमात्मजः ।
महाहयो वेणुहयो हैहयश्चेति तत्सुताः ॥२१॥

चत्वारः सूनवः तत्र शतजित् प्रथम आत्मजः महाहयः वेणुहयः हैहयः च इति तत् सुताः ॥२१॥

चत्वारः	ये चार
सूनवः	पुत्र हुए,
तत्र प्रथम	उनमें पहिले (सहस्रजित्) का
आत्मजः	पुत्र
शतजित्	शतजित्
तत् सुताः	उसके पुत्र
महाहयः	महाहय,
वेणुहयः	वेणुहय
च हैहयः	तथा हैहय
इति	ये हुए ॥२१॥

धर्मस्तु हैहयसुतो नेत्रः कुन्तेः पिता ततः ।
सोहञ्जिरभवत् कुन्तेर्महिष्मान् भद्रसेनकः ॥२२॥

धर्मः तु हैहय सुतः नेत्रः कुन्तेः पिता ततः सोहञ्जिः अभवत् कुन्तेः महिष्मान् भद्रसेनकः ॥२२॥

हैहय तु	हैहयसे तो
धर्मः	धर्म,
सुतः	उसका पुत्र
कुन्तेः पिता	कुन्तिका पिता
नेत्रः	नेत्र,
ततः कुन्तेः	फिर कुन्तिसे
सोहञ्जिः	सोहञ्जि
अभवत्	हुआ
महिष्मान्	(उससे) महिष्मान्
भद्रसेनकः	(उससे) भद्रसेनक हुआ ॥२२॥

दुर्मदो भद्रसेनस्य धनकः कृतवीर्यसूः ।
कृताग्निः कृतवर्मा च कृतौजा धनकात्मजाः ॥२३॥

दुर्मदः भद्रसेनस्य धनकः कृतवीर्यसूः कृताग्निः कृतवर्मा च कृतौजा धनक आत्मजाः ॥२३॥

भद्रसेनस्य	भद्रसेनके	**आत्मजाः**	(दूसरे) पुत्र
दुर्मदः	दुर्मद और	**कृताग्निः**	कृताग्नि,
कृतवर्यसूः	कृतवीर्यको उत्पन्न करनेवाला	**कृतवर्मा**	कृतवर्मा
		च कृतौजा	तथा कृतौजा हुए ॥२३॥
धनकः	धनक हुआ,		
धनक	धनकके		

अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ।
दत्तात्रेयाद्धरेरंशात् प्राप्तयोगमहागुणः ॥२४॥

अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तद्वीप ईश्वरः अभवत् दत्तात्रेयात् हरेः अंशात् प्राप्त योग महागुणः ॥२४॥

कृतवीर्यस्य	कृतवीर्यका (पुत्र)	**दत्तात्रेयात्**	दत्तात्रेयसे
अर्जुनः	अर्जुन	**योग**	योगकी
सप्तद्वीप	सातों द्वीपोंका	**महागुणः**	महासिद्धियां
ईश्वरः अभवत्	स्वामी हुआ,	**प्राप्त**	प्राप्त कीं ॥२४॥
हरेः अंशात्	श्रीहरिके अंश		

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ।
यज्ञदानतपोयोगश्रुतवीर्यजयादिभिः ॥२५॥

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः यज्ञ दान तपः योग श्रुत वीर्य जय आदिभिः ॥२५॥

पार्थिवाः नूनं	राजा लोग निश्चय	**तपः योग**	तपस्या, योग,
यज्ञ दान	यज्ञ, दान,	**श्रुत वीर्य**	यश, पराक्रम,

जय आद्भिभिः कार्तवीर्यस्य	विजय आदि द्वारा कृतवीर्यके पुत्र सहस्रार्जुनके	गतिं न यास्यन्ति	पदको नहीं पा सकेंगे ॥२५॥

पञ्चाशीतिसहस्राणि ह्यव्याहतबलः समाः ।
अनष्टवित्तस्मरणो बुभुजेऽक्षय्यषड्वसु ॥२६॥

पञ्च अशीति सहस्राणि हि अव्याहत बलः समाः अनष्ट वित्त स्मरणः बुभुजे अक्षय्य षट्वसु ॥२६॥

हि	क्योंकि	अनष्ट वित्त	बिना धन नष्ट
पञ्च अशीति	पञ्चासी	स्मरणः	होनेका स्मरण किये
सहस्राणि	सहस्र	अक्षय्य	अक्षय धनवान
समाः	वर्षों तक	बसु	रहकर
अव्याहत	अप्रतिहत	षट्	छहो इन्द्रियोंके
बलः	शरीर-बल,	बुभुजे	भोग भोगे ॥२६॥

तस्य पुत्रसहस्रेषु पञ्चैवोर्वरिता मृधे ।
जयध्वजः शूरसेनो वृषभो मधुरूर्जितः ॥२७॥

तस्य पुत्र सहस्रेषु पञ्च एव उर्वरिता मृधे जयध्वजः शूरसेनः वृषभः मधुः ऊर्जितः ॥२७॥

तस्य	उसके	मधु ऊर्जितः	मधु और ऊर्जित
पुत्र सहस्रेषु	सहस्र पुत्रोंमें	पञ्च एव	ये पांच ही
जयध्वजः	जय ध्वज,	मृधे	(परशुरामसे) युद्धमें
शूरसेनः	शूरसेन,	उर्वरिता	बच गये थे ॥२७॥
वृषभः	वृषभ,		

जयध्वजात् तालजंघस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ।
क्षत्रं यत् तालजंघाख्यमौर्वतेजोपसंहृतम् ॥२८॥

जयध्वजात् तालजंघः तस्य पुत्रशतं तु अभूत् क्षत्रं यत् तालजंघाख्यं और्वतेज उपसंहृतम् ॥२८॥

जयध्वजात्	जयध्वजसे
तालजंघः	तालजंघ
तस्य तु	उसके तो
पुत्रशतं	सौ
अभूत्	हुए,
यत्	जिन
तालजंघाख्यं	तालजंघ नामक
क्षत्रं	क्षत्रियोंको
और्वतेज	और्व ऋषिके प्रभावसे
उपसंहृतं	(सगरने) समाप्त कर दिया ॥२८॥

तेषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रो वृष्णिः पुत्रो मधोः स्मृतः ।
तस्य पुत्रशतं त्वासीद् वृष्णिज्येष्ठं यतः कुलम् ॥२९॥

तेषां ज्येष्ठः वीतिहोत्रः वृष्णिः पुत्रः मधोः स्मृतः तस्य पुत्रशतं तु आसीत् वृष्णि ज्येष्ठं यतः कुलम् ॥२९॥

तेषां ज्येष्ठः	उन (सौ पुत्रों) में बड़ा
वीतिहोत्रः	वीतिहोत्र था
पुत्रः मधोः	उसका पुत्र मधु
वृष्णिः	उसका वृष्णि
स्मृतः	कहा गया है,
तस्य पुत्रशतं	उस (मधु) के सौ पुत्र
आसीत्	थे,
वृष्णिः	उनमें वृष्णि
ज्येष्ठं	सबसे बड़ा था
यतः कुलं	जिससे यह कुल ॥२९॥

माधवा वृष्णयो राजन् यादवाश्चेति संज्ञिताः ।
यदुपुत्रस्य च क्रोष्टोः पुत्रो वृजिनवांस्ततः ॥३०॥

माधवा वृष्णयः राजन् यादवाः च इति संज्ञिताः यदुपुत्रस्य च क्रोष्टोः पुत्रः वृजिनवान् ततः ॥३०॥

राजन्	राजन् !
माधवा	माधव,
वृष्णयः	वार्ष्णेय,
च यादवाः	तथा यादव
इति संज्ञिताः	इन नामोंसे कहा गया ।
यदुपुत्रस्य	यदुके पुत्र
क्रोष्टोः च पुत्रः	क्रोष्टाके भी पुत्र
वृजिनवान्	वृजिनवान,
ततः	उससे ॥३०॥

श्वाहिस्ततो रुशेकुर्वै तस्य चित्ररथस्ततः ।
शशबिन्दुर्महायोगी महाभोजो महानभूत् ॥३१॥

श्वाहिः ततः रुशेकुः वै तस्य चित्ररथः ततः शशविन्दुः महायोगी महाभोजः महान् अभूत् ॥३१॥

श्वाहिः ततः	श्वाहि, उससे	**महाभोजः**	महाभोगी
वै रुशेकुः	निश्चय रुशेकु हुआ,	**महान्**	महान्
तस्य चित्ररथः	उसका चित्ररथ,	**शशविन्दुः**	शशविन्दु
ततः	उससे	**अभूत्**	उत्पन्न हुआ ॥३१॥
महायोगी	महायोगी		

चतुर्दशमहारत्नश्चक्रवर्त्यपराजितः ।
तस्य पत्नीसहस्राणां दशानां सुमहायशाः ॥३२॥

चतुर्दश महारत्न चक्रवर्ति अपराजितः तस्य पत्नी सहस्राणां दशानां सुमहायशाः ॥३२॥

चतुर्दश	चौदहो	**सुमहायशाः**	उस महायशस्वीके
महारत्न	महारत्नों* वाला	**दशानां**	दस
चक्रवर्ति	चक्रवर्ती	**सहस्राणां**	सहस्र
अपराजितः	अपराजित था,	**पत्नी**	पत्नियां थीं ॥३२॥

दशलक्षसहस्राणि पुत्राणां तास्वजीजनत् ।
तेषां तु षट्प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजः ॥३३॥

दशलक्ष सहस्राणि पुत्राणां तासु अजीजनत् तेषां तु षट् प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजः ॥३३॥

तासु	उनमें	**सहस्राणि**	सहस्र (दस करोड़)
दशलक्ष	दस लाख	**पुत्राणं**	पुत्र

---

* १-हाथी २-घोड़ा ३-रथ ४-स्त्री ५-वाण ६-कोश ७-माला ८-वस्त्र ९-वृक्ष १०-शक्ति ११-पाश १२-मणि १३-छत्र १४-विमान, इनमें सर्वोत्तम महारत्न होते हैं ।

अजोजनत्	उत्पन्न किये,	**पृथुश्रवस**	पृथुश्रवाका
तेषां तु	उनमें भी	**आत्मजः**	पुत्र ॥३३॥
षट् प्रधानानां	छ प्रधानोंमें-से		

धर्मो नामोशना तस्य हयमेधशतस्य याट् ।
तत्सुतो रुचकस्तस्य पञ्चासन्नात्मजाः शृणु ॥३४॥

धर्मः नाम उशना तस्य हयमेध शतस्य याट् तत् सुतः रुचकः तस्य पञ्च आसन् आत्मजाः शृणु ॥३४॥

धर्मः नाम	धर्म नामक हुआ	**तत् सुतः**	उसका पुत्र
तस्य	उसका पुत्र	**रुचकः**	रुचक
शतस्य	सौ	**तस्य आत्मजाः**	उसके पुत्र
हयमेध याट्	अश्वमेध यज्ञ करने-वाला	**पञ्च आसन्**	पांच थे,
		शृणु	(उनके नाम) सुनो ॥३४॥
उशना	उशना हुआ ।		

पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषुपृथुज्यामघसंज्ञिताः ।
ज्यामघस्त्वप्रजोऽप्यन्यां भार्यां शैब्यापतिर्भयात् ॥३५॥

पुरुजित् रुक्म रुक्मेषु पृथु ज्यामघ संज्ञिताः ज्यामघः तु अप्रजः अपि अन्यां भार्यां शैब्या पतिः भयात् ॥३५॥

पुरुजित्	पुरुजित,	**अप्रजः अपि**	सन्तानहीन होनेपर भी
रुक्म तक्मेषु	रुक्म, रुक्मेषु,	**शैब्या**	पत्नी शैब्याके
पृथु ज्यामघ	पृथु, ज्यामघ	**भयात् पतिः**	भयसे उसके पतिने
संज्ञिताः	नामवाले थे,	**अन्यां भार्यां**	दूसरी पत्नी ॥३५॥
ज्यामघः तु	ज्यामघने तो		

नाविन्दच्छत्रुभवनाद् भोज्यां कन्यामहारषीत् ।
रथस्थां तां निरीक्ष्याह शैब्या पतिममर्षिता ॥३६॥

न अविन्दत शत्रु भवनात् भोज्यां कन्यां अहारषीत् रथस्थां तां निरीक्ष्य आह शैब्या पति अमर्षिता ॥३६॥

अविन्दत न	फिर न ीं पा सका,	**तां रथस्थां**	उसे रथपर बैठी
शत्रु	(यद्यपि) शत्रु के	**निरीक्ष्य**	देखकर
भवनात्	भवनसे	**अमर्षिता**	असहनशीलता वश
भोज्यां	भोज्या नामकी	**पति शैव्या**	पतिसे शैव्याने
कन्यां	कन्या	**आह**	कहा ॥३६॥
अहारषीत्	हरण कर ली; किन्तु		

केयं कुहक मत्स्थानं रथमारोपितेति वै ।
स्नुषा तवेत्यभिहिते स्मयन्ती पतिमब्रवीत् ॥३७॥

क इयं कुहक मत् स्थानं रथं आरोपिता इति वै स्नुषा तव इति अभिहिते स्मयन्ती पति अब्रवीत् ॥३७॥

कुहक	'अरे कपटी,		'तुम्हारी पुत्रबधू
मत् स्थानं	मेरे स्थानपर		हैं !'
इयं क	यह किसे	**स्मयन्ती**	(तब) मुस्कराती हुई
रथं आरोपिता	रथमें बैठाया है ?'	**पति अब्रवीत्**	पतिसे बोली ॥३७॥
तव स्नुषा	(डरकर वह बोला)		

अहं वन्ध्यासपत्नी च स्नुषा मे युज्यते कथम् ।
जनयिष्यसि यं राज्ञि तस्येयमुपयुज्यते ॥३८॥

अहं वन्ध्या असपत्नी च स्नुषा मे युज्यते कथं जनयिष्यसि यं राज्ञि तस्य इयं उपयुज्यते ॥३८॥

अहं वन्ध्या	'मैं तो बन्ध्या हूँ'	**जनयिष्यसि**	उत्पन्न करेंगी,
च असपत्नी	तथा सौतहीन हूँ,	**तस्य इयं**	उसके यह
मे स्नुषा	मेरी पुत्रवधू	**उपयुज्यते**	उपयोगमें आवेगी
कथं युज्यते	कैसे हो सकती है ?'		॥३८॥
राज्ञि यं	(वह बोला) 'महा-		
	रानी जिसे		

अन्वमोदन्त तद्विश्वेदेवाः पितर एव च ।
शैव्या गर्भमधात् काले कुमारं सुषुवे शुभम् ।
स विदर्भ इति प्रोक्त उपयेमे स्नुषां सतीम् ॥३९॥

अन्वमोदन्त तत् विश्वेदेवाः पितर एव च शैब्या गर्भं अधात् काले कुमारं सुषुवे शुभं स विदर्भ इति प्रोक्तः उपयेमे स्नुषां सतीम् ॥३९॥

तत्	उसका	**स विदर्भ**	वह विदर्भ
विश्वेदेवाः	विश्वेदेवा	**इति प्रोक्तः**	इस नामसे कहा
च पितर एव	तथा पितरोंने भी		गया,
अन्वमोदन्त	अनुमोदन कर दिया,	**सतीं**	उस सती
शैब्या	शैव्याने	**स्नुषां**	पुत्रवधूसे
गर्भं अधात्	गर्भ धारण किया	**उपयेमे**	(उसने) विवाह
काले शुभं	समयपर शुभ		किया ॥३९॥
कुमारं सुषुवे	कुमार उत्पन्न किया,		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे यदुवंशानुवर्णने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

तस्यां विदर्भोऽजनयत् पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ ।
तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनन्दनम् ॥१॥

तस्यां विदर्भः अजनयत् पुत्रौ नाम्ना कुश क्रथौ तृतीयं रोमपादं च विदर्भ कुलनन्दनम् ॥१॥

तस्यां	उस (भोज्या) से	**तृतीयं**	तीसरा
विदर्भः	विदर्भने	**रोमपादं**	रोमपाद
कुश क्रथौ च	कुश, क्रुथु और	**नाम्ना पुत्रौ**	नामक पुत्र
विदर्भ	विदर्भके	**अजनयत्**	उत्पन्न किया ॥१॥
कुलनन्दन	कुलको आनन्दित करनेवाला		

रोमपादसुतो बभ्रुर्बभ्रोः कृतिरजायत ।
उशिकस्तत्सुतस्तस्माच्चेदिश्चैद्यादयो नृप ॥२॥

रोमपाद सुतः बभ्रुः बभ्रोः कृतिः अजायत उशिकः तत् सुतः तस्मात् चेदिः चैद्य आदयः नृप ॥२॥

रोमपाद	रोमपादका	**उशिकः**	उशिक
सुतः बभ्रुः	पुत्र बभ्रु	**तस्मात् चेदिः**	उससे चेदि
बभ्रोः कृतिः	बभ्रु से कृति	**चैद्य आदयः**	(उससे) चैद्य आदि
अजायत	उत्पन्न हुआ,	**नृप**	राजा हुए ॥२॥
तत् सुतः	उसका पुत्र		

क्रथस्य कुन्तिः पुत्रोऽभूद् धृष्टिस्तस्याथ निर्वृतिः ।
ततो दशार्हो नाम्नाभूत् तस्य व्योमः सुतस्ततः ॥३॥

क्रथस्य कुन्तिः पुत्रः अभूत् धृष्टिः तस्य अथ निर्वृतिः ततः दशार्हः नाम्ना अभूत् तस्य व्योमः सुतः ततः ॥३॥

क्रथस्य	क्रथका
पुत्रः कुन्तिः	पुत्र कुन्ति
अभूत्	हुआ,
तस्य धृष्टिः	उसका धृष्टि,
अथ निर्वृतिः	फिर उससे निर्वृति,
ततः दशार्हः	उससे दशार्ह
नाम्ना अभूत्	नामक पुत्र हुआ,
तस्य	उसका
व्योमः सुतः	पुत्र व्योम हुआ
ततः	उससे ॥३॥

जीमूतो विकृतिस्तस्य यस्य भीमरथः सुतः ।
ततो नवरथः पुत्रो जातो दशरथस्ततः ॥४॥

जीमूतः विकृतिः तस्य यस्य भीमरथः सुतः ततः नवरथः पुत्रः जातः दशरथः ततः ॥४॥

जीमूतः	जीमूत,
तस्य विकृतिः	उसका विकृति,
यस्य सुतः	जिसका पुत्र
भीमरथः	भीमरथ हुआ,
ततः पुत्रः	उसका पुत्र
नवरथः	नवरथ,
ततः दशरथः	उससे दशरथ
जातः	उत्पन्न हुआ ॥४॥

करम्भिः शकुनेः पुत्रो देवरातस्तदात्मजः ।
देवक्षत्रस्ततस्तस्य मधुः कुरुवशादनुः ॥५॥

करम्भिः शकुनेः पुत्रः देवरातः तत् आत्मजः देवक्षत्रः ततः तस्य मधुः कुरुवशात् अनुः ॥५॥

शकुनेः	(दशरथके पुत्र) शकुनिका
पुत्रः	पुत्र
करम्भिः	करम्भि,
तत् देवरातः	उससे देवरात,
आत्मजः	उसका पुत्र
देवक्षत्रः	देवक्षत्र,
ततः मधुः	उससे मधु,
तस्य	उसके
कुरुवशात्	कुरुवशसे
अनुः	अनु हुआ ॥५॥

पुरुहोत्रस्त्वनोः पुत्रस्तस्यायुः सात्वतस्ततः ।
भजमानो भजिर्दिव्यो वृष्णिर्देवावृधोऽन्धकः ॥६॥

पुरुहोत्रः तु अनोः पुत्रः तस्य आयुः सात्वतः ततः भजमानः भजिः दिव्यः वृष्णिः देवावृधः अन्धकः ॥६॥

अनोः पुत्रः तु	अनुका पुत्र तो
पुरुहोत्रः	पुरुहोत्र हुआ,
तस्य आयुः	उसका आयु,
ततः सात्वतः	उससे सात्वत,
भजमानः	भजमान,
भजिः दिव्यः	भजि, दिव्य,
वृष्णिः	वृष्णि,
देवावृधः	देवावृध,
अन्धकः	अन्धक ॥६॥

सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजश्च मारिष ।
भजमानस्य निम्लोचिः किंकिणो धृष्टिरेव च ॥७॥

सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजः च मारिष भजमानस्य निम्लोचिः किङ्किणः धृष्टिः एव च ॥७॥

मारिष	आर्य परीक्षित !
च महाभोजः	और महाभोज ये
सात्वतस्य	सात्वतके
सप्त सुताः	सात पुत्र हुए,
भजमानस्य	(इनमें) भजमानके
निम्लोचिः	निम्लोचि,
किङ्किणः	किङ्किण
च धृष्टिः	और धृष्टि भी
एव	हुआ ॥७॥

एकस्यामात्मजाः पत्न्यामन्यस्यां च त्रयः सुताः ।
शताजिच्च सहस्त्राजिदयुताजिदिति प्रभो ॥८॥

एकस्यां आत्मजाः पत्न्यां अन्यस्यां च त्रयः सुताः शतजित् च सहस्राजित् अयुताजित् इति प्रभुः ॥८॥

एकस्यां	एकमें तो
आत्मजाः	(ये तीन) पुत्र हुए,
च अन्यस्यां	और दूसरी भी
पत्न्यां	पत्नीसे
प्रभुः	उस समर्थके
शतजित्	शतजित्,
सहस्राजित्	सहस्राजित,
च अयुताजित्	तथा अयुताजित्
इति त्रयः सुताः	ये तीन पुत्र हुए ॥८॥

बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठन्त्यम् ।
यथैव शृणुमो दूरात् सम्पश्यामस्तथान्तिकात् ॥९॥

बभ्रुः देवावृध सुतः तयोः श्लोकौ पठन्ति अमू यथा एव शृणुमः दूरात् सम्पश्यामः तथा अन्तिकात् ॥९॥

देवावृध	देवावृधका
सुतः बभ्रुः	पुत्र बभ्रु था,
तयोः	उन (पिता पुत्र) दोनोंके
अमू	सम्बन्धमें ये
श्लोकौ पठन्ति	दो श्लोक कहे जाते हैं,
यथा एव	जैसाकि
दूरात् शृणुमः	दूरसे हमने सुना था
तथा	वैसा ही
अन्तिकात्	समीप आकर
सम्पश्यामः	देखते हैं ॥९॥

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ।
पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च षट् सहस्राणि चाष्ट च ॥१०॥

बभ्रुः श्रेष्ठः मनुष्याणां देवैः देवावृधः समः पुरुषाः पञ्चषष्टिः च षट् सहस्राणि च अष्ट च ॥१०॥

मनुष्याणां	मनुष्योंमें
बभ्रुः श्रेष्ठः	बभ्रु श्रेष्ठ है और
देवावृधः	देवावृध
देवैः	देवताओंके
समः	समान हैं,
षट् सहस्राणि च	छ सहस्र और
अष्ट	आठ (चौदह सहस्र)
च पञ्चषष्टि	तथा पैंसठ
पुरुषाः	मनुष्य ॥१०॥

येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि ।
महाभोजोऽपि धर्मात्मा भोजा आसंस्तदन्वये ॥११॥

ये अमृतत्त्वं अनुप्राप्ता बभ्रोः देवावृधात् अपि महाभोजः अपि धर्मात्मा भोजा आसन् तत् अन्वये ॥११॥

बभ्रोः	बभ्रुसे
देवावृधत् अपि	देवावृधसे भी
ये	(उपदेश पाकर) जो
अमृतत्त्वं	अमर पद
अनुप्राप्ता	प्राप्त हो गये ।
महाभोजः अपि	महाभोज भी
धर्मात्मा	धर्मात्मा थे,
तत् अन्वये	उनके वंशमें
भोजा आसन्	भोजवंशी यादव हुए ॥११॥

वृष्णेः सुमित्रः पुत्रोऽभूद् युधाजिच्च परंतप ।
शिनिस्तस्यानमित्रश्च निम्नोऽभूदनमित्रतः ॥१२॥

वृष्णेः सुमित्रः पुत्रः अभूत् युधाजित् च परंतप शिनिः तस्य अनमित्रः च निम्नः अभूत् अनमित्रतः ॥१२॥

परंतप	शत्रुसंतापक परीक्षित !
वृष्णेः पुत्रः	वृष्णिके पुत्र
सुमित्रः	सुमित्र
च युधाजित्	तथा युधाजित्
अभूत्	हुए,
तस्य	उस (युधाजित) के
शिनिः	शिनि
च अनमित्रः	और अनमित्र हुए,
अनमित्रतः	अनमित्रसे
निम्नः अभूत्	निम्न हुआ ॥१२॥

सत्राजितः प्रसेनश्च निम्नस्याप्यासतुः सुतौ ।
अनमित्रसुतो योऽन्यः शिनिस्तस्याथ सत्यकः ॥१३॥

सत्राजितः प्रसेनः च निम्नस्य अपि आसतुः सुतौ अनमित्र सुतः यः अन्यः शिनिः तस्य अथ सत्यकः ॥१३॥

निम्नस्य सुतौ	निम्नके दो पुत्र
सत्राजितः	सत्राजित
च प्रसेनः	तथा प्रसेन
अपि आसतुः	भी थे,
अनमित्र	अनमित्रका
यः अन्यः	जो दूसरा
सुतः शिनिः	शिनि था
अथ तस्य	फिर उसका
सत्यकः	सत्यक हुआ ॥१३॥

युयुधानः सात्यकिर्वै जयस्तस्य कुणिस्ततः ।
युगन्धरोऽनमित्रस्य वृष्णिः पुत्रोऽपरस्ततः ॥१४॥

युयुधानः सात्यकिः वै जयः तस्य कुणिः ततः युगन्धरः अनमित्रस्य वृष्णिः पुत्रः अपरः ततः ॥१४॥

वै	(सत्यकका पुत्र) निश्चय
युयुधानः	युयुधान
सात्यकिः	ही सात्यकि था,
तस्य जयः	उसका जय,
ततः कुणिः	उससे कुणि

युगन्धरः	(उससे) युगन्धर हुआ,	अपरः पुत्रः	दूसरा एक पुत्र
अनमित्रस्य	अनमित्रका	वृष्णिः ततः	वृष्णि था, उससे ॥१४॥

श्वफल्कश्चित्ररथश्च गान्दिन्यां च श्वफल्कतः ।
अक्रूरप्रमुखा आसन् पुत्रा द्वादश विश्रुताः ॥१५॥

श्वफल्कः चित्ररथः च गान्दिन्यां च श्वफल्कतः अक्रूर प्रमुखा आसन् पुत्रा द्वादश विश्रुताः ॥१५॥

श्वफल्कः	श्वफल्क	अक्रूर प्रमुखा	अक्रूर प्रधान
च चित्ररथः	तथा चित्ररथ हुए	द्वादश विश्रुताः	बारह प्रसिद्ध
श्वफल्कतः च	श्वफल्कसे तो	पुत्रा आसन्	पुत्र थे ॥१५॥
गान्दिन्यां	गान्दिनी नामक पत्नीसे		

आसंगः सारमेयश्च मृदुरो मृदुविद् गिरिः ।
धर्मवृद्धः सुकर्मा च क्षेत्रोपेक्षोऽरिमर्दनः ॥१६॥

आसंगः सारमेयः च मृदुरः मृदुवित् गिरिः धर्मवृद्धः सुधर्मा च क्षेत्रोपेक्षः अरिमर्दनः ॥१६॥

आसंगः	आसंग,	धर्मवृद्धः	धर्मवृद्ध,
सारमेयः	सारमेय,	च सुकर्मा	तथा सुकर्मा
च मृदुरः	तथा मृदुर,	क्षेत्रोपेक्षः	क्षेत्रोपेक्ष
मृदुवित्	मृदुवित्,	अरिमर्दनः	अरिमर्दन ॥१६॥
गिरिः	गिरि,		

शत्रुघ्नो गन्धमादश्च प्रतिबाहुश्च द्वादश ।
तेषां स्वसा सुचीराख्या द्वावक्रूरसुतावपि ॥१७॥

शत्रुघ्नः गन्धमादः च प्रतिबाहुः च द्वादश तेषां स्वसा सुचीरा आख्या द्वाः अक्रूर सुताः अपि ।:१७॥

शत्रुघ्नः	शत्रुघ्न और
गन्धमादः	गन्धमाद
च प्रतिबाहुः	तथा प्रतिबाहु
द्वादश	ये बारह थे,
तेषां स्वसा	उनकी बहिन
सुचीरा	सुचीरा
आख्या	नामक थी;
अक्रूर सुताः	अक्रूरके पुत्र
अपि द्वाः	भी दो थे ॥१७॥

देववानुपदेवश्च तथा चित्ररथात्मजाः ।
पृथुर्विदूरथाद्याश्च बहवो वृष्णिनन्दनाः ॥१८॥

देववान् उपदेवः च तथा चित्ररथ आत्मजाः पृथुः विदूरथ आद्याः च बहवः वृष्णिनन्दनाः ॥१८॥

देववान्	देववान्
च उपदेवः	तथा उपदेव
तथा	ऐसे ही
चित्ररथ	(श्वफल्कके भाई) चित्ररथके
बहवः	बहुतसे
आत्मजाः	पुत्र
वृष्णिनन्दनाः	वृष्णिवंशी थे ॥१८॥

कुकुरो भजमानश्च शुचिः कम्बलबर्हिषः ।
कुकुरस्य सुतो वह्निर्विलोमा तनयस्ततः ॥१९॥

कुकुरः भजमानः च शुचिः कम्बलबर्हिषः कुकुरस्य सुतः वह्निः विलोमा तनयः ततः ॥१९॥

कुकुरः	(सात्वत पुत्र अन्धक-के) कुकुर,
भजमानः	भजमान,
शुचिः च	शुचि और
कम्बलबर्हिषः	कम्बलबर्हि हुए
कुकुरस्य	कुकुरका
सुतः वह्निः	पुत्र वह्नि,
तनयः	उसका पुत्र
विलोमा	विलोमा,
ततः	उससे ॥१९॥

कपोतरोमा तस्यानुः सखा य य च तुम्बुरुः ।
अन्धको दुन्दुभिस्तस्मादरिद्योतः पुनर्वसुः ॥२०॥

कपोतरोमा तस्य अनुः सखा यस्य च तुम्बुरुः अन्धकः दुन्दुभिः तस्मात् अरिद्योतः पुनर्वसुः ॥२०॥

कपोतरोमा	कपोतरोमा,
तस्य अनुः	उसका अनु
यस्य च	जिसका तो
सखा	सखा
तुम्बुरुः	तुम्बुरू गन्धर्व था,
अन्धकः	उसका अन्धक,
तस्मात्	उससे
दुन्दुभिः	दुन्दुभि
अरिद्योतः	(उसका) अरिद्योत,
पुनर्वसुः	(उससे) पुनर्वसु
	हुआ ॥२०॥

तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या चैवाहुकात्मजौ ।
देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः ॥२१॥

तस्य आहुकः च आहुकी च कन्या च एव आहुक आत्मजौ देवकः च उग्रसेनः च चत्वारः देवक आत्मजाः ॥२१॥

तस्य च	उसके भी
आहुकः च	आहुक तथा
आहुकी कन्या	आहुकी नामक कन्या
एव च	भी हुई,
आहुक	आहुकके
आत्मजौ	पुत्र
देवकः च	देवक तथा
उग्रसेनः	उग्रसेन हुए
देवक च	देवकके भी
आत्मजाः	पुत्र
चत्वारः	चार हुए ॥२१॥

देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धनः ।
तेषां स्वसारः सप्तासन् धृतदेवादयो नृप ॥२२॥

देववान् उपदेवः च सुदेवः देववर्धनः तेषां स्वसारः सप्त आसन् धृतदेवा आदयः नृप ॥२२॥

नृप	राजन् !
देववान्	देववान्,
उपदेवः	उपदेव,
सुदेवः च	सुदेव तथा
देववर्धनः	देववर्धन,
तेषां स्वसारः	उनकी बहिनें
धृतदेवा	धृतदेवा
आदयः	आदि
सप्त आसन्	सात थीं ॥२२॥

शान्तिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता ।
सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥२३॥

शान्तिदेवा उपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥२३॥

शान्तिदेवा	शान्तिदेवा,
च उपदेवा	तथा उपदेवा,
श्रीदेवा	श्रीदेवा,
देवरक्षिता	देवरक्षिता
सहदेवा च	सहदेवा तथा
देवकी	देवकी
ताः वसुदेव	उनसे वसुदेवने
उवाह	विवाह किया ॥२३॥

कंसः सुनामा न्यग्रोधः कंकः शंकुः सुहूस्तथा ।
राष्ट्रपालोऽथ सृष्टिश्च तुष्टिमानौग्रसेनयः ॥२४॥

कंसः सुनामा न्यग्रोधः कङ्कः शंकुः सुहुः तथा राष्ट्रपालः अथ सृष्टिः च तुष्टिमान् औग्रसेनयः ॥२४॥

कंसः सुनामा	कंस, सुनामा,
न्यग्रोधः कङ्कः	न्यग्रोध, कंक,
शंकुः सुहुः	शंकु, सुहु,
तथा	तथा
राष्ट्रपालः	राष्ट्रपाल,
अथ सृष्टिः	और सृष्टि,
च तुष्टिमान्	एवं तुष्टिमान्,
औग्रसेनयः	उग्रसेनके पुत्र थे ॥२४॥

कंसा कंसवती कंका शूरभू राष्ट्रपालिका ।
उग्रसेनदुहितरो वसुदेवानुजस्त्रियः ॥२५॥

कंसा कंसवती कङ्का शूरभू राष्ट्रपालिका उग्रसेन दुहितरः वसुदेव अनुजः स्त्रियः ॥२५॥

कंसा कंसवती	कंसा, कंसवती,
कङ्का शूरभू	कंका शूरभू,
राष्ट्रपालिका	राष्ट्रपालिका ये
उग्रसेन	उग्रसेनकी
दुहितरः	पुत्रियां
वसुदेव	वसुदेवजीके
अनुजः	छोटे भाइयोंकी
स्त्रियः	स्त्रियां थीं ॥२५॥

शूरो विदूरथादासीद् भजमानः सुतस्ततः ।
शिनिस्तस्मात् स्वयम्भोजो हृदीकस्तत्सुतो मतः ॥२६॥

शूरः विदूरथात् आसीत् भजमानः सुतः ततः शिनिः तस्मात् स्वयंभोजः हृदीकः तत् सुतः मतः ॥२६॥

विदूरथात्	(चित्ररथके पुत्र) विदूरथसे
शूरः आसीत्	शूर हुआ था,
सुतः	उसका पुत्र
भजमानः	भजमान,
ततः शिनिः	उसका शिनि,
तस्मात्	उससे
स्वयंभोजः	स्वयंभोज,
तत् मतः सुतः	उसका प्रिय पुत्र
हृदीकः	हृदीक हुआ ॥२६॥

देवबाहुः शतधनुः कृतवर्मेति तत्सुताः ।
देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत् ॥२७॥

देवबाहुः शतधनुः कृतवर्मा इति तत् सुताः देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्नि अभूत् ॥२७॥

तत् सुताः	उसके पुत्र
देवबाहुः	देवबाहु
शतधनुः	शतधन्वा
कृतवर्मा	कृतवर्मा
इति	इस प्रकार (तीन) थे ।
देवमीढस्य	देवमीढके पुत्र
शूरस्य	शूरकी
मारिषा नाम	मारिषा नामकी
पत्नि अभूत्	पत्नी थी ॥२७॥

तस्यां स जनयामास दश पुत्रानकल्मषान् ।
वसुदेवं देवभागं देवश्रवसमानकम् ॥२८॥

तस्यां स जनयामास दश पुत्रान् अकल्मषान् वसुदेवं देवभागं देवश्रवसं आनकम् ॥२८॥

स तस्यां	उन्होंने उसमें
अकल्मषान्	निष्पाप
दश पुत्रान्	दस पुत्र
जनयामास	उत्पन्न किये,
वसुदेवं	वसुदेव,
देवभागं	देवभाग,
देवश्रवसं	देवश्रव
आनकं	आनक ॥२८॥

सृञ्जयं श्यामकं कंकं शमीकं वत्सकं वृकम् ।
देवदुन्दुभयो नेदुरानका यस्य जन्मनि ॥२९॥

सृञ्जयं श्यामकं कङ्कं शमीकं वत्सकं वृकं देवदुन्दुभयः नेदुः आनका यस्य जन्मनि ॥२९॥

सृञ्जयं	सृञ्जय,
श्यामकं	श्यामक
कङ्कं शमीकं	कंक, शमीक,
वत्सकं वृकं	वत्सक और वृक,
यस्य जन्मनि	जिसके जन्मके समय
देव-	देवताओंकी
दुन्दुभयः	दुन्दुभियां और
आनका नेदुः	नौबत बजने लगी थी ॥२९॥

वसुदेवं हरेः स्थानं वदन्त्यानकदुन्दुभिम् ।
पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥३०॥

वसुदेवं हरेः स्थानं वदन्ति आनकदुन्दुभि पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतिकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥३०॥

हरेः	श्रीहरिके
स्थानं	जन्मस्थान रूप
वसुदेवं	वसुदेवजीको
आनकदुन्दुभि	आनकदुन्दुभि
वदन्ति	कहते हैं
पृथा च	पृथा और
श्रुतदेवा	श्रुतदेवा,
च श्रुतकीर्तिः	तथा श्रुतकीर्ति,
श्रुतश्रवाः	श्रुतश्रवा ॥३०॥

राजाधिदेवी चैतेषां भगिन्यः पञ्च कन्यकाः ।
कुन्तेः सख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात् ॥३१॥

राजाधिदेवी च एतेषां भगिन्यः पञ्च कन्यकाः कुन्तेः सख्युः पिता शूरः हि अपुत्रस्य पृथां अदात् ॥३१॥

च	और
राजाधिदेवी	राजाधिदेवी
पञ्च कन्यकाः	ये पांच कन्याएँ
एतेषां	इन (वसुदेव आदि) की
भगिन्यः	बहिनें थीं
पिता शूरः	इनके पिता शूरने
सख्युः	अपने सखा
कुन्तेः	कुन्तिभोजको
हि	क्योंकि वे
अपुत्रस्य	पुत्रहीन थे
पृथां	पृथाको
अदात्	(गोद) दे दिया ॥३१॥

साऽऽप दुर्वाससो विद्यां देवहूतीं प्रतोषितात् ।
तस्या वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिम् ॥३२॥

स आप दुर्वाससः विद्यां देवहूतीं प्रतोषितात् तस्या वीर्यं परीक्षार्थं आजुहाव रविं शुचिम् ॥३२॥

प्रतोषितात्	सन्तुष्ट किए हुए	तस्या वीर्यं	उस (विद्या) के प्रभावका
दुर्वाससः	दुर्वासा ऋषिसे	परीक्षार्थं	परीक्षण करनेके लिए
स	उसने	शुचि	शुद्ध स्वरूप
देवहूति	देवताओंको बुलाने-वाला	रवि	सूर्यका
विद्यां आप	विद्या प्राप्त की,	आजुहाव	आवाहन किया ॥३२॥

तदैवोपागतं देवं वीक्ष्य विस्मितमानसा ।
प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥३३॥

तत् एव उप आगतं देवं वीक्ष्य विस्मित मानसा प्रत्यय अर्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥३३॥

तत् एव	उसी समय	क्षमस्व	क्षमा करें और
उप आगतं	समीप आये	याहि	चले जायँ,
देवं वीक्ष्य	सूर्यदेवको देखकर	मे प्रत्यय अर्थं	मैंने परीक्षाके लिए
विस्मित	चकित	प्रयुक्ता	(विद्याका) प्रयोग किया' ॥३३॥
मानसा	चित्त बोली		
देव मे	'देव' मुझे		

अमोघं दर्शनं देवि आधित्से त्वयि चात्मजम् ।
योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताहं ते सुमध्यमे ॥३४॥

अमोघं दर्शनं देवि आधित्से त्वयि च आत्मजं योनिः यथा न दुष्येत कर्ता अहं ते सुमध्यमे ॥३४॥

देवि	(सूर्यने कहा) देवि !	**दुष्येत न**	दूषित न हो,
दर्शनं	मेरा दर्शन	**अहं कर्ता**	मैं उस प्रकार करके
अमोघं	अव्यर्थ होता है,	**त्वयि आत्मजं**	तुममें पुत्र
सुमध्यमे	(अतः) सुन्दरी !	**आधित्से**	आधान करूँगा'
यथा ते योनिः	जैसे तुम्हारी योनि		॥३४॥

इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्यो दिवं गतः ।
सद्यः कुमारः संजज्ञे द्वितीय इव भास्करः ॥३५॥

इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्यः दिवं गतः सद्यः कुमारः सञ्जज्ञे द्वितीय इव भास्करः ॥३५॥

इति	इस प्रकार कहकर	**द्वितीय**	दूसरे
स सूर्यः	वे सूर्यदेव	**भास्करः**	सूर्यके
तस्यां	उसमें	**इव कुमारः**	समान कुमार
गर्भं आधाय	गर्भाधान करके	**सद्यः सञ्जज्ञे**	तुरन्त उत्पन्न हुआ
दिवं गतः	स्वर्ग चले गये,		॥३५॥

तं सात्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती ।
प्रपितामहस्तामुवाह पाण्डुर्वै सत्यविक्रमः ॥३६॥

तं सा अत्यजन् नदी तोये कृच्छ्रात् लोकस्य बिभ्यती प्रपितामहः तां उवाह पाण्डुः वै सत्यविक्रमः ॥३६॥

सा तं	उसने उस (बालक) को	**वै**	निश्चय
		सत्यविक्रमः	सत्य-पराक्रम
लोकस्य	लोकलज्जासे	**प्रपितामहः**	तुम्हारे प्रपितामह
विभ्यती	डरकर	**पाण्डुः**	पाण्डुने
कृच्छ्रात्	बड़े कष्टसे	**तां**	उससे
नदी तोये	नदीके जलमें	**उवाह**	विवाह किया ॥३६॥
अत्यजन्	त्याग दिया		

श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत् ।
यस्यामभूद् दन्तवक्त्र ऋषिशप्तो दितेः सुतः ॥३७॥

श्रुतदेवां तु कारूषः वृद्धशर्मा समग्रहीत् यस्यां अभूत् दन्तवक्त्र ऋषिशप्तः दितेः सुतः ॥३७॥

कारूषः	करूष नरेश
वृद्धशर्मा तु	वृद्धशर्माने तो
श्रुतदेवां	श्रुतदेवाको
समग्रहीत्	ग्रहण किया,
यस्यां	जिसमें
ऋषिशप्तः	(पूर्व जन्ममें सनकादि) ऋषियोंसे प्रशप्त
दितेः सुतः	दितिपुत्र (हिरण्याक्ष)
दन्तवक्त्र अभूत्	दन्तवक्त्र उत्पन्न हुआ ॥३७॥

कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविन्दत ।
सन्तर्दनादयस्तस्य पञ्चासन् कैकयाः सुताः ॥३८॥

कैकेयः धृष्टकेतुः च श्रुतिकीर्तिम् अविन्दत सन्तर्दन आदयः तस्य पञ्च आसन् कैकयाः सुताः ॥३८॥

कैकयः	कैकय नरेश
धृष्टकेतुः च	धृष्टकेतुने तो
श्रुतिकीर्तिम्	श्रुतिकीर्तिको
अविन्दत	प्राप्त किया
तस्य	उसके
सन्तर्दन आदयः	सन्तर्दन आदि
पञ्च सुताः	पांच पुत्र
कैकयाः आसन्	कैकय-कुमार हुए ॥३८॥

राजाधिदेव्यामावन्त्यौ जयसेनोऽजनिष्ट ह ।
दमघोषश्चेदिराजः श्रुतश्रवसमग्रहीत् ॥३९॥

राजाधिदेव्यां आवन्त्यौ जयसेनः अजनिष्ट ह दमघोषः चेदिराजः श्रुतश्रवसं अग्रहीत् ॥३९॥

राजाधिदेव्यां	राजाधिदेवीसे
जयसेनः ह	जयसेनने तो
आवन्त्यौ	अवन्ति नरेश (विन्द-अनुविन्द) दो
अजनिष्ट	उत्पन्न किये,
चेदिराजः	चेदिदेश-नरेश
दमघोषः	दमघोषने
श्रुतश्रवसं	श्रुतश्रवाका
अग्रहीत्	पाणिग्रहण किया ॥३९॥

शिशुपालः सुतस्तस्याः कथितस्तस्य सम्भवः ।
देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुवृहद्बलौ ॥४०॥

शिशुपालः सुतः तस्याः कथितः तस्य सम्भवः देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुः वृहद्बलौ ॥४०॥

तस्याः सुतः	उसका पुत्र	**देवभागस्य**	देवभागके
शिशुपालः	शिशुपाल था,	**कंसायां**	कंसासे
तस्य सम्भवः	उसका जन्म वृत्तान्त	**चित्रकेतुः**	चित्रकेतु तथा
कथितः	पहिले कह चुके हैं, (वसुदेवानुज)	**वृहद्बलौ**	वृहद्बल हुए ॥४०॥

कंसवत्यां देवश्रवसः सुवीर इषुमांस्तथा ।
कंकायामानकाज्जातः सत्यजित् पुरुजित् तथा ॥४१॥

कंसवत्यां देवश्रवसः सुवीर इषुमान् तथा कङ्कायां आनकात् जातः सत्यजित् पुरुजित् तथा ॥४१॥

देवश्रवसः	देवश्रवाने	**आनकात्**	आनकसे
कंसवत्यां	कंसवतीसे	**कङ्कायां**	कंकामें
सुवीर	सुवीर	**सत्यजित्**	सत्यजित्
इषुमान्	इषुमान्	**तथा पुरुजि**	और पुरुजित्
तथा	इसी प्रकार	**जातः**	उत्पन्न हुए ॥४१॥

सृञ्जयो राष्ट्रपाल्यां च वृषदुर्मर्षणादिकान् ।
हरिकेशहिरण्याक्षौ शूरभूम्यां च श्यामकः ॥४२॥

सृञ्जयः राष्ट्रपाल्यां च वृष दुर्मर्षण आदिकान् हरिकेश हिरण्याक्षौ शूरभूम्यां च श्यामकः ॥४२॥

सृञ्जयः	सृञ्जयने	**श्यामकः**	श्यामकने
राष्ट्रपाल्यां	राष्ट्रपालिकासे	**शूरभूम्यां**	शूरभूसे
वृष च	वृष और	**हरिकेश**	हरिकेश,
दुर्मर्षण	दुर्मर्षण	**हिरण्याक्षौ**	हिरण्याक्षको उत्पन्न
आदिकान्	आदिको और		किया ॥४२॥

मिश्रकेश्यामप्सरसि वृकादीन् वत्सकस्तथा ।
तक्षपुष्करशालादीन् दुर्वाक्ष्यां वृक आदधे ॥४३॥

मिश्रकेश्यां अप्सरसि वृक आदीन् वत्सकः तथा तक्ष पुष्कर शाल आदीन् दुर्वाक्ष्यां वृक आदधे ॥४३॥

वत्सकः	वत्सकने
मिश्रकेश्यां	मिश्रकेशी
अप्सरसि	अप्सरासे
वृक आदीन्	वृक आदिको
तथा	इसी प्रकार
दुर्वाक्ष्यां	दूर्वाक्षीसे
वृक	वृकने
तक्ष पुष्कर	तक्ष, पुष्कर,
शाल आदीन्	शाल आदिको
आदधे	आधान (उत्पन्न) किया ॥४३॥

सुमित्रार्जुनपालादीञ्छमीकात्तु सुदामिनी ।
कंकश्च कर्णिकायां वै ऋतधामजयावपि ॥४४॥

सुमित्र अर्जुनपाल आदीन् शमीकात् तु सुदामिनी कङ्कः च कर्णिकायां वै ऋतधाम जयाः अपि ॥४४॥

शमीकात्	शमीकसे
सुदामिनी	सुदामिनीने
सुमित्र	सुमित्र,
अर्जुनपाल	अर्जुनपाल
आदीन्	आदिको
च कङ्कः	और कंकने
वै कर्णिकायां	निश्चय कर्णिकासे
ऋतधाम	ऋतधाम एवं
जयाः अपि	जयको भी उत्पन्न किया ॥४४॥

पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला ।
देवकीप्रमुखा आसन् पत्न्य आनकदुन्दुभेः ॥४५॥

पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला देवकी प्रमुखा आसन् पत्न्य आनक दुन्दुभेः ॥४५॥

आनक	आनक
दुन्दुभेः	दुन्दुभि वसुदेवजीकी
पत्न्य	पत्नियां
देवकी	जिनमें देवकी
प्रमुखा	मुख्य थीं
पौरवी राहिणी	पौरवी, रोहिणी,
भद्रा मदिरा	भद्रा, मदिरा,
रोचना इला	रोचना, इला आदि
आसन्	थीं ॥४५॥

बलं गदं सारणं च दुर्मदं विपुलं ध्रुवम् ।
वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत् ॥४६॥

बलं गदं सारणं च दुर्मदं विपुलं ध्रुवं वसुदेवः तु रोहिण्यां कृत आदीन् उदपादयत् ॥४६॥

वसुदेवः तु	वसुदेवजीने तो	**विपुलं ध्रुवं**	विपुल, ध्रुव,
रोहिण्यां	रोहिणीसे	**च कृत**	तथा कृत
बल गदं	बल, गद,	**आदीन्**	आदिको
सारणं दुर्मदं	सारण, दुर्मद,	**उदपादयत्**	उत्पन्न किया ॥४६॥

सुभद्रो भद्रबाहश्च दुर्मदो भद्र एव च ।
पौरव्यास्तनया ह्येते भूताद्या द्वादशाभवन् ॥४७॥

सुभद्रः भद्रबाहः च दुर्मदः भद्र एव च पौरव्याः तनया हि एते भूत आद्या द्वादशा अभवन् ॥४७॥

सुभद्रः	सुभद्र	**भूत आद्या**	भूत आदि
भद्रबाहः	भद्रवाह	**एते हि द्वादशा**	ये सब बारह
च दुर्मदः	तथा दुर्मन	**पौरव्या तनया**	पौरवीके पुत्र
च भद्र एव	और भद्र भी	**अभवन्**	हुए ॥४७॥

नन्दोपनन्दकृतकशूराद्या मदिरात्मजाः ।
कौसल्या केशिनं त्वेकमसूत कुलनन्दनम् ॥४८॥

नन्द उपनन्द कृतक शूर आद्या मदिरा आत्मजाः कौसल्या केशिनं तु एकं असूत कुलनन्दनम् ॥४८॥

नन्द उपनन्द	नन्द उपनन्द	**कौसल्या तु**	कौसल्याने तो
कृतक शूर	कृतक शूर	**कुलनन्दनं**	कुलको आनन्दित करनेवाला
आद्या	आदि		
मदिरा	मदिराके	**एकं केशिनं**	एक केशीको ही
आत्मजाः	पुत्र हुए	**असूत**	उत्पन्न किया ॥४८॥

रोचनायामतो जाता हस्तहेमाङ्गदादयः ।
इलायामुरुवल्कादीन् यदुमुख्यानजीजनत् ॥४९॥

रोचनायां अतः जाता हस्त हेमांगद आदयः इलायां उरु वल्क आदीन् यदुमुख्यान् अजीजनत् ॥४९॥

अतः रोचनायां	फिर रोचनासे	उरु वल्क	उरु, वल्क
हस्त हेमांगद	हस्त, हेमाङ्गद	आदीन्	आदि
आदयः जाता	आदि उत्पन्न हुए	यदुमुख्यान्	यादव प्रमुखोंको
इलायां	इलासे	अजीजनत्	उत्पन्न किया ॥४९॥

विपृष्ठो धृतदेवायामेक आनकदुन्दुभेः ।
शान्तिदेवात्मजा राजञ्छ्रमप्रतिश्रुतादयः ॥५०॥

विपृष्ठः धृतदेवायां एक आनक दुन्दुभेः शान्तिदेवा आत्मजा राजन् श्रम प्रतिश्रुत आदयः ॥५०॥

राजन्	राजन्	शान्तिदेवा	शान्तिदेवाके
आनक दुन्दुभेः	वसुदेवजी के	आत्मजा	पुत्र
धृतदेवायां	धृतदेवासे	श्रम प्रतिश्रुत	श्रम, प्रतिश्रुत
एक विपृष्ठः	अकेला विपृष्ट हुआ	आदयः	आदि थे ॥५०॥

राजानः कल्पवर्षाद्या उपदेवासुता दश ।
वसुहंससुवंशाद्याः श्रीदेवायास्तु षट् सुताः ॥५१॥

राजानः कल्पवर्ष आद्याः उपदेवा सुता दश वसु हंस सुवंश आद्याः श्रीदेवायाः तु षट् सुताः ॥५१॥

कल्पवर्ष	कल्प, वर्ष	श्रीदेवायाः	श्रीदेवाके
आद्याः राजानः	आदि राजा	वसु हंस	वसु, हंस
उपदेवा	उपदेवाके	सुवंश आद्याः	सुवंश आदि
दश सुता	दस पुत्र थे	षट् सुताः	छः पुत्र हुए ॥५१॥

देवरक्षितया लब्धा नव चात्र गदादयः ।
वसुदेवः सुतानष्टावादधे सहदेवया ॥५२॥

देवरक्षितया लब्धा नव च अत्र गद आदयः वसुदेवः सुतान् अष्टौ आदधे सहदेवया ॥५२॥

देवरक्षितया च	देवरक्षिताने
अत्र नव	यहाँ नौ
गद आदयः	गद आदि
लब्धा	पुत्र पाये
वसुदेवः	वसुदेवजीने
सहदेवया	सहदेवीमें
अष्टान् सुतान्	आठ पुत्रोंको
आदधे	उत्पन्न किया ॥५२॥

पुरुविश्रुतमुख्यांस्तु साक्षाद् धर्मो वसूनिव ।
वसुदेवस्तु देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत् ॥५३॥

पुरु विश्रुत मुख्यान् तु साक्षात् धर्मः वसून् इव वसुदेवः तु देवक्यां अष्ट पुत्रान् अजीजनत् ॥५३॥

साक्षात् धर्मः	साक्षात् धर्मसे
वसून् इव	(आठ) वसुओंकी भांति
पुरु विश्रुत	पुरु, विश्रुत
मुख्यान् तु	प्रमुखोंको
वसुदेवः तु	वसुदेवजीने तो
देवक्यां	देवकीसे
अष्ट पुत्रान्	आठ पुत्रोंको
अजीजनत्	उत्पन्न किया ॥५३॥

कीर्तिमन्तं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः ।
ऋजुं सम्मर्दनं भद्रं संकर्षणमहीश्वरम् ॥५४॥

कीर्तिमन्तं सुषेणं च भद्रसेनं उदारधीः ऋजुं सम्मर्दनं भद्रं संकर्षणं महीश्वरम् ॥५४॥

कीर्तिमन्तं	कीर्तिमान,
सुषेणं	सुषेण
उदारधीः	उदार बुद्धि
भद्रसेनं	भद्रसेन
ऋजुं	ऋजु
सम्मर्दनं	सम्मर्दन
भद्रं	भद्र
च महीश्वरं	तथा पृथ्वीश्वर
सङ्कर्षणं	संकर्षण को ॥५४॥

अष्टमस्तु तयोरासीत् स्वयमेव हरिः किल ।
सुभद्रा च महाभागा तव राजन् पितामही ॥५५॥

अष्टमः तु तयोः आसीत् स्वयं एव हरिः किल सुभद्रा च महाभागा तव राजन् पितामही ॥५५॥

तयोः	उनमें	**पितामही**	पितामही
अष्टमः तु	आठवें तो	**महा भागा**	महाभागा
किल स्वयं एव	अहो स्वयं ही	**सुभद्रा च**	सुभद्रा भी (देवकीसे)
हरिः आसीत्	श्रीहरि हो गये,		हुईं ॥५५॥
राजन् तव	राजन् तुम्हारी		

यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः ।
तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः ॥५६॥

यदा यदा इह धर्मस्य क्षयः वृद्धिः च पाप्मनः तदा तु भगवान् ईशः आत्मानं सृजते हरिः ॥५६॥

इह यदा यदा	इस संसारमें जब-जब	**तदा तु**	तभी ही
धर्मस्य क्षयः	धर्मका ह्रास	**ईशः भगवान्**	सर्व समर्थ भगवान
च पाप्मनः	तथा पापकी	**हरिः आत्मानं**	श्रीहरि अपनेको
वृद्धिः	वृद्धि होती है	**सृजते**	प्रकट करते हैं ॥५६॥

न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ।
आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः ॥५७॥

न हि अस्य जन्मनः हेतुः कर्मणः वा महीपते आत्ममायां विना ईशस्य परस्य द्रष्टुः आत्मनः ॥५७॥

महीपते	पृथ्वीपते	**विना**	छोड़कर
ईशस्य द्रष्टुः	सर्वनियन्ता साक्षी	**जन्मनः**	जन्मका
आत्मनः	अन्तरात्मा स्वरूप	**वा कर्मणः**	अथवा कर्मका
हि अस्य	क्योंकि इन	**हेतुः न**	कोई कारण नहीं
परस्य	परमात्माका		है ॥५७॥
आत्ममायां	अपनी मायाको		

यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि ।
अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥५८॥

यत् माया चेष्टितं पुंसः स्थिति उत्पत्ति अप्ययाय हि अनुग्रहः तत् निवृत्तेः आत्मलाभाय च ईष्यते ॥५८॥

यत् माया	जिनकी मायाका
चेष्टितं पुंसः	विलास जीवकी
स्थिति उत्पत्ति	स्थिति जन्म
अप्ययाय हि	मरणका भी हेतु है
तत् अनुग्रहः	उन्हीं का अनुग्रह
निवृत्त : च	मुक्तिका और
आत्मलाभाय	आत्म-स्वरूपकी प्राप्ति का
ईष्यते	हेतु होता है ॥५८॥

अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलाञ्छनैः ।
भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यमः ॥५९॥

अक्षौहिणीनां पतिभिः असुरैः नृपलाञ्छनैः भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतः उद्यमः ॥५९॥

अक्षौहिणीनां	अनेक अक्षौहिणी सेनाके
पतिभिः	स्वामियों
नृपलाञ्छनैः	राजचिह्नधारी
असुरैः	असुरों द्वारा
भुव	पृथ्वीके
आक्रम्यमाणाया	आक्रान्त होनेपर
अभाराय	इसे भारहीन करने-का
उद्यमः	(भगवानने) प्रयत्न
कृतः	किया ॥५९॥

कर्मण्यपरिमेयाणि मनसापि सुरेश्वरैः ।
सहसंकर्षणश्चक्रे भगवान् मधुसूदनः ॥६०॥

कर्माणि अपरिमेयाणि मनसा अपि सुरेश्वरैः सह सङ्कर्षणः चक्रे भगवान् मधुसूदनः ॥६०॥

सुरेश्वरैः	देवेश्वर गणों द्वारा
मनसा अपि	मनसे भी
अपरिमेयाणि	अनुमानसे परे
कर्माणि	कर्मोंको
भगवान्	भगवान
मधुसूदनः	मधुसूदनने
सह संकर्षणः	संकर्षणजीके साथ
चक्रे	किया ॥६०॥

कलौ जनिष्यमाणानां दुःखशोकतमोनुदम् ।
अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद् यशः ॥६१॥

कलौ जनिष्यमाणानां दुःख शोक तमः नुदं अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोत् यशं ॥६१॥

कलौ	कलियुगमें	**नुदं**	नाशक
जनिष्यमाणानां	उत्पन्न होनेवाले	**सुपुण्यं**	अपने अत्यन्त पवित्र
भक्तानां	भक्तोंपर	**यशः**	यशका
अनुग्रहाय	अनुग्रह करके	**व्यतनोत्**	विस्तार किया ॥६१॥
दुःख शोक	दुःख, शोक,		
तमः	तथा अज्ञानका		

यस्मिन् सत्कर्णपीयूषे यशस्तीर्थवरे सकृत् ।
श्रोत्राञ्जलिरुपस्पृश्य धुनुते कर्मवासनाम् ॥६२॥

यस्मिन् सत् कर्ण पीयूषे यशः तीर्थवरे सकृत् श्रोत अञ्जलिः उपस्पृश्य धुनुते कर्मवासनाम् ॥६२॥

सत्	सत्पुरुषोंके	**कर्ण**	कानरूपी
कर्ण	कानोंके लिए	**अञ्जलिः**	अञ्जलिसे
पीयूषे	अमृतके समान	**उपस्पृश्य**	पान करके
यस्मिन्	जिस	**कर्मवासनां**	(मनुष्य) कर्मवासना-को
यशः	यशरूपी		
तीर्थवरे	तीर्थ-श्रेष्ठमें	**धुनुते**	नष्ट कर देता है ॥६२॥
सकृत्	एक बार भी		

भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकैः ।
श्लाघनीयेहितः शश्वत् कुरुसृञ्जयपाण्डुभिः ॥६३॥

भोज वृष्णि अन्धक मधु शूरसेन दशार्हकैः श्लाघनीय ईहितः शश्वत् कुरु सृञ्जय पाण्डुभिः ॥६३॥

भोज वृष्णि	भोज, वृष्णि,	**शूरसेन**	शूरसेन,
अन्धक मधु	अन्धक, मधु,	**दशार्हकैः**	दशार्हों द्वारा तथा

कुरु सृञ्जय	कुरु, सृञ्जय	**शश्वत्**	निरन्तर
पाण्डुभिः	पाण्डुवंशीयों द्वारा भी	**श्लाघनीय**	प्रशंसित होती थीं ॥६३॥
ईहितः	(जिनकी) लीलायें		

स्निग्धस्मितेक्षितोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया ।
नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्गरम्यया ॥६४॥

स्निग्ध स्मित् ईक्षित उदारैः वाक्यैः विक्रम लीलया नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्ग रम्यया ॥६४॥

स्निग्ध	प्रेम भरी	**सर्वांग**	सर्वाङ्ग
स्मित्	मुसुकान,	**रम्यया**	रमणीय
उदारैः	कृपापूर्ण	**मूर्त्या**	अपने स्वरूपसे
ईक्षित	दृष्टि,	**नृलोकं**	मानव-समाजको
वाक्यैः	अपने वचनों,	**रमयामास**	आनन्दित किया ॥६४॥
विक्रम	पराक्रम,		
लीलया	चरित तथा		

यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्ण-
भ्राजत्कपोलसुभगं सविलासहासम् ।
नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबन्त्यो
नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च ॥६५॥

यस्य आननं मकर कुण्डल चारुकर्ण भ्राजत् कपोल सभगं सविलास हासं नित्य उत्सवं न ततृपुः दृशिभिः पिबन्त्यः नार्यः नराः च मुदिताः कुपिता निमेः च ॥६५॥

मकर-	मकरा कृति	**सविलास**	उत्तम विलासपूर्ण
कुण्डल	कुण्डलोंसे युक्त	**हासं**	हास्यवाले
चारुकर्ण	सुन्दर कर्णों,	**नित्य उत्सवं**	नित्य प्रफुल्लित
भ्राजत् कपोल	कान्तिमय कपोलोंसे	**यस्य आननं**	जिनके श्रीमुखको
सुभगं	सुशोभित	**दृशिभिः**	आँखोंसे

पिबन्त्यः	पीते हुए	**च**	और (पलक गिरनेके
नार्यः च	स्त्रियां और		कारण)
नराः	पुरुष सब	**निमेः**	निमिपर
ततृपुः न	तृप्त नहीं होते थे,	**कुपिता**	बहुत क्रोध करते ये
मुदिताः	अनन्दित होते थे		॥६५॥

जातो गतः पितृगृहाद् व्रजमेधितार्थो
हत्वारिपून् सुतशतानि कृतोरुदारः ।
उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे
आत्मानमात्मनिगमं प्रथयञ्जनेषु ॥६६॥

जातः गतः पितृ गृहात् व्रजं एधित अर्थः हत्वा रिपून् सुत शतानि कृत उरुदारः उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः सम ईजे आत्मानं आत्म निगमं प्रथयन् जनेषु ॥६६॥

जातः	उत्पन्न होकर	**उत्पाद्य**	उत्पन्न करके
पितृ गृहात्	पिताके घरसे	**जनेषु**	लोगोंमें
व्रजं गतः	ब्रज चले गये	**आत्म**	अपने
अर्थः	प्रयोजनवश	**निगमं**	वेदोंकी मर्यादा
एधित	वहां बड़े हुए,	**प्रथयन्**	स्थापित करते हुए
रिपून् हत्वा	शत्रुओंको मारकर	**क्रतुभिः**	यज्ञोंके द्वारा
उरुदारः कृत	बहुत-सी	**आत्मानं**	अपना ही
	पत्नियाँ बनायी	**सम**	भली प्रकार
तेषु	उनमें	**ईजे**	यजन किया ॥६६॥
सुत शतानि	सैकड़ों पुत्र		

पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन् कुरूणा-
मन्तः समुत्थकलिना युधि भूपचम्वः ।
दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य
प्रोच्योद्धवाय च परं समगात् स्वधाम ॥६७॥

पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन् कुरुणां अन्तः समुत्थ कलिना युधि भूप चम्वः दृष्ट्या विधूय विजये जयं उद्विघोष्य प्रोच्य उद्धवाय च परं सम अगात् स्वधाम ॥६७॥

वै स	निश्चय उन्होंने	**दृष्ट्या**	सौभाग्य वश
पृथ्व्याः	पृथ्वीके	**विधूय**	विध्वंस कराके
गुरुभरं	भारी भारको	**विजये जयं**	अर्जुनकी विजय
क्षपयन्	दूर करनेके लिए	**उद् विघोष्य**	घोषणा करके
कुरूणां	कुरुवंशियोंके	**च उद्धवाय**	तथा उद्धवको
अन्तः	भीतर	**परं**	परम-तत्त्वका
समुत्थ	उठे हुए	**प्रोच्य**	उपदेश करके
कलिना	झगड़ेके द्वारा	**स्वधाम**	अपने धाम
युधि भूप	युद्धमें राजाओंकी	**सम अगात्**	चले गये ॥६७॥
चम्वः	सेनाका		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

॥ नवमस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ दशमः स्कन्धः ॥

(पूर्वार्धः)

क्षमा याचना

श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र' का विचार था कि सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत महापुराण मूल श्लोक, पदच्छेद, अन्वय और हिन्दी शब्दार्थ श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'श्रीकृष्ण-सन्देश' में धारावाहिक रूपसे छपे। जब स्कन्ध पूरा हो जाय तो पाठक स्वयं भागवतके अंश को निकाल कर बँधाई करवा कर पुस्तकका रूप दे दें। 'श्रीकृष्ण-सन्देश' में धारावाहिक 'नवम स्कन्ध' तक छप गया। आगे कुछ ऐसी लाचारी और विवशता आ गई कि 'श्रीकृष्ण-सन्देश' को बन्द करनेका निर्णय लेना पड़ गया।

'श्रीकृष्ण-सन्देश' के बन्द होनेसे 'भागवत' के अनुरागी पाठकोंको आघात लगा। भागवतका दशम-स्कन्ध हृदय स्थल है, और जिसकी सभी पाठक आतुरतासे प्रतीक्षा कर रहे थे, उनका दुखी होना स्वाभाविक था। हमें अनेक ऐसे पत्र मिलने लगे, जिनमें आग्रह था कि किसी भी रूप में हम भागवतको पदच्छेद, अन्वय और शब्दार्थ सहित छापें। उन पत्रों को गम्भीरतासे लेते हुए श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थानके प्रशासनिक अधिकारियोंने निर्णय लिया कि भागवतके शेषांशको पुस्तकाकार छापा जाय। उसी निर्णयका प्रथम प्रतिफल है भागवतके दशम स्कन्धका पूर्वार्ध।

हम चाहते थे कि दशम स्कन्धका पूर्वार्ध जितना शीघ्र हो सके उपलब्ध कराया जाय। किन्तु प्रेसने हमें जो आश्वासन दिया था उस निर्धारित समयपर मुद्रण पूरा नहीं हो सका। कम्पोजीटरका अन्यत्र चला जाना, बिजली-व्यवस्थामें व्यवधान आदि कई कारण इसके साथ जुड़े हैं। उत्सुक पाठकों के पत्र बराबर हमें मिलते रहे और प्रेसको शीघ्र पुस्तक उपलब्ध करानेका हम लगातार निवेदन करते रहे।

विलम्ब होनेका एक कारण है पुस्तकमें पृष्ठ संख्या अधिक होना। इसके अतिरिक्त प्रूफ देखने में भी कुछ समय लगता रहा। हालांकि इसे

पूर्णतः निर्दोष नहीं कहा जायगा, क्योंकि इसके प्रत्येक प्रूफको केवल एक बार ही और एक व्यक्तिके द्वारा देखा गया है।

कागज, छपाई और बँधाईका शुल्क बढ़ जानेसे मूल्य कुछ अधिक हो गया, किन्तु यह हमारी लाचारी है। मूल्य हम लगभग वही रखते हैं जो खर्च आता है, यही कारण है कि छूटकी राशि हम अधिक नहीं दे पाते हैं।

'भागवत' के भक्तों, प्रेमियों और पाठकोंकी इच्छा-शक्तिसे और भगवान श्रीकृष्णकी प्रेरणासे दशम स्कन्धका पूर्वार्ध प्रकाशित हो गया है। हम प्रयत्नशील हैं कि इसका उत्तरार्ध भी शीघ्र छप जाय। इसके मुद्रणमें और उपलब्ध होने में जो लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ी इसके लिए हम क्षमा चाहते हैं।

प्रकाशक

श्रीमद्भागवत महापुराण से सम्बद्ध अन्य ग्रंथ जो हमारे पास उपलब्ध हैं

१. श्रीमद्भागवत पादानुक्रमणिका (राज.)	१५०-००
(साधारण)	१२५-००
२. भागवत-परिचय	१००-००
३. श्रीरामचरित मानस तथा श्रीमद्भागवत— संरचता एवं लक्ष्यका तुलनात्मक अध्ययन	६०-००
४. भगवल्लीला चिन्तामणि (भागवतके प्रथम श्लोककी ८७ व्याख्या)	१५-००
५. श्रीमद्भागवतके स्तोत्रोंके आधारः शास्त्रीय अनुशीलन	३५-००
६. भागवतके गीतोंका शास्त्रीय अनुशीलन	२०-००
७. भागवत मकरन्द	२१-००

दशम स्कन्ध

(पूर्वार्ध)

विषय सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१.	भगवानका पृथ्वीको आश्वासन, वसुदेव-देवकी-विवाह, देवकीके छः पुत्रोंका कंसके द्वारा हत्या	१
२.	भगवानका गर्भ-प्रवेश और देवताओं द्वारा गर्भस्तुति	३०
३.	भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य	५१
४.	योगमायाका कंसके हाथमे छूटना और भविष्यवाणी	७६
५.	गोकुलमें भगवानका जन्मोत्सव	९४
६.	पूतना-उद्धार	१०७
७.	शकट-भंजन और तृणावर्त-उद्धार	१२६
८.	नामकरण-संस्कार और बाललीला	१४२
९.	श्रीकृष्णका ऊखलसे बाँधा जाना	१६४
१०.	यमलार्जुन-उद्धार	१७६
११.	गोकुलसे वृन्दावन जाना, वत्सासुर और बकासुर-उद्धार	१९३
१२.	अघासुर-उद्धार	२१६
१३.	ब्रह्माजीका मोह और उसका नाश	२३८
१४.	ब्रह्माजीके द्वारा भगवानकी स्तुति	२६६
१५.	धेनुकासुर-उद्धार और ग्वालबालोंकी कालिय-विषसे रक्षा	२९८
१६.	कालियपर कृपा	३२१
१७.	कालियके दह-आगमनकी कथा, व्रजवासियोंकी दावानलसे रक्षा	३५२
१८.	प्रलम्बासुर-उद्धार	३६२
१९.	गौओं और गोपोंको दावानलसे बचाना	३७६
२०.	वर्षा और शरद्-ऋतुका वर्णन	३८३
२१.	वेणुगीत	४०२
२२.	चीर-हरण	४१४
२३.	यज्ञपत्नियोंपर कृपा	४३०
२४.	इन्द्रयज्ञ-निवारण	४५२

अध्याय	विषय	पृष्ठ
२५.	गोवर्धनधारण	४६७
२६.	नन्दबाबासे गोपोंकी श्रीकृष्णके प्रभावकी चर्चा	४८०
२७.	श्रीकृष्णका अभिषेक	४९१
२८.	वरुणलोकसे नन्दजीको छुड़ाना	५०४
२९.	रासलीलाका आरम्भ	५११
३०.	श्रीकृष्णके विरहमें गोपियोंकी दशा	५५०
३१.	गोपिकागीत	५८५
३२.	भगवानका प्रकट होकर गोपियोंको सान्त्वना देना	६०३
३३.	महारास	६१९
३४.	सुदर्शन और शंखचूड़का उद्धार	६४७
३५.	युगलगीत	६६०
३६.	अरिष्टासुर-उद्धार, कंसका श्रीअक्रूरको व्रज भेजना	६७४
३७.	केशी और व्योमासुर-उद्धार, नारद द्वारा स्तुति	६९०
३८.	अक्रूरकी व्रजयात्रा	७०५
३९.	श्रीकृष्ण-बलरामका मथुरागमन	७२६
४०.	अक्रूरके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति	७५१
४१.	श्रीकृष्णका मथुरामें प्रवेश	७६४
४२.	कुब्जापर कृपा, धनुष-भंग और कंसकी व्याकुलता	७८६
४३.	कुवलयापीड़का उद्धार और अखाड़ेमें प्रवेश	८०२
४४.	चाणूर, मुष्टिक आदि पहलवानों और कंस-वध	८१८
४५.	श्रीकृष्ण-बलरामका यज्ञोपवीत और गुरुकुल-प्रवेश	८४०
४६.	उद्धवजीकी व्रजयात्रा	८६२
४७.	उद्धव-गोपी-संवाद, भ्रमरगीत	८८४
४८.	भगवानका कुब्जा और अक्रूरके घर जाना	९१७
४९.	अक्रूरका हस्तिनापुर जाना	९३४

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

दशमः स्कन्धः

(पूर्वार्धः)

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ।
राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥१॥

कथितः वंश विस्तारः भवता सोम सूर्ययोः राज्ञां च उभय वंश्यानां चरितं परम अद्भुतम् ॥१॥

भवता	आपने	**राज्ञां**	राजाओंका
सूर्य	सूर्य और	**परम अद्भुतं**	अत्यन्त आश्चर्य-जनक
सोमयोः	चन्द्रमाके		
वंश विस्तारः	वंश विस्तारका	**चरितं**	चरित
च उभय	तथा दोनों	**कथितः**	वर्णन किया ॥१॥
वंश्यानां	वंशोंमें हुए		

यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ।
तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥२॥

यदोः च धर्मशीलस्य नितरां मुनि सत्तम तत्र अंशेन अवतीर्णस्य विष्णोः वीर्याणि शंस नः ॥२॥

मुनि सत्तम	मुनि श्रेष्ठ !	**तत्र अंशेन**	उसमें अंश सहित
नितरां	अत्यन्त	**अवतीर्णस्य**	अवतार लिये
धर्मशीलस्य	धर्मपरायण	**विष्णोः**	भगवान् विष्णुके
यदोः च	यदुका भी (वंश सुनाया)	**वीर्याणि**	पराक्रम
		नः शंस	मुझे सुनाइये ॥२॥

अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान् भूतभावनः ।
कृतवान् यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥३॥

अवतीर्य यदोः वंशे भगवान् भूतभावनः कृतवान् यानि विश्वात्मा तानि नः वद विस्तरात् ॥३॥

भूतभावनः	प्राणियोंके पालक	**यानि कृतवान्**	जो (लीलाएँ) कीं
विश्वात्मा	विश्वात्मा	**तानि नः**	उन्हें मुझे
भगवान्	भगवान्ने	**विस्तरात्**	विस्तारसे
यदोः वंशे	यदुवंशमें	**वद**	बतलाइये ॥३॥
अवतीर्य	अवतार लेकर		

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्
भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्
पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥४॥

निवृत्त तर्षैः उपगीयमानात् भव औषधात् श्रोत्रमनः अभिरामात् क उत्तम श्लोक गुण अनुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥४॥

निवृत्त तर्षैः	तृष्णाहीनों (महापुरुषों) द्वारा	**उत्तम श्लोक**	पवित्र कीर्ति भगवानके
उपगीयमानात्	गायी जानेवाली	**गुण अनुवादात्**	गुण-वर्णनसे
भव	संसार-रोगकी	**पशुघ्नात्**	पशुघाती (या आत्मघाती) को
औषधात्	औषधिरूप	**विना क**	छोड़कर कौन
श्रोत्रमनः	श्रवण और मनको	**पुमान्**	पुरुष
अभिरामात्	प्रिय लगनेवाली	**विरज्येत**	विरक्त होगा ॥४॥

पितामहा मे समरेऽमरञ्जयै-
र्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गिलैः ।
दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं
कृत्वातरन् वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥५॥

पितामहा मे समरे अमरञ्जयैः देवव्रत आद्या अतिरथैः तिमिङ्गिलैः दुरत्ययं कौरवसैन्य सागरं कृत्वा तरन् वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥५॥

समरे	युद्धमें
अमरञ्जयैः	देवताओंको भी जीतनेवाले
देवव्रत आद्या	भीष्मादि
अतिरथैः	अतिरथी रूप
तिमिगिलैः	तिमिङ्गिल (महा-मत्स्यों) वाले
दुरत्ययं	दुष्पार
कौरवसैन्य	कौरवोंकी सेनारूप
सागरं	समुद्रको
यत्प्लवाः	जिनको नौका बना-कर
मे पितामहा	मेरे पितामहोंने
वत्सपदं	गोवत्स-पदके
कृत्वा	समान करके
तरन्	(सुगमतासे) पार
स्म	हो गये ॥५॥

द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं
सन्तानबीजं कुरुपाण्डवानाम् ।
जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो
मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥६॥

द्रौणि अस्त्र विप्लुष्टं इदं मत् अंगं सन्तानबीजं कुरु पाण्डवानां जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रः मातुः च मे यः शरणं गतायाः ॥६॥

द्रौणि अस्त्र	अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे
विप्लुष्टं	नष्ट होते हुए
कुरु पाण्डवानां	कौरव-पाण्डवोंके
सन्तानबीजं	वंश-बीज रूप
इदं मत् अंगं	इस मेरे शरीरको
शरणं गतायाः	शरणमें गयी हुई
मे मातुः	मेरी माताके
आत्तचक्रः	चक्र लेकर
कुक्षिं च गत	उदरमें भी जाकर
यः जुगोप	जिन्होंने रक्षा की ॥६॥

वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजा-
मन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः ।

प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च
मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥७॥

वीर्याणि तस्य अखिल देहभाजां अन्तः बहिः पूरुष कालरूपैः प्रयच्छतः मृत्युं उत अमृतं च माया मनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥७॥

विद्वन्	विद्वन् !	**पूरुष**	पुरुष रूपसे
अखिल	सम्पूर्ण	**अमृतं च**	अमृतत्त्व भी
देहभाजां	देहधारियोंके	**प्रयच्छतः**	प्रदान करते हुए
बहिः	बाहर	**तस्य माया**	उन मायासे
कालरूपैः	कालरूपसे	**मनुष्यस्य**	मनुष्य बनेके
मृत्युं उत	मृत्यु तथा	**वीर्याणि**	पराक्रमोंका
अन्तः	भीतर अन्तर्यामी	**वदस्व**	वर्णन कीजिए ॥७॥

रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः संकर्षणस्त्वया ।
देवक्या गर्भसम्बन्धः कुतो देहान्तरं विना ॥८॥

रोहिण्याः तनयः प्रोक्तः रामः सङ्कर्षणः त्वया देवक्या गर्भ सम्बन्धः कुतः देहान्तरं विना ॥८॥

त्वया	आपने	**देहान्तरं**	दूसरा शरीर धारण किये
रामः	बलरामजीको		
रोहिण्याः	रोहिणीजीका	**विना**	बिना
तनयः	पुत्र और	**गर्भ**	(उनका देवकीके) गर्भसे
सङ्कर्षणः	(उन्ही) सङ्कर्षणको		
देवक्याः प्रोक्तः	देवकीका कहा है,	**सम्बन्धः**	सम्बन्ध
		कुतः	कैसे हो गये ॥८॥

कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद् व्रजं गतः ।
क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान् सात्वतांपतिः ॥९॥

कस्मात् मुकुन्दः भगवान् पितुः गेहात् व्रजं गतः क्व वासं ज्ञातिभिः साधं कृतवान् सात्वतां पतिः ॥९॥

भगवान्	भगवान्
मुकुन्दः	मुकुन्द
पितुः गेहात्	पिताके घरसे
कस्मात्	किस कारणसे
व्रजं गतः	व्रज गये,
सात्वतां	उन सात्वत वंशीयोंके
पतिः	स्वामीने
ज्ञातिभिः साधं	जाति-भाइयोंके साथ
क्व वासं	कहां निवास
कृतवान्	किया ॥९॥

व्रजे वसन् किमकरोत्मधुपुर्यां च केशवः ।
भ्रातरं चावधीत् कंसं मातुरद्धातदर्हणम् ॥१०॥

व्रजे वसन् किं अकरोत् मधुपुर्यां च केशवः भ्रातरं च अवधीत् कंसं मातुः अद्धा अतदर्हणम् ॥१०॥

केशवः	उन केशवने
व्रजे च	व्रजमें तथा
मधुपुर्यां	मथुरामें
वसन्	रहते हुए
किं अकरोत्	क्या-क्या किया,
मातुः	माताके
भ्रातरं	भाई (मामा)
कंसं	कंसको
अवधीत्	मारा
अद्धा	उनके द्वारा
अतदर्हणं	यह तो उचित नहीं लगता ॥१०॥

देहं मानुषमाश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः ।
यदुपुर्यां सहावात्सीत् पत्न्यः कत्यभवन् प्रभोः ॥११॥

देहं मानुषं आश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः यदुपुर्यां सह अवात्सीत् पत्न्यः कति अभवन् प्रभोः ॥११॥

मानुषं देहं	मनुष्य शरीर
आश्रित्य	धारण करके
वृष्णिभिः	वृष्णिवंशियोंके
सह	साथ
कति वर्षाणि	कितने वर्ष
यदुपुर्यां	यदुपुरीमें
अवात्सीत्	रहे
प्रभोः	उन प्रभुकी
पत्न्यः	पत्नियां
कति अभवन्	कितनी हुईं ॥११॥

एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम् ।
वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥१२॥

एतत् अन्यत् च सर्वं मे मुने कृष्ण विचेष्टितं वक्तुं अर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥१२॥

सर्वज्ञ मुने	सर्वज्ञ मुनिवर !	**सर्वं विस्तृतं**	सब विस्तारपूर्वक
एतत च	ये और	**मे**	मुझ
अन्यत्	दूसरी भी	**श्रद्दधानाय**	श्रद्धालुसे
कृष्ण	श्रीकृष्णकी	**वक्तुं अर्हसि**	आपको
विचेष्टितं	लीलाएँ		कहना चाहिए ॥१२॥

नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ।
पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥१३॥

न एषा अति दुःसहा क्षुत् मां त्यक्त उदं अपि बाधते पिबन्तं त्वत् मुख अम्भोजच्युतं हरिकथा अमृतम् ॥१३॥

त्वत् मुख	आपके मुखरूपी	**अपि त्यक्त**	छोड़ देनेपर
अम्भोजच्युतं	चन्द्रसे झरते	**अति दुःसहा**	अत्यन्त दुःसह
हरिकथा	हरि-कथा रूपी	**एषा क्षुत्**	यह क्षुधा
अमृतं	अमृतको	**बाधते**	बाधा
पिबन्तं मां	पीते हुए मुझे	**न**	नहीं दे रही है ॥१३॥
उदं	जल भी		

सत उवाच

एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं
वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम् ।
प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं
व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ॥१४॥

एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं वैयासकिः स भगवान् अथ विष्णु-रातं प्रात्यर्च्य कृष्ण चरितं कलि कल्मषघ्नं व्याहर्तुं आरभत भागवत प्रधानः ॥१४॥

भृगुनन्दन	शौनकजी !	**विष्णुरातं**	परीक्षितकी
अथ एवं	फिर इस प्रकारका	**प्रत्यर्च्य**	प्रशंसा करके
साधुवादं	उत्तम प्रश्न	**कलि**	कलि-
निशम्य	सुनकर	**कल्मषघ्नं**	पापहारी
स प्रधानः	उन प्रधान	**कृष्ण**	श्रीकृष्ण
भागवत	भगवद्	**चरितं**	चरितको
	भक्त	**व्याहर्तुं**	कहना
भगवान्	भगवान	**आरभत**	प्रारम्भ किया ॥१४॥
वैयासकिः	व्यासनन्दनने		

श्रीशुक उवाच

सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम ।
वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः ॥१५॥

सम्यक् व्यवसिता बुद्धिः तव राजर्षि सत्तम वासुदेव कथायां ते यत् जाता नैष्ठिकी रतिः ॥१५॥

राजर्षि सत्तम	राजर्षि श्रेष्ठ !	**कथायां**	कथामें
तव बुद्धिः	तुम्हारी बुद्धिका	**ते**	तुम्हारी
सम्यक्	निश्चय	**नैष्ठिकी**	निष्ठायुक्त
व्यवसिता	बहुत पूर्ण है	**रतिः**	प्रीति
यत्	क्योंकि	**जाता**	हो गयी है ॥१५॥
वासुदेव	भगवान वासुदेवकी		

वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन् पुनाति हि ।
वक्तारं पृच्छकं श्रोतृंस्तत्पादसलिलं यथा ॥१६॥

वासुदेव कथा प्रश्नः पुरुषान् त्रीन् पुनाति हि वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄन् तत् पाद सलिलं यथा ॥१६॥

यथा तत्	जैसे उनका	**वक्तारं**	वक्ता
पाद सलिलं	चरणोदक (गंगा तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं)	**पृच्छकं**	प्रश्नकर्ता तथा
		श्रोतॄन्	श्रोताओं
		त्रीन् पुरुषान्	तीनों पुरुषोंको
वासुदेव	भगवान् वासुदेवकी	**हि**	निश्चय
कथा	कथा सम्बन्धी	**पुनाति**	पवित्र करता है
प्रश्नः	प्रश्न		॥१६॥

भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ।
आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥१७॥

भूमिः दृप्त नृप व्याज दैत्य अनीक शत अयुतैः आक्रान्ता भूरि भारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥१७॥

दृप्त नृप	उन्मत्त राजाओंके	**भूरि**	बहुत अधिक
व्याज	बहाने	**भारेण**	भारसे
दैत्य	दैत्योंकी	**आक्रान्ता**	आक्रान्त होकर
शत अयुतैः	सैकड़ों-हजारों	**भूमिः ब्रह्माणं**	पृथ्वी ब्रह्माजीकी
अनीक	सेनाओंके	**शरणं ययौ**	शरणमें गयी ॥१७॥

गौर्भूत्वाश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः ।
उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत ॥१८॥

गौः भूत्वा अश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः उपस्थिता अन्तिके तस्मै व्यसनं स्वं अवोचत ॥१८॥

गौः भूत्वा	गाय बनकर	**अन्तिके**	समीप
अश्रुमुखी	मुखपर आंसू बहाती,	**उपस्थिता**	पहुँचकर
खिन्ना	उदास	**तस्मै**	उनसे
करुणं	दीन-स्वरसे	**स्वं व्यसनं**	अपना कष्ट
क्रन्दन्ती	डकराती	**अवोचत**	सुनाया ॥१८॥
विभोः	उन समर्थके		

ब्रह्मा तदुपधार्यथ सह देवैस्तया सह ।
जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥१६॥

ब्रह्मा तत् उपधार्य अथ सह देवैः तया सह जगाम स त्रिनयनं तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥१६॥

तत् उपधार्य	उसे सुनकर	**देवैः सह**	देवताओंके संग
अथ ब्रह्मा	फिर ब्रह्माजी	**क्षीरपयोनिधेः**	क्षीरसागरके
स त्रिनयनं	शंकरजीके साथ	**तीरं जगाम**	किनारे गये ॥१६॥
तया	उस पृथ्वी और		

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ।
पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥२०॥

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिं पुरुषं पुरुष सूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥२०॥

तत्र गत्वा	वहां जाकर	**देवदेवं**	देवाधिदेव
समाहितः	एकाग्र चित्तसे	**वृषाकपि**	वरदाय नारायण
पुरुष-	पुरुष-	**पुरुषं**	परम पुरुषकी
सूक्तेन	सूक्त द्वारा	**उपतस्थे**	स्तुति की ॥२०॥
जगन्नाथं	जगत्पति		

गिरं समाधौ गगने समीरितां
निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह ।

गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्य वेधाः त्रिदशान् उवाच ह

समाधौ	समाधिके	**वेधाः**	विधाताने
गगने	चिदाकाशमें	**त्रिदशान्**	देवताओंसे
समीरितां	स्पष्ट कही गयी	**ह उवाच**	निश्चय पूर्वक कहा-
गिरं निशम्य	वाणी सुनकर		

ब्रह्मोवाच*

गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुन-
र्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम् ॥२१॥

गां पौरुषीं मे शृणुत अमराः पुनः विधीयतां आशु तथा एव मा चिरम् ॥२१॥

अमराः	'देवताओ !	**पुनः आशु**	फिर शीघ्र
मे	मुझसे	**विधीयतां**	व्यवस्था करो
पौरुषीं	परम पुरुषकी	**चिरं मा**	देर मत करो'
गां शृणुत	वाणी सुनो !		॥२१॥
तथा एव	वैसा ही		

पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो
भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ।
स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः
स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद् भुवि ॥२२॥

पुरा एव पुंसाः अवधृतः धरा ज्वरः भवद्भिः अंशैः यदुषु उपजन्यतां स यावत् उर्व्या भरं ईश्वरेश्वरः स्व कालशक्त्या क्षपयन् चरेत् भुवि ॥२२॥

धरा ज्वरः	पृथ्वीकी जलनकी		परमेश्वर
पुंसाः	परम पुरुषको	**स्व**	अपनी
पुरा एव	पहिलेसे ही	**कालशत्या**	काल-शक्तिसे
अवधृत	पता है, अतः	**उर्व्या भरं**	पृथ्वीका भार
स ईश्वरेश्वरः	वे समर्थोंके भी	**क्षपयन्**	नष्ट करते हुए

---

* यह उवाच किसी प्रतिमें नहीं है; किन्तु श्लोक २५ के बाद श्रीशुक उवाच इसे आवश्यक बनाता है ।

स यावत्	वे जब तक	**अंशैः**	अपने अंशोंसे
भुवि	पृथ्वीपर	**यदुषु**	यदुवंशियोंमें
चरेत्	विचरण करते हैं	**उपजन्यतां**	उत्पन्न हो जाओ ॥२२॥
भवत्भिः	तुम लोग भी		

वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः ।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः ॥२३॥

वसुदेवगृहे साक्षात् भगवान् पुरुषः परः जनिष्यते तत् प्रिय अर्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः ॥२३॥

वसुदेव-	वसुदेवजी की	**जनिष्यते**	उत्पन्न होंगे
गृहे	पत्नीसे	**तत् प्रिय**	उनकी प्रसन्नताके
साक्षात्	साक्षात्	**अर्थं**	उद्देश्यसे
भगवान्	भगवान्	**सुरस्त्रियः**	देवाङ्गनाएँ भी
परः पुरुषः	परम पुरुष	**सम्भवन्तु**	जन्म लें ॥२३॥

वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट् ।
अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥२४॥

वासुदेव कला अनन्तः सहस्रवदनः स्वराट् अग्रतः भविता देवः हरेः प्रिय चिकीर्षया ॥२४॥

वासुदेव	भगवान् वासुदेवके	**हरेः प्रिय**	श्रीहरिका प्रिय
कला	कला रूप	**चिकीर्षया**	करनेकी इच्छासे
सहस्रवदनः	सहस्र मुख	**अग्रतः**	उनसे आगे
स्वराट् देवः	स्वयं प्रकाश देव	**भविता**	अवतीर्ण होंगे ॥२४॥
अनन्तः	अनन्त (शेष)		

विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत् ।
आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति ॥२५॥

विष्णोः माया भगवती यया सम्मोहितं जगत् आदिष्टा प्रभुणा अंशेन कार्य अर्थे सम्भविष्यति ॥२५॥

यया	जिन्होंने
जगत्	पूरे जगतको
सम्मोहितं	मोहित कर रखा है वे
भगवती	भगवती
विष्णो. माया	विष्णु-माया
प्रभुणा	अपने स्वामी द्वारा
आदिष्टा	आदेश पाकर
कार्यं	उनका कार्य
अर्थे	करनेके लिए
अंशेन	अपने अंशसे
सम्भविष्यति	उत्पन्न होंगी ॥२५॥

श्रीशुक उवाच

इत्यादिश्यामरगणान् प्रजापतिपतिर्विभुः ।
आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥२६॥

इति आदिश्य अमरगणान् प्रजापति पतिः विभुः आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्व धाम परमं ययौ ॥२६॥

प्रजापति	प्रजापतियोंके
पतिः विभुः	स्वामी ब्रह्माजी
अमरगणान्	देवताओंको
इति आदिश्य	यह आदेश देकर
च महीं	तथा पृथ्वीको
गीर्भिः	वाणीसे
आश्वास्य	आश्वासन देकर
स्व परमं धाम	अपने परम धाम
ययौ	चले गथे ॥२६॥

शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन् पुरीम् ।
माथुराञ्छूरसेनांश्च विषयान् बुभुजे पुरा ॥२७॥

शूरसेनः यदुपतिः मथुरां आवसन् पुरीं माथुरान् शूरसेनान् च विषयान् बुभुजे पुरा ॥२७॥

पुरा	पहिले
यदुपतिः	यादवराज (सहस्रार्जुन पुत्र)
शूरसेनः	शूरसेनने
मथुरां पुरीं	मथुरापुरीमें
आवसन्	रहते हुए
माथुरान्	माथुर
च शूरसेनान्	तथा शूरसेन
विषयान्	प्रदेशोंका
बुभुजे	उपभोग (शासन) किया था ॥२७॥

राजधानी ततः साभूत् सर्वयादवभूभुजाम् ।
मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संनिहितो हरिः ॥२८॥

राजधानी ततः सा अभूत् सर्वयादव भूभुजां मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संनिहितः हरिः ॥२८॥

यत्र हरिः	जिसमें श्रीहरि	**सर्वयादव**	सभी यदुवंशी
सदा	सदा	**भूभुजां**	राजाओंकी
सन्निहितः	विराजमान रहते हैं	**राजधानी**	राजधानी
सा मथुरा	वह मथुरा	**अभूत्**	हो गयी ॥२८॥
ततः	तबसे		

तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः ।
देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥२९॥

तस्यां तु कर्हिचित् शौरिः वसुदेवः कृत उद्वहः देवक्या सूर्यया साधं प्रयाणे रथं आरुहत् ॥२९॥

तस्यां तु	उस (मथुरा) में तो	**कृत उद्वहः**	विवाह करके
कर्हिचित्	किसी समय	**सूर्यया देवक्या**	नवोढ़ा देवकीके
शौरिः	शूरनन्दन	**साधं प्रयाणे**	साथ जानेके लिए
वसुदेवः	वसुदेवजी	**रथं आरुहत्**	रथपर चढ़े ॥२९॥

उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया ।
रश्मीन् हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥३०॥

उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रिय चिकीर्षया रश्मीन् हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैः वृतः ॥३०॥

उग्रसेनसुतः	उग्रसेनका पुत्र	**रथशतैः**	सैकड़ों रथोंसे
कंसः	कंसने	**वृतः**	घिरे हुए (उस रथके)
स्वसुः प्रिय	बहिनको प्रसन्न	**हयानां**	घोड़ोंकी
चिकीर्षया	करनेकी इच्छासे	**रश्मीन्**	लगाम
रौक्मै	स्वर्ण मण्डित	**जग्राह**	पकड़ी ॥३०॥

चतुःशतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम् ।
अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च त्रिषट्शतम् ॥३१॥

चतुः शतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनां अश्वानां अयुतं स अर्धं रथानां च त्रिषट् शतम् ॥३१॥

पारिबर्हं	दहेजके रूपमें	**स अर्धं अयुत**	पन्द्रह सहस्र
हेममालिनां	स्वर्ण मालाधारी	**अश्वानां**	घोड़े
चतुः शतं	चार सौ	**च त्रिषट् शतं**	तथा अठारह सौ
गजानां	हाथी	**रथानां**	रथ ॥३१॥

दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलंकृते ।
दुहित्रे देवकः प्रादाद् याने दुहितृवत्सलः ॥३२॥

दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते सम अलङ्कृते दुहित्रे देवकः प्रादात् याने दुहितृ वत्सलः ॥३२॥

द्वे शते	दो सौ	**वत्सलः**	स्नेह करनेवाले
सम अलंकृते	पूर्णतः कलंकृत	**देवकः**	देवकजीने
सुकुमारीणां	सुकुमारी	**दुहित्रे याने**	पुत्रीके जाते समय
दासीनां	दासियां	**प्रादात्**	उसे प्रदान कीं ॥३२॥
दुहितृ	पुत्रीसे		

शङ्खतूर्यमृदङ्गाश्च नेदुर्दुन्दुभयः समम् ।
प्रयाणप्रक्रमे तावद् वरवध्वोः सुमंगलम् ॥३३॥

शंख तूर्य मृदंगाः च नेदुः दुन्दुभयः समं प्रयाण प्रक्रमे तावत् वर वध्वोः सुमंगलम् ॥३३॥

वर वध्वोः	वर-वधूके	**शंख तूर्य**	शंख, तुरही,
प्रयाण	विदा होनेके	**च मृदंगाः**	तथा मृदंग
प्रक्रमे	उपक्रमके	**दुन्दुभयः**	दुन्दुभियां
तावत्	समय	**समं नेदुः**	साथ ही बजने लगी ॥३३॥
सुमंगलं	मंगलमय		

पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरवाक् ।
अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध ॥३४॥

पथि प्रग्रहिणं कंसं आभाष्य आह अशरीरवाक् अस्याः त्वां अष्टमः गर्भः हन्ता यां वहसे अबुध ॥३४॥

पथि	मार्गमें	**वहसे**	लिये जा रहा है
प्रग्रहिणं कंसं	सारथि बने कंसको	**त्वां अस्याः**	तुझे इसके
आभाष्य	सम्बोधित करके	**अष्टमः**	आठवें
अशरीरवाक्	अशरीरी वाणीने	**गर्भः**	गर्भसे (उत्पन्न)
आह	कहा–	**हन्ता**	मारनेवाला होगा'
अबुध	'मूर्ख !		॥३४॥
यां	जिसे तू		

इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः ।
भगिनीं हन्तुमारब्धः खंगपाणिः कचेऽग्रहीत् ॥३५॥

इति उक्त. स खलः पापः भोजानां कुलपांसनः भगिनीं हन्तुं आरब्धः खंगपाणिः कचे अग्रहीत् ॥३५॥

इति	इस प्रकार	**खंगपाणिः**	हाथमें तलवार
उक्तः	कहे जानेपर		उठाकर
स खलः पापः	उस दुष्ट पापी	**कचे**	उसका केश
भोजानां	भोजवंशियोंके	**अग्रहीत्**	पकड़कर
कुलपांसनः	कुलकलंकने	**हन्तुं**	मारनेको
भगिनीं	बहिनको	**आरब्धः**	उद्यत हो गया
			॥३५॥

तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम् ।
वसुदेवो महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥३६॥

तं जुगुप्सित कर्माणं नृशंसं निरपत्रपं वसुदेवः महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥३६॥

तं निरपत्रपं	उस निर्लज्ज,	**परिसान्त्वयन्**	भली प्रकार समझाते हुए
नृशंसं	महाक्रूर		
जुगुप्सित	निन्द्य-	**महाभाग**	महाभाग
कर्माणं	कर्मको	**वसुदेवः**	वसुदेवजी
		उवाच	बोले ॥३६॥

वसुदेव उवाच

श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान् भोजयशस्करः ।
स कथं भगिनीं हन्यात् स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥३७॥

श्लाघनीय गुणः शूरैः भवान् भोज यशस्करः स कथं भगिनीं हन्यात् स्त्रियं उद्वाह पर्वणि ॥३७॥

भवान् शूरैः	आप शूर-वीरों द्वारा	**भगिनीं**	अपनी बहिनको
श्लाघनीय	प्रशंसनीय	**उद्वाह पर्वणि**	उसके विवाहोत्सवके समय
गुणः	गुणों वाले हैं,		
भोज	भोजवंशको	**कथं हन्यात्**	कैसे मार रहे हैं ॥३७॥
यशस्करः	यश देनेवाले हैं,		
स स्त्रियं	ऐसे आप स्त्रीको,		

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥३८॥

मृत्युः जन्मवतां वीर देहेन सह जायते अद्य वा अब्द शतान्ते वा मृत्युः वै प्राणिनां ध्रुवः ॥३८॥

वीर	वीर !	**वा**	अथवा
जन्मवतां	जन्म लेनेवालोंकी	**अब्द शतान्ते**	सौ वर्षके बाद हो
मृत्युः	मृत्यु	**प्राणिनां**	प्राणियोंकी
देहेन सह	शरीरके साथ ही	**मृत्युः वै**	मृत्यु तो
जायते	उत्पन्न हो जाती है,	**ध्रुवः**	निश्चित होती ही है ॥३८॥
अद्य वा	आज हो		

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ।
देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥३९॥

देहे पञ्चत्वं आपन्ने देही कर्म अनुगः अवशः देहान्तरं अनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥३९॥

देहे	शरीरके	**देहान्तरं**	दूसरा शरीर
पञ्चत्वं	पञ्च-तत्त्वोंमें	**अनुप्राप्य**	पाकर
आपन्ने	मिल जानेपर	**प्राक्तनं**	पहिला (सूक्ष्म)
देही अवशः	जीव विवश होकर	**वपुः त्यजते**	शरीर छोड़ता है ॥३९॥
कर्म अनुगः	अपने कर्मोंके पीछे चलता		

व्रजंस्तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ।
यथा तृणजलूकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥४०॥

व्रजन् तिष्ठन् पदा एकेन यथा एव एकेन गच्छति यथा तृणजलूका एवं देही कर्मगतिं गतः ॥४०॥

यथा व्रजन्	जैसे चलते समय	**एवं देही**	इसी प्रकार जीव
एकेन तिष्ठन्	एकसे खड़े रहकर	**कर्मगतिं**	कर्मानुसार
एकेन पदा	एक पैरसे	**गतः**	(एकसे दूसरे देहमें) जाता है ॥४०॥
गच्छति	आगे जाता है		
यथा	जैसे		
तृणजलूका	तृणाजलूका (तृणपर रेंगनेवाला कीड़ा एक पत्ती पकड़कर तब पिछली पत्ती छोड़ता है)		

स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं
मनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः ।

दृष्टश्रुताभ्यां मनसानुचिन्तयन्
प्रपद्यते तत् किमपि ह्यपस्मृतिः ॥४१॥

स्वप्ने यथा पश्यति देहं ईदृशं मनोरथेन अभिनिविष्ट चेतनः दृष्ट श्रुताभ्यां मनसा अनुचिन्तयन् प्रपद्यते तत् किमपि हि अपस्मृतिः ॥४१॥

दृष्ट श्रुताभ्यां	देखी या सुनी बातों-को	**अभिनिविष्ट**	लगे हुए
मनसा	मनसे बार-बार	**चेतनः**	चित्तवाला
अनुचिन्तयन्	सोचता हुआ	**हि**	क्योंकि
यथा स्वप्ने	जैसे स्वप्नमें	**अपस्मृतिः**	उसकी पूर्व स्मृति भूल जाती है
ईदृशं देहं	इसी प्रकारका शरीर	**तत् किमपि**	उसीमें-से कोई (जन्म)
पश्यति	देखता है (ऐसे ही)		
मनोरथेन	कामनाओंमें	**प्रपद्यते**	पाता है ॥४१॥

यतो यतो धावति दैवचोदितं
मनो विकारात्मकमाप पञ्चसु ।
गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ
प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥४२॥

यतः यतः धावति दैव चोदितं मनः विकार आत्मकं आप पञ्चसु गुणेषु माया रचितेषु देही असौ प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥४२॥

दैव	प्रारब्धकी	**यतः यतः**	जिन-जिन
चोदितं	प्रेरणासे	**धावति**	रूपोंमें जाता है,
विकार आत्मकं	विकारवान्	**असौ देही**	यह जीव
मनः	मन	**प्रपद्यमानः**	उन्हींको प्राप्त करके
माया गुणेषु	मायाके गुणोंसे	**तेन**	उसी (शरीर) के
रचितेषु	निर्मित	**सह**	साथ
पञ्चसु	पञ्चभूत	**जायते**	उत्पन्न होता है ॥४२॥
आत्मकं आप	स्वरूप प्राप्त करके		

ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः
समीरवेगानुगतं विभाव्यते ।
एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्
गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ॥४३॥

ज्योतिः यथा उदक पार्थिवेषु अदः समीर वेग अनुगतं विभाव्यते एवं स्वमाया रचितेषु असौ पुमान् गुणेषु राग अनुगतः विमुह्यति ॥४३॥

उदक्	जलके	**विभाव्यते**	जान पड़ता है
पार्थिवेषु	स्थानोंके (सरोवरादि)	**एवं**	इसी प्रकार
		स्वमाया	अपनी मायासे
अदः	जलमें	**रचितेषु**	निर्मित
यथा	जैसे (सूर्य-चन्द्रका) प्रतिबिम्ब रूप	**गुणुषु**	(सत्वादि) गुणोंमें
		असौ पुमान्	यह चेतन पुरुष
ज्योतिः	ज्योति	**राग**	अपनी
समीर वेग	वायुवेगसे	**अनुगतः**	आसक्तिके पीछे
अनुगतः	हिलते (जल) के समान	**विमुह्यति**	मोहित हो जाता है ॥४३॥

तस्मान्न कस्यचिद् द्रोहमाचरेत् स तथाविधः ।
आत्मनः क्षेममन्विच्छन् द्रोग्धुर्वै परतो भयम् ॥४४॥

तस्मात् न कस्यचित् द्रोहं आचरेत् स तथा विधः आत्मनः क्षेमं अन्विच्छन् द्रोग्धुः वै परतः भयम् ॥४४॥

तस्मात्	इसलिए	**स तथा**	वह भी वैसा ही
आत्मनः क्षेमं	अपना कल्याण	**विधः**	करेगा
अन्विच्छन्	चाहते हुए	**वै**	निश्चय
कस्यचित्	किसीसे भी	**द्रोग्धुः**	करनेवाले को
द्रोहं न	शत्रुता न	**परतः भयं**	दूसरेसे भय होता है ॥४४॥
आचरेत्	करे,		

एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा ।
हन्तुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः ॥४५॥

एषा तव अनुजा बाला कृपणा पुत्रिका उपमा हन्तुं न अर्हसि कल्याणीं इमां त्वं दीनवत्सलः ॥४५॥

एषा तव	यह आपकी	**त्वं दीन-**	आप दीनोंपर
अनुजा बाला	छोटी बहिन बच्ची है,	**वत्सलः**	स्नेह करनेवाले हैं
		इमां कल्याणीं	इस कल्याणीको
कृपणा	दीना और	**हन्तुं न**	(आपको) मरना नहीं
पुत्रिका	(आपकी) पुत्रीके	**अर्हसि**	चाहिए ॥४५॥
उपमा	समान है,		

श्रीशुक उवाच

एवं स सामभिर्भेदैर्बोध्यमानोऽपि दारुणः ।
न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥४६॥

एवं स सामभिः देवैः बोध्यमानः अपि दारुणः न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषाद अननुव्रतः ॥४६॥

कौरव्य	कुरुश्रेष्ठ !	**पुरुषाद**	राक्षसोंका
एवं	इस प्रकार	**अननुव्रतः**	अनुवर्तन करनेवाला
देवैः	वसुदेवजी द्वारा	**स दारुणः**	वह क्रूर (कंस)
सामभिः	सामनीति द्वारा	**न्यवर्तत न**	निवृत्त नहीं हुआ ॥४६॥
बोध्यमानः	समझाये जानेपर		
अपि	भी		

निर्बन्धं तस्य तं ज्ञात्वा विचिन्त्यानकदुन्दुभिः ।
प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥४७॥

निर्बन्धं तस्य तं ज्ञात्वा विचिन्त्य आनकदुन्दुभिः प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुं इदं तत्र अन्वपद्यत ॥४७॥

तस्य तं	उस (कंस) का वह	**विचिन्त्य**	सोचकर
निर्बन्धं ज्ञात्वा	हठ जानकर	**तत्र**	उस विषयमें
आनकदुन्दुभिः	वसुदेवजी	**इदं**	इस
प्राप्तं कालं	उपस्थित कालको	**अन्वपद्यत**	निश्चयपर पहुँचे ॥४७॥
प्रतिव्योढुं	ढाल देनेके लिए		

मृत्युर्बुद्धिमतापोह्यो यावद्बुद्धिबलोदयम् ।
यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥४८॥

मृत्युः बुद्धिमता अपोह्यः यावत् बुद्धि बल उदयं यदि असौ न निवर्तेत न अपराधः अस्ति देहिनः ॥४८॥

बुद्धिमता	बुद्धिमानको	**यदि असौ**	यदि (फिर भी) यह
यावत् बुद्धि	जितनी बुद्धि	**निवर्तेत न**	निवृत्त न हो तो
बल उदयं	और बलका मद	**देहिनः**	शरीरधारीका
मृत्युः	मृत्युको	**अपराधः**	(कोई) अपराध
अपोह्यः	हटाना चाहिए	**न अस्ति**	नहीं है ॥४८॥

प्रदाय मृत्यवे पुत्रान् मोचये कृपणामिमाम् ।
सुता मे यदि जायेरन् मृत्युर्वा न म्रियेत चेत् ॥४९॥

प्रदाय मृत्यवे पुत्रान् मोचये कृपणां इमां सुता मे यदि जायेरन् मृत्युः वा न म्रियेत चेत् ॥४९॥

मृत्यवे	मृत्यु रूप (कंस) को	**यदि जायेरन्**	यदि उत्पन्न होंगे
पुत्रान् प्रदाय	पुत्रोंको देकर	**चेत् मृत्युः**	यदि मृत्युरूप (कंस)
इमां कृपणां	इस दीनाको	**वा न**	तब तक नहीं
मोचये	बचाऊँ,	**म्रियेत**	मरेगा ॥४९॥
मे सुता	मेरे पुत्र		

विपर्ययो वा किं न स्याद् गतिर्धातुर्दुरत्यया ।
उपस्थितो निवर्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥५०॥

विपर्ययः वा किं न स्यात् गतिः धातुः दुरत्यया उपस्थितः निवर्तेत निवृत्तः पुनः आपतेत् ॥५०॥

वा विपर्ययः	अथवा इससे उलटा	**निवर्तेत**	निवृत्त हो जाती है,
किं न स्यात्	क्यों नहीं हो सकता	**निवृत्तः**	निवृत्त हुई
धातुः गतिः	विधाताकी गति	**पुनः आपतेत्**	फिर आ जाती है
दुरत्यया	दुर्गम है,		॥५०॥
उपस्थितः	उपस्थित (मृत्यु)		

अग्नेर्यथा दारुवियोगयोगयो
रदृष्टतोऽन्यन्न निमित्तमस्ति ।
एवं हि जन्तोरपि दुर्विभाव्यः
शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥५१॥

अग्नेः यथा दारु वियोग योगयोः अदृष्टतः अन्यत् न निमित्तं अस्ति एवं हि जन्तोः अपि दुर्विभाव्यः शरीर संयोग वियोग हेतुः ॥५१॥

यथा	जैसे (दावाग्नि लगनेपर)	**न अस्ति**	नहीं है
अग्नेः	अग्निका	**हि जन्तोः**	क्योंकि प्राणीके
दारु	(किसी) काष्ठसे	**शरीर संयोग**	शरीर मिलने और
वियोग	न मिलना	**वियोग**	उसके वियोगका
योगयोः	या संयोग होना	**हेतुः**	कारण
अदृष्टतः	अदृष्टसे	**अपि दुर्विभाव्यः**	भी अचिन्त्य है
अन्यत् निमित्तं	भिन्न कारण		॥५१॥

एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम् ।
पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुरः सरम् ॥५२॥

वं विमृश्य तं पापं यावत् आत्मनिदर्शनं पूजयामास वै शौरिः बहुमान पुरःसरम् ॥५२॥

यावत्	जितनी	**एवं**	इस प्रकार
आत्मनिदर्शनं	अपनी बुद्धि थी (उसके अनुसार)	**विमृश्य**	विचार करके
		शौरिः	शूरनन्दन वसुदेवजीने

वै तं	निश्चय उस	**पुरः सरम्**	सहित
पापं	पापी कंसका	**पूजयामास**	सत्कार किया ॥५२॥
बहुमान	बहुत आदर		

प्रसन्नवदनाम्भोजो नृशंसं निरपत्रपम् ।
मनसा दूयमानेन विहसन्निदमब्रवीत् ॥५३॥

प्रसन्न वदन अम्भोजः नृशंसं निरपत्रपं मनसा दूयमानेन विहसन् इदं अब्रवीत् ॥५३॥

मनसा	मनसे	**विहसन्**	खुलकर हँसते हुए
दूयमानेन	दुःखी होते हुए भी	**निरपत्रपं**	निर्लज्ज
प्रसन्नवदन	खिले मुख	**नृशंसं**	क्रूर (कंस) से
अम्भोजः	कमलसे	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥५३॥

वसुदेव उवाच

न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद् वागाहाशरीरिणी ।
पुत्रान् समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥५४॥

न हि अस्याः ते भयं सौम्य यत् वाक् आह अशरीरिणी पुत्रान् समर्पयिष्ये अस्या यतः ते भयं उत्थितम् ॥५४॥

अशरीरिणी वाक्	अशरीरी वाणीने	**भयं न**	भय नहीं है,
यत् आह	जो कहा है,	**यतः ते भयं**	जिनसे तुम्हें भय
सौम्य	सौम्य ! (उसके अनुसार)	**उत्थितं**	उत्पन्न हुआ है (उन)
हि ते अस्याः	क्योंकि तुम्हें इससे	**अस्या पुत्रान्**	इसके पुत्रोंको
		समर्पयिष्ये	(तुम्हें) समर्पित कर दूंगा ॥५४॥

श्रीशुक उवाच

स्वसुर्वधान्निववृते कंसस्तद्वाक्यसारवित् ।
वसुदेवोऽपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशद् गृहम् ॥५५॥

स्वसुः वधात् निववृते कंसः तत् वाक्य सारवित् वसुदेवः अपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशत् गृहम् ॥५५॥

तत् वाक्य	उनकी बातके	**वसुदेवः अपि**	वसुदेवजी भी
सारवित्	महत्वको जानने-वाला	**प्रीतः**	प्रसन्न होकर
		तं प्रशस्य	उसकी प्रशंसा करके
कंसः	कंस	**गृहं**	अपने घरमें
स्वसुः वधात्	बहिनके वधसे	**प्राविशत्**	प्रविष्ट हुए ॥५५॥
निववृते	निवृत्त हो गया		

अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता ।
पुत्रान् प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम् ॥५६॥

अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता पुत्रान् प्रसुषुवे च अष्टौ कन्यां च एव अनुवत्सरम् ॥५६॥

अथ काल	फिर समय	**अष्टौ पुत्रान्**	आठ पुत्रों
उपावृत्ते	आनेपर	**च कन्यां**	तथा एक कन्याको
सर्वदेवता	सर्वदेवतामयी	**एव**	भी
देवकी	देवकीजीने	**प्रसुषुवे**	जन्म दिया ॥५६॥
अनुवत्सरं	प्रत्येक वर्षमें एक-एक करके		

कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः ।
अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥५७॥

कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसाय आनकदुन्दुभिः अर्पयामास कृच्छ्रेण सः अनृतात् अति विह्वलः ॥५७॥

प्रथमजं	पहिले उत्पन्न हुए	**विह्वलः**	व्याकुल होकर
कीर्तिमन्तं	कीर्तिमानको	**कृच्छ्रेण**	बड़े कष्टसे
सः	उन	**कंसाय**	कंसको
आनकदुन्दुभिः	वसुदेवजीने	**अर्पयामास**	अर्पित कर दिया ॥५७॥
अनृतात्	झूठसे		
अति	अत्यन्त		

किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ।
किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥५८॥

किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किं अपेक्षितं किं अकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृत आत्मनाम् ॥५८॥

नु	अहो,	**किं**	क्या (कुकर्म)
साधूनां	सत्पुरुषोंके लिए	**अकार्यं**	नहीं करने योग्य है,
किं दुःसहं	क्या असह्य है	**धृत आत्मनां**	जितेन्द्रिय पुरुष
विदुषां	विद्वानोंको	**किं**	कौन-सा त्याग
किं	किस बातकी	**दुस्त्यजं**	नहीं कर सकते
अपेक्षितं	अपेक्षा हो सकती है,		॥५८॥
कदर्याणां	नीचोंके लिए		

दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितिम् ।
कंसस्तुष्टमना राजन् प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥५९॥

दृष्ट्वा समत्वं तत् शौरेः सत्ये च एव व्यवस्थितिम् कंसः तुष्टमना राजन् प्रहसन् इदं अब्रवीत् ॥५९॥

राजन्	राजन् !	**व्यवस्थितिम्**	स्थिर रहना
शौरेः	शूरनन्दन वसुदेवजी-की	**दृष्ट्वा**	देखकर
		तुष्टमना	सन्तुष्ट चित्त
तत् समत्वं	वह समता	**कंसः प्रहसन्**	कंस हँसता हुआ
च सत्ये एव	तथा सत्यपर ही	**इदं अब्रवीत्**	यह बोला ॥५९॥

प्रतियातु कुमारोऽयं न ह्यस्मादस्ति मे भयम् ।
अष्टमाद् युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे विहितः किल ॥६०॥

प्रतियातु कुमारः अयं न हि अस्मात् अस्ति मे भयं अष्टमात् युवयोः गर्भात् मृत्युः मे विहितः किल ॥६०॥

अयं कुमारः	यह कुमार	**युवयोः**	दोनोंके
प्रतियातु	लौट जाय	**अष्टमात्**	आठवें
हि अस्मात्	क्योंकि इससे	**गर्भात्**	गर्भ (के बालक) से
मे भयं	मुझे (कोई) डर	**मे मृत्युः**	मेरी मृत्यु
न अस्ति	नहीं है,	**विहितः**	बदी है ॥६०॥
किल	अरे, आप		

तथेति सुतमादाय ययावानकदुन्दुभिः
नाभ्यनन्दत तद्वाक्यमसतोऽविजितात्मनः ॥६१॥

तथा इति सुतं आदाय ययाः आनकदुन्दुभिः न अभ्यनन्दत तत् वाक्यं असतः अविजित आत्मनः ॥६१॥

तथा	'अच्छा'	**अविजित आत्मनः**	अजितेन्द्रियकी
इति	ऐसा कहकर	**वाक्यं**	बातका
आनकदुन्दुभिः	वसुदेवजी	**अभ्यनन्दत**	अभिनन्दन
सुतं आदाय	पुत्रको लेकर	**न**	नहीं किया ॥६१॥
ययाः	चले आये; किन्तु		
तत् असतः	उस दुष्ट		

नन्दाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषां च योषितः ।
वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥६२॥

नन्द आद्या ये व्रजे गोपा याः च अमीषां च योषितः वृष्णयः वसुदेव आद्या देवकि आद्या यदुः स्त्रियः ॥६२॥

व्रजे ये	व्रजमें जो	**वृष्णयः**	वृष्णिवंशी
नन्द आद्या	नन्दादि	**च देवकि**	तथा देवकी
गोपा	गोप हैं	**आद्या**	आदि
च अमीषां	तथा इनकी	**यदुः**	यदुवंशियोंकी
योषितः	पत्नियां	**स्त्रियः**	स्त्रियां ॥६२॥
वसुदेव आद्या	वसुदेव आदि		

सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत ।
ज्ञातयो बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥६३॥

सर्वे वै देवताप्राया उभयोः अपि भारत ज्ञातयः बन्धु सुहृदः ये च कंसं अनुव्रताः ॥६३॥

भारत	परीक्षितः	**सुहृदः**	सुहृत
ये च कंसं	जो भी कंसके	**उभयोः अपि**	दोनों ही ओर हैं,
अनुव्रताः	अनुयायी	**वै सर्वे**	निश्चय वे सब
ज्ञातयः	जातिवाले	**देवताप्राया**	प्रायः देवता हैं
बन्धु	बन्ध-बान्धव,		॥६३॥

एतत् कंसाय भगवाञ्छशंसाभ्येत्य नारदः ।
भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥६४॥

एतत् कंसाय भगवान् शशंस अभि एत्य नारदः भूमेः भाराय माणानां दैत्यानां च वध उद्यमम् ॥६४॥

भगवान्	भगवान	**दैत्यानां**	दैत्योंके
नारदः	नारदने	**वध उद्यमं च**	वधोद्योगको भी
अभि एत्य	पास आकर	**कंसाय**	कंसको
एतत् भूमेः	यह पृथ्वीके	**शशंस**	बतलाया ॥६४॥
भारायमाणानां	भारभूत बने		

ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून् मत्वा सुरानिति ।
देवक्या गर्भसम्भूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ॥६५॥

ऋषेः विनिर्गमे कंसः यदून् मत्वा सुरान् इति देवक्या गर्भ सम्भूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ॥६५॥

ऋषेः इति	ऋषिके यह कहकर	**देवक्या गर्भ**	देवकीके गर्भसे
विनिर्गमे	निकल जानेपर	**स्ववधं प्रति**	अपने वधके लिए
कंसः	कंसने	**विष्णुं**	विष्णुको
यदून्	यदुवंशियोंको	**सम्भूतं**	उत्पन्न (मानकर)
सुरान् मत्वा	देवता मानकर		॥६५॥
च	तथा		

देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैर्गृहे ।
जातं जातमहन् पुत्रं तयोरजनशंकया ॥६६॥

देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैः गृहे जातं जातं अहन् पुत्रं तयोः अजन शङ्कया ॥६६॥

देवकीं च	देवकी और	**शङ्कया**	आशंकासे
वसुदेवं	वसुदेवको	**जातं जातं**	उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक
निगडै.	बेड़ीसे (जड़कर)		
गृहे निगृह्य	एक घरमें बन्द करके	**पुत्रं**	पुत्रको
तयोः अजन	उन अजन्मा विष्णु-की	**अहन्**	मारता गया ॥६६॥

मातरं पितरं भ्रातृन् सर्वांश्च सुहृदस्तथा ।
घ्नन्ति ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥६७॥

मातरं पितरं भ्रातृन् सर्वान् च सुहृदः तथा घ्नन्ति हि असुतृपः लुब्धा राजानः प्रायशः भुवि ॥६७॥

हि	क्योंकि	**मातरं पितरं**	माता-पिता,
असुतृपः	अपने ही प्राणोंको तृप्त करनेवाले	**भ्रातृन्**	भाई
		च सुहृदः	एवं सुहृदोंको
लुब्धा राजानः	लोभी राजा लोग	**तथा**	इसी प्रकार
भुवि प्रायशः	पृथ्वीपर प्रायः	**घ्नन्ति**	मार देते हैं ॥६७॥

आत्मानमिह संजातं जानन् प्राग् विष्णुना हतम् ।
महासुरं कालनेमिं यदुभिः स व्यरुध्यत ॥६८॥

आत्मानं इह सञ्जातं जानन् प्राक् विष्णुना हतं महासुरं कालनेमिं यदुभिः स व्यरुध्यत ॥६८॥

प्राक्	पहिले जन्ममें	**कालनेमिं**	कालनेमि
विष्णुना	विष्णु द्वारा	**इह**	यहां (मथुरामें)
हतं	मारा गया	**सञ्जातं**	उत्पन्न
महासुरं	महा असुर	**आत्मानं**	अपनेको

जानन्	जानकर	**व्यरुध्यत**	विरोध कर लिया ॥६८॥
स यदुभिः	उसने यदुवंशियोंसे		

उग्रसेनं च पितरं यदुभोजान्धकाधिपम् ।
स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान् महाबलः ॥६९॥

उग्रसेनं च पितरं यदु भोज अन्धक अधिपं स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान् महाबलः ॥६९॥

यदु भोज	यादव, भोज,	**महाबलः**	अत्यन्त बलवान कंस
अन्धक	अन्धक वंशियोंके	**शूरसेनान्**	शूरसेन देशका (राज्य)
अधिपं	स्वामी	**स्वयं**	स्वयं
पितरं	अपने पिता	**बुभुजे**	भोगने लगा ॥६९॥
उग्रसेनं च	उग्रसेनको भी		
निगृह्य	बन्दी बनाकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
श्रीकृष्णावतारोपक्रमे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ।

मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥१॥

प्रलम्ब, बक चाणूर, तृणावर्त, महा अशनैः (अधासुर) मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशि, धेनुकं, (धेनुक) ॥१॥*

अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः ।

यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥२॥

अन्यैः च असुर भूपालैः बाण भौम आदिभिः युतः यदूनां कदनं चक्रे बली मागध संश्रयः ॥२॥

बली	बलवान कंस	**संश्रयः**	आश्रय
च अन्यैः	तथा दूसरे		लेकर
असुर भूपालैः	असुर नरेश	**यदूनां**	यदुवंशियोंका
बाण भौम	बाणासुर, भौमासुर	**कदनं चक्रे**	दमनकरने लगा
आदिभिः युतः	आदिसे मिलकर		॥२॥
मागध	मगधराज जरासंधका		

ते पीडिता निविविशुः कुरुपञ्चालकेकयान् ।

शाल्वान् विदर्भान् निषधान् विदेहान् कोसलानपि ॥३॥

ते पीडिता निविविशुः कुरु पञ्चाल केकयान् शाल्वान् विदर्भान् निषधान् विदेहान् कोसलान् अपि ॥३॥

---

* सब केवल नाम हैं ।

ते पीडिता	वे पीड़ित होकर	**निषधान्**	निषध,
कुरु	कुरु,	**विदेहान्**	मैथिल
पञ्चाल	पञ्चाल,	**कोसलान्**	और कोसल (राज्यों) में
केकयान	केकय,		
शाल्वान्	शाल्व,	**अपि**	भी
विदर्भान्	विदर्भ,	**निविविशुः**	जा बसे ।३।।

एके तमनुरुन्धाना ज्ञातयः पर्युपासते ।
हतेसु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ।।४।।

एके तं अनुरुन्धाना ज्ञातयः पर्युपासते हतेसु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ।।४।।

एके	कोई	**औग्रसेनिना**	उग्रसेन पुत्र कंस द्वारा
ज्ञातयः	जातिवाले (यादव)	**देवक्या**	देवकीके
तं	उसकी	**षट्सु बालेषु**	छः बालकोंके
अनुरुन्धाना	अनुकूलता रखकर	**हतेसु**	मार दिये जाने पर ।।४।।
पर्युपासते	(उसकी) भली प्रकार सेवा करते, थे		

सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ।
गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धनः ।।५।।

सप्तमः वैष्णवं धाम यं अनन्तं प्रचक्षते गर्भः बभूव देवक्या हर्ष शोक विवर्धनः ।।५।।

यं अनन्तं	जिन्हें अनन्त	**हर्ष शोक**	हर्ष और शोकको
प्रचक्षते	कहा जाता है	**विवर्धनः**	बढ़ानेवाले
वैष्णवं	भगवान विष्णुके	**सप्तमः**	सातवें
धाम	वे अंश	**गर्भः**	गर्भके रूपमें
देवक्या	देवकीके	**बभूव**	स्थित हुए ।।५।।

भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् ।
यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ।।६।।

भगवान् अपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयं यदूनां निज नाथानां योगमायां सम आदिशत् ॥६॥

निज नाथानां	अपने ही आश्रित	**भगवान् अपि**	भगवान्‌ने भी
यदूनां	यदुवंशियोंके लिए	**योगमायां**	योगमायाको
कंसजं भयं	कंससे होनेवाला भय	**सम**	समझाकर
विदित्वा	जानकर	**आदिशत्**	आदेश दिया ॥६॥
विश्वात्मा	विश्वात्मा		

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलङ्कृतम् ।
रोहिणी वसुदेवस्य भार्याऽऽस्ते नन्दगोकुले ।
अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ॥७॥

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोप गोभिः अलङ्कृतं रोहिणी वसुदेवस्य भार्या आस्ते नन्द गोकुले अन्याः च कंस संविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ॥७॥

भद्रे देवि	कल्याणी देवि !	**हि**	क्योंकि
गोप गोभिः	गोपों और गायोंसे	**अन्याः**	दूसरी (उनकी पत्नियां)
अलङ्कृतं	सुभूषित		
व्रजं गच्छ	व्रजमें जाओ !	**च**	भी
नन्द	वहां नन्दजीके	**कंस**	कंससे
गोकुले	गोकुलमें	**संविग्ना**	उद्विग्न होकर
वसुदेवस्य	वसुदेवजीकी	**विवरेषु**	गुफाओंमें
भार्या रोहिणी	पत्नी रोहिणी	**वसन्ति**	रहती हैं ॥७॥
आस्ते	हैं		

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ।
तत् संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय ॥८॥

देवक्या जठरे गर्भं शेष आख्यं धाम मामकं तत् संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय ॥८॥

देवक्या उदरे	देवकीके पेटमें	**आख्यं**	नामक
मामकं शेष	मेरा शेष	**धाम गर्भं**	अंश गर्भ रूपमें हैं

तत्	उसे	**संनिवेशय**	ठीक रीतिसे प्रविष्ट
संनिकृष्य	(वहांसे) खींचकर		कर दो ॥८॥
रोहिण्या उदरे	रोहिणीके पेटमें		

अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे ।
प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि ॥९॥

अथ अहं अंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि ॥९॥

अथ अहं	फिर मैं	**शुभे त्वं**	और शुभे ! तुम
अंशभागेन	अंशोंके सहित	**नन्दपत्न्यां**	नन्दकी पत्नी
देवक्याः पुत्रतां	देवकीके पुत्र बनकर	**यशोदायां**	यशोदासे
प्राप्स्यामि	पहुँचूँगा,	**भविष्यसि**	उत्पन्न होंगी ॥९॥

अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम् ।
धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥१०॥

अर्चिष्यन्ति मनुष्याः त्वां सर्वकाम वर ईश्वरीं धूप उपहार बलिभिः सर्वकाम वरप्रदाम् ॥१०॥

सर्वकाम	सब कामनाओं और	**धूप उपहार**	धूप, उपहार तथा
वर ईश्वरीं	वरदानोंकी स्वामिनी	**बलिभिः**	मनौतियों द्वारा
त्वां मनुष्याः	तुम्हारी मनुष्य लोग	**अर्चिष्यन्ति**	पूजन किया करेंगे
सर्वकाम	सब कामनाओंकी		॥१०॥
वरप्रदां	वरदायिनी समझकर		

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि ।
दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥११॥

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि दुर्गा इति भद्रकाली इति विजया वैष्णवी इति च ॥११॥

भुवि नरा च	पृथ्वीपर मनुष्य भी	वैष्णवी	वैष्णवी
दुर्गा इति	दुर्गा यह,	इति	इस प्रकार
भद्रकाली इति	भद्रकाली यह,	नामधेयानि	पुकारनेके नाम
विजया च	विजया और	कुर्वन्ति	रखेंगे ॥११॥

कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ।
माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च ॥१२॥

कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, इति च (यह भी) माया, नारायणी, ईशानी, शारदा, अम्बिका, इति च ॥१२॥*

गर्भसंकर्षणात् तं वै प्राहुः संकर्षणं भुवि ।
रामेति लोकरमणाद् बलं बलवदुच्छ्रयात् ॥१३॥

गर्भ सङ्कर्षणात् तं वै प्राहुः सङ्कर्षणं भुवि राम इति लोक रमणात् बलं बलवत् उच्छ्रयात् ॥१३॥

तं भुवि	उसे पृथ्वीपर	राम	राम
गर्भ	गर्भका	बलवत्	बलवानोंमें
सङ्कर्षणात्	आकर्षण होनेसे	उच्छ्रयात्	श्रेष्ठ होनेसे
सङ्कर्षणं	सङ्कर्षण,	बलं प्राहुः	बलभद्र कहेंगे ॥१३॥
लोक रमणात्	लोक-रञ्जन करनेसे		

सन्दिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ।
प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत् तथाकरोत् ॥१४॥

सन्दिष्टा एवं भगवता तथा इति ओम् इति तत् वचः प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत् तथा अकरोत् ॥१४॥

एवं	इस प्रकार	सन्दिष्टा	आदेश दिये जानेपर
भगवता	भगवान द्वारा	तथा इति	'अच्छा' इस प्रकार,

---

* ये सब नाम हैं ।

ओम्	'जो आज्ञा'	परिक्रम्य	(उनकी) परिक्रमा करके
इति	इस प्रकार		
तत् वचः	उनकी बात	गां गता	पृथ्वीपर आकर
प्रतिगृह्य	स्वीकार करके	तत् तथा	उसे वैसा ही
		अकरोत्	किया ॥१४॥

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया ।
अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥१५॥

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया अहो विस्रंसितः गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥१५॥

योगनिद्रया	योगनिद्रा द्वारा	गर्भ	गर्भ
देवक्या गर्भे	देवकीका गर्भ	विस्रंसितः	नष्ट हो गया,
रोहिणीं	रोहिणीमें	इति	इस प्रकार
प्रणीते	ले जानेपर	विचुक्रुशुः	आक्रोश करने लगे
पौरा	नगरवासी गण		॥१५॥
अहो	'हाय ! (देवकीका)		

भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयंकरः ।
आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥१६॥

भगवान् अपि विश्वात्मा भक्तानां अभयङ्करः आविवेश अंश भागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥१६॥

भक्तानां	भक्तोंको	अंश भागेन	अपने सम्पूर्ण अंशों सहित
अभयङ्करः	अभय देनेवाले	आनकदुन्दुभेः	वसुदेवजीके
विश्वात्मा	विश्वात्मा	मन आविवेश	मनमें आविष्ट हुए ॥१६॥
भगवान् अपि	भगवान भी		

स बिभ्रत् पौरुषंधाम भ्राजमानो यथा रविः ।
दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां सम्बभूव ह ॥१७॥

स बिभ्रत् पौरुषं धाम भ्राजमानः यथा रविः दुरासदः अति दुर्धर्षः भूतानां सम्बभूव ह ॥१७॥

पौरुषं धाम	परम पुरुषका तेज	**भूतानां**	प्राणियोंके लिए
बिभ्रत्	धारण करनेके कारण	**ह दुरासद**	निश्चय असह्य
स	वे	**अति दुर्धर्ष**	तथा अत्यन्त अदम्य
यथा रविः	जैसे सूर्य हों	**सम्बभूव**	हो गये ॥१७॥
भ्राजमानः	तेजोमय होकर		

ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं
समाहितं शूरसुतेन देवी ।
दधार सर्वात्मकमात्मभूतं
काष्ठा यथाऽऽनन्दकरं मनस्तः ॥१८॥

ततः जगत् मंगलं अच्युत अंशं समाहितं शूरसुतेन देवी दधार सर्वात्मकं आत्मभूतं काष्ठा यथा आनन्दकरं मनस्तः ॥१८॥

ततः	फिर	**यथा**	जैसे
जगत् मंगलं	विश्वके मंगलकारी,	**आनन्दकरं**	आनन्ददायी
आत्मभूतं	आत्म स्वरूप	**काष्ठा**	पराकाष्ठा हो
सर्वात्मकं	सर्वात्मा	**समाहितं**	एकाग्र
अच्युत अंशं	श्रीअच्युतके तेजको	**मनस्तः**	मनसे
शूरसुतेन	शूरनन्दन वसुदेवजी द्वारा	**देवी दधार**	देवकीजीने धारण किया ॥१८॥

सा देवकी सर्वजगन्निवास-
निवासभूता नितरां न रेजे ।
भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा
सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥१९॥

सा देवकी सर्वजगत् निवास निवासभूता नितरां न रेजे भोजेन्द्र गेहे अग्निशिखा इव रुद्धा सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥१९॥

सर्वजगत	सम्पूर्ण जगत्के
निवास	आश्रय भगवानकी
निवासभूता	आश्रय होकर भी
अग्नि-	(दीपादि) अग्नि
शिखा इव	शिखाके समान
यथा	अथवा जैसे
ज्ञानखले	ज्ञान वञ्चकमें
सती सरस्वती	सद्विद्या हो
भोजेन्द्र गेहे	कंसके कारागारमें
रुद्धा सा देवकी	बन्दी वे देवकी
नितरां रेजे	सर्वथा सुशोभित
न	नहीं हुईं ॥१९॥

तां वीक्ष्य कंसः प्रभयाजितान्तरां
विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मिताम् ।
आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां
ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी ॥२०॥

तां वीक्ष्य कंसः प्रभया अजित अन्तरां विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मितां आह एष मे प्राणहरः हरिः गुहां ध्रुवं श्रितः यत् न पुरा इयं ईदृशी ॥२०॥

अजित	भगवान अजितको
अन्तरां	भीतर रखनेवाली,
प्रभया	अपनी कान्तिसे
भवनं	भवनको
विरोचयन्तीं	आलोकित करती
शुचिस्मितां	पवित्र मुसकानवाली
तां वीक्ष्य	उनको देखकर
कंसः आह	कंस बोला
मे प्राणहरः	'मेरा प्राण-हरण करनेवाला
ध्रुवं	निश्चय इसकी
गुहां श्रितः	गर्भ गुफामें आ गया
यत् पुरा	क्योंकि पहिले
इयं ईदृशी न	यह ऐसी नहीं थी ॥२०॥

किमद्य तस्मिन् करणीयमाशु मे
यदर्थतन्त्रो न विहन्ति विक्रमम् ।
स्त्रियाः स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयं
यशः श्रियं हन्त्यनुकालमायुः ॥२१॥

किं अद्य तस्मिन् करणीयं आशु मे यत् अर्थ तन्त्रः न विहन्ति विक्रमं स्त्रियाः स्वसुः गुरुमत्या वधः अयं यशः श्रियं हन्ति अनुकालं आयुः ॥२१॥

तस्मिन्	उस (हरि) के विषयमें	न विहन्ति	नष्ट न होना पड़े,
आशु अद्य	शीघ्र आज	स्त्रियाः स्वसुः	(इस) स्त्री, बहिन,
मे किं	मेरा क्या	गुरुमत्या	गर्भवतीका
करणीयं	कर्तव्य है ?	अयं वधः	यह मारा जाना तो
यत् मे	जिससे मेरा	यशः श्रियं	यश, लक्ष्मी तथा
अर्थ तन्त्रः	प्रयोजन पूरा हो और	अनुकालं	तत्काल
विक्रमं	पराक्रमको	आयुं हन्ति	आयुका नाश कर देता है ॥२१॥

स एष जीवन् खलु सम्परेतो
वर्तेत योऽत्यन्तनृशंसितेन ।
देहे मृते तं मनुजाः शपन्ति
गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम् ॥२२॥

स एष जीवन् खलु सम्परेतः वर्तेत यः अत्यन्त नृशंसितेन देहे मृते तं मनुजाः शपन्ति गन्ता तमः अन्धं तनुमानिनः ध्रुवम् ॥२२॥

स एष	वह यह	मृते	मर जानेपर
जीवन्	पुरुष तो जीते हुए	मनुजाः	मनुष्य
खलु	अरे मरे हुएके	तं शपन्ति	उसे गाली देते हैं और
सम्परेतः	समान है		
यः अत्यन्त	जो अत्यन्त	ध्रुवं	निश्चय
नृशंसितेन	क्रूरतापूर्वक	तनुमानिनः	देहाभिमानियोंके
वर्तेत	व्यवहार करता है,	अन्धं तमः	घोर तमोमय लोक
देहे	उसके शरीरके	गन्ता	जाता है ॥२२॥

इति घोरतमाद् भावात् संनिवृत्तः स्वयं प्रभुः ।
आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबन्धकृत् ॥२३॥

इति घोरतमात् भावात् सन्निवृत्तः स्वयं प्रभुः आस्ते प्रतीक्षन् तत् जन्म हरेः वैर अनुबन्धकृत् ॥२३॥

इति	ऐसा सोचकर
प्रभुः	समर्थ होनेपर भी
घोरतमात्	(वधरूप) अत्यन्त भयंकर
भावात्	विचारसे
स्वयं	स्वयं
सन्निवृत्तः	निवृत्त हो गया,
हरेः	श्रीहरिसे
वैर	बैर
अनुबन्धकृत्	बांधकर
तत् जन्म	उनके जन्मकी
प्रतीक्षन् आस्ते	प्रतीक्षा करने लगा ॥२३॥

आसीनः संविशंस्तिष्ठन् भुञ्जानः पर्यटन् महीम् ।
चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत् तन्मयं जगत् ॥२४॥

आसीनः संविशन् तिष्ठन् भुञ्जानः पर्यटन् महीं चिन्तयानः हृषीकेशं अपश्यत् तत् मयं जगत् ॥२४॥

असीनः	बैठे,
संविशन्	उठते,
तिष्ठन्	खड़े,
भुञ्जानः	भोजन करते,
महीं पर्यटन्	पृथ्वीपर घूमते,
हृषीकेशं	भगवान् हृषीकेशका
चिन्तयानः	चिन्तन करते हुए
जगत्	संसारको
तत् मयं	उनका रूप
अपश्यत्	देखने लगा ॥२४॥

ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः ।
देवैः सानुचरैः साकं गोभिर्वृषणमैडयन् ॥२५॥

ब्रह्मा भवः च तत्र एत्य मुनिभिः नारद आदिभिः देवैः स अनुचरैः साकं गीः भिः वृषणं ऐडयन् ॥२५॥

ब्रह्मा च भवः	ब्रह्मा और शिव
नारद	नारद
आदिभिः	आदि
मुनिभिः	मुनियों तथा
स अनुचरैः	अपने अनुचरोंके सहित
देवैः साकं	देवताओंके साथ
तत्र एत्य	वहां आकर
गीः भिः	वाणी (स्तुति) द्वारा
वृषणं	वरदाता प्रभुकी
ऐडयन्	स्तुति करने लगे ॥२५॥

ब्रह्मोवाच*

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥२६॥

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये सत्यस्य सत्यं ऋत सत्यनेत्रं सत्य आत्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥२६॥

सत्यव्रतं	सत्य संकल्प,	**ऋत**	ऋत (मधुर वाणी)
सत्यपरं	सत्यसे मिलनेवाले		तथा
त्रिसत्यं	तीनों कालोंमें सत्य,	**सत्यनेत्रं**	सत्य (समदर्शन)
सत्यस्य योनिं	सत्य (दीखनेवाले		रूपी नेत्रवाले
	जगत) के कारण,	**च सत्य**	तथा सत्य
सत्ये निहितं	सत्यमें ही स्थिति	**आत्मकं**	स्वरूप
सत्यस्य	सत्य (जगत) के भी	**त्वां शरणं**	आप शरण दाताकी
सत्यं	परम सत्य,	**प्रपन्नाः**	हम शरण हैं ॥२६॥

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूल-
श्चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा ।
सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो
दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥२७॥

एक अयनः असौ द्विफलः त्रिमूलः चतूरसः पञ्चविधः षट् आत्मा सप्त त्वक् अष्टविटपः नव अक्षः दशच्छदी द्विखगः हि आदिवृक्षः ॥२७॥

असौ	यह (विश्वरूप)	**एक**	एक (प्रकृति) के
आदिवृक्ष	सनातन वृक्ष	**अयनः**	आश्रयवाला,

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

द्विफलः	दो (सुख-दुःख) फल वाला,
त्रिमूलः	तीन (गुणों रूप) तनोंका,
चतूरसः	चार (पुरुषार्थ रूप) रसवाला,
पञ्चविधः	पांच साधन (ज्ञानेन्द्रियों) से युक्त
षट् आत्मा	छः स्वभाव (शोक-मोह, जरा-मृत्यु, भूख-प्यास) वाला,
सप्तत्वक्	सात (धातु* रूप) त्वचाका
अष्टविटपः	आठ शाखाओं (पांच कर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार) का,
नव अक्षः	नव (इन्द्रिय) छिद्र वाला
दशच्छदी	दस पत्ते (प्राण) वाला॰
हि	क्योंकि (इसपर)
द्विखगः	दो (जीव-परमात्मा) पक्षी रहते हैं ॥२७॥

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूति-
स्त्वं संनिधानं त्वमनुग्रहश्च ।
त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां
पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥२८॥

त्वं एक एव अस्य सतः प्रसूतिः त्वं सन्निधानं त्वं अनुग्रहः च त्वत् मायया संवृत चेतसः त्वां पश्यन्ति नाना न विपश्चितः ये ॥२८॥

अस्य सतः	इस सत्य दीखनेवाले (जगत) के
एक एव त्वं	अकेले आप ही
प्रसूतिः	उत्पत्ति स्थान हैं.
त्वं	आप ही
सन्निधानं	(इसके) अधिष्ठान हैं
च त्वं	तथा आप ही
अनुग्रहः	पालन करनेवाले हैं,
त्वत् मायया	आपकी मायासे
संवृत चेतसः	आच्छन्न चित्त लोग
त्वां नाना	आपको अनेक रूप
पश्यन्ति	देखते हैं
ये विपश्चितः	जो तत्वज्ञानी है
न	वे (अनेक रस न हीं देखते) ॥२८॥

---

* १-चर्म २-रक्त ३-माँस ४-मेद ५-मज्जा ६-अस्थि ७-वीर्य

॰ १-प्राण २-अपान ३-उदान ४-व्यान ५-समान ६-नाग ७-कूर्म ८-कृकल ९-देवदत्त १०-धनञ्जय । इनमें पिछले ५ योगके सहायक हैं ।

बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा
क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ।
सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि
सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥२९॥

बिभर्षि रूपाणि अवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चर अचरस्य सत्त्व उपपन्नानि सुख आवहानि सतां अभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥२९॥

अवबोध आत्मा	ज्ञान स्वरूप (आप)	**खलानां**	दुष्टोंके लिए
चर अचरस्य	चराचर	**अभद्राणि**	अमंगल करनेवाले
लोकस्य	जगतके	**सत्त्व उपपन्नानि**	सत्त्वमय
क्षेमाय	कल्याणके लिए	**रूपाणि**	रूपोंको
सतां	सत् पुरुषोंको	**मुहुः**	बार-बार
सुख	सुख	**बिभर्षि**	धारण करते हैं
आवहानि	देनेवाले तथा		॥२९॥

त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि
समाधिनाऽऽवेशितचेतसैके ।
त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन
कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥३०॥

त्वयि अम्बुजाक्ष अखिल सत्त्वधाम्नि समाधिना आवेशित चेतसि एके त्वत् पादपोतेन महत् कृतेन कुर्वन्ति गोवत्स पदं भव अब्धिम् ॥३०॥

अम्बुजाक्ष	कमल-नयन !	**आवेशित**	आविष्ट करके
अखिल	अखिल	**महत्**	महापुरुषों द्वारा
सत्त्वधाम्नि	सत्त्वस्वरूप	**कृतेन**	बनाये
त्वयि एके	आपमें कोई-कोई	**त्वत्**	आपके
समाधिना	एकाग्रतामें	**पादपोतेन**	चरण रूपी जहाजसे
चेतसि	चित्तको	**भव अब्धिं**	संसार-सागरको

गोवत्स पदं	बछड़ेके खुरसे बने गड्ढेके समान	**कुर्वन्ति**	(सरलतासे पार होनेवाला) बना देते हैं ॥३०॥

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्
भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते
निधाय यातास्सदनुग्रहो भवान् ॥३१॥

स्वयं सम उत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन् भव अर्णवं भीम अदभ्र सौहृदाः भवत् पद अम्भोरुह नावं अत्र ते निधाय याताः सत् अनुग्रहः भवान् ॥३१॥

द्युमन्	ज्योतिर्मय प्रभो !	**अर्णवं**	सागरको
भवान्	आप	**स्वयं सम**	स्वयं भली प्रकार
सत्	सत्पुरुषोंपर	**उत्तीर्य**	पार करके
अनुग्रहः	कृपा करनेवाले हैं,	**भवत्**	आपकी
अदभ्र	निर्मल	**पद अम्भोरुह**	चरण-कमल रूपी
सौहृदाः	सौहार्द्रवाले (आपके भक्त)	**नावं अत्र**	नौकाको यहीं (संसार) में
सुदुस्तरं	अत्यन्त दुष्पार	**निधाय याताः**	रखकर गये हैं ॥३१॥
भीमं भव	भयानक संसार-		

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥३२॥

ये अन्ये अरविन्दाक्ष विमुक्त मानिनः त्वयि अस्त भावात् अविशुद्ध बुद्धयः आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्ति अधः न आदृत युष्मत् अङ्घ्रयः ॥३२॥

अरविन्दाक्ष	कमल-लोचन !	**अङ्घ्रयः**	श्रीचरणोंका
विमुक्त	अपनेको मुक्त	**आहृत न**	आदर न करनेके
मानिनः	माननेवाले		कारण
ये अन्ये	जो दूसरे	**कृच्छ्रेण**	बड़े कष्टसे
त्वयि	आपमें	**परं पदं**	परं पदपर
अस्त भावात्	भक्ति न करनेसे	**आरुह्य**	आरोहण करके भी
अविशुद्ध	अशुद्ध		(उससे)
बुद्धयः	बुद्धि वाले हैं	**अधः पतन्ति**	नीचे गिर जाते हैं
युष्मत्	आपके		॥३२॥

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्
भ्रश्यन्ति मार्गात्वयि बद्धसौहृदाः ।
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया
विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥३३॥

तथा न ते माधव तावकाः क्वचित् भ्रश्यन्ति मार्गात् त्वयि बद्ध सौहृदाः त्वया अभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायक अनीकप मूर्धसु प्रभो ॥३३॥

माधव प्रभो	प्रभु माधव !	**ते त्वया**	वे तुम्हारे द्वारा
तथा	उस प्रकार	**अभिगुप्ता**	रक्षित होकर
तावकाः	तुम्हारे भक्त	**विनायक**	विघ्न समूहोंके
मार्गात्	मार्गसे	**अनीकप**	सेनापतियोंके
क्वचित्	कभी	**मूर्धसु**	मस्तकपर
न भ्रश्यन्ति	नहीं भ्रष्ट होते,	**निर्भया**	भयरहित
त्वयि बद्ध	तुममें बँधे	**विचरन्ति**	विचरण करते हैं
सौहृदाः	सौहार्द्र वाले		॥३३॥

सत्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ
शरीरिणां श्रेयउपायनं वपुः ।

वेदक्रियायोगतपः समाधिभि-
स्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥३४॥

सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः वेद क्रिया योग तपः समाधिभिः तव अर्हणं येन जनः समीहते ॥३४॥

भवान्	आप (संसारकी)	**येन जनः**	जिसके द्वारा भक्तजन
स्थितौ	स्थितिके लिये	**वेद**	वैदिक (यज्ञादि)
विशुद्धं सत्त्वं	विशुद्ध सत्त्वगुणसे	**क्रिया**	कर्म,
शरीरिणां	शरीरधारियोंके लिए	**योग तपः**	योग, तपस्या,
श्रेय	कल्याणका	**समाधिभिः**	तथा समाधि द्वारा
उपायनं	उपहार देनेवाले	**तव अर्हणं**	आपकी पूजा
वपुः श्रयते	शरीर धारण करते हैं,	**समीहते**	भजी-भांति करते हैं ॥३४॥

सत्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्
विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् ।
गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्
प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥३५॥

सत्त्वं न चेत् धातः इदं निजं भदेत् विज्ञानं अज्ञान भिदा अपमार्जनं गुण प्रकाशैः अनुमीयते भवान् प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥३५॥

धातः	विधाता !	**विज्ञानं**	(आपका) अपरोक्ष ज्ञान
चेत् इदं	यदि यह		
निजं	आपका	**न भवेत्**	नहीं होगा
सत्त्वं	सत्त्वमय रस न हो तो	**येन च**	जिसके द्वारा
		वा	अथवा
अज्ञान भिदा	अज्ञान जन्य भेदको	**यस्य गुणः**	जिसके ये गुण हैं
अपमार्जनं	नष्ट करनेवाला	**गुण प्रकाशैः**	इस प्रकार

	गुणोंके द्वारा	अनुमीयते	अनुमान (परोक्ष
भवान्	आपका		ज्ञान) ही होता है ॥३५॥

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभि-
र्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ।
मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो
देव क्रियायां प्रतियन्त्यथापि हि ॥३६॥

न नाम रूपे गुण जन्म कर्मभिः निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः मनः वचः भ्यां अनुमेय वर्त्मनः देव क्रियायां प्रतियन्ति अथ अपि हि ॥३६॥

नाम रूपे	नाम, रूप,	**वचः भ्यां**	वेदवाणीसे
गुण जन्म	गुण, जन्म	**अनुमेय**	अनुमान द्वारा
कर्मभिः	कर्मोंके द्वारा	**वर्त्मनः**	जानेवाले
तव	आपका	**अथ अपि**	फिर भी
निरूपितव्ये न	निरूपण नहीं हो सकता	**देव**	हे देव, भक्त आदि
		क्रियायां	क्रियासे
हि तस्य	क्योंकि आप उसके	**प्रतियन्ति**	(भक्तजन) प्रत्यक्ष
साक्षिणः	साक्षी (द्रष्टा) हैं।		कर लेते हैं ॥३६॥
मनः	मन तथा		

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन्
नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयो-
राविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥३७॥

शृण्वन् गुणान् संस्मरयन् च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मंगलानि ते क्रियासु यः त्वत् चरण अरविन्दयोः आविष्ट चेता न भवाय कल्पते ॥३७॥

क्रियासु	(उस भक्त आदि) क्रियामें	**च चिन्तयन्**	तथा चिन्तन करते
ते मंगलानि	आपके मंगलमय	**त्वत्**	आपके
नामानि	आपके नामों	**चरण**	चरण-
च रूपाणि	तथा रूपोंको	**अरविन्दयोः**	कमलोंमें
शृण्वन् गृणन्	सुनते, कहते,	**यः आविष्ट**	जो आवेशित
संस्मरयन्	बार-बार स्मरण करते	**चेता**	चित्त हैं वे
		भवाय	संसारमें
		न कल्पते	नहीं आते ॥३७॥

दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो
भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः ।
दिष्ट्यांकितां त्वत्पदकैः सुशोभनै-
र्द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकम्पिताम् ॥३८॥

दिष्ट्या हरे अस्या भवतः पदो भुवः भारः अपनीतः तव जन्मना ईशितुः दिष्ट्या अङ्कितां त्वत् पदकैः सुशोभनैः द्रक्ष्याम गां द्यां च तव अनुकम्पिताम् ॥३८॥

दिष्ट्या तव	सौभाग्यवश आप	**पदकैः**	नन्हें चरणोंसे
ईशितुः	सर्वेश्वरके	**अङ्कितां गां**	चिह्नित पृथ्वीको
जन्मना	अवतारसे	**च तव**	तथा आपके
भवतः पदो	आपकी चरणरूपा	**अनुकम्पितां**	अनुग्रह भाजन बने
अस्या भुवः	इस पृथ्वीका	**द्यां च**	स्वर्गको भी
भारः अपनीतः	भार दूर हो गया,	**दिष्ट्या**	सौभाग्यवश
त्वत् सुशोभनैः	आपके अत्यन्त सुन्दर	**द्रक्ष्याम**	हम देखेंगे ॥३८॥

न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं
विना विनोदं बत तर्कयामहे ।
भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया
कृता यतस्त्वव्ययभयाश्रयात्मनि ॥३९॥

न ते अभवस्य ईश भवस्य कारणं विना विनोदं बत यर्कयामहे भवः निरोधः स्थितिः अपि अविद्यया कृता यतः त्वयि अभय आश्रय आत्मनि ॥३९॥

यतः त्वयि	क्योंकि आप
अभय आश्रय	अभय स्वरूप
आत्मनि	आत्मामें
भवः	(संसारकी) उत्पत्ति,
निरोधः	प्रलय
स्थितिः अपि	और स्थिति भी
अविद्यया कृता	अविद्या निर्मित है
अभवस्य	(अतः) मोक्षके
ईश	स्वामी !
विनोदं विना	विनोदको छोड़कर
ते भवस्य	आपके अवतारका
कारणं	कारण
बत न	अहो कुछ नहीं
तर्कयामहे	हम सोच पाते

॥३९॥

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस-
राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ।
त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेश
भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥४०॥

मत्स्य अश्व कच्छप वराह नृसिंह हंस राजन्य विप्र विबुधेषु कृत अवतारः त्वं पासि नः त्रिभुवनं च यथा अधुना ईश भारं भुवः हर यदु उत्तम वन्दनं ते ॥४०॥

मत्स्य अश्व	मत्स्य, हयग्रीव,
कच्छप वराह	कूर्म, वाराह,
नृसिंह हंस	नृसिंह, हंस,
राजन्य	महाराज श्रीराम,
विप्र	परशुराम,
विबुधेषु	और देवताओंमें (वामन)
अवतारः कृत	अवतार लेकर
यथा नः	जैसे हमारी
च त्रिभुवनं	तथा तीनों लोकोंकी
पासि	रक्षा करते हैं
ईश अधुना	स्वामी इस समय भी
भुवः	पृथ्वीका
भारं हर	भारदूर कीजिये
यदु उत्तम	यदु श्रेष्ठ !
ते	हम आपकी
वन्दनं	वन्दना करते हैं

॥४०॥

दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमा-
नंशेन साक्षाद् भगवान् भवाय नः ।
मा भूद् भयं भोजपतेर्मुमूर्षो-
र्गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥४१॥

दिष्ट्या अम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमान् अंशेन साक्षात् भगवान् भवाय नः मा भूत् भयं भोजपतेः मुमूर्षोः गोप्ता यदूनां भविता तव आत्मजः ॥४१॥

अम्ब	माँ !	**भगवान्**	भगवान हैं
दिष्ट्या	सौभाग्य वश	**मुमूर्षोः**	मरने ही वाले
ते	आपकी	**भोजपतेः**	भोजराज कंससे
कुक्षिगतः	कोखमें आया	**भयं**	(आपको) भय
नः	हमारे	**मा भूत्**	मत हो,
भवाय	अभ्युदयके लिए	**तव**	आपका
परः	परम	**आत्मजः**	पुत्र
पुमान्	पुरुष	**यदूनां**	यदुवंशियोंका
अंशेन	अंशों सहित	**गोप्ता**	रक्षक होगा ॥४१॥
साक्षात्	साक्षात्		

श्रीशुक उवाच

इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा ।
ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥४२॥

इति अभिष्टूय पुरुषं यत् रूपं अनिदं यथा ब्रह्मा ईशानौ पुरः आधाय देवाः प्रतिययुः दिवम् ॥४२॥

यत्	जिसका	**अनिदं यथा**	इस दृश्य जगसे
रूपं	रूप		भिन्न जैसा है

पुरुषं	उस परम पुरुषकी	**पुरः**	आगे
इति	इस प्रकार	**आधाय**	करके
अभिष्टूय	स्तुति करके	**देवाः**	देवता
ब्रह्मा	ब्रह्मा और	**दिवं**	स्वर्ग
ईशानौ	शिवको	**प्रतिययुः**	को चले गये ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
गर्भगतविष्णोर्ब्रह्मादिकृतस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः ।
यर्ह्यजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम् ॥१॥

अथ सर्वगुण उपेतः कालः परमशोभनः यर्हि अजन जन्म अर्क्षं शान्त अर्क्ष ग्रह तारकम् ॥१॥

अथ	तदनन्तर	**शान्त अर्क्ष**	शान्त नक्षत्र,
यर्हि	जब	**ग्रह तारकं**	ग्रह, तारोंवाला
अजन	अजन (ब्रह्मा) का	**परमशोभनः**	अत्यन्त सुहावना
जन्म अर्क्षं	जन्म नक्षत्र (रोहिणी) आया	**सर्वगुण उपेतः**	सर्वगुण सम्पन्न
		कालः	समय हो गया ॥१॥

दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम् ।
मही मंगलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥२॥

दिशः प्रसेदुः गगनं निर्मल उडुगण उदयं मही मंगल भूयिष्ठ पुर ग्राम व्रज आकरा ॥२॥

दिशः	दिशाएँ	**पुर ग्राम**	नगर, ग्राम,
प्रसेदुः	निर्मल हो गयीं,	**व्रज आकरा**	गोष्ठों और खदानोंमें
निर्मल गगनं	स्वच्छ आकाशमें	**मंगल**	बहुत मङ्गल
उडुगण उदयं	तारा गुण उदय हो, गये,	**भूयिष्ठ**	होने लगे ॥२॥
मही	पृथ्वीपर		

नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः ।
द्विजालिकुलसंनादस्तबका वनराजयः ॥३॥

नद्यः प्रसन्न सलिला ह्रदा जलरुह श्रियः द्विज अलिकुल संनाद स्तबका वनराजयः ॥३॥

नद्यः	नदियां	**द्विज**	पक्षियों एवं
प्रसन्न सलिला	निर्मल जलवाली,	**अलिकुल**	भ्रमरोंकी
ह्रवा	सरोवर	**संनाद**	गुञ्जार युक्त
जलरुह	कमलोंसे शोभा	**स्तबका**	तथा पुष्प गुच्छ युक्त
श्रियः	सम्पन्न,		हो गये ॥३॥*
वनराजयः	वनोंकी श्रेणियां		

ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः ।
अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत ॥४॥

ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः अग्नयः च द्विजातीनां शान्ताः तत्र समिन्धत ॥४॥

पुण्यगन्धवहः	सुगन्धवाहक	**शान्ताः**	शान्त हो गयी
शुचिः	पवित्र	**अग्नयः**	(सञ्चित) अग्नियां
सुखस्पर्शः	सुखद स्पर्शवाला	**तत्र**	उस समय
वायुः ववौ	वायु चलने लगा	**समिन्धत**	स्वयं जलने लगीं
च द्विजातीनां	तथा द्विजोंकी		॥४॥

मनांस्यासन् प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् ।
जायमानेऽजने तस्मिन् नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ॥५॥

मनांसि आसन् प्रसन्नानि साधूनां असुर द्रुहां जायमाने अजने तस्मिन् नेदुः दुन्दुभयः दिवि ॥५॥

असुर	असुर जिनसे	**साधूनां**	उन सत्पुरुषोंके
द्रुहां	शत्रुता करते हैं	**मनांसि**	मन

---

* यह सब भगवद वतारका दिव्य-प्रभाव वर्णन है, अन्यथा भाद्रपदमें अर्ध रात्रिको इसमें से कुछ नहीं रहता नदियोंमें बाढ़ होती है ।

प्रसन्नानि	प्रसन्न	**दिवि**	आकाश
आसन्	हो गये,	**दुन्दुभयः**	दुंन्दुभियां
तस्मिन अजने	उन अजन्माके	**नेदुः**	बजने लगीं ॥५॥
जायमाने	जन्म लेते समय		

जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ।
विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा ॥६॥

जगुः किन्नर गन्धर्वाः तुष्टुवुः सिद्ध चारणाः विद्याधर्यः च ननृतुः अप्सरोभिः समं तदा ॥६॥

तदा	उस समय	**तुष्टवुः**	स्तुति करने लगे,
किन्नर	किन्नर	**च विद्याधर्यः**	और विद्याधरियां
गन्धर्वाः	और गन्धर्व	**अप्सरोभिः**	अप्सराओंके
जगुः	गाने लगे,	**समं**	साथ
सिद्ध	सिद्ध तथा	**ननृतुः**	नाचने लगीं ॥६॥
चारणाः	चारण लोग		

मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः ।
मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ॥७॥

मुमुचुः मुनयः देवाः सुमनांसि मुद अन्विताः मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुः अनुसागरम् ॥७॥

मुद अन्विताः	प्रसन्न होकर	**अनुसागरं**	समुद्रके समीप
मुनयः देवाः	मुनि और देवगण	**जलधरा**	मेघ
सुमनांसि	पुष्प	**मन्दं मन्दं**	धीरे-धीरे
मुमुचुः	वर्षा करने लगे,	**जगर्जुः**	गरजने लगे ॥७॥

निशीथे तमउद्भूते जायमाने जनार्दने ।
देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ।
आविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ॥८॥

निशीथे तमउद्भूते जायमाने जनार्दने देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्व गुहाशयः आविः आसीत् यथा प्राच्यां दिशि इन्दुः इव पुष्कलः ॥८॥

जनार्दने	उन जनार्दनेके	**विष्णुः**	श्रीहरि
जायमाने	उत्पन्न होते समय	**यथा**	जैसे
तमउद्भूते	अन्धकार छायी	**प्राच्यां दिशि**	पूर्व दिशामें
निशीथे	अर्ध रात्रिमें	**पुष्कलः इन्दुः**	पूर्ण चन्द्रके
देवरूपिण्यां	देवता स्वरूपिणी	**इव**	समान
देवक्यां	देवकीसे	**आविः**	प्रकट
सर्व	सर्व	**आसीत्**	हो गये ॥८॥
गुहाशयः	अन्तर्यामी		

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं
चतुर्भुजं शङ्खगदायुदायुधम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं
पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥९॥

तं अद्भुतं बालकं अम्बुज ईक्षणं चतुर्भुजं शंख गदा अरि, उद्, आयुधं श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभि कौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोद सौभगम् ॥९॥

अम्बुज	कमलके समान	**गलशोभि**	कण्ठमें सुशोभित
ईक्षणं	नेत्रवाले,	**कौस्तुभं**	कौस्तुभमणिधारी,
चतुर्भुजं	चतुर्भुज	**पीताम्बरं**	पीताम्बर पहिने
शंख गदा	शंख, गदा,	**सान्द्रपयोद**	सजल जलद
अरि उद्	चक्र, जलज (कमल)	**सौभगं**	सुन्दर,
आयुधं	शस्त्रवाले,	**तं अद्भुतं**	उस अद्भुत
श्रीवत्सलक्ष्मं	श्रीवत्स चिह्न युक्त,	**बालकं**	बालकको ॥९॥

महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डल-
त्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् ।

उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभि-
र्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥१०॥

महा अर्हवैदूर्य किरीट कुण्डल त्विषा परिष्वक्त सहस्रकुन्तलं उद्दाम काञ्चि अंगद कंकण आदिभिः विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥१०॥

महा	बहु मूल्य	**उद्दाम काञ्ची**	अत्यन्त बहुमूल्य करधनी,
अर्हवैदूर्यं	वैदूर्यं मणिके	**अंगद**	बाजूबन्द,
किरीट	मुकुद और	**कङ्कण**	कंकण
कुण्डल	कुण्डलोंकी	**आदिभिः**	आदिसे
त्विषा	कान्तिसे	**विरोचमानं**	शोभायमान होते
सहस्रकुन्तलं	सहस्रों केश राशि	**वसुदेव**	वसुदेवजीने
परिष्वक्त	जगमगाती हुई	**ऐक्षत**	देखा ॥१०॥

स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं
सुतं विलोक्यानकदुन्दुभिस्तदा ।
कृष्णावतारोत्सवसम्भ्रमोऽस्पृशन्-
मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥११॥

स विस्मय उत्फुल्ल विलोचनः हरिं सुतं विलोक्य आनकदुन्दुभिः तदा कृष्ण अवतार उत्सव सम्भ्रमः अस्पृशन् मुदा द्विजेभ्यः अयुतं आप्लुतः गवाम् ॥११॥

तदा स	उस समय उन	**विलोचनः**	नेत्र
आनकदुन्दुभिः	वसुदेवजीने	**मुदा आप्लुतः**	हर्षमें भरकर
हरिं	श्रीहरिको अपना	**कृष्ण**	श्रीकृष्णके
सुतं विलोक्य	पुत्र देखकर	**अवतार**	अवतार
विस्मय	आश्चर्यसे	**उत्सव**	महोत्सव मनानेकी
उत्फुल्ल	खिले	**सम्भ्रमः**	उतावलीमें

द्विजेभ्यः	ब्राह्मणोंको	गवां	गोदानका
अयुतं	दस सहस्र	अस्पृशन्	संकल्प किया ॥११॥

अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं
परं नतांगः कृतधीः कृताञ्जलिः ।
स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं
विरोचयन्तं गतभीः प्रभाववित् ॥१२॥

अथ एनं अस्तौत् अवधार्य पूरुषं परं नत अंगः कृतधीः कृत अञ्जलिः स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं विरोचयन्तं गतभीः प्रभाववित् ॥१२॥

भारत	परीक्षित !	प्रभाववित्	(उनका) भाव जाननेवाले होनेसे
अथ	फिर	गतभीः	भय रहित हुए
स्वरोचिष	कान्तिसे अपनी	कृतधीः	बुद्धिमान (वसुदेवजी)
सूतिकागृहं	उस प्रसूति कक्षको	नत अंगः	नतमस्तक
विरोचयन्तं	प्रकाशित करते हुए	कृत अञ्जलिः	हाथ जोड़कर
एनं परं	इनको परम	अस्तौत्	स्तुति करने लगे ॥१२॥
पूरुषं	पुरुष		
अवधार्य	समझकर		

वसुदेव उवाच

विदितोऽसि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः ।
केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥१३॥

विदितः असि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः केवल अनुभव आनन्द स्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥१३॥

विदितः	(आप) जान लिए गये कि	आनन्द	आनन्द
		स्वरूपः	स्वरूप
प्रकृतेः परः	प्रकृतसे परे	साक्षात्	साक्षात्
सर्वबुद्धिदृक्	सबकी बुद्धियोंके साक्षी	पुरुषः	परम पुरुष
		भवान् असि	आप हैं ॥१३॥
केवल अनुभव	केवल ज्ञान,		

स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम् ।
तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥१४॥

स एव स्वप्रकृति इदं सृष्ट्वा अग्रे त्रिगुणात्मकं तत् अनु त्वं हि अप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥१४॥

स एव त्वं	वही आप	**हि तत् अनु**	क्योंकि उसमें पीछे
अग्रे	सर्वप्रथम	**अप्रविष्टः**	प्रवेश न करनेपर भी
स्वप्रकृति	अपनी माया द्वारा	**प्रविष्ट**	प्रवेश किये की
त्रिगुणात्मकं	त्रिगुणमय	**इव**	भांति
इदं	इस संसारको	**भाव्यसे**	प्रतीत होते हैं ॥१४
अग्रे सृष्ट्वा	पहिले सृष्टि करके		

यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह ।
नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयन्ति हि ॥१५॥

यथा इमे अविकृता भावाः तथा ते विकृतैः सह नाना वीर्याः पृथक् भूता विराजं जनयन्ति हि ॥१५॥

यथा इमे	जैसे ये	**सह**	साथ मिलकर
अविकृता	विकार हीन (महत्त्वादि)	**विकृतैः**	विकारीसे होकर
		विराजं	विराट्को
भावाः	भाव	**जनयन्ति**	उत्पन्न करते हैं
नाना	अनेक प्रकारकी	**हि ते तथा**	क्योंकि आपका स्वरूप भी ऐसा ही (निर्विकार रहते सर्व कारण) है ॥१५॥
वीर्याः	शक्तिवाले		
पृथक् भूता	अलग रहते हुए भी		

सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्तेऽनुगता इव ।
प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह सम्भवः ॥१६॥

सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्ते अनुगता इव प्राक् एव विद्यमानत्वात् न तेषां इह सम्भवः ॥१६॥

सन्निपत्य	(वे महत्तत्त्वादि) परस्पर मिलकर	**प्राक् इव**	पहिलेसे ही
समुत्पाद्य	(इस विराट्को) उत्पन्न करके	**विद्यमानत्वात्**	विद्यमान रहनेसे
अनुगता	इसमें पीछे आयेकी	**तेषां इह**	उनकी इस (विराट्) में
इव	भांति	**सम्भवः न**	उत्पत्ति नहीं होती ॥१६॥
दृश्यन्ते	दीखते हैं; किन्तु		

एवं भवान् बुद्ध्यनुमेयलक्षणै-
र्ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः ।
अनावृतत्वाद् बहिरन्तरं न ते
सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥१७॥

एवं भवान् बुद्धि अनुमेय लक्षणैः ग्राह्यैः गुणैः सत् अपि तत् गुणग्रहः अनावृतत्वात् बहिः अन्तरं न ते सर्वस्य सर्व आत्मन आत्मवस्तुनः ॥१७॥

बुद्धि	बुद्धिसे	**एवं**	इस प्रकार
अनुमेय	अनुमानित होनेवाले	**भवान्**	आप (गृहीत नहीं होते)
लक्षणैः	लक्षण युक्त		
गुणैः ग्राह्यैः	इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये जानेवाले गुणों	**सर्व आत्मन**	सर्वात्मा
		सर्वस्य	सबके
सत्	(पदार्थों) में होते हुए	**आत्मवस्तुनः**	आत्मस्वरूप
अपि	भी	**ते**	आपमें
तत्	उन	**अनावृतत्वात्**	आवरण हीन होनेसे
गुणग्रहः	गुणोंके ग्रहणसे	**बहिः अन्तरं न**	बाहर-भीतरका भेद नहीं है ॥१७॥

य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्नितिं
व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः ।
विनानुवादं न च तन्मनीषितं
सम्यग् यतस्यक्तमुपाददत् पुमान् ॥१८॥

य आत्मनः दृश्य गुणेषु सत् इति व्यवस्यते स्व व्यतिरेकतः अबुधः अनुवादं न च तत् मनीषितं सम्यक् यतः त्यक्तं उप आददत् पुमान् ॥०८॥

यः पुमान्	जो पुरुष	**तत्**	वह
दृश्य	दीखनेवाले	**मनीषितं**	विचारपूर्वक
गुणेषु	गुणों (देहादि) में	**सम्यक् त्यक्तं**	भली प्रकार छोड़े (बाध हुए)
आत्मनः	अपनेसे	**यतः**	क्योंकि (सत्य) को
स्व	स्वयंको	**उप आददत्**	ग्रहण कर रहा है
व्यतिरेकतः	पृथक मानकर	**न च**	वह (बुद्धिमान) नह ही है ॥१८॥
सत् इति	'ये सत्य हैं' ऐसा		
व्यवस्यते	समझता है		
अबुधः	वह अज्ञानी है,		
अनुवादं	वाग्विलासको		

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान् विभो
वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात् ।
त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते
त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥१९॥

त्वत्तः अस्य जन्मस्थिति संयमान् विभो वदन्ति अनीहात् अगुणात् अविक्रियात् त्वयि ईश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते त्वत् आश्रयत्वात् उपचर्यते गुणैः ॥१९॥

विभो	प्रभो !	**वदन्ति**	(शास्त्र) बतलाते हैं,
अनीहात्	चेष्टाहीन	**त्वयि ईश्वरे**	आप सर्वसमर्थ
अगुणात्	निर्गुण,	**ब्रह्मणि**	परमब्रह्ममें
अविक्रियात्	निर्विकार	**नो विरुध्यते**	यह विरुद्ध बात नहीं होती
त्वत्तः	आपसे		
अस्य	इस (जगत्) की	**त्वत्**	क्योंकि आपके ही
जन्मस्थिति	उत्पत्ति, स्थिति,	**आश्रयत्वात्**	आश्रय होनेसे
संयमान्	प्रलय		

गुणैः	गुणोंके द्वारा (आपमें यह)	उपचर्यते	आरोप होता है ॥१६॥

स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया
बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ।
सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं
कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥२०॥

स त्वं त्रिलोक स्थितये स्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्ण आत्मनः सर्गाय रक्तं रजसा उपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जन अत्यये ॥२०॥

स त्वं	वही आप	उपबृंहितं	प्रधान
त्रिलोक	त्रिलोकी की	रक्तं च	रक्त वर्ण और
स्थितये	स्थितिके लिए	जन	लोगोंके
स्वमायया	अपनी माया द्वारा	अत्यये	संहारके लिए
खलु	अहो सात्विक	तमसा	तमोमय
शुक्लं वर्णं	शुक्ल वर्ण,	कृष्णं	कृष्ण वर्ण
सर्गाय	(इसकी) सृष्टिके लिए	बिभर्षि	धारण करते हैं ॥२०॥
रजसा	रजोगुण		

त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषु-
र्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर ।
राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपै-
र्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥२१॥

त्वं अस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषुः गृहे अवतीर्णः असि मम अखिल ईश्वर राजन्य संज्ञान् असुर कोटि यूथपैः निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥२१॥

अखिल ईश्वर	सर्वेश्वर	अस्य लोकस्य	इस लोककी
विभो त्वं	प्रभो ! आपने	रिरक्षिषुः	रक्षा करनेके लिए

मम गृहे	मेरे घरमें
अवतीर्णः	अवतार
असि	लिया है,
राजन्य	राजा
संज्ञान्	कहलाने वाले
असुर	असुरोंके

अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे
श्रुत्वाग्रजांस्ते न्यवधीत् सुरेश्वर ।
स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं
श्रुत्वाधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥२२॥

अयं तु असभ्यः तव जन्म नः गृहे श्रुत्वा अग्रजान् ते न्यवधीत् सुरेश्वर स ते अवतारं पुरुषैः समर्पितं श्रुत्वा अधुना एव अभिसरति उदायुधः ॥२२॥

सुरेश्वर	देवदेवेश्वर !
नः गृहे	हमारे घर
तव जन्म	आपका जन्म होगा
श्रुत्वा	यह सुनकर
असभ्यः	दुष्ट
अयं तु	इस (कंस) ने तो
ते अग्रजान्	आपके बड़े भाइयों-को
न्यवधीत्	मार दिया,
कोटि	करोड़ों
यूथपैः	सेनापतियों द्वारा
निर्व्यूह्यमाना	सञ्चालित
चमूः	सेनाका
निहनिष्यसे	संहार करेंगे ॥२१॥
स	वह अपने
पुरुषैः	सेवकों द्वारा
समर्पितं	दिया गया
ते अवतारं	आपके अवतार (का समाचार),
श्रुत्वा	सुनकर
अधुना एव	इसी समय
उदायुधः	शस्त्र उठाकर
अभिसरति	दौड़ा आवेगा ॥२२॥

श्रीशुक उवाच

अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुषलक्षणम् ।
देवकी तमुपाधावत् कंसाद् भीता शुचिस्मिता ॥२३॥

अथ एनं आत्मजं वीक्ष्य महापुरुष लक्षणं देवकी तं उपाधावत् कंसात् भीता शुचिस्मिता ॥२३॥

अथ एनं	फिर इस
आत्मजं	पुत्रको
महापुरुष	परमपुरुष (नारायण) के
लक्षणं	लक्षणोंवाला
वीक्ष्य	देखकर
शुचिस्मिता	पवित्र मुस्कानवाली
कंसात् भीता	कंससे डरकर
देवकी	देवकी
तं	उनकी
उपाधावत्	स्तुति करने लगी ॥२३॥

देवक्युवाच

रूपं यत् तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं
ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् ।
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं
स त्वं साक्षाद् विष्णुरध्यात्मदीपः ॥२४॥

रूपं यत् तत् प्राहुः अव्यक्तं आद्यं ब्रह्म ज्योतिः निर्गुणं निर्विकारं सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षात् विष्णुः अध्यात्मदीपः ॥२४॥

यत् रूपं	जो स्वरूप
अव्यक्तं	अव्यक्त
आद्यं	सनातन,
ब्रह्म ज्योतिः	ब्रह्म, ज्योतिर्मय,
निर्गुणं	निर्गुण,
निर्विकारं	निर्विकार,
सत्तामात्रं	सत्तामात्र,
निर्विशेषं	निर्विशेष,
निरीहं	निरीह
प्राहुः	कहा गया है,
तत्	वह
अध्यात्मदीपः	(बुद्धि आदि) अन्तःकरणके प्रकाशक
त्वं स	तुम वह
साक्षात्	साक्षात्
विष्णुः	विष्णु हो ॥२४॥

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने
महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु ।
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते
भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः ॥२५॥

नष्टे लोके द्विपरार्ध अवसाने महाभूतेषु आदि भूतं गतेषु व्यक्ते अव्यक्तं कालवेगेन याते भवान् एकः शिष्यते शेष संज्ञः ॥२५॥

द्वि परार्ध	दो परार्ध (ब्रह्माकी आयु)	**व्यक्ते**	व्यक्त जगतके
अवसाने	बीत जाने पर,	**अव्यक्तं**	प्रकृतिमें
लोके	सब लोकोंके	**याते**	पहुँच जानेपर
नष्टे	नष्ट हो जानेपर,	**एकः भवान्**	एक तुम्हीं
महाभूतेषु	महाभूतोंके	**शेष**	शेष नामसे
आदि-	अपने कारण	**संज्ञः**	(शेष नामक
भूतं गतेषु	(अहंकार) में लीन हो जानेपर		शय्यापर)
कालवेगेनं	कालके वेगसे	**शिष्यते**	बच रहते (सोते हो) ॥२५॥

योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो
चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् ।
निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयां-
स्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥२६॥

यः अयं कालः तस्य ते अव्यक्तबन्धो चेष्टां आहुः चेष्टते येन विश्वं निमेषादिः वत्सर अन्तः महीयान् तं तु ईशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥२६॥

अव्यक्तबन्धो	प्रकृति प्रेरक !	**चेष्टते**	चेष्टा कर रहा है
निमेषादिः	निमेषसे लेकर	**तस्य**	उसकी
वत्सर अन्तः	सम्वत्सर तक रूप	**चेष्टां आहुः**	चेष्टा कहा गया है,
महीयान्	महान्	**ते तं ईशानं**	आप उस सर्वेश्वर
यः अयं कालः	जो यह काल है	**क्षेमधाम तु**	अभय स्थान रूपकी ही
येन चेष्टां	उसकी जिस चेष्टासे		
विश्वं	संसार	**प्रपद्ये**	मैं शरण हूँ ॥२६॥

मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन्
लोकान् सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत् ।

त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य
स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥२७॥

मर्त्यः मृत्युव्याल भीतः पलायन् लोकान् सर्वान् निर्भयं न अध्यगच्छत् त्वत् पादाब्जं प्राप्य यदृच्छया अद्य स्वस्थः शेते मृत्युः अस्मात् अपैति ॥२७॥

मृत्युव्याल	मौत रूपी सर्पसे	**अद्य यदृच्छया**	आज सौभाग्यवश
भीतः	डरकर	**त्वत्**	तुम्हारे
पलायन् मर्त्यः	भागता हुआ मनुष्य	**पादाब्जं**	चरण-कमलको
सर्वान्	सब	**प्राप्य स्वस्थः**	पाकर सुख पूर्वक
लोकान्	लोकोंमें कहीं	**शेते**	सोता है,
निर्भयं	निर्भय	**मृत्युः अस्मात्**	मृत्यु इससे
न	नहीं	**अपैति**	दूर चली गयी
अध्यगच्छत्	हो पाता,		॥२७॥

स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्न-
स्त्राहि त्रस्तान् भृत्यवित्रासहासि ।
रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं
मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥२८॥

स त्वं घोरात् उग्रसेन आत्मजात् नः त्राहि त्रस्तान् भृत्य वित्रास हा असि रूपं च इदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥२८॥

स त्वं	वह तुम	**हा असि**	नष्ट करने वाले हो
घोरात्	दुष्ट	**च इदं**	और इस
उग्रसेन	उग्रसेनके	**ध्यानधिष्ण्यं**	ध्यानाधार
आत्मजात्	पुत्र (कंस) से	**रूपं**	रूपको
त्रस्तान् नः	संत्रस्त हमारी	**मांसदृशां**	मांस दर्शियोंके
त्राहि	रक्षा करो; क्योंकि	**प्रत्यक्षं**	सम्मुख
भृत्य	सेवकोंके	**मा कृषीष्ठाः**	मत प्रकट करो
वित्रास	संत्रासको		॥२८॥

जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन ।
समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥२९॥

जन्म ते मयि असौ पापः मा विद्यात् मधुसूदन समुद्विजे भवत् हेतोः कंसात् अहं अधीरधीः ॥२९॥

मधुसूदन	मधुसूदन !	**अहं अधीरधीः**	मैं व्याकुल बुद्धि
असौ पापः	यह पापी (कंस)	**कंसात्**	कंससे
मयि ते	मुझसे तुम्हारा	**भवत् हेतोः**	तुम्हारे लिए
जन्म	जन्म	**समुद्विजे**	बहुत उद्विग्न हो
मा विद्यात्	न जान पावे,		रही हूँ ॥२९॥

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥३०॥

उपसंहर विश्वात्मन् अदः रूपं अलौकिकं शंख चक्र गदा पद्म श्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥३०॥

विश्वात्मन्	विश्वात्मा !	**अलौकिकं**	अलौकिक
शंख चक्र	शंख, चक्र,	**अदः रूपं**	इस रूपका
गदा पद्म	गदा, पद्मकी	**उपसंहर**	उपसंहार कर लो
श्रिया जुष्टं	शोभासे युक्त		॥३०॥
चतुर्भुजं	चतुर्भुज		

विश्वं यदेतत् स्वतनौ निशान्ते
यथावकाशं पुरुषः परो भवान् ।
बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभू-
दहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत् ॥३१॥

विश्वं यत् एतत् स्वतनौ निशा अन्ते यथा अवकाशं पुरुषः परः भवान् बिभर्ति सः अयं मम गर्भगः अभूत् अहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत् ॥३१॥

यत् एवत्	जो इस	पुरुषः	पुरुष
विश्वं	विश्वको	भवान् मम	आप मेरे
अन्ते निशा	प्रलय रात्रिके समय	गर्भगः अभूत्	मेरे गर्भमें आये,
यथा	यथा	हि तत् अहो	क्योंकि यह अहो,
अवकाशं	अवकाश	नृलोकस्य	मनुष्य लोककी
स्वतनौ	अपने शरीरमें	विडम्बनं	विडम्बना ही है
बिभर्ति	धारण करते हैं,		॥३१॥
सः परः	वही परम		

श्रीभगवानुवाच

त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायम्भुवे सति ।
तदायं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥३२॥

त्वं एव पूर्वसर्गे अभूः पृश्निः स्वायम्भुवे सति तदा अयं सुतपा नाम प्रजापतिः अकल्मषः ॥३२॥

स्वायम्भुवे	स्वायम्भुव मन्वन्तरमें	तदा	उस समय
पूर्वसर्गे	पूर्व जन्ममें	अयं	ये (वसुदेवजी)
सति त्वं एव	सती ! तुम्ही	अकल्मषः	निष्पाप
पृश्निः अभूः	पृश्नि हुई थीं,	सुतपा नाम	सुतपा नामके
		प्रजापतिः	प्रजापति थे ॥३२॥

युवां वै ब्रह्मणाऽऽदिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः ।
संनियम्येन्द्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥३३॥

युवां वै ब्रह्मणा आदिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः सन्नियम्य इन्द्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥३३॥

यदा युवां	जब तुम दोनोंको	ततः	तब
ब्रह्मणा	ब्रह्माजी द्वारा	इन्द्रियग्रामं	इन्द्रिय-समूहका
वै	निश्चित	सन्नियम्य	पूर्ण नियन्त्रण करके
प्रजासर्गे	प्रजाकी सृष्टिका	परमं तपः	(तुमने) घोर तप
आदिष्टौ	आदेश दिया गया	तेपाथे	करने लगे ॥३३॥

वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु ।
सहमानौ श्वासरोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥३४॥

वर्ष वात आतप हिम घर्म काल गुणान् अनु सहमानौ श्वासरोध विनिर्धूत मनः मलौ ॥३४॥

वर्ष वात	वर्षा, वायु,
आतप हिम	धूप, सर्दी,
घर्म	गर्मी आदि
काल गुणान्	कालगुणोंको
अनु सहमानौ	बार-बार सहते हुए,
श्वासरोध	प्राणायाम करके
मनः मलौ	मनके दोषोंको
विनिर्धूत	सम्पूर्ण नष्ट कर दिया ॥३४॥

शीर्णपर्णानिलाहारावुपशान्तेन चेतसा ।
मत्तः कामानभीप्सन्तौ मदाराधनमीहतुः ॥३५॥

शीर्ण पर्ण अनिल आहाराः उपशान्तेन चेतसा मत्तः कामान् अभीप्सन्तौ मत् आराधनं ईहतुः ॥३५॥

शीर्ण पर्ण	स्वयं गिरे पत्ते तथा
अनिल आहाराः	वायु-भक्षी होकर
उपशान्तेन	अत्यन्त शान्त
चेतसा	चित्तसे
मत्तः	मुझसे
कामान्	कामना पूर्ति
अभीप्सन्तौ	चाहते हुए
मत्	मेरी
आराधनं	आराधना
ईहतुः	करते रहे ॥३५॥

एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परमदुष्करम् ।
दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥३६॥

एवं वां तप्यतः तीव्रं तपः परम दुष्करं दिव्यवर्ष सहस्राणि द्वादश ईयुः मत् आत्मनोः ॥३६॥

एवं	इस प्रकार
मत् आत्मनोः	मुझमें चित्त लगाकर
परम दुष्करं	अत्यन्त दुष्कर
तीव्रं तपः	घोर तप
तप्यतः वां	करते तुम दोनोंको
दिव्यवर्ष	देवताओंके वर्षसे
द्वादश	बारह
सहस्राणि	सहस्र वर्ष
ईयुः	बीत गये ॥३६॥

तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषानघे ।
तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥३७॥

तदा वां परितुष्टः अहं अमुना वपुषा अनघे तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥३७॥

अनघे	हे पुण्यमयी माता	**तपसा**	तप करनेसे
तदा	उस समय	**वां**	तुम दोनोंपर
नित्यं	प्रतिदिन	**अमुना वपुषा**	इस देहसे
हृदि	हृदयमें	**अहं**	मैं
श्रद्धाया च	श्रद्धा और	**परितुष्टः**	प्रसन्न हो गया
भक्त्या	भक्ति पूर्ण		॥३७॥
भावितः	भावना की		

प्रादुरासं वरदराड् युवयोः कामदित्सया ।
व्रियतां वर इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः ॥३८॥

प्रादुः आसं वरदराट् युवयोः काम दित्सया व्रियतां वर इति उक्ते मादृशः वां वृतः सुतः ॥३८॥

युवयोः	तुम दोनोंकी	**वर व्रियतां**	'वरदान मांगो'
काम	कामना पूर्तिकी	**इति उक्ते**	(मेरे) ऐसा कहनेपर
दित्सया	इच्छाते	**वां**	तुम दोनोंने
वरदराट्	वरदाताओंका स्वामी मैं	**मादृशः**	मेरे समान
		सुतः वृतः	पुत्र मांगा ॥३८॥
प्रादुः आसं	प्रकट हुआ		

अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दम्पती ।
न वव्राथेऽपवर्गं मे मोहितौ मम मायया ॥३९॥

अजुष्ट ग्राम्य विषयाः अनपत्यौ च दम्पती न वव्राथे अपवर्गं मे मोहितौ मम मायया ॥३९॥

दम्पती	तुम दोनों स्त्री-पुरुषने	**ग्राम्य विषयाः**	ऐन्द्रिक सुख
		अजुष्ट	भोगे नहीं थे

च अनपत्यौ	तथा सन्तानहीन थे	मोहितौ	मोहित होकर
मम मायया	(अतः) मेरी मायासे	मे अपवर्गं	मुझसे मोक्ष
		न वव्राथे	नहीं मांगा ॥३६॥

गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम् ।
ग्राम्यान् भोगानभुङ्क्ताथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥४०॥

गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत् सदृशं सुतं ग्राम्यान् भोगान् अभुङ्क्जाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥४०॥

मयि गते	मेरे चले जानेपर	प्राप्तमनोरथौ	मनोरथ पूर्ण होनेपर
युवां	तुम दोनों	युवां	तुम दोनों
मत् सदृशं	मेरे समान	ग्राम्यान्	ऐन्द्रियक
सुतं वरं	पुत्रका वरदान	भोगान्	भोगोंको
लब्ध्वा	पाकर	अभुङ्क्जाथां	भोगने लगे ॥४०॥

अदृष्ट्वान्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम् ।
अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥४१॥

अदृष्ट्वा अन्यतमं लोके शील औदार्य गुणैः समं अहं सुतः वां अभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥४१॥

शील औदार्य	शील, उदारता,	अहं वां	मैं तुम दोनोंका
आदि	आदि	सुतः	पुत्र
गुणैः समं	गुणोंमें समान	अभवं	हो गया,
अन्यतमं	दूसरे किसीको	पृश्निगर्भ	पृश्निगर्भ
लोके अदृष्ट्वा	किसी लोकमें न देखकर	इति	इस नामसे
		श्रुतः	विख्यात हुआ ॥४१॥

तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् ।
उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥४२॥

तयोः वां पुनः एव अहं अदित्यां आस कश्यपात् उपेन्द्र इति विख्यातः वामनत्वात् च वामनः ॥४२॥

तयोः वां	उन्हीं दोनों तुमसे	अदित्यां	अदितिमें
अहं पुनः एव	मैं फिर भी	कश्यपात्	कश्यपजीसे

आस	उत्पन्न हुआ,	वामनत्वात्	बौना होनेसे
उपेन्द्र इति	उपेन्द्र इस नामसे	वामनः	वामन
च	तथा	विख्यातः	प्रसिद्ध हुआ ॥४२॥

तृतीयेऽस्मिन् भवेऽहं वै तेनैव वपुषाथ वाम् ।
जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥४३॥

तृतीये अस्मिन् भवे अहं वै तेन एव वपुषा अथ वां जातः भूयः तयोः एव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥४३॥

मे व्याहृतं	मेरा उच्चारण (तीन वार दिया, दिया, दिया कहना)	वै तेन एव	निश्चय उसी
		वपुषा अहं	शरीरसे मैं
		तयोः एव वां	उन्हीं तुम दोनोंसे हो
सत्यं सति	सत्य होनेसे	अथ भूयः	अब फिर
अस्मिन्	इस	जातः	उत्पन्न हुआ हूँ ॥४३॥
तृतीये भवे	तीसरे जन्ममें		

एतद् वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ।
नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते ॥४४॥

एतत् वां दर्शितं रूपं प्राक् जन्म स्मरणाय मे न अन्यथा मत् भवं ज्ञानं मर्त्यलिंगेन जायते ॥४४॥

वां एतत्	तुम दोनोंको इस	अन्यथा	अन्यथा
रूपं	रूपको	मर्त्यलिंगेन	मनुष्य रूपमें
प्राक् जन्म	पूर्व जन्मका	मत् भवं	मेरे उत्पन्न होनेका
स्मरणाय	स्मरण करानेके लिए	ज्ञानं न जायते	ज्ञान नहीं होता ॥४४॥
मे दर्शितं	मैंने दिखलाया है		

युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत् ।
चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम् ॥४५॥

युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन च असकृत् चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मत् गतिं पराम् ॥४५॥

युवां मां	तुम दोनों मुझे	च ब्रह्मभावेन	तथा ब्रह्म भावसे
पुत्रभावेन	पुत्र भावसे	असकृत्	निरन्तर

चिन्तयन्तौ	चिन्तन करते हुए	गतिं	गतिको
मत् परां	मेरी परम	यास्येथे	जाओगे ॥४५॥

यदा कंसात् विभेषित्वं तर्हि मां गोकुलं नय।
मत्मायां आनयाशुत्वं यशोदा गर्भसम्भवाम् ॥*

यदि कंसात् विभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय मत् मायां आनय आशु त्वं यशोदा गर्भसम्भवाम् ॥

यदि त्वं	यदि तुम	गर्भसम्भवां	गर्भसे उत्पन्न
कंसात् विभेषि	कंससे डरते हो	मत् मायां	मेरी मायाको
तर्हि मां	तो मुझे	त्वं आशु	तुम शीघ्र
गोकुलं नय	गोकुल ले जाओ और	आनय	ले आओ ॥
यशोदा	यशोदाके		

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वाऽऽसीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया।
पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः ॥४६॥

इति उक्त्वा आसीत् हरिः तूष्णीं भगवान् आत्म मायया पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यः बभूव प्राकृतः शिशु ॥४७॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	पित्रोः	माता-पिताके
हरिः तूष्णीं	श्रीहरि चुप	सम्पश्यतोः	देखते-देखते
आसीत्	हो गये और	सद्यः	तत्काल
आत्म मायया	अपनी मायासे	प्राकृतः	साधारण
भगवान्	वे भगवान्	शिशुः बभूव	शिशु हो गये ॥४६॥

ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः
सुतं समादाय स सूतिकागृहात्।
यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा
या योगमायाजनि नन्दजायया ॥४७॥

---

*यह श्लोक गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करणमें नहीं है। श्रीचक्रजी को यह श्लोक कहाँ मिला ज्ञात नहीं। —प्रकाशक

ततः च शौरिः भगवत् प्रचोदितः सुतं समादाय स सूतिका गृहात् यदा बहिः गन्तुं इयेष तर्हि अजा या योगमाया अजनि नन्द जायया ॥४७॥

ततः च	तदनन्तर
शौरिः	वसुदेवजी
भगवत्	भगवान् द्वारा
प्रचोदितः	प्रेरित होकर
सुतं	पुत्रको
समादाय	सम्हालकर लेकर
सूतिका	उस प्रसूति
गृहात्	कक्षसे
स यदा बहिः	वे जब बाहर
गन्तुं इयेष	जानेको निकले
तर्हि या	उसी समय जो
अजा	अजन्मा
योगमाया	योगमाया
नन्द जायया	नन्द पत्नी (यशोदा) से
अजनि	उत्पन्न हुई थी ॥४७॥

तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु
द्वाःस्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ ।
द्वारस्तु सर्वाः पिहिता दुरत्यया
बृहत्कपाटायसकीलशृङ्खलैः ॥४८॥

तया हृत प्रत्यय सर्व वृत्तिषु द्वाःस्थेषु पौरेषु अपि शायितेषु अथ द्वारः तु सर्वाः पिहिता दुरत्यया बृहत् कपाट आयस कील शृंखलैः ॥४८॥

तया	उस (योगमाया) के द्वारा
सर्व	सब (इन्द्रिय)
वृत्तिषु	वृत्तियोंका
प्रत्यय हृत	ज्ञान-हरण हो गया
अथ द्वाःस्थेषु	अतः द्वारपालों
अपि	और
पौरेषु	पुरवासियोंके भी
शायितेषु	सुला दिये जानेपर
सर्वाः द्वारः तु	सब द्वार तो
बृहत् कपाट	बड़े-बड़े किवाड़ों
	तथा
आयस कील	लोहीकी कीलों एवं
शृंखलैः	शृंखलाओंसे
पिहिता	बन्द
दुरत्यया	दुर्गम थे ॥४८॥

ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते
स्वयं व्यवर्यन्त यथा तमो रवेः ।

ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः
शेषोऽन्वगाद् वारि निवारयन् फणैः ॥४९॥

ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्यन्त यथा तमः रवेः ववर्ष पर्जन्य उपांशु गर्जितः शेषः अन्वगात् वारि निवारयन् फणैः ॥४९॥

यथा	जैसे	**उपांशु**	समीप ही
रवेः	सूर्यके (उगनेपर)	**गर्जितः**	गर्जना करते हुए
तमः	अन्धकार (दूर हो जाता है)	**पर्जन्य ववर्ष**	मेघ वर्षा करन लगे,
कृष्णवाहे	श्रीकृष्णको लेकर	**शेषः**	शेषजी (अपने)
वसुदेव	वसुदेवजीके	**फणैः**	फणोंसे
आगते	आनेपर	**वारि**	(वर्षा का) जल
ताः	वे (द्वार वैसे ही)	**निवारयन्**	रोकते हुए
स्वयं	स्वयं	**अन्वगात्**	पीछे चलने लगे
व्यवर्यन्त	खुल गये		॥४९॥

मघोनि वर्षत्यसकृद् यमानुजा
गम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला ।
भयानकावर्तशताकुला नदी
मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः ॥५०॥

मघोनि वर्षति असकृत् यम अनुजा गम्भीर तोय औघजः उर्मि फेनिला भयानक आवर्त शत आकुला नदी मार्गं ददौ सिन्धुः इव श्रियः पतेः ॥५०॥

मघोनि	इन्द्रके	**औघजः**	जलप्लावन हो गया और
असकृत्	निरन्तर	**आवर्त शत**	सैकड़ों भवरोंसे
वर्षति	वर्षा करनेसे	**आकुला**	चञ्चल
गम्भीर तोय	गहरे जलके	**यम अनुजा**	यमराजकी छोटी बहिन
वेग उर्मि	वेगसे उठती लहरों तथा	**नदी**	(यमुना) नदीने
फेनिला	फेन भरी		
भयानक	भयंकर		

श्रियःपतेः	लक्ष्मीपति (शेष-शायी) विष्णुको	मार्गं ददौ	(वसुदेवजीको) मार्ग दे दिया ॥५०॥*
सिन्धुः इव	क्षीर सागरके समान		

नन्दव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान्
गोपान् प्रसुप्तानुपलभ्य निद्रया ।
सुतं यशोदाशयने निधाय त-
त्सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात् ॥५१॥

नन्दव्रजं शौरिः उपेत्य तत्र तान् गोपान् प्रसुप्तान् उपलभ्य निद्रया सुतं यशोदा शयने निधाय तत् सुतां उप आदाय पुनः गृहान् अगात् ॥५१॥

शौरिः	शूरनन्दन वसुदेवजी	यशोदा	यशोदाजी की
नन्दव्रजं	नन्दजीके गोष्ठ गोकुल	शयने	शय्यापर
		सुतं निधाय	पुत्रको रखकर
उपेत्य	पहुँचकर	तत् सुतां	उनकी पुत्रीको
तत्र तान्	वहां उन	उप आदाय	साथ लेकर
गोपान् निद्रया	गोपोंको निद्रासे	पुनः गृहान्	फिर कारागार-भवन
प्रसुप्तान्	सोते हुए	अगात्	आ गये ॥५१॥
उपलभ्य	पाकर		

देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम् ।
प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः ॥५२॥

देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवः अथ दारिकां प्रतिमुच्य पदोः लोहं आस्ते पूर्ववत् आवृतः ॥५२॥

अथ दारिकां	फिर उस बच्चीको	न्यस्य वसुदेवः	रखकर वसुदेवजी
देवक्याः शयने	देवकीकी शैय्यापर	पदोः लोहं	पैरोंमें लोहेकी बेड़ियां

---

*जैसे भगवान विष्णु आना या जाना चाहते हैं तो उन्हें मध्यमें समुद्र है, यह पता नहीं लगता, ऐसे ही अनायास वसुदेवजीको यमुनाने जाने तथा लौटने भी दिया ।

प्रपिमुच्य	डालकर	**आवृतः आस्ते**	बन्द हो गये ॥५२॥
पूर्ववत्	पहिलेके समान		

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत ।
न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयापगतस्मृतिः ॥५३॥

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परं अबुध्यत न तत् लिगं परिश्रान्ता निद्रया अपगत स्मृतिः ॥५३॥

नन्दपत्नी	नन्दकी पत्नी	**निद्रया**	निद्राके कारण
यशोदा च	यशोदा भी	**अपगत स्मृतिः**	अचेत हो जानेसे
परं जातं	कोई सन्तान उत्पन्न हुई	**तत्**	उस (नवजात) का
		लिगं	चिह्न (लड़का या लड़की)
अबुध्यत	इतना जान सकीं; किन्तु	**न**	नहीं जान सकीं ॥५३॥
परिश्रान्ता	(प्रसवके कारण) बहुत थकी होने से		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे श्रीकृष्णजन्मनि तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

बहिरन्तःपुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ।
ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥१॥

बहिः अन्तःपुर द्वारः सर्वाः पूर्ववत् आवृताः ततः बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥१॥

सर्वाः बहिः	सब बाहरीं ओर
अन्तःपुर	अन्तःपुरके
द्वारः पूर्ववत्	द्वार पहिलेके समान
आवृताः	बन्द हो गये
ततः बाल ध्वनिं	तब बालकका शब्द (रोना)
श्रुत्वा	सुनकर
गृहपालाः	घरके पहरेदार
समुत्थिताः	उठ गये ॥१॥

ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् ।
आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥२॥

ते तु तूर्णं उपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् आचख्युः भोजराजाय यत् उद्विग्नः प्रतीक्षते ॥२॥

ते तु तूर्णं	वे तो शीघ्र
उपव्रज्य	समीप जाकर
तत् देवक्या	उस देवकीके
गर्भजन्म	गर्भके जन्मको
भोजराजाय	भोजराज कंससे
आचख्युः	बतलाया
यत् उद्विग्नः	जो उद्विग्न होकर
प्रतीक्षते	प्रतीक्षा कर रहा था ॥२॥

स तल्पात् तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः ।
सूतीगृहमगात् तूर्णं प्रस्खलन् मुक्तमूर्धजः ॥३॥

स तल्पात् तूर्णं उत्थाय कालः अयं इति विह्वलः सूतीगृहं अगात् तूर्णं प्रस्खलन् मुक्तमूर्धजः ॥३॥

स तूर्णं	वह झटपट	**प्रस्खलन्**	लड़खड़ाता हुआ
तल्पात् उत्थाय	शय्यासे उठकर	**मुक्तमूर्धजः**	बाल खोले
अयं कालः	'यह मेरा काल है'	**सूतीगृहं**	प्रसूतिका घर
इति विह्वलः	इस भावसे व्याकुल	**तूर्णं अगात्**	शीघ्रतासे गया ॥३॥

तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती ।

तं आह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती ।

तं भ्रातरं	उस भाईसे	**देवी करुणं**	देवकीजीने दीन
कृपणा सती	दुःखिया साध्वी		वाणीमें
		आह	कहा—

देवक्युवाच*

स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हन्तुमर्हसि ॥४॥

स्नुषा इयं तव कल्याण स्त्रियं मा हन्तुं अर्हसि ॥४॥

कल्याण इयं	'भद्र ! यह	**स्त्रियं हन्तुं**	इस स्त्रीका वध
तव स्नुषा	तुम्हारी पुत्रवधूके समान है,	**मा अर्हसि**	नहीं करना चाहिए ॥४॥

बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः पावकोपमाः ।

त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम् ॥५॥

बहवः हिंसिता भ्रातः शिशवः पावक उपमाः त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिका एका प्रदीयताम् ॥५॥

भ्रातः	भाई !	**त्वया**	तुम्हारे द्वारा
दैवनिसृष्टेन	दैवकी प्रेरणासे	**हिंसिता**	मार दिये गये, नन्ही
पावक	अग्निके	**एका पुत्रिका**	(अब यह) एक पुत्री
उपमाः	समान तेजस्वी	**प्रदीयतां**	प्रदान कर दो ॥५॥
बहवः शिशवः	बहुतसे शिशु		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो ।
दातुमर्हसि मन्दाया अंगेमां चरमां प्रजाम् ॥६ ।

ननु अहं ते हि अवरजा दीना हतसुता प्रभो दातुं अर्हसि मन्दाया अंग इमां चरमां प्रजाम् ॥६॥

प्रभो	हे समर्थ !	**मन्दाया**	मुझ मन्द भागिनीको
हि ननु	क्योंकि निश्चय	**अंग इमां**	भाई ! यह
अहं ते	मैं तुम्हारी	**चरमां प्रजां**	अन्तिम सन्तान
अवरजा	छोटी बहिन हूँ ।	**दातुं**	आपको
हतसुता	पुत्रोंके मारे जानेसे	**अर्हसि**	दे देनी चाहिए ॥६॥
दीना	दुःखिया हूँ,		

श्रीशुक उवाच

उपगुह्यात्मजामेवं रुदत्या दीनदीनवत् ।
याचितस्तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः ॥७॥

उपगुह्य आत्मजां एवं रुदत्या दीन दीनवत् याचितः तां विनिर्भर्त्स्य हस्तात् आचिच्छिदे खलः ॥७॥

आत्मजां	पुत्रीको	**रुदत्या**	रोते हुए
उपगुह्य	गोदमें छिपाकर	**याचितः**	मांगनेपर
एवं दीन	इस प्रकार दुःखी होकर	**तां विनिर्भर्त्स्य**	उन्हें झिड़ककर
		खलः हस्तात्	उस दुष्टने हाथसे
दीनवत्	अत्यन्त दीनाकी भांति	**आचिच्छिदे**	छीन लिया ॥७॥

तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम् ।
अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ॥८॥

तां गृहीत्वा चरणयोः जातमात्रां स्वसुः सुतां अपोथयत् शिलापृष्ठे स्वार्थ उन्मूलित सौहृदः ॥८॥

स्वार्थ	स्वार्थ द्वारा	**सौहृदः**	सौदार्द्र वाले उसने
उन्मूलित	जड़से उखाड़े	**जातमात्रां**	सद्योजाता

तां स्वसुः	उस बहिनकी	**गृहीत्वा**	पकड़कर
सुतां	पुत्रीको	**शिलापृष्ठे**	शिलाके ऊपर
चरणयोः	पैर	**अपोथयत्**	पटक दिया ॥८॥

सा तद्धस्तात् समुत्पत्य सद्यो देव्यम्बरं गता ।
अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥९॥

सा तत् हस्तात् समुत्पत्य सद्यः देवि अम्बरं गता अदृश्यत अनुजा विष्णोः सायुध अष्ट महाभुजा ॥९॥

तत् हस्तात्	उसके हाथसे	**तत् सायुध**	वह शस्त्रों सहित
समुत्पत्य	छिटककर	**अष्ट**	आठ
सद्यः	तुरन्त	**महाभुजा**	विशाल भुजाओं
सा विष्णोः	वह भगवान विष्णुकी		वाली
अनुजा	छोटी बहिन	**देवि अदृश्यत**	देवीके रूपमें दीखी
अम्बरं गता	आकाशमें जाकर		॥९॥

दिव्यस्रगम्बरालेपरत्नाभरणभूषिता ।
धनुःशूलेषुचर्मासिशङ्खचक्रगदाधरा ॥१०॥

दिव्यस्रक् अम्बर आलेप रत्न आभरण भूषिता धनुः शूल इषु चर्म असि शंख चक्र गदाधरा ॥१०॥

दिव्यस्रक्	वह दिव्य माला,	**धनुः शूल**	धनुष, त्रिशूल,
अम्बर आलेप	वस्त्र, अंगराग युक्ता	**इषु चर्म**	बाण, ढाल,
रत्न	रत्न जटित	**असि शंख**	तलवार, शंख,
आभरण	आभूषणोंसे	**चक्र गदाधरा**	चक्र, गदा धारिणी
भूषिता	अलंकृता,		थी ॥१०॥

सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः ।
उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥११॥

सिद्ध चारण गन्धर्वैः अप्सरः किन्नर उरगैः उपाहृता उरु बलिभिः स्तूयमान इदं अब्रवीत् ॥११॥

सिद्ध चारण	सिद्ध, चारण,	उरुबलिभिः	बहुत-सी भेंट
गन्धर्वः	गन्धर्वों,	उपाहृत	समर्पण करके
अप्सरः किन्नर	अप्सराओं, किन्नरों,	स्तूयमान	स्तुति की जाती हुई
उरगैः	नागों द्वारा	इदं अब्रवीत्	यह बोली ॥११॥

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत् ।
यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान् वृथा ॥१२॥

किं मया हतया मन्द जातः खलु तव अन्त कृत् यत्र क्व वा पूर्वशत्रुः मा हिंसीः कृपणान् वृथा ॥१२॥

मन्द	'मूर्ख !	वा	अथवा
मया हतया	मुझे मारनेसे	पूर्वशत्रुः	(तेरा) पुराना शत्रु
किं	(तेरा) क्या लाभ होगा,	खलु यत्र क्व	निश्चय जहां कहीं
		जातः	उत्पन्न हो गया,
तव	तेरा	वृथा कृपणान्	व्यर्थ दुःखियोंकी
अन्त कृत्	अन्त करनेवाला	मा हिंसीः	मत हिंसा कर'

॥१२॥

इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि ।
बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥१३॥

इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि बहुनाम निकेतेषु बहु नामा बभूव ह ॥१३॥

तं इति	उससे यह	बहुनाम	बहुतसे नामोंके
प्रभाष्य	कहकर	निकेतेषु	स्थानोंमें
भगवती	भगवती	ह बहु	निश्चय बहुत
माया देवी	माया देवी	नामा	नामोंवाली
भुवि	पृथ्वीपर	बभूव	हो गयी ॥१३॥

तयाभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः ।
देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥१४॥

तया अभिहितं आकर्ण्य कंसः परम विस्मितः देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितः अब्रवीत् ॥१४॥

तया अभिहितं	उसका कथन	**देवकीं च**	देवकी तथा
आकर्ण्य	सुनकर	**वसुदेवं**	वसुदेवजी को
कंसः	कंस	**विमुच्य**	बन्धन-मुक्त करके
परम	अत्यन्त	**प्रश्रितः**	विनम्र होकर
विस्मितः	आश्चर्यमें पड़ गया,	**अब्रवीत्**	बोला ॥१४॥

अहो भगिन्यहो भाम मया वां वत पाप्मना ।
पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥१५॥

अहो भगिनि अहो भाम मया वां वत पाप्मनां पुरुषाद इव अपत्यं बहवः हिंसिताः सुताः ॥१५॥

अहो भगिनि	'हे बहिन !	**वां**	आप दोनोंके
अहो भाम	हे बहनोईजी !	**बहवः**	बहुतसे
वत मया	अरे मुझ	**सुताः अपत्यं**	पुत्र सन्तानोंको
पाप्मनां	पापीने	**हिंसिताः**	मार दिया ॥१५॥
पुरुषाद इव	राक्षसकी भांति		

स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत् खलः ।
कांल्लोकान् वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥१६॥

स तु अहं त्यक्त कारुण्यः त्यक्त ज्ञाति सुहृत् खलः कान् लोकान् वै गमिष्यामि ब्रह्म हा इव मृतः श्वसन् ॥१६॥

त्यक्त कारुण्यः	करुण छोड़े हुए तथा	**मृतः**	मरेके समान
ज्ञाति	जाति एवं	**ब्रह्म हा**	ब्रह्म-हत्यारेके
सुहृत्	सुहृदों द्वारा	**इव**	समान
त्यक्त	त्यागा हुआ	**वै कान्**	पता नहीं किन
स तु अहं	वह तो मैं	**लोकान्**	लोकोंको
खलः	दुष्ट	**गमिष्यामि**	जाऊँगा ॥१६॥
श्वसन्	श्वास लेता हुआ भी		

दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम् ।
यद्विश्रम्भादहं पापः स्वसुर्निहतवाञ्छिशून् ॥१७॥

दैवं अपि अनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलं यत् विश्रम्भात् अहं पापः स्वसुः निहतवान् शिशून् ॥१७॥

केवलं मर्त्या	केवल मनुष्य
एव न	ही नहीं
दैवं अपि	देवता भी
अनृतं वक्ति	झूठ बोलते हैं,
यत्	जिनपर
विश्रम्भात्	विश्वास करके
अहं पापः	मुझ पापीने
स्वसुः शिशून्	बहिनके शिशुओंको
निहतवान्	मार डाला ॥१७॥

मा शोचतं महाभागावात्मजान् स्वकृतम्भुजः ।
जन्तवो न सदैकत्र दैवाधीनास्तदासते ॥१८॥

मा शोचतं महाभागाः आत्मजान् स्वकृतं भुजः जन्तवः न सदा एकत्र दैवाधीनाः तत् आसते ॥१८॥

महाभागाः	महाभागो !
स्वकृतं	अपने कर्मोंका
भुजः	फल भोगनेवाले
आत्मजान्	अपने पुत्रोंके लिए
शोचतं मा	शोक मत कीजिए,
दैवाधीनाः	दैवके आधीन
तत् जन्तवः	वे प्राणी
सदा एकत्र	सदा एक साथ
न आसते	नहीं रहते ॥१८॥

भुवि भौमानि भूतानि यथा यान्त्यपयान्ति च ।
नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥१९॥

भुवि भौमानि भूतानि यथा यान्ति अपयान्ति च न अयं आत्मा तथा एतेषु विपर्यं एति यथा एव भूः ॥१९॥

भूवि	पृथ्वीपर
भौमानि	मिट्टीसे बने
भूतानि	पदार्थ
यथा यान्ति	जैसे आते (बनते)
च	तथा
अपयान्ति	दूर जाते (बिगड़ते) हैं
अयं आत्मा	यह आत्मा
तथा	उस प्रकार
एतेषु	इन सबके समान
विपर्यं न	विकारको नहीं
एति	प्राप्त होता
यथा एव	जैसे कि
भूः	पृथ्वी है ॥१९॥

यथानेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः ।
देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्तते ॥२०॥

यथा अन एवं विदः भेदः यत आत्म विपर्ययः देहयोग वियोगौ च संसृतिः न निवर्तते ॥२०॥

यथा	जैसे	**वियोगौ**	वियोगसे
अन एवं	इस प्रकार न	**आत्म**	आत्माके सम्बद्धमें
विद	जानने वालोंकी	**विपर्ययः**	उलटा भाव होता है
यत भेदः	जिससे भेदबुद्धि होती है,	**च संसृतिः**	और आवागमन
		निवर्तते न	छूट नहीं पाता
देहयोग	शरीरके संयोग		॥२०॥

तस्माद् भद्रे स्वतनयान् मया व्यापादितानपि ।
मानुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विन्दतेऽवशः ॥२१॥

तस्मात् भद्रे स्वतनयान् मया व्यापादितान् अपि मा अनुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विन्दते अवशः ॥२१॥

भद्रे तस्मात्	कल्याणी ! इसलिए	**अनुशोच मा**	शोक मत करो,
मया	मेरे द्वारा	**यतः सर्वः**	क्योंकि सभी
व्यापादितान्	मारे जानेपर	**अवशः**	विवश होकर
अपि	भी	**स्वकृतं**	अपने कर्मोंका फल
स्वतनयान्	अपने पुत्रोंके लिए	**विन्दते**	पाते हैं ॥२१॥

यावद्धतोऽस्मि हन्तास्मीत्यात्मानं मन्यतेऽस्वदृक् ।
तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥२२॥

यावत् हतः अस्मि हन्ता अस्मि इति आत्मानं मन्यते अस्वदृक् तावत् तत् अभिमानि अज्ञः बाध्य बाधकतां इयात् ॥२२॥

यावत्	जब तक	**हन्ता अस्मि**	'मैं मारनेवाला हूँ'
अस्वदृक्	अपनी दृष्टिसे	**इति**	इस प्रकार
हतः अस्मि	'मैं मारा गया हूँ' या	**आत्मानं**	अपनेको (कोई)
		मन्यते	मानता है

तावत् तत्	तब तक उसका	**बाध्य-बाधकतां**	बाध्य-वाधक भावको
अभिमानि	अभिमानी		
अज्ञः	अज्ञानी पुरुष	**इयात्**	प्राप्त होता है ॥२२॥

क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः ।
इत्युक्त्वाश्रुमुखः पादौ श्यालः स्वस्रोरथाग्रहोत् ॥२३॥

क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवः दीनवत्सलाः इति उक्त्वा अश्रुमुखः पादौ श्यालः स्वस्रोः अथ अग्रहीत् ॥२३॥

साधवः	(आप तो) साधु,	**अथ अश्रुमुखः**	फिर मुँहपर आँसू ढुलकता
दीनवत्सलाः	दीनोंपर स्नेह करने वाले हैं,	**श्यालः स्वस्रोः**	बहनोई-बहिनके
मम दौरात्म्यं	मेरी दुष्टताको	**पादौ अग्रहीत्**	पैर पकड़ लिये ॥२३॥
क्षमध्वं	क्षमा कर दीजिए !'		
इति उक्त्वा	ऐसा कहकर		

मोचयामास निगडाद् विश्रब्धः कन्यकागिरा ।
देवकीं वसुदेवं च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥२४॥

मोचयामास निगडात् विश्रब्धः कन्यकागिरा देवकीं वसुदेवं च दर्शयन् आत्मसौहृदम् ॥२४॥

कन्यकागिरा	उस कन्याकी बातसे	**देवकीं च**	देवकी और
विश्रब्धः	विश्वस्त होकर	**वसुदेवं**	वसुदेवको
आत्मसौहृदं	अपना सौहार्द	**निगडात्**	बेड़ीसे
दर्शयन्	दिखलाता हुआ	**मोचयामास**	छुड़ा दिया ॥२४॥

भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षान्त्वा रोषं च देवकी ।
व्यसृजद् वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥२५॥

भ्रातुः सम अनुतप्तस्य क्षान्त्वा रोषं च देवकी व्यसृजत् वसुदेवः च प्रहस्य तं उवाच ह ॥२५॥

भ्रातुः	भाईको	**अनुतप्तस्य**	पछताते हुए देखकर
सम	बहुत	**देवकी**	देवकीका

क्षान्त्वा रोषं	क्रोध शान्त हो गया	**वसुदेवः च**	वसुदेवजीने भी
च	तथा	**प्रहस्य ह**	हँसकर ही
व्यसृजत्	(उसका अपराध) छोड़ (भूल) कर	**तं उवाच**	उससे बोले ॥२५॥

वसदेव उवाच*

एवमेतन्महाभाग यथा वदसि देहिनाम् ।
अज्ञानप्रभवाहंधीः स्वपरेति भिदा यतः ॥२६॥

एवं एतत् महाभाग यथा वदसि देहिनां अज्ञान प्रभवा अहं धीः स्व पर इति भिदा यतः ॥२६॥

महाभाग	महाभाग !	**अहं धीः**	अहंकारमयी बुद्धि
यथा वदसि	जैसा आप कहते हैं		होती है
एतत् एवं	यह (तथ्य) ऐसा ही है,	**यतः**	जिससे
		स्व पर	अपने-परायेका
देहिनां	शरीरधारियोंकी	**भिदा**	भेद (उत्पन्न होता)
अज्ञान प्रभवा	अज्ञानसे उत्पन्न		है ॥२६॥

शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः ।
मिथो घ्नन्तं न पश्यन्ति भावैर्भावं पृथग्दृशः ॥२७॥

शोक हर्ष भय द्वेष लोभ मोह मद अन्विताः मिथः घ्नन्तं न पश्यन्ति भावैः भावं पृथक् दृशः ॥२७॥

शोक हर्ष	शोक, हर्ष,	**भावैः**	एक भावसे दूसरे
भय द्वेष	भय, द्वेष,	**भावं**	भावको
लोभ मोह	लोभ, मोह	**मिथः घ्नन्तं**	परस्पर ही नष्ट
मद अन्विताः	मद युक्त		करते
पृथक् दृशः	भेद-दर्शी लोग	**पश्यन्ति न**	देखते नहीं ॥२७॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

श्रीशुक उवाच

कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः ।
देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद् गृहम् ॥२८॥

कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः देवकीवसुदेवाभ्यां अनुज्ञातः आविशत् गृहम् ॥२८॥

एवं	इस प्रकार	**अनुज्ञातः**	उनकी अनुमति पाकर
प्रसन्नाभ्यां	प्रसन्न होकर		
देवकी-	देवकी-	**कंस गृहं**	कंस अपने घर
वसुदेवाभ्यां	वसुदेव द्वारा	**आविशत्**	आ गया ॥२८॥
प्रतिभाषितः	उत्तर पाकर		

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंस आहूय मन्त्रिणः ।
तेभ्य आचष्ट तत् सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥२९॥

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंस आहूय मन्त्रिणः तेभ्य आचष्ट तत् सर्वं यत् उक्तं योगनिद्रया ॥२९॥

तस्यां रात्र्यां	उस रात्रिके	**यत्**	जो
व्यतीतायां	बीत जानेपर	**योगनिद्रया**	योगमायाने
कंस	कंसने	**उक्तं तत् सर्वं**	कहा था वह सब
मन्त्रिणः	मन्त्रियोंको	**तेभ्य आचष्ट**	उनसे सुनाया ॥२९॥
आहूय	बुलाकर		

आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः ।
देवान् प्रति कृतामर्षा दैतेया नातिकोविदाः ॥३०॥

आकर्ण्य भर्तुः गदितं तं ऊचुः देवशत्रवः देवान् प्रति कृत अमर्षा दैतेया न अति कोविदाः ॥३०॥

भर्तुः गदितं	अपने स्वामीकी बात	**कोविदाः न**	चतुर न होनेसे
आकर्ण्य	सुनकर	**देवान् प्रति**	देवताओंके प्रति
अति	अत्यन्त	**कृत अमर्षा**	क्रोध करके

देवशत्रवः	देवताओंके शत्रु	**तं ऊचुः**	उस (कंस) से बोले
दैतेया	दैत्य लोग		॥३०॥

दैत्या ऊचु*

एवं चेत्तर्हि भोजेन्द्र पुरग्रामव्रजादिषु ।
अनिर्दशान् निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून् ॥३१॥

एवं चेत् तर्हि भोजेन्द्र पुर ग्राम व्रज आदिषु अनिर्दशान् निर्दशान् च हनिष्यामः अद्य वै शिशून् ॥३१॥

भोजेन्द्र	भोजेन्द्र !	**च निर्दशान्**	और दस दिनसे बड़े हुए
एवं चेत् तर्हि	ऐसा हो तो भी		
पुर ग्राम	नगर, गाँव,	**शिशून् अद्य वै**	शिशुओंको आज ही
व्रज आदिषु	गोष्ठादिमें	**हनिष्यामः**	(हम) मार देंगे
अनिर्दशान्	दस दिनके न हुए		॥३१॥

किमुद्यमैः करिष्यन्ति देवाः समरभीरवः ।
नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥३२॥

किं उद्यमैः करिष्यन्ति देवाः समर भीरवः नित्यं उद्विग्न मनसः ज्याघोषैः धनुषः तव ॥३२॥

तव धनुषः	आपके धनुषकी	**समर भीरवः**	युद्ध भीरु
ज्याघोषैः	प्रत्यञ्चाके घोषसे	**देवाः किं**	देवता क्या
नित्यं उद्विग्न	सदा घबड़ाये	**उद्यमैः**	उद्योग
मनसः	मन वाले	**करिष्यन्ति**	कर लेंगे ॥३२॥

अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समन्ततः ।
जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥३३॥

अस्यतः ते शरव्रातैः हन्यमानाः समन्ततः जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥३३॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ते	आपके	जिजीविषव	जीना चाहनेवाले
शरव्रातैः	वाण समूहोंके	उत्सृज्य	(युद्ध) त्यागकर
अस्यतः	घोड़े जानेपर	पलायनपरा	भागनेमें लगकर
समन्ततः	चारों ओरसे	ययुः	चले गये ॥३३॥
हन्यमानाः	मारे जाते हुए (उनमें)		

केचित् प्राञ्जलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः ।
मुक्तकच्छशिखाः केचिद् भीताः स्म इति वादिनः ॥३४॥

केचित् प्राञ्जलयः दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः मुक्तकच्छ शिखाः केचित् भीताः स्म इति वादिनः ॥३४॥

दीना	बेचारे	शिखाः	और चोटी
दिवौकसः	देवताओंमें	न्यस्यशस्त्रा	हथियार डालकर
केचित्	कुछ	'भीताः स्म'	'हम डर गये हैं'
प्राञ्जलयः	हाथ जोड़कर	इति वादिनः	ऐसा कहने लगे ॥३४॥
केचित्	कुछ		
मुक्तकच्छ	खुली लांग		

न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान् विरथान् भयसंवृतान् ।
हंस्यन्यासक्तविमुखान् भग्नचापानयुध्यतः ॥३५॥

न त्वं विस्मृत शस्त्र अस्त्रान् विरथान् भय संवृतान् हंसि आसक्त विमुखान् भग्न चापान् अयुध्यतः ॥३५॥

शस्त्र अस्त्रान्	शस्त्र-अस्त्रोंको	विमुखान्	विमुख हो गये,
विस्मृत	(भयसे) चलाना भूल गये,	भग्न चापान्	धनुष टूटे हुओंको
विरथान्	रथहीन हुए,	अयुध्यतः	युद्ध न करने वालेको
भय संवृतान्	भयभीत हो गये,	त्वं न हंसि	आप नहीं मारते ॥३५॥
आसक्त	अपनेसे लड़तेसे		

किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकत्थनैः ।
रहोजुषा किं हरिणा शम्भुना वा वनौकसा ।
किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥३६॥

किं क्षेम शूरैः विबुधैः असंयुग विकत्थनैः रहः जुषा किं हरिणा शम्भुना वा वनौकसा किं इन्द्रेण अल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥३६॥

क्षेम	शान्तिके समय	वा वनौकसा	अथवा बनवासी
शूरैः	वीर बननेवाले,	शम्भुना	शंकरसे,
असंयुग	बिना युद्धके	अल्पवीर्येण	अल्प पराक्रम
विकत्थनैः	बकवाद करनेवाले,	इन्द्रेण वा	इन्द्रसे अथवा
विबुधैः किं	देवताओंसे क्या (भय)	तपस्यता	तपस्या करते
रहः जुषा	एकान्त सेवी	ब्रह्मणा किं	ब्रह्मासे ही क्या
हरिणा किं	हरिसे क्या (भय)		भय ॥३६॥

तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे ।
ततस्तन्मूलखनने नियुङ्क्ष्वास्माननुव्रतान् ॥३७॥

तथा अपि देवाः सापत्न्याः न उपेक्ष्या इति मन्महे ततः तत् मूल खनने नियुङ्क्ष्व अस्मान् अनुव्रतान् ॥३७॥

तथा अपि	ऐसा होनेपर भी	मूल खनने	जड़ खोदनेमें
सापत्न्याः देवाः	शत्रु देवता	अस्मान्	हम
उपेक्ष्या न	उपेक्षणीय नहीं हैं	अनुव्रतान्	अनुचरोंको
इति मन्महे	ऐसा हम मानते हैं,	नियुङ्क्ष्व	नियुक्त कीजिए
ततः तत्	इसलिए उनकी		॥३७॥

यथाऽऽमयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभि-
र्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम् ।
यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा
रिपुर्महान् बद्धबलो न चाल्यते ॥३८॥

यथा आमयः अंगे सम उपेक्षितः नृभिः न शक्यते रूढपदः चिकित्सितुं यथा इन्द्रियग्राम उपेक्षितः तथा रिपुः महान् बद्धबलः न चाल्यते ॥३८॥

यथा अंगे	जैसे शरीरमें हुआ	**इन्द्रियग्राम**	इन्द्रिय समूह
आमयः	रोग	**उपेक्षितः**	उपेक्षा करनेपर
नृभिः सम	मनुष्य द्वारा बहुत		(बलवान हो जाता
उपेक्षितः	उपेक्षा किये जानेपर		है)
रूढपदः	पैर जमा लेनेपर	**तथा महान्**	वैसे महान्
चिकित्सितुं	(उसकी) चिकित्सा	**बद्धबलः रिपुः**	बढ़े बलवाला शत्रु
	करना	**चाल्यते न**	विचलित नहीं किया
न शक्यते	शक्य नहीं होता,		जा पाता ॥३८॥
यथा	जैसे		

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः ।
तस्य च ब्रह्म गोविप्रास्तपो यज्ञाः सदक्षिणाः ॥३९॥

मूलं हि विष्णुः देवानां यत्र धर्मः सनातनः तस्य च ब्रह्म गो विप्राः तपः यज्ञाः सदक्षिणाः ॥३९॥

हि देवानां	क्योंकि देवताओंकी	**तस्य च**	उस (विष्णु) की भी
मूलं विष्णुः	जड़ विष्णु है,		(जड़)
यत्र	जिसमें	**ब्रह्म गो**	वेद, गौ,
सनातनः धर्मः	सनातन धर्म स्थित	**विप्राः तपः**	ब्राह्मण, तपस्या,
	है	**सदक्षिणाः**	दक्षिणा सहित
		यज्ञाः	यज्ञ हैं ।३९॥

तस्मात् सर्वात्मना राजन् ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः ।
तपस्विनो यज्ञशीलान् गाश्च हन्मो हविर्दुघाः ॥४०॥

तस्मात् सर्वात्मना राजन् ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः तपस्विनः यज्ञशीलान् गाः च हन्मः हविर्दुघाः ॥४०॥

राजन् तस्मात्	राजन् ! इसलिए	**तपस्विनः**	तपस्वी
ब्रह्मवादिन.	वेदवादी,	**यज्ञशीलान्**	यज्ञकर्ता

ब्राह्मणान्	ब्राह्मणोंको	**सर्वात्मना**	सब प्रकारसे
च हविर्दुधान्	और हव्य देनेवाली	**हन्मः**	हम मारेंगे ॥४०॥
गाः	गायोंको		

विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः ।
श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥४१॥

विप्रा गावः च वेदाः च तपः सत्यं दमः शमः श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवः च हरेः तनूः ॥४१॥

विप्रा च	ब्राह्मण और	**श्रद्धा दया**	श्रद्धा, दया,
गावः	गायें,	**च तितिक्षा**	तथा तितिक्षा
वेदाः च	वेद एवं	**च क्रतवः**	एवं यज्ञ
तपः	तपस्या,	**हरेः तनूः**	हरिके शरीर हैं
सत्यं दमः शमः	सत्य, दम, शम,		॥४१॥

स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विड् गुहाशयः ।
तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः सचतुर्मुखाः ।
अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥४२॥

स हि सर्वसुर अध्यक्षः हि असुर द्विट् गुहाशयः तत् मूला देवताः सर्वाः स ईश्वराः स चतुर्मुखाः अयं वै तत् वधः उपायः यत् ऋषीणां विहिंसनम् ॥४२॥

हि स	क्योंकि वह	**वै यत्**	निश्चय जो
सर्वसुर	सब देवताओंका	**ऋषीणां**	ऋषियोंको
अध्यक्षः	अध्यक्ष है और	**विहिंसनं**	मार देना है
हि	क्योंकि (वह)	**अयं तत्**	यह उसके
गुहाशयः	हृदय गुफामें रहता है,	**वधः उपायः**	वधका उपाय है
असुर द्विट्	असुरोंका द्रोही है,		॥४२॥

श्रीशुक उवाच

एवं दुर्मन्त्रिभिः कंसः सह सम्मन्त्र्य दुर्मतिः ।
ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥४३॥

एवं दुर्मन्त्रिभिः कंसः सह सम्मन्त्र्य दुर्मतिः ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाश आवृतः असुरः ॥४३॥

कालपाश	कालपाशसे
आवृतः असुरः	घिरा हुआ असुर
दुर्मतिः कंसः	दुर्मति कंसने
एवं	इस प्रकार
दुर्मन्त्रिभिः	कुटिल मन्त्रियोंके
सह सम्मन्त्र्य	साथ सलाह करके
ब्रह्महिंसां	ब्रह्म-हत्यामें
हितं मेने	अपना भला माना ॥४३॥

संदिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान् ।
कामरूपधरान् दिक्षु दानवान् गृहमाविशत् ॥४४॥

सन्दिश्य साधु लोकस्य कदने कदने प्रियान् कामरूप धरान् दिक्षु दानवान् गृहं आविशत् ॥४४॥

कामरूप	इच्छानुसार रूप
धरान्	धरनेवाले
कदन प्रियान्	हिंसाप्रिय
दानवान्	दानवोंको
साधु लोकस्य	सत्पुरुष लोगोंकी
दिक्षु	सब दिशाओंमें
कदने	हिंसा करनेका
सन्दिश्य	आदेश देकर
गृहं आविशत्	घरके भीतर चला गया ॥४४॥

ते वै रजःप्रकृतयस्तमसा मूढचेतसः ।
सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥४५॥

ते वै रजः प्रकृतयः तमसा मूढ चेतसः सतां विद्वेषं आचेरुः आरात् आगत मृत्यवः ॥४५॥

ते वै	निश्चय वे
रजः	रजोगुणी
प्रकृतयः	स्वभाववाले
तमसा	क्रोधसे
मूढ चेतसः	मूढ बुद्धि हुए
आरात्	(जिनके) समीप
मृत्यवः आगत	मृत्यु आ गयी थी
सतां विद्वेषं	सत्पुरुषोंसे शत्रुता
आचेरुः	करने लगे ॥४५॥

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥४६॥

आयुः श्रियं यशः धर्मं लोकान् आशिष एव च हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसः महत् अतिक्रमः ॥४६॥

महत्	**महापुरुषोंका**
अतिक्रमः	**अनादर**
पुंसः आयुः	**पुरुषकी आयु,**
श्रियं यशः धर्म	**लक्ष्मी, यश, धर्म,**
लोकान्	(स्वर्गादि) लोक
आशिष एव	कामनाओंकी भी
च सर्वाणि	और सभी
श्रेयांसि	श्रेयोंको
हन्ति	नष्ट कर देता है
	॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ।
आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलंकृतः ॥१॥

नन्दः तु आत्मज उत्पन्ने जात आह्लादः महामनाः आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिः अलङ्कृतः ॥१॥

आत्मज	पुत्रका	**वेदज्ञान् विप्रान**	वेदज्ञ ब्राह्मणोंको
उत्पन्ने तु	जन्म होनेसे तो	**आहूय**	बुलाकर
महामनाः	अत्यन्त उदार	**स्नातः**	स्नान करके
नन्दः	नन्दजीको	**शुचिः**	पवित्र होकर
आह्लादः जात	परमानन्द हुआ	**अलङ्कृतः**	आभूषित हुए ॥१॥

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ।
कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा ॥२॥

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्म आत्मजस्य वै कारयामास विधिवत् पितृ देव अर्चनं तथा ॥२॥

स्वस्त्ययनं	स्वस्तिपाठ	**तथा पितृ**	तथा पितरों
वाचयित्वा	करवाकर	**देव**	एवं देवताओंका
आत्मजस्य	पुत्रका	**अर्चनं**	पूजन
वै विधिवत्	निश्चित विधिपूर्वक	**कारयामास**	करवाया ॥२॥
जातकर्म	जात-कर्म संस्कार		

धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलंकृते ।
तिलाद्रीन् सप्त रत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान् ॥३॥

धेनूनां नियुते प्रादात् विप्रेभ्यः समृ अलङ्कृते तिल अद्रीन् सप्त रत्न ओघ शात कौम्भ अम्बर आवृतान् ॥३॥

समृ	भली प्रकार	**अम्बर**	वस्त्रोंसे
अलङ्कृते	सजायी हुई	**आवृतान्**	ढके
धेनूनां नियुते	बीस लाख गायें तथा	**सप्त तिल**	सात तिल
		अद्रीन्	पर्वत*
रत्न ओघ	रत्न समूह एवं	**विप्रेभ्यः**	ब्राह्मणोंको
शात कौम्भ	सुनहले कामयुक्त	**प्रादात्**	प्रदान किये ॥३॥

कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया ।
शुध्यन्ति दानैः सन्तुष्टचा द्रव्याण्यात्माऽऽत्मविद्यया ॥४॥

कालेन स्नान शौचाभ्यां संस्कारैः तपसा इज्यया शुध्यन्ति दानैः सन्तुष्टचा द्रव्याणि आत्मा आत्मविद्यया ॥४॥

द्रव्याणि	पदार्थ	**दानैः**	दान या
कालेन	समय पाकर,	**सन्तुष्टचा**	सन्तोषसे तथा
स्नान	स्नान (धोने),	**आत्मा**	आत्मा
शौचाभ्यां	पवित्र करने,	**आत्मविद्यया**	आत्म-ज्ञानसे
संस्कारैः	संस्कार करने,	**शुध्यन्ति**	शुद्ध होता है ॥४॥
तपसा इज्यया	तपस्या, यज्ञ,		

सौमंगल्यगिरो विप्राः सूतमागधवन्दिनः ।
गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः ॥५॥

सौमंगल्यगिरः विप्राः सूत मागध वन्दिनः गायकाः च जगुः नेदुः भेर्यः दुन्दुभयः मुहुः ॥५॥

विप्राः	ब्राह्मण	**सौमंगल्यगिरः**	आशीर्वाद देने लगे,

---

*जिस तिलकी ऊँची ढ़ेरीके दोनों ओर दो व्यक्ति खड़े, हों तो एक दूसरेको न देख सकें, उसे 'तिल पर्वत' कहते हैं ।

सूत मागध	सूत, मागध	**भेर्यः दुन्दुभयः**	भेरियां और नगाड़े
च वन्दिनः	तथा वन्दीजन*	**मुहुः नेदुः**	बार-बारबजने
गायकाः जगुः	आदि गायक गाने लगे,		लगे ॥५॥

व्रजः सम्मृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः ।
चित्रध्वजपताकास्त्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥६॥

व्रजः सम्मृष्ट संसिक्त द्वार अजिर गृह अन्तरः चित्र ध्वज पताका स्त्रक् चैल पल्लव तोरणैः ॥६॥

व्रजः द्वार	व्रजके सब द्वार	**चित्र**	अनेक प्रकारकी
अजिर	आंगन	**ध्वज**	ध्वजा,
गृह अन्तरः	घरके भीतरी भाग	**पताका स्त्रक्**	पताका, माला तथा
सम्मृष्ट	स्वच्छ करके	**चैल पल्लव**	वस्त्रों और पल्लवोंके
संमिक्त	(चन्दनादिसे) छिड़क कर सींचे गये,	**तोरणैः**	बन्दनवारोंसे सजाये गये ॥६॥

गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः ।
विचित्रधातुबर्हस्त्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिनः ॥७॥

गावः वृषा वत्सतरा हरिद्रा तैल रूषिताः विचित्र धातु बर्ह स्त्रक् वस्त्र काञ्चन मालिनः ॥७॥

गावः वृषा	गायों, बैलों,	**बर्ह स्त्रक्**	मयूर पंख, माला,
वत्सतरा	बछड़े	**वस्त्र**	वस्त्र तथा
हरिद्रा तैल	हल्दी मिले तेलसे	**काञ्चन**	स्वर्ण
रूषिता	रंगे हुए	**मालिनः**	मालाओंसे (सजाये
विचित्र	(गेरू आदि) अनेक		गये ॥७॥
धातु	धातुओंसे,		

---

* सूता पौराणिकाः प्रोक्ता मागधाः वंश शंसकाः ।
वन्दिनः तु अमल प्रज्ञाः प्रस्ताव मदृशोक्तयः ॥

१-सूत पुराणोंके कथा वाचक होते हैं। २-मागध वंशवली वर्णन करते हैं और ३-वन्दी प्रसंगानुसार नवीन या पुरानी कविता पाठ करते हैं।

महार्हवस्त्राभरणकञ्चुकोष्णीषभूषिताः ।
गोपाः समाययू राजन् नानोपायनपाणयः ॥८॥

महा अर्ह वस्त्र आभरण कञ्चुक उष्णीष भूषिताः गोपाः सम आययु राजन् नाना उपायन पाणयः ॥८॥

राजन्	राजन् !	**नाना**	अनेक प्रकारके
महा अर्ह	बहु मूल्य	**उपायन**	उपहार
वस्त्र आभरण	वस्त्र, आभूषण,	**पाणयः**	हाथोंमें लेकर
कञ्चुक	कुर्ते,	**गोपाः सम**	गोप एक साथ
उष्णीष	पगड़ीसे	**आययु**	आये ॥८॥
भूषिताः	सुशोभित		

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ।
आत्मानं भूषयांचक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः ॥९॥

गोप्यः च आकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुत उद्भवं आत्मानं भूषयान् चक्रुः वस्त्र आकल्प अञ्जन आदिभिः ॥९॥

गोप्यः च	गोपियाँ भी	**अञ्जन**	अञ्जन
यशोदायाः	यशोदाके	**आदिभिः**	आदिसे
सुत उद्भवं	पुत्र-उत्पन्न होना	**आत्मानं**	अपनेको
आकर्ण्य	सुनकर	**भूषयान् चक्रुः**	आभूषित किया ॥९॥
मुदिता	प्रसन्न होकर		
वस्त्र आकल्प	वस्त्र, अंगराग,		

नवकुंकुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतयः ।
बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥१०॥

नव कुंकुम किञ्जल्क मुख पङ्कज भूतयः बलिभिः त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यः चलत् कुचाः ॥१०॥

नव कुङ्कुम	नवीन केशरके	**भूतयः**	सुशोभित
किञ्जल्क	परागसे	**पृथुश्रोण्यः**	स्थूल नितम्ब
मुख पङ्कज	मुख-कमल	**चलत्**	एवं हिलते

कुचाः	पयोधर वाली वे	त्वरितं	शीघ्रतापूर्वक
बलिभिः	उपहार लिये	जग्मुः	चलीं ॥१०॥

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्य-
श्चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ।
नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजु-
र्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः ॥११॥

गोप्यः सुमृष्ट मणिकुण्डल निष्ककण्ठ्यः चित्र अम्बराः पथि शिखा च्युत माल्य वर्षाः नन्द आलयं सवलया व्रजतीः विरेजुः व्यालोल कुण्डल पयोधर हार शोभाः ॥११॥

सुमृष्ट	उज्ज्वल	व्यालोल	चञ्चल
मणिकुण्डल	मणिमय कुण्डल,	कुंडल	कुण्डल तथा
निष्ककण्ठ्यः	गलेमें पदिक सहित हार,	पयोधर हार	पयोधरोंपर हारसे
		शोभाः	शोभित
चित्र	अनेक रंगोंके	गोप्यः	गोपियां
अम्बराः	वस्त्र पहिने,	नन्द आलयं	नन्द-भवन
शिखा च्युत	जूड़ेमें से गिरते	व्रजतीः	जाती हुई
पथि	मार्गमें	विरेजुः	अत्यन्तु शोभित हुईं ॥११॥
माल्य वर्षाः	मालाएँ बरसाती		
सवलया	कंकण पहिने,		

ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके ।
हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः ॥१२॥

ता आशिषः प्रयुञ्जानाः चिरं पाहि इति बालके हरिद्रा चूर्ण तैल अद्भिः सिञ्चन्त्यः जनं उज्जगुः ॥१२॥

'चिरं पाहि'	'बहुत दिनों तक हमारी रक्षा करना'	बालके	बालकको
		आशिषः	आशीर्वाद
इति	इस प्रकार	प्रयुञ्जानाः	देती हुई

हरिद्रा चूर्ण	हल्दीके चूर्ण	**उज्जगुः**	उच्च स्वरसे गाने
तैल अद्भिः	तेल और पानीसे		लगीं ॥१२॥
जनं सिञ्चन्त्यः	लोगोंको भिगाती हुई		

अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे ।
कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते ॥१३॥

अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे कृष्णे विश्वेश्वरे अनन्ते नन्दस्य व्रजं आगते ॥१३॥

विश्वेश्वरे	विश्वेश्वर	**विचित्राणि**	अनेक प्रकारके
अनन्ते कृष्णे	अनन्त श्रीकृष्णके	**वादित्राणि**	बाजे
नन्दस्य व्रजं	नन्द-व्रजमें	**महोत्सवे**	महोत्सवमें
आगते	आनेपर	**अवाद्यन्त**	बजने लगे ॥१३॥

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः ।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥१४॥

गोपाः परस्परं हृष्टा दधि क्षीर घृत अम्बुभिः आसिञ्चन्तः विलिम्पन्तः नवनीतैः च चिक्षिपुः ॥१४॥

हृष्टा गोपाः	हर्षित गोप	**विलिम्पन्तः**	पोतते हुए
परस्परं	परस्पर	**नवनीतैः**	मक्खन
दधि क्षीर	दही, दूध,	**च**	भी (एक दूसरेपर)
घृत अम्बुभिः	घी और पानी	**चिक्षिपुः**	फेंकने लगे ॥१४॥
आसिञ्चन्तः	उलीचते,		

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलंकारगोधनम् ।
सूतमागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥१५॥

नन्दः महामनाः तेभ्यः वासः अलङ्कार गो धनं सूत मागध वन्दिभ्यः ये अन्ये विद्या उपजीविनः ॥१५॥

महामनाः	परमोदार
नन्दः	नन्दजीने
तेभ्यः वासः	उनको वस्त्र,
अलङ्कार	आभूषण
गो धनं	गायें, धन (दिया तथा)
सूत मागध	सूत, मागध,
वन्दिभ्यः	वन्दियोंको और
ये अन्ये	जो दूसरे
विद्या	(नृत्य-गीतादि) विद्याओंसे
उपजीविनः	जीविका चलाने वाले थे ॥१५॥

तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ।
विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥१६॥

तैः तैः कामैः अदीन आत्मा यथा उचितं अपूजयत् विष्णोः आराधना अर्थाय स्वपुत्रस्य उदयाय ॥१६॥

तैः तैः	उन-उनकी
कामैः	इच्छाके अनुसार
अदीन आत्मा	बिना कृपण चित्त हुए
यथा उचितं	उचित रूपसे
विष्णोः	श्रीहरिकी
आराधना	आराधनाके
अर्थाय	लिये
च	तथा
स्वपुत्रस्य	अपने पुत्रके
उदयाय	अभ्युदयके लिए
अपूजयत्	(उनका) सत्कार किया ॥१६॥

रोहिणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता ।
व्यचरद् दिव्यवासः स्रक्कण्ठाभरणभूषिता ॥१७॥

रोहिणी च महाभागा नन्द गोप अभिनन्दिता व्यचरत् दिव्यवासः स्रक् कण्ठाभरण भूषिता ॥१७॥

नन्द गोप	नन्द गोपसे
अभिनन्दिता	सत्कृता
महाभागा	महाभागा
रोहिणी च	रोहिणी भी
दिव्यवासः	दिव्य वस्त्र,
स्रक्	माला,
कण्ठाभरण	कण्ठाभरणसे
भूषिता	आभूषिता,
व्यचरत्	इधर-उधर (गोपियों-के सत्कारको) घूम रही थीं ॥१७॥

ततः आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ।
हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥१८॥

ततः आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्व समृद्धिमान् हरेः निवास आत्म गुणै रमा आक्रीडं अभूत नृप ॥१८॥

नृप	राजन् !	**समृद्धिमान्**	सम्पत्तियुक्त
ततः	उसी समयसे	**हरेः निवास**	श्रीहरिके निवास एवं
आरभ्य	आरम्भ करके	**आत्म गुणै**	अपने गुणसे
नन्दस्य व्रजः	नन्द-व्रज	**रमा आक्रीडं**	लक्ष्मीका क्रीड़ास्थल
सर्व	सब	**अभूत्**	हो गया ॥१८॥

गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ।
नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥१९॥

गोपान् गोकुल रक्षायां निरूप्य मथुरां गतः नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥१९॥

कुरूद्वह	कुरुकुल पालक परीक्षित् !	**कंसस्य वार्षिक्यं**	कंसका वार्षिक
गोकुल	गोकुलकी	**करं दातुं**	कर देने
रक्षायां	रक्षाके लिए	**नन्दः मथुरां**	नन्दजी मथुरा
गोपान् निरूप्य	गोपोंको नियुक्त करके	**गतः**	गये ॥१९॥

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम् ।
ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥२०॥

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दं आगतं ज्ञात्वा दत्त करं राज्ञे ययौ तत् अवमोचनम् ॥२०॥

भ्रातरं नन्दं	भाई नन्दको	**ज्ञात्वा**	यह जानकर
आगतं उपश्रुत्य	आया सुनकर और	**तत्**	उनके
राज्ञे दत्त करं	राजाको कर दे दिया	**अवमोचनं**	उतरनेके स्थानपर
		ययौ	आये ॥२०॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम् ।
प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥२१॥

तं दृष्ट्वा सहसा उत्थाय देहः प्राणं इव आगतं प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेम विह्वलः ॥२१॥

प्रियतमं	आत्यन्त प्रिय	**प्रीतः**	प्रसन्न होकर
तं दृष्ट्वा	उन्हें देखकर	**दोर्भ्यां**	भुजाओंसे
देहः प्राणं	शरीरमें प्राण	**प्रेम**	प्रेमसे
आगतं इव	आ गये के समान	**विह्वलः**	विह्वल होकर
सहसा	सहसा	**सस्वजे**	आलिंगन किया
उत्थाय	खड़े होकर		॥२१॥

पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वानामयमादृतः ।
प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशाम्पते ॥२२॥

पूजितः सुखं आसीनः पृष्ट्वा अनामयं आदृतः प्रसक्तधीः स्व आत्मजयोः इदं आह दिशांपते ॥२२॥

दिशांपते	राजन् !	**पृष्ट्वा**	पूछकर
पूजितः	सत्कृत होकर,	**स्व आत्मजयोः**	अपने पुत्रोंमें
सुखं आसीनः	सुखपूर्वक बैठकर	**प्रसक्तधीः**	आसक्त चित्त होनेसे
अनामयं	स्वास्थ्य प्रश्न	**इदं आह**	यह बोले ॥२२॥

वसुदेव उवाच*

दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ।
प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत् समपद्यत ॥२३॥

दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीं अप्रजस्य ते प्रजा आशाया निवृत्तस्य प्रजा यत् समपद्यत ॥२३॥

भ्रातः	भाई !	**ते अप्रजस्य**	तुम निःसन्तानको
प्रवयस	बड़ी आयुके हो जानेपर	**प्रजा आशाया**	सन्तान होनेकी आशा

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

निवृत्तस्य	छूट जानेपर	**समपद्यत**	प्राप्त हो गयी ॥२३॥
दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है		
यत् प्रजा	जो सन्तान		

दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन् वर्तमानः पुनर्भवः ।
उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥२४॥

दिष्ट्या संसार चक्रे अस्मिन् वर्तमानः पुनर्भवः उपलब्धः भवान् अद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥२४॥

दिष्ट्या	(यह भी) सौभाग्य-की बात है कि	**भवान् अद्य**	आप आज
अस्मिन्	इस	**उपलब्धः**	मिल गये; क्योंकि
संसार चक्रे	संसार-चक्रमें	**प्रियदर्शनं**	प्रियका दर्शन
वर्तमानः	रहते हुए	**दुर्लभं**	दुर्लभ होता है ॥२४॥
पुनर्भवः	पुनर्जन्मके समान		

नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् ।
ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा ॥२५॥

न एकत्र प्रिय संवासः सुहृदां चित्र कर्मणां ओघेन व्यूहचमानानां प्लवानां स्रोतसः यथा ॥२५॥

यथा	जैसे	**चित्र कर्मणां**	विभिन्न प्रारब्धवाले
स्रोतसः	स्रोतके	**प्रिय सुहृदां**	प्रिय सुहृदोंका
ओघेन	बाढ़से	**एकत्र संवासः**	एक साथ निवास
व्यूहचमानानां	बहाये जाते हुए	**न**	नहीं हो पाता ॥२५॥
प्लवानां	तैरने वालों (तृण-काष्ठादि) का		

कच्चित् पशव्यं निरुजं भूर्यम्बुतृणवीरुधम् ।
बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः ॥२६॥

कच्चित् पशव्यं निरुजं भूरि अम्बु तृण वीरुधं बृहद्वनं तत् अधुना यत्र आस्से त्वं सुहृत वृतः ॥२६॥

यत्र त्वं	जहां तुम	**पशव्यं**	पशुओंके योग्य
सुहृत् वृतः	सुहृदोंसे घिरे	**निरुजं**	रोगहीन
अधुना	इस समय	**भूरि अम्बु**	बहुत जल,
आस्से	रह रहे हो	**तृण वीरुधं**	घास, पौधोंयुक्त
तत् बृहद्वनं	वह बृहद्वन	**कच्चित्**	है तो सही ॥२६॥

भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे ।
तातं भवन्तं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ॥२७॥

भ्रातः मम सुतः कच्चित् मात्रा सह भवत् व्रजे तातं भवन्तं मन्वानः भवत् भ्यां उपलालितः ॥२७॥

भ्रातः मम सुतः	भाई मेरा पुत्र	**भवन्तं तातं**	आपको ही पिता
मात्रा सह	अपनी माताके साथ	**मन्वानः**	मानता हुआ
भवत् व्रजे	आपके व्रजमें	**कच्चित्**	कुशलपूर्वक तो है
भवत्भ्यां	आप दोनोंके द्वारा		॥२७॥
उपलालितः	लालन-पालन पाकर		

पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः ।
न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥२८॥

पुंसः त्रिवर्गः विहितः सुहृदः हि अनुभावितः न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गः अर्थाय कल्पते ॥२८॥

हि	क्योंकि	**तेषु**	उन (सुहृदों) के
पुंसः	पुरुषके लिये	**क्लिश्यमानेषु**	कष्ट पाते हुए
सुहृदः	सुहृदोंको	**त्रिवर्गः**	अर्थ, धर्म, काम
अनुभावितः	प्रसन्न करनेवाला		(कोई)
त्रिवर्गः	अर्थ, धर्म, काम	**अर्थाय**	लाभ देनेवाला
विहितः	शास्त्र सम्मत है,	**न कल्पते**	नहीं होता ॥२८॥

नन्द उवाच

अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः ।
एकावशिष्टावरजा कन्या सापि दिवं गता ॥२९॥

अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवः हताः एका अवशिष्टा अवरजा कन्या सा अपि दिवं गता ॥२९॥

अहो ते	हाय, तुम्हारे
देवकीपुत्रा	देवकीसे हुए पुत्र
बहवः	बहुतसे
कंसेन	कंस द्वारा
हताः	मार दिये गये,
एका अवरजा	एक सबसे छोटी
कन्या	कन्या
अवशिष्टा	बची थी
स अपि	वह भी
दिवं गता	स्वर्ग चली गयी ॥२९॥

नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः ।
अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ॥३०॥

नूनं हि अदृष्ट निष्ठः अयं अदृष्ट परमः जनः अदृष्टं आत्मनः तत्त्वं यः वेद न स मुह्यति ॥३०॥

नूनं अयं जनः	निश्चय यह मनुष्य
अदृष्ट निष्ठः	भाग्याधीन है,
अदृष्ट	भाग्यपर
परमः	अवलम्बित है
हि यः	क्योंकि जो
आत्मनः	अपना
तत्त्वं	तत्त्व (मुख्य कारण)
अदृष्टं वेद	भाग्यको जानता है
स मुह्यति	वह मोहित
न	नहीं होता ॥३०॥

वसुदेव उवाच

करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ।
नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले ॥३१॥

करः वै वार्षिकः दत्तः राज्ञे दृष्टा वयं च वः न इह स्थेयं बहुतिथं सन्ति उत्पाताः च गोकुले ॥३१॥

वै राज्ञे	निश्चय राजाको
वार्षिकः करः	वार्षिक कर
दत्तः	(आपने) दे दिया
च	और
वः वयं दृष्टा	(आप लोग) मुझसे भी मिल चुके,
इह बहुतिथं	यहां बहुत समय
न	नहीं
स्थेयं	ठहरना चाहिए (क्योंकि)
गोकुले	गोकुलमें तो
उत्पाताः सन्ति	उत्पात हैं ॥३१॥

श्रीशुक उवाच

इति नन्दादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ।
अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥३२॥

इति नन्द आदयः गोपाः प्रोक्ताः ते शौरिणा ययुः अनोभिः अनडुद्युक्तैः तं अनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥३२॥

इति	इस प्रकार	**तं**	उनसे
शौरिणा	शूरनन्दन वसुदेवजी द्वारा	**अनुज्ञाप्य**	अनुमति लेकर
		अनडुद्युक्तैः	बैलोंको जोतकर
प्रोक्ताः ते	कहे जानेपर वे	**अनोभिः**	छकड़ों द्वारा
नन्द आदयः	नन्द आदि	**गोकुलं ययुः**	गोकुल चल पड़े
गोपाः	गोप		॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्द-वसुदेवसङ्गमो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन् ।
हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशंकितः ॥१॥

नन्दः पथि वचः शौरेः न मृषा इति विचिन्तयन् हरिं जगाम शरणं उत्पात आगम शङ्कितः ॥१॥

पथि नन्दः	मार्गमें नन्दजी	**उत्पात आगम**	उत्पात आनेकी
शौरेः वचः	वसुदेवजीकी बात	**शङ्कितः**	आशंकासे
मृषा न	झूठी नहीं होगी	**हरिं शरणं**	श्रीहरिकी शरण
इति	इस प्रकार	**जगाम**	गये ॥१॥
विचिन्तयन्	सोचते हुए		

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी ।
शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु ॥२॥

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बाल घातिनी शिशून् चचार निघ्नन्ती पुर ग्राम व्रज आदिषु ॥२॥

कंसेन प्रहिता	कंसकी भेजी हुई	**व्रज आदिषु**	व्रज आदिमें
बाल घातिनी	बालघातिनी	**शिशून्**	शिशुओंको
घोरा	भयंकरी	**निघ्नन्ती**	मारती हुई
पूतना	पूतना राक्षसी	**चचार**	घूमने लगी ॥२॥
पुर ग्राम	नगर, गांव,		

न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु ।
कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥३॥

न यत्र श्रवण आदीनि रक्षः घ्नानि स्वकर्मसु कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुः यातुधान्यः च तत्र हि ॥३॥

यत्र	जहां	**आदीनि**	आदि
स्वकर्मसु	अपने नित्य-कर्ममें	**न कुर्वन्ति**	लोग नहीं करते
रक्षः घ्नानि	राक्षसादि भय नाशक	**हि**	क्योंकि
		यातुधान्यः च	राक्षसियां भी
सात्वतां	भक्तोंके अधीश्वर	**तत्र**	वहीं (प्रबल होती) हैं ॥३॥
भर्तुः	भगवानका		
श्रवण	श्रवण (कीर्तन)		

सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम् ।
योषित्वा माययाऽऽत्मानं प्राविशत् कामचारिणी ॥४॥

सा खेचरि एकदा उपेत्य पूतना नन्द गोकुलं योषित्वा मायया आत्मानं प्राविशत् कामचारिणी ॥४॥

सा काम	वह इच्छानुसार	**मायया**	मायासे
चारिणी	घूमनेवाली	**आत्मानं**	अपनेको
खेचरि	आकाश गामिनी	**योषित्वा**	(सुन्दरी) स्त्री बनकर
पूतना	पूतना		
नन्द गोकुलं	नन्द गोकुलके	**प्राविशत्**	(गोकुलमें) घुस गयी ॥४॥
एकदा	एक बार		
उपेत्य	समीप आकर		

तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां
बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् ।
सुवाससं कम्पितकर्णभूषण-
त्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डितानना म् ॥५॥

तां केशबन्ध व्यतिषक्त मल्लिकां बृहत् नितम्ब स्तन कृच्छ्र मध्यमां सुवाससं कम्पित कर्ण भूषण त्विषा उल्लसत् कुन्तल मण्डित आननाम् ॥५॥

तां केशबन्ध	उसे जूड़ेमें	**बृहत्**	बड़े
मल्लिकां	चमेलीके पुष्प	**नितम्ब स्तन**	नितम्ब और स्तन,
व्यतिषक्त	लगाये,	**कृच्छ्र**	पतले

मध्यमां	मध्य भाग (कटि) वाली	**त्विषा**	कान्तिसे
सुवाससं	उत्तम वस्त्रवाली	**उल्लसत्**	शोभित
कम्पित	हिलते	**कुन्तल मण्डित**	अलकोंसे भूषित
कर्ण भूषण	कर्णाभरणोंकी	**आननां**	मुखवाली ॥५॥

वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितै-
र्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम् ।
अमंसताम्भोजकरेण रूपिणीं
गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥६॥

वल्गुस्मित अपांग विसर्ग वीक्षितैः मनः हरन्तीं वनितां व्रजौकसां अमंसत अम्भोज करेण रूपिणीं गोप्यः श्रियं द्रष्टुं इव आगतां पतिम् ॥६॥

वल्गुस्मित	मनोहर मुस्कान,	**करेण**	कारण
अपांग विसर्ग	कटाक्षपात पूर्वक	**गोप्यः**	गोपियोंने
वीक्षितैः	देखनेसे	**पतिं**	अपने पतिको
व्रजौकसां	व्रजवासियोंकी	**द्रष्टुं आगतां**	देखने आयी
वनितां	स्त्रियोंका	**रूपिणीं**	स्वरूप धारिणी
मनः हरन्तीं	मन-हरण करती हुई को	**श्रियं इव**	लक्ष्मीके समान
अम्भोज	हाथमें कमल होनेके	**अमंसत**	मान लिया ॥६॥

बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्
यदृच्छया नन्दगृहेऽसदन्तकम् ।
बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं
ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ॥७॥

बालग्रहः तत्र विचिन्वती शिशून् यदृच्छया नन्दगृहे असत् अन्तकं बालं प्रतिच्छन्न निज उरुतेजसं ददर्श तल्पे अग्नि इव आहितं भसि ॥७॥

बालग्रहः	वह बाल ग्रह (पूतना)
तत्र	वहां (गोकुलमें)
शिशून्	शिशुओंको
विचिन्वती	ढूंढ़ती हुई
यदृच्छया	स्वेच्छापूर्वक
नन्दगृहे	नन्द-भवनमें (जाकर)
भसि	भस्ममें
अग्नि इव	अग्निकी भांति
आहितं	छिपे हुए
असत् अन्तकं	दुष्टोंके काल
निज उरुतेजसं	अपने प्रचण्ड तेजको
प्रतिच्छन्न	छिपाये हुए
बालं	बालकको
तल्पे	शय्यापर (सोये)
ददर्श	देखा ॥७॥

विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं
चराचरात्माऽऽस निमीलितेक्षणः ।
अनन्तमारोपयदंकमन्तकं
यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ॥८॥

विबुध्य तां बालक मारिका ग्रहं चर अचर आत्मा आस निमीलित ईक्षणः अनन्तं आरोपयत् अंकं अन्तकं यथा उरगं सुप्तं अबुद्धि रज्जु-धीः ॥८॥

तां बालक	उस वालकोंकी
मारिका ग्रहं	मारिका ग्रहको
विबुध्य	पहिचान कर
आस चर अचर	उन चराचर
आत्मा	जगतके आत्माने
ईक्षणः	नेत्र
निमीलित	बन्द कर लिए,
यथा सुप्तं	जैसे सोये
उरगं	सर्पको
रज्जुधीः	रस्सी समझकर
अबुद्धिः	कोई अज्ञानी (उठा ले वैसे)
अन्तकं	अपने काल उन
अनन्तं	अनन्तको
अङ्कं	(उसने) गोदमें
आरोपयत्	उठा लिया ॥८॥

तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां
वीक्ष्यान्तरा कोशपरिच्छदासिवत् ।
वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते
निरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठताम् ॥९॥

तां तीक्ष्ण चित्तां अतिवाम चेष्टितां वीक्ष्य अन्तरा कोश परिच्छता असिवत् वरस्त्रियं तत् प्रभया च धर्षिते निरीक्षमाणे जननी हि अतिष्ठताम् ॥९॥

अन्तरा कोश	म्यानके भीतर	**च तत् प्रभया**	तथा उनके तेजसे
परिच्छता	छिपी हुई	**हि**	क्योंकि
असिवत्	तलवारके समान	**धर्षिते**	स्तम्भित हो गयी थीं
तां तीक्ष्ण	उस घोर	**जननी**	दोनों माताएँ (यशोदा-रोहिणी)
चित्तां	चित्तवाली	**निरीक्षमाणे**	देखती हुई भी
अतिवाम	अत्यन्त उलटी	**अतिष्ठतां**	खड़ी रह गयीं ॥९॥
चेष्टितां	चेष्टा करने वाली		
वरस्त्रियं	श्रेष्ठ महिला जैसी		

तस्मिन् स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं
घोरांकमादाय शिशोर्ददावथ ।
गाढं कराभ्यां भगवान् प्रपीड्य तत्
प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥१०॥

तस्मिन् स्तनं दुर्जर वीर्यं उल्बणं घोरा अङ्कम् आदाय शिशोः ददाः अथ गाढं कराभ्यां भगवान् प्रपीडच तत् प्राणैः समं रोष सम् अन्वितः अपिबत् ॥१०॥

घोरा	उस उग्रा (पूतना) ने	**स्तनं ददाः**	स्तन दे दिया
शिशोः	शिशुको	**अथ कराभ्यां**	फिर हाथोंसे
अङ्कं आदाय	गोदमें लेकर	**गाढं प्रपीडच**	जोरसे दबाकर
तस्मिन्	उसके (मुखमें)	**रोष**	रोषसे
दुर्जर	न पचनेवाला	**सम् अन्वितः**	पूरे भरकर
उल्बणं	अत्यन्त	**भगवान् तत्**	भगवान् उन्हें
वीर्यं	तीक्ष्ण प्रभाववाले (विष लिप्त)	**प्राणैः समं**	प्राणोंके साथ
		अपिबत्	पीने लगे ॥१०॥

सा मुंच मुञ्चालमिति प्रभाषिणी
निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि ।

विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः
प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥११॥

सा मुञ्च मुञ्च अलं इति प्रभाषिणी निष्पीड्यमाना अखिल जीव मर्मणि विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्न गात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥११॥

अखिल जीव	जीवके सब	**प्रस्विन्न**	पसीनेसे भरे
मर्मणि	मर्म स्थानोंमें	**गात्रा**	शरीर वाली
निष्पीड्यमाना	अत्यन्त पीड़ा होनेसे	**विवृत्य नेत्रे**	फैले नेत्रवाली
मुञ्च मुञ्च	छोड़-छोड़	**मुहुः चरणौ**	बार-बार पैर और
अलं इति	बस कर, इस प्रकार	**भुजौ क्षिपती**	हाथ पटकती
प्रभाषिणी	पुकारती हुई	**रुरोद ह**	रोने ही लगी
सा	वह		॥११॥

तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा
साद्रिर्महो द्यौश्च चचाल सग्रहा ।
रसा दिशश्च प्रतिनेदिरे जनाः
पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशंकया ॥१२॥

तस्याः स्वनेन अति गभीर रंहसा स अद्रिः मही द्यौः च चचाल सग्रहा रसा दिशः च प्रतिनेदिरे जनाः पेतुः क्षितौ वज्र निपात शङ्कया ॥१२॥

अति	अत्यन्त	**रसा च**	पाताल और
गभीर रंहसा	गंभीर वेग वाले	**दिशः**	दिशाएँ
तस्याः स्वनेन	उसके (रुदन) शब्दसे	**प्रतिनेदिरे**	गूंजने लगीं,
स अद्रिः	पर्वतोंके साथ	**वज्र निपात**	वज्रपात होनेकी
मही च द्यौः	पृथ्वी तथा आकाश	**शङ्कया**	आशङ्कासे
सग्रहा	ग्रहोंके साथ	**जनाः क्षितौ**	लोग पृथ्वीपर
चचाल	हिलने लगे,	**पपात**	गिर पड़े ॥१२॥

निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसु-
र्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि ।

प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता
वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥१३॥

निशाचरी इत्थं व्यथित स्तना व्यसुः व्यादाय केशान् चरणौ भुजाः अपि प्रसार्य गोष्ठे निज रूपं आस्थिता वज्र आहतः वृत्र इव अपतन् नृप ॥१३॥

नृप	राजन् !	**निज**	अपने वास्तविक
इत्थं स्तना	इस प्रकार स्तनोंमें	**रूपं**	रूपको
व्यथित	पीड़ा होनेसे	**आस्थिता**	धारण करके
निशाचरी	(वह) राक्षसी	**व्यसुः**	निष्प्राण होकर
व्यादाय	मुख फाड़े,	**वज्र आहतः**	वज्रसे मारे गये
केशान्	केशोंको	**वृत्र इव**	वृत्रासुरकी भांति
चरणौ	पैरों और	**गोष्ठे**	गोष्ठमें
भुजाः अपि	भुजाओंको भी	**अपतन्**	गिर पड़ी ॥१३॥
प्रसार्य	फलाकर		

पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् ।
चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत् तदद्भुतम् ॥१४॥

पतमानः अपि तत् देहः त्रिगव्यूति अन्तर द्रुमान् चूर्ण यामास राजेन्द्र महत् आसीत् तत् अद्भुतम् ॥१४॥

राजेन्द्र	महाराज !	**अन्तर द्रुमान्**	बीचके वृक्षोंको
तत् देहः	उसके शरीरने	**चूर्ण यामास**	कुचल डाला
पतमानः अपि	गिरते हुए भी	**तत् महत्**	यह भारी
त्रिगव्यूति	तीव गव्यूति (छः कोस) के	**अद्भुतं**	अद्भुत
		आसीत्	(घटना) हुई ॥१४॥

ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकन्दरनासिकम् ।
गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥१५॥

ईषामात्र उग्रदंष्ट्र आस्यं गिरिकन्दर नासिकं गण्डशैल स्तनं रौद्रं प्रकीर्ण अरुण मूर्धजम् ॥१५॥

इषामात्र	हलके लोहेके बराबर
उग्रदंष्ट्र	तीक्ष्ण दांतोंवाला
आस्यं	मुख,
गिरिकन्दर	पर्वतकी गुफाके समान
नासिकं	नाक,
गण्डशैल	पर्वतकी शिला जैसे
रौद्रं स्तनं	भयानक स्तन तथा
प्रकीर्ण	फैले हुए
अरुण	लाल रंगके
मूर्धजं	केश थे ॥१५॥

अन्धकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम् ।
बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रि शून्यतोयह्रदोदरम् ॥१६॥

अन्ध कूप गभीर अक्षं पुलिन आरोह भीषणं बद्धसेतु भुजः उरु अंघ्रि शून्य तोय ह्रद उदरम् ॥१६॥

अन्ध	अन्धे (जलहीन)
कूप	कुएँके समान
गभीर अक्षं	गड्ढेमें घुसे नेत्र,
पुलिन आरोह	नदीके कगारके समान
भीषणं भुजः	भयानक भुजाएँ
बद्धसेतु	पुल बँधे समान
उरु अंघ्रि	जांघें और पैर तथा
शून्य तोय	जलहीन
ह्रद	सरोवरके समान
उदरम्	पेट था ॥१६॥

संतत्रसुः स्म तद् वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम् ।
पूर्वं तु तन्निःस्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥१७॥

सन्तत्रसुः स्म तत् वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरं पूर्वं तु तत् निःस्वनित भिन्न हृत् कर्ण मस्तकाः ॥१७॥

पूर्वं तु	पहिले ही
तत् निःस्वनित	उसके चीत्कारने
भिन्न हृत्	जिनके हृदय
कर्ण मस्तकाः	कर्ण और सिर मानो फट गये थे
गोपा गोप्य	वे गोप-गोपियां
तत्	उस (पूतना) के
कलेवरं	शरीरको
वीक्ष्य	देखकर
सन्तत्रसुः स्म	भयभीत हो गये ॥१७॥

बालं च तस्या उरसि क्रीडन्तमकुतोभयम् ।
गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसम्भ्रमाः ॥१८॥

बालं च तस्या उरसि क्रीडन्तं अकुतः भयं गोप्यः तूर्णं सम् अभ्येत्य जगृहुः जात सम्भ्रमाः ॥१८॥

तस्या उरसि	उसकी छातीपर	**गोप्यः तूर्णं**	गोपियोंने झटपट
अकुतः भयं	निर्भय	**सम् अभ्येत्य**	एक साथ समीप आकर
बालं च	बालकको भी		
क्रीडन्तं	खेलते हुए (देखकर)	**जगृहुः**	उठा लिया ॥१८॥
जात सम्भ्रमाः	घबड़ाकर		

यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः ।
रक्षां विदधिरे सम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥१९॥

यशोदा रोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः रक्षां विदधिरे सम्यक् गोपुच्छ भ्रमण आदिभिः ॥१९॥

यशोदा	यशोदा और	**बालस्य**	बालककी
रोहिणीभ्यां	रोहिणीके	**सर्वतः**	सब ओरसे
समं ताः	साथ उन सबने	**सम्यक् रक्षां**	भली प्रकार रक्षाका
गोपुच्छ भ्रमण	गायकी पूँछ फिराने	**विदधिरे**	विधान किया ॥१९॥
आदिभिः	आदि (उपायों) से		

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसार्भकम् ।
रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशाङ्गेषु नामभिः ॥२०॥

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनः गोरजसा अर्भकं रक्षां चक्रुः च शकृता द्वादश अंगेषु नामभिः ॥२०॥

अर्भकं	बालकको	**च शकृता**	और गोबरसे
गोमूत्रेण	गोमूत्रसे	**द्वादश**	(उसके) बारहो
पुनः गोरजसा	फिर गायोंके खुरों-की धूलिसे	**अंगेषु**	अंगोंमें
		नामभिः	भगवन्नामों द्वारा
स्नापयित्वा	स्नान कराके	**रक्षां चक्रुः**	रक्षा की ॥२०॥

गोप्यः संस्पृष्टसलिला अङ्गेषु करयोः पृथक् ।
न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यासमकुर्वत ॥२१॥

गोप्यः संस्पृष्ट सलिला अंगेषु करयोः पृथक् न्यस्य आत्मनि अथ बालस्य बीजन्यासं अकुर्वत ॥२१॥

गोप्यः	गोपियोंने	**न्यस्य**	अंगन्यास-करन्यास
सलिला	जलसे		करके
संस्पृष्ट	आचमन करके	**अथ**	तब
आत्मनि अंगेषु	अपने अंगोंमें	**बालस्य**	बालक (के अंगों) में
करयोः	तथा हाथोंमें	**बीजन्यासं**	बीजन्यास
पृथक्	अलग-अलग	**अकुर्वत**	किया ॥२१॥

गोप्य ऊचु*

अव्यादजोऽङ्घ्रि मणिमांस्तव जान्वथोरू
यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः ।
हृत् केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं
विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥२२॥

अव्यात् अजः अंघ्रि मणिमान् तव जानुः अथ उरू यज्ञः अच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः हृत् केशवः त्वत् उदर ईश इन् अस्तु कण्ठं विष्णुः भुजं मुखं उरुक्रम ईश्वरः कम् ॥२२॥

तव अंघ्रि	तुम्हारे पैरोंकी	**जठरं हयास्यः**	पेटकी हयग्रीव,
अजः	अजन्मा भगवान	**हृत् केशवः**	हृदयकी केशव,
अव्यात्	रक्षा करें,	**त्वत् उदर ईश**	तुम्हारे पेटकी ईश
जानुः	घुटनोंकी	**कण्ठं इन्**	कण्ठकी सूर्य
मणिमान्	मणिमान्	**भुजं विष्णः**	भुजाओंकी विष्णु
अथ उरू यज्ञः	और जांघोंकी यज्ञ,	**मुखं उरुक्रम**	मुखकी उरुक्रम
कटितटं	कटिकी	**कं ईश्वरः**	सिरकी ईश्वर
अच्युतः	अच्युत,	**अस्तु**	(रक्षक) होवें ॥२२॥

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

चक्रचग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्
त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाजनश्च ।
कोणेषु शङ्ख उरुगाय उपर्युपेन्द्र-
स्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् ॥२३॥

चक्रि अग्रतः सहगदः हरिः अस्तु पश्चात् त्वत् पार्श्वयोः धनुः असी मधुहा अजनः च कोणेषु शंख उरुगाय उपरि उपेन्द्रः तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् ॥२३॥

अग्रतः चक्रि	आगे चक्रधर,
सहगदः हरिः	गदाके साथ श्रीहरि
पश्चात्	पीछे,
त्वत्	तुम्हारे
पार्श्वयोः	दोनों बगलोंमें
धनुः असी	धनुष और तलवार लिए
मधुहा च	मधुसूदन और
अजनः	अजन,
कोणेषु शंख	कोणोंमें शङ्खधारी
उरुगाय	उरुगाय,
उपरि उपेन्द्रः	ऊपर उपेन्द्र
क्षितौ तार्क्ष्यः	पृथ्वीपर गरुड़,
हलधरः	हलधारी
पुरुषः	परम पुरुष
समन्तात्	सब ओर
अस्तु	रहकर (रक्षा करें) ॥२३॥

इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान् नारायणोऽवतु ।
श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु ॥२४॥

इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान् नारायणः अवतु श्वेतद्वीपपतिः चित्तं मनः योगेश्वरः अवतु ॥२४॥

हृषीकेशः	हृषीकेश
इन्द्रियाणि	इन्द्रियोंकी
प्राणान्	और प्राणोंकी
नारायणः	नारायण
अवतु	रक्षा करें,
श्वेतद्वीपपतिः	श्वेतद्वीपके स्वामी
चित्तं	चित्तकी और
योगेश्वरः	योगेश्वर
मनः अवतु	मनकी रक्षा करें ॥२४॥

पृश्निगर्भस्तु ते बुद्धिमात्मानं भगवान् परः ।
क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः ॥२५॥

पृश्निगर्भः तु ते बुद्धिं आत्मानं भगवान् परः क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः ॥२५॥

ते बुद्धिं तु	तुम्हारी बुद्धिकी तो	**गोविन्दः पातु**	गोविन्द रक्षा करें,
पृश्निगर्भः	पृश्निगर्भ,	**शयानं**	सोते समय
आत्मानं	अहंकारकी	**माधवः पातु**	माधव रक्षा करें ॥२५॥
भगवान् परः	भगवान् परमात्मा,		
क्रीडन्तं	खेलते समय		

व्रजन्तमव्याद् वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः ।
भुञ्जानं यज्ञभुक् पातु सर्वग्रहभयंकरः ॥२६॥

व्रजन्तं अव्यात् वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः भुञ्जानं यज्ञभुक् पातु सर्व ग्रह भयंकरः ॥२६॥

व्रजन्तं	चलते समय	**त्वां सर्व**	तुम्हारी सब
वैकुण्ठ	वैकुण्ठ	**ग्रह**	ग्रहोंके लिए
अव्यात्	रक्षा करें,	**भयंकरः**	भयंकर
आसीनं	बैठनेपर	**यज्ञभुक् पातु**	यज्ञभोक्ता रक्षा करें ॥२६॥
श्रियः पतिः	श्रीपति और		
भुञ्जानं	भोजन करते समय		

डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः ।
भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥२७॥

डाकिन्यः यातुधान्यः च कुष्माण्डा ये अर्भक ग्रहाः भूत प्रेत पिशाचाः च यक्ष रक्षः विनायकाः ॥२७॥

ये डाकिन्यः	जो डाकिनियां,	**भूत प्रेत**	भूत, प्रेत,
च यातुधान्यः	तथा यातुधानी,	**पिशाचाः**	पिशाच,
कुष्माण्डा	कूष्माण्ड आदि	**यक्ष रक्षः**	यक्ष-राक्षस,
अर्भक ग्रहाः	बालकोंके ग्रह हैं,	**विनायकाः**	विनायक ॥२७॥

कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः ।
उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेन्द्रियद्रुहः ॥२८॥

कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृका आदयः उन्मादा ये हि अपस्मारा देह प्राण इन्द्रिय द्रुहः ॥२८॥

कोटरा रेवती	कोटरा, रेवती,	**इन्द्रिय द्रुहः**	इन्द्रियोंके शत्रु
ज्येष्ठा	ज्येष्ठा (दरिद्रा)	**ये उन्मादा**	जो पागलपन,
पूतना	पूतना,	**अपस्मारा हि**	मृगी आदि रोग
मातृका आदयः	मातृका आदि		हैं ॥२८॥
देह प्राण	शरीर, प्राण,		

स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये ।
सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥२९॥

स्वप्नदृष्टा महा उत्पाता वृद्ध बाल ग्रहाः च ये सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोः नाम ग्रहण भीरवः ॥२९॥

स्वप्न दृष्टा	स्वप्नमें देखे	**विष्णोः नाम**	भगवान् विष्णुका नाम
महा उत्पाता	महान उत्पात		
च ये	और जो	**ग्रहण भीरवः**	लेनेसे डरनेवाले
वृद्ध बाल	बूढ़ों और बालकोंके	**ते नश्यन्तु**	तुम्हारे नष्ट हो
ग्रहाः सर्वे	ग्रह हैं वे सब		जायँ ॥२९॥

श्रीशुक उवाच

इति प्रणयबद्धाभिर्गोपीभिः कृतरक्षणम् ।
पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयदात्मजम् ॥३०॥

इति प्रणयबद्धाभिः गोपीभिः कृत रक्षणं पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयत आत्मजम् ॥३०॥

प्रणयबद्धाभिः	प्रेमपाशमें बँधी	**आत्मजं**	अपने पुत्रको
गोपीभिः	गोपियों द्वारा	**स्तनं**	स्तन
इति	इस प्रकार	**पाययित्वा**	पानकराकर
रक्षणं कृत	रक्षा किये जानेपर	**संन्यवेशयत**	(शय्यापर) सुला
माता	माता (यशोदा) ने		दिया ॥३०॥

तावन्नन्दादयो गोपा मथुराया व्रजं गताः ।
विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥३१॥

तावत् नन्द आदयः गोपा मथुराया व्रजं गताः विलोक्य पूतनादेहं बभूवुः अतिविस्मिताः ॥३१॥

नन्द आदयः	नन्द आपि	**पूतनादेहं**	पूतनाके शरीरको
गोपा तावत्	गोप सब तक	**विलोक्य**	देखकर
मथुराया	मथुरासे	**अतिविस्मिताः**	अत्यन्त विस्मित
व्रजं गताः	व्रज पहुँचकर	**बभूवुः**	हुए ॥३१॥

नूनं बतर्षिः संजातो योगेशो वा समास सः ।
स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहानकदुन्दुभिः ॥३२॥

नूनं बत ऋषिः संजातः योगेशः वा सम आस सः स एव दृष्टः हि उत्पातः यत् आह आनक दुन्दुभिः ॥३२॥

बत नूनं	अहो निश्चय	**आनक दुन्दुभिः**	वसुदेवजीने
ऋषिः	कोई ऋषि	**यत् उत्पातः**	जो उत्पात
संजातः	उत्पन्न हुए हैं	**आह स एव**	बतलाया था वही
वा सः	अथवा वे	**दृष्टः**	देखनेमें आया है ॥३२॥
योगेशः सम आस	योगेश्वर तुल्य हैं,		
हि	क्योंकि		

कलेवरं परशुभिश्छित्वा तत्ते व्रजौकसः ।
दूरे क्षिप्त्वावयवशो न्यदहन् काष्ठधिष्ठितम् ॥३३॥

कलेवरं परशुभिः छित्त्वा तत् ते व्रजौकसः दूरे क्षिप्त्वा अवयवशः न्यदहन् काष्ठधिष्ठितम् ॥३३॥

तत् कलेवरं	उस (पूतना) के शरीरको	**छित्त्वा**	काटकर
		दूरे	दूर ले जाकर
ते व्रजौकसः	उन व्रजवासियोंने	**क्षिप्त्वा**	फेंककर
अवयवशः	एक-एक अंग	**काष्ठधिष्ठितं**	लकड़ियोंमें रखकर
परशुभिः	परशुसे	**न्यदहन्**	जला दिया ॥३३॥

दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः ।
उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः ॥३४॥

दह्यमानस्य देहस्य धूमः च अगुरु सौरभः उत्थितः कृष्ण निर्भुक्त सपदि आहत पाप्मनः ॥३४॥

कृष्ण	श्रीकृष्णके	**दह्यमानस्य**	जलते समय
निर्भुक्त	भली प्रकार (दूध) पीने से	**अगुरु**	अगुरुकी
		सौरभः	सुगन्धवाला
सपदि आहत	तत्काल नष्ट	**धूमः च**	धुआ भी
पाप्मनः	पापों वालीके	**उत्थितः**	उठा ॥३४॥
देहस्य	शरीरके		

पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना ।
जिघांसयापि हरये स्तनं दत्वाऽऽप सद्गतिम् ॥३५॥

पूतना लोक बालघ्नी राक्षसी रुधिर अशना जिघांसया अपि हरये स्तनं दत्त्वा आप सद्गतिम् ॥३५॥

लोक बालघ्नी	लोगोंके बालकोंकी हत्यारिणी,	**जिघांसया अपि**	मारनेके लिए भी
		हरये स्तनं	श्रीहरिको स्तन
राक्षसी	राक्षसी	**दत्त्वा**	दे (पिला) कर
रुधिर अशना	रक्त पायिनी	**सद्गतिं आप**	सद्गति पा गयी ॥३५॥
पूतना	पूतना		

किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ।
यच्छन् प्रियतमं किं नु रक्तास्तन्मातरो यथा ॥३६॥

किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने यच्छन् प्रियतमं किं नु रक्ताः तत् मातरः यथा ॥३६॥

तत् मातरः	उनकी माताओंके समान	**भक्त्या**	भक्तिपूर्वक
		परमात्मने	परमात्मा
रक्ताः श्रद्धया	आसक्त होकर श्रद्धा	**कृष्णाय**	श्रीकृष्णको

प्रियतमं यच्छन्	उनकी प्रिय वस्तुएँ देनेवाली	**नु किं**	(गोपियोंकी) भला क्या
		पुनः किं	फिर चर्चा ॥३६॥

पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वन्द्याभ्यां लोकवन्दितैः ।
अंग यस्याः समाक्रम्य भगबानपिबत् स्तनम् ॥३७॥

पद्भ्यां भक्त हृदिस्थाभ्यां वन्द्याभ्यां लोकवन्दितैः अंग यस्याः सम आक्रम्य भगवान् अपिबत् स्तनम् ॥३७॥

लोकवन्दितैः	लोकवन्द्य	**यस्याः अंग**	जिसके शरीरपर
भक्त	भक्तोंके	**सम आक्रम्य**	भली प्रकार चढ़कर
हृदिस्थाभ्यां	हृदयमें रहनेवाले	**भगवान्**	भगवान्‌ने
वन्द्याभ्यां	वन्दनीय	**स्तनं अपिबत्**	स्तन पान किया ॥३७॥
पद्भ्यां	अपने चरणोंसे		

यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम् ।
कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमु गावो नु मातरः ॥३८॥

यातुधानि अपि सा स्वर्गं अवाप जननी गतिं कृष्ण भुक्त स्तन क्षीराः किमु गावः नु मातरः ॥३८॥

सा	वह	**क्षीराः**	दूध
यातुधानि अपि	यातुधानी भी	**कृष्ण**	श्रीकृष्णने
स्वर्गं	स्वर्गमें	**भक्त**	भोगा (पिया) वे
जननी गतिं	माताकी गति	**गावः**	गौओं तथा
अवाप	पा गयी,	**मातरः**	माताओंकी
स्तन	(फिर जिनके) स्तनों-का	**नु किमु**	भला क्या चर्चा ॥३८॥

पयांसि यासामपिबत् पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् ।
भगवान् देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः ॥३९॥

पयांसि यासां अपिबत् पुत्रस्नेह स्नुतानि अलं भगवान् देवकीपुत्रः कैवल्य आदि अखिल प्रदः ॥३९॥

कैवल्य आदि	कैवल्य मोक्षादि
अखिल	समस्त पुरुषार्थ
प्रदः	प्रदाता
भगवान्	भगवान्
देवकीपुत्रः	देवकी-नन्दनने
पुत्रस्नेह	पुत्र-स्नेहसे
स्नुतानि	स्वयं झरते हुए
यासां पयांसि	जिनके दूधको
अलं अपिबत्	भरपेट पिया ॥३९॥

तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम् ।
न पुनः कल्पते राजन् संसारोऽज्ञानसम्भवः ॥४०॥

तासां अविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुत ईक्षणं न पुनः कल्पते राजन् संसारः अज्ञान सम्भवः ॥४०॥

राजन्	राजन् !
अबिरतं	निरन्तर
कृष्णे	श्रीकृष्णमें
सुत ईक्षणं	पुत्र दृष्टि
कुर्वतीनां	रखनेवाली
तासां	उन गोपियोंको
अज्ञान सम्भवः	अज्ञानसे उत्पन्न
संसार कल्पतेः	संसारकी प्राप्ति
पुनः न	फिर नहीं हो सकती ॥४०॥

कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः ।
किमिदं कुत एवेति वदन्तो व्रजमाययुः ॥४१॥

कटधूमस्य सौरभ्यं अवघ्राय व्रज ओकसः किं इदं कुत एव इति वदन्तः व्रजं आययुः ॥४१॥

व्रज ओकसः	व्रजवासी-गण
कटधूमस्य	चिता-धूम्रकी
सौरभ्यं	सुगन्ध
अवघ्राय	सूंघकर
किं इदं	'यह क्या है,
कुत एव	कहांसे आती है'
इति वदन्तः	ऐसा कहते हुए
व्रजं आययुः	व्रजमें आये ॥४१॥

ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् ।
श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोश्चासन् सुविस्मिताः ॥४२॥

ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतना आगमन आदिकं श्रुत्वा तत् निधनं स्वस्ति शिशोः च आसन् सुविस्मिताः ॥४२॥

तत्र गोपैः	वहां गोपों द्वारा	**च शिशोः**	और शिशुकी
वर्णितं	वर्णन किया गया	**स्वस्ति**	कुशलता
पूतना आगमन	पूतनाका आगमन	**श्रुत्वा ते**	सुनकर वे
आदिकं	आदि,	**सुविस्मिताः**	अत्यन्त विस्मित
तत् निधनं	उसकी मृत्यु	**आसन्**	हुए ॥४२॥

नन्दः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः ।
मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह ॥४३॥

नन्दः स्वपुत्रं आदाय प्रेत्य आगतं इव उदार धीः मूर्धनि उपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरु उद्वह ॥४३॥

कुरु उद्वह	कुरुकुल पालक परीक्षित !	**आदाय**	गोदमें लेकर
उदार धीः नन्दः	उदार चित्त नन्दने	**मूर्धनि**	(उसका) सिर
प्रेत्य आगतं	मरकर लौटेके	**उपाघ्राय**	सूंघकर
इव	समान	**परमां मुदं**	परमानन्द
स्वपुत्रं	अपने पुत्रको	**लेभे**	पाया ॥४३॥

य एतत् पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ।
शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम् ॥४४॥

य एतत् पूतना मोक्षं कृष्णस्य अर्भकं अद्भुतं शृणुयात् श्रद्धया मर्त्यः गोविन्दे लभते रतिम् ॥४४॥

य एतत्	जो इस	**अद्भुतं**	अद्भुत
कृष्णस्य	श्रीकृष्णकी	**अर्भकं**	शिशु-लीला

पूतना मोक्षं	पूतना-मोक्षको	**गोविन्दे**	गोविन्दमें
मर्त्यः श्रद्धया	मनुष्य श्रद्धापूर्वक	**रतिं लभते**	प्रीति प्राप्त करता
शृणुयात्	सुनता है वह		है ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

राजोवाच

येन येनावतारेण भगवान् हरिरीश्वरः ।
करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥१॥

येन येन अवतारेण भगवान् हरिः ईश्वरः करोति कर्ण रम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥१॥

प्रभो	प्रभो !	**करोति**	जो करते हैं
ईश्वरः	ईश्वर,	**नः कर्ण**	वह हमारे कानोंको
भगवान् हरिः	भगवान श्रीहरि	**रम्याणि च**	रमणीय तथा
येन येन	जिस-जिस	**मनोज्ञानि**	मनको आनन्दित
अवतारेण	अवतारमें		करनेवाले ॥१॥

यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा
सत्वं च शुद्धयत्यचिरेण पुंसः ।
भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं
तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥२॥

यत् शृण्वतः अपैति अरतिः वितृष्णा सत्त्वं च शुद्ध्यति अचिरेण पुंसः भक्तिः हरौ तत् पुरुषे च सख्यं तत् एव हारं वद मन्यसे चेत् ॥२॥

यत् शृण्वतः	जिसे सुननेसे	**सत्त्वं**	अन्तःकरण
पुंसः अरतिः	पुरुषकी अप्रीति	**शुद्ध्यति**	शुद्ध हो जाता है
वितृष्णा	और वितृष्णा	**हरौ भक्तिः**	श्रीहरिमें भक्ति
अपैति	दूर हो जाती है	**च तत् पुरुषे**	एवं उनके जनोंसे
च अचिरेण	तथा अविलम्ब	**सख्यं**	मित्रता हो जाती है

चेत् मन्यसे	यदि मन हो तो	हारं वद	हरि चरित कहिए
तत् एव	वही		॥२॥

अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम् ।
मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुन्धतः ॥३॥

अथ अन्यत् अपि कृष्णस्य तोक आचरितं अद्भुतं मानुषं लोकं आसाद्य तत् जातिं अनुरुन्धतः ॥३॥

मानुषं लोकं	मनुष्य लोकमें	अन्यत् अपि	(कोई) दूसरी भी
आसाद्य	आकर	अद्भुतं	भद्भुत
तत्	उस (मानव)	तोक आचरितं	शिशु लीला
जातिं	जातिका	अथ	अब (वर्णन कीजिए)
अनुरुन्धतः	अनुकरण करते हुए		॥३॥
कृष्णस्य	श्रीकृष्णकी		

श्रीशक उवाच

कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे
जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् ।
वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकै-
श्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥४॥

कदाचित् औत्थानिक कौतुक आप्लवे जन्म ऋक्ष योगे समवेत योषितां वादित्र गीत द्विज मन्त्रवाचकैः चकार सूनोः अभिषेचनं सती ॥४॥

कदाचित्	किसी समय	योषितां	स्त्रियोंके
औत्थानिक	(श्रीकृष्णके) करवट बदलनेके	वादित्र गीत	बजाने-गानेके साथ
		सती	सती यशोदाने
कौतुक आप्लवे	महोत्सवमें	मन्त्रवाचकैः	वेद-मन्त्र पढ़नेवाले
जन्म	(उसी दिन) जन्म-	द्विज	ब्राह्मणों द्वारा
ऋक्ष योगे	नक्षत्रका भी योग होनेसे	सूनोः	पुत्रका
		अभिषेचनं	अभिषेक
समवेत	एकत्र हुई	चकार	कराया ॥४॥

नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं
विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः ।
अन्नाद्यवासः स्रगभीष्टधेनुभिः
संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥५॥

नन्दस्य पत्नी कृत मज्जन आदिकं विप्रैः कृत स्वस्त्ययनं सुपूजितैः अन्न आद्य वासः स्रक् अभीष्ट धेनुभिः संजात निद्रा अक्षं अशीशयत् शनैः ॥५॥

नन्दस्य पत्नी	नन्द पत्नी यशोदाने	**कृत**	करके
अन्न आद्य	अन्न आदि	**मज्जन**	अभिषेक
वासः स्रक्	वस्त्र, माला	**आदिकं**	आदि
अभीष्ट	मनचाही	**कृत**	हो जानेपर
धेनुभिः	गौ द्वारा	**अक्षं निद्रा**	आंखोंमें नींद
सपूजितैः	भली प्रकार सत्कृत	**संजात**	आनेपर (पुत्रको)
विप्रैः	ब्राह्मणों द्वारा	**शनैः**	धीरेसे
स्वस्त्ययनं	स्वस्ति पाठ	**अशीशयत्**	सुला दिया ॥५॥

औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी
समागतान् पूजयती व्रजौकसः ।
नैवाशृणोद् वै रुदितं सुतस्य सा
रुदन् स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ॥६॥

औत्थानिक औत्सुक्यमनः मनस्विनी समागतान् पूजयती व्रजौकसः न एव अशृणोत् वै रुदितं सुतस्य सा रुदन् स्तन अर्थी चरणाः उत् अक्षिपत् ॥६॥

सा मनस्विनी	वह मनस्विनी	**समागतान्**	सब कहीं से आये
औत्थानिक	(उस) औत्थानिक महोत्सवमें	**व्रजौकसः**	व्रजवासियोंका
		पूजयती	सत्कार करनेमें लगी
औत्सुक्यमना	उत्साहित मनसे	**सुतस्य रुदितं**	पुत्रका रुदन

स न एव	निश्चय नहीं ही	**चरणाः**	दोनों पैरोंको
अशृणोत्	सुन सकी	**उत् अक्षिपत्**	ऊपर उछाल दिया ॥६॥
स्तन अर्थी	स्तन-पानके लिए		
रुदन्	रोते हुए (शिशुने)		

अधः शयानस्य शिशोरनोऽल्पक-
प्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत ।
विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं
व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ॥७॥

अधः शयानस्य शिशोः अनोः अल्पक प्रवाल मृदु अंघ्रि हतं व्यवर्तत विध्वस्त नाना रस कुप्य भाजनं व्यत्यस्त चक्र अक्ष विभिन्न कूबरम् ॥७॥

अधः शयानस्य	नीचे सोये हुए	**कुप्य भाजनं**	कुप्पियोंके पात्र
शिशोः अल्पक	शिशुके नन्हे	**विध्वस्त**	फूट गये,
प्रवाल मृदु	किसलय कोमल	**चक्र**	(छकड़ेके) पहिये
अंघ्रि हतं	चरणोंकी चोटसे	**अक्ष**	और धुरे
अनोः	(वह) छकड़ा	**व्यत्यस्त**	अस्तव्यस्त हो गये
व्यवर्तत	उलट गया,	**कूबरं**	और जूआ
नाना रस	(उसमें रखे) अनेक रसोंके	**विभिन्न**	टूट गया ॥७॥

दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय
औत्थानिके कर्मणि याः समागताः ।
नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः
कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥८॥

दृष्ट्वा यशोदा प्रमुखा व्रजस्त्रियः औत्थानिके कर्मणि याः सम आगताः नन्द आदयः च अद्भुत दर्शन आकुलाः कथं स्वयं वै शकटं विपरि अगात् ॥८॥

औत्थानिके	उस औत्थानिक	**याः सम**	जो सब कहींसे
कर्मणि	उत्सवमें	**आगताः**	आयी

यशोदा प्रमुखा	यशोदा प्रधाना
व्रजस्त्रियः	व्रजकी स्त्रियां
दृष्ट्वा	यह देखकर
च नन्द	तथा नन्द
आदयः	आदि (गोप)
अद्भुत	यह अद्भुत बात
दर्शन	देखनेसे
आकुलाः	व्याकुल होकर (कहने लगे)
वै स्वयं कथं	'अरे स्वयं कैसे
शकटं	छकड़ा
विपरि अगात्	उलटा हो गया' ॥८॥

ऊचुरव्यवसितमतीन् गोपान् गोपीश्च बालकाः ।
रुदतानेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥९॥

ऊचुः अव्यवसित मतीन् गोपान् गोपीन् च बालकाः रुदता अनेन पादेन क्षिप्तं एतत् न संशयः ॥९॥

अव्यवसित	अनिश्चय युक्त
मतीन्	बुद्धिवाले उन
गोपान् च	गोपों और
गोपीन्	गोपियोंसे
बालकाः ऊचुः	बालक बोले—
एतत्	इसमें कोई
संशयः न	सन्देह नहीं कि
रुदता अनेन	रोते हुए इसने
पादेन	अपने पैरोंसे
क्षिप्तं	फेंक दिया है' ॥९॥

न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमित्युत ।
अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥१०॥

न ते श्रद्दधिरे गोपाः बालभाषितं इति उत अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥१०॥

उत	'अरे
बालभाषितं	यह बच्चोंकी बात'
इति	ऐसा कहकर
ते गोपाः	उन गोपोंने
श्रद्दधिरे	(उसपर) विश्वास
न	नहीं किया,
तस्य बालकस्य	उस बालकका
अप्रमेयं	अतुलित
बलं ते	बल वे
न विदुः	नहीं जानते थे ॥१०॥

रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशंकिता ।
कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तन्यमपाययत् ॥११॥

रुदन्तं सुतं आदाय यशोदा ग्रह शङ्किता कृत स्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनं अपाययत् ॥११॥

रुदन्तं सुतं	रोते हुए पुत्रको	**विप्रैः**	ब्राह्मणोंसे
आदाय	(गोदमें) लेकर	**स्वस्त्ययनं**	स्वस्ति-वाचन
ग्रह शङ्किता	ग्रहसे शंकित हुई	**कृत**	करवाकर
यशोदा	यशोदाने	**स्तनं**	स्तनपान
सूक्तैः	वेद मन्त्रों द्वारा	**अपाययत्**	कराया ॥११॥

पूर्ववत् स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् ।
विप्रा हुत्वार्चयांचक्रु र्दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ॥१२॥

पूर्ववत् स्थापितं गोपैः बलिभिः सपरिच्छदं विप्रा हुत्वा अर्चयान् चक्रुः दधि अक्षत कुश अम्बुभिः ॥१२॥

बलिभिः गोपैः	बलवान गोपोंने	**विप्रा**	ब्राह्मणोंने
सपरिच्छदं	सामग्रीके साथ	**हुत्वा**	हवन करके
पूर्ववत्	पहिलेकी भांति (छकड़ेको)	**दधि अक्षत**	दही, अक्षत
		कुश अम्बुभिः	कुश और जल द्वारा
स्थापितं	रख दिया,	**अर्चयान् चक्रुः**	पूजन किया ॥१२॥

येऽसूयान ृतदम्भेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः ।
न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥१३॥

ये असूया अनृत दम्भ ईर्ष्या हिंसा मान विवर्जिताः न तेषां सत्य शीलानां आशिषः विफलाः कृताः ॥१३॥

ये असूया	'जो दोष-दृष्टि,	**सत्य शीलानां**	सत्यशील (ब्राह्मणों) का
अनृत दम्भ	मिथ्या, पाखण्ड,		
इर्ष्या हिंसा	ईर्षा, हिंसा	**आशिषः**	आशीर्वाद
मान	अभिमान	**विफलाः**	निष्फल
विवर्जिताः	रहित हैं	**कृताः न**	नहीं होता' ॥१३॥
तेषां	उन		

इति बालकमादाय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः ।
जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥१४॥

इति बालकं आदाय साम ऋक् यजुषा कृतैः जलैः पवित्र औषधिभिः अभिषिच्य द्विज उत्तमैः ॥१४॥

इति	यह समझकर	**पवित्र**	पवित्र
बालकं आदाय	पुत्रको लेकर	**औषधिभिः**	औषधियों युक्त
द्विज उत्तमैः	श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा	**जलैः**	जलसे
साम	सामवेद,	**अभिषिच्य**	अभिषेक करवाकर
ऋक् यजुषा	ऋग्वेद, यजर्वेदके		॥१४॥
कृतैः	मन्त्रोंसे		

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः ।
हुत्वा चाग्निं द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥१५॥

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः हुत्वा च अग्निं द्विजातिभ्यः प्रादात् अन्नं महागुणम् ॥१५॥

समाहितः	एकाग्र चित्त	**हुत्वा**	होत्र करके
नन्दगोपः	नन्द गोपने	**द्विजातिभ्यः**	ब्राह्मणोंको
स्वस्त्ययनं	स्वस्ति पाठ	**महागुणं**	अत्यन्त गुणकारी
वाचयित्वा	वाचन कराकर	**अन्नं प्रादात्**	भोजन प्रदान किया
च अग्नि	तथा अग्नि		॥१५॥

गावः सर्वगुणोपेता वासःस्रग्रुक्ममालिनीः ।
आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात्ते चान्वयुञ्जत ॥१६॥

गावः सर्वगुण उपेता वासः स्रक् रुक्ममालिनीः आत्मज अभ्युदय अर्थाय प्रादात् ते च अन्व युञ्जत ॥१६॥

सर्वगुण	सर्वगुण	**गावः**	गायें
उपेता	सम्पन्ना	**आत्मज**	पुत्रके
वासः स्रक्	वस्त्र, माला	**अभ्युदय**	अभ्युदय
रुक्ममालिनीः	स्वर्ण-माला धारिणी	**अर्थाय**	के लिए

प्रादात्	प्रदानकी	तेअन्व युञ्जत	उन ब्राह्मणोंने भी (आशीर्वाद) दिया ॥१६॥
च	तथा		

विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाऽऽशिषः ।
ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम् ॥१७॥

विप्रा मन्त्रविदः युक्ताः तैः याः प्रोक्ताः तथा आशिषः ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचित् अपि स्फुटम् ॥१७॥

मन्त्रविदः	वेदज्ञ	प्रोक्ताः	दिया है,
युक्ताः	योग-युक्त	ता कदाचित्	वह कभी
विप्रा	ब्राह्मण हैं	अपि	भी
तैः याः	उन्होंने जो	निष्फला	निष्फल
तथा	उस प्रकार (सन्तुष्ट होकर)	न भविष्यन्ति	नहीं होगा,
		स्फुटं	यह स्पष्ट है ॥१७॥
आशिषः	आशीर्वाद		

एकदाऽऽरोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती ।
गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥१८॥

एकदा आरोहं आरूढं लालयन्ती सुतं सती गरिमाणं शिशोः वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥१८॥

एकदा सती	एक बार साध्वी यशोदा	गिरिकूटवत्	पर्वत शिखरके समान
आरोहं आरूढं	गोदमें बैठे	गरिमाणं	भारीपनको
सुतं	पुत्रको	वोढुं	उठानेको
लालयन्ती	प्यार करती हुई	सेहे न	सहन नहीं कर
शिशोः	शिशुके		सकीं ॥१८॥

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता ।
महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ॥१९॥

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता महापुरुषं आदध्यौ जगतां आस कर्मसु ॥१९॥

जगतां	(श्रीकृष्णके उदर स्थिर) जगतके
भारपीडिता	भारसे पीड़ित होकर
विस्मिता	विस्मित होकर
गोपी	गोपी (यशोदा) ने
तं	उस (बालक) को
भूमौ निधाय	भूमिपर बैठाकर
महापुरुषं	भगवान पुरुषोत्तम- का
आदध्यौ	ध्यान किया, फिर
कर्मसु आस	(घरके) काममें लग गयीं ॥१९॥

दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः ।
चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥२०॥

दैत्यः नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः चक्रवात स्वरूपेण जहार आसीनं अर्भकम् ॥२०॥

तृष्णावर्तः नाम्ना	तृणावर्त नामक
कंसभृत्यः	कंसका सेवक
प्रणोदितः	उसके भेजे हुए
दैत्यः	दैत्यने
चक्रवात	चक्रवात (बवंडर)
स्वरूपेण	के रूपमें
आसीनं अर्भकं	बैठे हुए बालकका
जहार	हरण कर लिया ॥२०॥

गोकुलं सर्वमावृण्वन् मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः ।
ईरयन् सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः ॥२१॥

गोकुलं सर्वं आवृण्वन् मुष्णन् चक्षूंषि रेणुभिः ईरयन् सुमहाघोर शब्देन प्रदिशः दिशः ॥२१॥

सुमहाघोर	अत्यन्त भयानक
शब्देन प्रदिशः	शब्दसे दिशा-
दिशः	विदिशाओंको
ईरयन्	गुञ्जायमान करते हुए
रेणुभिः	धूलिसे
सर्वं गोकुलं	पूरे गोकुलको
आवृण्वन्	आच्छादित करके
चक्षूंषि मुष्णन्	(सबके) नेत्र बन्द कर दिये ॥२१॥

मुहूर्तमभवद् गोष्ठं रजसा तमसाऽऽवृतम् ।
सुतं यशोदा नापश्यत्तस्मिन् न्यस्तवती यतः ॥२२॥

मुहूर्तं अभवत् गोष्ठं रजसा तमसा आवृत्तं सुतं यशोदा न अपश्यत् तस्मिन् न्यस्तवती यतः ॥२२॥

मुहूर्तं	एक मुहूर्तके लिए	**सुतं**	पुत्रको
गोष्ठं	(पूरा) गोकुल	**न्यस्तवती**	रख दिया था
रजसा तमसा	धूलिसे अन्धकार	**यशोदा**	यशोदाने (वहां)
आवृतं	आच्छन्न	**न अपश्यत्**	(उसे) नहीं देखा
अभवत्	हो गया,		॥२२॥
यतः तस्मिन्	क्योंकि जहां		

नापश्यत् कश्चनात्मानं परं चापि विमोहितः ।
तृणावर्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥२३॥

न अपश्यत् कश्चन् आत्मानं परं च अपि विमोहितः तृणावर्त निसृष्टाभिः शर्कराभिः उपद्रुतः ॥२३॥

तृणावर्त	तृणावर्त द्वारा	**आत्मानं**	अपनेको
निसृष्टाभिः	उड़ायी हुई	**च परं अपि**	तथा दूसरेको भी
शर्कराभिः	धूलि द्वारा	**न अपश्यत्**	नहीं देखता था
उपद्रुतः	पीड़ित		॥२३॥
कश्चन्	कोई		

इति खरपवनचक्रपांसुवर्षं
सुतपदवीमबलाविलक्ष्य माता ।
अतिकरुणमनुस्मरन्त्यशोचद्
भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ॥२४॥

इति खरपवन चक्र पांसुवर्षे सुतपदवीं अबला अविलक्ष्य माता अतिकरुणं अनुस्मरन्ति अशोचत् भुवि पतिता मृत वत्सका यथा गौः ॥२४॥

इति	ऐसी
खरपवन	तीक्ष्ण वायु और
चक्र	बवंडरकी
पांसुवर्षे	धूलि वर्षामें
सुतपदवीं	पुत्रका पता
अविलक्ष्य	न देखकर
अबला	असहाया
माता	माता (यशोदा)
यथा मृत	जैसे मरे
वत्सका	बछड़े वाली
गौः	गाय हो,
भुवि पतिता	पृथ्वीपर गिरकर
अतिकरुणं	अत्यन्त दुःखी होकर
अनुस्मरन्ति	बार-बार (उस पुत्र का) स्मरण करती
अशोचत्	शोक करने लगी ॥२४॥

रुदितमनुनिशम्य तत्र गोप्यो
भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ।
रुरुदुरनुपलभ्य नन्दसूनुं
पवन उपारतपांसुवर्षवेगे ॥२५॥

रुदितं अनुनिशम्य तत्र गोप्यः भृशं अनुतप्त धियः अश्रुपूर्ण मुख्यः रुरुदुः अनुपलभ्य नन्दसूनुं पवन उपारत पांसु वर्ष वेगे ॥२५॥

पांसु वर्ष	धूलि वर्षा करनेवाले
पवन वेगे	वायु वेगके
उपारत	शान्त होनेपर
अनु रुदित	(यशोदाजीका) बार-बार रुदन
निशम्य	सुनकर
भृशं	अत्यन्त
अनुतप्त धियः	संतप्त चित्त
अश्रु पूर्ण	आंसूसे भरे
मुख्यः	मुखवाली
गोप्यः तत्र	गोपियां भी वहां
नन्दसूनुं	नन्दनन्दनको
अनुपलभ्य	न पाकर
रुरुदुः	रोने लगीं ॥२५॥

तृणावर्तः शान्तरयो वात्यारूपधरो हरन् ।
कृष्णं नभोगतो गन्तुं नाशक्नोद् भूरिभारभृत् ॥२६॥

तृणावर्तः शान्तरयः वात्यारूपधरः हरन् कृष्णं नभः गतः गन्तुं न अशक्नोत् भूरिभार भृत् ॥२६॥

वात्यारूपधरः बवंडर रूपधारी । **तृणावर्तः** तृणावर्त

भूरिभार भृत्	बहुत भार धारी	**नभोगतः**	आकाशमें जानेपर
कृष्णं	श्रीकृष्णका	**गन्तुं न**	आगे नहीं
हरन्	हरण करके	**अशक्नोत्**	जा सका ॥२६॥

तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया ।
गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥२७॥

तं अश्मानं मन्यमान आत्मनः गुरुमत् तया गले गृहीत उत्स्रष्टुं न अशक्नोत् अद्भुत अर्भकम् ॥२७॥

आत्मनः	अपनेसे भी	**मन्यमान**	मानता हुआ
गुरुमत् तया	भारी होनेके कारण	**गले गृहीत**	गला पकड़े हुएको
तं अद्भुतं	उस अद्भुत	**उत्स्रष्टुं**	छोड़ भी
अर्भकं	शिशुको	**न अशक्नोत्**	नहीं सका ॥२७॥
अश्मानं	शिलाके समान		

गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः ।
अव्यक्तरावो न्यपतत् सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥२८॥

गल ग्रहण निश्चेष्टः दैत्यः निर्गत लोचनः अव्यक्तरावः न्यपतत् सहबालः व्यसुः व्रजे ॥२८॥

गल ग्रहण	गला पकड़नेसे	**व्यसुः**	निष्प्राण होकर,
दैत्यः	दैत्यके	**सहबालः**	बालकके साथ
निर्गत लोचनः	नेत्र निकल आये,	**व्रजे न्यपतत्**	व्रजमें गिर पड़ा ॥२८॥
निश्चेष्टः	चेष्टाहीन हो गया,		
अव्यक्तरावः	शब्द बन्द हो गया,		

तमन्तरिक्षात् पतितं शिलायां
विशीर्णसर्वावयवं करालम् ।
पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं
स्त्रियो रुदत्यो ददृशुः समेताः ॥२९॥

तं अन्तरिक्षात् पतितं शिलायां विशीर्ण सर्व अवयवं करालं पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं स्त्रियः रुदत्यः ददृशुः सम एताः ॥२९॥

यथा	जैसे
रुद्रशरेण	त्रिपुरारिके वाणसे
विद्धं पुरं	त्रिद्ध त्रिपुर हो
अन्तरिक्षात्	आकाशसे
शिलायां पतितं	शिलापर गिरनेसे
सर्व अवयवं	सम्पूर्ण अंग
विशीर्ण	बिखरे हुए
करालं तं	विकराल उसे
रुदत्यः स्त्रियः	रोती स्त्रियोंने
सम एताः	एक साथ आकर
ददृशुः	देखा ॥२९॥

प्रादाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः
कृष्णं च तस्योरसि लम्बमानम् ।
तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं
विहायसा मृत्युमुखात् प्रमुक्तम् ।
गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या
लब्ध्वा पुनः प्रापुरतीव मोदम् ॥३०॥

प्रादाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः कृष्णं च तस्य उरसि लम्बमानं तं स्वस्तिमन्तं पुरुषात् अनीतं विहायसा मृत्यु मुखात् प्रमुक्तं गोप्यः च गोपाः किल नन्द मुख्या लब्ध्वा पुनः प्रापुः अतीव मोदम् ॥३०॥

तस्य उरसि	उसकी छातीपर
लम्बमानं	लटके हुए
कृष्णं च	श्रीकृष्णको भी
विस्मिताः	चकित होकर
प्रतिहृत्य	वहांसे उठाकर
मात्रे	माता (यशोदा) को
प्रादाय	दे दिया
पुरुषात्	राक्षस द्वारा
विहायसा	आकाशमें
अनीतं	ले जाये जाकर
मृत्यु मुखात्	मौतके मुखसे
प्रमुक्तं	छूटे हुए
तं	उन (श्रीकृष्ण) को
स्वस्तिमन्तं	सकुशल
पुनः लब्ध्वा	फिर पाकर
गोप्यः च	गोपियां और
नन्द मुख्या	नन्द प्रमुख
गोपाः	गोप
किल अतीव	अहो, अत्यन्त
मोदं प्रापुः	आनन्दको प्राप्त हुए ॥३०॥

अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा
बालो निवृत्ति गमितोऽभ्यगात् पुनः ।

हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः
साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते ॥३१॥

अहो बत अत्यद्भुतं एष रक्षसा बालः निवृत्तिं गमितः अभ्यगात् पुनः हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयात् विमुच्यते ॥३१॥

अहो बत	(कहने लगे) 'अहो अरे
अत्यद्भुतं	यह अत्यन्त अद्भुत बात है कि
एष रक्षसा	इस राक्षस द्वारा
बालः निवृत्तिं	बालक मृत्युको
गमितः पुनः	प्राप्त होकर फिर
अभ्यगात्	लौट आया
खलः हिंस्रः	(सच है) दुष्ट हत्यारा
स्वपापेन	अपने पापसे
विहिंसितः	मारा गया और
साधुः	सत्पुरुष अपनी
समत्वेन	समतासे
भयात्	भयसे
विमुच्यते	छूट जाते हैं ॥३१॥

किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं
पूर्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम् ।
यत्सम्परेतः पुनरेव बालको
दिष्ट्या स्वबन्धून् प्रणयन्नुपस्थितः ॥३२॥

किं नः तपः चीर्णं अधोक्षज अर्चनं पूर्तं इष्टं दत्तं उत भूत सौहृदं यत् संपरेतः पुनः एव बालकः दिष्ट्या स्वबन्धून् प्रणयन् उपस्थितः ॥३२॥

नः किं	हमने ऐसा कौन-सा
तपः चीर्णं	तप किया था,
अधोक्षज	हृषीकेश भगवानका
अर्चनं	पूजन किया था,
पूर्तं इष्टं दत्तं	इष्ट-पूर्त आदि दान
उत भूत	अथवा प्राणियोंसे
सौहृदं	सौहार्द्र किया था, (जिससे)
दिष्ट्या	सौभाग्यवश
यत् सम्परेतः	जो मरकर भी
बालकः	यह बालक
पुनः एव	फिरसे ही
स्वबन्धून्	अपने सम्बन्धियोंको
प्रणयन्	आनन्दित करने
उपस्थितः	आ गया' ॥३२॥

दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने ।
वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥३३॥

दृष्ट्वा अद्भुतानि बहुशः नन्दगोपः बृहद्वने वसुदेव वचः भूयः मानयामास विस्मितः ॥३३॥

बृहद्वने	बृहद्वन (महावन) में	**विस्मितः**	चकित होकर
बहुशः	बहुत-सी	**वसुदेव वचः**	वसुदेवजीके कथन-का
अद्भुतानि	अद्भुत बातें	**भूयः**	बार-बार
दृष्ट्वा	देखकर	**मानयामास**	समर्थन किया ॥३३॥
नन्दगोपः	गोपराज नन्दजीने		

एकदार्भकमादाय स्वाङ्कमारोप्य भामिनी ।
प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥३४॥

एकदा अर्भकं आदाय स्व अङ्कं आरोप्य भामिनी प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥३४॥

एकदा	एक बार	**स्नेहपरिप्लुता**	प्रेमसे परिपूर्णा
अर्भकं आदाय	शिशुको लेकर	**भामिनी**	सुन्दरी यशोदाने
स्व अङ्कं	अपनी गोदमें	**प्रस्नुतं स्तनं**	दूध झरते स्तनको
आरोप्य	लेकर	**पाययामास**	पिलाया ॥३४॥

पीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम् ।
मुखं लालयती राजञ्जृम्भतो ददृशे इदम् ॥३५॥

पीत प्रायस्य जननी सा तस्य रुचिर स्मितं मुखं लालयती राजन् जृम्भतः ददृशे इदम् ॥३५॥

राजन्	राजन्	**रुचिर स्मितं**	सुन्दर मुस्कानवाले
सा जननी	वह माता	**मुखं**	मुखका
पीत प्रायस्य	प्रायः (दूध) पी लेने पर	**लालयती**	लाड़-लड़ाती हुई
		जृम्भतः	जम्हाई लेनेपर
तस्य	उन (श्रीकृष्ण) के	**इदं ददृशे**	यह देखा ॥३५॥

खं रोदसी ज्यातिरनीकमाशाः
सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च ।
द्वीपान् नगांस्तद्दुहितृर्वनानि
भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि ॥३६॥

खं रोदसी ज्योतिः अनीकं आशाः सूर्य इन्दु वह्नि श्वसन अम्बुधीन् च द्वीपान् नगान् तत् दुहितृः वनानि भूतानि यानि स्थिर जंगमानि ॥३६॥

खं रोदसी	आकाश, अन्तरिक्ष,	**तत्**	उन (पर्वतोंकी)
ज्योतिः अनीकं	तारा-मण्डल,	**दुहितृः**	पुत्रियां नदियां
आशाः सूर्य	दिशाएँ, सूर्य,	**वनानि च**	वन और
इन्दु वह्नि	चन्द्रमा, अग्नि,	**यानि**	जितने
श्वसन	वायु,	**स्थिर जंगमानि**	अचर-चर
अम्बुधीन्	समुद्र	**भूतानि**	प्राणियोंको ॥३६॥
द्वीपान् नगान्	सब द्वीप, पर्वत्		

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन् संजातवेपथुः ।
सम्मील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत् सुविस्मिता ॥३७॥

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन् सञ्जात वेपथुः सम्मील्य मृगशाव अक्षी नेत्रे आसीत् सुविस्मिता ॥३७॥

राजन्	राजन् !	**वेपथुः सञ्जात**	काँपने लगी,
सहसा	अचानक	**सुविस्मिता**	अत्यन्त चकित होकर
विश्वं वीक्ष्य	विश्वको देखकर	**नेत्रे**	नेत्र
सा	वह	**सम्मील्य**	कसकर बन्द कर
मृगशाव अक्षी	मृगशावक नयनी		लिए ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे तृणावर्तमोक्षो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

श्रीशक उवाच

गर्गः पुरोहितो राजन् यदूनां सुमहातपाः ।
व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥१॥

गर्गः पुरोहितः राजन् यदूनां सुमहा तपाः व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेव प्रचोदितः ॥१॥

राजन्	राजन् !	**गर्गः**	गर्गाचार्य
सुमहा	अत्यन्त महान्	**वसुदेव**	वसुदेवजी के
तपाः	तपस्वी	**प्रचोदितः**	भेजनेसे
यदूनां	यदुवंशके	**नन्दस्य व्रजं**	नन्द व्रजमें
पुरोहितः	पुरोहित	**जगाम**	गये ॥१॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।
आनर्चाधोक्षजधिया प्रणिपातपुरस्सरम् ॥२॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृत अञ्जलिः आनर्च अधोक्षज धिया प्रणिपात पुरःसरम् ॥२॥

तं दृष्ट्वा	उन्हें देखकर	**पुरः सरं**	पहिले करके
परमप्रीतः	अत्यन्त प्रसन्न होकर	**कृत अञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
		अधोक्षजधिया	भगवद् बुद्धिसे
प्रत्युत्थाय	स्वागतमें उठकर	**आनर्च**	(उनका) पूजन
प्रणिपात	दण्डवत् प्रणाम		किया ॥२॥

सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम् ।
नन्दयित्वाब्रवीद् ब्रह्मन् पूर्णस्य करवाम किम् ॥३॥

सु उपविष्टं कृत आतिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिं नन्दयित्वा अब्रवीत् ब्रह्मन् पूर्णस्य करवाम किम् ॥३॥

सु उपविष्टं	भली प्रकार बैठ जानेपर
आतिथ्यं	अतिथि-सत्कार
कृत	करके
सूनृतया	बहुत मधुर
गिरा	वाणीसे
मुनिं	मुनिको
नन्दयित्वा	प्रसन्न करके
अब्रवीत्	बोले
ब्रह्मन्	'ब्रह्मन !
पूर्णस्य	आप पूर्णकामकी
किं करवाम	क्या सेवा करूँ ॥३॥

महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम् ।
निःश्रेयसाय भगवन् कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥४॥

महत् विचलनं नृणां गृहिणां दीन चेतसां निःश्रेयसाय भगवन् कल्पते न अन्यथा क्वचित् ॥४॥

महत्	(आप जैसे) महा-पुरुषोंका
विचलनं	आना-जाना
दीन चेतसां	दीन-चित्त
गृहीणां	गृहस्थोंके
निःश्रेयसाय	कल्याणके लिए ही होता है
भगवन्	भगवन्
अन्यथा क्वचित्	इससे भिन्न कभी
न कल्पते	नहीं होता ॥४॥

ज्योतिषामयनं साक्षाद् यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम् ।
प्रणीतं भवता येन पुमान् वेद परावरम् ॥५॥

ज्योतिषां अयनं साक्षात् यत् तत् ज्ञानं अतीन्द्रियं प्रणीतं भवता येन पुमान् वेद पर अवरम् ॥५॥

यत् ज्ञानं	जो ज्ञान
अतीन्द्रियं	इन्द्रियोंसे नहीं जाना जाता
येन पुमान्	जिससे पुरुष
पर अवरं	भूत-भविष्यको
वेद तत्	जानता है वह
ज्योतिषां अयनं	ज्योतिष शास्त्र
भवता प्रणीतं	आप द्वारा निर्मित है ॥५॥

त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान् कर्तुमर्हसि ।
बालयोरनयोर्नृणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ॥६॥

त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान् कर्तुं अर्हसि बालयोः अनयोः नृणां जन्मना ब्राह्मणः गुरुः ॥६॥

हि ब्रह्मविदां	क्योंकि वेदवेत्ताओंमें	**कर्तुं अर्हसि**	आपको कर देना
त्वं श्रेष्ठः	आप श्रेष्ठ हैं		चाहिए
अनयोः	इन दोनों	**ब्राह्मणः**	ब्राह्मण
बालयोः	बालकोंका	**जन्मना**	जन्मसे ही
संस्कारान्	संस्कार	**नृणां**	मनुष्योंका
		गुरुः	गुरु होता है ॥६॥

गर्ग उवाच

यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वतः ।
सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥७॥

यदूनां अहं आचार्यः ख्यातः च भुवि सर्वदा सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकी सुतम् ॥७॥

अहं सर्वदा	मैं सदासे	**संस्कृतं**	संस्कार किये गये
भुवि	पृथ्वीपर	**ते सुतं**	तुम्हारा पुत्र
यदूनां	यदुवंशियोंका	**देवकी सुतं**	देवकीका पुत्र
आचार्यः ख्यातः	आचार्य प्रसिद्ध हूँ	**मन्यते**	माना जायगा ॥७॥
च मया	अतः मेरे द्वारा		

कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः ।
देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥८॥

कंसः पापमतिः सख्यं तव च आनक दुन्दुभेः देवक्या अष्टमः गर्भः न स्त्री भवितुं अर्हति ॥८॥

कंस (वैसे ही) कंस । **पापमतिः** पाप बुद्धि है,

आनकदुन्दुभेः	'वसुदेवजीसे	**अष्टमः गर्भः**	आठवाँ बालक
तव सख्यं च	तुम्हारी मित्रता भी है,	**स्त्री भवितुं न अर्हति**	कन्या होना नहीं चाहिए' ॥८॥
देवक्याः	और देवकीका		

इति संचिन्तयञ्छ्रुत्वा देवक्या दारिकावचः ।
अपि हन्ताऽऽगताशंकस्तर्हि तन्नोऽनयो भवेत् ॥९॥

इति सञ्चिनायन् श्रुत्वा देवक्या दारिका वचः अपि हन्ता आगत आशङ्कः तर्हि तत् नः अनयः भवेत् ॥९॥

इति	इस प्रकार	**हन्ता अपि**	मार ही डाले
सञ्चिनायन्	सोचकर	**तर्हि तत्**	तब तो वह
देवक्या दारिका	देवकीकी कन्याकी	**नः अनयः**	हमसे अन्याय
वचः श्रुत्वा	बात सुनकर	**भवेत्**	हो जायगा ॥९॥
आगत आशङ्कः	शंका करके		

नन्द उवाच

अलक्षितोऽस्मिन् रहसि मामकैरपि गोव्रजे ।
कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥१०॥

अलक्षितः अस्मिन् रहसि मामकैः अपि गोव्रजे कुरु द्विजाति संस्कारं स्वस्तिवाचन पूर्वकम् ॥१०॥

मामकैः	मेरी जातिवालोंसे	**स्वस्ति वाचन**	(केवल) स्वस्ति-पाठ
अपि	भी	**पूर्वकं**	पहिले करके
अलक्षितः	अज्ञात रहकर	**द्विजाति**	द्विजाति-
अस्मिन् गोव्रजे	इस गोष्ठके	**संस्कारं कुरु**	संस्कार कर दीजिये ॥१०॥
रहसि	एकान्तमें		

श्रीशुक उवाच

एवं सम्प्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् ।
चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥११॥

एवं सम्प्रार्थितः विप्रः स्वचिकीर्षितं एव तत् चकार नामकरणं गूढः रहसि बालयोः ॥११॥

एवं	इस प्रकार	**एव**	ही थे (अतः)
सम्प्रार्थितः	प्रार्थना किये जानेपर	**रहसि गूढः**	एकान्तमें छिपकर
विप्रः	ब्राह्मण (गर्गाचार्य)	**बालयोः**	दोनों बालकोंका
तत्	वह	**नामकरणं**	नामकरण
स्वचिकीर्षतं	अपने भी करना चाहते	**चकार**	संस्कार किया ॥११॥

गर्ग उवाच

अयं हि रोहिणी पुत्रो रमयन् सुहृदो गुणैः ।
आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद् बलं विदुः ।
यदूनामपृथग्भावात् संकर्षणमुशन्त्युत ॥१२॥

अयं हि रोहिणी पुत्रः रमयन् सुहृदः गुणैः आख्यास्यते राम इति बल आधिक्यात् बलं विदुः यदूनां अपृथक् भावात् संकर्षणं उशन्ति उत ॥१२॥

अयं हि	यह जो		होनेसे
रोहिणी	रोहिणीजीका	**बलं विदुः**	बल नामसे भी
पुत्रः	पुत्र है		जाना जायगा
सुहृदः	सुहृदोंको	**उत यदूनां**	तथा यदुवंशियोंमें
गुणैः	अपने गुणोंसे	**अपृथक् भावात्**	एकताका भाव
रमयन्	रमानेके कारण		बनाये रखनेसे
राम इति	राम यह	**सङ्कर्षणं**	संकर्षण
आख्यायस्ते	इसका नाम है,	**उशन्ति**	कहा जायगा ॥१२॥
बल आधिक्यात्	अधिक बलवान		

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥१३॥

आसन् वर्णास्त्रयो हि अस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥१३॥

हि	(और) क्योंकि	**त्रयः वर्णाः**	तीन वर्ण
अस्य	इस (तुम्हारे पुत्र) के	**आसन्**	हुए थे
अनुयुगं तनूः	प्रत्येक युगमें शरीर	**इदानीं**	इस बार
गृह्णतः	धारण करते हुए	**कृष्णतां गतः**	कृष्ण वर्ण हुआ है ॥१३॥
शुक्लः रक्तः	श्वेत, लाल,		
तथा पीतः	तथा पीला		

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ।
वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥१४॥

प्राक् अयं वसुदेवस्य क्वचित् जातः तव आत्मजः वासुदेव इति श्रीमान् अभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥१४॥

अयं तव	यह तुम्हारा	**अभिज्ञाः**	अतः विद्वान लोग
आत्मजः	पुत्र	**श्रीमान्**	श्रीमान
प्राक् क्वचित्	पहिले कभी	**वासुदेव**	वासुदेव
वसुदेवस्य	वसुदेवजीसे	**इति**	इस प्रकार
जातः	उत्पन्न हुआ था	**सम्प्रचक्षते**	कहते हैं ॥१४॥

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ।
गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥१५॥

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते गुण कर्म अनुरूपाणि तानि अहं वेद नो जनाः ॥१५॥

ते सुतस्य	तुम्हारे पुत्रके	**सन्ति**	हैं,
गुण कर्म	गुणों और कर्मोंके	**तानि अहं वेद**	उनको मैं जानता हूँ,
अनुरूपाणि	अनुसार		
बहूनि नामानि	बहुतसे नाम	**जनाः**	दूसरे लोग
च रूपाणि	तथा रूप	**नो**	नहीं जानते ॥१५॥

एष वः श्रेय आधास्यद् गोपगोकुलनन्दनः ।
अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥१६॥

एष वः श्रेय आधास्यत् गोप गोकुल नन्दनः अनेन सर्व दुर्गाणि यूयं अञ्जः तरिष्यथ ॥१६॥

एष गोप	यह गोपों और	**अनेन यूयं**	इसके द्वारा तुम लोग
गोकुल	गोकुलको	**सर्व दुर्गाणि**	सब सकटोंको
नन्दनः	आनंदित करनेवाला	**अञ्जः**	सरलतासे
वः श्रेय	तुम लोगोंका कल्याण	**तरिष्यथ**	पारकर लोगे ॥१६॥
आधास्यत्	करेगा,		

पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ।
अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून् समेधिताः ॥१७॥

पुरा अनेन व्रजपते साधवः दस्यु पीडिताः अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युः दस्यून् समेधिताः ॥१७॥

व्रजपते	व्रजराज !	**अनेन**	इसके द्वारा
पुरा अराजके	पहिले अराजकताके समय	**समेधिताः**	भली प्रकार अभिवर्धित
दस्यु पीडिताः	लुटेरोंसे पीड़ित	**दस्यून्**	(साधुओंने) उन दस्युओंको
साधवः	सत्पुरुषोंकी		
रक्ष्यमाणा	रक्षा करते हुए	**जिग्युः**	जीत लिया ॥१७॥

य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।
नारयोऽभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः ॥१८॥

य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः न अरयः अभिभवन्ति एतान् विष्णु पक्षान् इव असुराः ॥१८॥

य महाभागाः	जो महाभाग	**विष्णु**	भगवान विष्णुके
मानवाः	मनुष्य	**पक्षान्**	पक्ष वालोंको
एतस्मिन्	इससे	**असुराः इव**	असुरोंके समान
प्रीतिं कुर्वन्ति	प्रीति करते हैं	**अभिभवन्ति न**	दबा नहीं पाते ॥१८॥
एतान् अरयः	उनको उनके शत्रु		

तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ।
श्रिया कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः ॥१९॥

तस्मात् नन्द आत्मजः अयं ते नारायण समः गुणैः श्रिया कीर्त्या अनुभावेन गोपायस्व समाहितः ॥१९॥

तस्मात् नन्द	इसलिए नन्द !	**नारायण समः**	नारायणके समान है
अयं ते आत्मजः	यह तुम्हारा पुत्र	**समाहितः**	एकान्त चित्तसे
गुणैः श्रिया	गुणोंमें लक्ष्मी,	**गोपायस्व**	इसकी रक्षा करो ॥१९॥
कीर्त्या	कीर्ति और		
अनुभावेन	प्रभावमें		

श्रीशुक उवाच*

इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ।
नन्दः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥२०॥

इति आत्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते नन्दः प्रमुदितः मेने आत्मानः पूर्णं आशिषाम् ॥२०॥

इति	इस प्रकार	**गते**	चले जानेपर
आत्मानं	अपनेको	**प्रमुदितः**	बहुत आनन्दित
समादिश्य	भली प्रकार आदेश देकर	**नन्दः**	नन्दजीने
		आत्मानं	अपनेको
गर्गे च	गर्गाचार्यजीके तो	**पूर्णं आशिषां**	पूर्ण काम
स्वगृहं	अपने घर	**मेने**	माना ॥२०॥

कालेन व्रजतात्पेन गोकुले रामकेशवौ ।
जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्रतुः ॥२१॥

कालेन व्रजता अल्पेन गोकुले रामकेशवौ जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिंगमाणौ विजह्रतुः ॥२१॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अल्पेन कालेन	थोड़ा समय
व्रजता	बीत जानेपर
रामकेशवौ	बलराम-श्रीकृष्ण
गोकुले	गोकुलमें
सह पाणिभ्यां	दोनों हाथोंके साथ
जानुभ्यां	घुटनोंके सहारे
रिंगमाणौ	सरकते हुए
विजह्रतुः	विहार करने लगे ॥२१॥

तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ
घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ।
तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं
मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः ॥२२॥

ताः अंघ्रि युग्मं अनुकृष्य सरीसृपन्तौ घोष प्रघोष रुचिरं व्रज कर्दमेषु तत् नाद हृष्ट मनसाः अनुसृत्य लोकं मुग्ध प्रभीतवत् उपेयतुः अन्ति मात्रोः ॥२२॥

ताः युग्मं	वे दोनों भाई
अंघ्रि	चरणोंको
अनुकृष्य	घसीट कर
व्रज कर्दमेषु	गोष्ठकी कीचमें
सरीसृपन्तौ	सरकते हुए
रुचिरं	अत्यन्त सुन्दर
घोष प्रघोष	आभूषणोंकी झंकार करते थे
तत् नाद	और उस शब्दसे
हृष्ट	प्रसन्न
मनसाः	चित्त होते
लोकं	लोगोके पीछे
मुग्ध	मोहित होकर
अनुसृत्य	(कुछ दूर) जाते फिर
प्रभीतवत्	डरे हुएके समान
मात्रोः अन्ति	माताओंके समीप
उपेयतुः	लौट आते ॥२२॥

तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ
पंकाङ्गरागरुचिरावुपगुह्य दोर्भ्याम् ।
दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य
मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥२३॥

तत् मातरो निज सुतो घृणया स्नुवन्त्यो पङ्क अंग राग रुचिराः उपगुह्य दोर्भ्यां दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य मुग्ध स्मित अल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥२३॥

तत् मातरो	उनकी माताओंको
घृणया	स्नेहवश
स्नुवन्त्यो	(स्तनोंसे) दूध टप-कने लगता
पङ्क अंग राग	कीचड़का अंगराग लगे
रुचिराः	मनोहर लगते
दोर्भ्यां	उनको भुजाओंसे
उपगुह्य	आलिंगन करके
स्तनं	(उनके मुखोंमें) स्तन
दत्त्वा	देकर
प्रपिबतोः स्म	उसे पीते हुए
मुग्ध स्मितं	मनोहर मुसकान तथा
अल्पदशनं	छोटे दांतों वाले
मुखं	(उनके) मुखोंको
निरीक्ष्य	देखकर
प्रमोदं ययतुः	आनन्दित होती थीं ॥२३॥

यर्ह्यंगनादर्शनीयकुमारलीला-
वन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ।
वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ
प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः ॥२४॥

यर्हि अंगना दर्शनीय कुमारलीलाः अन्तः व्रजे तत् अबलाः प्रगृहीत पुच्छैः वत्सैः इतः तत उभाः अनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्य उज्झित गृहा जहृषुः हसन्त्यः ॥२४॥

यर्हि	जब
अंगना	गोपियोंके
दर्शनीय	देखने योग्य
कुमारलीला	शिशु क्रीड़ा करते हुए
अन्तः व्रजे	गोष्ठके भीतर
पुच्छैः प्रगृहीत	पूँछ पकड़े हुए
वत्सैः इतः तत	बछड़ों द्वारा इधर-उधर
अनुकृष्यमाणौ	खींच जाते हुए
उभाः	उन दोनोंको
प्रेक्षन्त्य	देखती हुई
तत् अबलाः	वे गोपियां
उज्झित गृहा	घर छोड़कर आई
हसन्त्यः	हंस हंसकर
जहृषुः	आनन्दित होती थीं ॥२४॥

शृंगाग्निदंष्ट्रासिजलद्विजकेष्टकेभ्यः
क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् ।
गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ
शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥२५॥

शृंगि अग्नि दंष्ट्र असि जल द्विज कण्टकेभ्यः क्रीडापराः अति चलौ स्वसुतौ निषेद्धुं गृह्याणि कर्तुं अपि यत्र न तत् जनन्यौ शेकात आपतुः अलं मनसः अनवस्थाम् ॥२५॥

अति चलौ	अत्यन्त चंचल	**क्रीडापराः**	खेलनेवालोंको
स्वसुतौ	अपने पुत्रोंको	**निषेद्धुं**	रोकनेमें
शृंगि	सींगवाले (गाय-बैल),	**तत् जनन्यौ**	उनकी माताएँ
		गृह्याणि कर्तुं	घरके काम करनेमें
अग्नि	अग्नि	**अलं न शेकात**	पूरी समर्थ नहीं थी
दंष्ट्र	काटनेवाले (कुत्ते-बिल्ली),	**मनसः**	मनकी
		अनवस्थां	उद्विग्नता
असि	तलवार	**आपतुः**	प्राप्त हो गयी थी ॥२५॥
जल द्विज	जल, पक्षियों तथा		
कण्टकेभ्यः	कांटोंसे		

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले ।
अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥२६॥

कालेन अल्पेन राजर्षेः रामः कृष्णः च गोकुले अघृष्ट जानुभिः पद्भिः विचक्रमतुः अञ्जसा ॥२६॥

राजर्षेः	राजर्षि परीक्षित् !	**अघृष्ट**	बिना
अल्पेन कालेन	थोड़े ही समय में	**जानुभिः**	घुटना घिसे
गोकुले	गोकुलमें	**अञ्जसा**	सरलतासे
रामः च	बलराम और	**पद्भिः**	पैरोंसे
कृष्णः	श्रीकृष्ण	**विचक्रमतुः**	चलने लगे ॥२६॥

ततस्तु भगवान् कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ।
सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन् मुदम् ॥२७॥

ततः तु भगवान् कृष्णः वयस्यैः व्रजबालकैः सहरामः व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन् मुदम् ॥२७॥

भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्ण	**सहरामः**	बलरामजीके साथ
ततः तु	तब तो	**व्रज स्त्रीणां**	व्रजकी गोपियोंको
वयस्यैः	समवयस्क	**मुदं जनयन्**	आनन्द उत्पन्न करते
व्रजबालकैः	व्रजके बालकों और	**चिक्रीडे**	खेलने लगे ॥२७॥

कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् ।
शृण्वत्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः ॥२८॥

कृष्णस्य गोप्यः रुचिरं वीक्ष्य कौमार चापलं शृण्वत्याः किल तत् मातुः इति ह ऊचुः समागताः ॥२८॥

कृष्णस्य	श्रीकृष्णकी	**तत् मातुः**	उनकी माताको
रुचिरं	मनोहर	**शृण्वत्याः**	सुनाकर
कौमार चापलं	बाल-चपलता	**इति ह**	निश्चय यही
किल वीक्ष्य	अहो, देखकर	**ऊचुः**	कहने लगीं ॥२८॥

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः ।
स्तेयं स्वाद्वत्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः ।
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति
द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥२९॥

वत्सान् मुञ्चन् क्वचित् असमये क्रोश संजात हासः स्तेयं स्वादति अथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेत् न अत्ति भाण्डं भिनत्ति द्रव्य अलाभे स गृह कुपितः याति उपक्रोश्य तोकान् ॥२९॥

क्वचित्	कभी	**वत्सान्**	बछड़े
असमये	बिना समयके ही	**मुञ्चन्**	खोल देता है,

क्रोश हासः	डांटनेपर इसे हँसी	**अत्ति**	खाता तो
संजात	आती है,	**भाण्डं भिनत्ति**	बरतन फोड़ देता है,
स्तेययोगैः	चोरीके उपाय	**द्रव्य**	कोई पदार्थ
कल्पितैः अथ	करके फिर	**अलाभे**	न मिलनेपर
दधि पयः	दही-दूध	**स गृह**	वह घरपर ही
स्तेयं	चोरीसे	**कुपितः**	क्रोध करके
स्वादति	खा लेता है,	**तोकान्**	शिशुओंको
मर्कान	बन्दरोंको	**उपक्रोश्य**	रुलाकर
भोक्ष्यन्	खिलानेके लिए	**याति**	(भाग) जाता है
विभजति	बांटता है,		॥२९॥
चेत् स न	यदि वह नहीं		

हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यै-
श्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित् ।
ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वांगमर्थप्रदीपं
काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥३०॥

हस्त अग्राह्ये रचयति विधि पीठक ऊलूखल आद्यैः छिद्रं हि अन्तः निहित वयुनः शिक्य भाण्डेषु तत् वित् ध्वान्त आगारे धृतमणि गणं स्वांगं अर्थ प्रदीपं काले गोप्यः यर्हि गृह कृत्येषु सुव्यग्र चित्ताः ॥३०॥

हस्त अग्राह्ये	हाथसे न मिलनेवाली वस्तुके लिए	**छिद्रं**	छेद कर देता है,
पीठक ऊलूखल	पीढ़ा, ऊखल	**ध्वान्त**	अँधेरे
आद्यैः विधि	आदिसे उपाय	**आगारे**	घरमें के लिए
रचयति	बनाता है,	**धृतमणि गणं**	मणियां पहिन रखी हैं, फिर
हि अन्तः	क्योंकि अपने भीतर	**स्वांगं**	इसका अपना अंग
निहित	स्थित	**अर्थं**	सब पदार्थोंको
वयुनः	ज्ञानसे	**प्रदीपं**	प्रकाशित करने-वाला है,
शिक्य	छीकेपर रखे		
भाण्डेषु	बरतनोंमें क्यों हैं	**यर्हि गोप्यः**	जब गोपियां
तत् वित्	उसे जाननेवाला यह		

गृह कृत्येषु	घरके कामोंमें	**काले**	उसी समय (यह सब
सुव्यग्र	अत्यन्त व्यस्त		करता है) ॥३०॥
चित्ताः	चित्त होती हैं		

एवं धाष्टर्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ
स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथाऽऽस्ते ।
इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभि-
र्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥३१॥

एवं धाष्टर्यान् उशति कुरुते मेहन आदीनि वास्तौ स्तेय उपायैः विरचित कृतिः सुप्रतीकः यथा आस्ते इत्थं स्त्रीभिः सभय नयन श्रीमुख आलोकिनीभिः व्याख्यात अर्था प्रहसित मुखी न हि उपालब्धुं ऐच्छत्॥३१॥

उशति	सती यशोदा !	**स्त्रीभिः**	स्त्रियों द्वारा
एवं	इस प्रकारकी	**इत्थं**	इस प्रकार
धाष्टर्यान्	धृष्टताएँ	**व्याख्यात**	अपने आनेका
वास्तौ	लिपे-पुते घरमें	**अर्था**	प्रयोजन कहनेपर
मेहन आदीनि	मल-मूत्रादि भी	**प्रहसित**	हँसते
कुरुते	कर देता है,	**मुखी**	मुखोंवाली (उन्हें
स्तेय उपायैः	चोरीके उपाय		देखकर)
विरचित कृतिः	बनानेमें कुशल है,	**उपालब्धुं**	(यशोदाजी) डांटने-
यथा सुप्रतीकः	जैसे बहुत सीधा हो		की
आस्ते	(इस समय) है,	**ऐच्छत्**	इच्छा
सभय नयन	भयभीत नेत्र	**न हि**	नहीं करती थीं
श्रीमुख	(श्रीकृष्णके) श्रीमुख		॥३१॥
आलोकिनीभिः	देखनेवाली		

एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः ।
कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥३२॥

एकदा क्रीडमानाः ते राम आद्या गोपदारकाः कृष्णः मृदं भक्षितवान् इति मात्रे न्यवेदयन् ॥३२॥

एकदा	एक बार	**भक्षितवान्**	खायी है'
क्रीडमानाः	खेलते हुए	**इति**	इस प्रकार
राम आद्याः	बलराम आदि	**मात्रे**	माता यशोदासे
गोपदारकाः	गोप-बालकोंने	**न्यवेदयन्**	निवेदन किया ॥३२॥
कृष्णः मृदं	'श्रीकृष्णने मिट्टी		

सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी ।
यशोदा भयसम्भ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥३३॥

सा गृहीत्वा करे कृष्णं उपालभ्य हित ईषिणी यशोदा भय सम्भ्रान्त प्रेक्षण अक्षमं अभाषत ॥३३॥

सा हित	वह हित	**उपालभ्य**	डांटकर
ईषिणी	चाहनेवाली	**प्रेक्षण**	सामने देखनेमें
यशोदा	मैया यशोदा	**अक्षमं**	असमर्थ
कृष्णं करे	श्रीकृष्ण का हाथ	**भय सम्भ्रान्त**	भयसे घबड़ायेसे
गृहीत्वा	पकड़कर	**अभाषत**	बोली ॥३३॥

कस्मान्मृदमदान्तात्मन् भवान् भक्षितवान् रहः ।
वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥३४॥

कस्मात् मृदं अदान्त आत्मन् भवान् भक्षितवान् रहः वदन्ति तावका हि एते कुमाराः ते अग्रजः अपि अयम् ॥३४॥

अदान्त आत्मन्	चंचल चित्त !	**तावकाः**	तेरे ही (सखा)
कस्मात् भवान्	क्यों तूने	**एते कुमाराः**	ये बालक और
रहः मृदं	एकान्तमें मिट्टी	**ते अयं अग्रजः**	तेरे ये बड़े भाई
भक्षितवान्	खायी ?	**अपि वदन्ति**	भी कहते हैं ॥३४॥
हि	क्योंकि		

कृष्ण उवाच

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ।
यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥३५॥

न अहं भक्षितवान् अम्ब सर्वे मिथ्या अभिशंसिनः यदि सत्य गिरः तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥३५॥

अम्ब अहं	मैया मैंने
न भक्षितवान्	नहीं खाई है,
सर्वे मिथ्या	सब झूठी बातें
अभिशंसिनः	बनानेवाले हैं,
यदि	यदि ये
सत्य गिरः	सत्यभाषी हैं तो
समक्षं	इनके सामने ही
मे मुखं पश्य	मेरा मुख देख लें

॥३५॥

श्रीशुक उवाच*

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान् हरिः ।
व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥३६॥

यदि एवं तर्हि व्यादेहि इति उक्तः स भगवान् हरिः व्यादत्त अव्याहत ऐश्वर्य क्रीडा मनुज बालकः ॥३६॥

यदि एवं	'यदि ऐसा है
तर्हि व्यादेहि	तब मुख फैला'
इति	(यशोदाजी के) ऐसा
उक्तः	कहनेपर
अव्याहत	अखण्ड
ऐश्वर्य	ऐश्वर्य
क्रीडा मनुज	खेलसे मनुष्य
बालकः	बालक बने
स	उन
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरिने
व्यादत्त	(मुख) फैला दिया

॥३६॥

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत् स्थास्नु च खं दिशः ।
साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥३७॥

सा तत्र ददृशे राजन् विश्वं जगत् स्थास्नु च खं दिशः स अद्रि द्वीप अब्धि भूगोलं स वायु अग्नि इन्दु तारकम् ॥३७॥

राजन्	राजन् !
सा तत्र	उसने वहाँ
स्थास्नु जगत्	स्थावर जगत
च खं	तथा आकाश
दिशः	दिशाएँ,
स अद्रि द्वीप	पर्वतों सहित द्वीपों,

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अब्धि	और समुद्रों युक्त	**तारकं**	तारागण युक्त
भूगोलं	भूमण्डल,	**विश्वं ददृशे**	विश्वको देखा
वायु अग्नि	वायु, अग्नि,		॥३७॥
स इन्दु	सहित चन्द्रमा और		

ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान् वियदेव च ।
वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः ॥३८॥

ज्योतिः चक्रं जलं तेजः नभस्वान् वियत् एव च वैकारिकाणि इन्द्रियाणि मनः मात्रा गुणाः त्रयः ॥३८॥

ज्योतिः चक्रं	ज्योतिर्मण्डल,	**वैकारिकाणि**	वैकारिक अहंकारके कार्य
जलं तेजः	जल, अग्नि,	**इन्द्रियाणि**	इन्द्रियोंको
नभस्वान्	वायु	**मात्राः**	पञ्च तन्मात्राओंको
च	तथा		तथा
वियत् एव	आकाशको भी	**त्रयः गुणाः**	तीनों गुणोंको ॥३८॥

एतद् विचित्रं सह जीवकाल-
स्वभावकर्माशयलिंगभेदम् ।
सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये
व्रजं सहात्मानमवाप शंकाम् ॥३९॥

एतत् विचित्रं सह जीवकाल स्वभाव कर्माशय लिंगभेदं सूनोः तनौ वीक्ष्य विदारित आस्ये व्रजं सह आत्मानं अवाप शङ्काम् ॥३९॥

जीवकाल	जीव, काल,	**आत्मानं**	अपनेको भी
स्वभाव सह	स्वभावके साथ	**आस्ये विदारित**	मुख फैलाये
कर्माशय	कर्माशयसे	**सूनोः तनौ**	पुत्रके शरीरमें
लिंगभेदं	लिंगभेदवाला	**वीक्ष्य**	देखकर
एतत् विचित्रं	यह विचित्र विश्व तथा	**शङ्कां**	शंकाको
		अवाप	प्राप्त हो गयीं ॥३९॥
व्रजं सह	व्रजके साथ		

किं स्वप्न एतदुत देवमाया
किं वा मदीयो बत बुद्धिमोहः ।
अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य
यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥४०॥

किं स्वप्न एतत् उत देवमाया किं वा मदीयः बत बुद्धिमोहः अथो अमुष्य एव मम अर्भकस्य यः कश्चन औत्पत्तिक आत्मयोगः ॥४०॥

एतत् किं स्वप्न	यह क्या स्वप्न है ?
उत	या
देवमाया	भगवानकी माया है ?
वा बत	अथवा यह
मदीयः	मेरी ही
बुद्धिमोहः	बुद्धिका भ्रम है ?
अथो	अथवा
अमुष्य एव	इसी
मम	मेरे
अर्भकस्य	बालककी
कश्चन	कोई
औत्पत्तिक	जन्मजात
आत्मयोगः	अपनी योग-सिद्धि है ? ॥४०॥

अथो यथावन्न वितर्कगोचरं
चेतोमनः कर्मवचोभिरञ्जसा ।
यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते
सुदुर्विभाव्यं प्रणतास्मि तत्पदम् ॥४१॥

अथो यथावत् न वितर्क गोचरं चेतः मनः कर्म वचः भिः अञ्जसा यत् आश्रयं येन यतः प्रतीयते सुदुर्विभाव्यं प्रणता अस्मि तत् पदम् ॥४१॥

अथो	अथवा
चेतः मनः	चित्त, मन,
कर्म वचः भिः	कर्म और वाणीसे
अञ्जसा	सरलतासे
यथावत्	ठीक-ठीक
वितर्क गोचरं	जो समझमें
न	नहीं आता,
यत् आश्रयं	जिसके आश्रयसे,
येन यतः	जिसके द्वारा, जिससे
प्रतीयते	(यह जगत्) प्रतीत होता है
तत्	उस
सुदुर्विभाव्यं	अचिन्त्य
पदं	परम पदको
प्रणता अस्मि	प्रणाम करती हूँ ॥४१॥

अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो
व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ।
गोप्यश्च गोपाः सहगोधनाश्च मे
यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥४२॥

अहं मम असौ पतिः एष मे सुतः व्रजेश्वरस्य अखिल वित्तपा सति गोप्यः च गोपाः सह गोधनाः च मे यत् मायया इत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥४२॥

अहं	यह मैं हूँ,
असौ मम पतिः	यह मेरे पति हैं,
एष मे सुतः	यह मेरा पुत्र है,
व्रजेश्वरस्य	व्रजराजकी
अखिल	सम्पूर्ण
वित्तपा	सम्पतिकी रक्षिका
सति च	मैं हूँ, तथा
गोप्यः च	गोपियाँ और
गोपाः	गोप
गोधनाः सह	गायोंके साथ
मे	मेरे हैं
यत् मायया	जिनकी मायासे
इत्थं कुमतिः	ऐसी दुर्बुद्धि है,
स मे	वही मेरी
गतिः	गति है' ॥४२॥

इत्थं विदिततत्वायां गोपिकायां स ईश्वरः ।
वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥४३॥

इत्थं विदित तत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः वैष्णवीं व्यतनोत् मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥४३॥

इत्थं	इस प्रकार
गोपिकायां	गोपी (यशोदा) को
विदित तत्त्वायां	तत्त्व ज्ञान हो जाने-पर
स विभुः	उन विभु
ईश्वरः	परमेश्वरने
पुत्रस्नेहमयीं	पुत्र-स्नेह रूपा
वैष्णवीं मायां	वैष्णवी मायाको
व्यतनोत्	फैला दिया ॥४३॥

सद्योनष्टस्मृतिर्गोपी साऽऽरोप्यारोहमात्मजम् ।
प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयाऽऽसीद् यथा पुरा ॥४४॥

सद्यः नष्ट स्मृतिः गोपी सा आरोप्य आरोहं आत्मजं प्रवृद्ध स्नेह कलिल हृदया आसीत् यथा पुरा ॥४४॥

गोपी सद्यः	गोपी (यशोदा) तुरन्त	**आरोप्य**	उठा लिया,
नष्ट स्मृतिः	वह स्मृति नष्ट हो जानेसे	**हृदया स्नेह**	हृदयमें प्रेमकी
		कलिल प्रवृद्ध	बाढ़ बढ़ जानेसे
सा आत्मजं	उन्होंने पुत्रको	**पुरा यथा**	पहिलेके समान
आरोहं	गोदमें	**आसीत्**	हो गयीं ॥४४॥

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः ।
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजम् ॥४५॥

त्रय्या च उपनिषत् भिः च सांख्य योगैः च सात्वतैः उपगीयमान माहात्म्यं हरिं सा अमन्यत आत्मजम् ॥४५॥

त्रय्या	वेदत्रयी,	**माहात्म्यं**	जिनकी महिमा
च	तथा	**उपगीयमान**	बराबर गायी जाती है
उपनिषत् भिः	उपनिषदों द्वारा,		
सांख्य	सांख्य	**हरिं**	उन श्रीहरि
च योगैः	और योग	**सा**	वह
च	तथा	**आत्मजं**	अपना पुत्र
सात्वतैः	पाञ्चरात्र द्वारा	**अमन्यत**	मानती थी ॥४५॥

राजोवाच

नन्दः किमकरोद् ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम् ।
यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥४६॥

नन्दः किं अकरोत् ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम् यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥४६॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**एवं महोदयं**	ऐसा महान अभ्युदयदायी

किं श्रेयः	कौन-सा पुण्य
नन्दः	नन्दजीने
अकरोत्	किया था
च महाभागा	और महाभागा
यशोदा	यशोदाने
यस्याः	जिसके
स्तनं	स्तनको
हरिः पपौ	श्रीहरिने पिया ॥४६॥

पितरौ नान्वविन्देतां कृष्णोदारार्भकेहितम् ।
गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥४७॥

पितरौ न अन्वविन्देतां कृष्ण उदार अर्भक ईहितं गायन्ति अद्य अपि कवयः यशः लोक मल अपहम् ॥४७॥

लोक मल	त्रिलोकीके पापको
अपहं	दूर करनेवाली
एतां	इन
कृष्ण	श्रीकृष्णकी
उदार	उदार
अर्भक ईहितं	बाल-लीलाको
अद्य अपि	आज भी
कवयः	कवि लोग
गायन्ति	गाते हैं
पितरौ	माता-पिता (देवकी-वसुदेव) ने
अन्वविन्देतां	अनुभव
न	नहीं किया ॥४७॥

श्रीशुक उवाच

द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया ।
करिष्यमाण आदेशान् ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥४८॥

द्रोणः वसूनां प्रवरः धरया सह भार्यया करिष्यमाण आदेशान् ब्रह्मणः तं उवाच ह ॥४८॥

वसूनां प्रवरः	वसुओंमें श्रेष्ठ
द्रोणः	द्रोणने
धरया	धरा नामक
भार्यया सह	पत्नीके साथ
ब्रह्मणः	ब्रह्माके
आदेशान्	आदेशका
करिष्यमाण	पालन करते हुए
तं ह	उनसे निश्चयपूर्वक
उवाच	कहा ॥४८॥

जातयोर्नौ महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ ।
भक्तिः स्यात् परमा लोके ययाञ्जो दुर्गतिं तरेत् ॥४९॥

जातयोः नौः महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ भक्तिः स्यात् परमा लोके यया अञ्जः दुर्गतिं तरेत् ॥४९॥

नौः	हम दोनोंके	**स्यात्**	होवे
भुवि	पृथ्वीपर	**यया**	जिससे (जीव)
जातयोः	उत्पन्न होनेपर	**अञ्जः**	सरलतासे
लोके	उस लोकमें	**दुर्गतिं**	दुर्गतिसे
विश्वेश्वरे	विश्वेश्वर	**तरेत्**	पार हो जाता है
हरौ	श्रीहरिमें		॥४९॥
परमा भक्तिः	परम भक्ति		

अस्त्वित्युक्तः स भगवान् व्रजे द्रोणो महायशाः ।
जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराभवत् ॥५०॥

अस्तु इति उक्तः स भगवान् व्रजे द्रोणः महायशाः जज्ञे नन्द इति ख्यातः यशोदा सा धरा अभवत् ॥५०॥

अस्तु	'अच्छा'	**नन्द इति**	नन्द इस नामसे
इति उक्ते	यह (ब्रह्माके) कहने पर	**ख्यातः**	प्रसिद्ध
		जज्ञे	उत्पन्न हुए
महायशाः	महान् यशस्वी	**सा धरा**	और वह धरा
भगवान् द्रोणः	भगवान् द्रोण	**यशोदा अभवत्**	यशोदा हुई ॥५०॥

ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने ।
दम्पत्योर्नितरामासीद् गोपगोपीषु भारत ॥५१॥

ततः भक्तिः भगवति पुत्री भूते जनार्दने दम्पत्योः नितरां आसीत् गोप गोपीषु भारत ॥५१॥

भारत	परीक्षित !	**जनार्दने**	जनार्दनके
ततः भगवति	अतः भगवान	**पुत्री भूते**	पुत्र बननेपर

गोप गोपीषु	गोप-गोपियोंसे	**भक्तिः**	भक्ति
नितरां	बहुत अधिक	**आसीत्**	थी ॥५१॥
दम्पत्योः	इस दम्पतिकी		

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः ।
सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥५२॥

कृष्णः ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः सहरामः वसन् चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥५२॥

ब्रह्मण	ब्रह्माके	**व्रजे वसन्**	व्रजमें रहते हुए
आदेशं	आदेशको	**स्वलीलया**	अपनी लीलासे
सत्यं कर्तुं	सच करनेके लिए	**तेषां प्रीतिं**	उनको प्रसन्न
विभुः कृष्णः	विभु श्रीकृष्ण	**चक्रे**	करने लगे ॥५२॥
सहरामः	बलरामजीके साथ		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे विश्वरूपदर्शनेऽमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीशक उवाच

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी ।
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ॥१॥

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी कर्मान्तर नियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ॥१॥

एकदा	एक बार	**नन्दगेहिनी**	नन्द-पत्नी
गृहदासीषु	घरकी दासियोंके	**यशोदा स्वयं**	यशोदा स्वयं
कर्मान्तर	दूसरे कर्ममें	**दधि निर्ममन्थ**	दधि-मन्थन करने
नियुक्तासु	लगाये जानेपर		लगीं ॥१॥

यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च ।
दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत ॥२॥

यानि यानि इह गीतानि तत् बाल चरितानि च दधि निर्मन्थने काले स्मरन्ती तान् अगायत ॥२॥

इह यानि यानि	यहां जिन-जिन	**तान् च**	उन सबको
तत् बाल	उनके बालकका	**दधि निर्मन्थने**	दधि-मन्थनके
चरितानि	चरित	**काले स्मरन्ती**	समय स्मरण करके
गीतानि	वर्णन हुआ है	**अगायत**	गा रही थीं ॥२॥

क्षौमं वासः पृथुकटितटे
बिभ्रती सूत्रनद्धं
पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं
जातकम्पं च सुभ्रूः ।

रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्-
कंकणौ कुण्डले च
स्विन्नं वक्त्रं कबरविगल-
न्मालती निर्ममन्थ ॥३॥

क्षौमं वासः पृथु कटि तटे बिभ्रती सूत्रनद्धं पुत्र स्नेह स्नुत कुचयुगं जात कम्पं च सुभ्रूः रज्जु आकर्ष श्रमभुज चलत् कङ्कणौ कुण्डले च स्विन्नं वक्त्रं कबर विगलत् मालती निर्ममन्थ ॥३॥

पृथु	स्थूल	**रज्जु आकर्ष**	रस्सी खींचनेके
कटि तटे	कटि तट (नितम्बों) के ऊपर	**श्रमभुज**	श्रमसे भुजाओंके साथ हिलनेसे
सूत्रनद्धं	कटि-बन्धन (नीवी) बँधा	**कङ्कणौ च**	कंकण और
क्षौमं वासः	रेशमी वस्त्र	**कुण्डले**	कुण्डल
बिभ्रती	धारण किये हुए	**चलत्**	हिल रहे थे,
पुत्र स्नेह	पुत्र स्नेहसे	**वक्त्रं स्विन्नं**	मुखपर पसीना आ गया था
स्नुत	टपकते (दूध) वाले	**कबर**	जूड़ेमें लगे
कुचयुगं	दोनों स्तन	**मालती**	मालती पुष्प
जात कम्पं	हिल रहे थे,	**विगलत्**	गिरते जाते थे
च	तथा वे	**निर्ममन्थ**	(इस प्रकार दही) मन्थन कर रही थीं ॥३॥
सुभ्रूः	सुन्दर भौहों वाली (यशोदाजी)		

तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः ।
गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत् प्रीतिमावहन् ॥४॥

तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः गृहीत्वा दधि मन्थानं न्यषेधत् प्रीतिं आवहन् ॥४॥

तं	उस	**स्तन्यकाम**	स्तन पातकी इच्छा-से
मथ्नन्तीं	मन्थन करती हुई		
जननीं	माताके	**आसाद्य**	समीप आकर

दधि-मन्थानं	दहीकी मथानी	**प्रीति आवहन्**	प्रसन्न करते हुए
गृहीत्वा	पकड़कर	**न्यषेधत्**	रोक दिया ॥४॥

तमङ्कमारूढमपाययत् स्तनं
स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम् ।
अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा यया-
वुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते ॥५॥

तं अङ्कं आरूढं अपाययत् स्तनं स्नेह स्नुतं सस्मितं ईक्षती मुखं अतृप्तं उत्सृज्य जवेन सा ययाः उत्सिच्यमाने पयसि तु अधिश्रिते ॥५॥

तं अङ्कं	उन गोदमें	**पयसि**	दूधके
आरूढं	चढ़े हुएको	**उत्सिच्यमाने**	उफननेपर
सस्मितं मुखं	मुस्कान युक्त मुख	**अतृप्तं**	अतृप्त
ईक्षती	देखती हुई	**उत्सृज्य**	छोड़कर
स्नेह स्नुतं	स्नेहसे टपकता	**सा जवेन**	वे वेग पूर्वक
स्तनं अपाययत्	स्तन पिलाने लगीं	**ययाः**	चली गयीं ॥५॥
अधिश्रिते	(इतनेमें अग्निपर) चढ़े हुए		

संजातकोपः स्फुरितारुणाधरं
संदश्य दद्भिर्दधिमन्थभाजनम् ।
भित्वा मृषाश्रुर्दृषदश्मना रहो
जघास हैयङ्गवमन्तरं गतः ॥६॥

सञ्जातः कोपः स्फुरितं अरुण अधरं संदश्य दद्भिः दधि मन्थ भाजनं भित्त्वा मृषा अश्रुः दृषत् अश्मना रहः जघास हैयंगवं अन्तरं गतः ॥६॥

कोपः	(श्रीकृष्णको) क्रोध	**अरुण अधरं**	लाल ओष्ठको
सञ्जातः	आ गया	**दद्भिः संदश्य**	दांतोंसे दबाकर
स्फुरितं	फड़कते	**दधि मन्थ**	दही-मन्थनके

भाजनं	मटकेको	**अन्तरं**	भीतर
अश्मना भित्त्वा	पत्थरसे फोड़कर	**रहः गतः**	एकान्तमें जाकर
दृषत्	नेत्रोंमें	**हैयंगवं**	माखन
मृषा अश्रुः	झूठे आंसू लाकर	**जघास**	खाने लगे ॥६॥

उत्तार्य गोपी सुश्रृतं पयः पुनः
प्रविश्य संदृश्य च दध्यमत्रकम् ।
भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म त-
ज्जहास तं चापि न तत्र पश्यती ॥७॥

उत्तार्य गोपी सुश्रृतं पयः पुनः प्रविश्य संदृश्य च दधि अमत्रकं भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म तत् जहास तं च अपि न तत्र पश्यती ॥७॥

गोपी	गोपी (यशोदाजी)	**च**	तथा
सुश्रृतं	भली प्रकार	**स्वसुतस्य**	अपने पुत्रके
पयः	औटा दूध	**तत् कर्म**	उस कर्मको
उत्तार्य	उतार कर	**सन्दृश्य**	देखकर
पुनः प्रविश्य	फिर आकर	**च तं अपि**	और उसे भी
दधि अमत्रकं	दहीके मटकेको	**तत्र न पश्यती**	वहाँ न देखकर
भग्नं विलोक्य	फूटा देखकर	**जहास**	हँस पड़ीं ॥७॥

उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितं
मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितम् ।
हैयंगवं चौर्यविशंकितेक्षणं
निरीक्ष्य पश्चात् सुतमागमच्छनैः ॥८॥

उलूखल अंघ्रेः उपरि व्यवस्थितं मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितं हैयंगवं चौर्य विशङ्कित ईक्षणं निरीक्ष्य पश्चात् सुतं आगमत् शनैः ॥८॥

उलूखल अंघ्रेः	ऊखलके पैर (ऊखलके निचले भाग)	**उपरि**	ऊपर
		व्यवस्थितं	खड़े होकर
		शिचि स्थितं	छीकेमें रखा

हैयंगवं	मक्खन
मर्काय	वन्दरोंको
कामं ददतं	यथेच्छ देते हुए
चौर्यं	चोरीसे
विशङ्कित	चौकन्नी
ईक्षणं	दृष्टिवाले
सुतं निरीक्ष्य	पुत्रको देखकर
शनैः पश्चात्	धीरे-धीरे पीछेसे
आगमत्	समीप आ गयीं ॥८॥

तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वर-

ततोऽवरुह्यापससार भीतवत् ।

गोप्यन्वधावन्न यमाप योगिनां

क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः ॥९॥

तां आत्त यष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वरः ततः अवरुह्य अपससार भीतवत् गोपी अन्वधावत् न यं आप योगिनां क्षमं प्रवेष्टुं तपसा ईरितं मनः ॥९॥

तां यष्टिं	उन्हें छड़ी
आत्त	लिये
प्रसमीक्ष्य	देखकर
ततः अवरुह्य	वहांसे उतर कर
भीतवत्	डरे हुएके समान
अपससार	दूर भागे
गोपी	गोपी (यशोदा उनके)
अन्वधावत्	पीछे दौड़ीं,
तपसा ईरितं	तपस्या प्रेरित
योगिनां मनः	योगियोंका मन
यं प्रवेष्टुं	जिनमें प्रवेशकी
क्षमं न आप	क्षमता नहीं पाता ॥९॥

अन्वञ्चमाना जननी बृहच्चल-

च्छ्रोणीभराक्रान्तगतिः सुमध्यमा ।

जवेन विस्रंसितकेशबन्धन-

च्युतप्रसूनानुगतिः परामृशत् ॥१०॥

अन्वञ्च माना जननी बृहत् चलत् श्रोणी भर आक्रान्त गतिः सुमध्यमा जवेन विस्रंसित केश बन्धनः च्युत प्रसूना अनुगतिः परामृशत् ॥१०॥

अनु जननीं	पीछे आती मैयाको	**जवेन**	वेगसे (दौड़नेके कारण)
अन्वञ्च माना	छकाते हुए के		
अनुगतिः	पीछे दौड़ती	**केश बन्धनः**	केश-बन्धन (जूड़ा)
बृहत् चलत्	भारी हिलते	**विस्रंसित**	खुल गया
श्रोणी भर	नितम्बोंके भारसे	**च्युत प्रसूना**	उसमें लगे पुष्प गिर गये, पर
आक्रान्त गतिः	दबी गतिवाली		
सुमध्यमा	सुन्दर कटि यशोदा-जी के	**परामृशत्**	पकड़ लिया ॥१०॥

कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी
कषन्तमञ्जन्मषिणी स्वपाणिना ।
उद्वीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं
हस्ते गृहीत्वा भिषयन्त्यवागुरत् ॥११॥

कृत आगसं तं प्ररुदन्तं अक्षिणी कषन्तं अञ्जन मषिणी स्वपाणिना उद्वीक्षमाणं भय विह्वल ईक्षणं हस्ते गृहीत्वा भिषयन्ति अवागुरत् ॥११॥

तं कृत आगसं	उन अपराध करके	**भय विह्वल**	भय व्याकुल
प्ररुदन्तं	जोर-जोरसे रोते,	**ईक्षणं**	नेत्रोंसे
अञ्जन	अञ्जनसे	**उद्वीक्षमाणं**	देखते हुए
मषिणी	कजरारी	**हस्ते**	(श्रीकृष्णका)
अक्षिणी	नेत्रोंको	**गृहीत्वा**	हाथ पकड़कर
स्वपाणिना	अपने हाथोंसे	**भिषयन्ति**	डराती हुई
कषन्तं	मलते हुए	**अवागुरत्**	गुरनें लगी ॥११॥

त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला ।
इयेष किल तं बद्धुं दाम्नातद्वीर्यकोविदा ॥१२॥

त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञाय अर्भक वत्सला इयेष किल तं बद्धुं दाम्ना अतत् वीर्य कोविदा ॥१२॥

सुतं भीतं	पुत्रको डरा हुआ	**अर्भक वत्सला**	पुत्र-वत्सला (यशोदा) ने
विज्ञाय	जानकर		

यष्टिं त्यक्त्वा	छड़ीको छोड़कर	दाम्ना	रस्सीसे
अतत् वीर्य	उनके प्रभावको	बद्धुं	बाँधनेकी
कोविदा	न जाननेके कारण	इयेष	इच्छा करने लगी
किल तं	अहो उनको		॥१२॥

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः ॥१३॥

न च अन्तः न बहिः यस्य न पूर्वं न अपि च अपरं पूर्वं अपरं बहिः च अन्तः जगतः यः जगत् च यः ॥१३॥

यस्य च	जिसका कि	च जगतः	तथा जगतके
न अन्तः	न भीतर है	अन्तः बहिः	भीतर-बाहर
न बहिः	न बाहर,	यः च	जो है और
न पूर्वं	न पूर्व है	जगत् यः	जो जगद्रूप है
न अपरं	न पश्चिम		॥१३॥
पूर्वं अपरं	पूर्व-पश्चिम		

तं मत्वाऽऽत्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम् ।
गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥१४॥

तं मत्वा आत्मजं अव्यक्तं मर्त्य लिंगं अधोक्षजं गोपिका उलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥१४॥

तं मर्त्य लिंगं	उन मनुष्य रूपधारी	यथा	जैसे कोई
अव्यक्तं	अव्यक्त	प्राकृतं	साधारण बालक हो
अधोक्षजं	हृषीकेशको	उलूखले	ऊखलके साथ
आत्मजं	अपना पुत्र	दाम्ना	रस्सीसे
मत्त्वा	मानकर	गोपिका	गोपी (यशोदा)
		बबन्ध	बाँधने लगीं ॥१४॥

तद् दाम बध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः ।
द्व्यंगुलोनमभूत्तेन संदधेऽन्यच्च गोपिका ॥१५॥

तत् दाम बध्यमानस्य स्व अर्भकस्य कृत आगसः द्वि अंगुल ऊनं अभूत् तेन सन्दधे अन्यत् च गोपिका ॥१५॥

कृत आगसः	अपराध करनेवाले	**ऊनं अभूत्**	कम हो गयी
स्व अर्भकस्य	अपने बालकको	**तेन**	इससे
बध्यमानस्य	बाँधते हुए	**गोपिका**	गोपी (यशोदा) ने
तत् दाम	वह रस्सी	**अन्यत् च**	दूसरी (रस्सी) भी
द्वि अंगुल	दो अंगुल	**सन्दधे**	(उससे) जोड़ दी ॥१५॥

यदाऽऽसीत्तदपि न्यूनं तेनान्यदपि संदधे ।
तदपि द्वयंगुलं न्यूनं यद् यदादत्त बन्धनम् ॥१६॥

यत् आसीत् तत् अपि न्यूनं तेन अन्यत् अपि सन्दधे तत् अपि द्वि अंगुलं न्यूनं यत् यत् आदत्त बन्धनम् ॥१६॥

यत्	अब जो	**यत् यत्**	जो-जो
आसीत्	(जुड़कर) हुई	**बन्धनं**	बाँधनेको
तत् अपि	वह भी	**आदत्त**	(रस्सियां) लेती गईं
न्यूनं	कम पड़ी	**तत् अपि**	वह भी
तेन अन्यत्	इसलिए दूसरी	**द्वि अंगुलं**	दो अंगुल
अपि	भी	**न्यूनं**	कम हुई ॥१६॥
सन्दधे	जोड़ी (इस प्रकार)		

एवं स्वगेहदामानि यशोदा संदधत्यपि ।
गोपीनां सुस्मयन्तीनां स्मयन्ती विस्मिताभवत् ॥१७॥

एवं स्वगेह दामानि यशोदा सन्दधति अपि गोपीनां सुस्मयन्तीनां स्मयन्ती विस्मिता अभवत् ॥१७॥

एवं	इस प्रकार	**सन्दधति**	जोड़ते जानेपर
यशोदा	यशोदाजी	**अपि**	भी (बाँध नहीं सकीं तब)
स्वगेह	अपने घरकी		
दामानि	सब रस्सियोंको	**सुस्मयन्तीनां**	मुस्कराती हुई

गोपीनां	गोपियोंके साथ	**विस्मिता**	चकित
स्मयन्ती	मुस्कराकर	**अभवत्**	हो गयीं ॥१७॥

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः ।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने ॥१८॥

स्वमातुः स्विन्न गात्राया विस्रस्त कबर स्रजः दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपया आसीत् स्व बन्धने ॥१८॥

विस्रस्त कबर	खुले जूड़े तथा	**दृष्ट्वा**	देखकर
स्रजः	माला वाली	**कृष्णः**	श्रीकृष्णने
स्विन्न	पसीनेसे भीगे	**कृपया**	कृपा करके
गात्राया	शरीर	**स्व**	अपने आप
स्वमातुः	अपनी माताका	**बन्धने**	बन्धनमें
परिश्रमं	परिश्रम	**आसीत्**	आ गये ॥१८॥

एवं संदर्शिता ह्यंग हरिणा भृत्यवश्यता ।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥१९॥

एवं सन्दर्शिता हि अंग हरिणा भृत्य वश्यता स्ववशेन अपि कृष्णेन यस्य इदं स ईश्वरं वशे ॥१९॥

अंग	प्रिय परीक्षित	**कृष्णेन**	श्रीकृष्ण रूपी
स ईश्वरं	लोकपालोंके साथ	**हरिणा**	श्रीहरिने
इदं यस्य	यह सम्पूर्ण विश्व	**हि एवं**	क्योंकि इस प्रकार
वशे	जिनके वशमें है	**भृत्य**	अपने सेवकोंके
		वश्यता	वशमें रहना
स्ववशेन	परम स्वाधीन	**सन्दर्शिता**	दिखला दिया
अपि	भी		॥१९॥

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यंगसंश्रया ।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात् ॥२०॥

न इमं विरिञ्चः न भवः न श्रीः अपि अंग संश्रया प्रसादं लेभिरे गोपी यत् तत् प्राप विमुक्तिदात् ॥२०॥

तत्	उन	**श्रीः अपि न**	लक्ष्मीने भी नहीं
विमुक्तिदात्	मोक्षदातासे	**इमं प्रसादं**	यह कृपा
न विरिञ्चः	न ब्रह्माजी,	**लेभिरे**	प्राप्त की
न भवः	न शङ्करजी और	**यत् गोपी**	जो गोपी (यशोदा)
अंग	अंगमें		ने
संश्रया	रहनेवाली	**प्राप**	पाया ॥२०॥

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः ।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥२१॥

न अयं सुख आपः भगवान् देहिनां गोपिका सुतः ज्ञानिनां च आत्म भूतानां यथा भक्तिमतां इह ॥२१॥

इह	इस संसारमें	**भगवान्**	भगवान्
देहिनां	शरीर-धारियोंको	**सुख**	सुखपूर्वक
च	तथा	**आपः न**	प्राप्त होनेवाले नहीं
आत्म भूतानां	अपने स्वरूप भूत		हैं
ज्ञानिनां	ज्ञानियोंको	**यथा**	जैसे (सुखपूर्वक)
अयं	ये	**भक्तिमतां**	भक्ति करनेवालों
गोपिका सुतः	गोपी-नन्दन		को ॥२१॥

कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः ।
अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ॥२२॥

कृष्णः तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः अद्राक्षीत् अर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनद आत्मजौ ॥२२॥

मातरि	माताके	**आत्मजौ**	पुत्र
गृहकृत्येषु	घरके काममें	**गुह्यकौ**	यक्षोंको
व्यग्रायां	व्यस्त हो जानेपर	**अर्जुनौ**	अर्जुन वृक्ष हुए
कृष्णः तु	श्रीकृष्णने भी	**अद्राक्षीत्**	देखा ॥२२॥
पूर्वं धनद	पूर्व जन्मके कुबेर		

पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् ।
नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ ॥२३॥

पुरा नारद शापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् नल कूबर मणिग्रीवाः इति ख्यातौ श्रिया अन्वितौ ॥२३॥

नल कूबर	नल कूबर,	**नारद**	देवर्षि नारदके
मणिग्रीवाः	मणिग्रीव	**शापेन**	शापसे
इति ख्यातौ	इस नामसे प्रसिद्ध	**पुरा**	पहिले जन्ममें
श्रिया अन्वितौ	लक्ष्मीवान् होनेसे	**वृक्षतां**	वृक्ष बना
मदात्	घमण्डके कारण	**प्रापितौ**	दिये गये ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गोपीप्रसादो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

राजोवाच

कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् ।
यत्तद् विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥१॥

कथ्यतां भगवन् एतत् तयोः शापस्य कारणं यत् तत् विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेः तमः ॥१॥

भगवन्	भगवन् !	**यत् तत्**	जो उनका
एतत् तयोः	यह उनको	**विगर्हितं कर्म**	निन्दित कर्म था
शापस्य	शाप मिलनेका	**वा येन**	अथवा जिस कारण
कारणं	कारण	**देवर्षेः**	देवर्षिको
कथ्यतां	कहिए	**तमः**	क्रोध आया ॥१॥

श्रीशुक उवाच

रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ ।
कैलासोपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मदोत्कटौ ॥२॥

रुद्रस्य अनुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनद आत्मजौ कैलास उपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मद उत्कटौ ॥२॥

धनदस्य	धनाधीश कुबेरके	**रम्ये कैलास**	रमणीय कैलासके
आत्मजौ	इन दोनों पुत्रोंको	**उपवने**	उपवनमें
रुद्रस्य अनुचरौ	रुद्रका सेवक	**मन्दाकिन्यां**	मन्दाकिनी (गंगा) में
भूत्वा	होकर	**मद उत्कटौ**	मदोन्मत्त होकर
सुदृप्तौ	बहुत गर्व हो गया,		॥२॥

वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ ।
स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने ॥३॥

वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णित लोचनौ स्त्रीजनैः अनु गायत् भिः चेरतुः पुष्पिते वने ॥३॥

वारुणीं मदिरां	ताड़ी
पीत्वा	पीकर
मदाघूर्णित	नशेंसे घूमते
लोचनौ	नेत्रोंवाले
अनु	पीछे-पीछे
गायत् भिः	गाती चलती
स्त्रीजनैः	स्त्रियोंके साथ
पुष्पिते वने	पुष्पित वनमें
चेरतुः	घूमते रहे ॥३॥

अन्तः प्रविश्य गंगायामम्भोजवनराजिनि ।
चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः ॥४॥

अन्तः प्रविश्य गंगायां अम्भोजवन राजिनि चिक्रीडतुः युवतिभिः गजाः इव करेणुभिः ॥४॥

अम्भोजवन	कमलवनसे
राजिनि	सुशोभिता
गंगायां	गंगामें
अन्तः प्रविश्य	भीतर घुसकर
युवतिभिः	युवतियोंके साथ
करेणुभिः	हथिनियोंके साथ
गजाः इव	हाथीके समान
चिक्रीडतुः	क्रीड़ा करने लगे ॥४॥

यदृच्छया च देवर्षिर्भगवांस्तत्र कौरव ।
अपश्यन्नारदो देवौ क्षीबाणौ समबुध्यत ॥५॥

यदृच्छया च देवर्षिः भगवान् तत्र कौरव अपश्यत् नारदः देवौ क्षीबाणौ समबुध्यत ॥५॥

कौरव	कुरु-नन्दन !
यदृच्छया च	दैवयोगसे ही
भगवान्	भगवान
देवर्षिः नारदः	देवर्षि नारद
तत्र	वहां (आ गये और)
देवौ	इन दोनों यक्षोंको
अपश्यत्	देखकर
क्षीबाणौ	मदोन्मत्त
समबुध्यत	जान लिया ॥५॥

तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशंकिताः ।
वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ ॥६॥

तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यः विवस्त्राः शाप शङ्किताः वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ न एव गुह्यकौ ॥६॥

तं दृष्ट्वा	उनको देखकर	**वासांसि**	वस्त्र
शाप	शाप (मिलने) की	**पर्यधुः**	पहिन लिए, किन्तु
शङ्किताः	आशङ्कासे	**विवस्त्रौ**	वस्त्रहीन
विवस्त्राः	वस्त्रहीना	**गुह्यकौ**	दोनों यक्षोंने
देव्यः	देवियोंने	**न एव**	नहीं ही (पहिने)
व्रीडिता	लज्जित होकर		॥६॥
शीघ्रं	शीघ्र		

तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदान्धौ सुरात्मजौ ।
तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ ॥७॥

तौ दृष्ट्वा मदिरा मत्तौ श्रीमद अन्धौ सुर आत्मजौ तयोः अनुग्रह अर्थाय शापं दास्यन् इदं जगौ ॥७॥

तौ सुर	उन देव	**दृष्ट्वा**	देखकर
आत्मजौ	पुत्रोंको	**तयोः अनुग्रह**	उनपर कृपा
मदिरा मत्तौ	शराब पीकर उन्मत्त तथा	**अर्थाय**	करनेके लिए
		शापं दास्यन्	शाप देते हुए
श्रीमद	लक्ष्मीके गर्वसे	**इदं जगौ**	यह बोले ॥७॥
अन्धौ	अन्धे हुए		

नारद उवाच

न ह्यन्यो जुषतो जोष्यान् बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः ।
श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्री द्यूतमासवः ॥८॥

न हि अन्यः जुषतः जोष्यान् बुद्धिभ्रंशः रजोगुणः श्रीमदात् आभिजात्य आदिः यत्र स्त्री द्यूतं आसवः ॥८॥

जोष्यान्	प्रिय विषयोंका	**अन्यः**	छोड़कर दूसरा
जुषतः	सेवन करते हुए	**आभिजात्य**	उच्चकुलमें उत्पन्न होना
श्रीमदात्	ऐश्वर्यमदको		

आदि	आदि	**हि यत्र**	क्योंकि जहां
बुद्धिभ्रंशः	(मद) बुद्धि भ्रष्ट करनेवाले	**स्त्री द्यूतं**	स्त्रियां, जुआ,
		आसवः	शराब (सेवन)
रजोगुणः	रजोगुणके कार्य		रहता है ॥८॥
न	नहीं होते		

हन्यन्ते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः ।
मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्यु नश्वरम् ॥९॥

हन्यन्ते पशवः यत्र निर्दयैः अजित आत्मभिः मन्यमानैः इमं देहं अजर अमृत्यु नश्वरम् ॥९॥

यत्र	जहां (ऐश्वर्य मदमें)	**देहं**	शरीरको
निर्दयैः	निर्दय	**अजर अमृत्यु**	अजर-अमर
अजित	अजित	**मन्यमानैः**	मानते हुए
आत्मभिः	इन्द्रियों द्वारा	**पशवः हन्यन्ते**	पशु मारे जाते हैं ॥९॥
इमं नश्वरं	इस नश्वर		

देवसंज्ञितमप्यन्ते कृमिविड्भस्मसंज्ञितम् ।
भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥१०॥

देव संज्ञितं अपि अन्ते कृमिविट् भस्म संज्ञितं भूतध्रुक् तत् कृते स्वार्थं किं वेद निरयः यतः ॥१०॥

देव	देव (नरदेव, भूदेव)	**निरयः**	नरक होता है
संज्ञितं	कहलानेवाले	**तत् कृते**	उसके लिये
अपि अन्ते	भी अन्तमें	**भूतध्रुक्**	प्राणियोंसे द्रोह करने वाला
कृमिविट्	कीड़े, विष्ठा या		
भस्म	भस्म ही	**किं**	क्या (अपना वास्तविक)
संज्ञितं	कहलाते हैं,		
यतः	जिस (शरीरके कारण)	**स्वार्थं वेद**	स्वार्थ जानता है ॥१०॥

देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव च ।
मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा ॥११॥

देहः किं अन्नदातुः स्वं निषेक्तुः मातुः एव च मातुः पितुः वा बलिनः क्रेतुः अग्नेः शुनः अपि वा ॥११॥

किं	क्या	**च मातुः पितुः**	या माता-पिताका
अन्नदातुः	अन्नदाताका	**वा बलिनः**	अथवा बलवानका
देहः	यह देह है ?	**क्रेतुः**	खरीदनेवाले का,
एव मातुः	अपनी मातामें	**अग्नेः**	अग्निका,
निषेक्तुः एव	निषेचन (गर्भाधान) करनेवाले का ही	**वा शुनः**	अथवा कुत्तेका
		अपि	भी है ॥११॥

एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् ।
को विद्वानात्मसात् कृत्वा हन्ति जन्तूनृतेऽसतः ॥१२॥

एवं साधारणं देहं अव्यक्त प्रभव अप्ययं कः विद्वान् आत्मसात् कृत्वा हन्ति जन्तून् ऋते असतः ॥१२॥

एवं	इस प्रकारके	**आत्मसात्**	आत्मा
साधारणं	साधारण	**कृत्वा**	मानकर
देहं	शरीरको जिसका	**असतः ऋते**	दुष्टोंको छोड़कर
प्रभव अप्ययं	उत्पत्ति और नाश	**कः विद्वान्**	कौन विद्वान
अव्यक्त	अव्यक्तसे होता है (जाना नहीं जाता)	**जन्तून्**	प्राणियोंको
		हन्ति	मारेगा ॥१२॥

असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमञ्जनम् ।
आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥१३॥

असतः श्रीमद अन्धस्य दारिद्र्यं परम् अञ्जनं आत्म उपम्येन भूतानि दरिद्रः परं ईक्षते ॥१३॥

श्रीमद अन्धस्य	ऐश्वर्य मदान्ध	**दारिद्र्यं**	दरिद्रता
असतः	दुष्टके लिए	**परं अञ्जनं**	श्रेष्ठ अंजन है,

दरिद्रः	दरिद्र	**उपम्येन**	समान
परं भूतानि	दूसरे प्राणियोंको	**ईक्षते**	देखता है ॥१३॥
आत्म	अपने		

यथा कण्टकविद्धांगो जन्तोर्नेच्छति तां व्यथाम् ।
जीवसाम्यं गतो लिंगैर्न तथाविद्धकण्टकः ॥१४॥

यथा कण्टक विद्ध अंगः जन्तुः न इच्छति तां व्यथां जीव साम्यं गतः लिंगैः न तथा अविद्ध कण्टकः ॥१४॥

कण्टक विद्ध	कांटेसे बिंधे	**न इच्छति**	नहीं चाहता
अंगः यथा	शरीरवाला जैसे	**तथा**	वैसा
लिंगैः साम्यं	चिह्नोंसे समताकी	**अविद्ध कण्टकः**	जिसे कांटा नहीं
जीव गतः	जीवन प्राप्त		बिंधा हो
जन्तुः तां	प्राणीको वह	**न**	वह नहीं होता
व्यथां	पीड़ा		॥१४॥

दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह ।
कृच्छ्रं यदृच्छयाऽऽप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ॥१५॥

दरिद्रः निः अहं स्तम्भः मुक्तः सर्वमदैः इह कृच्छ्रं यदृच्छया आप्नोति तत् हि तस्य परं तपः ॥१५॥

निः अहं	अहंकार एवं	**यदृच्छया**	भाग्यसे
साम्भः	घमण्डहीन	**कृच्छ्र**	जो कष्ट
दरिद्रः इह	दरिद्र इसी लोकमें	**आप्नोति**	पाता है
सर्वमदैः	सब गर्वोंसे	**तत् हि तस्य**	वही उसकी
मुक्तः	मुक्त होता है	**परं**	महान्
इह	इस लोकमें	**तपः**	तपस्या है ॥१५॥

नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकांक्षिणः ।
इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति हिंसापि विनिवर्तते ॥१६॥

नित्यं क्षुत क्षाम देहस्य दरिद्रस्य अन्न काङ्क्षिणः इन्द्रियाणि अनुशुष्यन्ति हिंसा अपि विनिवर्तते ॥१६॥

नित्यं क्षुत	सदा भूखसे
क्षाम	दुबले पड़े
देहस्य	देहवाले
अन्न	भोजन
काङ्क्षिणः	चाहनेवाले
दरिद्रस्य	दरिद्रकी
इन्द्रियाणि	इन्द्रियां
अनुशुष्यन्ति	धीरे-धीरे सूख जाती हैं
हिंसा अपि	हिंसा भी
विनिवर्तते	निवृत्त हो जाती है ॥१६॥

दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः ।
सद्भिः क्षिणोति सं तर्षं तत आराद् विशुद्धयति ॥१७॥

दरिद्रस्य एव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः सत्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत् आरात् विशुद्ध्यति ॥१७॥

समदर्शिनः	समदर्शी
साधव	सत्पुरुष
दरिद्रस्य एव	दरिद्रसे ही
युज्यन्ते	मिलते हैं,
सत्भिः तं	सत्पुरुषों द्वारा वह
तर्षं	तृष्णा
क्षिणोति	क्षीण कर दी जाती है,
तत् आरात्	तब शीघ्र
विशुद्ध्यति	पूर्ण शुद्ध हो जाता है ॥१७॥

साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम् ।
उपेक्ष्यैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥१८॥

साधूनां समचित्तानां मुकुन्द चरण ईषिणां उपेक्ष्यैः किं धन स्तम्भैः असत् भिः असत् आश्रयैः ॥१८॥

मुकुन्द चरण	मुकुन्द-चरणोंको
ईषिणां	चाहनेवाले
समचित्तानां	समचित्त
साधूनां	सत्पुरुषोंके लिये
उपेक्ष्यैः	उपेक्षणीय
असत् आश्रयैः	दुष्टोंके संगी
धन स्तम्भैः	धन मदमत्त
असत् भिः	दुष्टोंसे
किं	क्या प्रयोजन ॥१८॥

तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदान्धयोः ।
तमोमदं हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः ॥१९॥

तत् अहं मत्तयोः माध्व्या वारुण्या श्रीमत् अन्धयोः तमः मदं हरिष्यामि स्त्रैणयोः अजित आत्मनोः ॥१९॥

तत् अहं	अतः मैं
माध्व्या	मीठी
वारुण्या	ताड़ी पीकर
मत्तयोः	मतवाले हुए
श्रीमत् अन्धयोः	ऐश्वर्य मदान्ध
स्त्रैणयोः	स्त्रीजित्
अजित	अजित
आत्मनोः	ईन्द्रिय इनके
तमः मदं	अज्ञान और गर्वको
हरिष्यामि	हरण करूँगा ॥१९॥

यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ ।
न विवाससमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ ॥२०॥

यत् इमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ न विवाससं आत्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ ॥२०॥

यत् इमौ	क्योंकि ये दोनों
लोकपालस्य	लोकपालके
पुत्रौ भूत्वा	पुत्र होकर
सुदुर्मदौ	अत्यन्त मतवाले होनेसे
तमःप्लुतौ	अज्ञानमें डूबकर
आत्मानं	अपनेको
विवाससं	दिगम्बर
न	नहीं
विजानीतः	जान पाते ॥२०॥

अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः ।
स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥२१॥

अतः अर्हतः स्थावरतां स्मातां न एवं यथा पुनः स्मृतिः स्यात् मत् प्रसादेन तत्र अपि मत् अनुग्रहात् ॥२१॥

अतः	अतः
स्थावरतां	स्थावर होने
अर्हतः	योग्य हैं
यथा पुनः	जिससे फिर
एवं न स्मातां	इस प्रकार न हों,
मत् प्रसादेन	मेरी कृपासे
मत्	मेरी
अनुग्रहात्	अनुग्रहरूपा
तत्र अपि	वहां भी
स्मृतिः स्यात्	स्मृति रहे ॥२१॥

वासुदेवस्य सांनिध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते ।
वृत्ते स्वर्लोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः ॥२२॥

वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्य शरत् शते वृत्ते स्वः लोकतां भूयः लब्ध भक्ती भविष्यतः ॥२२॥

दिव्य	देवताओंके	**लब्ध्वा**	पाकर
शरत् शते	सौ वर्ष	**भूयः स्वः**	फिर स्वर्ग
वृत्ते	बीतनेपर	**लोकतां**	निवास तथा
वासुदेवस्य	भगवान् वासुदेवका	**भक्ती लब्ध**	भक्तिकी प्राप्ति
सान्निध्यं	सामीप्य	**भविष्यतः**	होगी ॥२२॥

श्रीशुक उवाच

एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् ।
नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥२३॥

एवं उक्त्वा स देवर्षिः गतः नारायण आश्रमं नलकूबर मणिग्रीवाः आसतुः यमल अर्जुनौ ॥२३॥

स देवर्षिः	वे देवर्षि नारदजी	**नलकूबर**	(और) नलकूबर एवं
एवं उक्त्वा	ऐसा कहकर	**मणिग्रीवाः**	मणिग्रीव
नारायण	नारायणके	**यमल**	सटे हुए
आश्रमं	आश्रम	**अर्जुनौ**	अर्जुनके दो वृक्ष
गतः	(बद्रीनाथ) चले गये	**आसतुः**	हो गये ॥२३॥

ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः ।
जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥२४॥

ऋषेः भागवत मुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचः हरिः जगाम शनकैः तत्र यत्र आस्तां यमल अर्जुनौ ॥२४॥

भागवत	भगवद्भक्तोंमें	**हरिः शनकैः**	श्रीकृष्ण धीरे-धीरे
मुख्यस्य	प्रमुख	**तत्र जगाम**	वहां गये
ऋषेः	देवर्षिकी	**यत्र यमल**	जहाँ वे सटे
वचः	वातको	**अर्जुनौ आस्तां**	अर्जुन वृक्ष थे ॥२४॥
सत्यं कर्तुं	सच करनेके लिये		

देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ ।
तत्तथा साधयिष्यामि यद् गीतं तन्महात्मना ॥२५॥

देवर्षिः मे प्रियतमः यत् इमौ धनद आत्मजौ तत् तथा साधयिष्यामि यत् गीतं तत् महात्मना ॥२५॥

यत्	(सोचा) क्योंकि	**तत् तत्**	अतः उस
देवर्षिः	देवर्षि	**महात्मना**	महात्माने
मे प्रियतमः	मुझे बहुत प्रिय हैं और	**यत् गीतं तथा**	जो कहा है वैसा
इमौ	ये दोनों	**साधयिष्यामि**	पूरा कर दूंगा ॥२५॥
धनद आत्मजौ	कुबेरके पुत्र हैं,		

इत्यन्तरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ ।
आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥२६॥

इति अन्तरेण अर्जुनयोः कृष्णः तु यमयोः ययौ आत्मनिर्वेश मात्रेण तिर्यक् गतं उलूखलम् ॥२६॥

इति	यह सोचकर	**कृष्णः तु**	श्रीकृष्ण तो
मात्रेण	केवल अपने	**ययौ**	निकल गये
आत्मनिर्वेश	प्रवेश योग्य	**उलूखलं**	किन्तु ऊखल
यमयोः	दोनों	**तिर्यक गतं**	तिरछा हो गया (अटक गया) ॥२६॥
अर्जुनयोः	अर्जुनवृक्षोंके		
अन्तरेण	बीचमें-से		

बालेन निष्कर्षयतान्वगुलूखलं तद्
दामोदरेण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ ।
निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेप-
स्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ ॥२७॥

बालेन निष्कर्षयता अन्वक् उलूखलं तत् दामोदरेण तरसा उत्कलित अङ्घ्रि बन्धौ निष्पेततुः परम विक्रमित अतिवेप स्कन्ध प्रवाल विटपौ कृत चण्ड शब्दौ ॥२७॥

तत्	उस	**बालेन**	बालक द्वारा
दामोदरेण	पेटमें रस्सी बँधे	**अन्वक्**	अपने पीछे

उलूखलं	ऊखलको	**अङ्घ्रि बन्धौ**	जड़ोंका बन्धन
निष्कर्षयता	खींचनेसे	**उत्कलित**	उखड़ जानेसे
परम विक्रम	बहुत बल लगानेपर	**चण्ड शब्दौ**	प्रचण्ड शब्द
स्कन्ध प्रवाल	शाखा, पत्ते,	**कृत**	करते
विटयौ	तनोंमें	**तरसा**	वेगसे
अतिवेप	अत्यन्त कम्पन हुआ,	**निष्पेततुः**	गिर पड़े ॥२७॥

तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ
सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः ।
कृष्णं प्रणम्य शिरसाखिललोकनाथं
बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥२८॥

तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ सिद्धाः उपेत्य कुजयोः इव जातवेदाः कृष्णं प्रणम्य शिरसा अखिल लोकनाथं बद्धाञ्जली विरजसाः इदं ऊचतुः स्म ॥२८॥

तत्र कुजयोः	उन वृक्षोंमें-से	**लोकनाथं**	लोकोंके स्वामी
जातवेदाः इव	अग्निके समान	**कृष्णं**	श्रीकृष्णको
परमया श्रिया	दिव्य कान्तिसे	**शिरसा**	सिरसे
ककुभः	दिशाओंको	**प्रणम्य**	प्रणाम करके
स्फुरन्तौ	प्रकाशित करते	**विरजसाः**	निर्मल होकर
सिद्धाः	दो सिद्ध	**बद्धाञ्जली**	हाथ जोड़कर
उपेत्य	निकल कर पास आकर	**इदं ऊचतुः स्म**	यह कहने लगे ॥२८॥
अखिल	समस्त		

यमलार्जुनौ उवाच*

कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः ।
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥२९॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् त्वं आद्यः पुरुषः परः व्यक्त अव्यक्तम् इदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥२९॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण !
महायोगिन्	महायोगी
कृष्ण	श्रीकृष्ण !
इदं व्यक्त	इस व्यक्त और
अव्यक्तं	अव्यक्त
विश्वं	विश्वको
ते रूपं	तुम्हारा स्वरूप
ब्राह्मणा विदुः	ब्रह्मज्ञानी जानते हैं ॥२९॥

त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः ।
त्वमेव कालो भगवान् विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥३०॥

त्वं एकः सर्व भूतानां देहः स्व आत्मा इन्द्रिय ईश्वरः त्वं एव कालः भगवान् विष्णुः अव्यय ईश्वरः ॥३०॥

एकः त्वं	अकेले तुम्ही
सर्व भूतानां	सम्पूर्ण प्राणियोंके
देहः	शरीर,
स्व आत्मा	प्राण, आत्मा
इन्द्रिय	और इन्द्रियोंके
ईश्वरः	स्वामी हो,
त्वं एव	तुम्ही
भगवान् कालः	भगवान काल
अव्यय ईश्वरः	अविनाशी ईश्वर
विष्णुः	विष्णु हो ॥३०॥

त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजः सत्त्वतमोमयी ।
त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥३१॥

त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजः सत्त्व तमः मयी त्वं एव पुरुषः अध्यक्षः सर्व क्षेत्र विकारवित् ॥३१॥

त्वं महान्	आप महत् तत्त्व तथा
रजः	रजो गुण,
सत्त्व	सत्व गुण
तमः मयी	तमोगुण मयी
सूक्ष्मा प्रकृतिः	सूक्ष्म प्रकृति हैं,
त्वं एव सर्व	आप ही सब
क्षेत्र	अन्तःकरणोंके
विकारवित्	विकारोंके साक्षी
अध्यक्षः	अध्यक्ष
पुरुषः	पुरुष (अन्तर्यामी) हैं ॥३१॥

गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः ।
को न्विहार्हति विज्ञातुं प्राकसिद्धं गुणसंवृतः ॥३२॥

गृह्य माणैः त्वं अग्राह्यः विकारैः प्राकृतैः गुणैः कः नु इह अर्हति विज्ञातुं प्राक सिद्धं गुणसंवृतः ॥३२॥

प्राकृतैः गुणैः	प्रकृतिके गुणोंके	**कः**	कौन है जो
गृह्य माणैः	ग्रहण होनेवाले	**प्राक सिद्धं**	सबसे पूर्व विद्यमान-को
विकारैः	विकारोंसे	**विज्ञातुं अर्हति**	जान सकता हो ॥३२॥
त्वं अग्राह्यः	तुम अग्राह्य हो,		
गुणसंवृतः	गुण (देहादि) युक्त		
इह नु	इस जगतमें भला		

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ।
आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥३३॥

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे आत्मद्योत गुणैः छन्न महिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥३३॥

आत्मद्योत	अपने द्वारा ही प्रकाशित	**तस्मै ब्रह्मणे**	उस परम ब्रह्म
गुणैः छन्न	गुणों द्वारा ढकी	**भगवते**	भगवान
महिम्ने	महिमावाले	**वासुदेवाय**	वासुदेव
वेधसे	सबके विधाता	**तुभ्यं नमः**	आपको नमस्कार ॥३३॥

यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः ।
तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः ॥३४॥

यस्य अवतारा ज्ञायन्ते शरीरेषु अशरीरिणः तैः तैः अतुल्य अतिशयैः वीर्यैः देहिषु असंगतैः ॥३४॥

देहिषु	(सामान्य) शरीर-धारीमें	**वीर्यैः**	पराक्रमोंसे
असंगतैः	(जिनका होना) संगत नहीं है	**अशरीरिणः**	अशरीरी आपका
तैः तैः अतुल्य	उन-उन अतुलनीय	**शरीरेषु**	शरीर-धारियोंमें
अतिशयैः	निरतिशय	**अवतारा**	अवतार
		ज्ञायन्ते	जाने जाते हैं ॥३४॥

स भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ।
अवतीर्णोंऽशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम् ॥३५॥

स भवान् सर्व लोकस्य भवाय विभवाय च अवतीर्णः अंश भागेन साम्प्रतं पतिः आशिषाम् ॥३५॥

स भवान्	वही आप	**भवाय च**	रक्षा तथा
आशिषां	सम्पूर्ण कामनाओंके	**विभवाय**	वैभवके लिए
पतिः	स्वामी	**अंश भागेन**	सम्पूर्ण अंशसे
साम्प्रतं	इस समय	**अवतीर्णः**	अवतरित हुए हैं
सर्व लोकस्य	सब लोकोंकी		॥३५॥

नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल ।
वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ॥३६॥

नमः परम कल्याण नमः परम मंगल वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ॥३६॥

परम	परम	**शान्ताय**	शान्त स्वरूपको
कल्याण	कल्याण स्वरूप	**नमः**	नमस्कार
वासुदेवाय	वासुदेवको	**यदूनां पतये**	यदुपतिको
नमः	नमस्कार	**नमः**	नमस्कार ॥३६॥
परम मंगल	परम मंगल स्वरूप		

अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिङ्करौ ।
दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥३७॥

अनुजानीहि नौ भूमन् तव अनुचर किङ्करौ दर्शनं नौ भगवत ऋषेः आसीत् अनुग्रहात् ॥३७॥

भूमन्	भगवन् !	**नौ**	हम दोनोंको आपका
तव अनुचर	आपके सेवक (रुद्रके)	**दर्शनं**	दर्शन हुआ
किङ्करौ	हम दोनों दास हैं		(अब हमें अपने लोक
भगवतः	भगवान्		जानेकी)
ऋषेः	देवर्षिके	**अनुजा नीहि**	अनुमति दीजिए
अनुग्रहात्	अनुग्रहसे		॥३७॥

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥३८॥

वाणी गुण अनुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनः तव पादयोः नः स्मृत्यां शिरसि तव निवास जगत् प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शने अस्तु भवत् तनूनाम् ॥३८॥

नः वाणी	हमारी वाणी	**शिरसि तव**	सिर आपके
तव गुण	आपके गुणोंका	**निवास**	निवास
अनुकथने	बार-बार वर्णन करनेमें	**जगत् प्रणामे**	विश्वको प्रणाम करनेमें
श्रवणौ	कान	**दृष्टिः**	दृष्टि
कथायां	सुननेमें	**भवत् तनूनां**	आपके श्रीविग्रह रूप
च हस्तौ	तथा हाथ	**सतां**	संतोंके
कर्मसु	सेवा कर्ममें,	**दर्शने अस्तु**	दर्शनमें लगी रहे ॥३८॥
पादयोः	चरणोंका		
मनः स्मृत्यां	स्मरण करनेमें		

श्रीशुक उवाच

इत्थं संकीर्तितस्ताभ्यां भगवान् गोकुलेश्वरः ।
दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ ॥३९॥

इत्थं संकीर्तितः ताभ्यां भगवान् गोकुलेश्वरः दाम्ना च उलूखले बद्धः प्रहसन् आह गुह्यकौ ॥३९॥

ताभ्यां	उन दोनों द्वारा	**उलूखले**	ऊखलमें
इत्थं	इस प्रकार	**दाम्ना बद्धः च**	रस्सीसे बँधे हुए भी
संकीर्तितः	स्तुति करनेपर	**प्रहसन्**	हँसते हुए
भगवान्	भगवान्	**गुह्यकौ**	उन यक्षोंसे
गोकुलेश्वरः	गोकुलेश्वर	**आह**	बोले ॥३९॥

श्रीभगवानुवाच

ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना ।
यच्छ्रीमदान्धयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः ॥४०॥

ज्ञातं मम पुरा एव एतत् ऋषिणा करुण आत्मना यत् श्रीमद् अन्धयोः वाग्भिः विभ्रंशः अनुग्रहः कृतः ॥४०॥

करुण आत्मना	दयालु चित्त	**विभ्रंशः**	गिराने रूपी
ऋषिणा	देवर्षि नारदने	**अनुग्रहः**	कृपा
यत् श्रीमद्	जो ऐश्वर्य	**कृतः एतत्**	की, यह
अन्धयोः	मदान्ध तुम दोनोंको	**पुरा एव**	पहिले ही
वाग्भिः	अपनी शाप-वाणीसे	**मम ज्ञातं**	मेरा जाना है ॥४०॥

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ।
दर्शनान्नो भवेद् बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥४१॥

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत् कृत आत्मनां दर्शनात् न भवेत् बन्धः पुंसः अक्ष्णोः सवितुः यथा ॥४१॥

यथा पुंसः	जैसे पुरुषके	**मत्**	मुझमें
अक्ष्णोः	नेत्र	**कृत आत्मनां**	चित्त लगाये
सवितुः	सूर्यसे (नहीं जाते वैसे ही)	**साधूनां**	साधुओंके
		दर्शनात्	दर्शनसे
समचित्तानां	समचित्त,	**बन्धः न**	बन्धन नहीं
सुतरां	विशेषतः	**भवेत्**	होता ॥४१॥

तद् गच्छतं मत्परमौ नलकूबर सादनम् ।
सञ्जातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः ॥४२॥

तत् गच्छतं मत् परमौ नलकूबर सादनं सञ्जातः मयि भावः वां ईप्सितः परमः अभवः ॥४२॥

तत् मत्	अतः मेरे	**नलकूबर**	नल कूबर
परमौ	परायण	**सादनं गच्छतं**	घर जाओ

वां	तुम दोनोंका	**परमः भावः**	परम प्रेम
ईप्सितः	अभीष्ट	**सञ्जातः**	(तुममें) उत्पन्न हो
अभवः	मोक्षदाता		गया ॥४२॥
मयि	मुझमें		

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ।
बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥४३॥

इति उक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः बद्ध उलूखलं आमन्त्र्य जग्मतुः दिशं उत्तराम् ॥४३॥

इति	इस प्रकार	**प्रणम्य**	प्रणाम करके
उक्तौ	कहे जानेपर	**आमन्त्र्य**	अनुमति लेकर
उलूखलं	ऊखलमें	**तौ उत्तरां**	वे दोनों उत्तर
बद्ध	बँधे श्रीकृष्णकी	**दिशं**	दिशामें
परिक्रम्य	परिक्रमा करके	**जग्मतुः**	चले गये ॥४३॥
च पुनः पुनः	तथा बार-बार		

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नारदशापो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

श्रीशक उवाच

गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् ।
तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशङ्किताः ॥१॥

गोपा नन्द आदयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततः रवं तत्र आजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घात भय शङ्किताः ॥१॥

कुरुश्रेष्ठ	कुरुश्रेष्ठ !	**भम शङ्किताः**	भयसे आशंकित
पततः	गिरते हुए	**नन्द आदयः**	नन्द आदि
द्रुमयोः	वृक्षोंका	**गोपा तत्र**	गोप वहां
रवं श्रुत्वा	शब्द सुनकर	**आजग्मुः**	आये ॥१॥
निर्घात	वज्रपातके		

भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ ।
बभ्रमुस्तदविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ॥२॥

भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुः यमल अर्जुनौ बभ्रमुः तत् अविज्ञाय लक्ष्यं पतन कारणम् ॥२॥

तत्र अर्जुनौ	वहां अर्जुनके	**कारणं**	कारण
यमल	जुड़वां वृक्षोंको	**लक्ष्यं**	(श्रीकृष्ण) सामने
भूम्यां	पृथ्वीपर		ही थे; किन्तु
निपतितौ	गिरा	**तत् अविज्ञाय**	उसे न जानकर
ददृशुः	देखा	**बभ्रमुः**	भ्रममें पड़ गये ॥२॥
तत् पतन	उनके गिरनेका		

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं च बालकम् ।
कस्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥३॥

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं च बालकं कस्य इदं कुत आश्चर्यं उत्पात इति कातराः ॥३॥

उलूखलं	ऊखलको
विकर्षन्तं	खींचते हुए
दाम्ना बद्धं	रस्सीसे बँधे
बालकं च	बालकको भी (देखकर)
कस्य इदं	'यह किसका काम है'
कुत	'कहांसे
आश्चर्यं	आश्चर्य जनक
उत्पातं	यह उत्पात आया'
इति	इस प्रकार
कातराः	(सोचकर) व्याकुल हो गये ॥३॥

बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखलम् ।
विकर्षता मध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥४॥

बाला ऊचुः अनेन इति तिर्यक् गतं उलूखलं विकर्षता मध्यगेन पुरुषाः अपि चक्ष्महि ।४॥

बाला इति	बालकोंने यह
ऊचुः	कहा—
तिर्यक् गतं	तिरछे हुए
उलूखलं	ऊखलको
मध्यगेन	(वृक्षोंके) बीचसे निकल कर
विकर्षता	खींचते हुए
अनेन	इसी (कृष्ण) ने (गिराया है)
पुरुषाः अपि	दो पुरुषोंको भी
चक्ष्महि	हमने देखा है ॥४॥

न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति तस्य तत् ।
बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित् संदिग्धचेतसः ॥५॥

न ते तत् उक्तं जगृहुः न घटेत इति तस्य तत् बालस्य उत्पाटनं तर्वोः केचित् सन्दिग्ध चेतसः ॥५॥

तत्	उन (बालकों) की
उक्तं	कही बात
ते	उन (गोपों) ने
न जगृहुः	नहीं माना
तस्य बालस्य	'इस बालकका
तत् तर्वोः	इन (भारी) वृक्षों का
उत्पाटनं	उखाड़ना

न घटेत	नहीं बन सकता'	**चेतसः**	मनमें
इति	ऐसा मानकर किन्तु	**सन्दिग्ध**	सन्देह हो गया ॥५॥
केचित्	कुछ लोगोंके		

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम् ।
विलोक्य नन्दः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ॥६॥

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वं आत्मजं विलोक्य नन्दः प्रहसत् वदनः विमुमोच ह ॥६॥

उलूखलं	ऊखलको	**नन्दः**	नन्दजीने
विकर्षन्त	खींचते हुए	**प्रहसत् वदनः**	हँसते मुखसे
दाम्ना बद्धं	रस्सीसे बँधे	**विमुमोच ह**	झट छुड़ा दिया ॥६॥
स्वं आत्मजं	अपने पुत्रको		
विलोक्य	देखकर		

गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद् भगवान् बालवत् क्वचित् ।
उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत् ॥७॥

गोपीभिः स्तोभितः नृत्यत् भगवान् बालवत् क्वचित् उद्गायति क्वचित् मुग्धः तत् वशः दारुयन्त्रवत् ॥७॥

गोपीभिः	गोपियोंके	**क्वचित्**	कभी
स्तोभितः	फुसलानेपर	**उद्गायति**	ऊँचे स्वरसे गाते थे,
भगवान्	भगवान	**दारुयन्त्रवत्**	कठपुतलीके समान
क्वचित्	कभी	**तत् वशः**	उनके वशमें
बालवत्	बालकके समान	**मुग्धः**	मोहितसे रहते थे ॥७॥
नृत्यत्	नाचते थे,		

बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् ।
बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमावहन् ॥८॥

बिभर्ति क्वचित् आज्ञप्तः पीठक उन्मान पादुकं बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिं आवहन् ॥८॥

क्वचित्	कभी
आज्ञप्तः	आज्ञा देनेपर
पीठक उन्मान	पीढ़ा, बाट या
पादुकं	खड़ाऊँ
बिभर्ति	उठाते थे,
च स्वानां	तथा अपनोंको
प्रीतिं	प्रसन्न
आवहन्	करनेके लिए
बाहु क्षेपं च	(मल्लोंके समान) ताल ठोंकना भी
कुरुते	करते थे ॥८॥

दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम् ।
व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान् बालचेष्टितैः ॥९॥

दर्शयन् तत् विदां लोक आत्मनः भृत्यवश्यतां व्रजस्य उवाह वै हर्षं भगवान् बाल चेष्टितैः ॥९॥

तत्	उनको
विदां	जाननेवालों (ज्ञानियों) को
आत्मनः	अपनी
भृत्यवश्यतां	भक्त-परवशता
वै	निश्चित
दर्शयन्	दिखलाते हुए
बाल चेष्टितैः	बाल-क्रीड़ा द्वारा
भगवान्	भगवान
व्रजस्य	व्रजवासियोंकी
हर्षं	प्रसन्नता
उवाह	सम्पादित करते थे ॥९॥

क्रीणीहि भोः फलानीति श्रुत्वा सत्वरमच्युतः ।
फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः ॥१०॥

क्रीणीहि भोः फलानि इति श्रुत्वा सत्वरं अच्युतः फल अर्थी धान्यं आदाय ययौ सर्वफस प्रदः ॥१०॥

भोः फलानि	'अहो कोई फल
क्रीणीहि	खरीद लो'
इति	इस प्रकार
श्रुत्वा सत्वरं	सुनकर झटपट
सर्वफल	समस्त फलोंके
प्रदः	प्रदाता
अच्युतः	अच्युत श्रीकृष्ण
फल अर्थी	फल चाहते हुए
धान्यं आदाय	अनाज लेकर
ययौ	चल पड़े ॥१०॥

फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यं करद्वयम् ।
फलैरपूरयद् रत्नैः फलभाण्डमपूरि च ॥११॥

फल विक्रयिणी तस्य च्युत धान्यं करद्वयं फलैः अपूरयत् रत्नैः फल भाण्डं अपूरि च ॥११॥

फल विक्रयिणी	फल वेचनेवालीने	**अपूरयत्**	भर दिया
तस्य	उनके	**च**	तथा (भगवानने
च्युत धान्यं	अन्न बिखरे		उसकी)
कर द्वयं	दोनों हाथों (अञ्जलि) को	**फल भाण्डं**	फलोंकी टोकरी
		रत्नैः अपूरि	रत्नोंसे भर दी ॥११॥
फलैः	फलोंसे		

सरित्तीरगतं कृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत् ।
रामं च रोहिणी देवी क्रीडन्तं बालकैर्भृशम् ॥१२॥

सरित् तीर गतं कृष्णं भग्न अर्जुनं अथ आह्वयत् रामं च रोहिणी देवी क्रीडन्तं बालकैः भृशम् ॥१२॥

भग्न अर्जुनं	अर्जुन वृक्षोंके टूट जानेपर	**क्रीडन्तं**	खेलते हुए
		कृष्णं	श्रीकृष्ण
सरित्	सरिता	**च रामं**	तथा बलरामको
तीर गतं	(यमुना) किनारे जाकर	**अथ**	फिर
		रोहिणी देवी	रोहिणी देवीने
बालकैः	बालकोंके	**आह्वयत्**	बुलाया ॥१२॥
भृशं	साथ देर तक		

नोपेयातां यदाऽऽहूतौ क्रीडासङ्गेन पुत्रकौ ।
यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् ॥१३॥

न उपेयातां यदा आहूतौ क्रीडा संगेन पुत्रकौ यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् ॥१३॥

क्रीडा संगेन	खेलनेमें आसक्त	**रोहिणी**	रोहिणीजीने
पुत्रकौ	दोनों छोटे बच्चे	**पुत्रवत्सलां**	पुत्र-वत्सला
यदा आहूतौ	जब बुलानेपर	**यशोदां**	यशोदाजीको
उपेयातां न	समीप नहीं आये तब	**प्रेषयामास**	भेजा ॥१३॥

क्रीडन्तं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम् ।
यशोदाजोहवीत् कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥१४॥

क्रीडन्तं सा सुतं बालैः अतिवेलं सह अग्रजं यशोदा अजोहवीत् कृष्णं पुत्र स्नेह स्नुत स्तनी ॥१४॥

सह अग्रजं	बड़े भाईके साथ एवं	**स्नुत**	दूध टपकते
बालैः	बालकोंके संग	**स्तनी**	स्तनों वाली
अतिवेलं	बहुत देरसे	**सुतं**	अपने पुत्र
क्रीडन्तं	खेलते हुए	**कृष्णं**	श्रीकृष्णको
सा पुत्र स्नेह	वह पुत्र स्नेहसे	**अजोहवीत्**	पुकारने लगी ॥१४॥

कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष तात एहि स्तनं पिब ।
अलं विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रान्तोऽसि पुत्रक ॥१५॥

कृष्ण कृष्ण अरविन्द अक्ष तात एहि स्तनं पिब अलं विहारैः क्षुत् क्षान्तः क्रीडा श्रान्तः असि पुत्रक ॥१५॥

तात कृष्ण	बेटा कृष्ण !	**क्षुत् क्षान्तः**	भूखसे दुबले हो गये, हो,
अरविन्द अक्ष	कमल नयन	**एहि**	आओ,
पुत्रक कृष्ण	नन्हें बच्चे कृष्ण !	**स्तनं पिब**	स्तन पान करो ॥१५॥
विहारैः अलं	खेलना बन्द करो,		
क्रीडा श्रान्तः	तुम खेलमें थक		
असि	गये हो		

हे रामागच्छ तताशु सानुजः कुलनन्दन ।
प्रातरेव कृताहारस्तद् भवान् भोक्तुमर्हति ॥१६॥

हे राम आगच्छ तात आशु सानुजः कुलनन्दन प्रातः एव कृतः आहारः तत् भवान् भोक्तुं अर्हति ॥१६॥

कुलनन्दन	कुलनन्दन	**सानुजः**	छोटे भाईके साथ
हे राम	हे बलराम !	**आगच्छ**	आजाओ
तात आशु	बेटा शीघ्र	**प्रातः एव**	सवेरे ही (तुमने)

आहारः कृतः	भोजन किया है	**भोक्तुं**	भोजन करना
तत् भवान्	इसलिए तुमको	**अर्हति**	चाहिए ॥१६॥

प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः ।
एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान् यात बालकाः ॥१७॥

प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणः व्रज अधिपः एहि आवयोः प्रियं धेहि स्वगृहान् यात बालकाः ॥१७॥

दाशार्ह	हे दाशार्ह	**आवयोः**	हम दोनोंको
भोक्ष्यमाणः	भोजनको उद्यत	**प्रियं धेहि**	आनन्द दो,
व्रज अधिपः	व्रजराज	**बालकाः**	(दूसरे) बालक भी
त्वां	तुम्हारी	**स्वगृहान्**	अपने घर
प्रतीक्षते	प्रतीक्षा कर रहे हैं	**यात**	जावें ॥१७॥
एहि	आओ,		

धूलिधूसरिताङ्गस्त्वं पुत्र मज्जनमावह ।
जन्मर्क्षमद्य भवतो विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः ॥१८॥

धूलि धूसरित अंगः त्वं पुत्र मज्जनं आवह जन्मर्क्षं अद्य भवतः विप्रेभ्यः देहि गाः शुचिः ॥१८॥

पुत्र त्वं	पुत्र तुम	**जन्मर्क्ष**	जन्म-नक्षत्र है
धूलि धूसरित	धूलिसे मलिन	**शुचिः**	पवित्र होकर
अंगः	शरीर (हो रहे हो)	**विप्रेभ्यः**	ब्राह्मणोंको
मज्जनं आवह	स्नान करो,	**गाः देहि**	गोदान करो ॥१८॥
अद्य भवतः	आज तुम्हारा		

पश्य पश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान् स्वलंकृतान् ।
त्वं च स्नातः कृताहारो बिहरस्व स्वलंकृतः ॥१९॥

पश्य पश्य वयस्यान् ते मातृ मृष्टान् स्वलङ्कृतान् त्वं च स्नातः कृत आहारः विहरस्व स्वलङ्कृतः ॥१९॥

मातृ	माताओं द्वारा	**स्वलङ्कृतान्**	भली प्रकार
मृष्टान्	स्वच्छ किये गये		आभूषित

ते वयस्यान्	अपने सखाओंको	**कृत आहारः**	भोजन करनेके
पश्य पश्य	देखो ! देखो !		पश्चात्
त्वं च स्नातः	तुम भी स्नान	**स्वलङ्कृतः**	भली प्रकार आभूषण
	करके,		पहिनकर
		विहरस्व	खेलना ॥१९॥

इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं
मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप ।
हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं
नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ॥२०॥

इत्थं यशोदा तं अशेष शेखरं मत्वा सुतं स्नेह निबद्ध धीः नृप हस्ते गृहीत्वा सहरामं अच्युतं नीत्वा स्ववाटं कृतवति यथा उदयम् ॥२०॥

नृप	राजन् !	**सहरामं**	बलरामके साथ
इत्थं	इस प्रकार	**अच्युतं**	श्रीकृष्णका
स्नेह निबद्ध	स्नेहसे आबद्ध	**हस्ते गृहीत्वा**	हाथ पकड़कर
धीः यशोदा	बुद्धि यशोदा	**स्ववाटं नीत्वा**	अपने घर लाकर
तं	उन	**अथ यथा**	फिर जैसे
अशेषशेखरं	सर्व मुकुट मणिको	**उदयं**	उनका मंगल हो
सुतं मत्वा	अपना पुत्र मानकर	**कृतवति**	वैसा किया ॥२०॥

गोपवृद्धा महोत्पाताननुभूय बृहद्वने ।
नन्दादयः समागम्य व्रजकार्यममन्त्रयन् ॥२१॥

गोपवृद्धा महा उत्पातान् अनुभूय बृहत् वने नन्द आदयः सम आगम्य व्रज कार्यं अमन्त्रयन् ॥२१॥

बृहत् वने	महावनमें	**सम आगम्य**	एकत्र होकर
महा उत्पातान्	बड़े उत्पातोंका	**व्रज**	व्रजवासियोंके
अनुभूय	अनुभव करके	**कार्यं**	कर्तव्यका
नन्द आदयः	नन्द आदि	**अमन्त्रयन्**	विचार करने लगे
गोपवृद्धाः	वृद्ध गोपगण		॥२१॥

तत्रोपनन्दनामाऽऽह गोपो ज्ञानवयोऽधिकः ।
देशकालार्थतत्वज्ञः प्रियकृद् रामकृष्णयोः ॥२२॥

तत्र उपनन्द नामा आह गोपः ज्ञानवयः अधिकः देशकाल अर्थ तत्त्वज्ञः प्रियकृत् राम कृष्णयोः ॥२२॥

तत्र राम	वहां बलराम	**तत्त्वज्ञः**	तत्त्वके ज्ञाता,
कृष्णयोः	श्रीकृष्णका	**ज्ञानवयः**	ज्ञान तथा आयुमें
प्रियकृत्	प्रिय करनेवाले,	**अधिकः**	बड़े
देशकाल	देश-काल तथा	**उपनन्द नामा**	उपनन्द नामक
अर्थ	प्रयोजन	**गोपः आह**	गोप बोले ॥२२॥

उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्य हितैषिभिः ।
आयान्त्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥२३॥

उत्थातव्यं इतः अस्माभिः गोकुलस्य हितैषिभिः आयान्ति अत्र महा उत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥२३॥

बालानां	बालकोंका	**हितैषिभिः**	हित चाहनेवाले
नाशहेतवः	अनिष्ट करनेवाले	**अस्माभिः**	हम लोगोंको
महा उत्पाता	बड़े उपद्रव	**इतः**	यहांसे
अत्र आयान्ति	यहां आते हैं, अतः	**उत्थातव्यं**	उठ जाना चाहिए ॥२३॥
गोकुलस्य	गोकुलका		

मुक्तः कथञ्चिद् राक्षस्या बालघ्न्या बालको ह्यसौ ।
हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरि नापतत् ॥२४॥

मुक्तः कथञ्चित् राक्षस्या बालघ्न्या बालकः हि असौ हरेः अनुग्रहात् नूनं अनः च उपरि न अपतत् ॥२४॥

हि असौ	क्योंकि यह	**नूनं हरेः**	निश्चय श्रीहरिकी
बालकः	बालक	**अनुग्रहात्**	कृपासे ही
बालघ्न्या	बाल-हत्यारिणी	**अनः च**	पकड़ा भी
राक्षस्या	राक्षसीसे	**उपरि न**	ऊपर नहीं
कथञ्चित्	किसी प्रकार	**अपतत्**	गिरा ॥२४॥
मुक्तः	छूटा था,		

चक्रवातेन नीतोऽयं दैत्येन विपदं वियत् ।
शिलायां पतितस्तत्र परित्रातः सुरेश्वरैः ॥२५॥

चक्रवातेन नीतः अयं दैत्येन विपदं वियत् शिलायां पतितः तु तत्र परित्रातः सुर ईश्वरैः ॥३५॥

अयं विपदं	इसे बिपत्ति रूप	**पतितः तु**	गिरनेपर भी
चक्रवातेन	बवण्डर बने	**तत्र सुर**	वहां देवताओं
दैत्येन	दैत्य	**ईश्वरैः**	तथा ईश्वरने
वियत् नीतः	आकाशमें ले गया	**परित्रातः**	रक्षा कर ली ॥२५॥
शिलायां	फिर शिलापर		

यन्न म्रियेत द्रुमयोरन्तरं प्राप्य बालकः ।
असावन्यतमो वापि तदप्यच्युतरक्षणम् ॥२६॥

यत् न म्रियेत द्रुमयोः अन्तरं प्राप्य बालकः असाः अन्यतमः वा अपि तत् अपि अच्युत रक्षणम् ॥२६॥

यत् द्रुमयोः	जो वृक्षोंके	**अन्यतमः**	कोई दूसरा
अन्तरं प्राप्य	बीचमें जाकर भी	**अपि**	भी (नहीं मरा)
बालकः न	बालक नहीं	**तत् अपि**	वह भी
म्रियेय	मरा	**अच्युत**	भगवान् द्वारा ही
वा	अथवा	**रक्षणं**	रक्षा हुई ॥२६॥

यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः ।
तावद् बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्र सानुगाः ॥२७॥

यावत् औत्पातिकः अरिष्टः व्रजं न अभिभवेत् इतः तावत् बालान् उपादाय यास्यामः अन्यत्र स अनुगः ॥२७॥

यावत्	जब तक	**बालान्**	बालकोंको
औत्पातिकः	उत्पात रूप	**उप आदय**	साथ लेकर
अरिष्टः	कोई अरिष्ट	**स अनुगः**	अनुचरोंके साथ
इतः व्रजं	यहां व्रजको	**अन्यत्र**	दूसरे
न अभिभवेत्	न दबाले	**यास्यामः**	स्थानपर हम चले
तावत्	तभी तक		जायँ ॥२७॥

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम् ।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥२८॥

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननं गोप गोपी गवां सेव्यं पुण्य अद्रि तृण वीरुधम् ॥२८॥

गोप गोपी	गोप, गोपी,	**वीरुधं**	पौधों युक्त
गवां	गायोंके	**पशव्यं**	पशुओंको हितकर
सेव्यं	सेवन योग्य	**नवकाननं**	नवीन वनवाला
पुण्य अद्रि	पवित्र पर्वत,	**वृन्दावनं नाम**	वृन्दावन नामका
तृण	तृण तथा	**वनं**	वन है ॥२८॥

तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान् युङ्क्त मा चिरम् ।
गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते ॥२९॥

तत् तत्र अद्य एव यास्यामः शकटान् युङ्क्त मा चिरं गोधनानि अग्रतः यान्तु भवतां यदि रोचते ॥२९॥

तत्	इसलिए	**युङ्क्त**	जो तो
यदि भवतां	यदि आप लोगोंको	**तत्र अद्य एव**	वहां आज ही
रोचते	पसन्द आवे तो	**यास्यामः**	हम जायँगे
मा चिरं	देर मत करो,	**गोधनानि**	गायें
शकटान्	छकड़े	**अग्रतः यान्तु**	आगे जायें ॥२९॥

तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधु साध्विति वादिनः ।
व्रजान् स्वान् स्वान् समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः ॥३०॥

तत् श्रुत्वा एकधियः गोपाः साधु साधु इति वादिनः व्रजान् स्वान् स्वान् सम आयुज्य ययू रूढ परिच्छदाः ॥३०॥

तत्	उस (उपनन्द) की	**इति वादिनः**	ऐसा कहनेवाले
श्रुत्वा	बात सुनकर	**एकधियः**	एक मतवाले
साधु साधु	'बहुत ठीक, बहुत ठीक'	**गोपाः**	गोपोंने
		स्वान् स्वान्	अपने-अपने

व्रजान्	गोधनको	**रूढ परिच्छदाः**	सामग्री (छकड़ोंपर)
सम आयुज्य	भली प्रकार एकत्र करके		लादकर
		ययू	चल पड़े ॥३०॥

वृद्धान् बालान् स्त्रियो राजन् सर्वोपकरणानि च ।
अनस्स्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः ॥३१॥

वृद्धान् बालान् स्त्रियः राजन् सर्व उपकरणानि च अनः सु आरोप्य गोपाला यत्ता आत्त शरासनाः ॥३१॥

राजन्	राजन् !	**आरोप्य**	चढ़ाकर
वृद्धान् बालान्	वृद्धों, बालकों,	**गोपाला**	गोप लोग (स्वयं)
स्त्रियः	स्त्रियों	**आत्त**	धनुष,
च सर्वान्	और सब	**शरासनाः**	बाण लेकर
उपकरणानि	सामग्रीको	**यत्ता**	सावधान (साथ
अनः सु	छकड़ोंपर		चले) ॥३१॥

गोधनानि पुरस्कृत्य शृंगाण्यापूर्य सर्वतः ।
तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः ॥३२॥

गोधनानि पुरः कृत्य शृंगाणि आपूर्य सर्वतः तूर्य घोषेण महता ययुः सह पुरोहिताः ॥३२॥

गोधनानि	सब गोधनको	**महता**	भारी
पुरः कृत्य	आगे करके	**तूर्य घोषेण**	तुरही नाद करते
सर्वतः	सब ओर	**सह पुरोहिताः**	पुरोहितोंके साथ
शृंगाणि आपूर्य	नरसिंगे बजाकर	**ययुः**	चल पड़े ॥३२॥

गोप्यो रूढरथा नूत्नकुचकुङ्कुमकान्तयः ।
कृष्णलीला जगुः प्रीता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ॥३३॥

गोप्यः रूढरथा नूत्न कुचकुङ्कुम कान्तयः कृष्ण लीला जगुः प्रीता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ॥३३॥

नूत्न	नवीन
कुङ्कुम	कुंकुम लगे
कुच	पयोधरकी
कान्तयः	शोभावाली
निष्ककण्ठयः	गलेमें हुमेल पहिने
सुवाससः	उत्तम वस्त्रोंवाली
गोप्यः	गोपियां
रूढरथा	रथोंपर बैठी
प्रीता	प्रसन्न होकर
कृष्ण	श्रीकृष्णकी
लीला	लीलाओंका
जगुः	गान कर रही थीं ॥३३॥

तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते ।
रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ॥३४॥

तथा यशोदा रोहिण्याः एकं शकटं आस्थिते रेजतुः कृष्ण रामाभ्यां तत् कथा श्रवण उत्सुके ॥३४॥

तथा	इसी प्रकार
तत्	उन (अपने पुत्रों) की
कथा श्रवण	कथा सुननेको
उत्सुके	उत्सुक
यशोदा	यशोदा और
रोहिण्यः	रोहिणी
एकं शकटं	एक ही छकड़ेपर
कृष्ण	श्रीकृष्ण और
रामाभ्यां	बलरामके साथ
आस्थिते रेजतुः	बैठी सुशोभित थीं ॥३४॥

वृन्दावनं सम्प्रविश्य सर्वकालसुखावहम् ।
तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्धचन्द्रवत् ॥३५॥

वृन्दावनं सम्प्रविश्य सर्वकाल सुख आवहं तत्र चक्रुः व्रज आवासं शकटैः अर्धचन्द्रवत् ॥३५॥

सर्वकाल	सभी मौसमोंमें
सुख आवहं	सुखदायक
वृन्दावनं	वृन्दावनमें
सम्प्रविश्य	प्रवेश करके
तत्र शकटैः	वहां छकड़ोंसे
अर्धचन्द्रवत्	अर्धचन्द्रके समान
व्रज	गोधनके
आवासं	निवास योग्य स्थान
चक्रुः	बनाया ॥३५॥

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥३६॥

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुना पुलिनानि च वीक्ष्य आसीत् उत्तमा प्रीती राम माधवयोः नृप ॥३६॥

नृप	राजन् !	**वीक्ष्य**	देखकर
वृन्दावनं	वृन्दावन,	**राम माधवयोः**	बलराम श्रीकृष्णको
गोवर्धनं	गोवर्धन,	**उत्तमा प्रीती**	बड़ी प्रसन्नता
च यमुना	और यमुनाके	**आसीत्**	हुई ॥३६॥
पुलिनानि	पुलिनोंको		

एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितैः ।
कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥३७॥

एवं व्रज ओकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितै कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥३७॥

कलवाक्यैः	मधुर वाणी तथा	**स्वकालेन**	अपने समयपर
बालचेष्टितैः	बाल क्रीडासे	**वत्सपालौ**	(दोनों भाई)
व्रज ओकसां	व्रज-वासियोंको		वत्सपाल
एवं प्रीतिं	इस प्रकार प्रसन्नता	**बभूवतुः**	हो गये ॥३७॥
यच्छन्तौ	देते हुए		

अविदूरे व्रजभुवः सह गोपालदारकैः ।
चारयामासतुर्वत्सान् नानाक्रीडापरिच्छदौ ॥३८॥

अविदूरे व्रजभुवः सह गोपाल दारकैः चारयामासतुः वत्सान् नाना क्रीडा परिच्छदौ ॥३८॥

गोपाल दारकैः	गोप-बालकोंके	**क्रीड परिच्छदौ**	खेल सामग्रीके साथ
सह व्रजभुवः	साथ व्रजभूमिसे	**वत्सान्**	बछड़ोंको
अविदूरे	समीप ही	**चारयामासतुः**	चराने लगे ॥३८॥
नाना	अनेक प्रकारकी		

क्वचिद् वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् ।
क्वचित् पादैः किंकिणीभिः क्वचित् कृत्रि मगोवृषैः ॥३९॥

क्वचित् वादयतः वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् क्वचित् पादैः किङ्किणीभिः क्वचित् कृतिम गो वृषैः ॥३९॥

क्वचित्	कभी	**पादैः**	पैरोंके
वेणुं वादयतः	वंशी बजाते,	**किङ्किणीभिः**	घुंघरू बजाते,
क्वचित्	कभी	**क्वचित्**	कभी
क्षेपणैः	गुलेलसे	**कृतिम गो**	नकली गाय या
क्षिपतः	ढले फेंकते,	**वृषैः**	बैल बनते ॥३९॥
क्वचित्	कभी		

वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम् ।
अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥४०॥

वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परं अनुकृत्य रुतैः जन्तूः चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥४०॥

यथा	जैसे	**युयुधाते**	लड़ते थे या
प्राकृतौ	साधारण बालक हों	**जन्तूः**	प्राणियोंके
वृषायमाणौ	सांड़ोंकी नकल करके	**रुतैः**	शब्दोंका
नर्दन्तौ	गर्जना करते हुए	**अनुकृत्य**	अनुकरण करते हुए
परस्परं	आपसमें	**चेरतुः**	घूमते थे ॥४०॥

कदाचिद् यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः ।
वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत् ॥४१॥

कदाचित् यमुनातीरे वत्सान् चारयतः स्वकैः वयस्यैः कृष्ण बलयोः जिघांसुः दैत्य आगमत् ॥४१॥

कदाचित्	किसी समय	**यमुनातीरे**	यमुना-किनारे
स्वकैः	अपने	**वत्सान्**	बछड़े
वयस्यैः	सखाओंके साथ	**चारयतः**	चराते समय

कृष्ण	श्रीकृष्ण और	**दैत्य**	एक दैत्य
बलयोः	बलरामको	**आगमत्**	आ गया ॥४१॥
जिघांसुः	मारनेके लिए		

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः ।
दर्शयन् बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ॥४२॥

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथ गतं हरिः दर्शयन् बलदेवाय शनैः मुग्ध इव असदत् ॥४२॥

तं	उसे	**दर्शयन्**	दिखलाते हुए
वत्सरूपिणं	बछड़ेके रूपमें	**मुग्ध इव**	अनजानके समान
वत्सयूथ गतं	बछड़ोंके झुण्डमें मिले	**शनैः**	धीरे-धीरे
		असदत्	पास पहुँच गये ॥४२॥
वीक्ष्य हरिः	देखकर श्रीकृष्ण		
बलदेवाय	बलरामजी-को		

गृहीत्वापरपादाभ्यां सहलाङ्गूलमच्युतः ।
भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद् गतजीवितम् ।
स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह ॥४३॥

गृहीत्वा अपर पादाभ्यां सह लाङ्गूलं अच्युतः भ्रामयित्वा कपित्थ अग्रे प्राहिणोत् गत जीवितं स कपित्थैः महाकायः पात्यमानैः पपात ह ॥४३॥

अच्युतः	श्रीकृष्णने	**अग्रे**	ऊपर
सह लाङ्गूलं	पूंछके साथ	**प्राहिणोत्**	पटक दिया
अपर	पिछले	**गत जीवितं**	निष्प्राण होकर वह
पादाभ्यां	दोनोंपैर	**महाकायः**	विशाल शरीर
गृहीत्वा	पकड़कर	**कपित्थैः**	कैथोंको
भ्रामयित्वा	घुमाकर	**पात्यमानैः**	गिराता हुआ
कपित्थ	कैथेके वृक्षके	**पपात ह**	गिर ही पड़ा ॥४३॥

तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति ।
देवाश्च परिसन्तुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥४४॥

तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु-साधु इति देवाः च परिसन्तुष्टाः बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥४४॥

तं वीक्ष्य	उसे देखकर	**शशंसुः**	प्रशंसा करने लगे
विस्मिता	आश्चर्य चकित	**च देवाः**	और देवता
बालाः	गोप-बालक	**परिसन्तुष्टा**	परम सन्तुष्ट होकर
साधु	'अच्छा, किया,	**पुष्पवर्षिणः**	पुष्प-वर्षा करने वाले
साधु	अच्छा किया'		
इति	इस प्रकार	**बभूवुः**	हो गये ॥४४॥

तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ ।
सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः ॥४५॥

तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोक एकपालकौ सप्रातराशौ गोवत्सान् चारयन्तौ विचेरतुः ॥४५॥

सर्वलोक	सब लोकोंके	**सप्रातराशौ**	कलेऊ साथ लेकर
एकपालकौ	एकमात्र रक्षक		
तौ	वे दोनों भाई	**गोवत्सान्**	गौओंके बछड़ोंको
वत्सपालकौ	वत्सपाल	**चारयन्तौ**	चराते हुए
भूत्वा	होकर	**विचेरतुः**	घूमा करते थे ॥४५॥

स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यन्त एकदा ।
गत्वा जलाशयाभ्याशं पाययित्वा पपुर्जलम् ॥४६॥

स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यन्त एकदा गत्वा जलाशय अभ्याशं पाययित्वा पपुः जलम् ॥४६॥

सर्वे	सब (बालक)	**पाययिष्यन्त**	जल पिलानेके लिए
त्व स्वं	अपने-अपने	**जलाशय**	जलाशय (सरोवर) के
वत्सकुलं	बछड़ोंके समूहको		
एकदा	एक बार	**अभ्याशं गत्वा**	समीप जाकर

जलं	उन्हें जल	**पपुः**	(स्वयं जल) पिया
पाययित्वा	पिलाकर		॥४६॥

ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्वमवस्थितम् ।
तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृंगमिव च्युतम् ॥४७॥

ते तत्र ददृशुः बाला महासत्त्वं अवस्थितं तत्र सुः वज्र निर्भिन्नं गिरेः शृंगं इव च्युतम् ॥४७॥

तत्र	वहां	**शृंगं इव**	शिखरके समान
ते	उन	**महासत्वं**	बहुत बड़ा जीव
बाला	गोप बालकोंने	**अवस्थितं ददृशुः**	बैठा देखा,
वज्र निर्भिन्नं	वज्रसे टूटे हुए	**तत्र सुः**	(इससे) भयभीत
गिरेः च्युतं	पर्वतसे गिरे		हो गये ॥४७॥

स वै बको नाम महानसुरो वकरूपधृक् ।
आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद् बली ॥४८॥

स वै बकः नाम महान् असुरः बकरूपधृक् आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्ण तुण्डः अग्रसीत् बली ॥४८॥

वै स बकः	निश्चय वह बक	**बली**	बलवानने
नाम	नामक	**सहसा**	अचानक
महान् असुरः	महा असुर	**आगत्य**	समीप आकर
तीक्ष्ण तुण्डः	तीखी चोंचवाले	**कृष्णं**	श्रीकृष्णको
बकरूपधृक्	बगुलेका रूपधारी	**अग्रसीत्**	निगल लिया ॥४८॥

कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोऽर्भकाः ।
बभूवुरिन्द्रियाणीव विना प्राणं विचेतसः ॥४९॥

कृष्णं महाबक ग्रस्तं दृष्ट्वा राम आदयः अर्भकाः बभूवुः इन्द्रियाणि इव विना प्राणं विचेतसः ॥४९॥

महाबक	विशाल बगुले द्वारा	**दृष्ट्वा**	देखकर
ग्रस्तं	निगले गये	**राम आदयः**	बलराम आदि
कृष्णं	श्रीकृष्णको	**अर्भकाः**	बालक

विना प्राणं	प्राणके बिना	**विचेतसः**	मूर्छित
इन्द्रियाणि इव	इन्द्रियोंके समान	**बभूवुः**	हो गये ॥४९॥

तं तालुमूलं प्रदहन्तमग्निवद्
गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः ।
चच्छर्द सद्योऽतिरुषाक्षतं बक-
स्तुण्डेन हन्तुं पुनरभ्यपद्यत ॥५०॥

तं तालुमूलं प्रदहन्तं अग्निवत् गोपलसूनूं पितरं जगद्गुरोः चच्छर्द सद्यः अतिरुषा अक्षतं बकः तुण्डेन हन्तुं पुनः अभ्यपद्यत ॥५०॥

जगद्गुरोः	जगद्गुरु ब्रह्माके भी	**अक्षतं**	बिना क्षति पहुँचाये
पितरं तं	पिता उन	**चच्छर्द**	उगल दिया
गोपालसूनूं	गोपाल-नन्दन	**अतिरुषा**	बहुत क्रोधके कारण
अग्निवत्	अग्निके समान	**पुनः**	फिर
तालुमूलं	गले तक तालुको	**तुण्डेन हन्तुं**	चोंचसे मारने
प्रदहन्तं	भस्म करतेको	**अभ्यपद्यत**	उनकी ओर झपटा
सद्यः	तुरन्त		॥५०॥

तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयो-
र्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां पतिः ।
पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया
मुदावहो वीरणवद् दिवौकसाम् ॥५१॥

तं आपतन्तं स निगृह्य तुण्डयोः दोर्भ्यां बकं कंस सखं सतां पतिः पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुद आवहः वीरणवत् दिव ओकसाम् ॥५१॥

तं कंस	उस कंसके	**ओकसां**	देवताओंको
सखं	मित्र	**मुद आवहः**	आनन्द देनेवाले
बकं	बकके	**सतां पतिः**	सत्पुरुषोंके स्वामी
आपतन्तं	समीप पहुँचते ही	**स**	उन श्रीकृष्णने
दिव	स्वर्गीय	**दोर्भ्यां**	हाथोंसे

तुण्डयोः	चोंचको	वीरणवत्	सरकण्डेके समान
निगृह्य	पकड़कर	लीलया	खेलमें
बालेषु	बालकोंके	ददार	चीर डाला ॥५१॥
पश्यत्सु	देखते हुए		

तदा बकारिं सुरलोकवासिनः
समाकिरन् नन्दनमल्लिकादिभिः ।
समीडिरे चानकशङ्खसंस्तवै-
स्तद् वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे ॥५२॥

तदा बकारिं सुरलोक वासिनः सम आकिरन् नन्दन मल्लिका आदिभिः समीडिरे च आनक शंख संस्तवैः तत् वीक्ष्य गोपाल सुता विसिस्मिरे ॥५२॥

तदा सुरलोक	तब देवलोकमें	शंख	शंख आदि बजाकर
वासिनः	रहनेवालोंने	संस्तवैः	स्तोत्रोंसे
बकारिं	बकारि श्रीकृष्णपर	समीडिरे	स्तुति की,
नन्दन	नन्दनवनके	तत् वीक्ष्य	उसे देखकर
मल्लिका	चमेली	गोपाल सुता	गोप-बालक
आदिभिः	आदि पुष्पोंकी	विसिस्मिरे	आश्चर्यमें पड़
सम आकिरन्	खूब वर्षाकी		गये ॥५२॥
च आनक	तथा नगाड़े		

मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका
रामादयः प्राणमिवेन्द्रियो गणः ।
स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः
प्रणीय वत्सान् व्रजमेत्य तज्जगुः ॥५३॥

मुक्तं बक आस्यात् उपलभ्य बालका राम आदयः प्राणं इव इन्द्रियः गणः स्थान आगतं तं परिरभ्य निर्वृताः प्रणीय वत्सान् व्रजं एत्य तत् जगुः ॥५३॥

बक आस्यात्	बगुलेके मुखसे
मुक्तं उपलभ्य	छूटे पाकर
इन्द्रियः गणः	इन्द्रिय गणमें
प्राणं इव	प्राणके समान
स्थान	अपने स्थानपर
आगतं	आये
तं	उन (श्रीकृष्णका)
परिरभ्य	आलिगन करके
राम आदयः	बलराम आदि
बालका	बालक
निर्वृताः	आनन्दित हुए
वत्सान्	फिर बछड़ोंको
प्रणीय	लेकर
व्रजं एत्य	व्रजमें आकर
तत्	वह (वृत्तान्त)
जगुः	उतलाया ॥५३॥

श्रुत्वा तद् विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः ।
प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षन्त तृषितेक्षणाः ॥५४॥

श्रुत्वा तत् विस्मिता गोपा गोप्यः च अति प्रिय आदृताः प्रेत्य आगतं इव औत्सुक्यात् ऐक्षन्त तृषित ईक्षणाः ॥५४॥

तत् श्रुत्वा	उसे सुनकर
गोपा अति	गोप बहुत
विस्मिता	चकित हुए
च गोप्यः	और गोपियां
अति प्रिय	अत्यन्त प्रियके
प्रेत्य	मरकर
आगतं इव	लौटेके समान
आदृताः	आदर पूर्वक
तृषित	प्यासे
ईक्षणाः	नेत्रोंसे
औत्सुक्यात्	उत्सुकता पूर्वक
ऐक्षन्त	देखने लगीं ॥५४॥

अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन् ।
अप्यासीद् विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ॥५५॥

अहो बत अस्य बालस्य बहवः मृत्यवः अभवन् अपि आसीत् विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतः भयम् ॥५५॥

अहो वत	(कहने लगीं) अहो, आश्चर्य है
अस्य बालस्य	इस बालककी
बहवः	बहुत बार
मृत्यवः	मृत्यु
अभवन्	समीप आयी,
अपि पूर्वं	परन्तु पहिले
यतः भयं	जिनसे (इसे) भय
कृतं	उपस्थित किया गया
तेषां	उन्हींका
विप्रियं	अप्रिय
आसीत्	हुआ ॥५५॥

अथाप्यभिभवन्त्येनं नैव ते घोरदर्शनाः ।
जिघांसयैनमासाद्य नश्यन्त्यग्नौ पतङ्गवत् ॥५६॥

अथ अपि अभिभवन्ति एनं न एव ते घोर दर्शनाः जिघांसया एनं आसाद्य नश्यन्ति अग्नौ पतंगवत् ॥५६॥

अथ अपि ते	फिर भी वे	**एनं**	इसके पास
घोर	भयानक	**आसाद्य**	आकर
दर्शनाः	रूपवाले	**अग्नौ**	अग्निमें
एनं न एव	इसको नहीं ही	**पतंगवत्**	पतिंगेके समान
अभिभवन्ति	दबा पाते हैं (अपितु)	**नश्यन्ति**	नष्ट हो जाते हैं
जिघांसया	मारनेके लिए		॥५६॥

अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित् ।
गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ॥५७॥

अहो ब्रह्मविदां वाचः न असत्याः सन्ति कर्हिचित् गर्गः यत् आह भगवान् अन्वभावि तथा एव तत् ॥५७॥

अहो	अहो,	**भगवान् गर्गः**	भगवान् गर्गने
ब्रह्मविदां	ब्रह्मवेत्ताओंकी	**यत् आह**	जो कहा था
वाचः कर्हिचित्	वाणी कभी भी	**तथा**	उसी प्रकारका
असत्याः न	असत्य नहीं	**एव तत्**	ही उसका
सन्ति	होती,	**अन्वभावि**	अनुभव हुआ ॥५७॥

इति नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा ।
कुर्वन्तो रममाणाश्च नाविन्दन् भववेदनाम् ॥५८॥

इति नन्द आदयः गोपाः कृष्ण राम कथां मुदा कुर्वन्तः रममाणाः च न अविन्दन् भववेदनाम् ॥५८॥

इति	इस प्रकार	**कथां कुर्वन्तः**	कथा-चर्चा करते हुए
नन्द आदयः	नन्द आदि		
गोपाः मुदा	गोप आनन्दपूर्वक	**च**	तथा (उसीमें)
कृष्ण राम	श्रीकृष्ण-बलरामकी	**रममाणाः**	रमण करते

भववेदनां	सांसारिक कष्टोंको	**न**	नहीं करते थे ॥५८॥
अविन्दन	अनुभव		

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ।
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥५९॥

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुः व्रजे निलायनैः सेतुबन्धैः मर्कट उत्प्लवन आदिभिः ॥५९॥

एवं	इस प्रकार	**उत्प्लवन**	भांति कूदना
कौमारैः	कुमारावस्थाकी	**आदिभिः**	आदिके द्वारा
विहारैः	क्रीड़ामें	**व्रजे**	व्रजमें
निलायनैः	आँख मिचौनी,	**कौमारं**	कुमारावस्थको
सेतुवन्धैः	पुल बाँधना,	**जहतुः**	छोड़ (बिता)
मर्कट	बन्दरोंकी		दिया ॥५९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे वत्सबकवधो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

श्रीशक उवाच

क्वचिद् वनाशाय मनो दधद् व्रजात्
प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ।
प्रबोधयञ्छृङ्गरवेण चारुणा
विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥१॥

क्वचित् वन आशाय मनः दधत् व्रजात् प्रातः सम उत्थाय वयस्य वत्सपान् प्रबोधयन् शृंगरवेण चारुणा बिनिर्गतः वत्स पुरः सरः हरिः ॥१॥

क्वचित्	किसी दिन	वयस्य	सखा
वन आशाय	वन-भोजन करनेका	वत्सान्	वत्सपालोंको
मनः दधत्	विचार करके	प्रबोधयन	जगाते हुए
प्रातः सम	सवेरे जल्दी	वत्स	बछड़ोंको
उत्थाय	उठकर	पुरः सरः	आगे करके
चारुणा	सुन्दर	हरिः	श्रीकृष्ण
शृंगरवेण	शृंगी नादसे	विनिर्गतः	निकल पड़े ॥१॥

तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः
स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः ।
स्वान् स्वान् सहस्रोपरिसंख्ययान्वितान्
वत्सान् पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥२॥

तेन एव साकं पृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिक् वेत्र विषाण वेणवः स्वान् स्वान् सहस्र उपरि संख्यया अन्वितान् वत्सान् पुरस्कृत्य विनिर्ययुः मुदा ॥२॥

तेन एव साकं	उनके साथ ही	सहस्रशः	सहस्रों
स्निग्धाः	उनके प्रेमी	पृथुकाः	बालक

सुशिक् वेत्र	उत्तम छीके, बेंत,	**अन्वितान्**	वाल
विषाण वेणवः	सींग, वंशी लिए	**वत्सान्**	बछड़ोंको
स्वान् स्वान्	अपने-अपने	**पुरस्कृत्य**	आगे करके
सहस्र उपरि	सहस्राधिक	**मुदा**	प्रसन्नता पूर्वक
संख्यया	संख्या	**विनर्ययुः**	निकले ॥२॥

कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान् ।
चारयन्तोऽर्भलीलाभिर्विजह्रुस्तत्र तत्र ह ॥३॥

कृष्ण वत्सैः असंख्यातैः यूथी कृत्य स्ववत्सकान् चारयन्तः अर्भलीलाभिः विजह्रुः तत्र तत्र ह ॥३॥

कृष्ण	श्रीकृष्णके	**चारयन्तः**	उन्हें चराते हुए
असंख्यातैः	असंख्य	**अर्भलीलाभिः**	बालक्रीड़ा करते
वत्सैः	बछड़ोंमें	**ह तत्र तत्र**	चाहे जहां कहीं
स्ववत्सकान्	अपने बछड़े	**विजह्रुः**	विचरने लगे ॥३॥
यूथी कृत्य	सम्मिलित करके		

फलप्रवालस्तबकसुमनः पिच्छधातुभिः ।
काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥४॥

फल प्रवाल स्तबक सुमनः पिच्छ धातुभिः काच गुञ्जा मणि स्वर्ण भूषिता अपि अभूषयन् ॥४॥

काच गुञ्जा	काच, गुञ्जा,	**स्तबक सुमनः**	पुष्प गुच्छ, पुष्प,
मणि स्वर्ण	मणि तथा स्वर्णसे	**पिच्छ**	मयूर पंखादि तथा (गेरू आदि)
भूषिता	आभूषित होनेपर	**धातुभिः**	धातुओंसे
अपि	भी (वे)	**अभूषयन्**	(एक दूसरेको) सजाने लगे ॥४॥
फल	(छोटे) फलों,		
प्रवाल	किसलय,		

मृष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः ।
तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः ॥५॥

मुष्णन्तः अन्योन्य शिक्य आदीन् ज्ञातान् आरात् च चिक्षुपुः तत्रत्याः च पुनः दूरात् हसन्तः च पुनः ददुः ॥५॥

अन्योन्य	एक दूसरेकी	**तत्रत्याः च**	वहां वाला भी
शिक्य आदीन्	छीका आदि वस्तु	**पुनः दूरात्**	फिर दूर (फेंकता था)
मुष्णन्तः	चुरा लेते थे		
ज्ञातान्	पता लगनेपर	**हसन्तः च**	(इस प्रकार) हँसी करते हुए ही
आरात् च	समीपके ही (दूसरेके पास)	**पुनः ददुः**	फिर दे देते थे ॥५॥
चिक्षुपुः	फेंक देता था,		

यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ॥६॥

यदि दूरं गतः कृष्णः वनशोभा ईक्षणाय तं अहं पूर्वं अहं पूर्वं इति संस्पृश्य रेमिरे ॥६॥

यदि कृष्णः	यदि श्रीकृष्ण	**अहं पूर्वं**	मैं पहिले'
वनशोभा	वनकी शोभा	**इति**	इस प्रकार
ईक्षणाय	देखनेके लिए	**संस्पृश्य**	उन्हें छूकर
दूरं	(कुछ) दूर	**रेमिरे**	आनन्द मनाते थे ॥६॥
गतः	चले जाते तो		
अहं पूर्वं	'मैं पहिले,		

केचिद् वेणून् वादयन्तो ध्मान्तः शृंगाणि केचन ।
केचिद् भृंगैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ॥७॥

केचित् वेणून् वादयन्तः ध्मान्तः शृंगाणि केचन केचित् भृंगैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ॥७॥

केचित्	कोई	**केचित् भृंगैः**	कोई भौंरोंके साथ
वेणून्	बंशी	**प्रगायन्तः**	गा रहे थे,
वादयन्तः	बजाते थे,	**परे**	दूसरे
केचन शृंगाणि	कोई नरसिंहा	**कोकिलैः**	कोयलके साथ
ध्मान्तः	फूंक रहे थे,	**कूजन्तः**	कुहक रहे थे ॥७॥

विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधु हंसकैः ।
बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः ॥८॥

विच्छायाभिः प्रधावन्तः गच्छन्तः साधु हंसकैः बकैः उपविशन्तः च नृत्यन्तः च कलापिभिः ॥८॥

विच्छायाभिः	आकाशमें उड़ते पक्षियोंकी छायाके साथ	**साधु गच्छन्तः**	सुन्दर चालसे चलते थे,
प्रधावन्तः	दौड़ते थे,	**बकैः**	बगुलोंके
हंसकैः	हंसोंके साथ उनके समान	**उपविशन्तः**	पास बैठ जाते थे,
		च	तथा
		कलापिभिः	मयूरोंके साथ
		नृत्यन्तः	नाचते थे ॥८॥

विकर्षन्तः कीशबालानारोहन्तश्च तैर्द्रुमान् ।
विकुर्वन्तश्च तैः साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु ॥९॥

विकर्षन्तः कीशबालान् आरोहन्तः च तैः द्रुमान् विकुर्वन्तः च तैः साकं प्लवन्तः च पल आशिषु ॥९॥

कीशबालान्	बन्दरोंके बच्चोंको	**च तैः साकं**	एवं उनके साथ
विकर्षन्तः	(पकड़कर) खींचते थे,	**विकुर्वन्तः**	उनको (मुँह बना-कर) चिढ़ाते थे,
च तैः	तथा उनके साथ	**च**	और उनके
द्रुमान्	वृक्षोंपर	**पल आशिषु**	डालोंपर कूदते समय
आरोहन्तः	चढ़ जाते थे,	**प्लवन्तः**	उछलते थे ॥९॥

साकं भेकैर्बिलंघन्तः सरित्प्रस्रवसम्प्लुताः ।
विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रतिस्वनान् ॥१०॥

साकं भेकैः बिलङ्घन्तः सरित् प्रस्रव सम्प्लुताः विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तः च प्रतिस्वनान् ॥१०॥

भेकैः साकं	मेढ़कोंके साथ	**प्रस्रव**	कछारके (थोड़े)
विलङ्घन्तः	फुदकते हुए		जलमें
सरित्	नदीके	**सम्प्लुताः**	गोता लगाते थे,

प्रतिच्छायाः	(जलमें पड़े) प्रति-विम्बकी	**च**	तथा
		प्रतिस्वनान्	प्रतिध्वनिको
विहसन्तः	(मुख बनाकर) हँसी उड़ाते थे,	**शपन्तः**	गाली देते थे ॥१०॥

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या
दास्यं गतानां परदैवतेन ।
मायाश्रितानां नरदारकेण
साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥११॥

इत्थं सतां ब्रह्म सुख अनुभूत्या दास्यं गतानां पर दैवतेन माया श्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृत पुण्य पुञ्जाः ॥११॥

इत्थं	इस प्रकार	**श्रितानां**	मोहित लोगोंके लिए
सतां	जो सत्पुरुषोंके लिए	**नरदारकेण**	मनुष्य बालक रूप हैं
ब्रह्म सुख	ब्रह्म-सुखकी	**साकं**	उनके साथ
अनुभूत्या	अनुभूति रूप	**कृत पुण्य**	अनन्त पुण्य
दास्यं	दास्य भावको	**पुञ्जाः**	करनेवाले ये
गतानां	प्राप्तोंके लिए	**विजह्रुः**	क्रीड़ा करते हैं ॥११॥
पर दैवतेन	पर देवता स्वरूप,		
माया	माया		

यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो
धृतात्मभिर्योगिभिरप्यलभ्यः ।
स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः
किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ॥१२॥

यत् पाद पांसुः बहुजन्म कृच्छ्रतः धृत आत्मभिः योगिभिः अपि अलभ्यः स एव यत् दृक् विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टं अतः व्रजौकसाम् ॥१२॥

बहुजन्म	बहुत जन्मों तक	**धृत आत्मभिः**	इन्द्रियोंको वशमें करनेवाले
कृच्छ्रतः	कष्ट सहकर		

योगिभिः अपि	योगियोंके लिए भी
यत् पाद पांसुः	जिनकी चरण-रज
अलभ्यः	अगम्य (दुर्लभ) है,
स एव	वही (श्रीकृष्ण)
यत् दृक्	जिनके नेत्रोंके
विषयः	सामने
स्वयं स्थितः	साक्षात् विद्यमान् हैं
अतः व्रजौ कसां	अतः व्रजवासियोंके
दिष्टं किं	सौभाग्यका क्या
वर्ण्यते	वर्णन किया जाय

॥१२॥

अथाघनाम्नाभ्यपतन्महासुर-
स्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः ।
नित्यं यदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः
पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥१३॥

अथ अघ नाम अभ्यपतन् महाअसुरः तेषां सुखक्रीडन वीक्षण अक्षमः नित्यं यत् अन्तः निज जीवित ईप्सुभिः पीत अमृतैः अपि अमरैः प्रतीक्ष्यते

॥१३॥

तेषां	उन बालकोंको
सुखक्रीडन	सुखपूर्वक खेलते
वीक्षण	देखनेमें
अक्षमः	असमर्थ
अघ नाम	अघ नामक
महाअसुरः	महादैत्य
निज जीवित	अपना जीवन
ईप्सुभिः	चाहनेवाले
पीत अमृतैः	अमृत पीकर
अपि	भी
अमरैः	अमर हुए देवता
नित्यं यत्	सदा जिसकी
अन्तः	मृत्युकी
प्रतीक्ष्यते	प्रतीक्षा करते थे
अथ	तब वहां
अभ्यपतन्	आ पहुँचा ॥१३॥

दृष्ट्वार्भकान् कृष्णमुखानघासुरः
कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः ।
अयं तु मे सोदरनाशकृत्तयो-
र्द्वयोर्ममैनं सबलं हनिष्ये ॥१४॥

दृष्ट्वा अर्भकान् कृष्ण मुखान् अघ असुरः कंस अनुशिष्टः स बकी बक अनुजः अयं तु मे सोदर नाशकृत् तयोः द्वयोः मम एनं सबलं हनिष्ये

॥१४॥

स बकी	वह पूतना और
बक	बकासुरका
अनुजः	छोटा भाई
अघः असुरः	अघासुर
कंस	कंसका
अनुशिष्टः	भेजा था,
अर्भकान्	बालकोंको
दृष्ट्वा	देखकर (उसने सोचा)
अयं तु	यह (कृष्ण) तो
मम द्वयोः	मेरे दोनों
तयोः सोदर	उन सहोदरोंको
नाशकृत्	मारनेवाला है,
मे एनं	मैं इसे
सबलं	साथियोंके साथ
हनिष्ये	मार दूंगा ॥१४॥

एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापः
कृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः ।
प्राणे गते वर्ष्मसु का नु चिन्ता
प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ॥१५॥

एते यदा मत् सुहृदः अस्ति तिल आपः कृताः तदा नष्ट समा व्रजौकसः प्राणे गते वर्ष्मसु का नु चिन्ता प्रजा असवः प्राणभृतः हि ये ते ॥१५॥

यदा एते	जब ये सब
मत् सुहृदः	मेरे सुहृदोंके लिए
तिल आपः	तिलाञ्जलि
कृताः अस्ति	बना दिये जायँगे
तदा व्रजौकसः	तब व्रजवासी
नष्ट	नष्ट हुएके
समा	समान होंगे
प्राणे गते	प्राण चले जानेपर
नु वर्ष्मसु	भला शरीरकी
का चिन्ता	क्या चिन्ता
हि प्रजा	क्योंकि सन्तान
असवः	प्राण होती है
ये ते	ये सब (व्रजवासियों-के)
प्राणभृतः	प्राण धारक है ॥१५॥

इति व्यवस्याजगरं बृहद् वपुः
स योजनायाममहाद्रिपीवरम् ।
धृत्वाद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा
पथि व्यशेत ग्रसनाशया खलः ॥१६॥

इति व्यवस्य आजगरं बृहत् वपुः स योजन आयाम महा अद्रि पीवरं धृत्वा अद्भुतं व्यात्तगुहा आननं तदा पथि व्यशेत ग्रसन आशया खलः ॥१६॥

तदा खलः	उस समय वह दुष्ट	**अद्भुतं बृहत्**	अद्भुत बहुत बड़े
इति व्यवस्य	ऐसा निश्चय करके	**आजगरं**	अजगरका
ग्रसन	(सबको) निगल जानेके	**वपुः धृत्वा**	शरीर बनाकर
आशया	अभिप्रायसे	**व्यात्तगुहा**	गुफाके समान
योजन आयाम	एक योजन लम्बा	**आननं**	मुख फैलाकर
महा अद्रि	महा पर्वतके समान	**पथि व्यशेत**	मार्गमें लेट गया
पीवरं	मोटा		॥१६॥

धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो
दर्याननान्तो गिरिशृङ्गदंष्ट्रः ।
ध्वान्तान्तरास्यो विततोध्वजिह्वः
परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ॥१७॥

धरा अधर ओष्ठः जलद उत्तर ओष्ठः दरि आनन अन्तः गिरिशृंग दंष्ट्रः ध्वान्त अन्तर आस्यः विवत अध्व जिह्वः परुष अनिल श्वास दव ईक्षण ऊष्णः ॥१७॥

धरा अधर	पृथ्वीसे नीचेका	**ध्वान्तः**	अन्धकार था
ओष्ठः	ओष्ठ लगा था	**अध्व जिह्वः**	मार्गके समान जीभ
उत्तर	ऊपरका	**विवत**	फैली थी,
ओष्ठः जलद	ओष्ठ मेघों तक था	**श्वास परुष**	श्वास प्रचण्ड
आनन अन्तः	मुखका भीतरी भाग	**अनिल**	वायुके समान और
दरि	गुफाके समान	**ईक्षण**	नेत्र
गिरिशृंग	पर्वत शिखर जैसे	**दव उष्णः**	दावाग्नि जैसे जलते
दंष्ट्रः	दांत थे		थे ॥१७॥
अन्तर आस्यः	मुखके भीतर		

दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावनश्रियम् ।
व्यात्ताजगरतुण्डेन ह्युत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया ॥१८॥

दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावन श्रियं व्यात्त आजगर तुण्डेन हि उत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया ॥१८॥

तं तादृशं	उसे इस रूपमें	**लीलया**	खेलमें
दृष्ट्वा	देखकर	**व्यात्त**	फैले
सर्वे वृन्दावन	सब वृन्दावनकी	**आजगर तुण्डेन**	अजगरके मुखसे
श्रियं	कोई शोभा	**उत्पेक्षन्ते स्म**	तुलना करने लगे
मत्वा हि	मानकर ही		॥१८॥

अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरः स्थितम् ।
अस्मत्संग्रसनव्यात्तव्यालतुण्डायते न वा ॥१९॥

अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरः स्थितं अस्मत् संग्रसन व्यात्त व्याल तुण्ड आयते न वा ॥१९॥

अहो मित्राणि	हे मित्रो !	**व्यात्त**	फैले
गदत	बतलाओ तो	**व्याल**	सर्पके
पुरः स्थितं	यह सामने स्थित	**तुण्ड**	मुखके समान
सत्त्वकूटं	पर्वत शिखर	**आयते**	लगता है
अस्मत्	हम लोगोंको	**न वा**	अथवा नहीं ॥१९॥
संग्रसन	निगलनेके लिए		

सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद् घनम् ।
अधराहनुवद् रोधस्तत्प्रतिच्छायायारुणम् ॥२०॥

सत्यं अर्ककर आरक्तं उत्तर आहनुवत् घनं अधर आहनुवत् रोधः तत् प्रतिच्छायया अरुणम् ॥२०॥

सत्यं	सचमुच	**उत्तर**	ऊपरी
अर्ककर	सूर्यकी किरणोंसे	**आहनुवत्**	ओष्ठ जैसा है,
आरक्तं	लाल हुआ	**तत्**	उसकी
घनं	मेघ मण्डल	**प्रतिच्छायया**	परछाईंसे

अरुणं	लाल हुआ	**आहनुवत्**	ओष्ठके समान है ॥२०॥
रोधः	भूभाग		
अधर	नीचेके		

प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे ।
तुंगशृंगालयोऽप्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत ॥२१॥

प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्य आसव्ये नग उदरे तुंग शृंग आलयः अपि एताः तत् दंष्ट्राभिः च पश्यत ॥२१॥

सव्य आसव्ये	दाहिने-बायेंका	**तुंग शृंग अपि**	ऊँचे शिर भी
नग उदरे	पर्वतका भीतरी भाग	**पश्यत तत्**	देखो, उसके
सृक्किभ्यां	जबड़ोंकी	**दंष्ट्राभिः**	दांतोंके समान हैं ॥२१॥
प्रतिस्पर्धेते	होड़ करते हैं,		
आलयः एताः	भीतरके ये		

आस्तृतायाममार्गोऽयं रसनां प्रतिगर्जति ।
एषामन्तर्गतं ध्वान्तमेतदप्यन्तराननम् ॥२२॥

आस्तृतायां अमार्गः अयं रसनां प्रति गर्जति एषां अन्तर्गतं ध्वान्तं एतत् अपि अन्तर आननम् ॥२२॥

अयं	यह	**अन्तर्गतं**	इसके भीतरका
आस्तृतायां	फैली हुई	**ध्वान्तं**	अन्धकार
अमार्गः	सड़क	**एतत् अपि**	यह भी
रसनां प्रति	जीभके साथ	**अन्तर आननं**	मुखका भीतरी भाग लगता है ॥२२॥
गर्जति	होड़ करती है,		

दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद् भाति पश्यत ।
तद्दग्धसत्वदुर्गन्धोऽप्यन्तरामिषगन्धवत् ॥२३॥

दाव उष्ण खरवातः अयं श्वासवत् भाति पश्यत तत् दग्ध सत्व दुर्गन्धः अपि अन्तर आमिष गन्धवत् ॥२३॥

अयं	यह
दाव उष्ण	दावाग्निसे गरम
खरवातः	तीव्र वायु
पश्यत्	देखो
श्वासवत	उसके श्वासके
भाति	समान लगती है,
तत् दग्ध सत्त्व	उस (दावाग्नि) से जलते प्राणियोंकी
दुर्गन्धः अपि	दुर्गन्ध भी
अन्तर आमिष	भीतरी मांसकी
गन्धवत्	गन्धके समान है ॥२३॥

अस्मान् किमत्र ग्रसिता निविष्टा-
नयं तथा चेद् बकवद् विनङ्क्ष्यति ।
क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं
वीक्ष्योद्धसन्तः करताडनैर्ययुः ॥२४॥

अस्मान् किं अत्र ग्रसिता निविष्टान् अयं तथा चेत् बकवत् विनङ्क्ष्यति क्षणात् अनेन इति बकारि उशन् मुखं वीक्ष्य उद्हसन्तः कर ताडनैः ययुः ॥२४॥

अत्र	इसमें
निविष्टान्	भीतर जानेपर
किं अयं	क्या हम
अस्मान्	हम लोगोंको
ग्रसिता	निगलेगा ?
अनेन तथा	इसके द्वारा
चेत्	यदि ऐसा किया गया
क्षणात्	एक क्षणमें
बकवत्	बकासुरके समान
विनङ्क्ष्यति	नष्ट हो जायगा,
इति	ऐसा कहकर
बकारि	बकारि श्रीकृष्ण
मुखं उशन्	कमनीय मुखको
वीक्ष्य कर	देखकर
ताडनैः	ताली लजा
उद्हसन्तः	जोरसे हँसते हुए
ययुः	(भीतर) चले गये ॥२४॥

इत्थं मिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितं
श्रुत्वा विचिन्त्येत्यमृषा मृषायते ।
रक्षो विदित्वाखिलभूतहृत्स्थितः
स्वानां निरोद्धुं भगवान् मनो दधे ॥२५॥

इत्थं मिथः अतथ्यं अतज्ञ भाषितं श्रुत्वा विचिन्त्य इति अमृषा मृषायते रक्षः विदित्वा अखिल भूत हृत् स्थितः स्वानां निरोद्धुं भगवान् मनः दधे ॥२५॥

इत्थं	इस प्रकार
मिथः	परस्पर
अतज्ञ	अज्ञानी (बालकों) द्वारा
कतथ्यं	तथ्यसे उलटी
भाषितं श्रुत्वा	बात सुनकर
विचिन्य	सोचा
अमृषा	इन्हें सत्य ही
मृषायते	झूठ लग रहा है
अखिल भूत	फिर सब प्राणियोंके
हृत् स्थितः	हृदयमें स्थित
भगवान्	भगवान्‌ने
रक्षः	उसे राक्षस
विदित्वा	जानकर
स्वानां	अपने (सखाओं) को
निरोद्धुं	रोकनेको
मनः दधे	विचार किया ॥२५॥

तावत् प्रविष्टास्त्वसुरोदरान्तरं
परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः ।
प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं
हतस्वकान्तस्मरणेन रक्षसा ॥२६॥

तावत् प्रविष्टाः तु असुर उदर अन्तरं परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः प्रतीक्षमाणेन बकारि वेशनं हतः स्वकान्त स्मरणेन रक्षसा ॥२६॥

तावत् तु	तब तक तो
सवत्साः	बछड़ोंके
शिशवः	साथ बालक
असुर	असुरके
उदर अन्तरं	पेटके भीतर
प्रविष्टाः	प्रवेश कर गये,
परं	किन्तु
स्वकान्त	अपने प्रियजनोंका
हतः	मारा जाना
स्मरणेन	स्मरण करके
बकारि	बकके शत्रुके
वेशनं	प्रवेशकी
प्रतीक्षमाणेन	प्रतीक्षा करते हुए
रक्षसा	राक्षस द्वारा वे
गीर्णाः न	निगले नहीं गये ॥२६॥

तान् वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो
ह्यनन्यनाथान् स्वकरादवच्युतान् ।

दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान्
घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥२७॥

तान् वीक्ष्य कृष्णः सकल अभयप्रदः हि अनन्य नाथान् स्वकरात् अवच्युतान् दीनान् च मृत्योः जठर अग्नि घासान् घृणा अर्दितः दिष्ट कृतेन विस्मितः ॥२७॥

सकल	सबको
अभयप्रदः	अभय देनेवाले
कृष्णः	श्रीकृष्णने
तान् वीक्ष्य	उनको देखकर
घृणा अर्दितः	दया पीड़ित हो गये,
हि	क्योंकि उनका
अनन्य	दूसरा कोई
नाथान्	स्वामी नहीं था,
स्वकरात्	(जैसे वे) अपने ही हाथसे
अवच्युतान्	गिर गये हों
दीनान्	बेचारे
च मृत्योः	फिर मृत्युकी
जठर अग्नि	जठराग्निके
घासान्	ग्रास बन गये थे,
दिष्ट कृतेन	दैवकी इस लीलासे
विस्मितः	चकित रह गये ॥२७॥

कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं
न वा अमीषां च सतां विहिंसनम् ।
द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्य त-
ज्ज्ञात्वाविशत्तुण्डमशेषदृग्घरिः ॥२८॥

कृत्यं किं अत्र अस्य खलस्य जीवनं न वा अमीषां च सतां विहिंसनं द्वयं कथं स्यात् इति संविचिन्त्य तत् ज्ञात्वा आविशत् तुण्डं अशेष दृक् हरिः ॥२८॥

अत्र	इस सम्बन्धमें
किं कृत्यं	क्या करना चाहिए
अस्य खलस्य	जिससे इस दुष्टका
जीवनं न	जीवन नहीं रहे
वा अमरीषां	तथा इन
सतां	सत्पुरुषोंकी
विहिंसनं च	हत्या भी न हो,
द्वयं कथं	दोनों बातें
स्यात्	कैसे हों ?
इति	यह भली प्रकार

संविचिन्त्य	सोचकर	**तुण्डं**	उसके मुखमें
अशेष दृक्	सर्वद्रष्टा	**आविशत्**	प्रवेश कर गये
हरिः	श्रीहरि		॥२८॥
तत् ज्ञात्वा	वह उपाय जानकर		

तदा घनच्छदा देवा भयाद्धाहेति चुक्रुशुः ।
जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवाः ॥२९॥

तदा घनच्छदा देवा भयात् हा हा इति चुक्रुशुः जहृषुः ये च कंस आद्याः कौणपाः तु अघ बान्धवाः ॥२९॥

तदा	उस समय	**तु ये च**	किन्तु जो भी
घनच्छदा	मेघोंके पीछे छिपे	**कंस आद्याः**	कंस आदि
देवा भयात्	देवता भयसे	**अघ**	अघासुरके
हा हा	'हा-हा'	**बान्धवाः**	सम्बन्धी थे वे
इति	इस प्रकार	**कौणपाः जहृषुः**	राक्षस आनन्दित
चुक्रुशुः	चिल्लाने लगे		हुए ॥२९॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् ।
चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥३०॥

तत् श्रुत्वा भगवान् कृष्णः तु अव्ययः स अर्भ वत्सकम् चूर्णी चिकीर्षोः आत्मानं तरसा ववृधे गले ॥३०॥

तत्	उस (देवताओंके हा-हाकार) को	**वत्सकम्**	बछड़ों सहित
		आत्मानं	अपनेको
श्रुत्वा	सुनकर	**चूर्णी**	पीस देनेकी
अव्ययः	अविनाशी	**चिकीर्षोः**	इच्छावाले (अघा-
भगवान्	भगवान		सुर) के
कृष्णः तु	श्रीकृष्ण तो	**गले तरसा**	गलेमें बड़े वेगसे
स अर्भ	बालकों और	**ववृधे**	बढ़ गये ॥३०॥

ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो
हृयुद्नीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वतस्ततः ।

पूर्णोऽन्तरङ्गे पवनो निरुद्धो
मूर्धन् विनिष्पाट्य विनिर्गतो बहिः ॥३१॥

ततः अतिकायस्य निरुद्ध मार्गिणः हि उद्गीर्ण दृष्टेः भ्रमत तु इतः ततः पूर्णः अन्तरंगे पवनः निरुद्धः मूर्धनि विनिष्पाटच विनिर्गतः बहिः ॥३१॥

ततः	तब उस	**अन्तरंगे**	भीतरी शरीरमें
अतिकायस्य	विशाल शरीरवाले-का	**पूर्णः**	भर गया
मार्गिणः	मार्ग (कण्ठ)	**पवनः निरुद्धः**	वायु रोके जानेसे
निरुद्ध	रुक गया (इससे)	**मूर्धनि**	सिरको
उद्गीर्ण दृष्टेः	नेत्र निकल आये	**विनिष्पाट्य**	फोड़कर
इतःततः	इधर-उधर	**बहिः**	बाहर
भ्रमत तु	छटपटाते हुए भी	**विनिर्गतः**	निकल गया ॥३१॥

तनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु
प्राणेषु वत्सान् सुहृदः परेतान् ।
दृष्टचा स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुन-
र्वक्त्रान्मुकुन्दो भगवान् विनिर्ययौ ॥३२॥

तेन एव सर्वेषु बहिः गतेषु प्राणेषु वत्सात् सुहृदः परेतान् दृष्टचा स्वया उत्थाप्य तत् अन्वितः पुनः वक्त्रात् मुकुन्दः भगवान् विनिर्ययौ ॥३२॥

तेन	उसी (प्राण) के	**वत्सान्**	बछड़ों और
एव सर्वेषु	साथ सब	**सुहृदः**	सखाओंको
प्राणेषु	इन्द्रियोंके	**स्वया दृष्ट्या**	अपने दृष्टिपातसे
बहिः गतेषु	बाहर निकल जाने-पर	**उत्थाप्य**	उठा (जीवित) करके
		पुनः तत्	फिर उनके
भगवान्	भगवान्	**अन्वितः**	साथ
मुकुन्दः	मुकुन्द	**वक्त्रात्**	मुखसे
परेतान्	भरे हुए	**विनिर्ययौ**	निकल आये ॥३२॥

पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महज्-
ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयद् दिशो दश ।
प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं
विवेश तस्मिन् मिषतां दिवौकसाम् ॥३३॥

पीन अहि भोग उत्थितं अद्भुतं महत् ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयत् दिशः दश प्रतीक्ष्य खे अवस्थितं ईश निर्गमं विवेश तस्मिन् मिषतां दिवौकसाम् ॥३३॥

पीन	उस	**निर्गमं**	निकलनेकी
अहि भोग	मोटे सर्प-देहसे	**खे**	आकाशमें
अद्भुतं महत्	अद्भुत् महान	**अवस्थितं**	स्थित होकर
ज्योतिः	ज्योति	**प्रतीक्ष्य**	प्रतीक्षा करके
उत्थितं	उठ (निकल) कर	**दिवौकसां**	देवताओंके
स्वधाम्ना	अपने प्रकाससे	**मिषतां**	देखते हुए
दश दिशः	दसो दिशाओंको	**तस्मिन्**	उन (श्रीकृष्ण) में
ज्वलयत्	प्रकाशित करती हुई	**विवेश**	प्रविष्ट हो गई
ईश	परमेश्वर श्रीकृष्णके		॥३३॥

ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतोऽकृतार्हणं
पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः ।
गीतैः सुगा वाद्यधराश्च वाद्यकैः
स्तवैश्च विप्रा जयनिः स्वनैर्गणाः ॥३४॥

ततः अतिहृष्टाः स्वकृतः अकृत अर्हणं पुष्पैः सुराः अप्सरसः च नर्तनैः गीतैः सुगाः वाद्यधराः च वाद्यकैः स्तवैः च विप्रा जयनिःस्वनैः गणाः ॥३४॥

ततः	तब	**नर्तनैः**	नृत्यसे
अतिहृष्टाः	अत्यन्त प्रसन्न होकर	**सुगाः**	अच्छे गायक
सुराः	देवता		(किन्नर)
पुष्पैः	पुष्प वर्षासे	**गीतैः**	गायनसे
च अप्सरसः	तथा अप्सराएं		

च वाद्यधरा	एवं बजानेवाले (गन्धर्व)
वाद्यकै	बजाने द्वारा
च विप्रा	और ऋषि लोग
स्तवैः	स्तुतिसे
गणाः	दूसरे देवगण
जय निःस्वनैः	जय ध्वनिसे
स्वकृतः	अपने कार्योंसे (सबने)
अर्हणं अकृत	पूजन (सत्कार) किया ॥३४॥

तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिका-
जयादिनैकोत्सवमंगलस्वनान् ।
श्रुत्वा स्वधाम्नोऽन्त्यज आगतोऽचिराद्
दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ॥३५॥

तत् अद्भुत स्तोत्र सुवाद्य गीतिका जय आदि अनेक उत्सव मंगल स्वनान् श्रुत्वा स्वधाम्नः अन्ति अज आगतः अचिरात् दृष्ट्वा महि ईशस्य जगाम विस्मयम् ॥३५॥

तत् अद्भुत	उस सद्भुत
स्तोत्र	स्तोत्र,
सुवाद्य	उत्तम बाजों,
गीतिका जय	गायन, जय,
आदि	आदि
अनेक	अनेक प्रकारके
उत्सव मंगल	मंगलमय उत्सवकी
स्वनान्	ध्वनियोंको
स्वधाम्नः	अपने धामके
अन्ति	समीप
श्रुत्वा	सुनकर
अचिरात्	अविलम्ब
अजः आगतः	ब्रह्माजी आये और
ईशस्य महि	परमेश्वरकी महिमा
दृष्ट्वा	देखकर
विस्मयं	आश्चर्यमें
जगाम	पड़ गये ॥३५॥

राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृन्दावनेऽद्भुतम् ।
व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम् ॥३६॥

राजन् आजगरं चर्म शुष्कं वृन्दावने अद्भुतं व्रजौकसां बहुतिथं बभूव आक्रीड गह्वरम् ॥३६॥

राजन्	राजन् !
अद्भुतं	वह अद्भुत
आजगरं चर्म	अजगरका चमड़ा
शुष्कं	सूखकर
वृन्दावने	वृन्दावनमें
बहुतिथं	बहुत समय तक
व्रजौकसां	व्रजवासियोंके लिए
आक्रीड गह्वरं	खेलनेकी गुफा
बभूव	बना रहा ॥३६॥

एतत् कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् ।
मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ॥३७॥

एतत् कौमारजं कर्म हरेः आत्म अहि मोक्षणं मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वा ऊचुः विस्मिता व्रजे ॥३७॥

आत्म	अपनेको
मृत्योः अहि	मृत्युरूपी सर्पसे
मोक्षणं	छुड़ानेका
एतत् हरेः	यह श्रीकृष्णका
कौमरजं	कुमारावस्था (पांच वर्षकी आयु) का
कर्म	कर्म
दृष्ट्वा	देखकर
विस्मिता	अत्यन्त चकित
बाला व्रजे	बालकोंने व्रजमें
पौगण्डके	पौगण्ड (छ वर्षकी) अवस्थामें
ऊचुः	कहा ॥३७॥

नैतद् विचित्रं मनुजार्भमायिनः
परावराणां परमस्य वेधसः ।
अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः
प्रापात्मसाम्यं त्वसतां सुदुर्लभम् ॥३८॥

न एतत् विचित्रं मनुज अर्भ मायिनः पर अवराणां परमस्य वेधसः अघः अपि यत् स्पर्शन धौत पातकः प्राप आत्मसाम्यं तु असतां सुदुर्लभम् ॥३८॥

असतां तु	दुष्टोंके लिए तो
सुदुर्लभं	अत्यन्त दुर्लभ
आत्मसाम्यं	उनकी समता
अघः अपि	अघासुर भी
यत् स्पर्शन	जिनके स्पर्शसे
धौत-	समस्त

पातकः	पाप धुल जानेसे	**परमस्य**	परे उसके
प्राप	पा गया	**वेधसः**	विधाताके लिए
मायिनः	मायासे	**एतत् विचित्रं**	यह विचित्र बात
मनुज अर्भ	मनुष्य बालक बने	**न**	नहीं है ॥३८॥
पर अवराणां	कारण-कार्य जगत्से		

सकृद् यदङ्गप्रतिमान्तराहिता
मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम् ।
स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभि-
व्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः ॥३९॥

सकृत् यत् अंग प्रतिमा अन्तर आहिता मनोमयी भागवतीं ददौ गतिं स एव नित्य आत्मसुख अनुभूतिभिः व्युदस्तमायः अन्तः गतः हि किं पुनः ॥३९॥

अंग	प्रिय परीक्षित् !	**स एव**	वही
यत्	जिनकी	**नित्य**	सदा
मनोमयी	मनोमयी	**आत्मसुख**	आत्मानन्दके
प्रतिमा	मूर्तिके केवल	**अनुभूतिभिः**	अनुभवसे
सकृत्	एक बार	**व्युदस्तमायः**	मायाको नष्ट किये श्रीहरि
अन्तर	हृदयमें		
आहिता	धारण करनेसे	**हि अन्तः**	क्योंकि जिसके भीतर
भागवतीं	वह भागवती	**गतः**	चले गये
गतिं	गति	**किं पुनः**	फिर उसका क्या कहना ॥३९॥
ददौ	दे देती है,		

सूत उवाच

इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः
श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम् ।
पप्रच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं
वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ॥४०॥

इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः श्रुत्वा स्वरातुः चरितं विचित्रं पप्रच्छ भूयः अपि तत् एव पुण्यं वैयासकिं यत् निगृहीत चेताः ॥४०॥

द्विजा	शौनकादि ब्राह्मणो !	**वैयासकिं**	श्रीव्यासनन्दनसे
इत्थं	इस प्रकार	**भूयः अपि**	फिरसे
यादवदेवदत्तः	यदुवंशियोंके कुलदेव	**पप्रच्छ**	पूछा
स्वरातुः	अपने रक्षकका	**यत्**	क्योंकि (वे उसमें)
विचित्रं चरितं	विचित्र चरित्र	**निगृहीत चेताः**	आसक्त चित्त थे ॥४०॥
श्रुत्वा तत् एव	सुनकर उसी		
पुण्यं	पवित्र चरितको		

राजोवाच

ब्रह्मन् कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत् ।
यत् कौमारे हरिकृतं जगुः पौगण्डकेऽर्भकाः ॥४१॥

ब्रह्मन् कालान्तर कृतं तत् कालीनं कथं भवेत् यत् कौमारे हरि-कृतं जगुः पौगण्डके अर्भकाः ॥४१॥

ब्रह्मन्	भगवन् !	**कौमारे**	कुमारावस्थाकी
कालान्तर	दूसरे कालमें	**हरिकृतं**	श्रीकृष्ण-लीला
कृतं	किया गया कर्म	**अर्भकाः**	बालकोंने
तत् कालीनं	तात्कालिक	**पौगण्डके**	पौगण्डावस्थामें
कथं भवेत्	कैसे हो सकता है	**जगुः**	सुनायी ॥४१॥
यत्	जो		

तद् ब्रूहि मे महायोगिन् परं कौतूहलं गुरो ।
नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ॥४२॥

तत् ब्रूहि मे महायोगिन् परं कौतूहलं गुरो नूनं एतत् हरेः एव माया भवति न अन्यथा ॥४२॥

महायोगिन्	महायोगी	**तत् मे**	वह मुझे
गुरो	गुरुदेव !	**ब्रूहि**	बतलाइये

परं	मुझे अत्यन्त	**माया भवति**	माया होगी
कौतूहलं	उत्सुकता है	**अन्यथा न**	दूसरी बात नहीं हो
नूनं एतत्	निश्चय यह		सकती ॥४२॥
हरेः एव	श्रीहरिकी ही		

वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबन्धवः ।
यत् पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम् ॥४३॥

वयं धन्यतमा लोके गुरो अपि क्षत्र बन्धवः यत् पिबामः मुहुः त्वत्तः पुण्यं कृष्ण कथा अमृतम् ॥४३॥

गुरो	गुरुदेव !	**पुण्यं**	परम पवित्र
क्षत्र बन्धवः	अधम क्षत्रिय	**कृष्ण**	श्रीकृष्ण-
अपि	होनेपर भी	**कथा अमृतं**	कथा-सुधाको
लोके वयं	संसारमें हम	**मुहुः**	बार-बार
धन्यतमा	परम धन्य हैं	**पिबामः**	पी रहे हैं ॥४३॥
यत् त्वत्तः	क्योंकि आपके द्वारा		

सूत उवाच

इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणि-
स्तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः ।
कृच्छ्रात् पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः
प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तम ॥४४॥

इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणिः तत् स्मारित अनन्त हृत अखिल इन्द्रियः कृच्छ्रात् पुनः लब्ध बहिः दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवत उत्तम उत्तम ॥४४॥

भागवत उत्तम उत्तम	भगवद्भक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ शौनकजी !	**इत्थं**	इस प्रकार
		पृष्टः स्म	पूछे जानेपर
		स बादरायणिः	वे व्यास-नन्दनजी

तु	तो
तत्	उन भगवान
अनन्त	अनन्तका
स्मारित	स्मरण कराये जानेसे
अखिल	उनकी सम्पूर्ण
इन्द्रियः	इन्द्रियां
हृत	हरण (वृत्तिशून्य) ही गयीं
पुनः	फिर बड़ी
कृच्छ्रात्	कठिनतासे
शनैः	धीरे-धीरे
बहिः दृशिः	बाह्य दृष्टि
लब्ध	पाकर
तं	उन (परीक्षित) को
प्रत्याह	उत्तर दिया ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ।
यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥१॥

साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवत उत्तम यत् नूतनयसि ईशस्य शृण्वन् अपि कथां मुहुः ॥१॥

भागवत	भगवद्भक्तोंमें	**यत् ईशस्य**	क्योंकि भगवान्‌की
उत्तम	श्रेष्ठ	**कथां मुहुः**	कथाको बार-बार
महाभाग	महाभाग	**शृण्वन् अपि**	सुनते हुए भी
त्वया	तुमने	**नूतनयसि**	नवीन बना देते
साधु पृष्टं	अच्छा प्रश्न किया		हो ॥१॥

सतामयं सारभृतां निसर्गो
यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ।
प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्
स्त्रिया विटानामिव साधु वार्ता ॥२॥

सतां अयं सारभृतां निसर्गः यत् अर्थ वाणी श्रुति चेतसां अपि प्रतिक्षणं नव्यवत् अच्युतस्य यत् स्त्रिया विटानां इव साधु वार्ता ॥२॥

यत्	जिन (भगवान्) के	**विटानां**	लम्पट पुरुषोंको
अर्थ	लिए ही	**स्त्रिया**	स्त्री-विषयक चर्चाके
वाणी श्रुति	वाणी, कर्ण	**इव**	समान लगे,
चेतसां अपि	तथा चित्त भी हैं	**अयं**	यह
प्रतिक्षणं	प्रत्येक क्षण	**सारभृतां**	सारग्राही
अच्युतस्य	उन अच्युतकी	**सतां**	सत्पुरुषोंका
साधु वार्ता	उत्तम कथा	**निसर्गः**	स्वभाव ही है ॥२॥
नव्यवत्	नवीनकी भांति		

शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते ।
ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥३॥

शृणुष्व अवहितः राजन् अपि गुह्यं वदामि ते ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवः गुह्यं अपि उत ॥३॥

राजन्	राजन् !	**स्निग्धस्य**	स्नेह करनेवाले
अवहितः	एकाग्र होकर	**शिष्यस्य**	शिष्यको
शृणुष्व	सुनो !	**गुरवः**	गुरुजन
गुह्यं अपि	गोपनीय होनेपर भी	**गुह्यं अपि**	गोपनीय रहस्य भी
ते वदामि	तुमसे कहता हूँ,	**ब्रूयुः**	बतला देते हैं ॥३॥
उत	क्योंकि		

तथाघवदनान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान् ।
सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥४॥

तथा अघवदनात् मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान् सरित् पुलिनं आनीय भगवान् इदं अब्रवीत् ॥४॥

तथा	उस प्रकार	**सरित्**	उन्हें सरिताके
मृत्यो	मृत्युरूपी	**पुलिनं**	किनारे
अघवदनात्	अघासुरके मुखसे	**आनीय**	ले आकर
वत्सपालकान्	वत्सपालोंकी	**भगवान्**	भगवान्ने
रक्षित्वा	रक्षा करके	**इदं अब्रवीत्**	यह कहा ॥४॥

अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः
स्वकेलिसम्पन्मृदुलाच्छवालुकम् ।
स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिक-
ध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥५॥

अहो अतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वकेलि सम्पत् मृदुल अच्छ वालुकं स्फुटत् सरोगन्ध हृत अलिपत्रिक ध्वनि प्रतिध्वान लसत् द्रुम आकुलम् ॥५॥

अहो वयस्याः	अहो मित्रो !
अतिरम्यं	अत्यन्त रमणीक
स्वकेलि	हमारे खेलनेकी
सम्पत्	सामग्री
मृदुल अच्छ	कोमल और स्वच्छ
वालुकं	बालुका वाला
पुलिनं	सरिता-तट है,
स्फुटत्	खिले कमलोंकी
सरोगन्ध	सुगन्धिसे
हृत	आकर्षित
अलिपत्रिक	भ्रमरावलीके
ध्वनि	शब्द तथा उसकी
प्रतिध्वान	प्रतिध्वनिके समान
लसत्	(पक्षियोंके शब्दोंसे) सुशोभित
द्रुम आकुलं	वृक्षोंसे भरा है ॥५॥

अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवा रूढं क्षुधार्दिताः ।
वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम् ॥६॥

अत्र भोक्तव्यं अस्माभिः दिवा रूढं क्षुधा अर्दिताः वत्साः समीपे अपः पीत्वा चरन्तु शनकैः तृणम् ॥६॥

क्षुधा अर्दिताः	भूखसे पीड़ित
अस्माभिः	हम लोगों द्वारा
अत्र भोक्तव्यं	यहां भोजन किया जाना चाहिए
दिवा	दिन (पर्याप्त)
रूढं	चढ़ आया है,
वत्साः अपः	बछड़े पानी
पीत्वा	पीकर
समीपे शनकैः	पास ही धीरे-धीरे
तृणं चरन्तु	घास चरें ॥६॥

तथेति पाययित्वार्भा वत्सानारुध्य शाद्वले ।
मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥७॥

तथा इति पाययित्वा अर्भा वत्सान् आरुध्य शाद्वले मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥७॥

तथा	'बहुत अच्छा'
इति	इस प्रकार कहकर
अर्भा	बालकोंने
वत्सान्	बछड़ोंको
पाययित्वा	पानी पिलाकर
शाद्वले	हरी घासपर
आरुध्य	छोड़कर
शिक्यानि	छीके
मुक्त्वा	खोलकर
भगवता	भगवान् श्रीकृष्णके
समं	साथ
मुदा	आनन्द पूर्वक
बुभुजुः	भोजन करने लगे ॥७॥

कृष्णस्य विष्वक् पुरुराजिमण्डलै-
रभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः ।
सहोपविष्टा विपिने विरेजु-
श्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः ॥८॥

कृष्णस्य विष्वक् पुरुराजि मण्डलैः अभि आननाः फुल्लदृशः व्रज अर्भकाः सह उपविष्टा विपिने विरेजुः छदा यथा अम्भोरुह कर्णिकायाः ॥८॥

यथा अम्भोरुह	जैसे कमलकी	**पुरुराजि**	अनेक घेरे
कर्णिकायाः	कर्णिकाके	**मण्डलैः**	बनाकर
छदा	चारों ओर दल हों वैसे	**फुल्लदृशः**	उत्फुल्ल नेत्र
		व्रज अर्भकाः	व्रजके बालक
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	**विपिने**	वनमें
विष्वक्	चारों ओर	**सह उपविष्टा**	सटकर बैठे हुए
अभि आननाः	उन्हींकी ओर मुख करके	**विरेजुः**	अत्यन्त शोभित थे ॥८॥

केचित् पुष्पैर्दलैः केचित् पल्लवैरङ्कुरैः फलैः ।
शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥९॥

केचित् पुष्पैः दलैः केचित् पल्लवैः अङ्कुरैः फलैः शिक्भिः त्वक्भिः दृषत्भिः च बुभुजुः कृत भाजनाः ॥९॥

केचित्	कुछने (कमलादि)	**शिक्भिः**	छीकेका
पुष्पैः	फूलोंका	**त्वक्भिः**	(केले आदिकी) छालका
दलैः केचित्	कुछने पंखड़ियोंका		
पल्लवैः	पत्तोंका	**च दृषत्भिः**	अथवा पत्थरका
अंकुरैः	(बांसादिके) अंकुरों (सुपेलियों) का	**भाजनाः कृत**	वर्तन बनाकर
		बुभुजुः	भोजन करने लगे ॥९॥
फलैः	(नारियलादि) फलों का,		

सर्वे मिथो दर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक् ।
हसन्तो हासयन्तश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥१०॥

सर्वे मिथः दर्शयन्तः स्व स्व भोज्य रुचिं पृथक् हसन्तः हासयन्तः च अभ्यवजह्रुः सह ईश्वराः ॥१०॥

सर्वे पृथक्	सब अलग-अलग	**हासयन्तः**	हँसाते हुए
मिथः स्व स्व	परस्पर अपनी-अपनी	**सह ईश्वराः**	भगवान् श्रीकृष्णके साथ
भोज्य	भोजन सम्बन्धी	**अभ्यवजह्रुः**	भोजन करने लगे ॥१०॥
रुचिं	रुचि		
दर्शयन्तः	दिखलाते हुए		
हसन्तः च	हँसते तथा		

बिभ्रद् वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे
वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु ।
तिष्ठन् मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन् नर्मभिः स्वैः
स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलिः ॥११॥

बिभ्रत् वेणुं जठर पटयोः शृंगवेत्रे च कक्षे वामे पाणौ मसृण कवलं तत् फलानि अंगुलीषु तिष्ठन् मध्ये स्वपरि सुहृदः हासयन् नर्मभिः स्वैः स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुक् बालकेलिः ॥११॥

यज्ञभुक्	यज्ञ भोक्ता भगवान्	**वेणुं च**	वंशी तथा
बालकेलिः	बालक्रीड़ा करते हुए	**कक्षे**	कांख (बगल) में
स्वर्गे लोके	स्वर्गमें रहनेवाले देवताओंके	**शृंगवेत्रे**	शृंगी और बेंत
		वामे पाणौ	बायें हाथपर
मिषति	देखते हुए	**मसृण कवलं**	(माखन-दहीसे) स्निग्ध ग्रास तथा
स्वपरि	अपने चारों ओर		
सुहृदः	बैठे सखाओंके	**तत्**	उस (भोजन) के
मध्ये तिष्ठन्	बीचमें बैठे	**फलानि**	फल (नीबू, अचार आदि)
जठर	पेट (कमर) के		
पटयोः	वस्त्र (फेटे) में	**अंगुलीषु**	अंगुलियोंपर

बिभ्रत्	धारण किये	**बुभुजे**	भोजन कर रहे
स्वै नर्मभिः	अपने परिहाससे		थे ॥११॥
हासयन्	सबको हँसाते हुए		

भारतैवं वत्सपेषु भुञ्जानेष्वच्युतात्मसु ।
वत्सास्त्वन्तर्वने दूरं विवशुस्तृणलोभिताः ॥१२॥

भारत एवं वत्सपेषु भुञ्जानेषु अच्युत आत्मसु वत्साः तु अन्तर्वने दूरं विवशुः तृणलोभिताः ॥१२॥

भारत	परीक्षित !	**वत्साः तु**	बछड़े तो
एवं अच्युत	इस प्रकार भगवानमें	**तृणलोभिताः**	घासके प्रलोभनसे
आत्मसु	चित्त लगाये	**दूरं अन्तर्वने**	दूर वनके भीतर
वत्सपेषु	वत्सपालों (बालकों) के	**विवशुः**	प्रवेश कर गये ॥१२॥
भुञ्जानेषु	भोजन करते समय		

तान् दृष्ट्वा भयसंत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् ।
मित्राण्याशान्मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम् ॥१३॥

तान् दृष्ट्वा भय सन्त्रस्तान् ऊचे कृष्णः अस्य भी भयं मित्राणि आशात् मा विरमत इह आनेष्ये वत्सकान् अहम् ॥१३॥

अस्य	इस जगतके	**मित्राणि**	'मित्रो !
भी भयं	भयको भी भय देने-बाले	**आशात्**	भोजन करनेसे
कृष्णः	श्रीकृष्णने	**मा विरमत**	मत रुको,
तान्	उन (बालकों) को	**अहं वत्सकान्**	मैं बछड़ोंको
भय संत्रस्तान्	भयसे सन्त्रस्त	**इह आनेष्ये**	यहां ले आऊँगा' ॥१३॥
दृष्ट्वा ऊचे	देखकर कहा		

इत्युक्त्वाद्रिदरीकुञ्जगह्वरेष्वात्मवत्सकान् ।
विचिन्वन् भगवान् कृष्णः सपाणिकवलो ययौ ॥१४॥

इति उक्त्वा अद्रिदरी कुञ्जगह्वरेषु आत्म वत्सकान् विचिन्वन् भगवान् कृष्णः सपाणि कवलः ययौ ॥१४॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	**सपाणि**	हाथपर
अद्रिदरी	पर्वतकी गुफाओं तथा	**कवलः**	ग्रास लिए हुए ही
कुञ्जगह्वरेषु	सघन कुञ्जोंमें	**भगवान्**	भगवान्
आत्म वत्सकान्	अपने बछड़ोंको	**कृष्णः ययौ**	श्रीकृष्ण चल पड़े ॥१४॥
विचिन्वन्	ढूंढ़नेके लिए		

अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो मायार्भकस्येशितु-
र्द्रष्टुं मञ्जु महित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् ।
नीत्वान्यत्र कुरूद्वहान्तरदधात् खेऽवस्थितो यः पुरा
दृष्ट्वाघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥१५॥

अम्भोजन्मजनिः तत् अन्तरगतः माया अर्भकस्य ईशितुः द्रष्टुं मञ्जु महित्वं अन्यत् अपि तत्वत्सान् इतः वत्सपान् नीत्वा अन्यत्र कुरूद्वह अन्तः अदधात् खे अवस्थितः यः पुरा दृष्ट्वा अघासुर मोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥१५॥

कुरूद्वह	कुरुनन्दन परीक्षित !	**प्राप्तः**	पाकर
यः पुरा	जो पहिले	**ईशितुः**	उन सर्वसमर्थको
खे	आकाशमें	**अन्यत् अपि**	कोई दूसरी भी
अवस्थितः	स्थित थे वे	**मञ्जु महित्वं**	मंजुल महिमा
अम्भो-	कमलोद्भव-	**द्रष्टुं**	देखनेकी इच्छासे
जन्मजनिः	ब्रह्मा	**तत् वत्सान्**	उन बछड़ोंको और
प्रभवतः	सर्व समर्थ श्रीकृष्ण द्वारा	**इतः**	यहां
		वत्सपान्	वत्सपालोंको
अघासुर	अघासुरको	**अन्यत्र**	दूसरे स्थानपर
मोक्षणं	मुक्त किया जाना	**नीत्वा**	ले जाकर
दृष्ट्वा	देखकर	**अन्तरगतः**	अन्तर्धान
परं विस्मयं	अत्यन्त आश्चर्य	**अदधात्**	हो गये ॥१५॥

ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान् ।
उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समन्ततः ॥१६॥

ततः वत्सान् अदृष्ट्वा एत्य पुलिने अपि च वत्सपान् उभाः अपि वने कृष्णः विचिकाय समन्ततः ॥१६॥

ततः वने	तब वनमें	**अदृष्ट्वा**	न देखकर
वत्सान्	बछड़ोंको	**कृष्णः**	श्रीकृष्णने
च पुलिने	तथा सरिता किनारे	**उभाः अपि**	दोनोंको ही
अपि	भी	**समन्ततः**	चारों ओर
एत्य	आकर	**विचिकाय**	घूम-घूम कर ढूंढ़ा ॥१६॥
वत्सपान्	वत्सपालोंको		

क्वाप्यदृष्ट्वान्तर्विपिने वत्सान् पालांश्च विश्ववित् ।
सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसावजगाम ह ॥१७॥

क्व अपि अदृष्ट्वा अन्तः विपिने वत्सान् पालान् च विश्ववित् सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसा अवजगाम ह ॥१७॥

अन्तः विपिने	वनके भीतर	**कृष्णः**	श्रीकृष्णने
वत्सान् च	बछड़ों तथा उनके	**विधिकृतं**	ब्रह्माकी करतूत
पालन्	पालकोंको	**सर्वं सहसा**	सब सहसा
क्व अपि	कहीं भी	**ह**	निश्चित
अदृष्ट्वा	न देखकर	**अवजगाम**	जान ली ॥१७॥
विश्ववित्	विश्ववेत्ता		

ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातॄणां च कस्य च ।
उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥१८॥

ततः कृष्णः मुदं कर्तुं तत् मातॄणां च कस्य च उभयायितं आत्मानं चक्रे विश्वकृत् ईश्वरः ॥१८॥

ततः विश्वकृत्	तब विश्वकर्ता	**मुदं कर्तुं**	प्रमुदित करनेके लिए
ईश्वरः	सर्व समर्थ	**आत्मानं**	अपनेको
कृष्णः	श्रीकृष्णने	**उभयायितं**	(बछड़े-बालक)
तत् मातॄणां	उनकी माताओंको		दोनों रूपोंमें
च कस्य च	तथा ब्रह्माको भी	**चक्रे**	बना लिया ॥१८॥

यावद् वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत् कराङ्घ्र्यादिकं ।
यावद् यष्टिविषाणवेणुदलशिग् यावद् विभूषाम्बरम् ।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद् विहारादिकं
सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥१६॥

यावत् वत्सप वत्सक अल्पकवपुः यावत् कर आङ्घ्रि आदिकं यावत् यष्टि विषाण वेणु दल शिक् यावत् विभूष अम्बरं यावत् शील गुण अभिधा आकृति वयः यावत् विहार आदिकं सर्वं विष्णुमयं गिरः अंग अवद् अजः सर्वस्वरूपः बभौ ॥१६॥

अंग	प्रिय परीक्षित् !	**विषाण वेण**	शृंग, वंशी
सर्वं	'सब (विश्व)	**दल शिक्**	पत्ते, छीके,
विष्णुमयं	विष्णुमय है'	**यावत् विभूष**	जैसे आभूषण
अजः	अजन्मा वेदवाणी	**अम्बरं**	वस्त्र थे,
अवद्	कहती है (मानो इसीलिए)	**यावत्**	जैसा उनका
		शील गुण	स्वभाव, गुण,
यावत् वत्सप	जितने वत्सपाल	**अभिधा**	नाम,
वत्सक	बछड़े	**आकृति**	आकार,
अल्पकवपुः	(जितनी) छोटे शरीरके थे,	**वयः**	आयु,
		विहार	व्यवहारका ढंग
यावत् कर	जैसे उनके हाथ,	**आदिकं**	आदि था
आङ्घ्रि	पैर	**सर्वस्वरूपः**	उस सब रूपमें
आदिकं	आदि अंग थे,	**बभौ**	शोभा पाने लगे
यावत् यष्टि	जैसी छड़ियां		॥१६॥

स्वयमात्माऽऽत्मगोवत्सान् प्रतिवार्यात्मवत्सपैः ।
क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद् व्रजम् ॥२०॥

स्वयं आत्म आत्म गोवत्सान् प्रतिवार्य आत्मवत्सपैः क्रीडन् आत्म विहारैः च सर्वं आत्मा प्राविशत् व्रजम् ॥२०॥

आत्म	अपने ही रूप	**आत्मवत्सपैः**	अपने रूप वत्सपालों द्वारा
गोवत्सान्	गायोंके बछड़ोंको		

प्रतिवार्य	लौटा लाकर		हुए
च स्वयं	तथा स्वयं	**सर्व आत्मा**	वे सर्व स्वरूप
आत्मा	अपने स्वरूपसे	**व्रजं प्राविशत्**	व्रजमें प्रविष्ट हुए
क्रीडन्	उनके साथ खेलते		॥२०॥

तत्तद्वत्सान् पृथङ्नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः ।
तत्तदात्माभवद् राजंस्तत्तत्सद्म प्रविष्टवान् ॥२१॥

तत् तत् वत्सान् पृथक् नीत्वा तत् तत् गोष्ठे निवेश्य सः तत् तत् आत्मा अभवत् राजन् तत् तत् सद्म प्रविष्टवान् ॥२१॥

राजन्	राजन् !	**तत् तत्**	उन उन (बालकों)
तत् तत् वत्सान्	उन-उन बछड़ोंको		का
पृथक् नीत्वा	अलग-अलग करके	**आत्मा**	स्वरूप
तत् तत्	उन उनके	**अभवत्**	होकर
गोष्ठे	गोष्ठोंमें	**तत् तत् सद्म**	उन-उनके घरोंमें
सः निवेश्य	उन्होंने पहुँचाकर	**प्रविष्टवान्**	प्रवेश किया ॥२१॥

तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता
उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम् ।
स्नेहस्नुतस्तन्यपयः सुधासवं
मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन् ॥२२॥

तत् मातरः वेणुरवः त्वरा उत्थिता उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरं स्नेह स्नुतान् स्तन्यपयः सुधासवं मत्वा परं ब्रह्म सुतान् अपाययन् ॥२२॥

तत् मातरः	उनकी माताएँ	**परिरभ्य**	आलिंगन करके
वेणुरवः	वंशी-ध्वनि (सुनकर)	**परं**	उन्हें परम
त्वरा उत्थिता	झटपट उठीं	**ब्रह्म मत्वा**	ब्रह्म मानकर
सुतान्	पुत्रोंको	**स्नेह स्नुतान्**	स्नेहसे झरते
दोर्भिः	भुजाओंसे	**स्तन्यपयः**	स्तनोंका दूध
उत्थाप्य	उठाकर	**अपाययन्**	पिलाने लगीं ॥२२॥
निर्भरं	प्रेम पूर्वक		

ततो नृणोन्मर्दनमज्जलेपना-
लंकाररक्षातिलकाशनादिभिः ।
संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्
सायं गतो यामयमेन माधवः ॥२३॥

ततः नृप उन्मर्दन मज्ज लेपन अलङ्कार रक्षातिलक अशन आदिभिः संलालितः स्व आचरितैः प्रहर्षयन् सायं गतः याम यमेन माधवः ॥२३॥

नृप	राजन् !	**रक्षातिलक**	रक्षा-तिलक,
याम यमेन	दिन बीतनेपर	**अशन आदिभिः**	भोजन आदि
माधवः	श्रीकृष्ण	**स्व आचरितैः**	अपने व्यवहारसे
सायं गतः	सायंकाल लौटते थे,	**संलालितः**	भली प्रकार दुलार करके
ततः उन्मर्दन	तब उबटन लगाने,	**प्रहर्षयन्**	हर्षित करती थीं ॥२३॥
मज्ज	स्नान कराने,		
लेपन	(चन्दनादि) लेपन,		
अलङ्कार	आभूषण पहिनाने,		

गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं
हुङ्कारघोषैः परिहूतसंगतान् ।
स्वकान् स्वकान् वत्सतरानपाययन्
मुहुर्लिहन्त्यः स्रवदौधसं पयः ॥२४॥

गावः ततः गोष्ठं उपेत्य सत्वरं हुङ्कार घोषैः परिहूत संगतान् स्वकान स्वकान् वत्सतरान् अपाययन् मुहुः लिहन्त्यः स्रवत् औधसं पयः ॥२४॥

ततः	उस समय	**हुङ्कार घोषैः**	हुंकार ध्वनिसे
गावः	गायें भी	**परिहूत**	बुलाये गये
सत्वरं	शीघ्रता पूर्वक	**संगतान्**	समीप आये
गोष्ठं	गोष्ठमें	**स्वकान स्वकान्**	अपने-अपने
उपेत्य	पहुँचकर	**वत्सतरान्**	छोटे बछड़ोंको

मुहुः	बार-बार	**स्रवत्**	स्वतः झरता
लिहन्त्यः	चाटती हुई	**पयः अपायमन्**	दूध पिलाती थीं ॥२४॥
औधसः	थनोंसे		

गोगोपीनां मातृतास्मिन् सर्वा स्नेहर्द्धिकां विना ।
पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना ॥२५॥

गो गोपीनां मातृता अस्मिन् सर्वा स्नेहर्द्धिकां विना पुरः वत् आस्व अपि हरेः तोकता मायया विना ॥२५॥

गो	गौओं और	**आस्व**	था और
गोपीनां	गोपियोंका	**हरेः अपि**	श्रीकृष्णका भी
मातृता	मातृत्व	**तोकता**	पुत्रत्व
अस्मिन्	इन (बच्चों) में	**मायया विना**	विना मायाके (निश्चछल) था ॥२५॥
स्नेहर्द्धिकां	स्नेहाधिक्यको		
विना	छोड़कर		
पुरः वत्	पहिलेके समान		

व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्लच्चाब्दमन्वहम् ।
शनैर्निःसीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत् ॥२६॥

व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्लि अब्दं अनु अहं शनैः निःसीम ववृधेदं यथा कृष्णे तु अपूर्ववत् ॥२६॥

स्वतोकेषु	अपने बालकोंमें	**अपूर्ववत्**	जैसी पहिले नहीं थीं,
व्रजौकसां	व्रजवासियोंकी	**ववृधे**	बढ़ गयी
स्नेहवल्लि	स्नेह रूपी लता	**यथा तु**	जैसी कि
अब्दं	उस वर्ष	**कृष्णे**	श्रीकृष्णमें थी ॥२६॥
अनु अग्रहं	प्रतिदिन		
शनैः	धीरे-धीरे		
निःसीम	असीम		

इत्थमात्माऽऽत्मनाऽऽत्मानं वत्सपालमिषेण सः ।
पालयन् वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥२७॥

इत्थं आत्मा आत्मन् आत्मानं वत्स पाल मिषेण सः पालयन् वत्सपः वर्षं चिक्रीडे वन गोष्ठयोः ॥२७॥

इत्थं	इस प्रकार	**पालयन्**	पालन करते हुए
आत्मा	सर्वात्मा	**सः वत्सपः**	वे वत्सपाल श्रीकृष्ण
आत्मन्	अपने ही द्वारा	**वर्षं**	एक वर्ष तक
वत्स	बछड़े और	**वन गोष्ठयोः**	वन तथा गोष्ठमें
पाल मिषेण	पालकोंके बहाने	**चिक्रीडे**	क्रीड़ा करते रहे
आत्मानं	अपना ही		॥२७॥

एकदा चारयन् वत्सान् सरामो वनमाविशत् ।
पञ्चषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥२८॥

एकदा चारयन् वत्सान् सरामः वनं आविशत् पञ्चषासु त्रियामासु हायना पूरणीषु अजः ॥२८॥

पञ्चषासु	पांच-छः	**अजः**	अजन्मा (श्रीकृष्ण)
त्रियामासु	रात्रियोंके	**वत्सान्**	बछड़ोंको
हायना	वर्ष	**चारयन्**	चराते हुए
पूरणीषु	पूरा करनेवाली रहनेपर	**सरामः**	बलरामजीके साथ
		वनं	वनमें
एकदा	एक बार वे	**आविशत्**	प्रविष्ट हुए ॥२८॥

ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् ।
गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणम् ॥२९॥

ततः विदूरात् चरतः गावः वत्सान् उपव्रजं गोवर्धन अद्रि शिरसि चरन्त्यः ददृशुः तृणम् ॥२९॥

ततः गावः	उस समय गायोंने	**उपव्रजं**	व्रजके समीप
गोवर्धन	गोवर्धन	**तृणं चरतः**	घास चरते हुए
अद्रि शिरसि	पर्वतके ऊपर	**वत्सान् दूरात्**	बछड़ोंको दूरसे
चरन्त्यः	चरते समय	**ददृशुः**	देखा ॥२९॥

दृष्ट्वाथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा
स गोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः ।
द्विपात् ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छो-
ऽगाद्धुङ्कृतैरास्रुपया जवेन ॥३०॥

दृष्ट्वा अथ तत् स्नेह वशः अस्मृत आत्मा स गो व्रजः अति आत्म अपदुर्ग मार्गः द्विपात् ककुत् ग्रीव उद् आस्य पुच्छः अगात् हुङ्कृतैः आस्रुपया जवेन ॥३०॥

अथ तत्	तब उन (बछड़ों) के	**ककुत् ग्रीव**	गर्दन ककुदसे लगाये
स्नेह	स्नेहसे		
आत्मा	(वे) अपनेको	**उद् आस्य**	मुख और
अस्मृत	भूल गयीं	**पुच्छः**	पूंछ उठाये,
स गो व्रजः	वे व्रजकी गायें	**हुङ्कृतैः**	हुंकार करती
आत्म अति	अपने लिए अत्यन्त	**आस्रुपया**	थनोंसे दूध बहाती
अपदुर्ग मार्गः	कठिन मार्गसे	**जवेन**	वेगसे
द्विपात्	दो पैरोंसे कूदती,	**अगात्**	दौड़ पड़ीं ॥३०॥

समेत्य गावोऽधो वत्सान् वत्सवत्योऽप्यपाययन् ।
गिलन्त्य इव चांगानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः ॥३१॥

सम एत्य गावः अधः वत्सान् वत्स वत्यः अपि अपाययन् गिलन्ति इव च अंगानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः ॥३१॥

गावः अधः	गायें नीचे	**गिलन्त्य**	निगल जानेके
वत्सान्	बछड़ोंके	**इव**	समान
सम एत्य	समीप पहुँचकर	**लिहन्त्यः**	चाटती हुई
वत्स वत्यः	दूसरे छोटे बछड़ों-वाली होनेपर	**स्वौधसं पयः**	बड़े थनोंका झरता दूध
अपि	भी	**अपाययन्**	पिलाने लगीं ॥३१॥
अंगानि	इनके अंगोंको		

गोपास्तद्रोधनायासमौध्यलज्जोरुमन्युना ।
दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ॥३२॥

गोपाः तत् रोधन आयास मौध्य लज्जः उरु मन्युना दुर्ग अध्व कृच्छ्रतः अभि एत्य गोवत्सैः गोवत्सैः ददृशुः सुतान् ॥३२॥

तत्	उन (गायों) को	**कृच्छ्रतः**	कठिनाईसे
रोधन	रोकनेके	**दुर्ग अध्व**	उस कठिन मार्गसे
आयास	प्रयत्नके	**एत्य अभि**	आकर
मौध्य	व्यर्थ होनेसे	**गोवत्सैः**	गायके बछड़ोंके समीप
लज्जः	लज्जित		
उरु मन्युना	बहुत क्रोध पूर्वक	**सुतान्**	अपने पुत्रोंको
गोपाः	गोपोंने	**ददृशुः**	देखा ॥३२॥

तदीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशया
जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान् ।
उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्धनि
घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते ॥३३॥

तत् ईक्षण उत्प्रेमरस आप्लुत आशया जात अनुरागा गत मन्यवः अर्भकान् उदुह्य दोः भिः परिरभ्य मूर्धनि घ्राणैः अवापुः परमां मुदं ते ॥३३॥

तत्	उन (बालकों) को	**गत मन्यवः**	क्रोधहीन हुए
ईक्षण	देखनेसे	**ते अर्भकान्**	उन्होंने बच्चोंको
उत् प्रेमरस	उत्पन्न प्रेमरसमें	**दोः भिःउदुह्य**	भुजाओंसे उठाकर
आप्लुत	चित्तके सराबोर	**परिरभ्यः**	आलिंगन करके
आशया	हो जानेसे	**मूर्धनि घ्राणैः**	सिर सूंघकर
अनुरागः	स्नेह	**परमां मुदं**	परम आनन्द
जात	उत्पन्न हो गया	**अवापुः**	प्राप्त किया ॥३३॥

ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः ।
कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥३४॥

ततः प्रवयसः गोपाः तोक आश्लेष सुनिर्वृताः कृच्छ्रात् शनैः अपगताः तत् अनुस्मृति उत् अश्रवः ॥३४॥

ततः	तब बड़ी	**शनैः**	धीरे-धीरे
प्रवयसः	आयुके वे	**अपगताः**	लौट सके,
गोपाः तोक	गोप बच्चोंके	**तत्**	(फिर भी) उन
आश्लेष	आलिंगनसे		(बालकों) का
सुनिर्वृताः	बहुत आनन्दित होकर	**अनुस्मृत्य**	स्मरण करके
		उत् अश्रवः	अश्रु बहा रहे थे ॥३४॥
कृच्छ्रात्	बड़ी कठिनाईसे		

व्रजस्य रामः प्रेमर्धेर्वीक्ष्यौत्कण्ठ्यमनुक्षणम् ।
मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिन्तयत् ॥३५॥

व्रजस्य रामः प्रेम अर्धेः वीक्ष्य औत्कण्ठ्यं अनुक्षणं मुक्त स्तनेषु अपत्येषु अपि हेतुः अवित् अचिन्तयत् ॥३५॥

व्रजस्य	व्रज-वासियोंका	**औत्कण्ठ्यं**	उत्कण्ठा पूर्वक
अनुक्षणं	प्रतिक्षण	**अर्धेः प्रेम**	प्रेमकी वृद्धि
अपत्येषु	पुत्रोंपर	**वीक्ष्य रामः**	देखकर बलरामजी
स्तनेषु	दूध पीना	**हेतुः**	इसका कारण
मुक्त	छोड़ चुके	**अवित्**	न जाननेसे
अपि	(बछड़ोंपर) भी (गायोंकी)	**अचिन्तयत्**	सोचने लगे ॥३५॥

किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि ।
व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ॥३६॥

किं एतत् अद्भुतं इव वासुदेव अखिल आत्मनि व्रजस्य स आत्मनः तोकेषु अपूर्वं प्रेम वर्धत ॥३६॥

एतत् किं	यह क्या	**तोकेषु**	पुत्रोंमें
अद्भुतं इव	आश्चर्य जैसा है कि	**प्रेम**	जैसा प्रेम
अखिल	सबके	**अपूर्वं**	पहिले नहीं था
आत्मनि	आत्मस्वरूप	**वर्धत**	अब बढ़ गया है ॥३६॥
वासुदेवे	श्रीकृष्णके		
स आत्मनः	समान अपने		

केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी ।
प्रायो मायास्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥३७॥

क इयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्य उत आसुरी प्रायः मायाः तु मे भर्तुः न अन्या मे अपि विमोहिनी ॥३७॥

क इयं	यह कैसी	**प्रायः मे**	प्रायः मेरे
माया	माया है ?	**भर्तुः**	स्वामीसे
कुतः आयाता	कहांसे आयी है ?	**अन्या मे अपि**	दूसरेकी मुझे भी
दैवी	किसी देवताकी,	**विमोहिनी**	मोहित करनेवाली
नार्य	मनुष्यकी,	**न**	नहीं हो सकती
उत	अथवा		॥३७॥
आसुरी	असुरकी है ?		

इति सञ्चिन्त्य दाशार्हो वत्सान् सवयसानपि ।
सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥३८॥

इति सञ्चिन्त्य दाशार्हः वत्सान् सवयसान् अपि सर्वान् आचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥३८॥

इति	ऐसा	**सर्वान्वत्सान्**	सब बछड़ोंके
सञ्चिन्त्य	सोचकर	**सः**	साथ
सः दाशार्हः	उन दशार्ह वंशी बलरामजीने	**वयसान् अपि**	सखाओंको भी
		वैकुण्ठं	विष्णु रूप
वयुनेन चक्षुषा	ज्ञान-दृष्टिसे	**आचष्ट**	देखा ॥३८॥

नैते सुरेशा ऋषयो न चैते
त्वमेव भासीश भिदाश्रयेऽपि ।
सर्वं पृथक्त्वं निगमात् कथं वदे-
त्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥३९॥

न एते सुरेशा ऋषयः न च एते त्वं एव भासि ईश भिदा आश्रये अपि सर्वं पृथक्त्वं निगमात्: कथं वद इति उक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलः अवैत् ॥३९॥

एते	(बलरामजीने श्रीकृष्णसे कहा) ये सब
सुरेशा न च एते	देवनायक नहीं हैं, और ये सब
ऋषयः न	ऋषि भी नहीं हैं,
भिदा	भेदका
आश्रये अपि	आश्रय लेनेपर भी
ईश त्वं एव	भगवन् तुम्हीं
भासि	प्रतीत हो रहे हो, तब
पृथक्त्वं	यह पार्थक्य
कथं	कैसे हो गया
निगमात्	ठीक प्रकार
वद	बतलाओ
इति	ऐसा कहनेपर
प्रभुणा	भगवानके
वृत्तं उक्तेन	वृत्तान्त बतलानेपर
बलः	बलरामजी ने
अवैत्	जाना ॥३९॥

तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुटचनेहसा ।
पुरोवदब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम् ॥४०॥

तावत् एत्य आत्मभूः आत्ममानेन त्रुटिना ईहसा पुरोवत् अब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम् ॥४०॥

तावत्	तब तक
आत्ममानने	अपने काल प्रमाणसे
ईहसा	उस चेष्टाके एक
त्रुटिना	त्रुटि मात्र बाद
आत्मभूः एत्य	ब्रह्माने आकर
पुरोवत्	पहिलेके समान
सकलं	सबको
हरि	श्रीकृष्णके साथ
अब्दं	एक वर्षसे
क्रीडन्तं	क्रीड़ा करते
ददृशे	देखा ॥४०॥

यावन्तो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि ।
मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ॥४१॥

यावन्तः गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि मायाशये शयाना मे न अद्य अपि पुनः उत्थिताः ॥४१॥

गोकुले	(सोचने लगे) 'गोकुलमें
यावन्तः	जितने भी
बालाः	बालक थे
सवत्साः	बछड़ोंके साथ
हि सर्व एव	क्योंकि सभी

मे मायाशये	मेरी माया निद्रामें	**पुनः**	फिर
शयाना	सो रहे हैं	**उत्थिताः न**	उठे नहीं हैं ॥४१॥
अद्य अपि	अब तक भी		

इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे ।
तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम् ॥४२॥

इत एते अत्र कुत्रत्या मत् माया मोहिते इतरे तावन्त एव तत्र अब्दं क्रीडन्तः विष्णुना समम् ॥४२॥

मत् माया	मेरी मायासे	**तावन्त एव**	उतने ही
मोहिते	मोहितोंको	**तत्र**	वहां
इतरे	छोड़कर	**विष्णुना समं**	श्रीहरिके साथ
इत अत्र	यहां व्रजमें	**अब्दं**	एक वर्षसे
एते कुत्रत्या	ये कहांके	**क्रीडन्तः**	खेल रहे हैं ॥४२॥

एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभूः ।
सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथञ्चन ॥४३॥

एवं एतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभूः सत्याः के कतरे न इति ज्ञातुं न इष्टे कथञ्चन ॥४३॥

स आत्मभूः	उन स्वयंभू ब्रह्माने	**चिरं ध्यात्वा**	देर तक ध्यान करके
एवं एतेषु	इस प्रकार इनमें		भी
के सत्याः	कौन सच्चे हैं,	**कथञ्चन**	किसी प्रकार
कतरे	कौनसे (सच्चे)	**ज्ञातुं**	जाननेमें सफल
न	नहीं हैं	**न इष्टे**	नहीं हुए ॥४३॥
एतेषु भेदेषु	इस भेदके विषयमें		

एवं सम्मोहयन् विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ।
स्वयैव माययाजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥४४॥

एवं सम्मोहयन् विष्णुं विमोहं विश्व मोहनं स्व एव मायया अजः अपि स्वयं एव विमोहितः ॥४४॥

एवं	इस प्रकार
विमोहं	मोहरहित
विश्वमोहनं	विश्वको मोहित करनेवाले
विष्णुं	विष्णुको
विमोहं	मोहित करने जाकर
अजः अपि	ब्रह्मा भी
स्वयं एव मायया	अपनी ही मायासे
स्व एवयं	स्वयं ही
विमोहितः	मोहित हो गये ॥४४॥

तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि ।
महतोतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः ॥४५॥

तम्यां तमः वत् नैहारं खद्योत अर्चिः इव अहनि महत् इतरं माया ऐश्यं निहन्ति आत्मनि युञ्जतः ॥४५॥

महत् ऐश्यं	महान ईश्वरीय
माया	मायापरा
इतरं	दूसरीका
युञ्जतः	प्रयोग करनेपर
तम्यां	अँधेरी रातमें
नैहारं	कुहरेके
तमः वत्	अन्धकारके समान
अहनि खद्योत	दिनमें जुगुनूकी
अर्चि इव	चमकके समान
आत्मनि	अपनेको ही
निहन्ति	नष्ट कर लेती है ॥४५॥

तावत् सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ।
व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥४६॥

तावत् सर्वे वत्स पाला. पश्यतः अजस्य तत् क्षणात् व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेय वाससः ॥४६॥

तावत्	उसी समय
अजस्य	ब्रह्माजीके
पश्यतः	देखते हुए
तत् क्षणात्	उस क्षणमें ही
सर्वे वत्स	सब बछड़े और
पालाः	उनके पालक
घनश्यामाः	जलधर श्याम
पीतकौशेय	पीले रेशमी
वाससः	वस्त्र पहिने
व्यदृश्यन्त	दिखायी पड़े ॥४६॥

चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदाराजीवपाणयः ।
किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥४७॥

चतुर्भुजाः शंख चक्र गदा राजीव पाणयः किरीटिनः कुण्डलिनः हारिणः वनमालिनः ॥४७॥

चतुर्भुजाः	चतुर्भुज
शंख चक्र	शंख, चक्र,
गदा राजीव	गदा, पद्म,
पाणयः	हाथोंमें लिए
किरीटिनः	मुकुटधारी
कुण्डलिनः	कुण्डल पहिने
हारिणः	हार पहिने,
वनमालिनः	वनमालाधारी ॥४७॥

श्रीवत्साङ्ददोरत्नकम्बुकंकणपाणयः ।
नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्रांगुलीयकैः ॥४८॥

श्रीवत्स अंगददः रत्न कम्बु कङ्कण पाणयः नूपुरैः कटकैः भाताः कटिसूत्र अंगुलीयकैः ॥४८॥

श्रीवत्स	श्रीवत्स चिह्न
अंगददः	भुजाओंमें अंगद
कम्बु रत्न	शंखाकार रत्न जटित
पाणयः कङ्कण	हाथोंमें कंकण,
नूपुरैः कटकैः	नूपुर, कड़े,
कटिसूत्र	करधनी
अंगुलीयकैः	अंगूठियोंसे
भाता	सुशोभित ॥४८॥

आङ्घ्रिमस्तकमापूर्णस्तुलसीनवदामभिः ।
कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥४९॥

आङ्घ्रि मस्तकं आपूर्णाः तुलसो नवदामभिः कोमलैः सर्व गात्रेषु भूरिपुण्यवत् अर्पितैः ॥४९॥

सर्व कोमलैः	सब सुकुमार
गात्रेषु	अंगोंमें
भूरि-	परम
पुण्यवत्	पुण्यवान जनोंकी
अर्पितैः	चढ़ायी हुई
तुलसी	तुलसीकी
नवदामभिः	नवीन मालाओंसे
आङ्घ्रि	चरणोंसे
मस्तकं	सिर तक
आपूर्णाः	आच्छादित थे ॥४९॥

चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापांगवीक्षितैः ।
स्वकार्थानामिव रजः सत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ॥५०॥

चन्द्रिका विशद स्मेरैः स अरुण अपांग वीक्षितैः स्वक अर्थानां इव रजः सत्त्वाभ्यां स्रष्टृ पालकाः ॥५०॥

चन्द्रिका	चन्द्रिकाके समान	**अर्थानां**	प्रयोजन
विशद	उज्वल	**रजः**	रजोगुण तथा
स्मरैः	मुस्कान तथा	**सत्त्वाभ्यां**	सत्व गुण द्वारा
अरुण स	लालिमा युक्त	**स्रष्टृ**	उत्पन्न करने और
अपांग	कटाक्ष	**पालकाः**	पालन करने वाले
वीक्षितैः	पातसे	**इव**	के समान लगते
स्वक	अपने भक्तोंका		थे ॥५०॥

आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः ।
नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक् पृथगुपासिताः ॥५१॥

आत्मा आदि स्तम्ब पर्यन्तैः मूर्तिमत्भिः चराचरैः नृत्य गीता आदि अनेक अर्हैः पृथक् पृथक् उपासिताः ॥५१॥

आत्मा-	(ब्रह्मा देखते हैं) कि	**आदि अनेक**	आदि अनेक
आदि	उनसे लेकर	**अर्हैः**	पूजा-साधनोंसे
स्तम्ब पर्यन्तैः	तिनके तक	**पृथक् पृथक्**	अलग-अलग वे
मूर्तिमत्भिः	मूर्तिमान होकर	**उपासिताः**	पूजित हो रहे हैं ॥५१॥
चराचरैः	सब चराचर द्वारा		
नृत्य गीत	नृत्य, गायन		

अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः ।
चतुर्विंशतिभिस्तत्वैः परीता महदादिभिः ॥५२॥

अणिमा आद्यैः महिम भिः अजा आद्याभिः विभूतिभिः चतुर्विंशति भिः तत्त्वैः परीता महदादिभिः ॥५२॥

अणिमा महिम	अणिमा, महिमा	**अजा आद्यभिः**	माया आदि
आद्यैः भिः	आदि सिद्धियोंसे	**विभूतिभिः**	विभूतियोंसे

चतुर्विंशति	चौबीसो	**महदादिभिः**	परमर्षियोंसे
तत्त्वै भिः	तत्त्वोंसे तथा	**परीता**	घिरे हैं ॥५२॥

कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ।
स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूतिमद्भिरुपासिताः ॥५३॥

काल स्वभाव संस्कार काम कर्म गुण आदिभिः स्वमहि ध्वस्त महिभिः मूतिमत् भिः उपासिताः ॥५३॥

महिभिः	(भगवानकी) महिमा से	**काम**	वासना
स्वमहि	अपनी महिमा	**गुण आदिभिः**	गुण आदि द्वारा
ध्वस्त	नष्ट हुए	**मूतिमत् भिः**	मूर्तिमान रूपसे
काल स्वभाव	काल, स्वभाव,	**उपासिताः**	उपासित हो रहे हैं ॥५३॥
संस्कार कर्म	संस्कार, कर्म,		

सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्तयः ।
अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ॥५४॥

सत्य ज्ञान अनन्त आनन्द मात्र एक रस मूर्तयः अस्पृष्ट भूरि-माहात्म्या अपि हि उपनिषत् दृशाम् ॥५४॥

सत्य ज्ञान	सत्य, ज्ञान,	**दृशां**	विद्वानोंके लिए
अनन्त आनन्द	अनन्त आनन्द	**अपि**	भी उनका
मात्र	मात्र ही हैं	**भूरिमाहात्म्या**	महा माहात्म्य
एक रस	केवल रस	**अस्पृष्ट**	स्पर्शनीय नहीं है ॥५४॥
मूर्तयः	स्वरूप हैं,		
हि उपनिषत्	क्योंकि उपनिषदोंके		

एवं सकृद् ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् ।
यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ॥५५॥

एवं सकृत् ददर्श अजः परब्रह्म आत्मनः अखिलान् यस्य भासा सर्वं इदं विभाति सचराचरम् ॥५५॥

एवं	इस प्रकार	**इदं सर्वं**	यह सब
सकृत	एक ही साथ	**सचराचरं**	सम्पूर्ण जगत्
अजः	ब्रह्माने	**विभाति**	भास रहा है, उस
अखिलान्	उन सबको	**परब्रह्म**	परम ब्रह्मका
यस्य भासा	जिसके प्रकाशसे	**आत्मनः ददर्श**	स्वरूप देखा ॥५५॥

ततोऽतिकुतुकोद्वृत्तस्तिमितैकादशेन्द्रियः ।
तद्धाम्नाभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्रिका ॥५६॥

ततः अति कुतुक उद्वृत्त स्तिमित एकादश इन्द्रियः तत् धाम्ना अभूत् अजः तूष्णीं पूः देव्य अन्ति इव पुत्रिका ॥५६॥

ततः	तब	**अजः**	ब्रह्माजी
अति कुतक	अत्यन्त कौतूहल वश	**तूष्णीं**	चुप होकर
एकादश-	ग्यारहो इन्द्रियों	**देव्य अन्ति**	ब्रह्मदेवीके समीप
इन्द्रियः	(दस इन्द्रियां और मन) के	**पुत्रिका इव**	एक पुतलीके समान
स्तिमित	स्तब्ध हो जानेसे	**अभूत्**	हो गये ॥५६॥

इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके
परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ।
अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति
चछादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम् ॥५७॥

इति ईशे अतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमतिके परत्राजातः अतत् निरसनमुख ब्रह्म कं इतौ अनीशे अपि द्रष्टुं किं इदं इति वा मुह्यति सति चछाद अजः ज्ञात्वा सपदि परमः अजा जवनिकाम् ॥५७॥

इति	इस प्रकार	**स्व प्रमतिके**	स्वयं प्रकाश,
अतर्क्ये	तर्कातीत	**कं**	आनन्द स्वरूप
ईशे	सर्वेश्वर,	**परत्राजातः**	मायातीत
निजमहिमनि	अपनी महिमामें स्थित	**अतत्**	अनात्म
		निरसन	पदार्थोंका बाध

मुख	करके श्रुतिसे जाने वाले	**वा मुह्यति**	अथवा मोहिता
ब्रह्म	ब्रह्म	**सति**	(मूर्छित) होता हुआ
इतो द्रष्टुं	इसको देखनेमें	**आजाः ज्ञात्वा**	ब्रह्माको जानकर
अनीशे अपि	असमर्थ होनेपर भी	**परमः**	परम पुरुष
किं इदं	'यह क्या है'	**सपदि**	तत्काल
इति	इस प्रकार	**अजा जवनिकां**	मायाका पर्दा
		चछाद	ढक दिया ॥५७॥

ततोऽर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः ।
कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना ॥५८॥

ततः अर्वाक् प्रतिलब्ध अक्षः कः परेतवत् उत्थितः कृच्छ्रात् उन्मील्य वै दृष्टिः आचष्ट इदं सह आत्मना ॥५८॥

ततः	तब	**कृच्छ्रात्**	बड़े कष्टसे
अर्वाक्	उस स्थितिसे नीचे आनेपर	**वै दृष्टिः**	निश्चय करके
		उन्मील्य	नेत्र खोलकर
प्रतिलब्ध अक्षः	इन्द्रिय चेतना मिली	**सह आत्मना**	अपने साथ
कः	ब्रह्माजीने	**इदं**	इस जगतको
परेतवत्	मरकर	**आचष्ट**	देखा ॥५८॥
उत्थितः	उठे (पुन जींवित) हुए जैसे		

सपद्येवाभितः पश्यन् दिशोऽपश्यत् पुरः स्थितम् ।
वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥५९॥

सपदि एव अभितः पश्यन् दिशः अपश्यत् पुरः स्थितं वृन्दावनं जन आजीव्य द्रुम आकीर्णं सम आप्रियम् ॥५९॥

सपदि एव	तत्काल	**पुरः स्थितं**	सामने स्थित
अभितः दिशः	चारों दिशाओंमें	**जन**	लोगोंको
पश्यन्	(चौंककर) देखते हुए	**आजीव्य**	जीविका देनेवाले

द्रुम आकीर्णं	वृक्षोंसे भरे हुए	**वृन्दावनं**	वृन्दावनको
सम	सब ओर	**अपश्यत्**	देखा ॥५९॥
आप्रियं	अत्यन्त प्रिय		

यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन् नृमृगादयः ।
मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम् ॥६०॥

यत्र नैसर्ग दुः वैराः सह आसन् नृ मृग आदयः मित्राणि इव अजित आवास द्रुत रुट् तर्षक आदिकम् ॥६०॥

अजित	अजित श्रीकृष्णके	**दुः**	दूर हो जानेसे
आवास	निवासके कारण	**नृ मृग आदयः**	मनुष्य-पशु आदि
यत्र रुट्	जहां रोष,	**मित्राणि इव**	मित्रोंके समान
तर्षक	तृष्णा	**सह आसन्**	साथ ही रहते
आदिकं द्रुत्	आदिके भाग जानेसे		थे ॥६०॥
नैसर्ग वैराः	स्वाभाविक शत्रुता		

तत्रोद्वहत् पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं
ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम् ।
वत्सान् सखीनिव पुरा परितो विचिन्व-
देकं सपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥६१॥

तत्र उद्वहत् पशुपवंश शिशुत्व नाट्यं ब्रह्म अद्वयं परं अनन्तं अगाध बोधं वत्सान् सखीन् इव पुरा परितः विचिन्वत् एकं सपाणि कवलं परमेष्ठि अचष्ट ॥६१॥

तत्र	वहाँ	**बोधं**	स्वरूपको
पशुपवंश	गोपकुलके	**पुरा इव**	पहिलेके समान
शिशुत्व नाट्यं	शिशुकी लीला	**वत्सान्**	बछड़ों तथा
उद्वहत्	करते हुए	**सखीन्**	सखाओंको
अद्वयं ब्रह्म	अद्वितीय ब्रह्म	**परितः**	चारों ओर
परं अनन्तं	परम पुरुष, अनन्त,	**विचिन्वत्**	ढूंढ़ते हुए
अगाध	अथाह ज्ञान	**एकः सपाणि**	अलेके हाथपर

कवलं	ग्रास लिए	**अचष्ट**	देखा ॥६१॥
परमेष्ठि	ब्रह्माने		

दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य
पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डमिवाभिपात्य ।
स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरङ्घ्रियुग्मं
नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥६२॥

दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतः अवतीर्य पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डं इव अभिपात्य स्पृष्ट्वा चतुः मुकुट कोटिभिः अङ्घ्रि युग्मं नत्वा मुद् अश्रुजलैः अकृत अभिषेकम् ॥६२॥

दृष्ट्वा	देखकर	**चतुः**	चारों
त्वरेण	शीघ्रता पूर्वक	**मुकुट कोटिभिः**	मुकुटोंकी नोकसे
निजधोरणतः	अपने वाहनसे	**अङ्घ्रि युग्मं**	(श्रीकृष्णके) दोनों चरणोंका
अवतीर्य	उतरकर		
वपुः	शरीरको	**स्पृष्ट्वा**	स्पर्श करके
पृथ्व्यां	पृथ्वीपर	**मुद् अश्रुजलैः**	आनन्दाश्रु जलसे
कनकदण्डं	स्वर्ण-दण्डके	**अभिषेकं**	उनका स्नान
इव अभिपात्य	समान गिराकर	**अकृत**	करा दिया ॥६२॥

उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ।
आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ॥६३॥

उत्थाय उत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् आस्ते महित्वं प्राक् दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ॥६३॥

प्राक् दृष्टं	(अभी) पहिले देखी	**चिरस्य**	देर तक
महित्वं	महिमाको	**कृष्णस्य**	श्रीकृष्णके
पुनः पुनः	बार-बार	**पादयोः**	चरणोंपर
स्मृत्वा	स्मरण करके, फिर	**पतन्**	गिरते
स्मृत्वा	स्मरण करके	**आस्ते**	रहे ॥६३॥
उत्थाय उत्थाय	बार-बार उठ-उठ कर		

शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने
मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकन्धरः ।
कृताञ्जलिः प्रश्रयवान् समाहितः
सवेपथुर्गद्गद्यैलतेलया ॥६४॥

शनैः अथ उत्थाय विमृज्य लोचने मुकुन्दं उद्वीक्ष्य विनम्र कन्धरः कृत अञ्जलिः प्रश्रयवान् समाहितः सवेपथुः गद्गद्या ऐलत एलया ॥६४॥

अथ शनैः	फिर धीरेसे	**प्रश्रयवान्**	विनयपूर्वक
उत्थाय	उठकर	**समाहितः**	एकाग्र चित्तसे
लोचने	नेत्रोंको	**सवेपथुः**	काँपते हुए
विमृज्य	पोंछकर	**गद्गद्या**	गद्गद्
मुकुन्दं	श्रीकृष्णको	**एलया**	वाणीसे
उद्वीक्ष्य	सिर उठाकर देखकर	**ऐलत**	स्तुति करने लगे
विनम्र	नम्रतासे		॥६४॥
कन्धरः	गर्दन झुकाकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषु तडिदम्बराय
गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥१॥

नौमि ईड्य ते अभ्र वपुषु तडित् अम्बराय गुञ्जा अवतंस परिपिच्छल सन्मुखाय वन्यस्रजे कवल वेत्र विषाण वेणु लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुप अंगजाय ॥१॥

अभ्र वपुषु	मेघश्याम शरीर,	**विषाण**	शृंगी लिए
तडित्	बिजलीके समान	**लक्ष्मश्रिये**	श्रीवत्स चिह्न युक्त
अम्बराय	पीताम्बरधारी	**सन्मुखाय**	सन्मुख खड़े
गुञ्जा	गुञ्जाके	**मृदुपदे**	कोमल-चरण
अवतंस	कुंडलधारी	**पशुप-**	गोपाल-
परिपिच्छल	मयूर पिच्छवाले,	**अंगजाय**	नन्दन
वन्यस्रजे	वनमाला पहिने,	**ईड्य**	स्तवनीय
कवल	(हाथपर) ग्रास,	**ते नौमि**	आपको नमस्कार
वेणु	वेंत (का लकुट)		॥१॥

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि ।
नेशे महि त्ववसितुं मनसाऽऽन्तरेण
साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ॥२॥

अस्य अपि देव वपुषः मत् अनुग्रहस्य स्व इच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कः अपि न ईशे महि तु अवसितुं मनसा आन्तरेण साक्षत् तव एव किं उत आत्मसुख अनुभूतेः ॥२॥

देव	देव !
अस्य अपि	(आपका) यह भी
वपुषः	श्रीविग्रह
मत्	मुझपर
अनुग्रहस्य	कृपा करनेके लिए
स्व	आपकी
इच्छामयस्य	इच्छाका मूर्तिमान रूप हैं
भूतमयस्य	पञ्चभूतात्मक
न तु	नहीं ही है,
कः अपि	कोई भी
मनसा	मनके द्वारा
आन्तरेण	समाधि लगाकर भी
तव एव	आपके इसी रूपकी
महि	महिमाको
अवसितुं	जाननेमें
ईशे न	समर्थ नहीं है
तु साक्षात्	फिर साक्षात्
आत्मसुख	आत्मानन्द
अनुभूतेः	अनुभव रूपको
उत किं	भला कैसे जानेगा

॥२॥

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम् ।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥३॥

ज्ञाने प्रयासं उत् अपास्य नमन्त एव जीवन्ति सत् मुखरितां भवदीय वार्तां स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनु वाङ् मनः भिः ये प्रायशः अजित जितः अपि असि तैः त्रिलोक्याम् ॥३॥

ये ज्ञाने	जो (लोग) ज्ञान
प्रयासं	प्राप्तिका उद्योग
उत् अपास्य	सर्वथा त्यागकर
स्थाने स्थिताः	अपने स्थानपर ही रहते हुए
तनु वाङ्	शरीर, वाणी,
मनः भिः	मनसे
नमन्त एव	विनयावनत होकर ही
श्रुतिगतां	कानमें पहुँची
सत्	सत् पुरुषों द्वारा
मुखरितां	वर्णित
भवदीय वार्तां	आपकी कथाको
जीवन्ति	अपना जीवन बना लेते हैं
त्रिलोक्यां	त्रिलोकीमें
अजित अपि	अजेय होनेपर भी आप
तैः प्रायशः	उनके द्वारा प्रायः
जितः असि	जीत लिए गये हैं

॥३॥

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥४॥

श्रेयः सृतिं भक्तिं उदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवल बोध लब्धये तेषां असौ क्लेशल एव शिष्यते न अन्यत् यथा स्थूल तुष अवघातिनाम् ॥४॥

विभो	प्रभो !	**क्लेशल एव**	कष्ट उठाना ही
ते	आपकी	**शिष्यते**	बच रहता (मिलता) है
श्रेयः सृतिं	कल्याण दायिनी		
भक्तिं उदस्य	भक्तिको छोड़कर	**यथा**	जैसे
ये केवल	जो केवल	**स्थूल तुष**	थोथी भूसी
बोध लब्धये	ज्ञान-प्राप्तिके लिए	**अवघातिनां**	कूटनेवालोंको
क्लिश्यन्ति	क्लेश उठाते हैं	**अन्यत्**	दूसरा कुछ
तेषां असौ	उनको यह	**न**	नहीं मिलता ॥४॥

पुरेह भूमन् बहवोऽपि योगिन-
स्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया ।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया
प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥५॥

पुरा इह भूमन् बहवः अपि योगिनः त्वत् अर्पित ईहा निजकर्म लब्धया विबुध्य भक्त्या एव कथा उपनीतया प्रपेदिरे अञ्जः अच्युत ते गतिं पराम् ॥५॥

भूमन्	सर्व व्यापक प्रभु	**निजकर्म**	अपने सब कर्म और
इह	इस लोकमें	**ईहा**	चेष्टाएँ
पुरा	पहिले हुए	**त्वत्**	आपको
बहवः	बहुतसे	**अर्पित**	अर्पण करके तथा
योगिनः अपि	योगियोंने भी	**कथा**	(आपकी) कथा

उपनीतया	(श्रवण) से लाये (प्राप्त)
भक्त्या एव	भक्तिसे ही
विबुध्य	(आपको) जानकर
अच्युत	हे अच्युत !
अञ्जः	सरलतापूर्वक
ते परां गतिं	आपके परमपदको
प्रपेदिरे	प्राप्त कर लिया ॥५॥

तथापि भूमन् महिमागुणस्य ते
विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः ।
अविक्रियात् स्वानुभवादरूपतो
ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ॥६॥

तथा अपि भूमन् महिमा अगुणस्य ते विबोद्धुं अर्हति अमल अन्तरात्मभिः अविक्रियात् स्व अनुभवात् अरूपतः हि अनन्य बोध्य आत्मतया न च अन्यथा ॥६॥

भूमन्	विभो !
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी
ते	आपके
अगुणस्य	निर्गुण स्वरूपकी
महिमा	महिमा
अमल	निर्मल
अन्तरात्मभिः	अन्तःकरण पुरुषों द्वारा
विबोद्धुं	जानी जानी
अर्हति	चाहिए
हि	क्योंकि
अविक्रियात्	(वह निर्गुण रूप) निर्विकार
स्व अनुभवात्	आत्मानुभव रूप
अरूपतः	निराकार होनेसे
आत्मतया	अपने आत्म स्वरूप-में ही
अनन्य बोध्य	केवल ज्ञेय है
अन्यथा	दूसरे किसी
अपि न च	भी रूपमें नहीं (जाना जाता) ॥६॥

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं
हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य ।
कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पै-
र्भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ॥७॥

गुण आत्मनः ते अपि गुणान् विमातुं हित अवतीर्णस्य क ईशिरे अस्य कालेन यैः वा विमिताः सुकल्पैः भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ॥७॥

यैः	जिन्होंने	**अस्य**	इस जगतके
कालेन	दीर्घकालमें	**हित**	कल्याणके लिए
भूपांसवः	पृथ्वीके धूलि कणों-को	**अवतीर्णस्य**	अवतार धारण किये
खे मिहिका	आकाशकी ओसकी बूँदें और	**ते**	आपके
द्युभासः	नभके तारे भी	**गुण आत्मनः**	सगुण स्वरूपके
विमिताः	गिन लेनेमें	**गुणान्**	गुणोंको
सुकल्पैः	पूरी सामर्थ्य पा ली है (उनमें भी)	**विमातुं**	गिन लेनेमें
		क ईशिरे	कौन समर्थ हो सकता है ॥७॥

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥८॥

तत् ते अनुकम्पां सुसमीक्षमाणः भुञ्जान एव आत्मकृतं विपाकं हृत् वाक् वपुः भिः विदधत् नमः ते जीवेत यः मुक्तिपदे स दायभाक् ॥८॥

तत्	इसलिए	**ते नमः**	आपको नमस्कार (आत्मार्पण)
ते	आपके	**विदधत्**	करता हुआ
अनुकम्पां	अनुग्रहको	**जीवेत**	जीवन बिताता है
सुसमीक्षमाणः	भली प्रकार देखता हुआ,	**स मुक्तिपदे**	वह मोक्षपदका
आत्मकृतं	अपने किये कर्मोंका	**दायभाक्**	(पिताकी सम्पत्तिका पुत्रके समान स्वतः सिद्ध) अधि-कारी है ॥८॥
विपाकं	फल		
भुञ्जान एव	भोगता हुआ ही		
यः हृत् वाक्	जो हृदय, वाणी,		
वपुः भिः	शरीरसे		

पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये
परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि ।
मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं
ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥९॥

पश्य ईश मे अनार्यं अनन्त आद्ये पर आत्मनि त्वयि अपि मायि मायिनि मायां वितत्य ईक्षितुं आत्म वैभवं हि अहं कियान् ऐच्छं इव अर्चिः अग्नौ ॥९॥

ईशः	स्वामी !	**त्वयि अपि**	आपपर भी
मे अनार्यं	मेरी निकृष्टता (नीचता) तो	**आत्म वैभवं**	अपना ऐश्वर्य
पश्य	देखिये कि	**ईक्षितुं ऐच्छं**	देखनेके लिए इच्छा की
अनन्त	अनन्त,	**मायां**	(मैंने अपनी) माया
आद्ये	आदिपुरुष,	**वितत्य**	फैलायी,
पर आत्मनि	परमात्मा,	**हि अग्नौ**	भला अग्निके सम्मुख
मायि	बड़े-बड़े मायावियों-को भी	**अर्चिः इव**	चिनगारीके समान
मायिनि	मायामें डाले रखने वाले	**अहं कियान्**	मैं होता ही क्या हूँ ॥९॥

अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो
ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः ।
अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष
एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥१०॥

अतः क्षमस्व अच्युत मे रजः भुवः हि अजानतः त्वत् पृथक् ईश मानिनः अजा अवलेप अन्धतमः अन्ध चक्षुषः एषः अनुकम्प्यः मयि नाथवान् इति ॥१०॥

अतः अच्युत	अतः अच्युत !	**अजा**	मायाके
रजः भुवः	रजोगुणसे उत्पन्न	**अन्धतमः**	प्रगाढ़ अन्धकाररूप

अवलेप	अज्ञानसे लिप्त होने-के कारण
अन्ध चक्षुषः	अन्धे नेत्र (ज्ञान हीन) होकर
हि	क्योंकि
अजानतः	(आपको) नहीं जानता था
त्वत् पृथक् ईश	आपसे अलग अपनेको समर्थ
मानिनः	माननेवाला था,
इति	यह समझकर कि
एषः मयि	यह मुझसे
नाथवान्	स्वामी वाला (मेरा सेवक)
अनुकम्प्यः	कृपाका पात्र है
मे क्षमस्व	मुझे क्षमा करें ॥१०॥

क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भू-
संवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः ।
क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या-
वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥११॥

क्व अहं तमः महत् अहं ख चर अग्नि वारि भू संवेष्टित अण्डघट सप्त वितस्तिकायः क्व ईदृक् विध अविगणित अण्ड परअणु चर्या वात अध्व रोम विवरस्य च ते महित्वम् ॥११॥

तमः महत्	प्रकृति, महत्तत्त्व,
अहं ख	अहंकार, आकाश,
चर अग्नि	वायु, अग्नि,
वारि भू	जल, पृथ्वी (के आवरणों) से
संवेष्टित	घिरा हुआ
अण्डघट	एक ब्रह्माण्ड रूपसे बना
क्व अहं	कहां तो मैं
सप्त वितस्ति-	अपने सात बित्तेका
कायः	शरीर वाला और
क्व ईदृक् विध	कहां इस प्रकारके
अविगणित	अनगिनती
अण्ड	ब्रह्माण्ड
अध्वरोम	(जिनके) रोम
विवरस्य	छिद्रोंमें
परअणु चर्या	परमाणुके समान
वात	उड़ते रहते हैं ऐसी
ते च	आपकी तो
महित्वं	(अपार) महिमा ॥११॥

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः
किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ।
किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं
तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः ॥१२॥

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुः अधोक्षज अगसे किं अस्ति नास्ति व्यपदेश भूषितं तव अस्ति कुक्षेः कियत् अपि अनन्तः ॥१२॥

अधोक्षज	हृषीकेश !
गर्भगतस्य	अपने गर्भमें आये (शिशु) का
पादयोः	पैरोंका
उत्क्षेपणं	उछालना
मातुः किं	माता क्या
अगसे कल्पते	अपराध मानती है ?
'अस्ति नास्ति'	'है' और 'नहीं है'
व्यपदेश	इन शब्दोंसे
भूषितं	कही जानेवाली
कियत् अपि	कोई भी वस्तु
अनन्तः	हे अनन्त !
तव कुक्षेः	आपके ही कोखमें
किं अपि अस्ति	ही क्या नहीं है ॥१२॥

जगत्त्रयान्तोदधिसम्प्लवोदे
नारायणस्योदरनाभिनालात् ।
विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ् न वै मृषा
किं त्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोऽस्मि ॥१३॥

जगत्त्रय अन्त उदधि सम्प्लव उदे नारायणस्य उदर नाभि नालात् विनिर्गतः अजः तु इति वाङ् न वै मृषा किं तु ईश्वरः त्वत् न विनिर्गतः अस्मि ॥१३॥

जगत्त्रय	त्रिलोकी का
अन्त	अन्त (प्रलय) हो जानेपर फिर
सम्प्लव	प्रलय
उदधि उदे	सागरके जलमें
नारायणस्य	भगवान् नारायणके
उदर नाभि	उदरकी नाभिसे निकले
नालात्	कमल-नालसे
अजः विनिर्गतः	ब्रह्मा उत्पन्न हुए,

इति वाङ् तु	ऐसी वेदवाणी तो	**किं त्वत्**	क्या आपसे
वै मृषा	निश्चित रूपसे झूठी	**न विनिर्गतः**	मैं नहीं उत्पन्न हुआ
न	नहीं है	**अस्मि**	हूँ ॥१३॥
तु ईश्वरः	तब हे स्वामी !		

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिना-
मात्मास्यधीशाखिललोकसाक्षी ।
नारायणोऽङ्गं नरभूजलायना-
त्तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥१४॥

नारायणः त्वं न हि सर्वदेहिनां आत्मा अस्य अधीशः अखिललोक साक्षी नारायणः अंगं नर भू जल अयनात् तत् च अपि सत्यं न तव एव माया ॥१४॥*

हि त्वं	क्योंकि आप	**नारायणः**	नारायण (कहलाते) हैं,
सर्वदेहिनां	सब देहधारियोंके	**तत् च**	वह भी
आत्मा	आत्मा हैं तथा	**नारायणः अपि**	नारायण रूप भी
अस्य	इस जगतके	**सत्यं न**	सत्य नहीं है
अधीशः	अधीश्वर,	**तव**	वह आपका (एक) रूप है, पर
अखिललोकः	सब लोकोंके		
साक्षी	द्रष्टा हैं,	**माया एव**	माया ही
नर अंगं भू	नरके अंगसे उत्पन्न	**न**	(असत्) नहीं है
जल	जलमें		॥१४॥
अयनात्	निवास करनेसे		

तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः
किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ।

---

* इस श्लोकके अन्वय भेदसे अनेक अर्थ सम्भव हैं—जैसे आप केवल नारायण ही नहीं हैं। क्योंकि सबके आत्मा, सब लोकोंके साक्षी तथा स्वामी हैं। वे जो नरके देहसे उत्पन्न जलमें रहने वाले हैं, वे सत्य नहीं हैं, आपकी मायासे प्रतीत हो जाते हैं।

किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव
किं नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥१५॥

तत् चेत् जलस्थं तव सत् जगत् वपुः किं मे न दृष्टं भगवन् तदा एव किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदा एव किं नः सपदि एव पुनः व्यदर्शि ॥१५॥

भगवन्	भगवन !	**हृदि**	हृदयमें जो
तत् जलस्थं	वह जलमें स्थित	**सुदृष्टं**	भली प्रकार देखा
तव	आपका	**किं**	वह क्या था (सत्य
जगत् वपुः	विश्वरूप देह		था या नहीं)
चेत् सत्	यदि सत्य था तो	**तदा एव**	उसी समय
मे	मुझे	**सपदि एव पुनः**	शीघ्र ही फिर
किं	(कमलनालमें होकर	**किं न**	क्यों नहीं
	जानेपर) क्यों	**व्यदर्शि**	दीखा (अनार्धान
न दृष्टं	नहीं दीखा,		हो गया) ॥१५॥
तदा एव मे	उसी समय मैंने		

अत्रैव मायाधमनावतारे
ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिः स्फुटस्य ।
कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्या
मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥१६॥

अत्र एव माया धमन अवतारे हि अस्य प्रपञ्चस्य बहिः स्फुटस्य कृत्स्नस्य च अन्तः जठरे जनन्या माया त्वं एव प्रकटीकृतं ते ॥१६॥

माया धमन	माया-नाशक प्रभो !	**जनन्या**	माताको (दिखलाने-
हि अत्र एव	क्योंकि इसी		के) लिए
अवतारे	अवतारमें	**त्वं एव**	आपने ही
अस्य स्फुटस्य	इस प्रत्यक्ष	**प्रकटीकृतं**	प्रकट कर दिया
बहिः प्रपञ्चस्य	वाह्य जगत्को	**ते**	यह आपकी
जठरे अन्तः	अपने उदरके भीतर	**माया**	माया ही तो है
कृत्स्नस्य	सम्पूर्ण रूपसे		॥१६॥

यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ।
तत्वय्यपोह तत् सर्वं किमिदं मायया विना ॥१७॥

यस्य कुक्षाः इदं सर्वं स आत्मं भाति यथा तथा तत् त्वयि अपि इह तत् सर्वं किं इदं मायया विना ॥१७॥

इदं सर्वं	यह सब संसार	**तथा तत्**	वैसा ही
स आत्मं	आपके सहित	**सर्वं**	सब दीखा
यथा	जैसा	**किं इदं**	क्या यह
इह भाति	यहां प्रतीत होता है,	**मायया विना**	मायाके बिना हो
यस्य त्वयि	जिस आपके		सकता है ॥१७॥
कुक्षाः अपि	पेटमें भी		

अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते
मायात्वमादर्शित-
मेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्-
वत्साः समस्ता अपि ।
तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः
साकं मयोपासिता-
स्तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं
ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥१८॥

अद्य एव त्वत् दृते अस्य किं मम न ते माया त्वं आदर्शितं एकः असि प्रथमं ततः व्रज सुहृत् वत्साः समस्ता अपि तावन्तः असि चतुर्भुजाः तत् अखिलैः साकं मया उपासिताः तावन्ति एव जगन्ति अभूः तत् अमितं ब्रह्म अद्वयं शिष्यते ॥१८॥

अद्य एव	आज ही	**किं ते**	क्या अपनी
त्वत् दृते	आपको छोड़कर	**माया त्वं**	माया आपने
अस्य	इस जगतको और	**न आदर्शितं**	नहीं दिखलाया ?
मम	मुझे	**प्रथमं**	पहिले

एकः असि	अकेले ही थे,
ततः	फिर
व्रज सुहृत्	व्रजके सखा और
समस्ता	सम्पूर्ण
वत्साः अपि	बछड़े भी हो गये
तावन्तः	फिर उतने ही
चतुर्भुजाः	चतुर्भुज रूप
असि	हो गये
तत् अखिलैः	वे सब रूप
तावन्तः एव	उतने ही रूपोंसे
मया साकं	मेरे साथ (अन्यों द्वारा)
उपासिताः	उपासित हो रहे थे
जगन्ति अभूः	(उतने ही) ब्रह्माण्ड भी वन गये थे,
तत् अमितं	वह अपरिमित (अब)
ब्रह्म अद्वयं	अद्वितीय ब्रह्म रूपसे
शिष्यते	शेष रह गये हैं ॥१८॥

अजानतां त्वत्पदवीमनात्म-
न्यात्माऽऽत्मना भासि वितत्य मायाम् ।
सृष्टाविवाहं जगतो विधान
इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः ॥१९॥

अजानतां त्वत् पदवीं अनात्मनि आत्मा आत्मना भासि वितत्य मायां सृष्टाः इव अहं जगतः विधानं इव त्वं एषः अन्तः इव त्रिनेत्रः ॥१९॥

त्वत् पदवीं अजानतां	आपके स्वरूपको न जाननेवालों के लिए
अनात्मनि	प्रकृतिमें
आत्मना	अपने द्वारा ही
आत्मा भासि	जीवके रूपमें प्रतीत होते हैं,
मायां	मायाका
वितत्य	विस्तार करके
सृष्टाः	सृष्टिके लिए
अहं इव	जैसे मेरा स्वरूप,
जगतः	सृष्टिकी
विधानं	विधान-रक्षाके लिए
त्वं	आपके (विष्णु रूपके)
इव	समान,
एषः	इस जगतके
अन्तः	प्रलयके लिए
त्रिनेत्रः इव	शंकरजीके समान (होकर) स्थित हैं ॥१९॥

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि
तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य ।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय
प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च ॥२०॥

सुरेषु ऋषिषु ईश तथा एव नृषु अपि तिर्यक्षु यादः सु अपि ते अजनस्य जन्म असतां दुर्मद निग्रहाय प्रभो विधातः सत् अनुग्रहाय च ॥२०॥

प्रभो ईश	प्रभो ! स्वामी !	**यादः सु अपि**	जलचरोंमें भी
विधातः	सर्व विधाता !	**जन्म**	जन्म (अवतार) लेना
ते अजनस्य	आप अजन्माका	**दुर्मद असतां**	गर्विष्ठ दुष्टोंका
सुरेषु	देवताओं,	**निग्रहाय**	नियन्त्रण करनेके लिए
ऋषिसु	ऋषियों,		
नृषिषु अपि	मनुष्योंमें भी,	**च सतां**	तथा सत्पुरुषोंपर
तथा इव	इसी प्रकार	**अनुग्रहाय**	कृपा करनेके लिए
तिर्यक्षु	पशु-पक्षियोंमें,		होता है ॥२०॥

को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्
योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति
विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥१२॥

कः वेत्ति भूमन् भगवन् पर आत्मन् योगेश्वरः अतीः भवतः त्रिलोक्यां क्व वा कथं वा कति वा कदा इति विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥२१॥

भूमन्	सर्वव्यापक	**अतीः**	अवतार लेकर
भगवन्	भगवान्	**योगमायां**	योगमायाका
पर आत्मन्	परमात्मा	**विस्तारयन्**	विस्तार करके
योगेश्वरः	योगेश्वर आप	**क्रीडसि**	जब क्रीड़ा करते हैं
त्रिलोक्यां	त्रिलोकीमें		तब

क्व वा	कौन-सी या	**इति कः**	इस प्रकार
कथं वा	किस प्रकार की या	**वेत्ति**	जान सकता है
कति	कितने प्रकारकी		॥२१॥
वा कदा	अथवा कब (लीला करेंगे)		

तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं
स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् ।
त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते
मायात उद्यदपि यत् सदिवावभाति ॥२२॥

तस्मात् इदं जगत् अशेषं असत् स्वरूपं स्वप्न आभं अस्तधिषणं पुरुदुःख दुःखं त्वयि एव नित्यसुख बोधतनाः अनन्ते मायात उद्यत् अपि यत् सत् इव अवभाति ॥२२॥

तस्मात् इदं	इसलिए यह	**नित्यसुख**	नित्य आनन्द,
अशेषं जगत्	सम्पूर्ण विश्व	**बोधतनाः**	ज्ञान स्वरूप,
असत् स्वरूपं	असत् स्वरूप,	**अनन्ते**	अनन्तमें
स्वप्न आभं	स्वप्नके समान	**मायात**	मायासे
अस्तधिषणं	अज्ञान स्वरूप,	**उद्यत् अपि**	उत्पन्न होनेपर भी
पुरुदुःख	असंख्य दुःखोंसे भरा	**यत् सत् इव**	क्योंकि सतके समान
दुःखं	दुःखदायी	**अवभाति**	प्रतीत हो रहा है
त्वयि एव	आप ही		॥२२॥

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः
सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।
नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः
पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥२३॥

एकः त्वं आत्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयं ज्योतिः अनन्त आद्यः नित्यः अक्षरः अजस्र सुखः निरञ्जनः पूर्णः अद्वयः मुक्त उपाधितः अमृतः ॥२३॥

एकः	एक मात्र
त्वं सत्यः	आप सत्य,
आत्मा	आत्मा हैं,
पुराणः पुरुषः	पुराण-पुरुष,
स्वयं ज्योतिः	स्वयं प्रकाश,
अनन्त आद्यः	अनन्त, अनादि
नित्यः अक्षरः	नित्य, अविनाशी,
अजस्र सुखः	अखण्ड आनन्द रूप,
निरञ्जनः	निष्कल्मष,
पूर्णः अद्वयः	परिपूर्ण, अद्वितीय,
उपाधितः	उपाधियोंसे
मुक्तः	विनिर्मुक्त
अमृतः	अमृत स्वरूप हैं ॥२३॥

एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि
स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते ।
गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा
ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम् ॥२४॥

एवंविधं त्वां सकल आत्मनां अपि स्वात्मानं आत्मा आत्मतया विचक्षते गुरु अर्क लब्ध उपनिषत् सुचक्षुषा ये ते तरन्ति इव भव अनृत अम्बुधिम् ॥२४॥

सकल आत्मनां	समस्त जीवोंका
त्वां एवंविधं	आपके इस प्रकारके
स्वात्मानं अपि	स्वरूपको ही
आत्मतया	अपनी आत्मा रूपसे
गुरु अर्क	गुरु रूपी सूर्य तथा
उपनिषत्	उपनिषत् रूपी
सुचक्षुषा	उत्तम नेत्रोंके द्वारा
आत्म लब्ध	स्वयं प्राप्त करके
ये	जो
विचक्षते	साक्षात्कार कर लेते हैं
ते भव	वे संसार रूपी
अनृत	असत्
अम्बुधिम्	समुद्रको
तरन्ति इव	तैरते जाते हैं ॥२४॥

आत्मानमेवात्मतयाविजानतां
तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम् ।
ज्ञानेन भूयोऽपि च तत् प्रलीयते
रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ॥२५॥

आत्मानं एव आत्मतया अविजानतां तेन एव जातं निखिलं प्रपञ्चितं ज्ञानेन भूयः अपि च तत् प्रलीयते रज्ज्वां अहेः भोग भवः अभवौ यथा ॥२५॥

आत्मानं	परमात्माको	**च ज्ञानेन**	और ज्ञानके द्वारा
आत्मतया	अपने स्वरूपमें	**रज्ज्वां**	रस्सीमें
अविजानतां	न जाननेवालोंको	**अहेः भोग**	सर्पके शरीरकी
तेन एव	उसी (अज्ञान) से ही	**भवः**	उत्पत्ति और
निखिलं	सम्पूर्ण	**अभवौ यथा**	विनाशके समान
प्रपञ्चितं	जगत	**तत् भूयः अपि**	वह फिरसे ही
जातं	उत्पन्न (प्रतीत होता) है,	**प्रलीयते**	लीन हो जाता है ॥२५॥

अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ
द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् ।
अजस्रचित्यात्मनि केवले परे
विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥२६॥

अज्ञान संज्ञौ भव बन्धमोक्षौ द्वौ नाम न अन्यौ स्त ऋतज्ञभावात् अजस्रचिति आत्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाः इव अहनि ॥२६॥

विचार्यमाणे	विचार करनेपर	**अन्यौ**	भिन्न दूसरा
तरणाः	सूर्यमें	**न**	नहीं है, अतः
अहनि इव	दिन-रातके समान	**भव**	संसारमें
अजस्रचिति	अखण्ड ज्ञान स्वरूप	**बन्धमोक्षौ**	बन्धन और मुक्ति
केवले	अद्वितीय	**अज्ञान**	अज्ञान जन्य
परे आत्मनि	परमात्मामें	**द्वौ नाम**	दोनों नाम
स्त	उस	**संज्ञौ**	केवल संज्ञा (नाम
ऋतज्ञभावात्	ज्ञान स्वरूपसे		मात्र) हैं ॥२६॥

त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च ।
आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताज्ञता ॥२७॥

त्वां आत्मानं परं मत्वा परमात्मानं एव च आत्मा पुनः बहिः मृग्य अहो अज्ञ जनता अज्ञता ॥२७॥

अहो अज्ञ	अहो, अज्ञानी
जनता	लोगोंका (कितना)
अज्ञता	अज्ञान है कि
त्वां	आप
आत्मानं	आत्म स्वरूपको
च	तथा
परमात्मनं एव	परमात्माको भी
परं मत्त्वा	(अपनेसे भिन्न) कोई दूसरा मानकर
पुनः आत्मा	फिर आत्माको
बहिः मृग्यः	बाहर अन्वेषणीय मानते हैं ॥२७॥

अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव
ह्यतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः ।
असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण
सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः ॥२८॥

अन्तः भवे अनन्त भवन्तं एव हि अतत् त्यजन्तः मृगयन्ति सन्तः असन्तं अपि अन्ति अहिं अन्तरेण सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः ॥२८॥

अनन्त	अनन्त !
अन्तः भवे	इस संसाके भीतर
सन्तः	सत्पुरुष
अतत्	आपसे भिन्नका
त्यजन्तः	त्याग करते हुए
भवन्तं एव हि	आपको ही
मृगयन्ति	ढूंढ़ते हैं,
असन्तं अपि	न होनेपर भी
अहिं	(प्रतीयमान) सर्पका
अन्तरेण	त्याग किये बिना
सन्तं तं गुणं	विद्यमान उस रस्सी-को
सन्तः	सत्पुरुष
किमु यन्ति	कैसे जान सकते हैं ॥२८॥

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-
प्रसादलेशानुगृहीत एव हि ।
जानाति तत्त्वं भगवन् महिम्नो
न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥२९॥

अथ अपि ते देव पदाम्बुज द्वय प्रसादलेश अनुगृहीत एव हि जानाति तत्त्वं भगवन् महिम्नः न च अन्य एकः अपि चिरं विचिन्वन् ॥२९॥

देव भगवन्	हे देव ! भगवन् !
अथ अपि	फिर भी
ते द्वय	आपके दोनों
पदाम्बुज	चरण-कमलोंकी
प्रसादलेश	कृपाका तनिक-सा अंश भी पाकर जो
अनुगृहीत	(आपका) अनुग्रह भाजन हुआ है
एव हि	केवल वही
तत्त्वं	आपका तत्व तथा
महिम्नः	महिमा
जानाति	जानता है
च अन्य	और कोइ दूसरा
एकः अपि	एक भी
चिरं विचिन्वन्	दीर्घकाल तक ढूंढ़ता हुआ
न	नहीं जान पाता ॥२९॥

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो
भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम् ।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां
भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥३०॥

तत् अस्तु मे नाथ स भूरि भागः भवे अत्र वा अन्यत्र तु वा तिरश्चां येन अहं इकः अपि भवत् जनानां भूत्वा निषेवे तव पाद पल्लवम् ॥३०॥

नाथ	स्वामी !
तत् मे	इसलिए मेरा
स भूरि भागः	वह बड़ा सौभाग्य
अस्तु	हो कि
अत्र भवे	इस जन्ममें,
वा	अथवा
अन्यत्र	दूसरे जन्ममें
वा तु	अथवा तो
तिरश्चां	पशु-पक्षी होकर ही
येन अहं	जिससे मैं
भवत्	आपके
जनानां	भक्तोंमें-से
एकः	कोई एक
अपि भूत्वा	भी होकर
तव	आपके
पाद पल्लवं	चरण-पल्लवोंकी
निषेवे	सेवा करूं ॥३०॥

अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः
स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ।
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना
यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः ॥३१॥

अहो अति धन्या व्रज गो रमण्यः स्तन्य अमृतं पीतं अतीव ते मुदा यासां विभो वत्सतरा आत्मज आत्मना यत् तृप्तये अद्य अपि न च अलं अध्वराः ॥३१॥

विभो	प्रभो !	**ते**	आपने
यत्	जिनके	**अतीव मुदा**	अत्यन्त आनन्दसे
तृप्तये	तृप्त करनेमें	**वत्सतरा**	छोटे बछड़े और
अद्य अपि	आज तक भी	**आत्मज**	पुत्र
अध्वराः	(बड़े-बड़े) यज्ञ	**आत्मना**	स्वरूबसे
च अलं	भी पर्याप्त	**यासां स्तन्य**	जिनके स्तनोंको
न	नहीं हुए	**अमृतं**	अमृत (दूध)
अहो व्रज	धन्य हैं इस व्रजकी	**पीतं**	पिया ॥३१॥
गो रमण्यः	गायें और गोपियां		

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥३२॥

अहो भाग्यं अहो भाग्यं नन्दगोप व्रज ओकसां यत् मित्रं परम् आनन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥३२॥

अहो	धन्य	**परम्**	परम
भाग्यं	भाग्य हैं	**आनन्दं**	आनन्द स्वरूप
नन्दगोप	गोपराज नन्दके	**सनातनम्**	सनातन
व्रज	व्रजके	**पूर्णं ब्रह्म**	पूर्ण ब्रह्म आप
ओकसां	निवासियोंके	**यत् मित्रं**	जिनके मित्र हैं
अहो	परम धन्य		॥३२॥
भाग्यं	भाग्य हैं,		

एषां तु भाग्यमहिमाच्युत तावदास्ता-
मेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः ।
एतद्धृषीकचषकैरसकृत् पिबामः
शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते ॥३३॥

एषां तु भाग्य महिमा अच्युत तावत् आस्तां एकादश एव हि वयं बत भूरिभागाः एतत् हृषीक चषकैः असकृत् पिबामः शर्व आदयः अङ्घ्रि उदजं अध्वं अमृत आसवं ते ॥३३॥

अच्युत	अच्युत !
एषां	इन (व्रजवासियों) की
भाग्य महिमा	भाग्य-महिमा
तु तावत्	तो तब तक
आस्तां	अलग रहे,
हि बत वयं	क्योंकि अहो हम
शर्व आदयः	शिव आदि (इनकी इन्द्रियोंको अधिदेवता)
एकादश एव	ग्यारह ही
भूरिभागा	अत्यन्त भाग्यशाली हैं (क्योंकि)
एतत् हृषीक	इनकी इन्द्रिय रूपी
चषकैः	प्यालोंसे
अध्वं	आवागमन निवर्तक
अमृत आसवं	अमृत आसव
ते अङ्घ्रि	आपके चरणोंका
उदजं	जल
असकृत्	निरन्तर
पिबामः	पीते हैं ॥३३॥

तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम् ।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥३४॥

तत् भूरिभाग्यं इह जन्म किमपि अटव्यां यत् गोकुले अपि कतम अङ्घ्रि रजः अभिषेकं यत् जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्दः तु अद्य अपि यत् पदरजः श्रुति मृग्यं एव ॥३४॥

इह अटव्यां	इस वन (वृन्दावन) में
यत्	जो
गोकुले अपि	गोकुलमें भी
किमपि	कोई-सा भी
जन्म	जन्म हो जाय तो
तत्	वह (मेरा)
भूरिभाग्यं	बड़ा सौभाग्य होगा
कतम	(क्योंकि उससे यहांके) किसीकी
अङ्घ्रि	चरण
रजः अभिषेकं	धूलिमें स्नान मिलेगा,
अद्य अपि	आज तक भी

यत् पदरजः	जिनकी चरण-रज	**मुकुन्दः तु**	मुकुन्द तो
श्रुति	श्रुतियोंकी	**यत् जीवितं**	जिनके जीवन
मृग्यं एव	अन्वेषणीय ही है वे	**तु निखिलं**	तथा सर्वस्व हैं
भगवान्	भगवान्		॥३४॥

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देव रातेति न-
श्चेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन् मुह्यति ।
सद्द्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता
यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥३५॥

एषां घोष निवासिनां उत भवान् किं देव रात इति नः चेतः विश्व फलात् फलं त्वत् अपरं कुत्र अप्ययन् मुह्यति सत् द्वेषात् इव पूतना अपि सकुला त्वां एव देव आपिता यत् धाम अर्थ सुहृत् प्रिय आत्म तनय प्राण आशयाः त्वत् कृते ॥३५॥

यत् धाम	जिनके घर	**फलं**	फल
अर्थ सुहृत्	धन, वन्धु-वान्धव,	**कुत्र अप्ययन्**	कुछ भी न पाकर
प्रिय आत्म	प्रिय शरीर,	**मुह्यति**	मोहमें पड़ रहा है
तनय प्राण	पुत्र, प्राण,	**देव**	देव !
आशयाः	हृदय	**सत्**	उस सत् स्वरूप
त्वत् कृते	आपके लिए ही हैं	**द्वेषात् इव**	आपसे द्वेष-सा
एषां	इन		करनेके कारण
घोष निवासिनां	व्रज-वासियोंको	**पूतना अपि**	पूतना भी
देव भवान्	हे देव ! आप	**सकुला**	पूरे कुलके साथ
उत किं रात	भला क्या देंगे,	**त्वां एव**	आपको ही
इति नः	ऐसा सोचकर मेरा	**आपिता**	प्राप्त हो गयी (तब
चेतः	चित्त		इनको क्या देंगे)
विश्व फलात्	विश्वके फलोंमें		॥३५॥
त्वत् अपरं	आपसे श्रेष्ठ कोई		

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम् ।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः ॥३६॥

तावत् राग आदयः स्तेनाः तावत् कारागृहं गृहं तावत् मोहः अङ्घ्रि निगडः यावत् कृष्ण न ते जनाः ॥३६॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण !	**कारागृहं**	कारागार रहता है,
तावत्	तभी तक	**तावत् मोहः**	तभी तक मोह
राग आदयः	राग (द्वेष) आदि	**अङ्घ्रि निगडः**	पैरकी बेड़ी रहता है
स्तेनाः	चोर रहते हैं,	**यावत्**	जब तक
तावत्	तभी तक	**जनाः ते**	लोग तुम्हारे
गृहं	घर	**न**	नहीं हो जाते ॥३६॥

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले ।
प्रपन्नजनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो ॥३७॥

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चः अपि विडम्बयसि भूतले प्रपन्न जनता आनन्द संदोहं प्रथितुं प्रभो ॥३७॥

प्रभो	प्रभो !	**प्रथितुं**	विस्तार करनेके लिए
निष्प्रपञ्चः	प्रपञ्चसे सर्वथा रहित	**भूतले**	(आप) पृथ्वीपर
		प्रपञ्चं	सृष्टिका
अपि	होनेपर भी	**विडम्बयसि**	प्रपञ्च फैलाते हैं ॥३७॥
प्रपन्न जनता	शरणागत लोगोंके		
आनन्द सन्दोहं	आनन्दकी उमंगका		

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो ।
मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥३८॥

जानन्त एव जानन्तु किं बहु उक्तया न मे प्रभो मनसः वपुषः वाचः वैभवं तव अगोचरः ॥३८॥

प्रभो	प्रभो !	**मे मनसः**	मेरे मन
तव वैभवं	आपका ऐश्वर्य	**वपुषः**	शरीर और
जानन्त एव	जाननेवाले ही	**वाचः**	वाणीसे वह
जानन्तु	जानते रहें	**गोचरः**	इन्द्रियातीत (अज्ञात) है ॥३८॥
बहु उक्तया न	बहुत कहनेसे		
किं	क्या लाभ		

अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् ।
त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्तवार्पितम् ॥३६॥

अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् त्वं एव जगतां नाथः जगत् एतत् तव अर्पितम् ॥३६॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण !	**नाथः**	स्वामी हैं
त्वं सर्वं	आप सब कुछ	**एतत् जगत्**	यह ससार
वेत्सि	जानते हैं (क्योंकि)	**तव अर्पितं**	आपमें ही स्थित है
सर्वदृक्	सर्वदर्शी हैं,	**मां**	मुझे (जानेकी)
त्वं एव	आप ही	**अनुजानीहि**	अनुमति दीजिये
जगतां	सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्डोंके		॥३६॥

श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन्
क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ।
उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रु-
गाकल्पमार्कमर्हन् भगवन् नमस्ते ॥४०॥

श्रीकृष्ण वृष्णिकुल पुष्कर जोषदायिन् क्ष्मा निर्जर द्विज पशु उदधि वृद्धिकारिन् उद्धर्म शार्वरहर क्षिति राक्षस ध्रुक् आकल्पं अर्कं अर्हन् भगवन् नमः ते ॥४०॥

वृष्णिकुल	वृष्णि वंश रूपी	**वृद्धिकारिन्**	बढ़ानेवाले (चन्द्र स्वरूप)
पुष्कर	कमलको	**उद्धर्म शार्वरहर**	पाखण्डियों रूपी रात्रिको नष्ट करने वाले
जोषदायिन्	विकसित करनेवाले		
अर्कं	सूर्य,		
क्ष्मा निर्जर	पृथ्वी, देवता,		
द्विज पशु	ब्राह्मण, पशु रूपी	**क्षिति राक्षस**	पृथ्वीके राक्षसोंके
उदधि	समुद्रको	**ध्रुक्**	विनाशक

आकल्पं	कल्प पर्यन्त	**श्रीकृष्ण**	श्रीकृष्ण
अर्हन्	पूजनीय	**ते नमः**	आपको नमस्कार ॥४०॥
भगवन्	भगवान् !		

श्रीशुक उवाच

इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः ।
नत्वाभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥४१॥

इति अभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः नत्वा अभीष्टं जगत् धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥४१॥

जगत् धाता	जगतके विधाता ब्रह्माजी	**पादयोः**	(श्रीकृष्णके) चरणोंमें
भूमानं	उन भूमा पुरुषकी	**नत्वा**	प्रणाम करके
इति	इस प्रकार	**अभीष्टं**	अपने गन्तव्य
अभिष्टूय	स्तुति करके	**स्वधाम**	अपने परम धाम (ब्रह्मलोक)
त्रिः	तीन बार	**प्रत्यपद्यत**	चले गये ॥४१॥
परिक्रम्य	परिक्रमा करके		

ततोऽनुज्ञाप्य भगवान् स्वभुवं प्रागवस्थितान् ।
वत्सान् पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम् ॥४२॥

ततः अनुज्ञाप्य भगवान् स्वभुवं प्राक् अवस्थितान् वत्सान् पुलिनं आनिन्ये यथा पूर्वं सखं स्वकम् ॥४२॥

ततः	तब	**यथा पूर्वं**	पहिलेके समान ही
भगवान्	भगवान् (श्रीकृष्ण)	**अवस्थितान्**	बैठे (बैठा दिये) हुए
स्वभुवं	ब्रह्माजीको	**स्वकं सखं**	अपने सखाओंके पास
अनुज्ञाप्य	अनुमति देकर (विदा करके)	**वत्सान्**	बछड़ोंको
प्राक्	पहिलेसे (ब्रह्माजी द्वारा)	**पुलिनं आनिन्ये**	सरिता-तटपर ले आये ॥४२॥

एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चान्तराऽऽत्मनः ।
कृष्णमायाहता राजन् क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः ॥४३॥

एकस्मिन् अपि याते अब्दे प्राण ईशं च अन्तरा आत्मनः कृष्णमाया आहता राजन् क्षण अर्धं मेनिरे अर्भकाः ॥४३॥

राजन्	राजन् !	**कृष्णमाया**	श्रीकृष्णकी मायासे
प्राण ईशं	अपने प्राणोंके स्वामी	**आहता**	मोहित
च	तथा	**अर्भकाः**	बालकोंने
अन्तरा आत्मनः	अपने हृदय स्वरूपसे	**क्षण अर्धं**	आधा क्षण
एकस्मिन अब्दे	एक वर्ष (वियोगके)	**मेनिरे**	माना ॥४३॥
याते अपि	बीत जानेपर भी		

किं किं न विस्मरन्तीह मायामोहितचेतसः ।
यन्मोहितं जगत् सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम् ॥४४॥

किं किं न विस्मरन्ति इह माया मोहित चेतसः यत् मोहितं जगत् सर्वं अभीक्ष्णं विस्मृत आत्मकम् ॥४४॥

इह	इस संसारमें	**मोहितं**	सम्मोहित
माया मोहित	मायासे मोहित	**सर्वं जगत्**	सम्पूर्ण संसार
चेतसः	चित्त लोग	**अभीक्ष्णं**	निरन्तर
किं किं न	क्या-क्या नहीं	**आत्मकं**	अपने स्वरूपको ही
विस्मरन्ति	भूलते	**विस्मृत**	भूला है ॥४४॥
यत्	जिस (माया) से		

ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा ।
नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम् ॥४५॥

ऊचुः च सुहृदः कृष्णं स्वागतं ते अति रंहसा न एकः अपि अभोजि कवल एहि इतः साधु भुज्यताम् ॥४५॥

सुहृदः	सखाओंने	**ते स्वागतं**	'तुम्हारा स्वागत है,
कृष्णं	श्रीकृष्णसे	**अति रंहसा**	बहुत वेगसे (लौटे)
ऊचुः च	कहा भी	**एकः अपि**	(हमने) एक भी

कवल न	ग्रास नहीं	**साधु**	भली प्रकार
अभोजि	खाया है,	**भुज्यतां**	भोजन करो ॥४५॥
इतः एहि	यहां आओ,		

ततो हसन् हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहार्भकैः ।
दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्तत वनाद् व्रजम् ॥४६॥

ततः हसन् हृषीकेशः अभ्यवहृत्य सह अर्भकैः दर्शयन् चर्म आजगरं न्यवर्तत वनात् व्रजम् ॥४६॥

ततः	तब	**आजगरं**	अजगर (अघासुर)
हृषीकेशः	हृषीकेश श्रीकृष्ण		का
हसन्	हँसते हुए	**चर्म दर्शयन्**	चमड़ा दिखलाते हुए
सह अर्भकैः	बालकोंके साथ	**वनात् व्रजं**	वनमें-से व्रजको
अभ्यवहृत्य	भोजन करके	**न्यवर्तत**	लौटे ॥४६॥

बर्हप्रसूननवधातुविचित्राङ्गः
प्रोद्दामवेणुदलशृङ्गरवोत्सवाढ्यः ।
वत्सान् गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्ति-
र्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥४७॥

बर्ह प्रसून नव धातु विचित्रित अंगः प्रोद्दाम वेणु दल शृंग रवः उत्सव आढ्यः वत्सान् गृणन् अनुग गीत पवित्र कीर्तिः गोपीदृक् उत्सव दृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥४७॥

बर्ह	मयूर पिच्छ तथा	**रव**	ध्वनिका
प्रसून	पुष्पोंसे सजे,	**उत्सव आढ्यः**	भारी उत्सव मनाते,
नव	नवीन (गैरिकादि)	**वत्सान् गृणन्**	बछड़ोंको पुकारते हैं,
धातु	धातुओंसे	**पवित्र कीर्तिः**	उनका पवित्र यश
अंगः विचित्रित	शरीरपर अनेक चित्र बने हुए हैं,	**अनुग**	पीछे चलते सखा
		गीत	गा रहे हैं,
प्रोद्दाम	उच्च स्वरसे	**गोपीदृक्**	गोपियोंके नेत्रोंके
वेणु दल	वंशी, पत्ते या		लिए
शृंग	शृंगीकी	**उत्सव**	उत्सव (आनन्द) रूप

दृशिः	दृष्टिसे देखते	**प्रविवेश**	प्रवेश किया ॥४७॥
गोष्ठं	अपने गोष्ठमें		

अद्यानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना ।
हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला व्रजे जगुः ॥४८॥

अद्य अनेन महाव्यालः यशोदा नन्द सूनुना हतः अविता वयं च अस्मात् इति बाला व्रज्रे जगुः ॥४८॥

बाला इति	बालकोंने इस प्रकार	**अद्य महाव्यालः**	आज महासर्प (अजगर)
व्रजे जगुः	व्रजमें कहा–		
अनेन	इस	**हतः**	मारा है,
यशोद-नन्द	यशोदा तथा नन्दके	**च अस्मात्**	तथा उससे
सूनुना	कुमारने	**वयं अविता**	हम बचाये गये हैं ॥४८॥

राजोवाच

ब्रह्मन् परोद्भवे कृष्णे इयान् प्रेमा कथं भवेत् ।
योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥४९॥

ब्रह्मन् पर उद्भवे कृष्णे इयान् प्रेमा कथं भवेत् यः अभूतपूर्वः तोकेषु स्व उद्भवेषु अपि कथ्यताम् ॥४९॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**यः स्व उद्भवेषु**	जो अपनेसे उत्पन्न
पर उद्भवे	दूसरेसे उत्पन्न	**तोकेषु अपि**	बालकोंमें भी
कृष्णे इयान्	श्रीकृष्णमें इतना	**अभूतपूर्वः**	पहिले कभी नहीं हुआ था
प्रेमा	प्रेम		
कथं भवेत्	कैसे हुआ	**कथ्यतां**	यह बतलाइये ॥४९॥

श्रीशुक उवाच

सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः ।
इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ॥५०॥

सर्वेषां अपि भूतानां नृप स्व आत्मा एव वल्लभः इतरे अपत्य वित्त आद्याः तत् वल्लभतया एव हि ॥५०॥

नृप	राजन् !	**वल्लभतया**	प्रिय होने
सर्वेषां भूतानां	समस्त प्राणियोंके	**एव**	से ही
अपि	लिए ही	**इतरे अपत्य**	दूसरे पुत्र,
स्व आत्मा एव	अपना आत्मा ही	**वित्त आद्याः**	धन आदि (प्रिय)
हि वल्लभः	क्योंकि प्रिय है		हैं ॥५०॥
तत्	उसके		

तद् राजेन्द्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् ।
न तथा ममतालम्बिपुत्रवित्तगृहादिषु ॥५१॥

तत् राजेन्द्र यथा स्नेहः स्व स्वक आत्मनि देहिनां न तथा ममता लम्बि पुत्र वित्त गृह आदिषु ॥५१॥

राजेन्द्र	महाराज !	**ममता लम्बि**	ममत्वके आधार
तत् देहिनां	इसलिए शरीर-धारियोंका	**पुत्र वित्त**	पुत्र, धन,
		गृह आदिषु	घर आदिमें
स्व स्वक	अपने-अपने	**तथा न**	वैसा (प्रेम) नहीं
आत्मनि	आत्मासे		होता ॥५१॥
यथा स्नेहः	जैसे प्रेम है,		

देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम ।
यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम् ॥५२॥

देह आत्म वादिनां पुंसां अपि राजन्य सत्तम यथा देहः प्रियतमः तथा न अनु ये च तम् ॥५२॥

राजन्य सत्तम	नृप श्रेष्ठ !	**प्रियतमः**	अत्यन्त प्रिय होता है
देह आत्म	शरीरको ही आत्मा	**ये च तं अनु**	जो भी उस (देह) के लगे हैं
वादिनां	माननेवाले		
पुंसां अपि	पुरुषोंके लिए भी	**तथा न**	वैसे (प्रिय) नहीं
यथा देहः	जैसा शरीर		होते ॥५२॥

देहोऽपि ममताभाक् चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत् प्रियः ।
यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन् जीविताशा बलीयसी ॥५३॥

देहः अपि ममता भाक् चेत् तर्हि हि असौ न आत्मवत् प्रियः यत् जीर्यति अपि देहे अस्मिन् जीवित आशा बलीयसी ॥५३॥

चेत् देहः	यदि शरीर (मैं न रहकर)
ममता भाक्	ममताका भाजन (मेरा) हो गया
हि तर्हि	क्योंकि तब
असौ आत्मवत्	यह (देह) आत्माके समान
प्रियः न	प्रिय नहीं होता
यत् देहे	क्योंकि शरीरके
जीर्यति अपि	बहुत जीर्ण होनेपर भी
अस्मिन्	इसी (देह) में
बलीयसी	बलवान
जीवित आशा	जीते रहनेकी आशा रहती है ॥५३॥

तस्मात् प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।
तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम् ॥५४॥

तस्मात् प्रियतमः स्व आत्मा सर्वेषां अपि देहिनां तत् अर्थं एव सकलं जगत् एतत् चराचरम् ॥५४॥

तस्मात्	इसलिए
सर्वेषां	सभी
देहिनां अपि	देहधारियोंको ही
स्व आत्मा	अपना आत्मा
प्रियतमः	अत्यन्त प्रिय है
एतत् चराचरं	यह चराचर
सकलं जगत्	सम्पूर्ण जगत
तत् अर्थं एव	उस (आत्मा) के लिए ही है ॥५४॥

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥५५॥

कृष्णं एनं अवेहि त्वं आत्मानं अखिल आत्मनां जगत् हिताय सः अपि अत्र देहि इव आभाति मायया ॥५५॥

एनं कृष्णं	इन श्रीकृष्णको
अखिल	सब
आत्मनां	आत्माओंका
आत्मानं	आत्मा

त्वं अवेहि	तुम समझो	**मायया**	अपनी मायासे
सः अपि अत्र	वह भी यहां (व्रजमें)	**देहि इव**	शरीरधारीसे
जगत् हिताय	संसारके कल्याणके लिए	**आभाति**	प्रतीत हो रहे हैं ॥५५॥

वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च ।
भगवद्रूपमखिलं नान्यद् वस्त्विह किञ्चन ॥५६॥

वस्तुतः जानतां अत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च भगवत् रूपं अखिलं न अन्यत् वस्तु इह किञ्चन ॥५६॥

अत्र	इस संसारमें	**अखिलं**	समस्त जगत्
वस्तुतः	सचमुच	**भगवत् रूपं**	भगवत् स्वरूप है,
कृष्णं	श्रीकृष्णके स्वरूपको	**इह**	इस संसारमें
जानतां	जाननेवालोंके लिए	**किञ्चन**	कोई भी
स्थास्नु च	स्थावर तथा	**अन्यत् वस्तु**	दूसरी वस्तु है ही
चरिष्णु	जंगम	**न**	नहीं ॥५६॥

सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः ।
तस्यापि भगवान् कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम् ॥५७॥

सर्वेषां अपि वस्तूनां भाव अर्थः भवति स्थितः तस्य अपि भगवान् कृष्णः किं अतत् वस्तु रूप्यताम् ॥४७॥

सर्वेषां	सभी	**अपि**	भी (कारण)
वस्तूनां अपि	वस्तुओंका ही	**भगवान् कृष्णः**	भगवान् श्रीकृष्ण हैं
भाव	मूल स्वरूप	**रूप्यतां**	अतः बतलाओ
अर्थः स्थितः	अपने कारणमें स्थित	**अतत्**	उनसे भिन्न
भवति	रहता है	**किं वस्तु**	कौन-सी वस्तु है
तस्य	उस (कारण) के		॥५७॥

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं
महत्पदं पुण्ययशोमुरारेः ।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं
पदं पदं यद् विपदां न तेषाम् ॥५८॥

सम आश्रिता ये पदपल्लव प्लवं महत् पदं पुण्ययशः मुरारेः भव अम्बुधिः वत्सपदं परं पदं पदं पदं यत् विपदां न तेषाम् ॥५८॥

महत् पदं	महापुरुषोंके आश्रय	**विपदां न**	कहीं विपत्ति नहीं है,
पुण्ययशः	पवित्र कीर्ति	**भव अम्बुधिः**	संसार-सागर
मुरारेः	श्रीमुरारिके	**वत्सपदं**	बछड़ेके खुरके गड्ढे के समान है और
पदपल्लव	चरण-पल्लव रूपी		
प्लवं ये	नौकाका जिन्होंने	**परं पदं**	परम पद
सम	भली प्रकार	**पदं पदं**	पद पदपर प्राप्त है ॥५८॥
आश्रिता	आश्रय लिया है		
तेषां	उनके लिए		

एतत्ते सर्वमाख्यातं यत् पृष्टोऽहमिह त्वया ।
तत् कौमारे हरिकृतं पौगण्डे परिकीर्तितम् ॥५९॥

एतत् ते सर्वं आख्यातं यत् पृष्टः अहं इह त्वया तत् कौमारे हरिकृतं पौगण्डे परिकीर्तितम् ॥५९॥

यत् कौमारे	जो कुमारा वस्थामें	**इह त्वया**	इस सम्बन्धमें तुमने
हरिकृतं	किये श्रीहरिके कर्मके	**यत् अहं पृष्टः**	जो मुझसे पूछा था
		एतत् सर्वं	यह सब
पौगण्डे	पौगण्डावस्थामें	**ते आख्यातं**	तुमसे बतला दिया ॥५९॥
परिकीर्तितं	(बालकों द्वारा) वर्णन किया गया		

एतत् सुहृद्भिश्चरितं मुरारे-
रघार्दनं शाद्वलजेमनं च ।
व्यक्तेतरद् रूपमजोर्वभिष्टवं
शृण्वन् गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥६०॥

एतत् सुहृत् भिः चरितं मुरारेः अघ अर्दनं शाद्वल जेमनं च व्यक्त इतरत् रूपं अजः अभिष्टवं शृण्वन् गृणन् एति नरः अखिल अर्थान् ॥६०॥

एतत्	इस
अघ अर्दनं	अघासुरको मारना
सुहृत् भिः	सखाओंके साथ
शाद्वल जेमनं	वन-भोजन करना,
व्यक्त इतरत्	प्रकटसे भिन्न
रूपं	रूप ग्रहण करना,
च अजः	तथा ब्रह्माजी द्वारा
अभिष्टवं	स्तुति किया जाना आदि
मुरारेः	श्रीमुरारिके
चरितं	चरितको
शृण्वन्	सुनते तथा
गृणन्	वर्णन करते हुए
नरः	पुरुष
अखिल अर्थान्	सभी पुरुषार्थोंको
एति	पा लेता है ॥६०॥

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ।
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥६१॥

एवं विहारैः कौमारैः जहतुः व्रजे निलायनैः सेतुबन्धैः मर्कट उत्प्लवन आदिभिः ॥६१॥

एवं निलायनैः	इस प्रकार लुका-छिपी,
सेतुबन्धैः	पुल बाँधना,
मर्कट	बन्दरोंकी भांति
उप्तलवन	उछलना
आदिभिः	आदि
कौमारैः	कुमारावस्थाके खेल करते हुए
व्रज कौमारैः	व्रजमें कुमारावस्था
जहतुः	छोड़ दी ॥६१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पंचदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदै-
र्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥१॥

ततः च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे बभूवतुः तौ पशुपाल सम्मतौ गाः चारयन्तौ सखिभिः समं पदैः वृन्दावनं पुण्यं अतीव चक्रतुः ॥१॥

पौगण्डवयः	पौगण्ड (छठे वर्ष) की अवस्थामें	**सखिभिः समं**	सखाओंके साथ
श्रितौ तौ	प्रवेश करनेपर वे दोनों (श्रीकृष्ण-बलराम)	**व्रजे गाः**	व्रजमें गायें
		चारयन्तौ	चराते हुए
		ततः वृन्दावनं	तब वृन्दावनको
सम्मतौ	अनुमति मिलनेपर	**पदैः**	अपने चरणोंसे
पशुपाल	पशुपालक	**अतीव**	अत्यन्त
बभूवतुः	हो गये,	**पुण्यं चक्रतुः**	पवित्र बनाने लगे ॥१॥
च	तथा		

तन्माधवो वेणुमुदीरयन् वृतो
गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ।
पशून् पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्
विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥२॥

तत् माधवः वेणुं उदीरयन् वृतः गोपैः गृणत् भिः स्वयशः बल अन्वितः पशून् पुरस्कृत्य पशव्यं आविशत् विहर्तुकामः कुसुम आकरं वनम् ॥२॥

स्वयशः	अपना यश
गृणद्भिः	गाते हुए
गोपैः वृतः	गोपोंसे घिरे
बल अन्वितः	बलरामजीके साथ
वेणुं उदीरयन्	वंशी बजाते हुए,
पशून्	पशुओंको
पुरस्कृत्य	आगे करके
माधवः	श्रीकृष्ण
पशव्यं	पशुओंके चरने योग्य
कुसुम आकरं वनं	पुष्पोंकी खान बने वनमें
विहर्तुकामः	खेलनेकी इच्छीसे
आविशत्	प्रवेश किया ॥२॥

तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं

महन्मनः प्रख्यपयः सरस्वता ।

वातेन जुष्टं शतपत्रगन्धिना

निरीक्ष्य रन्तुं भगवान् मनो दधे ॥३॥

तत् मञ्जुघोष अलि मृग द्विज आकुलं महत् मनः प्रख्यपयः सरस्वता वातेन जुष्टं शतपत्र गन्धिना निरीक्ष्य रन्तुं भगवान् मनः दधे ॥३॥

मञ्जुघोष	सुन्दर गुंजार करते
अलि	भ्रमरों,
मृग द्विज	पशु-पक्षियोंसे
आकुलं	परिपूर्ण,
महत् मनः	महात्माओंके मनके
प्रख्यपयः	समान निर्मल जल-वाले
सरस्वता	सरोवर युक्त
शतपत्र	कमलोंकी
गन्धिना	सुगन्धवाले
वातेन जुष्टं	वायुसे संयुक्त
तत्	उस (वन) को
निरीक्ष्य	देखकर
भगवान्	भगवानने
रन्तुं मनः	क्रीड़ा करनेका
दधे	विचार किया ॥३॥

स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया

फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः ।

स्पृशच्छिखान् वीक्ष्य वनस्पतीन् मुदा

स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥४॥

स तत्र तत्र अरुण पल्लव श्रिया फल प्रसून उरुभरेण पादयोः स्पृशत् शिखान् वीक्ष्य वनस्पतीन् मुदा स्मयन् इव आह आग्रजं आदि पूरुषः ॥४॥

स आदि	उन आदि	**वनस्पतीन्**	वृक्षोंको
पूरुषः	पुरुषने	**पादयोः**	चरणोंको
तत्र तत्र	जहां-तहां	**स्पृशत्**	स्पर्श करते
अरुण पल्लव	लाल-लाल किसलयों की	**वीक्ष्य**	देखकर
		मुदा	आनन्दसे
श्रिया	शोभा तथा	**स्मयन् इव**	मुस्कराते हुएसे
फल प्रसून	फल और पुष्पोंके	**अग्रजं आह**	बड़े भाईसे बोले
उरुभरेण	भारी भारसे		॥४॥
शिखान्	अपनी शाखाओंसे		

श्रीभगवानुवाच

अहो अमी देववरामरार्चितं
पादाम्बुजं ते सुमनः फलार्हणम् ।
नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मन-
स्तमोऽपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ॥५॥

अहो अमी देववर अमर अर्चितं पादाम्बुजं ते सुमनः फल अर्हणं नमन्ति उपादाय शिखाभिः आत्मनः तमः अपहत्यै तरु जन्म यत् कृतम् ॥५॥

अहो देववर	हे देवश्रेष्ठ !	**कृतं**	प्राप्त हुई
अमर अर्चितं	देव-पूजित	**आत्मनः**	उस अपने
ते	आपके	**तमः**	तमोगुणके
पादाम्बुजं	चरण-कमलोंमें	**अपहत्यै**	नाशके लिए
सुमनः	पुष्पों तथा	**शिखाभिः**	अपनी चोटी (शाखाओं) से
फल अर्हणं	फलोंका पूजोपहार		
उपादाय	साथ लेकर	**नमन्ति**	नमस्कार कर रहे हैं ॥५॥
यत् तरु जन्म	जिससे वृक्ष योनि		

एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं
गायन्त आदिपुरुषानुपदं भजन्ते ।
प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या
गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् । ६॥

एते अलिनः तव यशः अखिललोक तीर्थं गायन्त आदिपुरुष अनुपदं भजन्ते प्रायः अमी मुनिगणाः भवदीय मुख्या गूढं वने अपि न जहति अनघ आत्म दैवम् ॥६॥

अनघ	निष्पाप
आदिपुरुष	आदिपुरुष !
एते अलिनः	ये भौंरे
अखिललोक	समस्त लोकोंको
तीर्थं	पवित्र करनेवाले
तव यशः	आपके यशको
गायन्त	गा रहे हैं और
अनुपदं	प्रत्येक पदपर
भजन्ते	पीछे चल रहे हैं
प्रायः अमी	प्रायः ये
भवदीय	आपके भक्तोंमें
मुख्या	प्रमुख
मुनिगणाः	मुनिगण हैं जो
वने गूढं अपि	वनमें छिपे हुए भी
आत्म	अपने आराध्य
दैवं	देव आपको
न जहति	नहीं छोड़ते हैं ॥६॥

नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः
कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन ।
सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय
धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः ॥७॥

नृत्यन्ति अभी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियं ईक्षणेन सूक्तैः च कोकिलगणा गृहं आगताय धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः ॥७॥

ईड्य	स्तवनीय !
अमी शिखिन	ये मयूर
नृत्यन्ति	नाच रहे हैं,
हरिण्यः मुदा	हरिणियां आनन्दसे
गोप्यः इव	गोपियोंके समान
ईक्षणेन	अपने देखनेके द्वारा

च	तथा
कोकिलगणाः	कोकिल समूह
सूक्तैः	स्तुतिके द्वारा
ते प्रियं	आपका प्रिय
कुर्वन्ति	कर रही हैं
वनौकस	(ये) वनवासी
धन्या	धन्य हैं
हि गृहं	क्योंकि घर
आगताय	आये (अतिथिका)
इयान्	ऐसा (स्वागत)
सतां	सत् पुरुषोंका
निसर्गः	स्वभाव होता है ॥७॥

धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्-
पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ।
नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकै-
र्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥८॥

धन्या इयं अद्य धरणी तृण वीरुधः त्वत् पाद स्पृशः द्रुमलताः करजा अभिमृष्टाः नद्यः अद्रयः खग मृगाः सदय अवलोकैः गोप्यः अन्तरेण भुजयोः अपि यत् स्पृहाः श्रीः ॥८॥

त्वत् पाद	आपके चरणोंका
स्पृशः	स्पर्श पाकर
अद्य	आज
तृण वीरुधः	घास एवं क्षुप युक्त
इयं धरणी	यह पृथ्वी,
करजा	हाथके नखोंके द्वारा
अभिमृष्टाः	स्पर्शित होकर
द्रुमलताः	वृक्ष तथा लताएँ,
सदय	दयापूर्ण
अवलोकैः	दृष्टिपातसे
नद्यः अद्रयः	नदियां, पर्वत,
खग मृगाः	पक्षी-पशु
धन्या	धन्य हो रहे हैं,
च गोप्यः	और गोपियां भी
भुजयोः	भुजाओंके
अन्तरेण	मध्य भाग (वक्ष स्थल) का स्पर्श पाकर
यत् श्रीः	जिसके लिए लक्ष्मी
स्पृहा	लालायित रहती है ॥८॥

श्रीशुक उवाच

एवं वृन्दावनं श्रीमत् कृष्णः प्रीतमनाः पशून् ।
रेमे सञ्चारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ॥९॥

एवं वृन्दावनं श्रीमत् कृष्णः प्रीतमनाः पशून् रेमे सञ्चारयन् अद्रेः सरित् रोधः सु सानुगः ॥९॥

एवं	इस प्रकार	**अद्रेः**	पर्वत (गोवर्धन) पर
श्रीमत्	परम सुन्दर	**सरित् रोधः सु**	नदी (यमुना) किनारे
वृन्दावनं	वृन्दावनमें	**पशून्**	पशुओंको
प्रीतमनाः	प्रसन्न-चित्त	**सञ्चारयन्**	चराते हुए
कृष्णः	श्रीकृष्ण	**रेमे**	क्रीड़ा करते रहे
सानुगः	अनुचरोंके साथ		॥९॥

क्वचिद् गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतैः ।
उपगीयमानचरितः स्रग्वी सङ्कर्षणान्वितः ॥१०॥

क्वचित् गायति गायत्सु मद अन्ध अलिषु अनुव्रतैः उपगीयमान चरितः स्रग्वी सङ्कर्षण अन्वितः ॥१०॥

चरितः	(श्रीकृष्ण) चरितों-को	**स्रग्वी**	वनमालाधारी
उपगीयमान	(ग्वाल-बालकों द्वारा) गाये जाते हुए	**सङ्कर्षण**	बलरामजीके
		अन्वितः	साथ
मद अन्ध	मतवाले	**अनुव्रतैः**	अनुकरण करते हुए
अलिषु	भ्रौंरोंके	**क्वचित्**	कभी
गायत्सु	गुंजार करते समय	**गायति**	गाते हैं ॥१०॥

क्वचिच्च कलहंसानामनु कूजति कूजितम् ।
अभि नृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन् क्वचित् ॥११॥

क्वचित् च कल हंसानां अनु कूजति कूजितं अभि नृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन् क्वचित् ॥११॥

क्वचित्	कभी	**कूजति**	कूजन करते हैं
हंसानां	हंसोंके	**च क्वचित्**	और कभी
कल कूजितं	कूजन करते मधुर शब्दके	**नृत्यन्तं बर्हिणं**	नाचते मयूरकी
		हासयन्	हंसी उड़ाते
अनु	पीछे उसका अनु-करण करके	**नृत्यति**	नाचते हैं ॥११॥

मेघगम्भीरया वाचा नामभिर्दूरगान् पशून् ।
क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥१२॥

मेघ गम्भीरया वाचा नामभिः दूरगान् पशून् क्वचित् आह्वयति प्रीत्या गो गोपाल मनोज्ञया ॥१२॥

गो	गायों तथा	**क्वचित्**	कभी
गोपाल	गोपालकोंके लिए	**प्रीत्या**	प्रेमपूर्वक
मनोज्ञया	मनोहारिणी	**दूरगान्**	दूर गये
मेघ	मेघ गर्जनके समान	**पशून्**	पशुओंको
गम्भीरया	गम्भीर	**नामभिः**	नाम लेकर
वाचा	वाणीसे	**आह्वयति**	पुकारते हैं ॥१२॥

चकोरक्रौञ्चचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः ।
अनुरौति स्म सत्वानां भीतवद् व्याघ्रसिंहयोः ॥१३॥

चकोर क्रौञ्च चक्राह्व भारद्वाजान् च बर्हिणः अनुरौति स्म सत्त्वानां भीत वत् व्याघ्र सिंहयोः ॥१३॥

चकोर क्रौञ्च	चकोर, सारस,	**व्याघ्र सिंहयोः**	बाघ तथा सिंहसे
चक्राह्व	चकवा,	**भीत सत्त्वानां**	डरे प्राणियोंके
भारद्वाजान्	टिटिहरी (भरद्वल)	**वत्**	समान
च	तथा	**अनुरौति स्म**	शब्दानुकरण करते
बर्हिणः	मयूरों आदिके समान या		हैं ॥१३॥

क्वचित् क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपबर्हणम् ।
स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः ॥१४॥

क्वचित् क्रीडा परिश्रान्तं गोप उत्संग उपबर्हणं स्वयं विश्रमयति आर्यं पदा संवाहन आदिभिः ॥१४॥

क्वचित्	कभी	**गोप उत्संग**	(किसी) गोपकी
क्रीडा	खेलसे		गोदको
परिश्रान्तं	थके हुए	**उपबर्हणं**	तकिया बनाये

आर्यं स्वयं	बड़े भाईकी स्वयं	**विश्रमयति**	थकावट मिटाते हैं
पादसंवाहन	चरण दबाने		॥१४॥
आदिभिः	आदिके द्वारा		

नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः ।
गृहीतहस्तौ गोपालान् हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥१५॥

नृत्यतः गायतः क्व अपि वल्गतः युध्यतः मिथः गृहीत हस्तौ गोपालान् हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥१५॥

क्व अपि	कभी भी	**गृहीत हस्तौ**	परस्पर हाथ पकड़े (दोनों भाई)
नृत्यतः गायतः	नाचते, गाते,	**हसन्तौ**	हंसते हुए
वल्गतः	ताल ठोंककर	**प्रशशंसतुः**	प्रशंसा करते थे ॥१५॥
मिथः युध्यतः	परस्पर कुश्ती लड़ते		
गोपालान्	गोपालोंकी		

क्वचित् पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः ।
वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्सङ्गोपबर्हणः ॥१६॥

क्वचित् पल्लव तल्पेषु नियुद्ध श्रम कर्शितः वृक्षमूल आश्रयः शेते गोप उत्संग उपबर्हणः ॥१६॥

क्वचित्	कभी	**पल्लव तल्पेषु**	पल्लवोंकी शय्यापर
नियुद्ध	कुश्ती लड़नेके	**गोप उत्संग**	किसी गोपकी गोद-को
श्रम	परिश्रमसे	**उपबर्हणः**	तकिया बनाकर
कर्शितः	थककर	**शेते**	सोते थे ॥१६॥
वृक्षमूल	किसी पेड़की जड़के		
आश्रयः	साथ बनी		

पादसंवाहनं चक्रुः केचित्तस्य महात्मनः ।
अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥१७॥

पादसंवाहनं चक्रुः केचित् तस्य महात्मनः अपरे हत पाप्मानः व्यजनैः सम वीजयन् ॥१७॥

केचित्	कोई
महात्मनः	महात्मा (गोप बालक)
तस्य	उनका
पादसंवाहनं	चरण-दवाना
चक्रुः	करते थे,
अपरे	दूसरे
हत पाप्मानः	परम निष्पाप हुए
व्यजनैः	(पत्ते के) पंखोंसे
सम वीजयन्	भली प्रकार पंखा झलते थे ॥१७॥

अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः ।
गायन्ति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः ॥१८॥

अन्ये तत् अनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः गायन्ति स्म महाराज स्नेह क्लिन्न धियः शनैः ॥१८॥

महाराज	महाराज
अन्ये	दूसरे
महात्मनः	महात्मा (बालक)
स्नेह क्लिन्न	स्नेहार्द्र
धियः शनैः	चित्तसे धीरे-धीरे
तत् अनुरूपाणि	उनके अनुरूप
मनोज्ञानि	(उनको) प्रिय लगने वाला
गायन्ति स्म	गायन करते थे ॥१८॥

एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया
गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन् ।
रेमे रमालालितपादपल्लवो
ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥१९॥

एवं निगूढ आत्मगतिः स्वमायया गोप आत्मजत्वं चरितैः विडम्बयन् रेमे रमा लालित पादपल्लवः ग्राम्यैः समं ग्राम्यवत् ईश चेष्टितः ॥१९॥

रमा	लक्ष्मी द्वारा
लालित	लाड़ लड़ाये गये
पादपल्लवः	चरण-पल्लववाले
ईश एवं	सर्वेश इस प्रकार
स्वमायया	अपनी माया द्वारा
आत्मगतिः	अपना स्वरूप
निगूढ	सर्वथा छिपाकर
गोप आत्मजत्वं	गोपकुमारके
चरितैः	चरितका
विडम्बयन्	नाटक करते हुए के
ग्राम्यैः	ग्रामीणों (गोपों)
समं	साथ

ग्राम्यवत्	ग्रामीणके समान	**रेमे**	क्रीड़ा करते रहे ॥१९॥
चेष्टित	चेष्टा करते हुए		

श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा ।
सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन् ॥२०॥

श्रीदामा नाम गोपालः राम केशवयोः सखा सुबलः तोक कृष्ण आद्या गोपाः प्रेम्णा इदं अब्रुवन् ॥२०॥

श्रीदामा नाम	श्रीदामा नामक	**तोक कृष्ण**	तोक कृष्ण
गोपालः	गोपाल तथा	**आद्याः गोपाः**	आदि गोप बालकोंने
राम	बलराम तथा	**प्रेम्णा इदं**	प्रेमपूर्वक यह
केशवयोः	श्रीकृष्णके	**अब्रूवन्**	कहा ॥२०॥
सखा सुबलः	सखा सुबल,		

राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिबर्हण ।
इतोऽविदूरे सुमहद् वनं तालालिसङ्कुलम् ॥२१॥

राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्ट निबर्हण इतः अविदूरे सुमहत् वनं ताल अलि सङ्कुलम् ॥२१॥

राम	वलरामजी !	**अविदूरे**	थोड़ी ही दूरीपर
महाबाहो	विशाल बाहु	**सुमहत्**	बहुत बड़ा
राम	बलरामजी ! तथा	**ताल अलि**	ताड़ समूहोंसे
दुष्ट निबर्हण	दुष्ट-दलन	**सङ्कुलं वनं**	भरा हुआ वन है ॥२१॥
कृष्ण	श्रीकृष्ण !		
इतः	यहांसे		

फलानि तत्र भूरीणि पतन्ति पतितानि च ।
सन्ति किंत्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥२२॥

फलानि तत्र भूरीणि पतन्ति पतितानि च सन्ति किन्तु अवरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥२२॥

तत्र भूरीणि वहां बहुतसे । **फलानि पतन्ति** फल गिर रहे हैं

च पतितानि	तथा गिरे हुए भी	**धेनुकेन**	धेनुक द्वारा
सन्ति किन्तु	हैं; किन्तु	**अवरुद्धानि**	रोके हुए हैं ॥२२॥
दुरात्मना	दुष्ट चित्त		

सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक् ।
आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ॥२३॥

सः अतिवीर्यः असुरः राम हे कृष्ण खररूप धृक् आत्मतुल्य बलैः अन्यैः ज्ञातिभिः बहुभिः वृतः ॥२३॥

हे राम	हे बलराम और	**आत्मतुल्य**	अपने समान
कृष्ण	श्रीकृष्ण !	**बलैः अन्यैः**	बलवाले दूसरे
सः	वह	**बहुभिः**	अपने बहुतसे
खररूप धृक्	गधेका रूपधारी	**ज्ञातिभिः**	जातिवालोंसे
असुरः	असुर	**वृतः**	घिरा रहता है ॥२३॥
अतिवीर्यः	बहुत बलवान है,		

तस्मात् कृतनराहाराद् भीतैर्नृभिरमित्रहन् ।
न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसङ्घैर्विवर्जितम् ॥२४॥

तस्मात् कृत नर आहारात् भीतैः नृभिः अमित्रहन् न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसंघैः विवर्जितं ॥२४॥

अमित्रहन्	शत्रु-नाशन !	**विवर्जितं**	छोड़कर
तस्मात्	इसलिए	**भीतैः नृभिः**	डरे हुए मनुष्यों तथा
नर आहारात्	(उसके द्वारा) मनुष्य-भक्षण	**पशुगणैः**	पशुओं द्वारा
कृत	कर लिए जानेसे	**सेव्यते**	(वह वन) सेवित
पक्षिसंघैः	पक्षी-समूहोंको	**न**	नहीं होता ॥२४॥

विद्यन्तेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च ।
एष वै सुरभिर्गन्धो विषूचीनोऽवगृह्यते ॥२५॥

विद्यन्ते अभुक्त पूर्वाणि फलानि सुरभीणि च एष वै सुरभिः गन्धः विषूचीनः अवगृह्यते ॥२५॥

अभुक्त	जिन्हें हमने	**वै एष**	निश्चय यह
पूर्वाणि	पहिले कभी नहीं खाया	**विषूचीनः**	मादक
		सुरभिः गन्धः	गन्धवाली सुगन्ध
फलानि	ऐसे फल	**अवगृह्यते**	(उन्हींकी) ग्रहण हो रही है ॥२५॥
विद्यन्ते	वहां हैं		
सुरभीणि च	वे सुगन्धित भी हैं,		

प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गन्धलोभितचेतसाम् ।
वाञ्छास्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते ॥२६॥

प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गन्ध लोभित चेतसां वाञ्छा अस्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते ॥२६॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण !	**महती**	यह बड़ी
गन्ध	उनकी सुगन्धसे	**वाञ्छा अस्ति**	इच्छा है,
लोभित	लुब्ध	**राम यदि**	बलरामजी यदि
चेतसां नः	चित्तवाले हम लोगोंको	**रोचते**	(आपको) रुचे तो
		गम्यतां	(आप भी) चलिए ॥२६॥
तानि प्रयच्छ	उन्हें दो,		

एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया ।
प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू ॥२७॥

एवं सुहृत् वचः श्रुत्वा सुहृत् प्रिय चिकीर्षया प्रहस्य जग्मतुः गोपैः वृतौ तालवनं प्रभू ॥२७॥

एवं	इस प्रकार	**गोपैः वृतौ**	गोपोंसे घिरे
सुहृत्	मित्रोंकी	**प्रभू**	(वे) समर्थ (दोनों भाई)
वचः श्रुत्वा	बात सुनकर		
सुहृत् प्रिय	मित्रोंको प्रसन्न	**तालवनं**	ताड़वनको
चिकीर्षया	करनेकी इच्छासे	**जग्मतुः**	चल पड़े ॥२७॥

बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान् सम्परिकम्पयन् ।
फलानि पातयामास मतङ्गज इवौजसा ॥२८॥

बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान् सम्परि कम्पयन् फलानि पातयामास मतंगज इव ओजसा ॥२८॥

बलः	बलरामजीने	**तालान्**	ताड़ वृक्षोंको
प्रविश्य	(उस वनमें) घुसकर	**सम्परि**	बहुत वेगसे
मतंगज	मदमत्त हाथीके	**कम्पयन्**	हिलाते हुए
इव	समान	**फलानि**	उनके फलोंको
ओजसा	बलपूर्वक	**पातयामास**	गिरा दिया ॥२८॥
बाहुभ्यां	भुजाओंसे		

फलानां पततां शब्दं निशम्यासुररासभः ।
अभ्यधावत् क्षितितलं सनगं परिकम्पयन् ॥२९॥

फलानां पततां शब्दं निशम्य असुर रासभः अभ्यधावत् क्षितितलं सनगं परिकम्पयन् ॥२९॥

असुर रासभः	वह असुर गधा	**परिकम्पयन्**	चारों ओर कम्पित करता
फलानां पततां	फलोंके गिरनेका	**अभ्यधावत्**	उस ओर दौड़ा ॥२९॥
शब्दं निशम्य	शब्द सुनकर		
सनगं	पर्वतोंके साथ		
क्षितितलं	भूतलको		

समेत्य तरसा प्रत्यग् द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली ।
निहत्योरसि काशब्दं मुञ्चन् पर्यसरत् खलः ॥३०॥

सम एत्य तरसा प्रत्यक् द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली निहत्य उरसि काशब्दं मुञ्चन् परि असरत् खलः ॥३०॥

बली खलः	वह बलवान् दुष्ट	**प्रत्यक् द्वाभ्यां**	पिछले दोनों
काशब्दं	रेंकता	**पद्भ्यां बलं**	पैरोंसे बलरामजीकी
मुञ्चन्	हुआ	**उरसि निहत्य**	छातीपर प्रहार करके
तरसा	वेगपूर्वक	**परि असरत्**	आगे बढ़ गया ॥३०॥
सम एत्य	समीप आकर		

पुनरासाद्य संरब्ध उपक्रोष्टा पराक् स्थितः ।
चरणावपरौ राजन् बलाय प्राक्षिपद् रुषा ॥३१॥

पुनः आसाद्य संरब्धः उपक्रोष्टा पराक् स्थितः चरणाः अपरौ राजन् बलाय प्राक्षिपत् रुषा ॥३१॥

राजन्	राजन् !	**स्थितः**	खड़े होकर
संरब्धः	रोषमें भरा	**बलाय**	बलरामजीपर
उपक्रोष्टा	वह रेंकता हुआ	**रुषा**	क्रोध पूर्वक
पुनः आसाद्य	फिर समीप आकर	**अपरौ**	दूसरी बार
पराक्	पिछला भग उनकी ओर करके	**चरणाः**	दोनों पैर
		प्राक्षिपत्	वेगसे फेंके ॥३१॥

स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना ।
चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥३२॥

स तं गृहीत्वा प्रपदोः भ्रामयित्वा एक पाणिना चिक्षेप तृणराज अग्रे भ्रामण त्यक्त जीवितम् ॥३२॥

स तं	उन (बलरामजी) ने उसे	**भ्रामयित्वा**	घुमाकर
एक पाणिना	एक हाथसे	**भ्रामण**	घुमानेसे ही
प्रपदोः	पिछले दोनों पैर	**त्यक्त जीवितं**	प्राण त्यागे हुए को
गृहीत्वा	पकड़कर	**तृणराज अग्रे**	ताड़वृक्षके ऊपर
		चिक्षेप	फेंक दिया ॥३२॥

तेनाहतो महातालो वेपमानो बृहच्छिराः ।
पार्श्वस्थं कम्पयन् भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम् ॥३३॥

तेन आहतः महातालः वेपमानः बृहत् शिराः पार्श्वस्थं कम्पयन् भग्नः स च अन्यं सः अपि च अपरम् ॥३३॥

तेन	उस (असुर देह) से	**भग्नः**	टूट गया
आहतः	मारा गया	**स च**	वह (बगलका वृक्ष) भी
बृहत् शिराः	बड़े सिरो भागवाला	**अन्यं**	दूसरे को
महातालः	वह बड़ा ताड़ वृक्ष	**च सः अपरं**	और वह दूसरेको ॥३३॥
पार्श्वस्थं	बगलके वृक्षको		
कम्पयन्	कम्पित करता		

बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः ।
तालाश्चकम्पिरे सर्वे महावातेरिता इव ॥३४॥

बलस्य लीलया उत्सृष्ट खर देह हता हताः तालाः चकम्पिरे सर्वे महावात ईरिता इव ॥३४॥

बलस्य	बलरामजीके	**सर्वे तालाः**	सब ताड़ वृक्ष
लीलया उत्सृष्ट	खेलमें फेंके गये	**महावात**	बड़े अन्धड़से
खर देह	गधेके शरीरसे	**ईरिता इव**	हिलाये गयेके समान
हताः	मारे गये	**चकम्पिरे**	हिल गये ॥३४॥
हता	टकराते जाकर		

नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे ।
ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तन्तुष्वङ्ग यथा पटः ॥३५॥

न एतत् चित्रं भगवति हि अनन्ते जगदीश्वरे ओत प्रोतं इद यस्मिन् तन्तुषु अंग यथा पटः ॥३५॥

अंग	प्रिय परीक्षित् !	**चित्रं न**	विचित्र बात नहीं है
हि	क्योंकि वे	**यस्मिन् इदं**	जिनमें यह विश्व
भगवति	भगवान्	**तन्तुषु**	सूतोंमें
जगदीश्वरे	जगदीश्वर हैं,	**पटः यथा**	वस्त्रके समान
अनन्ते	उन अनन्तके लिए	**ओत प्रोतं**	ओत-प्रोत है ॥३५॥
एतत्	यह कुछ		

ततः कृष्णं च रामं च ज्ञातयो धेनुकस्य ये ।
क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन् सर्वे संरब्धा हतबान्धवाः ॥३६॥

ततः कृष्णं च रामं च ज्ञातयः धेनुकस्य ये क्रोष्टारः अभ्यद्रवन् सर्वे संरब्धा हत बान्धवाः ॥३६॥

बान्धवाः	अपने सम्बन्धीके	**संरब्धा**	क्रोधमें भरे
हत	मारे जानेसे	**कृष्णं च**	श्रीकृष्ण और
ततः सर्वे	तब सब	**रामं च**	बलरामजीकी भी
क्रोष्टारः	रेंकनेवाले गधे	**अभ्यद्रवन्**	ओर दौड़ पड़े ॥३६॥

तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृप लीलया ।
गृहीतपश्चाच्चरणान् प्राहिणोत्तृणराजसु ॥३७॥

तान् तान् आपततः कृष्णः रामः च नृप लीलया गृहीत पश्चात् चरणान् प्राहिणोत् तृणराजसु ॥३७॥

नृप	राजन् !	**पश्चात्**	पिछले
तान् तान्	उन उन	**चरणान्**	पैर
आपततः	आक्रमण करते हुओं को	**गृहीत**	पकड़कर
		लीलया	खेल पूर्वक
कृष्णः च	श्रीकृष्ण और	**तृणराजसु**	ताड़ोंपर
रामः	बलराम	**प्राहिणोत्**	फेंकते गये ॥३७॥

फलप्रकरसङ्कीर्णं दैत्यदेहैर्गतासुभिः ।
रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ॥३८॥

फल प्रकर सङ्कीर्णं दैत्यदेहैः गत असुभिः रराज भूः स ताल अग्रैः घनैः इव नभस्तलम् ॥३८॥

फलप्रकर	फलोंकी बहुलतासे	**अग्रैः सः**	(टूटे) सिरों सहित
सङ्कीर्णं	बिछी हुई	**भूः घनैः**	वह भूमि बादलोंसे
गत असुभिः	निष्प्राण	**नभस्तलं**	आकाश मण्डलके
दैत्यदेहैः	दैत्योंके शरीरोंसे	**इव**	समान
ताल	ताड़-वृक्षोंके	**रराज**	शोभित हुई ॥३८॥

तयोस्तत् सुमहत् कर्म निशाम्य विबुधादयः ।
मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः ॥३९॥

तयोः तत् सुमहत् कर्म निशाम्य विबुध आदयः मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुः वाद्यानि तुष्टुवुः ॥३९॥

तयोः	उन दोनों	**सुमहत् कर्म**	मंगलमयी-लीला
तत्	भाइयोंका वह	**निशाम्य**	देखकर

विबुध आदयः	देवता आदि	**वाद्यानि चक्रुः**	वाद्य बजाने लगे,
पुष्पवर्षाणि	पुष्पोंकी वर्षा	**तुष्टुवुः**	और स्तुति करने
मुमुचुः	छोड़ने (करने) लगे,		लगे ॥३९॥

अथ तालफलान्यादन् मनुष्या गतसाध्वसाः ।
तृणं च पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने ॥४०॥

अथ ताल फलानि आदन् मनुष्याः गत साध्वसाः तृणं च पशवः चेरुः हत धेनुक कानने ॥४०॥

हत धेनुक	मारे गये धेनुकके	**फलानि**	फलोंको
कानने	वनमें	**आदन्**	लेने लगे
अथ	फिर	**च पशवः**	तथा पशु
गत साध्वसाः	निर्भय होकर	**तृणं**	घास
मनुष्याः	मनुष्य	**चेरुः**	चरने लगे ॥४०॥

कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजमाव्रजत् ॥४१॥

कृष्णः कमलपत्र अक्षः पुण्य श्रवण कीर्तनः स्तूयमानः अनुगैः गोपैः स अग्रजः व्रजं आव्रजत् ॥४१॥

श्रवण	जिनकी लीला सुनना तथा	**अनुगैः**	अनुयायी
		गोपैः	गोपों द्वारा
कीर्तनः	कीर्तन करना	**स्तूयमानः**	स्तुत होते
पुण्य	पवित्र है वे	**स अग्रजः**	बड़े भाईके साथ
कमलपत्र	कमल-दल	**व्रजं**	व्रजमें
अक्षः	लोचन	**आव्रजत्**	लौट आये ॥४१॥
कृष्णः	श्रीकृष्ण		

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्ह-
वन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ।
वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं
गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः ॥४२॥

तं गोरजः छुरित कुन्तल बद्ध बर्ह वन्य प्रसून रुचिर ईक्षण चारु हासं वेणुं क्वणन्तं अनुगैः अनुगीत कीर्ति गोप्यः दिदृक्षित दृशः अभ्यगमन् समेताः ॥४२॥

गोरजः छुरित	गायोंके खुरोंसे उड़ी धूलिसे सनी
कुन्तल	अलकोंमें
बद्ध बर्ह	मयूर पिच्छ बाँधे
वन्य प्रसून	वन-पुष्पोंसे सजे,
रुचिर ईक्षण	सुन्दर नेत्रोंवाले.
चारु हासं	सुन्दर हास्य वाले,
वेणुं क्वणन्तं	वंशी बजाते
अनुगैः	अनुचरों द्वारा
अनुगीत	पीछे-पीछे
कीर्ति	कीर्ति गाये जाते
तं	उनको
दिदृक्षित	देखनेको उत्सुक
दृशः गोप्यः	नेत्रोंवाली गोपियां
समेताः	एकत्र होकर
अभ्यगमन्	सामने आ गयीं ॥४२॥

पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गै-
स्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि ।
तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं
सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम् ॥४३॥

पीत्वा मुकुन्द मुख सारघं अक्षिभृङ्गैः तापं जहुः विरहजं व्रज योषितः अह्नि तत् सत्कृति समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहास विनयं यत् अपांग मोक्षम् ॥४३॥

अक्षिभृङ्गैः	नेत्र रूपी भ्रमरोंसे
मुकुन्द	श्रीमुकुन्दके
मुख	मुखका
सारघं पीत्वा	मधुपान करके
व्रज योषितः	व्रज-स्त्रियोंने
अह्नि विरहजं	दिनके वियोगसे उत्पन्न
ताप जहुः	सताप त्याग दिया
यत्	जो (उनकी)
सव्रीडहास	लज्जापूर्ण हंसी
विनयं	विनम्रता तथा
अपांग मोक्षं	कटाक्षपात पूर्वक देखना है
तत् सत्कृति	वह उनका सत्कार
समधिगम्य	भली प्रकार पाकर
गोष्ठं विवेश	गोष्ठमें प्रविष्ट हुए ॥४३॥

तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले ।
यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ॥४४॥

तयोः यशोदा रोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्र वत्सले यथा कामं यथा कालं व्यधत्तां परम आशिषः ॥४४॥

पुत्र	पुत्र	**कामं**	इच्छानुसार एवं
वत्सले	स्नेहपूर्ण	**यथा कालं**	समयके
यशोदा	यशोदा और		अनुसार
रोहिण्यौ	रोहिणीजीने	**परम**	श्रेष्ठ
तयोः	उन अपने	**आशिषः**	अभीष्ट वस्तुएँ
पुत्रयोः	पुत्रोंके लिए	**व्यधत्तां**	बनाई हुई प्रदान
यथा	उनकी		कीं ॥४४॥

गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः ।
नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ ॥४५॥

गत अध्वान श्रमौ तत्र मज्जन उन्मर्दन आदिभिः नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रक् गन्ध मण्डितौ ॥४५॥

तत्र मज्जन	वहां स्नान	**वसित्वा**	पहिनकर
उन्मर्दन	उबटन	**दिव्यस्रक्**	दिव्य-माला,
आदिभिः	आदिके द्वारा	**गन्ध**	चन्दनसे
अध्वान	मार्ग चलनेकी	**मण्डितौ**	अलंकृत होकर
श्रमौ गत	थकावट चली गयी		॥४५॥
रुचिरां नीवीं	सुन्दर धोती		

जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ ।
संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे ॥४६॥

जननि उपहृतं प्राश्य स्वादु अन्नं उपलालितौ संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुः व्रजे ॥४६॥

जननि	माताओंका	**स्वादु अन्नं**	स्वादिष्ट भोजन
उपहृतं	दिया हुआ	**प्राश्य**	करके

उपलालितौ	बहुत दुलार पाकर	**सुखं**	सुखपूर्वक
वरशय्यायां	श्रेष्ठ शय्यापर	**सुषुपतुः**	सो गये ॥४६॥*
संविश्य व्रजे	लेटकर व्रजमें		

एवं स भगवान् कृष्णो वृन्दावनचरः क्वचित् ।
ययौ राममृते राजन् कालिन्दीं सखिभिर्वृतः ॥४७॥

एवं स भगवान् कृष्णः वृन्दावन चरः क्वचित् ययौ रामं ऋते राजन् कालिन्दीं सखिभिः वृतः ॥४७॥

राजन्	राजन् !	**सखिभिः वृतः**	सखाओंसे घिरे हुए
स भगवान्	वे भगवान	**वृन्दावन**	वृन्दावनमें
कृष्णः	श्रीकृष्ण	**चरः**	घूमते हुए
क्वचित्	कभी	**कालिन्दीं**	यमुनाके समीप
रामं	श्रीबलरामजी के	**ययौ**	समीप चले गये
ऋते	बिना		॥४७॥

अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः ।
दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृषार्ता विषदूषितम् ॥४८॥

अथ गावः च गोपाः च निदाघ आतप पीडिताः दुष्टं जलं पपुः तस्याः तृषा आर्ता विषदूषितं ॥४८॥

अथ गावः	फिर गायों	**तृषा आर्ता**	प्याससे व्याकुल होकर
च गोपाः च	तथा गोपोंने भी	**विषदूषितं**	विषसे विषैला
निदाघ आतप	ग्रीष्मकी धूपसे	**तस्याः**	उस (यमुना) का
पीडिताः	पीड़ित (संतप्त) होनेसे	**दुष्टं जलं**	दूषित जल
		पपुः	पी लिया ॥४८॥

---

* यहां तक इस दिनकी लीला पूर्ण हो गयी । अतः इस अध्यायकी यहां समाप्ति स्वाभाविक होती है । अगले ६ श्लोक दूसरे किसी दिनकी लीलाके हैं और उनका सम्बन्ध भी अगले अध्यायकी लीलासे है, अतः उन्हें अगले अध्यायमें क्यों सम्मिलित न किया जाय, यह चिन्तनीय है ।

विषाम्भस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः ।
निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलान्ते कुरूद्वह ॥४९॥

विष अम्भः तत् उपस्पृश्य दैव अपहत चेतसः निपेतुः व्यसवः सर्वे सलिल अन्ते कुरुद्वह ॥४९॥

कुरुद्वह	कुरु-श्रेष्ठ !	**उपस्पृश्य**	पीकर
दैव अपहृत	होनहारके मारे	**सर्वे व्यसवः**	सब निष्प्राण होकर
चेतसः	चित्तवाले वे	**सलिल अन्ते**	जलके समीप ही
तत् विष अम्भः	वह विषैला जल	**निपेतुः**	गिर पड़े ॥४९॥

वीक्ष्य तान् वै तथाभूतान् कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।
ईक्षयामृतवर्षिण्या स्वनाथान् समजीवयत् ॥५०॥

वीक्ष्य तान् वै तथा भूतान् कृष्णः योगेश्वर ईश्वरः ईक्षया अमृत वर्षिण्या स्व नाथान् सम जीवयत् ॥५०॥

तान्	उनको	**स्व**	जिनके वही
तथा भूतान्	उस प्रकारका हुआ	**नाथान्**	स्वामी हैं
वीक्ष्य	देखकर	**अमृत वर्षिण्या**	अमृत वर्षिणी
योगेश्वर	योगेश्वरोंके भी	**ईक्षया**	दृष्टिपात्से
ईश्वरः	स्वामी	**सम जीवयत्**	सबको जीवित कर
कृष्णः	श्रीकृष्णने		दिया ॥५०॥
वै	निश्चित रूपसे		

ते सम्प्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलान्तिकात् ।
आसन् सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ॥५१॥

ते सम्प्रतीत स्मृतयः सम उत्थाय जल अन्तिकात् आसन् सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ॥५१॥

सम्प्रतीत	भली प्रकार	**सर्वे परस्परं**	सब एक दूसरेको
स्मृतयः	स्मृति-आनेपर	**वीक्षमाणाः**	देखते हुए
ते जल	वे जलके	**सुविस्मिताः**	अत्यन्त चकित
अन्तिकात्	पाससे	**आसन्**	हुए ॥५१॥
सम उत्थाय	झटसे उठकर		

अन्वमंसत तद् राजन् गोविन्दानुग्रहेक्षितम् ।
पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥५२॥

अन्वमंसत तत् राजन् गोविन्द अनुग्रह ईक्षितं पीत्वा विषं परेतस्य पुनः उत्थानं आत्मनः ॥५२॥

राजन्	राजन् !	**उत्थानं**	उठ (जीवित हो) जानेका कारण
तत् विषं पीत्वा	वह विष पीकर	**गोविन्द**	गोविन्दका
परेतस्य	मरे हुए	**अनुग्रह ईक्षितं**	अनुग्रह पूर्वक देखना
आत्मनः	अपना	**अन्वमंसत**	निश्चय कर लिया
पुनः	फिर		॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे धेनुकवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः ।
तस्या विशुद्धिमन्विच्छन् सर्पं तमुदवासयत् ॥१॥

विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्ण अहिना विभुः तस्या विशुद्धि अन्विच्छन् सर्पं तं उदवासयत् ॥१॥

विभुः कृष्णः	भगवान श्रीकृष्णने	**तस्या विशुद्धि**	उसकी शुद्धि करने-की
कृष्ण अहिना	काले सर्प (कालिय) द्वारा	**अन्विच्छन्**	इच्छा करके
कृष्णां दूषितां	यमुनाको दूषित हुआ	**तं सर्पं**	उस सर्पको
विलोक्य	देखकर	**उदवासयत्**	निकाल दिया ॥१॥

राजोवाच

कथमन्तर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद् भगवानहिम् ।
स वै बहुयुगावासं यथाऽऽसीद् विप्र कथ्यताम् ॥२॥

कथं अन्तः जले अगाधे न्यगृह्णात् भगवान् अहिं स वै बहुयुग आवासं यथा आसीत् विप्र कथ्यताम् ॥२॥

अगाधे	अथाह	**बहुयुग**	बहुत समयसे
अन्तः जले	जलके भीतरसे	**यथा**	(जलचर न होनेपर भी) वहां जैसे
भगवान् कथं	भगवानने कैसे	**आवासं**	रहता था
अहिं	सर्पका	**विप्र**	ब्रह्मन् !
न्यगृह्णात्	दमन किया	**कथ्यतां**	यह बतलाइये ॥२॥
वै स	निश्चय वह		

ब्रह्मन् भगवतस्तस्य भूम्नः स्वच्छन्दवर्तिनः ।
गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन् ॥३॥

ब्रह्मन् भगवतः तस्य भूम्नः स्वच्छन्द वर्तिनः गोपाल उदार चरितं कः तृप्येत अमृतं जुषन् ॥३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
तस्य भूम्नः	उन सर्वव्यापक
भगवतः	भगवान्
स्वच्छन्द	स्वेच्छानुसार
वर्तिनः	लीला करनेवाले
तस्य गोपाल	उन गोपालके
उदार चरितं	उदार चरित रूपी
अमृतं जुषन्	अमृतको पीते हुए
कः तृप्येत	कौन तृप्त हो सकता है ॥३॥

श्रीशुक उवाच

कालिन्द्यां कालियस्यासीद्ध्रदः कश्चिद् विषाग्निना ।
श्रप्यमाणपया यस्मिन् पतन्त्युपरिगाः खगाः ॥४॥

कालिन्द्यां कालियस्य आसीत् ह्रदः कश्चित् विष अग्निना श्रप्यमाणपया यस्मिन् पतन्ति उपरिगाः खगाः ॥४॥

कालिन्द्यां	यमुनामें
कालियस्य	कालिय नागके
विष अग्निना	विषकी ज्वालासे
श्रप्यमाणपया	खौलते जल वाला
कश्चित् ह्रदः	कोई कुण्ड
आसीत्	था,
उपरिगाः	उसके ऊपरसे उड़कर जानेवाले
खगाः	पक्षी
यस्मिन्	जिसमें
पतन्ति	गिर पड़ते थे ॥४॥

विप्रुष्मता विषोदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः ।
म्रियन्ते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरजंगमाः ॥५॥

विप्रुष्मता विषात् उर्मि मारुतेन अभिमर्शिताः म्रियन्ते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिर जंगमाः ॥५॥

यस्य विषात्	जिसके विषसे
विप्रुष्मता	खौलती
उर्मि	तरंगोंसे
अभिमर्शिताः	लगकर चलते
मारुतेन	वायुके कारण
तीरगा	किनारेके
स्थिर जंगमाः	स्थावर-जंगम सब
प्राणिनः म्रियन्ते	प्राणी मर जाते थे ॥५॥

तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन
दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः ।
कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुंग-
मास्फोटच्य गाढरशनो न्यपतद् विषोदे ॥६॥

तं चण्डवेग विषवीर्यं अवेक्ष्य तेन दुष्टां नदीं च खल संयमन अवतारः कृष्णः कदम्बं अधिरुह्य ततः अतितुंगं आस्फोटच्य गाढरशनः न्यपतत् विष ओदे ॥६॥

खल संयमन	दुष्ट-दलनके लिए	**अवेक्ष्य**	देखकर
अवतारः	अवतार लेनेवाले	**ततः**	वहांसे
कृष्णः	श्रीकृष्णने	**अतितुंगं**	बहुत ऊँचे
तं	उस (कालिय) को	**कदम्बं**	कदम्बपर
चण्डवेग	प्रचण्ड वेगवाले	**अधिरुह्य**	चढ़कर
विषवीर्यं	विषका बलवाला	**गाढरशनः**	फेटा कसकर
च तेन	और उसके द्वारा	**आस्फोटच्य**	ताल ठोंककर
दुष्टां	दूषित	**विष ओदे**	विषैले जलमें
नदीं	नदी (यमुना) को	**न्यपतत्**	कूद पड़े ॥६॥

सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेग-
संक्षोभितोरगविषोच्छ्वसिताम्बुराशिः ।
पर्यक्प्लुतो विषकषायविभीषणोर्मि-
र्धावन् धनुःशतमनन्तबलस्य किं तत् ॥७॥

सर्पह्रदः पुरुषसार निपात वेग संक्षोभित उरग विष उच्छ्वसित अम्बुराशिः पर्यक् प्लुतः विष कषाय विभीषण उर्मिः धावन् धनुः शतं अनन्त बलस्य किं तत् ॥७॥

सर्पह्रदः	वह सर्पका कुण्ड	**पुरुष**	परम पुरुषके
उरग विष	सर्पके विषसे	**सार**	पौरुष पूर्वक
उच्छ्वसित	(पहिले ही) खौल रहा था	**निपात**	कूदनेके
		वेग	वेगसे

संक्षोभित	क्षुब्ध हुई
विष कषाय	विषके दोषसे
विभीषण	अत्यन्त भयानक
उर्मिः	लहरोंवाली
अम्बुराशिः	वह जल राशि
धनुः शतं	सौ धनुष
पर्यक्	(चार सौ हाथ) चारों ओर
धावन् प्लुतः	दौड़ती भिगा गयी,
अनन्त	अनन्त
बलस्य	पराक्रम (भगवान्‌के लिए)
तत् किं	यह क्या बड़ी बात है ॥७॥

तस्य ह्रदे विहरतो भुजदण्डघूर्ण-
वार्घोषमंग वरवारणविक्रमस्य ।
आश्रुत्य तत् स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य
चक्षुःश्रवाः समसरत्तदमृष्यमाणः ॥८॥

तस्य ह्रदे विहरतः भुजदण्ड घूर्ण वारि घोषं अंग वरवारण विक्रमस्य आश्रुत्य तत् स्वसदन अभिभवं निरीक्ष्य चक्षुःश्रवाः समसरत् तत् अमृष्यमाणः ॥८॥

अंग	प्रिय परीक्षित् !
वरवारण	श्रेष्ठ गजराजके समान
विक्रमस्य	पराक्रमवाले
तस्य ह्रदे	उनके कुण्डमें
विहरतः	विहार करते (तैरते) समय
भुजदण्ड	भुजदण्डोंसे
घूर्ण	घूमते
वारि घोषं	जलका शब्द
आश्रुत्य	सुनकर और
स्वसदन	अपने निवासका
तत् अभिभवं	वह तिरस्कार
निरीक्ष्य	देखकर
चक्षुः श्रवाः	आंखोंसे सुननेवाला (सर्प)
तत्	उसे
अमृश्यमाणः	सहन न करके (चिढ़कर)
समसरत्	सामने आ गया ॥८॥

तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं
श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुन्दरास्यम् ।
क्रीडन्तमप्रतिभयं कमलोदराङ्घ्रिं
सन्दश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद ॥९॥

तं प्रेक्षणीय सुकुमार घन अवदातं श्रीवत्स पीतवसनं स्मित सुन्दर आस्यं क्रीडन्तं अप्रतिभयं कमल उदर अङ्घ्रि सन्दश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद ॥९॥

तं प्रेक्षणीय	उन दर्शनीय
सुकुमार	सुकुमार
घन	मेघश्याम
श्रीवत्स	श्रीवत्स
अवदातं	लाञ्छन,
पीतवसनं	पीताम्बरधारी,
स्मित	मुस्कान
सुन्दर आस्यं	विभूषित मुखको
अप्रतिभयं	शत्रुसे निर्भय
क्रीडन्तं	खेलते हुए
कमल	कमलके
उदर	भीतरी भागके समान
अङ्घ्रि	चरणोंवाले-को
रुषा	क्रोधपूर्वक
मर्मसु	मर्म-स्थानमें
सन्दश्य	डंसकर
भुजया	अपने भोग-बन्धनसे
चछाद	ढक लिया ॥९॥

तं नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्ट-
मालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्ताः ।
कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा
दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः ॥१०॥

तं नाग भोग परिवीतं अदृष्ट चेष्टं आलोक्य तत् प्रिय सखाः पशुपा भृश आर्ताः कृष्णे अर्पित आत्म सुहृत् अर्थ कलत्र कामा दुःख अनुशोक भय मूढधियः निपेतुः ॥१०॥

तं नाग	उन नागके
भोग	शरीरसे
परिवीतं	बँधे हुए
अदृष्ट चेष्टं	कोई चेष्टा न दीखने वाले
कृष्णे	श्रीकृष्णको
आलोक्य	देखकर
अर्पित	उन्हींको समर्पित
आत्म	शरीर
सुहृत् अर्थ	सुहृद, धन,
कलत्र	स्त्री तथा
कामा	सब कामनाओंवाले
तत् प्रिय सखाः	उनके प्यारे सखा
पशुपा	पशुपालक
भृश आर्ताः	अत्यन्त व्याकुल होकर
दुःख	दुःख,
अनुशोक	भारी शोक,
भय मूढधियः	भयसे मूर्छित बुद्धि होकर
निपेतुः	गिर पड़े ॥१०॥

गावो वृषा वत्सतर्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिताः ।
कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीता रुदत्य इव तस्थिरे ॥११॥

गावः वृषा वत्सतर्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिताः कृष्णे न्यस्त ईक्षणा भीता रुदत्य इव तस्थिरे ॥११॥

क्रन्दमानाः	डकराते हुए	**न्यस्त ईक्षणा**	दृष्टि लगाये
सुदुःखिताः	अत्यन्त दुःखी	**भीता**	डरे हुए,
गावः वृषा	गायें, बैल,	**रुदत्य इव**	रोतेके समान
वत्सतर्यः	बछड़ियां	**तस्थिरे**	खड़े रह गये ॥११॥
कृष्णे	श्रीकृष्णमें		

अथ व्रजे महोत्पातास्त्रिविधा ह्यतिदारुणाः ।
उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥१२॥

अथ व्रजे महा उत्पाताः त्रिविधा हि अति दारुणाः उत्पेतुः भुवि दिवि आत्मनि आसन्न भय शंसिनः ॥१२॥

अथ हि	फिर क्योंकि	**त्रिविधा**	तीनों प्रकारके
आसन्न भय	निकटके भयको	**अति दारुणाः**	अत्यन्त भयानक
शंसिनः	सूचित करनेवाले	**महा उत्पाताः**	घोर अपशकुन
भुवि दिवि	पृथ्वी, आकाश और	**व्रजे उत्पेतुः**	व्रजमें उठने (होने)
आत्मनि	शरीरमें		लगे ॥१२॥

तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा नन्दपुरोगमाः ।
विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ॥१३॥

तान् आलक्ष्य भय उद्विग्ना गोपा नन्द पुरोगमाः विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ॥१३॥

नन्द	जिनके आगे नन्दजी	**उद्विग्ना**	व्याकुल होकर
पुरोगमाः	चलत थे उन	**विना रामेण**	बिना बलरामके
गोपा	गोपोंने	**गाः चारयितुं**	गाय चराने
तान् आलक्ष्य	उन अपशकुनोंको देखकर	**गतं कृष्णं**	गये श्रीकृष्णको
		ज्ञात्वा	जानकर ॥१३॥
भय	भयसे		

तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वा प्राप्तमतद्विदः ।
तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ॥१४॥

तैः दुर्निमित्तैः निधनं मत्वा प्राप्तं अतत् विदः तत् प्राणाः तत् मनस्काः ते दुःख शोक भय आतुराः ॥१४॥

अतत् विदः	उनको न जानने-वाले	**तत् प्राणाः**	उन्हींपर आश्रित जीवन
ते तैः	वे उन	**तत् मनस्काः**	उन्हींमें लगे मनवाले
दुर्निमित्तैः	बुरे शकुनोंसे	**दुःख शोक**	दुःख, शोक,
निधनं प्राप्तं मत्वा	(उनको) मृत्यु प्राप्त मानकर	**भय आतुराः**	भयसे व्याकुल हो गये ॥१४॥

आबालवृद्धवनिताः सर्वेऽङ्ग पशुवृत्तयः ।
निर्जग्मुर्गोकुलाद् दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥१५॥

आबाल वृद्ध वनिताः सर्वे अंग पशु वृत्तयः निर्जग्मुः गोकुलात् दीनाः कृष्ण दर्शन लालसाः ॥१५॥

अंग	प्रिय परीक्षित !	**कृष्ण**	श्रीकृष्णके
आबाल	बच्चोंसे लेकर	**दर्शन**	दर्शनकी
वृद्ध	बूढ़ों तक और	**लालसाः**	लालसासे
वनिताः	स्त्रियां	**दीनाः**	दुःखित
सर्वे	सब	**गोकुलात्**	गोष्ठोंसे
पशु वृत्तयः	पशु-पालन जीविकावाले	**निर्जग्मुः**	निकल पड़े ॥१५॥

तांस्तथा कातरान् वीक्ष्य भगवान् माधवो बलः ।
प्रहस्य किञ्चिन्नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य सः ॥१६॥

तान् तथा कातरान् वीक्ष्य भगवान् माधवः बलः प्रहस्य किञ्चित् न उवाच प्रभावज्ञः अनुजस्य सः ॥१६॥

तान्	उन सबको	**कातरान्**	भय-विह्वल
तथा	इस प्रकार	**वीक्ष्य**	देखकर

माधवः	लक्ष्मीकान्तके स्वरूप	**न उवाच**	नहीं बोले, क्योंकि
भगवान् बलः	भगवान् बलराम	**सः अनुजस्य**	वे छोटे भाईका
प्रहस्य	जोरसे हंसकर	**प्रभावज्ञः**	प्रभाव जाननेवाले
किञ्चित्	कुछ भी		थे ॥१६॥

तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः ।
भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥१७॥

ते अन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः भगवत् लक्षणैः जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥१७॥

भगवत्	भगवान्‌के	**कृष्णं**	श्रीकृष्णको
लक्षणैः	लक्षणोंवाले	**अन्वेषमाणा**	ढूंढ़ते हुए
पदैः	चरण-चिह्नोंसे	**यमुनातटं**	यमुना किनारे
सूचितया	सूचित करनेके कारण	**पदव्या जग्मुः**	उनके स्थानपर गये ॥१७॥
ते दयितं	वे अपने प्रिय		

ते तत्र तत्राब्जयवाङ्कुशाशनि-
ध्वजोपपन्नानि पदानि विश्पतेः ।
मार्गे गवामन्यपदान्तरान्तरे
निरीक्षमाणा ययुरंग सत्वराः ॥१८॥

ते तत्र तत्र अब्ज यव अङ्कुश अशनि ध्वज उपपन्नानि पदानि विश्पतेः मार्गे गवां अन्य पद अन्तर अन्तरे निरीक्षमाणा ययुः अंग सत्वराः ॥१८॥

तत्र तत्र	जहां-तहां	**ध्वज**	ध्वजाके
मार्गे	मार्गमें	**उपपन्नानि**	चिह्नोंसे युक्त
गवां	गायों तथा	**निश्पतेः**	विश्वपति भगवान्‌के
अन्य पद	दूसरोंके पैरोंके	**पदानि**	चरण-चिह्न
अन्तरे	बीच-बीचमें	**निरीक्षमाणा**	देखते हुए
अब्ज यव	कमल, जौ	**ते सत्वराः**	वे शीघ्रतापूर्वक
अङ्कुश अशनि	अंकुश, वज्र,	**ययुः**	गये ॥१८॥

अन्तर्ह्रदे भुजगभोगपरीतमारात्
कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयान्ते ।
गोपांश्च मूढधिषणान् परितः पशूंश्च
संक्रन्दतः परमकश्मलमापुरार्ताः ॥१९॥

अन्तः ह्रदे भुजग भोग परीतं आरात् कृष्णं निरीहं उपलभ्य जलाशय अन्ते गोपान् च मूढधिषणान् परितः पशून् च संक्रन्दतः परम कश्मलं आपुः आर्ताः ॥१९॥

आरात्	दूरसे ही	**मूढधिषणान्**	मूर्छित पड़े
अन्तः ह्रदे	कुण्डके भीतर	**गोपान्**	गोपोंको
भुजग भोग	सर्पके शरीरमें	**च परितः**	एवं चारों ओर
परीतं	लिपटे हुए	**संक्रन्दतः**	डकराते
निरीहं	निश्चेष्ट	**पशून् उपलभ्य**	पशुओंको पाकर
कृष्णं	श्रीकृष्णको	**आर्ताः**	व्याकुल होकर
च	तथा	**परम कश्मलं**	बहुत कष्ट
जलाशय	उस जलाशयके	**आपुः**	पाया ॥१९॥
अन्ते	किनारे		

गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनन्ते
तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरन्त्यः ।
ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः
शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम् ॥२०॥

गोप्यः अनुरक्त मनसः भगवति अनन्ते तत् सौहृद स्मित विलोक गिरः स्मरन्त्यः ग्रस्ते अहिना प्रियतमे भृश दुःख तप्ताः शून्यं प्रिय व्यतिहृतं ददृशुः त्रिलोकम् ॥२०॥

भगवति अनन्ते	अनन्त भगवान्‌में	**मनसः गोप्यः**	चित्त गोपियां
अनुरक्त	आसक्त	**तत् सौहृद**	उनका सौहार्द्र,

स्मित	मुस्कराते हुए
विलोक	देखकर
गिरः	बोलना
स्मरन्त्यः	स्मरण करती हुई
प्रियतमे	उन प्रियतमके
अहिना	सांप द्वारा
ग्रस्ते	पकड़े जानेपर
भृश दुःख	अत्यन्त दुःखसे
तप्ताः	सन्तप्त हुईं और
प्रिय	उन प्रियतमके
व्यतिहृतं	वियोगमें
त्रिलोक	त्रिभुवन
शून्यं ददृशुः	सूना देखने लगीं

॥२०॥

ताः कृष्णमातरमपत्यमनु प्रविष्टां
तुल्यव्यथा समनुगृह्य शुचः स्रवन्त्यः ।
तास्ता व्रजप्रियकथाः कथयन्त्य आसन्
कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः ॥२१॥

ताः कृष्ण मातरं अपत्यं अनु प्रविष्टां तुल्य व्यथाः सम् अनुगृह्य शुचः स्रवन्त्यः ताः ता व्रजप्रिय कथाः कथयन्त्य आसन् कृष्ण आनने अर्पित दृशः मृतक प्रतीकाः ॥२१॥

कृष्ण	श्रीकृष्णकी
मातरं	माता यशोदाको
अपत्यं अनु	पुत्रके पीछे
प्रविष्टां	(ह्रदमें) कूदनेसे
कृष्ण	श्रीकृष्णके
आनने	मुखपर
अर्पित दृशः	नेत्र लगाये
मृतक	मृत हो गयी-सी
प्रतीकाः	लगतीको
सम्	भली प्रकार
अनुगृह्य	पकड़कर
ताः	वे उनके
तुल्य व्यथाः	समान ही पीड़ावाली
शुचः स्रवन्त्यः	आंसू बहाती
व्रजप्रिय	व्रजके प्रिय (उन श्रीकृष्ण) की
ताः ता	उन-उन (पिछले)
कथाः	चरितोंको
कथयन्त्य आसन्	वर्णन करने लगीं

॥२१॥

कृष्णप्राणान् निविशतो नन्दादीन् वीक्ष्य तं ह्रदम् ।
प्रत्यषेधत् स भगवान् रामः कृष्णानुभाववित् ॥२२॥

कृष्ण प्राणान् निविशतः नन्द आदीन् वीक्ष्य तं ह्रदं प्रत्यषेधत् स भगवान् रामः कृष्ण अनुभाववित् ॥२२॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण ही
प्राणान्	जिनके प्राण हैं
नन्द आदीन्	उन नन्द आदिको
तं ह्रदं	उस ह्रदमें
निर्विशतः	कूदते
वीक्ष्य	देखकर
कृष्ण	श्रीकृष्णका
अनुभाववित्	प्रभाव जाननेवाले
स	उन
भगवान् रामः	भगवान बलरामने
प्रत्यषेधत्	बलपूर्वक रोक दिया ॥२२॥

इत्थं स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य
सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः ।
आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्तमानः
स्थित्वा मुहूर्तमुदतिष्ठदुरङ्गबन्धात् ॥२३॥

इत्थं स्वगोकुलं अनन्य गतिं निरीक्ष्य सस्त्री कुमारं अति दुःखितं आत्महेतोः आज्ञाय मर्त्यपदवीं अनुवर्तमानः स्थित्वा मुहूर्तं उदतिष्ठत् उरंग बन्धात् ॥२३॥

मर्त्यपदवीं	मनुष्य-चरितका
अनुवर्तमानः	अनुकरण करते हुए
इत्थं	इस प्रकार
स्वगोकुलं	अपने गो-व्रजको
अनन्य	अपने अतिरिक्त और कोई
गतिं	गति नहीं
निरीक्ष्य	देखकर तथा
सस्त्री	स्त्रियोंके साथ
कुमारं	बालकों तकको
आत्महेतोः	अपने लिए
अति दुःखितं	अत्यन्त दुःखी
आज्ञाय	जानकर
मुहूर्तं	वहां एक मुहूर्त
स्थित्वा	रहकर
उरंग बन्धात्	सर्पके बन्धनसे
उदतिष्ठत्	बाहर निकल आये ॥२३॥

तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोग-
स्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः स्वफणान् भुजङ्गः ।
तस्थौ श्वसञ्छ्वसनरन्ध्रविषाम्बरीष-
स्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः ॥२४॥

तत् प्रथ्यमान वपुषा व्यथित आत्मभोगः त्यक्त्वा उन्नमय्य कुपितः स्वफणान् भुजंगः तस्थौ श्वसन् श्वसन् रन्ध्र विष अम्बरीषः स्तब्ध ईक्षण उल्मुक मुखः हरिं ईक्षमाणः ॥२४॥

तत् वपुषा	उन (श्रीकृष्ण) के शरीर	**श्वसन् रन्ध्र**	श्वास-छिद्र नासिका से
प्रथ्यमान	फुलानेसे	**विष**	विषकी
आत्मभोगः	अपना शरीर	**अम्बरीषः**	फुहार छोड़ता
व्यथितः	पीड़ित होनेसे	**उल्मुक मुखः**	मुखसे जैसे आगकी लपटें फेंकता हो
त्यक्त्वा	उन्हें छोड़कर		
स्वफणान्	अपने फणोंको	**स्तब्ध ईक्षण**	स्थिर नेत्रोंसे
उन्नमय्य	ऊपर उठाकर	**हरिं ईक्षमाणः**	श्रीकृष्णको देखता
कुपितः भुजंगः	क्रुद्ध सर्प	**तस्थौ**	खड़ा रह गया
श्वसन्	फुसकार मारता		॥२४॥

तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं
द्वे सृक्किणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम् ।
क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेन्द्रो
बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणः ॥२५॥

तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं द्वे सृक्किणी हि अतिकराल विष अग्नि दृष्टि क्रीडन् अमुं परिससार यथा खगेन्द्रः बभ्रामं सः अपि अबसरं प्रसमीक्षमाणः ॥२५॥

द्विशिखया	दो नोकोंवाली	**अतिकराल**	अत्यन्त भयंकर
जिह्वया	जीभसे	**विष अग्नि**	विष भरी अग्नि जैसे
द्वे सृक्किणी	दोनों ओष्ठोंके किनारोंको	**दृष्टिं**	नेत्रोंसे देख रहा था,
		क्रीडन्	उसके साथ खेलते हुए
परिलेलिहानं	चारों ओर चाटता हुआ	**खगेन्द्रः यथा**	गरुड़के समान
हि	क्योंकि	**अमुं**	उसके चारों ओर

परिससार	घूमने लगे,	**प्रसमीक्षमाणः**	देखता हुआ
सः अपि	(तब) वह भी	**बभ्राम**	घूमने लगा ॥२५॥
अवसरं	अवसर		

एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांस-
मानम्य तत्पृथुशिरः स्वधिरूढ आद्यः ।
तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्र-
पादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त ॥२६॥

एवं परिभ्रम हत ओजसं उन्नत अंसं आनम्य तत् पृथुशिरः सु अधिरूढ आद्यः तत् मूर्ध्नि रत्न निकर स्पर्श अतिताम्र पादाम्बुजः अखिल कला आदि गुरुः ननर्त ॥२६॥

एवं	इस प्रकार	**कला**	कलाओंके वे
परिभ्रम	चारों ओर घूमनेसे	**आदि गुरुः**	आदि गुरु
हत ओजसं	क्षीण बल हुए	**तत्**	उसके
तत् उन्नत अंसं	उसके उठे फणको	**मूर्ध्नि रत्न**	सिरोंमें स्थित रत्न
आनम्य	झुकाकर	**निकर स्पर्श**	समूहके स्पर्शसे
पृथुशिरः सु	भारी फणपर	**अतिताम्र**	अतिशय लाल
अधिरूढः	उछलकर चढ़कर	**पादाम्बुजः**	चरण-कमलोंसे
आद्यः	आदि पुरुष	**ननर्त**	नाचने लगे ॥२६॥
अखिल	सम्पूर्ण		

तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीय-
गन्धर्वसिद्धसुरचारणदेववध्वः ।
प्रीत्या मृदंगपणवानकवाद्यगीत-
पुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ॥२७॥

तं नर्तुं उद्यतं अवेक्ष्य तदा तदीय गन्धर्व सिद्ध सुर चारण देववध्वः प्रीत्या मृदंग पणव आनक वाद्य गीत पुष्प उपहार नुतिभिः सहसा उपसेदुः ॥२७॥

तं नतुं	उनको नृत्य करनेको
उद्यतं	उद्यत
तदा अवेक्ष्य	उस समय देखकर
तदीय	उनके भक्त
गन्धर्व सिद्ध	गन्धर्व, सिद्ध,
सुर चारण	देवता, चारण,
देववध्वः	देवांगनाएँ
प्रीत्या मृदंग	प्रेमपूर्वक मृदंग,
पणव आनक	भेरी, नगाड़े
वाद्य गीत	बजाते, गाते
पुष्प	पुष्प
उपहार	भेंट करते (बरसाते)
नुतिभिः	नमस्कार करते
सहसा	अचानक
उपसेदुः	समीप आ गये ॥२७॥

यद् यच्छिरो न नमतेऽङ्गशतैकशीर्ष्ण-
स्तत्तन् ममर्द खरदण्डधरोऽङ्घ्रिपातैः ।
क्षीणायुषो भ्रमत उल्बणमास्यतोऽसृङ्
नस्तो वमन् परमकश्मलमाप नागः ॥२८॥

यत् यत् शिरः न नमते अंग शत एक शीर्ष्णः तत् तत् ममर्द खर दण्डधरः अङ्घ्रि पातैः क्षीण आयुषः भ्रमत उल्बणं आस्यतः असृक् नस्तः वमन् परम कश्मलं आप नागः ॥२८॥

अंग	प्रिय परीक्षित !
शत एक	उस एक सौ एक
शीर्ष्णः	सिर वाले
यत् यत् शिरः	जो-जो सिर (फण)
न नमते	नहीं झुकता था
खर	उग्र
दण्डधरः	दण्ड देनेवाले*
अङ्घ्रि पातैः	चरण पटककर
तत् तत्	उस उसको
ममर्द	कुचल देते थे,
क्षीण	(इससे उसकी) जीवन शक्ति क्षीण
आयुषः	हो गयी
भ्रमत उल्बणं	घूमते हुए भयानक
आस्यतः नस्तः	मुखों और नाकसे
असृक् वमन्	खून फेंकता
नागः	कालिय नाग
परम कश्मलं	भारी कष्ट
आप	पाने लगा ॥२८॥

तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु
यद् यत् समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः ।

---

* अथवा कमलनालधारी श्रीकृष्ण

नृत्यन् पदानुनमयन् दमयाम्बभूव
पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान् पुराणः ॥२९॥

तस्य अक्षिभिः गरलं उद्वमतः शिरः सु यत् यत् सम उन्नमति निःश्वसतः रुषा उच्चैः नृत्यन् पदा अनुनमयन् दमयान् बभूव पुष्पैः प्रपूजित इव इह पुमान् पुराणः ॥२९॥

तस्य अक्षिभिः	उसकी आखोंसे
गरलं	विष
उद्वमतः	उगलते हुए
रुषा	क्रोधसे
उच्चैः	जोर-जोरसे
निःश्वसतः	फुसकार छोड़ते हुए
शिरः सु	फणोंमें-से
यत् यत्	जिस जिसको
सम	सम्हाल कर
उन्नमति	ऊपर उठाता था
नृत्यन् पदा	नाचते हुए चरणोंसे
अनुनमयन्	उसी क्रमसे उसे झुकाते
दमयान्	कुचलते हुए
इह पुष्पैः	यहां फूलोंसे
प्रपूजित	भली प्रकार पूजितके
इव	समान
पुराणः पुमान्	वे पुराण पुरुष
बभूव	(शोभित) हुए ॥२९॥

तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणातपत्रो
रक्तं मुखैरुरु वमन् नृप भग्नगात्रः ।
स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं
नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥३०॥

तत् चित्रताण्डव विरुग्ण फण आतपत्रः रक्तं मुखैः उरु वमन् नृप भग्नगात्रः स्मृत्वा चराचर गुरुं पुरुषं पुराणं नारायणं तं अरणं मनसा जगाम ॥३०॥

नृप	राजन् !
तत्	(श्रीकृष्णके) उस
चित्रताण्डव	विचित्र ताण्डवसे
फण आतपत्रः	फणों रूपी छत्ता
विरुग्ण	बहुत घायल हो गया,
मुखैः	मुखोंसे
उरु रक्तं	बहुत-सा रक्त

वमन्	फेंकता हुआ	**नारायणं**	नारायणका
भग्नगात्रः	टूटे शरीरवाला वह	**स्मृत्वा**	स्मरण करके
चराचर गुरुं	चराचरके गुरु	**तं अरणं**	उन रक्षककी
पुराणं पुरुषं	पुराण पुरुष	**मनसा जगाम**	शरण गया ॥३०॥

कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं
पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्णफणातपत्रम् ।
दृष्ट्वाहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य
आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः ॥३१॥

कृष्णस्य गर्भं जगतः अतिभर अवसन्नं पार्ष्णि प्रहार परिरुग्ण फण आतपत्रं दृष्ट्वा अहि आद्यं उपसेदुः अमुष्य पत्न्य आर्ताः श्लथत् वसन भूषण केशबन्धाः ॥३१॥

गर्भं	उदरमें सम्पूर्ण	**अहि दृष्ट्वा**	सर्पको देखकर
जगतः	विश्वको लिए	**आर्ताः**	व्याकुला
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	**श्लथत्**	अस्त-व्यस्त
अतिभर	भारी भारसे	**वसन भूषण**	वस्त्र, आभूषण,
अवसन्नं	शिथिल पड़े,	**केशबन्धाः**	तथा जूड़ेवाली
पार्ष्णि	(उनकी) एड़ीके	**अमुष्य पत्न्य**	उसकी पत्नियां
प्रहार	प्रहारसे	**आद्यं उपसेदुः**	उन आदि पुरुषकी
परिरुग्ण	सब ओर फटे		शरण आयीं ॥३१॥
फण आतपत्रं	फणोंके छत्तेवाले		

तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृतार्भाः
कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः ।
साध्व्यः कृताञ्जलिपुटाः शमलस्य भर्तु-
र्मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥३२॥

तान् तं सुविग्न मनसः अथ पुरः कृत अर्भः कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः साध्व्यः कृत अञ्जलिपुटाः शमलस्य भर्तुः मोक्ष ईप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥३२॥

सुविग्न	अत्यन्त घबड़ाते	**भूत-**	समस्त प्राणियोंके
मनसः	चित्तसे	**पतिं**	स्वामीको
अथ अर्भः	उस समय बालकों-	**प्रणेमुः**	प्रणाम किया
	को	**तान्**	उन (पतिके)
पुरः कृत	आगे करके	**शमलस्य**	अपराधोंसे
साध्व्यः	उन सतियोंने	**भर्तुः मोक्ष**	पतिका छुटकारा
अंजिल	हाथ	**ईप्सवः**	चाहती हुई
पुटाः कृत	जोड़े हुए	**तं शरणदं**	उन शरण दाताकी
भुवि कायं	पृथ्वीपर शरीर	**शरणं प्रपन्नाः**	शरण ग्रहण की
निधाय	फैलाकर		॥३२॥

नागपत्न्य ऊचुः

न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्विषेऽस्मि-
स्तवावतारः खलनिग्रहाय ।
रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टे-
र्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥३३॥

न्यायः हि दण्डः कृत किल्विषे अस्मिन् तव अवतारः खल निग्रहाय
रिपोः सुतानां अपि तुल्य दृष्टेः धत्से दमं फलं एव अनुशंसन् ॥३३॥

हि तव	क्योंकि आपका	**रिपोः सुतानां**	शत्रु और पुत्रोंपर
अवतारः	अवतार	**अपि तुल्य**	भी समान
खल निग्रहाय	दुष्ट-दलनके लिए	**दृष्टेः**	दृष्टि रखनेवाले
	है,		आप
कृत किल्विषे	अपराध करनेवाले	**फलं एव**	परिणामको ही
अस्मिन्	इस (नाग) को	**अनुशंसन्**	ध्यानमें रखकर
दण्डः	दण्ड देना	**दण्डः धत्से**	दण्ड देते हैं ॥३३॥
न्याय्यः	उचित ही है,		

अनुग्रहोऽयं भवतः कृतो हि नो
दण्डोऽसतां ते खलु कल्मषापहः ।

यद् दन्दशूकत्वममुष्य देहिनः
क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव सम्मतः ॥३४॥

अनुग्रहः अयं भवतः कृतः हि नः दण्डः असतां ते खलु कल्मष अपहः यत् दन्दशूकत्वं अमुष्य देहिनः क्रोधः अपि ते अनुग्रह एव सम्मतः ॥३४॥

भवतः नः	आपका हमपर	**दन्दशूकत्वं**	सर्प-योनि प्राप्त हुई (उस पापसे)
अयं अनुग्रहः	यह अनुग्रह है,		
हि असतां	क्योंकि दुष्टोंको	**देहिनः**	इस शरीरधारीपर
ते दण्डः	आपका दण्ड	**ते क्रोधः अपि**	आपका क्रोध भी
खलु	निश्चय	**अनुग्रह एव**	अनुग्रह ही
कल्मष अपहः	पापहारी होता है,	**सम्मतः**	(हम) मानती हैं ॥३४॥
यत् अमुष्य	जिससे इनको		

तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं
निरस्तमानेन च मानदेन ।
धर्मोऽथ वा सर्वजनानुकम्पया
यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ॥३५॥

तपः सुतप्तं किं अनेन पूर्वं निरस्त मानेन च मानदेन धर्मः अथ वा सर्वजन अनुकम्पया यतः भवान् तुष्यति सर्वजीवः ॥३५॥

पूर्वं	पूर्व जन्ममें	**तपः सुतप्तं**	उत्तम तपस्या की,
अनेन	इन्होंने	**अथ वा**	अथवा
मानेन	अभिमान	**सर्वजन**	सब लोगोंपर
निरस्त	त्यागकर	**अनुकम्पया**	कृपा करते हुए
च	तथा	**धर्मः**	धर्म किया
मानदेन	दूसरोंको सम्मान देते हुए	**यतः सर्वजीवः**	जिससे सर्वात्मा
		भवान् तुष्यति	आप सन्तुष्ट होते हैं ॥३५॥
किं	क्या		

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे
तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ।

यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽऽचरत्तपो
विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता ॥३६॥

कस्य अनुभावः अस्य न देव विद्महे तव अङ्घ्रि रेणु स्पर्श अधिकारः यत् वाञ्छया श्रीः ललना आचरत् तपः विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता ॥३६॥

यत्	जिसे	**अङ्घ्रि रेणुः**	चरण-रजको
वाञ्छया	पानेकी इच्छासे	**स्पर्श**	स्पर्शकर
कामान् विहाय	भोगोंको त्यागकर	**अधिकारः**	अधिकार
धृतव्रता	व्रत धारण करके	**देव**	देव !
सुचिरं	बहुत समय तक	**अस्य कस्य**	इनके किस पुण्यका
श्रीः ललना	लक्ष्मी जैसी सुन्दरी	**अनुभावः**	प्रभाव हैं,
तपः आचरत्	तपस्या करती रहीं	**विद्महे न**	हम नहीं जानतीं
तव	उस आपकी		॥३६॥

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं
न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः ॥३७॥

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसा आधिपत्यं न योगसिद्धिः न अपुनः भवं वा वाञ्छन्ति यत् पादरजः प्रपन्नाः ॥३७॥

यत् पादरजः	जिनकी चरण-रजके	**न**	नहीं,
प्रपन्नाः	शरणागत लोग	**रसा**	पातालका
नाकपृष्ठं न	स्वर्ग नहीं	**आधित्यं न**	अधिपति होना नहीं,
च	तथा	**योगसिद्धिः**	योगकी सिद्धियां
सार्वभौमं	पृथ्वीका सम्राटपद	**न**	नहीं
न	नहीं,	**वा अपुनः भवं**	तथा मोक्ष भी
पारमेष्ठ्यं	ब्रह्माका पद	**न वाञ्छन्ति**	नहीं चाहते ॥३७॥

तदेष नाथाप दुराप्तमन्यै-
स्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः ।
संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो
यदिच्छतः स्याद् विभवः समक्षः ॥३८॥

तत् एष नाथ आप दुः अवाप अन्यैः तमः अजनिः क्रोधवशः अपि अहीशः संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणः यत् इच्छतः स्यात् विभवः समक्षः ॥३८॥

नाथ	प्रभो !	**अहीशः आप**	सर्पराज पा गया,
अन्यैः	दूसरोंके लिए	**संसारचक्रे**	इस संसार-चक्रमें
दुःअवाप	दुष्प्राप्य	**भ्रमतः**	भटकते हुए
तत्	वह (आपकी चरण-रज)	**शरीरिणः**	शरीरधारीके
तमः	तमोगुणी	**यत्**	जिसका
अजनिः	योनिमें उत्पन्न	**समक्षः**	साक्षात्कार पानेकी
क्रोधवशः	क्रोधके वशमें रहने-वाला	**इच्छतः**	इच्छा मात्र करनेसे
		विभवः	(मोक्षका भी) वैभव
अपि एष	होकर भी यह	**स्यात्**	प्राप्त हो जाता है ॥३८॥

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।
भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥३९॥

नमः तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने भूत आवासाय भूताय पराय परमात्मने ॥३९॥

तुभ्यं भगवते	आप भगवान	**भूताय**	प्राणि स्वरूप
पुरुषाय	जीवस्वरूप	**पराय**	सबसे परे
महात्मने	पुरुषोत्तम	**परमात्मने**	परमात्मा
भूत आवासाय	सब प्राणियोंमें रहने वाले	**तुभ्यं नमः**	आपको नमस्कार ॥३९॥

ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अगुणायाविकाराय नमस्तेऽप्राकृताय च ॥४०॥

ज्ञान विज्ञान निधये ब्रह्मणे अनन्त शक्तये अगुणाय अविकाराय नमः ते अप्राकृताय च ॥४०॥

ज्ञान विज्ञान	ज्ञान-विज्ञानके	**अविकाराय**	निर्विकार
निधये	कोश	**च**	तथा
ब्रह्मणे	ब्रह्मस्वरूप	**अप्राकृताय**	प्रकृतिसे अस्पृष्ट
अनन्त शक्तये	अनन्त शक्तिवाले	**ते नमः**	अपको नमस्कार ॥४०॥
अगुणाय	निर्गुण		

कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ।
विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥४१॥

कालाय कालनाभाय काल अवयव साक्षिणे विश्वाय तत् उपद्रष्ट्रे तत् कर्त्रे विश्वहेतवे ॥४१॥

कालाय	कालस्वरूप	**विश्वाय**	विश्वरूप
कालनाभाय	कालके आश्रय	**तत्**	उस विश्व) के
काल	कालके (दिन-कल्पादि)	**उपद्रष्ट्रे**	तटस्थ द्रष्टा
		तत् कर्त्रे	उसके निर्माता तथा
अवयव	अंगोंके	**विश्व हेतवे**	विश्वके कारण ॥४१॥
साक्षिणे	साक्षी		

भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने ।
त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥४२॥

भूत मात्र इन्द्रिय प्राण मनः बुद्धि आशय आत्मने त्रिगुणेन अभिमानेन गूढ स्वात्म अनुभूतये ॥४२॥

भूत मात्र	पंचभूत, पंचतन्मात्रा,	**त्रिगुणेन**	त्रिगुणात्मक
		अभिमानेन	अभिमान द्वारा
इन्द्रिय प्राण	इन्द्रिय, प्राण,	**स्वात्म**	अपने आत्मा
मनः बुद्धि	मन, बुद्धि,	**अनुभूतये**	अनुभवको
आशय आत्मने	अन्तःकरण स्वरूप,	**गूढ**	छिपाये हुए ॥४२॥

नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ।
नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥४३॥

नमः अनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते नानावाद अनुरोधाय वाच्य वाचक शक्तये ॥४३॥

अनन्ताय	अनन्त,	**अनुरोधाय**	जाननेवाले,
सूक्ष्माय	अत्यन्त सूक्ष्म	**वाच्य वाचक**	शब्दार्थ एवं शब्दकी
कूटस्थाय	कूटस्थ	**शक्तये नमः**	शक्ति स्वरूप आप-
विपश्चिते	सर्वज्ञ,		को नमस्कार ॥४३॥
नानावाद	नाना मतोंसे		

नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये ।
प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥४४॥

नमः प्रमाण मूलाय कवये शास्त्र योनये प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥४४॥

प्रमाण मूलाय	(प्रत्यक्षादि) प्रमाणों- के मूलाधार	**प्रवृत्ताय**	प्रवृत्ति-परक एवं
कवये नमः	ज्ञान स्वरूप आपको नमस्कार,	**निवृत्ताय**	निवृत्ति-परक
		निगमाय	श्रुति स्वरूप
शास्त्र योनये	शास्त्रोंके उत्पत्ति स्थान	**नमो नमः**	आपको बार-बार नमस्कार ॥४४॥

नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥४५॥

नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥४५॥

सात्वतां पतये	भक्तोंके स्वामी	**कृष्णाय**	श्रीकृष्ण
वसुदेवसुताय	वसुदेव-पुत्र (वासुदेव)	**रामाय**	बलराम (सङ्कर्षण) को

नमः	नमस्कार	**अनिरुद्धाय**	अनिरुद्ध (चतुर्व्यूह)
च प्रद्युम्नाय	तथा प्रद्युम्न एवं		को
		नमः	नमस्कार ॥४५॥

नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च ।
गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥४६॥

नमः गुण प्रदीपाय गुण आत्मच्छादनाय च गुण वृत्ति उपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥४६॥

गुण प्रदीपाय	अन्तःकरण तथा वृत्तियोंके प्रकाशक,	**उपलक्ष्याय**	(कुछ) उपलक्षित होनेवाले,
गुण आत्म-	उन्हीं गुणोंसे अपने-	**गुणद्रष्ट्रे**	उन गुणोंके साक्षी
	को	**स्वसंविदे**	स्वयं ज्ञानरूपको
च्छादनाय	ढक लेनेवाले	**नमः**	नमस्कार ॥४६॥
च गुण वृत्ति	तथा गुणोंकी वृत्तियोंसे		

अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ।
हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥४७॥

अव्याकृत विहाराय सर्वव्याकृत सिद्धये हृषीकेश नमः ते अस्तु मुनये मौनशीलिने ॥४७॥

सर्वव्याकृत	सब विकारवान् प्रपञ्चकी	**मौनशीलिने**	मननशाली
		मुनये	मुनिस्वरूप
सिद्धये	सिद्धिके लिए	**हृषीकेश**	हृषीकेश
अव्याकृत	विकारहीन	**ते नमः**	आपको नमस्कार
विहाराय	लीला (स्वधाममें) करनेवाले	**अस्तु**	है ॥४७॥

परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः ।
अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥४८॥

पर अवर गतिज्ञाय सर्व अध्यक्षाय ते नमः अविश्वाय च विश्वाय तत् द्रष्ट्रे अस्य च हेतवे ॥४८॥

पर अवर	कारण-कार्य सब
गतिज्ञाय	गतियोंको जानने-वाले,
सर्व अध्यक्षाय	सबके अध्यक्ष,
अविश्वाय	विश्वातीत,
च विश्वाय	तथा विश्वरूप,
तत् द्रष्ट्रे	उस (विश्व) के साक्षी,
च अस्य हेतवे	तथा इस जगत्के कारण
ते नमः	आपको नमस्कार ॥४८॥

त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान् प्रभो
गुणैरनीहोऽकृतकालशक्तिधृक् ।
तत्तत्स्वभावान् प्रतिबोधयन् सतः
समीक्षयामोघविहार ईहसे ॥४९॥

त्वं हि अस्य जन्म स्थिति संयमान् प्रभो गुणैः अनीहः अकृत काल-शक्ति धृक् तत् तत् स्वभावान् प्रतिबोधयन् सतः समीक्षया अमोघविहार ईहसे ॥४९॥

प्रभो	प्रभो !
हि त्वं	क्योंकि आप
अनीहः	चेष्टाहीन हैं, फिर भी
काल शक्ति धृक्	काल शक्तिको स्वीकार करके
गुणैः	गुणोंके द्वारा
अस्य जन्म	इस संसारकी उत्पत्ति
स्थिति	स्थिति
संयमान्	प्रलय
अकृत	करते हैं
अमोघविहार	अमोघ चेष्टावाले आप
समीक्षया	अपनी सम्यक् दृष्टि-से ही
तत् तत्	उन उन
स्वभावान्	अपने स्वरूप जीवोंको
प्रतिबोधयन्	(सृष्टिके प्रारम्भमें) जगाते हुए
सतः ईहसे	सत्वगुणसे चेष्टावान् होते हैं ॥४९॥

तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां
शान्ता अशान्ता उत मूढयोनयः ।
शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनावितुं सतां
स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ॥५०॥

तस्य एव ते अमूः तनवः त्रिलोक्यां शान्ता अशान्ता उत मूढयोनयः शान्ताः प्रियाः ते हि अधुना अवितुं सतां स्थातुः च ते धर्म परीप्सया ईहतः ॥५०॥

त्रिलोक्यां	त्रिलोकीमें
तस्य एव ते	उसी आपकी ही
अमूः तनवः	ये लीला मूर्तियाँ
शान्ता अशान्ता	शान्त, अशान्त
उत मूढयोनयः	तथा (तमोगुण प्रधान) मूढ-योनियों के प्राणी हैं
हि अधुना	क्योंकि इस समय (आप)
सतां अवितुं	सत्पुरुषोंकी रक्षाके लिये
स्थातुः	(विश्वकी) स्थितिके लिये
धर्मं परिप्सया	धर्मकी रक्षाके लिये
ते ईहत	आपकी चेष्टा हो रही है
शान्ताः	शान्त (प्राणी)
ते प्रियाः	आपको प्रिय हैं ॥५०॥

अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः ।
क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन् मूढस्य त्वामजानतः ॥५१॥

अपराधः सकृत् भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः क्षन्तुम् अर्हसि शान्त आत्मन् मूढस्य त्वां अजानतः ॥५१॥

स्वप्रजाकृतः	अपनी प्रजाका किया हुआ
सकृत् अपराधः	एक बारका अपराध
भर्त्रा सोढव्यः	स्वामीको सह लेना चाहिए
त्वां अजानतः	आपको न जानने-वाले
मूढस्य	इन मूढको
शान्त आत्मन्	आप शान्त स्वरूप-को
क्षन्तुम् अर्हसि	क्षमा कर देना चाहिए ॥५१॥

अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणांस्त्यजति पन्नगः ।
स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥५२॥

अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणान् त्यजति पन्नगः स्त्रीणां नः साधु शोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥५२॥

भगवन्	भगवन् !
पन्नगः	यह सर्प
प्राणान् त्यज्ञति	प्राण त्याग करने ही वाला है
साधु शोच्यानां	सत्पुरुषों द्वारा शोचनीय मानी जाने वाली
नः स्त्रीणां	हम स्त्रियोंपर
अनुगृह्णीष्व	अनुग्रह कीजिए
पतिः प्राणः	हमें पतिका प्राण
प्रदीयतां	(दानमें) दीजिए ॥५२॥

विधेहि ते किङ्करीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया ।
यच्छ्रद्धयानुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतोभयात् ॥५३॥

विधेहि ते किङ्करीणां अनुष्ठेयं तव आज्ञया यत् श्रद्धया अनुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतः भयात् ॥५३॥

नः किङ्करीणां	हम दासियोंको
तव आज्ञया	आपकी आज्ञासे
अनुष्ठेयं	जो करना हो उसकी
विधेहि	आज्ञा दीजिए
यत्	जिस (आपकी आज्ञाका)
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक
अनुतिष्ठत्	पालन करनेसे
वै	निश्चय (प्राणी)
सर्वतः ते	सब ओरसे वे
भयात् मुच्यते	भयसे छूट जाते हैं ॥५३॥

श्रीशुक उवाच

इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान् समभिष्टुतः ।
मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्जाङ्घ्रिकुट्टनैः ॥५४॥

इत्थं स नागपत्नीभिः भगवान् सम अभिष्टुतः मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्ज अङ्घ्रि कुट्टनैः ॥५४॥

इत्थं	इस प्रकार
नागपत्नीभिः	नाग पत्नियों द्वारा
सम अभिष्टुतः	भली प्रकार स्तुति करनेपर
स भगवान्	उन भगवान्ने
अङ्घ्रि कुट्टनैः	पैरकी ठोकरोंसे
भग्नशिरसं	फटे फणोंवाले
मूर्च्छितं	मुर्छित (नाग) को
विससर्ज	छोड़ दिया ॥५५॥

प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम् ।
कृच्छ्रात् समुच्छ्वसन् दीनः कृष्णं प्राह कृताञ्जलिः ॥५५॥

प्रतिलब्ध इन्द्रियप्राणः कालियः शनकैः हरिं कृच्छ्रात् सम उच्छ्वसन् दीनः कृष्णं प्राह कृत अञ्जलिः ॥५५॥

शनकैः	धीरे-धीरे	**दीनः**	दीनतापूर्वक
इन्द्रियप्राणः	इन्द्रियोंमें चेतना	**कृत अञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
प्रतिलब्ध	लौट आनेपर	**हरिं कृष्णं**	श्रीहरि श्रीकृष्णसे
कृच्छ्रात्	कष्ट पूर्वक	**प्राह**	बोला ॥५५॥
सम उच्छ्वसन्	ठीक श्वास ले पाने-पर		

कालिय उवाच*

वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः ।
स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥५६॥

वयं खलाः सह उत्पत्या तामसा दीर्घमन्यवः स्वभावः दुस्त्यजः नाथ लोकानां यत् असत् ग्रहः ॥५६॥

नाथ	स्वामी !	**वयं सह**	हम तो
यत् लोकानां	जिससे लोगोंमें	**उत्पत्या**	जन्मसे ही
असत् ग्रहः	दुराग्रह होता है, वह	**खलाः तामसा**	दुष्ट, तमोगुणी,
स्वभावः	अपना स्वभाव	**दीर्घं**	बहुत समय तक
दुस्त्यजः	त्याग देना बहुत कठिन है और	**मन्यवः**	क्रोध रखनेवाले हैं ॥५६॥

त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातर्गुणविसर्जनम् ।
नानास्वभाववीर्यौजोयोनिबीजाशयाकृति ॥५७॥

त्वया सृष्टं इदं विश्वं धातः गुण विसर्जनं नाना स्वभाव वीर्यं ओजः योनि बीज आशय आकृतिः ॥५७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

धातः	विश्वविधाता !	**वीर्य ओजः**	वीर्य, बल,
गुण विसर्जनं	गुणोंके कार्यभेदसे	**योनि बीज**	योनि, संस्कार,
त्वया इदं	आपने इस	**आशय**	अन्तःकरण और
विश्वं	संसारको	**आकृतिः**	आकार वाला
नाना	अनेक प्रकारके	**सृष्टं**	बनाया है ॥५७॥
स्वभाव	स्वभाव		

वयं च तत्र भगवन् सर्पा जात्युरुमन्यवः ।
कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥५८॥

वयं च तत्र भगवन् सर्पा जाति उरु मन्यवः कथं त्यजामः त्वत् मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥५८॥

भगवन्	भगवन् !	**त्वत् दुस्त्यजां**	आपकी दुस्त्याज्य
तत्र वयं च	उसीमें हम भी	**मायां**	मायाको
जाति	जातिसे	**स्वयं मोहिताः**	स्वयं मोहित रहते
उरु मन्यवः	अत्यन्त क्रोधी	**कथं त्यजामः**	कैसे छोड़ सकते हैं ॥५८॥
सर्पा	सर्प हैं		

भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः ।
अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद् विधेहि नः ॥५९॥

भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञः जगदीश्वरः अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तत् विधेहि नः ॥५९॥

सर्वज्ञः	सर्वज्ञ !	**अनुग्रहं**	अनुग्रह
जगदीश्वरः	जगदीश्वर	**वा निग्रहं**	अथवा दण्ड देना,
हि तत्र	क्योंकि इसमें भी	**मन्यसे**	जो ठीक समझें
भवान् कारणं	आप ही कारण हैं	**विधेहि**	वह कीजिये ॥५९॥
तत् नः	अतः हमपर		

श्रीशुक उवाच

इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान् कार्यमानुषः ।

इति आकर्ण्य वचः प्राह भगवान् कार्य मानुषः ।

इति	(कालियकी) यह	**कार्यं**	प्रयोजन वश
वचः	बात	**मानुषः**	मनुष्य बने
आकर्ण्य	सुनकर	**भगवान् प्राह**	भगवानने कहा

श्रीभगवानुवाच*

नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि माचिरम् ।
स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यतां नदी ॥६०॥

न अत्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि माचिरम् स्वज्ञाति अपत्य दार आढ्यः गाः नृभिः भुज्यतां नदी ॥६०॥

सर्प	सर्प !	**समुद्रं याहि**	समुद्रमें चले जाओ
अत्र त्वया	यहां तुमको	**माचिरं**	देर मत करो
न	नहीं रहना चाहिए	**गाः**	गायों और
स्थेयं	(तुम)	**नृभिः**	मनुष्यों द्वारा
स्वज्ञाति	अपनी जाति	**नदी**	इस नदी (यमुना)
अपत्य दार	पुत्र-स्त्रियोंसे		का
आढ्यः	बहुत बढ़े हो (अतः)	**भुज्यतां**	उपभोग हो ॥६०॥

त एतत् संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् ।
कीर्तयन्नुभयोः सन्ध्योर्न युष्मद् भयमाप्नुयात् ॥६१॥

यः एतत् संस्मरेत् मर्त्यः तुभ्यं मत् अनुशासनं कीर्तयन् उभयोः सन्ध्योः न युष्मत् भयं आप्नुयात् ॥६१॥

यः मर्त्यः	जो मनुष्य	**कीर्तयन**	कीर्तन करे
उभयोः सन्ध्योः	दोनों सन्ध्या समय	**युष्मत्**	वह तुम लोगों
तुभ्यं	तुमको दी गयी		(सर्पों) से
एतत् मत्	इस मेरी	**भयं न**	भय नहीं
अनुशासनं	आज्ञाको	**आप्नुयात्**	पावेगा ॥६१॥
संस्मरेत्	स्मरण करे या		

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

योऽस्मिन् स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः ।
उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६२॥

यः अस्मिन् स्नात्वा मत् आक्रीडे देव आदीन् तपयेत् जलैः उपोष्य मां स्मरन् अर्चेत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६२॥

यः अस्मिन्	जो इस	जलैः	जलसे
मत् आक्रीडे	मेरे क्रीडास्थानमें	तर्पयेत्	तर्पण करेगा तथा
स्नात्वा	स्नान करके	अर्चेत्	पूजा करेगा
उपोष्य मां	उपवास करके मुझे	सर्वपापैः	वह सब पापोंसे
स्मरन्	स्मरण करते हुए	प्रमुच्यते	मुक्त हो जायगा ॥६२॥
देव आदीन्	देवतादिको		

द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः ।
यद्भयात् स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलाञ्छितम् ॥६३॥

द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदं एतं उपाश्रितः यत् भयात् स सुपर्णः त्वां न अद्यात् मत् पदलाञ्छितम् ॥६३॥

यत् भयात्	जिनके भयसे	स सुपर्णः	वे गरुड़
रमणकं द्वीपं	रमणक द्वीपको	मत्	मेरे
हित्वा	त्याग कर	पादलाञ्छितं	चरणोंसे चिह्नित
एतं ह्रदं	इस कुंडका (तुमने)	त्वां न अद्यात्	तुमको नहीं खायँगे ॥६३॥
उपाश्रितः	आश्रय लिया था		

श्रीशुक उवाच

एवमुक्तो भगवता कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।
तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ॥६४॥

एवं उक्तः भगवता कृष्णेन अद्भुत कर्मणा तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यः च सादरम् ॥६४॥

एवं अद्भुत	इस प्रकार
कर्मणा	कर्म करनेवाले
भगवता	भगवान
कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा
उक्तः	आज्ञा देनेपर
तं मुदा	उनकी आनन्दपूर्वक
सादरं	आदर सहित उसने
च	तथा
नागपत्न्यः	नाग पत्नियोंने भी
पूजयामास	पूजा की ॥६४॥

दिव्याम्बरस्रङ्मणिभिः पराध्यैरपि भूषणैः ।
दिव्यगन्धानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ॥६५॥

दिव्य अम्बर स्रक् मणिभिः पराध्यैः अपि भूषणैः दिव्य गन्ध अनुलेपैः च महत्या उत्पलमालया ॥६५॥

दिव्य अम्बर	दिव्य वस्त्र
स्रक् मणिभिः	मणियोंकी माला,
च पराध्यैः	तथा बहुमूल्य
भूषणैः	आभूषणों
दिव्य गन्ध	दिव्य सुगन्धित
अनुलेपैः	अंगराग
च महत्या	एवं भारी
उत्पलमालया	कमलोंकी मालासे ॥६५॥

पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम् ।
ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवन्द्य तम् ॥६६॥

पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजं ततः प्रीतः अभ्य अनुज्ञातः परिक्रम्य अभिवन्द्य तम् ॥६६॥

तं जगन्नाथं	उन जगन्नाथ
गरुडध्वजं	गरुड़-ध्वजकी
पूजयित्वा	पूजा करके
प्रसाद्य	(उनको) प्रसन्न करके
ततः प्रीतः	तब प्रसन्न होकर
अभ्य	भली प्रकार
अनुज्ञातः	अनुमति पाकर
परिक्रम्य	(उनकी) परिकमा करके
अभिवन्द्य	पुनः प्रणाम करके ॥६६॥

सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह ।
तदैव सामृतजला यमुना निर्विषाभवत् ।
अनुग्रहाद् भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥६७॥

स कलत्र सुहृत् पुत्रः द्वीपं अब्धेः जगाम ह तत् एव सा अमृत जला यमुना निर्विषा अभवत् अनुग्रहात् भगवतः क्रीडा मानुष रूपिणः ॥६७॥

कलत्र	स्त्रियों	**भगवतः**	भगवानके
सुहृत	सम्बन्धियों	**अनुग्रहात्**	अनुग्रहसे
स पुत्रः	तथा पुत्रोंके साथ	**तत् एव**	उसी समयसे ही
अब्धेः	समुद्रके	**सा अमृत**	वह अमृतके समान
द्वीपं	द्वीप (रमणक) में	**जला**	जलवाली
ह जगाम	निश्चित चला गया	**यमुना**	यमुना
क्रीडा मानुष	लीलासे मनुष्य	**निर्विषा**	विष-रहित
रूपिणः	रूपधारी	**अभवत्**	हो गयी ॥६७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे **पूर्वार्धे** कालियमोक्षणं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

राजोवाच

नागालयं रमणकं कस्मात्तत्याज कालियः ।
कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम् ॥ १ ॥

नाग आलयं रमणकं कस्मात् ततयाज कालियः कृतं किं बा सुपर्णस्य तेन एकेन असमञ्जसम् ॥१॥

नाग आलयं	नागोंके निवास
रमणकं	रमणक द्वीपको
कालियः	कालिय नागने
कस्मात् तत्याज	क्यों छोड़ा था
वा तेन एकेन	अथवा उस अकेलेने ही
सुपर्णस्य	गरुड़का
किं असमञ्जसं	क्या अपराध
कृतं	किया था ॥१॥

श्रीशुक उवाच

उपहार्यैः सर्पजनैर्मासि मासीह यो बलिः ।
वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ् निरूपितः ॥ २ ॥

उपहार्यैः सर्प जनैः मासि मासि इह यः बलिः वानस्पत्यः महाबाहो नागानां प्राक् निरूपितः ॥२॥

महाबाहो	विशाल बाहु परीक्षित !
नागानां यः	नागोंने जो
प्राक् निरूपितः	पूर्वकालमें निश्चय किया था कि
इह मासि मासि	यहां प्रत्येक महीने
वानस्पत्यः	निश्चित वृक्षके नीचे
सर्प जनैः	एक-एक सर्पकी
उपहार्यैः	(गरुड़को) उपहार स्वरूप
बलिः	बलि दी जाय ॥२॥

स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति नागाः पर्वणि पर्वणि ।
गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥ ३ ॥

स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति नागाः पर्वणि पर्वणि गोपीथाय आत्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥३॥

आत्मनः	अपनी	**महात्मने**	महाकाय
गोपीथाय	रक्षाके लिए	**सुपर्णाय**	गरुड़को
सर्वे नागाः	सब नाग	**स्वं स्वं भागं**	अपना अपना भाग
पर्वणि पर्वणि	प्रत्येक पूर्णिमाको	**प्रयच्छन्ति**	देते थे ॥३॥

विषवीर्यमदाविष्टः काद्रवेयस्तु कालियः ।
कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम् ॥ ४ ॥

विष वीर्य मद आविष्टः काद्रवेयः तु कालियः कदर्थी कृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम् ॥४॥

काद्रवेयः	कद्रूका पुत्र	**गरुडं**	गरुड़को
कालियः तु	कालिय तो	**कदर्थी कृत्य**	तुच्छ समझकर
विष वीर्य	विष-वीर्यके	**तं बलिं**	उस भेंटको
मद आविष्टः	गर्वके आवेशमें आकर	**स्वयं बुभुजे**	स्वयं खा गया ॥४॥

तच्छ्रुत्वा कुपितो राजन् भगवान् भगवत्प्रियः ।
विजिघांसुर्महावेगः कालियं समुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

तत् श्रुत्वा कुपितः राजन् भगवान् भगवत् प्रियः विजिघांसुः महावेगः कालियं सम उपाद्रवत् ॥५॥

भगवत् प्रियः	भगवान्के प्रिय	**कालियं**	कालियको
भगवान्	भगवान गरुड़ने	**विजिघांसुः**	मार देनेके लिए
तत् श्रुत्वा	यह सुनकर	**सम उपाद्रवत्**	उसपर टूट पड़े ॥५॥
महावेगः	वे अत्यन्त तीव्र वेगवाले		

तमापतन्तं तरसा विषायुधः
प्रत्यभ्ययादुच्छ्रितनैकमस्तकः ।
दद्भिः सुपर्णं व्यदशद् ददायुधः
करालजिह्वोच्छ्वसितोग्रलोचनः ॥ ६ ॥

तं आपतन्तं तरसा विष आयुधः प्रति अभ्ययात् उच्छ्रित न एक मस्तकः दद्भिः सुपर्णं व्यदशत् दद् आयुधः कराल जिह्वा उच्छ्वसित उग्रलोचनः ॥६॥

तं तरसा	उनको वेगपूर्वक	**दद् आयुधः**	दांत रूप अस्त्रवाला (नाग)
आपतन्तं	झपटते समय	**उच्छ्वासित**	फुफकारता हुआ
विष आयुधः	विष रूपी हथियार-वाला,	**तं प्रति**	उन (गरुड़) की ओर
न एक मस्तकः	अनेक सिरों (फणों) को	**अभ्ययात्**	सामने झपटा और
उच्छ्रित	उठाये	**सुपर्णं**	गरुड़को
उग्रलोचनः	भयानक नेत्रोंवाला,	**दद्भिः**	दांतोंसे
कराल जिह्वा	विकराल जीभों-वाला,	**व्यदशत्**	भली प्रकार डंसा ॥६॥

तं तार्क्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युमान्
प्रचण्डवेगो मधुसूदनासनः ।
पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा
जघान कद्रूसुतमुग्रविक्रमः ॥ ७ ॥

तं तार्क्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युमान् प्रचण्ड वेगः मधुसूदन आसनः पक्षेण सव्येन हिरण्य रोचिषा जघान कद्रू सुतं उग्र विक्रमः ॥७॥

तार्क्ष्यपुत्रः	त्वष्ट्रा-नन्दन,	**उग्र विक्रमः**	प्रचण्ड पराक्रम
मधुसूदन	भगवान् नारायणके	**मन्युमान**	क्रुद्ध उन गरुड़ने
आसनः	वाहन	**तं कद्रू सुतं**	उस कद्रू के पुत्र कालियको
प्रचण्ड वेगः	बहुत तीव्र गतिवाले,		

निरस्य	झटककर (फेंक दिया) और	**सव्येन पक्षेण**	अपने बायें पंखसे
हिरण्य रोचिषा	स्वर्णके समान कान्तिवाले	**जघान**	मारा ॥७॥

सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीव विह्वलः ।
ह्रदं विवेश कालिन्द्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥८॥

सुपर्ण पक्ष अभिहतः कालियः अतीव विह्वलः ह्रदं विवेश कालिन्द्याः तत् अगम्यं दुरासदम् ॥८॥

सुपर्ण पक्ष अभिहतः	गरुड़के पंखसे मारे जानेपर	**दुरासदं**	(दूसरोंके लिए भी गहरे होनेसे) अप्रवेश्य
कालियः	कालिय नागने	**कालिन्द्याः**	यमुनाके (इस)
अतीव	अत्यन्त	**ह्रदं विवेश**	कुंडमें घुस गया
विह्वलः	व्याकुल होकर		॥८॥
तत्	उनके लिए		
अगम्यं	अगम्य		

तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम् ।
निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत् ॥९॥

तत्र एकदा जलचरं गरुडः भक्ष्यं ईप्सितं निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितः अहरत् ॥९॥

एकदा तत्र	एक बार वहां	**जलचरं**	एक जलचर मत्स्य-
सौभरिणा	(तप करनेवाले) सौभरि मुनि द्वारा		को
		प्रसह्य	बलपूर्वक
निवारितः	रोके जानेपर भी	**अहरत्**	पकड़कर खालिया
क्षुधितः गरुडः	भूखे गरुड़ने		॥९॥
ईप्सितं भक्ष्यं	अपने अभीष्ट आहार		

मीनान् सुदुःखितान् दृष्ट्वा दीनान् मीनपतौ हते ।
कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥१०॥

मीनान् सुदुःखितान् दृष्ट्वा दीनान् मीनपतौ हते कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्य क्षेमं आचरन् ॥१०॥

मीनपतौ	मत्स्यराजके	**तत्रत्य**	वहां रहनेवाले प्राणियोंकी
हते	मारे-मारे जानेपर	**क्षेमं आचरन्**	सुरक्षा करते हुए
सुदुःखितान	अत्यन्त दुःखी	**सौभरिः प्राह**	सौभरि मुनि बोले ॥१०॥
दीनान् मीनान्	बेचारी मछलियोंको		
दृष्ट्वा	देखकर		
कृपया	कृपापूर्वक		

अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान् स खादति ।
सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥११॥

अत्र प्रविश्य गरुडः यदि मत्स्यान् स खादति सद्यः प्राणैः वियुज्येत सत्यं एतत् ब्रवीमि अहम् ॥११॥

यदि गरुडः	यदि गरुड़	**वियुज्येत**	विमुक्त हो जायगा,
अत्र प्रदिश्य	यहां आकर	**अहं एतत्**	मैं यह
स मत्स्यान्	वह मछलियां	**सत्यं ब्रवीमि**	सत्य कह रहा हूँ ॥११॥
खादति	खायगा तो		
सद्यः प्राणैः	तत्काल प्राणोंसे		

तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः ।
अवात्सीद् गरुडाद् भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥१२॥

तं कालियः परं वेद न अन्यः कश्चन लेलिहः अवात्सीत् गरुडात् भीतः कृष्णेन स विवासितः ॥१२॥

तं परं	इस बातको केवल	**भीतः**	डरकर (वह)
कालियः	कालिय नाग ही	**अवात्सीत्**	(वहां) बस गया
वेद	जानता था,	**कृष्णेन**	श्रीकृष्णके द्वारा
अन्यः कश्चन	दूसरा कोई	**स**	वह
लोलिहः न	सर्प नहीं जानता था,	**विवासितः**	निर्वासित कर दिया गया ॥१२॥
गरुडात्	(अतः) गरुड़से		

कृष्णं ह्रदाद् विनिष्क्रान्तं दिव्यस्रग्गन्धवाससम् ।
महामणिगणाकीर्णं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥१३॥

कृष्णं ह्रदात् विनिष्क्रान्तं दिव्यस्रक् गन्ध वाससं महामणिगण आकीर्णं जाम्बूनद परिष्कृतम् ॥१३॥

दिव्यस्रक्	दिव्यमाला,	**आकीर्णं**	खूब भरे (आभूषणोंसे) ढकेसे
गन्ध	चन्दन,		
वाससं	वस्त्र धारण किये,	**ह्रदात्**	उस कुण्डसे
जाम्बूनद	स्वर्णमें	**विनिष्क्रान्तं**	निकलते हुए
परिष्कृतं	जटित	**कृष्णं**	श्रीकृष्णको ॥१३॥
महामणिगणं	महामणियोंसे		

उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इवासवः ।
प्रमोदनिभृतात्मानो गोपाः प्रीत्याभिरेभिरे ॥१४॥

उपलभ्य उत्थिताः सर्वे लब्ध प्राणा इव असवः प्रमोद निभृत आत्मानः गोपाः प्रीत्या अभिरेभिरे ॥१४॥

उपलभ्य	पाकर	**प्रमोद निभृत**	आनन्द मग्न
प्राणा	प्राणोंको	**आत्मानः**	चित्तसे
लब्ध असवः	जीवन-प्राप्तके	**प्रीत्या**	प्रेम पूर्वक
इव	समान	**अभिरेभिरे**	आलिंगन करने लगे ॥१४॥
सर्वे गोपाः	सब गोप		
उत्थिताः	उठ खड़े हुए और		

यशोदा रोहिणी नन्दो गोप्यो गोपाश्च कौरव ।
कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसँल्लब्धमनोरथाः ॥१५॥

यशोदा रोहिणी नन्दः गोप्यः गोपाः च कौरव कृष्णं सम एत्य लब्ध ईहा आसन् लब्ध मनोरथाः ॥१५॥

कौरव	परीक्षित !	**नन्दः**	बाबानन्द
यशोदा	यशोदा मैया,	**च गोप्यः**	तथा गोपियां
रोहिणी	माता रोहिणी	**गोपाः**	गोप

कृष्णं	श्रीकृष्णके	लब्ध मनोरथाः	वे पूर्णकाम
सम एत्य	समीप पहुँचकर	आसन्	हो गये ॥१५॥
लब्ध ईहा	उनकी इच्छा पूरी हो गयी		

रामश्चाच्युतमालिङ्ग्य जहासास्यानुभाववित् ।
नगा गावो वृषा वत्सा लेभिरे परमां मुदम् ॥१६॥

रामः च अच्युतं आलिङ्गच जहास अस्य अनुभाव वित् नगा गावः वृषा वत्सा लेभिरे परमां मुदम् ॥१६॥

अस्य	इन (श्रीकृष्ण) के	जहास	हंसे,
अनुभाव	प्रभावको	नगा गावः	पर्वत, गायों,
वित्	जाननेवाले	वृषा वत्सा	बैलों, बछड़ोंने
रामः च	बलरामजी भी	परमां मुदं	अत्यन्त आनन्द
अच्युतं	श्रीकृष्णका	लेभिरे	पाया ॥१६॥
आलिङ्गच	आलिंगन करके		

नन्दं विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः ।
ऊचुस्ते कालियग्रस्तो दिष्ट्या मुक्तस्तवात्मजः ॥१७॥

नन्दं विप्राः सम आगत्य गुरवः सकलत्रकाः ऊचुः ते कालिय ग्रस्तः दिष्टया मुक्तः तव आत्मजः ॥१७॥

सकलत्रकाः	पत्नियोंके साथ	दिष्टचा	सौभाग्यवश
गुरवः	(गोपोंके) कुलगुरु	तव आत्मजः	तुम्हारा पुत्र
विप्राः	ब्राह्मणोंने	कालिय	कालिय नाग द्वारा
नन्दं सम	नन्दजीके समीप	ग्रस्तः	पकड़े जानेपर भी
आगत्य	आकर	मुक्तः	छूट गया है ॥१७॥
ते ऊचुः	उन्होंने कहा–		

देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे ।
नन्दः प्रीतमना राजन् गाः सुवर्णं तदादिशत् ॥१८॥

देहि दानं द्विजातीनां कृष्ण निर्मुक्ति हेतवे नन्दः प्रीतमना राजन् गाः सुवर्णं तदा आदिशत् ॥१८॥

कृष्ण	श्रीकृष्णके	**तदा नन्दः**	तब नन्दजीने
निर्मुक्ति	छूट जानेके	**प्रीतमना**	प्रसन्न चित्तसे
हेतवे	कारण (उपलक्ष) में	**गाः सुवर्णं**	गायों और स्वर्ण
द्विजातीनां	ब्राह्मणोंको		(दानका)
दानं देहि	दान दीजिये	**आदिशत्**	सङ्कल्प किया ॥१८॥
राजन्	राजन् !		

यशोदापि महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती ।
परिष्वज्याङ्कमारोप्य मुमोचाश्रुकलां मुहुः ॥१९॥

यशोदा अपि महाभागा नष्टलब्ध प्रजा सती परिष्वज्य अङ्कम् आरोप्य मुमोच अश्रुकलां मुहुः ॥१९॥

सती यशोदा	साध्वी यशोदाजी	**परिष्वज्य**	आलिंगन करके
अपि	भी	**अङ्कं आरोप्य**	गोदमें बैठाकर
नष्ट लब्ध	नष्ट हुए	**मुहः अश्रुकलां**	बार-बार अश्रुधारा
प्रजा	पुत्रको फिर पाकर	**मुमोच**	बहाने लगीं ॥१९॥

तां रात्रिं तत्र राजेन्द्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्शिताः ।
ऊषुर्व्रजौकसो गावः कालिन्द्या उपकूलतः ॥२०॥

तां रात्रिं तत्र राजेन्द्र क्षुत् तृट्भ्यां श्रमकर्शिताः ऊषुः व्रजौकसः गावः कालिन्द्या उपकूलतः ॥२०॥

राजेन्द्र	महाराज !	**गावः तत्र**	गायें वहीं
तां रात्रिं	उस रातमें	**कालिन्द्या**	यमुनाके
क्षुत् तृट्भ्यां	भूख-प्याससे तथा	**उपकूलतः**	कगारके ऊपर
श्रमकर्शितः	थके हुए	**ऊषुः**	सो रहे ॥२०॥
व्रजौकसः	व्रजवासी एवं		

तदा शुचिवनोद्भूतो दावाग्निः पर्वतो व्रजम् ।
सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुमुपचक्रमे ॥२१॥

तदा शुचिवन उद्भूतः दावाग्निः सर्वतः व्रजं सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुं उपचक्रमे ॥२१॥

तदा	उस समय	**व्रजं आवृत्य**	व्रजवासियोंको
निशीथ	आधी रातमें		घेरकर
शुचिवन	कांसके वनमें	**प्रदग्धुं**	जला देनेका
उद्भूतः	उठा (लगा) हुआ	**उपचक्रमे**	उपक्रम करने लगा
दावाग्निः	दावाग्नि		॥२१॥
सर्वतः	चारों ओरसे		

तत उत्थाय सम्भ्रान्ता दह्यमाना व्रजौकसः ।
कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामनुजमीश्वरम् ॥२२॥

तत उत्थाय सम्भ्रान्ता दह्यमाना व्रजौकसः कृष्णं ययुः ते शरणं माया मनुजं ईश्वरम् ॥२२॥

दह्यमाना	(आगकी गर्मीसे) जलते हुए	**माया मनुजं**	मायासे मनुष्य बने
		ईश्वरं	परमेश्वर
सम्भ्रान्ता	घबड़ाये हुए	**कृष्णं**	श्रीकृष्णकी
ते व्रजौकसः	वे व्रजवासी	**शरणं ययुः**	शरणमें गये ॥२२॥
तत उत्थाय	तब उठकर		

कृष्ण कृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम ।
एष घोरतमो वह्निस्तावकान् ग्रसते हि नः ॥२३॥

कृष्ण कृष्ण महाभाग हे राम अमित विक्रम एष घोरतमः वह्निः तावकान् ग्रसते हि नः ॥२३॥

कृष्ण	(बोले) कृष्ण !	**तावकान्**	हम तुम्हारे हैं,
महाभाग	महाभाग	**एष घोरतमः**	यह अत्यन्त भयानक
कृष्ण	कृष्ण !	**वह्निः नः**	अग्नि हम लोगोंको
हे अमित	हे अमित	**ग्रसते**	निगल लेना चाहती
विक्रम राम	पराक्रम बलराम !		है ॥२३॥
हि	क्योंकि		

सुदुस्तरान्नः स्वान् पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो ।
न शक्नुमस्त्वच्चरणं संत्यक्तुमकुतोभयम् ॥२४॥

सुदुस्तरात् नः स्वान् पाहि काल अग्नेः सुहृदः प्रभो न शक्नुमः त्वत् चरणं संत्यक्तुं अकुतः भयम् ॥२४॥

प्रभो	प्रभो !	**अकुतः भयं**	सर्वथा भयहीन
सुदुस्तरात्	इस अत्यन्त दुस्तर	**चरणं**	चरणोंको
काल अग्नेः	कालरूपी अग्निसे	**संत्यक्तुं**	छोड़नेमें
नः स्वान्	हम अपने	**शक्नुमः**	(हम) समर्थ
सुहृदः पाहि	सुहृदोंकी रक्षा करो	**न**	नहीं है ॥२४॥
त्वत्	तुम्हारे		

इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ।
तमग्निमपिबत्तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ॥२५॥

इत्थं स्वजन वैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः तं अग्नि अपिबत् तीव्रं अनन्तः अनन्त शक्तिधृक् ॥२५॥

इत्थं	इस प्रकार	**शक्तिधृक्**	शक्तिधारी
स्वजन	अपने लोगोंकी	**अनन्तः**	उन'अनन्त श्रीकृष्णने
वैक्लव्यं	व्याकुलता	**तं तीव्रं**	उस भयंकर
निरीक्ष्य	देखकर	**अग्नि**	अग्निको
जगदीश्वरः	जगदीश्वर	**अपिबत्**	पी लिया ॥२५॥
अनन्त	अनन्त		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे दावाग्निमोचनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः ।
अनुगीयमानो न्यविशद् व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥१॥

अथ कृष्णः परिवृतः ज्ञातिभिः मुदित आत्मभिः अनुगीयमानः न्यविशत् व्रजं गोकुल मण्डितम् ॥१॥*

अथ	इसके अनन्तर	**अनुगीयमानः**	प्रशंसित होते
मुदित	प्रसन्न	**कृष्णः**	श्रीकृष्ण
आत्मभिः	चित्त	**गोकुल**	गायोंके समूहसे
ज्ञातिभिः	अपनी जातिके लोगोंसे	**मण्डितं**	सुशोभित
		व्रजं	गोष्ठमें
परिवृतः	घिरे हुए	**न्यविशत्**	प्रविष्ट हुए ॥१॥

व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया ।
ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयाञ्छरीरिणाम् ॥२॥

व्रजे विक्रीडतः एवं गोपाल छद्म मायया ग्रीष्मः नाम ऋतुः अभवत् न अति प्रेयान् शरीरिणाम् ॥२॥

एवं	इस प्रकार	**ग्रीष्मः नाम**	ग्रीष्म नामक
मायया	मायासे	**ऋतुः अभवत्**	ऋतु हो गयी जो
गोपाल	गोपालका	**शरीरिणां**	शरीर-धारियोंको
छद्म	वेष बनाये	**अति प्रेयान्**	बहुत प्रिय
व्रजे	व्रजमें	**न**	नहीं है ॥२॥
विक्रीडतः	क्रीडा करते हुए		

---

* प्रसंगानुसार यह श्लोक पिछले सत्रहवें अध्यायका अन्तिम श्लोक होना चाहिये; क्योंकि अगले श्लोकसे ही दूसरे समयकी दूसरी लीलाका वर्णन प्रारम्भ हो गया है ।

स च वृन्दावनगुणैर्वसन्त इव लक्षितः ।
यत्रास्ते भगवान् साक्षाद् रामेण सह केशवः ॥३॥

स च वृन्दावन गुणैः वसन्त इव लक्षितः यत्र आस्ते भगवान् साक्षात् रामेण सह केशवः ॥३॥

यत्र रामेण	जहां बलरामजीके	**वृन्दावन**	वृन्दावनके
सह	साथ	**गुणैः**	गुणोंसे
साक्षात्	साक्षात्	**स च**	वह (ग्रीष्म) भी
भगवान्	भगवान	**वसन्त इव**	वसन्तके समान
केशवः आस्ते	केशव निवास करते थे उस	**लक्षितः**	जान पड़ता था ॥३॥

यत्र निर्झरनिर्ह्रादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम् ।
शश्वत्तच्छीकरजोषद्रुममण्डलमण्डितम् ॥४॥

यत्र निर्झर निर्ह्रादं निवृत्त स्वन झिल्लिकं शश्वत् तत् शीकरः जोष द्रुम मण्डल मण्डितम् ॥४॥

यत्र निर्झर	जहां झरनोंके	**शश्वत्**	निरन्तर
निर्ह्रादं	तुमुल नादसे	**शीकरः जोष**	फुहारोंके लगनेसे हरे भरे
झिल्लिकं	झींगुरोंका तीक्ष्ण		
स्वन	स्वर	**द्रुम मण्डल**	वृक्ष-समूहोंसे (वह वन)
निवृत्त	दब गया था,		
तत्	उन (झरनों) की	**मण्डितं**	अलंकृत था ॥४॥

सरित्सरः प्रस्रवणोर्मिवायुना
कह्लारकञ्जोत्पलरेणुहारिणा ।
न विद्यते यत्र वनौकसां दवो
निदाघवह्न्यर्कभवोऽतिशाद्वले ॥५॥

सरित् सरः प्रस्रवण उर्मि वायुना कह्लार कञ्ज उत्पल रेणु हारिणा न विद्यते यत्र वनओकसां दवः निदाघ वह्नि अर्कभवः अतिशाद्वले ॥५॥

अतिशाद्वले	अत्यन्त हरे-भरे	**वायुना**	वायुकी
यत्र	जिस (वन) में	**उर्मि**	लहरोंके कारण
सरित्	नदियों,	**निदाघ वह्नि**	ग्रीष्मके दावानल
सरः	सरोंवरों तथा		तथा
प्रस्रवण	झरनोंसे	**अर्कभवः**	सूर्यसे उत्पन्न
कह्लार कंज	लाल कमल,	**दवः**	ताप
	गुलाबी कमल,	**वन ओकसां**	वनवासियोंके लिए
उत्पल रेणु	श्वेत कमलकी पराग	**विद्यते न**	था ही नहीं ॥५॥
हारिणा	लाने वाले		

अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभि-
र्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः ।
न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्बणा
भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥६॥

अगाध तोय ह्रदिनी तट उर्मिभिः द्रवत् पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः न यत्र चण्डांशु करा विष उल्बणा भुवः रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥६॥

अगाध तोय	अथाह जलवाली	**चण्डांशु**	मार्तण्डकी
ह्रदिनी	सरिता (यमुना) का	**विष उल्बणा**	भयंकर विषैली
तट	किनारा	**करा यत्र**	किरणें जहां
द्रवत् उर्मिभिः	उठती लहरोंसे	**शाद्वलितं**	हरी-घासभरी
समन्ततः	चारों ओर	**भुवः रसं च**	भूमिका रस भी
पुरीष्याः	गली रेतवाले	**न गृह्णते**	नहीं ले पाती थीं
पुलिनैः	किनारेका था, अतः		॥६॥

वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् ।
गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥७॥

वनं कुसुमितं श्रीमत् नदत् चित्र मृग द्विजं गायन् मयूर भ्रमरं कूजत् कोकिल सारसम् ॥७॥

कुसुमितं	पुष्पित
वनं	वन
श्रीमत्	शोभाशाली था,
मृग द्विजं	पशु-पक्षी
चित्र	अनेक प्रकारके
नदत्	शब्द करते थे
मयूर भ्रमरं	मयूर और भ्रमर
गायन्	गाते थे,
कोकिल सारसं	कोयल और सारस
कूजत्	कुहकते थे ॥७॥

क्रीडिष्यमाणस्तत् कृष्णो भगवान् बलसंयुतः ।
वेणुं विरणयन् गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥८॥

क्रीडिष्यमाणः तत् कृष्णः भगवान् बल संयुतः वेणुं विरणयन् गोपैः गोधनैः संवृतः अविशत् ॥८॥

बल संयुतः	बलरामजीके साथ
क्रीडिष्यमाणः	खेलनेकी इच्छासे
भगवान्	भगवान्
कृष्णः	श्रीकृष्णने
गोपैः गोधनैः	गोपों और गायोंसे
संवृतः	घिरे हुए
वेणुं	उच्च स्वरसे वंशी
विरणयन्	बजाते हुए
तत्	उस (वन) में
अविशत्	प्रवेश किया ॥८॥

प्रवालबर्हस्तबकस्रग्धातुकृतभूषणाः ।
रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥९॥

प्रवालबर्ह स्तबक स्रक् धातु कृत भूषणाः राम कृष्ण आदयः गोपा ननृतुः युयुधुः जगुः ॥९॥

प्रवालबर्ह	किसलय, मयूर-पिच्छ,
स्तबक	पुष्प-गुच्छ,
स्रक्	माला, (गैरिकादि) वन
धातु	धातुओंसे
कृत भूषणाः	आभूषण बनाये हुए
राम कृष्ण आदयः गोपा	बलराम-श्रीकृष्ण आदि गोप-बालक
ननृतुः	(कभी) नाचते थे,
युयुधुः	(कभी) कुश्ती लड़ते थे,
जगुः	(कभी) गाते थे ॥९॥

कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन् ।
वेणुपाणितलैः शृंगैः प्रशशंसुरथापरे ॥१०॥

कृष्णस्य नृत्यतः केचित् जगुः केचित् अवादयन् वेणु पाणितलैः शृंगैः प्रशशंसुः अथ अपरे ॥१०॥

कृष्णस्य	श्रीकृष्णके
नृत्यतः	नाचते समय
केचित् जगुः	कोई गाते थे,
केचित् वेणु	कोई वंशी
पाणितलैः	हाथसे ताली या
शृंगैः अवादयन्	शृंगी बजाते थे
अथ अपरे	तथा दूसरे
प्रशशंसुः	प्रशंसा करते थे ॥१०॥

गोपजातिप्रतिच्छन्नौ देवा गोपालरूपिणः ।
ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥११॥

गोप जाति प्रतिच्छन्नौ देवा गोपालरूपिणः ईडिरे कृष्ण रामौ च नटा इव नटं नृप ॥११॥

नृप	राजन् !
नटा इव	नट लोग जैसे
नटं	नटकी (इस प्रकार)
गोप जाति	गोप जातिमें
प्रतिच्छन्नौ	छिपे हुए
देवा	देवता
गोपालरूपिणः	गोपाल रूपधारी
कृष्ण च	श्रीकृष्ण तथा
रामौ	बलरामकी
ईडिरे	स्तुति करते थे ॥११॥

भ्रामणैर्लङ्घनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः ।
चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥१२॥

भ्रामणैः लङ्घनैः क्षेपैः आस्फोटन विकर्षणैः चिक्रीडतुः नियुद्धेन काकपक्षधरः क्वचित् ॥१२॥

काकपक्षधरः	घुंघराली अलकों-वाले (राम-कृष्ण)
क्वचित्	कभी
भ्रामणैः	पकड़कर घुमादेने
लङ्घनैः	कूद जाने
क्षेपैः	दूर फेंक देने
आस्फोटन	ताल ठोंकने
विकर्षणैः	धक्का देने (आदि)
नियुद्धेन	कुश्तीके दाव-पेचसे
चिक्रीडतुः	खेलते थे ॥१२॥

क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम् ।
शशंसतुर्महाराज साधु साध्विति वादिनौ ॥१३॥

क्वचित् नृत्यत्सु च अन्येषु गायकौ वादकौ स्वयं शशंसतुः महाराज साधु-साधु इति वादिनौ ॥१३॥

महाराज	महाराज !	**साधु**	'बहुत सुन्दर !
क्वचित	कभी	**साधु**	बहुत सुन्दर'
अन्येषु च	किसी दूसरेके भी	**इति**	इस प्रकार
नृत्यत्सु	नाचते समय	**वादिनौ**	कहते हुए
स्वयं	स्वयं (दोनों भाई)	**शशंसतुः**	प्रशंसा करते थे ॥१३॥
गायकौ	गानेवाले और		
वादकौ	बजानेवाले बन जाते थे,		

क्वचिद् बिल्वैः क्वचित् कुम्भैः क्व चामलकमुष्टिभिः ।
अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥१४॥

क्वचित् बिल्वैः क्वचित् कुम्भैः क्व च आमलक मुष्टिभिः अस्पृश्य नेत्रबन्ध आद्यैः क्वचित् मृग खग ईहया ॥१४॥

क्वचित् बिल्वैः	कभी बेलफलोंसे (गेंद-सा खेलते)	**नेत्रबन्ध**	(किसीके) नेत्र बाँध-कर
क्वचित्	कभी	**अस्पृश्य**	उसे छूने न देकर
कुम्भैः	जायफल (उछालने) से	**क्वचित्**	कभी
क्व च	और कभी	**मृग-खग**	पशु या पक्षीके समान
मुष्टिभिः	मुठ्ठीमें	**ईहया**	चेष्ट करते
आमलक	आंवले लेकर (संख्या पूछने) द्वारा	**आद्यैः**	इस प्रकार अनेक प्रकार से ॥१४॥

क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः ।
कदाचित् स्पन्दोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया ॥१५॥

क्वचित् च दर्दुर प्लावैः विविधैः उपहासकैः कदाचित् स्पन्दोलिकया कर्हिचित् नृप चेष्टया ॥१५॥

क्वचित् च	कभी तो	**प्लावैः**	कुदकते हुए
दर्दुर	मेढ़कके समान	**विविधैः**	अनेक प्रकारके

(मुँह बनाने आदि)
उपहासकैः हंसी करनेकी रीतिसे,
कदाचित् कभी
स्पन्दोलिकया झूला झूलनेसे या परस्पर भुजा फँसाकर उसमें बैठाकर झुलाते हुए
कर्हिचित् और कभी
नृप चेष्टया राजाकी नकल करने से ॥१५॥

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ।
नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरस्सु च ॥१६॥

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिः चेरतुः वने नदि अद्रिद्रोणि कुञ्जेषु काननेषु सरः सु च ॥१६॥

एवं इस प्रकार
तौ वे दोनों भाई
लोकसिद्धाभिः लोकमें प्रसिद्ध
क्रीडाभिः (बालकोंके) खेलोंको खेलते हुए
वने नदि बनमें, नदी किनारे
अद्रिद्रोणि पर्वतकी घाटी
कुञ्जेषु कुञ्जोंमें
च काननेषु तथा वनमें स्थित
सरः सु सरोवरोंमें भी
चेरतुः खेलते-विचरते थे ॥१६॥

पशूंश्चारयतोर्गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः ।
गोपरूपी प्रलम्बोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥१७॥

पशून् चारयतः गोपैः तत् वने राम कृष्णयोः गोपरूपी प्रलम्बः असुरः तत् जिहीर्षया ॥१७॥

तत् वने उस वनमें
गोपैः गोपोंके साथ
राम बलराम तथा
कृष्णयोः श्रीकृष्णके
पशून् पशुओंको
चारयतः चराते हुए
तत् जिहीर्षया उनका हरण करने-की इच्छासे
गोपरूपी गोपरूपधारी
प्रलम्बः असुरः प्रलम्बासुर
अगात् आ गया ॥१७॥

तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान् सर्वदर्शनः ।
अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन् ॥१८॥

तं विद्वान् अपि दाशार्हः भगवान् सर्वदर्शनः अन्वमोदत तत् सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन् ॥१८॥

दाशार्हः	दशार्ह वंशमें प्रकट	**विचिन्तयन्**	सोचते हुए
सर्वदर्शनः	सर्वज्ञ	**तत् सख्यं**	उसको सखा बनाने का
भगवान्	भगवान श्रीकृष्णने	**अन्वमोदत**	अनुमोदन कर दिया ॥१८॥
तं विद्वान्	उसे पहिचान कर		
अपि	भी		
तस्य वधं	उसको मारनेका उपाय		

तत्रोपाहूय गोपालान् कृष्णः प्राह विहारवित् ।
हे गोपा विहरिष्यामो द्वन्द्वीभूय यथायथम् ॥१९॥

तत्र उप आहूय गोपालान् कृष्णः प्राह विहारवित् हे गोपा विहरिष्यामः द्वन्द्वीभूय यथायथम् ॥१९॥

विहारवित्	खेलोंके जानकार	**हे गोपा**	हे गोपो !
कृष्णः तत्र	श्रीकृष्णने वहां	**यथायथं**	अपने-अपने अनुरूप
गोपालान्	गोपालक बालकोंको	**द्वन्द्वीभूय**	जोड़ी बनाकर
उप आहूय	समीप बुलाकर	**विहरिष्यामः**	हम लोग खेलेंगे ॥१९॥
प्राह	कहा		

तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ ।
कृष्णसंघट्टिनः केचिदासन् रामस्य चापरे ॥२०॥

तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा राम जनार्दनौ कृष्ण संघट्टिनः केचित् आसन् रामस्य च अपरे ॥२०॥

तत्र	उस (खेल) में	**जनार्दनौ**	श्रीकृष्णको
गोपा	गोपोंने	**परिवृढौ चक्रुः**	दलनायक बनाया,
राम	बलराम तथा	**केचित् कृष्ण**	कुछ श्रीकृष्णके

संघट्टिनः	दलमें	**रामस्य**	बलरामके दलमें
च अपरे	तथा दूसरे	**आसन्**	हो गये ॥२०॥

आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः ।
यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिताः ॥२१॥

आचेरुः विविधाः क्रीडा वाह्य वाहक लक्षणाः यत्र आरोहन्ति जेतारः वहन्ति च पराजिताः ॥२१॥

वाह्य	चढ़ने और	**यत्र जेतारः**	जिनमें जीतनेवाले
वाहक	वाहन बननेवाले	**आरोहन्ति**	(पीठपर) चढ़ते हैं
लक्षणाः	लक्षण (नियम) के	**च पराजिताः**	तथा हारनेवाले
विविधाः क्रीडा	अनेक प्रकारके खेल	**वहन्ति**	(उन्हें) ढोते हैं
आचेरुः	करने लगे,		॥२१॥

वहन्तो वाह्यमानाश्च चारयन्तश्च गोधनम् ।
भाण्डीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥२२॥

वहन्तः वाह्यमानाः च चारयन्तः च गोधनं भाण्डीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्ण पुरोगमाः ॥२२॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण	**गोधनं**	गायोंको
पुरोगमाः	उनके आगे चलने वाले थे,	**चारयन्तः च**	चराते हुए भी
		भाण्डीरकं नाम	भाण्डीर नामक
वाह्यमानाः	पीठपर चढ़े हुओंको	**वटं**	वटके पास
वहन्तः च	ढोते हुए तथा	**जग्मुः**	पहुँच गये ॥२२॥

रामसंघट्टिनो यर्हि श्रीदामवृषभादयः ।
क्रीडायां जयिनस्तांस्तान्नूहुः कृष्णादयो नृप ॥२३॥

राम सङ्घट्टिनः यर्हि श्रीदाम वृषभ आदयः क्रीडायां जयिनः तान् तात् अहुः कृष्ण आदयः नृप ॥२३॥

नृप	राजन् !	। **यर्हि क्रीडायां**	जब खेलमें

राम संघट्टिनः	बलरामजीके दलके	**तान् तान्**	उन-उनको
श्रीदाम वृषभ	श्रीदाम, ऋषभ	**कृष्ण आदयः**	श्रीकृष्ण आदि
आदयः जयिनः	आदि जीत गये तब	**अहुः**	ढोने लगे ॥२३॥

उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः ।
वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम् ॥२४॥

उवाह कृष्णः भगवान् श्रीदामानं पराजितः वृषभं भद्रसेनः तु प्रलम्बः रोहिणीसुतम् ॥२४॥

पराजितः	हारे हुए	**प्रलम्बः**	प्रलम्ब
भगवान् कृष्णः	भगवान् श्रीकृष्ण	**रोहिणीसुतं**	रोहिणी-नन्दन बलरामजीको
श्रीदामानं	श्रीदामाको		
भद्रसेनः तु	भद्रसेन तो	**उवाह**	ढोने लगे ॥२४॥
वृषभं	ऋषभको और		

अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुंगवः ।
वहन् द्रुततरं प्रागादवरोहणतः परम् ॥२५॥

अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुंगवः वहन् द्रुततरं प्राक् अगात् अवरोहणतः परम् ॥२५॥

दानवपुंगवः	दानव श्रेष्ठ प्रलंब	**प्राक्**	सबसे आगे
कृष्णं	श्रीकृष्णको	**वहन्**	ढोता हुआ
अविषह्यं	असहनीय	**अवरोहणतः**	उतारनेके स्थानसे
मन्यमानः	मानता हुआ	**परं अगात्**	आगे चला गया ॥२५॥
द्रुततरं	बहुत शीघ्रतासे		

तमुद्वहन् धरणिधरेन्द्रगौरवं
महासुरो विगतरयो निजं वपुः ।
स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ
तडिद्द्युमानुडुपतिवाडिवाम्बुदः ॥२६॥

तं उद्वहन् धरणिधर इन्द्र गौरवं महा असुरः विगतरयः निजं वपुः सः आस्थितः पुरट परिच्छदः बभौ तडित् द्युमान् उडुपति इव अम्बुदः ॥२६॥

धरणिधर इन्द्र	पर्वतराजके समान	**आस्थितः**	धारण करके
गौरवं तं	भारी उन (बलराम-जी) को	**पुरट**	स्वर्ण आभरण
उद्वहन	ढोते समय	**परिच्छदः**	भूषित
महा असुर	उस महा असुरकी	**द्युमान्**	चमकती
विगतरयः	गति शिथिल हो गयी (अतः)	**तडित्**	बिजली युक्त
सः निजं	वह अपने (दानव)	**अम्बुदः**	(काला) बादल जैसा
वपुः	शरीरको	**उडुपति**	चन्द्रमाको ले जानेके
		इव	समान
		बभौ	शोभित हुआ ॥२६॥

निरीक्ष्य तद्वपुरलमम्बरे चरत्
प्रदीप्तदृग् भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ।
ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुण्डल-
त्विषाद्भुतं हलधर ईषदत्रसत् ॥२७॥

निरीक्ष्य तत् वपुः अलं अम्बरे चरत् प्रदीप्त दृक् भ्रुकुटि तट उग्र-दंष्ट्रकं ज्वलत शिखं कटक किरीट कुण्डल त्विषा अद्भुतं हलधर ईषत् अत्रसत् ॥२७॥

प्रदीप्त दृक्	प्रज्वलित नेत्र,	**कुण्डल त्विषा**	कुंडलोंकी कान्तिसे
भ्रुकुटि तट	भौंहोंके किनारों तक पहुँची	**अलं अद्भुतं**	अत्यन्त अद्भुत
उग्रदंष्ट्रकं	भयानक दाढ़ोंवाले,	**तत् वपुः**	उस शरीरवाले को
ज्वलत् शिखं	आगकी लपटोंके समान लालकेश,	**अम्बरे चरत्**	आकाशमें जाता
कटक किरीट	कंकण, मुकुट,	**निरीक्ष्य**	देखकर
		हलधर	बलरामजी
		ईषत् अत्रसत्	तनिक डर गये ॥२७॥

अथागतस्मृतिरभयो रिपुं बलो
विहायसार्थमिव हरन्तमात्मनः ।
रुषाहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना
सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ॥२८॥

अथ आगत स्मृतिः अभयः रिपुं बलः विहायसा अर्थं इव हरन्तं आत्मनः रुषा हनत् शिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपः गिरिं इव वज्र रंहसा ॥२८॥

अथ	फिर (अपने स्वरूप-की)	**रिपुं शिरसि**	शत्रुके शिरपर
स्मृतिः	स्मृति	**रुषा**	क्रोध पूर्वक
आगत	आनेपर	**दृढेन**	कसकर
अभयः बलः	निर्भय बलरामजीने	**मुष्टिना**	बाँधे घूसे से
अर्थं इव	धनके समान	**सुराधिपः**	इन्द्रके द्वारा
आत्मनः हरन्तं	अपनेको चुराकर	**गिरिं**	पर्वतपर
विहायसा	आकाश मार्गसे (भागते)	**वज्र इव**	वज्रके समान
		रंहसा हनत्	वेगसे मारा ॥२८॥

स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको
मुखाद् वमन् रुधिरमपस्मृतोऽसुरः ।
महारवं व्यसुरपतत् समीरयन्
गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ॥२९॥

सः आहतः सपदि विशीर्णं मस्तकः मुखात् वमन् रुधिरं अपस्मृतः असुरः महारवं व्यसुः अपतत् समीरयन् गिरिः यथा मघवत आयुध आहतः ॥२९॥

आहतः	आघात लगते ही	**विशीर्ण**	चूर-चूर हो गया
सपदि मस्तकः	मस्तक तुरन्त	**मुखात्**	मुखसे

रुधिरं वमन्	रक्त उगलते
अपस्मृतः	चेतनाहीन होकर
महारवं	भारी शब्द (चीत्कार)
समीरयन्	करता हुआ
व्यसुः	निष्प्राण होकर
यथा मघवत	जैसे इन्द्रके
आयुध	अस्त्र (वज्र) से
आहतः	मारा
गिरिः अपतत्	पर्वत हो (वैसे) गिर पड़ा ॥२९॥

दृष्ट्वा प्रलम्बं निहतं बलेन बलशालिना ।
गोपाः सुविस्मिता आसन् साधु साध्विति वादिनः ॥३०॥

दृष्ट्वा प्रलम्बं निहतं बलेन बलशालिना गोपाः सुविस्मिताः आसन् साधुःसाधु इति वादिनः ॥३०॥

बलशालिना	बलवान
बलेन	बलरामजी द्वारा
प्रलम्बं	प्रलम्बको
निहतं	मारा गया
दृष्ट्वा गोपाः	देखकर गोप
साधु	'अच्छा किया,
साधु	अच्छा किया'
इति वादिनः	ऐसा कहते हुए
सुविस्मिताः	अत्यन्त चकित
आसन्	हुए ॥३०॥

आशिषोऽभिगृणन्तस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम् ।
प्रेत्यागतमिवालिङ्ग्य प्रेमविह्वलचेतसः ॥३१॥

आशिषः अभिगृणन्तः तं प्रशशंसुः तत् अर्हणं प्रेत्य आगतं इव आलिग्य प्रेम विह्वल चेतसः ॥३१॥

प्रेम विह्वल	प्रेमसे विह्वल
चेतसः	चित्तवाले (गोपोंने)
प्रेत्य आगतं	मरकर लौटे
इव तं	के समान उनका
आलिग्य	आलिगन करके
आशिषः	आशीर्वाद
अभिगृणन्तः	देते हुए
तत्	इसके
अर्हणं	सर्वथा उपयुक्त उनकी
प्रशशंसुः	प्रशंसा करने लगे ॥३१॥

पापे प्रलम्बे निहते देवाः परमनिर्वृताः ।
अभ्यवर्षन् बलं माल्यैः शशंसुः साधु साध्विति ॥३२॥

पापे प्रलम्बे निहते देवाः परम निर्वृताः अभ्यवर्षन् बलं माल्यैः शशंसुः साधु-साधु इति ॥३२॥

पापे प्रलम्बे	पापी प्रलम्बके	**अभ्यवर्षन्**	अच्छी वर्षा करते
निहते	मारे जानेपर		हुए
देवाः	देवता	**साधु**	'अच्छा किया,
परम	अत्यन्त	**साधु**	अच्छा किया'
निवृताः	आनन्दित हुए,	**इति**	ऐसा कहकर
बलं	बलरामजी पर	**शशंसुः**	प्रशंसा करने लगे
माल्यैः	पुष्पोंकी		॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे प्रलम्बवधो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः ।
स्वैरं चरन्त्यो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम् ॥१॥

क्रीडा सक्तेषु गोपेषु तत् गावः दूर चारिणीः स्वैरं चरन्त्यः विविशुः तृण लोभेन गह्वरम् ॥१॥

गोपेषु	गोपोंके	**चरन्त्यः**	चरती हुई
क्रीडा	खेलमें	**तृण लोभेन**	घासके लोभसे
सक्तेषु	लग जानेपर	**गह्वरं**	घने
तत् गावः	उनकी गायें	**विविशुः**	वनमें घुस गयीं
दूर चारिणीः	दूर चली गयीं और		॥१॥
स्वैरं	स्वच्छन्द		

अजा गावो महिष्यश्च निर्विशन्त्यो वनाद् वनम् ।
इषीकाटवीं निर्विविशुः क्रन्दन्त्यो दावतर्षिताः ॥२॥

अजा गावः महिष्यः च निर्विशन्त्यः वनात् वनं इषीक अटवीं निर्विविशुः क्रन्दन्त्यः दाव तर्षिताः ॥२॥

अंजा गावः	बकरियां, गायें,	**तर्षिताः**	प्यासी होकर
च महिष्यः	तथा भैंसें	**क्रन्दन्त्यः**	ठुकराती हुई
वनात्	एक वनसे	**इषीक अटवीं**	मूंजके वनमें
वनं	दूसरे वनमें	**निर्विविशुः**	प्रविष्ट हो गयीं
निर्विशन्त्यः	घुसती हुई		॥२॥
दाव	गर्मीसे		

तेऽपश्यन्तः पशून् गोपाः कृष्णरामादयस्तदा ।
जातानुतापा न विदुर्विचिन्वन्तो गवां गतिम् ॥३॥

ते अपश्यन्तः पशून् गोपाः कृष्ण राम आदयः तदा जात अनुतापा न विदुः विचिन्वन्तः गवां गतिम् ॥३॥

ते कृष्ण	वे श्रीकृष्ण
राम	बलराम
आदयः गोपाः	आदि गोप (बालक)
तदा	उस समय
पशून्	पशुओंको
अपश्यन्तः	न देखकर
विचिन्वन्तः	उन्हें ढूंढ़नेपर भी
गवां गतिं	गायोंका स्थान
न विदुः	नहीं जान सके तो
जात अनुतापा	(खेलनेपर) पश्चाताप होने लगा ॥३॥

तृणैस्तत्खुरदच्छिन्नैर्गोष्पदैरङ्कितैर्गवाम् ।
मार्गमन्वगमन् सर्वे नष्टाजीव्या विचेतसः ॥४॥

तृणैः तत् खुरदः छिन्नैः गोष्पदैः अङ्कितैः गवां मार्गं अनु अगमन् सर्वे नष्ट आजीव्या विचेतसः ॥४॥

नष्ट आजीव्या	जीविकाके साधन (गायोंके) नष्ट हो जाने (खो जाने) से
विचेतसः	व्याकुल चित्त
सर्वे तत्	सब उन (गायों) के
खुरदः	कठोर खुरोंसे
छिन्नैः तृणैः	कुचली घास तथा
गोष्पदैः	गायोंके खुरोंसे
अङ्कितैः	चिह्नित
मार्गं	मार्गसे
गवां	गायों को (ढूंढ़ते उनके)
अनु अगमन्	पीछे चल पड़े ॥४॥

मुञ्जाटव्यां भ्रष्टमार्गं क्रन्दमानं स्वगोधनम् ।
सम्प्राप्य तृषिताः श्रान्तास्ततस्ते संन्यवर्तयन् ॥५॥

मुञ्ज अटव्यां भ्रष्ट मार्गं क्रन्दमानं स्वगोधनं सम्प्राप्य तृषिताः श्रान्ताः ततः ते संन्यवर्तयन् ॥५॥

मुञ्ज अटव्यां	मूंजके घोरवनमें
भ्रष्ट मार्गं	मार्गसे भटकी
क्रन्दमानं	डकराती हुई
स्वगोधनं	अपनी गायोंको
सम्प्राप्य	इकट्ठा पाकर
तृषिताः श्रान्ताः	प्यासे, थके
ते ततः	वे सब वहांसे
संन्यवर्तयन्	उन (गायों) को लौटा ले चले ॥५॥

ता आहूता भगवता मेघगम्भीरया गिरा ।
स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ॥६॥

ताः आहूता भगवता मेघगम्भीरया गिरा स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ॥६॥

भगवता	भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा	**निनदं**	वह पुकार
मेघगम्भीरया	मेघ-गम्भीर	**श्रुत्वा ताः**	सुनकर वे भी
गिरा	वाणीसे	**प्रहर्षिताः**	अत्यन्त हर्षित होकर
स्वनाम्नां	अपने नामोंसे	**प्रतिनेदुः**	प्रत्युत्तरमें बोलने लगीं ॥६॥
आहूता	बुलाये जानेपर		

ततः समन्ताद् वनधूमकेतु-
र्यदृच्छयाभूत् क्षयकृद् वनौकसाम् ।
समीरितः सारथिनोल्बणोल्मुकै-
र्विलेलिहानः स्थिरजङ्गमान् महान् ॥७॥

ततः समन्तात् वन धूमकेतुः यदृच्छया अभूत् क्षयकृत् वनौकसां सम ईरितः सारथिना उल्बण उल्मुकैः विलेलिहानः स्थिर जङ्गमान् महान् ॥७॥

ततः	उसी समय	**सम ईरितः**	भली प्रकार प्रेरित होता
यदृच्छया	संयोगवश	**उल्बण उल्मुकैः**	भयंकर लपटोंसे
वन समन्तात्	वनमें चारों ओर	**स्थिर जङ्गमान्**	अचर-चर सबको
वनौकसां	वनवासियोंका	**विलेलिहानः**	चाटता (जलाता)
क्षयकृत्	विनाश करनेवाला	**महान् अभूत्**	बहुत बढ़ गया ॥७॥
धूमकेतुः	धुएंके झंडेवाला अग्नि		
सारथिना	अपने सारथी वायु द्वारा		

तमापतन्तं परितो दवाग्नि
गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ।
ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना
यथा हरिं मृत्युभयार्दिता जनाः ॥८॥

तं आपतन्तं परितः दवाग्नि गोपाः च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ऊचुः च कृष्णं सबलं प्रपन्ना यथा हरिं मृत्यु भय अर्दिता जनाः ॥८॥

तं परितः	उस चारों ओरसे	**अर्दिताः जनाः**	सन्त्रस्त लोग (श्रीहरिकी शरण लेते हैं)
आपतन्तं	झपटते आते		
दवाग्नि	दावाग्निको•		
प्रसमीक्ष्य	चारों ओर देखकर	**सबलं**	बलरामजीके साथ
गोपाः च गावः	गोप तथा गायें	**कृष्णं**	श्रीकृष्णकी
भीताः	डर गये	**प्रपन्ना**	शरण लेकर
यथा	जैसे	**ऊचूः च**	बोले भी ॥८॥
मृत्यु भय	मृत्युके भयसे		

गोपा ऊचुः*

कृष्ण कृष्ण महावीर हे रामामितविक्रम ।
दावाग्निना दह्यमानान् प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः ॥९॥

कृष्ण कृष्ण महाबीर हे राम अमित विक्रम दावग्निना दह्यमानान् प्रपन्नान् त्रातुं अर्हथः ॥९॥

कृष्ण महावीर	'कृष्ण' महावीर	**अमित विक्रम**	अमित पराक्रम
कृष्ण	कृष्ण !	**हे राम**	हे बलराम !

• वनमें सामान्य ढंगसे कहीं कोई चिनगारी (बीड़ी आदि) गिरनेसे आग लगे तो वह एक ओरसे बढ़ती है; किन्तु दावाग्निका लक्षण ही है कि वह चारों ओर पहिले किनारे फैलकर घेरा बनाकर बढ़ती है और ग्रीष्ममें सूखे मूंजके बनमें तो उसकी गति बहुत तीव्र होगी ।

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

दावाग्निना	दावाग्नि द्वारा	त्रातुं अर्हथः	तुम्हें बचाना चाहिए ॥९॥
दह्यमानान्	जलाये जाते हुए		
प्रपन्नान्	हम शरणागतोंको		

नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण न चार्हन्त्यवसोदितुम् ।
वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः ॥१०॥

नूनं त्वत् बान्धवाः कृष्ण न च अर्हन्ति अवसीदितुं वयं हि सर्व धर्मज्ञ त्वत् नाथाः त्वत् परायणाः ॥१०॥

हि सर्व	क्योंकि तुम सब	वयं त्वत्	और हमारे तुम्हीं
धर्मज्ञ	धर्मको जानते हो	नाथाः	स्वामी हो,
कृष्ण नूनं	श्रीकृष्ण ! निश्चय	त्वत्	(हम) तुम्हारे
त्वत् बान्धवाः	तुम्हारे सम्बन्धी	परायणाः	परायण (आश्रित)
अवसीदितुं	कष्टपानेके		हैं ॥१०॥
अर्हन्ति न च	योग्य नहीं ही है		

श्रीशुक उवाच

वचो निशम्य कृपणं बन्धूनां भगवान् हरिः ।
निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥११॥

वचः निशम्य कृपणं बन्धूनां भगवान् हरिः निमीलयत मा भैष्ट लोचनानि इति अभाषत ॥११॥

भगवान् हरिः	भगवान् श्रीकृष्णने	इति अभाषत	यह कहा—
बन्धूनां	अपने सम्बन्धियोंकी	मा भैष्ट	डरो मत !
कृपणं वचः	दीन-वाणी	लोचनानि	नेत्रोंको
निशम्य	सुनकर	निमीलयत	बन्द कर लो ॥११॥

तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्बणम् ।
पीत्वा मुखेन तान् कृच्छ्राद् योगाधीशो व्यमोचयत् ॥१२॥

तथा इति मीलित अक्षेषु भगवान् अग्निं उल्बणं पीत्वा मुखेन तान् कृच्छ्रात् योग अधीशः व्यमोचयत् ॥१२॥

तथा	'बहुत अच्छा'
इति	इस प्रकार कहकर
अक्षेषु	नेत्रोंको
मीलितेषु	बन्द कर लेनेपर
योग अधीशः	योगेश्वर
भगवान्	भगवानने
उल्बणं	उस भयंकर
अग्नि	अग्निको
मुखेन	अपने मुखसे
पीत्वा	पीकर
तान् कृच्छ्रात्	उन सबको संकटसे
व्यमोचयत्	सर्वथा छुड़ा दिया ॥१२॥

ततश्च तेऽक्षीण्युन्मील्य पुनर्भाण्डीरमापिताः ।
निशाम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः ॥१३॥

ततः च ते अक्षीणि उन्मील्य पुनः भाण्डीरं आपिताः निशाम्य विस्मिताः आसन् आत्मानं गाः च मोचिताः ॥१३॥

च ततः ते	और फिर उन सबने
अक्षीणि	नेत्रोंको
उन्मील्य	खोलकर
पुनः भाण्डीरं	फिर भाण्डीर वटके पास
आपिताः	पहुँचाया
च	तथा (अग्निसे)
मोचिताः	छुड़ाया हुआ
आत्मानं	अपने तथा
गाः	गायोंको
निशाम्य	देखकर
विस्मिताः	चकित
आसन्	हो गये ॥१३॥

कृष्णस्य योगवीर्यं तद् योगमायानुभावितम् ।
दावाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम् ॥१४॥

कृष्णस्य योगवीर्यं तत् योगमाया अनुभावितं दावाग्नेः आत्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरे अमरम् ॥१४॥

तत् कृष्णस्य	उस श्रीकृष्णके
योगवीर्यं	योग-बलको,
योगमाया	योगमायाके
अनुभावितं	प्रभावको
दावाग्नेः	दावाग्निसे
आत्मनः क्षेमं	अपनी रक्षाको
वीक्ष्य ते	देखकर उन्होंने
अमरं	(श्रीकृष्णको) देवता
मेनिरे	माना ॥१४॥

गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः ।
वेणुं विरणयन् गोष्ठमगाद् गोपैरभिष्टुतः ॥१५॥

गा सन्निवर्त्य साय अह्ने सहरामः जनार्दनः वेणुं बिरणयन् गोष्ठं अगात् गोपैः अभिष्टुतः ॥१५॥

साय अह्ने	सायंकाल
गाः सन्निवर्त्य	गायें लौटाकर
गोपैः	गोपोंसे
अभिष्टुतः	स्तुत होते
वेणुं विरणयन्	उच्च स्वरसे वंशी बजाते
सहरामः	बलरामजीके साथ
जनार्दनः	माया नाशक श्रीकृष्ण
गोष्ठं	गोष्ठमें
अगात्	आ गये ॥१५॥

गोपीनां परमानन्द आसीद् गोविन्ददर्शने ।
क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत् ॥१६॥

गोपीनां परम आनन्द आसीत् गोविन्द दर्शने क्षणं युग शतं इव यासां येन विना अभवत् ॥१६॥

येन विना	जिनके बिना
यासां क्षणं	जिनको एक क्षण
युग शतं इव	सौ युगोंके समान
अभवत्	हो गया था उन
गोपीनां	गोपियोंको
गोविन्द दर्शने	गोविन्दके दर्शनसे
परम	अत्यन्त
आनन्द	आनन्द हुआ ॥१६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे दावाग्निपानं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अथ विंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः ।
गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलम्बवधमेव च ॥१॥

तयोः तत् अद्भुतं कर्म दावाग्नेः मोक्षं आत्मनः गोपाः स्त्रीभ्यः सम आचख्युः प्रलम्ब वधं एव च ॥१॥

तयोः तत्	उन दोनों (भाइयों) का वह	**च प्रलम्ब**	तथा प्रलम्बका
दावाग्नेः	दावाग्निसे	**वधं एव**	वध भी
आत्मनः	अपनेको	**गोपाः**	गोपोंने
मोक्षं	छुड़ाना रूप	**स्त्रीभ्यः**	व्रजस्त्रियोंसे
अद्भुतं कर्म	अद्भुत कर्म	**सम**	भली प्रकार
		आचख्युः	सुनाया ॥१॥

गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः ।
मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ॥२॥

गोपवृद्धाः च गोप्यः च तत् उपाकर्ण्य विस्मिताः मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ॥२॥

तत् उपाकर्ण्य	उसे सुनकर	**रामौ**	बलरामको
गोपवृद्धाः	वृद्ध गोपोंने	**व्रजं गतौ**	व्रजमें आया
च गोप्यः च	तथा गोपियोंने भी	**देवप्रवरौ**	देवश्रेष्ठ
कृष्ण-	श्रीकृष्ण और	**मेनिरे**	माना ॥२॥

ततः प्रावर्तत प्रावृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा ।
विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥३॥

ततः प्रावर्तत प्रावृट् सर्वसत्त्व समुद्भवा विद्योतमान परिधिः विस्फूर्जित नभः तला ॥३॥

ततः	तब	**परिधिः**	क्षितिजको
सर्वसत्त्व समुद्भवा	सब प्राणियोंकी बहुत वृद्धि करनेवाली	**विद्योतमान**	प्रकाशित करते हुए
		नभः तला	आकाश मण्डल
प्रावृट्	प्रावृट् ऋतु*	**विस्फूर्जित**	बार-बार (बिजलीसे) चमकने लगा ॥३॥
प्रावर्तत	प्रारम्भ हुई		

सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ।
अस्पष्टज्योतिराच्छन्नः ब्रह्मेव सगुणं बभौ ॥४॥

सान्द्र नील अम्बुदैः व्योम सविद्युत् स्तनयित्नुभिः अस्पष्ट ज्योतिः आच्छन्नः ब्रह्म इव सगुणं बभौ ॥४॥

सान्द्र	जल भरे	**सगुणं**	सगुण
सविद्युत्	बिजली सहित	**ब्रह्म**	ब्रह्म (जीव) के
स्तनयित्नुभिः	गरजनेवाले	**इव**	समान
नील अम्बुदैः	काले बादलोंसे	**बभौ**	लगने लगा (जैसे जीवमें कभी ज्ञान चमक कर लुप्त हो जाता है वैसा) ॥४॥
ज्योतिः	तारोंके		
आच्छन्नः	ढक जानेसे		
अस्पष्ट व्योम	धुंधला आकाश		

अष्टौ मासान् निपीतं यद् भूम्याश्चोदमयं वसु ।
स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ॥५॥

अष्टौ मासान् निपीतं यत् भूम्याः च ओदमयं वसु स्वगोभिः मोक्तुं आरेभे पर्जन्यः काल आगते ॥५॥

पर्जन्यः	राजा रूप सूर्यने	**ओदमयं वसु**	जल स्वरूप धन
यत्	जो (प्रजारूपी)	**अष्टौ मासान्**	आठ महीने तक
भूम्याः च	पृथ्वीसे ही	**स्वगोभिः**	अपनी किरणोंसे

---

* आयुर्वेदके अनुसार वर्षाके चार महीनोंमें दो श्रावण-भाद्रका नाम प्रावृट् ऋतु है और आश्विन-कार्तिक वर्षा ऋतु है। इसीलिए चातुर्मास्य कार्तिकमें पूर्ण होता है।

निपीतं	भली प्रकार पिया था	**मोक्तुं**	उसे छोड़ना
काल आगते	समय आनेपर	**आरेभे**	प्रारम्भ कर दिया ॥५॥

तडित्वन्तो महामेघाश्चण्डश्वसनवेपिताः ।
प्रीणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव ॥६॥

तडित् वन्तः महामेघाः चण्डश्वसन वेपिताः प्रीणनं जीवनं हि अस्य मुमुचुः करुणा इव ॥६॥

करुणा	दयालु पुष्पोंके	**वेपिताः**	छितराये (कंपाये) जाते हुए
इव	समान	**हि अस्य**	क्योंकि उनका
तडित्	विद्युत्की	**जीवनं**	जीवन भी जल है
वन्तः	चमकवाले	**प्रीणनं**	(प्राणियोंको) तृप्त करनेके लिए
महामेघाः	भारी बादल	**मुमुचुः**	त्यागते हैं ॥६॥
चण्डश्वसन	प्रचण्ड वायुसे		

तपः कृशा देवमीढा आसीद् वर्षीयसी मही ।
यथैव काम्यतपसस्तनुः सम्प्राप्य तत्फलम् ॥७॥

तपः कृशा देवमीढा आसीत् वर्षीयसी मही यथा इव काम्यः तपसः तनुः सम्प्राप्य तत् फलम् ॥७॥

यथा काम्यः	जैसे सकाम	**देवमीढा मही**	भगवत् प्रिया पृथ्वी
तपसः तनुः	तपस्वीका शरीर	**तपः**	गर्मीके तापसे
तत् फलं	उस (तप) का फल	**कृशा**	सूख गई थी,
सम्प्राप्य	हो जाता है,	**वर्षीयसी**	वर्षासे पुष्ट
इव	उसके समान	**आसीत्**	(हरी) हो गयी ॥७॥

निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति न ग्रहाः ।
यथा पापेन पाखण्डा न हि वेदाः कलौ युगे ॥८॥

निशामुखेषु खद्योताः तमसा भान्ति न ग्रहाः यथा पापेन पाखण्डा न हि वेदाः कलौ युगे ॥८॥

निशामुखेषु	रात्रिके प्रारम्भमें	**पापेन**	पापके कारण
तमसा	अन्धकारके कारण	**पाखण्डा**	पाखण्डियोंके पंथ
खद्योताः भान्ति	जुगुनू चमकते हैं		चलते हैं,
ग्रहा न हि	ग्रहतारक नहीं	**वेदाः न**	वैदिक मार्ग नहीं
यथा कलौ युगे	जैसे कलियुगमें		॥८॥

श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः ।
तूष्णीं शयानाः प्राग् यद्वद् ब्राह्मणा नियमात्यये ॥९॥

श्रुत्वा पर्जन्य निनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः तूष्णीं शयानाः प्राक् यत् वत् ब्राह्मणाः नियम अत्यये ॥९॥

प्राक् तूष्णीं	पहिले मौन	**शयानाः**	सोये हुए
ब्राह्मणाः यत्	ब्राह्मण लोग जैसे	**मण्डूका**	मेढ़क
नियम	नियम	**पर्जन्य निनदं**	मेघोंकी गर्जना
अत्यये	पूरा हो जानेपर (बोलने लगते हैं)	**श्रुत्वा वत्**	सुनकर उसी प्रकार
		गिरः व्यसृजन्	बोलने लगे ॥९॥

आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः ।
पुंसो यथास्वतन्त्रस्य देहद्रविणसम्पदः ॥१०॥

आसन् उत्पथ वाहिन्यः क्षुद्रनद्यः अनुशुष्यतीः पुंसः यथा स्वतन्त्रस्य देह द्रविण सम्पदः ॥१०॥

यथा	जैसे (मर्यादासे)	**अनुशुष्यतीः**	(वर्षाके) पीछे सूख गयी
स्वतन्त्रस्य	स्वतन्त्र		
पुंसः देह	पुरुषका शरीर	**क्षुद्रनद्यः**	छोटी नदियां
द्रविण सम्पदः	धन-सम्पत्ति (कुमार्ग में जाता है)	**उत्पथ**	अपना मार्ग छोड़कर
		वाहिन्यः	बहनेवाली
		आसन्	हो गयीं ॥१०॥

हरिता हरिभिः शष्पैरिन्द्रगोपैश्च लोहिताः ।
उच्छिलीन्ध्रकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभूत् ॥११॥

हरिता हरिभिः शष्यैः इन्द्र गोपैः च लोहिताः उच्छिलीन्ध्र कृतच्छाया नृणां श्रीः इव भूः अभूत् ॥११॥

नृणां	मनुष्योंकी (अल्पकालिक)	**इन्द्र गोपैः**	इन्द्र गोप (कीट-गिजाई) से
श्रीः इव	लक्ष्मीके समान	**भूः लोहिताः**	पृथ्वी लाल
हरिभिः शष्यैः	हरी घाससे	**अभूत्**	हो गयी है ॥११॥
हरिता च	हरी तथा		

क्षेत्राणि सस्यसम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः ।
धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम् ॥१२॥

क्षेत्राणि सस्य सम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः धनिनां उपतापं च दैव आधीनं अजानताम् ॥१२॥

सस्य	अन्नकी	**आधीनं**	वशमें है'
सम्पद्भिः	सम्पत्तिसे	**अजानतां**	इसे न जाननेवाले
क्षेत्राणि	खेत	**धनिनां**	धनियोंको
कृषकाणां	किसानोंको	**उपतापं**	जलन (दे रहे हैं)
मुदं ददुः	आनन्द देते हैं		॥१२॥
च दैव	तथा 'सब दैवके		

जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया ।
अबिभ्रद् रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया ॥१३॥

जलस्थल ओकसः सर्वे नववारि निषेवया अविभ्रत् रुचिरं रूपं यथा हरि निषेवया ॥१३॥

सर्वे	सब	**रुचिरं रूपं**	सुन्दर रूप
जलस्थल	जल या स्थल	**अविभ्रत्**	धारण किये हैं,
ओकसः	निवासी	**यथा हरि**	जैसे श्रीहरिकी
नववारि	नवीन जलका	**निषेवया**	उत्तम सेवा करनेसे
निषेवया	भरपूर सेवन करनेसे		होता है ॥१३॥

सरिद्भिः सङ्गतः सिन्धुश्चुक्षुभे श्वसनोर्मिमान् ।
अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग् यथा ॥१४॥

सरित्भिः सङ्गतः सिन्धुः चुक्षुभे श्वसन् उर्मिमान् अपक्व योगिनः चित्तं काम अक्तं गुणयुक् यथा ॥१४॥

यथा	जैसे	**श्वसन्**	वायुसे
गुणयुक्	विषयोंके सम्पर्कसे	**उर्मिमान्**	लहरें लेता
अपक्व	अपरिपक्व (अधकचरे)	**सिन्धुः**	समुद्र
योगिनः	योगीका	**सरित्भिः**	सरिताओंसे
चित्तं काम	चित्त कामनाओंसे	**सङ्गतः**	मिलकर
अक्तं	भर जाता है (वैसे ही)	**चुक्षुभे**	क्षुब्ध हो गया है ॥१४॥

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः ।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्षजचेतसः ॥१५॥

गिरयः वर्ष धाराभिः हन्यमाना न विव्यथुः अभिभूयमाना व्यसनैः यथा अधोक्षज चेतसः ॥१५॥

यथा	जैसे	**गिरयः**	पर्वत
अधोक्षज	भगवान हृषीकेशमें	**वर्ष धाराभिः**	वर्षाकी धाराओं
चेतसः	चित्त लगाये लोग	**हन्यमाना**	चोट लगाये जाने पर भी
व्यसनैः	दुःखोंसे		
अभिभूयमाना	आक्रान्त होनेपर भी (व्यथित नहीं होते)	**विव्यथुः**	बहुत पीड़ित
		न	नहीं होते ॥१५॥

मार्गा बभूवुः सन्दिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः ।
नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव ॥१६॥

मार्गा बभूवुः सन्दिग्धाः तृणैः छन्ना हि असंस्कृताः न अभ्यस्यमानाः श्रुतयः द्विजैः कालहता इव ॥१६॥

द्विजैः	ब्राह्मणों द्वारा	**श्रुतयः इव**	वेद-मन्त्रोंके समान
न अभ्यस्यमानाः	अभ्यास न की गयी	**हि**	क्योंकि
कालहता	कालसे मारी (विस्मृत)	**असंस्कृताः**	स्वच्छ नहीं किये गये हैं

तृणैः छन्ना	घाससे ढके	**बभूबुः**	हो गये हैं ॥१६॥
मार्गा सन्दिग्धाः	मार्ग सन्देहास्पद		

लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः ।
स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥१७॥

लोक बन्धुषु मेघेषु विद्युतः चल सौहृदाः स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिषु इव ॥१७॥

गुणिषु	गुणवान	**चल सौहृदाः**	चञ्चल सौहार्द्र-वाली
पुरुषेषु	पुरुषमें भी		
कामिन्यः इव	कामना युक्ता स्त्रियोंकी भांति	**विद्युतः**	बिजलियां
		स्थैर्यं न	स्थिरता नहीं
लोक बन्धुषु	लोक-हितैषी	**चक्रुः**	करतीं ॥१७॥
मेघेषु	मेघोंमें		

धनुर्वियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् ।
व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान् पुरुषो यथा ॥१८॥

धनुः वियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन् अभात् व्यक्ते गुण व्यतिकरे अगुणवान् पुरुषः यथा ॥१८॥

यथा	जैसे	**निर्गुणं**	रस्सी (प्रत्यञ्चा) रहित
अगुणवान्	निर्गुण		
पुरुषः	पुरुष (परमात्म)	**माहेन्द्रं धनुः**	इन्द्र-धनुष
गुण व्यतिकरे	गुणोंके विकारसे	**गुणिन्**	गुणवाला (परिणाम सूचक)
व्यक्ते	प्रकट (संसारमें सगुण जान पड़ता है)	**अभात्**	लगता है ॥१८॥
वियति	आकाशमें		

न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्घनैः ।
अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥१९॥

न रराज उडुपः छन्नः स्वज्योत्स्ना राजितैः घनैः अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषः यथा ॥१९॥

यथा स्वभासा	जैसे स्वयं प्रकाश	**स्वज्योत्स्ना**	अपनी चन्द्रिकासे
पुरुषः	आत्मा	**राजितैः घनैः**	प्रकाशित मेघोंसे
भासितया	उसीसे प्रकाशित	**छन्नः उडुपः**	ढका चन्द्रमा
अहंमत्या	अहंकारात्मिका बुद्धिसे (ढका रहता है)	**रराज न**	शोभा नहीं देता ॥१६॥

मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दञ्छिखण्डिनः ।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाच्युतजनागमे ॥२०॥

मेघ आगम उत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथा अच्युत जन आगमे ॥२०॥

यथा	जैसे	**उत्सवा**	आनन्दोल्लाससे
अच्युतजन	भगवान्‌के जनोंके	**हृष्टाः**	प्रसन्न
आगमे	आनेपर	**शिखण्डिनः**	मयूर
गृहेषु तप्ता	गृह-संतापसे संतप्त	**प्रत्यनन्दन्**	(उन मेघोंका बोल-
निर्विण्णा	विरक्त (प्रसन्न होते हैं)		कर) स्वागत करते हैं ॥२०॥
मेघ आगम	बादलोंके आनेके		

पीत्वापः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः ।
प्राक् क्षामास्तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया॥२१॥

पीत्वा अपः पादपाः पद्भिः आसन् नाना आत्ममूर्तयः प्राक् क्षमाः तपसा श्रान्ता यथा काम अनुसेवया ॥२१॥

यथा तपसा	जैसे तपस्यासे	**पादपाः पद्भिः**	वृक्ष जड़ोंसे
प्राक्	पहिले	**अपः पीत्वा**	जल पीकर
क्षामाः	दुबले हुए लोग	**आत्मनाना**	अपने अनेक प्रकारके
श्रान्ता	(उससे) थककर	**मूर्तयः**	रूपवाले
काम	भोगोंका	**आसन्**	हो गये हैं ॥२१॥
अनुसेवया	बराबर सेवन करनेसे (मोटे हो जाते हैं)		

सरस्स्वशान्तरोधस्सु न्यूषुरङ्गापि सारसाः ।
गृहेष्वशान्तकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥२२॥

सरः सु अशान्त रोधः सु न्यूषुः अङ्ग अपि सारसाः गृहेषु अशान्त कृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥२२॥

अशान्त	कभी शान्त न होने वाले	**सारसाः**	सारस
कृत्येषु	कर्मोंवाले	**अशान्त**	अशान्त
गृहेषु	घरोंमें	**रोधः सु**	तट वाले
दुराशयाः	मलिन चित्त	**सरः सु**	सरोवरोंमें ही
ग्राम्या	विषयी पुरुषोंके	**न्यूषुः**	निरन्तर डटे रहते हैं ॥२२॥
इव	समान		

जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे ।
पाखण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥२३॥

जल ओघैः निरभिद्यन्त सेतवः वर्षति ईश्वरे पाखण्डिनां असत् वादैः वेदमार्गाः कलौ यथा ॥२३॥

पाखण्डिनां	पाखण्डियोंके	**ईश्वरे**	समर्थ इन्द्र द्वारा
असत् वादैः	मिथ्या मतवादोंसे	**वर्षति**	(तीव्र) वर्षा करनेसे
कलौ यथा	कलियुगमें जैसे	**जल ओघैः**	पानीकी बाढ़से
वेदमार्गाः	वैदिक मत (उच्छिन्न हो जाते हैं)	**सेतवः**	पुल
		निरभिद्यन्त	टूट जाते हैं ॥२३॥

व्यमुञ्चन् वायुभिर्नुन्ना भूतेभ्योऽथामृतं घनाः ।
यथाऽऽशिषो विशपतयः काले काले द्विजेरिताः ॥२४॥

व्यमुञ्चन् वायुभिः नुन्ना भूतेभ्यः अथ अमृतं घनाः यथा आशिषः विश् पतयः काले काले द्विज ईरिताः ॥२४॥

यथा	जैसे	**विश् पतयः**	धनपति लोग
काले काले	समय-समयपर	**आशिषः**	(लोगोंकी) अभिलाषा (पूरी करते हैं)
द्विज ईरिताः	ब्राह्मणोंकी प्रेरणासे		

वायुभिः तुन्ना	वायुसे प्रेरित	अमृतं	अमृतके समान जल-
अथ घनाः	अब बादल		की
भूतेभ्यः	प्राणियोंके लिये	व्यमुञ्चन्	वर्षा करते हैं ॥२४॥

एवं वनं तद् वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत् ।
गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः ॥२५॥

एवं वनं तत् वर्षिष्ठं पक्व खर्जूर जम्बुमत् गो गोपालैः वृतः रन्तुं सबलः प्राविशत् हरिः ॥२५॥

वर्षिष्ठं	वर्षा ऋतु वाले	वृतः सबलः	घिरे बलरामजीके
पक्व खर्जूर	पके खजूर तथा		साथ
जम्बुमत्	जामुनवाले	हरिः	श्रीकृष्णने
तत् एवं	उस इस प्रकार	रन्तुं	खेलनेके लिए
वनं	वनमें	प्राविशत्	प्रवेश किया ॥२५॥
गो गोपालैः	गायों तथा गोपालकों से		

धेनवो मन्दगामिन्य ऊधोभारेण भूयसा ।
ययुर्भगवताऽऽहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनीः ॥२६॥

धेनवः मन्द गामिन्यः ऊधोभारेण भूयसा ययुः भगवता आहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनीः ॥२६॥

भूयासा	बहुत अधिक	आहूता	पुकारनेपर
ऊधोभारेण	थनोंके भारसे	प्रीत्या	प्रेमसे
मन्द गामिन्यः	धीरे चलनेवाली	स्नुतस्तनीः	स्तनोंसे दूध झरती
धेनवः	गायें	द्रुतं ययुः	शीघ्र दौड़ती जाती
भगवता	भगवानके		थीं ॥२६॥

वनौकसः प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः ।
जलधारा निरेर्नादानासन्ना ददृशे गुहाः ॥२७॥

वनौकसः प्रमुदिता वनराजीः मधुच्युतः जलधारा निरेः नादान् आसन्ना ददृशे गुहाः ॥२७॥

वनौकसः	वनवासी लोग
प्रमुदिता	बहुत प्रसन्न थे
वनराजीः	वृक्षावलियां
मधु च्युता	मधु-धारा बहाने वाली थीं
गिरैः जलधारा	पर्वतकी जलधारा जहां
नादान्	शब्द करती (गिरती) थी
आसन्ना	उसके समीप ही
गुहाः ददृशे	गुफा देखा ॥२७॥

क्वचिद् वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति ।
निर्विश्य भगवान् रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥२८॥

क्वचित् वनस्पतिक्रोडे गुहायां च अभिवर्षति निर्विश्य भगवान् रेमे कन्द मूल फल अशनः ॥२८॥

क्वचित्	कभी
अभिवर्षति	वर्षा होनेपर
वनस्पतिक्रोडे	वृक्षकी गोदमें
च गुहायां	अथवा गुफामें
निर्विश्य	प्रवेश करके
भगवान्	भगवान
कन्द मूल फल	कन्द, मूल, फल
अशनः रेमे	खाते हुए खेलते थे ॥२८॥

दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलान्तिके ।
सम्भोजनीयैर्बुभुजे गोपैः सङ्कर्षणान्वितः ॥२९॥

दधि ओदनं सम आनीतं शिलायां सलिल अन्तिके सम्भोजनीयैः बुभुजे गोपैः सङ्कर्षण अन्वितः ॥२९॥

सम आनीतं	साथ लाया हुआ
दधि ओदनं	दही-भात,
क्वचित्	कभी
सलिल अन्तिके	जलके पासकी
शिलायां	चट्टानपर रखकर
सम्भोजनीयैः	भोजनमें आनेवाले (शाकादि) के साथ
गोपैः	गोपों तथा
सङ्कर्षण	बलरामजीके
अन्वितः	साथ
बुभुजे	भोजन करते थे ॥२९॥

शार्दूलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान् ।
तृप्तान् वृषान् वत्सतरान् गाश्च स्वोधोभरश्रमाः ॥३०॥

शार्दूल उपरि संविश्य चर्वतः मीलित ईक्षणान् तृप्तान् वृषान् वत्सतरान् गाः च स्व ओधो भरश्रमाः ॥३०॥

शार्दूल उपरि	हरी घासके ऊपर	**वृषान्**	बैलों तथा
संविश्य	बैठे हुए	**वत्सतरान्**	बछड़ोंको
तृप्तान्	तृप्त होकर	**च स्व ओधो**	और अपने थनके
चर्वतः	जुगाली करते	**भरश्रमाः**	भारसे थकी गायों-
मीलित ईक्षणान्	नेत्र मूंदे		की ॥३०॥

प्रावृट्श्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूतमुदावहाम् ।
भगवान् पूजयाञ्चक्रे आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ॥३१॥

प्रावृट् श्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूत मुद आवहां भगवान् पूजयान् चक्रे आत्मशक्ति उपबृंहिताम् ॥३१॥

च तां	और उस	**प्रावृट् श्रियं**	प्रावृट् ऋतुकी शोभा
सर्वभूत	सब प्राणियोंको	**वीक्ष्य**	देखकर
मुद आवहां	आनन्ददायिनी	**भगवान्**	भगवानने (उसे)
आत्मशक्ति	अपनी शक्तिसे	**पूजयान् चक्रे**	सत्कृत किया ॥३१॥
उपबृंहिताम्	अभिवृद्धि हुई		

एवं निवसतोस्तस्मिन् रामकेशवयोर्व्रजे ।
शरत् समभवद् व्यभ्रा स्वच्छाम्बवपरुषानिला ॥३२॥

एवं निवसतः तस्मिन् रामकेशवयोः व्रजे शरत् सम् अभवत् व्यभ्रा स्वच्छ अम्बु अपरुषा अनिलाः ॥३२॥

एवं तस्मिन्	इस प्रकार उस	**अपरुषा**	शान्त
व्रजे राम-	ब्रजमें बलराम तथा	**अनिलाः**	पवन वाली
केशवयोः	श्रीकृष्णके	**सम् शरत्**	उत्तम शरद ऋतु
निवसतः	रहते हुए	**अभवत्**	हो गयी ॥३२॥
व्यभ्रा स्वच्छ	मेघहीन,		
अम्बु	स्वच्छ जलवाली		

शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ।
भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥३३॥

शरदा नीरज उत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः भ्रष्टानां इव चेतांसि पुनः योग निषेवया ॥३३॥

पुनः	फिर	**नीरज**	कमल
योग	योग-साधनोंको	**उत्पत्त्या**	उत्पन्न होनेसे
निषेवया	सेवन करनेसे	**शरदा नीराणि**	शरत्-कालीन जल
भ्रष्टानां	योग-भ्रष्ट हुए लोगोंके	**प्रकृतिं**	अपनी स्वाभाविक (स्वच्छ) स्थितिमें आ गया ॥३३॥
चेतांसि इव	चित्तके समान	**ययुः**	

व्योम्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पङ्कमपां मलम् ।
शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाशुभम् ॥३४॥

व्योम्नः अब्दं भूत शाबल्यं भुवः पंकं अपां मलं शरत् जहार आश्रमिणां कृष्णे भक्तिः यथा अशुभम् ॥३४॥

यथा कृष्णे	जैसे श्रीकृष्णमें	**भूत शाबल्यं**	(वर्षा कालमें) बड़े प्राणियोंकी भीड़
भक्तिः	भक्ति	**भुवः पङ्कं**	पृथ्वीका कीचड़ तथा
आश्रमिणां	सभी आश्रमोंवालोंके	**अपां मलं**	पानीका मैल
अशुभं	अशुभको (नष्ट कर देती है)	**जहार**	हरण कर लिया ॥३४॥
शरत्	शरद ऋतुने		
व्योम्नः अब्दं	आकाशके मेघ		

सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः ।
यथा त्यक्तैषणाः शान्ता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ॥३५॥

सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः यथा त्यक्त ईषणाः शान्ताः मुनयः मुक्त किल्बिषाः ॥३५॥

यथा ईषणाः	जैसे कामनाओंको	**मुनयः**	मुनि लोग (शोभित होते हैं)
त्यक्त शान्ताः	छोड़कर शान्त हुए	**सर्वस्वं**	अपना सर्वस्व
मुक्त किल्बिषाः	पापोंसे मुक्त		

हित्वा	(जल) त्यागकर	**जलदा विरेजुः**	मेघ शोभित हो रहे
शुभ्रवर्चसः	उज्वलकान्ति		हैं ॥३५॥

गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम् ।
यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ॥३६॥

गिरयः मुमुचुः तोयं क्वचित् न मुमुचुः शिवं यथा ज्ञान अमृतं काले ज्ञानिनः ददते न वा ॥३६॥

गिरयः	पर्वत	**यथा ज्ञान**	जैसे ज्ञानरूपी
शिवं तोयं	कल्याणमय (स्वच्छ) जल	**अमृतं**	अमृत
		ज्ञानिनः काले	ज्ञानी-जन समयपर
क्वचित् मुमुचुः	कहीं छोड़ते हैं और	**ददते वा**	देते हैं अथवा
न मुमुचुः	(कहीं) नहीं छोड़ते	**न**	नहीं देते ॥३६॥

नैवाविदन् क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः ।
यथाऽऽयुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ॥३७॥

न एव अविदन् क्षीयमाणं जलं गाध जलेचराः यथा आयुः अनु अहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ॥३७॥

गाध	कम गहरे पानीमें	**यथा अनु अहं**	जैसे प्रतिदिन
जलेचराः	रहने वाले जीव	**क्षय्यं आयुः**	क्षीण होती आयुको
क्षीयमाणं	घटते हुए	**मूढाः कुटुम्बिनः**	अज्ञानी कुटुम्बवान
जलं न एव	जलको नहीं ही	**नरा**	मनुष्य (नहीं जान
अविदन्	जान पाते		पाते) ॥३७॥

गाधवारिचरास्तापमविन्दञ्छरदर्कजम् ।
यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥३८॥

गाध वारिचराः तापं अविन्दन् शरत् अर्कजं यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्बि अविजित् इन्द्रियः ॥३८॥

गाध	थोड़े गहरे	**अर्कजं**	सूर्यसे उत्पन्न
वारिचराः	जलमें रहनेवाले जीव	**तापं अविन्दन्**	तापकी पीड़ा भोगते
शरत्	शरत्-कालीन		हैं

यथा कृपणः जैसे बेचारा
अविजित् इन्द्रियः अजितेन्द्रिय
दरिद्रः कुटुम्बि दरिद्र कुटुम्ब (कष्ट भोगता है) ॥३८॥

शनैः शनैर्जहुः पङ्कं स्थलान्यामं च वीरुधः ।
यथाहंममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥३९॥

शनैः शनैः जहुः पङ्कं स्थलानि आमं च वीरुधः यथा अहं ममतां धीराः शरीर आदिषु अनात्मसु ॥३९॥

शनैः शनैः धीरे-धीरे
स्थलानि पङ्कं भूमि कीचड़,
च वीरुधः आमं तथा पौधे अपना कच्चापन
जहुः छोड़ते हैं,
यथा धीराः जैसे धैर्यशाली पुरुष
शरीर आदिषु शरीर आदि
अनात्मसु आत्माके अतिरिक्त पदार्थोंमें
अहं ममतां अहंता और ममता (धीरे-धीरे त्याग देते हैं) ॥३९॥

निश्चलाम्बुरभूत्तूष्णीं समुद्रः शरदागमे ।
आत्मन्युपरते सम्यङ्मुनिर्व्युपरतागमः ॥४०॥

निश्चल अम्बुः अभूत् तूष्णीं समुद्रः शरत् आगमे आत्मनि उपरते सम्यक् यथा मुनिः उपरत आगमः ॥४०॥

शरत् आगमे शरद-ऋतु आनेपर
समुद्रः अम्बुः समुद्रका जल
निश्चल तूष्णीं स्थिर और शान्त
अभूत् हो गया
यथा मुनिः जैसे मुनि
आत्मनि सम्यक् चित्तके पूर्णतः
उपरते उपराम (विरक्त) हो जानेपर
उपरत आगमः कर्मकाण्डसे भी उपरत हो जाता है ॥४०॥

केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन् कर्षका दृढ़सेतुभिः ।
यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ॥४१॥

केदारेभ्यः तु अपः अगृह्णन् कर्षका दृढसेतुभिः यथा प्राणैः स्रवत् ज्ञानं तत् निरोधेन योगिनः ॥४१॥

कर्षका	किसान
दृढसेतुभिः	मजबूत बांधके द्वारा
केदारेभ्यः तु	खेतोंसे तो
अपः अगृह्णन्	जलको (बहनेसे) रोकने लगे
यथा योगिनः	जैसे योगी लोग
प्राणैः स्रवत्	इन्द्रियों द्वारा नष्ट होते
ज्ञानं	ज्ञानको
तत् निरोधेन	उनका निरोध (प्रत्याहार) करके (रोकते हैं) ॥४१॥

शरदर्कांशुजांस्तापान् भूतानामुडुपोऽहरत् ।
देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम् ॥४२॥

शरत् अर्क अंशु जान् तापान् भूतानां उडुपः अहरत् देह अभिमानजं बोधः मुकुन्दः व्रजयोषिताम् ॥४२॥

शरत् अर्क अंशु जान्	शरद ऋतुके सूर्यकी (तीक्ष्ण) किरणोंसे उत्पन्न
भूतानां तापान्	प्राणियोंकी गर्मीको
उडुपः अहरत्	चन्द्रमा हरण कर लेता है (जैसे)
व्रजयोषितां	व्रज-स्त्रियोंका
देह अभिमानजं	देहाभिमानसे उत्पन्न
बोधः मुकुन्दः	(लौकिक) ज्ञान श्रीकृष्णने (हरण कर लिया) ॥४२॥

खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ।
सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥४३॥

खं अशोभत निर्मेघं शरत् विमल तारकं सत्त्व युक्तम् यथा चित्तं शब्द ब्रह्म अर्थ दर्शनम् ॥४३॥

शरत् निर्मेघं	शरद-ऋतुमें मेघ-हीन
विमल तारकं	निर्मल तारागणोंसे
खं अशोभत	आकाश सुशोभित हो रहा है
यथा सत्त्व युक्तं	जैसे सत्त्व गुण युक्त
चित्तं	चित्तमें
शब्द ब्रह्म अर्थं दर्शनं	वेदमन्त्रोंका अर्थ प्रत्यक्ष होता है ॥४३॥

अखण्डमण्डलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी ।
यथा यदुपतिः कृष्णो वृष्णिचक्रावृतो भुवि ॥४४॥

अखण्डमण्डलः व्योम्नि रराज उडुगणैः शशी, यथा, यदुपतिः कृष्णः वृष्णिचक्र आवृतः भुवि ॥४४॥

यदुपतिः	हे परीक्षित्
यथा	जैसे
भुवि	पृथ्वीतलमें
वृष्णिचक्र	वृष्णि वंशियोंसे
आवृतः	घिरे (बीचमें)
कृष्णः	श्रीकृष्ण हैं (वैसे ही)
अखण्ड मंडल	अखिल ब्रह्माण्डके
व्योम्नि	आकाशमें
उडुगणैः	तारोंके बीच
शशी	चन्द्रमा
रराज	शोभित है ॥४४॥

आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम् ।
जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः ॥४५॥

आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसून वन मारुतं जनाः तापं जहुः गोप्यः न कृष्णहृत चेतसः ॥४५॥

वन प्रसून	जंगलकेपुष्पों से आती
समशीतोष्णं	समशीतोष्ण
मारुतं	वायुका
आश्लिष्य	स्पर्श करके
जनाः तापं जहुः	लोगोंने अपना संताप त्याग दिया; किन्तु
कृष्णहृत चेतसः	श्रीकृष्णने जिनका चित्त चुरा लिया था
गोप्यः न	उन गोपियोंने (संताप) नहीं त्यागा ॥४५॥

गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यः शरदाभवन् ।
अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलैरीशक्रिया इव ॥४६॥

गावः मृगाः खगाः नार्यः पुष्पिण्यः शरद अभवन् अन्वीयमानाः स्व वृषैः फलैः ईश क्रिया इव ॥४६॥

गावः मृगाः	गायों, पशुओं,
खगाः नार्यः	और पक्षियोंकी मादाएँ
शरद	शरद-ऋतुमें
पुष्पिण्य	पुष्प (ऋतु) मती
अभवन्	हो गयीं

स्व वृषैः	अपने सांडों (नरों) द्वारा	**ईश क्रिया**	समर्थ पुरुष द्वारा किये कर्मोंका
अन्वीयमाना	उनका पीछा किया जाने लगा	**फलैः इव**	फलोंके समान (जैसे पीछा किया जाता है) ॥४६॥

उदहृष्यन् वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद् विना ।

राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून् विना नृप ॥४७॥

उदहृष्यन् वारिजानि सूर्य उत्थाने कुमुद विना राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून् विना नृप ॥४७॥

नृप	राजन् !	**यथा राज्ञा तु**	जैसे राजाके द्वारा तो
सूर्य उत्थाने	सूर्योदय होनेपर	**दस्यून् विना**	डाकुओंके अतिरिक्त
कुमुद् विना	कुमुदिनीके अतिरिक्त	**लोका निर्भया**	सब लोग निर्भय हो जाते हैं ॥४७॥
वारिजानि	कमल		
उद्हृष्यन्	खिल उठे,		

पुरग्रामेष्वाग्रयणैरैन्द्रियैश्च महोत्सवैः ।

बभौ भूः पक्वसस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥४८॥

पुर ग्रामेषु अग्रगण्यैः इन्द्रियैः च महोत्सवैः बभौ भूः पक्व सस्य आढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥४८॥

पुर ग्रामेषु	नगरों और ग्रामोंमें	**पक्व सस्य**	पके धानसे
अग्रगण्यैः	उनके मुखियाओं द्वारा	**आढ्या**	सम्पन्न
च इन्द्रियैः	तथा (शरीरमें) इन्द्रियों द्वारा भी	**भूः**	पृथ्वी
महोत्सवैः	बड़े उत्सव मनाये जाने लगे,	**हरेः कलाभ्यां**	श्रीहरि और उनकी कला बलरामजीसे
		नितरां बभौ	बहुत अधिक शोभितसे हुई ॥४८॥

वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान् प्रपेदिरे ।
वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान् काल आगते ॥४९॥

वणिक् मुनि नृप स्नाता निर्गम्य अर्थान् प्रपेदिरे वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान् काल आगते ॥४९॥

वणिक् मुनि नृप स्नाता	व्यापारी, संन्यासी, राजा और स्नातक	**यथा वर्षरुद्धा**	जैसे वर्ष भरसे रुके (या साधनासे)
निर्गम्य	(अपने स्थानोंसे बाहर) निकलकर	**सिद्धाः**	(सिद्ध या) पितर
अर्थान् प्रपेदिरे	अभीष्ट काममें लग गये	**काल आगते स्वपिण्डान्**	समय आनेपर (अपना पिण्डदान या सिद्ध देह) पाते पाते हैं ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे प्रावृट्शरद्वर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ।

न्यविशद् वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥१॥

इत्थं शरत् स्वच्छ जलं पद्माकर सुगन्धिना न्यविशत् वायुना वातं सगो गोपालकः अच्युतः ॥१॥

इत्थं	इस प्रकार
शरत्	शरद-ऋतुके
स्वच्छ जलं	निर्मल जलमें
पद्माकर	कमलोंके समूहसे
वातं	चलती
सुगन्धिना	सुगन्धित
वायुना	वायुवाले (वन) में
गो	गायों और
गोपालकः स	गोपालकोंके साथ
अच्युतः	श्रीकृष्णने
न्यविशत्	प्रवेश किया ॥१॥

कुसुमितवनराजिशुष्मभृङ्ग-

द्विजकुलघुष्टसरः सरिन्महीध्रम् ।

मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः

सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥२॥

कुसुमित वनराजि शुष्मभृङ्ग द्विजकुल घुष्ट सरः सरित् महीन्द्रं मधुपतिः अवगाह्यः चारयन् गाः सह पशुपाल बलः चुकूज वेणुम् ॥२॥

कुसुमित	पुष्पित
वनराजि	वनावलीपर
शुष्मिभृङ्गं	मतवाले भ्रमरों
	तथा
द्विजकुल	पक्षि-समूहके
घुष्ट	शब्दसे गूंजते
सरः सरित्	सरोवर, सरिता एवं
महीध्रं	पर्वतोंवाले वनमें

अवगाह्य	भीतर प्रवेश करके	**मधुपतिः**	श्रीकृष्णने
पशुपाल	पशुपालकों (ग्वालों)	**वेणुं**	मधुर स्वरमें
च बलः सह	तथा बलरामके साथ	**चुकूज**	वंशी बजायी ॥२॥
गाः चारयन्	गायें चराते हुए		

तद् व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ।
काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥३॥

तत् व्रजस्त्रियः आश्रुत्य वेणुगीतं स्मर उदयं काः चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्यः अन्व वर्णयन् ॥३॥

तत् स्मर	उस काम (प्रेम)	**व्रजस्त्रियः**	व्रजकी स्त्रियां (गोपियां)
उदयं	उद्दीपक	**स्वसखीभ्यः**	अपनी सखियोंसे
वेणुगीतं	वंशीके गीतको	**अन्व**	उन (श्रीकृष्ण) का
आश्रुत्य	सुनकर	**वर्णयन्**	वर्णन करने लगीं
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके		॥३॥
परोक्षं	परीक्षमें		
काः चित्	कोई		

तद् वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम् ।
नाशकन् स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥४॥

तत् वर्णयितुं आरब्धाः स्मरन्त्यः कृष्ण चेष्टितं न अशकन् स्मर वेगेन विक्षिप्त मनसः नृप ॥४॥

नृप	राजन् !	**स्मर**	काम (प्रेम) के
तत्	उसको	**वेगेन**	वेगसे
आरब्धाः	प्रारम्भ करनेपर	**मनसः**	चित्तके
कृष्ण	श्रीकृष्णकी	**विक्षिप्त**	दूर चले जानेसे
चेष्टितं	चेष्टाओंको	**वर्णयितुं**	वर्णन करनेमें
स्मरन्त्यः	स्मरण करती हुई	**अशकन् न**	समर्थ नहीं हुईं ॥४॥

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।

रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥५॥

बर्हं आपीडं नटवर वपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रत् वासः कनक कपिशं वैजयन्तीं च मालां रन्ध्रान् वेणोः अधर सुधया पूरयन् गोपवृन्दैः वृन्दारण्यं स्वपद रमणं प्राविशत् गीतकीर्तिः ॥५॥

नटवर	(उनके मनमें यह रूप आया) श्रेष्ठ नटके सामान	**मालां बिभ्रत्**	माला धारण किये
वपुः	शरीर है,	**अधर सुधया**	अधरामृतसे
बर्हं आपीडं	मयूर पिच्छका मुकुट	**वेणोः रन्ध्रान्**	वंशीके छिद्रोंको
कर्णयोः	कानोंपर	**पूरयन्**	भरते हुए
कर्णिकारं	पीले कनैरका पुष्प	**गोप वृन्दैः**	गोप-सखाओं द्वारा
कनक	स्वर्णके	**गीतकीर्तिः**	कीर्ति गाये जाते
कपिशं	समान पीला	**स्वपद**	अपने धाम वैकुण्ठसे भी
वासः	बस्त्र	**रमणं**	रमणीय
च	तथा	**वृन्दारण्यं**	वृन्दावनमें
वैजयन्तीं	घुटनों तक लटकती	**प्राविशत्**	प्रवेश कर रहे हैं ॥५॥

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम् ।
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे ॥६॥

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूत मनोहरं श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वाः वर्णयन्त्यः अभिरेभिरे ॥६॥

राजन्	राजन् !	**वेणुरवं**	वंशी-ध्वनिको
इति	इस प्रकार	**श्रुत्वा**	सुनकर
सर्वभूत	समस्त प्राणियोंकी	**सर्वाः**	सब
मनोहरं	मनोहारिणी	**व्रजस्त्रियः**	व्रजकी स्त्रियां

वर्णयन्त्यः	उसका वर्णन करती हुई	**अभिरेभिरे**	(मन ही मन श्रीकृष्णका) आलिंगन करने लगीं ॥६॥

गोप्यऊच

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननु विवेशयतोर्वयस्यैः ।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥७॥

अक्षण्वतां फलं इदं न परं विदामः सख्यः पशून् अनु विवेशयतः वयस्यैः वक्त्रं व्रजेश सुतयोः अनुवेणु जुष्टं यैः वा निपीतं अनुरक्त कटाक्ष मोक्षम् ॥७॥

सख्यः	सखियो !	**सुतयोः**	दोनों पुत्रों (श्याम-बलराम) के
वयस्यैः	सखाओंके साथ		
पशून् अनु	पशुओंके पीछे	**वक्त्रं वा**	मुखोंका ही
विवेशयतः	उन्हें ले जाते या लाते समय	**यैः**	जो भली प्रकार
		निपीतं	(नेत्रोंसे) पान करना है;
अनुरक्त	प्रेम पूर्ण		
कटाक्ष	कटाक्ष	**इदं परं**	इससे बड़ा
मोक्षं	पूर्वक देखते	**अक्षण्वतां**	नेत्र होनेका
अनुवेणु जुष्टं	वंशीसे युक्त	**फलं न**	फल हम नहीं
व्रजेश	व्रजराजके	**विदामः**	जानतीं ॥७॥

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्ज-
मालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ।
मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां
रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥८॥

चूत प्रवाल बर्ह स्तबक उत्पल अब्ज माला अनुवृक्त परिधान विचित्रवेषौ मध्ये विरेजतुः अलं पशुपाल गोष्ठ्यां रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥८॥

चूत प्रवाल	आमके किसलय	**पशुपाल**	पशुपालकोंकी
बर्ह	मयूर पिच्छ,	**गोष्ठ्यां**	बैठकके
स्तबक	पुष्प गुच्छ,	**मध्ये**	बीचमें
उत्पल अब्ज	श्वेत-लाल कमल,	**यथा क्व च**	जैसे कभी-कभी
माला	तथा मालाके	**गायमानौ**	गाते हुए
परिधरन	शृंगारको	**नटवरौ**	दो श्रेष्ठ नट हों,
अनुवृक्त	भली प्रकार धारण किये	**अलं**	अत्यन्त
		विरेजतुः	शोभित होते हैं ॥८॥
विचित्रवेषौ	अपने विचित्र वेषसे		

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणु-
र्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो
हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥९॥

गोप्यः किं अचरत् अयं कुशलं स्म वेणुः दामोदरः अधरसुधां अपि गोपिकानां भुङ्क्ते स्वयं यत् अवशिष्ट रसं ह्रदिन्यः हृष्यत् त्वचः अश्रु मुमुचुः तरवः यथा आर्याः ॥९॥

गोप्यः	गोपियो !	**यत् अवशिष्ट**	जिससे बचे हुए
अय वेणुः	इस वंशीने	**रसं ह्रदिन्यः**	रससे ह्रदिनियों (वावलियों) को
किं कुशलं	क्या पुण्य		
अचरत् स्म	किया था कि	**त्वचः हृष्यत्**	(कमलोंके बहाने) रोमाञ्च हो रहा है,
गोपिकानां	गोपियोंका		
अपि	(भाग) भी	**आर्याः**	श्रेष्ठ पुरुषोंके
दामोदरः	श्रीदामोदरके	**यथा**	समान (हर्षसे)
अधरसुधां	अधरामृतको	**तरवः**	वृक्ष
स्वयं	स्वयं	**अश्रु मुमुचुः**	अश्रु बहा रहे हैं ॥९॥
भुङ्क्ते	भोगती है,		

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं
यद् देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।
गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं
प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥१०॥

वृन्दावनं सखि भुवः वितनोति कीर्ति यत् देवकीसुत पदाम्बुज लब्ध लक्ष्मि गोविन्द वेणुं अनु मत्त मयूर नृत्यं प्रेक्ष्य अद्रि सानु अपरत अन्य समस्त सत्त्वम् ॥१०॥

सखि	सखी !
वृन्दावनं	वृन्दावन
भुवः कीर्ति	पृथ्वीकी कीर्तिका
वितनोति	विस्तार कर रहा है,
यत् देवकीसुत	क्योंकि श्री देवकी-नन्दनके*
पदाम्बुज	चरण-कमलोंसे
लब्ध लक्ष्मि	चिह्नित हुआ है,
गोविन्द वेणुम्	गोविन्दकी बंशी ध्वनिके
अनु मत्त	पीछे पागल
मयूर नृत्यं	मयूरके नृत्यको
अद्रि सानु	पर्वत शिखरसे
प्रेक्ष्य	देखकर
समस्त सत्त्वं	दूसरे सब प्राणी
अपरत	शान्त रह जाते हैं ॥१०॥

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् ।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥११॥

धन्याः स्म मूढ मतयः अपि हरिण्यः एता या नन्दनन्दनं उपात्त विचित्र वेषं आकर्ण्य वेणु रणितं सह कृष्ण साराः पूजां दधुः विरचितां प्रणय अवलोकैः ॥११॥

मूढ मतयः	मूढ बुद्धि	**हरिण्यः धन्याः**	हरिणियां धन्य हैं,
अपि एता	होनेपर भी ये	**या विचित्र वेषं**	जो विचित्र वेश

---

* अनेक आचार्य मानते हैं कि यशोदाजीका भी एक नाम देवकी था, अतः 'देवकीसुत' का अर्थ वे 'यशोदा-नन्दन' करते हैं ।

उपात्त	धारण किये
नन्दनन्दन	नन्द-नन्दनकी
वेणु रणितं	वंशी-ध्वनि
आकर्ण्य	सुनकर
सह कृष्ण साराः	कृष्णसार (काले मृगों) के साथ
प्रणय अवलोकैः	प्रेमपूर्ण दृष्टिके द्वारा
विरचितां	विशेष रूपमें उपस्थित
पूजां दधुः	उनका सत्कार करती हैं ॥११॥

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं
श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम् ।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥१२॥

कृष्णं निरीक्ष्य वनिता उत्सव रूपशीलं श्रुत्वा च तत् क्वणित वेणु विचित्रगीतं देव्यः विमान गतयः स्मर नुन्न सारा भ्रश्यत् प्रसून कबरा मुमुहुः विनीव्यः ॥१२॥

वनिता उत्सव	अनुरागिणी स्त्रीके लिए उत्सव रूप
रूपशीलं	सौन्दर्य एवं आचरण-वाले
कृष्णं निरीक्ष्य	श्रीकृष्णको देखकर
च तत्	तथा उनके द्वारा
क्वणित वेणु	बजायी वंशीके
विचित्रगीतं	विचित्र गीतको
श्रुत्वा	सुनकर
विमान गतयः	विमानों से जाने-वाली
देव्यः	देवियोंका
स्मर नुन्न सारा	काम वेगसे धैर्य छूट जाता है,
कबर प्रसून	जूड़ेके पुष्प
भ्रश्यत्	गिरने लगते हैं,
विनीव्यः	साड़ी गिर जाती है,
मुमुहुः	(वे) मूर्च्छित हो जाती हैं ॥१२॥

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत-
पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः ।
शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थु-
र्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥१३॥

गावः च कृष्ण मुख निर्गत वेणुगीत पीयूषं उत्तभित कर्ण पुटैः पिबन्त्यः शावाः स्नुत स्तनपयः कवलाः स्म तस्थुः गोविन्दं आत्मनि दृशा अश्रु कलाः स्पृशन्त्यः ॥१३॥

गावः च	गायें भी
कृष्ण मुख	श्रीकृष्णके मुखसे
निर्गत वेणु-	निकले वंशी-
गीत	गायन रूप
पीयूषं	अमृतको
उत्तभित कर्ण	उठाये हुए कानोंके
पुटैः पिबन्त्यः	दोनोंसे पीती हुई
दृशा	आंखोंसे
अश्रु कलाः	आंसू बहाती
आत्मनि	अपने हृदयमें
गोविन्दं	गोविन्दका
स्पृशन्त्यः	स्पर्श करती हैं,
शावाः	उनके बछड़े
स्नुत स्तनपयः	स्तनोंसे स्वतः झरते दूधका
कवलाः	ग्रास मुखमें लिए
तस्थुः स्म	स्थिर रह जाते हैं ॥१३॥

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्
शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥१४॥

प्रायः बत अम्ब विहगा मुनयः वने अस्मिन् कृष्ण इक्षितं तत् उदितं कलवेणु गीतं आरुह्य ये द्रुम भुजान् रुचिर प्रवालान् शृण्वन्ति अमीलित दृशः विगत अन्यवाचः ॥१४॥

बत अम्ब	अरी मैया !
अस्मिन् वने	इस वृन्दावनमें
ये विहगा	जो पक्षी
द्रुम	वृक्षोंकी
भुजान्	शाखाओंके
रुचिर	सुन्दर
प्रवालान्	पल्लवोंपर
आरुह्य	चढ़कर
अन्यवाचः	दूसरी सब बोली
विगत	छोड़कर
अमीलित दृशः	अपलक नेत्रोंसे
कृष्ण	श्रीकृष्णका
ईक्षितं	दर्शन करते हैं और
तत्	उनके द्वारा
उदितं	उठाया (बजाया)
कलवेणु गीतं	सुन्दर वंशी-गायन
शृण्वन्ति	सुनते हैं
प्रायः मुनयः	वे प्रायः मुनि हैं ॥१४॥

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत-
मावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारे-
र्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥१५॥

नद्यः तदा तत् उपधार्य मुकुन्द गीतं आवर्त लक्षित मनोभव भग्न वेगाः आलिङ्गन स्थगितं ऊर्मिभुजैः मुरारेः गृह्णन्ति पादयुगलं कमल उपहाराः ॥१५॥

तदा नद्यः	उस समय नदियां	**आलिङ्गन**	आलिंगनके लिए
तत् मुकुन्द	उस मुकुन्दके	**स्थगितं**	रुकी
गीतं	गायनको	**ऊर्मिभुजैः**	लहरों रूपी भुजाओं से
उपधार्य	सुनकर		
मनोभव	कामके कारण	**पादयुगलं**	उनके दोनों चरणों को
भग्न वेगाः	वेग (प्रवाह) रुक जाने वाली हो जाती हैं,	**गृह्णन्ति**	पकड़ती हैं और
		कमल	कमल पुष्पोंकी
आवर्त लक्षित	यह (उनमें पड़नेवाले) भ्रमरोंसे पहिचाना जाता है	**उपहाराः**	भेंट देती हैं ॥१५॥

दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून् सह रामगोपैः
सञ्चारयन्तमनु वेणुमुदीरयन्तम् ।
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः
सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम् ॥१६॥

दृष्ट्वा आतपे व्रजपशून् सह राम गोपैः सञ्चारयन्तं अनु वेणुं उदीरयन्तं प्रेम प्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युः व्यधात् स्ववपुषा अम्बुद आतपत्रम् ॥१६॥

आतपे	धूपमें	**गोपैः सह**	गोपोंके साथ
राम	बलराम तथा	**व्रज पशून्**	ब्रजके पशुओंको

सञ्चारयन्तं	चराते हुए
अनु वेणुं	उनके पीछे वंशी
उदीरयन्तं	बजाते हुए
दृष्ट्वा	(श्रीकृष्णको) देखकर
प्रेम	प्रेमके कारण
प्रवृद्ध	खूब बढ़कर
उदितः अम्बुद	प्रगट होकर मेघ
कुसुमावलीभिः	पुष्प (सीकर) वर्षा द्वारा
सख्युः	अपनी मैत्री तथा
स्ववपुषा	अपने शरीरसे
आतपत्रं	छाता
व्यधात्	बनाता है ॥१६॥

पूर्णाः पुलिन्ध्य उरुगायपदाब्जराग-
श्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन ।
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन
लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥१७॥

पूर्णाः पुलिन्ध्य उरुगाय पदाब्ज राग श्री कुङ्कुमेन दयिता स्तन मण्डितेन तत् दर्शन स्मर रुजः तृण रूषितेन लिम्पन्त्य आनन कुचेषु जहुः तत् आधिम् ॥१७॥

पुलिन्ध्य	ये भीलिनियां
पूर्णाः	परिपूर्ण (धन्य) हैं,
उरुगाय	अनन्त कीर्ति (श्रीकृष्ण) के
पदाब्ज राग	चरण-कमलमें लगे
दयिता श्री	इनकी प्रिया लक्ष्मीके
स्तन मण्डितेन	स्तनोंपर सजाये
कुङ्कुमेन	कुंकुमको जो
तृण	(इनके चरणसे) घासपर
रूषितेन	लग जाता है
आनन	मुख और
कुचेषु	छातियोंपर
लिम्पन्त्य	लगा लेती हैं और
तत् दर्शन	इनके दर्शनसे उत्पन्न जो
स्मर रूजः	काम रूपी रोग है
तत् आधि	उसकी व्यथा
जहुः	त्याग देती हैं ॥१७॥

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो
यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्
पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥१८॥

हन्त अयं अद्रिः अबला हरिदास वर्यः यत् राम कृष्ण चरण स्पर्श प्रमोदः मानं तनोति सह गो गणयोः तयोः यत् पानीय सूय वस कन्दर कन्दमूलैः ॥१८॥

अबला	सखियो !	**गो**	गायों तथा
हन्त अयं	अहो यह	**गणयोः सह**	सखाओंके साथ
अद्रिः	(गोवर्धन) पर्वत	**तयोः**	उन दोनों भाइयोंका
हरिदास	भगवद् भक्तोंमें	**यत् पानीय**	जो पीने और
वर्यः	श्रेष्ठ है,	**सूय**	स्नानके लिए जल,
यत् राम	क्योंकि बलराम तथा	**वस कन्दर**	बैठनेके लिए गुफा
कृष्ण	श्रीकृष्णके		एवं
चरण स्पर्श	चरण-स्पर्शका	**कन्दमूलैः**	कन्द एवं मूलसे
प्रमोदः	आनन्द प्राप्त करता	**मानं**	सम्मान (आतिथ्य)
	है और	**तनोति**	करता है ॥१८॥

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार-
वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां
निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥१९॥

गा गोपकैः अनुवनं नयतोः उदार वेणु स्वनैः कलपदैः तनुभृत्सु सख्यः अस्पन्दनं गतिमतां पुलकः तरूणां निर्यो गपाश कृत लक्षणयोः विचित्रम् ॥१९॥

सख्यः	सखियो !	**उदार वेणु**	उच्च वंशी
निर्योग	नोवने तथा गाय	**स्वनैः**	ध्वनिके
पाश	बांधनेकी रस्सीसे	**कलपदैः**	सुन्दर पदोंसे
कृत लक्षणयोः	वेश बनाये	**तनुभृत् सु**	सब शरीर धारियों
विचित्रं	(इन दोनों भाइयोंकी		(चरजीवों) में
	गति) विचित्र है,	**अस्पन्दनं**	स्थिरता तथा
गोपकैः	ग्वाल-बालोंके साथ	**तरूणां**	वृक्षों (अचरों) में
अनुवनं	एकसे दूसरे वनमें	**पुलकः**	रोमाञ्च (उत्पन्न
गा नयतोः	गायें ले जाते हुए		कर देते हैं) ॥१९॥

एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः ।
वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥२०॥

एवं विधा भगवतः या वृन्दावन चारिणः वर्णयन्त्यः मिथः गोप्यः क्रीडाः तन्मयतां ययुः ॥२०॥

वृन्दावन	वृन्दावनमें	**मिथः**	उनका परस्पर
चारिणः	विचरण करनेवाले	**वर्णयन्त्यः**	वर्णन करती हुई
भगवतः	भगवानकी	**गोप्यः**	गोपियां
एवं विधा	इस प्रकारकी	**तन्मयतां**	उनमें तन्मय
या क्रीड़ाः	जो लीलाएँ हैं	**ययुः**	हो गयीं ॥२०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे वेणुगीतं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः ।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥१॥

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्द व्रज कुमारिकाः चक्रुः हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायनि अर्चन व्रतम् ॥१॥

हैमन्ते	हेमन्त ऋतुके	**भुञ्जानाः**	खाती हुई
प्रथमे	पहिले	**कात्यायनि**	कात्यायनी देवीकी
मासि	महीने (मार्ग शीर्ष) में	**अर्चन**	पूजा और
नन्द व्रज	नन्द व्रजकी	**व्रतं चक्रुः**	व्रत करने लगीं ॥१॥
कुमारिकाः	कुमारियोंने		
हविष्यं	हविष्यान्न ही		

आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदितेऽरुणे ।
कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥२॥

आप्लुत्य अम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदिते अरुणे कृत्वा प्रतिकृतिं देवीं आनर्चुः नृप सैकतीम् ॥२॥

नृप	राजन् !	**देवीं**	देवीकी
चोदिते अरुणे	अरुणोदय होनेपर	**सैकतीं**	बालुकामयी
कालिन्द्या	यमुनाके	**प्रतिकृतिं कृत्वा**	मूर्ति बनाकर
अम्भसि	जलमें	**आनर्चुः**	पूजा करती थीं ॥२॥
आप्लुत्य	स्नान करके		
जलान्ते	जलके समीप		

गन्धैर्माल्यैः सुरभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः ।
उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः ॥३॥

गन्धः माल्यः सुरभिभिः बलिभिः धूप दीपकैः उच्च अवचैः च उपहारैः प्रवाल फल तण्डुलैः ॥३॥

गन्धैः माल्यैः	चन्दन, माला
सुरभिभिः	सुगन्धि (इत्यादि)
बलिभिः	नैवेद्य
धूप दीपकैः	धूप, दीपक,
च	तथा
उच्च अवचैः	बड़े-छोटे
उपहारैः	उपहारों एवं
प्रवाल फल	पल्लव, फल तथा
तण्डुलैः	अक्षतसे (पूजा करती थीं) ॥३॥

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ।
इति मन्त्रं जपन्त्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥४॥

कात्यायनि महामाये महायोगिनि अधीश्वरि नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः इति मन्त्रं जपन्त्यः ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥४॥

कात्ययनि	कात्यायनी !
महामाये	महामाया !
महायोगिनि	महायोगिनी !
अधीश्वरि	सर्वेश्वरी !
नन्दगोपसुतं	गोपराज नन्दके पुत्र-को
मे पतिं कुरु	मेरा पति बनाओ
दे विते	देवी ! आपको
नमः	नमस्कार
इति मन्त्रं	इस मन्त्रका
जपन्त्यः	जप करती हुई
ताः कुमरिकाः	वे कुमारियां
पूजां चक्रुः	पूजा करती थीं ॥४॥

एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः ।
भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः ॥५॥

एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्ण चेतसः भद्रकालीं सम आनर्चुः भूयात् नन्दसुतः पतिः ॥५॥

कृष्ण	श्रीकृष्णमें
चेतसः	लगे चित्तवाली
कुमार्यः	उन कुमारियोंने
नन्दसुतः	नन्दनन्दन

पतिः मूयात्	हमारे पति हों	**भद्रकालीं**	भद्रकालीकी
एवं	इस संकल्पसे	**सम**	भली प्रकार
मासं	एक महीने तक	**आनर्चुः**	पूजा की ॥५॥
व्रतं चेरुः	व्रत किया तथा		

उषस्युत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योन्याबद्धबाहवः ।
कृष्णमुच्चैर्जगुर्यन्त्यः कालिन्द्यां स्नातुमन्वहम् ॥६॥

उषसि उत्थाय गोत्रैः स्वैः अन्योन्य आबद्ध बाहुभिः कृष्णं उच्चैः जगुः गायन्त्यः कालिन्द्यां स्नतुं अनु अहम् ॥६॥

उषसि	उषा कालमें ही	**उच्चैः**	उच्च स्वरसे
उत्थाय	उठकर	**गायन्त्यः**	गाती हुई
स्वैः गोत्रैः	अपने गोत्रका नाम लेकर	**कृष्णं**	श्रीकृष्ण
		जगुः	कीर्तन करती
अन्योन्य	एक दूसरीको उठाकर	**अनु अहं**	प्रतिदिन
		कालिन्द्यां	यमुना
आबद्ध	परस्पर	**स्नातुं**	स्नान करने जाती थीं ॥६॥
बाहुभिः	भुजाएँ फँसाकर		

नद्यां कदाचिदागत्य तीरे निक्षिप्य पूर्ववत् ।
वासांसि कृष्णं गायन्त्यो विजह्रुः सलिले मुदा ॥७ ।

नद्यां कदाचित् आगत्य तीरे निक्षिप्य पूर्ववत् वासांसि कृष्णं गायन्त्यः विजह्रुः सलिले मुदा ॥७॥

कदाचित्	किसी दिन	**कृष्णं**	श्रीकृष्ण लीला
नद्यां आगत्य	नदी किनारे आकर	**गायन्त्यः**	गाती हुई
पूर्ववत्	पहिलेके समान	**मुदा सलिले**	आनन्दसे जलमें
तीरे वासांसि	किनारेपर वस्त्रोंको	**विजह्रुः**	क्रीड़ा करने लगीं ॥७॥
निक्षिप्य	डालकर		

भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।
वयस्यैरावृतस्तत्र गतस्तत्कर्मसिद्धये ॥८॥

भगवान् तत् अभिप्रेत्य कृष्णः योगेश्वर ईश्वरः वयस्यैः आवृतः तत्र गतः तत् कर्म सिद्धये ॥८॥

योगेश्वर	योगेश्वरोंके भी	**तत्**	उनके (इस पूजा)
ईश्वरः	स्वामी	**कर्म**	कर्मको
भगवान्	भगवान	**सिद्धये**	सफल करनेके लिए
कृष्णः	श्रीकृष्णने	**वयस्यैः**	सखाओंसे
तत्	उनकी	**आवृतः**	घिरे हुए
अभिप्रेत्य	अभिप्राय जानकर	**तत्र गतः**	वहां गये ॥८॥

तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः ।
हसद्भिः प्रहसन् बालैः परिहासमुवाच ह ॥९॥

तासां वासांसि उप आदाय नीपं आरुह्य सत्वरः हसद्भिः प्रहसन् बालैः परिहासं उवाच ह ॥९॥

तासां वासांसि	उनके वस्त्रोंको	**बालैः**	बालकोंके
उप आदाय	एक साथ उठाकर	**हसद्भिः**	हँसते हुए
सत्वरः	शीघ्रतापूर्वक	**प्रहसन्**	स्वयं जोरसे हँसते
नीपं	मौलिश्रीके वृक्षपर	**ह परिहासं**	निश्चय हंसीकी बात
आरुह्य	चढ़कर	**उवाच**	कहने लगे ॥९॥

अत्रागत्याबलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यताम् ।
सत्यं ब्रवाणि नो नर्म यद् यूयं व्रतकर्शिताः ॥१०॥

अत्र आगत्य अबलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यतां सत्यं ब्रुवाणि नो नर्म यत् यूयं व्रत कर्शिताः ॥१०॥

अबलाः	कुमारियो !	**सत्यं ब्रुवाणि**	मैं सच कहता हूँ,
अत्र कामं	यहां इच्छानुसार	**नर्म नो**	हंसी नहीं है,
आगत्य	आकर	**यत् यूयं**	क्योंकि तुम सब
स्वं स्वं वासः	अपना अपना वस्त्र	**व्रत कर्शिता**	व्रत करके दुबली
प्रगृह्यतां	ले जाओ,		हो गयी हो ॥१०॥

न मयोदितपूर्वं वा अनृतं तदिमे विदुः ।
एकैकशः प्रतीच्छध्वं सहैवोत सुमध्यमाः ॥११॥

न मया उदित पूर्वं वा अनृतं तत् इमे विदुः एक एकशः प्रतीच्छध्वं सह वा उत सुमध्यमाः ॥११॥

वा मया	अथवा मैंने	**एक एकशः**	एक-एक करके
पूर्वं अनृतं	पहिले कभी झूठ	**उत वा सह**	अथवा एक साथ
न उदित	नहीं बोला है	**प्रतीच्छध्वं**	(वस्त्रोंकी) लेनेकी इच्छा करो
तत् इमे	इसको ये		(ले लो) ॥११॥
विदुः	(मेरे सखा) जानते हैं		
सुमध्यमाः	क्षीण कटि सुन्दरियो !		

तस्य तत् क्ष्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः ।
व्रीडिताः प्रेक्ष्य चान्योन्यं जातहासा न निर्ययुः ॥१२॥

तस्य तत् क्ष्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः व्रीडिताः प्रेक्ष्य च अन्योन्यं जात हासा न निर्ययुः ॥१२॥

तस्य	उन (श्रीकृष्ण) की	**च**	तथा
तत्	यह	**व्रीडिताः**	लज्जित होकर
क्ष्वेलितं	परिहास-क्रीड़ा	**अन्योन्यं**	एक दूसरीको
दृष्ट्वा	देखकर	**प्रेक्ष्य जात**	देखकर
गोप्यः	गोपियां	**हासा**	उन्हें हँसी आ गयी
प्रेमपरिप्लुताः	प्रेममें निमग्न हो गयीं,	**निर्ययुः**	(जलसे) निकलीं
		न	नहीं ॥१२॥

एवं ब्रुवति गोविन्दे नर्मणाऽऽक्षिप्तचेतसः ।
आकण्ठमग्नाः शीतोदे वेपमानास्तमब्रुवन् ॥१३॥

एवं ब्रुवति गोविन्दे नर्मणा आक्षिप्त चेतसः आकण्ठमग्नाः शीत उदे वेपमानाः तं अब्रुवन् ॥१३॥

गोविन्दे	गोविन्दके	**चेतसः**	चित्तवाली वे
एवं	इस प्रकार	**शीत उदे**	शीतल जलमें
ब्रुवति	कहनेपर	**आकण्ठमग्नाः**	गले तक डूबी हुईं
नर्मणा	(उनके) परिहाससे	**वेपमानाः**	कांपती हुईं
आक्षिप्त	अत्यन्त आकृष्ट	**तं अब्रुवन्**	उनसे बोलीं ॥१३॥

गोप्य ऊचुः*

मानयं भोः कृथास्त्वां तु नन्दगोपसुतं प्रियम् ।
जानीमोऽङ्ग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपिताः ॥१४॥

मा अनयं भोः कृथाः त्वां तु नन्दगोपसुतं प्रियं जानीमः अङ्ग व्रज श्लाघ्य देहि वासांसि वेपिताः ॥१४॥

भोः	हे	**व्रज श्लाघ्यं**	व्रजमें प्रशंसनीय
नन्दगोपसुतं	नन्दनन्दन !	**जानीमः**	जानती हैं,
प्रियं	प्रिय	**वेपिताः**	हम कांप रही हैं,
अन्यं मा कृथाः	अन्याय मत करो	**वासांसि देहि**	वस्त्रोंको दे दो
अङ्ग त्वां तु	प्रिय, तुमको तो		॥१४॥

श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितम् ।
देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद् राज्ञे ब्रुवामहे ॥१५॥

श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तव उदितं देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेत् राज्ञे ब्रुवामहे ॥१५॥

श्यामसुन्दर	श्यामसुन्दर !	**धर्मज्ञ**	(तुम) धर्म जानने-
ते दास्यः	(हम) तुम्हारी		वाले हो,
	दासियां हैं,	**वासांसि देहि**	वस्त्रोंको दे दो,
तव उदितं	तुम्हारी आज्ञाकी	**चेत् नो**	यदि नहीं (दोगे)
करवाम	पालन करेंगी	**राज्ञे**	(हम) राजासे
		ब्रुवामहे	कह देंगी ॥१५॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

श्रीभगवानुवाच

भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ ।
अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छन्तु शुचिस्मिताः ॥१६॥

भवत्यः यदि मे दास्यः मया उक्तं वा करिष्यथ अत्र आगत्य स्व वासांसि प्रतीच्छन्तु शुचिस्मिताः ॥१६॥

शुचिस्मिताः	पवित्र मुसकान वालियो !	**करिष्यथ**	(सचमुच) करोगी तो
भवत्यः	तुम सब	**अत्र आगत्य**	यहां आकर
यदि मे	यदि मेरी	**स्व वासांसि**	अपने वस्त्रोंको
दास्यः	दासियां हो	**प्रतीच्छन्तु**	लेनेकी इच्छा करो ॥१६॥
वा मया उक्तं	अथवा मेरा कहना		

श्रीशुक उवाच*

ततो जलाशयात् सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः ।
पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः ॥१७॥

ततः जलाशयात् सर्वाः दारिकाः शीत वेपिताः पाणिभ्यां योनिं आच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः ॥१७॥

ततः	तब	**योनिं आच्छाद्य**	गुप्तांग ढककर
शीत वेपिताः	ठंढसे कांपती हुई	**जलाशयात्**	जलाशयसे
सर्वाः दारिकाः	सब बालिकाएँ	**शीतकर्शिताः**	ठंढसे कष्ट पाती
पाणिभ्यां	हाथोंसे	**प्रोत्तेरुः**	निकल आयीं ॥१७॥

भगवानाहता वीक्ष्य शुद्धभावप्रसादितः ।
स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् ॥१८॥

भगवान् आहता वीक्ष्य शुद्धभाव प्रसादितः स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् ॥१८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भगवान्	भगवान्‌ने	**वासांसि**	(उनके) वस्त्रोंको
आहता	(उनको शीतसे) पीड़िता	**स्कन्धे**	(अपने) कन्धोंपर
		निधाय	रखकर
वीक्ष्य	देखकर	**प्रीतः**	प्रसन्न होकर
शुद्धभाव	(उनके) शुद्धभावसे	**सस्मितं**	मुस्कराते हुए
प्रसादितः	प्रसन्न किये जानेपर	**प्रोवाच**	बोले ॥१८॥

यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता
व्यगाहतैतत्तयु देवहेलनम् ।
बद्ध्वाञ्जलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेंऽहसः
कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ॥१९॥

यूयं विवस्त्रा यत् अपः धृतव्रता व्यगाहत एतत् तत् उ देवहेलनं बद्ध्वा अञ्जलिं मूर्ध्नि अपनुत्तये अंहसः कृत्वा नमः अधः वसनं प्रगृह्यताम् ॥१९॥

यूयं	तुम लोगोंने	**तत् अंहसः**	उस अपराधको
धृव्रता	व्रत धारिणी होकर	**अपनुत्तये**	दूर करनेके लिए
यत्	जो	**अञ्जलिं बद्ध्वा**	हाथ जोड़कर
विवस्त्रा	वस्त्रहीना होकर	**मूर्ध्नि अधः**	सिर झुकाकर
अपः व्यगाहत	जलमें स्नान किया है	**नमः कृत्वा**	नमस्कार करके
उ एतत्	निश्चय यह काम	**वसनं**	वस्त्रोंको
देवहेलनं	देवताका तिस्कार है	**प्रगृह्यतां**	ग्रहण करो ॥१९॥

इत्यच्युतेनाभिहितं व्रजाबला
मत्वा विवस्त्राप्लवनं व्रतच्युतिम् ।
तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां
साक्षात्कृतं नेमुरवद्यमृग् यतः ।.२०॥

इति अच्युतेन अभिहितं व्रज अबला मत्वा विवस्त्राप्लवनं व्रत च्युतिं तत् पूर्तिकामाः तत् अशेष कर्मणां साक्षात् कृतं नेमुः अवद्यमृक् यतः ॥२०॥

इति	इस प्रकार
अच्युतेन	श्रीकृष्णके
अभिहितं	कहनेपर
व्रज अबला	व्रजकी कुमारियोंने
विवस्त्राप्लवनं	निर्वसन-स्नानको
व्रत च्युति	व्रतमें त्रुटि
मत्वा	मानकर
तत्	उस (त्रुटि) को
पूर्तिकामाः	पूरा (दूर) करनेकी इच्छासे
तत् अशेष	उन समस्त
कर्मणां	कर्मोंके
साक्षात् कृतं	साक्षीको
नेमुः	नमस्कार किया
यतः	क्योंकि वह
अधह्यमृक्	(उनको नमस्कार सब) दोषोंका मार्जन करनेवाला है ॥२०॥

तास्तथावनता दृष्ट्वा भगवान् देवकीसुतः ।
वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत् करुणस्तेन तोषितः ॥२१॥

ताः तथा अवनता दृष्ट्वा भगवान् देवकीसुतः वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत् करुणः तेन तोषितः ॥२१॥

ताः तथा	उनको इस प्रकार
अवनता	झुकी हुई
दृष्ट्वा करुणः	देखकर दयामय
देवकीसुतः	देवकी-नन्दन
भगवान्	भगवान
तेन	उस (नमस्कार) से
तोषितः	सन्तुष्ट हो गये
ताभ्यः वासांसि	उनको वस्त्र
प्रायच्छत्	प्रदान कर दिया ॥२१॥

दृढं प्रलब्धास्त्रपया च हापिताः
प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः ।
वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं
ता नाभ्यसूयन् प्रियसङ्गनिर्वृताः ॥२२॥

दृढं प्रलब्धाः त्रपया च हापिताः प्रस्तोभिताः क्रीडनवत् च कारिताः वस्त्राणि च एव अपहृतानि अथ अपि अमुं ता न अभ्यसूयन् प्रियसंग निर्वृताः ॥२२॥

दृढं प्रलब्धाः	भली प्रकार छली गयीं
च व्रपया	तथा लज्जा
हापिताः	छुड़ायी गयी,
प्रस्तोभिताः	हंसी उड़ायी गयी
च क्रीडनवत्	और खिलौनोंके समान
कारिताः	बनायी गयीं
च वस्त्राणि	एवं वस्त्र भी
अपहृतानि	चुरा लिये थे
अथ अपि ता	फिर भी उन्होंने
अभ्यसूयन्	(श्रीकृष्णमें) दोष
न	नहीं देखा,
प्रियसङ्ग	(वे तो) प्रियतमके सामीप्यसे
निर्वृताः	आनन्दित हुईं ॥२२॥

परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसंगमसज्जिताः ।
गृहीतचित्ता नो चेलुस्तस्मिँल्लज्जायितेक्षणाः ॥२३॥

परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसङ्गम् असज्जिताः गृहीत चित्ता नो चेलुः तस्मिन् लज्जायित ईक्षणाः ॥२३॥

स्ववासांसि	अपने वस्त्र
परिधाय	पहिनकर
प्रेष्ठसङ्गं	प्रियतमके संगके लिए
असज्जिताः	सज्जित होकर
तस्मिन्	उनकी ओर
लज्जायित	लज्जापूर्ण
ईक्षणाः	नेत्रोंसे देखती हुई
गृहीत	(श्रीकृष्ण द्वारा) आकृष्ट
चित्ता	चित्ता (वे वहांसे)
नो चेलुः	नहीं चल सकीं ॥२३॥

तासां विज्ञाय भगवान् स्वपादस्पर्शकाम्यया ।
धृतव्रतानां संकल्पमाह दामोदरोऽबलाः ॥२४॥

तासां विज्ञाय भगवान् स्वपाद स्पर्श काम्यया धृत व्रतानां संकल्पं आह दामोदरः अबलाः ॥२४॥

भगवान्	भगवान्
स्वपाद	अपने चरण
स्पर्श	स्पर्शकी
तासां काम्यया	उनकी कामना तथा
धृत-	उन
व्रतानां	व्रत धारिणियोंका
सङ्कल्पं	संकल्प
विज्ञाय	जानकर
अबलाः	उन स्त्रियोंसे
दामोदरः	वे दामोदर
आह	बोले ॥२४॥

श्रीभगवानुवाच*

संकल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम् ।
मयानुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति ॥२५॥

संकल्पः विदितः साध्व्यः भवतीनां मत् अर्चनं मया अनुमोदितः सः असौ सत्यः भवितुं अर्हति ॥२५॥

साध्व्यः	सतियो !	**अनुमोदितः**	अनुमोदन कर दिया गया
भवतीनां	तुम लोगोंका		
मत् अर्चनं	मेरी सेवा करनेका	**सत्यः भवितुं**	(अतः उसे) सत्य होना
संकल्पः	संकल्प		
विदितः	ज्ञात हो गया है,	**अर्हति**	चाहिए ॥२५॥
सः असौ मया	वह यह मेरे द्वारा		

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥२६॥

न मयि आवेशित धियां कामः कामाय कल्पते भर्जिता क्वथिता धाना प्रायः बीजाय न इष्यते ॥२६॥

मयि आवेशित	मुझमें लगाये	**क्वथिता**	उबाले
धियां	चित्तवालोंकी	**धाना प्रायः**	अन्न प्रायः*
कामः	कामनाएँ	**बीजाय**	बीज देनेमें
कामाय	(सांसारिक) भोगोंमें	**न इष्यते**	समर्थ नहीं होते ॥२६॥
न कल्पते	नहीं ले जातीं		
भर्जिता	भूने या		

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

* यहां 'प्रायः' शब्द बहुत सार्थक है; क्योंकि बट, पीपल, बबूल आदिके कई बीज बिना उबाले नहीं उगते । पक्षियों या पशुओंके पेटसे निकल कर या हल्के उबालनेपर उगते हैं ।

यातबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः ।
यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ॥२७॥

यात अबला व्रजं सिद्धा मयि इमा रंस्यथ क्षपाः यत् उद्दिश्य व्रतं इदं चेरुः आर्या अर्चनं सतीः ॥२७॥

अबला	कुमारियो !	**चेरुः**	(तुम लोगोंने) किया था
व्रजं यात	व्रजमें जाओ,	**सिद्धा**	(वह) सिद्ध हो गया
यत्	जिसको	**मयि इमा**	मेरे साथ इन (शरदकी)
उद्दिश्य	उद्देश बनाकर	**क्षपाः रंस्यथ**	रात्रियोंमें विहार करोगी ॥२७॥
सतीः आर्या	देवी भगवतीका		
अर्चनं	पूजन और		
इदं व्रतं	यह व्रत		

श्रीशुक उवाच

इत्यादिष्टा भगवता लब्धकामाः कुमारिकाः ।
ध्यायन्त्यस्तत्पदाम्भोजं कृच्छ्रान्निर्विविशुर्व्रजम् ॥२८॥

इति आदिष्टा भगवता लब्धकामाः कुमारिकाः ध्यायन्त्यः तत् पदाम्भोजं कृच्छ्रात् निर्विविशुः व्रजम् ॥२८॥

इति	इस प्रकार	**पदाम्भोजं**	चरण-कमलोंका
भगवता	भगवान द्वारा	**ध्यायन्त्यः**	ध्यान करती हुई
आदिष्टा	आदेश मिलनेपर	**कृच्छ्रात्**	बड़े कष्टसे
लब्धकामाः	मनोरथ पाकर	**व्रजं**	व्रजमें
कुमारिकाः	कुमारियां	**निर्विविशुः**	लौटकर गयीं ॥२८॥
तत्	उनके		

अथ गोपैः परिवृतो भगवान् देवकीसुतः ।
वृन्दावनाद् गतो दूरं चारयन् गाः सहाग्रजः ॥२९॥

अथ गोपैः परिवृतः भगवान् देवकीसुतः वृन्दावनात् गतः दूरं चारयन् गाः सह अग्रजः ॥२९॥

अथ गोपैः	फिर गोपोंसे	**देवकीसुतः**	देवकीनन्दन
परिवृतः	चारों ओरसे घिरे	**गाः चारयन्**	गायें चराते हुए
सह अग्रजः	बड़े भाईके साथ*	**वृन्दावनात्**	वृन्दावनसे
भगवान्	भगवान्	**दूरं गतः**	दूर चले गये ॥२९॥

निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः ।
आतपत्रायितान् वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजौकसः ॥३०॥

निदाघ अर्क आतपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिः आत्मनः आत पत्रायितान् वीक्ष्य द्रुमान् आह व्रजौकसः ॥३०॥

निदाघ	ग्रीष्म ऋतुकी	**आत पत्रायितान्**	छाता बने
तिग्मे अर्क	तीक्ष्ण सूर्यकी	**व्रजौकसः**	व्रजके निवासी
आतपे	धूपमें	**द्रुमान् वीक्ष्य**	वृक्षोंको देखकर
स्वाभिः	अपनी	**आह**	(भगवान) बोले ॥३०॥
छायाभिः	छायासे		
आत्मनः	अपने लिए		

हे स्तोककृष्ण हे अंशो श्रीदामन् सुबलार्जुन ।
विशालर्षभ तेजस्विन् देवप्रस्थ वरूथप ॥३१॥

हे स्तोककृष्ण हे अंशुः श्रीदामन् सुबल अर्जुन विशाल ऋषभ तेजस्विन् देवप्रस्थ वरूथप ॥३१॥

हे स्तोककृष्ण	हे तोककृष्ण	**विशाल**	विशाल
हे अंशुः	हे अंशु	**ऋषभ**	ऋषभ
श्रीदामन्	श्रीदामा	**तेजस्विन्**	तेजस्वी
सुबल अर्जुन	सुबल, अर्जुन	**देवप्रस्थ**	देवप्रस्थ
		वरूथप	और वरूथप ॥३१॥

---

* स्पष्ट है कि यह 'चीरहरण' के दिनकी लीला नहीं है। उस दिन बलरामजी साथ नहीं थे और वह लीला हेमन्तमें हुई थी। यह निदाघ (ग्रीष्म) की लीला है। यहाँसे अध्यायका प्रारम्भ होना चाहिए।

पश्यतैतान् महाभागान् परार्थैकान्तजीवितान् ।
वातवर्षातपहिमान् सहन्तो वारयन्ति नः ॥३२॥

पश्यत् एतान् महाभागान् पर अर्थ एकान्त जीवितान् वात वर्ष आतप हिमान् सहन्तः वारयन्ति नः ॥३२॥

एतान्	इन	**पश्यत्**	देखो
एकान्त	एकमात्र	**वात वर्ष**	आंधी-वर्षा
पर अर्थ	दूसरोंके लिए ही	**आतप हिमान्**	धूप, सर्दी
जीवितान्	जीवन धारण करने वाले	**सहन्तः**	(स्वयं) सहते हुए
		नः	हमें (उनसे)
महाभागान्	परम भाग्यशलियों (वृक्षों) को	**वारयन्ति**	बचाते हैं ॥३२॥

अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम् ।
सुजनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः ॥३३॥

अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राणि उपजीवनं सुजनस्य इव येषां वै विमुखा यान्ति न अर्थिनः ॥३३॥

सर्वप्राणि	सभी प्राणियोंको	**सुजनस्य इव**	सज्जनोंकी भांति
उपजीवनं	जीवनका सहारा देनेवाला	**येषां अर्थिनः**	जिनसे कुछ चाहने वाले
अहो एषां जन्म	अहो, इनका जन्म	**विमुखा**	खाली हाथ
वरं	श्रेष्ठ है	**न यान्ति**	नहीं जाते ॥३३॥
वै	निश्चय		

पत्र पुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः ।
गन्धनिर्यासभस्मास्थितोकमैः कामान् वितन्वते ॥३४॥

पत्र पुष्प फलः छाया मूल वल्कल दारुभिः गन्ध निर्यास भस्म अस्थि तोकमैः कामान् वितन्वते ॥३४॥

पत्र पुष्प	पत्ते, फूल,	**मूल वल्कल**	जड़, छाल,
फलः छाया	फल, छाया	**दारुभिः**	लकड़ी,

गन्ध निर्यास	सुगन्धि, गोंद,	**कामान्**	(लोगोंको उनका)
भस्म अस्थि	भस्म, हड्डी (कोयला)		अभिलषित
तोक्मैः	अंकुरोंसे भी	**वितन्वते**	बांटते रहनेवाले हैं ॥३४॥

एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु ।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत् सदा ॥३५॥

एतावत् जन्म साफल्यं देहिनां इह देहिषु प्राणैः अर्थैः धिया वाचा श्रेय एव आचरेत् सदा ॥३५॥

देहिनां	शरीर धारियोंका	**प्राणैः अर्थैः**	प्राणोंसे, धनसे,
इह	इस संसारमें	**धिया वाचा**	बुद्धिसे, वाणीसे
देहिषु	शरीरकी	**सदा**	सदा
एतावत्	इतनी ही	**श्रेय एव**	कल्याणकारी ही
जन्म	जन्म लेनेकी	**आचरेत्**	आचरण करे ॥३५॥
साफल्यं	सफलता है कि		

इति प्रवालस्तबकफलपुष्पदलोत्करैः ।
तरूणां नम्रशाखानां मध्येन यमुनां गतः ॥३६॥

इति प्रवाल स्तबक फल पुष्प दल उत्करैः तरूणां नम्र शाखानां मध्येन यमुनां गतः ॥३६॥

इति	इस प्रकार	**नम्र शाखानां**	ऐसे झुकी डालियों वाले
प्रवाल	किसलय,		
स्तबक	पुष्प-गुच्छ,	**तरूणां**	वृक्षोंके
फल पुष्प	फल, पुष्प	**मध्येन**	बीचसे होते
दल उत्	पत्तोंसे मानों	**यमुनां**	यमुना-किनारे
करैः	हाथ उठाये (बुलाते) हों	**गतः**	गये ॥३६॥

तत्र गाः पाययित्वापः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः ।
ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम् ॥३७॥

तत्र गाः पाययित्वा अपः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः ततः नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुः जलम् ॥३७॥

नृप	राजन् !
तत्र सुमृष्टाः	वहां खूब स्वच्छ
शीतलाः	शीतल
शिवाः	कल्याणकारी
अपः गाः	पानी गायोंको
पाययित्वा	पिलाकर
ततः स्वयं	तब स्वयं
गोपाः	गोपोंने
स्वादु जलं	वह स्वादिष्ट जल
कामं पपुः	इच्छानुसार पिया ॥३७॥

तस्या उपवने कामं चारयन्तः पशून् नृप ।
कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥३८॥

तस्या उपवने कामं चारयन्तः पशून् नृप कृष्ण रामाः उप आगम्य क्षुधार्ता इदं अब्रुवन् ॥३८॥*

नृप	राजन् !
तस्या	उस (यमुना) के
उपवने	समीपके वनमें
पशून्	पशुओंको
कामं	इच्छानुसार
चारयन्तः	चराते हुए
क्षुधार्ता	भूखसे व्याकुल होनेपर
कृष्ण	श्रीकृष्ण और
रामाः	बलरामके
उप आगम्य	समीप आकर
इदं अब्रुवन्	(गोप) यह कहने लगे ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गोपीवस्त्रापहारो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

---

* यहां अध्याय अधूरेमें छूटता लगता है । यदि श्लोक २८ पर जहां 'चीर-हरण' प्रसंग पूरा हुआ, यह अध्याय समाप्त हो जाता और शेष आगे के ये १० श्लोक अगले अध्यायमें दिये जाते तो दोनों अध्यायोंमें पूरे-पूरे प्रसंग रहते ।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

गोपा ऊचुः

राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण ।
एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्ति कर्तुमर्हथः ॥१॥

राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्ट निबर्हण एषा वै बाधते क्षुत् नः तत् शान्ति कर्तुं अर्हथः ॥१॥

राम	बलरामजी !	**नः**	हमको
महावीर्य	महापराक्रमी	**बाधते**	पीड़ा दे रही है
राम	बलरामजी ! और	**वै तत्**	निश्चित ही उसकी
दुष्ट निबर्हण	दुष्ट-दलन	**शान्ति कर्तुं**	(तुम्हें) शान्ति कर देना
कृष्ण	श्रीकृष्ण !		
एषा क्षुत्	यह भूख	**अर्हथः**	चाहिए ॥१॥

श्रीशुक उवाच

इति विज्ञापितो गोपैर्भगवान् देवकीसुतः ।
भक्तायां विप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥२॥

इति विज्ञापितः गोपैः भगवान् देवकीसुतः भक्तायां विप्रभार्यायाः प्रसीदन् इदं अब्रवीत् ॥२॥

इति गोपैः	इस प्रकार गोपोंके	**भक्तायां**	अपनी भक्ता
विज्ञापितः	सूचना देनेपर	**विप्रभार्यायाः**	ब्राह्मण-पत्नियोंपर
भगवान्	भगवान्	**प्रसीदन्**	कृपा करनेके लिए
देवकीसुतः	देवकी-नन्दन	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥२॥

प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
सत्रमाङ्गिरसं नाम ह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥३॥

प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्म वादिनः सत्रं आङ्गिरसंनाम हि आसते स्वर्ग काम्यया ॥३॥

देवयजनं	देवयज्ञ स्थानमें	**काम्यया**	इच्छासे
प्रयात	चले जाओ	**आङ्गिरसं**	आंगिरस
हि	क्योंकि (वहां)	**नाम**	नामक
ब्रह्म वादिनः	वेदवादी	**सत्रं आसते**	यज्ञ कर रहे हैं ॥३॥
ब्राह्मणा	ब्राह्मण		
स्वर्ग	स्वर्ग पानेकी		

तत्र गत्वौदनं गोपा याचतास्मद्विसर्जिताः ।
कीर्तयन्तो भगवत आर्यस्य मम चाभिधाम् ॥४॥

तत्र गत्वा ओदनं गोपा याचत अस्मत् विसर्जिताः कीर्तयन्तः भगवतः आर्यस्य मम च अभिधाम् ॥४॥

अस्मत्	हमारे	**आर्यस्य**	बड़े भाईका
विसर्जिताः	भेजनेसे	**च मम अभिधां**	तथा मेरा भी नाम
गोपा	गोपो,	**कीर्तयन्तः**	बतलाते हुए
तत्र गत्वा	वहां जाकर	**ओदनं**	भात
भगवतः	समर्थ	**याचत**	मांग लाओ ॥४॥

इत्यादिष्टा भगवता गत्वायाचन्त ते तथा ।
कृताञ्जलिपुटा विप्रान् दण्डवत् पतिता भुवि ॥५॥

इति आदिष्टा भगवता गत्वा याचन्त ते तथा कृत अञ्जलि पुटा विप्रान् दण्डवत् पतिता भुवि ॥५॥

भगवता	भगवान्के द्वारा	**पतिता**	गिरकर (प्रणाम) करके
इति	इस प्रकार		
आदिष्टा	आदेश देनेपर	**कृत**	हाथ
ते तत्र	उन्होंने वहाँ	**अञ्जलि पुटा**	हाथ जोड़कर
गत्वा	जाकर	**विप्रान्**	ब्राह्मणोंसे
दण्डवत्	दण्डके समान	**तथा**	उसी प्रकार
भुवि	पृथ्वीपर	**याचन्त**	याचना की ॥५॥

हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्यादेशकारिणः ।
प्राप्ताञ्जानीत भद्रं वो गोपान् नो रामचोदितान् ॥६॥

हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्य आदेश कारिणः प्राप्तान् जानीत भद्रं वः गोपान् नः राम चोदितान् ॥६॥

हे भूमिदेवाः	हे भूदेवो !	**आदेश कारिणः**	आज्ञापालक
वः	आप सबका	**नः गोपान्**	हम गोपोंको
भद्रं	कल्याण हो,	**राम**	बलरामजी द्वारा
शृणुत	(हमारी प्रार्थना) सुनिये !	**चोदितान्**	प्रेरित
		जानीत	समझें ॥६॥
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके		

गाश्चारयन्ताविदूर ओदनं
रामाच्युतौ वो लषतो बुभुक्षितौ ।
तयोर्द्विजा ओदनमर्थिनोर्यदि
श्रद्धा च वो यच्छत धर्मवित्तमाः ॥७॥

गाः चारयन्ताः अविदूर ओदनं राम अच्युतौ वः लषतः बुभुक्षितौ तयोः द्विजा ओदनं अर्थिनः यदि श्रद्धा च वः यच्छत धर्मवित् तमाः ॥७॥

अविदूर	समीप ही	**द्विजा**	ब्राह्मणो
गाः चारयन्ताः	गाय चराते हुए	**यदि वः**	यदि आप लोगोंमें
बुभुक्षितौ	भूखे	**श्रद्धा**	श्रद्धा हो तो
राम	बलराम और	**अर्थिनः**	मांगनेवाले (हम लोगोंको)
अच्युतौ	श्रीकृष्ण		
वः ओदनं	आपका भात	**तयोः च**	और उनको भी
लषतः	चाहते हैं	**ओदनं यच्छत**	भात दीजिए ॥७॥
धर्मवित् तमाः	धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ		

दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्च सत्तमाः ।
अन्यत्र दीक्षितस्यापि नान्नमश्नन् हि दुष्यति ॥८॥

दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याः च सत्तमाः अन्यत्र दीक्षितस्य अपि न अन्नं अश्नन् हि दुष्यति ॥८॥

सत्तमाः हि	सज्जनो ! क्योंकि	**अन्यत्र**	छोड़कर दूसरे किसी
पशुसंस्थायाः	पशु बलि होनेवाले यज्ञोंको		(यज्ञ) के
		दीक्षितस्य	दीक्षितका
दीक्षायाः	दीक्षाको	**अपि**	भी
च	तथा	**अन्नं अश्नन्**	अन्न खानेमें
सौत्रामण्याः	सौत्रमणि नामक यज्ञको	**दुष्यति न**	दोष नहीं है ॥८॥

इति ते भगवद्याच्ञां शृण्वन्तोऽपि न शुश्रुवुः ।
क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥९॥

इति ते भगवत् याञ्चां शृण्वन्तः अपि न शुश्रुवुः क्षुद्र आशा भूरि कर्माणः बालिशा वृद्ध मानिनः ॥९॥

क्षुद्र आशा	तुच्छ आशासे	**इति**	इस प्रकारकी
भूरि	बहुत	**भगवत्**	भगवानकी
कर्माणः	कर्म करनेवाले	**याञ्चां**	याचनाको
वृद्ध	अपनेको बड़ा	**शृण्वन्तः**	सुनते हुए भी
मानिनः	माननेवाले	**न शुश्रुवुः**	नहीं सुना ॥९॥
ते बालिशा	उन मूर्खोंने		

देशः कालः पृथग् द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः ।
देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥१०॥

देशः कालः पृथक् द्रव्यं मन्त्र तन्त्र ऋत्विजः अग्नयः देवता यजमानः च क्रतुः धर्मः च यत् मयः ॥१०॥

देशः कालः	स्थान, समय	**ऋत्विजः**	(यज्ञ करानेवाले)
पृथक् द्रव्यं	अलग-अलग सामग्री		ऋत्विक्
मन्त्र तन्त्र	मन्त्र विधि-विधान	**अग्नयः**	अग्नियां

देवता च	देवता तथा	**धर्मः च**	धर्म भी
यजमानः	यज्ञकर्ता यजमान	**यत् मयः**	जिनका स्वरूप हैं
क्रतुः च	यज्ञ और		॥१०॥

तं ब्रह्म परमं साक्षाद् भगवन्तमधोक्षजम् ।
मनुष्यदृष्टचा दुष्प्रज्ञा मार्यात्मानो न मेनिरे ॥११॥

तं साक्षात् परमं ब्रह्म भगवन्तं अधोक्षजं मनुष्य दृष्टचा दुष्प्रज्ञा मर्त्यं आत्मानः न मेनिरे ॥११॥

तं साक्षात्	उन साक्षात्	**दुष्प्रज्ञा**	दुष्ट बुद्धि लोगोंने
परमं ब्रह्म	परम ब्रह्म		जो
भगवन्तं	भगवान	**मर्त्यं**	मरणधर्मा देहको
अधोक्षजं	इन्द्रियोंके पीछे रहने		ही
	वाले हृषीकेशको।	**आत्मानः**	आत्मा मान रखा है
मनुष्य दृष्टचा	मनुष्य समझकर	**मेनिरे न**	सम्मानित नहीं
			किया ॥११॥

न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च परंतप ।
गोपा निराशाः प्रत्येत्य तथोचुः कृष्णरामयोः ॥१२॥

न ते यत् ओम् इति प्रोचुः न न इति च परंतप गोपा निराशाः प्रति एत्य तथा ऊचुः कृष्णरामयोः ॥१२॥

परंतप	शत्रुतापन परीक्षित !	**निराशाः**	निराश
यदा ते	जब उन्होंने	**गोपा**	गोपोंने
ओम् इति	'हां' इस प्रकार	**प्रति एत्य**	लौटकर
न	नहीं और	**कृष्ण-**	श्रीकृष्ण और
न	'नहीं'	**रामयोः**	बलरामसे
इति न	इस प्रकार भी नहीं	**तथा ऊचुः**	वैसा बतला दिया
प्रोचुः	कहा तो		॥१२॥

तदुपाकर्ण्य भगवान् प्रहस्य जगदीश्वरः ।
व्याजहार पुनर्गोपान् दर्शयँल्लौकिकीं गतिम् ॥१३॥

तत् उपाकर्ण्य भगवान् प्रहस्य जगदीश्वरः व्याजहार पुनः गोपान् दर्शयन् लौकिकीं गतिम् ॥१३॥

जगदीश्वरः	संम्पूर्ण संसारके स्वामी	**लौकिकीं**	सांसारिक
भगवान्	भगवान्ने	**गतिं**	दशा
तत् उपाकर्ण्य	उसको सुनकर	**दर्शयन्**	दिखलाते हुए
प्रहस्य	खुलकर हँसकर	**व्याजहार**	बोले ॥१३॥

मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणमागतम् ।
दास्यन्ति काममन्नं वः स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥१४॥

मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणं आगतं दास्यन्ति कामं अन्नं वः स्निग्धा मयि उषिता धियः ॥१४॥

पत्नीभ्यः	उन (ब्राह्मणों) की पत्नियोंको	**धियः**	चित्त वाली (वे)
ससङ्कर्षणं	श्रीबलरामजीके साथ	**स्निग्धा**	स्नेहमयी
मां आगतं	मेरे आनेकी	**वः कामं**	तुम लोगोंको पर्याप्त
ज्ञापयत	सूचना दो	**अन्नं**	भोजन
मयि उषिता	मुझमें लगे	**दास्यन्ति**	देंगी ॥१४॥

गत्वाथ पत्नीशालायां दृष्ट्वाऽऽसीनाः स्वलङ्कृताः ।
नत्वा द्विजसतीर्गोपाः प्रश्रिता इदमब्रुवन् ॥१५॥

गत्वा अथ पत्नीशालायां दृष्ट्वा आसीनाः स्वलंकृताः नत्वा द्विजसतीः गोपाः प्रश्रिता इदं अब्रुवन् ॥१५॥

अथ	फिर	**आसीनाः**	बैठी
पत्नीशालायां	पत्नीशालामें	**दृष्ट्वा**	देखकर
गत्वा	जाकर	**प्रश्रिता**	नम्रतापूर्वक
द्विज-	ब्राह्मणोंकी	**नत्वा**	प्रणाम करके
सतीः	साध्वियोंको	**इदं अब्रुवन्**	यह बोले ॥१५॥
स्वलंकृताः	अपने आभूषण पहिने		

नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि नः ।
इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥१६॥

नमः वः विप्रपत्नीभ्यः निबोधत वचांसि नः इतः अविदूरे चरता कृष्णेन इह ईषिता वयम् ॥१६॥

वः	आप	**इतः अविदूरे**	यहां से पास ही
विप्रपत्नीभ्यः	ब्राह्मण-पत्नियोंको	**चरता**	विचरण करते
नमः	नमस्कार	**कृष्णेन**	श्रीकृष्ण द्वारा
नः वचांसि	हमारी बातें	**इह वयं**	यहां हम
निबोधत	सुनें	**ईषिता**	भेजे गये हैं ॥१६॥

गाश्चारयन् स गोपालैः सरामो दूरमागतः ।
बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥१७॥

गाः चारयन् स गोपालैः सरामः दूरं आगतः बुभुक्षितस्य तस्य अन्नं स अनुगस्य प्रदीयताम् ॥१७॥

स गोपालैः	गोपालकोंके साथ	**स अनुगस्य**	अनुचरोंके साथ
गाः चारयन्	गायें चराते हुए	**बुभुक्षितस्य**	भूखे
सरामः	बलरामजीके संग	**तस्य अन्नं**	उनको भोजन
दूरं आगतः	दूर चले आये	**प्रदीयतां**	दीजिए ॥१७॥

श्रुत्वाच्युतमुपायातं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः ।
तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसम्भ्रमाः ॥१८॥

श्रुत्वा अच्युतं उप आयातं नित्यं तत् दर्शन उत्सुकाः तत् कथा क्षिप्त मनसः बभूवुः जात सम्भ्रमाः ॥१८॥

तत्	उन (श्रीकृष्ण) की	**अच्युतं**	श्रीकृष्णको
कथा	कथासे	**उप आयातं**	समीप आया
क्षिप्त मनसः	आकृष्ट चित्ता	**श्रुत्वा**	सुनकर (उनमें)
नित्यं तत्	सदा उनके	**जात सम्भ्रमाः**	उतावली उत्पन्न
दर्शन उत्सुकाः	दर्शनको उत्सुका	**बभूवुः**	हो गयी ॥१८॥

चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ।
अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥१९॥

चतुर्विधं बहुगुणं अन्नं आदाय भाजनैः अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रं इव निम्नगाः ॥१९॥

चतुर्विधं	चारों प्रकार का (चर्व, चोष्य, लेह्य, पेय)		बहनेवाली नदियोंके
		इव	समान
बहुगुणं	बहुत गुणवान	**सर्वाः**	वे सब
अन्नं	भोजन	**प्रियं**	प्रिय (श्रीकृष्ण) की ओर
भाजनैः आदाय	बर्तनोंमें लेकर	**अभिसस्रुः**	वेगसे चल पड़ीं ॥१९॥
समुद्रं	समुद्रकी ओर		
निम्नगाः	नीचेकी ओर		

निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बन्धुभिः सुतैः ।
भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ॥२०॥

निषिध्यमानाः पतिभिः भ्रातृभिः बन्धुभिः सुतैः भगवति उत्तम श्लोके दीर्घ श्रुत धृत आशयाः ॥२०॥

दीर्घ	बहुत समयसे	**भ्रातृभिः**	भाइयों द्वारा
श्रुत	सुन-सुनकर	**बन्धुभिः**	सम्बन्धियों द्वारा तथा
उत्तम श्लोके	पवित्र कीर्ति		
भगवति	भगवानमें	**सुतैः**	पुत्रों द्वारा भी
धृत आशयाः	चित्त लगाये थीं, अतः	**निषिध्यमानाः**	रोकी जाती भी ॥२०॥
पतिभिः	पति द्वारा		

यमुनोपवनेऽशोकनवपल्लवमण्डिते ।
विचरन्तं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥२१॥

यमुना उपवने अशोक नवपल्लव मण्डिते विचरन्तं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥२१॥

स्त्रियः	(उन) स्त्रियोंने
अशोक	अशोकके
नवपल्लव	नवीन पत्तोंसे
मण्डिते	सुशोभित
यमुना	यमुनाके
उपवने	समीपके वनमें
गोपैः वृतं	गोपोंसे घिरे
साग्रजं	बड़े भाईके साथ
विचरन्तं	विचरण करते
ददृशुः	(श्रीकृष्णको) देखा

॥२१॥

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्ह-
धातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं
कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥ २॥

श्यामं हिरण्य परिधिं वनमाल्य बर्हं धातु प्रवाल नटवेषं अनुव्रत अंसे विन्यस्त हस्तं इतरेण धुनानं अब्जं कर्ण उत्पल अलक कपोल मुखाब्ज हासम् ॥२२॥

श्यामं	श्याम वर्ण
हिरण्य	सुनहले
परिधि	पीताम्बरसे घिरे,
वनमाल्य	वनमालाधारी
बर्हं धातु	मयूर पिच्छ, वनकी धातुओं तथा
प्रवाल	नयी कोंपलोंसे
नटवेषं	नट जैसा वेश बनाये
अनुव्रत	सखाके
अंसे हस्तं	कन्धेपर हाथ
विन्यस्त	रखे हुए
इतरेण	दूसरे (हाथ) से
अब्जं धुनानं	कमल घुमाते हुए
कर्ण	कानोंपर
उत्पल	श्वेत कमल रखे
कपोल	कपोलोंपर
अलक	अलकें आयी हैं
मुखाब्ज	कमल-मुख
हासम्	हास्य (शोभित) है

॥२२॥

प्रायः श्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरै-
र्यस्मिन् निमग्नमनसस्तमथाक्षिरन्ध्रैः ।
अन्तः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं
प्राज्ञं यथाभिमतयो विजहुर्नरेन्द्र ॥२३॥

प्रायः श्रुत प्रियतम उदय कर्णपूरैः यस्मिन् निमग्न मनसः तं अथ अक्षिरन्ध्रैः अन्तः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं प्राज्ञं यथा अभिमतयः विजहुः नरेन्द्र ॥२३॥

नरेन्द्र	महाराज !	**सुचिरं**	बहुत देर तक
प्रायः	प्रायः (उन)	**परिरभ्य**	आलिंगन करके
प्रियतम	प्रियतमके	**यथा**	जैसे
उदय	उत्कर्षको	**अभिमतयः**	वृत्तियां (जाग्रत स्वप्नमें)
कर्णपूरैः	कानोंमें भरकर (सुनकर)		अहंता-ममतासे संतप्त सुषुप्तिमें
यस्मिन्	जिनमें	**प्राज्ञं**	प्राज्ञ पुरुषके (पाकर नाम मुक्त हो जाती हैं वैसे ही)
मनसः निमग्न	चित्त डूब गया था	**तापं**	सतापको
अथ तं	अब उनको	**विजहुः**	सर्वथा त्याग दिया
अक्षिरन्ध्रैः	नेत्रोंके छिद्रोंसे		॥२३॥
अन्तः	अन्तःकरणमें		
प्रवेश्य	ले जाकर		

तास्तथा त्यक्तसर्वाशाः प्राप्ता आत्मदिदृक्षया ।
विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा प्राह प्रहसिताननः ॥२४॥

ताः तथा त्यक्त सर्व आशाः प्राप्ता आत्म दिदृक्षया विज्ञाय अखिल दृक् द्रष्टा प्राह प्रहसित आननः ॥२४॥

ताः तथा	उनको इस प्रकार	**अखिल**	सबके हृदयकी
सर्व आशाः	सब आशा	**दृक्**	दृष्टि
त्यक्त	त्यागकर	**द्रष्टा भगवान्**	देखनेवाले भगवान्
आत्म दिदृक्षया	अपने दर्शनार्थ	**प्रहसित आननः**	हंसते हुए मुखसे
प्राप्ता विज्ञाय	आयी जानकर	**प्राह**	बोले ॥२४॥

श्रीभगवानुवाच*

स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम् ।
यन्नो दिदृक्षया प्राप्ता उपन्नमिदं हि वः ॥२५॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

स्वागतं वः महाभागा आस्यतां करवाम किं यत् नः दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नं इदं हि वः ॥२५॥

महाभागा	महाभाग्यवतियो !	**दिदृक्षया**	दर्शनको
वः स्वगतं	तुम्हारा स्वागत है	**प्राप्ता**	आयी हो
आस्यतां	आओ	**वः**	तुम लोगोंका
किं	हम क्या	**इदं**	ऐसा करना
करवाम	स्वागत करें	**उपपन्नं**	उचित ही है ॥२५॥
हि यत् नः	क्योंकि जो हमारे		

नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शनाः ।
अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥२६॥

ननु अद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थ दर्शनाः अहैतुकी अव्यवहितां भक्ति आत्मप्रिये यथा ॥२६॥

ननु	निः सन्देह	**अव्यवहितां**	व्यवधान रहिता
स्वार्थ	अपना सच्चा स्वार्थ	**यथा**	जैसे (अपने)
दर्शिनाः	समझनेवाले	**आत्मप्रिये**	प्रिय आत्मासे
कुशलाः	चतुर पुरुष	**अद्धा भक्तिं**	प्रगाढ़ भक्ति
मयि अहैतुकी	मुझमें निष्काम	**कुर्वन्ति**	करते हैं ॥२६॥

प्राणबुद्धिमनः स्वात्मदारापत्यधनादयः ।
यत्सम्पर्कात् प्रिया आसंस्ततः को न्वपरः प्रियः ॥२७॥

प्राण बुद्धि मनः स्व आत्म दारा अपत्य धन आदयः यत् सम्पर्कात् प्रिया आसन् ततः कः नु अपरः प्रियः ॥२७॥

यत् सम्पर्कात्	जिसकी सन्निधिसे	**प्रिया आसन्**	प्रिय बने हैं
प्राण बुद्धि	प्राण, बुद्धि,	**नु कः ततः**	भला कौन उससे
मनः स्व आत्म	मन, अपना शरीर,	**अपरः प्रियः**	भिन्न प्रिय होगा ॥२७॥
दारा अपत्य	स्त्री, पुत्र,		
धन आदयः	धन आदि		

तद् यात देवयजनं पतयो वो द्विजातयः ।
स्वसत्रं पारयिष्यन्ति युष्माभिर्गृहमेधिनः ॥२८॥

तत् यात देवयजनं पतयः वः द्विजातयः स्वसत्रं पारयिष्यन्ति युष्माभिः गृहमेधिनः ॥२८॥

तत्	अतः अब
देवयजनं यात	देवयज्ञ स्थानपर लौटो
वः द्विजातयः	तुम्हारे ब्राह्मण
पतयः	पति
गृहमेधिनः	गृहस्थ हैं (अत.)
युष्माभिः	तुम लोगोंके सहयोग से ही
स्वसत्रं	अपना यज्ञ
पारयिष्यन्ति	पूर्ण कर सकेंगे ॥२८॥

पत्न्य ऊचुः

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम् ।
प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदावसृष्टं
केशैर्निवोढुमतिलङ्घ्य समस्तबन्धून् ॥२९॥

मा एवं विभो अर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलं प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदा अवसृष्टं केशैः निवोढुं अतिलङ्घ्य समस्त बन्धून् ॥२९॥

विभो भवान्	प्रभो ! आपको
एवं नृशंसं	ऐसी निष्ठुर
गदितुं	वाणी
मा अर्हति	नहीं करनी चाहिए
निगमं	वेदवाणी
सत्यं कुरुष्व	(कि परमात्माके पास जाकर कोई लौटता नहीं) को सच कीजिए
तव पदा	आपके चरणोंसे
अवसृष्टं	गिरी हुई
तुलसिदाम	तुलसीको मालाको
केशैः	अपने केशोंमें
निवोढुं	धारण करने
समस्त बन्धून्	सब सम्बन्धियोंकी
अतिलङ्घ्य	(आज्ञाका) उलंघन करके

पादमूलं	(आपके) चरणोंके समीप	**वयं प्रापिता**	हम आयी हैं ॥२९॥

गृह्णन्ति नो न पतयः पितरौ सुता वा
न भ्रातृबन्धुसुहृदः कुत एव चान्ये ।
तस्मात् भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो
नान्यो भवेद् गतिररिन्दम तद् विधेहि ॥३०॥

गृह्णन्ति नः न पतयः पितरौ सुता वा न भ्रातृ बन्धु सुहृदः कुत एव च अन्ये तस्मात् भवत् प्रपदयोः पतित आत्मनां नः न अन्यः भवेत् गतिः अरिन्दम तत् विधेहि ॥३०॥

नः पतयः	हमको (हमारे) पति	**भवत्**	आपके
पितरौ	मातापिता	**प्रपदयोः**	चरणोंके ऊपर
वा सुता न	अथवा पुत्र नहीं	**आत्मनां**	आकर
न भ्रातृ बन्धु	न भाई-बन्धु	**पतित**	गिर पड़ी
सुहृदः	सुहृद	**नः**	हमारा
गृह्णन्ति	स्वीकार करेंगे	**अन्यः**	दूसरा कोई
च अन्ये	फिर दूसरे तो	**गतिः न भवेत्**	आश्रय न बने
कुत एव	कहांसे (स्वीकार करेंगे)	**अरिन्दम**	शत्रु-दमन करनेवाले
तस्मात्	इसलिए	**तत् विधेहि**	इसकी व्यवस्था कीजिए ॥३०॥

श्रीभगवानुवाच

पतयो नाभ्यसूयेरन् पितृभ्रातृसुतादयः ।
लोकाश्च वो मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते ॥३१॥

पतयः न अभ्यसूयेरन् पितृ भ्रातृ सुत आदयः लोकाः च वः मया उपेता देवा अपि अनुमन्वते ॥३१॥

पतयः पितृ	(तुम्हारे) पति, पिता,	**आदयः**	आदि
भ्रातृ सुत	भाई, पुत्र	**च लोकाः**	तथा दूसरे लोग

अभ्यसूयेरन्	तुममें दोष	**वः**	तुम लोगोंका
न	नहीं देखेंगे	**देवा अपि**	देवता भी
मया	मेरे	**अनुमन्वते**	बराबर सम्मान
उपेता	समीप आनेके कारण		करेंगे ॥३१॥

न प्रीतयेऽनुरागाय ह्यङ्गसङ्गो नृणामिह ।
तन्मनो मयि युञ्जाना अचिरान्मामवाप्स्यथ ॥३२॥

न प्रीतये अनुरागाय हि अङ्ग सङ्गः नृणां इह तत् मनः मयि युञ्जाना अचिरात् मां अवाप्स्यथ ॥३२॥

हि इह	क्योंकि इस संसारमें	**तत् मयि**	इसलिए मुझमें
नृणां	मनुष्योंका	**मनः युञ्जाना**	चित्त लगाती हुई
अङ्ग सङ्गः	शारीरिक संसर्ग	**अचिरात् मां**	अविलम्ब मुझे
प्रीतये	प्रीति अथवा	**अवाप्स्यथ**	प्राप्त कर लोगी
अनुरागाय	अनुरागका कारण		॥३२॥
न	नहीं है		

श्रीशुक उवाच

इत्युक्ता मुनिपत्न्यस्ता यज्ञवाटं पुनर्गताः ।
ते चानसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्रमपारयन् ॥३३॥

इति उक्ता मुनिपत्न्यः ताः यज्ञवाटं पुनः गताः ते च अनसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्रं अपारयन् ॥३३॥

इति	(भगवान्‌के) ऐसा	**अनुसूयवः**	(ब्राह्मण उनमें) दोष
उक्ता	कहनेपर		न देखकर
ताः	वे	**स्वाभिः**	अपनी
मुनिपत्न्यः	ब्राह्मण-पत्नियां	**स्त्रीभिः**	पत्नियोंके साथ
पुनः	फिर	**सत्रं**	यज्ञ
यज्ञवाटं गताः	यज्ञशाला चली गयी	**अपारयन्**	पूर्ण करने लगे
च ते	और वे		॥३३॥

तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवन्तं यथाश्रुतम् ।
हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम् ॥३४॥

तत्र एका विधृता भर्त्रा भगवन्तं यथा श्रुतं हृदा उपगुह्य विजहौ देहं कर्म अनुबन्धनम् ॥३४॥

तत्र	उनमेंसे	**भगवन्तं**	भगवानका
एका	एक (आते समय)	**हृदा**	हृदयमें
भर्त्रा	पतिके द्वारा	**उपगुह्य**	आलिगन करके
विधृता	बल पूर्वक पकड़ ली गई थी	**कर्म**	प्रारब्ध कर्मसे
		अनुबन्धनं	प्राप्त
यथा	जैसा	**देह विजहौ**	शरीर त्याग दिया ॥३४॥
श्रुतं	सुना था उस रूपमें		

भगवानपि गोविन्दस्तेनैवान्नेन गोपकान् ।
चतुर्विधेनाशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥३५॥

भगवान् अपि गोविन्दः तेन एव अन्नेन गोपकान् चतुर्विधेन आशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥३५॥

भगवान्	भगवान्	**गोपकान्**	गोपकुमारोंको
गोविन्दः अपि	गोविन्दने भी	**आशयित्वा**	भोजन कराके
तेन	उस (ब्राह्मणियोंके लाये)	**प्रभुः**	उन सर्वसमर्थने
		स्वयं च	स्वयं भी
चतुर्विधेन	चारों प्रकारके	**बुभुजे**	भोजन किया ॥३५॥
अन्नेन	भोजनसे		

एवं लीलानरवपुर्नृलोकमनुशीलयन् ।
रेमे गोगोपगोपीनां रमयन् रूपवाक्कृतैः ॥३६॥

एवं लीला नरवपुः नृलोकं अनुशीलयन् रेमे गोः गोप गोपीनां रमयन् रूप वाक् कृतैः ॥३६॥

एवं लीला	इस प्रकार लीलासे	**अनुशीलयन्**	समान आचरण करते हुए
नरवपुः	मनुष्य शरीर द्वारा		
नृलोकं	मनुष्योंके	**रूप**	(अपने) सौन्दर्य

वाक् कृतैः	वचन एवं कर्मोंसे	**रमयन्**	आनन्दित करते
गोः गोप	गायों-गोपों तथा	**रेमे**	क्रीड़ा करते रहे
गोपीनां	गोपियोंको		॥३६॥

अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वतप्यन् कृतागसः ।
यद् विश्वेश्वरयोश्चाम्हन्म नृविडम्बयोः ॥३७॥

अथ अनुस्मृत्य विप्राः ते अन्वतप्यन् कृत आगसः यत् विश्वेश्वरयोः याञ्चां अहन्म नृविडम्बयोः ॥३७॥

अथ ते विप्राः	फिर वे ब्राह्मण	**अहन्म**	उसे हमने नष्ट
अनुस्मृत्य	यह स्मरण करके कि		किया (नहीं सुना)
नृविडम्बयोः	मनुष्य-लीला करते	**कृत आगसः**	अपराध करनेके
	हुए		कारण
विश्वेश्वरयोः	जगदीश्वर (बलराम-	**अन्वतप्यन्**	पश्चाताप करने
	श्रीकृष्णकी)		लगे ॥३७॥
यत् याञ्चां	जो याचना थी		

दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् ।
आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन् ॥३८॥

दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिं अलौकिकीं आत्मानं च तया हीनं अनुतप्ता व्यगर्हयन् ॥३८॥

स्त्रीणां	(अपनी) स्त्रियोंकी	**आत्मनं**	अपनेको (देखकर)
भगवति कृष्णे	भगवान् श्रीकृष्णमें	**अनुतप्ता**	पछताकर
अलौकिकीं	लोकोत्तरा	**व्यगर्हयन्**	(अपनी) निन्द करने
भक्तिं दृष्ट्वा	भक्ति देखकर		लगे ॥३८॥
च तया हीनं	तथा उससे रहित		

धिग् जन्म नस्त्रिवृद् विद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम् ।
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥३९॥

धिक् जन्म नः त्रिवृत् विद्यां धिक् व्रतं धिक् बहुज्ञतां धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये तु अधोक्षजे ॥३९॥

ये तु अधोक्षजे	जो हम तो भगवान् हृषीकेशसे
विमुखा	विमुख हैं, अतः
त्रिवृत् विद्यां	गायत्री विद्याकी दीक्षासे
नः जन्म धिक्	हमारे द्विज होनेको धिक्कार है,
व्रतं धिक्	व्रतनिष्ठ होनेको धिक्कार है,
बहुज्ञतां धिक्	बहुज्ञताको धिक्कार है,
कुलं धिक्	(उत्तम) कुलको धिक्कार है,
क्रियादाक्ष्यं	कर्मकाण्डकी निपुणताको
धिक्	धिक्कार है ॥३९॥

नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी ।
तद् वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥४०॥

नून भगवतः माया योगिनां अपि मोहिनी यत् वयं गुरवः नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजा. ॥४०॥

नून	निःसन्देह
भगवतः माया	भगवानकी माया
योगिनां अपि	योगियोंको भी
मोहिनी	मोहमें डालने वाली है
यत् नृणां गुरवः	जिससे मनुष्योंके गुरु
द्विजाः वयं	ब्राह्मण (होकर भी) हम लोग
स्वार्थे मुह्यामहे	अपने वास्तविक स्वार्थके प्रति मोहमें पड़ गये ॥४०॥

अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ ।
दुरन्तभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान् गृहाभिधान् ॥४१॥

अहो पश्यत नारीणां अपि कृष्णे जगद्गुरौ दुरन्त भावं यः अविध्यन् मृत्युपाशान् गृह अभिधान् ॥४१॥

अहो पश्यत	अरे देखो तो,
नारीणां अपि	स्त्री होनेपर भी (इनका)
जगद्गुरौ	जगद्गुरु
कृष्णे दुरन्त	श्रीकृष्णमें अगाध
भावं	प्रेम

यः गृह अभिधावत्	जिससे घर कह-लानेवाले	अविध्यत्	(इन्होंने) काट दिया ॥४१॥
मृत्युपाशान्	मृत्युके बन्धनोंको		

नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ।
न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ॥४२॥

न आसां द्विजाति सस्कारः न निवासः गुराः अपि न तपः न आत्म-मीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ॥४२॥

आसां	इनका	न तपः	(इनमें) न तपस्या है,
द्विजाति	द्विजाति-		
संस्कारः	संस्कार (यज्ञोपवीत)	न आत्म-	न आत्म
न	नहीं हुआ है	मीमांसा	तत्त्वका विवेक,
गुराः निवासः	गुरुकुलमें निवास	न शौच	न पवित्रता,
अपि न	भी नहीं हुआ,	न शुभाः क्रियाः	न कोई पुण्य कर्म ॥४२॥

अथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ।
भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ॥४३॥

अथ अपि हि उत्तम श्लोके कृष्णे योगेश्वर ईश्वरे भक्तिः दृढा न च अस्माकं संस्कर आदि मतां अपि ॥४३॥

अथ अपि हि	फिर भी क्योंकि	च अस्माकं	और हम लोगोंकी
उत्तम श्लोके	पवित्र कीर्ति	संस्कार आदि	संस्कार आदि
योगेश्वर ईश्वरे	योगेश्वरोंके भी स्वामी	मतां अपि न	सम्पन्न होनेपर भी नहीं है (अतः ये श्रेष्ठ हैं) ॥४३॥
कृष्णे दृढा	श्रीकृष्णमें दृढ़		
भक्तिः	भक्ति है		

ननु स्वार्थविमूढानां प्रमत्तानां गृहेहया ।
अहो नः स्मारयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः ॥४४॥

ननु स्वार्थ विमूढानां प्रमत्तानां गृह ईहया अहो नः स्मारयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः ॥४४॥

ननु	निःसन्देह	**नः**	हम लोगोंको
स्वार्थ विमूढानां	अपने वास्तविक स्वार्थके प्रति विमूढ़ हुए,	**अहो गोपवाक्यैः**	अहो, गोपोंके वचनोंके द्वारा
गृह ईहया	गृहस्थीकी कामनाओंसे	**सतां गतिः**	(भगवानने) सत्पुरुष गति (अपना)
प्रमत्तानां	प्रमत्त हुए	**स्मारयामास**	स्मरण कराया था ॥४४॥

अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्याद्याशिषां पतेः ।
ईशितव्यैः किमस्माभिरीशस्यैतद् विडम्बनम् ॥४५॥

अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्य आदि आशिषां पतेः ईशितव्यैः किं अस्माभिः ईशस्य एतत् विडम्बनम् ॥४५॥

अन्यथा	नहीं तो	**किं ईशितव्यैः**	क्या चाहना हो सकती है,
कैवल्य आदि	मोक्षादि	**ईशस्य**	उन सर्वसमर्थकी
आशिषां पतेः	सम्पूर्ण अभिलाषाओंके स्वामी	**एतत् विडम्बनं**	यह लीला ही है ॥४५॥
पूर्णकामस्य	पूर्ण कामको		
अस्माभिः	हम लोगोंसे		

हित्वान्यान् भजते यं श्रीः पादस्पर्शाशया सकृत् ।
आत्मदोषापवर्गेण तद्याञ्चा जनमोहिनी ॥४६॥

हित्वा अन्यान् भजते यं श्रीः पादस्पर्श आशया सकृत् आत्मदोष अपवर्गेण तत् याञ्चा जन मोहिनी ॥४६॥

अन्यान् हित्वा	दूसरोंको त्यागकर	**अपवर्गेण**	छोड़कर
आत्मदोष	अपने (चंचलता रूप) दोषको	**सकृत् पादस्पर्श**	केवल एक बार चरण-स्पर्श

आशया	पानेकी इच्छासे	**जन मोहिनी**	लोगोंको मोहमें
श्रीः यं भजते	लक्ष्मी जिनका भजन		डालने वाला है
	करती हैं		॥४६॥
तत् याञ्चा	उनका याचना		
	करना		

देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्र तन्त्रर्त्विजोऽग्नयः ।
देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥४७॥

देशः कालः पृथक् द्रव्यं मन्त्र तन्त्र ऋत्विजः अग्नयः देवता यजमानः च क्रतुः धर्मः च यत् मयः ॥४७॥*

देश कालः	स्थान, समय	**देवता यजमानः**	देवता, यजमान,
पृथक् द्रव्यं	अलग-अलग पदार्थ,	**च क्रतुः धर्मः च**	तथा यज्ञ एवं
मन्त्र तन्त्र	मन्त्र, विधि-विधान,		धर्म भी
ऋत्विजः	ऋत्विक् ब्राह्मण,	**यत् मयः**	जिनका स्वरूप हैं
अग्नयः	अग्नियां,		॥४७॥

स एष भगवान् साक्षाद् विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः ।
जातो यदुष्वित्यश्रृण्म ह्यपि मूढा न विद्महे ॥४८॥

स एष भगवान् साक्षात् विष्णुः योगेश्वर ईश जातः यदुषु इति अश्रृण्म हि अपि मूढा न विद्महे ॥४८॥

स एष साक्षात्	वही ये साक्षात्	**इति अश्रृण्म**	ऐसा हमने सुना था
योगेश्वर	योगेश्वरोंके भी	**हि मूढा अपि**	किन्तु मूर्ख होनेसे
ईश्वरः	स्वामी	**न विद्महे**	नहीं जान सके
भगवान् विष्णुः	भगवान विष्णु		॥४८॥
यदुषु जातः	यदु वंशमें अवतीर्ण		
	हुए हैं		

---

* इसी अध्यायके श्लोक १० की यह पुनरावृत्ति है ।

अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः ।
भक्त्या यासां मतिर्जाता अस्माकं निश्चला हरौ ॥४९॥

अहो वयं धन्यतमा येषां नः तादृशीः स्त्रियः भक्त्या यासां मतिः जाता अस्माकं निश्चला हरौ ॥४९॥

अहो वयं	अहो, हम लोग	**यासां भक्त्या**	जिनकी भक्ति (के प्रभाव) से
धन्यतमा	परम धन्य हैं	**अस्माकं हरौ**	हम लोगोंकी श्रीहरिमें
येषां नः	जिन हमारी	**निश्चला मतिः**	निश्चला बुद्धि
तादृशीः स्त्रियः	उस प्रकारकी स्त्रियां हैं	**जाता**	उत्पन्न हुई ॥४९॥

नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
यन्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मवर्त्मसु ॥५०॥

नमः तुभ्यं भगवते कृष्णाय अकुण्ठ मेधसे यत् माया मोहित धियः भ्रमामः कर्मवर्त्मसु ॥५०॥

अकुण्ठ मेधसे	अमोघ संकल्प	**मोहित धियः**	मोहित बुद्धि (होने-से हम)
तुभ्यं भगवते	आप भगवान		
कृष्णाय नमः	श्रीकृष्णको नमस्कार	**कर्मवर्त्मसु**	कर्म मार्गमें
यत् माया	जिनकी मायासे	**भ्रमामः**	भटक रहे हैं ॥५०॥

स वै न आद्यः पुरुषः स्वमायामोहितात्मनाम् ।
अविज्ञातानुभावानां क्षन्तुमर्हत्यतिक्रमम् ॥५१॥

स वै नः आद्यः पुरुषः स्वमाया मोहित आत्मनां अविज्ञात अनुभावानां क्षन्तुं अर्हति अतिक्रमम् ॥५१॥

वै स्वमाया	निश्चय अपनी मायासे	**अतिक्रमं**	अवमाननाको
मोहित आत्मनां	मोहित चित्त	**स आद्यः पुरुषः**	उन आदि पुरुषको
अनुभावानां	अपने प्रभावको	**क्षन्तुं अर्हति**	क्षमा कर देना चाहिए ॥५१॥
अविज्ञात नः	न जाननेवाले हम लोगोंकी		

इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः ।
दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोः कंसाद् भीता न चाचलन् ॥५२॥

इति स्वअघं अनुस्मृत्य कृष्णे ते कृत हेलनाः दिदृक्षवः अपि अच्युतयोः कंसात् भीता न च अचलन् ॥५२॥

इति ते	इस प्रकार वे
कृष्णे	श्रीकृष्णकी
हेलनाः कृत	उपेक्षा करनेवाले (ब्राह्मण)
स्वअघं	अपने अपराधको
अनुस्मृत्य	स्मरण करके
अच्युतयोः	श्रीकृष्ण-बलरामके
दिदृक्षवः अपि	दर्शनेच्छुक होनेपर भी
कंसात् भीता	कंससे डरे होनेसे
न च अचलन्	नहीं ही जा सके ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे यज्ञपत्न्युद्धरणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः ।

अपश्यन्निवसन् गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥१॥

भगवान् अपि तत्र एव बलदेवेन संयुतः अपश्यत् निवसन् गोपान् इन्द्रयाग कृत उद्यमान् ॥१॥

बलदेवेन	बलरामजी के	**इन्द्रयाग**	इन्द्र यज्ञ
संयुतः	साथ मिलकर	**कृत**	के लिए
तत्र एव	वहीं (व्रजमें)	**उद्यमान्**	उद्योग करते
निवसन्	बसते हुए	**गोपान्**	गोपोंको
भगवान् अपि	भगवान्ने भी	**अपश्यत्**	देखा ॥१॥

तदभिज्ञोऽपि भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।

प्रश्रयावनतोऽपृच्छद् वृद्धान् नन्दपुरोगमान् ॥२॥

तत् अभिज्ञः अपि भगवान् सर्वं आत्मा सर्वदर्शनः प्रश्रय अवनतः अपृच्छत् वृद्धान् नन्दपुरः अगमान् ॥२॥

सर्वं आत्मा	सर्वात्मा	**प्रश्रय**	नम्रतासे
सर्वदर्शनः	सर्वज्ञ	**अवनतः**	विनम्र होकर
भगवान्	भगवान्ने	**नन्दपुरः अगमान्**	नन्द-प्रमुख
तत् अभिज्ञः	उसको जानते हुए	**वृद्धान्**	बूढ़ोंसे
अपि	भी	**अपृच्छत्**	पूछा ॥२॥

कथ्यतां मे पितः कोऽयं सम्भ्रमो व उपागतः ।

किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः ॥३॥

कथ्यतां मे पितः कः अयं सम्भ्रमः वः उपागतः किं फलं कस्य च उद्देशः केन वा साध्यते मखः ॥३॥

पितः मे	पिताजी मुझे
कथ्यतां	बतलाइये
अयं कः	यह कौन-सी
सम्भ्रमः	हड़बड़ी
वः	आप लोगोंके
उपागतः	पास आ गयी है ?
मखः कः	इस यज्ञका क्या
फलं:	फल है ?
च कस्यः	और किस (देवता) के
उद्देशः	उद्देशसे है ?
वा केन	अथवा किनके द्वारा
साध्यते	किया जाता है ॥३॥

एतद् ब्रूहि महान् कामो मह्यं शुश्रूषवे पितः ।
न हि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनामिह ॥४॥

एतत् ब्रूहि महान् कामः मह्यं शुश्रूषवे पितः न हि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनां इह ॥४॥

पितः एतत्	पिताजी यह
ब्रूहि	बतलाइये
मह्यं शुश्रूषवे	मुझे सुननेकी
महान्	बहुत
कामः	इच्छा हो रही है
हि	क्योंकि
सर्वात्मनां	सबको अपना आत्मा माननेवाले
साधूनां	सत्पुरुषोंके लिए
गोप्यं	छिपाने योग्य
इह	इस संसारमें
कृत्यं	कोई कर्म
न हि	नहीं है ॥४॥

अस्त्यस्वपरदृष्टीनाममित्रोदास्तविद्विषाम् ।
उदासीनोऽरिवद् वर्ज्यं आत्मवत् सुहृदुच्यते ॥५॥

अस्त्य स्व पर दृष्टीनां अमित्र उदास्त विद्विषां उदासीनः अरिवत् वर्ज्यः आत्मवत् सुहृत् उच्यते ॥५॥

स्व पर	अपने-परायेके
दृष्टिनां	भेद देखनेवालों के लिए
अमित्र	जो मित्र नहीं हैं,
उदास्त	उदासीन हैं तथा
विद्विषां	शत्रुओंसे (छिपाने योग्य कर्म)
अस्त्य	होते हैं,

उदासीनः	(इनमें भी) उदासीन	**सुहृत् आत्मवत्**	सुहृद अपने समान
अरिवत्	शत्रुके समान ही	**उच्यते**	कहा जाता है ॥५॥
वर्ज्यः	त्याज्य है; किन्तु		

ज्ञात्वाज्ञात्वा च कर्माणि जनोऽयमनुतिष्ठति ।
विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात्तथा नाविदुषो भवेत् ॥६॥

ज्ञात्वा अज्ञात्वा च कर्माणि जनः अयं अनुतिष्ठति विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात् तथा न अविदुषः भवेत् ॥६॥

अयं जनः	यह संसारी मनुष्य	**विदुषः**	जाननेवाले को
ज्ञात्वा	जानकर या	**कर्मसिद्धिः**	कर्ममें सफता
अज्ञात्वा च	बिना जाने भी	**स्यात्**	होती है
कर्माणि	कर्मोंको	**तथा**	वैसी
अनुतिष्ठति	करता रहता है (इसमें)	**अविदुषः न भवेत्**	न जाननेवाले को नहीं होती ॥६॥

तत्र तावत् क्रियायोगो भवतां किं विचारितः ।
अथवा लौकिकस्तन्मे पृच्छतः साधु भण्यताम् ॥७॥

तत्र तावत् क्रियायोगः भवतां किं विचारितः अथवा लौकिकः तत् मे पृच्छतः साधु भण्यताम् ॥७॥

तत्र	इस सम्बन्धमें	**लौकिकः**	लोकाचारसे है
भवतां	आप लोगोंका	**तत् मे**	यह मुझ
क्रियायोगः	यह कर्मानुष्ठान	**पृच्छतः**	पूछनेवाले से
तावत् किं	इस समय क्या	**साधु**	भली प्रकार
विचारितः	शास्त्र निहित	**भण्यतां**	समझाकर कहिये ॥७॥
अथवा	अथवा		

नन्द उवाच

पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः ।
तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ॥८॥

पर्जन्यः भगवान् इन्द्रः मेघाः तस्य आत्ममूर्तयः ते अभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ॥८॥

भगवान् इन्द्रः	भगवान् इन्द्र	**प्रीणनं**	पोषण एवं
पर्जन्यः	वर्षा करने वाले हैं,	**जीवनं**	जीवनदायी
तस्य	उनके	**पयः**	जलकी
आत्ममूर्तयः	अपने स्वरूप	**अभिवर्षन्ति**	चारों ओर वर्षा
मेघाः	बादल हैं		करते हैं ॥८॥
ते भूतानां	वे प्राणियोंके लिए		

तं तात वयमन्ये च वार्मुचां पतिमीश्वरम् ।
द्रव्यैस्तद्रेतसा सिद्धैर्यजन्ते क्रतुभिर्नराः ॥९॥

तं तात वयं अन्ये च वारिमुचां पतिं ईश्वरं द्रव्यैः तत् रेतसा सिद्धैः यजन्ते क्रतुभिः नराः ॥९॥

तात	वत्स !	**तत् रेतसा**	उनके वीर्य (जल) से
वयं च अन्ये	हम और दूसरे भी	**सिद्धैः द्रव्यैः**	उत्पन्न पदार्थोंसे
तं वारिमुचां	उन बादलोंके	**क्रतुभिः यजन्ते**	यज्ञ करके
ईश्वरं पतिं	समर्थ स्वामीकी		पूजन करते हैं ॥९॥

तच्छेषेणोपजीवन्ति त्रिवर्गफलहेतवे ।
पुंसां पुरुषकाराणां पर्जन्यः फलभावनः ॥१०॥

तत् शेषेण उपजीवन्ति त्रिवर्गं फल हेतवे पुंसां पुरुष काराणां पर्जन्यः फल भावनः ॥१०॥

त्रिवर्ग	(अर्थ, धर्म, काम) त्रिवर्गके	**पुंसां**	मनुष्योंके
		पुरुष काराणां	(खेती आदि) उद्योगों के
फल	फलको		
हेतवे	प्राप्त करनेके लिए	**फल भावनः**	फल देनेवाले
तत्	उस (यज्ञ) से	**वर्जन्यः**	वर्षाके देवता ही हैं ॥१०॥
शेषेण	बचे हुए से		
उपजीवन्ति	(सब) जीविका चलाते हैं,		

य एवं विसृजेद् धर्मं पारम्पर्यागतं नरः ।
कामाल्लोभाद् भयाद् द्वेषात् स वै नाप्नोति शोभनम् ॥११॥

यः एवं विसृजेत् धर्मं पारम्पर्या आगतं नरः कामात् लोभात् भयात् द्वेषात् स वै न आप्नोति शोभनम् ॥११॥

यः नरः	जो मनुष्य	पारम्पर्या	कुल परम्परासे
कामात्	कामना	आगतं धर्मं	चले आते धर्मको
लोभात्	लोभ	विसृजेत्	त्यागता है
भयात्	भय या	वै स शोभनं	निश्चय वह मंगल
द्वेषात्	द्वेषसे	न आप्नोति	नहीं पाता ॥११॥
एवं	इस प्रकार		

श्रीशुक उवाच

वचो निशम्य नन्दस्य तथान्येषां व्रजौकसाम् ।
इन्द्राय मन्युं जनयन् पितरं प्राह केशवः ॥१२॥

वचः निशम्य नन्दस्य तथा अन्येषां व्रजौकसां इन्द्राय मन्युं जनयन् पितरं प्राह केशवः ॥१२॥

नन्दस्य तथा	नन्दजी की तथा	मन्युं	क्रोध
अन्येषां	दूसरे भी	जनयन्	उत्पन्न करनेके लिए
व्रजौकसां	व्रजवासियोंकी	केशवः	श्रीकृष्णने
वचः निशम्य	बात सुनकर	पितरं	पितासे
इन्द्राय	इन्द्रको	प्राह	कहा ॥१२॥

श्रीभगवानुवाच

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते ।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥१३॥

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणा एव विलीयते सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणा एव अभिपद्यते ॥१३॥

जन्तुः	प्राणी अपने	**कर्मणा एव**	कर्मानुसार ही
कर्मणा	कर्मानुसार	**सुखं दुःखं**	सुख-दुःख,
जायते	उत्पन्न होता है,	**भयं क्षेमं**	भय या कुशलता
कर्मणा एव	कर्मके अनुसार ही	**अभिपद्यते**	प्राप्त करता है
विलीयते	लीन हो जाता (मर जाता) है,		॥१३॥

अस्ति चेदीश्वरः कश्चित् फलरूप्यन्यकर्मणाम् ।
कर्तारं भजते सोऽपि न ह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः ॥१४॥

अस्ति चेत् ईश्वरः कश्चित् फल रूपि अन्य कर्मणां कर्तारं भजते सः अपि न हि अकर्तुः प्रभुः हि सः ॥१४॥

अन्य कर्मणां	कर्मोंसे पृथक्	**भजते**	सेवन करता (फल
फल रूपि	फल-निरूपक (दाता)		देता) है
चेत् कश्चित्	यदि कोई	**हि सः**	क्योंकि वह
ईश्वरः अस्ति	ईश्वर है भी तो	**अकर्तुः प्रभुः**	अकर्ताका स्वामी
सः अपि	वह भी	**न हि**	नहीं है ॥१४॥
कर्तारं	कर्मकर्ताको ही		

किमिन्द्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम् ।
अनीशेनान्यथा कर्तुं स्वभावविहितं नृणाम् ॥१५॥

किं इन्द्रेण इह भूतानां स्व स्व कर्म अनुवर्तिनां अनीशेन अन्यथा कर्तुं स्वभाव विहितं नृणाम् ॥१५॥

इह	इस संसारमें	**स्वभाव**	अपने पूर्वकर्मसे
स्व स्व	अपने-अपने	**विहितं**	प्राप्त भोगोंको
कर्म	कर्मोंके	**अन्यथा कर्तुं**	उलटा कर देनेमें
अनुवर्तिनां	अनुसार रहनेवाले	**अनीशेन**	असमर्थ
भूतानां	प्राणियोंका	**इन्द्रेण किं**	इन्द्रसे क्या प्रयोजन
नृणां	मनुष्योंके		॥१५॥

स्वभावतन्त्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते ।
स्वभावस्थमिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥१६॥

स्वभाव तन्त्रः हि जनः स्वभावं अनुवर्तते स्वभावस्थं इदं सर्वं स देव असुर मानुषम् ॥१६॥

हि जनः	क्योंकि मनुष्य	**देव**	देवता,
स्वभाव	स्वभाव (प्रकृति)	**असुर**	असुरोंके और
तन्त्रः	परतन्त्र है,	**स मानुषं**	मनुष्योंके साथ
स्वभावं	अतः स्वभावके	**इदं सर्वं**	यह सब संसार
अनुवर्तते	अनुसार व्यवहार करता है	**स्वभावस्थं**	स्वभावमें स्थित है ॥१६॥

देहानुच्चावचाञ्जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ।
शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥१७॥

देहान् उच्च अवचान् जन्तुः प्राप्य उत्सृजति कर्मणा शत्रुः मित्रं उदासीनः कर्म एव गुरुः ईश्वरः ॥१७॥

जन्तुः	जीव अपने	**शत्रुः मित्रं**	शत्रु-मित्र
कर्मणा	कर्मानुसार	**उदासीनः**	उदासीन बनाता है;
उच्च अवचान्	उत्तम-अधम	**कर्म एव**	कर्म ही
देहान्	शरीरोंको	**गुरुः**	गुरु तथा
प्राप्य	पाकर	**ईश्वरः**	ईश्वर है ॥१७॥
उत्सृजति	फिर त्यागता है तथा		

तस्मात् सम्पूजयेत् कर्म स्वभावस्थः स्वकर्मकृत् ।
अञ्जसा येन वर्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ॥१८॥

तस्मात् सम्पूजयेत् कर्म स्वभावस्थः स्वकर्म कृत् अञ्जसा येन वर्तेत तत् एव अस्य हि दैवतम् ॥१८॥

तस्मात्	इसलिए
स्वभावस्थः	स्वभावमें स्थित रहकर
स्वकर्म	अपना (वर्णाश्रम विहित) कर्म
कृत्	करते हुए
कर्म	कर्मका ही
सम्पूजयेत्	पूरा आदर करना चाहिए
येन	जिससे
अञ्जसा	सुगमतापूर्वक
वर्तेत	जीविका चलती हो
हि तत्	क्योंकि वही
एव अस्य	उस व्यक्तिका
दैवतं	आराध्य देव होता है ॥१८॥

आजीव्यैकतरं भावं यस्त्वन्यमुपजीवति ।
न तस्माद् विन्दते क्षेमं जारं नार्यसती यथा ॥१९॥

आजीव्य एकतरं भावं यः तु अन्यं उपजीवति न तस्मात् विन्दते क्षेमं जारं नारि असती यथा ॥१९॥

आजीव्य	जीविका देनेवाले
एकतरं	एक उत्तम
भावं	भाव (देवता) के अतिरिक्त
यः तु अन्यं	जो कोई दूसरेका
उपजीवति	सहारा लेता है
तस्मात् यथा	उससे जैसे
असती	व्यभिचारिणी
नारि जारं	स्त्री दूसरे जो पुरुषसे
क्षेमं न	कुशल नहीं
विन्दते	पाता ॥१९॥

वर्तेत ब्रह्मणा विप्रो राजन्यो रक्षया भुवः ।
वैश्यस्तु वार्तया जीवेच्छूद्रस्तु द्विजसेवया ॥२०॥

वर्तेत ब्रह्मणा विप्रः राजन्यः रक्षया भुवः वैश्यः तु वार्तया जीवेत् शूद्रः तु द्विज सेवया ॥२०॥

ब्रह्मणा विप्रः	वेदोंके द्वारा ब्राह्मण,
भुवः	पृथ्वीकी
रक्षया	रक्षा करके
राजन्यः	क्षत्रिय
वार्तया तु	व्यापारके द्वारा तो
वैश्यः	वैश्य और
द्विज	द्विजातियोंकी
सेवया	सेवा करके
शूद्रः तु	शूद्र भी
वर्तेत	व्यवहार करे और
जीवेत	जीविका चलावे ॥२०॥

कृषिवाणिज्यगोरक्षा कुसीदं तुर्यमुच्यते ।
वार्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम् ॥२१।

कृषि वाणिज्य गोरक्षा कुसीदं तुर्यं उच्यते वार्ता वृत्तिः चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयः अनिशम् ॥२१॥

कृषि वाणिज्य	खेती, व्यापार	**वार्ता**	(वैश्यकी) वार्ता-
गोरक्षा	गोरक्षा तथा	**वृत्तिः**	वृत्ति है,
तुर्यं कुसीदं	चौथी व्याज लेना	**तत्र वयं**	इसमें हम लोग
उच्यते	कहा गया है	**अनिशं**	रात-दिन
इयं	यह	**गोवृत्तयः**	गो-पालन करनेवाले
चतुर्विधा	चार प्रकार की		हैं ॥२१॥

सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ।
रजसोत्पद्यते विश्वमन्योन्यं विविधं जगत् ॥२२॥

सत्त्वं रजः तम इति स्थिति उत्पत्ति अन्त हेतवः रजसा उत्पद्यते विश्वं अन्योन्यं विविधं जगत् ॥२२॥

सत्त्वं	सत्व गुण	**रजसा विश्वं**	रजोगुणसे विश्व
रजः	रजो गुण,	**उत्पद्यते**	उत्पन्न होता है
तम इति	और तमोगुण ये	**अन्योन्यं**	फिर एक दूसरेसे
स्थिति	जगत्की स्थिति,	**जगत्**	संसार
उत्पत्ति	उत्पत्ति और	**विविधं**	अनेक प्रकारका
अन्त हेतवः	प्रलयके कारण हैं,		हो जाता है ॥२२॥

रजसा चोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बूनि सर्वतः ।
प्रजास्तैरेव सिद्ध्यन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति ॥२३॥

रजसा चोदिता मेघा वर्षन्ति अम्बूनि सर्वतः प्रजाः तैः एव सिद्ध्यन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति ॥२३॥

रजसा	रजोगुणसे	**अम्बूनि**	जलकी
चोदिता	प्रेरित	**वर्षन्ति**	वर्षा करते हैं
मेघा सर्वतः	बादल सब कहीं	**तैः एव**	उसीसे

प्रजाः	प्रजा (अपने उद्योग-में)	**महेन्द्रः**	इन्द्र (इस विषयमें)
सिद्ध्यन्ति	सफल होती है	**किं करिष्यति**	क्या करेंगे ॥२३॥

न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ।
नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः ॥२४॥

न नः पुरः जनपदा न ग्रामा न गृहा वयं नित्यं वनौकसः तात वन शैल निवासिनः ॥२४॥

तात नः	पिताजी ! हमारे	**वयं वन**	हम तो वन-
न	न किसी	**शैल**	पर्वतोंमें
जनपदा	प्रदेशका राज्य है,	**निवासिनः**	रहनेवाले
न पुरः	न नगर या	**नित्यं**	सदाके
ग्राम	गांव हैं	**वनौकसः**	वनवासी हैं ॥२४॥
न गृहा	न (स्थायी) घर हैं		

तस्माद् गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः ।
य इन्द्रयागसम्भारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥२५॥

तस्मात् गवां ब्राह्मणानां अद्रेः च आरभ्यतां मखः यः इन्द्र याग सम्भाराः तैः अयं साध्यतां मखः ॥२५॥

तस्मात्	इसलिए	**यः**	जो
गवां	गायों,	**इन्द्र याग**	इन्द्र-यज्ञके लिए
ब्राह्मणानां	ब्राह्मणों	**सम्भाराः**	सामग्री है,
च	तथा	**तैः अयं मखः**	उसीसे यह यज्ञ
अद्रेः	पर्वतके लिए	**साध्यतां**	सम्पन्न करें ॥२५॥
मखः आरभ्यतां	यज्ञारम्भ कीजिए		

पच्यन्तां विविधाः पाकाः सूपान्ताः पायसादयः ।
संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥२६॥

पच्यतां विविधाः पाकाः सूप अन्ताः पायस आदयः संयाव अपूप शष्कुल्यः सर्वदोहः च गृह्यताम् ॥२६॥

विविधाः	अनेक प्रकारके
पाकाः	पकवान
पायस अपूप	खीर, पुए
शष्कुल्यः	पूड़ी
आदयः	आदि
सूप अन्ताः	मूंगकी दाल तक
पच्यन्तां	पकाई जाय,
संयाव	जमा दही
च	तथा
सर्वदोहः	सब दूध
गृह्यतां	ले लीजिए ॥२६॥

हूयन्तामग्नयः सम्यग् ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ।
अन्नं बहुविधं तेभ्यो देयं वो धेनुदक्षिणाः ॥२७॥

हूयन्तां अग्नयः सम्यक् ब्राह्मणैः ब्रह्मवादिभिः अन्नं बहुविधं तेभ्यः देयं वः धेनु दक्षिणाः ॥२७॥

ब्रह्मवादिभिः	ब्रह्मवेत्ता
ब्राह्मणैः	ब्राह्मणोंके द्वारा
सम्यक्	विधि पूर्वक
अग्नयः	अग्नि होत्र
हूयन्तां	किया जाय,
वः	आप लोगोंको
तेभ्यः	उन (ब्राह्मणों) को
बहुविधं	अनेक प्रकारका
अन्नं धेनु	भोजन, गायें और
दक्षिणाः देयं	दक्षिणा देनी चाहिए ॥२७॥

अन्येभ्यश्चाश्वचाण्डालपतितेभ्यो यथार्हतः ।
यवसं च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ॥२८॥

अन्येभ्यः आश्व चाण्डाल पतितेभ्यः यथा अर्हतः यवसं च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ॥२८॥

अन्येभ्यः	दूसरोंको भी
आश्व	कुत्तोंसे लेकर
चाण्डाल	चाण्डाल,
पतितेभ्यः	तथा पतित लोगोंको
यथा	जो जिसके
अर्हतः	योग्य हैं
च गवां	और गायोंको
यवसं दत्त्वा	हरी घास देकर
गिरये	पर्वत (गोवर्धन) को
बलिः	उपहार
दीयतां	दिया जाय ॥२८॥

स्वलङ्कृता भुक्तवन्तः स्वनुलिप्ताः सुवाससः ।
प्रदक्षिणं च कुरुत गोविप्रानलपर्वतान् ॥२९॥

स्वलंकृता भुक्तवन्तः स्व अनुलिप्ताः सुवाससः प्रदक्षिणं च कुरुत गो विप्र अनल पर्वतान् ॥२९॥

स्वलंकृता	अपने आभूषण धारण करके,	**गो विप्र**	गायों, ब्राह्मणों,
भुक्तवन्तः	भोजन करके,	**अनल**	अग्नि
स्व	अपनेको	**च**	तथा
अनुलिप्ताः	चन्दनादि लगाकर	**पर्वतान्**	पर्वत (गोवर्धन) की
सुवाससः	अच्छे वस्त्र पहिनकर	**प्रदक्षिणं**	प्रदक्षिणा
		कुरुत	कीजिये ॥२९॥

एतन्मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते ।
अयं गोब्राह्मणाद्रीणां मह्यं च दयितो मखः ॥३०॥

एतत् मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते अयं गो ब्राह्मण अद्रीणां मह्यं च दयितः मखः ॥३०॥

तात	पिताजी !	**अयं मखः**	यह यज्ञ
एतत् मम	यह मेरी	**गो ब्राह्मण**	गायों, ब्राह्मणों,
मतं	सम्मति है,	**अद्रीणां**	गिरिराज (गोवर्धन)
यदि	यदि (आप लोगोंको)	**च मह्यं**	तथा मुझे भी
रोचते	रुचे तो	**दयितः**	प्रिय है ॥३०॥
क्रियतां	ऐसा कीजिए,		

श्रीशुक उवाच

कालात्मना भगवता शक्रदर्पं जिघांसता ।
प्रोक्तं निशम्य नन्दाद्याः साध्वगृह्णन्त तद्वचः ॥३१॥

काल आत्मना भगवता शक्रदर्पं जिघांसता प्रोक्तं निशम्य नन्द आद्याः साधु अगृह्णन्त तत् वचः ॥३१॥

शक्रदर्पं	इन्द्रके गर्वको	**काल आत्मना**	काल स्वरूप
जिघांसता	नष्ट करनेकी इच्छा-वाले	**भगवता**	भगवान्‌के
		प्रोक्तं	कथनको

निशम्य नन्द	नन्द	साधु	भली प्रकार
आद्याः	आदिने	अगृहणन्त	स्वीकार कर लिया
तत् वचः	उनकी बातको		॥३१॥

तथा च व्यदधुः सर्वं यथाऽऽह मधुसूदनः ।
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान् ॥२२॥

तथा च व्यदधुः सर्वं यथा आह मधुसूदनः वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तत् द्रव्येण गिरि द्विजान् ॥३२॥

यत् मधुसूदनः	जो श्रीकृष्णने	वाचयित्वा	करवाकर
आह तथा च	कहा था वैसा ही	तत् द्रव्येण	उसी सामग्रीसे
सर्वं	सब कुछ	गिरि	(गोवर्धन) पर्वत तथा
व्यदधुः	व्यवस्था की,	द्विजान्	ब्राह्मणोंका ॥३२॥
स्वस्त्ययनं	स्वस्ति-पाठ		

उपहृत्य बलीन् सर्वानाहृता यवसं गवाम् ।
गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥३३॥

उपहृत्य बलीन् सर्वान् आदृता यवसं गवां गोधनानि पुरः कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥३३॥

बलीन् उपहृत्य	भेंट-उपहार देकर	पुरः कृत्य	आगे करके
सर्वान् आदृता	सबका सत्कार करके	गिरिं	गिरिराज (गोवर्धन)
गवां	गायोंको		की
यवसं	हरी घास (खिला-कर)	प्रदक्षिणं	प्रदक्षिणा
		चक्रुः	करने लगे ॥३३॥
गोधनानि	गायोंको		

अनांस्यनड्युक्तानि ते चारुह्य स्वलङ्कृताः ।
गोप्यश्च कृष्णवीर्याणि गायन्त्यः सद्विजाशिषः ॥३४॥

अनांसि अनडुः युक्तानि ते च आरुह्य स्वलंकृताः गोप्यः च कृष्ण वीर्याणि गायन्त्यः स द्विज आशिषः ॥३४॥

स द्विज	ब्राह्मणोंका	। आशिषः	आशीर्वाद लेकर

ते गोप्यः च	वे गोपियां भी
स्वलंकृताः	अपने आभूषण पहिन कर
अनडुः युक्तानि	बैलोंसे जुड़े हुए
अनांसि	छकड़ोंपर
आरुह्य	बैठकर
च कृष्ण	तथा श्रीकृष्णके
वीर्याणि	पराक्रमोंको
गायन्त्यः	गाती हुई (परिक्रमा करती थीं) ॥३४॥

कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः ।
शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरि बलिमादद् बृहद्वपुः ॥३५॥

कृष्णः तु अन्यतमं रूपं गोप विश्रम्भणं गतः शैलः अस्मि इति ब्रुवन् भूरि बलिं अदत् बृहत् वपुः ॥३५॥

कृष्णः तु	श्रीकृष्णने तो
गोप	गोपोंको
विश्रम्भणं	विश्वास दिलाने-वाला
अन्यतमं	दूसरा ही
बृहत वपुः	बड़ा भारी शरीर
गतः	धारण करके
शैलः अस्मि	'मैं पर्वत हूँ'
इति ब्रुवन्	ऐसा कहते हुए
भूरि बलिं	बहुत-सा उपहार पदार्थ
अदत्	खाया ॥३५॥

तस्मै नमो व्रजजनैः सह चक्रे आत्मनाऽऽत्मने ।
अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात् ॥३६॥

तस्मै नमः व्रजजनैः सह चक्रे आत्मना आत्मने अहो पश्यत शैलः असौ रूपी नः अनुग्रहं व्यधात् ॥३६॥

तस्मै	उस
आत्मने	अपने स्वरूपको
व्रजजनैः	व्रजके लोगोंके
सह	साथ
आत्मना	स्वयं
नमः चक्रे	नमस्कार किया (और बोले)
अहो पश्यत	अहो ! देखो तो
असौ शैलः	इन पर्वतराजने
रूपी	साक्षात् प्रगट होकर
नः	हम सबपर
अनुग्रहं	अनुग्रह
व्यधात्	किया है ॥३६॥

एषोऽवजानतो मर्त्यान् कामरूपी वनौकसः ।
हन्ति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवाम् ॥३७॥

एषः अवजानतः मर्त्यान् कामरूपी वनौकसः हन्ति हि अस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनः गवाम् ॥३७॥

एषः	ये	**हि हन्ति**	क्योंकि मार देते हैं
कामरूपी	इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले		अतः
अवजानतः	अपना अपमान करनेवाले	**आत्मनः**	अपनी और
		गवां	गायोंकी
वनौकसः	वनवासी	**शर्मणे**	कुशलताके लिए
मर्त्यान्	मनुष्योंको	**अस्मै**	इनको हम सब
		नमस्यामः	नमस्कार करेंगे ॥३७॥

इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रणोदिताः ।
यथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः ॥३८॥

इति अद्रि गो द्विज मखं वासुदेव प्रणोदिताः यथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः ॥३८॥

इति	इस प्रकार	**द्विज मखं**	ब्राह्मणोंके लिए यज्ञ
वासुदेव	श्रीकृष्ण द्वारा	**यथा**	जैसा कहा गया
प्रणोदिताः	प्रेरित होकर	**विधाय**	वैसा करके
ते गोपाः	उन गोपोंने	**सहकृष्णा**	श्रीकृष्णके साथ
अद्रि गो	पर्वत, गायों तथा	**व्रजं ययुः**	व्रजमें आ गये ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ पंचविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इन्द्रस्तदाऽऽत्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप ।
गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः ॥ १ ॥

इन्द्रः तत् आत्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप गोपेभ्यः कृष्ण नाथेभ्यः नन्द आदिभ्यः चुकोप सः ॥१॥

नृप	राजन् !
आत्मनः पूजां	अपनी पूजा
विहतां विज्ञाय	बन्द कर दी गयी जानकर
कृष्ण नाथेभ्यः	जिनके स्वामी श्रीकृष्ण हैं
नन्द आदिभ्यः	उन नन्द आदि
गोपेभ्यः	गोपोंपर
सः इन्द्रः	वे इन्द्र
चुकोप	क्रुद्ध हुए ॥१॥

गणं सांवतकं नाम मेघानां चान्तकारिणाम् ।
इन्द्रः प्राचोदयत् क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत ॥ २ ॥

गणं सांवर्तकं नाम मेघानां च अन्तकारिणां इन्द्रः प्राचोदयत् क्रुद्धः वाक्यं च आह ईशमानि उत ॥२॥

ईशमानि	अपनेको समर्थ माननेवाले
इन्दः क्रुद्धः	इन्द्रने कुपित होकर
सावंर्तकं नाम	सांवर्तक नामक
अन्तकारिणां	प्रलय करनेवाले
मेघानां गणं	मेघगणोंको
प्राचोदयत्	तीव्र प्रेरणा भी दी
उत वाक्यं	तथा यह बात
च आह	भी बोले ॥२॥

इन्द्रोवाच*

अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥ ३ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अहो श्रीमद् माहात्म्यं गोपानां काननौकसां कृष्णं मर्त्यं उप आश्रित्य ये चक्रुः देव हेलनम् ॥३॥

अहो	अहो !
काननौकसां	वनवासी
गोपानां	गोपोंकी
श्रीमद्	धनमदकी
माहात्म्यं	महिमा !
ये मर्त्यं कृष्णं	जिन्होंने मरणधर्मा श्रीकृष्णका
उप आश्रित्य	सहारा लेकर
देव हेलनं	देवताकी अवहेलना
चक्रुः	किया है ॥३॥

यथादृढैः कर्ममयैः क्रतुभिर्नामनौनिभैः ।
विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षन्ति भवार्णवम् ॥ ४ ॥

यथा दृढैः कर्ममयैः क्रतुभिः नाम नौः निभैः विद्यां आन्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षन्ति भव अर्णवम् ॥४॥

यथा दृढैः	जैसे सुदृढ़
आन्वीक्षिकीं	मननात्मक ब्रह्म-
विद्यां	विद्याको
हित्वा	छोड़कर
कर्ममयैः क्रतुभिः	कर्मात्मक यज्ञोंकी
नाम निभैः नौः	नाममात्रकी नौकासे
भव अर्णवं	संसार-सागरको
तितीर्षन्ति	(अज्ञ लोग) पार करना चाहते हैं ॥४॥

वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥ ५ ॥

वाचालं बालिशं स्तब्धं अज्ञं पण्डित मानिनं कृष्णं मर्त्यं उप आश्रित्य गोपाः मे चक्रुः अप्रियम् ॥५॥

वाचालं	बकवादी,
बालिशं	नासमझ,
स्तब्धं	अभिमानी,
अज्ञं	अज्ञानी
पण्डित मानिनं	अपनेको विद्वान माननेवाले
मर्त्यं कृष्णं	मरणधर्मा कृष्णका
उप आश्रित्य	सहारा लेकर
गोपाः मे	गोपोंने मेरा
अप्रियं चक्रुः	अप्रिय किया है ॥५॥

एषां श्रियावलिप्तानां कृष्णेनाध्मायितात्मनाम् ।
धुनुत श्रीमदस्तम्भं पशुन् नयत संक्षयम् ॥ ६ ॥

एषां श्रियाः अवलिप्तानां कृष्णेन आध्मायित आत्मनां धुनुत श्रीमद स्तम्भं पशुन् नयत संक्षयम् ॥६॥

श्रियाः	धनके	**एषां श्रीमद**	इनके लक्ष्मीके गर्वका
अवलिप्तानां	मदमें चूर,	**स्तम्भं धुनुत**	घमण्ड धुन दो,
कृष्णेन	कृष्ण द्वारा	**पशुन् संक्षयं**	(इनके) पशुओंको विनाश
आध्मायित	बढ़ाये गये	**नयत**	प्राप्त कराओ ॥६॥
आत्मनां	चित्तवाले		

अहं चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम् ।
मरुद्गणैर्महावीर्यैर्नन्दगोष्ठजिघांसया ॥ ७ ॥

अहं च ऐरावतं नागं आरुह्य अनुव्रजे व्रजं मरुद्गणैः महावीर्यैः नन्द गोष्ठ जिघांसया ॥७॥

नन्द गोष्ठ	नन्दके गोष्ठको	**ऐरावतं नागं**	ऐरावत हाथीपर
जिघांसया	नष्ट करनेके लिए	**आरुह्य व्रजम्**	चढ़कर व्रजमें
महावीर्यैः	अत्यन्त पराक्रमी	**अनुव्रजे**	(तुम्हारे) पीछे ही आ रहा हूँ ॥७॥
मरुद्गणैः	मरुद्गणोंके साथ		
अहं च	मैं भी		

श्रीशुक उवाच

इत्थं मघवताऽऽज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबन्धनाः ।
नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥ ८ ॥

इत्थं मघवता आज्ञप्ता मेघा निर्मुक्त बन्धनाः नन्द गोकुलं आसारैः पीडयामासुः ओजसाः ॥८॥

मघवता	इन्द्र द्वारा	**बन्धनाः**	बन्धनसे
इत्थं आज्ञप्ता	इस प्रकार आज्ञा देकर	**निर्मुक्त**	छोड़ दिये गये
		मेघा ओजसाः	मेघोंने वेगपूर्वक

आसारैः	वर्षासे	पीडयामासुः	पीड़ा देना प्रारम्भ
नन्द गोकुलं	नन्दके गोष्ठको		किया ॥८॥

विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनन्तः स्तनयित्नुभिः ।
तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ॥ ९ ॥

विद्योतमाना विद्युत्भिः स्तनन्तः स्तनयित्नुभिः तीव्रैः मरुद्गणैः नुन्ना ववृषुः जल शर्कराः ॥९॥

विद्युत्भिः	बिजलियोंके	तीव्रैः	तीव्र
विद्योतमाना	चमकते हुए,	मरुद्गणैः	आंधियोंके द्वारा
स्तनयित्नुभिः	बादलोंके टकराकर	नुन्ना	प्रेरित
स्तनन्तः	गड़गड़ानेसे तथा	जल शर्कराः	ओले
		ववृषुः	बरसाने लगे ॥९॥

स्थूणास्थूला वर्षधारा मुञ्चत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः ।
जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥१०॥

स्थूणास्थूला वर्षधारा मुञ्चत्सु अभ्रेषु अभीक्ष्णशः जल ओघैः प्लाव्यमाना भूः न दृश्यत नत उन्नतम् ॥१०॥

स्थूणा स्थूला	खम्भेके समान मोटी	जल ओघैः	पानीकी बाढ़से
वर्षधारा	वर्षाकी धारा	प्लाव्यमाना	डुबायी जाती
अभ्रेषु	बादलोंके	नत उन्नतं भूः	नीची-ऊँची पृथ्वी
अभीक्ष्णशः	अखण्ड	दृश्यत न	दीखती नहीं थी
मुञ्चत्सु	छोड़नेसे		॥१०॥

अत्यासाराति वातेन पशवो जातवेपनाः ।
गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः ॥११॥

अति आसार अति वातेन पशवः जातवेपनाः गोपा गोप्यः च शीत आर्ता गोविन्दं शरणं ययुः ॥११॥

अति आसार	अतिवृष्टि तथा	पशवः	पशुओंको
अति वातेन	झंझावातसे	जातवेपनाः	कम्प उत्पन्न हो गया,

गोपा गोप्यः च	गोप-गोपियां भी	**गोविन्दं**	गोविन्दकी
शीत आर्ता	ठण्डसे व्याकुल होकर	**शरणं ययुः**	शरणमें गये ॥११॥

शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः ।
वेपमाना भगवतः पादमूलमुपाययुः ॥१२॥

शिरः सुतान् च कायेन प्रच्छाद्य आसार पीडिताः वेपमाना भगवतः पादमूलं उप आययुः ॥१२॥

आसार	वर्षासे	**कायेन**	अपने शरीरसे
पीडिताः	पीड़ित होकर	**प्रच्छाद्य**	छिपाकर
वेपमाना	काँपते हुए	**भगवतः**	भगवानके
च सुतान्	तथा पुत्रोंके	**पादमूलं**	चरणोंके
शिरः	सिर	**उप आययुः**	समीप आये ॥१२॥

कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो
त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद् भक्तवत्सल ॥१३॥

कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वत् नाथं गोकुलं प्रभो त्रातुं अर्हसि देवात् नः कुपितात् भक्तवत्सल ॥१३॥

भक्तवत्सल	(बोले) भक्तवत्सल	**नः**	हमारी
कृष्ण	कृष्ण !	**कुपितात्**	कुपित हुए
महाभाग	महाभाग	**देवात्**	देवतासे
कृष्ण	कृष्ण !	**त्रातुं**	तुमको रक्षा
त्वत्	जिसके तुम्हीं	**अर्हसि**	करनी चाहिए ॥१३॥
नाथं	स्वामी हो उस		
गोकुलं	गौओंकी तथा		

शिलावर्षनिपातेन हन्यमानमचेतनम् ।
निरीक्ष्य भगवान् मेने कुपितेन्द्रकृतं हरिः ॥१४॥

शिलावर्ष निपातेन हन्यमानं अचेतनं निरीक्ष्य भगवान् मेने कुपित इन्द्र कृतं हरिः ॥१४॥

शिलावर्ष	ओलोंकी वर्षाके	**भगवान् हरिः**	भगवान श्रीहरिने
निपातेन	जोरसे होनेसे	**कुपित इन्द्र**	क्रुद्ध इन्द्रकी
हन्यमानं	पीटे जाते	**कृतं**	करतूत
अचेतनं	मूर्छितसे	**मेने**	(इसे) मान लिया
निरीक्ष्य	(उन लोगोंको) देखकर		॥१४॥

अपर्त्वत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम् ।
स्वयागे विहतेऽस्माभिरिन्द्रो नाशाय वर्षति ॥१५॥

अपर्ति अति उल्बणं वर्ष अतिवातं शिलामयं स्वयागे विहते अस्माभिः इन्द्रः नाशाय वर्षति ॥१५॥

अति उल्वणं	(समझ लिया) बहुत घोर	**अस्माभिः**	हम लोगों द्वारा
वर्षं	वर्षा	**स्वयागे**	अपना यज्ञ
अतिवातं	झंझावात तथा	**विहते**	भंग कर देनेसे
शिलामयं	ओलोंसे भरी	**इन्द्रः**	इन्द्र (हमारा)
अर्पति	हो रही है (इससे स्पष्ट है कि)	**नाशाय**	विनाश करनेके लिए
		वर्षति	वर्षा कर रहा है ॥१५॥

तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये ।
लोकेशमानिनां मौढ्याद्धरिष्ये श्रीमदं तमः ॥१६॥

तत्र प्रतिविधिं सम्यक् आत्मयोगेन साधये लोक ईश मानिनां मौढ्यात् हरिष्य श्रीमदं तमः ॥१६॥

तत्र	इसका	**ईश मानिनां**	स्वामी माननेवाले (इन्द्र) का
आत्मयोगेन	योगमाया द्वारा	**श्रीमदं**	ऐश्वर्यके गर्वका
सम्यक्	पूरा	**तमः**	अज्ञान
प्रतिविधि	प्रतिकार	**हरिष्ये**	हरण कर लूंगा ॥१६॥
साधये	सिद्ध कर दूंगा,		
मौढ्यात्	मूर्खतावश		
लोक	अपनेको लोकोंका		

न हि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः ।
मत्तोऽसतां मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥१७॥

न हि सत् भाव युक्तानां सुराणां ईश विस्मयः मत्तः असतां मानभङ्गः प्रशमाय उपकल्पते ॥१७॥

सत्भाव	सत्त्वगुण	असतां मत्तः	दुष्टोंका मेरे द्वारा
युक्तानां	युक्त	मानभङ्गः	मान भंग होना
सुराणां	देवताओंके	प्रशमाय	उनको शान्ति
ईश	स्वामीके लिए भी	उपकल्पते	दायक होता है ॥१७॥
विस्मयः	यह आश्चर्य जनक		
न हि	नहीं ही है और		

तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥१८॥

तस्मात् मत् शरणं गोष्ठं मत् नाथं मत् परिग्रहं गोपाये स्व आत्म योगेन सः अयं मे व्रत आहितः ॥१८॥

तस्मात्	इसलिए	गोपाये	रक्षा करूँगा
मत् शरणं	मेरी शरणमें आये,	सः अयं	यह (शरणागत रक्षा)
मत् नाथं	मुझे ही स्वामी माननेवाले,	मे व्रत	मेरा व्रत
मत् परिग्रहं	मेरे द्वारा स्वीकृत	आहितः	(उसकी रक्षाका समय) आ गया है ॥१८॥
गोष्ठं स्व	गोष्ठकी अपनी		
आत्म योगेन	अपनी योगमाया द्वारा		

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् ।
दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥१९॥

इति उक्त्वा एकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धन अचलं दधार लीलया कृष्णः छत्राकं इव बालकः ॥१९॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	गोवर्धन अचलं	गोवर्धन पर्वतको
एकेन हस्तेन	एक ही हाथपर	कृत्वा	उठाकर

कृष्णः	श्रीकृष्णने	**बालकः इव**	बालकके समान
लीलया	खेलमें	**दधार**	धारण कर लिया
छत्राकं	बरसाती छत्तेको		॥१९॥

अथाह भगवान् गोपान् हेऽम्ब तात व्रजौकसः ।
यथोपजोषं विशत गिरिगर्तं सगोधनाः ॥२०॥

अथ आह भगवान् गोपान् हे अम्ब तात व्रजौकसः यथा उपजोषं विशत गिरिगर्तं स गोधनाः ॥२०॥

अथ भगवान्	फिर भगवान्ने	**गिरिगर्तं**	पर्वतके नीचे
गोपान् आह	गोपोंसे कहा	**यथा उपजोषं**	अपनी
हे अम्ब तात	हे मैया ! बाबा !		सुविधानुसार
व्रजौकसः	व्रजवासियों !	**विशत**	प्रवेश कर जाओ
स गोधनाः	गायोंके साथ		॥२०॥

न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्रिनिपातने ।
वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि वः ॥२१॥

न त्रास इह वः कार्यः मत् हस्तात् अद्रि निपातने वात वर्ष भयेन अलं तत् त्राणं विहितं हि वः ॥२१॥

इह वः	यहां तुम लोगोंको	**वात वर्ष**	आंधी और वर्षका
मत् हस्तात्	मेरे हाथसे	**भयेन अलं**	भय भी बन्द करो
अद्रि	पर्वत	**हि वः**	क्योंकि तुम लोगोंकी
निपातने	गिरा देनेका	**तत् त्राणं**	उससे रक्षाकी
त्रासः न	भय नहीं	**विहितं**	व्यवस्था कर दी
कार्यः	करना चाहिए		गयी है ॥२१॥

तथा निर्विविशुर्गर्तं कृष्णाश्वासितमानसाः ।
यथावकाशं सधनाः सव्रजाः सोपजीविनः ॥२२॥

तथा निर्विविशुः गर्तं कृष्णेन आश्वासित मानसाः यथा अवकाशं सधनाः सव्रजाः स उपजीविनः ॥२२॥

तथा	इस प्रकार
कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा
आश्वासित	आश्वासन प्राप्त
मानसाः	चित्त
यथा अवकाशं	सुविधाके स्थानके अनुसार
सधनाः	अपनी सम्पत्तिके साथ,
स प्रजाः	अपनी सन्तानोंके साथ
स	जिनकी
उपजीविनः	जीविका अपनेपर निर्भर है उन (सेवक-पुरोहितादि) के साथ
गर्तं	(पर्वतके) गड्ढेमें
निर्विविशुः	प्रवेश कर गये ॥२२॥

क्षुत्तृड्व्यथां सुखापेक्षां हित्वा तैर्व्रजवासिभिः ।
वीक्ष्यमाणो दधार्द्रिं सप्ताहं नाचलत् पदात् ॥२३॥

क्षुत् तृट् व्यथां सुख अपेक्षां हित्वा तैः व्रजवासिभिः वीक्ष्यमाणः दधाः अद्रिं सप्ताहं न अचलत् पदात् ॥२३॥

क्षुत् तृट्	भूख-प्यासकी
व्यथां	पीड़ा
सुख	तथा सुख-सुविधाकी
अपेक्षां	अपेक्षा
हित्वा	त्यागकर
तैः	उन
व्रजवासिभिः	व्रजवासियों द्वारा
वीक्ष्यमाणः	देखे जाते हुए
सप्ताहं	एक सप्ताह तक
अर्द्रिं दधाः	पर्वत धारण किये रहे
पदात्	अपने स्थानसे
अचलत् न	हिले नहीं ॥२३॥

कृष्णयोगानुभावं तं निशाम्येन्द्रोऽतिविस्मितः ।
निःस्तम्भो भ्रष्टसङ्कल्पः स्वान् मेघान् संन्यवारयत् ॥२४॥

कृष्ण योग अनुभावं तं निशाम्य इन्द्रः अतिविस्मितः निःस्तम्भः भ्रष्ट सङ्कल्पः स्वान् मेघान् संन्यवारयत् ॥२४॥

तं कृष्ण	उस श्रीकृष्णके
योग अनुभावं	योगके प्रभावको
निशाम्य	देखकर
इन्द्रः	इन्द्र
अतिविस्मितः	बहुत चकित हुए
निःस्तम्भः	गर्व रहित हो गये,
भ्रष्ट सङ्कल्पः	उनका संकल्प नष्ट हो गया
स्वान् मेघान्	अपने मेघोंको
संन्यवारयत्	पूर्णतः रोक दिया ॥२४॥

खं व्यभ्रमुदितादित्यं वातवर्षं च दारुणम् ।
निशाम्योपरतं गोपान् गोवर्धनधरोऽब्रवीत् ॥२५॥

खं व्यभ्रं उदित आदित्यं वात वर्षं च दारुणं निशाम्य उपरतं गोपान् गोवर्धनधरः अब्रवीत् ॥२५॥

दारुणं वात	घोर वायु और	**उदित**	निकला
वर्षं	वर्षाके	**निशाम्य**	देखकर
उपरतं	रुक जानेपर	**गोपान्**	गोपोंसे
खं व्यभ्रं	आकाशको मेघहीन	**गोवर्धनधरः**	गोवर्धनधारी
च आदित्यं	तथा सूर्यको	**अब्रवीत्**	बोले ॥२५॥

निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः ।
उपारतं वातवर्षं व्युदप्रायाश्च निम्नगाः ॥२६॥

निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः स स्त्री धन अर्भकाः उपारतं वात वर्षं व्युदप्रायाः च निम्नगाः ॥२६॥

गोपाः	गोपो !	**वात वर्षं**	आंधी-वर्षा
त्रासं त्यजत	भय छोड़ दो,	**उपारतं**	रुक गयी है
स्त्री धन	स्त्रियों, सम्पति,	**च निम्नगाः**	तथा नदियोंका
अर्भकाः स	बच्चोंके साथ	**व्युदप्रायाः**	जल प्रायः उतर
निर्यात	(बाहर) निकल जाओ,		गया है ॥२६॥

ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वं स्वमादाय गोधनम् ।
शकटोढोपकरणं स्त्रीबालस्थविराः शनैः ॥२७॥

ततः ते निर्ययुः गोपाः स्वं स्वं आदाय गोधनं शकट ऊढ उपकरणं स्त्री बाल स्थविराः शनैः ॥२७॥

ततः ते	तब वे	**स्त्री बाल**	स्त्री, बच्चे
गोपाः स्वं स्वं	गोप अपनी-अपनी	**स्थविराः**	वृद्धोंको
गोधनं	गायोंको तथा	**आदाय**	लेकर
शकट ऊढ	छकड़ोंपर लदी	**शनैः निर्ययुः**	धीरेसे निकल गये
उपकरणं	सामग्री,		॥२७॥

भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत् प्रभुः ।
पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥२८॥

भगवान् अपि तं शैलं स्व स्थाने पूर्ववत् प्रभुः पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥२८॥

प्रभुः	समर्थ	**तं शैलं**	उस पर्वतको
भगवान् अपि	भगवान्ने भी	**पूर्ववत्**	पहिलेके समान
सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके	**स्थापयामास**	स्थापित कर दिया
पश्यतां	देखते हुए		॥२८॥
लीलया	लीला पूर्वक		

तं प्रेमवेगान्निभृता व्रजौकसो
यथा समीयुः परिरम्भणादिभिः ।
गोप्यश्च सस्नेहमपूजयन् मुदा
दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥२९॥

तं प्रेमवेगात् निभृता व्रजौकसः यथा समीयुः परिरम्णभ आदिभिः गोप्यः च सस्नेहं अपूजयन् मुदा दधि अक्षत् आदिभिः युयुजुः सत् आशिषः ॥२९॥

व्रजौकसः	व्रजवासी भी	**सस्नेहं**	स्नेह पूर्वक
प्रेमवेगात्	प्रेमावेशसे	**मुदा**	प्रसन्न होकर
परिरम्भण	आलिंगन	**दधि अक्षत्**	दही, अक्षत
आदिभिः	आदिके द्वारा	**आदिभिः**	आदिसे
तं समीयुः	उनसे भली प्रकार मिले,	**अपूजयन्**	सत्कार करके
		सत् आशिषः	उत्तम आशीर्वाद
च गोप्यः	तथा गोपियोंने	**युयुजुः**	दिये ॥२९॥

यशोदा रोहिणी नन्दो रामश्च बलिनां वरः ।
कृष्णमालिङ्ग्य युयुजुराशिषः स्नेहकातराः ॥३०॥

यशोदा रोहिणी नन्दः रामः च बलिनां वरः कृष्णं आलिंग्य युयुजुः आशिषः स्नेह कातराः ॥३०॥

स्नेह कातराः	स्नेह कातर	**रामः**	बलरामजीने
यशोदा	यशोदा,	**कृष्णं**	श्रीकृष्णका
रोहिणी	रोहिणी,	**आलिग्य**	आलिगन करके
नन्दः च	नन्द तथा	**आशिषः**	आशीर्वाद
बलिनां वरः	वलवानोंमें श्रेष्ठ	**युयुजुः**	दिये ॥३०॥

दिवि देवगणाः साध्याः सिद्धगन्धर्वचारणाः ।
तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव ॥३१॥

दिवि देवगणाः साध्याः सिद्ध गन्धर्व चारणाः तुष्टुवुः मुमुचुः तुष्टाः पुष्प वर्षाणि पार्थिव ॥३१॥

पार्थिव	राजन् !	**चारणाः**	चारणोंने
तुष्टाः	सन्तुष्ट	**दिवि**	आकाशसे
देवगणाः	देवताओं	**तुष्टुवुः**	स्तुति की तथा
साध्याः	साध्य गणों,	**पुष्प वर्षाणि**	पुष्पोंकी वर्षा
सिद्ध गन्धर्व	सिद्धों, गन्धर्वों तथा	**मुमुचुः**	छोड़ी ॥३१॥

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवप्रणोदिताः ।
जगुर्गन्धर्वपतयस्तुम्बुरुप्रमुखा नृप ॥३२॥

शंख दुन्दुभयः नेदुः दिवि देव प्रणोदिताः जगुः गन्धर्वपतयः तुम्बरु प्रमुखा नृप ॥३२॥

नृप	राजन् !	**तुम्बरु**	तुम्बरू आदि
देव	देवताओं द्वारा	**प्रमुखा**	मुख्य
प्रणोदिताः	बजायी जाती	**गन्धर्वपतयः**	गन्धर्वराज
शंख दुन्दुभयः	शंख और नगाड़े	**जगुः**	गाने लगे ॥३२॥
दिवि नेदुः	आकाशमें बजने लगे		

ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो
राजन् स गोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः ।
तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका
गायन्त्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः ॥३३॥

ततः अनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितः राजन् स गोष्ठं सबलः आव्रजत् हरिः तथा विधानि अस्य कृतानि गोपिका गायन्त्य ईयुः मुदिता हृदि स्पृशः ॥३३॥

राजन्	राजन् !	**तथा विधानि**	इस प्रकारके
ततः	इसके बाद	**हृदि स्पृशः**	हृदय स्पर्शी
अनुरक्तैः	अपने प्रेमी	**अस्य कृतानि**	इनके कर्मोंको
पशुपैः	गोपालकोंसे	**गायन्त्य**	गाती हुई
परिश्रितः	चारों ओरसे घिरे	**मुदिता**	आनन्दित
हरिः	श्रीकृष्ण	**गोपिका**	गोपियां भी
सबलः	बलरामजीके साथ	**ईयुः**	(व्रजमें) आयीं
स गोष्ठं	गोष्ठकी ओर		॥३३॥
आव्रजत्	चल पड़े		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

श्रीशक उवाच–

एवं विधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते ।
अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥१॥

एवं विधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते अतत् वीर्यविदः प्रोचुः सम् अभ्येत्य सुविस्मिताः ॥१॥

एवं विधानि	इस प्रकारके	**विदः**	न जाननेवाले
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	**गोपाः**	गोपोंने
कर्माणि	कर्मोंको	**सम् अभ्येत्य**	एकत्र आकर
वीक्ष्य ते	देखकर उन	**प्रोचुः**	कहने लगे ॥१॥
अतत् वीर्य	उनके पराक्रमको		

बालकस्य यदेतानि कर्माण्यत्यद्भुतानि वै ।
कथमर्हत्यसौ जन्म ग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम् ॥२॥

बालकस्य यत् एतानि कर्माणि अति अद्भुतानि वै कथं अर्हति असौ जन्म ग्राम्मेषु आत्म जुगुप्सितम् ॥२॥

यत्	क्योंकि (इस)	**जुगुप्सितं**	निन्दनीय
बालकस्य	बालकके	**ग्राम्येषु**	हम ग्रामीणोंमें
एतानि	ये	**असौ**	इसका
कर्माणि	कर्म	**जन्म कथं**	जन्म कैसे
वै अति	निश्चय अत्यन्त	**अर्हति**	होना उचित है ॥२॥
अद्भुतानि	अद्भुत हैं		
आत्म	अतः अपने लिए		

यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया ।
कथं बिभ्रद् गिरिवरं पुष्करं गजराडिव ॥३॥

यः सप्तहायनः बालः करेण एकेन लीलया कथं बिभ्रत् गिरिवरं पुष्करं गजराट् इव ॥३॥

यः	(कहां तो) यह
सप्तहायनः	सात वर्षका
बालः	बच्चा है फिर
एकेन करेण	एक ही हाथसे
पुष्करं	कमलको
गजराट् इव	गजराजके समान
लीलया	खेलमें
गिरिवरं	गिरिराजको
कथं	कैसे
बिभ्रत्	उठाये रहा ॥३॥

तोकेनामीलिताक्षेण पूतनाया महौजसः ।
पीतः स्तनः सह प्राणैः कालेनेव वयस्तनोः ॥४॥

तोकेन अमीलित अक्षेण पूतनाया महा ओजसः पीतः स्तनः सह प्राणैः कालेन इव वयसः तनोः ॥४॥

महा ओजसः	महान् ओजस्वी
कालेन	कालके द्वारा
तनोः वयसः	शरीरकी आयुके
इव	समान
तोकेन	नन्हें शिशु रहते ही
अक्षेण	नेत्र
अमीलित	बन्द किये ही
पूतनाया	पूतनाका
स्तनः	स्तन उसके
प्राणैः सह	प्राणोंके साथ
पीतः	पिया था ॥४॥

हिन्वतोऽधः शयानस्य मास्यस्य चरणावुदक् ।
अनोऽपतद् विपर्यस्तं रुदतः प्रपदाहतम् ॥५॥

हिन्वतः अधः शयानस्य मास्यस्य चरणाः उदक् अनः अपतत् विपर्यस्तं रुदतः प्रपद आहतम् ॥५॥

मास्यस्य	एक महीनेका था तभी
अधः	(छकड़ेके) नीचे
शयानस्य	सोते हुएके
रुदतः चरणाः	रोते हुए पैरोंको
उदक् हिन्वतः	ऊपर उछालनेसे
प्रपद	पैरोंके ऊपरी भागसे
आहतं	टकराकर
अनः विपर्यस्तं	छकड़ा उलटकर
अपतत्	गिर पड़ा ॥५॥

एकहायन आसीनो ह्रियमाणो विहायसा ।
दैत्येन यस्तृणावर्तमहन् कण्ठग्रहातुरम् ॥६॥

एक हायन आसीनः ह्रियमाणः विहायसा दैत्येन यः तृणावर्तं अहन् कण्ठग्रह आतुरम् ॥६॥

एक हायन	एक वर्षका था जब	यः	जो वह
आसीनः	बैठा था तब	तृणावर्तं	तृणावर्त नामक था
दैत्येन	दैत्यके द्वारा	कण्ठग्रह	गला पकड़नेसे
ह्रियमाणः	हरण करके	आतुरं	व्याकुल करके
विहायसा	आकाशमें (ले जाने-पर)	अहन्	मार दिया ॥.॥

क्वचिद्धैयङ्गवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले ।
गच्छन्नर्जुनयोर्मध्ये बाहुभ्यां तावपातयत् ॥७॥

क्वचित् हैयङ्गवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले गच्छन् अर्जुनयोः मध्ये बाहुभ्यां ताः अपातयत् ॥७॥

क्वचित्	कभी	मध्ये	बीचमें-से
हैयङ्गवस्तैन्ये	माखन चुरानेपर	गच्छन् ताः	निकलते हुए उनको
मात्रा	मैयाके द्वारा	बाहुभ्यां	अपनी भुजाओंसे
उलूखले	ऊखलमें	अपातयत्	(इसने) गिरा दिया ॥७॥
बद्ध	बाँधे जानेपर		
अर्जुनयोः	दोनों अर्जुन वृक्षोंके		

वने सञ्चारयन् वत्सान् सरामो बालकैर्वृतः ।
हन्तुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतोऽरिमपाटयत् ॥८॥

वने सञ्चारयन् वत्सान् सरामः बालकैः वृतः हन्तुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतः अरिं अपाटयत् ॥८॥

सरामः	बलरामके साथ	सञ्चारयन्	चराते समय
बालकैः वृतः	बालकोंसे घिरकर	हन्तुकामं	मारनेकी इच्छासे आये
वने वत्सान्	वनमें बछड़ोंको		

अरिं बकं	शत्रु बकासुरको	**मुखतः**	चोंच पकड़कर
दोर्भ्यां	हाथोंसे	**अपाटयत्**	चीर डाला ॥८॥

वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशन्तं जिघांसया ।
हत्वा न्यपातयत्तेन कपित्थानि च लीलया ॥९॥

वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशन्तं जिघांसया हत्वा न्यपातयत् तेन कपित्थानि च लीलया ॥९॥

वत्सरूपेण	बछड़ेके रूपमें आकर	**तेन**	उसी (के शरीर) से
जिघांसया	मारनेकी इच्छासे	**लीलया**	खेल करके
वत्सेषु	बछड़ोंमें	**कपित्थानि च**	कैथ भी
प्रविशन्तं	मिलते हुए (दैत्य) को	**न्यपातयत्**	गिराये ॥९॥
हत्वा	मारकर		

हत्वा रासभदैतेयं तब्दन्धूंश्च बलान्वितः ।
चक्रे तालवनं क्षेमं परिपक्वफलान्वितम् ॥१०॥

हत्वा रासभदैतेयं तत् बन्धून् च बल अन्वितः चक्रे तालवनं क्षेमं परिपक्व फल अन्वितम् ॥१०॥

बल	बलरामके साथ	**हत्वा**	मारकर
अन्वितः	मिलकर	**परिपक्व**	खूब पके हुए
रासभदैतेयं	गधा बने दैत्य (धेनुक) को	**फल अन्वितं**	फलोंसे युक्त
		तालवनं	ताड़ोंके वनको
च तत्	तथा उसके	**क्षेमं चक्रे**	निपापद बना दिया ॥१०॥
बन्धून्	सम्बन्धियोंको		

प्रलम्बं घातयित्वोग्रं बलेन बलशालिना ।
अमोचयद् व्रजपशून् गोपांश्चारण्यवह्नितः ॥११॥

प्रलम्बं घातयित्वा उग्रं बलेन बलशालिना अमोचयत् व्रज पशून् गोपान् च अरण्यवह्नितः ॥११॥

बलशालिना	बलवान	**उग्रं प्रलम्बं**	क्रूर प्रलम्बासुरको
बलेन	बलराम द्वारा	**घातयित्वा**	मरवाकर

व्रज-पशून्	व्रजके पशुओं	**अरण्यबर्हिणतः**	वनमें लगी अग्निसे
च गोपान्	तथा गोपोंको	**अमोचयत्**	छुड़ा लिया ॥११॥

आशीविषतमाहीन्द्रं दमित्वा विमदं ह्रदात् ।
प्रसह्योद्वास्य यमुनां चक्रेऽसौ निर्विषोदकाम् ॥१२॥

आशी विषतम अहीन्द्रं दमित्वा विमदं ह्रदात् प्रसह्य उद्वास्य यमुनां चक्रे असौ निर्विष उदकम् ॥१२॥

आशी	सर्प विषसे	**प्रसह्य**	बल पूर्वक
विषतम	अत्यन्त विषैले	**ह्रदात्**	दहसे
अहीन्द्रं	नागराज (कालिय) को	**उद्वास्य**	निर्वासित करके
		असौ यमुनां	इसने यमुनाको
दमित्वा	दमन करके	**निर्विष उदकं**	विषहीन जलवाली
विमदं	गर्वहीन करके	**चक्रे**	बना दिया ॥१२॥

दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन् सर्वेषां नो व्रजौकसाम् ।
नन्दते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् ॥१३॥

दुस्त्यजः च अनुरागः अस्मिन् सर्वेषां नः व्रजौकसां नन्द ते तनये अस्मासु तस्य अपि औत्पतिकः कथम् ॥१३॥

नन्द ते	नन्द तुम्हारे	**च अस्मासु**	तथा हम लोगोंसे
अस्मिन् तनये	इस पुत्रमें	**तस्य अपि**	उसका भी है
नः सर्वेषां	हम सब	**औत्पत्तिकः**	जन्मसे ही (ये गुण इसमें)
व्रजौकसां	व्रजवासियोंका		
दुस्त्यजः	दुस्त्याज्य	**कथं**	कैसे हैं ॥१३॥
अनुरागः	स्नेह है		

क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम् ।
ततो नो जायते शङ्का व्रजनाथ तवात्मजे ॥१४॥

क्व सप्तहायनः बालः क्व महा अद्रि विधारणं ततः नः जायते शङ्का व्रजनाथ तव आत्मजे ॥१४॥

क्व	कहां तो
सप्तहायनः	सात वर्षका
बालः	बालक और
क्व महा अद्रि	कहां बड़े पर्वतको
विधारणं	उठाये रखना
ततः व्रजनाथ	इसलिए व्रजराज
तव	तुम्हारे
आत्मजे	पुत्रके सम्बन्ध
नः शङ्का	हमको शङ्का
जायते	होती है ॥१४॥

नन्द उवाच

श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शङ्का च वोऽर्भके ।
एनं कुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह ॥१५॥

श्रूयतां मे वचः गोपा व्येतु शङ्का च वः अर्भके एनं कुमारं उद्दिश्य गर्गः मे यत् उवाच ह ॥१५॥

गोपा	गोपो !
एनं कुमारं	इस बालकको
उद्दिश्य	लक्षित करके
गर्गः	महर्षि गर्गाचार्यने
मे	मुझसे
यत् ह	जो निश्चय
उवाच	पूर्वक कहा था, वह
मे वचः	मेरी बात
श्रूयतां	सुनो (जिससे)
अर्भकेवः	बच्चेके सम्बन्धमें
	आप सबकी
शङ्का व्येतु	शङ्का नष्ट हो जाय ॥१५॥

वर्णास्त्रयः किलास्यासन् गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥१६॥

वर्णाः त्रयः किल अस्य आसन् गृह्णतः अनुयुगं तनूः शुक्लः रक्तः तथा पीतः इदानीं कृष्णतां गतः ॥१६॥

अनुयुगं	प्रत्येक युगमें
तनूः गृह्णतः	शरीर धारण करते हुए
अस्य त्रयः	इसके तीन
वर्णाः आसन्	रंग हुए थे
शुक्लः रक्तः	श्वेत, लाल
तथा पीतः	तथा पीला,
इदानीं	इस समय
कृष्णतां गतः	श्यामता प्राप्त हुआ है ॥१६॥

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ।
वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥१७॥

प्राक् अयं वसुदेवस्य क्वचित् जातः तव आत्मजः वासुदेव इति श्रीमान् अभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥१७॥

अयं तव	यह तुम्हारा	**अभिज्ञाः**	(अतः इसे) जानने-वाले
आत्मजः	पुत्र	**श्रीमान्**	श्रीमान्
प्राक् क्वचित्	पहिले कभी	**वासुदेव**	वासुदेव
वसुदेवस्य	वसुदेवजीके यहां	**इति**	इस प्रकार
जातः	उत्पन्न हुआ है	**सम्प्रचक्षते**	कहेंगे ॥१७॥

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ।
गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥१८॥

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते गुण कर्म अनुरूपाणि तानि अहं वेद नो जनाः ॥१८॥

ते सुतस्य	तुम्हारे पुत्रके	**च रूपाणि सन्ति**	तथा रूप हैं,
गुण कर्म	गुण और कर्मोंके	**तानि अहं वेद**	उनको मैं जानता हूँ
अनुरूपाणि	अनुकूल	**जनाः**	दूसरे लोग
बहूनि नामानि	बहुतसे नाम	**नो**	नहीं (जानते) ॥१८॥

एष वः श्रेय आधास्यद् गोपगोकुलनन्दनः ।
अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥१९॥

एष वः श्रेय आधास्यत् गोप गोकुल नन्दनः अनेन सर्वदुर्गाणि यूयं अञ्जः तरिष्यथ ॥१९॥

एष गोप	यह गोप तथा	**वः**	तुम लोगोंका
गोकुल	गोकुलको	**श्रेय आधास्यत्**	कल्याण करेगा
नन्दनः	आनन्दित करने-वाला	**सर्वदुर्गाणि**	सब संकटोंको
		अनेन यूयं	इसके द्वारा तुम लोग

अञ्जः	सरलतासे	तरिष्यथ	पारकर जाओगे ॥१९॥

पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ।
अराजकेरक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून् समेधिताः ॥२०॥

पुरा अनेन व्रजपते साधवः दस्यु पीडिताः अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युः दस्यून् समेधिताः ॥२०॥

व्रजपते	व्रजराज !	रक्ष्यमाणा	रक्षित होकर
पुरा	पहिले	समेधिताः	भली प्रकार समृद्ध होकर
अराजके	अराजकताके समय		
दस्यु पीडिताः	डाकुओंसे उत्पीड़ित	दस्यून्	डाकुओंको
साधवः	सत्पुरुषोंने	जिग्युः	जीत लिया था ॥२०॥
अनेन	इसके द्वार		

य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।
नारयोऽभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः ॥२१॥

यः एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः न अरयः अभिभवन्ति एतान् विष्णु पक्षान् इव असुराः ॥२१॥

यः	जो	पक्षान्	पक्षमें रहने वालोंको
महाभागाः	महाभाग्यवान्	असुराः इव	असुरोंके समान
मानवाः	मनुष्य	अरयः एतान्	शत्रु उनको
एतस्मिन्	इससे	अभिभवन्ति न	दबा नहीं सकेंगे ॥२१॥
प्रीतिं कुर्वन्ति	प्रीति करेंगे,		
विष्णु	भगवान् विष्णुके		

तस्मान्नन्द कुमारोऽयं नारायणसमो गुणैः ।
श्रिया कीर्त्यानुभावेन तत्कर्मसु न विस्मयः ॥२२॥

तस्मात् नन्द कुमारः अयं नारायण समः गुणैः श्रिया कीर्त्या अनुभावेन तत् कर्मसु न विस्मयः ॥२२॥

तस्मात् नन्द	इसलिए नन्द !	**नारायण**	नारायणके
अयं कुमारः	यह बालक	**समः**	समान है,
गुणैः श्रिया	गुणों, धन,	**तत् कर्मसु**	उसके कर्मोंमें
कीर्त्या	यश और	**विस्मयः न**	आश्चर्य मत करना
अनुभावेन	प्रभावमें		॥२२॥

इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ।
मन्ये नारायणस्यांशं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥२३॥

इति अद्धा मां सम आदिश्य गर्गे च स्वगृहं गते मन्ये नारायणस्य अंशं कृष्णं अक्लिष्ट कारिणम् ॥२३॥

इति मां	इस प्रकार मुझे	**अक्लिष्ट**	क्लेशहीन
अद्धा	पूर्ण रूपसे	**कारिणं**	करनेवाले
सम आदिश्य	समझाते हुए आदेश देकर	**कृष्णं**	श्रीकृष्णको
		नारायणस्य	नारायणका
गर्गे	गर्गाचार्यके	**अंशं मन्ये**	अंश मानता हूँ
स्वगृहं	अपने घर		॥२३॥
गते च	चले जानेपर		

श्रीशुक उवाच*

इति नन्दवचः श्रुत्वा गर्गगीतं व्रजौकसः ।
दृष्टश्रुतानुभावास्ते कृष्णस्यामिततेजसः ।
मुदिता नन्दमानर्चुः कृष्णं च गतविस्मयाः ॥२४॥

इति नन्दवचः श्रुत्वा गर्ग गीतं व्रजौकसः दृष्ट श्रुत अनुभावाः ते कृष्णस्य अमित तेजसः मुदिता नन्दं आनर्चुः कृष्णं च गत विस्मयाः ॥२४॥

इति	इस प्रकार	**गर्ग गीतं**	गर्गजी का कहा गया
नन्दवचः	नन्दजीके वर्णनसे	**श्रुत्वा ते**	सुनकर उन

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

व्रजौकसः	व्रजवासियोंका	**मुदिताः**	प्रसन्न होकर
गत विस्मयाः	आश्चर्य दूर हो गया,	**नन्दं**	नन्दजी
अमित तेजसः	अपार तेजस्वी	**च कृष्णं**	तथा श्रीकृष्णका
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	**आनर्चुः**	सत्कार किया
अनुभावाः	प्रभावोंको		॥२४॥
दृष्ट श्रुत	(उन्होंने) देखा-सुना था, अतः		

देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा
वज्राश्मपर्षानिलै.
सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं
दृष्ट्वानुकम्प्युत्स्मयन् ।
उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो
लीलोच्छिलीन्ध्रं यथा
बिभ्रद् गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित्
प्रीयान्न इन्द्रो गवाम् ॥२५॥

देवे वर्षति यज्ञ विप्लव रुषा वज्र अश्म पर्षा अनिलैः सीदत् पाल पशु स्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वा अनुकम्प्य उत्स्मयन् उत्पाट्य एक करेण शैलं अबलः लीला उच्छिलीन्ध्रं यथा बिभ्रत् गोष्ठं अपात् महेन्द्र मदभित् प्रीयात् नः इन्द्रः गवाम् ॥२५॥

यज्ञ	(अपना) यज्ञ	**पाल पशु**	गोप, गायें
विप्लव	भंग होनेसे	**स्त्रि**	तथा गोपियोंको
रुषा	कुपित होकर	**सीदत्**	कष्ट पाते हुए
देवे	इन्द्रदेवके	**आत्मशरणं**	अपनी शरण आये
वर्षति	वर्षा करनेपर	**दृष्ट्वा**	देखकर
वज्र अश्म	वज्रपात्, ओलों तथा	**अनुकम्प्य**	उनपर कृपा करके
		उत्स्मयन्	मुसकराते हुए
पर्षा अनिलैः	प्रचण्ड आंधीसे	**एक करेण**	एक ही हाथसे

अबलः	निर्बल बालक (या बलरामके अकेले ही)
लीला	खेलमें
यथा	जैसे
उच्छ्रलीन्ध्रः	बरसाती छत्ता हो
शैलं उत्पाटय	पर्वत उखाड़कर
बिभ्रत्	धारण करके
गोष्ठं	ब्रजकी
अपात्	रक्षा कर ली
महेन्द्र	वे इन्द्रका
मदभित्	घमण्ड चूर करने-वाले
गवां इन्द्रः	गोविन्द
नः	हमपर
प्रीयात्	प्रसन्न हों ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

गोवर्धने धृते शैल आसाराद् रक्षिते व्रजे ।
गोलोकादाव्रजत् कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥१॥

गोवर्धने धृते शैल आसारात् रक्षिते व्रजे गोलोकात् आव्रजत् कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥१॥

शैल	गिरिराज	**गोलोकात्**	गोलोकसे
गोवर्धने	गोवर्धनको	**सुरभिः**	कामधेनु
धृते	धारण करके	**च**	तथा (स्वर्गसे)
आसारात्	वर्षासे	**एव शक्र**	इन्द्र भी
व्रजे रक्षिते	व्रजकी रक्षा कर लेनेपर	**कृष्णं**	श्रीकृष्णके
		आव्रजत्	पास आये ॥१॥

विविक्त उपसङ्गम्य व्रीडितः कृतहेलनः ।
पस्पर्श पादयोरेनं किरीटेनार्कवर्चसा ॥२॥

विविक्त उपसङ्गम्य व्रीडितः कृत हेलनः पस्पर्श पादयोः एनं किरीटेन अर्कवर्चसा ॥२॥

कृत हेलनः	अवहेलना करनेसे	**अर्कवर्चसा**	सूर्यके समान कान्तिवाले
व्रीडितः	लज्जित	**किरीटेन**	मुकुटके द्वारा
विविक्त	एकान्तमें	**एनं पादयोः**	इनके चरणोंका
उपसङ्गम्य	समीप आकर	**पस्पर्श**	स्पर्श किया ॥२॥

दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्यामिततेजसः ।
नष्टत्रिलोकेशमद इन्द्र आह कृताञ्जलिः ॥३॥

दृष्ट श्रुत अनुभावः अस्य कृष्णस्य अमित तेजसः नष्ट त्रिलोक ईश मदः इन्द्र आह कृताञ्जलिः ॥३॥

अस्य	इन	**मदः**	होनेका गर्व
अमित तेजसः	अपार तेजस्वी	**नष्ट**	नष्ट हो चुका था
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	**इन्द्र**	(अतः) इन्द्र
अनुभावः	प्रभावको	**कृताञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
दृष्ट श्रुत	देख-सुनकर	**आह**	बोले ॥३॥
त्रिलोक ईश	त्रिलोकीके स्वामी		

इन्द्र उवाच

विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तं
तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ।
मायामयोऽयं गुणसम्प्रवाहो
न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ॥४॥

विशुद्ध सत्त्वं तव धाम शान्तं तपः मयं ध्वस्त रजः तमस्कं मायामयः अयं गुण सम्प्रवाहः न विद्यते ते अग्रहण अनुबन्धः ॥४॥

तव धाम	आपका स्वरूप	**गुण**	गुणोंका
रजः	रजो गुण तथा	**सम्प्रवाहः**	प्रवाह रूप संसार
तमस्कं	तमोगुणको	**ते न विद्यते**	आपमें नहीं है
ध्वस्त	नष्ट कर देनेवाला	**अग्रहण**	आपका ग्रहण न होनेसे
विशुद्ध सत्त्वं	शुद्ध सत्व गुणमय	**अनुबन्धः**	(इसके होनेका) आग्रह है ॥४॥
तपः मयं	ज्योतिर्मय (ज्ञान स्वरूप) है		
अयं मायामयः	यह मायामय		

कुतो नु तद्धेतव ईश तत्कृता
लोभादयो येऽबुधलिङ्गभावाः ।
तथापि दण्डं भगवान् बिभर्ति
धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ॥५॥

कुतः नु तत् हेतव ईश तत् कृता लोभ आदयः ये अबुध लिङ्ग भावाः तथा अपि दण्डं भगवान् बिभर्ति धर्मस्य गुप्त्यै खल निग्रहाय ॥५॥

नु तत्	भला फिर उस
हेतव	(अज्ञान) के कारण
तत् कृता	तथा उससे उत्पन्न
ये लोभ आदयः	जो लोभ अदि
भावाः	भाव
अबुध लिङ्ग	अज्ञानीके लक्षण हैं
ईश	आप सर्वेशमें
कुतः	कहांसे होंगे,
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी
भगवान्	भगवान् आप
धर्मस्य	धर्मकी
गुप्त्यै	रक्षाके लिए तथा
खल निग्रहाय	दुष्ट-दमनके लिए
दण्डं बिभर्ति	दण्ड-धारण करते (देते) हैं ॥५॥

पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो
दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः ।
हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे
मानं विधुन्वञ्जगदीशमानिनाम् ॥६॥

पिता गुरुः त्वं जगतां अधीशः दुरत्ययः काल उपात्त दण्डः हिताय स्व इच्छातनुभिः समीहसे मानं विधुन्वन् जगदीश मानिनाम् ॥६॥

त्वं जगतां	आप सम्पूर्ण विश्वके
पिता गुरुः	पिता, गुरु तथा
अधीशः	स्वामी हैं,
उपात्त दण्डः	दण्ड उठाये
दुरत्ययः काल	दुष्पार काल हैं,
हिताय	(संसारके) हितके लिए
स्व	अपनी
इच्छातनुभिः	इच्छासे अवतार रूपोंके द्वारा
जगदीश	अपनेको जगतका स्वामी
मानिनां	माननेवालोंका
मानं	मान-मर्दन
विधुन्वन्	करते हुए
समीहसे	चेष्टा (लीला) करते रहते हैं ॥६॥

ये मद्विधाज्ञा जगदीशमानिन-
स्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम् ।

हित्वाऽऽर्यमार्गं प्रभजन्त्यपस्मया
ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् ॥७॥

ये मत्विध अज्ञा जगत् ईश मानिनः त्वां वीक्ष्य काले अभयं आशु तत् मदं हित्वा आर्यं मार्गं प्रभजन्ति अपस्मया ईहा खलानां अपि ते अनुशासनम् ॥७॥

ये मत्विध	जो मेरे समान
जगत्	अपनेको जगत्का
ईश	स्वामी
मानिनः	माननेवाले
अज्ञा	अज्ञानी हैं
काले त्वां	समयपर आपको
अभयं वीक्ष्य	निर्भय देखकर
आशु तत्	शीघ्र उस
मदं	(अपने) गर्वको
हित्वा	त्यागकर
अपस्मया	गर्वहीन होकर
आर्य	श्रेष्ठ पुरुषोंके
मार्गं	पथ
प्रभजन्ति	आ जाते हैं,
खलानां अपि	दुष्टोंके लिए भी
ते ईहा	आपकी चेष्टा
अनुशासनं	अनुशासित (नियन्त्रित) करनेवाली है ॥७॥

स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य
कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम् ।
क्षन्तुं प्रभोऽथार्हसि मूढचेतसो
मैवं पुनर्भून्मतिरीश मेऽसती ॥८॥

स त्वं मम ऐश्वर्य मद आप्लुतस्य कृतागसः ते अविदुषः प्रभावं क्षन्तुं प्रभो अथ अर्हसि मूढ चेतसः मा एवं पुनः भूत् मतिः ईश मे असती ॥८॥

ऐश्वर्य मद	ऐश्वर्यके मदमें
आप्लुतस्य	डूबे हुए
ते प्रभावं	आपके प्रभावको
अविदुषः	न जाननेके कारण
कृतागसः	अपराध करनेवाले
प्रभो	प्रभो !
अथ	अतः अब
स त्वं	उस आपको
मूढ चेतसः	मूढ़ बुद्धि
मम क्षन्तुं	मुझे क्षमा
अर्हसि	कर देना चाहिए
ईश पुनः	स्वामी ! फिर
एवं	इस प्रकारकी
मे असती मतिः	मेरी कुबुद्धि
मा भूत	न होवे ॥८॥

तवावतारोऽयमधोक्षजेह
स्वयम्भराणामुरुभारजन्मनाम् ।
चमूपतीनामभवाय देव
भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥६॥

तव अवतारः अयं अधोक्षज इह स्वयं भराणां उरुभार जन्मनां चमूपतीनां अभवाय देव भवाय युष्मत् चरण अनुवर्तिनाम् ॥६॥

देव अधोक्षज	देव ! हृषीकेश !	जन्मनां	जन्म लेनेवाले
इह अयं	इस जगत्में यह	चमूपतीनां	सेनापतियोंके
तव अवतारः	आपका अवतार	अभवाय	विनाशके लिए तथा
स्वयं	अपना ही	युष्मत् चरण	आपके चरणोंके
भराणां	पेट-पालन करनेवाले	अनुवर्तिनाँ	अनुयायियोंके
उरुभार	(पृथ्वीके) भारी भाररूप	भवाय	उत्कर्षके लिए है ॥६॥

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।
वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥१०॥

नमः तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥१०॥

भगवते	भगवान्	सात्वतां पतये	भक्तोंके स्वामी
पुरुषाय	परम पुरुष	वासुदेवाय	वासुदेव
महात्मने	ब्रह्मरूप	कृष्णाय	श्रीकृष्णको
तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार,	नमः	नमस्कार ॥१०॥

स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये ।
सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥११॥

स्वच्छन्द उपात्त देहाय विशुद्ध ज्ञानमूर्तये सर्वस्मै सर्व बीजाय सर्वभूत आत्मने नमः ॥११॥

स्वच्छन्द	स्वतन्त्रतासे	**सर्वस्मै**	सर्वस्वरूप,
उपात्त देहाय	शरीर स्वीकार करने वाले	**सर्व बीजाय**	सर्व कारण,
		सर्वभूत	सब प्राणियोंके
विशुद्ध	विशुद्ध	**आत्मने**	आत्मा
ज्ञानमूर्तये	ज्ञान स्वरूप (चिन्मय विग्रह)	**नमः**	आपको नमस्कार ॥११॥

मयेदं भगवान् गोष्ठनाशायासारवायुभिः ।
चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥१२॥

मया इदं भगवन् गोष्ठ नाशाय आसार वायुभिः चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्र मन्युना ॥१२॥

भगवन्	भगवन् !	**विहते**	नष्ट होनेपर
आसार	तीव्र वर्षा और	**मानिना**	अभिमानी
वायुभिः	वायु द्वारा	**तीव्र मन्युना**	तीव्र क्रोधी
गोष्ठ नाशाय	व्रजके नाशकी	**मया**	मेरे द्वारा (की गयी)
इदं चेष्टित	यह चेष्टा		॥१२॥
यज्ञे	अपने यज्ञके		

त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तम्भो वृथोद्यमः ।
ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः ॥१३॥

त्वयि ईश अनुगृहीतः अस्मि ध्वस्त स्तम्भः वृथा उद्यमः ईश्वरं गुरुं आत्मानं त्वां अहं शरणं गतः ॥१३॥

ईश	स्वामी !	**ध्वस्त स्तम्भः**	(मेरा) गर्व नष्ट हो गया,
त्वयि	आपके द्वारा	**ईश्वरं गुरुं**	स्वामी, गुरु,
अनुगृहीतः	अनुग्रह किया गया	**आत्मानं त्वां**	आत्मा रूप आपकी
अस्मि	हूँ, (क्योंकि)	**अहं शरणं गतः**	मैं शरणमें हूँ ॥१३॥
वृथा उद्यमः	प्रयत्न नष्ट होनेसे		

श्रीशुक उवाच

एवं सङ्कीर्तितः कृष्णो मघोना भगवानमुम् ।
मेघगम्भीरया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥१४॥

एवं सङ्कीर्तितः कृष्णः मघोना भगवान् अमुं मेघगम्भीरया वाचा प्रहसन् इदं अब्रवीत् ॥१४॥

मघोना	इन्द्रके द्वारा	**प्रहसन्**	हँसते हुए
एवं	इस प्रकार	**मेघगम्भीरया**	मेघ-गम्भीर
सङ्कीर्तितः	स्तुति करनेपर	**वाचा अमुं**	वाणीसे उनसे
भगवान् कृष्णः	भगवान् श्रीकृष्णने	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥१४॥

श्रीभगवानुवाच

मया तेऽकारि मघवन् मखभङ्गोऽनुगृह्णता ।
मदनुस्मृतये नित्यं मत्तस्येन्द्र श्रिया भृशम् ॥१५॥

मया ते अकारि मघवन् मख भङ्गः अनुगृह्णतां मत् अनुस्मृतये नित्यं मत्तस्य इन्द्र श्रिया भृशम् ॥१५॥

इन्द्र श्रिया	इन्द्रत्वके ऐश्वर्यसे	**भङ्गः अकारि**	भंग कर दिया,
भृशं मत्तस्य	अत्यन्त मतवालेपर	**नित्यं मत्**	(जिससे) सदा मेरी
अनुगृह्णता	अनुग्रह करनेके लिए	**अनुस्मृतये**	बराबर स्मृति
मघवन्	इन्द्र !		बनी रहे ॥१५॥
मया ते मख	मैंने तुम्हारे यज्ञको		

मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्डपाणिं न पश्यति ।
तं भ्रंशयामि सम्पद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥१६॥

मां ऐश्वर्य श्रीमद अन्धः दण्डपाणिं न पश्यति तं भ्रंशयामि सम्पत्भ्यः यस्य च इच्छामि अनुग्रहम् ॥१६॥

ऐश्वर्य	ऐश्वर्य	**यस्य च**	जिसपर भी
श्रीमद	तथा लक्ष्मीके मदसे	**अनुग्रहं**	कृपा
अन्धः	अन्धा हुआ (पुरुष)	**इच्छामि**	करना चाहता हूँ
दण्डपाणिं	दण्ड हस्त (कालरूप)	**तं सम्पत्भ्यः**	उसे सम्पत्तियोंसे
मां	मुझे	**भ्रंशयामि**	गिरा देता हूँ ॥१६॥
न पश्यति	नहीं देखता (उनमें)		

गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम् ।
स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तम्भवर्जितैः ॥१७॥

गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मे अनुशासनं स्थीयतां स्व अधिकारेषु युक्तैः वः स्तम्भ वर्जितैः ॥१७॥

शक्र वः	इन्द्र तुम्हारा	**स्तम्भ वर्जितैः**	गर्वहीन रहना
भद्रं	कल्याण हो,	**युक्तैः**	उपयुक्त है
गम्यतां	(अब) जाओ,	**स्व**	अपने
मे अनुशासनं	मेरी आज्ञाका	**अधिकारेषु**	अधिकारपर
क्रियतां	पालन करो	**स्थीयतां**	स्थित रहो ॥१७॥
वः	तुम्हारे लिए		

श्रीशुक उवाच*

अथाह सुरभिः कृष्णमभिवन्द्य मनस्विनी ।
स्वसन्तानैरुपामन्त्य गोपरूपिणमीश्वरम् ॥१८॥

अथ आह सुरभिः कृष्णं अभिवन्द्य मनस्विनी स्वसन्तानैः उप आमन्त्य गोपरूपिणं ईश्वरम् ॥१८॥

अथ	इसके बाद	**ईश्वरं कृष्णं**	परमेश्वर श्रीकृष्णका
मनस्विनी	मनस्विनी	**अभिवन्द्य**	अभिनन्दन करके
सुरभिः	कामधेनु	**उप**	उनको
स्वसन्तानैः	अपनी सन्तानोंके साथ	**आमन्त्य**	सम्बोधित करके
		आह	बोली ॥१८॥
गोपरूपिणं	गोपरूपधारी		

सुरभिरुवाच

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसम्भव ।
भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत ॥१९॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्व आत्मन् विश्व सम्भव भवता लोक नाथेन सनाथा वयं अच्युत ॥१६॥

कृष्ण	कृष्ण !
महोगिन् कृष्ण	महायोगी कृष्ण !
विश्व आत्मन्	विश्वात्मा,
विश्व	विश्वको
सम्भव	उत्पन्न करनेवाले
लोक नाथेन	लोकोंके स्वामी
भवता	आपके द्वारा
अच्युत	हे अच्युत !
वयं सनाथा	हम सनाथ हैं ॥१६॥

त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते ।
भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः ॥२०॥

त्वं नः परमकं दैवं त्वं नः इन्द्रः जगत्पते भवाय भव गोविप्र देवानां ये च साधवः ॥२०॥

जगत्पते	जगत्के स्वामी
त्वं नः	आप हमारे
परमकं दैवं	परम आराध्य देव हैं
गोविप्र	गाय, ब्राह्मण,
देवानां	देवता
च ये	तथा जो
साधवः	सत्पुरुष हैं
भवाय	उनके अभ्युत्थानके लिए
नः इन्द्रः	हमारे इन्द्र
भव	बन जाओ ॥२०॥

इन्द्रं नस्त्वाभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा नोदिता वयम् ।
अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये ॥२१॥

इन्द्रं नः त्वां अभिषेक्ष्यामः ब्रह्मणा नोदिता वयं अवतीर्णः असि विश्वात्मन् भूमेः भार अपनुत्तये ॥२१॥

वयं ब्रह्मणा	हम ब्रह्माजी द्वारा
नोदिता त्वां	प्रेरिता आपको
नः इन्द्रं	अपने इन्द्रके रूपमें
अभिषेक्ष्यामः	अभिषेक करेंगी,
विश्वात्मन्	विश्वात्मन् !
भूमेः भार	पृथ्वीका भार
अपनुत्तये	दूर करनेके लिए
अवतीर्णः	(आपने) अवतार
असि	लिया है ॥२१॥

श्रीशुक उवाच—

एवं कृष्णमुपामन्त्र्य सुरभिः पयसाऽऽत्मनः ।
जलैराकाशगङ्गाया ऐरावतकरोद्धृतैः ॥२२॥

एवं कृष्णं उप आमन्त्र्य सुरभिः पयसा आत्मनः जलैः आकाश गङ्गायाः ऐरावत कर उद्धृतैः ॥२२॥

एवं	इस प्रकार	**ऐरावत कर**	ऐरावतकी सूंड़से
कृष्णं	श्रीकृष्णसे	**उद्धृतैः**	उठाये गये
उप आमन्त्र्य	अनुमति लेकर	**आकाश**	आकाश
आत्मनः पयसा	अपने दूधसे	**गङ्गायाः**	गंगाके
सुरभिः	कामधेनुने तथा	**जलैः**	जलसे ॥२२॥

इन्द्रः सुरर्षिभिः साकं नोदितो देवमातृभिः ।
अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात् ॥२३॥

इन्द्रः सुर ऋषिभिः साकं नोदितः देवमातृभिः अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति च अभ्यधात् ॥२३॥

इन्द्रः	इद्रने	**दाशार्हं**	दशार्ह वंशीय श्रीकृष्णका
देवमातृभिः	देवमाता अदिति द्वारा	**अभ्यषिञ्चत्**	अभिषेक किया
नोदितः	प्रेरित होकर	**च गोविन्द इति**	तथा गोविन्द इस
सुर	देवताओं तथा	**अभ्यधात्**	नामसे सम्बोधित
ऋषिभिः	ऋषियोंके		किया ॥२३॥
साकं	साथ		

तत्रागतास्तुम्बुरुनारदादयो
गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ।

जगुर्यशो लोकमलापहं हरेः
सुराङ्गनाः संननृतुर्मुदान्विताः ॥२४॥

तत्र आगताः तुम्बुरु नारद आदयः गन्धर्व विद्याधर सिद्ध चारणाः जगुः यशः लोकमल अपहं हरेः सुर अङ्गनाः संननृतुः मुद अन्विताः ॥२४॥

तत्र तुम्बुरु	वहां तुम्बुरु	अपहं	निवारक
नारद आदयः	नारद आदि	हरेः	श्रीहरिका
आगताः	आकर	यशः जगुः	सुयश गाने लगे,
गन्धर्व	गन्धर्व,	मुद अन्विताः	आनन्दके साथ
विद्याधर	विद्याधर	सुर अङ्गनाः	देव-स्त्रियां
सिद्ध चारणाः	सिद्ध, चारण,	संननृतुः	साथ-साथ नाचने
लोकमल	संसारके दोषोंके		लगीं ॥२४॥

तं तुष्टुवुर्देवनिकायकेतवो
व्यवाकिरंश्चाद्भुतपुष्पवृष्टिभिः ।
लोकाः परां निर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयो
गावस्तदा गामनयन् पयोद्रुताम् ॥२५॥

तं तुष्टुवुः देव निकाय केतवः व्यवाकिरन् च अद्भुत पुष्पवृष्टिभिः लोकाः परां निर्वृतिं आप्नुवन् त्रयः गावः तदा गां अनयन् पयः द्रुताम् ॥२५॥

देव निकाय	देव-समूहके	त्रयः लोकाः	तीनों लोकोंने
केतवः	ध्वजाके समान (श्रेष्ठ देवता)	परां निर्वृतिं	परमानन्द
तं	उनकी	आप्नुवन्	प्राप्त किया
तुष्टुवुः	स्तुति करने लगे,	तदा गावः	उस समय गायोंने
च अद्भुत	तथा अद्भुत	गां पयः	पृथ्वीको दूधसे
पुष्पवृष्टिभिः	पुष्पोंकी वर्षासे	द्रुतां	गीली
व्यवाकिरन्	(उनकी) चारों ओर से ढकने लगे,	अनयन्	कर दिया ॥२५॥

नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसन् मधुस्रवाः ।
अकृष्टपच्यौषधयो गिरयोऽबिभ्रदुन्मणीन् ॥२६॥

नाना रस ओघाः सरितः वृक्षाः आसन् मधुस्रवाः अकृष्ट पच्या ओषधयः गिरयः अबिभ्रत् उत् मणीन् ॥२६॥

सरितः	सरिताएं	**पच्या**	पकनेवाली
नाना	अनेक प्रकारके	**आसन्**	हो गयीं
रस ओघाः	रसोंकी बाढ़ वाली,	**गिरयः**	पर्वतोंने
वृक्षाः	वृक्ष	**उत् मणीन्**	ऊपर ही मणियोंको
मधुस्रवाः	मधु बहानेवाले	**अबिभ्रत्**	धारण कर लिया
औषधयः	(अन्नादि) औषधियां		॥२६॥
अकृष्ट	बिना जोते		

कृष्णेऽभिषिक्त एतानि सत्त्वानि कुरुनन्दन ।
निर्वैराण्यभवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः ॥२७॥

कृष्णे अभिषिक्त एतानि सत्त्वानि कुरुनन्दन निर्वैराणि अभवन् तात क्रूराणि अपि निसर्गतः ॥२७॥

तात कुरुनन्दन	तात परीक्षित !	**क्रूराणि अपि**	क्रूर भी
कृष्णे	श्रीकृष्णका	**सत्त्वानि**	प्राणी
अभिषिक्त	अभिषेक होनेपर	**निर्वैराणि**	शत्रुताहीन
एतानि निसर्गतः	ये प्रकृतिसे	**अभवन्**	हो गये ॥२७॥

इति गोगोकुलपतिं गोविन्दमभिषिच्य सः ।
अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥२८॥

इति गो गोकुलपतिं गोविन्दं अभिषिच्य सः अनुज्ञातः ययौ शक्रः वृतः देवादिभिः दिवम् ॥२८॥

इति	इस प्रकार	**सः शक्रः**	वे इन्द्र
गो	गायों तथा	**अनुज्ञातः**	अनुमति पाकर
गोकुलपतिं	गोकुलके स्वामी	**देवादिभिः**	देवतादिसे
गोविन्दं	गोविन्दका	**वृतः**	घिरे हुए
अभिषिच्य	अभिषेक करके	**दिवं ययौ**	स्वर्ग चले गये ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे इन्द्रस्तुतिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अथ अष्टविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥१॥

एकादश्यां निराहारः सम अभ्यर्च्य जनार्दनं स्नातुं नन्दः तु कालिन्द्यां द्वादश्या जलं आविशत् ॥१॥

एकादश्यां	एकादशीको	नन्दः तु	नन्दजी तो
निराहारः	निराहार रहकर	द्वादश्यां	द्वादशीको
जनार्दनं	भगवान जनार्दनकी	स्नातुं	स्नान करनेके लिए
सम	भली प्रकार	जलं	(यमुना) जलमें
अभ्यर्च्य	पूजा करके	आविशत्	प्रविष्ट हुए ॥१॥

तं गृहीत्वानयद् भृत्यो वरुणस्यासुरोऽन्तिकम् ।
अविज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥२॥

तं गृहीत्वा अनयत् भृत्यः वरुणस्य असुरः अन्तिकं अविज्ञाय आसुरीं वेलां प्रविष्टं उदकं निशि ॥२॥

आसुरीं वेलां	आसुरी समय	असुरः भृत्यः	असुर सेवक
अविज्ञाय	न जानकर	गृहीत्वा	पकड़कर
निशि उदकं	रात्रिमें जलमें	अन्तिकं	उनके पास
प्रविष्टं तं	प्रवेश किये उनको	अनयत्	ले गया ॥२॥
वरुणस्य	वरुणका		

चुक्रुशुस्तमपश्यन्तः कृष्ण रामेति गोपकाः ।
भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ।
तदन्तिकं गतो राजन् स्वानामभयदो विभुः ॥३॥

चुक्रुशुः तं अपश्यन्तः कृष्ण राम इति गोपकाः भगवान् तत् उपश्रुत्य पितरं वरुण आहृतं तत् अन्तिकं गतः राजन् स्वानां अभयदः विभुः ॥३॥

राजन्	राजन् !	**आहृतं**	हरण किया गया
तं	उन (नन्दजी) को	**उपश्रुत्य**	सुनकर
अपश्यन्तः	न देखकर	**स्वानां**	अपनोंको
कृष्ण	'हे कृष्ण !	**अभयदः**	अभय देनेवाले
राम	हे बलराम !'	**विभुः**	सबके स्वामी
इति	इस प्रकार	**भगवान्**	भगवान्
गोपकाः चुक्रुशुः	गोप पुकारने लगे,	**तत् अन्तिकं**	उन (वरुण) के समीप
तत् पितरं	वह पिताको		
वरुण	वरुण द्वारा	**गतः**	गये ॥३॥

प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया ।
महत्या पूजयित्वाऽऽह तद्दर्शनमहोत्सवः ॥४॥

प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया महत्या पूजयित्वा आह तत् दर्शन महोत्सवः ॥४॥

हृषीकेशं	भगवान् हृषीकेशको	**महत्या**	बहुत बड़ी
प्राप्तं वीक्ष्य	आया देखकर	**सपर्यया**	पूजा सामग्रीसे
तत् दर्शन	उनके दर्शनसे	**पूजयित्वा आह**	पूजन करके बोले
महोत्सवः	महान् आनन्दसे		॥४॥
लोकपालः	लोकपाल वरुण		

वरुण उवाच

अद्य मे निभृतो देहोऽद्यैवार्थोऽधिगतः प्रभो ।
त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः ॥५॥

अद्य मे निभृतः देहः अद्य एव अर्थः अधिगतः प्रभो त्वत् पाद भाजः भगवान् अवापुः पारं अध्वनः ॥५॥

प्रभो	प्रभो !	**निभृतः**	सफल हो गया,
अद्य मे देहः	आज मेरा शरीर धारण	**अद्य एव**	आज ही
		अर्थः	परमार्थ

अधिगतः	प्राप्त हो गया	**अध्वनः**	संसारकी यात्राका
त्वत् पाद	आपकी चरण सेवाका	**पारं**	पार
भाजः	भाजन होकर	**अवापुः**	मिल जाता है ॥५॥

नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ।
न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना ॥६॥

नमः तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने न यत्र श्रूयते माया लोक सृष्टि विकल्पना ॥६॥

लोक सृष्टि विकल्पना	लोकोंकी सृष्टि की कल्पना करने वाली	**ब्रह्मणे**	परंब्रह्म
		परमात्मने	परमात्मा
		भगवते	भगवान
माया यत्र न श्रूयते	माया जिनमें नहीं सुनी जाती उन	**तुभ्यं नमः**	आपको नमस्कार ॥६॥

अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना ।
आनीतोऽयं तव पिता तद् भवान् क्षन्तुमर्हति ॥७॥

अजानता मामकेन मूढेन अकार्य वेदिना आनीतः अयं तव पिता तत् भवान् क्षन्तुं अर्हति ॥७॥

मूढेन	नासमझ	**आनीतः**	लाये गये
अकार्य वेदिना	कर्तव्यको न जानने-वाले	**भवान् तत्**	आपको इसे
		क्षन्तुं अर्हति	क्षमा कर देना चाहिए ॥७॥
मामकेन	मेरे सेवक द्वारा		
अयं तव पिता	ये आपके पिताजी		

ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक् ।
गोविन्द नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ॥८॥

मम अपि अनुग्रहं कृष्ण कर्तुं अर्हसि अशेष दृक् गोविन्द नीयतां एष पिता ते पितृवत्सल ॥८॥

अशेष दृक्	सर्वसाक्षी	**पितृवत्सल**	पितापर प्रेम रखने-
कृष्ण	श्रीकृष्ण !		वाले
मम अपि	मुझ (सेवक) पर भी	**गोविन्द**	गोविन्द !
अनुग्रहं	(आपको) कृपा	**एष ते पिता**	ये आपके पिताजी हैं
कर्तुं अर्हसि	करनी चाहिए,	**नीयतां**	(इनको) ले जाइये

॥८॥

श्रीशुक उवाच

एवं प्रसादितः कृष्णो भगवानीश्वरेश्वरः ।
आदायागात् स्वपितरं बन्धूनां चावहन् मुदम् ॥९॥

एवं प्रसादितः कृष्णः भगवान् ईश्वर ईश्वरः आदाय अगात् स्वपितरं बन्धूनां च आवहन् मुदम् ॥९॥

एवं	इस प्रकार	**स्वपितरं**	अपने पिताको
प्रसादितः	(वरुण द्वारा) प्रसन्न	**आदाय अगात्**	लेकर लौट आये,
	किये जानेपर	**च**	तथा
ईश्वर	लोकपालोंके भी	**बन्धूनां**	सम्बन्धियोंको
ईश्वरः	स्वामी	**मुदं**	आनन्दित
भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्ण	**आवहन्**	किया ॥९॥

नन्दस्त्वतीन्द्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् ।
कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत् ॥१०॥

नन्दः तु अति इन्द्रियं दृष्ट्वा लोकपाल महा उदयं कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यः विस्मितः अब्रवीत् ॥१०॥

नन्दः तु	नन्दजी तो	**सन्नतिं**	प्रति विनम्रता
अति इन्द्रियं	इन्द्रियातीत	**दृष्ट्वा**	देखकर
लोकपाल	लोकपाल (वरुण)	**विस्मितः**	चकित हो गये,
	का	**ज्ञातिभ्यः**	(आकर) जाति
महा उदयं	महान ऐश्वर्य		भाइयोंसे
च तेषां	तथा उनकी	**अब्रवीत्**	बतलाया ॥१०॥
कृष्णे	श्रीकृष्णके		

ते त्वौत्सुक्यधियो राजन् मत्वा गोपास्तमीश्वरम् ।
अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥११॥

ते तु औत्सुक्य धियः राजन् मत्वा गोपाः तं ईश्वरं अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मां उप आधास्यत् अधीश्वरः ॥११॥

राजन्	राजन् !	**अधीश्वरः**	सर्वेश्वर (श्रीकृष्ण)
ते तु गोपाः	उन गोपोंने तो	**सूक्ष्मां**	अपना सूक्ष्म (माया-तीत)
तं	उनको		
ईश्वरं	परमेश्वर	**स्वगतिं**	स्वरूप
मत्वा	मान लिया तो	**अपि**	क्या कभी
औत्सुक्य धियः	उनके चित्तमें उत्कण्ठा हो गयी	**नः उप**	हमारे समीप
		आधास्यत्	प्रकट करेंगे ॥११॥

इति स्वानां स भगवान् विज्ञायाखिलदृक् स्वयम् ।
सङ्कल्पसिद्धये तेषां कृपयैतदचिन्तयत् ॥१२॥

इति स्वानां स भगवान् विज्ञाय अखिल दृक् स्वयं सङ्कल्प सिद्धये तेषां कृपया एतत् अचिन्तयत् ॥१२॥

स अखिल दृक्	उन सर्वसाक्षी	**तेषां सङ्कल्प**	उनके संकल्पको
भगवान्	भगवान्ने	**सिद्धये**	पूर्ण करनेके लिए
स्वानां	अपने (जनों) की	**कृपया एतत्**	कृपा करके यह
इति	इस प्रकार (उत्सुकता)	**स्वयं**	स्वयं
		अचिन्तयत्	सोचा ॥१२॥
विज्ञाय	जानकर		

जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः ।
उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥१३॥

जनः वै लोक एतस्मिन् अविद्या काम कर्मभिः उच्च अवचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥१३॥

वै जनः	निश्चय यह प्राणी	**काम**	कामनाओंसे
एतस्मिन् लोक	इस लोकमें	**कर्मभिः**	कर्म करता हुआ
अविद्या	अविद्याजन्य	**उच्च अवचासु**	बड़ी-छोटी

गतिषु	दशाओंमें	**गतिं**	स्थान (स्वरूप) को
भ्रमन्	भटकता हुआ	**न वेद**	नहीं जानता ॥१३॥
स्वां	अपने (वास्तविक)		

इति सञ्चिन्त्य भगवान् महाकारुणिको हरिः ।
दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥१४॥

इति सञ्चिन्त्य भगवान् महा कारुणिकः हरिः दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥१४॥

इति सञ्चिन्त्य	ऐसा सोचकर	**तमसः**	मायान्धकारसे
महा	अतिशय	**परं**	अतीत
कारुणिकः	करुणामय	**स्वं लोकं**	अपना परमधाम
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरिने	**दर्शयामास**	दिखलाया ॥१४॥
गोपानां	गोपोंको		

सत्यं ज्ञानमनन्तं यद् ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ।
यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः ॥१५॥

सत्यं ज्ञानं अनन्तं यत् ब्रह्म ज्योतिः सनातनं यत् हि पश्यन्ति मुनयः गुण अपाये समाहिताः ॥१५॥

यत् सत्यं	जो सत्य,	**गुण अपाये**	गुणातीत होनेपर
ज्ञानं अनन्तं	ज्ञान, अनन्त,	**समाहिताः**	समाधिमें स्थित
ज्योतिः	ज्योति स्वरूप,	**मुनयः**	मुनि
सनातनं	सनातन	**पश्यन्ति**	देखते हैं (उस रूपको दिखलाया) ॥१५॥
ब्रह्म	ब्रह्म है,		
यत् हि	जिसे कि		

ते तु ब्रह्महदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः ।
ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात् पुरा ॥१६॥

ते तु ब्रह्म हदं नीता मग्नाः कृष्णेन च उद्धृताः ददृशुः ब्रह्मणः लोकं यत्र अक्रूरः अध्यगात् पुरा ॥१६॥

ते तु	वे (गोपगण) तो	**यत्र अक्रूरः**	जहां अक्रूरने
ब्रह्म ह्रदं	ब्रह्म ह्रदमें	**पुरा**	पहिले
नीता	ले जाये जानेपर	**अध्यगात्**	साक्षात्कार पाया
मग्नाः	निमग्न हो गये		था उस
च कृष्णेन	फिर श्रीकृष्ण द्वारा	**ब्रह्मणः लोकं**	ब्रह्मलोक (वैकुण्ठ)*
उद्धृताः	(वहांसे) निकाले जाकर		का
		ददृशुः	दर्शन किया ॥१६॥

नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः ।
कृष्णं च तत्रच्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥१७॥

नन्द आदयः तु तं दृष्ट्वा परमानन्द निर्वृताः कृष्णं च तत्र छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥१७॥

नन्द आदयः तु	नन्द आदि (गोप) तो	**दृष्ट्वा**	देखकर बहुत
तं च	उस लोकको	**सुविस्मिताः**	चकित हुए और
तत्र	तथा वहां	**परमानन्द**	परमानन्दमें
छन्दोभिः	वेदों द्वारा	**निर्वृताः**	निमग्न हो गये
कृष्ण	श्रीकृष्णकी		॥१७॥
स्तूयमानं	स्तुति होती		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

---

* अक्रूरको कभी पहिले ब्रह्मलोक स्थित वैकुण्ठका दर्शन हुआ था—वही व्रजसे लौटते भी हुआ । उसीका दर्शन गोपोंको भगवानने कराया

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥१॥

भगवान्, अपि, ताः, रात्रीः, शरदोत्फुल्लमल्लिकाः, वीक्ष्य, रन्तुम्, मनः, चक्रे, योगमायाम्, उपाश्रित ॥१॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—

भगवान्	भगवान् (ऐश्वर्य-वीर्यादि छः गुणोंसे युक्त)	**ताः**	उन
		रात्रीः	रात्रियोंको
अपि	भी	**वीक्ष्य**	देखकर
शरदोत्फुल्ल-	विकसित शारदीय	**योगमायाम्**	योगमायाको
मल्लिकाः	मल्लिका पुष्पोंसे परिशोभित	**उपाश्रितः**	प्रकट करके
		रन्तुम्	रमण करनेके लिये
		मनः चक्रे	सकल्प किया ॥१॥

ऐश्वर्यवीर्य आदि षड्विध महान् गुणोंसे युक्त भगवान् श्रीकृष्णने वस्त्रहरणके समय गोपकुमारियोंको दिये हुए वचनके अनुसार शरत्कालीन विकसित मल्लिका—चमेली आदि पुष्पोंसे परिशोभित उन रात्रियोंको देखकर योगमाया नामक अपनी अचिन्त्य महाशक्तिको प्रकट किया और गोपरमणियोंके साथ विहार करनेकी इच्छा की ॥१॥

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं
प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शंतमैः ।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्
प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥२॥

विशेष—गीताप्रेस गोरखपुरसे मुद्रित [गोलोकवासी] सम्मान्य गोस्वामी चिम्मनलालजी महाराज द्वारा प्रकाशित, पदच्छेद, अन्वय, शब्दार्थ टीका तथा [नित्यलीलालीन] भाई जी श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार द्वारा श्लोकोंके भावार्थ सहित छपी रासपञ्चाध्यायको ही दिया जा रहा है। उसके आगेका ग्रन्थका भाग जैसे अब तक चला आ रहा है, वैसा ही है। **—सं०**

तदा, उडुराजः, ककुभः, करैः, मुखम्, प्राच्याः, विलिम्पन्, अरुणेन, शंतमैः, सः, चर्षणीनाम्, उदगात्, शुचः, मृजन्, प्रियः, प्रियायाः, इव, दीर्घदर्शनः ॥२॥

तदा	तब (जिस प्रकार)	**करैः**	किरणरूपी हाथके द्वारा
दीर्घदर्शनः	बहुत दिनोंके पश्चात् दिखायी देनेवाला	**अरुणेन**	उदयरागसे
प्रियः	प्रिय	**विलिम्पन्**	रञ्जित करता हुआ लाल बनाता हुआ (तथा)
प्रियायाः	(अपनी) प्रियाका		
(मुखम् शंतमेन	(मुख अपने अत्यन्त	**चर्षणीनाम्**	जगत्के प्राणियोंका
करेण	सुखद हाथों द्वारा	**शुचः**	संताप
अरुणेन	केसरसे	**मृजन्**	दूर करता हुआ
विलिम्पन्)	रंग दे,	**सः**	वह (सर्वविदित)
इव	उसी प्रकार	**उडुराजः**	ताराओंका राजा (चन्द्रमा)
प्राच्याः	पूर्व		
ककुभः	दिशाके	**उदगात्**	उदय हुआ ॥२॥
मुखम्	मुखको (अपनी)		
शंतमैः	अत्यन्त सुखकर		

जब भगवान्‌ने विहार करनेकी इच्छा की, तब उसी क्षण—दीर्घ प्रवासके पश्चात् घरमें आया हुआ प्रियतम जैसे अपने अत्यन्त सुखद हाथोंसे अपनी प्रेयसीका मुख-कमल अरुणवर्ण केसरसे रंग दे, वैसे ही नक्षत्रपति चन्द्रमाने गगन-मण्डलमें उदित होकर अपने सुखमय सुस्निग्ध किरणरूपी कर-कमलों द्वारा पूर्वदिशारूप वधूका मुख अरुण वर्ण केसरसे रंग दिया। इससे जगत्के प्राणियोंका शरत्कालीन सूर्यकी प्रखर किरणोंसे उत्पन्न संताप दूर हो गया ॥२॥

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं
रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम् ।
वनं च तत्कोमलगोभिरञ्जितं
जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥३॥

दृष्ट्वा, कुमुद्वन्तम्, अखण्डमण्डलम्, रमाननाभम्, नवकुङ्कुमारुणम्, वनम्, च, तत्कोमलगोभिः, अञ्जितम्, जगौ, कलम्, वामदृशाम्, मनोहरम् ॥३॥

फिर—

रमाननाभम्	लक्ष्मीके मुखमण्डल-की शोभा धारण करनेवाले	वनम्	वनको
		दृष्ट्वा	देखकर
		वामदृशाम्	(श्रीकृष्णने) सुन्दर नेत्रोंवाली व्रज-सुन्दरियोंका
नवकुङ्कु-मारुणम्	नवकुङ्कुमकी भाँति अरुण वर्ण		
अखण्डमण्डलम्	पूर्ण प्रकाशयुक्त	मनोहरम्	मन हर लेनेवाला
कुमुद्वन्तम्	चन्द्रमाको	कलम्	मधुर (सुललित स्वरसे)
च	तथा		
तत्कोमलगोभिः	उस (चन्द्र) की कोमल किरणोंसे	जगौ	गायन (वेणुवादन) किया ॥३॥
अञ्जितम्	उद्भासित		

रासलीलाके इच्छुक भगवान् श्रीकृष्णने जब देखा कि कुमुदिनीको विकसित करनेवाला पूर्णचन्द्र आकाश-मण्डलमें उदित हो गया है, लक्ष्मीजी-के मुखकमलकी भाँति उसकी किरणप्रभा सुशोभित है तथा नवीन कुङ्कुम-के समान वह अरुणवर्ण हो रहा है और उसकी कोमल किरणोंसे समस्त वन प्रकाशित एवं सुरञ्जित हो उठा है, तब इसी समयको रासक्रीड़ाके लिये उपयुक्त दिव्य उज्ज्वल रसके उद्दीपनकी पूर्ण सामग्रीसे युक्त समझकर उन्होंने सुन्दर नेत्रोंवाली व्रजसुन्दरियोंके मनको हरण करनेवाला सुललित स्वरोंमें मधुर मुरलीका वादन किया ॥३॥

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥४॥

निशम्य, गीतम्, तत्, अनङ्गवर्धनम्, व्रजस्त्रियः, कृष्णगृहीतमानसाः, आजग्मुः, अन्योन्यम्, अलक्षितोद्यमाः, सः, यत्र, कान्तः, जवलोलकुण्डलाः ॥४॥

तत्	उस
अनङ्गवर्धनम्	प्रेमवर्द्धन करनेवाले
गीतम्	(वेणु-) गीतको
निशम्य	सुनकर
कृष्णगृहीत-	श्रीकृष्णके द्वारा
मानसाः	(पहलेसे ही) आकृष्ट चित्तवाली
व्रजस्त्रियः	व्रजसुन्दरियाँ
अन्योन्यम्	परस्पर एक दूसरीके
अलक्षितोद्यमाः	(प्रियतमके समीप) गमनोद्योगको न जानती हुई
जवलोल-	(द्रुतगतिके कारण)
कुण्डलाः	हिलते हुए कर्ण-कुण्डलोंसे विभूषित होकर (वहाँ)
आजग्मुः	चली आयीं,
यत्र	जहाँ
सः	वे
कान्तः	कान्त (प्रियतम श्रीकृष्ण) (थे) ॥४॥

व्रजसुन्दरियोंका मन तो पहलेसे ही श्यामसुन्दरने अपने वशमें कर रखा था। अब उस मिलन-लालसा—प्रेम बढ़ानेवाले वेणुगीतको सुनकर तो वे सर्वथा विमुग्ध हो गयीं। उनकी भय, संकोच, मर्यादा, धैर्य आदि सभी वृत्तियाँ विलुप्त हो गयीं और वे जहाँ प्रियतम मुरली बजा रहे थे, वहाँ शीघ्रतासे जा पहुँचीं। उनमें किसीने भी परस्पर किसी को जानेकी सूचनातक नहीं दी। बड़े वेगसे चलनेके कारण उस समय उनके कानोंके कुण्डल नाच रहे थे ॥५॥

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः।
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥५॥

दुहन्त्यः, अभिययुः, काः, चित्, दोहम्, हित्वा, समुत्सुकाः, पयः, अधिश्रित्य, संयावम्, अनुद्वास्य, अपराः, ययुः ॥५॥

समुत्सुकाः	(श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये सदा) परम उत्सुक
काः	कुछ (गोपियाँ)
चित्	तो
दुहन्त्यः	दूध दुहती हुई (बीचमें ही)
दोहम्	दुहना

हित्वा	छोड़कर	**(अभिययुः)**	उसी ओर चल पड़ीं
(अभिययुः)	वेणुनादकी ओर लक्ष्य करके चली गयीं	**अपराः**	कुछ अन्य (गोपिकाएँ)
(काश्चित्)	कुछ	**संयावम्**	हलुआ (तैयार होने पर भी, चूल्हेसे)
पयः	दूधको	**अनुद्वास्य**	उतारे बिना ही
अधिश्रित्य	चूल्हेपर रखकर (ही)	**ययुः**	चली गयीं ॥५॥

श्रीकृष्णका वंशीनाद सुनते ही— प्रियतम भगवान्‌का आह्वान सुनते ही उनकी ऐसी दशा हुई कि श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये सदा ही समुत्सुक रहनेवाली कुछ गोपियाँ जो दूध दुह रही थीं, वे दुहना बीचमें ही छोड़कर चल दीं। कुछ चूल्हेपर दूध औटा रही थीं, वे दूध उफनता हुआ छोड़कर तथा कुछ दूसरी गोपियाँ हलुआ पका रही थीं, वे तैयार हुए हलुएको चूल्हेसे बिना उतारे ही ज्यों-की-त्यों छोड़कर चली गयीं ॥५॥

परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः ।
शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥६॥

परिवेषयन्त्यः, तत्, हित्वा, पाययन्त्यः, शिशून्, पयः, शुश्रूषन्त्यः, पतीन्, काः, चित्, अश्नन्त्यः, अपास्यः, भोजनम् ॥६॥

परिवेषयन्त्यः	(कुछ) परोसती हुई	**काः चित्**	कुछ तो (अपने)
तत्	(अपना) वह (परोसना)	**पतीन्**	पतियोंकी
हित्वा	छोड़कर (चली गयीं)	**शुश्रूषन्त्यः**	सेवा करती हुई (सेवा छोड़कर चली गयीं,)
शिशून्	(कुछ) बच्चोंको	**अश्नन्त्यः**	(कुछ) भोजन करती हुई
पयः	दूध	**भोजनम्**	भोजन
पाययन्त्यः	पिलाती हुई (पिलाना छोड़कर चली गयीं,)	**अपास्य**	छोड़कर (चल पड़ीं) ॥६॥

कुछ अपने पति-पुत्रादिको भोजन परोस रही थीं, वे परोसना छोड़कर, कुछ छोटे बालकोंको दूध पिला रही थीं, वे दूध पिलाना छोड़कर

चल दीं। कुछ अपने पतियोंकी सेवा-शुश्रूषा कर रही थीं, वे सेवा-शुश्रूषा छोड़कर और कुछ स्वयं भोजन कर रही थीं, वे भोजन करना छोड़कर प्रियतम श्रीकृष्णके पास चल पड़ीं ॥६॥

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने ।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः ॥७॥

लिम्पन्त्यः, प्रमृजन्त्यः, अन्याः, अञ्जन्त्यः, काः, च, लोचने, व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः, काः, चित्, कृष्णान्तिकम्, ययुः ॥७॥

अन्याः	(कुछ) दूसरी
लिम्पन्त्यः	अंगराग लगाती हुई (उसे छोड़कर) (कुछ)
प्रमृजन्त्यः	उबटन आदि लगाती हुई (उबटना छोड़कर)
च	और
काः	कुछ
लोचने	नेत्र
अञ्जन्त्यः	आँजती हुई (अञ्जन लगाना छोड़कर चल पड़ीं) (तथा)
काः	कुछ (गोपिकाएँ)
चित्	तो
व्यत्यस्त-वस्त्राभरणाः	उलटे-सीधे वस्त्र-आभूषण पहनकर विचित्र शृंगार किये)
कृष्णान्तिकम्	श्रीकृष्णके समीप
ययुः	चली गयीं ॥७॥

कुछ दूसरी गोपियाँ अपने शरीरमें अंगराग—केसर-चन्दनादि लगा रही थीं, वे उसे छोड़कर, कुछ उबटन लगा रही थीं, वे उबटना छोड़कर और कुछ आँखोंमें अञ्जन लगा रही थीं, वे अञ्जन लगाना छोड़कर चल दीं। कुछ गोपांगनाएँ वस्त्र-अलंकार पहन रही थीं, वे उलटे-पलटे वस्त्राभूषण धारणकर—जैसे ओढ़नीको कमरमें बाँधकर, लहँगा ओढ़कर, गलेका हार कमरमें पहनकर और करधनीको गलेमें डालकर—प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये पागलकी तरह उनके पास दौड़ पड़ीं ॥७॥

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ।
गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥८॥

ताः, वार्यमाणाः, पतिभिः, पितृभिः, भ्रातृबन्धुभिः, गोविन्दापहृतात्मानः, न, न्यवर्तन्त, मोहिताः ॥८॥

गोविन्दा-	श्रीगोविन्दके द्वारा	**पतिभिः**	अपने पति,
पहृतात्मानः	हरे हुए अन्तःकरण-वाली (एवं इसी-लिये)	**पितृभिः**	पिता (अथवा)
		भ्रातृबन्धुभिः	भाई-बन्धुओंके द्वारा
		वार्यमाणाः	रोकी जानेपर भी
मोहिताः	विवेक शून्य हुई	**न**	नहीं
ताः	वे (गोपियाँ)	**न्यवर्तन्त**	लौटीं ॥८॥

श्रीगोपांगनाओंका आत्मा—मन श्रीगोविन्दके द्वारा हर लिया गया था; इसलिये वे ऐसी सर्वथा मोहित—बाह्यविवेकसे शून्य हो गयीं कि अपने पति, पिता तथा भाई-बन्धुओंके द्वारा रोकी जानेपर भी मुड़ीं नहीं। वे अपने-आपको भूलकर श्रीकृष्ण-संगकी प्राप्तिके लिये दौड़ पड़ीं ॥८॥

अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ।
कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥९॥

अन्तर्गृहगताः, काः चित्, गोप्यः, अलब्धविनिर्गमाः, कृष्णम्, तद्भावनायुक्ताः, दध्युः, मीलितलोचनाः ॥९॥

अन्तर्गृहगताः	घरके भीतर गयी हुई (तथा पतियोंके द्वारा द्वार बन्द कर दिये जानेके कारण किसी भी प्रकार)	**गोप्यः**	गोपियाँ
		तद्भावना-युक्ताः	उन (प्रियतम) की भावनासे भावित हुई
		मीलितलोचनाः	नेत्र बन्द किये (वहींसे)
अलब्ध-विनिर्गमाः	बाहर निकलनेका मार्ग नहीं पा सकने-वाली	**कृष्णम्**	श्रीकृष्णका
		दध्युः	ध्यान करने लगीं ॥९॥
काः चित्	कुछ		

श्रीगोपांगनाएँ दो प्रकारकी थीं—नित्यसिद्धा और साधनसिद्धा। श्रीराधा तो भगवान्‌की आह्लादिनी शक्ति ही थीं। ललिता, विशाखा, रूपमञ्जरी, अनंगमञ्जरी आदि सखी-सहचरी नित्यसिद्धा थीं। उन्हें तो कोई

रोक ही नहीं सकता था। दण्डकारण्यवासी महर्षि आदि जो गोपी देहको प्राप्त थे, वे साधनसिद्धा गोपियाँ थीं। उनमेंसे कुछ गोपांगनाओंकी साधना अभी पूर्ण नहीं हुई थी, इसलिये उनकी श्रीकृष्णके मिलनकी रीति दूसरी थी। अतएव वे उस समय घरके भीतर गयी हुई थीं। पतियोंने घरोंके दरवाजे बन्द कर दिये; इसलिये उनको बाहर निकलनेका मार्ग ही न मिला। तब वे आँखें मूँदकर उन प्रियतम श्रीकृष्णकी भावनासे भावित होकर बड़ी तन्मयतासे उनके सौन्दर्य-माधुर्य और उनकी मधुरतम लीलाओं-का ध्यान करने लगीं ॥९॥

दुस्सहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ।
ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥१०॥
तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि संगताः ।
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥११॥

दुस्सहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः, ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या, क्षीणमङ्गलाः ॥१०॥

तम् एव, परमात्मानम्, जारबुद्ध्या, अपि, संगताः, जहुः, गुणमयम्, देहम्, सद्यः, प्रक्षीणबन्धनाः ॥११॥

फिर तो इनका भी समस्त व्यवधान दूर हो गया—

दुस्सहप्रेष्ठ-विरहतीव्र-तापधुताशुभाः	(श्रीकृष्णके साक्षात् मिलनेमें बाधा पड़ते ही उसी क्षण जिनमें विरहाग्नि धधक उठी और उस) दुस्सह श्रीकृष्ण विरहकी तीव्र ज्वाला से जिनके समस्त अशुभ धुल गये (तथा साथ ही)	**च्युताश्लेष-निर्वृत्या**	अच्युत (श्रीकृष्ण) के आलिंगनजनित आनन्दके द्वारा
		क्षीणमङ्गलाः	जिनके समस्त शुभ प्रारब्ध (भी) क्षीण हो गये, (उन गोपियोंने)
		तम् एव परमात्मानम्	उन्हीं परमात्मा (श्रीकृष्ण) को
ध्यानप्राप्ता-	ध्यानमें उतरे हुए	**जारबुद्ध्या**	पर-पुरुषज्ञानसे

अपि	भी (केवल ध्यानमें ही)	**गुणमयम्**	गुणमय (प्राकृत)
संगताः	प्राप्तकर	**देहम्**	शरीरको
प्रक्षीणबन्धनाः	समस्त बन्धनोंसे रहित होकर	**जहुः**	छोड़ दिया (और वे परमात्मा श्रीकृष्णसे जा मिलीं)
सद्यः	उसी क्षण		॥१०-११॥

परम प्रियतम श्रीकृष्णके साक्षात् मिलनेमें जब यों बाधा पड़ गयी, तब उसी क्षण उनके हृदयोंमें असह्य विरहकी तीव्र ज्वाला धधक उठी—इतनी भयानक जलन हुई कि उनके अंदर अशुभ संस्कारोंका जो कुछ लेश मात्र शेष था, वह सारा भस्म हो गया। फिर तुरन्त ही वे श्रीकृष्णके ध्यानमें निमग्न हो गयीं। ध्यानमें प्राप्त हुए श्रीकृष्णके आलिंगनसे उन्हें इतना सुख मिला कि उनके सबके-सब पुण्यके संस्कार भी एक ही साथ समूल नष्ट हो गये। यद्यपि गोपियोंने उस समय उन श्रीकृष्णको जार-भावसे ही केवल ध्यानमें प्राप्त किया था, फिर भी वे थे तो साक्षात् परमात्मा ही, चाहे किसी भी भावसे उनका आलिंगन प्राप्त हुआ हो; अतएव उन्होंने पाप और पुण्यरूप बन्धनसे रहित होकर उसी क्षण प्राकृत (हाड़-मांससे बने) शरीरको छोड़ दिया और भगवान्‌की लीलामें प्रवेश करने योग्य दिव्य अप्राकृत देहको प्राप्तकर वे प्रियतम श्रीकृष्णसे जा मिलीं ॥१०-११॥

राजोवाच

कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने।
गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥१२॥

कृष्णम्, विदुः परम्, कान्तम्, न, तु, ब्रह्मतया, मुने, गुणप्रवाहोपरमः, तासाम्, गुणधियाम्, कथम् ॥१२॥

मुने	हे (श्रीकृष्णलीला-मनग-परायण शुकदेवजी ! (गोपियाँ तो)	**कृष्णम्**	श्रीकृष्णको
		परम्	केवल
		कान्तम्	प्रियतम (रूपसे)
		विदुः	जानती थीं

ब्रह्मतया	परब्रह्मरूपसे (तो)	गुणप्रवाहोपरमः	(अभी आपके श्रीमुखसे वर्णित) गुणमय देहादिरूप प्रवाहकी निवृत्ति
न तु	नहीं ही (अनुभव करती थीं) (फिर)		
गुणधियाम्	(श्रीकृष्णके सौन्दर्य-माधुर्य आदि) गुणोंमें ही बुद्धि रखनेवाली	कथम्	कैसे (हो गयी) ॥१२॥
तासाम्	उन (गोपियों) का		

श्रीकृष्णलीलामाधुरीका नित्य मनन करनेवाले श्रीशुकदेवजी ! गोपियाँ तो श्रीकृष्णको केवल परम प्रियतमरूपसे ही जानती थीं; वे साक्षात् परब्रह्म हैं, ऐसा अनुभव तो वे करती नहीं थीं। उनकी बुद्धि तो श्रीकृष्णके सौन्दर्य-माधुर्य-लावण्य आदि गुणोंमें ही लगी हुई थी। ऐसी स्थितिमें वे त्रिगुणमय देहादि संसारके प्रवाहसे मुक्त कैसे हो गयीं ? वे संसारसे मुक्त होकर परमात्मा श्रीकृष्णसे कैसे जा मिलीं ॥१२॥

श्रीशुक उवाच

उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः ।
द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥१३॥

उक्तम्, पुरस्तात्, एतत्, ते, चैद्यः, सिद्धिम्, यथा, गतः, द्विषन्, अपि, हृषीकेशम्, किम्, उत, अधोक्षजप्रियाः ॥१३॥

एतत्	यह (बात तो)	अपि	भी
ते	तुम्हें	चैद्यः	चेदिराज शिशुपाल
पुरस्तात्	पहले (सप्तम स्कन्ध-में) ही (मैंने)	सिद्धिम्	(पार्षदगतिरूप) सिद्धिको
उक्तम्	कह दी थी	गतः	प्राप्त हो गया; (फिर)
यथा	कि जिस प्रकार	अधोक्षजप्रियाः	श्रीकृष्णकी प्रिया गोपियोंके सम्बन्धमें तो)
हृषीकेशम्	सभी इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्णके प्रति	किम् उत	कहना ही क्या है ॥१३॥
द्विषन्	(सदा) द्वेष करता हुआ		

परीक्षित् ! मैं तुमसे पहले ही (सातवें स्कन्धमें) कह चुका हूँ कि चेदिराज शिशुपाल सभी इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे द्वेष रखने-पर भी प्राकृत शरीरको त्यागकर अप्राकृत पार्षददेहरूप सिद्धिको प्राप्त हो गया था। फिर जो सम्पूर्ण प्रकृति और उसके गुणोंसे अतीत श्रीकृष्णकी प्रिया हैं और उनमें अनन्य प्रेम करती हैं, वे गोपियाँ उनको प्राप्त कर लें—इसमें कौन आश्चर्यकी बात है ॥१३॥

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥१४॥

नृणाम्, निःश्रेयसार्थाय, व्यक्तिः, भगवतः, नृप, अव्ययस्य, अप्रमेयस्य, निर्गुणस्य, गुणात्मनः ॥१४॥

नृप	राजन् ! (सुनो,)	**निर्गुणस्य**	(मायिक) गुणोंसे अतीत
नृणाम्	जीवमात्रके	**गुणात्मनः**	गुणोंका नियन्त्रण करनेवाले
निःश्रेयसार्थाय	कल्याणके लिये	**भगवतः**	भगवान् श्रीकृष्णका
अव्ययस्य	जन्मादि षड्विकारों-से रहित	**व्यक्तिः**	आविर्भाव (होता है) ॥१४॥
अप्रमेयस्य	अपरिच्छिन्न		

राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण जन्म-मृत्यु आदि षड्विकारोंसे रहित अविनाशी परब्रह्म हैं, वे अपरिच्छिन्न हैं, मायिक गुणोंसे अथवा गुण-गुणी-भावसे रहित हैं और अचिन्त्यानन्त अप्राकृत परमकल्याणरूप दिव्य गुणोंके परम आश्रय तथा सम्पूर्ण गुणोंका नियंत्रण करनेवाले हैं, वे तो जीवोंके परम कल्याणके लिये ही आविर्भूत होते हैं ॥१४॥

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥१५॥

कामम्, क्रोधम्, भयम्, स्नेहम्, ऐक्यम्, सौहृदम्, एव, च, नित्यम्, हरौ, विदधतः, यान्ति, तन्मयताम्, हि, ते ॥१५॥

इसीलिये—

हरौ	सभी दोषोंको हरनेवाले हरि श्रीकृष्णमें
नित्यम्	सदा
कामम्	काम,
क्रोधम्	क्रोध,
भयम्	भय,
स्नेहम्	स्नेह,
ऐक्यम्	एकात्मता
च	तथा
सौहृदम्	सौहार्द (आदि)
एव	ही
विदधतः	करते हुए (जो जीवन व्यतीत करते हैं,)
ते	वे
हि	निश्चय ही (भगवान्‌में)
तन्मयताम्	तन्मयता
यान्ति	प्राप्त कर लेते हैं ॥१५॥

इसीलिये जो व्यक्ति किसी भी सम्बन्धसे अपने जीवनको उन सर्व-दोषहारी भगवान्‌से जोड़ देते हैं, वह सम्बन्ध चाहे सदा कामका हो, क्रोधका हो, भयका हो अथवा स्नेह, एकात्मता या सौहार्दका हो, वे निश्चय ही भगवान्‌में तन्मय हो जाते हैं ॥१५॥

न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ।
योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद् विमुच्यते ॥१६॥

न, च, एवम्, विस्मयः, कार्यः, भवता, भगवति, अजे, योगेश्वरेश्वरे, कृष्णे, यतः, एतत्, विमुच्यते ॥१६॥

भवता	तुम्हें
अजे	(इन) अजन्मा
योगेश्वरेश्वरे	योगेश्वरोंके भी ईश्वर
भगवति	समस्त ऐश्वर्य आदि-के निकेतन भगवान्
कृष्णे	(नन्दनन्दन) श्रीकृष्णमें
एवम्	(उनके सम्पर्कमात्रसे गोपियोंका गुणमय देहसे सम्बन्ध कैसे छूट गया) इस रूपमें
विस्मयः	आश्चर्य
च	भी
न	नहीं

कार्यः	करना चाहिये; (क्योंकि)	**एतत्**	यह (स्थावर आदि समस्त जगत्
यतः	श्रीकृष्णके सम्बन्धसे तो		संसार-बन्धनसे)
		विमुच्यते	मुक्त हो जाता है। ॥१६॥

अतएव तुम-सरीखे भागवतको जन्मादि रहित, योगेश्वरोंके भी परम ईश्वर, ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्यके परम निकेतन भगवान् नन्दनन्दन श्रीकृष्णके सम्बन्धसे केवल परमप्रियतम माननेवाली गोपियोंकी गुणमय देहसे मुक्ति कैसे हो गयी—इस रूपमें तनिक भी आश्चर्य नहीं करना चाहिये। गोपियोंकी तो बात ही क्या, श्रीकृष्णके सम्बन्धसे तो स्थावर आदि समस्त जगत् संसार-बन्धनसे मुक्त हो सकता है ॥१६॥

ता दृष्ट्वान्तिकमायाता भगवान् व्रजयोषितः ।
अवदद् वदतां श्रेष्ठो वाचःपेशैर्विमोहयन् ॥१७॥

ताः, दृष्ट्वा, अन्तिकम्, आयाताः, भगवान्, व्रजयोषितः, अवदत्, वदताम्, श्रेष्ठः, वाचःपेशैः, विमोहयन् ॥१७॥

वदताम्	वक्ताओंके	**आयाताः**	आयी हुई
श्रेष्ठः	सिरमौर	**दृष्ट्वा**	देखकर
भगवान्	भगवान् श्रीकृष्ण	**वाचःपेशैः**	मोहक वचनोंसे (उन्हें)
ताः	उन		
व्रजयोषितः	व्रजरमणियोंको	**विमोहयन्**	विमोहित करते हुए
अन्तिकम्	अपने निकट	**अवदत्**	बोले ॥१७॥

अस्तु, अब आगे क्या हुआ, यह सुनो ! वक्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णने जब यह देखा कि व्रजसुन्दरियाँ मेरे अत्यन्त समीप आ गयी हैं, तब उन्होंने अपनी मनोहर वाक्चातुरीसे उनको सर्वथा मोहित करते हुए कहा ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ।
व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ॥१८॥

स्वागतम्, वः, महाभागाः, प्रियम्, किम्, करवाणि, वः, व्रजस्य, अनामयम्, कच्चित्, ब्रूत, आगमनकारणम् ॥१८॥

महाभागाः	महाभागाओ !	**व्रजस्य**	व्रजकी
वः	तुम्हारा	**कच्चित्**	क्या
स्वागतम्	आना बड़ा अच्छा रहा (मैं)	**अनामयम्**	कुशल (तो है ?)
वः	तुम लोगोंका		(मेरे पास)
किम्	कौन-सा	**आगमन-**	आनेका
प्रियम्	प्रिय (कार्य)	**कारणम्**	कारण
करवाणि	करूँ (यह आज्ञा करो ।)		(तो)
		ब्रूत	बताओ ॥१८॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाभाग्यवती गोपियो ! तुम भले आयी, तुम आज्ञा दो, तुम लोगोंको प्रिय लगनेवाला मैं कौन-सा कार्य करूँ ? व्रजमें सब कुशल-मंगल तो है न ? इस समय तुमलोग यहाँ मेरे पास किस प्रयोजनसे पधारीं—यह तो बताओ ॥१८॥

रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता ।
प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥१९॥

रजनी, एषा, घोररूपा, घोरसत्त्वनिषेविता, प्रतियात, व्रजम्, न, इह, स्थेयम्, स्त्रीभिः, सुमध्यमाः ॥१९॥

किन्तु तुम लोगोंने इस समय आकर भारी भूल की है—

एषा	यह	**सुमध्यमाः**	सुन्दरियो !
रजनी	रात्रि (का समय है और इसलिये स्वभावतः)		(तुम लोग)
		व्रजम्	व्रजको (तुरन्त)
		प्रतियात	लौट जाओ
घोररूपा	भयदायक (है)	**इह**	इस (वनमें)
घोरसत्त्व-	(व्याघ्र-सिंह आदि)	**स्त्रीभिः**	स्त्रियोंको
निषेविता	भयंकर हिंस्र प्राणियोंसे संकुल (है) (अतएव)	**न**	नहीं
		स्थेयम्	ठहरना चाहिये ॥१९॥

इस बातको सुनकर गोपियाँ लज्जायुक्त होकर मुस्कराने लगीं, तब उन्हें भय दिखाकर उनके प्रेमकी परीक्षा लेते हुए भगवान्‌ने फिर कहा—अरी सुन्दरियो ! यह रात्रिका समय है; जो स्वभावतः ही बड़ा भयानक है; फिर इस वनमें बाघ-सिंह आदि हिंसक प्राणी भरे हुए हैं। अतः तुम सब तुरन्त व्रजको लौट जाओ। रातके समय इस घोर वनमें स्त्रियोंका ठहरना उचित नहीं है ॥१९॥

मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ।
विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृढ्वं बन्धुसाध्वसम् ॥२०॥

मातरः, पितरः, पुत्राः, भ्रातरः, पतयः, च, वः, विचिन्वन्ति, हि, अपश्यन्तः, मा, कृढ्वम्, बन्धुसाध्वसम् ॥२०॥

	(तुम्हारे)	**विचिन्वन्ति**	ढूँढ़ रहे हैं,
मातरः	माता	**हि**	ऐसा मेरा अनुमान है (इसलिये)
पितरः	पिता		
पुत्राः	पुत्र	**बन्धुसा-**	बन्धुओंके मनमें
भ्रातरः	भाई	**ध्वसम्**	तुम्हारे अनिष्ट-सम्बन्धी भय
च	और		
पतयः	पति (—सभी)	**मा**	मत
वः	तुम्हें (घरमें)	**कृढ्वम्**	उत्पन्न करो ॥२०॥
अपश्यन्तः	न देखकर (इधर-उधर)		

जब भयका उनपर कोई असर नहीं हुआ, तब भगवान्‌ने उन्हें अपने घरवालोंकी दुश्चिन्ताका स्मरण दिलाया और कहा—देखो, तुम्हारे माता-पिता, पुत्र, भाई और पति तुम्हें घरमें न देखकर इधर-उधर ढूँढ़ रहे होंगे। उन आत्मीय स्वजनोंके मनमें यह भय मत उत्पन्न होने दो कि पता नहीं, तुम्हारा क्या अनिष्ट हो रहा होगा ॥२०॥

दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम् ।
यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥२१॥

वृष्टम्, वनम्, कुसुमितम्, राकेशकररञ्जितम्, यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥२१॥

कुसुमितम्	(विविध) कुसुमोंसे परिशोभित
राकेशकर-रञ्जितम्	पूर्ण चन्द्रकी किरणोंसे उद्भासित (तथा)
यमुना-निललीलैज-त्तरुपल्लव	यमुना-तटपर बहनेवाले शीतल समीरकी मन्द गतिकेकारण नाचते हुए तरु-पल्लवोंसे सुशोभित
शोभितम्	
वनम्	(इस) वृन्दावनको भी
दृष्टम्	देख चुकीं ॥२१॥

(उपर्युक्त तीन श्लोकोंके द्वारा भगवान्‌ने गोपियोंके अनन्य प्रेम-भावकी परीक्षा की। अनन्य—एकनिष्ठ प्रेम हुए बिना भगवान् कभी प्रेमास्पद रूपसे प्राप्त नहीं होते। जब भगवान्‌की ऐसी बातें सुनकर भी गोपियाँ कुछ बोलीं नहीं तथा प्रणय-कोपके वश होकर दूसरी ओर देखने लगीं, तब भगवान् उन्हें वनशोभाकी बात कहकर सतीरूपसे पतिसेवा करने तथा वात्सल्यभावसे बालक-वत्सोंकी सँभालनेका कर्तव्य दिखाते हुए फिर कहने लगे—)

कदाचित् तुम सब वनकी शोभा देखने आयी होगी तो तुम लोगोंने भाँति-भाँतिके रंगोंवाले परम विचित्र सुगन्धिसे सम्पन्न पुष्पोंसे परिशोभित, पूर्णचन्द्रमाकी किरणप्रभासे प्रभासित तथा यमुनाजलका स्पर्श करके बहने-वाले शीतल पवनकी मन्द-मन्द गतिसे नाचते हुए वृक्षोंके पत्तोंसे विभूषित वृन्दावनको भी देख लिया ॥२१॥

तद् यात माचिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन् सतीः ।
क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान् पाययत दुह्यत ॥२२॥

तत्, यात, मा, चिरम्, गोष्ठम्, शुश्रूषध्वम्, पतीन्, सतीः, क्रन्दन्ति, वत्साः, बालाः, च, तान्, पाययत, दुह्यत ॥२२॥

तत्	इसलिये
सतीः	सतियो !
मा चिरम्	अविलम्ब
गोष्ठम्	गोष्ठको

यात	चली जाओ (और अपने)	**बालाः**	बच्चे
पतीन्	पतियोंकी	**क्रन्दन्ति**	रो रहे हैं
शुश्रूषध्वम्	सेवा करो (देखो, तुम्हारे)	**तान्**	उनको
		पाययत	दूध पिलाओ, (तथा बच्चोंके लिये)
वत्साः	बछड़े	**दुह्यत**	दूध भी दुह लो
च	और		॥२२॥

इसलिये हे सतियो ! अब देर मत करो, बहुत शीघ्र व्रजको लौट जाओ । घर जाकर अपने-अपने पतियोंकी सेवा करो । देखो, तुम्हारे घरके बछड़े और छोटे-छोटे बच्चे रो रहे हैं, जाकर उन्हें दूध पिलाओ तथा बछड़ोंके लिये गौएँ भी दुहो ॥२२॥

अथवा मदभिस्नेहाद् भवत्यो यन्त्रिताशयाः ।
आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः ॥२३॥

अथवा, मदभिस्नेहात्, भवत्यः, यन्त्रिताशयाः, आगताः, हि, उपपन्नम्, वः, प्रीयन्ते, मयि, जन्तवः ॥२३॥

अथवा	अथवा	**वः**	तुम्हारे लिये
मदभिस्नेहात्	मेरे प्रति अतिशय स्नेहके कारण	**उपपन्नम्**	उचित ही है
		हि	क्योंकि
यन्त्रिताशयाः	वशीभूत चित्त हुई	**जन्तवः**	सभी प्राणी
भवत्यः	आप लोग (मेरे पास)	**मयि**	मुझपर
		प्रीयन्ते	प्रेम करते हैं (ही)
आगताः	आयी हो (तो यह)		॥२३॥

भगवान्‌की इस बातको सुनकर गोपियोंके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ, तब भगवान् उनको आश्वासन देते हुए सती स्त्रियोंके परमधर्म पतिसेवा तथा जार-सेवनके दुष्परिणामका स्मरण कराकर बोले—'अथवा यदि तुम लोग मेरे प्रति अत्यन्त प्रेमपरवश होकर आयी हो तो यह तुम्हारे योग्य ही है; क्योंकि प्राणिमात्र (पशु-पक्षीतक) मुझसे प्रेम करते हैं ॥२३॥

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ।
तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥२४॥

भर्तुः, शुश्रूषणम्, स्त्रीणाम्, परः धर्मः, हि, अमायया, तद्बन्धूनाम्, च, कल्याण्यः, प्रजानाम्, च, अनुपोषणम् ॥२४॥

फिर भी अपने धर्मकी ओर तुम्हें देखना चाहिये—

हि	क्योंकि	**शुश्रूषणम्**	सेवा
कल्याण्यः	साध्वियो !	**च**	तथा
अमायया	निष्कपट (शुद्ध) भावसे	**प्रजानाम्**	पुत्र-भृत्य आदिका
		अनुपोषणम्	लालन-पालन (ही)
भर्तुः	पतिकी	**स्त्रीणाम्**	स्त्रियोंका
च	और	**परः**	परम
तद्बन्धूनाम्	उनके बन्धुओं (माता-पिता आदि) की	**धर्मः**	धर्म (है) ॥२४॥

परन्तु हे कल्याणी सतियो ! यह सब होते हुए भी स्त्रियोंका परम धर्म तो यही है कि वे निष्कपट भावसे पति और उसके भाई-बन्धुओंकी सेवा करें तथा पुत्र-कन्यादिका और सेवक आदिका पालन-पोषण करें ॥२४॥

दुश्शीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥२५॥

दुश्शीलः, दुर्भगः, वृद्धः, जडः, रोगी, अधनः, अपि, वा, पतिः, स्त्रीभिः, न, हातव्यः, लोकेप्सुभिः, अपातकी ॥२५॥

लोकेप्सुभिः	लोक-परलोककी इच्छा रखनेवाली	**जडः**	मूर्ख
		रोगी	रोगी
स्त्रीभिः	स्त्रियोंको	**अपि वा**	अथवा
दुश्शीलः	दुर्गुणभरे	**अधनः**	निर्धन
दुर्भगः	बुरे भाग्यवाले	**पतिः**	पति (को भी यदि वह)
वृद्धः	बूढ़े		

अपातकी	महापातकसे रहित (है तो)	**हातव्यः**	छोड़ना चाहिये ॥२५॥
न	नहीं		

जिन स्त्रियोंको इस लोकमें कीर्ति और मृत्युके पश्चात् श्रेष्ठ लोक प्राप्त करनेकी इच्छा हो, वे दुर्गुणोंसे भरे—बुरे स्वभाववाले, भाग्यहीन, वृद्ध, मूर्ख, रोगी एवं निर्धन पतिका भी कभी त्याग न करें, यदि वह महा-पापी (भगवान्‌का द्रोही) न हो ॥२५॥

अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ।
जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः ॥२६॥

अस्वर्ग्यम्, अयशस्यम्, च, फल्गु, कृच्छ्रम्, भयावहम्, जुगुप्सितम्, च, सर्वत्र, औपपत्यम्, कुलस्त्रियाः ॥२६॥

कुलस्त्रियाः	कुलवती रमणियोंके लिये (तो)	**भयावहम्**	(इस लोकमें स्वजनों का, परलोकमें नरकका) भय देने-वाली
औपपत्यम्	परपुरुषसे प्रीति		
अस्वर्ग्यम्	स्वर्गसे वञ्चित करनेवाली	**च**	तथा
अयशस्यम्	यशका अपहरण करनेवाली	**सर्वत्र**	(स्वदेश, परदेश, व्यवहार, परमार्थ, इहलोक, परलोक-में) सर्वत्र
च	और		
फल्गु	तुच्छ		
कृच्छ्रम्	कष्टकर	**जुगुप्सितम्**	अत्यन्त निन्दित (है) ॥२६॥

अच्छे कुलकी स्त्रियोंके लिये जारपुरुषकी सेवा स्वदेश-परदेश, व्यवहार-परमार्थ, इहलोक-परलोक—सर्वत्र अत्यन्त निन्दनीय है। उसके कारण स्वर्गसे वञ्चित होना पड़ता है, संसारमें अपयश होता है, इस लोकमें स्वजनोंका तथा परलोकमें नरकयन्त्रणाका भय प्राप्त होता है। वह कुकर्म अत्यन्त तुच्छ—क्षणिक सुख देनेवाला है और कष्टदायक है ॥२६॥

श्रवणाद् दर्शनाद् ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ।
न तथा संनिकर्षेण प्रतियाम ततो गृहान् ॥२७॥

श्रवणात्, दर्शनात्, ध्यानात्, मयि, भावः, अनुकीर्तनात्, न, तथा, संनिकर्षेण, प्रतियात, ततः, गृहान् ॥२७॥

श्रवणात्	(नाम-गुण आदिके) श्रवणसे	**भावः**	प्रेम (होता है)
दर्शनात्	(दूरसे ही मुझे) देखनेसे	**तथा**	वैसा
ध्यानात्	(निरन्तर मेरे रूप आदिके) चिन्तनसे	**संनिकर्षेण**	अत्यन्त समीप रहनेसे
अनुकीर्तनात्	(निरन्तर मेरी) चर्चा करनेसे	**न**	नहीं (होता)
मयि	मुझमें	**ततः**	इसलिये (तुम लोग अपने)
		गृहान्	घरको
		प्रतियात	लौट जाओ ॥२७॥

इसपर भी जब गोपियोंको चुप और अपनी अनन्यतापर दृढ़ देखा, तब उपदेश करते हुए बोले—

फिर मेरे नाम-गुण-लीला आदिके श्रवणसे, दूरसे ही मेरा दर्शन करनेसे, निरन्तर मेरे रूपका चिन्तन-ध्यान करनेसे और मेरे नाम-गुणोंकी चर्चासे मेरे प्रति जैसा प्रेम उमड़ता है, वैसा प्रेम अत्यन्त समीप रहनेसे नहीं होता; इसलिये तुम लोग अपने-अपने घर लौट जाओ ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविन्दभाषितम् ।
विषण्णा भग्नसंकल्पाश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥२८॥

इति, विप्रियम्, आकर्ण्य, गोप्यः, गोविन्दभाषितम्, विषण्णाः भग्नसंकल्पाः, चिन्ताम्, आपुः, दुरत्ययाम् ॥२८॥

इति	(इस प्रकार) उपर्युक्त	**गोविन्दभाषितम्**	श्रीकृष्ण-वचको
विप्रियम्	अप्रिय लगनेवाले	**आकर्ण्य**	सुनकर
		विषण्णाः	खिन्न (एवं)

भग्नसंकल्पाः	भग्न मनोरथ हुई	**आपुः**	प्राप्त हुई (अर्थात् चिन्तासागरमें निमग्न हो गयीं) ॥२८॥
गोप्यः	गोपियाँ		
दुरत्ययाम्	अपार		
चिन्ताम्	अनिष्ट-आशङ्काको		

परीक्षित ! गोविन्दकी उपर्युक्त अत्यन्त अप्रिय बातें सुनकर गोपियाँ खिन्न हो गयीं, उनकी आशा टूट गयी और वे भीषण चिन्ताके अथाह समुद्रमें डूब गयीं ॥२८॥

कृत्वा मुखान्यव शुचः श्वसनेन शुष्यद्-
बिम्बाधराणि चरणेन भुवं लिखन्त्यः ।
अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुङ्कुमानि
तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥२९॥

कृत्वा, मुखानि, अव, शुचः, श्वसनेन, शुष्यद्बिम्बाधराणि, चरणेन, भुवम्, लिखन्त्यः, अस्रैः, उपात्तमषिभिः, कुचकुङ्कुमानि, तस्थुः, मृजन्त्यः, उरुदुःखभराः, स्म, तूष्णीम् ॥२९॥

उरुदुःखभराः	अतिशय दुःखभारसे पीड़ित (व्रज-सुन्दरियाँ)	**चरणेन**	चरण (के नखों) से
		भुवम्	पृथ्वीको
		लिखन्त्यः	कुरेदती हुई (एवं)
शुचः	शोकसे (उद्भूत)	**उपात्तमषिभिः**	काजलसे सने हुए
श्वसनेन	(उष्ण दीर्घ) श्वासके कारण	**अस्रैः**	आँसुओंसे
		कुचकुङ्कुमानि	हृदयपर लगे हुए कुङ्कुमको
शुष्यद्-	सूखते हुए		
बिम्बाधराणि	बिम्बसदृश ओठोंसे युक्त (अपने)	**मृजन्त्यः**	धोती हुई
		तूष्णीम्	चुपचाप
मुखानि	मुखको	**तस्थुः स्म**	खड़ी रह गयीं ॥२९॥
अव	नीचे		
कृत्वा	करके (तथा)		

उनका हृदय दुःखसे भर गया, उनके लाल-लाल पके हुए बिम्ब-फलसे अधर शोकके कारण चलनेवाले लंबे तथा गरम श्वासोंके तापसे सूख

गये, उन्होंने अपने मुख नीचेकी ओर लटका लिये और पैरोंके नखोंसे वे पृथ्वीको कुरेदने लगीं। उनके नेत्रोंसे काजलसे सने आँसू बह-बहकर वक्षःस्थलपर पहुँच गये और वहाँ लगी हुई केसरको धोने लगे। वे चुपचाप खड़ी रह गयीं, कुछ भी बोल न सकीं ॥२९॥

प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं
कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ।
नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किंचित्
संरम्भगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥३०॥

प्रेष्ठम्, प्रियेतरम्, इव, प्रतिभाषमाणम्, कृष्णम्, तदर्थविनिवर्तित-सर्वकामाः, नेत्रे, विमृज्य, रुदितोपहते, स्म, किंचित्संरम्भगद्गदगिरः, अब्रुवत, अनुरक्ताः ॥३०॥

तदर्थ-	उन (श्रीकृष्ण)के	**नेत्रे**	दोनों नेत्रोंको
विनिवर्तित-	लिए (उनकी सेवाके	**विमृज्य**	पोंछकर
सर्वकामाः	अतिरिक्त अन्य) समस्त अभिलाषाओं का सर्वथा त्याग कर चुकनेवाली (तथा)	**किंचित्-**	किंचित् (प्रणय-)
		संरम्भगद्-	कोपावेशके कारण
		गदगिरः	गद्गदवाणीसे युक्त होकर
अनुरक्ताः	(एकमात्र उन्हींमें) अनुराग रखनेवाली (व्रजसुन्दरियाँ)	**प्रियेतरम्**	अप्रिय (रुखे मनुष्य) की
		इव	भाँति
रुदितोपहते	लगातार रोनेके कारण रुंधे हुए अपने	**प्रतिभाष-**	(उपेक्षापूर्ण)
		माणम्	वचन बोलनेवाले
		प्रेष्ठम्	प्रियतम
		कृष्णम्	श्रीकृष्णसे
		अब्रुवत स्म	बोलीं ॥३०॥

उन गोपियोंका मन एकमात्र श्रीकृष्णमें ही अनन्य भावसे अनुरक्त था। वे उनके लिये—उनकी सेवाके अतिरिक्त सभी भोगोंका, सभी कामनाओंका सर्वथा त्याग कर चुकी थीं। जब उन्होंने अपने प्रियतम श्रीकृष्ण-

के मुखसे प्रेमशून्य व्यक्तिकी-सी निष्ठुरतासे भरी उपेक्षायुक्त वाणी सुनी, तब उन्हें बड़ी ही मर्मवेदना हुई। रोते-रोते उनकी आँखें रुँध गयीं, फिर उन्होंने धीरज धारण करके अपनी आँखोंके आँसू पोंछे और पुनः रोती हुई प्रणय-कोपके कारण गद्गद्वाणीसे कहने लगी ॥३०॥

गोप्य ऊचुः

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥३१॥

मा, एवम्, विभो, अर्हति, भवान्, गदितुम् नृशंसम्, संत्यज्य, सर्वविषयान्, तव, पादमूलम्, भक्ताः, भजस्व, दुरवग्रह, मा, त्यज, अस्मान्, देवः, यथा, आदिपुरुषः, भजते, मुमुक्षून् ॥३१॥

विभो	हे सर्वसमर्थ
दुरवग्रह	हे स्वच्छन्द
भवान्	आप
एवम्	इस प्रकार
नृशंसम्	कठोर
गदितुम्	बोलनेके लिये
मा अर्हति	योग्य नहीं हैं (आपको ऐसा कठोर नहीं बोलना चाहिये)
सर्वविषयान्	समस्त विषयोंको
संत्यज्य	सर्वथा छोड़कर
तव	तुम्हारे
पादमूलम्	चरणतलका (ही)
भक्ताः	भजन करनेवाली
अस्मान्	हम सबको
मा	मत
त्यज	छोड़ो
आदिपुरुषः	भगवान्
देवः	श्रीनारायण
मुमुक्षून्	संसार-बन्धनसे छूटनेकी इच्छा रखने वालोंका
यथा	जिस प्रकार
भजते	भजन करते हैं— उनका मनोरथ पूर्ण करते हैं (उसी प्रकार तुम भी हम लोगोंका)
भजस्व	भजन करो— तुम्हारी चरणसेवा-की जो हमारे अन्दर वासना है, उसे पूर्ण करो ॥३१॥

हे सर्वसमर्थ प्रभो ! हमारे प्राणवल्लभ ! हे स्वच्छन्द-विहारी ! आप परम कोमल स्वभाव होकर भी इस प्रकारके निष्ठुरता भरे वचन क्यों बोल रहे हैं ? ऐसा तो आपको नहीं चाहिये । हम धर्म-लज्जा-पति-स्वजनादि समस्त विषयोंको सर्वथा त्यागकर यहाँ आयी हैं । हम तुम्हारे चरणतलोंकी सेविकाएँ हैं । हम लोगोंका परित्याग मत करो । जैसे आदिदेव भगवान नारायण संसार-बन्धनसे छूटनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंका मनोरथ पूर्ण करते हैं, वैसे ही तुम भी हमारे अन्दर जाग्रत् हुई तुम्हारी चरणसेवा-वासनाको पूर्ण करके हमें कृतार्थ करो ॥३१॥

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥३२॥

यत्, पत्यपत्यसुहृदाम्, अनुवृत्तिः, अङ्ग, स्त्रीणाम्, स्वधर्मः, इति, धर्मविदा, त्वया, उक्तम्, अस्तु, एवम्, एतत्, उपदेशपदे, त्वयि, ईशे, प्रेष्ठः, भवान्, तनुभृताम्, किल, बन्धुः, आत्मा ॥३२॥

अङ्ग	हे प्यारे !	**एतत्**	यह (तुम्हारा उपदेश-वाक्य)
पत्यपत्य-सुहृदाम्	पति, पुत्र एवं (अन्य) स्वजनोंका	**उपदेशपदे**	उपदेश देनेवाले
अनुवृत्तिः	अनुवर्तन—उनकी यथायोग्य सेवा (ही)	**त्वयि**	तुम
		ईशे	परमेश्वरके प्रति (ही ठीक)
स्त्रीणाम्	स्त्रियोंका	**एवम्**	इसी प्रकार (हमारी ओरसे)
स्वधर्मः	अपना धर्म (है)	**अस्तु**	(चरितार्थ) हो जाय
इति	यह		(क्योंकि)
यत्	जो (बात)	**भवान्**	आप
धर्मविदा	धर्मके जाननेवाले	**किल**	ही (तो)
त्वया	तुमने	**तनुभृताम्**	शरीरधारियोंके
उक्तम्	कही		

प्रेष्ठः	**प्रियतम**	**आत्मा**	आत्मा (हैं) ॥३२॥
बन्धुः	**बन्धु** (एवं)		

हे प्यारे ! तुम सब धर्मोंका रहस्य जानते हो। तुमने पति, पुत्र एवं अन्य स्वजनोंकी यथायोग्य सेवा करना ही स्त्रियोंका अपना धर्म है, जो यह उपदेश दिया, सो तुम्हारा यह उपदेश तुम उपदेश करनेवालेके प्रति ही हमारी ओरसे चरितार्थ हो जाय; क्योंकि तुम ईश्वर हो—नहीं, नहीं तुम्ही तो प्राणिमात्रके प्रियतम, बन्धु और आत्मा हो। अर्थात् पति-पुत्रादि में जब तुम्हीं आत्मारूपसे स्थित हो, अतः उनकी देहमें भी सेव्य तुम्ही हो—वे ही तुम जब साक्षात् हमें प्राप्त हो, तब एकमात्र तुम्हारी सेवा ही उन सबकी सेवा है; तुम्हारे उपदेशकी सच्ची चरितार्थता तुम्हारी सेवासे ही होती है ॥३२॥

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्
नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ।
तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या
आशां भृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥३३॥

कुर्वन्ति, हि, त्वयि, रतिम्, कुशलाः, स्वे, आत्मन्, नित्यप्रिये, पतिसुतादिभिः, आर्तिदैः, किम्, तत्, नः, प्रसीद, परमेश्वर, मा, स्म, छिन्द्या, आशाम्, भृताम्, त्वयि, चिरात्, अरविन्दनेत्र ॥३३॥

हि	यह प्रसिद्ध है कि	**कुर्वन्ति**	करते हैं
कुशलाः	(सार-असारको जाननेवाले) चतुर पुरुष		(वास्तवमें देखें तो)
		आर्तिदैः	दुःख देनेवाले
		पतिसुतादिभिः	पति-पुत्र आदिसे
स्वे	बन्धुरूप,	**किम्**	प्रयोजन (भी)
आत्मन्	सबके आत्मा,		क्या है ?
नित्यप्रिये	सनातन (सहज) प्रेमास्पदरूप	**तत्**	इसलिये
		परमेश्वर	हे परमेश्वर
त्वयि	तुमसे (ही)	**नः**	हम लोगोंपर
रतिम्	प्रीति	**प्रसीद**	प्रसन्न हो जाओ

अरविन्दनेत्र	हे कमल-नयन !	**आशाम्**	आशाको
चिरात्	चिरकालसे	**मा**	मत
त्वयि	तुममें	**छिन्द्याः स्म**	काट डालो ॥३३॥
धृताम्	लगी हुई (हमारी)		

प्रियतम ! तुम्हीं सबके परम बन्धु, आत्मा और नित्यप्रिय सनातन—सहज प्रेमास्पद हो, इसलिये सार-आसारको समझनेवाले चतुर पुरुष तुम्हींसे प्रेम करते हैं। संसारके पति-पुत्रादि तो अपनी ममतामें फँसाकर वस्तुतः नाना प्रकारसे दुःख ही, देनेवाले हैं उनसे हमारा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा ? अतएव हे परमेश्वर ! तुम हम लोगोंपर रीझ जाओ। कमल-नयन ! चिरकालसे पाली-पोसी हुई हमारी सेवाभिलाषारूप लताको यों निष्ठुरतासे काट न दो ॥३३॥

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥३४॥

चित्तम्, सुखेन, भवता, अपहृतम्, गृहेषु, यत्, निर्विशति, उत, करौ, अपि, गृह्यकृत्ये, पादौ, पदम्, न, चलतः, तव, पादमूलात्, यामः, कथम्, व्रजम्, अथो, करवाम, किम्, वा ॥३४॥

यत्	(हम लोगोंका) जो	**उत**	तथा
चित्तम्	चित्त (अबतक)	**गृह्यकृत्ये**	गृहकार्यमें लगे हुए
गृहेषु	गृहमें	**करौ**	दोनों हाथोंको
निर्विशति	मजेमें लगता था (उसे)	**अपि**	भी (आपने अपनी ओर आकर्षित कर लिया तथा आपके द्वारा आकृष्ट ये हमारे)
भवता	आपने		
सुखेन	अनायास (ही)		
अपहृतम्	लूट लिया		

पादौ	दोनों चरण (भी)	**कथम्**	किस प्रकार
तव	आपके	**व्रजम्**	व्रजको
पादमूलात्	चरणतलसे (दूर हटनेके लिये)	**यामः**	जायँ
		वा	अथवा (वहाँ जाकर भी)
पदम्	एक पग (भी)		
न	नहीं	**किम्**	क्या
चलतः	चल रहे हैं	**करवाम**	करें ? ॥३४॥
अथो	इसलिये (अब हम लोग)		

श्रीकृष्ण ! हम लोगोंका जो चित्त अबतक घरमें मजेमें लग रहा था, उसको आपने सहज ही लूट लिया है तथा घरके कामोंमें लगे हुए हमारे दोनों हाथोंको भी आपने अपनी ओर खींच लिया है। इधर आपके द्वारा खींचे हुए हमारे ये दोनों चरण भी अब आपके चरणतलसे दूर हटकर एक पग भी जानेके लिये तैयार नहीं है। तब आप ही बताओ, हम लोग कैसे व्रजको लौटकर जायँ और वहाँ जाकर भी क्या करें ॥३४॥

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण
हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ।
नो चेद् वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा
ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥३५॥

सिञ्च, अङ्ग, नः, त्वदधरामृतपूरकेण, हासावलोककलगीत-जहृच्छयाग्निम्, नो, चेत्, वयम्, विरहजाग्न्युपयुक्तदेहाः, ध्यानेन, याम, पदयोः, पदवीम्, सखे, ते ॥३५॥

अङ्ग	हे प्यारे	**हृच्छयाग्निम्**	उत्पन्न हुई प्रेमाग्नि को
नः	हम लोगोंको (तुम्हारे ही)	**त्वदधरामृत-पूरकेण**	अपने अधरामृतके प्रवाहसे
हासावलोक-कलगीतज-	हास्य युक्त, दृष्टि एवं मधुर वेणुनादसे	**सिञ्च**	सींच दो, बुझा दो

नो चेत्	यदि ऐसा नहीं करते तो	**ध्यानेन**	ध्यान (रूप साधन) से ही
सखे	हे सखे !	**ते**	तुम्हारे
विरहजाग्न्यु-	विरहकी अग्निसे	**पदयोः**	चरणोंका
पयुक्तदेहाः	दग्ध हुए शरीरवाली	**पदवीम्**	सामीप्य
वयम्	हम सब (तुम्हारे)	**याम**	प्राप्त करेंगी ॥३५॥

प्राणवल्लभ ! तुम्हारी मनोहर मुसकान, प्रेम-सुधामयी दृष्टि और मुरलीकी मधुरतम तानने हमारे हृदयमें तुम्हारे प्रेमकी अग्निको धधका दिया है। उसे अपने अधरोंकी सुधा-धाराके प्रवाहसे बुझा दो। ऐसा न करोगे तो प्यारे सखा ! हम सब तुम्हारे विरहकी प्रचण्ड अग्निसे अपने शरीरको जला देंगी और ध्यानके द्वारा तुम्हारे चरणकमलोंके समीप जा पहुँचेंगी ॥३५॥

यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया
दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ।
अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग
स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥३६॥

यर्हि, अम्बुजाक्ष, तव, पादतलम्, रमायाः, दत्तक्षणम्, क्वचित्, अरण्यजनप्रियस्य, अस्प्राक्ष्म, तत्प्रभृति, न, अन्यसमक्षम्, अङ्ग, स्थातुम्, त्वया, अभिरमिताः, बत, पारयामः ॥३६॥

अम्बुजाक्ष	हे कमलनयन !	**अरण्यजन-**	वनवासियोंसे
यर्हि	जबसे	**प्रियस्य**	प्यार करनेवाले
क्वचित्	(गोवर्द्धन आदि कुञ्ज-स्थलमें) कहींपर	**तव**	तुम्हारे
		पादतलम्	चरणतलका (जो)
		रमायाः	श्रीनारायण-पत्नी लक्ष्मीको (भी)
त्वया	तुम्हारे द्वारा		
अभिरमिताः	आनन्दित किये जाकर	**दत्तक्षणम्**	सुख देनेवाले हैं,
		अस्प्राक्ष्म	स्पर्श किया
(वयम्)	हम लोगोंने	**तत्प्रभृति**	तबसे

अङ्ग	हे प्यारे !	**न**	नहीं
बत	ओह !	**पारयामः**	समर्थ हो रही हैं (सेवा करना तो अत्यन्त दूर है) ॥३६॥
अन्यसमक्षम्	(किसी) दूसरेके समीप		
स्थातुम्	खड़ी होनेके लिये (भी)		

हे कमललोचन ! तुम्हारे चरणतल वनवासियोंको बड़े प्रिय हैं; और तो और नारायणकी प्रिया लक्ष्मीदेवीको भी सुख देनेवाले हैं; उन चरणोंका गोवर्धन आदि कुञ्ज-स्थलोंमें हमें जिस क्षण स्पर्श प्राप्त हुआ और तुमने हमें सेवाके लिये स्वीकार करके आनन्दित किया, उसी क्षणसे प्यारे ! हम किसी दूसरेके पास एक पलके लिये खड़ी भी नहीं हो सकतीं, पति-पुत्रादिकी सेवा करना तो दूरकी बात है ॥३६॥

श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या
लब्ध्वापि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ।
यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयास-
स्तद्वद् वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः ॥३७॥

श्रीः, यत्पदाम्बुजरजः, चकमे, तुलस्या, लब्ध्वा, अपि, वक्षसि, पदम्, किल, भृत्यजुष्टम्, यस्याः, स्ववीक्षणकृते, अन्यसुरप्रयासः, तद्वत्, वयम्, च, तव, पादरजः. प्रपन्नाः ॥३७॥

यस्याः	जिन (लक्ष्मी) के सम्बन्धमें	**श्रीः**	लक्ष्मीने (भी)
स्ववीक्षणकृते	लक्ष्मी मेरी ओर कृपा दृष्टि करे' इसके लिये	**वक्षसि**	श्रीनारायणके वक्षःस्थलपर
अन्यसुरप्रयासः	अन्य देवताओंका प्रयास होता है (उन)	**पदम्**	स्थान
		लब्ध्वा	पाकर
		अपि	भी
		तुलस्या	तुलसीके सहित
		भृत्यजुष्टम्	भृत्यपरिसेवित

यत्पदाम्बुज-	तुम्हारी चरण-	**तद्वत्**	उन्हींकी भाँति
रजः	कमल-रजकी	**तव**	तुम्हारी
चकमे	कामना की (है)	**पादरजः**	चरणरजकी
वयम्	हमलोग	**किल**	निश्चय ही
च	भी	**प्रपन्नाः**	शरण (हैं) ॥३७॥

जिन लक्ष्मीजीकी कृपादृष्टि प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मादि बड़े-बड़े देवता प्रयास करते रहते हैं, वे लक्ष्मीजी भी श्रीनारायणके वक्षःस्थलपर नित्य स्थान प्राप्त कर लेनेपर भी तुलसीजीके साथ तुम्हारे चरण-कमलकी उस रजको पानेके लिये लालायित रहती हैं, जो तुम्हारे सेवकोंको सहज प्राप्त है; श्रीकृष्ण ! हमलोग भी उन्हींकी भाँति सर्वत्याग करके तुम्हारी चरणरजकी शरणमें आयी हैं ॥३७॥

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं
प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।
त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकाम-
तप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥३८॥

तत्, नः, प्रसीद, वृजिनार्दन, ते, अङ्घ्रिमूलम्, प्राप्ताः, विसृज्य, वसतीः, त्वदुपासनाशाः त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्तात्मनाम्, पुरुषभूषण, देहि, दास्यम् ॥३८॥

वृजिनार्दन	हे सर्वदुःखहारिन् !	**प्रसीद**	प्रसन्न हो जाओ
त्वदुपासनाशाः	तुम्हारी चरणसेवा-	**पुरुषभूषण**	हे पुरुषरत्न !
	की आशा रखने-	**त्वत्सुन्दर-**	तुम्हारी सुन्दर
	वाली	**स्मितनिरी-**	मुसुकानयुक्त
	(हम सब अपने)	**क्षणतीव्रकाम-**	कटाक्षजनित
वसतीः	घरोंको	**तप्तात्मनाम्**	तीव्र प्रेमके
विसृज्य	छोड़कर		तापसे तप्त हुए
ते	तुम्हारे		मनवाली
अङ्घ्रिमूलम्	चरणोंके निकट	**नः**	हम सबको
प्राप्ताः	आ पहुँची हैं	**दास्यम्**	सेवाका अधिकार
तत्	इसलिये (अब)	**देहि**	दे दो ॥३८॥

भगवन् ! तुम सबके सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करनेवाले हो, हम सब तुम्हारे चरणोंकी सेवा करनेकी आशासे ही घर-कुटुम्बादि सब कुछ त्याग-कर तुम्हारे चरणोंकी शरणमें आयी हैं; अब तुम हमपर प्रसन्न होओ। हे पुरुषरत्न ! तुम्हारी मधुर मुसुकान तथा तिरछी चितवनने हमारे देह तथा मनको प्रेम—मिलन-लालसाकी तीव्र अग्निसे संतप्त कर दिया है, अब तुम हम लोगोंको दासीके रूपमें स्वीकारकर सेवाका सौभाग्य प्रदान करो ॥३८॥

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्री-
गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ।
दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य
वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ॥३९॥

वीक्ष्य, अलकावृतमुखम्, तव, कुण्डलश्रीगण्डस्थलाधरसुधम्, हसितावलोकम्, दत्ताभयम्, च, भुजदण्डयुगम्, विलोक्य, वक्षः, श्रियैकर-मणम्, च, भवाम, दास्यः ॥३९॥

कुण्डलश्री-	कुण्डलोंकी	**च**	तथा
गण्डस्थला-	शोभासे मण्डित	**दत्ताभयम्**	अभयप्रद
धरसुधम्	कपोलवाले एवं अधरोंमें अमृत धारण करनेवाले (तथा)	**भुजदण्डयुगम्**	बाहुयुगलको
		च	एवं
		श्रियैकरमणम्	लक्ष्मीके एकमात्र रतिप्रद
हसितावलोकम्	मधुर मुसुकानयुक्त दृष्टिसे (शोभित)	**वक्षः**	वक्षस्थलको
		विलोक्य	निहारकर (हम सब तुम्हारी)
तव	तुम्हारे	**दास्यः**	दासी
अलकावृत-	अलकावलीसे	**भवाम**	बन चुकी हैं ॥३९॥
मुखम्	घिरे हुए मुखको		
वीक्ष्य	निरखकर		

प्रियतम ! तुम्हारे मुखकमलको, जो घुँघराली अलकोंके भीतरसे झलक रहा है, जिसके कमनीय कपोलोंपर कुण्डलोंकी छवि छा रही है, जिसके मधुर अधर अमृतमय हैं तथा जो हृदयको हर लेनेवाली तिरछी

चितवन तथा मधुर मुसकानसे समन्वित है, निरखकर तथा अभयदान देने-वाली दोनों भुजाओंको एवं सौन्दर्यकी एकमात्र मूर्ति श्रीलक्ष्मीजीके नित्य रतिप्रद वक्षःस्थलको निहारकर हम सब तुम्हारी सदाके लिये बिना मोल-की दासी बन चुकी हैं ॥३९॥

का स्त्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन
सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्यम् ।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥४०॥

का, स्त्री, अङ्ग, ते, कलपदायतमूर्च्छितेन, सम्मोहिता, आर्यचरितात्, न, चलेत्, त्रिलोक्याम्, त्रैलोक्यसौभगम्, इदम्, च, निरीक्ष्य, रूपम्, यत्, गोद्विजद्रुममृगाः, पुलकानि, अबिभ्रन् ॥४०॥

अङ्ग	हे प्यारे
त्रिलोक्याम्	(पृथ्वी आदि) तीनोंलोकोंमें (ऐसी)
का	कौन (सी)
स्त्री	स्त्री (है जो)
ते	तुम्हारे
कलपदाय-तमूर्च्छितेन	सुन्दर पदावली, दीर्घ स्वर एवं आलोपभेदवाले (वेणु-) गानसे
च	तथा
त्रैलोक्य-सौभगम्	त्रिभुवनके सौभाग्यरूप
इदम्	इस
रूपम्	रूपको
निरीक्ष्य	देखकर
सम्मोहिता	सर्वथा मोहित हुई
आर्यचरितात्	अपने धर्मसे
न चलेत्	विचलित न हो जाय । (अरे ! स्त्रियोंकी बात दूर रहे, तुम्हारा यह वंशीगान एवं रूप इतना मोहक है)
यत्	कि (इनसे तो)
गोद्विज-द्रुममृगाः	गाय, पक्षी, वृक्ष, एवं मृगगण (तक)ने
पुलकानि	पुलकावली
अबिभ्रन्	धारण कर ली है ॥४०॥

प्रियतम ! तीनों लोकोंमें ऐसी कौन-सी रमणी है, जो तुम्हारे मधुर-मधुर पद और आरोह-अवरोह क्रमसे विभिन्न प्रकारकी मूर्च्छनाओंसे समन्वित मुरली-संगीतको सुनकर तथा त्रिभुवनके सौभाग्यरूप इस त्रिभंग-ललित श्यामसुन्दर-रूपको देखकर सर्वथा मोहित हो अपनी आर्यमर्यादासे विचलित न हो जाय। स्त्रियोंकी तो बात ही क्या है, तुम्हारा त्रिभुवन-मन-मोहन रूप तथा मुरली-संगीत ऐसा मोहक है कि इसे देख-सुनकर गौ, पक्षी, वृक्ष और मृग आदि प्राणी भी परमानन्दसे पुलकित हो गये हैं ॥४०॥

व्यक्तं भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो
देवो यथाऽऽदिपुरुषः सुरलोकगोप्ता ।
तन्नो निधेहि करपङ्कजमार्तबन्धो
तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किंकरीणाम् ॥४१॥

व्यक्तम्, भवान्, व्रजभयार्तिहरः, अभिजातः, देवः, यथा, आदिपुरुषः, सुरलोकगोप्ता, तत्, नः, निधेहि, करपङ्कजम्, आर्तबन्धो, तप्तस्तनेषु, च, शिरस्सु, च, किंकरीणाम् ॥४१॥

आर्तबन्धो	हे दुखियोंके बन्धु !	**व्यक्तम्**	प्रसिद्ध है
आदिपुरुषः	भगवान्	**तत्**	इसलिये
देवः	श्रीनारायण देव	**नः**	हम
यथा	जिस प्रकार	**किंकरीणाम्**	दासियोंके
सुरलोकगोप्ता	सुरलोकके रक्षक (हैं) (उसी प्रकार)	**तप्तस्तनेषु**	जलते हुए वक्षः-स्थलोंपर
भवान्	आप	**च**	और
व्रजभयार्तिहरः	व्रजके भय एवं दुःख-को हरनेवाले	**शिरस्सु**	मस्तकोंपर
		च	भी (अपना)
अभिजातः	आविर्भूत हुए हैं, (यह बात व्रजमें)	**करपङ्कजम्**	कर-कमल
		निधेहि	रख दें ॥४१॥

दयामय ! आप आर्तोंके बन्धु हैं और यह प्रसिद्ध है कि जिस प्रकार आदिदेव भगवान् श्रीनारायण देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप भी व्रजमण्डलके भयको दूर करनेके लिये ही प्रकट हुए हैं। हम भी

आपके मिलन-मनोरथकी अग्निसे संतप्त, अत्यन्त आर्त हैं। अतएव आप हम किंकरियोंके वक्षःस्थलोंपर और सिरपर अपने कमल-कोमल हाथ रखकर हमें दुःखमुक्त कर दें ॥४१॥

श्रीशुक उवाच

इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः ।
प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥४२॥

इति, विक्लवितम्, तासाम्, श्रुत्वा, योगेश्वरेश्वरः, प्रहस्य, सदयम्, गोपीः, आत्मारामः, अपि, अरीरमत् ॥४२॥

	(राजन् ! फिर तो)	**प्रहस्य**	(उनपर प्रसन्न होनेके कारण) शुद्ध मनसे हँसकर
योगेश्वरेश्वरः	योगेश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्ण		
आत्मारामः	आत्माराम (होनेपर)	**सदयम्**	करुणावश
अपि	भी	**गोपीः**	गोपियोंके साथ
तासाम्	उन व्रजसुन्दरियोंके	**अरीरमत्**	रमण करने लगे— गोपियोंको अपना स्वरूप भूत आनन्द देने लगे ॥४२॥
इति	इस प्रकारके		
विक्लवितम्	विलाप-वचनको		
श्रुत्वा	सुनकर		

परीक्षित् ! सनकादि-शिवादि योगेश्वरोंके भी ईश्वर. नित्य आत्म-स्वरूपमें रमण करनेवाले भगवान्‌ने जब व्रजगोपियोंकी इस प्रकार मार्मिक व्यथा और व्याकुलतासे पूर्ण वाणीको सुना, तब उनका हृदय दयासे द्रवित हो गया और शुद्ध मनसे हँसकर वे अपने कर-कमलोंसे उनके आँसू पोंछकर उनके साथ विलास-विहार करने लगे—उन्हें अपना स्वरूपभूत आनन्द देने लगे ॥४२॥

ताभिः समेताभिरुदारचेष्टितः
प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ।
उदारहासद्विजकुन्ददीधिति-
र्व्यरोचतैणाङ्क इवोडुभिर्वृतः ॥४३॥

ताभिः, समेताभिः, उदारचेष्टितः प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिः, अच्युतः, उदारहासद्विजकुन्ददीधितिः, व्यरोचत, एणाङ्कः, इव, उडुभिः, वृतः ॥४३॥

समेताभिः	अत्यन्त निकट आयी हुई, (अपने)
प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिः	प्रियतमके दर्शनसे प्रसन्न हुए मुखवाली
ताभिः	(उन) व्रजसुन्दरियोंसे
वृतः	परिवेष्टित (होकर)
उदारचेष्टितः	उदार चेष्टावाले (तथा)
उदारहास-द्विजकुन्द-दीधितिः	मुखपर छाये हुए उदार हास्यसे विकसित दन्तपंक्तियोंपर खिले हुए कुन्दपुष्पों-जैसी उज्ज्वल शोभा धारण करनेवाले (एवं)
अच्युतः	अपने स्वरूपसे कभी च्युत न होनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण
उडुभिः	ताराओंसे (परिवेष्टित)
एणाङ्कः	पूर्णचन्द्र (की)
इव	भाँति
व्यरोचत	सुशोभित हुए ॥४३॥

प्रियतमकी अत्यन्त समीपता प्राप्त करनेसे गोपरमणियोंका विरह-दुःख तथा प्रणयकोर शान्त हो गया और श्रीकृष्णके दर्शन तथा उनकी प्रेमभरी चितवनके आनन्दसे उनका मुख-कमल प्रफुल्लित हो उठा। वे जब हँसते थे, तब उनकी उज्ज्वल दन्तपंक्तियोंपर कुन्दपुष्पों-जैसी शोभा छा जाती थी। उस समय उनकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो ताराओंसे घिरे हुए पूर्ण चन्द्रमा हों। श्रीकृष्ण इस प्रकार व्रजबालाओंको सुख देकर भी अपने सच्चिदानन्दघन स्वरूपसे जरा भी च्युत नहीं हुए थे। अर्थात् गोपरमणियोंके साथ उनका यह क्रीड़ा-विहार सच्चिदानन्दमयी दिव्यलीला थी ॥४३॥

उपगीयमान उद्गायन् वनिताशतयूथपः।
मालां बिभ्रद् वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन् वनम् ॥४४॥

उपगीयमानः, उद्गायन्, वनिताशतयूथपः, मालाम्, बिभ्रत्, वैजयन्तीम्, व्यचरत् मण्डयन्, वनम् ॥४४॥

उपगीयमानः	(व्रजसुन्दरियों द्वारा) गाये जाते हुए (तथा स्वयं)	**वैजयन्तीम्**	वैजयन्ती
		मालाम्	माला
		बिभ्रत्	धारण किये
उद्गायन्	उच्च स्वरसे गायन करते हुए	**वनम्**	श्रीवृन्दावनको
		मण्डयन्	अलंकृत करते हुए
वनिताशत-यूथपः	व्रजवनिताओंके सैकड़ों यूथके नायक (श्रीकृष्ण)	**व्यचरत्**	विचरण करने लगे ॥४४॥

उस समय व्रजगोपियां अपने प्रियतम श्रीकृष्णके गुण, रूप तथा लीला आदिका मधुर स्वरसे गान करने लगीं, उधर श्रीकृष्ण भी उच्च स्वरसे उनके प्रेम और सौन्दर्यके गीत गाने लगे। इस प्रकार व्रजसुन्दरियोंके सैकड़ों यूथोंके नायक श्रीकृष्ण वैजयन्ती माला धारण किये श्रीवृन्दावनकी शोभाको बढ़ाते हुए विचरण करने लगे ॥४४॥

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् ।
रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना ॥४५॥

नद्याः, पुलिनम्, आविश्य, गोपीभिः, हिमवालुकम्, रेमे, तत्, तरलानन्दकुमुदामोदवायुना ॥४५॥

फिर—

नद्याः	(यमुना) नदीके	**हिमवालुकम्**	शीतल वालुकासे युक्त (था)
तत्	उस		
पुलिनम्	पुलिनपर (जो)	**आविश्य**	जाकर (अपनी ही स्वरूपभूता)
तरलानन्द-कुमुदामोद-वायुना	(नदीकी) तरल तरंगोंसे शीतल हुए, (मन्द-मन्द प्रवाहित होनेके कारण) आनन्ददायी एवं कुमुदिनीके सौरभसे सुवासित वायुके द्वारा (परिसेवित) (तथा)	**गोपीभिः**	गोपियोंके साथ
		रेमे	रमण करने लगे ॥४५॥

तदनन्तर गोपांगनाओंके साथ भगवान् श्रीकृष्णने यमुनाके उस परम रमणीय पुलिनपर पदार्पण किया। वह पुलिन यमुनाजीकी तरल तरंगोंके स्पर्शसे शीतल हो रहा था और कुमुदिनीकी सुन्दर सुगन्धसे युक्त मन्द-मन्द वायुके द्वारा परिसेवित था। वहाँ बर्फके समान उज्ज्वल तथा शीतल बालू बिछी हुई थी। इस प्रकारके आनन्दप्रद पुलिनपर भगवान् अपनी स्वरूपभूता गोपियोंके साथ क्रीड़ा करने लगे ॥४५॥

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरु-
नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणा-
मुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयांचकार ॥४६॥

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः, क्ष्वेल्या, अवलोकहसितैः, व्रजसुन्दरीणाम्, उत्तम्भयन्, रतिपतिम्, रमयांचकार ॥४६॥

बाहुप्रसार-	भुजा फैलाकर
परिरम्भकरा-	आलिंगन करना.
लकोरुनीवी-	हाथ, अलकावली,
स्तनालभ-	जङ्घा, नीवी, वक्षः-
ननर्मनखा-	स्थलका स्पर्श
ग्रपातैः	करना, विनोद
	करना, नखक्षत
	करना—इन समस्त
	(चेष्टाओं) से तथा
क्ष्वेल्या	विविध क्रीडा
अवलोक-	कटाक्षनिक्षेप एवं
हसितैः	मधुर हास्यके द्वारा
व्रजसुन्दरीणाम्	व्रजसुन्दरियोंके
रतिपतिम्	काम-विशुद्ध प्रेमका
उत्तम्भयन्	उद्दीपन करते हुए
रमयांचकार	रमण किया (अपने
	स्वरूपानन्दका
	वितरणकर व्रज-
	सुन्दरियोंको तृप्त
	किया) ॥४६॥

हाथ फैलाकर आलिंगन करना, हाथ, चोटी, जङ्घा, लँहगे और वक्षःस्थलका स्पर्श करना, विनोद करना, नखक्षत करना, विनोदपूर्ण चितवनसे देखना, मुसकाना—इन सब चेष्टाओंके द्वारा गोपरमणियोंके दिव्य कामरस—विशुद्ध प्रेमका उद्दीपन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण क्रीड़ाके द्वारा उन्हें आनन्द देने लगे—अपने दिव्य स्वरूपानन्दका वितरण करके उनको तृप्त करने लगे ॥४६॥

एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ।
आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥४७॥

एवम्, भगवतः, कृष्णात्, लब्धमानाः, महात्मनः, आत्मानम्, मेनिरे, स्त्रीणाम्, मानिन्यः, अभ्यधिकम्, भुवि ॥४७॥

एवं	इस प्रकार	**मानिन्यः**	प्रणयजनित मानके वशीभूत (हो गयीं तथा)
महात्मनः	सर्व-नायक शिरोमणि परमोदार		
भगवतः	स्वयं भगवान्	**भुवि**	पृथ्वीपर (वर्तमान)
कृष्णात्	श्रीकृष्णसे	**स्त्रीणाम्**	समस्त स्त्रियोंमें
लब्धमानाः	आदर पायी हुई (व्रजसुन्दरियाँ अब)	**आत्मानम्**	अपनेको ही
		अभ्यधिकम्	सर्वोत्कृष्ट
		मेनिरे	मानने लगीं ॥४७॥

परम उदारशिरोमणि सच्चिदानन्द भगवान् श्रीकृष्णने जब गोपियोंका इस प्रकार सम्मान किया, तब उनके मनमें ऐसा प्रेमाभिमान आ गया कि पृथ्वीभरकी समस्त स्त्रियोंमें हमीं सबसे श्रेष्ठ हैं ॥४७॥

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥४८॥

तासाम्, तत्, सौभगमदम्, वीक्ष्य, मानम्, च, केशवः, प्रशमाय, प्रसादाय, तत्र, एव, अन्तरधीयत ॥४८॥

	(तब)	**मानम्**	(अकस्मात् समुदित) प्रणयजन्य मानको
तासाम्	उन (व्रजसुन्दरियों) के	**वीक्ष्य**	देखकर
तत्	उस	**केशवः**	श्रीकृष्ण (उस गर्वको)
सौभगमदम्	सौभाग्यवर्गको		
च	तथा		

प्रशमाय	शान्त करनेके लिये (तथा मानका)	**तत्र एव**	वहीं
प्रसादाय	प्रसन्न करनेके लिये	**अन्तरधीयत**	अन्तर्धान हो गये ॥४८॥

तब उन व्रजसुन्दरियोंके उस सौभाग्यके गर्वको तथा अकस्मात् उदय हुए प्रणय-अभिमानको देखकर उस गर्वको शान्त करने तथा मानको दूरकर उन्हें प्रसन्न करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण वहीं उनके बीचमें ही अन्तर्धान हो गये। रहे वहीं, पर उनको दीखने बन्द हो गये ॥४८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भगवतो रासक्रीडावर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः ।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥ १ ॥

अन्तर्हिते, भगवति, सहसा, एव, व्रजाङ्गनाः, अतप्यन्, तम्, अचक्षाणाः, करिण्यः, इव, यूथपम् ॥१॥

भगवति	भगवान् श्रीकृष्णके	**करिण्यः**	हथिनियाँ (अपने)
सहसा	अकस्मात्	**यूथपम्**	दलके स्वामी (हाथीको)
एव	ही		(न देखकर व्याकुल
अन्तर्हिते	अन्तर्धान हो जानेपर		हो जाती हैं)
तम्	उन्हें	**इव**	उस प्रकार (विरहसे)
अचक्षाणाः	न देखती हुई	**अतप्यन्**	संतप्त हो गयीं ॥१॥
व्रजाङ्गनाः	व्रजसुन्दरियाँ (जैसे)		

भगवान् श्रीकृष्ण अकस्मात् अन्तर्धान हो गये, उन्हें न देखकर व्रज-सुन्दरियोंकी वैसी ही विकल दशा हो गयी, जैसी दलके स्वामी गजराजको न देखकर हथिनियोंकी हो जाती है। उनके हृदयमें विरहकी ज्वाला प्रज्वलित हो उठी ॥१॥

गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितै-
र्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापते-
स्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥ २ ॥

गत्या, अनुरागस्मितविभ्रमेक्षितैः, मनोरमालापविहारविभ्रमैः, आक्षिप्तचिताः, प्रमदाः, रमापतेः, ताः, ताः, विचेष्टाः, जगृहुः, तदात्मिकाः ॥ २ ॥

रमापतेः	श्रीकृष्णचन्द्रके	**तदात्मिकाः**	श्रीकृष्णचन्द्रमें
गत्या	चलनेकी भंगीसे		ही तन्मय हुई
	(उनकी)	**प्रमदाः**	व्रजसुन्दरियाँ
अनुराग-	अनुरागपूर्ण मधुर		(श्रीकृष्णकी)
स्मितविभ्रमे-	हँसी, अत्यन्त मधुर	**ताः**	उन
क्षितैः	भ्रू-संचालन आदि	**ताः**	उन
	चेष्टाओं तथा प्रेम-	**विचेष्टाः**	विविध चेष्टाओंका
	भरी दृष्टिसे,		(ही)
मनोरमा-	मनोरम आलाप	**जगृहुः**	ध्यान करने लगीं
लापविहार-	एवं सुन्दर लीला-		॥२॥
विभ्रमैः	विलाससे		
आक्षिप्तचिता	आकृष्टचित्त हुई,		
	(एवं)		

रमापति श्रीकृष्णकी ललित गति, प्रेमभरी सुमधुर मुसकान; अत्यन्त मधुर तिरछी भ्रुकुटी प्रीतिभरी चितवन, मनोरम प्रेमालाप तथा अन्यान्य विविध लीला-विलास एवं शृंगारकी भावभंगियोंसे उनका चित्त खिंचकर श्रीकृष्णमें लगा हुआ था। वे व्रजगोपियाँ श्रीकृष्णमें ही तन्मय हो गयीं और फिर श्रीकृष्णकी ही विभिन्न चेष्टाओंका ध्यान करने लगीं ॥२॥

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु
प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः ।
असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका
न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ ३ ॥

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु, प्रियाः, प्रियस्य, प्रतिरूढमूर्तयः, असौ, अहम्, तु, इति, अबलाः, तदात्मिकाः, न्यवेदिषुः, कृष्णविहारविभ्रमाः ॥३॥

प्रियस्य	प्रियतम (श्री-	**भाषणादिषु**	वचन आदिमें
	कृष्णचन्द्रकी)		(उनकी देह तक
गतिस्मित-	गति, मन्द हँसी,		डूबने लगी—उन-
प्रेक्षण-	दृष्टिसंचार,		उन चेष्टाओंका

प्रतिरूढ-मूर्तयः	उनकी देहमें आवेश हो गया (तथा इस तरह)	**प्रियाः**	प्रिय
		अबलाः	व्रजसुन्दरियाँ
		अहम्	मैं
कृष्णविहार-विभ्रवाः	श्रीकृष्णलीलाके (स्मरणजन्य) महान् उन्मादभाव-से उन्मादिनी हुई (तथा)	**तु**	तो
		असौ	वह (श्रीकृष्ण हूँ)
		इति	इस प्रकार (एक दूसरेको अपना)
तदात्मिकाः	उन्हींमें लीन हुई (उनकी)	**न्यवेदिषुः**	परिचय देने लगीं ॥३॥

इससे प्रियतम श्रीकृष्णकी ललित गति, मधुर हास, मनोरम चितवन, अमृतमय वचन आदिमें वे श्रीकृष्णकी प्यारी व्रजसुन्दरियाँ उनके समान ही बन गयीं। उनके शरीरमें भी वैसी ही चेष्टाओंका प्राकट्य हो गया और वे श्रीकृष्णलीला-विलासके स्मरणजनित भावसे उन्मादिनी होकर श्रीकृष्णस्वरूप ही बन गयीं तथा 'मैं श्रीकृष्ण ही हूँ' परस्पर इस प्रकार अपना परिचय देने लगीं ॥३॥

गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता
विचिक्युरुन्मत्तकवद् वनाद् वनम् ।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहि-
र्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥४॥

गायन्त्यः, उच्चैः, अमुम्, एव, संहताः, विचिक्युः, उन्मत्तकवत्, वनात्, वनम्, पप्रच्छुः, आकाशवत्, अन्तरम्, बहिः, भूतेषु, सन्तम्, पुरुषम्, वनस्पतीन् ॥४॥

	(पहले तो)	**गायन्त्यः**	गीत गाती हुई (एक)
संहताः	सभी मिलकर	**वनात्**	वनसे (दूसरे)
अमुम्	उन (श्रीकृष्ण) का	**वनम्**	वनमें
एव	ही	**उन्मत्तकवत्**	पगलीकी भाँति
उच्चैः	उच्च (स्वर) से		(उन्हें)

विचिक्युः	ढूँढने लगीं	**पुरुषम्**	पुरुषकी—श्रीकृष्णचन्द्रकी (बात)
आकाशवत्	आकाशके समान		
भूतेषु	समस्त भूतोंमें		
अन्तरम्	भीतर	**वनस्पतीन्**	वनकी वृक्षलताओंके (निकट जा-जाकर)
बहिः	बाहर (सर्वत्र व्याप्त होकर)	**पप्रच्छुः**	पूछने लगीं ॥४॥
सन्तम्	स्थित रहनेवाले		

जब उनका यह श्रीकृष्णावेश कुछ शिथिल हुआ, तब भाव बदला और वे सब मिलकर ऊँचे स्वरसे श्रीकृष्णके गुणोंका गान करने लगीं तथा प्रेममें पागल-सी होकर एक वनसे दूसरे वनमें उन्हें ढूँढ़ने लगीं। भगवान् श्रीकृष्ण जड़-चेतन सभी पदार्थोंके अन्दर और उनके बाहर भी सदा आकाशके सदृश एक रस तथा व्याप्त हैं। वे कहीं गये नहीं थे, परन्तु गोपियाँ उन्हें अपने बीचमें न देखकर वनस्पतियोंसे—वृक्ष-लताओंसे उनके समीप जा-जाकर प्रियतमका पता पूछने लगीं ॥४॥

दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः ।
नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥ ५ ॥

दृष्टः, वः, कच्चित्, अश्वत्थ, प्लक्ष, न्यग्रोध, नः, मनः, नन्दसूनुः, गतः, हृत्वा, प्रेमहासावलोकनैः ॥५॥

अश्वत्थ	हे पीपलके वृक्ष	**हृत्वा**	चुराकर (कहीं)
प्लक्ष	हे पाकर !		
न्यग्रोध	हे वट !	**गतः**	गये हुए
प्रेमहासा-वलोकनैः	प्रेम एवं हास्य-समन्वित दृष्टि-संचारसे	**नन्दसूनुः**	नन्दपुत्र
		वः	तुम सबोंको
		दृष्टः	दीख पड़े
नः	हमलोगोंका	**कच्चित्**	क्या ? ॥५॥
मनः	मन		

व्रजसुन्दरियोंने पहले बड़े-बड़े वृक्षोंके पास जाकर उनसे पूछा—'हे पीपल, पाकर, वट ! नन्दनन्दन श्यामसुन्दर अपनी प्रेमभरी मुसकान

तथा चितवनसे हमलोगोंके मन चुराकर कहीं चले गये हैं, क्या तुम लोगोंने उनको देखा है ? ॥५॥

कच्चित् कुरबकाशोकनागपुंनागचम्पकाः ।
रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥ ६ ॥

कच्चित्, कुरबकाशोकनागपुंनागचम्पकाः, रामानुजः, मानिनीनाम्, इतः, दर्पहरस्मितः ॥६॥

कुरबकाशोक-	हे कुरबक ! हे	**दर्पहरस्मितः**	दर्पको चूर्ण कर
नागपुंनाग-	अशोक ! हे		देनेवाली मुस्कानसे
चम्पकाः	नाग, पुंनाग		विभूषित हैं (वे)
	चम्पक ! (जो)	**रामानुजः**	बलरामजीके छोटे
मानिनीनाम्	मानवती		भाई (श्रीकृष्णचन्द्र)
	(रमणियों)के	**इतः**	इस ओरसे गये हैं
		कच्चित्	क्या ? ॥६॥

हे कुरबक ! अशोक ! नागकेशर ! पुंनाग ! चम्पक ! जिनकी मधुरतम मुस्कान मात्रसे बड़ी-बड़ी मानिनी रमणियोंका दर्प चूर्ण हो जाता है, वे बलरामजीके छोटे भाई श्रीकृष्णचन्द्र इधरसे गये हैं क्या ? ॥६॥

कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ।
सह त्वालिकुलैर्बिभ्रद् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥ ७ ॥

कच्चित्, तुलसि, कल्याणि, गोविन्दचरणप्रिये, सह, त्वा, अलिकुलैः, बिभ्रत्, दृष्टः, ते, अतिप्रियः, अच्युतः ॥७॥

कल्याणि	हे कल्याणमयी	**सह**	सहित
गोविन्द-	गोविन्द-चरणोंको	**त्वा**	तुम्हें
चरणप्रिये	प्यार करनेवाली		(मालारूपमें
तुलसि	तुलसी !		हृदयपर)
	(तुमपर उमड़ते हुए)	**बिभ्रत्**	धारण किये हुए
अलिकुलैः	भ्रमर समूहोंके	**ते**	तुम्हारे

अतिप्रियः	प्रियतम	**कच्चित्**	क्या (तुमने इस
अच्युतः	अच्युत (श्रीकृष्ण चन्द्र) को		ओरसे जाते)
		दृष्टः	देखा है ? ॥७॥

जब इन पुरुषजातीय वृक्षोंसे उत्तर नहीं मिला, तब उन्होंने स्त्री-जातिके पौधोंसे पूछा—'बहिन तुलसी ! तुम तो कल्याणमयी हो, सबका कल्याण चाहती हो। तुम्हारा श्रीगोविन्दके चरणोंमें बड़ा प्रेम है और वे भी तुमसे प्रेम करते हैं; इसीलिये भ्रमरोंसे घिरी हुई तुम्हारी मालाको सदा हृदयपर धारण करते हैं। उन अपने प्रियतम अच्युत—जो अपने प्रेम-स्वभावसे कभी च्युत नहीं होते—श्यामसुन्दरको क्या तुमने इधरसे जाते देखा है ? ॥७॥

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके ।
प्रीतिं वो जनयन् यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥

मालति, अदर्शि, वः, कच्चित्, मल्लिके, जाति, यूथिके, प्रीतिम्, वः, जनयन्, यातः, करस्पर्शेन, माधवः ॥८॥

मालति	हे मालती	**जनयन्**	विधान करते हुए
मल्लिके	हे चमेली		(इस ओरसे)
जाति	हे जाती !	**यातः**	गये हुए
यूथिके	हे जूही ! (तुम्हारे पुष्पोंको चयन करते समय, अपने)	**माधवः**	माधव
		वः	तुम सबको
		कच्चित्	क्या
करस्पर्शेन	करस्पर्श (के दान)से	**अदर्शि**	दृष्टिगोचर हुए हैं ? ॥८॥
वः	तुम लोगोंका		
प्रीतिम्	आनन्द		

गोपियोंने समझा तुलसी श्रीकृष्णको अति प्यारी है, इसको उनका अवश्य पता होगा। पर जब उसने भी कोई उत्तर नहीं दिया, तब वे सुगन्धित पुष्पोंवाले पौधोंसे पूछने लगीं—सोचा कि श्रीकृष्णको इनके पुष्प बहुत प्रिय लगते हैं, अतः इनको पता होगा। हे मालती ! चमेली ! जाती ! जूही ! तुम्हारे सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंका चयन करते समय अपने कोमल करोंसे

स्पर्श करके तुम्हें आनन्द देते हुए क्या हमारे प्रियतम माधवको तुमने इधरसे जाते देखा है ? ॥८॥

चूतप्रियालपनसासनकोविदार-
जम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः ।
येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः
शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥ ९ ॥

चूतप्रियालपनसासनकोविदारजम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः, ये, अन्ये, परार्थभवकाः, यमुनोपकूलाः, शंसन्तु, कृष्णपदवीम्, रहितात्मनाम्, नः ॥९॥

चूतप्रियाल-	हे रसाल, प्रियाल,
पनसासन	पनस, पीतशाल,
कोविदार-	कचनार, जामुन,
जम्ब्वर्क-	आक, वेल, मौलसिरी
बिल्वबकुलाम्र	आम, कदम्ब, नीप
कदम्बनीपाः	(एवं)
अन्ये	अन्य वृक्षो !
ये	जो
परार्थभवकाः	परोपकारके लिये ही जीवन धारण करनेवाले (तथा)
यमुनोपकूलाः	यमुना-तीरवासी (तुम हो, उन तुम सबसे प्रार्थना है—)
रहितात्मनाम्	शून्यहृदया
नः	हम सबोंको
कृष्णपदवीम्	श्रीकृष्णका पता
शंसन्तु	बता दो ॥९॥

पुष्पलताओंसे भी जब उत्तर नहीं मिला, तब यह सोचकर कि बड़े-छोटे सभी वृक्ष दीन-दुखियोंके उपकारमें ही सदा लगे रहते हैं, हम सब दुःखसंतप्त हैं, अतः इनके स्वभावकी स्मृति कराते हुए इन वृक्षोंसे पूछें, वे उनसे बोलीं—हे रसाल, प्रियाल, कटहल, पीतशाल, कचनार, जामुन, आक, बेल, मौलसिरी, आम, कदम्ब, नीप और यमुनातटपर विराजमान अन्यान्य तरुवरो ! तुमने तो केवल परोपकारके लिये ही जीवन धारण किया है । हमारा हृदय श्रीकृष्णके बिना सूना हो रहा है; अतएव हम तुम लोगोंसे प्रार्थना करती हैं कि तुम कृपा करके श्रीकृष्णका पता हमें बता दो ॥९॥

किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रि-
स्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैर्विभासि ।
अप्यङ्घ्रिसम्भव उरुक्रमविक्रमाद् वा
आहो वराहवपुषः परिरम्भणेन ॥१०॥

किम्, ते, कृतम्, क्षिति, तपः, बत, केशवाङ्घ्रिस्पर्शोत्सवा, उत्पुलकिता, अङ्गरुहैः, विभासि, अपि, अङ्घ्रिसम्भवः, उरुक्रमविक्रमात्, वा, आहो, वराहवपुषः, परिरम्भणेन ॥१०॥

क्षिति	हे पृथ्वी !
ते	तुम्हारे द्वारा (ऐसा)
किम्	कौन-सा
तपः	तप
कृतम्	आचरित हुआ है (कि जो तुम)
बत	आह !
केशवाङ्घ्रिस्पर्शोत्सवा	केशवके चरणस्पर्श-जन्य आनन्दकी भागिनी बन गयी । (इसीलिये तुम आनन्दवश)
अङ्गरुहैः	अंगोंपर खड़े हुए तृणाङ्कुरों (के रूप) में
उत्पुलकिता	रोमाञ्चित हुई
विभासि	शोभा पा रही हो (बताओ)
अपि	क्या (तुम्हारा यह आनन्द अभी-अभी श्रीकृष्णके)
अङ्घ्रि-सम्भवः	चरणोंके स्पर्शसे प्रकट हुआ है
वा	या (इससे पूर्व बलिको छलते समय)
उरुक्रम-विक्रमात्	त्रिविक्रम भगवान्के चरणनिक्षेप (का स्पर्श पाने) से
आहो	अथवा (इससे भी पूर्व तुम्हारे उद्धारके समय)
वराहवपुषः	वाराह मूर्तिके
परिरम्भणे	आलिंगनसे (तुम्हें यह आनन्द मिला है ॥१०॥

वृक्षोंसे भी जब कोई उत्तर नहीं मिला, तब उन्मादिनी व्रज-सुन्दरियोंने पृथ्वीको सम्बोधन करके कहा—'भगवान्की प्रियतमे पृथ्वी-

देवि ! तुमने ऐसा कौन-सा तप किया है जो तुम श्रीकृष्णके चरणारविन्दका स्पर्श प्राप्त करके आनन्दसे उत्फुल्ल हो रही हो और तृण-अङ्कुर आदिके रूपमें रोमाञ्चित होकर शोभा पा रही हो ? तुम्हारा यह आनन्दोल्लास अभी-अभी श्रीकृष्णके चरणस्पर्शके कारण है। अथवा बलिको छलते समय वामनावतारमें विराट्रूपसे अपने चरणोंके द्वारा उन्होंने तुमको नापा था, उसके कारण है ? या उससे भी पूर्व जब तुम्हारा उद्धार करनेके लिये उन्होंने तुमसे वाराहरूपसे आलिंगन किया था, उसके कारण तुम्हें इतना आनन्द हो रहा है ? ॥१०॥

अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रै-
स्तन्वन् दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ।
कान्ताङ्गसङ्गकुचकुङ्कुमरञ्जितायाः
कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥११॥

अपि, एणपत्नि, उपगतः, प्रियया, इह, गात्रैः, तन्वन्, दृशाम्, सखि, सुनिर्वृतिम्, अच्युतः, वः, कान्ताङ्गसङ्गकुचकुङ्कुम रञ्जितायाः, कुन्दस्रजः, कुलपतेः, इह, वाति, गन्धः ॥११॥

एणपत्नि	हे हरिणि !	**उपगतः**	(तुम्हारे) समीप आये हैं (हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि अवश्य आये हैं; क्योंकि)
सखि	हे सखि ! (अपनी)		
प्रियया	प्रियाके सहित		
अच्युतः	अच्युत श्रीकृष्णचन्द्र (अपने सुन्दर)		
गात्रैः	अंगोंसे	**इह**	इस स्थानपर
वः	तुम लोगोंके	**कुलपतेः**	गोकुलनाथके (हृदयपर झूलती हुई)
दृशाम्	नेत्रोंको		
सुनिर्वृतिम्	निरतिशय आनन्द		
तन्वन्	प्रदान करते हुए	**कान्ताङ्ग-**	प्रियाके आलिंगनके
इह	यहाँ (इस वनमें)	**सङ्गकुच-**	कारण उनके वक्षः-
अपि	क्या	**कुङ्कुम-**	स्थलपर लगे हुए

रञ्जितायाः	कुङ्कुमसे रञ्जित	**गन्धः**	गन्ध
कुन्दस्रजः	कुन्द कुसुमोंकी मालाकी	**वाति**	आ रही है ॥११॥

तदनन्तर हरिणियोंकी दृष्टिको प्रसन्न देखकर गोपांगनाओंने सोचा, इन्होंने श्रीकृष्णको देखा होगा और उनसे कहने लगीं—'सखी हरिणियो ! अपने प्रेममय स्वभावमें नित्य स्थित श्यामसुन्दर अपनी प्राणप्रियाके साथ अपने मनोहर अंगोंके सौन्दर्य-माधुर्यसे तुम्हारे नेत्रोंको निरतिशय आनन्द प्रदान करते हुए तुम्हारे समीपसे तो नहीं गये हैं ? हमें तो ऐसा लगता है, वे यहाँ अवश्य आये हैं; क्योंकि यहाँ गोकुलनाथ (या हमारे गोपीसमुदायके स्वामी) श्रीकृष्णके हृदयपर झूलती हुई उस कुन्दकुसुमोंकी मालाकी मनोरम सुगन्ध आ रही है, जो उनकी परमप्रेयसीके आलिंगनके कारण लगी हुई उसके वक्षःस्थलकी केसरसे अनुरञ्जित रहती है ॥११॥

बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो
रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः ।
अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं
किं वाभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः ॥१२॥

बाहुम्, प्रियांसे, उपधाय, गृहीतपद्मः, रामानुजः, तुलसिकालिकुलैः, मदान्धैः, अन्वीयमानः, इह, वः, तरवः, प्रणामम्, किम्, वा, अभिनन्दति, चरन्, प्रणयावलोकैः ॥१२॥

तरवः	हे वृक्षो !	**गृहीतपद्मः**	कमल-पुष्प धारण किये हुए हैं (वे)
मदान्धैः	(मालामें पिरोयी हुई तुलसी-मञ्जरी-के) मधुपानसे मत्त	**रामानुजः**	बलरामजीके अनुज श्रीकृष्णचन्द्र
तुलसिका-लिकुलैः	तुलसी-वनके भौंरे	**प्रियांसे**	प्रियाके कंधेपर (अपनी बायीं)
अन्वीयमानः	(जिनके) पीछे-पीछे उड़ रहे हैं, (जो अपने दाहिने हाथमें)	**बाहुम्**	भुजा
		उपधाय	रखकर
		इह	इस वनमें

चरन्	घूमते हुए (यहाँ आये हैं क्या ?)	**वः**	तुम्हारे
		प्रणामम्	प्रणामका
(वा)	तथा (आकर उन्होंने)	**अभिनन्दति**	अभिनन्दन किया है
प्रणयावलोकैः	सप्रेम दृष्टिसे	**किम् वा**	क्या ॥१२॥

हरिणियोंको निस्तब्ध देखकर उन्होंने सोचा, एक बार पुनः वृक्षोंसे पूछ देखें; अतः वे बोलीं—'पवित्र तरुवरो ! तुलसी-मञ्जरीके मधुपानसे मत्त हुए भ्रमर जिनके पीछे-पीछे मँडराते चले जा रहे हैं, जो अपने दाहिने हाथमें लीलाकमल धारण किये हुए हैं और बायें हाथको प्रियतमाके कंधे-पर रखे हुए हैं, ऐसे श्रीबलरामजीके छोटे भाई हमारे प्रियतम श्यामसुन्दर इधरसे विचरते हुए निकले थे क्या ? तुम जो प्रणाम करनेकी तरह झुके हुए हो, सो क्या उन्होंने प्रेमपूर्ण दृष्टिसे तुम्हारे इस प्रणामका अभिनन्दन किया था ?' ॥१२॥

पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः ।
नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥१३॥

पृच्छत, इमाः, लताः, बाहून्, अपि, आश्लिष्टाः, वनस्पतेः, नूनम्, तत्करजस्पृष्टाः बिभ्रति, उत्पुलकानि, अहो ॥१३॥

	(सखियो !)	**अहो**	ओह ! (अपने पतिसे आश्लिष्ट रहनेपर भी)
वनस्पतेः	वनस्पतिकी—वृक्षोंकी		
बाहून्	भुजाओंको—शाखाओंसे		
आश्लिष्टाः	लिपटी हुई	**नूनम्**	निश्चय ही (इन्हें)
इमाः	इन	**तत्करज-स्पृष्टाः**	उन (श्रीकृष्णचन्द्र) के नखोंका स्पर्श प्राप्त हो गया है; (क्योंकि नवाङ्कुरों-के रूपमें ये)
लताः	लताओंसे		
अपि	भी		
पृच्छत	पूछो (देखो इनका भाग्य)	**उत्पुलकानि बिभ्रति**	पुलकावलि धारण किये हुए हैं ॥१३॥

कुछ गोपियोंने कहा—अरी सखियो ! वृक्षोंसे क्या पूछ रही हो । इन लताओंसे भी पूछो, जो अपने पति वृक्षोंकी भुजाओं—शाखाओंसे लिपटी हुई हैं । पर इनके शरीरमें जो नये-नये अङ्कुरोंके उद्गमरूपमें पुलकावलि छायी हुई है, यह अवश्य ही इनके पति—वृक्षोंसे लिपटी रहनेके कारण नहीं है । यह तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके नखोंके स्पर्शका ही परिणाम है । अहो ! इनका कैसा सौभाग्य है ॥१३॥

इत्युन्मत्तवचोगोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥१४॥

इति, उन्मत्तवचोगोप्यः, कृष्णान्वेषणकातराः, लीलाः, भगवतः, ताः, ताः, हि, अनुचक्रुः, तदात्मिकाः ॥१४॥

इति	उपर्युक्त प्रकारसे	**हि**	क्योंकि
उन्मत्तवचो-गोप्यः	उन्मादिनीके समान वचन बोलनेवाली गोपियाँ (अब विरह-दुःखके कारण)	**तदात्मिकाः**	उनमें तन्मय हो गयी थीं (इसलिये)
		भगवतः	भगवान्‌की
		ताः	उन
कृष्णान्वेषण-कातराः	श्रीकृष्णचन्द्रको ढूँढ़नेमें भी कातर—असमर्थ हो गयीं (तथा असमर्थ होकर पुनः श्रीकृष्णलीला-का गान करने लगीं साथ ही)	**ताः**	उन
		लीलाः	लीलाओंका
		अनुचक्रुः	अनुकरण (भी) करने लगीं ॥१४॥

परीक्षित् ! इस प्रकार पागलोंकी भाँति प्रलाप करती हुई व्रज-सुन्दरियाँ भगवान् श्रीकृष्णको ढूँढ़ती हुई विरहदुःखके कारण कातर और असमर्थ हो गयीं । तब उनकी कृष्णतन्मयता फिर बढ़ी और वे अपनेको भगवान् श्रीकृष्ण ही मानकर भगवान्‌की विभिन्न लीलाओंका अनुकरण करने लगीं ॥१४॥

कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम् ।
तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाहञ्छकटायतीम् ॥१५॥

कस्याः, चित्, पूतनायन्त्याः, कृष्णायन्ती, अपिबत्, स्तनम्, तोकायित्वा, रुदती, अन्या, पदा, अहन्, शकटायतीम् ॥१५॥

कृष्णायन्ती	कृष्णका अनुकरण करनेवाली (कोई गोपी)	**तोकायित्वा**	बालक-सा बनाकर
पूतनायन्त्याः	पूतनाका भाव दिखानेवाली	**रुदती**	बालककेसमान रोनेका भाव दिखाकर
कस्याःचित्	किसी (अन्य)गोपीका	**शकटायतीम्**	छकड़ेका अनुकरण करनेवाली किसी गोपीके प्रति
स्तनम्	स्तन		
अपिबत्	पान करने लगी	**पदा**	चरणसे
अन्या	एक दूसरी (अपनेको)	**अहन्**	ठोकर दे बैठी ॥१५॥

श्रीकृष्णलीलाका अनुकरण करनेवाली एक गोपी पूतना बन गयी, दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसका स्तनपान करने लगी। एक गोपी छकड़ा बन गयी तो दूसरी बालकृष्ण बनकर रोते हुए उसको चरणकी ठोकर मारकर उलट दिया ॥१५॥

दैत्यायित्वा जहारान्यामेका कृष्णार्भभावनाम् ।
रिङ्गयामास काप्यङ्घ्री कर्षन्ती घोषनिःस्वनैः ॥१६॥

दैत्यायित्वा, जहार, अन्याम्, एका, कृष्णार्भभावनाम्, रिङ्गयामास, का, अपि, अङ्घ्री, कर्षन्ती, घोषनिःस्वनैः ॥१६॥

एका	एक (दूसरी गोपी अपनेको)		समान बनाकर
दैत्यायित्वा	तृणावर्त दैत्यके	**कृष्णार्भ-भावनाम्**	बालकृष्णकी भावना करनेवाली
		अन्याम्	दूसरी (गोपी) को

अहार	हर ले चली—हरण करनेका भाव दिखाने लगी (तथा अपनी)
घोषनिःस्वनैः	पायजेब आदिके मधुर शब्दोंसे (श्रीकृष्ण-किङ्किणी-ध्वनिकी कल्पना करके)
का अपि	कोई एक (गोपी) (अपने)
अङ्घ्री	दोनों चरणोंको
कर्षन्ती	भूमिपर घसीटती हुई
रिङ्गयामास	रेंगने लगी—रिंगण-लीलाका अनुकरण करने लगी ॥१६॥

कोई एक गोपी तृणावर्त दैत्य बन गयी और बालकृष्ण बनी हुई दूसरी गोपीको हरण करनेका भाव दिखाने लगी। किसी गोपीने अपने पैरोंकी पायजेबकी मधुर ध्वनिको श्रीकृष्णकी किङ्किणी-ध्वनि समझकर अपनेको शिशु कृष्ण मान लिया और दोनों चरणोंको भूमिपर घसीट-घसीटकर रेंगने लगी—भगवान्‌की मधुर बकैयाँ चलनेकी लीलाका अनुकरण करने लगी ॥१६॥

कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन ।
वत्सायतीं हन्ति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥१७॥

कृष्णरामायिते, द्वे, तु, गोपायन्त्यः, च, काः, चन, वत्सायतीम्, हन्ति, च, अन्या तत्र, एका, तु, बकायतीम् ॥१७॥

द्वे	दो गोपियाँ
तु	तो
कृष्णरामायिते	कृष्ण-रामके समान भाव दिखाकर (खेल करने लगीं)
च	तथा
काः चन	कुछ
गोपायन्त्यः	गोपबालकोंके समान बनकर (क्रीड़ा करने लगीं; तथा कुछ बछड़ोंका अनुकरण करने लगीं)
तत्र	वहाँ
एका	एक (कृष्ण बनी हुई गोपी)

तु	तो	**अन्या**	एक दूसरी
वत्सायतीम्	वत्सासुरका भाव दिखानेवाली (अन्य गोपीको)	**बकायतीम्**	बकासुरका अनुकरण करनेवाली (किसी और गोपी) को (चीर डालनेका भाव दिखाने लगी) ॥१७॥
हन्ति	मारने चली–वत्सासुरवधका दृश्य दिखाने लगी		
च	तथा		

दो गोपियाँ श्रीकृष्ण और बलराम बनकर उनके-जैसे खेल करने लगीं। कुछ गोपियाँ गोप-बालकोंके समान बनकर क्रीड़ा करने लगीं, कुछ बछड़ोंका अनुकरण करने लगीं। एक गोपी वत्सासुर बन गयी, दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसे मारनेकी लीला करने लगी। इसी प्रकार एक गोपी बकासुर बनी और दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसे चीर डालनेका भाव दिखाने लगी ॥१७॥

आहूय दूरगा यद्वत् कृष्णस्तमनुकुर्वतीम् ।
वेणुं क्वणन्तीं क्रीडन्तीमन्याः शंसन्ति साध्विति ॥१८॥

आहूय, दूरगाः, यद्वत्, कृष्णः, तम्, अनुकुर्वतीम्, वेणुम्, क्वणन्तीम्, क्रीडन्तीम् अन्याः, शंसन्ति, साधु, इति ॥१८॥

कृष्णः	श्रीकृष्ण	**वेणुम्**	वंशी
यद्वत्	जिस प्रकार	**क्वणन्तीम्**	बजाने (की मुद्रा धारणकर)
दूरगाः	दूर गयी हुई (गायोंको) (बंशी बजाकर बुलाते हैं, ठीक उसी प्रकार वंशीनादका दृश्य दिखाकर गायोंको)	**क्रीडन्तीम्**	क्रीड़ा करनेवाली (एक गोपीकी लीला देखकर कुछ)
		अन्याः	अन्य (गोपियाँ)
		साधु	वाह ! वाह ! बहुत सुन्दर !
आहूय	बुलाकर–बुलानेका भाव दिखाकर	**इति**	इस प्रकार (उसकी)
तम्	श्रीकृष्णका	**शंसन्ति**	प्रशंसा करने लगीं ॥१८॥
अनुकुर्वतीम्	अनुकरण करनेवाली		

जिस प्रकार श्रीकृष्ण वनमें दूर गये हुए गाय-बछड़ोंको वंशी बजा-बजाकर बुलाया करते थे, वैसे ही एक गोपी अपनेको श्रीकृष्ण समझकर वंशीध्वनिके द्वारा गायोंको बुलानेका भाव दिखाने लगी। उस गोपीकी इस वंशी बजानेकी लीलाको देखकर दूसरी कुछ गोपियाँ 'वाह-वाह ! तुम बहुत ही मधुर मुरली बजा रहे हो' यों कहकर उसकी प्रशंसा करने लगीं ॥१८॥

कस्यांचित् स्वभुजं न्यस्य चलन्त्याहापरा ननु ।
कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥१९॥

कस्याम्, चित्, स्वभुजम्, न्यस्य, चलन्ती, आह, अपरा, ननु, कृष्णः, अहम्, पश्यत, गतिम्, ललिताम्, इति, तन्मनाः ॥१९॥

तन्मनाः	श्रीकृष्णचन्द्रमें आविष्टचित्त हुई	**ननु**	अरे सखाओ !
अपरा	एक दूसरी (गोपी)	**अहम्**	मैं
कस्याम् चित्	किसी अन्य (गोपी) पर	**कृष्णः**	कृष्ण हूँ (मेरी)
स्वभुजम्	अपनी भुजा	**ललिताम्**	सुन्दर
न्यस्य	रखकर	**गतिम्**	चाल (तो)
चलन्ती	चलती हुई	**पश्यत**	देखो—
		इति	इस प्रकार
		आह	बोल उठी ॥१९॥

श्रीकृष्णके साथ एकमन हुई एक दूसरी गोपी अपनेको श्रीकृष्ण मानकर दूसरी किसी गोपीके गलेमें बाँह डालकर चलने लगी और कहने लगी—अरे सखाओ ! मैं श्रीकृष्ण हूँ, तुम मेरी यह मनोहर चाल तो देखो ॥१९॥

मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तन्त्राणं विहितं मया ।
इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥२०॥

मा, भैष्ट, वातवर्षाभ्याम्, तन्त्राणम्, विहितम्, मया, इति, उक्त्वा, एकेन, हस्तेन, यतन्ती, उन्निदधे, अम्बरम् ॥२०॥

	(देखो)
वातवर्षाभ्याम्	आँधी एवं वर्षासे
मा भैष्ट	मत डरो
मया	मेरे द्वारा
तत्त्राणम्	उनसे रक्षा (की व्यवस्था)
विहितम्	कर दी गयी है
इति	इस प्रकार
उक्त्वा	कहकर
यतन्ती	(गोवर्धन-धारणके) प्रयत्नका अनुकरण करती हुई (एक गोपी) ने
एकेन	एक
हस्तेन	हाथसे (अपने उत्तरीय)
अम्बरम्	वस्त्रको
उन्निदधे	ऊपर उठा लिया तथा ऊपर ही उसे धारण किये रही

॥२०॥

एक गोपी श्रीकृष्ण बनकर कहने लगी—तुमलोग आँधी-पानीसे मत डरो, मैंने उससे बचनेकी सारी व्यवस्था कर दी है। यों कहकर वह गोपी गोवर्द्धन-धारणका अनुकरण करती हुई एक हाथसे अपनी ओढ़नीको ऊपर उठाकर उसे तानकर खड़ी हो गयी ॥२०॥

आरुह्यैका पदाऽऽक्रम्य शिरस्याहापरां नृप ।
दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दण्डधृक् ॥२१॥

आरुह्य, एका, पदा, आक्रम्य, शिरसि, आह, अपराम्, नृप, दुष्ट, अहे, गच्छ, जातः, अहम्, खलानाम्, ननु, दण्डधृक् ॥२१॥

नृप	राजा परीक्षित् !
एका	एक गोपी
अपराम्	किसी दूसरीके प्रति (जो कालिय सर्प-का भाव दिखा रही थी)
पदा	पैरसे
आक्रम्य	आघात कर (तथा उसके)
शिरसि	सिरपर
आरुह्य	चढ़कर
आह	बोली—
ननु	अरे
दुष्ट	दुष्ट
अहे	सर्प (यहाँसे)
गच्छ	चला जा (तू जान ले)
खलानाम्	खलोंके लिये

दण्डधृक्	दण्ड-विधान करने-वाला	**जातः**	आविर्भूत हो चुका हूँ ॥२१॥
अहम्	मैं		

राजा परीक्षित् ! एक गोपी कालिय नाग बनी तो दूसरी कोई गोपी श्रीकृष्ण बनकर पैरसे ठोकर मारकर और उसके सिरपर चढ़कर बोली—'अरे दुष्ट सर्प ! तू यहाँसे चला जा। मैं दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये ही आविर्भूत हुआ हूँ ॥२१॥

तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम्।
चक्षूंष्याशवपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममञ्जसा ॥२२॥

तत्र, एका, उवाच, हे, गोपाः, दावाग्निम्, पश्यत, उल्बणम्, चक्षूंषि, आशु, अपिदध्वम्, वः, विधास्ये, क्षेमम्, अञ्जसा ॥२२॥

तत्र	वहाँ (श्रीकृष्ण-भावनासे युक्त)	**उल्बणम्**	(नेत्रोंको चौंधिया देनेवाले इस) विचित्र
एका	एक (गोपी) (दावानलसे भीत हुए गोपोंका अनुकरण करने-वाली कतिपय गोपियोंसे)	**दावाग्निम्**	दावानलको
		पश्यत	देखो (किन्तु भय-भीत न होकर)
		आशु	शीघ्र
उवाच	बोली	**चक्षूंषि**	(अपने) नेत्रोंको
हे	हे	**अपिदध्वम्**	मूँद लो
गोपाः	गोपो !	**वः**	तुम लोगोंकी
		क्षेमम्	रक्षा
		अञ्जसा	अनायास ही (मैं)
		विधास्ये	कर दूँगा ॥२२॥

उसी समय एक गोपी श्रीकृष्ण बनकर दावानलसे डरे हुए गोपोंका अनुकरण करनेवाली कई गोपियोंसे बोली—हे गोपो ! देखो वनमें भयंकर दावानल जल उठा है; पर तुमलोग डरो मत, तुरन्त अपनी आँखें मूँद लो। मैं अनायास ही तुमलोगोंकी रक्षा कर लूँगा ॥२२॥

बद्धान्यया स्रजा काचित् तन्वी तत्र उलूखले ।
भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडम्बनम् ॥२३॥

बद्धा, अन्यया, स्रजा, काचित्, तन्वी, तत्र, उलूखले, भीता, सुदृक्, पिधाय, आस्यम्, भेजे, भीतिविडम्बनम् ॥२३॥

तत्र	वहाँ (व्रजेश्वरीका अनुकरण करनेवाली	**भीता**	डरी हुई-सी (बनकर)
अन्यया	किसी दूसरी (गोपी) के द्वारा	**सुदृक्**	सुन्दर नेत्रोंवाले (अपने)
स्रजा	मालाके द्वारा	**आस्यम्**	मुखको (हाथोंसे)
उलूखले	ऊखल (का भाव दिखानेवाली एक गोपी) के साथ	**पिधाय**	ढककर (जैसे जननी-के द्वारा बाँधे हुए श्रीकृष्ण भयभीत हो गये थे, ठीक उस प्रकार रुदन आदि)
बद्धा	बाँधी (जाकर)		
काचित्	कोई एक (कृष्णभाव-भावित)		
तन्वी	कृशांगी (व्रज-सुन्दरी)	**भीति-विडम्बनम्**	भय (की चेष्टाओं) का अनुकरण
		भेजे	करने लगी ॥२३॥

इतनेमें एक गोपीने व्रजेश्वरी श्रीयशोदाजीका भाव ग्रहण किया, दूसरी एक गोपी श्रीकृष्णके भावसे भावित हुई। यशोदा बनी गोपीने फूलोंकी मालासे श्रीकृष्ण बनी गोपीको ऊखलसे बाँधनेकी भाँति बाँध दिया। तब वह श्रीकृष्ण बनी हुई व्रजसुन्दरी डरी हुई-सी अपने सुन्दर नेत्रोंवाले मुखको हाथोंसे ढँककर, जिस प्रकार श्रीकृष्ण यशोदा मैयाके द्वारा बाँधे जानेपर भयभीत हो गये थे, ठीक उसी प्रकार रुदन आदि भयकी चेष्टाओंका अनुकरण करने लगी ॥२३॥

एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून् ।
व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥२४॥

एवम्, कृष्णम्, पृच्छमानाः, वृन्दावनलताः, तरून्, व्यचक्षत, वनोद्देशे, पदानि, परमात्मनः ॥२४॥

एवम्	इस प्रकार
वृन्दावन	वृन्दावनकी
लताः	लताओं (एवं)
तरून्	वृक्षोंको
कृष्णम्	श्रीकृष्ण (के सम्बन्धमें)
पृच्छमानाः	पूछती हुई व्रज-सुन्दरियोंने) (उस)
वनोद्देशे	वन प्रदेशमें (अचानक)
परमात्मनः	परमात्मा (श्रीकृष्ण-चन्द्र) के
पदानि	पद (चिह्नोंकी)
व्यचक्षत	देखा ॥२४॥

इस प्रकार वृन्दावनके वृक्ष-लताओंसे श्रीकृष्णका पता पूछती हुई वे वनमें एक ऐसे स्थानपर पहुँचीं, जहाँ उन्हें अकस्मात् परमात्मा श्रीकृष्ण-चन्द्रके चरणचिह्न दिखायी पड़े ॥२४॥

पद चिह्न देखकर वे बोलीं—

पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः ।
लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥२५॥

पदानि, व्यक्तम्, एतानि, नन्दसूनोः, महात्मनः, लक्ष्यन्ते, हि, ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥२५॥

एतानि	ये
पदानि	पदचिह्न
व्यक्तम्	निश्चित ही
महात्मनः	पुरुषोत्तम
नन्दसूनोः	नन्दनन्दनके (हैं, दूसरेके नहीं)
हि	क्योंकि
ध्वजाम्भोज-	ध्वजा, कमल, वज्र,
वज्राङ्कुश-	अंकुश, यव
यवादिभिः	आदि (के चिह्नों) से (युक्त ये)
लक्ष्यन्ते	दीख पड़ रहे हैं ॥२५॥

चरणचिह्नोंको देखकर वे परस्पर कहने लगीं—ये चरणचिह्न निश्चय ही महात्मा पुरुषोत्तम नन्दनन्दन श्रीश्यामसुन्दरके हैं; क्योंकि

इनमें ध्वजा, कमल, वज्र, अङ्कुश, जौ आदिके चिह्न स्पष्ट दिखायी दे रहे हैं ॥२५॥

तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः ।
वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥२६॥

तैः, तैः, पदैः, तत्पदवीम्, अन्विच्छन्त्यः, अग्रतः, अबलाः, वध्वाः, पदैः, सुपृक्तानि, विलोक्य, आर्ताः, समब्रुवन् ॥२६॥

अबलाः	व्रजसुन्दरियाँ	**पदैः**	पदचिह्नोंसे (श्रीकृष्णपद-चिह्नोंको)
तैः	उन	**सुपृक्तानि**	मिला हुआ (पाया। फिर तो यह)
तैः	उन	**विलोक्य**	देखकर
पदैः	पदचिह्नोंसे	**आर्ताः**	दुःखसे पीड़ित हुई (कुछ गोपियाँ)
तत्पदवीम्	श्रीकृष्णका अस्तित्व	**समब्रुवन्**	कहने लगीं ॥२६॥
अन्विच्छन्त्यः	खोजती हुई— (उन्हींके पीछे-पीछे आगे बढ़ीं; पर तुरन्त ही)		
अग्रतः	सामने		
वध्वाः	(किसी अन्यगोप) व[illegible]के		

उन चरण-चिह्नोंके सहारे प्रियतम श्रीकृष्णको ढूँढ़ती हुई वे व्रज-सुन्दरियाँ आगे बढ़ीं तो उन्हें सामने श्रीकृष्णके चरण-चिह्नोंके साथ ही किसी व्रजवधूके भी चरणचिह्न दिखायी दिये। उन्हें देखकर वे अत्यन्त पीड़ित हुई और परस्पर कहने लगीं ॥२६॥

कस्याः पदानि चैतानि यातायां नन्दसूनुना ।
अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ॥२७॥

कस्याः, पदानि, च, एतानि, यातायाः, नन्दसूनुना, अंसन्यस्त-प्रकोष्ठायाः, करेणोः, करिणा, यथा ॥२७॥

	(ओह !)
यथा	जैसे
	(अपने स्वामी)
करिणा	गजराजके साथ
करेणोः	(किसी) हथिनीका
	(मिलन हो, गजेन्द्र उस हथिनीके कंधे-पर अपनी सूँड़ रख दे और वे दोनों सटे हुए चलें, उसी प्रकार)
अंसन्यस्त-प्रकोष्ठायाः	अपने कंधेपर श्री-कृष्णचन्द्रकी भुजा-को धारण किये
नन्दसूनुना	श्रीकृष्णके साथ-साथ
यातायाः	चलकर गयी हुई
कस्याः	किस (व्रज-सुन्दरी) के
एतानि	ये
च	और (दूसरे)
पदानि	पदचिह्न (दीख रहे हैं ?) ॥२७॥

ओह ! जैसे हथिनी अपने प्रियतम गजराजके साथ जाती हो और गजराज उस हथिनीके कंधेपर अपनी सूँड़ रख दे और दोनों मिलकर चलें, वैसे ही अपने कंधेपर श्रीश्यामसुन्दरकी भुजाको धारण किये हुए उनके साथ-साथ चलनेवाली किस सौभाग्यवती व्रजसुन्दरीके ये दूसरे चरण-चिह्न हैं ॥२७॥

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः ॥२८॥

अनयाः, आराधितः, नूनम्, भगवान्, हरिः, ईश्वरः, यत्, नः, विहाय, गोविन्दः, प्रीतः, याम्, अनयत्, रहः ॥२८॥

अनया	इस (बड़भागिनी गोपी)के द्वारा
नूनम्	निश्चय ही
हरिः	श्रीहरि (सबका मन हरण करने-वाले)
ईश्वरः	सर्वशक्तिमान्
भगवान्	भगवान् श्रीकृष्णकी
आराधितः	भली-भाँति आराधना हुई है,
यत्	जिससे
प्रीतः	प्रसन्न हुए

गोविन्दः	श्रीकृष्णचन्द्र	**याम्**	यह जो (भाग्यवती
नः	हमलोगोंको (तो वनमें)		गोपी) है, इसको (अपने साथ)
विहाय	छोड़कर	**रहः**	एकान्त (स्थान) में
		अनयत्	ले आये ॥२८॥

निश्चय ही यह हमलोगोंका मन हरण करनेवाले सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्णकी आराधना करनेवाली—उनसे परम प्रेम करनेवाली आराधिका—(श्रीराधिका) होगी। उस परमप्रेमके फलस्वरूप ही इसपर रीझकर गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र इस बड़भागिनीको एकान्तमें ले गये हैं और हम लोगोंको वनमें छोड़ दिया है ॥२८॥

धन्या अहो अमी आल्मो गोविन्दांघ्रयब्जरेणवः ।
यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥२९॥

धन्याः, अहो, अमी, आल्यः, गोविन्दांघ्रयब्जरेणवः, यान्, ब्रह्मा, ईशः, रमा, देवी, दधुः, मूर्ध्नि, अघनुत्तये ॥२९॥

कुछ गोपवनिताओंने कहा—

आल्यः	सखियो !	**अघनुत्तये**	(विरह आदि) दुःखोंके नाशके लिये
अहो	अहा !		
अमी	ये		
गोविन्दांघ्रय-ब्जरेणवः	श्रीकृष्णचरणार-विन्दोंके रजःकण	**मूर्ध्नि**	सिरपर
		दधुः	धारण कर चुके हैं। (इन रजःकणोंको सिरपर चढ़ाकर क्या हम उन्हें नहीं पा सकतीं ?) ॥२९॥
धन्याः	अत्यन्त पवित्र (हैं, इसलिये तो)		
यान्	इन (रजःकणों)को		
ब्रह्मा	ब्रह्मा		
ईशः	शंकर		
रमा देवी	भगवती लक्ष्मी (भी)—तीनों		

कुछ व्रजसुन्दरियोंने कहा—प्रिय सखियो ! अहा ! ये श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंके रजःकण धन्य हैं। ये अत्यन्त पवित्र हैं; क्योंकि श्रीकृष्णके पद-कमलोंसे इनका स्पर्श हो चुका है। इसीलिये तो ब्रह्मा. शंकर और लक्ष्मी आदि भी अपने-अपने अशुभों—दुःखोंका नाश करनेके लिये इन्हें मस्तकपर धारण करते हैं। आओ, हम भी इन रजःकणोंको सिरपर चढ़ायें, ये रजःकण अवश्य ही हमारे श्रीकृष्ण वियोगरूप अशुभको दूर कर देंगे। ॥२९॥

तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वन्त्युच्चैः पदानि यत् ।
यैकापहृत्य गोपीनां रहो भुङ्क्तेऽच्युताधरम् ॥३०॥

तस्याः, अमूनि, नः, क्षोभम्, कुर्वन्ति, उच्चैः, पदानि, यत्, या, एका, अपहृत्य, गोपीनाम्, रहः, भुङ्क्ते, अच्युताधरम् ॥३०॥

कुछ गोपियोंने कहा—

	(सखियो !)	एका	अकेली (ही)
तस्याः	उस (गोपी)के		(हम सभी)
अमूनि	ये	गोपीनाम्	गोपियोंकी
पदानि	पदचिह्न		(सार-सर्वस्व वस्तु)
नः	हमलोगोंके	अच्युताधरम्	श्रीकृष्णके अधरा-
	(हृदयमें)		मृतको(हमसे)
उच्चैः	अत्यधिक	अपहृत्य	छीनकर
क्षोभम्	(ईर्ष्याजनित) जलन	रहः	एकान्तमें
कुर्वन्ति	उत्पन्न कर रहे हैं		(जाकर उसका)
यत्	कारण कि	भुङ्क्ते	उपभोग कर रही है
या	(वह) जो		॥३०॥

कुछ गोपियाँ बोलीं—सखियो ! यह तो ठीक है; परन्तु वह जो सखी श्रीकृष्णको एकान्तमें ले जाकर हम सब गोपियोंकी सार-सर्वस्व वस्तु उनके मधुर अधरामृत-रसको हमसे छीनकर अकेली ही उसका पान कर रही है, उसके ये उभरे हुए चरणचिह्न हम सबके हृदयोंमें अत्यधिक जलन उत्पन्न कर रहे हैं ॥३०॥

न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणांकुरैः ।
खिद्यत्सुजाताङ्घितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ॥३१॥

न, लक्ष्यन्ते, पदानि, अत्र, तस्याः, नूनम्, तृणांकुरैः, खिद्यत्सुजाताङ्घितलाम्, उन्निन्ये, प्रेयसीम्, प्रियः ॥३१॥

	(सखियो ! देखो)
अत्र	यहाँ
तस्याः	उस गोपीके
पदानि	चरण-चिह्न
न	नहीं
लक्ष्यन्ते	दीख पड़ रहे हैं
	(अतः)
नूनम्	निश्चय ही
प्रियः	प्रिय श्रीकृष्णने
तृणांकुरैः	घासकी कठोर नोकोंसे
खिद्यत्सु-जाताङ्घि-तलाम्	जिसके सुकुमार तलवोंको पीड़ा हो रही थी,
	(अपनी) उस
प्रेयसीम्	प्रियाको
	(अब आगे)
उन्निन्ये	कंधेपर चढ़ाकर ले गये हैं ॥३१॥

कुछ आगे बढ़नेपर जब गोपियोंको उस गोपीके चरणचिह्न नहीं दिखलायी दिये, तब वे बोलीं—अरी सखियो ! देखो, यहाँ तो उस गोपीके चरण-चिह्न नहीं दिखायी पड़ रहे हैं। जान पड़ता है, प्यारे श्यामसुन्दरने देखा होगा कि हमारी प्रेयसीके सुकुमार तलवोंमें घासकी कठोर नोक गड़ रही है; इसलिये वे हो-न-हो उसको अपने कन्धेपर चढ़ाकर ले गये होंगे। ॥३१॥

इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ।
गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः ॥३२॥

इमानि, अधिकमग्नानि, पदानि, वहतः, वधूम्, गोप्यः, पश्यत, कृष्णस्य, भाराक्रान्तस्य, कामिनः ॥३२॥

गोप्यः	गोपियो ! (यह लो, अपनी प्रेम-पात्री उस गोप-)
वधूम्	वधूको (कंधेपर चढ़ाये)
वहतः	ले जाते हुए (तथा)

भाराक्रान्तस्य	उसके भारसे दबे हुए (परम)
कामिनः	प्रेमी
कृष्णस्य	श्रीकृष्णचन्द्रके
अधिक	(भूमि) अधिक
मग्नानि	धँसे हुए
इमानि	इन
पदानि	चरण-चिह्नोंको
पश्यत	देखो ॥३२॥

उससे कुछ आगे बढ़नेपर उनमेंसे एकने कहा—अरी गोपियो! देखो तो यहाँ श्रीकृष्णके चरण-कमल पृथ्वीमें गहरे धँसे हुए दिखायी देते हैं। निश्चय ही वे प्रेमविह्वल श्यामसुन्दर उस गोपवधूको अपने कन्धेपर चढ़ाकर ले गये हैं, उसीके भारसे उनके ये चरण जमीनमें धँस गये हैं ॥३२॥

अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना।
अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः।
प्रपदाक्रमणे एते पश्यतासकले पदे ॥३३॥

अत्र, अवरोपिता, कान्ता, पुष्पहेतोः, महात्मना, अत्र, प्रसूनावचयः, प्रियार्थे, प्रेयसा, कृतः, प्रपदाक्रमणे, एते, पश्यत, असकले, पदे ॥३३॥

महात्मना	परम उदार-हृदय (श्रीकृष्णचन्द्रने)
पुष्पहेतोः	पुष्प-चयन करनेके लिये
अत्र	यहाँ (इस स्थानपर तो)
कान्ता	अपनी प्रियाको (कंधेसे)
अवरोपिता	नीचे उतार दिया है; (तथा यह देखो)
अत्र	यहाँपर
प्रेयसा	उन प्रेमी श्रीकृष्ण-चन्द्रने
प्रियार्थे	प्रिया (का शृंगार करने) के लिये
प्रसूनावचयः	फूलोंका चयन
कृतः	किया है; (पुष्प चयनके समय)
प्रपदाक्रमणे	चरणोंके अग्रभाग- (पर वे जब खड़े हुए हैं, उस समय चरणाग्र) से भूमि-पर अङ्कित हुए
एते	इन
असकले पदे	असम्पूर्ण चरण-चिह्नोंको (दोनों पैरोंके आधे-आधे भागके चिह्नोंको)
पश्यत	देखो ॥३३॥

सखियो ! महात्मा (नित्य कामविजयी) श्यामसुन्दरने प्रेमवश यहाँ पुष्प चयन करनेके लिये अपनी प्रेयसीको कन्धेसे नीचे उतार दिया है और उन परमप्रेमी व्रज राजकुमारने अपनी प्रियाका शृंगार करनेके लिये उचक-उचककर पुष्पोंका चयन किया है, इससे उनके चरणोंके पंजोंके ही चिह्न पृथ्वीपर उभर पाये हैं। देखो तो यहाँ वे अधूरे चरण चिह्न दिखायी दे रहे हैं ॥३३॥

केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ।
तानि चूडयता कान्तामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥३४॥

केशप्रसाधनम्, तु, अत्र, कामिन्याः, कामिना, कृतम्, तानि, चूडयता, कान्ताम्, उपविष्टम्, इह, ध्रुवम् ॥३४॥

अत्र	यहाँपर	**तानि**	उन (पुष्पों) को (लेकर उनसे)
तु	तो		
कामिना	प्रेमी श्रीकृष्णचन्द्रने	**कान्ताम्**	प्रियाका
कामिन्याः	उस प्रेमिकाके	**चूडयता**	शिरोभूषण निर्मित करते हुए (वे)
केशप्रसाधनम्	केशोंकी रचना की है (तथा चयन किये हुए)	**इह**	यहाँपर
		ध्रुवम्	निश्चय ही
कृतम्		**उपविष्टम्**	बैठे हैं ॥३४॥

देखो ! यहाँ उन प्रेमी श्रीश्यामसुन्दरने उस प्रेमिकाके केश सँवारे हैं और निश्चय ही यहाँ बैठकर उन्होंने अपने कर-कमलों द्वारा चुने हुए पुष्पों द्वारा अपनी कान्ताको चूडामणिसे सजाया है ॥३४॥

रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डितः ।
कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥३५॥

रेमे, तया, च, आत्मरतः, आत्मारामः, अपि, अखण्डितः, कामिनाम्, दर्शयन्, दैन्यम्, स्त्रीणाम्, च, एव, दुरात्मताम् ॥३५॥

आत्मरतः	आत्मामें ही संतुष्ट रहनेवाले	**आत्मारामः**	आत्मामें ही रमण करनेवाले (श्रीकृष्णचन्द्र)
च	और		

अखण्डितः	स्त्री-विलाससे सर्वथा अनाकृष्ट रहनेपर
अपि	भी
कामिनाम्	स्त्री-कामुकोंकी
दैन्यम्	दीनता
च	एवं
स्त्रीणाम्	स्त्रियोंकी
दुरात्मताम्	कुटिलता (की लीला)
दर्शयन्	दिखलाते हुए (जगत्के जीवोंको शिक्षा देते हुए जिसे वे अपने साथ ले आये थे)
तया	उस (व्रजसुन्दरी) के साथ
एव	ही
रेमे	विहार कर रहे थे ॥३५॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! श्रीकृष्ण नित्य अपने स्वरूपमें ही सन्तुष्ट और पूर्ण हैं, वे नित्य-निरन्तर आत्मामें ही रमण करनेवाले हैं, वे अखण्ड हैं—उनके सिवा और कोई है ही नहीं; अतः कामिनियोंका कोई भी विलास उनको कभी अपनी ओर नहीं खींच सकता। इतनेपर भी वे कामियोंकी दीनता—स्त्रीपरवशता और स्त्रियोंकी कुटिलता दिखलाते हुए उस व्रजसुन्दरीके साथ एकान्तमें (अपने आत्माराम स्वरूपसे सर्वथा अच्युत तथा उसमें नित्यप्रतिष्ठित रहते हुए ही) विहार कर रहे थे ॥३५॥

इत्येवं दर्शयन्त्यस्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतसः ।
यां गोपीमनयत् कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने ॥३६॥

सा च मेने तदाऽऽत्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम् ।
हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः ॥३७॥

इति, एवम्, दर्शयन्त्यः, ताः, चेरुः, गोप्यः, विचेतसः, याम्, गोपीम्, अनयत्, कृष्णः, विहाय, अन्याः, स्त्रियः, वने ॥३६॥

सा, च, मेने, तदा, आत्मानम्, वरिष्ठम्, सर्वयोषिताम्, हित्वा, गोपीः, कामयानाः, माम्, असौ, भजते, प्रियः ॥३७॥

किन्तु उन व्रजसुन्दरियोंको कुछ पता नहीं था कि नन्दनन्दन कहाँ, किस स्थानपर हैं ।

ताः	वे	**अनयत्**	ले गये थे
गोप्यः	गोपियाँ (तो)	**सा**	वह
इति एवम्	उपर्युक्त प्रकारसे (उनके पदचिह्न एवं अपनी प्रियाके केशप्रसाधन आदिके चिह्नोंको परस्पर)	**च**	भी—(जब श्रीकृष्णसे उसे अत्यधिक प्रेम मिला)
दर्शयन्त्यः	दिखलाती हुई	**तदा**	तब—(मानिनी होकर)
विचेतसः	व्याकुल-चित्त हुई (इस वनसे उस वनमें)	**आत्मानम्**	अपनेको
चेरुः	घूम रही थीं (पर इसी बीचमें इधर एक और लीला हो गयी)	**सर्वयोषिताम्**	समस्त स्त्रियोंकी (अपेक्षा अधिक)
कृष्णः	श्रीकृष्णचन्द्र	**वरिष्ठम्**	श्रेष्ठ
अन्याः	अन्य	**मेने**	मानने लगी (क्योंकि उसने सोचा)
स्त्रियः	(ब्रज) वनिताओंको	**असौ**	ये
वने	वनमें	**प्रियः**	प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र (उन्हें)
विहाय	छोड़कर	**कामयानाः**	चाहनेवाली (और सभी)
याम्	जिस	**गोपीः**	गोपियोंको
गोपीम्	गोपिकाको (अपने साथ)	**हित्वा**	छोड़कर (केवल)
		माम्	मुझे (ही)
		भजते	भज रहे हैं

॥३६-३७॥

वे गोप-सुन्दरियाँ श्रीश्यामसुन्दरमें तन्मय होकर एक-दूसरीको श्रीश्यामसुन्दरके तथा उनकी प्रियाके चरण-चिह्नोंको दिखलाती हुई उन्हें ढूँढ़नेके लिये व्याकुल हृदय होकर वन-वन भटक रही थीं। इस बीचमें उधर यह लीला हुई कि श्रीकृष्णचन्द्र दूसरी व्रजवनिताओंको वनमें छोड़कर जिस भाग्यवती गोपीको एकान्तमें ले गये थे, उसके मनमें यह अभिमानका भाव आ गया कि 'मैं ही समस्त गोपियोंसे श्रेष्ठ हूँ। इसीलिये प्यारे श्यामसुन्दर सब गोपियोंको छोड़कर एकमात्र मुझको ही चाहते हैं और मुझ-को ही भज रहे हैं—मुझसे ही सुख प्राप्त कर रहे हैं' ॥३६-३७॥

ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् ।
न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥३८॥

ततः, गत्वा, वनोद्देशम्, दृप्ता, केशवम्, अब्रवीत्, न, पारये, अहम्, चलितुम्, नय, माम्, यत्र, ते, मनः ॥३८॥

ततः	ऐसा मान उदय होनेके पश्चात्	**चलितुम्**	चल
वनोद्देशम्	वनके एक स्थानपर	**न**	नहीं
गत्वा	जाकर	**पारये**	पा रही हूँ;
दृप्ता	गर्वित हुई (वह गोपी)	**यत्र**	जहाँ
केशवम्	श्रीकृष्णचन्द्रके प्रति	**ते**	तुम्हारी
अब्रवीत्	बोली	**मनः**	इच्छा हो (वहीं)
अहम्	मैं (अब)	**माम्**	मुझे (उठाकर)
		नय	ले चलो ॥३८॥

इस प्रकार अभिमानका आविर्भाव होनेपर वह गोपी वनमें एक स्थानपर जाकर सौभाग्यमदसे मतवाली हो गयी और श्रीकृष्णसे—जो ब्रह्मा और शंकरके भी शासक हैं—कहने लगी—'अब तो मुझसे चला नहीं जाता। मेरे कोमल चरण थक गये हैं, अतः तुम जहाँ चलना चाहो, मुझे अपने कंधेपर चढ़ाकर वहाँ ले चलो ॥३८॥

एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्ध आरुह्यतामिति ।
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥३९॥

एवम्, उक्तः, प्रियाम्, आह, स्कन्धे, आरुह्यताम्, इति, ततः, च, अन्तर्दधे, कृष्णः, सा, वधूः, अन्वतप्यत ॥३९॥

एवम्	इस प्रकार	**स्कन्धे**	कन्धेपर
उक्तः	कहे जानेपर	**आरुह्यताम्**	चढ़ लो—
कृष्णः	श्रीकृष्णचन्द्रने (अपनी)	**इति**	यह
		आह	कहा
प्रियाम्	प्रियाको— अच्छा प्यारी ! तुम अब मेरे)	**च ततः**	और इसके पश्चात् (वे)

अन्तर्दधे	अन्तर्धान हो गये (फिर तो)	**वधूः**	(गोप) वधू
सा	वह	**अन्वतप्यत**	अविराम विलाप करने लगी ॥३९॥

अपनी प्रियतमाकी गर्वभरी वाणी सुनकर श्रीश्यामसुन्दरने उससे कहा—'अच्छा प्रिये ! अब तुम मेरे कंधेपर चढ़ जाओ।' यह सुनकर ज्यों ही वह गोपी कंधेपर चढ़ने लगी, त्यों ही भगवान् अन्तर्धान हो गये; तब तो उन्हें न देखकर वह गोप-वधू अविरत रोने-कलपने लगी ॥३९॥

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय संनिधिम् ॥४०॥

हा, नाथ, रमण, प्रेष्ठ, क्व, असि, क्व, असि, महाभुज, दास्याः, ते, कृपणायाः, मे, सखे, दर्शय, संनिधिम् ॥४०॥

हा	हा	**असि**	हो
नाथ	प्राणेश्वर !	**सखे**	हे (मेरे प्राण-) सखा !
रमण	(हा) रमण !		
प्रेष्ठ	(हा) प्रियतम !	**ते**	तुम्हारी (इस)
महाभुज	(हा) महाबाहो ! (तुम)	**कृपणायाः**	दीन
		दास्याः	दासी
क्व	कहाँ	**मे**	मुझको (अपना)
असि	हो,	**संनिधिम्**	सांनिध्य
क्व	कहाँ	**दर्शय**	दिखा दो ॥४०॥

वह कातर कण्ठसे बोली—'हा प्राणनाथ ! हा रमण ! हा प्रियतम ! हा महाबाहो ! तुम कहां हो, कहां हो ? हे मेरे प्राणसखा ! मैं तुम्हारी अत्यन्त दीन दासी हूँ। शीघ्र ही मुझे अपने सांनिध्यका दर्शन कराओ, मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दो ॥४०॥

अन्विच्छन्त्यो भगवतो मार्गं गोप्योऽविदूरतः ।
ददृशुः प्रियविश्लेषमोहितां दुःखितां सखीम् ॥४१॥

अन्विच्छन्त्यः, भगवतः, मार्गम्, गोप्यः, अविदूरतः, ददृशुः, प्रियविश्लेषमोहिताम्, दुःखिताम्, सखीम् ॥४१॥

राजा परीक्षित् ! इतनेमें ही—

भगवतः	भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रके
मार्गम्	(गमन-) पथको
अन्विच्छन्त्यः	ढूँढ़ती हुई (अन्य)
गोप्यः	गोपियाँ (इस ओर आ पहुँचीं तथा)
अविदूरतः	अत्यन्त निकटसे (उन्होंने)
प्रियविश्लेष मोहिताम्	प्रिय-वियोगसे मूर्छित हुई
दुःखिताम्	(अत्यन्त) दुःखिनी (अपनी) इस
सखीम्	सखीको
ददृशुः	देख लिया ॥४१॥

परीक्षित् ! इसी बीच भगवान् श्रीकृष्णके चरण-चिह्नोंके सहारे उनके जानेके मार्गको ढूँढ़ती हुई गोपियाँ वहाँ आ पहुँचीं और उन्होंने बहुत ही समीप आकर देखा कि उनकी भाग्यवती सखी अपने प्रियतमके वियोगसे अत्यन्त दुखी होकर मूर्छित पड़ी है ॥४१॥

तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् ।
अवमानं च दौरात्म्याद् विस्मयं परमं ययुः ॥४२॥

तया, कथितम्, आकर्ण्य, मानप्राप्तिम्, च, माधवात्, अवमानम्, च, दौरात्म्यात्, विस्मयम्, परमम्, ययुः ॥४२॥

	(श्रीकृष्णविरहिणी)
तया	उस (गोपसुन्दरीके मुख) से
कथितम्	वर्णित—
माधवात्	माधवके द्वारा
मानप्राप्तिम्	आदर पानेकी
च	एवं (अपनी ही)
दौरात्म्यात्	कुटिलताके कारण
अवमानम्	(परित्याग रूप) अपमान पानेकी
च	दोनों ही (घटनाओं-को)
आकर्ण्य	सुनकर (वे)
परमम्	परम
विस्मयम्	विस्मयको
ययुः	प्राप्त हुईं ॥४२॥

तब उन्होंने और भी समीप आकर प्रयत्न करके उसको मूर्छासे जगाया। जागनेपर प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके विरहमें कातर हुई उस गोपसुन्दरीने भगवान् माधवके द्वारा उसे जो प्रेम तथा सम्मान प्राप्त हुआ

था, वह सुनाया तथा यह भी बतलाया कि फिर 'मैंने ही गर्वमें भरकर कुटिलतावश उनका अपमान किया, तब वे मुझे छोड़कर अन्तर्धान हो गये।' इन दोनों विचित्र घटनाओंको सुनकर गोपियोंको परम आश्चर्य हुआ ॥४२॥

ततोऽविशन् वनं चन्द्रज्योत्स्ना यावद् विभाव्यते ।
तमःप्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः ॥४३॥

ततः, अविशन्, वनम्, चन्द्रज्योत्स्ना, यावत्, विभाव्यते, तमः, प्रविष्टम्, आलक्ष्य, ततः, निववृतुः, स्त्रियः ॥४३॥

ततः	तदनन्तर	**तमः**	अत्यन्त
स्त्रियः	समस्त (व्रजगोपिकाएँ)	**प्रविष्टम्**	अन्धकारमय (गहन वन)
यावत्	जहाँ तक	**आलक्ष्य**	देखकर (और यह सोचकर कि हमें देखकर श्रीकृष्णचन्द्र और भी छिप जायँगे और हमें नहीं मिलेंगे, वे उधरसे)
चन्द्रज्योत्स्ना	चन्द्रमाकी किरणें		
विभाव्यते	परिलक्षित हो रही थीं, (वहाँ तक श्रीकृष्णचन्द्रको ढूँढ़ती हुई)		
वनम्	वनमें		
अविशन्	चली गयीं; (किन्तु)	**निववृतुः**	लौट पड़ीं ॥४३॥
ततः	इससे आगे		

तदनन्तर वनमें जहाँ तक चन्द्रमाकी किरणें छिटक रही थीं, वहाँ तक तो वे समस्त व्रजगोपियाँ श्यामसुन्दरको ढूँढ़ती हुई चली गयीं; परन्तु आगे जब उन्होंने अत्यन्त अन्धकारमय गहन वन देखा, तब यह सोचा कि यदि हम इस अन्धकारमें उन्हें ढूँढ़ती हुई चली जायँगी तो वे और भी घने अन्धकारमय वनमें जा छिपेंगे और हमें नहीं मिलेंगे, इसलिये वे उधरसे वापस चली आयीं ॥४३॥

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥४४॥

तन्मनस्काः, तदालापाः, तद्विचेष्टाः, तदात्मिकाः तद्गुणान्, एव, गायन्त्यः, न, आत्मागाराणि, सस्मरुः ॥४४॥

तन्मनस्काः	उन (श्रीकृष्णचन्द्र) में ही मनवाली	**गायन्त्यः**	गान करती हुई (ऐसी तन्मय हो रही थीं कि वे अपने)
तदालापाः	उनकी ही चर्चामें रत हुई	**आत्मागाराणि**	देह-गेहकी (भी)
तद्विचेष्टाः	उनके निमित्त ही समस्त चेष्टाएँ करनेवाली	**न सस्मरुः**	स्मृति न कर सकीं (अपने आपके सहित घर-बार, सब कुछ वे भूल गयी थीं) ॥४४॥
तदात्मिकाः	उन्हींमें घुली-मिली (गोपियाँ)		
तद्गुणान्	उनके गुणोंका		
एव	ही		

उन सब गोपियोंका मन श्रीकृष्णचन्द्रके मनवाला हो रहा था, उनकी वाणी केवल श्रीकृष्णकी ही चर्चामें लगी हुई थी, उनके शरीर-से होनेवाली प्रत्येक चेष्टा केवल श्रीकृष्णके लिये और श्रीकृष्णकी ही थी। वे श्रीकृष्णमें ही सर्वथा घुल-मिल गयी थीं, श्रीकृष्णके गुणोंका ही गान कर रही थीं। वे इतनी तन्मय हो रही थीं कि उन्हें अपने देह-गेहकी भी सुध नहीं थी, फिर घर-बारकी स्मृति तो होती ही कैसे ॥४४॥

पुनः पुलिनमागत्य कालिन्द्याः कृष्णभावनाः।
समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकाङ्क्षिताः ॥४५॥

पुनः, पुलिनम्, आगत्य, कालिन्द्याः, कृष्णभावनाः, समवेताः, जगुः, कृष्णम्, तदागमनकाङ्क्षिताः ॥४५॥

कृष्णभावनाः	श्रीकृष्णकी भावनासे युक्त	**समवेताः**	एकत्र हुई (वे गोपियां)
तदागमन-काङ्क्षिताः	उनके आगमनकी आकाङ्क्षा लिये	**पुनः**	पुनः
		कालिन्द्याः	कालिन्दीके

पुलिनम्	पुलिनपर (चली आयीं तथा वहां)	**कृष्णम्**	श्रीकृष्णचन्द्रका (ही)
आगत्य	आकर	**जगुः**	(गुण-) गान करने लगीं ॥४५॥

श्रीकृष्णके शीघ्र ही आगमनकी आकाङ्क्षासे एकत्र होकर श्रीकृष्ण-की भावनासे ही तन्मय हुई वे सब भाग्यवती व्रजसुन्दरियाँ फिर श्रीयमुना-जीके पावन पुलिनपर लौट आयीं और वहाँ सब मिलकर प्रियतम श्रीकृष्ण-की लीलाओंका मधुर गान करने लगीं ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे रासक्रीडायां कृष्णान्वेषणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

अथ एकत्रिंशोऽध्यायः

गोपा ऊचुः

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥१॥

जयति, ते, अधिकम्, जन्मना, व्रजः, श्रयते, इन्दिरा, शश्वत्, अत्र, हि, दयित, दृश्यताम्, दिक्षु, तावकाः, त्वयि, धृतासवः, त्वाम्, विचिन्वते ॥१॥

दयित	हे प्रिय !		गोपियां तुम्हारे
ते	तुम्हारे		विरहकी ज्वालामें
जन्मना	जन्मसे (यह)		जल रही हैं)
व्रजः	व्रज (समस्त लोकों-	**त्वयि**	तुममें
	की अपेक्षा—और	**धृतासवः**	अपने प्राण समर्पित
	तो क्या, वैकुण्ठसे		किये हुई (हम सब)
	भी)	**तावकाः**	तुम्हारी (प्रिय
अधिकम्	अधिक		गोपियां)
जयति	श्रेष्ठ बन गया है	**त्वाम्**	तुम्हें
हि	क्योंकि	**दिक्षु**	सब ओर
इन्दिरा	लक्ष्मी	**विचिन्वते**	ढूँढ़ रही हैं
शश्वत्	सदा		(इसीलिये जीवित
अत्र	यहीं		बची हुई हैं, अन्यथा
श्रयते	(व्रजको अलंकृत		विरहकी आगमें
	करती हुई) निवास		कभी की भस्म हो
	कर रही हैं (किन्तु		जातीं, पर अब तो)
	ऐसे महासुखपूर्ण	**दृश्यताम्**	दीख जाओ ॥१॥
	व्रजमें हम सब		

श्रीकृष्णके विरहमें व्याकुल वे प्रेममयी गोपियाँ गाने लगीं—'हे प्रियतम ! तुम्हारे प्रकट होनेके कारण इस व्रजका गौरव वैकुण्ठ आदि दिव्य-लोकोंसे भी अधिक हो गया है; तभी तो अखिल सौन्दर्य-माधुर्यकी दिव्य मूर्ति श्रीलक्ष्मीजी अपने नित्य निवास वैकुण्ठको छोड़कर इस व्रजको सुशोभित करती हुई यहाँ निरन्तर निवास कर रही हैं। इस महान् सुखसे पूर्ण सौभाग्यमय व्रजमें हम गोपियाँ ही ऐसी हैं, जो तुम्हारी होकर भी, तुममें अपने प्राणोंको पूर्णरूपसे समर्पण करके भी वन-वन भटककर सब ओर तुम्हें ढूँढ़ रही हैं, पर तुम मिल नहीं रहे हो। विरह ज्वालासे जलती हुई भी इसी आशासे हम सर्वथा भस्म नहीं हो रही हैं कि तुम शीघ्र मिलोगे ! अतएव अब तुम तुरन्त दीख जाओ ॥१॥

शरदुदाशये साधुजातसद्-
सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका
वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥२॥

शरदुदाशये, साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा, दृशा, सुरतनाथ, ते, अशुल्कदासिकाः, वरद, निघ्नतः, न, इह, किम्, वधः ॥२॥

सुरतनाथ	हे रसेश्वर !
वरद	हे वरद !
शरदुदाशये	शरत्कालीन सरोवरमें
साधुजात-	सुन्दर प्रकारसे
सत्सर-	उत्पन्न उत्कृष्ट
सिजोदर-	जातिके विकसित
श्रीमुषा	कमलकोशोंकी शोभा अपहरण करनेवाले
दृशा	(अपने) नेत्रसे
अशुल्कदा-	बिना मोलकी
सिकाः	दासियाँ (हम सब) को
निघ्नतः	मार डालनेवाले
ते	(निर्दयी) तुम्हारी (यह चेष्टा)
किम्	क्या
इह	इस जगत्में
वधः	वध
न	नहीं (कहा जायगा) ॥२॥

हे हमारे रसेश्वर ! हे वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ ! हम तुम्हारी बिना मोलकी दासियाँ हैं। तुम शरद्ऋतुके सरोवरमें खिले हुए उत्कृष्ट जातिके परमसुन्दर कमलकोशोंकी कर्णिकाकी सौन्दर्य-सुषमाको चुरानेवाले अपने नेत्रोंकी मारसे हमें मार चुके हो। इस जगत्में इस प्रकार नेत्रोंसे किसीको मार डालना क्या वध नहीं है ॥२॥

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्
वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभया-
दृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥३॥

विषजलाप्ययात्, व्यालराक्षसात्, वर्षमारुतात्, वैद्युतानलात्, वृषमयात्मजात्, विश्वतः, भयात्, ऋषभ, ते, वयम्, रक्षिताः, मुहुः ॥३॥

ऋषभ	हे पुरुष श्रेष्ठ	**त्मजात्**	मयके पुत्र व्योमा-
विषजला-	(कालियह्रदके)		सुरसे (तथा ऐसे-
प्ययात्	विषमय जलपानके		ऐसे)
	कारण होनेवाली	**विश्वतः**	सब प्रकारके अनेक
	मृत्युसे	**भयात्**	भयोंसे
व्यालराक्षसात्	अघासुरसे	**ते**	तुम्हारे द्वारा
वर्षमारुतात्	इन्द्रकृत वर्षा, घोर	**वयम्**	हम सब (की)
	आँधी अथवा बवंडर-	**मुहुः**	बार-बार
	का रूप धारण किये	**रक्षिताः**	रक्षा हुई है (किन्तु
	हुए तृणावर्त दैत्यसे		आज जब हम सब
वैद्युतानलात्	इन्द्रके वज्रपातसे,		तुम्हारे विरहमें भस्म
	दावानलसे,		होने जा रही हैं, तब
वृषमया-	अरिष्टासुर एवं		तुम उपेक्षा क्यों कर
			रहे हो) ॥३॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! कालियह्रदके विषमय जलपानके कारण होनेवाली मृत्युसे, अघासुरसे, इन्द्रकी वर्षा, आंधी अथवा तृणावर्त दैत्यसे, तथा वज्र-पातसे, भीषण दावानलसे, अरिष्ठासुर और मयके पुत्र व्योमासुर आदिसे

और इसी प्रकारके अनेक भयोंसे तुमने ही तो बार-बार हमारी रक्षा की थी। फिर आज तुम्हीं अपनी विरहज्वालासे हमें क्यों भस्म कर रहे हो ॥३॥

न खलु गोपिकानन्दनो भवा-
नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥४॥

न, खलु, गोपिकानन्दनः, भवान्, अखिलदेहिनाम्, अन्तरात्मदृक्, विखनसा, अर्थितः, विश्वगुप्तये, सखे, उदेयिवान्, सात्वताम्, कुले ॥४॥

सखे	हे सखे !	**विश्वगुप्तये**	विश्वकी रक्षाके लिये
भवान्	आप	**अर्थितः**	प्रार्थना किये जानेपर
खलु	निश्चय ही	**सात्वताम्**	यादवोंके
गोपिका-नन्दनः	यशोदाके पुत्र (मात्र)	**कुले**	कुलमें
न	नहीं हैं (अपितु)	**उदेयिवान्**	आविर्भूत हुए हैं (अतः सबकी रक्षा-के लिये अवतीर्ण हुए आपकी हमारे प्रति ऐसी निर्दय चेष्टा तो सर्वथा अनुचित है) ॥४॥
अखिल-देहिनाम्	समस्त प्राणियोंके		
अन्तरात्मदृक्	अन्तरात्मा—(अन्तःकरण) के साक्षी हैं (आप तो)		
विखनसा	ब्रह्माके द्वारा		

हम जानती हैं कि आप निश्चय ही केवल यशोदा मैयाके लाला ही नहीं हैं, अपितु समस्त प्राणियोंके अन्तरात्माके साक्षी हैं। ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुनकर विश्वकी रक्षाके लिये ही आप यदुकुलमें आविर्भूत हुए हैं। इस प्रकार विश्वभरकी रक्षाके लिये अवतीर्ण होकर भी आप हमारे प्रति इतने निर्दय होकर हमें क्यों मार रहे हैं ॥४॥

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते
चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं
शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥५॥

विरचिताभयम्, वृष्णिधुर्य, ते, चरणम्, ईयुषाम्, संसृतेः, भयात्, करसरोरुहम्, कान्त, कामदम्, शिरसि, धेहि, नः, श्रीकरग्रहम् ॥५॥

वृष्णिधुर्यकान्त	हे यादव श्रेष्ठ ! हे प्रिय !	**श्रीकरग्रहम्**	लक्ष्मीके करपल्लव-को धारण करनेवाले
संसृतेः	संसारके	**कामदम्**	सबकी अभीष्टपूर्ति करनेवाले (अपने)
भयात्	भयसे	**करसरोरुहम्**	कर-कमल
ते	तुम्हारे	**नः**	हम लोगोंके
चरणम्	चरणकी शरणमें	**शिरसि**	सिरपर (भी)
ईयुषाम्	आये (प्राणियोंको)	**धेहि**	रख दो ॥५॥
विरचिताभयम्	अभय देनेवाले		

हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! संसारसे—जन्म-मरणके चक्रसे भयभीत होकर जो प्राणी तुम्हारे चरणोंकी शरणमें आ जाते हैं, तुम्हारे कर-कमल उनको अभय कर देते हैं। श्रीलक्ष्मीजीके कर-कमलको धारण करनेवाला तथा सबकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला वह अपना कर-कमल हमारे सिरपर रख दो—शीघ्र दर्शन देकर हमें भी अभय कर दो ॥५॥

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां
निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किंकरीः स्म नो
जलरुहाननं चारु दर्शय ॥६॥

व्रजजनार्तिहन्, वीर, योषिताम्, निजजनस्मयध्वंसनस्मित, भज, सखे, भवत्किंकरीः, स्म, नः, जलरुहाननम्, चारु, दर्शय ॥६॥

व्रजजना-	व्रजवासियोंके
तिहन्	दुःख मिटानेवाले
वीर	हे वीर !
निजजनस्मय-	अपने जनोंके गर्वको
ध्वंसनस्मित	ध्वंस कर देनेवाली मन्द मुसकान (अधरोंपर) धारण करनेवाले !
सखे	हे जीवन-सखा !
भवत्किंकरीः	आपकी अपनी ही दासी
नः	हम सबका (अब)
भज स्म	निश्चय ही स्मरण सुधि लो; (तथा अपना)
चारु	सुन्दर
जलरुहाननम्	मुख-कमल (हम)
योषिताम्	अबलाओंके (समक्ष)
दर्शय	प्रकट कर दो ॥६॥

हे व्रजवासियोंके दुःखोंका नाश करनेवाले वीरशिरोमणि ! तुम्हारी मधुर मन्द मुसकान तुम्हारे प्रेमीजनोंके गर्वका ध्वंस करनेवाली है। हे हमारे प्राणसखा ! हम सब तुम्हारी दासियाँ हैं, हमें अवश्य प्रेमदान दो और हम अबलाओंको अपना मनोहर मुखकमल दिखलाकर सुखी करो ॥६॥

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं
तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं
कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥७॥

प्रणतदेहिनाम्, पापकर्शनम्, तृणचरानुगम्, श्रीनिकेतनम्, फणिफणार्पितम्, ते, पदाम्बुजम्, कृणु, कुचेषु, नः, कृन्धि, हृच्छयम् ॥७॥

(मेरे प्रियतम !)

प्रणत-	शरणागत
देहिनाम्	मनुष्योंके
पापकर्शनम्	पापोंको नष्ट कर देनेवाले
तृणचरानुगम्	तृणचर पशुओंके पीछे-पीछे चलनेवाले
फणिफणार्पितम्	कालियके फणपर स्थापित हुए (तथा)
श्रीनिकेतनम्	लक्ष्मीके आश्रयभूत
ते	अपने
पदाम्बुजम्	चरणारविन्दको
नः	हम सबोंके
कुचेषु	वक्षःस्थलपर

कृणु	रख दो (तथा इस प्रकार हमारे)	**हृच्छयम्**	हृदयकी जलन
		कृन्धि	मिटा दो ॥७॥

तुम्हारे जो चरण-कमल शरणमें आये हुए मनुष्योंके समस्त पापोंको नष्ट कर डालते हैं, जो समस्त सौन्दर्यश्रीके धाम हैं—श्रीलक्ष्मीजीके परम आश्रयभूत हैं, जो घास चरनेवाले गौ-वत्सोंके पीछे-पीछे चलते हैं तथा जिन्होंने कालियनागके फणोंपर चढ़कर नृत्य किया था, उन अपने चरण-सरोजोंको हमारे वक्षःस्थल रख दो। हमारे हृदय तुम्हारे विरहकी ज्वालासे जल रहे हैं, इस प्रकार चरण-सरोजोंको रखकर उस जलनको मिटा दो ॥७॥

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया
बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यती-
रधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥८॥

मधुरया, गिरा, वल्गुवाक्यया, बुधमनोज्ञया, पुष्करेक्षण, विधिकरीः, इमाः, वीरः, मुह्यतीः, अधरसीधुना, आप्याययस्व, नः ॥८॥

पुष्करेक्षण	हे कमल-नयन !	**गिरा**	वाणी
वीर	हे दानवीर ! (तुम्हारी)	**मुह्यतीः**	मोहित हुई
		इमाः	इन
मधुरया	मधुर	**नः**	हम सब
वल्गुवाक्यया	मनोहर पदोंसे युक्त (एवं)	**विधिकरीः**	किंकरियोंको
बुधमनोज्ञया	गाम्भीर्यके कारण पण्डितोंको भी आनन्द देनेवाली	**अधरसीधुना**	अधरोंके मादक मधुसे
		आप्याययस्व	आप्यायित कर जीवनदान दो ॥८॥

हे कमलनयन ! तुम्हारे वचन बड़े ही मधुर हैं, उनका एक-एक पद परम मनोहर है। बड़े-बड़े पण्डित भी उनके गाम्भीर्यपर मुग्ध हो जाते हैं। उन वचनोंसे हम सब गोपियाँ मोहित हो रही हैं। हम सभी तुम्हारे

चरणोंकी किंकरियाँ हैं। हमारे प्राण निकले जा रहे हैं। हे दानवीर ! तुम अपनी दिव्य मधुर अधर-सुधा पिलाकर हम सबको आप्यायित करो और जीवनदान दो ॥८॥

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥९॥

तव, कथामृतम्, तप्तजीवनम्, कविभिः, ईडितम्, कल्मषापहम्, श्रवणमङ्गलम्, श्रीमत्, आततम्, भुवि, गृणन्ति, ते, भूरिदाः, जनाः ॥९॥

	(हे प्राणेश्वर ! जो मनुष्य)	**कथामृतम्**	लीला-कथारूप अमृतका
तप्तजीवनम्	जलते हुए प्राणियोंको जीवनदान करनेवाले	**भुवि**	पृथ्वीपर
		गृणन्ति	कीर्तन करते हैं
कविभिः	ब्रह्मज्ञ पुरुषोंके द्वारा (भी)	**ते**	वे (जगत्में)
		भूरिदाः	बहुत बड़े दानी
ईडितम्	स्तुत	**जनाः**	लोग हैं (यह तो तुम्हारी लीला-कथाका माहात्म्य है, तुम्हारे दर्शनकी महिमा कौन बताये। इसीलिये हमारी प्रार्थना है कि परमदुर्लभ दर्शन देकर हमें कृतार्थ करो) ॥९॥
कल्मषा-पहम्	(समस्त) पापोंके नाशक		
श्रवणमङ्गलम्	सुनने मात्रसे परम मंगलदायक		
श्रीमत्	प्रेमरूपी परम सम्पत्तिदायक (एवं)		
आततम्	(अत्यन्त) विस्तृत		
तव	तुम्हारे		

हे प्राणेश्वर ! तुम्हारी लीला-कथा अमृतमयी है। वह जलते हुए प्राणियोंको जीवनदान करती है, बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी कवियोंने उसका गान तथा स्तवन किया है, उसके श्रवण-कीर्तनसे सब पापोंका नाश होता है। जो श्रवणमात्रसे ही प्रेमरूपी परम सम्पत्तिका दान करती है, ऐसी अत्यन्त

विस्तृत कथाका पृथ्वीपर जो कीर्तन—गान करते हैं, वे जगत्में सबसे बड़े दानी लोग हैं। यह तुम्हारी लीला-कथाकी महिमा है। तुम्हारे दर्शनकी महिमा तो अवर्णनीय है ॥९॥

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं
विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् ।
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः
कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥१०॥

प्रहसितम्, प्रिय, प्रेमवीक्षणम्, च, ते, ध्यानमङ्गलम्, रहसि, संविदः, याः, हृदिस्पृशः, कुहक, नः, मनः, क्षोभयन्ति, हि ॥१०॥

कुहक	अरे छलिया !	**हृदिस्पृशः**	हृदयस्पर्शी (विनोद तथा प्रेमभरी)
प्रिय	ओ प्यारे !	**संविदः**	संकेत-चेष्टाएँ हैं, (वे सभी बातें इस
ध्यानमङ्गलम्	ध्यानमात्रसे परम आनन्द देनेवाले		समय)
ते	तुम्हारे	**नः**	हमारे
प्रहसितम्	हास्य	**मनः**	मनको
प्रेमवीक्षणम्	प्रीतिभरी दृष्टि	**हि**	निश्चय ही
विहरणम्	(हमारे साथ) बिहार	**क्षोभयन्ति**	क्षुब्ध कर रही हैं ॥१०॥
च	तथा		
याः	जो		
रहसि	एकान्तकी		

हमारे प्यारे श्यामसुन्दर ! तुम्हारे ध्यानमात्रसे ही परम आनन्द प्राप्त होता है। फिर हमें तो तुमने अपनी मधुर हँसी, प्रेमभरी दृष्टि तथा लीलाविहार सुख प्रदान किया था; एकान्तमें हमारे साथ हृदयस्पर्शी विनोद तथा प्रेमभरी संकेत-चेष्टाएँ की थीं। अरे छलिया ! आज वे ही तुम हमलोगोंसे छिप गये। तुम्हारी वे सभी प्रेमभरी बातें इस समय याद आ रही हैं और हमारे मनको क्षुब्ध कर रही हैं ॥१०॥

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून्
नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।

शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः
कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥११॥

चलसि, यत्, व्रजात्, चारयन्, पशून्, नलिनसुन्दरम्, नाथ, ते, पदम्, शिलतृणाङ्कुरैः, सीदति, इति, नः, कलिलताम्, मनः, कान्त, गच्छति ॥११॥

नाथ	हे नाथ !	**इति**	इस (भावनासे)
कान्त	हे कान्त !	**नः**	हम लोगोंका
यत्	जब (तुम)	**मनः**	मन
पशून्	(गौ आदि) पशुओं-को	**कलिलताम्**	पीड़ित होने लगता
चारयन्	चराते हुए	**गच्छति**	है (यह अवस्था दिनमें वनगमनके समय होती है।
व्रजात्	व्रजसे (वनकी ओर)		
चलसि	चलकर आते हो, (उस समय)		अभी तो रात्रि है। इस समय
नलिन-सुन्दरम्	(अरुणिमा, मृदुता एवं सौरभमें) पद्मके समान सुन्दर		तुम्हारे सुकोमल चरणोंको कितना कष्ट हो रहा होगा— इस चिन्तासे हम मरी जा रही हैं, आकर हमें बचा लो) ॥११॥
ते	तुम्हारे		
पदम्	चरण		
शिल-तृणाङ्कुरैः	धान्यके अग्रभाग, घास एवं अंकुरोंसे		
सीदति	व्यथित हो रहे हैं,		

हमारे प्राणनाथ, जीवन सर्वस्व ! तुम्हारे चरण अरुणिमा, मृदुता तथा दिव्य सुगन्धमें कमलके समान अत्यन्त सुन्दर हैं; जिस समय तुम गौओंको चराते हुए व्रजसे वनकी ओर आते हो, उस समय यह सोचकर कि तुम्हारे उन अत्यन्त मृदु चरण-कमलोंमें कुश, काँटे, अंकुर तथा कंकड़ आदि गड़ते होंगे और बड़ी पीड़ा होती होगी, हम लोगोंके मनमें बड़ी ही व्यथा होती है। यह दशा तो दिनमें वनगमनके समय होती है। इस रात्रिके समय तो

उन मृदुल चरणोंमें विशेष पीड़ा हो रही होगी—इस चिन्तासे हमारे प्राण निकले जा रहे हैं। तुम तुरन्त यहाँ आकर उनकी रक्षा करो ॥११॥

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलै-
र्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ।
धनरजस्वलं दर्शयन् मुहु-
र्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥१२॥

दिनपरिक्षये, नीलकुन्तलैः, वनरुहाननम्, बिभ्रत्, आवृतम्, धनरजस्वलम्, दर्शयन्, मुहुः, मनसि, नः स्मरम्, वीर, यच्छसि ॥१२॥

वीर	हे वीर !	**मुहुः**	पुनः-पुनः (हमें)
दिनपरिक्षये	सायंकालमें	**दर्शयन्**	दर्शन कराते हुए (तुम)
नीलकुन्तलैः	नील केशपाशसे	**नः**	हम लोगोंके
आवृतम्	आच्छादित,	**मनसि**	मनमें
धनरजस्वलम्	गोधनकी धूलिसे धूसरित,	**स्मरम्**	प्रेमका
वनरुहाननम्	मुखारविन्दको	**यच्छसि**	संचार कर देते हो ॥१२॥
बिभ्रत्	धारण करते हुए (तथा उसका)		

हमारे हृदयोंको प्रेमबाणसे बींध देनेमें तुम बड़े ही शूरवीर हो। संध्याके समय जब तुम वनसे लौटते हो, तब हम देखती हैं कि तुम्हारे मुख-सरोजपर नीली घुँघराली अलकावली छायी हुई है और वह गोधूलिसे धूसरित हो रहा है। उस समय तुम अपनी उस मुख-माधुरीके हमें बार-बार दर्शन कराकर हमारे मनमें प्रेम-व्यथाका संचार कर देते हो। इस प्रकार नित्य ही तुम हमारे हृदयोंको प्रेम बाणसे बींधा करते हो; पर आज तो उसकी चरम सीमा हो गयी है—पहले तो हमें वेणुगान करके अपने पास बुलाया, हमारे साथ लीला-विहार किया और फिर यों छोड़कर चले गये ॥१२॥

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं
धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ।

चरणपङ्कजं शंतमं च ते
रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥१३॥

प्रणतकामदम्, पद्मजार्चितम्, धरणिमण्डनम् ध्येयम् आपदि, चरणपङ्कजम्, शंतमम्, च, ते रमण, नः, स्तनेषु, अर्पय, आधिहन् ॥१३॥

	(अतः)	ध्येयम्	ध्यान किये जाने योग्य—ध्यान मात्रसे विपत्ति हर लेनेवाले
आधिहन्	हे मनकी व्यथा हरनेवाले !		
रमण	रमण ! (बहुत हो चुका, अब छल-कपट छोड़कर हमारी प्रार्थना सुन लो)	शंतमम्	(सेवाके समय भी) परम सुखदायक
		च	तथा
प्रणत-कामदम्	शरणागत प्राणियोंके समस्त अभीष्ट पूर्ण करनेवाले,	धरणिमण्डनम्	पृथ्वीके भूषणरूप
		ते	तुम्हारे–अपने
		चरणपङ्कजम्	चरणारविन्दको
		नः	हम सबोंके
पद्मजार्चितम्	ब्रह्माके द्वारा (नित्य) पूजित	स्तनेषु	वक्षःस्थलपर
		अर्पय	स्थापित कर दो ॥१३॥
आपदि	विपत्तिके समय		

परन्तु प्रियतम ! हमारे मनकी सारी व्यथाका हरण करनेवाले भी एकमात्र तुम्हीं हो। तुम्हारे चरण-कमल शरणमें आये हुए मनुष्योंके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं। स्वयं ब्रह्माजी उनका नित्य पूजन करते हैं। विपत्तिके समय ध्यानमात्रसे ही वे समस्त विपत्तियोंका नाश कर देते हैं और पृथ्वीके तो वे भूषण ही हैं। उन अपने चरण-सरोजोंको, हे विहार-सुख देनेवाले प्रियतम ! हमारे वक्षःस्थलपर रखकर हृदयकी सारी व्यथाका नाश कर दो ॥१३॥

सुरतवर्धनं शोकनाशनं
स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।
इतररागविस्मारणं नृणां
वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥१४॥

सुरतवर्धनम्, शोकनाशनम्, स्वरितवेणुना, सुष्ठु, चुम्बितम्, इतररागविस्मारणम्, नृणाम्, वितर, वीर, नः, ते, अधरामृतम् ॥१४॥

वीर	हे वीर !
सुरतवर्धनम्	दिव्य सम्भोगरस-को बढ़ानेवाली
शोकनाशनम्	समस्त शोकोंका शमन कर देनेवाली
स्वरितवेणुना	नादित हुए वेणुके द्वारा
सुष्ठु	सुन्दर रूपसे
चुम्बितम्	स्पृष्ट हुई
नृणाम्	मनुष्य (मात्र) की
इतरराग	अन्य समस्त इच्छा-ओंकी
विस्मारणम्	विस्मृति करा देने-वाली
ते	अपनी
अधरामृतम्	अधर सुधाका
नः	हमें (भी)
वितर	दान करो ॥१४॥

हृदयकी व्यथाका हरण करनेमें समर्थ वीर शिरोमणे ! तुम्हारी अधरसुधा दिव्य सम्भोग-रसको बढ़ानेवाली है, तुरन्त ही समस्त शोक-संतापोंका शमन करनेवाली है, सुन्दर स्वरोंमें गान करनेवाली बाँसुरी उसे सदा भलीभाँति चूमती रहती है। जिसने एक क्षणके लिये एक बिन्दु-मात्र भी कभी उसका पान कर लिया, उसकी अन्य समस्त आसक्तियाँ तथा कामनाएँ सदाके लिये विस्मृत हो जाती हैं, ऐसी अपनी वह अधरसुधा हम लोगोंमें वितरण कर दो—हम सबको पिलाकर कृतार्थ करो ॥१४॥

अटति यद् भवानह्नि काननं
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते
जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ॥१५॥

अटति, यत्, भवान्, अह्नि, काननम्, त्रुटिः, युगायते, त्वाम्, अपश्यताम्, कुटिलकुन्तलम्, श्रीमुखम्, च, ते, जडः, उदीक्षताम्, पक्ष्मकृत्, दृशाम् ॥१५॥

	(हमारे प्रियतम !)
यत्	जब
भवान्	तुम
अह्नि	दिनके समय (मोचारणके लिये)
काननम्	वनकी ओर

अटति	चले जाते हो, (उस समय)
त्वाम्	तुम्हें
अपश्यताम्	न देख पानेवाली (हम गोपियोंके लिये)
त्रुटिः	आधे क्षणका समय (भी)
युगायते	युगके समान बन जाता है
च	तथा (संध्याके समय वनसे लौटते हुए)
ते	तुम्हारे
कुटिल-कुन्तलम्	कुञ्चित केश-समन्वित
श्रीमुखम्	श्रीमुखका
उदीक्षताम्	दर्शन करनेवाली हम सबकी (यह धारणा बन जाती है, निमेष पलक गिरनेके) कालका तुम्हारा अदर्शन असह्य होकर हमें यह प्रतीत होने लगता है कि)
दृशाम्	नेत्रोंकी
पक्ष्मकृत्	बरुनी (पलकें) बनानेवाला (ब्रह्मा)
जडः	मूर्ख है ॥१५॥

प्रियतम ! दिनके समय जब तुम गौएँ चरानेके लिये वनमें चले जाते हो, तब तुम्हें देखे बिना हमारा आधे क्षणका समय भी युग बन जाता है। फिर जब संध्याके समय तुम वनसे लौटते हो, तब तुम्हारे घुँघराले केशोंसे सुशोभित श्रीमुखका हम दर्शन करती हैं। उस समय पलकोंका गिरना हमें असह्य हो जाता है; क्योंकि उतने समय तक तुम्हारे दर्शनसे नेत्र वञ्चित रहते हैं। इसलिये हमें जान पड़ता है कि नेत्रोंपर पलकें बनानेवाला विधाता मूर्ख है ॥१५॥

पतिसुताम्वयभ्रातृबान्धवा-
नतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः
कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥१६॥

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान्, अतिविलङ्घ्य, ते, अन्ति, अच्युत, आगताः, गतिविदः, तव, उद्गीतमोहिताः, कितव, योषितः, कः, त्यजेत्, निशि ॥१६॥

अच्युत	हे अच्युत !	**अन्ति**	निकट
गतिविदः	(हमारे) आगमनका कारण जाननेवाले (परम चतुर)	**आगताः**	आयी हैं (फिर भी तुम हमें छोड़कर चले गये)
तव	तुम्हारे	**कितव**	हे कपटी !
उद्गीत-	उच्च वेणुगीतसे	**निशि**	रात्रिके समय (इस
मोहिताः	मोहित हुई (हम सब अपने)		प्रकार शरणमें आयी)
पतिसुतान्वय-	पति, पुत्र,	**योषितः**	कामिनियोंको
भ्रातृबान्धवान्	स्वजन, भाई, बन्धुगणको		(तुम्हारे अतिरिक्त और)
अतिविलङ्घ्य	अतिक्रम— परित्याग करके	**कः**	कौन
ते	तुम्हारे	**त्यजेत्**	छोड़ सकता है (कोई नहीं) ॥१६॥

प्रियतम ! तुम कभी अपने प्रेममय स्वभावसे च्युत नहीं होते। तुम चतुर-शिरोमणि भलीभाँति जानते हो कि हम सब तुम्हारे मधुरतम मुरलीगानसे मोहित होकर अपने पति-पुत्र, भाई-बन्धु, कुल-परिजन—सबका त्याग करके उनकी इच्छाका अतिक्रमण करके तुम्हारे पास आयी हैं। फिर भी तुम हमें छोड़कर चले गये। अरे कपटी ! इस प्रकारकी घोर रात्रिके समय शरणमें आयी हुई तरुणियोंको तुम्हारे अतिरिक्त और कौन त्याग सकता है ॥१६॥

रहसि संविदं हृच्छयोदयं
प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते
मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥१७॥

रहसि, संविदम्, हृच्छयोदयम्, प्रहसिताननम्, प्रेमवीक्षणम्, बृहत्, उरः, श्रियः, वीक्ष्य, धाम, ते, मुहुः, अतिस्पृहा, मुह्यते, मनः ॥१७॥

ते	तुम्हारा	वीक्ष्य	देखकर—
रहसि	एकान्तमें होनेवाला		(स्मरण करके)
संविदम्	प्रेमालाप (तुम्हारा)		(तुमसे मिलनेकी)
हृच्छयोदयम्	प्रेमसंचारक	अतिस्पृहा	अतिशय लालसा बढ़
प्रहसिताननम्	हास्य समन्वित मुख		गयी है (और इस-
प्रेमवीक्षणम्	प्रेमभरी चितवन		लिये हमारे प्रिय-
श्रियः	रमाका		तम ! हमारा)
धाम	निवासभूत (तुम्हारा)	मनः	मन
बृहत्	विशाल	मुहुः	बारम्बार
उरः	वक्षःस्थल (इन सबको)	मुह्यते	मुग्ध हो रहा है ॥१७॥

प्रियतम ! तुमने एकान्तमें हमसे प्रेमभरी बातें की हैं, तुम्हारा वह प्रेमालाप, प्रेमकी कामनाको उद्दीप्त करनेवाला तुम्हारा मुसकाता हुआ मुखकमल, तुम्हारी प्रेमभरी तिरछी चितवन, लक्ष्मीजीका नित्य निवास-धाम तुम्हारा विशाल वक्षःस्थल—इन सभीको देखकर, इनका स्मरण करके हमारी तुमसे मिलनेकी लालसा अत्यन्त बढ़ गयी है और हमारा मन अधिकाधिक मुग्ध हो रहा है ॥१७॥

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते
वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां
स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥१८॥

व्रजवनौकसाम्, व्यक्तिः, अङ्ग, ते, वृजिनहन्त्री, अलम्, विश्वमङ्गलम्, त्यज, मनाक्, च, नः, त्वत्स्पृहात्मनाम्, स्वजनहृद्रुजाम्, यत्, निषूदनम् ॥१८॥

अङ्ग	हे श्रीकृष्णचन्द्र !	वृजिनहन्त्री	दुःखको मिटाने-
ते	तुम्हारा		वाला है
व्यक्तिः	आविर्भाव	अलम्	(सबके लिये)
व्रजवनौकसाम्	व्रजवासियोंके		

विश्वमङ्गलम्	परममंगल स्वरूप है। (इसलिये)
त्वत्स्पृहा-त्मनाम्	एकमात्र तुममें ही अपनी समस्त इच्छाओंको केन्द्रित कर देनेवाली
नः	हम (सबों) को
च	भी
मनाक्	किञ्चिन्मात्र (वह वस्तु)
त्यज	दो
यत्	जो
स्वजन-हृद्रुजाम्	तुम्हारे स्वजनोंके समस्त हृद्रोगोंको
निषूदनम्	नष्ट करनेवाली है ॥१८॥

प्रियतम श्यामसुन्दर ! तुम्हारा यह व्रजमें आविर्भाव व्रजवासियोंके समस्त दुःखोंका नाश करने और विश्वका परम कल्याण करनेके लिये है। हमारे हृदयके समस्त मनोरथ एकमात्र तुम्हींमें केन्द्रित हो गये हैं, हम तुम्हारे सिवा और कुछ चाहती ही नहीं। हम तुम्हारी अपनी ही हैं; हमें अब थोड़ी-सी वह वस्तु दो, जो तुम्हारे निजजनोंके हृदयरोगोंको सर्वथा नष्ट कर दे ॥१८॥

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्विये
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥१९॥

यत्, ते, सुजातचरणाम्बुरुहम्, स्तनेषु, भीताः, शनैः, प्रिय, दधीमहि, कर्कशेषु, तेन, अटवीम्, अटसि, तत्, व्यथते, न, किम्, स्वित्, कूर्पादिभिः, भ्रमति, धीः, भवदायुषाम्, नः ॥१९॥

प्रिय	मेरे प्रियतम ! (तुम्हारे चरणोंमें कहीं व्यथा न हो जाय, इस आशङ्का-से)
भीताः	डरी हुई (हम सब)
ते	तुम्हारे
यत्	जिन
सुजातचरणा-म्बुरुहम्	अति सुकुमार चरण-कमलोंको (अपने)
कर्कशेषु	कठोर
स्तनेषु	वक्षःस्थलपर
शनैः	धीरेसे
दधीमहि	धारण किया करती हैं;

तेन	उन्हीं सुकुमार चरणके द्वारा (तुम आज)
अटवीम्	वनमें
अटसि	घूम रहे हो (तुम्हारे)
तत्	वे (सुकुमार चरण-पद्म)
कूर्पादिभिः	छोटे-छोटे कंकड़ आदिसे
किम् स्वित्	क्या
न व्यथते	पीड़ित नहीं हो रहे हैं (अवश्य हो रहे हैं। तथा इसी चिन्तासे)
भवदायुषाम्	तुम्हींको अपना जीवन स्वरूप अनुभव करनेवाली
नः	हम (सबों) की
धीः	बुद्धि
भ्रमति	चक्कार खा रही है (यह कहकर प्रेमसे अतिशय विह्वल हुई गोपसुन्दरियाँ उच्च कण्ठसे रोने लगीं) ॥१९॥

प्रियतम ! तुम्हारे चरणकमल अत्यन्त सुकुमार हैं, हम उन्हें अपने उरोजोंपर भी बहुत ही धीरेसे रखती हैं; हमें डर लगता रहता है कि हमारे कठोर उरोजोंसे उन कोमल पद-कमलोंको कहीं चोट न लग जाय। उन्हीं सुकुमार चरणोंसे आज हमसे छिपकर तुम वन-वन भटक रहे हो। कंकड़-पत्थरोंकी नोक लगकर उनमें बड़ी पीड़ा हो रही होगी। हमारी बुद्धि इसी चिन्तासे व्याकुल होकर चक्कर खा रही है। प्यारे ! हमारे जीवनके जीवन तो एकमात्र तुम्हीं हो ॥१९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां गोपीगीतं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥१॥

इति, गोप्यः, प्रगायन्त्यः, प्रलपन्त्यः, च, चित्रधा, रुरुदुः, सुस्वरम्ः, राजन्, कृष्णदर्शनलालसाः ॥१॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—

राजन्	हे राजा (परीक्षित्) !	**कृष्णदर्शन-**	श्रीकृष्णको देखनेकी
गोप्यः	गोपियाँ	**लालसाः**	लालसासे (युक्त होकर)
इति	इस प्रकार		
चित्रधा	अनेक तरहसे	**सुस्वरम्**	करुणापूर्ण सुस्वरसे फूट-फूटकर
प्रगायन्त्यः	गाती		
च	और	**रुरुदुः**	रोने लगीं ॥१॥
प्रलपन्त्यः	प्रलाप करती हुई		

राजा परीक्षित् ! भगवान् श्यामसुन्दरके विरहमें गोपियाँ इस प्रकार विविध भाँतिसे गाती और प्रलाप करती हुई, प्राण-मनको सर्वथा आकर्षित कर लेनेवाले उन प्रियतमके दर्शनकी लालसा लिये हुए करुणापूर्ण मधुर स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगीं ॥१॥

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥२॥

तासाम्, आविरभूत्, शौरिः, स्मयमानमुखाम्बुजः, पीताम्बरधरः, स्रग्वी, साक्षात्, मन्मथमन्मथः ॥२॥

साक्षात्	स्वयं	**स्रग्वी**	वनमाला पहने हुए
मन्मथ-	कामदेवके भी मनको	**स्मयमान-**	मधुर मुसकान-
मन्मथः	मथित करनेवाले	**मुखाम्बुजः**	युक्त मुख-कमलसे
शौरिः	शूरसेनके वंशज (भगवान् श्रीकृष्ण)	**तासाम्**	उनके बीचमें (उसी समय)
पीताम्बर-	पीताम्बर धारण	**आविरभूत्**	प्रकट हो गये ॥२॥
धरः	किये (तथा)		

उसी समय उनके बीचमें शूरसेनके वंशज भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उनके मुख-सरोजपर मधुर मुसकान खेल रही थी, वे गलेमें वनमाला और शरीरपर पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनका रूप-सौन्दर्य सबके मनको मथ डालनेवाले स्वयं कामदेवके मनको भी मथ डालनेवाला था ॥२॥

तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः ।
उत्तस्थुर्युगपत् सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥३॥

तम्, विलोक्य, आगतम्, प्रेष्ठम्, प्रीत्युत्फुल्लदृशः, अबलाः, उत्तस्थुः, युगपत्, सर्वाः, तन्वः, प्राणम्, इव, आगतम् ॥३॥

तम्	उन	**युगपत्**	एक साथ
प्रेष्ठम्	प्रियतम (श्रीकृष्ण) को	**उत्तस्थुः**	(उसी प्रकार) उठ खड़ी हुई,
आगतम्	आया हुआ	**इव**	जैसे
विलोक्य	देखकर	**तन्वः**	शरीर
प्रीत्युत्फुल्ल-	आनन्दसे खिले हुए	**आगतम्**	लौटे हुए
दृशः	नेत्रोंवाली	**प्राणम्**	प्राणको (देखकर)
अबलाः	(वे) गोपियाँ		(उठ खड़े हों) ॥३॥
सर्वाः	सब-की-सब		

उन सौन्दर्य-माधुर्य-निधि प्रियतम श्यामसुन्दरको अपने बीचमें आया देख गोपियोंके नेत्र प्रेमानन्दसे खिल उठे। वे गोपियाँ सब-की-सब

एक साथ ही इस प्रकार उठ खड़ी हुई, जैसे प्राणहीन शरीर प्राणोंके लौटते ही उठ खड़ा हो ॥३॥

काचित् कराम्बुजं शौरेर्जगृहेऽञ्जलिना मुदा ।
काचिद्दधार तद्बाहुमंसे चन्दनरूषितम् ॥ ४ ॥

काचित्, कराम्बुजम्, शौरेः, जगृहे, अञ्जलिना, मदा, काचित्, दधार, तद्बाहुम्, अंसे, चन्दनरूषितम् ॥४॥

काचित्	(उनमेंसे) किसीने	**जगृहे**	पकड़ लिया
मुदा	आनन्दसे	**काचित्**	किसीने
शौरेः	भगवान् श्रीकृष्णके	**चन्दनरूषितम्**	चन्दनसे चर्चित
कराम्बुजम्	हस्त-कमलको	**तद्बाहुम्**	उनकी भुजा
अञ्जलिना	(अपने) जुड़े हुए हाथोंसे	**अंसे**	(अपने) कंधेपर
		दधार	रख ली ॥४॥

उनमेंसे किसी गोपीने प्रमुदित होकर भगवान् श्यामसुन्दरके कर-कमलको अपने हाथोंमें ले लिया । किसीने उनकी चन्दनसे चर्चित भुजाको अपने कंधेपर रख लिया ॥४॥

काचिदञ्जलिनागृह्णात् तन्वी ताम्बूलचर्वितम् ।
एका तदङ्घ्रिकमलं संतप्ता स्तनयोरधात् ॥ ५ ॥

काचित्, अञ्जलिना, अगृह्णात्, तन्वी, ताम्बूलचर्वितम्, एका, तदङ्घ्रिकमलम्, संतप्ता, स्तनयोः, अधात् ॥५॥

काचित्	किसी	**संतप्ता**	(विरहसे) तप्त हुई बालाने
तन्वी	कृशांगीने		
ताम्बूलचर्वितम्	उनका चबाया हुआ पान	**तदङ्घ्रि-कमलम्**	उनके चरण-कमलको
अञ्जलिना	दोनों हाथोंमें	**स्तनयोः**	(अपने) कुचोंपर
अगृह्णात्	ले लिया	**अधात्**	रख लिया ॥५॥
एका	(और किसी) एक		

किसी सुन्दर गोपीने उनका चबाया हुआ पान अपने दोनों हाथोंमें ले लिया और किसी एक गोपीने, जिसके हृदयमें विरहकी आग धधक रही थी, उसे शान्त करनेके लिये भगवान्‌के चरण-कमलको अपने वक्षः-स्थलपर रख लिया ॥५॥

एका भ्रुकुटिमाबध्य प्रेमसंरम्भविह्वला ।
धनतीवैक्षत् कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥

एका, भ्रुकुटिम् आबध्य, प्रेमसंरम्भविह्वला, धनती, इव, ऐक्षत्, कटाक्षेपैः, संदष्टदशनच्छदा ॥६॥

एका	एक (गोपी)
प्रेमसंरम्भ-विह्वला	प्रणय-कोपके वशीभूत होकर
भ्रुकुटिम्	(धनुषके समान टेढी) भौंहोंको
आबध्य	चढ़ाकर
संदष्ट-दशनच्छदा	(दाँतोंसे) होठ दवाकर
कटाक्षेपैः	कटाक्षोंसे
धनती इव	बींधती हुई-सी
ऐक्षत्	(उनकी ओर) देखने लगी ॥६॥

एक व्रजसुन्दरी प्रणयकोपसे विह्वल होकर, अपनी धनुषके समान टेढ़ी भोंहोंको चढ़ाकर और दाँतोंसे होठ दबाकर अपने कटाक्षरूपी बाणोंसे बींधती हुई-सी उनकी ओर ताकने लगी ॥६॥

अपरानिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखाम्बुजम् ।
आपीतमपि नातृप्यत् सन्तस्तच्चरणं यथा ॥७ ॥

अपरा, अनिमिषद्दृग्भ्याम्, जुषाणा, तन्मुखाम्बुजम्, आपीतम्, अपि, न, अतृप्यत्, सन्तः, तच्चरणम्, यथा ॥७॥

अपरा	(एक) और गोपी
आपीतम्	बार-बार सब ओरसे (दृष्टि द्वारा) पान किये हुए
तन्मुखाम्बुजम्	उन (भगवान्)के मुख-कमलको
अनिमिष-दृग्भ्याम्	अपलक नेत्रोंसे
जुषाणा	निहारती हुई
अपि	भी
न	नहीं
अतृप्यत्	तृप्त होती थी

यथा	जैसे	**तच्चरणम्**	उनके चरणोंका
सन्तः	संतलोग (शान्त एवं दासभक्त)		दर्शन करके (तृप्त होते) ॥७॥

एक गोपी नेत्ररूपी प्यालोंसे श्रीकृष्णके मुख-कमल-मकरन्दका पान करके भी—भगवान्‌के सुन्दर वदन-सरोजको बार-बार देखकर भी फिर अपलक नेत्रोंसे वैसे ही अतृप्त होकर देखने लगी, जैसे शान्त एवं दासभक्त भगवान्‌के श्रीचरणोंका बार-बार दर्शन करनेपर भी तृप्त नहीं होते और उन्हें निरन्तर देखते ही रहना चाहते हैं ॥७॥

तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदिकृत्य निमील्य च ।
पुलकाङ्ग्युपगुह्यास्ते योगीवानन्दसम्प्लुता ॥ ८ ॥

तम्, काचित्, नेत्ररन्ध्रेण, हृदिकृत्य, निमील्य, च, पुलकाङ्गी, उपगुह्य, आस्ते, योगी, इव, आनन्दसम्प्लुता ॥८॥

काचित्	कोई एक (व्रज-बाला)	**उपगुह्य**	भीतर ही भीतर (उन्हें) छातीसे लगाकर
तम्	उन (भगवान्)को	**योगी इव**	योगीकी भाँति
नेत्ररन्ध्रेण	नेत्रोंके छिद्र (द्वार)से	**आनन्दसम्प्लुता**	परमानन्दमें निमग्न
हृदिकृत्य	हृदयमें ले जाकर	**पुलकाङ्गी**	(एवं) रोमाञ्चित
च	और	**आस्ते**	हो गयी ॥८॥
निमील्य	नेत्रोंको बंद करके		

कोई एक व्रजसुन्दरी नेत्रोंके मार्गसे श्यामसुन्दरको अपने हृदयमें ले गयी और फिर नेत्रोंको बन्द करके भीतर-ही-भीतर उनको हृदयसे लगाकर वैसे ही परमानन्दमें निमग्न एवं रोमाञ्चित हो गयी, जैसे योगी अपने इष्ट परमात्माको ध्यानके द्वारा प्राप्तकर उसमें निमग्न हो जाते हैं ॥८॥

सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः ।
जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥ ९ ॥

सर्वाः, ताः, केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः, जहुः, विरहजम्, तापं प्राज्ञं, प्राप्य, यथा, जनाः ॥९॥

केशवालोक-परमोत्सव	श्रीकृष्णदर्शनके परमोल्लाससे	**जहुः**	परित्याग कर दिया
निर्वृताः	आनन्दित होकर	**यथा**	जैसे
ताः	उन	**जनाः**	(मुमक्षु) जन
सर्वाः	सब (गोपबालाओं)ने	**प्राज्ञं**	परमप्राज्ञ (ब्रह्म)को
विरहजम्	विरहसे उत्पन्न	**प्राप्य**	प्राप्तकर (संसार-
तापं	तापको		तापसे मुक्त हो
			जाते हैं) ॥९॥

जैसे मुमुक्षु साधक ब्रह्मको प्राप्त करके समस्त संसार-तापसे सर्वथा मुक्त हो जाते हैं, वैसे ही वे सब व्रजसुन्दरियाँ श्रीकृष्णके मधुर दर्शनसे परम उल्लास और दिव्य आनन्दको प्राप्त हो गयीं तथा उन्होंने विरहसे उत्पन्न संतापका सर्वथा परित्याग कर दिया ॥९॥

ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः ।
व्यरोचताधिकं तात पुरुषः शक्तिभिर्यथा ॥१०॥

ताभिः विधूतशोकाभिः, भगवान्, अच्युतः, वृतः, व्यरोचत, अधिकं, तात, पुरुषः, शक्तिभिः यथा ॥१०॥

विधूतशोकाभिः	शोकसे मुक्त हुई	**अधिकं**	(उसी प्रकार) अत्यन्त
ताभिः	उन गोप-रमणियोंसे	**व्यरोचत**	सुशोभित हुए
वृतः	घिरे हुए	**यथा**	जैसे
भगवान्	भगवान् (षडैश्वर्यसम्पन्न)	**शक्तिभिः**	शक्तियोंसे (घिरे हुए)
अच्युतः	अपने स्वरूपमें सदा स्थित रहनेवाले (श्रीकृष्ण)	**पुरुष**	परात्पर पुरुष (परमात्मा)
तात	प्यारे (परीक्षित्) !		सुशोभित होते हैं ॥१०॥

अपने दिव्य-सौन्दर्य-माधुर्ययुक्त सच्चिदानन्दघन स्वरूपमें नित्य स्थित, षडैश्वर्यसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण आज विरह-विषादसे मुक्त गोपियोंके बीचमें और भी विशेष सुशोभित होने लगे, जैसे परात्पर पुरुष

परमात्मा प्रत्यक्षरूपमें अपनी ज्ञान, बल आदि शक्तियोंसे घिरकर सुशोभित होते हैं ॥१०॥

ताः समादाय कालिन्द्या निर्विश्य पुलिनं विभुः ।
विकसत्कुन्दमन्दारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥११॥

ताः, समादाय, कालिन्द्याः, निर्विश्य, पुलिनम्, विभुः, विकसत्कुन्द-मन्दारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥११॥

विभुः	भगवान् (श्रीकृष्ण)	**विकसत्कुन्द-**	जहाँ खिले हुए कुन्द
ताः	उन (समस्त गोपललनाओं) को	**मन्दारसुरभ्य-**	और मदारके पुष्पोंसे
समादाय	साथ लेकर	**निलषट्पदम्**	सुगन्धित वायु चल रही थी और उससे प्रेरित होकर भौंरे उड़ रहे थे ॥११॥
कालिन्द्याः	यमुनाजीके		
पुलिनम्	(उस) तीरपर		
निर्विश्य	आ विराजे		

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण उन समस्त गोप-ललनाओंको साथ लेकर यमुनाजीके पावन पुलिनपर आ विराजे । उस समय वहाँ खिले हुए कुन्द और मन्दारके पुष्पोंकी सुगन्धिको लिये वायु चल रही थी और उससे मत-वाले हुए भ्रमर सर्वत्र उड़ रहे थे ॥१॥

शरच्चन्द्रांशुसंदोहध्वस्तदोषातमः शिवम् ।
कृष्णाया हस्ततरलाचितकोमलवालुकम् ॥१२॥

शरच्चन्द्रांशुसंदोहध्वस्तदोषातमः, शिवम्, कृष्णायाः, हस्ततरला-चितकोमलवालुकम् ॥१२॥

शरच्चन्द्रांशु-	शारदीय चन्द्रमाके	**कृष्णायाः**	श्रीयमुनाजीके
संदोहध्वस्त-	किरणजालोंसे	**हस्ततरला-**	तरंगरूपी हाथोंसे
दोषातमः	रात्रिका अन्धकार	**चितकोमल-**	जहाँ कोमल बालुका
शिवम्	दूर हो जानेके कारण जो मंगलमय हो रहा था, तथा	**वालुकम्**	बिछायी हुई थी ॥१२॥

शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी किरणें सब ओर छिटक रही थीं, इससे रात्रिका अन्धकार सर्वथा मिट गया था और सारा वातावरण मंगलमय हो रहा था। श्रीयमुनाजीने भगवान्‌की मधुरलीलाके लिये अपने तरंगरूपी हाथोंसे वहाँ सुकोमल बालुका बिछा रखी थी ॥१२॥

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो
मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ।
स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कुमाङ्कितै-
रचीक्लृपन्नासनमात्मबान्धवे ॥१३॥

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजः, मनोरथान्तम्, श्रुतयः, यथा, ययुः, स्वैः, उत्तरीयैः, कुचकुङ्कुमाङ्कितैः, अचीक्लृपन्, आसनम्, आत्मबान्धवे ॥१३॥

तद्दर्शनाह्लाद-विधूतहृद्रुजः	उन (भगवान् श्रीकृष्ण) के दर्शन-जनित आनन्दसे जिनके हृदयकी पीड़ा शान्त हो गयी थी (ऐसी वे गोपियाँ)
मनोरथान्तम्	(उसी प्रकार)
ययुः	पूर्णकाम हो गयीं
यथा	जैसे
श्रुतयः	(ज्ञानकाण्डकी) श्रुतियाँ (पूर्णकाम हो गयीं)
आत्मबन्धवे	(और उन्होंने) अपने प्रिय बन्धु (भगवान् श्रीकृष्णके बैठनेके लिये)
कुच-कुंकुमाङ्कितैः	कुचोंपर लेप की हुई केसरके चिह्नोंसे युक्त
स्वैः	अपनी
उत्तरीयैः	ओढ़नेकी चादरोंसे
आसनम्	आसन
अचीक्लृपन्	बनाया ॥१३॥

भगवान् श्यामसुन्दरके दर्शनसे उन गोपसुन्दरियोंको इतना महान् आनन्द हुआ कि उनके हृदयकी सारी व्यथा मिट गयी। वे गोपियाँ भगवानको पाकर उसी प्रकार पूर्णकाम हो गयीं, जिस प्रकार श्रुतियाँ कर्मकाण्डके वर्णनके अनन्तर ज्ञानकाण्डका प्रतिपादन करके पूर्णकाम हो जाती हैं। अब उन्होंने वक्षःस्थलपर लगी हुई केसर से चिह्नित अपनी

ओढ़नीको अपने परम प्रियतम भगवान श्रीकृष्णके विराजनेके लिये वहाँ बिछा दिया ॥१३॥

तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो
योगेश्वरान्तर्हृदि कल्पितासनः ।
चकास गोपीपरिषद्गतोर्चित-
स्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥१४॥

तत्र, उपविष्टः, भगवान्, सः, ईश्वरः, योगेश्वरान्तर्हृदि, कल्पितासनः, चकास, गोपीपरिषद्गतः, अर्चितः, त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदम्, वपुः, दधत् ॥१४॥

योगेश्वरा-न्तर्हृदि	योगेश्वरोंके अन्तः-करण (हृदय-कमल) में	**गतः**	घिरकर
		उपविष्टः	बैठे हुए
		अर्चितः	(तथा उनसे) पूजित होकर
कल्पितासनः	भावनासे स्थिर किया जाता है	**त्रैलोक्य-**	त्रिलोकीकी
		लक्ष्म्येक-	शोभाके एकमात्र
सः	वे	**पदम्**	आश्रयरूप
ईश्वरः	सर्वसमर्थ—सर्वेश्वर	**वपुः**	शरीरको
भगवान्	श्रीकृष्ण	**दधत्**	धारण किये हुए
तत्र	वहाँ (यमुनापुलिन-की वालुकामें)	**चकास**	सुशोभित हुए ॥१४॥
गोपीपरिषद्-	गोपियोंके समाजसे		

बड़े-बड़े योगेश्वर अपने विशुद्ध हृदय-कमलमें जिन भगवान्‌के आसनकी कल्पना किया करते हैं, पर बैठा नहीं पाते, वे ही सर्वसमर्थ सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण यमुना-तटकी वालुकामें गोपियोंकी ओढ़नीपर बैठ गये। गोपियोंने उन्हें सब ओरसे घेर लिया और उनकी पूजा करने लगीं। त्रिलोकीकी समस्त सौन्दर्य-शोभाके जो एकमात्र परम आश्रय हैं, ऐसे अनन्त-सौन्दर्य-माधुर्यमय दिव्य विग्रहको धारण किये उस समय वे अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥१४॥

सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं
सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा ।
संस्पर्शनेनाङ्ककृताङ्घ्रिहस्तयोः
संस्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे ॥१५॥

सभाजयित्वा, तम्, अनङ्गदीपनम्, सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा, संस्पर्शनेन, अङ्ककृताङ्घ्रिहस्तयोः, संस्तुत्य, ईषत्कुपिताः, बभाषिरे ॥१५॥

सहास-लीलेक्षण-विभ्रमभ्रुवा	मुसकान युक्त लीला-कटाक्ष तथा भौंहोंकी मटकसे (एवं)
अङ्ककृता-ङ्घ्रिहस्तयोः	(अपनी) गोदमें रक्खे हुए उनके चरणों तथा हाथोंके
संस्पर्शनेन	स्पर्शसे
ईषत्कुपिताः	किंचित् प्रणयकोप दिखाते हुए
अनङ्ग-दीपनम्	(अपने अन्दर) विशुद्ध काम—प्रेम-का उद्दीपन करने-वाले
तम्	उन (श्रीकृष्ण) का
सभाजयित्वा	सम्मान करके
संस्तुत्य	(तथा) उनकी प्रशंसा करके
बभाषिरे	(वे गोपियाँ) बोलीं ॥१५॥

भगवान् श्रीकृष्णने अपनी सौन्दर्य-सुधा पिलाकर जिनके मनमें विशुद्ध काम—भगवत्प्रेमको उद्दीप्त कर दिया था, वे गोपियाँ अपनी मधुर मुसकान, विलासपूर्ण कटाक्ष तथा भौंहोंकी मटकसे एवं अपनी गोदमें रक्खे हुए भगवान्‌के चरण-कमलों और कर-कमलोंको सहलाकर उनका सम्मान करती हुई आनन्दातिरेकसे उनके रूप-गुणोंकी प्रशंसा करने लगीं। फिर उनके अन्तर्धान होनेकी बात याद आते ही किंचित् प्रणय-कोप दिखाती हुई वे बोलीं ॥१५॥

गोप्य ऊचुः

भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम् ।
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥१६॥

भजतः, अनुभजन्ति, एके, एके, एतद्विपर्ययम्, न, उभयान्, च, भजन्ति, एके, एतत्, नः, ब्रूहि, साधु, भोः ॥१६॥

एके	कुछ लोग (तो)
भजतः	प्रेम करनेवालोंसे
अनुभजन्ति	बदलेमें प्यार करते हैं
एके	(और) कुछ लोग
एतद् विपर्ययम्	इसके विपरीत आचरण करते हैं (अर्थात् प्रेम न करनेवालोंसे भी प्रेम करते हैं)
च	और
एके	कुछ (तीसरे प्रकार-के) लोग
उभयान्	(प्रेम करनेवाले और न करनेवाले) दोनोंसे (ही)
न भजन्ति	प्रेम नहीं करते,
भोः	हे प्यारे
एतत्	इस (विषय) को
नः	हमसे
साधु	भलीभाँति
ब्रूहि	कहो ॥१६॥

कुछ लोग तो प्रेम करनेवालोंसे ही बदलेमें प्रेम करते हैं; कुछ लोग इसके विपरीत, प्रेम न करनेवालोंसे प्रेम करते हैं और कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवाले तथा न करनेवाले—दोनोंसे ही प्रेम नहीं करते। प्रियतम ! इन तीनोंके विषयमें हमें समझाकर बतलाओ। यह बतलाओ कि तुम इनमेंसे किसको अच्छा समझते हो और तुम कौन-से हो ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच

मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते ।
न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥१७॥

मिथः, भजन्ति, ये, सख्यः, स्वार्थैकान्तोद्यमाः, हि, ते, न, तत्र, सौहृदम्, धर्मः, स्वार्थार्थम्, तत्, हि, न, अन्यथा ॥१७॥

सख्यः	हे सखियो !
ये	जो लोग
मिथः	परस्पर (दूसरेके प्रेमके बदलेमें)
भजन्ति	प्रेम करते हैं
ते	वे (तो)
हि	निस्संदेह
स्वार्थैका-न्तोद्यमाः	केवल स्वार्थके लिये ही प्रेमकी चेष्टा करते हैं
तत्र	उनमें
न	न (तो)

सौहृदम्	सौहार्द (होता है)	**स्वार्थार्थम्**	स्वार्थके हेतु
धर्मः	(न) धर्म (कर्तव्य-का भाव ही होता है)	**हि**	ही (होती है)
		अन्यथा	और किसी हेतुसे
		न	नहीं ॥१७॥
तत्	(उनकी) वह (प्रेमकी चेष्टा)		

प्रिय सखियो ! जो लोग प्रेम करनेपर ही बदलेमें प्रेम करते हैं, उनका तो सारा उद्यम केवल स्वार्थके लिये ही है। उनमें न तो सौहार्द है और न धर्म या कर्तव्यका भाव ही है। उनकी तो वह प्रेम-चेष्टा केवल स्वार्थके हेतुसे ही होती है, उनका और कोई प्रयोजन नहीं होता ॥१७॥

भजन्त्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा।
धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ॥१८॥

भजन्ति, अभजतः, ये, वै, करुणाः, पितरः, यथा, धर्मः, निरपवादः, अत्र, सौहृदम्, च, सुमध्यमाः ॥१८॥

सुमध्यमाः	(और) हे सुन्दरियो !	**पितरः**	(और) माता-पिता,
		अत्र	(उनके) इस (व्यवहार) में
ये	जो लोग		
अभजतः	प्रेम न करनेवालोंसे	**निरपवादः**	निर्दोष
वै	भी	**धर्मः**	धर्म
भजन्ति	प्रेम करते हैं	**च**	और
यथा	जैसे	**सौहृदम्**	प्रेम (भी होता है) ॥१८॥
करुणाः	(स्वभावसे) ही करुण-हृदय सज्जन		

सुन्दरियो ! जो लोग प्रेम न करनेवालोंसे प्रेम करते हैं, जैसे स्वभावसे ही करुण-हृदय पुरुष एवं माता-पिता प्रेम करते हैं, उनके इस बर्तावमें कोई दोष नहीं होता, और पूर्ण धर्म तथा सौहार्द ही भरा रहता है ॥१८॥

भजतोऽपि न वै केचिद् भजन्त्यभजतः कुतः।
आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥१९॥

भजतः, अपि, न, वै, केचित्, भजन्ति, अभजतः, कुतः, आत्मारामाः, हि आप्तकामाः, अकृतज्ञाः, गुरुद्रुहः ॥१९॥

केचित्	कुछ लोग
अभजतः	प्रेम न करनेवालोंसे
वै	तो
कुतः	दूर रहा
भजतः	प्रेम करनेवालोंसे
अपि	भी
न	नहीं
भजन्ति	प्रेम करते (ऐसे लोग चार प्रकारके होते हैं—एक तो वे)
आत्मारामाः	जो आत्म स्वरूपमें ही नित्य रमण करते हैं,
आप्तकामाः	(दूसरे वे) जिनकी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी हैं (जो कृतार्थ हो गये हैं)
अकृतज्ञाः	(तीसरे वे) जो कृतघ्न हैं—किये हुए प्रेम या उपकारका स्मरण नहीं करते
हि	और (चौथे वे)
गुरुद्रुहः	जो (हित करनेवाले) गुरुजनोंसे भी वैर रखते हैं ॥१९॥

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवालोंसे भी प्रेम नहीं करते, फिर प्रेम न करनेवालोंसे प्रेम करनेकी तो बात ही क्या है। ऐसे लोग चार प्रकारके होते हैं—एक तो वे, जो नित्य अपने आत्मस्वरूपमें ही रमण करते हैं; दूसरे वे, जिनके सब कामनाएँ पूर्ण हो चुकी हैं; तीसरे वे, जो कृतघ्न हैं, किये गये उपकार तथा प्रेमका स्मरण भी नहीं करते; और चौथे वे, जो अपना सहज हित करनेवाले गुरुजनोंसे भी द्रोह करते हैं ॥१९॥

नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून्
भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ।
यथाधनो लब्धधने विनष्टे
तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद ॥२०॥

न, अहम्, तु, सख्यः, भजतः, अपि, जन्तून्, भजामि, अमीषाम्, अनुवृत्तिवृत्तये, यथा, अधनः, लब्धधने, विनष्टे, तच्चिन्तया, अन्यत्, निभृतः, न, वेद ॥२०॥

अहम्	(यदि तुम मेरी बात जानना चाहती हो तो) मैं
तु	तो
सख्यः	हे सखियो !
भजतः	प्रेम करनेवाले
जन्तून्	जीवोंसे
अपि	भी
अमीषाम्	उनकी
अनुवृत्ति-वृत्तये	चित्तवृत्ति निरन्तर (मुझमें) लगाये रखनेके लिये
न	नहीं
भजामि	प्रेम करता (उदासीन-सा हो जाता हूँ)
यथा	जैसे
अधनः	निर्धन (मनुष्य)
लब्धधने	पाये हुए धनके
विनष्टे	खो जानेपर
तच्चिन्तया	उसकी चिन्तासे
निभृतः	व्याप्त (होकर)
अन्यत्	दूसरी किसी वस्तु-को
न	नहीं
वेद	याद रखता (वही दशा मेरी उदासीनताको देखकर मुझे न पाकर उन लोगोंकी होती है) ॥२०॥

सखियो ! यदि तुम मेरी बात जानना चाहती हो तो मैं तो प्रेम करनेवाले प्राणियोंसे भी वैसा प्रेम नहीं करता; उनकी चित्तवृत्ति निरन्तर मुझमें लगी रहे, इसलिये कभी-कभी उनसे उदासीन-सा हो जाता हूँ। जैसे निर्धन मनुष्यको कभी बहुत-सा धन मिल जाय और फिर वह खो जाय तो उसके हृदयमें खोये हुए धनकी ही चिन्ता छायी रहती है, वह दूसरी वस्तुका स्मरण ही नहीं करता, इसी प्रकार मैं भी मिल-मिलकर छिप जाया करता हूँ, जिससे मेरा चिन्तन नित्य-निरन्तर बना रहे ॥२०॥

एवं मदर्थोज्झितलोकवेद-
स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ।
मया परोक्षं भजता तिरोहितं
मासूयितुं मार्हथ तत्प्रियं प्रियाः ॥२१॥

एवम्, मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानाम्, हि, वः, मयि, अनुवृत्तये, अबलाः, मया, परोक्षम्, भजता, तिरोहितम्, मा, असूयितुम्, मा, अर्हथ, तत्, प्रियम्, प्रियाः ॥२१॥

अबलाः	हे अबलाओ ! (ललनाओ !)
एवम्	इस प्रकार
मदर्थे-	जिन्होंने मेरे लिये
ज्ञतलोकः	लोक मर्यादा, वेद-
वेदस्वानाम्	मार्ग एवं आत्मीय जनोंका भी परि- त्याग कर दिया,
वः	(ऐसी) तुम लोगों- की
मयि	मुझमें (अपने अंदर)
अनुवृत्तये	चित्तवृत्ति लगाये रखनेके लिये
हि	ही
परोक्षम्	तुम लोगोंकी दृष्टि बचाकर
भजता	तुम्हारे प्रेमका रस लेते हुए
मया	मैं
तिरोहितम्	छिप गया था;
तत्	इसलिये
प्रियाः	हे प्रियाओ !
प्रियम्	अपने प्रेमास्पद
मा	मुझमें
असूयितुम्	दोष देखना
मा अर्हथ	तुम्हारे लिये उचित नहीं ॥२१॥

गोपललनाओ ! तुम लोगोंने मेरे लिये सारी लोक-मर्यादा, वेदमार्ग और आत्मीय स्वजनोंका भी परित्याग कर दिया। इस स्थितिमें तुम्हारी मनोवृत्ति मेरे द्वारा प्राप्त होनेवाले किसी सुखमें लगकर मुझे छोड़ न दे, केवल मुझमें ही लगी रहे, इसीलिये ही मैं तुम लोगोंसे दृष्टि बचाकर तुम्हारे प्रेमरसका पान करता हुआ ही यहाँ छिप रहा था। मेरी गोपियो ! तुम मेरी अत्यन्त प्रिया हो और मैं तुम्हारा परम प्रियतम हूँ, अतः तुमलोग मुझमें दोष मत देखो ॥२१॥

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या मा भजन् दुर्जरगेहश्रृङ्खलाः
संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥२२॥

न, पारये, अहम्, निरवद्यसंयुजाम्, स्वसाधुकृत्यम्, विबुधायुषा, अपि, वः, याः, मा, अभजन्, दुर्जरगेहश्रृंखलाः, संवृश्च्य, तद्, वः, प्रतियातु, साधुना ॥२२॥

याः	जिन्होंने
दुर्जरगेह-	कठिनतासे टूटने-
शृंखलाः	वाली गृहस्थीकी बेड़ियोंको
संवृश्च्य	भली प्रकारसे काटकर
मा	मुझसे
अभजन्	प्रेम किया है
निरवद्यसं-	(तथा) जिनका मेरे
युजाम्	साथ मिलन सर्वथा निर्दोष है,
वः	(ऐसी) तुम लोगोंके
स्वसाधु-	मेरे प्रति किये गये
कृत्यम्	प्रेम, सेवा और उपकारका
विबुधायुषा	देवताकी आयुमें
अपि	भी
अहम्	मैं
न	नहीं
पारये	बदला चुका सकता
तत्	वह (तुम्हारा ऋण)
वः	तुम्हारी
साधुना	साधुता (सौजन्य, कृपा) से (ही)
प्रतियातु	उतर सकता है (मैं उसे उतारनेमें अपनेको सर्वथा असमर्थ पाता हूँ)

॥२२॥

प्रियाओ ! प्रयत्न करनेवाले साधकोंसे भी जो घर-गृहस्थीकी बेड़ियाँ नहीं टूटतीं तुमने उनको भलीभाँति तोड़कर मुझमें यथार्थ प्रेम किया है। मेरे साथ तुम्हारा यह मिलन सर्वथा निर्दोष—निज सुखके इच्छालेशसे भी रहित परम पवित्र है। तुम लोगोंने केवल मुझको सुख देनेके लिये ही इतना त्याग किया है। मेरे प्रति किये जानेवाले तुम्हारे इस प्रेम, सेवा और उपकारका बदला मैं देवताओंकी लम्बी आयुमें भी सेवा करके नहीं चुका सकता। तुम अपनी साधुता, सौजन्यसे ही चाहो तो मुझे उऋण कर सकती हो। मैं तो तुम्हारा ऋण चुकानेमें सर्वथा असमर्थ हूँ ॥२२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां गोपीसान्त्वनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ।
जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥ १ ॥

इत्थम्, भगवतः, गोप्यः, श्रुत्वा, वाचः, सुपेशलाः, जहुः, विरहजम्, तापं, तदङ्गोपचिताशिषः ॥१॥

इत्थम्	इस प्रकार	**तदङ्गोप-चिताशिषः**	(और) उनके अंग-संगसे पूर्णकाम (होकर)
गोप्यः	गोपियोंने	**विरहजं**	उनके विरहसे उत्पन्न
भगवतः	भगवान् (श्रीकृष्ण) की	**तापं**	तापको
सुपेशलाः	सुमधुर	**जहुः**	त्याग दिया (उससे छूट गयीं) ॥१॥
वाचः	उक्तियोंको		
श्रुत्वा	सुनकर		

परीक्षित् ! इस प्रकार गोपियाँ प्रेमसमुद्र भगवान्‌की सुमधुर वाणी सुनकर और उन सौन्दर्य-माधुर्य-निधि प्रियतमके अंग-संगसे पूर्णकाम होकर उनके विरहजनित संतापसे मुक्त हो गयीं ॥१॥

तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः ।
स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ २ ॥

तत्र, आरभत, गोविन्दः, रासक्रीडाम्, अनुव्रतैः, स्त्रीरत्नैः, अन्वितः, प्रीतैः, अन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥२॥

तत्र	(फिर) वहाँ	**प्रीतैः**	(परम) प्रसन्न (तथा)
गोविन्दः	श्रीकृष्णने	**अन्योन्या-बद्धबाहुभिः**	एक दूसरेकी बाँहमें बाँह डाले हुए
अनुव्रतैः	(अपने सर्वथा) अनुगत		

स्त्रीरत्नैः	(उन) स्त्रीरत्नोंके	**रासक्रीडाम्**	रासलीला
अन्वितः	साथ मिलकर	**आरभत**	आरम्भ की ॥२॥

तदनन्तर यमुनातटपर भगवान श्रीकृष्णकी रुचिके अनुसार चलनेवाली उनकी परम प्रेयसी गोपियाँ एक दूसरेकी बाँहमें बाँह डालकर खड़ी हो गयीं और भगवान् श्रीकृष्णने उन स्त्रीरत्नोंके साथ मिलकर परम रसमयी रासलीला आरम्भ की ॥२॥

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः ।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥ ३ ॥

यं मन्येरन् नभस्तावद् विमानशतसंकुलम् ।
दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥ ४ ॥

रासोत्सवः, सम्पवृत्तः, गोपीमण्डलमण्डितः, योगेश्वरेण, कृष्णेन, तासाम्, मध्ये, द्वयोः, द्वयोः, प्रविष्टेन, गृहीतानाम्, कण्ठे, स्वनिकटम्, स्त्रियः ॥३॥

यम्, मन्येरन्, नभः, तावत्, विमानशतसंकुलम्, दिवौकसाम्, सदाराणाम्, औत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥४॥

कण्ठे	जिनके गलेमें	**मण्डितः**	सुशोभित
गृहीतानाम्	उन्होंने बाँह डाल रखी थी	**रासोत्सवः**	रास-नृत्यका समारोह
तासाम्	उन (गोपियों) मेंसे	**सम्प्रवृत्तः**	प्रारम्भ किया
द्वयोः द्वयोः	दो-दोके	**यम्**	जिन (भगवान् श्रीकृष्ण)को
मध्ये	बीचमें		
प्रविष्टेन	खड़े हुए	**स्त्रियः**	(वे सभी) गोपियाँ
योगेश्वरेण	योगेश्वरेश्वर	**स्वनिकटम्**	अपने पार्श्वमें स्थित
कृष्णेन	(भगवान्) श्रीकृष्णने	**मन्येरन्**	समझ रही थीं
गोपी-	गोपियोंके	**तावत्**	इतनेमें ही
मण्डल-	मण्डलसे	**नभः**	आकाश

औत्सुक्या-	जिनका मन	**सदाराणाम्**	पत्नियोंके सहित
पहृता-	उत्सुकताके कारण	**दिवौकसाम्**	(उन) देवताओंके
त्मनाम्	अपने वशमें नहीं	**विमानशत-**	सैकड़ों विमानोंसे
	रहा था	**संकुलम्**	भर गया ॥३-४॥

योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण दो-दो गोपियोंके बीचमें अनेक रूपोंमें प्रकट होकर, उनके गलेमें बाँह डालकर खड़े हो गये। अब सहस्रों गोपियोंके बीच-बीचमें शोभायमान श्रीभगवान्‌ने दिव्य रासोत्सव प्रारम्भ किया। प्रत्येक गोपी यही समझ रही थी कि मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण तो मेरे ही पार्श्वमें स्थित है। भगवान्‌के द्वारा प्रारम्भ किये गये उस रसमय रासोत्सवको देखनेकी उत्सुकतासे जिनका मन अपने वशमें नहीं रह गया था, वे सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ वहाँ आ पहुँचे। सारा आकाश देवताओंके विमानोंसे भर गया ॥३-४॥

ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः।
जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥ ५ ॥

ततः, दुन्दुभयः, नेदुः, निपेतुः, पुष्पवृष्टयः, जगुः, गन्धर्वपतयः, सस्त्रीकाः, तद्यशः, अमलम् ॥५॥

ततः	उस समय	**सस्त्रीकाः**	अपनी पत्नियोंके
दुन्दुभयः	स्वर्गके नगारे		साथ
नेदुः	बजने लगे	**अमलम्**	निर्मल
पुष्पवृष्टयः	पुष्पोंकी बौछारें	**तद्यशः**	उन (भगवान्
निपेतुः	गिरने लगीं		श्रीकृष्ण) का यश
गन्धर्वपतयः	(और) गन्धर्वोंके	**जगुः**	गाने लगे ॥५॥
	नायक		

उस समय स्वर्गकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं, दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी और गन्धर्वोंके स्वामी अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णका निर्मल यशोगान करने लगे ॥५॥

वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम्।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥ ६ ॥

वलयानाम्, नूपुराणां, किङ्किणीनां, च, योषिताम्, सप्रियाणाम्, अभूत, शब्दः, तुमुलः, रासमण्डले ॥६॥

रासमण्डले	रासमण्डलमें (भी)	**नूपुराणाम्**	पायजेबोंका
सप्रियाणाम्	(अपने) प्रियतम (श्रीकृष्ण) के साथ (नृत्य करती हुई)	**च**	और
		किङ्किणीनाम्	करधनियोंका
		तुमुलः	मिश्रित
योषिताम्	गोपियोंके	**शब्दः**	शब्द
वलयानां	कङ्कणोंका	**अभूत**	हुआ ॥६॥

रासमण्डलमें सभी गोपियाँ अपने प्रियतम श्रीकृष्णके साथ नृत्य करने लगीं। उस समय वहाँ भी उन सहस्रों गोपियोंके हाथोंके कङ्कण, पैरोंकी पायजेब तथा कटिकी करधनियाँ बजने लगीं, जिनकी मिश्रित मधुर ध्वनि सर्वत्र छा गयी ॥६॥

तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः ।
मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥ ७ ॥

तत्र, अतिशुशुभे, ताभि, भगवान्, देवकीसुतः, मध्ये, मणीनां, हैमानां, महामरकतः, यथा ॥७॥

तत्र	उस (रासमण्डल)में	**यथा**	जैसे
ताभिः	उन (गोपियों)के साथ	**हैमानां**	सोनेकी बनी हुई
		मणीनां	मणियोंके
भगवान्	परम ऐश्वर्यशाली	**मध्ये**	बीचमें
देवकीसुतः	देवकीनन्दन (श्रीकृष्ण)	**महामरकतः**	प्रभामयी मरकत मणि (सुशोभित हो) ॥७॥
	(उसी प्रकार)		
अतिशुशुभे	अत्यन्त सुशोभित हुए		

उस रासमण्डलमें व्रजसुन्दरियोंके साथ षडैश्वर्यसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे, जैसे स्वर्णमयी मणियोंके बीचमें प्रभामयी नीलमणि सुशोभित हो ॥७॥

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै-
र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।
स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥८॥

पादन्यासैः, भुजविधुतिभिः सस्मितैः, भ्रूविलासैः, भज्यन्मध्यैः, चलकुचपटैः, कुण्डलैः, गण्डलोलैः, स्विद्यन्मुख्यः, कबररशनाग्रन्थयः, कृष्णवध्वः, गायन्त्यः, तम्, तडितः, इव, ताः, मेघचक्रे, विरेजुः ॥८॥

स्विद्यन्मुख्यः	जिनके मुखोंपर पसीनेकी बूँदें झलक रही हैं	**भुजविधुतिभिः**	बाहु-विक्षेपोंसे
		सस्मितैः	मन्द मुसकानसे युक्त
		भ्रूविलासैः	भौंहोंकी मटकसे
कबररशना-ग्रन्थयः	जिनकी वेणियाँ और कमरके बन्धन कसकर बाँधे हुए हैं	**भज्यन्मध्यैः**	लचकते हुए कटि-प्रदेशोंसे
		चलकुचपटैः	कुचोंपरसे खिसकते हुए वस्त्रोंसे (तथा)
ताः	वे		
कृष्णवध्वः	श्रीकृष्णकी प्रियतमा (गोपिकाएँ)	**गण्डलोलैः**	कपोलोंपर हिलते हुए
तम्	उन (भगवान् श्रीकृष्ण) की	**कुण्डलैः**	कुण्डलोंके कारण
		मेघचक्रे	मेघ मण्डलमें (कौंधती हुई)
गायन्त्यः	(मधुर) लीलाओंका गान करती हुई	**तडितः इव**	बिजलियोंकी भाँति
पादन्यासैः	(विचित्र) पाद-विन्यासोंसे	**विरेजुः**	सुशोभित हुईं ॥८॥

श्रीकृष्णकी परम प्रेयसी गोपसुन्दरियाँ अति मधुर स्वरसे प्रियतमकी मधुर लीलाओंका गान करती हुई नृत्य कर रही थीं। उस समय, वे मस्तककी वेणीकी और कमरके लहँगेकी डोरीको कसकर बाँधे हुए भाँति-भाँतिसे पैरोंको नचा रही थीं, चरणोंकी गतिके अनुसार भुजाओंसे कला पूर्ण भाव प्रकट कर रही थीं, मंद-मंद मुसकरा रही थीं और भौंहोंको मटका रही थीं। नाचनेमें कभी-कभी पतली कमर लचक जाती थी, उनके

स्तनोंके वस्त्र उड़े जा रहे थे, कानोंके कुण्डल हिल-हिलकर अपनी प्रभासे उनके कपोलोंको और भी चमका रहे थे। नाचनेके श्रमसे उनके मुखोंपर पसीनेकी बूँदें झलक रही थीं। उस समय वे व्रजसुन्दरियाँ ऐसी असीम शोभा पा रही थीं मानो नील बादलोंके बीच-बीचमें स्वर्णवर्णा बिजलियाँ चमक रही हों ॥८॥

उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः ।
कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥९॥

उच्चैः, जगुः, नृत्यमानाः, रक्तकण्ठ्यः, रतिप्रियाः, कृष्णाभिमर्श-मुदिताः, यद्गीतेन, इदम्, आवृतम् ॥९॥

रतिप्रियाः	क्रीडामें आसक्त	**उच्चैः**	उच्च स्वरसे
रक्तकण्ठ्यः	वे सुन्दर कण्ठवाली कामिनियाँ	**जगुः**	गान करने लगीं
कृष्णाभिमर्श-	भगवान् श्रीकृष्णके	**यद्गीतेन**	जिनके (उस) गानसे
मुदिताः	संस्पर्शसे आनन्दित होकर	**इदम्**	यह (सम्पूर्ण जगत्)
नृत्यमानाः	नाचती हुई	**आवृतम्**	व्याप्त हो गया (गूँज उठा) ॥९॥

श्रीकृष्णके साथ क्रीड़ामें आसक्त वे सुन्दर कण्ठवाली व्रजरमणियाँ भगवान् श्रीकृष्णका संस्पर्श प्राप्तकर आनन्दमग्न हो रही थीं। वे नाचती हुई ऊँचे स्वरसे परम मधुर गान कर रही थीं। उनकी संगीत-ध्वनिसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा था ॥९॥

काचित् समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः ।
उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति ।
तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् ॥१०॥

काचित्, समम्, मुकुन्देन, स्वरजातीः, अमिश्रिताः, उन्निन्ये, पूजिता, तेन, प्रीयता, साधु, साधु, इति, तत्, एव, ध्रुवम्, उन्निन्ये, तस्यै, मानम्, च, बहु, अदात् ॥१०॥

काचित्	कोई (गोपी)	**इति**	यों (कहकर)
मुकुन्देन	भगवान् श्रीकृष्णके	**पूजिता**	उस गोपीका सम्मान
समम्	साथ		(अभिनन्दन) किया
अभिश्रिताः	उनके स्वरोंसे	**तत् एव**	उसी (राग) को
	विलक्षण		(एक दूसरी सखीने)
स्वरजातीः	स्वरोंको	**ध्रुवम्**	ध्रुपदतालमें
उन्निन्ये	उठाकर गाने लगी	**उन्निन्ये**	उठाया
प्रीयता	(जिसपर) प्रसन्न	**च**	और
	होकर	**तस्यै**	उसे (भगवान्‌ने)
तेन	उन्होंने	**बहु**	बहुत
साधु	बहुत अच्छा	**मानम्**	आदर
साधु	बहुत अच्छा	**अदात्**	दिया ॥१०॥

कोई गोपी भगवान् श्रीकृष्णके स्वरकी अपेक्षा भी विलक्षण ऊँचे स्वरसे गान करने लगी। उसके विलक्षण मधुर गानको सुनकर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और 'बहुत अच्छा', 'बहुत अच्छा' कहकर उसकी प्रशंसा करने लगे। उसी रागको एक दूसरी गोपीने ध्रुपद् तालमें उठाकर गाया और भगवान्‌ने उसको भी बड़ा आदर दिया ॥१०॥

काचिद्रासपरिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः।
जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिकाः ॥११॥

काचित्, रासपरिश्रान्ता, पार्श्वस्थस्य, गदाभृतः, जग्राह, बाहुना, स्कन्धम्, श्लथद्वलयमल्लिका ॥११॥

काचित्	कोई (तीसरी सखी)	**बाहुना**	(अपनी) भुजासे
रास-	रासमें नृत्य करते-	**पार्श्वस्थस्य**	अपनी बगलमें खड़े
परिश्रान्ता	करते थक गयी		हुए
श्लथद्वलय-	उसके हाथोंसे कंगन	**गदाभृतः**	श्यामसुन्दरके
मल्लिका	तथा वेणीमें बँधे हुए	**स्कन्धम्**	कंधेको
	बेलेके फूल खिसकने	**जग्राह**	(सहारेके लिये)
	लगे (अतः उसने)		पकड़ लिया ॥११॥

कोई एक सखी रासमें प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके साथ नृत्य करते-करते थक गयी। उसके हाथोंके कंगन तथा वेणियोंमें वँधे हुए बेलेके पुष्प खिसकने लगे। तब वह अपने पार्श्वमें ही स्थित श्यामसुन्दरके कंधेको पकड़कर उसके सहारे खड़ी हो गयी ॥११॥

तत्रैकांसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम् ।
चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥१२॥

तत्र, एका, अंसगतम्, बाहुम्, कृष्णस्य, उत्पलसौरभम्, चन्दनालिप्तम्, आघ्राय, हृष्टरोमा, चुचुम्ब, ह ॥१२॥

तत्र	वहाँ	**चन्दना-**	परम सुगन्धित
एका	एक (गोपी) ने	**लिप्तम्**	चन्दनसे चर्चित
अंसगतम्	(अपने) कंधेपर रखी हुई	**बाहुम्**	भुजाको
		आघ्राय	सूँघकर
कृष्णस्य	भगवान् श्रीकृष्णकी	**हृष्टरोमा**	पुलकित (हो)
उत्पल-	कमलके-से	**चुचुम्ब ह**	चूम लिया ॥१२॥
सौरभम्	गन्धवाली (तथा)		

वहाँ एक गोपीने श्रीकृष्णका कोमल कर-कमल अपने कंधेपर रख लिया। भगवान्‌के उस हाथसे स्वाभाविक ही कमलकी-सी दिव्य सुगन्ध आ रही थी और उसपर अत्यन्त सुगन्धित चन्दन लगा हुआ था। भगवान्‌के भुजस्पर्श और उनके दिव्य अंग-गन्धसे उस गोपीके आनन्दसे रोमाञ्च हो आया और उसने झट् भगवान्‌के हाथको चूम लिया ॥१२॥

कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम् ।
गण्डं गण्डे संदधत्या अदात्ताम्बूलचर्वितम् ॥१३॥

कस्याश्चित्, नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम्, गण्डम्, गण्डे, संदधत्याः, अदात्, ताम्बूलचर्वितम् ॥१३॥

नाट्यविक्षिप्त-	नाचनेके कारण	**मण्डितम्**	कुण्डलकी आभासे सुशोभित
कुण्डलत्विष-	हिलते हुए		

गण्डम्	(अपने) कपोलको
गण्डे	(भगवान् श्रीकृष्णके) कपोलसे
संदधत्याः	सटा देनेवाली
कस्याश्चित्	किसी (गोपी) को (उन्होंने)
ताम्बूल-चर्वितम्	अपना चबाया हुआ पान
अदात्	दे दिया ॥१३॥

एक दूसरी गोपी रासमें नाच रही थी, इससे कानोंके कुण्डल हिल रहे थे और उन कुण्डलोंकी झलक उसके कपोलोंपर चमक रही थी। उस गोपीने अपने कपोलको भगवान्‌के कपोलसे सटा दिया। तब भगवान्‌ने बड़े प्रेमसे अपना चबाया हुआ पान उसके मुखमें दे दिया ॥१३॥

नृत्यन्ती गायती काचित् कूजन्नूपुरमेखला।
पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जं श्रान्ताधात् स्तनयोः शिवम् ॥१४॥

नृत्यन्ती, गायती, काचित्, कूजन्नूपुरमेखला, पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जम्, श्रान्ता, अधात्, स्तनयोः, शिवम् ॥१४॥

काचित्	कोई (गोपी)
कूजन्नूपुर-	पाजेब एवं करधनी
	की झनकार
मेखला	करती हुई
नृत्यन्ती	नाच रही (और)
गायती	गा रही थी
श्रान्ता	(नाचते-नाचते जब उसने)
	वह) थक गयी (तब
शिवम् पार्श्व	बगलमें खड़े हुए
स्थाच्युतहस्ता-	भगवान् श्रीकृष्णके
ब्जम्	शान्तिदायक कर-कमलको
स्तनयोः	(अपने) स्तनोंपर
अधात्	रख लिया ॥१४॥

कोई एक गोपी अपने पैरोंकी पाजेब तथा करधनीके घुँघुरुओंको मधुरस्वरसे झनकारती हुई नाच-गा रही थी। वह जब थक गयी और उसका हृदय धड़कने लगा, तब उसने अपने बगलमें ही खड़े हुए श्यामसुन्दरके शीतल सुकोमल कर-कमलको अपने दोनों स्तनोंपर रख लिया ॥१४॥

गोप्यो लब्ध्वाच्युतं कान्तं श्रिय एकान्तवल्लभम्।
गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजह्निरे ॥१५॥

गोप्यः, लब्ध्वा, अच्युतम्, कान्तम्, श्रियः, एकान्तवल्लभम्, गृहीतकण्ठ्यः, तद्दोर्भ्याम्, गायन्त्यः, तम्, विजह्रिरे ॥१५॥

श्रियः	(साक्षात्) श्रीलक्ष्मीजीके
एकान्त-वल्लभम्	एकमात्र प्रियतम
अच्युतम्	भगवान् अपने तत्त्व-स्वरूपसे कभी विलचित न होने-वाले
कान्तम्	कान्तरूपमें
लब्ध्वा	पाकर
गोप्यः	गोपियाँ
तद्दोर्भ्याम्	जिनके गलेमें
गृहीतकण्ठ्यः	उन्होंने बाँह डाल रखी थी
तम्	उन (श्रीकृष्ण) की
गायन्त्यः	प्रेमलीलाका गान करती हुई (उनके साथ)
विजह्रिरे	विहार करने लगीं ॥१५॥

साक्षात् श्रीलक्ष्मीके एकमात्र परम प्रियतम तथा सदा अपने तत्त्व-स्वरूपमें ही प्रतिष्ठित भगवान् श्रीकृष्णको अपने कान्त—हृदयेश्वरके रूपमें प्राप्त कर गोपसुन्दरियाँ उनके गलोंमें अपनी भुजाएँ डालकर उन प्रियतम-की प्रेमलीलाका गान करती हुई उनके साथ विहार करने लगीं ॥१५॥

कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलघर्म-
वक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ।
गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेश-
स्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ट्याम् ॥१६॥

कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलघर्मवक्त्रश्रियः, वलयनूपुरघोषवाद्यैः, गोप्यः, समम्, भगवता, ननृतुः, स्वकेशस्रस्तस्रजः, भ्रमरगायकरासगोष्ठ-याम् ॥१६॥

कर्णोत्पला-लकविटङ्क-कपोलघर्म-वक्त्रश्रियः	कानोंमें खोंसे हुए कमल-पुष्पों, अलकावलीसे अलंकृत कपोलों तथा पसीनेकी बूँदोंसे जिनके मुखारविन्दकी अपूर्व शोभा हो रही थी,
गोप्यः	(वे) गोपियाँ

भ्रमरगायक-रासगोष्ठ्याम्	भ्रमर ही जिसमें गायक बने हुए थे, उस रासमण्डलमें
वलयनूपुर-घोषवाद्यै:	कङ्कण एवं नूपुरोंके शब्दरूप बाजोंके साहचर्यमें
भगवता	भगवान् श्रीकृष्ण-
सम्मम्	के साथ
ननृतुः	नाचने लगीं
स्वकेश-स्रस्तस्रजः	(उस समय) उनके केशपाशोंसे फूलोंकी मालाएँ खिसकती जाती थीं ॥१६॥

उन गोपसुन्दरियोंके कानोंमें कमलके पुष्प सुशोभित थे। घुँघुराली लटें गालोंको विभूषित कर रही थीं। पसीनेकी बूँदोंसे उनके मुख-सरोजोंकी अपूर्व शोभा हो रही थी। वे रासमण्डलमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ नृत्य कर रही थीं। उस नृत्यके साथ उनके हाथोंके कंगन और पैरोंकी पाजेबोंके बाजे बज रहे थे और भ्रमरोंके दल सुर-में-सुर मिलाकर मधुर गान कर रहे थे। उस समय उनकी वेणियोंमें गुँथे हुए पुष्प खिसक-खिसककर गिरे जा रहे थे ॥१६॥

एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ।
रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥१७॥

एवम्, परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः, रेमे, रमेशः, व्रजसुन्दरीभिः, यथा, अर्भकः, स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥१७॥

यथा	जैसे
अर्भकः	छोटा शिशु
स्वप्रतिबिम्ब-विभ्रमः	अपनी परछाईंके साथ खेलता है
एवम्	उसी प्रकार
रमेशः	लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णने
परिष्वङ्गकरा-भिमर्शस्निग्धे-क्षणोद्दाम-विलासहासैः	आलिंगन, हाथोंसे अंगस्पर्श, प्रेमयुक्त कटाक्ष एवं उन्मुक्त विलासपूर्ण हासके द्वारा
व्रजसुन्दरीभिः	व्रजसुन्दरियोंके साथ
रेमे	रमण किया ॥१७॥

जैसे छोटा-सा शिशु निर्विकारभावसे अपनी परछाईंके साथ खेलता है, वैसे ही रमानाथ भगवान् श्रीकृष्ण कभी उन गोपियोंका आलिंगन करते,

कभी हाथोंसे उनका अंगस्पर्श करते, कभी प्रेमभरी तिरछी चितवनसे उनकी ओर निहारते और कभी विलासपूर्ण रीतिसे खिलखिलाकर हँस पड़ते। इस प्रकार उन्होंने उन निजस्वरूपभूता व्रजसुन्दरियोंके साथ रमण किया। (वस्तुतः भगवान् श्रीकृष्णकी यह स्वरूपभूता लीला थी। गोपियाँ तत्त्वतः श्रीकृष्णसे अभिन्न थीं; पर जैसे बालक अपना मुख स्वयं न देख पानेके कारण उसके साथ खेल नहीं सकता, परन्तु दर्पणादिमें अपनी परछाई देखकर विचित्र भाव-भंगिमाओंसे उसके साथ खेलकर आनन्दका अनुभव करता है, वैसे ही श्रीभगवान् भी अपने साथ आप क्रीड़ा नहीं कर सकते। इसीलिये वे अपनी ही परछाईं रूपा ह्लादिनी शक्तिकी विकसित मूर्त्तियों-श्रीव्रजसुन्दरियोंके साथ विविध विलास करके निर्मल दिव्य रसानन्दका अनुभव करते हैं। अपने अलौकिक अनुपमेय प्रतिक्षणवर्धमान सौन्दर्य-माधुर्य-सुधारसका अनुभव करनेके लिये ही वे निजस्वरूपा व्रजसुन्दरियोंके साथ लीला करके उसका रसास्वादन करते हैं) ॥१७॥

तदङ्गसङ्गप्रमुदाकुलेन्द्रियाः
केशान् दुकूलं कुचपट्टिकां वा।
नाञ्जः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो
विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ॥१८॥

तदङ्गसङ्गप्रमुदाकुलेन्द्रियाः, केशान्, दुकूलम्, कुचपट्टकाम्, वा, न, अञ्जः, प्रतिव्योढुम्, अलम्, व्रजस्त्रियः, विस्रस्तमालाभरणाः, कुरूद्वह ॥१८॥

कुरूद्वह	हे कुरुनन्दन !	**विस्रस्तमाला-**	जिनके गलेके पुष्प-
तदङ्गसङ्ग-	उन (भगवान्	**भरणाः**	हार एवं आभूषण
प्रमुदा-	श्रीकृष्ण) के अंग-		च्युत हो गये थे,
कुलेन्द्रियाः	संगसे होनेवाले	**व्रजस्त्रियः**	(वे) व्रजबालाएँ
	परमानन्दके कारण	**केशान्**	अपने केशपाशको
	जिनकी इन्द्रियाँ	**दुकूलम्**	ओढ़नेके वस्त्रको
	विह्वल हो गयी थीं,	**वा**	अथवा
	(अतएव)	**कुचपट्टिकाम्**	चोलीको (भी)

अञ्जः	जल्दी	**अलम्**	समर्थ
प्रतिव्योढुम्	सँभालनेमें	**न**	नहीं हुईं ॥१८॥

परीक्षित् ! प्रियतम भगवान्‌के अंगोंका संस्पर्श पाकर गोपियोंकी इन्द्रियाँ प्रेमानन्दसे विह्वल हो गयीं। उनके कण्ठोंमें पड़े हुए पुष्पहार टूट गये। उनके आभूषण अस्त-व्यस्त हो गये। सजाये हुए केश बिखर गये। वे अपनी ओढ़नी तथा चोलीको भी जल्दीसे सँभालनेमें असमर्थ हो गयीं ॥१८॥

कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः।
कामार्दिताः शशाङ्कश्च सगणो विस्मितोऽभवत् ॥१९॥

कृष्णविक्रीडितम्, वीक्ष्य, मुमुहुः, खेचरस्त्रियः, कामार्दिताः, शशाङ्कः, च, सगणः, विस्मितः, अभवत् ॥१९॥

कृष्णा-	भगवान् श्रीकृष्णकी	**च**	और
विक्रीडितम्	(उस) रासक्रीडाको	**शशाङ्कः**	चन्द्रमा
वीक्ष्य	देखकर	**सगणः**	अपने गणों (नक्षत्रों)
खेचरस्त्रियः	आकाशमें स्थित देवांगनाएँ		सहित
		विस्मितः	आश्चर्य चकित
कामार्दिताः	कामातुर (होकर)	**अभवत्**	हो गया ॥१९॥
मुमुहुः	मोहित हो गयीं		

भगवान् श्रीकृष्णकी इस प्रेममयी रासक्रीड़ाको देखकर आकाशमें विमानोंमें बैठी देवांगनाएँ भी मिलनकी इच्छासे मोहित हो गयीं और चन्द्रमा अपने गणों—नक्षत्रों तथा तारोंके साथ आश्चर्यचकित हो गया ॥१९॥

कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः।
रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥२०॥

कृत्वा, तावन्तम्, आत्मानम्, यावतीः, गोपयोषितः, रेमे, सः, भगवान्, ताभिः, आत्मारामः, अपि, लीलया ॥२०॥

भगवान्	भगवान् (श्रीकृष्ण)	**गोपयोषितः**	गोप रमणियाँ थीं,
आत्मारामः	आत्माराम (अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले) हैं,	**आत्मानम्**	अपनेको
		तावन्तम्	उतने ही रूपोंमें
		कृत्वा	प्रकट करके
अपि	फिर भी	**लीलया**	लीलासे
सः	उन्होंने	**ताभिः**	उनके साथ
यावतीः	जितनी	**रेमे**	रमण किया ॥२०॥

भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं, नित्य स्वभावसे आत्मस्वरूपमें ही रमण करते हैं। फिर भी उन्होंने, जितनी गोपरमणियाँ थीं, उतने ही रूपोंमें अपनेको प्रकट करके अपनी लीलासे ही—किसी कामना वासनासे नहीं—उनके साथ रमण किया ॥२०॥

तासामतिविहारेण श्रान्तानां वदनानि सः।
प्रामृजत्करुणः प्रेम्णा शंतमेनाङ्ग पाणिना ॥२१॥

तासाम्, अतिविहारेण, श्रान्तानाम्, वदनानि, सः, प्रामृजत्, करुणः, प्रेम्णा, शंतमेन, अङ्ग, पाणिना ॥२१॥

अङ्ग	हे तात ! (परीक्षित्)	**सः**	उन (भगवान् श्रीकृष्ण) ने
अतिविहारेण	(तब) अत्यधिक विहारके कारण	**प्रेम्णा**	प्रेमपूर्वक (अपने)
		शंतमेन	परम शान्तिदायक
श्रान्तानाम्	थकी हुई	**पाणिना**	कर-कमलसे
तासाम्	उन (गोपियों) के	**प्रामृजत**	भलीभाँति पोंछ दिया ॥२१॥
वदनानि	मुखकोंको		
करुणः	करुणामय (भक्तवत्सल)		

प्रिय परीक्षित् ! यों बहुत देरतक नृत्य, गान, विहार आदि करनेके कारण अत्यधिक श्रमसे जब सारी गोपियाँ थक गयीं, तब करुणामय भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं अपने परम शान्तिदायक कोमल कर-कमलोंके द्वारा बड़े ही प्रेमसे उनके मुख-कमलोंको पोंछ दिया ॥२१॥

गोप्यः स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्-
गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन ।
मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि
पुण्यानि तत्करुहस्पर्शप्रमोदाः ॥२२॥

गोप्यः, स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्गण्डश्रिया, सुधितहास-निरीक्षणेन, मानम्, दधत्यः, ऋषभस्य, जगुः, कृतानि, पुण्यानि, तत्करुह-स्पर्शप्रमोदाः ॥२२॥

तत्करुह-स्पर्श-प्रमोदाः	उन (भगवान् श्रीकृष्ण)के नख-स्पर्शसे प्रमुदित हुई
गोप्यः	गोपियाँ
स्फुरत्पुरट-कुण्डल-कुन्तल-त्विड्गण्ड-श्रिया	झिलमिलाते हुए सुवर्णमय कुण्डलों-की आभासे मण्डित और घुँघराली अलकोंसे सुशोभित कपोलोंकी सुन्दरतासे (तथा)
सुधितहास-निरीक्षणेन	सुधा-मधुर मुसकानसे युक्त कटाक्षोंसे
मानम्	सम्मान
दधत्यः	करती हुई
ऋषभस्य	(उन) पुरुषश्रेष्ठके
पुण्यानि	पावन
कृतानि	चरित्रोंको
जगुः	गाने लगीं ॥२२॥

भगवान् श्यामसुन्दरके कर-कमलों और नखोंके स्पर्शसे गोपियाँ प्रमुदित हो गयीं। उन्होंने अपने कपोलोंकी सुन्दरतासे, जिनपर झिल-मिलाते हुए सुवर्णमय कुण्डलोंकी आभा छिटक रही थी तथा घुँघराले केशोंकी लटें लहरा रही थीं एवं अपनी सुधामयी मधुर मुसकानसे युक्त प्रेममयी चितवनसे उन पुरुषोत्तम भगवान्का सम्मान किया और फिर वे उनकी परमपवित्र प्रेमसुधामयी लीलाओंका गान करने लगीं ॥२२॥

ताभिर्युतः श्रममपोहितुमङ्गसङ्ग-
घृष्टस्रजः स कुचकुंकुमरञ्जितायाः ।
गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद् वाः
श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥२३॥

ताभिः, युतः, श्रमम्, अपोहितुम्, अङ्गसङ्गघृष्टस्रजः, सः, कुचकुंकुमरञ्जितायाः, गन्धर्वपालिभिः, अनुद्रुतः, आविशत्, वाः, श्रान्तः, गजीभिः, इभराट्, इव, भिन्नसेतुः ॥२३॥

श्रान्तः	(इसके बाद) थके हुए
सः	वे (श्रीकृष्ण)
भिन्नसेतुः	लोक और वेदकी मर्यादाको तोड़कर
श्रमम्	अपनी थकानको
अपोहितुम्	दूर करनेके लिये
ताभिः	उन (गोपियों)के
युतः	साथ
वाः	(श्रीयमुनाजीके) जलमें
आविशत्	घुस गये
इभराट् इव	ठीक जिस प्रकार गजराज
गजीभिः	हथिनियोंके साथ बाँधको तोड़कर जलमें घुस जाय)
कुचकुंकुमरञ्जितायाः	उस समय उन व्रजवालाओंके कुचोंपर लेप किये हुए केसर से रँगी हुई (तथा)
अङ्गसङ्गघृष्टस्रजः	उनके अंगोंकी रगड़से मर्दित वनमालासे आकृष्ट
गन्धर्वपालिभिः	एवं गन्धर्वपतियोंके समान गान करते हुए भ्रमर
अनुद्रुतः	उनका पीछा कर रहे थे ॥२३॥

तदनन्तर जैसे विलास-क्रियासे थका हुआ गजराज बाँधको तोड़ता हुआ हथिनियोंके साथ जलमें प्रवेश करके विविध प्रकारसे क्रीड़ा करता है, वैसे ही थके हुए भगवान् श्रीकृष्ण लोक और वेदकी मर्यादाका भंग करके अपनी थकानको दूर करने के लिये उन गोप-सुन्दरियोंको लेकर श्रीयमुनाजीके जलमें घुस गये। उस समय भगवान्‌के गलेकी उस वनमालासे, जो गोप-सुन्दरियोंके अंगोंकी रगड़से कुछ मसली गयी थी और जो उनके वक्षःस्थलके केसरसे केसरी रंगकी हो रही थी, खिचकर भ्रमरोंके दल-के-दल उनके पीछे-पीछे मधुर गुंजार करते हुए उड़े आ रहे थे, मानो गन्धर्वगण उनकी लीलाओंका सुमधुर गान करते हुए पीछे-पीछे चल रहे हों ॥२३॥

सोऽम्भस्थलं युवतिभिः परिषिच्यमानः
प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग ।

वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो
रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥२४॥

सः, अस्भसि, अलम्, युवतिभिः, परिषिच्यमानः, प्रेम्णा, ईक्षितः, प्रहसतीभिः, इतः, ततः, अङ्ग, वैमानिकैः, कुसुमवर्षिभिः, ईड्यमानः, रेमे, स्वयम्, स्वरतिः, अत्र, गजेन्द्रलीलः ॥२४॥

अङ्ग	हे तात (परीक्षित्)
अम्भसि	(श्रीयमुनाजीके) जलमें
युवतिभिः	व्रजयुवतियाँ
प्रेम्णा	प्रेम (भरी चितवन) से
ईक्षितः	उनकी ओर देखती हुई
प्रहसतीभिः	खिलखिलाकर हँसती हुई
इतः ततः	सब ओरसे
सः	उन (भगवान् श्रीकृष्ण) पर
अलम्	खूब
परिषिच्यमानः	जल उलीचने लगीं
वैमानिकैः	(तथा) विमानोंपर बैठे हुए देवता
कुसुमवर्षिभिः	फूल बरसाते हुए
ईड्यमानः	उनकी स्तुति करने लगे (इस प्रकार)
स्वयम्	साक्षात्
स्वरतिः	आत्मामें रमण करनेवाले (भगवान्)
अत्र	वहाँ
गजेन्द्रलीलः	गजराजकी-सी लीला करते हुए
रेमे	(जल-) विहार करने लगे ॥२४॥

परीक्षित् ! यमुनाजीके जलमें वे व्रजतरुणियाँ प्रेमयमी चितवनसे श्रीकृष्णकी ओर देखती हुई तथा खिलखिलाकर हँसती हुई उनपर चारों ओरसे खूब जल उलीचने लगीं। इस दृश्यको देखकर विमानोंपर बैठे हुए देवता फूल बरसाकर उनकी स्तुति करने लगे। इस प्रकार अपने-आपमें ही नित्य रमण करनेवाले भगवान् स्वयं गजराजकी भाँति यमुनाजलमें गोपांगनाओंके साथ जल-विहारकी लीला करने लगे ॥२४॥

ततश्च कृष्णोपवने जलस्थल-
प्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे ।

चचार भृङ्गप्रमदागणवृतो
यथा मदच्युद् द्विरदः करेणुभिः ॥२५॥

ततः, च, कृष्णोपवने, जलस्थलप्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे, चचार, भृङ्गप्रमदागणावृतः, यथा, मदच्युत्, द्विरदः, करेणुभिः ॥२५॥

च	और	**चचार**	(इस प्रकार) विचरने लगे
ततः	फिर		
भृङ्गप्रमदा-गणावृतः	भौंरों और युवतियों-के समूहसे घिरे हुए (भगवान्)	**यथा**	जैसे
		मदच्युत्	मद चुबाता हुआ
		द्विरदः	गजराज
कृष्णोपवने	यमुनातटके उस उपवनमें	**करेणुभिः**	हथिनियोंके साथ (घूम रहा हो) ॥२५॥
जलस्थल-प्रसूनगन्धा-निलजुष्ट-दिक्तटे	जहाँ सब ओर जल और भूमिपर खिले हुए पुष्पोंकी गन्धसे सुवासित वायु बह रही थी,		

इसके पश्चात् यमुनाजीसे निकलकर भ्रमरों तथा व्रजयुवतियोंसे घिरे हुए भगवान् उस रमणीय उपवनमें गये, जहाँ सब ओर जल और स्थलमें सुन्दर सुगन्धयुक्त पुष्प खिले हुए थे और उनकी सुगन्धका प्रसार करती हुई मन्द मनोहर वायु चल रही थी। उस उपवनमें भगवान् उसी प्रकार विचरने लगे, जैसे मद चुबाता हुआ गजराज हथिनियोंके साथ घूम रहा हो ॥२५॥

एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः
स सत्यकामोऽनुरताबलागणः ।
सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः
सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥२६॥

एवम्, शशांकांशुविराजिताः, निशाः, सः, सत्यकामः, अनुरताबलागणः, सिषेवे, आत्मनि, अवरुद्धसौरतः, सर्वाः, शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥२६॥

शशाङ्कांशु-विराजिताः	चन्द्रमाकी किरणोंसे सुशोभित
शरत्काव्य-कथारसा-श्रयाः	काव्योंमें वर्णित शरत्कालोचित सम्पूर्ण रस-सामग्रियोंसे युक्त
सर्वाः	(उन) सब
निशाः	रात्रियोंमें
सत्यकामः	सत्यसंकल्प (एवं)
अवरुद्धसौरतः	अस्खलितवीर्य
सः	उन (भगवान्)ने
आत्मनि	अपने प्रति अनुरक्त
अनुरता-बलागणः	उन गोपबालाओंके साथ
एवम्	इस (पूर्वोक्त) प्रकार
सिषेवे	विहार किया ॥२६॥

शरद्की वह रात्रि अनेक रात्रियोंसे समन्वित होकर बड़ी ही शोभा पा रही थी। चन्द्रमाकी किरण-ज्योत्स्ना सब ओर छिटक रही थी। काव्योंमें शरत्कालकी जिन रस-सामग्रियोंका विवेचन किया गया है, वे सम्पूर्ण उसमें विद्यमान थीं। उस रात्रिमें सत्यसंकल्प भगवान श्यामसुन्दरने अपनी परमप्रेयसी निजस्वरूपा चिन्मयी गोपरमणियोंके साथ चिन्मय लीला-विहार किया। भगवान्की सत्तासे ही कामदेवमें सत्ता आती है, इसलिये कामदेवका उनपर कोई भी वश नहीं चल सकता। अतएव वह यहाँ भी सर्वदा पराजित रहा। भगवान सर्वथा अस्खलितवीर्य बने रहे ॥२६॥

राजोवाच

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥२७॥
स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥२८॥
आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम्।
किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥२९॥

संस्थापनाय, धर्मस्य, प्रशमाय, इतरस्य, च, अवतीर्णः, हि, भगवान्, अंशेन, जगदीश्वरः सः, कथम्, धर्मसेतूनाम्, वक्ता, कर्ता, अभिरक्षिता, प्रतीपम्, आचरत्, ब्रह्मन्, परदाराभिमर्शनम्, आप्तकामः, यदुपतिः, कृतवान्, वै, जुगुप्सितम्, किमभिप्रायः, एतम्, नः, संशयम्, छिन्धि, सुव्रत ॥२७-२९॥

जगदीश्वरः	जगत्के स्वामी	**परदारभिमर्शनम्**	परस्त्रियोंके अंग-स्पर्श (-जैसा)
भगवान्	भगवान् श्रीकृष्णने	**प्रतीपम्**	धर्मविरुद्ध आचरण
धर्मस्य	धर्मकी	**कथम्**	कैसे, क्योंकर
संस्थापनाय	सुदृढ़ स्थापनाके लिये	**आचरत्**	किया
च	तथा	**आप्तकामः**	पूर्णकाम
इतरस्य	अधर्मके	**यदुपतिः**	यादवपति भगवान् श्रीकृष्णने
प्रशमाय	विनाशके लिये	**वै**	ऐसा
हि	ही	**जुगुप्सितम्**	गर्हित (कर्म)
अंशेन	अपने अंश (बलरामजी) के साथ	**किमभिप्रायः**	किस अभिप्रायसे
अवतीर्णः	अवतार लिया था	**कृतवान्**	किया
ब्रह्मन्	हे विप्रवर !	**सुव्रत**	हे उत्तम निष्ठावाले मुनिवर !
धर्मसेतूनाम्	धर्मकी मर्यादाओंके	**नः**	हमारे
वक्ता	उपदेशक	**एतम्**	इस
कर्ता	रचनेवाले (तथा)	**संशयम्**	संदेहको
अभिरक्षिता	पालक (होकर) भी	**छिन्धि**	दूर कीजिये
सः	उन (भगवान् श्रीकृष्ण)ने		॥२८-२९॥

इसी बीचमें राजा परीक्षित् भगवान्‌की चिन्मयी लीलाका रहस्य पूरी तरहसे न समझनेके कारण लौकिकभावसे शङ्का करते हुए श्रीशुकदेवजीसे प्रश्न कर बैठे। उन्होंने कहा—

भगवन् ! भगवान् श्रीकृष्ण तो सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, उन्होंने अपने अंश श्रीबलरामजीके साथ धर्मकी स्थापना और अधर्मके विनाशके लिये ही परिपूर्णरूपमें अवतार ग्रहण किया था। ब्रह्मन् ! वे स्वयं धर्म-

मर्यादाओंकी रचना करनेवाले, उनकी रक्षा करनेवाले तथा उपदेशक थे। फिर, उन भगवान्‌ने स्वयं धर्मके विपरीत परस्त्रियोंका अंगस्पर्श कैसे और क्यों किया ? भगवान् श्रीकृष्ण तो नित्य पूर्णकाम हैं, उनके मनमें कभी कोई कामना जागती ही नहीं; फिर यादवेन्द्र भगवान्‌ने किस अभिप्रायसे ऐसा निन्दनीय कर्म किया ? उत्तम निष्ठावाले श्रीशुकदेवजी ! आप कृपा-पूर्वक मेरे इस संदेहको दूर कीजिये ॥२७-२९॥

श्रीशुक उवाच

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥३०॥

धर्मव्यतिक्रमः, दृष्टः, ईश्वराणाम्, च, साहसम्, तेजीयसाम् न, दोषाय, वह्नेः, सर्वभुजः, यथा ॥३०॥

ईश्वराणाम्	ईश्वरकोटिके समर्थ देवताओं द्वारा	**दोषाय**	दोषकी बात
		न	नहीं (मानी जाती)
धर्मव्यतिक्रमः	धर्मका उल्लंघन	**यथा**	जैसे
च	तथा	**सर्वभुजः**	सब कुछ भक्षण करनेवाले
साहसम्	साहसके कार्य (होते)		
दृष्टः	देखे गये हैं	**वह्नेः**	अग्निका (यह कार्य दोषयुक्त नहीं होता) ॥३०॥
तेजीयसाम्	परन्तु तेजस्वी देवोंकी (ऐसी चेष्टा)		

परीक्षित्‌के इस संदेहयुक्त प्रश्नसे विरक्तशिरोमणि शुकदेवजीके द्वारा प्रवाहित लीलारसका प्रवाह रुक गया और वे परीक्षित्‌का सन्देह दूर करनेके लिये लौकिक युक्तिपूर्ण वचन बोले—

परीक्षित् ! कर्मकी अधीनतासे मुक्त ईश्वरकोटिके समर्थ महान् तेजस्वी देवताओं द्वारा कभी-कभी धर्मका उल्लंघन तथा ऐसे परम साहसके कार्य होते देखे जाते हैं। परन्तु उन कार्योंसे उन तेजस्वी देवताओंका कोई दोष नहीं माना जाता। जैसे अग्नि शवदेहादिपर्यन्त सब कुछ खा जाता है, परन्तु उसके उस कार्यको कोई भी दोषयुक्त नहीं मानता ॥३०॥

नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः ।
विनश्यत्याचरन् मौढ्याद्यथारुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥३१॥

न, एतत्, समाचरेत्, जातु, मनसा, अपि, हि, अनीश्वरः, विनश्यति, आचरन्, मौढ्यात्, यथा, अरुद्रः, अब्धिजम्, विषम् ॥३१॥

अनीश्वरः	(किंतु) जो समर्थ नहीं है (जीवभावमें स्थित है) वह	**आचरन्**	इस प्रकारका आचरण करनेवाला
मनसा	मनसे	**विनश्यति**	(वैसे ही) नष्ट हो जायगा
अपि	भी (शरीरसे तो बात ही क्या)	**यथा**	जैसे
जातु	कदापि	**अरुद्रः**	जो शिवजीके समान समर्थ नहीं है, वह
एतत्	ऐसी (धर्मविरुद्ध) चेष्टा		(उनकी देखा-देखी)
न	नहीं	**अब्धिजम्**	समुद्रसे उत्पन्न हुए
समाचरेत्	करे;	**विषम्**	विषको (पीने जाकर नष्ट हो जायगा) ॥३१॥
हि	क्योंकि		
मौढ्यात्	मूर्खतावश		

परन्तु जो अनीश्वर हैं, समर्थ नहीं हैं, अजितेन्द्रिय तथा देहाभिमानी हैं, उन्हें, शरीरसे तो दूर रहा, कभी मनसे भी ऐसी चेष्टा नहीं करनी चाहिये। यदि कोई मूर्खतावश ईश्वरकी इस लीलाका अनुकरण करके इस प्रकारका आचरण कर बैठेगा तो वह नष्ट—पतित हो जायगा। भगवान् शिवजीने समुद्रसे उत्पन्न हलाहल विष पी लिया था; पर उनकी देखा-देखी दूसरा कोई पियेगा तो वह निश्चय ही जलकर भस्म हो जायगा ॥३१॥

ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ।
तेषां यत् स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥३२॥

ईश्वराणाम्, वचः, सत्यम्, तथा, एव, आचरितम्, क्वचित्, तेषाम्, यत्, स्ववचोयुक्तम्, बुद्धिमान्, तत्, समाचरेत् ॥३२॥

ईश्वराणाम्	समर्थ देवताओंका	**तेषाम्**	उनका
वचः	वचन (आदेश)	**यत्**	जो (आचरण)
सत्यम्	यथार्थ (पालनीय) होता है	**स्ववचोयुक्तम्**	उनके अपने उपदेश-के अनुकूल ही
तथा एव	उसी प्रकार	**तत्**	उसीका
क्वचित्	कहीं-कही	**बुद्धिमान्**	बुद्धिमान् पुरुषको
आचरितम्	आचरण (भी आदर्श) होता है	**समाचरेत्**	अनुकरण करना चाहिये ॥३२॥

इसलिये श्रीशंकरके सदृश समर्थ देवताओंके वचनोंका ही अधिकारानुसार यथार्थ रूपसे पालन करना चाहिये, उनके स्वच्छन्द आचरणोंका नहीं। कहीं-कहीं उनके आचरणोंका भी अनुकरण किया जा सकता है, परन्तु बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उनके उसी आचरणका अनुकरण करे, जो उनके उपदेशके सर्वथा अनुकूल हो ॥३२॥

कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते ।
विपर्ययेण वानर्थो निरहंकारिणां प्रभो ॥३३॥

कुशलाचरितेन, एषाम्, इह, स्वार्थः, ने, विद्यते, विपर्ययेण, वा, अनर्थः, निरहंकारिणाम्, प्रभो ॥३३॥

प्रभो	हे राजन् !	**विपर्ययेण**	विपरीत (लोक-दृष्टिमें अशुभ) आचरणसे
इह	इस संसारमें	**अनर्थः**	(कोई) हानि नहीं होती (क्योंकि ये लाभ हानि तथा शुभ-अशुभसे ऊपर उठे रहते हैं) ॥३३॥
निरहंकारिणाम्	अहंकारशून्य		
एषाम्	इन लोगोंका		
कुशलाचरितेन	शुभकर्मसे (तो)		
स्वार्थः	(कोई) अपना लाभ		
न	नहीं		
विद्यते	है		
वा	अथवा		

राजा परीक्षित् ! इस संसारमें ऐसे समर्थ ईश्वर सर्वथा अहंकारशून्य होते हैं। शुभ कर्म करनेसे उनका कोई स्वार्थसाधन—लाभ नहीं होता

और उसके विपरीत लोकदृष्टिमें अशुभ कर्मसे उनकी कोई हानि नहीं होती। वे स्वार्थ या अनर्थ अर्थात् लाभ-हानि और शुभ-अशुभसे ऊपर उठे होते हैं ॥३३॥

किमुताखिलसत्त्वानां तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् ।
ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ॥३४॥

किम्, उत, अखिलसत्त्वानाम्, तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम्, ईशितुः, च, ईशितव्यानाम्, कुशलाकुशलान्वयः ॥३४॥

च	फिर	**सत्त्वानाम्**	जीवोंके
तिर्यङ्मर्त्य-दिवौकसाम्	पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि तिर्यक् योनियोंके जीवों, मनुष्यों तथा देवताओं (आदि)	**ईशितुः**	(एक मात्र) शासक (प्रभु श्रीकृष्ण) का
		उत	तो
ईशि-तव्यानाम्	शासन करनेयोग्य	**कुशला-कुशला-न्वयः**	शुभ एवं अशुभके साथ (किसी) प्रकारका) सम्बन्ध
अखिल-	समस्त	**किम्**	हो ही कैसे सकता है ॥३४॥

यह तो ईश्वर कोटिके समर्थ देवताओं तथा पुरुषोंकी बात है। भगवान् श्रीकृष्ण तो पशु-पक्षी, कीट-पतंग, मनुष्य-देवता आदि समस्त चराचर जीवोंके एकमात्र नियन्ता—शासक प्रभु, सर्वलोक महेश्वर हैं। उनके साथ किसी लौकिक शुभ और अशुभसे किसी भी प्रकारका सम्बन्ध हो ही कैसे सकता है ॥३४॥

यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ता
योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः ।
स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमाना-
स्तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥३५॥

यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ताः, योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः, स्वैरम्, चरन्ति, मुनयः, अपि, न, नह्यमानाः, तस्य, इच्छया, आत्तवपुषः, कुतः, एव, बन्धः ॥३५॥

यत्पादपंकज-	जिनके चरण-	**चरन्ति**	विचरते हैं (किसी
जपराग-	कमलोंकी रजके		प्रकारका नियन्त्रण
निषेवतृप्ताः	सेवनसे पूर्णकाम		नहीं मानते)
	(भक्तजन)	**इच्छया**	अपनी इच्छासे—
योगप्रभाव-	अथवा योग साधनके		लीलासे ही
विधुताखिल	प्रभावसे जिनके सारे	**आत्तवपुषः**	देह धारण किये हुए
कर्मबन्धाः	कर्मबन्धन टूट गये	**तस्य**	उन (पूर्ण पुरुषोत्तम
	हैं;		कर्तुं अकर्तुम्
मुनयः अपि	ऐसे योगिजन भी		अन्यथाकर्तुम्
न नह्यमानाः	विधि-निषेधरूप सब		समर्थ) भगवान्पर
	प्रकारके बन्धनोंसे	**बन्धः**	(किसी प्रकारका)
	मुक्त होकर		बन्धन
स्वैरम्	स्वच्छन्दता पूर्वक	**कुतः एव**	हो ही कैसे सकता है
			॥३५॥

जिनके चरण-कमलोंकी रजका सेवन करके भक्तजन पूर्णकाम हो जाते हैं, जिनके साथ मनका योग हो जानेके प्रभावसे योगी मुनिजनोंके समस्त कर्मबन्धन कट जाते हैं, वे किसी भी विधि-निषेधको न मानकर स्वेच्छानुसार नियन्त्रणरहित स्वच्छन्द आचरण करते हुए भी बन्धनसे सर्वथा मुक्त रहते हैं, वे ही साक्षात् भगवान्, जो कर्मबन्धनसे पांञ्चभौतिक देहको प्राप्त न होकर अपनी लीलासे ही सच्चिदानन्दमय विग्रह रूपमें प्रकट हुए हैं, उन कर्तुं-अकर्तुं-अन्यथा कर्तुं समर्थ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्में किसी प्रकारके कर्मबन्धनकी कल्पना ही कैसे हो सकती है ॥३५॥

गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ।
योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ॥३६॥

गोपीनाम्, तत्पतीनाम्, च, सर्वेषाम्, एव, देहिनाम्, यः, अन्तः, चरति, सः, अध्यक्षः, क्रीडनेन, इह, देहभाक् ॥३६॥

यः	जो (भगवान्)	**च**	तथा
गोपीनाम्	गोपियोंके	**सर्वेषाम् एव**	सभी
तत्पतीनाम्	उनके पतियोंके	**देहिनाम्**	प्राणियोंके

अन्तः	भीतर (हृदयमें)	**इह**	इस (भूलोक) में
चरित	(अन्तर्यामीरूपसे) विहार करते हैं	**क्रीडनेन**	लीलासे
सः	वे	**देहभाक्**	शरीर धारण करके प्रकट हुए हैं ॥३६॥
अध्यक्षः	सर्वसाक्षी (परमेश्वर ही)		

जो भगवान् गोपियोंके, उनके पतियोंके तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामी आत्मारूपसे विहार करते हैं, वे सबके साक्षी परमपति परमेश्वर ही दिव्य चिन्मय देह धारण करके यहाँ लीला कर रहे हैं ॥३६॥

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥३७॥

अनुग्रहाय, भूतानाम्, मानुषम्, देहम् आस्थितः, भजते, तादृशीः, क्रीडाः, याः, श्रुत्वा, तत्परः, भवेत् ॥३७॥

भूतानाम्	जीवोंपर	**क्रीडाः**	लीलाएँ
अनुग्रहाय	कृपा करनेके लिये (ही)	**भजते**	करते हैं
मानुषम्	मनुष्यकी (सी)	**याः**	जिन्हें
देहम्	देह	**श्रुत्वा**	सुनकर (मनुष्य)
आस्थितः	धारण करके (भगवान्)	**तत्परः**	उन (भगवान्) के परायण
तादृशीः	वैसी	**भवेत्**	हो जाता है ॥३७॥

जीवोंपर कृपा करनेके लिये ही भगवान् अपने सच्चिदानन्द घनस्वरूपको मनुष्यदेहके रूपमें प्रकट करके वैसी ही लीलाएँ करते हैं, जिन्हें सुनकर मनुष्य उन भगवान्‌की इस दिव्य भावमयी लीलामें तनिक भी संदेह नहीं करना चाहिये ॥३७॥

नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया ।
मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः ३८

न, असूयन्, खलु, कृष्णाय, मोहिताः, तस्य, मायया, मन्यमानाः, स्वपार्श्वस्थान्, स्वान्, स्वान्, दारान्, व्रजौकसः ॥३८॥

व्रजौकसः	(इधर) व्रजवासी गोपोंने	**कृष्णाय**	भगवान् श्रीकृष्णके प्रति
स्वान्	अपनी	**खलु**	तनिक भी
स्वान्	अपनी	**न असूयन्**	दोष दृष्टि नहीं की
दारान्	पत्नियोंको	**तस्य**	(क्योंकि वे) उनकी
स्वपार्श्व-	अपने	**मायया**	मायासे
स्थान्	समीपवर्ती	**मोहिताः**	मोहित हो रहे थे
मन्यमानाः	समझकर		॥३८॥

यह भावमयी दिव्य लीला थी, जिसके कारण व्रजवासी गोपोंने भगवान्‌की योगमायासे मोहित होकर ऐसा अनुभव किया कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही सोयी हैं और इससे उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके प्रति तनिक भी दोषदृष्टि नहीं की ॥३८॥

ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः ।
अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान् भगवत्प्रियाः ॥३९॥

ब्रह्मरात्रे, उपावृत्ते, वासुदेवानुमोदिताः, अनिच्छन्त्यः, ययुः, गोप्यः, स्वगृहान्, भगवत्प्रियाः ॥३९॥

ब्रह्मरात्रे	फिर ब्राह्ममुहूर्तके	**वासुदेवानु-**	भगवान्‌की आज्ञा
उपावृत्ते	आनेपर	**मोहिताः**	पाकर
भगवत्प्रियाः	भगवान् श्रीकृष्णकी प्यारी	**अनिच्छन्त्यः**	न चाहनेपर भी
		स्वगृहान्	अपने-अपने घरोंको
गोप्यः	गोपियाँ	**ययुः**	चली गयीं ॥३९॥

फिर जब ब्राह्ममुहूर्त आ गया, तब भगवान्‌की अत्यन्त प्यारी वे गोपसुन्दरियाँ अपने-अपने घरोंको लौट गयीं । यद्यपि उनकी लौटकर जाने-की तनिक भी इच्छा नहीं थी, तथापि वे अपनी प्रत्येक क्रियासे भगवान् श्रीकृष्णको ही सुखी करना चाहती थीं, उनमें श्रीकृष्ण-सुखसे पृथक् किसी निजसुखकी कामना तो थी नहीं, इसलिये वे भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा होते ही चली गयीं ॥३९॥

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥४०॥

विक्रीडितम्, व्रजवधूभिः, इदम्, च, विष्णोः, श्रद्धान्वितः, अनुशृणुयात्, अथ, वर्णयेत्, यः, भक्तिम्, पराम्, भगवति, प्रतिलभ्य, कामम्, हृद्रोगम्, आशु, अपहिनोति, अचिरेण, धीरः ॥४०॥

व्रजवधूभिः	व्रजांगनाओंके साथ	**भगवति**	(उन) भगवान् श्रीकृष्णकी
विष्णोः	भगवान् श्रीकृष्णकी	**पराम्**	सर्वश्रेष्ठप्रेमस्वरूपा
इदम्	इस	**भक्तिम्**	भक्तिको
विक्रीडितम्	रासक्रीडा (के वर्णन) को	**प्रतिलभ्य**	प्राप्तकर
यः	जो	**हृद्रोगम्**	हृदयके विकाररूप (लौकिक)
श्रद्धान्वितः	श्रद्धासे युक्त (होकर)	**कामम्**	कामसे
अनुशृणुयात्	बार-बार सुनेगा	**अचिरेण**	अविलम्ब
अथ च	अथवा	**अपहिनोति**	मुक्त हो जायगा ॥४०॥
वर्णयेत्	कहेगा		
धीरः	(वह) धीर पुरुष		
आशु	शीघ्र ही		

जो धीर पुरुष व्रजललनाओंके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी इस दिव्य भावमय चिन्मय रासक्रीडाका श्रद्धाके साथ बार-बार श्रवण और वर्णन करेगा, वह शीघ्र ही भगवान् श्रीकृष्णकी पराभक्तिको—सर्वश्रेष्ठ प्रेम-स्वरूपा भक्तिको प्राप्त हो जायगा तथा तुरन्त हृदयके विकाररूप लौकिक कामसे सर्वथा मुक्त हो जायगा ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः ।
अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥१॥

एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः अनोभिः अनडुदु युक्तैः प्रययुः ते अम्बिका वनम् ॥१॥

एकदा	एक बार	**अनडुदु युक्तैः**	बैलोंसे जुते हुए
देवयात्रायां	देवयात्रा (शिवरात्रि-की यात्रा) के समय	**अनोभिः**	छकड़ोंके द्वारा
		ते अम्बिका	उन्होंने वे अम्बिका
गोपाला	गोपगण	**वनं**	वन
जातकौतुकाः	कौतूहल उत्पन्न होनेसे	**प्रययुः**	चल पड़े ॥१॥

तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम् ।
आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेऽम्बिकाम् ॥२॥

तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुं आनर्चुः अर्हणैः भक्त्या देवीं च नृपते अम्बिकाम् ॥२॥

नृपते	राजन् !	**विभुं**	प्रभु
तत्र सरस्वत्यां	वहां सरस्वतीमें	**पशुपतिं देवं**	भगवान् पशुपतिकी
स्नात्वा	स्नान करके	**च**	तथा
अर्हणैः	पूजा सामग्रीसे	**अम्बिकां देवीं**	अम्बिकादेवी की
भक्त्या	भक्ति पूर्वक	**आनर्चुः**	पूजा की ॥२॥

गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमाहृताः ।
ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ॥३॥

गावः हिरण्यं वासांसि मधु मधु अन्नं आदृताः ब्राह्मणेभ्यः ददुः सर्वे देवः नः प्रीयतां इति ॥३॥

देवः नः	महादेवजी हमपर	**गावः हिरण्यं**	गायें, सोना,
प्रीयतां	प्रसन्न हों	**वासांसि मधु**	वस्त्र, शहद,
इति	इस संकल्पसे	**मधु अन्नं**	मधुर अन्न
सर्वे ब्राह्मणेभ्यः	सबने ब्राह्मणोंको	**ददुः**	दिया ॥३॥
आदृताः	आदर पूर्वक		

ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः ।
रजनीं तां महाभागा नन्दसुनन्दकादयः ॥४॥

ऊषुः सरस्वती तीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः रजनीं तां महाभागा नन्द सुनन्दक आदयः ॥४॥

धृतव्रताः	व्रत किए हुए	**जलं प्राश्य**	केवल जल पीकर
महाभागा	महान् भाग्यवान	**तां रजनीं**	उस रात
नन्द सुनन्दक	नन्द सुनन्द	**सरस्वती तीरे**	सरस्वतीके किनारे
आदयः	आदि	**ऊषुः**	सो गये ॥४॥

कश्चिन्महानहिस्तस्मिन् विपिनेऽतिबुभुक्षितः ।
यदृच्छयाऽऽगतो नन्दं शयानमुरगोऽग्रसीत् ॥५॥

कश्चित् महान् अहिः तस्मिन् विपिने अति बुभुक्षितः यदृच्छया आगतः नन्दं शयानं उरगः अग्रसीत् ॥५॥

तस्मिन् विपिने	उस वनमें	**यदृच्छया**	संयोगवश
अति बुभुक्षितः	बहुत भूखा	**उरगः आगतः**	उस सर्पने आकर
कश्चित्	कोई	**शयानं नन्दं**	सोते नन्दजीको
महान् अहिः	अजगर था,	**अग्रसीत्**	पकड़ लिया ॥५॥

स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम् ।
सर्पो मां ग्रसते तात प्रसन्नं परिमोचय ॥६॥

स चुक्रोश अहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महान् अयं सर्पः मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय ॥६॥

अहिना ग्रस्तः	सर्प द्वारा पकड़े जानेपर	**मां अयं**	मुझे यह
स चुक्रोश	वे चिल्लाने लगे—	**महान् सर्पः**	अजगर
कृष्ण तात	'कृष्ण ! बेटा	**ग्रसते**	निगल रहा है
कृष्ण	कृष्ण !	**प्रपन्नं**	(मुझ) शरणागतको
		परिमोचय	छुड़ाओ' ॥६॥

तस्य चाक्रन्दितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः ।
ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः ॥७॥

तस्य च आक्रन्दितं श्रुत्वा गोपालाः सहसा उत्थिताः ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः सर्पं विव्यधुः उल्मुकैः ॥७॥

तस्य	उनका	**च**	तथा
आक्रन्दितं	उच्च स्वरसे चिल्लाना	**ग्रस्तं**	(उनको) पकड़ा गया
		दृष्ट्वा	देखकर
श्रुत्वा च	सुनते ही	**विभ्रान्ताः**	घबड़ाकर
गोपालाः	गोप लोग	**सर्पं**	सर्पकी
सहसा	अचानक	**उल्मुकैः**	जलती लकड़ियोंसे
उत्थिताः	उठ गये	**विव्यधुः**	मारने लगे ॥७॥

अलातैर्दह्यमानोऽपि नामुञ्चत्तमुरङ्गमः ।
तमस्पृशत् पदाभ्येत्य भगवान् सात्वतां पतिः ॥८॥

अलातैः दह्यमानः अपि न अमुञ्चत् तं उरङ्गमः तं अस्पृशत् पदा अभ्येत्य भगवान् सात्वतां पतिः ॥८॥

अलातैः	जलती लकड़ियोंसे	**भगवान्**	भगवान्के पास
दह्यमानः अपि	जलाये जानेपर भी	**अभ्येत्य**	आकर
उरङ्गमः	सर्पने	**तं**	उसको (अपने)
तं न	उनको नहीं	**पदा**	चरणसे
अमुञ्चत्	छोड़ा तब	**अस्पृशत्**	छू दिया ॥८॥
सात्वतां पतिः	सत्पुरुषोंके स्वामी		

स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः ।
भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥९॥

स वै भगवतः श्रीमत् पादस्पर्श हत अशुभः भेजे सर्प वपुः हित्वा रूपं विद्याधर अर्चितम् ॥९॥

वै भगवतः	निश्चय भगवानके	**हित्वा**	त्यागकर
श्रीमत्	ऐश्वर्यशाली	**स विद्याधर**	उसने विद्याधरोंसे
पादस्पर्श	चरणोंके स्पर्शसे	**अर्चितं रूपं**	पूजित रूप
हत अशुभः	पाप नष्ट हो जानेसे	**भेजे**	प्राप्त कर लिया
सर्प वपुः	सर्प शरीर		॥९॥

तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतं समुपस्थितम् ।
दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥१०॥

तं अपृच्छत् हृषीकेशः प्रणतं समुपस्थितं दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥१०॥

दीप्यमानने	ज्योतिमान	**प्रणतं तं**	प्रणाम करते उस
वपुषा	शररवाले	**पुरुषं**	पुरुषसे
हेममालिनं	स्वर्ण मालाधारी	**हृषीकेशः**	श्रीकृष्णने
समुपस्थितं	सम्मुख आकर	**अपृच्छत्**	पूछा ॥१०॥

को भवान् परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः ।
कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ॥११॥

कः भवान् परया लक्ष्म्या रोचते अद्भुत दर्शनः कथं जुगुप्सितां एतां गतिं वा प्रापितः अवशः ॥११॥

परया लक्ष्म्या	परम शोभासे	**वा एतां**	अथवा इस
रोचते	सुशोभित होते	**जुगुप्सितां**	निन्दित
अद्भुत	अद्भुत	**गतिं अवशः**	दशाको विवश होकर
दर्शनः	दीखनेवाले	**कथं प्रापितः**	कैसे पहुँचा दिये
भवान् कः	तुम कौन हो ?		गये ॥११॥

पुरुषोवाच*

अहं विद्याधरः कश्चित् सुदर्शन इति श्रुतः ।
श्रिया स्वरूपसम्पत्त्या विमानेनाचरं दिशः ॥१२॥

अहं विद्याधरः कश्चित् सुदर्शन इति श्रुतः श्रिया स्वरूप सम्पत्त्या विमानेन अचरं दिशः ॥१२॥

सुदर्शन	सुदर्शन	**सम्पत्त्या**	सम्पत्तित्वान होकर
इति श्रुतः	इस नामसे प्रसिद्ध	**विमानेन**	विमान द्वारा
अहं कश्चित्	मैं कोई	**दिशः**	दिशाओंमें
विद्याधरः	विद्याधर था,	**अचरं**	घूमता था ॥१२॥
श्रिया स्वरूप	धन, सौन्दर्य,		

ऋषीन् विरूपानङ्गिरसः प्राहसं रूपदर्पितः ।
तैरिमां प्रापितो योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना ॥१३॥

ऋषीन् विरूपान् अङ्गिरसः प्राहसं रूपदर्पितः तैः इमां प्रापितः योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना ॥१३॥

अङ्गिरसः	अंगिरा गोत्रीय	**पाप्मना**	पापसे
विरूपान्	कुरूप	**प्रलब्धैः**	उपहास किये गये
ऋषीन्	ऋषियोंकी	**तैः इमां**	उन लोगों द्वारा इस
रूपदर्पितः	सौन्दर्यके घमण्डमें	**योनिं**	(अजगर) योनिमें
प्राहसं	(मैंने) हँसी उड़ाई	**प्रापितः**	पहुँचाया गया ॥१३॥
स्वेन	इस अपने ही		

शापो मेऽनुग्रहायैव कृतस्तैः करुणात्मभिः ।
यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः ॥१४॥

शापः मे अनुग्रहाय एव कृतः तैः करुण आत्मभिः यत् अहं लोक गुरुणा पदा स्पृष्टः हत अशुभः ॥१४॥

---

* दूसरी प्रतियोंमें यहां 'सर्प उवाच' है; किन्तु बोलनेवाला तो अब सर्प रहा नहीं है ।

तैः करुण	उन दयालु	**यत् अहं**	जिससे मैं
आत्मभिः	हृदय (ऋषियों) द्वारा	**लोक**	सम्पूर्ण लोकोंके
मे	मुझपर	**गुरुणा**	गुरु (आप) द्वारा
अनुग्रहाय	कृपा करनेके लिए	**पदा स्पृष्टः**	चरण-स्पर्श देनेसे (मेरे)
एव	ही	**हत अशुभः**	अशुभ नष्ट हो गये ॥१४॥
शापः कृतः	शाप दिया गया		

तं त्वाहं भवभीतानां प्रपन्नानां भयापहम् ।
आपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन् ॥१५॥

तं तु अहं भवभीतानां प्रपन्नानां भय अपहं आपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्पर्शात् अमीवहन् ॥१५॥

भवभीतानां	संसार (जन्म-मृत्यु) से डरे हुए	**शापनिर्मुक्तः**	शापसे छूटा हुआ
प्रपन्नानां	शरणागतोंके	**अहं तु**	मैं तो
भय अपहं	भयको नष्ट करने-वाले (प्रभो)	**अमीवहन्**	अपने अमृतमय लोक-में जानेकी
पादस्पर्शात्	चरण-स्पर्शसे	**आपृच्छे**	अनुमति चाहता हूँ ॥१५॥
तं	उस		

प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन् महापुरुष सत्पते ।
अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥१६॥

प्रपन्नः अस्मि महायोगिन् महापुरुष सत्पते अनुजानीहि मां देव सर्व लोक ईश्वर ईश्वर ॥१६॥

महायोगिन्	योगेश्वर,	**ईश्वर देव**	स्वामी देव !
महापुरुष	पुरुषोत्तम,	**प्रपन्नः**	(मैं आपकी) शरण
सत्पते	सत्पुरुषोंके स्वामी,	**अस्मि**	हूँ
सर्व	समस्त	**मां**	मुझे
लोक ईश्वर	लोकपालोंके	**अनुजानीहि**	आज्ञा दीजिये ॥१६॥

ब्रह्मदण्डाद् विमुक्तोऽहं सद्यस्तेऽच्युत दर्शनात् ।
यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄनात्मानमेव च ।
सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥१७॥

ब्रह्मदण्डात् विमुक्तः अहं सद्यः ते अच्युत दर्शनात् यत् नाम गृह्णन् अखिलान् श्रोतॄन् आत्मानं एव च सद्यः पुनाति किं भूयः तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥१७॥

अच्युत	अच्युत !	**च आत्मानं**	तथा अपनेको
ते दर्शनात्	आपके दर्शनसे	**एव**	भी
अहं सद्यः	मैं तत्काल	**सद्यः**	तुरन्त
ब्रह्मदण्डात्	ब्राह्मणोंके दण्ड (शाप) से	**पुनाति**	पवित्र कर देता है
		तस्यते	उस आपके
विमुक्तः	छूट गया,	**पदा**	चरणोंसे
हि यत् नाम	क्योंकि जिनका नाम	**स्पृष्टः**	स्पर्श प्राप्त की
गृह्णन्	उच्चारण करनेसे	**भूयः किं**	फिर क्या बात ॥१७॥
अखिलान्	समस्त		
ओतॄन्	श्रोताओंको		

इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्याभिवन्द्य च ।
सुदर्शनो दिवं यातः कृच्छ्रान्नन्दश्च मोचितः ॥१८॥

इति अनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्य अभिवन्द्य च सुदर्शनः दिवं यातः कृच्छ्रात् नन्दः च मोचितः ॥१८॥

इति	इस प्रकार	**सुदर्शनः**	सुदर्शन
दाशार्हं	श्रीकृष्णकी	**दिवं यातः**	स्वर्ग चला गया
परिक्रम्य	परिक्रमा करके	**नन्दः**	तथा नन्दजी
अभिवन्द्य	प्रणाम करके	**कृच्छ्रात्**	सकटसे
च	तथा	**मोचितः**	छुड़ा दिये गये ॥१८॥
अनुज्ञाप्य	अनुमति लेकर		

निशाम्य कृष्णस्य तदात्मवैभवं
व्रजौकसो विस्मितचेतसस्ततः ।
समाप्य तस्मिन् नियमं पुनर्व्रजं
नृपाययुस्तत् कथयन्त आदृताः ॥१९॥

निशाम्य कृष्णस्य तत् आत्मवैभवं व्रजौकसः विस्मितचेतसः ततः समाप्य तस्मिन् नियमं पुनः व्रजं नृप आययुः तत् कथयन्त आदृताः ॥१९॥

नृप	राजन् !	**नियमं**	नियम
तत् कृष्णस्य	वह श्रीकृष्णका	**समाप्य**	पूरे करके
आत्मवैभवं	अपना ऐश्वर्य	**आदृताः**	आदर पूर्वक
निशाम्य	देखकर	**तत्**	उस (लीला) का
विस्मितचेतसः	विस्मित चित्त	**कथयन्त**	वर्णन करते
व्रजौकसः	व्रजवासियोंने	**पुनः व्रजं**	फिर व्रजमें
तस्मिन्	वहां के (पूजनादि)	**आययुः**	लौट आये ॥१९॥

कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः ।
विजह्रतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥२०॥

कदाचित् अथ गोविन्दः रामः च अद्भुत विक्रमः विजह्रतुः वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥२०॥

अथ	तदनन्तर	**रात्र्यां वने**	रात्रिको वनमें
कदाचित्	किसी समय	**व्रजयोषितां**	व्रजस्त्रियोंके
गोविन्दः	गोविन्द	**मध्यगौ**	बीचमें चलते हुए
च अद्भुत	तथा अद्भुत	**विजह्रतुः**	क्रीड़ा कर रहे थे ॥२०॥
विक्रमः	पराक्रमी		
रामः	बलरामजी		

उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः ।
स्वलङ्कृतानुलिप्ताङ्गौ स्रग्विणौ बिरजोऽम्बरौ ॥२१॥

उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैः बद्ध सौहृदैः स्वलङ्कृतौ अनुलिप्त अङ्गौ स्रग्विणौ विरजः अम्बरौ ॥२१॥

विरजः अम्बरौ	निर्मल वस्त्रधारी,	**स्त्रीजनैः**	स्त्रियोंके द्वारा
अङ्गौ	शरीरमें	**ललितं**	ललित स्वरमें
अनुलिप्त	अंगराग लगाये	**उपगीयमानौ**	उनका ही यश गाया जा रहा था ॥२१॥
स्वलङ्कृता	अपने आभूषण पहिने		
स्रग्विणौ	मालाएँ पहिने		
बद्ध सौहृदैः	दृढ़ प्रेम करनेवाली		

निशामुखं मानयन्तावुदितोडुपतारकम् ।
मल्लिकागन्धमत्तालि जुष्टं कुमुदवायुना ॥२२॥

निशामुखं मानयन्तः उदित उडुपतारकं मल्लिकागन्ध मत्त अलि जुष्टं कुमुद वायुना ॥२२॥

निशामुखं	सन्ध्याका समय था,	**कुमुद जुष्टं**	कुमुदिनीसे लगकर आती
उडुपतारकं	चन्द्रमा तथा तारे		
उदित	उदय हो गये थे	**वायुना**	वायु चल रही थी
अलि	भौंरे	**मानयन्तः**	(इस वातावरणका) सम्मान करते हुए ॥२२॥
मल्लिकागन्ध	चमेलीकी सुगन्धसे		
मत्त	मतवाले हो रहे थे,		

जगतुः सर्वभूतानां मनःश्रवणमङ्गलम् ।
तौ कल्पयन्तौ युगपत् स्वरमण्डलमूर्च्छितम् ॥२३॥

जगतुः सर्वभूतानां मनःश्रवण मङ्गलं तौ कल्पयन्तौ युगपत् स्वर मण्डल मूर्च्छितम् ॥२३॥

सर्वभूतानां	संसारके सब प्राणियोंके लिए	**मूर्च्छितं**	मूर्छनाओंको
		कल्पयन्तौ	व्यक्त करते हुए
मनःश्रवण	मन तथा कानोंके लिए	**तौ युगपत्**	वे दोनों भाई एक साथ
मङ्गलं	मंगल स्वरूप	**जगतुः**	आलाप लेते गाने लगे ॥२३॥
स्वरमंडल	स्वर समूहकी		

गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्च्छिता नाविदन् नृप ।
स्रंसद्दुकूलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः ॥२४॥

गोप्यः तत् गीतं आकर्ण्य मूर्च्छिता न अविदन् नृप स्रंसत् दुकूलं आत्मानं स्रस्त केशस्रजं ततः ॥२४॥

नृप	राजन् !	स्रंसत्	सरक गये तथा
तत् गीतं	उनका गायन	केशस्रजं	जूड़ेमें लगी मालाको
आकर्ण्य	सुनकर	स्रस्त ततः	गिरी उस समय
गोप्यः	गोपियां	न अविदन्	नहीं जान सकीं
मूर्च्छिता	मोहित हो गयीं		॥२४॥
आत्मानं दूकूलं	अपने दुपट्टेको		

एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः सम्प्रमत्तवत् ।
शङ्खचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात् ॥२५॥

एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतः सम्प्रमत्तवत् शंखचूड इति ख्यातः धनद अनुचरः अभ्यगात् ॥२५॥

एवं स्वैरं	इस प्रकार स्वच्छन्द	शंखचूड	शंखचूड़
विक्रीडतोः	क्रीडा करते हुए तथा	इति ख्यातः	इस नामसे प्रसिद्ध
सम्प्रमत्तवत्	अच्छे खासे पागलोंके समान	धनद अनुचरः	कुबेरका सेवक
		अभ्यगात्	समीप आ गया
गायतः	(दोनों भाइयोंके) गाते समय		॥२५॥

तयोर्निरीक्षतो राजंस्तन्नाथं प्रमदाजनम् ।
क्रोशन्तं कालयामास दिश्युदीच्यामशङ्कितः ॥२६॥

तयोः निरीक्षतः राजन् तत् नाथं प्रमदाजनं क्रोशन्तं कालयामास दिशि उदीच्यां अशङ्कितः ॥२६॥

राजन्	राजन् !	तत्	जिनके वही
तयोः	उन दोनों भाइयोंके	नाथं	स्वामी हैं उन
निरीक्षतः	देखते हुए	क्रोशन्तं	चिल्लाती हुई

प्रमदाजनं	नारियोंको	**उदीच्यां दिशि**	उत्तर दिशामें
अशङ्कितः	बेखटके	**कालयामास**	भगा ले चला ॥२६॥

क्रोशन्तं कृष्ण रामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम् ।
यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम् ॥२७॥

क्रोशन्तं कृष्ण राम इति विलोक्य स्वपरिग्रहं यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातराः अनु अधावताम् ॥२७॥

यथा दस्युना	जैसे डाकुओं द्वारा	**स्वपरिग्रहं**	अपनी प्रेयसियोंको
ग्रस्ता गा	पकड़ी गयी गायें हों	**विलोक्य**	देखकर
कृष्ण राम	'कृष्ण ! बलराम !'	**भ्रातराः**	दोनों भाई
इति	इस प्रकार	**अनु अधावतां**	उसके पीछे दौड़
क्रोशन्तं	चिल्लाती		पड़े ॥२७॥

मा भैष्टेत्यभयारावौ शालहस्तौ तरस्विनौ ।
आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम् ॥२८॥

मा भैष्ट इति अभया रावौ शालहस्तौ तरस्विनौ आसेदुः तं तरसा त्वरितं गुह्यक अधमम् ॥२८॥

मा भैष्ट	'डरो मत'	**तरसा त्वरितं**	वेगसे दौड़ते
इति अभया	यह अभयदायी	**तं अधमं**	उस अधम
रावौ	शब्द कहते	**गुह्यकं**	यक्षके
शालहस्तौ	हाथोंमें शाल-वृक्ष लिए	**आसेदुः**	समीप पहुँच गये ॥२८॥
तरस्विनौ	अत्यन्त वेगवान (दोनों भाई)		

स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन् ।
विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥२९॥

स वीक्ष्य ताः अनुप्राप्तौ कालमृत्यु इव उद्विजन् विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवत् जीवित इच्छया ॥२९॥

कालमृत्यु	काल और मृत्युके	**स्त्रीजनं**	स्त्रियोंको
इव	समान	**विसृज्य**	छोड़कर
ताः अनुप्राप्तौ	उनको पीछे पहुँचा	**जीवित**	जीवित रहनेकी
वीक्ष्य स मूढः	देखकर वह मूर्ख	**इच्छया**	इच्छासे
उद्विजन्	व्याकुल होकर	**प्राद्रवत्**	भागा ॥२९॥

तमन्वधावद् गोविन्दो यत्र यत्र स धावति ।
जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियो बलः ॥३०॥

तं अनु अधावत् गोबिन्दः यत्र यत्र स धावति जिहीर्षुः तत् शिरः रत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियः बलः ॥३०॥

स यत्र यत्र	वह जहां-जहां	**अधावत्**	दौड़ते गये
धावति	दौड़ता था	**स्त्रियः**	और स्त्रियोंकी
तत् शिरः	उसके सिरमें लगे	**रक्षन्**	रक्षा करते हुए
रत्नं	रत्नको	**बलः**	बलरामजी
जिहीर्षुः	छीन लेनेके लिए	**तस्थौ**	(उनके पास) खड़े
गोविन्दः	गोविन्द		रहे ॥३०॥
तं अनु	उसके पीछे		

अविदूर इवाभ्येत्य शिरस्तस्य दुरात्मनः ।
जहार मुष्टिनैवांग सहचूडामणिं विभुः ॥३१॥

अविदूर इव अभि एत्य शिरः तस्य दुरात्मनः जहार मुष्टिना अङ्ग सहचूड़ा मणि विभुः ॥३१॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	**सहचूड़ा**	उसके सिरमें लगी
अविदूर	जैसे समीप	**मणि**	मणिके साथ
इव	ही हो (ऐसे)	**मुष्टिना**	मुट्ठी द्वारा
अभि एत्य	पास पहुँचकर	**विभुः**	समर्थ श्रीकृष्णने
तस्य दुरात्मनः	उस दुष्ट चित्तका	**जहार**	छीन लिया ॥३१॥
शिरः	सिर		

शङ्खचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् ।
अग्रजायाददात् प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ॥३२॥

शंखचूडं निहत्य एवं मणिं आदाय भास्वरं अग्रजाय अददात् प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ॥३२॥

एवं शंखचूडं	इस प्रकार शंखचूड़को	**योषितां पश्यन्तीनां च**	स्त्रियोंके देखते हुए ही
निहत्य	मारकर	**प्रीत्या**	प्रेम पूर्वक
भास्वरं मणिं	प्रकाशमान मणि	**अग्रजाय**	बड़े भाईको
आदाय	लें आकर	**अददात्**	दे दिया ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे शंखचूडवधो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

अथ पंचत्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ।
कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥१॥

गोप्यः कृष्णं वनं याते तं अनु द्रुत चेतसः कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यः निन्युः दुःखेन वासरान् ॥१॥

कृष्णं	श्रीकृष्णके	**कृष्णलीलाः**	श्रीकृष्णकी लीलाएँ
वनं याते	वनमें चले जानेपर	**प्रगायन्त्यः**	गाती हुई
तं अनु	उनके पीछे	**दुःखेन**	बड़े कष्टसे
द्रुत	भाग गये	**वासरान् निन्युः**	दिन बिताती थीं
चेतसः	चित्तवाली		॥१॥
गोप्यः	गोपियां		

गोप्य ऊचुः

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ।२।

वामबाहु कृत वाम कपोलः वल्गित भ्रूः अधर अर्पित वेणुः कोमल अङ्गुलिभिः आश्रित मार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥२॥*

गोप्य	गोपियो !	**अधर वेणुः**	अधरपर वंशी
वामबाहु	बाईं भुजापर	**अर्पित**	रखकर
वाम	बायां	**कोमल**	अपनी कोमल
कपोलः कृत	कपोल रखकर	**अङ्गुलिभिः**	अंगुलियों द्वारा
वल्गित भ्रूः	भौंहें नचाते हुए	**मार्गं**	उसके छिद्रोंका

---

* इस युगल गीतके दो-दो श्लोकोंका अर्थ मिलाकर पूरा होता है ।

आश्रित	सहारा लेकर	**ईरयति**	(उसे) प्रेरित करते (बजाते) हैं ॥२॥
यत्र मुकुन्दः	जहां मुकुन्द		

व्योमयानवनिताः सह सिद्धै-
र्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ।
काममार्गणसमर्पितचित्ताः
कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥३॥

व्योमयान वनिताः सह सिद्धैः विस्मिताः तत् उपधार्य सलज्जाः काम मार्गण समर्पित चित्ताः कश्मलं ययुः अपस्मृत नीव्यः ॥३॥

व्योमयान	आकाशगामी विमानोंमें बैठी	**विस्मिताः**	चकित हो जाती हैं
सिद्धैः सह	सिद्धोंके साथ	**काम मार्गण**	कामके वाणोंको
वनिताः	उनकी पत्नियां	**समर्पित चित्ता**	चित्तार्पण करके
सलज्जाः	लज्जावती (होनेपर भी)	**नीव्यः**	साड़ीकी सुधि
तत्	उस (वंशी ध्वनि)	**अपस्मृत**	भूलकर
उपधार्य	सुनकर	**कश्मलं ययुः**	मूर्छित हो जाती हैं ॥३॥

हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं
हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ।
नन्दसूनुरयमार्तजनानां
नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥४॥

हन्त चित्रं अबलाः शृणुत इदं हार हास उरसि स्थिर विद्युत् नन्दसूनुः अयं आर्तजनानां नर्मदः यर्हि कूजित वेणुः ॥४॥

हन्त अबलाः	अरी नारियो !	**हार हास**	(इनकी) हंसी हार बन जाती है (मोती-सी चमकती है)
इदं चित्रं	यह विचित्र बात		
शृणुत	सुनो !		

उरसी	वक्षस्थलपर (श्रीवत्सके रूपमें)	नर्मदः	शान्ति देनेवाले
		अयं नन्दसूनुः	ये नन्दनन्दन
स्थिर विद्युत	स्थिर बिजली है	यर्हि वेणुः	जब वंशी
आर्तजनानां	दुःखी लोगोंको	कूजित	बजाने लगते हैं ॥४॥

वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो
वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ।
दन्तदष्टकवला धृतकर्णा
निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥५॥

वृन्दशः व्रजवृषा मृगगावः वेणुवाद्य हृतचेतस आरात् दन्तदष्ट कवला धृत कर्णा निद्रिता लिखितचित्रं इव आसन् ॥५॥

वृन्दशः	तब झुंडके झुंड	कवला	कौर दबाये
व्रजवृषा	व्रजके बैल	आरात्	समीप आकर
मृगगावः	हिरन, गायें	निद्रिता	सोये हुए या
वेणुवाद्य	वंशी बजनेसे	लिखितचित्रं	चित्रमें बनाये गये
हृतचेतस	चुराये चित्तवाले	इव आसन्	के समान हो जाते हैं ॥५॥
दन्तदष्ट	दांतोंमें घासके		

बर्हिणस्तबकधातुपलाश-
बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ।
कर्हिचित् सबल आलि स गोप-
र्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥६॥

बर्हिणः स्तबक धातु पलाशः बद्धमल्ल परिबर्ह विडम्बः कर्हिचित् सबल आलि स गोपैः गाः सम आह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥६॥

आलि	सखी !	पलाशैः	पल्लवोंके
बर्हिणः	मयूर पिच्छ,	परिबर्ह	उपकरणोंसे
स्तबक	पुष्प गुच्छ,	बद्धमल्ल	पहलवानों जैसा
धातु	वनकी (गैरिकादि) धातुओं तथा	विडम्बः	वेश बनाकर
		कर्हिचित्	किसी समय

सबल	बलरामजीके साथ-तथा	**यत्र मुकुन्दः**	जहां मुकुन्द
स गोपैः	गोपोंके साथ	**गाः सम आह्वयति**	गायोंको जोरसे पुकारते हैं ॥६॥

तर्हि भग्नगतय· सरितो वै
तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् ।
स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः
प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥७॥

तर्हि भग्न गतयः सरितः वै तत् पदाम्बुजरजः अनिलनीतं स्पृहयतीः वयं इव अबहुपुण्याः प्रेमवेपित भुजाः स्तिमित आपः ॥७॥

वै तर्हि	निश्चय तब	**वयं इव**	हम लोगोंकी समान
सरितः	नदियोंकी	**स्पृहयतीः**	पाना चाहती हैं
गतयः भग्न	गति रुक जाती है,	**प्रेम**	प्रेमके कारण (लहर रूपी)
अनिलनीतं	वायुके द्वारा लायी गयी	**भुजाः वेपित**	भुजाएँ कांपने लगती हैं और
तत्	उनके	**स्तिमित आपः**	जल (का वेग) रुक जाता है ॥७॥
पदाम्बुज रजः	चरण-कमलोंकी धूलि		
अबहुपुण्याः	अल्प पुण्यवाली		

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य
आदिपूरुष इवाचलभूतिः ।
वनचरो गिरितटेषु चरन्ती-
र्वेणुनाऽऽह्वयति गाः स यदा हि ॥८॥

अनुचरैः सम् अनुवर्णित वीर्य आदि पूरुष इव अचल भूतिः वनचरः गिरितटेषु चरन्तीः वेणुना आह्वयति गाः स यदा हि ॥८॥

अचल भूतिः	अविचल ऐश्वर्य	**इव**	(नारायण) के समान
आदि पूरुष	आदि पुरुष	**अनुचरैः**	अनुयायियों द्वारा

सम्	अच्छी प्रकार	चरन्तीः गाः	चरती हुई गायोंको
अनुवर्णित	बार-बार वर्णित	यदा हि	जब कभी
वीर्यं स	पराक्रम वे	वेणुना	वंशीके द्वारा
वनचरः	वनमें घूमते हुए	आह्वयति	बुलाते हैं ॥८॥
गिरितटेषु	पर्वतके किनारे		

वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं
व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ।
प्रणतभारविटपा मधुधाराः
प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म ॥९॥

वनलताः तरव आत्मनि विष्णुं व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफल आढ्याः प्रणत भार विटपा मधुधाराः प्रेमहृष्ट तनवः ससृजुः स्म ॥९॥

वनलताः	(उस समय) वनकी लताएँ और	भार	उनके भारसे
तरवः	वृक्ष	विटपा	शाखाएँ
आत्मनि	अपने भीतर	प्रणत	झुकाकर
विष्णुं	विष्णु भगवानको	प्रेमहृष्ट	प्रेमसे हर्षित होकर
व्यञ्जयन्त्य इव	प्रगट करते हुए से	तनवः	तनोंसे
पुष्पफल	पुष्प और फलोंसे	मधुधाराः	मधुकी धाराएँ
आढ्याः	सम्पन्न होकर	ससृजुः स्म	उत्पन्न कर देते हैं ॥९॥

दर्शनीयतिलको वनमाला-
दिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः ।
अलिकुलैरलघुगीतमभीष्ट-
माद्रियन् यर्हि संधितवेणुः ॥१०॥

दर्शनीय तिलकः वनमाला दिव्यगन्ध तुलसी मधुमत्तैः अलिकुलैः लघुगीतं अभीष्टं आद्रियन् यर्हि सन्धित वेणुः ॥१०॥

दर्शनीय	देखने ही योग्य
तिलकः	तिलकवाले,
वनमाला	वनमालामें लगी
दिव्यगन्ध	दिव्य सुगन्धिकी
तुलसी	तुलसीके
मधुमत्तैः	मधुसे मतवाले
अलिकुलैः	भ्रमर समूहके
अभीष्टं	अपने प्रिय
लघुगीतं	गुंजारका
आद्रियन्	आदर करते हुए
यर्हि सन्धित	जब बजाने लगते हैं
वेणुः	वंशी ॥१०॥

सरसि सारसहंसविहङ्ग-
श्चारुगीतहृतचेतस एत्य ।
हरिमुपासत ते यतचित्ता
हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥११॥

सरसि सारस हंस विहङ्गाः चारुगीत हृत चेतस एत्य हरिं उपासत ते यतचित्ता हन्त मीलित दृशः धृतमौनाः ॥११॥

सरसि सारस	सरोवरके सारस,
हंस विहङ्गाः	हंस आदि पक्षी
चारु	उस सुन्दर
गीत	गायनसे
हृत चेतस	चित्त चुराये जानेसे
हन्त एत्य	अहो, (पास) आकर
ते यत	वे संयम
चित्ता	चित्त होकर
मीलित दृशः	नेत्र बन्द करके
धृतमौनाः	मौन धारण करके
हरिं	श्रीहरिकी
उपासत	उपासना करते हैं ॥११॥

सहबलः स्रगवतंसविलासः
सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ।
हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण
जातहर्षं उपरम्भति विश्वम् ॥१२॥

सहबलः स्रक् अवतंस विलासः सानुषुः क्षितिभृतः व्रजदेव्यः हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण जातहर्षं उपरम्भति विश्वम् ॥१२॥

व्रजदेव्यः	व्रजकी देवियो !
विलासः	लीला पूर्वक
स्रक्	मालाका
अवतंस	कुण्डल बनाये
सहबलः	बलरामजीके साथ
क्षितिभृतः	पर्वतके
सानुषु	शिखरपर जब
जातहर्ष	प्रसन्न होकर
वेणुरवेण	वंशी-ध्वनिसे
विश्वं हर्षयन्	संसारको प्रसन्न करते हुए
उपरम्भति	आलिंगित करते हैं ॥१२॥

महदतिक्रमणशङ्कितचेता
मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः ।
सुहृदमभ्यवर्षत् सुमनोभि-
श्छायया च विदधत् प्रतपत्रम् ॥१३॥

महत् अतिक्रमण शङ्कितचेता मन्दमन्दं अनुगर्जति मेघः सुहृदं अभ्यवर्षत् सुमनोभिः छायया च विदधत् प्रतपत्रम् ॥१३॥

महत्	(तब) महात्मा (श्रीकृष्ण) का
अतिक्रमण शंकितचेता	अपराध न हो चित्तमें यह आशंका करके
मेघः मन्दमन्दं अनुगर्जति	मेघ धीरे-धीरे साथ-साथ (स्वर मिलाकर) गर्जना करता है
सुहृदं	और हमारे सखा (श्रीकृष्ण) पर
सुमनोभिः	नन्हीं फुहियोंकी
अभ्यवर्षत्	भली प्रकार वर्षा करता है
च छायया	तथा अपनी छायासे
प्रतपत्रं	छातेका
विदधत्	काम करता है ॥१३॥

विविधगोपचरणेषु विदग्धो
वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ।
तव सुतः सति यदाधरबिम्बे
दत्तवेणुरनयत् स्वरजातीः ॥१४॥

विविध गोपचरणेषु विदग्धः वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः तव सुतः सति यदा अधर बिम्बे दत्तवेणुः अनयत् स्वरजातीः ॥१४॥

सति	साध्वी (यशोदा !)
तव सुतः	आपके पुत्र,
विविध	अनेक
गोपचरणेषु	सम्मानित गोपोंमें भी
विदग्धः	सबसे निपुण हैं,
निजशिक्षाः	अपने आप (बिना सिखाये) सीखो
वेणुवाद्य	वंशी बजानेकी
उरुधा	नाना प्रकारकी कला (जानते हैं) अतः
यदा बिम्बे	जब विम्बा फल जैसे
अधर	(लाल) ओष्ठपर
दत्तवेणु	वंशी रखकर
स्वरजातीः	अनेक स्वर जातियाँ
अनयत्	उसमें ले आते हैं ॥१४॥

सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः
शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ।
कवय आनतकन्धरचित्ताः
कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥१५॥

सवनशः तत् उपधार्य सुरेशाः शक्र शर्व परमेष्ठि पुरोगाः कवय आनत कन्धर चित्ताः कश्मलं ययुः अनिश्चित तत्त्वाः ॥१५॥

तत्	उस
सवनशः	श्रुतिमयी ध्वनिको
उपधार्य	सुनकर
सुरेशाः शक्र	देवश्रेष्ठ इन्द्र,
शर्व परमेष्ठि	शिव, ब्रह्मादि
पुरोगाः कवय	सर्वज्ञोंमें भी अग्रणी
आनत कन्धर	सिर झुकाकर (उस स्वर लहरीका)
तत्त्वाः	तत्त्व
अनिश्चित	निश्चय न कर पानेके कारण
चित्ताः	चित्तमें
कश्मलं	खेदका (अपनी अल्पज्ञताका)
ययुः	अनुभव करते हैं ॥१५॥

निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्र-
नीरजांकुशविचित्रललामैः ।

व्रजभुवः शमयन् खुरतोदं
वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥१६॥

निज पदाब्ज दलैः ध्वज वज्र नीरज अंकुश विचित्र ललामैः व्रजभुवः शमयन् खुरतोदं वर्ष्मधुर्य गतिः ईडित वेणुः ॥१६॥

व्रजभुवः	व्रजभूमिका	**ललामैः**	अंकित सुन्दर
खुरतोदं	(गायोंके) खुरोंसे खूंदनेकी पीड़ा	**निज**	अपने
		पदाब्ज दलैः	कमल चरण पल्लवोंसे
शमयन्	शान्त करते हुए	**वर्ष्मधुर्य**	मत्त गयन्द
ध्वज वज्र	ध्वजा, वज्र	**गतिः**	गतिसे चलते
नीरज अंकुश	पद्म, अंकुश	**ईडित वेणुः**	वंशी बजाते हुए ॥१६॥
विचित्र	आदि अनेक चिह्नोंसे		

व्रजति तेन वयं सविलास-
वीक्षणार्पितमनोभववेगाः ।
कुजगतिं गमिता न विदामः
कश्मलेन कबरं वसनं वा ॥१७॥

व्रजति तेन वयं सविलास वीक्षण अर्पित मनोभव वेगाः कुजगतिं गमिता न विदामः कश्मलेन कबरं वसनं वा ॥१७॥

व्रजति	(इधरसे) जाते हैं	**गमिता**	(निश्चेष्ट) हो जाती है
तेन सविलास	तब उनके लीला पूर्वक	**कश्मलेन**	सम्मोहिता होनेके कारण
वीक्षण	देखनेसे	**कवरं वा**	अपने जूड़े अथवा
मनोभव वेगाः	कामवेगको	**वसनं**	वस्त्र (की दशा) को
अर्पित वयं	समर्पिता हम सब	**न विदामः**	नहीं जान पातीं ॥१७॥
कुजगतिं	जड़ वृक्षोंके समान		

मणिधरः ववच्छिदागणयन् गा
मालया दयितगन्धतुलस्याः ।
प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे
प्रक्षिपन् भुजमगायत यत्र ॥१८॥

मणिधरः क्वचित् आगणयन् गा मालया दयित गन्ध तुलस्याः प्रणयिनः अनुचरस्य कदा अंसे प्रक्षिपन् भुजं अगायत यत्र ॥१८॥

क्वचित्	कभी	**अनुचरस्य**	सेवक (सखा) के
मणिधरः	मणिमाला लेकर	**अंसे भुजं**	कन्धेपर भुजा
गा	चारों ओर (खड़ी) गायें	**प्रक्षिपन्**	फैलाकर
आगणयन्	गिनते हैं,	**यत्र अगायत**	जहां गाने लगते हैं ॥१८॥
कदा प्रणयिनः	कभी अपने प्रिय		

क्वणितवेणुरववञ्चितचित्ताः
कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ।
गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो
गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥१९॥

क्वणितवेणु रववञ्चित चित्ताः कृष्णं अन्वसत कृष्ण गृहिण्यः गुणगण अर्णं अनुगत्य हरिण्यः गोपिका इव विमुक्त गृह आशाः ॥१९॥

क्वणितवेणु	बजती वंशीकी	**कृष्णं**	श्रीकृष्णके पास
रववञ्चित	ध्वनिसे ठगे गये	**अनुगत्य**	आकर
चित्ताः	चित्तवाली	**गृह**	घरोंकी
कृष्ण	काले	**आशाः विमुक्त**	आशा त्यागे
गृहिण्यः	मृगोंकी पत्नियां	**गोपिका इव**	गोपियोंके समान
हरिण्यः	हरिणियाँ	**अन्वसत**	वहीं रुकी रहती हैं ॥१९॥
गुणगण अर्णं	गुणगणोंके सागर		

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो
गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ।
नन्दसूनुरनघे तव वत्सो
नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥२०॥

कुन्ददाम कृतकौतुक वेषः गोप गोधनवृतः यमुनायां नन्दसूनुः अनघे तव वत्सः नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥२०॥

अनघे	निष्पाप यशोदाजी !	**कृतकौतुकवेषः**	विचित्र वेश बनाकर
तव वत्स	तुम्हारे ये लाल	**गोप**	गोपों और
प्रणयिनां	अपने प्रेमियोंको	**गोधनवृतः**	गायोंसे घिरे
नर्मदः	आनन्द देनेवाले	**यमुनायां**	(जब) यमुनामें
नन्दसूनुः	नन्द-नन्दन	**विजहार**	क्रीड़ा करने लगते हैं ॥२०॥
कुन्ददाम	कुन्दकी मालासे		

मन्दवायुरुपवात्यनुकूलं
मानयन् मलयजस्पर्शेन ।
वन्दिनस्तमुपदेवगणा ये
वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥२१॥

मन्द वायुः उपवाति अनुकूलं मानयन् मलयज स्पर्शेन वन्दिनः तं उपदेव गणा ये वाद्यगीत बलिभिः परिवव्रुः ॥२१॥

मानयन्	(तब उनका) सम्मान करते हुए	**ये उपदेव गणा**	और जो उपदेवता गण (गन्धर्वादि) हैं वे
अनुकूलं	अनुकूल		
स्पर्शेन	स्पर्शदायिनी	**वन्दिनः**	बन्दीजनोंके समान
मन्द	मन्द	**वाद्यगीत**	बजाने-गाने रूपी
मलयज वायु	मलयानिल	**बलिभिः**	उपहार देकर
उपवाति	उनके समीप चलती है	**परिवव्रुः**	उनका गुणगान करते हैं ॥२१॥

वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो
वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः ।
कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते
गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥२२॥

वत्सलः व्रजगवां यत् अगध्रः वन्द्यमान चरणः पथि वृद्धैःकृत्स्न गोधनं उपोह्य दिन अन्ते गीत वेणुः अनुग ईडित कीर्तिः ॥२२॥

व्रजगवां	व्रजकी गायोंसे
वत्सलः	बहुत प्रेम करते हैं
यत्	क्योंकि (उनके लिए)
अगध्रः	पर्वत धारण किया था,
दिन अन्ते	सायं-काल
कृत्स्नं गोधनं	समस्त गायोंको
उपोह्य	लौटाकर
पथि	मार्गमें
वृद्धैः	बड़े-वृद्धों द्वारा
चरणः	(इनके) चरणोंकी
वन्द्यमान	वन्दना होती है,
अनुग	अनुचरों (ग्वाल-बालों) द्वारा
ईडित कीर्तिः	कीर्तिगान होते ॥२२॥

उत्सवं श्रमरुचापि दृशीना-
मुन्नयन् खुररजश्छुरितस्रक् ।
दित्सयैति सुहृदाशिष एष
देवकीजठरभूरुडुराजः ॥२३॥

उत्सवं श्रमरुचा अपि दृशीनां उन्नयन् खुररजः छुरित स्रक् दित्सय एति सुहृद आशिष एष देवकी जठर भूः उडुराजः ॥२३॥

श्रमरुचा अपि	थके होनेपर भी
दृशीनां	(हमारे) नेत्रोंको
उत्सवं उन्नयन्	आनन्द देते हुए
खुररजः	(गायोंके) खुरोंसे
स्रक्	उड़ी धूलि पड़ी वनमाला
दित्सय	(पहिने) देखो
सुहृद	सम्बन्धियोंकी (साक्षात्)
आशिष	अभिलाषा
एष देवकी	यह देवकी (यशोदा) की
जठर	कोखसे
भूः उडुराजः	उत्पन्न चन्द्रमा
एति	आ रहे हैं ॥२३॥

मदविघूर्णितलोचन ईषन्
मानदः स्वसुहृदां वनमाली ।
बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं
मण्डयन् कनककुण्डललक्ष्म्या ॥२४॥

मद विघूर्णित लोचन ईषन् मानदः स्वसुहृदां वनमाली बदर पाण्डु वदनः मृदुगण्ड मण्डयन् कनककुण्डल लक्ष्म्या ॥२४॥

ईषन् लोचन	नेत्र तनिक
मद विघूर्णित	मदसे चढ़े हैं,
स्वसुहृदां	अपने सखाओंको
मानदः	सम्मान देनेवाले
वनमाली	ये वनमालाधारी
बदर	(अधपके) बेरके समान
पाण्डुवदनः	पीताभ मुखके
मृदुगण्ड	कोमल कपोलोंको
कनक कुण्डल	स्वर्ण कुण्डलोंकी
लक्ष्म्या	शोभासे
मण्डयन्	भूषित किये ॥२४॥

यदुपतिर्द्विरदराजविहारो
यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते ।
मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं
मोचयन् व्रजगवां दिनतापम् ॥२५॥

यदुपतिः द्विरदराज विहारः यामिनीपतिः इव एष दिनान्ते मुदित वक्त्र उपयाति दुरन्तं मोचयन् व्रजगवां दिन तापम् ॥२५॥

द्विरदराज	गजराजके समान
विहारः	गतिसे
एष यदुपतिः	ये यदुनाथ
मुदित वक्त्र	प्रसन्न मुख
व्रजगवां	व्रजकी गायों (हम लोगों) का
दुरन्तं दिन	दुष्पार दिनका
तापं	(वियोगजन्य) सन्ताप
मोचयन्	दूर करते हुए
दिनान्ते	सन्ध्या-समय
यामिनीपतिः	निशानाथ (चन्द्र) के
इव	समान
उपयाति	समीप आ रहे हैं ॥२५॥

श्रीशुक उवाच

एवं व्रजस्त्रियो राजन् कृष्णलीला नु गायतीः ।
रेमिरेऽहःसु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥२६॥

एवं व्रजस्त्रियः राजन् कृष्ण लीला नु गायतीः रेमे अहःसु तत् चित्ताः तत् मनस्काः महोदयाः ॥२६॥

राजन्	राजन् !
तत् चित्ताः	उन्हींमें चित्त लगाये
तत्	उन्हींका
मनस्काः	चिन्तन करनेवाली
महोदयाः	परम सौभाग्य शालिनी
व्रजस्त्रियः	व्रजकी स्त्रियाँ
एवं नु	इसी प्रकारकी
कृष्ण	श्रीकृष्णकी
लीलाः	लीलाओंका
गायतीः	(परस्पर) वर्णन करती हुई
अहःसु रेमे	दिनमें मग्न रहती थीं ॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे वृन्दावनक्रीडायां गोकिकायुगलगीतं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः ।
महीं महाककुत्कायः कम्पयन् खुरविक्षताम् ॥ १ ॥

अथ तर्हि आगतः गोष्ठं अरिष्टः वृषभ असुरः महीं महाककुत् कायः कम्पयन्, खुरविक्षताम् ॥१॥

अथ तर्हि	फिर (श्रीकृष्ण जब प्रवेश कर रहे थे) उसी समय
अरिष्टः असुरः	अरिष्टासुर
वृषभ	सांड़के रूपमें
महाककुत्	बड़े डील (थुआ)
कायः	तथा शरीरवाला
खुरविक्षतां	खुरोंसे खोदी
महीं कम्पयन्	पृथ्वीको कंपाता हुआ
गोष्ठं आगतः	व्रजमें आया ॥१॥

रम्भमाणः खरतरं पदा च विलिखन् महीम् ।
उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन् ॥ २ ॥

रम्भमाणः खरतरं पदा च विलिखन् महीं उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाण अग्रेण च उद्धरन् ॥२॥

खरतरं	बहुत उग्र स्वरमें
रम्भमाणः	हँकड़ता हुआ
च पदा महीं	तथा पैरोंसे पृथ्वी
विलिखन्	खुरचता हुआ
पुच्छं उद्यम्य	पूंछ ऊपर उठाये
विषाण अग्रेण	सींगोंकी नोकसे
वप्राणि च	चहार दीवारीको भी
उद्धरन्	उठाकर फेंकता (आया) ॥२॥

किञ्चित् किञ्चिच्छकृन्मुञ्चन् मूत्रयन् स्तब्धलोचनः ।
यस्य निर्ह्रादितेनाङ्ग निष्ठुरेण गवां नृणाम् ॥ ३ ॥

किञ्चित् किञ्चित् शकृत् मुञ्चन् मूत्रयन् स्तब्धलोचनः यस्य निर्ह्रादितेन अङ्ग निष्ठुरेण गवां नृणाम् ॥३॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !
किञ्चित्	थोड़ा-
किञ्चित्	थोड़ा-सा
शकृत् मुञ्चन्	गोबर त्यागता,
मूत्रयन्	तथा पेशाब करता
स्तब्धलोचनः	फटे से स्थिर नेत्रों-वाला
यस्य निष्ठुरेण	जिसके निष्ठुर
निर्ह्रादितेन	हंकड़नेसे
गवां नृणां	गायों तथा मनुष्यों-का ॥३॥

पतन्त्यकालतो गर्भाः स्रवन्ति स्म भयेन वै ।
निर्विशन्ति घना यस्य ककुद्यचलशङ्कया ॥ ४ ॥

पतन्ति अकालतः गर्भाः स्रवन्ति स्म भयेन वै निर्विशन्ति घना यस्य ककुदि अचल शङ्कया ॥४॥

वै भयेन	निश्चय भयके कारण
अकालतः	असमय ही
गर्भाः पतन्ति	गर्भ गिर जाता था या
स्रवन्ति स्म	(थोड़े समयका हो तो) स्रवित हो जाता था,
यस्य ककुदि	जिसके डील (थुए) पर
अचल शङ्कया	पर्वत समझकर
घना	मेघ
निर्विशन्ति	उतर आते थे ॥४॥

तं तीक्ष्णशृङ्गमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसुः ।
पशवो दुद्रुवुर्भीता राजन् संत्यज्य गोकुलम् ॥ ५ ॥

तं तीक्ष्ण शृङ्गं उद्वीक्ष्य गोप्यः गोपाः च तत्रसुः पशवः दुद्रुवुः भीता राजन् संत्यज्य गोकुलम् ॥५॥

राजन्	राजन् !
तं तीक्ष्ण शृङ्गं	उस तीक्ष्ण सींगवाले को
उद्वीक्ष्य	दूरसे देखकर
गोप्यः च गोपाः	गोपियां तथा गोप
तत्रसुः	भयभीत हो गये,

भीता पशवः	डरे हुए पशु	दुद्रुवुः	भागने लगे ॥५॥
गोकुलं संत्यज्य	गोष्ठ छोड़कर		

कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविन्दं शरणं ययुः ।
भगवानपि तद् वीक्ष्य गोकुलं भयविद्रुतम् ॥ ६ ॥

कृष्ण कृष्ण इति ते सर्वे गोविन्दं शरणं ययुः भगवान् अपि तत् वीक्ष्य गोकुलं भय विद्रुतम् ॥६॥

कृष्ण कृष्ण	'कृष्ण ! कृष्ण !'	भगवान् अपि	भगवान्ने भी
इति	इस प्रकार पुकारते	गोकुलं	गायोंके समूहको
ते सर्वे	वे सब	भय विद्रुतम्	भयसे इधर-उधर भागता
गोविन्दं शरणं	गोविन्दकी शरणमें		
ययुः	गये,	वीक्ष्य	देखकर ॥६॥

मा भैष्टेति गिराऽऽश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् ।
गोपालैः पशुभिर्मन्द त्रासितैः किमसत्तम ॥ ७ ॥

मा भैष्ट इति गिरा आश्वास्य वृषासुरं उप आह्वयत् गोपालैः पशुभिः मन्द त्रासितैः किं असत्तम ॥७॥

मा भैष्ट	'डरो मत !'	मन्द असत्तम	मूर्ख ! महादुष्ट !
इति गिरा	ऐसा कहकर	गोपालैः पशुभिः	गोपों और पशुओं-को
आश्वास्य	आश्वासन देकर		
वृषासुरं	वृषभासुरको	त्रासितैः किं	डरानेसे क्या होगा ॥७॥
उप आह्वयत्	ललकारा,		

बलदर्पहाहं दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् ।
इत्यास्फोट्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन् ॥८॥

बल दर्पह अहं दुष्टानां त्वत् विधानां दुःआत्मनां इति आस्फोट्य अच्युतः अरिष्टं तल शब्देन कोपयन् ॥८॥

त्वत्, विधानां	तेरे समान	बल दर्पह अहं	बल देनेवाला मैं हूँ
दुः आत्मनां	दुष्ट चित्तोंका	इति आस्फोट्य	इस प्रकार ललकार कर

अच्युतः अरिष्टं	श्रीकृष्ण अरिष्टा-सुरको	**कोपयन्**	कुपित करते हुए ॥८॥
तल शब्देन	ताली बजाकर		

सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः ।
सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन् ।
उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥

सख्युः अंसे भुजा भोगं प्रसार्य अवस्थितः हरिः सः अपि एवं कोपितः अरिष्टः खुरेण अवनिं उल्लिखन् उद्यत् पुच्छ भ्रमन् मेघः क्रुद्धः कृष्णं उप अद्रवत् ॥९॥

हरिः सख्युः	श्रीकृष्ण सखाके	**खुरेण**	खुरोंसे
अंसे	कन्धेपर	**अवनिं**	पृथ्वी
भुजा भोगं	लम्बी भुजाको	**उल्लिखन्**	खुरचता हुआ
प्रसार्य	फैलाकर	**उद्यत् पुच्छ**	उठी पूंछसे
अवस्थितः	खड़े हो गये,	**भ्रमन् मेघः**	मेघोंको तितर-बितर करता
सः अरिष्टः	वह अरिष्टासुर	**क्रुद्धः**	क्रोधमें भरकर
अपि	भी	**कृष्णं**	श्रीकृष्णकी
एवं कोपितः	इस प्रकार क्रोध दिलानेपर	**उप अद्रवत्**	ओर दौड़ा ॥९॥

अग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् ।
कटाक्षिप्याद्रवत्तूर्णमिन्द्रमुक्तोऽशनिर्यथा ॥१०॥

अग्रन्यस्त विषाण अग्रः स्तब्ध असृक् लोचनः अच्युतं कटा आक्षिप्य अद्रवत् तूर्णं इन्द्रमुक्तः अशनिः यथा ॥१०॥

विषाण अग्रः	सींगोंकी नोक	**यथा इन्द्रमुक्तः**	जैसे इन्द्रका छोड़ा
अग्रन्यस्त	आगे करके	**अशनिः**	वज्र हो
स्तब्ध असृक्	स्थिर रक्तके समान लाल	**अच्युतं तूर्णं**	श्रीकृष्णकी ओर बड़े वेगसे
लोचनः	नेत्रोंसे	**अद्रवत्**	झपटा ॥१०॥
कटा आक्षिप्य	तिरछे देखता हुआ		

गृहीत्वा शृङ्गयोस्तं वा अष्टादश पदानि सः ।
प्रत्यपोवाह भगवान् गजः प्रतिगजं यथा ॥११॥

गृहीत्वा शृङ्गयोः तं वा अष्टादश पदानि सः प्रति अपोवाह भगवान् गजः प्रतिगजं यथा ॥११॥

सः भगवान्	वे भगवान्	**गजः**	हाथी (ठेले)
तं	उसके	**अष्टादश**	अठारह
शृङ्गयोः वा	सींगोंको ही	**पदानि**	पद तक
गृहीत्वा	पकड़कर	**प्रति अपोवाह**	पीछे ठेल दिया ॥११॥
यथा	जैसे		
प्रतिगजं	प्रतिद्वन्दी हाथीको		

सोऽपविद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरः ।
आपतत् स्विन्नसर्वाङ्गो निःश्वसन् क्रोधमूर्च्छितः ॥१२॥

सः अपविद्धः भगवता पुनः उत्थाय सत्वरः आपतत् स्विन्न सर्वाङ्गः निःश्वसन् क्रोधमूर्च्छितः ॥१२॥

भगवता	भगवानके द्वारा	**क्रोध-**	क्रोधसे
अपविद्धः	पीछे फेंका गया	**मूर्च्छितः**	अचेतप्राय
सः सत्वरः	वह झटपट	**निःश्वसन्**	लम्बी श्वास छोड़ता (फुफकारता)
उत्थाय	उठकर		
स्विन्न	पसीनेसे	**पुनः आपतत्**	फिर झपटा ॥१२॥
सर्वाङ्गः	पूरा शरीर भींगा		

तमापतन्तं स निगृह्य शृङ्गयोः
पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले ।
निष्पीडयामास यथाऽऽर्द्रमम्बरं
कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत् ॥१३॥

तं आपतन्तं स निगृह्य शृंगयोः पदा सम आक्रम्य निपात्य भूतले निष्पीडयामास यथा आर्द्रं अम्बरं कृत्वा विषाणेन जघान सः अपतत् ॥१३॥

तं	उस
आपतन्तं	अपनी ओर झपटते को
शृंगयोः निगृह्य	सींग पकड़कर
स पदा सम	उन्होंने पैरसे ठीक
आक्रम्य	आक्रमण करके
भूतले निपात्य	पृथ्वीपर गिराकर
यथा आर्द्रं	जैसे गीला
अम्बरं	कपड़ा हो ऐसे
निष्पीडयामास	निचोड़ा (गर्दन घुमायी)
विषाणेन	फिर सींग
कृत्वा	उखाड़ करके
जघान	पीटा (जिससे)
सः अपतत्	वह गिरा ही रहा ॥१३॥

असृग् वमन् मूत्रशकृत् समुत्सृजन्
क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः ।
जगाम कृच्छ्रं निर्ऋतेरथ क्षयं
पुष्पैः किरन्तो हरिमीडिरे सुराः ॥१४॥

असृक् वमन् मूत्र शकृत् समुत् सृजन् क्षिपन् च पादान् अनवस्थित ईक्षणः जगाम कृच्छ्रं निर्ऋतेः अथ क्षयं पुष्पैः किरन्तः हरिं ईडिरे सुराः ॥१४॥

असृक्	रक्तकी
वमन्	उलटी करते
मूत्र शकृत्	मूत्र-गोवर
समुत्सृजन्	बहुत-सा त्यागता
पादान् क्षिपन्	पैर पछाड़ते
च अनवस्थित	तथा उलटे हुए
ईक्षणः	नेत्रवाला
कृच्छ्रं	बड़े कष्टसे
क्षयं निर्ऋतेः	मरकर मृत्युके पास
जगाम	गया,
अथ सुराः	फिर देवता
पुष्पैः	पुष्प वर्षा
किरन्तः	करते हुए
हरिं	श्रीकृष्णकी
ईडिरे	स्तुति करने लगे ॥१४॥

एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः ।
विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनोत्सवः ॥१५॥

एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः विवेश गोष्ठं सबलः गोपीनां नयन उत्सवः ॥१५॥

गोपीनां	गोपियोंके	**स्वजातिभिः**	अपनी जातिके लोग द्वारा
नयन उत्सवः	नयनानन्द दाता (श्रीकृष्ण)	**स्तूयमानः**	प्रशंसित होते
एवं	इस प्रकार	**सबलः**	बलरामजीके साथ
ककुद्मिनं	सांड़को	**गोष्ठं विवेश**	गोष्ठमें प्रविष्ट हुए ॥१५॥
हत्वा	मारकर		

अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।
कंसायाथाह भगवान् नारदो देवदर्शनः ॥१६॥

अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेन अद्भुत कर्मणा कंसाय अथ आह भगवान् नारदः देवदर्शनः ॥१६॥

अद्भुत कर्मणा	अद्भुतकर्मा	**दर्शनः**	दर्शन करानेवाले
कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा	**भगवान् नारदः**	भगवान नारद
अरिष्टे दैत्ये	अरिष्टासुरके	**अथ कंसाय**	फिर कंससे
निहते	मारे जानेपर	**आह**	बोले ॥१६॥
देव-	भगवान्का		

यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च ।
रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता ॥१७॥

यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णं एव च रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता ॥१७॥

कन्यां	कन्या (जो तुम्हारे हाथसे भी छूट गयी	**देवक्याः एव**	देवकीका ही (पुत्र)
		च रामं	तथा बलरामजीको
यशोदायाः	यशोदाकी	**रोहिणीपुत्रं**	रोहिणीजीके पुत्र हैं
सुतां	पुत्री थी	**बिभ्यता**	(तुमसे) डरकर
च कृष्णं	तथा श्रीकृष्णको	**वसुदेवेन**	वसुदेवजीने ॥१७॥

न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः ।
निशम्य तद् भोजपतिः कोपात् प्रचलितेन्द्रियः ॥१८॥

न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः निशम्य तत् भोजपतिः कोपात् प्रचलित इन्द्रियः ॥१८॥

वै स्वमित्रे	निश्चय अपने मित्र	**तत् निशम्य**	इसे सुनकर
नन्दे न्यस्तौ	नन्दजीके यहां रख छोड़ा है	**भोजपतिः**	कंसको
		कोपात्	क्रोधसे
याभ्यां ते	जिनके द्वारा तुम्हारे	**इन्द्रियः**	इन्द्रियां
पुरुषा हताः	सेवक मारे गये'	**प्रचलित**	कोपने लगीं ॥१८॥

निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया ।
निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः ॥१९॥

निशातं असि आदत्त वसुदेव जिघांसया निवारितः नारदेन तत् सुतौ मृत्युं आत्मनः ॥१९॥

वसुदेव	वसुदेवजीको	**नारदेन**	नारदजी द्वारा
जिघांसया	मारनेके लिए (उसने)	**निवारितः**	रोक दिये जानेपर
		तत्	उन (वसुदेव) के
निशातं असि	तीक्ष्ण तलवार	**सुतौ**	पुत्रोंसे
आदत्त	उठाया; किन्तु	**आत्मनः मृत्युं**	अपनी मौत ॥१९॥

ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैर्बबन्ध सह भार्यया ।
प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम् ॥२०॥

ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैः बबन्ध सह भार्यया प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम् ॥२०॥

ज्ञात्वा	जानकर	**देवर्षौ**	देवर्षिके
लोहमयैः	लोहेसे बने	**प्रतियाते तु**	चले जानेपर तुरन्त
पाशैः	फन्दोंसे	**केशिनं**	केशीको (बुलाकर)
भार्यया सह	पत्नीके साथ	**आभाष्य**	समझाया ॥२०॥
बबन्ध	(वसुदेवजीको) बांध दिया और		

प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ ।
ततो मुष्टिकचाणूरशलतोशलकादिकान् ॥२१॥

प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ ततः मुष्टिक चाणूर शल तोशलक आदिकान् ॥२१॥

प्रेषयामास	(व्रजमें) भेजा कि	**मुष्टिक**	मुष्टिक
भवता राम-	तुम बलराम और	**चाणूर शल**	चाणूर, शल,
केशवौ	श्रीकृष्णको	**तोशलक**	तोशल
हन्येतां	मार देना	**आदिकान्**	आदिको ॥२१॥
ततः	फिर (उसके चले जानेपर)		

अमात्यान् हस्तिपांश्चैव समाहूयाह भोजराट् ।
भो भो निशम्यतामेतद् वीरचाणूरमुष्टिकौ ॥२२॥

अमात्यान् हस्तिपान् च एव सम आहूय आह भोजराट् भो भो निशम्यतां एतत् वीर चाणूर मुष्टिकौ ॥२२॥

अमात्यान्	मन्त्रियोंको,	**भो भो वीर**	हे हे वीरो !
च हस्तिपान्	तथा महावतोंको	**चाणूर-**	चाणूर और
एव	भी	**मुष्टिकौ**	मुष्टिक
सम	एक साथ	**एतत्**	यह बात
आहूय	बुलाकर	**निशम्यतां**	सुनो ॥२२॥
भोजराट्	भोजराज (कंसने)		
आह	कहा		

नन्दव्रजे किलासाते सुतावानकदुन्दुभेः ।
रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः ॥२३॥

नन्दव्रजे किल आसाते सुताः आनक दुन्दुभेः रामकृष्णौ ततः मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः ॥२३॥

किल नन्दव्रजे	अरे नन्द-व्रजमें	**सुताः**	पुत्र
आनक दुन्दुभेः	वसुदेवजीके	**रामकृष्णौ**	बलराम-श्रीकृष्ण

आसाते	रहते हैं	**मृत्युः**	मृत्यु
किल ततः	अरे उनके द्वारा	**निर्दिशतः**	बतलायी जाती
मह्यं	मेरी		है ॥२३॥

भवद्भ्यामिह सम्प्राप्तौ हन्येतां मललीलया ।
मञ्चाः क्रियन्तां विविधा मल्लरङ्गपरिश्रिताः ।
पौरा जानपदाः सर्वे पश्यन्तु स्वैरसंयुगम् ॥२४॥

भवद्भ्यां इह सम्प्राप्तौ हन्येतां मललीलया मञ्चाः क्रियन्तां विविधा मल्लरंग परि श्रिताः पौरा जानपदाः सर्वे पश्यन्तु स्वैर संयुगम् ॥२४॥

इह सम्प्राप्तौ	यहां आनेपर (उन दोनोंको)	**विविधामाञ्चा**	बहुतसे मञ्च
मललीलया	कुश्ती लड़नेकी क्रीड़ामें	**क्रियन्तां**	बनाओ,
		पौरा	नगरवासी तथा
		जानपदाः	देशके लोग
भवद्भ्यां	तुम दोनों द्वारा	**श्रिताः**	उनपर बैठकर
हन्येतां	मार दिया जाना चाहिए	**स्वैर संयुगं**	स्वच्छन्दं (नियम हीन) दंगल
मल्लरंग	अखाड़ेके	**पश्यन्तु**	देखें ॥२४॥
परि	चारों ओर		

महामात्र त्वया भद्र रङ्गद्वार्युपनीयताम् ।
द्विपः कुवलयापीडो जहि तेन ममाहितौ ॥२५॥

महामात्र त्वया भद्र रंग द्वारि उपनीयतां द्विपः कुवलयापीडः जहि तेन मम अहितौ ॥२५॥

भद्र महामात्र	कुशल महावत !	**उपनीयतां**	समीप ले आना
त्वया रंग	तुम मल्लशालाके	**तेन मम**	उसके द्वारा मेरे
द्वारि	द्वारपर	**अहितः**	शत्रुओंको
कुवलयापीडः	कुवलयापीड	**जहि**	मार दो ॥२५॥
द्विपः	हाथीको		

आरभ्यतां धनुर्यज्ञश्चतुर्दश्यां यथाविधि ।
विशसन्तु पशून् मेध्यान् भूतराजाय मीढुषे ॥२६॥

आरभ्यतां धनुः यागः चतुर्दश्यां यथाविधि विशसन्तु पशून् मेध्यान् भूतराजाय मीढुषे ॥२६॥

चतुर्दश्यां	चतुर्दशी (शिवरात्रि) को	**मीढुषे**	वरदानी
यथाविधि	विधिपूर्वक	**भूतराजाय**	भूतेश्वर भैरवको
धनुः यागः	धनुष-यज्ञ	**मेध्यान् पशून्**	पवित्र पशुओंकी
आरभ्यतां	प्रारम्भ कर दो	**विशसन्तु**	बलि दो ॥२६॥

इत्याज्ञाप्यार्थतन्त्रज्ञ आहूय यदुपुङ्गवम् ।
गृहीत्वा पाणिना पार्णिं ततोऽक्रूरमुवाच ह ॥२७॥

इति आज्ञाप्य अर्थ तन्त्रज्ञः आहूय यदुपुंगवं गृहीत्वा पाणिना पार्णि ततः अक्रूर उवाच ह ॥२७॥

इति	इस प्रकार (उनको)	**तन्त्रज्ञः**	जाननेवाला (कंस)
आज्ञाप्य	आज्ञा देकर	**पाणिना**	(अपने) हाथसे
ततः यदुपुंगवं	फिर यदुश्रेष्ठ	**पार्णि**	(उनका) हाथ
अक्रूरं	अक्रूरको	**गृहीत्वा**	पकड़कर
आहूय	बुलाकर	**ह उवाच**	निश्चित स्वरमें
अर्थ	(केवल अपना) स्वार्थ		बोला ॥२७॥

कंस उवाच*

भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रमादृतः
नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ॥२८॥

भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रं आदृतः न अन्यः त्वत्तः हिततमः विद्यते भोज वृष्णिषु ॥२८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भो भो	हे अहो	वृष्निषु	वृष्णि वंशियोंमें
दानपते	दानाध्यक्षजी !	त्वत्तः अन्यः	आपको छोड़कर
आदृतः	आप (मेरे) आदर-		(दूसरा)
	णीय हैं	ह्यतसः	(मेरा) अत्यन्त
मह्यं मैत्रं	मेरे लिए मित्रोचित		हितैषी
	(काम)	न विद्यते	(कोई) नहीं है
क्रियतां	कर दीजिये		॥२८॥
भोज	भोज तथा		

अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम् ।
यथेन्द्रो विष्णुमाश्रित्य स्वार्थमध्यगमद् विभुः ॥२९॥

अतः त्वां आश्रितः सौम्य कार्य गौरव साधनं यथा इन्द्रः विष्णुं आश्रित्य स्वार्थं अध्यगमत् विभुः ॥२९॥

सौम्य अतः	सौम्य! इसलिए	विष्णुं	विष्णुका
कार्य गौरव	बड़े कार्यको	आश्रित्य	आश्रय लेकर
साधनं	सम्पन्न करनेके लिए	स्वार्थं	अपना प्रयोजन
त्वां आश्रितः	(मैंने) आपका	अध्यगमत्	प्राप्त करते
	सहारा लिया है,		हैं ॥२९॥
यथा विभुः इन्द्रः	जैसे समर्थ इन्द्र		

गच्छ नन्दव्रजं तत्र सुतावानकदुन्दुभेः ।
आसाते तानिहानेन स्थेनानय मा चिरम् ॥३०॥

गच्छ नन्दव्रजं तत्र सुताः आनक दुन्दुभेः आसाते तानः इह अनेन रथेन आनय मा चिरम् ॥३०॥

नन्दव्रजं गच्छ	नन्दव्रज चले जाइये,	अनेन रथेन	इस रथसे ही
तत्र	वहां	आनय	ले आइये,
आनक दुन्दुभेः	वसुदेवके	मा चिरं	विलम्ब मत कीजिए
सुताः आसाते	दो पुत्र रहते हैं		॥३०॥
तानः इह	उनको यहां		

निसृष्टः किल मे मृत्युर्देवैर्वैकुण्ठसंश्रयैः ।
तावानय समं गोपैर्नन्दाद्यैः साभ्युपायनैः ॥३१॥

निसृष्टः किल मे मृत्युः देवैः वैकुण्ठ संश्रयैः ताः आनय समं गोपैः नन्द आद्यैः स अभ्युपायनैः ॥३१॥

वैकुण्ठ	विष्णुके	**ताः**	उनको और
संश्रयैः	आश्रयमें रहनेवाले	**नन्द आद्यैः**	नन्द आदि
देवैः किल	देवताओंने अरे,	**गोपैः**	गोपोंको
मे मृत्युः	(उनके द्वारा) मेरी मृत्यु	**स**	बड़े
		अभ्युपायनैः	उपहारोंके साथ
निसृष्टः	निश्चित की है (अतः)	**आनय**	ले आइये ॥३१॥

घातयिष्य इहानीतौ कालकल्पेन हस्तिना ।
यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातये वैद्युतोपमैः ॥३२॥

घातयिष्य इह आनीतौ कालकल्पेन हस्तिना यदि मुक्तौ ततः मल्लैः घातये वैद्युत उपमैः ॥३२॥

इह आनीतौ	यहां ले आनेपर (उनको)	**यदि मुक्तौ**	यदि (उससे) छूट गये तो
कालकल्पेन	कालके समान	**वैद्युत उपमैः**	बिजलीके समान
हस्तिना	हाथीके द्वारा	**मल्लैः**	पहलवानोंसे
घातयिष्य	मरवा दूंगा	**घातये**	मरवाऊँगा ॥३२॥

तयोर्निहतयोस्तप्तान् वसुदेवपुरोगमान् ।
तद्बन्धून् निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान् ॥३३॥

तयोः निहतयोः ताप्तान् वसुदेव पुरः अगमान् तत् बन्धून् निहनिष्यामि वृष्णि भोज दशार्हकान् ॥३३॥

तयोः निहतयोः	उनके मारे जानेसे	**वसुदेव**	वसुदेव
तप्तान्	संतप्त	**पुरः अगमान्**	जिनके अग्रणी हैं उन

वृष्णि भोज	वृष्णि, भोज	**तत् बन्धून्**	उनके सम्बन्धियोंको
दशार्हकान्	दशार्हवंशीय	**निहनिष्यामि**	मैं मार दूँगा ॥३३॥

उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्यकामुकम् ।
तद्भ्रातरं देवकं च ये चान्ये विद्विषो मम ॥३४॥

उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्य कामुकं तत् भ्रातरं देवकं च ये च अन्ये विद्विषः मम ॥३४॥

राज्य कामुकं	राज्य चाहनेवाले	**च ये अन्ये**	और जो दूसरे
स्थविरं पितरं	अपने बूढ़े पिता	**मम**	मेरे
उग्रसेनं च	उग्रसेनको भी	**विद्विषः**	द्वेषी हैं (उन सबको
च तत् भ्रातरं	तथा उनके भाई		मार दूंगा) ॥३४॥
देवकं	देवकको		

ततश्चैषा मही मित्र भवित्री नष्टकण्टका ।
जरासंधो मम गुरुर्द्विविदो दयितः सखा ॥३५॥

ततः च एषा मही मित्र भवित्री नष्टकण्टका जरासन्धः मम गुरुः द्विविदः दयितः सखा ॥३५॥

मित्र	मित्र !	**जरासन्धः**	जरासन्ध
ततः च एषा	तब तो यह	**मम गुरुः**	मेरे बड़े (स्वसुर)
मही	पृथ्वी		और
नष्टकण्टका	निष्कण्टक	**द्विविदः**	द्विविद
भवित्री	हो जायगी (क्योंकि)	**दयितः सखा**	प्यारे मित्र हैं ॥३५॥

शम्बरो नरको बाणो मय्येव कृतसौहृदाः ।
तैरहं सुरपक्षीयान् हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान् ॥३६॥

शम्बरः नरकः बाणः मयि एव कृत सौहृदाः तैः अहं सुरपक्षीयान् हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान् ॥३६॥

शम्बरः	शम्बरासुर	**कृत सौहृदाः**	मैत्री करते हैं,
नरकः	नरकासुर और	**तैः अहं**	उनके साथ (मिल-
बाणः	बाणासुर		कर) मैं
मयि एव	मुझसे ही	**सुर-**	देवताओंके

पक्षीयान्	पक्षपाती	भोक्ष्ये	उपभोग करूँगा
नृपान् हत्वा	राजाओंको मारकर		॥३६॥
महीं	पृथ्वीका		

एतज्ज्ञात्वाऽऽनय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्भकौ ।
धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम् ॥३७॥

एतत् ज्ञात्वा आनय क्षिप्रं रामकृष्णाः इह अर्भकौ धनुः मख निरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुर श्रियम् ॥३७॥

एतत् ज्ञात्वा	यह जानकर	यदुपुर	यादव राजधानी (मथुरा) की
अर्भकौ	बालक		
राम-	बलराम और	श्रियं द्रष्टुं	शोभा देखनेके लिए (कहकर)
कृष्णाः	श्रीकृष्णको		
धनुः मख	धनुष-यज्ञ	इह क्षिप्रं	यहां शीघ्र
निरीक्षार्थं	देखनेके लिए (तथा उस समय)	आनय	ले आइये ॥३७॥

अक्रूर उवाच

राजन् मनीषितं सध्र्यक् तव स्वावद्यमार्जनम् ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्याद् दैवं हि फलसाधनम् ॥३८॥

राजन् मनीषितं सध्र्यक् तव स्व अवद्य मार्जनं सिद्ध्य असिद्ध्योः समं कुर्यात् दैवं हि फलसाधनम् ॥३८॥

राजन्	राजन् !	असिद्ध्योः	असफलतामें
स्व अवद्य	अपने अरिष्टको	समं	समान भाव रखकर
मार्जनं	मिटानेके लिए	कुर्यात्	कर्म करना चाहिए
तव मनीषितं	आपका सोचना	हि दैवं	क्योंकि दैव ही
सध्र्यक्	ठीक ही है; किन्तु	फलसाधन	फल देनेवाला है ॥३८॥
सिद्ध्य	सफलता		

मनोरथान् करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि ।
युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते ॥३९॥

मनोरथान् करोति उच्चैः जनः दैव हतान् अपि युज्यते हर्ष शोकाभ्यां तथा अपि आज्ञां करोमि ते ॥३६॥

दैव	दैवके द्वारा	**हर्ष शोकाभ्यां**	हर्ष या शोकसे
हतान्	नष्ट किये होनेपर	**युज्यते**	जुड़ता है
अपि	भी	**तथा अपि**	फिर भी
जनः उच्चैः	मनुष्य बड़े-बड़े	**ते**	आपकी
मनोरथान्	मनोरथ	**आज्ञां**	आज्ञाका पालन
करोति	करता है, इससे	**करोमि**	करूँगा ॥३६॥

श्रीशुक उवाच–

एवमादिश्य चाक्रूरं मन्त्रिणश्च विसृज्य सः ।
प्रविवेश गृहं कंसस्तथाक्रूरः स्वमालयम् ॥४०॥

एवं आदिश्य च अक्रूरं मन्त्रिणः च विसृज्य सः प्रविवेश गृहं कंसः तथा अक्रूरः स्वं आलयम् ॥४०॥

एवं	इस प्रकार	**सः कंसः**	वह कंस
अक्रूरं	अक्रूरको	**स्व गृहं**	अपने भवनमें
आदिश्य	आदेश देकर	**तथा अक्रूरः**	तथा अक्रूर
च मन्त्रिणः च	तथा मन्त्रियोंको भी	**स्वं आलयं**	अपने घरमें
विसृज्य	विदा करके	**प्रविवेश**	प्रविष्ट हुए ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽक्रूरसंप्रेषणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं
महाहयो निर्जरयन् मनोजवः ।
सटावधूताभ्रविमानसंकुलं
कुर्वन् नभो हेषितभीषिताखिलः ॥१॥

केशी तु कंसप्रहितः खुरैः महीं महाहयः निर्जरयन् मनोजवः सटा अवधूत अभ्र विमान सङ्कुलं कुर्वन् नभः हेषित भीषित अखिलः ॥१॥

महाहयः	बड़ा भारी घोड़ा	**विमान**	विमानोंको
केशी तु	केशी तो	**नभः**	आकाशमें
कंसप्रहितः	कंसके भेजनेसे	**सङ्कुलं कुर्वन्**	तितर-बितर करता
खुरैः	अपनी टापोंसे	**हेषित**	हिन-हिनाहटसे
महीं	पृथ्वीको	**अखिलः**	सबको
निर्जरयन्	खोदता हुआ,	**भीषित**	डराता
सटा	गर्दनके बालोंके	**मनोजवः**	मनके वेगसे (दौड़ा)
अवधूत	झटकेसे		॥१॥
अभ्र	बादलों और		

विशालनेत्रो विकटास्यकोटरो
बृहद्गलो नीलमहाम्बुदोपमः ।
दुराशयः कंसहितं चिकीर्षु-
र्व्रजं स नन्दस्य जगाम कम्पयन् ॥२॥

विशाल नेत्रः विकट आस्य कोटरः बृहत् गलः नील महा अम्बुद उपमः दुराशयः कंसहितं चिकीर्षुः व्रजं सः नन्दस्य जगाम कम्पयन् ॥२॥

विशाल नेत्रः	बड़े नेत्रोंवाला,
विकट आस्य कोटरः	डरावने वृक्षके खोडर समान मुखवाला,
बृहत् गलः	लम्बी गर्दनवाला,
नील महा अम्बुद उपमः	काले बड़े मेघके समान
दुराशयः	दुरभिप्राय,
कंसहितं	कंसका भला करनेकी
चिकुर्षुः	इच्छासे
सः	वह
नन्दस्य व्रजं	नन्दके व्रजको
कम्पयन्	कम्पित करता
जगाम	पहुँचा ॥२॥

तं त्रासयन्तं भगवान् स्वगोकुलं
तद्धेषितैर्वालविधूर्णिताम्बुदम् ।
आत्मानमाजौ मृगयन्तमग्रणी-
रुपाह्वयत् स व्यनदन्मृगेन्द्रवत् ॥३॥

तं त्रासयन्तं भगवान् स्व गोकुलं तत् हेषितैः वाल विधूणित अम्बुदं आत्मानं आजौ मृगयन्तं अग्रणीः उपाह्वयत् स व्यनदत् मृगेन्द्रवत् ॥३॥

हेषितैः	हिन-हिनाहटसे
तं स्वगोकुलं	उसे अपने गोकुलको
त्रासयन्तं	भयभीत करता और
तत्	उसके (पूँछके)
वाल	बालोंसे
विधूणित	छितराते हुए
अम्बुदं	बादलोंको
आजौ	अजन्मा,
भगवान्	भगवान्ने
आत्मानं	अपनेको
मृगयन्तं	ढूँढ़ता (देखकर)
स अग्रणीः	वे आगे बढ़कर
मृगेन्द्रवत्	सिंहके समान
व्यनदन्	गर्जना करके
उपाह्वयत्	अपने समीप पुकारा ॥३॥

स तं निशाम्याभिमुखो मुखेन खं
पिबन्निवाभ्यद्रवदत्यमर्षणः ।
जघान पद्भ्यामरविन्दलोचनं
दुरासदश्चण्डजवो दुरत्ययः ॥४॥

स तं निशाम्य अभिमुखः मुखेन खं पिबन् इव अभ्यद्रवत् अति अमर्षणः जघान पद्भ्यां अरविन्द लोचनं दुरासदः चण्डजवः दुरत्ययः ॥४॥

स तं	उसने उनको	**दुरत्ययः**	उसपर विजयपाना कठिन था,
अभिमुखः	अपनी ओर आता		
निशाम्य	देखकर	**चण्डजवः**	प्रचण्ड वेगसे (आकर)
मुखेन खं	मुख फाड़कर आकाशको	**अरविन्द-**	कमल-
पिबन् इव	पीते हुएके समान	**लोचनं**	लोचन श्रीकृष्णको
अभ्यद्रवत्	उनकी ओर दौड़ा,	**पद्भ्यां**	(उसने) पैरोंसे
दुरासदः	उसे पकड़ना कठिन था; क्योंकि	**जघान**	(दुलत्ती) मारा ॥४॥

तद् वञ्चयित्वा तमधोक्षजो रुषा
प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः ।
सावज्ञमुत्सृज्य धनुःशतान्तरे
यथोरगं तार्क्षसुतो व्यवस्थितः ॥५॥

तत् वञ्चयित्वा तं अधोक्षजः रुषा प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः सावज्ञं उत्सृज्य धनुः शत अन्तरे यथा उरगं तार्क्ष्य सुतः व्यवस्थितः ॥५॥

अधोक्षजः	इन्द्रियातीत (भगवान)	**प्रगृह्य**	पकड़कर
तत् वञ्चयित्वा	उस (दुलत्ती) को बचा गये	**तं सावज्ञं**	उसे उपेक्षापूर्वक
रुषा दोर्भ्यां	क्रोध करके हाथोंसे	**धनुः शत**	सौ धनुष
पादयोः	(उसके) पैरोंको	**अन्तरे**	(चार सौ हाथ) दूर
परिविध्य	जकड़ कर	**उत्सृज्य**	फेंककर
		व्यवस्थितः	स्थिर खड़े हो गये ॥५॥

स लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा
व्यादाय केशी तरसाऽऽपतद्धरिम् ।
सोऽप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन्
प्रवेशयामास यथोरगं बिले ॥६॥

स लब्धसंज्ञः पुनः उत्थितः रुषा व्यादाय केशी तरसा आपतत् हरिं सः अपि अस्य वक्त्रे भुजं उत्तरं स्मयन् प्रवेशयामास यथा उरगं बिले ॥६॥

स केशी	वह केशी	**सः अपि**	उन्होंने भी
लब्धसंज्ञः	होशमें आनेपर	**स्मयन्**	मुस्कराते हुए
पुनः उत्थितः	फिर उठकर	**उत्तरं भुजं**	अपना बांया हाथ
रुषा	क्रोधसे	**अस्य वक्त्रे**	इसके मुखमें
व्यादाय	मुख फाड़कर	**यथा उरगं**	जैसे सांप
तरसा	वेगसे	**बिले**	बिलमें (जाय)
हरिं	श्रीकृष्णकी ओर	**प्रवेशयामास**	डाल दिया ॥६॥
आपतत्	झपटा		

दन्ता निपेतुर्भगवद्भुजस्पृश-
स्ते केशिनस्तप्तमयः स्पृशो यथा ।
बाहुश्च तद्देहगतो महात्मनो
यथाऽऽमयः संववृधे उपेक्षितः ॥७॥

दन्ता निपेतुः भगवत् भुजस्पृशः ते केशिनः तप्तं अयः स्पृशः यथा बाहुः च तत् देहगतः महात्मनः यथा आमयः संववृधे उपेक्षितः ॥७॥

ते केशिनः	वे केशीके	**महात्मनः**	उन पुरुषोत्तमकी
दन्ता	दांत	**बाहुः च**	भुजा भी
भगवत्	भगवानकी	**तत्**	उसके
भुजस्पृशः	भुजाके स्पर्शसे	**देहगतः**	शरीरमें जाकर
यथा तप्तं	जैसे तपाये	**यथा**	जैसे
अयः	लोहेसे	**उपेक्षितः**	उपेक्षा करनेपर
स्पृशः	छू गये हों	**आमयः**	रोग (बढ़ता है)
निपेतुः	(एक साथ) गिर पड़े,	**संववृधे**	बहुत बढ़ गयी ॥७॥

समेधमानेन स कृष्णबाहुना
निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् ।

प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः
पपात लेण्डं विसृजन् क्षितौ व्यसुः ॥८॥

समेधमानेन स कृष्णबाहुना निरुद्ध वायुः चरणान् च विक्षिपन्
प्रस्विन् गात्रः परिवृत्त लोचनः पपात लेण्डं विसृजन् क्षितौ व्यसुः ॥८॥

कृष्णबाहुना	श्रीकृष्णकी भुजाके		लथपथ हो गया,
समेधमानेन	बहुत बढ़ते जानेसे	**लोचनः**	नेत्र
निरुद्ध वायुः	(उसकी) श्वास रुक गयी	**परिवृत्त**	निकल आये
		लेण्डं विसृजन्	मल-त्याग करता
स चरणान् च	वह पैरोंको भी	**व्यसुः**	निष्प्राण होकर
विक्षिपन्	ऊपर उछालने लगा,	**क्षितौ पपात**	पृथ्वीपर गिर पड़ा
गात्रः प्रस्विन्	शरीर पसीनेसे		॥८॥

तद्देहत कर्कटिकाफलोपमाद्
व्यसोरपाकृष्य भुजं महाभुजः ।
अविस्मितोऽयत्नहतारिरुत्स्मयैः
प्रसूनवर्षैर्दिविषद्भिरीडितः ॥९॥

तत् देहतः कर्कटिका फल उपमात् व्यसोः अपाकृष्य भुजं महाभुजः
अविस्मितः अयत्न हत अरिः उत्स्मयैः प्रसून वर्षैः दिविषत्भिः ईडितः ॥९॥

कर्कटिका	पकी ककड़ीके	**अयत्न**	बिना प्रयत्नके
फल	फल (फूट) के	**हत अरिः**	शत्रुको मारकर
उपमात्	समान (कटे)	**अविस्मितः**	चकित नहीं हुए;
तत् देहतः	उसके शरीरसे		किन्तु
भुजं	(अपनी) भुजा	**उत्स्मयैः**	आश्चर्य चकित
अपाकृष्य	बाहर निकाल कर	**दिविषत्भिः**	देवताओं द्वारा
महाभुजः	विशाल बाहु श्रीकृष्ण	**प्रसून वर्षैः**	पुष्प वर्षा करते हुए
		ईडितः	स्तुत हुए ॥९॥

देवर्षिरुपसङ्गम्य भागवतप्रवरो नृप ।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥१०॥

देवर्षिः उपसङ्गम्य भागवतप्रवरः नृप कृष्णं अक्लिष्ट कर्माणं रहसि एतत् अभाषत ॥१०॥

नृप	राजन् !	**उपसङ्गम्य**	समीप आकर
अक्लिष्ट	अक्लिष्ट	**भागवत-**	भगवद् भक्तोंमें
कर्माणं	कर्मा	**प्रवरः**	श्रेष्ठ
कृष्णं	श्रीकृष्णके	**देवर्षिः**	देवर्षि नारदजी
रहसि	एकान्तमें	**एतत् अभाषत**	यह बोले ॥१०॥

नारद उवाच*

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् योगेश जगदीश्वर ।
वासुदेवाखिलावास सात्वतां प्रवर प्रभो ॥११॥

कृष्ण कृष्ण अप्रमेय आत्मन् योगेश जगदीश्वर वासुदेव अखिल आवास सात्वतां प्रवर प्रभो ॥११॥

प्रभो कृष्ण	प्रभो कृष्ण !	**वासुदेव**	वासुदेव !
योगेश कृष्ण	योगेश्वर कृष्ण !	**अखिल आवास**	जगन्मय !
अप्रमेय	प्रमाणातीत	**सात्वतां प्रवर**	यदुवंश शिरोमणि ॥११॥
आत्मन्	स्वरूप !		
जगदीश्वर	जगदीश्वर !		

त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम् ।
गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥१२॥

त्वं आत्मा सर्वभूतानां एकः ज्योतिः इव एधसां गूढः गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥१२॥

सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके	**एधसां**	ईंधनमें
त्वं आत्मा	तुम आत्मा हो,	**ज्योतिः इव**	अग्निके समान
एकः	अद्वितीय (होनेपर भी)	**गूढः**	छिपे सबके
		गुहाशयः	हृदय निवासी,

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

साक्षी	साक्षी,	ईश्वरः	सर्वसमर्थ हो
महापुरुष	पुरुषोत्तम		॥१२॥

आत्मनाऽऽत्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान् ।
तैरिदं सत्यसंकल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥१३॥

आत्मना आत्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान् तैः इदं सत्यसङ्कल्पः सृजसि अवत्ससि अवसि ईश्वरः ॥१३॥

आत्मना	अपने द्वारा	तैः	उन (गुणों) से
आत्माश्रयः	अपने ही में स्थित रहकर	इदं	इस संसारकी
		सृजसि	उत्पत्ति करते हैं
पूर्वं	पहिले अपनी	अवत्ससि	प्रलय करते हैं,
मायया	मायासे	पासि	रक्षा करते हैं,
गुणान्	त्रिगुणोंको	ईश्वरः	आप परमेश्वर हैं
ससृजे	उत्पन्न किया,		॥१३॥
सत्यसङ्कल्पः	सत्य संकल्प आपने		

स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् ।
अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ॥१४॥

स त्वं भूधरभूतानां दैत्य प्रमथ रक्षसां अवतीर्णः विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ॥१४॥

स त्वं	वही आप	च	तथा (धर्मकी)
भूधरभूतानां	पर्वत जैसे भारी बने	सेतूनां	मर्यादाकी
दैत्य प्रमथ	दैत्य, पिशाच और	रक्षणाय	रक्षा करनेके लिए
रक्षसां	राक्षसोंके	अवतीर्णः	अवतरित हुए हैं
विनाशाय	विनाशके लिए		॥१४॥

दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयायं हयाकृतिः ।
यस्य हेषितसंत्रस्तास्त्यजन्त्यनिमिषा दिवम् ॥१५॥

दिष्ट्या ते निहतः दैत्यः लीलया अयं हय आकृतिः यस्य हेषित संत्रस्ताः त्यजन्ति अनिमिषा दिवम् ॥१५॥

यस्य	जिसकी	अयं हय	यह घोड़ेके
हेषित	हिनहिनाहटसे	आकृतिः	रूपवाला
संत्रस्ताः	भयभीत होकर	दैत्यः	दैत्य
अनिमिषा दिवं	देवता स्वर्ग	लीलया	खेलमें
त्यजन्ति	छोड़कर (भाग) जाते थे,	निहतः	मार दिया गया ॥१५॥
हिष्ट्या ते	सौभाग्यसे आपके द्वारा		

चाणूरं मुष्टिकं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम् ।
कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो ॥१६॥

चाणूरं मुष्टिकं च एव मल्लान् अन्यान् च हस्तिनं कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वः अहनि ते विभो ॥१६॥

विभो	प्रभो !	च अन्यान्	तथा दूसरे
परश्वः अहनि	परसोंके दिन	मल्लान्	पहलवानोंको,
ते निहतं	आपके द्वारा मारे गये	च हस्तिनं	एवं हाथीको
		च कंसं एव	और कंसको भी
चाणूरं मुष्टिकं	चाणूर, मुष्टिक,	द्रक्ष्ये	देखूंगा ॥१६॥

तस्यानु शङ्खयवनमुराणां नरकस्य च ।
पारिजातापहरणमिन्द्रस्य च पराजयम् ॥१७॥

तस्य अनु शंख यवन मुराणां नरकस्य च पारिजात अपहरणं इन्द्रस्य च पराजयम् ॥१७॥

तस्य अनु	उसके बाद	पारिजात	कल्पवृक्षका
शंख यवन	शंखासुर, कालयवन,	अपहरणं	हरण करना
मुराणां	मुर तथा	च इन्द्रस्य	तथा इन्द्रकी
नरकस्य च	नरकासुरका भी (मारा जाना)	पराजयं	पराजय (देखूंगा) ॥१७॥

उद्वाहं वीरकन्यानां वीर्यशुल्कादिलक्षणम् ।
नृगस्य मोक्षणं पापाद् द्वारकायां जगत्पते ॥१८॥

उद्वाहं वीर कन्यानां वीर्य शुल्क आदि लक्षणं नृगस्य मोक्षणं पापात् द्वारकायां जगत्पते ॥१८॥

जगत्पते	जगदीश्वर !	**उद्वाहं**	विवाह तथा
वीर्यशुल्क	पराक्रमका मूल्य देने	**द्वारकायां**	द्वारिकामें
आदि	आदि	**पापात् नृगस्य**	पापसे नृगको
लक्षणं	लक्षणोंवाले	**मोक्षणं**	छुटकारा देना (देखूंगा) ॥१८॥
वीर	वीरोंकी		
कन्यानां	कन्याओंसे (आपका)		

स्यमन्तकस्य च मणेरादानं सह भार्यया ।
मृतपुत्रप्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥१९॥

स्यमन्तकस्य च मणेः आदानं सह भार्यया मृतपुत्र प्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥१९॥

स्यमन्तकस्य	स्यमन्तक	**स्वधामतः**	अपने धामसे (ले आकर)
मणेः	मणिको	**ब्राह्मणस्य**	ब्राह्मणको
भार्यया सह	पत्नी (जाम्बवती) के साथ	**मृतपुत्र**	(उसके) मरे पुत्रोंको
आदानं	ले आना	**प्रदानं च**	लौटाना भी (देखूगा) ॥१९॥
च	और		

पौण्ड्रकस्य वधं पश्चात् काशिपुर्याश्च दीपनम् ।
दन्तवक्त्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ ॥२०॥

पौण्ड्रकस्य वधं पश्चात् काशिपुर्याः च दीपनं दन्तवक्त्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ ॥२०॥

पौण्ड्रकस्य	पौण्ड्रकका	**पश्चात्**	उसके पीछे
वधं	मारा जाना,	**काशिपुर्याः**	काशीपुरीका

दीपनं च	जलाया जाना भी,	चैद्यस्य	शिशुपालका
दन्तवक्त्रस्य	दन्तवक्रका	निधनं	मारा जाना भी
च	तथा		॥२०॥
महाक्रतौ	महायज्ञ राजसूयमें		

यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन् भवान् ।
कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि ॥२१॥

यानि च अन्यानि वीर्याणि द्वारकां आवसन् भवान् कर्ता द्रक्ष्यामि अहं तानि गेयानि कविभिः भुवि ॥२१॥

च	तथा	तानि कविभिः	उन कवियों द्वारा
यानि अन्यानि	जो दूसरे	भुवि	पृथ्वीके
वीर्याणि	पराक्रम	गेयानि	गायी जानेवाली
भवान् द्वारकां	आप द्वारिकामें		(लीलाओं) का
आवसन् कर्ता	रहते हुए करनेवाले हैं	अहं द्रक्ष्यामि	मैं दर्शन करूँगा ॥२१॥

अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै ।
अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥२२॥

अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोः अमुष्य वै अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्यामि अर्जुन सारथेः ॥२२॥

वै अमुष्य	निश्चय इस (भूमि) का	सारथेः	सारथि द्वारा
		अथ	फिर अनेक
क्षपयिष्णोः	(भार) दूर करनेकी इच्छावाले	अक्षौहिणीनां	अक्षौहिणी सेनाओं-को
ते कालरूपस्य	आप कालस्वरूप	निधनं	मारा जाना
अर्जुन	अर्जुनके	द्रक्ष्यामि	देखूंगा ॥२२॥

विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया
समाप्तसर्वार्थममोघवाञ्छितम् ।

स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमाया-
गुणप्रवाहं भगवन्तमीमहि ॥२३॥

विशुद्ध विज्ञानघनं स्वसंस्थया सम आप्त सर्व अर्थं अमोघवाञ्छितं स्वतेजसा नित्यनिवृत्त माया गुणप्रवाहं भगवन्तं ईमहि ॥२३॥

विशुद्ध	विशुद्ध	**माया**	मायाकी
विज्ञानघनं	विज्ञानघन,	**गुणप्रवाहं**	गुण-धारासे
स्वसंस्थया	अपने स्वरूपमें	**नित्यनिवृत्त**	सदा निवृत्त (मायातीत)
सर्व अर्थं	सब पदार्थोंको		
सम आप्त	पूर्ण प्राप्त किए (पूर्ण काम)	**भगवन्तं**	भगवान्‌की मैं
		ईमहि	शरण-ग्रहण करता हूँ ॥२३॥
अमोघवाञ्छितं	अमोघ संकल्प		
स्वतेजसा	अपने तेजसे		

त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया
विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् ।
क्रीडार्थमद्यात्तमनुष्यविग्रहं
नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्वताम् ॥२४॥

त्वां ईश्वरं स्व आश्रयं आत्ममायया विनिर्मित अशेष विशेष कल्पनं क्रीडा अर्थं उपात्त मनुष्यविग्रहं नतः अस्मि धुर्यं यदुवृष्णि सात्वताम् ॥२४॥

त्वां ईश्वरं	आप सबके नियन्ता,	**क्रीडा**	क्रीड़ाके
स्व	अपनेपर ही	**अर्थं**	लिए (इस समय)
आश्रयं	अवलम्बित (परम स्वतन्त्र)	**मनुष्यविग्रहं**	मनुष्य शरीर
		उपात्त	धारण किये
आत्ममायया	अपनी मायासे	**यदुवृष्णि**	यदु, वृष्णि,
अशेष	सम्पूर्ण	**सात्वतां**	सात्वत वंशियोंके
विशेष	विशेषताओं (भेद) की	**धुर्यं**	शिरोमणि आपको
		नतः अस्मि	मैं नमस्कार करता हूँ ॥२४॥
कल्पनं	कल्पनाको		
विनिर्मित	उत्पन्न करनेवाले,		

श्रीशुक उवाच

एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः ।
प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो ययौ तद्दर्शनोत्सवः ॥२५॥

एवं यदुपतिं कृष्णं भागवत प्रवरः मुनिः प्रणिपत्याभ्य अनुज्ञातः ययौ तत् दर्शन उत्सवः ॥२५॥

एवं	इस प्रकार	**प्रणिपत्याभ्य**	प्रणाम करके
भागवत	भगवद् भक्तोंमें	**अनुज्ञातः**	उनकी अनुमति पाकर
प्रवरः	श्रेष्ठ		
मुनिः	मुनि नारदजी	**तत् दर्शन**	उनके दर्शनसे
यदुपतिं	यदुपति	**उत्सवः**	आनन्दित होकर
कृष्णं	श्रीकृष्णको	**ययौ**	चले गये ॥२५॥

भगवानपि गोविन्दो हत्वा केशिनमाहवे ।
पशूनपालयत् पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः ॥२६॥

भगवान् अपि गोविन्दः हत्वा केशिनं आहवे पशून् अपालयत् पालैः प्रीतैः व्रज सुख आवहः ॥२६॥

व्रज	व्रजवासियोंको	**केशिनं हत्वा**	केशीको मारकर
सुख आवहः	आनन्द देनेवाले	**प्रीतैः**	प्रसन्न हुए
भगवान्	भगवान्	**पालैः**	गोपालकोंके साथ
गोविन्दः अपि	गोविन्द भी	**पशून्**	पशु-पालन
आहवे	युद्धमें	**अपालयत्**	करने लगे ॥२६॥

एकदा ते पशून् पालाश्चारयन्तोऽद्रिसानुषु ।
चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चोरपालापदेशतः ॥२७॥

एकदा ते पशून् पालाः चारयन्तः अद्रिसानुषु चक्रुः निलायन क्रीडाः चोरपाल अपदेशतः ॥२७॥

एकदा	एक बार	**अद्रिसानुषु**	पर्वतके शिखरपर
ते पालाः	वे पशुपालक	**पशून् चारयन्तः**	पशु चराये हुए

चोरपाल	चोर और पालकके	**निलायन क्रीडाः**	छिपनेका खेल
अपदेशतः	बहानेसे	**चक्रुः**	करने लगे ॥२७॥

तत्रासन् कतिचिच्चोराः पालाश्च कतिचिन्नृप ।
मेषायिताश्च तत्रैके विजह्रुरकुतोभयाः ॥२८॥

तत्र आसन् कतिचित् चोराः पालाः च कतिचित् नृप मेषायिताः च तत्र एके विजह्रुः अकुतः भयाः ॥२८॥

नृप	राजन् !	**मेषायिताः**	भेड़ बने
तत्र	उस (खेल) में	**आसन्**	थे (इस प्रकार)
कतिचित्	कुछ (बालक)	**अकुतः भयाः**	सब ओरसे निर्भय होकर
चोराः	चोर,	**विजह्रुः**	क्रीड़ा कर रहे थे ॥२८॥
कतिचित्	कुछ		
पालाः	पालक (रक्षक)		
च तत्र एके	तथा उसमें दूसरे		

मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपालवेषधृक् ।
मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरायितो बहून् ॥२९॥

मयपुत्रः महामायः व्योमः गोपाल वेष धृक् मेषायितान् अपोवाह प्रायः चोरायितः बहून् ॥२९॥

महामायः	महामायावी	**मेषायितान्**	भेड़ बने (बालकों) को तथा
मयपुत्रः	मयदानवका पुत्र	**प्रायः बहून्**	प्रायः बहुतसे
व्योमः	व्योमासुर	**चोरायितः**	चोर बने हुओंको भी
गोपाल	गोप बालकका	**अपोवाह**	चुरा ले गया ॥२९॥
वेष धृक्	रूप बनाकर		

गिरिदर्यां विनिक्षिप्य नीतं नीतं महासुरः ।
शिलया पिदधे द्वारं चतुःपञ्चावशेषिताः ॥३०॥

गिरिदर्यां विनिक्षिप्य नीतं नीतं महा असुरः शिलया पिदधे द्वारं चतुः पञ्च अवशेषिताः ॥३०॥

महा असुरः	वह महा दानव,
नीतं नीतं	बार-बार लाये (बालकों) को
गिरिदर्यां	पर्वतकी कन्दरामें
विनिक्षिप्य	फेंककर
द्वारं शिलया	उसके द्वारको चट्टानसे
पिदधे	बन्द कर देता था
चतुः पञ्च	(इस प्रकार) चार-पांच (बालक)
अवशेषिताः	बच रहे ॥३०॥

तस्य तत् कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम् ।
गोपान् नयन्तं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥३१॥

तस्य तत् कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सतां गोपान् नयन्तं जग्राह वृकं हरिः इव ओजसा ॥३१॥

सतां	सत्पुरुषोंके
शरणदः	शरणदाता
कृष्णः	श्रीकृष्णने
तस्य तत्	उसके उस
कर्म	कर्मको
विज्ञाय	जानकर
गोपान् नयन्तं	गोपोंको ले जाते समय
वृकं हरिः	भेड़ियेको सिंहके
इव	समान
ओजसा	बलपूर्वक
जग्राह	पकड़ लिया ॥३१॥

स निजं रूपमास्थाय गिरीन्द्रसदृशं बली ।
इच्छन् विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद् ग्रहणातुरः ॥३२॥

स निजं रूपं आस्थाय गिरीन्द्र सदृशं बली इच्छन् विमोक्तुं आत्मानं न अशक्नोत् ग्रहण आतुरः ॥३२॥

ग्रहण	पकड़े जानेसे
आतुरः	व्याकुल होकर
गिरीन्द्र सदृशं	पर्वतराजके समान
निजं रूपं	अपना रूप
आस्थाय	धारण करके
स बली	उस बलवानने
आत्मानं	अपनेको
विमोक्तुं	छुड़ाना
इच्छन्	चाहा; किन्तु
अशक्नोत् न	समर्थ नहीं हुआ ॥३२॥

तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले ।
पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥३३॥

तं निगृह्य अच्युतः दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले पश्यतां दिवि देवानां पशुमारं अमारयत् ॥३३॥

अच्युतः तं	श्रीकृष्णने उसे	**देवानां**	देवताओंके
दोर्भ्यां	दोनों हाथोंसे	**पश्यतां**	देखते हुए
निगृह्य	जकड़कर	**पशुमारं**	पशुकी भांति (गला घोंटकर)
महीतले	पृथ्वीपर		
पातयित्वा	पटककर	**अमारयत्**	मार डाला ॥३३॥
दिवि	आकाशसे		

गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान् निःसार्य कृच्छ्रतः ।
स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥३४॥

गुहा पिधानं निर्भिद्य गोपान् निःसार्य कृच्छ्रतः स्तूयमानः सुरैः गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥३४॥

गुहा	गुफाके	**सुरैः**	देवताओं द्वारा
पिधानं	ढक्कनको	**स्तूयमानः**	स्तुत होते
निर्भिद्य	तोड़कर	**गोपैः**	गोपोंके साथ
गोपान्	गोपोंको	**स्वगोकुलं**	अपने गोष्ठमें
कृच्छ्रतः	उस संकटसे	**प्रविवेश**	प्रविष्ट हुए ॥३४॥
निःसार्य	निकालकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे व्योमासुरवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अथ अष्टत्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः ।
उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥१॥

अक्रूरः अपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः उषित्वा रथं आस्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥१॥

महामतिः	परम बुद्धिमान	**च**	तथा
अक्रूरः अपि	अक्रूर भी	**रथं**	(सबेरे) रथपर
तां रात्रिं	वह रात	**आस्थाय**	बैठकर
मधुपुर्यां	मथुरामें	**नन्दगोकुलं**	नन्द-व्रजको
उषित्वा	बिताकर	**प्रययौ**	चल पड़े ॥१॥

गच्छन् पथि महाभागो भगवत्यम्बुजेक्षणे ।
भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिन्तयत् ॥२॥

गच्छन् पथि महाभागः भगवति अम्बुज ईक्षणे भक्तिं परां उपगतः एवं एतत् अचिन्तयत् ॥२॥

महाभागः	वे परम भाग्यवान	**परां भक्तिं**	परम भक्तिमें
पथि गच्छन्	मार्गमें जाते हुए	**उपगतः**	मग्न होकर
अम्बुज ईक्षणे	कमल-लोचन	**एतत् एवं**	यह इस प्रकार
भगवति	भगवानमें	**अचिन्तयत्**	सोचने लगे ॥२॥

किं मयाऽऽचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ।
किं वाथाप्यर्हते दत्तं यद् द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥३॥

किं मया आचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः किं वा अथ अपि अर्हते दत्तं यत् द्रक्ष्यामि अद्य केशवम् ॥३॥

मया किं	मैंने ऐसा कौन-सा	**अर्हते अपि**	किसी पूजनीयको भी
भद्रं आचरितं	शुभकर्म किया है,	**किं दत्तं**	क्या दिया है
किं परमं	कौन-सी उत्तम	**यत् अद्य**	जिससे आज
तपः	तपस्या	**केशवं**	भगवान् श्रीकृष्णका
तप्तं	की है,	**द्रक्ष्यामि**	दर्शन करूँगा ॥३॥
वा अथ	अथवा फिर		

ममैतद् दुर्लभं मन्य उत्तमश्लोकदर्शनम् ।
विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥४॥

मम एतत् दुर्लभं मन्य उत्तम श्लोक दर्शनं विषय आत्मनः यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥४॥

यथा	जैसे	**एतत्**	यह
शूद्रजन्मनः	शूद्र जातिमें उत्पन्नके लिए	**उत्तम श्लोक**	पवन कीर्ति (श्रीकृष्ण) का
ब्रह्मकीर्तनं	वेद-पाठ (ऐसे)	**दर्शनं**	दर्शन
मम विषय	मुझ विषयी	**दुर्लभं मन्य**	दुर्लभ मानता हूँ ॥४॥
आत्मनः	चित्तके लिए		

नैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम् ।
ह्रियमाणः कालनद्या क्वचित्तरति कश्चन ॥५॥

मा एवं मम अधमस्य अपि स्यात् एव अच्युत दर्शनं ह्रियमाणः कालनद्या क्वचित् तरति कश्चन ॥५॥

मा एवं	ऐसा नहीं,	**कालनद्या**	कालरूपी नदीमें
मम	मुझ	**ह्रियमाणः**	बहाया जाता हुआ
अधमस्य अपि	अधमको भी	**क्वचित् कश्चन**	कभी कोई (जीव)
अच्युत	भगवान् श्रीकृष्णका	**तरति**	पार भी हो जाता है ॥५॥
दर्शनं	दर्शन		
स्यात् एव	होगा ही; क्योंकि		

ममाद्यामङ्गलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः ।
यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥६॥

मम अद्य अमङ्गलं नष्टं फलवान् च एव मे भवः यत् नमस्ये भगवतः योगिध्येय अङ्घ्रि पङ्कजम् ॥६॥

अद्य मम	आज मेरे	**योगिध्येय**	योगियोंके ध्यानके विषय
अमङ्गलं	सब अमंगल	**भगवतः**	भगवान्के
नष्टं	नष्ट हो गये	**अङ्घ्रि पङ्कजं**	चरण-कमलोंको
च मे	तथा मेरा	**नमस्ये**	नमस्कार करूँगा ॥६॥
भवः	जन्म लेना		
फलवान् एव	सफल ही हो गया		
यत्	जो		

कंसो बताद्याकृत मेऽत्यनुग्रहं
द्रक्ष्येऽङ्घ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः ।
कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः
पूर्वेऽतरन् यन्नखमण्डलत्विषा ॥७॥

कंसः बत अद्य अकृत मे अति अनुग्रहं द्रक्ष्ये अङ्घ्रि पद्मं प्रहितः अमुना हरेः कृत अवतारस्यः दुरत्ययं तमः पूर्वे अतरन् यत् नखमण्डल त्विषा ॥७॥

बत कंसः	अरे कंसने तो	**द्रक्ष्ये**	दर्शन करूँगा
अद्य	आज	**यत्**	जिनके
मे	मुझपर	**नखमण्डल**	नख-मंडलकी
अति अनुग्रहं	बड़ी भारी कृपा	**त्विषा**	ज्योतिसे
अकृत	की है; क्योंकि	**पूर्वे**	पहिले हुए
अमुना प्रहितः	उसीके भेजनेसे	**दुरत्ययं**	महापुरुष दुष्पार
कृत अवतारस्य	अवतार धारण किये	**तमः**	अज्ञानान्धकारको
हरेः	श्रीहरिके	**अतरन्**	पार हो गये हैं ॥७॥
अङ्घ्रि पद्मं	(उन) चरण-कमलों-का		

यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः
श्रिया च देव्या मुनिभिः ससात्वतैः ।
गोचारणायानुचरैश्चरद्वने
यद् गोपिकानां कुचकुङ्कुमाङ्कितम् ॥८॥

यत् अर्चितं ब्रह्म भव आदिभिः सुरैः श्रिया च देव्या मुनिभिः स सात्वतैः गोचारणाय अनुचरैः चरद् वने यत् गोपिकानां कुचकुङ्कुम अङ्कितम् ॥८॥

यत् ब्रह्म	जो (चरण) ब्रह्मा,	गोचारणाय	गायें चरानेके लिए
भव आदिभिः	शिवादि	अनुचरैः	अनुचरोंके साथ
सुरैः	देवताओं द्वारा,	वने	वनमें
देव्या श्रिया	देवी लक्ष्मी द्वारा	चरत्	घूमते हैं और
च	तथा	यत् गोपिकानां	जो गोपियोंके
ससात्वतैः	भगवद्भक्तोंके साथ	कुचकुङ्कुम	वक्षपर लगे कुंकुमसे
मुनिभिः	मुनियों द्वारा	अङ्कितं	चिह्नित हैं ॥८॥
अर्चितं	पूजित होते हैं,		

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं
स्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम् ।
मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं
प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः ॥९॥

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोल नासिकं स्मित अवलोक अरुण कञ्चलोचनं मुखं मुकुन्दस्य गुड अलक आवृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः ॥९॥

नूनं	निश्चय	अवलोक	साथ देखते
सुकपोल	सुन्दर कपोल,	अरुण	अरुण
नासिकं	नासिकावाले	कञ्जलोचनं	कमलसे नेत्रोंवाले
स्मित	मुस्कराहटके	गुड	घुंघराली

अलक आवृतं	अलकोंसे घिरे	**वै मृगाः मे**	क्योंकि ये मृग मेरे
मुकुन्दस्य मुखं	मुकुन्दके श्रीमुखका	**प्रदक्षिणं**	दाहिने
द्रक्ष्यामि	दर्शन करूँगा	**प्रचरन्ति**	चल रहे हैं ॥९॥

अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो
भारावतारायभुवो निजेच्छया ।
लावण्यधाम्नो भवितोपलम्भनं
मह्यं न न स्यात् फलमञ्जसा दृशः ॥१०॥

अपि अद्य विष्णोः मनुजत्वं ईयुषोः भार अवताराय भुवः निज इच्छया लावण्य धाम्नः भविता उपलम्भनं मह्यं न न स्यात् फलं अञ्जसा दृशः ॥१०॥

भुवः भार	पृथ्वीका भार	**मह्यं अञ्जसा**	मुझे सरलतापूर्वक
अवताराय	उतारनेके लिए	**अपि उपलम्भनं**	क्या साक्षात्कार
निज इच्छया	स्वेच्छा पूर्वक	**भविता**	होगा ?
मनुजत्वं	मनुष्य रूप	**दृशः**	दृष्टि (मिलने) का
ईयषोः	धारण किये	**फलं न**	जिनके अतिरिक्त
विष्णोः	श्रीहरिके		दूसरा फल
लावण्य धाम्नः	सौन्दर्य धाम (श्रीविग्रह) का	**न स्यात्**	नहीं है ॥१०॥

य ईक्षिताहंरहितोऽप्यसत्सतोः
स्वतेजसापास्ततमोभिदाश्रमः ।
स्वमायययाऽऽत्मन् रचितैस्तदीक्षया
प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ॥११॥

यः ईक्षिता अहं रहितः अपि असत् सतोः स्वतेजसा अपास्त तमः भिदाश्रमः स्वमायया आत्मन् रचितैः तत् ईक्षया प्राण अक्षधीभिः सदनेषु अभीयते ॥११॥

असत् सतोः	सदमत् रूपा
तमः	मायाके
भिदाभ्रमः	भेदभ्रमको
स्वतेजसा	अपने तेजसे
अपास्त	मिटाकर
यः अहं रहितः	जो अहंकार रहित
अपि	होनेपर भी
ईक्षिता	उसके द्रष्टा हैं,
स्वमायया	अपनी मायासे
आत्मन्	अपने भीतर ही
रचितैः	निर्मित (जगत) को
तत्	उसके
ईक्षया	द्रष्टा (अन्तर्यामी) होनेके कारण
प्राण	प्राण,
अक्षधीभिः	नेत्रादि इन्द्रय, बुद्धिके द्वारा
सदनेषु	उनके घरों (गोलकों) में
अभीयते	(चेतन रूपसे) प्रतीत होते हैं ॥११॥

यस्याखिलामीवहभिः सुमङ्गलै-
र्वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः ।
प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगद्
यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः ॥१२॥

तस्य अखिल अमी बहुभिः सुमङ्गलैः वाचः विमिश्रा गुणकर्म जन्मभिः प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगत् याः तत् विरक्ताः शव शोभना मताः ॥१२॥

अमी अखिल	यह सम्पूर्ण
वाचः	(शास्त्र) वाणी
तस्य बहुभिः	उनके बहुतसे
सुमङ्गलैः	मंगलमय
गुणकर्म	गुणों, चरितों,
जन्मभिः	अवतार-वर्णन
विमिश्रा	से युक्त होकर
वै जगत्	निश्चय संसारको
प्राणन्ति	स्फूर्तिवान्
शुम्भन्ति	मंगलमय,
पुनन्ति	पवित्र (पाप हीन) बनाती है
याः तत्	जो उनसे
विरक्ता	रहित (वाणी) है
शोभना	सुन्दर होनेपर भी
शव मताः	निष्प्राण मानी जाती है ॥१२॥

स चावतीर्णः किल सात्वतान्वये
स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत् ।
यशो वितन्वन् व्रज आस्त ईश्वरो
गायन्ति देवा यदशेषमङ्गलम् ॥१३॥

स च अवतीर्णः किल सात्वत अन्वये स्वसेतुपाल अमरवर्य शर्मकृत् यशः वितन्वन् व्रज आस्त ईश्वरः गायन्ति देवा यत् अशेष मङ्गलम् ॥१३॥

स्वसेतुपाल	अपनी मर्यादाओंके रक्षक
अमरवर्य	देव श्रेष्ठ
शर्मकृत्	परमानन्द दाता
स च ईश्वरः	वही परमेश्वर
किल	अहो,
सात्वत अन्वये	सात्वत वंशमें
अवतीर्णः	अवतरित हुए हैं
यशः	अपने यशका
वितन्वन्	विस्तार करते
व्रज आस्त	(इस समय) व्रजमें हैं
यत् अशेष	जिनके सम्पूर्ण
मङ्गलं	मंगलमय चरितोंका
देवा गायन्ति	देवता वर्णन करते हैं ॥१३॥

तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं
त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम् ।
रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं
द्रक्ष्ये ममासन्नुषसः सुदर्शनाः ॥१४॥

तं तु अद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्य कान्तं दृशिमत् महोत्सवं रूपं दधानं श्रिय ईप्सित आस्पदं द्रक्ष्ये मम आसन् उषसः सुदर्शनाः ॥१४॥

महतां	महात्माओंकी
गतिं गुरुं	परम गति तथा गुरु
त्रैलोक्य कान्तं	त्रिभुवन मोहन
दृशिमत्	नेत्रवालोंको
महोत्सवं	परमानन्द-दायक
श्रिय ईप्सित	लक्ष्मीकी अभिलाषा-का
आस्पदं	आधार स्वरूप
रूपं दधानं	रूप धारण किये
अद्य तं तु	आज उनका तो
नूनं द्रक्ष्ये	निश्चय दर्शन करूँगा
मम सुदर्शनाः	मुझे शुभ शकुन
उषसः	सबेरेसे ही
आसन्	हो रहे हैं ॥१४॥

अथावरूढः सपदीशयो रथात्
प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये ।
धिया धृतं योगिभिरप्यहं ध्रुवं
नमस्य आभ्यां च सखीन् वनौकसः ॥१५॥

अथ अवरूढः सपदि ईशयोः रथात् प्रधानपुंसोः चरणं स्वलब्धये धिया धृतं योगिभिः अपि अहं ध्रुवं नमस्य आभ्यां च सखीन् वनौकसः ॥१५॥

स्वलब्धये	आत्म प्राप्तिके लिए	**वनौकसः**	वनवासी
योगिभिः	योगियों द्वारा	**सखीन्**	सखाओंका
धिया	चित्तमें (जिनका)	**चरणं**	चरणोंमें
धृतं	चिन्तन किया जाता है	**अथ रथात्**	फिर रथसे
		सपदि अवरूढः	झटपट कूदकर
प्रधानपुंसोः	उन प्रधान पुरुष	**ध्रुवं अहं अपि**	निश्चय मैं भी
ईशयोः	समर्थ दोनों भाइयोंके	**नमस्य**	प्रणाम करूँगा ॥१५॥
च आभ्यां	तथा इनके		

अप्यङ्घ्रिमूले पतितस्य मे विभुः
शिरस्यधास्यन्निजहस्तपङ्कजम् ।
दत्ताभयं कालभुजङ्गरंहसा
प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां नृणाम् ॥१६॥

अपि अङ्घ्रिमूले पतितस्य मे विभुः शिरसि अधास्यत् निज हस्त पङ्कजं दत्त अभयं काल भुजङ्ग रंहसा प्रोद्वेजितानां शरण ईषिणां नृणाम् ॥१६॥

अङ्घ्रिमूले	चरणोंपर	**काल भुजङ्ग**	कालरूपी सर्पके
पतितस्य मे	गिरे हुए मेरे	**रंहसा**	वेगसे
शिरसि अपि	सिरपर भी	**प्रोद्वेजितानां**	उद्विग्न
विभुः	वे प्रभु,	**शरण ईषिणां**	शरण चाहनेवाले

नृणां	मनुष्योंको	पङ्कजं	कमल
दत्त अभयं	अभय देनेवाले	अधास्यत्	रखेंगे ॥१६॥
निज हस्त	अपना हस्त-		

समर्हणं यत्र निधाय कौशिक-
स्तथा बलिश्चाप जगत्त्रयेश्वरताम् ।
यद् वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं
स्पर्शेन सौगन्धिकगन्ध्यपानुदत् ॥१७॥

सम अर्हणं यत्र निधाय कौशिकः तथा बलिः च आप जगत् त्रय इन्द्रतां यत् वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं स्पर्शेन सौगन्धिक गन्धि उपानुदत् ॥१७॥

सम अर्हणं	पूजाकी भेंट	गन्धि	सुगन्धितवाले
यत्र निधाय	जिन (करों) में देकर	स्पर्शेन	(करोंके) स्पर्शसे
कौशिकः च	इन्द्र और	विहारे	रासक्रीड़ाके समय
बलिः	बलिने	व्रजयोषितां	व्रजस्त्रियोंकी
जगत् त्रय	त्रिलोकीका	श्रमं	थकावट
इन्द्रतां आप	इन्द्रत्व प्राप्त किया	उपानुदत्	दूर हो गयी थी ॥१७॥
वा यत्	अथवा जिन		
सौगन्धिक	दिव्य कमलोंकी		

न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः
कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् ।
योऽन्तर्बहिश्चेतस एतदीहितं
क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा ॥१८॥

न मयि उप एष्यति अरि बुद्धि अच्युतः कंसस्य दूतः प्रहितः अपि विश्वदृक् यः अन्तः बहिः चेतस एतत् ईहितं क्षेत्रज्ञ ईक्षति अमलेन चक्षुषा ॥१८॥

यः क्षेत्रज्ञ	जो क्षेत्रज्ञ रूपसे	**अच्युतः**	श्रीकृष्ण
अमलेन चक्षुषा	अपने निर्मल नेत्रोंसे	**कंसस्य प्रहितः**	कंसका भेजा हुआ
एतत् अन्तः	इसके चित्तके	**दूतः अपि**	दूत होनेपर भी
चेतस	भीतर	**अरि बुद्धि**	शत्रु भावसे
बहिः ईहितं	तथा बाहर चेष्टा	**मयि न**	मेरे समीप नहीं
ईक्षति	देखते रहते हैं	**उप एष्यति**	आवेंगे ॥१८॥
विश्वदृक्	वे सर्वज्ञ		

अप्यङ्घ्रिमूलेऽवहितं कृताञ्जलिं
मामीक्षिता सस्मितमार्द्रया दृशा ।
सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो
वोढा मुदं वीतविशङ्क ऊर्जिताम् ॥१९॥

अपि अङ्घ्रिमूले अवहितं कृत अञ्जलिं माम् ईक्षिता सस्मितं आर्द्रया दृशा सपदि अपध्वस्त समस्त किल्बिषः वोढा मुदं वीतविशङ्क ऊर्जिताम् ॥१९॥

अङ्घ्रिमूले	(अपने) चरणोंके समीप	**सपदि**	(तब) तत्काल
कृत अञ्जलि	हाथ जोड़े	**समस्त**	सम्पूर्ण
अवहितं मां	खड़े मुझे	**किल्बिषः**	पापोंके
अपि	भी	**अपध्वस्त**	नष्ट हो जानेपर
सस्मितं	मुस्कराते	**वीतविशङ्क**	निःशंक होकर मैं
आर्द्रया	(कृपा पूर्ण) स्निग्ध	**ऊर्जितां मुदं**	प्रवृद्ध आनन्दको
दृशा ईक्षिता	दृष्टिसे देखेंगे	**वोढा**	ढोऊँगा (प्राप्त करूँगा) ॥१९॥

सुहृत्तमं ज्ञातिमनन्यदैवतं
दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ माम् ।
आत्मा हि तीर्थीक्रियते तदैव मे
बन्धश्च कर्मात्मक उच्छ्वसित्यतः ॥२०॥

सुहृत्तमं ज्ञातिं अनन्य दैवतं दोर्भ्यां बृहत्भ्यां परिरप्स्यते अथ मां आत्मा हि तीर्थी क्रियते तत् एव मे बन्धः च कर्म आत्मक उच्छ्वसति इतः ॥२०॥

हि	क्योंकि (उनका)	**बृहत्भ्यां**	अपनी विशाल
	निकट	**दोर्भ्यां**	भुजाओंसे
सुहृत्तमं	सम्बन्धी हूँ,	**परिरप्स्यते**	आलिंगन करेंगे
ज्ञातिं	जातिका हूँ,	**हि तत् एव**	फिर तो उसी समय
अनन्य	उनके अतिरिक्त	**मे आत्मा**	मेरा अन्तःकरण
दैवतं	दूसरा कोई मेरा	**तीर्थी क्रियते**	पवित्र हो जायगा
	आराध्य देवता	**च कर्म आत्मक**	तथा कर्मजन्य
	नहीं है,	**बन्धः इतः**	बन्धन यहांसे
अथ मां	अतः मेरा	**उच्छ्वसति**	टूट जायगा ॥२०॥

लब्धाङ्गसङ्गं प्रणतं कृताञ्जलिं
मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः ।
तदा वयं जन्मभृतो महीयसा
नैवादृतो यो धिगमुष्य जन्म तत् ॥२१॥

लब्ध अङ्गसङ्गं प्रणतं कृत अञ्जलिं मां वक्ष्यते अक्रूर तत् इति उरुश्रवाः तदा वयं जन्मभृतां महीयसा न एव आदृतः यः धिक् अमुष्य जन्म तत् ॥२१॥

अङ्गसङ्गम्	आलिंगन	**तदा वयं**	उसी समय मैं
लब्ध्व	प्राप्त करके	**जन्मभृतां**	सब जन्म लेनेवालों
तत्	फिर		में
कृत अञ्जलि	हाथ जोड़कर	**महीयसा**	महान हो जाऊँगा,
मां प्रणतं	मुझे प्रणाम करते हुए	**यः**	जो (उनके द्वारा)
उरुश्रवाः	वे अनन्त कीर्ति	**न आदृतः**	सम्मानित नहीं हुआ
मां	मुझे	**अमुष्य तत्**	उसके उस
अक्रूर	(चाचा) अक्रूर	**जन्म धिक्**	जन्मको धिक्कार
इति	इस प्रकार		है ॥२१॥
वक्ष्यते	कहेंगे		

न तस्य कश्चिद् दयितः सुहृत्तमो
न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ।
तथापि भक्तान् भजते यथा तथा
सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ॥२२॥

न तस्य कश्चित् दयितः सुहृत्तमः न च अप्रियः द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा तथा अपि भक्तान् भजते यथा तथा सुरद्रुमः यद्वत् उपाश्रितः अर्थदः ॥२२॥

तस्य कश्चित्	उनका कोई
दयितः न	प्रिय नहीं है,
सुहृत्तमः	घनिष्ट सम्बन्धी
अप्रियः	अप्रिय,
द्वेष्य वा	शत्रु अथवा
उपेक्ष्य एव	उपेक्षणीय भी
च न	नहीं है
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी
यद्वत्	जैसे कि
सुरद्रुमः	कल्पवृक्ष
उपाश्रितः	अपने समीप आयेका
अर्थदः	प्रयोजन देता (पूर्ण करता) है
यथा भक्तान्	जो जैसा भक्त है
तथा	उसीके अनुसार
भजते	(भगवान उससे) मिलते हैं ॥२२॥

किञ्चाग्रजो मावनतं यदूत्तमः
स्मयन् परिष्वज्य गृहीतमञ्जलौ ।
गृहं प्रवेश्याप्तसमस्तसत्कृतं
संप्रक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु ॥२३॥

किञ्च अग्रजः मा अवनतं यदूत्तमः स्मयन् परिष्वज्य गृहीतं अञ्जली गृहं प्रवेश्य आप्त समस्त सत्कृतं संप्रक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु ॥२३॥

किञ्च	अधिक क्या
यदूत्तमः	यदु श्रेष्ठ
अग्रजः	उनके बड़े भाई बलरामजी
मा अवनतं	मुझ विनम्रका
स्मयन्	मुस्करा कर
परिष्वज्य	आलिगव करके
गृहीतं अञ्जली	दोनों हाथ पकड़कर

गृहं प्रवेश्य	घरमें ले जाकर	स्वबन्धुषु	अपने सम्बन्धियोंके
समस्त सत्कृतं	सम्पूर्ण सत्कार		साथ
आप्त	प्राप्त कर लेनेके	कंसकृतं	कंसका व्यवहार
	पश्चात्	सम्प्रक्ष्यते	पूँछेंगे ॥२३॥

श्रीशुक उवाच*

इति सञ्चिन्तयन् कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि ।
रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥२४॥

इति सञ्चिन्तयन् कृष्णं श्वफल्कतनयः अध्वनि रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यः च अस्त गिरिं नृप ॥२४॥

नृप	राजन् !	रथेन गोकुलं	रथसे गोकुल
श्वफल्कतनयः	श्वफल्क-पुत्र अक्रूर	प्राप्तः	(व्रज) पहुँचे
इति	इस प्रकार	च सूर्यः	तथा सूर्य
अध्वनि	मार्गमें	अस्त गिरिं	अस्ताचल (पहुँचे)
कृष्णं	श्रीकृष्ण-		॥२४॥
सञ्चिन्तयन्	चिन्तन करते हुए		

पदानि तस्याखिललोकपाल-
किरीटजुष्टामलपादरेणोः ।
ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि
विलक्षितान्यब्जयवाङ्कुशाद्यैः ॥२५॥

पदानि तस्य अखिल लोकपाल किरीट जुष्ट अमल पादरेणुः ददर्श गोष्ठे क्षिति कौतुकानि विलक्षित अन्य अब्जयव अङ्कुश आद्यैः ॥२५॥

---

* श्लोक ३ से श्लोक २३ तक 'अक्रूरोवाच' तो नहीं है; किन्तु 'अक्रूर-चिन्तन' होनेके कारण यहां फिरसे 'श्रीशुक उवाच' प्रायः सब प्रतियोंमें है ।

अखिल	सम्पूर्ण
लोकपाल	लोकपालोंके
किरीट जुष्ट	मुकुटोंपर लगनेवाली
तस्य पदानि	उनके चरणोंकी
अमल पादरेणुः	निर्मल चरण-रज
क्षिति	पृथ्वीकी
कौतुकानि	आभरण रूपा
अब्जयव	कमल, यव
अङ्कुश	अंकुश
आद्यैः	आदि चिह्नोंसे
अन्य	दूसरों (के चरण चिह्नोंसे)
विलक्षित	पृथक पहिचानी जानेवाली
गोष्ठे ददर्श	गोष्ठमें (अक्रूरने) देखा ॥२५॥

तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसम्भ्रमः
प्रेम्णोर्ध्वरोमाश्रुकलाकुलेक्षणः ।
रथादवस्कन्द्य स तेष्वचेष्टत
प्रभोरमून्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति ॥२६॥

तत् दर्शन आह्लाद विवृद्ध सम्भ्रमः प्रेम्णा ऊर्ध्वरोमा अश्रुकला आकुल ईक्षणः रथात् अवस्कन्द्य स तेषु अचेष्टत प्रभोः अमूनि अङ्घ्रि-रजांसि अहो इति ॥२६॥

तत् दर्शन	उसको देखनेसे
विवृद्ध	अकुलाहट
सम्भ्रमः	बढ़ जानेसे
प्रेम्णा	प्रेमके मारे
उर्ध्वरोमा	रोम खड़े हो गये,
अश्रुकला	आंसुओंसे
आकुल ईक्षणः	नेत्र व्याकुल हो गये
अहो अमूनि	अहो यह
प्रभोः	मेरे स्वामीकी
अङ्घ्रिरजांसि	चरण-रज है
इति	इस भावसे
रथात्	रथसे
अवस्कन्द्य	कूदकर
स तेषु	वे उस (धूलि) में
अचेष्टत	लोटने लगे ॥२६॥

देहंभृतामियानर्थो हित्वा दम्भं भियं शुचम् ।
संदेशाद् यो हरेर्लिङ्गदर्शनश्रवणादिभिः ॥२७॥

देहं भृतां इयान् अर्थत हित्वा दम्भंभियं शुचं सदेशात् यः हरेः लिग दर्शन श्रवण आदिभिः ॥२७॥

देहं	देह	**लिङ्गं**	चिह्न (मूर्ति आदि) के
मृतां	धारण करनेवाले (जीव मात्र) का	**दर्शन श्रवण**	दर्शन (लीला) श्रवण
इयान्	इतना ही	**आदिभिः**	आदिके द्वारा
अर्थः	परम स्वार्थ है कि	**सन्देशात् यः**	(कंसके) सन्देशसे
दम्भं भियं	दम्भ, भय,		जो (भाव अक्रूरमें
शुचं हित्वा	शोक त्यागकर		आया उसे प्राप्त
हरेः	श्रीहरिके		करें) ॥२७॥

ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ ।
पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरुहेक्षणौ ॥२८॥

ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ पीत नीलाम्बरधरौ शरत् अम्बुरुह ईक्षणौ ॥२८॥

व्रजे	व्रजमें	**अम्बुरुह**	कमलके समान
गोदोहनं	गोदोहनके लिए	**ईक्षणौ**	नेत्रोंवाले
गतौ	गये	**कृष्णं च**	श्रीकृष्ण तथा
पीत	पीताम्बर-	**रामं**	बलरामको
नीलाम्बधरौ	नीलाम्बर पहिने	**ददर्श**	(उन्होंने) देखा ॥२८॥
शरत्	शरद-कालीन		

किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ ।
सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥२९॥

किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहत् भुजौ सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरद विक्रमौ ॥२९॥

श्यामलश्वेतौ	श्याम-गौर (दोनों भाई)	**सुमुखौ**	सुन्दर मुख
किशोरौ	किशोरावस्थाके	**सुन्दरवरौ**	अत्यन्त सुन्दर
श्रीनिकेतौ	शोभाधाम,	**बालद्विरद**	बाल गजके समान
बृहद् भुजौ	प्रलम्ब बाहु	**विक्रमौ**	चल रहे थे ॥२९॥

ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजैश्चिह्नितैरङ्घ्रिभिर्व्रजम् ।
शोभयन्तौ महात्मानावनुक्रोशस्मितेक्षणौ ॥३०॥

ध्वज वज्र अङ्कुश अम्भोजैः चिह्नितैः अङ्घ्रिभिः व्रजं शोभयन्तौ महात्मानः अनुक्रोश स्मित ईक्षणौ ॥३०॥

ध्वज वज्र	ध्वजा, वज्र,	शोभयन्तौ	सुशोभित करते
अङ्कुश	अङ्कुश,	महात्मानः	पुरुषोत्तम
अम्भोजैः	कमलके	अनुक्रोश	दया पूर्ण
चिह्नितैः	चिह्नोंसे युक्त	स्मित	मुसकराहटसे
अङ्घ्रिभिः	चरणोंसे	ईक्षणौ	देख रहे थे ॥३०॥
व्रजं	व्रजभूमिको		

उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ ।
पुण्यगन्धानुलिप्ताङ्गौ स्नातौ विरजवाससौ ॥३१॥

उदार रुचिर क्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ पुण्यगन्ध अनुलिप्त अङ्गौ स्नातौ विरजवाससौ ॥३१॥

उदार	उदारतापूर्ण	पुण्य गन्ध	पवित्र गन्ध (चन्दन) से
रुचिर क्रीडौ	सुन्दर क्रीड़ा करने-वाले	अनुलिप्त अंगौ	सर्वांग लिप्त,
स्रग्विणौ	(मुक्ता) मालाधारी,	स्नातौ	स्नान करके
वनमालिनौ	वनमाला पहिने,	विरजवाससौ	निर्मल वस्त्र पहिने थे ॥३१॥

प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतू जगत्पती ।
अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन बलकेशवौ ॥३२॥

प्रधान पुरुषाः आद्यौ जगत् हेतुः जगत् पतिः अवतीर्णौ जगति अर्थे स्व अंशेन बलकेशवौ ॥३२॥

जगत् हेतुः	जगत्के कारण	**पुरुषाः**	पुरुष स्वरूप
जगत् पतिः	जगत्के स्वामी	**बल-**	बलराम तथा
जगति	संसारके	**केशवौ**	श्रीकृष्ण रूपमें
अर्थे	(कल्याण) के लिए	**स्व अंशेन**	अपने अंश सहित
आद्यौ	आदि पुरुप ही	**अवतीर्णौ**	अवतरित हुए हैं ॥३२॥
प्रधान	प्रकृति-		

दिशो वितिमिरा राजन् कुर्वाणौ प्रभया स्वया ।
यथा मारकतः शैलो रौप्यश्च कनकाचितौ ॥३३॥

दिशः वितिमिरा राजन् कुर्वाणौ प्रभया स्वया यथा मारकतः शैलः रौप्यः च कनक आचितौ ॥३३॥

राजन्	राजन	**यथा कनक**	जैसे स्वर्ण
स्वया प्रभया	अपनी कान्तिसे	**आचितौ**	जड़ित
दिशः	दिशाओंको	**मारकतः**	मरकत-मणिका
वितिमिरा	अन्धकार रहित	**च रौप्यः**	तथा चांदीके
कुर्वाणौ	कर रहे	**शैलः**	पर्वत हों ॥३३॥

रथात्तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः ।
पपात चरणोपान्ते दण्डवद् रामकृष्णयोः ॥३४॥

रथात् तूर्णं अवप्लुत्य सः अक्रूरः स्नेह विह्वलः पपात चरण उपान्ते दण्डवत् रामकृष्णयोः ॥३४॥

स्नेह विह्वलः	स्नेह-विह्वल	**राम-**	बलराम-
सः अक्रूरः	वे अक्रूरजी	**कृष्णयोः**	श्रीकृष्णके
रथात्	रथसे	**चरण उपान्ते**	चरणोंके समीप
तूर्णं	शीघ्रता पूर्वक	**दण्डवत्**	दण्डवत
अवप्लुत्य	कूदकर	**पपात्**	गिर पड़े ॥३४॥

भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः ।
पुलकाचितांग औत्कण्ठ्यात् स्वाख्याने नाशकन् नृप ॥३५॥

भगवत् दर्शन आह्लाद बाष्पपरि आकुल ईक्षणः पुलक आचित अंग औत्कण्ठ्यात् स्व आख्याने न अशकन् नृप ॥३५॥

नृप	राजन् !	**अंग**	शरीर
भगवत्	भगवान्के	**औत्कण्ठ्यात्**	गला भर आनेसे
दर्शन	दर्शनके	**स्व**	अपना नाम
आह्लाद	आनन्दसे	**आख्याने**	बतलानेमें
वाष्पपरि	अश्रु परिपूर्ण	**अशकन्**	समर्थ
आकुल ईक्षणः	चंचल नेत्र,	**न**	नहीं हुए ॥३५॥
पुलक आचित	रोमाञ्चित		

भगवांस्तमभिप्रेत्य रथांगाङ्कितपाणिना ।
परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः ॥३६॥

भगवान् तं अभिप्रेत्य रथांग अङ्कित पाणिना परिरेभे अभ्य उप आकृष्य प्रीतः प्रणत वत्सलः ॥३६॥

प्रणत	शरणागत	**अङ्कित**	चिह्नित
वत्सलः	वत्सल	**पाणिना**	हाथोंसे
भगवान् तं	भगवान्ने उनके	**उप आकृष्य**	अपने समीप खींच-कर
अभिप्रेत्य	अभिप्रायको जान-कर	**परिरेभे अभ्य**	आलिगन किया ॥३६॥
प्रीतः	प्रसन्न होकर		
रथांग	चक्रके चिह्नसे		

संकर्षणश्च प्रणतमुपगुह्य महामनाः ।
गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत् सानुजो गृहम् ॥३७॥

सङ्कर्षणः च प्रणतं उपगुह्य महामनाः गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत् सानुजः गृहम् ॥३७॥

सङ्कर्षणः	बलरामजीने	**उपगुह्य**	(उनका) आलिगन करके
च	भी		
प्रणतं	प्रणाम करते	**सानुजः**	छोटे भाईके साथ

पाणिना	हाथसे दोनों	गृहं अनयत्	घरमें ले आये
पाणी	हाथ पकड़कर		॥३७॥
महामनाः	अत्यन्त उत्साह पूर्वक		

पृष्ट्वाथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम् ।
प्रक्षाल्य विधिवत् पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ॥३८॥

पृष्ट्वा अथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वर आसनं प्रक्षाल्य विधिवत् पादौ मधुपर्कं अर्हणं आहरत् ॥३८॥

अथ	फिर	विधिवत्	विधिपूर्वक
स्वागतं पृष्ट्वा	कुशल पूछकर	पादौ प्रक्षाल्य	पैर धोकर
तस्मै च	उनको तो	अर्हणं	सत्कारके लिए
वर आसनं	श्रेष्ठ आसन	मधुपर्कं	मधुपर्क
निवेद्य	निवेदन (दे) करके,	आहरत्	प्रदान किया ॥३८॥

निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रान्तमादृतः ।
अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद् विभुः ॥३९॥

निवेद्य गां च अतिथये संवाह्य श्रान्तं आदृतः अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धया उप आहरत् विभुः ॥३९॥

अतिथये	अतिथि अक्रूरको	मेध्यं	पवित्र
गां च निवेद्य	गाय भी देकर	अन्नं	भोजन समर्थ
श्रान्तं	थके (अक्रूर) का	विभुः	श्रीकृष्णने
आदृतः	आदरपूर्वक	उप	उनके समीप
संवाह्य	पैर दबाकर	आहरत्	उपस्थित किया ॥३९॥
श्रद्धया	श्रद्धा सहित		
बहुगुणं	बहुत गुणवान		

तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित् ।
मुखवासस्रगन्धमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात् पुनः ॥४०॥

तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परम धर्मवित् मुखावासैः गन्ध माल्यैः परां प्रीतिं व्यधात् पुनः ॥४०॥

तस्मै	उनके	गन्ध	चन्दन
भुक्तवते	भोजन कर लेनेपर	माल्यैः	मालादि द्वारा
परम धर्मवित्	परम धर्मज्ञ	पुनः परां	फिर परम
रामः	बलरामजीने	प्रीतिं	प्रसन्नताका
प्रीत्या	प्रेमपूर्वक	व्यधात्	विधान किया
मुखवासैः	(ताम्बूलादि) मुख-वास		॥४०॥

पप्रच्छ सत्कृतं नन्दः कथं स्थ निरनुग्रहे ।
कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः ॥४१॥

पप्रच्छ सत्कृतं नन्दः कथं स्थ निः अनुग्रहे कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इव अवयः ॥४१॥

सत्कृतं	सत्कार हो जानेपर	अवयः इव	भेड़ोंके समान
नन्दः पप्रच्छ	नन्दजीने पूछा	दाशार्ह	अक्रूरजी !
निः अनुग्रहे	निर्दय	कथं	(आप लोग) कैसे
कंसे जीवति	कंसके जीते जी	स्थ	रहते हैं ॥४१॥
सौनपाला	कसाई द्वारा पाली हुई		

योऽवधीत् स्वस्वसुस्तोकान् क्रोशन्त्या असुतृप् खलः ।
किं नु स्वित्तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे ॥४२॥

यः अवधीत् स्वस्वसुः तोकान् क्रोशन्त्या असुतृप् खलः किं नु तत् प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे ॥४२॥

यः असुतृप्	जिस इन्द्रियाराम	नु तत् प्रजानां	भला उसकी प्रजा
खलः	दुष्टने	वः	आप लोगोंकी
क्रोशन्त्या	चिल्लाती हुई	किं कुशलं	क्या कुशल
स्वस्वसुः	अपनी बहिनके	विमृशामहे	हम सोच सकते
तोकान्	नन्हें बच्चोंको		हैं ॥४२॥
अवधीत्	मार दिया		

इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः ।
अक्रूरः परिपृष्टेन जह्हावध्वपरिश्रमम् ॥४३॥

इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः अक्रूरः परिपृष्टेन जहाः अध्वपरिश्रमं ॥४३॥

इत्थं	इस प्रकार	सुसभाजितः	भली प्रकार सम्मानित किये गये
नन्देन	नन्दजी द्वारा	अक्रूरः	अक्रूरने
सुनृतया	सत्य तथा	अध्वपरिश्रमः	मार्गकी थकावट
वाचा	मधुर वाणीसे	जहाः	त्याग दी ॥४३॥
परिपृष्टेन	पूछकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽक्रूरागमनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

अथ एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

सुखोपविष्टः पर्यङ्के रामकृष्णोरुमानितः ।
लेभे मनोरथान् सर्वान् पथि यान् स चकार ह ॥१॥

सुख उपविष्टः पर्यङ्के राम कृष्ण उरुमानितः लेभे मनोरथान् सर्वान् पथि यान् स चकार ह ॥१॥

पर्यङ्के	पलंगपर	**स पथि यान्**	उन्होंने मार्गमें जो
सुख	सुख पूर्वक	**मनोरथान्**	अभिलाषाएँ
उपविष्टः	बैठकर	**चकार सर्वान्**	की थीं उन सबको
राम	बलरामजी तथा	**ह लेभे**	पूर्णतः प्राप्त कर
कृष्ण	श्रीकृष्ण द्वारा		लिया ॥१॥
उरुमानितः	बहुत सम्मानित होकर		

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ।
तथापि तत्परा राजन्न हि वाञ्छन्ति किञ्चन ॥२॥

किं अलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने तथा अपि तत् परा राजन् न हि वाञ्छन्ति किञ्चन ॥२॥

राजन्	राजन् !	**तथा**	फिर भी
श्रीनिकेतने	श्रीनिवास	**अपि तत् परा**	उनके परायण भक्त
भगवति	भगवानके	**किञ्चन हि**	(उनसे) कुछ भी
प्रसन्ने किं	प्रसन्न होनेपर क्या	**न वाञ्छन्ति**	नहीं चाहते ॥२॥
अलभ्यं	अप्राप्त रहता है,		

सायंतनाशनं कृत्वा भगवान् देवकीसुतः ।
सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम् ॥३॥

सायंतन अशनं कृत्वा भगवान् देवकीसुतः सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छ अन्य चिकीर्षितम् ॥३॥

सायंतन	सायं कालीन	**वृत्तं**	समाचार तथा
अशनं कृत्वा	भोजन करके	**कंसस्य**	कंसकी
भगवान्	भगवान	**अन्य**	और जो
देवकी सुतः	देवकीनन्दनने	**चिकीर्षितं**	करनेकी इच्छा हो
सुहृत्सु	सम्बन्धियोंका	**पप्रच्छ**	पूछा ॥३॥

श्रीभगवानुवाच

तात सौम्यागतः कच्चित् स्वागतं भद्रमस्तु वः ।
अपि स्वज्ञातिबन्धूनामनमीवमनामयम् ॥४॥

तात सौम्य आगतः कच्चित् स्वागतं भद्रं अस्तु वः अपि स्व ज्ञाति बन्धूनां अनमीवं अनामयम् ॥४॥

तात	चाचाजी !	**वः भद्रं अस्तु**	आपका मंगल हो
सौम्य	सकुशल	**स्वज्ञाति**	हमारी
कच्चित्	ही तो आये हैं,	**बन्धूनां**	जाति-भाई
आगतः	कहीं कुछ संकट तो नहीं	**अनमीवं अपि**	सकुशल और
		अनामयं	स्वस्थ तो हैं ॥४॥
स्वागतं	(आपका) स्वागत है		

किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये ।
कंसे मातुलनाम्न्यङ्ग स्वानां नस्तत्प्रजासु च ॥५॥

किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुल आमये कंसे मातुल नाम्नि अङ्ग स्वानां नः तत् प्रजासु च ॥५॥

अङ्ग	प्रिय चाचाजी !	**नः स्वानां**	हमारे अपनों
मातुल नाम्नि	मामा नामक	**च तत्**	तथा उसकी
कुल	कुलके लिए	**प्रजासु**	प्रजाका
आमये	रोग रूपसे	**नु नः**	भला हम
कंसे	कंसके	**किं**	क्या
एधमाने	बढ़ते हुए	**कुशलं पृच्छे**	कुशल पूछें ॥५॥

अहो अस्मदभूद् भूरि पित्रोर्वृजिनमार्ययोः ।
यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बन्धनं तयोः ॥६॥

अहो अस्मत् अभूत् भूरि पित्रोः वृजिनं आर्ययोः यत् हेतोः पुत्र मरणं यत् हेतोः बन्धनं तयोः ॥६॥

अहो अस्मत्	खेद है कि हमारे	**पुत्र**	(उनके) पुत्रोंकी
आर्ययोः	पूज्य	**मरणं**	मृत्यु हुई,
पित्रोः	माता-पिताको	**यत् हेतोः**	जिस (मेरे) कारण
भूरि वृजिनं	बहुत संकट (मेरे कारण)	**तयोः**	उनको
		बन्धन	बन्धनमें पड़ना पड़ा ॥६॥
अभूत्	प्राप्त हुआ		
यत् हेतोः	जिस (मेरे) कारण		

दिष्ट्याद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य काङ्क्षितम् ।
सञ्जातं वर्ण्यतां तात तवागमनकारणम् ॥७॥

दिष्ट्या अद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य काङ्क्षितं सञ्जातं वर्ण्यतां तात तव आगमन कारणम् ॥७॥

सौम्य	शान्त स्वभाव	**माह्यं दर्शनं**	मुझे दर्शन
तात	चाचाजी	**सञ्जातं**	हुआ
काङ्क्षितं	बहुत दिनोंसे अभिलषित	**तव**	आप
		आगमन	अपने आनेका
दिष्ट्या अद्य	सौभाग्यवश आज	**कारणं वर्ण्यतां**	बतलाइये ॥७॥
वः स्वानां	आप अपनेका		

श्रीशुक उवाच

पृष्टो भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः ।
वैरानुबन्धं यदुषु वसुदेववधोद्यमम् ॥८॥

पृष्टः भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः वैर अनुबन्धं यदुषु वसुदेव वध उद्यमम् ॥८॥

एवं	इस प्रकार	**वैर अनुबन्धं**	दृढ़ शत्रुता
भगवता	भगवान्‌के द्वारा	**वसुदेव**	तथा वसुदेवजीको
पृष्टः	पूछे जानेपर	**वध**	मारनेका
माधवः	मधुवंशी अक्रूरने	**उद्यमं**	प्रयत्न
यदुषु	(कंसकी) यदुवंशियों से	**वर्णयामास**	बतलाया ॥८॥

यत्संदेशो यदर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयम् ।
यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्मानकदुन्दुभे ॥९॥

यत् संदेशः यत् अर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयं यत् उक्तं नारदेन अस्य स्वजन्म आनकदुन्दुभेः ॥९॥

यत्	(कंसका) जो	**सम्प्रेषितः**	भेजा था,
सन्देशः	सन्देशका	**यत् अस्य**	जो इस (कंस) को
वा यत्	अथवा जिस	**स्वजन्म**	अपना (श्रीकृष्णका) जन्म
अर्थं	प्रयोजनसे	**आनक दुन्दुभेः**	वसुदेवजीसे
स्वयं	अपनेको	**उक्तं**	बतलाया था ॥९॥
दूतः	दूत बनाकर		

श्रुत्वाक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा ।
प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञाऽऽदिष्टं विजज्ञतुः ॥१०॥

श्रुत्वा अक्रूरवचः कृष्णः बलः च परवीरहा प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञा आदिष्टं विजज्ञतुः ॥१०॥

अक्रूरवचः	अक्रूरकी बात	**बलः प्रहस्य**	बलरामजीने हंसकर
श्रुत्वा	सुनकर	**पितरं नन्दं**	पिता नन्दजीको
कृष्णः च	श्रीकृष्ण तथा	**राज्ञा आदिष्टं**	राजाका आदेश
परवीरहा	शत्रु-वीरोंके नाशक	**विजज्ञतुः**	बतला दिया ॥१०॥

गोपान् समादिशत् सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः ।
उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ॥११॥

गोपान् सम आदिशत् सः अपि गृह्यतां सर्वगोरसः उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ॥११॥

सः अपि	उन्होंने भी
गोपान्	गोपोंको
सम	समझाकर
आदिशत्	आदेश दिया
सर्वगोरसः	सब गोरस
गृह्यतां	(सबसे) ले लो,
उपायनानि	उपहार सामग्री
गृह्णीध्वं	साथ लो
शकटानि युज्यन्तां	छकड़े जोत लो ॥११॥

यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसान् ।
द्रक्ष्यामः सुमहत् पर्व यान्ति जानपदाः किल ।
एवमाघोषयत् क्षत्त्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ॥१२॥

यास्यामः श्वः मधुपुरीं दास्यामः नृपते रसान् द्रक्ष्यामः सुमहत् पर्व यान्ति जानपदाः किल एवं आघोषयत् क्षत्त्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ॥१२॥

श्वः	कल (हम लोग)
मधुपुरीं	मथुरा
यास्यामः	जायँगे,
नृपतेः	राजाको (भेंटमें)
रसान्	गोरस
दास्यामः	देंगे
सुमहत् पर्वं	बड़ा भारी उत्सव (वहां)
द्रक्ष्यामः	देखेंगे
किल	अरे,
जानपदाः	दूसरे स्थानोंके लोग भी
यान्ति	जा रहे हैं
एवं	इस प्रकार
क्षत्त्रा	कोतवाल द्वारा
नन्दगोपः	गोपराज नन्दने
स्वगोकुले	अपने पूरे व्रजमें
आघोषयत्	घोषणा (मुनादी) करवा दी ॥१२॥

गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ।
रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ॥१३॥

गोप्यः ताः तत् उपश्रुत्य बभूवुः व्यथिता भृशं रामकृष्णौ पुरीं नेतुं अक्रूरं व्रजं आगतम् ॥१३॥

तत् राम-कृष्णौ	वह बलराम और श्रीकृष्णको
पुरीं	मथुरा पुरी
नेतुं	ले जानेके लिए
अक्रूरं	अक्रूरको
व्रजं	व्रजमें
आगतं	आनेकी बात
उपश्रुत्य	सुनकर
ताः गोप्यः	वे गोपियां
भृशं व्यथिता	बहुत दुःखी
बभूवुः	हो गयीं ॥१३॥

काश्चित्तत्कृतहृत्तापश्वासम्लानमुखश्रियः ।
स्रंसद्दुकूलवलयकेशग्रन्थ्यश्च काश्चन ॥१४॥

काः चित् तत् कृत हृत् ताप श्वासम्लान मुखश्रियः स्रंसत् दुकूल वलय केशग्रन्थ्यः च काश्चन ॥१४॥

काः चित	किसीकी
तत्	उन (राम-कृष्ण)
कृत्	के लिए
हृत्	हृदयमें (वियोगा-शंकासे)
ताप	संताप होनेसे
मुखश्रियः	मुखकी शोभा
श्वासम्मान	निश्वाससे मलिन हो गयी
च काश्चन	तथा किसीका
वलय	कंकण और
दुकूल	दुपट्टा
स्रंसत्	गिर गया
केशग्रन्थ्यः	जूड़ा (खुल गया) ॥१४॥

अन्याश्च तदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तयः ।
नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ॥१५॥

अन्याः च तत् अनुध्यान निवृत्ता अशेष वृत्तयः न अभिजानन् इमं लोकं आत्मलोकं गता इव ॥१५॥

अन्याः च	दूसरी तो
तत्	उन (भगवान्) के
अनुध्यान	बराबर ध्यानसे
अशेष	सम्पूर्ण
वृत्तयः	वृत्तियोंके
निवृत्ता	निरुद्ध हो जानेसे
आत्मलोकं गता	समाधिस्थ होनेके
इव	समान
इमं लोकं	इस लोक (शरीर और संसार) को
न	नहीं
अभिजानन्	जानती (विस्मृत हो गयी) थी ॥१५॥

स्मरन्त्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः ।
हृदिस्पृशश्चित्रपदा गिरः संमुमुहुः स्त्रियः ॥१६॥

स्मरन्त्यः च अपराः शौरेः अनुराग स्मित ईरिताः हृदि स्पृशः चित्रपदा गिरः संमुमुहुः स्त्रियः ॥१६॥

अपराः स्त्रियः	दूसरी स्त्रियां (गोपियां)	**हृदि स्पृशः**	हृदयस्पर्शी
शौरेः	श्रीकृष्णका	**चित्रपदा**	विचित्र वाक्योंवाली
अनुराग	प्रेम,	**गिरः**	वाणीका
स्मित	मुसकान,	**स्मरन्त्यः**	स्मरण करती हुई
ईरिताः	चेष्टाएँ	**संमुमुहुः**	मूर्छिता हो गयीं ॥१६॥

गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहासावलोकनम् ।
शोकापहानि नर्माणि प्रोद्दामचरितानि च ॥१७॥

गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहास अवलोकनं शोक अपहानि नर्माणि प्रोद्दाम चरितानि च ॥१७॥

सुललितां	अत्यन्त सुन्दर	**शोक अपहानि**	शोक दूर कर देने-वाले
गतिं	चाल,	**नर्माणि**	परिहास
चेष्टां	चेष्टा	**च प्रोद्दाम**	तथा स्वच्छन्द
स्निग्धहास	प्रेम भरी मुसकान सहित	**चरितानि**	लीलाओंका ॥१७॥
अवलोकनं	देखना		

चिन्तयन्त्यो मुकुन्दस्य भीता विरहकातराः ।
समेताः सङ्घशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः ॥१८॥

चिन्तयन्त्यः मुकुन्दस्य भीता विरह कातराः समेताः संघशः प्रोचुः अश्रुमुख्यः अच्युत आशयाः ॥१८॥

अच्युत	श्रीकृष्णमें लगे	**चिन्तयन्त्यः**	(चेष्टाओंको) स्मरण करती हुई
आशयाः	चित्तवाली		
मुकुन्दस्य	मुकुन्दकी	**विरह भीता**	वियोगसे भयभीत

कातराः	व्याकुल होकर	**अश्रुमुख्यः**	मुखपर आंसू ढुलकाती
संघशः	यूथकी यूथ		
समेताः	इकट्ठी होकर	**प्रोचुः**	बोलीं ॥१८॥

गोप्य ऊचुः

अहो विधातस्तव न क्वचिद् दया
संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ।
तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं
विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥१९॥

अहो विधातः तव न क्वचित् दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः तान् च अकृतार्थान् वियुनङ्क्षि अपार्थकं विक्रीडितं ते अर्भक चेष्टितं यथा ॥१९॥

अहो विधातः	हे विधाता !	**तान च**	उनको तो
तव क्वचित्	तुझमें तनिक भी	**अपार्थकं**	व्यर्थ
दया न	दया नहीं है ? कि	**वियुनङ्क्षि**	पृथक कर देते हो,
प्रणयेन	प्रेमपूर्ण	**ते**	तुम्हारी
मैत्र्या	मित्रतासे	**विक्रीडितं**	लीला तो
देहिनः	प्राणियोंको	**यथा**	जैसे छोटे
संयोज्य	मिलाकर	**अर्भक**	बालकका
अकृतार्थान्	अभिलाषा पूरी हुए बिना ही	**चेष्टितं**	(निरुद्देश) खेल हो ॥१९॥

यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुन्तलावृतं
मुकुन्दवक्त्रं सुकपोलमुन्नसम् ।
शोकापनोदस्मितलेशसुन्दरं
करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥२०॥

यः त्वं प्रदर्श्य असितकुन्तल आवृतं मुकुन्द वक्त्रं सुकपोलं उन्नसं शोक अपनोद स्मितलेश सुन्दरं करोषि पारोक्ष्यं असाधु ते कृतम् ॥२०॥

असितकुन्तल	काली अलकोंसे
आवृतं	घिरे हुए
सुकपोलं	सुन्दर कपोल तथा
उन्नसं	उठी नासिकावाले
शोक अपनोद	शोकापहारी
स्मितलेश	हल्की मुस्कराहटसे
सुन्दरं	सुन्दर
मुकुन्द	मुकुन्दके
वक्त्रं	श्रीमुखको
यः प्रदर्श्य	जो दिखलाकर
पारोक्ष्यं	आँखोंसे ओझल
करोषि	कर रहे हो
ते कृतं	यह तुम्हारा काम
असाधु	बहुत बुरा है ॥२०॥

क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म न-
श्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत् ।
येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं
त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥२१॥

क्रूरः त्वं अक्रूर सम आख्यया स्म नः चक्षुः हि दत्तं हरसे बत अज्ञवत् येन एकदेशे अखिल सर्ग सौष्ठवं त्वदीयं अद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥२१॥

अक्रूर	अक्रूरका
सम आख्यया	नाम धारण करके
त्वं	(आये विधाता) तुम
क्रूरः स्म	क्रूर हो,
हि नः	क्योंकि हमें (अपने)
दत्तं चक्षुः	दिये नेत्र
बत	अहो,
अज्ञवत्	अज्ञानीके समान
हरसे	हरण कर रहे हो,
येन	जिससे
मधुद्विषः	मधुसूदनके
एकदेशे	एक-एक अंगमें
त्वदीयं	तुम्हारी
अखिल सर्ग	सम्पूर्ण सृष्टिका
सौष्ठवं	सौन्दर्य
वयं अद्राक्ष्म	हम देखती थीं ॥२१॥

न नन्दसूनुः क्षणभङ्गसौहृदः
समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत ।
विहाय गेहान् स्वजनान् सुतान् पतीं-
स्तद्दास्यमद्धोपगता नवप्रियः ॥२२॥

न नन्दसूनुः क्षणभङ्ग सौहृदः समीक्षते नः स्वकृत आतुरा बत विहाय गेहान् स्वजनान् सुतान् पतीन् तत् दास्यं अद्धा उपगता नवप्रियः ॥२२॥

बत गेहान्	अहो, घर	**भङ्ग सौहृदः**	सौहार्द्र नष्ट कर देनेवाले
स्वजनान्	कुटुम्बी,	**नन्दसूनुः**	(ये) नन्दनन्दन
सुतान् पतीन्	पुत्र-पतिको	**स्वकृत**	अपने लिए
विहाय	छोड़कर	**आतुरा**	व्याकुला
अद्धा	सम्पूर्ण रूपसे	**नः**	हमारी ओर
तत् दास्यं	उनकी दासी	**समीक्षते**	भली प्रकार देखते
उपगता	बन गयीं; किन्तु		भी
नवप्रियः	नई-नईसे प्रेम करने वाले	**न**	नहीं ॥२२॥
क्षण	एक क्षणमें		

सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः
सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवम् ।
याः संप्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः
पास्यन्त्यपाङ्गोत्कलितस्मितासवम् ॥२३॥

सुखं प्रभाता रजनी इयं आशिषः सत्या बभूवुः पुर योषितां ध्रुवं याः संप्रविष्टस्य मुखं व्रजः पतेः पास्यन्ति अपाङ्ग उत्कलित स्मित आसवम् ॥२३॥

ध्रुवं	निश्चय	**याः**	जो
पुर	(मथुरा) नगरकी	**व्रजः पतेः**	व्रजराजके
योषितां	नारियोंकी	**मुखं**	श्रीमुखकी
इयं रजनी	यह रात्रि	**अपाङ्ग**	तिरछी
सुखं प्रभाता	सुप्रभातवाली होगी,	**उत्कलित**	चितवनसे खिली
आशिषः	(उनकी) अभिलाषाएँ	**स्मित आसवं**	स्मित सुधाका
सत्या बभूवुः	सत्य (सफल) होंगी	**पास्यन्ति**	पान करेंगी ॥२३॥

तासां मुकुन्दो मधुमञ्जुभाषितै-
गृहीतचित्तः परवान् मनस्व्यपि ।
कथं पुनर्नः प्रतियास्यतेऽबला
ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥२४॥

तासां मुकुन्दः मधुमञ्जु भाषितैः गृहीत चित्तः परवान् मनस्वि अपि कथं पुनः नः प्रतियास्यते अबलाः ग्राम्याः सलज्जस्मित विभ्रमैः भ्रमन् ॥२४॥

तासां	उनकी	अपि	भी
मधुमञ्जु	मीठी मनोहर	गृहीत चित्तः	आकर्षित चित्त
भाषितैः	बातोंसे तथा	मुकुन्दः	मुकुन्द
सलज्जस्मित	लज्जाभरी मुस्क-	परवान्	परवश होकर
	राहट और	नः ग्राम्याः	हम ग्रामीण
विभ्रमैः भ्रमन्	हाव-भावके फेरमें	अबलाः	स्त्रियोंके पास
	पड़कर	पुनः कथं	फिर कैसे
मनस्वि	मनस्वी होनेपर	प्रतियास्यते	लौट आवेंगे ॥२४॥

अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते
दाशार्हभोजान्धकवृष्णिसात्वताम् ।
महोत्सवः श्रीरमणं गुणास्पदं
द्रक्ष्यन्ति ये चाध्वनि देवकीसुतम् ॥२५॥

अद्य ध्रुवं तत्र दृशः भविष्यते दाशार्ह भोज अन्धक वृष्णि सात्वतां महोत्सवः श्रीरमणं गुण आस्पदं द्रक्ष्यन्ति ये च अध्वनि देवकीसुतम् ॥२५॥

अद्य ध्रुवं	आज निश्चय	सात्वतां	सात्वत वंशके लोगों-
तत्र	वहां		के
दाशार्ह भोज	दाशार्ह, भोज,	च ये श्रीरमणं	तथा जो रमारमण
अन्धक वृष्णि	अन्धक, वृष्णि	गुण आस्पदं	गुणधाम

देवकीसुतं	देवकी-नन्दनको	महोत्सवं	परमानन्द मिलोका
अध्वनि	मार्गमें		अवसर
द्रक्ष्यन्ति	देखेंगे	भविष्यते	प्राप्त होगा ॥२५॥
दृशः	नेत्रोंको		

मैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भू-
दक्रूर इत्येतदतीव दारुणः ।
योऽसावनाश्वास्य सुदुःखितं जनं
प्रियात्प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥२६॥

मा एतत् विधस्य अकरुणस्य नाम भूत् अक्रूर इति एतत् अतीव दारुणः यः असाः अनाश्वास्य सुदुःखितं जनं प्रियात् प्रियं नेष्यति पारं अध्वनः ॥२६॥

एतत् विधस्य	इस प्रकारके	जनं	जनोंको
अकरुणस्य	निष्ठुरका	अनाश्वास्य	आश्वासन भी न
अक्रूर इति	अक्रूर यह		देकर
नाम मा	नाम नहीं	प्रियात्	प्रियजनोंसे
भूत्	होना चाहिए,	प्रियं	उनके प्रियतमको
एतत् अतीव	यह तो अत्यन्त	अध्वनः	(नेत्र) मार्गके
दारुणः	क्रूर है,	पारं	उसपार
यः सुदुःखितं	जो अत्यन्त दुःखी	नेष्यति	ले जायगा ॥२६॥

अनार्द्रधीरेष समास्थितो रथं
तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः ।
गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं
दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥२७॥

अनार्द्रधीः एष सम आस्थितः रथं तं अनु अमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः गोपा अनोभिः स्थविरैः उपेक्षितं दैवं च नः अद्य प्रतिकूलं ईहते ॥२७॥

अनार्द्रधीः	निष्ठुर चित्त	**त्वरयन्ति**	शीघ्रता कर रहे हैं,
एष	ये (श्यामसुन्दर भी)	**स्थविरैः**	बड़े-बूढ़ोंने भी (मना न करके)
रथं	रथपर		
सम आस्थितः	जमकर बैठ गये हैं,	**उपेक्षितं**	उपेक्षा कर दी है,
तं अनु अमी	उनके पीछे ये	**अद्य दैवं च**	आज भाग्य भी
दुर्मदाः गोपा	मतवाले गोप	**नः प्रतिकूलं**	हमारे विपरीत
अनोभिः	छकड़ोंसे (जानेके लिए)	**ईहते**	चेष्टा कर रहा है ॥२७॥

निवारयामः समुपेत्य माधवं
किं नोऽकरिष्यन् कुलवृद्धबान्धवाः ।
मुकुन्दसङ्गान्निमिषार्धदुस्त्यजाद्
दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥२८॥

निवारयामः सम उपेत्य माधवं किं नः अकरिष्यन् कुलवृद्ध बान्धवाः मुकुन्दसङ्ग अनिमिष अर्ध दुस्त्यजात् दैवेन विध्वंसित दीन चेतसाम् ॥२८॥

मुकुन्दसङ्गः	मुकुन्दका साथ	**नः**	हमारा
अर्ध अनिमिष	आधे क्षणको भी (जिनको)	**कुलवृद्ध**	कुलके बड़े-बूढ़े
		वान्धवाः	सम्बन्धी
दुस्त्यजात्	दुस्त्याज्य था,	**किं अकरिष्यन्**	क्या कर लेंगे ?
दैवेन	दैवके द्वारा	**सम उपेत्य**	सब समीप जाकर
विध्वंसित	(वह सौभाग्य) नष्ट करनेसे	**माधवं**	श्रीकृष्णको (हमी)
		निवारयामः	रोकें ॥२८॥
दीन चेतसां	दीन चित्त हुई		

यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्र-
लीलावलोकपरिरम्भणरासगोष्ठ्याम् ।
नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदाविना तं
गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरन्तम् ॥२९॥

यस्य अनुराग ललित स्मित वल्गु मन्त्र लीला अवलोक परिरम्भण रासगोष्ठ्यां नीताः स्म नः क्षणं इव क्षणदा विना तं गोप्यः कथं नु अतितरेम तमः दुरन्तम् ॥२९॥

रासगोष्ठ्यां	रास गोष्ठीमें	**नः तं क्षणदा**	हम वे रात्रियां
यस्य अनुराग	जिनके प्रेम भरे	**क्षणं इव**	क्षणकी भांति
ललित	सुन्दर	**नीताः स्म**	बितायी हैं
स्मित	मुस्कान युक्त	**गोप्यः**	गोपियो !
वल्गु	मनोहर	**विना**	(उनके) बिना हम
मन्त्र	वचन तथा	**नु दुरन्तं**	भला दुष्पार
लीला	कटाक्ष पूर्वक	**तमः**	वियोगान्धकार
अवलोक	देखते हुए	**कथं**	कैसे
परिरम्भण	आलिंगनसे	**अतितरेम**	पार करेंगी ॥२९॥

योऽह्नः क्षये व्रजमनन्तसखः परीतो
गोपैर्विशन् खुररजश्छुरितालकस्रक् ।
वेणुं क्वणन् स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन
चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ॥३०॥

यः अह्नः क्षये व्रजं अनन्त सखः परीतः गोपैः विशन् खुररजः छुरित अलक स्रक् वेणुं क्वणन् स्मित कटाक्ष निरीक्षणेन चित्तं क्षिणोति अमुं ऋते नु कथं भवेम ॥३०॥

यः अह्नः	जो दिनके	**छुरित अलक**	सनी अलकों तथा
क्षये	अन्तमें	**स्रक्**	वनामाला (से
अनन्त	बलरामजी तथा		शोभित)
सखः गोपैः	अपने गोप सखाओंसे	**वेणुं क्वणन्**	बंशी बजाते हुए
परीतः	घिरे हुए	**स्मित**	मुस्कराहट युक्त
व्रजं	व्रजमें	**कटाक्ष**	कटाक्षसे
विशन्	प्रवेश करते समय	**निरीक्षणेन**	देखने द्वारा
खुररजः	(गायोंके) खुरोंसे	**चित्तं**	(हमारा) चित्त
	उड़ी धूलिसे	**क्षिणोति**	छीन लेते थे,

अमुं ऋते नु इनके बिना भला | **कथं भवेम** (हम) कैसे जीयेंगी ॥३०॥

श्रीशुक उवाच

एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं
व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः ।
विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं
गोविन्द दामोदर माधवेति ॥३१॥

एवं ब्रुवाणा विरह आतुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्ण विषक्त मानसाः विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधव इति ॥३१॥

एवं ब्रुवाणा	ऐसा कहती हुई	**गोविन्द**	गोविन्द !
भृशं	अत्यन्त	**दामोदर**	दामोदर !
विरह आतुरा	विरह-व्याकुला	**माधव**	ताधव !
कृष्ण	श्रीकृष्ण द्वारा	**इति**	इस प्रकार (नाम लेकर)
विषक्त मानसाः	व्याकुल चित्ता		
व्रजस्त्रियः	व्रजकी स्त्रियां (गोपियां)	**सुस्वरं**	उच्च स्वरसे
		रुरुदुः स्म	रोने लगीं ॥३१॥
लज्जां विसृज्य	लज्जा त्यागकर		

स्त्रीणामेवं रुदन्तीनामुदिते सवितर्यथ ।
अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम् ॥३२॥

स्त्रीणां एवं रुदन्तीनां उदिते सवितः अथ अक्रूरः चोदयामास कृत मैत्र आदिकः रथम् ॥३२॥

स्त्रीणां	स्त्रियोंके	**मैत्र आदिकः**	सन्ध्यादि
एवं	इस प्रकार	**कृत अथ**	करनेके पश्चात्
रुदन्तीनां	रोते समय ही	**अक्रूरः रथं**	अक्रूरने रथको
सवितः	सूर्योदय	**चोदयामास**	हांक दिया ॥३२॥
उदिते	हो जानेपर		

गोपास्तमन्वसज्जन्त नन्दाद्याः शकटैस्ततः ।
आदायोपायनं भूरि कुम्भान् गोरससम्भृतान् ॥३३॥

गोपाः तं अनु सज्जन्त नन्द आद्याः शकटैः ततः आदाय उपायनं भूरि कुम्भान् गोरस सम्भृतान् ॥३३॥

ततः तं अनु	फिर उनके पीछे	**कुम्भान्**	घड़ोंका
नन्द आद्याः	नन्द आदि	**भूरि उपायनं**	बहुत-सा उपहार
गोपाः	गोपोंने	**आदाय**	लेकर
गोरस	गोरससे	**शकटैः**	छकड़ोंको
सम्भृतान्	भरे हुए	**सज्जन्त**	सजाया ॥३३॥

गोप्यश्च दयितं कृष्णमनुव्रज्यानुरञ्जिताः ।
प्रत्यादेशं भगवतः काङ्क्षन्त्यश्चावतस्थिरे ॥३४॥

गोप्यः च दयितं कृष्णं अनुव्रज्य अनुरञ्जिताः प्रत्यादेशं भगवतः काङ्क्षन्त्यः च अवतस्थिरे ॥३४॥

अनुरञ्जिताः	अनुरागके रंगसे रंगी	**भगवतः**	भगवान्का
गोप्यः च	गोपियां भी	**प्रत्यादेशं**	सन्देश
दयितं	अपने प्रियतम	**काङ्क्षन्त्यः च**	चाहती हुई ही
कृष्णं	श्रीकृष्णके	**अवतस्थिरे**	खड़ी रह गयीं ॥३४॥
अनुव्रज्य	पीछे जाकर		

तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः ।
सान्त्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥३५॥

ताः तथा तप्यतीः वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः सान्त्वयामास सप्रेमैः आयास्य इति दौत्यकैः ॥३५॥

स्वप्रस्थाने	अपने जाते समय	**यदूत्तमः**	यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णने
ताः तथा	उनको इस प्रकार	**दौत्यकैः**	दूतके द्वारा (सन्देश देकर)
तप्यतीः	सन्तप्त होती		
वीक्ष्य	देखकर	**सप्रेमैः**	प्रेम पूर्वक

आयास्य	'आऊँगा'	**सान्त्वयामास**	आश्वासन दिलाया
इति	ऐसा (कहलाकर)		॥३५॥

यावदालक्ष्यते केतुर्यावद् रेणू रथस्य च ।
अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः ॥३६॥

यावत् आलक्ष्यते केतुः यावत् रेणू रथस्य च अनुप्रस्थापित आत्मानः लेख्यानि इव उपलक्षिताः ॥३६॥

आत्मानः	अपने चित्तको	**आलक्ष्यते**	दीखती रही (तब तक)
अनुप्रस्थापितः	उनके पीछे भेजकर	**लेख्यानि**	चित्रोंके समान
यावत् रथस्य	जब तक रथकी	**इव**	(निश्चल)
केतुः	ध्वजा या	**उपलक्षिताः**	(वे) दीखती थीं ॥३६॥
यावत्	जब तक (उससे उड़ती)		
रेणूः	धूलि		

ता निराशा निववृतुर्गोविन्दविनिवर्तने ।
विशोका अहनी निन्युर्गायन्त्यः प्रियचेष्टितम् ॥३७॥

ता निराशा निववृतुः गोविन्द विनिवर्तने विशोका अहनी निन्युः गायन्त्यः प्रियचेष्टितम् ॥३७॥

गोविन्द	गोविन्दके	**गायन्त्यः**	गाती हुई
विनिवर्तने	लौटनेके सम्बन्धमें	**अहनी**	दिन-रात
ता निराशा	वे निराश होकर	**विशोका**	शोक कम करती
निववृतुः	लौट आयीं और	**निन्युः**	बिताने लगीं ॥३७॥
प्रियचेष्टितं	अपने (उन) प्रियतम-की लीलाएँ		

भगवानपि सम्प्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप ।
रथेन वायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम् ॥३८॥

भगवान् अपि सम्प्राप्तः राम अक्रूर युतः नृप रथेन वायुवेगेन कालिन्दीं अघनाशिनीम् ॥३८॥

नृप	राजन् !	**भगवान् अपि**	भगवान भी
वायुवेगेन	(उस) वायुवेगवाले	**अघनाशिनीं**	पाप-नाशिनी
रथेन	रथसे	**कालिन्दीं**	यमुनाके
राम	बलरामजी तथा	**सम्प्राप्तः**	पास पहुँचे ॥३८॥
अक्रूर युतः	अक्रूरके साथ		

तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम् ।
वृक्षषण्डमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ॥३९॥

तत्र उपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभं वृक्षषण्डं उपव्रज्य सरामः रथं आविशत्ः ॥३९॥

तत्र मृष्टं	वहां स्वच्छ	**पीत्वा**	पीकर
मणिप्रभं	मणिके समान कान्तिमान्	**वृक्षषण्डं**	वृक्षके नीचे
		उपव्रज्य	पहुँचकर
पानीयं	जलसे	**सरामः**	बलरामजीके साथ
उपस्पृश्य	आचमन करके	**रथं आविशत्ः**	रथमें बैठ गये ॥३९॥

अक्रूरस्तावुपामन्त्र्य निवेश्य च रथोपरि ।
कालिन्द्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥४०॥

अक्रूरः ताः उपामन्त्र्य निवेश्य च रथ उपरि कालिन्द्या ह्रदं आगत्य स्नानं विधिवत् आचरत् ॥४०॥

ताः	उन दोनों भाइयोंसे	**अक्रूरः**	अक्रूरने
उपामन्त्र्य	अनुमति लेकर	**कालिन्द्यां ह्रदं**	यमुनाके ह्रदमें
च	तथा (उन्हें)	**आगत्य**	आकर
रथ उपरि	रथके ऊपर	**बिधिवत् स्नानं**	विधिवत् स्नान
निवेश्य	चढ़ाकर	**आचरत्**	किया ॥४०॥

निमज्ज्य तस्मिन् सलिले जपन् ब्रह्म सनातनम् ।
तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥४१॥

निमज्य तस्मिन् सलिले जपन् ब्रह्म सनातनं ताः एव ददृशे अक्रूरः रामकृष्णौ समन्वितौ ॥४१॥

तस्मिन् सलिले	उस जलमें	अक्रूरः	अक्रूरने
निमज्य	डुबकी लगाकर	ताः एव	उन्हीं
सनातनं	सनातन	रामकृष्णौ	बलराम-श्रीकृष्णको
ब्रह्म	ब्रह्म (गायत्री) का	समन्वितौ	एक साथ पहुँचा
जपन्	जप करते हुए	ददृशे	देखा ॥४१॥

तौ रथस्थौ कथमिह सुतावानकदुन्दुभेः ।
तर्हि स्वित् स्यन्दने न स्त इत्युन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ॥४२॥

तौ रथस्थौ कथं इह सुताः आनकदुन्दुभेः तर्हि स्वित् स्यन्दने न स्त इति उन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ॥४२॥

तौ	वे	तर्हि स्वित्	फिर तो
आनकदुन्दुभेः	वसुदेवजीके	स्यन्दने न स्त	रथपर नहीं होंगे
रथस्थौ	रथपर बैठे	इति	ऐसा सोचकर
सुताः	दोनों पुत्र	उन्मज्ज्य	ऊपर निकलकर
इह कथं	यहां कैसे आये ?	सः व्यचष्ट	उन्होंने देखा ॥४२॥

तत्रापि च यथापूर्वमासीनौ पुनरेव सः ।
न्यमज्जद् दर्शनं यन्मे मृषा किं सलिले तयोः ॥४३॥

तत्र अपि च यथा पूर्वं आसीनौ पुनः एव सः न्यमज्जत् दर्शनं यत् मे मृषा किं सलिले तयोः ॥४३॥

तत्र अपि च	वहां भी	यत् मे	जो मुझे
यथा पूर्वं	पहिले समान ही	तयोः	उन दोनोंका
आसीनौ	(वे दोनों भाई) बैठे थे,	सलिले	जलमें
		दर्शनं	दर्शन हुआ था
सः पुनः	उन (अक्रूर) ने	किं मृषा	क्या (वह) झूठा
एव	फिरसे		है ॥४३॥
न्यमज्जत्	(यह सोचकर) डुबकी लगाई कि		

भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत् स्तूयमानमहीश्वरम् ।
सिद्धचारणगन्धर्वैरसुरैर्नतकन्धरैः ॥४४॥

भूयः तत्र अपि सः अद्राक्षीत् स्तूयमानं अहीश्वरं सिद्ध चारण गन्धर्वैः असुरैः नतकन्धरैः ॥४४॥

सः भूयः अपि	उन्होंने फिरसे भी	असुरैः	असुरों द्वारा
तत्र	वहां	स्तूयमानं	स्तुत होते
सिद्ध चारण	सिद्ध, चारण	अहीश्वरं	शेष भगवान्को
गन्धर्वैः	गन्धर्वों तथा	अद्राक्षीत्	देखा ॥४४॥
नतकन्धरैः	सिर झुकाये		

सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम् ।
नीलाम्बरं बिसश्वेतं शृङ्गैः श्वेतमिव स्थितम् ॥४५॥

सहस्र शिरसं देव सहस्रफण मौलिनं नीलाम्बरं बिसश्वेतं शृंगैः श्वेतं इव स्थितम् ॥४५॥

सहस्र	उन सहस्र	बिसश्वेतं	कमल तन्तुके समान
शिरसं	सिरवाले		श्वेत
देवं	देवके	श्वेतं शृङ्गैः	श्वेत पर्वतके
सहस्रफण	सहस्र-फणोंपर	इव स्थितं	समान स्थित हैं
मौलिनं	मुकुट हैं,		॥४५॥
नीलाम्बरं	वे नील-वस्त्र पहिने		

तस्योत्सङ्गे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥४६॥

तस्य उत्सङ्गे घनश्यामं पीत कौशेय वाससं पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्र अरुण ईक्षणम् ॥४६॥

तस्य उत्सङ्गे	उनकी गोदमें	**पद्मपत्र**	कमल-दलके समान
घनश्यामं	मेघश्याम	**अरुण ईक्षणं**	लाल नेत्रोंवाले
पीत कौशेय	पीले रेशमी		
वाससं	वस्त्र पहिने	**पुरुषं**	परम पुरुषको
चतुर्भुजं शान्तं	चतुर्भुज, शान्त		(देखा) ॥४६॥

चारुप्रसन्नवदनं चारुहासनिरीक्षणम् ।
सुभ्रून्नसं चारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम् ॥४७॥

चारु प्रसन्नवदनं चारुहास निरीक्षणं सुभ्रू उन्नसं चारुकर्णं सुकपोल अरुण अधरम् ॥४७॥

चारु	(उनका) सुन्दर	**सुभ्रू उन्नसं**	सुन्दर भौंहें, उठी
प्रसन्नवदनं	प्रसन्न मुख है,		नासिका
चारुहास	सुन्दर हास्य सहित	**चारुकर्णं**	सुन्दर कान,
निरीक्षणं	देखते हैं,	**सुकपोल**	सुन्दर कपोल और
		अरुण अधरं	लाल ओष्ठ हैं ॥४७॥

प्रलम्बपीवरभुजं तुङ्गांसोरःस्थलश्रियम् ।
कम्बुकण्ठं निम्नाभि वलिमत्पल्लवोदरम् ॥४८॥

प्रलम्ब पीवर भुजं तुङ्ग अंस उरः स्थल श्रियं कम्बु कण्ठं निम्न नाभि वलिमत् पल्लव उदरम् ॥४८॥

प्रलम्ब पीवर	लम्बी मोटी	**निम्न नाभि**	गहरी नाभि तथा
भुजं	भुजाओंवाले,	**वलिमत्**	त्रिवली युक्त
तुङ्ग अंस	ऊँचा कन्धा	**पल्लव उदरं**	पल्लवके समान
उरः स्थल	वक्ष स्थलपर		(पतला) पेट है
श्रियं	लक्ष्मीका स्थान है,		॥४८॥
कम्बु कण्ठं	शंखके समान गला		

बृहत्कटितटश्रोणिकरभोरुद्वयान्वितम् ।
चारुजानुयुगं चारुजङ्घायुगलसंयुतम् ॥४९॥

बृहत् कटितटश्रोणि करभ उरुद्वय अन्वितं चारु जानुयुगं चारु जङ्घा युगल संयुतम् ॥४६॥

कटितटश्रोणि	कमरके नीचेके नितम्ब	**चारु जानुयुगं**	दोनों घुटने सुन्दर हैं,
बृहत्	विशाल है,	**चारु**	सुन्दर
करभ उरुद्वय	हाथीकी सूंके समान दोनों जांघों	**जङ्घा युगल**	दोनों पण्डलियों
अन्वितं	से युक्त हैं,	**संयुतं**	वाले हैं ॥४६॥

तुङ्गगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतम् ।
नवाङ्गुल्यङ्गुष्ठदलैर्विलसत्पादपङ्कजम् ॥५०॥

तुङ्ग गुल्फ अरुण नखव्रात दीधितिभिः वृतं नव अङ्गुलि अङ्गुष्ठ दलैः विलसत् पाद पङ्कजम् ॥५०॥

तुङ्ग गुल्फ	टखने उभड़े हैं,	**अङ्गुलि**	अंगुलियों तथा
अरुण	लाल	**अङ्गुष्ठ**	अंगूठे
नखव्रात	नख-मण्डल	**दलैः**	रूपी दलोंसे
दीधितिभिः	ज्योति किरणोंसे	**पाद पङ्कजं**	चरण-कमल
वृतं	घिरा है,	**विलसत्**	सुशोभित हैं ॥५०॥
नव	नवीन		

सुमहार्हमणिव्रातकिरीटकटकाङ्गदैः ।
कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुण्डलैः ॥५१॥

सुमहार्हं मणिव्रात किरीट कटक अङ्गदैः कटिसूत्र ब्रह्मसूत्र हार नूपुर कुण्डलैः ॥५१॥

सुमहार्हं	अत्यन्त बहुमूल्य	**ब्रह्मसूत्र**	यज्ञोपवीत,
मणिव्रात	मणि समूहसे जटित	**हार नूपुर**	हार, नूपुर,
किरीट कटक	मुकुट, कंकण,	**कुण्डलैः**	कुण्डलोंसे (सुशोभित
अङ्गदैः	अंगदसे (आभूषित)		हैं) ॥५१॥
कटिसूत्र	करधनी,		

भ्राजमानं पद्मकरं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥५२॥

भ्राजमानं पद्म करं शंख चक्र गदाधरं श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत् कौस्तुभं वनमालिनम् ॥५२॥

करं पद्म	हाथोंमें पद्म	**श्रीवत्स**	श्रीवत्स-चिह्न
शंख चक्र	शंख, चक्र	**भ्राजत्**	सुशोभित है,
गदाधरं	गदा लिए	**कौस्तुभं**	कौस्तुभ-मणि एवं
भ्राजमानं	देदीप्यमान हैं,	**वनमालिनं**	वन-मालाधारी हैं ॥५२॥
वक्षसं	वक्षस्थलपर		

सुनन्दनन्दप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः ।
सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः ॥५३॥

सुनन्द नन्द प्रमुखैः पार्षदैः सनक आदिभिः सुर ईशैः ब्रह्म रुद्र आद्यैः नवभिः च द्विज उत्तमैः ॥५३॥

सुनन्द नन्द	सुनन्द, नन्द	**आद्यैः**	आदिसे,
प्रमुखैः	प्रमुख	**च द्विज**	तथा ब्राह्मण
पार्षदैः	पार्षदोंसे,	**उत्तमैः**	श्रेष्ठ (प्रजापति)
सनक	सनक	**नवभिः**	नौ (मरीचि, अत्रि,
आदिभिः	आदि (कुमारों) से,		अंगिरा, पुलस्त्य,
सुर ईशैः	देवताओंके स्वामी	**पुलह 'क्रतु'**	भृगु, वशिष्ठ, दक्ष)
ब्रह्म रुद्र	ब्रह्मा, रुद्र		से ॥५३॥

प्रह्लादनारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः ।
स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ॥५४॥

प्रह्लाद नारद वसु प्रमुखैः भागवत उत्तमैः स्तूयमानं पृथक् भावैः वचः भिः अमल आत्मभिः ॥५४॥

प्रह्लाद नारद	प्रह्लाद, नारद,	**प्रमुखैः**	मुख्य-मुख्य
वसु	आठो वसु,	**भागवत उत्तमैः**	श्रेष्ठ भगवद्-भक्त

अमल	निर्मल	वचः भिः	वेद-वाणीसे
आत्मभिः	चित्तों द्वारा	स्तूयमानं	स्तुत हो रहे हैं
पृथक्	अलग-अलग अपने		॥५४॥
भावैः	भावोंके अनुसार		

श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया ।
विद्ययाविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥५५॥

श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्या इलया जया विद्यया अविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥५५॥

श्रिया पुष्ट्या	लक्ष्मी, पुष्टि,	अविद्यया	अविद्या,
गिरा कान्त्या	सरस्वती, कान्ति	शक्त्या च	शक्ति तथा
कीर्त्या तुष्ट्या	कीर्ति, तुष्टि,	मायया	माया द्वारा
इलया जया	पृथ्वी, जया,	निषेवितं	सेवित हो रहे ॥५५॥
विद्यया	विद्या,		

विलोक्यसुभृशं प्रीतो भक्त्या परमया युतः ।
हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥५६॥

विलोक्य सुभृशं प्रीतः भक्त्या परमया युतः हृष्यत् तनूरुहः भाव परिक्लिन्न आत्म लोचनः ॥५६॥

विलोक्य	(इस रूपका) दर्शन करके	हृष्यत् तनूरुहः	रोम हर्षसे खड़े हो गये
सुभृशं प्रीतः	अत्यधिक प्रसन्नता हुई	भाव	भावनासे
		परिक्लिन्न	आर्द्र
परमया भक्त्या	परमा भक्तिसे	आत्म	चित्त और
युतः	सम्पन्न होनेके कारण	लोचनः	नेत्र हो गये ॥५६॥

गिरा गद्गदयास्तौषीत् सत्त्वमालम्ब्य सात्वतः ।
प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥५७ ।

गिरा गद्गदया अस्तौषीत् सत्त्वं आलम्ब्य सात्वतः प्रणम्य मूर्ध्ना अवहितः कृत अञ्जलि पुटः शनैः ॥५७॥

सात्वतः	सात्वत वंशीय अक्रूर	**अञ्जलिपुटः**	हाथ जोड़
शनैः	धीरे-धीरे	**कृत**	कर
सत्त्वं	धैर्य	**अवहितः**	एकाग्र होकर
आलम्ब्य	धारण करके	**गद्गदया गिरा**	गद्गद् वाणीसे
मूर्ध्ना	सिर झुकाकर	**अस्तौषीत्**	स्तुति करने लगे
प्रणम्य	प्रणाम करके		॥५७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽक्रूरप्रतियाने एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

अक्रूर उवाच

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं
नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ।
यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद्
ब्रह्माऽऽविरासीद् यत एष लोकः ॥ १ ॥

नतः अस्मि अहं त्वां अखिलहेतु हेतुं नारायणं पूरुषं आद्यं अव्ययं यत् नाभि जातात् अरविन्द कोशात् ब्रह्मा आविः आसीत् यत एष लोकः ॥१॥

अखिल हेतु	सर्वकारण	यत् नाभि	जिनकी नाभिसे
हेतुं	कारण	जातात्	उत्पन्न
नारायणं	नारायण	अरविन्व	पद्म
आद्यं पूरुषं	आदिपुरुष	कोशात्	कोशसे
अव्ययं त्वां	अविनाशी आपको	ब्रह्मा आविः	ब्रह्मा प्रकट
अहं नतः अस्मि	मैं नमस्कार करता हूँ,	आसीत्	हुए
		यत एष लोकः	जिनसे ये सब लोक (उत्पन्न) हुए ॥१॥

भूस्तोयमग्निः पवनः खमादि
र्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि ।
सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे
ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः ॥ २ ॥

भूः तोयं अग्निः पवनः खं आदिः महान् अज आविः मन इन्द्रियाणि सर्व इन्द्रिय अर्था विबुधाः च सर्वे ये हेतवः ते जगतः अङ्ग भूताः ॥२॥

भूः तोयं पृथ्वी, जल,
अग्निः पवनं अग्नि, वायु,
खं आदिः आकाश, अहंकार,
महान् अज महत्तत्त्व, प्रकृति,
आदिः मन पुरुष, मन,
इन्द्रियाणि इन्द्रियां,
सर्वे इन्द्रिय इन्द्रियोंके सब
अर्था (शब्दादि) विषय,
च सर्वे विबुधाः तथा सब देवता,
ये जगतः हेतवः जो जगत्के कारण हैं
ते अङ्ग भूताः वे सब आपके अंग रूप हैं ॥२॥

नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते
ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः ।
अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया
गुणात् परं वेद न ते स्वरूपम् ॥३॥

न एते स्वरूपं विदुः आत्मनः ते हि अज आदयः अनात्मतया गृहीताः अजः अनुबद्ध स गुणैः अजाया गुणात् परं वेद न ते स्वरूपम् ॥३॥

हि अजा आदयः क्योंकि प्रकृति आदि
अनात्मतया अनात्मा (इदं) रूपसे
गृहीताः ग्रहण किए जाते हैं
एते ते आत्मनः ये सब आप परमात्माके
स्वरूपं न विदुः स्वरूपको नहीं जानते
स अजः वे ब्रह्माजी (आपका स्वरूप होनेपर भी)
गुणैः अनुबद्धः गुणोंसे युक्त होनेसे
अजाया गुणात् मायाके गुणोंसे
परं ते स्वरूपं अतीत आपका स्वरूप
न वेद नहीं जानते ॥३॥

त्वां योगिनो यजन्त्यद्धा महापुरुषमीश्वरम् ।
साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधवः ॥ ४ ॥

त्वां योगिनः यजन्ति अद्धा महापुरुषं ईश्वरं स अध्यात्मं स अधिभूतं च स अधिदैवं च साधवः ॥४॥

साधवः योगिनः उत्तम योगी
स अध्यात्मं (अपने अन्तःकरण-में) अन्तर्यामी रूपमें
स अधिभूतं च सम्पूर्ण जगत् रूपमें भी
च स अधिदैवं तथा (सूर्यादि) अधिदेवताओंके रूपमें भी

त्वां महापुरुषं	आप परमपुरुष तथा	**अद्धा यजन्ति**	साक्षात् उपासना करते हैं ॥४॥
ईश्वरं	जगन्नियन्ताकी		

त्रय्या च विद्यया केचित् त्वां वै वैतानिका द्विजाः ।
यजन्ते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ॥ ५ ॥

त्रय्या च विद्यया केचित् त्वां वै वैतानिका द्विजाः यजन्ते विततैः यज्ञैः नाना रूप अमर आख्यया ॥५॥

केचित्	कोई-कोई	**नाना रूप**	अनेक रूपोंमें
वैतानिका	कर्मकाण्डी	**अमर आख्यया**	देवताओंके नामसे
द्विजाः	ब्राह्मण	**वै त्वां यजन्ते**	निश्चय आपकी ही उपासना करते हैं ॥५॥
त्रय्या विद्यया	त्रयी (वेद) विद्याके द्वारा भी		
विततैः यज्ञैः	बड़े विस्तारवाले यज्ञोंसे		

एके त्वाखिलकर्माणि संन्यस्योपशमं गताः ।
ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजन्ति ज्ञानविग्रहम् ॥ ६ ॥

एके तु अखिल कर्माणि सन्यस्य उपशमं गताः ज्ञानिनः ज्ञान यज्ञेन यजन्ति ज्ञान विग्रहम् ॥६॥

एके ज्ञानिनः तु	कोई ज्ञानी तो	**ज्ञान विग्रहं**	ज्ञान स्वरूप (आपकी वे)
अखिल कर्माणि	सम्पूर्ण कर्मोंका	**ज्ञान यज्ञेन**	ज्ञानयज्ञसे
सन्यस्य	त्याग करके	**यजन्ति**	उपासना करते हैं ॥६॥
उपशमं गताः	शान्त भाव धारण कर लेते हैं,		

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाभिहितेन ते ।
यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् ॥ ७ ॥

अन्ये च संस्कृत आत्मानः विधिना अभिहितेन ते यजन्ति त्वन्मयाः त्वां वै बहुमूर्ति एक मूर्तिकम् ॥७॥

अन्ये	दूसरे
अभिहितेन	(पाञ्चरात्रमें) निर्दिष्ट
विधिना	विधिसे
आत्मानः	अपना (न्यासादि)
संस्कृत	संस्कार करके
त्वन्मयाः	आपका स्वरूप होकर
ते बहुमूर्ति	वे बहुत रूपवाले
च एक मूर्तिकं	होनेपर भी एक ही स्वरूपवाले
वै त्वां यजन्ति	निश्चय आपकी ही उपासना करते हैं ॥७॥

त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम् ।
बह्वाचार्यविभेदेन भगवन् समुपासते ॥ ८ ॥

त्वां एव अन्ये शिव उक्तेन मार्गेण शिवरूपिणं बहु आचार्य विभेदेन भगवन् समुपासते ॥८॥

भगवन्	भगवन्
शिव उक्तेन	शंकरजी द्वारा उपदिष्ट (तन्त्रोंके)
बहु आचार्य	बहुतसे आचार्योंके
विभेदेन मार्गेण	भेदसे (अनेक) मार्गोंसे
शिवरूपिणं	शिव स्वरूप
त्वां एव	आपकी ही
समुपासते	सविधि उपासना करते हैं ॥८॥

सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् ।
येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो ॥ ९ ॥

सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमय ईश्वरं ये अपि अन्य देवता भक्ता यद्यपि अन्य धियः प्रभो ॥९॥

प्रभो	प्रभो !
ये अन्य देवता	जो दूसरे देवताओंके
भक्ता अपि	भक्त भी हैं
यद्यपि	यद्यपि (वे)
अन्य धियः	दूसरेमें चित्त लगाये हैं; किन्तु
सर्व एव	वे सभी
सर्व देवमय	सर्व देवमय
ईश्वरं त्वां	सर्वेश्वर आपकी
यजन्ति	उपासना करते हैं ॥९॥

यथाद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो ।
विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः ॥१०॥

यथा अद्रि प्रभवा नद्यः पर्जन्य आपूरिताः प्रभो विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत् त्वां गतयः अन्ततः ॥१०॥

प्रभो	प्रभो !	**सिन्धुं विशन्ति**	समुद्रमें प्रवेश करती हैं
यथा अद्रि	जैसे पर्वतसे	**तद्वत् गतयः**	उसी प्रकार सब उपासना मार्ग
प्रभवा	निकली	**अन्ततः त्वां**	अन्तमें आपमें पहुँचते हैं ॥१०॥
पर्जन्य आपूरिताः	वर्षासे भरी गई		
नद्यः सर्वतः	नदियां सब ओरसे आकर		

सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः ।
तेषु हि प्राकृताः प्रोता आब्रह्मस्थावरादयः ॥११॥

सत्त्वं रजः तम इति भवतः प्रकृतेः गुणाः तेषु हि प्राकृताः प्रोताः आब्रह्म स्थावर आदयः ॥११॥

सत्त्वं रजः	सत्त्व, रज,	**स्थावर आदयः**	(वृक्षादि) अचरों तक सब
तम इति	तम ये	**तेषु प्राकृताः**	उन गुणोंसे होनेके कारण प्राकृत
भवतः प्रकृतेः	आपकी प्रकृतिके		
गुणाः	गुण हैं	**प्रोताः**	कहे गये हैं ॥११॥
हि आब्रह्म	क्योंकि ब्रह्मासे लेकर		

तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्तदृष्टये
सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे ।
गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः
प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥१२॥

तुभ्यं नमः ते अस्तु अविषक्त दृष्टये सर्व आत्मने सर्वधियां च साक्षिणे गुणप्रवाहः अयं अविद्यया कृतः प्रवर्तते देव नृतिर्यक् आत्मसु ॥१२॥

सर्व आत्मने	(परन्तु आप) सर्वात्मा
अविषक्त दृष्टये	अनासक्त दृष्टि
च सर्वधियां	तथा सबकी बुद्धियों- के
साक्षिणे	साक्षी हो,
अयं अविद्यया	यह अविद्या से
कृतः	उत्पन्न
नृतिर्यक्	मनुष्य, पशु-पक्षी
आत्मसु	स्वरूप
गुणप्रवाहः	गुणोंका प्रवाह रूप जगत्
तुभ्यं प्रवर्तते	आपसे ही प्रवृत्त (उत्पन्न) हुआ है
ते नमः अस्तु	आपको नमस्कार हो ॥१२॥

अग्निर्मुखं तेऽवनिरङ्घ्रिरीक्षणं
सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः ।
द्यौः कं सुरेन्द्रास्तव बाहवोऽर्णवाः
कुक्षिर्मरुत् प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥१३॥

अग्निः मुखं ते अवनिः अंघ्रिः ईक्षणं सूर्यः नभः नाभिः अथः दिशः श्रुतिः द्यौः कं सुरेन्द्राः तव बाहवः अर्णवाः कुक्षिः मरुत् प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥१३॥

अग्निः ते मुखं	अग्नि आपके मुख हैं,
अवनिः अंघ्रिः	पृथ्वी पैर,
सूर्यः ईक्षणं	सूर्य नेत्र,
नभः नाभिः	आकाश नाभि,
अथः दिशः	तथा दिशामें
श्रुतिः	कान,
द्यौः कं	स्वर्ग मस्तक,
सुरेन्द्राः	इन्द्रादि देवता
तव बाहवः	आपकी भुजाएं,
अर्णवाः कुक्षिः	समुद्र पेट,
मरुत् प्राणबलं	वायु प्राण-शक्ति
प्रकल्पितं	(उपासनाके लिए) कल्पित किये गये हैं ॥१३॥

रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा
मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः ।
निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापति-
र्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥१४॥

रोमाणि वृक्ष औषधयः शिरोरुहाः मेघाः परस्य अस्थि नखानि ते अद्रयः निमेषणं रात्रि अहनी प्रजापतिः मेढ्रः तु वृष्टिः तव वीर्यं इष्यते ॥१४॥

ते परस्य	आप परमपुरुषके
वृक्ष औषधयः	वृक्ष तथा औषधियां (तृणादि)
रोमाणि	रोम हैं,
मेघाः	मेघ
शिरोरुहाः	सिरके केश,
अद्रयः	पर्वत
अस्थि नखानि	हड्डी और नख,
रात्रि अहनी	रात्रि और दिन
निमेषणं	पलकों का गिरना-उठना,
प्रजापतिः मेढ्रः	प्रजापति उपस्थ,
तु वृष्टिः	और वर्षा
तव वीर्यं इष्यते	आपका वीर्य मानी जाती है ॥१४॥

त्वय्यव्ययात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता
लोकाः सपाला बहुजीवसंकुलाः ।
यथा जले सञ्जिहते जलौकसो-
ऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये ॥१५॥

त्वयि अव्यय आत्मन् पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीव संकुलाः यथा जले सञ्जिहते जलौकसः अपि उदुम्बरे वा मशकाः मनोमये ॥१५॥

अव्यय आत्मन्	अविनाशी स्वरूप
त्वयि	आप
मनोमये	मनोमय (भावना-मय)
पुरुषे	विराट् पुरुषमें
यथा जले	जैसे जलमें
जलौकसः	जलचर प्राणी
सञ्जिहते	हलचल करते हैं,
अपि वा	अथवा
उदुम्बरे मशकाः	गूलरके फलमें मच्छर
बहुजीव	बहुत प्राणियोंसे
संकुलाः	भरे
सपाला लोकाः	लोकपालोंके साथ सब लोक
प्रकल्पिताः	कल्पित हैं ॥१५॥

यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि ।
तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः ॥१६॥

याति यानि इह रूपाणि क्रीडन अर्थं बिभर्षि हि तैः आमृष्ट शुचः लोका मुदा गायन्ति ते यशः ॥१६॥

क्रीडन अर्थं	क्रीड़ा करनेके लिए	**मुदा लोका**	प्रसन्न होकर लोग
इह यानि यानि	इस संसारमें जो-जो	**तैः ते यशः**	उन रूपोंके माध्यम-
रूपाणि बिभर्षि	अवतार (आप)		से आपका यश
	धारण करते हैं,	**गायन्ति**	गाते हैं ॥१६॥
हि तानि	क्योंकि उनके द्वारा		
आमृष्ट शुचः	शोक पूर्णतः मिट		
	जाता है		

नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च ।
हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥१७॥

नमः कारण मत्स्याय प्रलय अब्धि चराय च हयशीर्ष्णे नमः तुभ्यं मधुकैटभ मृत्यवे ॥१७॥

प्रलय अब्धि	प्रलय-समुद्रमें	**मधुकैटभ**	मधु-कैटभको
चराय	विचरण करनेवाले	**मृत्यवे**	मारनेवाले
च कारण	तथा (वेदोद्धारादि)	**तुभ्यं हयशीर्ष्णे**	आप हय-शीर्षको
	कारणोंसे	**नमः**	नमस्कार ॥१७॥
मत्स्याय नमः	मत्स्य रूपधारीको		
	नमस्कार,		

अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे ।
क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये ॥१८॥

अकूपाराय बृहते नमः मन्दर धारिणे क्षिति उद्धार विहाराय नमः शूकरमूर्तये ॥१८॥

मन्दर धारिणे	मन्दराचल धारण	**क्षिति उद्धार**	पृथ्वीके उद्धारकी
	करनेवाले	**विहाराय**	क्रीड़ा करनेवाले
बृहते अकूपाराय	विशाल कच्छपको	**शूकरमूर्तये**	वाराह स्वरूपको
नमः	नमस्कार	**नमः**	नमस्कार ॥१८॥

नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह ।
वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च ॥१९॥

नमः ते अद्भुत सिंहाय साधुलोक भय अपह वामनाय नमः तुभ्यं क्रान्त त्रिभुवनाय च ॥१९॥

साधुलोक	सत्पुरुष लोगोंका	**च त्रिभुवनाय**	तथा तीनों लोकों-
भय अपह	भय दूर करनेवाले	**क्रान्त**	को व्याप्त करने-
ते अद्भुत	आप अद्भुत		**वाले**
सिंहाय नमः	नृसिंहको नमस्कार,	**तुभ्यं वामनाय**	आप वामनको
		नमः	नमस्कार ॥१९॥

नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे ।
नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च ॥२०॥

नमः भृगूणां पतये दृप्त क्षत्र वनच्छिदे नमः ते रघुवर्याय रावण अन्तकराय च ॥२०॥

दृप्त क्षत्र	गर्विष्ठ क्षत्रियोंरूपी	**च रावण**	तथा रावणको
वनच्छिदे	वनको काट देनेवाले	**अन्तकराय**	मारनेवाले
भृगूणां पतये	भृगु-वंश-पति	**रघुवर्याय**	रघुवंश शिरोमणि
	परशुरामको	**ते नमः**	आपको नमस्कार
नमः	नमस्कार		॥२०॥

नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥२१॥

नमः ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥२१॥

सात्वतां पतये	भक्तोंके स्वामी	**प्रद्युम्नाय**	(चतुर्व्यूह रूप)
ते वासुदेवाय	आप वासुदेवको		प्रद्युम्नको एवं
नमः	नमस्कार,	**अनिरुद्धाय नमः**	अनिरुद्धको नमस्कार
च सङ्कर्षणाय	तथा सङ्कर्षणको		॥२१॥
नमः	नमस्कार,		

नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने ।
म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥२२॥

नमः बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानव मोहिने म्लेच्छप्राय क्षत्र हन्त्रे नमः ते कल्किरूपिणे ॥२२॥

दैत्यदानव	दैत्य-दानवोंको	**क्षत्र हन्त्रे**	क्षत्रियोंको मारने-वाले
मोहिने	सम्मोहित करनेवाले	**कल्किरूपिणे**	कल्कि रूपधारी
शुद्धाय बुद्धाय	शुद्ध स्वरूप बुद्धको*	**ते नमः**	आपको नमस्कार ॥२२॥
नमः	नमस्कार		
म्लेच्छप्राय	म्लेच्छप्राय		

भगवज्जीवलोकोऽयं मोहितस्तव माययाः ।
अहंममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥२३॥

भगवत् जीवलोकः अयं मोहितः तव मायया अहं मम इति असत् ग्राहः भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥२३॥

भगवत्	भगवन् !	**अहं मम इति**	'मैं-मेरा' इस प्रकार
तव मायया	आपकी मायासे	**असत् ग्राहः**	झूठा आग्रह करके
मोहितः अयं	मोहित यह	**कर्मवर्त्मसु**	कर्मके मार्गमें
जीवलोकः	जीव लोग	**भ्राम्यते**	भटक रहे हैं ॥२३॥

अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु ।
भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥२४॥

अहं च आत्म आत्मज आगार दारा अर्थ स्वजन आदिषु भ्रमामि स्वप्न कल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥२४॥

---

* पुराणोंमें जिस बुद्धावतारका वर्णन है, वह गौतम बुद्ध नहीं हैं। वह बुद्धावतार 'त्रिपुर-दहन' के समय हुआ। उसका वर्णन 'शिवचरित' में है। गौतम बुद्धको 'बुद्धावतार' के रूपमें सर्वप्रथम 'गीत गोविन्द' में महा-कवि जयदेवजीने मान लिया।

विभो	प्रभो !	**अर्थ स्वजन**	धन, सम्बन्धी
अहं च	मैं भी	**आदिषु**	आदिमें
स्वप्नकल्पेषु	स्वप्नके समान	**सत्य धिया**	सत्यत्व बुद्धि करके
आत्म आत्मज	शरीर, पुत्र	**मूढः भ्रमामि**	मूर्ख बना भटक
आगार दारा	घर, स्त्री,		रहा हूँ ॥२४॥

अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम् ।
द्वन्द्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वाऽऽत्मनः प्रियम् ॥२५॥

अनित्य अनात्म दुःखेषु विपर्यय मतिः हि अहं द्वन्द्व आरामः तमः विष्टः न जाने त्वां आत्मनः प्रियम् ॥२५॥

अनित्य अनात्म	नाशवान्, आत्मासे भिन्न,	**द्वन्द्व आरामः**	(सुख-दुःखादि) द्वन्दोंमें सुख मानने-
दुःखेषु	दुःखरूप (पदार्थों)में		वाला
विपर्यय मतिः	उलटी बुद्धि रखने-	**आत्मनः प्रियं**	अपने परम प्रिय
	वालामैं	**त्वां न जाने**	आपको नहीं जानता
तमः विष्टः	अज्ञानमें निमग्न		॥२५॥

यथाबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः ।
अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत्त्वाहं पराङ्मुखः ॥२६॥

यथा अबुधः जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तत् उद्भवैः अभि एति मृगतृष्णां वै तद्वत् त्वां अहं पराक् मुखः ॥२६॥

यथा अबुधः	जैसे अज्ञानी पुरुष	**अभि एति**	ओर जाता है
तत् उद्भवैः	उसी (जल) से उत्पन्न (काई आदि)	**वै तद्वत्**	निश्चय उसीकी भांति
प्रतिच्छन्नं	से ढके हुए	**अहं त्वां**	मैं आपसे
जलं हित्वा	जलको छोड़कर	**पराक् मुखः**	विमुख हूँ ॥२६॥
मृगतृष्णा	मृगतृष्णा (सूर्य किरणोंमें प्रतीत होते) जलकी		

नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः ।
रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥२७॥

न उत्सहे अहं कृपणधीः कामकर्म हतं मनः रोद्धुं प्रमाथिभिः च अक्षः ह्रियमाणं इतः ततः ॥२७॥

अहं कृपणधीः	मैं दीन बुद्धि	**अक्षैः इतः ततः**	इन्द्रियों द्वारा इधर-उधर
कामकर्म	कामना तथा कर्मसे		
हतं	पीड़ित	**ह्रियमाणं**	खींचा जाता हुआ
मनः च	मन तथा	**रोद्धुं न उत्सहे**	इनको रोकनेका उत्साह नहीं रखता ॥२७॥
प्रमाथिभिः	मथ देनेवाली		

सोऽहं तवाङ्घ्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं
तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ।
पुंसो भवेद्यर्हि संसरणापवर्ग-
स्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥२८॥

सः अहं तव अङ्घ्रि उपगतः अस्मि असतां दुरापं तत् च अपि अहं भवत् अनुग्रह ईश मन्ये पुंसः भवेत् यर्हि संसरण अपवर्गः त्वयि अब्जनाभ सत् उपासनया मतिः स्यात् ॥२८॥

सः अहं	वह मैं	**अनुग्रह अहं मन्ये**	कृपा मैं मानता हूँ, क्योंकि
असतां दुरापं	असत्पुरुषोंके लिए दुष्प्राप्य	**पुंसः संसरण**	पुरुषके संसारसे
तव अङ्घ्रि	आपके चरणोंके	**अपवर्गः भवेत्**	मोक्षका समय होता है तब
उपगतः अस्मि	समीप पहुँच गया हूँ,	**सत् उपासनया**	सत्पुरुषोंकी सेवासे
तत् च अपि	इसको भी	**त्वयि मतिः**	आपमें बुद्धि
ईश भवत्	स्वामी ! आपकी	**स्यात्**	लगती है ॥२८॥

नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे ।
पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥२९॥

नमः विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्यय हेतवे पुरुष ईश प्रधानाय ब्रह्मणे अनन्तशक्तये ॥२९॥

सर्वप्रत्यय	समस्त प्रतीतियोंके	**प्रधानाय**	प्रकृति रूप,
हेतवे	कारण,	**अनन्तशक्तये**	अनन्त शक्ति
विज्ञानमात्राय	केवल ज्ञान स्वरूप,	**ब्रह्मणे**	परमब्रह्मको
पुरुष ईश	जीव, ईश्वर,	**नमः**	नमस्कार ॥२९॥

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ।
हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥३०॥

नमः ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च हृषीकेश नमः तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥३०॥

प्रभो	प्रभो !	**च हृषीकेश**	तथा (अन्तर्यामी) हृषीकेश
सर्वभूतक्षयाय	सम्पूर्ण प्राणियोंके नाशक (कालरूप)	**तुभ्यं नमः**	आपको नमस्कार
ते वासुदेवाय	आप वासुदेवको	**मां प्रपन्नं**	मुझ शरणागतकी
नमः	नमस्कार,	**पाहि**	रक्षा करो ॥३०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽक्रूरस्तुतिर्नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

अथ एकचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

स्तुवतस्तस्य भगवान् दर्शयित्वा जले वपुः ।
भूयः समाहरत् कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥१॥

स्तुवतः तस्य भगवान् दर्शयित्वा जले वपुः भूयः सम अहरत् कृष्णः नटः नाट्यं इव आत्मनः ॥१॥

इव नाट्यधरः	जैसे नाटक करने-वाला	**जले आत्मनः वपुः**	जलमें अपना रूप
नटः भगवान्	नट हो ऐसे भगवान	**दर्शयित्वा**	दिखलाकर
कृष्णः तस्य	श्रीकृष्णने उनको	**भूयः**	फिर
		सम अहरत्	छिपा लिया ॥१॥

सोऽपि चान्तर्हितं वीक्ष्य जलादुन्मज्ज्य सत्वरः ।
कृत्वा चावश्यकं सर्वं विस्मितो रथमागमत् ॥ २ ॥

सः अपि च अन्तर्हितं वीक्ष्य जलात् उन्मज्ज्य सत्वरः कृत्वा च आवश्यकं सर्वं विस्मितः रथं आगमत् ॥२॥

सः अपि च	उन (अक्रूर) ने भी	**च सर्वं**	सब (सन्ध्यादि)
अन्तर्हितं वीक्ष्य	(भगवान्को) तिरोहित देखकर	**आवश्यकं**	आवश्यक
		कृत्वा विस्मितः	करके चकित होकर
सत्वरः	झटपट	**रथं आगमत्**	रथपर आ गये ॥२॥
जलात् उन्मज्ज्य	जलसे निकलकर		

तमपृच्छद्धृषीकेशः किं ते दृष्टमिहाद्भुतम् ।
भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षया महे ॥ ३ ॥

तं अपृच्छत् हृषीकेशः किं ते दृष्टं इह अद्भुतं भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षया महे ॥३॥

तं हृषीकेशः	उनसे हृषीकेशने
अपृच्छत्	पूछा—
ते इह भूमौ	'आपने यहां पृथ्वी-
	पर'
वियति या तोये	आकाशमें या जलमें
किं अद्भुतं	क्या आश्चर्यकी
	बात
दृष्टं	देखी ?
त्वां तथा	आपको इस प्रकार-
	का
लक्षया महे	हम लक्षित करते
	हैं ॥३॥

अक्रूर उवाच

अद्भुतानीह यावन्ति भूमौ वियति वा जले ।
त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपश्यतः ॥ ४ ॥

अद्भुतानि इह यावन्ति भूमौ वियति वा जले त्वयि विश्व आत्मके तानि किं मे अदृष्टं विपश्यतः ॥४॥

इह यावन्ति	यहां जितने भी
भूमौ वियति	पृथ्वीपर, आकाशमें,
वा जले	अथवा जलमें
अद्भुतानि	आश्चर्यजनक
	(पदार्थ) हैं
तानि त्वयि	वे सब आप
विश्व आत्मके	विश्व रूपमें हैं,
विपश्यतः	(उस आपको) देखते
	हुए
मे किं अदृष्टं	मैंने क्या नहीं
	देखा ॥४॥

यत्राद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले ।
तं त्वानुपश्यतो ब्रह्मन् किं मे दृष्टमिहाद्भुतम् ॥ ५ ॥

यत्र अद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले तं त्वां अनुपश्यतः ब्रह्मन् किं मे दृष्टं इह अद्भुतम् ॥५॥

भूमौ वियति	पृथ्वीपर, आकाशमें,
वा जले	अथवा जलमें की
यत्र सर्वाणि	जहां सभी अद्भुत
	बातें हैं
तं त्वां ब्रह्मन्	उस आप सर्व-
	व्यापकको
अनुपश्यतः	साक्षात् देखते हुए
मे इह किं	मैंने यहां क्या
अद्भुतं	अद्भुत वस्तु
दृष्टं	देख ली ॥५॥

श्रीशुक उवाच*

इत्युक्त्वा चोदयामास स्यन्दनं गान्दिनीसुतः ।
मथुरामनयद् रामं कृष्णं चैव दिनात्यये ॥६॥

इतिउक्त्वा चोदयामास स्यन्दनं गान्दिनीसुतः मथुरां अनयत् रामं कृष्णं च एव दिन अत्यये ॥६॥

इतिउक्त्वा	ऐसा कहकर	**दिन अत्यये**	दिन ढ़लते ढ़लते
गान्दिनीसुतः	गान्दिनी पुत्र अक्रूर ने	**रामं कृष्णं च**	बलराम तथा श्रीकृष्ण को
स्यन्दनं	रथको	**मथुरां अनयत्**	मथुरा ले आये ॥६॥
चोदयामास	हाथ दिया		

मार्गे ग्रामजना राजंस्तत्र तत्रोपसंगताः ।
वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाददुः ॥७॥

मार्गे ग्रामजनाः राजन् तत्र तत्र उपसंगताः वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न च अददुः ॥७॥

राजन्	राजन्	**वीक्ष्य प्रीता**	देखकर प्रसन्न होकर
मार्गे तत्र तत्र	मार्गमें जहाँ तहाँ	**दृष्टिं न च**	अपनी दृष्टि नहीं
उपसंगताः	समीप आये	**अददुः**	हटा पाते थे ॥७॥
ग्रामजनाः	ग्रामवासी		
वसुदेवसुतौ	वसुदेवके पूत्रोंको		

तावद् व्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयोऽग्रतः ।
पुरोपवनमासाद्य प्रतीक्षन्तोऽवतस्थिरे ॥८॥

तावत् व्रजौकसः तत्र नन्दगोप आदयः अग्रतः पुरः उपवनं असाद्य प्रतीक्षन्तः अवतस्थिरे ॥८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तावत् अग्रतः	तब तक पहिले ही
नन्दगोप	नन्द गोप
आदयः	आदि
व्रजौकसः	व्रजवासी
तत्र पुर उपवनं	वहाँ नगरके बाहरी बगीचेमें
आसाद्य	पहुँच करते हुए
प्रतीक्षन्तः	प्रतीक्षा करते हुए
अवतस्थिरे	ठहरे थे ॥८॥

तान् समेत्याह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं प्रहसन्निव ॥९॥

तान् सम एत्य आह भगवान् अक्रूरं जगत् ईश्वरः गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं प्रहसन् इव ॥९॥

तान् सम एत्य	उनके समीप पहुँचकर
जगत् ईश्वरः	जगत्के स्वामी
भगवान्	भगवानने
पाणिना पाणिं	अपने हाथसे हाथ
गृहीत्वा	पकड़कर
प्रश्रितं अक्रूरं	विनम्र अक्रूरसे
प्रहसन् इव	हँसते हुए
आह	कहा ॥९॥

भवान् प्रविशतामग्रे सहयानः पुरीं गृहम् ।
वयं त्विहावमुच्याथ ततो द्रक्ष्यामहे पुरीम् ॥१०॥

भवान् प्रविशतां अग्रे सहयानः पुरीं गृहं वयं तु इह अवमुच्य अथ ततः द्रक्ष्यामहे पुरीम् ॥१०॥

वयं तु	हम लोगोंको तो
इह अवमुच्य	यहाँ छोड़कर
भवान् सहयानः	आप रथके साथ
पुरीं गृहं	नगरमें अपने घर
अग्रे प्रविशतां	आगे प्रवेश करें
अथ ततः	फिर उसके बाद
पुरीं द्रक्ष्यामहे	(हम) नगरको देखेंगे ॥१०॥

अक्रूर उवाच—

नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो ।
त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल ॥११॥

न अहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो त्यक्तुं न अर्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल ॥११॥

प्रभो	प्रभो	**नाथ ते भक्तं**	स्वामी ! मैं आपका भक्त हूँ
भवद्भ्यां	आप दोनोंके	**भक्तवत्सल**	भक्तवत्सल !
रहितः	बिना	**मां त्यक्तुं**	(आपको) मुझे छोड़ना
मथुरां	मथुरामें (मैं)	**न अर्हसि**	नहीं चाहिए ॥११॥
न प्रवेक्ष्ये	प्रवेश नहीं करूंगा		

आगच्छ याम गेहान् नः सनाथान् कुर्वधोक्षज ।
सहाग्रजः सगोपालैः सुहृद्भिश्च सुहृत्तम ॥१२॥

आगच्छ याम गेहान् नः सनाथान् कुरु अधोक्षज सह अग्रजः सगोपालैः सुहृद् भिः च सुहृत्तम ॥१२॥

सुहृत्तम	परमश्रेष्ठ	**आगच्छ**	आइये
सह अग्रजः	बड़े भाईके साथ	**गेहान् याम**	हम घर चलें
सगोपालैः	गोपोंके साथ	**अधोक्षज**	अन्तर्यामी प्रभु
च सुहृद् भिः	तथा सब सम्बन्धियों सहित	**नः सनाथान्**	हमें सनाथ
		कुरु	बनाइये ॥१२॥

पुनीहि पादरजसा गृहान् नो गृहमेधिनाम् ।
यच्छौचेनानुतृप्यन्ति पितरः साग्रयः सुराः ॥१३॥

पुनीहि पादरजसा गृहान् नः गृहमेधिनां यत् शौचेन अनु तृप्यन्ति पितरः स अग्नयः सुराः ॥१३॥

पादरजसा	अपनी चरण-रजसे	**पितरः**	पितर और
नः गृहमेधिनां	हम गृहस्थोंके	**स अग्नयः**	अग्निके साथ
गृहान् पुनीहि	घरोंको पवित्र कीजिए	**सुराः तृप्यन्ति**	सब देवता तृप्त हो जाते हैं ॥१३॥
यत् शौचेन	जिनके चरणोदक से		

अवनिज्याङ्घ्रियुगलमासीच्छ्लोक्यो बलिर्महान् ।
ऐश्वर्यमतुलं लेभे गतिं चैकान्तिनां तु या ॥ १४ ॥

अवनिज्य अंघ्रि युगलं आसीत् श्लोक्यः बलिः महान् ऐश्वर्यं अतुलं लेभे गतिं च एकान्तिनां तु या ॥१४॥

अंघ्रि युगलं	(आपके) दोनों चरणोंको	**च या तु**	तथा जो
अवनिज्य	धोकर	**एकान्तिनां**	अनन्य भक्तोंकी
बलिः महान्	बलि महान्	**अतुलं गतिं**	अतुलनीय गति है
श्लोक्यः आसीत्	यशस्वी हो गये	**लेभे**	उसे भी प्राप्त किया ॥१४॥

आपस्तेऽङ्घ्रयवनेजन्यस्त्रींल्लोकाञ्छुचयोऽपुनन् ।
शिरसाधत्त याः शर्वः स्वर्यातास्ताः सगरात्मजाः ॥१५॥

आपः ते अंघ्रि अवनेजन्यः त्रीन् लोकान् शुचयः अपुनन् शिरसा आधत्त याः शर्वः स्वर्यातास्ताः सगर आत्मजाः ॥१५॥

ते अंघ्रि	आपके चरणोंकी	**शिरसा आधत्त**	सिरपर धारण करते हैं और
अवनेजन्यः आपः	धोवन-जल रूपा (गंगाजी)	**सगर आत्मजाः**	राजा सगरके पुत्र (जिसके स्पर्शसे)
त्रीन् लोकान्	तीनों लोकोंको	**स्वर्यातास्ताः**	स्वर्ग चले गये ॥१५॥
शुचयः	पवित्र करनेवाली		
अपुनन्	परम पवित्र है,		
याः शर्वः	जिन्हें शंकरजी		

देवदेव जगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन ।
यदूत्तमोत्तमश्लोक नारायण नमोऽस्तु ते ॥१६॥

देवदेव जगन्नाथ पुण्यश्रवण कीर्तन यदूत्तम उत्तम श्लोक नारायण नमः अस्तु ते ॥१६॥

देवदेव	देवदेवेश्वर !	**पुण्यश्रवण**	(जिनकी लीलाओं का) श्रवण
जगन्नाथ	जगन्नाथ !		

कीर्तन	तथा कीर्तन पवित्र है;	**नारायण**	नारायण
यदूत्तम	यदुवंश शिरोमणि !	**ते नमः अस्तु**	आपको नमस्कार हैं ॥१६॥
उत्तम श्लोक	पवित्र कीर्ति		

श्रीभगवानवाच–

आयास्ये भवतो गेहमहमार्यसमन्वितः ।
यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितदिष्ये सुहृत्प्रियम् ॥१७॥

आयास्ये भवतः गेहं अहं आर्य समन्वितः यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये सुहृत् प्रियम् ॥१७॥

यदुचक्रद्रुहं	यदुवंशी मण्डलके द्रोही (कंस) को	**अहं आयास्ये**	मैं आऊंगा,
हत्वा	मारकर	**सुहृत् प्रियं**	सुहृदोंका प्रिय
भवतः गेहं	आपके घर	**वितरिष्ये**	सम्पादन करूँगा ॥१७॥
आर्य समन्वितः	बड़े भाईके साथ		

श्रीशुक उवाच–

एवमुक्तो भगवता सोऽक्रूरो विमना इव ।
पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्मावेद्य गृहं ययौ ॥१८॥

एवं उक्तः भगवता सः अक्रूरः विमना इव पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्म आवेद्य गृहं ययौ ॥१८॥

एवं भगवता	इस प्रकार भगवान के द्वारा	**कंसाय**	कंससे
उक्तः सः अक्रूरः	कहे जानेपर वे अक्रूर	**कर्म आवेद्य**	अपना कर्म सूचित करके
विमना इव	उदाससे होकर	**गृहं ययौ**	अपने घर चले गये ॥१८॥
पुरीं प्रविष्टः	पुरीमें प्रवेश करके		

अथापराह्णे भगवान् कृष्णः संकर्षणान्वितः ।
मथुरां प्राविशद् गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः ॥१९॥

अथ अपराह्णे भगवान् कृष्णः सङ्कर्षण अन्वितः मथुरां प्राविशत् गोपैः दिदृक्षुः परिवारितः ॥१९॥

अथ अपराह्णे	फिर तीसरे पहर
सङ्कर्षण	बलरामजी
अन्वितः	के साथ
गोपैः	गोप बालकोंको
परिवारितः	साथ लेकर
भगवान् कृष्णः	भगवान् श्रीकृष्णने
दिदृक्षुः	देखनेकी इच्छासे
मथुरां	मथुरामें
प्राविशत्	प्रवेश किया ॥१९॥

ददर्श तां स्फाटिकतुङ्गगोपुर-
द्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम् ।
ताम्रारकोष्ठां परिखादुरासदा-
मुद्यानरम्योपवनोपशोभिताम् ॥२०॥

ददर्श तां स्फाटिकतुङ्ग गोपुर द्वारां बृहत् हेमकपाट तोरणां ताम्र अर कोष्ठां परिखा दुरासदां उद्यान रम्य उपवन उपशोभिताम् ॥२०॥

तां	उस
स्फाटिकतुङ्ग	स्फटिकके ऊंचे
गोपुर द्वारां	गोपुर द्वार वाली
बृहत् हेमकपाट	स्वर्ण जटित बड़े किवाड़ लगे
तोरणां	तोरणों (बर्हिद्वार) वाली
ताम्र अर	तांबेकी कील जड़ी
कोष्ठां	चहार-दीवारी वाली
दुरासदां परिखा	दुष्पार खाईसे घिरी
उद्यान रम्यां	रमणीय पुष्पवाटिका
उपवन	बगीचों
उपशोभितां	से सुशोभित
ददर्श	(मथुराको) देखा ॥२०॥

सौवर्णशृङ्गाटकहर्म्यनिष्कुटैः
श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम् ।
वैदूर्यवज्रामलनीलविद्रुमै-
र्मुक्ताहरिद्भिर्वलभीषु वेदिषु ॥२१॥

सौवर्ण शृङ्गाटक हर्म्य निष्कुटैः श्रेणी सभाभिः भवनैः उपस्कृतां वैदूर्य वज्र अमल नील विद्रुमैः मुक्ता हरित्भिः वलभीषु वेदिषु ॥२१॥

सौवर्ण	स्वर्ण-सज्जित
शृङ्गाटक	चौराहे
हर्म्य निष्कुटैः	बगीचों युक्त महल,
श्रेणी सभाभिः	कारीगरोंके बैठने के सभा-भवन,
भवनैः	(अन्य) भवनोंसे
उपस्कृतां	सुसज्जित,
वैदूर्य वज्र	लहसनिया, हीरा,
अमल नील	निर्मल नीलम,
विद्रुमैः	मूगों,
मुक्ता हरितभिः	मोती, पन्ना जड़ी
वलभीषु वेदिषु	छज्जे तथा चबूतरों वाली ॥२१॥

जुष्टेषु जालामुखरन्ध्रकुट्टिमे-
ष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् ।
संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां
प्रकीर्णमाल्यांकुरलाजतण्डुलाम् ॥२२॥

जुष्टेषु जाल आमुख रन्ध्र कुट्टिमेषु आविष्ट पारावत बर्हि नादितां संसिक्त रथ्या आपण मार्ग चत्वरां प्रकीर्ण माल्य अंकुर लाज तण्डुलाम् ॥२२॥

कुट्टिमेषु	दीवारोंमें
जाल आमुख	जालीदार खिड़कियां
रन्ध्र	के छिद्रोंमें
जुष्टेषु	बैठे हुए
आविष्ट	आवेश युक्त
पारावत	कबूतरों तथा
बर्हि नादितां	मयूरोंकी ध्वनिसे गूंजती,
रथ्या	सड़कों तथा
आपण मार्ग	बाजारके मार्ग
संसिक्त	खींचे हुए
चत्वरां	चौराहोंपर

माल्य अंकुर	मालाएँ, अंकुर (जवारे)	प्रकीर्ण	बिखरे हुए हैं (ऐसी पुरी) ॥२२॥
लाज तण्डुलां	लाजा और अक्षत		

आपूर्णकुम्भैर्दधिचन्दनोक्षितैः
प्रसनदीपावलिभिः सपल्लवैः ।
सवृन्दरम्भाक्रमुकैः सकेतुभिः
स्वलंकृतद्वारगृहां सपट्टिकैः ॥२३॥

आपूर्ण कुम्भैः दधि चन्दन उक्षितैः प्रसूनदीप अवलिभिः सपल्लवैः सवृन्द रम्भा क्रमुकैः सकेतुभिः स्वलङ्कृत द्वार गृहां सपट्टिकैः ॥२३॥

द्वार गृहां	घरोंके द्वार	सवृन्द रम्भा	फलधार सहित केले के वृक्षोंसे
दधि, चन्दन	दही. चन्दन	सकेतुभिः	झंडे लगे
उक्षितैः	छिड़के	क्रमुकैः	बाँसोंसे
सपल्लवैः	पल्लव सहित	सपट्टिकैः	(स्वागतादि अंकित) पट्टियोंसे
प्रसून दीप	पुष्प, दीपक	स्वलङ्कृतः	भली प्रकार सजे थे ॥२३॥
अवलिभिः	उपहारोंसे युक्त		
आपूर्ण कुम्भैः	जलभरे कलशोंसे		

तां सम्प्रविष्टौ वसुदेवनन्दनौ
वृतौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मना ।
द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियो
हर्म्याणि चैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥२४॥

तां सम्प्रविष्टौ वसुदेव नन्दनौ वृतौ वयस्यैः नरदेववर्त्मना द्रष्टुं समीयुः त्वरिताः पुरस्त्रियः हर्म्याणि च एव आरुरुहुः नृप उत्सुकाः ॥२४॥

नृप	राजन् !	वयस्यैः वृतौ	सखाओंसे घिरे हुए
वसुदेव नन्दनौ	वसुदेवजीके दोनों पुत्रों	तां	उस
		नरदेववर्त्मना	पुरीमें राजमार्गसे

सम्प्रविष्टो	प्रविष्ट हुए तब	च उत्सुकाः	और उत्सुक होकर
पुरस्त्रियः	नगरकी नारियाँ	त्वरिताः एव	शीघ्रता पूर्वक कहीं
द्रष्टुं समीयुः	(उन्हें) देखने चारों ओरसे आ गयीं	हर्म्याणि	छज्जोंपर
		आरुरुहुः	चढ़ गयीं ॥२४॥

काश्चिद् विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणा
विस्मृत्य चैकं युगलेष्वथापराः ।
कृतैकपत्रश्रवणैकनूपुरा
नाङ्क्त्वा द्वितीयं त्वपराश्च लोचनम् ॥२५॥

काश्चित् विपर्यक् धृत वस्त्रभूषणा विस्मृत्य च एकं युगलेषु अथ अपराः कृत एक पत्र श्रवण एक नूपुरा न अङ्क्त्वा द्वितीयं तु अपराः च लोचनम् ॥२५॥

काश्चित्	किसीने	कृत एक पत्र	(किसीने) एक ही (कपोल) पर पत्राङ्कन किया था
वस्त्रभूषणा	वस्त्र और आभूषण		
विपर्यक् धृत	उलटे पहिन लिए थे,		
अथ अपराः	और कोई दूसरी	श्रवण एक नूपुरा	कोई कानमें एक कुंडल, कोईएक पैर-में ही नूपुर पहिने थी
युगलेषु	जोड़ेसे पहिने जाने-वाले (कुंडलादि) में		
एकं च विस्मृत्य	एकको भूल ही गयी थी (एक ही पहिने थी)	च अपराः	तथा दूसरी कोई
		द्वितीयं लोचनं	दूसरे नेत्रमें
		न अङ्क्त्वा	अंजन लगाये ही नहीं थी ॥२५॥

अश्नन्त्य एकास्तदपास्य सोत्सवा
अभ्यज्यमाना अकृतोपमज्जनाः ।
स्वपन्त्य उत्थाय निशम्य निःस्वनं
प्रपाययन्त्योऽर्भमपोह्य मातरः ॥२६॥

अश्नन्ति एकाः तत् अपास्य स उत्सवा अभ्यज्यमाना अकृत उपमज्जनाः स्वपन्ति उत्थाय निशम्य निःस्वनं प्रपाययन्त्यः अभ्रं अपोह्य मातरः ॥२६॥

एकाः अश्नन्ति	एक भोजन कर रही थी
तत् अपास्य	उस (हाथके कौर) को फेंककर
स उत्सवा	बड़े उत्साहसे
अभ्यज्यमाना	जो उबटन लगा रही थी वह
उपमज्जनाः	तनिक भी स्नान
अकृत	किये बिना,
स्वपन्ति	जो सो रही थी वह
निःस्वनं निशम्य	कोलाहल सुनकर
उत्थाय	उठकर (वैसी ही)
प्रपाययन्त्यः	दूध पिलाती हुई
मातरः	माताएँ
अभ्रं अपोह्य	शिशुको छोड़कर (दौड़ आयी थीं) ॥२६॥

मनांसि तासामरविन्दलोचनः
प्रगल्भलीलाहसितावलोकनैः ।
जहार मत्तद्विरदेन्द्रविक्रमो
दृशां ददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम् ॥२७॥

मनांसि तासां अरविन्द लोचनः प्रगल्भ लीला हसित अवलोकनैः जहार मत्तद्विरदेन्द्र विक्रमः दृशां ददत् श्रीरमण आत्मन उत्सवम् ॥२७॥

मत्तद्विरदेन्द्र	मदमत्त गजराजके समान
विक्रमः	चालसे चलते हुए
श्रीरमण	रमारमण
अरविन्द	कमल-
लोचनः	लोचन श्रीकृष्णने
आत्मन लीला	अपना क्रीड़ा पूर्वक
प्रगल्भ	प्रगल्भ
हसित	हास्य सहित
अवलोकनैः	दृष्टिसे
तासां दृशां मनः	उनके चित्त नेत्रोंको
उत्सवम् ददत्	आनन्द देते हुए
मनांसि	चित्तोंको
जहार	चुरालिता ॥२७॥

दृष्ट्वा मुहुःश्रुतमनुद्रुतचेतसस्तं
तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः ।

आनन्दमूर्तिमुपगुह्य दृशाऽऽत्मलब्धं
हृष्यत्त्वचो जहुरनन्तमरिन्दमाधिम् ॥२८॥

द्रष्ट्वा मुहुःश्रुतं अनुद्रुत चेतसः तं तत् प्रेक्षण उत् स्मित सुधा उक्षण लब्धमानाः आनन्दमूर्तिम् उपगुह्य दृशा आत्मलब्धं हृष्यत् त्वचः जहुः अनन्त अरिन्दम आधिम् ॥२८॥

अरिन्दम	शत्रुदमनकर्ता परीक्षित !
मुहुःश्रुतं	बारबार (उनकी चर्चा) सुननेसे
अनुद्रुत चेतसः	व्याकुल (द्रवित) चित्त वाली वे
तं दृष्ट्वा	उनको देखकर
तत् स्मित	उनकी मुसकान
प्रेक्षण	युक्त दृष्टिके
सुधा उक्षण	अमृत सिञ्चनको
लब्धमानाः	प्राप्त करके
दृशा आत्मलब्धं	दृष्टिके द्वारा हृदय में प्राप्त
आनन्दमूर्तिम्	उन आनन्द मूर्तिको
उपगुह्य	आलिगन करके
हृष्यत् त्वचः	उनको रोमाञ्च हो गया और
अनन्तं आधिं	चिरकालकी विरह व्यथाको
जहुः	छोड़ दिया (दूर हो गयी) ॥२८॥

प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखाम्बुजाः ।
अभ्यवर्षन् सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ ॥२९॥

प्रासाद शिखर आरूढाः प्रीति उत्फुल्ल मुख अम्बुजाः अभ्यवर्षन् सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ ॥२९॥

प्रासाद शिखर आरूढाः	भवनोंकी छतोंपर चढ़ी हुई,
प्रीति उत्फुल्ल मुख अम्बुजाः	प्रेमसे खिले हुए मुख कमल वाली
प्रमदा	नारियां
बलकेशवौ	बलराम तथा श्रीकृष्णपर
सौमनस्यैः	पुष्पोंकी
अभ्यवर्षन्	वर्षा करने लगीं ॥२९॥

दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रग्गन्धैरभ्युपायनैः ।
तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्र तत्र द्विजातयः ॥३०॥

दधि अक्षतैः स उदपात्रैः स्रक् गन्धैः अभि उपायनैः तावाः आनर्चुः प्रमुदिताः तत्र तत्र द्विजातयः ॥३०॥

तत्र तत्र	जहां तहां
स उदपात्रैः	जल-पात्र लिए
द्विजातयः	ब्राह्मणोंने
दधि अक्षतैः	दही, अक्षत,
स्रक् गन्धैः	माला, चन्दन,
अभि उपायनैः	तथा उपयुक्त उपहारोंसे
तावाः	उन दोनों भाइयोंकी
आनर्चुः	पूजा की ॥३०॥

ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन् महत् ।
या ह्येतावनुपश्यन्ति नरलोकमहोत्सवौ ॥३१॥

ऊचुः पौराः अहो गोप्यः तपः किं अचरन् महत् या हि एताः अनुपश्यन्ति नरलोक महोत्सवौ ॥३१॥

पौरा ऊचुः	नगरवासी कहने लगे
अहो गोप्यः	'अहो, गोपियोंने
किं महत् तपः	क्या महान तपस्या
अचरन्	की है कि
या हि एताः	जो कि इन दोनों
नरलोक महोत्सवौ	सम्पूर्ण पृथ्वीके परमानन्द दाताओंको
अनुपश्यन्ति	बराबर देखती हैं ॥३१॥

रजकं कञ्चिदायान्तं रङ्गकारं गदाग्रजः ।
दृष्ट्वायाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानि च ॥३२॥

रजकं कञ्चित् आयान्तं रङ्गकारं गद अग्रजः दृष्ट्वा याचत वासांसि धौतानि उत्तमानि च ॥३२॥

गद अग्रजः	गदके बड़े भाई श्रीकृष्णने
कञ्चित्	किसी
रङ्गकारं रजकं	रंगरेज-धोबीको
आयान्तं दृष्टवा	आते देखकर (उससे)
धौतानि च	धुले हुए तथा
उत्तमानि	उत्तम
वासांसि याचत	वस्त्र मांगे ॥३२॥

देह्यावयोः समुचितान्यङ्ग वासांसि चार्हतोः ।
भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते नात्र संशयः ॥३३॥

देहि आवयोः समुचितानि अङ्ग वासांसि च अर्हतः भविष्यति परं श्रेयः दातुः ते न अत्र संशयः ॥३३॥

अंग अर्हतः	प्रिय, हम तुम्हारे पूज्य भी हैं	**वासांसि देहि**	वस्त्र दो
आवयोः	हम लोगोंको	**ते दातुः**	तुम देनेवालेका
समुचितानि	हमारे लिए (अंगोंमें आनेके) योग्य	**परं श्रेयः**	परम कल्याण
		भविष्यति	होगा,
		अत्र संशयः न	इसमें सन्देह नहीं ॥३३॥

स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वतः ।
साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यो राज्ञः सुदुर्मदः ॥३४॥

स याचितः भगवता परिपूर्णेन सर्वतः साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यः राज्ञः सुदुर्मदः ॥३४॥

सर्वतः परिपूर्णेन	सब ओरसे परिपूर्ण	**राज्ञः भृत्यः**	राजसेवक
भगवता	भगवानके द्वारा	**रुषितः साक्षेपं**	कुपित होकर आक्षेप करता हुआ
याचितः	मांगे जानेपर		
स सुदुर्मदः	वह अत्यन्त घमण्डी	**प्राह**	बोला ॥३४॥

ईदृशान्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचराः ।
परिधत्त किमुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ ॥३५॥

ईदृशानि एव वासांसि नित्यं गिरि वनेचराः परिधत्त किं उद्वृत्ता राज द्रव्याणि अभीप्सथ ॥३५॥

गिरि वनेचराः	पर्वत और वनोंमें रहनेवालो !	**किं**	क्या
		ईदृशानि एव	ऐसे ही

वासांसि नित्यं	वस्त्र सदा	**राज द्रव्याणि**	राजाका धन
परिधत्त	पहिनते हो ?	**अभीप्सथ**	चाहने लगे हो !
उद्वृत्ता	उद्‌ण्डो !		॥३५॥

यताशु बालिशा मैवं प्रार्थ्यं यदि जिजीविषा ।
बध्नन्ति घ्नन्ति लुम्पन्ति दृप्तं राजकुलानि वै ॥३६॥

यात आशु बालिशा मा एवं प्रार्थ्यं यदि जिजीविषा बध्नन्ति घ्नन्ति लुम्पन्ति दृप्तं राजकुलानि वै ॥३६॥

बालिशा	मूर्खो !	**वै राजकुलानि**	निश्चय राज्य कर्मचारी
आशु यात	शीघ्र चले जाओ,	**दृप्तं**	उच्छृखलोंको
यदि जिजीविषा	यदि जीनेकी इच्छा हो तो	**बध्नन्ति**	बन्दी बना लेते हैं,
मा एवं प्रार्थ्यं	(फिर) ऐसी प्रार्थना मत करना,	**घ्नन्ति**	मार देते हैं या
		लुम्पन्ति	लूट लेते हैं ॥३६॥

एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः ।
रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ॥३७॥

एवं विकत्थमानस्य कुपितः देवकीसुतः रजकस्य कर अग्रेण शिरः कायात् अपातयत् ॥३७॥

एवं	इस प्रकार	**देवकीसुतः**	भगवान देवकी-नन्दनने
विकत्थमानस्य	बकवाद करते	**कर अग्रेण**	हाथके अगले भागसे
रजकस्य शिरः	धोबीका सिर	**कायात्**	शरीरसे
कुपितः	कुपित	**अपातयत्**	गिरा दिया ॥३७॥

तस्यानुजीविनः सर्वे वासः कोशान् विसृज्य वै ।
दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः ॥३८॥

तस्य अनुजीविनः सर्वे वासः कोशान् विसृज्य वै दुद्रुवुः सर्वतः मार्गं वासांसि जगृहे अच्युतः ॥३८॥

तस्य सर्वे	उसके सब	**विसृज्य**	फेंक कर
अनुजीविनः	अधीन जीविका चलानेवाले	**सर्वतः मार्गं**	चारों ओरके मार्गोंसे
		दुद्रुवुः	भाग गये,
वै वासः	निश्चित रूपसे सब वस्त्रों और	**अच्युतः**	श्रीकृष्णने
		वासांसि जगृहे	वस्त्र ले लिये
कोशान्	धनको		॥३८॥

वसित्वाऽऽत्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः संकर्षणस्तथा ।
शेषाण्यादत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित् ॥३९॥

वसित्वा आत्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः सङ्कर्षणः तथा शेषाणि आदत्त गोपेभ्यः विसृज्य भुवि कानिचित् ॥३९॥

कृष्णः तथा	श्रीकृष्ण और	**भुवि विसृज्य**	पृथ्वीपर डालकर
सङ्कर्षणः	बलरामने	**शेषाणि**	बचे हुओंको
आत्मप्रिये	अपनी पसन्दके	**गोपेभ्यः**	गोप-बालकोंको
वस्त्रे वसित्वा	वस्त्रोंको पहिनकर	**आदत्त**	दे दिया ॥३९॥
कानिचित्	किन्हींको		

ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत् ।
विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपतः ॥४०॥

ततः तु वायकः प्रीतः तयोः वेषं अकल्पयत् विचित्र वर्णैः चैलेयैः आकल्पैः अनुरूपतः ॥४०॥

ततः तु	उसके बाद ही	**विचित्र वर्णैः**	उन अनेक रंगोंके
वायकः प्रीतः	एक दर्जीने प्रसन्न होकर	**चैलेयैः**	रेशमी वस्त्रोंसे
		तयोः वेषं	उनका वेष
आकल्पैः	(उनके) मापके	**अकल्पयत्**	सजा दिया ॥४०॥
अनुरूपतः	(उनके वर्णोंके) अनुकूल		

नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः ।
स्वलङ्कृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ ॥४१॥

नाना लक्षण वेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः स्वलङ्कृतौ बालगजौ पर्वणि इव सित इतरौ ॥४१॥

नाना लक्षण	अनेक रंगों एवं ढंगके	**सित इतरौ**	श्वेत और उससे भिन्न (श्याम)
वेषाभ्यां	वेषसे	**बालगजौ**	हाथीके बच्चों
कृष्णरामौ	श्रीकृष्ण और बलराम	**इव**	के समान
पर्वणि	उत्सवके समय	**विरेजतुः**	शोभित हुए ॥४१॥
स्वलङ्कृतौ	सजाये गये		

तस्य प्रसन्नो भगवान् प्रादात् सारूप्यमात्मनः ।
श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतीन्द्रियम् ॥४२॥

तस्य प्रसन्नः भगवान् प्रादात् सारूप्यं आत्मनः श्रियं च परमां लोके बल ऐश्वर्य स्मृति इन्द्रियम् ॥४२॥

तस्य प्रसन्नः	उस (दर्जीपर) प्रसन्न होकर	**स्मृति**	स्मरण शक्ति
भगवान्	भगवानने	**इन्द्रियं**	इन्द्रिय शक्ति (तथा मरनेपर)
लोके च	इस लोकमें तो	**आत्मनः**	अपना
परमां श्रियं	परम लक्ष्मी,	**सारूप्यं**	सारूप्य मोक्ष
बल ऐश्वर्य	बल, ऐश्वर्य	**प्रादात्**	प्रदान किया ॥४२॥

ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः ।
तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥४३॥

ततः सुदाम्नः भवनं माला कारस्य जग्मतुः तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥४३॥

ततः सुदाम्नः	फिर सुदामा	स समुत्थाय	उसने उठकर
माला कारस्य	मालीके	भुवि शिरसा	पृथ्वीपर सिर
भवनं जग्मतुः	घर गये		रखकर
तौ दृष्ट्वा	उन दोनों भाइयों-को देखकर	ननाम	प्रणाम किया ॥४३॥

तयोरासनमानीय पाद्यं चार्घ्यार्हणादिभिः ।
पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः ॥४४॥

तयोः आसनं आनीय पाद्यं च अर्घ्यं अर्हण आदिभिः पूजां स अनुगयोः चक्रे स्रक् ताम्बूल अनुलेपनैः ॥४४॥

तयोः आसनं	उनको आसनपर	आदिभिः	आदिसे
आनीय	ला (बैठा) कर	स अनुगयोः	उसने अनुचरोंके
पाद्यं अर्घ्यं	पाद्य, अर्घ्यं,		साथ
स्रक् ताम्बूल	माला, पान,	पूजां चक्रे	(उनकी) पूजा की
अनुलेपनैः	चन्दन,		॥४४॥
च अर्हण	तथा पूजा-द्रव्य (धूप-दीप)		

प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो ।
पितृदेवर्षयो मह्यं तुष्टा ह्यागमनेन वाम् ॥४५॥

प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो पितृदेव ऋषयः मह्यं तुष्टा हि आगमनेन वाम् ॥४५॥

प्राह	बोला—	हि वां	निश्चय आप दोनोंके
प्रभो नः जन्म	प्रभो ! मेरा जन्म	आगमनेन	पधारनेसे
सार्थकं च	सार्थक और	मह्यं पितृदेव	मेरे पितर, देवता
कुलं पावितं	कुलको (आपने) पवित्र कर दिया	ऋषयः	ऋषिगण
		तुष्टा	सन्तुष्ट हो गये ॥४५॥

भवन्तौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम् ।
अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवाय च ॥४६॥

भवन्तौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परं अवतीर्णौ इह अंशेन क्षेमाय च भवाय च ॥४६॥

किल भवन्तौ	अहो, आप दोनों
विश्वस्य	विश्वके
परं कारणं	परम कारण
जगतः क्षेमाय	संसारके कल्याणके
च भवाय च	तथा अभ्युदयके लिए भी
इह अंशेन	यहां (मथुरामें) अंशों सहित
अवतीर्णौ	अवतरित हुए हैं ॥४६॥

नहि वां विषमा दृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः ।
समयोः सर्वभूतेषु भजन्तं भजतोरपि ॥४७॥

न हि वां विषमा दृष्टिः सुहृदः जगत् आत्मनः समयोः सर्वभूतेषु भजन्तं भजतः अपि ॥४७॥

भजन्तं	भजन करनेवालेसे
भजतः अपि	प्रेम करते हुए भी
हि	क्योंकि
जगत् आत्मनः	विश्वात्मा
सुहृदः	सर्व सुहृद,
सर्वभूतेषु	सब प्राणियोंके प्रति
समयोः	समान हैं,
वां विषमा	आप दोनोंकी विषम
दृष्टिः न	दृष्टि नहीं है ॥४७॥

तावाज्ञापयतं भृत्यं किमहं करवाणि वाम् ।
पुंसोऽत्यनुग्रहो ह्येष भवद्भिर्यन्नियुज्यते ॥४८॥

ताः आज्ञापयतं भृत्यं किं अहं करवाणि वां पुंसः अति अनुग्रहः हि एष भवद्भ्यां यत् नियुज्यते ॥४८॥

ताः भृत्यं	इसलिए इस सेवकको
आज्ञापयतं	आज्ञा दीजिए
अहं वां	मैं आप दोनोंकी
किं करवाणि	क्या सेवा करूं ?
हि पुंसः	क्योंकि पुरुषपर
एष अति	यह आपकी महती
अनुग्रहः	कृपा है
यत् भवद्भ्यां	यदि आपके द्वारा
नियुज्यते	(किसी सेवामें) नियुक्त किया जाय ॥४८॥

इत्यभिप्रेत्य राजेन्द्र सुदामा प्रीतमानसः ।
शस्तैः सुगन्धैः कुसुमैर्माला विरचिता ददौ ॥४९॥

इति अभिप्रेत्य राजेन्द्र सुदामा प्रीत मानसः शस्तैः सुगन्धैः कुसुमैः माला विरचिता ददौ ॥४९॥

राजेन्द्र	महाराज !	शस्तैः सुगन्धैः	उत्तम सुगन्धित
इति अभिप्रेत्य	इस प्रकार (अपना) अभिप्राय कहकर	कुसुमैः	पुष्पोंसे
		विरचिता	निर्मित
प्रीत मानसः	प्रसन्न चित्त	माला ददौ	माला प्रदान की ॥४९॥
सुदामा	सुदामाने		

ताभिः स्वलङ्कृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहानुगौ ।
प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान् ॥५०॥

ताभिः स्वलङ्कृतौ प्रीतौ रामकृष्णौ सह अनुगौ प्रणताय प्रपन्नाय ददतुः वरदौ वरान् ॥५०॥

ताभिः	उन (मालाओं)से	वरदौ प्रीतौ	उन वरदाताने प्रसन्न होकर
सह अनुगौ	अनुचरोंके साथ		
रामकृष्णौ	बलराम तथा श्रीकृष्ण	प्रणताय	उस विनम्र
		प्रपन्नाय	शरणागतको
स्वलङ्कृतौ	भली-भांति अलंकृत होकर	वरान् ददतुः	वरदान दिये ॥५०॥

सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि ।
तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥५१॥

सः अपि वव्रे अचलां भक्तिं तस्मिन् एव अखिल आत्मनि तत् भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥५१॥

सः अपि	उसने भी	अचलां भक्तिं	अचला भक्ति
तस्मिन् एव	उन्हीं	च तत् भक्तेषु	तथा उनके भक्तोंसे
अखिल आत्मनि	सर्वात्मामें	सौहार्दं	मित्रता

च भूतेषु	और प्राणियोंके प्रति	परां दयां ववे	परम दया मांगी ॥५१॥

इति तस्मै वरं दत्त्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम् ।
बलमायुर्यशः कान्ति निर्जगाम सहाग्रजः ॥५२॥

इति तस्मै वरं दत्त्वा श्रियं च अन्वय वर्धिनीं बलं आयुः यशः कान्ति निर्जगाम सह अग्रजः ॥५२॥

तस्मै इति वरं	उसको इस प्रकारके वरदान	आयुः यशः	आयु, यश,
च अन्वय	तथा वंश परम्परामें	कान्ति दत्त्वा	कान्ति देकर
वर्धिनीं	बढ़नेवाली	सह अग्रजः	बड़े भाईके साथ
श्रियं बलं	लक्ष्मी, बल,	निर्जगाम	(वहांसे) निकले ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पुरप्रवेशो नाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥५२॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अथ व्रजन् राजपथेन माधवः
स्त्रियं गृहीताङ्गविलेपभाजनाम् ।
विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां
पप्रच्छ यान्तीं प्रहसन् रसप्रदः ॥ १ ॥

अथ व्रजन् राजपथेन माधवः स्त्रियं गृहीता अङ्ग विलेप भाजनां विलोक्य कुब्जां युवतीं वर आननां पप्रच्छ यान्तीं प्रहसन् रसप्रदः ॥१॥

अथ राजपथेन	फिर राजमार्गसे	**युवतीं**	युवती
व्रजन्	जाते हुए	**वर आननां**	सुमुखी
रसप्रदः माधवः	प्रेमरसदाता श्री-कृष्णने	**कुब्जां**	कुबड़ीको
		यान्तीं विलोक्य	जाती हुई देखकर
अंग विलेप	अंगरागका	**प्रहसन् पप्रच्छ**	हँसते हुए पूछा
भाजनां	पात्र		॥१॥
गृहीता	लेकर		

का त्वं वरोर्वेतदु हानुलेपनं
कस्याङ्गने वा कथयस्व साधु नः ।
देह्यावयोरङ्गविलेपमुत्तमं
श्रेयस्ततस्ते नचिराद् भविष्यति ॥ २ ॥

का त्वं वरोरु एतत् उ ह अनुलेपनं कस्य अङ्गने वा कथयस्व साधु नः देहि आवयोः अङ्ग विलेपं उत्तमं श्रेयः ततः ते न चिरात् भविष्यति ॥२॥

वरोरु	'सुन्दरी !	**कस्य अङ्गने**	किसकी पत्नी हो
त्वं का	तुम कौन हो ?	**वा एतत् उ**	अथवा यह जो

अनुलेपनं ह	अंगराग है (किसके लिए है ?)
नः साधु	हमको भली प्रकार
कथयस्व	बतलाओ,
उत्तमं	(यह) उत्तम
अङ्ग विलेपं	अंगराग
आवयोः देहि	हम लोगोंको दो,
ततः ते श्रेयः	इससे तुम्हारा कल्याण
नचिरात्	अविलम्ब
भविष्यति	होगा' ॥२॥

सैरन्ध्र्युवाच

दास्यस्म्यहं सुन्दर कंससम्मता
त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि ।
मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं
विना युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति ॥ ३ ॥

दासि अस्मि अहं सुन्दर कंस सम्मता त्रिवक्रनामा हि अनुलेप कर्मणि मत् भावितं भोजपतेः अतिप्रियं विना युवां कः अन्यतमः तत् अर्हति ॥३॥

सुन्दर	सुन्दर !
हि मत् भावितं	क्योंकि मेरा बनाया (अंगराग)
भोजपतेः	भोजराज कंसको
अतिप्रियं	बहुत प्रिय है
अनुलेप कर्मणि	अंगराग बनानेके कर्मकी
त्रिवक्रनामा	त्रिवक्रा नामकी
अहं कंस	मैं कंसकी
सम्मता	प्रिय
दासि अस्मि	दासी हूँ
विना युवां	आप दोनोंको छोड़कर
अन्यतमः कः	भला दूसरा कोई कौन
तत् अर्हति	इसका अधिकारी है ॥३॥

श्रीशुक उवाच*

रूपपेशलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः ।
धर्षितात्मा ददौ सान्द्रमुभयोरनुलेपनम् ॥ ४ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

रूपपेशल माधुर्यं हसित आलाप वीक्षितैः धर्षित आत्मा ददौ सान्द्रं उभयोः अनुलेपनम् ॥४॥

रूपपेशल	सौन्दर्य, सौकुमार्य	**धर्षित आत्मा**	उन्मथित चिन्ता (उसने)
माधुर्यं	मधुरिमा,	**उभयोः**	दोनों भाइयोंको
हसित आलाप	हास्य, बोलनेके ढंग तथा	**सान्द्रं अनुलेपनं**	गीला अंगराग
वीक्षितैः	देखनेसे	**ददौ**	दे दिया ॥४॥

ततस्तावङ्गरागेण स्ववर्णेतरशोभिना ।
सम्प्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरञ्जितौ ॥ ५ ॥

ततः ताः अङ्गरागेण स्ववर्ण इतर शोभिना सम्प्राप्त परभागेन शुशुभाते अनुरञ्जितौ ॥५॥

ततः ताः	तब उस	**अङ्गरागेण**	अंगरागसे
स्ववर्ण इतर	अपने रंगके भिन्न (रंगके)	**अनुरञ्जितौ**	रञ्जित होकर
शोभिना	शोभा देनेवाले	**शुशुभाते**	बहुत शोभित हुए ॥५॥
परभागेन-	शरीरके (कमरसे)		
सम्प्राप्त	ऊपरी भागपर लगे		

प्रसन्नो भगवान् कुब्जां त्रिवक्रां रुचिराननाम् ।
ऋज्वीं कर्तुं मनश्चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम् ॥ ६ ॥

प्रसन्नः भगवान् कुब्जां त्रिवक्रां रुचिर आननां ऋज्वीं कर्तुं मनः चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम् ॥६॥

प्रसन्नः भगवान्	प्रसन्न होकर भगवान्ने	**त्रिवक्रां**	त्रिवक्रा
दर्शने फलं	अपने दर्शनका फल	**कुब्जां**	कूबड़ीको
दर्शयन्	दिखलाते हुए	**ऋज्वीं कर्तुं**	सीधी कर देनेकी
रुचिर आननां	सुमुखी	**मनः चक्रे**	इच्छा की ॥६॥

पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्व्यंगुल्युत्तानपाणिना ।
प्रगृह्य चुबुकेऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः ॥ ७ ॥

पद्भ्यां आक्रम्य प्रपदे द्वि अंगुल उत्तान पाणिना प्रगृह्य चुबुके अध्यात्मं उदनीनं नमत् अच्युतः ॥७॥

पद्भ्यां प्रपदे	अपने पैरोंसे (उसके) पञ्जे	**चुबुके प्रगृह्य**	ठोढ़ी पकड़कर
आक्रम्य	दबाकर	**अध्यात्मम्**	शरीरसे
द्वि अंगुल	दो अंगुली	**उदनीनं**	झुकी हुई (कुब्जा) को
उत्तान	ऊपर उठाये	**अच्युतः**	श्रीकृष्णने
पाणिना	हाथसे	**नमत्**	उचका दिया ॥७॥

सा तदर्जुसमानाङ्गी बृहच्छ्रोणिपयोधरा ।
मुकुन्दस्पर्शनात् सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा ॥ ८ ॥

सा तत् ऋजु समान अङ्गी बृहत् श्रोणि पयोधरा मुकुन्द स्पर्शनात् सद्यः बभूव प्रमदा उत्तमा ॥८॥

मुकुन्द तत्	मुकुन्दके उस	**बृहत् श्रोणि**	बड़े नितम्ब एवं
स्पर्शनात्	स्पर्शसे	**पयोधरा**	कुचों वाली
सा सद्यः	वह तत्काल	**प्रमदा उत्तमा**	सुन्दरी श्रेष्ठा
ऋजु समान	सीधे समान	**बभूव**	हो गयी ॥८॥
अङ्गी	अंगवाली		

ततो रूपगुणौदार्यसम्पन्ना प्राह केशवम् ।
उत्तरीयान्तमाकृष्य स्मयन्ती जातहृच्छया ॥ ९ ॥

ततः रूपगुण औदार्य सम्पन्ना प्राह केशवं उत्तरीयान्तं आकृष्य स्मयन्ती जातहृच्छया ॥९॥

ततः रूपगुण	तब रूप, गुण,	**जातहृच्छया**	मिलनेच्छा उत्पन्न हो जानेसे
औदार्य	उदारतासे	**उत्तरीयान्तं**	पटुकेका छोर
सम्पन्ना	सम्पन्न होकर		

आकृष्य	खींचकर	**केशवं प्राह**	श्रीकृष्णसे बोली ॥६॥
स्मयन्ती	मुस्कराती हुई		

एहि वीर गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ।
त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ ॥१०॥

एहि वीर गृहं यामः न त्वां त्यक्तुं इह उत्सहे त्वया उन्मथित चित्तायाः प्रसीद पुरुष ऋषभ ॥१०॥

वीर एहि	'वीरवर आओ !	**पुरुष ऋषभ**	पुरुष श्रेष्ठ
गृहं यामः	हम घर चलें,	**त्वया उन्मथित**	तुम्हारे लिए बेचैन
त्वां इह त्युक्तुं	तुमको यहां छोड़ देनेका	**चित्तायाः**	चित्त वाली (मुझ) पर
उत्सहे न	(मुझमें) उत्साह नहीं है ।	**प्रसीद**	प्रसन्न हो जाओ' ॥१०॥

एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो रामस्य पश्यतः ।
मुखं वीक्ष्यानुगानां च प्रहसंस्तामुवाच ह ॥११॥

एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णः रामस्य पश्यतः मुखं वीक्ष्य अनुगानां च प्रहसन् तां उवाच ह ॥११॥

एवं स्त्रिया	इस प्रकार स्त्रीके द्वारा	**अनुगानां**	अनुचरोंके
रामस्य पश्यतः	बलरामजीके देखते-हुए	**मुखं च**	मुखोंको भी
याच्यमानः	प्रार्थना किये जाने-पर	**प्रहसन्**	हँसते हुए
		वीक्ष्य	देखकर
		तां ह उवाच	उससे निश्चयपूर्वक बोले ॥११॥

एष्यामि ते गृहं सुभ्रूः पुंसामाधिविकर्शनम् ।
साधितार्थोऽगृहाणां नः पान्थानां त्वं परायणम् ॥१२॥

एष्यामि ते गृहं सुभ्रूः पुंसां आधि विकर्शनं साधित अर्थः अगृहाणां नः पान्थानां त्वं परायणम् ॥१२॥

सुभ्रूः सुन्दर भौहों वाली !
पुंसां आधि पुरुषोंकी मानसिक व्याधि
विकर्शनं दूर करनेवाले
ते गृहं तुम्हारे घर
साधित अर्थः अपना प्रयोजन पूरा करके
एष्यामि आऊँगा,
त्वं नः अगृहानां तुम हम गृहहीन
पान्थानां पथिकोंका
परायणं आश्रय हो ॥१२॥

विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन् मार्गे वणिक्पथैः ।
नानोपायनताम्बूलस्रग्गन्धैः साग्रजोऽर्चितः ॥१३॥

विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन् मार्गे वणिक् पथैः नाना उपायन ताम्बूल स्रक् गन्धैः साग्रजः अर्चितः ॥१३॥

माध्व्या वाण्या मधुर वाणीसे
तां विसृज्य उसे विदा करके,
वणिक् पथैः बाजारके मार्गमें
व्रजन् जाते हुए
नाना उपायन अनेक प्रकारके उपहार,
ताम्बूल स्रक् पान, माला,
गन्धैः साग्रजः चन्दनसे बड़े भाईके साथ
अर्चितः पूजित होते रहे ॥१३॥

तद्दर्शनस्मरक्षोभादात्मानं नाविदन् स्त्रियः ।
विस्रस्तवासःकबरवलयालेख्यमूर्तयः ॥१४॥

तत् दर्शन स्मर क्षोभात आत्मानं न अविदन् स्त्रियः विस्रस्तवासः कबर वलय आलेख्य मूर्तयः ॥१४॥

तत् दर्शन उनके दर्शनसे
स्मर क्षोभात कामावेशके कारण
स्त्रियः आत्मानं स्त्रियां अपने
विस्रस्तवासः अस्त-व्यस्त वस्त्र,
कबर वलय जूड़े, कंकणको
न अविदन् नहीं जान पाती थीं,
आलेख्य चित्रांकित
मूर्तयः मूर्तियों जैसी (रह जाती थीं) ॥१४॥

ततः पौरान् पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः ।
तस्मिन् प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम् ॥१५॥

ततः पौरान् पृच्छमानः धनुषः स्थानं अच्युतः तस्मिन् प्रविष्टः ददृशे धनुः इन्द्रं इव अद्भुतम् ॥१५॥

ततः अच्युतः	फिर श्रीकृष्णने	**इन्द्रं धनुः इव**	इन्द्र धनुषकी भांति
पौरान्	नगरवासियोंसे	**अद्भुतं**	अद्भुत (धनुष)को
धनुषः स्थानं	धनुषका स्थान	**ददृशे**	देखा ॥१५॥
पृच्छमानः	पूछते हुए		
तस्मिन् प्रविष्टः	उस (स्थान) में प्रवेश करके		

पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धिमत् ।
वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे ॥१६॥

पुरुषैः बहुभिः गुप्तं अर्चितं परम ऋद्धिमत् वार्यमाणः नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुः आददे ॥१६॥

परम ऋद्धिमत्	बहुत सम्पत्ति (रत्नादि) लगे,	**नृभिः**	मनुष्यों (रक्षकों)के
अर्चितं	पूजित,	**वार्यमाणः**	रोकनेपर भी
बहुभिः पुरुषैः	बहुतसे पुरुषों द्वारा	**कृष्णः प्रसह्य**	श्रीकृष्णने बलात्कारसे
गुप्तं धनुः	रक्षित धनुषको	**आददे**	उठा लिया ॥१६॥

करेण वामेन सलीलमुद्धृतं
सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यताम् ।
नृणां विकृष्य प्रबभञ्ज मध्यतो
यथेक्षुदण्डं मदकर्युरुक्रमः ॥१७॥

करेण वामेन सलीलं उद्धृतं सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यतां नृणां विकृष्य प्रबभञ्ज मध्यतः यथा इक्षुदण्डं मदकरि उरुक्रमः ॥१७॥

वामेन करेण	बायें हाथसे
सलीलं उद्धृतं	खेलमें उठाये गये
च सज्यं कृत्वा	तथा (उसे) प्रत्यञ्चायुक्त करके
नृणां पश्यतां	(रक्षक) मनुष्योंके देखते हुए
निमिषेण	पलभरमें
विकृष्य	खींचकर
मध्यतः	बीचसे
प्रबभञ्ज	तोड़ दिया
यथा उरुक्रमः	जैसे बहुत पराक्रमवाला
मद करि	मतवाला हाथी
इक्षुदण्ड	ईखके डण्डेको (तोड़ दे) ॥१७॥

धनुषो भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः ।
पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥१८॥

धनुषः भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः पूरयामास यं श्रुत्वा कंसः त्रासं उपागमत् ॥१८॥

धनुषः	धनुषके
भज्यमानस्य	टूटनेके
शब्दः	शब्दने
खं रोदिसी	आकाश, पृथ्वी
दिशः	दिशाओंको
पूरयामास	भर दिया,
यं श्रुत्वा	जिसे सुनकर
कंसः	कंस
त्रासं उपागमत्	भयभीत हो गया ॥१८॥

तद्रक्षिणः सानुचराः कुपिता आततायिनः ।
ग्रहीतुकामा आवव्रुह्यर्गृतां बध्यतामिति ॥१९॥

तत् रक्षिणः सः अनुचराः कुपिता आततायिनः ग्रहीतुकामा आवव्रुः गृह्यतां बध्यतां इति ॥१९॥

तत् रक्षिणः	उस (धनुष)के रक्षक
ग्रहीतुकामा	घेरकर
सः अनुचराः	वे (कंसके) सेवक
आततायिनः	आक्रमण करनेवाले (आततायी)
कुपिता	कुपित होकर
इति आवव्रुः	इस प्रकार चिल्लाने लगे
गृह्यतां	'पकड़ लो !
बध्यतां	बाँध लो !' ॥१९॥

अथ तान् दुरभिप्रायान् विलोक्य बलकेशवौ ।
क्रुद्धौ धन्वन आदाय शकले तांश्च जघ्नतुः ॥२०॥

अथ तान् दुःअभिप्रायान् विलोक्य बलकेशवौ क्रुद्धौ धन्वनि आदाय शकले तान् च जघ्नतुः ॥२०॥

अथ तान्	फिर उनको	**क्रुद्धौ**	क्रोधमें भरकर
दुःअभिप्रायान्	बुरे अभिप्रायवाले	**धन्वनि शकले**	धनुषके टुकड़ोंको
विलोक्य	देखकर	**आदाय तान् च**	लेकर उनको भी
बलकेशवौ	बलराम और श्रीकृष्ण	**जघ्नतुः**	मार दिया ॥२०॥

बलं च कंसप्रहितं हत्वा शालामुखात्ततः ।
निष्क्रम्य चेरतुर्हृष्टौ निरीक्ष्य पुरसम्पदः ॥२१॥

बलं च कंसप्रहितं हत्वा शाला मुखात् ततः निष्क्रम्य चेरतुः हृष्टौ निरीक्ष्य पुरसम्पदः ॥२१॥

कंसप्रहितं	कंसकी भेजी हुई	**पुरसम्पदः**	नगरकी सम्पत्ति
बलं च हत्वा	सेनाको भी मारकर	**निरीक्ष्य हृष्टौ**	देखकर प्रसन्न होकर
ततः शाला	फिर धनुषशालाके	**चेरतुः**	विचरण करने लगे ॥२१॥
मुखात्	द्वारसे		
निष्क्रम्य	निकलकर		

तयोस्तदद्भुतं वीर्यं निशाम्य पुरवासिनः ।
तेजः प्रागल्भ्यं रूपं च मेनिरे विबुधोत्तमौ ॥२२॥

तयोः तत् अद्भुतं वीर्यं निशाम्य पुरवासिनः तेजः प्रागल्भ्यं रूपं च मेनिरे विबुध उत्तमौ ॥२२॥

तयोः तत्	उनके उस	**पुरवासिनः**	नगरवासियोंने (उन्हें)
अद्भुतं वीर्यं	अदभुत पराक्रम,	**विबुध उत्तमौ**	देवश्रेष्ठ
तेजः प्रगल्भ्यं	तेज, साहस,	**मेनिरे**	मान लिया ॥२२॥
च रूपं निशाम्य	तथा सौन्दर्यको देखकर		

तयोर्विचरतोः स्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान् ।
कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुराच्छकटमीयतुः ॥२३॥

तयोः विचरतोः स्वैरं आदित्यः अस्तं उपेयिवान् कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुरात् शकटं ईयतुः ॥२३॥

तयोः स्वैरं	उनके स्वच्छन्द	**कृष्णरामौ**	श्रीकृष्ण-बलराम
विचरतोः	विचरण करते हुए	**गोपैः वृतौ**	गोप बालकोंसे घिरे
आदित्यः	सूर्य	**पुरात्**	नगरसे
अस्तं उपेयिवान्	अस्ताचल पहुँच गया (तब)	**शकटं ईयतु**	छकड़ोंके पास आये ॥२३॥

गोप्यो मुकुन्दविगमे विरहातुरा या
आशासताशिष ऋता मधुपुर्यभूवन् ।
सम्पश्यतां पुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं
हित्वेतरान् नु भजतश्चकमेऽयनं श्रीः ॥२४॥

गोप्यः मुकुन्द विगमे विरह आतुरा या आशासत आशिष ऋता मधुपुरि अभूवन् सम्पश्यतां पुरुषभूषण गात्रलक्ष्मीं हित्वा इतरान् नु भजतः चक्रमे अयनं श्रीः ॥२४॥

नु भजतः	निश्चय चाहनेवाले	**पुरुषभूषण**	पुरुषभूषण (श्रीकृष्ण)के
इतरान्	दूसरोंको	**गात्रलक्ष्मीं**	शरीरकी शोभा
हित्वा श्रीः	छोड़कर लक्ष्मीने	**सम्पश्यतां**	देखनेवाले
अयनं चकमे	अपना निवास बनाया	**मधुपुरि**	मथुरावासियोंके लिए
मुकुन्द विगमे	(उन) मुकुन्दके प्रस्थानके समय	**ऋता अभूवन्**	(वे सब) सच हो गयीं ॥२४॥
विरह आतुरा	विरह-व्याकुला		
गोप्यः या	गोपियोंने जो		
आशिष	सम्भावनाएँ		
आशासत	सम्भावित की थीं		

अवनिक्ताङ्घ्रियुगलौ भुक्त्वा क्षीरोपसेचनम् ।
ऊषतुस्तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा कंसचिकीर्षितम् ॥२५॥

अवनिक्त अंघ्रि युगलौ भुक्त्वा क्षीर उपसेचनं ऊषतुः तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा कंस चिकीर्षितञ्च ॥२५॥

अंघ्रि युगलौ	दोनों चरण	**ज्ञात्वा**	जानकर
अवनिक्त	धोकर	**तां रात्रिं**	उस रात
क्षीर उपसेचनं	दूधसे बने पदार्थ (खीर आदि)	**सुखं ऊषतुः**	सुखपूर्वक सो गये ॥२५॥
भुक्त्वा	खाकर		
कंस चिकीर्षितं	कंसकी (आगे) करनेकी इच्छा		

कंसस्तु धनुषो भङ्गं रक्षिणां स्वबलस्य च ।
वधं निशम्य गोविन्दरामविक्रीडितं परम् ॥२६॥

कंसः तु धनुषः भङ्गं रक्षिणां स्वबलस्य च वधं निशम्य गोविन्द राम विक्रीडितं परम् ॥२६॥

कंसः तु	कंसने तो	**रक्षिणां च**	रक्षकों तथा
गोविन्द राम	श्रीकृष्ण-बलरामकी	**स्वबलस्य**	अपनी सेनाका
परम् विक्रीडितं	सहज क्रीड़ामें	**वधं निशम्य**	मारा जाना सुनकर ॥२६॥
धनुषः भङ्गं	धनुषका टूटना,		

दीर्घप्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः ।
बहून्यचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणि च ॥२७॥

दीर्घ प्रजागरः भीतः दुर्निमित्तानि दुर्मतिः बहूनि अचष्ट उभयथा मृत्योः दौत्य कराणि च ॥२७॥

दुर्मतिः भीतः	वह दुर्बुद्धि डर गया,	**दीर्घ प्रजागरः**	देर तक जागता रह गया,

उभयथा	दोनों (जागते तथा (स्वप्न)में होनेवाले	**बहूनि**	बहुतसे
च मृत्योः	तथा मृत्युकी	**दुर्निमित्तानि**	अपशकुन
दौत्य कराणि	सूचना देनेवाले	**अचष्ट**	देखने लगा ॥२७॥

अदर्शनं स्वशिरसः प्रति रूपे च सत्यपि ।
असत्यपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा ॥२८॥

अदर्शनं स्वशिरसः प्रति रूपे च सति अपि असति अपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा ॥२८॥

प्रति रूपे	प्रतिबिम्ब या छायाके	**द्वितीये**	दूसरी
सति अपि च	पड़नेपर भी	**असति अपि च**	कोई आड़ न होने-पर भी
स्वशिरसः	उसमें अपना सिर	**ज्योतिषां द्वैरूप्यं**	तारोंका दुहरा रूप दीखता है ॥२८॥
अदर्शनं	नहीं दीखता है		
तथा	और		

छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः ।
स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥२९॥

छिद्रप्रतीतिः छायायां प्राणघोष अनुपश्रुतिः स्वर्णप्रतीतिः वृक्षेषु स्वपदानां अदर्शनम् ॥२९॥

छायायां	अपनी छायामें	**स्वर्णप्रतीतिः**	सुनहलापन लगता है,
छिद्रप्रतीतिः	छेद लगते हैं,	**स्वपदानां**	अपने पैरोंका चिह्न (रेतमें या भीगे हों तो भूमिपर)
प्राणघोष	(कानोंमें अंगुली डालनेपर) प्राणोंकी गूंज	**अदर्शनम्**	नहीं दीखते ॥२९॥
अनुपश्रुतिः	सुनायी नहीं देती,		
वृक्षेषु	वृक्षोंमें		

स्वप्ने प्रेतपरिष्वङ्गः खरयानं विषादनम् ।
यायान्नलदमाल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ॥३०॥

स्वप्ने प्रेतपरिष्वङ्गः खरयानं विष अदनं यायात् अनलद माल्य एकः तैल अभ्यक्तः दिगम्बरः ॥३०॥

स्वप्ने	स्वप्नमें (देखता है कि)
प्रेतपरिष्वङ्गः	मेरे लोग आलिंगन कर रहे हैं,
खरयानं	गधेपर बैठा है,
विष अदनं	विष खा रहा है,
अनलदमाल्य	जपा कुसुम (अंगार जैसे पुष्पों)की माला पहिने
तैल अभ्यक्तः	तेल लगाये
दिगम्बरः	नग्न
एकः यायात्	अकेला (कहीं) जा रहा है ॥३०॥

अन्यानि चेत्थंभूतानि स्वप्नजागरितानि च ।
पश्यन् मरणसन्त्रस्तो निद्रां लेभे न चिन्तया ॥३१॥

अन्यानि च इत्थं भूतानि स्वप्न जागरितानि च पश्यन् मरण सन्त्रस्तः निद्रां लेभे न चिन्तया ॥३१॥

इत्थं भूतानि	इसी प्रकारके
अन्यानि च	दूसरे भी
स्वप्न	स्वप्नमें तथा
जागरितानि	जागते हुए (होने-वाले)
पश्यन्	(अपशकुनोंको) देखकर
मरण सन्त्रस्तः	मृत्युसे भयभीत
चिन्तया	चिन्ताके कारण
निद्रां न लेभे	नींद नहीं ले सका ॥३१॥

व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चाद्भ्यः समुत्थिते ।
कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम् ॥३२॥

व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये च अद्भ्यः समुत्थिते कारयामास वै कंसः मल्लक्रीडा महोत्सवम् ॥३२॥

कौरव्य	परीक्षित !
निशि व्युष्टायां	रात्रि व्यतीत होने-पर
सूर्ये च	सूर्यके भी
अदभ्यः	जलसे
समुत्थिते	ऊपर उठ आनेपर

वै कंसः	निश्चय करके कंसने	**महोत्सवं**	महोत्सव
मल्लक्रीडा	पहलवानोंके खेल (कुश्ती)का	**कारयामास**	करवाया ॥३२॥

आनर्चुः पुरुषा रंगं तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ।
मञ्चाश्चालङ्कृताः स्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः ॥३३॥

आनर्चुः पुरुषा रंगं तूर्य भेर्यः च जघ्निरे मञ्चाः च अलंकृताः स्रक्भिः पताका चैल तोरणैः ॥३३॥

पुरुषा रंगं	राजसेवकोंने अखाड़ेको	**स्रक्भिः**	मालाओंसे
आनर्चुः	भलीभांति सजाया,	**पताका चैल**	पताका तथा रेशमी
तूर्य च भेर्यः	तुरही और नगाड़े	**तोरणैः**	वन्दनवारोंसे
जघ्निरे	बजाये जाने लगे,	**मञ्चाः च**	मञ्च भी
		अलंकृताः	सजाये गये ॥३३॥

तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः ।
यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः ॥३४॥

तेषु पौरा जानपदा ब्रह्म क्षत्र पुरः अगमाः यथा उपजोषं विविशू राजानः च कृत आसनाः ॥३४॥

तेषु पौरा	उन (मंचों) पर नगरवासी	**यथा उपजोषं च राजानः**	यथा स्थान तथा (सामन्त) राजा लोग
जानपदा	दूसरे ग्रामोंके आये लोग	**कृत आसनाः**	अपने सिंहासन रखवाकर
ब्रह्म क्षत्र	(जिनमें) ब्राह्मण, क्षत्रिय	**विविशू**	बैठ गये ॥३४॥
पुरः अगमाः	पहिले आये थे		

कंसः परिवृतोऽमात्यैः राजमञ्च उपाविशत् ।
मण्डलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता ॥३५॥

कंसः परिवृतः अमात्यैः राजमञ्च उपाविशत् मण्डलेश्वर मध्यस्थः हृदयेन विदूयता ॥३५॥

विदूयता	बहुत व्यथित	**मध्यस्थः**	बीचमें
हृदयेन	चित्तसे	**कंसः**	कंस
अमात्यैः	मन्त्रियोंसे	**राजमञ्च**	राज-सिंहासनपर
परिवृतः	घिरा हुआ	**उपाविशत्**	आकर बैठ गया
मण्डलेश्वर	सामन्त राजाओंके		॥३५॥

वाद्यमानेषु तूर्येषु मल्लतालोत्तरेषु च ।
मल्लाः स्वलङ्कृता दृप्ताः सोपाध्यायाः समाविशन् ॥३६॥

वाद्यमानेषु तूर्येषु मल्लताल उत्तरेषु च मल्लाः स्वलङ्कृता दृप्ताः स उपाध्यायाः समाविशन् ॥३६॥

मल्लताल	मल्लोंके ताल ठोंकनेके	**मल्लाः च**	पहलवान भी
उत्तरेषु च	उपरान्त ही	**स उपाध्यायाः**	अपने उस्तादोंके साथ
तूर्येषु	तुरहियोंके	**समाविशन्**	आकर बैठ गये
वाद्यमानेषु	बजाये जानेपर		॥३६॥
दृप्ताः	गर्विष्ठ		
स्वलङ्कृता	सजे-धजे		

चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च ।
त आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ॥३७॥

चाणूरः मुष्टिकः कूटः शलः तोशल एव च त आसेदुः उरुपस्थानं वल्गुवाद्य प्रहर्षिताः ॥३७॥

वल्गुवाद्य	बाजोंकी मधुर ध्वनिसे	**शलः च तोशल**	शल, तोशल
प्रहर्षिताः	हर्षित होकर	**एव उरुपस्थानं**	भी अखाड़ेके समीप
त चाणूरः	वे चाणूर	**आसेदुः**	आकर बैठ गये
मुष्टिकः कूटः	मुष्टिक, कूट		॥३७॥

नन्दगोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः ।
निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन् मञ्च आविशन् ॥३८॥

नन्दगोप आदयः गोपा भोजराज समाहुताः निवेदित उपायनाः ते एकस्मिन् मञ्च आविशन् ॥३८॥

नन्दगोप	नन्द गोप	**उपायनाः**	उपहार
आदयः गोपा	आदि सब गोप	**निवेदित**	निवेदन करके
भोजराज	भोजराज कंसके द्वारा	**ते एकस्मिन्**	वे सब एक ही
		मञ्च आविशन्	मञ्चपर बैठ गये ॥३८॥
समाहुताः	बुलवाये जानेपर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे मल्लरंगोपवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परन्तप ।
मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः ॥ १ ॥

अथ कृष्णः च रामः च कृतशौचौ परन्तप मल्लदुन्दुभि निर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुं उपेयतुः ॥१॥

परन्तप	शत्रुतापन परीक्षित !
अथ कृतशौचौ	फिर स्नानादि करके
मल्लदुन्दुभि	मल्लशालाके
	नगाड़ोंका
निर्घोषं श्रुत्वा	तुमुलनाद सुनकर
कृष्ण च रामः च	श्रीकृष्ण तथा
	बलरामजी भी
द्रष्टुं उपेयतुः	देखने उसके पास
	आ गये ॥१॥

रङ्गद्वारं समासाद्य तस्मिन् नागमवस्थितम् ।
अपश्यत् कुवलयापीडं कृष्णोऽम्बष्ठप्रचोदितम् ॥ २ ॥

रङ्ग द्वारं सम आसाद्य तस्मिन् नागं अवस्थितं अपश्यत् कुवलयापीडं कृष्णः अम्बष्ठ प्रचोदितम् ॥२॥

रङ्ग द्वारं	मल्लशालाके
द्वारं सम	द्वारके समीप
आसाद्य	पहुँचकर
कृष्णः	श्रीकृष्णने
अम्बष्ठ	महावत द्वारा
प्रचोदितं	प्रेरित
नागं	हाथी
कुवलयापीडं	कुवलयापीडको
तस्मिन्	उस द्वारमें
अवस्थितं	खड़ा
अपश्यत्	देखा ॥२॥

बद्ध्वा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिलालकान् ।
उवाच हस्तिपं वाचा मेघनादगभीरया ॥ ३ ॥

बद्ध्वा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिल अलकान् उवाच हस्तिपं वाचा मेघनाद गभीरया ॥३॥

परिकरं बद्ध्वा	कमर कसकर,	**गभीरया**	गम्भीर
कुटिल अलकान्	घुंघराले केशोंको	**वाचा शौरिः**	वाणीसे श्रीकृष्ण
समुह्य	समेटकर	**हस्तिपं उवाच**	महावतसे बोले
मेघनाद	मेघ-गर्जनके समान		॥३॥

अम्बष्ठाम्बष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम माचिरम् ।
नो चेत् सकुञ्जरं त्वाद्य नयामि यमसादनम् ॥ ४ ॥

अम्बष्ठ अम्बष्ठ मार्गं नौ देहि अपक्रम माचिरं नो चेत् सकुञ्जरं त्व अद्य नयामि यमसादनम् ॥४॥

अम्बष्ठ	'महावत !	**नो चेत्**	नहीं तो
अम्बष्ठ	अरे महावत !	**सकुञ्जरं**	हाथीके साथ
नौ मार्गं देहि	हम दोनोंको रास्ता दे,	**त्व अद्य**	तुझे आज
		यमसादनं	यमराजके घर
अपक्रम	दूर हट जा,	**नयामि**	भेजता हूँ' ॥४॥
माचिरं	देर मत कर !		

एवं निर्भर्त्सितोऽम्बष्ठः कुपितः कोपितं गजम् ।
चोदयामास कृष्णाय कालान्तकयमोपमम् ॥ ५ ॥

एवं निर्भर्त्सितः अम्बष्ठः कुपितः कोपितं गजं चोदयामास कृष्णाय काल अन्तक यम उपमम् ॥५॥

एवं निर्भर्त्सितः	इस प्रकार डांटे जानेपर	**गजं कोपितं**	क्रुद्ध करके हाथी-को
कुपितः अम्बष्ठः	क्रुद्ध महावतने	**कृष्णाय**	श्रीकृष्णकी ओर
काल अन्तक	काल, मृत्यु तथा	**चोदयामास**	प्रेरित किया ॥५॥
यम उपमं	यमराजके समान		

करीन्द्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसाग्रहीत् ।
कराद् विगलितः सोऽमुंनिहत्याङ्घ्रिष्वलीयत ॥ ६ ॥

करि इन्द्रः तं अभिद्रुत्य करेण तरसा अग्रहीत् करात् विगलितः सः अमुं निहत्य अङ्घ्रिषु अलीयत ॥६॥

करि इन्द्रः	गजेन्द्रने	**विगलितः**	सरक कर
तरसा	उनकी ओर	**अमुं निहत्य**	उस (हाथी)को (घूसा) मारकर
अभिद्रुत्य	वेगसे दौड़कर		
तं करेण	उनको सूंड़से	**अङ्घ्रिषु**	(उसके) पैरोंके बीचमें
अग्रहीत्	पकड़ लिया,		
सः करात्	वे सूंड़से	**अलीयत**	छिप गये ॥६॥

संक्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः स केशवम् ।
परामृशत् पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः ॥ ७ ॥

संक्रुद्धः तं अचक्षाणः घ्राणदृष्टिः स केशवं परामृशत् पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः ॥७॥

तं अचक्षाणः	उनको (सामने) न देखकर	**केशवं परामृशत्**	श्रीकृष्णको छू लिया; किन्तु
संक्रुद्धः	क्रोधमें भरकर	**स प्रसह्य**	वे बलपूर्वक
घ्राणदृष्टिः	सूंघकर ढूंढ़ता हुआ	**विनिर्गतः**	बाहर निकल गये ॥७॥
स पुष्करेण	उसने सूंड़से		

पुच्छे प्रगृह्यातिबलं धनुषः पञ्चविंशतिम् ।
विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया ॥ ८ ॥

पुच्छे प्रगृह्य अतिबलं धनुषः पञ्चविंशतिम् विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया ॥८॥

यथा नागं	जैसे सर्पको	**अतिबलं**	उस अत्यन्त बलवान (हाथी)की
सुपर्ण इव	गरुड़के समान		

पुच्छे प्रगृह्य	पूंछ पकड़कर	धनुषः	धनुष (सौ हाथ)
लीलया	खेलमें (उसे)	विचकर्ष	खींचते ले गये ॥८॥
पञ्चविंशतिम्	पच्चीस		

स पर्यावर्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः ।
बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः ॥ ९ ॥

स पर्यावर्तमानेन सव्य दक्षिणतः अच्युतः बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेन इव बालकः ॥९॥

बालकः	बालक द्वारा	सव्य दक्षिणतः	बायें-दाहिने
भ्राम्यमाणेन	घुमाये जाते हुए	पर्यावर्तमानेन	घुमाया जाता हुआ
गोवत्सेन इव	गायके बछड़ेके समान	स बभ्राम	वह घूमता रहा ॥९॥
अच्युतः	श्रीकृष्ण द्वारा		

ततोऽभिमुखमभ्येत्य पाणिनाऽऽहत्य वारणम् ।
प्राद्रवन् पातयामास स्पृश्यमानः पदे पदे ॥१०॥

ततः अभिमुखं अभिएत्य पाणिना आहत्य वारणं प्राद्रवन् पातयामास स्पृश्यमानः पदे पदे ॥१०॥

ततः अभिमुखं	फिर सामने	पदे पदे	पद-पदपर
अभि एत्य	समीप आकर	स्पृश्यमानः	छू जानेके ढंगसे
वारणं	हाथीको	पातयामास	गिराते हुएसे
पाणिना आहत्य	घूसेसे मारकर	प्राद्रवन्	दौड़ने लगे ॥१०॥

स धावन् क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः ।
तं मत्वा पतितं क्रुद्धो दन्ताभ्यां सोऽहनत्क्षितिम् ॥११॥

स धावन् क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसा उत्थितः तं मत्वा पतितं क्रुद्धः दन्ताभ्यां सः अहनत् क्षितिम् ॥११॥

स धावन्	वे दौड़ते हुए
क्रीडया भूमौ	खेलमें पृथ्वीपर
पतित्वा	गिरकर
सहसा उत्थितः	अचानक उठ गये,
तं पतितं मत्वा	उन्हें गिरा हुआ मानकर
क्रुद्धः	क्रोधमें भरा
सः दन्ताभ्यां	उसने अपने दांतोंसे
क्षितिं अहनत्	पृथ्वीको मारा ॥११॥

स्वविक्रमे प्रतिहते कुञ्जरेन्द्रोऽत्यमर्षितः ।
चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद् रुषा ॥१२॥

स्वविक्रमे प्रतिहते कुञ्जर इन्द्रः अति अमर्षितः चोद्यमानः महामात्रैः कृष्णं अभि अद्रवत् रुषा ॥१२॥

स्वविक्रमे	अपने पराक्रमके
प्रतिहते	व्यर्थ हो जानेपर
कुञ्जर इन्द्रः	गजेन्द्र
अति अमर्षितः	बहुत चिढ़ गया,
महामात्रैः	महावतों द्वारा
चोद्यमानः	प्रेरित होकर
रुषा कृष्णं	क्रोधसे श्रीकृष्णकी
अभि अद्रवत्	ओर झपटा ॥१२॥

तमापतन्तमासाद्य भगवान् मधुसूदनः ।
निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥१३॥

तं आपतन्तं आसाद्य भगवान् मधुसूदनः निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥१३॥

तं आपतन्तं	उस अपनी ओर झपटतेके
आसाद्य	समीप जाकर
भगवान्	भगवान
मधुसूदनः	मधुसूदनने
पाणिना हस्तं	हाथसे सूंड़
निगृह्य	जोरसे पकड़कर
भूतले	(उसे) पृथ्वीपर
पातयामास	गिरा दिया ॥१३॥

पतितस्य पदाऽऽक्रम्य मृगेन्द्र इव लीलया ।
दन्तमुत्पाट्य तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद्धरिः ॥१४॥

पतितस्य पदा आक्रम्य मृगेन्द्र इव लीलया दन्तं उत्पाट्य तेन इभं हस्तिपान् च अहनत् हरिः ॥१४॥

पतितस्य	गिरे हुएको	**हरिः**	श्री कृष्णने
मृगेन्द्र इव	सिंहके समान	**तेन इभं**	उसीसे हाथीको
पदा आक्रम्य	पैरसे दबाकर	**च हस्तिपान्**	तथा महावतोंको
लीलया	खेलमें	**अहनत्**	मार दिया ॥१४॥
दन्तं उत्पाटच	(उसके) दांत उखाड़कर		

मृतकं द्विपमुत्सृज्य दन्तपाणिः समाविशत् ।
अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिन्दुभिरङ्कितः ।
विरूढस्वेदकणिकावदनाम्बुरुहो बभौ ॥१५॥

मृतकं द्विपं उत् सृज्य दन्तपाणिः समाविशत् अंसन्यस्त विषाणः असृक् मदबिन्दुभिः अङ्कितः विरूढ स्वेदकणिका वदन अम्बुरुहः बभौ ॥१५॥

मृतकं द्विपं	मरे हाथीको	**असृक्**	रक्त तथा
उत्सृज्य	छोड़कर	**मदबिन्दुभिः**	गजमदके बिन्दुओंसे
दन्तपाणिः	हाथमें (उसका) दांत लिए	**अङ्कितः**	चिह्नित
		स्वेदकणिका	पसीनेकी नन्ही बूंदोंके
समाविशत्	साथियोंके साथ (अखाड़ेमें) प्रविष्ट हुए	**विरूढ**	आ जानेसे
		वदन अम्बुरुहः	उनका कमलमुख
विषाणः	हाथी दांत	**बभौ**	शोभित हो रहा था ॥१५॥
अंसन्यस्त	कन्धेपर रखे		

वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ ।
रङ्गं विवशतू राजन् गजदन्तवरायुधौ ॥१६॥

वृतौ गोपैः कतिपयैः बलदेव जनार्दनौ रङ्गं विवशतू राजन् गजदन्त वर आयुधौ ॥१६॥

राजन्	राजन् !	**गोपैः वृतौ**	गोपोंसे घिरे हुए
कतिपयैः	कुछ थोड़े	**गजदन्त**	हाथीके दांतोंका

वर आयुधौ	उत्तम आयुध लिए	**रंगं विवशतू**	मल्लशालामें प्रविष्ट
बलदेव	बलराम-		हुए ॥१६॥
जनार्दनौ	श्रीकृष्ण		

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः
स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां
शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां
तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो
रङ्गं गतः साग्रजः ॥१७॥

मल्लानां अशनिः नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरः मूर्तिमान् गोपानां स्वजनः असतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः मृत्युः भोजपतेः विराट् अविदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवता इति विदितः रङ्गं गतः साग्रजः ॥१७॥

साग्रज	बड़े भाईके साथ	**शिशुः**	अपने बालक,
रंगं गतः	मल्लशालामें पहुँचने-पर (श्रीकृष्ण)	**भोजपतेः मृत्युः**	भोजराज कंसको अपनी मृत्यु,
मल्लानां	पहलवानोंको	**अविदुषां विराट्**	अज्ञानियोंको विराट् पुरुष,
अशनिः	वज्रके समान	**योगिनां**	योगियोंको
नृणां नरवरः	(सामान्य) पुरुषोंको पुरुष श्रेष्ठ,	**परं तत्त्वं**	परमतत्त्व तथा
स्त्रीणां	स्त्रियोंको	**वृष्णीनां**	वृष्णि-वंशी यादवोंको
मूर्तिमान् स्मरः	मूर्तिमान कामदेव,		
गोपानां स्वजनः	गोपोंको निजजन,	**परदेवता**	परमाराध्य देव
क्षितिभुजां	राजाओंको	**इति विदितः**	इस प्रकार प्रतीत हुए ॥१७॥
असतां शास्ता	दुष्टोंके दण्डदाता,		
स्वपित्रोः	अपने माता-पिता (देवकी-वसुदेव) को		

हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा तावपि दुर्जयौ ।
कंसो मनस्व्यपि तदा भृशमुद्विविजे नृप ॥१८॥

हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा ताः अपि दुर्जयौ कंसः मनस्वि अपि तदा भृशं उद्विविजे नृप ॥१८॥

नृप	राजन् !	**दुर्जयौ**	दुर्जय
कुवलयापीडं	कुवलया पीड़ हाथी-को	**दृष्ट्वा**	देखकर
		मनस्वि अपि	मनस्वी होनेपर भी
हतं	मारा गया तथा	**कंसः तदा**	कंस उस समय
ताः अपि	उन दोनों भाइयों-को भी	**भृशं उद्विविजे**	बहुत उद्विग्न हो गया ॥१८॥

तौ रेजतू रङ्गगतौ महाभुजौ
विचित्रवेषाभरणस्रगम्बरौ ।
यथा नटावुत्तमवेषधारिणौ
मनः क्षिपन्तौ प्रभया निरीक्षताम् ॥१९॥

तौ रेजतू रङ्गगतौ महाभुजौ विचित्रवेषम् आभरण स्रक् अम्बरौ यथा नटाः उत्तमवेश धारिणौ मनः क्षिपन्तौ प्रभया निरीक्षताम् ॥१९॥

रंगगतौ तौ	रंगशालामें आये वे दोनों भाई	**निरीक्षतां**	दर्शन करने-वालोंका
यथा उत्तमवेश	जैसे उत्तम वेश	**प्रभया**	अपनी कान्तिसे
धारिणौ नटाः	धारण किये दो नट हों,	**मनः क्षिपन्तौ**	मन आकर्षित करते हुए
विचित्रवेष	अद्भुत वेश	**रेजतूः**	सुशोभित हुए ॥१९॥
आभरण	आभूषण		
स्रक् अम्बरौ	माला, वस्त्रधारी		
महाभुजौ	विशाल बाहु		

निरीक्ष्य तावुत्तमपूरुषौ जना
मञ्चस्थिता नागरराष्ट्रका नृप ।
प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणाननाः
पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम् ॥२०॥

निरीक्ष्य ताः उत्तमपुरुषौ जना मञ्चस्थिता नागरराष्ट्रका नृप प्रहर्षवेग उत्कलित ईक्षण आननाः पपुः न तृप्ता नयनैः तत् आननम् ॥२०॥

नृप	राजन् !
मञ्चस्थिता	मञ्चपर बैठे
नागरराष्ट्रका	नगर तथा देशके
जना	लोग
ताः	उन
उत्तमपुरुषौ	पुरुषोत्तमोंको
निरीक्ष्य	देखकर
प्रहर्षवेग	अत्यन्त हर्षावेशसे
उत्कलित	प्रोत्फुल्ल
ईक्षण आननाः	नेत्रों और मुखवाले
तत् आननं	उनके मुखोंको
न तृप्ता	अतृप्त भावसे
नयनैः पपुः	नेत्रों द्वारा पीने लगे ॥२०॥

पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया ।
जिघ्रन्त इव नासाभ्यां श्लिष्यन्त इव बाहुभिः ॥२१॥

पिबन्त इव चक्षुः भ्यां लिहन्त इव जिह्वया जिघ्रन्त इव नासाभ्यां श्लिष्यन्त इव बाहुभिः ॥२१॥

चक्षुः भ्यां	(मानो वे) नेत्रोंसे
पिबन्त इव	पी-से रहे हों,
जिह्वया	जीभसे
लिहन्त इव	चाट-से रहे हों
नासाभ्यां	नासिकासे
जिघ्रन्त इव	सूंघ-से रहे हों
बाहुभिः	भुजाओंसे
श्लिष्यन्त इव	आलिंगन-से कर रहे हों ॥२१॥

ऊचुः परस्परं ते वै यथादृष्टं यथाश्रुतम् ।
तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव ॥२२॥

ऊचुः परस्परं ते वै यथा दृष्टं यथा श्रुतं तत् रूपगुण माधुर्य प्रागल्भ्य स्मारिता इव ॥२२॥

तत् रूपगुण माधुर्य प्रागल्भ्य स्मारिता इव	उनका सौन्दर्य, गुण, मधुरिमा, निर्भयता (उन्हें) स्मरण करा दी गई हो इस प्रकार
वै यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ते परस्परं ऊचुः	निश्चय जैसा देखा था और जैसा सुना था वैसा वे परस्पर कहने लगे ॥२२॥

एतौ भगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्य हि ।
अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥२३॥

एतौ भगवतः साक्षात् हरेः नारायणस्य हि अवतीर्णाः इह अंशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥२३॥

हि एतौ सक्षात् भगवतः हरेः नारायणस्य अंशेन इह	क्योंकि ये दोनों भाई साक्षात् भगवान श्रीहरि नारायणके अंशसे यहां
वसुदेवस्य वेश्मनि अवतीर्णाः	वसुदेवजीके घरमें अवतरित हुए हैं ॥२३॥

एष वै किलः देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम् ।
कालमेतं वसन् गूढो ववृधे नन्दवेश्मनि ॥२४॥

एष वै किलः देवक्यां जातः नीतः च गोकुलं कालं एतं वसन् गूढः ववृधे नन्दवेश्मनि ॥२४॥

वै किलः एष	निश्चय अरे ये (कृष्ण)
देवक्यां जातः	देवकीसे उत्पन्न होकर
च गोकुलं नीतः	तथा गोकुल ले जाये जाकर
एतं कालं नन्दवेश्मनि गूढः वसन् ववृधे	इस समय तक नन्दजीके घरमें छिपकर रहते हुए बड़े हुए हैं ॥२४॥

पूतनानेन नीतान्तं चक्रवातश्च दानवः ।
अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकोऽन्ये च तद्विधाः ॥२५॥

पूतना अनेन नीत अन्तं चक्रवातः च दानवः अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकः अन्ये च तत् विधाः ॥२५॥

अनेन	इनके द्वारा
पूतना च	पूतना तथा
दानवः चक्रवातः	दानव तृणावर्त,
अर्जुनौ	यमलार्जुन,
गुह्यकः	यक्ष शंखचूड़
केशी धेनुकः	केशी, धेनुकासुप
च तत् विधाः	तथा इसी प्रकारके
अन्ये अन्तं नीत	दूसरे अन्तिम गति- को पहुँचा दिये गये ॥२५॥

गावः सपाला एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः।
कालियो दमितः सर्प इन्द्रश्च विमदः कृतः ॥२६॥

गावः सपालाः एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः कालियः दमितः सर्पः इन्द्रः च विमदः कृतः ॥२६॥

एतेन	इन्हींके द्वारा
सपालाः गावः	गोपालकोंके साथ गायें
दावाग्नेः	दावाग्निसे
परिमोचिताः	घिरी हुई छुड़ायी गयीं,
कालियः सर्पः	कालिय नागका
दमितः	दमन हुआ
च इन्द्रः	तथा इन्द्र
विमदः कृतः	गर्वहीन किये गये ॥२६॥

सप्ताहमेकहस्तेन धृतोऽद्रिप्रवरोऽमुना ।
वर्षवाताशनिभ्यश्च परित्रातं च गोकुलम् ॥२७॥

सप्ताहं एकहस्तेन धृतः अद्रिप्रवरः अमुना वर्षवात अशनिभ्यः च परित्रातं च गोकुलम् ॥२७॥

अमुना	इन्होंने
एकहस्तेन	एक हाथसे
अद्रिप्रवरः	गिरिराज गोवर्धन- को
सप्ताहं धृतः	एक सप्ताह धारण किया
च वर्षवात	तथा वर्षा, आंधी,
अशनिभ्यः	वज्रपातसे
गोकुलं	गोकुलकी
परित्रातं च	रक्षा भी की ॥२७॥

गोप्योऽस्य नित्यमुदितहसितप्रेक्षणं मुखम् ।
पश्यन्तो विविधांस्तापांस्तरन्ति स्माश्रमं मुदा ॥२८॥

गोप्यः अस्य नित्य मुदित हसितप्रेक्षणं मुखं पश्यन्तः विविधान् तापान् तरन्ति सु अश्रमम् मुदा ॥२८॥

अस्य नित्य	इनके सदा	**गोप्यः मुदा**	गोपियां आनन्दपूर्वक
मुदित	आनन्दित	**अश्रमं**	बिना परिश्रमके
हसितप्रेक्षणं	मुस्कान सहित देखनेवाले	**विविधान्**	अनेक प्रकारके
मुखं पश्यन्तः	श्रीमुखको देखती हुई	**तापान् तरन्ति**	संतापोंको पार कर जाती हैं ॥२८॥

वदन्त्यनेन वंशोऽयं यदोः सुबहुविश्रुतः ।
श्रियं यशो महत्त्वं च लप्स्यते परिरक्षितः ॥२९॥

वदन्ति अनेन वंशः अयं यदोः सुबहुविश्रुतः श्रियं यशः महत्त्वं च लप्स्यते परिरक्षितः ॥२९॥

सुबहु विश्रुतः	अत्यन्त प्रख्यात	**परिरक्षितः**	रक्षित होकर
अयं यदोः वंशः	यह यदु-वंश	**श्रियं यशः**	लक्ष्मी, यश
वदन्ति	कहते हैं कि	**च महत्त्वं**	तथा महत्त्व
अनेन	इनके द्वारा	**लप्स्यते**	प्राप्त करेगा ॥२९॥

अयं चास्याग्रजः श्रीमान् रामः कमललोचनः ।
प्रलम्बो निहतो येन वत्सको ये बकादयः ॥३०॥

अयं च अस्य अग्रजः श्रीमान् रामः कमललोचनः प्रलम्बः निहतः येन वत्सकः ये बक आदयः ॥३०॥

अयं अस्य च	ये इनके ही	**श्रीमान् रामः**	श्रीमान् बलरामजी हैं,
अग्रजः	बड़े भाई	**येन प्रलम्बः**	(हमने सुना है कि) जिन्होंने प्रलम्बासुर
कमललोचनः	कमल-लोचन		

वत्सकः बक	बत्सासुर, वकासुर	**निहतः**	उनको मारा है
आदयः ये	आदि जो थे		॥३०॥

जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च ।
कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत् ॥३१॥

जनेषु एवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च कृष्णरामौ सम आभाष्य चाणूरः वाक्यं अब्रवीत् ॥३१॥

जनेषु	लोगोंके	**कृष्णरामौ**	श्रीकृष्ण-बलरामको
एवं ब्रुवाणेषु	इस प्रकार कहते समय	**सम आभाष्य**	सम्बोधित करके
च तूर्येषु	तथा तुरहियोंके	**चाणूरः**	चाणूर
निनदत्सु	जोरसे बजते समय	**वाक्यं अब्रवीत्**	यह बात बोला ॥३१॥

हे नन्दसूनो हे राम भवन्तौ वीरसंमतौ ।
नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाऽऽहूतौ दिदृक्षुणा ॥३२॥

हे नन्दसूनो हे राम भवन्तौ वीर सम्मतौ नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञा आहूतौ दिदृक्षुणा ॥३२॥

हे नन्दसूनो	हे नन्दनन्दन !	**श्रुत्वा दिदृक्षुणा**	सुनकर देखनेकी इच्छावाले
हे राम	हे बलराम !	**राज्ञा आहूतौ**	राजा द्वारा बुलाये गये हों ॥३२॥
भवन्तौ	तुम दोनों		
वीर सम्मतौ	वीरोंके आदरणीय और		
नियुद्धकुशलौ	कुश्ती लड़नेमें निपुण हो		

प्रियं राज्ञः प्रकुर्वन्त्यः श्रेयो विन्दन्ति वै प्रजाः ।
मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा ॥३३॥

प्रियं राज्ञः प्रकुर्वन्त्यः श्रेयः विन्दन्ति वै प्रजाः मनसा कर्मणा वाचा विपरीतं अतः अन्यथा ॥३३॥

कर्मणा मनसा	कर्मसे, मनसे,
वाचा राज्ञः	वाणीसे राजाका
प्रियं	प्रिय
प्रकुर्वन्त्यः	प्रिय करती हुई
प्रजाः वै	प्रजा निश्चय
श्रेयः विन्दन्ति	मंगल पाती हैं
अतः अन्यथा	इससे उलटा (करने-पर)
विपरीतं	उलटा (फल होता है) ॥३३॥

नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम् ।
वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडन्तश्चारयन्ति गाः ॥३४॥

नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाल यथा स्फुटं वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडन्तः चारयन्ति गाः ॥३४॥

यथा स्फुटं	जैसाकि स्पष्ट है कि
वत्सपाल	बछड़े चरानेसे लेकर
गोपा	गोप लोग
नित्यं प्रमुदिता	सदा प्रसन्नतासे
वनेषु	वनमें
मल्लयुद्धेन	कुश्ती लड़नेका
क्रीडन्तः	खेल खेलते हुए
गाः चारयन्ति	गाय चराते हैं ॥३४॥

तस्माद् राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवाम हे ।
भूतानि नः प्रसीदन्ति सर्वभूतमयो नृपः ॥३५॥

तस्मात् राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवाम हे भूतानि नः प्रसीदन्ति सर्व-भूतमयः नृपः ॥३५॥

तस्मात्	इसलिए
राज्ञः प्रियं	राजाका प्रिय
यूयं च वयं	तुम और हम
करवाम हे	करें (इससे)
नः भूतानि	हमपर सब प्राणी
प्रसीदन्ति	प्रसन्न होंगे; (क्योंकि)
नृपः सर्वभूतमयः	राजा सब प्राणिमय होता है ॥३५॥

तन्निशम्योब्रवीत् कृष्णो देशकालोचितं वचः ।
नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनन्द्य च ॥३६॥

तत् निशम्य अब्रवीत् कृष्णः देशकाल उचितं वचः नियुद्ध आत्मनः अभीष्टं मन्यमानः अभिनन्द्य च ॥३६॥

देश काल	देश-कालके	**आत्मनः**	अपने लिए भी
उचितं वचः	उचित वचनको जाननेवाले	**अभीष्टं**	अभीष्ट
		मन्यमानः	मानते हुए
कृष्णः	श्रीकृष्ण	**अभिनन्द्य च**	उनकी प्रशंसा करके ही
तत् निशम्य	उस (बात)को सुनकर	**अब्रवीत्**	बोले ॥३६॥
नियुद्धं	कुश्तीको		

प्रजा भोजपतेरस्य वयं चापि वनेचराः ।
करवाम प्रियं नित्यं तन्नः परमनुग्रहः ॥३७॥

प्रजा भोजपतेः अस्य वयं च अपि वनेचराः करवाम प्रियं नित्यं तत् नः परम् अनुग्रहः ॥३७॥

अस्य भोजपतेः	इन भोजराज कंस-की	**करवाम**	करते हैं
		तत् नः	यह तो हमपर (उनकी)
वयं वनेचराः	हम वनवासी		
च अपि प्रजा	भी प्रजा हैं,	**परम् अनुग्रहः**	महती कृपा है ॥३७॥
नित्यं प्रियं	(हमतो) सदा (उनका) प्रिय ही		

बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम् ।
भवेन्नियुद्धं माधर्मः स्पृशेन्मल्ल सभासदः ॥३८॥

बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामः यथा उचितं भवेत् नियुद्धं मा अधर्मः स्पृशेत् मल्ल सभासदः ॥३८॥

वयं बाला	हम बालक हैं (अतः)	**यथा उचितं**	यथोचित रूपसे
		क्रीडिष्यामः	खेल करेंगे,
तुल्यबलैः	समान बलवालोंके साथ	**भवेत् नियुद्धं**	कुश्ती तो हों; किन्तु

मल्ल सभासदः	मल्ल सभाके सदस्योंकों	**अधर्मः**	(अन्यायके समर्थन-का) अधर्म
		स्पृशेत् मा	स्पर्श न करे ॥३८॥

चाणूर उवाच

न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः ।
लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्त्वभृत् ॥३९॥

न बालः न किशोरः त्वं बलः च बलिनां वरः लीलया इभः हतः येन सहस्रद्विप सत्त्वभृत् ॥३९॥

सहस्रद्विप	एक सहस्र हाथियों के*	**त्वं न बालः**	वह तुम न बालक हो
सत्त्वभृत्	बल धारण करने वाले	**न किशोरः**	न युवक
इभः येन	हाथीको जिसने	**च बलः**	और बलराम भी
लीलया हतः	खेलमें मार दिया	**बलिनां वरः**	बलवानोमें श्रेष्ठ हैं ॥३९॥

तस्माद् भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नानयोऽत्र वै ।
मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥४०॥

तस्मात् भवत्भ्यां बलिभिः योद्धव्यं न अनयोः अत्र वै मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥४०॥

तस्मात्	इसलिए	**वार्ष्णेय**	कृष्ण
भवत्भ्यां	तुम दोनोंको	**मयि**	(तुम) मुझसे और
बलिभिः	बलवानोंसे	**बलेन**	बलराम
योद्धव्यं	युद्ध करना काहिए	**मुष्टिकः सह**	मुष्टिकके साथ
अत्र वै	इसमें निश्चय	**विक्रम**	पराक्रम दिखाते हैं ॥४०॥
अनयोः न	अन्याय नहीं है,		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कुवलयापीडवधो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

---

*जैसे आजकल 'अश्वशक्ति' में शक्ति की माप प्रचलित है वैसे ही उस समय शक्ति की माप 'गज शक्ति' में होती थी ।

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

एवं चर्चितसङ्कल्पो भगवान् मधुसूदनः ।
आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥ १ ॥

एवं चर्चित सङ्कल्पः भगवान् मधुसूदनः आससाद अथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥१॥

एवं	इस प्रकार	**अथ चाणूरं**	फिर चाणूरसे और
चर्चित संङ्कल्पः	निश्चयकी चर्चा हो जानेपर	**रोहिणीसुतः**	रोहिणी-नन्दन बलरामजी
भगवान्	भगवान	**मुष्टिकं**	मुष्टिकसे
मधुसूदनः	मधुसूदन	**आससाद**	भिड़ गये ॥१॥

हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्ध्वा पद्भ्यामेव च पादयोः ।
विचकर्षतुरन्योन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥ २ ॥

हस्ताभ्यां हस्तयोः बद्ध्वा पद्भ्यां एव च पादयोः विचकर्षतुः अन्यः अन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥२॥

हस्ताभ्यां	हाथोंसे	**अन्यः अन्यं**	एक दूसरेको
हस्तयोः	हाथोंको	**विजिगीषया**	जीतनेकी इच्छासे
च पद्भ्यां एव	तथा पैरोंसे ही	**प्रसह्य**	बलपूर्वक
पादयोः बद्ध्वा	पैरोंको लपेटकर	**विचकर्षतुः**	खींचने लगे ॥२॥

अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी ।
शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३ ॥

अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां च एव जानुनी शिरः शीर्ष्णोः रसोः रस्ताः अन्यः अन्यं अभिजघ्नतुः ॥३॥

अरत्नी द्वे	दोनों पञ्जे
अरत्नीभ्यां	पञ्जोंसे
च जानुभ्यां एव	तथा घुटनोंसे ही
जानुनी	घुटनोंको
शिरः शीर्ष्णोः	माथेसे माथेको
रसोः रस्ताः	छातीसे छातीको
अन्यः अन्यं	एक दूसरेको
अभिजघ्नतु	बारबार मारने लगे ॥३॥

परिभ्रामणविक्षेपपरिरम्भावपातनैः ।
उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योन्यं प्रत्यरुन्धताम् ॥ ४ ॥

परिभ्रामण विक्षेप परिरम्भ अवपातनैः उत्सर्पण अपसर्पणैः च अन्यः अन्यं प्रति अरुन्धताम् ॥४॥

अन्यः अन्यं	एक दूसरेको
परिभ्रामण	घुमाते,
विक्षेप	ढकेलते
परिरम्भ	छातीसे दबाते,
अवपातनैः	नीचे गिरादेते
उत्सर्पण	छोड़कर हट जाते,
अपसर्पणैः	पीछे हटते
प्रति अरुन्धतां	(इस प्रकार) प्रतिद्वन्दीको रोकते थे ॥४॥

उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनैः स्थापनैरपि ।
परस्परं जिगीषन्तावपचक्रतुरात्मनः ॥ ५ ॥

उत्थापनैः उन्नयनैः चालनैः स्थापनैः अपि परस्परं जिगीषन्तः अपचक्रतुः आत्मनः ॥५॥

उत्थापनैः	उठाकर खड़ा करते,
उन्नयनैः	ऊपर उठा लेते,
चालनैः	धक्का देते,
स्थापनैः अपि	(दबाकर) स्थिर करके भी
परस्परं	एक दूसरेको
जिगीषन्तः	जीतनेका प्रयत्न हुए
आत्मनः	शरीरको
अपचक्रतुः	मरोड़ते ॥५॥

तद् बलाबलवद्युद्धं समेताः सर्वयोषितः ।
ऊचूः परस्परं राजन् सानुकम्पा वरूथशः ॥ ६ ॥

तत् बल अबलवत् युद्धं समेताः सर्वयोषितः ऊचूः परस्परं राजन् सानुकम्पा वरूथशः ॥६॥

राजन्	राजन्	**सर्वयोषितः**	सब स्त्रियाँ
तत् बल	उस बलवानों और	**वरूथशः**	टोलियाँ बँटकर
अबलवत्	दुर्बलोंको	**सानुकम्पा**	करुणावश
युद्धं	कुश्तीको	**परस्परं ऊचूः**	आपसमें कहने लगीं
समेताः	आयी हुई		॥६॥

महानयं बताधर्म एषां राजसभासदाम् ।
ये बलाबलवद्युद्धं राज्ञोऽन्विच्छन्ति पश्यतः ॥ ७ ॥

महान् अयं बत अधर्म एषां राजसभासदां ये बल अबलवत् युद्धं राज्ञः अन्विच्छन्ति पश्यतः ॥७॥

बत एषां	अरे इन	**बल अबलवत्**	बलवान और दुर्बलों
राज सभासदां	राजसभाके सदस्यों का		के
अयं महान्	यह बड़ा भारी	**युद्धं**	युद्धका
अधर्म	अधर्म है	**राज्ञः**	राजाके
ये पश्यतः	देखते हुए	**अन्विच्छन्ति**	साथ अनुमोदन करते हैं ॥७॥

क्व वज्रसारसर्वाङ्गौ मल्लौ शैलेन्द्रसन्निभौ ।
क्व चातिसुकुमाराङ्गौ किशोरौ नाप्तयौवनौ ॥ ८ ॥

क्व वज्रसार सर्व अङ्गौ मल्लौ शैलेन्द्र सन्निभौ क्व च अति सुकुमार अङ्गौ किशोरौ न आप्त यौवनौ ॥८॥

क्व वज्रसार	कहाँ तो लौहसार (फौलाद) के समान
सर्व अङ्गौ	सब अंगों वाले
शैलेन्द्र सन्निभौ	महापर्वत जैसे
मल्लौ	ये दोनों (कंसके) पहलवान और
क्व	कहाँ
न आप्त यौवनौ	जवानी भी न पाये
अति सुकुमार	अत्यन्त सुकुमार
अङ्गौ किशोरौ	अंगों वाले ये दोनों किशोर ॥८॥

धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् ।
यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥ ९ ॥

धर्मः व्यतिक्रमः हि अस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् यत्र अधर्मः सम उत्तिष्ठेत् न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥९॥

अस्य समाजस्य	इस पूरे समाजको
ध्रुवं	निश्चय
धर्मः व्यतिक्रमः	धर्मोल्लंघन (का पाप)
भवेत्	होगा
हि यत्र	क्योंकि जहाँ
अधर्मः	अधर्म
सम उत्तिष्ठेत्	ठीक ठीक उठ खड़ा हो (होने लगे)
तत्र कर्हिचित्	वहाँ कभी भी
स्थेयंन	ठहरना नहीं चाहिए ॥९॥

न सभां प्रविशेत् प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन् ।
अब्रुवन् विब्रुवन्नज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते ॥१०॥

न सभां प्रविशेत् प्राज्ञः सभ्यदोषान् अनुस्मरन् अब्रुवन् विब्रुवन् अज्ञः नरः किल्विषं अश्नुते ॥१०॥

प्राज्ञः	बुद्धिमानको
सभ्यदोषान्	सभासदोंके दोषोंको
अनुस्मरन्	स्मरण करके
सभां न	सभा में नहीं
प्रविशेत्	प्रवेश करना चाहिए (क्योंकि)
अब्रुवन्	(वहाँ उनके दोष)
विब्रुवन	बतला देनेसे*

---

* जानते हुए न बतलाना या अनजान बनजाना तो दोष है ही, 'यत अधर्म कृतः स्थानं सूचक स्मापि तद् भवेत्' के अनुसार अधर्म सूचित करना भी पाप है ।

अज्ञः	अनजान बनजानेसे (तीनों प्रकार)	नरः किल्बिषं अश्नुते	मनुष्य पाप (का फल) भोगता है ॥१०॥

वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनाम्बुजम् ।
वीक्ष्यतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवाम्बुभिः ॥११॥

वल्गतः शत्रुं अभितः कृष्णस्य वदनाम्बुजं वीक्ष्यतां श्रमवारि उप्तं पद्मकोशं इव अम्बुभिः ॥११॥

शत्रुं अभितः	शत्रुके चारों ओर	पद्मकोशं इव	कमल पुष्पके समान
वल्गतः	उछलते हुए	कृष्णस्य	श्रीकृष्णका
श्रमवारि उप्तं	पसीनेसे भरा हुआ	वदनाम्बुजं	मुखकमल
अम्बुभिः	जलकी बूदों सहित	वीक्ष्यतां	देखो ॥११॥

किं न पश्यत रामस्य मुखमाताम्रलोचनम् ।
मुष्टिकं प्रति सामर्षं हाससंरम्भशोभितम् ॥१२॥

किं न पश्यत रामस्य मुखं आताम्र लोचनं मुष्टिकं प्रति स अमर्षं हास संरम्भ शोभितम् ॥१२॥

मुष्टिकं प्रति	मुष्टिकके प्रति	शोभितं	सुशोभित
स अमर्षं	क्रोध युक्त (होनेसे)	किं रामस्य	क्या बलरामजीका
आताम्र लोचनं	लाल नेत्रों वाला	मुखं न पश्यत	मुख नहीं देखती हो ॥१२॥
हास संरम्भ	हास्यके आवेगसे		

पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिङ्ग-
गूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ।
गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणुं
विक्रीडयाञ्चति गिरित्ररमार्चिताङ्घ्रिः ॥१३॥

पुण्या बत व्रजभुवः यत् अयं नृलिङ्ग गूढः पुराणपुरुषः वनचित्र माल्यः गाः पालयन् सहबलः क्वणयन् च वेणुं विक्रीडया अञ्चति गिरित्र रमा अर्चित अंघ्रिः ॥१३॥

बत व्रजभुवः	अहो, व्रजभूमि	**गाः पालयन्**	गो- पालन करते हुए
पुण्या	(निश्चय) पवित्र है	**च वेणुं क्वञ्जयन्**	तथा बंशी बजाते हुए
यत् अयं	क्योंकि ये	**सहबलः**	बलरामजीके साथ
गिरित्र रमा	शिव और लक्ष्मी द्वारा	**विक्रीडया**	खेलते हुए (वहां)
अर्चित अंघ्रिः	पूजित होने वाले श्रीचरण	**अञ्चति**	विचरण करते हैं ॥१३॥
पुराणपुरुषः	सनातन पुरुष		
नृलिङ्ग गूढः	मनुष्य वेशमें छिपे		
वनचित्र	वनके अनेक प्रकार		
माल्यः	के पुष्पोंकी माला धारण करके		

गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं
लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् ।
दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुराप-
मेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥१४॥

गोप्यः तपः किं अचरन् यत् अमुष्य रूपं लावण्यसारं असम उर्ध्वं अनन्य सिद्धं दृग्भिः पिबन्ति अनुसवं अभिनवं दुरापं एकान्त धाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥१४॥

गोप्य किं तपः	गोपियोंने क्या तपस्या	**अनन्य सिद्धं**	एकमात्र इन्हींमें विद्यमान
अचरन्	की है	**लावण्यसारं**	सौन्दर्यके सार रूप
असम उर्ध्वं	न किसी समान या अधिक	**अभिनवं**	नित्य नूतन,
		यशसः श्रिय	सुयश, लक्ष्मी,

ऐश्वरस्य	ऐश्वर्यके
एकान्त धाम	एकमात्र आश्रय
दुरापं	दुष्प्राप्य
यत् अमुष्य	जो इनके
रूपं अनुभवं	रूपको प्रत्येक दिन
दृग्भिः पिबन्ति	नेत्रोंसे पीती हैं ॥१४॥

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेंखेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥१५॥

या दोहने अवहनने मथन उपलेप प्रेङ्खेङ्खन अर्भरुदित उक्षण मार्जन आदौ गायन्ति च एनं अनुरक्त धियः अश्रुकण्ठ्यः धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रम चित्तयानाः ॥१५॥

दोहने अवहनने	(दूध) दुहते (धान) कूटते,
मथन उपलेप	(दही) मथते, (घर) लीपते,
प्रेङ्खेङ्खन	झूला झूलते
अर्भरुदित	बच्चेके रोनेपर (उसे चुप कराते)
उक्षण	उसे उबटन लगाते
मार्जन आदौ	झाड़ू लगाते आदि के समय
अनुरक्त धियः	आसक्त चित्तसे
च अश्रुकण्ठ्यः	तथा अश्रु गद्गद कण्ठसे
एनं गायन्ति	इनकी लीला गाती हैं
उरुक्रम	अनन्त पराक्रम (श्रीकृष्ण) का
चित्तयानाः	अपने चित्तको वाहन बना देने वाली
व्रजस्त्रिय	वे व्रजकी स्त्रियां
धन्या	धन्य हैं ॥१५॥

प्रातर्व्रजाद् व्रजत आविशतश्च सायं
गोभिः समं क्वणयतोऽस्य निशम्य वेणुम्
निर्गम्य तूर्णमबलाः पथि भूरिपुण्याः
पश्यन्ति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥१६॥

प्रातः व्रजात् व्रजत आविशतः च सायं गोभिः समं क्वणयतः अस्य निशम्य वेणुं निर्गम्य तूर्णं अबलाः पथि भूरिपुण्याः पश्यन्ति सस्मितमुखं सदय अवलोकम् ॥१६॥

गोभिः समं	गायोंके साथ	**अबलाः**	व्रजस्त्रियां
प्रातः व्रजात्	सवेरे व्रजसे	**तूर्णं पथि**	शीघ्र रास्तेपर
व्रजत	(वन) जाते समय	**निर्गम्य**	निकलकर
च सायं	तणा सायंकाल	**अस्य**	इनका
आविशतः	लौटकर आते हुए	**सदय अवलोकं**	दया दृष्टियुक्त
क्वणयतः	बजाते हुए	**सास्मितमुखं**	मुस्कराता श्रीमुख
वेणुं निशम्य	वंशी ध्वनि सुनकर	**पश्यन्ति**	देखती हैं ॥१६॥
भूरिपुण्याः	बहुत पुण्यवती		

एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः ।
शत्रुं हन्तुं मनश्चक्रे भगवान् भरतर्षभ ॥१७॥

एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरः हरिः शत्रुं हन्तुं मनः चक्रे भगवान् भरत ऋषभ ॥१७॥

भरत ऋषभ	भरत-वंशमें श्रेष्ठ परीक्षित !	**भगवान्**	भगवान
		योगेश्वरः	योगेश्वर
एवं स्त्रीषु	इस प्रकार स्त्रियोंके	**हरिः**	श्रीहरिने
प्रभाषमाणासु	परस्पर चर्चा करते समय ही	**शत्रुं हन्तुं**	शत्रुको मार देनेका
		मनः चक्रे	मन किया ॥१७॥

सभयाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेहशुचाऽऽतुरौ ।
पितरायेन्वतप्यतां पुत्रयोरबुधौ बलम् ॥१८॥

सभयाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेह शुचा आतुरौ पितराः अनुतप्येतां पुत्रयोः अबुधौ बलम् ॥१८॥

सभयाः	भययुक्त	**पुत्रयोः बलं**	अपने पुत्रोंका बल
स्त्रीगिरः श्रुत्वा	स्त्रियोंकी बात सुनकर	**अबुधौ**	न जानने वाले
		पितराः	माता-पिता

पुत्रस्नेह	पुत्रके स्नेहसे	**अनुतप्येतां**	संतप्त होने लगे
शुचा आतुरौ	शोक व्याकुल		॥१८॥

तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युतेतरौ ।
युयुधाते यथान्योन्यं तथैव बलमुष्टिकौ ॥१९॥

तैः तैः नियुद्ध विधिभिः विविधैः अच्युत इतरौ युयुधाते यथा अन्यः अन्यं तथा एव बलमुष्टिकौ ॥१९॥

तैः तैः विविधैः	उन-उन अनेक प्रकारकी	**यथा अन्यः अन्यं**	जैसे परस्पर एक दूसरेसे
नियुद्धविधिभिः	कुश्तीकी विधियों (दाव-पेच) से	**तथा एव**	इसी प्रकार
अच्युत इतरौ	श्रीकृष्ण तथा दूसरा (चाणूर)	**बलमुष्टिकौ**	बलराम तथा मुष्टिक
		युयुधाते	मल्ल युद्ध करते रहे ॥१९'॥

भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः ।
चाणूरो भज्यमानाङ्गो मुहुर्ग्लानिमवाप ह ॥२०॥

भगवत् गात्र निष्पातैः वज्र निष्पेष निष्ठुरैः चाणूरः भज्यमान अङ्गः मुहुः ग्लानिं अवाप ह ॥२०॥

वज्र निष्पेष	वज्रसे पीस देनेके समान	**अङ्गः**	अंगों वाला
निष्ठुरैः	कठोर	**चाणूरःह**	चाणूरतो
भगवत् गात्र	भगवानके शरीरकी	**मुहुः ग्लानिं**	बार-बार मूर्छित प्राय दशाको
निष्पातैः	टकराहटोंसे	**अवाप**	प्राप्त हुआ ॥२०॥
भज्यमान	टूटते से		

स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टीकृत्य करावुभौ ।
भगवन्तं वासुदेवं क्रुद्धो वक्षस्यबाधत ॥२१॥

स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टी कृत्य कराः उभौ भगवन्तं वासुदेवं क्रुद्धः वक्षसि अबाधत ॥२१॥

स क्रुद्धः	उसने क्रोधपूर्वक	**भगवन्तं**	भगवान्
श्येनवेग	बाजकी गतिसे	**वासुदेवं**	वासुदेवके
उत्पत्य	उछलकर	**वक्षसि**	छाती पर
उभौ करौ	दोनों हाथोंकी	**अबाधत**	चोट की ॥२१॥
मुष्टी कृत्य	मुट्ठी बांधकर		

नाचलत्तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः ।
बाह्वोर्निगृह्य चाणूरं बहुशो भ्रामयन् हरिः ॥२२॥

न अचलत् तत् प्रहारेण मालाहत इव द्विपः बाह्वोः निगृह्य चाणूरं बहुशः भ्रामयन् हरिः ॥२२॥

तत् प्रहारेण	उस प्रहारसे	**हरिः**	(फिर) श्रीकृष्णने
मालाहत	मालासे मारे गये	**बाह्वोः निगृह्य**	दोनों हाथ पकड़कर
द्विपः इव	हाथीके समान	**चाणूरं बहुशा**	चाणूरको बहुत बार
अचलत् न	(श्रीकृष्ण) हिले भी नहीं	**भ्रामयन्**	घुमाया ॥२२॥

भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीणजीवितम् ।
विस्रस्ताकल्पकेशस्रगिन्द्रध्वज इवापतत् ॥२३॥

भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीण जीवितं विस्रस्त आकल्प केश स्रक् इन्द्रध्वज इव अपतत् ॥२३॥

तरसा	(घुमानेके) वेगसे	**विस्रस्त**	अस्तव्यस्त हो गई
क्षीण जीवितं	जीवन क्षय हुए (मरे) को		थी,
भूपृष्ठे	पृथ्वीके ऊपर	**इन्द्रध्वज**	इन्द्रपूजाके लिए स्थापित बड़े झंडे
पोथयामास	पटक दिया,	**इव अपतत्**	के समान गिर पड़ा
आकल्प	(उसकी) वेश-भूषा		॥२३॥
केश स्रक्	केश और माला		

तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै ।
बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो भृशम् ॥२४॥

तथा एव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्या अभिहतेन वै बलभद्रेण बलिना तलेन अभिहतः भृशम् ॥२४॥

तथा एव वै	इसीप्रकार निश्चय	**बलिना**	बलवान
पूर्वं मुष्टिकः	पहिले मुष्टिक द्वारा	**बलभद्रेण**	बलरामजी द्वारा
स्व मुष्ट्या	(उसके) अपने घूसे से	**तलेन भृशं**	थप्पड़की जोरकी
अभिहतेन	चोट खाये हुये	**अभिहतः**	मार पड़नेसे ॥२४॥

प्रवेपितः स रुधिरमुद्वमन् मुखतोऽर्दितः ।
व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवाङ्घ्रिपः ॥२५॥

प्रवेपितः स रुधिरं उद्वमन् मुखतः अर्दितः व्यसुः पपात उर्वि उपस्थे वात आहत इव अंघ्रिय ॥२५॥

स प्रवेपितः	वह डगमगाकर	**व्यसुः**	निष्प्राण होकर
अर्दितः	घायल होकर	**वात आहत**	आँधीके मारे
मुखतः रुधिरं	मुखसे रक्त	**अंघ्रिपः इव**	वृक्षके समान
उद्वमन्	उगलता	**पपात**	गिरपड़ा ॥२५॥
उर्वि उपस्थे	पृथ्वीके ऊपर		

ततः कूटमनुप्राप्तं रामः प्रहरतां वरः ।
अवधील्लीलया राजन् सावज्ञं वाम मुष्टिनां ॥२६॥

ततः कूटं अनुप्राप्तं रामः प्रहरतां वरः अवधत् लीलया राजन् स अवज्ञं वाम् मुष्टिना ॥२६॥

राजन्	राजन् !	**कूटं**	कूटको
ततः अनुप्राप्तं	फिर उसके पीछे आये	**प्रहरतां वरः**	प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ

रामः	बलरामजीने	**वाम मुष्टिना**	बायें घूसेसे
लीलया	खेलमें	**अवधत्**	मार दिया ॥२६॥
स अवज्ञं	उपेक्षा पूर्वक		

तर्ह्येव हि शलः कृष्णपदापहतशीर्षकः ।
द्विधा विदीर्णस्तोशलक उभावपि निपेततुः ॥२७॥

तर्हि एव हि शलः कृष्णपदा अपहत शीर्षकः द्विधा विदीर्णः तोशलक उभाः अपि निपेततुः ॥२७॥

तर्हि एव हि	उस समय ही	**द्विधा विदीर्णः**	चीरकर दो टुकड़े किया गया
कृष्णपदा	श्रीकृष्णके पैर (कीठोकर) से	**तोशलक**	तोशल
अपहत शीर्षकः	सिर फटजानेसे	**उभाः अपि**	दोनों ही
शलः	शल और	**निपेततुः**	गिर पड़े ॥२७॥

चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते ।
शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥२८॥

चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते शेषाः प्रदुद्रुवुः मल्लाः सर्वे प्राण परीप्सवः ॥२८॥

चाणूरे मुष्टिके	चाणूर, मुष्टिक,	**शेषाः**	बचे हुए
कूटे शले	कूट, शल,	**सर्वे मल्लाः**	सब पहलवान
तोशलके हते	तोशलके मारे-जाने पर	**प्रदुद्रुवुः**	भाग खड़े हुए ॥२८॥
प्राण परीप्सवः	प्राण-रक्षा चाहने वाले		

गोपान् वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य विजह्रतुः ।
वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गन्तौ रुतनूपुरौ ॥२९॥

गोपान् वयस्यान आकृष्य तैः संसृज्य विजह्रतुः वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गन्तौ रुतनूपुरौ ॥२९॥

वयस्यान	समवयस्क	**तूर्येषु**	तुरहियोंके साथ
गोपान्	गोप-बालकोंकी	**रुतनूपुरौ**	नूपुरोंकी झंकार
आकृष्य	खींचकर	**संसृज्य**	मिलाकर
तैः	उनके साथ	**विजह्रतुः**	(कुश्तीका खेल)
वल्गन्तौ	उछलते हुए		खेलने लगे ॥२९॥
वाद्यमानेषु	बजती हुई		

जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः ।
ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधुसाध्विति ॥३०॥

जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधु साधु इति ॥३०॥

ऋते कंसं	कंसको छोड़कर	**रामकृष्णयोः**	बलराम-श्रीकृष्णके
विप्रमुख्याः	जिनमें ब्राह्मण	**कर्मणा**	कर्मसे
	प्रमुख थे	**साधु साधु**	'धन्य है, धन्य है'
सर्वे साधवः	सब सत्पुरुष	**इति प्रजहृषुः**	ऐसा कहते बहुत
जनाः	लोग		प्रसन्न हुए ॥३०॥

हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट् ।
न्यवारयत् स्वतूर्याणि वाक्यं चेदमुवाच ह ॥३१॥

हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट् न्यवारयत् स्वतूर्याणि वाक्यं च इदं उवाच ह ॥३१॥

मल्लवर्येषु	श्रेष्ठ पहलवानोंके	**न्यवारयत्**	(बजानेसे) रोक
हतेषु	मारेजाने पर		दिया
च विद्रुतेषु	अथवा भाग जाने	**च ह इदं वाक्यं**	तथा निश्चय यह
	पर		बात भी
भोजराट्	भोजराज कंसने	**उवाच**	बोला ॥३१॥
स्वतूर्याणि	अपनी तुरहियोंको		

निःसारयत दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात् ।
धनं हरत गोपानां नन्दं बध्नीत दुर्मतिम् ॥३२॥

निःसारयत दुर्वृत्तौ वसुदेव आत्मजौ पुरात् धनं हरत गोपानां नन्दं बध्नीत दुर्मतिम् ॥३०॥

दुर्वृत्तौ	दुश्चरित्र	**गोपानां**	गोपोंका
वसुदेव	वसुदेवके (इन)	**धनं हरत**	सब धन छीन लो,
आत्मजौ	पुत्रोंको	**दुर्मति नन्दं**	दुर्बुद्धि नन्दको
पुरात्	नगरसे	**बध्नीत**	बन्दी कर लो ॥३२॥
निःसारयत	निकाल दो,		

वसुदेवस्तु दुर्मेधा हन्यतामाश्वसत्तमः ।
उग्रसेनः पिता चापि सानुगः परपक्षगः ॥३३॥

वसुदेवः तु दुर्मेधा हन्यतां आशु असत्तमः उग्रसेनः पिता च अपि स अनुगः परपक्षगः ॥३३॥

असत्तमः	अत्यन्त दुष्ट	**अपि**	को भी
दुर्मेधा	दुर्बुद्धि	**स अनुगः**	उनके अनुचरोंके साथ
वसुदेवः तु	वसुदेवको तो	**आशु हन्यतां**	शीघ्र मार दो' ॥३३॥
च परपक्षगः	तथा शत्रुपक्षमें गये (मिले)		
पिता उग्रसेनः	मेरे पिता उग्रसेन		

एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितोऽव्ययः ।
लघिम्नोत्पत्य तरसा मञ्चमुत्तुङ्गमारुहत् ॥३४॥

एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितः अव्ययः लघिम्नः उत्पत्य तरसा मञ्चं उत्तुङ्गम् आरुहत् ॥३४॥

वै एवं	निश्चय इस प्रकार	**कंसे**	कंसपर
विकत्थमाने	बकवाद करते	**अव्ययः**	अविनाशी श्रीकृष्ण

प्रकुपितः	अत्यन्त कुपित होकर	उत्तुङ्गम मञ्चं	उसके बहुत ऊँचे मंचपर
तरसा लधिम्नः	वेगसे फुर्तीसे	आरुहत	चढ़गये ।।३४।।
उन्त्पत्य	कूदकर		

तमाविशन्तमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात् ।
मनस्वी सहसोत्थाय जगृहे सोऽसिचर्मणी ।।३५।।

तं आविशन्तं आलोक्य मृत्युं आत्मन आसनात् मनस्वी सहसा उत्थाय जगृहे सः असि चर्मणी ।।३५।।

सः मनस्वी	उस साहसीने	सहसा	झटपट
तं आत्मन मृत्युं	उन अपनी मृत्यु रूप (श्रीकृष्ण)को	आसनात्	आसनसे
		उत्थाय	उठकर
आविशन्तं	सम्मुख आया	असि चर्मणि	तलवार-ढाल
आलोक्य	देखकर	जगृहे	उठा ली ।।३५।।

तं खड्गपाणिं विचरन्तमाशु
श्येनं यथा दक्षिणसव्यमम्बरे ।
समग्रहीद् दुर्विषहोग्रतेजा
यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ।।३६।।

तं खड्ग पाणिं विचरन्तं आशु श्येनं यथा दक्षिण सव्यं अम्बरे सम अग्रहीत् दुर्विषह उग्रतेजा यथा उरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ।।३६।।

तं खड्ग पाणिं	उसे हाथमें तलवार लेकर	दक्षिण सव्यं	दाहिने-बायें (पैंतरा लेकर)
यथा अम्बरे	जैसे आकाशमें	आशु विचरन्तं	वेगसे घूमते हुए
श्येनं	बाज हो	यथा उग्रतेजा	जैसे उग्रतेज वाले

तार्क्ष्यसुतः	तार्क्ष्य-नन्दन गरुड़	सम् अग्रहीत्	भली प्रकार पकड़
उरगं	सर्पको (पकड़े)		लिया ॥३६॥
प्रसह्य	बलपूर्वक		

प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं
निपात्य रङ्गोपरि तुङ्गमञ्चात् ।
तस्योपरिष्टात् स्वयमब्जनाभः
पपात् विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः ॥३७॥

प्रगृह्य केशेषु चलत् किरीटं निपात्य रङ्ग उपरि तुङ्गमञ्चात् तस्य उपरिष्टात् स्वयं अब्जनाभः पपात् विश्व आश्रय आत्मतन्त्रः ॥३७॥

केशेषु प्रगृह्य	बाल पकड़कर	विश्व आश्रय	विश्वाधार
चलत् किरीटं	मुकुट गिरते हुएको	आत्मतन्त्रः	परम स्वतन्त्र
तुङ्गमञ्चात्	ऊँचे मञ्चसे	अब्जनाभः	कमलनाभ भगवान
रङ्ग उपरि	अखाड़ेके ऊपर	स्वयं पपात्	स्वयं कूद पड़े
निपात्य	पटककर		॥३७॥
तस्य उपरिष्टात्	उसके ऊपर		

तं सम्परेतं विचकर्ष भूमौ
हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः ।
हाहेति शब्दः सुमहांस्तदाभू-
दुदीरितः सर्वजनैर्नरेन्द्र ॥३८॥

तं सम्परेतं विचकर्ष भूमौ हरिः यथा इभं जगतः विपश्यतः हा हा इति शब्दः सुमहान् तदा अभूत् उदीरितः सर्वजनैः नरेन्द्र ॥३८॥

नरेन्द्र	महाराज !	जगतः	संसार (सब) के
सम्परेतं तं	मरे हुए उसको	विपश्यतः	देखते हुए
यथा इभं हरिः	जैसे हाथीको सिंह (घसीटे)	भूमौ विचकर्ष	पृथ्वीपर घसीटने लगे,

तदा सर्वजनैः	उस समय सब लोगोंके द्वारा	**हा हा इति**	'हाय ! हाय !' इस प्रकारका
उदीरितः	उच्च स्वरमें बोला गया	**सुमहान्**	बहुत बड़ा
		शब्दः अभूत्	शब्द हुआ ॥३८॥

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं
पिबन् वदन् वा विचरन् स्वपञ्छ्वसन् ।
ददर्श चक्रायुधमग्रतो यत-
स्तदेव रूपं दुरवापमाप ॥३९॥

स नित्यता उद्विग्नधिया तं ईश्वरं पिबन् वदन् वा विचरन् स्वपन् श्वसन् ददर्श चक्र आयुधं अग्रतः यतः तत् एव रूपं दुरवापं आप ॥३९॥

स नित्यदा	वह सर्वदा	**चक्र आयुधं**	चक्र आयुध लिए
उद्विग्नधिया	उद्विग्न चित्त	**अग्रतः ददर्श**	अपने सामने ही देखता था
पिबन् वदन्	पीते, बोलते,	**तत् एव दुरवापं रूपं आप**	उसी दुष्प्राप्य रूपको प्राप्त हुआ ॥३९॥
विचरन्	चलते		
वा स्वपन्	अथवा सोते,		
श्वसन्	श्वास लेते हुए,		
यतः तं ईश्वरं	क्योंकि उन्हीं परमेश्वरको		

तस्यानुजा भ्रातरोऽष्टौ कङ्कन्यग्रोधकादयः ।
अभ्यधावन्नभिक्रुद्धा भ्रातुर्निर्वेशकारिणः ॥४०॥

तस्य अनुजा भ्रातरः अष्टौ कङ्कन्यग्रोधक आदयः अभि अधावन् अभि क्रुद्धा भ्रातुः निर्वेश कारिणः ॥४०॥

तस्य अष्टौ	उसके आठो	**आदयः**	आदि
अनुजा भ्रातरः	छोटे भाई	**अभिक्रुद्धाः**	अत्यन्त कुपित होकर
कङ्कन्यग्रोधक	कङ्क, न्यग्रोध,		

भ्रातुः निर्वेश कारिणः	भाईका बदला लेनेके लिए	**अभि अधावन्**	श्रीकृष्णकी ओर दौड़े ॥४०॥

तथातिरभसांस्तांस्तु संयत्तान् रोहिणीसुतः ।
अहन् परिघमुद्यम्य पशूनिव मृगाधिपः ॥४१॥

तथा अति रभसान् तान् तु संयत्तान् रोहिणीसुतः अहन् परिघं उद्यम्य पशून् इव मृग अधिपः ॥४१॥

तथा	इस प्रकार	**परिघं उद्यम्य**	(हाथी दांतका वही) डंडा उठाकर
संयत्तान्	तैयार होकर	**पशून्**	पशुओंको
अति रभसान्	बहुत वेग वाले	**मृग अधिपः इव**	मृगराजके समान
तान् तु	उन्हें तो	**अहन्**	मार दिया ॥४१॥
रोहिणीसुतः	रोहिणी-नन्दन बलरामजीने		

नेदुर्दुन्दुभयो व्योम्नि ब्रह्मेशाद्या विभूतयः ।
पुष्पैः किरन्तस्तं प्रीताः शशंसुर्ननृतुः स्त्रियः ॥४२॥

नेदुः दुन्दुभयः व्योम्नि ब्रह्म ईश आद्याः विभूतयः पुष्पैः किरन्तः तं प्रीताः शशंसुः ननृतुः स्त्रियः ॥४२॥

व्योम्नि	आकाशमें	**पुष्पैः किरन्तः**	पुष्प वर्षा करते हुए
दुन्दुभयः नेदुः	दुन्दुभियां बजने लगीं,	**शशंसुः**	प्रशंसा करने लगे
ब्रह्म ईश आद्याः	ब्रह्मा शिव आदि	**स्त्रियः ननृतुः**	देव-स्त्रियां नाचने लगीं ॥४२॥
विभूतयः	(भगवानकी) विभूतियां		

तेषां स्त्रियो महाराज सुहृन्मरणदुःखिताः ।
तत्राभीयुर्विनिघ्नन्त्यः शीर्षण्यश्रु विलोचनाः ॥४३॥

तेषां स्त्रियः महाराज सुहृत् मरण दुःखिताः तत्र अभीयुः विनिघ्नन्त्यः शीर्षाणि अश्रु विलोचनाः ॥४३॥

महाराज	महाराज !
तेषां स्त्रियः	उन (कंसादि)की स्त्रियां
सुहृत् मरण	अपने प्रिय सम्बन्धी की मृत्युसे
दुःखिताः	दुःखी होकर
शीर्षाणि	सिरको
विनिघ्नन्त्यः	पीटती हुई
अश्रु विलोचनाः	नेत्रोंसे आंसू बहाती
तत्र अभीयुः	वहां आयीं ॥४३॥

शयानान् वीरशय्यायां पतीनालिङ्ग्य शोचतीः ।
विलेपुः सुस्वरं नार्यो विसृजन्त्यो मुहुः शुचः ॥४४॥

शयानान् वीरशय्यायां पतीन् आलिङ्ग्य शोचतीः विलेपुः सुस्वरं नार्यः विसृजन्त्यः मुहुः शुचः ॥४४॥

वीरशय्यायां	वीर-शय्या (युद्ध-स्थली)में
शयानान्	सोये हुए
पतीन् आलिग्य	पतियोंका आलिगन करके
शोचतीः	शोक करती हुई
नार्यः	स्त्रियां
मुहुः शुचः	बार-बार आंसू
विसृजन्त्यः	बहाती हुई
सुस्वरं विलेपुः	उच्च स्वरसे विलाप करने लगीं ॥४४॥

॥नार्य उवाच॥*

हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणानाथवत्सल ।
त्वया हतेन निहता वयं ते सगृहप्रजाः ॥४५॥

हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुण अनाथवत्सल त्वया हतेन निहता वयं ते सगृह प्रजाः ॥४५॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

हा नाथ	हा स्वामी
प्रिय धर्मज्ञ	प्रिय ! धर्मज्ञ !
करुण	दयालु !
अनाथवत्सल	अनाथ वत्सल !
त्वया हतेन	आपके मारे-जानेसे
सगृह प्रजाः	घर और सन्तानके साथ
वयं निहता	हम सब मारी गयीं ॥४५॥

त्वया विरहिता पत्या पुरीयं पुरुषर्षभ ।
न शोभते वयमिव निवृत्तोत्सवमङ्गला ॥४६॥

त्वया विरहिता पत्या पुरी अयं पुरुषर्षभ न शोभते वयं इव निवृत्त उत्सवमङ्गला ॥४६॥

त्वया पत्या	आप स्वामीसे
विरहिता	रहित होकर
पुरुषर्षभ	पुरुषश्रेष्ठ !
अयं पुरी	यह नगरी
वयं इव	हमारी भांति
उत्सवमङ्गला	मंगलोत्सवोंके
निवृत्त	बन्द हो जानेसे
शोभते न	शोभित नहीं होती ॥४६॥

अनागसां त्वं भूतानां कृतवान् द्रोहमुल्बणम् ।
तेनेमां भो दशां नीतो भूतध्रुक् को लभते शम् ॥४७॥

अनागसां त्वं भूतानां कृतवान् द्रोहं उल्बणं तेन इमां भो दशां नीतः भूतध्रुक् कः लभते शम् ॥४७॥

भो त्वं	हे (स्वामी) आपने
अनागसां	निरपराध
भूतानां	प्राणियोंसे
उल्बणं द्रोहं	घोर द्रोह
कृतवान्	करलिया था
तेन इमां दशां	उसीके द्वारा इस दशाको
नीतः	पहुँचाये गये
भूतध्रुक्	प्राणियोंसे द्रोह करने वाला
कः शं लभेत	कौन शक्ति पा सकता है ॥४७॥

सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः ।
गोप्ता च तदवध्यायी न क्वचित् सुखमेधते ॥४८॥

सर्वेषां इह भूतानां एष हि प्रभव अप्ययः गोप्ता च तत् अवध्यायी न क्वचित् सुखं एधते ॥४८॥

इह सर्वेषां	इस संसारमें सभी
भूतानां	प्राणियोंकी
प्रभव अप्ययः	उत्पत्ति-विनाश करने वाले
च गोप्ता	तथा रक्षक
हि एष	क्योंकि ये (श्रीकृष्ण ही) है
तत् अवध्यायी	उनकी अवज्ञा सोचने वाला
क्वचित् सुखं न एधते	कभी सुखसे नहीं बढ़ (रह) पाता ॥४८॥

श्रीशुक उवाच

राजयोषित आश्वास्य भगवाँल्लोकभावनः ।
यामाहुर्लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत् ॥४९॥

राजयोषित आश्वास्य भगवान् लोकभावनः यां आहुः लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत् ॥४९॥

लोकभावनः	लोकरक्षक
भगवान्	भगवानने
राजयोषित	रानियोंको
आश्वास्य	आश्वासन देकर
हतानां	मारे हुओंका
यां लौकिकीं	जिसे लोकमें
संस्थां	अन्त्येष्टि
आहुः	कहा गया है
समकारयत्	उसे भली प्रकार करवाया ॥४९॥

मातरं पितरं चैव मोचयित्वाथ बन्धनात् ।
कृष्णरामौ ववन्दाते शिरसाऽऽस्पृश्य पादयोः ॥५०॥

मातरं पितरं च एव मोचययित्वा अथ बन्धनात् कृष्णरामौ ववन्दाते शिरसा आस्पृश्य पादयोः ॥५०॥

अथ मातरं च	फिर माता और	**कृष्णरामौ**	श्रीकृष्ण-बलरामने
पितरं	पिताको	**शिरसा पादयोः**	सिरसे उनके चरण
बन्धनात्	बन्धनसे	**आस्पृश्य**	स्पर्श करके
मोचयित्वा	छुड़ाकर	**ववन्दाते**	वन्दना की ॥५०॥

देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ।
कृतसंवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ ॥५१॥

देवकी वसुदेवः च विज्ञाय जगदीश्वरौ कृत संवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ ॥५१॥

देवकी च	देवकी तथा	**संवन्दनौ**	प्रणाम
वसुदेवः	वसुदेवने	**कृत**	करनेपर भी
जगदीश्वरौ	जगदीश्वर	**शङ्कितौ**	शंका हो जानेसे
विज्ञाय	जानकर	**सस्वजाते न**	हृदयसे नहीं लगाया
पुत्रौ	पुत्रोंके		॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कंसवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥५१॥

अथ पंचचत्वारिंशोऽयायः

श्रीशक उवाच

पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः ।
मा भूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥ १ ॥

पितराः उपलब्ध अर्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः मा भूत् इति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥१॥

पितराः	माता-पिता (मेरे)	**इति मा भूत्**	ऐसा न होवे (यह सोचकर)
अर्थौ	परमार्थ स्वरूपको		
उपलब्ध	जान गये हैं	**जनमोहिनीं**	भक्तोंको मोहित करने वाली*
पुरुषोत्तमः	पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने	**मायां ततान**	माया फैलायी ॥१॥
विदित्वा	यह जानकर		

उवाच पितरावेत्य साग्रजः सात्वतर्षभः ।
प्रश्रयावनतः प्रोणन्नम्ब तातेति सादरम् ॥ २ ॥

उवाच पितराः एत्य स अग्रजः सात्वत ऋषभः प्रश्रय अवनतः प्रीणन् अम्ब तात इति सादरम् ॥२॥

स अग्रजः	बड़े भाईके साथ	**सात्वत ऋषभः**	सात्वत-वंशमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण
पितराः एत्य	माता-पिताके पास आकर	**प्रश्रय अवनतः**	विनम्रतासे झुककर

---

* वैष्णवाचार्य तीन प्रकारकी माया मानते हैं ।
१—सामान्य या विमुखजन मोहिनी । संसार में भटकाने वाली ।
२—स्वजन (भक्तजन) मोहिनी । लीला-सहायिका ।
३—स्व (स्वयं श्रीकृष्णको) मोहनी । श्रीराधा ।

प्रीणन्	प्रसन्न करते हुए		पूर्वक सम्बोधन
अम्ब तात	'मां ! पिताजी'		करके
इति सादरं	इस प्रकार आदर	**उवाच**	बोले ॥२॥

श्रीभगवानुवाच*

नास्मत्तो युवयोस्तात नित्योत्कण्ठितयोरपि ।
बाल्यपौगण्डकैशोराः पुत्राभ्यामभवन् क्वचित् ॥ ३ ॥

न अस्मत्तः युवयोः तात नित्य उत्कण्ठितयोः अपि बाल्य पौगण्ड कैशोराः पुत्राभ्यां अभवन् क्वचित् ॥३॥

तात युवयोः	पिताजी ! आप दोनोंके	**बाल्य पौगण्ड कैशोराः**	शैशव, पौगण्ड और किशोरावस्थाका सुख
नित्य	सदा	**क्वचित् न**	कभी नहीं
उत्कण्ठितयोः	समुत्सुक रहने	**अभवन्**	हुआ ॥३॥
अपि	पर भी		
अस्मत्तः	हम दोनों पुत्रोंके		
पुत्राभ्यां	द्वारा (हमारी)		

न लब्धो दैवहतयोर्वासो नौ भवदन्तिके ।
यां बालाः पितृगेहस्था विन्दन्ते लालिता मुदम् ॥ ४ ॥

न लब्धः दैवहतयोः वासः नौ भवत् अन्तिके यां बालाः पितृगेहस्था विन्दन्ते लालिता मुदम् ॥४॥

दैवहतयोः	दैवके मारे	**बालाः लालिता**	बालक लाड़-प्यार का
नौ भवत्	हम दोनों आपके	**यां मुदं**	जो आनन्द
अन्तिके	समीप	**विन्दन्ते**	पाते हैं
वासः	निवास तथा	**न लब्धः**	(हमने) नहीं पाया ॥४॥
पितृगेहस्था	पिताके घर रहने वाले		

* यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

सर्वार्थसम्भवो देहो जनितः पोषितो यतः ।
न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥ ५ ॥

सर्व अर्थ सम्भवः देहः जनितः पोषितः यतः न तयोः याति निर्वेशं पित्रोः मर्त्यः शत आयुषा ॥५॥

सर्व अर्थ	समस्त पुरुषार्थोंको	**मर्त्यः शत**	मनुष्य अपनी सौ
सम्भवः देहः	उत्पन्न करने वाला शरीर	**आयुषा**	वर्षकी आयुमें भी
		तयोः याति	उन माता-पिताका
यतः जनितः	जिनसे उत्पन्न हुआ और	**निर्वेशं**	बदला
		न याति	नहीं दे पाता ॥५॥
पोषितः	पालन किया गया		

यस्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च ।
वृत्तिं न दद्यात्तं प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति हि ॥ ६ ॥

यः तयोः आत्मजः कल्प आत्मना च धनेन च वृत्तिं न दद्यात् तं प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति हि ॥६॥

यः आत्मजः	जो पुत्र	**न दद्यात्**	नहीं देता
कल्प	समर्थ होकर	**तं प्रेत्य**	उसे मरनेपर
आत्मना	अपने शरीरसे	**हि स्वमांसं**	निश्चय (यमदूत) उसीका मांस
च धनेन च	तथा धनसे भी		
तयोः वृत्तिं	उनको जीविका	**खादयन्ति**	खिलाते हैं ॥६॥

मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम् ।
गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रच्छ्वसन् मृतः ॥ ७ ॥

मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुं गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पः अबिभ्रन् श्वसन् मृतः ॥७॥

वृद्धं मातरं पितरं	बूढ़े माता-पिताको	**शिशुं सुतं**	शिशु पुत्रको
साध्वीं भार्यां	सती पत्नीको	**गुरुं विप्रं**	गुरु, ब्राह्मण

च प्रपन्नं	तथा शरणागतको	**श्वसन् मृतः**	श्वास लेता हुआभी मरेके समान है
कल्पः	समर्थ होने पर भी		
अबिभ्रत्	पालन न करने वाला		

तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः ।
मोघमेते व्यतिक्रान्ता दिवसा वामनर्चतोः ॥ ८ ॥

तत् नः अकल्पयोः कंसात् नित्यं उद्विग्न चेतसोः मोघं एते व्यतिक्रान्ता दिवसा वां अनर्चतोः ॥८॥

तत् नः	सो हम	**एते दिवसा**	इतने दिन
अकल्पयोः	असमर्थों	**वां अनर्चतोः**	आप दोनोंकी सेवा किए बिना
कंसात्	कंससे	**मोघं व्यतिक्रान्ता**	व्यर्थ बीत गये
नित्यं उद्विग्न	सदा उद्विग्न		॥८॥
चेतसोः	चित्त वालोंका		

श्रीशुक उवाच

तत् क्षन्तुमर्हथस्तात मातर्नौ परतन्त्रयोः ।
अकुर्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम् ॥ ९ ॥

तत् क्षन्तुं अर्हथः तात मातः नौ परतन्त्रयोः अकुर्वतोः वां शुश्रूषां क्लिष्टयोः दुर्हृदा भृशम् ॥९॥

तात मातः	पिताजी ! माताजी	**क्लिष्टयोः**	कष्ट पाते हुए
तत् क्षन्तु अर्हथः	इसलिए (आपको हमें) क्षमाकर देना चाहिए	**वां शुश्रूषां**	आप दोनोंकी सेवा
		नौ परतन्त्रयोः	हम परतन्त्रोंसे
		अकुर्वतोः	नहीं की जा सकी
दुर्हृदा भृशं	दुष्ट चित्त (कंस) के द्वारा अत्यन्त		॥९॥

इति मायामनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा ।
मोहितावङ्कमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम् ॥१०॥

इति मायामनुष्यस्य हरेः विश्वात्मनः गिरा मोहिताः अङ्कं आरोप्य परिष्वज्य आपतुः मुदम् ॥१०॥

इति	इस प्रकार
मायामनुष्यस्य	मायासे मनुष्य बने
विश्वात्मनः	विश्वात्मा
हरेः गिरा	श्रीहरिकी वाणीसे
मोहिताः	मोहित होकर
अङ्कं आरोप्य	(उनको) गोदमें बैठाकर
परिष्वज्य	आलिंगन करके
मुदं आपतुः	(उन दोनोंने) बड़ा आनन्द पाया ॥१०॥

सिञ्चन्तावश्रुधाराभिः स्नेहपाशेन चावृतौ ।
न किञ्चिदूचतू राजन् बाष्पकण्ठौ विमोहितौ ॥११॥

सिञ्चन्ताः अश्रुधाराभिः स्नेहपाशेन च आवृतौ न किञ्चित् ऊचतू राजन् बाष्पकण्ठौ विमोहितौ ॥११॥

राजन्	राजन् !
स्नेहपाशेन च	स्नेहके पाशमे
आवृतौ	भली प्रकार बँधकर
विमोहितौ	अत्यन्त मोहित होकर
अश्रुधाराभिः	आंसूकी धारासे
सिञ्चन्ताः	उनको भिगाते हुए
बाष्पकण्ठौ	आंसूसे गला भर जानेसे
किञ्चित्	कुछ भी
न ऊचतू	नहीं बोले ॥११॥

एवमाश्वास्य पितरौ भगवान् देवकीसुतः ।
मातामहं तूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ॥१२॥

एवं आश्वास्य पितरौ भगवान् देवकीसुतः मातामहं तु उग्रसेनं यदूनां अकरोत् नृपम् ॥१२॥

भगवान्	भगवान
देवकीसुतः	देवकी-नन्दनने
एवं पितरौ	इस प्रकार माता-पिताको
आश्वास्य	समझाकर
मातामहं	अपने नाना
उग्रसेनं तु	उग्रसेनको तो
यदूनां नृप	यदुवंशियोंका नरेश
अकरोत्	बना दिया ॥१२॥

आह चास्मान् महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि ।
ययातिशापाद् यदुभिर्नासितव्यं नृपासने ॥१३॥

आह च अस्मान् महाराज प्रजाः च आज्ञप्तुं अर्हसि ययाति शापात् यदुभिः न आसितव्यं नृप आसने ॥१३॥

आह च	कहा भी
महाराज	'महाराज !
अस्मान् प्रजाः	हम प्रजाजनोंको
च	भी
आज्ञप्तुं अर्हसि	आपको आज्ञा देना चाहिए, क्योंकि
ययाति शापात्	यायातिके शापसे
यदुभिः	यदुवंशियोंको
नृप आसने	राजसिंहासनपर
न आसितव्यं	नहीं बैठना चाहिए ॥१३॥*

मयि भृत्य उपासीने भवतो विबुधादयः ।
बलिं हरन्त्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः ॥१४॥

मयि भृत्य उप आसीने भवतः विबुध आदयः बलिं हरन्ति अवनताः किं उत अन्ये नराधिपाः ॥१४॥

भवतः मयि भृत्य	आपके सेवक मेरे
उप आसीने	समीप बैठनेपर
विबुध आदयः	देवतादि भी
अवनताः	झुककर
बलिं हरन्ति	उपहार देंगे
उत अन्ये	फिर दूसरे
नराधिपाः किं	राजाओंकी तो बात ही क्या ॥१४॥

सर्वान् स्वाञ्ज्ञातिसम्बन्धान् दिग्भ्यः कंसभयागतान् ।
यदुवृष्ण्यन्धकमधुदाशार्हकुकुरादिकान् ॥१५॥

सर्वान् स्वज्ञाति सम्बन्धान् दिक्भ्यः कंस भयात् गतान् यदुवृष्णि अन्धक मधुदाशार्ह कुकुर आदिकान् ॥१५॥

---

*महाराज उग्रसेन भी यदुवंशी ही हैं, किन्तु उनके पूर्व पुरुषोंने यह मर्यादा नहीं मानी तो वे इसके अपवाद हो गये ।

कंस भयात्	कंसके डरसे
दिक्भ्यः गतान्	अनेक दिशाओंमें चले गये
सर्वान्	सब
स्वज्ञाति	अपनी जातिके
सम्बन्धान्	सम्बन्धियों
यदुवृष्णि अन्धक	यादव, वृष्णि, अन्धक
मधुदाशार्ह	मधु, दाशार्ह,
कुकुर आदिकान्	कुकुर आदि वंश के लोगोंको

॥१५॥

सभाजितान् समाश्वास्य विदेशावासकर्शितान् ।
न्यवासयत् स्वगेहेषु वित्तैः संतर्प्य विश्वकृत् ॥१६॥

सभाजितान् सम आश्वास्य विदेश आवास कर्शितान् न्यवासयत् स्वगेहेषु वित्तैः संतर्प्य विश्वकृत् ॥१६॥

विदेश आवास	विदेशमें रहनेसे
कर्शितान्	दुःखी लोगोंको
सम आश्वास्य	भली प्रकार आश्वासन देकर
सभाजितान्	आदर देकर
वित्तैःसन्तर्प्य	धनसे सन्तुष्ट करके
विश्वकृत्	विश्वकर्ता श्रीकृष्ण ने
स्वगेहेषु	उनके अपने घरोंमें
न्यवासयत्	बसाया ॥१६॥

कृष्णसंकर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः ।
गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः ॥१७॥

कृष्णसङ्कर्षण भुजैः गुप्ता लब्ध मनोरथाः गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णराम गतज्वराः ॥१७॥

कृष्ण सङ्कर्षण भुजैः गुप्ता	श्रीकृष्ण-बलरामकी भुजाओंसे रक्षित
गृहेषु	घरोंमें
कृष्णराम	श्रीकृष्ण-बलराम द्वारा
लब्ध मनोरथाः	सब अभिलाषाएं प्राप्त करके
गतज्वराः	निश्चिन्त होकर
सिद्धाः रेमिरे	सफल मनोरथ बिहार करने लगे ॥१७॥

वीक्षन्तोऽहरहः प्रीता मुकुन्दवदनाम्बुजम् ।
नित्यं प्रमुदितं श्रीमत् सदयस्मितवीक्षणम् ॥१८॥

वीक्षन्तः अहः अहः प्रीता मुकुन्द वदनाम्बुजं नित्यं प्रमुदितं श्रीमत् सदय स्मित वीक्षणम् ॥१८॥

सदय स्मित	दयापूर्ण मुसकानसे युक्त	मुकुन्द	मुकुन्दके
वीक्षणं	दृष्टि वाले	वदनाम्बुजं	मुख-कमलको
नित्यं प्रमुदितं	नित्य प्रसन्न	अहः अहः	प्रतिदिना
श्रीमत्	शोभासम्पन्न	वीक्षन्तः प्रीता	देखते हुए आनन्दित ॥१८॥

तत्र प्रवयसोऽप्यासन् युवानोऽतिबलौजसः ।
पिबन्तोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखाम्बुजसुधां मुहुः ॥१९॥

तत्र प्रवयसः अपि आसन् युवानः अतिबल ओजसः पिबन्तः अक्षैः मुकुन्दस्य मुखाम्बुज सुधां मुहुः ॥१९॥

अक्षैः	नेत्रों द्वारा	अतिबल	अत्यन्त बलवान
मुकुन्दस्य	मुकुन्दके	ओजसः	ओजस्वी (स्फूर्तिमान)
मुखाम्बुज	मुख-कमलके		
सुधां मुहुः	अमृतको बारबार	युवानः आसन्	जवान हो गये ॥१९॥
पिबन्तः	पीनेके से		
तत्रप्रवयसःअपि	वहाँके वृद्ध भी		

अथ नन्दं समासाद्य भगवान् देवकीसुतः ।
संकर्षणश्च राजेन्द्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥२०॥

अथ नन्दं सम आसाद्य भगवान् देवकीसुतः सङ्कर्षणः च राजेन्द्र परिष्वज्य इदं ऊचतुः ॥२०॥

राजेन्द्र	महाराज !	**च सङ्कर्षणः**	तथा बलरामजी
अथ नन्दं	फिर नन्दजीके	**परिष्वज्य**	(उनका) आलिंगन
सम असाद्य	समीप पहुँचकर		करके
भगवान्	भगवान्	**इदं ऊचतुः**	यह बोले ॥२०॥
देवकीसुतः	देवकी-नन्दन		

पितर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम् ।
पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपि हि ॥२१॥

पितः युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशं पित्रोः अभ्यधिका प्रीतिः आत्मजेषु आत्मनः अपि हि ॥२१॥

पितः युवाभ्यां	पिताजी ! आप दोनोंने	**अपि**	भी
		आत्मजेषु	पुत्रपर
भृशं स्निग्धाभ्यां	अत्यन्त प्रेमसे	**अभ्यधिका**	अत्यन्त अधिक
लालितौ पोषितौ	(हमारा) लालन-पालन किया है,	**पित्रोः प्रीतिः**	माता-पिताका प्रेम होता है ॥२१॥
हि आत्मनः	क्योंकि अपनेशरीरसे		

स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् ।
शिशून् बन्धुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥२२॥

स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् शिशून् बन्धुभिः उत्सृष्टान् अकल्पैः पोषरक्षणे ॥२२॥

पोषरक्षणे	पोषण-रक्षणमें	**स्वपुत्रवत्**	अपने पुत्रके समान
अकल्पैः	असमर्थ	**पुष्णीतां**	पालन करते हैं
बन्धुभिः	सम्बन्धियों द्वारा	**स पिता**	वही पिता
उत्सृष्टान्	त्यागे हुए	**च सा जननी**	और वही माता हैं ॥२२॥
शिशून् यौ	शिशुओंको जो		

यात यूयं व्रजं तात वयं च स्नेहदुःखितान् ।
ज्ञातीन् वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम् ॥२३॥

यात यूयं व्रजं तात वयं च त्नेह दुःखितान् ज्ञातीन् वः द्रष्टुं एष्यामः विधाय सुहृदां सुखम् ॥२३॥

तात यूयं	पिताजी ! आप लोग
व्रजं यात	ब्रज जावें
वयं च	हम दोनों भी
सुहृदां सुखं	(यहाँके) सम्बन्धियोंके सुखकी
विधाय	व्यवस्था करके
स्नेह दुःखितान्	अपने स्नेहसे दुःखी
वः ज्ञातीन्	आप जातिके लोगों के
द्रष्टुं एष्यामः	देखने आवेंगे ॥२३॥

एवं सान्त्वय्य भगवान् नन्दं सव्रजमच्युतः ।
वासोऽलङ्कारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥२४॥

एवं सान्त्वय्य भगवान् नन्दं सव्रजं अच्युतः वासः अलङ्कार कुप्याद्यैः अर्हयामास सादरम् ॥२४॥

सव्रजं	व्रजवासियोंके साथ
एवं नन्द	इस प्रकार नन्दजी को
सान्त्वय्य	समझाकर
भगवान् अच्युतः	भगवान् श्रीकृष्णने
सादरं	आदर पूर्वक
वासः अलङ्कार	वस्त्र आभूषण
कुप्याद्यैः	बर्तन आदि देकर
अर्हयामास	(उनका) सत्कार किया ॥२४॥

इत्युक्तस्तौ परिष्वज्य नन्दः प्रणयविह्वलः ।
पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजं ययौ ॥२५॥

इति उक्तः तौ परिष्वज्य नन्दः प्रणय विह्वलः पूरयन् अश्रुभि नेत्रे सह गोपैः व्रजं ययौ ॥२५॥

इति उक्तः	ऐसा कहनेपर
तौ परिष्वज्य	उन दोनों भाइयों का आलिंगन करके
प्रणय विह्वलः	प्रेमसे व्याकुल
नन्दः	नन्दजी
अश्रुभि नेत्रे	आंसुओंसे नेत्र
पूरयन्	भरते हुए (आंसू बहाते)
गोपैः सह	गोपोंके साथ
व्रजं ययौ	व्रज गये ॥१५॥

अथ शूरसुतो राजन् पुत्रयोः समकारयत् ।
पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद् द्विजसंस्कृतिम् ॥२६॥

अथ शूरसुतः राजन् पुत्रयोः समकारयत् पुरोधसा ब्राह्मणैः च यथावत् द्विजसंस्कृतिम् ॥२६॥

राजन्	राजन्	**पुत्रयोः**	अपने दोनों पुत्रोंका
अथ शूरसुतः	फिर शूरनन्दन वासुदेवजीने	**यथावत्**	विधिपूर्वक
		द्विजसंस्कृतिं	द्विजाति संस्कार (यज्ञोपवीत)
पुरोधसा	पुरोहित		
च ब्राह्मणैः	तथा अन्य ब्राह्मणों द्वारा	**समकारयत्**	सम्पन्न करवाया ॥२६॥

तेभ्योऽदाद् दक्षिणा गावो रुक्ममालाः स्वलंकृताः ।
स्वलंकृतेभ्यः सम्पूज्य सवत्साः क्षौममालिनीमः ॥२७॥

तेभ्यः अदात् दक्षिणा गावः रुक्ममालाः स्वलंकृताः स्वलंकृतेभ्यः सम्पूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः ॥२७॥

तेभ्यः	उन	**रुक्ममालाः**	सोनेकी मालाएँ तथा
स्वलंकृतेभ्यः	भली प्रकार अलंकृत (ब्राह्मणों को)	**क्षौममालिनीः**	रेशमी वस्त्रोंकी मालाएँ पहिने
सवत्साः	बछड़ोंके साथ	**गावः सम्पूज्य**	गायोंकी पूजा करके
स्वलंकृताः	अच्छी प्रकार आभूषिता	**दक्षिणा अदात्**	दक्षिणामें दीं ॥२७॥

याः कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः ।
ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ॥२८॥

याः कृष्णराम जन्म अर्क्षे मनः दत्ता महामतिः ताः च अदात् अनुस्मृत्य कंसे न अधर्मतः हृताः ॥२८॥

महामतिः	महामति (वसुदेव जी) ने	**अनुस्मृत्य**	पीछे उनका स्मरण करके
कृष्णराम	श्रीकृष्ण-बलरामके	**ताः च अदात्**	उनको भी दे दिया,
जन्म अर्क्षे	जन्म-नक्षत्रोंमें	**कंसे न**	कंसके द्वारा
याः मनः दत्ता	जो(गायें) मानसिक संकल्पसे दी थीं,	**अधर्मतः**	अधर्म पूर्वक
		हृताः	वे छीन ली गयी थीं ॥२८॥

ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ ।
गर्गाद् यदुकुलाचार्याद् गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥२९॥

ततः च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ गर्गात् यदुकुल आचार्यात् गायत्रं व्रतं आस्थितौ ॥२९॥

ततः च	उसके पश्चात् तो	**द्विजत्वं प्राप्य**	द्विजत्व पाकर
यदुकुल	यदुकुलके	**सुव्रतौ**	उत्तम (ब्रह्मचर्य)
आचार्यात्	आचार्य		व्रतवाले दोनोंभाई
गर्गात्	गर्गाचार्यसे	**गायत्रं व्रतं**	गायत्री-जपके
लब्धसंस्कारौ	यज्ञोपवीत संस्कार पाकर		नियमपर
		आस्थितौ	दृढ़तासे स्थित हुए

प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ ।
नान्यसिद्धामलज्ञानं गूहमानौ नरेहितौः ॥३०॥

प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ न अन्यसिद्ध अमलज्ञानं गूहमानौ नर ईहितौः ॥३०॥

सर्वविद्यानां	(दोनों भाई) समस्त विद्याओंको	**अमलज्ञानं न**	निर्मल ज्ञान नहीं है
		नर ईहितौः	(वेतो) मनुष्यके समान चेष्टाओंसे
प्रभवौ	उत्पन्न करने वाले		
सर्वज्ञौ	सर्वज्ञ	**गूहमानौ**	अपनेको छिपाये हैं ॥३०॥
जगदीश्वरौ	जगतके स्वामी		
अन्यसिद्ध	दूसरेकी सहायतासे प्राप्त (उनका)		

अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः ।
काश्यं सांदीपनिं नाम ह्यवन्तीपुरवासिनम् ॥३१॥

अथो गुरुकुले वासं इच्छन्ताः उपजग्मतुः काश्यं सांदीपनिं नाम हि अवन्तीपुर वासिनम् ॥३१॥

हि	क्योंकि	**वासिनं**	निवासी
अथो गुरुकुले	फिर गुरुकुल में	**काश्यं**	काश्य-गोत्री
वासं इच्छन्ताः	निवासकी इच्छा करते थे,	**सांदीपनि नाम**	सांदीपन नाम मुनिके
अवन्तीपुर	उज्जैन-	**उपजग्मतुः**	समीप गये ॥३१॥

यथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् ।
ग्राह्यन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥३२॥

यथा उपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिं अनिन्दितां ग्राह्यन्ताः उपेतौ स्म भक्त्या देवं इव आदृतौ ॥३२॥

यथा उपसाद्य	विधिपूर्वक वहाँ पहुँचकर	**ग्राह्यन्ताः**	(संसारको) ग्रहण कराते हुए
तौ दान्तौ	वे दोनों भाई इन्द्रियोंको संयमित करके	**भक्त्या**	भक्तिपूर्वक
		देवं इव	इष्ट देवके समान
		आदृतौ	आदर करते हुए
अनिन्दितां	प्रशंसनीय	**उपेतौ स्म**	(गुरुके) समीप रहने लगे ॥३२॥
गुरौ वृत्तिं	गुरु-सेवाका व्रत		

तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ।
प्रोवाच वेदानखिलान् साङ्गोपनिषदो गुरुः ॥३३॥

तयोः द्विजवरः तुष्टः शुद्ध भाव अनुवृत्तिभिः प्रोवाच वेदान् अखिलान् स अङ्ग उपनिषदः गुरुः ॥३३॥

तयोः	उन दोनों भाइयों के	**गुरुः**	गुरुदेवने
शुद्धभाव	शुद्धभाव तथा	**स अङ्ग**	अंगों और
अनुवृत्तिभिः	सेवासे	**उपनिषदः**	उपनिषदोंके साथ*
तुष्टः	सन्तुष्ट होकर	**अखिलान्**	सम्पूर्ण वेदोंका
द्विजवरः	ब्राह्मण श्रेष्ठ	**प्रोवाच**	प्रवचन किया (पढ़ाया) ॥३३॥

सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान् न्यायपथांस्तथा ।
तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम् ॥३४॥

सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान् न्यायपथान् तथा तथा च आन्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षट्विधां ॥३४॥

सरहस्यं	रहस्य (मन्त्र तथा देवताज्ञान) के साथ	**विद्यां च षट्विधां**	शास्त्र एवं ६ प्रकार (सन्धि, विग्रह, मान, आसन, द्वैध आश्रय) की
धनुर्वेदं	धनुर्वेदको		
धर्मान्	धर्मशास्त्र (मीमांसा)		
तथा न्यायपथान्	और न्यायशास्त्र (तर्क पद्धति)	**राजनीतिं**	राजनीतिको (पढ़ाया) ॥३४॥
तथा च	ऐसे ही		
आन्वीक्षिकीं	आध्यात्म		

सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्तकौ ।
सकृन्निगदमात्रेण तौ संजगृहतुर्नृप ॥३५॥

सर्वंनरवर श्रेष्ठौ सर्वविद्या प्रवर्तकौ सकृत् निगदमात्रेण तौ सञ्जगृहतुः नृप ॥३५॥

---

*वेदों, उपनिषदों तथा वेदाङ्गोंका विवरण 'हमारे धर्म-ग्रन्थ' नामक पुस्तकमें दिया गया है ।

नृप	राजन् !	**सकृत्**	केवल एक बार
तौ	वे दोनों भाई	**निगदमात्रेण**	कहने (उच्चारण) मात्रसे
नरवरश्रेष्ठौ	उत्तम पुरुषोंमें भी पुरुषोत्तम	**सर्वं सञ्जगृहतुः**	सब भली प्रकार सीख लिया ॥३५॥
सर्वविद्या	समस्त विद्याओंके		
प्रवर्तकौ	प्रवर्तक (आद्याचार्य) हैं (अतः)		

अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयतौ तावतीः कलाः ।
गुरुदक्षिणयाऽऽचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥३६॥

अहः रात्रैः चतुःषष्ट्या संयत्तौ तावतीः कलाः गुरुदक्षिणया आचार्यं छन्दयामासतुः नृप ॥३६॥

नृप	राजन् !	**संयत्तौ**	भली प्रकार ग्रहण करके
चतुःषष्ट्या	चौंसठ	**आचार्यं**	आचार्यसे
अहः रात्रैः	दिन-रातमें	**गुरुदक्षिणया**	गुरुदक्षिणा
तावतीः कलाः	उतनी ही (चौंसठ) कलाएँ*	**छन्दयामासतुः**	मांगनेकी प्रार्थना की ॥३६॥

---

* चौंसठ कलाएं—१-संगीत २-वाद्य ३-नृत्य ४-नाट्य ५-चित्रकारी ६-कशीदाकारी ७-पुष्परचना ८-शय्या-सज्जा ९-अंग-रंजन १०-मणिजड़ना ११-शय्या-निर्माण (पत्रादिसे) १२-जल-बन्धन १३-सिद्धिदर्शन १४-माल्य-ग्रन्थन १५-पुष्पाभरण १६-वस्त्राभरण निर्माण १७-पुष्प शृंगार १८-कर्णपत्र १९-गन्ध-निर्माण २०-इन्द्रजाल २१-बहुरूपधारण २२-हाथ की फुर्ती २३-भोजन-निर्माण २४-पेय-निर्माण २५-सूची कर्म २६-कठपुतली नचाना २७-पहेली २८-मूर्ति-निर्माण २९-कूटनीति ३०-शीघ्रपठन ३१-नाट्य रचना ३२-कविता ३३-बेंत आदि बनाना ३४-दरी गलीचा बुनना ३५-बढ़ई का काम ३६-गृह निर्माण ३७-रत्न परीक्षा ३८-स्वर्ण बनाना ३९-रत्न-रंजन ४०-वृक्ष-चिकित्सा ४१-खान पहचानना ४२-पशु-पक्षी लड़ाना ४३-पक्षि-ध्वनि ४४-उच्चाटन ४५-केश-सज्जा ४६-मनकी बात बताना ४७-मलेच्छ काव्य-

द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं
संलक्ष्य राजन्नतिमानुषीं मतिम् ।
सम्मन्त्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं
बालं प्रभासे वरयाम्बभूव ह ॥३७॥

द्विजः तयोः तं महिमानं अद्भुतं संलक्ष्य राजन् अतिमानुषीं मतिं सम्मन्त्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं बालं प्रभासे वरयान् बभूव ह ॥३७॥

तयोः तं	उन दोनों भाइयों की वह	पत्न्या सम्मन्त्र्य	पत्नीसे सलाह करके
अद्भुतं	आश्चर्य जनक	प्रभासे	प्रभास तीर्थमें
महिमानं	महिमा वाली	महार्णवे	महासागरमें
अतिमानुषीं	अतिमानवी	मृतं बालं	डूबकर मरे पुत्रको
मतिं संलक्ष्य	बुद्धि पहिचानकर	ह वरयान् बभूव	अहो वरदान रूपसे मांगा ॥३७॥
स द्विजः	उन विप्रवरने		

तथेत्यथारुह्य महारथौ रथं
प्रभासमासाद्य दुरन्तविक्रमौ ।
वेलामुपव्रज्य निषीदतुः क्षणं
सिन्धुर्विदित्वार्हणमाहरत्तयोः ॥३८॥

तथा इति अथ आरुह्य महारथौ रथं प्रभासं आसाद्य दुरन्त विक्रमौ वेलां उपव्रज्य निषीदतुः क्षणं सिन्धुः निदित्वा अर्हणं आहरत् तयोः ॥३८॥

तथा इति	'अच्छा' ऐसा कहकर	दुरन्त विक्रमौ	अनन्त पराक्रम वे
		महारथौ	महारथी

ज्ञान ४८-भिन्न भाषा ४९-शकुन ज्ञान ५०-मातृका यन्त्र निर्माण ५१-रत्न-छेदन ५२-संकेत भाषा निर्माण ५३-मनोव्यूह ५४-आविष्कार ५५-छल ५६-कोषज्ञान ५७-छन्द ज्ञान ५८-वस्त्र गूहन ५९-जुआ ६०-आकर्षण ६१-बाल क्रीड़ा ६२-मन्त्र विद्या ६३-विजय विद्या ६४-वेताल सिद्धि ।

अथ रथं आरुह्य	फिर रथपर चढ़कर
प्रभासं आसाद्य	प्रभास पहुँचकर
वेलां उपव्रज्य	समुद्रतटके समीप जाकर
क्षणं निषीदतुः	क्षणभर बैठकर
सिन्धुः विदित्वा	(उनको आया) जानकर समुद्र
तयोः अर्हणं	उनके लिए पूजा-सामग्री
आहरत्	ले आया ॥३८॥

तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रः प्रदीयताम् ।
योऽसाविह त्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा ॥३९॥

तं आह भगवान् आशु गुरुपुत्रः प्रदीयतां यः असाः इह त्वया ग्रस्तः बालकः महत् उर्मिणा ॥३९॥

भगवान्	भगवानने
तं आह	उससे कहा
इह त्वया	यहाँ तुमने
महत् उर्मिणा	अपनी बड़ी लहर से
यः बालकः	जो बालक
ग्रस्तः	निगल लिया था
असाः गुरुपुत्रः	वह हमारे गुरुका पुत्र
आशु	शीघ्र
प्रदीयतां	(हमको) दे दो ॥३९॥

समुद्र उवाच

नैवाहार्षमहं देव दैत्यः पञ्चजनो महान् ।
अन्तर्जलचरः कृष्ण शङ्खरूपधरोऽसुरः ॥४०॥

न एव अहार्षं अहं देव दैत्यः पञ्चजनः महान् अन्तः जलचरः कृष्ण शङ्खरूप धरः असुरः ॥४०॥

देव कृष्ण	देव ! कृष्ण !
अहं न एव	मैंने नहीं ही
अहार्षं	हरण किया है,
पञ्चजनः दैत्यः	पञ्चजन नामका दैत्य
शङ्खरूप धरः	शंखरूप धारण करके
महान् असुरः	वह महा असुर
अन्तः जलचरः	(मेरे) जलके भीतर घूमता है ॥४०॥

श्रीशुक उवाच*

आस्ते तेनाहृतो नूनं तच्छ्रुत्वा सत्वरं प्रभुः ।
जलमाविश्य तं हत्वा नापश्यदुदरेऽर्भकम् ॥४१॥

आस्ते तेन आहृतः नूनं तत् श्रुत्वा सत्वरं प्रभुः जलं आविश्य तं हत्वा न अपश्यत् उदरे अर्भकम् ॥४१॥

आस्ते	'अब भी है,	जलं आविश्य	जलमें प्रवेश करके
नूनं तेन	अवश्य उसीने	तं हत्वा	उसे मारकर
आहृतः	हरण किया होगा'	उदरे अर्भकं	(उसके) बेटमें
तत् श्रुत्वा	यह सुनकर		बच्चेको
प्रभुः	समर्थ श्रीकृष्णने	न अपश्यत्	नहीं देखा ॥४१॥
सत्वरं	शीघ्रता पूर्वक		

तदङ्गप्रभवं शंखमादाय रथमागमत् ।
ततः संयमनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ॥४२॥

तत् अङ्ग प्रभवं शंखं आदाय रथं आगमत् ततः संयमनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ॥४२॥

तत् अङ्ग	उसके शरीरसे	ततः यमस्य	फिर यमराजकी
प्रभवं शंखं	उत्पन्न शंखको	दयितां पुरीं	प्यारी पुरी
आदाय	लेकर	संयमनीं नाम	संयमिनी नामकी
रथं आगमत्	रथपर लौट आये,		में ॥४२॥

गत्वा जनार्दनः शङ्खं प्रदध्मौ सहलायुधः ।
शङ्खनिर्ह्रादमाकर्ण्य प्रजासंयमनो यमः ॥४३॥

गत्वा जनार्दनः शंखं प्रदध्मौ सहलायुधः शंख निर्ह्रादं आकर्ण्य प्रजा संयमनः यमः ॥४३॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सहलायुधः	बलरामजीके साथ	आकर्ण्य	सुनकर
जनार्दन गत्वा	श्रीकृष्णने जाकर	प्रजा संयमनः	प्रजाका शासन
शंखं प्रदध्मौ	शंख बजाया		करने वाले
शंख निर्ह्रादं	शंखका तुमुल घोष	यमः	यमराजने ॥४३॥

तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्त्युपबृंहिताम् ।
उवाचावनतः कृष्णं सर्वभूताशयालयम् ।
लीलामनुष्य हे विष्णो युवयोः करवाम किम् ॥४४॥

तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्ति उपबृंहितां उवाच अवनतः कृष्णं सर्वभूत आशय आलयं लीला मनुष्य हे विष्णो युवयोः करवाम किम् ॥४४॥

भक्ति उपबृंहितां	भक्ति पूर्वक	लीला मनुष्य	'लीलाके लिए मनुष्य बने
तयोः महतीं	उन दोनों भाइयों की महती	हे विष्णो	हे विष्णु भगवान !
सपर्यां चक्रे	पूजा की	युवयोः	आप दोनोंकी
अवनतः	(फिर) नम्रतासे झुककर	किं करवाम	हम क्या सेवा करें ॥४४॥
कृष्णं उवाच	श्रीकृष्णसे बोले–		

श्रीभगवानुवाच

गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम् ।
आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥४५॥

गुरुपुत्रं इह आनीतं निजकर्म निबन्धनं आनयस्व महाराज मत् शासन पुरः कृतः ॥४५॥

महाराज	महाराज !	इह आनीतं	यहाँ लाया गया है,
निजकर्म	अपने कर्म	मत् शासन	(अब) मेरी आज्ञा
निबन्धनं	बन्धनसे बँधा		को
गुरुपुत्रं	(हमारे) गुरु पुत्रको	पुरः कृतः आनयस्व	प्रथम मानकर ले आइये ॥४५॥

श्रीशुक उवाच*

तथेति तेनोपानीतं गुरुपुत्रं यदूत्तमौ ।
दत्त्वा स्वगुरवे भूयो वृणीष्वेति तमूचतुः ॥४६॥

तथा इति तेन उप आनीतं गुरुपुत्रं यदु उत्तमौ दत्त्वा स्वगुरवे भूयः वृणीष्व इति तं ऊचतुः ॥४६॥

तथा इति	'अच्छा' इस प्रकार (कहकर)	यदुउत्तमौ	वे यादव श्रेष्ठ
तेन उप आनीतं	उन (यमराज) के द्वारा पास लाये	भूयः वृणीष्व इति तं	'फिर कुछ मांग लें' ऐसा कहनेपर उनसे
गुरुपुत्रं	गुरुपुत्रको	ऊचतुः	बोले ॥४६॥
स्वगुरवे दत्त्वा	अपने गुरुको देकर		

श्रीगुरुरुवाच

सम्यक् सम्पादितो वत्स भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः ।
को नु युष्मद्विधगुरोः कामानामवशिष्यते ॥४७॥

सम्यक् सम्पादितः वत्स भवद्भ्यां गुरु निष्क्रयः कः नु युष्मद् विध गुरोः कामानां अवशिष्यते ॥४७॥

वत्स भवद्भ्यां	वत्स ! तुम लोगों द्वारा	गुरोः कः	जैसोंके गुरुकी कौनसी
गुरु निष्क्रयः	गुरु-दक्षिणा	कामानां	कामनाएँ
सम्यक्	भली प्रकार	अवशिष्यते	बची रह सकती
सम्पादितः	पूर्णकर दी गयी,		हैं ॥४७॥
नु युष्मद् विध	भला तुम्हारे		

---

*यह उवाच अन्य प्रतिमोंमें नहीं हैं ।

गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु पावनी ।
छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥४८॥

गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिः वां अस्तु पावनी छन्दांसि अयात यामानि भवन्तु इह परत्र च ॥४८॥

वीरौ स्वगृहं	वीरो ! अपने घर	यामानि	पढ़ेके समान
गच्छतं	पधारो,	इह च	इस लोकमें तथा
वां पावनी	तुम दोनोंकी पवित्र	परत्र	परलोकमें भी
कीर्तिः अस्तु	कीर्ति हो,	भवन्तु	(कण्ठस्थ) होवें
छन्दांसि	वेद		॥४८॥
अयात	अभी तत्काल		

श्रीशुक उवाच*

गुरुणैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा ।
आयातौ स्वपुरं तात पर्जन्यनिनदेन वै ॥४९॥

गुरुणा एवं अनुज्ञातौ रथेन अनिल रंहसा आयातौ स्वपुरं तात पर्जन्य निनदेन वै ॥४९॥

तात	प्रिय परीक्षित !	निनदेन	ध्वनि करने वाले
गुरुणा एवं	गुरुके द्वारा इस प्रकार	अनिल	वायुके समान
		रंहसा	वेग वाले
वै अनुज्ञातौ	निश्चित अनुमति प्राप्त होनेपर	रथेन स्वपुरं	रथसे अपने नगर
		आयातौ	(दोनों भाई) आ
पर्जन्य	मेघगर्जन जैसी		गये ॥४९॥

समनन्दन् प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ।
अपश्यन्त्यो बहूवहानि नष्टलब्धधना इव ॥५०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

समनन्दन् प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ अपश्यन्तः बहु अहानि नष्टलब्ध धना इव ॥५०॥

राम जनार्दनौ	बलराम-श्रीकृष्णको	नष्ट	खोये
दृष्ट्वा	देखकर	लब्धधना	धनके फिर मिलनेके
बहु अहानि	बहु दिनोंसे		
अपश्यन्तः	न देखने वाली	इव समनन्दन्	समान बहुत प्रसन्न
सर्वा प्रजाः	सब प्रजा		हुई ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गुरुपुत्रानयनं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥५५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा ।
शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥

वृष्णीनां प्रवरः मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा शिष्यः बृहस्पतेः साक्षात् उद्धवः बुद्धिसत्तमः ॥१॥

बुद्धिसत्तमः	बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ	**वृहस्पतेः**	(देवगुरु) बृहस्पतिके
उद्धवः	उद्धवजी		
वृष्णीनां	यदुवंशियोंमें	**साक्षात् शिष्यः**	साक्षात् शिष्य
प्रवरः	श्रेष्ठ,	**कृष्णस्य दयितः**	श्रीकृष्णके प्रिय
		मन्त्री	मन्त्री थे ॥१॥

तमाह भगवान् प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनं क्वचित् ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥ २ ॥

तं आह भगवान् प्रेष्ठं भक्तं एकान्तिनं क्वचित् गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्न आर्ति हरः हरिः ॥२॥

तं एकान्तिनं	उन अनन्य	**गृहीत्वा**	पकड़कर
प्रेष्ठं भक्तं	प्रिय भक्तसे	**प्रपन्न आर्ति**	शरणागतके संकट
क्वचित्	कभी	**हरः हरिः**	हर्ता श्रीहरि
पाणिना	अपने हाथसे	**आह**	बोले ॥२॥
पाणिं	उनका हाथ		

श्री भगवानुवाच*

गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नो प्रीतिमावह ।
गोपीनां मद्वियोगार्धिं मत्संदेशैर्विमोचय ॥ ३ ॥

गच्छ उद्धव व्रजं सौम्य पित्रोः नः प्रीतिं आवह गोपीनां मत् वियोग आर्धिं मत् संदेशैः विमोचय ॥३॥

सौम्य उद्धव	सौम्य उद्धव !	मत् संदेशैः	मेरे संदेशसे
व्रजं गच्छ	व्रज चले जाओ,	गोपीनां	गोपियोंकी
नः पित्रोः	हमारे माता-पिता को	मत् वियोग	मेरे वियोगकी
		आर्धिं विमोचय	व्यथा दूर करो ॥३॥
प्रीतिं आवह	प्रसन्नता प्रदान करो,		

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः ।
मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः ।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम् ॥ ४ ॥

ताः मत् मनस्का मत् प्राणा मत् अर्थे त्यक्त दैहिकाः मां एव दयितं प्रेष्ठं आत्मानं मनसा गताः ये त्यक्त लोक धर्माः च मत् अर्थे तान् बिभर्मि अहम् ॥४॥

ताः मत्	वे मुझमें		सम्बन्धियोंको
मनस्का	मन लगाये हैं,	त्यक्त	छोड़ रखा है,
मत् प्राणा	मैं ही उनका जीवन हूँ,	मां दयितं	मुझ अत्यन्त
		प्रेष्ठं	प्रियतममें
मत् अर्थे	मेरे लिए	एव मनसा	ही मनसे
दैहिकाः	दैहिक (पति-पुत्रादि)	आत्मानं गताः	अपनेको प्रविष्ट कर रखा है,

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ये मत् अर्थे	जो मेरे लिए	त्यक्त तान्	छोड़तेहैं उनका
लोक च	इस लोक और	अहं बिभर्मि	धारण-पोषण मैं
धर्माः	धर्मोंको		करता हूँ ॥४॥

मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठं दूरस्थे गोकुलस्त्रियः ।
स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः ॥५॥

मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठं दूरस्थे गोकुल स्त्रियः स्मरन्त्यः अङ्ग विमुह्यन्ति विरह औत्कण्ठ्य विह्वलाः ॥५॥

अङ्ग	प्रिय उद्धव !	औत्कण्ठ्य	मिलनोत्कंण्ठासे
प्रेयसां प्रेष्ठं	प्रियोंसे भी प्रियतम	विह्वलाः	व्याकुल
मयि दूरस्थे	मेरे दूर रहनेसे	स्मरन्त्यः	(मेरा)स्मरण करके
ताः गोकुल	वे व्रजकी	विमुह्यन्ति	बार-बार मूर्छित
स्त्रियः	स्त्रियां		हो जाती हैं ॥५॥

धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथञ्चन ।
प्रत्यागमनसन्देशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥ ६ ॥

धारयन्ति अति कृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथञ्चन प्रत्यागमन संदेशैः बल्लव्यः मे मत् आत्मिकाः ॥६॥

मत् आत्मिकाः	मुझमें चित्त लगाये	कृच्छ्रेण	कष्टसे
बल्लव्यः	गोपियां	कथञ्चन	किसी प्रकार
मे प्रत्यागमन	मेरे लौट आनेके	प्राणान्	प्राण
सन्देशैः	संदेशसे	धारयन्ति	धारण किये हैं ॥६॥
प्रायः अति	प्रायः अत्यन्त		

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त उद्धवो राजन् संदेशं भर्तुरादृतः ।
आदाय रथमारुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ ७ ॥

इति उक्तः उद्धवः राजन् संदेशं भर्तुः आदृतः आदाय रथं आरुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥७॥

राजन्	राजन् !	**रथं आरुह्य**	रथपर चढ़कर
इति उक्तः	ऐसा कहनेपर	**उद्धवः**	उद्धवजीने
भर्तुः संदेशं	अपने स्वामीका संदेश	**नन्दगोकुलं**	नन्द-व्रजको
आदृतः आदाय	आदर पूर्वक लेकर	**प्रययौ**	प्रस्थान किया ॥७॥

प्राप्तो नन्दव्रजं श्रीमान् निम्लोचति विभावसौ ।
छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥ ८ ॥

प्राप्तः नन्दव्रजं श्रीमान् निम्लोचति विभावसौ छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥८॥

श्रीमान्	शोभा सम्पन्न (उद्धव)	**पशूनां**	पशुओंके
		खुररेणुभिः	खुरोंसे उड़ती धूलिसे
विभावसौ	सूर्यके	**छन्नयानः**	ढके रथसे
निम्लोचति	अस्त होते समय	**नन्दव्रजं**	नन्दव्रज
प्रविशतां	(व्रजमें) लौटते	**प्राप्तः**	पहुँचे ॥८॥

वासितार्थेऽभियुध्यद्भिर्नादितं शुष्मिभिर्वृषैः ।
धावन्तीभिश्च वास्राभिरूधोभारैः स्ववत्सकान् ॥९॥

वासिता अर्थे अभियुध्यद्भिः नादितं शुष्मिभिः वृषैः धावन्तीभिः च वास्राभिः उधोभारैः स्ववत्सकान् ॥९॥

वासिता अर्थे	ऋतुमती गायोंके लिए	**च स्ववत्सकान्**	तथा अपने बछड़ों की ओर
शुष्मिभिः वृषैः	मतवाले साँडोंके	**उधोभारैः**	अयानों भारसे दबी
अभियुध्यद्भिः	चारों ओर लड़ते हुए	**धावन्तीभिः**	दौड़ती हुई
नादितं	हुंकड़नेसे गूँजते	**वास्राभिः**	नव प्रसूता गायों से युक्त ॥९॥

इतस्ततो विलंघद्भिर्गोवत्सैर्मंण्डितं सितैः ।
गोदोहशब्दाभिरवं वेणूनां निःस्वनेन च ॥१०॥

इतः ततः विलङ्घत्भिः गोवत्सैः मण्डितं सितैः गोदोहशब्द अभिरवं वेणूनां निःस्वनेन च ॥१०॥

इतः ततः	इधर-उधर	च वेणूनां	तथा वंशियोंकी
सितैः गोवत्सैः	श्वेत बछड़ोंके	निःस्वनेन	उच्च ध्वनिसे
विलङ्घत्भिः	कूदनेसे	अभिरवं	चारों ओर गूंजते
मण्डितं	सुशोभित,		(व्रजमें) ॥१०॥
गोदोहशब्द	गोदोहनकी ध्वनि		

गायन्तीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः ।
स्वलंकृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥११॥

गायन्तीभिः च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः स्वलंकृताभिः च गोपीभिः गोपैः च सुविराजितम् ॥११॥

बलकृष्णयोः	बलराम-श्रीकृष्णके	गोपीभिः च	गोपियों द्वारा तथा
शुभानि	मंगलमय	गोपैः च	गोपों द्वारा भी
कर्माणि	कर्मोंको	सुविराजितं	अत्यन्त सुशोभित
गायन्तीभिः	गाती हुई		॥११॥
स्वलङ्कृताभिः	भली प्रकार आभूषिता		

अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः ।
धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपावासैर्मनोरमम् ॥१२॥

अग्नि अर्क अतिथि गो विप्र पितृ देव अर्चन अन्वितैः धूप दीपैः च माल्यैः च गोप आवासैः मनोरमम् ॥१२॥

अग्नि अर्क	अग्नि, सूर्य,	**धूप च दीपैः**	धूप तथा दीपक
अतिथि गो	अतिथि गाय,	**च माल्यैः**	और मालाओंसे
विप्र पितृ	ब्राह्मण, पितर,	**मनोरमं**	मनोहर
देव	देवताओंकी	**गोप**	गोप
अर्चन	पूजासे	**आवासैः**	गृहोंसे युक्त ॥१२॥
अन्वितैः	युक्त		

सर्वतः पुष्पितवनं द्विजालिकुलनादितम् ।
हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मषण्डैश्च मण्डितम् ॥१३॥

सर्वतः पुष्पितवनं द्विज अलिकुल नादितं हंस कारण्डव आकीर्णैः पद्मषण्डैः च मण्डितम् ॥१३॥

सर्वतः	चारों ओर	**हंस**	हंस,
पुष्पितवनं	फूला हुआ वन	**कारण्डव**	बत्तक आदिसे
द्विज	पक्षियों तथा	**आकीर्णैः**	भरा हुआ
अलिकुल	भ्रमर झुण्डोंके	**च**	तथा
नादितं	शब्दसे गूंज रहा था,	**पद्मषण्डैः**	कमल पुष्पोंसे
		मण्डितं	सुशोभित था ॥१३॥

तमागतं समागम्य कृष्णस्यानुचरं प्रियम् ।
नन्दः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियाऽऽर्चयत् ॥१४॥

तं आगतं सम आगम्य कृष्णस्य अनुचरं प्रियं नन्दः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधिया आर्चयत् ॥१४॥

तं कृष्णस्य	उन श्रीकृष्णके	**परिष्वज्य**	आलिंगन करके
प्रियं अनुचरं	प्रिय सेवकके	**वासुदेवधिया**	श्रीकृष्णके समान ही समझकर
आगतं	आनेपर		
प्रीतः	प्रसन्न होकर	**आर्चयत्**	(उनका) सत्कार किया ॥१४॥
नन्दः	नन्दजीने		
सम आगम्य	समीप आकर		

भोजितं परमान्नेन संविष्टं कशिपौ सुखम् ।
गतश्रमं पर्यपृच्छत् पादसंवाहनादिभिः ॥१५॥

भोजितं परम अन्नेन संविष्टं कशिपौ सुखं गतश्रमं पर्यपृच्छत् पाद-संवाहन आदिभिः ॥१५॥

परम अन्नेन	उत्तम अन्नका	पादसंवाहन	पैर दबाना
भोजितं	भोजन कराके	आदिभिः	आदिके द्वारा
कशिपौ	पलंगपर	गतश्रमं	थकावट दूर होनेपर
सुखं	सुख पूर्वक	पर्यपृच्छत्	भली प्रकार पूछा
संविष्टं	बैठ जानेपर		॥१५॥

नन्द उवाच*

कच्चिदङ्ग महाभाग सखा नः शूरनन्दनः ।
आस्ते कुशल्यपत्याद्यैर्युक्तो मुक्तः सुहृद्वृतः ॥१६॥

कच्चित् अङ्ग महाभाग सखा नः शूरनन्दनः आस्ते कुशलि अपत्य आद्यैः युक्तः मुक्तः सुहृत् वृतः ॥१६॥

महाभाग अङ्ग	महाभाग प्रिय उद्धव !	अपत्य आद्यैः	पुत्रादि सहित
नः सखा	हमारे सखा	सुहृत् वृतः	सुहृदयोंसे घिरे
शूरनन्दनः	शूर-नन्दन वसुदेवजी	कच्चित्	कहीं
मुक्तः	बन्धनसे छूटकर	कुशलि आस्ते	कुशलसे तो हैं ॥१६॥

दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना ।
साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥१७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

दिष्ट्या कंसः हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥१७॥

दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है कि	**सदा द्वेष्टि**	सदा द्वेष रखता था (वह)
यः	जो	**पापः कंसः**	पापी कंस
धर्मशीलानां	धर्माचरण करने-वाले	**स्वेन पाप्मना**	अपने ही पापसे
साधूनां	सत्पुरुष	**सानुगः**	अनुयायियोंके साथ
यदूनां	यदुवंशियोंसे	**हतः**	मारा गया ॥१७॥

अपि स्मरति न कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ।
गोपान् व्रजं चात्मनाथं गावो वृन्दावनं गिरिम् ॥१८॥

अपि स्मरति नः कृष्णः मातरं सुहृदः सखीनः गोपान् व्रजं च आत्मनाथं गाव वृन्दावनं गिरिम् ॥१८॥

अपि कृष्णः	क्या श्रीकृष्ण	**गोपान्**	गोपोंको,
नः	मुझे,	**च व्रजं**	तथा व्रजको,
मातरं	अपनी माताको,	**गावः वृन्दावनं**	गायोंको, वृन्दावनको
सुहृदः सखीन्	प्रिय सखाओंको,	**गिरिं स्मरति**	गिरिराज गोवर्धन-को स्मरण करते हैं ॥१८॥
आत्मनाथं	जिनके वही स्वामी हैं उन		

अप्यायस्याति गोविन्दः स्वजनान् सकृदीक्षितुम् ।
तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥१९॥

अपि आयास्यति गोविन्दः स्वजनान् सकृत् ईक्षितुं तर्हि द्रक्ष्यामः तत् वक्त्रं सुनसं सुस्मित ईक्षणम् ॥१९॥

स्वजनान्	अपने लोगोंको	**अपि गोविन्दः**	क्या गोविन्द
सकृत	एक बार	**आयास्यति**	यहां आवेंगे ?
ईक्षितुं	देखनेके लिए	**तर्हि सुनसं**	उस समय उत्तम

	नासिका वाला,	तत् वक्त्रं	उनका मुख
सुस्मित	मुस्कराती हुई	द्रक्ष्यामः	हम देख सकेंगे
ईक्षणं	दृष्टिवाला		॥१९॥

दावाग्नेर्वातवर्षाच्च वृषसर्पाच्च रक्षिताः ।
दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥२०॥

दावाग्नेः वात वर्षात् च वृष सर्पात् च रक्षिताः दुरत्ययेभ्यः मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥२०॥

सुमहात्मना	उत्कृष्ट महात्मा	सर्पात्	अघासुर
कृष्णेन	श्रीकृष्णने	च	तथा
दावाग्नेः	दावाग्निसे,	दुरत्ययेभ्यः	अत्यन्त दुष्पार
वात	तृणावर्त,	मृत्युभ्यः	मृत्युओंसे (हमारी)
वर्षात्	(इन्द्रकी) वर्षा,	रक्षिताः	(बार-बार) रक्षा की
वृष	वृषभासुर,		है ॥२०॥

स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीलापाङ्गनिरीक्षितम् ।
हसितं भाषितं चाङ्ग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः ॥२१॥

स्मरतां कृष्ण वीर्याणि लीला अपाङ्ग निरीक्षितं हसितं भाषितं च अङ्ग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः ॥२१॥

अङ्ग	प्रिय उद्धव !	स्मरतां	स्मरण करते रहने-
कृष्ण	श्रीकृष्णका		वाले
वीर्याणि	पराक्रम	नः	हम लोगोंकी
च लीला	तथा लीला पूर्वक	सर्वाः क्रियाः	सब क्रियाएँ
अपाङ्ग	तिरछी	शिथिलाः	ढीली पड़ गयी
निरीक्षितं	चितवन,		हैं ॥२१॥
हसितं भाषितं	हँसना, बोलना		

सरिच्छैलवनोद्देशान् मुकुन्दपदभूषितान् ।
आक्रीडानीक्षमाणानां मनो याति तदात्मताम् ॥२२॥

सरित् शैल वन उद्देशान् मुकुन्द पद भूषितान् आक्रीडान् ईक्षमाणानां मनः याति तत् आत्मताम् ॥२२॥

मुकुन्द	श्रीकृष्णके	**आक्रीडान्**	खेलनेके स्थानों
पद	चरणों (चिह्नों) से		तथा खिलौनोंके
भूषितान्	अलंकृत	**ईक्षमाणानां**	देखनेसे
सरित् शैल	नदी, पर्वत	**मनः**	(हमारा) मन
वन	उन वनोंको	**तत् आत्मतां**	उनमें तन्मय
उद्देशान्	जहां जाते थे	**याति**	हो जाता है ॥२२॥

मन्ये कृष्णं च रामं च प्राप्तावि्ह सुरोत्तमौ ।
सुराणां महदर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥२३॥

मन्ये कृष्णं च रामं च प्राप्ताः इह सुर उत्तमौ सुराणां महत् अर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥२३॥

यथा	जैसा कि	**अर्थाय**	प्रयोजनसे
गर्गस्य वचनं	गर्गजीने कहा था	**इह**	इस लोकमें
कृष्णं च	श्रीकृष्ण और	**प्राप्ताः**	अवतीर्ण
रामं च	बलरामको भी	**सुर उत्तमौ**	देव-श्रेष्ठ
सुराणां	देवताओंके	**मन्ये**	मानता हूँ ॥२३॥
महत्	(किसी) महान्		

कंसं नागायुतप्राणं मल्लौ गजपतिं तथा ।
अवधिष्टां लीलयैव पशूनिव मृगाधिपः ॥२४॥

कंसं नाग अयुत प्राणं मल्लौ गजपतिं तथा अवधिष्टां लीलया इव पशून् इव मृगाधिपः ॥२४॥

पशून्	पशुओंको	**नाग अयुत**	दस सहस्र हाथियों-
मृगाधिपः	सिंहके		की
इव	समान	**प्राणं**	शक्तिवाले

कंसं	कंसको,	लीलया इव	खेलकी भाँति
मल्लौ	पहलवानोंको	अवधिष्टां	मार दिया ॥२४॥
तथा गजपतिं	तथा गजराज कुवलयापीडको		

तालत्रयं महासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट् ।
बभञ्जैकेन हस्तेन सप्ताहमदधाद् गिरिम् ॥२५॥

तालत्रयं महासारं धनुः यष्टिं इव इभराट् बभञ्ज एकेन हस्तेन सप्ताहं अदधात् गिरिम् ॥२५॥

तालत्रयं	तीन ताल (दो सौ हाथ) के	इव	समान
महासारं	बहुत दृढ़	बभञ्ज	तोड़ दिया और
धनुः	धनुषको	एकेन हस्तेन	एक ही हाथसे
इभराट्	गजराज (जैसे)	गिरिं	पर्वतको
यष्टिं	छड़ीको (तोड़े) के	सप्ताहं	सात दिन तक
		अदधात्	उठाये रखा ॥२५॥

प्रलम्बो धेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्तो बकादयः ।
दैत्याः सुरासुरजितो हता येनेह लीलया ॥२६॥

प्रलम्बः धेनुकः अरिष्टः तृणावर्तः बक आदयः दैत्याः सुरअसुर जितः हता येन इह लीलया ॥२६॥

सुर असुर	देवता-असुर	बक आदयः	बक आदि
जितः	सबको जीतनेवाले	दैत्याः	दैत्योंको
प्रलम्बः	प्रलम्ब,	येन इह	जिन्होंने इस व्रजमें
धेनुकः अरिष्टः	धेनुक, अरिष्ट	लीलया हता	खेल-खेलमें मार दिया ॥२६॥
तृणावर्तः	तृणावर्त		

श्रीशुक उवाच

इति संस्मृत्य संस्मृत्य नन्दः कृष्णानुरक्तधीः ।
अत्युत्कण्ठोऽभवत्तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥२७॥

इति संस्मृत्य संस्मृत्य नन्दः कृष्ण अनुरक्तधीः अति उत्कण्ठः अभवत् तूष्णीं प्रेमप्रसर विह्वलः ॥२७॥

कृष्ण	श्रीकृष्णमें	**प्रेमप्रसर**	प्रेमके प्रसारसे
अनुरक्तधीः	अनुरक्त चित्त	**विह्वलः**	व्याकुल होकर
नन्दः	नन्दजी	**अति उत्कण्ठः**	तीव्र उत्कण्ठासे
इति	इस प्रकार	**तूष्णीं अभवत्**	चुप हो गये ॥२७॥
संस्मृत्य संस्मृत्य	बार-बार स्मरण करनेसे		

यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च ।
शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत् स्नेहस्नुतपयोधरा ॥२८॥

यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च शृण्वन्ति अश्रूणि अवास्राक्षीत् स्नेह स्नुत पयोधराः ॥२८॥

पुत्रस्य	पुत्रके	**स्नेह**	स्नेहसे
वर्ण्यमानानि	वर्णन किये जाते	**स्नुत पयोधरा**	टपकते स्तनोंवाली वाली
चरितानि	चरितोंको		
शृण्वन्ति	सुनती हुई	**अश्रूणि**	आंसू
यशोदा च	यशोदाजी भी	**अवास्राक्षीत्**	बहाने लगीं ॥२८॥

तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः ।
वीक्ष्यानुरागं परमं नन्दमाहोद्धवो मुदा ॥२९॥

तयोः इत्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः वीक्ष्य अनुरागं परमं नन्दं आह उद्धवः मुदा ॥२९॥

तयोः	उन	**वीक्ष्य**	देखकर
नन्दयशोदयोः	नन्द-यशोदाका	**मुदा**	प्रसन्न होकर
भगवति	भगवान	**उद्धवः**	उद्धव
कृष्णे	श्रीकृष्णमें	**नन्दं आह**	नन्दजीसे बोले ॥२९॥
परमं अनुरागं	परम प्रेम		

उद्धव उवाच

युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद ।
नारायणेऽखिलगुरौ यत् कृता मतिरीदृशी ॥३०॥

युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनां इह मानद नारायणे अखिलगुरौ यत् कृता मतिः ईदृशी ॥३०॥

मानद	मानद !	**श्लाघ्यतमौ**	परम प्रशंशनीय हैं,
इह देहिनां	इस संसारमें सब शरीर धारियोंके लिए	**यत्**	क्योंकि
		अखिलगुरौ	सम्पूर्ण विश्वके गुरु
		नारायणे	श्रीनारायणमें
युवां	आप दोनों	**ईदृशी मतिः**	ऐसीं बुद्धि
नूनं	निश्चय	**कृता**	लगा दी है ॥३०॥

एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी
रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम् ।
अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य
ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥३१॥

एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी रामः मुकुन्दः पुरुषः प्रधानं अनु ईय भूतेषु विलक्षणस्य ज्ञानस्य च ईशात इमौ पुराणौ ॥३१॥

हि एतौ	क्योंकि ये ही दोनों भाई	**बीजयोनी**	सर्जनामें
		अनु ईय	प्रविष्ट होकर
रामः मुकुन्दः	बलराम और श्रीकृष्ण	**इमौ पुराणौ**	ये दोनों पुराण पुरुष
प्रधानं पुरुषः	प्रधान और पुरुष रूपसे	**ज्ञानस्य च**	ज्ञान स्वरूप जीव का भी
विश्वस्य	सारे संसारके	**ईशात्**	संचालन करते हैं ॥३१॥
विलक्षणस्य	नाना प्रकारके		
भूतेषु	प्राणियोंमें		

यस्मिञ्जनः प्राणवियोगकाले
क्षणं समावेश्य मनोऽविशुद्धम् ।
निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति
परां गतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥३२॥

यस्मिन् जनः प्राणवियोगकाले क्षणं सम आवेश्य मनः अविशुद्ध निर्हृत्य कर्माशयं आशु याति परां गतिः ब्रह्ममयः अर्कवर्णः ॥३२॥

प्राणवियोगकाले	प्राण जाते समय	**निर्हृत्य**	त्यागकर
जनः यस्मिन्	मनुष्य जिनमें	**अर्कवर्णः**	ज्योतिर्मय
अविशुद्धं मनः	शुद्ध मनको	**ब्रह्ममयः**	ब्रह्मस्वरूप
क्षणं	क्षण भरको	**परां गतिं**	परमगतिको
सम आवेश्य	भली भांति लगाकर	**आशु याति**	शीघ्र प्राप्तकर लेता है ॥३२॥
कर्माशयं	कर्मवासनाओंको		

तस्मिन् भवन्तावखिलात्महेतौ
नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ ।
भावं विधत्तां नितरां महात्मन्
किं वावशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥३३॥

तस्मिन् भवन्ताः अखिल आत्महेतौ वारायणे कारण मत्य मूर्तौ भावं विधत्तां नितरां महात्मन् किं वा अवशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥३३॥

तस्मिन्	उन्हीं	**आत्महेतौ**	अपने कारण
कारण	(पृथ्वी-भार-हरण) कारणसे	**नारायणे**	नारायणमें
		महात्मन्	आप महात्माओंने
मत्यमूर्तौ	मनुष्य रूपधारी	**नितरां**	प्रगाढ़
अखिल	सबके	**भावं विधत्तां**	प्रेमभाव किया है (फिर)

युवयोः	आप दोनोंका	**अवशिष्टं**	बचा रह गया
वा किं सुकृत्यं	भला कौन-सा पुण्य करना		॥३३॥

आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ।
प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवान् सात्वतां पतिः ॥३४॥

आगमिष्यति अदीर्घेण कालेन व्रजं अच्युतः प्रियं विधास्यते पित्रोः भगवान् सात्वतां पतिः ॥३४॥

सात्वतां पतिः	यादवोंके स्वामी	**पित्रोः**	माता-पिताको
भगवान् अच्युतः	भगवान अच्युत	**प्रियं विधास्यते**	प्रसन्न करेंगे
अदार्घेण कालेन	अल्प समयमें		॥३४॥
व्रजं आगमिष्यति	व्रजमें आवेंगे और		

हत्वा कंसं रङ्गमध्ये प्रतीपं सर्वसात्वताम् ।
यादाह वः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥३५॥

हत्वा कंसं रङ्गमध्ये प्रतीपं सर्व सात्वतां यत् आह वः सम आगत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥३५॥

सर्व सात्वतां	सम्पूर्ण यदुवंशियों के		आकर
प्रतीपं कंसं	विरोधी कंसको	**वः यत् आह**	आप लोगोंसे जो कहा था
हत्वा	मारकर	**कृष्णः तत्**	श्रीकृष्ण उसे
रङ्गमध्ये	रंगशालाके बीचमें	**सत्यं करोति**	सत्य करेंगे ॥३५॥
सम आगत्य	आपके समीप		

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमन्तिके ।
अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥३६॥

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णं अन्तिके अन्तर्हृदि स भूतानां आस्ते ज्योतिः इव एधसि ॥३६॥

महाभागौ	आप दोनों महाभाग
खिद्यतं मा	खेद मत करें,
कृष्णं	श्रीकृष्णको
अन्तिके	अपने समीप ही
द्रक्ष्यथः	देखेंगे,
एधसि	ईंधनमें
ज्योतिः इव	अग्निके समान
स भूतानां	वे सब प्राणियोंके
अन्तर्हृदि	हृदयके भीतर
आस्ते	उपस्थित हैं ॥३६॥

न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियो वास्त्यमानिनः ।
नोत्तमो नाधमो नापि समानस्यासमोऽपि वा ॥३७॥

न हि अस्य अस्ति प्रियः कश्चित् न अप्रियः वा आस्ति मानिनः न उत्तमः न अधमः न अपि समानस्य असमः अपि वा ॥३७॥

हि अस्य	क्योंकि इनका
कश्चित्	कोई भी
न प्रियः अस्ति	न प्रिय है,
वा न	अथवा न
अप्रियः अस्ति	अप्रिय ही है,
न उत्तमः मानिनः	न उत्तम माना जाने वाला हैं,
न अधमः अपि	न छोटा ही,
समानस्य वा	सबमें समानको अथवा (कोई)
असमः अपि न	विषम भी नहीं है ॥३७॥

न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ।
नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥३८॥

न माता न पिता तस्य न भार्या न सुत आदयः न आत्मीयः न परः च अपि न देहः जन्म एव च ॥३८॥

तस्य न माता	उनकी कोई माता
न पिता	न पिता
न भार्या	न पत्नी
न सुत आदयः	न पुत्रादि,
न आत्मीयः	न (कोई) अपना है
च न परः	और न पराया,
न देहः	(उनका) न शरीर
जन्म एव च	अथवा जन्म ही है ॥३८॥

न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ।
क्रीडार्थः सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥३९॥

न च अस्य कर्म वा लोके सत् असत् मिश्र योनिषु क्रीडा अर्थः सः अपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥३९॥

अस्य लोके	इनका इस लोकमें	**योनिषु**	योनियोंमें
कर्म च	कोई कर्म भी	**साधूनां**	सत्पुरुषोंकी
न	नहीं है; किन्तु	**परित्राणाय**	रक्षाके लिए एवं
सत्	उत्तम (देवादि)	**क्रीडा अर्थः**	खेलके लिए
असत्	अधम (पशु आदि)	**कल्पते**	(अवतार) कल्पित
मिश्र	मिश्रित (मनुष्य)		कर लेते हैं ॥३९॥

सत्त्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् ।
क्रीडन्नतीतोऽत्र गुणैः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥४०॥

सत्त्वं रजः तम इति भजते निर्गुणः गुणान् क्रीडन् अतीतः अत्र गुणैः सृजति अवति हन्ति अजः ॥४०॥

निर्गुणः अजः	निर्गुण, अजन्मा (वे)	**भजते**	स्वीकार करके
अतीतः	(गुणोंसे) अतीत (अस्पृष्ट) रहते	**अत्र**	यहां (उन)
सत्त्वं रजः	सत्व, रज,	**गुणैः**	गुणोंके द्वारा
तम इति	तम इन	**सृजति**	सृष्टि करते
गुणान्	गुणोंको	**अवति**	पालन करते तथा
		हन्ति	संहार करते हैं ॥४०॥

यथा भ्रमरिकादृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते ।
चित्ते कर्तरि तत्रात्मा कर्तेवाहंधिया स्मृतः ॥४१॥

यथा भ्रमरिका दृष्ट्या भ्राम्यति इव महि ईयते चित्ते कर्तरि तत्र आत्मा कर्ता इव अहंधिया स्मृतः ॥४१॥

यथा	जैसे	**चित्ते कर्तरि**	चित्तके कर्ता होने-
भ्रमरिका	वेगसे चक्कर लगाने-		पर भी
	वालेकी	**अहंधिया**	अहंकार बुद्धिसे
दृष्टचा	दृष्टिमें	**तत्र आत्मा**	वहां आत्मा
महि	पृथ्वी	**कर्ता इव**	कर्ताके समान
भ्राम्यति इव	घूमती-सी	**स्मृतः**	कहा जाता है
ईयते	लगती है (वैसे ही)		॥४१॥

युवयोरेव नैवायमात्मजो भगवान् हरिः ।
सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ॥४२॥

युवयोः एव न एव अयं आत्मजः भगवान् हरिः सर्वेषां आत्मजः हि आत्मा पिता माता स ईश्वरः ॥४२॥

अयं भगवान्	ये भगवान्	**ईश्वरः**	सर्वेश्वर
हरिः	श्रीहरि	**सर्वेषां**	सभीके
युवयोः एव	आप दोनोंके ही	**आत्मा**	आत्मा
आत्मजः न	पुत्र नहीं	**पिता माता**	पिता और माता
एव	ही हैं,		हैं ॥४२॥
हि स	क्योंकि वे		

दृष्टं श्रुतं भूतभवद् भविष्यत्
स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च ।
विनाच्युताद् वस्तु तरां न वाच्यं
स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥४३॥

दृष्टं श्रुतं भूत भवत् भविष्यत् स्थास्नुः चरिष्णुः महत् अल्पकं च विना अच्युतात् वस्तु तरां न वाच्यं स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥४३॥

दृष्टं श्रुतं	देखी-सुनी,	**स्थास्नुः**	स्थावर-
भूत भवत्	भूत, वर्तमान,	**चरिष्णुः**	जंगम,
भविष्यत्	भविष्यकी	**च महत्**	तथा बड़ी या

अल्पकं	छोटी	**स सर्वं एव**	वही सर्वरूप ही
वस्तु तरां	कोई भी वस्तु	**परमार्थभूतः**	परमार्थ स्वरूप
विना अच्युतात्	अच्युतको छोड़कर		हैं ॥४३॥
वाच्यं न	कहने योग्य नहीं है,		

श्रीशक उवाच*

एवं निशा सा व्रुवतोर्व्यतीता
नन्दस्य कृष्णानुचरस्य राजन् ।
गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान्
वास्तून् समभ्यर्च्य दधीन्यमन्थन् ॥४४॥

एवं निशा सा व्रुवतः व्यतीता नन्दस्य कृष्ण अनुचरस्य राजन् गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान् वास्तून् सम् अभ्यर्च्य दधीन् न्यमन्थन् ॥४४॥

राजन्	राजन्	**समुत्थाय**	उठकर
एवं	इस प्रकार	**दीपान् निरूप्य**	दीपक जलाकर
सा निशा	वह रात्रि	**वास्तून्**	वास्तुदेवका (देहली-पर)
नन्दस्य	नन्दजी और		
कृष्ण	श्रीकृष्णके	**सम् अभ्यर्च्य**	भली प्रकार पूजन करके
अनुचरस्य	सेवक उद्धवकी		
व्रुवतः	बातचीतमें	**दधीन्**	दहीको
व्यतीता	बीत गयी (फिर)	**न्यमन्थन्**	मथना प्रारम्भ
गोप्यः	गोपियोंने		किया ॥४४॥

ता दीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजू
रज्जूर्विकर्षद्भुजकङ्कणस्रजः ।

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

चलन्नितम्बस्तनहारकुण्डल-
त्विषत्कपोलारुणकुङ्कुमाननाः ॥४५॥

ताः दीप दीप्तैः मणिभिः विरेजू रज्जूः विकर्षत् भुज कङ्कण स्रजः चलत् नितम्ब स्तन हार कुण्डल अन्वित कपोल अरुण कुङ्कुम आननाः ॥४५॥

रज्जूः विकर्षत्	रस्सी खींचती
भुज	भुजाओंके कारण
कङ्कण स्रजः	कंकण, माला,
नितम्ब	नितम्ब,
स्तन, हार	स्तन, हार
चलत्	हिलते हुए,
कुण्डल अन्वित	कुण्डल युक्त
कपोल	कपोल
कुंकुम	कुंकुम लगनेसे
अरुण	लाल
आननाः	मुखोंवाली
ताः	वे गोपियां
दीप दीप्तैः	दीपकसे चमकती
मणिभिः	मणियोंसे
विरेजुः	अत्यन्त शोभित हुईं ॥४५॥

उद्गायतीनामरविन्दलोचनं
व्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशद् ध्वनिः ।
दध्नश्च निर्मन्थनशब्दमिश्रितो
निरस्यते येन दिशाममङ्गलम् ॥४६॥

उद्गायतीनां अरविन्दलोचनं व्रजाङ्गनानां दिवं अस्पृशत् ध्वनिः दध्नः च निर्मन्थन शब्द मिश्रितः निरस्यते येन दिशां अमङ्गलम् ॥४६॥

अरविन्दलोचनं	कमल-लोचन श्रीकृष्णके चरित
येन दिशां	जिससे दिशाओंके
अमङ्गलं	अशुभ
निरस्यते	दूर हो जाते हैं
उद्गायतीनां	गाती हुई
व्रजाङ्ग नानां	व्रजकी गोपियोंका
ध्वनिः	शब्द
दध्नः निर्मन्थन	दही मथनेके
शब्द मिश्रितः	शब्दसे मिलकर
च	तो
दिवं अस्पृशत्	स्वर्गको छूने लगा ॥४६॥

भगवत्युदिते सूर्ये नन्दद्वारि व्रजौकसः ।
दृष्ट्वा रथं शातकौम्भं कस्यायमिति चाब्रुवन् ॥४७॥

भगवति उदिते सूर्ये नन्दद्वारि व्रजौकसः दृष्ट्वा रथं शातकौम्भं कस्य अयं इति च अब्रुवन् ॥४७॥

भगवति	भगवान	**रथं दृष्ट्वा**	देखकर
सूर्ये उदिते	सूर्यके उदय हो जानेपर	**व्रजौकसः**	व्रजवासी
		कस्य अयं	यह किसका है
नन्दद्वारि	नन्दजीके द्वारपर	**इति च**	इस प्रकार
शातकौम्भं	स्वर्ण मण्डित	**अब्रुवन्**	कहने लगे ॥४७॥

अक्रूर आगतः किं वा यः कंसस्यार्थसाधकः ।
येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥४८॥

अक्रूरः आगतः किं वा यः कंसस्य अर्थ साधकः येन नीतः मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥४८॥

किं अक्रूरः	क्या अक्रूर	**येन**	जो
आगतः	(फिर) आ गया ?	**कमललोचनः**	कमल-नयन
यः कंसस्य	जो कंसका	**कृष्णः**	श्रीकृष्णको
अर्थ साधकः	प्रयोजन सिद्ध करने वाला था,	**मधुपुरीं नीतः**	मथुरा ले गया ॥४८॥

किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रेतस्य निष्कृतिम् ।
इति स्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात् कृताह्निकः ॥४९॥

किं साधयिष्यति अस्माभिः भर्तुः प्रेतस्य निष्कृतिं इति स्त्रीणां वदन्तीनां उद्धवः अगात् कृत आह्निकः ॥४९॥

किं अस्माभिः	क्या हम लोगोंसे	**प्रेतस्य भर्तुः**	मरे हुए अपने स्वामीका

निष्कृतिं बदला
साधयिष्यति सिद्ध करेगा (हमारे मांससे उसे पिण्ड देगा)
इति स्त्रीणां इस प्रकार स्त्रियोंके
वदन्तीनां कहते हुए ही
कृत आह्निकः दैनन्दिन (सन्ध्यादि) करके
उद्धवः अगात् उद्धव आ गये

॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्दशोकापनयनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः
प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम् ।
पीताम्बरं पुष्करमालिनं लस-
न्मुखारविन्दं मणिमृष्टकुण्डलम् ॥१॥

तं वीक्ष्य कृष्ण अनुचरं व्रजस्त्रियः प्रलम्ब बाहुं नवकञ्ज लोचनं पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसत् मुखारविन्दं मणिमृष्ट कुण्डलम् ॥१॥

प्रलम्ब	आजानु लम्बी	कुण्डलं लसत्	कुण्डलोंसे शोभित
बाहुं	भुजावाले,	मुखारविन्दं	कमल-मुख
नवकञ्ज	नवीन कमलके समान	तं	उन
लोचनं	नेत्रोंवाले	कृष्ण अनुचरं	श्रीकृष्ण-सेवकको
पीताम्बरं	पीताम्बरधारी	वीक्ष्य	देखकर
पुष्करमालिनं	कमल माली	व्रजस्त्रियः	व्रजकी स्त्रियां (परस्पर बोलीं)
मणिमृष्ट	चमकते मणियोंके		॥१॥

शुचिस्मिताः कोऽयमपीच्यदर्शनः
कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ।
इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुका-
स्तमुत्तमश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥२॥

शुचिस्मिताः कः अयं अपीच्य दर्शनः कुतः च कस्य अच्युत वेष भूषणः इति स्म सर्वाः परिवव्रुः उत्सुकाः तं उत्तमश्लोक पदाम्बुज आश्रयम् ॥२॥

सर्वाः	वे सब	**कस्य**	किसके दूत हैं ?
शुचिस्मिताः	पवित्र मुसुकान वाली	**इति उत्सुकाः स्म**	इस प्रकार उत्सुक होकर
अपीच्य दर्शनः	देखनेमें परम सुन्दर	**तं उत्तमश्लोक**	उन पवित्र कीर्ति (भगवान) के
अयं कः	ये कौन हैं ?	**पदाम्बुज**	चरण-कमलोंके
कुतः च	कहाँसे आये हैं ?	**आश्रयं जनं**	आश्रित भक्तिको
अच्युत	श्रीकृष्णके समान	**परिवव्रुः**	घेरकर खड़ी हो गयीं ॥२॥
वेश-भूषणः	वेष-भूषा वाले		

तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं
सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः ।
रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने
विज्ञाय सन्देशहरं रमापतेः ॥ ३ ॥

तं प्रश्रयेण अवनताः सुसत्कृतं सव्रीडहास ईक्षण सूनृत आदिभिः रहसि अपृच्छन्नुपविष्टं आसने विज्ञाय सन्देशहरं रमापतेः ॥३॥

तं रमापतेः	उनको लक्ष्मीनाथ श्रीकृष्णका	**ईक्षण**	चितवन तथा
		सूनृत आदिभिः	मधुरवाणी आदिसे
सन्देशहरं	सन्देश लाने वाला	**सुसत्कृतं**	अच्छी प्रकार सत्कार किये गये से
विज्ञाय	जानकर		
प्रश्रयेण	विनम्रतासे		
अवनताः	झुककर	**रहसि उपविष्टं**	एकान्तमें बैठेसे
सव्रीडहास	लज्जापूर्ण हंसी,	**अपृच्छन्**	पूछा ॥३॥

गोप्य ऊचु*

जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् ।
भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान् प्रियचिकीर्षया ॥ ४ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोमें नहीं है ।

जानीमः त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतं भर्त्रा इह प्रेषितः पित्रोः भवान् प्रिय चिकीर्षया ॥४॥

जानीमः	हम जानती हैं कि	**प्रिय चिकीर्षया**	प्रसन्न करनेकी इच्छासे
भवान्	आप		
यदुपतेः	श्रीयदुनाथके	**त्वां प्रेषितः**	आपको भेजा है,
पार्षदं	पार्षद (सेवक) हैं	**समुपागतं**	(अतः उनके) समीप आये हैं ॥४॥
भर्त्रा इह	आपके स्वामीने यहाँ		
पित्रोः	माता-पिताको		

अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्षमहे ।
स्नेहानुबन्धो बन्धनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ ५ ॥

अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्यहे स्नेह अनुबन्धः बन्धूनां मुनेः अपि सुदुस्त्यजः ॥५॥

अन्यथा तस्य	अन्यथा उनका	**बन्धूनां**	अपने सम्बन्धियों के
गोव्रजे	(इस) गायोंके गोष्ठमें	**स्नेह अनुबन्धः**	स्नेहका दृढ़ बन्धन
स्मरणीयं	कोई स्मरण करने योग्य	**सुदुस्त्यजः**	छोड़ना कठिन होता है ॥५॥
न चक्षमहे	नहीं दिखाई देता,		
मुनेः अपि	मुनियोंके लिए भी		

अन्येष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थविडम्बनम् ।
पुम्भिः स्त्रीषु कृता यद्वत् सुमनस्स्विव षट्पदैः ॥ ६ ॥

अन्येषु अर्थकृता मैत्री यावत् अर्थं विडम्बनं पुम्भिः स्त्रीषु कृता यद्वत् सुमनः सु इव षट्पदैः ॥६॥

अन्येषु	दूसरोंसे तो		गयी है,
अर्थकृता	प्रयोजनवश की	**यावत् अर्थं**	जबतक प्रयोजन है

मैत्री विडम्बनं	मित्रताका स्वांग होता है,	**स्त्रीषु कृता**	स्त्रियोंसे की गयी
सुमनः सु	पुष्पोंसे	**पुम्भिः**	पुरुषोंकी (मित्रता)
षट्पदैः इव	भ्रमरोंके समान		है ॥६॥

निस्स्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः ।
अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥ ७ ॥

निः स्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः अधीतविद्या आचार्यं ऋत्विजः दत्त दक्षिणम् ॥७॥

निःस्वं गणिका	धनहीनको वेश्या,	**आचार्यं**	आचार्यको
अकल्पं नृपतिं	(रक्षामें) असमर्थ राजाको	**ऋत्विजः**	यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण
प्रजाः	प्रजा	**दत्त दक्षिणम्**	दक्षिणा दे चुके
अधीतविद्या	विद्याध्ययन करके (शिष्य)	**त्यजन्ति**	यजमानको छोड़ देते हैं ॥७॥

खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहम् ।
दग्धं मृगास्तथारण्यं जारो भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥ ८ ॥

खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा च अतिथयः गृहं दग्धं मृगाः तथा अरण्यं जारः भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥८॥

वीतफलं	फल समाप्त हो जानेपर	**मृगाः**	मृगगण और
वृक्षं खगा	वृक्षको पक्षी,	**जारः**	जार-पुरुषको
च भुक्त्वा	तथा भोजन करके	**भुक्त्वा**	भोग करके
गृहं अतिथयः	घरको अतिथिगण,	**रतां स्त्रियं**	अनुरागिणी स्त्री को (त्याग देता है) ॥८॥
तथा दग्धं अरण्यं	तथा जले वनको		

श्रीशुकउवाच*

इति गोप्यो हि गोविन्दे गतवाक्कायमानसाः ।
कृष्णदूते व्रजं याते उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥ ९ ॥

इति गोप्यः हि गोविन्दे गत वाक् काय मानसाः कृष्णदूते व्रजं याते उद्धवे त्यक्त लौकिकाः ॥९॥

हि गोप्यः	क्योंकि गोपियाँ	**उद्धवे**	उद्धवके
गोविन्दे	गोविन्दमें	**व्रजं याते**	ब्रजमें आनेपर
वाक् काय	वाणी शरीर,	**त्यक्त लौकिकाः**	लौकिक (घरके) कामोंको छोड़कर
मानसाः	मनसे		
गत	तन्मय थीं	**इति**	इस प्रकार (चर्चा में लग गयीं) ॥९॥
कृष्णदूते	श्रीकृष्णके दूत		

गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदत्यश्च गतह्रियः ।
तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥१०॥

गायन्त्यः प्रिय कर्माणि रुदन्त्यः च गतह्रियः तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोर बाल्ययोः ॥१०॥

तस्य प्रिय	उन प्रियतमके	**गायन्त्यः**	गाती हुई
कैशोर बाल्ययोः	किशोरावस्था तथा बचपनके	**च गतह्रियः**	तथा लज्जा रहित होकर
यानि कर्माणि	जो कर्म हैं	**रुदन्त्यः**	रोने लगीं ॥१०॥
संस्मृत्य संस्मृत्य	उनको वारवार स्मरण करके		

काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम् ।
प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥११॥

काचित् मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्ण सङ्गमं प्रिय प्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वा इदं अब्रवीत् ॥११॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

काचित्	कोई एक
कृष्णसङ्गमं	श्रीकृष्ण-समागम का
ध्यायन्ती	ध्यान करती हुई
मधुकरं दृष्ट्वा	भौंरेको देखकर (उसे)
प्रिय प्रस्थापितं	प्रियतमका भेजा
दूतं कल्पयित्वा	दूत मानकर
इदं अब्रवीत्	यह बोली ॥११॥

गोप्युवाच

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः
कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥१२॥

मधुप कितवबन्धो मा स्पृश अंङिघ्र सपत्न्याः कुच विलुलित माला कुङ्कुम श्मश्रुभिः नः वहतु मधुपतिः तत् मानिनीनां प्रसादं यदु सदसि विडम्ब्यं यस्य दूतः त्वं ईदृक् ॥१२॥

कितवबन्धो	दूतके मित्र
मधुप	भ्रमर !
सपत्न्याः	सौतके
कुच विलुलित	स्तनोंपर हिलती
माला कुङ्कुम	मालामें लगे कुंकुम लगी
श्मश्रुभिः	दाढ़ीसे
नः अंङिघ्र	हमारे पैर
मा स्पृश	मत छू,
तत् मानिनीनां	उन मानिनियोंका
प्रसादं	प्रसाद जो
यदु सदसि	यादवोंकी सभामें
विडम्ब्यं	उपहास योग्य है
मदुपतिः वहतु	यदुनाथ ही धारण करें,
यस्य दूतः	जिनका दूत
त्वं ईदृक्	तू ऐसा (क्षणिक प्रेम वाला) है ॥१२॥

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा
सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक्

परिचरित कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा
ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥१३॥

सकृत् अधर सुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सद्यः तत्यजे अस्मान् भवादृक् परिचरित कथं तत् पादपद्मं तु पद्मा ह्रि अपि बत हृत चेता उत्तमश्लोक जल्पैः ॥१३॥

स्वां मोहिनीं	अपना मादक		कमलोंकी तो
अधर सुधां	अधरामृत	पद्मा कथं	लक्ष्मी कैसे
सकृत् पाययित्वा	केवल एक वार पिलाकर	परिचरित	सेवा करती है
		उत्तमश्लोक	(उन) पुण्यकीर्ति की
सुमनस	पुष्पोंकी		
भवादृक्	तुम्हारे समान	जल्पैः	(चटकीली) बातोंने
अस्मान् तत्यजे	(उसने) हम सबको त्याग दिया,	अपि बत	सम्भवतः
		हृत चेता	उसका चित्त चुरा लिया होगा ॥१३॥
तत्पादपद्मं तु	उसके चरण-		

किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूना-
मधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम् ।
विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसङ्गः
क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥१४॥

किं इह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूनां अधिपतिं अगृहाणां अग्रतः नः पुराणं विजयसख सखीनां गीयतां तत् प्रसङ्गः क्षपित कुचरुजः ते कल्पयन्ति इष्टं इष्टाः ॥१४॥

षडङ्घ्रे	भ्रमर !	बहु किं गायसि	बहुत वर्णन क्यों करता है,
नः अगृहाणां	हम भवनहीना (वनवासियों)के	पुराणं	पुराण-पुरुष
अग्रतः इह	आगे यहाँ	विजयसख	अर्जुनके सखाका
यदूनां अधिपतिं	यदुनाथका	प्रसङ्गः	चरित्,

तत् सखीनां	उनकी सखियोंको		आराधिता
गीयतां	सुनाओ	**ते इष्टं**	तेरा अभीष्ट
क्षपित कुचरुजः	वे हृदय-रोग रहिता	**कल्पयन्ति**	प्रदान करेंगी ॥१४॥
इष्टाः	(चाटुकारी से)		

दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः
कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः ।
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का
अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥१५॥

दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियः तत् दुरापाः कपटरुचिर हास भ्रू विजृम्भस्य याः स्युः चरणरज उपास्ते यस्य मूतिः वयं का अपि च कृपण पक्षे हि उत्तमश्लोक शब्दः ॥१५॥

दिवि भुवि च रसायां	स्वर्ग, पृथ्वी, तथा पातालमें	**भूतिः उपास्ते**	लक्ष्मी उपासना करती हैं
याः काः स्त्रियः	ऐसी कौनसी स्त्री है जो	**वयं का**	(उनके लिए) हम क्या होती हैं,
कपटरुचिर	कपटपूर्ण सुन्दर	**अपि च**	किन्तु
हास	मुसकान तथा	**हि उत्तमश्लोक**	क्योंकि (वे) उत्तम-श्लोक
भ्रू विजृम्भस्य	भौंह मटकाने वाले	**शब्दः**	उपाधिधारी हैं,
तत् दुरापाः स्युः	उनके लिए दुष्प्राप्य हो,	**कृपण पक्षे**	दीनोंपर दयाके पक्षमें है ॥१५॥
यस्य चरणरज	जिनके पद-रजकी		

विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारै-
रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ।
स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका
व्यसृजदकृतचेताः किं नु संधेयमस्मिन् ॥१६॥

विसृज शिरसि पादं वेद्मि अहं चाटुकारैः अनुनय विदुषः ते अभि एत्य दौत्यैः मुकुन्दात् स्वकृत इह विसृष्ट अपत्य पति अन्य लोका व्यसृजत् अकृत चेताः किं नु सन्धेयं अस्मिन् ॥१६॥

शिरसि पादं	पैर परसे (अपना) सिर	**अपत्य पति**	पुत्र-पति,
विसृज	हटा ले,	**अन्य लोका**	दूसरे सब लोक
मुकुन्दात्	मुकुन्दके	**विसृष्ट**	(जिन्होंने) त्याग दिये
दौत्यैः अभि एत्य	पाससे दूतका काम करने आये	**इह व्यसृजत्**	उन्हें यहाँ छोड़ दिया
ते अनुनय विदुषः	तुझ अनुनय-विनय करनेमें चतुरकी	**अकृत चेताः**	उस अकृतज्ञ चित्तसे
चाटुकारैः	चापलूसीको	**अस्मिन् नु किं**	इस विषयमें भला क्या
अहं वेद्मि	मैं समझती हूँ,	**सन्धेयं**	सन्धि करने योग्य है ॥१६॥
स्वकृत	अपने लिए		

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा
स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ।
बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद् ध्वाङ्क्षवद् य-
स्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥१७॥

मृगयुः इव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा स्त्रियं अकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानां बलिं अपि बलिं मत्वा वेष्टयत् ध्वांक्षवत् यः तत् अलं असित सख्यैः दुस्त्यजः तत् कथा अर्थः ॥१७॥

लुब्धधर्मा	व्याधके समान क्रूर होकर	**विव्यधे**	बींध दिया,
कपीन्द्रं	वानरराज बालिको	**स्त्रीजितः**	स्त्री (सीता) के वशमें होकर
मृगयुः इव	अखेट पशुकी भाँति	**कामयानां**	(उनको) चाहने वाली
		स्त्रियं	स्त्री शूर्पणखाको

विरूपां अकृत	कुरूपा बना दिया,
बलिं अपि	दैत्यराज बलिको भी
बलिं मत्त्वा	पूजा-ग्रहण करके भी
ध्वांक्षवत्	कौएके समान (कुटिल) होकर
वेष्टयत्	बांध लिया
तत् असित	अतः (इन) कालोंकी
सख्यैः	मित्रतासे
अलं	बहुत होगया, किन्तु
तत् कथा अर्थः	उसकी कथा (चर्चा) से प्रयोजन
दुस्त्यजः	छूटना बहुत कठिन है ॥१७॥

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्
सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥१८॥

यत् अनुचरित लीला कर्णपीयूष विप्रुट् सकृत् अदन विधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः सपदि गृह कुटुम्बं दीनं उत्सृज्य दीना बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥१८॥

यत् अनुचरित	जिनकी को हुई
लीला	लीला रूपी
कर्णपीयूष	कर्णामृतकी
विप्रुट्	बूँद मात्रको
सकृत् अदन	एक ही बार पीनेसे
विधूतद्वन्द्वधर्मा	सब (सुख-दुःखादि) द्वन्द्व धर्मोंसे छूटे
विनष्टाः	(लोकसे) नष्ट हुए
दीनं गृह कुटुम्बं	दुःखी घर-परिवारको
सपदि उत्सृज्य	तत्काल त्यागकर
बहव दीना	बहुतसे बेचारे
विहङ्गा इव	पक्षियोंके समान
इह भिक्षुचर्या	इस संसारमें भिखारी वृत्तिसे
चरन्ति	घूमते हैं ॥१८॥

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः
कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः ।

ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्र-

स्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतामन्यवार्ता ॥१६॥

वयं ऋतं इव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः कुलिकरुतं इव अज्ञाः कृष्णवध्वः हरिण्यः ददृशुः असकृत् एतत् तत् नखस्पर्श तीव्र स्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतां अन्यवार्ता ॥१६॥

अज्ञाः	अनजान	**श्रद्दधानाः**	श्रद्धा करके
कृष्णवध्वः	काले मृगकी पत्नी	**नखस्पर्श**	(उनके) नख-स्पर्शसे
हरिण्यः	हरिणियां	**तीव्र एतत्**	बढ़े इस
कुलिकरुतं	व्याधके शब्दके	**स्मररुज**	काम-रोगको
इव	समान	**असकृत् ददृशुः**	निरन्तर देखती हैं
तत्	उनकी	**उपमन्त्रिन्**	अतः हे दूत !
जिह्मव्याहृतं	कपटपूर्ण बातोंको	**अन्यवार्ता**	कोई दूसरी बात
ऋतं इव	सत्यकी भांति	**भण्यतां**	करो ॥१६॥

प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं

वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग ।

नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं

सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥२०॥

प्रिय सख पुनः आगाः प्रेयसा प्रेषितः किं वरय किं अनुरुन्धे माननीयः असि मे अङ्ग नयसि कथं इह अस्मान् दुस्त्यज द्वन्द्व पार्श्वं सततं उरसि सौम्य श्रीः वधूः साकं आस्ते ॥२०॥

प्रिय सख	प्रियके सखा !	**अंग मे**	प्रिय (तुम) हमारे
पुनः आगाः	फिर लौट आये ?	**माननीयः असि**	सम्मान्य हो
किं	क्या (हमारे)	**वरय किं**	मांगो, क्या
प्रेयसा	प्रियतमने	**अनुरुन्धे**	चाहते हो ?
प्रेषितः	भेजा है ?	**द्वन्द्व**	जिनका सामीप्य

दुस्त्यजः	त्यागना बहुत कठिन है
इह अस्मान्	यहांसे हम लोगोंको
पार्श्वं	(उनके) समीप
कथं नयसि	कैसे ले जाओगे ?
सौम्य	सौम्य !
उरसि	(वे) वक्षपर अपनी
श्रीः वधूः	पत्नी लक्ष्मीको
सततं साकं	निरन्तर साथ लिए
आस्ते	रहते हैं ॥२०॥

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते
स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूंश्च गोपान् ।
क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते
भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु ॥२१॥

अपि बत मधुपुर्यां आर्यपुत्रः अधुना आस्ते स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धून् च गोपान् क्वचित् अपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते भुजं अगुरु सुगन्धं मूर्ध्नि धास्यत् कदा नु ॥२१॥

सौम्य	सौम्य !
आर्यपुत्रः	आर्य-पुत्र (श्रीकृष्ण चन्द्र)
अपि बत	अहो
अधुना	इस समय
मधुपुर्यां आस्ते	मथुरामें ही तो हैं ?
स	वे
पितृगेहान्	अपने पिताके घरको
च बन्धून्	तथा सम्बन्धियोंको
स्मरति	स्मरण करते हैं ?
क्वचित् अपि	कभी क्या
नः किङ्करीणां	हम दासियोंकी
कथा स गृणीते	चर्चा वे करते हैं ?
अगुरु	अगुरुकी
सुगन्धं	सुगन्धवाली
भुजं	(अपनी) भुजाको
नु कदा	भला कब
मूर्ध्नि	(हमारे) मस्तकपर
धास्यत्	रखेंगे ॥२१॥

श्रीशुक उवाच

अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः ।
सान्त्वयन् प्रियसन्देशैर्गोपीरिदमभाषत ॥२२॥

अथ उद्धवः निशम्य एवं कृष्णदर्शन लालसाः सान्त्वयन् प्रिय सन्देशैः गोपीः इदं अभाषत ॥२२॥

अथ उद्धवः	तब उद्धवने	**प्रिय**	(उनके) प्रियतमके
एवं	इस प्रकारकी	**सन्देशैः**	सन्देशसे
कृष्णदर्शन	श्रीकृष्ण-दर्शनकी	**सान्त्वयन्**	सान्त्वना देते हुए
लालसाः	लालसा	**गोपीः इदं**	गोपियोंसे यह
निशम्य	सुनकर	**अभाषत**	बोले ॥२२॥

उद्धव उवाच

अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः ।
वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥२३॥

अहो यूयं स्म पूर्ण अर्थाः भवत्यः लोक पूजिताः वासुदेवे भगवति यासां इति अर्पितं मनः ॥२३॥

भगवति	भगवान	**पूर्ण अर्थाः स्म**	सम्पूर्ण कृतार्थ हो,
वासुदेवे	वासुदेवमें	**भवत्यः**	आप सब
यासां इति	जिनका इस प्रकार	**लोक**	सम्पूर्ण लोकोंमें
मनः अर्पितं	मन समर्पित है,	**पूजिताः**	पूजित हो ॥२३॥
अहो यूयं	अहो, आप सब तो		

दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ।
श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥२४॥

दान व्रत तपः होम जप स्वाधाय संयमैः श्रेयः भिः विविधैः च अन्यैः कृष्णे भक्तिः हि साध्यते ॥२४॥

हि दान व्रत	क्योंकि दान, व्रत,	**विविधैः**	प्रकारके
तपः होम	तप, हवन,	**श्रेयः भिः**	उत्तम कर्मोंसे
जप स्वाधाय	जप, वेदपाठ,	**कृष्णे भक्तिः**	श्रीकृष्णमें भक्ति
संयमैः च	संयम तथा	**साध्यते**	सिद्ध की जाती है ॥२४॥
अन्यैः	दूसरे अनेक		

भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा ।
भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥२५॥

भगवति उत्तमश्लोके भवतीभिः अनुत्तमा भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनां अपि दुर्लभा ॥२५॥

दिष्ट्या	सौभाग्यवश	**उत्तमश्लोके**	उत्तम-श्लोकमें
मुनीनां अपि	मुनियोंके लिए भी	**भक्तिः**	भक्तिका
दुर्लभा	दुर्लभ	**प्रवर्तिता**	प्रचार किया है ॥२५॥
भगवति	भगवान		

दिष्ट्या पुत्रान् पतीन् देहान् स्वजनान् भवनानि च ।
हित्वावृणीत यूयं यत् कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥२६॥

दिष्ट्या पुत्रान् पतीन् देहान् स्वजनान् भवनानि च हित्वा आवृणीत यूयं यत् कृष्ण आख्यं पुरुषं परम् ॥२६॥

दिष्ट्या	सौभाग्यवश	**हित्वा**	त्यागकर
यत् यूयं	जो आप सबने	**कृष्ण आख्यं**	श्रीकृष्ण नामके
पुत्रान् पतीन्	पुत्रों, पति,	**परं पुरुषं**	परम पुरुषको
देहान्	अपने शरीर,	**आवृणीत**	पूर्णतः वरण किया (अपनाया) है ॥२६॥
स्वजनान्	अपने सम्बन्धियों		
च भवनानि	तथा घरोंको		

सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे ।
विरहेण महाभागा महान् मेऽनुग्रहः कृतः ॥२७॥

सर्वात्मभावः अधिकृतः भवतीनां अधोक्षजे विरहेण महाभागा महान् मे अनुग्रहः कृतः ॥२७॥

महाभागा	महाभागाओ !	**अधिकृतः**	प्राप्त कर लिया है,
भवतीनां	आप लोगों द्वारा	**मे**	मुझपर (उसे
विरहेण	वियोगके द्वारा	**महान्**	दिखाकर) भारी
अधोक्षजे	भगवान हृषीकेशमें	**अनुग्रहः**	(आपने) अनुग्रह
सर्वात्मभावः	सर्वात्मभाव	**कृतः**	किया है ॥२७॥

श्रूयतां प्रियसन्देशो भवतीनां सुखावहः ।
यमादायागतो भद्रा अहं भर्तुः रहस्करः ॥२८॥

श्रूयतां प्रियसन्देशः भवतीनां सुख आवहः यं आदाय आगतः भद्रा अहं भर्तुः रहस्करः ॥२८॥

भद्रा	कल्याणियो !	**यं आदाय**	जिसे लेकर
भवतीनां	आप सबके लिए	**अहं भर्तुः**	मैं आपके स्वामीका
सुख आवहः	सुख देने वाला	**रहस्करः**	गुप्त कार्य करने
प्रियसन्देशः	प्रियका सन्देश		वाला
श्रूयतां	सुनें	**आगतः**	आया हूँ ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

भवतीनां वियोगो मे नहि सर्वात्मना क्वचित् ।
यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ।
तथाहं च मनःप्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः ॥२९॥

भवतीनां वियोगः मे न हि सर्वात्मना क्वचित् यथा भूतानि भूतेषु खं वायुः अग्निः जलं मही तथा अहं च मनः प्राण भूत इन्द्रिय गुण आश्रयः ॥२९॥

मे सर्वात्मना	मुझ सबकी आत्मासे	**मही**	पृथ्वी (ये)
भवतीनां	तुम सबका	**भूतानि**	पञ्चभूत (व्याप्त हैं)
क्वचित् वियोगः	कभी वियोग	**तथा अहं च**	वैसेही मैं भी
न हि	नहीं हो सकता, क्योंकि	**मनः प्राण**	मन, प्राण,
यथा भूतेषु	जैसे प्राणियोंमें	**भूत, इन्द्रिय**	पञ्चभूत, इन्द्रियों और
खं वायुः	आकाश, वायु,	**गुण आश्रयः**	गुणोंका आश्रयः
अग्निः जलं	अग्नि, जल		हूँ ॥२९॥

आत्मन्येवात्मनाऽऽत्मानं सृजे हन्म्यनुपालये ।
आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना ॥३०॥

आत्मनि एव आत्मना आत्मानं सृजे हन्मि अनुपालये आत्ममाया अनुभावेन भूत इन्द्रिय गुण आत्मना ॥३०॥

आत्मनि एव	अपनेमें ही	**आत्मानं**	अपने
आत्ममाया	अपनी मायाके		(विश्वरूप) की
अनुभावेन	प्रभावसे	**सृजे हन्मि**	सृष्टि करता हूँ,
भूत इन्द्रिय	भूत, इन्द्रिय,		मारता हूँ
आत्मना	स्वरूप	**अनुपालये**	तथा पालन करता
गुण आत्मना	गुण स्वरूप		हूँ ॥३०॥

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः ।
सुषुप्तिस्वप्नजाग्द्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥३१॥

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धः व्यतिरिक्तः गुण अन्वयः सुषुप्ति स्वप्न जाग्रत्भिः माया वृत्तिभि ईयते ॥३१॥

आत्मा ज्ञानमयः	आत्मा ज्ञानमय,	**जाग्रत्भिः**	जागरण इन
शुद्धः	शुद्ध	**माया**	मायाकी
गुण अन्वयः	गुणोंमें व्याप्त होने पर भी	**वृत्तिभिः**	वृत्तियोंसे
		ईयते	(उनमें एक रस रहने से) जाना
व्यतिरिक्तः	उनसे पृथक है,		जाता है ॥३१॥
सुषुप्ति	सुषुप्ति		
स्वप्न	स्वप्न		

येनेन्द्रियार्थान् ध्यायेत मृषा स्वप्नवदुत्थितः ।
तन्निरुन्ध्यादिन्द्रियाणि विनिद्रः प्रत्यपद्यत ॥३२॥

येन इन्द्रिय अर्थान् ध्यायेत मृषा स्वप्नवत् उत्थितः तत् निरुन्ध्यात् इन्द्रियाणि विनिद्रः प्रति अपद्यत ॥३२॥

स्वप्नवत्	स्वप्नके समान
मृषा	झूठे
इन्द्रिय अर्थान्	इन्द्रियोंके विषय को
येन	जिस (मन) से
ध्यायेत	ध्यान करता है,
उत्थितः	जागकर (सावधान होकर)
तत्	उस (मन) का तथा
इन्द्रियाणि	इन्द्रियोंका
निरुन्ध्यात्	निरोध करे
विनिद्रः	तब निद्राहीन (ज्ञान स्वरूप)
प्रति अपद्यत	स्थितिको प्राप्त करता है ॥३२॥

एतदन्तः समाम्नायो योगः सांख्यं मनीषिणाम् ।
त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रान्ता इवापगाः ॥३३॥

एतत् अन्तः सम आम्नायः योगः सांख्यं मनीषिणां त्यागः तपः दमः सत्यं समुद्र अन्ता इव आपगाः ॥३३॥

आपगाः	नदियोंके
समुद्र	समुद्रमें
अन्ता इव	मिलनेके समान
मनीषिणां	मनस्वी पुरुषोंके
सम आम्नायः	वेदाभ्यास,
योगः सांख्यं	योग तथा सांख्य,
त्यागः तपः	त्याग, तपस्या,
दमः	इन्द्रिय दमन,
सत्यं	सत्य (आदि धर्मों) का
एतत् अन्तः	यही पर्यवसान है ॥३३॥

यत् त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम् ।
मनसः संनिकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥३४॥

यत् तु अहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियः दृशां मनसः सन्निकर्ष अर्थं मत् अनुध्यान काम्यया ॥३४॥

यत् तु अहं	जो कि मैं
भवतीनां	तुम लोगोंका
प्रियः	प्रियतम
दृशां दूरे	दृष्टिसे दूर
वर्ते	रहता हूँ,
मत् अनुध्यान	मेरा निरन्तर ध्यान हो
काम्यया	इस इच्छासे

मनसः	मनकी	अर्थं	निकटताके लिए
सन्निकर्षं	अत्यन्त		है ॥३४॥

यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते ।
स्त्रीणां च न तथा चेतः संनिकृष्टेऽक्षिगोचरे ॥३५॥

यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टे अक्षिगोचरे ॥३५॥

स्त्रीणां च	स्त्रियोंका तो	अक्षिगोचरे	नेत्रोंके सम्मुख
यथा दूरचरे	जैसे दूर रहनेवाले	सन्निकृष्टे	अत्यन्त समीप रहने
प्रेष्ठे	प्रियतममें		पर
मन आविश्य	मन प्रवेश किये	चेतः न	चित्त नहीं रहता
वर्तते	रहता है		॥३५॥
तथा	वैसे		

मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत् ।
अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥३६॥

मयि आवेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्त अशेष वृत्ति यत् अनुस्मरन्त्यः मां नित्यं अचिरात् मां उपैष्यथ ॥३६॥

अशेष वृत्ति	सम्पूर्ण वृत्तियाँ	अनुस्मरन्त्यः	बार-बार स्मरण
यत् विमुक्त	क्योंकि छूट गयी हैं,		करती हुई
कृत्स्नं मनः	सम्पूर्ण मनको	अचिरात्	अविलम्ब
मयि आवेश्य	मुझमें प्रविष्ट करके	मां उपैष्यथ	मुझे पा लोगी ॥३६॥
नित्यं मां	सदा मेरा		

या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन् व्रज आस्थिताः ।
अलब्धरासाः कल्याण्यो माऽऽपुर्मद्वीर्यचिन्तया ॥३७॥

या मया क्रीडता रात्र्यां वने अस्मिन् व्रज आस्थिताः अलब्धरासाः कल्याण्यः मा आपुः मत् वीर्यचिन्तया ॥३७॥

कल्याण्यः	हे कल्याणियो !	अलब्धरासाः	रासमें नहीं आ सकी थीं
अस्मिन् व्रज	इस व्रजमें		
आस्थिताः	रहते हुए	मत्	वे मेरे
वने	वनमें	वीर्यचिन्तया	पराक्रमके ध्यानसे
मया रात्र्यां	मेरे रात्रिमें	मा आपुः	मुझे प्राप्त हो गयी थीं ॥३७॥
क्रीडता	क्रीडाके समय		
या	जो		

श्रीशुक उवाच

एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः ।
ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्सन्देशागतस्मृतीः ॥३८॥

एवं प्रियतम आदिष्टं आकर्ण्य व्रजयोषितः ता ऊचुः उद्धवं प्रीताः तत् सन्देश आगत स्मृतिः ॥३८॥

एवं	इस प्रकार	आगत स्मृतिः	स्मृति लौट आनेसे
प्रियतम	अपने परम प्रियका	प्रीताः	प्रसन्न होकर
आदिष्टं	आदेश	ता व्रजयोषितः	वे व्रजस्त्रियां
आकर्ण्य	सुनकर	उद्धवं ऊचुः	उद्धवसे बोलीं ॥३८॥
तत् सन्देश	उनके सन्देशसे		

गोप्य ऊचुः

दिष्ट्याहितो हतः कंसो यदूनां सानुगोऽघकृत् ।
दिष्ट्याऽऽप्तैर्लब्धसर्वार्थैः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥३९॥

दिष्ट्या अहितः हतः कंसः यदूनां सानुगः अघकृत् दिष्ट्या आप्तैः लब्ध सर्वअर्थैः कुशली आस्ते अच्युतः अधुना ॥३९॥

यदूनां	यदुवंशियोंका	दिष्ट्या अहितः	सौभाग्यसे शत्रु
अघकृत्	अपराध करनेवाला	कंसः सानुगः	कंस अनुचरोंके साथ

हतः	मारा गया,	**अधुना**	इस समय
दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है कि	**अच्युतः**	श्रीकृष्णचन्द्र
आप्तैः	गुरुजनोंके साथ	**कुशली आस्ते**	कुशलपूर्वक हैं ॥३६॥
लब्ध सर्वअर्थैः	सब धन-धान्य प्राप्त करके		

कच्चिद् गदाग्रजः सौम्य करोति पुरयोषिताम् ।
प्रीतिं नः स्निग्धसव्रीडहासोदारेक्षणार्चितः ॥४०॥

कच्चित् गद अग्रजः सौम्य करोति पुर योषितां प्रीतिं नः स्निग्ध सव्रीडहास उदार ईक्षण अर्चितः ॥४०॥

सौम्य	सौम्य !	**अर्चितः**	पूजित होकर (जैसे हमसे करते थे)
कच्चित्	क्या	**पुर योषितां**	नगरकी नारियोंसे (वैसी)
गद अग्रजः	गदके बड़े भाई (श्रीकृष्ण)	**प्रीतिं करोति**	प्रीति करते हैं ॥४०॥
नः स्निग्ध	हमारी प्रेमपूर्ण		
सव्रीडहास	लज्जा पूर्ण हंसी,		
उदार ईक्षण	मनोहर चितवनसे		

कथं रतिविशेषज्ञः प्रियश्च वरयोषिताम् ।
नानुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुभाजितः ॥४१॥

कथं रति विशेषज्ञः प्रियः च वर योषितां न अनुबध्येत तत् वाक्यैः विभ्रमैः च अनुभाजितः ॥४१॥

रति विशेषज्ञः	रति चतुर	**अनुभाजितः**	बराबर सत्कृत होकर
च वर योषितां	तथा श्रेष्ठ स्त्रियोंके	**कथं न**	कैसे नहीं
प्रियः	प्रिय	**अनुबध्येत**	बँध जायँगे ॥४१॥
तत् वाक्यैः	उनके वचनों		
च विभ्रमैः	तथा हाव-भावसे		

अपि स्मरति नः साधो गोविन्दः प्रस्तुते क्वचित् ।
गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथान्तरे ॥४२॥

अपि स्मरति नः साधो गोविन्दः प्रस्तुते क्वचित् गोष्ठीमध्ये पुर स्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथा अन्तरे ॥४२॥

साधो	साधो !	**क्वचित्**	कभी
पुरस्त्रीणां	नगरकी स्त्रियोंकी	**गोविन्दः**	गोविन्द
गोष्ठीमध्ये	गोष्ठीके बीचमें	**नः**	हम
प्रस्तुते	चलनेवाली	**ग्राम्याः**	गांव वालियोंको
स्वैरकथा	स्वच्छन्द चर्चाके	**अपि स्मरति**	भी स्मरण करते
अन्तरे	मध्यमें		हैं ॥४२॥

ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभि-
र्वृन्दावने कुमुदकुन्दशशाङ्करम्ये ।
रेमे क्वणच्चरणनूपुरासगोष्ठ्या-
मस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ॥४३॥

ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभिः वृन्दावने कुमुद कुन्द शशाङ्क रम्ये रेमे क्वणत् चरणनूपुर रास गोष्ठ्यां अस्माभिः ईडित मनोज्ञ कथः कदाचित् ॥४३॥

किं कदाचित्	क्या कभी	**मनोज्ञ**	उनकी मनमोहिनी
ताः निशाः	उन रात्रियोंको	**कथः**	लीलाओंके
स्मरति	स्मरण करते हैं	**ईडित**	गानसे स्तुत
यासु तदा	जिनमें उस समय	**प्रियाभिः**	प्रियतमाके साथ
कुमुद	कुमुदिनी	**चरणनूपुर**	चरणोंके नूपुर
कुन्द	कुन्द तथा	**क्वणत्**	बजाते हुए
शशाङ्क	पूर्ण चन्द्रसे	**रास गोष्ठ्यां**	रास-मण्डलीमें
रम्ये	रमणीय	**रेमे**	विहार किया था
वृन्दावने	वृन्दावनमें		॥४३॥
अस्माभिः	हम लोगों द्वारा		

अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा ।
संजीवयन् नु नो गात्रैर्यथेन्द्रो वनमम्बुदैः ॥४४॥

अपि एष्यति इह दाशार्हः तप्ताः स्वकृतया शुचा सञ्जीवयन् नु नः गात्रैः यथा इन्द्रः वनं अम्बुदैः ॥४४॥

स्वकृतया	अपने लिए	वनं	वनोंको
शुचा तप्ताः	शोक-सन्तप्त होती	इन्द्रः	इन्द्र (जिलाते हैं)
नः	हम सबको	दाशार्हः	श्रीकृष्णचन्द्र
गात्रैः	अपने शरीरसे	इह	यहां
नु सञ्जीवयन्	पुनर्जीवित करते हुए	अपि एष्यति	क्या आवेंगे ॥४४॥
यथा अम्बुदैः	जैसे मेघोंसे		

कस्मात् कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताहितः ।
नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृद्वृतः ॥४५॥

कस्मात् कृष्ण इह आयाति प्राप्तराज्यः हत अहितः नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृत् वृतः ॥४५॥

कृष्ण कस्मात्	श्रीकृष्ण किस लिए	उद्वाह्य	विवाह करके
इह आयाति	यहां आवेंगे ?	सर्वसुहृत्	सब सम्बन्धियोंके
हत अहितः	शत्रु मारा गया,	वृतः प्रीतः	साथ आनन्दसे
प्राप्तराज्यः	राज्य मिल गया,		रहेंगे ॥४५॥
नरेन्द्रकन्या	राजकन्याओंसे		

किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः ।
श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेतार्थः कृतात्मनः ॥४६॥

किं अस्माभिः वनौकोभिः अन्याभिः वा महात्मनः श्रीपतेः आप्तकामस्य क्रियेत अर्थः कृत आत्मनः ॥४६॥

महात्मनः	महात्मा	वनौकोभिः	वनवासिनियोंसे
आप्तकामस्य	परिपूर्ण काम	वा अन्याभिः	अथवा दूसरी
कृत आत्मनः	कृतकृत्य स्वरूप		किसीसे
श्रीपतेः	श्रीपतिको	किं अर्थः क्रियेत	क्या प्रयोजन है
अस्माभिः	हम		॥४६॥

परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिङ्गला ।
तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाप्याशा दुरत्यया ॥४७॥

परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिणि अपि आह पिङ्गला तत् जानतीनां नः कृष्णे तथा अपि आशा दुः अत्यया ॥४७॥

हि	क्योंकि	**नैराश्यं**	निराश हो जाना ही है'
स्वैरिणि	स्वेच्छा चारिणी (वेश्या)	**तत् जानतीनां**	यह जानती हुई भी
अपि	होनेपर भी	**नः**	हमारी
पिङ्गला	पिंगलाने	**कृष्णे**	श्रीकृष्णके प्रति
आह	कहा था	**तथा अपि**	फिर भी
परं सौख्यं	परम सुख	**दुः अत्यया**	दुरन्त
		आशा	आशा है ॥४७॥

क उत्सहेत सन्त्यक्तुमुत्तमश्लोकसंविदम् ।
अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरङ्गान्न च्यवते क्वचित् ॥४८॥

कः उत्सहेत सन्त्यक्तुं उत्तमश्लोक संविदं अनिच्छतः अपि यस्य श्रीः अङ्गात् न च्यवते क्वचित् ॥४८॥

उत्तमश्लोक	पुण्यकीर्ति श्रीकृष्णकी	**अनिच्छतः**	(जिनके) न चाहने-पर
संविदं	चर्चाको	**अपि**	भी
सन्त्यक्तुं	सर्वथा छोड़ देनेका	**यस्य**	जिनके
कः उत्सहेत	कौन उत्साह कर सकता है	**अङ्गात्**	शरीर (वक्ष) से
		श्रीः क्वचित्	लक्ष्मी कभी
		च्यवते न	हटती नहीं हैं ॥४८॥

सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे ।
संकर्षणसहायेन कृष्णेनाचरिताः प्रभो ॥४९॥

सरित् शैल वन उद्देशा गावः वेणुरवा इमे सङ्कर्षण सहायेन कृष्णेन आचरिताः प्रभो ॥४९॥

प्रभो	प्रभो !
सङ्कर्षण	बलरामजी
सहायेन	के साथ
कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा
आचरिताः	सेवित
सरित् शैल	नदी, पर्वत,
वन उद्देशा	वनके विशेष स्थान,
गावः इमे	गायें और यह
वेणुरवा	वंशी ध्वनि ॥४६॥

पुनः पुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं बत ।
श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ॥५०॥

पुनः पुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं बत श्रीनिकेतैः तत् पदकैः विस्मर्तुं न एव शक्नुमः ॥५०॥

बत	अहो
नन्दगोपसुतं	गोप नन्दनन्दनको
पुनः पुनः	बार-बार
स्मारयन्ति	स्मरण कराते हैं,
श्रीनिकेतैः	लक्ष्मी-निवास
तत् पदकैः	उनके नन्हे चरणोंको
विस्मर्तुं	भूल जानेमें हम
न एव शक्नुमः	नहीं ही समर्थ हैं ॥५०॥

गत्या ललितयोदारहासलीलावलोकनैः ।
माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तं विस्मरामहे ॥५१॥

गत्या ललितया उदारहास लीला अवलोकनैः माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तं विस्मरामहे ॥५१॥

ललितया	सुन्दर
गत्या	चाल,
उदारहास	उन्मुक्त हंसी,
लीला	लीला पूर्वक
अवलोकनैः	देखने
माध्व्या	तथा उनकी मीठी
गिरा	वाणीसे
हृतधियः	हमारा चित्त चुरा लिया गया है
तं कथं	उनको (हम) कैसे
विस्मरामहे	भूल सकती हैं ॥५१॥

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ।
मग्नमुद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिनार्णवात् ॥५२॥

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथ आर्तिनाशन मग्नं उद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिन अर्णवात् ॥५२॥

हे नाथ	हे स्वामी !	**गोविन्द**	गोविन्द !
हे रमानाथ	हे लक्ष्मीकान्त !	**वृजिन अर्णवात्**	दुःख-सागरमें
व्रजनाथ	व्रजनाथ !	**मग्नं गोकुलं**	डूबे व्रजको
आर्तिनाशन	संकटहारी !	**उद्धर**	निकालो ॥५२॥

श्रीशुक उवाच

ततस्ताः कृष्णसंदेशैर्व्यपेतविरहज्वराः ।
उद्धवं पूजयाञ्चक्रुर्ज्ञात्वाऽऽत्मानमधोक्षजम् ॥५३॥

ततः ताः कृष्ण सन्देशैः व्यपेत विरहज्वराः उद्धवं पूजयान् चक्रुः ज्ञात्वा आत्मानं अधोक्षजम् ॥५३॥

ततः	फिर	**अधोक्षजं**	श्रीकृष्णको
कृष्ण	श्रीकृष्णके	**आत्मानं**	सबका आत्मा
सन्देशैः	सन्देशसे	**ज्ञात्वा**	जानकर
विरहज्वराः	वियोग जन्य तापके	**उद्धवं**	उद्धवका
व्यपेत	दूर हो जानेपर	**पूजयान् चक्रुः**	सत्कार किया ॥५३॥

उवास कतिचिन्मासान् गोपीनां विनुदञ्छुचः ।
कृष्णलीलाकथां गायन् रमयामास गोकुलम् ॥५४॥

उवास कतिचित् मासान् गोपीनां विनुदन् शुचः कृष्णलीला कथां गायन् रमयामास गोकुलम् ॥५४॥

गोपीनां शुचः	गोपियोंका शोक	**कृष्णलीला**	श्रीकृष्ण-लीलाकी
विनुदन्	दूर करते हुए	**कथां गायन्**	कथाएँ कह कहकर
कतिचित्	(उद्धव) कुछ	**गोकुलं**	व्रजको
मासान्	महीने (व्रजमें)	**रमयामास**	आनन्दित करते
उवास	बसे रहे,		रहे ॥५४॥

यावन्त्यहानि नन्दस्य व्रजेऽवात्सीत् स उद्धवः ।
व्रजौकसां क्षणप्रायाण्यासन् कृष्णस्य वार्तया ॥५५॥

यावन्ति अहानि नन्दस्य व्रजे अवात्सीत् स उद्धवः व्रजौकसां क्षण-प्रायान् आसन् कृष्णस्य वार्तया ॥५५॥

स उद्धवः	वे उद्धव	**व्रजौकसां**	ब्रजवासियोंके लिए
यावन्ति अहानि	जितने दिन	**क्षणप्रायान्**	(वे दिन) एक क्षण
नन्दस्य व्रजे	नन्द-ब्रजमें		के समान
अवात्सीत्	बसे रहे	**आसन्**	हो गये ॥५५॥
कृष्णस्य वार्तया	श्रीकृष्णकी चर्चामें		

सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन् कुसुमितान् द्रुमान् ।
कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥५६॥

सरित् वन गिरिद्रोणीः वीक्षन् कुसुमितान् द्रुमान् कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासः व्रजौकसाम् ॥५६॥

हरिदासः	श्रीहरिके सेवक उद्धव	**व्रजौकसां**	ब्रजवासियोंको
सरित् वन	नदी, वन,	**कृष्णं**	श्रीकृष्णका
गिरिद्रोणीः	पर्वतकी तलहटीमें	**संस्मारयन्**	स्मरण कराते हुए
कुसुमितान्	पुष्पित	**रेमे**	आनन्द मनाते रहे
द्रुमान् वीक्षन्	वृक्षोंको देखते हुए		॥५६॥

दृष्ट्वैवमादि गोपीनां कृष्णावेशात्मविक्लवम् ।
उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥५७॥

दृष्ट्वा एवं आदि गोपीनां कृष्ण आवेश आत्मविक्लवं उद्धवः परमप्रीतः ता नमस्यन् इदं जगौ ॥५७॥

गोपीनां आदि	गोपियों आदिका	**आत्म विक्लवं**	चित्तकी व्याकुलता
एवं कृष्ण	इस प्रकार श्रीकृष्ण	**दृष्ट्वा**	देखकर
आवेश	के आवेशमें	**परमप्रीतः**	अत्यन्त प्रसन्न

उद्धवः	उद्धवजी	इदं जगौ	यह बोले ॥५७॥
ता नमस्यन्	उनको नमस्कार करते हुए		

उद्धव उवाच*

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः ।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥५८॥

एताः परं तनुभृतः भुवि गोपबध्वः गोविन्द एव निखिल आत्मनि रूढभावाः वाञ्छन्ति यत् भवभियः मुनयः वयं च किं ब्रह्मजन्मभिः अनन्त कथा रसस्य ॥५८॥

निखिल आत्मनि	सर्वात्मा	यत् वाञ्छन्ति	जिस (प्रेम)को चाहते हैं,
गोविन्द एव	गोविन्दमें ही	अनन्त कथा	(सचमुच) अनन्त श्रीहरिकी कथाके
रूढभावाः	आरूढ़ प्रेमा	रसस्य	रसके सम्मुख
एताः गोपवध्वः	ये गोपांगनाएँ	ब्रह्मजन्मभिः	वैदिक (शौल्क सावित्र-यज्ञोपवीत जन्म, याज्ञिक) जन्मोंकी
भुवि तनुभृतः	पृथ्वीके शरीर धारियोंमें		
परं	सर्वश्रेष्ठ हैं,		
भवभियः	संसारके भयसे		
मुनयः च वयं	मुनिगण और हम भी	किं	क्या आवश्यकता ॥५८॥

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ।

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षा-
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥५९॥

क्व इमाः स्त्रियः वनचरीः व्यभिचार दुष्टाः कृष्णे क्व च एष परमात्मनि रूढभावः ननु ईश्वरः अनुभजतः अविदुषः अपि साक्षात् श्रेयः तनोति अगदराज इव उपयुक्तः ॥५९॥

क्व इमाः	कहां तो ये
व्यभिचार	व्यभिचार-
दुष्टाः	दूषिता
वनचरीः स्त्रियः	वनवासिनी स्त्रियां
च क्व	और कहाँ
परमात्मनि	परमात्मा
कृष्णे	श्रीकृष्णमें (इरका)
रूढभावाः	सुदृढ़ प्रेम,
ननु अविदुषः	निश्चय अज्ञानी
अपि अनुभजतः	के भी निरन्तर भजन करनेपर
उपयुक्तः	उपयोग किये गये (अनजानमें)
अगदराज इव	अमृतके समान
साक्षात् ईश्वरः	साक्षात् ईश्वर (स्वयं)
श्रेयः तनोति	कल्याण कर देतेहैं

॥५९॥

नायंश्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम् ॥६०॥

न आयं श्रियः अङ्ग उ नितान्त रतेः प्रसादः स्वः योषितां नलिनगन्ध रुचां कुतः अन्याः रास उत्सवे अस्य भुजदण्ड गृहीत कण्ठ लब्ध आशिषां यः उदगात् व्रजवल्लवीनाम् ॥६०॥

रास उत्सवे	रासोत्सवके समय
अस्य भुजदण्ड	इन (श्रीकृष्ण)के भुजदण्डोंसे
गृहीत कण्ठ	कण्ठ पकड़ी गयी
लब्ध आशिषां	पूर्ण काम हुई
व्रजवल्लवीनां	ब्रजकी गोपियोंके साथ
यः उदगात्	जो गाते रहे
अयं प्रसादः	यह प्रसाद
उ नितान्त	उनको सर्वदा

अङ्ग रतेः	अंगमें ही रहने वाली	स्वः योषितां न	स्वर्गकी देवियोंको भी नहीं मिला
श्रियः	लक्ष्मीको भी तथा		
नलिनगन्ध	कमल जैसी गन्ध	अन्याः कुतः	फिर दूसरियोंको
रुचां	वाली शोभा		कहांसे मिलेगा
	शालिनी		॥६०॥

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥६१॥

आसां अहो चरणरेणु जुषां अहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्म लता औषधीनां या दुस्त्यजं स्वजनं आर्यपथं च हित्वा भेजुः मुकुन्द पदवीं श्रुतिभिः विमृग्याम् ॥६१॥

या दुस्त्यजं	जिन्होंने दुस्त्याज्य	भेजुः	अपना लिया,
स्वजनं	अपने सम्बन्धियों	अहो आसां	अहो इनकी
च आर्यपथं	तथा श्रेष्ठ (कुली-	चरणरेणु जुषां	चरण-रजपाने वाला
	नताके) मार्गको	वृन्दावने	वृन्दावनमें
हित्वा	त्यागकर	गुल्म लता	झाड़ी, लता,
श्रुतिभिः	श्रुतियों द्वारा	औषधीनां	तृणोंमेंसे
विमृग्यां	ढूढ़े जाने वाले	अहं किमपि	मैं कोई
मुकुन्द पदवीं	मुकुन्द (प्राप्ति)के	स्यां	हो जाऊं ॥६१॥
	मार्गको		

या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै-
र्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ।
कृष्णस्य तद् भगवतश्चरणारविन्दं
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥६२॥

या वै श्रिया अर्चितं अज आदिभिः आप्तकामैः योगेश्वरैः अपि यदा आत्मनि रासगोष्ठ्यां कृष्णस्य तत् भगवतः चरणारविन्दं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥६२॥

वै या	निश्चय जिनकी	**चरणारविन्दं**	चरण-कमलोंको
श्रिया अज	लक्ष्मी तथा ब्रह्मा	**यदा**	जब
आदिभिः	आदि	**रासगोष्ठ्यां**	रास-मण्डलमें
आप्तकामैः	आप्तकाम	**स्तनेषु न्यस्तं**	स्तनोंपर रखे गये (तो उन्हें)
योगेश्वरैः अपि	योगेश्वरों द्वारा भी		
आत्मनि अर्चितं	हृदयमें पूजा होती है,	**परिरभ्य**	आलिंगन करके
तत् भगवतः	उन भगवान	**तापं विजहुः**	विरह-व्यथा दूर की थी ॥६२॥
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके		

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥६३॥

वन्दे नन्दव्रज स्त्रीणां पादरेणुं अभीक्ष्णशः यासां हरिकथा उद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥६३॥

यासां	जिनका	**स्त्रीणां**	स्त्रियोंकी
हरिकथा	श्रीहरिकी कथाका	**पादरेणुं**	चरणरजकी
उद्गीतं	उच्च स्वरका गान	**अभीक्ष्णशः**	निरन्तर
भुवनत्रयं	त्रिलोकीको	**वन्दे**	वन्दना करता हूँ ॥६३॥
पुनाति	पवित्र करता है		
नन्दव्रज	उन नन्द-ब्रजकी		

श्रीशुक उवाच

अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नन्दमेव च ।
गोपानामन्त्र्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥६४॥

अथ गोपीः अनुज्ञाप्य यशोदां नन्दं एव च गोपान् आमन्त्र्य दाशार्हः यास्यन् आरुरुहे रथम् ॥६४॥

अथ गोपीः	फिर गोपियोंसे	**आमन्त्र्य**	पूछकर
च यशोदां	तथा यशोदाजीसे	**दाशार्हः**	उद्धव
नन्दं एव	नन्दजीसे भी	**यास्यन्**	जानेके लिए
अनुज्ञाप्य	अनुमति लेकर	**रथं आरुरुहे**	रथपर चढ़े
गोपान्	गोपोंसे		॥६४॥

तं निर्गतं समासाद्य नानोपायनपाणयः ।
नन्दादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥६५॥

तं निर्गतं सम आसाद्य नाना उपायनपाणयः नन्द आदयः अनुरागेण प्रावोचन् अश्रुलोचनाः ॥६५॥

तं निर्गतं	उनके (व्रजसे वाहर) निकलनेपर	**सम आसाद्य**	समीप आकर
		अनुरागेण	प्रेमके कारण
उपायनपाणयः	हाथोंमें उपहार लिए	**अश्रुलोचनाः**	नेत्रोंमें आंसू भरे
		प्रावोचन्	बोले ॥६५॥
नन्द आदयः	नन्द आदि		

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः ।
वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥६६॥

मनसः वृत्तयः नः स्युः कृष्ण पादाम्बुज आश्रयाः वाचः अभिधायिनीः नाम्नां कायः तत् प्रह्वण आदिषु ॥६६॥

नः मनसः	हमारे मनकी	**नाम्नां**	उनके नामोंको
वृत्तयः	वृत्तियां	**अभिधायिनी**	बोलनेवाली तथा
कृष्ण	श्रीकृष्णके	**कायः तत्**	तथा शरीर उनको
पादाम्बुज	चरण-कमलोंमें	**प्रह्वण**	प्रणाम
आश्रयाः	लगी रहें,	**आदिषु स्युः**	आदि करनेवाला हो
वाचः	(हमारी) वाणी		॥६६॥

कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया ।
मङ्गलाचरितैर्दानैः रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥६७॥

कर्मभिः भ्राम्यमाणानां यत्र क्व अपि ईश्वर इच्छया मङ्गल आचरितैः दानैः रतिः नः कृष्ण ईश्वरे ॥६७॥

ईश्वर इच्छया	ईश्वरकी इच्छासे	**आचरितैः**	कर्म तथा
कर्मभिः	कर्मोंके द्वारा	**दानैः**	दानके फलसे
भ्राम्यमाणानां	घुमाये जाते हुए	**कृष्ण**	श्रीकृष्ण
यत्र	जहां	**ईश्वरे**	भगवानमें
क्व अपि	कहीं भी (जन्म हो)	**नः रतिः**	हमारी प्रीति हो
मंगल	शुभ		॥६७॥

एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप ।
उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥६८॥

एवं सभाजितः गोपैः कृष्ण भक्त्या नर अधिप उद्धवः पुनः आगच्छत् मथुरां कृष्ण पालिताम् ॥६८॥

नर अधिप	राजन् !	**उद्धवः**	उद्धव
एवं	इस प्रकार	**कृष्ण**	श्रीकृष्ण द्वारा
कृष्ण	श्रीकृष्णकी	**पालितां**	रक्षित
भक्त्या	भक्तिसे	**मथुरां**	मथुरामें
गोपैः	गोपों द्वारा	**पुनः आगच्छत्**	फिर आ गये ॥६८॥
सभाजितः	सत्कृत होकर		

कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् ।
वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात् ॥६९॥

कृष्णाय प्रणिपत्य आह भक्ति उद्रेकं व्रजौकसां वसुदेवाय रामाय राज्ञे च उपायनानि अदात् ॥६९॥

प्रणिपत्य	प्रणाम करके	वसुदेवाय	वसुदेवजीको,
व्रजौकसां	व्रजवासियोंकी	रामाय	बलरामजीको;
भक्ति उद्रेकं	भक्तिकी अधिकता	राज्ञे	राजा उग्रसेनको
कृष्णाय आह	श्रीकृष्णसे कही	उपायनानि	उपहार
च	तथा	अदात्	दिये ॥६६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे उद्धवप्रतियाने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अथ विज्ञाय भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।

सैरन्ध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन् गृहं ययौ ॥१॥

अथ विज्ञाय भगवान् सर्व आत्मा सर्व दर्शनः सैरन्ध्र्या काम तप्तायाः प्रियं इच्छन् गृहं ययौ ॥१॥

अथ सर्वं	फिर सर्व	**तप्तायाः**	संतप्त
आत्मा	स्वरूप	**सैरन्ध्र्याः**	कुब्जाका
सर्व दर्शनः	सर्वज्ञ	**प्रियं**	प्रिय करनेकी
भगवान्	भगवान्	**इच्छन्**	इच्छासे
काम	अपनी चाहसे	**गृहं ययौ**	उसके घर गये ॥१॥

महार्होपस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितम् ।

मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनासनैः ।

धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गन्धैरपि मण्डितम् ॥२॥

महा अर्ह उपस्करैः आढ्यं काम उपायैः उपबृंहितं मुक्तादाम पताकाभिः वितान शयन आसनैः धूपैः सुरभिभिः दीपैः स्रक् गन्धैः अपि मण्डितम् ॥२॥

महा अर्ह	(वह घर) बहुमूल्य	**उपबृंहितं**	भरा हुआ था,
उपस्करैः	सामग्रियोंसे	**मुक्तादाम**	मोतीकी झालरों,
आढ्यं	सम्पन्न था,	**पताकाभिः**	झंड़ियोंसे
काम	कामोत्तेजक	**वितान शयन**	मण्डप, शय्या,
उपायैः	साधनोंसे	**आसनैः**	आसनों,

धूपैः	धूप,	गन्धैः	सुगन्धसे
सुरभिभिः	सुगन्धि (इत्रादि) से	अपि मण्डितम्	भी सज्जित था
दीपैः स्रक्	दीपक, मालाकी		॥२॥

गृहं तमायान्तमवेक्ष्य साऽऽसनात्
सद्यः समुत्थाय हि जातसम्भ्रमा ।
यथोपसंगम्य सखीभिरच्युतं
सभाजयामास सदासनादिभिः ॥३॥

गृहं तं आयान्तं अवेक्ष्य सा आसनात् सद्यः समुत्थाय हि जात सम्भ्रमा यथा उपसङ्गम्य सखीभिः अच्युतं सभाजयामास सह आसन आदिभिः ॥३॥

तं	उनको (अपने)	सखीभिः	सखियोंके साथ
गृहं आयान्तं	घर आते	यथा	किसी प्रकार
अवेक्ष्य	देखकर	उपसङ्गम्य	समीप जाकर
सा आसनात्	वह आसनसे	सह आसन	साथ बैठाने
सद्यः समुत्थाय	तुरन्त उठकर	आदिभिः	आदिके द्वारा
हि सम्भ्रमा	क्योंकि अकुलाहट	अच्युतं	श्रीकृष्णका
जात	उत्पन्न हो गयी,	सभाजयामास	सत्कार किया ॥३॥

तथोद्धवः साधु तयाभिपूजितो
न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम् ।
कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं
विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः ॥४॥

तथा उद्धवः साधु तया अभिपूजितः न्यषीदत् उर्व्यां अभिमृश्य च आसनं कृष्णः अपि तूर्णं शयनं महाधनं विवेश लोक आचरितानि अनुव्रतः ॥४॥

तथा उद्धवः	इसी प्रकार उद्धव
साधु तया	भली प्रकार
अभिपूजितः	सत्कृत होकर
आसनं च	आसनको भी
अभिमृश्य	स्पर्श करके
उर्व्यां न्यषीदत्	पृथ्वीपर बैठ गये,
कृष्णः अपि	श्रीकृष्ण भी
लोक	लोगोंके
आचरितानि	आचरणका
अनुव्रतः	अनुकरण करते हुए
महाधनं	महामूल्यवान
शयनं	शयन-कक्षमें
तूर्णं विवेश	शीघ्र प्रविष्ट हो गये ॥४॥

सा मज्जनालेपदुकूलभूषण-
स्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः ।
प्रसाधितात्मोपससार माधवं
सव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥५॥

सा मज्जन आलेप दुकूलभूषण स्रक् गन्ध ताम्बूल सुधासव आदिभिः प्रसाधित आत्म उपससार माधवं सव्रीडलील उत्स्मित विभ्रम इक्षितैः ॥५॥

मज्जन आलेप	स्नान, अंगराग,
दुकूलभूषण	वस्त्र, आभूषण,
स्रक् गन्ध	माला, चन्दन,
ताम्बूल	पान,
सुधासव	सुधासव
आदिभिः	आदिसे
आत्म	अपना
प्रसाधित	शृंगार करके
सा सव्रीड	वह लज्जा युक्त
लील	क्रीड़ासे
उत्स्मित	व्यक्त मुसकान तथा
विभ्रम	तिरछी
ईक्षितैः	चितवनसे देखती
माधवं	श्रीकृष्णके
उपससार	समीप गयी ॥५॥

आहूय कान्तां नवसङ्गमह्रिया
विशङ्कितां कङ्कणभूषिते करे ।
प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया
रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ॥६॥

आहूय कान्तां नवसङ्गम ह्रिया विशङ्कितां कङ्कण भूषिते करे प्रगृह्य शय्यां अधिवेश्य रामया रेमे अनुलेपन अर्पण पुण्य लेशया ॥६॥

नव सङ्गम	नवीन समागमकी
ह्रिया	लज्जासे
विशङ्कितां	आशंकित
कातां आहूय	सुन्दरीको समीप बुलाकर
कङ्कण भूषिते	कङ्कणसे आभूषित
करे प्रगृह्य	हाथ पकड़कर
शय्यां	शय्या पर
अधिवेश्म	लिटाकर
अनुलेपन अर्पण	अंगराग दानका
पुण्य लेशया	पुण्य प्राप्ता
रामया रेमे	उस सुन्दरीके साथ रमण किया ॥६॥

सानङ्गतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णो-
र्जिघ्रन्त्यनन्तचरणेन रुजो मृजन्ती ।
दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं परिरभ्य कान्त-
मानन्दमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम् ॥७॥

सा अनङ्ग तप्त कुचयोः उरसः तथा अक्ष्णोः जिघ्रन्ति अनन्त चरणेन रुजः मृजन्ती दोर्भ्यां स्तन अन्तरगतं परिरभ्य कान्तं आनन्दमूर्ति अजहात् अतिदीर्घतापम् ॥७॥

सा	उसने
अनङ्ग तप्त	कामसंतप्त
कुचयोः	स्तनोंपर
तथा अक्ष्णोः	तथा नेत्रोंपर
उरसः जिघ्रन्ति	रखकर सूंघकर
अनन्त चरणेन	अनन्त श्रीकृष्णके चरणोंसे
रुजः मृजन्ती	हृदय रोग दूर करती हुई
स्तन अन्तरगतं	स्तनोंके मध्यमें आये
आनन्दमूर्ति	आनन्द विग्रह
कान्तं दोर्भ्यां	प्रियतम को भुजाओंसे
परिरभ्य	आलिगन करके
अतिदीर्घतापं	बहुत दीर्घकालका संताप
अजहात्	त्याग दिया ॥७॥

सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापमीश्वरम् ।
अङ्गरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥८॥

सा एवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापं ईश्वरं अंगराग अर्पणेन अहो दुर्भगा इदं अयाचत ॥८॥

एवं	इस प्रकार	**दुष्प्रापं**	दुष्प्राप्य
अङ्गराग	अंगराग	**ईश्वरं**	परमेश्वरको
अर्पणेन	अर्पण करनेसे	**प्राप्य**	पाकर
तं	उन	**सा दुर्भगा**	उस दुर्भाग्याने
कैवल्यनाथं	कैवल्य-मोक्षके स्वामी	**अहो इदं**	अहो यह
		अयाचत	मांगा ॥८॥

आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया ।
रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं संगं तेऽम्बुरुहेक्षण ॥९॥

आहोष्यतां इह प्रेष्ठ दिनानि कतिचित् मया रमस्व न उत्सहे त्यक्तुं सङ्गं ते अम्बुरुह ईक्षण ॥९॥

प्रेष्ठ	प्रियतम !	**रमस्व**	विहार करें,
अम्बुरुह ईक्षण	कमल-लोचन !	**ते सङ्गं**	आपका साथ
इह कतिचित्	यहां कुछ	**त्यक्तुं**	छोड़नेका
दिनानि	दिन	**उत्सहे**	उत्साह (मुझमें)
आहोष्यतां	निवास करें और	**न**	नहीं है' ॥९॥
मया	मेरे साथ		

तस्यै कामवरं दत्त्वा मानयित्वा च मानदः ।
सहोद्धवेन सर्वेशः स्वधामागमदृद्धिमत् ॥१०॥

तस्यै कामवरं दत्त्वा मानयित्वा च मानदः सह उद्धवेन सर्व ईशः स्वधाम आगमत् अर्चितः ॥१०॥

मानदः	(सबको) सम्मान देनेवाले	**कामवरं**	इच्छानुसार वरदान
सर्व ईशः	सर्वेशने	**दत्त्वा च**	देकर तथा
तस्यै	उसको	**मानयित्वा**	उसका सम्मान करके

अर्चितः	पूजित होकर	**स्वधाम**	अपने भवन
सह उद्धवेन	उद्धवके साथ	**आगमत्**	चले गये ॥१०॥

दुराराध्यं समाराध्यं विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ।
यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्वात् कुमनीष्यसौ ॥११॥

दुःआराध्यं सम आराध्य विष्णुं सर्व ईश्वर ईश्वरं यः वृणीते मनः ग्राह्यं असत्त्वात् कुमनीषि असौ ॥११॥

दुः आराध्यं	जिनको प्रसन्न करना कठिन है	**आराध्य**	प्रसन्न करके
सर्वं	सब	**यः मनः**	जो मनकी
ईश्वर	लोकपालोंके भी	**ग्राह्यं**	कामनाको
ईश्वरं	स्वामी	**वृणीते**	मांगता है
विष्णुं	उन भगवान विष्णु-को	**असत्त्वात्**	(उन कामनाओंके) असत् होनेसे
सम	भली प्रकार	**असौ**	यह
		कुमनीषि	दुर्बुद्धि है ॥११॥

अक्रूरभवनं कृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः ।
किंचिच्चिचकीर्षयन् प्रागादक्रूरप्रियकाम्यया ॥१२॥

अक्रूरभवनं कृष्णः सह राम उद्धवः प्रभुः किञ्चित् चिकीर्षयन् प्रागात् अक्रूर प्रिय काम्यया ॥१२॥

प्रभुः कृष्णः	समर्थ श्रीकृष्ण	**काम्यया**	करनेकी इच्छासे
किञ्चित्	कुछ	**राम**	बलरामजी और
चिकीर्षयन्	करनेकी इच्छा करके	**उद्धवः सह**	उद्धवके साथ
		अक्रूरभवनं	अक्रूरके भवन
अक्रूर प्रिय	अक्रूरको प्रसन्न	**प्रागात्**	पहुँचे ॥१२॥

स तान् नरवरश्रेष्ठानाराद् वीक्ष्य स्वबान्धवान् ।
प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभ्यनन्दत ॥१३॥

स तान् नरवर श्रेष्ठान् आरात् वीक्ष्य स्वबान्धवान् प्रति उत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्य अभिनन्दत ॥१३॥

नरवर	श्रेष्ठ पुरुषोंमें भी	**प्रति**	उनके लिए
श्रेष्ठान्	श्रेष्ठ	**उत्थाय**	उठकर खड़े होकर
स्वबान्धवान्	अपने सम्बन्धी	**परिष्वज्य**	आलिंगन करके
तान्	उनको	**च**	तथा
आरात् वीक्ष्य	समीप आया देखकर	**अभिनन्दत**	अभिवादन करके
स प्रमुदितः	वे बहुत प्रसन्न होकर		॥१३॥

ननाम कृष्णं रामं च स तैरप्यभिवादितः ।
पूजयामास विधिवत् कृतासनपरिग्रहान् ॥१४॥

ननाम कृष्णं रामं च सः तैः अपि अभिवादितः पूजयामास विधिवत् कृत आसन परिग्रहान् ॥१४॥

कृष्णं च	श्रीकृष्ण तथा	**अभिवादितः**	अभिवन्दित होकर
रामं	बलरामको	**आसन**	आसन
ननाम	प्रणाम किया	**परिग्रहान् कृत**	स्वीकार कर लेनेपर
तैः अपि	उनके द्वारा भी	**विधिवत्**	विधिपूर्वक (उनकी)
सः	वे	**पूजयामास**	पूजा की ॥१४॥

पादावनेजनीरापो धारयञ्छिरसा नृप ।
अर्हणेनाम्बरैर्दिव्यैर्गन्धस्रग्भूषणोत्तमैः ॥१५॥

पाद अवनेजनीः आपः धारयन् शिरसा नृप अर्हणेन अम्बरैः दिव्यैः गन्ध स्रक् भूषण उत्तमैः ॥१५॥

नृप	राजन् !	**दिव्यैः अम्बरैः**	दिव्य वस्त्रों,
पाद अवनेजनीः	चरण-प्रक्षालनका	**गन्ध स्रक्**	चन्दन, माला,
आपः	जल	**भूषण उत्तमैः**	उत्तम आभूषण आदि
शिरसा	मस्तकपर	**अर्हणेन**	पूजा द्रव्योंसे ॥१५॥
धारयन्	चढ़ाकर		

अर्चित्वा शिरसाऽऽनम्य पादावङ्कगतौ मृजन् ।
प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ॥१६॥

अर्चित्वा शिरसा आनम्य पादाः अङ्कगतौ मृजन् प्रश्रय अवनतः अक्रूरः कृष्ण रामाः अभाषत ॥१६॥

अर्चित्वा	पूजन करके	**अक्रूरः**	अक्रूरजी
शिरसा आनम्य	मस्तक झुकाकर	**कृष्ण**	श्रीकृष्ण तथा
पादाः	चरणोंको	**रामाः**	बलरामसे
अङ्कगतौ	गोदमें लेकर	**अभाषत**	बोले ॥१६॥
मृजन्	दबाते हुए		

श्रीशुक उवाच*

दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् ।
भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्राद् दुरन्ताच्च समेधितम् ॥१७॥

दिष्ट्या पापः हतः कंसः सानुगः वां इदं कुलं भवद्भ्यां उद्धृतं कृच्छ्रात् दुरन्तात् च समेधितम् ॥१७॥

दिष्ट्या	सौभाग्यवश	**दुरन्तात्**	दुष्पार
सानुगः	अनुचरोंके साथ	**कृच्छ्रात**	संकटसे
पापः	पापी	**उद्धृतं**	उबार लिया गया
कंसः हतः	कंस मारा गया	**च**	तथा
वां भवद्भ्यां	आप दोनों द्वारा	**समेधितं**	समृद्ध किया गया ॥१७॥
इदं कुलं	यह कुल		

युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ।
भवद्भ्यां न विना किंचित् परमस्ति न चापरम् ॥१८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

युवां प्रधान पुरुषौ जगत् हेतुः जगन्मयौ भवद्भ्यां न विना किञ्चित् परं अस्ति न च अपरम् ॥१८॥

युवां	आप दोनों	**भवद्भ्यां**	आप दोनोंसे
जगत् हेतुः	जगतके कारण	**विना किञ्चित्**	अतिरिक्त कुछ
जगन्मयः	जगन्मय	**न परं अस्ति**	न कारण है
प्रधान	प्रधान और	**च न अपरं**	और न कार्य है
पुरुषौ	पुरुष हैं		॥१८॥

आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः ।
ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥१९॥

आत्मसृष्टं इदं विश्वं अनु आविश्य स्वशक्तिभिः ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुत प्रत्यक्ष गोचरम् ॥१९॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मस्वरूप (आप)	**प्रत्यक्ष**	प्रत्यक्ष
आत्मसृष्टं	अपने बनाये हुए	**गोचरं**	इन्द्रियोंसे दीखने-
इदं विश्वं	इस संसारमें		वाले
स्वशक्तिभिः	अपनी (मायादि)	**बहुधा**	अनेक रूपोंमें
	शक्तियोंसे	**ईयते**	प्रतीत हो रहे हैं
अनु आविश्य	फिरसे प्रवेश करके		॥१९॥
श्रुत	सुने (स्वर्गादि और)		

यथा हि भूतेषु चराचरेषु
महादयो योनिषु भान्ति नाना ।
एवं भवान् केवल आत्मयोनि-
ष्वात्माऽऽत्मतन्त्रो बहुधा विभाति ॥२०॥

यथा हि भूतेषु चर अचरेषु महि आदयः योनिषु भान्ति नाना एवं भवान् केवल आत्मयोनिषु आत्मा आत्मतन्त्रः बहुधा विभाति ॥२०॥

हि यथा	क्योंकि जैसे	**भूतेषु**	प्राणि-पदार्थोंकी
चर अचरेषु	जंगम-स्थावर	**योनिषु**	योनियोंमें

महि आदयः	पृथ्वी आदि (पञ्चभूत)	**आत्मतन्त्रः**	स्वतन्त्र
नाना भान्ति	अनेक रूप प्रतीत होतेहैं	**आत्मा**	आत्मा
एवं भवान्	इसी प्रकार आप	**आत्मयोनिषु**	अपनी ही (बनाई) योनियोंमें
केवल	एकमात्र	**बहुधा विभाति**	अनेक रूप भासते हैं ॥२०॥

सृजस्यथो लुम्पसि पासि विश्वं
रजस्तमः सत्वगुणैः स्वशक्तिभिः ।
न बध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा
ज्ञानात्मनस्ते क्व च बन्धहेतुः ॥२१॥

सृजसि अथो लुम्पसि पासि विश्वं रजः तमः सत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः न बध्यसे तत् गुण कर्मभिः वा ज्ञानात्मनः ते क्वचच बन्धहेतुः ॥२१॥

रजः तमः	रजोगुण, तमोगुण	**पासि**	पालन करते हैं,
सत्वगुणैः	सत्त्व गुण वाली (ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु रूपा)	**तत् गुण**	उनके गुणों
		वा कर्मभिः	अथवा कर्मोंसे
		बध्यसे न	बँधते नहीं,
स्वशक्तिभिः	अपनी शक्तियोंके द्वारा	**ते ज्ञानात्मनः**	आप ज्ञान स्वरूपके लिए
विश्वं सृजसि	विश्वको बनाते हैं	**बन्धहेतुः**	बन्धनका कारण
अथो लुम्पसि	फिर नष्ट कर देते हैं या	**क्वचच**	कहांसे होगा ॥२१॥

देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्
भवो न साक्षान्न भिदाऽऽत्मनः स्यात् ।
अतो न बन्धस्तव नैव मोक्षः
स्यातां निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥२२॥

देह आदि उपाधेः अनिरूपित त्वात् भवः न साक्षात् न भिदा आत्मनः स्यात् अतः न बन्धः तव न एव मोक्षः स्यातां निकामः त्वयि नः अविवेकः ॥२२॥

देह आदि	शरीर आदि
उपाधेः	उपाधियोंसे
अनिरूपित	निरूपण न होनेके
त्वात्	कारण
आत्मनः	जीवमें भी
साक्षात्	साक्षात्
भवः न	जन्म नहीं है,
न भिदा स्यात्	न भेद है,
अतः तव	अतः आपका
न बन्धः	न बन्धन है
न मोक्षः एव	न मोक्ष ही है
त्वयि निकामः	आप निष्काममें
स्यातां	(इनको) मानना
नः अविवेकः	हमरी विचारहीनता है ॥२२॥

त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय
यदा यदा वेदपथः पुराणः ।
बाध्येत पाखण्डपथैरसद्भि-
स्तदा भवान् सत्त्वगुणं बिभर्ति ॥२३॥

त्वया उदितः अयं जगतः हिताय यदा यदा वेदपथः पुराणः बाध्येत पाखण्डपथैः असद्भिः तदा भवान् सत्वगुणं बिभर्ति ॥२३॥

जगतः हिताय	संसारके कल्याणके लिए
त्वया उदितः	आपसे प्रकट
अयं पुराणः	यह सनातन
वेदपथः	वैदिक-मार्ग
यदा यदा	जब-जब
पाखण्डपथैः	पाखण्ड-मार्गी
असद्भिः	दुष्टोंके द्वारा
बाध्येत	क्षतिग्रस्त होता है
तदा भवान्	तब तब आप
सत्वगुणं	शुद्ध सत्त्वगुण (मय शरीर)
बिभर्ति	धारण करते हैं ॥२३॥

स त्वं प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः
स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः ।

अक्षौहिणीशतवधेन सुरेतरांश-
राज्ञाममुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन् ॥२४॥

स त्वं प्रभो अद्य वसुदेवगृहे अवतीर्णः स्व अंशेन भारं अपनेतुं इह असि भूमेः अक्षौहिणी शत वधेन सुरेतर अंश राज्ञां अमुष्य च कुलस्य यशः वितन्वन् ॥२४॥

प्रभो	प्रभो !	**भमेः भारं**	पृथ्वीका भार
स त्वं अद्य	वही आप इस समय	**अपनेतुं**	दूर करनेके लिए
स्व अंशेन	अपने अंशके साथ	**च अमुष्य**	तथा इस
सुरेतर अंश	असुरोंके अंशसे (उत्पन्न)	**कुलस्य**	यदु कुलका
		यशः वितन्वन्	यश विस्तार करने के लिए
राज्ञां	राजाओंकी		
शत	सैकड़ों	**इह वसुदेवगृहे**	यहां वसुदेवजीके घर
अक्षौहिणी	अक्षौहिणी (सेना कर)	**अवतीर्णः असि**	अवतीर्ण हुए हैं ॥२४॥
वधेन	संहार करके		

अद्येश नो वसतयः खलु भूरिभागा
यः सर्वदेवपितृभूतनृदेवमूर्तिः ।
यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत् पुनाति
स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज याः प्रविष्टः ॥२५॥

अद्य ईश नः वसतयः खलु भूरि भागा यः सर्वदेव पितृभूत नृदेव मूर्तिः यत् पादशौच सलिलं त्रिजगत् पुनाति स त्वं जगत् गुरुः अधोक्षज याः प्रविष्टः ॥२५॥

यः सर्वदेव	जो सब देवताओं,	**सलिलं**	जल (गंगा रूपमें)
पितृभूत	पितरों, प्राणियों,	**त्रिजगत्**	तीनों लोकोंको
नृदेव मूर्तिः	ब्राह्मणोंके स्वरूप हैं,	**पुनाति**	पवित्र करता है
यत् पादशौच	जिनका चरणोदक	**स त्वं**	वह आप

जगत गुरुः	जगत् गुरु	**वसतयः**	निवास
अधोक्षज	हृषीकेश	**खलु**	अहो,
याः प्रविष्टाः	जिसमें पधारे	**भूरि भागा**	महाभाग्यवान हो
ईश	स्वामी		गया ॥२५॥
अद्य नः	आज हमारा		

कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्
भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ।
सर्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामा-
नात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥२६॥

कः पण्डितः त्वत् अपरं शरणं समीयात् भक्तप्रिय आदृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् सर्वान् ददाति सुहृदः भजतः अभिकामान् आत्मानं अपि उपचय अपचयौ न यस्य ॥२६॥

भक्तप्रियः	भक्त-वत्सल	**भजतः**	भजन करने वालेकी
आदृतगिरः	उस (भक्त)की बात का आदर करने वाले	**सुहृदः**	आप सुहृद
		सर्वान्	समस्त
		अभिकामान्	अभिलाषाएँ तथा
सुहृदः कृतज्ञात्	सुहृद कृतज्ञ	**यस्य उपचय**	जिसकी वृद्धिया
त्वत् अपरं	आपसे भिन्न	**अपचयौ न**	क्षति नहीं होती ऐसे
कः शरणं	किसकी शरण	**आत्मानं अपि**	अपने आपको भी
पण्डितः	कोई विद्वान	**ददाति**	प्रदान करते हैं
समीयात्	जायगा ।		॥२६॥

दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो
योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः ।
छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेह-
देहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥२७॥

दिष्ट्या जनार्दन भवान् इह नः प्रतीतः योगेश्वरैः अपि दुराप गतिः सुरेशैः छिन्धि आशु नः सुत कलत्र धन आप्त गेह देह आदि मोह रशनां भवदीय मायाम् ॥२७॥

जनार्दन	जनार्दन !
दिष्ट्या	सौभाग्यवश
सुरेशैः	सुरेश्वरों तथा
योगेश्वरैः अपि	योगेश्वरों द्वारा भी
दुराप गतिः	दुष्प्राप्य स्वरूप
भवान्	आप
इह नः	यहां हमारे
प्रतीतः	सम्मुख हैं,
नः सुत कलत्र	हमारी पुत्र, स्त्री
धन आप्त	धन, गुरुजन,
गेह देह आदि	घर, शरीरादि
मोह रशनां	मोह रूपी रस्सीकी
भवदीय मायां	अपनी मायाको
आशु छिन्धि	शीघ्र काट दीजिए ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

इत्यर्चितः संस्तुतश्च भक्तेन भगवान् हरिः ।
अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः सम्मोहयन्निव ॥२८॥

इति अर्चितः संस्तुतः च भक्तेन भगवान् हरिः अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः सम्मोहयन् इव ॥२८॥

इति	इस प्रकार
भक्तेन	अपने भक्त द्वारा
अर्चितः च	पूजित तथा
संस्तुतः	स्तुति किये जानेपर
भगवान्	भगवान्
हरिः सस्मितं	श्रीहरि मुस्कराते हुए
गीर्भिः	अपनी वाणीसे
सम्मोहयन् इव	मोहित करते हुए से
अक्रूरं प्राह	अक्रूरसे बोले ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च श्लाघ्यो बन्धुश्च नित्यदा ।
वयं तु रक्ष्याः पोष्याश्च अनुकम्प्याः प्रजा हि वः ॥२९॥

त्वं नः गुरुः पितृव्यः च श्लाघ्यः बन्धुः च नित्यदा वयं तु रक्ष्याः पोष्याः च अनुकम्प्याः प्रजा हि वः ॥२९॥

त्वं नः गुरुः	आप हमारे गुरु
च पितृव्यः	तथा चाचा,
च नित्यदा	और नित्य
श्लाघ्यः	प्रशंसनीय

बन्धुः	स्वजन हैं	रक्ष्याः	रक्षणीय
हि वयं तु	क्योंकि हम तो	च पोष्याः	और पोषणीय
वः प्रजा	आपकी सन्तान हैं		हैं ॥२९॥

भवद्विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः ।
श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥३०॥

भवत् विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः श्रेयः कामैः नृभिः नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥३०॥

श्रेयः कामैः	अपना कल्याण चाहनेवाले	निषेव्या	सेवनीय हैं
		देवाः	देवता तो
नृभिः नित्यं	मनुष्यों द्वारा सदा	स्वार्था	स्वार्थी होते हैं;
भवत् विधा	आप जैसे	साधवः	किन्तु सत्पुरुष
महाभागा	महाभाग	न	नहीं ॥३०॥
अर्हसत्तमाः	परम पूजनीय		

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥३१॥

न हि अम्मयानि तीर्थानि न देवा मृत् शिलामयाः ते पुनन्तिः उरुकालेन दर्शनात् एव साधवः ॥३१॥

हि	क्योंकि	उरुकालेन	बहुत समयमें
अम्मयानि	जलमय ही	पुनन्तिः	पवित्र करते हैं; किन्तु
तीर्थानि न	तीर्थ नहीं होते,	साधवः	सत्पुरुष
मृत्	मिट्टी या	दर्शनात् एव	दर्शन मात्रसे (पवित्र कर देते हैं) ॥३१॥
शिलामयः	पत्थर रूप ही		
देवा न	देवता नहीं होते,		
ते	वे तो		

स भवान् सुहृदां वै नः श्रेयाञ्छ्रेयश्चिकीर्षया ।
जिज्ञासार्थं पाण्डवानां गच्छस्व त्वं गजाह्वयम् ॥३२॥

स भवान् सुहृदां वै नः श्रेयान् श्रेयः चिकीर्षया जिज्ञासार्थं पाण्डवानां गच्छस्व त्वं गजाह्वयम् ॥३२॥

स भवान्	वह आप	**श्रेयः**	कल्याण करनेकी
नः सुहृदां	हमारे सुहृदोंमें	**चिकीर्षया**	इच्छासे
वै	निश्चय	**जिज्ञासार्थं**	उनका समाचार जाननेके लिए
श्रेयान्	सर्वश्रेष्ठ हैं,	**गजाह्वयं**	हस्तिनापुर
त्वं	अतः आप	**गच्छस्व**	जाइये ॥३२॥
पाण्डवानां	पाण्डवोंका		

पितर्युपरते बालाः सह मात्रा सुदुःखिताः ।
आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम ॥३३॥

पितरि उपरते बालाः सह मात्राः सुदुःखिताः आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम ॥३३॥

पितरि	पिताके	**राज्ञा**	राजा धृतराष्ट्र द्वारा
उपरते	मर जानेपर	**स्वपुरं**	अपने नगरमें
सुदुःखिताः	अत्यन्त दुःखी	**आनीताः**	लाये गये
बालाः	वे बालक	**वसन्त इति**	वहीं रहते हैं ऐसा
सह मात्राः	माताके साथ	**शुश्रुम**	हम सुनते हैं ॥३३॥

तेषु राजाम्बिकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषु दीनधीः ।
समो न वर्तते नूनं दुष्पुत्रवशगोऽन्धदृक् ॥३४॥

तेषु राजा अम्बिका पुत्रः भ्रातृ पुत्रेषु दीनधीः समः न वर्तते नूनं दुष्पुत्र वशगः अन्धदृक् ॥३४॥

अन्धदृक्	दृष्टिसे अन्धा	**दीनधीः**	दीन (हीन) बुद्धि होनेसे
दुष्पुत्र	अपने दुष्ट पुत्र (दुर्योधन) के	**तेषु भ्रातृ**	उन भाईके
वशगः राजा	वशमें हुआ राजा	**पुत्रेषु**	पुत्रोंके साथ
अम्बिका	अम्बिका	**नूनं समः**	निश्चय समानताका
पुत्रः	पुत्र धृतराष्ट्र	**वर्तते न**	व्यवहार नहीं करते ॥३४॥

गच्छ जानीहि तद्वृत्तमधुना साध्वसाधु वा ।
विज्ञाय तद् विधास्यामो यथा शं सुहृदां भवेत् ॥३५॥

गच्छ जानीहि तत् वृत्तं अधुना साधु असाधु वा विज्ञाय तत् विधास्यामः यथा शं सुहृदां भवेत् ॥३५॥

तत् गच्छ	अतः जाइये	**तत्**	हम वैसा
तत् अधुना	उनकी इस समय	**विधास्यामः**	प्रबन्ध करेंगे
साधु वा	अच्छी अथवा	**यथा**	जिससे (हमारे उन)
असाधु	बुरी	**सुहृदां**	सुहृदोंको
वृत्तं जानीहि	स्थितिका पता लगाइये	**शं भवेत्**	सुख प्राप्त हो ॥३५॥
विज्ञाय	उसे जानकर		

श्रीशुक उवाच*

इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान् हरिरीश्वरः ।
सङ्कर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥३६॥

इति अक्रूरं समादिश्य भगवान् हरिः ईश्वरः सङ्कर्षण उद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥३६॥

वै भगवान्	निश्चय भगवान	**ततः संकर्षण**	फिर बलरामजी
हरिः	श्रीहरि	**उद्धवाभ्यां**	और उद्धवके साथ
ईश्वरः	सर्वेश्वर हैं, वे	**स्वभवनं**	अपने भवन
अक्रूरं इति	अक्रूरको इस प्रकार	**ययौ**	चले गये ॥३६॥
समादिश्य	पूरा आदेश देकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अथ एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

स गत्वा हस्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोऽङ्कितम् ।
ददर्श तत्राम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥१॥

स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेन्द्र यशः अङ्कितं ददर्श तत्र अम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥१॥

पौरवेन्द्र	पुरुवंशी राजाओंके	**अम्बिकेयं**	अम्बिका-पुत्र धृतराष्ट्रके
यशः अंकितं	यशसे चिह्नित	**सभीष्मं**	साथ भीष्म
हास्तिनपुरं	हस्तिनापुरमें	**विदुरं**	विदुर तथा
गत्वा स	जाकर वे (अक्रूर) जी	**पृथां**	कुन्तीसे
		ददर्श	मिले ॥१॥

सहपुत्रं च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमम् ।
कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पाण्डवान् सुहृदोऽपरान् ॥२॥

सहपुत्रं च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमं कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पाण्डवान् सुहृदः अपरान् ॥२॥

बाह्लीकं	बाह्लीकसे	**द्रौणिं**	द्रौण-पुत्र,
सहपुत्रं	उनके पुत्र सोमदत्त के साथ,		अश्वत्थामा
		पाण्डवान्	पाण्डवों
भारद्वाजं	द्रोणाचार्यसे	**च अपरान्**	तथा दूसरे
सगौतमं	कृपाचार्यके साथ,	**सुहृदः**	सुहृदोंसे ॥३॥
कर्णं सुयोधनं	कर्ण, दुर्योधन,		

यथावदुपसंगम्य बन्धुभिर्गान्दिनीसुतः ।
सम्पृष्टस्तैः सुहृद्वार्तां स्वयं चापृच्छदव्ययम् ॥३॥

यथावत् उपसंगम्य बन्धुभिः गान्दिनीसुतः सम्पृष्टः तैः सुहृत् वार्तां स्वयं च अपृच्छत् अव्ययम् ॥३॥

गान्दिनीसुतः	गान्दिनी-नन्दन अक्रूरजी	**सुहृत् वार्तां**	सुहृदोंका समाचार
बन्धुभिः	सम्बन्धियोंसे	**सम्पृष्टः**	पूछे जानेपर
यथावत्	यथा योग्य	**स्वयं च**	स्वयं भी (उनसे)
उपसंगम्य	मिलकर	**अव्ययं**	कुशल (सम्पन्नता)
तैः	उनके द्वारा	**अपृच्छत्**	पूछी ॥३॥

उवास कतिचिन्मासान् राज्ञो वृत्तविवित्सया ।
दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छन्दानुवर्तिनः ॥४॥

उवास कतिचित् मासान् राज्ञः वृत्त विवित्सया दुष्प्रजस्य अल्प सारस्य खलः छन्द अनुवर्तिनः ॥४॥

खलः	दुष्ट मन्त्रियोंकी	**वृत्त**	प्रवृत्ति
छन्द	सलाहके	**विवित्सया**	जाननेके लिए
अनुवर्तिनः	पीछे चलनेवाले	**कतिचित्**	कुछ
दुष्प्रजस्य	दुष्ट पुत्रोंवाले	**मासान्**	महीने
अल्प सारस्य	अल्प वीर्य	**उवास**	वहां बसे रहे ॥४॥
राज्ञः	राजा धृतराष्ट्रकी		

तेज ओजो बलं वीर्यं प्रश्रयादींश्च सद्गुणान् ।
प्रजानुरागं पार्थेषु न सहद्भिश्चिकीर्षितम् ॥५॥

तेजः ओजः बलं वीर्यं प्रश्रय आदीन् च सद्गुणान् प्रजा अनुरागं पार्थेषु न सहद्भिः चिकीर्षितम् ॥५॥

पार्थेषु	पाण्डवोंका	**बलं वीर्यं**	बल; शूरता,
तेजः ओजः	तेज, स्फूर्ति;	**प्रश्रय आदीन्**	विनम्रता आदि

सद्गुणान्	उत्तम गुणोंको,	चिकीर्षितं	क्या करना चाहते हैं
च प्रजा	तथा प्रजाके (उनके		(यह जाननेके लिए)
अनुरागं	प्रति) प्रेम को		॥५॥
न सहत्भिः	सहन न करने वाले (धृतराष्ट्र, दुर्यो-धनादि)		

कृतं च धार्तराष्ट्रैर्यद् गरदानाद्यपेशलम् ।
आचख्यौ सर्वमेवास्मै पृथा विदुर एव च ॥ ६ ॥

कृतं च धार्तराष्ट्रैः यत् गरदान आदि अपेशलं आचख्यौ सर्वं एव अस्मै पृथा विदुर एव च ॥६॥

धार्तराष्ट्रैः	धृतराष्ट्रके पुत्रोंने	पृथा च	कुन्ती तथा
यत् गरदान	जो विष देना	विदुर एव च	विदुरने भी
आदि अपेशलं	आदि निष्ठुरता	आचख्यौ	पूरी तरह बतलायी
कृतं च	की थी		॥६॥
अस्मै सर्वं एव	इनसे वह सभी		

पृथा तु भ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्य तम् ।
उवाच जन्मनिलयं स्मरन्त्यश्रुकलेक्षणा ॥ ७ ॥

पृथा तु भ्रातरं प्राप्तं अक्रूरं उपसृत्य तं उवाच जन्मनिलयं स्मरन्ति अश्रुकल ईक्षणा ॥७॥

भ्रातरं अक्रूरं	भाई अक्रूरके	स्मरन्ति	स्मरण करती हुई
प्राप्तं	आने पर	अश्रुकल	अश्रु
पृथा तु	कुन्तीजी तो	ईक्षणा	नेत्रोंमें भरकर
तं उपसृत्य	उनके समीप जाकर	उवाच	बोलीं ॥७॥
जन्मनिलयं	अपने जन्म-स्थानको		

श्रीभगवानुवाच

अपि स्मरन्ति नः सौम्य पितरौ भ्रातरश्च मे ।
भगिन्यो भ्रातृपुत्राश्च जामयः सख्य एव च ॥ ८ ॥

अपि स्मरन्ति नः सौम्य पितरौ भ्रातरः च मे भगिन्यः भ्रातृपुत्राः च जामयः सख्य एव च ॥८॥

सौम्य	सौम्य !	च जामयः	तथा कुलकी स्त्रियां
मे पितरौ	हमारे माता-पिता,	च सख्यः एव	और सखियाँभी
भ्रातरः	भाई	अपि नः	क्या हमें
भगिन्यः	बहिनें	स्मरन्ति	स्मरण करती हैं
च भ्रातृपुत्राः	एवं भतीजे,		॥८॥

भ्रात्रेयो भगवान् कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः ।
पैतृष्वसेयान् स्मरति रामश्चाम्बुरुहेक्षणः ॥ ९ ॥

भ्रात्रेयः भगवान् कृष्णः शरण्यः भक्तवत्सलः पैतृष्वसेयान् स्मरति रामः च अम्बुरुह ईक्षणः ॥९॥

शरण्यः	शरणागत-वत्सल	रामः	बलराम
भक्तवत्सलः	भक्त-स्नेही	पैतृष्वसेयान्	अपनी बुआके पुत्रोंको
भ्रात्रेयः	भ्रातृपुत्र	स्मरति	स्मरण करते हैं ॥९॥
भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्ण		
च अम्बुरुह	तथा कमल		
ईक्षणः	लोचन		

सापत्नमध्ये शोचन्तीं वृकाणां हरिणीमिव ।
सान्त्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनांश्च बालकान् ॥१०॥

सापत्नमध्ये शोचन्तीं वृकाणां हरिणीं इव सान्त्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनान् च बालकान् ॥१०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

वृकाणां	भेड़ियों (के बीच)में	मां च	मुझे तथा
हरिणीं इव	हरिणीकी भांति	पितृहीनान्	पिताहीन
सापत्नमध्ये	शत्रुओंके बीचमें (घिरी)	बालकान् च	बालकोंको भी
		वाक्यैः	अपने वचनोंसे
शोचन्तीं	चिन्तिता	सान्त्वयिष्यति	समझावेंगे ॥१०॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥११॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्व आत्मन् विश्वभावन प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभिः च अवसीदतीम् ॥११॥

महायोगिन्	योगेश्वर	शिशुभिः	बालकोंके साथ
कृष्ण	कृष्ण !	अवसीदतीं	कष्ट पाती हुई
विश्व आत्मन्	विश्वात्मा	प्रपन्नां	शरणागता
कृष्ण	कृष्ण !	मा च पाहि	मेरी भी रक्षा करो ॥११॥
विश्वभावन	विश्व-रक्षक		
गोविन्द	गोविन्द !		

नान्यत्तव पदाम्भोजात् पश्यामि शरणं नृणाम् ।
बिभ्यतां मृत्युसंसारादीश्वरस्यापवर्गिकात् ॥१२॥

न अन्यत् तव पद अम्भोजात् पश्यामि शरणं नृणां बिभ्यतां मृत्यु संसारात् ईश्वरस्य अपवर्गिकात् ॥१२॥

मृत्यु संसारात्	मृत्यु रूप संसारसे	पद अम्भोजात्	चरण-कमलोंके
बिभ्यतां नृणां	डरे हुए मनुष्योंके लिए	अन्यत्	अतिरिक्त
		शरणं न	आश्रय नहीं
तव ईश्वरस्य	तुम सर्वेश्वर	पश्यामि	देखती हूँ ॥१२॥
अपवर्गिकात्	मोक्षदाताके		

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ।
योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ॥१३॥

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने योगेश्वराय योगाय त्वां अहं शरणं गता ॥१३॥

शुद्धाय ब्रह्मणे	शुद्ध ब्रह्म,
परमात्मने	परमात्मा,
योगेश्वराय	योगेश्वर
योगाय	योग स्वरूप
कृष्णाय नमः	श्रीकृष्णको नमस्कार
अहं त्वां	मैं तुम्हारी
शरणं गता	शरण आयीहूँ ॥१३॥

श्रीशुक उवाच

इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरम् ।
प्रारुदद् दुःखिता राजन् भवतां प्रपितामही ॥१४॥

इति अनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरं प्रारुदत् दुःखिता राजन् भवतां प्रपितामही ॥१४॥

राजन्	राजन् !
भवतां	आपकी
प्रपितामही	प्रपितामही कुन्ती
इति स्वजनं	इस प्रकार आत्मीयों
च जगदीश्वरं	तथा जगदीश्वर
कृष्णं	श्रीकृष्णका
अनुस्मृत्य	स्मरण करके
प्रारुदत्	उच्च-स्वरसे रोने लगीं ॥१४॥

समदुःखसुखोऽक्रूरो विदुरश्च महायशाः ।
सान्त्वयामासतुः कुन्तीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभिः ॥१५॥

सम दुःख सुखः अक्रूरः विदुरः च महायशाः सान्त्वयामासतुः कुन्तीं तत् पुत्र उत्पत्ति हेतुभिः ॥१५॥

सम दुःख सुखः	दुःख-सुखमें समान रहने वाले
अक्रूरः च	अक्रूर तथा
महायशाः	महान यशस्वी
विदुरः	विदुरने
तत् पुत्र	उनके पुत्रोंकी
उत्पत्ति	उत्पत्तिका
हेतुभिः	कारण बतलाकर
कुन्तीं	कुन्तीजीको
सान्त्वया-मासतुः	समझा दिया ॥१५॥

यास्यन् राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम् ।
अवदत् सुहृदां मध्ये बन्धुभिः सौहृदोदितम् ॥१६॥

यास्यन् राजानं अभि एत्य विषमं पुत्रलालसं अवदत् सुहृदां मध्ये बन्धुभिः सौहृद उदितम् ॥१६॥

यास्यन्	जाते समय	**सुहृदां मध्ये**	सुहृदोंके बीचमें बैठे
पुत्रलालसं	पुत्रवत्सल,	**राजानं**	राजा धृतराष्ट्रसे
विषमं	विषम व्यवहार करने वाले	**सौहृद उदितं**	सौहार्द्रपूर्ण बात
		अवदत्	बोले ॥१६॥

अक्रूर उवाच

भो भो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धन ।
भ्रातर्युपरते पाण्डावधुनाऽऽसनमास्थितः ॥१७॥

भो भो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धन भ्रातः उपरते पाण्डौ अधुना आसनं आस्थितः ॥१७॥

भो भो	हे, हे	**भ्रातः पाण्डौ**	भाई पाण्डुके
वैचित्रवीर्य	विचित्रवीर्यनन्दन !	**उपरते**	मरजाने पर
त्वं कुरूणां	आप कौरवोंकी	**अधुना**	इस समय
कीर्तिवर्धन	कीर्तिको बढ़ाने वालेहैं,	**आसनं**	सिंहासन पर विरा-
		आस्थितः	जमानहैं ॥१७॥

धर्मेण पालयन्नुर्वीं प्रजाः शीलेन रञ्जयन् ।
वर्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्तिमवाप्स्यसि ॥१८॥

धर्मेण पालयन् उर्वीं प्रजाः शीलेन रञ्जयन् वर्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्तिं अवाप्स्यसि ॥१८॥

धर्मेण	धर्मपूर्वक	**प्रजाः रञ्जयन्**	प्रजाको प्रसन्न
उर्वीं पालयन्	पृथ्वीका पालन करते हुए		रखते हुए,
शीलेन	अपने सदाचारसे	**स्वेषु समः**	अपनोंसे समानताका
		वर्तमानः	व्यवहार करते हुए

श्रेयः कीर्ति	(आप) कल्याण तथा सुयश	अवाप्स्यसि	प्राप्त करेंगे ॥१८॥

अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तमः ।
तस्मात् समत्वे वर्तस्व पाण्डवेष्वात्मजेषु च ॥१९॥

अन्यथा तु आचरन् लोके गर्हितः यास्यते तमः तस्मात् समत्वे वर्तस्व पाण्डवेषु आत्मजेषु च ॥१९॥

अन्यथा तु	इससे उलटा तो	तस्मात्	इसलिए
आचरन्	करनेपर	पाण्डवेषु	पाण्डुपुत्रोंसे
लोके	लोकमें	च	तथा
गर्हितः	निन्दित होंगे	आत्मजेषु	अपने पुत्रोंसे
तमः	(और मरकर) नरकमें	समत्वे	समानताका
यास्यसि	जाओगे	वर्तस्व	वर्ताव करो ॥१९॥

नेह चात्यन्तसंवासः कर्हिचित् केनचित् सह ।
राजन् स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः ॥२०॥

न इह च अत्यन्त संवासः कर्हिचित् केनचित् सह राजन् स्वेन अपि देहेन किमु जाया आत्मज आदिभिः ॥२०॥

राजन् इह	राजन् इस लोकमें	अपि	साथ भी,
कर्हिचित्	कभी भी	जाया आत्मज	स्त्री, पुत्र,
केनचित् सह	किसीके भी साथ	आदिभिः	आदिके साथ तो
अत्यन्त	बहुत समय तक		फिर
संवासः	साथ रहना	किमु	क्या (रहेगा)
न च	नहीं ही होता,		॥२०॥
स्वेन देहेन	अपने शरीरके		

एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥२१॥

एकः प्रसूयते जन्तुः एक एव प्रलीयते एकः अनुभुङ्क्ते सुकृतं एक एव च दुष्कृतम् ॥२१॥

जन्तुः एकः	जीव अकेला ही	**च एक एव**	तथा अकेला ही
प्रसूयते	उत्पन्न होता है,	**दुष्कृतं**	पापोंको
एक एव	अकेला ही	**अनुभुङ्क्ते**	पीछे भोगता है
प्रलीयते	मर जाता है,		॥२१॥
एकः सुकृतं	अकेला पुण्योंको		

अधर्मोपचितं वित्तं हरन्त्यन्येऽल्पमेधसः ।
सम्भोजनीयापदेशैर्जलानीव जलौकसः ॥२२॥

अधर्म उपचितं वित्तं हरन्ति अन्ये अल्पमेधसः सम्भोजनीय अपदेशैः जलानि इव जलौकसः ॥२२॥

अल्पमेधसः	अल्प बुद्धिवालेका	**जलौकसः**	जलचरों द्वारा
अधर्म	अधर्मसे	**जलानि**	पानीपर (अधिकार) के
उपचितं	एकत्र किया	**इव**	समान
वित्तं	धन	**हरन्ति**	हरण कर लेते हैं
सम्भोजनीय	'हम पोषण योग्य हैं'		॥२२॥
अपदेशैः	इस बहानेसे		
अन्ये	दूसरे		

पुष्णाति यानधर्मेण स्वबुद्ध्या तमपण्डितम् ।
तेऽकृतार्थं प्रहिण्वन्ति प्राणा रायः सुतादयः ॥२३॥

पुष्णाति यान् अधर्मेण स्वबुद्ध्या तं अपण्डितं ते अकृत अर्थं प्रहिण्वन्ति प्राणा रायः सुत आदयः ॥२३॥

यानि	जिनको	**रायः**	धन,
अधर्मेण	अधर्म पूर्वक	**सुत आदयः**	पुत्रादि
स्वबुद्ध्या	अपनी बुद्धिसे	**तं अपण्डितं**	उस अज्ञानीको
पुष्णाति	पोषित करता है	**अकृत अर्थं**	असन्तुष्ट ही
ते प्राणा	वे प्राण,	**प्रहिण्वन्ति**	त्याग देते हैं ॥२३॥

स्वयं किल्बिषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः ।
असिद्धार्थो विशत्यन्धं स्वधर्मविमुखस्तमः ॥२४॥

स्वयं किल्बिषं आदाय तैः त्यक्तः न अर्थ कोविदः असिद्ध अर्थः विशति अन्धं स्वधर्म विमुखः तमः ॥२४॥

तैः	उनके द्वारा	**स्वयं किल्बिषं**	स्वयं (अपने) पाप
त्यक्तः	त्यागा गया,	**आदाय**	(साथ) लेकर
न अर्थ	अपना ठीक स्वार्थ न	**असिद्ध अर्थः**	विफल मनोरथ
कोविदः	जाननेवाला	**अन्धं तमः**	घोर नरकमें
स्वधर्म	अपने धर्मसे	**विशति**	प्रवेश करता है
विमुखः	विमुख		॥२४॥

तस्माल्लोकमिमं राजन् स्वप्नमायामनोरथम् ।
वीक्ष्यायम्यात्मनाऽऽत्मानं समः शान्तो भव प्रभो ॥२५॥

तस्मात् लोकं इमं राजन् स्वप्नमाया मनोरथं वीक्ष्या यम्य आत्माना आत्मानं समः शान्तः भव प्रभो ॥२५॥

प्रभो राजन्	प्रभो ! राजन् !	**आत्माना**	अपनी बुद्धिसे
तस्मात्	इसलिए	**आत्मानं यम्य**	मनको संयमित
इमं लोकं	इस लोकको		करके
स्वप्नमाया	स्वप्न, माया, या	**समः शान्तः**	समान चित्त, शान्त
मनोरथं	मनो-राज्य जैसा	**भव**	हो जाइये ॥२५॥
वीक्ष्या	देखकर		

धृतराष्ट्र उवाच

यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान् ।
तथानया न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथामृतम् ॥२६॥

यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान् तथा अम्बा न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथा अमृतं ॥२६॥

दानपते	दानाध्यक्षजी !	**मर्त्यः**	मरणशील प्राणी
यथा भवान्	जैसे आप	**अमृतं प्राप्य**	अमृत पाकर (तृप्त नहीं होता)
कल्याणीं	कल्याण कारिणी		
वाचं	वाणी	**तृप्यामि**	मैं तृप्त
वदति	बोल रहे हैं	**न**	नहीं हो रहा हूँ ॥२६॥
तथा अम्बया	वैसे ही इससे		
यथा	जैसे		

तथापि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले ।
पुत्रानुरागविषमे विद्युत् सौदामनी यथा ॥२७॥

तथा अपि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले पुत्र अनुराग विषमे विद्युत् सौदामनी यथा ॥२७॥

सौम्य	सौम्य !	**हृदि**	हृदयमें
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी	**यथा**	जैसे
सूनृता	(आपकी) उत्तम प्रिय शिक्षा	**सौदामनी**	मेघ-मालाकी
		विद्युत्	बिजली हो,
पुत्र अनुराग	पुत्रके प्रेमसे	**स्थीयते न**	ठहरती नहीं है ॥२७॥
विषमे चले	विषम तथा चंचल		

ईश्वरस्य विधि को नु विधुनोत्यन्यथा पुमान् ।
भूमेर्भारावताराय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥२८॥

ईश्वरस्य विधि कः नु विधुनोति अन्यथा पुमान् भूमेः भार अवताराय यः अवतीर्णः यदोः कुले ॥२८॥

यः यदोः कुले	जो यदुकुलमें	**अवताराय**	उतारनेके लिए
भूमेः भार	पृथ्वीका भार	**अवतीर्णः**	अवतरित हुए हैं,

नु कः पुमान्	भला कौन पुरुष	**अन्यथा**	उलटा
ईश्वरस्य	उन ईश्वरके	**विधुनोति**	कर दे सकता है
विधि	विधानको		॥२८॥

यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं
सृष्ट्वा गुणान् विभजते तदनुप्रविष्टः ।
तस्मै नमो दुरवबोधविहारतन्त्र-
संसारचक्रगतये परमेश्वराय ॥२९॥

यः दुर्विमर्श पथया निजमायया इदं सृष्ट्वा गुणान् विभजते तत् अनुप्रविष्टः तस्मै नमः दुरवबोध विहार तन्त्र संसार चक्र गतये परमेश्वराय ॥२९॥

यः दुर्विमर्श	जो अचिन्त्य	**गुणान्**	गुणोंका
पथया	गतिवाली	**विभजते**	विभाजन करते हैं
निजमायया	अपनी माया द्वारा	**दुरवबोध**	अगम्य
इदं संसार	इस संसार	**विहार तन्त्र**	लीला विस्तार
चक्र	चक्रको	**गतये**	करनेवाले
सृष्ट्वा	बनाकर	**तस्मै**	उन
तत्	फिर	**परमेश्वराय**	परमेश्वरको
अनुप्रविष्टः	उसमें प्रवेश करके	**नमः**	नमस्कार ॥२९॥

श्रीशुक उवाच

इत्यभिप्रेत्य नृपतेरभिप्रायं स यादवः ।
सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात् ॥३०॥

इति अभिप्रेत्य नृपतेः अभिप्रायं स यादवः सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनः यदुपुरीं अगात् ॥३०॥

इति	इस प्रकार	**अभिप्रायं**	अभिप्राय
नृपतेः	राजा धृतराष्ट्रका	**अभिप्रेत्य**	समझकर

स यादवः	वे यदुवंशी अक्रूरजी	पुनः	फिर
सुहृद्भिः	सुहृदोंसे	यदुपुरीं	यादवपुरी (मथुरा)
सम्मनुज्ञातः	भली प्रकार अनुमति लेकर	अगात्	लौट आये ॥३०॥

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् ।
पाण्डवान् प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥३१॥

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्र विचेष्टितं पाण्डवान् प्रति कौरव्य यत् अर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥३१॥

कौरव्य	कुरुश्रेष्ठ परीक्षित् !	धृतराष्ट्र	धृतराष्ट्रका
यत् अर्थं	जिस प्रयोजनसे	विचेष्टितं	विषम व्यवहार
स्वयं	स्वयं	राम-	बलराम तथा
प्रेषितः	भेजे गये थे वह	कृष्णाभ्यां	श्रीकृष्णसे
पाण्डवान् प्रति	पाण्डवोंके साथ	शशंस	बतला दिया ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

॥ इति दशम स्कन्धः पूर्वार्धः समाप्तः ॥

हरि ॐ तत्सत्

॥ दशमः स्कन्धः ॥

(उत्तरार्ध)

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
५०.	जरासंधसे युद्ध और द्वारिकापुरीका निर्माण	१
५१.	कालयवनका भस्म होना, मुचुकुन्दकी कथा	२५
५२.	द्वारिकागमन, श्रीबलराम-विवाह तथा श्रीकृष्णके पास रुक्मिणीका संदेश	५३
५३.	रुक्मिणी-हरण	७३
५४.	शिशुपालके मित्र-राजाओं और रुक्मीकी हार तथा श्रीकृष्ण रुक्मिणी-विवाह	९७
५५.	प्रद्युम्नका जन्म और शम्बरासुरका वध	१२३
५६.	स्यमन्तकमणिकी कथा, जाम्बवती और सत्यभामा के साथ कृष्णका विवाह	१४०
५७.	स्यमन्तक-हरण, शतधन्वा-उद्धार और अक्रूरजीको द्वारिका बुलाना	१५९
५८.	भगवान् श्रीकृष्णके अन्यान्य विवाहोंकी कथा	१७७
५९	भौमासुर-उद्धार और सोलह हजार एक सौ कन्याओंसे श्रीकृष्ण-विवाह	२०३
६०.	श्रीकृष्ण-रुक्मिणी संवाद	२२६
६१.	श्रीकृष्णकी संततिका वर्णन और अनिरुद्धके विवाहमें रुक्मीका मारा जाना	२५६
६२.	ऊषा-अनिरुद्ध-मिलन	२७४
६३.	भगवान् श्रीकृष्णके साथ बाणासुरका युद्ध	२९०
६४.	नृग राजाकी कथा	३१४
६५.	श्रीबलरामजीका व्रजगमन	३३४
६६.	पौण्ड्रक और काशिराजका उद्धार	३४८
६७.	द्विविदका उद्धार	३६७
६८.	कौरवों पर बलरामजीका कोप और साम्बका विवाह	३७९
६९.	देवर्षि नारदजीका श्रीकृष्णकी गृहचर्या देखना	४०३
७०.	श्रीकृष्णकी नित्यचर्या और जरासन्धके कैदी राजाओंके दूतका आना	४२५
७१.	श्रीकृष्णका इन्द्रप्रस्थ पधारना	४४८

अध्याय	विषय	पृष्ठ
७२.	पाण्डवोंका राजसूय-यज्ञ और जरासन्धका उद्धार	४७१
७३.	जरासंधके कारासे मुक्त राजाओंकी विदाई और श्रीकृष्णका इन्द्रप्रस्थ लौट आना	४९४
७४.	श्रीकृष्णकी अग्रपूजा और शिशुपालका उद्धार	५११
७५.	राजसूय-यज्ञकी पूर्ति और दुर्योधनका अपमान	५३३
७६.	शाल्वके साथ यादवोंका युद्ध	५५३
७७.	शाल्व-उद्धार	५६८
७८.	दन्तवक्त्र और विदूरथका उद्धार तथा तीर्थयात्रामें बलरामजी द्वारा सूत-वध	५८६
७९.	बल्वलका उद्धार और बलरामजीकी तीर्थ-यात्रा	६०३
८०.	श्रीकृष्ण द्वारा सुदामाजीका स्वागत	६१८
८१.	सुदामाजीको ऐश्वर्यकी प्राप्ति	६३८
८२.	श्रीकृष्ण-बलरामसे गोप-गोपियोंकी भेंट	६५६
८३.	श्रीकृष्णकी पटरानियोंके साथ द्रोपदीकी बातचीत	६७९
८४.	वसुदेवजीका यज्ञोत्सव	७०१
८५.	श्रीकृष्ण द्वारा वसुदेवजीको ब्रह्मज्ञान-उपदेश एवं देवकीके छः पुत्र लौटाना	७३२
८६.	सुभद्राहरण, श्रीकृष्णका मिथिलापुरीमें राजा जनक और श्रुतदेवके घर जाना	७५८
८७.	वेदस्तुति	७८५
८८.	शिवजीका संकटमोचन	८१९
८९.	भृगु द्वारा त्रिदेवोंकी परीक्षा तथा श्रीकृष्णका मृत ब्राह्मण-पुत्रोंको वापस लाना	८३७
९०.	श्रीकृष्णके लीला-विहारका वर्णन	८६७

श्रीमद्भागवत महापुराणके स्कन्ध एकादश और द्वादश क्रमशः छप रहे हैं। अपनी प्रति अभीसे ही आरक्षित करा सकते हैं—रु० १००/- अग्रिम भेजकर। यह पुस्तक अत्यन्त सीमित संख्यामें छप रही है अतः निश्चित रूपसे पुस्तक प्राप्त करनेके लिए आवश्यक है।

व्यवस्थापक, प्रकाशक विभाग,श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा संस्थान
मथुरा (उ० प्र०)–२८१००१

दशमः स्कन्धः

(उत्तरार्धः)

अथ पंचाशत्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ।
मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ॥१॥

अस्तिः प्राप्तिः च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ मृते भर्तति दुःख आर्ते ईयतुः स्म पितुः गृहान् ॥१॥

भारतर्षभ	भरत श्रेष्ठ परीक्षित !	भर्तरि मृते	स्वामीके मर जानेपर
कंसस्य महिष्यौ	कंसकी रानियां	दुःख आर्ते	दुःखसे व्याकुल होकर
अस्तिः च	अस्ति और	पितुः गृहान्	पिताके घर
प्राप्तिः	प्राप्ति	ईयतुः स्म	चली गयीं ॥१॥

पित्रे मगधराजाय जरासंधाय दुःखिते ।
वेदयाञ्चक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ॥२॥

पित्रे मगधराजाय जरासन्धाय दुःखिते वेदयान् चक्रतुः सर्वं आत्मवैधव्य कारणम् ॥२॥

दुःखिते	दुःखी होकर	आत्मवैधव्य	अपने विधवा होनेका
पित्रे	अपने पिता	कारणं	कारण
मगधराजाय	मगधराज	वेदयान् चक्रतुः	कह सुनाया ॥२॥
जरासन्धाय	जरासन्धसे		

स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप ।
अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परममुद्यमम् ॥३॥

स तत् अप्रियं आकर्ण्य शोक अमर्षयुतः नृप अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परम उद्यमम् ॥३॥

नृप	राजन् !	**महीं**	पृथ्वीको
स तत्	उसने वह	**अयादवीं**	यदुवंश विहीन
अप्रियं	अप्रिय (समाचार)	**कर्तुं**	करनेके लिए
आकर्ण्य	सुनकर	**परम उद्यमं**	महान आयोजन
शोक	शोक तथा	**चक्रे**	किया ॥३॥
अमर्षयुतः	असहन शीलता पूर्वक		

अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः ।
यदुराजधानीं मथुरां न्यरुणत् सर्वतोदिशम् ॥४॥

अक्षौहिणीभिः विंशत्या तिसृभिः च अपि संवृतः यदुराजधानीं मथुरां न्यरुणत् सर्वतः दिशम् ॥४॥

च अपि	और फिर	**यदुराजधानीं**	यादव-राजधानी
विंशत्या तिसृभिः	तेईस	**मथुरां**	मथुराको
अक्षौहिणीभिः	अक्षौहिणी सेना	**सर्वतः दिशं**	चारों ओरसे
संवृतः	लेकर	**न्यरुणत्**	घेर लिया ॥५॥

निरीक्ष्य तद्बलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम् ।
स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भयाकुलम् ॥५॥

निरीक्ष्य तत् बलं कृष्ण उद्वेलं इव सागरं स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भय आकुलम् ॥५॥

कृष्ण	श्रीकृष्णने	**तत् बलं**	उसकी सेनाको,
उद्वेलं	उमड़ते हुए	**तेन संरुद्धं**	उसके द्वारा पूर्णतः घिरे
सागरं इव	समुद्रके समान		

स्वपुरं च	अपने नगरको तथा	स्वजनं	अपने लोगोंको
भय आकुलं	भय-व्याकुल	निरीक्ष्य	देखकर ॥५॥

चिन्तयामास भगवान् हरिः कारणमानुषः ।
तद्देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम् ॥६॥

चिन्तयामास भगवान् हरिः कारण मानुषः तत् देश काल अनुगुणं स्व अवतार प्रयोजनम् ॥६॥

कारण	कारण विशेषसे	अनुगुणं	अनुसार
मानुषः	मनुष्य बने	स्व अवतार	अपने अवतारके
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरिने	प्रयोजनं	प्रयोजनका
तत् देश काल	उस देश-कालके	चिन्तयामास	विचार किया ॥६॥

हनिष्यामि बलं ह्येतद् भुवि भारं समाहितम् ।
मागधेन समानीतं वश्यानां सर्वभूभुजाम् ॥७॥

हनिष्यामि बलं हि एतत् भुवि भारं समाहितं मागधेन सम आनीतं वश्यानां सर्व भूभुजाम् ॥७॥

मागधेन	'मगधराज जरासन्ध द्वारा	एतत्	यह
		भुवि भारं	पृथ्वीकी भाररूपा है
वश्यानां	अपने अधीनस्थ	समाहितं	एक साथ आयी
सर्वभूभुजां	सभी भूपतियोंकी	बलं	सेनाको
सम आनीतं	एकत्र करके लायी	हनिष्यामि	मार दूंगा ॥७॥
हि	क्योंकि		

अक्षौहिणीभिः संख्यातं भटाश्वरथकुञ्जरैः ।
मागधस्तु न हन्तव्यो भूयः कर्ता बलोद्यमम् ॥८॥

अक्षौहिणीभिः संख्यातं भट अश्व रथ कुञ्जरैः मागधः तु न हन्तव्यः भूयः कर्ता बल उद्यमम् ॥८॥

भट अश्व	पैदल, घोड़े,
रथ कुञ्जरैः	रथ, हाथियों युक्त
अक्षौहिणीभिः	अक्षौहिणीयों
संख्यातं	गिननेकी
तु मागधः	किन्तु मगधराज
न हन्तव्यः	मारने योग्य नहीं है; क्योंकि
भूयः बल	फिर सेना (एकत्र करने) का
उद्यमं कर्ता	आयोजन करेगा ॥८॥

एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे ।
संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ॥९॥

एतत् अर्थः अवतारः अयं भूभार हरणाय मे संरक्षणाय साधूनां कृतः अन्येषां बधाय च ॥९॥

भूभार	पृथ्वीका भार
हरणाय	दूर करनेके लिए,
साधूनां	सत्पुरुषोंकी
संरक्षणाय	सुरक्षाके लिए
च	तथा
अन्येषां	दूसरे (दुष्टों) को
बधाय	मारनेके लिए
एतत् अर्थः	इन्हीं प्रयोजनोंसे
मे अवतारः	मैंने अवतार
कृतः	लिया है ॥९॥

अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संभ्रियते मया ।
विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥१०॥

अन्यः अपि धर्म रक्षायै देहः संभ्रियते मया विरामाय अपि अधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥१०॥

धर्म	धर्मकी
रक्षायै	रक्षाके लिए ही
क्वचित् काले	किसी समय
प्रभवतः	समर्थ हो गये
अधर्मस्य	अधर्मको
विरामाय	रोक देनेके लिए
मया अन्यः	मेरे द्वारा दूसरे
अपि	भी
देहः	शरीर
संभ्रियते	धारण किये जाते हैं' ॥१०॥

एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात् सूर्यवर्चसौ ।
रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥११॥

एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात् सूर्यवर्चसौ रथाः उपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥११॥

गोविन्द	गोविन्दके	**ससूतौ**	सारथीके साथ
एवं ध्यायति	ऐसा सोचते समय	**सपरिच्छदौ**	उपकरणोंके साथ
सद्यः	तुरन्त	**रथाः**	दो रथ समीप
आकाशात्	आकाशसे	**उपस्थितौ**	उतर आये ॥११॥
सूर्यवर्चसौ	सूर्यके समान तेजस्वी		

आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया ।
दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः सङ्कर्षणमथाब्रवीत् ॥१२॥

आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः सङ्कर्षणं अथ अब्रवीत् ॥१२॥

पुराणानि	सनातन	**तानि दृष्ट्वा**	उनको देखकर
दिव्यानि	दिव्य	**हृषीकेशः**	हृषीकेश
आयुधानि च	आयुध भी	**अथ सङ्कर्षणं**	फिर बलरामजीसे
यदृच्छया	अपने आप (आ गये)	**अब्रवीत्**	बोले ॥१२॥

पश्यार्यं व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो ।
एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ॥१३॥

पश्य आर्यं व्यसनं प्राप्तं यदूनां तु अवतां प्रभो एष ते रथ आयातः दयितानि आयुधानि च ॥१३॥

प्रभो आर्य	'प्रभो ! आर्य !	**व्यसनं प्राप्तं**	संकट आ गया है और
अवतां	जिनका रक्षण करना है उन	**एष ते रथ**	यह आपका रथ
यदूनां	यदुवंशियोंके लिए	**च दयितानि**	तथा प्रिय
तु	तो	**आयुधानि**	आयुध
पश्य	देखिये,	**आयातः**	आ गये हैं ॥१३॥

यानमास्थाय जह्येतद् व्यसनात् स्वान् समुद्धर ।
एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत् ॥१४॥

यानं आस्थाय जहि एतत् व्यसनात् स्वान् समुद्धर एतत् अर्थं हि नौ जन्म साधूनां ईश शर्मकृत् ॥१४॥

ईश	ईश !	**हि एतत्**	क्योंकि इसी
यानं	रथपर	**अर्थं**	प्रयोजनसे
आस्थाय	चढ़कर	**साधूनां**	साधुओंका
एतत् जहि	इनको मार दीजिए,	**शर्मकृत्**	कल्याण करनेवाला
स्वान्	अपनोंको	**नौ**	हम दोनोंका
व्यसनात्	संकटसे	**जन्म**	जन्म हुआ है ॥१४॥
समुद्धर	उबार लीजिए		

त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेर्भारमपाकुरु ।
एवं सम्मन्त्र्य दाशार्हौ दंशितौ रथिनौ पुरात् ॥१५॥

त्रयः विंशति अनीक आख्यं भूमेः भारं अपाकुरु एवं सम्मन्त्र्य दाशार्हौ दंशितौ रथिनौ पुरात् ॥१५॥

त्रयः विंशति	तेइस	**सम्मन्त्र्य**	सलाह करके
अनीक आख्यं	अक्षौहिणी कह लानेवाले	**दाशार्हौ**	दोनों दशार्ह वंशी
भूमेः भारं	पृथ्वीके भारको	**दंशितौ**	कवच धारण करके
अपाकुरु	दूर कर दीजिये !'	**रथिनौ**	रथपर बैठकर
एवं	इस प्रकार	**पुरात्**	नगरसे ॥१५॥

निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसाऽऽवृतौ ।
शंखं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः ॥१६॥

निर्जग्मतुः स्व आयुध आढ्यौ बलेन अल्पीयसा आवृतौ शंख दध्मौ विनिर्गत्य हरिः दारुकसारथिः ॥१६॥

स्व आयुध	अपने आयुधोंसे
आढ्यौ	सम्पन्न
अल्पीयसा	थोड़ी-सी
बलेन आवृतौ	सेनासे घिरे
निर्जग्मतुः	निकले,
विनिर्गत्य	बाहर निकलकर
दारुक-	दारुक जिनका
सारथिः	सारथि था
हरिः	उन श्रीहरिने
शंखं दध्मौ	शंख बजाया ॥१६॥

ततोऽभूत् परसैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः ।
तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम ॥१७॥

ततः अभूत् परसैन्यानां हृदि वित्रास वेपथुः ताः आह **मागधः वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुष अधम ॥१७॥**

ततः	उससे
परसैन्यानां	शत्रु सैनिकोंके
हृदि	हृदयमें
वित्रास	बहुत भयसे
वेपथुः अभूत्	कम्प होने लगा,
ताः वीक्ष्य	उनको देखकर
मागधः आह	मगधराज बोला
हे अधम पुरुष	'हे नीच पुरुष
कृष्ण	कृष्ण ॥१७॥

न त्वया योद्धुमिच्छामि बालेनैकेन लज्जया ।
गुप्तेन हि त्वया मन्द न योत्स्ये याहि बन्धुहन् ॥१८॥

न त्वया योद्धुं इच्छामि बालेन एकेन लज्जया गुप्तेन हि त्वया मन्द न योत्स्ये याहि बन्धुहन् ॥१८॥

लज्जया	लज्जावश
एकेन बालेन	अकेले बालक
त्वया योद्धुं	तुझसे युद्ध करनेकी
इच्छामि	(मैं) इच्छा
न	नहीं करता,
हि	क्योंकि (तू) मेरे
बन्धुहन्	सम्बन्धीको मारने वाला है
मन्द	(फिर भी) मूर्ख है,
त्वया	तुझसे
न योत्स्ये	युद्ध नहीं करूँगा
गुप्तेन याहि	सुरक्षित भाग जा ॥१८॥

तव राम यदि श्रद्धा युध्यस्व धैर्यमुद्वह ।
हित्वा वा मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्याहि मां जहि ॥१९॥

तव राम यदि श्रद्धा युध्यस्व धैर्यं उद्वह हित्वा वा मत् शरैः छिन्नं देहं स्वः याहि मां जहि ॥१९॥

राम यदि	बलराम यदि	**छिन्नं**	कटे
तव	तुम्हारी (युद्धमें)	**देहं हित्वा**	शरीरको त्यागकर
श्रद्धा	आस्था हो तो	**स्वः याहि**	स्वर्ग जाओ
धैर्यं उद्वह	धैर्य धारण करके	**वा मां जहि**	अथवा मुझे मार दो' ॥१९॥
युध्यस्व	युद्ध करो,		
मत् शरैः	मेरे वाणोंसे		

श्रीभगवानुवाच

न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम् ।
न गृह्णीमो वचो राजन्नातुरस्य मुमूर्षतः ॥२०॥

न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्ति एव पौरुषं न गृह्णीमः वचः राजन् आतुरस्य मुमूर्षतः ॥२०॥

राजन्	राजन् !	**दर्शयन्ति**	दिखलाते हैं,
शूरा वै	शूर लोग निश्चय	**आतुरस्य**	व्याकुल
विकत्थन्ते	बकवाद	**मुमूर्षतः वचः**	मरणासन्नकी बात
न	नहीं करते,	**गृह्णीमः**	हम स्वीकार
पौरुषं एव	(अपना) पुरुषार्थ ही	**न**	नहीं करते ॥२०॥

श्रीशुक उवाच

जरासुतस्तावभिसृत्य माधवौ महाबलौघेन बलीयसाऽऽवृणोम् ।
ससैन्ययानध्वजवाजिसारथौ
सूर्यानलौ वायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥२१॥

जरासुतः ताः अभिसृत्य माधवौ महाबल ओघेन बलीयसा आवृणोत् ससैन्य यान ध्वज वाजि सारथौ सूर्य अनलौ वायुः इव अभ्ररेणुभिः ॥२१॥

वायुः	वायु द्वारा
अभ्ररेणुभिः	बादल और धूलिसे
सूर्य	सूर्य और
अनलौ	अग्नि (ढकने) के
इव	समान
जरासुतः	जराराक्षसीके पुत्र जरासन्धने
ताः	उन दोनों भाइयोंको
अभिसृत्य	चारों ओरसे घेरकर
बलीयसा	बलवान
महाबल	महासेनाकी
ओघेन	बाढ़से
ससैन्ययान	सेना सहित रथ,
ध्वज वाजि	ध्वजा, घोड़े,
सारथी	सारथिको
आवृणोत्	पूर्णतः ढक लिया ॥२१॥

सुपर्णतालध्वजचिह्नितौ रथा-
वलक्षयन्त्यो हरिरामयोर्मृधे ।
स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं
समाश्रिताः संमुमुहुः शुचार्दिताः ॥२२॥

सुपर्ण ताल ध्वज चिह्नितौ रथाः अलक्षयन्त्यः हरिरामयोः मृधे स्त्रियः पुर अट्टालक हर्म्य गोपुरं समाश्रिताः संमुमुहुः शुचा अर्दिताः ॥२२॥

सुपर्ण	गरुड़ तथा
ताल ध्वज	ताल ध्वजसे
चिह्नितौ	पहिचाने जानेवाले
हरिरामयोः	श्रीकृष्ण-बलरामके
रथाः मृधे	रथोंको युद्धमें
अलक्षयन्त्यः	न देखनेके कारण
पुर अट्टालक	नगरकी अटारियों,
हर्म्य	छज्जों,
गोपुरं	बाहरी द्वारोंके
समाश्रिताः	ऊपर चढ़ी हुई
स्त्रियः	स्त्रियां
शुचा अर्दिताः	शोकोत्पीड़िता होकर
संमुमुहुः	मूर्छित हो गयीं ॥२२॥

हरिः परानीकपयोमुचां मुहुः
शिलीमुखात्युल्बणवर्षपीडितम् ।
स्वसैन्यमालोक्य सुरासुरार्चितं
व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम् ॥२३॥

हरिः पर अनीक पयः मुचां मुहुः शिलीमुख अति उल्बण वर्ष पीडितं स्वसैन्यं आलोक्य सुर असुर अर्चितं व्यस्फूर्जयत् शार्ङ्ग शरासन उत्तमम् ॥२३॥

हरिः	श्रीहरिने	**आलोक्य**	देखकर
पर अनीक	शत्रु सेनारूपी	**सुर असुर**	देव-दैत्य सबसे
पयः मुचां	मेघोंसे	**अर्चितं**	सम्मानित
मुहुः	बार-बार	**उत्तमं**	श्रेष्ठ
शिलीमुख	बाणोंकी	**स्व शार्ङ्गं**	अपने शारंग
अति उल्बण	बहुत घोर	**शरासन**	धनुषकी
वर्ष पीडितं	वर्षासे पीड़ित	**व्यस्फूर्जयत्**	टङ्कार की ॥२३॥
स्वसैन्यं	अपनी सेनाको		

गृह्णन् निषङ्गादथ सन्दधच्छरान्
विकृष्य मुञ्चञ्छितबाणपूगान् ।
निघ्नन् रथान् कुञ्जरवाजिपत्तीन्
निरन्तरं यद्वदलातचक्रम् ॥२४॥

गृह्णन् निषङ्गात् अथ सन्दधत् शरान् विकृष्य मुञ्चन् शितबाण पूगान् निघ्नन् रथान् कुञ्जर वाजिपत्तीन् निरन्तरं यद् वत् अलात चक्रम् ॥२४॥

निषङ्गात्	तरकशसे	**रथान् कुञ्जर**	रथ, हाथी
गृह्णन्	लेते	**वाजिपत्तीन्**	घोड़े पैदलोंको
शरान्	बाणोंको (धनुषपर)	**निघ्नन्**	मारते हुए
सन्दधत्	चढ़ाते,	**अलात**	अलात् (उल्मुक)
विकृष्य	खींचकर	**चक्रं**	चक्र
शितबाण	तीक्ष्ण शर	**यद् वत्**	के समान (वह
पूगान्	समूह		धनुष) घूम रहा
मुञ्चन्	छोड़ते,		था ॥२४॥

निर्भिन्नकुम्भाः करिणो निपेतु-
रनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकन्धराः ।
रथा हताश्वध्वजसूतनायकाः
पदातयश्छिन्नभुजोरुकन्धराः ॥२५॥

निर्भिन्न कुम्भाः करिणः निपेतुः अनेकशः अश्वाः शरवृक्ण कन्धराः रथा हत अश्व ध्वज सूत नायकाः पदातयः छिन्न भुज उरु कन्धराः ॥२५॥

निर्भिन्न	मस्तक
कुम्भाः	फटनेसे
करिणः	हाथी
अनेकशः अश्वाः	बहुतसे घोड़े
शरवृक्ण	वाणोंसे कटे
कन्धराः	गले होनेसे,
रथा अश्व	रथ घोड़े
ध्वज सूत	ध्वजा, सारथी,
हत नायकाः	तथा नायक (रथी) के मारे जानेसे,
पदातयः	पैदल सैनिक
छिन्न भुज	कटी भुजा,
उरु कन्धराः	जांघे या गले
निपेतुः	गिर पड़े ॥२५॥

संछिद्यमानद्विपदेभवाजिना-
मङ्गप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः ।
भुजाहयः पूरुषशीर्षकच्छपा
हतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥२६॥

संछिद्यमान द्विपद इभ वाजिनां अङ्ग प्रसूताः शतशः असृक् आपगाः भुजा अहयः पूरुष शीर्ष कच्छपा हतद्विप द्वीप हयग्रह आकुलाः ॥२६॥

द्विपद इभ	मनुष्य, गज,
वाजिनां	घोड़ेके
संछिद्यमान	बराबर कटनेसे
अङ्ग	उनके शरीरोंसे
प्रसूता	निकली
शतशः	सैकड़ों
असृक आपगाः	रक्तकी नदियाँ (बहने लगीं)
भुजा अहयः	भुजाओं रूपी सर्प,
पूरुष शीर्ष	मनुष्योंके सिर रूपी

कच्छपा	कछुए	**हयग्रह**	घोड़ों रूपी मगरोंसे
हतद्विप	मरे हाथियों	**आकुलाः**	भरी थीं ॥२६॥
द्वीप	रूपी द्वीप		

करोरुमीना नरकेशशैवला
धनुस्तरङ्गायुधगुल्मसंकुलाः ।
अच्छूरिकावर्तभयानका महा-
मणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥२७॥

कर उरु मीना नरकेश शैवला धनुः तरङ्ग आयुध गुल्म सङ्कुलाः अच्छूरिक आवर्त भयानका महामणि प्रवेक आभरण अश्म शर्कराः ॥२७॥

कर उरु	हाथ और जांघे	**अच्छूरिक**	ढालें
मीना	(उसमें) मछलियां,	**भयानका**	भयानक
नरकेश	मनुष्योंके बाल	**आवर्त**	भँवरों जैसे
शैवला	सिवार	**महामणि प्रवेक**	मूल्यवान मणिजटित
धनुः तरङ्ग	धनुष तरंगके समान	**आभरण**	आभूषण
आयुध	अस्त्र-शस्त्र (बहती)	**अश्म शर्कराः**	पत्थरकी रोड़ियों
गुल्म	झाड़ियोंसे		जैसे थे ॥२७॥
सङ्कुलाः	भरी हुई,		

प्रवर्तिता भीरुभयावहा मृधे
मनस्विनां हर्षकरीः परस्परम् ।
विनिघ्नतारीन् मुसलेन दुर्मदान्
सङ्कर्षणेनापरिमेयतेजसा ॥२८॥

प्रवर्तिता भीरु भयावहा मृधे मनस्विनां हर्षकरीः परस्परं विनिघ्नता अरीन् मुसलेन दुर्मदान् सङ्कर्षणेन अपरिमेय तेजसा ॥२८॥

अपरिमेय	असीम	**सङ्कर्षणेन**	बलरामजी द्वारा
तेजसा	तेजस्वी	**दुर्मदान्**	बहुत घमण्डी

अरीन्	शत्रुओंको
मुसलेन	मूसलसे
विनिघ्नता	मारनेसे
मृधे भीरु	युद्धमें डरपोकों को
भयदावहा	भयभीत करनेवाली

तथा

बलं तदङ्गार्णवदुर्गभैरवं
दुरन्तपारं मगधेन्द्रपालितम् ।
क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयो-
र्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ॥२९॥

बलं तत् अङ्ग अर्णव दुर्ग भैरवं दुरन्तपारं मगध इन्द्र पालितं क्षयं प्रणीतं वसुदेव पुत्रयोः विक्रीडितं तत् जगदीशयोः परम् ॥२९॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित् !
मगध इन्द्र	मगधराज
	जरासन्ध द्वारा
पालितं	रक्षित
तत् अर्णव	वह समुद्रके समान
दुर्ग	दुर्गम
भैरवं	भयानक
दुरन्तपारं	दुष्पार
मनस्विनां	साहसियोंको
परस्परं	आपसमें
हर्षकरीः	हर्षित करनेवाली
प्रवर्तिता	(वह रक्त नदी)
	बह चली ॥२८॥
बलं	सेना
वसुदेव	वसुदेवजीके
पुत्रयोः	दोनों पुत्रोंने
क्षयं प्रणीतं	नष्ट कर दी
तत्	यह उन
जगदीशयोः	जगदीश्वरोंके लिए
परं विक्रीडितं	अच्छा खेल था
	॥२९॥

स्थित्युद्भवान्तं भुवनत्रयस्य यः
समीहतेऽनन्तगुणः स्वलीलया ।
न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रह-
स्तथापि मर्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ॥३०॥

स्थिति उद्भव अन्तं भुवनत्रयस्य यः समीहते अनन्तगुणः स्वलीलया न तस्य चित्रं परपक्ष निग्रहः तथा अपि मर्त्य अनुविधस्य वर्ण्यते ॥३०॥

यः	जो	चित्रं	आश्चर्यकी बात
अनन्तगुणः	अनन्त गुणशाली	न	नहीं है
स्वलीलया	अपनी लीलासे ही	तथा अपि	फिर भी
भुवनत्रयस्य	त्रिभुवनकी	मर्त्य	मनुष्यके
स्थिति उद्भव	पालन, सृष्टि,	अनुविधस्य	अनुकरणके कारण
अन्तं समीहते	प्रलय करते रहते हैं	वर्ण्यते	(इसका) वर्णन किया जाता है ॥३०॥
तस्य	उनके लिए		
परपक्ष	शत्रुपक्षका		
निग्रहः	दमन करना		

जग्राह विरथं रामो जरासंधं महाबलम् ।
हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ॥३१॥

जग्राह विरथं रामः जरासन्धं महाबलं हत अनीक अवशिष्ट असुं सिंहः सिंहं इव ओजसा ॥३१॥

हत अनीक	सेनाके मारे जानेपर	सिंहः	सिंहको
विरथं	रथहीन	सिंहं इव	सिंहके समान
अवशिष्ट असुं	प्राणमात्र शेष	ओजसा	बलपूर्वक
महाबलं	अत्यन्त बलवान	रामः	बलरामजीने
जरासन्धं	जरासन्धको	जग्राह	पकड़ लिया ॥३१॥

बध्यमानं हतारातिं पाशैर्वारुणमानुषैः ।
वारयामास गोविन्दस्तेन कार्यचिकीर्षया ॥३२॥

बध्यमानं हत आरातिं पाशैः वारुण मानुषैः वारयामास गोविन्दः तेन कार्य चिकीर्षया ॥३२॥

हत आरातिं	शत्रुओंको मार देने-वाले (जरासन्ध) को	पाशैः	पाशोंसे
		बध्यमानं	बाँधते समय
वारुण	वरुणके तथा	तेन	उसके द्वारा (अपना भूभार-हरणका)
मानुषैः	मनुष्योंके		

कार्य	काम	**वारयामास**	(बलरामजी को)
चिकीर्षया	करनेकी इच्छासे		रोक दिया ॥३२॥
गोविन्दः	गोविन्दने		

स मुक्तो लोकनाथाभ्यां व्रीडितो वीरसम्मतः ।
तपसे कृतसंकल्पो वारितः पथि राजभिः ॥३३॥

स मुक्तः लोकनाथाभ्यां व्रीडितः वीर सम्मतः तपसे कृत सङ्कल्पः वारितः पथि राजभिः ॥३३॥

स वीर	वह वीरों द्वारा	**सङ्कल्पः कृत**	संकल्प करनेपर भी
सम्मतः	सम्मानित	**पथि**	मार्गमें
लोकनाथाभ्यां	जगदीश्वरों द्वारा	**राजभिः**	राजाओं द्वारा
मुक्तः	छोड़े जानेपर	**वारितः**	रोक दिया गया
व्रीडितः	लज्जित होकर		॥३३॥
तपसे	तपस्याके लिए		

वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि ।
स्वकर्मबन्धप्राप्तोऽयं यदुभिस्ते पराभवः ॥३४॥

वाक्यैः पवित्र अर्थपदैः नयनैः प्राकृतैः अपि स्वकर्मबन्ध प्राप्तः अयं यदुभिः ते पराभवः ॥३४॥

ते	आपकी	**नयनैः**	नीति शास्त्रके
यदुभिः	यदुवंशियोंसे	**वाक्यैः**	वाक्योंसे
अयं पराभवः	यह पराजय	**प्राकृतैः अपि**	तथा सामान्य
स्वकर्मबन्ध	अपने प्रारब्ध कर्मसे		लौकिक (बातों) से
प्राप्तः	प्राप्त हुई है		भी समझानेपर
पवित्र	ऐसे पवित्र		॥३४॥
अर्थपदैः	अर्थ वाले		

हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा ।
उपेक्षितो भगवता मगधान् दुर्मना ययौ ॥३५॥

हतेषु सर्व अनीकेषु नृपः बार्हद्रथः तदा उपेक्षितः भगवता मगधान् दुर्मना ययौ ॥३५॥

तदा	तब
सर्व अनीकेषु	सम्पूर्ण सेनाके
हतेषु	मारे जानेपर
भगवता	भगवानके द्वारा
उपेक्षितः	उपेक्षित
नृपः	राजा
बार्हद्रथः	वृहद्रथ-नन्दन जरासंध
दुर्मना	उदास होकर
मगधान्	मगध देशको
ययौ	लौट गया ॥३५॥

मुकुन्दोऽप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः ।
विकीर्यमाणः कुसुमैस्त्रिदशैरनुमोदितः ॥३६॥

मुकुन्दः अपि अक्षत बलः निस्तीर्ण अरिबल अर्णवः विकीर्यमाणः कुसुमैः त्रिदशैः अनुमोदितः ॥३६॥

अक्षत	बिना घाव लगी
बलः	सेना सहित
अरिबल	शत्रु सेना रूपी
अर्णवः	समुद्रको
निस्तीर्ण	पार करके
मुकुन्दः अपि	मुकुन्द भी
कुसुमैः	पुष्पोंकी
विकीर्यमाणः	वर्षा करते हुए
त्रिदशैः	देवताओं द्वारा
अनुमोदितः	समर्थित हुए ॥३६॥

माथुरैरुपसङ्गम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः ।
उपगीयमानविजयः सूतमागधवन्दिभिः ॥३७॥

माथुरैः उपसङ्गम्य विज्वरैः मुदित आत्मभिः उपगीयमान विजयः सूत मागध वन्दिभिः ॥३७॥

सूत मागध	सूत, मागध
वन्दिभिः	बन्दियों द्वारा
विजयः	विजय
उपगीयमान	उच्च स्वरसे गायी जाते हुए
विज्वरैः	चिन्ताहीन
मुदित आत्मभिः	प्रसन्न चित्त
माथुरैः	मथुरा वासियोंसे
उपसङ्गम्य	पास आकर मिले ॥३७॥

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः ।
वीणावेणुमृदङ्गानि पुरं प्रविशति प्रभौ ॥३८॥

शंख दुन्दुभयः नेदुः भेरी तूर्याणि अनेकशः वीणा वेणु मृदङ्गानि पुरं प्रविशति प्रभौ ॥३८॥

प्रभौ	दोनों स्वामियोंके	**अनेकशः**	बहुत-सी
पुरं प्रविशति	नगर-प्रवेशके समय	**वीणा वेणु**	वीणा, वंशी,
शंख दुन्दुभयः	शंख, दुन्दुभियां,	**मृदङ्गानि**	मृदंग
भेरी तूर्याणि	भेरी, तुरहियां	**नेदुः**	बजने लगे ॥३८॥

सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिरलंकृताम् ।
निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥३९॥

सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिः अलंकृतां निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुक आबद्ध तोरणाम् ॥३९॥

सिक्तमार्गां	(मथुरा) सींचे मार्ग वाली	**ब्रह्मघोषेण**	वेद-ध्वनिसे
हृष्टजनां	हर्षित लोगोंसे युक्त,	**निर्घुष्टां**	गूंजती
पताकाभिः	झण्डियोंसे	**कौतुक**	उत्सवके कारण
अलंकृतां	सजायी गयी	**आबद्ध तोरणां**	बन्दनवार बँधी थी ॥३९॥

निचीयमानो नारीभिर्माल्यदध्यक्षताङ्कुरैः ।
निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥४०॥

निचीयमानः नारीभिः माल्य दधि अक्षत अङ्कुरैः निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीति उत्कलित लोचनैः ॥४०॥

नारीभिः	स्त्रियों द्वारा	**माल्य दधि**	माला, दही
प्रीति उत्कलित	प्रेमसे उत्फुल्ल	**अक्षत अङ्कुरैः**	अक्षत, यवांकुरोंकी
लोचनैः	नेत्रोंसे	**निचीयमानः**	वर्षासे ढक दिये गये ॥४०॥
सस्नेहं	स्नेह पूर्वक		
निरीक्ष्यमाणः	देखते हुए		

आयोधनगतं वित्तमनन्तं वीरभूषणम् ।
यदुराजाय तत् सर्वमाहृतं प्रादिशत्प्रभुः ॥४१॥

आयोधनगतं वित्तं अनन्तं वीरभूषणं यदुराजाय तत् सर्वं आहृतं प्रादिशत् प्रभुः ॥४१॥

प्रभुः	सबके स्वामी भगवान्	**तत् सर्वं**	वह सब
आयोधनगतं	युद्ध-भूमिसे	**अनन्तं वित्तं**	अनन्त धन
वीरभूषणं	वीरोंके लिए शोभा देनेवाला	**यदुराजाय**	यादवराज उग्रसेन-को
आहृतं	लाया हुआ	**प्रादिशत्**	निवेदित कर दिया ॥४१॥

एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणीबलः ।
युयुधे मागधो राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ॥४२॥

एवं सप्तदशकृत्व तावति अक्षौहिणी बलः युयुधे मागधः राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ॥४२॥

एवं	इसी प्रकार	**मागधः राजा**	मगधराज जरासन्ध
सप्तदशकृत्व	सत्रह बारमें	**कृष्णपालितैः**	श्रीकृष्ण द्वारा रक्षित
तावति	उतनी ही	**यदुभिः**	यादवोंसे
अक्षौहिणी	अक्षौहिणी	**युयुधे**	युद्ध करता रहा ॥४२॥
बलः	सेनासे		

अक्षिण्वंस्तद्बलं सर्वं वृष्णयः कृष्णतेजसा ।
हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽयादरिभिर्नृपः ॥४३॥

अक्षिण्वन् तत् बलं सर्वं वृष्णयः कृष्ण तेजसा हतेषु स्वेषु अनीकेषु त्यक्तः अयात् अरिभिः नृपः ॥४३॥

तत् सर्वं बलं	उसकी पूरी सेनाको	**तेजसा**	प्रभावसे
कृष्ण	श्रीकृष्णके	**वृष्णयः**	वृष्णिवंशी

अक्षिण्वन्	नष्ट कर देते थे	त्यक्तः	छोड़ दिये जानेपर
स्वेषु अनीकेषु	अपनी सेनाके	नृपः	राजा जरासंध
हतेषु	मारे जानेपर	अयात्	लौट आता था
अरिभिः	शत्रुओं द्वारा		॥४३॥

अष्टादशमसंग्रामे आगामिनि तदन्तरा ।
नारदप्रेषितो वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत ॥४४॥

अष्टादशम संग्रामे आगामिनि तत् अन्तरा नारद प्रेषितः वीरः यवनः प्रत्य दृश्यत ॥४४॥

अष्टादशम	अठारहवीं बारका	नारद प्रेषितः	नारदजीका भेजा हुआ
संग्रामे	युद्ध		
आगामिनि	आने ही वाला था	वीरः यवनः	वीर कालयवन
तत् अन्तरा	उसके बीचमें ही	प्रत्य	(मथुराके) समीप
		दृश्यत	दिखाई पड़ा ॥४४॥

रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः ।
नृलोके चाप्रतिद्वन्द्वो वृष्णीञ्छ्रुत्वाऽऽत्मसम्मितान् ॥४५॥

रुरोध मथुरां एत्य तिसृभिः म्लेच्छ कोटिभिः नृलोके च अप्रतिद्वन्दः वृष्णीन् श्रुत्वा आत्म सम्मितान् ॥४५॥

नृलोके च	मनुष्य लोकमें तो	तिसृभिः	तीन
अप्रतिद्वन्दः	प्रतिद्वन्द्वी रहित था	कोटिभिः	करोड़
वृष्णीन्	वृष्णिवंशियोंको	म्लेच्छ	म्लेच्छोंके
आत्म	अपने	एत्य	साथ आकर
सम्मितान्	समान	मथुरां रुरोध	मथुराको घेर
श्रुत्वा	सुनकर		लिया ॥४५॥

तं दृष्ट्वाचिन्तयत् कृष्णः संकर्षणसहायवान् ।
अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महत् ॥४६॥

तं दृष्ट्वा चिन्तयत् कृष्णः सङ्कर्षण सहायवान् अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं हि उभयतः महत् ॥४६॥

तं दृष्ट्वा	उसे देखकर
सङ्कर्षण	बलरामजीसे
सहायवान्	मिल करके
कृष्णः	श्रीकृष्णने
चिन्तयत्	विचार किया
अहो हि	अहो, क्योंकि
यदूनां उभयतः	यादवोंपर दोनों ओरसे
महत् वृजिनं	भारी संकट
प्राप्तं	आ गया है ॥४६॥

यवनोऽयं निरुन्धेऽस्मानद्य तावन्महाबलः ।
मागधोऽप्यद्य वा श्वो वा परश्वो वाऽऽगमिष्यति ॥४७॥

यवनः अयं निरुन्धे अस्मान् अद्य तावत् महाबलः मागधः अपि अद्य वा श्वः परश्वः वा आगमिष्यति ॥४७॥

अयं महाबलः	इस महाबली
यवनः	कालयवनने
अद्य तावत्	आज अभी
अस्मान्	हम लोगोंको
निरुन्धे	घेर रखा है
मागधः अपि	मगधराज भी
अद्य वा	आज ही
वा श्वः	या कल ही
वा परश्वः	अथवा परसों
आगमिष्यति	आ जायगा ॥४७॥

आवयोर्युध्यतोरस्य यद्यागन्ता जरासुतः ।
बन्धून् वधिष्यत्यथवा नेष्यते स्वपुरं बली ॥४८॥

आवयोः युध्यतोः अस्य यदि आगन्ता जरासुतः बन्धून् वधिष्यति अथवा नेष्यते स्वपुरं बली ॥४८॥

आवयोः अस्य	हम दोनोंके इससे
युध्यतोः	युद्ध करते समय
यदि बली	यदि बलवान
जरासुतः	जरा राक्षसीका पुत्र (जरासन्ध)
आगन्ता	आ जायगा तो
बन्धून्	हमारे सम्बन्धियोंको
बधिष्यति	मार देगा
अथवा	अथवा (बन्दी बनाकर)
स्वपुरं	अपने नगर
नेष्यते	ले जायगा ॥४८॥

तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम् ।
तत्र ज्ञातीन् समाधाय यवनं घातयामहे ॥४९॥

तस्मात् अद्य विधास्यामः दुर्गं द्विपद दुर्गमं तत्र ज्ञातीन् समाधाय यवनं घातयामहे ॥४९॥

तस्मात्	इसलिए
अद्य	आज ही
द्विपद	मनुष्योंके लिए
दुर्गमं	दुष्प्रवेश्य
दुर्गं	दुर्गकी
विधास्यामः	रचना करेंगे,
ज्ञातीन् तत्र	जातिवालोंको वहाँ
समाधाय	भली प्रकार रखकर (तब)
यवनं	(इस) कालयवनको
घातयामहे	मरवा देंगे ॥४९॥

इति सम्मन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादशयोजनम् ।
अन्तःसमुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥५०॥

इति सम्मन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादशयोजनं अन्तःसमुद्रे नगरं कृत्स्न अद्भुतं अचीकरत् ॥५०॥

इति	इस प्रकार
सम्मन्त्र्य	पूरी सलाह करके
भगवान्	भगवानने
अन्तःसमुद्रे	समुद्रके बीचमें
द्वादशयोजनं	बारह योजनका
दुर्गं नगरं	किलेके समान नगर
कृत्स्न	जो पूरा
अद्भुतं	आश्चर्यजनक था
अचीकरत्	निर्मित कर दिया ॥५०॥

दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम् ।
रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम् ॥५१॥

दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्प नैपुणं रथ्या चत्वर वीथीभिः यथा वास्तु विनिर्मितम् ॥५१॥

हि यत्र	क्योंकि जहां
यथा वास्तु	वास्तु शास्त्रके अनुसार बनी
रथ्या चत्वर	सड़कों, चौराहों तथा
वीथीभिः	गलियों द्वारा
विनिर्मितं	विशेष निर्माण
त्वाष्ट्रं	विश्वकर्माकी
शिल्प विज्ञानं	शिल्प विज्ञानमें
नैपुणं	निपुणता
दृश्यते	दिखलाई देता है ॥५१॥

सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम् ।
हेमशृङ्गैर्दिविस्पृग्भिः स्फाटिकाट्टालगोपुरैः ॥५२॥

सुरद्रुम लता उद्यान विचित्र उपवन अन्वितं हेमशृङ्गैः दिवि-स्पृक्भिः स्फाटिक अट्टाल गोपुरैः ॥५२॥

सुरद्रुम	देव-वृक्षों एवं	**स्फाटिक**	स्फटिककी
लता	लताओं वाले	**अट्टाल**	अटारियों और
उद्यान	वगीचों,	**गोपुरैः**	गोपुरों (बाहरी
उपवन	फलोद्यानोंसे तथा		उच्च द्वारों) से
दिविस्पृक्भिः	गगनचुम्बी	**अन्वितं**	युक्त था ॥५२॥
हेमशृङ्गैः	स्वर्ण-शिखरों,		

राजतारकुटैः कोष्ठैर्हेमकुम्भैरलंकृतैः ।
रत्नकूटैर्गृहैर्हैमैर्महामरकतस्थलैः ॥५३॥

राजतार कुटैः कोष्ठैः हेमकुम्भैः अलङ्कृतैः रत्नकूटैः गृहैः हैमैः महामरकत स्थलैः ॥५३॥

हेमकुम्भैः	स्वर्ण कलशोंसे	**रत्नकूटैः**	रत्न जड़ित
अलङ्कृतैः	सुशोभित	**महामरकत**	महामरकत मणिके
राजतार	चांदी तथा	**स्थलैः**	फर्शवाले
कुटैः	पीतल जड़ी	**हैमैः गृहैः**	स्वर्णके बने भवन
कोष्ठैः	कोठारोंसे (युक्त थी)		थे ॥५३॥

वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वलभीभिश्च निर्मितम् ।
चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥५४॥

वास्तोष्पतीनां च गृहैः बलभीभिः च निर्मितं चातुर्वर्ण्यजन आकीर्ण यदुदेव गृह उल्लसत् ॥५४॥

वास्तोष्पतीनां	वास्तु देवताओंके*	**च**	और
गृहैः	मन्दिर बने थे,	**वलभीभिः**	वे अट्टालिकाओंवाले

* ग्रामदेव तथा धन, अन्न आदिके अधिदेवता वासुदेव होते हैं ।

निर्मितं	बने थे,
चातुर्वर्ण्यजन	चारों वर्णोंके लोगोंसे
आकीर्णं	भरे हुए (उस नगरमें)
यदुदेव	यादवोंके देवता श्रीकृष्णका
गृह	भवन
उल्लसत्	सुशोभित था ॥५४॥

सुधर्मा पारिजातं च महेन्द्रः प्राहिणोद्धरेः ।
यत्र चावस्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मैर्न युज्यते ॥५५॥

सुधर्मा पारिजातं च महेन्द्रः प्राहिणोत् हरेः यत्र च अवस्थितः मर्त्यः मर्त्य धर्मैः न युज्यते ॥५५॥

महेन्द्रः	इन्द्रने
हरेः	श्रीहरिके लिए
सुधर्मा	देवसभा सुधर्मा
च	तथा
पारिजातं	कल्पवृक्ष
प्राहिणोत्	भेज दिया
यत्र	जिस (सभा) में
अवस्थितः	बैठा हुआ
मर्त्यः	मनुष्य
मर्त्य	मनुष्यके क्षुधा-पिपासादि
धर्मैः	धर्मोंसे
युज्यते न	युक्त नहीं होता ॥५५॥

श्यामैककर्णान् वरुणो हयाञ्छुक्लान् मनोजवान् ।
अष्टौ निधिपतिः कोशान् लोकपालो निजोदयान् ॥५६॥

श्याम एक कर्णान् वरुणः हयान् शुक्लान् मनोजवान् अष्टौ निधिपतिः कोशान् लोकपालः निज उदयान् ॥५६॥

वरुणः	वरुणने
कर्णान् एक	एक कान
श्याम	काले
शुक्लान्	श्वेत रंगके
मनोजवान्	मनोवेगवाले
हयान्	घोड़े
निधिपतिः	धनाध्यक्ष कुवेरने
अष्टौ कोशान्	आठो निधियां तथा
लोकपालः	(अन्य) लोकपालोंने
निज उदयान्	अपने वैभव (भेजे) ॥५६॥

यद् यद् भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये ।
सर्वं प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ॥५७॥

यत् यत् भगवता दत्तं आधिपत्यं स्व सिद्धये सर्वं प्रत्यर्पयामासुः हरौ भूमिगते नृप ॥५७॥

नृप	राजन् !	**हरौ**	श्रीहरिके
स्व आधिपत्यं	अपना अधिकार	**भूमिगते**	पृथ्वीपर आनेपर
सिद्धये	बनाये रखनेके लिए	**सर्वं**	वह सब
भगवता	भगवानके द्वारा	**प्रत्यर्पयामासुः**	उन्हें लौटा दिया ॥५७॥
यत् यत्	जो जो (वैभव)		
दत्तं	दिया गया था		

तत्र योगप्रभावेण नीत्वा सर्वजनं हरिः ।
प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः ।
निर्जगाम पुरद्वारात् पद्ममाली निरायुधः ॥५८॥

तत्र योग प्रभावेण नीत्वा सर्वजनं हरिः प्रजापालेन रामेण कृष्णः सम अनुमन्त्रितः निर्जगाम पुरद्वारात् पद्ममाली निः आयुधः ॥५८॥

योग	अपने योगके	**अनुमन्त्रितः**	सलाह करके
प्रभावेण	प्रभावसे	**कृष्णः**	श्रीकृष्ण
तत्र सर्वजनं	वहां सब लोगोंको	**पद्ममाली**	कमलकी माला पहिने
नीत्वा	पहुँचाकर		
प्रजापालेन	प्रजा पालनके लिए	**निः आयुधः**	शस्त्रहीन
रामेण	बलरामजीसे	**पुरद्वारात्**	नगर-द्वारसे
सम	भली प्रकार	**निर्जगाम**	बाहर निकले ॥५८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

अथ एकपंचाशत्तमोऽध्यायः

श्रीशक उवाच

तं विलोक्य विनिष्क्रान्तमुज्जिहानमिवोडुपम् ।
दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥१॥

तं विलोक्य विनिष्क्रान्तं उज्जिहानं इव उडुपं दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेय वाससम् ॥१॥

उज्जिहानं	उदय होते	**पीतकौशेय**	पीले रेशमी
उडुपं इव	चन्द्रमाके समान	**वाससं**	वस्त्रधारीको
तं दर्शनीयतमं	उन परम सुन्दर	**विनिष्क्रान्तं**	बाहर निकलते
श्यामं	श्याम वर्ण	**विलोक्य**	देखकर ॥१॥

श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।
पृथुदीर्घंचतुर्बाहुं नवकञ्जारुणेक्षणम् ॥२॥

श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत् कौस्तुभ आमुक्त कन्धरं पृथुदीर्घ चतुर्बाहुं नवकञ्ज अरुण ईक्षणम् ॥२॥

श्रीवत्सवक्षसं	वक्षस्थलपर श्रीवत्स चिह्न	**पथुदीर्घं**	मोटी और लम्बी
भ्राजत्	सुशोभित था,	**चतुर्बाहुं**	चार भुजाओंवाले;
कन्धरं	कण्ठमें	**नवकञ्ज**	नवीन कमलके समान
कौस्तुभ	कौस्तुभमणि	**अरुण**	रतनारे
आमुक्त	पहिने थे	**ईक्षणं**	नेत्र थे ॥२॥

नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम् ।
मुखारविन्दं बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥३॥

नित्य प्रमुदितं श्रीमत् सुकपोलं शुचिस्मितं मुखारविन्दं विभ्राणं स्फुरन् मकर कुण्डलम् ॥३॥

श्रीमत्	शोभा सम्पन्न	**स्फुरन्**	चमकते
सुकपोलं	सुन्दर कपोलवाले	**मकर-**	मकराकृति
नित्यं प्रमुदितं	नित्य प्रसन्न	**कुण्डलं**	कुण्डल
शुचिस्मितं	पवित्र मुसकानवाले	**बिभ्राणं**	धारण किये ॥३॥
मुखारविन्दं	मुख-कमलपर		

वासुदेवो ह्ययमिति पुमाञ्छ्रीवत्सलाञ्छनः ।
चतुर्भुजोऽरविन्दाक्षो वनमाल्यतिसुन्दरः ॥४॥

वासुदेवः हि अयं इति पुमान् श्रीवत्सलाञ्छनः चतुर्भुजः अरविन्दाक्षः वनमालि अतिसुन्दरः ॥४॥

हि अयं	क्योंकि यह	**अरविन्दाक्षः**	कमल-लोचन
पुमान्	पुरुष	**वनमालि**	वन-मालाधारी
श्रीवत्स-	श्रीवत्स	**अतिसुन्दरः**	अत्यन्त सुन्दर है,
लाच्छनः	चिह्नवाला	**वासुदेवः**	वासुदेव हैं ॥४॥
चतुर्भुजः	चतुर्भुज		

लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति ।
निरायुधश्चलन् पद्भ्यां योत्स्येनेऽननिरायुधः ॥५॥

लक्षणैः नारद प्रोक्तैः न अन्यः भवितुं अर्हति निरायुधः चलन् पद्भ्यां योत्स्ये अनेन निरायुधः ॥५॥

नारद प्रोक्तैः	नारदजीके बतलाये	**निरायुधः**	शस्त्रहीन
लक्षणैः	लक्षणोंसे	**पद्भ्यां चलन्**	पैदल चलते
अन्यः भवितुं	इसे दूसरा कोई होना	**अनेन**	इसके साथ
		निरायुधः	(मैं भी) शस्त्रहीन
न अर्हति	नहीं चाहिए	**योत्स्ये**	युद्ध करूँगा ॥५॥

इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवन्तं पराङ्मुखम् ।
अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ॥६॥

इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवन्तं पराङ्मुखं अनु अधावत् जिघृक्षुः तं दुरापं अपि योगिनाम् ॥६॥

इति निश्चित्य	ऐसा निश्चय करके	**मुखं**	मुख करके
यवनः तं	कालयवन उन	**प्राद्रवन्तं**	जोरसे भागतेको
योगिनां अपि	योगियोंके लिए भी	**जिघृक्षुः**	पकड़नेके लिये
दुरापं	दुष्प्राप्य	**अनु अधावत्**	पीछे दौड़ा ॥६॥
पराङ्-	दूसरी ओर		

हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरिणा स पदे पदे ।
नीतो दर्शयता दूरं यवनेशोऽद्रिकन्दरम् ॥७॥

हस्त प्राप्तं इव आत्मानं हरिणा स पदे पदे नीतः दर्शयता दूरं यवन ईशः अद्रिकन्दरम् ॥७॥

हरिणा	श्रीकृष्णके द्वारा	**दर्शयता**	दिखलाते हुए
आत्मानं	अपनेको	**यवन ईशः**	वह यवनराज
पदे पदे	एक-एक पदपर	**दूरं**	दूर
हस्त प्राप्तं	हाथमें आये	**अद्रिकन्दरम्**	पर्वतीय गुफामें
इव	के समान	**नीतः**	ले जाया गया ॥७॥

पलायनं यदुकुले जातस्य तव नोचितम् ।
इति क्षिपन्ननुपतो नैनं प्रापाहताशुभः ॥८॥

पलायनं यदुकुले जातस्य तव न उचितं इति क्षिपन् अनुगतः न एनं प्राप अहत अशुभः ॥८॥

यदुकुले	'यदुवंशमें	**क्षिपन्**	आक्षेप करता हुआ
जातस्य तव	उत्पन्न तुम्हारा	**अनुगतः**	पीछे दौड़ता हुआ
पलायनं	भागना	**अहत अशुभः**	पाप नष्ट हुए बिना
उचितं न	उचित नहीं है ।'	**एनं**	इनको
इति	ऐसा	**न प्राप**	नहीं पा सका ॥८॥

एवं क्षिप्तोऽपि भगवान् प्राविशद् गिरिकन्दरम् ।
सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ॥९॥

एवं क्षिप्तः अपि भगवान् प्राविशत् गिरिन्दरं सः अपि प्रविष्टः तत्र अन्यं शयानं ददृशे नरम् ॥९॥

एवं	ऐसा	**प्रविष्टः**	प्रवेश करके
क्षिप्तः अपि	आक्षेप करनेपर भी	**तत्र शयानं**	वहां सोये,
भगवान्	भगवान	**अन्यं**	किसी दूसरे
गिरिन्दरं	पर्वतकी गुफामें	**नरं**	पुरुषको
प्राविशत्	प्रवेश कर गये,	**ददृशे**	देखा ॥९॥
सः अपि	उसने भी		

नन्वसौ दूरमानीय शेते मामिह साधुवत् ।
इति मत्वाच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत् ॥१०॥

ननु असौ दूरं आनीय शेते मां इह साधुवत् इति मत्वा अच्युतं मूढः तं पदा समताडयत् ॥१०॥

ननु असौ	'निश्चय यह	**तं**	उस (पुरुष) को
मां दूरं	मुझे दूर	**अच्युतं मत्वा**	श्रीकृष्ण मानकर
आनीय	ले आकर	**मूढः**	उस मूर्खने
इह साधुवत्	यहां साधुके जैसा	**पदा**	पैरसे
शेते	सो रहा है'	**समताडयत्**	जोरकी ठोकर मारी ॥१०॥
इति	इस प्रकार		

स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने ।
दिशो विलोकयन् पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ॥११॥

स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैः उन्मील्य लोचने दिशः विलोकयन् पार्श्वे तं अद्राक्षीत् अवस्थितम् ॥११॥

स चिरं	वह बहुत दिनोंसे	**शनैः लोचने**	धीरेसे नेत्र
सुप्तः	सोया (पुरुष)	**उन्मील्य**	खोलकर
उत्थाय	उठकर	**दिशः**	दिशाओंमें

विलोकयन्	देखता हुआ	**अवस्थितं**	खड़े
तं पार्श्वे	उसे बगलमें	**अद्राक्षीत्**	देखा ॥११॥

स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत ।
देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत् क्षणात् ॥१२॥

स तावत् तस्य रुष्टस्य दृष्टि पातेन भारत देहजेन अग्निना दग्धः भस्मसात् अभवत् क्षणात् ॥१२॥

भारत	परीक्षित् !	**अग्निना**	उत्पन्न अग्निसे
तस्य	उस	**स दग्धः**	वह जलकर
रुष्टस्य	क्रुद्ध पुरुषको	**क्षणात्**	क्षण भरमें
तावत्	उसी समय	**भस्मसात्**	राख
दृष्टि पातेन	दृष्टि पड़ते ही	**अभवत्**	हो गया ॥१२॥
देहजेन	अपने शरीरसे ही		

राजोवाच

को नाम स पुमान् ब्रह्मन् कस्य किंवीर्य एव च ।
कस्माद् गुहां गतः शिश्ये किंतेजो यवनार्दनः ॥१३॥

कः नाम स पुमान् ब्रह्मन् कस्य किं वीर्य एव च कस्मात् गुहां गतः शिश्ये किं तेजः यवन अर्दनः ॥१३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**गुहां गतः**	गुफामें जाकर
स पुमान्	उस पुरुषका	**कस्मात् शिश्ये**	क्यों सो रहा था ?
कः नाम	क्या नाम था ?	**यवन**	कालयवनको
कस्य	किसका पुत्र था ?	**अर्दनः**	नष्ट करनेवाला
किं वीर्यं	उसमें क्या पराक्रम था ?	**किं तेजः**	उसमें तेज कैसा था ॥१३॥

श्रीशुक उवाच

स इक्ष्वाकुकुले जातो मान्धातृतनयो महान् ।
मुचुकुन्द इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥१४॥

स इक्ष्वाकुकुले जातः मान्धातृ तनयः महान् मुचुकुन्द इति ख्यातः ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥१४॥

इक्ष्वाकुकुले	इक्ष्वाकुवंशमें
जातः	उत्पन्न
मान्धातृ	मान्धाताका
महान् तनयः	महान् पुत्र
स मुचुकुन्द	वह मुचुकुन्द
इति ख्यातः	इस नामसे प्रसिद्ध
ब्रह्मण्यः	ब्राह्मण भक्त तथा
सत्यसङ्गरः	सत्य प्रतिज्ञ था ॥१४॥

स याचितः सुरगणैरिन्द्राद्यैरात्मरक्षणे ।
असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ॥१५॥

स याचितः सुरगणैः इन्द्र आद्यैः आत्मरक्षणे असुरेभ्यः परित्रस्तैः यत् रक्षां सः अकरोत् चिरात् ॥१५॥

असुरेभ्यः	असुरों द्वारा
परित्रस्तैः	चारों ओरसे संत्रस्त
इन्द्र आद्यैः	इन्द्रादि
सुरगणैः	देवताओं द्वारा
आत्मरक्षणे	अपनी रक्षाके लिए
याचितः	प्रार्थना करनेपर
स	वे
चिरात्	बहुत समय तक
तत् रक्षां	उनकी रक्षा
अकरोत्	करते रहे ॥१५॥

लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचुकुन्दमथाब्रुवन् ।
राजन् विरमतां कृच्छ्राद् भवान् नः परिपालनात् ॥१६॥

लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचुकुन्दं अथ अब्रुवन् राजन् विरमतां कृच्छ्रात् भवान् नः परिपालनात् ॥१६॥

ते	वे (देवता)
स्वःपालं	स्वर्ग रक्षक रूपमें
गुहं	स्वामि
लब्ध्वा	कार्तिकको पाकर
अथ मुचुकुन्दं	फिर मुचुकुन्दसे
अब्रुवन्	बोले
राजन्	राजन् !
नः	हमारे
परिपालनात्	संरक्षणके
कृच्छ्रात्	कष्टसे
विरमतां	निवृत्त होइये ॥१६॥

नरलोके परित्यज्य राज्यं निहतकण्टकम् ।
अस्मान् पालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः ॥१७॥

नरलोके परित्यज्य राज्यं निहतकण्टकं अस्मान् पालयतः वीर कामाः ते सर्व उज्झिताः ॥१७॥

वीर	वीरवर !	**अस्मान्**	हमारा
निहतकण्टकं	निष्कण्टक	**पालयतः**	पालन करते हुए
नरलोके	मनुष्य-लोकका	**ते सर्व**	आपने सब
राज्यं	राज्य	**कामाः**	भोग
परित्यज्य	त्यागकर	**उज्झिताः**	त्याग दिये ॥१७॥

सुता महीष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमन्त्रिणः ।
प्रजाश्च तुल्यकालीया नाधुना सन्ति कालिताः ॥१८॥

सुता महीष्यः भवतः ज्ञातयः अमात्य मन्त्रिणः प्रजाः च तुल्य कालीया न अधुना सन्ति कालिताः ॥१८॥

भवतः सुता	आपके पुत्र,	**च**	तथा
महीष्यः	रानियां,	**तुल्य कालिया**	समकालीना प्रजा
ज्ञातयः	जाति भाई,	**कालिताः**	काल कवलित होकर
अमात्य	सचिव,	**अधुना न सन्ति**	अब नहीं हैं ॥१८॥
मन्त्रिणः	मन्त्री		

कालो बलीयान् बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः ।
प्रजाः कालयते क्रीडन् पशुपालो यथा पशून् ॥१९॥

कालः बलीयान् बलिनां भगवान् ईश्वरः अव्ययः प्रजाः कालयते क्रीडन् पशुपालः यथा पशून् ॥१९॥

बलीयान्	सब बलवानोंसे	**पशून्**	पशुओंको (चराते हैं)
बलिनां	बली	**क्रीडन्**	(वैसे ही काल)
कालः भगवान्	काल भगवान		खेलते हुए
ईश्वरः	ईश्वर और	**प्रजाः**	प्रजाका
अव्ययः	अविनाशी हैं,	**कालयते**	संचालन करता है
यथा पशुपालः	जैसे गोपगण		॥१९॥

वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः ।
एक एवेश्वरस्तस्य भगवान् विष्णुरव्ययः ॥२०॥

वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यं अद्य नः एक एव ईश्वरः तस्य भगवान् विष्णुः अव्ययः ॥२०॥

ते भद्रं	आपका कल्याण हो,	**तस्य**	उस (मोक्ष) के
ऋते कैवल्यं	मोक्षको छोड़कर	**एक**	अकेले
अद्य नः	आज हम लोगोंसे	**अव्ययः**	अविनाशी
वरं वृणीष्व	वरदान मांग लीजिए,	**भगवान् विष्णुः एव ईश्वरः**	भगवान् विष्णु ही स्वामी हैं' ॥२०॥

एवमुक्तः स वै देवानभिवन्द्य महायशाः ।
अशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया ॥२१॥

एवं उक्तः स वै देवान् अभिवन्द्य महायशाः अशयिष्ट गुहा आविष्टः निद्रया देवदत्तया ॥२१॥

एवं उक्तः	ऐसा कहनेपर	**गुहा आविष्टः**	गुफामें प्रवेश करके
स महायशाः	वे महायशस्वी	**देवदत्तया**	देवताओंकी (वरदानमें) दी गयी
वै	निश्चय करके	**निद्रया**	निद्रासे
देवान्	देवताओंको	**अशयिष्ट**	सो गये ॥२१॥
अभिवन्द्य	प्रणाम करके		

स्वापं यातं यस्तु मध्ये बोधयेत्त्वामचेतनः ।
स त्वया दृष्टमात्रस्तु भस्मीभवतु तत्क्षणात् ॥२२॥

स्वापं यातं यः तु मध्ये बोधयेत् त्वां अचेतनः स त्वया दृष्टमात्रः तु भस्मीभवतु तत् क्षणात् ॥२२॥

यः	(देवताओंने कहा) 'जो	**स त्वया**	वह तुम्हारे
तु अचेतनः	भी मूर्ख	**दृष्टमात्रः तु**	देखने मात्रसे ही
स्वापं यातं	सो जानेपर	**तत् क्षणात्**	उसी क्षण
मध्ये त्वां	बीचमें तुमको	**भस्मी भवतु**	भस्म हो जाय' ॥२२॥
बोधयेत्	जगावेगा		

यवने भस्मसान्नीते भगवान् सात्वतर्षभः ।
आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ॥२३॥

यवने भस्मसात् नीते भगवान् सात्वत ऋषभः आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ॥२३॥

यवने	कालयवनके	**धीमते**	बुद्धिमान
भस्मसात् नीते	भस्म कर दिये जाने पर	**मुचुकुन्दाय**	मुकुकुन्दको
		आत्मानं	अपना
भगवान्	भगवान्	**दर्शयामास**	दर्शन कराया
सात्वत ऋषभः	यादव श्रेष्ठने		॥२३॥

तमालोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् ॥२४॥

तं आलोक्य घनश्यामं पीतकौशेय वाससं श्रीवत्स वक्षसं भ्राजत् कौस्तुभेन विराजितम् ॥२४॥

तं घनश्यामं	उन मेघश्याम,	**कौस्तुभेन**	कौस्तुभमणिसे
पीतकौशेय	पीले रेशमी	**विराजितं**	अत्यन्त सुशोभित
वाससं	वस्त्रधारी,	**तं आलोक्य**	उनको देखकर
वक्षसं	छातीपर		॥२३॥
श्रीवत्स भ्राजत्	श्रीवत्स चिन्हसे भूषित		

चतुर्भुजं रोचमानं वैजयन्त्या च मालया ।
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥२५॥

चतुर्भुजं रोचमानं वैजयन्त्या च मालया चारु प्रसन्न वदनं स्फुरत् मकरकुण्डलम् ॥२५॥

चतुर्भुजं	चतुर्भुज	**मालया**	मालासे,
च वैजयन्त्या	तथा वैजयन्ती	**स्फुरत्**	चमकते

मकर कुण्डलं	मकराकृत कुण्डल-वाले	वदनं	मुखसे
		रोचमानं	सुशोभित होते ॥२५॥
चारु प्रसन्न	सुन्दर प्रसन्न		

प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम् ।
अपीच्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम् ॥२६॥

प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुराग स्मित ईक्षणं अपीच्य वयसं मत्तमृगेन्द्र उदार विक्रमम् ॥२६॥

नृलोकस्य	मनुष्य मात्रके लिए	अपीच्य वयसं	नवीन (युवा) अवस्था तथा
प्रेक्षणीयं	दर्शनीय,		
सानुराग	प्रेमपूर्ण	मत्तमृगेन्द्र	मतवाले सिंहके समान
स्मित ईक्षणं	मुस्कानसे देखते,		
उदार	उदार	विक्रमं	गतिवाले ॥२६॥

पर्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः ।
शङ्कितः शनकैः राजा दुर्धर्षमिव तेजसा ॥२७॥

पर्यपृच्छत् महाबुद्धिः तेजसा तस्य धर्षितः शङ्कितः शनकैः राजा दुर्धर्ष इव तेजसा ॥२७॥

तस्य दुर्धर्षं	उनके दुर्धर्ष	महाबुद्धिः	अत्यन्त बुद्धिमान
इव तेजसा	के समान तेजसे	राजा शनकैः	राजा मुचुकुन्दने धीरेसे
शङ्कितः	आशङ्कित होकर		
तेजसा धर्षितः	उस तेजसे प्रतिहत होकर	पर्यपृच्छत्	पूछा ॥२७॥

॥ मुचुकुन्द उवाच ॥

को भवानिह सम्प्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे ।
पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके ॥२८॥

कः भवान् इह सम्प्राप्तः विपिने गिरिगह्वरे पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरसि उरु कण्टके ॥२८॥

इह सम्प्राप्तः	यहां पधारे
भवान् कः	आप कौन हैं ?
पद्मपलाशाभ्यां	कमलदल जैसे
पद्भ्यां	चरणोंसे
उरु कण्टके	बहुत कांटों वाले
गिरिगह्वरे	पर्वतकी गुफा
विपिने	घने वनमें
विचरसि	घूम रहे हैं ॥२८॥

किंस्वित्तेजस्विनां तेजो भगवान् वा विभावसुः ।

सूर्यः सोमो महेन्द्रो वा लोकपालो ऽपरोऽपि वा ॥२९॥

किं स्वित् तेजस्विनां तेजः भगवान् वा विभावसुः सूर्यः सोमः महेन्द्रः वा लोकपालः अपरः अपि वा ॥२९॥

किं स्वित्	कहीं आप
तेजस्विनां तेजः	सब तेजस्वियोंके तेज
वा भगवान्	अथवा भगवान
विभावसुः	अग्निदेव,
सूर्यः सोमः	सूर्य, चन्द्रमा
वा महेन्द्रः	अथवा इन्द्र,
वा अपरः अपि	अथवा दूसरे ही
लोकपालः	लोकपाल हैं ॥२९॥

मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम् ।

यद् बाधसे गुहाध्वान्तं प्रदीपः प्रभया यथा ॥३०॥

मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुष ऋषभ यत् बाधसे गुहा ध्वान्तं प्रदीपः प्रभया यथा ॥३०॥

देवदेवानां	हे देव !
त्रयाणां	त्रिदेवोंमेंसे
त्वां	आपको
पुरुष ऋषभं	पुरुषोत्तम
मन्ये	मानता हूँ
यत् गुहा	क्योंकि इस गुफाके
ध्वान्तं	अन्धकारको

यथा प्रदीपः प्रभया	जैसे दीपककी ज्योति हो	बाधसे	(आप) दूर कर रहे हैं ॥३०॥

शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुङ्गव ।
स्वजन्म कर्म गोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥३१॥

शुश्रूषतां अव्यलीकं अस्माकं नरपुङ्गव स्वजन्म कर्म गोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥३१॥

यदि रोचते	यदि रुचे तो	नरपुङ्गव	पुरुष श्रेष्ठ !
अस्माकं	मुझ	स्वजन्म	अपना जन्म,
शुश्रूषतां	सुननेकी इच्छा वाले से	कर्म वा	कर्म अथवा
अव्यलीकं	निष्कपट भावसे	गोत्रं कथ्यतां	गोत्र बतलाइये ॥३१॥

वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबन्धवः ।
मुचुकुन्द इति प्रोक्तो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ॥३२॥

वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबन्धवः मुचुकुन्द इति प्रोक्तः यौवनाश्व आत्मजः प्रभो ॥३२॥

पुरुषव्याघ्र	पुरुषसिंह	मुचुकुन्द	मुचुकुन्द
प्रभो	प्रभो !	इति प्रोक्तः	इस नामसे कहा जाने वाला
वयं तु ऐक्ष्वाकाः	हम तो ईक्ष्वाकु गोत्रीय	क्षत्रबन्धवः	अधम क्षत्रिय हूँ ॥३२॥
यौवनाश्व	युवनाश्व		
आत्मजः	नन्दन मान्धाताका पुत्र		

चिरप्रजागरश्रान्तो निद्रयोपहतेन्द्रियः ।
शयेऽस्मिन विजने कामं केनाप्युत्थापितोऽधुना ॥३३॥

चिरप्रजागरः श्रान्तः निद्रया अपहृत इन्द्रियः शये अस्मिन् विजने कामं केन अपि उत्थापितः अधुना ॥३३॥

चिरप्रजागरः	बहुत दिनोंतक जागने से
श्रान्तः	थककर
निद्रया	निद्रासे
अपहृत इन्द्रियः	इन्द्रियोंके आहत होनेसे
अस्मिन् विजने	इस निर्जन स्थानमें
कामं शये	इच्छानुसार सो रहा था
अधुना	इसी समय
केन अपि	किसीने तो
उत्थापितः	जगा दिया ॥३३॥

सोऽपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना ।
अनन्तरं भवाञ्छ्रीमान् लक्षितोऽमित्रशातनः ॥३४॥

सः अपि भस्मीकृतः नूनं आत्मीयेन एव पाप्मना अनन्तरं भवान् श्रीमान् लक्षितः अमित्र शातनः ॥३४॥

नूनं आत्मीयेन	निश्चय अपने
पाप्मना एव	पापसे ही
सः अपि	वह भी
भस्मीकृतः	भस्म कर दिया गया
अनन्तरं	इसके पश्चात् ही
अमित्र शातनः	शत्रुनाशक
भवान् श्रीमान्	आप श्रीमान्
लक्षितः	दिखलायी पड़े हैं ॥३४॥

तेजसा तेऽविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः ।
हतौजसो महाभाग माननीयोऽसि देहिनाम् ॥३५॥

तेजसा ते अविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः हत ओजसः महाभाग माननीयः असि देहिनाम् ॥३५॥

महाभाग	महाभाग !
ते अविषह्येण	आपके असह्य
तेजसा	तेजसे
हत ओजसः	शक्तिहीन होनेसे
भूरि द्रष्टुं	(आपकी ओर) बहुत देखनेमें

शक्नुमः	समर्थ नहीं हूँ,	**माननीयः असि**	आप सम्मान्य हो
देहिनां	शरीर धारियोंके लिए		॥३५॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

एवं सम्भाषितो राज्ञा भगवान् भूतभावनः ।
प्रत्याह प्रहसन् वाण्या मेघनादगभीरया ॥३६॥

एवं सम्भाषितः राज्ञा भगवान् भूतभावनः प्रत्याह प्रहसन् वाण्या मेघनाद गभीरया ॥३६॥

राज्ञा	राजाके द्वारा	**गभीरया**	गंभीर
एवं सम्भाषितः	ऐसा कहने पर	**वाण्या**	वाणीसे
भूतभावनः	प्राणियोंके पालक	**प्रहसन् प्रत्याह**	हँसकर उत्तर देते
भगवान्	भगवान		बोले ॥३६॥
मेघनाद	मेघध्वनिके समान		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रशः ।
न शक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि ॥३७॥

जन्म कर्म अभिधानानि सन्ति मे अङ्ग सहस्रशः न शक्यन्ते अनुसंख्यातुं अनन्तत्वात् मया अपिहि ॥३७॥

अङ्ग	प्रियवर !	**सहस्रशः सन्ति**	हजारों हैं
मे जन्म कर्म	मेरे जन्म, कर्म,	**हि अनन्तत्वात्**	क्योंकि अनन्त होने के कारण
अभिधानानि	नाम		

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

मया अपि	मेरे द्वारा भी	**शक्यन्ते न**	शंका नहीं हैं ॥३७॥
अनुसंख्यातुं	उनको पूरा गिन देना		

क्वचिद् रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः ।
गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥३८॥

क्वचित् रजांसि विममे पार्थिवानि उरुजन्मभिः गुण कर्म अभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥३८॥

क्वचित्	कभी	**अभिधानानि**	नामों
उरुजन्मभिः	बहुत जन्मोंमें कोई	**जन्मानि**	जन्मोंको
पार्थिवानि	पृथ्वीके	**कर्हिचित् न**	कभी भी (गिन)
रजांसि	धूलि कणोंको		नहीं सकता
विममे	गिन भी लें, किन्तु		॥३८॥
मे गुण कर्म	मेरे गुणों, कर्मों,		

कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप ।
अनुक्रमन्तो नैवान्तं गच्छन्ति परमर्षयः ॥३९॥

कालत्रय उपपन्नानि जन्म कर्माणि मे नृप अनुक्रमन्तः न एव अन्तं गच्छन्ति परम ऋषयः ॥३९॥

नृप	राजन् !	**मे जन्म**	मेरे जन्मों-
परम ऋषयः	परमर्षिगण	**कर्माणि**	कर्मोंको
कालत्रय	त्रिकालोंमें	**अनुक्रमन्तः**	वर्णन करते
उपपन्नानि	सम्पन्न हुए	**अन्तं न एव**	उनका अन्त नहीं ही
		गच्छन्ति	पाते हैं ॥३९॥

तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृणुष्व गदतो मम ।
विज्ञापितो विरिञ्चेन पुराहं धर्मगुप्तये ।
भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ॥४०॥

तथा अपि अद्यतनानि अङ्ग शृणुष्व गदतः मम विज्ञापितः विरिञ्चेन पुरा अहं धर्म गुप्तये भूमेः भारायमाणानां असुराणां क्षयाय च ॥४०॥

अङ्ग	प्रियवर
तथा अपि	ऐसा होने पर भी
अद्यतनानि	इस समयके
मम गदतः	मेरे (जन्म कर्मादि) बतलाता हूँ
शृणुष्व	सुनो !
पुरा विरिञ्चेन	पहिले ब्रह्माजी द्वारा
धर्म गुप्तये	धर्मकी रक्षाके लिए
च भूमेः	तथा पृथ्वीके
भारायमाणानां	भार बने
असुराणां	असुरोंके
क्षयाय	विनाशके लिए
अहं विज्ञापितः	मैं सूचित किये जाने पर ॥४०॥

अवतीर्णो यदुकुले गृह आनकदुन्दुभेः ।
वदन्ति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम् ॥४१॥

अवतीर्णः यदुकुले गृह आनकदुन्दुभेः वदन्ति वासुदेव इति वसुदेव सुतं हि माम् ॥४१॥

यदुकुले	यदुकुलमें
आनकदुन्दुभेः	आनकदुन्दुभिके
गृह अवतीर्णः	घरमें अवतार लिये
हि वसुदेव सुतं	क्योंकि वसुदेवका पुत्र हूँ
मां वासुदेव इति	मुझे वासुदेव ऐसा
वदन्ति	कहते हैं ॥४१॥

कालनेमिर्हतः कंसः प्रलम्बाद्याश्च सद्द्विषः ।
अयं च यवनो दग्धो राजंस्ते तिग्मचक्षुषा ॥४२॥

कालनेमिः हतः कंसः प्रलम्ब आद्याः च सत् द्विषः अयं च यवनः दग्धः राजन् ते तिग्म चक्षुषा ॥४२॥

राजन्	राजन् !
कालनेमिः	कालनेमि राक्षस
कंसः हतः	जो कंस था, मारा गया,
च सत् द्विषः	तथा सत्पुरुषोंसे शत्रुता रखने वाले
प्रलम्ब आद्याः	प्रलम्ब आदि भी

ते तिग्मचक्षुषा	तुम्हारी तीक्ष्ण दृष्टि से	**च दग्धः**	भी जला दिया गया ॥४२॥
अयं यवनः	यह कालभवन		

सोऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः ।
प्रार्थितः प्रचुरं पूर्वं त्वयाहं भक्तवत्सलः ॥४३॥

सः अहं तव अनुग्रह अर्थं गुहां एतां उपागतः प्रार्थितः प्रचुरः पूर्वं त्वया अहं भक्तवत्सलः ॥४३॥

पूर्वं त्वया	पहिले तुम्हारे द्वारा	**तव**	तुम पर
अहं	मैं	**अनुग्रह अर्थं**	कृपा करनेके लिए
भक्तवत्सलः	भक्तवत्सल	**एतां गुहां**	इस गुफामें
प्रचुरः प्रार्थितः	बहुत प्रार्थित हुआ हूँ	**उपागतः**	(तुम्हारे) समीप आया हूँ ॥४३॥
सः अहं	वही मैं		

वरान् वृणीष्व राजर्षे सर्वान् कामान् ददामि ते ।
मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम् ॥४४॥

वरान् वृणीष्व राजर्षे सर्वान् कामान् ददामि ते मां प्रपन्नः जनः कश्चित् न भूयः अर्हति शोचितुम् ॥४४॥

राजर्षे	राजर्षि !	**कश्चित् जनः**	कोई पुरुषको
वरान् वृणीष्व	वरदान मांगो,	**भूयः शोचितुं**	फिर शोक
ते सर्वान्	तुमको सब	**न अर्हति**	नहीं करना चाहिए ॥४४॥
कामान् ददामि	कामनायें दूँगा,		
मां प्रपन्नः	मेरे शरणागत		

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तस्तं प्रणम्याह मुचुकुन्दो मुदान्वितः ।
ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन् ॥४५॥

इति उक्तः तं प्रणम्य आह मुचुकुन्दः मुद अन्वितः ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यं अनुस्मरन् ॥४५॥

इति उक्तः	ऐसा कहे जाने पर	**ज्ञात्वा**	जानकर
गर्गवाक्यं	गर्गाचार्यकी बातको	**मुद अन्वितः**	प्रसन्न होकर
मुचुकुन्दः	राजा मुचुकुन्द	**तं प्रणम्य**	उनको प्रणाम करके
अनुस्मरन्	फिर स्मरण करके	**आह**	बोला ॥४५॥
देवं नारायणं	अपने आराध्य देव नारायणको		

॥ मुचुकुन्द उवाच ॥

विमोहितोऽयं जन ईश मायया
त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक् ।
सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते
गृहेषु योषित् पुरुषश्च वञ्चितः ॥४६॥

विमोहितः अयं जनः ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजति अनर्थदृक् सुखाय दुःख प्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित् पुरुषः च वञ्चितः ॥४६॥

ईश	सर्वेश !	**योषित् पुरुषः**	ये स्त्री-पुरुष
त्वदीयया	आपकी	**वञ्चितः**	(परस्पर) ठगे गये
मायया	मायासे	**सुखाय**	सुख पानेके लिए
विमोहितः	मोहित हुए	**दुःख प्रभवेषु**	दुःख उत्पन्न करने वाले
अयं जनः	ये संसारके लोग	**गृहेषु च**	घरोंमें ही
त्वां न भजति	आपका भजन नहीं करते	**सज्जते**	आसक्त होते हैं ॥४६॥
अनर्थदृक्	इनकी दृष्टि अनर्थ-रूप संसार पर रहती है		

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं
कथञ्चिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ ।
पादारविन्दं न भजत्यसन्मति-
र्गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः ॥४७॥

लब्ध्वा जनः दुर्लभं अत्र मानुषंकथञ्चित् अव्यङ्गम् अयत्नतः अनघ पादारविन्दं न भजति असत् मतिः गृह अन्धकूपे पतितः यथा पशुः ॥४७॥

अनघ	निष्पाप प्रभु !	**यथा पशुः**	पशुके समान
जनः अत्र	मनुष्य इस संसारमें	**गृह अन्धकूपे**	गार्हस्थ्यरूपी अन्धे कुएँमें
दुर्लभं	दुर्लभ	**पतितः**	गिरकर
अव्यङ्गम्	सर्वाङ्गपूर्ण	**पादारविन्दं**	(आपके) चरणके कमलोंका
मानुषं	मनुष्य जन्म	**भजति न**	भजन नहीं करता ॥४७॥
अयत्नतः	बिना प्रयत्नके		
लब्ध्वा	पाकरभी		
असत् मतिः	असत् संसार में बुद्धि लगी होनेसे		

ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो
राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः ।
मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभू-
ष्वासज्जमानस्य दुरन्तचिन्तया ॥४८॥

मम एष कालः अजित निष्फलः गतः राज्यश्रिया उन्नद्धमदस्य भूपतेः मर्त्य आत्मबुद्धेः सुत दार कोश भूषु आसज्जमानस्य दुरन्त चिन्तया ॥४८॥

अजित	अजित !	**उन्नद्धमदस्य**	मदोन्मत्त हुए
राज्यश्रिया	राज्यलक्ष्मीके कारण	**भूपतेः**	मुझ राजाका

मर्त्य आत्मबुद्धेः	मरणधर्मा देहको आत्मा समझकर
सुत दार कोश	पुत्र, स्त्री, धन
भूषु	भूमिमें
आसज्जमानस्य	आसक्त होकर
दुरन्त चिन्तया	दुरन्त चिन्तामें पड़ा
मम एष कालः	मेरा इतना समय
निष्फलः गतः	व्यर्थ ही बीत गया ॥४८॥

कलेवरेऽस्मिन् घटकुड्यसन्निभे
निरूढमानो नरदेव इत्यहम् ।
वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपै-
र्गां पर्यटंस्त्वागणयन् सुदुर्मदः ॥४९॥

कलेवरे अस्मिन् घट कुड्य सन्निभे निरूढमानः नरदेव इति अहं वृतः रथ इभ अश्व पदाति अनीकपैः गां पर्यटन् त्वा अगणयन् सुदुर्मदः ॥४९॥

अस्मिन् घट कुड्य	इस घड़े या दीवारके
सन्निभे कलेवरे	समान शरीरमें
अहं नरदेव इति	'मैं राजा हूँ' ऐसा
निरूढमानः	दृढ़ अभिमान करके
त्वा अगणयन्	आपकी अवहेलना करके
सुदुर्मदः	अत्यन्त घमण्डमें भरा
रथ इभ	रथ, हाथी,
अश्व पदाति	घोड़े, पैदलोंके
अनीकपैः वृतः	सेनापतियोंसे घिरा
गां पर्यटन्	पृथ्वीपर घूमता फिरता था ॥४९॥

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया
प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे
क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥५०॥

प्रमत्तं उच्चैः इतिकृत्य चिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसं त्वं अप्रमत्तः सहसा अभिपद्यसे क्षुत् लेलिहानः अहिः इव आखुं अन्तकः ॥५०॥

इतिकृत्य	'ऐसा करना है'
चिन्तया	इस चिन्ता में
उच्चैः प्रमत्तं	अत्यन्त असावधान,
प्रवृद्धलोभं	लोभ बढे हुए
विषयेषु लालसं	विषय भोगकी इच्छा वाले (के पास)
अप्रमत्तः	नित्य सावधान
त्वं अन्तकः	आप काल भगवान्
आखुं	चूहेके पास
क्षुत् लेलिहानः	भूखसे जीभ लपलपाते
अहिः इव	सर्पके समान
सहसा	अचानक
अभिपद्यसे	आकर पकड़ लेते हैं ॥५०॥

पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्
मतङ्गजैर्वा नरदेवसंज्ञितः ।
स एव कालेन दुरत्ययेन ते
कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥५१॥

पुरा रथैः हेमपरिष्कृतैः चरन् मतङ्गजैः वा नरदेव संज्ञितः स एव कालेन दुरत्ययेन ते कलेवरः विट् कृमि भस्म संज्ञितः ॥५१॥

पुरा	पहिले
नरदेव संज्ञितः	(जो शरीर) राजा कहलाता था,
हेमपरिष्कृतैः	स्वर्ण-मण्डित
रथैः वा	रथों पर या
मतङ्गजैः	हाथियों पर
चरन्	(चढ़कर) घूमता था,
स एव	वही (शरीर)
ते दुरत्ययेन	आप दुष्पार
कालेन	कालके द्वारा
विट् कृमि भस्म	विष्ठा, कीड़ा या भस्म
संज्ञितः	कहलाने लगा ॥५१॥

निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो
वरासनस्थः समराजवन्दितः ।
गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां
क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते ॥५२॥

निर्जित्य दिक् चक्रं भूत विग्रहः वर आसनस्थः समराज वन्दितः गृहेषु मैथुन्य सुखेषु योषितां क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते ॥५२॥

ईश	स्वामी ! (जीवनमें भी)
दिक् चक्रं	दिशा-मण्डलको
निर्जित्य	जीतकर
भूत विग्रहः	युद्धको भूत कालिक बना चुका,
वर आसनस्थ	श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठकर
समराज	अपने समान राजाओं द्वारा
वन्दितः	वन्दित होता है,
पूरुष	वह पुरुष भी
मैथुन्य सुखेषु	मैथुन का सुख देने वाला
गृहेषु	गृहस्थ धर्ममें
योषितां	स्त्रियोंके
क्रीडामृगः	खेलनेका (पालतू) मृग
नीयते	बना दिया जाता है ॥५२॥

करोति कर्माणि तपस्सुनिष्ठितो
निवृत्तभोगस्तदपेक्षया ददत् ।
पुनश्च भूयेयमहं स्वराडिति
प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ॥५३॥

करोति कर्माणि तपः सुनिष्ठितः निवृत्त भोगः तत् अपेक्षया ददत् पुनः च भूयेयं अहं स्वराट् इति प्रवृद्धतर्षः न सुखाय कल्पते ॥५३॥

तत् अपेक्षया	उन्हीं (सुखों)की अपेक्षासे
अहं पुनः च	मैं फिरसे (अगले जन्ममें) भी
स्वराट् भूयेयं	चक्रवर्ती सम्राट हो जाऊँ,
इति प्रवृद्धतर्षः	इस प्रकार बढ़ी हुई तृष्णासे
कर्माणि करोति	अनेक कर्म करता है,
निवृत्त भोगः	भोगोंका त्याग करके
तपः सुनिष्ठितः	तपस्यामें लगाता है,
ददत्	दान करता है, किन्तु
सुखाय न कल्पते	सुख पाने योग्य (कभी) नहीं होता ॥५३॥

सदापवर्गो भ्रमतो यदा भवे-
ज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।
सत्संगमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥५४॥

भव अपवर्गः भ्रमतः यदा भवेत् जनस्य तर्हि अच्युत सत् समागमः सत्सङ्गमः यर्हि तत् एव सत्गतौ पर अवर ईशे त्वयि जायते मतिः ॥५४॥

अच्युत	अच्युत !
यदा भव भ्रमतः	जब संसारमें भटकते हुए
जनस्य	मनुष्यके
अपवर्गः	मोक्ष (का समय)
भवेत्	होता है
तर्हि सत्	तभी (उसे)
समागमः	सत्सङ्ग मिलता है
यर्हि सतसङ्गमः	जब सत्सङ्ग मिलता है
तत् एव	तभी
सत्गतौ	सत्पुरुषोंके आश्रय
पर अवर ईशे	कारण-कार्य सबके स्वामी
त्वयि मतिः	आपमें चित्त
जायते	लगाता है ॥५४॥

मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो
राज्यानुबन्धापगमो यदृच्छया ।
यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्यया
वनं विविक्षद्भिरखण्डभूमिपैः ॥५५॥

मन्ये मम अनुग्रह ईश ते कृतः राज्य अनुबन्ध अपगमः यदृच्छया यः प्रार्थ्यते साधुभिः एक चर्यायां वनं विविक्षद्भिः अखण्ड भूमिपैः ॥५५

ईश	स्वामी
यदृच्छया	अपने आप
राज्यअनुबन्ध	राज्य-बन्धनका
अपगमः	छूटजाना
मम ते कृतः	मुझ पर आपकी की गयी
अनुग्रह मन्ये	कृपा मानता हूँ
यः साधुभिः	जिसकी सज्जन

अखण्ड भूमिपैः	चक्रवर्ती राजा लोग	एक चर्यया	निश्चित दिनचर्या
वनं	(तपके लिए) वनमें		से (निरन्तर)
विविक्षद्भिः	जानेकी इच्छासे	प्रार्थ्यते	प्रार्थना किया करते हैं ॥५५॥

न कामयेऽन्यं तव पादसेवना-
दकिञ्चनप्रार्थ्यतमाद् वरं विभो ।
आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे
वृणीत आर्यो वरमात्मबन्धनम् ॥५६॥

न कामये अन्यं तव पादसेवनात् अकिञ्चन प्रार्थ्यतमात् वरं विभो आराध्य कः त्वां हि अपवर्गदं हरे वृणीत आर्यः वरं आत्मबन्धनम् ॥५६॥

विभो हरे	प्रभो ! श्री हरि	हि त्वां अपवर्गदं	क्योंकि आप मोक्ष-दाताको
अकिञ्चन	सर्वथा निष्परिग्रहजनोंके	आराध्य	प्रसन्न करके
प्रार्थ्यतमात्	परम प्रार्थनीय	कः आर्यः	कौन श्रेष्ठ पुरुष
तव पादसेवनात्	आपकी चरण-सेवा से	आत्मबन्धनं	अपनेको बांधनेवाले
अन्यं वरं	भिन्न दूसरा वरदान	वरं वृणीत	वरदान मांगेगा ॥५६॥
न कामये	नहीं चाहता		

तस्माद् विसृज्याशिष ईश सर्वतो
रजस्तमःसत्त्वगुणानुबन्धनाः ।
निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं
त्वां ज्ञाप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥५७॥

तस्मात् विसृज्य आशिष ईश सर्वतः रजः तमः सत्त्वगुण अनुबन्धनाः निरञ्जनं निर्गुणं अद्वयं परं त्वां ज्ञाप्तिमात्रं पुरुषं व्रजामि अहम् ॥५७॥

तस्मात् ईश	इसलिए स्वामी !
रजः तमः	रजोगुण, तमोगुण,
सत्त्वगुण	सत्त्वगुणोंसे
अनुबन्धनाः	सम्बन्धित
सर्वतः आशिष	सब ओरकी कामनाएँ
विसृज्य	त्यागकर
त्वां निरञ्जनं	आप निरंजन
निर्गुणं अद्वयं	निर्गुण, अद्वितीय
ज्ञप्तिमात्रं	केवल ज्ञान स्वरूप
परं पुरुषं	परम पुरुषकी
अहं व्रजामि	मैं शरण लेता हूँ ॥५७॥

चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापै-
रवितृषषडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथञ्चित् ।
शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्म-
न्नभयमृतमशोकं पाहि माऽऽपन्नमीश ॥५८॥

चिरं इह वृजिन आर्तः तप्यमानः अनुतापैः अवितृष षट् अमित्रः अलब्ध शान्तिः कथञ्चित् शरणद सम उपेतः त्वत् पदाब्जं पर आत्मन् अभयं अमृतं अशोकं पाहि मा आपन्नं ईश ॥५८॥

इह चिरं	इस संसारमें बहुत समयसे
वृजिन आर्तः	सङ्कट व्याकुल,
अनुतापैः	उनके संतापसे निरन्तर
तप्यमानः	संतप्त होता
अवितृष	सदा तृष्णायुक्त
षट् अमित्रः	छः (पाँच ज्ञानेन्द्रिय और मन) रूपी शत्रुओंसे
अलब्ध शान्तिः	कभी शान्ति न पाकर
शरणद	हे शरणदाता !
पर आत्मन्	परमात्मा !
कथञ्चित्	किसी प्रकार
त्वत् अभयं	आपके निर्भय,
अमृतं अशोकं	अमृत स्वरूप शोक-हीन
पदाब्जं	चरण-कमलोंके
सम उपेतः	समीप आ गया हूँ
ईश मा आपन्नं	स्वामी ! मुझ शरणागतकी
पाहि	रक्षा कीजिए ॥५८॥

॥ भगवानुवाच ॥

सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता ।
वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः ॥५९

सार्वभौम महाराज मतिः ते विमल ऊर्जिता वरैः प्रलोभितस्य अपि न कामैः विहता यतः ॥५९॥

सार्वभौम	चक्रवर्ती
महाराज	सम्राट् !
ते विमल मतिः	आपकी निर्मल बुद्धि
ऊर्जिता	तेजस्विनी है,
यतः वरैः	क्योंकि वरदानोंका
प्रलोभितस्य	प्रलोभन देने पर
अपि	भी
कामैः विहता न	कामाओंसे दबी नहीं ॥५९॥

प्रलोभितो वरैर्यत्त्वमप्रमादाय विद्धि तत् ।
न धीर्मय्येकभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते क्वचित् ॥६०॥

प्रलोभितः वरैः यः त्वं अप्रमादाय विद्धि तत् न धीः मयि एक भक्तानां आशीभिः भिद्यते क्वचित् ॥६०॥

यः त्वं	जो तुम
वरैः प्रलोभितः	वरदानों द्वारा ललचाये गये
तत् अप्रमादाय	उसे सावधान करने के लिए
विद्धि	समझो (क्योंकि)
मयि एक	मेरे अनन्य
भक्तानां	भक्तोंकी
धीः क्वचित्	बुद्धि कभी भी
आशीभिः	कामनाओंसे
भिद्यते न	विद्ध नहीं होती ॥६०॥

युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ।
अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥६१॥

युञ्जानानां अभक्तानां प्राणायामादिभिः मनः अक्षीण वासनं राजन् दृश्यते पुनः उत्थितम् ॥६१॥

राजन्	राजन् !
प्राणायामादिभिः	प्राणायाम आदि द्वारा
मनः	मनको
युञ्जानानां	संयमित करनेवाले
अभक्तानां	भक्तिहीन लोगोंकी
अक्षीण वासनं	नष्ट न हुई वासनाएँ
पुनः उत्थितं	फिर जाग गयी
दृश्यते	दीखती हैं ॥६१॥

विचरस्व महीं कामं मय्यावेशितमानसः ।
अस्त्वेव नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥६२॥

विचरस्व महीं कामं मयि आवेशित मानसः अस्ति एव नित्यदा तुभ्यं भक्तिः मयि अनपायिनी ॥६२॥

मयि मानसः	मुझमें चित्त
आवेशित	लगाकर
कामं महीं	इच्छानुसार पृथ्वी पर
विचरस्व	विचरण करो
नित्यदा तुभ्यं	सदा तुम्हारी
अनपायिनी	निर्बाध
भक्तिः	भक्ति
मयि अस्ति एव	मुझमें है ही ॥६२॥

क्षात्रधर्मस्थितो जन्तून् न्यवधीर्मृगयादिभिः ।
समाहितस्तत्तपसा जह्यघं मदुपाश्रयः ॥६३॥

क्षात्रधर्म स्थितः जन्तून् न्यवधीः मृगया आदिभिः समाहितः तत् तपसा जहि अघं मत् उपाश्रयः ॥६३॥

क्षात्रधर्म	क्षत्रिय धर्म पर
स्थितः	आरूढ़ होकर
मृगया	आखेट
आदिभिः	आदिके द्वारा
जन्तून् न्यवधीः	प्राणियोंको मारा है
तत् अघं	वह पाप
मत् उपाश्रयः	मेरा आश्रय लेकर
तपसा जहि	तपस्यासे नष्ट कर दो ॥६३॥

जन्मन्यनन्तरे राजन् सर्वभूतसुहृत्तमः ।
भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥६४॥

जन्मनि अनन्तरे राजन् सर्वभूत सुहृत् तमः भूत्वा द्विजवरः त्वं वै मां उपेष्यसि केवलम् ॥६४॥

राजन्	राजन् !
अनन्तरे जन्मनि	इसके बादके जन्म में
सर्वभूत	सब प्राणियोंके
सुहृत् तमः	परम सुहृद
त्वं वै	तुम निश्चय
द्विजवरः भूत्वा	श्रेष्ठ ब्राह्मण होकर
मां केवलं	मुझ अद्वितीयको
उपेष्यसि	प्राप्त होंगे ॥६४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे मुचुकुन्दस्तुतिर्नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥६४॥

अथ द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः

॥ श्रीशक उवाच ॥

इत्थं सोऽनुगृहीतोऽङ्ग कृष्णेनेक्ष्वाकुनन्दनः ।
तं परिक्रम्य संनम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ १ ॥

इत्थं सः अनुगृहीतः अङ्ग कृष्णेन इक्ष्वाकुनन्दनः तं परिक्रम्य सन्नम्य निः चक्राम गुहामुखात् ॥१॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	तं परिक्रम्य	उनकी परिक्रमा करके
इत्थं सः	इस प्रकारवे	सन्नम्य	प्रणाम करके
इक्ष्वाकुनन्दनः	इक्ष्वाकु-गोत्रीय मुचुकुन्द	गुहामुखात्	गुफा द्वार से
कृष्णेन	श्रीकृष्णचन्द्रकी	निः चक्राम	बाहर निकले ॥१॥
अनुगृहीतः	कृपा पाकर		

स वीक्ष्य क्षुल्लकान् मर्त्यान् पशून् वीरुद्वनस्पतीन् ।
मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २ ॥

स वीक्ष्य क्षुल्लकान् मर्त्यान् पशून् वीरुत् वनस्पतीन् मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशम् उत्तराम् ॥२॥

स मर्त्यान्	उन्होंने मनुष्योंको	कलियुगं	कलियुगको
पशून् वीरुत्	पशुओं, पौधों,	प्राप्तं मत्वा	आया जानकर
वनस्पतीन	वृक्षोंको	उत्तरां दिशं	उत्तर दिशामें
क्षुल्लकान्	बहुत छोटे	जगाम	चले गये ॥२॥
वीक्ष्य	देखकर		

तपःश्रद्धायुतो धीरो निःसङ्गो मुक्तसंशयः ।
समाधाय मनः कृष्णे प्राविशद् गन्धमादनम् ॥ ३ ॥

तपः श्रद्धायुतः धीरः निःसङ्गः मुक्तसंशयः समाधाय मनः कृष्णे प्राविशत् गन्धमादनम् ॥३॥

तपः श्रद्धायुतः	तपमें श्रद्धासे युक्त,	**समाधाय**	भली प्रकार लगाकर
धीरः	धैर्यशाली,		
मुक्तसंशयः	संशयोंसे छूटे	**गन्धमादनं**	गन्धमादन पर्वतमें
निःसङ्गः	अनासक्त,	**प्राविशत्**	प्रवेश कर गये
कृष्णे मनः	श्री कृष्णमें मनको		॥३॥

बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् ।
सर्वद्वन्द्वसहः शान्तस्तपसाऽऽराधयद्धरिम् ॥ ४ ॥

बदरि आश्रमं आसाद्य नर नारायण आलयं सर्वद्वन्द्व सहः शान्तः तपसा आराधयत् हरिम् ॥४॥

नर नारायण	नर-नारायणके	**शान्तः**	शान्त रहकर
आलयं	निवास आश्रम	**तपसा हरिम्**	तपस्या द्वारा श्रीहरिकी
बदरि आश्रमम्	बदरिकाश्रम		
आसाद्य	पहुँच कर	**आराधयत्**	आराधना करने लगे
सर्वद्वन्द्व सहः	सब (शीत-उष्ण) द्वन्द्वोंको सहते		॥४॥

भगवान् पुनरावव्रज्य पुरीं यवनवेष्टिताम् ।
हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ॥ ५ ॥

भगवान् पुनः आवव्रज्य पुरीं यवनवेष्टितां हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ॥५॥

यवनवेष्टितां	यवनोंसे घिरी हुई	**म्लेच्छबलं**	म्लेच्छ-सेनाको
पुरीं पुनः	मथुरा पुरीमें फिर	**हत्वा तदीयं धनं**	मारकर उनका धन
आव्रज्य	लौटकर	**द्वारकां निन्ये**	द्वारिकाको चले
भगवान्	भगवान्		॥५॥

नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः ।
आजगाम जरासंधस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥ ६ ॥

नीयमाने धने गोभिः नृभिः च अच्युत चोदितैः आजगाम जरासन्धः त्रयः विंशति अनीकपः ॥६॥

अच्युत चोदितैः	श्रीकृष्ण द्वारा प्रेरित	**त्रयः विंशति**	तेइस
धने गोभिः	धनको बैलों	**अनीकपः**	अक्षौहिणी सेनाका स्वामी
च नृभिः	तथा मनुष्यों द्वारा	**जरासन्धः**	जरासन्ध
नीयमाने	ले जाते समय	**आजगाम**	आ पहुँचा ॥६॥

विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ ।
मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन् दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥ ७ ॥

विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ मनुष्य चेष्टां आपन्नौ राजन् दुद्रुवतुः द्रुतम् ॥७॥

राजन्	राजन् !	**मनुष्य चेष्टां**	मनुष्य-लीला
रिपुसैन्यस्य	शत्रु सेनाका	**आपन्नौ**	करते हुए
वेगरभसं	प्रबल वेग	**माधवौ**	श्रीकृष्ण-बलराम
विलोक्य	देखकर	**द्रुतं दुद्रुवतुः**	वेगसे भागे ॥७॥

विहाय वित्तं प्रचुरमभीतौ भीरुभीतवत् ।
पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेरतुर्बहुयोजनम् ॥ ८ ॥

विहाय वित्तं प्रचुरं अभीतौ भीरु भीतवत् पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेरतुः बहुयोजनम् ॥८॥

प्रचुरं वित्तं	बहुत अधिक धन	पद्मपलाशाभ्यं	कमलदल जैसे
विहाय अभीतो	छोड़कर बिना डरे ही	पद्भ्यां	चरणोंसे
		बहुयोजनं	कई योजन
भीरु भीतवत्	डरपोकके समान डरे हुएसे	चेरतुः	(भागे) चले गये ॥८॥

पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन् बली ।
अन्वधावद् रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ॥ ९ ॥

पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन् बली अनु अधावत् रथ अनीकैः ईशयोः अप्रमाणवित् ॥९॥

तौ पलायमानौ	उन दोनोंको भागते	अप्रमाण वित्	प्रभाव न जाननेके कारण
दृष्ट्वा बली	देखकर बलवान		
मागधः	मगधराज	रथ अनीकैः	रथ-सेना लेकर
प्रहसन्	हँसने लगा,	अनु अधावत्	(उनके) पीछे दौड़ा ॥९॥
ईशयोः	उन सर्वसमर्थोंका		

प्रद्रुत्य दूरं संश्रान्तौ तुङ्गमारुहतां गिरिम् ।
प्रवर्षणाख्यं भगवान् नित्यदा यत्र वर्षति ॥१०॥

प्रद्रुत्य दूरं संश्रान्तौ तुङ्गम् आरुहतां गिरिं प्रवर्षण आख्यं भगवान् नित्यदा यत्र वर्षति ॥१०॥

दूरं प्रद्रुत्य	दूर तक दौड़कर	वर्षति	वर्षा होती थी उस
संश्रान्तौ	थककर	प्रवर्षण आख्यं	प्रवर्षण नामक
भगवान्	भगवान	तुङ्ग गिरिं	उच्च पर्वत पर
यत्र नित्यदा	जहाँ सदा	आरूहतां	चढ़ गये ॥१०॥

गिरौ निलीनावाज्ञाय नाधिगम्य पदं नृप ।
ददाह गिरिमेधोभिः समन्तादग्निमुत्सृजन् ॥११॥

गिरौ निलीनाः आज्ञाय न अधिगम्य पदं नृप ददाह गिरिं एधः भिः समन्तात् अग्नि उत्सृजन् ॥११॥

नृप	राजन् !	**एधः भिः**	सूखे ईधन (एकत्र) में
गिरौ निलीनाः	पर्वतमें छिप गये	**अग्नि उत्सृजन्**	अग्नि डालकर
आज्ञाय	जानकर	**गिरिं ददाह**	पर्वतको फूँक दिया ॥११॥
पदं न अधिगम्य	उनका स्थान (ढूढ़कर) न पाकर		
समन्तात्	चारो ओर		

तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटादुभौ ।
दशैकयोजनोत्तुङ्गान्निपेततुरधो भुवि ॥१२॥

तत उत्पत्य तरसा दह्यमान तटात् उभौ दश एक योजन उत्तुङ्गात् निपेततुः अधः भुवि ॥१२॥

तत दह्यमान	तब जलते हुए	**उभौ तरसा**	दोनों भाई वेगसे
तटात्	किनारों वाले	**उत्पत्य**	उछलकर
दश एक योजन	ग्यारह भोजन	**अधः भुवि**	नीचे पृथ्वी पर
उत्तुङ्गात्	ऊँचे (पर्वत)से	**निपेततुः**	कूद पड़े ॥१२॥

अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ ।
स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप ॥१३॥

अलक्ष्यमाणौ रिपुणा स अनुगेन यदु उत्तमौ स्वपुरं पुनः आयातौ समुद्र परिखां नृप ॥१३॥

नृप	राजन् !	**समुद्र परिखां**	समुद्रकी खाईं वाले
रिपुणा	शत्रुके द्वारा		
अलक्ष्यमाणौ	बिना दिखायी दिये	**स्वपुरं**	अपने नगरमें
यदु उत्तमौ	वे यादव श्रेष्ठ	**पुनः आयातौ**	फिर आ गये ॥१३॥
स अनुगेन	अनुचरोंके साथ		

सोऽपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ ।
बलमाकृष्य सुमहन्मगधान् मागधो ययौ ॥१४॥

सः अपि दग्धाः इति मृषा मन्वानः बल केशवौ बलं आकृष्य सुमहत् मगधान् मागधः ययौ ॥१४॥

सः मागधः अपि	वह मगधराज भी	**सुमहत् बलं**	उस बड़ी सेनाको
बल केशवौ	'बलराम-श्री कृष्ण'	**आकृष्य**	लौटाकर
दग्धाः इति	जल गये' ऐसा	**मगधान् ययौ**	मगध देश चल गया ॥१४॥
मृषा मन्वानः	झूठे ही मानता हुआ		

आनर्त्ताधिपतिः श्रीमान् रैवतो रेवतीं सुताम् ।
ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद् बलायेति पुरोदितम् ॥१५॥

आनर्त्त अधिपतिः श्रीमान् रैवत रेवतीं सुतां ब्रह्मणा चोदितः प्रादात् बलाय पुरा इति उदितम् ॥१५॥

पुरा उदितम्	यह पहिले कह चुके हैं कि	**ब्रह्मणा चोदितः**	ब्रह्माजी द्वारा प्रेरित होकर
आनर्त्त	आनर्त देशके	**इति**	अन्ततः
अधिपतिः	स्वामी	**सुतां रेवतीं**	अपनी पुत्री रेवती
श्रीमान् रेवतः	श्रीमान् रेवतने	**बलाय प्रादात्**	बलरामजीको दे दी ॥१५॥

भगवानपि गोविन्द उपयेमे कुरूद्वह ।
वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयंवरे ॥१६॥

भगवान् अपि गोविन्दः उपयेमे कुरूद्वह वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियः मात्रां स्वयम्वरे ॥१६॥

कुरूद्वह	कुरूवंश पालक परीक्षित !	**भगवान्**	भगवान
		गोविन्दः अपि	गोविन्दने भी

श्रियः मात्रां	लक्ष्मीकी अंशावतार	**वैदर्भीं**	वैदर्भीको
भीष्मकसुतां	राजा भीष्मककी	**स्वयम्वरे**	स्वयंवरमें
	पुत्री	**उपयेमे**	विवाहा ॥१६॥

प्रमथ्य तरसा राज्ञः शाल्वादींश्चैद्यपक्षगान् ।
पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥१७॥

प्रमथ्य तरसा राज्ञः शाल्व आदीन् चैद्य पक्षगान् पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यपुत्रः सुधां इव ॥१७॥

चैद्य पक्षगान्	शिशुपालके पक्षपाती	**पश्यतां**	देखते हुए
शाल्व आदीन्	शाल्व आदि	**तार्क्ष्यपुत्रः**	कश्यप-नन्दन गरुड़ के
राज्ञः तरसा	राजाओंको बल-पूर्वक	**सुधां इव**	अमृत (हरण)की भाँति ॥१७॥
प्रमथ्य	मथकर		
सर्वलोकानां	सब लोगोंके		

॥ राजोवाच ॥

भगवान् भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम् ।
राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ॥१८॥

भगवान् भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिर आननां राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ॥१८॥

भीष्मकसुतां	भीष्मककी पुत्री	**भगवान**	भगवानने
रुचिर आननां	मनोहर मुखी	**उपयेम**	विवाह किया
रुक्मिणीं	रुक्मिणीसे	**इति श्रुतं**	ऐसा (हमने) सुना है ॥१८॥
राक्षसेन	राक्षस		
विधानेन	विधि (बलपूर्वक हरण)से		

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कृष्णस्यामिततेजसः ।
यथा मागधशाल्वादीन् जित्वा कन्यामुपाहरत् ॥१६॥

भगवन् श्रोतुं इच्छामि कृष्णस्य अमित तेजसः यथा मागध शाल्व आदीन् जित्वा कन्यां उपाहरत् ॥१६॥

भगवन्	भगवन् !	**यथा मागध**	जैसे मगधराज,
अमित तेजसः	अपरमित तेजस्वी	**शाल्व आदीन्**	शाल्व आदिको
कृष्णस्य	श्रीकृष्णका (यह चरित्र)	**जित्वा**	जीतकर
		कन्यां उपाहरत्	कन्याका हरण किया ॥१६॥
श्रोतुं इच्छामि	सुनना चाहता हूँ		

ब्रह्मन् कृष्णकथाः पुण्या माध्वीर्लोकमलापहाः ।
को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः ॥२०॥

ब्रह्मन् कृष्णकथाः पुण्या माध्वीः लोकमल अपहाः कः नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञः नित्यनूतनाः ॥२०॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**नित्यनूतनाः**	नित्य नवीन है,
कृष्णकथाः	श्रीकृष्णकी कथा	**नु कः श्रुतज्ञः**	भला कौन मर्मज्ञ श्रोता
पुण्या माध्वीः	पवित्र, मधुर,		
लोकमल अपहाः	संसार-मल-नाशिका	**शृण्वानः**	उसे सुनते हुए
		तृप्येत	तृप्त होगा ॥२०॥

श्रीशक उवाच

राजाऽऽसीद् भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् ।
तस्य पञ्चाभवन् पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥२१॥

राजा आसीत् भीष्मकः नाम विदर्भ अधिपतिः महान् तस्य पञ्च अभवन् पुत्राः कन्या एका च वर आनना ॥२१॥

विदर्भं	विदर्भ देशके
महान्	महान्
अधिपतिः	अधिपति
भीष्मकः नाम	भीष्मक नामके
राजा आसीन्	राजा थे,
तस्य	उनके
पञ्च पुत्राः	पाँच पुत्र
च एका वर	तथा एक सुन्दर
आनना	मुखवाली
कन्या अभवन्	कन्या हुई ॥२१॥

रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः ।
रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती ॥२२॥

रुक्मि अग्रजः रुक्मरथः रुक्मबाहुः अनन्तरः रुक्मकेशः रुक्ममाली रुक्मिणि एषां स्वसा सती ॥२२॥

अग्रजः रुक्मि	बड़ा भाई रुक्मि
अनन्तरः	इसके बाद
रुक्मरथः	रुक्मरथ,
रुक्मबाहुः	रुक्मबाहु,
रुक्मकेशः	रुक्मकेश,
रुक्ममाली	रुक्ममाली और
एषां सती स्वसा	इनकी साध्वी बहिन
रुक्मिणि	रुक्मिणी ॥२२॥

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रियः ।
गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ॥२३॥

सा उपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्य गुण श्रियः गृह आगतैः गीयमानः तं मेने सदृशं पतिम् ॥२३॥

गृह आगतैः	घर आये (अतिथियों)के
गीयमानः	वर्णनोंसे
मुकुन्दस्य	मुकुन्दके
रूपवीर्य गुण	सौन्दर्य, पराक्रम, गुण
श्रियः उपश्रुत्य	धनको पाससे सुनकर
सा तं सदृशं	उसने उनको अपने योग्य
पतिम् मेने	पति मान लिया ॥२३॥

तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम् ।
कृष्णश्च सदृशीं भार्यां समुद्वोढुं मनो दधे ॥२४॥

तां बुद्धि लक्षण औदार्य रूप शील गुण आश्रयां कृष्णः च सदृशीं भार्यां सम उद्वोढुं मनः दधे ॥२४॥

तां बुद्धि	उस बुद्धि
लक्षण औदार्य	सुलक्षण, उदारता
रूप शील गुण	सौन्दर्य, शीलादि गुणोंकी
आश्रयां	आश्रय
सदृशीं भार्यां	अपने योग्य पत्नीके
सम उद्वोढुं	साथ विवाह करने का
कृष्णः च	श्रीकृष्णने भी
मनः दधे	मनमें निश्चय किया ॥२४॥

बन्धूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप ।
ततो निवार्य कृष्णद्विड रुक्मी चैद्यममन्यत ॥२५॥

बन्धूनां इच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप ततः निवार्य कृष्णद्विट् रुक्मी चैद्यं अमन्यत ॥२५॥

बन्धूनां	भाइयोंके
कृष्णाय	श्रीकृष्णको
भगिनीं दातुं	बहिन देनेकी
इच्छतां	इच्छा करने पर
कृष्णद्विट्	श्रीकृष्णका द्रोही
रुक्मी ततः	रुक्मी उनको
निवार्य	रोककर
चैद्यं अमन्यत	शिशुपालको योग्य मानने लगा ॥२५॥

तदवेत्यासितापाङ्गी वैदर्भी दुर्मना भृशम् ।
विचिन्त्याप्तं द्विजं कञ्चित् कृष्णाय प्राहिणोद् द्रुतम् ॥२६॥

तत् अवेत्य असित अपाङ्गी वैदर्भी दुर्मना भृशं विचिन्त्य आप्तं द्विजं कञ्चित् कृष्णाय प्राहिणोत् द्रुतम् ॥२६॥

तत् अवेत्य	इसे जानकर
असित अपाङ्गी	श्याम लोचना
वैदर्भी भृशं	रुक्मिणीने बहुत

दुर्मना विचिन्त्य	उदास होकर सोचकर	**द्रुतं कृष्णाय**	शीघ्रता पूर्वक श्रीकृष्णके पास
कञ्चित् आप्तं द्विजं	किसी विश्वसनीय ब्राह्मणको	**प्राहिणोत्**	भेजा ॥२६॥

द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः ।
अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं कञ्चनासने ॥२७॥

द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः अपश्यत् आद्यं पुरुषं आसीनं काञ्चन आसने

द्वारकां	द्वारिकामें	**स आद्यं पुरुषं**	उसने आदि पुरुष को
समभ्येत्य	पहुँच जाने पर		
प्रतीहारैः	द्वारपालों द्वारा	**कञ्चन आसने**	स्वर्ण सिंहासन-पर
प्रवेशितः	भीतर प्रवेश कराये जाने पर	**आसीनं**	बैठे
		अपश्यत्	देखा ॥२७॥

दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनात् ।
उपवेश्यार्हयाञ्चक्रे यथाऽऽत्मानं दिवौकसः ॥२८॥

दृष्ट्वा ब्राह्मण्यदेवः तं अवरुह्य निज आसनात् उपवेश्य अर्हयान् चक्रे यथा आत्मानं दिवौकसः ॥२८॥

ब्रह्मण्यदेवः	ब्राह्मणोंको इष्ट देव मानने वाले भगवान्	**यथा दिवौकसः आत्मानं**	जैसे देवता उनकी अपनी (पूजा करते हैं वैसे)
तं दृष्ट्वा	उसे देखकर	**अर्हयान् चक्रे**	(उनकी) पूजा की ॥२८॥
निज आसनात्	अपने आसनसे		
अवरुह्य	उतरकर		

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तमुपगम्य सतां गतिः ।
पाणिनाभिमृशन् पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥२९॥

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तं उपगम्य सतां गतिः पाणिना अभिमृशन् पादाः अव्यग्रः तं अपृच्छत ॥२९॥

तं भुक्तवन्तं	उनके भोजन करके	**पादाः**	पैर
विश्रान्तं	विश्राम कर लेने पर	**अभिमृशन्**	दबाते हुए
सतां गतिः	सत्पुरुषोंके परमगति (भगवान)	**अव्यग्रः**	बिना व्यग्रता (शान्त भावसे)
उपगम्य	उनके समीप जाकर	**तं अपृच्छत**	उनसे पूछने लगे ॥२९॥
पाणिना	अपने हाथसे (उनके)		

कच्चिद् द्विजवरश्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसम्मतः ।
वर्तते नातिकृच्छ्रेण संतुष्टमनसः सदा ॥३०॥

कच्चित् द्विजवर श्रेष्ठ धर्मः ते वृद्धसम्मतः वर्तते न अतिकृच्छ्रेण संतुष्ट मनसः सदा ॥३०॥

श्रेष्ठ द्विजवर	उत्तम विप्रवर !	**मनसः**	चित्त रहते
ते	आपका	**कच्चित्**	कहीं
वृद्धसम्मतः	बड़ोंसे अनुमोदित	**न अतिकृच्छ्रेण**	बहुत कष्टसे तो नहीं
धर्मः	धर्म		
सदा सन्तुष्ट	सदा सन्तुष्ट	**वर्तते**	पालन होता ॥३०॥

संतुष्टो यर्हि वर्तेत ब्राह्मणो येन केनचित् ।
अहीयमानः स्वाद्धर्मात् स ह्यस्याखिलकामधुक् ॥३१॥

संतुष्टः यर्हि वर्तेत ब्राह्मणः येन केनचित् अहीयमानः स्वात् धर्मात् स हि अस्य अखिल काम धुक् ॥३१॥

यर्हि ब्राह्मणः	जब ब्राह्मण	**अहीयमानः**	च्युत हुए बिना
येन कित्चित्त	जो कुछ मिले उसीसे	**सन्तुष्टः वर्तेत**	सन्तुष्ट रहकर
स्वात् धर्मात्	अपने धर्मसे		व्यवहार करे तो

हि स अस्य	क्योंकि वही (धर्म) इसके लिये	अखिल काम धुक्	समस्त कामनाओं को देनेवाला है ॥३१॥

असंतुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः ।
अकिञ्चनोऽपि संतुष्टः शेते सर्वाङ्गविज्वरः ॥३२॥

असन्तुष्टः असकृत् लोकान् आप्नोति अपि सुरेश्वरः अकिञ्चनः अपि सन्तुष्टः शेते सर्वाङ्ग विज्वरः ॥३२॥

सुरेश्वरः अपि	इन्द्र हो जाने पर भी	अकिञ्चनः	सर्वथा कुछ न होने पर भी
असन्तुष्टः	असन्तुष्ट रहने वाला	संतुष्टः	सन्तुष्ट रहने वाला
असकृत्	बार-बार	सर्वाङ्ग विज्वरः	सब प्रकार संताप रहित
लोकान्	अनेक लोकोंको	शेते	(आनन्दसे) सोता है ॥३२॥
आप्नोति	पाता (भटकता)है		

विप्रान् स्वलाभसंतुष्टान् साधून् भूतसुहृत्तमान् ।
निरहंकारिणः शान्तान् नमस्ये शिरसासकृत् ॥३३॥

विप्रान् स्वलाभ संतुष्टान् साधून् भूतसुहृत्तमान् निरहङ्कारिणः शान्तान् नमस्ये शिरसा असकृत् ॥३३॥

स्वलाभ	आत्मलाभमें	शान्तान् विप्रान्	शान्त स्वभाव ब्राह्मणोंको
संतुष्टान्	सन्तुष्ट,	असकृत्	बार-बार
साधून्	साधु	शिरसा नमस्ये	मैं सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥३३॥
भूतसुहृत्तमान्	प्राणियोंके परम-सुहृद्		
निरहङ्कारिणः	अहंकार रहित		

कच्चिद् वः कुशलं ब्रह्मन् राजतो यस्य हि प्रजाः ।
सुखं वसन्ति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः ॥३४॥

कच्चित् वः कुशलं ब्रह्मन् राजतः यस्य हि प्रजाः सुखं वसन्ति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः ॥३४॥

ब्रह्मन् कच्चित्	ब्रह्मन् ! कहीं
राजतः	राजाकी ओरसे
वः कुशलं	आप लोगोंका कुशल तो है ?
हि यस्य विषये	क्योंकि जिसके राज्यमें
पाल्यमानाः	पालित होकर
प्रजाः सुखं	प्रजा सुख पूर्वक
वसन्ति	रहती है
स मे प्रियः	वह (राजा) मुझे प्रिय है ॥३४॥

यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्येह यदिच्छया ।
सर्वं नो ब्रूह्यगुह्यं चेत् किं कार्यं करवाम ते ॥३५॥

यतः त्वं आगतः दुर्गं निस्तीर्य इह यत् इच्छया सर्वं नः ब्रूहि गुह्यं चेत् किं कार्यं करवाम ते ॥३५॥

यतः यत्	जिसके लिए जिस
इच्छया	इच्छासे
दुर्गं निस्तीर्य	कठिन (समुद्रकी खाई) मार्ग पार करके
त्वं आगतः	आप आये
गुह्यं चेत्	गुप्त हो तो भी
सर्वं नः ब्रूहि	सब मुझसे बतलाइये
इह	यहाँ
ते किं कार्यं	आपका क्या कार्य
करवाम	हम करें ॥३५॥

एवं सम्पृष्टसम्प्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना ।
लीलागृहीतदेहेन तस्मै सर्वमवर्णयत् ॥३६॥

एवं सम्पृष्ट सम्प्रश्नः ब्राह्मणः परमेष्ठिना लीला गृहीत देहेन तस्मै सर्वं अवर्णयत् ॥३६॥

लीला	लीलाके लिए
गृहीत देहेन	शरीर धारण किये
परमेष्ठिना	परम विश्वविधायक द्वारा
एवं सम्प्रश्नः	इस प्रकारके प्रश्न

सम्पृष्टः	पूछने पर	**सर्वं अवर्णयत्**	सब वर्णन कर
ब्राह्मणः तस्मै	ब्राह्मणने उनसे		दिया ॥३६॥

॥ रुक्मिण्युवाच ॥

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् ।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ॥३७॥

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैः हरतः अङ्ग तापं रूपं दृशां दृशिमतां अखिल अर्थं लाभं त्वयि अच्युत आविशति चित्तं अपत्रपं मे ॥३७॥

भुवनसुन्दर	त्रिभुवन सुन्दर	**दृशां अर्थं**	नेत्रके प्रयोजनका
ते गुणान्	आपके गुण	**अखिल लाभं**	सभी लाभ देता है,
शृण्वतां	सुनने वालोंके	**श्रुत्वा अच्युत**	इतना सुनकर हे अच्युत
कर्णविवरैः	कर्ण कुहरोंमें	**मे अपत्रपं चित्तं**	मेरा चित्त लज्जा-
निर्विश्य	प्रवेश करके		हीन होकर
अङ्ग तापं हरतः	(उसे) शरीरका सब ताप दूर कर देते हैं	**त्वयि आविशति**	आपमें प्रवेश करता (लगता) है ॥३७॥
रूपं दृशिमतां	और आपका रूप नेत्र वालोंको		

का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूप-
विद्या वयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ।
धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या
काले नृसिंह नरलोकमनोऽभिरामम् ॥३८॥

का त्वा मुकुन्द महती कुल शील रूप विद्या वयः द्रविण धामभिः आत्मतुल्यं धीरा पति कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोक मनः अभिरामम् ॥३८॥

मुकुन्द	मुकुन्द !	**नृसिंह**	हे पुरुषसिंह
कुल शील	कुल, सदाचार,	**नरलोक**	सम्पूर्ण मनुष्य समाजके
रूप विद्या	सौन्दर्य, विद्या,	**मनः अभिरामं**	मनको सुन्दर
वयः द्रविण	आयु, धन	**त्वा धीरा कन्या**	आपको धैर्यवती कन्या
धामभिः	तथा धामादिमें		
आत्मतुल्यं	अपने ही समान		
काले	आपको (विवाहका) समय आने पर	**पति वृणीत न**	पति रूप से वरण नहीं करेगी ॥३८॥
का कुलवती	कौन कुलीना		

तन्मे भवान् खलु वृतः पतिरङ्ग जाया
मात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ।
मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्
गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ॥३९॥

तत् मे भवान् खलु वृतः पतिः अङ्ग जायां आत्म अर्पितः च भवतः अत्र विभो विधेहि मा वीरभागं अभिमर्शतु चैद्य आरात् गोमायुवत् मृगयतेः बलिं अम्बुजाक्ष ॥३९॥

तत् मे खलु	अतः मैंने अहो	**विभो अत्र**	प्रभो ! इस विषयमें
भवान् पति वृतः	आपको पतिरूपसे वरण कर लिया है	**विधेहि**	(अब आप) व्यवस्था करें,
अङ्ग च	प्रियतम तथा	**अम्बुजाक्ष**	कमल-लोचन !
जायां आत्म	पत्नीरूपसे अपनेको	**मृगपतेः बलिं**	सिंहको दिया
अर्पितः	समर्पित कर दिया,		उपहार

गोमायुवत्	सियारकी भांति	**अभिमर्शतु मा**	स्पर्श न कर सके
चैद्य आरात्	शिशुपाल पास आकर		॥३९॥

पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्र-
गुर्वर्चनादिभिरलं भगवान् परेशः ।
आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं
गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥४०॥

पूर्त इष्ट दत्त नियमव्रत देव विप्र गुरु अर्चन आदिभिः अलं भगवान् परेशः आराधितः यदि गद अग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुत आदयः अन्ये ॥४०॥

पूर्त इष्ट	पूर्त (कूपादि निर्माण) इष्ट (यज्ञादि)	**गद अग्रज एत्य**	गदके बड़े भाई आकर
नियमव्रत	नियम पालन, व्रत,	**मे पाणिं ग्रह्णातु**	मेरा पाग्रिहण करें
देव विप्र	देवता-ब्रह्मण,	**दमघोषसुत**	दमघोषके पुत्र शिशुपाल
गुरु अर्चन	गुरुजनोंकी पूजा	**आदयः अन्ये न**	आदि दूसरे न कर
आदिभिः	आदिसे		सकें ॥४०॥
यदि भगवान्	यदि भगवान		
परेशः अलं	परमेश्वरकी पर्याप्त		
आराधितः	(मैंने) आराधना की हो तो		

श्वोभाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान्
गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः ।
निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य
मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥४१॥

श्वः भाविनि त्वं अजित उद्वहने विदर्भान् गुप्तः सम एत्य पृतना पतिभिः परीतः निर्मथ्य चैद्य मगध इन्द्र बलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिना उद्वह वीर्यशुल्काम् ॥४१॥

अजित	अजित !
उद्वहने श्वः	विवाह कल
भाविनि	होने वाला हो तब
पृतना पतिभिः	सेनापतियोंसे
परीतः गुप्तः	घिरे सुरक्षित रूपसे
त्वं	आप
विदर्भान्	विदर्भ देशमें
सम एत्य	सहसा आकर
चैद्य मगध इन्द्र	शिशुपाल और मगधराजकी
बलं प्रसह्य	सेनाको बलपूर्वक
निर्मथ्य	मथकर
मां वीर्यशुल्कां	मुझ पराक्रमके मूल्य में मिलने वालीसे
राक्षसेन	राक्षस
विधिना	विधिसे
उद्वह	विवाह कीजिए ॥४१॥

अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धूं-
स्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ।
पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा
यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥४२॥

अन्तःपुर अन्तरचरीं अनिहत्य बन्धून त्वां उद्वहे कथं इति प्रवदामि उपायं पूर्वेद्युः अस्ति महती कुलदेवि यात्रा यस्यां बहिः नववधूः गिरिजां उपेयात् ॥४२॥

अन्तःपुर	अन्तःपुरके
अन्तःचरीं त्वां	भीतर रहनेवाली तुमको
बन्धून् अनिहत्य	तुम्हारे सम्बन्धियों को मारे बिना
कथं उद्वहे	कैसे विवाह लूँ,
इति	यदि ऐसा कहो तो
उपायं प्रवदामि	उपाय बतलाती हूँ
पूर्वेद्युः	(विवाहसे) पहिले दिन
कुलदेवि	कुलदेवीकी
महती यात्रा	महान यात्रा होती
अस्ति	है,
यस्यां नववधूः	जिसमें नई होने वाली बहू
गिरिजां	पार्वतीजीके समीप
उपेयात्	(पूजा करने) जाती है ॥४२॥

यस्यांघ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो
वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ।
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं
जह्यामसून् व्रतकृशाञ्छतजन्मभिः स्यात् ॥४३॥

यस्य अंघ्रि पङ्कजरजः स्नपनं महान्तः वाञ्छन्ति उमापतिः इव आत्मतमः उपहत्यै यर्हि अम्बुजाक्ष न लभेय भवत् प्रसादं जह्यां असून् व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात् ॥४३॥

अम्बुजाक्ष	कमल-लोचन !	**यर्हि भवत्**	यदि आपकी यह
उमापतिः इव	पार्वती पतिके समान	**प्रसादं**	कृपा
		न लभेय	नहीं पास की तो
महान्तः	महापुरुष भी	**व्रतकृशान्**	व्रत करके शरीर सुखाकर
आत्मतमः	अपने अंतःकरणके		
उपहत्यै	अज्ञान नाशके लिए	**असून् जह्यां**	प्राण त्याग दूँगी
यस्य अंघ्रि	जिनके चरण-	**शतजन्मभिः**	(भले) सौ जन्मोंमें
पङ्कजरजः	कमल की धूलिमें	**स्यात्**	(यह कृपा) हो
स्नपनं	स्नान करना		॥४३॥
वाञ्छन्ति	चाहते हैं		

॥ ब्राह्मण उवाच ॥

इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाऽऽहृताः ।
विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥४४॥

इति एते गुह्य सन्देशा यदुदेव मया आहृताः विमृश्य कर्तुं यत् च अत्र क्रियतां तत् अनन्तरम् ॥४४॥

यदुदेव	यदुदेव !	**गुह्या सन्देशा**	गोपनीय सन्देश
इति एते	इस प्रकार ये	**मया आहृतः**	मैं लाया हूँ

अत्र विमृश्य	इस विषयमें विचार करके	**यत् च कर्तुं अनन्तरं तत् क्रियतां**	जो भी करणीय हो पीछे वह कीजिए ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिण्युद्वाहप्रस्तावे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

अथ त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

वैदर्भ्याः स तु सन्देशं निशम्य यदुनन्दनः ।
प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैदर्भ्याः स तु सन्देशं निशम्य यदुनन्दनः प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन् इदं अब्रवीत् ॥१॥

स वैदर्भ्याः	वह वैदर्भी (रुक्मिणी)का	**पाणिना पाणिं**	(अपने) हाथसे (ब्राह्मणका) हाथ
सन्देशं	सन्देश	**प्रगृह्य**	पकड़कर
निशम्य तु	सुनकर तो	**प्रहसन्**	हंसते हुए
यदुनन्दनः	यदुनन्दन श्रीकृष्ण	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥१॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि ।
वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः ॥ २ ॥

तथा अहं अपि तत् चित्तः निद्रां च न लभे निशि वेद अहं रुक्मिणा द्वेषात् मम उद्वाहः निवारितः ॥२॥

तथा अहं अपि	इसी प्रकार मेरा भी	**अहं वेद**	मैं जानता हूँ
तत् चित्तः	चित्त उन्हींमें लगा है	**द्वेषात् रुक्मिणा**	द्वेषवश रुक्मीने
च निशि निद्रां	और रातको नींद	**मम उद्वाहः**	मेरा विवाह
न लभे	नहीं ले पाता हूँ	**निवारितः**	रोक दिया है ॥ २ ॥

तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान् मृधे ।
मत्परामनवद्याङ्गीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥ ३ ॥

तां आनयिष्य उन्मथ्य राजन्य अपसदान् मृधे मत्परां अनवद्य अङ्गीं मेधसः अग्निशिखां इव ॥३॥

तां मत्परां	उस मेरी परायणा	अपसदान्	अधम
अनवद्य अङ्गीं	अनिन्दिताङ्गी	राजन्य	राजाओंको
मेधसः	लकड़ीमेंसे	मृधे उन्मथ्य	युद्धमें मथकर
अग्निशिखां इव	अग्निशिखाके समान	आनयिष्य	ले आऊंगा ॥३॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः ।
रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम् ॥ ४ ॥

उद्वाह अर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः रथः संयुज्यतां आशु दारुक इति आह सारथिम् ॥४॥

रुक्मिण्या	रुक्मिणीका	सारथि	सारथीसे
उद्वाह अर्क्षं च	विवाह नक्षत्र भी	इति आह	यह कहा
विज्ञाय	जानकर	दारुक आशु	दारुक शीघ्र
मधुसूदनः	मधुसूदनने	रथः संयुज्यतां	रथ जोड़ो ! ॥४॥

स चाश्वैः शैव्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ।
युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५ ॥

स च अश्वैः शैव्य सुग्रीव मेघपुष्प बलाहकैः युक्तं रथं उप आनीय तस्थौ प्राञ्जलिः अग्रतः ॥५॥

स च	वह भी	मेघपुष्प	मेघपुष्प,
शैव्य सुग्रीव	शैव्य, सुग्रीव,	बलाहकैः	बलाहक नामक

अश्वैः युक्तं रथं	घोड़ेसे जुते रथको	**तस्थौ**	खड़ा हो गया ॥५॥
उप आनीय	समीप लाकर		
अग्रतः	सामने		
प्राञ्जलिः	हाथ जोड़कर		

आरुह्य स्यन्दनं शौरिर्द्विजमारोप्य तूर्णगैः ।
आनर्त्तादिकरात्रेण विदर्भानिगमद्धयैः ॥ ६ ॥

आरुह्य स्यन्दनं शौरिः द्विजं आरोप्य तूर्णगैः आनर्त्तात् एक रात्रेण विदर्भान् अगमत् हयैः ॥६॥

शौरिः	श्रीकृष्णने	**हयैः आनर्त्तात्**	घोड़ों द्वारा आनर्त्त प्रान्तसे
द्विजं आरोप्य	उस ब्राह्मणको चढ़ाकर	**एक रात्रेण**	एक ही रातमें
तूर्णगैः स्यन्दनं	शीघ्रगामी (उस) रथपर	**विदर्भान्**	विदर्भ
आरुह्य	चढ़कर	**अगमत्**	पहुँच गये ॥६॥

राजा स कुण्डिनपतिः पुत्रस्नेहवशं गतः ।
शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन् कर्माण्यकारयत् ॥७॥

राजा स कुण्डिनपतिः पुत्रस्नेह वशं गतः शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन् कर्माणि अकारयत् ॥७॥

पुत्रस्नेह	पुत्र प्रेमके	**शिशुपालाय**	शिशुपालको
वशं गतः	वशमें होकर	**दास्यन्**	देनेके लिए
स कुण्डिनपतिः	वे कुण्डिन् पति	**कर्माणि**	(वैवाहिक) कर्म
राजा	राजा भीष्मक	**अकारयत्**	करवाने लगे ॥७॥
स्वां कन्यां	अपनी पुत्री		

पुरं सम्मृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् ।
चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम् ॥ ८ ॥

पुरं सम्मृष्ट संसिक्त मार्ग रथ्या चतुष्पथं चित्रध्वज पताकाभिः तोरणैः सम् अलंकृतम् ॥८॥

पुरं सम्मृष्ट	नगर स्वच्छ किया गया,	**चित्रध्वज**	अनेक प्रकारके ध्वज,
मार्ग रथ्या	रास्ते, रथ चलनेकी सड़कें,	**पताकाभिः**	झडों तथा
चतुष्पथं	चौराहे	**तोरणैः**	वन्दनवारोंसे
संसिक्त	भली प्रकार छिड़के गये,	**सम् अलंकृतं**	खूब सजाया गया ॥८॥

स्रग्गन्धमाल्याभरणैर्विरजोऽम्बरभूषितैः ।
जुष्टं स्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः ॥ ९ ॥

स्रक् गन्ध माल्य आभरणैः विरजः अम्बर भूषितैः जुष्टं स्त्री पुरुषैः श्रीमत् गृहैः अगुरु धूपितैः ॥९॥

स्रक् गन्ध	माला, चन्दन,	**जुष्टं श्रीमत्**	युक्त सम्पन्न
माल्य आभरणैः	हारादि आभूषणोंसे	**गृहैः**	भवन
विरजः अम्बर	निर्मल वस्त्रोंसे	**अगुरु धूपितैः**	अगुरुकी धूप युक्त थे ॥९॥
भूषितैः	आभूषित		
स्त्री पुरुषैः	स्त्री-पुरुषोंसे		

पितॄन् देवान् समभ्यर्च्य विप्रांश्च विधिवन्नृप ।
भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मङ्गलम् ॥१०॥

पितॄन देवान् तम अभ्यर्च्य विप्रान् च विधिवत् नृप भोजयित्वा यथा न्यायं वाचयामास मङ्गलम् ॥१०॥

नृप	राजा भीष्मकने	**च विप्रान्**	तथा ब्राह्मणकी
पितॄन् देवान्	पितरों, देवताओंकी	**विधिवत्**	विधिपूर्वक

सम अभ्यर्च्यं	भली प्रकार पूजा कराके	मङ्गलं वाचयामास	स्वस्ति-वाचन करया ॥१०॥
यथा न्यायं भोजयित्वा	नियमानुसार (ब्राह्मणोंको) भोजन कराके		

सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृतकौतुकमङ्गलाम् ।
अहतांशुकयुग्मेन भूषितां भूषणोत्तमैः ॥११॥

सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृत कौतुक मङ्गलां अहत अंशुक युग्मेन भूषितां भूषण उत्तमैः ॥११॥

सुस्नातां	भली प्रकार स्नान करके	युग्मेन	दो बिना सिले और
मङ्गलां	मंङ्गल	अहत अंशुक	फाड़े वस्त्रोंसे तथा
कृत कौतुक	कृत्य सम्पन्ना (विवाह सूत्र आदि)	उत्तमैः भूषणैः	उत्तम आभूषणोंसे
		भूषितां	आभूषितां
		सुदतीं कन्यां	उस सुन्दर दाँतों वाली कन्या ॥११॥

चक्रुः सामर्ग्यजुर्मन्त्रैर्वध्वा रक्षां द्विजोत्तमाः ।
पुरोहितोऽथर्ववित् वै जुहाव ग्रहशान्तये ॥१२॥

चक्रुः सामऋक् यजुः मन्त्रैः वध्वा रक्षां द्विज उत्तमाः पुरोहितः अथर्ववित् वै जुहाव ग्रहशान्तये ॥१२॥

वध्वा	नव-वधूकी	अथर्ववित्	अथर्ववेदके ज्ञाता
द्विज उत्तमाः	श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने	पुरोहितः	पुरोहितने
सामऋक्	सामवेद, ऋग्वेद,	वै ग्रहशान्तये	निश्चित रूपे ग्रह-शान्तिके लिए
यजुः मन्त्रैः	यजुर्वेदके मन्त्रोंसे		
रक्षां चक्रुः	रक्षा की और	जुहाव	हवन किया ॥१२॥

हिरण्यरूप्यवासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान् ।
प्रादाद् धेनूश्च विप्रेभ्यो राजा विधिविदां वरः ॥१३॥

हिरण्य रूप्य वासांसि तिलं च गुडमिश्रितान् प्रादात् धेनूः च विप्रेभ्यः राजा विधिविदां वरः ॥१३॥

विधिविदां वरः	विधान जानने वालों में श्रेष्ठ
राजा	राजा (भीष्मक)ने
विप्रेभ्यः	ब्राह्मणोंको
हिरण्य रूप्य	सोना, चाँदी,
वासांसि	वस्त्र
च गुडमिश्रितान्	तथा गुड़ मिला
तिलं च धेनूः	तिल और गायें
प्रादात्	प्रदान कीं ॥१३॥

एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुताय वै ।
कारयामास मन्त्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम् ॥१४॥

एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुताय वै कारयामास मन्त्रज्ञैः सर्वं अभ्युदय उचितम् ॥१४॥

एवं चेदिपती	इसी प्रकार चेदिनरेश
राजा दमघोषः	राजा दमघोषने
वैमन्त्रज्ञैः	निश्चित मन्त्रज्ञों द्वारा
सुताय सर्वं	पुत्रके लिए सब
अभ्युदय उचितं	अभ्युदयके समयके योग्य
कारयामास	कर्म करवाये॥१४॥

मदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यन्दनैर्हेममालिभिः ।
पत्त्यश्वसंकुलैः सैन्यैः परीतः कुण्डिनं ययौ ॥१५॥

मदच्युद्भिः गज अनीकैः स्यन्दनैः हेममालिभिः पत्ति अश्व संकुलैः सैन्यैः परीतः कुण्डिनं ययौ ॥१५॥

मदच्युद्भिः	मद टपकने वाले
गज अनीकैः	गज सेनाके
हेममालिभिः	स्वर्ण मालाओं वाले
स्यन्दनैः	रथोंसे,
पत्ति अश्व	पैदल, घोड़ोंसे
संकुलैः सैन्यैः	भरी हुई सेनासे
परीतः	घिरे हुए
कुण्डिनं ययौ	कुण्डिनपुर गये ॥१५॥

तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्य च ।
निवेशयामास मुदा कल्पितान्यनिवेशने ॥१६॥

तं वै विदर्भ अधिपतिः सम अभि एत्य अभिपूज्य च निवेशयामास मुदा कल्पित अन्य निवेशने ॥१६॥

विदर्भ	विदर्भराज	**कल्पित अन्य**	बनाये हुए दूसरे
अधिपतिः	भीष्मक	**निवेशने**	आवासमें
तं वै	उनके	**मुदा**	आनन्दपूर्वक
सम अभि एत्य	निश्चित आगे आकर	**निवेशयामास**	ठहरा दिया ॥१६॥
च अभिपूज्य	तथा सत्कार करके		

तत्र शाल्वो जरासन्धो दन्तवक्त्रो विदूरथः ।
आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौण्ड्रकाद्याः सहस्रशः ॥१७॥

तत्र शाल्वः जरासन्धः दन्तवक्त्रः विदूरथः आजग्मुः चैद्य पक्षीयाः पौण्ड्रक आद्याः सहस्रशः ॥१७॥

तत्र चैद्य	वहाँ शिशुपालके	**विदूरथः**	विदूरथ,
पक्षीयाः	पक्षके	**पौण्ड्रक आद्याः**	पौण्ड्रक आदि
शाल्वः	शाल्व,	**सहस्रशः**	सहस्रों (राजा)
जरासन्धः	जरासन्ध,	**आजग्मुः**	आये ॥१७॥
दन्तवक्त्रः	दन्तवक्त्र,		

कृष्णरामद्विषो यत्ताः कन्यां चैद्याय साधितुम् ।
यद्यागत्य हरेत् कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिर्वृतः ॥१८॥

कृष्णराम द्विषः यत्ताः कन्यां चैद्याय साधितुं यदि आगत्य हरेत् कृष्णः राम आद्यैः यदुभिः वृतः ॥१८॥

कृष्णराम द्विषः चैद्याय	श्रीकृष्ण-बलरामके ये द्वेषी शिशुपाल को	**कन्यां साधितुं यत्ताः**	कन्या दिलानेको उद्यत होकर आये थे

यदि रामाद्यैः यदुभिः वृतः — 'यदि बलराम आदि यादवोंसे घिरे

कृष्णः आगत्य हरेत् — श्रीकृष्ण आकर (कन्या) हरण करेंगे ॥१८॥

योत्स्यामः संहतास्तेन इति निश्चितमानसाः ।
आजग्मुर्भूभुजः सर्वे समग्रबलवाहनाः ॥१९॥

यात्स्यामः सहताः तेन इति निश्चित मानसाः आजग्मुः भूः भुजः सर्वे समग्र बलवाहनाः ॥१९॥

तेन — उनके साथ
संहताः — हम सब मिलकर
योत्स्यामः — लड़ेंगे'
इति — ऐसा
निश्चित मानसाः — मनमें निश्चय करके
समग्र — पूरी सेना

बलवाहनाः — और वाहनोंके साथ
सर्वे भूः भुजः — वे सब राजा लोग
आजग्मुः — चारों ओरसे आये ॥१९॥

श्रुत्वैतद भगवान् रामो विपक्षीयनृपोद्यमम् ।
कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां कलहशङ्कितः ॥२०॥

श्रुत्वा एतत् भगवान् रामः विपक्षीय नृप उद्यमं कृष्णं च एकं गतं हर्तुं कन्यां कलह शङ्कितः ॥२०॥

भगवान् रामः — भगवान बलरामने
एतत् विपक्षीय — यह विरुद्ध पक्षके
नृप उद्यमं — राजाओंका उद्योग
च कन्यां हर्तुं — तथा कन्या-हरणके लिए

एकं कृष्णं गतं — अकेले श्रीकृष्णको गया
श्रुत्वा कलह — सुनकर झगड़ेकी
शङ्कितः — आशंकासे ॥२०॥

बलेन महता सार्धं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः ।
त्वरितः कुण्डिनं प्रागाद् गजाश्वरथपत्तिभिः ॥२१॥

बलेन महता सार्धं भ्रातृस्नेह परिप्लुतः त्वरितः कुण्डिनं प्रागात् गज अश्व रथ पत्तिभिः ॥२१॥

भ्रातृस्नेह	भाईके स्नेहमें	**सार्धं**	साथ
परिप्लुतः	डूबकर	**त्वरितः**	शीघ्रता पूर्वक
गज अश्व	हाथी, घोड़े	**कुण्डिनं प्रागात्**	कुण्डिनपुरको
रथ पत्तिभिः	रथ, पैदलोंकी (चतुरंगिणी)		प्रस्थान कर दिया ॥२१॥
महता बलेन	भारी सेनाके		

भीष्मकन्या वरारोह काङ्क्षन्त्यागमनं हरेः ।
प्रत्यापत्तिमपश्यन्ती द्विजस्याचिन्तयत्तदा ॥२२॥

भीष्मकन्या वरारोह काङ्क्षन्ति आगमनं हरेः प्रत्यापत्ति अपश्यन्ती द्विजस्य अचिन्तयत् तदा ॥२२॥

वरारोहा	सुन्दरी	**तदा द्विजस्य**	उस समय उस ब्राह्मणका
भीष्मकन्या	राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी	**प्रत्यापत्ति**	वापस आना
हरेः आगमनं	श्रीकृष्णके आगमन की	**अपश्यन्ती**	न देखकर
काङ्क्षन्ती	इच्छा करती हुई	**अचिन्तयत्**	सोचने लगी ॥२२॥

अहो त्रियामान्तरित उद्वाहो मेऽल्पराधसः ।
नागच्छत्यरविन्दाक्षो नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ।
सोऽपि नावर्ततेऽद्यापि मत्संदेशहरो द्विजः ॥२३॥

अहो त्रियामा अन्तरितः उद्वाहः मे अल्पराधसः न आगच्छति अरविन्दाक्षः न अहं वेद्मि अत्र कारणं सः अपि न आवर्तते अद्य अपि मत् सन्देशहरः द्विजः ॥२३॥

अहो मे	अहो मुझ
अल्पराधसः	मन्द भाग्यके
उद्वाहः	विवाहको
त्रियामा	तीन ही रात
अन्तरितः	बीचमें हैं, पर
अरविन्दाक्षः	कमलनयन
न आगच्छति	नहीं आ रहे हैं
अत्र कारणं	इसका कारण
अहं न वेद्मि	मैं नहीं जानती
सः मत्	वह मेरा
सन्देशहरः	सन्देश ले जाने वाले
द्विजः अपि	ब्राह्मण भी
अद्य न आवर्तते	आज तक नहीं लौटे ॥२३॥

अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किञ्चज्जुगुप्सितम् ।
मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः ॥२४॥

अपि मयि अनवद्य आत्मा दृष्ट्वा किञ्चित् जुगुप्सितं मत् पाणिग्रहणे नूनं न आयाति हि कृत उद्यमः ॥२४॥

अनवद्य आत्मा	अनिन्दितात्मा भगवान्
नूनं मयि	अवश्य मुझमें
हि	भी
किञ्चित्	कुछ
जुगुप्सितं	निन्दनीय दोष
दृष्ट्वा अपि	देखकर ही
मत् पाणिग्रहणे	मेरे पाणिग्रहणके लिए
कृत उद्यमः	प्रयत्न करके
न आयाति	नहीं आ रहे हैं ॥२४॥

दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ।
देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणो गिरिजा सती ॥२५॥

दुर्भगया न मे धाता न अनुकूलः महेश्वरः देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती ॥२५॥

मे दुर्भगाया	मुझ अभागिनीके
न धाता	न विधाता
न महेश्वरः	न शंकरजी ही
अनुकूलः	अनुकूल हैं
वा देवी गौरी	अथवा देवी गौरी
रुद्राणी गिरिजा	रुद्राणी गिरिजा
सती विमुखा	सती अप्रसन्न हो गयी है ॥२५॥

एवं चिन्तयती बाला गोविन्दहृतमानसा ।
न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले ॥२६॥

एवं चिन्तयती बाला गोविन्द हृतमानसा न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे च अश्रुकला आकुले ॥२६॥

गोविन्द	गोविन्दने
हृतमानसा	जिसका चित्त चुरा लिया है उस
कालज्ञा	समयको जानने वाली
बाला	राजकुमारीने
एवं चिन्तयती	इस प्रकार चिन्ता करते हुए
अश्रुकला	अश्रु
आकुले	विह्वल
नेत्रे च	नेत्रोंको ही
न्यमीलयत	बन्द कर लिया ॥२६॥

एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविन्दागमनं नृप ।
वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन् प्रियभाषिणः ॥२७॥

एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविन्द आगमनं नृप वाम ऊरुः भुजः नेत्रं अस्फुरन् प्रियभाषिणः ॥२७॥

नृप	राजन् !
वध्वा एवं	नववधू रुक्मिणीके इस प्रकार
गोविन्द	गोविन्दके
आगमनं	आगमनकी
प्रतीक्षन्त्या	प्रतीक्षा करते समय
प्रियभाषिणः	प्रिय कहने (सूचित करने) वाले
वाम उरुः	बायीं जांघ,
भुजः नेत्रं	भुजा और नेत्र
अस्फुरन्	फड़के ॥२७॥

अथ कृष्णविनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः ।
अन्तःपुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ॥२८॥

अथ कृष्ण विनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः अन्तःपुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ॥२८॥

अथ कृष्ण	फिर श्रीकृष्णका
विनिर्दिष्ट	भेजा
ह स एव	निश्चय वही
द्विजसत्तमः	ब्राह्मण श्रेष्ठ
अन्तःपुरचरीं	अन्तःपुरमें घूमती
देवीं राजपुत्रीं	देवी राजपुत्रीको
ददर्श	दीखे ॥२८॥

सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती ।
आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञा समपृच्छच्छुचिस्मिता ॥२९॥

सा तं प्रहृष्ट वदनं अव्यग्र आत्मगतिं सती आलक्ष्य लक्षण अभिज्ञा सम पृच्छत् शुचि स्मिता ॥२९॥

सा लक्षण	वह लक्षणोंको
अभिज्ञा	जानने वाली
सती तं	साध्वी उनको
प्रहृष्ट वदनं	प्रसन्न मुख
अव्यग्र	स्थिर भावसे
आत्मगतिं	अपने पास आयेसे
शुचि स्मिता	पवित्र मुस्कान युक्त ने
सम पृच्छत्	समाचार पूछा ॥२९॥

तस्या आवेदयत् प्राप्तं शशंस यदुनन्दनम् ।
उक्तं च सत्यवचनमात्मोपनयनं प्रति ॥३०॥

तस्या आवेदयत् प्राप्तं शशंस यदुनन्दनं उक्तं च सत्य वचनं आत्म उपनयनं प्रति ॥३०॥

तस्या प्राप्तं	उससे आये हुए
यदुनन्दनं	यदुनन्दनकी
शशंस	प्रशंसा की
च	तथा
आत्मउपनयनं	उन्हें अपनेको ले जानेकी
सत्यवचनं	सच्ची प्रतिज्ञा
उक्तं आवेदयत्	की थी उसे सुना दिया ॥३०॥

तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा ।
न पश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन्ननाम सा ॥३१॥

तं आगतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा न पश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियं अन्यत् न नाम सा ॥३१॥

तं आगतं	उनको आया	**ब्राह्मणाय**	ब्राह्मणके लिए
समाज्ञाय	भली प्रकार जानकर	**अत्यत् प्रियं**	दूसरा कुछ प्रिय
हृष्टमानसा	प्रसन्न चित्ता	**न पश्यन्ती**	नहीं देखकर
वैदर्भी	रुक्मिणीने	**सा न नाम**	उसने नमस्कार किया ॥३१॥

प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रेक्षणोत्सुकौ ।
अभ्ययात्तूर्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥३२॥

प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितः उद्वाह प्रेक्षण उत्सुकौ अभ्ययात् तूर्य घोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥३२॥

स्वदुहितुः	अपनी पुत्रीके	**तूर्य घोषेण**	तुरही नादके साथ
उद्वाह	विवाहको	**समर्हणैः**	पूजा सामग्रीके साथ
प्रेक्षण उत्सुकौ	देखनेको उत्सुक	**अभ्ययात्**	(राजाने) अगवानी की ॥३२॥
रामकृष्णौ	बलराम-श्रीकृष्ण को		
प्राप्तौ श्रुत्या	आया सुनकर		

मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजांसि सः ।
उपायनान्यभीष्टानि विधिवत् समपूजयत् ॥३३॥

मधुपर्कं उपानीय वासांसि विरजांसि सः उपायनानि अभीष्टानि विधिवत् समपूजयत् ॥३३॥

मधुपर्कं	मधुपर्क,	**वासांसि**	वस्त्र
विरजांसि	निर्मल	**अभीष्टानि**	अभीष्ट

उपायनानि	उपहार	**समपूजयत्**	भली प्रकार पूजा
उपानीय	समीप लाकर		की ॥३३॥
सः विधिवत्	उन्होंने विधिपूर्वक		

नयोर्निवेशनं श्रीमदुपकल्प्य महामतिः ।
ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे यथा ॥३४॥

तयोः निवेशनं श्रीमत् उपकल्प्य महामतिः ससैन्ययोः स अनुगयोः आतिथ्यं विदधे यथा ॥३४॥

महामतिः	परम बुद्धिमान (राजा)ने	**श्रीमत् निवेशनं**	शोभायुक्त आवास देकर
तयोः	उन दोनोंको	**उपकल्प्य**	
ससैन्ययोः	सेनाके साथ	**यथा आतिथ्यं**	यथा योग्य अतिथि सत्कार
स अनुगयोः	अनुचरोंके साथ	**विदधे**	किया ॥३४॥

एवं राज्ञां समेतानां यथावीर्यं यथावयः ।
यथाबलं यथावित्तं सर्वैः कामैः समर्हयत् ॥३५॥

एवं राज्ञां सम एतानां यथा वीर्यं यथा वयः यथा बलं यथा वित्तं सर्वैः कामैः सम अर्हयत् ॥३५॥

एवं सम एतानां	इसी प्रकार सब ओरसे आये	**यथा बलं**	सेनाके अनुसार,
राज्ञां	राजाओंका	**यथा वित्तं**	धनके अनुसार
यथा वीर्यं	उनके पराक्रमके अनुसार	**सर्वैः कामैः**	सब भोग देकर
यथा वयः	आयुके अनुसार	**सम अर्हयत्**	भली प्रकार सत्कृत किया ॥३५॥

कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः ।
आगत्य नेत्रोञ्जलिभिः पपुस्तन्मुखपङ्कजम् ॥३६॥

कृष्णं आगतं आकर्ण्य विदर्भपुर वासिनः आगत्य नेत्र अञ्जलिभिः पपुः तत् मुखपङ्कजम् ॥३६॥

कृष्णं आगतं	श्रीकृष्णको आया
आकर्ण्य	सुनकर
विदर्भपुर	विदर्भ नगरके
वासिनः	निवासी
आगत्य	आकर
नेत्र अञ्जलिभिः	नेत्रों रूपी अञ्जलियोंसे
तत् मुखपङ्कजं	उनके मुख-कमलको
पपुः	पीने लगे ॥३६॥

अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा ।
असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ॥३७॥

अस्य एव भार्या भवितुं रुक्मिणि अर्हति न अपरा असाः अपि अनवद्य आत्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ॥३७॥

रुक्मिणि	(परस्पर कहने लगे) रुक्मिणी
अस्य एव	इनकी ही
भार्या भवितुं	पत्नी होने
अर्हति	योग्य है,
अपरा न	दूसरी कोई (कन्या) नहीं,
असाः	ये
अनवद्य आत्मा	अनिन्दित आत्मा
अपि	भी
भैष्म्याः	भीष्मक-नन्दिनीके
समुचितः पतिः	अत्यन्त योग्य पति हैं ॥३७॥

किंचित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत् ।
अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥३८॥

किञ्चित् सुचरितं यत् नः तेन तुष्टः त्रिलोककृत् अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणि अच्युतः ॥३८॥

यत् नः	जो हमने
किञ्चित्	कुछ
सुचरितं	उत्तम काम किये हों

त्रिलोककृत	तीनों लोकोंके कर्त्ता विधाता	**अच्युतः**	श्रीकृष्ण
तेन तुष्टः	उससे सन्तुष्ट होकर	**वैदर्भ्याः**	विदर्भ-नन्दिनीका
अनुगृह्णातु	अनुग्रह करें कि	**पाणिं गृह्णातु**	पाणि-ग्रहण करें ॥३८'॥

एवं प्रेमकलाबद्धा वदन्ति स्म पुरौकसः ।
कन्या चान्तःपुरात् प्रागाद् भटैर्गुप्ताम्बिकालयम् ।३९।

एवं प्रेमकलाबद्धा वदन्ति स्म पुरौकसः कन्या च अन्तःपुरात् प्रागात् भटैः गुप्ता अम्बिका आलयम् ॥३९॥

प्रेमकलाबद्धा	स्नेह-बन्धनसे बँधे	**भटैः गुप्ता**	सैनिकोंसे सुरक्षित
पुरौकसः	नगरवासी लोग	**अम्बिका**	देवी-
एवं वदन्ति स्म	इसी प्रकार कहते थे	**आलयं**	मन्दिरको
कन्या च	कन्या भी	**प्रागात्**	चली ॥३९॥
अन्तःपुरात्	अन्तःपुरसे		

पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम् ।
सा चानुध्यायती सम्यङ्मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥४०॥

पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवं सा च अनुध्यायती सम्यक् मुकुन्द चरणाम्बुजम् ॥४०॥

भवान्याः	भवानीके	**मुकुन्द**	मुकुन्दके
पादपल्लवं	चरण पल्लवोंका	**चरणाम्बुजं**	चरण-कमलोंका
द्रष्टुं पद्भ्यां	दर्शन करनेके लिए पैदल	**अनुध्यायती**	ध्यान करती हुए
		विनिर्ययौ	बाहर निकली
सा च सम्यक्	वह भी भली प्रकार		॥४०॥

यतवाङ्मातृभिः सार्धं सखीभिः परिवारिता ।
गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः ।
मृदङ्गशङ्खपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥४१॥

यत वाक् मातृभिः सार्धं सखीभिः परिवारिता गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैः उद्यत आयुधैः मृदङ्ग शङ्ख पणवाः तूर्य भेर्यः च जघ्निरे ॥४१॥

यत वाक्	मौन होकर
मातृभिः सार्धं	माताओंके साथ
सखीभिः	सखियों द्वारा
परिवारिता	चारो ओरसे घिरी
सन्नद्धैः	कवच पहिने
उद्यत आयुधैः	शस्त्र उठाये
शूरैः राजभटैः	शूर राजसैनिकों द्वारा
गुप्ता	रक्षिता (तब)
मृदङ्ग शङ्ख	मृदंग, शंख,
पणवाः तूर्य	नगाड़े, तुरहियां
च भेर्यः जघ्निरे	और भेरियां बजायी जाने लगीं ॥४१॥

नानोपहारबलिभिर्वारमुख्याः सहस्रशः ।
स्रग्गन्धवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलंकृताः ॥४२॥

नाना उपहार बलिभिः वारमुख्याः सहस्रशः स्रक् गन्ध वस्त्र आभरणैः द्विजपत्न्यः स्वलङ्कृताः ॥४२॥

नाना उपहार	अनेक प्रकारकी भेंट
बलिभिः	पूजा-सामग्रीके साथ
स्रक् गन्ध	माला-चन्दन
वस्त्र आभरणैः	वस्त्राभूषणोंसे
स्वलङ्कृताः	आभूषिता
द्विजपत्न्यः	ब्राह्मणोंकी पत्नियां
सहस्रशः	सहस्रों
वारमुख्याः	वारवधुमें ॥४२॥

गायन्तश्च स्तुवन्तश्च गायका वाद्यवादकाः ।
परिवार्य वधूं जग्मुः सूतमागधवन्दिनः ॥४३॥

गायन्तः च स्तुवन्तः च गायका वाद्यवादकाः परिवार्य वधूं जग्मुः सूत मागध वन्दिनः ॥४३॥

सूत मागध	सूत, मागध,	**गायन्तः**	गाते,
वन्दिनः	वन्दी	**स्तुवन्तः**	स्तुति करते
च गायका	तथा दूसरे गायक	**वधूं परिवार्य**	नववधूको घेरकर
च वाद्य वादकाः	एवं बाजा बजाने वाले	**जग्मुः**	चले ॥४३॥

आसाद्य देवीसदनं धौतपादकराम्बुजा ।
उपस्पृश्य शुचिः शान्ता प्रविवेशाम्बिकान्तिकम् ॥४४॥

आसाद्य देवीसदनं द्यौत पाद कराम्बुजा उपस्पृश्य शुचिः शान्ता प्रविवेश अम्बिका अन्तिकम् ॥४४॥

देवीसदनं	देवी-मन्दिर	**शुचिः शान्ता**	पवित्र होकर शान्त भावसे
आसाद्य	पहुँचकर	**अम्बिका**	अम्बिका देवीके
पाद	पैर	**अन्तिकं**	समीप
द्यौत कराम्बुजा	कर कमलोंको धोकर	**प्रविवेश**	प्रवेश किया ॥४४॥
उपस्पृश्य	आचमन करके		

तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः ।
भवानीं वन्दयाञ्चक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम् ॥४५॥

तां वै प्रवयसः बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः भवानीं वन्दयान् चक्रुः भवपत्नीं भव अन्विताम् ॥४५॥

तां वै विधिज्ञा	उनसे निश्चित विधि जानने वाली	**भवपत्नीं**	शिवप्रिय
		भवानीं	भवानीकी
प्रवयसः	वृद्धा	**वन्दयान् चक्रुः**	वन्दना करवायी ॥४५॥
विप्रयोषितः	ब्राह्मणियोंने		
भव अन्वितां	शंकरजीके साथ		

नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसन्तानयुतां शिवाम् ।
भूयात् पतिर्मे भगवान् कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥४६॥

नमस्ये त्वां अम्बिके अभीक्ष्णं स्वसन्तान युतां शिवां भूयात् पतिः मे भगवान् कृष्णः तत् अनुमोदताम् ॥४६॥

अम्बिके	'अम्बिके !	**मे पतिः**	मेरे पति
स्वसन्तान युतां	अपने पुत्र गणेशजी के साथ	**भगवान् कृष्णः**	भगवान श्रीकृष्ण
		भूयात्	होवें
त्वां शिवां	आप कल्याण-दायिनीको	**तत् अनुमोदतां**	आप इसका अनुमोदन करें ॥४६॥
अभीक्ष्णं नमस्ये	बार-बार नमस्कार करती हूँ,		

अद्भिर्गन्धाक्षतैर्धूपैर्वासः स्रङ्माल्यभूषणैः ।
नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक् ॥४७॥

अद्भिः गन्ध अक्षतैः धूपैः वासः स्रक् माल्य भूषणैः नाना उपहार बलिभिः प्रदीप अवलिभिः पृथक् ॥४७॥

अद्भिः गन्ध	जल, चन्दन,	**बलिभिः**	भेंट देकर
अक्षतैः	अक्षत,	**पृथक्**	तथा अलगसे
धूपैः वासः	धूप, वस्त्र,	**प्रदीप**	अनेक दीपोंसे
स्रक् माल्य	माला, हार,	**अवलिभिः**	आरती करके ॥४७॥
भूषणैः	आभूषण,		
नाना उपहार	नाना उपहारोंकी		

विप्रस्त्रियः पतिमतीस्तथा तैः समपूजयत् ।
लवणापूपताम्बूलकण्ठसूत्रफलेक्षुभिः ॥४८॥

विप्रस्त्रियः पतिमतीः तथा तैः समपूजयत् लवण अपूप ताम्बूल कण्ठसूत्र फल इक्षुभिः ॥४८॥

तथा तैः	तथा इन सब सामग्रियोंके साथ	**फल इक्षुभिः**	फल तथा गन्नेसे
लवण अपूप	नमकीन पुए (बड़ियों)	**पतीमतीः**	साधवा
ताम्बूल	पान	**बिप्रस्त्रियः**	ब्राह्मणस्त्रियोंकी
कण्ठसूत्र	कण्ठसूत्र (कंठी)	**समपूजयत्**	भली प्रकार पूजा की ॥४८॥

तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुः शेषां युयुजुराशिषः ।
ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ॥४९॥

तस्यै स्त्रियः ताः प्रददुः शेषां युयुजुः आशिषः ताभ्यः देव्यै नमः चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ॥४९॥

तस्यै ताः स्त्रियः	उनको उन ब्राह्मण स्त्रियोंने	**च देव्यै नमः**	तथा देवीको प्रणाम
आशिषः युयुजुः	आशीर्वाद दिया	**चक्रे**	करके
शेषां प्रददुः	और प्रसाद दिया	**शेषां जगृहे**	प्रसाद ग्रहण किया ॥४९॥
वधूः ताभ्यः	नववधूने उनको		

मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामाम्बिकागृहात् ।
प्रगृह्य पाणिना भृत्यां रत्नमुद्रोपशोभिना ॥५०॥

मुनिव्रतं अथ त्यक्त्वा निःचक्राम अम्बिकागृहात् प्रगृह्य पाणिना भृत्यां रत्नमुद्रा उपशोभिना ॥५०॥

अथ मुनिव्रतं	फिर मौन	**पाणिना**	हाथसे
त्यक्त्वा	छोड़कर	**भृत्यां प्रगृह्य**	दासीको पकड़कर
रत्नमुद्रा	रत्नजड़ी अँगूठीसे	**अम्बिकागृहात्**	देवी-मन्दिरसे
उपशोभिना	सुशोभित	**निःचक्राम**	निकली ॥५०॥

तां देवमायामिव वीरमोहिनीं
सुमध्यमां कुण्डलमण्डिताननाम् ।

श्यामां नितम्बार्पितरत्नमेखलां
व्यञ्जत्स्तनीं कुन्तलशङ्कितेक्षणाम् ॥५१॥

तां देवमायां इव वीर मोहिनीं सुमध्यमां कुण्डल मण्डित आननां श्यामां नितम्ब अर्पित रत्न मेखलां व्यञ्जत् स्तनीं कुन्तल शङ्कित ईक्षणां ॥५१॥

वीर मोहिनीं	वीरोंको मोहित करने वाली	नितम्ब	नितम्बों पर
देवमायां इव	देवमायाके समान	रत्न मेखलां	रत्नजटित करधनी
तां सुमध्यमां	इन क्षीण कटि वाली	अर्पित	पहिने,
कुण्डल मण्डित	कुण्डल-भूषित	व्यञ्जत् स्तनीं	झलकते स्तन वाली
आननां	मुखी,	कुन्तल	बालोंमें से
श्यामां	षोडश वर्षीया	शङ्कित ईक्षणां	शङ्कित नेत्रोंसे देखती ॥५१॥

शुचिस्मितां बिम्बफलाधरद्युति-
शोणायमानद्विजकुन्दकुड्मलाम् ।
पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं
शिञ्जत्कलानूपुरधामशोभिना ।
विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता
यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ॥५२॥

शुचिस्मितां बिम्बफल अधर द्युति शोणायमान द्विज कुन्द कुड्मलां पदा चलन्तीं कलहंस गामिनीं शिञ्जत कला नूपुर धाम शोभिना विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता यशस्विनः तत् कृत हृच्छय आर्दिताः ॥५२॥

शुचिस्मितां	पवित्र मुस्कान वाली,	बिम्बफल अधर	विम्बाफलके समान (लाल) ओष्ठोंकी

द्यु ति	कान्तिसे
शोणायमान	कुछ अरुणिम लगते
द्विज कुन्द	कुन्द कली जैसे
कुड्मलां	दाँतों वाली,
कलहंस	राजहंसकी
गामिनीं	गतिसे चलने वाली,
शिञ्जत् कला	झंकार करते
नूपुर	नूपुरोंको
धाम शोभिना	पहिननेसे सुशोभित
पदा चलन्तीं	पैरोंसे चलती
विलोक्य	उनको देखकर
समागता	वहां आये
यशस्विनः वीरा	यशस्वी वीर
तत् कृत्	उनके लिए
हृच्छय आर्दिताः	उत्तेजित कामकी पीड़ासे
मुमुहुः	मूर्छित हो गये ॥५२॥

यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहास-
व्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः ।
पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा
यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ॥५३॥

यां वीक्ष्य ते नृपतयः तत् उदारहास व्रीडा अवलोक हृतचेतस उज्झित अस्त्राः पेतुः क्षितौ गज रथ अश्वगता विमुढा यात्राः छलेन हरये अर्पयतीं स्वशोभाम् ॥५३॥

यात्राः छलेन	यात्राके बहाने
स्वशोभां	अपना सौन्दर्य
हरये अर्पयतीं	श्रीहरिको अर्पित करती
यां वीक्ष्य	जिनको देखकर
तत् उदारहास	उनकी मनोहर मुस्कान,
व्रीडा अवलोक	लज्जापूर्ण दृष्टिसे
हृतचेतस	चित्त हरण हुए
गज रथ	हाथी, रथ,
अश्वगता	घोड़ों पर चढ़े
ते नृपतयः	वे राजा लोग
विमूढा	मूर्छित होकर
क्षितौ पेतुः	पृथ्वी पर गिर गये (और उनके)
उज्झित अस्त्राः	हथियार (हाथोंसे) गिर गये ॥५३॥

सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ
प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा ।

उत्सार्य वामकरजैरलकानपाङ्गैः
प्राप्तान् ह्रियैक्षत नृपान् ददृशेऽच्युतं सा ॥५४॥

सा एवं शनैः चलयती चलपद्मकोशौ प्राप्ति तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा उत्सार्य वामकरजैः अलकान् अपाङ्गैः प्राप्तान् ह्रिया ईक्षत नृपान् ददृशे अच्युतं सा ॥५४॥

सा एवं	वे इस प्रकार
चल पद्मकोशौ	हिलते कमल पुष्पों के समान (पदोंसे)
शनैः	धीरे-धीरे
चलयती	चलती हुई
तदा	उस समय
भगवतः प्राप्ति	भगवानके आगमन को
प्रसमीक्षमाणा	उत्सुकता पूर्वक देखती हुई
वामकरजैः	बायें हाथके नखोंसे
अलकान्	अलकोंको
उत्सार्य	हटाकर
ह्रिया अपाङ्गैः	लज्जापूर्वक कटाक्ष से
प्राप्तान् नृपान्	आये राजाओंको
ईक्षत	देखती हुई
सा अच्युतं ददृशे	उसने अच्युतको देख लिया ॥५४॥

तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं
जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम् ।
रथं समारोप्य सुपर्णलक्षणं
राजन्यचक्रं परिभूय माधवः ॥५५॥

तां राजकन्यां रथं आरुरुक्षतीं जहार कृष्णः द्विषतां समीक्षतां रथं समारोप्य सुपर्णं लक्षणं राजन्य चक्रं परिभूय माधवः ॥५५॥

तां रथं	उस रथारोहण
आरुरुक्षन्तीं	उद्यता
राजकन्यां	राजकन्याको
द्विषतां	शत्रुओंके
समीक्षतां	देखते-देखते
राजन्य चक्रं	राजमण्डलीका
परिभूय	तिरस्कार करके
माधवः कृष्णः	रमाकान्त श्रीकृष्ण ने
सुपर्ण लक्षणं	गरुड ध्वज
रथं समारोप्य	रथ पर चढ़ाकर
जहार	हरण कर लिया ॥५५॥

ततो ययौ रामपुरोगमैः शनैः
सृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः ॥५६॥

ततः ययौ रामपुरोगमैः शनैः सृगाल मध्यात् इव भागहृत् हरिः ॥५६॥

ततः	तब	**भागहृत्**	अपना भाग ले जाते
रामपुरोगमैः	बलरामजी जिनके आगे चलते थे	**हरि इव**	सिंहके समान
सृगाल मध्यात्	सियारोंके बीचसे	**शनैः ययौ**	धीरे-धीरे चले गये ॥५६॥

तं मानिनः स्वाभिभवं यशः क्षयं
परे जरासंधवशा न सेहिरे ।
अहो धिगस्मान् यश आत्तधन्वनां
गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ॥५७॥

तं मानिनः स्व अभिभवं यशः क्षयं परे जरासन्धवशा न सेहिरे अहो धिक् अस्मान् यश आत्त धन्वनां गोपैः हृतं केसरिणां मृगैः इव ॥५७॥

जरासन्धवशा	जरासन्धके वशवर्ती (राजा लोग)	**अस्मान् यश**	हम लोगोंके यशको
तं स्व अभिभवं	उस अपने तिरस्कार और	**धिक्**	धिक्कार है
यशः क्षयं	यशकी हानिको	**गोपैः केसरिणां**	गोपोंने सिंहोंके (आखेट) को
परे न सेहिरे	वे दूसरे सह नहीं सके (बोले—)	**मृगैः इव हृतं**	(दूसरे) पशुओंकी भाँति हरण कर लिया ॥५७॥
अहो	'अहो		
आत्त धन्वनः	धनुर्धारी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

अथ चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः ।
स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रान्ता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥१॥

इति सर्वे सुसंरब्धा वाहान् आरुह्य दंशिताः स्वैः स्वैः बलैः परिक्रान्ता अनु ईयुः धृत कार्मुकाः ॥१॥

इति सर्वे	इस प्रकार (वे) सब	**स्वैः स्वैः बलैः**	अपनी-अपनी सेनाके साथ
सुसंरब्धा	अत्यन्त कुपित होकर	**परिक्रान्ता**	चारों ओरसे आक्रमण करते
दंशिताः	कवच पहिन कर	**अनु ईयुः**	(यादवोंके) पीछे चले ॥१॥
धृत कार्मुकाः	धनुष लेकर		
वाहान् आरुह्य	अपने वाहनोंपर चढ़ कर		

तानापतत आलोक्य यादवानीकयूथपाः ।
तस्थुस्तत्संमुखा राजन्विस्फूर्ज्य स्वधनूंषि ते ॥२॥

तान् आपतत आलोक्य यादव अनीक यूथपाः तस्थुः तत् संमुखा राजन् विस्फूर्ज्य स्व धनूंषि ते ॥२॥

राजन्	राजन् !	**स्व धनूंषि**	अपने धनुषोंकी
तान् आपतत	उनको झपटते	**विस्फूर्ज्य**	टंकार करते हुए
आलोक्य	देखकर	**तत् सम्मुखा**	उनके सामने
ते यादव अनीक	वे यादव सेनाके	**तस्थुः**	खड़े हो गये ॥२॥
यूथपाः	सेनापति-गण		

अश्वपृष्ठे गजस्कन्धे रथोपस्थे च कोविदाः ।
मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥३॥

अश्वपृष्ठे गजस्कन्धे रथ उपस्थे च कोविदाः मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिषु अपः यथा ॥३॥

मेघा यथा	मेघ जैसे	**गजस्कन्धे**	हाथियोंके कन्धोंपर,
अद्रिषु अपः	पर्वतपर जल (वर्षा करें)	**च रथ उपस्थे**	तथा रथोंके अगले भागपर
कोविदाः	वे चतुर	**शरवर्षाणि**	बाण वृष्टि
अश्वपृष्ठे	घोड़ोंकी पीठपर,	**मुमुचुः**	छोड़ने लगे ॥३॥

पत्युर्बलं शरासारैश्छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा ।
सव्रीडमैक्षत्तद्वक्त्रं भयविह्वललोचना ॥४॥

पत्युः बलं शर आसारैः छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा सव्रीडं ऐक्षत् तत् वक्त्रं भय विह्वल लोचना ॥४॥

पत्युः बलं	पतिकी सेनाको	**सुमध्यमा**	क्षीण कटि (रुक्मिणी) ने
शर आसारैः	बाण-वर्षासे	**तत् वक्त्रं**	उनके मुखको
छन्नं वीक्ष्य	ढकी देखकर	**सव्रीडं ऐक्षत्**	लज्जापूर्वक देखा ॥४॥
भय विह्वल	भय-व्याकुल		
लोचना	नेत्रा		

प्रहस्य भगवानाह मा स्म भैर्वामलोचने ।
विनङ्क्षत्यधुनैतत्ते तावकैः शात्रवं बलम् ॥५॥

प्रहस्य भगवान् आह मा स्म भैः वाम लोचने विनङ्क्षति अधुना एव एतत् तावकैः शात्रव बलम् ॥५॥

भगवान् प्रहस्य	तब भगवान हँसकर	**तावकैः शात्रवं**	तुम्हारे लोगों द्वारा शत्रुओंकी
आह	बोले—	**एतत्**	यह
वाम लोचने	'सुलोचने !	**बलं विनङ्क्षति**	सेना नष्ट हो जायगी ॥५॥
मा स्म भैः	डरो मत		
अधुना एव	अभी ही		

तेषां तद्विक्रमं वीरा गदसंकर्षणादयः ।
अमृष्यमाणा नाराचैर्जघ्नुर्हयगजान् रथान् ॥ ६ ॥

तेषां तत् विक्रमं वीरा गद सङ्कर्षण आदयः अमृष्यमाणा नाराचैः जघ्नुः हय गजान् रथान् ॥६॥

तेषां तत् विक्रमं	उन लोगोंका वह पराक्रम
अमृष्यमाणा	न सहते हुए
वीर गद	वीर गद
सङ्कर्षण आदयः	बलरामजी आदि
हय गजान्	हाथी, घोड़े,
रथान्	रथोंको
नाराचैः जघ्नुः	बाणोंसे मारने लगे ॥६॥

पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनां गजिनां भुवि ।
सकुण्डलकिरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः ॥ ७ ॥

पेतुः शिरांसि रथिनां अश्विनां गजिनां भुवि सकुण्डल किरीटानि स उष्णी षाणि च कोटिशः ॥७॥

रथिनां	रथारोहियों,
अश्विनां	अश्वारोहियों
गजिनां	गजारोहियोंके
सकुण्डल	कुण्डलोंके साथ
स किरीटानि	मुकुटोंके साथ
च उष्णी षाणि	तथा पगड़ियों सहित
कोटिशः	करोड़ों
शिरांसि पेतुः	सिर (काटकर) गिर गये ॥७॥

हस्ताः सासिगदेष्वासाः करभा ऊरवोऽङ्घ्रयः ।
अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसि च ॥ ८ ॥

हस्ताः स असि गद ईषु आसाः करभा ऊरवः अंघ्रयः अश्वा अश्वतर नाग उष्ट्र खर मर्त्य शिरांसि च ॥८॥

असि गद	तलवार, गदा,
स ईषु आसाः	धनुष सहित
हस्ताः करभा	हाथ, भुजाएँ,
ऊरवः च	जांघें तथा
अंघ्रयः	पैर,
अश्वा अश्वतर	घोड़े, खच्चरों,

नाग उष्ट्र खर च	हाथी, ऊँटों, गधों एवं	मर्त्य शिरांसि	मनुष्योंके सिर (कटने लगे) ॥८॥

हन्यमानबलानीका वृष्णिभिर्जयकांक्षिभिः ।
राजानो विमुखा जग्मुर्जरासन्धपुरः सराः ॥ ९ ॥

हन्यमान बल अनीका वृष्णिभिः जय काङ्क्षिभिः राजानः विमुखा जग्मुः जरासन्धपुरः सराः ॥९॥

जय	विजयकी	जरासन्धपुरः	जरासन्धको आगे
काङ्क्षिभिः	इच्छा करनेवाले	सराः	करके चलनेवाले
वृष्णिभिः	यादवों द्वारा	राजानः विमुखा	राजा लोग (युद्धसे) विमुख होकर
हन्यमान बल	मारी जाती		
अनीका	सैन्य दलवाले	जग्मुः	लौट गये ॥९॥

शिशुपालं समभ्येत्य हृतदारमिवातुरम् ।
नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्यद्वदनमब्रुवन् ॥१०॥

शिशुपालं सम अभि एत्य हृतदारं इव आतुरं नष्ट त्विषं गत उत्साहं शुष्यत् वदनं अब्रुवन् ॥१०॥

हृतदारं इव	पत्नीका ही हरण हुआ हो ऐसे	शिशुपालं	शिशुपालके
आतुरं नष्ट	व्याकुल, नष्ट	सम अभि एत्य	समीप सब ओरसे आकर
त्विषं	कान्ति,	अब्रुवन्	(वे लोग) बोले ॥१०॥
गत उत्साहं	उत्साहहीन		
शुष्यत् वदनं	सूखते मुख		

भो भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज ।
न प्रियाप्रिययो राजन् निष्ठा देहिषु दृश्यते ॥११॥

भोः भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यम् इदं त्यज न प्रिय अप्रिययोः राजन् निष्ठा देहिषु दृश्यते ॥११॥

मोः मोः	हे हे !
पुरुषशार्दूल	पुरुष-सिंह
इदं दौर्मनस्यं	यह उदासी
त्यज	छोड़ दीजिए
राजन् देहिषु	राजन् ! प्राणीके लिए
प्रिय अप्रिययोः	प्रिय-अप्रिय (मिलने) का
निष्ठा न दृश्यते	कोई स्थिर नियम नहीं दीखता ॥११॥

यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया ।
एवमीश्वरतन्त्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः ॥१२॥

यथा दारुमयी योषित् नृत्यते कुहक इच्छया एवं ईश्वर तन्त्रः अयं ईहते सुख दुःखयोः ॥१२॥

यथा दारुमयी	जैसे लकड़ीसे बनी
योषित्	स्त्री
कुहक इच्छया	नटकी इच्छानुसार
नृत्यते	नाचती है
एवं ईश्वर	इसी प्रकार ईश्वरके
तन्त्रः	वशमें
अयं	यह (पुरुष)
सुख दुःखयोः	सुख-दुःखके लिए
ईहते	चेष्टा करता है ॥१२॥

शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः ।
त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्य एकमहं परम् ॥१३॥

शौरेः सप्तदश अहं वै संयुगानि पराजितः त्रयः विंशतिभिः सैन्यः जिग्य एकं अहं परम् ॥१३॥

शौरेः सप्तदश	श्रीकृष्णसे सत्रह बार
त्रयः विंशतिभिः	तेइस अक्षौहिणी
सैन्यैः	सेना सहित
अहं वै	मैं निश्चित रूपसे
पराजितः	पराजित हुआ
एकं परं अहं	एक पिछली बार मैं
जिग्य	जीत सका ॥१३॥

तथाप्यहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित् ।
कालेन दैवयुक्तेन जानन् विद्रावितं जगत् ॥१४॥

तथा अपि अहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित् कालेन दैवयुक्तेन जानन् विद्रावितं जगत् ॥१४॥

तथा अपि अहं	फिर भी मैं
दैवयुक्तेन	दैव-प्रेरित
कालेन जगत्	कालके द्वारा संसारको
विद्रावितं	परिवर्तित होते
जानन्	जानकर
न शोचामि	न शोक करता हूँ,
न कर्हिचित्	न कभी
प्रहृष्यामि	बहुत हर्षित होता हूँ ॥१४॥

अधुनापि वयं सर्वे वीरयूथपयूथपाः ।
पराजिताः फल्गुतन्त्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः ॥१५॥

अधुना अपि वयं सर्वे वीर यूथप यूथपाः पराजिताः फल्गुतन्त्रैः यदुभिः कृष्ण पालितैः ॥१५॥

अधुना अपि	इस समय भी
वयं सर्वे	हम सब
वीर यूथप	वीर सेनापतियोंके
यूथपाः	भी सेनापति
कृष्ण पालितैः	श्रीकृष्ण द्वारा रक्षित
फल्गुतन्त्रैः	अल्प साधनवाले
यदुभिः	यादवोंसे
पराजिताः	पराजित हो गये ॥१५॥

रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणि ।
तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः ॥१६॥

रिपवः जिग्युः अधुना काल आत्म अनुसारिणि तदा वयं विजेष्यामः यदा कालः प्रदक्षिणः ॥१६॥

अधुना रिपवः	इस समय शत्रु
आत्म	अपने
अनुसारिणि	अनुकूल
काल जिग्युः	काल होनेसे जीत गये
यदा कालः	जब काल
प्रदक्षिणः	(हमारे) दाहिने (अनुकूल) होगा
तदा वयं	तब हम लोग
विजेष्यामः	जीतेंगे ॥१६॥

एवं प्रबोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात् सानुगः पुरम् ।
हतशेषाः पुनस्तेऽपि ययुः स्वं स्वं पुरं नृपाः ॥१७॥

एवं प्रबोधितः मित्रैः चैद्यः अगात् स अनुगः पुरं हत शेषाः पुनः ते अपि ययुः स्वं स्वं पुरं नृपा ॥१७॥

एवं मित्रैः	इस प्रकार मित्रों द्वारा	**हत शेषाः**	मरनेसे बचे हुए
प्रबोधितः	समझाये जाने पर	**ते नृपाः अपि**	वे राजा लोगभी
स अनुगः चैद्यः	अनुचरोंके साथ शिशुपाल	**पुनः स्वं स्वं**	फिर अपने अपने
पुरं अगात्	अपने नगर चला गया,	**पुरं ययुः**	नगर चले गये ॥१७॥

रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन् स्वसुः ।
पृष्ठतोऽन्वगमत् कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली ॥१८॥

रुक्मी तु राक्षस उद्वाहं कृष्ण द्विट् असहन् स्वसुः पृष्ठतः अनु अगमत् कृष्णं अक्षौहिण्या वृतः बली ॥१८॥

कृष्ण द्विट्	श्रीकृष्णका द्वेषी	**अक्षौहिण्या वृतः**	एक अक्षौहिणी सेना से घिरा
बली रुक्मी तु	बलवान रुक्मी तो	**कृष्णः पृष्ठतः**	श्रीकृष्णके पीछे
स्वसुः राक्षस	बहिनका राक्षस	**अनु अगमत्**	चल पड़ा ॥१८॥
उद्वाहं	विवाह		
असहन्	सहन न करके		

रुक्म्यमर्षी सुसंरब्धः शृंवतां सर्वभूभुजाम् ।
प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दंशितः सशरासनः ॥१९॥

रुक्मि अमर्षी सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजां प्रतिजज्ञे महाबाहुः दंशितः सशरासनः ॥१९॥

अमर्षी सुसंरब्धः	असहनशील अत्यन्त कुपित
महाबाहुः रुक्मि	विशाल भुजा वाले रुक्मीने
दंशितः	कवच पहिनकर
सशरासनः	धनुष लेकर
सर्वभूभुजां	सब राजाओंके
शृण्वतां प्रतिजज्ञे	सुनते हुए प्रतिज्ञा की ॥१९॥

अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् ।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि वः ॥२०॥

अहत्वा समरे कृष्णं अप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यं एतत् ब्रवीमि वः ॥२०॥

वः एतत् सत्यं	आप लोगोंसे यह सत्य
ब्रवीमि	कहता हूँ कि
समरे कृष्णं	युद्धमें श्रीकृष्णको
अहत्वा च	बिना मारे और
रुक्मिणीम्	रुक्मिणीको
अप्रत्यूह्य	बिना लौटाये
कुण्डिनं	कुण्डिनपुरमें
प्रवेक्ष्यामि न	प्रवेश नहीं करूँगा ॥२०॥

इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राह सत्वरः ।
चोदयाश्वान् यतः कृष्णस्तस्य मे संयुगं भवेत् ॥२१॥

इति उक्तवा रथं आरुह्य सारथिं प्राह सत्वरः चोदय आश्वान् यतः कृष्णः तस्य मे संयुगं भवेत् ॥२१॥

इति उक्तवा	ऐसा कहकर
रथं आरुह्य	रथ पर चढ़कर
सारथिं प्राह	सारथिसे बोला—
यतः कृष्णः	जहाँ कृष्ण है
सत्वरः अश्वान्	शीघ्र घोड़ोंको
चोदय	उधर ले चलो,
तस्य मे	उसका मुझसे
संयुगं भवेत्	युद्ध हो ॥२१॥

अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः ।
नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता ॥२२॥

अद्य अहं निशितैः बाणैः गोपालस्य सुदुर्मतेः नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता ॥२२॥

अद्य अहं	आज मैं	**नेष्ये येन**	नष्ट कर दूँगा,
सुदुर्मतेः	अत्यन्त दुर्बुद्धि		जिसने
गोपालस्य	उस गोपालका	**प्रसभं मे**	बलपूर्वक मेरी
निशितैः बाणैः	तीक्ष्ण बाणोंसे	**स्वसा हृता**	बहिनका हरण
वीर्यमदं	पराक्रमका गर्व		किया है ॥२२॥

विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित् ।
रथेनैकेन गोविन्दं तिष्ठ तिष्ठेत्यथाह्वयत् ॥२३॥

विकत्थमानः कुमतिः ईश्वरस्य अप्रमाणवित् रथेन एकेन गोविन्दं तिष्ठ तिष्ठ इति अथ आह्वयत् ॥२३॥

ईश्वरस्य	उन सर्वेश्वरकी	**अथ गोविन्दं**	फिर गोविन्दको
अप्रमाणवित्	महिमा न जनाने वाला	**तिष्ठ तिष्ठ इति**	'ठहर ! ठहर !' इस प्रकार
कुमतिः	(वह) दुर्बुद्धि	**आह्वयत्**	पुकारने लगा
विकत्थमानः	बकवाद करता हुआ		॥२३॥
एकेन रथेन	अकेले ही रथसे (पास जाकर)		

धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः ।
आह चात्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसन ॥२४॥

धनुः विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः आह च अत्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुल पांसनः ॥२४॥

सुदृढं धनुः	बहुत दृढ धनुष	**कृष्णं जघ्ने**	श्रीकृष्णको मारा
विकृष्य	खींचकर	**च आह**	तथा बोला—
त्रिभिः शरैः	तीन बाणोंसे		

यदूनां कुल पांसनः	'यदुकुल कलंक !	अत्र क्षणं तिष्ठ	यहाँ क्षण भर तो खड़ा रह ॥२४॥

कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वाङ्क्षवद्धविः ।
हरिष्येऽद्य मदं मन्द मायिनः कूटयोधिनः ॥२५॥

कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वाङ्क्षवत् हविः हरिष्ये अद्य मदं मन्द मायिनः कूटयोधिनः ॥२५॥

ध्वाङ्क्षवत्	कौएके समान	मन्द मायिनः	मूर्ख मायावी
हविः	हविष्यको (चुराने के समान)	कूटयोधिनः	कपट-युद्ध करने वाले (लोग)
मे स्वसारं	मेरी बहिनको	अद्य मदं हरिष्ये	आज गर्व नष्ट कर दूँगा ॥२५॥
मुषित्वा	चुराकर		
कुत्र यासि	जायगा कहाँ,		

यावन्न मे हतो बाणैः शयीथा मुञ्च दारिकाम् ।
स्मयन् कृष्णो धनुश्छित्त्वा षड्भिर्विव्याध रुक्मिणम् ॥२६॥

यावत् न मे हतः बाणैः शयीथा मुञ्च दारिकां स्मयन् कृष्णः धनुः छित्त्वा षट्भिः विव्याध रुक्मिणम् ॥२६॥

यावत् मे बाणैः	जब तक मेरे बाणों से	धनुः छित्त्वा	(उसका) धनुष काटकर
हतः न शयीथा	मारा जाकर नहीं सो जाता,	रुक्मिणं	रुक्मीको
दारिकां मुञ्च	बालिकाको छोड़ दे ।' (यह सुनकर)	षट्भिः विव्याध	छः बाणोंसे बींधा ॥२६॥
स्मयन् कृष्णः	मुस्कराते हुए श्रीकृष्णने		

अष्टभिश्चतुरो वाहान् द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः ।
स चान्यद् धनुरादाय कृष्णं विव्याध पञ्चभिः ॥२७॥

अष्टभिः चतुरः वाहान् द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः स च अन्यत् धनुः आदाय कृष्णं विव्याध पञ्चभि. । २७॥

अष्टभिः	आठ (बाणों)से	**स च अन्यत्**	उसने भी दूसरा
चतुरः वाहान्	चारो वाहनो (अश्वों)को,	**धनुः आदाय**	धनुष लेकर
		कृष्णं पञ्चभिः	श्रीकृष्णको पाँच (बाणों)से
द्वाभ्यां सूतं	दोसे सारथीको		
त्रिभिः ध्वजं	तीनसे ध्वजाको (काट दिया)	**विव्याध**	बींधा ॥२७॥

तैस्ताडितः शरौघैस्तु चिच्छेद धनुरच्युतः ।
पुनरन्यदुपादत्त तदप्यच्छिनदव्ययः ॥२८॥

तैः ताडितः शर औघैः तु चिच्छेद धनुः अच्युतः पुनः अन्यत् उपादत्त तत् अपि अच्छिनत् अव्ययः ॥२८॥

तैः शर ओघैः	उसके द्वारा बाणों की बौछारसे	**उपअदत्त**	समीपसे उठाया
		तत् अपि	उसे भी
ताडितः अच्युतः	ताड़ित अच्युतने	**अव्ययः**	अविनाशी श्रीकृष्णने
धनुः चिच्छेद	(उसका) धनुष काट दिया	**अच्छिनत्**	काट दिया ॥२८॥
पुनः अन्यत्	फिर (उसने) दूसरा (धनुष)		

परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ ।
यद् यदायुधमादत्त तत् सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः ॥२९॥

परिघं पट्टिशं शूलं चर्म असि शक्ति तोमरौ यत् यत् आयुधं आदत्त तत् सर्वं सः अच्छिनत् हरिः ॥२९॥

परिघं पट्टिशं	परिध, पट्टिश,
शूलं चर्म असि	त्रिशूल, ढाल-तलवार,
शक्ति तोमरौ	शक्ति और तोमर आदि
यत् यत् आयुधं	जो जो शस्त्र
आदत्त	(वह) उठाता गया
तत् सर्वं	उन सबको
सः हरिः	उन श्रीहरिने
अच्छिनत्	काट दिया ॥२९॥

ततो रथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया ।
कृष्णमभ्यद्रवत् क्रुद्धः पतङ्ग इव पावकम् । ३०॥

ततः रथात् अवप्लुत्य खड्गपाणिः जिघांसया कृष्णं अभ्यद्रवत् क्रुद्धः पतङ्ग इव पावकम्

ततः रथात्	फिर (अन्तमें) रथ से
अवप्लुत्य	कूदकर
जिघांसया	मारनेकी इच्छासे
पावकं	अग्निकी ओर
पतङ्ग इव	पतिंगेके समान
खड्गपाणिः	हाथमें खड्ग लेकर
कृष्णं	श्रीकृष्णकी ओर
अभ्यद्रवत्	झपटा ॥३०॥

तस्य चापततः खंगं तिलशश्चर्म चेषुभिः ।
छित्त्वासिमाददे तिग्मं रुक्मिणं हन्तुमुद्यतः ॥३१॥

तस्य च आपततः खड्गम् तिलशः चर्म च इषुभिः छित्त्वा असिं आददे तिग्मं रुक्मिणं हन्तुं उद्यतः ॥३१॥

तस्य आपततः च	उसके झपटते समय ही
इषुभिः खड्गम्	बाणोंसे (उसकी) तलवार
च चर्म तिलशः	तथा ढालको तिल तिल
छित्त्वा रुक्मिणं	काटकर रुक्मीको

हन्तुं उद्यतः	मारनेको उद्यत	**आददे**	उठाई ॥३१॥
तिग्मं असिं	तीक्ष्ण तलवार		

दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला ।
पतित्वा पादयोर्भर्तुरुवाच करुणं सती ॥३२॥

दृष्ट्वा भ्रातृ वध उद्योगं रुक्मिणी भय विह्वला पतित्वा पादयोः भर्तुः उवाच करुणं सती ॥३२॥

भ्रातृ वध	भाईको मारनेका	**भर्तुः पादयोः**	स्वामीके चरणों पर
उद्योग दृष्ट्वा	प्रयत्न देखकर	**पतित्वा**	गिरकर
सती रुक्मिणी	साध्वी रुक्मिणी	**करुणं उवाच**	करुण स्वरमें बोलीं ॥३२॥
भय विह्वला	भयसे व्याकुल होकर		

॥ रुक्मिणी उवाच ॥*

योगेश्वराप्रमेयात्मन् देवदेव जगत्पते ।
हन्तुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥३३॥

योगेश्वर अप्रमेय आत्मन् देवदेव जगत्पते हन्तुं न अर्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥३३॥

योगेश्वर	'योगेश्वर !'	**कल्याण**	कल्याण स्वरूप !
अप्रमेय आत्मन्	अप्रमेय स्वरूप !	**मे भ्रातरं**	मेरे भाईको
देवदेव	देवदेवेश्वर !	**हन्तुं न अर्हसि**	(आपको) मारना नहीं चाहिए ॥३३॥
जगत्पते	जगन्नाथ !		
महाभुज	महाबाहो !		

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

।। श्रीशुक उवाच ।।

तया परित्रासविकम्पिताङ्ग्या
शुचावशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठया ।
कातर्यविस्रंसितहेममालया
गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत ।।३४।।

तया परित्रास विकम्पि अङ्ग्या शुचा अवशुष्यत् मुखरुद्ध कण्ठया कातर्य विस्रंसित हेममालया गृहीतपादः करुणः न्यवर्तत ।।३४।।

परित्रास	अत्यन्त भयसे
विकम्पित	कांपते
अङ्ग्या	शरीर वाली,
शुचा अवशुष्यत्	शोकके कारण सूखे
मुखरुद्ध	मुख तथा रुके
कण्ठया	गले वाली,
कातर्य	व्याकुलता वश
विस्रंसित	विखरी
हेममालया	स्वर्ण मालाओं वाली
तया गृहीतपादः	उनके द्वारा चरण पकड़ने पर
करुणः न्यवर्तत	वे करुणामय (रुक्मिीके वधसे) रुक गये ।।३४।।

चैलेन बद्धवा तमसाधुकारिणं
सश्मश्रुकेशं प्रवपन् व्यरूपयत् ।
तावन्ममर्दुः परसैन्यमद्भुतं
यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः ।।३५।।

चैलेन बध्वा तं असाधुकारिणं सश्मश्रुकेशं प्रवपन् व्यरूपयत् तावत् ममर्दुः परसैन्यं अद्भुतं यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः ।।३५।।

तं	उस
असाधुकारिणं	कुकर्म करने वालेके
चैलेन बध्वा	वस्त्र (दुपट्टे)से बाँधकर

सश्मश्रु केशं	दाढ़ीके साथ सिरके बाल
प्रवपन्	(जहाँ तहाँसे) काटकर
व्यरूपयत्	कुरूप बना दिया,
तावत्	तब तक
यदुप्रवीरा	यादव महावीरोंने
अद्भुतं	अद्भुत
परसैन्यं	उस शत्रु सेनाको
यथा गजाः	जैसे हाथी
नलिनीं	कमलिनीको (रौंदें)
ममर्दुः	मसल डाला

॥३५॥

कृष्णान्तिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् ।
तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वा संकर्षणो विभुः ।
विमुच्य बद्धं करुणो भगवान् कृष्णमब्रवीत् ॥३६॥

कृष्ण अन्तिकं उपव्रज्य ददृशुः तत्र रुक्मिणं तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वा सङ्कर्षणः विभुः विमुच्य बद्धं करुणः भगवान् कृष्णं अब्रवीत् ॥३६॥

विभुः सङ्कर्षणः	प्रभु बलरामजी
कृष्ण अन्तिकं	श्रीकृष्णके समीप
उपव्रज्य	पहुँचकर
तथाभूतं	उस दशामें पहुँचे
हतप्रायं	प्रायः मारे गयेके समान
तत्र रुक्मिणं	वहाँ रुक्मीको
ददृशुः	देखा
दृष्ट्वा करुणः	देखकर दयावश
बद्धं विमुच्य	उस बँधेको खोलकर
भगवान् कृष्णं	भगवान श्रीकृष्णसे
अब्रवीत्	बोले ॥३६॥

॥ संकर्षणोवाच ॥*

असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम्
वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः ॥३७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

असाधु इदं त्वया कृष्ण कृतं अस्मत् जुगुप्सितं वपनं श्मश्रु केशानां वैरूप्यं सुहृदः वधः ॥३७॥

कृष्ण इदं त्वया	श्रीकृष्ण यह तुमने	**श्मश्रु केशानां**	दाढ़ी तथा बालोंको
असाधु कृतं	अच्छा नहीं किया	**वपनं वैरूप्यं**	मूंडकर कर कुरूप कर देना
अस्मत्	हमारे लिए		
जुगुप्सितं	(यह) निन्दाकी बात है,	**सुहृदः बधः**	सम्बन्धीका वध ही है ॥३७॥

मैवास्मान् साध्व्यसूयेथा भ्रातुर्वैरूप्यचिन्तया ।
सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतःस्वकृतभुक् पुमान् ॥३८॥

मा एव अस्मान् साध्वि असूयेथा भ्रातुः वैरूप्य चिन्तया सुखदुःखदः न च अन्यः अस्ति यतः स्वकृत भुक् पुमान् ॥३८॥

साध्वि	(रुक्मिणीसे बोले) साध्वी !	**अन्यः च न अस्ति**	दूसरा कोई भी नहीं है,
भ्रातुः वैरूप्य चिन्तया	भाईको कुरूप करनेको सोचकर	**पुमान्**	पुरुष
अस्मान्	हम लोगों पर	**स्वकृत भुक्**	अपने ही कियेका (फल) भोगता है ॥३८॥
असूयेथा	दोषारोप		
मा एव	सर्वथा मत करना		
यतः सुखदुःखदः	क्योंकि सुख-दुःख देने वाला		

बन्धुर्वधार्हदोषोऽपि न बन्धोर्वधमर्हति ।
त्याज्यः स्वेनैव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः ॥३९॥

बन्धुः वधार्ह दोषः अपि न बन्धुः वधं अर्हति त्याज्यः स्वेन एव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः ॥३९॥

बन्धुः	(फिर श्रीकृष्णसे) सम्बन्धी	**वधं**	वधके

अर्हदोषः अपि	योग्य अपराध करने पर भी	**हतः किं पुनः**	(वह तो) मारा गया है फिर उसे क्या
बन्धुः वधं	सम्बन्धीका वध		
न अर्हति	नहीं करना चाहिए	**हन्यते**	मारना है ॥३९॥
स्वेन एव दोषेण	अपने ही दोषसे		

क्षत्रियाणामयं धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः ।
भ्रातापि भ्रातरं हन्याद् येन घोरतरस्ततः ॥४०॥

क्षत्रियाणां अयं धर्मः प्रजापति विनिर्मितः भ्राता अपि भ्रातरं हन्यात् येन घोरतरः ततः ॥४०॥

प्रजापति	(रुक्मिणीसे—) प्रजापति ब्रह्माजी को	**भ्राता अपि**	भाई भी
		भ्रातरं हन्यात्	भाईको मार देता है
विनिर्मितः	बनाया	**येन ततः**	जिससे यह
अयं क्षत्रियाणां	यह क्षत्रियोंका	**घोरतरः**	अत्यन्त घोर है ॥४०॥
धर्मः	धर्म ऐसा है कि		

राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रिया मानस्य तेजसः ।
मानिनोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदान्धाः क्षिपन्ति हि ॥४१॥

राज्यस्य भूमेः वित्तस्य स्त्रिया मानस्य तेजसः मानिनः अन्यस्य वा हेतोः श्रीमत् अन्धाः क्षिपन्ति हि ॥४१॥

राज्यस्य	(श्रीकृष्णसे) राज्यके,	**मानिनः**	अभिमानी लोग
		क्षिपन्ति	(दूसरोंका) तिरस्कार करते हैं (अतः यह हमारे लिए उचित नहीं) ॥४१॥
भूमेः वित्तस्य	पृथ्वी, धन,		
स्त्रिया मानस्य	स्त्री, सम्मान,		
तेजसः वा	तेज अथवा		
अन्यस्य हेतोः	अन्य किसी कारणसे		
हि श्रीमत्	क्योंकि ऐश्वर्य		
अन्धाः	मदान्ध		

तवेयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुर्हृदाम् ।
यन्मन्यसे सदाभद्रं सुहृदां भद्रमज्ञवत् ॥४२॥

तव इयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुःहृदां यत् मन्यसे सदा अभद्रं सुहृदां भद्रं अज्ञवत् ॥४२॥

सर्वभूतेषु	(रुक्मिणीसे—) सब प्राणियोंसे	**अभद्रं मन्यसे**	जो अकल्याण मानती हो
दुःहृदां	द्वेषयुक्त चित्तवाले	**इयं तव बुद्धिः**	यह तुम्हारी बुद्धि
सुहृदां	सम्बन्धीके लिए	**विषमा**	विषम (उलटी) है ॥४२॥
सदा भद्रं	सदा कल्याणमय (दण्ड)को		
यत् अज्ञवत्	जो अज्ञानियोंकी भाँति		

आत्ममोहो नृणामेष कल्प्यते देवमायया ।
सुहृद् दुर्हृदुदासीन इति देहात्ममानिनाम् ॥४३॥

आत्ममोहः नृणां एष कल्प्यते देवमायया सुहृद् दुर्हृद उदासीन इति देह आत्म मानिनां ॥४३॥

देह आत्म मानिनां	शरीरको ही आत्मा मानने वालों को	**एष आत्ममोहः**	यह आत्माके विषय का मोह
नृणां	मनुष्योंको	**देवमायया**	भगवानकी मायासे
सुहृद दुर्हृद	मित्र, शत्रु,	**कल्प्यते**	होता है ॥४३॥
उदासीन इति	उदासीन इस प्रकार का		

एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।
नानेव गृह्यते मूढै रायं ज्योतिर्यथा नभः ॥४४॥

एक एव परः हि आत्मा सर्वेषां अपि देहिनां नाना इव गृह्यते मूढैः यथा ज्योतिः यथा नभः ॥४४॥

यथा ज्योतिः	जैसे अग्नि,	**एक एव**	एक ही है
यथा नभः	जैसे आकाश (एक ही है)	**मूढैः नाना इव**	अज्ञानियों द्वारा अनेककी भाँति
सर्वेषां	सभी	**गृह्यते**	ग्रहण किया जाता है ॥४४॥
देहिनां	शरीरधारियोंका		
आत्मा अपि	आत्मा भी		
हि परः	क्योंकि (शरीरसे) परे है,		

देह आद्यन्तवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः ।
आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥४५॥

देह आदि अन्तवान् एष द्रव्य प्राण गुण आत्मकः आत्मनि अविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥४५॥

एष देह	यह शरीर	**आत्मनि**	आत्मामें
द्रव्य प्राण	द्रव्य (पदार्थ), प्राण,	**क्लृप्तः**	कल्पित है और
गुण आत्मकः	गुणमय	**देहिनं**	शरीरधारीको
आदि अन्तवान्	आदि-अन्त वाला	**संसारयति**	संसार-चक्रमें घुमाता है ॥४५॥
अविद्यया	अविद्या द्वारा		

नात्मनोऽन्येनसंयोगो वियोगश्चासतः सति ।
तद्धेतुत्वात्तत्प्रसिद्धेर्दृग्रूपाभ्यां यथा रवेः ॥४६॥

न आत्मनः अन्येन संयोगः वियोगः च असतः सति तत् हेतु त्वात् तत् प्रसिद्धेः दृक् रूपाभ्यां यथा रवेः ॥४६॥

सति	साध्वी !
दृक् रूपाभ्यां	दृष्टि और रूपसे
यथा रवेः	जैसे सूर्यका (वैसे ही)
आत्मनः	आत्माका
अन्येन	दूसरोंके साथ
संयोगः च	संयोग और
वियोगः	वियोग
न असतः	नहीं होता, उन (दूसरोंके) असत् होनेसे
तत् हेतु त्वात्	उनका कारण होने से और
तत् प्रसिद्धेः	उसी (आत्मा)से सिद्धि होनेसे ॥४६॥

जन्मादयस्तु देहस्य विक्रिया नात्मनः क्वचित् ।
कलानामिव नैवेन्दोर्मृतिर्ह्यस्य कुहूरिव ॥४७॥

जन्म आदयः तु देहस्य विक्रिया न आत्मनः क्वचित् कलानां इव न एव इन्दोः मृति हि अस्य कुहूः इव ॥४७॥

जन्म आदयः तु	जन्मादि तो
देहस्य विक्रिया	देहके विकार हैं,
आत्मनः	आत्माके
क्वचित् न	कभी नहीं
इन्दोः	चन्द्रमाकी
कलानां इव	कलाओंकी भाँति
हि कुहूः अस्य	क्योंकि अमावस्या को इस (चन्द्र)की
मृतिः न इव	मृत्यु (क्षय) नहीं होता (पर चन्द्रक्षय कहा जाता है) इस प्रकार ॥४७॥

यथा शयान आत्मानं विषयान् फलमेव च ।
अनुभुङ्क्तेऽप्यसत्यर्थेतथाऽऽप्नोत्यबुधो भवम् ॥४८॥

यथा शयान आत्मानं विषयान् फलं एव च अनुभुङ्क्ते अपि असत् अर्थे तथा आप्नोति अबुधः भवम् ॥४८॥

यथा शयान असत् अर्थे	जैसे सोया व्यक्ति किसी पदार्थके न होने पर भी
आत्मानं	अपनेको
विषयान्	विषयोंको

च फलं एव	तथा फल (सुख-दुःख)को भी	**भवं आप्नोति**	(जन्म-मरण रूप) संसारको पाता है ॥४८॥
अनुभुङ्क्ते	बराबर भोगता है,		
तथा अबुधः	ऐसे ही अज्ञानी		

तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम् ।
तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥४९॥

तस्मात् अज्ञानजं शोकं आत्मशोष विमोहनं तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥४९॥

तस्मात्	इसलिए	**निर्हृत्य**	दूर करके
अज्ञानजं	अज्ञानसे उत्पन्न	**शुचिस्मिते**	पवित्र मुस्कानवाली (तुम)
आत्मशोष	अपनेको सुखाने वाले तथा	**स्वस्था भव**	स्वस्थ (शान्त) हो जाओ ॥४९॥
विमोहनं	मोहित करने वाले		
शोकं तत्त्वज्ञानेन	शोकको तत्त्वज्ञानसे		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता ।
वैमनस्यं परित्यज्य मनो बुद्धया समादधे ॥५०॥

एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता वैमनस्यं परित्यज्य मनः बुद्ध्या समादधे ॥५०॥

एवं भगवता	इस प्रकार भगवान	**परित्यज्य**	छोड़कर
रामेण	बलरामजी द्वारा	**बुद्ध्या मनः**	बुद्धिके द्वारा मनको
प्रतिबोधिता	समझाये जाने पर	**समादधे**	समाहित कर लिया ॥५०॥
तन्वी	कृशाङ्गी (रुक्मिणी) ने		
वैमनस्यं	वैमनस्य (उदासीनता)		

प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हृतबलप्रभः ।
स्मरन् विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः ॥५१॥

प्राण अवशेष उत्सृष्टः द्विट्भिः हृतबल प्रभः स्मरन् विरूपकरणं वितथ आत्ममनोरथः ॥५१॥

द्विट्भिः	शत्रुओं द्वारा
हृतबल प्रभः	सेना और कान्ति नष्ट कर दिया गया
प्राण अवशेष	केवल प्राण बचाकर
उत्सृष्टः	छोड़ दिया गया (रुक्मि)
विरूपकरणं	अपना कुरूप करना
स्मरन्	स्मरण करता हुआ
आत्ममनोरथः	अपने मनोरथोंके
वितथ	व्यर्थ हो जाने पर ॥५१॥

चक्रे भोजकटं नाम निवासाय महत् पुरम् ।
अहत्वा दुर्मतिं कृष्णमप्रत्यूह्य यवीयसीम् ।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रावसद् रुषा ॥५२॥

चक्रे भोजकटं नाम निवासाय महत् पुरं अहत्वा दुर्मतिं कृष्णं अप्रत्यूह्य यवीयसीं कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि इति उक्त्वा तत्र अवसत् रुषा ॥५२॥

भोजकटं नाम	भोजकट नामक
निवासाय	अपने रहनेके लिए
महत् पुरं चक्रे	बड़ाभारी नगर बसाया,
दुर्मतिं कृष्णं	दुर्बुद्धि कृष्णको
अहत्वा	बिना मारे और
यवीयसीं	छोटी बहिनको
अप्रत्यूह्य	बिना लौटाये
कुण्डिनं न	कुण्डिनपुरमें नहीं
प्रवेक्ष्यामि	प्रवेश करूंगा'
रुषा इति	क्रोधमें यह
उक्त्वा	कह गया था (अतः)
तत्र अवसत्	वहीं रहने लगा ॥५२॥

भगवान् भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान् ।
पुरमानीय विधिवदुपयेमे कुरूद्वह ॥५३॥

भगवान् भीष्मकसुतां एवं निर्जित्य भूमिपान् पुरं आनीय विधिवत् उपयेमे कुरुउद्वह ॥५३॥

कुरु उद्वह	कुरु कुल पालक परीक्षित !	**भीष्मकसुतां**	भीष्मक-नन्दिनीको
एवं भूमिपान्	इस प्रकार राजाओं को	**पुरं आनीय**	द्वारिकापुरी लाकर
निर्जित्य	जीतकर	**विधिवत्**	(उनसे) विधिपूर्वक
भगवान्	भगवानने	**उपयेमे**	विवाह किया ॥५३॥

तदा महोत्सवो नृणां यदुपुर्यां गृहे गृहे ।
अभूदनन्यभावानां कृष्णे यदुपतौ नृप ॥५४॥

तदा महोत्सवः नृणां यदुपुर्यां गृहे गृहे अभूत् अनन्य भावानां कृष्णे यदुपतौ नृप ॥५३॥

नृप	राजन् !	**नृणां गृहे गृहे**	मनुष्योंके घर-घरमें
तदा यदुपतौ	तब यदुपति	**यदुपुर्यां**	यादवपुरी द्वारिका में
कृष्णे	श्रीकृष्णेमें		
अनन्य भावानां	अनन्य भाव रखने वाले	**महोत्सवः**	महोत्सव
		अभूत्	होने लगा ॥५४॥

नरा नार्यश्च मुदिताः प्रमृष्टमणिकुण्डलाः ।
पारिबर्हमुपाजह्रुर्वरयोश्चित्रवाससोः ॥५५॥

नरा नार्यः च मुदिताः प्रमृष्ट मणिकुण्डलाः पारिबर्हं उपाजह्रुः वरयोः चित्र वाससोः ॥५५॥

प्रमृष्ट	स्वच्छ	**चित्र वाससोः**	विचित्र वस्त्रधारी
मणिकुण्डलाः	मणिकुण्डल धारी	**वरयोः**	वर-वधूको
नरा च नार्यः	पुरुषों और स्त्रियों ने	**पारिबर्हं**	वैवाहिक उपहार
		उपाजह्रुः	भेंट की ॥५५॥
मुदिताः	प्रसन्न होकर		

सा वृष्णिपुर्युत्तभितेन्द्रकेतुभि-
र्विचित्रमाल्याम्बररत्नतोरणैः ।
बभौ प्रतिद्वार्युपकल्पितमङ्गलै-
रापूर्णकुम्भागुरुधूपदीपकैः ॥५६॥

सा वृष्णि पुरि उत्तभित इन्द्रकेतुभिः विचित्र माल्य अम्बर रत्न तोरणैः बभौ प्रतिद्वारि उपकल्पित मङ्गलैः आपूर्ण कुम्भ अगुरु धूप दीपकैः ॥५६॥

उत्तभित	ऊँची उड़ती	**प्रतिद्वारि**	प्रत्येक द्वार पर
इन्द्रकेतुभिः	इन्द्रधनुष जैसी (सतरंगी) पताकाओं से	**आपूर्ण मङ्गलैः**	भरे हुए मंगल
		कुम्भ उपकल्पित	कलशोंके रखने
		अगुरु	अगुरुकी
विचित्र माल्य	नाना रंगकी मालाओं	**धूप दीपकैः**	धूप तथा दीपकोंसे
		सा वृष्णि पुरि	वह यादवपुरी
अम्बर	बस्त्र तथा	**बभौ**	बहुत शोभिव हुई ॥५६॥
रत्न तोरणैः	रत्नोंकी बन्दनवारों से,		

सिक्तमार्गा मदच्युद्भिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम् ।
गजैर्द्वास्सु परामृष्टरम्भापूगोपशोभिता ॥५७॥

सिक्तमार्गा मदच्युत भिः आहूत प्रेष्ठ भूभुजां गजैः द्वाः सु परामृष्ट रम्भा पूग उपशोभिता ॥५७॥

आहूत प्रेष्ठ	निमन्त्रित आये प्रिय
भूभुजां	राजाओंके
गजैः	हाथियोंके
मदच्युत् भिः	झरते मदसे
सिक्तमार्गा	मार्ग सिंच गये थे
द्वाः सु	द्वारों पर
परामृष्ट	सटाकर लगाये
रम्भापूग	केले तथा सुपारीके वृक्षोंसे
उपशोभिता	सुशोभित थी ॥५७॥

कुरुसृञ्जयकैकेयविदर्भयदुकुन्तयः ।
मिथो मुमुदिरे तस्मिन् संभ्रमात् परिधावताम् ॥५८॥

कुरु सृञ्जय कैकेय विदर्भ यदु कुन्तयः मिथः मुमुदिरे तस्मिन् सम्भ्रमात् परिधावताम् ॥५८॥

सम्भ्रमात्	उतावलीमें
परिधावतां	चारो ओर दौड़ते हुए
कुरु सृञ्जय	कुरु, सृञ्जय,
कैकेय विदर्भ	कैकेय, विदर्भ,
यदु कुन्तयः	यदु और कुन्ति वंश के लोग
तस्मिन्	उस नगरमें
मिथः मुमुदिरे	परस्पर आनन्द मना रहे थे ॥५८॥

रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं ततस्ततः ।
राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्भृशविस्मिताः ॥५९॥

रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं ततः ततः राजानः राजकन्याः च बभूवुः भृशं विस्मिताः ॥५९॥

ततः ततः	जहाँ-तहाँ
गीयमानं	वर्णन होते
रुक्मिण्या हरणं	रुक्मिणी-हरणको
श्रुत्वा	सुनकर
राजानः च	राजा लोग तथा
राजकन्याः	राजकन्यायें
भृशं विस्मिताः	बहुत विस्मित
बभूवुः	हुए ॥५९॥

द्वारकायामभूद् राजन् महामोदः पुरौकसाम् ।
रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥६०॥

द्वारकायां अभूत् राजन् महामोदः पुरौकसां रुक्मिण्या रमया उपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥६०॥

राजन्	राजन् !	द्वारकायां	द्वारिकामें
रुक्मिण्या	रुक्मिणी रूपा	पुरौकसां	नगरवासियोंको
रमया उपेतं	रमा संयुक्त	महामोदः	परमानन्द
श्रियः पतिं	श्रीपति	अभूत्	प्राप्त हुआ ॥६०॥
कृष्णं दृष्ट्वा	श्रीकृष्णका दर्शन करके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिण्युद्वाहे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

अथ पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः

॥ शौनक उवाच ॥

कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग् रुद्रमन्युना ।
देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥

कामः तु वासुदेव अंशः दग्धः प्राक् रुद्रमन्युना देह उपपत्तये भूयः तं एव प्रत्यपद्यत ॥१॥

कामः तु	काम तो	**दग्धः भूयः**	जल गया था फिर
वासुदेव अंशः	वासुदेवका ही अंश है,	**देह उपपत्तये**	शरीर प्राप्तिके लिए
प्राक्	पहिले	**तं एव**	उन्हीं (वासुदेव)का
रुद्रमन्युना	शंकरजीके क्रोधसे	**प्रत्यपद्यत**	आश्रय लिया ॥१॥

स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः ।
प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥ २ ॥

स एव जातः वैदर्भ्यां कृष्णवीर्य समुद्भवः प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतः अनवमः पितुः ॥२॥

स एव	वही	**प्रद्युम्न इति**	प्रद्युम्न इस नामसे
कृष्णवीर्य	श्रीकृष्णके वीर्यसे	**विख्यातः**	प्रसिद्ध
समुद्भवः	उत्पन्न	**पितुः सर्वतः**	पितासे सब ओरसे
वैदर्भ्यां जातः	वैदर्भी रुक्मिणीसे जन्मा	**अनवमः**	कम नहीं था ॥२॥

तं शम्बरः कामरूपी हृत्वा तोकमनिर्दशम् ।
स विदित्वाऽऽत्मनः शत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद् गृहम् ॥३॥

तं शम्बरः कामरूपी हृत्वा तोकं अनिर्दशं स विदित्वा आत्मनः शत्रुं प्रास्य उद् अन्वगात् गृहम् ॥३॥

कामरूपी	उसे इच्छानुसार रूप बनाने वाले	तोकं हृत्वा	शिशुको हरण करके
शम्बरः	शम्वरासुरने	उद् प्रास्य	जलमें डालकर
तं आत्मनः	उसे अपना	स गृहं अन्वगात्	वह अपने घर चला गया ॥३॥
शत्रुं विदित्वा	शत्रु जानकर		
अनिर्दशं	दस दिनके भी न हुए		

तं निर्जगार बलवान् मीनः सोऽप्यपरैः सह ।
वृतो जालेन महता गृहीतो मत्स्यजीविभिः ॥ ४ ॥

तं निर्जगार बलवान् मीनः सः अपि अपरैः सह वृतः जालेन महता गृहीतः मत्स्य जीविभिः ॥४॥

तं बलवान्	उस शिशुको बलवान	महताजालेन वृतः	महाजालमें घिर गया (इस प्रकार)
मीनः निर्जगार	मत्स्यने निगल लिया	मत्स्य जीविभिः	मछलीसे जीविका चलाने वालों द्वारा
सः अपि	वह (मत्स्य) भी	गृहीतः	पकड़ लिया गया ॥४॥
अपरैः सह	दूसरे (मत्स्यों)के साथ		

तं शम्बराय कैवर्ता उपाजह्रुरुपायनम् ।
सूदा महानसं नीत्वावद्यन् स्वधितिनाद्भुतम् ॥ ५ ॥

तं शम्बराय कैवर्ता उपाजह्रुः उपायनं सूदा महानसं नीत्वा अवद्यन् स्वधितिना अद्भुतम् ॥५॥

तं अद्भुत	उस अद्भुत (बड़े मत्स्य)को	**उपाजह्रुः**	भेंट कर दिया,
कैवर्ता	केवटोंने	**सूदा महानसं**	रसोइये रसोईघरमें
शम्बराय	शम्बरासुरको	**नीत्वा**	(उसे) लाकर
उपायनं	उपहार रूपमें	**स्वधितिना**	अपने शस्त्रसे
		अवद्यन्	चीरा ॥५॥

दृष्ट्वा तदुदरे बालं मायावत्यै न्यवेदयन् ।
नारदोऽकथयत् सर्वं तस्याः शङ्कितचेतसः ।
बालस्य तत्त्वमुत्पत्तिं मत्स्योदरनिवेशनम् ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा तत् उदरे बालं मायावत्यै न्यवेदयन् नारदः अकथयत् सर्वं तस्याः शङ्कित चेतसः बालस्य तत्वं उत्पत्तिं मत्स्य उदर निवेशनम् ॥६॥

तत् उदरे	उसके पेटमें	**नारदः**	नारदजीने
बालं दृष्ट्वा	बालक देखकर (उसे)	**बालस्य तत्वं**	बालकका वास्तविक स्वरूप,
मायावत्यै	मायावतीको	**उत्पत्तिं**	जन्म तथा
न्यवेदयन्	निवेदित कर (सौंप) दिया	**मत्स्य उदर**	मत्स्यके पेटमें
		निवेशनं	पहुँचाया जाना
तस्याः	उस	**सर्वं अकथयत्**	सब बतला दिया
शङ्कित चेतसः	शंकाशील चित्तसे		॥६॥

सा च कामस्य वै पत्नी रतिर्नाम यशस्विनी ।
पत्युर्निर्दग्धदेहस्य देहोत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥७॥

सा च कामस्य वै पत्नी रतिः नाम यशस्विनी पत्युः निर्दग्ध देहस्य देह उत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥७॥

सा च वै	वह तो निश्चित ही	पत्युः	पतिके
यशस्विनी	यशस्विनी	देह उत्पत्तिं	शरीरके उत्पत्तिकी
रतिः नाम	रति नामकी	प्रतीक्षती	प्रतीक्षा कर रही थी
कामस्य पत्नी	कामकी पत्नी थी		॥७॥
निर्दग्ध देहस्य	जले हुए शरीर वाले		

निरूपिता शम्बरेण सा सूपौदनसाधने ।
कामदेवं शिशुं बुद्ध्वा चक्रे स्नेहं तदार्भके ॥८॥

निरूपिता शम्बरेण सा सूपौदन साधने कामदेवं शिशुं बुद्ध्वा चक्रे स्नेहं तत् अर्भके ॥८॥

शम्बरेण	शम्बर द्वारा	कामदेवं	कामदेव
सूपौदन	सूप, भात आदि रसोईके	बुद्ध्वा	जानकर
		तत् अर्भके	उस बालकसे
साधने	प्रबन्ध करनेके लिए	स्नेहं चक्रे	स्नेह करने लगी
निरूपिता	नियुक्त की गयी		॥८॥
सा शिशुं	वह उस शिशुको		

नातिदीर्घेण कालेन स काष्णीं रूढयौवनः ।
जनयामास नारीणां वीक्षन्तीनां च विभ्रमम् ॥ ९ ॥

न अति दीर्घेण कालेन स काष्णीं रूढ यौवनः जनयामास नारीणां वीक्षन्तीनां च विभ्रमम् ॥९॥

अति दीर्घेण	बहुत लम्बे	वीक्षन्तीनां	देखने वाली
कालेन न	समयमें नहीं	नारीणां च	स्त्रियोंको तो
स रूढ यौवनः	वे यौवनारूढ (जवान हुए)	विभ्रमं	विलास-भाव
		जनयामास	उत्पन्न करने लगे
काष्णीं	श्रीकृष्णकुमार		॥९॥

सा तं पतिं पद्मदलायतेक्षणं
प्रलम्बबाहुं नरलोकसुन्दरम् ।
सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षती
प्रीत्योपतस्थे रतिरङ्ग सौरतैः ॥१०॥

सा तं पतिं पद्मदल आयत ईक्षणं प्रलम्ब बाहुं नरलोक सुन्दरं सव्रीडहास उत्तभित भ्रुवा ईक्षती प्रीत्या उपतस्थे रतिः अङ्ग सौरतैः ॥१०॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !
पद्मदल	कमलपत्र
आयत ईक्षणं	विशाल लोचन
प्रलम्ब बाहुं	लम्बी भुजाओं वाले
नरलोक सुन्दरं	विश्व-सुन्दर
तं पतिं	उस अपने पतिको
सव्रीडहास	लज्जायुक्त मुस्कान तथा
उत्तभित भ्रुवा	उठाई भौंहोंसे
ईक्षती	देखती ही
रतिः प्रीत्या	रति प्रेमपूर्वक
सौरतैः	समागमके लिए
उपतस्थे	उनके समीप गयी ॥१०॥

तामाह भगवान् काष्णिर्मातस्ते मतिरन्यथा ।
मातृभावमतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा ॥११॥

तां आह भगवान् काष्णिः मातः ते मतिः अन्यथा मातृभावं अतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा ॥११॥

भगवान्	भगवान्
काष्णिः	श्रीकृष्णकुमारने
तां आह	उससे कहा—
मातः ते मतिः	'माता, तुम्हारी बुद्धि
अन्यथा	उलटी हो गयी है,
मातृभावं	मातृभावका
अतिक्रम्य	उलंघन करके
कामिनी यथा	कामिनीके समान
वर्तसे	वर्ताव कर रही हो ॥११॥

॥ रतिरुवाच ॥

भवान् नारायणसुतः शम्बरेणाहृतो गृहात् ।
अहं तेऽधिकृता पत्नी रतिः कामो भवान् प्रभो ॥१२॥

भवान् नारायणसुतः शम्बरेण आहृतः गृहात् अहं ते अधिकृता पत्नी रतिः कामः भवान् प्रभो ॥१२॥

शम्बरेण	शम्बरासुर द्वारा	**कामः**	कामदेव हैं,
गृहात् आहृतः	घरसे हरण किये गए	**ते अधिकृता**	आपकी अधिकार पूर्वक अपनायी
भवान्	आप	**पत्नी अहं रतिः**	पत्नी मैं रति हूँ ॥१२॥
नारायणसुतः	नारायणके पुत्र हैं		
प्रभो भवान्	स्वामी ! आप		

एष त्वानिर्दशं सिन्धावक्षिपच्छम्बरोऽसुरः ।
मत्स्योऽग्रसीत्तदुदरादिह प्राप्तो भवान् प्रभो ॥१३॥

एष त्वा निर्दशं सिन्धाः अक्षिपत् शम्बरः असुरः मत्स्यः अग्रसीत् तत् उदरात् इह प्राप्तः भवान् प्रभो ॥१३॥

एष	इस	**मत्स्यः अग्रसीत्**	(वहाँ) मत्स्यने निगल लिया
शम्बरः असुरः	शम्बरासुरने		
निर्दशं	(जब आप) दस दिन के नहीं थे	**प्रभो भवान्**	प्रभो ! आप
त्वां सिन्धाः	आपको समुद्रमें	**तत् उदरात्**	उसके पेटसे
अक्षिपत्	फेंक दिया,	**इह प्राप्तः**	यहाँ पाये गए हैं ॥१३॥

तमिमं जहि दुर्धर्षं दुर्जयं शत्रुमात्मनः ।
मायाशतविदं त्वं च मायाभिर्मोहनादिभिः ॥१४॥

तं इमं जहि दुर्धर्षं दुर्जयं शत्रुं आत्मनः मायाशत विदं त्वं च मायाभिः मोहन आदिभिः ॥१४॥

इमं दुर्धर्षं	इस दुर्धर्ष
दुर्जयं च	दुर्जय तथा
मायाशत विदं	सैकड़ों माया जानने वाले
तं आत्मनः शत्रुं	उस अपने शत्रुको
त्वं	आप
मोहन आदिभिः	मोहन आदि
मायाभिः जहि	मायासे मार डालिए ॥१४॥

परिशोचति ते माता कुररीव गतप्रजा ।
पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा ॥१५॥

परिशोचति ते माता कुररि इव गतप्रजा पुत्रस्नेह आकुला दीना विवत्सा गौः इव आतुरा ॥१५॥

विवत्सा गौः इव	वत्सहीना गायके समान
आतुरा	व्याकुला
गतप्रजा	खोई सन्तान वाली
ते माता	आपकी माता
पुत्रस्नेह आकुला	पुत्रस्नेहसे व्याकुला
दीना कुररि इव	बेचारी कुररीके समान
परिशोचति	शोकसे विलाप करती हैं ॥१५॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने ।
मायावती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम् ॥१६॥

प्रभाष्य एवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने मायावती महामायां सर्वमाया विनाशिनीम् ॥१६॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

एवं प्रभाष्य	ऐसा कहकर	विनाशिनीं	नष्ट करने वाली
महात्मने	महात्मा	महामायां	महामाया
प्रद्युम्नाय	प्रद्युम्नको	विद्यां ददौ	विद्या दी (सिखलायी)
मायावती	मायावतीने		॥१६॥
सर्वमाया	सब मायाओंको		

स च शम्बरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत् ।
अविषह्यैस्तमाक्षेपैः क्षिपन् सञ्जनयन् कलिम् ॥१७॥

स च शम्बरं अभि एत्य संयुगाय सम आह्वयत् अविषह्यैः तं आक्षेपैः क्षिपन् सञ्जनयन् कलिम् ॥१७॥

स च शम्बरं	वे भी शम्बरके	आक्षेपैः	आक्षेप
अभि एत्य	सामने आकर	तं क्षिपन्	उस पर लगाते हुए
कलिं सञ्जनयन्	झगड़ा उत्पन्न करते हुए	संयुगाय	युद्धके लिए
		सम आह्वयत्	ललकारने लगे
अविषह्यैः	असह्य		॥१७॥

सोऽधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः पादाहत इवोरगः ।
निश्चक्राम गदापाणिरमर्षात्ताम्रलोचनः ॥१८॥

सः अधिक्षिप्तः दुःवचःभिः पादाहत इव उरगः निःचक्राम गदापाणिः अमर्षात् ताम्रलोचनः ॥१८॥

पादाहत	पैरसे मारे	सः अमर्षात्	वह असहनशीलता से
उरगः इव	सर्पके समान		
दुःवचः भिः	दुर्वचनोंसे	ताम्रलोचनः	लाल नेत्र किये
अधिक्षिप्तः	आक्षेप किये जाने पर	गदापाणिः	हाथमें गदा लेकर
		निःचक्राम	निकला ॥१८॥

गदामाविध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने ।
प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥१९॥

गदां आविध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने प्रक्षिप्य व्यनदत् नादं वज्र निष्पेव निष्ठुरम् ॥१९॥

महात्मने	महात्मा
प्रद्युम्नाय	प्रद्युम्न पर
तरसा	वेग पूर्वक
गदां आविध्य	गदा घुमाकर
प्रक्षिप्य	फेंककर
वज्र निष्पेष	वज्र गिरनेके सामने
निष्ठुरं नादं	घोर शब्दसे
व्यनदत्	गरजा ॥१९॥

तामापतन्तीं भगवान् प्रद्युम्नो गदया गदाम् ।
अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणात् स्वगदां नृप ॥२०॥

तां आपतन्तीं भगवान् प्रद्युम्नः गदया गदां अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणात् स्वगदां नृप ॥२०॥

नृप	राजन् !
तां आपतन्तीं	उस वेगसे आती
गदां गदया	गदाको गदासे
अपास्य	दूर फेंककर
भगवान्	भगवान
प्रद्युम्नः	प्रद्युम्नने
क्रुद्धः शत्रवे	कुपित होकर शत्रु पर
स्वगदां	अपनी गदा
प्राहिणात्	फेंकी ॥२०॥

स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मयदर्शिताम् ।
मुमुचेऽस्त्रमयं वर्षं काष्णौ वैहायसोऽसुरः ॥२१॥

स च मायां सम आश्रित्य दैतेयीं मय दर्शितां मुमुचे अस्त्रमयं वर्षं काष्णौ वैहायसः असुरः ॥२१॥

स असुरः च	वह असुर भी
वैहायसः	आकाशमें जाकर
मय दर्शितां	मय दानवकी बतलायी
दैतेयीं मायां	दैत्योंकी मायाका
सम आश्रित्य	पूरा आश्रय लेकर
काष्णौ	कृष्णकुमार प्रद्युम्न पर
अस्त्रमयं वर्षं	अस्त्रमयी वर्षा
मुमुचे	छोड़ने लगा ॥२१॥

बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयो महारथः ।
सत्त्वात्मिकां महाविद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम् ॥२२॥

गाध्यमानः अस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयः महारथः सत्व आत्मिकां महाविद्यां सर्वमाया उपमर्दिनीम् ॥२२॥

महारथः	महारथी	**उपमर्दिनीं**	नष्ट कर देने वाली
रौक्मणेयः	रुक्मिनी-नन्दनने	**सत्व आत्मिकां**	सत्व स्वरूपा
अस्त्रवर्षेण	अस्त्र वर्षासे	**महाविद्यां**	महाविद्याको (प्रयोग किया) ॥२२॥
बाध्यमानः	पीड़ित किये जाने पर		
सर्वमाया	सब मायाओंको		

ततो गौह्यकगान्धर्वपैशाचोरगराक्षसीः ।
प्रायुङ्क्तशतशो दैत्यः कार्ष्णिर्व्यधमयत् स ताः ॥२३॥

ततः गौह्यक गान्धर्व पैशाच उरग राक्षसीः प्रायुङ्क्त शतशः दैत्यः कार्ष्णिः व्यधमयत् स ताः ॥२३॥

ततः दैत्यः	फिर दैत्यने	**शतशः**	सैकड़ों (माया)का
गौह्यक	यक्षोंकी,	**प्रायुङ्क्त**	प्रयोग किया, पर
पैशाच	पिशाचोंकी,	**स कार्ष्णिः**	उन कृष्णकुमारने
उरग राक्षसीः	नागों और राक्षसों की,	**ताः व्यधमयत्**	उनको शान्त कर दिया ॥२३॥

निशातमसिमुद्यम्य सकिरीटं सकुण्डलम् ।
शम्बरस्य शिरः कायात् ताम्रश्मश्वोजसाहरत् ॥२४॥

निशातं असिं उद्यम्य सकिरीटं सकुण्डलं शम्बरस्य शिरः कायात् ताम्रश्मश्रु ओजसा आहरत् ॥२४॥

निशातं असिं	तीक्ष्ण तलवार
उद्यम्य	उठाकर
सकिरीटं	मुकुटयुक्त
सकुण्डलं	कुण्डल युक्त
ताम्रश्मश्रु	लाल दाढ़ी वाला
शम्बरस्य	शम्बरका
शिरः कायात्	सिर धड़से
ओजसा	बलपूर्वक
आहरत्	छीन लिया (काट दिया)

॥२४॥

आकीर्यमाणो दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुमोत्करैः ।
भार्ययाम्बरचारिण्या पुरं नीतो विहायसा ॥२५॥

आकीर्यमाणः दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुम उत्करैः भार्यया अम्बर चारिण्या पुरं नीतः विहायसा ॥२५॥

दिविजैः	देवताओंके
उत्करैः	हाथ उठाकर
कुसुम	पुष्प
आकीर्यमाणैः	बिखेरते हुए
स्तुवद्भिः	स्तुति करते हुए
अम्बर-	आकाश-
चारिण्या	चारिणी
भार्यया	पत्नी द्वारा
विहायसा	आकाश मार्गसे
पुरं नीतः	अपने नगर ले जाये गये ॥२५॥

अन्तःपुरवरं राजन् ललनाशतसंकुलम् ।
विवेश पत्न्या गगनाद् विद्युतेव बलाहकः ॥२६॥

अन्तः पुरवरं राजन् ललनाशत संकुलं विवेश पत्न्या गगनात् विद्युत इव बलाहकः ॥२६॥

राजन्	राजन् !
विद्युत	दामिनी सहित
बलाहकः इव	मेघके समान
पत्न्या गगनात्	पत्नी सहित आकाश से
ललनाशत	सैंकड़ों स्त्रियोंसे
संकुलं	भरे
अन्तः पुरवरं	(श्रीकृष्णके) सर्वोत्तम अन्तःपुरमें
विवेश	प्रवेश किया ॥२६॥

तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
प्रलम्बबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम् ॥२७॥

तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेय वाससं प्रलम्बबाहुं ताम्र अक्षम् सुस्मितं रुचिर आननम् ॥२७॥

तं जलश्यामं	उनको घनश्याम	**सुस्मितं**	सुन्दर मुस्कान युक्त
पीतकौशेय	पीला रेशमी	**रुचिर आननं**	मनोहर मुखवाला
वाससं	वस्त्र पहिने	**दृष्ट्वा**	देखकर ॥२७॥
प्रलम्बबाहुं	सुदीर्घ भुजा		
ताम्र अक्षं	रतनारे लोचन		

स्वलंकृतमुखाम्भोजं नीलवक्त्रालकालिभिः ।
कृष्णं मत्वा स्त्रियो ह्रीता निलिल्युस्तत्र तत्र ह ॥२८॥

स्वलङ्कृत मुखाम्भोजं नीलवक्त्र अलकालिभिः कृष्णं मत्वा स्त्रियः ह्रीता निलिल्युः तत्र तत्र ह ॥२८॥

नीलवक्त्र	काली घुंघराली	**ह्रीता स्त्रियः**	लज्जित होकर स्त्रियां
अलकालिभिः	अलकोंसे	**तत्र तत्र ह**	जहां तहां ही
स्वलंकृत	भली प्रकार सजे	**निलिल्युः**	छिप गयीं ॥२८॥
मुखाम्भोजं	मुख-कमलसे		
कृष्णं मत्वा	श्रीकृष्ण मानकर		

अवधार्य शनैरीषद्वैलक्षण्येन योषितः ।
उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः ॥२९॥

अवधार्य शनैः ईषत् वैलक्षण्येन योषितः उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः ॥२९॥

शनैः ईषत्	धीरे-धीरे थोड़ी	**अवधार्य**	पहिचानकर
वैलक्षण्येन	विशेषताओंको	**योषितः**	स्त्रियां

सस्त्रीरत्नं	श्रेष्ठ स्त्री साथ होनेसे	प्रमुदिताः	अत्यन्त प्रसन्न होकर
सुविस्मिताः	अत्यन्त चकित एवं	उपजग्मुः	समीप आ गयीं ॥३१॥

अथ तत्रासितापाङ्गी वैदर्भी वल्गुभाषिणी ।
अस्मरत् स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥३०॥

अथ तत्र असित अपाङ्गी वैदर्भी वल्गुभाषिणी अस्मरत् स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुत पयोधरा ॥३०॥

अथ तत्र	इसी समय वहां	नष्टं स्वसुतं	अपने खोये पुत्रका
असित अपाङ्गी	श्याम लोचना	अस्मरत्	स्मरण होनेसे
वल्गुभाषिणी	मञ्जु-भाषिणी	स्नेहस्नुत-	स्नेहसे वक्षसे
वैदर्भी	विदर्भ-नन्दिनी रुक्मिणीको	पयोधरा	दूध टपकने लगा ॥३०॥

को न्वयं नरवैदूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः ।
धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा ॥३१॥

कः नु अयं नर वैदूर्यः कस्य वा कमल ईक्षणः धृतः कया वा जठरे क इयं लब्धा तु अनेन वा ॥३१॥

अयं नर वैदूर्यः	'यह नररत्न	वा	या
नु कः	भला कौन है ?	कया जठरे धृतः	किस माताने इसे उदरमें रखा था,
वा	अथवा	वा तु अनेन	अथवा तो इसने
कमल ईक्षणः	यह कमल-लोचन	लब्धा इयं क	पाया वह यह कौन
कस्य	किसका पुत्र है ?		है ? ॥३१॥

मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात् ।
एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित् ॥३२॥

मम च अपि आत्मजः नष्टः नीतः यः सूतिका गृहात् एतत् तुल्य वयः रूपः यदि जीवति कुत्रचित् ॥३२॥

मम च नष्टः	मेरा भी खोया
आत्मजः अपि	पुत्र भी
यः सूतिका	जो सूतिका
गृहात्	गृहसे
नीतः	ले लिया गया,
यदि कुत्रचित्	यदि कहीं
जीवति	जीवित होगा
एतत् तुल्य	इसके समान ही
वयः रूपः	आयु और रूपका होगा ॥३२॥

कथं त्वनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ंगधन्वनः ।
आकृत्यावयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ॥३३॥

कथं तु अनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ंगधन्वनः आकृत्या अवयवैः गत्या स्वर हास अवलोकनैः ॥३३॥

आकृत्या	आकृतिमें,
अवयवैः	अंगोंमें,
गत्या स्वर	गतिमें, स्वरमें,
हास अवलोकनैः	हँसने तथा देखनेके ढंगमें
कथं तु अनेन	भला कैसे तो इसने
शार्ंगधन्वनः	शारंगधन्वा भगवानकी
सारूप्यं संप्राप्तं	सदृश्यता पायी ? ॥३३॥

स एव वा भवेन्नूनं यो मे गर्भे धृतोऽर्भकः ।
अमुस्मिन् प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥३४॥

स एव वा भवेत् नूनं यः मे गर्भे धृतः अर्भकः अमुस्मिन् प्रीतिः अधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥३४॥

वा यः अर्भकः	अथवा जो बच्चा
मे गर्भे धृतः	मैंने गर्भमें धारण किया था
नूनं स एव भवेत्	निश्चय वही होगा,
अमुस्मिन्	(क्योंकि) इसमें
अधिका प्रीतिः	मेरा बहुत स्नेह हो गया है

मे वामः भुजः	और मेरी बायीं भुजा	स्फुरति	फड़क रही है ॥३४॥

एवं मीमांसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः ।
देवक्यानकदुन्दुभ्यामुत्तमश्लोक आगमत् ॥३५॥

एवं मीमांसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः देवक्या आनकदुन्दुभ्यां उत्तमश्लोक आगमत् ॥३५॥

वैदर्भ्यां	रुक्मिणीजीके	आनकदुन्दुभ्यां	वसुदेवजीके साथ
एवं	इसप्रकार	उत्तमश्लोक	पुण्यकीर्ति
मीमांसमानायां	विचार करते समय ही	देवकीसुतः	देवकी-नन्दन
देवक्या	देवकीजी और	आगमत्	आ गये ॥३५॥

विज्ञातार्थोऽपि भगवांस्तूष्णीमास जनार्दनः ।
नारदोऽकथयत् सर्वं शम्बराहरणादिकम् ॥३६॥

विज्ञात अर्थः अपि भगवान् तूष्णीं आसन् जनार्दनः नारदः अकथयत् सर्वं शम्बर आहरण आदिकं ॥३६॥

भगवान्	भगवान	नारदः	नारदजीने
जनार्दनः	जनार्दन	शम्बर आहरण	शम्बर द्वारा हरण करना
विज्ञात अर्थः	सब प्रयोजन जानने		
अपि	पर भी	आदिकं सर्वं	आदि सब बातें
तूष्णीं आसन्	चुप बने रहे	अकथयत्	बतलायीं ॥३६॥

तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं कृष्णान्तःपुरयोषितः ।
अभ्यनन्दन् बहूनब्दान् नष्टं मृतमिवागतम् ॥३७॥

तत् श्रुत्वा महत् आश्चर्यं कृष्ण अन्तःपुर योषितः अभ्यनन्दन् बहून् अब्दान् नष्टं मृतं इव आगतम् ॥३७॥

तत् श्रुत्वा	उसे सुनकर	मृतं पुनः आगतं	मरकर फिर लौटके
कृष्ण अन्तःपुर	श्रीकृष्णके अन्तःपुर की	इव अभ्यनन्दन्	समान (प्रद्युम्न) का अभिनन्दन किया ॥३७॥
योषितः	स्त्रियोंको		
महत् आश्चर्यं	बड़ा आश्चर्य हुआ,		
बहून्	बहुत		
अब्दान् नष्टं	वर्षोंसे खोयेको		

देवकी वसुदेवश्च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः ।
दम्पती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुर्मुदम् ॥३८॥

देवकी वसुदेवः च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः दम्पती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुः मुदम् ॥३८॥

देवकी च	देवकी तथा	तौ दम्पती	उस दम्पतिका
वसुदेवः	वसुदेवजी,	परिष्वज्य	आलिंगन करके
कृष्णरामौ	श्रीकृष्ण-बलराम	मुदं ययुः	आनन्दित हुए ॥३८॥
तथा स्त्रियः	और स्त्रियां		
च रुक्मिणी	एवं रुक्मिणी		

नष्टं युद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः ।
अहो मृत इवायातो बालो दिष्ट्येति हाब्रुवन् ॥३९॥

नष्टं प्रद्युम्नम् आयातं आकर्ण्य द्वारकौकसः अहो मृत इव आयातः बालः दिष्टया इति हाब्रुवन् ॥३९॥

नष्टं प्रद्युम्नं	खोये प्रद्युम्नको	अहो दिष्टया	'अहो सौभाग्यवश
आयातं आकर्ण्य	आया सुनकर	मृतं इव बालः	मरेके समान बालक
द्वारकौकसः	द्वारिकावासी	आयातं	लौट आया ॥३९॥
इति हाब्रुवन्	इस प्रकार प्रायः कहने लगे		

यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावा-
स्तन्मातरो यदभजन् रहरूढभावाः ।
चित्रं न तत् खलु रमास्पदबिम्बबिम्बे
कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥४०॥

यं वै मुहुः पितृसरूप निज ईश भावाः तत् मातरः यत् अभजन् रहः ऊढभावाः चित्रं न तत् खलु रमा आस्पद बिम्ब बिम्बे कामे स्मरे अक्षि विषये किं उत अन्यनार्यः ॥४०॥

वै यं पितृसरूप	निश्चय जिनको पिताका स्वरूप होनेसे
निज ईश	अपना स्वामी
भावाः	समझकर
तत् मातरः	उनकी मातायें
ऊढभावाः	मधुर भावमग्ना
मुहुः रहः	बार-बार एकान्तमें
अभजन्	चली जाती थीं
तत् खलु	वह अहो
रमा आस्पद	लक्ष्मीके आश्रय
बिम्ब बिम्बे	भगवानके प्रतिबिम्ब स्वरूपके
चित्रं न	लिए आश्चर्यकी बात नहीं है
कामे स्मरे	कामदेवावतार प्रद्युम्नके
अक्षि विषये	नेत्रोंके सामने होने पर
अन्यनार्यः	दूसरी स्त्रियोंकी
किं उत	फिर क्या बात

॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे प्रद्युम्नोत्पत्तिनिरूपणं नाम पंचापञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

अथ षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः

॥ श्रीशक उवाच ॥

सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः ।
स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥ १ ॥

सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृत किल्बिषः स्यमन्तकेन मणिना स्वयं उद्यम्य दत्तवान् ॥१॥

कृत किल्बिषः	अपराध करने वाले	**स्यमन्तकेन**	स्यमन्तक
सत्राजितः	सत्राजितने	**मणिना**	मणिके साथ
स्वयं उद्यम्य	स्वयं प्रयत्न करके	**कृष्णाय दत्तवान्**	श्रीकृष्णको दे दी ॥१॥
स्वतनयां	अपनी पुत्री		

॥ राजोवाच ॥

सत्राजितः किमकरोद् ब्रह्मन् कृष्णस्य किल्बिषम् ।
स्यमन्तकः कुतस्तस्य कस्माद् दत्ता सुता हरेः ॥२॥

सत्राजितः किं अकरोत् ब्रह्मन् कृष्णस्य किल्बिषं स्यमन्तकः कुतः तस्य कस्मात् दत्ता सुता हरेः ॥२॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**तस्य कुतः**	उसके पास कहाँसे आयी ?
सत्राजितः	सत्राजितने	**सुता कस्मात्**	पुत्री किस कारण
कृष्णस्य किं	श्रीकृष्ण का क्या	**हरेः दत्ता**	श्रीहरिको दे दी ? ॥२॥
किल्बिषं	अपराध		
अकरोत्	किया था ?		
स्यमन्तकः	स्यमन्तक मणि		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

आसीत् सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा ।
प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात् सूर्यस्तुष्टः स्यमन्तकम् ॥३॥

आसीत् सत्राजितः सूर्यः भक्तस्य परमः सखा प्रीतः तस्मै मणिं प्रादात् सूर्यः तुष्टः स्यमन्तकम् ॥३॥

सूर्यः भक्तस्य	भगवान सूर्य अपने भक्त	**सूर्यः तुष्टः**	सूर्यने सन्तुष्ट होकर
सत्रजितः	सत्राजितके	**तस्मै स्यमन्तकं**	उसे स्यमन्तक
परमः सखा	परम मित्र	**मणिं प्रादात्**	मणि दे दी ॥३॥
आसीत्	हो गये थे,		

स तं बिभ्रन् मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रविः ।
प्रविष्टो द्वारकां राजंस्तेजसा नोपलक्षितः ॥४॥

स तं बिभ्रन् मणिं कण्ठे भ्राजमानः यथा रविः प्रविष्टः द्वारकां राजन् तेजसा न उपलक्षितः ॥४॥

राजन्	राजन् !	**द्वारिकां**	द्वारिकामें
स तं	वह उस	**प्रविष्टः**	पहुँचा तो
यथा रविः	जैसे सूर्य हों	**तेजसा**	(मणिके) तेजके कारण
भ्राजभानः मणिं	ऐसे प्रकाशमान मणिको	**उपलक्षितः न**	पहिचाना नहीं जा सका ॥४॥
कण्ठे बिभ्रन्	गलेमें धारण करके		

तं विलोक्य जना दूरात्तेजसा मुष्टदृष्टयः ।
दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशङ्किताः ॥५॥

तं विलोक्य जना दूरात् तेजसा मुष्ट दृष्टयः दीव्यते अक्षैः भगवते शशंसुः सूर्य शङ्किताः ॥५॥

तं दूरात्	उसे दूरसे ही	**अक्षैः दीव्यते**	पासोंसे खेलते
विलोक्य	देखकर	**भगवते**	भगवानसे
मुष्ट दृष्टयः	चौंधियायी नेत्रों वाले	**सूर्य शङ्किताः**	सूर्यकी आशङ्कासे
		शशंसुः	सूचना दी ॥५॥
जना	लोगोंने		

॥ पुरजना ऊचुः ॥*

नारायण नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर ।
दामोदराराविन्दाक्ष गोविन्द यदुनन्दन ॥६॥

नारायण नमः ते अस्तु शङ्ख चक्र गदाधर दामोदर अरविन्द अक्ष गोविन्द यदुनन्दन ॥६॥

शङ्ख चक्र	शंख, चक्र,	**गोविन्द**	गोविन्द
गदाधर	गदाधारी,	**यदुनन्दन**	यदुनन्दन !
नारायण,	नारायण,	**ते नमः अस्तु**	आपको नमस्कार है ॥६॥
दामोदर	दामोदर,		
अरविन्द अक्ष	कमल-लोचन,		

एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते ।
मुष्णन् गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि तिग्मगुः ॥७॥

एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुः जगत्पते मुष्णन् गभस्ति चक्रेण नृणां चेक्षूंषि तिग्मगुः ॥७॥

जगत्पते	जगन्नाथ !	**मुष्णन्**	चुराते (चौंधियाते)
त्वां दिदृक्षुः	आपका दर्शन करने	**एष तिग्मगुः**	ये प्रचण्ड रश्मि
गभस्ति चक्रेण	किरण-मण्डल द्वारा	**सविता**	सूर्य
नृणां चक्षूंषि	मनुष्योंके नेत्रोंको	**आयाति**	आ रहे हैं ॥७॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

नन्वन्विच्छन्ति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः ।
ज्ञात्वाद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥८॥

ननु अन्विच्छन्ति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुध ऋषभाः ज्ञात्वा अद्य गूढः यदुषु द्रष्टुं त्वां याति अजः प्रभो ॥८॥

प्रभो ननु	प्रभो ! निश्चय	**अद्य यदुषु**	इस समय यदुवंशमें
विबुध ऋषभाः	देव श्रेष्ठ	**गूढं त्वां ज्ञात्वा**	छिपे आपको जानकर
ते मार्गं	आपके मार्गको		
त्रिलोक्यां	त्रिभुवनमें	**अजः**	ये अजन्मा (सूर्य)
अन्विच्छन्ति	ढूँढते रहते हैं,	**द्रष्टुं**	देखने
		याति	आ रहे हैं' ॥८॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

निशम्य बालवचनं प्रहस्याम्बुजलोचनः ।
प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥९॥

निशम्य बाल वचनं प्रहस्य अम्बुज लोचनः प्राह न असौ रविः देवः सत्राजित् मणिना ज्वलन् ॥९॥

बाल	बालकोंकी	**असौ**	'यह
वचनं निशम्य	बात सुनकर	**रविः देवः न**	सूर्यदेवता नहीं हैं
अम्बुज लोचनः	कमलनयन	**मणिना ज्वलन्**	मणि द्वारा प्रकाशित
प्रहस्य प्राह	हँसकर बोले—	**सत्राजित्**	सत्राजित है' ॥९॥

सत्राजित् स्वगृहं श्रीमत् कृतकौतुकमङ्गलम् ।
प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत् ॥१०॥

सत्राजितः स्वगृहं श्रीमत् कृत कौतुक मङ्गलं प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैः न्यवेशयत् ॥१०॥

मङ्गलं	मंगल
कौतुक कृत	महोत्सव किये गये
श्रीमत् स्वगृहं	सम्पन्न अपने घरमें
प्रविश्य	प्रवेश करके
सत्राजितः	सत्राजितने
विप्रैः देवसदने	ब्राह्मणों द्वारा देवमन्दिरमें
मणि न्यवेशयत्	मणि स्थापित करा दी ॥१०॥

दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो ।
दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः ।
न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः ॥११॥

दिने दिने स्वर्णभारान् अष्टो स सृजति प्रभो दुर्भिक्ष मारि अरिष्टानि सर्प अधि व्याधयः अशुभाः न सन्ति मायिनः तत्र यत्र आस्ते अभ्यर्चितः मणिः ॥११॥

प्रभो	महाराज !
स मणिः	वह मणि
दिने दिने	प्रतिदिन
अष्टौ	आठ
स्वर्णभारान्	स्वर्ण भार*
सृजति	उत्पन्न करती थी ।
यत्र अभ्यर्चितः	जहाँ वह पूजित
आस्ते	होती थी
दुर्भिक्ष	अकाल,
मारि सर्प आधि	महामारी, सर्प, चिन्ताएँ,
व्याधयः	रोगः
अशुभाः	अशुभ
अरिष्टानि	ग्रहपीड़ा,
मायिनः	मायावियोंके
तत्र न सन्ति	उपद्रव वहाँ नहीं होते थे ॥११॥

स याचितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा ।
नैवार्थकामुकः प्रादाद् याच्ञाभङ्गमतर्कयन् ॥१२॥

---

* ४ चावल की १ गुंजा, ५ गुंजा का १ पण, ८ पण का १ धरण, ८ धरण का १ कर्ष, ४ कर्ष का १ पल, १०० पल की १ तुला, २० तुला का १ भार कहलाता है ।

स याचितः मणिं क्व अपि यदुराजाय शौरिणा न एव अर्थ कामुकः प्रादात् याञ्चाभङ्गम् अतर्कयन् ॥१२॥

क्व	किसी	**याञ्चाभङ्गम्**	आज्ञा भंगका
अपि शौरिणा	दिन श्रीकुष्ण द्वारा	**अतर्कयन्**	विचार न करके
यदुराजाय	यादव नरेश उग्रसेन के लिए	**अर्थ कामुकः**	उस धनको चाहने वालेने
स मणि याचितः	वह मणि मांगी जाने पर	**न एव प्रादात्**	नहीं ही दिया ॥१२॥

तमेकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् ।
प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद् वने ॥१३॥

तं एकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभं प्रसेनः हयं आरुह्य मृगयां व्यचरत् वने ॥१३॥

एकदा	एक बार	**प्रसेनः**	प्रसेन
तं महाप्रभं	उस अत्यन्त प्रकाशमान	**हयं आरुह्य**	घोड़ेपर चढ़कर
मणि कण्ठे	मणिको गलेमें	**वने**	वनमें
प्रतिमुच्य	पहिनकर	**मृगयां व्यचरत्**	आखेट करने लगा ॥१३॥

प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केसरी ।
गिरिं विशञ्जाम्बवता निहतो मणिमिच्छता ॥१४॥

प्रसेनं सहयं हत्वा मणि आच्छिद्य केसरी गिरिं विशन् जाम्बवता निहतः मणि इच्छता ॥१४॥

सहयं प्रसेनं	घोड़ेके साथ प्रसेन को	**मणि इच्छता**	मणि चाहने वाले
हत्वा केसरी	मारकर सिह	**जाम्बवता**	जाम्बवन्त द्वारा
मणि आच्छिद्य	मणि छीनकर	**निहतः**	मार दिया गया ॥१४॥
गिरिं विशन्	पर्वतमें जाते हुए		

सोऽपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले ।
अपश्यन् भ्रातरं भ्राता सत्राजित् पर्यतप्यत ॥१५॥

सः अपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले अपश्यन् भ्रातरं भ्राता सत्राजित् परि अतप्यत ॥१५॥

सः अपि बिले	उन्होंने भी अपनी गुफामें	**भ्रातरं अपश्यन्**	भाईको न देखकर
मणिं कुमारस्य	मणिको बालकका	**भ्राता**	उसका भाई
क्रीडनकं चक्रे	खिलौना बना दिया (इधर)	**सत्राजित्**	सत्राजित्
		परि अतप्यत	बहुत संतप्त हुआ ॥१५॥

प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनं गतः ।
भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः ॥१६॥

प्रायः कृष्णेन निहतः मणिग्रीवः वनं गतः भ्राता मम इति तत् श्रुत्वा कर्णे कर्णे अजपन् जनाः ॥१६॥

मणिग्रीवः	(कहने लगा)—'गलेमें मणि पहिनकर	**इति तत् श्रुत्वा**	इस प्रकार वह बात सुनकर
वनं गतः	वनमें गये	**जनाः कर्णे कर्णे**	लोग एक दूसरेके कानमें
मम भ्राता	मेरे भाईको	**अजपन्**	फुसफुसाने लगे ॥१६॥
प्रायः	प्रायः (सम्भवतः)		
कृष्णेन निहतः	श्रीकृष्णने मार दिया		

भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि ।
मार्ष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरैः ॥१७॥

भगवान् तत् उपश्रुत्य दुर्यशः लिप्तं आत्मनि मार्ष्टुं प्रसेनपदवीं अनु अपद्यत नागरैः ॥१७॥

भगवान्	भगवान	नागरैः	नगरजनोंके साथ
तत् आत्मनि	वह अपनेको	प्रसेनंपदवीं	प्रसेनकी खोजके
लिप्तं दुर्यशः	लगे अपयशको	अनु अपद्यत	पीछे चले ॥१७॥
उपश्रुत्य मार्ष्टुं	सुनकर उसे मांजने (दूर करने)के लिए		

हतं प्रसेनमश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने ।
तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः ॥१८॥

हतं प्रसेनं अश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने तं च अद्रि पृष्ठे निहतं ऋक्षेण ददृशुः जनाः ॥१८॥

वने केसरिणा	वनमें सिंह द्वारा	अद्रि पृष्ठे	पर्वतके ऊपर
हतं प्रसेनं	मारे गये प्रसेन	ऋक्षेण निहतं	रीछ द्वारा मारा गया
च अश्वं वीक्ष्य	तथा घोड़ेको देखकर	ददृशुः	देखा ॥१८॥
जनाः तं च	लोगोंने उस (सिंह) को भी		

ऋक्षराजबिलं भीममन्धेन तमसाऽऽवृतम् ।
एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥१९॥

ऋक्षराज बिलं भीमं अन्धेन तमसा आवृतं एकः विवेश भगवान् अवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥१९॥

ऋक्षराज	रीछराजकी	अवस्थाप्य	ठहराकर
अन्धेन	दिखाई न पड़नेवाले	भगवान्	भगवान
तमसा आवृतं	अन्धकारसे ढँके	एकः विवेश	अकेले प्रविष्ट हुए ॥१९॥
भीमं बिलं	भयानक गुफामें		
प्रजाः बहिः	प्रजाजनोंको बाहर		

तत्र दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम् ।
हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकान्तिके ॥२०॥

तत्र दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतं हर्तुं कृतमतिः तस्मिन् अवतस्थे अर्भक अन्तिके ॥२०॥

तत्र मणिश्रेष्ठ	वहाँ उस श्रेष्ठ मणिको	तस्मिन्	उस गुफामें
बालक्रीडनकं	बच्चोंका खिलौना	अर्भक अन्तिके	बालकके पास
कृतं दृष्ट्वा	बनाया देखकर	अवतस्थे	खड़े हो गये
हर्तुं कृतमतिः	उसके हरणका निश्चय करके		॥२०॥

तामपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् ।
तच्छ्रुत्वाभ्यद्रवत् क्रुद्धो जाम्बवान् बलिनां वरः ॥२१॥

तं अपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् तत् श्रुत्वा अभि अद्रवत् क्रुद्धः जाम्बवान् बलिनां वरः ॥२१॥

तं अपूर्वं	उस पहिले न देखे	बलिनां वरः	बलवानोंमें श्रेष्ठ
नरं दृष्ट्वा	पुरुषको देखकर	जाम्बवान्	जाम्बवन्त
धात्री भीतवत्	धाय डरेके समान	क्रुद्धः	क्रोध करके
चुक्रोश	चिल्ला पड़ी,	अभि अद्रवत्	उस ओर दौड़ पड़े
तत् श्रुत्वा	उसे सुनकर		॥२१॥

स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनाऽऽत्मनः ।
पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ॥२२॥

स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिना आत्मनः पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितः न अनुभाववित् ॥२२॥

अनुभाववित् न	उनके प्रभावको न जाननेके कारण
वै आत्मनः	निश्चय अपने ही
स्वामिना	स्वामीसे
प्राकृतं पुरुषं	साधारण मनुष्य
मत्वा कुपितः	मानकर क्रोध करके
स भगवता	वे उन भगवानसे
युयुधे	युद्ध करने लगे ॥२२॥

द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः ।
आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥२३॥

द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलं उभयोः विजिगीषतोः आयुध अश्म द्रुमैः दोर्भिः क्रव्य अर्थे श्येनयोः इव ॥२३॥

क्रव्य अर्थैः	मांसके लिए
श्येनयोः इव	दो बाजोंके समान
विजिगीषतोः	जीतनेकी इच्छा वाले
उभयोः	दोनोंमें
आयुध	हथियारों,
अश्म द्रुमैः	चट्टानों, वृक्षों
दोर्भिः सुतुमुलं	भुजाओंसे अत्यन्त तुमुल
द्वन्द्वयुद्धं	द्वन्द्व युद्ध (होने लगा) ॥२३॥

आसीत्तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः ।
वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम् ॥२४॥

आसीत् तत् अष्टाविंश अहं इतर इतरं मुष्टिभिः वज्र निष्पेष परुषैः अविश्रमं अहः निशम् ॥२४॥

इतरं इतरं	एक दूसरेको
मुष्टिभिः	घूसोंसे (मारते)
तत्	वह
अष्टाविंश अहं	अट्ठाइस दिन
अविश्रमं	अविराम
अहः निशं	दिन-रात
वज्र	वज्रपातके
निष्पेष परुषैः	समान कठोर
आसीत्	(युद्ध) चलता रहा ॥२४॥

कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टाङ्गोरुबन्धनः ।
क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः ॥२५॥

कृष्णमुष्टि विनिष्पात निष्पिष्ट अङ्ग उरु बन्धनः क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रः तं आह अतीव विस्मितः ॥२५॥

कृष्ण मुष्टि	श्री कृष्णके घूसोंके	**क्षीणसत्त्वः**	हतोत्साहित
विनिष्पात	पूरे जोरसे पड़नेसे	**स्विन्नगात्रः**	पसीनेसे भरे शरीर
उरु	सुदृढ़	**अतीव विस्मितः**	अत्यन्त चकित
अङ्ग बन्धनः	शरीर-बन्धन	**तं आह**	उनसे (जाम्बवन्त) बोल ॥२५॥
निष्पिष्ट	जैसे पिस गये हों		

जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम् ।
विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥२६॥

जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहः बलं विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुं अधीश्वरम् ॥२६॥

सर्वभूतानां	सम्पूर्ण प्राणियोंके	**पुराणपुरुषं**	सनातन पुरुष,
प्राण	प्राण,	**प्रभविष्णुं**	प्रतिपालक,
ओजः सहः	मनोबल, सहनशक्ति,	**अधीश्वरं**	सर्वेश्वर
बलं त्वां	शरीर बल रूप आपको	**विष्णुं जाने**	विष्णु जान गया ॥२६॥

त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानामपि यच्च सत् ।
कालः कलयतामीशः पर आत्मा तथाऽऽत्मनाम् ॥२७॥

त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानां अपि यत् च सत् कालः कलयतां ईशः पर आत्मा तथा आत्मनाम् ॥२७॥

हि त्वं	क्योंकि आप
विश्वसृजां	विश्व निर्माताओं (ब्रह्मादि)को
स्रष्टा	उत्पन्न करने वाले हैं,
सृज्यानां अपि	सृष्टिमें भी
यत् च सत्	जो भी सत्ता है वह (उपादान),
कालयतां	विनाशकोंके
ईशः कालः	स्वामी काल
तथा आत्मनाम्	तथा आत्माओंसे
पर आत्मा	परे आत्मा (परमात्मा) हैं ॥२७॥

यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षै-
र्वर्त्मादिशत् क्षुभितनक्रतिमिङ्गिलोऽब्धिः ।
सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लङ्का
रक्षःशिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ॥२८॥

यस्य ईषत् उत्कलित रोष कटाक्ष मोक्षैः वर्त्म आदिशत् क्षुभित नक्र तिमिङ्गिलः अब्धिः सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लङ्का रक्षःशिरांसि भुवि पेतुः इषुक्षतानि ॥२८॥

यस्य ईषत्	जिनके तनिकसे
उत्कलित रोष	जागे रोष भरे
कटाक्ष मोक्षैः	कटाक्षपातसे
नक्र तिमिङ्गिल	मगर, तिमिंगलों (ह्वेल)के
क्षुभित अब्धिः	क्षुभित होने पर समुद्रने
वर्त्म आदिशत्	मार्ग बतला दिया,
सेतुः कृतः	उसपर पुल बनाकर
स्वयश लङ्का	अपने सुयशसे लङ्का को
च उज्ज्वलिता	भी प्रकाशित किया
इषुक्षतानि	(तथा जिनके) बाणोंसे कटे
रक्षःशिरांसि	राक्षसोंके सिर
भुवि पेतुः	पृथ्वी पर गिर गये' ॥२८॥

इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः ।
व्याजहार महाराज भगवान् देवकीसुतः ॥२९॥

इति विज्ञातविज्ञानं ऋक्षराजानं अच्युतः व्याजहार महाराज भगवान् देवकीसुतः ॥२९॥

महाराज	महाराज !
इति	इस प्रकार
विज्ञातविज्ञानं	(अपना) विशेष ज्ञान हुए
ऋक्षराजानं	ऋक्षराज जाम्बवन्त से
भगवान्	भगवान्
देवकीसुतः	देवकी-नन्दन
अच्युतः	अच्युत
व्याजहार	बोले ॥२९॥

अभिमृश्यारविन्दाक्षः पाणिना शंकरेण तम् ।
कृपया परया भक्तं प्रेमगम्भीरया गिरा ॥३०॥

अभिमृश्य अरविन्द अक्षः पाणिना शङ्करेण तं कृपया परया भक्तं प्रेमगम्भीरया गिरा ॥३०॥

परया कृपया	परम कृपासे
तं भक्तं	उन भक्तको
शङ्करेण	शान्तिदायी
पाणिना	हाथसे
अभिमृश्य	सहलाकर
अरविद अक्षः	कमलनयन
प्रेमगम्भीरया	प्रेम पूर्ण गम्भीर
गिरा	वाणीसे (बोले) ॥३०॥

मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ।
मिथ्याभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनामुना ॥३१॥

मणिहेतोः इह प्राप्ता वयं ऋक्षपते बिलं मिथ्या अभिशापं प्रमृजन् आत्मनः मणिना अमुना ॥३१॥

ऋक्षपते	'ऋक्षराज !
अमुना मणिना	इस मणिके कारण लगे
आत्मनः	अपने
मिथ्या	झूठे
अभिशापं	कलंकको
प्रमृजन्	सर्वथा दूर करनेके लिए

मणिहेतोः	इस मणिके लिए	बिलं प्राप्ता	गुफामें आये हैं' ॥३१॥
वयं इह	हम यहाँ		

इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जाम्बवतीं मुदा ।
अर्हणार्थं स मणिना कृष्णायोपजहार ह ॥३२॥

इति उक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जाम्बवतीं मुदा अर्हण अर्थं स मणिना कृष्णाय उपजहार ह ॥३२॥

इति उक्तः	ऐसा कहने पर	स मणिना	मणिके साथ
मुदा	प्रसन्न होकर	कृष्णाय ह	श्रीकृष्णको ही
अर्हण अर्थं	पूजा करनेके लिए	उपजहार	उपहारमें दे दी ॥३२॥
स्वां दुहितरं	अपनी पुत्री		
कन्यां	कुमारी		
जाम्बवतीं	जाम्बवतीको		

अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः ।
प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥३३॥

अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः प्रतीक्ष्य द्वादश अहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥३३॥

जनाः	पुरवासी लोग	निर्गमं अदृष्ट्वा	उनको निकलते न देखकर
बिलं प्रविष्टस्य	गुफामें प्रवेश किये	दुःखिताः	दुःखी होकर
शौरेः	श्रीकृष्णकी	स्वपुरं ययुः	अपने नगर लौट गये ॥३३॥
द्वादश अहानि	बारह दिन		
प्रतीक्ष्य	प्रतीक्षा करके		

निशम्य देवकी देवी रुक्मिण्यानकदुन्दुभिः ।
सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन् बिलात् कृष्णमनिर्गतम् ॥३४॥

निशम्य देवकी देवी रुक्मिणि आनकदुन्दुभिः सुहृदः ज्ञातयः अशोचन् बिलात् कृष्णं अनिर्गतम् ॥३४॥

बिलात् कृष्णं	गुफासे श्रीकृष्ण
अनिर्गतं	नहीं निकले
निशम्य	यह सुनकर
देवकी देवी	देवी देवकी
रुक्मिणि	रुक्मिणी
आनकदुन्दुभिः	वसुदेवजी,
सुहृदः ज्ञातयः	सम्बन्धी और जाति के लोग
अशोचन्	चिन्ता करने लगे ॥३४॥

सव्राजितं शपन्तस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ।
उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥३५॥

सव्राजितं शपन्तः ते दुःखिता द्वारकौकसः उपतस्थुः महामायां दुर्गां कृष्ण उपलब्धये ॥३५॥

ते दुःखिता	वे दुःखी
द्वारकौकसः	द्वारिकावासी
सव्राजितं	सव्राजितको
शपन्तः	कोसते हुए
कृष्ण उपलब्धये	श्रीकृष्णकी प्राप्ति के लिए
महामायां दुर्गां	महामाया दुर्गाकी
उपतस्थुः	उपासना करने लगे ॥३५॥

तेषां तु देव्युपस्थानात् प्रत्यादिष्टाशिषा स च ।
प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन् हरिः ॥३६॥

तेषां तु देवि उपस्थानात् प्रत्यादिष्टा आशिषा स च प्रादुः बभूव सिद्ध अर्थः स दारः हर्षयन् हरिः ॥३६॥

देवि	देवीकी
उपस्थानात्	उपासनासे
तेषां तु	उनको तो (देवीने)
आशिषा	आशीर्वाद
प्रत्यादिष्टा	प्रदान किया,
च स हरिः	और वे श्रीहरि (उसी समय)

हर्षयन्	उनको हर्षित करते	**प्रादुः बभूव**	प्रकट हो गये
सिद्ध अर्थः	प्रयोजन सिद्ध करके		॥३६॥
सदारः	पत्नीके साथ		

उपलभ्य हृषीकेशं मृतं पुनरिवागतम् ।
सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥३७॥

उपलभ्य हृषीकेशं मृतं पुनः इव आगतं सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जात महोत्सवाः ॥३७॥

मृतं पुनः आगतं	मरकर फिर आयेके समान	**उपलभ्य**	अपने समीप पाकर
सह पत्न्या	पत्नीके साथ	**सर्वे जात**	सबको
मणिग्रीवं	गलेमें मणि पहिने	**महोत्सवाः**	अत्यन्त आनन्द हुआ ॥३७॥
हृषीकेशं	हृषीकेशको		

सत्राजितं समाहूय सभायां राजसंनिधौ ।
प्राप्तिं चाख्याय भगवान् मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥३८॥

सत्राजितं सम आहूय सभायां राजसन्निधौ प्राप्तिं च आख्याय भगवान् मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥३८॥

सत्राजितं	सत्राजितको	**प्राप्तिं च**	मिलनेका हालभी
राजसन्निधौ	राजा उग्रसेनके समीप	**आख्याय**	बतलाकर
सभायां	सभामें	**तस्मै मणिं**	उसको मणि
सम आहूय	आदरसे बुलवाकर	**न्यवेदयत्**	निवेदन कर दी ॥३८॥

स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वावाङ्मुखस्ततः ।
अनुतप्यमानो भवनमगमत् स्वेन पाप्मना ॥३९॥

स च अतिव्रीडितः रत्नं गृहीत्वा अवाङ्मुखः ततः अनुतप्यमानः भवनं अगमत् स्वेन पाप्मना ॥३९॥

स च	वह भी
अतिव्रीडितः	अत्यन्त लज्जित होकर
रत्नं गृहीत्वा	रत्न लेकर
अवाङ्मुखः	नीचे सिर झुकाकर
स्वेन पाप्मना	अपने ही पापसे
अनुतप्यमानः	संतप्त होता
ततः भवनं	वहाँसे अपने घर
अगमत्	चला गया ॥३९॥

सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः ।
कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद् वाच्युतः कथम् ॥४०॥

सः अनुध्यायन् तत् एव अघं बलवत् विग्रह आकुलः कथं मृजामि आत्मरजः प्रसीदेत् वा अच्युतः कथम् ॥४०॥

बलवत्	बलवानकी
विग्रह आकुलः	शत्रुतासे व्याकुल होकर
सः तत् एव	वह उसी
अघं अनुध्यायन्	अपराधको बार-बार सोचने लगा
आत्मरजः	'अपना दोष
कथं मृजामि	कैसे दूर करूँ
वा अच्युतः	अथवा अच्युत
कथं प्रसीदेत्	कैसे प्रसन्न हों ॥४०॥

किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद् वा जनो यथा ।
अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥४१॥

किं कृत्वा साधु मह्यं स्यात् न शपेत् वा जनः यथा अदीर्घ दर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविण लोलुपम् ॥४१॥

किं कृत्वा	क्या करने से
मह्यं	मेरा
साधु स्यात	भला होगा,
अदीर्घ दर्शनं	दूर तक न देखने वाले
क्षुद्रं मूढं	तुच्छ मूर्ख
द्रविण लोलुपं	धन-लोभीको
वा जनः यथा	अथवा लोग जैसे
शपेत् न	कोसें नहीं ॥४१॥

दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च ।
उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शान्तिर्न चान्यथा ॥४२॥

दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नं एव च उपायः अयं समीचीनः तस्य शान्तिः न च अन्यथा ॥४२॥

तस्मै स्त्रीरत्नं	उनको स्त्रीरत्न	**समीचीनः**	उपयुक्त है
दुहितरं	अपनी पुत्री	**तस्य शान्तिः**	उनकी शान्ति
च रत्नं एव	तथा रत्न भी	**अन्यथा न च**	अन्यथा नहीं ही
दास्ये	दे दूँगा,		होगी' ॥४२॥
अयं उपायः	यह उपाय		

एवं व्यवसितो बुद्धया सत्राजित् स्वसुतां शुभाम् ।
मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥४३॥

एवं व्यवसितः बुद्ध्या सत्राजित् स्वसुतां शुभां मणिं च स्वयं उद्यम्य कृष्णाय उपजहार ह ॥४३॥

एवं बुद्ध्या	इस प्रकार बुद्धिसे	**च मणिं ह**	और मणिको भी
व्यवसितः	निश्चय करके	**कृष्णाय**	श्रीकृष्णको
सत्राजित्	सत्राजित्ने	**उपजहार**	भेंट कर दी ॥४३॥
स्वयं उद्यम्य	स्वयं उद्योग करके		
शुभां स्वसुतां	शुभ लक्षणा अपनी पुत्री		

तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि ।
बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥४४॥

तां सत्यभामां भगवान् उपयेमे यथा विधि बहुभिः याचितां शील रूप औदार्य गुण अन्विताम् ॥४४॥

बहुभिः	बहुत लोगों द्वारा	सत्यभामां	सत्यभामासे
याचितां	मांगी गयी	यथा विधि	विधिपूर्वक
शील रूप	शील, सौन्दर्य,	भगवान्	भगवानने
औदार्य गुण	उदारता, गुण	उपयेमे	विवाह किया
अन्वितां तां	युक्ता उस		॥४४॥

भगवानाह न मर्णि प्रतीच्छामो वयं नृप ।
तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥४५॥

भगवान् आह न मर्णि प्रतीच्छामः वयं नृप तव आस्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥४५॥

भगवान् आह	भगवानने कहा	च वयं	और हम
नृप	राजन्	फलभागिनः	इसके फल (इससे प्रगट होने वाले स्वर्णके) अधिकारी हैं ॥४५॥
मर्णि वयं	मणि हम		
न प्रतीच्छामः	नहीं लेना चाहते		
देवभक्तस्य	सूर्य देवके भक्त		
तव आस्तां	आपके ही पास (यह) रहे,		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे स्यमन्तकोपाख्याने षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

अथ सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः

॥ श्रीशक उवाच ॥

विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धानाकर्ण्य पाण्डवान् ।
कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥१॥

विज्ञात अर्थः अपि गोविन्दः दग्धान् आकर्ण्य पाण्डवान् कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामः ययौ कुरून् ॥१॥

विज्ञात अर्थः अपि	वास्तविकताको जानने पर भी	**कुल्यकरणे**	कुलोचित व्यवहार करने
गोविन्दः	गोविन्द	**सहरामः**	बलदेवजीके साथ
पाण्डवान्	पाण्डवोंको	**कुरून् ययौ**	कौरवोंके समीप गये ॥१॥
च कुन्तीं	तथा कुन्तीको		
दग्धान् आकर्ण्य	जला हुआ सुनकर		

भीष्मं कृपं सविदुरं गान्धारीं द्रोणमेव च ।
तुल्यदुःखौ च संगम्य हा कष्टमिति होचतुः ॥२॥

भीष्मं कृपं सविदुरं गान्धारीं द्रोणं एव च तुल्य दुःखौ च सङ्गम्य हा कष्टं इति ह ऊचतुः ॥२॥

तुल्य दुःखौ	समान दुःखी	**सङ्गम्य**	मिलकर
भीष्मं कृपं	भीष्म, कृपाचार्य,	**हा कष्टं**	'हा' बड़े कष्टकी बात हुई
सविदुरं	विदुरजीके साथ		
गान्धारीं	गान्धारीं	**इति ह ऊचतुः**	ऐसा ही कहा ॥२॥
च द्रोणं एव	तथा द्रोणाचार्यसे भी		

लब्धवैतदन्तरं राजन् शतधन्वानमूचतुः ।
अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मान्न गृह्यते ॥३॥

लब्ध्वा एतत् अन्तरं राजन् शतधन्वानं ऊचतुः अक्रूर कृतवर्माणौ मणिः कस्मात् न गृह्यते ॥३॥

राजन्	राजन् !	**ऊचतुः**	कहा—
एतत् अन्तरं	यह अवकाश	**मणिः कस्मात्**	'(सत्राजित्से) मणि क्यों
लब्ध्वा	पाकर		
अक्रूर	अक्रूर	**न गृह्यते**	नहीं ले लेते हो ॥३॥
कृतवर्माणौ	तथा कृतवर्मासे		
शतधन्वानं	शतधन्वासे		

योऽस्मभ्यं संप्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्यं नः ।
कृष्णायादान्न सत्राजित् कस्माद् भ्रातरमन्वियात् ॥४॥

यः अस्मभ्यं संप्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्यं नः कृष्णाय अदात् न सत्राजित् कस्मात् भ्रातरं अनु इयात् ॥४॥

यः अस्मभ्यं	जिसने हम लोगों को	**कन्यारत्नं**	कन्यारत्न
संप्रतिश्रुत्य	भली प्रकार वचन देकर	**अदात्**	दे दिया
नः विगर्ह्यं	हमारा तिरस्कार	**सत्राजित्**	वह सत्राजित्
कृष्णाय	श्रीकृष्णको	**कस्मात् भ्रातरं**	क्यों भाईके
		अनु इयात् न	पीछे न जाय' ॥४॥

एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः ।
शयानमवधील्लोभात् स पापः क्षीणजीवितः ॥५॥

एवं भिन्न मतिः ताभ्यां सत्राजितं असत्तमः शयानं अवधीत् लोभात् स पापः क्षीण जीवितः ॥५॥

एवं ताभ्यां	इस प्रकार उन दोनों द्वारा	स पापः	उस पापी
भिन्नमतिः	बहकाये जाने पर	असत्तमः	महादुष्टने
लोभात्	लोभवश	शयानं	सोते
क्षीणजीवितः	जिसका जीवन क्षीण हो चुका था	सत्राजितं	सत्राजितको
		अवधीत्	मार दिया ॥५॥

स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रन्दन्तीनामनाथवत् ।
हत्वा पशून् सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥६॥

स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रन्दन्तीनां अनाथवत् हत्वा पशून् सौनिकवत् मणिं आदाय जग्मिवान् ॥६॥

पशून्	पशुओंको	विक्रोशमानानां	चिल्लाते
सौनिकवत्	कसाईकी भांति	क्रन्दन्तीनां	क्रन्दन करते हुए
हत्वा	मारकर	मणिं आदाय	मणि लेकर
अनाथवत्	अनाथाकी भांति	जग्मिवान्	चला गया ॥६॥
स्त्रीणां	स्त्रियोंके		

सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचार्पिता ।
व्यलपत्तात तातेति हा हतास्मीति मुह्यती ॥७॥

सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचा अर्पिता व्यलपत् तात तात इति हा हता अस्मि इति मुह्यती ॥७॥

सत्यभामा च	सत्यभामा भी	तात हा तात	'पिता, हा पिता
पितरं	पिताको	हता अस्मि	मैं मारी गयी,
हतं वीक्ष्य	मारा गया देखकर	इति	ऐसा
शुचा अर्पिता	शोक-पीड़ित होकर	मुह्यती इति	कहती मूर्छित ही हो गयीं ॥७॥

तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम् ।
कृष्णाय विदितार्थाय तप्ताऽऽचख्यौ पितुर्वधम् ॥८॥

तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयं कृष्णाय विदित अर्थाय तप्ता आचख्यौ पितुः वधम् ॥८॥

मृतं तैलद्रोण्यां	(फिर) मरेको तेल के कड़ाहेमें
प्रास्य	डुबाकर
गजसाह्वयं	हस्तिनापुर
जगाम	गयीं
विदित अर्थाय	(वहां उनके आने का) प्रयोजन समझ गये
कृष्णाय	श्रीकृष्णसे
तप्ता पितुः वधं	सन्तप्त होकर पिताका वध
आचख्यौ	सुनाया ॥८॥

तदाकर्ण्येश्वरौ राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् ।
अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः ॥९॥

तदा आकर्ण्य ईश्वरौ राजन् अनुसृत्य नृलोकतां अहो नः परमं कष्टं इति अश्रु अक्षौ विलेपतुः ॥९॥

राजन्	राजन् !
तदा आकर्ण्य	तब वह सुनकर
ईश्वरौ	ईश्वर होने पर भी (बलराम-श्रीकृष्ण)
नृलोकतां	मनुष्य लोकका
अनुसृत्य	अनुसरण करके
अहो नः	'अहो हम पर
परमं कष्टं	घोर संकट आ गया'
इति अश्रु अक्षौ	यह कहते नेत्रोंमें आंसू भरकर
विलेपतुः	विलाप करने लगे ॥९॥

आगत्य भगवांस्तस्मात् सभार्यः साग्रजः पुरम् ।
शतधन्वानमारेभे हन्तुं हर्तुं मणिं ततः ॥१०॥

आगत्य भगवान् तस्मात् सभार्यः साग्रजः पुरं शतधन्वानं आरेभे हन्तुं हतुं मणि ततः ॥१०॥

तस्मात्	वहांसे
सभार्यः साग्रजः	पत्नीके साथ तथा बड़े भाईके साथ
पुरं आगत्य	अपने नगर आकर
भगवान्	भगवानने
शतधन्वानं	शतधन्वाको
हन्तुं तथा	मारने को और
ततः मणिं हतुं	उससे मणि छीन लेनेका
आरेभे	उद्योग प्रारम्भ किया ॥१०॥

सोऽपि कृष्णोद्यमंज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया ।
साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत स चाब्रवीत् ॥११॥

सः अपि कृष्ण उद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राण परीप्सया साहाय्ये कृतवर्माणं अयाचत स च अब्रवीत् ॥११॥

सः अपि	उसने भी
कृष्ण	श्रीकृष्णका
उद्यमं ज्ञात्वा	प्रयत्न जानकर
भीतः	डरकर
प्राण परीप्सया	प्राण रक्षाके लिए
कृतवर्माणं	कृतवर्मासे
साहाय्ये	सहायता करनेकी
अयाचत	प्रार्थना की
स च अब्रवीत्	उसने भी कहा ॥११॥

नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः ।
को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥१२॥

न अहं ईश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः कः नु क्षेमाय कल्पेत तयोः वृजिनं आचरन् ॥१२॥

अहं ईश्वरयोः	मैं सर्वसमर्थ
रामकृष्णयोः	बलराम-श्रीकृष्णकी
हेलनं न कुर्यां	अवहेलना नहीं करूँगा,

तयोः वृजिनं	उनका अपराध	कल्पेत	रह सकता है
आचरन्	करके		॥१२॥
नु कः क्षेमाय	भला कौन सकुशल		

कंसः सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्त्याजितः श्रिया ।
जरासंधः सप्तदश संयुगान् विरथो गतः ॥१३॥

कंसः सह अनुगः अपि इतः यत् द्वेषात् त्याजितः श्रिया जरासन्धः सप्तदश संयुगान् विरथः गतः ॥१३॥

यत् द्वेषात्	जिनसे द्वेष करने के कारण	जरासन्धः	जरासन्ध
		सप्तदश	सत्रहबार
सह अनुगः	अनुगामियोंके साथ	संयुगान्	युद्धसे
कंसः अपि	कंस भी	विरथः गतः	रथहीन होकर
इतः	यहां		लौट गया' ॥१३॥
श्रिया त्याजितः	राजलक्ष्मी भ्रष्ट हुआ और		

प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत ।
सोऽप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥१४॥

प्रति आख्यातः स च अक्रूरं पार्ष्णिग्राहं अयाचत सः अपि आह कः विरुध्येत विद्वान् ईश्वरयोः बलम् ॥१४॥

प्रति आख्यातः	उलटा उत्तर पाकर	ईश्वरयोः बलं	'उन सर्वसमर्थों की शक्ति
स च अक्रूरं	उसने भी अक्रूरसे		
पार्ष्णिग्राहं	अपना पक्ष लेनेकी	विद्वान् कः	जानकर कौन
अयाचत	मांग की	विरुध्येत	(उनसे) विरोध
सः अपि आह	उन्होंने भी कहा—		करेगा ॥१४॥

य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च ।
चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताजया ॥१५॥

यः इदं लीलया विश्वं सृजति अवति हन्ति च चेष्टां विश्वसृजः यस्य न विदुः मोहिता अजया ॥१५॥

यः इदं विश्वं	जो इस विश्वको
लीलया सृजति	लीलासे ही बनाते,
अवति च हन्ति	पालते तथा मार देते हैं
यस्य चेष्टां	जिनकी चेष्टाको
अजया मोहिता	(उनकी) मायासे
विश्वसृजः	विश्वस्रष्टा (ब्रह्मादि)
न विदुः	नहीं जानते ॥१५॥

यः सप्तहायनः शैलमुत्पाट्य केन पाणिना ।
दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रमिवार्भकः ॥१६॥

यः सप्तहायनः शैलं उत्पाट्य एकेन पाणिना दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रं इव अर्भकः ॥१६॥

यः सप्तहायनः	जो सात वर्षके
बाल	बालक होने पर भी
एकेन पाणिना	एक ही हाथसे
शैलं उत्पाट्य	पर्वत उखाड़ कर
उच्छिलीन्ध्रं	बरसाती छत्तेको
अर्भकः इव	छोटे शिशुके समान
दधार	धारण किये रहे ॥१६॥

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे ।
अनन्तायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः ॥१७॥

नमः तस्मै भगवते कृष्णाय अद्भुत कर्मणे अनन्ताय आदिभूताय कूटस्थाय आत्मने नमः ॥१७॥

तस्मै भगवते	उन भगवान
अद्भुत कर्मणे	अद्भुत-कर्मा
कृष्णाय नमः	श्रीकृष्णको नमस्कार
अनन्ताय	अनन्त
आदिभूताय	प्राणियोंके आदिकारण
कूटस्थाय	कूटस्थ
आत्मने नमः	परमात्माको नमस्कार' ॥१७॥

प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् ।
तस्मिन् न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥१८॥

प्रति आख्यातः स तेन अपि शतधन्वा महामणिं तस्मिन् न्यस्य अश्वं आरुह्य शतयोजनगं ययौ ॥१८॥

तेन अपि स	उनके द्वारा भी वह	**शतयोजनगं**	सौ योजन जाने वाले
प्रति आख्यातः	उलटा उत्तर पाकर	**अश्वं**	घोड़े पर
महामणिं	महामणिको	**आरुह्य ययौ**	चढ़कर चला गया ॥१८॥
तस्मिन् न्यस्य	उनके पास छोड़कर		
शतधन्वा	शतधन्वा		

गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ ।
अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन् गुरुद्रुहम् ॥१९॥

गरुडध्वजं आरुह्य रथं रामजनार्दनौ अनु आयातां महावेगैः अश्वैः राजन् गुरुद्रुहम् ॥१९॥

राजन्	राजन् !	**अश्वैः गुरुद्रुहं**	घोड़ों द्वारा गुरुजन (श्वसुर)से द्रोह करने वालेके
रामजनार्दनौ	बलराम-श्रीकृष्ण	**अनु आयातां**	पीछे लग गये ॥१९॥
गरुडध्वजं	गरुड़ध्वज		
रथं आरुह्य	रथपर चढ़कर		
महावेगैः	अत्यन्त वेगवान		

मिथिलायामुपवने विसृज्य पतितं हयम् ।
पद्भ्यामधावत् संत्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद् रुषा ॥२०॥

मिथिलायां उपवने विसृज्य पतितं हयं पद्भ्यां अधावत् सन्त्रस्तः कृष्णः अपि अनु अद्रवत् रुषा ॥२०॥

मिथिलायां	मिथिलापुरीके	**पतितं हयं**	गिरे घोड़ेको
उपवने	बगीचेमें		

विसृज्य	छोड़कर	**रुषा**	क्रुपित होकर
सन्त्रस्तः	अत्यन्त डरकर	**अनु अद्रवत्**	(उसके) पीछे
पद्भ्यां अधावत्	पैदल दौड़ने लगा,		झपटे ॥२०॥
कृष्णः अपि	श्रीकृष्ण भी		

पदातेर्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना ।
चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससो व्यचिनोन्मणिम् ॥२१॥

पदातेः भगवान् तस्य पदातिः तिग्म नेमिना चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससः व्यचिनोत् मणिम् ॥२१॥

तस्य पदातेः	उस पैदलका	**चक्रेण शिर**	चक्रसे सिर
पदातिः भगवान्	पैदल भगवानने	**उत्कृत्य**	काटकर
तिग्म नेमिना	तीक्ष्ण धारवाले	**वाससः मणि**	उसके वस्त्रोंमें मणि
		व्यचिनोत्	ढूँढ़ा ॥२१॥

अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आह्याग्रजान्तिकम् ।
वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥२२॥

अलब्ध मणिः आगत्य कृष्णः आह अग्रज अन्तिकं वृथा हतः शतधनुः मणिः तत्र न विद्यते ॥२२॥

अलब्ध मणिः	मणि न पाकर	**शतधनुः**	'शतधन्वाको
अग्रज अन्तिकं	बड़े भाईके समीप	**वृथा हतः**	व्यर्थ मारा
आगत्य	आकर	**तत्र मणिः**	उसके पास मणि
कृष्णः आह	श्रीकृष्ण बोले—	**न विद्यते**	नहीं है ॥२२॥

तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना ।
कस्मिंश्चित् पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥२३॥

ततः आह बलः नूनं स मणिः शतधन्वना कस्मिन् चित् पुरुषे न्यस्तः तं अन्वेष पुरं व्रज ॥२३॥

ततः बलः आह	तब बलरामजीने कहा
नूनं स मणिः	'निश्चय वह मणि
शतधन्वना	शतधन्वा द्वारा
कस्मिन् चित	किसी
पुरुषे न्यस्तः	पुरुषके पास रखी गयी है,
तं अन्वेष	उसे ढूँढ़ो,
पुरं व्रज	अपने नगर जाओ ॥२३॥

अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम ।
इत्युक्त्वा मिथिलां राजन् विवेश यदुनन्दनः ॥२४॥

अहं विदेहं इच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम इति उक्त्वा मिथिलां राजन् विवेश यदुनन्दनः ॥२४॥

अहं मम	मैं अपने
प्रियतमं	अत्यन्त प्रिय
विदेहं द्रष्टुं	विदेहराजको देखना
इच्छामि	चाहता हूँ'।
राजन्	राजन् !
इति उक्त्वा	ऐसा कहकर
यदुनन्दनः	यदुनन्दन (बलरामजी)
मिथिलां विवेश	मिथिलामें प्रविष्ट हो गये ॥२४॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः ।
अर्हयामास विधिवदर्हणीयं समर्हणैः ॥२५॥

तं दृष्ट्वा सहसा उत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः अर्हयामास विधिवद् अर्हणीयं सम अर्हणैः ॥२५॥

तं	उन
अर्हणीयं दृष्ट्वा	पूजनीयको देखकर
प्रीतमानसः	प्रसन्न चित्त
मैथिलः	मिथिला नरेशने
सहसा उत्थाय	सहसा उठकर
सम अर्हणैः	उत्तम पूजा सामग्री से
अर्हयामास	(उनकी) पूजा की ॥२५॥

उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः ।
मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ।
ततोऽशिक्षद् गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ॥२६॥

उवास तस्यां कतिचित् मिथिलायां समा विभुः मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ततः अशिक्षत् गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ॥२६॥

प्रीतियुक्तेन	प्रेमयुक्त
महात्मना	महात्मा
जनकेन	जनक द्वारा
मानितः विभुः	सम्मानित होकर प्रभु बलरामजी
तस्यां	उस
मिथिलायां	मिथिलापुरीमें
कतिचित् समाः	कुछ वर्ष
उवास	निवास करते रहे
ततः काले	उसी समय
धार्तराष्ट्रः	धृतराष्ट्रके पुत्र
सुयोधनः	दुर्योधनने
गदां अशिक्षत्	(उनसे) गदायुद्ध सीखा ॥२६॥

केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः ।
अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद् विभुः ॥२७॥

केशवः द्वारकां एत्य निधनं शतधन्वनः अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृत् विभुः ॥२७॥

प्रियायाः	प्रियतमा (सत्यभामा)का
प्रियकृत् विभुः	प्रिय करने वाले प्रभु
केशवः	केशवने
द्वारकां एत्य	द्वारिकापुरी आकर
शतधन्वनः	शतधन्वाका
निधनं च	मारा जाना तथा
मणेः अप्राप्तिं	मणिका न मिलना
प्राह	बतला दिया ॥२७॥

ततः स कारयामास क्रिया बन्धोर्हतस्य वै ।
साकं सुहृद्भिर्भगवान् या याः स्युः साम्परायिकाः ॥२८॥

ततः स कारयामास क्रिया बन्धोः हतस्य वै साकं सुहृद्भिः भगवान् याः याः स्युः साम्परायिकाः ॥२८॥

ततः हतस्य बन्धोः	फिर मारे गये सम्बन्धी (श्वसुर) की
याः याः साम्परायिकाः	जो जो मरणोत्तर

वै क्रिया स्युः	निश्चित कर्म थे	स कारयामास	वह करवायीं
भगवान्	भगवानने		॥२८॥
सुहृत् भिः साकं	सम्बन्धियोंके साथ		

अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम् ।
व्यूषतुर्भयविव्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥२९॥

अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोः वधं व्यूषतुः भय विव्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥२९॥

प्रयोजकौ	नियुक्त करने वाले	भय विव्रस्तौ	अत्यन्त भयभीत
अक्रूरः च	अक्रूर तथा		होकर
कृतवर्मा	कृतवर्मा	द्वारकायाः	द्वारिकासे
शतधनोः	शतधन्वाका	व्यूषतुः	विदेश चले गये
वधं श्रुत्वा	वध सुनकर		॥२९॥

अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन् वै द्वारकौकसाम् ।
शारीरा मानसास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः ॥३०॥

अक्रूरे प्रोषिते अरिष्टानि आसन् वै द्वारकौकसां शारीरा मानसाः तापा मुहुः वैविक भौतिकाः ॥३०॥

अक्रूरे प्रोषिते	अक्रूरके प्रवास कर	वै शारीरा	निश्चित शारीरिक
	जाने पर	मानसाः तापा	मानसिक कष्ट
द्वारकौकसां	द्वारिकावासियोंको	अरिष्टानि	ग्रह-बाधाएँ
दैविक भौतिकाः	देवताओं द्वारा तथा	मुहुः आसन्	बार बार होने लगे
	सामान्य कारणसे		॥३०॥

इत्यङ्गोपदिशन्त्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् ।
मुनिसवनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम् ॥३१॥

इति अङ्ग उपदिशन्ति एके विस्मृत्य प्राक् उदाहृतं मुनिवास निवासे किं घटेत अरिष्ट दर्शनम् ॥३१॥

अंग	प्रिय परीक्षित !	**निवासे किं**	उन भगवान के निवासमें क्या
प्राक् उदाहृतं	पहिले (शास्त्र) वर्णित को	**अरिष्ट दर्शनं**	अरिष्टोंका दीखना
विस्मृत्य	भूलकर	**घटेत**	बन सकता है ?
एके इति	कोई लोग ऐसा		॥३१॥
उपदिशन्ति	कहते हैं (अन्यथा)		
मुनिवास	जिनमें मुनिजन रहते हैं		

देवेऽवर्षति काशीशः श्वफल्कायागताय वै ।
स्वसुतां गान्दिनीं प्रादात् ततोऽवर्षत् स्म काशिषु ॥३२॥

देवे अवर्षति काशी ईशः श्वफल्काय आगताय वै स्वसुतां गान्दिनीं प्रादात् ततः अवर्षत् स्म काशिषु ॥३२॥

देवे अवर्षति	इन्द्रदेवके वर्षा न करने पर	**स्वसुतां**	अपनी पुत्री
		गान्दिनीं	गान्दिनी
काशी ईशः	काशिराजने	**प्रादात्**	प्रदान कर दी
वै आगताय	निश्चित आये हुए	**ततः काशिषु**	तब काशीमें
श्वफल्काय	श्वफाल्कको	**अवर्षत्**	वर्षा हुई ॥३२॥

तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्र यत्र ह ।
देवोऽभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारिकाः ॥३३॥

तत् सुतः तत् प्रभावः असाः अक्रूरः यत्र यत्र ह देवः अभिवर्षते तत्र न उपतापा न मारिकाः ॥३३॥

तत् सुतः	उनके पुत्र	**तत् प्रभावः**	उन्हींके समान प्रभाववाले हैं
असाः अक्रूरः	ये अक्रूर		

यत्र यत्र ह	जहां जहाँ (ये) होते हैं	न उपतापा	(वहां) कोई कष्ट नहीं होता
तत्र देवः	वहां इन्द्रदेव	न मारिकाः	न महामारी आती
अभिवर्षते	वर्षा करते हैं,		॥३३॥

इति वृद्धयचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम् ।
इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः ॥३४॥

इति वृद्धवचः श्रुत्वा न एतावत् इह कारणं इति मत्वा समानाय्य प्राह अक्रूरं जनार्दनः ॥३४॥

इति वृद्धवचः	इस प्रकार वृद्ध लोगोंकी बात	अक्रूरं	अक्रूरको
		समानाय्य	सम्मान पूर्वक बुलवाकर
श्रुत्वा	सुनकर		
इह एतावत्	इसमें इतना ही	जनार्दनः प्राह	जनार्दन बोले
कारणं न	कारण नहीं है		॥३४॥
इति मत्वा	ऐसा मानकर		

पूजयित्वाभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रियाः कथाः ।
विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥३५॥

पूजयित्वा अभिभाष्य एनं कथयित्वा प्रियाः कथाः विज्ञात अखिल चित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥३५॥

पूजयित्वा	सत्कार करके	स्मयमान ह	मुस्कराते हुये ही
एनं प्रियाःकथाः	इनसे प्रियचर्चा	उवाच	बोले ॥३५॥
अभिभाष्य	करके		
अखिल चित्तज्ञः	सबके चित्तकी बात जानने वाले भगवान		

ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना ।
स्यमन्तको मणिः श्रीमान् विदितः पूर्वमेव नः ॥३६॥

ननु दानपते न्यस्तः त्वयि आस्ते शतधन्वना स्यमन्तकः मणिः श्रीमान् विदितः पूर्वं एव नः ॥३६॥

दानपते	दानाध्यक्षजी
शतधन्वना	शतधन्वाकी
न्यस्तः	छोड़ी हुई
श्रीमान्	तेजोमय
स्यमन्तकः	स्यमन्तक
मणिः	मणि
नूनं त्वयि आस्ते	निश्चय आपके पास है
नः पूर्व विदितः	(यह) हमको पहिले ज्ञात है ॥३६॥

सत्राजितोऽनपत्यत्वाद् गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः ।
दायं निनीयापः पिण्डान् विमुच्यर्णं च शेषितम् ॥३७॥

सत्राजितः अनपत्यत्वात् गृह्णीयुः दुहितुः सुताः दायं निनीय आपः पिण्डान् विमुच्य अर्णं च शेषितम् ॥३७॥

सत्राजितः	सत्राजितके
अनपत्यत्वात्	पुत्रहीन होनेके कारण
दुहितुः सुताः	उनकी पुत्रीके पुत्र
आपः पिण्डान्	विलोदक और पिण्ड
विमुच्य	छोड़ (देकर)
च अर्णं शेषितं	तथा ऋणसे बचे हुएको
दायं निनीय	उत्तराधिकारमें ले सकते हैं ॥३७॥

तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः ।
किंतु मामग्रजः सम्यङ् न प्रत्येति मणिं प्रति ॥३८॥

तथा अपि दुर्धरः तु अन्यैः त्वयि आस्तां सुव्रते मणिः किन्तु मां अग्रजः सम्यक् न प्रत्येति मणिं प्रति ॥३८॥

तथा अपि	ऐसा होने पर भी	मणिः आस्तां	मणि बनी रहे,
अन्यं तु दुर्धरः	दूसरेके लिए तो (उसे) रखना कठिन होनेसे	किन्तु अग्रजः	किन्तु बड़े भाई
		मणि प्रति	मणिके विषयमें
		मां सम्यक्	मेरा पूरा
सुव्रते त्वयि	उत्तम व्रत करने वाले आपके पास	प्रत्येति न	विश्वास नहीं करते हैं ॥३८॥

दर्शयस्व महाभाग बन्धूनां शान्तिमावह ।
अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः ॥३९॥

दर्शयस्व महाभाग बन्धूनां शान्तिम् आवह अव्युच्छिन्ना मखाः ते अद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः ॥३९॥

महाभाग	महाभाग !	मखाः	यज्ञ
दर्शयस्व	(उसे) दिखला दीजिए	अव्युच्छिन्ना	अखण्ड
बन्धूनां	भाइयोंमें	अद्य वर्तन्ते	आजकल चल रहे हैं ॥३९॥
शान्तिं आवह	शान्ति स्थापित कीजिए		
ते रुक्मवेदयः	(उसीके प्रभावसे) आपके सोनेकी वेदी वाले		

एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम् ।
आदाय वाससाच्छन्नं ददौ सूर्यसमप्रभम् ॥४०॥

एवं सामभिः आलब्धः श्वफल्क तनयः मणिं आदाय वाससा आच्छन्नं ददौ सूर्यसम प्रभम् ॥४०॥

एवं सामभिः	इस प्रकार सामनीति से	श्वफल्क तनयः	श्वफल्कके पुत्र अक्रूरने
आलब्धः	समझाये जाने पर		

वाससा	वस्त्रसे	**मणिं आदाय**	मणि निकालकर
आच्छन्नं	ढकी हुई	**ददौ**	(भगवानको) दे दी
सूर्यसम प्रभं	सूर्यके समान कान्तिवाली		॥४०॥

स्यमन्तकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः ।
विमृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयत् प्रभुः ॥४१॥

स्यमन्तकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यः रजः आत्मनः विमृज्य मणिना भूयः तस्मै प्रत्यर्पयत् प्रभुः ॥४१॥

स्यमन्तकं	स्यमन्तकको	**विमृज्य**	पूर्णतः दूर करके
ज्ञातिभ्यः	जातिवालोंको	**प्रभुः तस्मै**	समर्थ श्रीकृष्णने उन्हींको
दर्शयित्वा	दिखलाकर	**प्रत्यर्पयत्**	लौटा दिया ।.४१॥
मणिना	इस मणिके द्वारा लगे		
आत्मनः रजः	अपने कीचड़ (कलंक)को		

यस्त्वेतद् भगवत ईश्वरस्य विष्णो-
र्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च ।
आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद् वा
दुष्कीर्ति दुरितमपोह्य याति शान्तिम् ॥४२॥

यः तु एतत् भगवतः ईश्वरस्य विष्णोः वीर्यं आढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च आख्यानं पठति शृणोति अनुस्मरेत् वा दुष्कीर्तिं दुरितं अपोह्य याति शान्तिम् ॥४२॥

एतत् भगवतः	इस भगवान	**विष्णोः**	विष्णुके
ईश्वरस्य	सर्वेश्वर	**वीर्यं आढ्यं**	पराक्रम परिपूर्ण

वृजिनहरं	पापनाशक
च सुमङ्गलं	तथा मंगलमय
आख्यानं	आख्यानको
यः तु पठति	जो भी पढ़ता है,
शृणोति	सुनता है
वा अनुस्मरेत्	अथवा स्मरण करता है,
दुष्कीर्तिं	वह अपयशों और
दुरितं अपोह्य	पापोंसे छूटकर
शान्तिं याति	शान्ति प्राप्त करता है ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे स्यमन्तकोपाख्याने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

अथ अष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एकदा पाण्डवान् द्रष्टुं प्रतीतान् पुरुषोत्तमः ।
इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान् युयुधानादिभिर्वृतः ॥१॥

एकदा पाण्डवान् द्रष्टुं प्रतीतान् पुरुषोत्तमः इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान् युयुधान आदिभिः वृतः ॥१॥

एकदा	एकवार	प्रतीतान्	(अज्ञातवाससे) प्रगट हुए
श्रीमान्	श्रीमान्		
पुरुषोत्तमः	पुरुषोत्तम	पाण्डवान् द्रष्टुं	पाण्डवोंको देखने
युयुधान	सात्यकि	इन्द्रप्रस्थं गतः	इन्द्रप्रस्थ गये ॥१॥
आदिभिः वृतः	आदिसे घिरे		

दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुन्दमखिलेश्वरम् ।
उत्तस्थुर्युगपद् वीराः प्राणा मुख्यमिवागतम् ॥ २ ॥

दृष्ट्वा तं आगतं पार्था मुकुन्दं अखिल ईश्वरं उत्तस्थुः युगपत् वीराः प्राणा मुख्यं इव आगतम् ॥२॥

तं	उन	मुख्यं प्राणा	मुख्य प्राणके
अखिल ईश्वरं	सर्वेश्वर	आगतं इव	आ जानेके समान
मुकुन्दं	मुकुन्दको	युगपत्	एक साथ
आगतं दृष्ट्वा	आया देखकर	उत्तस्थुः	उठ खड़े हुए ॥२॥
वीराः पार्था	वीर पाण्डव		

परिष्वज्याच्युतं वीरा अङ्गसङ्गहतैनसः ।
सानुरागस्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥ ३ ॥

परिष्वज्य अच्युतं वीरा अङ्गसङ्ग हत एनसः सानुराग स्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥३॥

वीरा अच्युतं	वीर अच्युतको	**तस्य सानुराग**	उनके प्रेमपूर्ण
परिष्वज्य	आलिंगन करके	**स्मितं वक्त्रं**	मुस्कान युक्त मुख को
अङ्गसङ्ग	उनके शरीरके स्पर्शसे	**वीक्ष्य मुदं ययुः**	देखकर प्रसन्न हो गये ॥३॥
हत एनसः	निष्पाप होकर		

युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् ।
फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवन्दितः ॥ ४ ॥

युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पाद अभिवन्दनं फाल्गुनं परिरभ्य अथ यमाभ्यां च अभिवन्दितः ॥४॥

युधिष्ठिरस्य	युधिष्ठिरकी	**अथ यमाभ्यां**	फिर दोनों जुड़वां भाई नकुल-सहदेव द्वारा
भीमस्य	और भीमसेनकी		
पाद अभिवन्दनं	चरण-वन्दना		
कृत्वा फाल्गुनं	करके, अर्जुको	**अभिवन्दितः च**	अभिवन्दित भी हुए ॥४॥
परिरभ्य	आलिङ्गन करके		

परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिन्दिता ।
नवोढा व्रीडिता किंचिच्छनैरेत्याभ्यवन्दत ॥ ५ ॥

परम आसन आसीनं कृष्णा कृष्णं अनिन्दिता नवोढा व्रीडिता किञ्चित् शनैः एत्य अभ्यवन्दत ॥५॥

नवोढा	नव-विवाहिता	**किञ्चित्**	कुछ
अनिन्दिता	अनिन्दिता (अनिन्द्य सुन्दरी)	**व्रीडिता**	लज्जिता
		कृष्णा	द्रौपदीने

परम आसन	श्रेष्ठ सिंहासन पर	शनैः एत्य	धीरेसे आकर
आसीनं कृष्णं	बैठे श्रीकृष्णको	अभ्यवन्दत	प्रणाम किया ॥५॥

तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिवन्दितः ।
निषसादासनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासत ॥ ६ ॥

तथा एव सात्यकिः पार्थैः पूजिताः च अभिवन्दितः निषसाद आसने अन्ये च पूजिताः परि उपासत ॥६॥

तथा एव	इसी प्रकार	अन्ये च	दूसरे भी (यादव गण)
पार्थैः सात्यकिः	पाण्डवों द्वारा सात्यकि	पूजिताः	सत् कृत होकर
पूजितः च	सत्कृत होकर तथा	परि उपासत	(श्रीकृष्णके) चारों ओर बैठ गये ॥६॥
अभिवन्दितः	अभिवन्दित होकर		
आसने	आसनपर		
निषसाद	बैठ गये		

पृथां समागत्य कृताभिवादन-
स्तयातिहार्दार्द्रदृशाभिरम्भितः ।
आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषां
पितृष्वसारं परिपृष्टबान्धवः ॥ ७ ॥

पृथां सम आगत्य कृत अभिवादनः तया अतिहार्द आर्द्रदृशा अभिरम्भितः आपृष्टवान् तां कुशलं सहस्नुषां पितृष्वसारं परिपृष्ट बान्धवः ॥७॥

पृथां सम	कुन्तीके समीप	तया अतिहार्द	उनके द्वारा अत्यन्त प्रेमसे
आगत्य	जाकर	आर्द्र दृशा	अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे
अभिवादन कृत	प्रणाम करने पर		

अभिरम्भितः	आलिंगित होकर
बान्धवः	बन्धुजनोंका (कुशल)
परिपृष्ट	पूछे जाने पर
पितृष्वसारं	उन पिताकी बहिन (बुआ)से
सहस्नुषां	पुत्रवधूके साथ
तां कुशलं	उनकी कुशल
आपृष्टवान्	पूछा ॥७॥

तमाह प्रेमवैक्लव्यरुद्धकण्ठाश्रुलोचना ।
स्मरन्ती तान् बहून् क्लेशान् क्लेशापायात्मदर्शनम् ॥८॥

तं आह प्रेमवैक्लव्य रुद्धकण्ठ अश्रुलोचना स्मरन्ती तान् बहून् क्लेशान् क्लेश अपाय आत्म दर्शनम् ॥८॥

क्लेश अपाय	क्लेश नष्ट करनेके लिए ही
तं आत्म दर्शनं	उन अपना दर्शन देने वाले (भगवान) से
तान्	उन (मिले हुए)
बहून् क्लेशान्	बहुतसे क्लेशोंको
स्मरन्ती	स्मरण करती हुई
प्रेमवैक्लव्य	प्रेमकी व्याकुलतासे
रुद्धकण्ठ	रुके कण्ठसे
अश्रुलोचना	नेत्रोंमें अश्रु भरे
आह	बोलीं ॥८॥

तदैव कुशलं नोऽभूत् सनाथास्ते कृता वयम् ।
ज्ञातीन् नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया ॥ ९ ॥

तत् एव कुशलं नः अभूत् सनाथाः ते कृता वयं ज्ञातीन् नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितः त्वया ॥९॥

कृष्ण तत् एव	'श्रीकृष्ण ! उसी समय
नः कुशलं	हमारी कुशल
अभूत्	हो गयी,
ते वयं	तुमने हम लोगोंको
सनाथाः कृता	सनाथ बना दिया
	जब

नः ज्ञातीन्	हम जातिवालोंको	मे भ्राता	मेरे भाई (अक्रूर)को
स्मरता त्वया	स्मरण करके तुमने	प्रेषितः	भेजा ॥९॥

न तेऽस्ति स्वपरभ्रान्तिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः ।
तथापि स्मरतां शश्वत् क्लेशान् हंसि हृदि स्थितः ॥१०॥

न ते अस्ति स्व पर भ्रान्तिः विश्वस्य सुहृद आत्मनः तथा अपि स्मरतां शश्वत् क्लेशान् हंसि हृदि स्थितः ॥१०॥

विश्वस्य	सम्पूर्ण विश्वके	शश्वत	निरन्तर
सुहृद आत्मनः	सुहृद आत्मा	हृदि स्थितः	हृदयमें रहते हुए
ते स्व	तुममें अपने-	क्लेशान् हंसि	(उनके) क्लेश नष्ट
पर भ्रान्तिः	परायेका भ्रम		करते रहते हो'
न अस्ति	नहीं है,		॥१०॥
तथा अपि	फिर भी		
स्मरतां	स्मरण करने वालों		
	के		

॥ युधिष्ठिर उवाच ॥

किं न आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वर ।
योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्नो दृष्टः कुमेधसाम् ॥११॥

किं नः आचरितं श्रेयः न वेद अहं अधीश्वर योगेश्वराणं दुर्दर्शः यत् नः दृष्टः कुमेधसाम् ॥११॥

अधीश्वर	सर्वेश्वर !	आचरितं	किया है
अहं न वेद	मैं नहीं जानता कि	यत्	जिससे
नः किं श्रेयः	हमने क्या उत्तम	योगेश्वराणां	योगेश्वरोंको भी
	काम		

दुर्दर्शः	कठिनाईसे दर्शन देने वाले आप	दृष्टः	दर्शन दे रहे हैं ॥११॥
नः कुमेधसां	हम कुबुद्धियोंको		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इति वै वार्षिकान् मासान् राज्ञा सोऽभ्यर्थितः सुखम् ।
जनयन् नयनानन्दमिन्द्रप्रस्थौकसां विभुः ॥१२॥

इति वै वार्षिकान् मासान् राज्ञा सः अभ्यर्थितः सुखं जनयन् नयनानन्दं इन्द्रप्रस्थ ओकसां विभुः ॥१२॥

इति राजा	इस प्रकार राजा द्वारा	ओकसां	निवासियोंको
वै अभ्यर्थितः	निश्चित सत्कृत होते	नयनानन्दं	नेत्रोंको आनन्द
वार्षिकान्	वर्षाके कई	जनयन्	देते हुए
मासान्	महीने	सः विभुः	वे सर्वसमर्थ
इन्द्रप्रस्थ	इन्द्रप्रस्थके	सुखं न्यवसत्	सुखपूर्वक निवास करते रहे ॥१२॥

एकदा रथमारुह्य विजयो वानरध्वजम् ।
गाण्डीवं धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ ॥१३॥

एकदा रथं आरुह्य विजयः वानरध्वजं गाण्डीवं धनुः आदाय तूणौ च अक्षय सायकौ ॥१३॥

एकदा विजयः	एक बार अर्जुन	च अक्षय	तथा अक्षय
वानर ध्वजं	कपिध्वज	सायकौ	बाण वाले
रथं आरुह्य	रथपर चढ़कर	तूणौ आदाय	दोनों तरकश लेकर ॥१३॥
गाण्डीवं धनुः	गाण्डीव धनुष		

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

साकं कृष्णेन संनद्धो विहर्तुं विपिनं वनम् ।
बहुव्यालमृगाकीर्णं प्राविशत् परवीरहा ॥१४॥

साकं कृष्णेन सन्नद्धो विहर्तुं विपिनं वनं बहुव्याल मृग आकीर्णं प्राविशत् परवीरहा ॥१४॥

परवीरहा	शत्रु वीरोंको मारने वाले	मृग आकीर्णं	पशुओंसे भरे
कृष्णेन साकं	श्रीकृष्णके साथ	विपिनं वनं	घोर वनमें
सन्नद्धः	कवच धारण करके	विहर्तुं	आखेट खेलने
बहुव्याल	बहुत सर्पों तथा	प्राविशत्	प्रविष्ट हुए ॥१४॥

तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान् सूकरान् महिषान् रुरून् ।
शरभान् गवयान् खड्गान् हरिणाञ्छशशल्लकान् ॥१५॥

तत्र अविध्यत् शरैः व्याघ्रान् सूकरान् महिषान् रुरून् शरभान् गवयान् खड्गान् हरिणान् शश शल्लकान् ॥१५॥

तत्र व्याघ्रान्	वहाँ बाघों,	खड्गान्	गैंडों
सूकरान्	सूअरों	हरिणान्	हिरनों
महिषान्	भैंसों,	शश शल्लकान्	खरगोशों, सेहियों को
रुरून्	चित्तलों,		
शरभान्	शरभोंर (साम्हरों)	शरैः अविध्यत्	बाणोंसे बींधा ॥१५॥
गवयान्	नीलगायों,		

तान् निन्युः किंकरा राज्ञे मेध्यान् पर्वण्युपागते ।
तृट्परीतः परिश्रान्तो बीभत्सुर्यमुनामगात् ॥१६॥

तान् निन्युः किङ्करा राज्ञे मेध्यान् पर्वणि उपागते तृट् परीतः परिश्रान्तः बीभत्सुः यमुनां अगात् ॥१६॥

तान् मेध्यान्	उन (आखेटके लिए) पवित्र (पशुओं)को
पर्वणि उपागते	पर्व समीप आने पर
किङ्करा	सेवक
राज्ञे निन्युः	राजाके पास ले गये*
परिश्रान्तः	(मृगयासे) थककर
तृट् परीतः	प्यास लगनेसे
बीभत्सुः	अर्जुन
यमुनां अगात्	यमुनांके समीप गये ॥१६॥

तत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ ।
कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरन्तीं चारुदर्शनाम् ॥१७॥

तत्र उपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरन्तीं चारुदर्शनाम् ॥१७॥

तत्र विशदं	वहां निर्मल
वारि उपस्पृश्य	जलसे आचमन करके
पीत्वा	उसे पीकर
महारथौ कृष्णौ	दोनों महारथी कृष्णोंने*
चारुदर्शनां	सुन्दरी
कन्यां चरन्तीं	कन्याको घूमते
ददृशतुः	देखा ॥१७॥

तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम् ।
पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम् ॥१८॥

तां आसाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिर आननां पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदा उत्तमां ॥१८॥

---

* पर्व पर मृग चर्मादि दानके लिए आखेट- पशुओंको राजधानी भेजा गया ।

* अर्जुनका भी एक नाम कृष्ण है ।

सख्या प्रेषितः	सखाके भेजने पर	**रुचिर आननां**	सुमुखी
फाल्गुनः	अर्जुनने	**प्रमदा उत्तमां**	उत्तम रमणीके
तां वरारोहां	उस सुन्दरी	**आसाद्य**	समीप जाकर
सुद्विजां	सुन्दर दांतों वाली	**पप्रच्छ**	पूछा ॥१८॥

का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतोऽसि किं चिकीर्षसि ।
मन्ये त्वां पतिमिच्छन्तीं सर्वं कथय शोभने ॥१९॥

का त्वं कस्य असि सुश्रोणि कुतः असि किं चिकीर्षसि मन्ये त्वां पतिं इच्छन्तीं सर्वं कथय शोभने ॥१९॥

सुश्रोणि	सुन्दर नितम्बों वाली !	**त्वां पतिं**	तुमको पति
त्वं का	तुम कौन हो ?	**इच्छन्तीं**	चाहने वाली
कस्य असि	किसकी पुत्री हो ?	**मन्ये शोभने**	मानता हूँ, सुन्दरी !
कुतः असि	कहां रहती हो ?	**सर्वं कथय**	सब बात बतलाओ ॥१९॥
किं चिकीर्षसि	क्या करना चाहती हो ?		

॥ कालिन्द्युवाच ॥

अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती ।
विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परमसास्थिता ॥२०॥

अहं देवस्य सवितुः दुहिता पतिं इच्छती विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परमं आस्थिता ॥२०॥

अहं	मैं	**विष्णुं**	विष्णुको
सवितुः देवस्य	सूर्यदेवकी	**पतिं इच्छती**	पति रूपमें चाहती
दुहिता	पुत्री	**परमं तपः**	कठोर तप
वरेण्यं वरदं	वरणनीय वरदायक	**आस्थिता**	कर रही हूँ ॥२०॥

नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम् ।
तुष्यतां मे स भगवान् मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ॥२१॥

न अन्यं पतिं वृणे वीर तं ऋते श्रीनिकेतनं तुष्यतां मे स भगवान् मुकुन्दः अनाथ संश्रयः ॥२१॥

वीर	वीर ! (भाई)	**अनाथ संश्रयः**	अनाथोंके आश्रय
तं श्रीनिकेतनं	उन श्रीनिवासको	**स भगवान्**	वे भगवान
ऋते अन्यं	छोड़कर किसी दूसरेको	**मुकुन्दः**	मुकुन्द
पतिं न वृणे	पति नहीं वरण करूंगी,	**मे तुष्यतां**	मुझसे सन्तुष्ट हों ॥२१॥

कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुनाजले ।
निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥२२॥

कालिन्दी इति सम आख्याता वसामि यमुनाजले निर्मिते भवने भवने पित्रा यावत् अच्युत दर्शनम् ॥२२॥

कालिन्दी इति	कालिन्दी इस	**पित्रा निर्मिते**	पिताके बनाये
सम आख्याता	नामसे कही जाती हूँ	**यमुनाजले**	यमुना जलके
		भवने	भवनमें
यावत् अच्युत	जब तक अच्युतका	**वसामि**	रहती हूँ ॥२२॥
दर्शनं	दर्शन हो		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

तथावदद् गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम् ।
रथमारोप्य तद् विद्वान् धर्मराजमुपागमत् ॥२३॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तथा अवदत् गुडाकेशः वासुदेवाय सः अपि तां रथं आरोप्य तत् हि विद्वान् धर्मराजं उप आगमत् ॥२३॥

गुडाकेशः	अर्जुनने
वासुदेवाय	वासुदेवसे
तथा अवदत्	वैसा ही बतला दिया
हि तत् विद्वान	क्योंकि यह बात जान ली
सः अपि तां	वे भी उसे
रथं आरोप्य	रथमें बैठाकर
धर्मराजं	धर्मराज युधिष्ठिर के
उप आगमत्	समीप आये ॥२३॥

यदैव कृष्णः संदिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम् ।
कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥२४॥

यत् एव कृष्णः सन्दिष्टः पार्थानां परम अद्भुतं कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥२४॥

यत् एव	उसी समय
कृष्णः	श्रीकृष्णने
विश्वकर्मणा	विश्वकर्मासे
सन्दिष्टः	आदेश देकर
पार्थानां	पाण्डवोंके लिए
परम अद्भुतं	अत्यन्त विचित्र
नगरं	नगर
कारयामास	बनवाया ॥२४॥

भगवांस्तत्र निवसन् स्वानां प्रियचिकीर्षया ।
अग्नये खाण्डवं दातुमर्जुनस्यास सारथिः ॥२५॥

भगवान् तत्र निवसन् स्वानां प्रियचिकीर्षया अग्नये खाण्डवं दातुं अर्जुनस्य आस सारथिः ॥२५॥

स्वानां	अपने लोगोंका
प्रियचिकीर्षया	प्रिय करनेकी इच्छा से
तत्र निवसन्	वहां रहते हुए
भगवान्	भगवान
अग्नये	अग्निको
खाण्डवं दातुं	खाण्डव वनके लिए
अर्जुनस्य	अर्जुनके
सारथिः आस	सारथि बने ॥२५॥

सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्धयाञ्छ्वेतान् रथं नृप ।
अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभिः ॥२६॥

सः अग्निः तुष्टः धनुः अदात् हयान् श्वेतान् रथं नृप अर्जुनाय अक्षयौ तूणौ वर्म च अभेद्यं अस्त्रिभिः ॥२६॥

नृप	राजन् !	**रथं**	रथ,
सः अग्निः	उस अग्निने	**अक्षयौ तूणौ**	दो अक्षय तरकश,
तुष्टः अर्जुनाय	सन्तुष्ट होकर अर्जुनको	**च अस्त्रिभिः**	तथा अस्त्रोंसे
		अभेद्यं वर्म	अभेद्य कवच
धनुः	गाण्डीव धनुष,	**अदात्**	दिया ॥२६॥
श्वेतान् हयान्	श्वेत घोड़े,		

मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् ।
यस्मिन् दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशिभ्रमः ॥२७॥

मयः च मोचितः वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् यस्मिन् दुर्योधनस्य आसीत् जलस्थल दृशिभ्रमः ॥२७॥

मयः च	मय दानवको भी	**यस्मिन्**	जिसमें
वह्नेः मोचितः	अग्निसे बचाया था	**दुर्योधनस्य**	दुर्योधनको
सख्य सभां	(उसने) मित्रता स्वरूप राजसभा	**जलस्थल**	जलमें स्थलका
		दृशिभ्रमः	दृष्टि भ्रम
उपाहरत्	(बनाकर) भेंट की	**आसीत्**	हुआ था ॥२७॥

स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः ।
आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ॥२८॥

स तेन सम अनुज्ञातः सुहृद्भिः च अनुमोदितः आययौ द्वारकां भूयः सात्यकि प्रमुखैः वृतः ॥२८॥

स तेन	वे (भगवान) उन (अर्जुन)की	**सात्यकि प्रमुखैः वृतः**	सात्यकि आदि प्रधान यादवोंसे घिरे
अनुज्ञातः	अनुमति पाकर		
च सुहृद्भिः	तथा सुहृदों द्वारा	**भूयः द्वारकां**	फिर द्वारका
अनुमोदितः	अनुमोदन पाकर	**आययौ**	आ गये ॥२८॥

अथोपयेमे कालिन्दीं सुपुण्यत्वृंक्ष ऊर्जिते ।
वितन्वन् परमानन्दं स्वानां परममङ्गलम् ॥२९॥

अथ उपयेमे कालिन्दीं सुपुण्य तु ऋक्ष ऊर्जिते वितन्वन् परमानन्दं स्वानां परममङ्गलम् ॥२९॥

अथ सुपुण्य	फिर उत्तम पवित्र	**मङ्गलं वितन्वन्**	मंगल देते हुए
अर्जिते ऋक्ष तु	उन्नतिशील नक्षत्र आने पर	**कालिन्दीं**	कालिन्दीसे
		उपयेमे	विवाह किया ॥२९॥
स्वानां	अपनोंको		
परमानन्दं	परम आनन्द		

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दुर्योधनवशानुगौ ।
स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम् ॥३०॥

विन्द अनुविन्दाः आवन्त्यौ दुर्योधनवश अनुगौ स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम् ॥३०॥

आवन्त्यौ	अवन्तीके राजा	**कृष्णे सक्तां**	श्रीकृष्णमें आसक्त (उन्हें वरण करने वाली)
विन्द	विन्द और		
अनुविन्दाः	अनुविन्द		
दुर्योधनवश	दुर्योधनके वशवर्ती	**स्वभगिनीं**	अपनी बहिनको
अनुगौ	अनुचर (सामन्त)थे,	**न्यषेधतां**	रोक दिया ॥३०॥
स्वयंवरे	स्वयंवरमें (उन्होंने)		

राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविन्दां पितृष्वसुः ।
प्रसह्य हृतवान् कृष्णो राजन् राज्ञां प्रपश्यताम् ॥३१॥

राजाधिदेव्याः तनयां मित्रविन्दां पितृष्वसुः प्रसह्य हृतवान् कृष्णः राजन् राज्ञां प्रपश्यताम् ॥३१॥

राजन्	राजन् !	**राज्ञां प्रपश्यतां**	राजाओंके देखते हुए
पितृष्वसुः	अपनी बुआ	**प्रसह्य कृष्णः**	बलपूर्वक श्रीकृष्णने
राजाधिदेव्याः	राजाधिदेवी की	**हृतवान्**	हरण कर लिया ॥३१॥
तनयां	पुत्री		
मित्रविन्दा	मित्रविन्दाको		

नग्नजिन्नाम कौसल्य आसीद् राजातिधार्मिकः ।
तस्य सत्याभवत् कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥३२॥

नग्नजित् नाम कौसल्य आसीत् राजा अति धार्मिकः तस्य सत्या अभवत् कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥३२॥

नृप	राजन् !	**तस्य देवी**	उनकी देवी
कौसल्य	कोशल देशके*	**नाग्नजिती**	नाग्नजिती
अति धार्मिकः	अत्यन्त धार्मिक	**सत्या**	सत्या
नग्नजित् नाम	नग्नजित् नामके	**कन्या अभवत्**	पुत्री थी ॥३२॥
राजा आसीत्	राजा थे		

न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्त गोवृषान् ।
तीक्ष्णशृङ्गान् सुदुर्धर्षान् वीरगन्धासहान् खलान् ॥३३॥

---

*नवम स्कन्धमें (९/१२/८) आ चुका है कि उस समयके अयोध्या नरेश बृहद्बलको महाभारत युद्धमें अभिमन्युने मारा था । अतः यह कोशल अयोध्या न होकर दक्षिण कोशल (छत्तीसगढ़) है । त्रेतामें कौशल्याजी यहीं की कन्या थीं ।

न तां शेकुः नृपा वोढुं अजित्वा सप्त गोवृषान् तीक्ष्ण शृङ्गान् सुदुर्धर्षान् वीरगन्ध असहान् खलान् ॥३३॥

तीक्ष्ण शृङ्गान्	तीखे सींग वाले	**सप्त गोवृषान्**	सात साडोंको
सुदुर्धर्षान्	अत्यन्त दुर्दम्य,	**अजित्वा**	न जीतनेके कारण
वीरगन्ध	वीरोंकी गन्ध	**नृपा तां वोढुं**	राजा लोग उससे विवाह करनेमें
असहान्	न सहने वाले	**शेकुः न**	समर्थ नहीं हुए ॥३३॥
खलान्	दुष्ट		

तां श्रुत्वा वृषजिल्लभ्यां भगवान् सात्वतां पतिः ।
जगाम कौसल्यपुरं सैन्येन महता वृतः ॥३४॥

तां श्रुत्वा वृषजित् लभ्यां भगवान् सात्वतां पतिः जगाम कौसल्यपुरं सैन्येन महता वृतः ॥३४॥

तां वृषजित्	उसे साड़ोंको जीतकर	**महता**	बड़ी
लभ्यां श्रुत्वा	मिलने वाली सुनकर	**सैन्येन वृतः**	सेनासे घिरे
सात्वतां पतिः	यदुवंश शिरोमणि	**कौसल्यपुरं**	कोशलपुर
भगवान्	भगवान	**जगाम**	गये ॥३४॥

स कोसलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः ।
अर्हणेनापि गुरुणा पूजयन् प्रतिनन्दितः ॥३५॥

स कोसलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थान आसन आदिभिः अर्हणेन अपि गुरुणा पूजयन् प्रतिनन्दितः ॥३५॥

स कोसलपतिः	वे कोशल नरेश	**आसन आदिभिः**	आसन आदि द्वारा तथा
प्रीतः प्रत्युत्थान	प्रसन्न होकर प्रत्युत्थान्		

गुरुणा अर्हणेन	बड़ी पूजा सामग्री से	प्रतिनन्दितः	(भगवान द्वारा) अभिनन्दित हुए ॥३५॥
अपि पूजयन्	भी पूजा करके		

वरं विलोक्याभिमतं समागतं
नरेन्द्रकन्या चकमे रमापतिम् ।
भूयादयं मे पतिराशिषोऽमलाः
करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतैः ॥३६॥

वरं विलोक्य अभिमतं समागतं नरेन्द्रकन्या चकमे रमापतिं भूयात् अयं मे पतिः आशिषः अमलाः करोतु सत्या यदि मे धृतः व्रतैः ॥३६॥

नरेन्द्रकन्या	राजकन्याने	अमलाः आशिषः	मेरी निर्मल अभिलाषा
अभिमतं वरं	अभिमत वर	सत्या करोतु	(ये) सच करें और
रमापतिं	लक्ष्मीपतिको	अयं मे पतिः	यह मेरे पति
समागतं	आया	भूयात्	होवें ॥३६॥
विलोक्य चकमे	देखकर (उनकी) कामना की		
यदि मे	'यदि मैंने		
धृतः व्रतैः	व्रत नियमोंसे (इन्हीं का) चिन्तन किया है तो		

यत्पादपङ्कजरजः शिरसा बिभर्ति
श्रीरब्जजः सगिरिशः सहलोकपालैः ।
लीलातनूः स्वकृतसेतुपरीप्सयेशः
काले दधत् स भगवान् मम केन तुष्येत् ॥३७॥

यत् पादपङ्कज रजः शिरसा बिभर्ति श्रीः अब्जजः सगिरिशः सह लोकपालैः लीलातनूः स्वकृत सेतु परीप्सया ईशः काले दधत् स भगवान् मम केन तुष्येत ॥३७॥

यत्	जिनके
पादपङ्कज रजः	चरण-कमलोंकी रज
श्रीः सगिरिशः	लक्ष्मीजी शंकरजी के साथ
सहलो कपालैः	और लोकपालोंके साथ
अब्जजः	ब्रह्माजी
शिरसा बिभर्ति	मस्तक पर धारण करते हैं
स्वकृत सेतु	अपनी बनायी मर्यादाओंकी
परीप्सये	रक्षाके लिए
काले लीलातनूः	समय-समय पर लीला-शरीर
दधत् ईशः	धारण करने वाले समर्थ
स भगवान्	वे भगवान
मम केन	मुझसे कैसे
तुष्येत्	प्रसन्न होंगे ? ॥३७॥

अर्चितं पुनरित्याह नारायण जगत्पते ।
आत्मानन्देन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः ॥३८॥

अर्चितं पुनः इति आह नारायण जगत्पते आत्मानन्देन पूर्णस्य करवाणि किं अल्पकः ॥३८॥

अर्चित पुनः	पूजा करके फिर
इति आह	इस प्रकार बोले—
नारायण	नारायण !
जगत्पते	जगन्नाथ !
आत्मानन्देन	आत्मानन्दमें ही
पूर्णस्य	परिपूर्ण (आपकी)
अल्पकः	(हम) तुच्छ
किं करवाणि	क्या सेवा करें ? ॥३८॥*

तमाह भगवान् हृष्टः कृतासनपरिग्रहः ।
मेघगम्भीरया वाचा सस्मितं कुरुनन्दन ॥३९॥

---

* इसके आगे प्रायः सब प्रतियोंमें 'श्रीशुक उवाच' है । पर वह अनावश्यक है । श्लोक २२ के बादसे शुकदेवजी ही बोल रहे हैं और यहाँ राजा नग्नजित्का एक पूरा श्लोक भी नहीं है । उसमें भी चतुर्थ चरण शुकदेवजीका है ।

तं आह भगवान् हृष्टः कृत आसन परिग्रहः मेघगम्भीरया वाचा सस्मितं कुरुनन्दन ॥३६॥

कुरुनन्दन	कुरुनन्दन परीक्षित ?
आसन परिग्रहः	आसन स्वीकार
कृत	करके
हृष्टः भगवान्	प्रसन्न होकर भगवान्
सस्मितं	मुस्कराते हुए
मेघगम्भीरया	मेघ-गम्भीर
वाचा तं आह	वाणीसे उनसे बोले ॥३६॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

नरेन्द्र याच्ञा कविभिर्विगर्हिता
राजन्यबन्धोर्निजधर्मवर्तिः ।
तथापि याचे तव सौहृदेच्छया
कन्यां त्वदीयां न हि शुल्कदा वयम् ॥४०॥

नरेन्द्र याञ्चा कविभिः विगर्हिता राजन्यबन्धोः निज धर्म वर्तिनः तथा अपि याचे तव सौहृद इच्छया कन्यां त्वदीयां न हि शुल्कदा वयम् ॥४०॥

नरेन्द्र	राजेन्द्र !
कविभिः	विद्वानों द्वारा
निज धर्म	अपने धर्मानुसार
वर्तिनः	चलने वाले
राजन्यबन्धोः	क्षत्रियोंके लिए
याञ्चा	याचना
विगर्हिता	बहुत निन्दित मानी गयी है
तथा अपि	ऐसा होने पर भी
तव	आपसे
सौहृद इच्छया	सम्बन्ध बनानेकी इच्छासे
त्वदीयां	आपकी
कन्यां याचे	कन्या मांगता हूँ,

हि	क्योंकि	न	(प्रथा) नहीं है
वयं शुल्कदा	हममें (कन्याका) मूल्य देनेकी		॥४०॥

॥ नग्नजित् उवाच ॥*

कोऽन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्यावर इहेप्सितः ।
गुणैकधाम्नो यस्याङ्गे श्रीर्वसत्यनपायिनी ॥४१॥

कः अन्यः ते अभ्यधिकः नाथ कन्यावर इह ईप्सितः गुण एक धाम्नः यस्य अङ्गे श्रीः वसति अनपायिनी ॥४१॥

नाथ	स्वामी !	श्रीः यस्य अङ्गे	लक्ष्मी जिनके शरीरमें
ते अभ्यधिकः	आपसे अधिक	अनपायिनी	निरन्तर
ईप्सितः	अभीष्ट	वसति	निवास करती हैं ॥४१॥
कन्यावर	कन्याके लिए वर		
इह अन्यः कः	यहाँ दूसरा कौन होगा		
गुण एक धाम्नः	गुणोंकी एकमात्र निवास		

किंत्वस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्वतर्षभ ।
पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया ॥४२॥

किन्तु अस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्वत ऋषभ पुंसां वीर्य परीक्षा अर्थं कन्यावर परीप्सया ॥४२॥

किन्तु	किन्तु	कन्यावर	कन्याके लिए वर
सात्वत ऋषभ	यदुवंश शिरोमणि !	परीप्सया	चुननेकी इच्छासे

---

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ राजोवाच है ।

पुंसां वीर्यं	मनुष्योंके पराक्रम की	**पूर्वं समयः कृतः**	पहिलेसे (एक) प्रतिज्ञा की गयी है ॥४२॥
परीक्षा अर्थं	परीक्षाके लिए		
अस्माभिः	हमारे द्वारा		

सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता दुरवग्रहाः ।
एतैर्भग्नाः सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः ॥४३॥

सप्त एते गोवृषा वीर दुः दान्ता दुरवग्रहाः एतैः भग्नाः सुबहवः भिन्नगात्रा नृप आत्मजाः ॥४३॥

वीर	वीर !	**सुबहवः**	बहुत अधिक
एते सप्त	ये सात	**नृप आत्मजाः**	राजकुमार
दुः दान्ता	अत्यन्त असंयत	**भग्नाः**	हतोत्साह हो गये ॥४३॥
दुरवग्रहाः	बिना सधाये		
गोवृषा	सांड़ हैं		
एतैः भिन्नगात्रा	इनके द्वारा अङ्ग-भङ्ग किये गये		

यदिमे निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनन्दन ।
वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियः पते ॥४४॥

यदि इमे निगृहीताः स्युः त्वयि एव यदुनन्दन वरः भवान् अभिमतः दुहितुः मे श्रियः पते ॥४४॥

यदुनन्दन	यदुनन्दन !	**श्रियः पते**	लक्ष्मीपते
यदि इमे	यदि ये	**भवान् मे दुहितुः**	आप मेरी पुत्रीके लिए
त्वयि एव	तुम्हारे द्वारा ही	**अभिमतः वरः**	अभीष्ट वर हैं ॥४४॥
निगृहीताः स्युः	वशीभूत कर लिए जायं तो		

।। श्रीशुक उवाच ।।*

एवं समयमाकर्ण्य बद्ध्वा परिकरं प्रभुः ।
आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैव तान् ।।४५।।

एवं समयं आकर्ण्य बध्वा परिकरं प्रभुः आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णात् लीलया एव तान् ।।४५।।

एवं समयं	इस प्रकार शर्त	**सप्तधा कृत्वा**	अपने सात रूप बनाकर
आकर्ण्य	सुनकर		
प्रभुः	समर्थ श्रीकृष्णने	**लीलया एव**	लीलासे ही
परिकरं बध्वा	कमर कसकर	**तान् न्यगृह्णात**	उनको नाथ दिया ।।४५।।
आत्मानं	अपना		

बद्ध्वा तान् दामभिः शौरिर्भग्नदर्पान् हतौजसः ।
व्यकर्षल्लीलया बद्धान् बालो दारुमयान् यथा ।।४६।।

बद्ध्वा तान् दामभिः शौरिः भग्नदर्पान् हत ओजसः व्यकर्षत् लीलया बद्धान् बालः दारुमयान् यथा ।।४६।।

तान् शौरिः	उन बल-पौरुष	**यथा दारुमयान्**	जैसे लकड़ीसे बने (बैलों)को
भग्नदर्पान्	घमंड नष्ट हुए	**बालः व्यकर्षत्**	बालक (खींचे) खींचने लगे ।।४७।।
हत ओजसः	तेजोहीनोंको		
दामभि बद्ध्वा	रस्सीसे बाँधकर		
बद्धान् लीलया	बँधे हुओंको खेलमें		

ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः ।
तां प्रत्यगृह्णाद् भगवान् विधिवत् सदृशीं प्रभुः ।।४७।।

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः तां प्रत्य गृह्णात् भगवान् विधिवत् सदृशीं प्रभुः ॥४७॥

विस्मितः प्रीतः	चकित और प्रसन्न
राजा सुतां	राजाने पुत्री
कृष्णाय	श्रीकृष्णको
ततः ददौ	तब दे दी,
प्रभुः सदृशीं	प्रभुने उस अपने समानाको
विधिवत्	विधिपूर्वक
प्रत्य गृह्णात्	ग्रहण किया ॥४७॥

राजपत्न्यश्च दुहितुः कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिम् ।
लेभिरे परमानन्दं जातश्च परमोत्सवः ॥४८॥

राजपत्न्यः च दुहितुः कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिं लेभिरे परम आनन्दं जातः च परमोत्सवः ॥४८॥

राजपत्न्यः च	राजमहिषियोंको भी
दुहितुः	अपनी कन्याके
प्रियं पतिं	प्रिय पतिके रूपमें
कृष्णं लब्ध्वा	श्रीकृष्णको पाकर
परम आनन्दं	परमानन्द
लेभिरे	प्राप्त हुआ
च परमोत्सव	तथा बहुत बड़ा उत्सव
जातः	हुआ ॥४८॥

शङ्खभेर्यानका नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः ।
नरा नार्यः प्रमुदिताः सुवासःस्रगलंकृताः ॥४९॥

शंख भेरि आनका नेदुः गीत वादित्र आशिषः नरा नार्यः प्रमुदिताः सुवासः स्रक् अलङ्कृताः ॥४९॥

शङ्ख भेरि	शंख, भेरी,
आनका नेदुः	नगाड़े बजने लगे,
गीत वादित्र	गाना-बजाना होने लगा,
आशिषः	(ब्राह्मण) आशीर्वाद देने लगे,
प्रमुदिताः	अत्यन्त प्रसन्न
नरा नार्यः	स्त्री-पुरुष
सुवाससः	उत्तम वस्त्रों
स्रक्	मालाओंसे
अलङ्कृताः	आभूषित हुए ॥४९॥

दशधेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद् विभुः ।
युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम् ॥५०॥

दश धेनु सहस्राणि पारिबर्हं अदात् विभुः युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीव सुवाससाम् ॥५०॥

विभुः	राजाने	सुवाससां	उत्तम वस्त्र वाली
दश सहस्राणि	दश सहस्र	युवतीनां	युवती (दासियाँ)
धेनु त्रिसाहस्रं	गायें, तीन सहस्र	पारिबर्हं	दहेजमें
निष्कग्रीव	गलेमें हुमेल पहिने	अदात्	दीं ॥५०॥

नवनागसहस्राणि नागाच्छतगुणान् रथान् ।
रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान् नरान् ॥५१॥

नव नाग सहस्राणि नागात् शतगुणान् रथान् रथात् शतगुणान् अश्वान् अश्वात् शतगुणान् नरान् ॥५१॥

नव सहस्राणि	नौ सहस्र	अश्वान्	घोड़े और
नाग	हाथी,	अश्वात्	घोड़ोंसे
नागात्	हाथियोंसे	शतगुणान्	सौ गुने (नौ अरब)
शतगुणान्	सौ गुने (नौ लाख)	नरान्	मनुष्य (सेवक)
रथान्	रथ,		दिये ॥५१॥
रथात् शतगुणान्	रथोंसे सौ गुने (नौ करोड़)		

दम्पती रथमारोप्य महत्या सेनया वृतौ ।
स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोसलः ॥५२॥

दम्पती रथं आरोप्य महत्या सेनया वृतौ स्नेह प्रक्लिन्न हृदयो यापयामास कोसलः ॥५२॥

कोसलः	कोशलराजने
दम्पती रथं	दम्पतीको रथमें
आरोप्य	चढ़ाकर
महत्या	बड़ी भारी
सेनया वृतौ	सेनासे घिरे
स्नेह प्रक्लिन्न	स्नेहसे द्रवित
हृदयो	हृदय
यापयामास	विदा किया ॥५२॥

श्रुत्वैतद् रुरुधुर्भूपा नयन्तं पथि कन्यकाम् ।
भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा ॥५३॥

श्रुत्वा एतत् रुरुधुः भूपा नयन्तं पथि कन्यकां भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षाः यदुभिः गोवृषैः पुरा ॥५३॥

पुरा यदुभिः	पहले यादवों द्वारा (फिर)
गोवृषैः	सांडों द्वारा
भग्नवीर्याः	नष्ट पराक्रम हुए
सुदुर्मर्षाः	अत्यन्त असहनशील
भूपा	राजाओंने
एतत् श्रुत्वा	यह (समाचार) सुनकर
कन्यकां नयन्तं	राजकन्याको ले जाते हुए
पथि रुरुधुः	(श्रीकृष्ण)को मार्ग में रोका ॥५३॥

तानस्यतः शरव्रातान् बन्धुप्रियकृदर्जुनः ।
गाण्डीवी कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥५४॥

तान् अस्यतः शरव्रातान् बन्धु प्रियकृत अर्जुनः गाण्डीवी कालयामास सिंहः क्षुद्र मृगान् इव ॥५४॥

बन्धु प्रियकृत	अपने बन्धुका प्रिय करने वाले
गाण्डीवी	गान्डीवधन्वा
अर्जुनः	अर्जुनने
सिंहः इव	सिंहके समान
क्षुद्र मृगान्	तुच्छ पशुओं जैसे
तान् शरव्रातान्	उन वाण वर्षा
अस्यतः	करने वालोंको
कालयामास	मारकर भगा दिया ॥५४॥

पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया ।
रेमे यदूनामृषभो भगवान् देवकीसुतः ॥५५॥

पारिबर्हं उपागृह्य द्वारकां एत्य सत्यया रेमे यदूनां ऋषभ भगवान् देवकीसुतः ॥५५॥

भगवान्	भगवान	**सत्यया**	सत्याके साथ
देवकीसुतः	देवकी-नन्दन,	**द्वारकां एत्य**	द्वारिका आकर
यदूनां ऋषभः	यदुवंश शिरोमणि	**रेमे**	विहार करने लगे ॥५५॥
पारिबर्हं	दहेजको		
उपागृह्य	लेकर		

श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः ।
कैकेयीं भ्रातृभिर्दत्तां कृष्णः संतर्दनादिभिः ॥५६॥

श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रां उपयेमे पितृष्वसुः कैकेयीं भ्रातृभिः दत्तां कृष्णः सन्तर्दन आदिभिः ॥५६॥

पितृष्वसुः	पिताकी बहिन (बुआ)	**दत्तां भद्रां**	दी गयी भद्रासे
श्रुतकीर्तेः सुतां	श्रुतकीर्तिकी पुत्री	**कृष्णः उपयेमे**	श्रीकृष्णने विवाह किया ॥५६॥
भ्रातृभिः	उसके भाई		
सन्तर्दन	सन्तर्दन		
आदिभिः	आदि द्वारा		

सुतां च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् ।
स्वयंवरे जहारैकः स सुपर्णः सुधामिव ॥५७॥

सुतां च मद्र अधिपतेः लक्ष्मणां लक्षणैः युतां स्वयंवरे जहार एकः स सुपर्णैः सुधां इव ॥५७॥

सुपर्णैः सुधां इव	गरुड़ द्वारा अमृत की भाँति	**मद्र अधिपतेः**	मद्र देशके राजाकी
		सुतां	कन्या

लक्षणैः युतां	उत्तम लक्षणों वाली	**स्वयंवरे जहार**	स्वयंवरमें हरण कर
लक्ष्मणां	लक्ष्मणाको		लिया ॥५७॥
स एकः	उन्होंने अकेले ही		

अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन् सहस्रशः ।
भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥५८॥

अन्याः च एवं विधा भार्याः कृष्णस्य आसन् सहस्रशः भौमं हत्वा तत् निरोधात् आहृताः चारुदर्शनाः ॥५८॥

एवं विधा	इसी प्रकारकी	**अन्याः च**	दूसरी भी
भौमं हत्वा	भौमासुरको मारक	**सहस्रशः**	सहस्रो
तत् निरोधात्	उसके बन्दी-घरसे	**कृष्णस्य भार्याः**	श्रीकृष्णकी पत्नियां
आहृताः	लायी हुई	**आसन्**	थीं ॥५८॥
चारुदर्शनाः	सुन्दरी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अष्टमहिष्युद्वाहो नाम अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

अथ एकोनषष्ठितमोऽध्यायः

॥ राजोवाच ॥

यथा हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः ।
निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १ ॥

यथा हतः भगवता भौमः येन च ताः स्त्रियः निरुद्धा एतत् आचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥१॥

यथा भगवता	जैसे भगवानने	**एतत्**	यह भगवान
भौमः हतः	भौमासुरको मारा	**शार्ङ्गधन्वनः**	शारंगधन्वाका
च ताः स्त्रियः	और उन स्त्रियोंको	**विक्रमं आचक्ष्व**	पराक्रम सुनाइये
येन निरुद्धा	जिसने बन्दिनी बनाया था		॥५॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इन्द्रेण हृतच्छत्रेण हृतकुण्डलबन्धुना ।
हृतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचेष्टितम् ।
सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥ २ ॥

इन्द्रेण हृतः छत्रेण हृतकुण्डल बन्धुना हृत अमर अद्रि स्थानेन ज्ञापितः भौम चेष्टितं सभार्यः गरुड़ आरूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥२॥

हृतः छत्रेण	(वरुणका) छत्र छीन लिए जाने पर	**हृतकुण्डल**	(देवमाता आदिति के) कुण्डल छीने जाने पर

अमर अद्रि	(मेरु पर्वत पर) देवताओंका मणि पर्वत	ज्ञापितः	(श्रीकृष्णको) सूचित की गयीं
हृत स्थानेन	(नामक) स्थान भी छीने जाने पर	सभार्यः	(तब वे) पत्नी (सत्यभामा)के साथ
इन्द्रेण	इन्द्र द्वारा	गरुड आरूढः	गरुड़ पर चढ़कर
भौम चेष्टितं	भौमासुरकी ये कुचेष्टाएँ	प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ	प्राग्ज्योतिषपुर गये ॥२॥

गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् ।
मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वत आवृतम् ॥ ३ ॥

गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैः जल अग्नि अनिल दुर्गमं मुरपाश अयुतैः घोरैः दृढैः सर्वत आवृतम् ॥३॥

गिरिदुर्गैः	पहाड़ोंके किलेमें	अयुतैः घोरैः	हजारों भयङ्कर
शस्त्रदुर्गैः	शस्त्रोंके किले,	दृढैः मुरपाशैः	दृढ़ मुरपाशसे
जल अग्नि	जल, अग्नि,	सर्वत आवृतं	चारो ओरसे (वह नगर) घिरा
अनिल दुर्गमं	वायु (के किलों)से दुर्गम तथा		था ॥३॥*

---

* सुरक्षाके इतने वैज्ञानिक साधनोंकी अभी कल्पना भी नहीं है। भौमासुरकी राजधानी (१) गिरिदुर्गमें अर्थात् पर्वतोंसे घिरी थी। (२) उन पर्वतोंके भीतर स्वतः चालित शस्त्रोंका किला था जो आहट होते ही चल पड़ते थे। (३) उसके भीतर जलकी घूमती ऊँची दीवार थी। (४) जलकी दीवारके भीतर अग्निकी दीवार (५) उसके भीतर विषैली वायुकी दीवार (६) उसके भीतर छूते ही जकड़ लेने वाले कंटीले तारों (मुरपाश)का जाल और (७) उसके बाद चौड़ी जलकी खाईसे घिरा नगर था। सेनापति इस खाईमें ही रहता था।

गदया निर्बिभेदाद्रीन् शस्त्रदुर्गाणि सायकैः ।
चक्रेणाग्निं जलं वायुं मुरपाशांस्तथासिना ॥ ४ ॥

गदया निर्बिभेद अद्रीन् शस्त्रदुर्गाणि सायकैः चक्रेण अग्निं जलं वायुं मुरपाशान् तथा असिना ॥४॥

गदया अद्रीन्	गदासे पर्वतोंको	**तथा असिना**	तथा तलवारसे
सायकैः	बाणोंसे	**मुरपाशान्**	मुरके पाशोंको
शस्त्रदुर्गाणि	शस्त्रोंके दुर्गको	**निर्बिभेद**	छिन्न-भिन्न कर दिया ॥४॥
चक्रेण	चक्रसे		
अग्निं जलं	अग्नि, जल तथा		
वायुं	वायु (के किलों)को		

शङ्खनादेन यन्त्राणि हृदयानि मनस्विनाम् ।
प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ॥ ५ ॥

शंखनादेन यन्त्राणि हृदयानि मनस्विनां प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ॥५॥

गदाधरः	गदाधारी (श्रीकृष्ण) ने	**हृदयानि**	हृदयों (साहस)को और
शङ्खनादेन	अपनी शंख ध्वनिसे	**गुर्व्या गदया**	भारी गदासे
यन्त्राणि	(स्वतः चालित) यन्त्रोंको तथा	**प्राकारं निर्बिभेद**	कोट (चहार दीवारी)को तोड़ दिया ॥५॥
मनस्विनां	साहसियोंके		

पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगान्ताशनिभीषणम् ।
मुरः शयान उत्तस्थौ दैत्यः पञ्चशिरा जलात् ॥ ६ ॥

पाञ्चजन्य ध्वनिं श्रुत्वा युग अन्त अशनि भीषणं मुरः शयान उत्तस्थौ दैत्यः पञ्चशिरा जलात् ॥६॥

युग अन्त	प्रलय कालीन	पञ्चशिरा	पाँच सिरों वाला
अशनि भीषणं	वज्रपातके समान भयंकर	दैत्यः मुरः	दैत्य मुर
		शयान जलात्	जो सोया था, जल में से
पाञ्चजन्य	पाञ्चजन्य शंखका		
ध्वनि	निनाद	उत्तस्थौ	जागकर ऊपर आ गया ॥६॥
श्रुत्वा	सुनकर		

त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो
युगान्तसूर्यानलरोचिरुल्बणः ।
ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पञ्चभिर्मुखै-
रभ्यद्रवत्तार्क्ष्यसुतं यथोरगः ॥ ७ ॥

त्रिशूलं उद्यम्य सुदुर्निरीक्षणः युगान्तसूर्य अनल रोचिः उल्बणः ग्रसन् त्रिलोकीं इव पञ्चभिः मुखैः अभ्यद्रवत् तार्क्ष्यसुतं यथा उरगः ॥७॥

युगान्तसूर्य	प्रलयकालीन सूर्य	पञ्चभिः मुखैः	अपने पाँच मुखोंसे
अनल	एवं अग्निके समान	त्रिलोकीं	त्रिभुनको
रोचिः उल्बणः	प्रचण्ड प्रकाश वाले	ग्रसन् इव	निगलता हुआ-सा
सुदुर्निरीक्षणः	जिसकी ओर देखना बहुत कठिन था उस	तार्क्ष्यसुतं	गरुड़की ओर
		यथा उरगः	जैसे सर्प (झपटे)
त्रिशूलं उद्यम्य	त्रिशूलको उठाकर	अभ्यद्रवत्	झपटा ॥७॥

आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते
निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत् स पञ्चभिः ।
स रोदसी सर्वदिशोऽन्तरं महा-
नापूरयन्नण्डकटाहमावृणोत् ॥ ८ ॥

आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते निरस्य वक्त्रैः व्यनदत् स पञ्चभिः स रोदसी सर्वदिशः अन्तरं महान् आपूरयन् अण्डकटाहं आवृणोत् ॥८॥

स गरुत्मते	उसने गरुड़ पर
तरसा शूलं	बड़े वेगसे (वह) त्रिशूल
आविध्य निरस्य	फेंककर उन्हें रोकते हुए
पञ्चभिः वक्त्रैः	पाँचों मुखोंसे
व्यनदत्	गर्जना की
स रोदसी	वह शब्द अन्तरिक्ष,
सर्वदिशः	सब दिशाओं,
अन्तरं	आकाश
अण्डकटाहं	और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में
आवृणोत्	व्याप्त हो गया ॥८॥

तदापतद् वै त्रिशिखं गरुत्मते
हरिः शराभ्यामभिनत्त्रिधौजसा ।
मुखेषु तं चापि शरैरताडयत्
तस्मै गदां सोऽपि रुषा व्यमुञ्चत ॥ ९ ॥

तदा आपतत् वै त्रिशिखं गरुत्मते हरिः शराभ्यां अभिनत् त्रिधा ओजसा मुखेषु तं च अपि शरैः अताडयत् तस्मै गदां सः अपि रुषा व्यमुञ्चत ॥९॥

तदा गरुत्मते	तब गरुड़की ओर
वै आपतत्	निश्चित रूपसे झपटते आते
त्रिशिखं हरिः	त्रिशूलको श्रीहरिने
ओजसा	बलपूर्वक
शराभ्यां	बाणोंसे
त्रिधा अभिनत्	तीन टुकड़ोंमें काट दिया,
च तं अपि	और उसके भी
मुखेषु शरैः	मुख पर बाण
अताडयत्	मारे
सः अपि रुषा	उसने भी क्रोधमें आकर
तस्मै गदां	उन पर गदा
व्यमुञ्चत	चलायी ॥९॥

तामापतन्तीं गदया गदां मृधे
गदाग्रजो निर्बिभिदे सहस्रधा ।
उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजितः
शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥१०॥

तां आपतन्तीं गदया गदां मृधे गद अग्रजः निर्बिभिदे सहस्रधा उद्यम्य बाहून् अभिधावतः अजितः शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥१०॥

तां आपतन्तीं	उस वेगसे आती
गदां गद अग्रजः	गदाको गदके बड़े भाईने
मृधे गदया	युद्धमें अपनी गदा से
सहस्रधा	हजारों टुकड़ोंमें
निर्बिभिदे	फोड़ दिया,
बाहून् उद्यम्य	फिर भुजाएँ उठाकर
अभिधावतः	सम्मुख दौड़े आते
शिरांसि	उसके सिरोंको
अजितः लीलया	अजित भगवानने खेलमें ही
चक्रेण जहार	चक्रसे काट दिया ॥१०॥

व्यसुः पपातम्भसि कृत्तशीर्षो
निकृत्तशृङ्गोऽद्रिरिवेन्द्रतेजसा ।
तस्यात्मजाः सप्त पितुर्वधातुराः
प्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः ॥११॥

व्यसुः पपात अम्भसि कृत्तशीर्षः निकृत्त शृङ्ग अद्रिः इव इन्द्र तेजसा तस्य आत्मजाः सप्त पितुः वध आतुराः प्रतिक्रिया अमर्ष जुषः समुद्यताः ॥११॥

इन्द्र तेजसा	इन्द्रके तेज (वज्र) द्वारा
निकृत्त शृङ्ग	कटे शिखर वाले
अद्रिः इव	पर्वतके समान
कृत्तशीर्षः	सिर कट जाने पर वह
व्यसुः अम्भसि	निष्पाण होकर (खाईके) जलमें
पपात	गिर पड़ा ।
तस्य सप्त	उसके सातों
आत्मजाः	पुत्र
अमर्षजुषः	असहनशीलतावश
पितुः वध	पिताके वधसे
आतुराः	व्याकुल
प्रतिक्रिया	बदला लेनेको
समुद्यताः	उद्यत हुए ॥११॥

ताम्रोऽन्तरिक्षः श्रवणो विभावसु-
वंसुर्नभस्वानरुणश्च सप्तमः ।
पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे
भौमप्रयुक्ता निरगन् धृतायुधाः ॥१२॥

ताम्रः अन्तरिक्षः श्रवणः विभावसुः वसुः नभस्वान् अरुणः च सप्तमः पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे भौम प्रयुक्ता निरगन् धृत आयुधाः ॥१२॥

भौम प्रयुक्ता	भौमासुर द्वारा भेजे	वसुः नभस्वान्	वसु, नभस्वान्,
धृत आयुधाः	हथियार लिए	च सप्तमः	और सातवां
चमूपतिं	सेनापति	अरुणः	अरुण
पीठं पुरस्कृत्य	पीठको आगे करके	मृधे निरगन्	युद्धमें निकले
ताम्रः	ताम्र,		॥१२॥
अन्तरिक्षः	अन्तरिक्ष,		
श्रवणः	श्रवण,		
विभावसुः	विभावसु,		

प्रायुञ्जतासाद्य शरानसीन् गदाः
शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः ।
तच्छस्त्रकूटं भगवान् स्वमार्गणै-
रमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥१३॥

प्रायुञ्जत आसाद्य शरान् असीन् गदाः शक्ति ऋष्टि शूलानि अजिते रुषः उल्बणाः तत् शस्त्र कूटं भगवान् स्वमार्गणैः अमोघ वीर्यः तिलशः चकर्त ह ॥१३॥

आसाद्य	समीप आकर (उन्होंने)	शूलानि	त्रिशूलोंका
शरान् असीन्	बाणों, तलवारों,	रुषः उल्बणा	प्रचण्ड क्रोधसे
गदाः शक्ति	गदा, शक्ति,	अजिते	भगवान अजित पर
ऋष्टि	ऋष्टियों,	प्रायुञ्जत	प्रयोग किया,

तत् शस्त्र कूटं	उस शस्त्र समूहको	ह तिलशः	अहो तिल-तिल करके
अमोघ वीर्यः	अमोघ पराक्रम	चकर्त	काट डाला ॥१३॥
भगवान्	भगवानने		
स्वमार्गणैः	अपने बाणोंसे		

तान् पीठमुख्याननयद् यमक्षयं
निकृत्तशीर्षोरुभुजाङ्घ्रिवर्मणः ।
स्वानीकपानच्युतचक्रसायकै-
स्तथा निरस्तान् नरको धरासुतः ॥१४॥

तान् पीठ मुख्यान् अनयत् यमक्षयं निकृत्त शीर्ष उरु भुज अंघ्रि वर्मणः स्व अनीकपान् अच्युत चक्र सायकैः तथा निरस्तान् नरकः धरासुतः ॥१४॥

शीर्ष उरु भुज	सिर, जांघें, भुजा	अच्युत चक्र	अच्युतके चक्र तथा
अंघ्रि वर्मणः	पैर, कवच	सायकैः	बाणोंसे
निकृत्त	कटे हुए	तथा निरस्तान्	इस प्रकार मारा
तान्	उन		गया देखकर
पीठ मुख्यान्	पीठ प्रधानको	धरासुतः नरकः	पृथ्वीका पुत्र
यमक्षयं अनयत	यमराजके पास		नरकासुर ॥१४॥
	भेज दिया		
स्व अनीकपान्	अपने सेनानायकों		
	को		

निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवन्मदै-
र्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमत् ।
दृष्ट्वा सभार्यं गरुडोपरि स्थितं
सूर्योपरिष्टात् सतडिद्घनं यथा ।
कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं
योधाश्च सर्वे युगपत् स्म विव्यधुः ॥१५॥

निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवत् मदैः गजैः पयोधि प्रभवैः निराक्रमत् दृष्ट्वा सभार्यं गरुड उपरि स्थितं सूर्य उपरिष्टात् सतडित् घनं यथा कृष्णं स तस्मै व्यसृजत् शतघ्नीं योधाः च सर्वे युगपत् स्म विव्यधुः ॥१५॥

दुर्मर्षण	अत्यन्त असहनशील (वह)
निरीक्ष्य	यह देखकर
आस्रवत् मदैः	मदस्रावी
पयोधि प्रभवैः	समुद्रसे उत्पन्न (समुद्री)
गजैः निराक्रमत्	हाथियोंके साथ निकला
सूर्य उपरिष्टात्	सूर्यके ऊपर
सतडित्	विजलीके साथ
घनं यथा	मेघके समान
सभार्यः	पत्नीके साथ
गरुड	गरुड़के
उपरिस्थितं	ऊपर बैठे
कृष्णं दृष्ट्वा	श्रीकृष्णको देखकर
स तस्मै	उसने उन पर
शतघ्नीं	शतघ्नी (तोप)
व्यसृजत्	चलायी
च सर्वे योधाः	तथा सब (उसके) सैनिकोंने
युगपत् स्म	एक साथ ही
विव्यधुः	(भगवान पर) प्रहार किया

॥१५॥

तद् भौमसैन्यं भगवान् गदाग्रजो
विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः ।
निकृत्तबाहूरुशिरोध्रविग्रहं
चकार तर्ह्येव हताश्वकुञ्जरम् ॥१६॥

तत् भौमसैन्यं भगवान् गद अग्रजः विचित्र वाजैः निशितैः शिलीमुखैः निकृत्त बाहुः उरु शिरः उध्र विग्रहं चकार तर्हि एव हत अश्व कुञ्जरम्
॥१६॥

गद अग्रजः	गदके बड़े भाई
भगवान्	भगवानने
विचित्र वाजैः	विचित्र पत्रयुक्त
निशितैः	तीक्ष्ण
शिलीमुखैः	बाणोंसे
बाहु शिरः	भुजा, सिर,

उग्र विग्रहं	कण्ठ और शरीर	तर्हि एव	उसी समय
निकृत्त	काटकर	हत अश्व	मारे गये घोड़े-
तत् भौमसैन्यं	उस भौमासुरकी सेनाको	कुञ्जरं	हाथी वाली
		चकार	बना दिया ॥१६॥

यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह ।
हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रिभिः ॥१७॥

यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्र अस्त्राणि कुरूद्वह हरिः तानि अच्छिनत् तीक्ष्णैः शरैः एक एकशः त्रिभिः ॥१७॥

कुरूद्वह	कुरुश्रेष्ठ !	एक एकशः	प्रत्येक को
योधैः यानि	योधाओंने जिन	त्रिभिः	तीन-तीन
शस्त्र अस्त्राणि	शस्त्र-अस्त्रोंका	तीक्ष्णैः शरैः	तीक्ष्ण बाणोंसे
प्रयुक्तानि	गयोग किया था	अच्छिनत्	काट दिया ॥१७॥
हरिः तानि	श्रीहरिने उनमें		

उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् ।
गरुत्मता हन्यमानास्तुण्डपक्षनखैर्गजाः ॥१८॥

उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् गरुत्मता हन्यमानाः तुण्ड पक्ष नखैः गजाः ॥१८॥

पक्षाभ्यं गजान्	अपने पंखोंसे हाथियोंको	गरुत्मता	गरुड़ द्वारा
निघ्नता सुपर्णेन	मारते हुएके गरुड़के द्वारा	तुण्ड पक्ष	चोंच, पंख तथा
		नखैः	नखोंसे
उह्यमानः	भगवान ढोये जा रहे थे और	हन्यमानाः	मारे जाते
		गजाः	हाथी ॥१८॥

पुरमेवाविशन्नार्ता नरको युध्ययुध्यत ।
दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनार्दितं स्वकम् ॥१९॥

पुरं एव अविशन् आर्तानरकः युध्य युध्यत दृष्ट्वा। विद्राविंतं सैन्यं गरुडेन अर्दितं स्वकम् ॥१९॥

पुरं एव	नगरमें ही
आर्ता अविशन्	व्याकुल होकर भाग गये,
युध्य युध्यत	युद्धमें युद्ध करते हुए
नरकः	नरकासुरने
स्वकं सैन्यं	अपनी सेनाको
गरुडेन अर्दितं	गरुड़ द्वारा रौंदी और
विद्राविंतं	भगायी गयी
दृष्ट्वा	देखकर ॥१९॥

तं भौमः प्राहरच्छक्त्या वज्रः प्रतिहतो यतः।
नाकम्पत तया विद्धो मालाहत इव द्विपः ॥२०॥

तं भौमः प्राहरत् शक्त्या वज्रः प्रतिहतः यतः न अकम्पत तया विद्धः मालाहत इव द्विपः ॥२०॥

भौमः तं	भौमासुरने उन (गरुड़) पर
शक्त्या प्राहरत्	शक्तिका प्रहार किया
यतः वज्रः	जिन पर वज्र भी
प्रतिहतः	व्यर्थ हो गया था
तया विद्धः	उस (शक्ति)से मारे जाने पर
मालाहत	(पुष्प) मालासे मारे गये
द्विपः इव	हाथीके समान
न अकम्पत	(गरुड़) कांपे भी नहीं ॥२०॥

शूलं भौमोऽच्युतं हन्तुमाददे वितथोद्यमः।
तद्विसर्गात् पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः।
अपाहरद् गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥२१॥

शूलं भौमः अच्युतं हन्तुं आददे वितथ उद्यमः तत् विसर्गात् पूर्वं एव नरकस्य शिरः हरिः अपाहरत् गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥२१॥

भौमः	भौमासुरने
अच्युतं हन्तुं	अच्युतको मारने के लिए
शूलं आददे	त्रिशूल उठाया,
वितथ उद्यमः	(किन्तु उसका) उद्योग व्यर्थ था
तत् विसर्गात्	उसे चलानेसे
पूर्व एव	पहिले ही
क्षुरनेमिना	तीक्ष्ण धार वाले
चक्रेण हरिः	चक्रसे श्रीहरिने
गजस्थस्य	हाथी पर बैठे
नरकस्य शिरः	नरकासुरका सिर
अपाहरत्	काट दिया ॥२१॥

सकुण्डलं चारुकिरीटभूषणं
बभौ पृथिव्यां पतितं समुज्ज्वलत् ।
हाहेति साध्वित्यृषयः सुरेश्वरा
माल्यैर्मुकुन्दं विकिरन्त ईडिरे ॥२२॥

सकुण्डलं चारुकिरीट भूषणं बभौ पृथिव्यां पतितं समुज्ज्वलत् हा हा इति साधु इति ऋषयः सुर ईश्वरा माल्यैः मुकुन्दं विकिरन्त ईडिरे ॥२२॥

सकुण्डलं	कुण्डलोंके साथ
चारुकिरीट	सुन्दर मुकुट
भूषणं	भूषण वाले
समुज्ज्वलत्	जगमगाता (वह नरकासुरका सिर)
पृथिव्यां बभौ	पृथ्वी पर शोभित हुआ (तब)
हा हा इति	'हाय हाय' इस प्रकार (उसके बंधु-जन)
साधु इति	और 'अच्छा हुआ' इस प्रकार
ऋषयः	ऋषि तथा
सुर ईश्वराः	देव प्रमुख (कहते हुए)
मुकुन्दं	मुकुन्द पर
माल्यैः	पुष्प
विकिरन्त	वर्षा हुए
ईडिरे	स्तुति करने लगे ॥२२॥

ततश्च भूः कृष्णमुपेत्य कुण्डले
प्रतप्तजाम्बूनदरत्नभास्वरे ।

सवैजयन्त्या वनमालयार्पयत्
प्राचेतसं छत्रमथो महामणिम् ॥२३॥

ततः च भूः कृष्णं उपेत्य कुण्डले प्रतप्त जाम्बूनद रत्न भास्वरे स वैजयन्त्या वनमालया अर्पयत् प्राचेतसं छत्रं अथो महामणिम् ॥२३॥

ततः भूः	तब भूदेवीने
कृष्णं च उपेत्य	श्रीकृष्णके समीप आकर
प्रतप्त जाम्बूनद	तप्ताये हुए स्वर्णमें
रत्न भास्वरे	जड़े ज्योतिर्मय रत्नों वाले
कुण्डले	दोनों (अदितिके) कुण्डल,
प्राचेतसं छत्रं	वरुणका छत्र
अथो महामणि	और (मन्दरशिखर नामक) महामणि
स वैजयन्त्या	वैजयन्ती
वनमालया	वनमालाके साथ
अर्पयत्	अर्पित की ॥२३॥

अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम् ।
प्राञ्जलिः प्रणता राजन् भक्तिप्रवणयाधिया ॥२४॥

अस्तौषीत् अथ विश्व ईशं देवी देववर अर्चितं प्राञ्जलिः प्रणता राजन् भक्ति प्रवणया धिया ॥२४॥

राजन्	राजन् !
भक्ति प्रवणया	भक्ति-परायण
धिया	चित्तसे
अथ देवी	फिर पृथ्वीदेवी
प्राञ्जलिः	हाथ जोड़कर
प्रणता	प्रणाम करके
विश्व ईशं	जगदीश्वर,
देववर अर्चितं	श्रेष्ठ देवताओं द्वारा पूजित की
अस्तौषीत्	स्तुति करने लगीं ॥२४॥

॥ भूमिरुवाच ॥

नमस्ते देवदेवेश शंखचक्रगदाधर ।
भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥२५॥

नमः ते देवदेवेश शङ्ख चक्र गदाधर भक्त इच्छा उपात्त रूपाय परमात्मन् नमः अस्तु ते ॥२५॥

शङ्ख चक्र	शंख, चक्र,	**उपात्त रूपाय**	रूप धारण करने
गदाधर	गदाधारी		वाले
देवदेवेश	देवदेवेश्वर !	**परमात्मन्**	परमात्मन् !
ते नमः	आपको नमस्कार	**ते नमः अस्तु**	आपको नमस्कार
भक्त इच्छा	भक्तोंकी इच्छा		हो ॥२५॥
	के अनुसार		

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥२६॥

नमः पङ्कज नाभाय नमः पङ्कज मालिने नमः पङ्कज नेत्राय नमः ते पङ्कज अङ्घ्रये ॥२६॥

पङ्कज नाभाय	पद्मनाभको	**पङ्कज नेत्राय**	सरोजनयनको
नमः	नमस्कार,	**नमः**	नमस्कार,
पङ्कज मालिने	कमलमालीको	**ते पङ्कज**	आप पद्मपादको
नमः	नमस्कार,	**अङ्घ्रये नमः**	नमस्कार ॥२६॥

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे ।
पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥२७॥

नमः भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे पुरुषाय आदिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥२७॥

तुभ्यं भगवते	आप भगवान	**पूर्णबोधाय**	पूर्णज्ञान नमस्कार
वासुदेवाय	वासुदेव	**पुरुषाय**	परम पुरुष
विष्णवे नमः	विष्णुको नमस्कार,	**ते नमः**	आपको नमस्कार
आदिबीजाय	(सृष्टिके) आदि		॥२७॥
	कारण		

अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
परावरात्मन् भूतात्मन् परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥२८॥

अजाय जनयित्रे अस्य ब्रह्मणे अनन्त शक्तये पर अवर आत्मन् भूत आत्मन् परमात्मन् नमः अस्तु ते ॥२८॥

अजाय	(स्वयं) अजन्मा	**परमात्मन्**	परमात्मा
अस्य जनयित्रे	इस जगतके उत्पत्तिकर्ता	**ते नमः अस्तु**	आपको नमस्कार हो ॥२८॥
पर अवर आत्मन्	कारण-कार्य स्वरूप तथा		
भूत आत्मन्	समस्त भूतोंके स्वरूप		

त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं प्रभो
तमो निरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः ।
स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते
कालः प्रधानं पुरुषो भवान् परः ॥२९॥

त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं प्रभो तमः निरोधाय बिभर्षि असंवृतः स्थानाय सत्त्वं जगतः जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषः भवान् परः ॥२९॥

प्रभो	प्रभो !	**बिभर्षि**	धारण करते हो,
वै त्वं	निश्चय आप	**असंवृतः**	(परगुणोंसे) ढके नहीं हो,
जगतः सिसृक्षू	संसारकी सृष्टि करनेकी इच्छासे	**जगत्पते**	जगदीश्वर !
उत्कटं रजः	उत्कट रजोगुण,	**कालः प्रधानं**	काल, प्रकृति,
निरोधाय	प्रलयके लिए	**पुरुषः भवान्**	जीव भी आप ही हैं
तमः	तमो गुण और		
स्थानाय सत्त्वं	स्थितिके लिए सत्त्व गुण	**परः**	और (इनसे) परे हैं ॥२९॥

अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो
मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि ।
कर्ता महानित्यखिलं चराचरं
त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः ॥३०॥

अहं पयः ज्योतिः अथ अनिलः नभः मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि कर्ता महान् इति अखिलं चर अचरं त्वयि अद्वितीये भगवन् अयं भ्रमः ॥३०॥

अहं पयः	मैं (पृथ्वी) जल,	इति अखिलं	इस प्रकार सम्पूर्ण
ज्योतिः अनिलः	अग्नि, वायु,	चर अचरं	जंगम-स्थावर
अथ नभः	और आकाश,	अयं	यह विश्व
मात्राणि देवा	तन्मात्राएँ, अधिदेवता,	त्वयि अद्वितीये	आप अद्वयमें
मन इन्द्रियाणि	मन, इन्द्रियां	भ्रमः	भ्रम (से प्रतीत हो रहा) है ॥३०॥
कर्ता महान्	कर्ता (अहंकार) महत्तत्व		

तस्यात्मजोऽयं तव पादपङ्कजं
भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः ।
तत् पालयैनं कुरु हस्तपङ्कजं
शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥३१॥

तस्य आत्मजः अयं तव पादपङ्कजं भीतः प्रपन्न आर्तिहरः अपसादितः तत् पालय एनं कुरु हस्तपङ्कजं शिरसि अमुष्य अखिल कल्मष अपहम् ॥३१॥

तस्य	उस (भौमासुर)का	प्रप्रन्न आर्तिहरः	शरणागत कष्टहारी !
अयं आत्मजः	यह पुत्र		

तव पादपङ्कजं	आपके चरण-कमलों में	**अखिल कल्मष अपहं**	समस्त पापोंको नाश करने वाला
भीतः	डरकर	**हस्तपङ्कजं**	अपना हस्त-कमल
अपसादितः	लाया गया है,	**अमुष्य शिरसि**	इसके सिर पर
तत् एनं पालय	अतः इसका पालन कीजिए	**कुरु**	रखें ॥३१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इति भूम्यार्थितो वाग्भिर्भगवान् भक्तिनम्रया ।
दत्त्वाभयं भौमगृहं प्राविशत् सकलर्द्धिमत् ॥३२॥

इति भूमि अर्थितः वाक्भिः भगवान् भक्तिनम्रया दत्वा अभयं भौमगृहं प्राविशत् सफल ऋद्धिमत् ॥३२॥

इति	इस प्रकार	**अभयं दत्त्वा**	अभव देकर
भक्तिनम्रया	भक्ति विनम्रा	**सकल ऋद्धिमत्**	सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे पूर्ण
भूमि वाक्भिः	भूदेवीकी वाणीसे	**भौमगृहं**	भौमासुरके भवनमें
अर्थितः	प्रार्थना किये जाने पर	**प्राविशत्**	प्रविष्ट हुए ॥३२॥
भगदान्	भगवान्		

तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम् ।
भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥३३॥

तत्र राजन्यकन्यानां षट् सहस्र अधिक अयुतं भौम आहृतानां विक्रम्य राजभ्यः ददृशे हरिः ॥३३॥

तत्र षट् सहस्र	वहां छः सहस्र	**राजन्यकन्यानां**	राजकुमारियां
अधिक अयुतं	अधिक दस सहस्र (सोलह सहस्र)	**राजभ्यः**	राजाओंसे
		विक्रम्य	बलपूर्वक

भौम आहृतानां	भौमासुर द्वारा हरण करके लायी	हरिः ददृशे	श्री हरिने देखीं ॥३३॥

तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः ।
मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ॥३४॥

तं प्रविष्टं स्त्रियः वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः मनसा वव्रिरे अभीष्टं पतिं दैव उपसादितम् ॥३४॥

तं नरवीरं	उन पुरुषवीरको	अभीष्टं पतिं	अभीष्ट पतिको
प्रविष्टं वीक्ष्य	आया देखकर	मनसा वव्रिरे	मनसे वरण कर लिया ॥३४॥
विमोहिताः	मोहित हुई		
स्त्रियः	स्त्रियोंने		
दैव उपसादितं	दैव द्वारा प्राप्त कराये		

भूयात् पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम् ।
इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥३५॥

भूयात् पतिः अयं मह्यं धाता तत् अनुमोदतां इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥३५॥

अयं मह्यं	'यह मेरे	पृथक्	अलग-अलग
पतिः भूयात्	पति होवें	भावेन	भावनासे
तत् धाता	इसका विधाता	कृष्णे	श्रीकृष्णमें
अनुमोदतां	अनुमोदन करें	हृदयं दधुः	चित्त लगा दिया ॥३५॥
इति सर्वाः	इस प्रकार सबने		

ताः प्राहिणोद् द्वारवतीं सुमृष्टविरजोऽम्बराः ।
नरयानैर्महाकोशान् रथाश्वान् द्रविणं महत् ॥३६॥

ताः प्राहिणोत् द्वारवतीं सुमृष्ट विरजः अम्बराः नरयानैः महाकोशान् रथ अश्वान् द्रविणं महत् ॥३६॥

ताः सुमृष्ट	उन सुन्दर	**रथ अश्वान्**	रथ, घोड़े
विरजः अम्बराः	निर्मल वस्त्र वालियोंको	**महत् द्रविणं**	महान् द्रव्योंके साथ
नरयानैः	पालकियों पर	**द्वारवतीं**	द्वारिका
महाकोशान्	बहुत-सा धन,	**प्राहिणोत्**	भेज दिया ॥३६॥

ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दन्तांस्तरस्विनः ।
पाण्डुरांश्च चतुःषष्टिं प्रेषयामास केशवः ॥३७॥

ऐरावत कुल इभान् च चतुः दन्तान् तरस्विनः पाण्डुरान् च चतुःषष्टिं प्रेषयामास केशवः ॥३७॥

केशवः	केशवने	**च पाण्डुरान्**	तथा श्वेत
ऐरावत कुल	ऐरावतके कुलमें उत्पन्न	**चतुःषष्टिं**	चौंसठ
चतुः दन्तान्	चार दाँत वाले	**इभान् च**	हाथी भी
तरस्विनः	अत्यन्त वेगवान	**प्रेषयामास**	भेजे ॥३७॥

गत्वा सुरेन्द्रभवनं दत्त्वादित्यै च कुण्डले ।
पूजितस्त्रिदशेन्द्रेण सहेन्द्राण्या च सप्रियः ॥३८॥

गत्वा सुरेन्द्र भवनं दत्त्वा अदित्यै च कुण्डले पूजितः त्रिदश इन्द्रेण सह इन्द्राण्या च सप्रियः ॥३८॥

सुरेन्द्र भवनं	इन्द्रके भवनमें	**सह इन्द्राण्या**	इन्द्राणीके साथ
गत्वा	जाकर	**त्रिदश इन्द्रेण**	देवताओं तथा इन्द्र द्वारा
च अदित्यै	तथा अदितिको		
कुण्डले दत्त्वा	(उनके) कुण्डल देकर	**सप्रियः**	पत्नीके साथ
		पूजितः	सत्कृत हुए ॥३८॥

चोदितो भार्ययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति ।
आरोप्य सेन्द्रान् विबुधान् निर्जित्योपानयत् पुरम् ॥३९॥

चोदितः भार्यया उत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति आरोप्य स इन्द्रान् विबुधान् निर्जित्य उप आनयत् पुरम् ॥३९॥

भार्यया	पत्नी द्वारा	**स इन्द्रान्**	इन्द्रके साथ
चोदितः	प्रेरित होकर	**बिबुधान्**	देवताओंको
पारिजातं	कल्पवृक्षको	**निर्जित्य**	जीतकर
उत्पाट्य	उखाड़ कर	**पुरं उप**	अपने नगर
गरुत्मति	गरुड़ पर	**आनयत्**	ले आये ॥३९॥
आरोप्य	रखकर		

स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः ।
अन्वगुर्भ्रमराः स्वर्गात् तद्गन्धासवलम्पटाः ॥४०॥

स्थापितः सत्यभामायाः गृह उद्यान उपशोभनः अन्वगुः भ्रमराः स्वर्गात् तत् गन्ध आसव लम्पटाः ॥४०॥

सत्यभामायाः	सत्यभामाके	**आसव लम्पटा**	मकरन्दके लोभी
गृह उद्यान	घरके बगीचेको	**भ्रमराः**	भ्रमर
उपशोभनः	सुशोभित करनेके लिए	**स्वर्गात्**	स्वर्गसे
स्थापितः	(वहां) लगा दिया	**अन्वगुः**	उसके पीछे आ गये ॥४०॥
तत् गन्ध	उसकी सुरभि और		

ययाच आनम्य किरीटकोटिभिः
पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् ।
सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महा-
नहो सुराणां च तमो धिगाढ्यताम् ॥४१॥

ययाच आनम्य किरीट कोटिभिः पादौ स्पृशन् अच्युतं अर्थ साधनं सिद्ध अर्थं एतेन विगृह्यते महान् अहो सुराणां च तमः धिक् आढ्यताम् ॥४१॥

अर्थ साधनं	प्रयोजन बनानेके लिए
किरीट	मुकुटके
कोटिभिः	सिरेसे
पादौ स्पृशन्	चरणोंका स्पर्श करके
आनम्य	बहुत विनम्र प्रणाम करके
अच्युतं ययाच	अच्युतसे प्रार्थना की
सिद्ध अर्थं	और प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर
एतेन विगृह्यते	इन्हींसे विरोध करते हैं
अहो सुराणां तमः	अहो देवताओंका अज्ञान
आढ्यतां धिक्	इनके धनीपनेको धिक्कार ॥४१॥

अथो मुहूर्त एकस्मिन् नानागारेषु ताः स्त्रियः ।
ययोपयेमे भगवांस्तावद्रूपधरोऽव्ययः ॥४२॥

अथो मुहूर्त एकस्मिन् नाना आगारेषु ताः स्त्रियः यथा उपयेमे भगवान् तावत् रूप धरः अव्ययः ॥४३॥

अथो एकस्मिन्	फिर एक ही
मुहुर्त	मुहुर्तमें
नाना अगारेषु	पृथक-पृथक गृहोंमें
ताः स्त्रियः	उन स्त्रियोंसे
तावत् रूप धरः	उतने ही रूपधारी
अव्ययः भगवान्	अविनाशी भगवान् ने
यथा उपयेमे	विधिपूर्वक विवाह किया ॥४२॥

गृहेषु तासामनपाय्यतक्र्यकृ-
न्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः ।
रेमे रमाभिर्निजकामसम्प्लुतो
यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन् ॥४३॥

गृहेषु तासां अनपायि अतर्क्य कृत् निरस्त साम्य अतिशयेषु अवस्थितः रेमे रमाभिः निजकाम सम्प्लुतः यथा इतरः गार्हकमेधिकान् चरन् ॥४३॥

निरस्त साम्य	जिनके समान और	**अनपायि**	स्थिर रहने वाली
अतिशयेषु	अधिक (सामग्री) नहीं है	**रमाभिः**	लक्ष्मीके द्वारा
तासां गृहेषु	उनके घरोंमें	**निजकाम**	आत्मकाम
अवस्थितः	रहते हुए	**सम्प्लुतः**	निमग्न रहते
अतर्क्य कृत्	अचिन्त्य कर्मा (भगवान)	**यथा इतरः**	दूसरोंकी भाँति
		गार्हकमेधिकान्	गृहस्थ धर्मका
		चरन् रेमे	पालन करते रमण करते थे ॥४३॥

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता
ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ।
भेजुर्मुदाविरतमेधितयानुराग-
हासावलोकनवसंगमजल्पलज्जाः ॥४४॥

इत्थं रमापति अवाप्य पति स्त्रियः ताः ब्रह्मा आदयः अपि न विदुः पदवीं यदीयां भेजुः मुदा अविरतं एधितया अनुराग हास अवलोक नवसङ्गम जल्पलज्जाः ॥४४॥

यदीयां पदवीं	जिनकी प्राप्तिका मार्ग	**मुदा अविरतं**	आनन्दसे अविराम
ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मा आदि भी	**एधितया**	बढ़ते हुए
न विदुः	नहीं जानते	**अनुराग**	प्रेमसे भरी
ताः स्त्रियः	वे स्त्रियां	**हास अवलोक**	हँसी युक्त चितवनसे
इत्थं रमापतिं	इस प्रकार श्रीपति को	**नवसङ्गम**	नवीन समागमकी
		जल्पलज्जाः	बातचीत और लज्जाको
पतिं अवाप्य	अपने पति रूपमें पाकर	**भेजुः**	प्राप्त करती रहीं ॥४४॥

प्रत्युद्गासनवरार्हणपादशौच-
ताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ।
केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यै-
र्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥४५॥

प्रति उद्गम आसन वर अर्हण पादशौच ताम्बूल विश्रमण वीजन गन्ध माल्यैः केशप्रसार शयन स्नपन उपहार्यैः दासीशता अपि विभोः विदधुः स्म दास्यम् ॥४५॥

प्रति उद्गम	उठकर आगे लेने जानेमें
वर आसन	श्रेष्ठ आसन देने,
अर्हण पादशौच	पूजन, चरण-प्रक्षालन
ताम्बूल	पान देने,
विश्रमण	विश्राम कराने,
वीजन	पंखा झलने,
गन्ध माल्यैः	चन्दन, माला (बनाने)में
केशप्रसार	केश सुलझाने,
शयन	शय्या सजाने,
स्नपन	स्नान कराने
उपहार्यैः	अनेक भेंट देनेमें
दासीशता अपि	सैकड़ों दासियां रहने पर भी
विभोः	(अपने) स्वामीकी
दास्यं विदधुः	(वे रानियां) स्वयं सेवा करती थीं ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पारिजातहरणनरकवधो नाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५६॥

अथ षष्टितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

कर्हिचित् सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम् ।
पतिं पर्यचरद् भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥ १ ॥

कर्हिचित् सुखं आसीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुं पतिं पर्यचरत् भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥१॥

कर्हिचित	किसी दिन	**सखीजनैः**	सखियोंके साथ
स्वतल्पस्थं	अपनी शैय्यापर	**व्यजनेन**	पंखा लेकर
सुखं आसीनं	सुखपूर्वक बैठे	**पर्यचरत्**	सेवा कर रही थीं
जगद्गुरुं पतिं	जगद्गुरु अपने पतिकी		॥१॥
भैष्मी	भीष्मक-नन्दिनी रुक्मिणी		

यस्त्वेतल्लीलया विश्वं सृजत्यत्त्यवतीश्वरः ।
स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुष्वजः ॥ २ ॥

यः तु एतत् लीलया विश्वं सृजति अत्ति अवति ईश्वरः स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुषु अजः ॥२॥

यः तु एतत्	जो तो इस	**स्वसेतूनां**	अपनी (धर्म)
विश्वं सृजति	विश्वकी सृष्टि करते हैं		मर्यादाओंकी
		गोपीथाय	रक्षाके लिए
अत्ति अवति	खालते हैं या पालन करते हैं	**स हि अजः**	वही अजन्मा
		यदुषु जातः	यदुवंशमें अवतीर्ण
हि ईश्वरः	क्योंकि सर्वसमर्थ हैं		हुए हैं ॥२॥

तस्मिन्नन्तगृहे भ्राजन्मुक्तादामविलम्बिना ।
विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥ ३ ॥

तस्मिन् अन्तः गृहे भ्राजन् मुक्तादाम विलम्बिना विराजिते वितानेन दीपैः मणिमयैः अपि ।३॥

मुक्तादाम	मोतियोंकी झालरें	दीपैः अपि	दीपकोंसे भी
विलम्बिना	लटकने वाले	विराजिते	शोभित
वितानेन	चँदोवों वाले तथा	तस्मिन्	उस
मणिमयैः	मणियोंके	अन्तः गृहे	अन्तःपुरमें ।।३।।

मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादितैः ।
जालरन्ध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चन्द्रमसोऽमलैः ॥ ४ ॥

मल्लिका दामभिः पुष्पैः द्विरेफकुल नादितैः जालरन्ध्र प्रविष्टैः च गोभिः चन्द्रमसोऽमलैः ।।४।।

द्विरेफकुल	भ्रमर समूहोंकी	च जालरन्ध्र	तथा खिड़कीकी
नादितैः	गुंजार युक्त		जालियोंके छिद्रसे
मल्लिका पुष्पैः	चमेलीके पुष्पोंकी	चन्द्रमसो अमलैः	निर्मल चाँदनीके
दामभिः	मालाओंसे (सजे)	प्रविष्टैः	प्रवेशसे (मनोरम) ।।४।।

पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना ।
धूपैरगुरुजै राजन् जालरन्ध्रविनिर्गतैः ॥ ५ ॥

पारिजात वन आमोद वायुना उद्यान शालिना धूपैः अगुरुजैः राजन् जालरन्ध्रं विनिर्गतैः ।।५।।

राजन्	राजन् !	जालरन्ध्र	गवाक्षके छिद्रोंसे
पारिजात	परिजात	विनिर्गतैः	निकलते हुए
वन आनोद	वनकी सुगन्ध वाली	अगुरुजैः धूपैः	अगुरुके धुएँसे युक्त ।।५।।
वायुना	वायु वाले		
उद्यान शालिना	उद्यानसे युक्त		

पयःफेननिभे शुभ्रे पर्यङ्के कशिपूत्तमे ।
उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम् ॥ ६ ॥

पयः फेननिभे शुभ्रे पर्यङ्के कशिपु उत्तमे उपतस्थे सुखं आसीनं जगतां ईश्वरं पतिम् ॥६॥

पयः फेननिभे	दूधके फेनके समान	**जगतां ईश्वरं**	सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी
शुभ्रे उत्तमे	उज्ज्वल उत्तम		
कशिपु पर्यङ्के	बिछौने युक्त पलंग पर	**पति उपतस्थे**	अपने पतिके समीप खड़ी थीं ॥६॥
सुखं आसीनं	सुखपूर्वक बैठे		

वालव्यजनमादाय रत्नदण्डं सखीकरात् ।
तेन वीजयती देवी उपासाञ्चक्र ईश्वरम् ॥ ७ ॥

वाले व्यजनं आदाय रत्नदण्डं सखीकरात् तेन वीजयती देवी उपासान् चक्र ईश्वरम् ॥७॥

सखीकरात्	सखीके हाथसे	**तेन वीजयती**	उससे वायु करती
रत्नदण्डं	रत्न जड़े डंडी वाला	**देवी ईश्वरं**	देवी रुक्मिणी पतिकी
वाल व्यजनं	छोटा पंखा	**उपासान् चक्र**	सेवा करने लगीं ॥७॥
आदाय	लेकर		

सोपाच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां
रेजेऽङ्गुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता ।
वस्त्रान्तगूढकुचकुंकुमशोणहार-
भासा नितम्बधृतया च परार्ध्यकाञ्च्या ॥८॥

सा उप अच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां रेजे अंगुलीयवलय व्यजन अग्रहस्ता वस्त्रान्त गूढ कुचकुंकुमशोण हार भासा नितम्ब धृतया च परार्ध्य काञ्च्या ॥८॥

अंगुलीयवलय	अंगूठी और कङ्कण
अग्रहस्ता	वाले हाथके अगले
व्यजन	भागमें पंखा लिये,
वस्त्रान्त गूढ	वस्त्रके किनारे छिपे
कुच कुंकुमशोण	स्तनों पर लगे कुंकुमसे लाल
हार भार	हारकी कान्तिसे
च नितम्ब	एवं नितम्बों पर
धृतया	पहली
पराध्यं	बहुमूल्य
काञ्च्या	करधनीसे
सा उप अच्युतं	वे अच्युतके समीप
मणिनूपुराभ्यां	मणिमय नूपुरोंकी
क्वणयती रेजे	झंकार करती शोभित हुईं ॥८॥

तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य
या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा ।
प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठ-
वक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ॥ ९ ॥

तां रूपिणीं श्रियं अनन्य गतिं निरीक्ष्य या लीलया धृततनोः अनुरूप रूपा प्रीतः स्मयन् अलक कुण्डल निष्क कण्ठ वक्त्र उल्लसत् स्मित सुधां हरिः आबभाषे ॥९॥

अलक कुण्डल	अलकों (से घिरे) कुण्डल,
निष्क कण्ठ	गलेमें स्वर्णहार
स्मित सुधां	मुस्कानकी सुधासे
उल्लसत् वक्त्र	सुशोभित मुख
लीलया	लीलाके लिए
धृततनोः	शरीर धारण किये
अनुरूप	(भगवान्)के अनुरूप
रूपा	रूपवाली
अनन्य गति	अन्यत्र कहीं न जाने वाली
तां रूपिणीं श्रियं	उन मूर्तिमती लक्ष्मी को
निरीक्ष्य	देखकर
प्रीतः स्मयन्	प्रेमसे मुस्कराते हुए
हरिः आबभाषे	श्रीहरि बोले ॥९॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

राजपुत्र्योप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः ।
महानुभावैः श्रीमद्भी रूपौदार्यबलोर्जितैः ॥१०॥

राजपुत्रि ईप्सिता भूपैः लोकपाल विभूतिभिः महान् अनुभावैः श्रीमत्तमैः रूप उदार्य बल अर्जितैः ॥१०॥

राजपुत्रि	राजकुमारी !
लोकपाल	लोकपालोंका
विभूतिभिः	वैभव रखने वाले
महान् अनुभावैः	महान् प्रभाव वाले
श्रीमत्तमैः	सम्पत्तिशाली
रूप उदार्य	सौन्दर्य, उदारता,
बल अर्जितैः	बलसे समृद्ध
भूपैः ईप्सिता	राजाओं द्वारा (तुम) चाही गयी थीं ॥१०॥

तान् प्राप्तानर्थिनो हित्वा चैद्यादीन् स्मरदुर्मदान् ।
दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मान्नो ववृषेऽसमान् ॥११॥

तान् प्राप्तान् अर्थिनः हित्वा चैद्य आदीन् स्मरदुर्मदान् दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मात् नः ववृषे असमान् ॥११॥

भ्रात्रा च	अपने भाई तथा
स्वपित्रा	पिताके
दत्ता	देनेको प्रस्तुत होते
अर्थिनः	चाहने वाले
प्राप्तान्	आये हुए
स्मरदुर्मदान्	कामोन्मत्त
चैद्य आदीन्	शिशुपाल आदिको
हित्वा नः	छोड़कर हम
असमान्	असमानोंको
कस्मात् ववृषे	(तुमने) क्यों वरण किया ? ॥११॥

राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रूः समुद्रं शरणं गतान् ।
बलवद्भिः कृतद्वेषान् प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥१२॥

राजभ्यः विभ्यतः सुभ्रुः समुद्रं शरणं गतान् बलवद्भिः कृत द्वेषान् प्रायः त्यक्त नृप आसनान् ॥१२॥

सुभ्रुः	सुन्दर भौंहों वाली !
राजभ्यः	राजाओंसे
विभ्यतः	डरकर
समुद्रं शरणं	समुद्रकी शरणमें
गतान्	आये (बसे) हैं,
बलवद्भिः	बलवानोंसे
कृत द्वेषान्	द्वेष कर रखा है
प्रायः	प्रायः
नृप आसनान्	राज्यासन (राज्याधिकार)
त्यक्त	छोड़ रखा है ॥१२॥

अस्पष्टवर्त्मनां पुंसामलोकपथमीयुषाम् ।
आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदन्ति योषितः ॥१३॥

अस्पष्ट वर्त्मनां पुंसां अलोक पथं इयुषां आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदन्ति योषितः ॥१३॥

सुभ्रूः	सुभ्रू !	**पदवीं आस्थिताः**	मार्गानुसरण करने-वाली
अस्पष्ट वर्त्मनां	जिनका मार्ग स्पष्ट नहीं है	**योषितः**	स्त्रियां
अलोक पथं	(उन) अलौकिक मार्गसे	**प्रायः सीदन्ति**	प्रायः कष्ट पाती हैं ॥१३॥
इयुषां पुंसां	चलनेवाले पुरुषोंका		

निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चनजनप्रियाः ।
तस्मात् प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ॥१४॥

निष्किञ्चना वयं शश्वत् निष्किञ्चन जन प्रियाः तस्मात् प्रायेण न हि आढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ॥१४॥

सुमध्यमे	सुमध्यमे !	**प्रियाः**	(हमें) प्रिय हैं
वयं शश्वत्	हम तो सदाके	**हि तस्मात्**	क्योंकि इसीलिए
निष्किञ्चना	अकिञ्चन हैं,	**आढ्या प्रायेण**	धनवान प्रायः
निष्किञ्जन	अकिञ्चन	**मां न भजन्ति**	मेरी सेवा नहीं करते ॥१४॥
जन	लोग हों		

ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ।
तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥१५॥

ययोः आत्म समं वित्तं जन्म ऐश्वर्यं आकृतिः भवः तयोः विवाहः मैत्री च न उत्तमा अधमयोः क्वचित् ॥१५॥

ययोः आत्मसमं	जिनका अपने समान	**ऐश्वर्यं आकृतिः**	ऐश्वर्य, रूप
वित्तं जन्म	धन, जाति,	**भवः तयोः**	और आय हो उन्हींमें

विवाहः च मैत्री	विवाह तथा मित्रता (उचित) है	**अधमयोः**	कनिष्ठोंमें
उत्तमा	(उससे) श्रेष्ठ या	**क्वचित् न**	कभी नहीं (होना चाहिए) ॥१५॥

वैदर्भ्येतदविज्ञाय त्वयादीर्घसमीक्षया ।
वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥१६॥

वैदर्भि एतत् अविज्ञाय त्वया अदीर्घ समीक्षया वृता वयं गुणैः हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥१६॥

वैदर्भि	विदर्भ-नन्दिनी !	**भिक्षुभिः मुधा**	भिक्षुकों द्वारा व्यर्थ
त्वया	तुमने	**श्लाघिता**	प्रशंसित
अदीर्घ समीक्षया	अदूरदर्शितावश	**गुणैः हीना**	गुणोंसे रहित
एतत् अविज्ञाय	इन बातोंको बिना जाने	**वयं वृता**	हमारा वरण कर लिया ॥१६॥

अथात्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम् ।
येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥१७॥

अथ आत्मनः अनुरूपं वै भजस्व क्षत्रिय ऋषभं येन त्वं आशिषः सत्या इह अमुत्र च लप्स्यसे ॥१७॥

अथ वै	अतः अब भी	**येन इह च**	जिससे इस लोक तथा
त्वं आत्मनः	तुम अपने	**अमुत्र**	परलोकमें भी
अनुरूपं	योग्य	**सत्या आशिषः**	सच्ची अभिलाषामें
क्षत्रिय ऋषभं	किसी श्रेष्ठ क्षत्रिय-का	**लप्स्यसे**	प्राप्त करोगी ॥१७॥
भजस्व	सेवन करो		

चैद्यशाल्वजरासंधदन्तवक्त्रादयो नृपाः ।
मम द्विषन्ति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः ॥१८॥

चैद्य शाल्व जरासन्ध दन्तवक्त्र आदयः नृपाः मम द्विषन्ति वाम उरु रुक्मी च अपि तव अग्रजः ॥१८॥

वाम उरु	सुन्दर जांघों वाली !	**च तव अग्रजः**	और तुम्हारा बड़ा भाई
चैद्य शाल्व	शिशुपाल, शाल्व,		
जरासन्ध	जरासन्ध,	**रुक्मी अपि**	रुक्मी भी
दन्तवक्त्र	दन्तवक्त्र	**मम द्विषन्ति**	मुझसे द्वेष करते हैं ॥१८॥
आदयः नृपाः	आदि राजा		

तेषां वीर्यमदान्धानां दृप्तानां स्मयनुत्तये ।
आनीतासि मया भद्रे तेजोऽपहरतासताम् ॥१९॥

तेषां वीर्य मदान्धानां दृप्तानां स्मयनुत्तये आनीता असि मया भद्रे तेजः अपहरतां असताम् ॥१९॥

भद्रे	कल्याणी !	**असतां तेजः**	दुष्टोंके तेजको
तेषां वीर्यं	उन बलके	**अपहरतां**	छीननेवाले
मदान्धानां	मदसे अन्धे हुए	**मया ते**	मेरे द्वारा तुम
दृप्तानां	मदमत्तोंके	**आनीता असि**	लायी गयी हो ॥१९॥
स्मयनुत्तये	मानमर्दनके लिए		

उदासीना वयं नूनं न स्त्यपत्यार्थकामुकाः ।
आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥२०॥

उदासीनां वयं नूनं न स्त्री अपत्य अर्थ कामुकाः आत्मलब्ध्या आस्महे पूर्णा गेहयोः ज्योतिः अक्रियाः ॥२०॥

नूनं गेहयोः	निश्चय घरसे	**अक्रियाः**	निष्क्रिय
वयं उदासीना	हम उदासीन हैं,	**ज्योतिः**	प्रकाश-स्वरूप
स्त्री अपत्य	स्त्री-पुत्र,	**आत्मलब्ध्या**	आत्मलाभसे
अर्थं कामुकाः न	धन चाहनेवाले नहीं हैं,	**पूर्णा आस्महे**	(हम) परिपूर्ण हैं ॥२०॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं बल्लभामिव ।
मन्यमानामविश्लेषात् तद्दर्पघ्न उपारमत् ॥२१॥

एतावत् उक्त्वा भगवान् आत्मानं बल्लभां इव मन्यमानां अविश्लेषात् तत् दर्पघ्न उपारमत् ॥२१॥

अविश्लेषात्	कभी अलग होनेसे
आत्मानं	अपनेको (अत्यन्त)
बल्लभां इव	प्रियतमाके समान
मन्यमानां	माननें वालीसे
तत् दर्पघ्न	उनके गर्वको नष्ट करनेके लिए
भगवान्	भगवान्
एतावत् उक्त्वा	इस प्रकार कहकर
उपारमत्	उपराम (चुप) हो गये ॥२१॥

इति त्रिलोकेशपतेस्तदाऽऽत्मनः
प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम् ।
आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथु-
श्चिन्तां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥२२॥

इति त्रिलोक ईश पतेः तत् आत्मनः प्रियस्य देवि अश्रुत पूर्वं अप्रियं आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथुः चिन्तां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥२२॥

त्रिलोक ईश	तीनों लोकोंके स्वामी
आत्मनः	अपने
प्रियस्य पतेः	प्रिय पतिकी
इति अश्रुत पूर्वं	इस प्रकारकी पहिले कभी न सुनी
अप्रियं आश्रुत्य	अप्रिय बात सुनकर
भीता हृदि	भयभीत होकर हृदयमें
जातवेपथुः	कम्प उत्पन्न हो गया
तदा रुदती	तब रोती हुई
ह दुरन्तां	अहो दुष्पार
चिन्तां	चिन्ताको
जगाम	प्राप्त हो गयीं ॥२२॥

पदा सुजातेन नखारुणश्रिया
भुवं लिखन्त्यश्रुभिरञ्जनासितैः ।
आसिञ्चती कुंकुमरूषितौ स्तनौ
तस्थावधोमुख्यति दुःखरुद्धवाक् ॥२३॥

पदा सुजातेन नख अरुण श्रिया भुवं लिखन्ति अश्रुभिः अञ्जन असितैः आसिञ्चती कुंकुम रूषितौ स्तनौ तस्थाः अधः मुखि अति दुःख रुद्धवाक् ॥२३॥

सुजातेन पदा	सुन्दर चरणोंके	अति दुःख	अत्यन्त दुःखके कारण
अरुण श्रिया	लाल शोभाशाली	रुद्धवाक्	अवरुद्ध वाणी
नख	नखोंसे	अधः मुखी	नीचे सिर किए
भुवं लिखन्ति	पृथ्वी कुरेदती	तस्थाः	खडी रह गयीं
अञ्जन असितैः	अञ्जनसे काले हुए		॥२३॥
अश्रुभिः	आंसुओंसे		
कुंकुम रूषितौ	कुंकुम रंजित		
स्तनौ	दोनों स्तनोंको		
आसिञ्चती	भिगाती हुई		

तस्याः सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धे-
र्हस्ताच्छ्लथद्वलययो व्यजनं पपात ।
देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन्
रम्भेव वायुविहता प्रविकीर्यं केशान् ॥२४॥

तस्याः सुदुःख भय शोक विनष्ट बुद्धेः हस्तात् श्लथत् वलयतः व्यजनं पपात देहः च विक्लवधियः सहसा एव मुह्यन् रम्भा इव वायु विहता प्रवकीर्यं केशान् ॥२४॥

सुदुःख भय	अत्यन्त दुःख, भय,	श्लथत वलयतः	सरककर गिरे कंकणवाले
शोक	शोकसे		
विनष्ट बुद्धेः	बुद्धि नष्ट हो जानेसे	तस्याः हस्तात्	उनके हाथसे

व्यजनं	पंखा (छूटकर) और	**रम्भा इव**	केलेके समान
विक्लवधियः	व्याकुल चित्त होनेसे	**केशान् प्रविकीर्य**	केश फैलाये
सहसा एव	अचानक ही	**देहः च मुह्यन्**	शरीर भी मूर्छित होकर
वायु विहता	आँधीसे मारे	**पपात**	गिर पड़ा ॥२४॥

तद् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः प्रियायाः प्रेमबन्धनम् ।
हास्यप्रौढिमजानन्त्याः करुणः सोऽन्वकम्पत ॥२५॥

तत् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः प्रियायाः प्रेमबन्धनं हास्यप्रौढिं अजानन्त्याः करुणः सः अन्वकम्पत ॥२५॥

हास्यप्रौढिं	हास्यकी गम्भीरता	**दृष्ट्वा करुणः**	देखकर दयामय
अजानन्त्याः	न जाननेवाली	**स भगवान्**	उन भगवान
प्रियायाः	प्रियतमाके	**कृष्णः**	कृष्णने
तत् प्रेमबन्धनं	उस प्रेमानुबन्धको	**अन्वकम्पत**	अनुकम्पाकी ॥२५॥

पर्यङ्कादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः ।
केशान् समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत् पद्मपाणिना ॥२६॥

पर्यङ्कात् अवरुह्य आशु तां उत्थाप्य चतुर्भुजः केशान् समुह्य तत् वक्त्रं प्रामृजत् पद्मपाणिना ॥२६॥

आशु पर्यङ्कात्	झटपट पलंगसे	**केशान् समुह्य**	(उनके) केश समेट-कर
अवरुह्य	उतरकर	**पद्मपाणिना**	कमलकरोंसे
चतुर्भुजः	अपनी चारों भुजाओंसे	**तत वक्त्रं**	उनके मुखको
तां उत्थाप्य	उन्हें उठाकर	**प्रामृजत्**	पोंछा ॥२६॥

प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा ।
आश्लिष्य बाहुना राजन्ननन्यविषयां सतीम् ॥२७॥

प्रमृज्य अश्रुकले नेत्रे स्तनौ च उपहतौ शुचा अश्लिष्य बाहुना राजन् अनन्य विषयां सतीम् ॥२७॥

राजन्	राजन् !
अश्रुकले नेत्रे	अश्रुपूर्ण नेत्रोंको
च शुचा उपहतौ	तथा अश्रुसिक्त
स्तनौ प्रमृज्य	स्तनोंको पोंछकर
अनन्य विषयां	जिनका और कोई आश्रय नहीं
सतीं बाहुना	उन सतीका भुजाओंसे
अश्लिष्य	आलिंगन किया ॥२७॥

सान्त्वयामास सान्त्वज्ञः कृपया कृपणां प्रभुः ।
हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतदर्हां सतां गतिः ॥२८॥

सान्त्वयामास सान्त्वज्ञः कृपया कृपणां प्रभुः हास्यप्रौढि भ्रमत् चित्तां अतत् अर्हां सतां गतिः ॥२८॥

हास्यप्रौढि	गम्भीर हास्यके कारण
भ्रमत् चित्तां	भ्रान्त चित्त हुई
कृपणां	दीन बुद्धि
अतत अर्हां	इस (हास्य) के अयोग्य (रुक्मिणीको)
सान्त्वज्ञः	समझानेमें निपुण
सतां गतिः	सत्पुरुषोंके आश्रय
प्रभुः कृपया	प्रभुने कृपापूर्वक
सान्त्वयामास	समझाया ॥२८॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मा मा वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणाम् ।
त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याऽऽचरितमङ्गने ॥२९॥

मा मा वैदर्भि असूयेथा जाने त्वां मत् परायणां त्वत् वचः श्रोतु कामेन क्ष्वेलि आचरितं अङ्गने ॥२९॥

वैदर्भि	विदर्भनन्दिनी
मा मा असूयेथा	मुझसे मत रुष्ट होना,
त्वां मत्	तुम्हें मेरी
परायणां	परायणा
जाने	जानता हूँ
अङ्गने	प्रियतमे !
त्वत् वचः	तुम्हारी बात
श्रोतु कामेन	सुननेकी इच्छासे
क्ष्वेलि आचरितं	(मैंने) परिहास किया था ॥२९॥

मुखं च प्रेमसंरम्भस्फुरिताधरमीक्षितुम् ।
कटाक्षेपारुणापाङ्गं सुन्दरभ्रुकुटीतटम् ॥३०॥

मुखं च प्रेमसंरम्भ स्फुरित अधरं ईक्षितुं कटाक्ष ईशण अरुण अपाङ्ग सुन्दर भ्रुकुटी तटम् ॥३०॥

प्रेमसंरम्भ	प्रणयकोपसे	सुन्दर भ्रुकुटी	सुन्दर भौहोंके
स्फुरित अधरं	फड़कते ओष्ठवाले	तटं	किनारेवाले
च अरुण अपाङ्ग	तथा लाल किनारे-वाले	मुखं ईक्षितुं	मुखको देखनेके लिए ॥३०॥
कटाक्ष ईक्षण	कटाक्ष पूर्वक देखते		

अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् ।
यन्नर्मैनीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि ॥३१॥

अयं हि परमः लाभः गृहेषु गृहमेधिनां यत् नर्मैं नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनी ॥३१॥

भीरु भामिनी	भीरु प्रिये !	यत् प्रियया	जो प्रियतमाके साथ
हि गृहमेधिनां	क्योंकि गृहस्थोंके लिए	नर्मैं	हँसी करते
गृहेषु अयं	घरोंमें यही	यामः नीयते	दिन बिताते हैं ॥३१॥
परमः लाभः	बड़ा लाभ है		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

सैवं भगवता राजन् वैदर्भी परिसान्त्विता ।
ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ॥३२॥

सा एवं भगवता राजन् वैदर्भी परिसान्त्विता ज्ञात्वा तत् परिहास उक्तिं प्रियत्याग भयं जहौ ॥३२॥

राजन्	राजन् !
भगवता एवं	भगवानके द्वारा इस प्रकार
परिसान्त्विता	भली प्रकार समझानेपर
सा वैदर्भी	उन विदर्भ-नन्दिनीने
तत् उक्ति	उनके वचनोंको
परिहास ज्ञात्वा	हँसी जानकर
प्रियत्याग	प्रियतम द्वारा त्यागे जानेका
भयं जहौ	भय त्याग दिया ॥३२॥

बभाष ऋषभं पुंसां वीक्षन्ती भगवन्मुखम् ।
सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापाङ्गेन भारत ॥३३॥

बभाष ऋषभं पुंसां वीक्षन्ती भगवत् मुखं सव्रीड हास रुचिर स्निग्ध अपाङ्गेन भारत ॥३३॥

भारत	परीक्षित !
सव्रड हास	लज्जापूर्ण हँसीयुक्त
रुचिर स्निग्ध	सुन्दर प्रेम युक्त
अपांगेन	कटाक्षसे
भगवत् मुखं	भगवानके मुखको
वीक्षन्ती	देखती हुई
पुंसां ऋषभं	उन पुरुषश्रेष्ठसे
बभाष	बोलीं ॥३३॥

॥ रुक्मिण्युवाच ॥

नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाह
यद् वै भवान् भगवतोऽसदृशो विभूम्नः ।
क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः
क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ॥३४॥

ननु एवं एतत् अरविन्द विलोचन् आह यत् वै भवान् भगवतः असदृशो विभूम्नः क्वस्वे महिम्नि अभिरतः भगवान् त्रय अधीशः क्व अहं गुण प्रकृतिः अज्ञ गृहीत पादा ॥३४॥

अरविन्द	कमल-
विलोचन्	नयन
यत् भवान्	जो आपने
आह	कहा
भगवतः	आप भगवान
विभूम्नः	सर्वव्यापकके

असदृशी	(मैं) समान नहीं हूँ
ननु एतत् वै	निश्चय यह तो
एवं	ऐसा ही (ठीक) है
क्व स्वे महिम्नि	कहां अपनी महिमा-में
अभिरतः	नित्य-स्थित
त्रय अधीशः	त्रिलोकीनाथ
भगवान्	भगवान और
क्व अज्ञ	कहां अज्ञानियों द्वारा
गृहीत पादा	चरण पकड़ी जाने-वाली
अहं गुण	मैं गुणमय
प्रकृतिः	स्वभाववाली ॥३४॥

सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमान्तः
शेते समुद्र उपलम्भनमात्र आत्मा ।
नित्यं कदिन्द्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं
त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽन्धम् ॥३५॥

सत्यं भयात् इव गुणेभ्यः उरुक्रम अन्तः शेते समुद्र उपलम्भन मात्र आत्मा नित्यं कद इन्द्रिय गणैः कृतं विग्रहः त्वं त्वत् सेवकैः नृपपदं विधुतं तमः अन्धम् ॥३५॥

उरुक्रम	अनन्त पराक्रम !
सत्यं	सचमुच ही
गुणेभ्यः	गुणोंसे
भयात् इव	भयभीतके समान
अन्तः	अन्तःकरण रूपी
समुद्र	समुद्रमें
उपलम्भन मात्र	केवल अनुभवरूप
आत्मा शेते	आत्मा (आप) सोते हैं,
नित्यं कद	सदा ही
इन्द्रिय गणैः	दुष्ट इन्द्रियोंसे
त्वं कृत विग्रहः	आपने कलह कर रखी है
त्वत् सेवकैः	आपके सेवकोंने
तमः अन्धं	घोर अन्धकार रूप
नृपपदं	राजसिंहासन
विधुतं	छोड़ रखा है ॥३५॥

त्वत्पादपद्ममकरन्दजुषां मुनीनां
वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम् ।
यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य
भूमंस्तवेहितमथो अनु ये भवन्तम् ॥३६॥

त्वत् पादपद्म मकरन्द जुषां मुनीनां वर्त्म अस्फुटं नृपशुभिः ननु दुर्विभाव्यं यस्मात् अलौकिकं इव ईहितं ईश्वरस्य भूमन् तव ईहितं अथो अनु ये भवन्तम् ॥३६॥

त्वत् पादपद्म	आपके चरण-कमलों के	यस्मात्	जिसलिए
मकरन्द जुषां	मकरन्द सेवी	भूमन्	सर्वव्यापक प्रभु
मुनीनां	मुनियों का	तव ईश्वरस्य	आप सर्वसमर्थकी
वर्त्म अस्फुटं	मार्ग अस्पष्ट और	ईहितं	चेष्टा
ननु नृपशुभिः	निश्चय नररूप पशुओंके लिए	अथो ये भवन्तं अनु ईहितं	और जो आपके अनुगामी हैं उनकी चेष्टा
दुर्विभाव्यं	समझनेमें बहुत कठिन है	अलौकिकं इव	अलौकिकके समान होती है ॥३६॥

निष्किञ्चनो ननु भवान् न यतोऽस्ति किञ्चिद्
यस्मै बलिं बलिभुजोऽपि हरन्त्यजाद्याः ।
न त्वा विदन्त्यसुतृपोऽन्तकमाढ्यतान्धाः
प्रेष्ठो भवान् बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥३७॥

निष्किञ्चनः ननु भवान् न यतः अस्ति किञ्चित् यस्मै बलिं बलिभुजः अपि हरन्ति अज आद्याः न त्वा विदन्ति असुतृपः अन्तकं आढ्यता अन्धाः प्रेष्ठः भवान् बलिभुजां अपि ते अपि तुभ्यम् ॥३७॥

ननु भवान्	निश्चय आप	बलिभुजः अपि	(दूसरोंसे) पूजित होने वाले भी
निष्किञ्चनः	निष्किञ्चन हैं	बलिं हरन्ति	पूजा भेंट देते हैं,
यतः किञ्चित्	जिनके अतिरिक्त कुछ	बलिभुजां	बलिभोक्ता (देवताओं)के
न अस्ति	है ही नहीं,	भवान प्रेष्ठः	आप प्रिय हैं
यस्मै अज आद्याः	जिनको ब्रह्मादि		

अपि ते अपि	और वे भी
तुभ्यं	आपको (प्रिय हैं)
माढचता अन्धाः	धनी होनेसे अन्धे
असुतृपः	अपने ही प्राणोंको तृप्त करने वाले
त्वा अन्तकं	आप कालरूपको
न विदन्ति	नहीं जानते ॥३७॥

त्वं वै समस्त पुरुषार्थमयः फलात्मा
यद्वाञ्छया सुमतयो विसृजन्ति कृत्स्नम् ।
तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः
पुंसः स्त्रियाश्च रतयोः सुखदुःखिनोर्न ॥३८॥

त्वं वै समस्त पुरुषार्थमयः फल आत्मा यत् वाञ्छया सुमतयः विसृजन्ति कृत्स्नं तेषां विभो समुचितः भवतः समाजः पुंसः स्त्रियाः च रतयोः सुखदुःखिनोः न ॥३८॥

वै त्वं	निश्चय आप
समस्त	समस्त
पुरुषार्थमयः	पुरुषार्थ स्वरूप
फल आत्मा	और उनके फल (परमानन्द) स्वरूप हैं
यत् वाञ्छया	जिनको पानेकी इच्छासे
सुमतयः	सद्बुद्धि लोग
कृत्स्नं	सब कुछ
विसृजन्ति	त्याग देते हैं
विभो तेषां	प्रभो ! उनके लिए ही
भवतः समाजः	आपसे सम्बन्ध
समुचितः	पूरा उचित है
पुंसः च	पुरुष और
स्त्रियाः	स्त्रियों
रतयोः	की रतिसे
सुखदुःखिनोः न	सुखी-दुःखी होने वालोंको नहीं ॥३८॥

त्वं न्यस्तदण्डमुनिभिर्गदितानुभाव
आत्माऽऽत्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि ।

हित्वा भवद्भ्रुव उदीरितकालवेग-
ध्वस्ताशिषोऽब्जभवनाकपतीन् कुतोऽन्ये ॥३९॥

त्वं न्यस्त दण्ड मुनिभिः गदित अनुभावः आत्मा आत्मदः च जगतां इति मे वृतः असि हित्वा भवत् भ्रुव उदीरत कालवेग ध्वस्त आशिषः अब्जभव नाकपतीन् कुतः अन्ये ॥३९॥

न्यस्त दण्ड	किसीको भी दण्ड देना त्याग देने वाले
मुनिभिः	मुनियों द्वारा
गदित अनुभावः	वर्णित प्रभाव वाले
त्वं जगतां	आप विश्वके
आत्मा	आत्मा
च आत्मदः	तथा (भक्तोंको) अपनेको भी दे देने वाले हैं
इति मे	ऐसा जानकर मैंने
भवत् भ्रुव	आपकी भौंहोंके
उदीरित	संकेतसे संचालित
कालवेग	कालकी गतिसे
ध्वस्त आशिषः	अभिलाषा नष्ट हो जाने वाले
अब्जभव	ब्रह्मा
नाकपतीन्	स्वर्गाधीशोंको
हित्वा	छोड़कर आप
वृतः असि	(मेरे द्वारा) वरण किये गये हैं
अन्ये कुतः	फिर दूसरे कहां होते हैं ॥३९॥

जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान्
विद्राव्य शार्ङ्ग निनदेन जहर्थ मां त्वम् ।
सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून् स्वभागं
तेभ्यो भयाद् यदुदधिं शरणं प्रपन्नः ॥४०॥

जाड्यं वचः तव गद अग्रज यः तु भूपान् विद्राव्य शार्ङ्ग निनदेन जहर्थ मां त्वं सिंहः यथा स्वबलिं ईश पशून् स्वभागं तेभ्यः भयात् यत् उदधिं शरणं प्रपन्नः ॥४०॥

गद अग्रज	गदके बड़े भाई !
यथा सिंह	जैसे सिंह
स्वबलिं	अपना उपहार भाग

पशून्	पशुओंसे (छीन ले)
शार्ङ्ग निनदेन	शारंग धनुषकी टंकारसे
यः तु भूपान्	जो तो राजाओंको
विद्राव्य	भगाकर
स्वभागं	अपना भाग
त्वं मां जहर्थ	आपने मेरा हरण किया
तेभ्यः भयात्	उन्हींके भयसे
उदधिं शरणं	समुद्रकी शरण
प्रपन्नः	आये हैं
ईश यत् वचः	स्वामी यह जो आपकी बात है
जाडयं	भूल ही है ॥४०॥

यद्वाञ्छया नृपशिखामणयोऽङ्ग वैन्य-
जायन्तनाहुषगयादय ऐकपत्यम् ।
राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमम्बुजाक्ष
सीदन्ति तेऽनुपदवीं त इहास्थिताः किम् ॥४१॥

यत् वाञ्छया नृप शिखामणयः अङ्ग वैन्य जायन्त नाहुष गय आदयः ऐकपत्यं राज्यं विसृज्य विविशुः वनं अम्बुज अक्ष सीदन्ति ते अनुपदवीं त इह आस्थिताः किम् ॥४१॥

अम्बुज अक्ष	कमल लोचन !
यत वाञ्छया	जिसे पानेकी इच्छा से
नृप	नृपति
शिखामणयः	चूड़ामणि
अङ्ग वैन्य	अङ्ग, पृथु,
जायन्त नाहुष	भरत, ययाति
गय आदयः	गय आदि
ऐकपत्यं राज्यं	चक्रवर्ती राज्य
विसृज्य	त्याग कर
वनं विविशुः	वनमें प्रवेश कर गये
ते अनुपदवीं	आपके मार्गके पीछे
इह अस्थिताः	इस विश्वमें चलने वाले
त किं सीदन्ति	वे क्या कष्ट पाते हैं ? ॥४१॥

कान्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्ध-
माघ्राय सन्मुखरितं जनतापवर्गम् ।

लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य
मर्त्या सदोरुभयमर्थंविविक्तदृष्टिः ॥४२॥

का अन्यं श्रयेत तव पादसरोज गन्धं आघ्राय सत् मुखरितां जनता अपवर्गं लक्ष्मि आलयं तु अविगणय्य गुण आलयस्य मर्त्या सदा उरु भयं अर्थ विविक्त दृष्टेः ॥४२॥

सत् मुखरितां	सत् पुरुषों द्वारा कीर्तित	**मर्त्या सदा**	मरण-धर्म नित्य
अपवर्गं जनता	मोक्षदायी	**उरु भयं**	बहुत भय वालेकी
लक्ष्मि आलयं	लक्ष्मीके निवास स्थान	**अर्थ**	अपने स्वार्थका
		विविक्त दृष्टेः	एकान्त विचार करने वाली
गुण आलयं	गुण धाम	**का अन्यं**	कौन दूसरेका
तव पादसरोज	आपके चरण-कमलों की	**श्रयेत**	आश्रय लेगी ॥४२॥
गन्धं आघ्राय	सुगन्ध सूंघकर		
तु अविगणय्य	फिर उनकी अवहेलना करके		

तं त्वानुरूपमभजं जगतामधीश-
मात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम् ।
स्यान्मे तवांघ्रिररणं सृतिभिर्भ्रमन्त्या
यो वै भजन्तमुपयात्यनृतापवर्गः ॥४३॥

तं त्वा अनुरूपं अभजं जगतां अधीशं आत्मानं अत्र च परत्र च कामपूरं स्यात् मे तव अंघ्रि ररणं सृतिभिः भ्रमन्त्या यः वै भजन्तं उपयाति अनृत अपवर्गः ॥४३॥

जगतां अधीशं	समस्त संसारके अधीश्वर	**अत्र च च परत्र**	इस लोकमें भी तथा परलोकमें

कामपूरं	सब कामनाएँ पूर्ण करने वाले
तं त्वा अनुरूपं	उस आपके अपने अनुरूप (जानकर)
अभजं	मैंने सेवन किया है
सृतिभिः	इस सृष्टि-चक्रमें
भ्रमन्त्या मे	भटकती हुई मुझे
यः वै	जो निश्चय
भजन्तं	भजन करने वालों को
अनृत	इस मिथ्या (संसार) से
अपवर्गः	मोक्षमें
उपयाति	पहुँचाते हैं उन
तव अंघ्रि ररणं	आपके चरणोंकी शरण
स्यात्	मिलती रहे ॥४३॥

तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः
स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वबिडालभृत्याः ।
यत्कर्णमूलमरिकर्शन नोपयायाद्
युष्मत्कथा मृडविरिञ्चसभासु गीता ॥४४॥

तस्याः स्युः अच्युत नृपा भवतः उपदिष्टाः स्त्रीणां गृहेषु खर गो अश्व बिडाल भृत्याः यत् कर्णमूलं अरिकर्शन न उपयायात् युष्मत् कथा मृड विरिञ्च सभासु गीता ॥४४॥

अरिकर्शन	शत्रुनाशन् !
मृड विरिञ्च	शिव, ब्रह्माकी
सभासु गीता	सभामें गायी जाने वाली
युष्मत् कथा	आपकी कथा
यत् कर्णमूलं	जिसके कर्ण कुहरों के
उपयायात् न	समीप नहीं पहुँचती
अच्युत	अच्युत !
भवतः	आपके द्वारा
उपदिष्टाः	बतलाये
गृहेषु स्त्रीणां	घरोंमें स्त्रियोंके
खर गो अश्व	गधे, बैल, घोड़े
बिडाल भृत्याः	बिड़ालके समान सेवक
नृपा तस्याः	राजा लोग उसके लिए
स्युः	होवें ॥४४॥

त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्त-
मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तधातम् ।
जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा
या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री ॥४५॥

त्वक् श्मश्रुरोम नख केश पिनद्धं अन्तः मांस अस्थि रक्त कृमि विट् कफ पित्त वातं जीवत् शवं भजति कान्तमतिः विमूढा या ते पदाब्ज मकरन्दं अजिघ्रती स्त्री ॥४५॥

या स्त्री	जो स्त्री	अस्थि रक्त	हड्डी, रक्त,
ते पदाब्ज	आपके चरण-कमल	कृमि विट्	कीड़े, विष्टा,
मकरन्दं	परागको	कफ पित्त वातं	कफ, पित्त, वायु भरे
अजिघ्रती	नहीं सूंघ पाती		
विमूढा	वह अत्यन्त मूर्खा	जीवत् शवं	जीवित मुर्देको
त्वक् श्मश्रुरोम	त्वचा, दाढ़ी-मूँछ, रोम,	कान्तमतिः	प्रिय बुद्धिसे
		भजति	सेवन करती है ॥४५॥
नख केश पिनद्धं	नख केशसे मढ़े		
अन्तः मांस	भीतर मांस		

अस्त्वम्बुजाक्ष मम ते चरणानुराग
आत्मन् रतस्य मयि चानतिरिक्तदृष्टेः ।
यर्ह्यंस्य वृद्धय उपात्तरजोऽतिमात्रो
मामीक्षसे तदु ह नः परमानुकम्पा ॥४६॥

अस्तु अम्बुज अक्ष मम ते चरण अनुरागः आत्मन् रतस्य मयि च अनतिरिक्त दृष्टेः यर्हि अस्य वृद्धय उपात्त रजः अतिमात्रः मां इक्षसे तत् उ ह नः परमा अनुकम्पा ॥४६॥

अम्बुज अक्ष	कमल-लोचन !	ते चरण	आपके चरणोंमें
आत्मन् रतस्य	आत्माराम		

मे अनुरागः	मेरा प्रेम
अस्तु	हो
मयि च	मुझ पर भी
दृष्टेः	कृपा दृष्टि
अनतिक्त	विशेष न रखने-वाले आप
यर्हि अस्य	जब इस जगतकी
वृद्धय	वृद्धिके लिए
अतिमात्रः	उत्कट
उपात्त रजः	रजोगुण स्वीकार करके
मां ईक्षसे	मेरी ओर देखते हैं
तत् उ ह	वह निश्चय ही
नः परमा	मुझ पर परम
अनुकम्पा	कृपा है ॥४६॥

नैवालीकमहं मन्ये वचस्ते मधुसूदन ।
अम्बाया इव हि प्रायः कन्यायाः स्याद् रतिः क्वचित् ।४७।

न एव अलीकं अहं मन्ये वचः ते मधुसूदन अम्बाया इव हि प्रायः कन्यायाः स्यात् रतिः क्वचित् ॥४८॥

मधुसूदन	मधुसूदन !
अहं ते वचः	मैं आपकी बातको
अलीकं न एव	निराधार नहीं ही
मन्ये	मानती हूँ
हि अम्बाया इव	क्योंकि अम्बाके समान
प्रायः कन्यायाः	प्रायः कन्याकी
क्वचित्	कहीं
रतिः स्यात्	प्रीति हो सकती है ॥४७॥

व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या मनोऽभ्येति नवं नवम् ।
बुधोऽसतीं न बिभृयात् तां बिभ्रदुभयच्युतः ॥४८॥

व्यूढायाः च अपि पुंश्चल्या मनः अभ्येति नवं नवं बुधः असतीं न बिभृयात् तां बिभ्रत् उभयच्युतः ॥४८॥

व्यूढायाः अपि	विवाहिता होने पर भी
पुंश्चल्या मनः	व्याभिचारिणीका मन

नवं नवं	नये-नयेके
अभ्येति	पास जाता है
बुधः असतीं	बुद्धिमान पुरुष कुलटाका
बिभृयात् न	भरण-पोषण न करे
तां बिभ्रत्	उसका भरण करने से
उभयच्युतः	दोनों लोकोंसे गिर जाता है ॥४८॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

साध्वेतच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्रि प्रलम्भिता ।
मयोदितं यदन्वात्थ सर्वं तत् सत्यमेव हि ॥४९॥

साध्वि एतत् श्रोतु कामैः त्वं राजपुत्रि प्रलम्भिता मया उदितं यत् अनुवात्थ सर्वं तत् सत्यं एव हि ॥४९॥

साध्वि	साध्वी
राजपुत्रि	राजकुमारी !
एतत्	यह
श्रोतु कामैः	सुननेकी इच्छासे
त्वं प्रलम्भिता	तुमसे हँसी की गयी थी
हि मया उदितं	क्योंकि मेरे वचनों की
यत् अनुवात्थ	(तुमने) जो व्याख्या की
तत् सर्वं	वह सब
सत्यं एव	सच ही है ॥४९॥

यान् यान् कामयसे कामान् मय्यकामाय भामिनि ।
सन्ति ह्येकान्तभक्तायास्तव कल्याणि नित्यदा ॥५०॥

यान् यान् कामयसे कामान् मयि अकामाय भामिनी सन्ति हि एकान्त भक्तयाः तव कल्याणि नित्यदा ॥५०॥

भामिनी	सुन्दरि !
अकामाय	सकामताकी निवृत्ति के लिए
मयि यान् यान्	मुझसे जो जो
कामान् कामयसे	वरदान चाहती हो
हि एकान्त	क्योंकि तुम अनन्य
भक्तयाः	भक्ता हो

कल्याणि तव	कल्याणी ! तुममें (वे)	**नित्यदा सन्ति**	नित्य विद्यमान हैं ॥५०॥

उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च तेऽनघे ।
यद्वाक्यैश्चल्यमानाया न धीर्मय्यपकर्षिता ॥५१॥

उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च ते अनघे यत् वाक्यैः चल्यमानाया न धीः मयि अपकर्षिता ॥५१॥

अनघे	निष्पापे !	**चल्यमानायाः**	विचलित करनेकी चेष्टा करने पर भी
ते पतिप्रेम	तुम्हारा पतिसे प्रेम	**धीः**	(तुम्हारी) बुद्धि
च पातिव्रत्यं	तथा पतिव्रता रूप	**मयि**	मुझसे
उपलब्धं	(मैंने) देख लिया	**अपकर्षिता न**	दूर नहीं हटी ॥५१॥
यत् वाक्यैः	क्योंकि अपने वाक्यों से		

ये मां भजन्ति दाम्पत्ये तपसा व्रतचर्यया ।
कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया ॥५२॥

ये मां भजन्ति दाम्पत्ये तपसा व्रतचर्यया काम आत्मानः अपवर्ग ईशं मोहिता मम मायया ॥५२॥

अपवर्ग ईशं	मोक्षके स्वामी	**दाम्पत्ये**	स्त्री-पुरुष सुखके लिए
मां ये	मुझे जो	**भजन्ति**	भजते हैं
काम आत्मानः	सकाम चित्तसे	**मम मायया**	वे मेरी मायासे
तपसा	तपस्या तथा	**मोहिता**	मोहित हैं ॥५२॥
व्रतचर्यया	व्रत पालन करके		

मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसम्पदं
वाञ्छन्ति ये सम्पद एव तत्पतिम् ।
ते मन्दभाग्या निरयेऽपि ये नृणां
मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसंगमः ॥५३॥

मां प्राप्य मानिनि अपवर्ग सम्पदं वाञ्छन्ति ये सम्पद एव तत् पतिं ते मन्द भाग्या निरये अपि ये नृणां मात्रा आत्मकत्वात् निरयः सुसङ्गमः ॥५३॥

मानिनि	मानिनी !
अपवर्गं सम्पदं	मोक्ष सम्पत्ति रूप
तत् पतिं मां	उस (मोक्ष)के स्वामी मुझे
प्राप्य ये	प्राप्त करके जो
सम्पद एव	सम्पत्ति को ही
वाञ्छन्ति	चाहते हैं
ते मन्द भाग्या	वे मन्द भाग्य
ये नृणां	जो (भोग) मनुष्योंको
निरये अपि	नरकमें भी (मिलते हैं वही चाहते हैं)
मात्रा	शब्द-रूपादि
आत्मकत्वात्	तन्मात्राओंके सुखमें चित्त रहनेसे
निरयः	(उन्हें तो) नरकमें भी वे
सुसङ्गमः	सुलभतासे मिलते हैं ॥५३॥

दिष्ट्या गृहेश्वर्यसकृन्मयि त्वया
कृतानुवृत्तिर्भवमोचनी खलेः ।
सुदुष्करासौ सुतरां दुराशिषो
ह्यसुम्भरायाः निकृतिजुषः स्त्रियाः ॥५४॥

दिष्ट्या गृहेश्वरी असकृत् मयि त्वया कृत अनुवृत्तिः भवमोचनी खलेः सुदुष्करा असौ सुतरां दुराशिषः हि असुंभरायाः निकृति जुषः स्त्रियाः ॥५४॥

गृहेश्वरी	गृहस्वामिनी !
दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है कि
त्वया	तुममें
भवमोचिनी	संसारसे छुड़ाने वाली
मयि असकृत्	मेरी निरन्तर
अनुवृत्तिः	सेवा भावना है
खलेः असौ	दुष्टोंके लिए यह
सुदुष्करा	अत्यन्त दुष्कर है
हि	क्योंकि (जो)

दुराशिषः	बुरी कामनाएँ रखने वाली हैं
असुम्भरायाः	अपने प्राणोंको ही तृप्त करती हैं
निर्कृति जुषः	ऐसा नारकीय भोगोंमें लगी
स्त्रियाः सुतरां	स्त्रियोंके लिए तो और भी कठिन है ॥५४॥

न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु
पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले ।
प्राप्तान् नृपानवगणय्य रहोहरो मे
प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ॥५५॥

न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले प्राप्तान् नृपान् अवगणय्य रहः हरः मे प्रस्थापितः द्विज उपश्रुत सत्कथस्य ॥५५॥

मानिनि	मानिनी !
त्वादृशीं	तुम्हारे समान
प्रणयिनीं	प्रेम करने वाली
गृहेषु गृहिणीं	अपने घरमें दूसरी पत्नी
न पश्यामि	नहीं देखता हूँ
यया सत्कथस्य	जिसने प्रशंसा
उपश्रुत	सुनकर
स्वविवाहकाले	अपने विवाहके समय
प्राप्तान् नृपान्	आये राजाओंकी
अवगणय्य	अवगणना करके
रहः हरः	एकान्त सन्देश लाने वाले
द्विज मे	ब्राह्मण मेरे पास
प्रस्थापितः	भेजा ॥५५॥

भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य
प्रोद्वाहपर्वणि च तद्वधमक्षगोष्ठ्याम् ।
दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्या
नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ॥५६॥

भ्रातुः विरूपकरणं युधि निर्जितस्य प्रोद्वाह पर्वणि च तत् वधं अक्षगोष्ठ्यां दुःखं समुत्थं असहः अस्मत् अयोग भीत्या न एव अब्रवीः किमपि तेन वयं जिताः ते ।।५६।।

प्रोद्वाह पर्वणि	विवाहोत्सवके समय
युधि निर्जितस्य	युद्धमें पराजित
भ्रातुः	भाईको
विरूपकरणं	कुरूप करना
च तत्	तथा उसका
अक्षगोष्ठचां	द्यूत सभामें (अनिरुद्ध विवाहके समय)
वधं	मारा जाना*
समुत्थं दुःखं	इस बढ़े हुए दुःख को
अस्मत् अयोग	हमारे वियोगके
भीत्या असहः	भयसे (तुमने) सहन कर लिया
किमपि न एव	कुछ भी नहीं ही
अब्रवीः	कहा
तेन वयं	इससे हम लोग
ते जिताः	तुम्हारे द्वारा जीत लिए गए हैं ।।५६।।

दूतस्त्वयाऽऽत्मलभने सुविविक्तमन्त्रः
प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत् ।
मत्वाजिहास इदमङ्ग मनन्ययोग्यं
तिष्ठेत तत्त्वयि वयं प्रतिनन्दयामः ।।५७।।

---

* इस अध्यायमें इस श्लोकके अतिरिक्त एक शब्द भी ऐसा नहीं है जो यह सूचित करे कि यह परिहास पुत्रोत्पत्तिके पश्चात्का है। श्रीबल्लभाचार्य इस श्लोककी टीकामें 'सुबोधिनी'में स्पष्ट कहते हैं कि यह परिहास प्रद्युम्नोत्पत्तिके पूर्वका है।ले किन 'तद्व धमक्षगोष्ठ्यां' इतना अंश इसे अनिरुद्ध विवाहके समयका बना देता है और यह विवाह महाभारत युद्धके बाद हुआ। महाभारतके युद्ध तक रुक्मी जीवित था। अतः या तो यह श्लोक प्रक्षिप्त होना चाहिए या 'तद्व धमक्षगोष्ठ्यां'के स्थान पर 'तद्वधमेन दृष्ट्वा' जैसा कुछ पाठ भेद होना चाहिए। कुरूप करना भी वध जैसा ही है।

दूतः त्वया आत्मलभने सुविविक्तमन्त्रः प्रस्थापितः मयि चिरायति शून्यं एतत् मत्वा जिहास इदं अङ्गम् अनन्य योग्यं तिष्ठेत तत् त्वयि वयं प्रतिनन्दयामः ॥५७॥

त्वया	तुमने
आत्मलभने	मेरी प्राप्तिके लिए
सुविविक्तमन्त्रः	निश्चित मन्तव्य लेकर
दूतः प्रस्थापितः	दूत भेजा और
मयि चिरायति	मेरे (पहुँचनेमें) विलम्ब होने पर
एतत् शून्यं	इस जगतको सूना
मत्वा	मानकर
इदं अङ्गम्	यह अपना शरीर
अनन्य योग्यं	किसी दूसरेके योग्य न मानकर
जिहास	त्यागना चाहा
तत्	यह (संकल्प)
त्वयि तिष्ठेत	तुममें ही रहे
वयं	इसका हम
प्रतिनन्दयामः	अभिनन्दन करते हैं ॥५७॥*

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एवं सौरतसंलापैर्भगवाञ्जगदीश्वरः ।
स्वरतो रमया रेमे नरलोकं विडम्बयन् ॥५८॥

एवं सौरतसंलापैः भगवान् जगदीश्वरः स्वरतः रमया रेमे नरलोकं विडम्बयन् ॥५८॥

एवं	इस प्रकार
सौरतसंलापैः	ऐकान्तिक विनोद करते
जगदीश्वरः	जगदीश्वर
भगवान्	भगवान्
नरलोकं	मनुष्य लोकका
विडम्बयन्	अनुकरण करते

---

* यह श्लोक भी श्लोक ५५ से ही सम्बन्धित है। श्लोक ५६ बीच में या तो असंगत लगता है या उसमें 'तत् वधमक्षगोष्ठ्यां'के स्थान पर 'तद्वधं एव दृष्ट्वा' कोई पाठ हो तो वह दोनों श्लोकके बीच संगत होगा। अन्यथा यह श्लोक ५७ अलग सा पड़ जाता है।

स्वरतः	आत्माराम होने पर भी	रमया रेमे	लक्ष्मीजीके साथ रमण करने लगे ॥५८॥

तथान्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव ।
आस्थितो गृहमेधीयान् धर्मांल्लोकगुरुर्हरिः ॥५९॥

तथा अन्यासां अपि विभुः गृहेषु गृहवान् इव आस्थितः गृहमेधीयान् धर्मान् लोकगुरुः हरिः ॥५९॥

तथा अन्यासां	ऐसे ही दूसरी रानियोंके	विभुः हरिः	सर्वेश्वर श्रीहरि
अपि गृदेषु	भी घरोंमें	गृहमेधीयान्	गृहस्थ
गृहवान् इव	गृहस्थोंके समान	धर्मान्	धर्मपर
लोकगुरुः	सब लोकोंके गुरु	आस्थितः	स्थित थे ॥५९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे कृष्णरुक्मिणीसंवादो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

अथ एकषष्टितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान् दश दशाबलाः ।
अजीजनन्ननवमान्पितुः सर्वात्मसम्पदा ॥ १ ॥

एक एकशः ताः कृष्णस्य पुत्रान् दश दश अबलाः अजीजनन् अनवमान् पितुः सर्व आत्म सम्पदा ॥१॥

ताः अबलाः	उन स्त्रियों (रानियों)में	आत्म	अपने
		सर्व सम्पदा	सब गुणोंमें
एक एकशः	प्रत्येकने	पितुः अनवमान्	पितासे अन्यून
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके	पुत्रान्	पुत्र
दश दश	दस दस	अजीजनन्	उत्पन्न किये ॥१॥

गृहादनपगं वीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम् ।
प्रेष्ठं न्यमंसत स्वं स्वं न तत्तत्त्वविदः स्त्रियः ॥ २ ॥

गृहात् अन् अपगं वीक्ष्य राजपुत्र्यः अच्युतं स्थितं प्रेष्ठं न्यमंसत स्वं स्वं न तत् तत्व विदः स्त्रियः ॥२॥

अच्युतं गृहात्	अच्युतको अपने घर से	न विदः स्त्रियः	न जानने वाली स्त्रियोंने
अन् अपगं वीक्ष्य	कहीं अन्यत्र न जाता देखकर	स्वं स्वं	अपने-अपनेको
		प्रेष्ठं	सर्वाधिक प्रिया
तत् तत्त्व	उनका वास्तविक तत्त्व	न्यमंसत	मान लिया ॥२॥

चार्वब्जकोशवदनायतबाहुनेत्र-
सप्रेमहासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः ।
सम्मोहिता भगवतो न मनो विजेतुं
स्वैर्विभ्रमैः समशकन् वनिता विभूम्नः ॥ ३ ॥

चारु अब्जकोश वदन आयतबाहु नेत्र सप्रेमहास रसवीक्षित वल्गुजल्पैः सम्मोहिता भगवताः न मनः विजेतुं स्वैः विभ्रमैः सम अशकन् वनिता विभूम्नः ॥३॥

चारु अब्जकोश	मनोहर कमलकोश	**सम्मोहिता**	स्वयं मोहित हुई
वदन	जैसे मुख,	**वनिता**	रानियां
आयतबाहु	विशाल बाहु और	**विभूम्नः**	सर्वव्यापक
नेत्र	नेत्र,	**भगवतः**	भगवानके
सप्रेमहास	प्रणय मुस्कान सहित	**मनः विजेतुं**	मनको जीतनेमें
		स्वैः विभ्रमैः	अपने हाव-भावसे
रसवीक्षित	रसमय कटाक्षसे	**सम अशकन् न**	कुछ भी समर्थ नहीं हुई ॥३॥
वल्गुजल्पैः	मनमोहिनी बात-चीतसे		

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारि-
भ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः ।
पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणै-
र्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः ॥ ४ ॥

स्मायावलोक लव दर्शित भावहारि भ्रूमण्डल प्रहित सौरतमन्त्र शौण्डैः पत्न्यः तु षोडश सहस्रं अनङ्गबाणैः यस्य इन्द्रियं विमथितुं करणैः न शेकुः ॥४॥

षोडश सहस्रम्	सोलह सहस्र	**स्मायावलोक**	(अपने) मुस्कान युक्त देखने,
पत्न्यः तु	रानियां तो		

लव दर्शित	कटाक्षपात से देखने
भावहारि	भावपूर्ण
भ्रू मण्डल	भ्रू भंगीसे
प्रहित	छोड़े
सौरतमन्त्र	सुरत-मन्त्र (संकेत) से
शौण्डैः	पुष्ट
अनङ्गबाणैः	कामबाणोंसे
करणैः यस्य	तथा दूसरे साधनों से जिसकी
इन्द्रियं	इन्द्रियोंको
विमथितुं	चञ्चल
न शेकुः	नहीं कर सकीं ॥४॥

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता
ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ।
भेजुर्मुदाविरतमेधितयानुराग-
हासावलोकनवसङ्गमलालसाद्यम् ॥ ५ ॥

इत्थं रमापतिं अवाप्य पतिं स्त्रियः ता ब्रह्मा आदयः अपि न विदुः पदवीं यदीयां भेजुः मुदा अविरतं एधितया अनुराग हास अवलोक नवसङ्गम लालसा आद्यम् ॥५॥

ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मादि
अपि	भी
यदीयां पदवीं	जिनके स्वरूपको
न विदुः	नहीं जानते
इत्थं रमापतिं	इस प्रकार (उन) श्रीपतिको
पतिं अवाप्य	पति रूपमें पाकर
ता स्त्रियः	उन स्त्रियोंने
मुदा अविरतं	आनन्दसे निरन्तर
एधितया	बढ़ने वाले
अनुराग	प्रेमसे
हास	मुस्कान युक्त
अवलोक	देखनेसे
नवसङ्गम	नवीन समागमकी
आद्यं लालसा	प्रथम लालसाको
भेजुः	(सदा) प्राप्त किया ॥५॥

प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौच-
ताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ।

केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैः-
दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥६॥

प्रति उद्गम आसन वर अर्हण पादशौच ताम्बूल विश्रमण वीजन गन्धमाल्यैः केशप्रसार शयन स्नपन उपहार्यैः दासीशता अपि विभोः विदधुः स्म दास्यम् ॥६॥

दासीशता अपि	सैकड़ों दासियां होने पर भी	शयन	सुलाने
प्रति उद्गम	उठकर आगे लेने जाते,	वीजन	पंखा झलने
आसन	आसन देने,	गन्धमाल्यैः	चन्दन-माला देने,
वरअर्हण	श्रेष्ठ पूजन	केशप्रसार	केश सुलझाने
पादशौच	चरण-प्रक्षालन	स्नपन	स्नान कराने
ताम्बूल	पान देने-	उपहार्यैः	भेंट प्रदान कर के
विश्रमण	विश्राम कराने	विभोः दास्यं	स्वामीकी सेवा
		विदधुः	(स्वयं) करती थीं ॥६॥

तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः ।
अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान् प्रद्युम्नादीन् गृणामि ते ॥७॥

तासां या दश पुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरा उदिताः अष्टौ महिष्यः तत् पुत्रान् प्रद्युम्न आदीन् गृणामि ते ॥७॥

तासां दश	उन दस-दस	तत् प्रद्युम्न	उनके प्रद्युम्न
पुत्राणां	पुत्रों वाली	आदीन्	आदि
कृष्णस्त्रीणां	श्रीकृष्णकी रानियां में	पुत्रान् ते	पुत्रोंका तुमसे
या पुरा उदिताः	जो पहिले वर्णिता	गृणामि	वर्णन करता हूँ ॥७॥
अष्टौ महिष्यः	आठो पटरानियां हैं		

चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान् ।
सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथापरः ॥ ८ ॥

चारुदेष्णः सुदेष्णः च चारुदेहः च वीर्यवान् सुचारुः चारुगुप्तः च भद्रचारुः तथा अपरः ॥८॥

चारुदेष्णः	चारुदेष्ण	**सुचारुः**	सुचारु
च सुदेष्णः	और सुदेष्ण,	**च चारुगुप्तः**	और चारुगुप्त,
च वीर्यवान्	एवं पराक्रमी	**तथा अपरः**	तथा अन्य
चारुदेहः	चारुदेह,	**भद्रचारुः**	भद्रचारु ॥८॥

चारुचन्द्रो विचारुश्च चारुश्च दशमो हरेः ।
प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः ॥ ९ ॥

चारुचन्द्रः विचारुः च चारुः च दशमः हरेः प्रद्युम्न प्रमुखा जाता रुक्मिण्यां न अवमाः पितुः ॥९॥

चारुचन्द्र च	चारुचन्द्र और	**पितुः न अवमाः**	पितासे अन्यून
विचारुः च	विचार एवं	**जातः**	उत्पन्न हुए
दशमः चारुः	दसवें चारु		॥९॥
प्रद्युम्न प्रमुखा	इनमें प्रमुख प्रद्युम्न		
हरेः रुक्मिण्यां	श्रीहरिसे रुक्मिणी में		

भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा ।
चन्द्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाष्टमः ॥१०॥

भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुः भानुमान् तथा चन्द्रभानुः बृहद्भानुः अतिभानुः तथा अष्टमः ॥१०॥

भानुः सुभानुः	भानु, सुभानु,
स्वर्भानु प्रभानुः	स्वर्भानु, प्रभानु,
तथा भानुमान्	और भानुमान्
चन्द्रभानुः	चन्द्रभानु,
बृहद्भानुः	बृहद्भानु,
तथा अष्टमः	ऐसे ही आठवें
अतिभानुः	अतिभानु ॥१०॥

श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभाभात्मजा दश ।
साम्बः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित् ॥११॥

श्रीभानुः प्रतिभानुः च सत्यभामा आत्मजा दश साम्बः सुमित्रः पुरुजित् शतजित् च सहस्रजित् ॥११॥

श्रीभानुः च	श्रीभानु और
प्रतिभानुः	प्रतिभानु
सत्यभामा	सत्यभामाके ये
दश आत्मजा	दश पुत्र थे
साम्बः सुमित्रः	साम्ब, सुमित्र,
पुरुजित्	पुरुजित,
शतजित्	शतजित्
च सहस्रजित्	और सहस्रजित् ॥११॥

विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान् द्रविडः क्रतुः ।
जाम्बवत्याः सुता ह्येते साम्बाद्याः पितृसंमताः ॥१२॥

विजयः चित्रकेतुः च वसुमान् द्रविडः क्रतुः जाम्बवत्याः सुता हि एते साम्ब आद्याः पितृ सम्मताः ॥१२॥

विजयः	विजय,
चित्रकेतुः	चित्रकेतु,
वसुमान् द्रविडः	वसुमान्, द्रविड़,
च क्रतुः	और क्रतु
पितृ सम्मताः हि	पिताके समाह ही
एते साम्ब	ये साम्ब
आद्याः	आदि
हि जाम्बवत्याः	जाम्बवतीके तो
सुता	पुत्र थे ॥१२॥

वीरश्चन्द्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान् वृषः ।
आमः शंकुर्वसुः श्रीमान् कुन्तिर्नाग्नजितेः सुताः ॥१३॥

वीरः चन्द्रः अश्वसेनः च चित्रगुः वेगवान् वृषः आमः शंकुः वसुः श्रीमान् कुन्तिः नाग्नजितेः सुताः ॥१३॥

वीरः चन्द्रः	वीर, चन्द्र,
अश्वसेनः	अश्वसेन,
चित्रगुः वेगवान्	चित्रगु, वेगवान्
वृषः	वृष,
आमः शंकुः	आम, शंकु,
वसुः	वसु,
श्रीमान कुन्तिः	तेजस्वी कुन्ति
नाग्नजितेः	नाग्नजिती (सत्या)
सुताः	के पुत्र थे ॥१३॥

श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः ।
शान्तिर्दर्शः पूर्णमासः कालिन्द्याः सोमकोऽवरः ॥१४॥

श्रुतः कविः वृषः वीरः सुबाहुः भद्रः एकलः शान्तिः दर्शः पूर्णमासः कालिन्द्याः सोमकः अवरः ॥१४॥

श्रुतः कविः	श्रुत, कवि,
वृषः	वृष,
वीर सुबाहुः	वीर, सुबाहु,
भद्रः	भद्र,
एकलः शान्तिः	एकल, शान्ति,
दर्शः	दर्श,
पूर्णमासः	पूर्णमास,
अवरः सोमकः	सबसे छोटा सोमक,
कालिन्द्याः	कालिन्दीके हुए ॥१४॥

प्रघोषो गात्रवान्सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः ।
माद्र्याः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥१५॥

प्रघोषः गात्रवान् सिंहः बला प्रबलः उर्ध्वगः माद्र्या पुत्र महाशक्तिः सह ओजः अपराजितः ॥१५॥

प्रघोषः	प्रघोष,
गात्रवान्	गात्रवान,
सिंहः बलः	सिंह, बल,
प्रबलः	प्रबल,

उर्ध्वगः	उर्ध्वग,	**माद्र्याः पुत्राः**	मद्रदेशीया (लक्ष्मणा)के पुत्र थे ॥१५॥
महाशक्तिः	महाशक्ति,		
सहः ओजः	सह, ओज,		
अपराजितः	अपराजित		

वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोऽन्नाद एव च ।
महाशः पावनो वह्निर्मित्रविन्दात्मजाः क्षुधिः ॥१६॥

वृकः हर्षः अनिलः गृध्रः वर्धनः अन्नाद एव च महाशः पावनः वह्निः मित्रविन्दा आत्मजाः क्षुधि ॥१६॥

वृकः हर्षः	वृक, हर्ष,	**च क्षुधिः एव**	तथा क्षुधि भी
अनिलः	अनिल,	**मित्रविन्दा**	मित्रविन्दाके
गृध्रः वर्धनः	गृध्र, वर्धन,	**आत्मजाः**	पुत्र थे ॥१६॥
अन्नादः	अन्नाद,		
महाशः पावनः	महाश, पावन,		
वह्निः	वह्नि,		

संग्रामजिद् बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित् ।
जयः सुभद्रो भद्राया वाम आयुश्च सत्यकः ॥१७॥

संग्रामजित् बृहत्सेनः शूरः प्रहरणः अरिजित् जयः सुभद्रः भद्रायाः वामः आयुः च सत्यकः ॥१७॥

संग्रामजित्	संग्रामजित्,	**आयुः च**	आयु और
बृहत्सेनः	बृहत्सेन,	**सत्यकः**	सत्यक
शूरः प्रहरणः	शूर, प्रहरण	**भद्रायाः**	भद्राके पुत्र थे ॥१७॥
अरिजित् जयः	अरिजित, जय,		
सुभद्रः वामः	सुभद्र, वाम		

दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया हरेः ।
प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद्रुक्मवत्यां महाबलः ॥१८॥

दीप्तिमान् ताम्रतप्त आद्या रोहिण्याः तनय हरेः प्रद्युम्नात् च अनिरुद्धः अभूत् रुक्मवत्यां महाबलः ॥१८॥

हरेः	श्रीहरिके
रोहिण्याः	(सोलह सहस्र रानियोंमेंसे) रोहिणी के
दीप्तिमान्	दीप्तिमान्
ताम्रतप्त	ताम्र, तप्त
आद्या	आदि हुए,
तनया	पुत्र हुए,
च प्रद्युम्नात्	और प्रद्युम्नको
रुक्मवत्यां	रुक्मवतीसे
महाबलः	महाबली
अनिरुद्धः	अनिरुद्ध
अभूत्	उत्पन्न हुए ॥१८॥

पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन् नाम्ना भोजकटे पुरे ।
एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप ।
मातरः कृष्णजातानां सहस्राणि च षोडश ॥१९॥

पुत्र्यां तु रुक्मिणः राजन् नाम्ना भोजकटे पुरे एतेषां पुत्र पौत्राः च बभूवुः कोटिशः नृप मातरः कृष्ण जातानां सहस्राणि च षोडश ॥१९॥

राजन्	राजन् !
भोजकटे नाम्ना	भोजकट नामके
पुरे रुक्मिणः तु	नगरमें (रहने वाले) रुक्मीकी ही
पुत्र्यां	पुत्री (रुक्मवती)से
नृप	राजन् !
एतेषां पुत्र च	इनके पुत्र और
पौत्राः	पौत्र
कोटिशः बभूवुः	करोड़ों हो गये, क्योंकि
कृष्ण जातानां	श्रीकृष्णके पुत्रोंकी
मातरः च	माताएँ ही
सहस्राणि षोडश	सोलह सहस्र थीं ॥१९॥

॥ राजोवाच ॥

कथं सुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद् दुहितरं युधि ।
कृष्णेन परिभूतस्तं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते ।
एतदाख्याहि मे विद्वन् द्विषोर्वैवाहिकं मिथः ॥२०॥

कथं रुक्मि अरिपुत्राय प्रादात् दुहितरं युधि कृष्णेन परिभूतः तं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते एतत् आख्याहि मे विद्वन् द्विषोः वैवाहिकम् मिथः ॥२०॥

अरिपुत्राय	शत्रुके पुत्रको
रुक्मि	रुक्मीने
दुहितरं कथं	पुत्री कैसे
प्रादात्	दे दी, (वह तो)
युधि कृष्णेन	युद्धमें श्रीकृष्ण द्वारा
परिभूतः	पराजित होकर
तं हन्तु रन्ध्रं	उनको मारनेके अवसरकी
प्रतीक्षते	प्रतीक्षा कर रहा था
विद्वन्	हे विद्वान
मे एतत्	मुझको यह
आख्याहि	बताइये कि
मिथः द्विषोः	दोनों शत्रुओंके बीच कैसे
वैवाहिकं	विवाहका प्रबन्ध हुआ ॥२०॥

अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम् ।
विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगिनः ॥२१॥

अनागतं अतीतं च वर्तमानं अति इन्द्रियम् विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगिनः ॥२१॥

योगिनः	योगीजन
अनागतं	भविष्य,
अतीतं च	भूत तथा
वर्तमानं	वर्तमानकी
अति इन्द्रियं	इन्द्रियातीत
विप्रकृष्टं	दूरस्थ,
व्यवहितं	छिपी बातको भी
सम्यक् पश्यन्ति	ठीक-ठाक देखते हैं ॥२१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

वृतः स्वयंवरे साक्षादनङ्गोऽङ्गयुतस्तया ।
राज्ञः समेतान् निर्जित्य जहारैकरथो युधि ॥२२॥

वृतः स्वयंवरे साक्षात् अनङ्गः अङ्गयुतः तया राज्ञः समेतान् निर्जित्य जहार एक रथः युधि ॥२२॥

तया	उस (रुक्मवती) द्वारा
स्वयंवरे	स्वयंवर में
अङ्गयुतः	अङ्गवान्
साक्षात् अनङ्गः	साक्षात् कामदेव
वृतः	वरण किये गये

एक रथः	(उन्होंने) अकेले रथसे	युधि निर्जित्य जहार	युद्धमें जीतकर (उसे) हरण किया ॥२२॥
समेतान् राज्ञः	आये हुए राजाओं को		

यद्यप्यनुस्मरन् वैरं रुक्मी कृष्णावमानितः ।
व्यतरद् भागिनेयाय सुतां कुर्वन् स्वसुः प्रियम् ॥२३॥

यद्यपि अनुस्मरन् वैरं रुक्मी कृष्ण अवमानितः व्यतरत् भागिनेयाय सुतां कुर्वन् स्वसुः प्रियम् ॥२३॥

यद्यपि	यद्यपि	स्वसुः प्रियं	किन्तु बहिनका प्रिय
कृष्ण	श्रीकृष्ण द्वारा	कुर्वन्	करनेके लिए
अवमानितः	अपमानित	भागिनेयाय	भानजे को
रुक्मी वैरं	रुक्मी शत्रुता तो	सुतां व्यतरत्	पुत्री दे दी ॥२३॥
अनुस्मरन्	बराबर स्मरण करता था		

रुक्मिण्यास्तनयां राजन् कृतवर्मसुतो बली ।
उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ॥२४॥

रुक्मिण्याः तनयां राजन् कृतवर्मसुतः बली उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ॥२४॥

राजन	राजन् !	कन्यां चारुमतीं	कन्या चारुमतीको
रुक्मिण्याः	रुक्मिणीकी	किल बली	अहो बलवान
तनयां	पुत्री	कृतवर्मसुतः	कृतवर्माके पुत्रने
बिशालाक्षीं	बड़े नेत्रों वाली	उपयेमे	विवाहा ॥२४॥

दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः ।
रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया ।
जानन्नधर्मं तद् यौनं स्नेहपाशानुबन्धनः ॥२५॥

दौहित्राय अनिरुद्धाय पौत्रीं रुक्मि अददात् हरेः रोचनां बद्धवैरः अपि स्वसुः प्रिय चिकीर्षया जानन् अधर्मं तत् योनं स्नेहपाश अनुबन्धनः ॥२५॥

स्वसुः प्रिय	बहिनका प्रिय	अददात्	दे दी
चिकीर्षया	करनेकी इच्छासे	तत् योनं	यह वैवाहिक सम्बन्ध
हरेः	श्री हरिसे		
बद्धवैरः अपि	शत्रुता दृढ़ होने पर भी	अधर्मं जानन्	अधर्म जानते हुए भी*
रुक्मि दौहित्राय	रुक्मीने दौहित्र	स्नेहपाश	स्नेहके बन्धनमें
अनिरुद्धाय	अनिरुद्धको	अनुबन्धनः	बँधे होनेसे ॥२५॥
पौत्रीं रोचनां	अपनी पौत्री रोचना		

तस्मिन्नभ्युदये राजन् रुक्मिणी रामकेशवौ ।
पुरं भोजकटं जग्मुः साम्बप्रद्युम्नकादयः ॥२६॥

तस्मिन अभ्युदये राजन् रुक्मिणी रामकेशवौ पुरं भोजकटं जग्मुः साम्ब प्रद्युम्नक आदयः ॥२६॥

राजन्	राजन् !	साम्ब	साम्ब,
तस्मिन्	इस	प्रद्युम्नक	प्रद्युम्न
अभ्युदये	विवाहोत्सवमें	आदयः	आदि
रुक्मिणी	रुक्मिणी,	भोजकटं पुरं	भोजकट पुर
रामकेशवौ	बलराम-श्रीकृष्ण	जग्मुः	गये ॥२६॥

तस्मिन् निवृत्त उद्वाहे कालिङ्गप्रमुखा नृपाः ।
दृप्तास्ते रुक्मिणं प्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥२७॥

---

* स्मृतिके अनुसार राजकुलमें एक बार तो मामाकी लड़कीसे विवाह हो सकता है, किन्तु तीसरी पीढ़ीका भी विवाह वर्जित है ।

तस्मिन् निवृत्त उद्वाहे कालिङ्ग प्रमुखा नृपाः दृप्ताः ते रुक्मिणं प्रोचुः बलं अक्षैः विनिर्जय ॥२७॥

तस्मिन् उद्वाहे	उस विवाहके
निवृत्त	समाप्त हो जाने पर
ते दृप्ताः	उन गर्विष्ठ
कालिङ्ग प्रमुखा	कलिङ्ग नरेश जिनमें मुखिया था
नृपाः रुक्मिणं	उन राजाओंने रुक्मीसे
प्रोचुः	कहा
बलं अक्षैः	'बलरामको पासोंसे
विनिर्जय	जीत लो' ॥२७॥

अनक्षज्ञो ह्ययं राजन्नपि तद्व्यसनं महत् ।
इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षै रुक्म्यदीव्यत ॥२८॥

अनक्षज्ञः हि अयं राजन् अपि तत् व्यसनं महत् इति उक्तः बलं आहूय तेन अक्षैः रुक्मि दीव्यत ॥२८॥

हि राजन्	क्योंकि राजन्
अयं अनक्षज्ञः	ये जुआ खेलना नहीं जानते
अपि तत्	फिर भी उसका
महत् व्यसनं	(इनको) भारी व्यसन है'
इति उक्तः	ऐसा कहे जाने पर
बलं आहूय	बलरामजीको बुलाकर
तेन रुक्मि	उनके साथ रुक्मी
अक्षैः दीव्यत	पासे खेलने लगा ॥२८॥

शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राददे पणम् ।
तं तु रुक्म्यजयत्तत्र कालिङ्गः प्राहसद् बलम् ।
दन्ताद् संदर्शयन्नुच्चैर्नामृष्यत्तद्धलायुधः ॥२९॥

शतं सहस्रं अयुतं रामः तत्र आददे पणं तं तु रुक्मि अजयत् तत्र कालिङ्गः प्राहसत् बलं दन्तात् सन्दर्शयन् उच्चैः न अमृष्यत् तत् हलायुधः ॥२९॥

तत्र रामः	उसमें बलरामजीने
	(क्रमशः)
शतं अहस्रं	सौ, सहस्र,
अयुतं	दस सहस्रका
पणं आददत्	दाव लगाया
तं रुक्मि	उसे रुक्मीने
अजयत्	जीत लिया
तत्र कालिङ्गः	उस समय कलिंग-राज
दन्तान्	दाँत
सन्दर्शयन्	दिखाते हुए
उच्चैः बलं	ऊँचे स्वरसे
	बलरामजी पर
प्राहसत्	हँसने लगा
हलायुधः	हलधरको
तत् न अमृष्यत्	वह सहन नहीं हुआ ॥२८॥

ततो लक्षं रुक्म्यगृह्णाद् ग्लहं तत्राजयद् बलः ।
जितवानहमित्याह रुक्मी कैतवमाश्रितः ॥३०॥

ततः लक्षं रुक्मि अगृह्णात् ग्लहं तत्र अजयत् बलः जितवान् अहं इति आह रुक्मी कैतवं आश्रितः ॥३०॥

ततः रुक्मि	फिर रुक्मीने
लक्षं ग्लहं	एक लाखका दाव
अगृह्णात	लगाया
तत्र बलः	उसे बलरामजीने
अजयत्	जीत लिया
अहं जितवान्	किन्तु 'मैंने जीता है'
इति रुक्मी	इस प्रकार रुक्मी
कैतवं आश्रितः	छलका सहारा लेकर
आह	बोला ॥३०॥

मन्युना क्षुभितः श्रीमान् समुद्र इव पर्वणि ।
जात्यारुणाक्षोऽतिरुषा न्यर्बुदं ग्लहमाददे ॥३१॥

मन्युना क्षुभितः श्रीमान् समुद्र इव पर्वणि जात अति अरुण अक्षः अति रुषा न्यर्बुदं ग्लहं आददे ॥३१॥

श्रीमान्	श्रीमान् (बलरामजी इससे)
पर्वणि	पर्व (पूर्णिमा)को
समुद्र इव	समुद्रकी भाँति

मन्युना क्षुभितः	क्रोधसे क्षुब्ध हो गये	अति रुषा	बहुत क्रोधसे
अति अरुण	अत्यन्त लाल	न्यर्बुदं ग्लहं आददे	दस करोड़का दाव लगाया ॥३१॥

तं चापि जितवान् रामो धर्मेणच्छलमाश्रितः ।
रुक्मी जितं मयात्रेमे वदन्तु प्राश्निका इति ॥३२॥

तं च अपि जितवान् रामः धर्मेण छलं आश्रितः रुक्मी जितं मया अत्र इमे वदन्तु प्राश्निका इति ॥३२॥

तं च अपि	उसे भी	रुक्मी इति	रुक्मी इस प्रकार बोला—
धर्मेण रामः	धर्मपूर्वक बलरामजी ने	मया जितं	'मैंने जीता है,
जितवान्	जीता	अत्र इमे	इस विषयमें ये
छलं आश्रितः	छलका सहारा लेकर	प्राश्निका	प्रश्न-निर्णायक
		वदन्तु	बतलावें' ॥३२॥

तदाब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः ।
धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वदति वै मृषा ॥३३॥

तदा अब्रवीत् नभः वाणी बलेन एव जितः ग्लहः धर्मतः वचनेन एव रुक्मी वदति वै मृषा ॥३३॥

तदा नभः वाणी	तब आकाशवाणीने	रुक्मी वचनेन	रुक्मी बातसे
अब्रवीत्	कहा—	एव	ही
धर्मतः बलेन एव	'धर्मपूर्वक बलरामजीने ही	वै मृषा वदति	निश्चय झूठ बोलता है' ॥३३॥
ग्लहः जितः	दाव जीता है,		

तामनादृत्य वैदर्भो दुष्टराजन्यचोदितः ।
संकर्षणं परिहसन् बभाषे कालचोदितः ॥३४॥

तां अनादृत्य वैदर्भः दुष्ट राजन्य चोदितः सङ्कर्षणं परिहसन् बभाषे कालचोदितः ॥३४॥

दुष्ट राजन्य	दुष्ट राजाओं द्वारा	**सङ्कर्षणं**	बलरामजीकी
चोदितः	प्रेरित और	**परिहसन्**	हँसी उड़ाते हुए
कालचोदितः	मृत्युकी प्रेरणासे	**बभाषे**	कहने लगा ॥३४॥
वैदर्भः	विदर्भ नरेश रुक्मी		
तां अनादृत्य	उस (आकाशवाणी) की उपेक्षा करके		

नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः ।
अक्षैर्दीव्यन्ति राजानो बाणैश्च न भवादृशाः ॥३५॥

न एव अक्ष कोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः अक्षैः दीव्यन्ति राजानः बाणैः च न भवादृशाः ॥३५॥

यूयं	'तुम लोग	**राजानः**	राजा लोग
वनगोचराः	वनमें दीखने वाले	**अक्षैः च बाणैः**	पासों और बाणोंसे
गोपाला	गोपालक हो	**दीव्यन्ति**	खेलते हैं,
अक्ष कोविदा	पासा खेलनेमें निपुण	**भवादृशाः न**	तुम जैसे लोग नहीं' ॥३५॥
न एव	नहीं ही हो		

रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः ।
क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥३६॥

रुक्मिणा एवं अधिक्षिप्तः राजभिः च उपहासितः क्रुद्धः परिघं उद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥३६॥

एवं रुक्मिणा	इस प्रकार रुक्मी द्वारा	**अधिक्षिप्तः**	आक्षेप किये जाने पर

च राजभिः	तथा राजाओं द्वारा	परिघं उद्यम्य	परिध उठाकर
उपहासितः	हंसी उड़ाये जाने पर	तं नृम्णसंसदि	उसे उस विनोद सभामें ही
क्रुद्धः	कुपित होकर	जघ्ने	मार दिया ॥३६॥

कलिङ्गराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे ।
दन्तानपातयत् क्रुद्धो योऽहसद् विवृतैर्द्विजैः ॥३७॥

कलिङ्गराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे दन्तान् अपातयत् क्रुद्धः यः अहसत् विवृतैः द्विजैः ॥३७॥

यः द्विजैः	जो दांत	दशमे पदे	दशमे पद पर
विवृतैः	खोलकर	गृहीत्वा क्रुद्धः	पकड़कर कुपित
अहसत्	हंसता था उस	दन्तान्	दांत
कलिङ्गराजं	कलिङ्गराजके	अपातयत्	तोड़ डाले ॥३७॥
तरसा	वेगपूर्वक		

अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः ।
राजानो दुद्रुवुर्भीता बलेन परिघार्दिताः ॥३८॥

अन्ये निर्भिन्न बाहु उरु शिरसः रुधिर उक्षिताः राजानः दुद्रुवु भीता बलेन परिघ अर्दिताः ॥३८॥

बलेन	बलरामजी द्वारा	रुधिर उक्षिताः	रक्त लथपथ
परिघ अर्दिताः	परिधिसे रौंदे गये	भीताः द्रु_द्रु_वुः	डरकर भाग गये ॥३८॥
अन्ये राजनः	दूसरे राजा लोग		
निर्भिन्न	कटे-फटे		
बाहु उरु	भुजा, जांघ,		
शिरसः	मस्तक		

निहते रुक्मिणि श्याले नाब्रवीत् साध्वसाधु वा ।
रुक्मिणीबलयो राजन् स्नेहभङ्गभयाद्धरिः ॥३९॥

निहते रुक्मिणि श्याले न अब्रवीत् साधु असाधु वा रुक्मिणी बलयोः राजन् स्नेहभङ्ग भयात् हरिः ॥३९॥

राजन्	राजन् !
श्याले रुक्मिणि	अपने साले रुक्मी के
निहते	मारे जाने पर
रुक्मिणी	रुक्मिणी तथा
बलयोः	बलरामजीके
स्नेहभङ्ग	प्रेम टूटनेके
भयात् हरिः	भयसे श्रीहरिने
साधु वा असाधु	अच्छा या बुरा कुछ
न अब्रवीत्	नहीं कहा ॥३९॥

ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं
रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् ।
रामादयो भोजकटाद् दशार्हाः
सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥४०॥

ततः अनिरुद्धं सह सूर्यया वरं रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीं राम आदयः भोजकटात् दशार्हाः सिद्धा अखिल अर्था मधुसूदन आश्रयाः ॥४०॥

मधुसूदन	मधुसूदनके
आश्रयाः	आश्रित होनेसे
अर्थाः अखिल	समस्त प्रयोजन
सिद्धा	पूरे हो जाने पर
दशार्हाः	दशार्हवंशी
राम आदयः	बलरामजी आदि
सूर्यया सह	नववधूके साथ
वरं अनिरुद्धं	दूल्हे अनिरुद्धको
रथं समारोप्य	रथ पर बैठाकर
भोजकटात्	भोजकटपुरसे
कुशस्थलीं	द्वारिकापुरी
ययुः	चले ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अनिरुद्ध विवाहे रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

॥ राजोवाच ॥

बाणस्य तनयामूषामुपयेभे यदूत्तमः ।
तत्र युद्धमभूद् घोरं हरिशंकरयोर्महत् ।
एतत् सर्वं महायोगिन् समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥

बाणस्य तनयां ऊषां उपयेभे यदु उत्तमः तत्र युद्धं अभूत् घोरं हरि शङ्करयोः महत् एतत् सर्वं महायोगिन् सम आख्यातुं त्वं अर्हसि ॥१॥

यदु उत्तमः	यादव श्रेष्ठ (अनिरुद्ध)ने	महत् घोरं युद्धं	महाघोर युद्ध
बाणस्य तनयां	बाणासुरकी पुत्री	अभूत्	हुआ था
ऊषां उपयेभे	ऊषासे विवाह किया,	महायोगिन्	महायोगिन् !
तत्र हरि	उसमें श्रीहरि	त्वं एतत् सर्वं	आपको यह सब
शङ्करयोः	और शङ्करजीका	आख्यातुं	बतलाना
		अर्हसि	चाहिए ॥१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

बाणः पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः ।
येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ॥ २ ॥

बाणः पुत्रशतज्येष्ठः बलेः आसीत् महात्मनः येन वामन रूपाय हरये अदायि मेदिनीम् ॥२॥

येन वामन रूपाय	जिन्होंने वामन रूपधारी	हरये	श्रीहरिको

मेदिनीं अदाय	पृथ्वी दान कर दिया (उन)	**पुत्रशतज्येष्ठः**	सौ पुत्रोंमें सबसे बड़ा
महात्मनः बलेः	महात्मा बलिके	**बाणः आसीत्**	बाणासुर था ॥२॥

तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा ।
मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसंधो दृढव्रतः ॥ ३ ॥

तस्य औरसः सुतः बाणः शिवभक्तिरतः सदा मान्यः वदान्यः धीमान् च सत्यसन्धः दृढ़व्रतः ॥३॥

तस्य	उन (बलि)का	**धीमान्**	बुद्धिमान,
औरसः सुतः	औरस पुत्र	**सत्यसन्धः**	सत्यप्रतिज्ञ
बाणः सदा	बाण सदा	**च दृढ़व्रतः**	तथा नियमका पक्का था ॥३॥
शिवभक्तिरतः	शंकरजीकी भक्तिमें लीन,		
मान्यः वदान्यः	माननीय, उदार-चरित,		

शोणिताख्ये पुरे रम्ये स राज्यमकरोत् पुरा ।
तस्य शम्भोः प्रसादेन किंकरा इव तेऽमराः ।
सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवेऽतोषयन्मृडम् ॥ ४ ॥

शोणित अख्ये पुरे रम्ये स राज्यं अकरोत् पुरा तस्य शम्भोः प्रसादेन किङ्करा इव ते अमराः सहस्रबाहुः वाद्येन ताण्डवे अतोषयत् मृडम् ॥४॥

स पुरा	वह पहिले	**शम्भोः प्रसादेन**	शंकरजीकी कृपासे
शोणित	शोणित-	**ते अमराः**	वे देवता
आख्ये पुरे	पुर नामक	**तस्य किङ्करा**	उसके सेवकोंके
रम्ये	मनोरम (नगरमें)	**इव**	समान थे,
राज्यं अकरोत्	राज्य करता था		

ताण्डवे	(एक बार) ताण्डव नृत्यके समय	मृडं अतोषयत्	शंकरजीको सन्तुष्ट किया ॥४॥
सहस्रबाहुः	सहस्र भुजाओंसे		
वाद्येन	(अनेक) बाजे बजाकर		

भगवान् सर्वभूतेशः शरण्यो भक्तवत्सलः ।
वरेणच्छन्दयामास स तं वव्रे पुराधिपम् ॥ ५ ॥

भगवान् सर्वभूत ईशः शरण्यः भक्तवत्सलः वरेणत् छन्दयामास स तं वव्रे पुर अधिपम् ॥५॥

सर्वभूत ईशः	सब भूतोंके स्वामी	स तं	उसने उनको
शरण्यः	शरणदाता,	पुर अधिपं	अपने नगरपालके
भक्तवत्सलः	भक्तवत्सल	वव्रे	रूपमें वरण किया
भगवान्	भगवानने		॥५॥
वरेणत्	(उससे) इच्छानुसार		
छन्दयामास	वरदान माँगनेको कहा		

स एकदाऽऽह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः ।
किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदाम्बुजम् ॥ ६ ॥

स एकदा आह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः किरीटेन अर्कवर्णेन संस्पृशन् तत् पदाम्बुजम् ॥६॥

स वीर्यदुर्मदः	वह बलोन्मत्त	किरीटेन	(अपने) मुकुटसे
एकदा पार्श्वस्थं	एक बार समीप रहने वाले	तत् पदाम्बुजं	उनके चरण-कमल
गिरिशं	शंकरजीसे	संस्पृशन् आह	छूकर बोला ॥६॥
अर्कवर्णेन	सूर्यके समान कान्तिमान		

नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम् ।
पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामराङ्घ्रिपम् ॥ ७ ॥

नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुम् ईश्वरं पुंसां अपूर्ण कामानां कामपूर अमर अंघ्रिपम् ॥७॥

महादेव	हे महादेव !	**अमर अंघ्रिपं**	कल्पवृक्ष सदृश हैं
लोकानां	सभी लोकोंके	**अपूर्ण**	जो अपूर्ण
गुरुम्	गुरुको तथा	**कामानां**	इच्छाओंवाले
ईश्वरम्	नियन्ताको	**पुंसां**	मनुष्योंके लिए
नमस्ये	प्रणाम करता हूँ ।	**कामपूर**	इच्छा पूरी करता
त्वाम्	आप		है ॥७॥

दोःसहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् ।
त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥ ८ ॥

दोःसहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मे अभवत् त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वत् ऋते समम् ॥८॥

त्वया	'आपने	**त्रिलोक्यां समं**	तीनों लोकोंमें अपने
दोःसहस्रं	सहस्र भुजाएँ		समान
मया दत्तं	मुझे दीं	**प्रतियोद्धारं**	मुझसे लड़ने वाला
परं मे भाराय	किन्तु मेरे लिए		योद्धा
	भार	**न लभे**	(मैं) नहीं पाता हूँ
अभवत्	हो गयीं, क्योंकि		॥८॥
त्वत् ऋते	आपको छोड़कर		

कण्डूत्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् ।
आद्यायां चूर्णयन्नद्रीन् भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ॥ ९ ॥

कण्डूत्या निभृतैः दोर्भिः युयुत्सुः दिग्गजान् अहं आद्यायां चूर्णयन् अद्रीन् भीताः ते अपि प्रदुद्रुवुः ॥९॥

दोर्भिः निभृतैः	भुजाओंके बहुत	दिग्गजान्	दिग्गजों
कण्डूत्या अहं	खुजलाने पर मैं	युयुत्सुः	युद्ध करने (गया)
आद्यायां अद्रिन्	पहिले मैं पर्वतोंको	ते अपि भीताः	वे भी डरकर
चूर्णयन्	चूर-चूर करता	प्रदुद्रुवुः	भाग गये ॥९॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धः केतुस्ते भज्यते यदा ।
त्वद्दर्पघ्नं भवेन्मूढ संयुगं मत्समेन ते ॥१०॥

तत् श्रुत्वा भगवान् क्रुद्धः केतुः ते भज्यते यदा त्वत् दर्पघ्नं भवेत् मूढ़ संयुगं मत्समेन ते ॥१०॥

तत् श्रुत्वा	यह सुनकर	भज्यते	टूट जायगा (तब)
भगवान् क्रुद्धः	भगवान् (शिव) कुपित (होकर बोले)	ते मत्समेन	तेरा मेरे समानसे
		त्वत् दर्पघ्नं	तेरा गर्व नष्ट करने वाला
मूढ यदा	'मूर्ख ! जब	संयुगं भवेत्	युद्ध होगा' ॥१०॥
ते केतुः	तेरा झण्डा		

इत्युक्तः कुमतिर्हृष्टः स्वगृहं प्राविशन्नृप ।
प्रतीक्षन् गिरिशादेशं स्पवीर्यनशनं कुधीः ॥११॥

इति उक्तः कुमतिः हृष्टः स्वगृहं प्राविशत् नृप प्रतीक्षन् गिरिश आदेशं स्ववीर्य नशनं कुधीः ॥११॥

नृप	राजन् !	गिरिश आदेशं	भगवान शिवके बतलाये
इति उक्तः	ऐसा कहे जाने पर	स्ववीर्य नशनं	अपने पराक्रमके विनाशकी
कुमतिः हृष्टः	(वह) कुबुद्धि प्रसन्न हुआ	प्रतीक्षन्	प्रतीक्षा करने लगा ॥११॥
स्वगृहं	अपने भवनमें		
प्राविशत्	प्रविष्ट हुआ		
कुधीः	दुर्बुद्धि (वश)		

तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिम् ।
कन्यालभत कान्तेन प्रागदृष्टश्रुतेन सा ॥१२॥

तस्य ऊषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिं कन्या अलभत कान्तेन प्राक् अदृष्टेन श्रुतेन सा ॥१२॥

तस्य ऊषा नाम	उसकी ऊषा नाम की	**सा कन्या**	उसने कुमारावस्थामें
दुहिता प्राक्	पुत्रीने पहिले	**स्वप्ने**	ही स्वप्नमें
अदृष्टेन श्रुतेन	बिना देखे सुने	**रतिं अलभत**	रति प्राप्त की ॥१२॥
कान्तेन	परम सुन्दर		
प्रद्युम्निना	प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धसे		

सा तत्र तमपश्यन्ती क्वासि कान्तेति वादिनी ।
सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् ॥१३॥

सा तत्र तं अपश्यन्ती क्व असि कान्त इति वादिनी सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् ॥१३॥

सा उत्तस्थौ	उसने जागने पर	**इति वादिनी**	ऐसा बोलती हुई
तत्र तं	वहां उनको	**सखीनां मध्य**	सखियोंके बीचमें
अपश्यन्ती	न देखकर	**विह्वला**	व्याकुल (होनेसे)
कान्त	प्रियतम !	**भृशं व्रीडिता**	बहुत लज्जिता हुई ॥१३॥
क्व असि	कहां हो ?		

बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा च तत्सुता ।
सख्यपृच्छत् सखीमूषां कौतूहलसमन्विता ॥१४॥

बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डः चित्रलेखा च तत् सुता सख्य पृच्छत् सखीं ऊषां कौतूहल समन्विता ॥१४॥

बाणस्य मन्त्री	बाणासुरका मन्त्री
कुम्भाण्डः	कुम्भाण्ड था
च तत् सुता	और उसकी पुत्री थी
चित्रलेखा	चित्रलेखा (उसने)
कौतूहल	कौतूहलयुक्ता
समन्विता	होकर
सखीं ऊषां	अपनी सखी ऊषासे
सख्य पृच्छत	सखी भावसे पूछा ॥१४॥

कं त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशस्ते मनोरथः ।
हस्तग्राहं न तेऽद्यापि राजपुत्र्युपलक्षये ॥१५॥

कं त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशः ते मनोरथः हस्त ग्राहं न ते अद्य अपि राजपुत्रि उपलक्षये ॥१५॥

सुभ्रूः	'सुन्दर भृकुटिवाली'
त्वं कं मृगयसे	तुम किसको ढूंढ़ रहो हो ?
ते मनोरथः	तुम्हारा मनोरथ
कीदृशः	कैसा है ?
राजपुत्रि	राजकुमारी !
अद्य अपि ते	अब भी तुम्हारे
हस्त ग्राहं	पाणिग्रहण करने वालेको
न उपलक्षये	नहीं देखा है ॥१५॥

॥ ऊषोवाच ॥

दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः ।
पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयंगमः ॥१६॥

दृष्टः कश्चित् नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः पीतवासा बृहत् बाहुः योषितां हृदयङ्गम ॥१६॥

योषितां	स्त्रियोंका मन
हृदयङ्गमः	मन लुभावना
श्यामः	श्यामवर्ण
कमललोचनः	कमल-नयन
पीतवासा	पीले वस्त्र वाला,
बृहत् बाहुः	विशाल भुजा
कश्चित् नरः	कोई पुरुष
स्वप्ने दृष्टः	स्वप्नमें देखा है ॥१६॥

तमहं मृगये कान्तं पाययित्वाधरं मधु ।
क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥१७॥

तं अहं मृगये कान्तं पाययित्वा अधरं मधु क्व अपि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिन अर्णवे ॥१७॥

तं कान्तं	उस प्रियतमको	मां वृजिन	मुझे दुःख
अहं मृगये	मैं ढूंढ़ती हूँ	अर्णवे	समुद्रमें
अधरं मधु	अपना अधरामृत	क्षिप्त्वा क्व	डालकर कहीं भी
पाययित्वा	(मुझे) पिलाकर	अपि यातः	चला गया है ॥१७॥
स्पृहयतीं	चाहती हुई (अतृप्ता)		

चित्रलेखोवाच-

व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते ।
तमानेष्ये नरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश ॥१८॥

व्यसनं ते अपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते तं आनेष्ये नरं यः ते मनः हर्ता तं आदिश ॥१८॥

यः ते मनः हर्ता	जो तुम्हारा चित-चोर	तं आनेष्ये	उसे ले आऊंगी,
		ते व्यसनं	तुम्हारा दुःख
नरं यदि	पुरुष यदि	अपकर्षामि	दूर कर दूंगी,
त्रिलोक्यां	तीनों लोकोंमें	तं आदिश	उसे बता दो ॥१८॥
भाव्यते	कहीं होगा तो		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इत्युक्त्वा देवगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगान् ।
दैत्यविद्याधरान् यक्षान् मनुजांश्च यथालिखत् ॥१९॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इति उक्त्वा देवगन्धर्व सिद्धचारण पन्नगान् दैत्य विद्याधरान् यक्षान् मनुजान् च यथा अलिखत् ॥१९॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर
देवगन्धर्व	देवता, गन्धर्व,
सिद्धचारण	सिद्ध, चारण,
पन्नगान्	पन्नग (नाग)
दैत्य	दैत्य,
विद्याधरान्	विद्याधर,
यक्षान् च	यक्ष तथा
मनुजान्	मनुष्योंकी
यथा अलिखत्	हूबहू चित्रित किया ॥१९॥

मनुजेषु च सा वृष्णीन् शूरमानकदुन्दुभिम् ।
व्यलिखद् रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता ॥२०॥

मनुजेषु च सा वृष्णीन् शूरं आनकदुन्दुभिं व्यलिखत् रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता ॥२०॥

मनुजेषु च	मनुष्योंमें भी
सा वृष्णीन्	उसने वृष्णि-वंशी
शूरं	शूर,
आनकदुन्दुभिं	वसुदेव
च रामकृष्णौ	च बलराम-श्रीकृष्ण-को
व्यलिखत्	चित्रित किया,
प्रद्युम्नं वीक्ष्य	प्रद्युम्न (के चित्र) को देखकर
लज्जिता	लज्जित हो गयी ॥२१॥

अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषावाङ्मुखी ह्रिया ।
सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते ॥२१॥

अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्य ऊषा अवाङ्मुखी ह्रिया सः असाः असाः इति प्राह स्मयमाना महीपते ॥२१॥

महीपते	राजन् !
अनिरुद्धं	अनिरुद्धको
विलिखितं	चित्रित
वीक्ष्य	देखकर
ह्रिया	लज्जासे
अवाङ्मुखी	सिर झुकाकर
'सः असाः असाः'	'वह यहीं हैं, यहीं हैं'
इति स्मयमाना	इस प्रकार मुस्कराती
ऊषा प्राह	ऊषा बोली ॥२१॥

चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी ।
ययौ विहायसा राजन् द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥२२॥

चित्रलेखा तं आज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी ययौ विहायसा राजन् द्वारकां कृष्ण पालिताम् ॥२२॥

राजन्	राजन् !	**विहायसा**	आकाश मार्गसे
तं कृष्णस्य	उनको श्रीकृष्णका	**कृष्ण पालितां**	श्रीकृष्ण द्वारा रक्षित
पौत्रं आज्ञाय	पौत्र जानकर	**द्वारकां ययौ**	द्वारिकापुरी गयी ॥२२॥
योगिनी	योगिनी		
चित्रलेखा	चित्रलेखा		

तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के प्राद्युम्नि योगमास्थिता ।
गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥२३॥

तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के प्राद्युम्नि योग आस्थिता गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियं अदर्शयत् ॥२३॥

तत्र सुपर्यङ्के	वहां उत्तम शैयापर	**गृहीत्वा**	ले जाकर
सुप्तं	सोये	**सख्यै प्रियं**	अपनी सखी (ऊषा) को प्रियतम
प्राद्युम्नि	प्रद्युम्नकुमारको	**अदर्शयत्**	दिखला दिया ॥२३॥
योगं आस्थिता	योगका आश्रय लेकर		
शोणितपुरं	शोणितपुरमें		

सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदितानना ।
दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुम्भी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥२४॥

सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदित आनना दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुम्भी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥२४॥

सा च तं	वह भी उनको	**मुदित आनना**	प्रसन्नमुखी
सुन्दरवरं	अत्यन्त सुन्दर	**प्राद्युम्निना**	प्रद्युम्न कुमारके
विलोक्य	देखकर	**समं**	साथ

पुम्भी दुष्प्रेक्ष्ये	पुरुषोंके द्वारा कठिनाईसे देखे जानेवाले	स्वगृहे रेमे	अपने घरमें रमण करती रही ॥२४॥

परार्ध्यवासः स्रग्गन्धधूपदीपासनादिभिः ।
पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषयार्चितः ॥२५॥

पर अर्ध्यवासः स्रक् गन्ध धूप दीप आसन आदिभिः पान भोजन भक्ष्यैः च वाक्यैः शुश्रूषया अर्चितः ॥२५॥

पर अर्ध्यवासः	अत्यन्त बहुमूल्य वस्त्र,	च	तथा
स्रक् गन्ध	माला, चन्दन,	वाक्यैः शुश्रूषया	सेवाके वचनोंसे
धूप दीप	धूप-दीप,	अर्चितः	सत्कृत होकर ॥२५॥
आसन आदिभिः	आसन आदि		
पान भोजन भक्ष्यैः	पीने, भोज्य-भक्ष्य पदार्थों		

गूढः कन्यापुरे शश्वत् प्रवृद्धस्नेहया तया ।
नाहर्गणान् स बुबुधे ऊषयापहृतेन्द्रियः ॥२६॥

गूढः कन्यापुरे शश्वत् प्रवृद्ध स्नेहया तया न अहर्गणान् स बुबुधे ऊषया अपहृत इन्द्रियः ॥२६॥

शश्वत् प्रबुद्ध स्नेहया	निरन्तर बढ़ते हुए प्रेमवाली	स अहर्गणान्	उन्होंने दिनोंको (बीतते)
तया ऊषया	उस ऊषा द्वारा	बुबुधे न	जाना ही नहीं ॥२६॥
अपहृत इन्द्रियः	इन्द्रियोंके आकृष्ट हो जानेसे		
कन्यापुरे गूढः	कन्याके अन्तःपुरमें छिपे		

तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम् ।
हेतुभिर्लक्षयांचक्रुराप्रीतां दुरवच्छदैः ॥२७॥

तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रतां हेतुभिः लक्षयान् चक्रुः आप्रीतां दुःअवच्छदैः ॥२७॥

यदुवीरेण तथा	यदुवीर (अनिरुद्ध) द्वारा इस प्रकार	**हेतुभिः आप्रीतां**	ऐसे कारणोंसे और बहुत प्रसन्न (होनेसे)
भुज्यमानां तां	भोगी जाती हुई उसे	**हतव्रतां**	(ब्रह्मचर्य) व्रतभ्रष्टा
दुः अवच्छदैः	जिसको छिपाना बहुत कठिन है	**लक्षयान् चक्रुः**	लक्षित कर लिया ॥२७॥

भटा आवेदयांचक्रू राजंस्ते दुहितुर्वयम् ।
विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणम् ॥२८॥

भटा आवेदयान् चक्रुः राजन् ते दुहितुः वयं विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणं ॥२८॥

भटा	(अतः) सैनिकोंने	**कन्यायाः**	कन्याके लिए
आवेदयान् चक्रुः	निवेदन किया	**कुलदूषणं**	कुलको दूषित करनेवाली
राजन् ते दुहितुः	'राजन् ! आपकी पुत्रीकी	**वयं लक्षयामः**	हम लोग देखते हैं ॥२८॥
विचेष्टितं	चेष्टाएँ		

अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो ।
कन्याया दूषणं पुम्भिर्दुष्प्रेक्षाया न विद्महे ॥२९॥

अनपायिभिः अस्माभिः गुप्तायाः च गृहे प्रभो कन्यायाः दूषणं पुम्भिः दुष्प्रेक्षाया न विद्महे ॥२९॥

प्रभो	प्रभो !	**अस्माभिः**	हम लोगों द्वारा
अनपायिभिः	निरन्तर निर्बाध (सावधान)	**गुप्तायाः**	रक्षित
		कन्यायाः गृहे	कन्याके घरमें

पुम्भिः	पुरुषोंद्वारा	दूषणं न विद्महे	अतः दोष हम लोग
दुष्प्रेक्षाया	देख पाना बहुत		नहीं जानते ॥२९॥
	कठिन है		

ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः ।
त्वरितः कन्यकागारं प्राप्तोऽद्राक्षीद् यदूद्वहम् ॥३०॥

ततः प्रव्यथितः बाणः दुहितुः श्रुतदूषणः त्वरितः कन्यका आगारं प्राप्तः अद्राक्षीत् यदूद्वहम् ॥३०॥

ततः दुहितुः	तब पुत्रीके	कन्यका आगारं	कन्याके भवनमें
श्रुतदूषणः	दूषित होनेकी	प्राप्तः यदूद्वहं	पहुँचा (वहां)
	बात सुनकर		यदुश्रेष्ठको
प्रव्यथितः	बहुत दुःखी होकर	अद्राक्षीत्	(उसने) देखा
बाणः त्वरितः	बाणासुर शीघ्रतासे		॥३०॥

कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं
श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणम् ।
बृहद्भुजं कुण्डलकुन्तलत्विषा
स्मितावलोकेन च मण्डितानम् ॥३१॥

काम आत्मजं तं भुवन एक सुन्दरं श्यामं पिशंग अम्बरं अम्बुज ईक्षणं वृहत् भुजं कुण्डल कुन्तल त्विषा स्मित अवलोकेन च मण्डित आननम् ॥३१॥

तं काम आत्मजं	उन कामदेवके पुत्र	कुन्तल	अलकों एवं
भुवन एक	त्रिलोकीमें एकमात्र	कुण्डल त्विषा	कुण्डलकी कान्ति
सुन्दरं	सुन्दर	च	तथा
श्यामं	श्याम वर्ण,	स्मित अवलोकेन	मुस्कुराहटयुक्त
पिशङ्ग अम्बरं	पीताम्बरधारी,		देखनेसे
अम्बुज ईशणं	कमल-लोचन,	मण्डित आननं	सुशोभित मुखवाले
बृहत् भुजं	विशाल बाहु,		॥३१॥

दीव्यन्तमक्षैः प्रिययाभिनृम्णया
तदङ्गसङ्गस्तनकुंकुमस्रजम् ।
बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां
तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥३२॥

दीव्यन्तं अक्षैः प्रियया अभिनृम्णया तत् अङ्ग सङ्ग स्तन कुंकुम स्रजं बाह्वोः दधानं मधुमल्लिका आश्रितां तस्य अग्र आसीनं अवेक्ष्य विस्मितः ॥३२॥

अभिनृम्णया	अत्यन्त परिहास-मुक्ता	**मधुमल्लिका**	मधुमल्लिकाकी
प्रियया	प्रियतमाके साथ	**स्रजं**	माला
अक्षैः दीव्यन्तं	पासा खेलते हुए	**बाह्वोः दधानं**	भुजाओं धारण किये
तत् अङ्ग सङ्ग	उसके अङ्ग-संगसे	**तस्य अग्र**	उसके आगे
स्तनकुंकुम	उसके स्तनोंपर लगे कुंकुमसे	**आसीनं**	बैठेको
आश्रितां	अनुरंजिता	**अवेक्ष्य विस्मितः**	देखकर चकित हो गया ॥३२॥

स तं प्रविष्टं वृतमाततायिभि-
र्भटैरनीकैरवलोक्य माधवः ।
उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितो
यथान्तको दण्डधरो जिघांसया ॥३३॥

स तं प्रविष्टं वृतं आततायिभिः भटैः अनीकैः अवलोक्य माधवः उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितः यथा अन्तकः दण्डधरः जिघांसया ॥३३॥

स तं	उन्होंने उसे	**माधवः**	मधुवंशी (अनिरुद्ध)
आततायिभिः	आक्रमणकारी	**मौर्वं परिघं**	लोहेका परिघ (डंडा)
भटैः अनीकैः	सैनिकोंकी सेनासे	**उद्यम्य**	उठाकर
वृतं प्रविष्टं	घिरा प्रवेश किये	**यथा दण्डधरः**	जैसे दण्डधारी
अवलोक्य	देखकर		

अन्तकः	काल हो	व्यवस्थितः	जमकर खड़े हो
जिघांसया	मारनेके लिए		गये ॥३३॥

जिघृक्षया तान् परितः प्रसर्पतः
शुनो तथा सूकरयूथपोऽहनत् ।
ते हन्यमाना भवनाद् विनिर्गता
निर्भिन्नमूर्धोरुभुजाः प्रदुद्रुवुः ॥३४॥

जिघृक्षया तान् परितः प्रसर्पतः शुनः यथा सूकर यूथपः अहनत् ते हन्यमाना भवनात् विनिर्गता निर्भिन्न मूर्ध उरु भुजाः प्रदुद्रुवुः ॥३४॥

जिघृक्षया	पकड़नेके लिए	ते हन्यमाना	वे मारे जाते हुए
परितः तान्	चारों ओरसे उन्हें	निर्भिन्न	कटे-फटे
प्रसर्पतः	सरकते आने वालों-	मूर्ध उरु भुजाः	सिर, जंघा, भुजा
	को	ते भवनात्	वे भवनसे
यथा सूकर	जैसे वाराह	विनिर्गता	निकलकर
यूथपः	यूथपति	प्रदुद्रुवुः	भाग गये ॥३४॥
शुनः अहनत्	कुत्तोंको, मारने लगे,		

तं नागपाशैर्बलिनन्दनो बली
घ्नन्तं स्वसैन्य कुपितो बबन्ध ह ।
ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला
बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदिषीत् ॥३५॥

तं नागपाशैः बलिनन्दनः बली घ्नन्तं स्वसैन्यं कुपितः बबन्ध ह ऊषा भृशं शोक विषाद विह्वला बद्धं निशम्य अश्रुकला अक्ष्य रौदिषीत् ॥३५॥

स्वसैन्यं घ्नन्तं	अपनी सेनाको मारते हुएको	बलिनन्दनः	बलिनन्दन (बाणासुर)ने
बली	बलवान	ह कुपितः	बहुत क्रुद्ध होकर

नागपाशैः	नागपाशसे	**शोकविषाद**	शोक एवं दुःखसे
बबन्ध	बाँध लिया	**विह्वला**	व्याकुल होकर
तं बद्धं निशम्य	उनको बँधा देखकर	**अश्रुकला अक्ष्य**	आँखोंसे आंसू बहाती
ऊषा भृशं	ऊषा बहुत अधिक	**रोदिषीत्**	रोने लगी ॥६५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
उत्तरार्धेऽनिरुद्धबन्धो नाम द्विषाष्टतमोऽध्यायः ॥६२॥

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनां च भारत ।
चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥

अपश्यतां च अनिरुद्धं तत् बन्धूनां च भारत चत्वारः वार्षिका मासा व्यतीयुः अनुशोचताम् ॥१॥

भारत	परीक्षित !	**वार्षिका**	वर्षाके
अनिरुद्धं	अनिरुद्धको	**चत्वारः**	चार
अपश्यतां	बिना देखे	**मासा च**	महीने भी
अनुशोचतां	उनके पीछे शोक करते	**व्यतीयुः**	बीत गये ॥१॥
तत् बन्धूनां च	उनके सम्बन्धियोंके तो		

नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च ।
प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ २ ॥

नारदात् तत् उपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥२॥

नारदात्	नारदजीसे	**कृष्णदेवताः**	जिनके श्रीकृष्ण ही आराध्य देव हैं
तत् वार्तां	वह समाचार		
बद्धस्य च कर्म	(उनके) बँधनेका और पराक्रम	**वृष्णयः**	(वे) यादव लोग
		शोणितपुरं	शोणितपुरको
उपाकर्ण्य	सुनकर	**प्रययुः**	चले ॥२॥

प्रद्युम्नो युयुधानश्च गदः साम्बोऽथ सारणः ।
नन्दोपनन्दभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥ ३ ॥

प्रद्युम्नः युयुधानः च गदः साम्बः अथ सारणः नन्द उपनन्द भद्र आद्या रामकृष्ण अनुवर्तिनः ॥३॥

रामकृष्ण	बलराम-श्रीकृष्णके	**गदः साम्बः**	गद, साम्ब
अनुवर्तिनः	अनुसार चलने वाले	**अथ सारणः**	और सारण
		च नन्द	तथा नन्द,
प्रद्युम्नः	प्रद्युम्न,	**उपनन्द**	उपनन्द,
युयुधानः	सात्यकि,	**भद्र आद्याः**	भद्र आदि ॥३॥

अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताः सर्वतोदिशम् ।
रुरुधुर्बाणनगरं समन्तात् सात्वतर्षभाः ॥ ४ ॥

अक्षौहिणीभिः द्वादशभिः सम एताः सर्वतः दिशं रुरुधुः बाणनगरं समन्तात् सात्वत् ऋषभाः ॥४॥

द्वादशभिः	बारह	**बाणनगरं**	बाणासुरके नगर को
अक्षौहिणीभिः	अक्षौहिणी सेनाके	**समन्तात्**	चारो ओरसे
सम एताः	साथ आकर	**रुरुधुः**	घेर लिया ॥४॥
सात्वत्	यादव		
ऋषभाः	श्रेष्ठोंने		

भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् ।
प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥ ५ ॥

भज्यमान पुर उद्यान प्राकार अट्टाल गोपुरं प्रेक्षमाणः रुषा आविष्टः तुल्यसैन्यः अभिनिर्ययौ ॥५॥

पुर उद्यान	नगरके बगीचे	रुषा आविष्टः	क्रोधके आवेशमें आकर
प्राकार	परिखा,		
अट्टाल	अटारी,	तुल्यसैन्यः	(बाणासुर) बराबर की सेनाके साथ
गोपुरं	गोपुर (महाद्वार) को	अभिनिर्ययौ	सामने निकल आया ॥५॥
भज्यमान	तोड़ा जाते		
प्रेक्षमाणः	देखकर		

बाणार्थे भगवान् रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः ।
आरुह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥ ६ ॥

बाण अर्थे भगवान् रुद्रः ससुतैः प्रमथैः वृतः आरुह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥६॥

भगवान् रुद्रः	भगवान रुद्रने	नन्दीवृषभं	नन्दी बैल पर
बाण अर्थे	बाणासुरके लिए	आरुह्य	चढ़कर
ससुतैः	अपने पुत्रोंके साथ	रामकृष्णयोः	बलराम-श्रीकृष्णसे
प्रमथैः वृतः	गणोंसे घिरे हुए	युयुधे	युद्ध किया ॥६॥

आसीत् सुतुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ।
कृष्णशंकरयो राजन् प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥ ७ ॥

आसीत् सुतुमुलं युद्धं अद्भुतं रोमहर्षणं कृष्णशङ्करयोः राजन् प्रद्युम्न गुहयोः अपि ॥७॥

राजन्	राजन् !	सुतुमुलं	अत्यन्त तुमुल
कृष्ण-	श्रीकृष्ण और	अद्भुतं	अद्भुत
शङ्करयोः	शिवका	रोमहर्षणं	रोमांचकारी
प्रद्युम्न	तथा प्रद्युम्न और	युद्धं आसीत्	युद्ध होने लगा ॥७॥
गुहयोः अपि	स्वामि कार्तिकका भी		

कुम्भाण्डकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः ।
साम्बस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥ ८ ॥

कुम्भाण्ड कूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः साम्बस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥८॥

कुम्भाण्ड	कुम्भाण्ड और	**साम्बस्य**	साम्बके साथ
कूपकर्णाभ्यां	कूपकर्णका	**बाणेन सह**	बाणासुरके साथ
बलेन सह	बलरामजीके साथ	**सात्यकेः संयुगः**	सात्यकिका युद्ध
बाणपुत्रेण	बाणासुरके पुत्रका		हुआ ॥८॥

ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः ।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥ ९ ॥

ब्रह्मा आदयः सुराधीशा मुनयः सिद्ध चारणाः गन्धर्वा अप्सरसः यक्षा विमानैः द्रष्टुम् आगमन् ॥९॥

ब्रह्मा आदयः	ब्रह्मादि	**यक्षाः विमानैः**	यक्ष लोग विमानों से
सुराधीशा	देवगण,	**द्रष्टुं आगमन्**	देखने आ गये ॥९॥
मुनयः सिद्ध	मुनि लोग, सिद्ध		
चारणाः	चारण,		
गन्धर्वाः	गन्धर्व,		
अप्सरसः	अप्सराएँ		

शंकरानुचरांश्चौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् ।
डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान् सविनायकान् ॥१०॥

शङ्कर अनुचरान् शौरिः भूत प्रमथ गुह्यकान् डाकिनीः यातुधानान् च वेतालान् सविनायकान् ॥१०॥

शौरिः	श्रीकृष्णने	**शङ्कर अनुचरान्**	शंकरजीके सेवक

भूत प्रमथ	भूत, प्रमथ (उन्माद)	च वेतालान्	तथा वेतालोंको
गुह्यकान्	यक्ष,	सविनायकान्	विनायकोंके साथ
डाकिनीः	डाकिनी,		॥१०॥
यातुधानान्	यातुधान,		

प्रेतमातृपिशाचांश्च कूष्माण्डान् ब्रह्मराक्षसान् ।
द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥११॥

प्रेत मातृ पिशाचान् च कूष्माण्डान् ब्रह्मराक्षसान् द्रावयामास तीक्ष्ण अग्रैः शरैः शार्ङ्ग धनुः च्युतैः ॥११॥

प्रेत मातृ	प्रेत, मातृका गण,	तीक्ष्ण	तीक्ष्ण
पिशाचान्	पिशाचों,	अग्रैः शरैः	नोंक वाले बाणों से
कूष्माण्डान्	कूष्माण्डों	द्रावयामास	भगा दिया ॥११॥
च ब्रह्मराक्षसान्	तथा ब्रह्मराक्षसों को		
शार्ङ्ग धनुः	शारंग धनुषसे		
च्युतैः	छूटे		

पृथग्विधानि प्रायुङ्क्त पिनाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे ।
प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥१२॥

पृथक् विधानि प्रायुङ्क्त पिनाकि अस्त्राणि शार्ङ्गिणे प्रति अस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिः अविस्मितः ॥१२॥

पिनाकि	पिनाकिपाणि शिव ने	शार्ङ्गपाणिः	शारंगधन्वाने उन्हें
शार्ङ्गिणे	शारंग धन्वा पर	प्रति अस्त्रैः	उनके विरोधी अस्त्र से
पृथक् विधानि	अनेक प्रकारके	शमयामास	शान्त कर दिया ॥१२॥
अस्त्राणि	अस्त्रोंका		
प्रायुङ्क्त	प्रयोग किया		
अविस्मितः	बिना विस्मित हुए		

ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् ।
आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥१३॥

ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतं आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥१३॥

ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं	ब्रह्मास्त्रके लिए तो ब्रह्मास्त्र,	**पाशुपतस्य च नैजं**	पाशुपतास्त्रके लिए नारायणास्त्र (का प्रयोग किया) ॥१३॥
वायव्यस्य च पार्वतं	वायव्यास्त्रके लिए पर्वतास्त्र,		
आग्नेयस्य च पार्जन्यं	आग्नेयास्त्रके लिए पर्जन्य (वारुण) अस्त्र,		

मोहयित्वा तु गिरिशं जृम्भणास्त्रेण जृम्भितम् ।
बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदेषुभिः ॥१४॥

मोहयित्वा तु गिरिशं जृम्भणास्त्रेण जृम्भितं बाणस्य पृतनां शौरिः जघान असि गद इषुभिः ॥१४॥

जृम्भणास्त्रेण	फिर जृम्भणास्त्रसे	**शौरिः**	श्रीकृष्ण
गिरिशं	शंकरजीको	**बाणस्य पृतनां**	बाणासुरकी सेनाको
मोहयित्वा	सम्मोहित करके	**असि गद**	तलवार, गदा,
जृम्भितं	(उन्हें) जम्हाई लेते छोड़कर	**इषुभिः**	बाणोंसे
		जघान	मारने लगे ॥१४॥

स्कन्दः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समन्ततः ।
असृग् विमुञ्चन् गात्रेभ्यः शिखिनापाक्रमद् रणात् ॥१५॥

स्कन्दः प्रद्युम्न बाण ओघैः अर्द्यमानः समन्ततः असृक् विमुञ्चन् गात्रेभ्यः शिखिना अपाक्रमत् रणात् ॥१५॥

प्रद्युम्न	प्रद्युम्नके	असृक्	रक्त
बाण ओघैः	बाणोंकी बौछारसे	विमुञ्चन्	गिराते
समन्वतः	चारों ओरसे	शिखिना	मयूरके द्वारा
अर्द्यमानः	रौंदे जाते	रणात्	युद्धसे
स्कन्दः गात्रेभ्यः	स्वामि कार्तिक शरीर से	अपाक्रमत्	दूर चले गये ॥१५॥

कुम्भाण्डः कूपकर्णश्च पेततुर्मुसलार्दितौ ।
दुद्रुवुस्तदनीकानि हतनाथानि सर्वतः ॥१६॥

कुम्भाण्डः कूपकर्णः च पेततुः मुसल अर्दितौ दुद्रुवुः तत् अनीकानि हतनाथानि सर्वतः ॥१६॥

कुम्भाण्डः	कुम्भाण्ड	हतनाथानि	स्वामियोंके मारे जानेसे
च कूपकर्णः	और कूपकर्ण	तत् अनिकानि	उनकी सेनाएँ
मुसल अर्दितौ	मूसलसे कुचले जाकर	सर्वतः दुद्रुवुः	चारों ओर भाग गयी ॥१६॥
पेततुः	गिर पड़े		

विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षणः ।
कृष्णमभ्यद्रवत् संख्ये रथी हित्वैव सात्यकिम् ॥१७॥

विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणः अति अमर्षणः कृष्णं अभि अद्रवत् संख्ये रथी हित्वा एव सात्यकिम् ॥१७॥

स्वबलं	अपनी सेनाको	संख्ये सात्यकिं	युद्धमें सात्यकिको
विशीर्यमाणां	बिखरती हुई	हित्वा एव	छोड़कर ही
दृष्ट्वा	देखकर	कृष्णं अभि	श्रीकृष्णकी ओर
अति अमर्षणः	अत्यन्त असहनशील	अद्रवत्	झपटा ॥१७॥
बाणः रथी	रथ पर बैठा बाणासुर		

धनूंष्याकृष्य युगपद् बाणः पञ्चशतानि वै ।
एकैकस्मिञ्छरौ द्वौ द्वौ संदधे रणदुर्मदः ॥१८॥

धनूंषि आकृष्य युगपत् बाणः पञ्चशतानि वै एक एकस्मिन् शरौ द्वौ द्वौ सन्दधे रणदुर्मदः ॥१८॥

रणदुर्मदः	रणोन्मत !	धनूंषि आकृष्य	धनुष खींचकर
बाणः वै	बाणासुरने तो	एक एकस्मिन्	प्रत्येक पर
युगपत्	एक साथ	द्वौ द्वौ शरौ	दो दो बाण
पञ्चशतानि	पाँच सौ	सन्दधे	चढ़ाये ॥१८॥

तानि चिच्छेद भगवान् धनूंषि युगपद्धरिः ।
सारथिं रथमश्वांश्च हत्वा शङ्खमपूरयत् ॥१९॥

तानि चिच्छेद भगवान् धनूंषि युगपत् हरिः सारथिं रथं अश्वान् च हत्वा शङ्खम् अपूरयत् ॥१९॥

भगवान् हरिः	भगवान श्रीहरिने	च सारथिं रथं	और सारथि, रथ
तानि धनूंषि	उन धनुषोंको	अश्वान् हत्वा	घोड़ोंको मारकर
युगपत् चिच्छेद	एक साथ काट दिया	शङ्खम् अपूरयत्	शंख बजाने लगे ॥१९॥

तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा ।
पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥२०॥

तत् माता कोटरा नाम नग्ना मुक्त शिरोरुहा पुरः अवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राण रिरक्षया ॥२०॥

पुत्र प्राण	पुत्रकी प्राण	तत् माता	उसकी माता (धाय माँ)
रिरक्षया	रक्षाकी इच्छासे		
कोटरा नाम	कोटरा नामकी	मुक्त शिरोरुहा	सिरके बाल खोले

नग्ना	नंगी होकर	अवतस्थे	(आकर) खड़ी हो
कृष्णस्य पुरः	श्रीकृष्णके सामने		गयी ॥२०॥

ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नामनिरीक्षन् गदाग्रजः ।
बाणश्च तावद् विरथश्छिन्नधन्वाविशत् पुरम् ॥२१॥

ततः तिर्यक् मुखः नग्नां अनिरीक्षन् गद अग्रजः बाणः च तावत् विरथः छिन्न धन्वा विशत् पुरम् ॥२१॥

ततः नग्नां	तब उस नंगीको	विरथः	रथहीन,
अनिरीक्षन्	न देखते हुए	छिन्न धन्वा	धनुष कट जाने पर
गद अग्रजः	गदके बड़े भाई श्रीकृष्णने	पुरं विशत्	नगरमें चला गया ॥२१॥
तिर्यङ् मुखः	मुख घुमा लिया		
तावत् बाणः च	इतने में बाणासुर भी		

विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात् ।
अभ्यधावत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥२२॥

विद्राविते भूतगणे ज्वरः तु त्रिशिराः त्रिपात् अभ्यधावत् दाशार्हं दहन् इव दिशः दश ॥२२॥

भूतगणे	भूतोंको	दहन् इव	भस्म करता हुआ सा
विद्राविते	भगा देने पर	दाशार्हं	दशार्हं वंशी श्रीकृष्णकी
त्रिपात्	तीन पैर वाला		
त्रिशिराः	त्रिशिरा	अभ्यधावत्	ओर दौड़ा ॥२२॥
ज्वरः तु	ज्वर तो		
दश दिशः	दसों दिशाओंको		

अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् ।
माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥२३॥

अथ नारायणः देवः तं दृष्ट्वा व्यसृजत् ज्वरं माहेश्वरः वैष्णवः च युयुधाते ज्वराः उभौ ॥२३॥

अथ तं दृष्ट्वा	तब उसे देखकर
नारायणः देवः	नारायण भगवानने
ज्वरं व्यसृजत्	(अपने शीत) ज्वरको छोड़ा
माहेश्वरः च	तब माहेश्वर और
वैष्णवः उभौ	वैष्णव दोनों
ज्वराः युयुधाते	ज्वर (परस्पर) लड़ने लगे ॥२३॥

माहेश्वरः समाक्रन्दन् वैष्णवेन बलार्दितः ।
अलब्ध्वाभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः ।
शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रणताञ्जलिः ॥२४॥

माहेश्वरः समाक्रन्दन् वैष्णवेनबल अर्दितः अलब्ध्वा अभयं अन्यत्र भीतः माहेश्वरः ज्वरः शरण अर्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रणत अञ्जलिः ॥२४॥

वैष्णवेन	वैष्णव (ज्वर) द्वारा
बल अर्दितः	बलपूर्वक रौंदा गया
भीतः	डरा हुआ
माहेश्वरः ज्वरः	माहेश्वर ज्वर
अन्यत्र अभयं	दूसरे कहीं निर्भय स्थान
अलब्ध्वा	न पाकर
प्रणत अञ्जलिः	विनय पूर्वक हाथ जोड़कर
हृषीकेशं तुष्टाव	हृषीकेशकी स्तुति करने लगा ॥२४॥

।। ज्वर उवाच ।।

नमामि त्वानन्तशक्तिं परेशं
सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ।

विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं
यत्तद् ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गम् प्रशान्तम् ॥२५॥

नमामि त्वा अनन्तशक्ति परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रं विश्व उत्पत्ति स्थान संरोध हेतुं यत् तत् ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गम् प्रशान्तम् ॥२५॥

अनन्तशक्ति	अनन्त शक्ति
परेशं सर्वात्मानं	सबके अन्तरात्मा, परमात्मा,
केवलं	केवल
ज्ञप्तिमात्रं	ज्ञानस्वरूप
विश्व उत्पत्ति	जगतकी उत्पत्ति,
स्थान	स्थिति,
संरोध हेतुं	प्रलयका कारण
यत् ब्रह्म	जो ब्रह्म है
तत् ब्रह्मलिङ्गम्	उस वेदवाक्योंसे जाने जाते वाले
प्रशान्तं त्वा	शान्त स्वरूप आपको
नमामि	नमस्कार करता हूँ ॥२५॥

कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो
द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः ।
तत्संघातो बीजरोहप्रवाह-
स्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये ॥२६॥

कालः दैवं कर्म जीवः स्वभावः द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः तत् सङ्घातः बीजरोहप्रवाहः त्वत् मायया एषा तत् निषेधं प्रपद्ये ॥२६॥

कालः दैवं कर्म	काल, देवता, कर्म,
जीवः स्वभावः	जीव, प्रकृति,
द्रव्यं क्षेत्रं प्राण	सूक्ष्म भूत, शरीर, प्राण
आत्मा विकारः	अहंकार, इन्द्रियां
तत् सङ्घातः	इनका पुंजी भाव सूक्ष्म शरीर
बीजरोहप्रवाहः	बीजका उगना (प्रारब्ध) तथा जन्मादि
त्वत् एषा	यह सब आपकी
मायया	माया है,

तत् निषेधं	इनसे जो रहित हैं	**प्रपद्ये**	(उस आपकी) शरण हूँ ॥२६॥

नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नै-
र्देवान् साधूँल्लोकसेतून् बिभर्षि ।
हंस्युन्मार्गान् हिंसया वर्तमानान्
जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥२७॥

नाना भावैः लीलया एव उपपन्नैः देवान् साधून् लोकसेतून् बिभर्षि हंसि उन्मार्गान् हिंसया वर्तमानान् जन्म एतत् ते भार हाराय भूमेः ॥२७॥

लीलया एव	लीलासे ही	**हिंसया**	हिंसा करते
उपपन्नैः	धारण किये हुए	**वर्तमानान्**	रहने वाले
नाना भावैः	अनेक प्रकारके रूपों से	**उन्मार्गान् हंसि**	कुमार्ग गामियोंको मारते हैं
देवान् साधून्	देवता, साधुओं तथा	**ते एतत् जन्म**	आपका यह अवतार
लोकसेतून्	लोकमर्यादाको	**भूमेः भार**	पृथ्वीका भार
बिभर्षि	धारण करते हैं एवं	**हाराय**	दूर करनेके लिए है ॥२७॥

तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन
शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण ।
तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं
नो सेवेरन् यावदाशानुबद्धाः ॥२८॥

तप्तः अहं ते तेजसा दुःसहेन शान्त उग्रेण अति उल्बणेन ज्वरेण तावत् तापः देहिनां ते अंघ्रिमूलं नो सेवेरन् यावत् आशा अनुबद्धाः ॥२८॥

अहं ते दुःसहेन	मैं आपके दुःसह	**उग्रेण उल्बणे**	उग्र तीक्ष्ण
तेजसा	तेजस्वरूप	**शान्त ज्वरेण**	शीत ज्वरसे
अति	अत्यन्त		

तप्तः	संतप्त हो रहा हूँ
देहिनां	जीवको
तावत् तापः	तभी तक कष्ट होता है
यावत्	जब तक
आशा अनुबद्धाः	आशाके पीछे बँधा
ते अंघ्रिमूलं	आपके चरणोंकी
नो सेवेरन्	सेवा नहीं करता ॥२८॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद् भयम् ।
यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद् भयम् ॥२९॥

त्रिशिरः ते प्रसन्नः अस्मि व्येतु ते मत् ज्वरात् भयं यः नौ स्मरति संवादं तस्य त्वत् न भवेत् भयम् ॥२९॥

त्रिशिरः ते	त्रिशिरा ! तुम पर
प्रसन्नः अस्मि	(मैं) प्रसन्न हूँ
ते मत ज्वरात्	तुम्हें मेरे ज्वरसे
भयं व्येतु	भय मिट जाय,
यः नौ	जो हम दोनोंके (इस)
सम्वादं	संवादको
स्मरति	स्मरण करे
तस्य त्वत् भयं	उसे तुम्हारा भय
न भवेत्	न होवे ॥२९॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः ।
बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यञ्जनार्दनम् ॥३०॥

इति उक्तः अच्युतं आनम्य गतः माहेश्वरः ज्वरः बाणः तु रथं आरूढः प्रागात् योत्स्यन् जनार्दनम् ॥३०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इति उक्तः	ऐसा कहने पर	**रथं आरूढः**	रथ पर चढ़कर
माहेश्वरः	माहेश्वर	**जनार्दनं**	जनार्दनसे
ज्वरः गतः	ज्वर चला गया	**योत्स्यन्**	युद्ध करने
बाणः तु	और बाणासुर भी	**प्रागात्**	आ गया ॥३०॥

ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः ।
मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥३१॥

ततः बाहुसहस्रेण नाना आयुधः धरः असुरः मुमोच परमक्रुद्धः बाणान् चक्र आयुधे नृप ॥३१॥

नृप	राजन् !	**धरः असुरः**	लिए बाणासुर
ततः	तब	**परमक्रुद्धः**	अत्यन्त क्रोधसे
बाहुसहस्रेण	सहस्र हाथोंमें	**चक्र आयुधे**	चक्रपाणि पर
नाना आयुधः	अनेक प्रकारके हथियार	**बाणान् मुमोच**	बाण छोड़ने लगा ॥३१॥

तस्यास्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना ।
चिच्छेद भगवान् बाहून् शाखा इव वनस्पतेः ॥३२॥

तस्य अस्यतः अस्त्राणि असकृत् चक्रेण क्षुरनेमिना चिच्छेद भगवान् बाहून् शाखा इव वनस्पतेः ॥३२॥

तस्य असकृत्	उसके निरन्तर	**बाहून् भगवान्**	भुजाओंको भगवान ने
अस्त्राणि	अस्त्र चलाते		
अस्यतः	समय	**क्षुरनेमिना**	तीक्ष्ण धार वाले
वनस्पतेः	वृक्षकी	**चक्रेण चिच्छेद**	चक्रसे काट दिया ॥३२॥
शाखा इव	शाखाओंकी भाँति		

बाहुषुच्छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान् भवः ।
भक्तानुकम्प्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥३३॥

बाहुषु उच्छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान् भवः भक्त अनुकम्पि उपव्रज्य चक्रायुधं अभाषत ॥३३॥

बाणस्य बाहुषु	बाणासुरकी भुजाओं के	**भगवान् भवः**	भगवान शंकर
उच्छिद्यमानेषु	काटे जाते समय	**चक्रायुधं**	चक्रपाणिके
भक्त अनुकम्पि	भक्त वत्सल	**उपव्रज्य**	समीप पहुँचकर
		अभाषत	कहने लगे ॥३३॥

॥ श्रीरुद्र उवाच ॥

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ।
यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥३४॥

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिः गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये यं पश्यन्ति अमल आत्मानः आकाशं इव केवलम् ॥३४॥

हि त्वं	क्योंकि आप	**यं अमल**	जिसे निर्मल
ब्रह्मणि-	वेद-	**आत्मानः**	चित्त लोग
वाङ्मये	वाक्योंमें	**आकाशं इव**	आकाशकी भाँति
गूढं	छिपे	**केवलं पश्यन्ति**	अद्वितीय देखते हैं ॥३४॥
परं ज्योतिः	परम ज्योतिस्वरूप		
ब्रह्म	ब्रह्म हो,		

नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो
द्यौः शीर्षमाशाः श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी ।
चन्द्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा
अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः ॥३५॥

नाभिः नभः अग्निः मुखं अम्बु रेतः द्यौः शीर्षं आशाः श्रुतिः अंघ्रिः उर्वी चन्द्रः मनः यस्य दृक् अर्क आत्मा अहं समुद्रः जठरं भुज इन्द्रः ॥३५॥

नभः यस्य	आकाश जिनकी	चन्द्रः मनः	चन्द्रमा मन,
नाभिः	नाभि है	अर्कं दृक्	सूर्य नेत्र,
अग्निः मुखं	अग्नि मुख,	अहं आत्मा	मैं (रुद्र) चित्त
अम्बु रेतः	जल वीर्य,	समुद्रः जठरं	समुद्र उदर
द्यौः शीर्षं	स्वर्ग मस्तक	इद्रः भुज	इन्द्र भुजाएं हैं
आशाः श्रुतिः	दिशाएं कान,		॥३५॥
उर्वी अंघ्रिः	पृथ्वी पैर,		

रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः
केशा विरिञ्चो धिषणा विसर्गः ।
प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः
स वै भवान् पुरुषो लोककल्पः ॥३६॥

रोमाणि यस्य औषधयः अम्बुवाहाः केशा विरिञ्चः धिषणा विसर्गः प्रजापतिः हृदयं यस्य धर्मः स वै भवान् पुरुषः लोककल्पः ॥३६॥

औषधयः	औषधियां	धर्मः यस्य	धर्म जिनका
यस्य रोमाणि	जिनकी रोम,	हृदयं	हृदय है
अम्बुवाहाः	बादल	वै लोककल्पः	निश्चय सम्पूर्ण लोकमय
केशा	केश		
विरिञ्चः	ब्रह्मा	पुरुषः भवान्	विराट् पुरुष आप ही हैं ॥३६॥
धिषणा	बुद्धि		
प्रजापतिः	प्रजापति		
विसर्गः	उपस्थ,		

तवावतारोऽयमकुण्ठधामन्
धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय ।
वयं च सर्वे भवतानुभाविता
विभावयामो भुवनानि सप्त ॥३७॥

तव अवतारः अयं अकुण्ठ धामन् धर्मस्य गुप्त्यै जगतः भवाय वयं च सर्वे भवता अनुभाविता विभावयामः भुवनानि सप्त ॥३७॥

अकुण्ठ धामन्	अप्रतिहत तेजस्व-रूप !	**वयं सर्वे च**	हम सब भी
		भवता	आपके प्रभावसे
तव अयं	यह आपका	**अनुभविता**	प्रभावित
अवतारः	अवतार	**सप्त भुवनानि**	सातों लोकोंका
धर्मस्य गुप्त्यै	धर्मकी रक्षाके लिए और	**विभावयामः**	पालन करते हैं ॥३७॥
जगतः भवाय	संसारके अभ्युदयके लिए है,		

त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीय-
स्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीशः ।
प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं
स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै ॥३८॥

त्वं एक आद्यः पुरुषः अद्वितीयः तुर्यः स्वदृक् हेतुः अहेतुः ईशः प्रतीयसे अथ अपि यथाविकारं स्वमायया सर्वगुण प्रसिद्धये ॥३८॥

त्वं एक	आप एक	**स्वमायया**	अपनी मायासे
आद्यः पुरुषः	आदि पुरुष,	**सर्वगुण**	सब गुणोंकी
अद्वितीयः	अद्वितीय,	**प्रसिद्धये**	सिद्धिके लिए
तुर्यः स्वदृक्	तुरीय स्वयं प्रकाश,	**यथाविकारं**	विकारों (शरीरों) के अनुसार
हेतुः अहेतुः	सर्वकारण, स्वयं कारण रहित	**प्रतीयसे**	प्रतीत होते हैं ॥३८॥
ईशः	सर्वेश्वर हैं,		
अथ अपि	फिर भी		

यथैव सूर्यः पिहितश्छायया स्वया
छायां च रूपाणि च सञ्चकास्ति ।

एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्वद-
मात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥३९॥

यथा एव सूर्यः पिहितः छायया स्वया छायां च रूपाणि च संचकास्ति एवं गुणेन आपिहितः गुणान् त्वं आत्मप्रदीपः गुणिनः च भूमन् ॥३९॥

भूमन्	सर्वव्यापक प्रभु !	**सञ्चकास्ति**	प्रकाशित करता है
यथा एव सूर्यः	जैसे कि सूर्य	**एवं गुणेन**	इसी प्रकार गुणोंसे
स्वया छायया	अपनी छाया (मेघों) से	**आपिहितः**	आच्छादित
		त्वं आत्मप्रदीपः	आप स्वयं प्रकाश
पिहितः	ढककर	**गुणान् च**	गुणोंको तथा
छायां च	छाया (मेघों)को भी	**गुणिनः**	गुणवान (जीवों को (प्रकाशित
च रूपाणि	तथा (अन्य) रूपोंको भी		करते हैं) ॥३९॥

यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥४०॥

यत् माया मोहित धियः पुत्र दार गृहादिषु उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिन अर्णवे ॥४०॥

यत् माया	जिसकी मायासे	**प्रसक्ता**	आसक्त होकर
मोहित धियः	मोहित बुद्धि (जीव)	**वृजिन अर्णवे**	दुःख समुद्रमें
पुत्र दार	पुत्र, स्त्री,	**उन्मज्जन्ति**	उतराते-
गृहादिषु	घर आदिमें	**निमज्जन्ति**	डूबते हैं ॥४०॥

दैवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः ।
यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः ॥४१॥

देवदत्तं इमं लब्ध्वा नृलोकं अजित इन्द्रियः यः न आद्रियेत त्वत् पादौ स शोच्यः हि आत्म वञ्चकः ॥४१॥

यः अजित	जो अजित
इन्द्रियः	इन्द्रिय
देवदत्तं इमं	देव ! आपका दिया यह
नृलोकं लब्ध्वा	मनुष्य लोक पाकर
त्वत् पादौ	आपके चरणोंका
आद्रियेत न	आदर नहीं करता
स शोच्यः	वह शोचनीय है
हि आत्म	क्योंकि अपनेको ही
वञ्चकः	(वह) ठगने वाला ॥४१॥

यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् ।
विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥४२॥

यः त्वां विसृजते मर्त्यः आत्मानं प्रियं ईश्वरं विपर्यय इन्द्रिय अर्थ अर्थं विषं अत्ति अमृतं त्यजन् ॥४२॥

यः मर्त्यः	जो मनुष्य
विपर्यय	(आपसे) विपरीत
इन्द्रिय	इन्द्रियोंके
अर्थ अर्थं	भोगके लिए
आत्मानं प्रियं	अपने प्रिय
ईश्वरं	स्वामी
त्वां विसृजते	आपको छोडता है
अमृतं त्यजन्	(वह) अमृतको त्यागकर
विषं अत्ति	विष खाता है ॥४२॥

अहं ब्रह्माथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः ।
सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ॥४३॥

अहं ब्रह्मा अथ विबुधा मुनयः च अमल आशयाः सर्व आत्मना प्रपन्नाः त्वां आत्मानं प्रेष्ठं ईश्वरम् ॥४३॥

अहं ब्रह्मा अथ	मैं, ब्रह्मा और
विबुधा	देवगण
च अमल	तथा निर्मल
आशयाः	हृदय

मुनयः	मुनिगण	प्रेष्ठं ईश्वरं	परमप्रिय स्वामीकी
सर्व आत्मना	सम्पूर्ण चित्तसे	प्रपन्नाः	शरण हैं ॥४३॥
त्वां आत्मानं	आप आत्मास्वरूप		

तं त्वां जगत्स्थित्युदयान्तहेतुं
समं प्रशान्तं सुहृदात्मदैवम् ।
अनन्यमेकं जगदात्मकेतं
भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥४४॥

तं त्वां जगत् स्थिति उदय अन्त हेतुं समं प्रशान्तं सुहृद आत्मदैवं अनन्यं एकं जगत् आत्मकेतं भव अपवर्गाय भजाम देवम् ॥४४॥

तं जगत् स्थिति	उस जगत्की स्थिति	अनन्यं एकं	अद्वितीय, एकमात्र
उदय अन्त हेतुं	उत्पत्ति, प्रलयके कारण	जगत् आत्मकेतं	जगत्के अधिष्ठान रूप
समं प्रशान्तं	सर्वत्र सम, अत्यन्त शान्त,	देवं भव अपवर्गाय	इष्ट देवको जगत्से मोक्षके लिए
सुहृद आत्मदैवं	सबके सुहृद, आत्मा ईश्वर	भजाम	भजते हैं ॥४४॥

अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती
मयाभयं दत्तममुष्य देव ।
सम्पाद्यतां तद् भवतः प्रसादो
यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥४५॥

अयं मम इष्टः दयितः अनुवर्ती मया अभयं दत्तं अमुष्य देव सम्पाद्यतां तत् भवतः प्रसादः यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥४५॥

अयं मम इष्टः दयितः अनुवर्ती	यह मेरा अभीष्ट प्रिय अनुगामी है,	देव अमुष्य	देव ! इसको

मया	मैंने	ते प्रसादः	आपकी कृपा है
अभयं दत्तं	अभय दिया है	तत् भवतः	वह आपकी
यथा हि	जैसाकि	प्रसादः	कृपा (इस पर)
दैत्यपतौ	दैत्यपति (प्रह्लाद) पर	सम्पाद्यतां	कीजिए ॥४५॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

यदात्थ भगवंस्त्वन्नः करवाम प्रियं तव ।
भवतो यद् व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥४६॥

यद् आत्थ भगवन् त्वत् नः करवाम प्रियं तव भवतः यत् व्यवसितं तत् मे साधु अनुमोदितम् ॥४६॥

भगवन्	भगवन् !	तत् मे साधु	उसका मैंने भली प्रकार
त्वत् यद् आत्थ	आपका जो कहना है	अनुमोदितं	अनुमोदन किया है ॥४६॥
तव प्रियं	आपका प्रिय		
नः करवाम	हम करेंगे		
यत् भवतः	जो आप विचार		
व्यवसितं	किया है		

अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः ।
प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः ॥४७॥

अवध्यः अयं मम अपि एष वैरोचनि सुतः असुरः प्रह्लादाय वरः दत्तः न वध्यः मे तव अन्वयः ॥४७॥

अयं वैरोचनि	यह विरोचन-नन्दन	वरः दत्तः	वरदान दिया है कि
सुतः	बलिका पुत्र		
असुरः मम अपि	असुर मेरे लिए भी	तव अन्वयः	'तुम्हारे वंशज
अवध्यः	वध योग्य नहीं है	मे वध्यः न	मेरे वध्य नहीं होंगे ॥४८॥
प्रह्लादाय	प्रह्लादको (मैंने)		

दर्पोपशमनायास्य प्रवृक्णा बाहवो मया ।
सूदितं च बलं भूरि यच्च भारायितं भुवः ॥४८॥

दर्प उपशमनाय अस्य प्रवृक्णा बाहवः मया सूदितं च बलं भूरि यत् च भारायितं भुवः ॥४८॥

अस्य दर्प	इसका गर्व	**च यत् च भुवः**	और पृथ्वीकी
उपशमनाय	शान्त करनेके लिए	**भारायितं**	भार हो रही थीं (वह]
मया बाहवः	मेरे द्वारा (इसकी) भुजाएँ	**भूरि बलं**	बहुत सी सेना भी
प्रवृक्णा	काट दी गयीं	**च सूदितं**	मार दी ॥४८॥

चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यन्त्यजरामराः ।
पार्षदमुख्यो भवतो नकुतश्चिद्भयोऽसुरः ॥४९॥

चत्वारः अस्य भुजाः शिष्टाः भविष्यन्ति अजर अमरा पार्षद मुख्यः भवतः न कुतश्चित् भयः असुरः ॥४९॥

अस्य चत्वारः	इसकी चार	**पार्षद मुख्यः**	मुख्य पार्षद है
भुजाः शिष्टाः	भुजाएँ बच गयीं हैं	**कुतश्चित्**	(इसे) कहींसे भी
अजर अमराः	(अब) अजर-अमर	**भयः न**	भय नहीं है ॥४९॥
भविष्यति	होगा,		
असुरः भवतः	(यह) असुर आपका		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इति लब्ध्वाभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसासुरः ।
प्राद्युम्निं रथमारोप्य स बध्वा समुपानयत् ॥५०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इति लब्ध्वा अभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसा असुरः प्राद्युम्नि रथं आरोप्य स बध्वा समुपानयत् ॥५०॥

इति	इस प्रकार
अभयं लब्ध्वा	अभय पाकर
असुरः कृष्णं	बाणासुर श्रीकृष्ण को
शिरसा प्रणम्य	मस्तक झुकाकर प्रणाम करके
स बध्वा	बहूके साथ
प्राद्युम्नि	प्रद्युम्न कुमार (अनिरुद्ध)को
रथं आरोप्य	रथ पर चढ़ाकर
समुपानयत्	भली प्रकार ले आया ॥५०॥

अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासःसमलंकृतम् ।
सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ॥५१॥

अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासः सम अलङ्कृतं सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्र अनुमोदितः ॥५१॥

रुद्र अनुमोदितः	शंकरजीकी अनुमति लेकर
अक्षौहिण्या	एक अक्षौहिणी सेनासे
परिवृत्त	घिरे हुए
सुवासः	उत्तम वस्त्र पहिने
सम अलङ्कृतं	पूर्ण आभूषित
सपत्नीकं	पत्नी सहित
पुरस्कृत्य	(अनिरुद्धको) आगे करके
ययौ	(यादव) चल पड़े ॥५१॥

स्वराजधानीं समलंकृतां ध्वजैः
सतोरणैरुक्षितमार्गचत्वराम् ।
विवेश शङ्खानकदुन्दुभिस्वनै-
रभ्युद्यतः पौरसुहृद्द्विजातिभिः ॥५२॥

स्वराजधानीं समलङ्कृतां ध्वजैः सतोरणैः उक्षित मार्ग चत्वरां विवेश शङ्ख आनक दुन्दुभिः स्वनैः अभ्युद्यतः पौर सुहृत् द्विजातिभिः ॥५२॥

ध्वजैः	झण्डों
सतोरणैः	बन्दनवारोंसे
समलङ्कृता	भली प्रकार सजी
उक्षित मार्ग	सींचे मार्ग,
चत्वरां	चौराहों वाली
अभ्युद्यतः	(स्वागतार्थ) आगे आये
पौर सुहृत्	पुरवासी, सम्बन्धी,
द्विजातिभिः	ब्राह्मणों वाली
स्वराजधानीं	अपनी राजधानीमें
शङ्ख आनक	शंख, नगाड़े,
दुन्दुभिः स्वनैः	दुन्दुभी बजाते
विवेश	प्रविष्ट हुए ॥५२॥

य एवं कृष्णविजयं शंकरेण च संयुगम् ।
संस्मरेत् प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात् पराजयः ॥५३॥

यः एवं कृष्णविजयं शङ्करेण च संयुगं संस्मरेत् प्रातः उत्थाय न तस्य स्यात् पराजयः ॥५३॥

यः प्रातः	जो सवेरे
उत्थाय	उठकर
एवं	इस प्रकार
कृष्णविजयं	श्रीकृष्ण-विजय
च शंकरेण	तथा शंकरजीके साथ
संयुगं	युद्धका
संस्मरेत्	स्मरण करता है
तस्य पराजयः	उसकी पराजय
न स्यात्	नहीं होती ॥५३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽनिरुद्धानयनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

अथ चतुष्षष्टितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एकदोपवनं राजन् जग्मुर्यदुकुमारकाः ।
विहर्तुं साम्बप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥ १ ॥

एकदा उपवनं राजन् जग्मुः यदुकुमारकाः विहर्तुं साम्ब प्रद्युम्न चारुभानु गद आदयः ॥१॥

राजन्	राजन् !	**यदुकुमारकाः**	यादव कुमार
एकदा	एक बार	**विहर्तुं**	क्रीड़ा करने
साम्ब प्रद्युम्न	साम्ब, प्रद्युम्न	**उपवनं जग्मुः**	बगीचेमें गये ॥१॥
चारुभानु	चारुभानु		
गद आदयः	गद आदि		

क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वन्तः पिपासिताः ।
जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्वमद्भुतम् ॥ २ ॥

क्रीडोत्या सुचिरं तत्र विचिन्वन्तः पिपासिताः जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्व अद्भुतम् ॥२॥

तत्र सुचिरं	वहाँ बहुत देर तक	**निरुदके कूपे**	जलहीन कुएँमें
क्रीडित्वा	खेलकर	**अद्भुतं सत्त्वं**	अद्भुत प्राणी
पिपासिताः	प्यास लगने पर	**ददृशुः**	(उन्होंने) देखा ॥२॥
जलं	जल		
विचिन्वन्तः	ढूढते हुए		

कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः ।
तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रुस्ते कृपयान्विताः ॥ ३ ॥

कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मित मानसाः तस्य च उद्धरणे यत्नं चक्रु ते कृपया अन्विताः ॥३॥

गिरिनिभं	पर्वतके समान	कृपया अन्विताः	कृपा पूर्वक
कृकलासं	गिरगिटको	ते तस्य उद्धरणे	वे उसे निकालनेका
वीक्ष्य विस्मित	देखकर चकित	यत्नं च चक्रुः	प्रयत्न भी करने
मानसाः	चित्त		लगे ॥३॥

चर्मजैस्तान्तवैः पाशैर्बद्ध्वा पतितमर्भकाः ।
नाशक्नुवन् समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुकाः ॥ ४ ॥

चर्मजैः तान्तवैः पाशैः बद्ध्वा पतितं अर्भकाः न अशक्नुवन् सम उद्धर्तुं कृष्णाय आचख्युः उत्सुकाः ॥४॥

चर्मजैः तान्तवैः	चमड़ेकी तांतकी	अशक्नुवन	समर्थ नहीं हुए
पाशैः	रस्सियोंसे	उत्सुकाः	(तब) उत्सुक
पतितं बद्ध्वा	उस गिरेको बाँध-		होकर
	कर	कृष्णाय	श्रीकृष्णसे
अर्भकाः	बालक (उसे)	आचख्युः	सब बतलाया
सम उद्धर्तुं	पूरा ऊपर निका-		॥४॥
	लनेमें		

तत्रागत्यारविन्दाक्षो भगवान् विश्वभावनः ।
वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण स लीलया ॥ ५ ॥

तत्र आगत्य अरविन्द अक्षः भगवान् विश्वभावनः वीक्ष्य उज्जहार वामेन तं करेण स लीलया ॥५॥

अरविन्द अक्षः	कमल-नयन
विश्वभावनः	विश्वम्भर
भगवान्	भगवानने
तत्र आगत्य	वहाँ आकर
वीक्ष्य स	देखकर उन्होंने
लीलया तं	लीलापूर्वक उसे
वामेन करेण	बायें हाथसे
उज्जहार	ऊपर निकाल लिया

॥५॥

स उत्तमश्लोककराभिमृष्टो
विहाय सद्यः कृकलासरूपम् ।
संतप्तचामीकरचारुवर्णः
स्वर्ग्यद्भुतालंकरणाम्बरस्रक् ॥ ६ ॥

स उत्तमश्लोक कर अभिमृष्टः विहाय सद्यः कृकलास रूपं संतप्त चामीकर चारुवर्णः स्वर्ग्य अद्भुत अलङ्करण अम्बर स्रक् ॥६॥

सः उत्तमश्लोक	वह पवित्र कीर्ति
कर अभिमृष्टः	(भगवान)के कर स्पर्शसे
सद्यः कृकलास	तुरन्त गिरगिट
रूपं विहाय	रूप त्यागकर
संतप्त चामीकर	तपाये स्वर्णके समान
चारुवर्णं	सुन्दर रंगका
अद्भुत	विचित्र
अलङ्करण	आभूषण,
अम्बर स्रक्	वस्त्र-मालाधारी
स्वर्ग्यं	देवता हो गया

॥६॥

पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं
जनेषु विख्यापयितुं मुकुन्दः ।

पप्रच्छ विद्वान् अपि तत् निदानं जनेषु विख्यापयितुं मुकुन्दः

मुकुन्दः	मुकुन्दने
तत् निदानं	उसका कारण
विद्वान् अपि	जानते हुए भी
जनेषु	लोगोंमें
विख्यापयितुं	प्रसिद्ध करनेके लिए
पप्रच्छ	पूछा—

॥ श्रीभगवानुवाच ॥*

कस्त्वं महाभाग वरेण्यरूपो
देवोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥ ७ ॥

कः त्वं महाभाग वरेण्य रूपः देव उत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥७॥

महाभाग	'महाभाग	**नूनं त्वां**	निश्चय आपको (हम)
वरेण्य रूपः	चाहने योग्य रूप-वाले	**देव उत्तमं**	दैवश्रेष्ठ
त्वं कः	आप कौन हैं	**गणयामि**	मानते हैं ॥७॥

दशामिमां वा कतमेन कर्मणा
सम्प्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र ।
आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो
यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ॥ ८ ॥

दशां इमां वा कतमेन कर्मणा सम्प्रापितः अस्य अतदर्हः सुभद्र आत्मानं आख्याहि विवित्सतां नः यत् मन्यसे नः क्षमं अत्र वक्तुम् ॥८॥

सुभद्र	कल्याण रूप !	**नः विवित्सतां**	हम जानना चाहने वालोंसे
वा	अथवा	**आत्मानं**	अपना
कतमेन कर्मणा	किस कर्मसे	**आख्याहि**	परिचय दीजिए
इमां दशां	इस दशाको	**यत् अत्र नः**	यदि यहां हम लोगों को
सम्प्रापितः	प्राप्त कराये गये		
अतदर्हः	(तुम तो) इसके योग्य नहीं हो,	**वक्तुं क्षमं**	बात करने योग्य
		मन्यसे	मानते हों ॥८॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इति स्म राजा सम्पृष्टः कृष्णेनानन्तमूर्तिना ।
माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥ ९ ॥

इति स्म राजा सम्पृष्टः कृष्णेन अनन्त मूर्तिना माधवं प्रणिपत्य आह किरीटेन अर्कवर्चसा ॥९॥

अनन्त मूर्तिना	अनन्त स्वरूप	अर्कवर्चसा	सूर्यके समान तेजस्वी
कृष्णेन इति स्म	श्रीकृष्ण द्वारा इस प्रकार	किरीटेन	मुकुटसे
सम्पृष्टः	पूछे जाने पर	प्रणिपत्य	प्रणाम करके
राजा माधवं	राजा नृगने माधव को	आह	बोला ॥९॥

॥ नृग उवाच ॥

नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ।
दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥१०॥

नृगः नाम नरेन्द्रः अहं इक्ष्वाकुतनयः प्रभो दानिषु आख्याय मानेषु यदि ते कर्ण अस्पृशम् ॥१०॥

प्रभो	प्रभो !	आख्याय मानेषु	चर्चामें
अहं	मैं	यदि ते	कदाचित् आपके
इक्ष्वाकुतनयः	इक्ष्वाकुका पुत्र	कर्णं	कानोंको
नृगः नाम	नृग नामका	अस्पृशं	(मेरी चर्चाने भी)
नरेन्द्रः	राजा हूँ,		स्पर्श किया हो
दानिषु	दानियोंकी		॥१०॥

किं नु तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः ।
कालेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ॥११॥

किं नुते अविदितं नाथ सर्वभूत आत्म साक्षिणः कालेन अव्याहत दृशः वक्ष्ये अथ अपि तव आज्ञया ॥११॥

नाथ	नाथ	**नु ते किं**	भला आपसे
सर्वभूत	सब प्राणियोंके	**अविदितं**	अज्ञात है
आत्म साक्षिणः	अन्तःकरणके साक्षी	**अथ अपि**	फिर भी
कालेन	कालके द्वारा	**तव आज्ञया**	आपकी आज्ञासे
अव्याहत दृशः	अप्रतिरुद्ध दृष्टि	**वक्ष्ये**	बतलाता हूँ ॥११॥

यावत्यः सिकता भूमेर्यावत्यो दिवि तारकाः ।
यावत्यो वर्षधाराश्च तावतीरददां स्म गाः ॥१२॥

यावत्यः सिकता भूमेः यावत्य- दिवि तारकाः यावत्यः वर्षधाराः च तावतीः अददां स्म गाः ॥१२॥

यावत्यः	जितनी	**च यातत्यः**	तथा जितनी
भूमेः सिकता	पृथ्वीमें धूलि कण हैं,	**वर्षधाराः**	वर्षाकी धाराएँ हैं
यावत्यः	जितने	**तावतीः गाः**	उतनी गायें
दिवि तारकाः	आकाशमें तारा हैं	**अददां**	(मैंने) दान कीं ॥१२॥

पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूप-
गुणोपपन्नाः कपिला हेमशृङ्गीः ।
न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा
दुकूलमालाभरणा ददावहम् ॥१३॥

पयस्विनी तरुणीः शील रूप गुण उपपन्नाः कपिला हेमशृङ्गीः न्याय अर्जिता रूप्यखूराः सवत्सा दुकूल माला आभरणा ददाः अहम् ॥१३॥

पयस्विनी	दूध देने वाली	**शील रूप**	स्वभाव, रूप,
तरुणी	युवा	**गुण उपपन्ना**	गुण सम्पन्ना,

कपिला	कपिला (जिसके दूधमें घी अधिक हो)
हेमशृङ्गी	सोनेसे मढ़े सींग
रूप्यखुरा	चांदीसे मढ़े खुर
न्याय अर्जिता	न्याय पूर्वक प्राप्त की गयी
सवत्सा	बछड़ेके साथ
दुकूल माला	वस्त्र, माला
आभरणा	पहिनाकर
अहं ददाः	मैंने दान कीं ॥१३॥

स्वलंकृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः
सीदत्कुटुम्बेभ्य ऋतव्रतेभ्यः ।
तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः
प्रादां युवभ्यो द्विजपुङ्गवेभ्यः ॥१४॥

स्वलङ्कृतेभ्य गुण शीलवत्भ्यः सीदत् कुटुम्बेभ्यः ऋतव्रतेभ्यः तपः श्रुत ब्रह्मवदान्य सत्भ्यः प्रादां युवेभ्यः द्विज पुंगवेभ्यः ॥१४॥

स्वलङ्कृतेभ्यः	भली प्रकार आभूषित
गुण	गुण एवं
शीलवत्भ्यः	सदाचार सम्पन्न
सीदत्	जिनके
कुटुम्बेभ्यः	कुटुम्ब अर्थकष्ट पा रहे थे,
ऋतवेतेभ्यः	सत्यपरायण,
तपः श्रुत	तपस्वी, वेदपाठी,
ब्रह्मवदान्य	वेदाध्यापन करने वाले
सत्भ्यः	सज्जन,
युवेभ्यः	युवा
द्विज पुङ्गवेभ्यः	ब्राह्मणोत्तमोंको
प्रादां	दान कीं ॥१४॥

गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः
कन्याः सहासीस्तिलरूप्यशय्याः ।
वासांसि रत्नानि परिच्छदान् रथा-
निष्टं च यज्ञैश्चरितं च पूर्वम् ॥१५॥

गो भू हिरण्य आयतन अश्व हस्तिनः कन्याः सदासीः तिल रूप्य शय्याः वासांसि रत्नानि परिच्छदान् रथान् इष्टं च यज्ञैः चरितं च पूर्तम् ॥१५॥

गो भू हिरण्य	गायें, भूमि, सोना
आयतन	भवन,
अश्व हस्तिनः	घोड़े, हाथी,
सदासीः कन्याः	दासियोंके साथ कन्या,
तिल रूप्य	तिल, चाँदी
शय्याः	शय्या,
वासांसि रत्नानि	वस्त्र, रत्न
परिच्छदान्	अन्य सामग्री,
रथान्	रथ (दान किये)
च यज्ञैः इष्टं	तथा यज्ञसे इष्ट कर्म
च पूर्तं	तथा पूर्त कर्म (कुआं आदि बनवाना)
चरितं	(मैंने) किये ॥१५॥

कस्यचिद् द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने ।
सम्पृक्ताविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥१६॥

कस्यचित् द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौः मम गोधने सम्पृक्ता अविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥१६॥

कस्यचित्	किसी
द्विजमुख्यस्य	ब्राह्मण प्रमुखकी
भ्रष्टा गौः	बिछुड़ी गाय
मम गोधने	मेरी गायोंमें
सम्पृक्ता	मिल गयी
अविदुषा	(यह) न जानने वाले
मया सा च	मेरे द्वारा वह भी
द्विजातये दत्ता	ब्राह्मणको दे दी गयी ॥१६॥

तां नीयमानां तत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम् ।
ममेति प्रतिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ॥१७॥

तां नीयमानां तत् स्वामी दृष्ट्वा उवाच मम इति तं मम इति प्रतिग्राह्य आह नृगः मे दत्तवान् इति ॥१७॥

तां नीयमानां	उसे ले जाते समय
तत् स्वामी	उसके स्वामीने
दृष्ट्वा	देखकर
उवाच मम इति	कहा—'यह मेरी हैं' इस प्रकार
तं प्रतिग्राह्य	उससे दान लेने वालेने
इति आह	ऐसा कहा
मे नृगः दत्वान्	'मुझे नृगने दिया है
इति मम	इसलिए मेरी है ॥१७॥

विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ ।
भवान् दातापहर्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद् भ्रमः ॥१८॥

विप्रौ विवदमानौ मां उचतुः स्वार्थसाधकौ भवान् दाता अपहर्ता इति तत् श्रुत्वा मे अभवत् भ्रमः ॥१८॥

स्वार्थसाधकौ	अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाले
विवदमानौ	परस्पर विवाद करने वाले
विप्रौ मां	ब्राह्मणोंने मुझसे
उचतुः	कहा—
भवान्	'आप (इस गौको)
दाता	देने वाले हैं ?
इति अपहर्ता	(दूसरेने कहा) 'इस प्रकार (मेरी गौ) अपहरण करने वाले हैं ?
तत् श्रुत्वा	यह सुनकर
मे भ्रमः	मुझे भ्रम
अभवत्	हो गया ॥१८॥

अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै ।
गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम् ॥१९॥

अनुनीतः उभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्र गतेन मे गवां लक्ष प्रकृष्टानां दास्यामि एषा प्रदीयताम् ॥१९॥

उभौ विप्रौ	दोनों ब्राह्मणोंकी
धर्मकृच्छ्र	धर्म संकटमें
गतेन मे	पड़े हुए मैंने
अनुनीतः	अनुनय की

प्रकृष्टानां	अत्युत्तम	एष प्रदीयतां	इसे दे दीजिए
लक्ष गवां	एक लाख गायें		॥१९॥
दास्यामि	दूंगा		

भवन्तावनुगृह्णीतां किंकरस्याविजानतः ।
समुद्धरत मां कृच्छ्रात् पतन्तं निरयेऽशुचौ ॥२०॥

भवन्ताः अनुगृह्णीतां किंकरस्य अविजानतः समुद्धरत मां कृच्छ्रात् पतन्तं निरये अशुचौ ॥२०॥

अविजानतः	अनजानमें (अपराध करने वाले)	अनुगृह्णतां	अनुग्रह करें
		अशुचौ निरये	अपवित्र नरकमें
किंकरस्य	अपने (इस) सेवक पर	पतन्तं मां	गिरते हुए मेरा
		कृच्छ्रात्	इस संकटसे
भवन्ताः	आप दोनों	समुद्धरत	उद्धार करें ॥२०॥

नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् ।
नान्यद् गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ ॥२१॥

न अहं प्रति इच्छे वै राजन् इति उक्त्वा स्वामि अपाक्रमत् न अन्यत् गवां अपि अयुतं इच्छामि इति अपरः ययौ ॥२१॥

वै राजन्	'निश्चय राजन् !	अन्यत् गवां	'दूसरीं गायें
अहं प्रति	मैं (इसके) बदलेमें	अयुतं अपि न	दस हजार भी नहीं
न इच्छे	कुछ नहीं चाहता		'(लूंगा)'
इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	इति अपरः ययौ	ऐसा कहकर दूसरा
स्वामि	(उस गौका) स्वामी		भी चला गया
अपाक्रमत्	चला गया		॥२१॥

एतस्मिन्नन्तरे याम्यैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् ।
यमेन पृष्टस्तत्राहं देवदेव जगत्पते ॥२२॥

एतस्मिन् अन्तरे याम्यैः दूतैः नीतः यमक्षयं यमेन पृष्टः तत्र अहं देवदेव जगत्पते ॥२२॥

देवदेव	देवाधिदेव !	**यमक्षयं नीतः**	यमलोक ले जाये जाने पर
जगत्पते	जगदीश्वर !	**यमेन तत्र**	यमराज द्वारा वहाँ
एतस्मिन्	इसी	**अहं पृष्टः**	मुझसे पूछा गया ॥२२॥
अन्तरे	बीचमें		
याम्यैः दूतैः	यमदूतों द्वारा		

पूर्वं त्वमशुभं भुङ्क्षे उताहो नृपते शुभम् ।
नान्तं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ॥२३॥

पूर्वं त्वं अशुभं भुङ्क्षे उत अहो नृपते शुभं न अन्तं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ॥२३॥

नृपते त्वं पूर्वं	'राजन् ! तुम पहिले	**भास्वतः**	तेजोमय
अशुभं भुङ्क्षे	पाप कर्मोंका फल भोगोगे	**लोकस्य**	लोक दिलाने वाले
उत अहो शुभं	अथवा तो पुण्य कर्मोंका	**दानस्य धर्मस्य**	(तुम्हारे) दान और धर्मका
		अन्तं न पश्ये	अन्त (मुझे) नहीं दीखता है ॥२३॥

पूर्वं देवाशुभं भुञ्ज इति प्राह पतेति सः ।
तावदद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन् प्रभो ॥२४॥

पूर्वं देव अशुभं भुञ्ज इति प्राह पत इति सः तावत् अद्राक्षं आत्मानं कृकलासं पतन् प्रभो ॥२४॥

प्रभो	प्रभो !		पहिले
देव पूर्वं	(मैंने कहा) 'देव	**अशुभं भुञ्ज**	पाप कर्म भोगूंगा

इति सः प्राह	ऐसा कहने पर वे बोले—	**आत्मानं**	(मैंने) अपना शरीर
इदि पत	'ऐसा है तो गिरो !'	**कृकलासं**	गिरगिटका
तावत् पतन्	उसी समय गिरते हुए	**अद्राक्षं**	देखा ॥२४॥

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव ।
स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्संदर्शनार्थिनः ॥२५॥

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव स्मृतिः न अद्य अपि विध्वस्ता भवत् सन्दर्शन अर्थिनः ॥२५॥

केशव	केशव !	**अर्थिनः**	चाहने वालेकी
ब्रह्मण्यस्य	ब्राह्मण भक्त,	**अद्य अपि**	अब तक भी
वदान्यस्य	दानी,	**स्मृतिः**	स्मृति
तव दासस्य	आपके दास	**विध्वस्तां न**	नष्ट नहीं हुई है ॥२५॥
भवत् सन्दर्शन	आपका दर्शन		

स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा
योगेश्वरैः श्रुतिदृशामलहृद्विभाव्यः ।
साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्धबुद्धेः
स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवापवर्गः ॥२६॥

स त्वं कथं मम विभो अक्षिपथः परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदृश अमल हृदि विभाव्यः साक्षात् अधोक्षज उरु व्यसन अन्धबुद्धेः स्यात् मे अनुदृश्य इह यस्य भव अपवर्गः ॥२६॥

श्रुतिदृश अमल	श्रुतिदर्शी निर्मल	**स त्वं साक्षात्**	वे आप साक्षात्
योगेश्वरैः	योगेश्वरों द्वारा	**परात्मा**	परमात्मा
हृदि विभाव्यः	जिनकी हृदयमें भावना की जाती है	**इह यस्य**	इस लोकमें जिसकी

भव अपवर्गः	संसारसे मुक्ति होने वाली होती है	अन्धबुद्धेः	अन्धी बुद्धि वाले
अनुदृश्य	उसे दर्शन देने वाले	मे अक्षिपथः	मेरे नेत्रोंके सामने
उरु व्यसन	अनेक व्यसनोंसे	कथं स्यात्	कैसे आ गये ॥२६॥

देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम ।
नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥२७॥

देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम नारायण हृषिकेश पुण्यश्लोक अच्युत अव्यय ॥२७॥

देवदेव	देवदेवेश्वर !	पुण्यश्लोक	पवित्र कीर्ति !
जगन्नाथ	जगन्नाथ !	अव्यय	अविनाशी
गोविन्द	गोविन्द !	अच्युत	अच्युत ! ॥२७॥
पुरुषोत्तम	पुरुषोत्तम !		
नारायण	नारायण !		
हृषीकेश	हृषीकेश !		

अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो ।
यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥२८॥

अनुजानी हि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं विभो यत्र क्व अपि सतः चेतः भूयात् मे त्वत् पद आस्पदम् ॥२८॥

विभो कृष्ण	प्रभो ! कृष्ण !	चेतः त्वत् पद	(मेरा) चित्त आपके चरणोंमें
देवगतिं यान्तं	देवलोक जा रहा हूँ	आस्पदं भूयात्	लगा रहे ॥२८॥
मां अनुजानी	मुझे अनुमति		
हि	दीजिए		
यत्र क्व	चाहे जहां कहीं		
अपि सतः	भी रहना हो		

नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥२९॥

नमः ते सर्वभावाय ब्रह्मणे अनन्तशक्तये कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥२९॥

सर्वभावाय	सब प्राणि-पदार्थ रूप	**कृष्णाय**	श्रीकृष्ण,
अनन्तशक्तये	अनन्त शक्ति	**वासुदेवाय**	वासुदेव
ब्रह्मणे ते नमः	आप परम ब्रह्मको नमस्कार	**योगानां पतये**	योगेश्वरको
		नमः	नमस्कार ॥२९॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना ।
अनुज्ञातो विमानाग्र्यमारुहत् पश्यतां नृणाम् ॥३०॥

इति उक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना अनुज्ञातः विमान अग्र्यं आरुहत् पश्यतां नृणाम् ॥३०॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	**अनुज्ञातः**	अनुमति पाकर
तं परिक्रम्य	उनकी परिक्रमा करके	**नृणां पश्यतां**	लोगोंके देखते हुए
स्वमौलिना	अपने मस्तकसे	**विमान अग्र्यं**	श्रेष्ठ विमान पर
पादौ स्पृष्ट्वा	(उनके) चरण-स्पर्श करके	**आरुहत्**	चढ़ गया ॥३०॥

कृष्णः परिजनं प्राह भगवान् देवकीसुतः ।
ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥३१॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

कृष्णः परिजनं प्राह भगवान् देवकीसुतः ब्रह्मण्यदेवः धर्मात्मा राजन्यान् अनुशिक्षयन् ॥३१॥

राजन्यान्	राजकुमारोंको
अनुशिक्षयन्	शिक्षा देते हुए
ब्रह्मण्य देवः	ब्राह्मणोंको देवता माननेवाले
धर्मात्मा	धर्मात्मा
देवकी सुतः	देवकीनन्दन
भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्णने
परिजनं प्राह	अपने कुटुम्बियोंसे कहा ॥३१॥

श्री भगवानुवाच–*

दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि ।
तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वरमानिनाम् ॥३२॥

दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तं अग्नेः मनाक् अपि तेजोयसः अपि किं उत राज्ञां ईश्वर मानिनाम् ॥३२॥

बत ब्रह्मस्वं	अहो, ब्राह्मणका धन
अग्नेः अपि	अग्निके समान भी
तेजीयसः	तेजस्वीके लिए
मनाक् अपि	तनिक-सा भी
भुक्तं	खानेपर
दुर्जरं	दुष्पाच्य है
उत ईश्वर	फिर अपनेको समर्थ
मानिनां	माननेवाले
राज्ञां किं	राजाओंकी क्या चर्चा ॥३२॥

नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ।
ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥३३॥

न अहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं न अस्य प्रतिविधि भुवि ॥३३॥

यस्य प्रतिक्रिया	जिसका प्रतिकार (सम्भव) है
हालाहलं	उस हलाहलको
अहं विषं न मन्ये	मैं विष नहीं मानता

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

हि ब्रह्मस्वं	क्योंकि ब्राह्मणका धन	प्रतिविधिः	प्रतिकार
विषं प्रोक्तं	विष कहा गया है	भुवि न	पृथ्वीपर नहीं है ॥३३॥
अस्य	इसका		

हिनस्ति विषमत्तारं बह्निरद्भिः प्रशाम्यति ।
कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥३४॥

हिनस्ति विषं अत्तारं वह्निः अद्भिः प्रशाम्यति कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्व अरणि पावकः ॥३४॥

विषं अत्तारं	विष (केवल) खाने वालेको	ब्रह्मस्व अरणि	ब्राह्मणके धनरूपी अरणिसे
हिनस्ति	मारता है	पावकः समूलं	(उत्पन्न) अग्नि जड़के साथ
वह्निः अद्भिः	अग्नि (लगी हो तो) जलसे	कुलं दहति	पूरे कुलको जला देता है ॥३४॥
प्रशाम्यति	शान्त हो जाता है, किन्तु		

ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरुषम् ।
प्रसह्य तु बलाद् भुक्तं दश पूर्वान् दशापरान् ॥३५॥

ब्रह्मस्वं दुः अनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरुषं प्रसह्य तु बलात् भुङ्क्तं दश पुर्वान् दश अपरान् ॥३५॥

दुः अनुज्ञातं	दुष्टतापूर्वक (छल-से) अनुमति लेकर	भुङ्क्तं तु	भोगनेपर तो
ब्रह्मस्वं भुक्तं	ब्राह्मणका धन खानेपर	दश पूर्वान्	दस पीढ़ी पहिलेकी
त्रिपूरुषं	तीन पीढ़ीको और	दश अपरान्	दस पीढ़ी पीछेकी
प्रसह्य बलात्	हठपूर्वक बलात्कारसे	हन्ति	नष्ट करता है ॥३५॥

राजानो राजलक्ष्म्यान्धा नात्मपातं विचक्षते ।
निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥३६॥

राजानः राजलक्ष्मि अन्धा न आत्मपातं विचक्षते निरयं ये अभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥३६॥

राजलक्ष्मि	राजलक्ष्मीसे	**आत्मपातं**	अपना गिरना
अन्धा	अन्धे हुए	**न विचक्षते**	नहीं देखते
बालिशाः	मूर्ख	**ये ब्रह्मस्वं**	जो ब्राह्मणके धनको
राजानः	राजा लोग	**साधु**	अच्छा
निरयं	नरकमें	**अभिमन्यन्ते**	समझते हैं ॥३६॥

गृह्णन्ति यावतः पांसून् क्रन्दतामश्रुबिन्दवः ।
विप्राणां हृतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुम्बिनाम् ॥३७॥

गृह्णन्ति यावतः पांसून् क्रन्दतां अश्रुबिन्दवः विप्राणां हृतवृतीनां वदान्यानां कुटुम्बिनां ॥३७॥

वदान्यानां	उदार,	**विप्राणां**	ब्राह्मणोंकी
कुटुम्बिनां	कुटुम्बवाले	**अश्रुबिन्दवः**	आंसुओंकी बूँदें
हृतवृत्तीनां	आजीविका छीने गये	**यावतः पांसून् गृह्णन्ति**	जितने धूलिकण पकड़ (भिगा) लेती हैं ॥३७॥
क्रन्दतां	बिलखते		

राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दान्निरंकुशाः ।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः ॥३८॥

राजानः राजकुल्याः च तावतः अब्दान् निरंकुशाः कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदाय अपहारिणः ॥३८॥

तावतः च	उतने ही वर्ष	**राजानः च**	राजा तथा
अब्दान्	तक	**राजकुल्या**	राजकुलके लोग
ब्रह्मदाय	ब्राह्मणके स्वत्वका	**कुम्भीपाकेषु**	कुम्भीपाक नरकमें
अपहारिणः	अपहरण करनेवाले	**पच्यन्ते**	पकाये जाते हैं ॥३८॥
निरंकुशाः	उच्छृंखल		

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः ॥३९॥

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत् च यः षष्टि वर्षसहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः ॥३९॥

स्वदत्तां	अपनी दी हुई	**षष्टि**	साठ
वा परदत्तां	अथवा दूसरेकी दी हुई	**वर्षसहस्राणि**	सहस्र वर्ष तक
ब्रह्मवृत्तिं	ब्राह्मणकी आजी-विकाका	**विष्टायांकृमिः**	विष्ठामें क्रीड़ा होकर
यः च हरेत्	जो भी हरण करता है (वह)	**जायते**	उत्पन्न होता है ॥३९॥

न मे ब्रह्मधनं भूयाद् यद् गृद्ध्वाल्पायुषो नराः ।
पराजिताश्च्युताराज्याद् भवन्त्युद्वेजिनोऽहयः ॥४०॥

न मे ब्रह्मधनं भूयात् यत् गृद्ध्वा अल्पायुषः नराः पराजिताः च्युता राज्यात् भवन्ति उद्वेजिनः अहयः ॥४०॥

मे ब्रह्मधनं	मुझे ब्राह्मणका धन	**राज्यात् च्युता**	राज्य भ्रष्ट एवं
न भूयात्	न प्राप्त हो,	**उद्वेजिनः**	(दूसरोंको) उद्विग्न करनेवाले
यत् गृद्ध्वा	जिसका लोभ करके	**अहयः भवन्ति**	सर्प होते हैं ॥४०॥
नराः अल्पायुषः	मनुष्य अल्पायु,		
पराजिताः	पराजित,		

विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः ।
घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥४१॥

विप्रं कृत आगसं अपि न एव द्रुह्यत मामकाः घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमः कुरुत नित्यशः ॥४१॥

मामकाः	मेरे सुहृदो !	**अपि**	भी
कृत आगसं	अपराध करनेपर	**विप्रं**	ब्राह्मणसे

न एव दुह्यत	शत्रुता नहीं ही करना,	**नित्यशः**	को भी सदा
घ्नन्तं वा	मारते या	**नमः कुरुत**	नमस्कार ही करो ॥४१॥
बहु शपन्तं	बहुत गाली देते		

यथाहं प्रणमे विप्राननुक्कालं समाहितः ।
तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दण्डभाक् ॥४२॥

यथा अहं प्रणमे विप्रान् अनुक्कालं सम आहितः तथा नमत यूयं च यः अन्यथा मे स दण्डभाक् ॥४२॥

यथा अहं	जैसे मैं	**नमत यः**	प्रणाम करो, जो
अनुक्कालं	प्रत्येक समय	**अन्यथा**	इसके विपरीत करेगा
सम आहितः	भली प्रकार एकाग्र होकर	**स मे दण्डभाक्**	वह मुझसे दण्ड पाने योग्य होगा ॥४२॥
विप्रान् प्रणमे	ब्राह्मणोंको प्रणाम करता हूँ		
तथा यूयं च	वैसे ही तुम लोग भी		

ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः ।
अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥४३॥

ब्राह्मण अर्थः हि उपहृतः हर्तारं पातयति अधः अजानन्तं अपि हिएनं नृगं ब्राह्मण गौः इव ॥४३॥

ब्राह्मण अर्थः	ब्राह्मणका धन	**अजानन्तं अपि**	न जानते हुए भी
हि उपहृतः	क्योंकि छीने जाने पर	**एनं नृगं**	इस नृगको
हर्तारं अधः	छीनने वालेको	**ब्राह्मण**	ब्राह्मणकी
पातयति हि	नीचे गिराता ही है	**गौ इव**	गायके समान ॥४३॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

एवं विश्राव्य भगवान् मुकुन्दो द्वारकौकसः ।
पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥४४॥

एवं विश्राव्य भगवान् मुकुन्दः द्वारकौकसः पावनः सर्वलोकानां विवेश निज मन्दिरम् ॥४४॥

सर्वलोकानां	सब लोकोंको	**एवं विश्राव्य**	इस प्रकार उपदेश सुनाकर
पावनः	पवित्र करने वाले		
भगवान् मुकुन्दः	भगवान मुकुन्द	**निज मन्दिरं**	अपने भवन
द्वारकौकसः	द्वारिकावासियोंको	**विवेश**	चले गये ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे नृगोपाख्यानं नाम चतुष्षष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अथ पंचषष्टितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान् रथमास्थितः ।
सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥

बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान् रथं आस्थितः सुहृद् दिदृक्षुः उत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥१॥

कुरुश्रेष्ठ	कुरुश्रेष्ठ !	**उत्कण्ठः**	उत्सुक होकर
भगवान्	भगवान	**नन्दगोकुलं**	नन्दजीके गोकुल
बलभद्रः	बलराम	**रथं आस्थितः**	रथ पर बैठकर
सुहृत् दिदृक्षुः	सुहृदोंको देखनेके लिए	**प्रययौ**	गये ॥१॥

परिष्वक्तश्चिरोत्कण्ठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च ।
रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनन्दितः ॥ २ ॥

परिष्वक्तः चिर उत्कण्ठैः गोपैः गोपीभिः एव च रामः अभिवाद्य पितराः आशीः भिः अभिनन्दितः ॥२॥

चिर उत्कण्ठैः	बहुत समयसे उत्सुक	**अभिवाद्य**	प्रणाम किया
गोपैः च	गोपों तथा	**आशीः भिः**	(उनसे) आशीर्वाद द्वारा
गोपीभिः एव	गोपियों द्वारा भी		
परिष्वक्तः	आलिंगत हुए	**अभिनन्दितः**	अभिनन्दित हुए ॥२॥
रामः पितराः	बलरामजीने माता-पिताको		

चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजो जगदीश्वरः ।
इत्यारोप्याङ्कमालिङ्ग्य नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः ॥ ३ ॥

चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजः जगदीश्वरः इति आरोप्य अङ्कम् आलिङ्ग्य नेत्रैः सिषिचतुः जलैः ॥३॥

दाशार्ह	दाशार्ह !	**इति**	इस प्रकार
जगदीश्वरः	जगदीश्वर !	**आरोप्य अङ्कम्**	करकर गोदमें बैठाकर
सानुजः नः	छोटे भाईके साथ हमारी	**आलिग्य**	आलिगन करके
चिरं पाहि	चिर काल तक रक्षा करो'	**नेत्रैः जलैः**	नेत्राश्रुओंसे
		सिषिचतुः	भिगोने लगे ॥३॥

गोपवृद्धांश्च विधिवद् यविष्ठैरभिवन्दितः ।
यथावयो यथासख्यं यथासम्बन्धमात्मनः ॥ ४ ॥

गोपवृद्धान् च विधिवत् यविष्ठैः अभिवन्दितः यथावयः यथासख्यं यथासम्बन्धम् आत्मनः ॥४॥

गोपवृद्धान्	बड़े गोपोंसे	**विधिवत**	विधि पूर्वक
च यविष्ठैः	तथा छोटोंसे	**अभिवन्दितः**	प्रणमित हुए ॥४॥
यथावयः	आयुके अनुसार		
यथा सख्यं	मित्रताके अनुसार		
आत्मनः	अपने		
यथा सम्बन्धं	सम्बन्धके अनुसार		

समुपेत्याथ गोपालान् हास्यहस्तग्रहादिभिः ।
विश्रान्तं सुखमासीनं पप्रच्छुः पर्युपागताः ॥ ५ ॥

सम उपेत्य अथ गोपालान् हास्य हस्तग्रह आदिभिः विश्रान्तं सुखं आसीनं पप्रच्छुः परि उपागताः ॥५॥

अथ गोपालान्	फिर गोपकुमारोंके
सम उपेत्य	समीप जाकर
हास्य हस्तग्रह	हँसी, हाथ पकड़ना
आदिभिः	आदि द्वारा (उनका सत्कार किया)
विश्रन्तं	विश्राम कर लेने पर
सुखं आसीनं	सुख पूर्वक बैठ जाने पर
परि उपागताः	चारो ओरसे आये
पप्रच्छुः	(सखाओंने) पूछा ॥५॥

पृष्टाश्चानामयं स्वेषु प्रेमगद्गदया गिरा ।
कृष्णे कमलपत्राक्षे संन्यस्ताखिलराधसः ॥ ६ ॥

पृष्टः च अनामयं स्वेषु प्रेम गद् गदया गिरा कृष्णे कमलपत्र अक्षे सन्यस्त अखिल राधसः ॥६॥

प्रेम	प्रेम
गद् गदया गिरा	गद्गद् वाणीसे
स्वेषु अनामयं	अपनोंका स्वास्थ्य
पृष्टाः	प्रश्न करके
च कमल पत्र	तथा कमल-दल
अक्षे	लोचन
कृष्णे	श्रीकृष्णके लिए
अखिल राधसः	सम्पूर्ण भोग
सन्यस्त	त्यागे हुए (उन लोगोंने) ॥६॥

कच्चिन्नो बान्धवा राम सर्वे कुशलमासते ।
कच्चित् स्मरथ नो राम यूयं दारसुतान्विताः ॥ ७ ॥

कच्चित् नः बान्धवा रामः सर्वे कुशलं आसते कच्चित् स्मरथ नः राम यूयं दार सुत अन्विताः ॥७॥

रामः कच्चित्	(पूछा)— 'बलराम जी ! क्या
नः बान्धवाः	हमारे बन्धु-बान्धव
सर्वे कुशलं आसते	सब कुशल हैं ?

राम यूयं	बलरामजी आप लोग	**कच्चित् नः स्मरथ**	क्या हम लोगोंका स्मरण करते हो ॥७॥
दार सुत अन्विताः	(अब) स्त्री-पुत्र वाले होकर		

दिष्ट्या कंसो हतः पापो दिष्ट्या मुक्ताः सुहृज्जनाः ।
निहत्य निर्जित्य रिपून् दिष्ट्यादुर्गं समाश्रिताः ॥ ८ ॥

दिष्ट्या कंसः हतः पापः दिष्ट्या मुक्तः सुहृत् जनाः निहत्य निर्जित्य रिपून् दिष्ट्या दुर्गं सम आश्रिताः ॥८॥

दिष्ट्या	सौभाग्यसे	**रिपून् निहत्य**	शत्रुओंको मारकर
कंसः हतः	कंस मारा गया	**निर्जित्य**	या जीतकर
दिष्ट्या	सौभाग्य वश	**दिष्ट्या दुर्गं**	सौभाग्यवश दुर्गम स्थलमें
सुहृत् जनाः	सुहृत् लोग	**सम आश्रिताः**	भली प्रकार रहने लगे ॥८॥
मुक्तः	(बन्धनसे) छूटे और		

गोप्यो हसन्त्यः पप्रच्छू रामसंदर्शनाहृताः ।
कच्चिदास्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्रीजनवल्लभः ॥ ९ ॥

गोप्यः हसन्त्यः पप्रच्छू राम सन्दर्शन आहृताः कच्चित् आस्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्रीजन वल्लभः ॥९॥

हसन्त्यः	हंसजी हुई	**वल्लभः कृष्णः**	प्रियतम श्रीकृष्ण
गोप्यः पप्रच्छुः	गोपियोंने पूछा	**कच्चित्**	क्या
राम	'बलरामजी !	**सुखं आस्ते**	सुखपूर्वक हैं ॥९॥
पुरस्त्रीजन	नगरकी नारियोंके		

कच्चित् स्मरति वा बन्धून् पितरं मातरं च सः ।
अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ।
अपि वा स्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥१०॥

कच्चित् स्मरति वा बन्धून् पितरं मातरं च सः अपि असौ मातरं द्रष्टुं सकृत् अपि आगमिष्यति अपि वा स्मरते अस्माकं अनु सेवां महाभुजः ॥१०॥

कच्चित् सः	क्या वे
मातरं पितरं	माता-पिता
वा बन्धून्	या सखाओंको
स्मरति	स्मरण करते है ?
सकृत् अपि	एक बार भी
मातरं द्रष्टुं	माताका दर्शन करने
असौ	ये
आगमिष्यति	आवेंगे ?
महाभुजः	वे विशाल बाहु
अस्माकं	हम लोगोंकी
अनु सेवां	बराबर की गयी सेवाओंको
अपि वा स्मरते	क्या कभी स्मरण करते हैं ? ॥१०॥

मातरं पितरं भ्रातॄन् पतीन् पुत्रान् स्वसॄरपि ।
यदर्थे जहिम दाशार्ह दुस्त्यजान् स्वजनान् प्रभो ॥११॥

मातरं पितरं भ्रातॄन् पतीन् पुत्रान् स्वसृः अपि यत् अर्थे जहिम दाशार्ह दुस्त्यजान् स्वजनान् प्रभो ॥११॥

प्रभो दाशार्ह	प्रभो ! दाशार्ह !
यत् अर्थे	जिनके लिए
दुस्त्यजान्	दुस्त्याज्य
स्वजनान्	स्वजन
मातरं पितरं	माता-पिता
भ्रातॄन् पतीन्	भाई, पति,
पुत्रान्	पुत्र,
स्वसृः अपि	बहिनको भी
जहिम	हमने त्याग दिया ॥११॥

ता नः सद्यः परित्यज्य गतः संछिन्नसौहृदः ।
कथं नु तादृशं स्त्रीभिर्न श्रद्धीयेत भाषितम् ॥१२॥

ता नः सद्यः परित्यज्य गतः संछिन्न सौहृदः कथं नु तादृशं स्त्रीभिः श्रद्धीयेत भषितम् ॥१२॥

संछिन्न सौहृदः	स्नेह बन्धनको काटकर
ता नः सद्यः	इन हमको तत्काल
परित्यज्य	त्याग करके
गतः	चले गये
तादृशं	इस प्रकारके
भाषितं	(उनके) वचनों पर
नु कथं स्त्रीभिः	भला कैसे स्त्रियों द्वारा
श्रद्धीयेत	विश्वास किया जाता होगा ॥१२॥

कथं नु गृह्णन्त्यनवस्थितात्मनो
वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः ।
गृह्णन्ति वै चित्रकथस्य सुन्दर-
स्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥१३॥

कथं नु गृह्णन्ति अनवस्थित आत्मनः वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः गृह्णन्ति वै चित्रकथस्य सुन्दर स्मित अवलोक उच्छ्वसित स्मर आतुराः ॥१३॥

अनवस्थित	अस्थिर
आत्मनः	चित्त
कृतघ्नस्य	(उन) कृतघ्नकी
वचः बुधाः	बातको बुद्धिमती
पुरस्त्रियः	नगरकी नारियाँ
नु	भला
कथं गृह्णन्ति	कैसे मानती होंगीं
वै चित्रकथस्य	निश्चय विचित्र बातें करने वाले
सुन्दर स्मित	(उन) सुन्दरके मुस्कान युक्त
अवलोक	देखनेसे
उच्छ्वसित स्मर	बढ़े कामवेगसे
आतुराः	व्याकुल होकर
गृह्णन्ति	मानती होंगी ॥१३॥

किं नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयतापराः ।
यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः ॥१४॥

किं नः तत् कथया गोप्यः कथाः कथयत अपराः याति अस्माभिः विना कालः यदि तस्य तथा एव तः ॥१४॥

गोप्यः	अरी गोपियो !	**तस्य याति**	उनका बीतता है
तत् कथया	उनकी चर्चासे		तो
नः किं	हमें क्या (लाभ)	**तथा एव**	वैसे ही
अपराः कथाः	(कोई) दूसरी चर्चा	**नः**	हमारा भी (बीत
कथयत	कहो,		ही रहा है)'
यदि अस्माभिः	यदि हमलोगोंके		॥१४॥
बिना कालः	बिना समय		

इति प्रहसितं शौरेर्जल्पितं चारु वीक्षितम् ।
गतिं प्रेमपरिष्वङ्गं स्मरन्त्यो रुरुदुः स्त्रियः ॥१५॥

इति प्रहसितं शौरेः जल्पितं चारु वीक्षितं गतिं प्रेम परिष्वङ्गम् स्मरन्त्यः रुरुदुः स्त्रियः ॥१५॥

इति शौरेः	इस प्रकार (कहकर) श्रीकृष्णकी	**गतिं**	चाल,
		प्रेम परिष्वङ्गम्	प्रेमालिंगनको
प्रहसितं	हंसी,	**स्मरन्त्यः**	स्मरण करती हुई
जल्पितं	बातचीत,	**स्त्रियः रुरुदुः**	स्त्रियां रोने लगीं
चारु वीक्षितं	सुन्दर अवलोकन,		॥१५॥

संकर्षणस्ताः कृष्णस्य संदेशैर्हृदयंगमैः ।
सान्त्वयामास भगवान् नानानुनयकोविदः ॥१६॥

सङ्कर्षणः ताः कृष्णस्य सन्देशैः हृदयङ्गमैः सान्त्वयामास भगवान् नाना अनुनय कोविदः ॥१६॥

नाना	अनेक प्रकारसे	**कृष्णस्य सन्देशैः**	श्रीकृष्णके सन्देशों से
अनुनय	अनुनय	**ताः**	उनको
कोविदः	विनयमें निपुण	**सान्त्वयामास**	सान्त्वना दी
भगवान्	भगवान		॥१६॥
सङ्कर्षणः	बलरामने		
हृदयङ्गमैः	मर्मस्पर्शी		

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च ।
रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिमावहन् ॥१७॥

द्वौ मासौ तत्र च अवात्सीत् मधुं माधवं एव च रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिं अवहन् ॥१७॥

भगवान् रामः	भगवान् बलराम	तत्र द्वौ मासौ	वहां दो महीने
गोपीनां	गोपियोंका	मधुं च माधवं	चैत्र और बैशाख
क्षपासु	रात्रियोंमें	एव च	में भी
रतिं अवहन्	प्रेमवर्धन करते हुए	अवात्सीत्	बसे रहे ॥१७॥

पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगन्धवायुना ।
यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥१८॥

पूर्ण चन्द्रकला मृष्टे कौमुदी गन्धवायुना यमुना उपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैः वृतः ॥१८॥

पूर्ण चन्द्रकला	पूर्णिमाकी चन्द्रकला से	स्त्रीगणैः वृतः सेविते रेमे	स्त्रियोंसे घिरे (उनसे)सेवित विहार करते रहे ॥१८॥
मृष्टे कौमुदी	उज्जवल ज्योत्स्ना में		
गन्धवायुना	सुगन्धित वायु वाले		
यमुना उपवने	यमुना तटके उपवनमें		

वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात् ।
पतन्ती तद् वनं सर्वं स्वगन्धेनाध्यवासयत् ॥१९॥

वरुण प्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात् पतन्ती तत् वनं सर्वं स्वगन्धेन अध्यवासयत् ॥१९॥

वरुण प्रेषिता	वरुण देवकी भेजी	**तत् सर्वं वनं**	उस समूचे वनको
देवी वारुणी	देवी वारुणीने	**स्वगन्धेन**	अपनी गन्धसे
वृक्षकोटरात्	वृक्षके खोखलेसे	**अध्यवासयत्**	सुगन्धित कर दिया
पतन्ती	गिरते हुए		॥१९॥

तं गन्धं मधुधारायो वायुनोपहृतं बलः ।
आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥२०॥

तं गन्धं मधुधारायो वायुना उपहृतं बलः आघ्राय उपगतः तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥२०॥

वायुना उपहृतं	वायु द्वारा लायी गयी	**बलः**	बलरामजी
मधुधारायो	मधुधारकी	**ललनाभिः समं**	सुन्दरियोंके साथ
तं गन्धं आघ्राय	उस गन्धको सूँघ-कर	**तत्र उपगतः**	वहां जाकर
		पपौ	पिया ॥२०॥

उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः ।
वनेषु व्यचरत् क्षीबो मदविह्वललोचनः ॥२१॥

उपगीयमान चरितः वनिताभिः हल आयुधः वनेषु व्यचरत् क्षीबः मदविह्वल लोचनः ॥२१॥

वनिताभिः	स्त्रियों द्वारा	**लोचनः क्षीबः**	नेत्र, मतवालेसे
चरितः	सुयश	**हल आयुधः**	श्रीहलधर
उपगीयमान	गाये जाते हुए	**वनेषु व्यचरत्**	वनोंमें घूमने लगे
मदविह्वल	मदसे चञ्चल		॥२१॥

स्रग्व्येककुण्डलो मत्तो वैजयन्त्या च मालया ।
बिभ्रत् स्मितमुखाम्भोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ॥२२॥

स्रक् एक कुण्डलः मत्तः वैजयन्त्या च मालया बिभ्रत् स्मित मुखाम्भोजं स्वेद प्रालेय भूषितम् ॥२१॥

स्रक्	माला
एक कुण्डलः	एक कुण्डल
च वैजयन्त्या	तथा वैजयन्ती
मालया	माला
बिभ्रत् मत्तः	धारण किये आनन्दोत्मत्त
स्वेद प्रालेय	स्वेदरूप तुषार कणों से
भूषितं	भूषित
स्मितः	मुस्कराहट युक्त
मुखाम्भोजम्	कमल-मुख वाले ॥२२॥

स आजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः ।
निजं वाक्यमनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः ।
अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह ॥२३॥

स आजुहाव यमुनां जलक्रीडा अर्थं ईश्वरः निजं वाक्यं अन आदृत्य मत्त इति आपगां बलः अनागतां हल अग्रेण कुपितः विचकर्ष ह ॥२३॥

स ईश्वरः	उन सर्वसमर्थने
जलक्रीडा अर्थं	जल क्रीड़ाके लिए
यमुनां	यमुनाको
आजुहाव	पुकारा
मत्त इति	ये मतवाले हैं' ऐसा मानकर
निजं वाक्यं	अपनी बातका
अन आदृत्य	अनादर करके
अनागतां	न आने वाली
आपगां	नदीको
कुपितः ह	क्रोधित होकर
बलः	बलरामजीने
हल अग्रेण	हलकी नोंकसे
बिचकर्ष	खींचा ॥२३॥

पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मयाऽऽहुता ।
नेष्ये त्वां लाङ्गलाग्रेण शतधा कामचारिणीम् ॥२४॥

पापे त्वं मां अवज्ञाय यत् न आयासि मया आहुता नेष्ये त्वां लाङ्गल अग्रेण शतधा कामचारिणीम् ॥२४॥

पापे	(कहने लगे) 'पापिष्ठे !
त्वं मां अवज्ञाय	तू मेरी अवहेलना करके
यत् मया	जो मेरे
आहुता	पुकारने पर
न आयासि	नहीं आ रही है
कामचारिणीं	(अतः) स्वेच्छाचारिणी
त्वां लाङ्गल	तुझे हलकी
अग्रेण	नोंकसे
शतधा नेष्ये	सैकड़ों टुकड़े कर दूंगा' ॥२४॥

एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनन्दनम् ।
उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप ॥२५॥

एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनन्दनं उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोः नृप ॥२५॥

नृप	राजन् !
एवं	इस प्रकार
निर्भर्त्सिता	डांटी जाने पर
भीता चकिता	डरी हुई और आश्चर्यमें पड़ी
यमुना	यमुना
पादयोः पतिता	चरणों पर गिरकर
यदुनन्दनं	यदुनन्दन बलरामजीसे
उवाच	बोली ॥२५॥

राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् ।
यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥२६॥

राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमं यस्य एक अंशेन विधृता जगती जगतः पते ॥२६॥

जगतः पते	जगत्पते !
राम	बलरामजी !
महाबाहो राम	विशाल भुजा बलराम !
यस्य एक अंशेन	जिन्होंने अपने एक अंशसे
जगती विधृता	जगतको धारण कर रखा है
तव विक्रमं	(उस) आपके पराक्रमको
न जाने	मैं नहीं जानती ॥२६॥

परं भावं भगवतो भगवन् मामजानतीम् ।
मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन् प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥२७॥

परं भावं भगवतः भगवन् मां अजानतीं मोक्तुं अर्हसि विश्व आत्मन् प्रपन्नां भक्त वत्सल ॥२७॥

विश्व आत्मन्	विश्वात्मा !	**अजानतीं**	न जानने वाली
भगवन्	भगवन् !	**मां प्रपन्नां**	मुझ शरणागतको
भक्त वत्सल	भक्त वत्सल !	**मोक्तुं अर्हसि**	छोड़ देना चाहिए'
भगवतः	आपके		॥२७॥
परं भावं	वास्तविक रूपको		

ततो व्यमुञ्चद् यमुनां याचितो भगवान् बलः ।
विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणुभिरिवेभराट् ॥२८॥

ततः व्यमुञ्चत् यमुनां याचितः भगवान् बलः विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणुभिः इव इभराट् ॥२८॥

ततः याचितः	तब प्रार्थना करने पर	**इभराट् इव**	गजराजके समान
भगवान् बलः	भगवान बलरामने	**स्त्रीभिः जलं**	स्त्रियोंके साथ जल
यमुनां	यमुनाको	**विजगाह**	स्नान किया ॥२८॥
व्यमुञ्चत्	छोड़ दिया		
करेणुभिः	(और) हथिनियोंके साथ		

कामं विहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासिताम्बरे ।
भूषणानि महार्हाणि ददौ कान्तिः शुभां स्रजम् ॥२९॥

कामं विहृत्य सलिलात् उत्तीर्णाया असित अम्बरे भूषणानि महा अर्हाणि ददौ कान्तिः शुभां स्रजम् ॥२९॥

कामं विहृत्य	यथेष्ट विहार करके	**महा अर्हाणि**	बहुमूल्य
सलिलात्	जलसे	**भूषणानि**	आभूषण एवं
उत्तीर्णाश्वा	निकले हुएको	**कान्तिः शुभां**	सुन्दर कान्ति वाली
असित अम्बरे	नीले वस्त्र,	**स्रजं ददौ**	माला दी ॥२९॥

वसित्वा वाससी नीले मालामामुच्य काञ्चनीम् ।
रेजे स्वलंकृतो लिप्तो माहेन्द्र इव वारणः ॥३०॥

वसित्वा वाससी नीले मालां आमुच्य काञ्चनीं रेजे स्वलङ्कृतः लिप्तः माहेन्द्र इव वारणः ॥३०॥

नीले वाससी	नीले वस्त्र	**लिप्तः**	(अंगराग) लेप करके
वसित्वा	पहिनकर	**माहेन्द्र**	इन्द्रके
काञ्चनी मालां	स्वर्णकी माला	**वारणः इव**	ऐरावत हाथीके समान
आमुच्य	(गलेमें) डालकर	**रेजे**	शोभित हुए ॥३०॥
स्वलङ्कृतः	भली प्रकार आभूषित होकर		

अद्यापि दृश्यते राजन् यमुनाऽऽकृष्टवर्त्मना ।
बलस्यानन्तवीर्यस्य वीर्यं सूचयतीव हि ॥३१॥

अद्य अपि दृश्यते राजन् यमुना अकृष्ट वर्त्मना बलस्य अनन्त वीर्यस्य वीर्यं सूचयती इव हि ॥३१॥

राजन्	राजन् !	**बलस्य वीर्यं**	बलरामजी पराक्रम
अद्य अपि	आज भी	**सूचयती इव**	सूचित करती सी
आकृष्ट वर्त्मना	खींचे हुए मार्गसे	**दृश्यते**	दीखती हैं ॥३१॥
यमुना	(बहती) यमुना		
हि अनन्त	क्योंकि अनन्त-		
वीर्यस्य	पराक्रम		

एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे ।
रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥३२॥

एवं सर्वा निशा याता एक एव रमतः व्रजे रामस्य अक्षिप्त चित्तस्य माधुर्यैः व्रजयोषिताम् ॥३२॥

एवं व्रजयोषितां	इस प्रकार व्रज-स्त्रियोंकी
माधुर्यैः	मधुरिमासे
अक्षिप्त चित्तस्य	आकृष्ट चित्त
रामस्य	बलरामजीका
सर्वा निशा	सब रात्रियाँ
एक एव व्रजे	अकेले ही व्रजमें
रमतः याता	विहार करते बीतीं ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे बलदेवविजये यमुनाकर्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

नन्दव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप ।
वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥ १ ॥

नन्दव्रजं गते रामे करूष अधिपतिः नृप वासुदेवः अहं इति अज्ञः दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥१॥

नृप	राजन् !	**अहं वासुदेवः**	'मैं वसुदेव हूँ'
रामे	बलरामजीके	**इति दूतं**	यह सन्देश देकर दूत
नन्दव्रजं गते	नन्दव्रज चले जाने पर	**कृष्णाय**	श्रीकृष्णके
अज्ञः	मूर्ख	**प्राहिणोत्**	पास भेजा ॥१॥
करूष अधिपतिः	करूष प्रदेशके राजाने		

त्वं वासुदेवो भगवानवतीर्णो जगत्पतिः ।
इति प्रस्तोभितो बालैर्मेन आत्मानमच्युतम् ॥ २ ॥

त्वं वासुदेवः भगवान् अवतीर्णः जगत् पतिः इति प्रस्तोभितः बालैः मेन आत्मनं अच्युतम् ॥२॥

त्वं जगत् पतिः	'आप जगत्पति	**इति बालैः**	इस प्रकार मूर्खोंके
भगवान्	भगवान	**प्रस्तोभितः**	बहकानेसे (उसने)
वासुदेवः	वसुदेव	**आत्मानं अच्युतं**	अपनेको अच्युत
अवतीर्णः	अवतरित हुए हैं	**मेन**	मान लिया ॥२॥

दूतं च प्राहिणोन्मन्दः कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने ।
द्वारकायां यथा बालो नृपो बालकृतोऽबुधः ॥ ३ ॥

दूतं च प्राहिणोत् मन्दः कृष्णाय अव्यक्त वर्त्मने द्वारकायां यथा बालः नृपः बालकृतः अबुधः ॥३॥

यथा बालकृतः	जैसे (खेलमें) बच्चों द्वारा बनाया	**अव्यक्त वर्त्मने**	अचिन्त्य गति
बालः नृपः	कोई बच्चा राजा हो	**कृष्णाय**	श्रीकृष्णके समीप
अबुधः मन्दः	उस मंदमति मूर्खने	**दूतं च**	दूत भी
		प्राहिणोत्	भेज दिया ॥३॥

दूतस्तु द्वारकामेत्य सभायामास्थितं प्रभुम् ।
कृष्णं कमलपत्राक्षं राजसंदेशमब्रवीत् ॥ ४ ॥

दूतः तु द्वारकां एत्य सभायां आस्थितं प्रभुं कृष्णं कमलपत्र अक्षं राजसन्देशं अब्रवीत् ॥४॥

दूतः तु	दूतने भी	**प्रभुं कृष्णं**	भगवान श्रीकृष्णसे
द्वारकां एत्य	द्वारिकापुरी आकर	**राजसन्देशं**	अपने राजाका सन्देश
सभायां	राजसभामें		
आस्थितं	बैठे	**अब्रवीत्**	सुनाया ॥४॥
कमलपत्र अक्षं	कमल-दल लोचन		

॥ पौण्डक उवाच ॥*

वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः ।
भूतानामनुकम्पार्थं त्वं तु मिथ्याभिधां त्यज ॥ ५ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

वासुदेवः अवतीर्णः अहं एक एव न च अपरः भूतानां अनुकम्पा अर्थं त्वं तु मिथ्या अभिधां त्यज ॥५॥

भूतानां	'प्राणियों पर
अनुकम्पा अर्थं	कृपा करनेके लिए
एक एव अहं	एक मात्र मुझ
वासुदेवः	वासुदेवने
अवतीर्णः	अवतार लिया है
अपरः न च	दूसरा कोई नहीं ही है
त्वं तु	तुम तो
मिथ्या अभिधां	(अपने) झूठे (वासुदेव) नामको
त्यज	त्याग दो ॥५॥

यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद् बिभर्षि सात्वत ।
त्यक्त्वैहि मां त्वं शरणं नो चेद् देहि ममाहवम् ॥ ६ ॥

यानि त्वं अस्मत् चिह्नानि मौढ्यात् बिभर्षि सात्वत त्यक्त्वा एहि मां त्वं शरणं नो चेत् देहि मम आहवम् ॥६॥

सात्वत	यादव !
त्वं यानि	तुम जिन
अस्मत् चिह्नानि	मेरे चिह्नोंको
मौढ्यात् बिभर्षि	मूर्खतावश धारण करते हो
त्यक्त्वा	(उन्हें) त्यागकर
मां शरणं	मेरी शरण
त्वं एहि	तुम आ जाओ
नो चेत्	यदि ऐसा नहीं करना है तो
मम आहवं देहि	मुझे युद्ध दो (मुझ से युद्ध करो) ॥६॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

कत्थनं तदुपाकर्ण्य पौण्ड्रकस्याल्पमेधसः ।
उग्रसेनादयः सभ्याः उच्चकैर्जहसुस्तदा ॥ ७ ॥

कत्थनं तत् उपाकर्ण्य पौण्ड्रकस्य अल्पमेधसः उग्रसेन आदयः सभ्याः उच्चकैः जहसुः तदा ॥७॥

तत् अल्पमेधसः	उस मन्दमति
पौण्ड्रकस्य	पौण्ड्रककी
कत्थनं	बकवाद
उपाकर्ण्यं	सुनकर
तदा	उस समय
उग्रसेन आदयः	उग्रसेन आदि
सभ्याः	सभासद
उच्चकैः जहसुः	उच्च स्वरसे हँसने लगे ॥७॥

उवाच दूतं भगवान् परिहासकथामनु ।
उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥ ८ ॥

उवाच दूतं भगवान् परिहास कथां अनु उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैः त्वं एवं विकत्थसे ॥८॥

परिहास	परिहास
कथां अनु	चर्चाके बाद
भगवान्	भगवानने
दूतं उवाच	दूतसे कहा—
मूढ चिह्नानि	'मूर्ख ! (मैं अपने चक्रादि) चिह्नोंको
यैः त्वं एवं	जिनके कहनेसे तू इस प्रकार
विकत्थसे	बकवाद कर रहा है
उत्स्रक्ष्ये	(उन पर भी) छोड़ंगा ॥८॥

मुखं तदपिधायाज्ञ कङ्कगृध्रवटैर्वृतः ।
शयिष्यसे हतस्तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥ ९ ॥

मुखं तत् पिधाय अज्ञ कङ्क गृध्र वटैः वृतः शयिष्यसे हतः तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥९॥

तत्र हतः	वहां मारा जाकर
तत् मुखं	उस (बकवादी) मुख
पिधाय	को छिपाकर
अज्ञ	मूर्ख !
कङ्क गृध्र	कांक, गीध
वटैः वृतः	कौए आदिसे घिरा
शुनां शरणं	कुत्तेकी शरणमें
भविता	जायगा' ॥९॥

इति दूतस्तदाक्षेपं स्वामिने सर्वमाहरत् ।
कृष्णोऽपि रथमास्थाय काशीमुपजगाम ह ॥१०॥

इति दूतः तत् आक्षेपं स्वामिने सर्वं आहरत् कृष्णः अपि रथं आस्थाय काशीं उप जगाम ह ॥१०॥

इति तत्	इस प्रकारके उनके	**कृष्णः अपि**	श्रीकृष्ण भी
आक्षेपं	आक्षेपको	**रथं आस्थाय**	रथ पर बैठ कर
दूतः स्वामिने	दूतने अपने स्वामी के पास	**ह काशीं उप**	अरे, काशीके समीप*
सर्वं आहरत्	सब पहुँचा दिया	**जगाम**	चले ॥१०॥

पौण्ड्रकोऽपि तदुद्योगमुपलभ्य महारथः ।
अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद् द्रुतम् ॥११॥

पौण्ड्रकः अपि तत् उद्योगं उपलभ्य महारथः अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तः निः चक्राम पुरात् द्रुतम् ॥११॥

महारथः	महारथी	**संयुक्तः**	साथ
पौण्ड्रकः अपि	पौण्ड्रक भी	**पुरात् द्रुतं**	नगरसे शीघ्र
तत् उद्योगं	उनका प्रयत्न	**निः चक्राम**	निकल आया ॥११॥
उपलभ्य	देखकर		
अक्षौहिणीभ्यां	दो अक्षौहिणी सेना के		

तस्य काशिपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप ।
अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत् पौण्ड्रकं हरिः ॥१२॥

---

*काशीके समीप चरणाद्रि (चुनार)का राजा पौण्ड्रक था । उसके आसपासका पर्वतीय क्षेत्र करूष कहलाता था ।

तस्य काशिपतिः मित्रं पाष्णिग्राहः अन्वयात् नृप अक्षौहिणीभिः तिसृभिः अपश्यत् पौण्ड्रकं हरिः ॥१२॥

नृप	राजन्	**अन्वयात्**	उसके पीछे आया
तस्य मित्रं	उसका मित्र	**हरि पौण्ड्रकं**	(इस प्रकार) श्रीकृष्णने पौण्ड्रक को
काशिपतिः	काशीराज		
तिसृभिः	तीन	**अपश्यत्**	देखा ॥१२॥
अक्षौहिणीभिः	अक्षौहिणी सेनाके साथ		
पाष्णिग्राहः	उसकी सहायताके लिए		

शङ्खार्यसिगदाशार्ङ्गश्रीवत्साद्युपलक्षितम् ।
बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम् ॥१३॥

शङ्ख अरि असि गदा शार्ङ्ग श्रीवत्स आदि उपलक्षितं बिभ्राणं कौस्तुभमणि वनमाला विभूषितम् ॥१३॥

शङ्ख अरि असि	शंख, चक्र, तलवार	**कौस्तुभमणि**	कौस्तुभमणि
गदा शार्ङ्ग	गदा, शारंग धनुष	**बिभ्राणं**	धारण किए
श्रीवत्स आदि	श्रीवत्स चिह्नादिसे	**वनमाला**	वनमालासे
उपलक्षितं	युक्त	**विभूषितं**	सुशोभित ॥१३॥

कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् ।
अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥१४॥

कौशेय वाससी पीते वसानं गरुडध्वजं अमूल्य मौलि आभरणं स्फुरन् मकरकुण्डलम् ॥१४॥

पीते कौशेय	पीला रेशमी	**अमूल्य**	अमूल्य
वाससी	वस्त्र	**मौलि आभरणं**	शिरोभूषण (मुकुट)

स्फुरन्	चमकते	गरुडध्वजं	गरुड़ चिह्नवाली
मकरकुण्डलं	मकराकृति कुंडल		ध्वजा (लगाये था)
वसानं	धारण किये		॥१४॥

दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यवेषं कृत्रिममास्थितम् ।
यथा नटं रङ्गगतं विजहास भृशं हरिः ॥१५॥

दृष्ट्वा तं आत्मनः तुल्य वेषं कृत्रिमं आस्थितं यथा नटं रङ्गगतं विजहास भृशं हरिः ॥१५॥

यथा रङ्गगतं	जैसे रंगमञ्च पर आया	आस्थितं	बनाये
नटं	नट हो	तं दृष्ट्वा	उसे देखकर
आत्मनः तुल्य	अपने ही समान	हरिः	श्रीहरि
कृत्रिमं वेषं	नकली वेश	भृशं विजहास	बहुत हँसे ॥१५॥

शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः ।
आसिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम् ॥१६॥

शूलैः गदाभिः परिघैः शक्ति ऋष्टि प्रास तोमरैः असिभिः पट्टिशैः बाणैः प्राहरन् नरयोः हरिम् ॥१६॥

शूलैः गदाभिः	त्रिशूल, गदा	पट्टिशैः बाणैः	पट्टिश और बाणोंसे
परिघैः शक्ति	परिघ, शक्ति,	नरयोः हरिं	उन मनुष्योंने श्रीहरि पर
ऋष्टि प्रास	ऋष्टि, प्रास,	प्राहरन्	प्रहार किया ॥१६॥
तोमरैः	तोमर,		
असिभिः	तलवार,		

कृष्णस्तु तत्पौण्ड्रककाशिराजयो-
र्बलं गजस्यन्दनवाजिपत्तिमत् ।

गदासिचक्रेषुभिरार्दयद् भृशं
यथा युगान्ते हुतभुक् पृथक् प्रजाः ॥१७॥

कृष्णः तु तत् पौण्ड्रक काशिराजयोः बलं गज स्यन्दन वाजि पत्तिमत् गदा असि चक्र इषुभिः अर्दयत् भृशं यथा युगान्ते हुतभुक् पृथक् प्रजाः ॥१७॥

कृष्णः तु	श्रीकृष्ण तो
तत् पौण्ड्रक	उस पौण्डक एवं
काशिराजयोः	काशिराजकी
गज स्यन्दन	हाथी रथ,
वाजि पत्तिमत्	अश्व, पैदल वाली (चतुरंगिणी)
बलं	सेनाको
यथा युगान्ते	जैसे युगके अन्तमें (प्रलयके समय)
पृथक प्रजाः	विभिन्न प्रजाको
हुतभुक्	अग्नि (नष्ट करता है)
गदा असि	गदा, तलवार
चक्र इषुभिः	चक्र तथा बाणोंसे
भृशं अर्दयत्	पूर्णतः कुचल डाला ॥१७॥

आयोधनं तद्रथवाजिकुञ्जर-
द्विपत्खरोष्ट्रैरिणावखण्डितैः ।
बभौ चितं मोदवहं मनस्विना-
माक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् ॥१८॥

आयोधनं तत् रथ वाजि कुञ्जर द्विपत् खर उष्ट्रैः अरिणा अवखण्डितैः बभौ चितं मोदवहं मनस्विनां आक्रीडनं भूतपतेः इव उल्बणम् ॥१८॥

अरिणा	चक्रसे
अवखण्डितैः	खण्ड-खण्ड हुए
रथ वाजि	रथ, अश्व,
कुञ्जर	गज,
द्विपत् खर उष्ट्रैः	मनुष्य, गधे, ऊंटों वाला
तत् आयोधनं	वह युद्धस्थल
भूतपतेः	भूतनाथके

उल्बणम्	भङ्कर	मोदवहं बभौ	आनन्ददायी शोभित
आक्रीडनं इव	क्रीडास्थलकी भाँति		हुआ ॥१८॥
मनस्विनां चितं	साहसियोंके चित्त		
	को		

अथाह पौण्ड्रकं शौरिर्भो भोः पौण्ड्रक यद् भवान् ।
दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥१९॥

अथ आह पौण्ड्रकं शौरिः भो भोः पौण्ड्रक यत् भवान् दूत वाक्येन मां आह तानि अस्त्राणि उत्सृजामि ते ॥१९॥

अथ शौरिः	फिर श्रीकृष्णने	यत् आह	जिनको कहा था
पौण्ड्रकं आह	पौण्ड्रकसे बोले—	तानि अस्त्राणि	उन अस्त्रोंको
भो भोः पौण्ड्रक	'हे हे पौण्ड्रक	ते उत्सृजामि	तुम पर छोड़ता हूँ
भवान् दूत	तुमने दूतके		॥१९॥
वाक्येन	वाक्योंसे		

त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत्त्वयाज्ञ मृषा धृतम् ।
व्रजामि शरणं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥२०॥

त्याजयिष्ये अभिधानं मे यत् त्वया अज्ञ मृषा धृतं व्रजामि शरणं ते अद्य यदि न इच्छामि संयुगम् ॥२०॥

यत् त्वया अज्ञ	जो तुझ मूर्खने	यदि अद्य	यदि आज
मृषा अभिधानं	झूठा नाम	संयुगं न इच्छामि	युद्ध नहीं करना
धृतं	(वासुदेव) धारण		चाहूँगा तो
	किया है	ते शरणं	तेरी शरणमें
त्याजयिष्ये	छुड़ा दूंगा (अथवा)	व्रजामि	आ जाऊंगा ॥२०॥

इति क्षिप्त्वा शितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौण्ड्रकम् ।
शिरोऽवृश्चद् रथाङ्गेन व्रजेनेन्द्रो यथा गिरेः ॥२१॥

इति क्षिप्त्वा शितैः बाणैः विरथी कृत्य पौण्ड्रकं शिरः अवृश्चत् रथाङ्गेन वज्रेण इन्द्रः यथा गिरेः ॥२१॥

इति क्षिप्त्वा	इस प्रकार आक्षेप करके	**गिरेः वज्रेण**	पर्वतको वज्रसे (काटते हैं)
शितैः बाणैः	तीक्ष्ण बाणोंसे	**रथाङ्गेन**	चक्रसे
विरथी कृत्य	रथहीन करके	**पौण्ड्रकं शिरः**	पौण्ड्रकका सिर
यथा इन्द्रः	जैसे इन्द्र	**अवृश्चत्**	काट दिया ॥२१॥

तथा काशिपतेः कायाच्छिर उत्कृत्य पत्रिभिः ।
न्यपातयत् काशिपुर्यां पद्मकोशमिवानिलः ॥२२॥

तथा काशिपतेः कायात् शिर उत्कृत्य पत्रिभिः न्यपातयत् काशिपुर्यां पद्मकोश इव अनिलः ॥२२॥

तथा काशिपतेः	इसी प्रकार काशि-राजका	**अनिलः**	वायु द्वारा
शिर पत्रिभिः	सिर बाणोंसे	**पद्मकोशं इव**	कमल पुष्पके समान
उत्कृत्य	काटकर	**काशिपुर्यां**	काशीपुरीमें
		न्यपातयत्	गिरा दिया ॥२२॥

एवं मत्सरिणं हत्वा पौण्ड्रकं ससखं हरिः ।
द्वारकामाविशत् सिद्धैर्गीयमानकथामृतः ॥२३॥

एवं मत्सरिणं हत्वा पौण्ड्रकं ससखं हरिः द्वारकां आविशत् सिद्धैः गीयमान कथामृतः ॥२३॥

सिद्धैः कथामृतः	सिद्धों द्वारा चरितामृतका	**पौण्ड्रकं ससखं**	पौण्ड्रकको उसके मित्रके साथ
गीयमान	गायन होते हुए	**हत्वा द्वारकां**	मारकर द्वारिका-पुरीमें
हरिः	श्रीहरि		
एवं मत्सरिणं	इस प्रकार स्पर्धा रखने वाले	**आविशत्**	लौट आये ॥२३॥

स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबन्धनः ।
बिभ्राणश्च हरे राजन् स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥२४॥

स नित्यं भगवत् ध्यान प्रध्वस्त अखिल बन्धनः बिभ्राणः च हरेः राजन् स्वरूपं तन्मयः अभवत् ॥२४॥

राजन्	राजन् !	**प्रध्वस्त**	नष्ट हो गये थे
स नित्य	वह सदा	**च हरेः स्वरूपं**	तथा श्रीहरिका ही रूप
भगवत् ध्यान	भगवानका ध्यान करनेसे (उसके)	**बिभ्राणः**	धारण करता था
		तन्मयः अभवत्	अतः तद्रूप हो गया ॥२४॥
अखिल बन्धनः	समस्त बन्धन		

शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुण्डलम् ।
किमिदं कस्य वा वक्त्रमिति संशिश्यिरे जनाः ॥२५॥

शिरः पतितं आलोक्य राजद्वारे सकुण्डलं किं इदं कस्य वा वक्त्रं इति संशिश्यिरे जनाः ॥२५॥

राजद्वारं	राज-भवनके द्वार पर	**वा कस्य वक्त्रं**	अथवा किसका मुख है ?'
सकुण्डलं शिरः	कुण्डल युक्त सिर	**इति जनाः**	इस प्रकार लोग
पतितं आलोक्य	गिरा देखकर	**संशिश्यिरे**	सन्देह करने लगे ॥२५॥
इदं किं	'यह क्या है ?		

राज्ञः काशिपतेर्ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबान्धवाः ।
पौराश्च हा हता राजन् नाथ नाथेति प्रारुदन् ॥२६॥

राज्ञः काशिपतेः ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबान्धवाः पौराः च हा हता रालन् नाथ नाथ इति प्रारुदन् ॥२६॥

राज्ञः काशिपतेः	काशीपति राजाका	**पुत्रबान्धवाः**	पुत्र, सम्बन्धी लोग
ज्ञात्वा महिष्यः	जानकर रानियां		

पौराः च	पुरवासी भी	**हता**	मारे गये'
हा नाथ	'हा नाथ !	**इति प्रारुदन्**	इस प्रकार विलाप
राजन् नाथ	राजन् ! स्वामी		करने लगे ॥२६॥

सुदक्षिणस्तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पितुः ।
निहत्य पितृहन्तारं यास्याम्यपचितिं पितुः ॥२७॥

सुदक्षिणः तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पितुः निहत्य पितृ हन्तारं याःयामि अपचितिं पितुः ॥२७॥

पितृः	पिताका	**हन्तारं निहत्य**	हत्यारेको मारकर
संस्थाविधि	अन्त्येष्टि संस्कार	**पितृ अपचितिं**	पितृ-ऋणसे
कृत्वा	करके		उऋणता
तस्य सुतः	उसके पुत्र	**यामि**	पाऊंगा' ॥२७॥
सुदक्षिणः	सुदक्षिणने		
पितृः	पिताके		

इत्यात्मनाभिसंधाय सोपाध्यायो महेश्वरम् ।
सुदक्षिणोऽर्चयामास परमेण समाधिना ॥२८॥

इति आत्मना अभिसन्धाय स उपाध्यायः महेश्वरं सुदक्षिणः अर्चयामास परमेण समाधिना ॥२८॥

इति आत्मना	इस प्रकार चित्तमें	**परमेण**	अत्यन्त
अभिसन्धाय	निश्चय करके	**समाधिना**	एकाग्रता पूर्वक
सुदक्षिणः	सुदक्षिण	**महेश्वरं**	महेश्वरकी
स उपाध्यायः	उपाध्याय (आचार्य) के साथ	**अर्चयामास**	पूजा करने लगे ॥२८॥

प्रीतोऽविमुक्ते भगवांस्तस्मै वरमदाद् भवः ।
पितृहन्तृवधोपायं स वव्रे वरमीप्सितम् ॥२९॥

प्रीतः अविमुक्तेः भगवान् तस्मै वरं अदात् भवः पितृ हन्तृ वध उपायं स वव्रे वरं ईप्सितम् ॥२६॥

अविमुक्तेः	अविमुक्त क्षेत्रमें	पितृ हन्तृ	पिताको मारने वालेके
तस्मै प्रीतः	उस पर प्रसन्न		
भगवान् भवः	भगवान शिवने	वध उपायं वव्रे	वधका उपाय वर मांगा ॥२६॥
वरं अदात्	वरदान देने (मांगने)को कहा		
स ईप्सितं वरं	उसने अपना अभीष्ट वरदान		

दक्षिणाग्नि परिचर ब्राह्मणैः सममृत्विजम् ।
अभिचारविधानेन स चाग्निः प्रमथैर्वृतः ॥३०॥

दक्षिणाग्नि परिचर ब्राह्मणैः सम ऋत्विजं अभिचार विधानेन स च अग्निः प्रमथैः वृतः ॥३०॥

दक्षिणाग्निं	(भगवान रुद्रने कहा)— दक्षिणाग्नि की	परिचर	सेवा करो
		स अग्निः च	वह अग्नि भी
सम ऋत्विजं	ऋत्विके समान	प्रमथैः वृतः	प्रथम गणोंसे घिरा ॥३०॥
ब्राह्मणैः	ब्राह्मणों द्वारा		
अभिचार	अभिचार		
विधानेन	विधिसे		

साधयिष्यति संकल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः ।
इत्यादिष्टस्तथा चक्रे कृष्णायाभिचरन् व्रती ॥३१॥

साधयिष्यति सङ्कल्पं अब्रह्मण्ये प्रयोजितः इति आदिष्टः तथा चक्रं कृष्णाय अभिचरन् व्रती ॥३१॥

अब्रह्मण्ये	जो ब्राह्मणका भक्त नहीं है*
प्रयोजितः	उस पर प्रयोग करने पर
स सङ्कल्पं	वह संकल्पको
साधयिष्यति	सिद्ध करेगा
इति आदिष्टः	ऐसा आदेश पाकर
व्रती तथा	व्रत लेकर उसी प्रकार
कृष्णाय	श्रीकृष्ण पर
अभिचरन् चक्रे	अभिचार करने लगा ॥३१॥

ततोऽग्निरुत्थितः कुण्डान्मूर्तिमानतिभीषणः ।
तप्ततास्रशिखाश्मश्रुरङ्गारोद्गारिलोचनः ॥३२॥

ततः अग्निः उत्थितः कुण्डात् मूर्तिमान् अतिभीषणः तप्त ताम्र शिखा श्मश्रुः अङ्गार उद्गारि लोचनः ॥३२॥

ततः कुण्डात्	तब (अनुष्ठान पूरा होने पर) कुण्डसे
अतिभीषणः	अत्यन्त भयङ्कर
मूर्तिमान् अग्निः	मूर्तिमान होकर अग्नि
उत्थितः	प्रगट हुआ
तप्त ताम्र	तपाये तांबेके समान
शिखा श्मश्रुः	केश-दाढ़ी
अङ्गार उद्गारि	अंगार उगलते
लोचनः	नेत्रों वाला ॥३२॥

दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदण्डकठोरास्यः स्वजिह्वया ।
आलिहन् सृक्किणी नग्नो विधुन्वंस्त्रिशिखं ज्वलन् ॥३३॥

दंष्ट्र उग्र भ्रुकुटी दण्ड कठोर आस्यः स्वजिह्वया आलिहन् सृक्किणी नग्नः विधुन्वन् त्रिशिखं ज्वलन् ॥३३॥

---

* क्रोधके आवेशमें सुदक्षिणने भगवान शंकरके आदेशों पर ध्यान नहीं दिया, इससे उलटा फल हुआ—
१—अब्रह्मण्य पर प्रयोग करनेको कहा गया था और उसने ब्रह्मण्यदेव पर प्रयोग किया ।
२—अग्निकी आराधना ऋत्विक् रूपमें करनी थी पर हुई इष्ट रूपमें ।

दंष्ट्र उग्र	भयानक दाढें	नग्नः	नंगा
दण्ड भ्रुकुटीः	डण्डेके समान भौहें	ज्वलन् त्रिशिखं	चमकते त्रिशूलको
कठोर आस्यः	क्रूर मुख,	विधुन्वन्	हिलाता हुआ
स्वजिह्वया	अपनी जीभसे		॥३३॥
सृक्किणी	गलफड़े		
आलिहन्	चाटता हुआ,		

पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कम्पयन्नवनीतलम् ।
सोऽभ्यधावद् वृतो भूतैर्द्वारकां प्रदहन् दिशः ॥३४॥

पद्भ्यां ताल प्रमाणाभ्यां कम्पयन् अवनीतलं सः अभ्यधावत् वृतः भूतैः द्वारकां प्रदहन् दिशः ॥३४॥

ताल	ताड़ वृक्षके	भूतैः वृतः	भूतोंसे घिरा हुआ
प्रमाणाभ्यां	बराबरके	दिशः प्रदहन्	दिशाओंको जलाता
पद्भ्यां	पैरोंसे	द्वारकां	द्वारिकाकी ओर
अवनीतलं	भूतलको	अभ्यधावत्	दौड़ा ॥३४॥
कम्पयन्	कम्पित करता		

तमाभिचारदहनमायान्तं द्वारकौकसः ।
विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगा यथा ॥३५॥

तं अभिचार दहनं आयान्तं द्वारकौकसः विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगाः यथा ॥३५॥

तं	उस	यथा वनदाहे	जैसे दावाग्निसे
अभिचार दहनं	अभिचाराग्निको	मृगाः तत्रसुः	पशु, भयभीत हो
आयान्तं	आते हुए		गये ॥३५॥
विलोक्य	देखकर		
सर्वे	सब		
द्वारकौकसः	द्वारकावासी		

अक्षैः सभायां क्रीडन्तं भगवन्तं भयातुराः ।
त्राहि त्राहि त्रिलोकेश वह्नेः प्रदहतः पुरम् ॥३६॥

अक्षैः सभायां क्रीडन्तं भगवन्तं भय आतुराः त्राहि त्राहि त्रिलोकेश वह्नेः प्रदहतः पुरम् ॥३६॥

सभायां अक्षैः	सभामें पासे	**त्राहि त्राहि**	रक्षा कीजिए !
क्रीडन्तं भगवन्तं	खेलते भगवानसे		रक्षा कीजिए !
भय आतुराः	भय व्याकुल बोले—		॥३६॥
त्रिलोकेश	'त्रिलोकीनाथ !		
वह्नेः प्रदहतः	अग्निसे जलाये जाते		
पुरं	नगरकी		

श्रुत्वा तज्जनवैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानां च साध्वसम् ।
शरण्यः सम्प्रहस्याह मा भैष्टेत्यवितास्म्यहम् ॥३७॥

श्रुत्वा तत् जन वैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानां च साध्वसं शरण्यः सम्प्रहस्य आह मा भैष्ट इति अविता अस्मि अहम् ॥३७॥

तत् जन	वह प्रजाजनकी	**सम्प्रहस्य आह**	खुलकर हंसकर कहा—
वैक्लव्यं	व्याकुलता		
च स्वानां	तथा अपने लोगों की	**मा भैष्ट**	'मत डरो,
साध्वसं	घबड़ाहट	**इति अहं**	इस प्रकार मैं तो
दृष्ट्वा शरण्यः	देखकर उन शरण दाताने	**अविता अस्मि**	रक्षक हूँ ही ॥३७॥

सर्वस्यान्तर्बहिः साक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभुः ।
विज्ञाय तद्विघातार्थं पार्श्वस्थं चक्रमादिशत् ॥३८॥

सर्वस्य अन्तः बहिः साक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभुः विज्ञाय तत् विघात अर्थं पार्श्वस्थं चक्रं आदिशत् ॥३८॥

सर्वस्य अन्तः	सबके भीतर और
बहिः	बाहरके
साक्षी विभुः	द्रष्टा प्रभुने
माहेश्वरीं कृत्यां	माहेश्वरी कृत्याको
विज्ञाय	जानकर
तत्	उसको
विघात अर्थं	नष्ट करनेके लिए
पार्श्वस्थं चक्रं	समीपमें स्थित चक्रको
आदिशत्	आज्ञा दी ॥३८॥

तत् सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं
जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम् ।
स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी
चक्रं मुकुन्दास्त्रमथाग्निमार्दयत् ॥३९॥

तत् सूर्यकोटि प्रतिमं सुदर्शनं जाज्वल्यमानं प्रलय अनल प्रभं स्वतेजसा खं ककुभः अथ रोदसी चक्रं मुकुन्द अस्त्रं अथ अग्नि अर्दयत् ॥३९॥

तत्	उन
सूर्यकोटि प्रतिमं	करोड़ों सूर्यके समान
प्रलय अनल	प्रलयाग्निके
प्रभं	समान तेजस्वी
मुकुन्द अस्त्रं	मुकुन्दके अस्त्र
सुदर्शनं चक्रं	सुदर्शन चक्र
स्वतेजसा	अपने तेजसे
खं ककुभः	आकाश, दिशाओं
अथ रोदसी	तथा अन्तरिक्षको
जाज्वल्यमानं	प्रज्वलितसा करता हुआ
अथ अग्नि	फिर कृत्याग्निको
अर्दयत्	रौंदा ॥३९॥

कृत्यानलः प्रतिहतः स रथाङ्गपाणे-
रस्त्रौजसा स नृप भग्नमुखो निवृत्तः ।
वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं
सत्विग्जनं समदहत् स्वकृतोऽभिचारः ॥४०॥

कृत्या अनलः प्रतिहतः स रथाङ्ग पाणेः अस्त्र ओजसा स नृप भग्नमुखः निवृत्तः वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं स ऋत्विक् जनं सम अदहत् स्वकृतः अभिचारः ॥४०॥

नृप	राजन् !
रथाङ्ग पाणेः	चक्रपाणिके
अस्त्र ओजसा	अस्त्र-तेजसे
प्रतिहतः	पराजित,
भग्नमुखः	भग्नमुख
स कृत्या अनलः	वह कृत्याग्नि
निवृत्तः	लौट पड़ा
वाराणसीं	वाराणसीमें
परिसमेत्य	पहुँचकर
स ऋत्विक् जनं	ऋत्विक् लोगोंके साथ
तं सुदक्षिणं	उस सुदक्षिणको
स स्वकृतः	उस अपने किये
अभिचारः	अभिचारने
सम अदहत्	पूर्णतः जला दिया ॥४०॥

चक्रं च विष्णोस्तदनुप्रविष्टं
वाराणसीं साट्टसभालयापणाम् ।
सगोपुराट्टालककोष्ठसंकुलां
सकोशहस्त्यश्वरथान्नशालाम् ॥४१॥

चक्रं च विष्णोः तत् अनुप्रविष्टं वाराणसीं स अट्टसभा आलय आपणां सगोपुर अट्टालक कोष्ठसंकुलां स कोश हस्ति अश्व रथ अन्न शालाम् ॥४१॥

अट्टसभा	अट्टालिका, सभा-भवन
स आलय	भवन,
अपणां	बाजारों वाली
सगोपुर	गोपुर युक्ता,
अट्टालक	अटारियों वाले
कोष्ठसंकुलां	कोठोंसे भरी
कोश हस्ति	कोश, हाथी
अश्व रथ	अश्व, रथ,
स अन्न शालां	अन्न शालाओं सहित
वाराणसीं	वाराणसीपुरीमें
तत्	उस (कृत्या)के
अनुप्रविष्टं	पीछे ही पहुँचा
विष्णोः	विष्णुका
चकं च	चक्र भी ॥४१॥

दग्ध्वा वाराणसीं सर्वां विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ।
भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत् कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥४२॥

दग्ध्वा वाराणसीं सर्वां विष्णोः चक्रं सुदर्शनं भूयः पार्श्वं उपातिष्ठत् कृष्णस्य आक्लिष्ट कर्मणः ॥४२॥

सर्वां वाराणसीं	सम्पूर्ण वाराणसीको	**आक्लिष्ट**	अनायास
दग्ध्वा	जलाकर	**कर्मणः**	कर्म करने वाले
विष्णो. चक्रं	विष्णु भगवानका चक्र	**कृष्णस्य**	श्रीकृष्णके
		पार्श्वं भूयः	समीप फिर
सुदर्शनं	सुदर्शन	**उपातिष्ठत्**	पहुँच गया ॥४२॥

य एतच्छ्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम् ।
समाहितो वा शृणुयात् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४३॥

यः एतत् श्रावयेत् मर्त्यः उत्तमश्लोक विक्रमं समाहितः वा शृणुयात् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४३॥

यः मर्त्यः	जो मनुष्य	**समाहितः**	एकाग्र होकर
एतत्	इस प्रकार	**शृणुयात्**	सुनता है,
उत्तमश्लोक	पुण्यकीर्ति	**सर्वपापैः**	(वह) सब पापों
विक्रमं	(भगवान)के पराक्रमको		से
		प्रमुच्यते	छूट जाता है
श्रावयेत् वा	सुनाता है अथवा		॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पौण्ड्रकादिवधो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

॥ राजोवाच ॥

भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः ।
अनन्तस्याप्रमेयस्य यदन्यत् कृतवान् प्रभुः ॥ १ ॥

भूयः अहं श्रोतुं इच्छामि रामस्य अद्भुत कर्मणः अनन्तस्य अप्रमेयस्य यत् अन्यत् कृतवान् प्रभुः ॥१॥

अद्भुत कर्मणः	अद्भुतकर्मा	**अहं भूयः**	मैं फिर
अनन्तस्य	अनन्त	**श्रोतुं इच्छामि**	सुनना चाहता हूँ
अप्रमेयस्य	अप्रमेय	**प्रभुः यत्**	उन समर्थने जो
रामस्य	बलरामजीके (चरित)	**अन्यत् कृतवान्**	दूसरा कुछ किया ॥१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

नरकस्य सखा कश्चिद् द्विविदो नाम वानरः ।
सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥ २ ॥

नरकस्य सखा कश्चित् द्विविदः नाम वानरः सुग्रीवसचिवः सः अथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥२॥

नरकस्य सखा	नरकासुरका मित्र	**कश्चित्**	कोई
सुग्रीवसचिवः	सुग्रीवका मन्त्री	**द्विविदः नाम**	द्विविद नामक
अथ सः मैन्दस्य	और वह मन्दका	**वानरः**	वानर था ॥२॥
वीर्यवान् भ्राता	बलवानका भाई		

सख्युः सोऽपचितिं कुर्वन् वानरो राष्ट्रविप्लवम् ।
पुरग्रामाकरान् घोषानदहद् वह्निमुत्सृजन् ॥ ३ ॥

सख्युः सः अपचितिं कुर्वन् वानरः राष्ट्रविप्लवं पुरग्राम आकरान् घोषान् अदहत् वह्निं उत्सृजन् ॥३॥

सः सख्युः	वह अपने मित्र (नरकासुर)का	**वह्निं उत्सृजन्**	आग लगाकर
अपचितिं	बदला चुकाता	**अदहत्**	जलाता हुआ
पुरग्राम	नगर, गाँव	**राष्ट्रविप्लवं**	राष्ट्रोंमें उथल-पुथल
आकरान्	खदानों तथा	**कुर्वन्**	करने लगा ॥३॥
घोषान्	झोपड़ियोंके गाँवों को		

क्वचित् स शैलानुत्पाट्य तैर्देशान् समचूर्णयत् ।
आनर्तान् सुतरामेव यत्रास्ते मित्रहा हरिः ॥ ४ ॥

क्वचित् शैलान् अनुत्पाट्य तैः देशान् सम चूर्णयत् आनर्तान् सुतरां एव यत्र आस्ते मित्रहा हरिः ॥४॥

क्वचित् शैलान्	कभी पहाड़ोंको	**आनर्तान् एव**	आनर्तके ही (प्रदेशों)को
अनुत्पाट्य	पूरा उखाड़ कर	**यत्र मित्रहा**	जहाँ उसके मित्रको मारने वाले
तैः देशान्	उनसे प्रदेशोंको	**हरिः आस्ते**	श्रीहरि रहते थे ॥४॥
सम चूर्णयत्	पूर्णतः पीस देता था		
सुतरां	विशेषतः		

क्वचित् समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम् ।
देशान् नागायुतप्राणो वेलाकूलानमज्जयत् ॥ ५ ॥

क्वचित् समुद्र मध्यस्थः दोर्भ्यां उत्क्षिप्य तत् जलं देशान् नाग अयुत प्राणः वेला कूलान् अमज्जयत् ॥५॥

क्वचित्	कभी	**तत् जलं**	उसका जल
नाग अयुत	दस सहस्र हाथियों	**दोर्भ्यां उत्क्षिप्य**	भुजाओंसे उछाल कर
प्राणः	की शक्तिवाला (वह)	**वेला कूलान्**	समुद्रके किनारेके
समुद्र मध्यस्थः	समुद्रके बीचमें खड़े होकर	**देशान्**	प्रदेशोंको
		अमज्जयत्	डुबा देता था ॥५॥

आश्रमानृषिमुख्यानां कृत्वा भग्नवनस्पतीन् ।
अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन् वैतानिकान् खलः ॥ ६ ॥

आश्रमान् ऋषिमुख्यानां कृत्वा भग्न वनस्पतीन् अदूषयत् शकृत् मूत्रैः अग्नीन् वैतानिकान् खलः ॥६॥

खलः	वह दुष्ट	**शकृत मूत्रैः**	मल-मूत्रसे
ऋषिमुख्यानां	प्रमुख ऋषियोंके	**वैतानिकान्**	यज्ञीय
आश्रमान्	आश्रमोंके	**अग्नीन्**	अग्नियोंको
वनस्पतीन्	वृक्षोंको	**अदूषयत्**	दूषित कर देता था ॥६॥
भग्न कृत्वा	उखाड़ कर		

पुरुषान् योषितो दृप्तः क्ष्माभृद्द्रोणीगुहासु सः ।
निक्षिप्य चाप्यधाच्छैलैः पेशस्कारीव कीटकम् ॥ ७ ॥

पुरुषान् योषितः दृप्तः क्ष्माभृत् द्रोणी गुहासु सः निक्षिप्य च अपि धात् शैलैः पेशस्कारी इव कीटकम् ॥७॥

पेशस्कारी	भृङ्गी कीड़ा	**सः दृप्तः**	वह मदोन्मत्त
कीटकं इव	जैसे दूसरे कीड़ोंको (बन्द करता है)	**पुरुषान् योषितः**	पुरुष और स्त्रियों को

क्षमाभृत् द्रोणी	पर्वतोंकी तलहटी की	शैलैः च अपि धात्	पर्वतोंसे ही बन्द कर देता था ॥७॥
गुहासु निक्षिप्य	गुफाओंमें फेंककर		

एवं देशान् विप्रकुर्वन् दूषयंश्च कुलस्त्रियः ।
श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥ ८ ॥

एवं देशान् विप्रकुर्वन् दूषयन् च कुलस्त्रियः श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवयकं ययौ ॥८॥

एवं देशान्	इस प्रकार प्रदेशोंको	श्रुत्वा	सुनकर
विप्रकुर्वन्	उजाड़ता हुआ	रैवतकं	रैवतक
च कुलस्त्रियः	तथा कुलीना स्त्रियों को	गिरिं ययौ	पर्वत पर गया ॥८॥
दूषयन्	दूषित करता		
सुललितं गीतं	अत्यन्त सुन्दर गायन		

तत्रापश्यद् यदुपतिं रामं पुष्करमालिनम् ।
सुदर्शनीयसर्वाङ्गम् ललनायूथमध्यगम् ॥ ९ ॥

तत्र पश्यत् यदुपतिं रामं पुष्कर मालिनं सुदर्शनीय सर्व अङ्गम् ललनायूथ मध्यगम् ॥९॥

तत्र	वहाँ	पुष्कर मालिनं	कमल मालाधारी
ललनायूथ	सुन्दरियोंके समूहके	यदुपतिं रामं	यदुपति बलरामजी को
मध्यगं	बीचमें चलते		
सुदर्शनीय	सुन्दर दर्शन करने योग्य	पश्यत्	देखा ॥९॥
सर्व अङ्ग	समस्त अंगों वाले		

गायन्तं वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम् ।
विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव वारणम् ॥१०॥

गायन्तं वारुणीं पीत्वा मदविह्वल लोचनं विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नं इव वारणम् ॥१०॥

वारुणीं पीत्वा	वारुणी पीकर	वपुषा	अपने शरीरसे
मदविह्वल	मदसे विह्वल	विभ्राजमानं	अत्यन्त शोभित हो
लोचनं	नेत्र,		रहे थे ॥१०॥
गायन्तं	गाते हुए		
प्रभिन्नं	मद मस्त		
वारणं इव	गजके समान		

दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कम्पयन् द्रुमान् ।
चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं सम्प्रदर्शयन् ॥११॥

दुष्टः शाखामृगः शाखां आरूढः कम्पयन् द्रुमान् चक्रे किलकिला शब्दं आत्मानं सम्प्रदर्शयन् ॥११॥

दुष्टः	वह दुष्ट	आत्मनं	अपनी
शाखामृगः	वानर	सम्प्रदर्शयन्	हेकड़ी दिखाता
शाखां आरूदः	शाखाओं पर चढ़-	किलकिला	किलकारी
	कर	शब्दं चक्रे	मारने लगा ॥११॥
द्रुमान् कम्पयन्	वृक्षोंको हिलाता		
	हुआ		

तस्य धाष्टर्यं कपेर्वीक्ष्य तरुण्यो जातिचापलाः ।
हास्यप्रिया विजहसुर्बलदेवपरिग्रहाः ॥१२॥

तस्य धाष्टर्यं कपेः वीक्ष्य तरुण्यः जातिचापलाः हास्यप्रियाः विजहसुः बलदेव परिग्रहाः ॥१२॥

तरुण्यः	तरुणियां	**बलदेव**	बलरामजी की
जातिचापलाः	स्वभावसे ही चपल एवं	**परिग्रहाः**	स्त्रियां
		तस्य कपेः	उस वानरकी
हास्यप्रिया	हास्यप्रिय होती हैं (अतः)	**धाष्ट्यं वीक्ष्य**	धृष्टता देखकर
		विजहसुः	हंसने लगीं ॥१२॥

ता हेलयामास कपिर्भ्रूक्षेपैः सम्मुखादिभिः ।
दर्शयन् स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षतः ॥१३॥

ता हेलयामास कपिः भ्रूक्षेपैः सम्मुख आदिभिः दर्शयन् स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षतः ॥१३॥

कपिः भ्रूक्षेपैः	वह वानर भौंहें मटकाकर	**दर्शयन्**	दिखलाता हुआ
		रामस्य च	बलरामजीके भी
सम्मुख	सामने	**निरीक्षतः**	देखते हुए
आदिभिः	आने आदिसे	**ता हेलयामास**	उनका अपमन करने लगा ॥१३॥
तासां स्वगुदं	उनको अपनी गुदा		

तं ग्राव्णा प्राहरत् क्रुद्धो बलः प्रहरतां वरः ।
स वञ्चयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः ॥१४॥

तं ग्राव्णा प्राहरत् क्रुद्धः बलः प्रहरतां वरः स वञ्चयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः ॥१४॥

प्रहरतां वरः	प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ	**स कपिः**	उस बानरने
		ग्रावाणं	पत्थरोंको
क्रुद्धः बलः	कुपित बलरामजी ने	**वञ्चयित्वा**	बचाकर
तं ग्राव्णा	उसे पत्थर मारे; किन्तु	**मदिराकलशं**	मदिराके घड़ेको ॥१४॥

गृहीत्वा हेलयामास धूर्तस्तं कोपयन् हसन् ।
निर्भिद्य कलशं दुष्टो वासांस्यास्फालयद् बलम् ॥१५॥

गृहीत्वा हेलयामास धूर्तः तं कोपयन् हसन् निर्भिद्य कलशं दुष्टः वासांसि आस्फालयत् बलम् ॥१५॥

गृहीत्वा	उठा लिया,	**हसन् कलशं**	हँसते हुए कलशको
तं कोपयन्	उन्हें क्रुद्ध करता हुआ	**निर्भिद्य**	फोड़कर
		बलं वासांसि	बलरामजीके वस्त्र
धूर्तः दुष्टः	उस धूर्त दुष्टने	**आस्फालयत्**	फाड़ दिये ॥१५॥

कदर्थीकृत्य बलवान् विप्रचक्रे मदोद्धतः ।
तं तस्याविनयं दृष्ट्वा देशांश्च तदुपद्रुतान् ॥१६॥

कदर्थीकृत्य बलवान् विप्रचक्रे मद उद्धतः तं तस्य अविनयं दृष्ट्वा देशान् च तत् उपद्रुतान् ॥१६॥

मद उद्धतः	उस मदोन्मत्त	**दृष्ट्वा च**	देखकर और
बलवान्	बलवान्ने	**तत् उपद्रुतान्**	उसके द्वारा उपद्रव-ग्रस्त,
तं कदर्थीकृत्य	उनकी अवज्ञा करके		
विप्रचक्रे	अप्रिय किया (तब)	**देशान्**	प्रदेशोंका (स्मरण करके) ॥१६॥
तस्य अविनयं	उसकी धृष्टता		

क्रुद्धो मुसलमादत्त हलं चारिजिघांसया ।
द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना ॥१७॥

क्रुद्धः मुसलं आदत्त हलं च अरि जिघांसया द्विविदः अपि महावीर्यः शालं उद्यम्य पाणिना ॥१७॥

क्रुद्धः	कुपित होकर	**महावीर्यः**	अत्यन्त बलवान
अरि जिघांसया	इस शत्रुको मार देनेके लिए	**द्विविदः अपि**	द्विविदने भी
		पाणिना	हाथमें
मुसलं च हलं	मूसल और हल	**शालं उद्यम्य**	शाल वृक्ष उठा
आदत्त	उठा लिए,		लिया ॥१७॥

अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्ध्न्यताडयत् ।
तं तु संकर्षणो मूर्ध्नि पतन्तमचलो यथा ॥१८॥

अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्धनि अताडयत् तं तु सङ्कर्षणः मूर्ध्नि पतन्तं अचलं यथा ॥१८॥

तरसा बलं	वेगपूर्वक बलराम-जीके	**तं तु मूर्ध्नि**	उसे तो सिरपर
अभ्येत्य	सामने आकर	**अचलः यथा**	पर्वतके समान
तेन मूर्धनि	उससे सिर पर	**पतन्तं**	गिरते हुएको
अताडयत्	प्रहार किया	**संकर्षणः**	बलरामजीने ॥१८॥

प्रतिजग्राह बलवान् सुनन्देनाहनच्च तम् ।
मुसलाहतमस्तिष्को विरेजे रक्तधारया ॥१९॥

प्रति जग्राह बलवान् सुनन्देन अहनत् च तं मुसल आहत मस्तिष्कः विरेजे रक्तधारया ॥१९॥

प्रति जग्राह	बीचमें ही पकड़ लिया	**मुसल आहत**	मुसलकी चोट लगनेसे
बलवान्	(फिर उन) बल-वानने	**मस्तिष्कः**	उसका सिर
तं सुनन्देन	उसे (अपने मूसल) सुनन्दसे	**रक्तधारया**	रक्तकी धारासे
अहनत्	मारा	**विरेजे**	(ऐसा) शोभित हुआ ॥१९॥

गिरिर्यथा गैरिकया प्रहारं नानुचिन्तयन् ।
पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रमोजसा ॥२०॥

गिरिः यथा गैरिकया प्रहारं न अनु चिन्तयन् पुनः अन्यं सम उत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रं ओजसा ॥२०॥

यथा गैरिकया	जैसे गेरूकी (धारा) से	**अनु चिन्तयन्**	फिर चिन्ता
		न	न करके
गिरिः	पर्वत,	**पुनः अन्यं**	फिर दूसरे (वृक्ष)-को
प्रहारं	प्रहारकी		

सम उत्क्षिप्य	समूचा उखाड़कर	**कृत्वा**	करके ॥२०॥
ओजसा निष्पत्रं	बलपूर्वक पत्रहीन		

तेनाहनत् सुसंक्रुद्धस्तं बलः शतधाच्छिनत् ।
ततोऽन्येन रुषा जघ्ने तं चापि शतधाच्छिनत् ॥२१॥

तेन अहनत् सुसङ् क्रुद्धः तं बलः शतधा अच्छिनत् ततः अन्येन रुषा जघ्ने तं च अपि शतधा अच्छिनत् ॥२१॥

सुसङ् क्रुद्धः	अत्यन्त क्रोधसे	**अन्येन जघ्ने**	दूसरे (वृक्ष) से मारा
तेन अहनत्	उससे मारा		
तं बलः	उसे बलरामजीने	**तं च अपि**	उसे भी
शतधा	सैकड़ों	**शतधा**	सैकड़ों
अच्छिनत्	टुकड़े कर दिये,	**अच्छिनत्**	टुकड़े कर दिये ॥२१॥
ततः रुषा	फिर क्रोधसे		

एवं युध्यन् भगवता भग्ने भग्ने पुनः पुनः ।
आकृष्य सर्वतो वृक्षान् निर्वृक्षमकरोद् वनम् ॥२२॥

एवं युध्यन् भगवता भग्ने भग्ने पुनः पुनः आकृष्य सर्वतः वृक्षान् निःवृक्षं अकरोत् वनम् ॥२२॥

एवं भगवता	इस प्रकार भगवान (बलराम) से	**सर्वतः वृक्षान्**	चारों ओरसे वृक्षों-को
युध्यन्	युद्ध करते हुए (उसने)	**आकृष्य**	खींचता (उखाड़ता)
पुनः पुनः	बार-बार	**वनं निः वृक्षं**	वनको वृक्षहीन
भग्ने भग्ने	(वृक्षके) टूट जाने-पर	**अकरोत्**	कर दिया ॥२२॥

ततोऽमुञ्चच्छिलावर्षं बलस्योपर्यमर्षितः ।
तत् सर्वं चूर्णयामास लीलया मुसलायुधः ॥२३॥

ततः अमुञ्चत् शिला वर्षं बलस्य उपरि अमर्षितः तत् सर्वं चूर्णयामास लीलया मुसल आयुधः ॥२३॥

ततः अमर्षितः	तब असहनशील होकर
बलस्य उपरि	बलरामजीके ऊपर
शिला वर्षं	चट्टानोंकी वर्षा
अमुञ्चत्	करने लगा,
मुसल आयुधः	मूसल अस्त्र वाले (बलरामजी)ने
तत् सर्वं	उस सबको
लीलया	लीला पूर्वक
चूर्णयामास	चूर्ण कर दिया ॥२३॥

स बाहू तालसंकाशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः ।
आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरूरुजत् ॥२४॥

स बाहू तालसङ्काशौ मुष्टी कृत्य कपीश्वरः आसाद्य रोहिणी पुत्रं ताभ्यां वक्षसि अरूरुजत् ॥२४॥

स कपीश्वरः	उस वानरराजने
तालसङ्काशौ	ताड़ वृक्षके समान
बाहू मुष्टी	हाथोंका घूँसा
कृत्य	बनाकर
रोहिणी पुत्रं	रोहिणी-नन्दनके
आसाद्य	समीप आकर
ताभ्यां वक्षसि	उनसे (उनकी) छाती पर
अरूरुजत्	चोट की ॥२४॥

यादवेन्द्रोऽपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुसललाङ्गले ।
जत्रावभ्यर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद् रुधिरं वमन् ॥२५॥

यादवेन्द्रः अपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुसल लाङ्गले जत्रौ अभ्यर्दयत् क्रुद्धः सः अपत् रुधिरं वमन् ॥२५॥

यादवेन्द्र अपि	यादवेन्द्र (बलरामजी) ने भी
मुसल लाङ्गले त्यक्त्वा	मूसल-हल छोड़कर

क्रुद्धः दोर्भ्यां	क्रोध करके दोनों हाथोंसे	**स रुधरं वमन्**	(इससे) वह रक्त वमन करता
जत्रा: अभ्यर्दयत्	जत्रुको दबाया	**अपतत्**	गिर पड़ा ॥२५॥

चकम्पे तेन पतता सटङ्कः सवनस्पतिः ।
पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवाम्भसि ॥२६॥

चकम्पे तेन पतता सटङ्कः स वनस्पतिः पर्वतः कुरु शार्दूल वायुना नौः इव अम्भसि ॥२६॥

कुरु शार्दूल	कौरवसिंह !	**सटङ्कः**	सजल कुण्डों एवं
तेन पतता	उसके गिरनेसे	**स वनस्पतिः**	वृक्षोंके साथ
अम्भसि वायुना	जलमें आंधीके कारण	**पर्वतः चकम्पे**	पर्वत हिल उठा ॥२६॥
नौः इव	नौकाके समान		

जयशब्दो नमःशब्दः साधु साध्विति चाम्बरे ।
सुरसिद्धमुनीन्द्राणामासीत् कुसुमवर्षिणाम् ॥२७॥

जयशब्दः नमःशब्दः साधु साधु इति च अम्बरे सुरसिद्ध मुनीन्द्राणां आसीत् कुसुमवर्षिणाम् ॥२७॥

अम्बरे	आकाशसे	**च साधु साधु**	तथा 'अच्छा किया अच्छा किया
कुसुम वर्षिणाम्	पुष्प वर्षा करने वाले	**इति आसीत्**	ऐसी ध्वनि होने लगी ॥२७॥
सुरसिद्ध मुनीन्द्राणां	देवता, सिद्ध, मुनिश्रेष्ठोंकी		
जयशब्दः	जय-ध्वनि,		
नमःशब्दः	नमस्कार-ध्वनि		

एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ।
संस्तूयमानो भगवाज्जनैः स्वपुरमाविशत् ॥२८॥

एवं निहत्य द्विविदं जगत् व्यतिकर आवहं संस्तूयमानः भगवान् जनैः स्वपुरं आविशत् ॥२८॥

एवं	इस प्रकार
जगत् व्यतिकर	संसारमें अव्यवस्था
आवहं	फैलाने वाले
द्विविदं निहत्य	द्विविदको मारकर
जनैः	लोगों द्वारा
संस्तूयमानः	प्रशंसित होते
भगवान्	भगवान बलराम
स्वपुरं आविशत्	अपने नगरमें आ गये ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विविदवधो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

अथ अष्टषष्टितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

दुर्योधनसुतां राजन् लक्ष्मणां समितिंजयः ।
स्वयंवरस्थामहरत् साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ १ ॥

दुर्योधनसुतां राजन् लक्ष्मणां समितिञ्जयः स्वयंवरस्थां अहरत् साम्बः जाम्बवतीसुतः ॥१॥

राजन्	राजन्	स्वयंवरस्थां	स्वयम्वरमें स्थिति
समितिञ्जयः	समूहको जीतने वाले	दुर्योधनसुतां	दुर्योधनकी पुत्री
		लक्ष्मणां अहरत्	लक्ष्मणाका हरण कर लिया ॥१॥
जाम्बवतीसुतः	जाम्बवती-नन्दन		
साम्बः	साम्बने		

कौरवाः कुपिता ऊचुर्दुर्विनीतोऽयमर्भकः ।
कदर्थीकृत्य नः कन्यामकामामहरद् बलात् ॥ २ ॥

कौरवाः कुपिता ऊचुः दुर्विनीतः अयं अर्भकः कदर्थीकृत्य नः कन्यां अकामां अहरत् बलात् ॥२॥

कुपिता कौरवाः	क्रुद्ध होकर कौरव	अकामां कन्यां	अपनेको न चाहने वाली कन्याका
ऊचुः	बोले—	बलात् अहरत	बलपूर्वक हरण किया है ॥२॥
अयं अर्भकः	'यह बालक		
दुर्विनीतः	ढीठ है		
न कदर्थीकृत्य	हम सबको तुच्छ बनाकर		

बध्नीतेमं दुर्विनीतं किं करिष्यन्ति बृष्णयः ।
येऽस्मत्प्रसादोपचितां दत्तां नो भुञ्जते महीम् ॥ ३ ॥

बध्नीत इमं दुर्विनीतं किं करिष्यन्ति वृष्णयः ये अस्मत् प्रसाद उपचितां दत्तां नः भुञ्जते महीम् ॥३॥

इमं दुर्विनीतं	इस ढीठको	**उपचितां**	सम्पन्ना
बध्नीत	बाँध लो,	**नः दत्तां**	हमारी दी हुई
वृष्णयः	वृष्णि-वंशी	**महीम् भुञ्जते**	पृथ्वी (का राज)
किं करिष्यन्ति	क्या कर लेंगे		भोगते हैं ॥३॥
ये अस्मत्	जो हमारी		
प्रासाद	कृपासे		

निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यद्येष्यन्तीह वृष्णयः ।
भग्नदर्पाः शमं यान्ति प्राणा इव सुसंयताः ॥ ४ ॥

निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यदि एष्यन्ति इह वृष्णयः भग्नदर्पाः शमं यान्ति प्राणाः इव सुसंयताः ॥४॥

सुतं निगृहीतं	पुत्रको बन्धनमें पड़ा	**भग्नदर्पाः**	गर्व चूर होनेसे
श्रुत्वा वृष्णयः	सुनकर वृष्णि-वंशी (यादव)	**सुसंयताः**	अत्यन्त संयमित
यदि इह	यदि यहाँ	**प्राणाः इव**	प्राणोंके समान
एष्यन्ति	आवेंगे तो	**शमं यान्ति**	शान्त हो जायेंगे' ॥४॥

इति कर्णः शलो भूरिर्यज्ञकेतुः सुयोधनः ।
साम्बमारेभिरे बद्धुं कुरुवृद्धानुमोदिताः ॥ ५ ॥

इति कर्णः शलः भूरिः यज्ञकेतुः सुयोधनः साम्बं आरेभिरे बद्धुं कुरुवृद्धा अनुमोदिताः ॥५॥

इति कुरुवृद्धा	इस प्रकार कौरव वृद्धोंसे
अनुमोदिता	अनुमोदित होकर
कर्णः शलः	कर्ण, शल
भूरिः यज्ञकेतुः	भूरिश्रवा, यज्ञकेतु और
सुयोधन	दुर्योधन
साम्बं बद्धुं	साम्बको बांधनेमें
आरेभिरे	सब ओरसे भिड़ गये ॥५॥

दृष्ट्वानुधावतः साम्बो धार्तराष्ट्रान् महारथः ।
प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इवैकलः ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा अनुधावतः साम्बः धार्तराष्ट्रान् महारथः प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इव एकलः ॥६॥

धार्तराष्ट्रान्	धृतराष्ट्रके पुत्रोंको
अनुधावतः	अपने पीछे दौड़े आते
दृष्ट्वा	देखकर
महारथः	महारथी
साम्बः	साम्ब (अपना)
रुचिरं चापं	सुन्दर धनुष
प्रगृह्य	पकड़ कर
सिंह इव	सिंहके समान
एकलः तस्थौ	अकेले ही खड़े हो गये ॥६॥

तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणः ।
आसाद्य धन्विनो बाणैः कर्णाग्रण्यः समाकिरन् ॥ ७ ॥

तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धाः तिष्ठ तिष्ठ इति भाषिणः आसाद्य धन्विनः बाणैः कर्ण अग्रण्यः सम आकिरन् ॥७॥

ते क्रुद्धाः	वे कुपित
जिघृक्षवः	पकड़नेकी इच्छा वाले
कर्ण अग्रण्यः	कर्णके सेनापतित्व वाले
धन्विनः	धनुषधारी

तिष्ठ तिष्ठ	'ठहर ! ठहर !'	सम आकिरन्	अच्छी बौछार
इति भाषिणः	ऐसा कहते हुए		करने लगे ॥७॥
तं बाणैः	उन बाणोंकी		

सोऽपविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिर्यदुनन्दनः ।
नाभृष्यत्तदचिन्त्यार्भः सिंहः क्षुद्रमृगैरिव ॥ ८ ॥

सः अपविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिः यदुनन्दनः न अभृष्यत् तत् अचिन्त्य अर्भः सिंहः क्षुद्र मृगैः इव ॥८॥

कुरुश्रेष्ठ	कुरुश्रेष्ठ परीक्षित !	क्षुद्र मृगैः	क्षुद्र पशुओंको
कुरुभिः	कौरवों द्वारा	सिंहः इव	सिंहके समान
अपविद्धः	आक्रान्त होने पर	न अभृष्यत्	नहीं सह सका ॥८॥
सः यदुनन्दनः	वह यदुनन्दन		
अचिन्त्य अर्भः	अचिन्त्य श्रीकृष्ण-पक्ष		

विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान् विव्याध सायकैः ।
कर्णादीन् षड्रथान् वीरांस्तावद्भिर्युगपत् पृथक् ॥९॥

विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान् विव्याध सायकैः कर्ण आदीन् षट् रथान् वीरान् तावद् भिः युगपत् पृथक् ॥९॥

रुचिरं चाप	(अपने) सुन्दर धनुषकी	तावत्	उतने ही (६-६)
विस्फूर्ज्य	टंकार करके	भिः सायकैः	बाणोंने
कर्ण आदीन्	कर्णादि	सर्वान् पृथक्	सबको अलग-अलग
षट्	छहो	युगपत् विव्याध	एक साथ बेध दिया
रथान् वीरान्	वीर महारथियोंको		॥९॥

चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकैकेन च सारथीन् ।
रथिनश्च महेष्वासांस्तस्य तत्तेऽभ्यपूजयन् ॥१०॥

चतुः भिः चतुरः वाहान् एक एकेन च सारथीन् रथिनः च महेष्वासान् तस्य तत् ते अभ्यपूजयन् ॥१०॥

चतुः भिः	चार-चार बाणोंसे
चतुरः वाहान्	चार-चार घोड़ोंको
च एक एकेन	तथा एक-एकसे
सारथीन्	सारथियोंको
च महेष्वासान्	तथा महा धनुर्धर
रथिनः	राथियोंका
तस्य ते	उसके इस (पराक्रम) की वे
अभ्यपूजयन्	प्रशंसा करने लगे ॥१०॥

तं तु ते विरथं चक्रुश्चत्वारश्चतुरो हयान् ।
एकस्तु सारथिं जघ्ने चिच्छेदान्यः शरासनम् ॥११॥

तं तु ते विरथं चक्रुः चत्वारः चतुरः हयान् एकः तु सारथिं जघ्ने चिच्छेद अन्यः शरासनम् ॥११॥

तु चत्वारः	उनमें से चारने तो
चतुरः हयान्	चारों घोड़ोंको और
एकः तु	एक तो
सारथिं जघ्ने	सारथिको मार दिया
अन्यः शरासनं	दूसरेने धनुषको
चिच्छेद	काट दिया (इस प्रकार
तं ते	उसको उन्होंने
विरथं चक्रुः	रथहीन कर दिया ॥११॥

तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवो युधि ।
कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं जयिनोऽविशन् ॥१२॥

तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवः युधि कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं जयिनः आविशन् ॥१२॥

कृच्छ्रेण युधि	कठिनाईसे युद्धमें
विरथीकृत्य	रथहीन करके
तं कुमारं बध्वा	उनको बाँधकर
जयिनः कुरवः	विजयी कौरव
कुमारं च	कुमार तथा

स्वस्य कन्यां	अपनी कन्या (के साथ)	स्वपुरं आविशन्	अपने नगर लौट आये ॥१२॥

तच्छ्रुत्वा नारदोक्तेन राजन् संजातमन्यवः ।
कुरून् प्रत्युद्यमं चक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः ॥१३॥

तत् श्रुत्वा नारद उक्तेन राजन् सञ्जात मन्यवः कुरून् प्रति उद्यमं चक्रुः उग्रसेन प्रचोदिताः ॥१३॥

राजन्	राजन् !	उग्रसेन	(महाराज) उग्रसेन द्वारा
नारद उक्तेन	नारदजीके कहनेसे	प्रचोदिताः	प्रेरित होकर
तत् श्रुत्वा	वह समाचार सुनकर	कुरून् प्रति	कौरवोंके विरुद्ध
सञ्जात	कुपित	उद्यमं चक्रुः	उद्योग करने लगे ॥१३॥
मन्यवः	हुए (यादव)		

सान्त्वयित्वा तु तान् रामः संनद्धान् वृष्णिपुङ्गवान् ।
नैच्छत् कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमलापहः ॥१४॥

सान्त्वयित्वा तु तान् रामः सन्नद्धान् वृष्णि पुङ्गवान् न इच्छत् कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमल अपहः ॥१४॥

कलिमल जपहः	कलि कलुष नाशक	न इच्छात्	न चाहते हुए
रामः कुरूणां	बलरामजी कौरवों का और	तान् सन्नद्धान्	(युद्धको) प्रस्तुत
		वृष्णि	यादव
वृष्णीनां कलिं	वृष्णिवंशियोंका झगड़ा	पुङ्गवान् तु	श्रेष्ठोंको तो
		सान्त्वयित्वा	समझाकर ॥१४॥

जगाम हास्तिनपुरं रथेनादित्यवर्चसा ।
ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतश्चन्द्र इव ग्रहैः ॥१५॥

जगाम हस्तिनपुरं रथेन आदित्य वर्चसा ब्राह्मणैः कुलवृद्धैः च वृतः चन्द्र इव ग्रहैः ॥१५॥

ग्रहैः चन्द्र इव	ग्रहोंसे चन्द्रमाके समान	**रथेन**	रथसे
ब्राह्मणैः च	ब्राह्मणों तथा	**हस्तिनपुरं**	हस्तिनापुरको
कुलवृद्धैः वृतः	कुलके बड़ोंसे घिरे हुए	**जगाम**	प्रस्थान किया ॥१५॥
आदित्य वर्चसा	सूर्यके समान कान्तिवाले		

गत्वा गजाह्वयं रामो बाह्योपवनमास्थितः ।
उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥१६॥

गत्वा गजाह्वयं रामः बाह्य उपवनं आस्थितः उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥१६॥

गजाह्वयं गत्वा	हस्तिनापुर जाकर	**बुभुत्सया**	समाचार जाननेकी इच्छासे
बाह्य उपवनं	बाहरी बगीचेमें	**धृतराष्ट्रं**	धृतराष्ट्रके पास
आस्थितः	ठहरकर	**प्रेषयामास**	भेजा ॥१६॥
रामः उद्धवं	बलरामजीने उद्धव को		

सोऽभिवन्द्याम्बिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं च बाह्लिकम् ।
दुर्योधनं च विधिवद् राममागतमब्रवीत् ॥१७॥

सः अभिवन्द्य अम्बिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं च बाह्लिकं दुर्योधनं च विधिवत् रामं आगतं अब्रवीत् ॥१७॥

सः विधिवत्	उन्होंने विधिपूर्वक	**दुर्योधनं च**	दुर्योधनको भी
अम्बिकापुत्रं	अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र	**अभिवन्द्य**	अभिवादन करके
भीष्मं द्रोणं	भीष्म, द्रोणाचार्य	**रामं आगतं**	बलरामजीको आया
च बाह्लिकं	और बह्लिक	**अब्रवीत्**	बतलाया ॥१७॥

तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्य प्राप्तं रामं सुहृत्तमम् ।
तमर्चयित्वाभिययुः सर्वे मङ्गलपाणयः ॥१८॥

ते अति प्रीताः तं आकर्ण्य प्राप्तं रामं सुहृत् तमं तं अर्चयित्वा अभिययुः सर्वे मङ्गल पाणयः ॥१८॥

ते तं सुहृत् तमं	वे उन अत्यन्त सुहृद
रामं प्राप्तं	बलरामजीको आया
आकर्ण्य	सुनकर
अति प्रीताः	बहुत प्रसन्न हुए
तं अर्चयित्वा	उन (उद्धव)का सत्कार करके
सर्वे मङ्गल पाणयः	सब हाथोंमें मङ्गल द्रव्य लेकर
अभिययुः	(बलरामजीके) समीप आये ॥१८॥

तं संगम्य यथान्यायं गामर्घ्यं च न्यवेदयन् ।
तेषां ये तत्प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम् ॥१९॥

तं सङ्गम्य यथान्यायं गां अर्घ्यं च न्यवेदयन् तेषां ये तत् प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम् ॥१९॥

यथान्यायं	औचित्यके अनुसार
तं सङ्गम्य	उनसे मिलकर
गां च अर्घ्यं	गाय और अर्घ्य
निवेदयन्	निवेदन किया
तेषां ये	उनमें जो
तत् प्रवावज्ञाः	उनके प्रभावको जानने वाले थे
बलं	बलरामजीको (उन्होंने)
शिरसा प्रणेमुः	सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥१९॥

बन्धून् कुशलिनः श्रुत्वा पृष्ट्वा शिवमनामयम् ।
परस्परमथो रामो बभाषेऽविक्लवं वचः ॥२०॥

बन्धून कुशलिनः श्रुत्वा पृष्ट्वा शिवं अनामयं परस्परं अथो रामः बभाषे अविक्लवं वचः ॥२०॥

परस्परं	आपसमें	**अथो रामः**	फिर बलरामजी
शिव अनामयं	मंगल तथा स्वस्थता	**अविक्लवं**	व्याकुलताहीन
पृष्ट्वा	पूछकर	**वचः बभाषे**	वाणीसे बोले
बन्धून्	सम्बन्धियोंको		॥२०॥
कुशलिनः	सकुशल		
श्रुत्वा	सुनकर		

उग्रसेनः क्षितीशेशो यद् व आज्ञापयत् प्रभुः ।
तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वं माविलम्बितम् ॥२१॥

उग्रसेनः क्षितीश ईशः यत् वः आज्ञापयत् प्रभुः तत् अव्यग्र धियः श्रुत्वा कुरुध्वं मा विलम्बितम् ॥२१॥

प्रभुः	समर्थ	**तत्**	उसे
क्षितीश ईशः	राजाधिराज	**अव्यग्र धियः**	अचंचल चित्तसे
उग्रसेनः	उग्रसेनजी	**श्रुत्वा कुरुध्वं**	सुनकर पालन करो
यत् वः	जो आप लोगोंको	**मा विलम्बितं**	देर मत करो
आज्ञापयत्	आज्ञा दे रहे हैं		॥२१॥

यद् यूयं बहवस्त्वेकं जित्वाधर्मेण धार्मिकम् ।
अबध्नीताथ तन्मृष्ये बन्धूनामैक्यकाम्यया ॥२२॥

यत् यूयं बहवः तु एकं जित्वा अधर्मेण धार्मिकं अबध्नीत अथ तत् मृष्ये बन्धूनां ऐक्य काम्यया ॥२२॥

यत् बहवः	जो बहुतसे	**एकं धार्मिकं**	अकेले धर्मात्माको
यूयं तु	तुम लोगोंने	**जित्वा**	जीतकर
अधर्मेण	अधर्म पूर्वक	**अबध्नीत**	बांध लिया है

अथ तत्र	अब इसे तो	मृष्ये	(हमने) सहन कर
बन्धूनां	सम्बन्धियोंमें		लिया' ॥२२॥
ऐक्य काम्यया	एकता रखनेकी इच्छासे		

वीर्यशौर्यबलोन्नद्धमात्मशक्तिसमं वचः ।
कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥२३॥

वीर्यं शौर्यं बल उन्नद्धं आत्मशक्ति समं वचः कुरवः बलदेवस्य निशम्य ऊचुः प्रकोपिताः ॥२३॥

कुरवः	कौरव	समं वचः	समान वाणी
बलदेवस्य	बलरामजीकी	निशम्य	सुनकर
वीर्यं शौर्यं	पराक्रम, शूरता	प्रकोपिताः	बहुत कुपित होकर
बल उन्नद्धं	बलसे परिपूर्ण	ऊचुः	बोले ॥२३॥
आत्मशक्ति	अपनी शक्तिके		

॥ कुरवोऊचुः ॥*

अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया ।
अरुरुक्षत्युपानद् वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥२४॥

अहो महत् चित्रं इदं कालगत्या दुः अत्यया आरुरुक्षति उपानत् वै शिरः मुकुट सेवितम् ॥२४॥

अहो	अहो	वै उपानत्	निश्चय जूता
महत् चित्रं	बहुत विचित्र बात है	मुकुट सेवितं	मुकुटसे सेवित
		शिरः	सिर पर
कालगत्या	कालकी गति	आरुरुक्षति	चढ़ना चाहता है ॥२४॥
दुः अत्यया	दुर्लंघ्य है		

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

एते यौनेन सम्बद्धाः सहशय्यासनाशनाः ।
वृष्णयस्तुल्यतां नीता अस्मद्दत्तनृपासनाः ॥२५॥

एते यौनेन सम्बद्धाः सह शय्या आसन अशनाः वृष्णयः तुल्यतां नीता अस्मत् दत्त नृप आसनाः ॥२५॥

एते वृष्णयः	ये यादव	**तुल्यतां नीता**	बराबर बना लिये गये
यौनेन सम्बद्धाः	वैवाहिक सम्बन्धसे सम्बन्धी हो गये	**अस्मत दत्त**	हमारा दिया
शय्या आसन	सोने, बैठने,	**नृप आसनाः**	राज्यासन (इनके पास है) ॥२५॥
अशनाः	भोजनमें		

चामरव्यजने शङ्खमातपत्रं च पाण्डुरम् ।
किरीटमासनं शय्यां भुञ्जन्त्यस्मदुपेक्षया ॥२६॥

चामर व्यजने शङ्खं आतपत्रं च पाण्डुरं किरीटं आसनं शय्यां भुञ्जन्ति अस्मत् उपेक्षया ॥२६॥

अस्मत् उपेक्षया	हमारे उपेक्षा (कर देने)से	**पाण्डुरं आतपत्रं**	श्वेत छत्र
चामर व्यजने	चामर, व्यञ्जन	**किरीटं आसनं**	मुकुट, सिंहासन
शङ्खं च	शंख और	**शय्यां भुञ्जन्ति**	शय्या भोगते हैं ॥२६॥

अलं यदूनां नरदेवलाञ्छने-
र्दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतम् ।
येऽस्मत्प्रसादोपचिता हि यादवा
आज्ञापयन्त्यद्य गतत्रपा बत ॥२६॥

अलं यदूनां नरदेव लाञ्छनैः दातुः प्रतीपैः फणिनां इव अमृतं ये अस्मत् प्रसाद उपचिता हि यादवा आज्ञापयन्ति अद्य गतत्रपा बत ॥२७॥

फणिनां अमृतं	सर्पोंको अमृत
दातुः	देनेवालेके ही
प्रतीपैः इव	विरुद्ध होनेके समान
हि ये यादवा	क्योंकि जो यादव
अस्मत् प्रसाद	हमारी कृपासे
उपचिता	समृद्ध हुए
वै गतत्रपा	निश्चय निर्लज्ज होकर
बतं अद्य	अहो आज
आज्ञापयन्ति	(हमको ही) आज्ञा दे रहे हैं, अतः
यदूनां	यदुवंशियोंको
नरदेव	राजाओंके
लाच्छनैः	चिह्न
अलं	बहुत हो गये (इनके छीन लेना चाहिए) ॥२७॥

कथमिन्द्रोऽपि कुरुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः ।
अदत्तमवरुन्धीत सिंहग्रस्तमिवोरणः ॥२८॥

कथं इन्द्रः अपि कुरुभिः भीष्म द्रोण अर्जुन आदिभिः अदत्तं अवरुन्धीत सिंहग्रस्तं इव उरणः ॥२८॥

सिंह ग्रस्तं	सिंहके पकड़े हुएको
उरणः इव	भेड़ेके समान
भीष्म द्रोण	भीष्म, द्रोणाचार्य
अर्जुन आदिभिः	अर्जुन आदि
कुरुभि अदत्तं	कौरवोंके दिये बिना
इन्द्रः अपि कथं	इन्द्र भी कैसे
अवरुन्धीत	(कोई वस्तु) भोग सकता है ॥२८॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

जन्मबन्धुश्रियोन्नद्धमदास्ते भरतर्षभ ।
आश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् ॥२९॥

जन्म बन्धु श्रिय उन्नद्ध मदाः ते भरत ऋषभ आश्राव्य रामं दुर्वाच्यं असभ्याः पुरं आविशन् ॥२९॥

भरत ऋषभ	भरत श्रेष्ठ !
जन्म बन्धु श्रिय	कुल कुटुम्ब, धनसे
उन्नद्ध मदाः	बढ़े घमण्ड वाले
ते असभ्याः	वे असभ्य
रामं दुर्वाच्यं	बलरामजीको
	दुर्वचन
आश्राव्य	सुनाकर
पुरं आविशन्	नगरमें चले गये
	॥२६॥

दृष्ट्वा कुरूणां दौःशील्यं श्रुत्वावाच्यानि चाच्युतः ।
अवोचत् कोपसंरब्धो दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन् मुहुः ॥३०॥

दृष्ट्वा कुरूणां दौःशीलं श्रुत्वा अवाच्यानि च अच्युतः अवोचत् कोप संरब्धः दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन् मुहुः ॥३०॥

कुरूणां दौःशीलं	कौरवोंकी
	कुटिलता
दृष्ट्वा च	देखकर तथा
अवाच्यानि	न कहने योग्य वचन
श्रुत्वा	सुनकर
कोपसंरब्धः	क्रोधावेशसे
दुष्प्रेक्ष्यः	देखना कठिन हो
	गयी आकृति वाले
अच्युतः	अच्युत बलरामजी
मुहुः प्रहसन्	बार-बार अट्टहास
	करते
अवोचत्	कहने लगे ॥३०॥

नूनं नानामदोन्नद्धाः शान्ति नेच्छन्त्यसाधवः ।
तेषां हि प्रशमो दण्डः पशूनां लगुडो यथा ॥३१॥

नूनं नाना मद उन्नद्धाः शान्ति न इच्छन्ति असाधवः तेषां हि प्रशमः दण्डः पशूनां लगुडः यथा ॥३१॥

नाना	नाना प्रकारके
मद उन्नद्धाः	मदोंसे उन्नत
असाधवः	दुष्ट लोग
नूनं शान्ति	निश्चय शान्ति
न इच्छन्ति	नहीं चाहते
हि तेषां	क्योंकि उनको

प्रशमः दण्डः	शान्त करनेका (उपाय) दण्ड ही है	**यथा पशूनां लगुडः**	जैसे पशुओंके लिए डण्डा ॥३१॥

अहो यदून् सुसंरब्धान् कृष्णं च कुपितं शनैः ।
सान्त्वयित्वाहमेतेषां शममिच्छन्निहागतः ॥३२॥

अहो यदून् सुसंरब्धान् कृष्णं च कुपितं शनैः सान्त्वयित्वा अहं एतेषां शमं इच्छन् इह आगतः ॥३२॥

अहो सुसंरब्धान्	अहो अत्यन्त उत्तेजित	**एतेषां**	इनकी ही
यदून् च कुपितं	यादवोंको तथा क्रुद्ध	**शमं इच्छन्**	शान्तिकी इच्छासे
कृष्णं	श्रीकृष्णको	**अहं इह आगतः**	मैं यहाँ आया ॥३२॥
शनैः	धीरे-धीरे		
सान्त्वयित्वा	समझाकर		

त इमे मन्दमतयः कलहाभिरताः खलाः ।
तं मामवज्ञाय मुहुर्दुर्भाषान् मानिनोऽब्रुवन् ॥३३॥

त इमे मन्दमतयः कलह अभिरताः खलाः तं मां अवज्ञाय मुहुः दुर्भाषान् मानिनः अब्रुवन् ॥३३॥

त इमे	वे ये	**तं मां अवज्ञाय**	उस मेरी अवज्ञा करके
मन्दमतयः	मन्दमति	**मुहुः दुर्भाषान्**	बार-बार दुर्वचन
कलह	कलह	**अब्रुवन्**	कहते रहे ॥३३॥
अभिरताः	प्रिय		
खलाः मानिनः	दुष्ट घमण्डी		

नोग्रसेनः किल विभुर्भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ।
शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः ॥३४॥

न उग्रसेनः किल विभुः भोज वृष्णि अन्धक ईश्वरः शक्र आद्याः लोकपाला यस्य आदेश अनुवर्तिनः ॥३४॥

शक्र आदयः	इन्द्रादि
लोकपाला	लोकपाल
यस्य आदेश	जिनकी आज्ञाके
अनुवर्तिनः	अनुसार चलने वाले हैं
किल उग्रसेनः	अहो वे उग्रसेनजी
विभुः न	सम्राट् नहीं हैं (केवल)
भोज वृष्णि	भोज, वृष्णि,
अन्धक ईश्वरः	अन्धक वंशियोंके स्वामी हैं ? ॥३४॥

सुधर्माऽऽक्रम्यते येन पारिजातोऽमराङ्घ्रिपः ।
आनीय भुज्यते सोऽसौ न किलाध्यासनार्हणः ॥३५॥

सुधर्मा आक्रम्यते येन पारिजातः अमर अंघ्रिपः आनीय भुज्यते सः असौ न किल अध्यासन अर्हणः ॥३५॥

येन सुधर्मा	जिनके द्वारा (देव सभा) सुधर्मा
आक्रम्यते	आक्रान्त होती है,
अमर अंघ्रिपः	देववृक्ष
पारिजातः	कल्पवृक्ष
आनीय भुज्यते	लाकर भोगा जाता है
सः असौ किल	वही ये (श्रीकृष्ण) अहो
अध्यासन	राजसिंहासनके
अर्हणः न	योग्य नहीं है ? ॥३५॥

यस्य पादयुगं साक्षात् श्रीरुपास्तेऽखिलेश्वरी ।
स नार्हति किल श्रीशो नरदेवपरिच्छदान् ॥३६॥

यस्य पादयुगं साक्षात् श्रीः उपास्ते अखिल ईश्वरी स न अर्हति किल श्रीशः नरदेव परिच्छदान् ॥३६॥

यस्य पादयुगं	जिनके चरण-युगल की
अखिलः ईश्वरी	सर्वेश्वरी
साक्षात् श्रीः	साक्षात् लक्ष्मी
उपास्ते	सेवा करती हैं
स श्रीशः किल	वे लक्ष्मीनाथ अहो

नरदेव परिच्छदान्	राजाओंके उपकरण	**अर्हंति न**	पाने योग्य नहीं हैं ? ॥३६॥

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजोऽखिललोकपालै-
र्मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम् ।
ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः
श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥३७॥

यस्य अंघ्रि पङ्कज रजः अखिल लोकपालैः मौलि उत्तमैः धृतं उपासित तीर्थं तीर्थं ब्रह्मा भवः अहं अपि यस्य कलाः कलायाः श्रीः च उद्वहेम चिरं अस्य नृप आसनं क्व ॥३७॥

यस्य अंघ्रि पङ्कज रजः	जिनके चरण-कमलकी रज	**अहं अपि**	तथा मैं भी
अखिल लोकपालैः	समस्त लोकपालों द्वारा	**श्रीः च**	एवं लक्ष्मी
मौलि उत्तमैः	सिरके श्रेष्ठ मुकुट पर	**यस्य कलायाः**	जिनके अंशके अंशसे (उत्पन्न) होकर
धृतं उपासित	धारण करके सेवित होती है	**चिरं उद्वहेम**	अनन्त कालसे (वह चरण-रज) धारण करते हैं
तीर्थं तीर्थं	और तीर्थोंको भी पवित्र करने वाली है	**अस्य**	इन (श्रीकृष्ण)के लिए
ब्रह्मा भवः	ब्रह्मा; शिव	**नृप आसनं क्व**	राज्यासन होता क्या है ॥३७॥

भुञ्जते कुरुभिर्दत्तं भूखण्डं वृष्णयः किल ।
उपानहः किल वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ॥३८॥

भुञ्जते कुरुभिः दत्तं भूखण्डं वृष्णयः किल उपानहः किल वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ॥३८॥

किल कुरुभिः	अहो कौरवोंका	**उपानहः**	जूते हैं
दत्तं	दिया	**तु स्वयं**	और स्वयं
भूखण्डं	भूमिका टुकड़ा	**कुरवः शिरः**	कौरव मस्तक हैं
वृष्णयः भुञ्जते	यादव भोगते हैं		॥३८॥
किल वयं	अहो, हम लोग		

अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामिव मानिनाम् ।
असम्बद्धा गिरो रूक्षाः कः सहेतानुशासिता ॥३९॥

अहो ऐश्वर्य मत्तानां मत्तानां इव मानिनां असम्बद्धा गिरः रूक्षाः कः सहेत अनुशासिता ॥३९॥

अहो ऐश्वर्य	अहो, ऐश्वर्य	**रूक्षाः गिरः**	रूखी बातें
मत्तानां	मदोन्मत्त	**अनुशासिता**	(इनका) शासन करनेमें समर्थ
मानिनां	अभिमानी		
मत्तानां इव	उन पागलोंके समानोंकी	**कः सहेत**	कौन सहन करेगा ॥३९॥
असम्बद्धा	बेसिर पैरकी		

अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः ।
गृहीत्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम् ॥४०॥

अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामि इति अमर्षितः गृहीत्वा हलं उत्तस्थौ दहन् इव जगत् त्रयम् ॥४०॥

अद्य पृथ्वी	(अतः) आज पृथ्वी को	**जगत् त्रयं**	तीन लोकोंको
निष्कौरवीं	कौरवहीन	**दहन् इव**	भस्म करते हुए से
करिष्यामि	कर दूंगा'	**हलं गृहीत्वा**	हल लेकर
इति अमर्षितः	इस प्रकार असहन-शील होकर	**उत्तस्थौ**	उठ खड़े हुए ॥४०॥

लाङ्गलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम् ।
विचकर्ष स गङ्गायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः ॥४१॥

लाङ्गल अग्रेण नगरं उद् विदार्य गज आह्वयं विचकर्ष स गङ्गायां प्रहरिष्यन् अमर्षितः ॥४१॥

अमर्षितः	असहनशील हो उठे थे अतः	**लाङ्गल अग्रेण**	हलकी नोंकसे
गज आह्वयं नगरं	हस्तिनापुरको	**उद् विदार्य**	उखाड़कर
प्रहरिष्यन्	नष्ट करनेके लिए	**गङ्गायां**	गंगाकी ओर
		विचकर्ष	खींचने लगे ॥४१॥

जलयानमिवाघूर्णं गङ्गायां नगरं पतत् ।
आकृष्यमाणमालोक्य कौरवा जातसम्भ्रमाः ॥४२॥

जलयानं इव आघूर्णं गङ्गायां नगरं पतत् आकृष्यमाणं आलोक्य कौरवा जात सम्भ्रमाः ॥४२॥

आकृष्यमाणं	खींचे जाते हुए	**आलोक्य**	देखकर
गङ्गायां पतत्	गंगामें गिरते	**कौरवा**	कौरव
नगरं	नगरको	**जात सम्भ्रमाः**	घबड़ाहटमें पड़ गये ॥४२॥
जलयानं इव	नौकाके समान		
आघूर्णं	घूमता		

तमेव शरणं जग्मुः सकुटुम्बा जिजीविषवः ।
सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य साम्बं प्राञ्जलयः प्रभुम् ॥४३॥

तं एव शरणं जग्मुः सकुटुम्बा जिजीविषवः सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य साम्बं प्राञ्जलयः प्रभुम् ॥४३॥

जिजीविषवः	जीनेकी इच्छासे	**सलक्ष्मणं**	लक्ष्मणाके साथ
सकुटुम्बा	कुटुम्बके साथ		

साम्बं	साम्बको	तं एव प्रभुं	उन्हीं समर्थकी
पुरस्कृत्य	आगे करके	शरणं जग्मुः	शरणमें हो गये
प्राञ्जलयः	हाथ जोड़कर		॥४३॥

॥ कौरवा ऊचुः ॥*

राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते ।
मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ॥४४॥

राम राम अखिल आधार प्रभावं न विदाम ते मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुं अर्हसि अतिक्रमम् ॥४४॥

राम	बलरामजी !	कुबुद्धीनां	दुर्बुद्धियों (द्वारा हुयी)
अखिल आधार	सर्वाधार	अतिक्रमं	अवज्ञाको
राम	बलरामजी !	क्षन्तुं अर्हसि	(आपको) क्षमा कर देना चाहिए
ते प्रभावं	आपका प्रभाव		॥४४॥
न विदाम	(हम) नहीं जानते		
नः मूढानां	हम मूर्खों		

स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः ।
लोकान् क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदन्ति हि ॥४५॥

स्थिति उत्पत्ति अप्ययानां त्वं एकः हेतुः निराश्रयः लोकान् क्रीडनकान् ईश क्रीडतः ते वदन्ति हि ॥४५॥

एकः त्वं	अकेले आप	स्थिति उत्पत्ति	(जगत्की) स्थिति सृष्टि
निराश्रयः	बिना दूसरेकी सहायताके		

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अप्ययानां	प्रलयके
हेतुः	कारण हैं
हि लोकान्	क्योंकि लोकोंको
क्रीडतः ते	खेलते हुए आपके
क्रीडनकान्	खिलौने
वदन्ति	(शास्त्र) बतलाते हैं ॥४५॥

त्वमेव मूर्ध्नीदमनन्त लीलया
भूमण्डलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् ।
अन्ते च यः स्वात्मनि रुद्धविश्वः
शेषेऽद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥४६॥

त्वं एव मूर्ध्नि इदं अनन्त लीलया भूमण्डलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् अन्ते च यः स्व आत्मनि रुद्ध विश्वः शेषे अद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥४६॥

सहस्रमूर्धन्	सहस्रशीर्षा !
अनन्त	अनन्त !
इदं भूमण्डलं	इस भूमण्डलको
लीलया	लीला पूर्वक
मूर्ध्नि बिभर्षि	सिर पर धारण करते हैं,
च अन्ते	तथा प्रलय-काल में
यः विश्वः	जो विश्वको
आत्मनि रुद्ध	अपनेमें लीन करके
परिशिष्यमाणः	एकमात्र बचे हुए
अद्वितीयः शेषे	अद्वितीय रूपसे सोते हैं
त्वं एव	वे (नारायण भी) आप ही हैं ॥४६॥

कोपस्तेऽखिलशिक्षार्थं न द्वेषान्न च मत्सरात् ।
बिभ्रतो भगवन् सत्त्वं स्थितिपालनतत्परः ॥४७॥

कोपः ते अखिल शिक्षा अर्थं न द्वेषात् न च मत्सरात् बिभ्रतः भगवन् सत्त्वं स्थिति पालन तत्परः ॥४७॥

भगवन्	भगवन् !
सत्त्वं विभ्रतः	सत्त्व गुण धारण करके
स्थिति पालन	(जगतकी) स्थिति और पालनमें
तत्परः ते	लगे हुए आपका
कोपः न द्वेषात्	क्रोध न द्वेषसे है,
च न मत्सरात्	और न मात्सर्यके कारण है
अखिल	सबको
शिक्षा अर्थं	शिक्षा देनेके लिए है ॥४७॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

नमस्ते सर्वभूतात्मन् सर्वशक्तिधराव्यय ।
विश्वकर्मन् नमस्तेऽस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥४८॥

नमः ते सर्वभूत आत्मन् सर्वशक्तिधर अव्यय विश्वकर्मन् नमः ते अस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥४८॥

सर्वभूत	सब प्राणियोंके
आत्मन्	आत्मा
सर्वशक्तिधर	समस्त शक्तियोंके धारक
अव्यय	अविनाशी
ते नमः	आपको नमस्कार,
विश्वकर्मन्	विश्व-विधायक !
ते नमः अस्तु	आपको नमस्कार हो
वयं त्वां	हम आपके
शरणं गताः	शरणागत हैं ॥४८॥

एवं प्रपन्नैः संविग्नैर्वेपमानायनैर्बलः ।
प्रसादितः सुप्रसन्नो मा भैष्टेत्यभयं ददौ ॥४९॥

एवं प्रपन्नैः संविग्नैः वेपमान अयनैः बलः प्रसादितः सुप्रसन्नः मा भैष्ट इति अभयं ददौ ॥४९॥

वेपमान अयनैः	डगमगाते घरोंके कारण
संविग्नैः	अत्यन्त उद्विग्न होकर

एवं प्रपन्नैः	इस प्रकार शरणागतों द्वारा
प्रसादितः	प्रसन्न किये जाने पर
सुप्रसन्नः	ठीक-ठीक प्रसन्न होकर
बलः	बलरामजीने
मा भैष्ट इति	'मत डरो' यह कह कर
अभयं ददौ	अभय दे दिया ॥४९॥

दुर्योधनः पारिबर्हं कुञ्जरान् षष्टिहायनान् ।
ददौ च द्वादशशतान्ययुतानि तुरङ्गमान् ॥५०॥

दुर्योधनः पारिबर्हं कुञ्जरान् षष्टि हायनान् ददौ च द्वादश शतानि अयुतानि तुरङ्गमान् ॥५०॥

दुर्योधनः	दुर्योधनने
पारिबर्हं	दहेजमें
षष्टि हायनान्	साठ वर्षकी अवस्था वाले
द्वादश शतानि	बारह सौ
कुञ्जरान्	हाथी
च अयुतानि	तथा दस हजार
तुरङ्गमान् ददौ	घोड़े दिये ॥५०॥

रथानां षट्सहस्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसाम् ।
दासीनां निष्ककण्ठीनां सहस्रं दुहितृवत्सलः ॥५१॥

रथानां षट् सहस्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसां दासीनां निष्ककण्ठीनां सहस्रं दुहितृ वत्सलः ॥५१॥

दुहितृ वत्सलः	उस पुत्री-वत्सलने
षट् सहस्राणि	छ सहस्र
रौक्माणां	स्वर्ण-मण्डित
सूर्यवर्चसां	सूर्यके समान कान्तियुक्त
रथानां	रथ एवं
निष्ककण्ठीनां	पदक गलेमें पहिने
दासीनां सहस्रं	एक सहस्र दासियां दीं ॥५१॥

प्रतिगृह्य तु तत् सर्वं भगवान् सात्वतर्षभः ।
ससुतः सस्नुषः प्रागात् सुहृद्भिरभिनन्दितः ॥५२॥

प्रतिगृह्य तु तत् सर्वं भगवान् सात्वत् ऋषभः ससुतः सस्नुषः प्रागात् सुहृत् भिः अभिनन्दितः ॥५२॥

सात्वत ऋषभः	यादव श्रेष्ठ
भगवान्	भगवान (वलराम जी)
तत् सर्वं तु	वह सब कुछ
प्रतिगृह्य	लेकर
ससुतः सस्नुषः	पुत्र (साम्ब)के साथ तथा पुत्र वधू के साथ
सुहृत् भिः	बन्धुजनोंसे
अभिनन्दितः	सत्कृत होकर
प्रागात्	चले गये ॥५२॥

ततः प्रविष्टः स्वपुरं हलायुधः
समेत्य बन्धूननुरक्तचेतसः ।
शशंस सर्वं यदुपुङ्गवानां
मध्ये सभायां कुरुषु स्वचेष्टितम् ॥५३॥

ततः प्रविष्टः स्वपुरं हल आयुधः सम एत्य बन्धून् अनुरक्त चेतसः शशंस सर्वं यदुपुङ्गवानां मध्ये सभायां कुरुषु स्वचेष्टितम् ॥५३॥

ततः	फिर
हल आयुधः	हलधरजी
स्वपुरं प्रविष्टः	अपने नगरमें प्रविष्ट हुए
अनुरक्त चेतसः	अनुरक्त चित्त
बन्धून् सम एत्य	बन्धुओंके समीप पहुँचकर
सभायां मध्ये	राजसभाके बीचमें
यदुपुङ्गवानां	यादव-श्रेष्ठोंसे
कुरुषु	कौरवोंके साथ
स्वचेष्टितं	अपना व्यवहार
सर्वं शशंस	सब बतलाया ॥५३॥

अद्यापि च पुरं ह्येतत् सूचयद् रामविक्रमम् ।
समुन्नतं दक्षिणतो गङ्गायामनुदृश्यते ॥५४॥

अद्य अपि च पुरं हि एतत् सूचयत् राम विक्रमं सम उन्नतं दक्षिणतः गङ्गायां अनु दृश्यते ॥५४॥

हि एतत् पुरं	क्योंकि यह नगर
अद्य अपि च	आज भी
दक्षिणतः	दक्षिणकी ओर
सम उन्नतं	पर्याप्त ऊँचा उठा और
गङ्गायां अनु	गंगाकी ओर नीचा
दृश्यते	दीखता है
राम विक्रमं	बलरामजीका पराक्रम
सूचयत्	सूचित करता है

॥५४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे हस्तिनपुरकर्षणरूपसंकर्षणविजयो नाम अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

अथ एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषिताम् ।
कृष्णेनैकेन बह्वीनां तद् दिदृक्षुः स्म नारदः ॥ १ ॥

नरकं निहतं श्रुत्वा तथा उद्वाहं च योषितां कृष्णेन एकेन बह्वीनां तत् दिदृक्षुः स्म नारदः ॥१॥

नरकं निहत	नरकासुरको मारा गया	**उद्वाहं च**	विवाह भी
		श्रुत्वा नारदः	सुनकर नारदजी
तथा एकेन	तथा अकेले	**तत् दिदृक्षुः स्म**	उसे देखनेकी इच्छा
कृष्णेन बह्वीनां	श्रीकृष्णका बहुतसी		से ही ॥१॥
योषितां	स्त्रियोंसे		

चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत् पृथक् ।
गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥ २ ॥

चित्रं बत् एतत् एकेन वपुषा युगपत् पृथक् गृहेषु द्व्यष्ट साहस्रं स्त्रिय एक उद् आवहत् ॥२॥

बत् एतत् चित्रं	(यह सोचकर कि) 'अहो यह अद्भुत बात है कि	**द्व्यष्ट साहस्रं**	दो आठ (सोलह) सहस्र
		स्त्रिय एक	स्त्रियोंसे एकने ही
एकेन वपुषा	एक ही शरीरसे	**उद् आवहत्**	विवाह कर लिया' ॥२॥
युगपत्	एक साथ		
पृथक् गृहेषु	अलग-अलग घरोंमें		

इत्युत्सुको द्वारवतीं देवर्षिर्द्रष्टुमागमत् ।
पुष्पितोपवनारामद्विजालिकुलनादिताम् ॥ ३ ॥

इति उत्सुकः द्वारवतीं देवर्षिः द्रष्टुं आगमत् पुष्पित उपवन आराम द्विज अलिकुल नादिताम् ॥३॥

इति उत्सुकः	इस प्रकार उत्सुक होकर	**नादितां**	गुंजायमान
देवर्षिः द्रष्टुं	देवर्षि देखनेके लिए	**द्वारवतीं**	द्वारिकापुरी
पुष्पित उपवन	पुष्पित उद्यान	**आगमत्**	आये ॥३॥
आराम	क्रीड़ास्थल		
द्विज अलिकुल	पक्षियों तथा भ्रमरों (के शब्दसे)		

उत्फुल्लेन्दीवराम्भोजकह्लारकुमुदोत्पलैः ।
छुरितेषु सरस्सूच्चैः कूजितां हंससारसैः ॥ ४ ॥

उत्फुल्ल इन्दीवर अम्भोज कह्लार कुमुद उत्पलैः छुरितेषु सरसि उच्चैः कूजितां हंस सारसैः ॥४॥

उत्फुल्ल	प्रफुल्ल	**सरसि उच्चैः**	सरोवरोंमें उच्च स्वरसे
इन्दीवर	नीलकमल,	**हंस सारसैः**	हंस एवं सारसोंके
अम्भोज	गुलाबी कमल	**कूजितां**	कूजनसे गूंजती ॥४॥
कह्लार कुमुद	लाल कमल, कुमुदिनी,		
उत्पलैः	श्वेत कमल वाले		

प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः ।
महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥

प्रासाद लक्षैः नवभिः जुष्टां स्फाटिक राजतैः महामरकत प्रख्यैः स्वर्णरत्न परिच्छदैः ॥५॥

स्वर्णरत्न	स्वर्ण एवं रत्नोंके	**नवभिः लक्षैः**	नौ लाख
परिच्छदैः	उपकरणों युक्त	**प्रासाद जुष्टां**	भवनोंसे युक्त
महामरकत	महामरकत-		॥५॥
प्रख्यैः	मणिके समान		
स्फाटिक	स्फाटिक तथा		
राजतैः	चाँदीके		

विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः
शालासभाभी रुचिरां सुरालयैः ।
संसिक्तमार्गाङ्गणवीथिदेहलीं
पतत्पताकाध्वजवारितातपाम् ॥ ६ ॥

विभक्त रथ्या पथ चत्वर आपणैः शाला सभाभी रुचिरां सुर आलयैः संसिक्त मार्ग अङ्गण वीथि देहलीं पतत् पताका ध्वज वारित आतपाम् ॥६॥

विभक्त	अलग-अलग बने	**वीथि देहलीं**	गलियां, द्वार
रथ्या पथ	गली, मार्ग	**संसिक्त**	सींचे हुए,
चत्वर आपणैः	चौराहे, बाजार,	**पतत्**	उड़ती
शाला सभाभी	शाला, सभा-भवन,	**पताका ध्वज**	झंडियों एवं झण्डों से
सुर आलयैः	देव-मन्दिरोंसे	**वारित आतपां**	धूपका निवारण जहाँ होता था
रुचिरां	सुन्दर लगती		॥६॥
मार्ग अङ्गण	मार्ग, आंगन,		

तस्यामन्तःपुरं श्रीमदर्चितं सर्वधिष्ण्यपैः ।
हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्ट्रा कात्स्न्र्येन दर्शितम् ॥ ७ ॥

तस्यां अन्तःपुरं श्रीमत् अर्चितं सर्व धिष्ण्यपैः हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्ट्रा कात्स्न्र्येन दर्शितम् ॥७॥

तस्यां श्रीमत्	उस (पुरी)में सम्पन्न	यत्र त्वष्ट्रा	जिसमें विश्वकर्मने
सर्व धिष्ण्यपैः	समस्त लोकपालों द्वारा	स्व कौशलं	अपनी कारीगरी
अर्चितं	पूजित	कात्स्न्र्येन	पूर्ण रूपसे
हरेः अन्तःपुरं	श्रीहरिका अन्तः पुर था	दर्शितां	दिखलायी थी ॥७॥

तत्र षोडशभिः सद्मसहस्रैः समलंकृतम् ।
विवेशैकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ॥ ८ ॥

तत्र षोडशभिः सद्म सहस्रैः सम अलङ्कृतं विवेश एकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ॥८॥

तत्र शौरेः	वहाँ श्रीकृष्णकी	महत् सद्म	विशाल भवनोंमेंसे
पत्नीनां	पत्नियोंके	एकतमं भवनं	एक भवनमें (नारद जी)
षोडशभिः	सोलह	विवेश	प्रविष्ट हुए ॥८॥
सहस्रैः	सहस्र		
सम अलंकृतं	भली प्रकार सजे		

विष्टब्धं विद्रुमस्तम्भैर्वैदूर्यफलकोत्तमैः ।
इन्द्रनीलमयैः कुड्यैर्जगत्या चाहतत्विषा ॥ ९ ॥

विष्टब्धं विद्रुमस्तम्भैः वैदूर्य फलक उत्तमैः इन्द्रनीलमयैः कुड्यैः जगत्या च अहत त्विषा ॥९॥

विद्रुमस्तम्भैः	मूंगेके खम्भोंसे,	विष्टब्धं	सुदृढ़ बना था
उत्तमैः वैदूर्य	उत्तम लहसनियाकी	च जगत्या	तथा (उसका) फर्श
फलक	छतसे	त्विषा अहत	कान्तिसे अम्लान
इन्द्रनीलमयैः	नीलमजड़ी		था ॥९॥
कुड्यैः	भित्तियोंसे		

वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रा मुक्तादामविलम्बिभिः ।
दान्तैरासनपर्यङ्कैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥१०॥

वितानैः निर्मितैः त्वष्ट्रा मुक्तादाम विलम्बिभिः दान्तैः आसन पर्यङ्कैः मणि उत्तम परिष्कृतैः ॥१०॥

त्वष्ट्रा निर्मितैः	विश्वकर्माके बनाये	**परिष्कृतैः**	जड़े हुए
मुक्तादाम	मोतियोंकी झालरें	**दान्तैः आसन**	हाथी दांतके आसन
विलबिभिः	लटकते हुए		एवं
वितानैः	चंदोवों युक्त था,	**पर्यङ्कैः**	पलंग युक्त था
उत्तम मणि	श्रेष्ठ मणि		॥१०॥

दासीभिर्निष्ककण्ठीभिः सुवासोभिरलंकृतम् ।
पुम्भिः सकञ्चुकोष्णीषसुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥११॥

दासीभिः निष्ककण्ठीभिः सुवासः भिः अलङ्कृत पुम्भिः सकञ्चुक उष्णीष सुवस्त्र मणि कुण्डलैः ॥११॥

सुवासः भिः	उत्तम वस्त्र वाली	**उष्णीष**	पगड़ी,
निष्ककण्ठीभिः	गलेमें पदिक पहिने	**मणि कुण्डलैः**	मणि-कुण्डल धारी
दासीभिः	दासियोंसे एवं	**पुम्भिः अलंकृतं**	सेवकोंसे सुशोभित
सुवस्त्र	उत्तम वस्त्रोंके		था ॥११॥
सकञ्चुक	कुर्ते पहिने		

रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्त-
ध्वान्तं विचित्रवलभीषु शिखण्डिनोऽङ्ग ।
नृत्यन्ति यत्र विहितागुरुधूपमक्षै-
र्निर्यान्तमीक्ष्य घनबुद्धय उन्नदन्तः ॥१२॥

रत्न प्रदीप निकर द्युतिभिः निरस्त ध्वान्तं विचित्र वलभीषु शिखण्डिनः अङ्ग नृत्यन्ति यत्र विहित अगुरु धूपं अक्षैः निर्यान्तं ईक्ष्य घनबुद्धय उन्नदन्तः ॥१२॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !
रत्न प्रदीप	रत्न दीपकोंके
निकर द्युतिभिः	समूहोंकी कान्तिसे
ध्वान्तं निरस्त	अन्धकार दूर हो गया था
विचित्र	विभिन्न
बल्गुभीषु	छज्जों पर
शिखण्डिनः	मयूर
नृत्यन्ति	नाचते थे तथा
विहित	जलायी गयी
अगुरु धूपं	अगुरुकी धूप
अक्षैः निर्यान्तं	खिड़कियोंसे निकलती
ईक्ष्य घनबुद्धय	देखकर (उसे) मेघ समझकर
उन्नदन्तः	उच्च स्वरमें बोलते थे ॥१२॥

तस्मिन समानगुणरूपवयस्सुवेष-
दासीसहस्रयुतयानुसवं गृहिण्या ।
विप्रो ददर्श चमरव्यजनेन रुक्म-
दण्डेन सात्वतपतिं परिवीजयन्त्या ॥१३॥

तस्मिन् समान गुण रूप वयः सुवेष दासी सहस्र अयुतया अनुसवं गृहिण्या विप्रः ददर्श चमरव्यजनेन रुक्मदण्डेन सात्वतपतिं परिवीजयन्त्या ॥१३॥

विप्रः तस्मिन्	ब्रह्मपुत्र नारदने उस (भवनमें)
समान गुण	(अपने) समान गुण
रूप वयः	सौन्दर्य, आयु,
सुवेष	उत्तम वेश वाली
अयुतया दासी	दस सहस्र दासियों (के रहने पर भी)
गृहिण्या अनुसव	(स्वयं) महारानी प्रत्येक समय
रुक्मदण्डेन	सौनेकी डंडी वाले
चमरव्यजनेन	चमरको डुलाकर
सात्वतपतिं	श्रीयदुनाथके
परिवीजन्त्या	चारो ओर वायु करती
ददर्श	देखा ॥१३॥

तं संनिरीक्ष्य भगवान् सहसोत्थितः श्री-
पर्यङ्कतः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः ।

आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीट-
जुष्टेन साञ्जलिरवीविशदासने स्वे ॥१४॥

तं सन्निरीक्ष्य भगवान् सहसा उत्थितः श्रीपर्यङ्कुतः सकल धर्मभृतां वरिष्ठः आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीट जुष्टेन साञ्जलिः अवीविशत् आसने स्वे ॥१४॥

सकल धर्मभृतां	समस्त धर्मपालकों में	**किरीट जुष्टेन**	मुकुट मण्डित
वरिष्ठः	श्रेष्ठ	**शिरसा**	सिरसे
भगवान्	भगवान	**पादयुगलं**	(उनके) दोनों चरणोंमें
तं सन्निरीक्ष्य	उन (नारद)को पास आया देखकर	**आनम्य**	प्रणाम करके
श्रीपर्यङ्कुतः	लक्ष्मीजीके पलंगसे	**साञ्जलिः**	हाथ जोड़कर
सहसा उत्थितः	झट उठकर	**स्वे आसने**	अपने आसनपर
		आवीविशत्	बैठाया ॥१४॥

तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना
बिभ्रज्जगद्गुरुतरोऽपि सतां पतिर्हि ।
ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनाम युक्तं
तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ॥१५॥

तस्य अवनिज्य चरणौ तत् अपः स्वमूर्ध्ना बिभ्रत् जगद् गुरुतरः अपि सतां पतिः हि ब्रह्मण्यदेव इति यत् गुण नाम युक्तं तस्य एव यत् चरण शौचं अशेष तीर्थम् ॥१५॥

तस्य एव	उनका ही	**नाम गुण युक्तं**	(उनका) नाम गुणानुसार है
चरण शौचं	चरणोदक	**हि सतां पतिः**	क्योंकि सत्पुरुषोंके स्वामी हैं,
अशेष तीर्थं	सम्पूर्ण तीर्थ (रूपा गंगाजी) है	**जगद् गुरुतरः**	संसारमें सर्वश्रेष्ठ
यत् ब्रह्मण्यदेव	क्योंकि ब्रह्मण्यदेव	**अपि**	होने पर भी
इति	ऐसा		

तस्य चरणौ	उन (नारदजी)के चरणोंको	**तत् अपः**	वह जल
अवनिज्य	धोकर	**स्वमूर्ध्ना**	अपने सिर पर
		बिभ्रत्	चढ़ाया ॥१५॥

सम्पूज्य देवऋषिवर्यमृषिः पुराणो
नारायणो नरसखो विधिनोदितेन ।
वाण्याभिभाष्य मितयामृतमिष्टया तं
प्राह प्रभो भगवते करवाम हे किम् ॥१६॥

सम्पूज्य देवऋषिवर्यं ऋषिः पुराणः नारायणः नरसखः विधिना उदितेन वाण्या अभिभाष्य मितया अमृत मिष्टया तं प्राह प्रभो भगवते करवाम हे किम् ॥१६॥

पुराणः ऋषिः	सनातन ऋषि	**अमृत मिष्टया**	अमृतके समान मधुर
नरसखः	नरके सखा	**मितया वाण्या**	संक्षिप्त बचनसे
नारायणः	नारायणने	**अभिभाष्य**	बातचीत करके
देवऋषिवर्यं	देवता-ऋषियोंमें श्रेष्ठ	**तं प्राह**	उनसे पूछा—
उदितेन विधिना	(नारदजीकी) शस्त्रोक्त विधिसे	**प्रभो भगवते किं करवाम हे**	'प्रभो ! भगवन् (हम आपकी) क्या सेवा करें' ॥१६॥
सम्पूज्य	भली भाँति पूजा करके		

॥ नारद उवाच ॥

नैवाद्भुतं त्वयि विभोऽखिललोकनाथे
मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलनाम् ।
निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां
स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥१७॥

न एव अद्भुतं त्वयि विभो अखिल लोकनाथे मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानां निःश्रेयसाय हि जगत् स्थितिः ईक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥१७॥

विभो	प्रभो !	**हि जगत्**	क्योंकि जगतकी
अखिल	सम्पूर्ण	**स्थितिः**	स्थिति
लोकनाथे	लोकोंके स्वामी	**ईक्षणाभ्यां**	रक्षाके लिए
त्वयि सकलेषु	आपके लिए सम्पूर्ण	**उरुगाय**	महायशस्विन्
जनेषु मैत्री	भक्तोंसे मित्रता और	**स्वैरावतार**	स्वेच्छासे अवतार लिया है
खलानां दमः	दुष्टोंको दण्ड देना	**सुष्ठु विदाम**	यह हम भली प्रकार जानते हैं
अद्भुतं न एव	आश्चर्यकी बात नहीं ही है		॥१७॥

दृष्टं तवाङ्घ्रियुगलं जनतापवर्ग
ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात् ॥१८॥

दृष्टं तव अङ्घ्रियुगलं जगत अपवर्ग ब्रह्मा आदिभिः हृदि विचिन्त्यं अगाध बोधैः संसार कूप पतित उत्तरण अवलम्बं ध्यायन् चरामि अनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात् ॥१८॥

जगत अपवर्ग	संसारसे मोक्ष देने वाले,	**उत्तरण**	निकालनेके
अगाध बोधैः	अथाह ज्ञानवान्	**अवलम्बं**	सहारे
ब्रह्मा आदिभिः	ब्रह्मादि द्वारा	**तव**	आपके
हृदि विचिन्त्यं	हृदयमें चिन्तनीय,	**अंघ्रियुगलं**	दोनों चरणोंका
संसार	संसारके	**दृष्टं**	दर्शन हुआ
कूप पतित	कुएं में गिरों को		

ध्यायन् चरामि	(इनका) ध्यान करते विचरण करूँ	यथा	जिससे
		स्मृतिः स्यात्	(आपका) स्मरण रहे ॥१८॥
अनुगृह्णाण	कृपा कीजिए		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

ततोऽन्यदाविशद् गेहं कृष्णपत्न्याः स नारदः ।
योगेश्वरेश्वरस्याङ्ग योगमायाविवित्सया ॥१९॥

ततः अन्यत् आविशत् गेहं कृष्णपत्न्याः स नारदः योगेश्वर ईश्वरस्य अङ्ग योगमाया विवित्सया ॥१९॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	स नारदः	वे नारदजी
योगेश्वर	योगेश्वरोंके	ततः अन्यत्	फिर दूसरी
ईश्वरस्य	स्वामीकी	कृष्णपत्न्याः	श्रीकृष्ण-पत्नीके
योगमाया	योगमायाको	गेहं आविशत्	भवनमें प्रविष्ट हुए ॥१९॥
विवित्सया	जाननेकी इच्छासे		

दीव्यन्तमक्षैस्तत्रापि प्रियया चोद्धवेन च ।
पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥२०॥

दीव्यन्तं अक्षैः तत्र अपि प्रियया च उद्धवेन च पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थान आसनादिभिः ॥२०॥

तत्र अपि	वहां भी	अक्षैः दीव्यन्तं	पासे खेलते हुए (भगवान) द्वारा
प्रियया च	प्रियतमा और		
उद्धवेन च	उद्धवके साथ भी		

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

परया भक्त्या प्रत्युत्थान	परम भक्ति सहित स्वागतमें उठ खड़े होने,	**आसनादिभिः पूजितः**	आसनादि द्वारा (नारदजी) पूजित हुए ॥२०॥

पृष्टश्चाविदुषेवासौ कदाऽऽयातो भवानिति ।
क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः ॥२१॥

पृष्टः च अविदुषा इव असौ कदा आयातो भवान् इति क्रियते किं नु पूर्णानां अपूर्णैः अस्मत् आदिभिः ॥२१॥

अविदुषा इव असौ	अनजानकी भाँति इन (भगवान)के द्वारा	**अपूर्णैः**	अपूर्ण (सकाम)
		अस्मत्	हम लोगों
		आदिभिः	द्वारा
इति पृष्टः च	यह पूछा भी गया—	**पूर्णानां**	(आप) प्राप्त काम की
भवान् कदा आयातो	'आप कब पधारे हैं ?	**नु किं क्रियते**	भला क्या सेवा हो सकती है ॥२१॥

अथापि ब्रूहि नो ब्रह्मन् जन्मैतच्छोभनं कुरु ।
स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीमन्यदगाद् गृहम् ॥२२॥

अथ अपि ब्रूहि नः ब्रह्मन् जन्म एतत् शोभनं कुरु स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीं अन्यत् अगात् गृहम् ॥२२॥

अथ अपि ब्रह्मन् ब्रूहि	फिर भी ब्रह्मन् ! (कोई सेवा) बतलाइये,	**स तु विस्मित**	वे (नारद) तो चकित होकर
		तूष्णीं उत्थाय	चुपचाप उठकर
एतत् जन्म शोभनं कुरु	(मेरा) यह जीवन सफल कीजिए	**अन्यत् गृहं अगात्**	दूसरे घरमें चले गये ॥२२॥

तत्राप्यचष्ट गोविन्दं लालयन्तं सुताञ्छशून् ।
ततोऽन्यस्मिन् गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम् ॥२३॥

तत्र अपि अचष्ट गोविन्दं लालयन्तं सुतान् शिशून् ततः अन्यस्मिन् गृहे अपश्यत् मज्जनाय कृत उद्यमम् ॥२३॥

तत्र अपि	वहां भी	ततः	फिर
गोविन्दं	गोविन्दको	अन्यस्मिन् गृहे	दूसरे घरमें
शिशून् सुतान्	शिशु पुत्रोंसे	मज्जनाय	स्नानके लिए
लालयन्तं	लाड़ करते	कृत उद्यमं	उद्योग (तैयारी)
अचष्ट	देखा		देखा ॥२३॥

जुह्वन्तं च वितानाग्नीन् यजन्तं पञ्चभिर्मखैः ।
भोजयन्तं द्विजान् क्वपि भुञ्जानमवशेषितम् ॥२४॥

जुह्वन्तं च वितान अग्नीन् यजन्तं पञ्चभिः मखैः भोजयन्तं द्विजान् क्वपि भुञ्जानं अवशेषितम् ॥२४॥

वितान	यज्ञीय	क्वपि	कहीं
अग्नीन्	अग्नियोंमें	अवशेषितं	यज्ञावशिष्ट
जुह्वन्तं च	हवन करते एवं	भुञ्जानं	भोजन करते
पञ्चभिः मखैः	पञ्च महायज्ञसे		॥२४॥
यजन्तं	यजन करते		
द्विजान्	ब्राह्मणोंको		
भोजयन्तं	भोजन कराते,		

क्वपि संध्यामुपासीनं जपन्तं ब्रह्म वाग्यतम् ।
एकत्र चासिचर्मभ्यां चरन्तमसिवर्त्मसु ॥२५॥

क्व अपि सन्ध्यां उपासीनं जपन्तं ब्रह्म वाक् यतं एकत्र च असि चर्मभ्यां चरन्तं असि वर्त्मसु ॥२५॥

क्व अपि	कहीं पर	वाक् यतं	वाणी संयमित
सन्ध्यां	सन्ध्या		करके
उपासीनं	करते बैठे		

ब्रह्म जपन्तं	गायत्री जप करते	असि वर्त्मसु	तलवारके मार्ग (पैंतरे)
एकत्र	एक स्थान पर		
असि चर्मभ्यां	तलवार ढाल लेकर	चरन्तं	चलते हुए ॥२५॥

अश्वैर्गजै रथैः क्वापि विचरन्तं गदाग्रजम् ।
क्वचिच्छयानं पर्यङ्के स्तूयमानं च वन्दिभिः ॥२६॥

अश्वैः गजैः रथैः क्व अपि विचरन्तं गद अग्रजं क्वचिन् शयानं पर्यङ्के स्तूयमानं च वन्दिभिः ॥२६॥

गद अग्रजं	उन गदके बड़े भाई को	क्वचित्	कभी
		पर्यङ्के शयानं	पलंग पर सोये
क्व अपि	कहीं तो	च वन्दिभिः	तथा बन्दियों द्वारा
अश्वैः गजैः	घोड़े, हाथी या	स्तूयमानं	स्तुत होते ॥२६॥
रथैः विचरन्तं	रथ पर चढ़कर विचरण करते,		

मन्त्रयन्तं च कस्मिंश्चिन्मन्त्रिभिश्चोद्धवादिभिः ।
जलक्रीडारतं क्वापि वारमुख्याबलावृतम् ॥२७॥

मन्त्रयन्तं च कस्मिन् चित् मन्त्रिभिः च उद्धव आदिभिः जलक्रीडारतं क्व अपि वार मुख्य अबला वृतम् ॥२७॥

कस्मिन् चित्	किसी (भवनमें)	वार मुख्य	गणिका
उद्धव आदिभिः	उद्धव आदि	अबला वृतं	स्त्रियोंसे घिरे
मन्त्रिभिः	मन्त्रियोंके साथ	जलक्रीडारतं	जलक्रीड़ा करते ॥२७॥
मन्त्रयन्तं	मन्त्रणा करते हुए		
च क्व अपि	तथा कहीं भी		

कुत्रचिद् द्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलंकृताः ।
इतिहास पुराणानि शृण्वन्तं मङ्गलानि च ॥२८॥

कुत्रचित् द्विज मुख्येभ्यः ददतं गाः स्वलङ्कृताः इतिहास पुराणानि शृण्वन्तं मङ्गलानि च ॥२८॥

कुत्रचित्	कहीं	**च इतिहास**	तथा इतिहास
द्विज मुख्येभ्यः	ब्राह्मण प्रमुखोंको	**पुराणानि**	पुराणों,
स्वलङ्कृताः	भली प्रकार अलंकृत	**मङ्गलानि**	स्वस्ति वाचनादि
गाः ददतं	गोदान करते हुए	**शृण्वन्तं**	सुनते हुए ॥२८॥

हसन्तं हास्यकथया कदाचित् प्रियया गृहे ।
क्वापि धर्म सेवमानमर्थंकामौ च कुत्रचित् ॥२९॥

हसन्तं हास्यकथया कदाचित प्रियया गृहे क्व अपि धर्मं सेवमानं अर्थकामौ च कुत्रचित् ॥२९॥

कदाचित्	कहीं	**धर्मं कुत्रचित्**	धर्म और कहीं
प्रियया गृहे	प्रिय पत्नीके घरमें	**अर्थकामौ**	अर्थ या कामका
हास्यकथया	हँसीकी चर्चासे	**सेवमानं**	सेवन करते हुए
हसन्तं	हँसते हुए,		॥२९॥
क्व अपि	कहीं तो		

ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम् ।
शुश्रूषन्तं गुरून् क्वापि कामैर्भोगैः सपर्यया ॥३०॥

ध्यायन्तं एकं आसीनं पुरुषं प्रकृतेः परं शुश्रूषन्तं गुरून् क्व अपि कामैः भोगैः सपर्यया ॥३०॥

एकं आसीनं	एकान्तमें बैठकर	**कामैः भोगैः**	इच्छित भोग
प्रकृतेः परं	प्रकृतिसे अतीत		सामग्री
पुरुषं ध्यायन्तं	पुराण पुरुषका	**सपर्यया**	समर्पित करके
	ध्यान करते,	**शुश्रूषन्तं**	सेवा करते हुए
क्व अपि	कहीं तो		॥३०॥
गुरून्	गुरुजनोंकी		

कुर्वन्तं विग्रहं कैश्चित् संधिं चान्यत्र केशवम् ।
कुत्रापि सह रामेण चिन्तयन्तं सतां शिवम् ॥३१॥

कुर्वन्तं विग्रहं कैश्चित् सन्धिम च अन्यत्र केशवं कुत्र अपि सह रामेण चिन्तयन्तं सतां शिवम् ॥३१॥

केशवं	केशवको	**कुत्र चित् अपि**	कहीं तो
कैश्चित् विग्रहं	किन्हीं के साथ लड़ाई	**रामेण सह**	बलरामजी के साथ
		सतां शिवं	सत्पुरुषोंका कल्याण
च अन्यत्र	तथा दूसरे स्थानपर		
सन्धि कुर्वन्तं	सन्धि करते हुए,	**चिन्तयन्तं**	सोचते हुए ॥३१॥

पुत्राणां दुहितृणां च काले विध्युपयापनम् ।
दारैर्वरैस्तत्सदृशैः कल्पयन्तं विभूतिभिः ॥३२॥

पुत्राणां दुहितृणां च काले विधि उपयापनं दारैः वरैः तत् सदृशैः कल्पयन्तं विभूतिभिः ॥३२॥

पुत्राणं च	पुत्रोंका और	**विभूतिभिः**	वैभवके साथ
दुहितृणां	पुत्रियोंको	**विधि उपयापनं**	विधिपूर्वक विवाह
काले	समय पर	**कल्पयन्तं**	कराते हुए ॥३२॥
तत् सदृशैं	उनके समान		
दारैः वरैः	स्त्री या वरके साथ		

प्रस्थापनोपानयनैरपत्यानां महोत्सवान् ।
वीक्ष्य योगेश्वरेशस्य येषां लोका विसिस्मिरे ॥३३॥

प्रस्थापन उपानयनैः अपत्यानां महोत्सवान् वीक्ष्य योगेश्वर ईशस्य येषां लोका विसिस्मिरे ॥३३॥

प्रस्थापन	(कन्याओंको) विदा करते समय
उपानयनैः	बुलाते समय तथा
अपत्यानां	पुत्रोंके (जन्मादि दिवस)के
येषां योगेश्वर ईशस्य	जिन योगेश्वरोंके भी स्वामीके
महोत्सवान्	महोत्सवों को
वीक्ष्य	देखकर
लोका	लोग
विसिस्मिरे	आश्चर्य में पड़ ॥३३॥

यजन्तं सकलान् देवान् क्वापि क्रतुभिरूर्जितैः ।
पूर्तयन्तं क्वचिद् धर्मं कूपारामममठादिभिः ॥३४॥

यजन्तं सकलान् देवान् क्व अपि क्रतुभिः ऊर्जितैः पूर्तयन्तं क्वचित् धर्मं कूप आराम मठ आदिभिः ॥३४॥

क्व अपि	कहीं तो
ऊर्जितैः क्रतुभिः	बहुत बड़े यज्ञों द्वारा
सकलान् देवान्	सब देवताओं का
यजन्तं	यजन करते हुए
क्वचित्	कहीं
कूप आराम	कुआं, बगीचा
मठ आदिभिः	धर्मशालादि द्वारा
धर्मं पूर्तयन्तं	पूर्तधर्म करते हुए ॥३४॥

चरन्तं मृगयां क्वापि हयमारुह्य सैन्धवम् ।
घ्नन्तं ततः पशून् मेध्यान् परीतं यदुपुङ्गवैः ॥३५॥

चरन्तं मृगयां क्वापि हयं आरुह्य सैन्धवं घ्नन्तं ततः पशून् मेध्यान् परीतं यदुपुङ्गवैः ॥३५॥

क्व अपि	कहीं
सैन्धवं हयं	सिन्धु देशीय अश्व पर
आरुह्य	चढ़कर
यदुपुङ्गवैः	यादव श्रेष्ठोंसे
परीतं	घिरे

मृगयां चरन्तं	आखेट करते हुए	**पशून् घ्नन्तं**	पशुओंके मारते हुए ॥३५॥
ततः मेध्यान्	वहां (आखेटके लिए) पवित्र*		

अव्यक्तलिङ्गं प्रकृतिष्वन्तःपुरगृहादिषु ।
क्वचिच्चरन्तं योगेशं तत्तद्भावबुभुत्सया ॥३६॥

अव्यक्तालिङ्ग प्रकृतिषु अन्तःपुर गृह आदिषु क्वचित् चरन्तं योगेशं तत् तत् भाव बुभुत्सया ॥३६॥

तत् तत् भाव	उन-उन लोगोंका भाव	**अव्यक्तालिङ्ग**	अपने चिह्न छिपाकर
बुभुत्सया	जाननेकी इच्छासे	**योगेशं**	योगेश्वरको
प्रकृतिषु	प्रजाजनोंसे तथा	**क्वचित् चरन्तं**	कभी (गुप्त रूपसे) घूमते ॥३६॥
अन्तःपुर	अन्तःपुर एवं		
गृह आदिषु	घर आदिके लोगों से		

अथोवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन्निव ।
योगमायोदयं वीक्ष्य मानुषीमीयुषो गतिम् ॥३७॥

अथ उवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन् इव योगमाया उदयं वीक्ष्य मानुषीं ईयुषः गतिम् ॥३७॥

---

* आखेट-शास्त्र में आखेट के लिए कुछ प्रकार के पशु पवित्र माने गये हैं। जैसे—

१—जो नरभक्षी हो गये हैं।

२—जो अतिवृद्ध होने से आहारादि में असमर्थ प्रायः हैं।

३—जिनकी संख्या इतनी बढ़ गयी है कि समीपकी कृषि तथा वनके लिए विनाशक हो गये हैं। उनकी संख्या-नियन्त्रण आवश्यक है।

मानुषीं गतिं	मनुष्य लीला	**उदयं वीक्ष्य**	उत्कर्ष देखकर
ईयुषः	करते हुए	**नारदः**	नारदजी
हृषीकेशं	हृषीकेश से	**प्रहसन् इव**	हँसते हुए
अथ योगमाया	इस प्रकार उनकी योगमाया का	**उवाच**	बोले ॥३७॥

विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम् ।
योगेश्वरात्मन् निर्भाता भवत्पादनिषेवया ॥३८॥

विदाम योगमायाः ते दुर्दर्शा अपि मायिनां योगेश्वर आत्मन् निर्भाता भवत् पाद निषेवया ॥३८॥

योगेश्वर	योगेश्वर !	**भवत पाद**	आपके चरणों की
आत्मन्	आत्मन् !	**निषेवया**	सेवा से
मायिनां अपि	(ब्रह्मादि) मायावियोंके लिए भी	**निर्भाता**	भासित होनेके कारण
दुर्दर्शा	जिसे देखना अत्यन्त कठिन है	**विदाम**	मैं जानता हूँ ॥३८॥
ते योगमायाः	उस आपकी योग-माया को		

अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसाऽऽप्लुतान् ।
पर्यटामि तवोद्गायन् लीलां भुवनपावनीम् ॥३९॥

अनुजानीहि मां देव लोकान् ते यशसा आप्लुतान् पर्यटामि तव उद्गायन् लीलां भुवन पावनीम् ॥३९॥

देव ! ते यशसा	देव ! आपके सुयश से	**तव**	आपकी
आप्लुतान् लोकान्	परिपूर्ण लोकों में	**भुवन पावनीं**	त्रिभुवन को पवित्र करने वाली

लीलां	लीलाओं को	**अनुजानीहि**	(अतः अब जानेकी)
उद्गायन	उच्च स्वरसे गाता		अनुमति दीजिए
पर्यटामि	घूमता रहता हूँ		॥३९॥

श्रीभगवानुवाच–

ब्रह्मन् धर्मस्य वक्ताहं कर्ता तदनुमोदिता ।
तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ॥४०॥

ब्रह्मन् धर्मस्य वक्ता अहं कर्ता तत् अनुमोदिता तत् शिक्षयन् लोकं इमं आस्थितः पुत्र मा खिदः ॥४०॥

ब्रह्मन् अहं	ब्रह्मन् ! मैं	**आस्थितः**	(उस पर) ठीक-ठीक स्थित हूँ
धर्मस्य वक्ता	धर्म का उपदेशक	**पुत्र मा खिदः**	वत्स (तुम व्यर्थ) खिन्न मत हो
कर्ता	आचरणकर्ता		॥४०॥
तत्	और उसका		
अनुमोदिता	समर्थक हूँ		
इमं लोकं	इस लोकको		
तत् शिक्षयन्	उसकी शिक्षा देने के लिए		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्याचरन्तं सद्धर्मान् पावनान् गृहमेधिनाम् ।
तमेव सर्वगेहेषु सन्तमेकं ददर्श ह ॥४१॥

इति आचरन्तं सत् धर्मान् पावनान् गृहमेधिनां तं एव सर्वगेहेषु सन्तं एकं ददर्श ह ॥४१॥

इति पावनान्	इस प्रकार पवित्र करने वाले	**गृहमेधिनां**	गृहस्थोंके

सत् धर्मान्	श्रेष्ठ धर्मोंका	सर्वगेहेषु	सब भवनोंमें
आचरन्तं	आचरण करते हुए	तं एव ददर्श	उनको ही देखा
एकं सन्तं ह	एक होते हुए ही		॥४१॥

कृष्णस्यानन्तवीर्यस्य योगमायामहोदयम् ।
मुहुर्दृष्ट्वा ऋषिरभूद् विस्मितो जातकौतुकः ॥४२॥

कृष्णस्य अनन्त वीर्यस्य योगमाया महा उदयं मुहुः दृष्ट्वा ऋषिः अभूत् विस्मितः जातकौतुकः ॥४२॥

जातकौतुकः	कुतूहल उत्पन्न होनेसे (आये)	योगमाया	योगमायाका
ऋषिः मुहुः	देवर्षि बार-बार	महा उदयं	महान उत्कर्ष
अनन्त वीर्यस्य	अनन्त पराक्रम	दृष्ट्वा	देखकर
कृष्णस्य	श्रीकृष्ण की	विस्मितः	चकित
		अभूत	हो गये ॥४२॥

इत्यर्थकामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धितात्मना ।
सम्यक् सभाजितः प्रीतस्तमेवानुस्मरन् ययौ ॥४३॥

इति अर्थ कामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धित आत्मना सम्यक् सभाजितः प्रीतः तं एव अनुस्मरन् ययौ ॥४३॥

इति अर्थ	इस प्रकार अर्थ	सभाजितः	सत्कृत होकर
कामधर्मेषु	भोग एवं धर्ममें	तं एव	उनका ही
श्रद्धित आत्मना	आस्थावान चित्त वाले	अनुस्मरन्	बार-बार स्मरण करते
कृष्णेन सम्यक्	श्रीकृष्णके द्वारा भली प्रकार	ययौ	चले गये ॥४३॥

एवं मनुष्यपदवीमनुवर्तमानो
नारायणोऽखिलभवाय गृहीतशक्तिः ।

रेमेऽङ्ग षोडशसहस्रवराङ्गनानां
सव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः ॥४३॥

एवं मनुष्य पदवीं अनुवर्तमानः नारायणः अखिल भवाय गृहीत शक्तिः रेमे अङ्ग षोडश सहस्र वर अङ्गनानां सव्रीड सौहृद निरीक्षण हास जुष्टः ॥४४॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !
एवं	इस प्रकार
मनुष्य पदवीं	मनुष्य लीला
अनुवर्तमानः	बराबर करते हुए
अखिल भवाय	सम्पूर्ण जगतके उत्कर्ष के लिए
गृहीत शक्तिः	माया शक्तिको स्वीकार करके
नारायणः	नारायण
षोडश सहस्र	सोलह सहस्र
वर अङ्गनानां:	श्रेष्ठ स्त्रियों द्वारा
सव्रीड सौहृद	लज्जा सहित प्रेमपूर्ण
हास निरीक्षण	मुस्कराहट भरी दृष्टिसे
जुष्टः रेमे	युक्त होकर (देखे जाते) रमण करते रहे ॥४४॥

यानीह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः
कर्माण्यनन्यविषयाणि हरिश्चकार ।
यस्त्वङ्ग गायति शृणोत्यनुमोदते वा
भक्तिर्भवेद् भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥४५॥

यानि इह विश्वविलय उद्भव वृत्ति हेतुः कर्माणि अनन्य विषयाणि हरिः चकार यस्तु अङ्ग गायति शृणोति अनुमोदते वा भक्तिः भवेत् भगवति हि अपवर्गमार्गे ॥४५॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !
हि	क्योंकि
विश्वविलय	विश्व के प्रलय
उद्भव वृत्ति	उत्पति, पालन के
हेतुः	एकमात्र कारण
हरिः इह	श्रीहरिने इस लोकसे
यानि	जिन
अनन्य विषयाणि	किसी दूसरे से न हो सकने वाले
कर्माणि चकार	कर्मोंको किया

यस्तु गायति	जो भी उनको वर्णन करता है	**अपवर्गमार्गे**	(उसकी) मोक्षदायक
शृणोति वा	सुनता है या	**भगवति**	भगवानमें
अनुमोदते	समर्थन करता है,	**भक्तिः भवेत्**	भक्ति होती है ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे कृष्णगार्हस्थ्यदर्शनं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान् कूजतोऽशपन् ।
गृहीतकण्ठ्यः पतिभिर्माधव्यो विरहातुराः ॥ १ ॥

अथ उषसि उपवृत्तायां कुक्कुटान् कूजितः अशपन् गृहीत कण्ठ्यः पतिभिः माधव्यः विरह आतुराः ॥१॥

अथ उषसि	जब उषाकाल
उपवृत्तायां	सन्निकट होता था (तब)
पतिभिः	पति द्वारा
गृहीत कण्ठ्यः	कण्ठ आलिंगिता
माधव्यः	माधव की रानियां
विरह आतुराः	वियोग (भय)से व्याकुल होकर
कूजितः	बोलते
कुक्कुटान्	मुर्गोंको
अशपन्	कोसतीं थी ॥१॥

वयांस्यरूरुवन् कृष्णं बोधयन्तीव वन्दिनः ।
गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मन्दारबनवायुभिः ॥ २ ॥

वयांसि अरूरुवन् कृष्णं बोधयन्त इव वन्दिनः गायत्सु अलिषु अनिद्राणि मन्दारवन वायुभिः ॥२॥

मन्दार वन	पारिजात-वनकी
वायुभिः	वायुसे (आकृष्ट)
अनिद्राणि	जगे हुए
अलिषु	भ्रमरोंके
गायत्सु वयांसि	गुञ्जार करनेसे पक्षी
वन्दिनः इव	बन्दी-जनोंके समान
कृष्णं बोधयन्त	श्रीकृष्णको जगाते हुए
अरूरुवन्	चहचहाने लगे ॥२॥

मुहूर्तं तं तु वैदर्भी नामृष्यदतिशोभनम् ।
परिरम्भणविश्लेषात् प्रियबाह्वन्तरं गता ॥ ३ ॥

मुहूर्तं तं तु वैदर्भी न अमृष्यत् अतिशोभनं परिरम्भण विश्लेषात् प्रियबाहु अन्तरं गता ॥३॥

प्रियबाहु	प्रियतमकी भुजाओं के	**विश्लेषात्**	पृथक होनेके कारण
अन्तरं गता	बीचमें पहुँची	**तं अतिशोभनं**	उस अत्यन्त सुहावने
वैदर्भी	विदर्भ-नन्दिनी रुक्मिणी	**मुहूर्तं तु**	समयको
परिरम्भण	आलिंगनसे	**न अमृष्यत्**	नहीं सह सकीं ॥३॥

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः ।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥ ४ ॥

ब्राह्मे मुहूर्तं उत्थाय वारि उपस्पृश्य माधवः दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥४॥

माधवः	श्रीकृष्ण	**प्रसन्नकरण**	निर्मलेन्द्रिय
ब्राह्मे मुहूर्तं	ब्राह्म-मुहूर्तमें	**तमसः परं**	मायातीत
उत्थय	उठकर	**आत्मानं दध्यौ**	आत्माका ध्यान करने लगे ॥४॥
वारि उपस्पृश्य	जलसे आचमन करके		

एकं स्वयंज्योतिरनन्यमव्ययं
स्वसंस्थया नित्यनिरस्तकल्मषम् ।
ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः
स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतिम् ॥ ५ ॥

एकं स्वयं ज्योतिः अनन्यं अव्ययं स्वसंस्थया नित्य निरस्त कल्मषं ब्रह्म आख्यं अस्य उद्भव नाश हेतुभिः स्वशक्तिभिः लक्षित भाव निर्वृतिम् ॥५॥

एकं स्वयं	अखण्ड, स्वयं	**नाश हेतुभिः**	विनाशके कारण
ज्योतिः	प्रकाश,	**स्वशक्तिभिः**	अपनी शक्तियों द्वारा
अनन्यं अव्ययं	अद्वितीय, अविनाशी	**भाव निर्वृति**	सदानन्द स्वरूपसे
स्वसंस्थया	अपने स्वरूपसे ही	**लक्षित**	लक्षित होने वाले
नित्य	नित्य	**ब्रह्म आख्यं**	ब्रह्म नामक (तत्त्व का ध्यान करते थे) ॥५॥
निरस्त कल्मषं	मलिनताको मिटाये,		
अस्य उद्भव	इस जगतकी उत्पत्ति		

अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि
क्रियाकलापं परिधाय वाससी ।
चकार संध्योपगमादि सत्तमो
हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः ॥ ६ ॥

अथ आप्लुतः अम्भसि अमले यथाविधि क्रियाकलापं परिधाय वाससी चकार सन्ध्या उपगम आदि सत् तमः हुत अनलः ब्रह्म जजाप वाक् यतः ॥६॥

सत् तमः	उन सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ ने	**सन्ध्या**	सन्ध्या
अथ अमले	फिर निर्मल	**उपगम आदि**	उपासनादि
अम्भसि	जलसे	**क्रियाकलापं**	कर्म
आप्लुतः	स्नान करके	**चकार**	किये,
वाससी	वस्त्र	**हुत अनलः**	अग्निहोत्र करके
परिधाय	पहिनकर	**वाक्यतः**	मौन होकर
यथाविधि	विधिपूर्वक	**ब्रह्म जजाप**	गायत्री जप करने लगे ॥६॥

उपस्थायार्कमुद्यन्तं तर्पयित्वाऽऽत्मनः कलाः ।
देवानृषीन् पितॄन् वृद्धान् विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान् ॥ ७ ॥

उपस्थाय अर्कं उद्यन्तं तर्पयित्वा आत्मनः कलाः देवान् ऋषीन् पितॄन् वृद्धान् विप्रान् अभ्यर्च्य च आत्मवान ॥७॥

आत्मवान्	मनस्वी (श्रीकृष्ण) ने	**पितॄन् तर्पयित्वा**	पितरोंका तर्पण करके
उद्यन्तं	उगते हुए	**वृद्धान् च**	वृद्धों तथा
अर्कं उपस्थाय	सूर्यका उपस्थान करके	**विप्रान्**	ब्राह्मणोंका
आत्मनः कलाः	अपने ही अंश रूप	**अभ्यर्च्य**	पूजन किया ॥७॥
देवान् ऋषीन्	देवता, ऋषि,		

धेनूनां रुक्मशृंगीणां साध्वीनां मौक्तिकस्रजाम् ।
पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम् ॥ ८ ॥

धेनूनां रुक्म शृङ्गीनां साध्वीनां मौक्तिक स्रजां पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम् ॥८॥

रुक्म शृङ्गीनां	स्वर्णसे मढ़ी सींग वाली;	**पयस्विनीनां**	दूध देने वाली
साध्वीनां	सीधी	**गृष्टीनां**	पहली बारकी ब्यायी
धेनूनां	गाय	**सवत्सानां**	बछड़ोंके साथ
मौक्तिक स्रजां	मोतियोंकी माला पहिने,	**सुवाससां**	अच्छे वस्त्रोंसे ढकी ॥८॥

ददौ रूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैः सह ।
अलङ्कृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्धं बद्धं दिने दिने ॥ ९ ॥

ददौ रूप्यखुराग्राणां क्षौम अजिन तिलैः सह अलङ्कृतेभ्यः विप्रेभ्यः बद्धं बद्धं दिने दिने ॥९॥

रूप्यखुराग्राणां	चाँदीसे मढ़े खुरों वाली	**विप्रेभ्यः**	ब्राह्मणोंको
क्षौम अजिन	रेशम, मृगचर्म,	**दिने दिने**	प्रतिदिन
तिलैः सह	तिलके साथ	**बद्धं बद्धं ददौ**	एक एक बद्ध* दान करते थे ॥९॥
अलङ्कृतेभ्यः	आभूषण भूषित		

गोविप्रदेवतावृद्धगुरून् भूतानि सर्वशः ।
नमस्कृत्यात्मसम्भूतीर्मङ्गलानि समस्पृशत् ॥१०॥

गो विप्र देवता वृद्धान् गुरून् भूतानि सर्वशः नमस्कृत्य आत्म सम्भूतीः मङ्गलानि समस्पृशत् ॥१०॥

आत्मसम्भूतीः	अपने विभूति स्वरूप	**नमस्कृत्य**	नमस्कार
गो विप्र देवता	गौ, ब्राह्मण, देवता,	**मङ्गलानि**	मांगलिक वस्तुओंमें
वृद्धान् गुरून्	वृद्ध, गुरुजन एवं	**समस्पृशत्**	सबका स्पर्श किया ॥१०॥
सर्वशः भूतानि	सम्पूर्ण प्राणियोंको		

आत्मानं भूषयामास नरलोकविभूषणम् ।
वासोभिर्भूषणैः स्वीयैर्दिव्यस्रगनुलेपनैः ॥११॥

आत्मानं भूषयामास नरलोक विभूषणं वासोभिः भूषणैः स्वीयैः दिव्यस्रक् अनुलेपनैः ॥११॥

नरलोक	नरलोकको	**वासोभिः स्वीयैः**	वस्त्रोंसे, अपने
विभूषणं	भूषित करने वाले	**भूषणैः**	आभूषणोंसे,
आत्मानं	अपने शरीरको		

---

* चतुर्दशानां लक्षाणां सप्ताधिकशतांशकाः **बद्धं** चतुरशीति अग्र सहस्राणि अर्थात चौदह लाखका एकसौ सातवाँ भाग—तेरह हजार चौरासी एक 'बद्ध' कहलाता है ।

दिव्यस्रक् स्रनुलेपनैः	दिव्यमाला तथा अंगरागसे	भूषयामास	आभूषित किया ॥११॥

अवेक्ष्याज्यं तथाऽऽदर्शं गोवृषद्विजदेवताः ।
कामांश्च सर्ववर्णानां पौरान्तःपुरचारिणाम् ।
प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनन्दत ॥१२॥

अवेक्ष्य आज्यं तथा आदर्शं गो वृष द्विज देवताः कामान् च सर्व वर्णानां पौर अन्तःपुर चारिणां प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनन्दत ॥१२॥

आज्यं तथा	घृत तथा
आदर्शं	दर्पणमें (मुख देखकर)
गो वृष द्विज	गौ, बैल, ब्राह्मण
देवताः	देवताका
अवेक्ष्य	दर्शन करके
पौर अन्तःपुर	नगर एवं अन्तःपुरमें
चारिणां	रहने वाले
सर्व वर्णानां	सब वर्णके लोगोंको
च प्रकृतीः	तथा मन्त्रियोंको
कामैः कामान्	इच्छित भोग पदार्थ
प्रदाप्य प्रतोष्य	देकर सन्तुष्ट करके
प्रत्यनन्दत	(स्वयं) सन्तुष्ट हुए ॥१२॥

संविभज्याग्रतो विप्रान् स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः ।
सुहृदः प्रकृतीर्दारानुपायुङ्क्त ततः स्वयम् ॥१३॥

संविभज्य अग्रतः विप्रान् स्रक् ताम्बूल अनुलेपनैः सुहृदः प्रकृतीः दारान् उपायुंक्त ततः स्वयम् ॥१३॥

अग्रतः विप्रान्	पहिले ब्राह्मणको
सुहृदः प्रकृतीः	सम्बन्धियों, मन्त्रियों
दारान्	स्त्रियों
स्रक् ताम्बूल	माला, पान,
अनुलेपनैः	अंगरागादि
संविभज्य	भली प्रकार बांटकर
तत स्वयं	तब स्वयं
उपायुंक्त	(उनका) उपयोग किया ॥१३॥

तावत् सूत उपानीय स्यन्दनं परमाद्भुतम् ।
सुग्रीवाद्यैर्हयैर्युक्तं प्रणम्यावस्थितोऽग्रतः ॥१४॥

तावत् सूत उप आनीय स्यन्दनं परम अद्भुतं सुग्रीव आद्यैः हयैः युक्तं प्रणम्य अवस्थितः अग्रतः ॥१४॥

तावत् सूत	इतनेमें सारथी	**प्रणम्य**	प्रणाम करके
सुग्रीव आद्यैः	सुग्रीव आदि	**अग्रतः**	आगे
हयैः युक्तं	घोड़ोंसे जुता	**अवस्थित**	खड़ा हो गया ॥१४॥
परम अद्भुतं	अत्यन्त अद्भुत		
स्यन्दनं	रथ		
उप आनीय	समीप लाकर		

गृहीत्वा पाणिना पाणी सारथेस्तमथारुहत् ।
सात्यक्युद्धवसंयुक्तः पूर्वाद्रिमिव भास्करः ॥१५॥

गृहीत्वा पाणिना पाणी सारथेः रथं आरूहत् सात्यकि उद्धव संयुक्तः पूर्व अद्रिं इव भास्करः ॥१५॥

पूर्व अद्रिं	पूर्वाद्रि (उदयाचल) पर	**पाणी गृहीत्वा**	हाथ पकड़ कर
भास्करः इव	सूर्यके समान	**सात्यकि उद्धव**	सात्यकि एवं उद्धव के
पाणिना सारथेः	अपने हाथसे सारथिका	**संयुक्तः**	साथ
		रथं आरुहत्	रथ पर चढ़े ॥१५॥

ईक्षितोऽन्तःपुरस्त्रीणां सव्रीडप्रेमवीक्षितैः ।
कृच्छ्राद् विसृष्टो निरगाज्जातहासो हरन् मनः ॥१६॥

ईक्षितः अन्तःपुर स्त्रीणां सव्रीड प्रेम वीक्षितैः कृच्छ्रात् विसृष्टः निरगात् जात हासः हरन् मनः ॥१६॥

अन्तः पुर	अन्तःपुरकी	मनः हरन्	उनका चित्त चुराते
स्त्रीणां	स्त्रियों द्वारा	कृच्छ्रात्	कठिनाईसे
सव्रीड प्रेम	लज्जा एवं प्रेमयुक्त	विसृष्टः	विदा होकर
वीक्षितैः	कटाक्षसे देखे जाते	निरगात्	(भवनसे) निकले
जात हासः	मुस्कराहट आनेसे		॥१६॥

सुधर्माख्यां सभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः ।
प्राविशद् यन्निविष्टानां न सन्त्यङ्ग षड्ऊर्मयः ॥१७॥

सुधर्मा आख्यां सभां सर्वैः वृष्णिभिः परिवारितः प्राविशत् यत् निविष्टानां न सन्ति अङ्ग षट् उर्मयः ॥१७॥

सर्वैः वृष्णिभिः	सब यदुवंशियोंसे	षट् उर्मयः	छः(क्षुधा-पिपासा,
परिवारितः	चारों ओरसे घिरे		शोक-मोह,
सुधर्मा	सुधर्मा		जरा-मृत्यु) उर्मियाँ
आख्यां सभां	नामकी सभामें	न सन्ति	नहीं होतीं ॥१७॥
प्राविशत्	प्रविष्ट हुए		
अङ्ग	प्रिय परीक्षित् !		
यत् निविष्टानां	जिसमें प्रवेश करने वालेको		

तत्रोपविष्टः परमासने विभु-
र्बभौ स्वभासा ककुभोऽवभासयन् ।
वृतो नृसिंहैर्यदुभिर्यवूत्तमो
यथोडुराजो दिवि तारकागणैः ॥१८॥

तत्र उपविष्टः परम आसने विभुः बभौ स्वभासा ककुभः अवभासयन् वृतः नृसिंहैः यदुभिः यवूत्तमः यथा उडुराजः दिवि तारकागणैः ॥१८॥

यथा दिवि	जैसे आकाशमें	तारकागणैः	तारागणोंसे (घिरा)

उडुराजः	चन्द्रमा हो
तत्र	उस (सभा)में
परम आसने	उच्च सिंहासन पर
उपविष्टः विभुः	बैठे हुए प्रभु
यदूत्तमः	यादव श्रेष्ठ
नृसिंहैः	नर केशरी
यदुभिः वृतैः	यादवोंसे घिरे
स्वभासा	अपनी कान्तिसे
ककुभः	दिशाओंको
अवभासयन्	आलोकित करके
बभौ	सुशोभित हुए

॥१८॥

तत्रोपमन्त्रिणो राजन् नानाहास्यरसैर्विभुम् ।
उपतस्थुर्नटाचार्या नर्तक्यस्ताण्डवैः पृथक् ॥१९॥

तत्र उपमन्त्रिणः राजन् नाना हास्यरसैः विभुं उपतस्थुः नट आचार्या नर्तक्यः ताण्डवैः पृथक् ॥१९॥

राजन्	राजन् !
नाना हास्यरसैः	अनेक प्रकारके हास्यरसमें (कुशल)
तत्र उपमन्त्रिणः	वहां उपमन्त्री गण
विभुं उपतस्थुः	उन प्रभुकी सेवामें उपस्थित हुए
नट आचार्या	नटोंके आचार्य और
नर्तक्यः	नर्तकियां
पृथक् ताण्डवैः	अलग-अलग नृत्योंसे

॥१९॥

मृदङ्गवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः ।
ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च सूतमागधवन्दिनः ॥२०॥

मृदङ्ग वीणा मुरज वेणु ताल दरस्वनैः ननृतुः जगुः तुष्टुवुः च सूत मागध वन्दिनः ॥२०॥

च सूत मागध	तथा सूत, मागध,
वन्दिनः	बन्दी लोग
मृदङ्ग वीणा	मृदंग, वीणा
मुरज वेणु	मुरज, वंशी
दरस्वनैः	एवं शंख-ध्वनिसे
ननृतुः जगुः	नाचने, गाने एवं
तुष्टुवुः	स्तुति करने लगे

॥२०॥

तत्राहुर्ब्राह्मणाः केचिदासीना ब्रह्मवादिनः ।
पूर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञां चाकथयन् कथाः ॥२१॥

तत्र आहुः ब्राह्मणाः केचित् आसीना ब्रह्मवादिनः पूर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञां च अकथयन् कथाः ॥२१॥

तत्र केचित्	वहां कुछ	**पुण्ययशसां**	पवित्र कीर्ति
ब्राह्मणाः	ब्राह्मण	**राज्ञां कथाः**	राजाओंकी कथा
ब्रह्मवादिनः	वेद मन्त्रोंकी व्याख्या	**अकथयन्**	करते हुए
आहुः	करते	**आसीना**	बैठे थे ॥२१॥
च पूर्वेषां	तथा पहिलेके		

तत्रैकः पुरुषो राजन्नागतोऽपूर्वदर्शनः ।
विज्ञापितो भगवते प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥२२॥

तत्र एकः पुरुषः राजन् आगतः अपूर्व दर्शनः विज्ञापितः भगवते प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥२२॥

राजन्	राजन् !	**प्रतीहारैः**	द्वारपालों द्वारा
तत्र अपूर्व दर्शनः	वहां पहिले कभी न देखा गया (अपरिचित)	**भगवते**	भगवानको
		विज्ञापितः	सूचना देकर
		प्रवेशितः	प्रविष्ट किया गया ॥२२॥
एकः पुरुषः	एक पुरुष आया		
आगतः	आया		

स नमस्कृत्य कृष्णाय परेशाय कृताञ्जलिः ।
राज्ञामावेदयद् दुःखं जरासन्धनिरोधजम् ॥२३॥

स नमस्कृत्य कृष्णाय परेशाय कृत अञ्जलिः राज्ञां आवेदयत् दुःखं जरासन्ध निरोधजम् ॥२३॥

स परेशाय	उनसे परमेश्वर
कृष्णाय	श्रीकृष्णको
नमस्कृत्य	नमस्कार
कृत अञ्जलिः	हाथ जोड़कर
जरासन्ध	जरासन्ध द्वारा
निरोधजं	बन्दी बनानेका
राज्ञां दुःखं	राजाओंका दुःख
आवेदयत्	निवेदन किया

॥२३॥

ये च दिग्विजये तस्य संनतिं न ययुर्नृपाः ।
प्रसह्य रुद्धास्तेनासन्नयुते द्वे गिरिव्रजे ॥२४॥

ये च दिग्विजये तस्य सन्नतिं न ययुः नृपाः प्रसह्य रुद्धाः तेन आसन् अयुते द्वे गिरिव्रजे ॥२४॥

ये नृपाः	जो राजा
तस्य दिग्विजये	उसकी दिग्विजयके समय
सन्नतिं न ययुः	विनम्रता पूर्वक (उसके पास) नहीं आये
च	तथा
तेन	उनके द्वारा
प्रसह्य रुद्धाः	बलपूर्वक बन्दी
अयुते द्वे	बीस सहस्र (राजा)
गिरिव्रजे आसन्	गिरिव्रज (नामक दुर्गमें) हैं ॥२४॥

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् प्रपन्नभयभञ्जन ।
वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः ॥२५॥

कृष्ण कृष्ण अप्रमेय आत्मन् प्रपन्न भय भंजन वयं त्वां शरणं यामः भवभीताः पृथक् धियः ॥२५॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण
अप्रमेय	अप्रमेय
आत्मन् कृष्ण	स्वरूप कृष्ण !
प्रपन्न भय	शरणागतके भय
भञ्जन	नाशक
वयं	हम
पृथक् धियः	भेद-बुद्धि वाले
भवभीताः	संसारसे डरे हुए
त्वां	आपकी
शरणं यामः	शरण आते हैं

॥२५॥

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः
कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां
सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥२६॥

लोकः विकर्म निरतः कुशले प्रमत्तः कर्मणि अयं त्वत् उदिते भवत् अर्चने स्वे यः तावत् अस्य बलवान् इह जीवित आशां सद्यः छिनत्ति अनिमिषाय नमः अस्तु तस्मै ॥२६॥

अयं लोकः	ये (सांसारिक) व्यक्ति	**यः अस्य तावत्**	जो इसकी अचानक
त्वत् उदिते	आपके बतलाये	**इह**	इस लोकमें
भवत अर्चने	आपकी पूजा रूप	**जीवित आशां**	जीवनकी आशाको
स्व कुशले	अपने मंगलकारी	**सद्यः छिनत्ति**	तुरन्त काट देते हैं
कर्मणि	कर्मसे	**तस्मै**	उस
प्रमत्तः	असावधान होकर	**अनिमिषाय**	कालदेवको
विकर्म निरतः	काम्यकर्मोंमें लगा रहता है,	**नमः अस्तु**	नमस्कार हो ॥ ६॥

लोके भवाञ्जगदिनः कलयावतीर्णः
सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः ।
कश्चित् त्वदीयमतियाति निदेशमीश
किं वा जनः स्वकृतमृच्छति तन्न विद्मः ॥२७॥

लोके भवान् जगदि नः कलया अवतीर्णः सत् रक्षणाय खल निग्रहणाय च अन्यः कश्चित् त्वदीयं अतियाति निदेशं ईश किं वा जनः स्वकृतं ऋच्छति तत् न विद्मः ॥२७॥

लोके	इस लोकमें	**नः सत् रक्षणाय**	हम सत्पुरुषोंकी रक्षाके लिए
भवान् जगदि	आप जगदीश्वरने		

च खल	तथा दुष्टोंका
निग्रहणाय	दमन करनेके लिए
कलया	अपनी कलाओंके
अवतीर्णः	साथ अवतार लिया
अन्यः कश्चित्	(अब) दूसरा कोई
स्वदीयं निदेशं	आपकी आज्ञाका
अतियाति	उल्लंघन कर रहा है
वा ईश	अथवा स्वामी !
जनः स्वकृतं	आपके भक्त अपना कर्मफल
ऋच्छति	भोग रहे हैं
तत्र न विद्मः	यह हम नहीं जाते ॥२७॥

स्वप्नायितं नृपसुखं परतन्त्रमीश
शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः ।
हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं
क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव माययेह ॥२८॥

स्वप्नायितं नृपसुखं परतन्त्रं ईश शश्वत् भयेन मृतकेन धुरं वहामः हित्वा तत् आत्मनि सुखं त्वत् अनीह लभ्यं क्लिश्यामहे अतिकृपणाः तव मायया इह ॥२८॥

ईश	स्वामी
अनीह लभ्यं	निष्काम पुरुषोंको प्राप्त होने वाला
तत् आत्मनि	वह अपनेमें ही
त्वत्	आपका
सुखं हित्वा	आनन्द त्यागकर
तव मायया	आपकी मायासे
इह	इस
अति कृपणाः	संसारमें अत्यन्त दीन हुए
क्लिश्यामहे	कष्ट उठा रहे हैं
परतन्त्रं	परतन्त्र (प्रारब्धाधीन)
स्वप्नायितं	स्वप्नके समान
नृपसुखं	राजसुख जो
शश्वत् भयेन	निरन्तर भय ग्रस्त है (उसका)
मृतकेन	मृतकके समान
धुरं वहामः	भार ढोते हैं ॥२८॥

तन्नो भवान् प्रणतशोकहरांघ्रियुग्मो
बद्धान् वियुङ्क्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात् ।

यो भूभुजोऽयुतमतङ्गजवीर्यमेको
बिभ्रद् रुरोध भवने मृगराडिवावीः ॥२९॥

ततः नः भवान् प्रणत शोक हर अंघ्रि युग्मः बद्धान् वियुङ्क्ष्व मगध आह्वय कर्मपाशात् यः भूभुजः अयुत मतङ्गज वीर्यं एकः बिभ्रत् रुरोध भवने मृगराट् इव आवीः ॥२९॥

प्रणत शोक हर	शरणागतोंका शोक दूर करने वाले
अंघ्रियुग्म	युगल-चरण वाले
भवान्	आप
ततः नः	इसलिए हम लोगों को
मगध आह्वय	मगधराज नामक
कर्मपाशात्	कर्म-बन्धनमें,
बद्धान्	बंधोंको
वियुङ्क्ष्व	छुड़ाइये,
यः एकः	जिसने अकेले
अयुत मतङ्गज	दस सहस्र हाथियों की
वीर्यं बिभ्रत्	शक्ति धारण करके
आवीः	भेड़ोंको
मृगराट् इव	सिंहके समान
भूभुजः भवने	राजाओंको अपने भवनमें
रुरोध	बन्दी कर रखा है ॥२९॥

यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्र
भग्नो मृधे खलु भवन्तमनन्तवीर्यम् ।
जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो
युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद् विधेहि ॥३०॥

यः वै त्वया द्विनवकृत्य उदात्त चक्र भग्नः मृधे खलु भवन्तं अनन्त वीर्यं जित्वा नृलोक निरतं सकृत् ऊढदर्पः युष्मत् प्रजा रुजति नः अजित तत् विधेहि ॥३०॥

उदात्त चक्र	चक्र उठाने वाले प्रभु !
यः वै त्वया	जो निश्चय आपके द्वारा
मृधे द्विनवकृत्य	युद्धमें दो नव (अठारह वार)
भग्नः	पराजित हुआ,

खलु नृलोक	अहो नरलोकका
निरतं	अनुकरण करते
भवन्त	आप
अनन्त वीर्यं	अनन्त पराक्रमको
सकृत् जित्वा	एक बार जीत कर
ऊढ दर्पः	गर्वित हो गया है,
अजित	अजित !
युष्मत् प्रजा	आपकी प्रजा
रुजति	कष्ट पा रही है
तत् विधेहि	(अब जैसी इच्छा हो) वह व्यवस्था कीजिये ॥३०॥

॥ दूत उवाच ॥

इति मागधसंरुद्धा भवद्दर्शनकांक्षिणः ।
प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम् ॥३१॥

इति मागध संरुद्धा भवत् दर्शन कंक्षिणः प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम् ॥३१॥

इति मागध	इस प्रकार मगध-राज द्वारा
संरुद्धा	बन्दी
भवत्	आपके
दर्शन कांक्षिणः	दर्शनाभिलाषी
ते पादमूलं	आपके चरणोंकी
प्रपन्नाः	शरण आये हैं
दीनानां	उन दीनोंका
शं विधीयतां	कल्याण कीजिए ॥३१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

राजदूते ब्रुवत्येवं देवर्षिः परमद्युतिः ।
बिभ्रत् पिङ्गजटाभारं प्रादुरासीद् यथा रविः ॥३२॥

राजदूते ब्रुवति एवं देवर्षिः परमद्युतिः बिभ्रत् पिङ्ग जटाभारं प्रादुः आसीत् यथा रविः ॥३२॥

एवं राजदूते	इस प्रकार राजदूत के
ब्रुवति	कहते समय ही
परमद्युतिः	अत्यन्त तेजस्वी

पिङ्गं जटाभारं	पिंगल जटाजूट	देवर्षिः	देवर्षि नारद
बिभ्रत्	धारण किये	प्रादुः आसीत्	प्रकट हुए ॥३२॥
यथा रविः	जैसे सूर्य		

तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वरः ।
ववन्द उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगो मुदा ॥३३॥

तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः सर्वलोक ईश्वर ईश्वरः ववन्द उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगः मुदा ॥३३॥

तं दृष्ट्वा	उनको देखकर	भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्णने
ससभ्यः	सभासदोंके साथ	उत्थितः	उठकर
सानुगः मुदा	अनुचरोंके साथ आनन्दित होकर	शीर्ष्णा ववन्द	सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥३३॥
सर्वलोक ईश्वर ईश्वरः	सब लोकोंके स्वामियोंके भी स्वामी		

सभाजयित्वा विधिवत् कृतासनपरिग्रहम् ।
बभाषे सूनृतैर्वाक्यैः श्रद्धया तर्पयन् मुनिम् ॥३४॥

सभाजयित्वा विधिवत् कृत आसन परिग्रहं बभाषे सूनृतैः वाक्यैः श्रद्धया तर्पयन् मुनिम् ॥३४॥

कृत आसन परिग्रहंः	आसनको स्वीकार कर लेने पर	मुनिं श्रद्धया तर्पयन्	मुनिको श्रद्धासे तृप्त करते हुए
विधिवत्	विधिपूर्वक	सूनृतैः वाक्यैः	अत्यन्त मधुर वार्णी से
सभाजयित्वा	सत्कार करके	बभाषे	बोले ॥३४॥

अपि स्विदद्य लोकानां त्रयाणामकुतोभयम् ।
ननु भूयान् भगवतो लोकान् पर्यटतो गुणः ॥३५॥

अपि स्वित अद्य लोकानां त्रयाणां अकुतः भयं ननु भूयात् भगवतः लोकान् पर्यटतः गुणः ॥३५॥

त्रयाणां	तीनों
लोकानां	लोकोंमें
अद्य	इस समय
अकुतः भयं	सब ओर निर्भयता
अपि स्वित्	तो है ?
ननु भगवतः	निश्चय आपके
लोकान् पर्यटतः	लोकोंमें घूमनेका
गुणः भूयात्	(हमको) लाभ होता है ॥३५॥

न हि तेऽविदितं किंचिल्लोकेष्वीश्वरकर्तृषु ।
अथ पृच्छामहे युष्मान् पाण्डवानां चिकीर्षितम् ॥३६॥

न हि ते अविदितं किञ्चित् लोकेषु ईश्वर कर्तृषु अथ पृच्छामहे युष्मात् पाण्डवानां चिकीर्षितम् ॥३६॥

ईश्वर कर्तृषु	ईश्वरके द्वारा निर्मित
लोकेषु	लोकोंमें
हि ते किञ्चित्	क्योंकि आपसे कुछ भी
अविदितं न	अज्ञात नहीं है
अथ युष्मात्	अतः आपसे
पाण्डवानां	पाण्डवोंकी
चिकीर्षितं	जो करनेकी इच्छा हो
पृच्छामहे	(हम) पूछते हैं ॥३६॥

॥ नारद उवाच ॥

दृष्टा मया ते बहुशो दुरत्यया
माया विभो विश्वसृजश्च मायिनः ।
भूतेषु भूमंश्चरतः स्वशक्तिभि-
र्वह्नेरिवच्छन्नरुचो न मेऽद्भुतम् ॥३७॥

दृष्टा मया ते बहुशः दुरत्यया माया विभो विश्वसृजः च मायिनः भूतेषुः भूमन् चरतः स्वशक्तिभिः वह्नेः इव छन्नरुचः न मे अद्भुतम् ॥३७॥

विभो भूमन्	प्रभो ! भूमन् !
ते विश्वसृजः	आप विश्वस्रष्टा
मायिनः	मायाधिपकी
दुरत्यया माया	दुस्तर मायाको
मया बहुशः	मैंने बहुत बार
दृष्टा	देखा है
वह्नेः इव	अग्निके समान
स्वशक्तिभिः	अपनी शक्ति द्वारा
भूतेषु चरतः	प्राणि-पदार्थोंमें रहते हुए भी
छन्नरुचः	अपना तेज छिपाये हैं
मे अद्भुतं न	यह मेरे लिए आश्चर्यजनक नहीं है ॥३७॥

तवेहितं कोऽर्हति साधु वेदितुं
स्वमायया इदं सृजतो नियच्छतः ।
यद् विद्यमानात्मतयावभासते
तस्मै नमस्ते स्वविलक्षणात्मने ॥३८॥

तव ईक्षितं कः अर्हति साधु वेदितुं स्वमायया इदं सृजतः नियच्छतः यत् अविद्यमान आत्मतया अवभासते तस्मै नमः ते स्वविलक्षण आत्मने ॥३८॥

यत् अविद्यमान	जो विद्यमान न होने (मिथ्या होने) पर भी
आत्मतया	आत्मरूपसे
अवभासते	प्रतीत हो रहा है
स्वमायया इदं	अपनी मायासे इस जगतको
सृजतः	उत्पन्न करने तथा
नियच्छतः	लय करने वाले
तव ईहितं	आपकी चेष्टाको
कः साधु	कौन भली प्रकार
वेदितुं अर्हति	जान सकता है
स्वविलक्षण	अतः स्वयंमें अचिन्त्य
आत्मने	स्वरूप
तस्मै ते नमः	उस आपको नमस्कार ॥३८॥

जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं
न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः ।
लीलावतारैः स्वयशःप्रदीपकं
प्राज्वालयत्त्वा तमहं प्रपद्ये ॥३९॥

जीवस्य यः संसरतः विमोक्षणं न जानतः अनर्थ वहात् शरीरतः लीला अवतारैः स्वयशः प्रदीपकं प्राज्वालयत् त्वा तं अहं प्रपद्ये ॥३९॥

यः अनर्थ वहात्	जिस अनर्थ ढोने वाले
शरीरतः	अपने शरीरसे
विमोक्षणं	घुटनेका उपाय
न जानतः	न जानते हुए
संसरतः	(जन्म-मरण चक्रमें) भटकते
जीवस्य	जीवके लिए
लीला अवतारैः	लीला पूर्वक अवतार लेकर
स्वयशः प्रदीपकं	अपने यशका दीपक
प्राज्वालयत्	प्रज्वलित करने वाले
तं त्वा अहं प्रपद्ये	उस आपको मैं शरणमें हूँ ॥३९॥

अथाप्याश्रावये ब्रह्म नरलोकविडम्बनम् ।
राज्ञः पैतृष्वसेयस्य भक्तस्य च चिकीर्षितम् ॥४०॥

अथ अपि आश्रावये ब्रह्म नरलोक विडम्बनं राज्ञः पैतृष्वसेयस्य भक्तस्य च चिकीर्षितम् ॥४०॥

ब्रह्म	ब्रह्म होने पर
अथ अपि	फिर भी
नरलोक	मनुष्य लोककी
विडम्बनं	लीला करने वाले आपको
पैतृष्वसेयस्य	आपके पिताकी बहिनके पुत्र
राज्ञस्य	राजाकी
भक्तस्य च	(जो आपके) भक्त भी हैं
चिकीर्षितं	करनेकी इच्छा
आश्रावये	सुनाता हूँ ॥४०॥

यक्ष्यति त्वां मखेन्द्रेण राजसूयेन पाण्डवः ।
पारमेष्ठ्यकामो नृपतिस्तद् भवाननुमोदताम् ॥४१॥

यक्ष्यति त्वां मख इन्द्रेण राजसूयेन पाण्डवः पारमेष्ठ्य कामः नृपतिः तत् भवान् अनुमोदताम् ॥४१॥

पारमेष्ठ्य	चक्रवर्तित्वकी
कामः	कामनासे
पाण्डवः नृपतिः	पाण्डव राजा युधिष्ठिर
मख इन्द्रेण	मखेन्द्र
राजसूयेन	राजसूय द्वारा
त्वां यक्ष्यति	आपका यजन करना चाहते हैं
तत् भवान्	अतः आप
अनुमोदतां	(उसका) अनुमोदन कीजिए ॥ ४१॥

तस्मिन् देव क्रतुवरे भवन्तं वै सुरादयः ।
दिदृक्षवः समेष्यन्ति राजानश्च यशस्विनः ॥४२॥

तस्मिन् देव क्रतुवरे भवन्तं वै सुर आदयः दिदृक्षवः सम एष्यन्ति राजानः च यशस्विनः ॥४२॥

देव तस्मिन्	देव ! उस
क्रतुवरे	श्रेष्ठ यज्ञमें
वैः सुर आदयः	निश्चय देवता आदि
च यशस्विनः	तथा यशस्वी
राजानः	राजा लोग
भवन्तं दिदृक्षवः	आपका दर्शन करने के लिए
सम एष्यन्ति	एक साथ आवेंगे ॥४२॥

श्रवणात् कीर्तनाद् ध्यानात् पूयन्तेऽन्तेवसायिनः ।
तव ब्रह्ममयस्येश किमुतेक्षाभिमर्शिनः ॥४३॥

श्रवणात् कीर्तनात् ध्यानात् पूयन्ते अन्तेवसायिनः तव ब्रह्ममयः ईशस्य किं उत ईक्षा अभिमर्शिनः ॥४३॥

तव ब्रह्ममयः	आप ब्रह्म स्वरूप	**अन्तेवसायिनः**	चाण्डाल भी
ईशस्य	सर्वेश्वरके	**पूयन्ते**	पवित्र हो जाते हैं
श्रवणात्	श्रवण,	**उत ईक्षा**	फिर दर्शन
कीर्तनात्	कीर्तन	**अभिमर्शिनः**	स्पर्श करने वालोंका
ध्यानात्	ध्यानसे	**किं**	क्या कहना ॥४३॥

यस्यामलं दिवि यशः प्रथितं रसायां
भूमौ च ते भुवनमङ्गल दिग्वितानम् ।
मन्दाकिनीति दिवि भोगवतीति चाधो
गङ्गेति चेह चरणाम्बु पुनाति विश्वम् ॥४४॥

यस्य अमलं दिवि यशः प्रथितं रसायां भूमौ च ते भुवनमङ्गल दिक् वितानं मन्दाकिनी इति दिवि भोगवती इति च अधः गङ्गा इति च इह चरण अम्बु पुनाति विश्वम् ॥४४॥

भुवनमङ्गल	भुवनमगंल	**मन्दाकिनी**	मन्दाकिनी
यस्य अमलं	जिसका निर्मल	**इति दिवि**	इस नामसे स्वर्गको
यशः	यश	**भोगवती**	भोगवती
दियि रसायां	स्वर्ग, पाताल,	**इति अधः**	इस नामसे नीचेके लोकोंको
भूमौ च	पृथ्वीमें भी		
दिक् वितानं	(दसों) दिशाओंमें व्याप्त	**च गङ्गा इति**	तथा गंगा इस नाम से
प्रथितं	फैला हुआ है,	**इह च विश्वं**	यहां भी जगतको
ते चरण अम्बु	आपका चरणोदक ही	**पुनाति**	पवित्र करता है ॥४४॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

तत्र तेष्वात्मपक्षेष्वगृह्णत्सु विजिगीषया ।
वाचः पेशैः स्मयन् भृत्यमुद्धवं प्राह केशवः ॥४५॥

तत्र तेषु आत्म पक्षेषु अगृह्णत्सु विजिगीषया वाचः पेशैः स्मयन् भृत्यं उद्धवं प्राह केशवः ॥४५॥

तत्र तेषु	वहां उन (यादव) लोगोंको
आत्म पक्षेषु	अपने पक्षको
विजिगीषया	विजयी बनानेकी इच्छासे
अगृह्णत्सु	(नारदजीकी बात) न स्वीकार करते (देखकर)
भृत्यं उद्धवं	अपने सेवक उद्धवसे
केशवः	केशवने मुस्कराते हुए
पेशैः वाचः	कोमल वाणीमें
प्राह	कहा ॥४५॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

त्वं हि नः परमं चक्षुः सुहृन्मन्त्रार्थतत्त्ववित् ।

अथाव ब्रूह्यनुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवाम तत् ॥४६॥

त्वं हि नः परमं चक्षुः सुहृत् मन्त्र अर्थं तत्त्ववित् अथ अत्र ब्रूहि अनुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवाम तत् ॥४६॥

हि त्वं नः	क्योंकि तुम हमारे
परमं चक्षुः	उत्तम नेत्र
मन्त्र अर्थ	मन्त्रणाका प्रयोजन
तत्ववित्	तथा तत्व जानने वाले
सुहृत्	सुहृद हो,
तथा अत्र	इसलिए इस विषय में
अनुष्ठेयं ब्रूहि	करने योग्य बतलाओ
श्रद्दध्मः	(हम उस पर) श्रद्धा करेंगे और
तत् करवाम	उसे करेंगे ॥४६॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इत्युपामन्त्रितो भर्त्रा सर्वज्ञेनापि मुग्धवत् ।
निदेशं शिरसाऽऽधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥४७॥

इति उपामन्त्रितः भर्त्रा सर्वज्ञेन अपि मुग्धवत् निदेशं शिरसा आधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥४७॥

इति	इस प्रकार	**निदेशं**	(उनकी) आज्ञाको
सर्वज्ञेन अपि	सर्वज्ञ होने पर भी	**शिरसा आधाय**	शिरोधार्य करके
मुग्धवत्	अनजानके समान	**उद्धवः**	उद्धवजी
भर्त्रा	स्वामीके	**प्रत्यभाषत**	समझाते हुए बोले
उपामन्त्रितः	पूछने पर		॥४७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भगवद्यानविचारे सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य देवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत् ।
सभ्यानां मतमाज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः ॥१॥

इति उदीरितं आकर्ण्य देवर्षेः उद्धवः अब्रवीत् सभ्यानां मतं अज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः ॥१॥

इति उदीरितं	इस प्रकार (श्रीकृष्णके) वचन	**देवर्षेः**	देवर्षि नारदका,
आकर्ण्य	सुनकर	**सभ्यानां**	सभासदोंका
महामतिः	अत्यन्त बुद्धिमान	**च कृष्णस्य**	तथा श्रीकृष्णका
उद्धवः	उद्धव	**मतं आज्ञाय**	भाव जानकर
		अब्रवीत्	बोले ॥१॥

॥ उद्धव उवाच ॥

यदुक्तमृषिणा देव साचिव्यं यक्ष्यतस्त्वया ।
कार्यं पैतृष्वसेयस्य रक्षा च शरणैषिणाम् ॥ २ ॥

यत् उक्तं ऋषिणा देव साचिव्यं यक्ष्यतः त्वया कार्यं पैतृष्वसेयस्य रक्षा च शरण एषिणाम् ॥२॥

देव	देव !	**पतृष्वसेयस्य**	पिताकी बहिनके पुत्रोंकी
यत्	जो	**त्वया साचिव्यं**	आपको सहायता
ऋषिणा उक्तं	देवर्षिने कहा		
यक्ष्यतः	यज्ञ करने वाले		

च शरण	तथा शरण	रक्षा कार्यं	रक्षा भी करनी
एषिणां	चाहने वालोंकी		चाहिए ॥२॥

यष्टव्यं राजसूयेन दिक्चक्रजयिना विभो ।
अतो जरासुतजय उभयार्थो मतो मम ॥ ३ ॥

यष्टव्यं राजसूयेन दिक्चक्र जयिना विभो अतः जरासुत जयः उभय अर्थः मतः मम ॥३॥

विभो	प्रभो !	जरासुत जयः	जराके पुत्र (जरासन्ध)को जीतना
दिक्चक्र	सब दिशाओंको		
जयिना	जीतने वाला ही		
राजसूयेन	राजसूय यज्ञ	उभय अर्थः	दोनों प्रयोजनोंके लिए (आवश्यक) है ॥३॥
यष्टव्यं	कर सकता है		
अतः मम मतं	अतः मेरी सम्मति में		

अस्माकं च महानर्थो ह्येतेनैव भविष्यति ।
यशश्च तव गोविन्द राज्ञो बद्धान् विमुञ्चतः ॥ ४ ॥

अस्माकं च महान् अर्थः हि एतेन एव भविष्यति यशः च तव गोविन्द राज्ञ बद्धान् विमुञ्चतः ॥४॥

एतेन एव	इतने से ही	बद्धान् राज्ञः	बन्दी राजाओंको
अस्माकं च	हम लोगोंका भी	विमुञ्चतः	छुड़ा देने से
महान् अर्थः	बहुत बड़ा प्रयोजन	तव यशः च	आपका सुयश भी
च गोविन्द	और गोविन्द !	भविष्यति	होगा ॥४॥

स वै दुर्विषहो राजा नागायुतसमो बले ।
बलिनामपि चान्येषां भीमं समबलं विना ॥ ५ ॥

स वै दुर्विषहः राजा नाग अयुत समः बले बलिनां अपि च अन्येषां भीमं समबलं विना ॥५॥

बले	बलमें
नाग अयुत समः	दस सहस्र हाथियों के समान
वै स राजा	निश्चय वह राजा
समबलं	अपने समान बलवान
भीमं विना	भीमसेनको छोड़कर
अन्येषां बलिनां	दूसरे बलवानोंके लिए
अपि दुर्विषहः	भी असह्य है ॥५॥

द्वैरथे स तु जेतव्यो मा शताक्षौहिणीयुतः ।
ब्रह्मण्योऽभ्यर्थितो विप्रैर्न प्रत्याख्याति कर्हिचित् ॥६॥

द्वैरथे स तु जेतव्यः मा शत अक्षौहिणो युतः ब्रह्मण्यः अभ्यर्थितः विप्रैः न प्रत्याख्याति कर्हिचित् ॥६॥

स तु द्वैरथे	वह तो द्वन्द-युद्धमें ही
जेतव्यः	जीतने योग्य
शत अक्षौहिणी	सौ अक्षौहिणी सेना के
युतः मा	साथ नहीं,
ब्रह्मण्यः	(वह) ब्राह्मण-भक्त है
विप्रैः	ब्राह्मणोंके
अभ्यर्थितः	प्रार्थना करने पर
प्रत्याख्याति	(उनकी बात) अस्वीकार
कर्हिचित् न	कभी नहीं करता ॥६॥

ब्रह्मवेषधरो गत्वा तं भिक्षेत वृकोदरः ।
हनिष्यति न संदेहो द्वैरथे तव संनिधौ ॥ ७ ॥

ब्रह्मवेषधरः गत्वा तं भिक्षेत वृकोदरः हनिष्यति न सन्देहः द्वैरथे तव सन्निधौ ॥७॥

वृकोदरः	भीमसेन	तव सन्निधौ	आपके सानिध्यमें
ब्रह्मवेशधरः	ब्राह्मणका वेष बनाकर	न सन्देहः	निसन्देह
तं भिक्षेत	उससे (द्वन्द्व-युद्धकी) भिक्षा मांगे	द्वैरथे हनिष्यति	द्वन्द्व-युद्धमें (उसे) मार देंगे ॥७॥

निमित्तं परमीशस्य विश्वसर्गनिरोधयोः ।
हिरण्यगर्भः शर्वश्च कालस्यारूपिणस्तव ॥ ८ ॥

निमित्तं परं ईशस्य विश्व सर्ग निरोधयोः हिरण्यगर्भः शर्वः च कालस्य अरूपिणः तव ॥८॥

तव अरूपिणः	आप रूपहीन	शर्वः	शङ्करजी
कालस्य	काल	निमित्तं	निमित्त हैं (इसी
परं ईशस्य	परमेश्वरके		प्रकार जरासन्ध
विश्व सर्ग	संसारकी सृष्टिमें		वधमें भीम निमित्त
हिरण्यगर्भ	ब्रह्माजी		होंगे) ॥८॥
च निरोधयोः	तथा प्रलयमें		

गायन्ति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो
राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च ।
गोप्यश्च कुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः
पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च ॥ ९ ॥

गायन्ति ते विशद कर्म गृहेषु देव्यः राज्ञां स्वशत्रु वधं आत्म विमोक्षणं च गोप्यः च कुञ्जरपतेः जनकात्माजायाः पित्रोः च लब्धशरणा मुनयः वयं च ॥९॥

राज्ञां देव्यः	(जरासन्धके मरने पर बन्धनसे छूटे) राजाओंकी रानियां	स्वशत्रु वधं	अपने शत्रुके मारे जाने

ते विशद कर्म	आपके प्रशस्त कर्म को
गृहेषु गायन्ति	घरोंमें वर्णन करेंगी
गोप्यः	(जैसे) गोपियां
आत्म विमोक्षणं	अपने (शंखचूड़से) छुड़ानेकी
मुनयः	मुनिगण
कुञ्जरपतेः	गजेन्द्र (उद्धार)को
च	तथा
जनकात्मजायाः	जनक-नन्दिनीका (लंकासे छुड़ाया जाना)
च लब्धशरणा	और शरण प्राप्त
वयं च	हम लोग भी
पित्रोः	आपके माता-पिता (वसुदेव-देवकीका कंसके बन्धनसे छुड़ाया जाने)को भी (गावे) हैं ॥९॥

जरासंधवधः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते ।
प्रायः पाकविपाकेन तव चाभिमतः क्रतुः ॥१०॥

जरासन्ध वधः कृष्ण भूरि अर्थाय उपकल्पते प्रायः पाक विपाकेन तव च अभिमतः क्रतुः ॥१०॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण !
जरासन्ध वधः	जरासन्धका मारा जाना
भूरि अर्थाय	बहुत प्रयोजन सिद्ध
उपकल्पते	करने वाला होगा
च	तथा
पाक विपाकेन	(राजाओंके पुण्य) परिणाम एवं जरासन्धके पाप विपाकको देखते
क्रतुः तव च	यज्ञ आपको भी
अभिमतः	अभीष्ट ही है ॥१०॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्युद्धववचो राजन् सर्वतोभद्रमच्युतम् ।
देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णश्च प्रत्यपूजयन् ॥११॥

इति उद्धव वचः राजन् सर्वतः भद्रं अच्युतं देवर्षिः यदुवृद्धाः च कृष्णः च प्रत्यपूजयन् ॥११॥

राजन्	राजन् !	यदुवृद्धाः च	वयोवृद्ध यादवों एवं
इति	इस प्रकार	कृष्णः	श्रीकृष्णने
सर्वतः भद्रं	सर्वथा मंगलमय	प्रत्यपूजयन्	सम्मान किया ॥११॥
अच्युतं	निर्दोष		
उद्धव वचः	उद्धवजीके वचनोंका		
देवर्षिः च	देवर्षि और		

अथादिशत् प्रयाणाय भगवान् देवकीसुतः ।
भृत्यान् दारुकजैत्रादीननुज्ञाप्य गुरून् विभुः ॥१२॥

अथ आदिशत् प्रयाणाय भगवान् देवकीसुतः भृत्यान् दारुक जैत्र आदीन् अनुज्ञाप्य गुरून् विभुः ॥१२॥

अथ विभुः	फिर प्रभु	भृत्यान्	सेवकोंको
भगवान	भगवान	प्रयाणाय	प्रस्थान की तैयारीकी
देवकीसुतः	देवकी-नन्दनने	आदिशत्	आज्ञा दी ॥१२॥
गुरून् अनुज्ञाप्य	गुरुजनोंसे अनुमति लेकर		
दारुक जैत्र	दारुक, जैत्र		
आदीन्	आदि		

निर्गमय्यावरोधान् स्वान् ससुतान् सपरिच्छदान् ।
संकर्षणमनुज्ञाप्य यदुराजं च शत्रुहन् ।
सूतोपनीतं स्वरथमारुहद् गरुडध्वजम् ॥१३॥

निर्गमय्य अवरोधान् स्वान् ससुतान् सपरिच्छदान् सङ्कर्षणं अनुज्ञाप्य यदुराजं च शत्रुहन् सूत उपनीतं स्व रथं आरुहत् गरुडध्वजम् ॥१३॥

ससुतान्	पुत्रोंके साथ,	**अनुज्ञाप्य**	अनुमति लेकर
सपरिच्छदान्	सामग्रियोंके साथ	**सूत उपनीतं**	सारथिके द्वारा समीप लाये
स्वान्	अपनी		
अवरोधान	अन्त:पुर वासिनियों को	**स्व गरुडध्वजं**	अपने गरुड चिह्नाङ्कित ध्वजा वाले
निर्गमय्य	आगे निकाल कर		
सङ्कर्षणं	बलरामजी	**रथं आरुहत्**	रथ पर चढ़े ॥१३॥
च यदुराजं	तथा यादव महाराज उग्रसेनसे		

ततो रथद्विपभटसादिनायकैः
करालया परिवृत आत्मसेनया ।
मृदङ्गभेर्यानकशङ्खगोमुखैः
प्रघोषघोषितककुभो निराक्रमत् ॥१४॥

ततः रथ द्विप भट सादि नायकैः करालया परिवृत आत्म सेनया मृदङ्ग भेरि आनक शङ्ख गोमुखैः प्रघोष घोषित ककुभः निराक्रमत् ॥१४॥

ततः मृदङ्ग	तब मृदङ्ग,	**सादि नायकैः**	अश्व सेनाके यूथपों से
भेरि आनक	भेरी, नगाड़े,	**करालया**	भयानक
शङ्ख गोमुखैः	शंख, गोमुख आदि (वाद्यों)की	**आत्म**	अपनी
प्रघोष	ध्वनिसे	**सेनया परिवृतः**	सेनासे घिरे
ककुभः घोषित	दिशाओंको गुंजित करते	**निराक्रमत्**	(नगरसे) निकले ॥१४॥
रथ द्विप भट	रथ, गज, पैदल		

नृवाजिकाञ्चनशिबिकाभिरच्युतं
सहात्मजाः पतिमनु सुव्रता ययुः ।
वराम्बराभरणविलेपनस्रजः
सुसंवृता नृभिरसिचर्मपाणिभिः ॥१५॥

नृवाजि काञ्चन शिबिकाभिः अच्युतं सह आत्मजाः पतिं अनु सुव्रता ययुः वर अम्बर आभरण विलेपन स्रजः सुसंवृता नृभिः असि चर्म पाणिभिः ॥१५॥

नृवाजि	नरयान, अश्वयान तथा
काञ्चन	स्वर्ण
शिबिकाभिः	पालिकियों द्वारा
वर अम्बर	श्रेष्ठ वस्त्र
आभरण	आभूषण,
विलेपन	अंगराग,
स्रजः	मालाओंसे (अलंकृता)
सह आत्मजाः	अपने पुत्रोंके साथ
असि चर्म	हाथोंमें
पाणिभिः	तलवार-ढाल लिए
नृभिः सुसंवृता	मनुष्यों (सैनिकों)से भली प्रकार घिरी
सुव्रता	पतिव्रताएँ
पतिं अच्युतं	अपने पति अच्युतके
अनु ययुः	पीछे चलीं ॥१५॥

नरोष्ट्रगोमहिषखराश्वतर्यनः-
करेणुभिः परिजनवारयोषितः ।
स्वलंकृताः कटकुटिकम्बलाम्बरा-
द्युपस्करा ययुरधियुज्य सर्वतः ॥१६॥

नर उष्ट्र गो महिष खर अश्वतरि अनः करेणुभिः परिजन वारयोषितः सु अलंकृताः कटक कुटि कम्बल अम्बर आदि उपस्करा ययुः अधियुज्य सर्वतः ॥१६॥

परिजन	अनुचरोंकी स्त्रियां
वारयोषितः	और वारांगनाएँ
कटक कम्बल	खसादि तथा कंबल के (ऊनी) तम्बू

अम्बर आदि	वस्त्रादि
उपस्करा	सामग्री
नर उष्ट्र गो	मनुष्यों, ऊंटों, बैलों
महिष खर	भैंसों, गधों
अश्वतरि अनैः	खच्चरों, छकड़ों पर
सर्वतः	चारों ओरसे
अधियुज्य	लादकर
करेणुभिः ययुः	हथिनियों पर चढ़कर चलीं ॥१६॥

बलं बृहद्ध्वजपटछत्रचामरै-
र्वरायुधाभरणकिरीटवर्मभिः ।
दिवांशुभिस्तुमुलरवं बभौ रवे-
र्यथार्णवः क्षुभिततिमिङ्गिलोर्मिभिः ॥१७॥

बलं बृहत् ध्वज पट छत्र चामरैः वर आयुध आभरण किरीट वर्मभिः दिवा अंशुभिः तुमुल रवं बभौ रवेः यथा अर्णवः क्षुभित तिमिङ्गिल उर्मिभिः ॥१७॥

तुमुल रवं बलं	तुमुल कोलाहल वाली वह सेना
ध्वज पट	ध्वजाओंके वस्त्र
छत्र चामरैः	छत्र, चमर
वर आयुध	श्रेष्ठ आयुध
आभरण	आभूषण
किरीट वर्मभिः	मुकुठ, कवचसे युक्त
बभौ यथा	(ऐसी) शोभित हुई जैसे
दिवा	दिनमें
रवेः अंशुभिः	सूर्यकी किरणों तथा
क्षुभित तिमिङ्गिल	उछलते तिमिगल (ह्वेल) एवं
उर्मिभिः अर्णवः	लहरोंसे समुद्र ॥१७॥

अथो मुनिर्यदुपतिना सभाजितः
प्रणम्य तं हृदि विदधद् विहायसा ।

निशम्य तद्व्यवसितमाहृतार्हणो
मुकुन्दसंदर्शननिर्वृतेन्द्रियः ॥१८॥

अथो मुनिः यदुपतिना सभाजितः प्रणम्य तं हृदि विदधत् विहायसा निशम्य तत् व्यवसितं आहृत अर्हणः मुकुन्द सन्दर्शन निर्वृत इन्द्रियः ॥१८॥

अथो मुनिः	फिर मुनि नारदजी
यदुपतिना	यदुपति द्वारा
सभाजितः	सत्कृत होकर
आहृत अर्हणः	उनकी पूजा स्वीकार करके
तत्	उनका
व्यवसितं	निश्चय
निशम्य	देखकर
मुकुन्द	मुकुन्द
सन्दर्शन	दर्शनसे
निर्वृत इन्द्रियः	प्रसन्नेन्द्रिय
तं प्रणम्य	उनको प्रणाम करके
हृदि विदधत्	(उनको) हृदयमें धारण करके
विहायसा	आकाश-मार्गसे (चले गये) ॥१८॥

राजदूतमुवाचेदं भगवान् प्रीणयन् गिरा ।
मा भैष्ट दूत भद्रं वोघातयिष्यामि मागधम् ॥१९॥

राजदूतं उवाच इदं भगवान् प्रीणयन् गिरा मा भैष्ट दूत भद्रं वः घातयिष्यामि मागधम् ॥१९॥

भगवान् गिरा	भगवानने वाणीसे
प्रीणयन्	प्रसन्न करते हुए
राजदूतं	राजदूतसे
इदं उवाच	यह कहा—
दूत मा भैष्ट	'दूत ! मत डरो,
वः भद्रं	तुम लोगोंका कल्याण हो
मागधं	मगधराजको
घातयिष्यामि	मरवा दूँगा' ॥१९॥

इत्युक्तः प्रस्थितो दूतो यथावदवदन्नृपान् ।
तेऽपि संदर्शनं शौरेः प्रत्यैक्षन् यन्मुमुक्षवः ॥२०॥

इति उक्तः प्रस्थितः दूतः यथावत् अवदत् नृपान् ते अपि सन्दर्शनं शौरेः प्रत्यैक्षन् यत् मुमुक्षवः ॥२०॥

इति उक्तः	ऐसा कहे जाने पर	**ते अपि**	वे भी
दूतः प्रस्थितः	दूत प्रस्थान कर गया,	**यत् मुमुक्षवः**	क्योंकि छूटना चाहते थे
नृपान् यथावत	राजाओंको ठीक-ठीक	**शौरेः सन्दर्शनं**	श्रीकृष्णके दर्शनकी
अवदत्	बतला दिया	**प्रत्यैक्षन्**	प्रतीक्षा करने लगे ॥२०॥

आनर्तसौवीरमरूंस्तीर्त्वा विनशनं हरिः ।
गिरीन् नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान् ॥२१॥

आनर्तं सौवीर मरून् तीर्त्वा विनशनं हरिः गिरीन् नदीः अतीयाय पुर ग्राम व्रज आकरान् ॥२१॥

हरिः	श्रीहरि	**पुर ग्राम व्रज**	नगर, ग्राम, व्रज
आनर्तं सौवीर	आनर्त, सौवीर,	**आकरान्**	खदानोंको
मरून् विनशनं	मरु और कुरुक्षेत्र को	**अतीयाय**	पार करते ॥२१॥
गिरीन् नदीः	पर्वतों, नदियों को		

ततो दृषद्वतीं तीर्त्वा मुकुन्दोऽथ सरस्वतीम् ।
पञ्चालानथ मत्स्यांश्च शक्रप्रस्थमथागमत् ॥२२॥

ततः दृषद्वतीं तीर्त्वा मुकुन्दः अथ सरस्वतीं पञ्चालान् अथ मत्स्यान् च शक्रप्रस्थं अथ आगमत् ॥२२॥

ततः मुकुन्दः	फिर मुकुन्द
दृषद्वतीं	दृषद्वती और
सरस्वतीं	सरस्वतीको
तीर्त्वा	पार करके
पञ्चालान्	पाञ्चाल
अथ मत्स्यान् च	और मत्स्य प्रदेश को भी
अथ शक्रप्रस्थं	फिर इन्द्रप्रस्थ
आगमत्	पहुँचे ॥२२॥

तमुपागतमाकर्ण्य प्रीतो दुर्दर्शनं नृणाम् ।
अजातशत्रुर्निरगात् सोपाध्यायः सुहृद्वृतः ॥२३॥

तं उप आगतं आकर्ण्य प्रीतः दुर्दर्शनं नृणां अजातशत्रुः निरगात् स उपाध्यायः सुहृत् वृतः ॥२३॥

नृणां दुर्दर्शनं	मनुष्योंके लिए जिनका दर्शन कठिन है
त उप आगतं	उनको समीप आया
आकर्ण्य	सुनकर
प्रीतः	प्रसन्न होकर
अजातशत्रुः	अजातशत्रु (युधिष्ठिर)
स उपाध्यायः	उपाध्यायके साथ
सुहृत् वृतः	बन्धु-वर्गसे घिरे
निरगात्	(नगरसे) निकले ॥२३॥

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा ।
अभ्ययात् स हृषीकेशं प्राणाः प्राणमिवादृतः ॥२४॥

गीत वादित्र घोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा अभ्ययात् स हृषीकेशं प्राणाः प्राणं इव आदृतः ॥२४॥

प्राणाः प्राणं इव	इन्द्रियां मुख्य प्राण (से मिलने)की भांति
आदृतः स	आदर पूर्वक वे
गीत वादित्र	गाने बजानेकी
घोषेण	ध्वनिके साथ
भूयसा	तुमुल
ब्रह्मघोषेण	वेद-ध्वनिके साथ
हृषीकेशं	हृषीकेश
अभ्ययात्	की ओर चले ॥२४॥

दृष्ट्वा विलिक्न्नहृदयः कृष्णं स्नेहेन पाण्डवः ।
चिराद् दृष्टं प्रियतमं सस्वजेऽथ पुनः पुनः ॥२५॥

दृष्ट्वा विलिक्न्न हृदयः कृष्णं स्नेहेन पाण्डवः चिरात् दृष्टं प्रियतमं सस्वजे अथ पुनः पुनः ॥२५॥

चिरात् दृष्टं	बहुत दिनों पर दीखे	स्नेहेन विलिक्न्न	प्रेमार्द्र
प्रियतमं कृष्णं	अत्यन्त प्रिय श्रीकृष्णको	हृदयः	चित्त
दृष्ट्वा पाण्डवः	देखकर पाण्डव (युधिष्ठर)	अथ पुनः पुनः	होनेसे बार-बार
		सस्वजे	आलिगन करने लगे ॥२५॥

दोर्भ्यां परिष्वज्य रमामलालयं
मुकुन्दगात्रं नृपतिर्हताशुभः ।
लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो
हृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥२६॥

दोर्भ्यां परिष्वज्य रमा अमल आलयं मुकुन्दगात्रं नृपतिः हत अशुभः लेभे परां निर्वृतिं अश्रु लोचनः हृष्यत् तनुः विस्मृत लोक विभ्रमः ॥२६॥

रमा	लक्ष्मीके	विस्मृत लोक	लौकिक व्यवहार
अमल आलयं	निर्मल निवास	विभ्रमः	भूलकर
मुकुन्दगात्रं	मुकुन्दके शरीरका	अश्रु लोचनः	नेत्रोंसे अश्रु गिराते
दोर्भ्यां	भुजाओंसे	हृष्यत् तनुः	रोमाञ्चित शरीर
परिष्वज्य	आलिगन करके	परां	परमानन्द
हत अशुभः	सब पाप नष्ट हुए	निर्वृतिं लेभे	प्राप्त हुआ ॥२६॥
नृपतिः	राजा युधिष्ठिरको		

तं मातुलेयं परिरभ्य निर्वृतो
भीमः स्मयन् प्रेमजवाकुलेन्द्रियः ।
यमौ किरीटी च सुहृत्तमं मुदा
प्रवृद्धबाष्पाः परिरेभिरेऽच्युतम् ॥२७॥

तं मातुलेयं परिरभ्य निर्वृतः भीमः स्मयन् प्रेमजव आकुल इन्द्रियः यमौ किरीटी च सुहृत्तमं मुदा प्रवृद्ध बाष्पाः परिरेभिरे अच्युतं ॥२७॥

तं मातुलेयं	उन मामाके पुत्रका
स्मयन् भीमः	मुस्कराते हुए भीमसेन
परिरभ्य	आलिगन करके
निर्वृतः	परम शान्तिको प्राप्त हुए
प्रेमजव	प्रेमावेगसे
आकुल इन्द्रियः	उनकी इन्द्रियां व्याकुल हो गयीं
यमौ च किरीटी	युग्मज (नकुल-सहदेव) और अर्जुन ने
प्रवृद्ध बाष्पाः	उमड़ते आंसुओं सहित
सुहृत्तमं	अपने परत सुहृद का
अच्युतं	श्रीकृष्णका
परिरेभिरे	आलिगन किया ॥२७॥

अर्जुनेन परिष्वक्तो यमाभ्यामभिवादितः ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य वृद्धेभ्यश्च यथार्हतः ॥२८॥

अर्जुनेन परिष्वक्तः यमाभ्यां अभिवादितः ब्राह्मणेभ्यः नमस्कृत्य वृद्धेभ्यः च यथा अर्हतः ॥२८॥

यथा अर्हतः	यथा योग्य
अर्जुनेन	अर्जुनके द्वारा
परिष्वक्तः	आलिगित हुए
यमाभ्यां	युग्मजों (नकुल-सहदेव) द्वारा

अभिवादितः	प्रणाम किया गया	नमस्कृत्य	नमस्कार किया
ब्राह्मणेभ्यः	ब्राह्मणोंको		॥२८॥
च वृद्धेभ्यः	तथा वृद्धोंको		

मानितो मानयामास कुरुसृञ्जयकैकयान् ।
सूतमागधगन्धर्वा वन्दिनश्चोपमन्त्रिणः ॥२९॥

मानितः मानयामास कुरु सृञ्जय कैकयान् सूत मागध गन्धर्वा वन्दिनः च उपमन्त्रिणः ॥२९॥

कुरु सृञ्जय	कुरु, सृञ्जय,	सूत मागध	सूत, मागध,
कैकयान्	कैकय देशके	गन्धर्वा	गन्धर्व
	राजाओंसे-	च उपमन्त्रिणः	तथा उपमन्त्री-गण
मानितः	सम्मानित होकर		॥२९॥
मानयामास	(उनका) सम्मान		
	किया । फिर		

मृदङ्गशङ्खपटहवीणापणवगोमुखैः ।
ब्राह्मणाश्चारविन्दाक्षं तुष्टुवुर्ननृतुर्जगुः ॥३०॥

मृदङ्ग शङ्ख पटह वीणा पणव गोमुखैः ब्राह्मणाः च अरविन्द अक्षं तुष्टुवुः ननृतुः जगुः ॥३०॥

ब्राह्मणाः च	ब्राह्मण भी	अरविन्द अक्षं	कमल-नयनकी
मृदङ्ग शङ्ख	मृदंग, शंख,	तुष्टुवुः	स्तुति करने लगे,
पटह वीणा	पटह (तासा),	ननृतुः जगुः	नाचने-गाने लगे
	वीणा		॥३०॥
पणव गोमुखैः	पणव, गोमुख		
	(बजाते)		

एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः ।
संस्तूयमानो भगवान् विवेशालंकृतं पुरम् ॥३१॥

एवं सुहृत्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोक शिखामणिः संस्तूयमानः भगवान् विवेश अलङ्कृतं पुरम् ॥३१॥

एवं सुहृत्भिः	इस प्रकार सुहृदोंसे	**भगवान्**	भगवान
पर्यस्तः	घिरे हुए	**सस्तूयमानः**	स्तुत होते हुए
पुण्यश्लोक	पवित्र कीर्ति वालोंके	**अलङ्कृतं पुरं**	सजाये हुए नगरमें
शिखामणिः	चूड़ामणि	**विवेश**	प्रवृष्ट हुए ॥३१॥

संसिक्तवर्त्म करिणां मदगन्धतोयै-
श्चित्रध्वजैः कनकतोरणपूर्णकुम्भैः ।
मृष्टात्मभिर्नवदुकूलविभूषणस्रग्-
गन्धैर्नृभिर्युवतिभिश्च विराजमानम् ॥३२॥

संसिक्तवर्त्म करिणां मद गन्धतोयैः चित्रध्वजैः कनकतोरण पूर्णकुम्भैः मृष्ट आत्मभिः नवदूकूल विभूषण स्रक् गन्धैःनृभिः युवतिभिः च विराजमानम् ॥३२॥

करिणां मद गन्धतोयैः	हाथियोंके मदसे सुगन्धित जलसे	**मृष्ट आत्मभिः**	स्वच्छ शरीर
संसिक्तवर्त्म	सींचे मार्ग वाले,	**नवदूकूल**	नये वस्त्र
चित्रध्वजैः	अनेक रंगोंके झण्डों	**विभूषण**	आभूषण
		स्रक् गन्धैः	माला-चन्दनधारी
कनकतोरण	स्वर्णके वन्दन-वार,	**नृभिः च युवतिभिः**	पुरुषों तथा युवतियोंसे
पूर्णकुम्भैः	जलपूर्ण कलशों,	**विराजमानं**	सुशोभित (नगरमें)

उद्दीप्तदीपबलिभिः प्रतिसद्मजाल-
निर्यातधूपरुचिरं विलसपताकम् ।
मूर्धन्यहेमकलशै रजतोरुशृङ्गै-
र्जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥३३॥

उद्दीप्त दीप बलिभिः प्रतिसद्मजाल निर्यात धूप रुचिरं विलसत् पताकं
मूर्धन्य हेमकलशै रजत उरुशृङ्गैः जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥३३॥

कुरुराजधाम	पाण्डव राजधानीको	**विलसत्**	सुशोभित,
उद्दीप्त दीप	प्रदीप्त दीपक,	**रजत उरुशृङ्ग**	चांदीके ऊँचे शिखरों के
बलिभिः	पूजा पदार्थोंसे युक्त	**मूर्धन्य**	ऊपर
प्रतिसद्मजाल	प्रत्येक घरोंके झरोखोंसे	**हेमकलशं**	स्वर्ण कलश
धूप निर्यात	धूपका धुआं निकलते	**जुष्टं भवनैः**	युक्त भवनों वाली
रुचिरं पताकं	सुन्दर झण्डोंसे	**ददर्श**	देखा ॥३३॥

प्राप्तं निशम्य नरलोचनपानपात्र-
औत्सुक्यविश्लथितकेशदुकूलबन्धाः ।
सद्यो विसृज्य गृहकर्म पतींश्च तल्पे
द्रष्टुं ययुर्युवतयः स्म नरेन्द्रमार्गे ॥३४॥

प्राप्तं निशम्य नरलोचन पान पात्रं औत्सुक्य विश्लथित केशदुकूलबन्धाः
सद्यः विसृज्य गृहकर्म पतीन् च तल्पे द्रष्टुं ययुः युवतयः स्म नरेन्द्रमार्गे
॥३४॥

नरलोचन	मनुष्योंके नेत्रोंके लिए	**विश्लथित**	ढीले पड़ गये हैं ऐसी
पान पात्रं	पीने ही योग्य	**युवतयः**	युवतियां
प्राप्तं निशम्य	(श्रीकृष्णको) आया सुनकर	**सद्य गृहकर्म च पतीन् तल्पे**	तत्काल घरके कार्य तथा पतियोंको शय्या पर
औत्सुक्य	उत्सुकताके कारण	**विसृज्य**	छोड़कर
केशदुकूलबन्धाः	केश एवं वस्त्रोंके बन्धन	**नरेन्द्रमार्गे**	राजमार्ग पर
		द्रष्टुं ययुः स्म	देखने आ गयीं॥३४॥

तस्मिन् सुसंकुल इभाश्वरथद्विपद्भिः
कृष्णं सभार्यमुपलभ्य गृहाधिरूढाः ।
नार्यो विकीर्य कुसुमैर्मनसोपगुह्य
सुस्वागतं विदधुरुत्स्मयवीक्षितेन ॥३५॥

तस्मिन् सुसंकुल इभ अश्व रथ द्विपद्भिः कृष्णं सभार्यं उपलभ्य गृह अधिरूढाः नार्यः विकीर्य कुसुमैः मनसा उपगुह्य सुस्वागतं विदधुः उत्स्मय वीक्षितेन ॥३५॥

तस्मिन्	उस
इभ अश्व	हाथी, घोड़ों
रथ द्विपद्भिः	रथ, पैदलोंसे
सुसङ्कुल	अत्यन्त भीड़भरे (मार्ग पर)
सभार्यं कृष्णं	पत्नियोंके साथ श्रीकृष्णको
उपलभ्य	पा (देख) कर
गृह अधिरूढाः	भवनोंपर चढ़ी
नार्यः	स्त्रियोंने
कुसुमैः विकीर्य	पुष्प बिखेर (वर्षा) करके
मनसा उपगुह्य	मनसे आलिंगन करके
उत्स्मय वीक्षितेन	मुस्कान भरी चितवनसे
सुस्वागतं	उत्तम स्वागत
विदधुः	विधान किया ॥३५॥

ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुन्द पत्नी-
स्तारा यथोपडुपसहाः किमकार्यमूभिः ।
यच्चक्षुषां पुरुषमौलिरुदारहास-
लीलावलोककलयोत्सवमातनोति ॥३६॥

ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुन्द पत्नीः तारा यथा उडुपसहाः किं अकार्यं अमूभिः यत् चक्षुषां पुरुषमौलिः उदारहास लीला अवलोक कलया उत्सवं आतनोति ॥३६॥

यथा उडुपसहाः जैसे चन्द्रमाके साथ
ताराः ताराएँ हों (वैसे)
पथि मुकुन्द पत्नीः मार्गमें मुकुन्दकी पत्नियोंको
निरीक्ष्य देखकर
स्त्रियः ऊचुः स्त्रियां बोलीं
अमूभिः इनके द्वारा
किं अकार्यं क्या (पुण्य)किया
यत् पुरुषमौलिः जिससे पुरुष शिरोमणि (श्रीकृष्णचन्द्र)
उदारहास उन्मुक्त हास्य युक्त
लीला अवलोक लीलापूर्ण चितवनके
कलया अंशसे
चक्षुषां (इनके) नेत्रोंका
उत्सवं आतनोति आनन्द देते हैं
॥३६॥

तत्र तत्रोपसङ्गम्य पौरा मङ्गलपाणयः ।
चक्रुः सपर्यां कृष्णाय श्रेणीमुख्या हतैनसः ॥३७॥

तत्र तत्र उपसंगम्य पौरा मङ्गल पाणयः चक्रुः सपर्यां कृष्णाय श्रेणीमुख्याः हत एनसः ॥३७॥

हत एनसः निष्पाप
श्रेणीमुख्याः अपनी श्रेणियोंके प्रमुख
पौरा नगरवासी
तत्र तत्र जहां-तहां
मङ्गल पाणयः हाथोंमें मंगल द्रव्य लिए
उपसङ्गम्य समीप आकर
कृष्णाय श्रीकृष्णका
सपर्यां चक्रुः सत्कार करतेथे
॥३७॥

अन्तःपुरजनैः प्रीत्या मुकुन्दः फुल्ललोचनैः ।
ससम्भ्रमैरभ्युपेतः प्राविशद् राजमन्दिरम् ॥३८॥

अन्तःपुरजनैः प्रीत्या मुकुन्दः फुल्ललोचनैः ससम्भ्रमैः अभ्युपेतः प्राविशत् राजमन्दिरम् ॥३८॥

प्रीत्या	प्रेमके कारण	अभ्युपेतः	सामने आकर
फुल्ललोचनैः	उत्फुल्ल नेत्र		(स्वागत करनेपर)
अन्तः पुरजनैः	अन्तःपुरके लोगों	मुकुन्दः	मुकुन्दने
	द्वारा	राजमन्दिरं	राज-भवनमें
ससम्भ्रमैः	उतावली पूर्वक	प्राविशत्	प्रवेश किया ॥३८॥

पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं विभुवनेश्वरम् ।
प्रीतात्मोत्थाय पर्यङ्कात् सस्नुषा परिषस्वजे ॥३९॥

पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवन ईश्वरं प्रीत आत्मा उत्थाय पर्यङ्कात् सस्नुषा परिषस्वजे ॥३९॥

पृथा	कुन्तीने	सस्नुषा	पुत्रवधू (द्रौपदी) के
त्रिभुवन ईश्वरं	त्रिलोकीनाथ		साथ
भ्रात्रेयं कृष्णं	(अपने) भतीजे	पर्यङ्कात्उत्थाय	पलंगसे उठकर
	श्रीकृष्णको	परिषस्वजे	आगे जाकर
विलोक्य	देखकर		आलिंगन किया
प्रीत आत्मा	प्रसन्नचित्त		॥३९॥

गोविन्दं गृहमानीय देवदेवेशमाहृतः ।
पूजायां नाविदत् कृत्यं प्रमोदोपहतो नृपः ॥४०॥

गोविन्दं गृहं आनीय देवदेवेशं आहृतः पूजायां न अविदत् कृत्यं प्रमोद उपहतः नृपः ॥४०॥

नृपः	राजन् !	प्रमोद उपहतः	आनन्दाधिक्यके मारे
देवदेवेशं	देवदेवेश्वर	पूजायां कृत्यं	पूजादि करनेके क्रम
गोविन्दं	गोविन्दका		कोभी
आहृतः	आदरपूर्वक	अविदत् न	जान नहीं सके
गृहं आनीय	भवनमें लाकर		॥४०॥

पितृष्वसुर्गुरुस्त्रीणां कृष्णश्चक्रेऽभिवादनम् ।
स्वयं च कृष्णया राजन् भगिन्या चाभिवन्दितः ॥४१॥

पितृष्वसुः गुरुस्त्रीणां कृष्णः चक्रे अभिवादनं स्वयं च कृष्णया राजन् भगिन्या च अभिवन्दितः ॥४१॥

राजन्	राजन् !	**अभिवादनं चक्रे**	अभिवादन किया
पितृष्वसुः	पिताकी बहिन (आ)	**च स्वयं**	तथा स्वयं
गुरुस्त्रीणां	तथा बड़ी वृद्धा स्त्रियोंको	**कृष्णया च भगिन्या**	द्रौपदी तथा बहिन सुभद्रा द्वारा
कृष्णः	श्रीकृष्णने	**अभिवन्दितः**	नमस्कृत हुए ॥४१॥

श्वश्र्वा संचोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीश्च सर्वशः ।
आनर्चुरुक्मिणीं सत्यां भद्रां जाम्बवतीं तथा ॥४२॥

श्वश्र्वा संचोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीः च सर्वशः आनर्चुः रुक्मिणीं सत्यां भद्रां जाम्बवतीं तथा ॥४२॥

श्वश्र्वा संचोदिता	साससे प्रेरित होकर	**च आनर्चुः**	का भी सत्कार किया
कृष्णा	द्रौपदीने	**रुक्मिणीं सत्यां**	रुक्मिणी, सत्या
सर्वशः	सभी	**भद्रां तथा**	भद्रा तथा
कृष्णपत्नीः	श्रीकृष्ण पत्नियों	**जाम्बवतीं**	जाम्बवती ॥४३॥

कालिन्दीं मित्रविन्दां च शैब्यां नाग्नजितीं सतीम् ।
अन्याश्चाभ्यागता यास्तु वासः स्रङ्मण्डनादिभिः ॥४३॥

कालिन्दीं मित्रविन्दां च शैब्यां नाग्नजितीं सतीं अन्याः च अभ्यागता याः तु वासः स्रक् मण्डन आदिभिः ॥४३॥

कालिन्दीं च	कालिन्दी और
मित्रविन्दां	मित्रविन्दा,
शैब्यां	लक्ष्मणा,
सतीं नाग्नजितीं	साध्वी सत्या
च अन्याः याः तु	तथा दूसरी जो भी
अभ्यागता	आयी थीं(उनका)
वासः स्रक्	वस्त्र, माला
मण्डन आदिभिः	शृंगार सामग्री आदिसे (सत्कार किया) ॥४३॥

सुखं निवासयामास धर्मराजो जनार्दनम् ।
ससैन्यं सानुगामात्यं सभार्यं च नवं नवम् ॥४४॥

सुखं निवासयामास धर्मराजः जनार्दनं ससैन्य सानुग अमात्यं सभार्यं च नवं नवम् ॥४४॥

धर्मराजः	धर्मराज (युधिष्ठिर) ने
ससैन्यं	सेनाके साथ,
सानुग अमात्यं	अनुचरों तथा मन्त्रियोंके साथ
च सभार्यं	एवं पत्नियोंके साथ
नवं नवं सुखं	नये-नये सुख देते हुए
जनार्दनं	जनार्दनको
निवासयामास	ठहराया ॥४४॥

तर्पयित्वा खाण्डवेन वह्निं फाल्गुनसंयुतः ।
मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता ॥४५॥

तर्पयित्वा खाण्डवेन वह्निं फाल्गुन संयुतः मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभाकृता ॥४५॥

येन	जिन (भगवान)ने
फाल्गुन संयुतः	अर्जुनके साथ होकर
खाण्डवेन	खाण्डव-वनके द्वारा
वह्निं	अग्निको
तर्पयित्वा	तृप्त करके

मयं	मयको (उस अग्नि	दिव्या	दिव्य
मोचयित्वा	से) छुड़ाकर	सभाकृता	राजसभा बनवायी थी ॥४५॥

उवास कतिचिन्मासान् राज्ञः प्रियचिकीर्षया ।
विहरन् रथमारुह्य फाल्गुनेन भटैर्वृतः ॥४६॥

उवास कतिचित् मासान् राज्ञः प्रिय चिकीर्षया विहरन् रथं आरुह्य फाल्गुनेन भटैः वृतः ॥४६॥

फाल्गुनेन	अर्जुनके साथ	कतिचित्	कुछ
रथं आरुह्य	रथ पर चढ़कर	मासान्	महीने
भटैः वृतः	सैनिकोंसे घिरे	उवास	(वहां) रहे ॥४६॥
विहरन्	विचरण करते हुए		
राज्ञः	राजाका		
प्रिय चिकीर्षया	प्रिय करनेकी इच्छासे		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे कृष्णस्येन्द्रप्रस्थगमनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एकदा तु सभामध्ये आस्थितो मुनिभिर्वृतः ।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

एकदा तु सभामध्ये आस्थितः मुनिभिः वृतः ब्राह्मणैः क्षत्रियैः वैश्यैः भ्रातृभिः च युधिष्ठिरः ॥१॥

एकदा तु	एक बार तो	**क्षत्रियैः वैश्यैः**	क्षत्रियों, वैश्यों
सभामध्ये	राज सभाके बीचमें	**च भ्रातृभिः**	तथा भाइयोंसे
युधिष्ठिरः	राजा युधिष्ठिर	**वृतः आस्थितः**	घिरे बैठे थे ॥१॥
मुनिभिः	मुनियों,		
ब्राह्मणैः	ब्राह्मणों,		

आचार्यैः कुलवृद्धैश्च ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ।
शृण्वतामेव चैतेषामाभाष्येदमुवाच ह ॥ २ ॥

आचार्यैः कुलवृद्धैः च ज्ञाति सम्बन्धि बान्धवैः शृण्वतां एव सर्वेषां च एतेषां आभाष्य इदं उवाच ह ॥२॥

आचार्यैः	आचार्यों,	**शृण्वतां**	सुनाते हुए
कुलवृद्धैः	कुलके बड़ों	**आभाष्य**	(श्रीकृष्णको)
च ज्ञाति	तथा जातिके		सम्बोधित करके
सम्बन्धि	सम्बन्धी	**ह इदं उवाच**	निश्चित स्वरमें
बान्धवैः	बन्धुजनोंको		बोले ॥२॥
च सर्वेषां एव	और सबको ही		

॥ युधिष्ठिर उवाच ॥

क्रतुराजेन गोविन्द राजसूयेन पावनीः ।
यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत् सम्पादय नः प्रभो ॥ ३ ॥

क्रतुराजेन गोविन्द राजसूयेन पावनीः यक्ष्ये विभूतिः भवतः तत् सम्पादय नः प्रभो ॥३॥

प्रभो गोविन्द	प्रभो ! गोविन्द !	यक्ष्ये	यजन करना चाहता हूँ
क्रतुराजेन	यज्ञराज	तत् नः	वह हमारा (सङ्कल्प)
राजसूयेन	राजसूय द्वारा	सम्पादय	पूर्ण कीजिये ॥३॥
भवतः पावनीः	आपकी परम पवित्र		
विभूतिः	(इन्द्रादि) विभूतियों का		

त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति
ध्यायन्त्यभद्रनशने शुचयो गृणन्ति ।
विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्ग-
माशासते यदि त आशिष ईश नान्ये ॥ ४ ॥

त्वत् पादुके अविरतं परि ये चरन्ति ध्यायन्ति अभद्र नशने शुचयः गृणन्ति विन्दन्ति ते कमलनाभ भव अपवर्गं आशासते यदि त आशिष ईश न अन्ये ॥४॥

कमलनाभ	कमलनाभ !	परि चरन्ति	परिचर्या (सेवा) करते हैं,
ये शुचयः	जो शुद्ध चित्त लोग	अभद्र नशने	उन पापनाशिनीका
त्वत् पादुके	आपकी पादुकाओं की	ध्यायन्ति	ध्यान करते हैं
अविरतं	निरन्तर	गृणन्ति	वर्णन करते हैं (वे)

भव अपवर्गं	संसार से मोक्ष	**त**	तो उसे (पाते हैं)
विन्दन्ति	पा जाते हैं	**ईश न अन्ये**	स्वामी ! दूसरे
यदि आशिष	यदि भोगोंकी		नहीं (पाते) ॥४॥
आशासते	इच्छा करते हैं		

तद् देवदेव भवतश्चरणारविन्द-

सेवानुभावमिह पश्यतु लोक एषः ।

ये त्वां भजन्ति न भजन्त्युत वोभयेषां

निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरुसृञ्जयानाम् ॥ ५ ॥

तत् देवदेव भवतः चरणारविन्द सेवा अनुभावं इह पश्यतु लोक एषः ये त्वां भजन्ति न भजन्ति उत वा उभयेषां निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरु सृञ्जयानाम् ॥५॥

तत् देवदेव	अतः देवदेव !	**ये त्वां भजन्ति**	जो आपकी सेवा
भवतः	आपके		करते हैं
चरणाविन्द	चरण-कमलोंकी	**उत वा न**	अथवा नहीं
सेवा अनुभावं	सेवाका प्रभाव	**भजन्ति**	सेवा करते
इह लोक	यहाँ लोग	**उभयेषां**	दोनोंकी
पश्यतु	देखें,	**निष्ठां प्रदर्शय**	स्थिति दिखलाइये
विभो	प्रभो !		॥५॥
कुरु सृञ्जयानां	कुरु तथा सृञ्जय.		
	वंशी राजाओंको		

न ब्राह्मणः स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्

सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः ।

संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः

सेवानुरूपमुदयो न विपर्ययोऽत्र ॥ ६ ॥

न ब्रह्मण: स्व पर भेद मति: तव स्यात् सर्व आत्मन: समदृश: स्वसुख अनुभूते: संसेवतां सुरतरो: इव ते प्रसाद: सेवा अनुरूपं उदय: न विपर्यय: अत्र ॥६॥

सर्व आत्मन:	सबके आत्मा
समदृश:	समदर्शी
स्वसुख अनुभूते:	आत्मा सुखानुभव
ब्रह्मण:	परम ब्रह्म
तव स्व पर	आपमें अपने पराये की
मति: न स्यात्	बुद्धि नहीं है, किन्तु
ससेवतां	सम्यक् सेवा करने वालोंका
सुरतरो इव	कल्पवृक्षके समान
सेवा अनुरूपं	सेवाके अनुसार
उदय:	अभ्युदय होता है
अत्र	इस विषयमें
विपर्यय: न	उलटापना (भेद-भाव) नहीं (माना जाता) ॥६॥

श्रीभगवानुवाच–

सम्यग् व्यवसितं राजन् भवता शत्रुकर्शन ।
कल्याणी येन ते कीर्तिर्लोकाननु भविष्यति ॥ ७ ॥

सम्यक् व्यवसितं राजन् भवता शत्रुकर्शन कल्याणी येन ते कीर्ति: लोकान् अनु भविष्यति ॥७॥

शत्रुकर्शन	शत्रुदमन !
राजन्	राजन् !
भवता	आपने
सम्यक्	उचित
व्यवसितं	निश्चय किया है
येन लोकान्	जिससे लोकोंमें
ते	आपकी
कल्याणी कीर्ति:	मंगलमयी कीर्तिका
अनु भविष्यति	अनुभव किया जायगा ॥७॥

ऋषीणां पितृदेवानां सुहृदामपि न: प्रभो ।
सर्वेषामपि भूतानामीप्सित: क्रतुराडयम् ॥ ८ ॥

ऋषीणां पितृदेवानां सुहृदां अपि नः प्रभो सर्वेषां अपि भूतानां ईप्सितः क्रतुराट् अयम् ॥८॥

प्रभो	प्रभो !
ऋषीणां	ऋषियोंको,
पितृदेवानां	पितरों तथा देवताओंको,
नः सुहृदां अपि	हम सम्बन्धियोंको भी
सर्वेषां	सभी
भूतानां अपि	प्राणियोंको भी
अयं क्रतुराट्	यह यज्ञराज
ईप्सितः	वाञ्छित है ॥८॥

विजित्य नृपतीन् सर्वान् कृत्वा च जगतीं वशे ।
सम्भृत्य सर्वसम्भारानाहरस्व महाक्रतुम् ॥ ९ ॥

विजित्य नृपतीन् सर्वान् कृत्वा च जगतीं वशे सम्भृत्य सर्वसम्भारान् आहरस्व महाक्रतुम् ॥९॥

सर्वान् नृपतीन्	सब राजाओंको
विजित्य	जीतकर
च जगतीं	तथा संसारको
वशे कृत्वा	अपने वशमें करके
सर्वसम्भारान्	सब सामग्रियोंको
सम्भृत्य	जुटाकर
महाक्रतुं	यह महायज्ञ
आहरस्व	आरम्भ कीजिए ॥९॥

एते ते भ्रातरो राजन् लोकपालांशसम्भवाः ।
जितोऽस्म्यात्मवता तेऽहं दुर्जयो योऽकृतात्मभिः ॥१०॥

एते ते भ्रातरः राजन् लोकपाल अंश सम्भवाः जितः अस्मि आत्मवता ते अहं दुर्जयः यः अकृत आत्मभिः ॥१०॥

राजन्	राजन् !
एते ते भ्रातरः	ये आपके भाई
लोकपाल	लोकपालोंके
अंश सम्भवाः	अंशसे उत्पन्न हैं
अकृत आत्मभिः	अजितेन्द्रियों द्वारा

यः दुर्जयः	जिसको जीतना बहुत कठिन है	**अहं जितः**	(वह) मैं जीत लिया गया हूँ ॥१०॥
ते आत्मवता	आप मनस्वी द्वारा		

न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया ।
विभूतिभिर्वाभिभवेद् देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥११॥

न कश्चित् मत् परं लोके तेजसा यशसा श्रिया विभूतिभिः वा अभिभवेत् देवः अपि किमु पार्थिवः ॥११॥

मत् परं	मेरे परायणको	**वा विभूतिभिः**	अथवा वैभवसे
कश्चित्	कोई	**अभिभवेत् न**	दबा नहीं सकता
देवः अपि	देवता भी	**किमु पार्थिवः**	फिर राजाओंकी
लोके तेजसा	संसारमें तेजसे		क्या बात है ॥११॥
यशसा श्रिया	यशसे, लक्ष्मीसे		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

निशम्य भगवद्गीतं प्रीतः फुल्लमुखाम्बुजः ।
भ्रातॄन् दिग्विजयेऽयुंक्त विष्णुतेजोपबृंहितान् ॥१२॥

निशम्य भगवत् गीतं प्रीतः फुल्ल मुखाम्बुजः भ्रातॄन् दिग्विजये अयुङ्क्त विष्णुतेज उपबृंहितान् ॥१२॥

भगवत् गीतं	भगवानका कथन	**भ्रातॄन्**	भाइयोंको
निशम्य प्रीतः	सुनकर प्रसन्नतासे	**दिग्विजये**	दिग्विजय करनेके लिये
मुखाम्बुजः	मुखकमल		
फुल्ल	खिल गया	**अयुङ्क्त**	नियुक्त किया ॥१२॥
विष्णुतेज	श्रीकृष्णके तेजसे		
उपबृंहितान्	समृद्ध		

सहदेवं दक्षिणस्यामादिशत् सह सृञ्जयैः ।
दिशि प्रतीच्यां नकुलमुदीच्यां सव्यसाचिनम् ।
प्राच्यां वृकोदरं मत्स्यैः केकयैः सह्यमद्रकैः ॥१३॥

सहदेवं दक्षिणस्यां आदिशत् सह सृञ्जयैः दिशि प्रतीच्यां नकुलं उदीच्यां सव्यसाचिनम् प्राच्यां वृकोदरं मत्स्यैः केकयैः सह्यमद्रकैः ॥१३॥

सृंजयैः सह	सृञ्जय देशीयोंके साथ
सहदेवं	सहदेवको
दक्षिणस्यां	दक्षिणकी ओर
प्रतीच्यां दिशि	पश्चिम दिशाकी ओर
नकुलं	नकुलको
मत्स्यैः	मत्स्य देशीयोंके साथ और
केकयैः	कैकय देशीयोंके साथ
उदीच्यां	उत्तरकी ओर
सव्यसाचिनं	अर्जुनको,
प्राच्यां वृकोदरं	पश्चिमकी ओर भीमसेनको
सह्यमद्रकैः	मद्रदेशीय वीरोंके साथ
आदिशत्	(जानेका) आदेश दिया ॥१३॥

ते विजित्य नृपान् वीरा आजुह्रुर्दिग्भ्य ओजसा ।
अजातशत्रवे भूरि द्रविणं नृप यक्ष्यते ॥१४॥

ते विजित्य नृपान् वीराः आजह्रुः दिग्भ्य ओजसा अजातशत्रवे भूरि द्रविणं नृप यक्ष्यते ॥१४॥

नृप	राजन् !
ते वीराः	वे वीर
दिग्भ्य ओजसा	दिशाओंसे बल-पूर्वक
नृपान् विजित्य	राजाओंको जीत-कर
यक्ष्यते	यज्ञ करने वाले
अजातशत्रवे	अजातशत्रु (युधिष्ठिर)के लिए
भूरि द्रविणं	बहुत-सा धन
आजह्रुः	ले आये ॥१४॥

श्रुत्वाजितं जरासंधं नृपतेर्ध्यायतो हरिः ।
आहोपायं तमेवाद्य उद्धवो यमुवाच ह ॥१५॥

श्रुत्वा अजितं जरासन्धं नृपतेः ध्यायतः हरिः आह उपायं तं एव अद्य उद्धवः यं उवाच ह ॥१५॥

जरासन्धं	जरासन्धको
अजितं श्रुत्वा	अजेय सुनकर
ध्यायतः नृपतेः	चिन्ता करते राजा (युधिष्ठिर)से
हरिः आह	श्रीहरिने कहा
ह अद्य तं एव	'निश्चय इस समय वही
उपायं	उपाय है
यं उद्धवः उवाच	जिसे उद्धवने कहा था' ॥१५॥

भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णो ब्रह्मलिङ्गधरास्त्रयः ।
जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः ॥१६॥

भीमसेनः अर्जुनः कृष्णः ब्रह्मलिङ्ग धराः त्रयः जग्मुः गिरिव्रजं तात बृहद्रथ सुतः यतः ॥१६॥

तात	तात परीक्षित !
भीमसेनः	भीमसेन,
अर्जुनः कृष्णः	अर्जुन और श्रीकृष्ण
त्रयः	तीनों
ब्रह्मलिङ्ग धराः	ब्राह्मणोंका वेश बनाकर
गिरिव्रजं जग्मुः	गिरिव्रज चले
यतः	जहाँ
बृहद्रथ सुतः	वृहद्रथका पुत्र जरासन्ध रहता था ॥१६॥

ते गत्वाऽऽतिथ्यवेलायां गृहेषु गृहमेधिनम् ।
ब्रह्मण्यं समयाचेरन् राजन्या ब्रह्मलिङ्गिनः ॥१७॥

ते गत्वा आतिथ्य वेलायां गृहेषु गृहमेधिनं ब्रह्मण्यं समयाचेरन् राजन्या ब्रह्मलिङ्गिनः ॥१७॥

ते ब्रह्मलिङ्गिनः	उन ब्राह्मणवेश धारी
राजन्या	क्षत्रियोंने
आतिथ्य वेलायां	अतिथिके आनेके समय
ब्रह्मण्यं	ब्राह्मणभक्त
गृहमेधिनं	गृहस्थके
गृहेषु गत्वा	घरमें जाकर
समयाचेरन्	उचित ढंगसे याचना की ॥१७॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥*

राजन् विद्धयतिथीन् प्राप्तानर्थिनो दूरमागतान् ।
तन्नः प्रयच्छ भद्रं ते यद् वयं कामयामहे ॥१८॥

राजन् विद्धि अतिथीन् प्राप्तान् अर्थिनः दूरं आगतान् तत् नः प्रयच्छ भद्रं ते यत् वयं कामयामहे ॥१८॥

राजन्	राजन् !
ते भद्रं	आपका कल्याण हो
दूरं आगतान्	दूरसे आये
अर्थिनः	कुछ चाहने वाले
अतिथीन्	अतिथियोंको
प्राप्तान् विद्धि	आया जानिये
यत् वयं	जो हम लोग
कामयामहे	चाहते हैं
तत् नः प्रयच्छ	वह हमें दीजिए ॥१८॥

किं दुर्मर्षं तितिक्षूणां किमकार्यमसाधुभिः ।
किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम् ॥१९॥

किं दुर्मर्षं तितीक्षूणां किं अकार्यं असाधुभिः किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम् ॥१९॥

तितीक्षूणां किं दुर्मर्षं	तितीक्षुओंके लिए क्या सहना कठिन है
असाधुभिः	दुष्टोंके लिए

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

किं अकार्यं	कौन सा (बुरा) काम अकरणीय है	**समदर्शिनां**	समदर्शियोंके लिए
वदान्यानां	उदार पुरुषोंके लिए	**कः परः**	कौन पराया है ॥२०॥
किं न देयं	क्या वस्तु देने योग्य नहीं है,		

योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम् ।
नाचिनोति स्वयं कल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः ॥२०॥

यः अनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशः ध्रुवं न आचिनोति स्वयं कल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः ॥२०॥

यः अनित्येन	जो (इस) अनित्य	**न आचिनोति**	नहीं उपार्जित कर लेता
शरीरेण	शरीरके द्वारा	**स वाच्यः**	वह निन्दनीय है
सतां	सज्जनोंके द्वारा	**सः शोच्य एव**	वह शोचनीय है ॥२०॥
गेयं	गान करने योग्य		
ध्रुवं यशः	स्थायी सुयश		
स्वयं कल्पः	स्वयं समर्थ होते भी		

हरिश्चन्द्रो रन्तिदेव उञ्छवृत्तिः शिबिर्बलिः ।
व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः ॥२१॥

हरिश्चन्द्रः रन्तिदेवः उञ्छवृत्तिः शिबिः बलिः व्याधः कपोतः बहवः हि अध्रुवेण ध्रुवं गताः ॥२१॥

हरिश्चन्द्रः	हरिश्चन्द्र,	**उञ्छवृत्तिः**	शिलोञ्छजीव (मुद्गल ऋषि)
रन्तिदेवः	रन्तिदेव,		

शिबिः बलिः	शिबि, बलि
व्याधः कपोतः	व्याध, कबूतर आदि
बहवः हि	बहुतसे क्योंकि
अध्रुवेण	नाशवान (शरीर) से
अध्रुवं गताः	अविनाशी हो गये हैं' ॥२१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

स्वरैराकृतिभिस्तांस्तु प्रकोष्ठैर्ज्याहतैरपि ।
राजन्यबन्धून् विज्ञाय दृष्टपूर्वानचिन्तयत् ॥२२॥

स्वरैः आकृतिभिः तान् तु प्रकोष्ठैः ज्या हतैः अपि राजन्यबन्धून् विज्ञाय दृष्टपूर्वान् अचिन्तयत् ॥२२॥

स्वरैः	स्वरसे
आकृतिभिः	आकृतिसे
प्रकोष्ठैः	कलाई पर
ज्या हतैः अपि	धनुषकी प्रत्यंचाकी रगड़का चिह्न होनेसे भी
दृष्टपूर्वान्	पहिले देखे हुए
राजन्यबन्धून्	राजबन्धु (क्षत्रिय)
विज्ञाय	जानकर
अचिन्तयत्	(जरासन्धने) विचार किया ॥२२॥

राजन्यबन्धवो ह्येते ब्रह्मलिङ्गानि बिभ्रति ।
ददामि भिक्षितं तेभ्य आत्मानमपि दुस्त्यजम् ॥२३॥

राजन्यबन्धवः हि एते ब्रह्मलिङ्गानि बिभ्रति ददामि भिक्षितं तेभ्यः आत्मानं अपि दुस्त्यजम् ॥२३॥

एते	ये
राजन्यबन्धवः	क्षत्रिय
हि	क्योंकि
ब्रह्मलिङ्गानि	ब्राह्मणोंका वेष
बिभ्रति	धारण किये हैं,
तेभ्यः भिक्षितं	इनके मांगने पर
दुस्त्यजं	दुस्त्यज्य
आत्मानं अपि	अपना शरीर भी
ददामि	दे दूँगा ॥२३॥

बलेर्नु श्रूयते कीर्तिर्विततता दिक्ष्वकल्मषा ।
ऐश्वर्याद् भ्रंशितस्यापि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥२४॥

बलेः नु श्रूयते कीर्तिः विततता दिक्षु अकल्मषा ऐश्वर्यात् भ्रंशितस्य अपि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥२४॥

विप्रव्याजेन	ब्राह्मणके बहाने (आये)	**नु बलेः**	अहो बलिकी
विष्णुना	विष्णु द्वारा	**अकल्मषा**	निर्मल
ऐश्वर्यात्	ऐश्वर्य	**कीर्तिः**	कीर्ति
भ्रंशितस्य अपि	भ्रष्ट कर देने पर भी	**दिक्षु विततता**	दिशाओंमें फैली
		श्रूयते	सुनी जाती है
			॥२४॥

श्रियं जिहीर्षतेन्द्रस्य विष्णवे द्विजरूपिणे ।
जानन्नपि महीं प्रादाद् वार्यमाणोऽपि दैत्यराट् ॥२५॥

श्रियं जिहीर्षति इन्द्रस्य विष्णवे द्विजरूपिणे जानन् अपि महीं प्रादात् वार्यमाणः अपि दैत्यराट् ॥२५॥

इन्द्रस्य	इन्द्रत्वकी	**जानन् अपि**	जानते हुए भी
श्रियं	राजलक्ष्मी	**वार्यमाणः अपि**	(शुक्राचार्यके) मना करने पर भी
जिहीर्षति	हरण करनेके लिए (आये)	**दैत्यराट्**	दैत्यराज (बलि)ने
द्विजरूपिणे	ब्राह्मण वेष धारी	**महीं प्रादात्**	पृथ्वी दे डाली
विष्णवे	विष्णु (वामन)को		॥२५॥

जीविता ब्राह्मणार्थाय को न्वर्थः क्षत्रबन्धुना ।
देहेन पतमानेन नेहता विपुलं यशः ॥२६॥

जीविता ब्राह्मण अर्थाय कः नु अर्थः क्षत्रबन्धुना देहेन पतमानेन न ईहता विपुलं यशः ॥२६॥

ब्राह्मण अर्थाय न जीविता ब्राह्मणके लिए ही जीवन न धारण करने वाले
विपुलं यशः महान यश
ईहता चाहने वाले
क्षत्रबन्धुना क्षत्रियका
नु कः अर्थः भला प्रयोजन क्या है ॥२६॥

इत्युदारमतिः प्राह कृष्णार्जुनवृकोदरान् ।
हे विप्रा व्रियतां कामो ददाम्यात्मशिरोऽपि वः ॥२७॥

इति उदारमतिः प्राह कृष्ण-अर्जुन वृकोदरान् हे विप्रा व्रियतां कामः ददामि आत्मशिरः अपि वः ॥२७॥

इति उदारमतिः इस प्रकारके उदार बुद्धि (जरासन्ध)ने
कृष्ण-अर्जुन वृकोदरान् प्राह श्रीकृष्ण, अर्जुन भीमसेनसे कहा—
हे विप्रा 'हे ब्राह्मणो !
कामः व्रियतां इच्छानुसार मांग लो,
वः तुम लोगोंको
आत्मशिरः अपि ददामि अपना सिर भी दे दूँगा ॥२७॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

युद्धं नो देहि राजेन्द्र द्वन्द्वशो यदि मन्यसे ।
युद्धार्थिनो वयं प्राप्ता राजन्या नान्नकांक्षिणः ॥२८॥

युद्धं नः देहि राजेन्द्र द्वन्द्वशः यदि मन्यसे युद्ध आर्थिनः वयं प्राप्ता राजन्या न अन्न कांक्षिणः ॥२८॥

राजेन्द्र राजेन्द्र !
यदि मन्यसे यदि मन हो तो
नः द्वन्द्वशः हम लोगोंको द्वन्द्व
युद्धं देहि युद्ध दीजिये
वयं युद्ध हम युद्ध
अर्थिनः चाहने वाले
प्राप्ता राजन्या आये क्षत्रिय हैं
अन्न कांक्षिणः भोजन चाहने वाले
न नहीं ॥२८॥

असौ वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्रातार्जुनो ह्ययम् ।
अनयोर्मापुलेयं मां कृष्णं जानीहि ते रिपुम् ॥२९॥

असौ वृकोदरः पार्थः तस्य भ्राता अर्जुनः हि अयं अनयोः मातुलेयं मां कृष्णं जानीहि ते रिपुम् ॥२९॥

हि	क्योंकि
असौ पार्थः	ये कुन्ती-नन्दन
वृकोदरः	भीमसेन हैं,
तस्य भ्राता	उनके भाई
अयं अर्जुनः	ये अर्जुन हैं,
अनयोः मातुलेयं	इनके मामाका पुत्र
ते रिपुम् मां	तुम्हारा शत्रु मुझे
कृष्णं जानीहि	कृष्ण जानो' ॥२९॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

एवमावेदितो राजा जहासोच्चैः स्म मागधः ।
आह चामर्षितो मन्दा युद्धं तर्हि ददामि वः ॥३०॥

एवं आवेदितः राजा जहास उच्चैः स्म मागधः आह च अमर्षितः मन्दा युद्धं तर्हि ददामि वः ॥३०॥

एवं आवेदितः	इह प्रकार सूचित किये जाने पर
मागधः राजा	मगधराज (जरासन्ध)
उच्चैः स्म	अट्टहास करके
जहास	हँसने लगा
च	तथा
अमर्षितः आह	असहनशील होकर बोला
मन्दा तर्हि	'मूर्खो ! तब
वः युद्धं ददामि	तुम लोगोंको युद्ध ही दूँगा ॥३०॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लवचेतसा ।
मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः ॥३१॥

न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लव चेतसा मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः ॥३१॥

स्वपुरीं	अपने नगर	**त्वया भीरुणा**	तुझ डरपोकसे
मथुरां त्यक्त्वा	मथुराको छोड़कर	**योत्स्ये न**	युद्ध नहीं करूँगा ॥३१॥
समुद्रं	समुद्रकी		
शरणं गतः	शरण चले गये		
युधि	युद्धमें		
विक्लव चेतसा	व्याकुल चित्त		

अयं तु वयसा तुल्यो नातिसत्त्वो न मे समः ।
अर्जुनो न भवेद् योद्धा भीमस्तुल्यबलो मम ॥३२॥

अयं तु वयसा तुल्यः न अतिसत्त्वः न मे समः अर्जुनः न भवेत् योद्धा भीमः तुल्यबलः मम ॥३२॥

अयं	यह	**योद्धा न भवेत्**	(मुझसे) युद्ध करने वाला नहीं हो सकता
वयसा तु तुल्यः	आयुमें तो बराबर है, पर	**भीमः मम**	भीमसेन मेरे
अतिसत्त्वः न	बहुत बलवान नहीं है,	**तुल्यबलः**	समान बलवान हैं ॥३२॥
अर्जुनः	अर्जुन		
न मे समः	मेरी जोड़का नहीं है,		

इत्युक्त्वा भीमसेनाय प्रादाय महतीं गदाम् ।
द्वितीयां स्वयमादाय निर्जगाम पुराद् बहिः ॥३३॥

इति उक्त्वा भीमसेनाय प्रादाय महतीं गदां द्वितीयां स्वयं आदाय निर्जगाम पुरात् बहिः ॥३३॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	**पुरात् बहिः**	नगरसे बाहर
भीमसेनाय	भीनसेनको	**निर्जगाम**	निकल आया
महतीं गदां	भारी गदा		॥३३॥
प्रादाय	देकर		
द्वितीयां स्वयं	दूसरी स्वयं		
आदाय	लेकर		

ततः समे खले वीरौ संयुक्ताविवरेतरौ ।
जघ्नतुर्वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्मदौ ॥३४॥

ततः समे खले वीरौ संयुक्ताः इतरः इतरौ जघ्नतुः वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्मदौ ॥३४॥

ततः	तब	**इतरः इतरौ**	एक दूसरेको
रणदुर्मदौ	युद्धोन्मत्त	**वज्र कल्पाभ्यां**	वज्रके समान (कठोर)
समे खले वीरौ	समतल भूमि पर दोनों वीर	**गदाभ्यां जघ्नतुः**	गदासे मारने लगे
संयुक्ताः	परस्पर मिलकर		॥३४॥

मण्डलानि विचित्राणि सव्यं दक्षिणमेव च ।
चरतोः शुशुभे युद्धं नटयोरिव रङ्गिणोः ॥३५॥

मण्डलानि विचित्राणि सव्यं दक्षिणं एव च चरतः शुशुभे युद्धं नटयोः इव रङ्गिणोः ॥३५॥

रङ्गिणोः	रंगमंच पर आये	**सव्यं च**	बायें और
नटयोः इव	नटोंके समान	**दक्षिणं एव च**	दाहिने भी

विचित्राणि	अनेक प्रकारके	**युद्धं शुशुभे**	वह युद्ध शोभित
मण्डलानि	पैंतरे		हुआ ॥३५॥
चरतः	लेते हुए		

ततश्चटचटाशब्दो वज्रनिष्पेषसन्निभः ।
गदयोः क्षिप्तयो राजन् दन्तयोरिव दन्तिनोः ॥३६॥

ततः चटचटा शब्दः वज्र निष्पेष सन्निभः गदयोः क्षिप्तयोः राजन् दन्तयोः इव दन्तिनोः ॥३६॥

राजन्	राजन् !	**वज्र निष्पेष**	वज्रपातके
दन्तयोः	एक हाथीके	**सन्निभः**	समान
दन्तिनोः इव	दूसरे हाथीसे	**ततः**	तब
	(युद्ध)के समान	**चटचटा शब्दः**	चटचटाहटका
गदयोः	गदाओंके		शब्द (होने लगा)
क्षिप्तयोः	टकरानेका		॥३६॥

ते वै गदे भुजजवेन निपात्यमाने
अन्योन्यतोंऽसकटिपादकरोरुजत्रून् ।
चूर्णीबभूवतुरुपेत्य यथार्कशाखे
संयुध्यतोर्द्विरदयोरिव दीप्तमन्यवोः ॥३७॥

ते वै गदे भुज जवेन निपात्यमाने अन्यः अन्यतः अंस कटिपाद कर उरुजत्रून् चूर्णी बभूवतुः उपेत्य यथा अर्कशाखे संयुध्यतः द्विरदयोः इव दीप्तमन्यवो. ॥३७॥

यथा	जैसे	**अर्कशाखे**	आककी डालोंसे
दीप्तमन्यवोः	प्रदीप्त क्रोध	**संयुध्यतः**	युद्ध करते समय वे
द्विरदयोः	दो गजोंके	**वै ते गदे**	निश्चय वे गदाएँ

अन्य अन्यतः	एक दूसरेके	**जवेन**	वेगसे
अंश कटिपाद	गर्दन, कमर, पैर	**निपात्यमाने**	गिराई जानेसे
कर उरुजत्रून्	हाथ, जांघ हँसलियोंपर	**चूर्णौ बभूवतुः**	चूर्ण हो गयीं ॥३७॥
भुज	भुजाओंसे		

इत्थं तयोः प्रहतयोर्गदयोर्नृवीरौ
क्रुद्धौ स्वमुष्टिभिरयः स्पर्शैरपिष्टाम् ।
शब्दस्तयोः प्रहरतोरिभयोरिवासी-
न्निर्घातवज्रपरुषस्तलताडनोत्थः ॥३८॥

इत्थं तयोः प्रहतयोः गदयोः नृवीरौ क्रुद्धौ स्व मुष्टिभिः अयः स्पर्शैः अपिष्टां शब्दः तयोः प्रहरतोः इभयोः इव आसीत् निर्घात वज्रपरुषः तलताडन उत्थः ॥३८॥

इत्थं	इस प्रकार	**इभयोः इव**	हाथियोंके समान
तयोः गदयोः	उन गदाओंके	**तयोः प्रहरतोः**	उनके (परस्पर)
प्रहतयोः	नष्ट हो जाने पर		प्रहार करनेसे
नृवीरौ	वे नरवीर	**तलताडन**	थप्पड़ोंके प्रहारसे
अयः स्पर्शैः	लौहके समान	**उत्थः**	उठा
	कठोर	**शब्दः**	शब्द
स्व क्रुद्धौ	अपने क्रोधसे	**वज्रपरुषः**	वज्रपातके
मुष्टिभिः बद्धैः	घूँसे बाँधकर	**निर्घात**	समान कठोर
अपिष्टां	(एक दूसरेको)	**आसीत्**	हो रहा था ॥३८॥
	कुचलने लगे,		

तयोरेवं प्रहरतोः समशिक्षाबलौजसोः ।
निर्विशेषमभूद् युद्धमक्षीणजवयोर्नृप ॥३९॥

तयोः एवं प्रहरतोः सम शिक्षा बल ओजसोः निर्विशेषं अभूत् युद्धं अक्षीण जवयोः नृप ॥३९॥

नृप	राजन् !
सम शिक्षा	समान शिक्षा,
बल ओजसोः	बल और उत्साह वाले
तयोः एवं	उनके इस प्रकार
प्रहरतोः	प्रहार करके
अक्षीण नवयोः	अशिथिल वेग
तयोः युद्धं	उनका युद्ध
निर्विशेषं अभूत	(किसी ओर) विशेषताके बिना हुआ ॥३९॥

एवं तयोर्महाराज युध्यतोः सप्तविंशतिः ।
दिनानि निरगंस्तत्र सुहृद्वन्निशि तिष्ठतोः ॥४०॥

एवं तयोः महाराज युध्यतः सप्तविंशतिः दिनानि निरगन् तत्र सुहृत्वत् निशि तिष्ठतोः ॥४०॥

महाराज	महाराज !
एवं तयोः	इस प्रकार उनके
युध्यतः	युद्ध करते हुए तथा
सुहृत्वत्	मित्रोंके समान
निशि तिष्ठतोः	रात्रिमें रहते हुए
तत्र	वहां
सप्तविंशतिः	सत्ताइस
दिनानि	दिन
निरगन्	निकल गये ॥४०॥

एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन् वृकोदरः ।
न शक्तोऽहं जरासंधं निर्जेतुं युधि माधव ॥४१॥

एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन् वृकोदरः न शक्तः अहं जरासन्धं निर्जेतुं युधि माधव ॥४१॥

राजन्	राजन् !
एकदा मातुलेयं	एक बार मामाके पुत्र (श्रीकृष्ण)से
वृकोदरः प्राह	भीमसेनने कहा—
माधव वै	'माधव ! निश्चय
जरासन्धं	जरासन्धको
युधि निर्जेतुं	युद्धमें जीत लेने में
अहं शक्तः न	मैं समर्थ नहीं हूँ' ॥४१॥

शत्रोर्जन्ममृती विद्वान् जीवितं च जराकृतम् ।
पार्थमाप्याययन् स्वेन तेजसाचिन्तयद्धरिः ॥४२॥

शत्रोः जन्ममृती विद्वान् जीवितं च जराकृतं पार्थं आप्याययन् स्वेन तेजसा अचिन्तयत् हरिः ॥४२॥

शत्रोः	शत्रु (जरासन्ध)का	**विद्वान्**	जानने वाले
जन्ममृती	मरे हुए उत्पन्न होना	**हरिः**	श्रीहरिने
		स्वेन तेजसा	अपने तेजसे
च जराकृतं	तथा जरा राक्षसी द्वारा	**पार्थं आप्याययन्**	पार्थ भीमसेनको परिपूर्ण-करके
जीवितं	उसे जिला देना	**अचिन्तयत्**	सोचा ॥४२॥

संचिन्त्यारिवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः ।
दर्शयामास विटपं पाटयन्निव संज्ञया ॥४३॥

सञ्चिन्त्य अरिवध उपायं भीमस्य अमोघदर्शनः दर्शयामास विटपं पाटयन् इव संज्ञया ॥४२॥

अमोघदर्शनः	अव्यर्थ दृष्टि (भगवान)ने	**संज्ञया**	संकेतसे
		विटपं	शाखा
अरिवध उपायं	शत्रुके वधका उपाय	**पाटयन् इव**	चीरते हुएसे
		दर्शयामास	दिखलाया ॥४३॥
सञ्चिन्त्य	सोचकर		
भीमस्य	भीमसेनको		

तद् विज्ञाय महासत्त्वो भीमः प्रहरतां वरः ।
गृहीत्वा पादयोः शत्रुं पातयामास भूतले ॥४४॥

तत् विज्ञाय महासत्त्वः भीमः प्रहरतां बरः गृहीत्वा पादयोः शत्रुं पातयामास भूतले ॥४४॥

तत् विज्ञाय	उस (संकेत)को समझकर	**पादयोः**	पैर
		गृहीत्वा	पकड़कर
प्रहरतां बरः	प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ	**भूतले**	पृथ्वी पर
		पातयामास	गिर दिया ॥४४॥
महासत्त्वः	महान् बलवान		
भीमः शत्रुं	भीमसेनने शत्रु		

एकं पादं पदाऽऽक्रम्य दोर्भ्यामन्यं प्रगृह्यसः ।
गुदतः पाटयामास शाखामिव महागजः ॥४५॥

एक पादं पदा आक्रम्य दोःभ्यां अन्यं प्रगृह्य सः गुदतः पाटयामास शाखां इव महागजः ॥४५॥

पदा एक पादं	पैरसे एक पैरको	**महागजः**	गजराज द्वारा
आक्रम्य	दबाकर	**शाखां इव**	शाखाकी भांति
दोःभ्यां	हाथसे	**गुदतः**	गुदा (के बीच)से
अन्यं प्रगृह्य	दूसरा (पैर) पकड़कर	**पाटयामास**	फाड़ दिया ॥४५॥

एकपादोरुवृषणकटिपृष्ठस्तनांसके ।
एकबाह्वक्षिभ्रूकर्णे शकले ददृशुः प्रजाः ॥४६॥

एक पाद उरु वृषण कटि पृष्ठ स्तन अंसके एक बाहु अक्षि भ्रू कर्णे शकले ददृशुः प्रजाः ॥४६॥

प्रजाः	प्रजाने (जरासन्धके शरीरके)	**शकले**	दोनों टुकड़ोंमें

एक एक पाद	एक एक पैर,	**बाहु अक्षि**	भुजा, नेत्र,
उरु वृषण	जांघ, अंडकोश,	**भ्रू कर्ण**	भौंह, कान,
कटि पृष्ठ	कमर, पीठ,	**ददृशुः**	देखा ॥४६॥
स्तन अंसके	स्तन, कन्धा		

हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे ।
पूजयामासतुर्भीमं परिरभ्य जयाच्युतौ ॥४७॥

हाहाकारः महान् आसीत् निहते मगध ईश्वरे पूजयामास तुः भीमं परिरभ्य जय अच्युतौ ॥४७॥

मगध ईश्वरे	मगधराजके	**परिरभ्य**	आलिंगन करके
निहते	मारे जाने पर	**भीमं**	भीमसेनका
महान्	महान्	**पूजयामास तुः**	सत्कार किया
हाहाकारः	हा हा कार		॥४७॥
आसीत्	होने लगा,		
जय अच्युतौ	विजय (अर्जुन) और अच्युतने		

सहदेवं तत्तनयं भगवान् भूतभावनः ।
अभ्यषिञ्चदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः ।
मोचयामास राजन्यान् संरुद्धा मागधेन ये ॥४८॥

सहदेवं तत् तनयं भगवान् भूत भावनः अभ्यषिञ्चत् अमेय आत्मा मगधानां पतिं प्रभुः मोचयामास राजन्यान् संरुद्धा मागधेन ये ॥४८॥

अमेय आत्मा	अप्रमेय स्वरूप	**सहदेवं**	सहदेवको
भूत भावनः	प्राणियोंके पालक	**मागधानां पतिं**	मगध देशीयोंके स्वामी
प्रभुः भगवान्	सर्वेश्वर भगवानने		
तत् तनयं	उस (जरासन्ध)के पुत्र		

अभ्यषिञ्चत्	पद पर अभिषिक्त किया	**संरुद्धा**	बन्दी बनाये गये
ये मागधेन	और जो मगधराज जरासन्ध द्वारा	**राजन्यान्**	राजा थे
		मोचयामास	(उन्हें) छुड़ा दिया ॥४८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे जरासंधवधो नाम **द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥**

अथ त्रिसप्ततत्योऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

अयुते द्वे शतान्यष्टौ लीलया युधि निर्जिताः ।
ते निर्गता गिरिद्रोण्यां मलिना मलवाससः ॥ १ ॥

अयुते द्वे शतानि अष्टौ लीलया युधि निर्जिताः ते निर्गता गिरिद्रोण्यां मलिना मलवाससः ॥१॥

लीलया	(जरासन्ध द्वारा) खेलमें ही	**मलवाससः**	मैले वस्त्र वाले (राजा)
युधि निर्जिताः	युद्धमें जीते गये	**गिरिद्रोण्यां**	पर्वतकी तलहटी (के दुर्ग)से
अयुते द्वे शतानि	बीस सहस्र		
अष्टौ	आठ सौ	**निर्गता**	निकले ॥१॥
ते मलिना	वे मैले शरीर		

क्षुत्क्षामाः शुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः ।
ददृशुस्ते घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ २ ॥

क्षुत् क्षामाः शुष्कवदनाः संरोध परिकर्शिताः ददृशुः ते घनश्याम पीतकौशेय वाससम् ॥२॥

क्षुत् क्षामाः	भूखसे दुर्बल,	**पीतकौशेय**	पीली रेशमी
शुष्कवदनाः	सूखे मुख वाले	**वाससं**	वस्त्रधारी
संरोध	बन्दी होनेसे	**ददृशुः**	(श्रीकृष्णको) देखा ॥३॥
परिकर्शिताः	कृशित		
ते घनश्यामं	उन्होंने मेघश्याम		

श्रीवत्साङ्कं चतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ।
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥

श्रीवत्स अङ्कम् चतुर्बाहुं पद्मगर्भ अरुण ईक्षणं चारु प्रसन्नवदनं स्फुरन् मकर कुण्डलम् ॥३॥

श्रीवत्स अङ्कम्	श्रीवत्स चिह्न युक्त	**चारु**	सुन्दर
चतुर्बाहुं	चतुर्भुज,	**प्रसन्नवदनं**	प्रसन्न मुख
पद्मगर्भ	कमलके भीतरी भागके समान	**स्फुरन्**	चमकते
अरुण ईक्षणं	रतनारे नेत्र वाले	**मकर कुण्डलं**	मकराकार कुण्डलधारी ॥३॥

पद्महस्तं गदाशङ्खरथाङ्गैरुपलक्षितम् ।
किरीटहारकटककटिसूत्राङ्गदाचितम् ॥ ४ ॥

पद्महस्तं गदा शङ्ख रथाङ्गैः उपलक्षितं किरीट हार कटक कटिसूत्र अङ्गद आचितम् ॥४॥

पद्महस्तं	एक हाथमें कमल लिए	**किरीट हार**	मुकुट, माला
गदा शङ्ख	गदा, शङ्ख	**कटक कटिसूत्र**	कंकण, काञ्ची एवं
रथाङ्गैः	चक्रसे	**अङ्गद आचितं**	अङ्गदसे आभूषित ॥४॥
उपलक्षितं	पहिचानने जाते		

भ्राजद्वरमणिग्रीवं निवीतं वनमालया ।
पिबन्त इव चक्षुभ्यां लिहन्त इव जिह्वया ॥ ५ ॥

भ्राजत् वरमणि ग्रीवं निवीतं वनमालया पिवन्त इव चक्षुभ्यां लिहन्त इव जिह्वया ॥५॥

वरमणि	श्रेष्ठ (कौस्तुभ) मणि	**चक्षुर्भ्यां**	नेत्रोंसे
		पिबन्त इव	पीतेके समान
ग्रीवं भ्राजत्	कण्ठमें सुशोभित	**जिह्वया**	जिह्वासे
वनमालया	वनमाला	**लिहन्त इव**	चाटतेके समान
निवीतं	पहिने उनको		॥५॥

जिघ्रन्त इव नासाभ्यां रम्भन्त इव बाहुभिः ।
प्रणेमुर्हतपाप्मानो मुर्धभिः पादयोर्हरेः ॥ ६ ॥

जिघ्रन्त इव नासाभ्यां रम्भन्त इव बाहुभिः प्रणेमुः हत पाप्मानः मूर्धभिः पादयोः हरेः ॥६॥

नासाभ्यां	नाकसे	**हत पाप्मानः**	वे निष्पाप हुए (राजा लोगों)ने
जिघ्रन्त इव	सूंघतेके समान	**हरेः पादयोः**	श्रीहरिके चरणोमें
बाहुभिः	भुजाओंसे	**मूर्धभिः प्रणेमुः**	सिर रखकर प्रणाम किया ॥७॥
रम्भन्त इव	आलिंगन करनेके समान		

कृष्णसंदर्शनाह्लादध्वस्तसंरोधनक्लमाः ।
प्रशशंषुर्हृषीकेशं गीर्भिः प्राञ्जलयो नृपाः ॥ ७ ॥

कृष्ण सन्दर्शन आह्लाद ध्वस्त संरोधन क्लमाः प्रशशंषुः हृषीकेशं गीर्भिः प्राञ्जलयः नृपाः ॥७॥

कृष्ण सन्दर्शन	श्रीकृष्णके दर्शनके	**प्राञ्जलयः**	हाथ जोड़कर
आह्लाद	आनन्दसे	**गीर्भिः हृषीकेशं**	अपनी वाणीसे हृषीकेशकी
संरोधन क्लमाः	बन्दी रहनेके क्लेश	**प्रशशंषुः**	प्रशंसा करने लगे ॥८॥
ध्वस्त	नष्ट हुए राजा लोग		

॥ राजन ऊचुः ॥

नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराव्यय ।
प्रपन्नान् पाहि नः कृष्ण निविण्णान् घोरसंसृतेः ॥८॥

नमः ते देवदेवेश प्रपन्न आर्तिहर अव्यय प्रपन्नान् पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान् घोर संसृतेः ॥८॥

देवदेवेश	देवदेवेश्वर !
प्रपन्न आर्तिहर	शरणागत क्लेश-हारी
अव्यय	अविनाशी
ते नमः	आपको नमस्कार !
कृष्ण	श्रीकृष्ण
घोर संसृतेः	घोर संसारसे
निर्विण्णान्	अत्यन्त उदासीन हुए
प्रपन्नान् नः	शरणागत हम लोगोंकी
पाहि	रक्षा कीजिए ॥८॥

नैनं नाथान्वसूयामो मागधं मधुसूदन ।
अनुग्रहो यद् भवतो राज्ञां राज्यच्युर्तिविभो ॥ ९ ॥

न एनं नाथ अनुसूयामः मागधं मधुसूदन अनुग्रहः यत् भवतः आज्ञां राज्यच्युतिः विभो ॥९॥

विभो मधुसूदन	प्रभो ! मधुसूदन !
एनं मागधं	इस मगधराज (जरासन्ध)को
नाथ	स्वामी !
अनुसूयामः न	हम दोष नहीं देते
यत् राज्ञां	क्योंकि राजाओं पर
राज्यच्युतिः	राज्यसे भ्रष्ट हो जाना
भवतः अनुग्रहः	आपकी कृपा है ॥९॥

राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विन्दते नृपः ।
त्वन्मायामोहितोऽनित्या मन्यते सम्पदोऽचलाः ॥१०॥

राज्य ऐश्वर्य मद उन्नद्धः न श्रेयः विन्दते नृपः त्वत् माया मोहितः अनित्या मन्यते सम्पदः अचलाः ॥१०॥

राज्य ऐश्वर्य	राज्यके बैभवसे
उन्नद्धः मदः	बढ़े गर्व वाले
नृपः	राजा
श्रेयः न विन्दते	आत्म कल्याण नहीं पाते,
त्वत् माया	आपकी मायासे
मोहितः	मोहित
अनित्या	अनित्य
सम्पदः	सम्पत्तिको
अचलाः मन्यते	अचल मानते हैं ॥१०॥

मृगतृष्णां यथा बाला मन्यन्त उदकाशयम् ।
एवं वैकारिकीं मायामयुक्ता वस्तु चक्षते ॥११॥

मृगतृष्णां यथा बाला मन्यन्त उदक आशयं एवं वैकारिकीं मायां अयुक्ता वस्तु चक्षते ॥११॥

यथा बाला	जैसे बालक
मृगतृष्णां	मृगतृष्णाको
उदक आशयं	जलाशय
मन्यन्त	मानते हैं
एवं	इस प्रकार
वैकारकीं मायां	विकारमयी माया को
अयुक्ता	अज्ञानी
वस्तु चक्षते	वास्तविक देखते हैं ॥११॥

वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो
जिगीषयास्या इतरेतरस्पृधः ।
घ्नन्तः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो
मृत्युं पुरस्त्वाविगणय्य दुर्मदाः ॥१२॥

वयं पुरा श्रीमद नष्टदृष्टयः जिगीषया अस्या इतर इतरः स्पृधः घ्नन्तः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो मृत्युं पुरः त्वा अविगणय्य दुर्मदाः ॥१२॥

प्रभो	प्रभो !
पुरा वयं	पहिले हम लोग
श्रीमद	लक्ष्मीके मदसे
नष्टदृष्टयः	अन्धे होकर
इतर इतरः	एक दूसरेसे
स्पृधः अस्या	स्पर्धा करके इस पृथ्वीको
जिगीषया	जीतनेकी इच्छासे
पुरः त्वा मृत्युं	सम्मुख खड़े आप मृत्यु रूपकी
अविगणय्य	अवगणना करके
दुर्मदाः	अत्यन्त मदके कारण
अतिनिर्घृणाः	अत्यन्त निर्दय होकर
स्वा प्रजाः	अपनी प्रजाको
घ्नन्तः	मारते थे ॥१२॥

त एव कृष्णाद्य गभीररंहसा
दुरन्तवीर्येण विचालिताः श्रियः ।
कालेन तन्वा भवतोऽनुकम्पया
विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम ते ॥१३॥

त एव कृष्ण अद्य गभीर रंहसा दुरन्तवीर्येण विचालिताः श्रियः कालेन तन्वा भवतः अनुकम्पया विनष्टदर्पाः चरणौ स्मराम ते ॥१३॥

कृष्ण	श्रीकृष्ण !
अद्य त एव	आज वही हम लोग
गभीर रंहसा	गम्भीर वेग वाले
दुरन्तवीर्येण	अनन्त पराक्रम
तन्वा कालेन	आपके स्वरूप काल के द्वारा
श्रियः	श्रीहीन
विचालिताः	हो जाने से
भवतः	आपकी
अनुकम्पया	कृपासे
विनष्टदर्पाः	गर्व नष्ट होनेसे
ते चरणौ	आपके चरणोंका
स्मराम	स्मरण करते हैं ॥१३॥

अथो न राज्यं मृगतृष्णिरूपितं
देहेन शश्वत् पतता रुजां भुवा ।
उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो
क्रियाफलं प्रेत्य च कर्णरोचनम् ॥१४॥

अथो न राज्यं मृगतृष्णि रूपितं देहेन शश्वत् पतता रुजां भुवा उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो क्रियाफलं प्रेत्य च कर्णरोचनम् ॥१४॥

विभो	प्रभो !
शश्वत् पतता	निरन्तर क्षीण होने वाले
रुजां भुवा	रोगोंकी उत्पत्ति स्थली
देहेन	शरीरके द्वारा
उपासितव्यं	भोगे जाने वाले
मृगतृष्णि	मृगतृष्णाके
रूपितं	समान
राज्यं	राज्यका
च प्रेत्य	तथा मरने पर (मिलने वाले)
कर्णरोचनं	कानोंको रुचिकर लगने वाले
क्रियाफलं	कर्मोंके फल (स्वर्गादि)की
अथो	अब (हम)
न स्पृहयामहे	इच्छा नहीं करते ॥१४॥

तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः ।
स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसरतामिह ॥१५॥

तं नः सम आदिश उपायं येन ते चरणाब्जयोः स्मृतिः यथा न विरमेत् अपि संसरतां इह ॥१५॥

नः तं उपायं	हम लोगोंको उस उपायको
सम आदिश	भली प्रकार बतलाइये
येन इह	जिससे इस संसार में
संसरतां अपि	(अनेक योनियोंमें) घूमते हुए
ते	आपके

चरणाब्जयोः	चरण-कमलोंकी	**यथा न विरमेत्**	जैसे नहीं रुके
स्मृति	स्मृति		॥१५॥

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥१६॥

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥१६॥

वासुदेवाय	वासुदेव	**गोविन्दाय**	गोविन्द
हरये परमात्मने	श्रीहरि परमात्मा	**कृष्णाय**	श्रीकृष्णचन्द्रको
प्रणत	शरणागत-	**नमो नमः**	बारम्बार नमस्कार
क्लेशनाशाय	क्लेश-नाशक		॥१६॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

संस्तूयमानो भगवान् राजभिर्मुक्तबन्धनैः ।
तानाह करुणस्तात शरण्यः श्लक्ष्णया गिरा ॥१७॥

संस्तूयमानः भगवान् राजभिः मुक्त बन्धनैः तान् आह करुणः तात शरण्यः श्लक्ष्णया गिरा ॥१७॥

तात	तात परीक्षित !	**भगवान्**	भगवान
मुक्त बन्धनैः	बन्धनसे छूटे हुए	**तान्**	उनसे
राजभिः	राजाओं द्वारा	**श्लक्ष्णया गिरा**	मधुरवाणीमें
संस्तूयमानः	स्तुत होते	**आह**	बोले ॥१७॥
करुणः शरण्यः	करुणामय, शरण-दाता		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अद्यप्रभृति वो भूपा मय्यात्मन्यखिलेश्वरे ।
सुदृढा जायते भक्तिर्बाढमाशंसितं तथा ॥१८॥

अद्य प्रभृति वः भूपा मयि आत्मनि अखिल ईश्वरे सुदृढा जायते भक्तिः बाढं आशंसितं तथा ॥१८॥

भूपा तथा	नृपतिगणो तुम सबने जो	**अखिल ईश्वरे**	सर्वेश्वरमें
आशंसितं बाढं	कहा वह ठीक है	**सुदृढ़ा भक्तिः**	सुदृढ़ भक्ति
अद्य प्रभृति	आज से	**जायते**	होगी ॥१८॥
वः मयि	मुझ		
आत्मनि	सर्वात्मा		

दिष्ट्या व्यवसितं भूपा भवन्त ऋतभाषिणः ।
श्रियैश्वर्यमदोन्नाहं पश्य उन्मादकं नृणाम् ॥१९॥

दिष्ट्या व्यवसितं भूपा भवन्तः ऋतभाषिणः श्रिय ऐश्वर्य मद उन्नाहं पश्य उन्मादकं नृणाम् ॥१९॥

भूपा भवन्तः	राजाओ, तुम सब	**श्रिय ऐश्वर्य**	धन और वैभवसे
दिष्ट्या	सौभाग्यवश	**मद उन्नाहं**	मदोन्मत्त
व्यवसितं	ठीक निश्चय	**नृणां उन्मादकं**	मनुष्योंका पागलपन
ऋतभाषिणः	और सत्य कहते हो	**पश्य**	देखो ॥१९॥

हैहयो नहुषो वेनो रावणो नरकोऽपरे ।
श्रीमदाद् भ्रंशिताः स्थानाद् देवदैत्यनरेश्वराः ॥२०॥

हैहयः नहुषः वेनः रावणः नरकः अपरे श्रीमदात् भ्रंशिताः स्थानात् देवदैत्य नर ईश्वराः ॥२०॥

हैहयः	सहस्रार्जुन,
नहुषः वेनः	नहुष, वेन
रावणः नरकः	रावण, नरकासुर
अपरे देवदैत्य	तथा दूसरे देवता दैत्य,
नर ईश्वराः	राजा लोग
श्रीमदात्	धनमदके कारण
स्थानात्	स्थान
भ्रंशिताः	भ्रष्ट हुए ॥२०॥

भवन्त एतद् विज्ञाय देहाद्युत्पाद्यमन्तवत् ।
मां यजन्तोऽध्वरैर्युक्ताः प्रजा धर्मेण रक्षथ ॥२१॥

भवन्त एतत् विज्ञाय देहादि उत्पाद्यम् अन्तवत् मां यजन्तः अध्वरैः युक्ता प्रजा धर्मेण रक्षथ ॥२१॥

भवन्त एतत्	तुम लोग इस
उत्पाद्यम् देहादि	उत्पन्न होने वाले शरीरादिको
अन्तवत् विज्ञाय	नाशवान जानकर
युक्ता अध्वरैः	संयम पूर्वक यज्ञों द्वारा
मां यजन्तः	मेरी आराधना करते हुए
धर्मेण प्रजा	धर्मपूर्वक प्रजाकी
रक्षथ	रक्षा करो ॥२१॥

संतन्वन्तः प्रजातन्तून् सुखं दुःखं भवाभवौ ।
प्राप्तं प्राप्तं च सेवन्तो मच्चित्ता विचरिष्यथ ॥२२॥

सन्तन्वन्तः प्रजातन्तून् सुखं दुःखं भव अभवौ प्राप्तं प्राप्तं च सेवन्तः मत् चित्ता विचरिष्यथ ॥२२॥

प्रजातन्तून्	सन्तान परम्परा
सन्तन्वन्तः	बढ़ाते हुए
सुखं दुःखं	सुख-दुःख
भव अभवौ	लाभ-हानि
प्राप्तं प्राप्तं	जब जो मिल जाय
च सेवन्तः	उसे ही भोगते हुए
मत् चित्ता	मुझमें चित्त लगा-कर
विचरिष्यथ	विचरण करो ॥२२॥

उदासीनाश्च देहादावात्मारामा धृतव्रताः ।
मय्यावेश्य मनः सम्यङ् मामन्ते ब्रह्म यास्यथ ॥२३॥

उदासीनाः च देहादाः आत्मारामा धृतव्रताः मयि आवेश्य मनः सम्यक् मां अन्ते ब्रह्म यास्यथ ॥२३॥

देहादाः च	देहादिसे तो	**मयि आवेश्य**	मुझमें प्रविष्ट करके
उदासीनाः	उदासीन होकर	**अन्ते मां ब्रह्म**	अन्तमें मुझ ब्रह्मको
आत्मारामा	आत्मराम होकर	**यास्यथ**	प्राप्त हो जाओगे ॥२३॥
धृतव्रता	व्रत (संयम) पालन करते हुए		
मनः सम्यक्	मनको भली प्रकार		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्यादिश्य नृपान् कृष्णो भगवान् भुवनेश्वरः ।
तेषां न्ययुङ्क्त पुरुषान् स्त्रियो मज्जनकर्मणि ॥२४॥

इति आदिश्य नृपान् कृष्णः भगवान् भुवन ईश्वरः तेषां न्ययुङ्क्त पुरुषान् स्त्रियः मज्जनकर्मणि ॥२४॥

नृपान् इति	राजाओंको इस प्रकार	**पुरुषान् स्त्रियः**	पुरुष एवं स्त्री (सेवकों)को
आदिश्य	आदेश देकर	**न्ययुङ्क्त**	नियुक्त किया ॥२४॥
भुवन ईश्वरः	त्रिभुवनाधीश		
भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्णने		
तेषां	उनको		
मज्जनकर्मणि	स्नान करानेके लिए		

सपर्यां कारयामास सहदेवेन भारत ।
नरदेवोचितैर्वस्त्रैर्भूषणैः स्रग्विलेपनैः ॥२५॥

सपर्यां कारयामास सहदेवेन भारत नरदेव उचितैः वस्त्रैः भूषणैः स्रक् विलेपनैः ॥२५॥

भारत	परीक्षित् !	**सहदेवेन**	सहदेव द्वारा
नरदेव उचितैः	राजाओंके योग्य		(उनकी)
वस्त्रैः भूषणैः	वस्त्राभूषण एवं	**सपर्यां**	सत्कार
स्रक् विलेपनैः	माला-चन्दनसे	**कारयामास**	करवाया ॥२५॥

भोजयित्वा वरान्नेन सुस्नातान् समलंकृतान् ।
भोगैश्च विविधैर्युक्तांस्ताम्बूलाद्यैर्नृपोचितैः ॥२६॥

भोजयित्वा वर अन्नेन सुस्नातान् समलंकृतान् भोगैः च विविधैः युक्तान् ताम्बूल आद्यैः नृप उचितैः ॥२६॥

सुस्नातान्	भली प्रकार स्नान किये	**च नृप उचितैः**	तथा राजोचित
		ताम्बूल आद्यैः	पान आदि
समलंकृतान्	पूर्णतः अलंकृत	**विविधैः भोगैः**	अनेक भोगपदार्थ
वर अन्नेन	श्रेष्ठ अन्नका	**युक्तान्**	देकर ॥२६॥
भोजयित्वा	भोजन कराके		

ते पूजिता मुकुन्देन राजानो मृष्टकुण्डलाः ।
विरेजुर्मोचिताः क्लेशात् प्रावृडन्ते यथा ग्रहाः ॥२७॥

ते पूजिता मुकुन्देन राजानः मृष्ट कुण्डलाः विरेजुः मोचिताः क्लेशात् प्रावृट् अन्ते यथा ग्रहाः ॥२८॥

मुकुन्देन	मुकुन्द द्वारा	**ते राजानः**	वे राजा लोग
पूजिता	सत्कृत	**क्लेशात्**	कष्टोंसे
मृष्ट कुण्डलाः	चमकते कुण्डलों वाले		

मोचितः	छुड़ाये गये	**यथा ग्रहाः**	जैसे ग्रह (शोभित हों)
प्रावृट् अन्ते	वर्षाके अन्तमें	**विरेजुः**	शोभित हुए ॥२७॥

रथान् सदश्वानारोप्य मणिकाञ्चनभूषितान् ।
प्रीणय्य सूनृतैर्वाक्यैः स्वदेशान् प्रत्ययापयत् ॥२८॥

रथान् सद् अश्वान् आरोप्य मणिकाञ्चन भूषितान् प्रीणय्य सूनृतैः वाक्यैः स्वदेशान् प्रत्ययापयत् ॥२८॥

मणिकाञ्चन	मणि और स्वर्णसे	**प्रीणय्य**	सन्तुष्ट करके
भूषितान्	अलंकृत	**स्वदेशान्**	उनके अपने देश
सद् अश्वान्	अच्छे घोड़ों वाले	**प्रत्ययापयत्**	भेज दिया ॥२८॥
रथान् आरोप्य	रथों पर चढ़ाकर		
सूनृतैः वाक्यैः	मधुर वचनोंसे		

त एवं मोचिताः कृच्छ्रात् कृष्णेन सुमहात्मना ।
ययुस्तमेव ध्यायन्तः कृतानि च जगत्पतेः ॥२९॥

त एवं मोचिताः कृच्छ्रात् कृष्णेन सुमहात्मना ययुः तं एव ध्यायन्तः कृतानि च जगत्पतेः ॥२९॥

एवं त कृच्छ्रात्	इस प्रकार वे संकट से	**तं एव च**	उन्हींको तथा
		जगत्पतेः	उन जगदीशके
सुमहात्मना	श्रेष्ठ महात्मा	**कृतानि ध्यायन्तः**	कर्मोंका चिन्तन करते हुए
कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा		
मोचिताः	छुड़ाये जाकर	**ययुः**	गये ॥२९॥

जगदुः प्रकृतिभ्यस्ते महापुरुषचेष्टितम् ।
यथान्वशासद् भगवांस्तथा चक्रुरतन्द्रिताः ॥३०॥

जगदुः प्रकृतिभ्यः ते महापुरुष चेष्टितं यथा अनु अशासत् भगवान् तथा चक्रुः अतन्द्रिताः ॥३०॥

ते प्रकृतिभ्यः	उन्होंने मन्त्रियों आदिसे	**यथा अनु**	जैसी पीछे
महापुरुष	महापुरुष (श्रीकृष्ण)	**अशासत्**	आज्ञा दी थी
चेष्टितं	का क्रिया कलाप	**तथा अतन्द्रिताः**	वैसा ही सावधान होकर
जगदुः	सुनाया और	**चक्रुः**	करने लगे ॥३०॥
भगवान्	भगवानने		

जरासंधं घातयित्वा भीमसेनेन केशवः ।
पार्थाभ्यां संयुतः प्रायात् सहदेवेन पूजितः ॥३१॥

जरासन्धं घातयित्वा भीमसेनेन केशवः पार्थाभ्यां संयुतः प्रायात् सहदेवेन पूजितः ॥३१॥

केशवः	केशवने	**पार्थाभ्यां**	दोनों पृथापुत्र (भीम-अर्जुन)
भीमसेनेन	भीमसेन द्वारा	**संयुतः**	सहित
जरासन्धं	जरासन्धको	**प्रायात्**	लौट चले ॥३१॥
घातयित्वा	मरवाकर		
सहदेवेन पूजितः	सहदेव द्वारा सत्कृत होकर		

गत्वा ते खाण्डवप्रस्थं शङ्खान् दध्मुर्जितारयः ।
हर्षयन्तः स्वसुहृदो दुर्हृदां चासुखावहाः ॥३२॥

गत्वा ते खाण्डवप्रस्थं शङ्खान् दध्मुः जित अरयः हर्षयन्तः स्वसुहृदः दुर्हृदां च असुख आवहाः ॥३२॥

जित अरयः	शत्रुविजयी	**ते खाण्डवप्रस्थं**	वे खाण्डवप्रस्थ (इन्द्रप्रस्थ)

गत्वा	जाकर	**असुख आवहाः**	दुःखदायी
स्वसुहृदः	अपने सुहृदोंको	**शङ्खान् दध्मुः**	शंख बजाये
हर्षयन्तः	हर्षित करते हुए		॥३२॥
च दुर्हृदां	तथा द्वेषियोंके लिए		

तच्छ्रुत्वा प्रीतमनस इन्द्रप्रस्थनिवासिनः ।
मेनिरे मागधं शान्तं राजा चाप्तमनोरथः ॥३३॥

तत् श्रुत्वा प्रीतमनस इन्द्रप्रस्थ निवासिनः मेनिरे मागधं शान्तं राजा च आप्त मनोरथः ॥३३॥

तत् श्रुत्वा	उसे सुनकर	**च राजा**	तथा राजा (युधि-ष्ठिर)को
प्रीतमनस	प्रसन्न चित्त	**आप्त**	प्राप्त
इन्द्रप्रस्थ	इन्द्रप्रस्थ	**मनोरथः मेनिरे**	मनोरथ मान लिया
निवासिनः	वासियोंने		॥३३॥
मागधं शान्तं	जरासन्धको मारा-गया		

अभिवन्द्याथ राजानं भीमार्जुनजनार्दनाः ।
सर्वमाश्रावयांचक्रुरात्मना यदनुष्ठितम् ॥३४॥

अभिवन्द्य अथ राजानं भीम अर्जुन जनार्दनाः सर्वं आश्रावयान् चक्रुः आत्मना यत् अनुष्ठितम् ॥३४॥

अथ भीम	फिर भीमसेन	**आत्मना यत्**	अपने द्वारा जो
अर्जुन	अर्जुन एवं	**अनुष्ठितं सर्वं**	किया गया था वह सब
जनार्दनाः	जनार्दनने	**आश्रावयान् चक्रुः**	सुनाया ॥३४॥
राजानं	राजा (युधिष्ठिर)को		
अभिवन्द्य	प्रणाम करके		

निशम्य धर्मराजस्तत् केशवेनानुकम्पितम् ।
आनन्दाश्रुकलां मुञ्चन् प्रेम्णा नोवाच किञ्चन ॥३५॥

निशम्य धर्मराजः तत् केशवेन अनुकम्पितं आनन्द अश्रुकलां मुञ्चन् प्रेम्णा न उवाच किञ्चन ॥३५॥

केशवेन	केशवके उस	**मुञ्चन् प्रेम्णा**	बहाते, प्रेमके कारण
अनुकम्पितं	अनुग्रहपूर्ण कर्मको	**किञ्चन न**	कुछ नहीं
निशम्य	सुनकर	**उवाच**	बोल सके ॥३५॥
धर्मराजः	धर्मराज (युधिष्ठिर)		
आनन्द	आनन्दके		
अश्रुकलां	आंसू		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां **संहितायां** दशमस्कन्धे **उत्तरार्धे** कृष्णाद्यागमने त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एवं युधिष्ठिरो राजा जरासंधवधं विभोः ।
कृष्णस्य चानुभावं तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत् ॥ १ ॥

एवं युधिष्ठिरः राजा जरासन्धवधं विभोः कृष्णस्य च अनुभावं तं श्रुत्वा प्रीतः तं अब्रवीत् ॥१॥

एवं राजा	इस प्रकार राजा	**तं अनुभावं**	उस प्रभावको
युधिष्ठिरः	युधिष्ठिर	**श्रुत्वा**	सुनकर
जरासन्धवधं	जरासन्ध-वध	**प्रीतः तं**	प्रसन्न होकर उनसे
च विभोः	तथा प्रभु	**अब्रवीत्**	बोले ॥१॥
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके		

॥ युधिष्ठिर उवाच ॥

ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः ।
वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥ २ ॥

ये स्युः त्रैलोक्य गुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसा एव अनुशासनम् ॥२॥

ये त्रैलोक्य	जो त्रिलोकीके	**सर्वे**	सब
गुरवः	गुरु एवं	**लोकमहेश्वराः**	लोकोंके महान् ईश्वर
		स्युः	हैं

दुर्लभं	(वे ब्रह्मादि भी आपकी) दुर्लभ
अनुशासनं	आज्ञा
लब्ध्वा	पाकर
शिरसा एव	शिरोधार्य ही
वहन्ति	करते हैं ॥२॥

स भवानरविन्दाक्षो दीनानामीशमानिनाम् ।
धत्तेऽनुशासनं भूमंस्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ३ ॥

स भवान् अरविन्द अक्षः दीनानां ईश मानिनां धत्ते अनुशासनं भूमन् तत् अत्यन्त विडम्बनम् ॥३॥

स भवान् भूमन्	वह आप भूमन् !
अरविन्द अक्ष	कमल-लोचन
ईश मानिनां	अपनेको समर्थ माननेवाले
दीनानां	(हम) दीनोंकी
अनुशासनं धत्ते	आज्ञा स्वीकार करते हैं
तत् अत्यन्त	यह अत्यन्त
विडम्बनं	लीला है ॥३॥

न ह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः
कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्रसते च यथा रवेः ॥ ४ ॥

न हि एकस्य अद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः कर्मभिः वर्धते तेजः ह्रसते च यथा रवेः ॥४॥

हि एकस्य	क्योंकि एक
अद्वितीयस्य	अद्वितीय
ब्रह्मणः	परं ब्रह्म
परमात्मनः	परमात्माका
तेजः यथा रवेः	तेज जैसे सूर्यका (तेज)
कर्मभिः वर्धते	(किसी) कर्मसे बढ़ता
च ह्रसते न	तथा घटता नहीं है ॥४॥

न वै तेऽजित भक्तानां ममाहमिति माधव ।
त्वं तवेति च नानाधीः पशूनामिव वैकृता ।। ५ ।।

न वै ते अजित भक्तानां मम अहं इति माधव त्वं तव इति च नाना धीः पशूनां इव वैकृता ।।५।।

अजित माधव	अजित ! माधव !
ते भक्तानां	आपके भक्तोंकी
मम अहं इति	(मैं-मेरा) इस-प्रकारकी
च त्वं तव इति	तथा 'तुम-तुम्हारा' इस प्रकारकी
पशूनां इव	पशुओंके समान
वैकृता नाना	विकारवान नानात्मक (भेद-वाली)
धीः वै न	बुद्धि निश्चय नहीं होती ।।५।।

।। श्रीशुक उवाच ।।

इत्युक्त्वा यज्ञिये काले वव्रे युक्तान् स ऋत्विजः ।
कृष्णानुमोदितः पार्थो ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः ।। ६ ।।

इति उक्त्वा यज्ञिये काले वव्रे युक्तान् स ऋत्विजः कृष्ण अनुमोदितः पार्थः ब्राह्मणन् ब्रह्मवादिनः ।।६।।

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर
यज्ञिये काले	यज्ञके (उपयुक्त) समयमें
कृष्ण	श्रीकृष्णकी
अनुमोदितः	अनुमतिसे
स पार्थः	उन पृथा-पुत्र युधिष्ठिरने
युक्तान्	उपयुक्त
ब्रह्मवादिनः	वेदवादी
ब्राह्मणान्	ब्राह्मणोंको
ऋत्विजः वव्रे	ऋत्विक वरण किया ।।६।।

द्वैपायनो भरद्वाजः सुमन्तुर्गौतमोऽसितः ।
वसिष्ठश्च्यवनः कण्वो मैत्रेयः कवषस्त्रितः ॥ ७ ॥

विश्वामित्रो वामदेवः सुमतिर्जैमिनिः क्रतुः ।
पैलः पराशरो गर्गो वैशम्पायन एव च ॥ ८ ॥

अथर्वा कश्यपो धौम्यो रामो भार्गव आसुरिः ।
वीतिहोत्रो मधुच्छन्दा वीरसेनोऽकृतव्रणः ॥ ९ ॥

द्वैपायनः (व्यास), भरद्वाजः, सुमन्तुः, गौतमः, असितः, वसिष्ठः, च्यवनः, कण्वः, मैत्रेयः, कवषः, त्रितः, विश्वामित्रः, वामदेवः, सुमतिः, जैमिनिः, क्रतुः, पैलः, पराशरः, गर्गः, वैशम्पायन, एव च (भी) अथर्वा, कश्यपः, धौम्यः, रामः, भार्गव (भृगवंशी परशुराम), आसुरिः, वीतिहोत्रः, मधुच्छन्दा, वीरसेनः, अकृतव्रणः ॥७, ८, ९॥*

उपहूतास्तथा चान्ये द्रोणभीष्मकृपादयः ।
धृतराष्ट्रः सहसुतो विदुरश्च महामतिः ॥१०॥

उपहूताः तथा च अन्ये द्रोण भीष्म कृप आदयः धृतराष्ट्रः सहसुतः विदुरः च महामतिः ॥१०॥

तथा च अन्ये	और दूसरे भी	**च महामतिः**	एवं महाबुद्धि
द्रोण भीष्म	द्रोणाचार्य, भीष्म,	**विदुरः उपहूताः**	विदुर बुलाये गये ॥१०॥
कृप आदयः	कृपाचार्य आदि		
सहसुतः	पुत्रोंके साथ		
धृतराष्टः	धृतराष्ट्र		

---

* ये केवल नाम हैं, अतः इनका अन्वय अर्थ नहीं है ।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा यज्ञदिदृक्षवः ।
तत्रेयुः सर्वराजानो राज्ञां प्रकृतयो नृप ॥११॥

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्रा यज्ञदिदृक्षवः तत्र ईयुः सर्वराजानः राज्ञां प्रकृतयः नृप ॥११॥

नृप	राजन् !	**वैश्याः शूद्रा**	वैश्य, शूद्र
तत्र	वहां	**सर्वराजानः**	सब राजा तथा
यज्ञदिदृक्षवः	यज्ञ-दर्शनके लिए	**राज्ञां प्रकृतयः**	राजाओंके मन्त्री-गण
ब्राह्मणाः	ब्राह्मण,		
क्षत्रियाः	क्षत्रिय,	**ईयुः**	आये ॥११॥

ततस्ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलाङ्गलैः ।
कृष्ट्वा तत्र यथाम्नायं दीक्षयाञ्चक्रिरे नृपम् ॥१२॥

ततः ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलाङ्गलैः कृष्ट्वा तत्र यथा आम्नायं दीक्षयान् चक्रिरे नृपम् ॥१२॥

ततः ते	तब उन	**तत्र**	वहां
ब्राह्मणाः	ब्राह्मणोंने	**यथा आम्नायं**	शास्त्रीय विधिसे
देवयजनं	देव-यज्ञकी भूमिको	**नृपं**	राजा युधिष्ठिरको
स्वर्ण लाङ्गलैः	स्वर्णके हलसे	**दीक्षयान् चक्रिरे**	(यज्ञकी) दीक्षा दी ॥१२॥
कृष्ट्वा	जुतवाकर		

हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथा पुरा ।
इन्द्रादयो लोकपाला विरिञ्चभवसंयुताः ॥१३॥

हैमाः किल उपकरणा वरुणस्य यथा पुरा इन्द्र आदयः लोकपाला विरिञ्च भव संयुताः ॥१३॥

यथा पुरा	जैसे प्राचीन कालमें	**किल**	अहो (सब)
वरुणस्य	वरुणके (यज्ञमें था)	**हैमाः उपकरणा**	स्वर्णपात्र थे,

विरिञ्च भव संयुताः	ब्रह्मा, शंकरजी सहित	**इन्द्र आदयः लोकपाला**	इन्द्रादि लोकपाल ॥१३॥

सगणाः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ।
मुनयो यक्षरक्षांसि खगकिन्नरचारणाः ॥१४॥

सगणाः सिद्ध गन्धर्वा विद्याधर महा उरगाः मुनयः यक्ष रक्षांसि खग किन्नर चारणाः ॥१४॥

सगणाः	अपने गणों सहित	**मुनयः**	मुनिगण,
सिद्ध	सिद्ध	**यक्ष रक्षांसि**	यक्ष-राक्षस,
गन्धर्वा	गन्धर्व,	**खग किन्नर**	पक्षी, किन्नर
विद्याधर	विद्याधर	**चारणाः**	चारण ॥१४॥
महा उरगाः	बड़े नाग,		

राजानश्च समाहूता राजपत्न्यश्च सर्वशः ।
राजसूयं समीयुः स्म राज्ञः पाण्डुसुतस्य वै ॥१५॥

राजानः च सम आहूता राजपत्न्यः च सर्वशः राजसूयं सम ईयुः स्म राज्ञः पाण्डुसुतस्य वै ॥१५॥

सम आहूता	भली प्रकार बुलाये गये	**पाण्डुसुतस्य**	पाण्डुनन्दन
राजानः च	राजा लोग तथा	**राज्ञः**	राजाके
सर्वशः	सभी	**राजसूयं वै**	राजसूय-यज्ञमें निश्चय
राजपत्न्यः च	राजाओंकी रानियां भी	**सम ईयुः स्म**	सब ओरसे आये ॥१५॥

मेनिरे कृष्णभक्तस्य सूपपन्नमविस्मिताः ।
अयाजयन् महाराजं याजका देववर्चसः ।
राजसूयेन विधिवत् प्राचेतसमिवामराः ॥१६॥

मेनिरे कृष्णभक्तस्य स उपपन्नं अविस्मिताः अयाजयन् महाराजं याजका देववर्चसः राजसूयेन विधिवत् प्राचेतसं इव अमराः ॥१६॥

अविस्मिताः	बिना आश्चर्यके	**महाराजं**	महाराज युधिष्ठिर से
कृष्णभक्तस्य	श्रीकृष्ण भक्तके लिए	**अमराः**	देवताओं द्वारा
स उपपन्नं	पूर्णतः उपयुक्त	**प्राचेतसं इव**	वरुणसे करानेकी
मेनिरे	माना।		भांति
देववर्चसः	देवताओंके समान तेजस्वी	**विधिवत्**	विधिपूर्वक
		राजसूयेन	राजसूय
याजका	यज्ञ कराने वाले (ऋत्विकों)ने	**अयाजयन्**	यज्ञ कराया ॥१६॥

सौत्येऽहन्यवनीपालो याजकान् सदसस्पतीन्।
अपूजयन् महाभागान् यथावत् सुसमाहितः ॥१७॥

सौत्ये अहनि अवनीपालः याजकान् सदसस्पतीन् अपूजयन् महाभागान् यथावत् सुसमाहितः ॥१७॥

सौत्ये अहनि	सोमवल्लीसे रस निकालनेके दिन	**सदसस्पतीन्**	यज्ञ-सभाके सदस्यों का
अवनीपालः	भूपाल युधिष्ठिरने	**सुसमाहितः**	अत्यन्त सावधानीसे
महाभागान्	महाभाग	**यथावत्**	विधिपूर्वक
याजकान्	याजकों (ऋत्विकों) एवं	**अपूजयन्**	पूजन किया ॥१७॥

सदस्याग्र्यार्हणार्हं वै विमृशन्तः सभासदः।
नाध्यगच्छन्ननैकान्त्यात् सहदेवस्तदाब्रवीत् ॥१८॥

सदस्य अग्र्य अर्हण अर्हं वै विमृशन्तः सभासदः न अध्यगच्छन् अनैकान्त्यात् सहदेवः तदा अब्रवीत् ॥१८॥

सभासदः	सभासदगण
सदस्य	सदस्योंमें
अग्रच अर्हण	प्रथम पूजाके
अर्हं वै	योग्य निश्चित रूप से
विमृशन्तः	विचार करते हुए
अनैकान्त्यात्	अनेक मत होनेके कारण
न अध्यगच्छन्	जब (किसीको) नहीं पा सके
तदा सहदेवः	तब सहदेव
अब्रवीत्	बोले ॥१८॥

अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठच्यं भगवान् सात्वतां पतिः ।
एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥१९॥

अर्हति हि अच्युतः श्रैष्ठचं भगवान् सात्वतां पतिः एष वै देवताः सर्वा देश काल धन आदयः ॥१९॥

सात्वतां पतिः	यदुनाथ
भगवान्	भगवान्
अच्युतः	अच्युत्
श्रैष्ठचं अर्हति	इस श्रेष्ठत्वके योग्य हैं
हि एष वै	क्योंकि यही निश्चय
सर्वा देवताः	सब देवता
देश काल	स्थान, समय
धन आदयः	सम्पत्ति आदि हैं ॥१९॥

यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः ।
अग्निराहुतयो मन्त्राः सांख्यं योगश्च यत्परः ॥२०॥

यत् आत्मकं इदं विश्वं क्रतवः च यत् आत्मकाः अग्निः आहुतयः मन्त्राः सांख्यं योगः च यत् परः ॥२०॥

इदं विश्वं	यह विश्व
यत् आत्मकं	जिनका स्वरूप है
च क्रतवः	तथा यज्ञ
यत् आत्मकाः	जिनके स्वरूप हैं
अग्निः आहुतयः	अग्नि, आहुतियां

मन्त्राः च	मन्त्र तथा	**यत् परः**	जिनके परायण हैं
सांख्यं योगः	सांख्य और योग		॥२०॥

एक एवाद्वितीयोऽसावेतदात्म्यमिदं जगत् ।
आत्मनाऽऽत्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥२१॥

एक एव अद्वितीयः असाः एतत् आत्म्यं इदं जगत् आत्मना आत्म आश्रयः सभ्याः सृजति अवति हन्ति अजः ॥२१॥

सभ्याः	सभासदों	**आत्म आश्रयः**	अपने ही द्वारा
असाः एक एव	ये एकमात्र	**अजः सृजति**	ये अजन्मा सृष्टि करते,
अद्वितीयः	अद्वितीय हैं	**अवति हन्ति**	पालन और संहार करते हैं ॥२१॥
इदं जगत्	यह जगत्		
एतत् आत्म्यं	इनका स्वरूप हैं		
आत्मना	अपने भीतर		

विविधानीह कर्माणि जनयन् यदवेक्षया ।
ईहते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥२२॥

विविधानि इह कर्माणि जनयन् यत् अवेक्षया ईहते हृदयं सर्वः श्रेयः धर्म आदि लक्षणम् ॥२२॥

यत् अवेक्षया	जिनके अनुग्रहसे	**सर्वः श्रेयः**	सम्पूर्ण मंगलोंको
धर्म आदि	धर्मादि	**जनयन्**	उत्पन्न करना चाहता है
लक्षणं	पुरुषार्थ रूप		
विविधानि	अनेक प्रकारके	**हृदयं**	(उसके यही) हृदय हैं ॥२२॥
कर्माणि	कर्म		
इह ईहते	इस संसारमें करता है		

तस्मात् कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम् ।
एवं चेत् सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत् ॥२३॥

तस्मात् कृष्णाय महते दीयतां परम अर्हणं एवं चेत् सर्वभूतानां आत्मनः च अर्हणं भवेत् ॥२३॥

तस्मात्	इसलिए	**एवं चेत्**	ऐसा होने पर
महते कृष्णाय	महात्मा श्रीकृष्ण को	**सर्वभूतानां च आत्मनः**	समस्त प्राणियोंकी तथा अपनी भी
परम अर्हणं	यह श्रेष्ठ पूजा	**अर्हणं भवेत्**	पूजा हो जायगी ॥२३॥
दीयतां	अर्पित करो		

सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शिने ।
देयं शान्ताय पूर्णाय दत्तस्यानन्त्यमिच्छता ॥२४॥

सर्वभूत आत्मभूताय कृष्णाय अनन्य दर्शिने देयं शान्ताय पूर्णाय दत्तस्य आनन्त्यं इच्छता ॥२४॥

दत्तस्य	अपने दानका	**अनन्य दर्शिने**	भेदशून्य दृष्टि वाले
आनन्त्यं	अनन्तफल	**शान्ताय पूर्णाय**	शान्त, परिपूर्ण
इच्छता	चाहने वालेको	**कृष्णाय देयं**	श्रीकृष्णको देना चाहिए ॥२४॥
सर्वभूत	समस्त प्राणियोंके		
आत्मभूताय	अन्तरात्मा स्वरूप		

इत्युक्त्वा सहदेवोऽभूत् तूष्णीं कृष्णानुभाववित् ।
तच्छ्रुत्वा तुष्टु वुः सर्वे साधु साध्विति सत्तमाः ॥२५॥

इति उक्त्वा सहदेवः अभूत् तूष्णीं कृष्ण अनुभाववित् तत् श्रुत्वा तुष्ट वुः सर्वे साधु साधु इति सत्तमाः ॥२५॥

इति उक्त्वा	इतना कहकर
कृष्ण	श्रीकृष्णका
अनुभाववित्	प्रभाव जानने वाला
सहदेवः	सहदेव
तूष्णीं अभूत्	चुप हो गया,
तत् श्रुत्वा सर्वे	उसे सुनकर सब
साधु साधु	'ठीक बहुत ठीक'
इति सत्तमाः	ऐसा समर्थन करते हुए
तुष्ट वुः	प्रशंसा करने लगे

॥२५॥

श्रुत्वा द्विजेरितं राजा ज्ञात्वा हार्दं सभासदाम् ।
समर्हयद्धृषीकेशं प्रीतः प्रणयविह्वलः ॥२६॥

श्रुत्वा द्विज ईरितं राजा ज्ञात्वा हार्दं सभासदां सम अर्हयत् हृषीकेश प्रीतः प्रणयविह्वलः ॥२६॥

द्विज	ब्राह्मणोंकी
ईरितं श्रुत्वा	बात सुनकर
सभासदां	(तथा) सभासदोंका
हार्दं ज्ञात्वा	अभिप्राय जानकर
प्रणयविह्वलः	प्रेम विह्वल
प्रीतः राजा	प्रसन्न होकर राजा युधिष्ठिरने
हृषीकेशं	हृषीकेशका
सम अर्हयत्	भली प्रकार पूजन किया ॥२६॥

तत्पादाववनिज्यापः शिरसा लोकपावनीः ।
सभार्यः सानुजामात्यः सकुटुम्बोऽवहन्मुदा ॥२७॥

तत् पाद अवनिज्य आपः शिरसा लोकपावनीः सभार्यः सानुज अमात्यः सकुटुम्बः आवहन् मुदा ॥२७॥

तत् पाद	उनके चरण
अवनिज्य	धोकर
लोकपावनीः	वह(सम्पूर्ण) लोकों को पवित्र करने वाला
आपः	चरणोदक
सभार्यः सानुजः	पत्नीके साथ, भाइयोंके साथ

अमात्यः	मंत्रियों एवं	**मुदा शिरसा**	आनन्दपूर्वक मस्तक-
सकुटुम्बः	कुटुम्बके साथ		पर
		आवहन्	चढ़ाया ॥२७॥

वासोभिः पीतकौशेयैर्भूषणैश्च महाधनैः ।
अर्हयित्वाश्रुपूर्णाक्षो नाशकत् समवेक्षितुम् ॥२८॥

वासोभिः पीत कौशेयैः भूषणैः च महाधनैः अर्हयित्वा अश्रु पूर्ण अक्षः न अशकत् सम अवेक्षितुम् ॥२८॥

पीत कौशेयैः	पीले रेशमी	**अश्रुपूर्ण अक्षः**	अश्रुपूर्ण नेत्र होनेसे
वासोभिः	वस्त्रोंसे	**सम अवेक्षुतं**	ठीक स्पष्ट देखनेमें
च महाधनैः	तथा बहुमूल्य	**अशकत् न**	समर्थ नहीं हुए
भूषणैः	आभूषणोंसे		॥२८॥
अर्हयित्वा	पूजन करके		

इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वे प्राञ्जलयो जनाः ।
नमो जयेति नेमुस्तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥२९॥

इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वे प्राञ्जलयः जनाः नमः जय इति नेमुः तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥२९॥

इत्थं सभाजितं	इस प्रकार सत्कृत हुए	**प्राञ्जलयः**	हाथ जोड़कर
		नेमुः	प्रणाम करने लगे और
तं वीक्ष्य	उन (श्रीकृष्ण)को देखकर	**पुष्पवृष्टयः**	पुष्पोंकी वर्षा
सर्वे जनाः	सब लोग	**निपेतुः**	होने लगी ॥२९॥
नमः जय इति	'नमः जय हो, इस प्रकार कहते		

इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठा-
दुत्थाय कृष्णगुणवर्णनजातमन्युः ।

उत्क्षिप्य बाहुमिदमाह सदस्यमर्षी
संश्रावयन् भगवते परुषाण्यभीतः ॥३०॥

इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठात् उत्थाय कृष्ण गुण वर्णन जातमन्युः उत्क्षिप्य बाहुं इदं आह सदसि अमर्षी संश्रावयन् भगवते परुषाणि अभीतः ॥३०॥

इत्थं	इस प्रकार	**बाहुं उत्क्षिप्य**	हाथ उठाकर
कृष्ण गुण वर्णन	श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन	**अभीतः**	निर्भय होकर
		सदसि भगवते	सभामें भगवानको
निशक्ष्य अमर्षी	सुनकर असहन-शील	**परुषाणि**	कठोर वचन
		संश्रावयन्	सुनाते हुए
दमघोषसुतः	दमघोष-पुत्र शिशुपाल	**इदं आह**	इस प्रकार कहने लगा ॥३०॥
जातमन्युः	क्रोध उत्पन्न होनेसे		
स्वपीठात्	अपने आसनसे		
उत्थाय	उठकर		

ईशो दुरत्ययः काल इति सत्यवती श्रुतिः ।
वृद्धानामपि यद् बुद्धिर्बालवाक्यैर्विभिद्यते ॥३१॥

ईशः दुरत्ययः कालः इति सत्यवती श्रुतिः वृद्धानां अपि यत् बुद्धिः बालवाक्यैः विभिद्यते ॥३१॥

कालः दुरत्यय	काल दुष्पार है	**बालवाक्यैः**	बालक (सहदेव)की बातोंसे
इति श्रुतिः	यह श्रुति		
सत्यवती	सच्ची है	**विभिद्यते**	भ्रममें पड़ गयी है ॥३१॥
ईशः	यही ईश्वर है		
यत् वृद्धानां	क्योंकि बूढ़ोंकी		
अपि बुद्धिः	बुद्धि भी		

यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा मा मन्ध्वं बालभाषितम् ।
सदसस्पतयः सर्वे कृष्णो यत् सम्मतोऽर्हणे ॥३२॥

यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा मा मन्ध्वं बालभाषितं सदसस्पतयः सर्वे कृष्णः यत् सम्मतः अर्हण ॥३२॥

सर्वे	सब	**यत् कृष्णः**	जो 'कृष्ण
सदसस्पतयः	सभापति गण	**अर्हणे सम्मतः**	पूजाके योग्य हैं'
यूयं	आप	**बालभाषितं**	यह बालककी कही
पात्रविदां श्रेष्ठा	सत्पात्र जानने वालोंमें श्रेष्ठ हैं		बात
		मा मन्ध्वं	मत मानिये ॥३२॥

तपोविद्याव्रतधरान् ज्ञानविध्वस्तकल्मषान् ।
परमर्षीन् ब्रह्मनिष्ठान् लोकपालैश्च पूजितान् ॥३३॥

तपः विद्या व्रतधरान् ज्ञान विध्वस्त कल्मषान् परम ऋषीन् ब्रह्मनिष्ठान् लोकपालैः च पूजितान् ॥३३॥

तपः विद्या	तपस्या, विद्या,	**ब्रह्मनिष्ठान्**	ब्रह्मनिष्ठ
व्रतधरान्	व्रतधारी	**च लोकपालैः**	तथा लोकपालों
कल्मषान्	पापोंको		द्वारा
ज्ञान विध्वस्त	ज्ञानसे नष्ट कर देने वाले	**पूजितान्**	पूजित
		परम ऋषीन्	परमर्षि ॥३३॥

सदस्पतीनतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः ।
यथा काकः पुरोडाशं सपर्यां कथमर्हति ॥३४॥

सदस्पतीन् अतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः यथा काकः पुरोडाशं सपर्यां कथं अर्हति ॥३४॥

सदस्पतीन्	सभापतियोंका	**कुलपांसनः**	कुलकलंक
अतिक्रम्य	अतिक्रमण करके	**गोपालः**	गोपाल
यथा पुरोडाशं	जैसे पुरोडाश (हवि)	**कथं**	कैसे
		सपर्यां अर्हति	पूजा पाने योग्य हो सकता है ॥३४॥
काकः	कौआ (चाहे)		

वर्णाश्रमकुलापेतः सर्वधर्मबहिष्कृतः ।
स्वैरवर्ती गुणैर्हीनः सपर्यां कथमर्हति ॥३५॥

वर्ण आश्रम कुल उपेतः सर्व धर्म बहिष्कृतः स्वैरवर्ती गुणैः हीनः सपर्यां कथं अर्हति ॥३५॥

वर्ण आश्रम	वर्ण-आश्रम	**गुणैः हीनः**	गुणहीन
कुल उपेतः	कुलसे पृथक	**कथं**	कैसे
सर्व धर्म	सब धर्मोंसे	**सपर्यां अर्हति**	पूजा पाने योग्य हो सकता है ॥३५॥
बहिष्कृतः	बहिष्कृत		
स्वैरवर्ती	स्वेच्छाचारी		

ययातिनैषां हि कुलं शप्तं सद्भिर्बहिष्कृतम् ।
वृथापानरतं शश्वत् सपर्यां कथमर्हति ॥३६॥

ययातिना एषां हि कुलं शप्तं सद्भिः बहिष्कृतं वृथापानरतं शश्वत् सपर्यां कथं अर्हति ॥३६॥

हि एषां कुलं	क्योंकि इसका कुल	**वृथापानरतं**	व्यर्थ मद्यपानमें तत्पर
ययातिना शप्तं	ययाति द्वारा प्रशप्त है	**कथं**	कैसे
सद्भिः	(अतः) सत्पुरुषों द्वारा	**सपर्यां अर्हति**	पूजा पाने योग्य हो सकता है ॥३६॥
बहिस्कृतं	बहिष्कृत है		
शश्वत्	बराबर		

ब्रह्मर्षिसेवितान् देशान् हित्वैतेऽब्रह्मवर्चसम् ।
समुद्रं दुर्गमाश्रित्य बाधन्ते दस्यवः प्रजाः ॥३७॥

ब्रह्मर्षि सेवितान् देशान् हित्वा एते अब्रह्मवर्चसं समुद्रं दुर्गं आश्रित्य बाधन्ते दस्यवः प्रजाः ॥३७॥

ब्रह्मर्षि	ब्रह्मर्षियोंसे	**दुर्गं समुद्रम्**	दुर्गम समुद्रका
सेवितान्	सेवित	**आश्रित्य**	अश्रय लेकर
देशान् हित्वा	(सथुरादि) देशोंको छोड़कल	**दस्यवः**	(ये) डाकू (यादव)
अब्रह्मवर्चसं	ब्रह्मतेजहीन	**प्रजाः बाधन्ते**	प्रजाको पीड़ा देते हैं" ॥३७॥

एवमादीन्यभद्राणि बभाषे नष्टमङ्गलः ।
नोवाच किञ्चिद् भगवान् यथा सिंहः शिवारुतम् ॥३८॥

एवं आदीन् अभद्राणि बभाषे नष्टमङ्गलः न उवाच किञ्चित् भगवान् यथा सिंहः शिवारुतम् ॥३८॥

नष्टमङ्गलः	जिसका सौभाग्य नष्ट हो गया	**शिवारुतं**	गीदड़के शब्दसे (तटस्थ रहे)
एवं आदीन्	(उसने) इस प्रकार के बहुतसे	**भगवान्**	भगवानने
अभद्राणि	कटुवचन	**किञ्चित् न**	कुछ भी नहीं
बभाषे	कहे, किन्तु	**उवाच**	कहा ॥३८॥
यथा सिंहः	जैसे सिंह		

भगवन्निन्दनं श्रुत्वा दुःसहं तत् सभासदः ।
कर्णौ पिधाय निर्जग्मुः शपन्तश्चेदिपं रुषा ॥३९॥

भगवत् निन्दनं श्रुत्वा दुःसहं तत् सभासदः कर्णौ पिधाय निर्जग्मुः शपन्तं चेदिपं रुषा ॥३९॥

भगवत् दुःसहं	भगवानकी असह्य
निन्दनं श्रुत्वा	निन्दा सुनकर
तत्	उस
सभासदः	सभाके सदस्य
रुषा चेदिपं	क्रोधसे चेदिराज शिशुपालको
शपन्तं	गाली देते
कर्णौ पिधाय	कान बन्द करके
निर्जग्मुः	निकल गये ॥३९॥

निन्दां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा ।
ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः ॥४०॥

निन्दां भगवतः शृण्वन् तत् परस्य जनस्य वा ततः न अपैति यः सः अपि याति अधः सुकृतात् च्युतः ॥४०॥

भगवतः वा	भगवानकी अथवा
तत्	उनके
परस्य जनस्य	परायण भक्तकी
निदां शृण्वन् यः	निन्दा सुनकर जो
ततः न अपैति	वहाँसे हट नहीं जाता
सः अपि	वह भी
सुकृतात् च्युतः	पुण्य-भ्रष्ट होकर
अधः याति	नीच गतिको जाता है ॥४०॥

ततः पाण्डुसुताः क्रुद्धा मत्स्यकैकयसृञ्जयाः ।
उदायुधाः समुत्तस्थुः शिशुपालजिघांसवः ॥४१॥

ततः पाण्डुसुताः क्रुद्धा मत्स्य कैकय सृञ्जयाः उदायुधाः सम उत्तस्थुः शिशुपाल जिघांसवः ॥४१॥

ततः क्रुद्धा	तब कुपित
पाण्डुसुताः	पाण्डव
मत्स्य कैकय	मत्स्य, कैकय
सृञ्जयाः	सृञ्जय देशीय लोग

शिशुपाल	शिशुपालको	**सम उत्तस्थुः**	एक साथ उठ खड़े
जिघांसवः	मारनेके लिए		हुए ॥४१॥
उदायुधः	हथियार उठाकर		

ततश्चैद्यस्त्वसम्भ्रान्तो जगृहे खड्गचर्मणी ।
भर्त्सयन् कृष्णपक्षीयान् राज्ञः सदसि भारत ॥४२॥

ततः चैद्यः तु असम्भ्रान्तः जगृहे खड्ग चर्मणी भर्त्सयन् कृष्णपक्षीयान् राज्ञः सदसि भारत ॥४२॥

भारत	परीक्षित् !	**सदसि**	सभामें
ततः चैद्यः तु	तब चेदिराज शिशुपालने भी	**कृष्णपक्षीयान्**	श्रीकृष्णके पक्ष वाले
		राज्ञः भर्त्सयन्	राजाओंको डांटने लगा ॥४२॥
असम्भ्रान्त	बिना हड़बड़ी पड़े		
खड्ग	तलवार-		
चर्मणी जगृहे	ढाल पकड़ी		

तावदुत्थाय भगवान् स्वान् निवार्य स्वयं रुषा ।
शिरः क्षुरान्तचक्रेण जहारापततो रिपोः ॥४३॥

तावत् उत्थाय भगवान् स्वान् निवार्य स्वयं रुषा शिरः क्षुरान्त चक्रण जहार आपततः रिपोः ॥४३॥

तावत् उत्थाय	तब तक उठकर	**क्षुरान्त चक्रेण**	छुरेकी धारके समान चक्रसे
भगवान्	भगवानने	**जहार**	काट दिया ॥४३॥
स्वान् निवार्य	अपनोंको रोककर		
स्वयं रुषा	स्वयं क्रोध पूर्वक		
आपततः	झपटते आते		
रिपोः शिरः	शत्रुका सिर		

शब्दः कोलाहलोऽप्यासीत् शिशुपाले हते महान् ।
तस्यानुयायिनो भूपा दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ॥४४॥

शब्दः कोलाहलः अपि आसीत् शिशुपाले हते महान् तस्य अनुयायिनः भूपा दुद्रुवुः जीवित ईषिणः ॥४४॥

शिशुपाले हते	शिशुपालके मारे जाने पर
महान् कोलाहलः	महान् कोलाहलका
शब्दः आसीत्	शब्द होने लगा
तस्य	उनके
अनुयायिनः	अनुयायी
जीवित ईषिणः	जीवित रहनेकी इच्छा वाले
भूपा अपि	राजा भी
दुद्रुवुः	भाग गये ॥४४॥

चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् ।
पश्यतां सर्वभूतानामुल्केव भुवि खाच्च्युता ॥४५॥

चैद्य देह उत्थितं ज्योतिः वासुदेवं उप आविशत् पश्यतां सर्व भूतानां उल्का इव भुवि खात् च्युता ॥४५॥

चैद्य देह	चेदिराज शिशुपाल के शरीरसे
उत्थितं ज्योतिः	निकली ज्योति
खात् च्युता	आकाशसे गिरी
उल्का भुवि इव	उल्काके पृथ्वीमें (मिलने)के समान
वासुदेवं	वासुदेवमें
सर्व भूतानां	सब प्राणियोंके
पश्यतां	देखते हुए
उप आविशत्	प्रवेश कर गयी ॥४५॥

जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया ।
ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि भवकारणम् ॥४६॥

जन्मत्रय अनुगुणित वैरसंरब्धया धिया ध्यायन् तन्मयतां यातःभावः हि भवकारणम् ॥४६॥

जन्मत्रय	तीन जन्मसे	**तन्मयतां यातः**	तन्मय हो गया था
अनुगुणित	बढ़ते हुए	**हि भावः**	क्योंकि भाव ही
वैरसंरब्धया	शत्रुताके आवेश वाली	**भवकारणं**	जन्मका कारण है ॥४६॥
धिया ध्यायन्	बुद्धिसे चिन्तन करते हुए		

ऋत्विग्भ्यः ससद स्येभ्यो दक्षिणां विपुलामदात् ।
सर्वान् सम्पूज्य विधिवच्चक्रेऽवभृथमेकराट् ॥४७॥

ऋत्विक्भ्यः ससद स्येभ्यः दक्षिणां विपुलां अदात् सर्वान् सम्पूज्य विधिवत् चक्रे अवभृथं एकराट् ॥४७॥

एकराट्	एकछत्र सम्राट् (युधिष्ठिरने)	**अदात्**	दी
ससद स्येभ्यः	सदस्योंके साथ	**विधिवत्**	विधिपूर्वक
ऋत्विक्भ्यः	ऋत्विजोंको	**सर्वान् सम्पूज्य**	सबकी पूजा करके
विपुलां दक्षिणां	बहुत अधिक दक्षिणा	**अवभृथं चक्रे**	अवभृथ स्नान किया ॥४७॥

साधयित्वा क्रतुं राज्ञः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।
उवास कतिचिन्मासान् सुहृद्भिरभियाचितः ॥४८॥

साधयित्वा क्रतुः राज्ञः कृष्णः योगेश्वर ईश्वरः उवास कतिचित् मासान् सुहृत्भिः अभियाचितः ॥४८॥

योगेश्वर	योगेश्वरोंके भी	**कृष्णः,**	श्रीकृष्ण
ईश्वरः	स्वामी	**राज्ञः क्रतुः**	राजाका यज्ञ

साधयित्वा	सम्पन्न कराके
सुहृत्भिः	सुहृदों द्वारा
अभियाचितः	बहुत प्रार्थना करने
कतिचित्	कुछ
मासान्	महीने
उवास	वहीं बसे रहे ॥४८॥

ततोऽनुज्ञाप्य राजानमनिच्छन्तमपीश्वरः ।
ययौ सभार्यः सामात्यः स्वपुरं देवकीसुतः ॥४९॥

ततः अनुज्ञाप्य राजानं अनिच्छन्तं अपि ईश्वरः ययौ सभार्यः सअमात्यः स्वपुरं देवकीसुतः ॥४९॥

ततः	तब
अनिच्छन्तं अपि	न चाहते हुए भी
राजानं	राजा (युधिष्ठिर)से
अनुज्ञाप्य	अनुमति लेकर
ईश्वरः	सर्वेश्वर
देवकीसुतः	देवकी-नन्दन
सभार्यः	पत्नियों तथा
सअमात्यः	मन्त्रियोंके साथ
स्वपुरं ययौ	अपने नगर चले गये ॥४९॥

वर्णितं तदुपाख्यानं मया ते बहुविस्तरम् ।
वैकुण्ठवासिनोर्जन्म विप्रशापात् पुनः पुनः ॥५०॥

वर्णितं तत् उपाख्यानं मया ते बहुविस्तरं वैकुण्ठ वासिनोः जन्म विप्रशापात् पुनः पुनः ॥५०॥

वैकुण्ठ वासिनोः	वैकुण्ठके निवासियों का
विप्रशापात्	ब्राह्मणोंके शापसे
पुनः पुनः जन्म	बार-बार जन्म लेने का
तत् बहुविस्तरं	यह बहुत विस्तृत
उपाख्यानं	उपाख्यान
मया ते वर्णितं	मैंने तुमसे वर्णन किया ॥५०॥

राजसूयावभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः ।
ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शुशुभे सुरराडिव ॥५१॥

राजसूय अवभृथ्येन स्नातः राजा युधिष्ठिरः ब्रह्म क्षत्र सभामध्ये शुशुभे सुरराट् इव ॥५१॥

राजा	राजा
युधिष्ठिरः	युधिष्ठिर
राजसूय	राजसूय यज्ञका
अवृभृथ्येन	अभृथ (यज्ञान्त)
स्नातः	स्नान करके
ब्रह्म क्षत्र	ब्राह्मण-क्षत्रियोंकी
सभामध्ये	सभाके बीचमें
सुरराट् इव	देवराज इन्द्रके समान
शुशुभे	सुशोभित हुए ॥५१॥

राज्ञा सभाजिताः सर्वे सुरमानवखेचराः ।
कृष्णं क्रतुं च शंसन्तः स्वधामानि ययुर्मुदा ॥५२॥

राज्ञा सभाजिताः सर्वे सुर मानव खेचराः कृष्णं क्रतुं च शंसन्तः स्वधामानि ययुः मुदा ॥५२॥

राज्ञा सभाजिताः	राजा युधिष्ठिर द्वारा सत्कृत होकर
सर्वे सुर मानव	सब देवता, मनुष्य
खेचराः	आकाशचारी (सिद्धादि)
कृष्णं च क्रतुं	श्रीकृष्ण और यज्ञ की
शंसन्तः	प्रशंसा करते हुए
मुदा स्वधामानि	आनन्दित होकर अपने धाम
ययुः	चले गये ॥५२॥

दुर्योधनमृते पापं कलिं कुरुकुलामयम् ।
यो न सेहे श्रियं स्फीतां दृष्ट्वा पाण्डुसुतस्य तान् ॥५३॥

दुर्योधनं ऋते पापं कलिं कुरुकुल आमयं यः न सेहे श्रियं स्फीतां दृष्ट्वा पाण्डुसुतस्य तान् ॥५३॥

यः पाण्डुसुतस्य	जो पाण्डवोंकी	**कुरुकुल आमयं**	कुरुकुलके रोग रूप
तां स्फीतां	उस निर्मल	**कलिं पापं**	कलियुग रूप पापी
श्रियं दृष्ट्वा	सम्पत्ति देखकर	**दुर्योधनं ऋते**	दुर्योधनको छोड़-
सेहे न	सहन नहीं कर सका		कर ॥५३॥

य इदं कीर्तयेद् विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम् ।
राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५४॥

यः इदं कीर्तयेत् विष्णोः कर्म चैद्य वध आदिकं राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५४॥

यः इदं	जो इस	**च**	तथा
राजमोक्षं	राजाओंको छुड़ाना	**वितानं कीर्तयेत्**	यज्ञका वर्णन करता है
चैद्य	चेदिराज शिशुपालका		
वध आदिकं	वध आदि	**सर्वपापैः**	(वह) सब पापोंसे
विष्णोः कर्म	श्रीकृष्णके कर्मों	**प्रमुच्यते**	छूट जाता है ॥५४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे शिशुपाल नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

अथ पंचसप्ततितमोऽध्यायः

॥ राजोवाच ॥

अजातशत्रोस्तं दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम् ।
सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन् नृदेवा ये समागताः ॥ १ ॥

अजातशत्रोः तं दृष्ट्वा राजसूय महा उदयं सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन् नृ देवा ये सम आगताः ॥१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन्	**महा उदयं**	महान् अभ्युदय
अजातशत्रोः	अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिर का	**दृष्ट्वा**	देखकर
		ये सम आगताः	जो सब ओरसे आये
		नृ देवा सर्वे	मनुष्य, देवता सब
तं राजसूय	उस राजसूय यज्ञ रूप	**मुमुदिरे**	आनन्दित हुए ॥१॥

दुर्योधनं वर्जयित्वा राजानः सर्षयः सुराः ।
इति श्रुतं नो भगवंस्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ २ ॥

दुर्योधनं वर्जयित्वा राजानः सऋषयः सुराः इति श्रुतं नः भगवन् तत्र कारणं उच्यताम् ॥२॥

भगवन्	भगवन्	**इति नः श्रुतं**	ऐसा हमने (अभी) सुना
सऋषयः	ऋषियोंके साथ		
राजानः	राजा लोग	**तत्र कारणं**	इसका कारण
सुराः	देवता भी	**उच्यतां**	बतलाइये ॥२॥
दुर्योधनं	दुर्योधनको		
वर्जयित्वा	छोड़कर		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

पितामहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः ।
बान्धवाः परिचर्यायां तस्यासन् प्रेमबन्धनाः ॥ ३ ॥

पितामहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः बान्धवाः परिचर्यायां तस्य आसन् प्रेमबन्धनाः ॥३॥

ते महात्मनः	तुम्हारे महात्मा	**बान्धवाः**	सम्बन्धी लोग
पितामहस्य	पितामहके	**तस्य**	उस (यज्ञ)की
राजसूये यज्ञे	राजसूय यज्ञमें	**परिचर्यायां**	सेवामें
प्रेमबन्धनाः	प्रेममें बँधे	**आसन्**	लगे थे ॥३॥

भीमो महानसाध्यक्षः धनाध्यक्षः सुयोधनः ।
सहदेवस्तु पूजायां नकुलो द्रव्यसाधने ॥ ४ ॥

भीमः महानस अध्यक्षः धन अध्यक्षः सुयोधनः सहदेवः तु पूजायां नकुलः द्रव्य साधने ॥४॥

महानस	पाठशालाके	**द्रव्य**	सामग्री
अध्यक्षः	अध्यक्ष	**साधने नकुलः**	एकत्रित करनेमें नकुल लगे थे ॥४॥
भीमः	भीमसेन		
धन अध्यक्षः	कोषाध्यक्ष		
सुयोधनः	दुर्योधन,		
तु पूजायां	और पूजा-सत्कारोंमें		
सहदेवः	सहदेव		

गुरुशुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादावनेजने ।
परिवेषणे द्रुपदजा कर्णो दाने महामनाः ॥ ५ ॥

---

* गीता प्रेसकी प्रतिमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है ।

गुरु शुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पाद अवनेजने परिवेषणे द्रुपदजा कर्णः दाने महामनाः ॥५॥

गुरु शुश्रूषणे	गुरुजनोंकी सेवामें	**परिवेषणे**	परोसनेमें
जिष्णुः	अर्जुन,	**द्रुपदजा**	द्रुपद-पुत्री द्रोपदी
पाद अवनेजने	(अतिथिके) पाद-प्रक्षालनमें	**दाने**	दानमें
कृष्णः	श्रीकृष्ण,	**महामनाः कर्णः**	उदार चित्त कर्ण लगे थे ॥५॥

युयुधानो विकर्णश्च हार्दिक्यो विदुरादयः ।
बाह्लीकपुत्रा भूर्याद्या ये च सन्तर्दनादयः ॥ ६ ॥

युयुधानः विकर्णः च हार्दिक्यः विदुर आदयः बाह्लीक पुत्रा भूरि आद्या ये च सन्तर्दन आदयः ॥६॥

युयुधानः	सात्यकि	**बाह्लीक पुत्रा**	बाह्लीकके पुत्र,
विकर्णः च	विकर्ण तथा	**भूरि सन्तर्दन**	भूरिश्रवा, सन्तर्दन
हार्दिक्यः	हार्दिक्य,	**आदयः च ये**	आदि और जो थे ॥६॥
विदुर आदयः	विदुर आदि		

निरूपिता महायज्ञे नानाकर्मसु ते तदा ।
प्रवर्तन्ते स्म राजेन्द्र राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥ ७ ॥

निरूपिता महायज्ञे नाना कर्मसु ते तदा प्रवर्तन्ते स्म राजेन्द्र राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥७॥

राजेन्द्र	महाराज !	**तदा**	उस समय
ते राज्ञः	वे राजा युधिष्ठिर का	**नाना कर्मसु**	अनेक कार्यों में
प्रियचिकीर्षवः	प्रिय करनेकी इच्छा वाले		

निरूपिता	नियुक्त होकर	**प्रवर्तन्तेऽस्म**	(उन कामोंको) कर रहे थे ॥७॥

ऋत्विक्सदस्यबहुवित्सु सुहृत्तमेषु
स्विष्टेषु सूनृतसमर्हणदक्षिणाभिः ।
चैद्ये च सात्वतपतेश्चरणं प्रविष्टे
चक्रुस्ततस्त्ववभृथस्नपनं द्युनद्याम् ॥ ८ ॥

ऋत्विक् सदस्य बहुवित् सु सुहृत्तमेषु सु इष्टेषु सूनृत समर्हण दक्षिणाभिः चैद्ये च सात्वतपतेः चरणं प्रविष्टे चक्रुः ततः तु अवभृथ स्नपनं द्युनद्याम् ॥८॥

ऋत्विक् सदस्य	ऋत्विज, सदस्य,	**सात्वतपतेः**	यदुनाथके
बहुवित् सु	बहुज्ञ पुरुषोंका	**चरणं प्रविष्टे**	चरणोंमें लीन हो जाने पर
सुहृत्तमेषु	बन्धु-बान्धवोंका		
सूनृत समर्हण	मधुरवाणी, उत्तम पूजन सामग्री	**ततः द्युनद्यां**	तब (सबने) सुरसरि में
दक्षिणाभिः	तथा दक्षिणा द्वारा	**अवभृथ स्नपनं**	अवभृथ स्नान
सु इष्टेषु	भली प्रकार सत्कार हो जाने पर	**चक्रुः**	किया ॥८॥
च चैद्ये	तथा चेदिराज शिशुपालके		

मृदङ्गशंखपणवधुन्धुर्यानकगोमुखाः
वादित्राणि विचित्राणि नेदुरावभृथोत्सवे ॥ ९ ॥

मृदङ्गः शङ्ख पणव धुन्धुः आनक गोमुखाः वादित्राणि विचित्राणि नेदुः अवभृथ उत्सवे ॥९॥

अवभृथ उत्सवे अवभृथ स्नानोत्सव के समय
मृदङ्ग शङ्ख मृदंग, शंख,
पणव पणव
धुन्धुः आनक भेरी, नगाड़े
गोमुखाः गोमुख
विचित्राणि अनेक प्रकारके
वादित्राणि वाद्य
नेदुः बजने लगे ॥९॥

नर्तक्यो ननृतुर्हृष्टा गायका यूथशो जगुः ।
वीणावेणुतलोन्नादस्तेषां स दिवमस्पृशत् ॥१०॥

नर्तक्यः ननृतुः हृष्टा गायका यूथशः जगुः वीणा वेणु तल उन्नादः तेषां स दिवं अस्पृशत् ॥१०॥

हृष्टा प्रसन्न होकर
नर्तक्यः नर्तकियां
ननृतुः नाचने लगीं
यूथशः समूह बनाकर
गायका जगुः गायक गाने लगे
तेषां वीणा वेणु उनकी वीणा, वंशी
तल स उन्नादः तालकी वह उच्च ध्वनि
दिवं अस्पृशत् स्वर्ग छूने लगी ॥१०॥

चित्रध्वजपताकाग्रैरिभेन्द्रस्यन्दनार्वभिः ।
स्वलंकृतैर्भटैर्भूपा निर्ययू रुक्ममालिनः ॥११॥

चित्रध्वज पताका अग्रैः इभ इन्द्र स्यन्दन अर्वभिः स्वलङ्कृतैः भटैः भूपा निर्ययुः रुक्ममालिनः ॥११॥

पताका अग्रैः ऊपर पताका लगी
चित्रध्वज अनेक प्रकारकी ध्वजा वाले
इभ स्यन्दन हाथी, रथ,
अर्वभिः घोड़ों द्वारा
स्वलङ्कृतैः खूब सजे
भटैः सैनिकों सहित
रुक्ममालिनः स्वर्णमालाधारी
इन्द्र इव इन्द्रके समान
भूपा निर्ययुः राज लोग निकले ॥११॥

यदुसृञ्जयकाम्बोजकुरुकेकयकोसलाः ।
कम्पयन्तो भुवं सैन्यैर्यजमानपुरः सराः ॥१२॥

यदु सृञ्जय काम्बोज कुरु केकय कोसलाः कम्पयन्तः भुवं सैन्यैः यजमान पुरः सराः ॥१२॥

यदु सृञ्जय	यदु, सृञ्जय,	**पुरः सराः**	आगे करके
काम्बोज कुरु	काम्बोज, कुरु	**सैन्यैः**	सेनासे
केकय कोसलाः	केकय, कोसल देश के (नरेश गण)	**भुवं कम्पयन्तः**	पृथ्वीको कंपित करते चले ॥१२॥
यजमान	यजमान (राजा युधिष्ठिर)को		

सदस्यर्त्विग्द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा ।
देवर्षिपितृगन्धर्वास्तुतुष्टुवुः पुष्पवर्षिणः ॥१३॥

सदस्य ऋत्विक् द्विज श्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा देव ऋषि पितृ गन्धर्वाः तुष्टुवुः पुष्प वर्षिणः ॥१३॥

सदस्य ऋत्विक्	सदस्य, ऋत्विजादि	**गन्धर्वाः**	गन्धर्व
द्विज श्रेष्ठा	श्रेष्ठ ब्राह्मण	**पुष्प वर्षिणः**	पुष्पोंकी वर्षा करते हुए
भूयसा	उच्च स्वरसे		
ब्रह्मघोषेण	वेदपाठ करते (चले)	**तुष्टुवुः**	स्तुत करने लगे ॥१३॥
देव ऋषि पितृ	देवता, ऋषि, पितर		

स्वलंकृता नरा नार्यो गन्धस्रग्भूषणाम्बरैः ।
विलिम्पन्त्योऽभिषिञ्चन्त्यो विजह्रुर्विविधै रसैः ॥१४॥

स्वलङ्कृता नरा नार्यः गन्ध स्रक् भूषण अम्बरैः विलिम्पन्त्यः अभिषिञ्चन्त्यः विजह्रुः विविधैः रसैः ॥१४॥

गन्ध स्रक चन्दन-माला
भूषण अम्बरैः वस्त्राभूषणोंसे
स्वलङ्कृता भली प्रकार अलंकृत
नरा नार्यः पुरुष-स्त्री
विविधैः रसैः अनेक प्रकारके (दधि आदि)रस
विलिम्पन्त्यः (एक दूससे पर) पोतते हुए
अभिषिञ्चन्त्यः चारों ओर जल (सब पर) उछालते
विजह्रुः क्रीड़ा करने लगे ॥१४॥

तैलगोरसगन्धोदहरिद्रासान्द्रकुङ्कुमैः ।
पुम्भिर्लिप्ताः प्रलिम्पन्त्यो विजह्रुर्वारयोषितः ॥१५॥

तैल गोरस गन्धोद हरिद्रा सान्द्र कुङ्कुमैः पुम्भिः लिप्ताः प्रलिम्पन्त्यः विजह्रुः वारयोषितः ॥१५॥

वारयोषितः वाराङ्गनाएं
तैल गोरस तेल, गोरस
गन्धोद सान्द्र सुगन्धित, गीली
हरिद्रा हल्दी,
कुङ्कुमैः कुंकुमसे
पुंभिः लिप्ताः पुरुषों द्वारा पोतीं गयीं
प्रलिम्पन्त्यः (उन्हें) भली प्रकार पोतती
विजह्रुः क्रीड़ा करने लगीं ॥१६॥

गुप्ता नृभिर्निरगमन्नुपलब्धुमेतद्
देव्यो यथा दिवि विमानवरैर्नृदेव्यः ।
ता मातुलेयसखिभिः परिषिच्यमानाः
सव्रीडहासविकसद्वदना विरेजुः ॥१६॥

गुप्ता नृभिः निरगमन् उपलब्धुं एतत् देव्यः यथा दिवि विमान वरैः नृदेव्यः ता मातुलेय सखिभिः परिषिच्य मानाः सव्रीडहास विकसत् वदना विरेजुः ॥१६॥

एतत् उपलब्धुं	इस अवसरका लाभ उठानेके लिए
यथा दिवि	जैसे आकाशमें
वरैः विमान	श्रेष्ठ विमानों पर
देव्यैः	देवियां आयी
नृभिः गुप्ता	सैनिकोंसे रक्षिता
नृदेव्यः	महारानियां (आयीं)
ता मातुलेय	वे (पाण्डवोंके) मामाके पुत्र
सखिभिः	तथा उनके मित्रों द्वारा
परिषिच्य माना:	चारों ओरसे भिगयी जाती हुई
सव्रीडहास	लज्जा पूर्ण हास्यसे
विकसत् वदना	प्रफुल्ल मुख
विरेजुः	शोभित हुईं ॥१६॥

ता देवरानुत सखीन् सिषिचुर्दृतीभिः
क्लिन्नाम्बरा विवृतगात्रकुचोरुमध्याः ।
औत्सुक्यमुक्तकबराच्च्यवमानमाल्याः
क्षोभं दधुर्मलधियां रुचिरैर्विहारैः ॥१७॥

ता देवरान् उत सखीन् सिषिचुः दृतीभिः क्लिन्न अम्बरा विवृत गात्र कुच उरु मध्याः औत्सुक्य मुक्त कबराः च्यवमान माल्याः क्षोभं दधुः मलधियां रुचिरैः विहारैः ॥१७॥

ता	वे
क्लिन्न अम्बरा	भीगे वस्त्र होनेसे
विवृत गात्र	झलकते शरीर
कुच उरु मध्याः	स्तन, जंघा, कटि वाली
देवरान् उत	देवरों तथा
सखीन्	सखाओंको
दृतीभिः	पिचकारियोंसे
सिषिचुतुः	भिगाने लगीं
औत्सुक्य	उत्सुकताके कारण
मुक्त कबराः	(उनके) जूड़े खुल गये,
च्यवमान माल्याः	मालाएं गिरने लगीं
रुचिरैः विहारैः	इस सुन्दर क्रीड़ासे
मलधियां	मलिन बुद्धि वालों में
क्षोभं दधुः	क्षोभ उत्पन्न करने लगीं ॥१७॥

स सम्राड् रथमारूढः सदश्वं रुक्ममालिनम् ।
व्यरोचत स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराडिव ॥१८॥

स सम्राट् रथं आरूढः सत् अश्वं रुक्ममालिनं व्यरोचत स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराट् इव ॥१८॥

स सम्राट्	वे सम्राट् युधिष्ठिर	**आरूढः**	चढ़े हुए
स्वपत्नीभिः	अपनी पत्नियोंके साथ	**क्रियाभिः**	क्रियाओंके साथ
रुक्ममालिनं	स्वर्णमाला धारी	**क्रतुराट् इव**	यज्ञपुरुषके समान
सत् अश्वं रथं	उत्तम घोड़ों वाले रथ पर	**व्यरोचत**	सुशोभित हुए ॥१८॥

पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते तमृत्विजः ।
आचान्तं स्नापयांचक्रुर्गङ्गायां सह कृष्णया ॥१९॥

पत्नी संयाज अवभृथ्यैः चरित्वा ते तं ऋत्विजः आचान्तं स्नापयान् चक्रुः गङ्गायां सह कृष्णया ॥१९॥

ते ऋत्विजः	उन ऋत्विजोंने	**आचान्तं**	आचमन कराके
तं पत्नी संयाज	उनसे पत्नी संयाज (नामक यज्ञ)	**सह कृष्णया**	द्रोपदीके साथ
अवभृथ्यैः	तथा अवभृथ	**गङ्गायां**	गंगामें
चरित्वा	सम्बन्धी कर्म कराके	**स्नापयान् चक्रुः**	स्नान कराया ॥१९॥

देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभिभिः समम् ।
मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ॥२०॥

देव दुन्दुभयः नेदुः नर दुन्दुभिभिः समं मुमुचुः पुष्प वर्षाणि देव ऋषि पितृ मानवाः ॥२०॥

नेदुः नर दुन्दुभिः	(उस समय) मानव दुन्दुभियों	**देव ऋषि**	देवता, ऋषि
समं देव	देवताओंकी	**पितृ मानवाः**	पितर और मनुष्य
दुन्दुभयः	दुन्दुभियां बजाने लगीं	**पुष्प वर्षाणि**	पुष्पोंकी वर्षा
		मुमुचुः	करने लगे ॥२०॥

सस्नुस्तत्र ततः सर्वे वर्णाश्रमयुता नराः ।
महापातक्यपि यतः सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ॥२१॥

सस्नुः तत्र ततः सर्वे वर्ण आश्रम युता नराः महापातकि अपि यतः सद्यः मुच्येत किल्बिषात् ॥२१॥

ततः सर्वे	फिर सब	**महापातकि**	महापाप करने वाला
वर्ण आश्रम	वर्ण और आश्रमों	**अपि**	भी
युता	वाले	**सद्यः**	तत्काल
नराः	मनुष्योंने	**मुच्येत**	पापोंसे
तत्र सस्नुः	वहाँ स्नान किया	**किल्बिषात्**	छूट जाता है ॥२१॥
यतः	क्योंकि (वहां स्नान करनेसे)		

अथ राजाहते क्षौमे परिधाय स्वलंकृतः ।
ऋत्विक्सदस्यविप्रादीनानर्चाभरणाम्बरैः ॥२२॥

अथ राजा अहते क्षौमे परिधाय सुअलंकृतः ऋत्विक् सदस्य विप्र आदीन् आनर्च आभरण अम्बरैः ॥२२॥

अथ राजा	फिर राजा युधिष्ठिरने	**परिधाय**	पहिन कर
अहते क्षौमे	दो बिना कटे-सिले रेशमी वस्त्र	**सुअलङ्कृतः**	उत्तम आभूषण धारण करके

ऋत्विक् सदस्य	ऋत्विक्, सदस्य,	**आनर्च**	सत्कार किया
विप्र आदीन्	ब्राह्मणादिका		॥२२॥
आभरण	आभूषण,		
अम्बरैः	वस्त्रोंसे		

बन्धुज्ञातिनृपान्न मित्रसुहृदोऽन्यांश्च सर्वशः ।
अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरो नृपः ॥२३॥

बन्धु ज्ञाति नृपान् मित्र सुहृदः अन्यान् च सर्वशः अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरः नृपः ॥२३॥

नारायणपरः	नारायण परायण	**नृपान्**	राजाओं
नृपः अभीक्ष्णं	राजा युधिष्ठिरने (इस प्रकार) बराबर	**मित्र सुहृदः**	मित्र, बान्धवों
		च	तथा
		अन्यान् सर्वशः	दूसरे सभीका
बन्धु ज्ञाति	सम्बन्धी एवं जाति के	**पूजयामास**	सत्कार किया ॥२३॥

सर्वे जनाः सुररुचो मणिकुण्डलस्रग्-
गुष्णीषकञ्चुकदुकूलमहार्घ्यहाराः ।
नार्यश्च कुण्डलयुगालकवृन्दजुष्ट-
वक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥२४॥

सर्वे जनाः सुररुचः मणि कुण्डल स्रक् उष्णीष कञ्चुक दुकूल महार्घ्य हाराः नार्यः च कुण्डलयुग अलकवृन्द जुष्ट वक्त्र श्रियः कनक मेखलया विरेजुः ॥२४॥

सर्वे जनाः	(उस समय) सब लोग	**सुररुचः**	देवताओंके समान कान्तिमान

मणि	मणियोंके
कुण्डल स्रक्	कुण्डल, माला
उष्णीष कञ्चुक	पगड़ी, कुर्त्ता
दुकूल	दुपट्टा,
महार्घ्य हाराः	बहुमूल्य हार पहिने
च नार्यः	तथा स्त्रियां
कुण्डलयुग	युगल कुण्डलेंयुक्त
अलकवृन्द जुष्ट	अलकावली वाली
वक्त्र श्रियः	मुखकी शोभा तथा
कनक मेखलया	स्वर्ण काञ्चीसे
विरेजुः	शोभित हुई ॥२४॥

अथर्त्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः ।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा राजानो ये समागताः ॥२५॥

अथ ऋत्विजः महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः ब्रह्म क्षत्रिय विट् शूद्रा राजानः ये समागताः ॥२५॥

अथ महाशीलाः	फिर महाशील
ऋत्विजः	ऋत्विक्गण
ब्रह्मवादिनः	वेदवादी
सदस्या	सदस्य
ब्रह्म क्षत्रिय	ब्राह्मण, क्षत्रिय
विट् शूद्रा	वैश्य, शूद्र,
राजानः	राज लोग
ये समागताः	जो सब ओरसे आये थे ॥२५॥

देवर्षिपितृभूतानि लोकपालाः सहानुगाः ।
पूजितास्तमनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुर्नृप ॥२६॥

देव ऋषि पितृ भुतानि लोकपालाः सह अनुगाः पूजिताः तं अनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुः नृप ॥२६॥

नृप	राजन् !
देव ऋषि पितृ	देवता, ऋषि, पितर
भूतानि	प्रमथ गण
सह अनुगाः	अनुचरोंके साथ
लोकपालाः	लोकपाल गण
पूजिताः	पूजित होकर
तं अनुज्ञाप्य	उन (धर्मराज)से अनुमति लेकर
स्वधामानि	अपने धाम
ययुः	चले गये ॥२६॥

हरिदासस्य राजर्षे राजसूयमहोदयम् ।
नैवातृप्यन् प्रशंसन्तः पिबन् मर्त्योऽमृतं यथा ॥२७॥

हरिदासस्य राजर्षे राजसूय महा उदयं न एव अतृप्यन् प्रशंसन्तः पिबन् मर्त्यः अमृतं यथा ॥२७॥

यथा मर्त्यः	जैसे मनुष्य	**राजसूय**	राजसूय यज्ञके
अमृतं पिबन्	अमृत पीते हुए (तृप्त नहीं होता)	**महा उदयं**	महोत्कर्षकी
		प्रशंसन्तः	प्रशंसा करते हुए
हरिदासस्य	श्रीहरिके भक्त	**अतृप्यन् न एव**	तृप्त नहीं ही होते थे ॥२७॥
राजर्षे	राजर्षि युधिष्ठिरके		

ततो युधिष्ठिरो राजा सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ।
प्रेम्णा निवासयामास कृष्णं च त्यागकातरः ॥२८॥

ततः युधिष्ठिरः राजा सुहृत् सम्बन्धि बान्धवान् प्रेम्णा निवासयामास कृष्णं च त्यागकातरः ॥२८॥

ततः राजा	उस समय राजा	**बान्धवान्**	बन्धुजनोंको
युधिष्ठिरः	युधिष्ठिरने	**च कृष्णं प्रेम्णा**	तथा श्रीकृष्णको प्रेम से
त्यागकातरः	छोड़ने में व्याकुल होकर	**निवासयामास**	टिकाये रखा ॥२८॥
सुहृत् सम्बंधि	मित्र, सम्बन्धी		

भगवानपि तत्राङ्ग न्यवात्सीत्तत्प्रियङ्करः ।
प्रस्थाप्य यदुवीरांश्च साम्बादींश्च कुलस्थलीम् ॥२९॥

भगवान् अपि तत्र अङ्ग न्यवात्सीत् तत् प्रियङ्करः प्रस्थाप्य यदुवीरान् च साम्ब आदीन् च कुशस्थलीम् ॥२९॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	**यदुवीरान्**	यादव वीरोंको
तत् प्रियङ्करः	उनका प्रिय करने वाले	**कुशस्थलीं**	द्वारिका
		प्रस्थाप्य	भेजकर
भगवान् अपि	भगवान भी	**तत्र न्यवात्सीत्**	वहीं निवास करते रहे ॥२९॥
साम्ब आदीन्	साम्ब आदि		

इत्थं राजा धर्मसुतो मनोरथमहार्णवम् ।
सुदुस्तरं समुत्तीर्य कृष्णेनासीद् गतज्वरः ॥३०॥

इत्थं राजा धर्मसुतः मनोरथ महार्णवं सुदुस्तरं सम उत्तीर्य कृष्णेन आसीत् गतज्वरः ॥३०॥

इत्थं राजा	इस प्रकार राजा	**महार्णवं**	महासागरको
धर्मसुतः	धर्मपुत्र युधिष्ठिर	**सम उत्तीर्य**	भली प्रकार पार करके
कृष्णेन सुदुस्तरं	श्रीकृष्ण द्वारा अत्यन्त दुष्पार	**गतज्वरः**	संतापहीन
मनोरथ	मनोरथ रूपी	**आसीत्**	हो गये ॥३०॥

एकदान्तःपुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियम् ।
अतप्यद् राजसूयस्य महित्वं चाच्युतात्मनः ॥३१॥

एकदा अन्तःपुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियं अतप्यत् राजसूयस्य महित्वं च अच्युत आत्मनः ॥३१॥

एकदा	एक बार	**श्रियं च**	शोभा तथा
अच्युत आत्मनः	भगवानमें अर्पित चित्त	**राजसूयस्य**	राजसूय यज्ञकी
		महित्वं वीक्ष्य	महिमा देखकर
तस्य अन्तःपुरे	उन (युधिष्ठिर)के अन्तःपुरकी	**दुर्योधनः**	दुर्योधन
		अतप्यत्	संतप्त हुआ ॥३१॥

यस्मिन् नरेन्द्रदितिजेन्द्रसुरेन्द्रलक्ष्मी-
र्नाना विभान्ति किल विश्वसृजोपकॢप्ताः ।
ताभिः पतीन् द्रुपदराजसुतोपतस्थे
यस्यां विषक्तहृदयः कुरुराडतप्यत् ॥३२॥

यस्मिन् नरेन्द्र दितिजेन्द्र सुरेन्द्र लक्ष्मीः नाना विभान्ति किल विश्वसृज उपकॢप्ताः ताभिः पतीन् द्रुपदराजसुता उपतस्थे यस्यां विषक्तहृदयः कुरुराट् अतप्यत् ॥३२॥

यस्मिन्	जिस (अन्तःपुर)में	**उपतस्थे**	(पतियोंकी) सेवा करती थीं
किल विश्वसृज	अहो विश्वकर्माकी*		
उपकॢप्ताः	उपस्थित हुई	**यस्मिन्**	जिनमें
नरेन्द्र दितिजेन्द्र	नरेन्द्र, दैत्येन्द्र	**विषक्तहृदयः**	आसक्त चित्त
सुरेन्द्र लक्ष्मीः	सुरेन्द्रोंकी सम्पत्ति	**कुरुराट्**	कौरव राजा दुर्योधन
नाना विभान्ति	अनेक रूपोंमें शोभित थी	**अतप्यत्**	सन्तप्त हुआ था ॥३२॥
ताभिः	उनके द्वारा		
द्रुपदराजसुता	द्रुपदराज तनया		

यस्मिंस्तदा मधुपतेर्महिषीसहस्रं
श्रोणीभरेण शनकैः क्वणदंघ्रिशोभम् ।
मध्ये सुचारु कुचकुंकुमशोणहारं
श्रीमन्मुखं प्रचलकुण्डलकुन्तलाढ्यम् ॥३३॥

---

* 'विश्वसृज'का अर्थ कुछ टीकाकारोंने **मय**दानव किया है, किन्तु पाण्डव-राजधानी विश्वकर्माकी बनायी है (१०/५८/२४)

यस्मिन् तदा मधुपतेः महिषी सहस्रं श्रोणीभरेण शनकैः क्वणत् अंघ्रि शोभं मध्ये सुचारु कुच कुङ्कुम शोण हारं श्रीमत् मुखं प्रचल कुण्डल कुन्तल आढ्यम् ॥३३॥

यस्मिन् तदा	जिस (राज-भवन) में उस समय	**मध्ये**	मध्य (कण्ठ)में किये
श्रोणी भरेण	नितम्बके भारसे	**प्रचल कुण्डल**	हिलते कुण्डलों तथा
शनकैः	धीरे-धीरे	**कुन्तल आढ्यं**	सघन अलकावलीसे
क्वणत् अंघ्रि	झंकार करते चरणों की	**श्रीमत् मुखं**	शोभाशाली मुख-वाली
शोभं	शोभा वाली,	**मधुपतेः**	मधुपति श्रीकृष्णकी
कुच कुंकुम	स्तनों पर लगे कुंकुमसे	**महिषी सहस्रं**	सहस्रों रानियां थीं ॥३३॥
शोण हारं	अरुण हार		

सभायां मयकल्पितायां क्वापि धर्मसुतोऽधिराट् ।
वृतोऽनुजैर्बन्धुभिश्च कृष्णेनापि स्वचक्षुषा ॥३४॥

सभायां मय कल्पितायां क्वापि धर्मसुतः अधिराट् वृतः अनुजैः बन्धुभिः च कृष्णेन अपि स्वचक्षुषा ॥३४॥

क्वापि	कभी	**अनुजैः बन्धुभिः**	भाइयों, बन्धुगणों
मय कल्पितयां	मय दानवकी बनायी	**च स्वचक्षुषा**	तथा अपने नेत्र स्वरूप
सभायां	सभामें	**कृष्णेन**	श्रीकृष्णसे
अधिराट्	सम्राट्	**अपि वृतः**	भी घिरे हुए ॥३४॥
धर्मसुतः	धर्मपुत्र युधिष्ठिर		

आसीनः काञ्चने साक्षादासने मघवानिव ।
पारमेष्ठ्यश्रिया जुष्टः स्तूयमानश्च वन्दिभिः ॥३५॥

आसीनः काञ्चने साक्षात् आसने मघवान् इव पारमेष्ठच श्रिया जुष्टः स्तुयमानः च बन्दिभिः ॥३५॥

काञ्चने आसने	स्वर्ण सिंहासन पर	**च बन्दिभिः**	तथा बन्दियों द्वारा
साक्षात्	साक्षात्	**स्तूयमानः**	स्तुत होते
मघवान् इव	इन्द्रके समान	**आसीनः**	विराजमान थे
पारमेष्ठचः	चक्रवर्तित्वकी		॥३५॥
श्रिया जुष्टः	शोभासे सम्पन्न		

तत्र दुर्योधनो मानी परीतो भ्रातृभिर्नृप ।
किरीटमाली न्यविशदसिहस्तः क्षिपन् रुषा ॥३६॥

तत्र दुर्योधनः मानी परीतः भ्रातृभिः नृप किरीट माली न्यविशत् असिहस्तः क्षिपन् रुषा ॥३६॥

नृप	राजन् !	**असिहस्तः**	हाथमें तलवार लिया
तत्र मानी	वहाँ अभिमानी		
दुर्योधनः	दुर्योधन	**रुषा क्षिपन्**	क्रोधसे (द्वारपालों) को झिड़कता
भातृभिः परीतः	भाइयोंसे घिरा		
किरीट माली	मुकुट, मालाधारी	**न्यविशत्**	प्रविष्ट हुआ ॥३६॥

स्थलेऽभ्यगृह्णात् वस्त्रान्तं जलं मत्वा स्थलेऽपतत् ।
जले च स्थलवद् भ्रान्त्या मयमायाविमोहितः ॥३७॥

स्थले अभ्य गृह्णात् वस्त्र अन्तं जलं मत्वा स्थले अपतत् जले च स्थलवत् भ्रान्त्या मय माया विमोहितः ॥३७॥

मय माया	मय दानवकी माया से	**विमोहितः**	मोहित होकर

स्थले जलं	स्थलमें जल
मत्वा	मानकर
वस्त्र अन्तं	वस्त्रका छोर
अभ्य गृह्णात्	ऊपर उठा लिया,
जले च	जलमें
स्थलवत्	स्थलके समान
भ्रान्त्या	भ्रमसे
स्थले अपतत्	उस स्थान पर गिर पड़ा ॥३७॥

जहास भीमस्तं दृष्ट्वा स्त्रियो नृपतयोऽपरे ।
निवार्यमाणा अप्यङ्गराज्ञा कृष्णानुमोदिताः ॥३८॥

जहास भीमः तं दृष्ट्वा स्त्रियः नृपतयः अपरे निवार्यमाणा अपि अङ्ग राज्ञा कृष्ण अनुमोदिताः ॥३८॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !
तं दृष्ट्वा	उसे देखकर
भीमः स्त्रियः	भीमसेन, स्त्रियां
अपरे नृपतयः	दूसरे राजा
राज्ञा	राजा युधिष्ठिरके
निवार्यमाणा	बहुत रोकने पर
अपि	भी
कृष्ण	श्रीकृष्ण द्वारा
अनुमोदिताः	समर्थन पाकर
जहास	हँसने लगे ॥३८॥

सव्रीडितोऽवाग्वदनो रुषा ज्वलन्
निष्क्रम्य तूष्णीं प्रययौ गजाह्वयम् ।
हाहेति शब्दः सुमहानभूत् सता-
मजातशत्रुर्विमना इवाभवत् ।
बभूव तूष्णीं भगवान् भुवो भरं
समुज्जिहीर्षुर्भ्रमति स्म यद्दृशा ॥३९॥

सव्रीडितः अवाक् वदनः रुषा ज्वलन् निष्क्रम्य तूष्णीं प्रययौ गज आह्वयं हा हा इति शब्दः सुमहान् अभूत् सतां अजातशत्रुः विमना इव अभवत् बभूव तूष्णीं भगवान् भुवः भरं सम उज्जिहीर्षुः भ्रमति स्म यत् दृशा ॥३९॥

सव्रीडितः	वह लज्जित होकर
अवाक् वदनः	सिर झुकाये,
रुषा ज्वलन्	क्रोधसे जलता हुआ
तूष्णीं निष्क्रम्य	(वहांसे) चुपचाप निकल कर
गज आह्वयं	हस्तिनापुर
प्रययौ	चला गया,
सतां हा हा इति	(उस समय) सज्जनों में 'हाय हाय' ऐसा
सुमहान्	बहुत बड़ा
शब्दः अभूत्	शब्द होने लगा
अजातशत्रुः	युधिष्ठिर
विमना इव	उदास जैसे
अभवत्	हो गये, पर
यत् दृशा	जिनकी दृष्टिसे
भ्रमति स्म	(दुर्योधन) भ्रमति हुआ था वे
भुवः भरं	पृथ्वीका भार
सम	पूर्णतः
उज्जिहीर्षुः	उतारनेकी इच्छा वाले
भगवान्	भगवान
तूष्णीं बभूव	चुप हो गये ॥३९॥

एतत्तेऽभिहितं राजन् यत् पृष्टोऽहमिह त्वया ।
सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥४०॥

एतत् ते अभिहितं राजन् यत् पृष्टः अहं इह त्वया सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥४०॥

राजन्	राजन् !
यत् त्वया	जो तुम्हारे द्वारा
इह अहं पृष्टः	इस विषयमें मुझसे पूछा गया था
एतत्	वह यह
महाक्रतौ	महायज्ञ
राजसूये	राजसूयमें

सुयोधनस्य	दुर्योधनकी	**अभिहितं**	सुना दी ॥४०॥
दौरात्म्यं ते	दुष्टता तुम्हें		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां **संहितायां** दशमस्कन्धे उत्तरार्धे दुर्योधनमानभंगो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

अथान्यदपि कृष्णस्य शृणु कर्माद्भुतं नृप ।
क्रीडानरशरीरस्य यथा सौभपतिर्हतः ॥ १ ॥

अथ अन्यत् अपि कृष्णस्य शृणु कर्म अद्भुतं नृप क्रीडानर शरीरस्य यथा सौभपतिः हतः ॥१॥

नृप	राजन् !	**अद्भुतं कर्म**	अद्भुत कर्म
क्रीडानर	लीलासे मनुष्य	**यथा सौभपतिः**	जैसे सौभ विमानके स्वामी
शरीरस्य	शरीरधारी		
कृष्णस्य	श्रीकृष्णका	**हतः शृणु**	(शाल्व)को मारा सुनो ॥१॥
अथ	अब		
अन्यत् अपि	दूसरा भी		

शिशुपालसखः शाल्वो रुक्मिण्युद्वाह आगतः ।
यदुभिर्निर्जितः संख्ये जरासंधादयस्तथा ॥ २ ॥

शिशुपालसखः शाल्वः रुक्मिणि उद्वाह आगतः यदुभिः निर्जितः संख्ये जरासन्ध आदयः तथा ॥२॥

शिशुपालसखः	शिशुपालका मित्र	**आगतः**	आने पर
शाल्वः तथा	शाल्व और	**संख्ये यदुभिः**	युद्धमें यादवों द्वारा
जरासन्ध	जरासन्ध	**निर्जितः**	जीत लिए गये ॥२॥
आदयः	आदि		
रुक्मिणि उद्वाह	रुक्मिणीके विवाह में		

शाल्वः प्रतिज्ञामकरोत् शृण्वतां सर्वभूभुजाम् ।
अयादवीं क्ष्मां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ॥ ३ ॥

शाल्वः प्रतिज्ञां अकरोत् शृण्वतां सर्व भूभुजां अयादवीं क्ष्मां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ॥३॥

सर्व भूभुजां	सब राजाओंके	**क्ष्मां अयादवीं**	पृथ्वीको यादव हीना
शृण्वतां शाल्वः	सुनाते हुए शाल्वने		
प्रतिज्ञां अकरोत्	प्रतिज्ञा की	**करिष्ये**	कर दूंगा' ॥३॥
मम पौरुषं	'मेरा पुरुषार्थ		
पश्यत	देखना		

इति मूढः प्रतिज्ञाय देवं पशुपतिं प्रभुम् ।
आराधयामास नृप पांसुमुष्टिं सकृद् ग्रसन् ॥ ४ ॥

इति मूढः प्रतिज्ञाय देवं पशुपतिं प्रभुं आराधयामास नृप पांसु मुष्टिं सकृत् ग्रसन् ॥४॥

नृप	राजन् !	**प्रभुं पशुपतिं**	भगवान पशुपतिकी
इति प्रतिज्ञाय	इस प्रकार प्रतिज्ञा करके	**आराधयामास**	आराधना करने लगा ॥४॥
मूढः सकृत्	वह मूर्ख एक बार		
पांसु मुष्टिं	एक मुट्ठी भस्म		
ग्रसन्	खाकर		

संवत्सरान्ते भगवानाशुतोष उमापतिः ।
वरेणच्छन्दयामास शाल्वं शरणमागतम् ॥ ५ ॥

संवत्सर अन्ते भगवान् आशुतोष उमापतिः वरेण छन्दयामास शाल्वं शरणं आगतम् ॥५॥

संवत्सर अन्ते एक वर्ष बीत जाने पर
आशुतोष शीघ्र सन्तुष्ट होने वाले
भगवान् भगवान
उमापतिः उमापतिने
शरण आगतं शरणमें आये
शाल्वं वरेण शाल्वसे वरदान
छन्दयामास मांगनेको कहा ॥५॥

देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥ ६ ॥

देव असुर मनुष्याणां गन्धर्व उरग रक्षसां अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥६॥

स वृष्णिभीषणं उसने यादवोंको भयभीत करने वाला
देव असुर देवता, असुर
मनुष्याणां मनुष्यों
गन्धर्व उरग गन्धर्व, नाग तथा
रक्षसां अभेद्यं राक्षसोंके लिए अभेद्य
कामगं इच्छानुसार
यानं वव्रे चलने वाला विमान मांगा ॥६॥

तथेति गिरिशादिष्टो मयः परपुरञ्जयः ।
पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात्सौभमयस्मयम् ॥ ७ ॥

तथा इति गिरिश आदिष्टः मयः परपुरञ्जयः पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात् सौभं अयस् मयम् ॥७॥

तथा इति 'तथास्तु' (कहकर)
गिरिश भगवान शिवके
आदिष्टः आदेश देनेसे
परपुरञ्जयः शत्रु नगरोंको जीतने वाले
मयः मय दानवने
अयस् मयं सौभं लौह मय सौभ नामक

पुरं निर्माय (उड़ता) नगर बना-कर | **शाल्वाय प्रदात्** शाल्वको दिया ॥७॥

स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम् ।
ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥ ८ ॥

स लब्ध्वा कामगं यानं तमः धाम दुरासदं ययौ द्वारवतीं शाल्वः वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥८॥

कामगं	इच्छाधारी	**वृष्णिकृतं वैरं**	यादवोंसे की गयी शत्रुताको
तमः धाम	अन्धकारमय	**स्मरन्**	स्मरण करके
दुरासदं यानं	अभेद्य विमानको	**द्वारवतीं ययौ**	द्वारिका पहुँचा ॥८॥
लब्ध्वा	पाकर		
स शाल्वः	वह शाल्व		

निरुद्धय सेनया शाल्वो महत्या भरतर्षभ ।
पुरीं बभञ्जोपवनान्युद्यानानि च सर्वशः ॥ ९ ॥

निरुद्धय सेनया शाल्वः महत्या भरतर्षभ पुरीं बभञ्ज उपवनानि उद्यानानि च सर्वशः ॥९॥

भरतर्षभ	भरतश्रेष्ठ परीक्षित् !	**उपवनानि**	उपवनों
		च सर्वशः	तथा सब
महत्या सेनया	बहुत बड़ी सेनासे	**उद्यानानि**	पुष्पोद्यानोंको
शाल्वः	शाल्वने	**बभञ्ज**	तोड़ने लगा ॥९॥
पुरीं निरुद्धय	द्वारिकापुरीको घेर कर		

सगोपुराणि द्वाराणि प्रासादाट्टालतोलिकाः ।
विहारान् स विमानाग्र्यान्निपेतुः शस्त्रवृष्टयः ॥१०॥

स गोपुराणि द्वाराणि प्रासाद अट्टाल तोलिकाः विहारान् स विमान अग्रचात् निपेतुः शस्त्रवृष्टयः ॥१०॥

स गोपुराणि	गोपुरोंके साथ	**तोलिकाः**	मुंडेलियों पर
द्वाराणि	द्वारों	**विमान अग्रचात्**	विमानके अगले भागसे
स विहारान्	घूमनेके स्थानों सहित	**शस्त्रः-**	शस्त्रोंकी
प्रासाद अट्टाल	भवनोंकी अटारियों एवं	**वृष्टयः निपेतुः**	वर्षा होने लगी ॥१०॥

शिला द्रुमाश्चाशनयः सर्पा आसारशर्कराः ।
प्रचण्डश्चक्रवातोऽभूद् रजसाऽऽच्छादिता दिशः ॥११॥

शिला द्रुमाः च अशनयः सर्पा आसार शर्कराः प्रचण्डः चक्रवातः अभूत् रजसा आच्छादितः दिशा ॥११॥

शिला द्रुमाः च	चट्टानें, वृक्ष तथा	**चक्रवातः**	बवण्डर
अशनयः	वज्र, सर्प	**अभूत्**	उठा (जिससे)
आसार शर्कराः	ओलोंकी वर्षा होने लगी	**दिशः रजसा**	दिशाएँ धूलिसे
प्रचण्डः	प्रचण्ड	**आच्छादिता**	ढक गयीं ॥११॥

इत्यर्द्यमाना सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशम् ।
नाभ्यपद्यत शं राजंस्त्रिपुरेण यथा मही ॥१२॥

इति अर्द्यमाना सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशं न अभ्यपद्यत शं राजन् त्रिपुरेण यथा मही ॥१२॥

राजन्	राजन् !	**इति सौभेन**	इस प्रकार सौभ द्वारा
यथा	जैसे (पहिले)		
त्रिपुरेण मही	त्रिपुरों द्वारा पृथ्वी (पीड़ित हुई थी)		

भृशं अर्द्यमाना बार-बार रौंदी जाती
कृष्णस्य नगरी श्रीकृष्णकी पुरी
शं न अभ्यपद्यत शान्ति नहीं पा सकी ॥१२॥

प्रद्युम्नो भगवान् वीक्ष्य बाध्यमाना निजाः प्रजाः ।
मा भैष्टेत्यभ्यधाद् वीरो रथारूढो महायशाः ॥१३॥

प्रद्युम्नः भगवान् वीक्ष्य बाध्यमानाः निजाः प्रजाः मा भैष्ट इति अभ्यधात् वीरः रथारूढः महायशाः ॥१३॥

निजाः प्रजाः अपनी प्रजाको
बाध्यमानाः उत्पीड़िता
वीक्ष्य देखकर
महायशाः वीरः महान् यशस्वी वीर
भगवान् भगवान
प्रद्युम्नः प्रद्युम्न
मा भैष्ट इति 'मत डरो' इस प्रकार
अभ्यधात् बोलकर
रथारूढः रथ पर चढ़े ॥१३॥

सात्यकिश्चारुदेष्णश्च साम्बोऽक्रूरः सहानुजः ।
हार्दिक्यो भानुविन्दश्च गदश्च शुकसारणौ ॥१४॥

सात्यकिः चारुदेष्णः च साम्बः अक्रूरः सह अनुजः हार्दिक्यः भानुविन्दः च गदः च शुक सारणौ ॥१४॥

सात्यकिः च सात्यकि और
चारूदेष्णः चारुदेष्ण
साम्बः साम्ब तथा
सह अनुजः भाईके साथ
अक्रूरः अक्रूर,
हार्दिक्यः हार्दिक्य
भानुविन्दः च भानुविन्द तथा
गदः गद
शुक च सारणौ शुक एवं सारण ॥१४॥

अपरे च महेष्वासा रथयूथपयूथपाः ।
निर्ययुर्दंशिता गुप्ता रथेभाश्वपदातिभिः ॥१५॥

अपरे च महा इषु आसा रथ यूथप यूथपाः निर्ययुः दंशिता गुप्ता रथ इभ अश्व पदातिभिः ॥१५॥

अपरे च	दूसरे भी	**पदातिभिः**	तथा पैदलोंसे
महा इषु आसा	महा धनुर्धर	**गुप्ता**	रक्षित होकर
रथ यूथपाः	रथी सेनानायकोंके	**दंशिता निर्ययुः**	कवच पहिनकर निकले ॥१५॥
यूथप	यूथपति		
रथ इभ अश्व	रथ, हाथी, घोड़ों		

ततः प्रववृते युद्धं शाल्वानां यदुभिः सह ।
यथासुराणां विबुधैस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥१६॥

ततः प्रववृते युद्धं शाल्वानां यदुभिः सह यथा असुराणां विबुधैः तुमुलं लोमहर्षणम् ॥१६॥

यथा असुराणां	जैसे असुरोंका	**यदुभिः सह**	यादवोंके साथ
विबुधैः	देवताओंके साथ (युद्ध हुआ था)	**तुमुलं**	तुमुल
		लोमहर्षणं	रोमहर्षक
ततः शाल्वानां	उस समय शाल्वके सैनिकोंका	**युद्धं प्रववृते**	युद्ध होने लगा ॥१६॥

ताश्च सौभपतेर्माया दिव्यास्त्रै रुक्मिणीसुतः ।
क्षणेन नाशयामास नैशं तम इवोष्णगुः ॥१७॥

ताः च सौभपतेः माया दिव्यास्त्रैः रुक्मिणीसुतः क्षणेन नाशयामास नैशं तमः इव उष्णगुः ॥१७॥

सौभपतेः	सौभके स्वामी (शाल्व)की	**दिव्यास्त्रैः**	दिव्यास्त्रोंसे
ताः माया च	उस माया (बवण्डर वर्षादि)को भी	**क्षणेन**	क्षण भरमें
रुक्मिणीसुतः	रुक्मिणी-नन्दन प्रद्युम्नने	**नैशं तमः**	रात्रिके अन्धकारको
		उष्णगुः इव	सूर्यके समान
		नाशयामास	नष्ट कर दिया ॥१७॥

विव्याध पञ्चविंशत्या स्वर्णपुङ्खैरयोमुखैः ।
शाल्वस्य ध्वजिनीपालं शरैः संनतपर्वभिः ॥१८॥

विव्याध पञ्चविंशत्या स्वर्णपुङ्खैः अयः मुखैः शाल्वस्य ध्वजिनीपालं शरैः सन्नत पर्वभिः ॥१८॥

पञ्चविंशत्या	पच्चीस	**शरैः**	बाणोंसे
स्वर्णपुङ्खैः	सोनेके पंखवाले	**शाल्वस्य**	शाल्वके
अयः मुखैः	लोहेकी नोक वाले	**ध्वजिनीपालं**	सेनापतिको
सन्नत पर्वभिः	झुकी गांठों वाले	**विव्याध**	बेधा ॥१८॥

शतेनाताडयच्छाल्वमेकैकेनास्य सैनिकान् ।
दशभिर्दशभिर्नेतॄन् वाहनानि त्रिभिस्त्रिभिः ॥१९॥

शतेन अताडयत् शाल्वं एक एकेन अस्य सैनिकान् दशभिः दशभिः नेतॄन् वाहनानि त्रिभिः त्रिभिः ॥१९॥

शतेन शाल्वं	सौ (बाणों)से शाल्व को	**त्रिभिः त्रिभिः**	तीन तीन (बाणों) से
एक एकेन	एक एकसे	**वाहनानि**	वाहनोंको
अस्य सैनिकान्	इसके सैनिकोंको	**अताडयत्**	मारा ॥१९॥
दशभिः दशभिः	दस दससे		
नेतॄन्	सेनानायकोंको		

तदद्भुतं महत् कर्म प्रद्युम्नस्य महात्मनः ।
दृष्ट्वा तं पूजयामासुः सर्वे स्वपरसैनिकाः ॥२०॥

तत् अद्भुतं महत् कर्म प्रद्युम्नस्य महात्मनः दृष्ट्वा तं पूजयामासुः सर्वे स्व पर सैनिकाः ॥२०॥

महात्मनः	महात्मा	**सर्वे स्व पर**	सब अपने-पराये
प्रद्युम्नस्य	प्रद्युम्नका	**सैनिकाः तं**	सैनिकोंने उनकी
तत् महत्	वह महान्	**पूजयामासुः**	प्रशंसा करने लगे
अद्भुतं	अद्भुत		॥२०॥
कर्म दृष्ट्वा	कर्म देखकर		

बहुरूपैकरूपं तद् दृश्यते न च दृश्यते ।
मायामयं मयकृतं दुर्विभाव्यं परैरभूत् ॥२१॥

बहुरूप एक रूपं तत् दृश्यते न च दृश्यते मायामयं मयकृतं दुर्विभाव्यं परैः अभूत् ॥२१॥

तत् मयकृतं	वह मय दानव निर्मित	**न च दृश्यते**	कभी नहीं भी दीखता था (अतः)
मायामयं	मायामय (विमान)	**परैः दुर्विभाव्यं**	शत्रु के लिए उसकी स्थिति जानना कठिन
बहुरूप	कभी अनेक रूप		
एक रूपं	कभी एक रूप		
दृश्यते	कभी दीखता था,	**अभूत्**	हो गयी थी ॥२१॥

क्वचिद् भूमौ क्वचिद् व्योम्नि गिरिमूर्ध्नि जले क्वचित् ।
अलातचक्रवद् भ्राम्यत् सौभं तद् दुरवस्थितम् ॥२२॥

क्वचित् भूमौ क्वचित् व्योम्नि गिरिमूर्ध्नि जले क्वचित् अलात् चक्रवत् भ्राम्यत् सौभं तत् दुः अवस्थितम् ॥२२॥

क्वचित् भूमौ	कभी पृथ्वी पर
क्वचित्	कभी
व्योम्नि	आकाशमें
क्वचित्	कभी
गिरिमूर्ध्नि	पर्वतके ऊपर या
जले	जलमें
अलात् चक्रवत्	अलात चक्रके समान
भ्राम्यत्	घूमता था
तत्	उसका
दुः अवस्थितं	ठहरना कठिन था ॥२२॥

यत्र यत्रोपलक्ष्येत ससौभः सहसैनिकः ।
शाल्वस्ततस्ततोऽमुञ्चन् शरान् सात्वतयूथपाः ॥२३॥

यत्र यत्र उपलक्ष्येत ससौभः सहसैनिकः शाल्वः ततः ततः अमुञ्चन् शरान् सात्वत यूथपाः ॥२३॥

ससौभः	सौभ विमानके साथ एवं
सहसैनिकः	सैनिकोंके साथ
शाल्वः यत्र यत्र	शाल्व जहाँ जहाँ
उपलक्ष्येते	दीखता था
सात्वत यूथपाः	यादव सेनानायक
ततः ततः शरान्	वहीं वहीं बाण
अमुञ्चन्	मारते थे ॥२३॥

शरैरग्न्यर्कसंस्पर्शैराशीविषदुरासदैः ।
पीड्यमानपुरानीकः शाल्वोऽमुह्यत् परेरितैः ॥२४॥

शरैः अग्नि अर्क संस्पर्शैः आशीविष दुरासदैः पीड्यमानः पुर अनीकः शाल्वः मुह्यत् पर ईरितैः ॥२४॥

पर ईरितैः	शत्रुओं द्वारा छोड़े गये
अग्नि अर्क संस्पर्शैः	अग्नि और सूर्यके समान उष्ण-स्पर्श वाले
आशीविष	सर्प विषके समान
दुरासदैः	असह्य
शरैः	बाणोंसे
पीड्यमानः	पीडित होकर

पुर अनीकः विमान और सेना सहित

शाल्वः मुह्यत् शाल्व मूर्छित हो गया ॥२४॥

शाल्वानीकपशस्त्रौर्घवृ ष्णिवीरा भृशार्दिताः ।
न तत्यजू रणं स्वं स्वं लोकद्वयजिगीषवः ॥२५॥

शाल्व अनीकप शस्त्र औधैः वृष्णि वीरा भृश अर्दिताः न तत्यजू रणं स्वं स्वं लोकद्वय जिगीषवः ॥२५॥

लौक द्वय दोनों लोकों (इह लोक और परलोक)को
जिगीषवः जीतनेकी इच्छा वाले
बृष्णि वीरा यादव वीरोंने
शाल्व अनीकप शाल्वके सेनापतियों की
अस्त्र ओधैः अस्त्र वर्षासे
भृश आर्दिताः बार-बार रौंदे जाने पर भी
स्वं स्वं रणं अपना-अपना युद्ध-मोर्चा
न तत्यजू नहीं छोड़ा ॥२५॥

शाल्वामात्यो द्यु मान् नाम प्रद्यु म्नं प्राक् प्रपीडितः ।
आसाद्य गदया मौर्व्या व्याहत्य व्यनदद् बली ॥२६॥

शाल्व अमात्यः द्युमान् नाम प्रद्युम्नं प्राक् प्रपीडितः आसाद्य गदया मौर्व्या व्याहत्य व्यनदत् बली ॥२६॥

प्राक् प्रपीडितः पहिले (प्रद्युम्न द्वारा) बहुत पीड़ित
द्यमान् द्युमान्
नाम बली नामक बलवान
शाल्व अमात्यः शाल्वके मन्त्रीने
प्रद्युम्नं आसाद्य प्रद्युम्नके पास पहुँचकर
मौर्व्या गदया वज्र लोहसे बनी गदासे
व्याहत्य मारकर
व्यनदत् गर्जना की ॥२६॥

प्रद्युम्नं गदया शीर्णवक्षःस्थलमरिन्दमम् ।
अपोवाह रणात् सूतो धर्मविद् दारुकात्मजः ॥२७॥

प्रद्युम्नं गदया शीर्णं वक्षःस्थलं अरिन्दमं अपोवाह रणात् सूतः धर्मवित् दारुक आत्मजः ॥२७॥

गदया शीर्ण	गदा (लगनेसे) फट गये	**धर्मवित्**	धर्मज्ञ
वक्षःस्थलं	वक्ष स्थल वाले	**दारुक आत्मजः**	दारुकके पुत्र
अरिन्दमं	शत्रुदमन-कर्ता	**सूतः रणात्**	सारथी युद्धसे
प्रद्युम्नं	प्रद्युम्नको	**अपोवाह**	पृथक ले गया ॥२७॥

लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन कार्ष्णिः सारथिमब्रवीत् ।
अहो असाध्विदं सूत यद् रणान्मेऽपसर्पणम् ॥२८॥

लब्धसंज्ञः मुहूर्तेन कार्ष्णिः सारथि अब्रवीत् अहो असाधु इदं सूतः यत् रणात् मे अपसर्पणम् ॥२८॥

मुहूर्तेन	एक मुहूर्त बीतने पर	**सारथि अब्रवीत्**	सारथिसे बोले—
लब्धसंज्ञः	चेतना प्राप्त होने पर	**अहो सूत इदं**	'हे सूत ! यह
कार्ष्णिः	श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न	**असाधु यत्**	बुरा हुआ जो
		मे रणात्	मेंरा युद्धसे
		अपसर्पणं	हटना हुआ ॥२८॥

न यदूनां कुले जातः श्रूयते रणविच्युतः ।
विना मत् क्लीबचित्तेन सूतेन प्राप्तकिल्बिषात् ॥२९॥

न यदूनां कुले जातः श्रूयते रण विच्युतः विना मत् क्लीब चित्तेन सूतेन प्राप्त किल्बिषात् ॥२९॥

क्लीब चित्तेन	कायर स्वभावके	**जातः**	उत्पन्न हुए का
सूतेन प्राप्त	सारथि द्वारा मिले	**रण विच्युतः**	युद्धसे हट जाना
किल्बिषात्	इस कलंक वाले	**न श्रुयते**	नहीं सुना जाता ॥२९॥*
मत् विना	मेरे अतिरिक्त		
यदूनां कुले	यदुकुलमें		

किं नु वक्ष्येऽभिसङ्गम्य पितरौ रामकेशवौ ।
युद्धात् सम्यगपक्रान्तः पृष्टस्तत्रात्मनः क्षमम् ॥३०॥

किं नु वक्ष्ये अभिसङ्गम्य पितरौ रामकेशवौ युद्धात् सम्यक् अपक्रान्तः पृष्टः तत्र आत्मनः क्षमम् ॥३०॥

नु पितरौ	भला पिता	**पृष्टः तत्र**	(उनके) पूछने पर
रामकेशवौ	बलराम और श्रीकृष्णके		वहाँ
		आत्मनः क्षमं	अपने योग्य
अभिसङ्गम्य	समीप आने पर	**किं वक्ष्ये**	क्या कहूँगा ॥३०॥
युद्धात् सम्यक्	युद्धसे ठीक-ठीक		
अपक्रान्तः	भाग निकला (मैं)		

व्यक्तं मे कथयिष्यन्ति हसन्त्यो भ्रातृजामयः ।
क्लैब्यं कथं कथं वीर तवान्यैः कथ्यतां मृधे ॥३१॥

व्यक्तं मे कथयिष्यन्ति हसन्त्यः भ्रातृजामयः क्लैब्यं कथं कथं वीर तव अन्यैः कथ्यतां मृधे ॥३१॥

---

*यह प्रद्युम्नका शौर्य है, अन्यथा इनके पिताश्री ही रणछोड़ राय प्रसिद्ध हैं ।

व्यक्तं	स्पष्ट है कि	**मृधे अन्यैः**	युद्धमें दूसरोंने
भ्रातृजामयः	भौजाइयाँ	**तव कथं कथं**	तुमको कैसे कैसे
हसन्त्यः मे	हँसती हुई मुझसे	**क्लैब्यं**	कायर (कर दिया)
कथयिष्यन्ति	कहेंगी—		॥३१॥
वीर कथ्यतां	'वीर ! बतलाओ		

॥ सारथिरुवाच ॥

धर्मं विजानताऽऽयुष्मन् कृतमेतन्मया विभो ।
सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद् रथिनं सारथिं रथी ॥३२॥

धर्मं विजानता आयुष्मन् कृतं एतत् मया विभो सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेत् रथिनं सारथिं रथी ॥३२॥

विभो आयुष्मन्	प्रभो ! आयुष्मन् !	**धर्मं विजानता**	यह धर्म जानते हुए
कृच्छ्रगतं	सङ्कटमें पड़े	**एतत् मया कृतं**	यह (कार्य) मैंने किया है ॥३२॥
रथिनं सूतः	रथीकी सारथि एवं		
सारथिं	सारथिकी		
रथी रक्षेत्	रथी रक्षा करे		

एतद् विदित्वा तु भवान् मयापोवाहितो रणात् ।
उपसृष्टः परेणेति मूर्च्छितो गदया हतः ॥३३॥

एतत् विदित्वा तु भवान् मया अपोवाहितः रणात् उपसृष्टः परेण इति मूर्च्छितः गदया हतः ॥३३॥

परेण उपसृष्टः	शत्रु द्वारा निकटसे फेंकी गयी	**गदया हतः**	गदासे मारे जाकर

मूर्च्छितः इति मूर्छित हो गये हैं ऐसा
एतत् यह
विदित्वा तु जानकर ही
मया भवान् मेरे द्वारा आप
रणात् युद्धसे
अपोवाहितः पृथक हटाये गये
॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे शाल्वयुद्धे **षट्सप्ततितमोऽध्यायः** ॥७६॥

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

स तूपस्पृश्य सलिलं दंशितो धृतकार्मुकः ।
नय मां द्युमतः पार्श्वं वीरस्येत्याह सारथिम् ॥ १ ॥

स तु उपस्पृश्य सलिलं दंशितः धृत कार्मुकः नय मां द्युमतः पार्श्व वीरस्य इति आह सारथिम् ॥१॥

स सलिलं	उन्होंने जलसे	**द्युमतः पार्श्वं**	द्यु मान्के समीप
उपस्पृश्य	आचमन करके	**नय इति**	ले चलो' इस
दंशितः	कवच धारण करके		प्रकार
धृत कार्मुकः	धनुष लेकर	**सारथि आह**	सारथीसे कहा ॥१॥
मां वीरस्य	'मुझे वीर		

विधमन्तं स्वसैन्यानि द्युमन्तं रुक्मिणीसुतः ।
प्रतिहत्य प्रत्यविध्यन्नाराचैरष्टभिः स्मयन् ॥ २ ॥

विधमन्तं स्वसैन्यानि द्युमन्तं रुक्मिणीसुतः प्रतिहत्य प्रत्यविध्यत् नाराचैः अष्टभिः स्मयन् ॥२॥

स्वसैन्यानि	अपनी सेनाका	**स्मयन्**	मुस्कराते हुए
विधमन्तं	संहार करते हुए	**अष्टभिः नाराचैः**	आठ बाणोंसे
द्युमन्तं	द्यु मान्को	**प्रतिहत्य**	मारकर
रुक्मिणीसुतः	रुक्मिणी पुत्र प्रद्यु म्न ने	**प्रत्यविध्यत्**	बींध दिया ॥२॥

चतुर्भिश्चतुरो वाहान् सूतमेकेन चाहनत् ।
द्वाभ्यां धनुश्च केतुं च शरेणान्येन वै शिरः ॥ ३ ॥

चतुःभिः चतुरः वाहान् सूतं एकेन च अहनत् द्वाभ्यां धनुः च केतुं च शरेण अन्येन वै शिरः ॥३॥

चतुःभिः	चार (बाणों)से	**द्वाभ्यां धनुः**	दोसे धनुष
चतुरः वाहान्	चारों वाहनों (घोड़ों)को	**च केतुं च**	तथा ध्वजाको भी
च एकेन सूतुं	तथा एकसे सारथि को	**वै अन्येन शिरः**	तथा एक दूसरेसे सिरको भी
		अहनत्	काट दिया ॥३॥

गदसात्यकिसाम्बाद्या जघ्नुः सौभपतेर्बलम् ।
पेतुः समुद्रे सौभेयाः सर्वे संछिन्नकन्धराः ॥ ४ ॥

गद सात्यकि साम्ब आद्या जघ्नुः सौभपतेः बलं पेतुः समुद्रे सौभेयाः सर्वे संछिन्न कन्धराः ॥४॥

गद सात्यकि	गद, सात्यकि	**सर्वे सौभेयाः**	सब सौभमें स्थित सैनिक
साम्ब आद्याः	साम्ब आदिने		
सौभपतेः	सौभके स्वामी शाल्व की	**समुद्रे पेतुः**	समुद्रमें गिर पड़े ॥४॥
बलं जघ्नुः	सेनाको मारा		
संछिन्न-	सिर		
कन्धराः	कट जानेसे		

एवं यदूनां शाल्वानां निघ्नतामितरेतरम् ।
युद्धं त्रिणवरात्रं तदभूत्तुमुलमुल्बणम् ॥ ५ ॥

एवं यदूनां शाल्वानां निघ्नतां इतर इतरं युद्धं त्रिणव रात्रं तत् अभूत तुमुलं उल्बणम् ॥५॥

एवं यदूनां	इस प्रकार यदु-वंशियोंका	**त्रिणव रात्रं**	तीन नव (सत्ताइस) दिन-रात
शाल्वानां	और शाल्वके सैनिकोंका	**उल्बणं तुमुलं**	घोर तुमुल
इतर इतरं	एक दूसरेको	**युद्धं अभूत्**	युद्ध होता रहा ॥५॥
निघ्नतां	मारते हुए		

इन्द्रप्रस्थं गतः कृष्ण आहूतो धर्मसूनुना ।
राजसूयेऽथ निर्वृत्ते शिशुपाले च संस्थिते ॥ ६ ॥

इन्द्रप्रस्थं गतः कृष्णः आहूतः धर्मसूनुना राजसूये अथ निर्वृत्ते शिशुपाले च संस्थिते ॥६॥

धर्मसूनुना	धर्मपुत्र युधिष्ठिर द्वारा	**निर्वृत्ते च**	समाप्त हो जाने पर और
आहूतः कृष्णः	बुलाये गये श्रीकृष्ण	**शिशुपाले**	शिशुपालके
इन्द्रप्रस्थं गतः	इन्द्रप्रस्थ गये थे	**संस्थिते**	मर जाने पर ॥६॥
अथ राजसूये	फिर वहां राजसूय यज्ञके		

कुरुवृद्धाननुज्ञाप्य मुनींश्च ससुतां पृथाम् ।
निमित्तान्यतिघोराणि पश्यन् द्वारवतीं ययौ ॥ ७ ॥

कुरुवृद्धान् अनुज्ञाप्य मुनीन् च ससुतां पृथां निमित्तानि अतिघोराणि पश्यन् द्वारवतीं ययौ ॥७॥

अतिघोराणि	अत्यन्त भयानक	**ससुतां पृथां**	पुत्रोंके साथ कुन्ती से
निमित्तानि	अपशकुन	**अनुज्ञाप्य**	अनुमति लेकर
पश्यन्	देखकर	**द्वारवतीं ययौ**	द्वारिकापुरीको चले ॥७॥
कुरुवृद्धान्	कुरुकुलके वृद्धों,		
मुनीन् च	मुनियों तथा		

आह चाहमिहायात आर्यमिश्राभिसङ्गतः ।
राजन्याश्चैद्यपक्षीया नूनं हन्युः पुरीं मम ॥ ८ ॥

आह च अहं इह आयातः आर्यमिश्र अभिसङ्गतः राजन्याः चैद्यपक्षीया नूनं हन्युः पुरीं मम ॥८॥

आह च	(मन ही मन) बोले भी—
अहं आर्यमिश्र	'मैं बड़े भाईके
अभिसङ्गतः	साथ
इह आयातः	यहां आया हूँ,
चैद्यपक्षीया	चेदिराज शिशुपाल के पक्ष वाले
राजन्याः नूनं	राजा निश्चय
मम पुरीं हन्युः	मेरी पुरीको आक्रान्त किये होंगे ॥८॥

वीक्ष्य तत् कदनं स्वानां निरूप्य पुररक्षणम् ।
सौभं च शाल्वराजं च दारुकं प्राह केशवः ॥ ९ ॥

वीक्ष्य तत् कदनं स्वानां निरूप्य पुररक्षणं सौभं च शाल्वराजं च दारुकं प्राह केशवः ॥९॥

तत स्वानां	वह अपनोंका
कदनं	उत्पीडन
च सौभं	तथा सौभ विमान
च	एवं
शाल्वराजं	राजा शाल्वको
वीक्ष्य	देखकर
पुररक्षणं	नगर-रक्षा
निरूप्य	(बलरामजीको) सौंपकर
केशवः	श्रीकृष्णने
दारुकं प्राह	(सारथि) दारुकसे कहा ॥९॥

रथं प्रापय मे सूत शाल्वस्यान्तिकमाशु वै ।
सम्भ्रमस्ते न कर्तव्यो मायावी सौभराडयम् ॥१०॥

रथं प्रापय मे सूत शाल्वस्य अन्तिकं आशु वै सम्भ्रमः ते न कर्तव्यः मायावी सौभराट् अयम् ॥१०॥

सूत मे रथं	सूत ! मेरे रथको
शाल्वस्य	शाल्वके
अन्तिकं	समीप
वै आशु प्रापय	निश्चय शीघ्र पहुँचाओ
ते सम्भ्रमः	किन्तु तुम्हें कोई हड़बड़ी
न कर्तव्यः	नहीं करनी चाहिए क्योंकि
अयं सौभराट्	यह सौभका राजा
मायावी	मायावी है ॥१०॥

इत्युक्तश्चोदयामास रथमास्थाय दारुकः ।
विशन्तं ददृशुः सर्वे स्वे परे चारुणानुजम् ॥११॥

इति उक्तः चोदयामास रथं आस्थाय दारुकः विशन्तं ददृशुः सर्वे स्वे परे च अरुण अनुजम् ॥११॥

इति उक्तः	ऐसा कहे जाने पर
रथं आस्थाय	रथ पर बैठकर
दारुकः	दारुकने
चोदयामास	(रथ) बढ़ाया
सर्वे स्वे परे च	सब अपनों और शत्रुओंने भी
अरुण अनुजं	अरुणके छोटे भाई गरुड़ (का ध्वजा वाला रथ)
विशन्तं ददृशुः	प्रवेश करते देखा ॥११॥

शाल्वश्च कृष्णमालोक्य हतप्रायबलेश्वरः ।
प्राहरत् कृष्णसूताय शक्तिं भीमरवां मृधे ॥१२॥

शाल्वः च कृष्णं आलोक्य हतप्राय बल ईश्वरः प्राहरत् कृष्ण सूताय शक्तिं भीमरवां मृधे ॥१२॥

बल ईश्वरः	(जिसके) सब सेना-पति	**कृष्ण सूताय**	श्रीकृष्णके सारथि पर
हतप्राय	प्रायः मारे जा चुके थे (उस)	**मृधे भीमरवां**	युद्धमें भयंकर शब्द करने वाली
शाल्वः च	शाल्वने भी	**शक्तिं प्राहरत्**	शक्तिका प्रहार किया ॥१२॥
कृष्णं आलोक्य	श्रीकृष्णको देखकर		

तामापतन्तीं नभसि महोल्कामिव रंहसा ।
भासयन्तीं दिशः शौरिः सायकैः शतधाच्छिनत् ॥१३॥

तां आपतन्तीं नभसि महा उल्कां इव रंहसा भासयन्तीं दिशः शौरिः सायकैः शतधा अच्छिनत् ॥१३॥

तां नभसि	उसे आकाशमें	**सायकैः शौरिः**	बाणोंसे श्रीकृष्णने
महा उल्कां इव	बड़ी उल्काके समान	**शतधा**	सैकड़ों
दिशः भासयन्तीं	दिशाओंको आलोकित करती	**अच्छिनत्**	टुकड़ोंमें काट दिया ॥१३॥
रंहसा	वेगसे		
आपतन्तीं	झपटती आतीको		

तं च षोडशभिर्विद्ध्वा बाणैः सौभं च खे भ्रमत् ।
अविध्यच्छरसन्दोहैः खं सूर्य इव रश्मिभिः ॥१४॥

तं च षोडशभिः विद्ध्वा बाणैः सौभं च खे भ्रमत् अविध्यात् शर सन्दोहैः खं सूर्य इव रश्मिभिः ॥१४॥

तं च षोशभिः	उस (शाल्व)को भी सोलह	**खं इव**	आकाशको (बींधने) के समान
बाणैः विद्ध्वा	बाणोंसी बींधकर		
रश्मिभिः सूर्य	रश्मियोंसे सूर्यके		

खे भ्रमत्	आकाशमें घूमते	**शर सन्दोहैः**	बाण समूहसे
सौभं च	सौभ विमानको भी	**अविध्यत्**	बेधा ॥१४॥

शाल्वः शौरेस्तु दोः सव्यं सशार्ङ्गं शार्ङ्गधन्वनः ।
बिभेद न्यपतद्धस्तात् शार्ङ्गमासीत्तदद्भुतम् ॥१५॥

शाल्वः शौरेः तु दोः सव्यं सशार्ङ्गम् शार्ङ्गधन्वनः विभेद न्यपतत् हस्तात शार्ङ्गं आसीत् तत् अद्भुतम् ॥१५॥

शार्ङ्गं धन्वनः	शारंगधारी	**न्यपतत्**	गिर गया
शौरेः तु	श्रीकृष्णकी तो	**तत् अद्भुतं**	यह अद्भुत बात
शार्ङ्गं सव्यं दोः	शारंग धनुष सहित बायीं भुजाको	**आसीत्**	हुई ॥१५॥
शाल्वः विभेद	शाल्वने बींधा		
हस्तात शार्ङ्गम्	(इससे) हाथसे शारंग		

हाहाकारो महानासीद् भूतानां तत्र पश्यताम् ।
विनद्य सौभराडुच्चैरिदमाह जनार्दनम् ॥१६॥

हा हाकारः महान् आसीत् भूतानां तत्र पश्यतां विनद्य सौभराट् उच्चैः इदं आह जनार्दनम् ॥१६॥

तत्र पश्यतां	वहां देखने वाले	**सौभराट्**	सौभका राजा शाल्व
भूतानां महान्	प्राणियोंमें बड़ा भारी	**जनार्दनं**	जनार्दनसे
हा हाकारः	हाहाकार	**इदं आह**	यह बोला ॥१६॥
आसीत्	होने लगा		
उच्चैः विनद्य	(तब) उच्च स्वरसे गर्जना करके		

यत्त्वया मूढ नः सख्युर्भ्रातुर्भार्या हृतेक्षताम् ।
प्रमत्तः स सभामध्ये त्वया व्यापादितः सखा ॥१७॥

यः त्वया मूढ नः सख्युः भ्रातुः भार्या हृत ईक्षतां प्रमत्तः स सभामध्ये त्वया व्यापादितः सखा ॥१७॥

त्वया मूढ	तुझ मूर्खने	**सभामध्ये**	सभाके बीचमें
यः नः ईक्षतां	जो हमारे देखते-देखते	**स प्रमत्तः सखा**	वह असावधान सखा
सख्युः भ्रातुः	(हमारे) सखा (अपने ममेरे) भाई की	**त्वया व्यापादितः**	तेरे द्वारा मार डाला गया ॥१७॥
भार्या हृत	पत्नी का हरण किया और		

तं त्वाद्य निशितैर्बाणैरपराजितमानिनम् ।
नयाम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेर्ममाग्रतः ॥१८॥

तं तु अद्य निशितैः बाणैः अपराजित मानिनं नयामि अपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेः मम अग्रतः ॥१८॥

तं अपराजित	उस अपनेको अपराजित	**अपुनरावृत्तिं**	जहांसे फिर लौटना नहीं होता वहां
मानिनं तु	माननेवाले को तो	**नयामि**	भेज देता हूँ
अद्य निशितैः बाणैः	आज तीक्ष्ण बाणोंसे	**यदि मम अग्रतः तिष्ठेः**	यदि मेरे आगे ठहर गया ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच ॥

वृथा त्वं कत्थसे मन्द न पश्यस्यन्तिकेऽन्तकम् ।
पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहुभाषिणः ॥१९॥

वृथा त्वं कत्थसे मन्द न पश्यसि अन्तिके अन्तकं पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहुभाषिणः ॥१९॥

मन्द त्वं	मूर्ख ! तू
वृथा कत्थसे	व्यर्थ बकवाद करता है
अन्तकं अन्तिके	काल को अपने समीप
न पश्यसि	नहीं देखता है,
शूरा पौरुषं	शूर लोग पुरुषार्थ
दर्शयन्ति स्म	दिखलाते हैं
बहुभाषिणः न	बहुत बोलने वाले नहीं होते ॥१९॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इत्युक्त्वा भगवाञ्छाल्वं गदया भीमवेगया ।
ततोड जत्रौ संरब्धः स चकम्पे वमन्नसृक् ॥२०॥

इति उक्त्वा भगवान् शाल्वं गदया भीम वेगया ततोड जत्रौ संरब्धः स चकम्पे वमन् असृक् ॥२०॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर
संरब्धः भगवान्	क्रोधमें भरकर भगवान ने
भीम वेगया गदया	भयंकर वेग वाली गदासे
शाल्वं जत्रौ ततोड	शाल्वकी जत्रु पर मारा
स असृक् वमन्	वह रक्त वमन करता
चकम्पे	काँपने लगा ॥२०॥

गदायां सन्निवृत्तायां शाल्वस्त्वन्तरधीयत ।
ततो मुहूर्त आगत्य पुरुषः शिरसाच्युतम् ।
देवक्या प्रहितोऽस्मीति नत्वा प्राह वचो रुदन् ॥२१॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

गदायां सन्निवृत्तायां शाल्वः तु अन्तरधीयत ततः मुहूर्त आगत्य पुरुषः शिरसा अच्युतं देवक्या प्रहितः अस्मि इति नत्वा प्राह वचः रुदन् ॥२१॥

गदायां	गदाके	**अच्युतं शिरसा**	अच्युत को सिर झुकाकर
सन्निवृत्तायां	स्वतः लौट जाने पर	**नत्वा रुदन्**	प्रणाम करके रोते हुए
शाल्वः तु	शाल्व तो	**इति वचः प्राह**	यह बात बोला
अन्तरधीयत	अन्तर्धान हो गया	**देवक्या**	(मैं) देवकीका
ततः मुहुर्त	फिर एक मुहुर्तमें	**प्रहितः अस्मि**	भेजा हूँ ॥२१॥
पुरुषः आगत्य	एक पुरुष आकर		

कृष्ण कृष्ण महाबाहो पिता ते पितृवत्सल ।
बद्ध्वापनीतः शाल्वेन सौनिकेन यथा पशुः ॥२२॥

कृष्ण कृष्ण महाबाहो पिता ते पितृवत्सल बद्ध्वा अपनीतः शाल्वेन सौनिकेन यथा पशुः ॥२२॥

महाबाहो कृष्णः	महाबाहु कृष्ण !	**शाल्वेन ते पिता**	शाल्व द्वारा तुम्हारे पिता
पितृवत्सल कृष्ण	पितृभक्त कृष्ण !	**बद्ध्वा अपनीतः**	बाँधकर बुरी भाँति लेजाये गये ॥२२॥
सौनिकेन	कसाई द्वारा		
यथा पशुः	जैसे पशु (ले जाये जाते हैं)		

निशम्य विप्रियं कृष्णो मानुषीं प्रकृतिं गतः ।
विमनस्को घृणी स्नेहाद् बभाषे प्राकृतो यथा ॥२३॥

निशम्य विप्रियं कृष्णः मानुषीं प्रकृतिं गतः विमनस्कः घृणी स्नेहात् बभाषे प्राकृतः यथा ॥२३॥

विप्रियं निशम्य	यह अप्रिय (समाचार) सुनकर	**मानुषीं प्रकृतिं गतः**	मनुष्य स्वभाव स्वीकार करके

कृष्णः स्नेहात्	श्रीकृष्ण स्नेहवश	**बभाषे**	बोले ॥२३॥
घृणी विमनस्कः	करुणासे उदास होकर		

कथं राममसम्भ्रान्तं जित्वाजेयं सुरासुरैः ।
शाल्वेनाल्पीयसा नीतः पिता मे बलवान् विधिः ॥२४॥

कथं रामं असम्भ्रान्तं जित्वा अजेयं सुर असुरैः शाल्वेन अल्पीयसा नीतः पिता मे बलवान् विधिः ॥२४॥

विधिः बलवान्	'देव बड़ा बलवान है'	**अल्पीयसा**	अल्पवीर्य
सुर असुरैः	(नहीं तो) देवता-दैत्योंसे भी	**शाल्वेन**	शाल्व द्वारा
अजेयं असम्भ्रान्तं	अजेय सदा सावधान	**मे पिता**	मेरे पिता
रामं जित्वा	बलरामजी को जीतकर	**कथं नीतः**	कैसे ले जाये गये ॥२४॥

इति ब्रुवाणे गोविन्दे सौभराट् प्रत्युपस्थितः ।
वसुदेवमिवानीय कृष्णं चेदमुवाच सः ॥२५॥

इति ब्रुवाणे गोविन्दे सौभराट् प्रत्युपस्थितः वसुदेवं इव आनीय कृष्णं च इदं उवाच सः ॥२५॥

गोविन्दे इति ब्रुवाणे	गोविन्दके यह कहते समय ही	**सौभराट्**	सौभका राजा
वसुदेवं इव	वसुदेवके समान (एकको)	**प्रत्युपस्थितः**	सामने उपस्थित हो गया
आनीय	ले आकर	**च सः कृष्णं**	तथा वह श्रीकृष्णसे
		इदं उवाच	यह बोला ॥२५॥

एष ते जनिता तातो यदर्थमिह जीवसि ।
वधिष्ये वीक्षतस्तेऽमुमीशश्चेत् पाहि बालिश ॥२६॥

एष ते जनिता तातः यत् अर्थं इह जीवसि वधिष्ये वीक्षतः ते अमुं ईशः चेत् पाहि बालिश ॥२६॥

एष ते जनिता	यह तुझे जन्म देने वाले	**बालिश**	मूर्ख !
		ते वीक्षतः	तेरे देखते हुए
तातः यत् अर्थं	पिता हैं जिनके लिए	**अमुं वधिष्ये**	इनका वध करूँगा
इह जीवसि	इस लोकमें (तू) जी रहाहै	**ईशः चेत् पाहि**	समर्थ हो तो रक्षा कर ॥२६॥

एवं निर्भर्त्स्य मायावी खड्गनानकदुन्दुभेः ।
उत्कृत्य शिर आदाय खस्थं सौभं समाविशत् ॥२७॥

एवं निर्भर्त्स्य मायावी खड्गेन आनकदुन्दुभेः उत्कृत्य शिर आदाय खस्थं सौभं समाविशत् ॥२७॥

एवं निर्भर्त्स्य	इस प्रकार डाँटकर	**आदाय**	उसे लेकर
मायावी खड्गेन	उस मायावीने तलवारसे	**खस्थं सौभं**	आकाशमें स्थित सौभ विमानमें
आनकदुन्दुभेः	(उस) वसुदेवका	**समाविशत्**	प्रविष्ट हो गया ॥२७॥
शिर उत्कृत्य	सिर काटकर		

ततो मुहूर्तं प्रकृतावुपप्लुतः
स्वबोध आस्ते स्वजनानुषङ्गतः ।
महानुभावस्तदबुद्धयदासुरीं
मायां स शाल्वप्रसृतां मयोदिताम् ॥२८॥

ततः मुहूर्तं प्रकृताः उपप्लुतः स्वबोध आस्ते स्वजन अनुषङ्गतः महानुभावः तत् अबुद्ध्यत आसुरीं मायां स शाल्व प्रसृतां मय उदिताम् ॥२८॥

स्वजन अनुषङ्गतः	स्वजन (वसुदेव) के सम्बन्धसे
ततः मुहूर्तं	तब एक मुहूर्त (दो घड़ी) केलिए
प्रकृताः	साधारण व्यक्तिके समान
उपप्लुतः	शोकाभिभूत हो गये
महानुभावः	फिर महाप्रभाव-शाली (भगवान)
स्वबोध आस्ते	स्वयं सावधान हो गये
तत् मय उदितां	फिर उस मयदानव द्वारा उपदिष्ट
शाल्व प्रसृतां	शाल्वकी फैलायी
मायां अबुद्ध्यत्	माया को समझ गये ॥२८॥

न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं
प्रबुद्ध आजौ समपश्यदच्युतः ।
स्वाप्नं यथा चाम्बरचारिणं रिपुं
सौभस्थमालोक्य निहन्तुमुद्यतः ॥२९॥

न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं प्रबुद्ध आजौ सम पश्यत् अच्युतः स्वाप्नं यथा च अम्बर चारिणं रिपुं सौभस्थं आलोक्य निहन्तुं उद्यतः ॥२९॥

प्रबुद्ध आजौ	सावधान होकर उन अजन्मा
अच्युतः	अच्युतने
यथा स्वाप्नं	स्वप्नके समान
तत्र न दूतं च	न वहाँ दूत और
न पितुः कलेवरं	न पिताके शरीरको
सम पश्यत्	सामने देखा
अम्बर चारिणं	आकाशगामी
सौभस्थं रिपुं	सौभ विमानमें शत्रुको
आलोक्य	देखकर
निहन्तुं उद्यतः	(उसे) मारनेको प्रस्तुत हो गये ॥२९॥

एवं वदन्ति राजर्षे ऋषयः के च नान्विताः ।
यत् स्ववाचो विरुध्येत नूनं ते न स्मरन्त्युत ॥३०॥

एवं वदन्ति राजर्षे ऋषयः के च न अन्विताः यत् स्ववाचः विरुध्येत नूनं ते न स्मरन्ति उत ॥३०॥

राजर्षे	राजर्षि परीक्षित !	**स्ववाचः**	अपनी बातसे ही
न अन्विताः	पूर्वा पर का विचार न करने वाले	**विरुध्येत**	विरोध पड़ता है
		नूनं ते	निश्चय वे
के च ऋषयः	कोई तो ऋषि	**न स्मरन्ति**	स्मरण नहीं करते ॥३०॥
एवं वदन्ति	ऐसा कहते हैं		
उत यत्	किन्तु जो		

क्व शोकमोहौ स्नेहो वा भयं वा येऽज्ञसम्भवाः ।
क्व चाखण्डितविज्ञानज्ञानैश्वर्यस्त्वखण्डितः ॥३१॥

क्व शोक मोहौ स्नेहः वा भयं वा ये अज्ञ सम्भवाः क्व च अखण्डित विज्ञान ज्ञान ऐश्वर्यः तु अखण्डितः ॥३१॥

क्व शोक मोहौ	कहां तो शोक, मोह	**विज्ञान ज्ञान**	विज्ञान, ज्ञान
वा स्नेहः	या स्नेह	**तु अखण्डितः**	तथा अखण्ड
वा भयं	अथवा भय	**ऐश्वर्यः**	ऐश्वर्य (वान् भगवान) ॥३१॥
ये अज्ञ सम्भवाः	जो अज्ञानियोंको होते हैं		
च क्व	और कहां		
अखण्डित	अखण्ड		

यत्पादसेवोर्जितऽऽयात्मविद्यया
हिन्वन्त्यनाद्यात्मविपर्ययग्रहम् ।
लभन्त आत्मीयमनन्तमैश्वरं
कुतो नु मोहः परमस्य सद्गतेः ॥३२॥

यत् पादसेवा ऊर्जितया आत्मविद्यया हिन्वन्ति अनादि आत्मविपर्यय ग्रहं लभन्त आत्मीयं अनन्तन्तं ऐश्वरं कुतः नु मोहः परमस्य सत् गतेः ॥३२॥

यत् पादसेवा	जिनके चरणोंकी सेवासे
ऊर्जितया	अभिवृद्ध हुई
आत्मविद्यया	अध्यात्म विद्याके द्वारा
अनादि	अनादि
आत्मविपर्यय	अपनेमें उलटा
ग्रहं	आग्रह (शरीरमें आत्मबुद्धि)
हिन्वन्ति	(मुनिजन) छोड़ देते हैं एवं
आत्मीयं अनन्तं	अपने (स्वरूप भूत) अनन्त
ऐश्वरं लभन्त	ऐश्वर्यको प्राप्त करते हैं
सत् गतेः	सत्पुरुषोंकी परम-गति
परमस्य	उन परम पुरुषमें
नु मोहः कुतः	भला मोह कहाँसे आवेगा ॥३३॥

तं शस्त्रपूगैः प्रहरन्तमोजसा शाल्वं शरैः शौरिरमोघविक्रमः ।
विद्ध्वाच्छिनद् वर्म धनुः शिरोमणिं सौभं च शत्रोर्गदया रुरोज ह ॥३३॥

तं शस्त्रपूगैः प्रहरन्तं ओजसा शाल्वं शरैः शौरिः अमोघ विक्रमः बिद्ध्वा अच्छिनत् वर्म धनुः शिरोमणि सौभं च शत्रोः गदया रुरोज ह ॥३३॥

तं शाल्वं	उस शाल्वके
ओजसा	वेगसे
शस्त्रपूगैः	शस्त्र समूहसे
प्रहरन्तं	प्रहार करते हुए
अमोघ विक्रमः	अमोघ पराक्रम
शौरिः शरैः	श्रीकृष्णने बाणोंसे (उसके)
वर्म धनुः	कवच, धनुष,
शिरोमणि	शीर्षत्राणोंको

विद्ध्वा अच्छिनत् बेधकर काट दिया
शत्रोः सौभं च शत्रुके सौभ विमान को भी
गदया रुरोज ह गदासे चूर ही कर दिया ॥३३॥

तत् कृष्णहस्तेरितया विचूर्णितं
पपात तोये गदया सहस्रधा ।
विसृज्य तद् भूतलमास्थितो गदा-
मुद्यम्य शाल्वोऽच्युतमभ्यगाद् द्रुतम् ॥३४॥

तत् कृष्ण हस्त ईरितया विचूर्णितं पपात तोये गदया सहस्रधा विसृज्य तत् भूतलं आस्थितः गदां उद्यम्य शाल्वः अच्युतं अभ्यगात् द्रुतम् ॥३४॥

कृष्ण हस्त श्रीकृष्णके हाथसे
ईरितया गदया फेंकी गयी गदासे
सहस्रधा सहस्रों टुकड़ोंमें
विचूर्णितं चूर्ण होकर
तत् तोये पपात वह (विमान) जलमें गिर पड़ा
तत् विसृज्य उसे छोड़कर
भूतलं आस्थितः पृथ्वी पर खड़ा
शाल्वः गदां शाल्व गदा
उद्यम्य उठाकर
द्रुतं अच्युतं वेगपूर्वक अच्युतकी
अभ्यगात् ओर दौड़ा ॥३४॥

आधावतः सगदं तस्य बाहुं
भल्लेन छित्त्वाथ रथाङ्गमद्भुतम् ।
वधाय शाल्वस्य लयार्कसन्निभं
बिभ्रद् बभौ सार्क इवोदयाचलः ॥३५॥

आधावतः सगदं तस्य बाहुं भल्लेन छित्त्वा अथ रथाङ्गम् अद्भुतं वधाय शाल्वस्य लय अर्क सन्निभं बिभ्रत् बभौ स अर्क इव उदयाचलः ॥३५॥

आधावतः अपनी ओर दौड़े आते
सगदं तस्य बाहुं गदा सहित उसकी भुजाको

शल्लेन छित्त्वा	बाणसे काटकर	**अद्भुतं रथाङ्ग**	अद्भुत चक्रको
अथ शाल्वस्य	फिर शाल्वके	**बिभ्रत्**	धारण करके
वधाय	वधके लिए	**स अर्क**	सूर्यके साथ
लय	प्रलय कालीन	**उदयाचलः इव**	उदयाचलके समान
अर्क सन्निभं	सूर्यके समान	**बभौ**	शोभित हुए ॥३५॥

जहार तेनैव शिरः सकुण्डलं
किरीटयुक्तं पुरुमायिनो हरिः ।
वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरन्दरो
बभूव हाहेति वचस्तदा नृणाम् ॥३६॥

जहार तेन एव शिरः सकुण्डलं किरीटयुक्तं पुरुमायिनः हरिः वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरन्दरः बभूव हा हा इति वचः तदा नृणाम् ॥३६॥

तेन एव	उसी (चक्र)से	**वज्रेण**	वज्रसे (काटा था)
पुरुमायिनः	महा मायावी (शाल्व)का	**तदा नृणां**	उस समय उसके लोगोंमें
सकुण्डलं	कुण्डलके साथ	**हा हा इति**	'हाय ! हाय ! इस प्रकार
किरीटयुक्तं	मुकुट युक्त	**वचः बभूव**	शब्द होने लगा ॥३६॥
शिरः जहार	सिर काट दिया		
यथा पुरन्दरः	जैसे इन्द्रने		
वृत्रस्य	वृत्रासुरका (सिर)		

तस्मिन् निपतिते पापे सौभे च गदया हते ।
नेदुर्दुन्दुभयो राजन् दिवि देवगणेरिताः ।
सखीनामपचितिं कुर्वन् दन्तवक्त्रो रुषाभ्यगात् ॥३७॥

तस्मिन् निपतिते पापे सौभे च गदया हते नेदुः दुन्दुभयः राजन् दिवि देवगण ईरिताः सखीनां अपचितिं कुर्वन् दन्तवक्त्रः रुषा अभ्यगात् ॥३७॥

राजन् राजन् !
तस्मिन् पापे निपतिते उस पापीके मरकर गिर जाने पर
च सौभे तथा सौभ विमान के
गदया हते गदासे नष्ट हो जाने पर
देवगण ईरितराः देवताओंकी बजायी
दुन्दुभयः दुन्दुभियां
दिवि नेदुः आकाशमें बजने लगीं
सखीनां (इसी समय) मित्रोंका
अपचितिं कुर्वन् बदला चुकानेके लिए
रुषा दन्तवक्त्रः क्रोधपूर्वक दन्त-वक्त्र
अभ्यगात् सामने आया ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सौभवधो नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

अथ अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

शिशुपालस्य शाल्वस्य पौण्ड्रकस्यापि दुर्मतिः ।
परलोकगतानां च कुर्वन् पारोक्ष्यसौहृदम् ॥ १ ॥

शिशुपालस्य शाल्वस्य पौण्ड्रकस्य अपि दुर्मतिः परलोक गतानां च कुर्वन् पारोक्ष्य सौहृदम् ॥१॥

दुर्मतिः	वह दुर्बुद्धि	**च पौण्ड्रकस्य**	तथा पौण्ड्रकका
परलोकगतानां	परलोक चले गये	**अपि**	भी
शिशुपालस्य	शिशुपाल,	**पारोक्ष्य सौहृदं**	पीछे मित्रता
शाल्वस्य	शाल्व	**कुर्वन्**	निभाता ॥१॥

एकः पदातिः संक्रुद्धो गदापाणिः प्रकम्पयन् ।
पद्भ्यामिमां महाराज महासत्त्वो व्यदृश्यत ॥ २ ॥

एकः पदातिः संक्रुद्धः गदापाणिः प्रकम्पयन् पद्भ्यां इमां महाराज महासत्त्वः व्यदृश्यत ॥२॥

एकः पदातिः	अकेला पैदल	**महासत्त्वः**	महान् बलवान
गदापाणिः	हाथमें गदा लिये	**पद्भ्यां इमां**	पैरोंसे इस पृथ्वीको
सङ्क्रुद्धः	अत्यन्त क्रोधमें भरा	**प्रकम्पयन्**	कँपाता
		व्यदृश्यत	दिखायी पड़ा ॥२॥

तं तथाऽऽयान्तमालोक्य गदामादाय सत्वरः ।
अवप्लुत्य रथात् कृष्णः सिन्धुं वेलेव प्रत्यधात् ॥ ३ ॥

तं तथा आयान्तं आलोक्य गदां आदाय सत्त्वरः अवप्लुत्य रथात् कृष्णः सिन्धुं वेला इव प्रत्यधात् ॥३॥

तथा तं आयान्तं	इस प्रकार उसे आता हुआ
आलोक्य कृष्णः	देखकर श्रीकृष्ण
सत्वरः गदां	झटपट गदा
आदाय	लेकर
रथात् अवप्लुत्य	रथसे कूद कर
सिन्धुं वेला इव	समुद्रको किनारेके समान (रोकने)
प्रत्यधात्	उसकी ओर बढ़ गये ॥३॥

गदामुद्यम्य कारूषो मुकुन्दं प्राह दुर्मदः ।
दिष्ट्या दिष्ट्या भवानद्य मम दृष्टिपथं गतः ॥ ४ ॥

गदां उद्यम्य कारूषः मुकुन्द प्राह दुर्मदः दिष्ट्या दिष्ट्या भवान् अद्य मम दृष्टिपथं गतः ॥४॥

दुर्मदः कारूषः	मदान्ध करूषराज दन्तवक्त्र
गदां उद्यम्य	गदा उठाकर
मुकुन्दं प्राह	मुकुन्दसे बोला
दिष्ट्या	देववश
दिष्ट्या	सौभाग्यसे
अद्य भवान्	आज तुम
मम दृष्टिपथं	मेरे नेत्रोंके सामने
गतः	आये हो ॥४॥

त्वं मातुलेयो नः कृष्ण मित्रध्रुङ्मां जिघांससि ।
अतस्त्वां गदया मन्द हनिष्ये वज्रकल्पया ॥ ५ ॥

त्वं मातुलेयः नः कृष्ण मित्रध्रुक् मां जिघांससि अतः त्वां गदया मन्द हनिष्ये वज्रकल्पया ॥५॥

कृष्ण त्वं नः	कृष्ण ! तुम हमारे	**मित्रध्रुक**	(मेरे) मित्रद्रोही हो,
मातुलेयः	मामाके पुत्र हो (किन्तु)		

मां जिघांससि	मुझे भी मारना चाहते हो	**वज्र कल्पया**	वज्रके समान (अपनी)
अतः मन्द त्वां	इसलिए मूर्ख तुझे	**गदया हनिष्ये**	गदासे मार दूँगा ॥५॥

तह्यनृण्यमुपैम्यज्ञ मित्राणां मित्रवत्सलः ।
बन्धुरूपमरिं हत्वा व्याधिं देहचरं यथा ॥ ६ ॥

तर्हि अन ऋण्यं उपैमि अज्ञ मित्राणां मित्रवत्सलः बन्धुरूपं अरिं हत्वा व्याधि देहचरं यथा ॥६॥

यथा देहचरं	जैसे शरीरमें रहने वाला	**अरिं हत्वा**	शत्रुको मारकर
		तर्हि	तब (मैं)
व्याधिं	रोग हो	**मित्रवत्सलः**	मित्र-वत्सल
अज्ञ	मूर्ख !	**मित्राणां**	मित्रोंसे
बन्धुरूपं	(ममेरे) भाई रूप (तुम)	**अन ऋण्यं**	उऋणता
		उपैमि	पाऊंगा' ॥६॥

एवं रूक्षैस्तुदन् वाक्यैः कृष्णं तोत्त्रैरिव द्विपम् ।
गदयाताडयन्मूर्ध्नि सिंहवद् व्यनदच्च सः ॥ ७ ॥

एवं रूक्षैः तुदन् वाक्यैः कृष्णं तोत्त्रैः इव द्विपं गदया ताडयत् मूर्ध्नि सिंहवत् व्यनदत् च सः ॥७॥

द्विपं तोत्त्रैः इव	हाथीको अंकुशसे (मारने)के समान	**गदया मूर्ध्नि**	गदासे (उनके) सिर पर
एवं	इस प्रकारके	**ताडयत् च**	मारा तथा
रूक्षैः वाक्यैः	कटु वचनोंसे	**सः सिंहवत्**	उसने सिंहके समान
कृष्णं तुदन्	श्रीकृष्णको वेधता हुआ	**व्यनदत्**	गर्जना की ॥७॥

गदयाभिहतोऽप्याजौ न चचाल यदूद्वहः ।
कृष्णोऽपि तमहन् गुर्व्या कौमोदक्या स्तनान्तरे ॥ ८ ॥

गदया अभिहतः अपि आजौ न चचाल यदु उद्वहः कृष्ण अपि तं अहन् गुर्व्या कौमोदक्या स्तन अन्तरे ॥८॥

आजौ	अजन्मा
यदु उद्वहः	यदुनाथ
गदया	गदासे
अभिहतः अपि	आहत होकर भी
चचाल न	हिले नहीं
कृष्णः अपि	श्रीकृष्णने भी
गुर्व्या	भारी
कौमोदक्या	कौमोदकी गदासे
तं स्तन अन्तरे	उसके स्तनोंके बीच में
अहत्	मारा ॥८॥

गदा निर्भिन्नहृदय उद्वमन् रुधिरं मुखात् ।
प्रसार्य केशबाह्वङ्घ्रीन् धरण्यां न्यपतद् व्यसुः ॥ ९ ॥

गदा निर्भिन्न हृदयः उद्वमन् रुधिरं मुखात् प्रसार्य केश बाहु अंघ्रीन् धरण्यां न्यपतत् व्यसुः ॥९॥

गदा हृदयः	गदा लगनेसे हृदय
निर्भिन्न	फट जानेसे
मुखात् रुधिरं	मुखसे रक्त
उद्वमन	वमन करता हुआ
केश बाहु	केश, भुजा,
अंघ्रीन्	पैरोंको
प्रसार्य धरण्यां	पृथ्वी पर फैलाकर
व्यसुः न्यपतत्	निष्पाण होकर गिर पड़ा ॥९॥

ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिः कृष्णमाविशदद्भुतम् ।
पश्यतां सर्वभूतानां यथा चैद्यवधे नृप ॥१०॥

ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिः कृष्णं आविशत् अद्भुतं पश्यतां सर्वभूतानां यथाचैद्य वधे नृप ॥१०॥

नृप	राजन् !	**पश्यतां अद्भुतं**	देखते हुए आश्चर्य-जनक
यथा चैद्यवधे	जैसे चेदिराज शिशुपालको मारने पर तुला हुआ था	**सूक्ष्मतरं**	अत्यन्त सूक्ष्म
		ज्योतिः	ज्योति
ततः सर्वभूतानां	इस समय भी सब प्राणियोंके	**कृष्णं आविशत्**	श्रीकृष्णमें प्रवेश कर गयी ॥१०॥

विदूरथस्तु तद्भ्राता भ्रातृशोकपरिप्लुतः ।
आगच्छदसिचर्मभ्यामुच्छ्वसंस्तज्जिघांसया ॥११॥

विदूरथः तु तत् भ्राता भ्रातृशोक परिप्लुतः आगच्छत् असि चर्मभ्यां उच्छ्वसन् तत् जिघांसया ॥११॥

भ्रातृशोक	भाईके शोकमें	**उच्छ्वसन्**	लम्बी श्वास लेता
परिप्लुतः	डूबा	**असि चर्मभ्यां**	तलवार-ढाल लेकर
तत् भ्राता	उस (दन्तवक्त्र)का भाई	**आगच्छत्**	आया ॥११॥
विदूरथः तु	विदूरथ तो		
तत् जिघांसया	उन (श्रीकृष्ण)को मारनेके लिए		

तस्य चापततः कृष्णश्चक्रेण क्षुरनेमिना ।
शिरो जहार राजेन्द्र सकिरीटं सकुण्डलम् ॥१२॥

तस्य च आपततः कृष्णः चक्रेण क्षुरनेमिना शिरः जहार राजेन्द्र सकिरीटं सकुण्डलम् ॥१२॥

कृष्ण	श्रीकृष्णके	**चक्रेण तस्य**	चक्रसे उस
क्षुरनेमिना	तीक्ष्ण धार वाले	**आपततः च**	झपटते आतेका भी

सकिरीटं	मुकुट युक्त	**जहार**	काट दिया ॥१२॥
सकुण्डलं शिरः	कुण्डल सहित सिर		

एवं सौभं च शाल्वं च दन्तवक्त्रं सहानुजम् ।
हत्वा दुर्विषहान्यैरीडितः सुरमानवैः ॥१३॥

एवं सौभं च शाल्वं च दन्तवक्त्रं सह अनुजं हत्वा दुर्विषहान् अन्यैः ईडितः सुरमानवैः ॥१३॥

एवं अन्यैः	इस प्रकार दूसरोंके लिए	**च सह अनुजं**	तथा छोटे भाई (विदूरथ)के साथ
दुर्विषहान्	जिनका (आक्रमण) सहना अत्यन्त कठिन था उन	**दन्तवक्त्रं हत्वा**	दन्तवक्त्रको मारकर
सौभं च शाल्वं	सौभ विमान तथा शाल्व	**सुरमानवैः**	देवताओं तथा मनुष्यों द्वारा
		ईडितः	स्तुत होते ॥१३॥

मुनिभिः सिद्धगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः ।
अप्सरोभिः पितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ॥१४॥

मुनिभिः सिद्ध गन्धर्वैः विद्याधर महा उरगैः अप्सरःभिः पितृगणैः यक्षैः किन्नर चारणैः ॥१४॥

मुनिभिः	मुनियों	**पितृगणैः**	पितृगणों
सिद्ध गन्धर्वैः	सिद्धों, गन्धर्वों,	**यक्षैः किन्नर**	यक्षों, किन्नरों,
विद्याधर	विद्याधरों,	**चारणैः**	चारणों द्वारा
महा उरगैः	महानागों,		॥१४॥
अप्सरःभिः	अप्सराओं		

उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः ।
वृतश्च वृष्णिप्रवरैर्विवेशालङ्कृतां पुरीम् ॥१५॥

उपगीयमान विजयः कुसुमैः अभिवर्षितः वृतः च वृष्णि प्रवरैः विवेश अलङ्कृतां पुरीम् ॥१५॥

विजयः	विजय	**च वृष्णि**	तथा यादव
उपगीयमान	गाये जाते हुए,	**प्रवरैः वृतः**	प्रमुखोंसे घिरे हुए
कुसुमैः	चारों ओर पुष्प	**अलङ्कृतां पुरीम्**	सजे हुए नगरमें
अभिवर्षितः	वर्षा होते हुए	**विवेश**	प्रमुख हुए ॥१५॥

एवं योगेश्वरः कृष्णो भगवाञ्जगदीश्वरः ।
ईयते पशुदृष्टीनां निर्जितो जयतीति सः ॥१६॥

एवं योगेश्वरः कृष्णः भगवान् जगदीश्वरः ईयते पशु दृष्टीनां निर्जितः जयति इति सः ॥१६॥

एवं योगेश्वरः	इस प्रकार योगेश्वर	**पशु दृष्टीनां**	पशु दृष्टि (अज्ञानियों)के लिए ही
जगदीश्वरः	जगदीश्वर	**निर्जितः**	कहीं जीते जाते
भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्ण		(और कहीं)
ईयते	लीलाएँ करते हैं,	**सः जयति**	वे जीतते हैं ॥१६॥

श्रुत्वा युद्धोद्यमं रामः कुरूणां सह पाण्डवैः ।
तीर्थाभिषेकव्याजेन मध्यस्थः प्रययौ किल ॥१७॥

श्रुत्वा युद्ध उद्यमं रामः कुरूणां सह पाण्डवैः तीर्थ अभिषेक व्याजेन मध्यस्थः प्रययौ किल ॥१७॥

कुरूणां	कौरवोंका	**किल मध्यस्थः**	निश्चित मध्यस्थ होनेसे
पाण्डवैः सह	पाण्डवोंके साथ		
युद्ध उद्यमं	युद्धोद्योग	**तीर्थ अभिषेक**	तीर्थ-स्नानके
श्रुत्वा	सुनकर	**व्याजेन प्रययौ**	बहाने प्रस्थान कर दिया ॥१७॥
रामः	बलरामजी		

स्नात्वा प्रभासे सन्तर्प्य देवर्षिपितृमानवान् ।
सरस्वतीं प्रतिस्रोतं ययौ ब्राह्मणसंवृतः ॥१८॥

स्नात्वा प्रभासे सन्तर्प्य देव ऋषि पितृ मानवान् सरस्वतीं प्रतिस्रोतं ययौ ब्राह्मणसंवृतः ॥१८॥

प्रभासे स्नात्वा	प्रभासमें स्नान करके	**सरस्वती प्रतिस्रोत ययौ**	सरस्वतीके प्रवाहके अभिमुख (ऊपर) चले ॥१८॥
देव ऋषि	देवता, ऋषि,		
पितृ मानवान्	पितर-मनुष्योंका		
सन्तर्प्य	तर्पण करके		
ब्राह्मणसंवृतः	ब्राह्मणोंसे घिर हुए		

पृथूदकं बिन्दुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् ।
विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीं सरस्वतीम् ॥१९॥

पृथूदकं बिन्दुसरः त्रितकूपं सुदर्शनं विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीं सरस्वतीम् ॥१९॥

पृथूदकं	पृथूदक,	**ब्रह्मतीर्थं च**	ब्रह्मतीर्थ तथा
बिन्दुसरः	विन्दुसर,	**चक्रं**	चक्र तीर्थ,
त्रितकूपं	त्रितकूप	**प्राचीं सरस्वतीं**	पूर्व वाहिनी सरस्वती ॥१९॥
सुदर्शनं विशालं	सुदर्शन, विशाल,		

यमुनामनु यान्येव गङ्गामनु च भारत ।
जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते ॥२०॥

यमुनां अनु यानि एव गङ्गां अनु च भारत जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रं आसते ॥२०॥

भारत	भरतवंशी परीक्षित्	**नैमिषं जगाम**	(उनमें होते) नैमिषारण्य गये
यानि	जो (तीर्थ)		
यमुनां अनु	यमुनाके आसपास	**यत्र ऋषयः**	जहाँ ऋषि लोग
च गङ्गां अनु	तथा गंगाके आस-पास थे	**सत्रं आसते**	यज्ञ कर रहे थे ॥२०॥

तमागतमभिप्रेत्य मुनयो दीर्घसत्रिणः ।
अभिनन्द्य यथान्यायं प्रणम्योत्थाय चार्चयन् ॥२१॥

तं आगतं अभिप्रेत्य मुनयः दीर्घ सत्रिणः अभिनन्द्य यथान्यायं प्रणम्य उत्थाय च अर्चयन् ॥२१॥

तं आगतं	उनको आया	**अभिनन्द्य**	स्वागत करके
अभिप्रेत्य	जानकर	**च यथान्यायं**	तथा मर्यादानुसार
दीर्घ सत्रिणः	दीर्घ कालीन यज्ञ करने वाले	**प्रणम्य**	प्रणाम करके
		अर्चयन्	पूजा की ॥२१॥
मुनयः	मुनिगण		
उत्थाय	(आसनोंसे) उठ-कर		

सोऽर्चितः सपरीवारः कृतासनपरिग्रहः ।
रोमहर्षणमासीनं महर्षेः शिष्यमैक्षत ॥२२॥

सः अर्चितः सपरीवारः कृत आसन परिग्रहः रोमहर्षणं आसीनं महर्षेः शिष्यं ऐक्षत ॥२२॥

सपरीवारः	परिवारके साथ	**महर्षेः शिष्यं**	महर्षि (व्यास)के शिष्य
सः अर्चितः	पूजित होकर		
आसन परिग्रहः	आसन स्वीकार	**रोमहर्षणं**	रोमहर्षणको
कृत	करके	**आसीनं ऐक्षत**	बैठे देखा ॥२२॥

अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणाञ्जलिम् ।
अध्यासीनं च तान् विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः ॥२३॥

अप्रत्युत्थायिनं सूतं अकृत प्रह्वण अंजलिम् अधि आसीनं च तान् विप्रान् चुकोप उद्वीक्ष्य माधवः ॥२३॥

अप्रत्युत्थायिनं	स्वागतमें उठकर न खड़े होने वाले-
प्रह्वण अञ्जलि	नम्रतासे हाथ जोड़ना
अकृत	न करने वाले
च सूतं	तथा सूत (जातीय) होकर
तान् विप्रान्	उन ब्राह्मणोंसे
अधि आसीनं	उच्चासन पर बैठे
उद्वीक्ष्य माधवः	देखकर बलरामजी
चुकोप	कुपित हो गये ॥२३॥

कस्मादसाविमान् विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः ।
धर्मपालांस्तथैवास्मान् वधमर्हति दुर्मतिः ॥२४॥

कस्मात् असाः इमान् विप्रान् अधि आस्ते प्रतिलोमजः धर्मपालान् तथा एव अस्मान् वधं अर्हति दुर्मतिः ॥२४॥

कस्मात् असाः	'क्योंकि यह
प्रतिलोमजः	प्रतिलोमज (होकर भी)
इमान् विप्रान्	इन ब्राह्मणों
तथा एव	इसी प्रकार
अस्मान्	हम
धर्मपालान्	धर्मरक्षकोंसे
अधि आसते	उच्चासन पर बैठा है
दुर्मतिः	(अतः यह) दुर्बुद्धि
वधं अर्हति	वधके योग्य है ॥२४॥

ऋषेर्भगवतो भूत्वा शिष्योऽधीत्य बहूनि च ।
सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥२५॥

ऋषेः भगवतः भूत्वा शिष्यः अधीत्य बहूनि च स इतिहास पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥२५॥

भगवतः ऋषेः	भगवान महर्षि (व्यास)का
शिष्यः भूत्वा	शिष्य होकर
च बहूनि	तथा बहुतसे
इतिहास	इतिहास
स पुराणानि	पुराणोंके साथ
सर्वशः	सभी
धर्मशास्त्राणि	धर्मशास्त्रोंका
अधीत्य	अध्ययन करके ॥२५॥

अदान्तस्याविनीतस्य वृथा पण्डितमानिनः ।
न गुणाय भवन्ति स्म नटस्येवाजितात्मनः ॥२६॥

अदान्तस्य अविनीतस्य वृथा पण्डित मानिनः न गुणाय भवन्ति स्म नटस्य इव अजितात्मनः ॥२६॥

अजित आत्मनः	अजितेन्द्रिय
नटस्य इव	नटके समान
अदान्तस्य	अजितेन्द्रिय
अविनीतस्य	अशिष्ट
वृथा	(अपनेको) व्यर्थ
पण्डित मानिनः	पण्डित मानने वाले को
गुणाय	(उसकी विद्या) सद्गुण दायिनी
न भवन्ति स्म	नहीं होती है ॥२६॥

एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः ।
वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ॥२७॥

एतत् अर्थः हि लोके अस्मिन् अवतारः मया कृतः वध्या मे धर्मध्वजिनः ते हि पातकिनः अधिकाः ॥२७॥

हि एतत् अर्थः	क्योंकि इसी प्रयोजनसे
अस्मिन् लोके	इस लोकमें
मया	मेरे द्वारा
अवतारः कृतः	अवतार लिया गया है

धर्मध्वजिनः	पाखण्डी	**हि ते अधिकाः**	क्योंकि वे अधिक
मे वध्या	मेरे द्वारा मारणीय हैं	**पातकिनः**	पापी होते हैं' ॥२७॥

एतावदुक्त्वा भगवान् निवृत्तोऽसद्वधादपि ।
भावित्वातं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत् प्रभुः ॥२८॥

एतावत् उक्त्वा भगवान् निवृत्तः असत् वधात् अपि भावित्वात् तं कुश अग्रेण करस्थेन अहनत् प्रभुः ॥२८॥

एतावत् उक्त्वा	इतना कहकर	**करस्थेन**	हाथमें स्थित
असत् वधात्	दुष्टोंके वधको	**कुश अग्रेण**	कुशकी नोंकसे
निवृत्तः अपि	छोड़े हुए होने पर भी	**तं अहनत्**	उनको मार दिया ॥२८॥
भावित्वात्	होनहारवश		
प्रभुः भगवान्	समर्थ भगवान (बलराम)ने		

हा हेति वादिनः सर्वे मुनयः खिन्नमानसाः ।
ऊचुः सङ्कर्षणं देवमधर्मस्ते कृतः प्रभो ॥२९॥

हा हा इति वादिनः सर्वे मुनयः खिन्न मानसाः ऊचुः सङ्कर्षणं देवं अधर्मः ते कृतः प्रभो ॥२९॥

हा हा	'हाय ! हाय !'	**देवं सङ्कर्षणं**	देव बलरामजीसे
इति	इस प्रकार	**ऊचुः**	बोले
वादिनः सर्वे	कहने वाले सब	**प्रभो ते**	'प्रभो ! आपने
खिन्न मनसाः	खिन्न चित्त	**अधर्मः कृतः**	अधर्म कर डाला ॥२९॥
मुनयः	मुनि गण		

अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनन्दन ।
आयुश्चात्माक्लमं तावद् यावत् सत्रं समाप्यते ॥३०॥

अस्य ब्रह्म आसनं दत्तं अस्माभिः यदुनन्दन आयुः च आत्म अक्लमं तावत् यावत् सत्रं समाप्यते ॥३०॥

यदुनन्दन	यदुनन्दन !	**अक्लमं आयु**	थकान रहित आयु
अस्माभिः अस्य	हम लोगों द्वारा इनको	**दत्तं**	दी गयी थी
		यावत् सत्रं	जब तक (हमारा) यज्ञ
ब्रह्म आसनं च तावत्	ब्रह्मासन तथा तब तकके लिए	**समाप्यते**	समाप्त हो ॥३०॥

अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा ।
योगेश्वरस्य भवतो नाम्नायोऽपि नियामकः ॥३१॥

अजानता एव आचरितः त्वया ब्रह्मवधः यथा योगेश्वरस्य भवतः न आम्नायः अपि नियामकः ॥३१॥

अजानता एव	अनजानमें ही	**योगेश्वरस्य**	योगेश्वरका
त्वया यथा	आपके द्वारा जैसे	**आम्नायः अपि**	वेद भी
ब्रह्मवधः	ब्रह्महत्याके समान	**नियामकः न**	नियन्त्रणकर्ता नहीं है ॥३१॥
आचरितः	आचरण हो गया,		
भवतः	आप		

यद्येतद् ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन ।
चरिष्यति भवाँल्लोकसङ्ग्रहोऽनन्यचोदितः ॥३२॥

यदि एतत् ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन चरिष्यति भवान् लोक सङ्ग्रहः अनन्य चोदितः ॥३२॥

लोकपावन	लोकपावन !	**यदि एतत्**	यदि इस
अनन्य चोदितः	किसी दूसरे द्वारा प्रेरित न होने वाले आप	**ब्रह्महत्यायाः**	ब्रह्महत्याका
		भवान्	आप

पावनं	प्रायश्चित	**लोक सङ्ग्रहः**	लोकको शिक्षा
चरिष्यति	करेंगे तो		मिलेगी ॥३२॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

करिष्ये वधनिर्वेशं लोकानुग्रहकाम्यया ।
नियमः प्रथमे कल्पे यावान् स तु विधीयताम् ॥३३॥

करिष्ये वधनिर्वेशं लोक अनुग्रह काम्यया नियमः प्रथमे कल्पे यावान् स तु विधीयताम् ॥३३॥

वधनिर्वेशं	(इस) हत्याका प्रायश्चित	**प्रथमे कल्पे**	प्रथम कल्प (उत्तम) के
लोक अनुग्रह	लोकों पर कृपा	**यावान् नियमः**	जितने नियम हों
काम्यया	करनेकी इच्छासे	**स तु विधीयतां**	उनका ही विधान
करिष्ये	करूँगा		करें ॥३३॥

दीर्घमायुर्बतैतस्य सत्त्वमिन्द्रियमेव च ।
आशासितं यत्तद् ब्रूत साधये योगमायया ॥३४॥

दीर्घं आयुः बत एतस्य सत्त्वं इन्द्रियं एव च आशसितं यत् तत् ब्रूत साधये योगमायया ॥३४॥

बत एतस्य	तथा इस (सूत)के लिए	**आशसितं**	(आप लोगोंकी) अभिलाषा हो
दीर्घं आयुः	दीर्घायु	**तत् ब्रूत**	उसे बतलाइये
इन्द्रियं	ऐन्द्रिक	**योगमायया**	योगमाया द्वारा
सत्त्वं एव	बल भी	**साधये**	सम्पन्न कर दूंगा
च यत	तथा जो		॥३५॥

॥ ऋषय ऊचुः ॥

अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च ।
यथा भवेद् वचः सत्यं तथा राम विधीयताम् ॥३५॥

अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योः अस्माकं एव च यथा भवेत् वचः सत्यं तथा राम विधीयताम् ॥३५॥

राम	बलरामजी	**वचः एव**	वचन भी
तव अस्त्रस्य	आपका अस्त्र	**यथा सत्यं भवेत्**	जैसे सत्य हों
वीर्यस्य	पराक्रम,	**तथा विधीयतां**	वैसा उपाय कीजिए
मृत्योः	(इसकी) मृत्यु		॥३५॥
च अस्माकं	तथा हम लोगोंका		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् ।
तस्मादस्य भवेद् वक्ता आयुरिन्द्रियसत्त्ववान् ॥३६॥

आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेद अनुशासनं तस्मात् अस्य भवेत् वक्ता आयुः इन्द्रियसत्त्व वान् ॥३६॥

वै आत्मा	निश्चय आत्मा ही	**तस्मात् अस्य**	इसलिये इसका पुत्र
पुत्र उत्पन्न	पुत्ररूप में उत्पन्न है	**आयुः**	दीर्घायु
		इन्द्रियसत्त्व	इन्द्रियबल
इति वेद	ऐसी वेदकी	**वान् वक्ता**	वाला वक्ता
अनुशासनं	आज्ञा है	**भवेत्**	होगा ॥३६॥

किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा ब्रूताहं करवाण्यथ ।
अजानतस्त्वपचितिं यथा मे चिन्त्यतां बुधाः ॥३७॥

किं वः कामः मुनिश्रेष्ठा ब्रूत अहं करवाणि अथ अजानतः तु अपचितिं यथा मे चिन्त्यतां बुधाः ॥३७॥

मुनिश्रेष्ठा	मुनिवरो !	**अजानतः मे**	मुझसे अनजान में
वः किं कामः	आप लोगोंका क्या काम	**अपचितिं यथा चिन्त्यतां**	(पापका) प्रायश्चित जैसे हो (उसे) विचार करें ॥३७॥
करवाणि	करूँ		
अथ बुधाः	और बुद्धिमानो		

॥ ऋषय ऊचुः ॥

इल्वलस्य सुतो घोरो बल्वलो नाम दानवः ।
स दूषयति नः सत्रमेत्य पर्वणि पर्वणि ॥३८॥

इल्वलस्य सुतः घोरः बल्वलः नाम दानवः स दूषयति नः सत्रं एत्य पर्वणि पर्वणि ॥३८॥

इल्वलस्य सुतः	इल्वलका पुत्र	**एत्य नः सत्रं**	आकर हमारे यज्ञ को
बल्वलः नाम	बल्वल नामक		
घोरः दानवः	घोर दानव है	**दूषयति**	दूषित करता है ॥३८॥
स पर्वणि पर्वणि	वह प्रत्येक पर्व पर		

तं पापं जहि दाशार्ह तन्नः शुश्रूषणं परम् ।
पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् ॥३९॥

तं पापं जहि दाशार्ह तत् नः शुश्रूषणं परं पूय शोणित विट् मूत्र सुरा मांस अभिवर्षिणम् ॥३९॥

दाशार्ह	यदुनन्दन !	**पापं जहि**	पापीको मार दीजिए
तं पूय शोणित	उस पीब, रक्त,		
विट् मूत्र	विष्ठा, मूत्र	**तत् नः परं**	यही हम सबकी सबसे बड़ी
सुरा मांस	मदिरा, मांस		
अभिवर्षिणं	चारों ओर वर्षा करने वाले	**शुश्रूषणं**	सेवा होगी ॥३९॥

ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः ।
चरित्वा द्वादश मासांस्तीर्थस्नायी विशुद्धचसे ॥४०॥

ततः च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः चरित्वा द्वादश मासान् तीर्थस्नायी विशुद्धचसे ॥४०॥

ततः च	इसके अनन्तर	**परीत्य चरित्वा**	सब ओर घूमकर
भारतं वर्षं	भारतवर्ष में	**तीर्थस्नायी**	तीर्थ-स्नान करके
सुसमाहितः	पूर्ण एकाग्र होकर	**विशुद्धचसे**	(आप) शुद्ध हो
द्वादश मासान्	बारह महीने		जायेंगे ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे बल्देवचरित्रे बल्वलवधोपक्रमो नाम अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

अथ एकोनाशीतितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचण्डः पांसुवर्षणः ।
भीमो वायुरभूद् राजन् पूयगन्धस्तु सर्वशः ॥ १ ॥

ततः पर्वणि उपावृत्ते प्रचण्डः पांसु वर्षणः भीमः वायुः अभूत् राजन् पूयगन्धः तु सर्वशः ॥१॥

राजन्	राजन् !	**भीमः वायुः**	भयंकर आंधी
ततः पर्वणि	पर्व काल	**तु सर्वशः**	और सब ओर
उपावृत्ते	आने पर	**पूयगन्धः**	दुर्गन्धि
पांसु वर्षणः	धूलि वर्षा करने वाली	**अभूत्**	फैल गयी ॥१॥

ततोऽमेध्यमयं वर्षं बल्वलेन विनिर्मितम् ।
अभवद् यज्ञशालायां सोऽन्वदृश्यत शूलधृक् ॥ २ ॥

ततः अमेध्यमयं वर्षं बल्वलेन विनिर्मितं अभवत् यज्ञशालायां सः अनु अदृश्यत शूलधृक् ॥२॥

ततः बल्वलेन	फिर बल्वल द्वारा	**अभवत्**	होने लगी
विनिर्मितं	उत्पन्न की गयी	**सः अनु**	वह इसके पीछेही
अमेध्यमयं वर्षं	अपवित्र वस्तुओं की वर्षा	**शूलधृक्**	त्रिशूल लिए
यज्ञशालायां	यज्ञशालामें	**अदृश्यत**	दिखलायी पड़ा ॥२॥

तं विलोक्य बृहत्कायं भिन्नाञ्जनचयोपमम् ।
तप्ततास्रशिखाश्मश्रुं दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम् ॥ ३ ॥

तं विलोक्य बृहत् कायं भिन्न अञ्जन चय उपमं तप्त ताम्र शिखा श्मश्रुं दंष्ट्रा उग्र भ्रुकुटी मुखम् ॥३॥

तं बृहत् कायं	उस बड़े भारी शरीर वाले	**शिखा श्मश्रुं**	केश तथा दाढ़ी-मूँछ वाले
भिन्न अञ्जन चय	कज्जल समूहको फोड़ कर निकलेके	**दंष्ट्रा भ्रुकुटी उग्र मुखं**	दाढ़ों और भौंहोंसे भयानक मुख वाले को
उपमं	समान		
तप्त ताम्र	तपाये तांबेके समान	**विलोक्य**	देखकर ॥३॥

सस्मार मुसलं रामः परसैन्यविदारणम् ।
हलं च दैत्यदमनं ते तूर्णमुपतस्थतुः ॥ ४ ॥

सस्मार मुसलं रामः परसैन्य विदारणं हलं च दैत्यदमनं ते तूर्ण उपतस्थतुः ॥४॥

परसैन्य	शत्रु-सैन्य	**ते तूर्ण**	वे शीघ्र
विदारणं	संहारक	**उपतस्थतुः**	(उनके) समीप उपस्थित हो गये ॥४॥
मुसलं च	मूसल तथा		
दैत्यदमनं	दैत्य-दलनकर्त्ता		
हलं	हलको		
रामः सस्मार	बलरामजीने स्मरण किया		

तमाकृष्य हलाग्रेण बल्वलं गगनेचरम् ।
मुसलेनाहनत् क्रुद्धो मूर्ध्नि ब्रह्मद्रुहं बलः ॥ ५ ॥

तं आकृष्य हल अग्रेण बल्वलं गगनेचरं मुसलेन अहनत् क्रुद्धः मूर्ध्नि ब्रह्म द्रुहं बलः ॥५॥

बलः तं	बलरामजीने उस	**आकृष्य**	खींचकर
ब्रह्म द्रुहं	ब्राह्मणद्रोही	**क्रुद्धः मुसलेन**	कुपित होकर मूसलसे
गगनेचरं	आकाशचारी	**मूर्ध्नि अहनत्**	सिर पर मारा ॥५॥
बल्वलं	बल्वलको		
हल अग्रेण	हलके अगले भागसे		

सोऽपतद् भुवि निर्भिन्नललाटोऽसृक् समुत्सृजन् ।
मुञ्चन्नार्तस्वरं शैलो यथा वज्रहतोऽरुणः ॥ ६ ॥

सः अपतत् भुवि निर्भिन्न ललाटः असृक् समुत्सृजन् मुञ्चन् आर्तस्वरं शैलः यथा वज्रहतः अरुणः ॥६॥

सः	वह	**यथावज्र-हतः**	जैसे वज्रका मारा
निर्भिन्न ललाटः	ललाट फट जानेसे	**अरुणः शैलः**	लाल पर्वत हो
असृक्	बहुत	**भुवि अपतत्**	पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥६॥
समुत्सृजन्	रक्त बहाता		
आर्तस्वरं	आर्तनाद		
मुञ्चन्	करता		

संस्तुत्य मुनयो रामं प्रयुज्यावितथाशिषः ।
अभ्यषिञ्चन् महाभागा वृत्रघ्नं विबुधा यथा ॥ ७ ॥

संस्तुत्य मुनयः रामं प्रयुज्य अवितथ आशिषः अभ्यषिञ्चन् महाभागा वृत्रघ्नं विबुधा यथा ॥७॥

महाभागा	महाभाग	**अवितथ**	अमोघ
मुनयः	मुनियोंने	**आशिषः**	आशीर्वाद देकर
रामं	बलरामजीकी	**यथा वृत्रघ्नं**	जैसे वृत्रको मारने वाले इन्द्रका
संस्तुत्य	प्रशंसा करके		

विबुधा	देवताओंने (अभिषेक किया था)	**अभ्यषिञ्चन्**	अभिषेक किया ॥७॥

वैजयन्तीं ददुर्मालां श्रीधामाम्लानपङ्कजाम् ।
रामाय वाससी दिव्ये दिव्यान्याभरणानि च ॥ ८ ॥

वैजयन्तीं ददुः मालां श्रीधाम अम्लान पङ्कजां रामाय वाससी दिव्ये दिव्यानि आभरणानि च ॥८॥

रामाय	बलरामजीको	**दिव्ये वाससी**	दिव्य दो वस्त्र
श्रीधाम	शोभामयी	**च दिव्यानि**	तथा दिव्य
अम्लान पङ्कजां	न कुम्हलाने वाले कमलोंकी	**आभरणानि**	आभूषण
		ददुः	दिये ॥८॥
वैजयन्तीं मालां	वैजयन्ती (घुटनों तक लटकती) माला		

अथ तैरभ्यनुज्ञातः कौशिकीमेत्य ब्राह्मणैः ।
स्नात्वा सरोवरमगाद् यतः सरयुरास्रवत् ॥ ९ ॥

अथ तैः अभ्य अनुज्ञातः कौशिकीं एत्य ब्राह्मणै स्नात्वा सरोवरं अगात् यतः सरयुः आस्रवत् ॥९॥

अथ तैः	फिर उन (मुनियों) से	**कौशिकीं एत्य**	कौशिकी (विश्वामित्री) नदीके पास आकर
अभ्य अनुज्ञातः	भली प्रकार अनुमति लेकर	**स्नात्वा**	(उसमें) स्नान करके
ब्राह्मणैः	ब्राह्मणोंके साथ		

सरोवरं अगात्	उस सरोवर पर गये	**आस्रवत्**	चारो ओरसे झरती है ॥९॥*
यतः सरयु	जिसमें सरयू नदी		

अनुस्रोतेन सरयूं प्रयागमुपगम्य सः ।
स्नात्वा सन्तर्प्य देवादीन् जगाम पुलहाश्रमम् ॥१०॥

अनुस्रोतेन सरयूं प्रयागं उपगम्य सः स्नात्वा सन्तर्प्य देव आदीन् जगाम पुलह आश्रमम् ॥१०॥

सरयूं	सरयूकी	**स्नात्वा**	स्नान करके
अनुस्रोतेन	धाराके साथ चलकर	**देव आदीन्**	देवतादिका
		सन्तर्प्य	तर्पण करके
सः प्रयागं	वे प्रयाग	**पुलह आश्रमं**	पुलह आश्रम
उपगम्य	पहुँचकर	**जगाम**	गये ॥१०॥

गोमतीं गण्डकीं स्नात्वा विपाशां शोण आप्लुतः ।
गयां गत्वा पितॄनिष्ट्वा गङ्गासागरसङ्गमे ॥११॥

गोमतीं गण्डकीं स्नात्वा विपाशां शोण आप्लुतः गयां गत्वा पितॄन् इष्ट्वा गङ्गासागर सङ्गमे ॥११॥

गोमतीं गण्डकीं	गोमती, गण्डकीमें	**पितॄन् इष्ट्वा**	पितृ पूजा करके
स्नात्वा	स्नान करके	**गङ्गासागर**	गंगा-सागर
शोण आप्लुतः	सोनमें स्नान किया	**सङ्गमे**	संगम गये ॥११॥
गयां गत्वा	गया जाकर		

---

*सरयू किसी एक हिम स्रोतसे नहीं निकलती। चारों ओर के पर्वतों से गिरते झरने एक स्थान पर मिलते हैं। इसीसे उसे 'सौधार' कहते हैं।

उपस्पृश्य महेन्द्राद्रौ रामं दृष्ट्वाभिवाद्य च ।
सप्तगोदावरीं वेणां पम्पां भीमरथीं ततः ॥१२॥

उपस्पृश्य महेन्द्र अद्रौ रामं दृष्ट्वा अभिवाद्य च सप्त गोदावरीं वेणां पम्पां भीमरथीं ततः ॥१२॥

महेन्द्र अद्रौ	महेन्द्राचल पर	**सप्तगोदावरीं**	सप्त गोदावरी
उपस्पृश्य	पहुँचकर	**वेणां पम्पां**	वेणा, पम्पा
रामं दृष्ट्वा	परशुरामजीका दर्शन करके	**ततः भीमरथीं**	फिर भीमरथी नदीमें स्नान किया) ॥१२॥
च अभिवाद्य	तथा उनको प्रणाम करके		

स्कन्दं दृष्ट्वा ययौ रामः श्रीशैलं गिरिशालयम् ।
द्रविडेषु महापुण्यं दृष्ट्वाद्रिं वेङ्कटं प्रभुः ॥१३॥

स्कन्दं दृष्ट्वा ययौ रामः श्रीशैलं गिरिश आलयं द्रविडेषु महापुण्यं दृष्ट्वा अद्रिं वेङ्कटं प्रभुः ॥१३॥

स्कन्दं दृष्ट्वा	स्वामि कार्तिकका दर्शन करके	**महापुण्यं**	महान् पवित्र
गिरिश आलयं	शंकरजीके निवास स्थान	**वेङ्कटं अद्रिं**	वेङ्कटाचल (तिरुपति)का
श्रीशैलं	श्रीशैल पर गये	**प्रभुः दृष्ट्वा**	उन समर्थने दर्शन किया ॥१३॥
द्रविडेषु	द्रविड़ देशमें		

कामकोष्णीं पुरीं काञ्चीं कावेरीं च सरिद्वराम् ।
श्रीरङ्गाख्यं महापुण्यं यत्र सन्निहितो हरिः ॥१४॥

कामकोष्णीं पुरीं काञ्चीं कावेरीं च सरित् वरां श्रीरङ्ग आख्यं महापुण्यं यत्र सन्निहितः हरिः ॥१४॥

काम कोष्णीं	कामकोष्णी (नदीमें स्नान करके)	**महापुण्यं**	परम पवित्र
		श्रीरङ्ग आख्यं	श्रीरङ्ग नामक (क्षेत्र गये)
काञ्चीं पुरीं	काञ्ची पुरी गये,		
च सरित् वरां	तथा सरिता श्रेष्ठ	**यत्र हरिः**	जहाँ श्रीहरि
कावेरीं	कावेरी (में स्नान करके)	**सन्निहतः**	सदा विराजमान हैं ॥१४॥

ऋषभाद्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा ।
सामुद्रं सेतुमगमन्महापातकनाशनम् ॥१५॥

ऋषभाद्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा सामुद्रं सेतुं अगमन् महापातक नाशनम् ॥१५॥

हरेः क्षेत्रं	(वहाँसे) हरि क्षेत्र	**महापातक**	फिर महापाप
ऋषभाद्रिं	ऋषभादि	**माशनं**	नाशक
तथा दक्षिणां	तथा दक्षिणी	**सामुद्रं सेतुं**	सेतुबन्ध (रामेश्वर)
मथुरां	मथुरा गये	**अगमन्**	पहुँचे ॥१५॥

तत्रायुतमदाद् धेनूर्ब्राह्मणेभ्यो हलायुधः ।
कृतमालां ताम्रपर्णीं मलयं च कुलाचलम् ॥१६॥

तत्र अयुतं अदात् धेनुं ब्राह्मणेभ्यः हलायुधः कृतमालां ताम्रपर्णीं मलय च कुल अचलम् ॥१६॥

हलायुधः	श्रीहलधरने	**कृतमालां**	(वहाँसे) कृतमाला
तत्र	वहाँ	**ताम्रपर्णीं**	ताम्रपर्णी
ब्राह्मणेभ्यः	ब्राह्मणोंको		
अयुतं	दस सहस्र		
अदात् धेनुं	गोदान किया		

च कुल अचलं	(में स्नान करते) फिर कुल पर्वत	मलयं	मलय (पर पहुँचे) ॥१६॥

तत्रागस्त्यं समासीनं नमस्कृत्याभिवाद्य च ।
योजितस्तेन चाशीर्भिरनुज्ञातो गतोऽर्णवम् ।
दक्षिणं तत्र कन्याख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः ॥१७॥

तत्र अगस्त्यं समासीनं नमस्कृत्य अभिवाद्य च योजितः तेन च आशीर्भिः अनुज्ञातः गतः अर्णवं दक्षिणं तत्र कन्या आख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः ॥१७॥

तत्र समासीनं	वहाँ विराजमान	**दक्षिणं**	दक्षिणी
अगस्त्यं	अगस्त्य ऋषिको	**अर्णवं गतः**	महासागर गये
नमस्कृत्य	नमस्कार	**तत्र कन्या**	वहाँ कन्या
च अभिवाद्य	तथा प्रणाम करके	**आख्यां**	नामवाली
तेन	उनके द्वारा	**दुर्गां देवीं**	दुर्गा देवीका
आशीर्भिः	आशीर्वाद	**सः ददर्श**	दर्शन किया ॥१७॥
योजितः	दिये जाने पर		
च अनुज्ञातः	एवं (उनकी) अनुमति लेकर		

ततः फाल्गुनमासाद्य पञ्चाप्सरसमुत्तमम् ।
विष्णुः सन्निहितो यत्र स्नात्वास्पर्शद् गवायुतम् ॥१८॥

ततः फाल्गुनं आसाद्य पञ्च अप्सरसं उत्तमं विष्णुः सन्निहितः यत्र स्नात्वा स्पर्शत् गवा अयुतम् ॥१८॥

ततः **फाल्गुनं**	फिर फाल्गुन क्षेत्र (अनन्तपुर)	**यत्र विष्णुः**	जहाँ भगवान विष्णु की
आसाद्य	पहुँचकर		

सन्निहितः	(सदा) सन्निधि रहती है	**स्नात्वा**	स्नान करके
उत्तमं	उस श्रेष्ठ	**गवा अयुतं**	दस सहस्र गायें
पञ्च अप्सरसं	पञ्चाप्सरस* तीर्थ में	**स्पर्शत्**	दान कीं ॥१८॥

ततोऽभिव्रज्य भगवान् केरलांस्तु त्रिगर्तकान् ।
गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः ॥१९॥

ततः अभिव्रज्य भगवान् केरलान् तु त्रिगर्तकान् गोकर्णं आख्यं शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः ॥१९॥

ततः भगवान्	फिर भगवान बलरामजी	**यत्र धूर्जटेः**	जहाँ शंकरजीकी
केरलान् तु	केरल और	**सान्निध्यं**	सदा सन्निधि है
त्रिगर्तकान्	त्रिगर्त देशमें	**गोकर्णं आख्यं**	उस गोकर्ण नामक
अभिव्रज्य	चलते हुए	**शिवक्षेत्रं**	शिवक्षेत्रमें पहुँचे ॥१९॥

आर्यां द्वैपायनीं दृष्ट्वा शूर्पारकमगाद् बलः ।
तापीं पयोष्णीं निर्विन्ध्यामुपस्पृश्याथ दण्डकम् ॥२०॥

आर्यां द्वैपायनीं दृष्ट्वा शूर्पारकं अगात् बलः तापीं पयोष्णीं निर्विन्ध्यां उपस्पृश्य अथ दण्डकम् ॥२०॥

द्वैपायनीं	द्वीपमें विराजमान	**आर्यां दृष्ट्वा**	आर्या देवीका दर्शन करके

---

*अनन्तपुर (त्रिवेन्द्रम्)में पञ्चाप्सर सरोवर तो हैं, किन्तु पश्चिमी समुद्र तट पर उडूपी-गोकर्णके बीचमें एक स्थान पर पाँच नदियोंका संगम है। 'पञ्च-अप्सरास' यह व्युत्पत्ति समीचीन लगी वहांके एक विद्वान की ।

बलः शूर्पारकं	बलरामजी शूर्पारक क्षेत्र	**निर्विन्ध्यां**	निर्विन्ध्यामें
		उपस्पृश्य	स्नान करके
अगात्	गये (फिर)	**अथ दण्डकं**	फिर दण्डकारण्य
तापीं पयोष्णीं	तापी, पयोष्णी		गये ॥२०॥

प्रविश्य रेवामगमद् यत्र माहिष्मती पुरी ।
मनुतीर्थमुपस्पृश्य प्रभासं पुनरागमत् ॥२१॥

प्रविश्य रेवां अगमत् यत्र माहिष्मती पुरी मनुतीर्थं उपस्पृश्य प्रभासं पुनः आगमत् ॥२१॥

यत्र	जहाँ	**मनुतीर्थं**	मनुतीर्थमें
माहिष्मती पुरी	माहिष्मती पुरी है	**उपस्पृश्य**	स्नान करके
रेवां प्रविश्य	वहां नर्मदा तट पर पहुँचकर	**पुनः प्रभासं**	फिर प्रभासक्षेत्रमें
		आगमत्	लौट आये ॥२१॥

श्रुत्वा द्विजैः कथ्यमानं कुरुपाण्डवसंयुगे ।
सर्वराजन्यनिधनं भारं मेने हृतं भुवः ॥२२॥

श्रुत्वा द्विजैः कथ्यमानं कुरु पाण्डव संयुगे सर्वराजन्य निधनं भारं मेने हृतं भुवः ॥२२॥

द्विजैः कथ्यमानं	ब्राह्मणों द्वारा वर्णन किया जाता	**श्रुत्वा भुवः**	सुनकर पृथ्वीका
		भारं	भार
कुरु पाण्डव	कौरव-पाण्डव	**हृतं मेने**	दूर हो गया माना
संयुगे	युद्धमें		॥२२॥
सर्वराजन्य	सब राजाओंका		
निधनं	संहार		

स भीमदुर्योधनयोर्गदाभ्यां युध्यतोर्मृधे ।
वारयिष्यन् विनशनं जगाम यदुनन्दनः ॥२३॥

स भीम दुर्योधनयोः गदाध्यां युध्यतः मृधे वारयिष्यन् विनशनं जगाम यदुनन्दनः ॥२३॥

स यदुनन्दनः	वे यदुनन्दन	**युध्यतः**	युद्ध करते हुए
भीम	भीमसेन और	**वारयिष्यन**	मना करनेके लिए
दुर्योधनयो	दुर्योधनको	**विनशनं जयाम**	कुरुक्षेत्र गये ॥२३॥
मृधे गदाभ्यां	युद्ध स्थलमें गदा द्वारा		

युधिष्ठिरस्तु तं दृष्ट्वा यमौ कृष्णार्जुनावपि ।
अभिवाद्याभवंस्तूष्णीं किंविवक्षुरिहागतः ॥२४॥

युधिष्ठिरः तु तं दृष्ट्वा यमौ कृष्ण अर्जुनाः अपि अभिवाद्य अभवन् तूष्णीं किं विवक्षुः इह आगतः ॥२४॥

युधिष्ठिरः तु	युधिष्ठिरने तो	**तूष्णीं अभवन्**	चुप हो गये
यमौ कृष्ण	युग्मज नकुल-सहदेव श्रीकृष्ण	**किं विवक्षु**	(सोचने लगे कि ये) क्या कहनेकी इच्छा से
अर्जुनाः अपि	तथा अर्जुन भी		
तं दृष्ट्वा	उनको देखकर	**इह आगतः**	यहां आये हैं ॥२४॥
अभिवाद्य	प्रणाम करके		

गदापाणी उभौ दृष्ट्वा संरब्धौ विजयैषिणौ ।
मण्डलानि विचित्राणि चरन्ताविदमब्रवीत् ॥२५॥

गदापाणी उभौ दृष्ट्वा संरब्धौ विजय ईषिणौ मण्डलानि विचित्राणि चरन्ताः इदं अब्रवीत् ॥२५॥

उभौ संरब्धौ	दोनोंको क्रोधमें भरे	**विचित्राणि**	अनेक प्रकारके
विजय ईषिणौ	विजय चाहने वाले	**मण्डलानि**	पैंतरे
गदापाणी	गदा हाथमें लिए	**चरन्ताः**	लेते
		दृष्ट्वा इदं	देखकर यह
		अब्रवीत्	बोले ॥२५॥

युवां तुल्यबलौ वीरौ हे राजन् हे वृकोदर ।
एकं प्राणाधिकं मन्ये उतैकं शिक्षयाधिकम् ॥२६॥

युवां तुल्यबलौ वीरौ हे राजन् हे वृकोदर एकं प्राण अधिकं मन्ये उत एकं शिक्षया अधिकम् ॥२६॥

हे राजन्	'हे राजन् (दुर्योधन) !	**उत**	तथा
हे वृकोदर	हे भीमसेन !	**एकं शिक्षया**	एक (दुर्योधन)को शिक्षामें
युवां तुल्यबलौ	तुम दोनों समान बलवान	**अधिकं मन्ये**	अधिक मानता हूँ ॥२६॥
वीरौ	वीर हो		
एकं	एक (भीम)को		
प्राण अधिकं	बलमें अधिक		

तस्मादेकतरस्येह युवयोः समवीर्ययोः ।
न लक्ष्यते जयोऽन्यो वा विरमत्यफलो रणः ॥२७॥

तस्मात् एकतरस्य इह युवयोः समवीर्ययोः न लक्ष्यते जयः अन्यः वा विरमतु अफलः रणः ॥२७॥

तस्मात्	इसलिए	**न लक्ष्यते**	नहीं दीखती है
समवीर्ययोः	समान बलवान	**अफलः रणः**	(अतः यह) निष्फल युद्ध
युवयोः इह	तुम दोनोंमेंसे यहां		
एकतरस्य	किसी एककी	**विरमतु**	रोक दिया जाय ॥२७॥
जयः अन्यः वा	विजया या दूसरी (पराजय)		

न तद्वाक्यं जगृहतुर्बद्धवैरौ नृपार्थवत् ।
अनुस्मरन्तावन्योन्यं दुरुक्तं दुष्कृतानि च ॥२८॥

न तत् वाक्यं जगृहतुः बद्धवैरौ नृप अर्थवत् अनुस्मरन्तः अन्य अन्यं दुरुक्तं दुष्कृतानि च ॥२८॥

नृप	राजन् !	**अर्थवत् बद्धवैरौ**	सप्रयोजन दृढ़ शत्रुता किये
अन्य अन्यं	एक दूसरेके		(उन्होंने)
दुरुक्तं च	कटु वचनों तथा	**तत् वाक्यं**	उनकी बातको
दुष्कृतानि	अपकर्मोंको	**न जगृहतुः**	नहीं स्वीकार किया
अनुस्मरन्तः	बराबर स्मरण करते हुए		॥२८॥

दिष्टं तदनुमन्वानो रामो द्वारवतीं ययौ ।
उग्रसेनादिभिः प्रीतैर्ज्ञातिभिः समुपागतः ॥२९॥

दिष्टं तत् अनुमन्वानः रामः द्वारवतीं ययौ उग्रसेन आदिभिः प्रीतैः ज्ञातिभिः सम उपागतः ॥२९॥

तत् दिष्टं	तब दैव	**प्रीतैः**	प्रसन्नता पूर्वक
अनुमन्वानः	जो करेगा-होगा 'यह मानकर	**उग्रसेन आदिभिः**	उग्रसेनादि
		ज्ञातिभिः	जातिके लोग
रामः	बलरामजी	**सम उपागतः**	आगे आकर मिले
द्वारवतीं ययौ	द्वारिका चले गये (वहां)		॥२९॥

तं पुननैँमिषं प्राप्तमृषयोऽयाजयन् मुदा ।
क्रत्वङ्गं क्रतुभिः सर्वैर्निवृत्ताखिलविग्रहम् ॥३०॥

तं पुनः नैमिषं प्राप्तं ऋषयः अयाजयन् मुदा क्रतु अङ्गम् क्रतुभिः सर्वैः निवृत्त अखिल विग्रहम् ॥३०॥

तं	उन	**क्रतु अङ्गम्**	यज्ञमूर्ति (बलराम जी)के
अखिल विग्रहं	सम्पूर्ण विरोधोंके		
निवृत्त	छोड़े हुए		

पुनः नैमिषं प्राप्तं मुदा ऋषयः	फिर नैमिषारण्य आने पर प्रसन्नतापूर्वक ऋषियोंने	सर्वैः क्रतभिः अयाजयन्	सब प्रकारके यज्ञ करवाये ॥३०॥

तेभ्यो विशुद्धविज्ञानं भगवान् व्यतरद् विभुः ।
येनैवात्मन्यदो विश्वमात्मानं विश्वगं विदुः ॥३१॥

तेभ्यः विशुद्ध विज्ञानं भगवान् व्यवरत् विभुः येन ऐव आत्मनि अदः विश्वं आत्मानं विश्वगं विदुः ॥३१॥

विभुः भगवान्	समर्थ भगवान बलरामजीने	विश्वं अदः	विश्वको व्याप्त (समाया)
तेभ्यः विशुद्ध	उनको बिशुद्ध	आत्मानं	तथा आत्माको
विज्ञानं	विज्ञानका	विश्वगं	विश्वमें व्याप्त
व्यतरत	बाटा (उपदेश किया)	विदुः	(ऋषियोंने) जाना ॥३१॥
येन	जिससे		
आत्मनि एव	आत्मामें ही		

स्वपत्न्यावभृथस्नातो ज्ञातिबन्धुसुहृद्वृतः ।
रेजे स्वज्योत्स्नयेवेन्दुः सुवासाः सुष्ठ्वलङ्कृतः ॥३२॥

स्वपत्न्या अवभृथः स्नातः ज्ञाति बन्धु सुहृत् वृतः रेजे स्वज्योत्स्ना इव इन्दुः सुवासाः सुष्ठु अलङ्कृतः ॥३२॥

ज्ञाति बन्धु	जाति भाई	सुवासाः	उत्तम वस्त्र एवं
सुहृत् वृतः	मित्रोंसे घिरे	सुष्ठु	अच्छे आभूषणोंसे
स्वपत्न्या	अपनी पत्नियों सहित	अलङ्कृतः	अलंकृत होकर
अवभृथः स्नातः	अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान करके	स्वज्योत्स्ना	अपनी चन्द्रिकासे
		इन्दुः इव रेजे	चन्द्रमाके समान शोभित हुए ॥३२॥

ईदृग्विधान्यसंख्यानि बलस्य बलशालिनः ।
अनन्तस्याप्रमेयस्य मायामर्त्यस्य सन्ति हि ॥३३॥

ईदृक् विधानि असंख्यानि बलस्य बलशालिनः अनन्तस्य अप्रमेयस्य मायामर्त्यस्य सन्ति हि ॥३३॥

अनन्तस्य	अनन्त	**हि असंख्यानि**	क्योंकि असंख्यों (चरित)
अप्रमेयस्य	अप्रमेय		
मायामर्त्यस्य	मायासे मनुष्य बने	**सन्ति**	हैं ॥३३॥
बलशालिनः	बलवान		
बलस्य ईदृक्	बलरामजीके इस प्रकारके		

योऽनुस्मरेत रामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः ।
सायं प्रातरनन्तस्य विष्णोः स दयितो भवेत् ॥३४॥

यः अनुस्मरेत रामस्य कर्माणि अद्भुत कर्मणः सायं प्रातः अनन्तस्य विष्णोः स दयितः भवेत् ॥३४॥

अद्भुत कर्मणः	अद्भुतकर्मा	**स विष्णोः**	यह श्रीहरिको
अनन्तस्य	अनन्त	**दयितः**	प्रिय
रामस्य	बलरामजीके	**भवेत्**	हो जाता है ॥३४॥
कर्मणः यः	कर्मोंको जो		
सायं प्रातः	सायं-प्रातः		
अनुस्मरेत्	बराबर स्मरण करता है		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे बलदेवतीर्थयात्रानिरूपणं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

अथ अशीतितमोऽध्यायः

॥ राजोवाच ॥

भगवन् यानि चान्यानि मुकुन्दस्य महात्मनः ।
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामहे प्रभो ॥ १ ॥

भगवन् यानि च अन्यानि मुकुन्दस्य महात्मनः वीर्याणि अनन्त वीर्यस्य श्रोतुं इच्छामहे प्रभो ॥१॥

भगवन् प्रभो	भगवन् ! प्रभो !	**वीर्याणि**	पराक्रम हैं
अनन्त वीर्यस्य	अनन्त पराक्रम	**श्रोतुं इच्छामहे**	उन्हें सुनाना चाहता हूँ ॥१॥
महात्मनः	महात्मा		
मुकुन्दस्य	मुकुन्दके		
अन्यानि च	दूसरे भी		
यानि	जो		

को नु श्रुत्वासकृद् ब्रह्मन्नुत्तमश्लोकसत्कथाः ।
विरमेत विशेषज्ञो विषण्णः काममार्गणैः ॥ २ ॥

कः नु श्रुत्वा असकृत् ब्रह्मन् उत्तमश्लोक सत् कथाः विरमेत विशेषज्ञः विषण्णः काममार्गणैः ॥२॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**सत् कथाः**	उत्तम कथाको
काम मार्गणैः	भोगोंको ढूढ़ते-ढूढ़ते	**असकृत् श्रुत्वा**	बार-बार सुनकर
विषण्णः	थक चुका	**विरमेत**	उससे उपरत होगा ॥२॥
नु कः विशेषज्ञः	भला कौन विशेषज्ञ		
उत्तमश्लोक	पवित्र कीर्ति भगवानकी		

सा वाग् यया तस्य गुणान् गृणीते
करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च ।
स्मरेद् वसन्तं स्थिरजङ्गमेषु
शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥ ३ ॥

सा वाक् यया तस्य गुणान् गृणीते करौ च तत् कर्म करौ मनः च स्मरेत् वसन्तं स्थिर जङ्गमेषु शृणोति तत् पुण्य कथाः स कर्णः ॥३॥

सा वाक्	वही वाणी है	**वसन्तं स्मरेत्**	निवास करने वाले को स्मरण करें
यया तस्य	जिससे उनका	**मनः**	वह मन है
गुणान् गृणीते	गुणगान होता है,	**तत् पुण्य कथाः**	और उनकी पवित्र कथा
च तत् कर्म	तथा उनके लिए कर्म	**शृणोति स कर्णः**	सुनें वे कान (सफल) हैं ॥३॥
करौ करौ	करने वाले हाथ हैं		
च	एवं		
स्थिर जङ्गमेषु	स्थावरज-ङ्गममें		

शिरस्तु तस्योभयलिङ्गमानमे-
त्तदेव यत् पश्यति तद्धि चक्षुः ।
अङ्गानि विष्णोरथ तज्जनानां
पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम् ॥ ४ ॥

शिरः तु तस्य उभयलिङ्गम् आनमेत् तत् एव यत् पश्यति तत् हि चक्षुः अङ्गानि विष्णोः अथ तत् जनानां पाद उदकं यानि भजन्ति नित्यम् ॥४॥

तस्य	उनकी (चल-अचल)	**आनमेत्**	प्रणाम करे
उभयलिङ्गम्	दोनों प्रकारकी मूर्तियोंको	**शिरः तु**	वही सिर
		तत् एव यत्	उनका ही जो

पश्यति	दर्शन करे	**यानि भजन्ति**	जिनसे सेवन किया जाय
हि तत् चक्षुः	क्योंकि वही नेत्र	**अङ्गानि**	वे अङ्ग (सफल) हैं ॥४॥
विष्णोः अथ	श्रीहरि और		
तत् जनानां	उनके भक्तोंका		
पाद उदकं	चरणोदकका		
नित्यं	सदा		

॥ सूत उवाच ॥

विष्णुरातेन सम्पृष्टो भगवान् बादरायणिः ।
वासुदेवे भगवति निमग्नहृदयोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥

विष्णुरातेन सम्पृष्टः भगवान् बादरायणिः वासुदेवे भगवति निमग्न हृदयः अब्रवीत् ॥५॥

विष्णुरातेन	परीक्षित द्वारा	**भगवति**	भगवान
सम्पृष्टः	पूछे जाने पर	**वासुदेवे**	वासुदेवमें
भगवान्	भगवान	**निमग्न हृदयः**	तल्लीन हृदय
बादरायणि	व्यास-नन्दन	**अब्रवीत्**	बौले ॥५॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

कृष्णस्यासीत् सखा कश्चिद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ।
विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः ॥ ६ ॥

कृष्णस्य आसीत् सखा कश्चित् ब्राह्मणः ब्रह्मवित्तमः विरक्तः इन्द्रिय अर्थेषु प्रशान्त आत्मा जितेन्द्रियः ॥६॥

ब्रह्मवित्तमः	ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ	**विरक्तः**	विरक्त
इन्द्रिय अर्थेषु	इन्द्रियोंके विषयोंसे	**प्रशान्त आत्मा**	अत्यन्त शान्त चित्त

जितेन्द्रियः	जितेन्द्रियः	**कृष्णस्य सखा**	श्रीकृष्णका सखा
कश्चित्	कोई	**आसीत्**	था ॥६॥
ब्राह्मणः	ब्राह्मण		

यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी ।
तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षामा च तथाविधा ॥ ७ ॥

यदृच्छया उपपन्नेन वर्तमानः गृह आश्रमी तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत् क्षामा च तथा विधा ॥७॥

यदृच्छया	अपने आप	**क्षुत् क्षाम**	भूखसे दुबली
उपपन्नेन	प्राप्तसे	**भार्या च**	पत्नी भी
वर्तमानः	निर्वाह करने वाले वे	**तथा विधा**	उन्हींकी भांति थी ॥७॥
गृह आश्रमी	गृहस्थ थे,		
तस्य कुचैलस्य	उन फटे-पुराने वस्त्रों वालेकी		

पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा ।
दरिद्रा सीदमाना सा वेपमानाभिगम्य च ॥ ८ ॥

पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा दरिद्रा सीदमाना सा वेपमाना अभिगम्य च ॥८॥

सा दरिद्रा	वह दरिद्रा	**च वेपमाना**	तथा (डरसे) कांपती हुई
सीदमाना	दुःखिनी	**अभिगम्य**	समीप जाकर
पतिव्रता	पतिव्रता	**सा पतिं प्राह**	उसने पतिसे कहा ॥८॥
म्लायता	मलिन		
वदनेन	मुखसे		

ननु ब्रह्मन् भगवतः सखा साक्षाच्छ्रियः पतिः ।
ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान् सात्वतर्षभः ॥ ९ ॥

ननु ब्रह्मन् भगवतः सखा साक्षात् श्रियः पतिः ब्राह्मण्यः च शरण्यः च भगवान् सात्वत ऋषभः ॥९॥

ब्रह्मन् ननु	ब्रह्मन् ! भला	**ब्रह्मण्यः च**	ब्राह्मण भक्त एवं
साक्षात्	साक्षात्	**शरण्यः च**	शरणदाता भी
श्रियः पतिः	श्रीपति	**भगवतः सखा**	आपकेके मित्र हैं
भगवान्	भगवान्		॥९॥
सात्वत ऋषभः	यदुश्रेष्ठ		
च	तथा		

तमुपैहि महाभाग साधूनां च परायणम् ।
दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने ॥१०॥

तं उपैहि महाभाग साधूनां च परायणं दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने ॥१०॥

साधूनां च	सत्पुरुषोंके तो	**ते सीदते**	आप कष्ट पाते
परायणं	वे परमाश्रय हैं	**कुटुम्बिने**	कुटुम्बवानको
महाभाग	महाभाग	**भूरि द्रविणं**	(वे) बहुत-सा धन
तं उपैहि	उनके समीप जाइये	**दास्यति**	देंगे ॥१०॥

आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ।
स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति ।
किं न्वर्थकामान् भजतो नात्यभीष्टाञ्जगद्गुरुः ॥११॥

आस्ते अधुना द्वारवत्यां भोजवृष्णि अन्धक ईश्वरः स्मरतः पादकमलं आत्मानं अपि यच्छति किं नु अर्थ कामान् भजतः न अति अभीष्टान् जगद्गुरुः ॥११॥

अधुना	इन दिनों वे	**भोजवृष्णि**	भोजवृष्णि
द्वारवत्यां	द्वारिकामें		

अन्धक ईश्वरः अन्धक वंशीयोंके स्वामी
आस्ते विराजमान हैं
पादकमलं (अपने) चरण-कमलोंका
स्मरतः स्मरण करने वाले को
आत्मानं अपि अपने आपको भी
यच्छति दे देते हैं
भजतः भजन करने वालेको
अति अभीष्टान् बहुत अभीष्ट नहीं
अर्थ कामान् धन और भोग
जगद्गुरुः नु किं भला उन जगद्गुरुके लिए क्या होते हैं
॥११॥

स एवं भार्यया विप्रो बहुशः प्रार्थितो मृदु ।
अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लोकदर्शनम् ॥१२॥

स एवं भार्यया विप्रः बहुशः प्रार्थितः मृदु अयं हि परमः लाभः उत्तमश्लोक दर्शनम् ॥१२॥

स वह
एवं भार्यया इस प्रकार पत्नी द्वारा
बहुशः मृदु बहुत बार नम्रता पूर्वक
प्रार्थितः विप्रः प्रार्थना किये जाने पर ब्राह्मणने
हि अयं (सोचा) क्योंकि यह
उत्तमश्लोक पुण्यकीर्ति (भगवान)का
दर्शनं दर्शन
परमः लाभः परम लाभ है
॥१२॥

इति सञ्चिन्त्य मनसा गमनाय मतिं दधे ।
अप्यस्त्युपायनं किञ्चिद् गृहे कल्याणि दीयताम् ॥१३॥

इति सञ्चिन्त्य मनसा गमनाय मतिं दधे अपि अस्ति उपायनं किञ्चित् गृहे कल्याणि दीयताम् ॥१३॥

मनसा इति मनमें इस प्रकार
सञ्चिन्त्य विचार करके
गमनाय जानेका
मतिं दधे निश्चय किया
कल्याणि (पत्नीसे बोले) 'कल्याणि'
अपि गृहे क्या घरमें

किञ्चित्	कुछ	अस्ति दीयतां	है तो दो' ॥१३॥
उपायनं	उपहार		

याचित्वा चतुरो मुष्टीन् विप्रान् पृथुकतण्डुलान् ।
चैलखण्डेन तान् बद्ध्वा भर्त्रे प्रादादुपायनम् ॥१४॥

याचित्वा चतुरः मुष्टीन् विप्रान् पृथक तण्डुलान् चैलखण्डेन तान् बद्ध्वा भर्त्रे प्रादात् उपायनम् ॥१४॥

विप्रान्	(उसने) ब्राह्मणोंके	भर्त्रे उपायनं	पतिको उपहार देनेको
चतुरः मुष्टीन्	चार मुट्ठी	प्रादात्	दे दिया ॥१४॥
पृथक् तण्डुलान्	चिउड़े		
याचित्वा तान्	मांगकर उन्हें		
चैलखण्डेन	वस्त्रके टुकड़ेमें		
बद्ध्वा	बांधकर		

स तानादाय विप्राग्र्यः प्रययौ द्वारकां किल ।
कृष्णसन्दर्शनं मह्यं कथं स्यादिति चिन्तयन् ॥१५॥

स तान् आदाय विप्र अग्र्यः प्रययौ द्वारिकां किल कृष्ण सन्दर्शनं मह्यं कथं स्यात् इति चिन्तयन् ॥१५॥

स विप्र अग्र्यः	वे ब्राह्मण श्रेष्ठ	चिन्तयन्	सोचते हुए
किल तान् आदाय	अहो उन्हींको लेकर	किल द्वारिकां	अहो द्वारिका
मह्यं कृष्ण	'मुझे श्रीकृष्णका	प्रययौ	चल पड़े ॥१५॥
सन्दर्शनं	दर्शन ठीक ढंगसे		
कथं स्यात् इति	कैसे होगा' इस प्रकार		

त्रीणि गुल्मान्यतीयाय तिस्रः कक्षाश्च स द्विजः ।
विप्रोऽगम्यान्धकवृष्णीनां गृहेष्वच्युतधर्मिणाम् ॥१६॥

त्रीणि गुल्मानि अतीयाय तिस्रः कक्षाः च स द्विजः अगम्य अन्धक वृष्णीनां गृहेषु अच्युत धर्मिणाम् ॥१६॥

स द्विजः	(द्वारिकामें दूसरे) ब्राह्मणोंके साथ
त्रीणि गुल्मानि	(सैनिकोंकी) तीन छावनियां
च तिस्रः कक्षाः	तीन ड्योढ़ियां
अतीयाय	पार करके
अच्युत धर्मिणां	भगवद्धर्मका पालन करने वाले
अन्धक वृष्णीनां	अन्धक, वृष्णि वंशियोंके
अगम्य गृहेषु	उन घरोंमें जहाँ पहुँचना कठिन है
विप्रः	ब्राह्मण (होनेसे पहुँचे) ॥१६॥

गृहं द्व्यष्टसहस्राणां महिषीणां हरेर्द्विजः ।
विवेशैकतमं श्रीमद् ब्रह्मानन्दं गतो यथा ॥१७॥

गृहं द्वि अष्ट सहस्राणां महिषीणां हरेः द्विजः विवेश एकतमं श्रीमत् ब्रह्मानन्दं गतः यथा ॥१७॥

द्विजः	(उसके पश्चात् वे) विप्रवर
हरेः महिषीणां	श्रीहरिकी रानियों
द्वि अष्ट	दो आठ (सोलह)
सहस्राणां	सहस्र
श्रीमत् गृहं	शोभा सम्पन्न भवनोंमेंसे
एकतमं विवेश	एकमें प्रविष्ट हुए
यथा	(उन्हें लगा) जैसे
ब्रह्मानन्दं गतः	ब्रह्मानन्दमें पहुँच गये ॥१७॥

तं विलोक्याच्युतो दूरात् प्रियापर्यङ्कमास्थितः ।
सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा ॥१८॥

तं विलोक्य अच्युतः दूरात् प्रियापर्यङ्कम् आस्थितः सहसा उत्थाय च दोर्भ्यां पर्यगृहीत् मुदा ॥१८॥

प्रियापर्यङ्कम्	प्रियतमाके पलंग पर
आस्थितः	बैठे
अच्युतः तं	अच्युतने उनको
दूरात् विलोक्य	दूरसे ही देखकर
सहसा उत्थाय	झटपट उठकर
अभिएत्य	सामने आकर
मुदा दोर्भ्यां	हर्षसे भुजाओंमें
पर्यग्रहीत्	भरकर पकड़ लिया ॥१८॥

सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरङ्गसङ्गातिनिर्वृतः ।
प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून् नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥१९॥

सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेः अङ्ग सङ्ग अति निर्वृतः प्रीतः व्यमुञ्चत् अब् बिन्दून् नेत्राभ्यां पुष्कर ईक्षणः ॥१९॥

प्रियस्य सख्युः	प्रिय सखा
विप्रर्षेः	उन ब्रह्मर्षिके
अङ्ग सङ्ग	अंग संगसे
अति	अत्यन्त
निर्वृतः प्रीतः	आनन्दित प्रसन्न
पुष्कर ईक्षणः	कमल-लोचन
नेत्राभ्यां	नेत्रोंसे
अब् बिन्दून्	जल (अश्रु) बिन्दु
व्यमुञ्चत्	नहाने लगे ॥१९॥

अथोपवेश्य पर्यङ्के स्वयं सख्युः समर्हणम् ।
उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥२०॥

अथ उपवेश्य पर्यङ्के स्वयं सख्युः समअर्हणं उपहृत्य अवनिज्य अस्य पादौ पाद अवनेजनीः ॥२०॥

अथ पर्यङ्के	फिर पलंग पर
उपवेश्य	बैठाकर
स्वयं सख्युः	स्वयं सखाकी
समर्हणं उपहृत्य	पूरी पूजा सामग्री लाकर
अस्य पादौ	इनके चरण
अवनिज्य	प्रक्षालित करके
पाद अवनेजनीः	वह चरणोदक ॥२०॥

अग्रहीच्छिरसा राजन् भगवाँल्लोकपावनः ।
व्यलिम्पद् दिव्यगन्धेन चन्दनागुरुकुंकुमैः ॥२१॥

अग्रहीत् शिरसा राजन् भगवान् लोकपावनः व्यलिम्पत् दिव्य गन्धेन चन्दन अगुरु कुंकुमैः ॥२१॥

राजन्	राजन् !	**चन्दन अगुरु**	चन्दन, अगुरु,
लोकपावनः	सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करने वाली	**कुंकुमैः**	कुंकुम पड़ा
		दिव्य गन्धेन	दिव्य गंध अंगराग का
भगवान्	भगवानने		
शिरसा अग्रहीत्	उसे सिर पर धारण किया	**व्यलिम्पत्**	लेप किया ॥२१॥

धूपैः सुरभिर्मित्रं प्रदीपावलिभिर्मुदा ।
अर्चित्वाऽऽवेद्य ताम्बूलं गां च स्वागतमब्रवीत् ॥२२॥

धूपैः सुरभिभिः मित्रं प्रदीप अवलिभिः मुदा अर्चित्वा आवेद्य ताम्बूलं गां च स्वागतं अब्रवीत् ॥२२॥

मित्रं	मित्रका	**ताम्बूलं च गां**	पान और गौ
सुरभिभिः धूपैः	सुगन्धित धूप	**आवेद्य**	निवेदन करके
प्रदीप अवलिभिः	दीप समुदाय (आरती)से	**स्वागतं अब्रवीत**	स्वागत व वचन कहा ॥२२॥
मुदा अर्चित्वा	प्रसन्नतासे पूजा करके		

कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसंततम् ।
देवी पर्यचरत् साक्षाच्चामरव्यजनेन वै ॥२३॥

कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनि संत तं देवी पर्यचरत् साक्षात् चामर व्यजनेन वै ॥२३॥

कुचैलं मलिनं	फटे-पुराने वस्त्र, **मैले** शरीर
धमनि संत तं	दीखती नसोंसे भरे देह वाले
द्विजं वै	ब्राह्मणकी निश्चित रूपसे
साक्षात् देवी	साक्षात् देवी लक्ष्मी रूपा रुक्मिणी
चामर व्यजनेन	चँवर तथा **पंखेसे**
पर्यचरत्	सेवा करने लगीं ॥२३॥

अन्तःपुरजनो दृष्ट्वा कृष्णेनामलकीर्तिना ।
विस्मितोऽभूदतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितम् ॥२४॥

अन्तः पुरजनः दृष्ट्वा कृष्णेन अमल कीर्तिना विस्मितः अभूत् अतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितम् ॥२४॥

अमल कीर्तिना	निर्मल कीर्ति
कृष्णेन	श्रीकृष्ण द्वारा
अतिप्रीत्या	अतिशय प्रेमसे
अवधूतं	भिक्षुकका
सभाजितं	सत्कार करते
दृष्ट्वा	देखकर
अन्तः पुरजनः	अन्तःपुरके लोग
विस्मितः अभूत्	चकित हो गये ॥२४॥

किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा ।
श्रिया हीनेन लोकेऽस्मिन् गर्हितेनाधमेन च ॥२५॥

किं अनेन कृतं पुण्यं अवधूतेन भिक्षुणा श्रिया हीनेन लोके अस्मिन् गर्हितेन अधमेन च ॥२५॥

ननेन अधमेन च	(परस्पर बात करने लगे)—इस निकृष्ट तथा
श्रिया हीनेन	श्रीहीन
अस्मिन् लोके	(अतः) इस लोक में
गर्हितेन	निन्दित
अवधूतेन	अवधूत
भिक्षुणा	**भिक्षुकने**
किं पुण्यं कृतं	क्या पुण्य किया है ॥२५॥

योऽसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन सम्भृतः ।
पर्यङ्कस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा ॥२६॥

यः असौ त्रिलोक गुरुणा श्रीनिवासेन सम्भृतः पर्यङ्कस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तः अग्रजः यथा ॥२६॥

यः असौ	यह जो	**अग्रजः यथा**	बड़े भाईके समान
त्रिलोक गुरुणा	त्रिभुवन गुरु	**परिष्वक्तः**	आलिंगन किया गया और
श्रीनिवासेन	श्रीनिवास श्रीकृष्ण द्वारा	**सम्भृतः**	बहुत आदरसे लिया गया' ॥२६॥
पर्यङ्कस्थां	पलंग पर बैठी		
श्रियं हित्वा	लक्ष्मीजीको छोड़कर		

कथयाञ्चक्रतुर्गाथाः पूर्वा गुरुकुले सताः ।
आत्मनो ललिता राजन् करौ गृह्य परस्परम् ॥२७॥

कथयान् चक्रतुः गाथाः पूर्वा गुरुकुले सताः आत्मनो ललिता राजन् करौ गृह्य परस्परम् ॥२७॥

राजन्	राजन् !	**पूर्वा ललिता**	वह पहिलेकी सुन्दर
परस्परं	आपसमें	**आत्मनो गाथाः**	अपनी कथाएँ
करौ गृह्य	(एक दूसरेका) हाथ पकड़ कर	**कथयान् चक्रतुः**	कहने लगे ॥२७॥
गुरुकुले सताः	जब गुरुकुलमें रहते थे		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अपि ब्रह्मन् गुरुकुलाद् भवता लब्धदक्षिणात् ।
समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्योढा सदृशी न वा ॥२८॥

अपि ब्रह्मन् गुरुकुलात् भवता लब्ध दक्षिणात् समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्या ऊढा सदृशी न वा ॥२८॥

धर्मज्ञ ब्रह्मन्	धर्मज्ञ ब्रह्मन् !	**भवता सदृशी**	तुमने अपने समान
लब्ध दक्षिणात्	(गुरुजीको) दक्षिणा प्राप्त कराके	**अपि भार्या ऊढा**	क्या पत्नीसे विवाह किया
गुरुकुलात्	गुरुकुलसे	**वा न**	अथवा नहीं किया ?
समावृत्तेन	समावर्तन संस्कार हो जाने पर		॥२८॥

प्रायो गृहेषु ते चित्तमकामविहतं तथा ।
नैवातिप्रीयसे विद्वन् धनेषु विदितं हि मे ॥२९॥

प्रायः गृहेषु ते चित्तं अकाम विहितं तथा न एव अति प्रीयसे विद्वन् धनेषु विदितं हि मे ॥२९॥

विद्वन्	विद्वन् !	**चित्तं गृहेषु**	चित्त घरमें
हि मे विदितं	क्योंकि मुझे ज्ञात है कि	**तथा धनेषु**	तथा धनमें
		अति न	बहुत नहीं
ते	तुम्हारा	**एव प्रीयसे**	ही प्रसन्न होता
अकाम विहितं	अनासस्त		॥२९॥

केचित् कुर्वन्ति कर्माणि कामैरहतचेतसः ।
त्यजन्तः प्रकृतीर्दैवीर्यथाहं लोकसंग्रहम् ॥३०॥

केचित् कुर्वन्ति कर्माणि कामैः अहत चेतसः त्यजन्तः प्रकृतीः दैवीः यथा अहं लोक सङ्ग्रहम् ॥३०॥

दैवीः प्रकृतीः	दैवी (सात्विक त्यागमयी) प्रकृति को भी	**त्यजन्तः**	त्याग (नियन्त्रित) करते हुए
		कामैः	कामनाओंसे

अहृत चेतसः	अनाहत चित्त (अनासक्त)	**लोक सङ्ग्रहम्**	लोक शिक्षाके लिए
		यथा अहं	जैसे मैं
केचित्	कोई लोग	**कर्माणि कुर्वन्ति**	कर्म करते हैं ॥३०॥

कच्चिद् गुरुकुले वासं ब्रह्मन् स्मरसि नौ यतः ।
द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं तमसः पारमश्नुते ॥३१॥

कच्चित् गुरुकुले वासं ब्रह्मन् स्मरसि नौ यतः द्विजः विज्ञाय विज्ञेयं तमसः पारं अश्नुते ॥३१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**विज्ञेयं विज्ञाय**	जानने योग्य बातें जानकर
कच्चित् नौ	क्या हम दोनोंका		
गुरुकुले वासं	गुरुकुल निवास	**तमसः पारं**	अज्ञानसे पार
स्मरसि	(कभी) स्मरण करते हैं	**अश्नुते**	(ज्ञानकी स्थिति) भोगते हैं ॥३१॥
यतः द्विजः	जहाँ रहकर द्विजाति		

स वै सत्कर्मणां साक्षात् द्विजातेरिह सम्भवः ।
अद्योऽङ्ग यत्राश्रमिणां यथाहं ज्ञानदो गुरुः ॥३२॥

स वै सत् कर्मणां साक्षात् द्विजातेः इह सम्भवः आद्यः अङ्ग यत्र आश्रमिणां यथा अहं ज्ञानदः गुरुः ॥३२॥

अङ्ग	प्रिय मित्र !	**यत्र आश्रमिणां**	जहाँ सब आश्रम वालोंके
वै स द्विजातेः	निश्चय वह द्विजाति में	**ज्ञानदः गुरुः**	ज्ञान दाता गुरु हैं वे
इह सत् कर्मणां	इस संसारमें उत्तम कर्मोंके	**यथा अहं**	मेरे समान हैं ॥३२॥
सम्भवः आद्यः	उत्पन्न होनेका प्रथम स्थान है		

नन्वर्थकोविदा ब्रह्मन् वर्णाश्रमवतामिह ।
ये मया गुरुणा वाचा तरन्त्यञ्जो भवार्णवम् ॥३३॥

ननु अर्थ कोविदा ब्रह्मन् वर्ण आश्रमवतां इह ये मया गुरुणा वाचा तरन्ति अञ्जः भव अर्णवम् ॥३३॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**भव अर्णवं**	भव सागर
वर्ण आश्रमवतां	वर्ण आश्रमधारियों में	**तरन्ति**	पार कर लेते हैं
इह ये	इस संसारमें जो	**ननु अर्थ**	निश्चय वे अपना
मया गुरुणा	मेरे स्वरूप गुरुकी	**कोविदा**	स्वार्थ जाननेमें
वाचा अञ्जः	वाणीसे सरलता पूर्वक		निपुण हैं ॥३३॥

नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा ।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥३४॥

न अहं इज्या प्रजातिभ्यां तपसा उपशमेन वा तुष्येयं सर्वभूत आत्मा गुरु शुश्रूषया यथा ॥३४॥

अहं सर्वभूत	मैं सब प्राणियोंका	**इज्या**	यज्ञ,
आत्मा	आत्मा	**प्रजातिभ्यां**	ब्रह्मचर्य
यथा	जैसा	**तपसा वा**	तपस्या अथवा
गुरु शुश्रूषया	गुरु-सेवासे	**उपशमेन न**	वैराग्यादिसे (वैसा)
तुष्येयं	सन्तुष्ट होता हूँ		नहीं होता ॥३४॥

अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन् वृत्तं निवसतां गुरौ ।
गुरुदारैश्चोदितानामिन्धनानयने क्वचित् ॥३५॥

अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन् वृत्तं निवसतां गुरौ गुरुदारैः चोदितानां इन्धन आनयने क्वचित् ॥३५॥

नः गुरौ	हम लोगोंके गुरुके समीप
निवसतां	निवास करते समय
क्वचित्	किसी समय
गुरुदारैः	गुरुपत्नी द्वारा
इन्धन आनयने	ईंधन लानेके लिए
चोदितानां	प्रेरित करने पर
स्मर्यते	(जो घटना हुइ उसे) स्मरण करते हैं ॥३५॥

प्रविष्टानां महारण्यमपतौ सुमहद् द्विज ।
वातवर्षमभूत्तीव्रं निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥३६॥

प्रविष्टानां महा अरण्यं अपतौ सुमहत् द्विज वात वर्षं अभूत् तीव्रं निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥३६॥

महा अरण्यं	घोर वनमें
प्रविष्टानां	(हमारे) प्रवेश करने पर
द्विज	ब्रह्मन् !
अपतौ	वर्षाका समय न होने पर भी
सुमहत् वात	प्रचण्ड आंधी और
तीव्रं वर्षं	तीव्र वर्षा
निष्ठुराः	कठोर
स्तनयित्नवः	मेघ गर्जना
अभूत्	होने लगी ॥३६॥

सूर्यश्चास्तं गतस्तावत् तमसा चावृता दिशः ।
निम्नं कूलं जलमयं न प्राज्ञायत किंचन ॥३७॥

सूर्यः च अस्तं गतः तावत् तमसा च आवृता दिशः निम्नं कूलं जलमयं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥३७॥

तावत् सूर्यः च	तब तक सूर्य भी
अस्तं गतः	अस्त हो गया
च दिशः	और दिशाएँ
तमसा आवृता	अन्धकारसे ढक गयीं
जलमयं	जलमय होनेसे
निम्नं कूलं	गड्ढा, किनारा
किञ्चन	कुछ
प्राज्ञायत न	जान नहीं पड़ता था ॥३७॥

वयं भृशं तत्र महानिलाम्बुभि-
र्निहन्यमाना मुहुरम्बुसम्प्लवे ।
दिशोऽविदन्तोऽथ परस्परं वने
गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ॥३८॥

वयं भृशं तत्र महा अनिल अम्बुभिः निहन्यमाना मुहुः अम्बुसम्प्लवे दिशः अविदन्तः अथ परस्परं वने गृहीतहस्ताः परिबभ्रिम आतुराः ॥३८॥

अम्बुसम्प्लवे	उस जल-प्रलयमें
महा अनिल	प्रचण्ड आंधी और
अम्बुभिः	वर्षासे
तत्र वयं भृशं	वहां हम दोनों अत्यधिक
मुहुः	बार-बार
निहन्यमाना	ताड़ित होते
दिशः अविदन्त	दिशाएँ न जानते हुए
अथ परस्परं	उस समय परस्पर एक दूसरेका
गृहीतहस्ताः	हाथ पकड़े
आतुराः	व्याकुल होकर
परिबभ्रिम	चारों ओर भटकते रहे ॥३८॥

एतद् विदित्वा उदिते रवौ सान्दीपनिर्गुरुः ।
अन्वेषमाणो नः शिष्यानाचार्योऽपश्यदातुरान् ॥३९॥

एतत् विदित्वा उदिते रवौ सान्दीपनिः गुरुः अन्वेषमाणो नः शिष्यान् आचार्यः अपश्यत् आतुरान् ॥३९॥

एतत् विदित्वा	यह जानकर
रवौ उदिते	सूर्योदय होने पर
आचार्यः गुरुः	आचार्य गुरुदेव
सान्दीपनिः	सान्दीपनिजी
नः शिष्यान्	हम शिष्योंको
अन्वेषमाणो	ढूंढ़ते हुए
आतुरान्	व्याकुल
अपश्यत्	देखा ॥३९॥

अहो हे पुत्रका यूयमस्मदर्थेऽतिदुःखिताः ।
आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठस्तमनादृत्य मत्पराः ॥४०॥

अहो हे पुत्रका यूयं अस्मत् अर्थे अति दुःखिताः आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठः तं अनाद्दत्य मत् पराः ॥४०॥

अहो हे पुत्रका	(बोले) अहो, हे नन्हे पुत्रो !	**आत्मा प्रेष्ठः**	शरीर अत्यन्त प्रिय होता है
अस्मत् अर्थे	हमारे लिए	**तं अनाद्दत्य**	उसकी उपेक्षा करके
यूयं अति	तुम लोग बहुत	**मत् पराः**	मेरे परायण हो ॥४०॥
दुःखिताः	दुःखी हुए		
वै प्राणिनां	निश्चय प्राणियोंको		

एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम् ।
यद् वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ ॥४१॥

एतत् एव हि सत् शिष्यैः कर्तव्यं गुरु निष्कृतम् यत् वै विशुद्ध भावेन सर्व अर्थ आत्म अर्पणं गुरौ ॥४१॥

हि एतत् एव वै	क्योंकि इतना ही निश्चित रूपसे	**यत् विशुद्ध**	जो शुद्ध
सत् शिष्यैः	उत्तम शिष्य द्वारा	**भावेन**	भावसे
गुरु निष्कृतम्	गुरु ऋणसे मुक्त होनेके लिए	**सर्व अर्थ**	समस्तु पुरुषार्थ रूप
कर्तव्यं	करने योग्य है	**आत्म गुरौ**	शरीर गुरुको
		अर्पणं	समर्पित कर दे ॥४१॥

तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः सन्तु मनोरथाः ।
छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥४२॥

तुष्टः अहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः सन्तु मनोरथाः छन्दांसि अयात यामानि भवन्तु इह परत्र च ॥४२॥

भो द्विजश्रेष्ठाः	हे द्विजोत्तमो !	**मनोरथाः**	(तुम्हारी) अभिलाषाएँ
अहं तुष्टः	मैं (तुमसे) सन्तुष्ट हो गया	**सत्याः सन्तु**	सत्य (पूर्ण) हों

छन्दांसि	वेद (तुम्हें)	**अयात यामानि**	एक प्रहर बीतेसे भी पूर्वके समान (ताजे) रहे' ॥४२॥
इह लोके	इस लोकमें		
च परत्र	तथा परलोकमें भी		

इत्थंविधान्यनेकानि वसतां गुरुवेश्मसु ।
गुरोरनुग्रहेणैव पुमान् पूर्णः प्रशान्तये ॥४३॥

इत्थं विधानि अनेकानि वसतां गुरुवेश्मसु गुरोः अनुग्रहेण एव पुमान् पूर्णः प्रशान्तये ॥४३॥

गुरुवेश्मसु	गुरुगृहमें	**पुमान् पूर्णः**	पुरुष पूर्ण मनोरथ एवं
वसतां	रहते समय	**प्रशान्तये**	शान्ति पाने योग्य होता है ॥४३॥
इत्थं विधानि	इस प्रकारकी		
अनेकानि	अनेकों (घटनाएँ हुईं)		
गुरोः	गुरुकी		
अनुग्रहेण एव	कृपासे ही		

॥ ब्राह्मण उवाच ॥

किमस्माभिरनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो ।
भवता सत्यकामेन येषां वासो गुरावभूत् ॥४४॥

किं अस्माभिः अनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो भवता सत्यकामेन येषां वासः गुरोः अभूत् ॥४४॥

देवदेव	देवदेव !	**गुरोः अभूत्**	(उन दिनों) गुरुके यहां था
जगद्गुरो	जगद्गुरो !	**अस्माभिः**	हम लोगोंने
सत्यकामेन	सत्य संकल्प	**किं अनिर्वृत्तं**	क्या आनन्द नहीं पाया ॥४४॥
भवता	आपके रहते		
येषां वासः	जिनका निवास		

यस्यच्छन्दोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभो ।
श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यन्तविडम्बनम् ॥४५॥

यस्यः छन्दोमयं ब्रह्म देहः आवपनं विभो श्रेयसां तस्य गुरुषु वासः अत्यन्त विडम्बनम् ॥४५॥

विभो	प्रभो !	**तस्य गुरुषु वासः**	उनका गुरुके समीप रहना
यस्यः देहः	जिनका शरीर	**अत्यन्त**	अत्यन्त
छन्दोमयं ब्रह्म	मन्त्रमय वेद	**विडम्बनं**	विडम्बना है ॥४५॥
श्रेयसां	समस्त कल्याणोंको		
आवपनं	उत्पन्न करने वाला है		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे श्रीदामचरिते अशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

अथ एकाशीतितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन् हरिः ।
सर्वभूतमनोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥ १ ॥

स इत्थं द्विजमुख्येन सह सङ्कथयन् हरिः सर्वभूत मनः अभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥१॥

द्विजमुख्येन	विप्रवरसे	**हरिः स्मयमानः**	श्रीहरिने मुस्कराते हुए
इत्थं सङ्कथयन्	इस प्रकार वार्ता-लाप करते हुए	**तं उवाच**	उनसे कहा ॥१॥
स सर्वभूत मनः अभिज्ञः	उन सब प्राणियोंके मनकी बात जानने वाले		

ब्रह्मण्यो ब्राह्मणं कृष्णो भगवान् प्रहसन् प्रियम् ।
प्रेम्णा निरीक्षणेनैव प्रेक्षन् खलु सतां गतिः ॥ २ ॥

ब्रह्मण्यः ब्राह्मणं कृष्णः भगवान् प्रहसन् प्रियं प्रेम्णा निरीक्षणेन एव प्रेक्षन् खलु सतां गतिः ॥२॥

ब्रह्मण्यः	ब्राह्मण-भक्त	**प्रेम्णा**	प्रेमपूर्ण
सतां गतिः	सत्पुरुषोंकी परम गति	**निरीक्षणेन एव**	दृष्टिसे ही
भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्ण	**खलु प्रेक्षन्**	अहो देखते हुए
प्रियं ब्राह्मणं	उस अपने प्रिय ब्राह्मणको	**प्रहसन्**	हँसते हुए (बोले) ॥२॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

किमुपायनमानीतं ब्रह्मन् मे भवता गृहात् ।
अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् ।
भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ ३ ॥

किं उपायनं आनीतं ब्रह्मन् मे भवता गृहात् अणु अपि उपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूरि एव मे भवेत् भूरि अपि अभक्तैः उपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥३॥

ब्रह्मन् भवता	ब्रह्मन् ! आप	**मे भूरि एव**	मेरे लिए बहुत ही
गृहात् मे	घरसे मेरे लिए	**भवेत्**	होता है
किं उपायनं	क्या उपहार	**अभक्तैः उपहृतं**	जो भक्त नहीं है उसका दिया
आनीतं	लाये हैं ?		
भक्तैः प्रेम्णा	भक्त द्वारा प्रेम-पूर्वक	**भूरि अपि**	बहुत सा (पदार्थ) भी
अणु अपि	एक अणु जितना भी	**मे तोषाय**	मेरे सन्तोषके लिए
उपहृतं	दिया—उपहार	**न कल्पते**	नहीं होगा ॥३॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ ४ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यः मे भक्त्या प्रयच्छति तत् अहं भक्ति उपहृतं अश्नामि प्रयत आत्मनः ॥४॥

यः मे भक्त्या	जो मुझे भक्ति-पूर्वक	**अहं**	मैं
पत्रं पुष्पं फलं	पत्र, पुष्प, फल या	**प्रयत आत्मनः**	एकाग्रचित्त होकर
तोयं प्रयच्छति	जल देता हैं	**अश्नामि**	खाता हूँ ॥४॥
तत्	उस		
भक्ति उपहृतं	भक्ति-प्रकार भेंट की गई (वस्तु)को		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इत्युक्तोऽपि द्विजस्तस्मै व्रीडितः पतये श्रियः ।
पृथुकप्रसृतिं राजन् न प्रायच्छदवाङ्मुखः ॥ ५ ॥

इति उक्तः अपि द्विजः तस्मै व्रीडितः पतये श्रियः पृथुक प्रसृतिं राजन् न प्रायच्छत् अवाङ्मुखः ॥५॥

राजन्	राजन् !	**तस्मै**	उन
इति उक्तः अपि	ऐसा कहने पर भी	**श्रियः पतये**	लक्ष्मी पतिको
द्विजः व्रीडितः	ब्राह्मणने लज्जित होकर	**पृथुक् प्रसृतिं**	चिउड़ोंकी मुट्ठियां
		न प्रायच्छत्	नहीं दीं ॥५॥
अवाङ्मुख	सिर झुका लिया		

सर्वभूतात्मदृक् साक्षात् तस्यागमनकारणम् ।
विज्ञायाचिन्तयन्नायं श्रीकामो माभजत् पुरा ॥ ६ ॥

सर्वभूत आत्मदृक् साक्षात् तस्य आगमन कारणं विज्ञाय अचिन्तयत् न अयं श्रीकामः मा अभजत् पुरा ॥६॥

सर्वभूत	सब प्राणियोंके	**अचिन्तयत्**	विचार किया
साक्षात्	साक्षात्	**अयं श्रीकामः**	'इन्होंने धनकी इच्छासे
आत्मदृक्	अन्तःकरणके साक्षी		
तस्य आगमन	(भगवानने) उनके आनेका	**पुरा मा**	पहिले कभी मेरा
		अभजत् न	भजन नहीं किया है ॥६॥
कारणं विज्ञाय	कारण जानकर		

पत्न्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया ।
प्राप्तो मामस्य दास्यामि सम्पदोऽमर्त्यदुर्लभाः ॥ ७ ॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

पत्न्या पतिव्रतायाः तु सखा प्रिय चिकीर्षया प्राप्तः मां अस्य दास्यामि सम्पदः अमर्त्य दुर्लभाः ॥७॥

सखा	(ये मेरे) सखा	**मां प्राप्तः**	मेरे पास आये है—
पतिव्रतायाः	अपनी पतिव्रता	**अस्य**	इनको
पत्न्याः तु	पत्नीका ही	**अमर्त्य दुर्लभाः**	देव-दुर्लभ
प्रिय चिकीर्षया	प्रिय करनेकी इच्छा से	**सम्पदः**	सम्पत्ति
		दास्यामि	दूंगा ॥७॥

इत्थं विचिन्त्य वसनाच्चीरबद्धान्द्विजन्मनः ।
स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतण्डुलान् ॥ ८ ॥

इत्थं विचिन्त्य वसनात् चीरबद्धात् द्विजन्मनः स्वयं जहार किं इदं इति पृथुक् तण्डुलान् ॥८॥

इत्थं विचिन्त्य	ऐसा सोचकर	**किं इदं इति**	'यह क्या है' ऐसा कहकर
द्विजन्मनः	ब्राह्मणोंके	**स्वयं जहार**	स्वयं छीन लिया ॥८॥
वसनात्	वस्त्रोंमेंसे		
चीरबद्धात्	कपड़ेके टुकड़ेमें बँधे		
पृथुक तण्डुलान्	चिउड़ोंको		

नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे ।
तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः ॥ ९ ॥

ननु एतत् उपनीतं मे परम प्रीडनं सखे तर्पयन्ति अङ्ग मां विश्वं एते पृथुक तण्डुलाः ॥९॥

अङ्ग सखे ननु	प्रिय मित्र निश्चय	**पृथुक तण्डुलाः**	चिउड़े तो
एतत् मे उपनीतं	ये मेरे लिए उपहार लाये हो	**मां विश्वं**	मुझ विश्वरूपको
		तर्पयन्ति	तृप्त कर देंगे ॥९॥
एते परम प्रीडनं	ये (मेरे) अत्यन्त प्रिय		

इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे ।
तावच्छ्रीर्जगृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ॥१०॥

इति मुष्टिं सकृत् जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुं आददे तावत् श्रीः जगृहे हस्तं तत् परा परमेष्ठिनः ॥१०॥

एवं सकृत् मुष्टिं	इस प्रकार एक बार एक मुट्ठी	**परमेष्ठिनः परा**	परमात्माकी परायणा
जग्ध्वा द्वितीयां	खाकर दूसरी (मुट्ठी)	**श्रीः हस्तं जगृहे**	लक्ष्मी रुक्मिणीजी ने हाथ पकड़ लिया ॥१०॥
जग्धुं आददे	खानेके लिए भरी		
तावत् तत्	तब तक उन		

एतावतालं विश्वात्मन् सर्वसम्पत्समृद्धये ।
अस्मिँल्लोकेऽथवामुष्मिन पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ॥११॥

एतावत् अल विश्व आत्मन् सर्व सम्पत् समृद्धये अस्मिन् लोके अथवा अमुष्मिन् पुंसः त्वत तोष कारणम् ॥११॥

विश्व आत्मन्	(बोलीं) विश्व आत्मन् !	**समृद्धये**	उत्तम भोगोंकी प्राप्तिके लिए
पुंसः	मनुष्यके लिए	**त्वत्**	आपको
अस्मिन् लोके	इस लोकमें	**तोष कारणं**	सन्तुष्ट करनेको
अथवा	अथवा	**एतावत् अलं**	इतना ही पर्याप्त
अमुष्मिन्	परलोकमें		है' ॥११॥
सर्व सम्पत्	समस्त सम्पत्तियों एवं		

ब्राह्मणस्तां तु रजनीमुषित्वाच्युतमन्दिरे ।
भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेने आत्मानं स्वर्गतं यथा ॥१२॥

ब्राह्मणः तां तु रजनीं उषित्वा अच्युत मन्दिरे भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेने आत्मानं स्वः गतं यथा ॥१२॥

ब्राह्मणः तु	ब्राह्मण तो
तां रजनीं	उस रात
अच्युत मन्दिरे	श्रीकृष्णके भवनमें
उषित्वा	निवास करके
भुक्त्वा पीत्वा	खा-पीकर
यथा आत्मानं	जैसे अपनेको
स्वः गतं मेने	स्वर्ग पहुँचा माना

॥१२॥

श्वोभूते विश्वभावेन स्वसुखेनाभिवन्दितः ।
जगाम स्वालयं तात पथ्यनुव्रज्य नन्दितः ॥१३॥

श्वः भूते विश्वभावेन स्वसुखेन अभिवन्दितः जगाम स्व आलयं तात पथि अनुव्रज्य नन्दितः ॥१३॥

तात	प्रिय परीक्षित !
श्वः भूते	दूसरा दिन होने पर
विश्वभावेन	विश्व रक्षक
स्वसुखेन	स्वानन्द स्वरूप (भगवान) द्वारा
अभिवन्दितः	प्रणतित होकर
पथि अनुव्रज्य	(कुछ दूर) मार्गमें साथ जाकर
नन्दितः	आनन्दित करके (विदा करने पर)
स्व आलयं	अपने घरको
जगाम	चले ॥१३॥

स चालब्ध्वा धनं कृष्णान्न तु याचितवान् स्वयम् ।
स्वगृहान् व्रीडितोऽगच्छन्महद्दर्शननिर्वृतः ॥१४॥

स च अलब्ध्वा धनं कृष्णात् न तु याचितवान् स्वयं स्व गृहान् व्रीडितः अगच्छन् महत् दर्शन निर्वृतः ॥१४॥

कृष्णात् धनं	श्रीकृष्णसे धन
अलब्ध्वा	न पाकर
स च तु स्वयं	उन्होंने भी स्वय
न याचितवान्	नहीं मांगा (अतः)
व्रीडितः	लज्जित तथा
महत् दर्शन	परमपुरुषके दर्शनसे
निर्वृतः	आनन्दित होकर
स्वगृहान् अगच्छन्	अपने घर चले ॥१४॥

अहो ब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया ।
यद् दरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि ॥१५॥

अहो ब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया यत् दरिद्रतमः लक्ष्मीं आश्लिष्टः बिभ्रत उरसि ॥१५॥

अहो	(मार्गमें सोचते गये)	**उरसि लक्ष्मीं**	वक्षस्थल पर लक्ष्मी को
ब्रह्मण्यदेवस्य	अहो ब्राह्मणको देवता मानने वाले	**बिभ्रतः**	धारण करते हुए भी
ब्रह्मण्यता	(श्रीकृष्ण)की ब्राह्मण-भक्ति	**यत् दरिद्रतमः**	जो (मुझ) महा-द्ररिद्रको
मया दृष्टा	मैंने देखी कि	**आश्लिष्टः**	आलिगन किया ॥१५॥

क्वाहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः ।
ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ॥१६॥

क्व अहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः ब्रह्मबन्धुः इति स्म अहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ॥१६॥

क्व अहं दरिद्रः	कहां तो मैं दरिद्र	**ब्रह्मबन्धु स्म**	'यह ब्राह्मण है'
पापीयान्	महापापी और	**इति अहं**	यह समझ कर
क्व श्रीनिकेतनः	कहां लक्ष्मीके निवास	**बाहुभ्यां**	भुजाओंमें भरकर
कृष्णः	श्रीकृष्ण (फिर भी)	**परिरम्भितः**	आलिगन किया ॥१६॥

निवासितः प्रियाजुष्टे पर्यङ्के भ्रातरो यथा ।
महिष्या वीजितः श्रान्तो बालव्यजनहस्तया ॥१७॥

निवासितः प्रियाजुष्टे पर्यङ्के भ्रातरः यथा महिष्या वीजितः श्रान्तः बालव्यजन हस्तया ॥१७॥

भ्रातरः यथा	भाईके समान	**श्रान्तः**	(मुझे) थका देखकर
प्रियाजुष्टे	पत्नीसे सेवित	**बालव्यजन**	छोटा पंखा
पर्यङ्के	पलंग पर	**हस्तया**	हाथमें लेकर
निवासितः	बैठाया तथा	**वीजितः**	वायु करती रहीं
महिष्या	महारानी (स्वयं)		॥१७॥

शुश्रूषया परमया पादसंवाहनादिभिः ।
पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन देववत् ॥१८॥

शुश्रूषया परमया पादसंवाहन आदिभिः पूजितः देवदेवेन विप्रदेवेन देववत् ॥१८॥

देवदेवेन	देवदेव	**पादसंवाहन**	पैर दबाना
विप्रदेवेन	ब्राह्मणको देवता मानने वाले	**आदिभिः**	आदि
		परमया	उत्तम
देववत्	(श्रीकृष्ण) द्वारा देवताके समान	**शुश्रूषया**	सेवाओं द्वारा
		पूजितः	पूजा गया ॥१८॥

स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम् ।
सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥१९॥

स्वर्ग अपवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदां सर्वासां अपि सिद्धीनां मूलं तत् चरण अर्चनम् ॥१९॥

तत् चरण	उनके चरणोंका	**सम्पदां**	सम्पतियां तथा
अर्चनं	पूजन	**सर्वासां सिद्धीनां**	सम्पूर्ण सिद्धियोंका
पुंसां	मनुष्योंके लिए	**अपि**	भी
स्वर्ग अपवर्गयोः	स्वर्ग, मोक्ष	**मूलं**	कारण है ॥१९॥
रसायां भुवि	पाताल एवं पृथ्वी की		

अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् ।
इति कारुणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात् ॥२०॥

अधनः अयं धनं प्राप्य माद्यत् उच्चैः न मां स्मरेत् इति कारुणिकः नूनं धनं मे भूरि न अददात् ॥२०॥

अयं अधनः	'यह निर्धन	**इति कारुणिकः**	यह समझकर ही करुणामयने
धनं प्राप्य	धन पाकर	**मे भूरि धनं**	मुझे थोड़ा धन भी
उच्चैः माद्यत्	अत्यन्त मदमत्त होनेसे	**न अददात्**	नहीं दिया' ॥२०॥
मां स्मरेत् न	मेरा स्मरण नहीं करेगा'		

इति तच्चिन्तयन्नन्तः प्राप्तो निजगृहान्तिकम् ।
सूर्यानलेन्दुसंकाशैर्विमानैः सर्वतो वृतम् ॥२१॥

इति तत् चिन्तयन् अन्तः प्राप्तः निजगृह अन्तिकं सूर्य अनल इन्दु सङ्काशैः विमानैः सर्वतः वृतम् ॥२१॥

इति तत्	इस प्रकार उन्हींके	**सर्वतः वृतं**	सब ओरसे घिरे
चिन्तयन्	सोचते हुए	**निजगृह**	अपने भवनके
सूर्य अनल इन्दु	सूर्य, अग्नि, चन्द्रमाके	**अन्तिकं प्राप्तः**	समीप पहुँचे ॥२१॥
सङ्काशैः	समान		
विमानैः	विमानोंसे		

विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्द्विजकुलाकुलैः ।
प्रोत्फुल्लकुमुदाम्भोजकह्लारोत्पलवारिभिः ॥२२॥

विचित्र उपवन उद्यानैः कूजत् द्विज कुल आकुलैः प्रोत्फुल्ल कुमुद अम्भोज कह्लार उत्पल वारिभिः ॥२२॥

विचित्र उपवन अनेक प्रकारके बगीचों
उद्यानैः वाटिकाओं वाले जो
द्विजकुल चंचल पक्षिवृन्दके
कूजत् चहकनेसे (गुंजित) थे
प्रोत्फुल्ल कुमुद फूले कुमुद
अम्भोज गुलाबी कमल,
कह्लार रक्त कमल,
उत्पल वारिभिः श्वेत कमल वाले जलाशयोंसे युक्त था ॥२२॥

जुष्टं स्वलंकृतैः पुम्भिः स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः ।
किमिदं कस्य वा स्थानं कथं तदिदमित्यभूत् ॥२३॥

जुष्टं स्व अलङ्कृतैः पुम्भिः स्त्रीभिः च हरिण अक्षिभिः किं इदं कस्य वा स्थानं कथं तत् इदं इति अभूत् ॥२३॥

स्व अलङ्कृतैः भली प्रकार सजे-धजे
पुम्भिः च सेवकों तथा
हरिण अक्षिभिः मृगनयनी
स्त्रीभिः जुष्टं स्त्रियोंसे युक्त (देखकर सोचने लगे)
किं इदं यह क्या है
वा कस्य स्थानं अथवा किसका स्थान है ?
तत् इदं वह (मेरा घर) ऐसा
कथं अभूत् इति कैसे हो गया ? इस प्रकार (सोचने लगे) ॥२३॥

एवं मीमांसमानं तं नरा नार्योऽमरप्रभाः ।
प्रत्यगृह्णन् महाभागं गीतवाद्येन भूयसा ॥२४॥

एवं भीमांसमानं तं नरा नार्यः अमर प्रभाः प्रत्य गृह्णन् महाभागं गीत वाद्येन भूयसा ॥२४॥

एवं इस प्रकार
मीमांसमानं विचार करते हुए
तं महाभागं उन महाभागका
अमर प्रभाः देवताओंके समान कान्तिमान्
नरा नार्यः पुरुष-स्त्रियोंने
भूयसा बहुत उत्साहसे
गीत वाद्येन गाते-बजाते हुए
प्रत्य गृह्णन् आगे आकर स्वागत किया ॥२४॥

पतिमागतमाकर्ण्य पत्न्युद्धर्षातिसम्भ्रमा ।
निश्चक्राम गृहात्तूर्णं रूपिणी श्रीरिवालयात् ॥२५॥

पतिं आगतं आकर्ण्य पत्नी उद्धर्षा अति सम्भ्रमा निःचक्राम गृहात् तूर्णं रूपिणी श्रीः इव आलयात् ॥२५॥

पतिं आगतं	पतिदेवका आगमन	**श्रीः इव**	लक्ष्मीके समान
आकर्ण्य	सुनकर	**गृहात् तूर्णं**	घरसे शीघ्र
उद्धर्षा	अत्यन्त हर्षपूर्वक	**निः चक्राम**	निकल आयीं
अति सम्भ्रमा	बहुत उतावलीमें		॥२५॥
रूपिणी पत्नी	रूपवती स्त्री		
आलयात्	अपने निवाससे (सीधे आयीं)		

पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेमोत्कण्ठाश्रुलोचना ।
मीलिताक्ष्यनमद् बुद्ध्या मनसा परिषस्वजे ॥२६॥

पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेम उत्कण्ठ अश्रु लोचना मीलित अक्षि अनमत् बुद्धया मनसा परिषस्वजे ॥२६॥

पतिं दृष्ट्वा	पतिको देखकर	**बुद्धया अनमत्**	मन ही मन प्रणाम करके
पतिव्रता	उस पतिव्रताके	**मनसा**	मनसे ही
प्रेम उत्कण्ठ	प्रेमसे कण्ठ भर आया	**परिषस्वजे**	आलिगन किया ॥२६॥
अश्रुलोमना	नेत्रोंमें आंसू आनेसे		
मीलित अक्षि	नेत्र बन्द करके		

पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरन्तीं देवीं वैमानिकीमिव ।
दासीनां निष्ककण्ठीनां मध्ये भान्तीं स विस्मितः ॥२७॥

पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरन्तीं देवीं वैमानिकीं इव दासीनां निष्ककण्ठीनां मध्ये भान्तीं स विस्मितः ॥२७॥

निष्ककण्ठीनां	सोनेका हार पहिनने वाली
दासीनां मध्ये	दासियोंके बीचमें
वैमानिकीं	विमानोंमें रहने वाली
देवीं इव	देवीकी भांति
विस्फुरन्तीं	अत्यन्त
भान्तीं	सुशोभिता
पत्नीं वीक्ष्य	पत्नीको देखकर
स विस्मितः	वे चकित हो गये ॥२७॥

प्रीतः स्वयं तया युक्तः प्रविष्टो निजमन्दिरम् ।
मणिस्तम्भशतोपेतं महेन्द्रभवनं यथा ॥२८॥

प्रीतः स्वयं तया युक्तः प्रविष्टः निज मन्दिरं मणि स्तम्भ शत उपेतं महेन्द्र भवनं यथा ॥२८॥

स्वयं प्रीतः	स्वयं प्रसन्न होकर
तया युक्तः	उसके साथ
यथा महेन्द्र भवनं	जैसे इन्द्रका भवन हो
शत मणि स्तभ उपेतं	सैकड़ों मणिमय स्तम्भोंसे युक्त
निज मन्दिरं प्रविष्टः	अपने भवनमें प्रवेश किया ॥२८॥

पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ।
पर्यङ्का हेमदण्डानि चामरव्यजनानि च ॥२९॥

पयः फेन निभाः शय्या दान्ता रुक्म परिच्छदाः पर्यङ्का हेमदण्डानि चामर व्यजनानि च ॥२९॥

शय्या	बिछौने
पयः फेन निभाः	दूधके फेनके समान थे
रुक्म परिच्छदाः	स्वर्णके उपकरणों वाले
दान्ता पर्यङ्का	हाथी दांतके पलंग थे,
हेमदण्डानि चामर च व्यजनानि	स्वर्णकी डंडियों वाले चँवर एवं पंखे थे ॥२९॥

आसनानि च हैमानि मृदूपस्तरणानि च ।
मुक्तादामविलम्बीनि वितानानि द्युमन्ति च ॥३०॥

आसनानि च हैमानि मृदु उपस्तरणानि च मुक्तादाम विलम्बीनि वितानानि द्युमन्ति च ॥३०॥

हैमानि	स्वर्णके	**मुक्तादाम**	मोतियोंकी झालरें
आसनानि	आसन	**विलम्बीनि**	लटकने वाले थे ॥३०॥
मृदु	कोमल		
उपस्तरणानि	आस्तरण युक्त थे,		
च द्युमन्ति	तथा झिल-मिलाते		
वितानानि च	चंदोवे भी		

स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ।
रत्नदीपा भ्राजमाना ललनारत्नसंयुताः ॥३१॥

स्वच्छ स्फटिक कुड्येषु महामारकतेषु च रत्नदीपा भ्राजमाना ललनारत्न संयुताः ॥३१॥

ललनारत्न	रमणी रत्नों (स्त्री	**च**	तथा
संयुताः	मूर्तियों)से युक्त	**महामारकतेषु**	मरकत मणिकी (छतमें)
स्वच्छ स्फटिक	निर्मल स्फटिककी	**रत्नदीपा**	रत्नोंके दीपक
कुड्येषु	भित्तियोंमें	**भ्राजमाना**	जगमगा रहे थे ॥३१॥

विलोक्य ब्राह्मणस्तत्र समृद्धीः सर्वसम्पदाम् ।
तर्कयामास निर्व्यग्रः स्वसमृद्धिमहैतुकीम् ॥३२॥

विलोक्य ब्राह्मणः तत्र समृद्धीः सर्वसम्पदां तर्कयामास निर्व्यग्रः स्व समृद्धि अहैतुकीम् ॥३२॥

ब्राह्मणः तत्र	विप्रवर वहां	**समृद्धीः**	भरपूर भरमार
सर्वसम्पदाम्	सब प्रकारकी सम्पत्तियोंकी	**विलोक्य**	देखकर

निर्व्यग्रः	सावधानी पूर्वक	**समृद्धी**	सम्पत्तिके विषयमें
स्व अहैतुकीं	अपनी बिना कारण (प्राप्त)	**तर्कयामास**	सोचने लगे ॥३२॥

नूनं बतैतन्मम दुर्भगस्य
शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः ।
महाविभूतेरवलोकतोऽन्यो
नैवोपपद्येत यदूत्तमस्य ॥३३॥

नूनं बत एतत् मम दुर्भगस्य शश्वत् दरिद्रस्य समृद्धि हेतुः महाविभूतेः अवलोकतः अन्यः न एव उपपद्येत यदु उत्तमस्य ॥३३॥

नूनं बत	निश्चय अहो	**यदु उत्तमस्य**	यादव श्रेष्ठकी
मम दुर्भगस्य	मुझ भाग्यहीन	**अवलोकतः**	कृपा दृष्टिके
शश्वत् दरिद्रस्य	सदाके दरिद्रकी	**अन्यः न एव**	अतिरिक्त नहीं ही
समृद्धि हेतुः	सम्पत्तिका कारण	**उपपद्येत**	हो सकता ॥३३॥
महाविभूतेः	अनन्त ऐश्वर्यशाली		

नन्वब्रुवाणो दिशते समक्षं
याचिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः ।
पर्जन्यवत्तत् स्वयमीक्षमाणो
दाशार्हकाणामृषभः सखा मे ॥३४॥

ननु अब्रुवाणः दिशते समक्षं याचिष्णवे भूरि अपि भूरि भोजः पर्जन्यवत् तत् स्वयं ईक्षमाणः दाशार्हकाणां ऋषभः सखा मे ॥३४॥

दाशार्हकाणां	दाशार्ह वंशियोंमें	**याचिष्णवे**	मांगने वालेको
ऋषभः	सर्वश्रेष्ठ	**समक्षं**	सामने
मे सखा	मेरे सखा	**न एव दिशते**	नहीं ही देते हैं;
ननु अब्रुवाणः	निश्चय कुछ न कहने वाले		किन्तु
		पर्जन्यवत्	मेघोंके समान

तत् स्वयं	उनको स्वयं	**भूरि अपि**	बहुत ही देते हैं
ईक्षमाणः	देखकर		॥३४॥
भूरि भोजः	अतिशय उदार होनेसे		

किञ्चित्करोत्युर्वपि यत् स्वदत्तं
सुहृत्कृतं फल्ग्वपि भूरिकारी ।
मयोपनीतां पृथुकैकमुष्टिं
प्रत्यग्रहीत् प्रीतियुतो महात्मा ॥३५॥

किञ्चित् करोति उरु अपि यत् स्वदत्तं सुहृत् कृतं फल्गु अपि भूरिकारी मया उपनीतां पृथुक एक मुष्टि प्रत्यगृहीत् प्रीतियुतः महात्मा ॥३५॥

उरु अपि	बहुत होने पर भी	**मया उपनीतां**	मेरे उनके समीप ले गये
स्वदत्तं	अपने दियेको		
किञ्चित्	बहुत कम	**पृथुक**	चिउड़ोंमेंसे
करोति	करके मानते हैं,	**एक मुष्टि**	एक मुट्ठी
फल्गु अपि	अत्यन्त थोड़े भी	**प्रीतियुतः**	प्रेमपूर्वक उन
सुहृत् कृतं	मित्रके कियेको	**महात्मा**	महात्माने
भूरिकारी	बहु बड़ा कर देने वाले हैं,	**प्रत्यग्रहीत्**	ग्रहण किया ॥३६॥

तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री
दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात् ।
महानुभावेन गुणालयेन
विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसङ्गः ॥३६॥

तस्य एव मे सौहृद सख्य मैत्री दास्यं पुनः जन्मनि जन्मनि स्यात् महा अनुभावेन गुण आलयेन विषज्जतः तत् पुरुष प्रसङ्ग ॥३६॥

तस्य महा	उन महान्
अनुभावेन	प्रभाव
गुण आलयेन	गुण धाम
एव मे पुनः	से ही मेरा फिर
जन्मनि	जन्म-
जन्मनि	जन्ममें
सौहृद सख्य	सौहार्द्र, सखाभाव
मैत्री दास्यं	मित्रता तथा दास-भाव
तत् पुरुषः	(तथा) उनके भक्तों से
विषज्जतः	आसक्ति युक्त
प्रसङ्गः स्यात्	साथ हो ॥३६॥

भक्ताय चित्रा भगवान् हि सम्पदो
राज्यं विभूतीर्न समर्थयत्यजः ।
अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं
पश्यन् निपातं धनिनां मदोद्भवम् ॥३७॥

भक्ताय चित्रा भगवान् हि सम्पदः राज्यं विभूतिः न समर्थयति
अजः अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं पश्यन् निपातं धनिनां मदउद्भवम्
॥३७॥

स्वयं विचक्षणः	स्वयं अत्यन्त चतुर
भगवान्	भगवान्
हि धनिनां	क्योंकि धनियोंका
मद उद्भवं	मदसे उत्पन्न
निपातं पश्यन्	अत्यन्त पतन देखते हैं
अदीर्घबोधाय	दूर तककी न जानने वाले
भक्ताय	भक्तोंके लिए
चित्रा सम्पदः	अनेक प्रकारकी सम्पत्ति
राज्यं विभूतिः	राज्य, वैभवको
अजः	वे अजन्मा
न समर्थयति	समर्थन नहीं करते ॥३७॥

इत्थं व्यवसितो बुद्ध्या भक्तोऽतीव जनार्दने ।
विषयाञ्जायया त्यक्ष्यन् बुभुजे नातिलम्पटः ॥३८॥

इत्थं व्यवसितः बुद्धया भक्तः अतीव जनार्दने विषयान् जायया त्यक्षन् बुभुजे न अति लम्पटः ॥३८॥

इत्थं बुद्धया	इस प्रकार बुद्धिसे	**जायया त्यक्षन्**	पत्नीके साथ त्याग पूर्वक
व्यवसितः	निश्चय करके	**विषयान् बुभुजे**	भोगोंको भोगने लगे ॥३८॥
जनार्दने	जनार्दनके		
अतीव भक्तः	अत्यन्त भक्त होकर		
अति लम्पटः न	बहुत आसक्त न होकर		

तस्य वै देवदेवस्य हरेर्यज्ञपतेः प्रभोः ।
ब्राह्मणाः प्रभवो दैवं न तेभ्यो विद्यते परम् ॥३९॥

तस्य वै देवदेवस्य हरेः यज्ञपतेः प्रभोः ब्राह्मणाः प्रभवः दैवं न तेभ्यः विद्यते परम् ॥३९॥

वै तस्य प्रभोः	निश्चय उन सर्वेश्वर	**दैवं**	देवता हैं
देवदेवस्य	देवदेव	**तेभ्यः परं**	उन (ब्राह्मणों)से श्रेष्ठ
यज्ञयतेः हरेः	यज्ञेश्वर श्रीहरिके	**न विद्यते**	कुछ नहीं है ॥३९॥
ब्राह्मणाः प्रभवः	ब्राह्मण स्वामी और		

एवं स विप्रो भगवत्सुहृत्तदा
दृष्ट्वा स्वभृत्यैरजितं पराजितम् ।
तद्ध्यानवेगोद्ग्रथितात्मबन्धन-
स्तद्धाम लेभेऽचिरतः सतां गतिम् ॥४०॥

एवं स विप्रः भगवत् सुहृत् तदा दृष्ट्वा स्व भृत्यैः अजितं पराजितं तत् ध्यान वेग उद्ग्रथित आत्मबन्धनः तत् धाम लेभे अचिरतः सतां गतिम् ॥४०॥

एवं स भगवत्	इस प्रकार वह भगवानका
सुहृत् विप्रः	सखा ब्राह्मण
तदा स्वभृत्यैः	उस समय अपने सेवक द्वारा
अजितं	अजेय (भगवान) को
पराजितं दृष्ट्वा	पराजित होते देखकर
तत् ध्यान	उनके ध्यानसे
आत्मबन्धनः	अपने बन्धनकी
उद् ग्रथित	गांठें छूट जानेसे
सतां गतिं	संतोंकी गति
तत् धाम	उनके धामको
अचिरतः लेभे	शीघ्र पा गया ॥४०॥

एतद् ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः ।
लब्धभावो भगवति कर्मबन्धाद् विमुच्यते ॥४१॥

एतत् ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः लब्धभावः भगवति कर्मबन्धात् विमुच्यते ॥४१॥

ब्रह्मण्यदेवस्य	ब्राह्मण भक्त (भगवान)की
एतत् ब्रह्मण्यतां	यह ब्राह्मण भक्ति
श्रुत्वा नरः	सुनकर पुरुष
भगवति	भगवानमें भक्ति
लब्धभावः	प्राप्त करके
कर्मबन्धात्	कर्मोंके बन्धनसे
विमुच्यते	छूट जाता है ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पृथुकोपाख्यानं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः ।
सूर्योपरागः सुमहानासीत् कल्पक्षये यथा ॥ १ ॥

अथ एकदा द्वारवत्यां वसतः रामकृष्णयोः सूर्य उपरागः सुमहान् आसीत् कल्पक्षये यथा ॥१॥

अथ एकदा	फिर एक बार	**सुमहान्**	बहुत बड़ा
रामकृष्णयोः	बलराम-श्रीकृष्णके	**सूर्य उपरागः**	सूर्य-ग्रहण
द्वारवत्यां	द्वारिकापुरीमें	**आसीत्**	पड़ा ॥१॥
वसतः	रहते हुए		
यथा कल्पक्षये	जैसा कल्पान्तमें होता है		

तं ज्ञात्वा मनुजा राजन् पुरस्तादेव सर्वतः ।
समन्तपञ्चकं क्षेत्रं ययुः श्रेयोविधित्सया ॥ २ ॥

तं ज्ञात्वा मनुजा राजन् पुरस्तात् एव सर्वतः समन्त पञ्चकं क्षेत्रं ययुः श्रेयः विधित्सया ॥२॥

राजन्	राजन् !	**सर्वतः**	चारों ओरसे
तं पुरस्तात एव	उसे पहिलेसे ही	**समन्तक**	स्यमन्तक
ज्ञात्वा मनुजा	जानकर मनुष्य	**पञ्चकं क्षेत्रं**	पञ्चक क्षेत्र
श्रेयः	अपना मंगल	**जग्मुः**	गये ॥२॥
विधित्सया	करनेकी इच्छासे		

निःक्षत्रियां महीं कुर्वन् रामः शस्त्रभृतां वरः ।
नृपाणां रुधिरौघेण यत्र चक्रे महाह्रदान् ॥ ३ ॥

निः क्षत्रियां महीं कुर्वन् रामः शस्त्रभृतां वरः नृपाणां रुधिर ओघेन यत्र चक्रे महाह्रदान् ॥३॥

शस्त्रभृतां वरः	शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ	**नृपाणां रुधिर ओघेन**	राजाओंके रक्तकी बाढ़से
रामः महीं	परशुरामने पृथ्वी को	**यत्र महाह्रदान्**	जहाँ बहुत बड़े कुण्ड
निः क्षत्रियां	क्षत्रिय-रहित	**चक्रे**	निर्मित किये ॥३॥
कुर्वन्	करते हुए		

ईजे च भगवान् रामो यत्रास्पृष्टोऽपि कर्मणा ।
लोकस्य ग्राहयन्नीशो यथान्योऽघापनुत्तये ॥ ४ ॥

ईजे च भगवान् रामः यत्र अस्पृष्टः अपि कर्मणा लोकस्य ग्राहयन् ईशः यथा अन्यः अघ अपनुत्तये ॥ ॥

कर्मणा	कर्मोंसे	**यथा अन्यः**	जैसे दूसरोंको (करना चाहिए)
अस्पृष्टः अपि	अछूते होने पर भी		
ईश भगवान्	सर्व समर्थ भगवान	**अघ अपनुत्तये**	पाप दूर करनेके लिए
रामः	परशुराम		
लोकस्य	लोगोंको	**यत्र ईजे च**	जहां यज्ञ भी किया ॥४॥
ग्राहयन्	शिक्षा देनेके लिए		

महत्यां तीर्थयात्रायां तत्रागन् भारतीः प्रजाः ।
वृष्णयश्च तथाक्रूरवसुदेवाहुकादयः ॥ ५ ॥

महत्यां तीर्थयात्रायां तत्र अगन् भारतीः प्रजाः वृष्णयः च तथा अक्रूर वसुदेव आहुक आदयः ॥५॥

महत्यां	उस बड़ी	**अक्रूर वसुदेव**	अक्रूर, वसुदेव
तीर्थयात्रायां	तीर्थयात्रामें	**आहुक आदयः**	आहुक आदि
भारतीः प्रजाः	भारतीय प्रजा	**तथा तत्र अगन्**	इस प्रकार वहां
च वृष्णयः	तथा यदुवंशी		गये ॥५॥

ययुर्भारत तत् क्षेत्रं स्वमघं क्षपयिष्णवः ।
गदप्रद्युम्नसाम्बाद्याः सुचन्द्रशुकसारणैः ॥ ६ ॥

ययुः भारत तत् क्षेत्रं स्वं अघं क्षपयिष्णवः गद प्रद्युम्न साम्ब आद्याः सुचन्द्र शुक सारणौः ॥६॥

भारत	परीक्षित् ।	**गद प्रद्युम्न**	गद, प्रद्युम्न
तत् क्षेत्रं	उस कुरुक्षेत्रमें	**साम्ब आद्याः**	साम्ब आदि
स्वं अघं	अपने पापको	**सुचन्द्र शुक**	सुचन्द्र, शुक,
क्षपयिष्णवः	नष्ट करनेकी इच्छा वाले	**सारणौः**	सारण
		ययुः	गये ॥६॥

आस्तेऽनिरुद्धो रक्षायां कृतवर्मा च यूथपः ।
ते रथैर्देवधिष्ण्याभैर्हयैश्च तरलप्लवैः ॥ ७ ॥

आस्ते अनिरुद्धः रक्षायां कृतवर्मा च यूथपः ते रथैः देवधिष्ण्य आभैः हयैः च तरलप्लवैः ॥७॥

अनिरुद्धः	अनिरुद्ध	**रथैः च**	रथों तथा
च यूथपः	तथा सेनापति	**तरलप्लवैः**	तरंगोंके समान तीव्र:
कृतवर्मा	कृतवर्मा		गति
रक्षायां	(द्वारिकाकी) रक्षाके	**हयैः**	घोड़ोंसे ॥७॥
आस्ते	लिए रहे,		
ते	वे		
देवधिष्ण्य	देवविमानोंके समान		
आभैः	चमकते		

गजैर्नदद्भिरभ्राभैर्नृभिर्विद्याधरद्युभिः ।
व्यरोचन्त महातेजाः पथि काञ्चनमालिनः ॥ ८ ॥

गजैः नदद्भिः अभ्र आभैः नृभिः विद्याधर द्युभिः व्यरोचन्त महातेजाः पथि काञ्चन मालिनः ॥८॥

अभ्र आभैः	मेघोंके समान	**काञ्चन**	स्वर्ण
नदद्भिः गजैः	गर्जना करने हाथियों से	**मालिनः**	मालाधारी
		महातेजाः	महान तेजस्वी
विद्याधर द्युभिः	धिद्याधरोंके समान कान्तिमान	**व्यरोचन्त**	सुशोभित हुए ॥८॥
नृभिः पथि	मनुष्यों द्वारा मार्ग में		

दिव्यस्रग्वस्त्रसन्नाहाः कलत्रैः खेचरा इव ।
तत्र स्नात्वा महाभागा उपोष्य सुसमाहिताः ॥ ९ ॥

दिव्य स्रक् वस्त्र सन्नाहाः कलत्रैः खेचरा इव तत्र स्नात्वा महाभागा उपोष्य सुसमाहिताः ॥९॥

दिव्य स्रक्	दिव्य माला	**महाभागा**	उन महाभागोंने
वस्त्र सन्नाहाः	वस्त्र, कवच पहिने	**सुसमाहिताः**	अत्यन्त एकाग्रचित्त से
कलत्रैः	पत्नियोंके साथ		
खेचरा इव	देवताओंके समान	**उपोष्य**	उपवास करके
तत्र स्नात्वा	(यादवोंने) वहां स्नान करके		॥९॥

ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धेनूर्वासःस्रग्गुक्ममालिनीः ।
रामह्रदेषु विधिवत् सुनराप्लुत्य वृष्णयः ॥१०॥

ब्राह्मणेभ्यः ददुः धेनुः वासः स्रक् रुक्म मालिनीः रामह्रदेषु विधिवत् पुनः आप्लुत्य वृष्णयः ॥१०॥

रामह्रदेषु	परशुराम कुण्डमें	**स्रक्**	माला तथा
विधिवत्	विधिपूर्वक	**रुक्म मालिनीः**	स्वर्ण माला पहनायी
पुनः आप्लुत्य	फिर स्नान करके	**धेनुः ब्राह्मणेभ्यः**	गायें ब्राह्मणोंको
वृष्णयः वासः	यादवोंने वस्त्र	**ददुः**	दान कीं ॥१०॥

ददुः स्वन्नं द्विजाग्र्येभ्यः कृष्णे नो भक्तिरस्त्विति ।
स्वयं च तदनुज्ञाता वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥११॥

ददुः सुअन्नं च द्विज अग्रेभ्यः कृष्णे नः भक्तिः अस्तु इति स्वयं च तत् अनुज्ञाता वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥११॥

नः कृष्णे	'हमारी श्रीकृष्णमें	**कृष्णदेवताः**	जिनके श्रीकृष्ण ही देवता हैं उन
भक्तिः	भक्ति हो'	**वृष्णयः स्वयं च**	यादवोंने स्वयं भी
अस्तु इति	इस संकल्पसे	**तत् अनुज्ञाता**	उन (ब्राह्मणों)से अनुमति पाकर ॥११॥
द्विज अग्रेभ्यः	श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको		
सुअन्नं च ददुः	उत्तम अन्न (भोजन) दिया,		

भुक्त्वोपविविशुः कामं स्निग्धच्छायाङ्घ्रिपाङ्घ्रिषु ।
तत्रागतांस्ते ददृशुः सुहृत्सम्बन्धिनो नृपान् ॥१२॥

भुक्त्वा उपविविशुः कामं स्निग्ध छायासु अंघ्रिप अंघ्रिषु तत्र आगतान् ते ददृशुः सुहृत् सम्बन्धिनः नृपान् ॥१२॥

भुक्त्वा कामं	भोजन करके इच्छानुसार	**अंघ्रिप अंघ्रिषु**	वृक्षोंके तनोंके समीप
स्निग्ध छायासु	सघन छाया वाले	**उपविविशुः**	बैठ गये

ते तत्र आगतान्	तब उन्होंने वहां आये	**नृपान् ददृशुः**	राजाओंको देखा ॥१२॥
सुहृद	**मित्र**		
सम्बन्धिनः	सम्बन्धी		

मत्स्योशीनरकौसल्यविदर्भकुरुसृञ्जयान् ।
काम्बोजकैकयान् मद्रान् कुन्तीनानर्तकेरलान् ॥१३॥

मत्स्य, उशीनर, कौसल्य, विदर्भ, कुरु, सृञ्जयान्, काम्बोज, कैकयान्, मद्रन्, कुन्तीन्, आनर्त, केरलान् ॥१३॥*

अन्यांश्चैवात्मपक्षीयान् परांश्च शतशो नृप ।
नन्दादीन् सुहृदो गोपान् गोपीश्चोत्कण्ठिताश्चिरम् ॥१४॥

अन्यान् च एव आत्म पक्षीयान् परान् च शतशः नृप नन्द आदीन् सुहृदः गोपान् गोपीः च उत्कण्ठिताः चिरम् ॥१४॥

नृप	राजन् !	**गोपान् च**	गोपोंको तथा
च अन्यान् एव	तथा दूसरे भी	**चिरं उत्कण्ठिताः**	बहुत दिनोंसे उत्सुका
आत्म पक्षीयान्	अपने पक्ष वालों	**गोपीः**	गोपियोंको (देखा) ॥१४॥
च शतशः परान्	एवं सैकड़ों दूसरों को		
सुहृदः	सुहृद		
नन्द आदीन्	नन्दादि		

अन्योन्यसन्दर्शनहर्षरंहसा
प्रोत्फुल्लहृद्वक्त्रसरोरुहश्रियः ।

---

*ये केवल तत्कालीन राज्योंके नाम हैं ।

आश्लिष्य गाढं नयनैः स्रवज्जला
हृष्यत्त्वचो रुद्धगिरो ययुर्मुदम् ॥१५॥

अन्यः अन्य सन्दर्शन् हर्ष रंहसा प्रोत्फुल्ल हृत् वक्त्र सरोरुह श्रियः आश्लिष्य गाढं नयनैः स्रवत् जला हृष्यत् त्वचः रुद्ध गिरः ययुः मुदम् ॥१५॥

अन्यः अन्य	एक दूसरेके	**नयनैः स्रवत्**	नेत्रोंसे अश्रु
सन्दर्शन	दर्शनके	**जला**	बहाते
हर्ष रंहसा	हर्ष वेगसे	**हृष्यत् त्वचः**	रोमाञ्चित् त्वचा
प्रोत्फुल्ल हृत्	उत्फुल्ल हृदय तथा		देह
वक्त्र सरोरुह	मुख-कमलकी	**रुद्ध गिरः**	रुकी (गद्गद्)
श्रियः	शोभा वाले		वाणी
गाढं आश्लिष्य	प्रगाढ़ आलिगन करके	**मुदं ययुः**	आनन्दित हुए

॥१५॥

स्त्रियश्च संवीक्ष्य मिथोऽतिसौहृद-
स्मितामलापाङ्गदृशोऽभिरेभिरे ।
स्तनैः स्तनान् कुंकुमपङ्कूरूषितान्
निहत्य दोर्भिः प्रणयाश्रुलोचनाः ॥१६॥

स्त्रियः च संवीक्ष्य मिथः अति सौहृद स्मित अमल अपाङ्ग दृशः अभिरेभिरे स्तनैः स्तनान् कुंकुमपङ्क रूषितान् निहत्य दोर्भिः प्रणय अश्रु लोचनाः ॥१६॥

स्त्रियः च	स्त्रियां भी	**दृशः मिथः**	दृष्टिसे परस्पर
अति सौहृद	अत्यन्त सौहार्द्रसे	**वीक्ष्य**	देखकर
स्मित अमल	मुस्कान युक्त निमूल	**प्रणय अश्रु**	प्रेमाश्रु
अपाङ्ग	कटाक्ष युक्त	**लोचनाः**	नेत्र

कुंकुमपङ्क	कुंकुम लेपसे	**निहत्य दोर्भिः**	दबाकर भुजाओंमें भरकर
रूशितान्	लिप्त		
स्तनैः स्तनान्	स्तनोंसे स्तनोंको	**अभिरेभिरे**	आलिंगिता हुई ॥१६॥

ततोऽभिवाद्य ते वृद्धान् यविष्ठैरभिवादिताः ।
स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा चक्रुः कृष्णकथा मिथः ॥१७॥

ततः अभिवाद्य ते वृद्धान् यविष्ठैः अभिवादितः स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा चक्रुः कृष्णकथा मिथः ॥१७॥

ततः ते वृद्धान्	तब उन्होंने बड़ोंको	**मिथः**	परस्पर
अभिवाद्य	अभिवादित होकर	**कृष्णकथा**	श्रीकृष्ण-चर्चा
यविष्ठैः	छोटोंसे	**चक्रुः**	कहने लगे ॥१७॥
अभिवादितः	अभिवादित होकर		
स्वागत	स्वागत प्रश्न तथा		
कुशलं पृष्ट्वा	कुशल पूछकर		

पृथा भ्रातॄन् स्वसॄर्वीक्ष्य तत्पुत्रान् पितरावपि ।
भ्रातृपत्नीर्मुकुन्दं च जहौ संकथया शुचः ॥१८॥

पृथा भ्रातॄन् स्वसॄः वीक्ष्य तत् पुत्रान् पितराः अपि भ्रातृपत्नीः मुकुन्दं च जहौ सङ्कथया शुचः ॥१८॥

पृथा भ्रातॄन्	कुन्तीने भाइयों	**च मुकुन्दं वीक्ष्य**	तथा मुकुन्दको देखकर
स्वसॄः	बहिनों,		
तत् पुत्रान्	उनके पुत्रों,	**सङ्कथया**	उनसे बात करके
पितराः अपि	माता-पिताको भी	**शुचः जहौ**	शोक त्याग दिया ॥१८॥
भ्रातृपत्नीः	भाइयोंकी पत्नियों		

॥ कुन्त्युवाच ॥

॥ कुन्त्युवाच ॥

आर्य भ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृताशिषम् ।
यद् वा आपत्सु मद्वार्तां नानुस्मरथ सत्तमाः । १९॥

आर्य भ्रातः अहं मन्ये आत्मानं अकृत आशिषं यत् वा आपत्सु मत् वार्तां न अनुस्मरथ सत्तमाः ॥१९॥

आर्य भ्रातः	बड़े भैया !	**मत् वार्तां**	मेरी अवस्थाका
अहं आत्मानं	मैं अपनेको	**सत्तमाः न**	आप सत्पुरुषोंमें
अकृत आशिषं	भाग्यहीना		श्रेष्ठ भी नहीं
मन्ये	मानती हूँ	**अनुस्मरथ**	कभी स्मरण नहीं
यत् वा आपत्सु	क्योंकि विपत्तिमें		करते ॥१९॥

सुहृदो ज्ञातयः पुत्रा भ्रातरः पितरावपि ।
नानुस्मरन्ति स्वजनं यस्य दैवमदक्षिणम् ॥२०॥

सुहृदः ज्ञातयः पुत्रा भ्रातरः पितराः अपि न अनुस्मरन्ति स्वजनं यस्य दैवं अदक्षिणम् ॥२०॥

सुहृदः ज्ञातयः	मित्र, जातिके लोग	**न अनुस्मरन्ति**	नहीं स्मरण करते
पुत्रा भ्रातरः	पुत्र, भाई	**यस्य दैवं**	जिसके दैव
पितराः अपि	माता-पिता भी	**अदक्षिणं**	दाहिने (अनुकूल)
स्वजनं	(अपने) इस स्वजन को		नहीं है ॥२०॥

॥ वसुदेव उवाच ॥

अम्ब मास्मानसूयेथा दैवक्रीडनकान् नरान् ।
ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यतेऽथवा ॥२१॥

अम्ब मा अस्मान् असूयेथा दैव क्रीडनकान् नरान् ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यते अथवा ॥२१॥

अम्ब	बहिन !
दैव क्रीडनकान्	दैवके खिलोने
अस्मान् नरान्	हम सब मनुष्योंको
असूयेथा मा	दोष मत दो,
हि लोकः	क्योंकि सब लोक
ईशस्य वशे	ईश्वरके वशमें होकर ही
कुरुते अथवा	कुछ करते अथवा
कार्यते	कराते हैं ॥२१॥

कंसप्रतापिताः सर्वे वयं याता दिशं दिशम् ।
एतर्ह्येव पुनः स्थानं दैवेनासादिताः स्वसः ॥२२॥

कंसप्रतापिताः सर्वे वयं याता दिशं दिशं एतः हि एव पुनः स्थानं दैवेन आसादिताः स्वसः ॥२२॥

स्वसः	बहिन !
कंसप्रतापिताः	कंस द्वारा सताये हुए
वयं सर्वे	हम सब
दिशं दिशं	अनेक दिशाओंमें
याता	चले गये थे
हि एतः	क्योंकि इस
दैवेन एव	दैवने ही
पुनः स्थानं	फिर (हमें) अपना
आसादिताः	स्थान प्राप्त कराया है ॥२२॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

वसुदेवोग्रसेनाद्यैर्यदुभिस्तेऽर्चिता नृपाः ।
आसन्नच्युतसन्दर्शपरमानन्दनिर्वृताः ॥२३॥

वसुदेव उग्रसेन आद्यैः यदुभिः ते अर्चिता नृपाः आसन् अच्युत सन्दर्श परम आनन्द निर्वृताः ॥२३॥

वसुदेव उग्रसेन	वसुदेव, उग्रसेन
आद्यैः यदुभिः	आदि यादवों द्वारा
अर्चिता ते नृपाः	सत्कृत वे राजा लोग
अच्युत सन्दर्श	अच्युतके दर्शनसे
परम आनन्द	परम आनन्दमें
निर्वृताः आसन्	निमग्न हो गये ॥२३॥

भीष्मो द्रोणोऽम्बिकापुत्रो गान्धारी ससुता तथा ।
सदाराः पाण्डवाः कुन्ती सृञ्जयो विदुरः कृपः ॥२४॥

भीष्मः द्रोणः अम्बिकापुत्रः गान्धारी ससुता तथा सदाराः पाण्डवाः कुन्ती सृञ्जयः विदुरः कृपः ॥२४॥

भीष्मः द्रोणः	भीष्म, द्रोणाचार्य	**सदाराः**	पत्नियोंके साथ
अम्बिकापुत्रः	अम्बिका पुत्र धृतराष्ट्र	**पाण्डवाः**	पाण्डव
		कुन्ती सृञ्जयः	कुन्ती, सृञ्जय
तथा ससुता	तथा पुत्रोंके साथ	**विदुरः कृपः**	विदुर, कृपाचार्य
गान्धारी	गान्धारी,		॥२४॥

कुन्तिभोजो विराटश्च भीष्मको नग्नजिन्महान् ।
पुरुजिद् द्रुपदः शल्यो धृष्टकेतुः सकाशिराट् ॥२५॥

कुन्तिभोजः, विराटः, च, भीष्मकः, नग्नजित् महान्-पुरुजित् द्रुपदः शल्यः, धृष्टकेतुः, स काशिराट् ॥२५॥

दमघोषो विशालाक्षो मैथिलो मद्रकेकयौ ।
युधामन्युः सुशर्मा च ससुता बाह्लिकादयः ॥२६॥

दमघोषः, विशालाक्षः, मैथिलः मद्र, केकयोः, युधामन्युः, सुशर्मा, च, ससुता (पुत्रोंके साथ) बाह्लिक, आदयः ॥२६॥*

राजानो ये च राजेन्द्र युधिष्ठिरमनुव्रताः ।
श्रीनिकेतं वपुः शौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः ॥२७॥

राजानः ये च राजेन्द्र युधिष्ठिरं अनुव्रताः श्रीनिकेतं वपुः शौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः ॥२७॥

---

*ये केवल संज्ञाएँ हैं ।

राजेन्द्र	महाराज !	**शौरेः श्रीनिकेतं**	श्रीकृष्णका शोभा-धाम
युधिष्ठिरं	युधिष्ठिरके		
अनुव्रताः	अनुवर्ती	**वपुः वीक्ष्य**	शरीर देखकर
ये च राजानः	जो राजा लोग थे	**विस्मिताः**	चकित हो गये ॥२७॥
सस्त्रीकं	पत्नियोंके साथ		

अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक् प्राप्तसमर्हणाः ।
प्रशशंसुर्मुदा युक्ता वृष्णीन् कृष्णपरिग्रहान् ॥२८॥

अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक् प्राप्ताः समर्हणाः प्रशशंसुः मुदा युक्ता वृष्णीन् कृष्ण परिग्रहान् ॥२८॥

अथ ते	फिर वे	**प्राप्ताः**	पाकर
रामकृष्णाभ्यां	बलराम-श्रीकृष्ण द्वारा	**मुदा युक्ता**	आनन्दित होकर
		कृष्ण परिग्रहान्	श्रीकृष्णके परिकर
सम्यक्	भली प्रकार	**वृष्णीन् प्रशशंसुः**	यादवोंकी प्रशंसा करने लगे ॥२८॥
समर्हणाः	श्रेष्ठ सत्कार		

॥ राजनः ऊचुः ॥*

अहो भोजपते यूयं जन्मभाजो नृणामिह ।
यत् पश्यथासकृत् कृष्णं दुर्दर्शमपि योगिनाम् ॥२९॥

अहो हे भोजपते यूयं जन्मभाजः नृणां इह यत् पश्यथ असकृत् कृष्णं दुर्दर्शं अपि योगिनाम् ॥२९॥

अहो हे भोजपते	अहो हे भोजराज उग्रसेनजी !	**जन्मभाजः**	जन्मका पात्र होने योग्य
इह नृणां	इस लोकमें मनुष्य		

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

यूयं	आप सब ही हैं	**कृष्णं**	श्रीकृष्णको
यत् योगिनां	क्योंकियोगियोंके लिए	**असकृत् पश्यथ**	बराबर देखते हैं
अपि	भी		॥२९॥
दुर्दर्श	जिनका दर्शन कठिन है उन		

यद्विश्रुतिः श्रुतिनुतेदमलं पुनाति
पादावनेजनपयश्च वचश्च शास्त्रम् ।
भूः कालभर्जितभगापि यदङ्घ्रिपद्म
स्पर्शोत्थशक्तिरभिवर्षति नोऽखिलार्थान् ॥३०॥

यत् विश्रुतिः श्रुतिनुत इदं अलं पुनाति पाद अवनेजन पयः च वचः च शास्त्रं भूः काल भर्जित भग अपि यत् अंघ्रि पद्म स्पर्श उत्थ शक्तिः अभिवर्षति नः अखिल अर्थान् ॥३०॥

श्रुतिनुत	वेद-वर्णित	**भग अपि भूः**	ऐश्वर्य वाली होकर भी भूमि
यत् विश्रुतिः	जिनका सुयश	**यत् अघ्रि पद्म**	जिनके चरण-कमल के
च पाद	तथा चरण-	**स्पर्श उत्थ**	स्पर्शसे प्राप्त
अवनेजन पयः	प्रक्षालनका जल गंगा,	**शक्तिभिः नः**	शक्ति द्वारा हमारे
च शास्त्रं वचः	एवं शास्त्र रूप वाणी	**अखिल अर्थान्**	सम्पूर्ण पदार्थोंकी
इदं अलं पुनाति	इस सम्पूर्ण संसार को पवित्र करती है	**अभिवर्षति**	चारो ओर वर्षा करती है ॥३०॥
काल भर्जित	काल द्वारा भस्म किये		

तद्दर्शनस्पर्शनानुपथप्रजल्प-
शय्यासनाशनसयौनसपिण्डबन्धः ।
येषां गृहे निरयवर्त्मनि वर्ततां वः
स्वर्गापवर्गविरमः स्वयमास विष्णुः ॥३१॥

तत् दर्शन स्पर्शन अनुपथ प्रजल्प शय्या असन आशन सयौनस पिण्डबन्धः येषां गृहे निरय वर्त्मनि वर्ततां वः स्वर्ग अपवर्ग विरम. स्वयं आस विष्णुः ॥३१॥

तत् दर्शन	उनके दर्शन
स्पृर्शन	स्पर्श
अनुपथ	सहगमन
प्रजल्प	बातचीत,
शय्या, असन,	सोने, बैठने,
आशन	भोजनका व्यवहार
सयौनस	विवाह एवं
पिण्डबन्धः	दैहिक सम्बन्ध (के कर्म होते) हैं
निरय वर्त्मनि	नरकके मार्ग रूप
गृहे येषां	घरोंमें जिनके
वर्ततां वः	व्यवहार करते समय आप लोगोंके साथ
स्वर्ग अपवर्ग	स्वर्ग तथा मोक्षकी (इच्छा)
विरमः	दूर करने वाले
स्वय विष्णुः	स्वयं भगवान
आस	रहते हैं (उन्होंका जीवन सफल है) ॥३१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

नन्दस्तत्र यदून् प्राप्तान् ज्ञात्वा कृष्णपुरोगमान् ।
तत्रागमद् वृतो गोपैरनः स्थार्थैर्दिदृक्षया ॥३२॥

नन्दः तत्र यदून् प्राप्तान् ज्ञात्वा कृष्णपुरः अगमान् तत्र अगमत् वृतः गोपैः अनस्थ अर्थैः दिदृक्षया ॥३२॥

कृष्णपुरः	जिनके आगे श्रीकृष्ण
अगमान्	चलते हैं
यदून्	उन यादवोंको
तत्र प्राप्तान्	वहां आया
ज्ञात्वा नन्दः	जान कर नन्दजी
दिदृक्षया	देखनेकी इच्छासे
अनस्थ अर्थैः	छकड़ोंमें सामग्री लादकर
गोपैः वृतः	गोपोंसे घिरे
तत्र अगमत्	वहाँ आये ॥३२॥

तं दृष्ट्वा वृष्णयो हृष्टास्तन्वः प्राणमिवोत्थिताः ।
परिषस्वजिरे गाढं चिरदर्शनकातराः ॥३३॥

तं दृष्ट्वा वृष्णयः हृष्टाः तन्वः प्राणं इव उत्थिताः परिषस्वजिरे गाढं चिरदर्शन कातराः ॥३३॥

तं दृष्ट्वा	उनको देखकर	**उत्थिताः**	उठकर
चिरदर्शन	बहुत दिनोंसे दर्शन	**गाढं**	प्रगाढ़
कातराः	को व्याकुल	**परिषस्वजिरे**	आलिंगन किया
वृष्णयः हृष्टाः	यादव प्रसन्न होकर		॥३३॥
तन्वः प्राणं इव	शरीरमें प्राण आये के समान		

वसुदेवः परिष्वज्य सम्प्रीतः प्रेमविह्वलः ।
स्मरन् कंसकृतान् क्लेशान् पुत्रन्यासं च गोकुले ॥३४॥

वसुदेवः परिष्वज्य सम्प्रीतः प्रेमविह्वलः स्मरन् कंसकृतान् क्लेशान् पुत्रन्यासं च गोकुले ॥३४॥

वसुदेवः	वसुदेवजी	**स्मरन्**	स्मरण करके
परिष्वज्य	आलिंगन करके	**प्रेमविह्वलः**	प्रेमसे व्याकुल हो गये ॥३४॥
कंसकृतान्	कंसके द्वारा		
क्लेशान्	दिये गये क्लेश		
च गोकुले	तथा गोकुलमें		
पुत्रन्यासं	पुत्रोंको रखना		

कृष्णरामौ परिष्वज्य पितरावभिवाद्य च ।
न किंचनोचतुः प्रेम्णा साश्रुकण्ठौ कुरूद्वह ॥३५॥

कृष्णरामौ परिष्वज्य पितराः अभिवाद्य च न किञ्चन् ऊचतुः प्रेम्णा स अश्रुकण्ठौ कुरूद्वह ॥३५॥

कुरूद्वह	कुरुकुल पालक परीक्षित !	**कृष्णरामौ च**	श्रीकृष्ण और बलराम तो

पितराः	माता-पिता (नन्द यशोदा)का	**प्रेम्णा**	प्रेमके कारण
परिष्वज्य	आलिंगन करके	**स अश्रुकण्ठौ**	आंसू भरे कण्ठ
अभिवाद्य	तथा प्रणाम करके	**किञ्चन् न**	कुछ नहीं
		ऊचतुः	बोल सके ॥३५॥

तावात्मासनमारोप्य बाहुभ्यां परिरभ्य च ।
यशोदा च महाभागा सुतौ विजहतुः शुचः ॥३६॥

ताः आत्म आसनं आरोप्य बाहुभ्यां परिरम्य च यशोदा च महाभागा सुतौ विजहतुः शुचः ॥३६॥

महा भागा यशोदा च ताः सुतौ आत्म आसनं	महाभाग्यवती यशोदाजी भी उन पुत्रोंको अपने आसन (गोद) में	**आरोप्य च बाहुभ्यां परिरभ्यः शुचः विजहतुः**	बैठाकर तथा भुजाओंसे आलिंगन करके अश्रुपात करने लगीं ॥३६॥

॥ रोहिणि देववयोवाच ॥*

रोहिणी देवकी चाथ परिष्वज्य व्रजेश्वरीम् ।
स्मरन्त्यौ तत्कृतां मैत्रीं बाष्पकण्ठ्यौ समूचतुः ॥३७॥

रोहिणी देवकी च अथ परिष्वज्य व्रजेश्वरीं स्मरन्त्यौ तत् कृतां मैत्रीं बाष्प कण्ठ्यौ समूचतुः ॥३७॥

अथ रोहिणी च देवकी व्रजेश्वरीं	फिर रोहिणी और देवकी व्रजेश्वरी यशोदाजी को	**परिष्वज्य तत् कृतां मैत्रीं**	आलिंगन करके उनके द्वारा की गयी मित्रता

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

स्मरत्यौ	स्मरण करके	**समूचतुः**	किसी प्रकार बोलीं
बाष्पकण्ठ्यौ	अश्रु भरे कण्ठसे		॥३७॥

का विस्मरेत वां मैत्रीमनिवृत्तां व्रजेश्वरि ।
अवाप्याप्यैन्द्रमैश्वर्यं यस्या नेह प्रतिक्रिया ॥३८॥

का विस्मरेत् वां मैत्रीं अनिवृत्तां व्रजेश्वरि अवाप्य अपि ऐन्द्रं ऐश्वर्यं यस्या न इह प्रतिक्रिया ॥३७॥

व्रजेश्वरी	व्रजेश्वरी !	**अनिवृत्तां**	कभी न छूटने वाली
ऐन्द्रं ऐश्वर्यं	इन्द्रका वैभव		
अवाप्य अपि	पाकर भी	**वां मैत्रीं**	आप दोनोंकी मित्रताको
इह यस्या	जिसका इस लोक में	**का विस्मरेत्**	कौन भूल सकती है ॥३८॥
प्रतिक्रिया न	बदला नहीं है उस		

एतावदृष्टपितरौ युवयोः स्म पित्रोः
सम्प्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि ।
प्राप्योषतुर्भवति पक्ष्म ह यद्वदक्ष्णो-
र्न्यस्तावकुत्रचभयौ न सतां परः स्वः ॥३९॥

एताः अदृष्ट पितरौ युवयोः स्म पित्रोः सम्प्रीणन अभ्युदय पोषण पालनानि प्राप्य ऊषतुः भवति पक्ष्म ह यत्वत् अक्ष्णोः न्यस्ताः अकुत्र च भयौ न सतां परः स्वः ॥३९॥

एताः	इन (राम-कृष्ण)ने	**पक्ष्म ह यद्वत्**	पलकें ही जैसे
अदृष्ट पितरौ	जब अपने माता-पिताको देखा भी नहीं **था**	**अक्ष्णोः**	नेत्रोंकी (रक्षा करती हैं)
		सम्प्रीणन	लालन
युवयोः पित्रोः	तब आप दोनों ही (इनके) माता-पिता	**अभ्युदय**	पालन
		पोषण	पोषणसे
स्म	थे	**पालनानि प्राप्य**	पालन पाकर

च अकुत्र भयौ	तथा निर्भय	**सतां**	सत्पुरुषोंमें
भवति न्यस्ताः	आपके समीप रखे	**परः स्वः न**	पराया-अपना भाव
ऊषतुः	वहां रहे		नहीं होता ॥३६॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं
यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति ।
दृग्भिर्हृदीकृतमलं परिरभ्य सर्वा-
स्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥४०॥

गोप्यः च कृष्णं उपलभ्य चिरात् अभीष्टं यत् प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति दृक्भिः हृदीकृतं अलं परिरभ्य सर्वाः तत् भावं आपुः अपि नित्य-युजां दुरापम् ॥४०॥

यत् प्रेक्षणे	जिनके दर्शनके लिए	**अलं परिरभ्य**	सम्पूर्ण आलिंगन करके
दृशिषु	नेत्रोंमें	**सर्वाः**	सब
पक्ष्मकृतं	पलकें बनाने वाले (ब्रह्मा)को	**नित्ययुजां**	सदा प्रयत्न करने वाले योगियों
शपन्ति	कोसती थीं	**अपि दुरापं**	को भी दुष्प्राप्य
गोप्यः च	वे गोपियां भी	**तत् भावं आपुः**	उन (श्रीकृष्ण)के तदाम्यको प्राप्त हो गयीं ॥४०॥
चिरात् अभीष्टं	बहुत समयसे अभिलषित		
कृष्णं उपलभ्य	श्रीकृष्णको पाकर		
दृक्भिः हृदीकृतं	नेत्रोंसे हृदयमें लाकर		

भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसंगतः ।
आश्लिष्यानामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥४१॥

भगवान् ताः तथा भूता विविक्त उपसङ्गतः आश्लिष्य अनामयं पृष्ट्वा प्रहसन् इदं अब्रवीत् ॥४१॥

तथा भूता	इस प्रकारकी स्थिति प्राप्ता	**आश्लिष्य**	आलिंगन करके
		अनामयं पृष्ट्वा	नैरोग्य पूछकर
ताः विविक्त	उनसे एकान्तमें	**प्रहसन्**	हँसते हुए
उपसङ्गतः	समीप जाकर	**इदं अब्रवीत्**	यह बोले ॥४१॥
भगवान्	भगवान्‌ने		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥*

अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थचिकीर्षया ।
गतांश्चिरायितान्छत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥४२॥

अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानां अर्थं चिकीर्षया गतान् चिरायितान् शत्रुपक्ष क्षपण चेतसः ॥४२॥

स्वानां अर्थं	अपनोंका प्रयोजन	**चिरायितान्**	विलम्ब करने वाले
चिकीर्षया	बनानेकी इच्छासे	**नः सख्यः**	हमको सखियो
गतान्	जाकर	**अपि स्मरथ**	क्या स्मरण करती हो ? ॥४२॥
शत्रु पक्ष	शत्रु पक्षको		
क्षपण चेतसः	नष्ट करनेमें लगे चित्त		

अप्यवध्यायथास्मान् स्विदकृतज्ञाविशङ्कया ।
नूनं भूतानि भगवान् युनक्ति वियुनक्ति च ॥४३॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अपि अवध्यायथ अस्मान् स्वित् अकृतज्ञ अविशङ्क्या नूनं भूतानि भगवान् युनक्ति वियुनक्ति च ॥४३॥

अस्मान्	हमको	**अवध्यायथ**	निन्द्रा करती हो ?
अकृतज्ञ	कृतज्ञताहीन होने की	**नूनं भगवान्**	निश्चय भगवान ही
		भूतानि युनक्ति	प्राणियोंको मिलाते
अविशङ्क्या	शंकासे	**च वियुनक्ति**	तथा वियुक्त करते हैं ॥४३॥
अपि स्वित्	क्या कहीं		

वायुर्यथा घनानीकं तृणं तूलं रजांसि च ।
संयोज्याक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत् ॥४४॥

वायुः यथा घन अनीकं तृणं तूलं रजांसि च संयोज्य अक्षिपते भूयः तथा भूतानि भूतकृत् ॥४४॥

यथा वायुः	जैसे वायु	**अक्षिपते**	दूर फेंक देता है,
घन आनीकं	मेघोंके दलको	**तथा भूतकृत्**	ऐसे ही प्राणि- निर्माता विधाता
तृणं तूलं	तिनकों, रुई		
च रजांसि	तथा धूलिकणोंको	**भूतानि**	प्राणियोंको ॥४४॥
संयोज्य भूयः	मिलाकर फिर		

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।
दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥४५॥

मयिः भक्तिः हि भूतानां अमृतत्वाय कल्पते दिष्ट्या यत् आसीत् मत् स्नेहः भवतीनां मत् आपनः ॥४५॥

हि मयि भक्तिः	क्योंकि मेरी भक्ति	**कल्पते**	प्रदान करने वाली है
भूतानां	प्राणियोंको		
अमृतत्त्वाय	अमरत्व		

दिष्ट्या	प्रसन्नताकी बात है कि	**मद् आपनः**	मुझे प्राप्त कराने वाला
भवतीनां	तुम लोगोंमें	**मत् स्नेहः आसीत्**	मेरा प्रेम है ॥४५॥

अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः ।
भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः ॥४६॥

अहं हि सर्वभूतानां आदिः अन्तः अन्तरं बहिः भौतिकानां यथा खं वा वायुः भूः ज्योतिः अङ्गनाः ॥४६॥

अङ्गनाः	मेरी अंगभूताओ !	**सर्वभूतानां**	समस्त प्राणियोंके
यथा भौतिकानां	जैसे मिट्टीसे बने पदार्थोंमें	**आदिः अन्तः**	आदि और अन्तमें
खं वायुः भूः	आकाश, वायु, पृथ्वी	**वा**	अथवा
		अन्तरं बहिः	भीतर और बाहर
ज्योतिः	अग्नि (व्याप्त है वैसे ही)	**हि अहं**	क्योंकि मैं ही हूँ ॥४६॥

एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्माऽऽत्मना ततः ।
उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमक्षरे ॥४७॥

एवं हि एतानि भूतानि भूतेषुः आत्मा आत्मना ततः उभयं मयि अथ परे पश्यत आभातं अक्षरे ॥४७॥

एवं हि एतानि	इस प्रकार ही ये	**मयि अक्षरे**	मुझ अविनाशी
भूतानि	पञ्च महाभूत	**आत्मा**	आत्मा
भूतेषुः	प्राणियों (के देह)में	**परे**	परं तत्वमें
आत्मना ततः	अपने स्वरूपसे व्याप्त हैं	**आभातं पश्यत**	भासित होते देखो ॥४७॥
अथ उभयं	फिर दोनों (पंच भूतों तथा देहों)को		

।। श्रीशुक उवाच ।।

अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः ।
तदनुस्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन् ॥४८॥

अध्यात्म शिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः तत् अनुस्मरण ध्वस्त जीवकोशाः तं अध्यगन् ॥४८॥

एवं कृष्णेन	इस प्रकार श्रीकृष्ण द्वारा
अध्यात्म	अध्यात्म
शिक्षया	शिक्षासे
शिक्षिताः गोप्य	शिक्षिता गोपियां
तत् अनुस्मरण	उनके निरन्तरण स्मरणसे
जीवकोशाः	लिङ्ग शरीरका
ध्वस्त	नाश हो जानेसे
तं अध्यगन्	उनको प्राप्त हो गयीं ॥४८॥

आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
गेहञ्जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः ॥४९॥

आहुः च ते नलिननाभ पद अरविन्दं योगेश्वरैः हृदि विविचिन्त्यं अगाध बोधैः संसार कूप पतित उत्तरण अवलम्बं गेहञ्जुषां अपि मनसि उदियात् सदा नः ॥४९॥

आहुः च	बोलीं भी—
नलिननाभ	'पद्मनाभ !
अगाध बोधैः	अथाह ज्ञानवान
योगेश्वरैः	योगेश्वरों द्वारा
हृदि विचिन्त्यं	हृदयमें ध्येय
संसार	संसार रूपी
कूप पतित	कुएँमें गिरेको
उत्तरण	निकलनेका
अवलम्बं	सहारा

ते पद अरविन्दं	आपके चरण-कमल	**नः मनसि**	हमारे मनमें
गेहञ्जुषां अपि	घरमें रहने वाली होने पर भी	**सदा उदियात्**	सदा प्रकाशित रहें' ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे वृष्णिगोपसंगमो नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

॥ श्रीशक उवाच ॥

तथानुगृह्य भगवान् गोपीनां स गुरुर्गतिः ।
युधिष्ठिरमथापृच्छत् सर्वांश्च सुहृदोऽव्ययम् ॥ १ ॥

तथा अनुगृह्य भगवान् गोपीनां स गुरुः गतिः युधिष्ठिरं अथ अपृच्छत् सर्वान् च सुहृदः अव्ययम् ॥१॥

स गोपीनां गुरुः	उन गोपियोंके गुरु	**युधिष्ठिरं**	युधिष्ठिर
गतिः भगवान्	एवं परमगति भगवानने	**अथ सर्वान्**	तथा सब
तथा अनुगृह्य	इस प्रकार (उन पर) अनुग्रह करके	**सुहृदः च**	सुहृदोंसे भी
		अव्ययं अपृच्छत्	कुशल पूछी ॥१॥

त एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः ।
प्रत्यूचुर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः ॥ २ ॥

त एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः प्रत्यूचुः हृष्ट मनसः तत् पाद ईक्षा हत अंहसः ॥२॥

लोकनाथेन	लोकमहेश्वर द्वारा	**हत अंहसः**	निष्पाप हुए
एवं परिपृष्टाः	इसप्रकार पूछकर	**हृष्ट मनसः**	हर्षित चित्त
सुसत्कृताः	भली प्रकार सम्मानित किये गये	**प्रत्यूचुः**	उनसे बोले ॥२॥
त तत्	वे उनके		
पाद ईक्षा	चरण-दर्शनसे		

॥ युधिष्ठिर उवाच ॥*

कुतोऽशिवं त्वच्चरणाम्बुजासवं
महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित् ।
पिबन्ति ये कर्णपुटैरलं प्रभो
देहम्भृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम् ॥ ३ ॥

कुतः अशिवं त्वत् चरण अम्बुज आसवं महत् मनस्तः मुख निःसृतं क्वचित् पिबन्ति ये कर्णपुटैः अलं प्रभो देहं भृतां देहकृत् अस्मृतिः छिदम्
॥३॥

प्रभो	प्रभो !
देहं भृतां	शरीर धारियोंको
देहकृत्	शरीर देने वाली
अस्मृतिः छिदं	विस्मृति (अविद्या) नष्ट करने वाली
महत् मनस्तः	महापुरुषोंके चित्तसे
क्वचित्	कभी
मुख निःसृतं	मुखसे निकला
त्वत्	आपके सुषुप्ति)
चरण अम्बुज	चरण-कमलोंका
आसवं	आसव
ये कर्णपुटैः	जो कानोंके दोनेसे
अलं पिबन्ति	भरपूर पीते हैं
कुतः आशिवं	(उपके लिए) अमंगल कहां ॥३॥

हित्वाऽऽत्मधामविधुतात्मकृतत्र्यवस्थ-
मानन्दसम्प्लवमखण्डमकुण्ठबोधम् ।
कालोपसृष्टनिगमावन आत्तयोग-
मायाकृतिं परमहंसगतिं नताः स्म ॥ ४ ॥

हित्वा आत्म धाम विधुत आत्म कृत त्रयः अवस्थं आनन्द सम्प्लवं अखण्डं अकुण्ठ बोधं काल उपसृष्ट निगम अवन आत्तयोग मायाकृतिं परमहंस गति नताः स्म ॥४॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

आत्मधाम अपने स्वरूपसे ही
आत्म त्रय आत्माकी तीनों (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति)
अवस्थं अवस्थाओंको
विधुत हित्वाः निरस्त करके त्यागे हुए
आनन्द सम्प्लवं आनन्द समुद्र
अखण्डं अकुण्ठ बोधं अखण्ड एक रस ज्ञानस्वरूप
परमहंसगतिं परमहंसोंकी परमगति
काल उपसृष्ट समयके प्रभावसे
निगम अवन वेदोंकी रक्षाके लिए
आत्तयोग माया कृतिं अपनी योगमायासे शरीर धारण किये
नताः स्म (आपको हम) प्रणाम करते हैं ॥४॥

॥ ऋषिरुवाच ॥

इत्युत्तमश्लोकशिखामणिं जने-
ष्वभिष्टुवत्स्वन्धककौरवस्त्रियः ।
समेत्य गोविन्दकथा मिथोऽगृणं-
स्त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ॥ ५ ॥

इति उत्तमश्लोक शिखामणि जनेषु अभिष्टुवत्सु अन्धक कौरव स्त्रियः समेत्य गोविन्दकथा मिथः अगृणन् त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ॥५॥

इति जनेषु इस प्रकार लोगोंके
उत्तमश्लोक शिखामणि पुण्यकीर्ति लोगोंके चूड़ामणि (भगवान) की
अभिष्टुवत्सु स्तुति करते समय ही
अन्धक अन्धक और
कौरव स्त्रियः कुरुवंशकी स्त्रियां
समेत्य एकत्र होकर
त्रिलोकगीताः तीनो लोकोंमें गायी जाने वाली
गोविन्दकथा गोविन्दकी कथा
मिथः अगृणन् ते वर्णयामि परस्पर करने लगी उनका तुमसे वर्णन करता हूँ
शृणु सुनो ॥५॥

॥ द्रोपद्युवाच ॥

हे वैदर्भ्यच्युतो भद्रे हे जाम्बवति कौसले ।
हे सत्यभामे कालिन्दि शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे ॥ ६ ॥

हे वैदर्भि अच्युतः भद्रे हे जाम्बवति कौसले हे सत्यभामे कालिन्दि शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे ॥६॥

हे वैदर्भि भद्रे	हे रुक्मिणी, भद्रे,	**शैब्ये रोहिणि**	शैब्या, रोहिणी
हे जाम्बवति	हे जाम्बवती,	**लक्ष्मणे अच्युतः**	लक्ष्मणा और अच्युतने ॥६॥
कौसले	सत्ये		
हे सत्यभामे	हे सत्यभामा,		
कालिन्दि	कालिन्दी		

हे कृष्णपत्न्य एतन्नो ब्रूत वो भगवान् स्वयम् ।
उपयेमे यथा लोकमनुकुर्वन् स्वमायया ॥ ७ ॥

हे कृष्णपत्न्यः एतत् नः ब्रूत वः भगवान् स्वयं उपयेमे यथा लोकं अनुकुर्वन् स्वमायया ॥७॥

स्वमायया	अपनी मायासे	**हे कृष्णपत्न्यः**	हे श्रीकृष्ण-पत्नियों
लोकं अनुकुर्वन्	लोगोंका अनुकरण करते हुए	**यथा वः उपयेमे**	जैसे तुम लोगोंको विवाहा
स्वयं भगवान्	स्वयं भगवान होकर भी	**एतत् नः ब्रूत**	हमें यह बतलाओ ॥७॥

॥ रुक्मिण्युवाच ॥

चैद्याय मार्पयितुमुद्यतकार्मुकेषु
राजस्वजेयभटशेखरिताङ्घ्रिरेणुः ।

निन्ये मृगेन्द्र इव भागमजावियूथात्
तच्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय ॥८॥

चैद्याय मा अर्पयितुं उद्यत कार्मुकेषु राजसु अजेय भट शेखर अंघ्रिरेणुः निन्ये मृगेन्द्र इव भागं अजावियूथात् तत् श्रीनिकेतचरणः अस्तु मम अर्चनाय ॥८॥

कार्मुकेषु	धनुष उठाये	**मृगेन्द्र इव**	सिंहके समान
राजसु चैद्याय	राजाओंके चेदिराज शिशुपालको	**भागं निन्ये**	अपना भाग ले लिया
मा अर्पयितुं	मुझे देनेको	**तत्**	वे
उद्यत	उद्यत रहता	**श्रीनिकेतचरणः**	शोभाधाम-चरण (सदा)
अजेय भट	अजेय वीरोंके		
शेखर	मस्तक पर	**मम**	मेरे
अंघ्रिरेणुः	चरण-धूलि डालकर	**अर्चनाय अस्तु**	पूजनके लिए (प्राप्त) हों ॥८॥
अजावियूथात्	बकरियोंके बड़े झुण्डमेंसे		

॥ सत्यभामोवाच ॥

यो मे सनाभिवधतप्तहृदा ततेन
लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुमुपाजहार ।
जित्वर्क्षराजमथ रत्नमदात् स तेन
भीतः पितादिशत मां प्रभवेऽपि दत्ताम् ॥९॥

यः मे सनाभि वध तप्त हृदा ततेन लिप्त अभिशापं अपमार्ष्टुं उप आजहार जित् ऋक्षराजं अथ रत्नं अदात् स तेन भीतः पिता दिशत मां प्रभवे अपि दत्ताम् ॥९॥

सनाभि वध	भाईके मारे जानेसे
तप्त हृदा	संतप्त हृदय
मे ततेन	मेरे पिता द्वारा
लिप्त अभिशापं	लगाये गये कलंक को
अपमार्ष्टुं	दूर करनेके लिए
यः	जिन्होंने
जित् ऋक्षराजं	ऋक्षराज जाम्बवन्त को जीतकर
अथ रत्नं	फिर रत्न (स्यमन्तक मणि)
उप आजहार	उनसे लेकर
अदात्	दे दी
तेन भीतः पिता	इससे डरकर पिता ने
दत्तां प्रभवे अपि	वाग्दान हो जाने पर भी
मां दिशत्	मुझे भेंट कर दिया ॥९॥

॥ जाम्बवत्युवाच ॥

प्रज्ञाय देहकृदमुं निजनाथदेवं
सीतापतिं त्रिणवहान्यमुनाभ्ययुध्यत् ।
ज्ञात्वा परीक्षित उपाहरदर्हणं मां
पादौ प्रगृह्य मणिनाहममुष्य दासी ॥१०॥

प्रज्ञाय देहकृत् अमुं निजनाथ देवं सीतापतिं त्रिणव अहानि अमुना अभ्ययुध्यत् ज्ञात्वा परीक्षित उप अहरत् अर्हणं मां पादौ प्रगृह्य मणिना अहं अमुष्य दासी ॥१०॥

देहकृत्	इस शरीरके जन्म-दाता (पिता)
प्रज्ञाय	सर्वथा न पहिचान कर
अमुना	इनके साथ
त्रिणव अहानि	तीन नव (सत्ताइस) दिन
अभ्ययुध्यत्	घोर युद्ध करके
परीक्षित	परीक्षा लेकर
सीतापति देवं	देव सीतापति
निजनाथं अमुं	अपने स्वामी इनको
ज्ञात्वा	जानकर
पादौ प्रगृह्य	चरण पकड़कर

मणिना	मणिके साथ	**उप अहरत्**	भेंट कर दिया
मां अर्हणं	मुझे पूजा करनेके लिए		(अतः)
		अहं अमुष्य	मैं इनकी
		दासी	दासी हूँ ॥१०॥

॥ कालिन्द्युवाच ॥

तपश्चरन्तीमाज्ञाय स्वपादस्पर्शनाशया ।
सख्योपेत्याग्रहीत् पाणिं योऽहं तद्गृहमार्जनी ॥११॥

तपः चरन्तीं आज्ञाय स्वपाद स्पर्शन आशया सख्या उपेत्य अग्रहीत् पाणिं यः अहं तत् गृहमार्जनी ॥११॥

स्वपाद स्पर्शन	अपने चरण-स्पर्श की	**यः**	जिन्होंने
		पाणि अग्रहीत्	पाणि-ग्रहण किया
आशया	इच्छासे	**अहं तत्**	मैं उनका
तपः चरन्तीं	तपस्या करती	**गृहमार्जनी**	घर बुहारने वाली
आज्ञाय	जानकर		हूँ ॥११॥
सख्या उपेत्य	सखा (अर्जुन) के साथ समीप आकर		

॥ मित्रविन्दोवाच ॥

यो मां स्वयंवर उपेत्य विजित्य भूपान्
निन्ये श्वयूथगमिवात्मबलिं द्विपारिः ।
भ्रातृंश्च मेऽपकुरुतः स्वपुरं श्रियौक-
स्तस्यास्तु मेऽनुभवमङ्घ्र्यवनेजनत्वम् ॥१२॥

यः मां स्वयंवरः उपेत्य विजित्य भूपान् निन्ये श्वयूथगं इव आत्मबलिं द्विपारिः भ्रातॄन् च मे अपकुरुतः स्वपुरं श्रिया ओकः तस्य अस्तु मे अनुभवं अंघ्रि अवनेजन त्वम् ॥१२॥

यः स्वयंवर	जिन्होंने स्वयंवरमें	**द्विपारिः इव**	सिंहके समान
उपेत्य	आकर	**श्रिया ओकः**	शोभा धाम
भूपान् च	राजाओंके तथा	**स्वपुरं निन्ये**	अपने नगर ले आये
अपकुरुतः	विरोध करते हुए	**तस्य अंघ्रि**	उनके चरणोंका
मे भातॄन् च	मेरे भाइयोंको भी	**अवनेजन त्वं**	प्रक्षालन
विजित्य	जीतकर	**मे अनुभवं अस्तु**	मुझे प्रत्येक जन्ममें
श्वयूथगं	कुत्तोंके समूहमें पड़े		प्राप्त हो ॥१२॥
आत्मबलिं	अपनी भेंटको		

॥ सत्योवाच ॥

सप्तोक्षणोऽतिबलवीर्यसुतीक्ष्णशृङ्गान्
पित्रा कृतान् क्षितिपवीर्यपरीक्षणाय ।
तान् वीरदुर्मदहनस्तरसा निगृह्य
क्रीडन् बबन्ध ह यथा शिशवोऽजतोकान् ॥१३॥

सप्त अक्षणः अतिबल वीर्य सुतीक्ष्ण शृङ्गान् पित्रा कृतान् क्षितिप वीर्य परीक्षणाय तान् वीर दुर्मदहनः तरसा निगृह्य क्रीडन् बबन्ध ह यथा शिशवः अज तोकान् ॥१४॥

क्षितिप वीर्य	राजाओंके पराक्रम की	**सप्त अक्षणः**	सात बैल थे,
परीक्षणाय	परीक्षा करनेके लिए	**तान् वीर**	उन वीरोंके
पित्रा कृतान्	पिताके द्वारा निश्चित किये	**दुर्मदहनः**	घमण्डको नष्ट करने वालोंको
अतिबल वीर्य	अत्यन्त बलवान, पराक्रमी	**यथा शिशवः**	जैसे बालक
सुतीक्ष्ण शृङ्गान्	अत्यन्त तीक्ष्ण सींग वाले	**अज तोकान्**	बकरीके छोटे बच्चों को (पकड़े)
		तरसा निगृह्य	वेग पूर्वक पकड़कर
		क्रीडन् बबन्ध	खेलमें ही बाँध दिया ॥१३॥

य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरङ्गिणीम् ।
पथि निर्जित्य राजन्यान् निन्ये तद्दास्यमस्तु मे ॥१४॥

यः इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिः चतुरङ्गिणीं पथि निर्जित्य राजन्यान् निन्ये तत् दास्यं अस्तु मे ॥१४॥

इत्थं वीर्यशुल्कां	इस प्रकार पराक्रम के मूल्यमें मिलने वाली	**राजन्यान्**	राजाओंको
		निर्जित्य	जीतकर
मां दासीभिः	मुझे दासियोंके साथ	**यः निन्ये**	जो ले आये
		तत् दास्यं	उनकी सेवा
पथि	मार्गमें	**मे अस्तु**	मुझे मिलती रहे ॥१४॥
चतुरङ्गिणी	चतुरंगिणी (गज, रथ, अश्व, पैदल) सेनाके साथ		

॥ भद्रोवाच ॥

पिता मे मातुलेयाय स्वमाहूय दत्तवान् ।
कृष्णे कृष्णाय तच्चित्तामक्षौहिण्या सखीजनैः ॥१५॥

पिता मे मातुलेयाय स्वयं आहूय दत्तवान् कृष्णे कृष्णाय तत् चित्तां अक्षौहिण्या सखीजनैः ॥१५॥

कृष्णे	द्रोपदीजी !	**अक्षौहिण्या**	एक अक्षौहिणी सेना तथा
मे पिता	मेरे पिताने		
मातुलेयाय	मेरे मामाके पुत्र	**सखीजनैः**	सखियोंके साथ
कृष्णाय	श्रीकृष्णको	**दत्तवान्**	प्रदान किया ॥१५॥
स्वयं आहूय	स्वयं बुलाकर		
तत् चित्तां मे	उन्हींमें लगी चित्त वाली मुझे		

अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनि जन्मनि ।
कर्मभिर्भ्राम्यमाणाया येन तच्छ्रेय आत्मनः ॥१६॥

अस्य मे पाद संस्पर्शः भवेत् जन्मनि जन्मनि कर्मभिः भ्राम्यमाणाया येन तत् श्रेयः आत्मनः ॥१६॥

कर्मभिः	अपने कर्मानुसार	**जन्मनि जन्मनि**	प्रत्येक जन्ममें
भ्राम्यमाणाया	(संसारमें) भटकती हुई	**भवेत्**	प्राप्त हो
		येन तत्	जिसमें मैं अपना
मे अस्य	मुझे इनके	**आत्मनः श्रेयः**	कल्याण मानती हूँ
पाद संस्पर्शः	चरणोंका स्पर्श		॥१६॥

॥ लक्ष्मणोवाच ॥

ममापि राज्यच्युतजन्मकर्म
श्रुत्वा मुहुर्नारदगीतमास ह ।
चित्तं मुकुन्दे किल पद्महस्तया
वृतः सुसंमृश्य विहाय लोकपान् ॥१७॥

मम अपि राज्ञि अच्युत जन्मकर्म श्रुत्वा मुहुः नारदगीतं आस ह चित्तं मुकुन्दे किल पद्महस्तया वृतः सुसंमृश्य विहाय लोकपान् ॥१७॥

राज्ञि	महारानीजी !	**सुसंमृश्य**	भली प्रकार विचार करके
मुहुः नारदगीतं	बार-बार नारदजी के वर्णनमें	**पद्महस्तया वृतः**	लक्ष्मीजी द्वारा वरण किये गये
अच्युत	अच्युतके	**मम अपि**	मेरा भी
जन्मकर्म	अवतार कर्मोंको	**चित्तं ह**	चित्त तो
श्रुत्वा किल	सुनकर अहो	**मुकुन्दे आस**	मुकुन्दमें लगा था
लोकपान्	लोकपालोंको		॥१७॥
विहाय	छोड़कर		

ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः ।
बृहत्सेन इति ख्यातस्तत्रोपायमचीकरत् ॥१८॥

ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः बृहत्सेन इति ख्यातः तत्र उपायं अचीकरत् ॥१८॥

साध्वि	साध्वी !	**दुहितृवत्सलः**	पुत्री-वत्सल
मम मतं ज्ञात्वा	मेरी सम्मति जान-कर	**पिता तत्र**	पिताने इस विषय में
बृहत्सेन	वृहत्सेन	**उपायं**	उपाय
इति ख्यातः	इस नामसे प्रसिद्ध	**अचीकरत्**	किया ॥१८॥

यथा स्वयंवरे राज्ञि मत्स्यः पार्थेप्सया कृतः ।
अयं तु बहिराच्छन्नो दृश्यते स जले परम् ॥१९॥

यथा स्वयंवरे राज्ञि मत्स्यः पार्थ ईप्सया कृतः अयं तु बहिः आच्छन्नः दृश्यते स जले परम् ॥१९॥

राज्ञि यथा	महारानी जैसे (आपके)	**तु अयं बहिः**	किन्तु यह बाहरसे
स्वयंवरे	स्वयंवरमें	**आच्छन्नः**	ढका था
पार्थ ईप्सया	अर्जुनको पानेकी इच्छासे	**जले स**	जलमें उसकी
मत्स्यः कृतः	मत्स्य बनाया गया था (बनाया गया)	**परं दृश्यते**	परछाईं दीखती थी ॥१९॥

श्रुत्वैतत् सर्वतो भूपा आययुर्मत्पितुः पुरम् ।
सर्वास्त्रशस्त्रतत्त्वज्ञाः सोपाध्यायाः सहस्रशः ॥२०॥

श्रुत्वा एतत् सर्वतः भूपाः आययुः मत् पितुः पुरं सर्व अस्त्रशस्त्र तत्त्वज्ञाः स उपाध्यायाः सहस्रशः ॥२०॥

एतत् श्रुत्वा	यह सुनकर
मत् पितुः पुरं	मेरे पिताके नगरमें
सर्व अस्त्रशस्त्र	सब अस्त्र-शस्त्रोंके
तत्त्वज्ञाः	मर्मज्ञ
सहस्रशः	सहस्रों
भूपाः	राजा अपने
स उपाध्यायाः	उपाध्यायोंके साथ
सर्वतः आययुः	सब ओरसे आये ॥२०॥

पित्रा सम्पूजिताः सर्वे यथावीर्यं यथावयः ।
आददुः सशरं चापं वेद्धुं पर्षदि मद्धियः ॥२१॥

पित्रा सम्पूजिताः सर्वे यथावीर्यं यथावयः आददुः सशरं चापं वेद्धुं पर्षदि मत् धियः ॥२१॥

यथावीर्यं	अपने पराक्रमके अनुसार तथा
यथावयः	जैसी (जिसकी) आयु थी
सर्वे पित्रा सम्पूजिताः	सब पिता द्वारा भली प्रकार सत्कृत होकर
मत् धियः	मुझेमें मन लगाकर
पर्षदि सशरं वेद्धुं	सभामें बाणके साथ (लक्ष्य) वेधके लिए
चापं आददुः	धनुष उठाया ॥२१॥

आदाय व्यसृजन् केचित् सज्यं कर्तुमनीश्वराः ।
आकोटि ज्यां समुत्कृष्य पेतुरेकेऽमुना हताः ॥२२॥

आदाय व्यसृजन् केचित् सज्यं कर्तुं अनीश्वराः आकोटि ज्यां समुत् कृष्य पेतुः एके अमुना हताः ॥२२॥

केचित्	किसीने तो
सज्यं कर्तुं	ज्या चढ़ानेमें
अनीश्वराः	असमर्थ होकर
आदाय व्यसृजन्	(धनुष) उठाकर फिर छोड़ दिया
एके ज्यां	कोई डोरीको
आकोटि	धनुषकी नोंक तक
समुत् कृष्य	खींचकर
अमुना हताः पेतुः	उसके द्वारा झटका लगनेसे गिर गये ॥२२॥

सज्यं कृत्वा परे वीरा मागधाम्बष्ठचेदिपाः ।
भीमो दुर्योधनः कर्णो नाविन्दंस्तदवस्थितिम् । २३॥

सज्यं कृत्वा परे वीरा मागध अम्बष्ठ चेदिपाः भीमः दुर्योधनः कर्णः न अविन्दन् तत् अवस्थितिम् ॥२३॥

सज्यं कृत्वा	ज्या चढाकर	**तत् अवस्थितिं**	उस (मत्स्य)की स्थिति
परे वीरा	दूसरे वीर	**न अविन्दन्**	नहीं जान सके ॥२३॥
मागध अम्बष्ठ	जरासन्ध, दन्तवक्र		
चेदिपाः भीमः	शिशुपाल, भीमसेन		
दुर्योधनः कर्णः	दुर्योधन, कर्ण		

मत्स्याभासं जले वीक्ष्य ज्ञात्वा च तदवस्थितिम् ।
पार्थो यत्तोऽसृजद् बाणं नाच्छिनत् पस्पृशे परम् ॥२४॥

मत्स्य आभासं जले वीक्ष्य ज्ञात्वा च तत् अवस्थितिं पार्थः यत्तः असृजत् बाणं न अच्छिनत् पस्पृशे परम् ॥२४॥

मत्स्य आभासं	मछलीकी परछाई	**बाणं असृजत्**	बाण छोड़ा
जले वीक्ष्य	जलमें देखकर	**अच्छिनत् न**	पर (उससे लक्ष्य) वेध नहीं हुआ
तत् अवस्थितिं	उसकी स्थिति		
च ज्ञात्वा पार्थः	भी जानकर अर्जुन ने	**परं अस्पृशे**	केवल स्पर्श ही हुआ ॥२४॥
यत्तः	सावधानी पूर्वक		

राजन्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषु मानिषु ।
भगवान् धनुरादाय सज्यं कृत्वाथ लीलया ॥२५॥

राजन्येषु निवृत्तेषु भग्न मानेषु मानिषु भगवान् धनुः आदाय सज्यं कृत्वा अथ लीलया ॥२५॥

मानिषु	अभिमानियोंका	**भगवान्**	भगवान्ने
भग्न मानेषु	अभिमान नष्ट हो जाने पर	**धनुः**	धनुष
		आदाय अथ	लेकर फिर
राजन्येषु	राजाओंके	**लीलया**	खेलमें ही
निवृत्तेषु	चेष्टाहीन हो जाने पर	**सज्यं कृत्वा**	प्रत्यञ्चा चढ़ा कर ॥२५॥

तस्मिन् संधाय विशिखं मत्स्यं वीक्ष्य सकृज्जले ।
छित्त्वेषुणापातयत्तं सूर्ये चाभिजिति स्थिते ॥२६॥

तस्मिन् सन्धाय विशिखं मत्स्यं वीक्ष्य सकृत् जले छित्त्वा इषुणा पातयत् तं सूर्ये च अभिजिति स्थिते ॥२६॥

तस्मिन्	उस (धनुष) पर	**जले सकृत्**	जलमें एक बार
विशिखं सन्धाय	बाण चढ़ाकर	**मत्स्यं वीक्ष्य**	मछलीको देखकर
च सूर्ये	तथा सूर्यके	**इषुणा छित्त्वा**	बाणसे काटकर
अभिजिति स्थिते	अभिजित मुहूर्तमें आने पर	**तं पातयत्**	उसे गिरा दिया ॥२६॥

दिवि दुन्दुभयो नेदुर्जयशब्दयुता भुवि ।
देवाश्च कुसुमासारान् मुमुचुर्हर्षविह्वलाः ॥२७॥

दिवि दुन्दुभयः नेदुः जयशब्द युता भुवि देवाः च कुसुम आसारान् मुमुचुः हर्ष विह्वलाः ॥२७॥

भुवि जयाशब्द	पृथ्वीमें जयध्वनिके	**हर्ष विह्वलाः**	हर्षसे विह्वलाः
युता	साथ	**देवाः च**	देवता भी
दिवि	आकाशमें	**कुसुम**	पुष्पोंसे
दुन्दुभयः नेदुः	दुन्दुभियां बजने लगी	**आसारान्**	वर्षा करने
		मुमुचुः	लगे ॥२७॥

तद् रङ्गमाविशमहं कलनूपुराभ्यां
पद्भ्यां प्रगृह्य कनकोज्ज्वलरत्नमालाम् ।
नूत्ने निवीय परिधाय च कौशिकाग्र्ये
सव्रीडहासवदना कबरीधृतस्रक् ॥२८॥

तत् रङ्गम् आविशं अहं कलनू पुराभ्यां पद्भ्यां प्रगृह्य कनक उज्ज्वल रत्नमालां नूत्ने निवीय परिधाय च कौशिक अग्र्ये सव्रीडहास वदना कबरीधृत स्रक् ॥२८॥

नूत्ने	नवीन	**सव्रीडहास**	लज्जा पूर्ण मुस्कान
कौशिक अग्र्ये	उत्तम रेशमी वस्त्र	**वदना**	युक्त मुख वाली
निवीय च	पहिन और	**अहं**	मैं
परिधाय	ओढ़कर	**कलनू पुराभ्यां**	झंकार करते नूपुर
कबरीधृत स्रक्	जूड़ेमें माला लगा-कर	**पद्भ्यां**	पैरोंमें पहिने
कनक उज्ज्वल	स्वर्णसे दमकती	**तत् रङ्गम्**	उस रंग भूमिमें
रत्नमालां प्रगृह्य	रत्न-माला लेकर	**आविशं**	प्रविष्ट हुई ॥२८॥

उन्नीय वक्त्रमुरुकुन्तलकुण्डलत्विड्
गण्डस्थलं शिशिरहासकटाक्षमोक्षैः ।
राज्ञो निरीक्ष्य परितः शनकैर्मुरारे-
रंसेऽनुरक्तहृदया निदधे स्वमालाम् ॥२९॥

उन्नीय वक्त्रं उरु कुन्तल कुण्डलत्विड् गण्डस्थलं शिशिरहास कटाक्षमोक्षैः राज्ञः निरीक्ष्य परितः शनकैः मुरारेः अंसे अनुरक्त हृदया निदधे स्वमालाम् ॥२९॥

उरु कुन्तल कुण्डलत्विड्	सघन अलकों एवं कुण्डलोंकी कान्ति युक्त	**गण्डस्थलं**	कपोल प्रान्त वाले
		वक्त्रं उन्नीय	मुखको उठाकर
		शिशिरहास	शीतल हास्य

कटाक्षमोक्षैः	कटाक्षपातसे	**मुरारेः अंसे**	श्रीकृष्णके गलेमें
परितः	चारों ओर	**शनकैः स्वमालां**	धीरेसे अपनी माला
राज्ञः निरीक्ष्य	राजाओंको देखकर	**निदधे**	डाल दी ॥२९॥
अनुरक्त हृदया	आसक्त चित्ता (मैंने)		

तावन्मृदङ्गपटहाः शङ्खभेर्यानकादयः ।
निनेदुर्नटनर्तक्यो ननृतुर्गायका जगुः ॥३०॥

तावत् मृदङ्ग पटहाः शङ्ख भेरि आनक आदयः निनेदुः नट नर्तक्यः ननृतुः गायका जगुः ॥३०॥

तावत् मृदङ्ग	तब तक मृदंग	**नट नर्तक्यः**	नट और नर्तकियां
पटहाः शङ्ख	तासे, शंख	**ननृतुः**	नाचने लगीं
भेरि आनक	भेरी, नगाड़े	**गायका जगुः**	गायक गाने लगे ॥३०॥
आदयः निनेदुः	आदि जोरसे बजने लगे		

एवं वृते भगवति मयीशे नृपयूथपाः ।
न सेहिरे याज्ञसेनि स्पर्धन्तो हृच्छयातुराः ॥३१॥

एवं वृते भगवति मयि ईशे नृपयूथपाः न सेहिरे याज्ञसेनि स्पर्धन्तः हृच्छय आतुराः ॥३१॥

याज्ञसेनि	द्रोपदीजी !	**हृच्छय आतुराः**	कामातुर
एवं ईशे	इस प्रकार समर्थ	**नृपयूथपाः**	राजाओंका समूह
भगवति	भगवान द्वारा	**स्पर्धन्तः**	स्पर्धा करता हुआ
मयि वृते	मेरा वरण कर लेने पर	**सेहिरे न**	सहन नहीं कर सका ॥३१॥

मां तावद् रथमारोप्य हयरत्नचतुष्टयम् ।
शार्ङ्गमुद्यम्य संनद्धस्तस्थावाजौ चतुर्भुजः ॥३२॥

मां तावत् रथं आरोप्य हयरत्नचतुष्टयं शार्ङ्गम् उद्यम्य सन्नद्धः तस्थाः आजौ चतुर्भुजः ॥३२॥

चतुर्भुजः	चतुर्भुज पुरुष
हयरत्नचतुष्टयं	चारों अश्व-रत्नों वाले
रथं तावत् मां	रथमें इतनेमें मुझे
आरोप्य सन्नद्धः	चढ़ाकर कवच पहिन कर
शार्ङ्गम् उद्यम्य	शारंग धनुष उठाकर
आजौ तस्थाः	युद्धके लिए (रथ पर) खड़े हो गये ॥३२॥

दारुकश्चोदयामास काञ्चनोपस्करं रथम् ।
मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराडिव ॥३३॥

दारुकः चोदयामास काञ्चन उपस्करं रथं मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराट् इव ॥३३॥

राज्ञि	महारानी !
काञ्चन	स्वर्णके
उपस्करं	साजोंसे युक्त
रथं दारुकः	रथ दारुकने
मृगाणां	मृगोंके (मध्यसे)
मृगराट् इव	सिंहोंके समान
भूभुजां मिषतां	राजाओंके देखते हुए
चोदयामास	चला दिया ॥३३॥

तेऽवन्वज्जन्त राजन्या निषेद्धुं पथि केचन ।
संयत्ता उद्धृतेष्वासा ग्रामसिंहा यथा हरिम् ॥३४॥

ते अनु असज्जन्त राजन्या निषेद्धं पथि केचन संयत्ता उद्धृत इषु आसा ग्रामसिंहा यथा हरिम् ॥३४॥

ते केचन	उनमें कुछ
राजन्या	नरेश
पथि निषेद्धुं	मार्ग रोकनेके लिए
संयत्ता	सावधान होकर
उद्धृत	धनुष
इषु आसा	उठाकर
यथा ग्रामसिंहा	जैसे कुत्ते
हरिं	सिंहको (रोकना चाहें)
अनुअसज्जन्त	पीछे लग लिए

॥३४॥

ते शार्ङ्गच्युतबाणौघैः कृत्तबाह्वङ्घ्रिकन्धराः ।
निपेतुः प्रधने केचिदेके सन्त्यज्य दुद्रुवुः ॥३५॥

ते शार्ङ्ग च्युत बाण औघैः कृत्त बाहु अंघ्रि कन्धराः निपेतुः प्रधने केचित् एके सन्त्यज्य दुद्रुवुः ॥३५॥

शार्ङ्ग च्युत	शारग धनुषसे होती
बाण औघैः	बाणोंकी बौछारसे
ते कृत्त बाहु	वे कटी भुजा
अंघ्रि कन्धराः	पैर-गले वाले
केचित् प्रधने	कोई युद्धमें
निपेतुः एके	गिर गये और कोई
सन्त्यज्य दुद्रुवुः	(युद्ध) छोड़कर भाग गये ॥३५॥

ततः पुरीं यदुपतिरत्यलंकृतां
रविच्छदध्वजपटचित्रतोरणाम् ।
कुशस्थलीं दिवि भुवि चाभिसंस्तुतां
समाविशत्तरणिरिव स्वकेतनम् ॥३६॥

ततः पुरीं यदुपतिः अति अलंकृतां रविच्छद ध्वज पट चित्र तोरणां कुशस्थलीं दिवि भुवि च अभि संस्तुतां सम आविशत् तरणिः इव स्वकेतनम् ॥३६॥

ततः अति	तब अत्यन्त
अलङ्कृतां	सुसज्जिता
रविच्छद	सूर्यको छिपा लेने वाले
चित्र ध्वज पट	अनेन रंगोंकी पताका वस्त्रों
तोरणां	तथा तोरणों वाली

दिवि भुवि च	स्वर्ग एवं पृथ्वीमें भी	**कुशस्थलीं**	द्वारिकामें
अभिसंस्तुतां	चारो ओर प्रशंसिता	**सूर्य इव**	सूर्यके समान
यदुपतिः पुरीं	यदुनाथकी पुरी	**स्वकेतनं**	अपने भवनमें
		सम आविशत्	प्रवेश किया ॥३६॥

पिता मे पूजयामास सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ।
महार्हवासोऽलंकारैः शय्यासनपरिच्छदैः ॥३७॥

पिता मे पूजयामास सुहृत् सम्बन्धि बान्धवान् महा अर्ह वासः अलङ्कारैः शय्या आसन परिच्छदैः ॥३७॥

मे पिता	मेरे पिताने	**शय्या आसन**	शय्या, आसन आदि
सुहृत् सम्बन्धि	मित्र, सम्बन्धी,		
बान्धवान्	बन्धु-बान्धवोंका	**परिच्छदैः**	सामग्रियोंसे
महा अर्ह वासः	बहुमूल्य वस्त्रों	**पूजयामास**	सत्कार किया ॥३७॥
अलङ्कारैः	आभूषणों,		

दासीभिः सर्वसम्पद्भिर्भटेभरथवाजिभिः ।
आयुधानि महार्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥३८॥

दासीभिः सर्वसम्पद्भिः भट इभ रथ वाजिभिः आयुधानि महा अर्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥३८॥

दासीभिः	दासियां	**महा अर्हाणि**	बहुमूल्य
सर्व सम्पद्भिः	सब प्रकारकी सम्पत्ति	**आयुधानि**	आयुध
		भक्तितः	भक्ति पूर्वक
भट इभ रथ	पैदल, हाथी, रथ	**पूर्णस्य ददौ**	परिपूर्ण (भगवान) को दिये ॥३८॥
वाजिभिः	घोड़े (चतुरंगिणी सेना) एवं		

आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृहदासिकाः ।
सर्वसङ्गनिवृत्त्याद्धा तपसा च बभूविम ॥३९॥

आत्मारामस्य तस्य इमा वयं वै गृहदासिकाः सर्व सङ्ग निवृत्ति आद्धा तपसा च वभूवुः इम ॥३९॥

तस्य	उन	**सङ्ग निवृत्ति**	आसक्तियोंके त्याग
आत्मारामस्य	आत्मारामके	**च तपसा स्म**	तथा तपस्यासे
गृहदासिका	घरकी दासियों	**बभूवुः इम**	यहां हुई होंगी
इमा वयं	ये हम सब		॥३९॥
वै आद्धा सर्व	(पूर्व जन्ममें) निश्चय पूर्णतः सब		

॥ महिष्य ऊचुः ॥*

भौमं निहत्य सगणं युधि तेन रुद्धा
ज्ञात्वाथ नः क्षितिजये जितराजकन्याः ।
निर्मुच्य संसृति विमोक्षमनुस्मरन्तीः
पादाम्बुजं परिणिनाय य आप्तकामः ॥४०॥

भौमं निहत्य सगणं युधि तेन रुद्धा ज्ञात्वा अथ नः क्षितिजये जित राजकन्याः निर्मुच्य संसृति विमोक्षं अनुस्मरन्तीः पाद अम्बुजं परिणिनाय यः आप्तकामः ॥४०॥

युधि सगणं भौमं निहत्य	युद्धमें गणोंके साथ भौमासुरको मार-कर	**अथ तेन क्षितिजये**	फिर उसके द्वारा पृथ्वी दिग्विजयके समय

---

*सोलह सहस्र रानियोंमें प्रमुखका नाम रोहिणी है। द्रोपदीने उनका नाम लिया है। वही सबकी औरसे बोल रही हैं।

जित राजकन्या	जीते हुए राजाओं की कन्यायोंको
रुद्धा ज्ञात्वा	वन्दिनी बनायी जानकर
निर्मुच्य अथ संसृति विमोक्षं	मुक्त करके फिर उन संसारसे मुक्ति दाताको
अनुस्मरन्तीः	बार-बार स्मरण करने वालियोंको
यः आप्तकामः	जिन पूर्ण कामने
परिणिनाय	परिणय करके
पाद अम्बुजं	(अपने) चरण-कमलों में स्वीकार किया ॥४०॥

न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यमप्युत ।

वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनन्त्यं वा हरेः पदम् ॥४१॥

न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यं अपि उत वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनन्त्यं वा हरेः पदम् ॥४१॥

साध्वि वयं	साध्वी ! हम सब
साम्राज्यं	सम्राट्-पद,
स्वाराज्यं	इन्द्रपद,
भौज्यं	इनके भोग
अपि उत	अथवा
वैराज्यं	ऐश्वर्य
च पारमेष्ठ्यं	तथा ब्रह्माका पद
वा हरेः आनन्त्यं	अथवा श्रीहरिका अनन्त
पदं न	पद नहीं चाहती ॥४१॥

कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः ।

कुचकुंकुममगन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥४२॥

कामयां अह एतस्य श्रीमत् पादरजः श्रियः कुचकुंकुम गन्ध आढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥४२॥

श्रियः	लक्ष्मीके
कुचकुंकुम	स्तनों पर लगे कुंकुमकी
गन्ध आढ्यं	सुगन्धिसे परिपूर्ण
एतस्य गदाभृतः	इन गदाधरकी
श्रीमत् पादरजः	ऐश्वर्यमयी चरण को

मूर्ध्ना बोढुं	सिर पर धारण करना	**अह कामयां**	हम चाहती हैं ॥४२॥

व्रजस्त्रियो यद् वाञ्छन्ति पुलिन्द्यस्तृणवीरुधः ।
गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥४३॥

व्रजस्त्रियः यत् वाञ्छन्ति पुलिन्द्यः तृण वीरुधः गावः चारयतः गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥४३॥

गावः चारयतः	गायें चराते हुए	**तृण वीरुधः**	तृण, पौधे तथा
महात्मनः	महात्मा (श्रीकृष्ण) का	**गोपाः**	गोप
पादस्पर्श	चरण-स्पर्श	**वाञ्छन्ति**	चाहते हैं (हम भी चाहती हैं ।) ॥४३॥
यत् व्रजस्त्रियः	जिसे व्रजकी स्त्रियां		
पुलिन्द्यः	भीलनियां		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

श्रुत्वा पृथा सुबलपुत्र्यथ याज्ञसेनी
माधव्यथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः ।
कृष्णेऽखिलात्मनि हरौ प्रणयानुबन्धं
सर्वा विसिस्म्युरलमश्रुकलाकुलाक्ष्यः ॥ १ ॥

श्रुत्वा पृथा सुबलपुत्रि अथ याज्ञसेनी माधव्य अथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः कृष्णे अखिल आत्मनि हरौ प्रणय अनुबन्धं सर्वा विसिस्म्युः अलं अश्रुकला आकुल अक्ष्यः ॥१॥

अखिल आत्मनि	अखिलात्मा	**क्षितिपपत्न्य**	दूसरे राजाओंकी रानियां
हरौ माधव्य	श्रीहरिमें उन माधव पत्नियोंका	**उत स्वगोप्यः**	तथा उनकी अपनी गोपियां
प्रणय अनुबन्धं	सुदृढ़ प्रेमबन्धन	**अलं अश्रुकला**	बहुत अधिक अश्रुसे
श्रुत्वा	सुनकर	**आकुल अक्ष्यः**	व्याकुल नेत्रा
पृथा अथ	कुन्ती और	**सर्वा विसिस्म्युः**	सब चकित रह
सुबलपुत्रि	गान्धारी		गयीं ॥१॥
याज्ञसेनी	द्रोपदी		

इति सम्भाषमाणासु स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिर्नृषु ।
आययुर्मुनयस्तत्र कृष्णरामदिदृक्षया ॥ २ ॥

इति सम्भाषमाणासु स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिः नृषु आययुः मुनयः तत्र रामकृष्ण दिदृक्षया ॥२॥

इति स्त्रीभिः	इस प्रकार स्त्रियोंके	**रामकृष्ण**	बलराम-श्रीकृष्णके
स्त्रीषु	स्त्रियोंसे तथा	**दिदृक्षया**	दर्शनकी इच्छासे
नृभिः नृषु	पुरुषोंके पुरुषोंसे	**तत्र मुनयः**	वहां मुनिगण
सम्भाषमाणासु	बातचीत करते समय	**आययुः**	आये ॥२॥

द्वैपायनो नारदश्च च्यवनो देवलोऽसितः ।
विश्वामित्रः शतानन्दो भरद्वाजोऽथ गौतमः ॥ ३ ॥
रामः सशिष्यो भगवान् वसिष्ठो गालवो भृगुः ।
पुलस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च मार्कण्डेयो बृहस्पतिः ॥ ४ ॥
द्वितस्त्रितश्चैकतश्च ब्रह्मपुत्रास्तथाङ्गिराः ।
अगस्त्यो याज्ञवल्क्यश्च वामदेवादयोऽपरे ॥ ५ ॥

द्वैपायनः (व्यास), **नारदः**, **च**, **च्यवनः**, **देवलः**, **असितः**, **विश्वामित्रः** **शतानन्दः**, **भरद्वाजः**, **अथ-गौतमः** ॥३॥ **रामः सशिष्यः** (शिष्यों सहित परशुराम), **भगवान् वसिष्ठः**, **गालवः**, **भृगुः**, **पुलस्त्य**, **कश्यपः**, **अत्रिः**, **च**, **मार्कण्डेयः**, **बृहस्पतिः** ॥४॥ **द्वितः**, **त्रितः**, **एकतः**, **च**, **ब्रह्मपुत्राः** (ब्रह्माके सनकादि) **तथा अङ्गिराः**, **अगस्त्यः**, **याज्ञवल्क्यः**, **च वामदेव**, **आदयः**, **अपरे** (आदि दूसरे भी) ॥५॥*

तान् दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रागासीना नृपादयः ।
पाण्डवाः कृष्णरामौ च प्रणेमुर्विश्ववन्दितान् ॥ ६ ॥

तान् दृष्ट्वा सहसा उत्थाय प्राक् आसीना नृप आदयः पाण्डवाः कृष्णरामौ च प्रणेमुः विश्ववन्दितान् ॥६॥

विश्ववन्दितान्	सम्पूर्ण विश्वके वन्दनीय	**तान् दृष्ट्वा**	उन (मुनियों)को देखकर

---

*ये केवल नाम हैं । आवश्यक स्पष्टीकरण कोष्ठकोंमें दिया है ।

प्राक् आसीना	पहिले बैठे	**कृष्णरामौ**	श्रीकृष्ण-बलरामने
नृप आदयः	राजा आदि	**सहसा उत्थाय**	झटपट उठकर
पाण्डवाः च	पाण्डव तथा	**प्रणेमुः**	प्रणाम किया ॥६॥

तानानर्चुर्यथा सर्वे सहरामोऽच्युतोऽर्चयत् ।
स्वागतासनपाद्यार्घ्यमाल्यधूपानुलेपनैः ॥ ७ ॥

तान् आनर्चुः यथा सर्वे सहरामः अच्युतः अर्चयत् स्वागत आसन पाद्य अर्घ्य माल्य धूप अनुलेपनैः ॥७॥

यथा सर्वे	जैसे (पहिले) सबने	**पाद्य अर्घ्य**	पाद्य, अर्घ्य
सहरामः	बलरामजीके साथ	**माल्य धूप**	माला, धूप
अच्युतः अर्चयत्	अच्युतकी पूजा की थी	**अनुलेपनैः**	चन्दन द्वारा
स्वागत आसन	स्वागत, आसन	**तान् आनर्चुः**	उन (मुनियों)की पूजा की ॥८॥

उवाच सुखमासीनान् भगवान् धर्मगुप्तनुः ।
सदसस्तस्य महतो यतवाचोऽनुशृण्वतः ॥ ८ ॥

उवाच सुखं आसीनान् भगवान् धर्मगुप्तनुः सदसः तस्य महतः यतवाचः अनुशृण्वतः ॥८॥

सुखं आसीनान्	सुख पूर्वक बैठे उनसे	**तस्य महतः**	उस महती
धर्मगुप्तनुः	धर्म-रक्षाके लिये शरीरधारी	**सदसः**	सभाके
भगवान्	भगवान्	**यतवाचः**	मौन होकर
		अनुशृण्वतः	सुनते हुए
		उवाच	बोले ॥८॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कार्त्स्न्येन तत्फलम् ।
देवानामपि दुष्प्रापं यद् योगेश्वरदर्शनम् ॥ ९ ॥

अहो वयं जन्मभृतः लब्धं कात्स्न्र्येन तत् फलं देवानां अपि दुष्प्रापं यत् योगेश्वर दर्शनम् ॥९॥

अहो वयं	अहो, हम लोगोंने	**दुष्प्रापं**	प्रष्प्राप्य
जन्मभृतः	जन्म लेकर	**योगेश्वर दर्शनं**	(हमें आप) योगे-
तत् कात्स्न्र्येन	उसका सम्पूर्ण		श्वरोंका दर्शन मिला
फलं लब्धं	फल पा लिया		॥९॥
यत्	क्योंकि		
देवानां अपि	देवताओंके लिए भी		

किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम् ।
दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥१०॥

किं स्वल्पतपसां नृणां अर्चायां देवचक्षुषां दर्शन स्पर्शन प्रश्न प्रह्व पाद-अर्चन आदिकम् ॥१०॥

स्वल्पतपसां	बहुत कम तप करने वाले एवं	**दर्शन स्पर्शन**	(आप लोगोंके) दर्शन, स्पर्श
अर्चायां	(केवल) मूर्तिमें ही	**प्रश्न प्रह्व**	प्रश्न, प्रणाम
देवचक्षुषां	अपने आराध्य देव को देखने वाले	**पाद-अर्चन**	चरण-पूजन
नृणां	मनुष्योंको	**आदिकं किं**	आदि (का अवसर) कैसे मिल सकता है ॥१०॥

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥११॥

न हि अम्मयानि तीर्थानि न देवा मृत शिलामयाः ते पुनन्ति उरुकालेन दर्शनात् एव साधवः ॥१०॥

हि अम्मयानि	क्योंकि जल रूप ही	**देवा मृत्**	देवता मिट्टी या
तीर्थानि न	तीर्थ नहीं हैं	**शिलामयाः**	पत्थर रूप ही

न	नहीं हैं	**साधवः**	साधुजन
ते उरुकालेन	वे बहुत समयमें	**दर्शनात् एव**	दर्शन होते ही
पुनन्ति	पवित्र करते हैं (किन्तु)		(पवित्र कर देते हैं) ॥११॥

नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका
न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं
विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ॥१२॥

न अग्निः न सूर्यः न च चन्द्र तारका न भूः जलं खं श्वसनः अथ वाङ्मनः उपासिता भेदकृतः हरन्ति अघं विपश्चितः घ्नन्ति मुहूर्त सेवया ॥१२॥

भेदकृतः	भेद बुद्धिसे	**वाङ्मनः**	वाणी या मन
उपासिता	उपासना करने पर	**अघं हरन्ति**	पापी नष्ट करपाते; किन्तु
न अग्निः	न अग्नि		
न सूर्यः	न सूर्य	**मुहूर्त सेवया**	एक मुहूर्तकी सेवासे ही
च न चन्द्र	और न चन्द्र या		
तारका	ग्रहगण	**विपश्चितः**	ज्ञानी पुरुष (पाप)
न भूः जलं खं	न पृथ्वी, जल, आकाश	**घ्नन्ति**	नष्ट कर देते हैं ॥१२॥
श्वसनं अथ	वायु तथा		

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचि-
ज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥१३॥

यस्य आत्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्र आदिषु भौम इज्यधीः यत् तीर्थ बुद्धिः सलिले न कर्हिचित् जनेषु अभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥१३॥

यस्य त्रिधातुके	जिसकी तीन धातु (वात, कफ, पित्त) वाले
कुणपे	मुर्देमें
आत्मबुद्धिः	आत्म (मेरेपन)की बुद्धि है
कलत्र आदिषु	स्त्री आदिमें
स्वधीः	मेरेपनकी बुद्धि है
मौम इज्यधीः	पार्थिव (मूर्ति आदि) में पूज्य बुद्धि है
सलिले	जलमें
तीर्थ बुद्धिः	पवित्रताकी बुद्धि है
यत् कर्हिचित्	पर कभी भी
अभिज्ञेषु जनेषु	ज्ञानीजनोंमें
न स एव	(पावन बुद्धि) नहीं है वही
गोखरः	पशुओंमें भी गधा है ॥१२॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

निशम्येत्थं भगवतः कृष्णस्याकुण्ठमेधसः ।
वचो दुरन्वयं विप्रास्तूष्णीमासन् भ्रमद्धियः ॥१४॥

निशम्य इत्थं भगवतः कृष्णस्य अकुण्ठ मेधसः वचः दुः अन्वयं विप्राः तूष्णीं आसन् भ्रमत् धियः ॥१४॥

अकुण्ठ मेधसः	नित्य जागरूक प्रज्ञा वाले
भगवतः कृष्णस्य	भगवान श्रीकृष्णकी
इत्थं दुः अन्वयं	इस प्रकारकी गूढ़
वचः निशम्य	वाणी सुनकर
भ्रमत् धियः	भ्रमित बुद्धि
विप्राः	वे ब्राह्मण
तूष्णीं आसन्	चुप रह गये ॥१४॥

चिरं विमृश्य मुनय ईश्वरस्येशितव्यताम् ।
जनसंग्रह इत्यूचुः स्मयन्तस्तं जगद्गुरुम् ॥१५॥

चिरं विमृश्य मुनयः ईश्वरस्य ईशितव्यतां जनसङ्ग्रह इति ऊचुः स्मयन्तः तं जगद्गुरुम् ॥१५॥

चिरं ईश्वरस्य	देर तक उन सर्वेश्वरकी	**इति मुनयः**	ऐसा समझकर मुनियोंने
ईशितव्यतां	क्या करनेकी इच्छा है इसका	**स्मयन्तः**	मुस्कराते हुए
विमृश्य	विचार करके	**तं जगद्गुरुं**	उन जगद्गुरुसे
जनसंग्रह	'यह लोगोंको शिक्षा देनेको है	**ऊचुः**	कहा ॥१५॥

॥ मुनय ऊचुः ॥

यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा वयं
विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः ।
यदीशितव्यायति गूढ ईहया
अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥१६॥

यत् मायया तत्त्ववित् उत्तमा वयं विमोहिता विश्वसृजां अधीश्वराः
यत ईशित व्यायित गूढ ईहया अहो विचित्र भगवत् विचेष्टितम् ॥१६॥

यत् मायया	जिनकी मायासे	**यत**	जिनकी
तत्त्ववित्	तत्त्वज्ञानियोंमें	**ईशित व्यायित**	लीला
उत्तमा वयं	श्रेष्ठ हम लोग तथा	**ईहया गूढ**	(इस मानव) चेष्टा से छिपी है
विश्वसृजां	प्रजापतियोंके	**अहो भगवत्**	अहो (आप) भगवानकी
अधीश्वराः	अधीश्वर (मरीचि आदि)	**विचेष्टितं**	लीला
विमोहिता	मोहित हैं	**विचित्रं**	विचित्र है॥१६॥

अनीह एतद् बहुधैक आत्मना
सृजत्यवत्यत्ति न बध्यते यथा ।

भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी
अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥१७॥

अनीह एतत् बहुधा एक आत्मना सृजति अवति अत्ति न बध्यते यथा भौमैः हि भूमिः बहुनाम रूपिणी अहो विभूम्नः चरितं विडम्बनम् ॥१७॥

यथा भूमिः हि	जैसे पृथ्वी ही	**सृजति**	उत्पन्न करते,
भौमैः	भूमिके पदार्थ (वृक्ष पर्वतादि)के रूपमें	**अवति अत्ति**	पालते एवं खा लेते हो
बहुनाम रूपिणी	बहुत नामों एवं रूपों वाली है (**वैसे ही**)	**न बध्यते**	(इन कर्मोंसे) बँधते नहीं हो,
एक अनीह	एक तथा चेष्टाहीन	**अहो विभूम्नः**	अहो, आप सर्व-व्यापकका
आत्मना एतत्	(आप) अपने स्व-रूपसे इस संसार को	**चरितं विडम्बनं**	चरित लीला ही है ॥१७॥

अथापि काले स्वजनाभिगुप्तये
बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय च ।
स्वलीलया वेदपथं सनातनं
वर्णाश्रमात्मा पुरुषः परो भवान् ॥१८॥

अथ अपि काले सु अजनाभि गुप्तये बिभर्षि सत्त्वं खल निग्रहाय च स्वलीलया वेदपथं सनातनं वर्ण आश्रम आत्मा पुरुषः परः भवान् ॥१८॥

अथ अपि	फिर भी	**सत्त्वं बिभर्षि**	सत्त्वात्मक शरीर धारण करते हैं
काले सु	समय-समय पर	**स्वलीलया**	अपनी लीलासे
अजनाभि गुप्तये	भारतवर्षकी रक्षा के लिए	**सनातनं वेदपथं**	सनातन वेदमार्गकी (रक्षा करते हैं)
च खल निग्रहाय	तथा दुष्टोंका दमन करनेके लिए		

वर्ण आश्रम	वर्ण-आश्रम	**भवान्**	आप
आत्मा	स्वरूप	**परं पुरुषः**	परम पुरुष हैं ॥१८॥

ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपःस्वाध्यायसंयमैः ।
यत्रोपलब्धं स व्यक्तमव्यक्तं च ततः परम् ॥१९॥

ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपः स्वाध्याय संयमैः यत्र उपलब्धं स व्यक्तं अव्यक्तं च ततः परम् ॥१९॥

ब्रह्म ते	वेद आपका	**च अव्यक्तं**	तथा अव्यक्त (निराकार) एव
शुक्लं हृदयं	शुद्ध हृदय है	**ततः**	उससे
तपः स्वाध्याय	तपस्या-स्वाध्याय एवं	**परं उपलब्धं**	परे परम ब्रह्म रूप जाना जाता है ॥१९॥
संयमैः	ध्यान-समाधिके द्वारा		
यत्र स व्यक्तं	जिसमें आपका सगुण रूपसे प्रकट		

तस्माद् ब्रह्मकुलं ब्रह्मन् शास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः ।
सभाजयसि सद्धाम तद् ब्रह्मण्याग्रणीर्भवान् ॥२०॥

तस्मात् ब्रह्मकुलं ब्रह्मन् शास्त्रयोनेः त्वं आत्मनः सभाजयसि सत् धाम तत् ब्रह्मण्य अग्रणीः भवान् ॥२०॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**आत्मनः**	स्वयं
शास्त्रयोनेः	शास्त्रोंकी उपलब्धि स्थान	**सभाजयसि**	सम्मान करते हैं
		तत् भवान्	अतः आप
ब्रह्मकुलं	ब्राह्मणोंका	**ब्रह्मण्य अग्रणीः**	ब्राह्मण भक्तोंमें श्रेष्ठ हैं ॥२०॥
तस्मात् त्वं	इसलिए आप		
सत् धाम	सत्स्वरूप		

अद्य नो जन्मसाफल्यं विद्यायास्तपसो दृशः ।
त्वया संगम्य सद्गत्या यदन्तः श्रेयसां परः ॥२१॥

अद्य नः जन्म साफल्यं विद्यायाः तपसः दृशः त्वया सङ्गम्य सद् गत्या यत् अन्तः श्रेयसां परः ॥२१॥

यत् श्रेयसां	जो कल्याण-साधनों की	**अद्य नः जन्म**	आज हमारे जन्म
परः अन्तः	परम सीमा हैं तथा	**विद्यायाः तपसः**	विद्या, तपस्या एवं
सद् गत्या	सत्पुरुषोंकी गति हैं	**दृशः साफल्यं**	नेत्रोंकी सफलता
त्वया सङ्गम्य	उस आपसे मिलकर		हो गयी ॥२१॥

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
स्वयोगमाययाच्छन्नमहिम्ने परमात्मने ॥२२॥

नमः तस्मै भगवते कृष्णाय अकुण्ठ मेधसे स्वयोग मायया आच्छन्न महिम्ने परमात्मने ॥२२॥

स्वयोग मायया	अपनी योगमायासे	**परमात्मने**	परमात्मा
आच्छन्न महिम्ने	अपनी महिमा छिपाये	**भगवते**	भगवान
		तस्मै कृष्णाय	आप श्रीकृष्णको
अकुण्ठ मेधसे	अप्रतिहत बोध	**नमः**	नमस्कार ॥२२॥

न यं विदन्त्यमी भूपा एकारामाश्च वृष्णयः ।
मायाजवनिकाच्छन्नमात्मानं कालमीश्वरम् ॥२३॥

न यं विदन्ति अमी भूपाः एक आरामाः च वृष्णयः माया जवनिका-च्छन्नं आत्मानं कालं ईश्वरम् ॥२३॥

यं माया जवनिका-च्छन्नं आत्मानं	जिन मायाके पर्देसे ढके आत्मा,	**कालं ईश्वरं**	कालरूप सर्वेश्वरको
		अमी भूपाः	ये राजा लोग

च एक आरामाः	तथा एक साथ विश्राम करने वाले	वृष्णयः न विदन्ति	यादव नहीं जानते ॥२३॥

यथा शयानः पुरुष आत्मानं गुणतत्त्वदृक् ।
नाममात्रेन्द्रियाभातं न वेद रहितं परम् ॥२४॥

यथा शयानः पुरुषः आत्मानं गुण तत्त्व दृक् नाम मात्र इन्द्रिय आभातं न वेद रहितं परम् ॥२४॥

यथा शयानः	जैसे स्वप्न देखता	मात्र इन्द्रिय	तन्मात्रा, इन्द्रिय वाला
पुरुषः	पुरुष		
आत्मानं	अपनेको	आभातं	प्रतीत करता है,
गुण तत्त्व दृक्	गुणों तथा तत्त्वोंका द्रष्टा	रहितं परं	उससे रहित दूसरे (जागृतके रूप)को
नाम	नाम, (स्पर्शादि)	न वेद	नहीं जानता ॥२४॥

एवं त्वा नाममात्रेषु विषयेष्विन्द्रियेहया ।
मायया विभ्रमच्चित्तो न वेद स्मृत्युपप्लवात् ॥२५॥

एवं त्वा नाम मात्रेषु विषयेषु इन्द्रिय ईहया मायया विभ्रमत् चित्तः न वेद स्मृति उपप्लवात् ॥२५॥

एवं नाम मात्रेषु	इसी प्रकार (जागृत के) नामों, तन्मात्राओं	विभ्रमत् चित्तः	चित्त भ्रान्त होनेसे
		स्मृति	(आत्म) स्मृति
विषयेषु	भोगोंमें	उपप्लवात्	नष्ट हो जानेसे
इन्द्रिय ईहया	इन्द्रियोंकी चेष्टासे	त्वा न वेद	(मनुष्य) आपको नहीं जान पाता ॥२५॥
मायया	मायाके द्वारा		

तस्याद्य ते दृष्टिमाङ्घ्रिमघौघमर्ष-
तीर्थास्पदं हृदि कृतं सुविपक्वयोगैः ।

उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवकोशा
आपुर्भवद्गतिमिथोऽनुगृहाण भक्तान् ॥२६॥

तस्य अद्य ते ददर्शि अंघ्रिम् अघ ओघमर्ष तीर्थ आस्पदं हृदि कृतं सुविपक्व योगैः उत्सिक्त भक्ति उपहत आशय जीवकोशाः आपुः भवत् गतिं अथः अनुगृहाण भक्तान् ॥२६॥

सुविपक्व योगैः	अत्यन्त परिपक्व योग वालों द्वारा	**ददर्शि**	(हमें) दर्शन हुआ
हृदि कृतं	हृदयमें धारण किये गये	**उत्सिक्त भक्ति**	उत्कृष्टि भक्तिसे
अघ ओघमर्ष	पापोंकी बाढ़को नष्ट करने वाली	**उपहृत**	नष्ट लिङ्ग
तीर्थ आस्पदं	पवित्र गंगाके आश्रय स्थान	**जीवकोशा**	शरीर वाले ही
ते अंघ्रिम्	आपके चरणोंका	**भवत् गतिं**	आपके परम पदको
अद्य	आज	**आपुः**	पाते हैं
		अथः भक्तान्	अतः (हम) भक्तों पर
		अनुगृहाण	अनुग्रह कीजिए ॥२६॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरम् ।
राजर्षे स्वाश्रमान् गन्तुं मुनयो दधिरे मनः ॥२७॥

इति अनुज्ञाप्य दाशार्हं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरं राजर्षे स्व आश्रमान् गन्तुं मुनयः दधिरे मनः ॥२७॥

राजर्षे	राजर्षि परीक्षित !	**अनुज्ञाप्य**	अनुमति लेकर
इति	इस प्रकार (स्तुति करके)	**स्व आश्रमान्**	अपने आश्रम
दाशार्हं	श्रीकृष्ण,	**गन्तुं**	जानेकी
धृतराष्ट्रं	धृतराष्ट्र	**मुनयः**	मुनियोंने
युधिष्ठिरं	तथा युधिष्ठिरसे	**मनः दधिरे**	इच्छा की ॥२७॥

तद् वीक्ष्य तानुपव्रज्य वसुदेवो महायशाः ।
प्रणम्य चोपसंगृह्य बभाषेदं सुयन्त्रितः ॥२८॥

तद् वीक्ष्य तान् उपव्रज्य वसुदेवः महायशाः प्रणम्य च उपसगृह्य बभाष इदं सुयन्त्रितः ॥२८॥

तत् वीक्ष्य	यह देखकर	**महायशाः**	महान यशस्वी
तान् उपव्रज्य	उनके समीप जाकर	**वसुदेवः**	वसुदेवजी
प्रणम्य च	प्रणाम करके तथा	**सुयन्त्रितः**	अत्यन्त संयम पूर्व
उपसंगृह्य	(चरण) पकड़कर	**इदं बभाष**	यह बोले ॥२८॥

॥ वसुदेव उवाच ॥

नमो वः सर्वदेवेभ्य ऋषयः श्रोतुमर्हथ ।
कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यताम् ॥२९॥

नमः वः सर्वदेवेभ्यः ऋषयः श्रोतुं अर्हथ कर्मणा कर्मनिर्हारः यथा स्यात् नः तत् उच्यताम् ॥२९॥

वः सर्व देवेभ्यः	आप सब देवता स्वरूप	**यथा कर्मणा**	जैसे कर्मके द्वारा
ऋषयः नमः	ऋषियोंको नमस्कार	**कर्मनिर्हारः**	कर्मोंका नाश
श्रोतुं अर्हथ	(आप सबको मेरी प्रार्थना) सुननी चाहिए	**स्यात्**	हो
		नः तत् उच्यतां	मुझे वह (कर्म) बतलाइये ॥२९॥

॥ नारद उवाच ॥

नातिचित्रमिदं विप्रा वसुदेवो बुभुत्सया ।
कृष्णं मत्वार्भकं यन्न पृच्छति श्रेय आत्मनः ॥३०॥

न अति चित्रं इदं विप्रा वसुदेवः बुभुत्सया कृष्णं मत्वा अर्भकं यत् नः पृच्छति श्रेय आत्मनः ॥३०॥

विप्रा	ब्राह्मणो !	**अर्भकं मत्वा**	(अपना) बच्चा मानकर
वसुदेवः	वसुदेवजीकी	**नः आत्मनः**	हम लोगोंसे अपने
इदं बुभुत्सया	यह जिज्ञासा	**श्रेयः पृच्छति**	कल्याण (के उपाय) को पूछते हैं ॥३०॥
अति चित्रं न	बहुत विचित्र नहीं है		
यत् कृष्णं	क्योंकि श्रीकृष्णको		

संनिकर्षो हि मर्त्यानामनादरणकारणम् ।
गाङ्गं हित्वा यथान्याम्भस्तत्रत्यो याति शुद्धये ॥३१॥

सन्निकर्षः हि मर्त्यानां अनादरण कारणं गाङ्गम् हित्वा यथा अन्य अम्भः तत्रत्यः याति शुद्धये ॥३१॥

हि सन्निकर्षः	क्योंकि बहुत निकटता	**तत्रत्यः**	वहां रहने वाले
मर्त्यानां	मनुष्योंके लिए	**शुद्धये अन्य**	(अपनी) शुद्धिके लिए दूसरे
अनादरण	अनादरका	**अम्भः याति**	जलके पास जाते हैं ॥३१॥
कारणं	कारण होती है		
यथा गाङ्गम्	जैसे गंगा रूप (तीर्थ)		
हित्वा	को छोड़कर		

यस्यानुभूतिः कालेन लयोत्पत्त्यादिनास्य वै ।
स्वतोऽन्यस्माच्च गुणतो न कुतश्चन रिष्यति ॥३२॥

यस्य अनुभूतिः कालेन लय उत्पत्ति आदिना अस्य वै स्वतः अन्यस्मात् च गुणतः न कुतश्चन रिष्यति ॥३२॥

यस्य अनुभूतिः	जिन (श्रीकृष्ण)की अनुभूति	**कालेन**	समयके प्रभावसे

वै अस्य	निश्चय इस संसार की	**अन्यस्मात्**	दूसरे किसी
लय उत्पत्ति	प्रलय-सृष्टि	**गुणतः कुतश्चन**	गुणसे कहीं भी
आदिना	आदिसे	**न रिष्यति**	नहीं खण्डित होती ॥३२॥
स्वतः च	स्वयं या		

तं क्लेशकर्मपरिपाकगुणप्रवाहै-
रव्याहतानुभवमीश्वरमद्वितीयम् ।
प्राणादिभिः स्वविभवैरुपगूढमन्यो
मन्येत सूर्यमिव मेघहिमोपरागैः ॥३३॥

तं क्लेश कर्म परिपाक गुण प्रवाहैः अव्याहत अनुभवं ईश्वरं अद्वितीयं प्राण आदिभिः स्वविभवैः उप गूढं अन्यः मन्येत सूर्यं इव मेघ हिम उपरागैः ॥३३॥

तं क्लेश	उन (अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेश रूप) क्लेशों	**अद्वितीयं ईश्वरं**	अद्वितीय ईश्वरको
		स्वविभवैः	अपनी ही विभूति रूप
		प्राणादिभिः	प्राणादिसे
कर्म परिपाक	(पाप-पुण्य रूप) कर्मोंके फल,	**उपगूढं**	छिपे होनेसे
		मेघ हिम	कुहरेसे
गुण प्रवाहैः	(सत्वं, रज, तम) गुणोंके प्रवाहसे	**उपरागैः**	ढके
		सूर्यं इव	सूर्यके समान
अव्याहत	अखण्डित	**अन्यः मन्येत**	दूसरा ही मान लेते हैं ॥३३॥
अनुभवं	अनुभव वाले		

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

अथोचुर्मुनयो राजन्नाभाष्यानकदुन्दुभिम् ।
सर्वेषां शृण्वतां राज्ञां तथैवाच्युतरामयोः ॥३४॥

---

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अथ ऊचुः मुनयः राजन् अभाष्य आनकदुन्दुभिं सर्वेषां शृण्वतां राज्ञां तथा एव अच्युत रामयोः ॥३४॥

राजन्	राजन् !
अथ	फिर
आनकदुन्दुभि	वसुदेवजीको
आभाष्य	संबोधित करके
सर्वेषां राज्ञां	सब राजाओंके
तथा एव	इसी प्रकार
अच्युत रामयोः	श्रीकृष्ण-बलरामके
शृण्वतां	सुनते हुए
मुनयः ऊचुः	मुनियोंने कहा

॥३४॥

कर्मणा कर्मनिर्हार एष साधु निरूपितः ।
यच्छ्रद्धया यजेद् विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः ॥३५॥

कर्मणां कर्मनिर्हारः एष साधु निरूपित यत् श्रद्धया यजेत् विष्णुं सर्व यज्ञेश्वरं मखैः ॥३५॥

कर्मणा	कर्मोंके द्वारा
कर्मनिर्हारः	कर्मोंके नाशका उपाय
एष साधु	यही उत्तम
निरूपितः	कहा गया है
यत् श्रद्धया	जो श्रद्धापूर्वक
सर्व यज्ञेश्वरं	सर्व यज्ञेश्वर
विष्णुं मखैः	विष्णु भगवानकी यज्ञों द्वारा
यजेत्	आराधना करें

॥३५॥

चित्तस्योपशमोऽयं वै कविभिः शास्त्रचक्षुषा ।
दर्शितः सुगमो योगो धर्मश्चात्ममुदावहः ॥३६॥

चित्तस्य उपशमः अयं वै कविभिः शास्त्र चक्षुषा दर्शितः सुगमः योगः धर्मः च आत्म मुद आवहः ॥३६॥

कविभिः	सर्वज्ञोंने
शास्त्र चक्षुषा	शास्त्र दृष्टिसे
वै अयं	निश्चित रूपसे जिसे
चित्तस्य उपशमः	चित्तकी शान्तिका
च आत्म	तथा अपनेको
मुद आवहः	आनन्द देने वाला
सुगमः योगः	सुगम उपाय
धर्मः दर्शितः	तथा धर्म बतलाया है ॥३६॥

अयं स्वस्त्ययनः पन्था द्विजातेर्गृहमेधिनः ।
यच्छ्रद्धयाऽऽप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥३७॥

अयं स्वस्त्ययनः पन्था द्विजातेः गृहमेधिनः यत् श्रद्धया आप्त वित्तेन शुक्लेन इज्येत पूरुषः ॥३७॥

गृहमेधिनः	गृहस्थ	**शुक्लेन आप्त**	न्यायार्जित
द्विजातेः अयं	द्विजातिके लिए यह	**वित्तेन**	धनसे
स्वस्त्ययनः	कल्याणकारी	**पुरुषः इज्यते**	परम पुरुषकी आरा-
पन्था	मार्ग है		धना होती है
यत् श्रद्धया	जो श्रद्धा पूर्वक		॥३७॥

वित्तैषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतैषणाम् ।
आत्मलोकैषणां देव कालेन विसृजेद् बुधः ।
ग्रामे त्यक्तैषणाः सर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ॥३८॥

वित्त ईषणां यज्ञ दानैः गृहैः दारैः सुत ईषणां आत्मलोक ईषणां देव कालेन विसृजेत् बुधः ग्रामे त्यक्त ईषणाः सर्वे ययुः धीराः तपोवनम् ॥३८॥

देव	वसुदेवजी !	**कालेन विसृजेत्**	कालक्रमसे (नष्ट
बुधः	बुद्धिमान व्यक्ति		होता देखकर) त्याग
यज्ञ दानैः	यज्ञ और दान करके		दे,
वित्त ईषणां	धनेच्छाको,	**ग्रामे सर्वे ईषणाः**	घरमें रहते हुए ही
गृहैः दारैः	घर तथा पत्नीसे		सब इच्छाओंको
सुत ईषणां	पुत्रेच्छाको तथा	**त्यक्त धीराः**	छोड़कर धीर पुरुष
आत्म लोक	अपनी लोकमें	**तपोवनं ययुः**	तपोवन जाते थे
ईषणां	यथेच्छा		॥३८॥

ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो जातो देवर्षिपितृणां प्रभो ।
यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन् पतेत् ॥३९॥

ऋणैः त्रिभिः द्विजः जातः देव ऋषि पितृणां प्रभो यज्ञ अध्ययन पुत्रैः तानि अनिस्तीर्य त्यजन् पतेत् ॥३९॥

प्रभो	प्रभो !	**पुत्रैः तानि**	पुत्रोत्पत्ति द्वारा
द्विजः देव	द्विजाति देवता		उनसे
ऋषि पितृणां	ऋषि एवं पितरोंके	**अनिस्तीर्य**	उऋण हुए बिना
त्रिभिः ऋणैः	तीन ऋणोंको लेकर	**त्यजन् पतेत्**	(संसारका) त्याग
जातः	उत्पन्न होता है		करनेसे पतित हो
यज्ञ अध्ययन	यज्ञ वेदाध्ययन,		जाता है ॥३९॥

त्वं त्वद्य मुक्तो द्वाभ्यां वै ऋषिपित्रोर्महामते ।
यज्ञैर्देवर्णमुन्मुच्य निर्ऋणोऽशरणो भव ॥४०॥

त्वं तु अद्य मुक्तः द्वाभ्यां वै ऋषि पित्रोः महामते यज्ञैः देव अर्ण उन्मुच्य निःऋणः अशरणः भव ॥४०॥

महामते	महामति वसुदेव !	**यज्ञैः देव अर्ण**	यज्ञ द्वारा देव ऋण
वै त्वं तु	निश्चित ही तुम तो	**उन्मुच्य**	चुकाकर
अद्य	अब तक	**निः ऋणः**	ऋणहीन होकर
ऋषि पित्रोः	ऋषि एवं पितृ	**अशरणः भव**	गृह त्याग कीजिए
द्वाभ्यां मुक्तः	दो (ऋणों)से छूट गये हो,		॥४०॥

वसुदेव भवान् नूनं भक्त्या परमया हरिम् ।
जगतामीश्वरं प्रार्चः स यद् वां पुत्रतां गतः ॥४१॥

वसुदेव भवान् नूनं भक्त्या परमया हरिं जगतां ईश्वरं प्रार्चः स यत् वां पुत्रतां गतः ॥४१॥

वसुदेव	वसुदेवजी !	**परमया भक्त्या**	परम भक्तिसे
नूनं भवान्	निश्चय आपने	**जगतां ईश्वरं**	जगदीश्वर

हरि प्रार्चः	श्रीहरिकी बहुत आराधना की है	**यत् स वां पुत्रातां गतः**	जिससे वे आप दोनोंके पुत्र बने हैं ॥४१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा वसुदेवो महामनाः ।
तानृषीनृत्विजो वव्रे मूर्ध्नाऽऽनम्य प्रसाद्य च ॥४२॥

इति तत् वचनं श्रुत्वा वसुदेवः महामनाः तान् ऋषीन् ऋत्विजः वव्रे मूर्ध्ना आनम्य प्रसाद्य च ॥४२॥

इति तत्	इस प्रकार उनकी	**च प्रसाद्य**	तथा प्रसन्न करके
वचनं श्रुत्वा	बात सुनकर	**तान् ऋषीन्**	उन्हीं ऋषियोंको
महामनाः	महामनस्वी	**ऋत्विजः वव्रे**	ऋत्विक् वरण किया ॥४२॥
वसुदेवः	वसुदेवजीने		
मूर्ध्ना आनम्य	सिर झुकाकर प्रणाम करके		

त एनमृषयो राजन् वृता धर्मेण धार्मिकम् ।
तस्मिन्नयाजयन् क्षेत्रे मखैरुत्तमकल्पकैः ॥४३॥

त एनं ऋषयः राजन् वृता धर्मेण धार्मिकं तस्मिन् अयाजयन् क्षेत्रे मखैः उत्तम कल्पकैः ॥४३॥

राजन्	राजन् !	**तस्मिन् क्षेत्रे**	उस (तीर्थ) क्षेत्रमें
धर्मेण वृता	धर्मपूर्वक वरण किये गये	**उत्तम कल्पकैः**	श्रेष्ठ सामग्री द्वारा
त ऋषयः	उन ऋषियोंने	**मखैः अयाजयन्**	यज्ञोंसे आराधना करायी ॥४३॥
एनं धार्मिकं	इन धर्मात्मा (वसुदेव)से		

तद्दीक्षायां प्रवृत्तायां वृष्णयः पुष्करस्रजः ।
स्नाताः सुवाससो राजान् राजनः सुष्ठ्वलंकृताः ॥४४॥

तत् दीक्षायां प्रवृत्तायां वृष्णयः पुष्कर स्रजः स्नाताः सुवाससः राजन् राजानः सुष्ठु अलङ्कृताः ॥४४॥

राजन्	राजन् !	**स्नाताः**	स्नान करके
तत् दीक्षायां	उन (वसुदेवजी)के यज्ञ दीक्षा	**सुवाससः**	उत्तम वस्त्र पहिने
		पुष्कर स्रजः	कमल-माला धारण की
प्रवृत्तायां	ले लेने पर		
वृष्णयः राजानः	यदुवंशी एवं राजा लोग	**सुष्ठु अलंकृता**	भली-भाँति सज्जित हुए ॥४४॥

तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ।
दीक्षाशालामुपाजग्मुरालिप्ता वस्तुपाणयः ॥४५॥

तत् महिष्यः च मुदिता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः दीक्षाशालां उप आजग्मुः आलिप्ता वस्तुपाणयः ॥४५॥

तत् महिष्यः च	उनकी पत्नियां भी	**वस्तुपाणयः**	हाथमें अनेक वस्तुयें लिए
मुदिता	प्रसन्न होकर		
निष्ककण्ठ्यः	कण्ठमें पदिक पहिने	**दीक्षाशालां**	यज्ञ दीक्षा-स्थानमें
सुवाससः	उत्तम वस्त्र धारिणी	**उप आजग्मुः**	आ गयीं ॥४५॥
आलिप्ता	अंगराग लगाये		

नेदुर्मृदङ्गपटहशङ्खभेर्यानकादयः ।
ननृतुर्नटनर्तक्यस्तुष्टुवुः सूतमागधाः ।
जगुः सुकण्ठ्यो गन्धर्व्यः संगीतं सहभर्तृकाः ॥४६॥

नेदुः मृदङ्ग पटह शङ्ख भेरि आनक आदयः ननृतुः नट नर्तक्यः तुष्टुवुः सूत मागधाः जगुः सुकण्ठ्यः गन्धर्व्यः सङ्गीतं सहभर्तृकाः ॥४६॥

मृदङ्ग पटह	मृदंग, तासे,	**तुष्टुवुः**	स्तुति करने लगे,
शङ्ख भेरि	शंख, भेरी,	**सुकण्ठ्यः**	सुरीले कण्ठ वाली
आनक आदयः	नगाड़े आदि	**गन्धर्व्यः**	गन्धर्व स्त्रियां
नेदुः	बजने लगे	**सहभर्तृकाः**	पतियोंके साथ
नट नर्तक्यः	नट और नर्तकियां	**सङ्गीतं जगुः**	गाना गाने लगीं
ननृतुः	नाचने लगीं		॥४६॥
सूत मागधाः	सूत-मागध लोग		

तमभ्यषिञ्चन् विधिवदक्तमभ्यक्तमृत्विजः ।
पत्नीभिरष्टादशभिः सोमराजमिवोडुभिः ॥४७॥

तं अभ्यषिञ्चन् विधिवत् अक्तं अभ्यक्तं ऋत्विजः पत्नीभिः अष्टादशभिः सोमराजं इव उडुभिः ॥४७॥

उडुभिः	नक्षत्रोंके साथ	**अक्तं अभ्यक्तं**	(नेत्रोंमें) अंजन (तथा शरीरमें)
सोमराजं इव	चन्द्रमाके समान		मक्खन लगाकर
अष्टादशभिः	अठारह	**ऋत्विजः**	ऋत्विजोंने
पत्नीभिः तं	पत्नियोंके साथ उन वसुदेवजीका	**अभ्यषिञ्चन्**	विधिपूर्वक अभिषेक किया ॥४७॥

ताभिर्दुकूलवलयैर्हारनूपुरकुण्डलैः ।
स्वलंकृताभिर्विबभौ दीक्षितोऽजिनसंवृतः ॥४८॥

ताभिः दुकूल वलयैः हार नूपुर कुण्डलैः स्वलङ्कृताभिः विबभौ दीक्षितः अजिन संवृतः ॥४८॥

दीक्षितः	(यज्ञ) दीक्षित होकर	**स्वलङ्कृताभिः**	भली प्रकार अलंकृता
अजिन संवृतः	कृष्ण मृगचर्म ओढ़े (वसुदेवजी)	**ताभिः**	उन (पत्नियों)के द्वारा
दुकूल वलयैः	दुपट्टा, कंकण	**विबभौ**	बहुत शोभित हुए ॥४८॥
हार नूपुर	हार, नूपुर		
कुण्डलैः	कुण्डलोंसे		

तस्यर्त्विजो महाराज रत्नकौशेयवाससः ।
ससदस्या विरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥४९॥

तस्य ऋत्विजः महाराज रत्नकौशेय वाससः ससदस्या विरेजुः ते यथा वृत्रहणः अध्वरे ॥४९॥

महाराज	महाराज	**ससदस्या**	सदस्योंके साथ
रत्नकौशेय	रत्न-जटित रेशमी	**यथा वृत्रहणः**	जैसे इन्द्रके
वाससः	वस्त्रधारी	**अध्वरे**	यज्ञमें (हों)
तस्य ते	उनके वे	**विरेजुः**	सुशोभित हुए
ऋत्विजः	ऋत्विज		॥४९॥

तदा रामश्च कृष्णश्च स्वैः स्वैर्बन्धुभिरन्वितौ ।
रेजतुः स्वसुतैर्दारैर्जीवेशौ स्वविभूतिभिः ॥५०॥

तदा रामः च कृष्णः च स्वैः स्वैः बन्धुभिः अन्वितौ रेजतुः स्वसुतैः दारैः जीव ईशौ स्वविभूतिभिः ॥५०॥

तदा रामः	उस समय बलरामजी	**स्वविभूतिभिः**	अपनी विभूतियोंके साथ
च कृष्णः च	तथा श्रीकृष्ण भी	**जीव**	जीवाभिमानी (संकर्षण) तथा नारायण
स्वैः स्वैः बन्धुभिः	अपने अपने सम्बन्धियों	**ईशौ रेजतुः**	रूपमें शोभित हुए
स्वसुतैः दारैः	तथा अपने पुत्रों-पत्नियों		॥५०॥
अन्वितौ	सहित		

ईजेऽनुयज्ञं विधिना अग्निहोत्रादिलक्षणैः ।
प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥५१॥

ईजे अनुयज्ञं विधिना अग्निहोत्र आदि लक्षणैः प्राकृतैः वैकृतैः यज्ञैः द्रव्य ज्ञान क्रिया ईश्वरम् ॥५१॥

अनुयज्ञं	प्रत्येक यज्ञमें
विधिना	विधिपूर्वक
अग्निहोत्र आदि	अग्निहोत्र आदि
लक्षणैः प्राकृतैः	लक्षण वाले प्राकृत (दर्श पूर्णमास आदि)
वैकृतैः यज्ञैः	वैकृत (सौर सत्रादि) यज्ञोंसे
द्रव्य ज्ञान	द्रव्य, ज्ञान तथा
क्रिया	क्रियाके
ईश्वरं ईजे	स्वामी (भगवान) की आराधना की ॥५१॥

अथर्त्विग्भ्योऽददात् काले यथा म्नातं स दक्षिणाः ।
स्वलंकृतेभ्योऽलंकृत्य गोभूकन्या महाधनाः ॥५२॥

अथ ऋत्विक्भ्यः अददात् काले यथा आम्नातं स दक्षिणाः स्वलङ्कृतेभ्यः अलङ्कृत्य गाः भू कन्या महाधनाः ॥५२॥

अथ स काले	फिर उन्होंने उचित समय पर
यथा आम्नातं	शास्त्रानुसार
स्व-	भली प्रकार
अलङ्कृतेभ्यः	अलंकृत
ऋत्विक्भ्यः	ऋत्विजोंको
अलङ्कृत्य	अलंकृत करके
गाः भू कन्या	गायें, भूमि, कन्या
महाधनाः	बहुत सी सम्पत्ति
दक्षिणाः	दक्षिणामें
अददात्	प्रदान कीं ॥५२॥

पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते महर्षयः ।
सस्नू रामह्रदे विप्रा यजमानपुरःसराः ॥५३॥

पत्नी संयाजा अवभृथ्यैः चरित्वा ते महर्षयः सस्नू रामह्रदे विप्रा यजमानपुरः सराः ॥५३॥

ते महर्षयः	उन महर्षियोंने
पत्नी संयाजा	पत्नी संयाज नामक यज्ञ
चरित्वा	कराके
अवभृथ्यैः	अवभृथ (यज्ञान्त) के लिए
विप्रा	ब्राह्मणोंने

यजमानपुरः सराः	यजमानको आगे करके	**रामह्रदे सस्नू**	परशुराम कुंडमें स्नान किया ॥५३॥

स्नातोऽलङ्कारवासांसि वन्दिभ्योऽदात्तथा स्त्रियः ।
ततः स्वलंकृतो वर्णानाश्वभ्योऽन्नेन पूजयत् ॥५४॥

स्नातः अलङ्कार वासांसि वन्दिभ्यः अदात् तथा स्त्रियः ततः स्वलङ्कृतः वर्णान् आश्वभ्यः अन्नेन पूजयत् ॥५४॥

स्नातः	स्नान करके	**ततः स्वलङ्कृतः**	फिर स्वयं अलंकृत होकर
अलङ्कार	आभूषण,	**आश्वभ्यः वर्णान्**	कुत्तेसे लेकर सब वर्णोंका
वासांसि	वस्त्र	**अन्नेन पूजयत्**	भोजन कराके सत्कार किया ॥५४॥
वन्दिभ्यः अदात्	बन्दियोंको दिया		
तथा स्त्रियः	उनकी पत्नियोंने भी ऐसा ही किया		

बन्धून् सदारान् ससुतान् पारिबर्हेण भूयसा ।
विदर्भकोसलकुरून् काशिकेकयसृञ्जयान् ॥५५॥

बन्धून् सदारान् ससुतान् पारिबर्हेण भूयसा विदर्भ कोसल कुरून् काशि केकय सृञ्जयान् ॥५५॥

विदर्भ कोसल	विदर्भ, कोसल,	**बन्धून्**	सम्बन्धियोंको
कुरून् काशि	कुरू, काशी	**भूयसा**	बहुत अधिक
केकय	केकय,	**पारिबर्हेण**	उपहार देकर (सत्कृत किया) ॥५५॥
सृञ्जयान्	सृञ्जय प्रदेशोंके		
सदारान्	स्त्रियों तथा		
ससुतान्	पुत्रों सहित		

सदस्यर्त्विक्सुरगणान् नृभूतपितृचारणान् ।
श्रीनिकेतमनुज्ञाप्य शंसन्तः प्रययुः क्रतुम् ॥५६॥

सदस्य ऋत्विक् सुरगणान् नृ भूत पितृ चारणान् श्रीनिकेतं अनुज्ञाप्य **शंसन्तः प्रययुः क्रतुम् ॥५६॥**

सदस्य ऋन्विक्	सदस्य, ऋत्विक्	**श्रीनिकेतं**	वे भगवान् श्रीनिवाससे
सुरगणान्	देवगणों	**अनुज्ञाप्य**	अनुमति लेकर
नृ भूत	मनुष्यों, भूतों,	**क्रतुं शंसन्तः**	यज्ञकी प्रशंसा करते हुए
पितृ	पितरों	**प्रययुः**	प्रस्थान कर गये ॥५६॥
चारणान्	चारणोंका (सत्कार किया)		

धृतराष्ट्रोऽनुजः पार्था भीष्मो द्रोणः पृथा यमौ ।
नारदो भगवान् व्यासः सुहृत्सम्बन्धिबान्धवाः ॥५७॥

धृतराष्ट्रः अनुजः पार्था भीष्मः द्रोणः पृथा यमौ नारदः भगवान् व्यासः सुहृत् सम्बन्धि बान्धवाः ॥५७॥

धृतराष्ट्रः	धृतराष्ट्र,	**नारदः**	देवर्षि नारद
अनुजः	उनके छोटे भाई विदुर	**भगवान् व्यासः**	भगवान व्यास
पार्था	कुन्तीके पुत्र,	**सुहृत् सम्बन्धि**	(तथा अन्य) मित्र सम्बन्धी
भीष्मः द्रोणः	भीष्म, द्रोणाचार्य,	**बान्धवाः**	बन्धु-बान्धव ॥५७॥
पृथा यमौ	कुन्ती, नकुल-सहदेव		

बन्धून् परिष्वज्य यदून् सौहृदात् क्लिन्नचेतसः ।
ययुर्विरहकृच्छ्रेण स्वदेशांश्चापरे जनाः ॥५८॥

बन्धून् परिष्वज्य यदून् सौहृदात् क्लिन्नचेतसः ययुः विरह कृच्छ्रेण स्वदेशान् च अपरे जनाः ॥५८॥

बन्धून् यदून्	अपने सम्बन्धी यादवोंका	**परिष्वज्य**	आलिंगन करके
		सौहृदात्	सौहार्द्रसे

क्लिन्नचेतसः	आर्द्र हृदय	**अपरे जनाः च**	दूसरे लोग भी
विरह कृच्छ्रेण	वियोगके दुःख सहित	**स्वदेशान् ययुः**	अपने देशोंको चले गये ॥५८॥

नन्दस्तु सह गोपालैर्बृहत्या पूजयार्चितः ।
कृष्णरामोग्रसेनाद्यैर्न्यवात्सीद् बन्धुवत्सलः ॥५९॥

नन्दः तु सह गोपालैः बृहत्या पूजया अर्चितः कृष्ण राम उग्रसेन आद्यैः न्यवात्सीत् बन्धुवत्सलः ॥५९॥

बन्धुवत्सलः	बन्धुवत्सल	**बृहत्या पूजया**	महान् सत्कारसे
नन्दः तु	नन्दजी तो	**अर्चितः**	सत्कृत होते हुए
कृष्ण राम	श्रीकृष्ण, बलराम	**न्यवात्सीत्**	वहीं निवास करते रहे ॥५९॥
उग्रसेन आद्यैः	उग्रसेन आदि द्वारा		

वसुदेवोऽञ्जसोत्तीर्य मनोरथमहार्णवम् ।
सुहृद्वृतः प्रीतमना नन्दमाह करे स्पृशन् ॥६०॥

वसुदेवः अञ्जसा उत्तीर्य मनोरथ महा अर्णवम् सुहृत् वृतः प्रीतमना नन्दं आह करे स्पृशन् ॥६०॥

मनोरथ	मनोरथके	**सुहृत् वृतः**	सुहृदोंसे घिरे हुए
महा अर्णवं	महासागरको	**नन्दं करे स्पृशन्**	नन्दजीका हाथ पकड़कर
अञ्जसा उत्तीर्य	सरलतासे पार करके	**प्रीतमना आह**	प्रसन्न चित्तसे बोले ॥६०॥
वसुदेवः	वसुदेवजी		

॥ वसुदेव उवाच ॥

भ्रातरीशकृतः पाशो नृणां यः स्नेहसंज्ञितः ।
तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम् ॥६१॥

भ्रातः ईशकृतः पाशः नृणां यः स्नेह संज्ञितः तं दुस्त्यजं अहं मन्ये शूराणां अपि योगिनाम् ॥६१॥

भ्रातः नृणां	भाई ! मनुष्योंमें	**तं अहं**	उसे मैं
यः ईशकृतः	जो ईश्वरका बनाया	**शूराणां योगिनां अपि**	शूरवीर एवं योगियोंके लिए भी
स्नेह संज्ञितः पाशः	स्नेह नामक बन्धन है	**दुस्त्यजं मन्ये**	दुस्त्वाज्य मानता हूँ ॥६१॥

अस्मास्वप्रतिकल्पेयं यत् कृताज्ञेषु सत्तमैः ।
मैत्र्यर्पिताफला वापि न निवर्तेत कर्हिचित् ॥६२॥

अस्मासु अप्रति कल्पा इयं यत् कृत अज्ञेषु सत्तमैः मैत्रि अर्पिता अफला वापि न निवर्तेत कर्हिचित् ॥६२॥

अस्मासु	हम	**सत्तमैः**	आप सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठके लिये
कृत अज्ञेषु	अकृतज्ञोंसे		
इयं यत्	यह जो	**अफला वापि**	निष्फल होने पर भी वह
अप्रति कल्पा	जिसका बदला न दिया जा सके ऐसी	**कर्हिचित्**	कभी भी
मैत्रि अर्पिता	मैत्री आपने की	**निवर्तेत न**	लौटती (मिटती) नहीं है ॥६२॥

प्रागकल्पाच्च कुशलं भ्रातर्वो नाचराम हि ।
अधुना श्रीमदान्धाक्षा न पश्यामः पुरः सतः ॥६३॥

प्राक् अकल्पात् च कुशलं भ्रातः वः न आचराम हि अधुना श्रीमद् अन्ध अक्षाः न पश्यामः पुरः सतः ॥६३॥

हि प्राक्	क्योंकि पहिले	**भ्रातः वः कुशलं**	भाई ! आपका कोई भला
अकल्पात्	असमर्थ होनेसे		

न आचराम	(हम) नहीं कर सकते थे	**पुरः सतः**	(आपके) सम्मुख होते भी
अधुना	और अब	**न पश्यामः**	(आपकी ओर) नहीं देखते ॥६३॥
श्रीमद् अन्ध	धन-मदान्ध		
अक्षाः	दृष्टि होनेसे		

मा राज्यश्रीरभूत् पुंसः श्रेयस्कामस्य मानद ।
स्वजनामुत बन्धून् वा न पश्यति ययान्धदृक् ॥६४॥

मा राज्यश्रीः अभूत् पुंसः श्रेयः कामस्य मानद स्वजनान् उत बन्धून् वा न पश्यति यया अन्ध दृक् ॥६४॥

मानद	औरोंका सम्मान करने वाले (भाई)	**मा अभूत्**	मत होवे
श्रेयः कामस्य	अपना कल्याण चाहने वाले	**यया अन्ध दृक्**	जिससे अन्ध दृष्टि होकर
पुंसः	पुरुषको	**स्वजनान् उत**	स्वजनों तथा
राज्यश्रीः	राज्यलक्ष्मी	**बन्धून् वा**	सम्बन्धियोंको भी
		न पश्यति	नहीं देखता ॥६४॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एवं सौहृदशैथिल्यचित्त आनकदुन्दुभिः ।
रुरोद तत्कृतां मैत्रीं स्मरन्नश्रुविलोचनः ॥६५॥

एवं सौहृद शैथिल्य चित्त आनकदुन्दुभिः रुरोद तत् कृतां मैत्रीं स्मरन् अश्रु विलोचनः ॥६५॥

एवं	इस प्रकार	**स्मरन्**	स्मरण करके
आनकदुन्दुभिः	वसुदेवजी	**विलोचनः**	नेत्रोंमें
तत् कृतां मैत्रीं	उन (नन्दजी)की मित्रताको	**अश्रु**	आंसू भरकर
		रुरोद	रोने लगे ॥६५॥

नन्दस्तु सख्युः प्रियकृत् प्रेम्णा गोविन्दरामयोः ।
अद्य श्व इति मासांस्त्रीन् यदुभिर्मानितोऽवसत् ॥६६॥

नन्दः तु सख्युः प्रियकृत् प्रेम्णा गोविन्द रामयोः अद्य श्व इति मासान् त्रीन् यदुभिः मानितः अवसत् ॥६६॥

नन्दः तु सख्युः	नन्दजी भी सखा (वसुदेवजी)का	**यदुभिः मानितः**	यादवोंसे सम्मानित होकर
प्रियकृत्	प्रिय करनेके लिए	**अद्य श्व इति**	'आज-कल' इस प्रकार करते
गोविन्द	गोविन्द तथा	**त्रीन् मासान्**	तीन महीने
रामयोः	बलरामके	**अवसत्**	टिके रह गये ॥६६॥
प्रेम्णा	प्रेमसे		

ततः कामैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबान्धवः ।
पराध्यर्याभरणक्षौमनानानर्घ्यपरिच्छदैः ॥६७॥

ततः कामैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबान्धवः पराध्यं आभरण क्षौम नाना अनर्घ्य परिच्छदैः ॥६७॥

ततः पराध्यं	फिर अत्यन्त बहु-मूल्य	**सव्रजः**	सब व्रजवासी
आभरण क्षौम	आभूषण, रेशमी-वस्त्र	**सहबान्धवैः**	सब बन्धु-बान्धवों को
नाना	अनेक प्रकारकी	**कामैः पूर्यमाणः**	भोग सामग्रीसे तृप्त किया ॥६७॥
अनर्घ्य	अमूल्य		
परिच्छदैः	सामग्रीसे		

वसुदेवोग्रसेनाभ्यां कृष्णोद्धवबलादिभिः ।
दत्तमादाय परिबर्हं यापितो यदुभिर्ययौ ॥६८॥

वसुदेव उग्रसेनाभ्यां कृष्ण उद्धव बल आदिभिः दत्तं आदाय परिबर्हं यापितः यदुभिः ययौ ॥६८॥

वसुदेव	वसुदेव,
उग्रसेनाभ्यां	उग्रसेन
कृष्ण उद्धव	श्रीकृष्ण, उद्धव
बल आदिभिः	बलराम आदि
यदुभिः दत्तं	यदुवंशियों द्वारा दिये
परिबर्हं आदाय	उपहार लेकर
यापितः ययौ	उनके विदा करने पर गये ॥६८॥

नन्दो गोपाश्च गोप्यश्च गोविन्दचरणाम्बुजे ।
मनः क्षिप्तं पुनर्हर्तुमनीशा मथुरां ययुः ॥६९॥

नन्दः गोपाः च गोप्यः च गोविन्द चरण अम्बुजे मनः क्षिप्तं पुनः हर्तुं अनीशा मथुरां ययुः ॥६९॥

गोविन्द	गोविन्दके
चरण अम्बुजे	चरण-कमलोंमें
क्षिप्तं मनः	लगाये मनको
पुनः हर्तुं	फिर हटा लेनेमें
अनीशा	असमर्थ
नन्दः गोपाः च	नन्दजी, गोप तथा
गोप्यः च	गोपियां भी
मथुरां ययुः	मथुरा गयीं ॥६९॥

बन्धुषु प्रतियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः ।
वीक्ष्य प्रावृषमासन्नां ययुर्द्वारवतीं पुनः ॥७०॥

बन्धुषु प्रतियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः वीक्ष्य प्रावृषं आसन्नां ययुः द्वारवतीं पुनः ॥७०॥

बन्धुषु	सम्बन्धियोंके
प्रतियातेषु	लौट जाने पर
कृष्णदेवताः	जिनके देवता श्रीकृष्ण हैं
वृष्णयः	वे यादव
प्रावृषं आसन्नां	वर्षा ऋतुको निकट
वीक्ष्य पुनः	देखकर फिर
द्वारवतीं ययुः	द्वारिका चले गये ॥७०॥

जनेभ्यः कथयाञ्चक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् ।
यदासीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्संदर्शनादिकम् ॥७१॥

जनेभ्यः कथयान् चक्रुः यदुदेव महोत्सवं यदा आसीत् तीर्थयात्रायां सुहृत् सन्दर्शन आदिकम् ॥७१॥

तीर्थयात्रायां	तीर्थयात्रामें	**सुहृत् सन्दर्शन**	सुहृदोंका मिलना
यत् यदुदेव	जो वसुदेवजीका	**आदिकं आसीत्**	आदि हुआ था
महोत्सवं	महोत्सव (यज्ञ)	**जनेभ्यः**	लोगोंसे
तथा		**कथयान् चक्रुः**	बतलाया ॥७१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे तीर्थयात्रानुवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

अथ पंचाशीतितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

अथैकदाऽऽत्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवन्दनौ ।
वसुदेवोऽभिनन्द्याह प्रीत्या सङ्कर्षणाच्युतौ ॥ १ ॥

अथ एकदा आत्मजौ प्राप्तौ कृत पाद अभिवन्दनौ वसुदेवः अभिनन्द्य आह प्रीत्या संकर्षण अच्युतौ ॥१॥

अथ एकदा	इसके बाद एकबार	**वसुदेवः प्रीत्या**	वसुदेवजीने प्रेम-पूर्वक
आत्मजौ प्राप्तौ	पुत्रोंने आकर	**सङ्कर्षण**	उन बलराम-
पाद	चरण-	**अच्युतौ**	श्रीकृष्णसे
अभिवन्दनौ	वन्दना	**आह**	कहा ॥१॥
कृत	कर लेने पर		
अभिवन्दनौ	उनका अभिनन्दन करके		

मुनीनां स वचः श्रुत्वा पुत्रयोर्धामसूचकम् ।
तद्वीर्यैर्जातविश्रम्भः परिभाष्याभ्यभाषत ॥ २ ॥

मुनीनां स वचः श्रुत्वा पुत्रयोः धाम सूचकं तत् वीर्यैः जात विश्रम्भः परिभाष्य अभ्यभाषत ॥२॥

पुत्रयोः धाम	पुत्रोंकी महिमा	**मुनीनां**	मुनियोंकी
सूचकं	सूचित करने वाली	**वचः श्रुत्वा**	बात सुनकर

---

*गीता प्रेसकी प्रति में यहाँ 'श्रीबादरायणिरुवाच' है ।

तत् वीर्यैः	उनके पराक्रमसे	**स परिभाष्य**	उन्होंने (उनको)
जात विश्वम्भः	विश्वास हो जानेके कारण		सम्बोधित करके
		अभ्यभाषत	उनसे कहा ॥२॥

॥ वसुदेव उवाच ॥*

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् सङ्कर्षण सनातन ।
जाने वामस्य यत् साक्षात् प्रधानपुरुषौ परौ ॥ ३ ॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् सङ्कर्षण सनातन जाने वां अस्य यत् साक्षात् प्रधानपुरुषौ परौ ॥३॥

कृष्ण	कृष्ण !	**अस्य परौ**	इस जगतसे परे
महायोगिन्	महायोगी	**वां प्रधानपुरुषौ**	तुम प्रधान और पुरुष हो
कृष्ण	कृष्ण ! और		
सनातन	सनातन पुरुष	**जाने**	(यह मैं) जान गया ॥३॥
सङ्कर्षण	बलराम !		
यत्	जो		

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद् यद् यथा यदा ।
स्यदिदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥

यत्र येन यतः यस्य यस्मै यद् यद् यथा यदा स्यात् इदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुष ईश्वरः ॥४॥

यत्र येन	जिस (देश)में, जिस (कर्त्ता)के द्वारा,	**यद् यद्**	जो जो
		यथा यदा	जैसे जब (जिस कालमें)
यतः यस्य यस्मै	जिस (हेतु)से जिसका जिसके लिये		

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इदं स्यात्	यह (दृश्य) रूपसे होंता है (वह)	**प्रधानपुरुष**	प्रधान पुरुष और उसके
साक्षात्	साक्षात्	**ईश्वरः**	स्वामी (तुम्हीं) हो ॥४॥
भगवान्	भगवान		

एतन्नानाविधं विश्वमात्मसृष्टमधोक्षज ।
आत्मनानुप्रविश्यात्मन् प्राणो जीवो बिभर्त्यजः ॥ ५ ॥

एतत् नाना विधं विश्वं आत्मसृष्टं अधोक्षज आत्मना अनुप्रविश्य आत्मन् प्राणः जीवः बिभर्ति अजः ॥५॥

अधोक्षज	इन्द्रियातीत !	**अजः आत्मन्**	तुम अजन्मा आत्म रूपसे
आत्मसृष्टं	अपने द्वारा बनाये गये	**प्राणः जीवः**	क्रिया शक्ति एवं ज्ञान शक्तिको
एतत् नाना विधं	इस अनेक रूप		
विश्वं आत्मना	विश्वमें स्वयं ही	**बिभर्ति**	धारण करते हो ॥५॥
अनुप्रविश्य	सर्वत्र प्रवेश करके		

प्राणादीनां विश्वसृजां शक्तयो याः परस्य ताः ।
पारतन्त्र्याद् वै सादृश्याद् द्वयोश्चेष्टैव चेष्टताम् ॥६॥

प्राण आदीनां विश्वसृजां शक्तयः याः परस्य ताः पारतन्त्र्यात् वै सादृश्यात् द्वयोः चेष्टा इव चेष्टताम् ॥६॥

विश्वसृजां	विश्व-निर्माता	**वै सादृश्यात्**	तथा विषम होनेके कारण
प्राण आदीनां	प्राण आदिमें		
याः शक्तयः ताः	जो शक्तियां हैं वे	**चेष्टा**	(उनकी) चेष्टायें तो
परस्य	(तुम) परम पुरुष की ही है, क्योंकि	**द्वयोः**	दोनों कारणोंसे
		चेष्टा इव	चेष्टा मात्र ही हैं ॥६॥
पारतन्त्रयात्	(उनके) परतन्त्र होनेके कारण		

कान्तिस्तेजः प्रभा सत्ता चन्द्राग्न्यर्कर्क्षविद्युताम् ।
यत् स्थैर्यं भूभृतां भूमेर्वृत्तिर्गन्धोऽर्थतो भवान् ॥ ७ ॥

कान्तिः तेजः प्रभा सत्ता चन्द्र अग्नि अर्क अर्क्ष विद्युतां यत् स्थैर्यं भूभृतां भूमेः वृत्तिः गन्धः अर्थतः भवान् ॥७॥

चन्द्र अग्नि	चन्द्रमा, अग्नि	**यत् भूभृतां**	जो पर्वतोंमें
अर्क अर्क्ष	सूर्य, नक्षत्र,	**स्थैर्यं**	स्थिरता,
विद्युतां	विद्युतमें	**भूमेः वृत्तिः**	पृथ्वीमें (शक्ति रूप) वृत्ति तथा
कान्तिः तेजः	कान्ति, तेज,	**अर्थतः गन्ध**	गन्ध रूप गुण
प्रभा सत्ता	प्रभा और अस्तित्व	**भवान्**	आप ही हैं ॥७॥

तर्पणं प्राणनमपां देवत्वं ताश्च तद्रसः ।
ओजः सहो बलं चेष्टा गतिर्वायोस्तवेश्वर ॥ ८ ॥

तर्पणं प्राणनं अपां देवत्वं ताः च तत् रसः ओजः सहः बलं चेष्टा गतिः वायोः तव ईश्वर ॥८॥

ईश्वर	परमेश्वर !	**वायोः**	वायुमें
अपां तर्पणं	जलमें तृप्त करनेकी	**ओजः सहः**	इन्द्रिय शक्ति,
प्राणनं	जीवन देनेकी	**गतिः**	गतिशीलता
देवत्वं	पवित्र करनेकी	**बलं चेष्टा**	शरीर शक्ति, क्रिया शक्ति
ताः च तत् रसः	वे (शक्तियां) तथा वह रस रूप जल भी	**तव**	तुम्हारी ही है ॥८॥

दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशः खं स्फोट आश्रयः ।
नादो वर्णस्त्वमोंकार आकृतीनां पृथक्कृतिः ॥ ९ ॥

दिशां त्वं अवकाशः असि दिशः खं स्फोट आश्रयः नादः वर्णः त्वं ओङ्कार आकृतीनां पृथक् कृतिः ॥९॥

त्वं दिशां	तुम दिशाओंमें
अवकाशः	अवकाश
दिशः	तथा दिशाएँ भी
खं	आकाश और उसका
आश्रयः स्फोट	आश्रय शब्द (परा-वाणी)
नादः ओङ्कार	नाद (पश्यन्ती) ओङ्कार (मध्यमा)
वर्णः	शब्दात्मक बैखरी
आकृतीनां	तथा आकारोंमें
त्वं पृथक् कृतिः	तुम उनका पार्थक्य करने वाले
असि	हो ॥९॥

इन्द्रियं त्विन्द्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः ।
अवबोधो भवान् बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती ॥१०॥

इन्द्रियं तु इन्द्रियांणां त्वं देवाः च तत् अनुग्रहः अवबोधः भवान् बुद्धेः जीवस्य अनुस्मृतिः सती ॥१०॥

इन्द्रियाणां तु	इन्द्रियोंमें तो
त्वं इन्द्रियं देवाः	तुम इन्द्रिय, उनके अधिदेवता
च तत् अनुग्रहः	तथा उनकी (विषय-प्रकाशिनी शक्ति हो
भवान् बुद्धेः	तुम बुद्धिमें
अवबोधः	निश्चयात्मिका शक्ति
जीवस्य सती	जीवकी विशुद्ध
अनुस्मृतिः	स्मृति हो ॥१०॥

भूतानामसि भूतादिरिन्द्रियाणां च तैजसः ।
वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशायिनाम् ॥११॥

भूतानां असि भूतादिः इन्द्रियाणां च तैजसः वैकारिकः विकल्पानां प्रधानं अनुशायिनाम् ॥११॥

भूतानां भूतादिः	पञ्च भूतोंमें उन भूतोंके कारण तामस अहंकार
च इन्द्रियाणां	तथा इन्द्रियोंमें
तैजसः	तैजस (अहंकार)
विकल्पानां	इन्द्रियोंके अधि-देवताओंमें

वैकारिकः	वैकारिक (अहंकार)		सुला लेने वालेमें
अनुशायिनां	सबको अपनेमें	**प्रधानं असि**	प्रकृति हो ॥११॥

नश्वरेष्विह भावेषु तदसि त्वमनश्वरम् ।
यथा द्रव्यविकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥१२॥

नश्वरेषु इह भावेषु तत् असि त्वं अनश्वरं यथा द्रव्य विकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥१२॥

इह नश्वरेषु	इस संसारके नाश-वान	**यथा द्रव्य**	जैसे (मिट्टी) द्रव्योंके
भावेषु तत् असि	पदार्थोंमें व्यास होकर भी	**विकारेषु**	(घड़े आदि) बिकारोंमें
त्वं अनश्वरं	तुम अविनाशी हो	**द्रव्यमात्रं निरूपितं**	प्रव्य (मिट्टी) ही कही जाती है ॥१२॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः ।
त्वय्यद्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया ॥१३॥

सत्त्वं रजः तम इति गुणाः तत् वृत्तयः च याः त्वयि अद्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया ॥१३॥

सत्त्वं रजः तम	सत्त्व, रज, तम	**त्वयि अद्धा**	आप साक्षात्
इति गुणाः	ये (तीनों) गुण	**परे ब्रह्मणि**	परम ब्रह्ममें
च तत् याः	तथा उनकी जो	**योगमायया**	योगमायासे
वृत्तयः	वृत्तियां हैं	**कल्पिता**	कल्पित हैं ॥१३॥

तस्मान्न सन्त्यमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः ।
त्वं चामीषु विकारेषु ह्यन्यदाव्यावहारिकः ॥१४॥

तस्मात् न सन्ति अमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः त्वं च अमीषु विकारेषु हि अन्यदा व्यावहारिकः ॥१४॥

तस्मात्	इसलिये
अमी भावा	ये सब भाव
त्वयि न सन्ति	तुममें नहीं है
यर्हि विकल्पिताः	क्योंकि (ये) कल्पित किये गये हैं
त्वं च अमीषु	तुम भी इन
विकारेषु	विकारोंमें (नहीं हो)
हि अन्यदा	क्योंकि इससे भिन्न स्थिति
व्यावहारिकः	व्यवहारिक ही है

॥१४॥

गुणप्रवाह एतस्मिन्नबुधास्त्वखिलात्मनः ।
गतिं सूक्ष्मामबोधेन संसरन्तीह कर्मभिः ॥१५॥

गुणप्रवाह एतस्मिन् अबुधाः तु अखिल आत्मनः गतिं सूक्ष्मां अबोधेन संसरन्ति इह कर्मभिः ॥१५॥

अबुधाः तु	अज्ञानी लोग तो
अखिल आत्मनः	सर्वात्माके
सूक्ष्मां गतिं	सूक्ष्म स्वरूपके
अबोधेन	अज्ञानसे
एतस्मिन	इस
गुणप्रवाह	गुणोंके प्रवाहमें
इह कर्मभिः	यहां कर्मोंके अनुसार
संसरन्ति	(जन्म-मरणमें) भटकते रहते हैं

॥१५॥

यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभाम् ।
स्वार्थे प्रमत्तस्य वयो गतं त्वन्मायययेश्वर ॥१६॥

यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पां इह दुर्लभां स्वार्थे प्रमत्तस्य वयः गतं त्वत् मायया ईश्वर ॥१६॥

ईश्वर	परमेश्वर !
यदृच्छया	संयोगवश
इह सुकल्पां	इस लोकमें इन्द्रिया-दिशक्ति युक्त
दुर्लभां नृतां	दुर्लभ मनुष्यत्व
प्राप्य त्वत्	पाकर आपकी
मायया	मायासे
स्वार्थे	अपने वास्तविक स्यार्थसे

प्रमत्तस्य	असावधान रहते	**वयः गतं**	(मेरी) आयु बीत गयी ॥१६॥

असावहं ममैवैते देहे चास्यान्वयादिषु ।
स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान् सर्वमिदं जगत् ॥१७॥

असाः अहं मम एव एते देहे च अस्य अन्वय आदिषु स्नेहपाशैः निबध्नाति भवान् सर्वं इदं जगत् ॥१८॥

असाः अहं	'यह मैं हूँ'	**स्नेहपाशैः**	स्नेहके बन्धनसे
एते मम एव	'ये मेरे ही हैं'	**इदं सर्वं जगत्**	इस सब संसारको
देहे च अस्य	शरीरमें तथा इस (शरीर)के	**भवान**	आप ही
		निबध्नाति	बांधते हो ॥१७॥
अन्वय आदिषु	सम्बन्धियोंमें		

युवां न नः सुतौ साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरौ ।
भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथाऽऽत्थ ह ॥१८॥

युवां न नः सुतौ साक्षात् प्रधान पुरुष ईश्वरौ भूभारक्षत्र क्षपण अवतीर्णौ तथा आत्थ ह ॥१८॥

युवां नः सुतौ न	तुम दोनों मेरे पुत्र नहीं हो,	**क्षपण**	विनाश करने
		अवतीर्णौ	अवतरित हुए हो
साक्षात् प्रधान	साक्षात् प्रकृति और	**तथा आत्थ ह**	ऐसा (तुमने) कहा भी था ॥१८॥
पुरुष ईश्वरौ	जीवोंके स्वामी हो		
भूभारक्षत्र	पृथ्वीके भार रूप क्षत्रियोंका		

तत्ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविन्द-
मापन्नसंसृतिभयापहमार्तबन्धो ।
एतावतालमलमिन्द्रियलालसेन
मत्यात्मदृक् त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः ॥१९॥

तत् ते गतः अस्मि अरणं अद्य पदारविन्दं आपन्न संसृति भय अपहं आर्तबन्धो एतावत अलं इन्द्रिय लालसेन मर्त्य आत्मदृक् त्वयि परे यत् अपत्य बुद्धिः ॥१९॥

आर्तबन्धो	दीनबन्धो !
तत् अद्य	अतः आज
आपन्न	शरणागतके
संसृति भय	जन्म-मरणके भयको
अपहं	दूर करने वाले
अरणं	रक्षक
ते पदारविन्दं	आपके चरण-कमलोंमें
गतः	आया हूँ,
इन्द्रिय लालसेन	इन्द्रियोंकी लोलुपता से
एतावत अलं	इतना ही बस हो
यत् मर्त्य	जिसके कारण मरण धर्मा देहमें
आत्मदृक्	आत्म दृष्टि तथा
त्वयि परे	तुम परमात्मामें
अपत्य बुद्धिः	पुत्र बुद्धि हो गयी ॥१९॥

सूतीगृहे ननु जगाद भवानजो नौ
संजज्ञ इत्यनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै ।
नानातनूर्गगनवद् विदधज्जहासि
को वेद भूम्न उरुगाय विभूतिमायाम् ॥२०॥

सूतीगृहे ननु जगाद भवान् अजो नौ सञ्जज्ञ इति अनुयुगं निजधर्म गुप्त्यै नान तनूः गगनवत् विदधत् जहासि कः वेद भूम्न उरुगाय विभूति मायाम् ॥२०॥

ननु भवान्	निश्चय आपने
सूतीगृहे	सूतिका गृहमें
नौ इति जगाद	हम दोनोंसे यह कहा था कि
अजो निजधर्म	अजन्मा होकर भी अपने धर्मकी
गुप्त्यै अनुयुगं	रक्षाके लिए प्रत्येक युगमें
गगन वत्	आकाशकी भांति
नाना तनूः	नाना शरीर
विदधत्	धारण करके
जहासि	फिर छोड़ देते हैं
उरुगाय भूम्न	अनन्त यशा सर्व-व्यापक
मायां विभूति	(आपकी) मायाके वैभवको
कः वेद	कौन जान सकता है ॥२०॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

आकर्ण्येत्थं पितुर्वाक्यं भगवान् सात्वतर्षभः ।
प्रत्याह प्रश्रयानम्रः प्रहसञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥२१॥

आकर्ण्य इत्थं पितुः वाक्यं भगवान् सात्वत ऋषभः प्रत्याह प्रश्रय आनम्रः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा ॥२१॥

इत्थं पितुः	इस प्रकारके पिताके	**प्रश्रय आनम्रः**	विनयसे झुककर
वाक्यं आकर्ण्य	वचन सुनकर	**प्रहसन्**	हँसते हुए
सात्वत ऋषभः	यादय श्रेष्ठ	**श्लक्ष्णया गिरा**	मधुर वाणीसे
भगवान्	भगवान	**प्रत्याह**	उत्तर बोले ॥२१॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

वचो वः समवेतार्थं तातैतदुपमन्महे ।
यन्नः पुत्रान् समुद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः ॥२२॥

वचः वः समवेत अर्थं तात एतत् उपमन्महे यत् नः पुत्रान् सम उद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः ॥२२॥

तात एतत्	पिताजी ! यह	**सम उद्दिश्य**	पूरा उद्देश्य बनाकर
वः वचः	आपकी बात	**तत्त्वग्राम**	तत्त्व समूहका
समवेत अर्थं	बहुत अर्थयुक्त	**उदाहृतः**	(आपने) वर्णन
उपमन्महे	हम मानते हैं		किया ॥२२॥
यत् नः पुत्रान्	जो हम पुत्रोंको		

अहं यूयमसावार्य इमे च द्वारकौकसः ।
सर्वेऽप्येवं यदुश्रेष्ठ विमृश्याः सचराचरम् ॥२३॥

अहं यूयं असाः आर्यः इमे च द्वारकौकसः सर्वे अपि एवं यदुश्रेष्ठ विमृश्याः सचराचरम् ॥२३॥

यदुश्रेष्ट	यदुश्रेष्ठ !
अहं यूयं	मैं, आप
असाः आर्यः	ये बड़े भाई
च इमे	तथा ये
द्वारकौकसः	द्वारिकावासी
सचराचरं	चराचर सहित
सर्वे अपि एवं	सभी इसी प्रकार
विमृश्याः	समझने चाहिए ॥२३॥

आत्मा ह्येकः स्वयंज्योतिर्नित्योऽन्यो निर्गुणो गुणैः ।
आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषु भूतेषु बहुधेयते ॥२४॥

आत्मा हि एकः स्वयं ज्योतिः नित्यः अन्यः निर्गुणः गुणैः आत्मसृष्टैः तत् कृतेषु भूतेषु बहुधा ईयते ॥२४॥

हि आत्मा एकः	क्योंकि आत्मा एक
स्वयं ज्योतिः	स्वयं प्रकाश
नित्यः	नित्य
गुणैः अन्यः	गुणोंसे भिन्न
निर्गुणः	निर्गुण है
आत्मसृष्टैः	अपने द्वारा निर्मितों (अहंकारादि)से
तत् कृतेषु	बने हुए
भूतेषु	प्राणियोंमें
बहुधा ईयते	अनेक रूप प्रतीत होता है ॥२४॥

खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु यथाशयम् ।
आविस्तिरोऽल्पभूर्येको नानात्वं यात्यसावपि ॥२५॥

खं वायुः ज्योतिः आपः भूः तत् कृतेषु यथा आशयं आविस्तिरः अल्पभूः एकः नानात्वं याति असाः अपि ॥२५॥

खं वायुः ज्योतिः	आकाश-वायु, अग्नि
आपः भूः	जल और पृथ्वी,
तत् कृतेषु	इनके द्वारा निर्मित (पदार्थोंमें)
आविस्तिरः	बड़े विस्तार वाले एवं
अल्पभूः	बहुत छोटेसे
एकः नानात्वं	एक होकर भी अनेक रूप
भाति	प्रतीत होते हैं (उसी प्रकार)
असाः अपि	यह (आत्मा) भी (एक होकर अनेक लगता है) ॥२५॥

।। श्रीशुक उवाच ।।

एवं भगवता राजन् वसुदेव उदाहृतम् ।
श्रुत्वा विनष्टनानाधीस्तूष्णीं प्रीतमना अभूत् ।।२६।।

एवं भगवता राजन् वसुदेवः उदाहृतं श्रुत्वा विनष्ट नानाधीः तूष्णीं प्रीतमना अभूत् ।।२६।।

राजन्	राजन् !	**नानाधीः**	नानात्व बुद्धि
एवं भगवता	इस प्रकार भगवान द्वारा	**विनष्ट**	नष्ट हो जानेसे
		प्रीतमना	प्रसन्न चित्तसे
उदाहृतं श्रुत्वा	सोदाहरण वचन सुनकर	**वसुदेवः**	वसुदेवजी
		तूष्णीं अभूत्	चुप हो गये ।।२६।।

अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ देवकी सर्वदेवता ।
श्रुत्वाऽऽनीतं गुरोः पुत्रमात्मजाभ्यां सुविस्मिता ।।२७।।

अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ देवकी सर्वदेवता श्रुत्वा आनीतं गुरोः पुत्रं आत्मजाभ्यां सुविस्मिता ।।२७।।

अथ सर्वदेवता	फिर सर्व देवतामयी	**गुरोः पुत्रं**	(मरे) गुरुपुत्रको
देवकी तत्र	देवकी वहाँ (कुरु-क्षेत्र)में	**आनीतं**	ले आना
		श्रुत्वा सुविस्मिता	सुनकर बहुत चकित हो गयीं थीं ।।२७।।
आत्मजाभ्यां	अपने पुत्रों द्वारा		

कृष्णरामौ समाश्राव्य पुत्रान् कंसविर्हिसितान् ।
स्मरन्ती कृपणं प्राह वैक्लव्यादश्रुलोचना ।।२८।।

कृष्णरामौ सम आश्राव्य पुत्रान् कंस विर्हिसितान् स्मरन्ती कृपणं प्राह वैक्लव्यात् अश्रुलोचना ।।२८।।

कंस	कंस द्वारा
विहिंसितान्	मारे गये
पुत्रान् स्मरन्ती	पुत्रोंको स्मरण करके
वैक्लव्यात्	व्याकुलताके कारण
अश्रुलोचना	नेत्रोंमें अश्रु भरकर
कृष्णरामौ	श्रीकृष्ण-बलरामको
सम आश्राव्य	सम्बोधित करके
कृपणं प्राह	करुण स्वरसे कहा ॥२८॥

॥ देवक्युवाच ॥

राम रामाप्रमेयात्मन् कृष्ण योगेश्वरेश्वर ।
वेदाहं वां विश्वसृजामीश्वरावादिपूरुषौ ॥२९॥

राम राम अप्रमेय आत्मन् कृष्ण योगेश्वर ईश्वर वेद अहं वां विश्वसृजां ईश्वराः आदि पूरुषौ ॥२९॥

राम	बलराम !
अप्रमेय आत्मन्	अप्रमेय स्वरूप
राम	बलराम !
योगेश्वर	योगेश्वरोंके भी
ईश्वर कृष्ण	स्वामी कृष्ण !
वेद अहं वां	मैं जानती हूँ कि तुम दोनों
विश्वसृजां	लोकपालोंके
ईश्वराः	स्वामी एव
आदि पूरुषौ	आदि पुरुष हो ॥२९॥

कालविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञामुच्छास्त्रवर्तिनाम् ।
भूमेर्भारायमाणानामवतीर्णौ किलाद्य मे ॥३०॥

कालविध्वस्त सत्त्वानां राज्ञां उच्छास्त्र वर्तिनां भूमेः भारायमाणानां अवतीर्णौ किल अद्य मे ॥३०॥

कालविध्वस्त	काल-प्रभावसे नष्ट हुए
सत्त्वानां	सत्त्व गुण वाले
उच्छास्त्र	शास्त्र मर्यादाका
वर्तिनां	उलंघन करने वाले
भूमेः	पृथ्वीके
भारायमाणानां	भार बने
राज्ञां	राजाओंके (नाशके) लिए

किल अद्य मे	अहो इस समय मेरे यहां	**अवतीर्णौ**	अवतरित हुए हो ॥३०॥

यस्यांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः ।
भवन्ति किल विश्वात्मंस्तं त्वाद्याहं गतिं गता ॥३१॥

यस्यां अंश अंश भागेन विश्व उत्पत्ति लय उदयाः भवन्ति किल विश्वात्मन् तं त्वा अद्य अहं गतिं गता ॥३१॥

विश्वात्मन्	विश्मात्मा !	**किल भवन्ति**	अहो होता है
यस्यां अंश	(तुम्हारे) जिस अंश मायाके	**अद्य तं त्वा**	आज उस आपकी
		अहं	मैं
अंश भागेन	अल्पांशसे	**गतिं गता**	शरण आयी हूँ ॥३१॥
विश्व उत्पत्ति	संसारकी उत्पत्ति		
लय उदयाः	प्रलय तथा अभ्युदय		

चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा कालचोदितौ ।
आनिन्यथुः पितृस्थानाद् गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥३२॥

चिरात् मृत सुत आदाने गुरुणा काल चोदितौ आनिन्यथुः पितृस्थानात् गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥३२॥

काल चोदितौ	कालकी प्रेरणा	**पितृस्थानात्**	यमलोकसे
चिरात् मृत	बहुत समयके मरे	**गुरवे**	गुरुके लिए
सुत आदाने	पुत्रको लाकर देने की	**आनिन्यथुः**	(तुम लोग) ले आये थे ॥३२॥
गुरुणा	गुरु द्वारा		
गुरुदक्षिणां	गुरु दक्षिणा (मांगने पर)		

तथा मे कुरुतं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ ।
भोजराजहतान् पुत्रान् कामये द्रष्टुमाहृतान् ॥३३॥

तथा मे कुरुतं कामं युवां योगेश्वर ईश्वरौ भोजराज हतान् पुत्रान् कामये द्रष्टुं आहृतान् ॥३३॥

तथा मे कामं	ऐसी ही मेरी अभिलाषा	**भोजराज हतान्**	भोजराज कंस द्वारा मारे गये
कुरुतं	पूर्ण करो,	**आहृतान् पुत्रान्**	लाये हुए पुत्रोंको
युवां योगेश्वर ईश्वरौ	तुम दोनों योगेश्वरों के भी स्वामी हो	**द्रष्टुं कामये**	देखना चाहती हूँ ॥३३॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

एवं सञ्चोदितौ मात्रा रामः कृष्णश्च भारत ।
सुतलं संविविशतुर्योगमायामुपाश्रितौ ॥३४॥

एवं सञ्चोदितौ मात्रा रामः कृष्णः च भारत सुतलं संविविशतुः योगमायां उपाश्रितौ ॥३४॥

भारत	परीक्षित !	**योगमायां**	योगमायाका
मात्रा एवं	माता द्वारा इस	**उपाश्रितौ**	आश्रय लेकर
सञ्चोदितौ	प्रेरित किये जाने पर	**सुतलं**	सुतलमें
रामः च कृष्णः	बलराम तथा कृष्ण	**संविविशतुः**	प्रविष्ट हुए ॥३४॥

तस्मिन् प्रविष्टावुपलभ्य दैत्यराड्
विश्वात्मदैवं सुतरां तथाऽऽत्मनः ।
तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः
सद्यः समुत्थाय ननाम सान्वयः ॥३५॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें ऋषिरुवाच नहीं है ।

तस्मिन् प्रविष्टाः उपलभ्य दैत्यराट् विश्व आत्म दैवं सुतरां तथा आत्मनः तत् दर्शन आह्लाद परिप्लुत आशयः सद्यः समुत्थाय ननाम स अन्वयः ॥३५॥

विश्व आत्म	विश्वके आत्मा	**तत् दर्शन**	उनके दर्शनके
तथा आत्मनः	तथा अपने	**आह्लाद**	आनन्दमें
सुतरां दैवं	परमाराध्य देवको	**परिप्लुत**	निमग्न
तस्मिन्	उस लोकमें	**आशयः**	चित्त
प्रविष्टाः	प्रविष्ट हुए	**स अन्वयः**	सपरिवार
उपलभ्य	पाकर	**सद्यः समुत्थाय**	तुरन्त उठकर
दैत्यराट्	दैत्यराज बलिने	**ननाम**	प्रणाम किया ॥३५॥

तयोः समानीय वरासनं मुदा
निविष्टयोस्तत्र महात्मनोस्तयोः ।
दधार पादाववनिज्य तज्जलं
सवृन्द आब्रह्म पुनद् यदम्बु ह ॥३६॥

तयोः सम आनीय वर आसनं मुदा निविष्ट योः तत्र महात्मनोः तयोः दधार पादाः अवनिज्य तत् जलं सवृन्द आब्रह्म पुनत् यत् अम्बु ह ॥३६॥

मुदा तयोः	हर्ष पूर्वक उनके लिए	**तत् जलं सवृन्द**	वह जल पूरे समूह के साथ
वर आसनं	श्रेष्ठ आसन	**दधार**	(सिर पर) धारण किया
सम आनीय	सावधानीसे लाकर	**ह यत् अम्बु**	अहो जो (चरणोदक) जल
तत्र निविष्ट योः	उन पर बैठे हुए	**आब्रह्म पुनत्**	ब्रह्मा पर्यन्त (सब जगत)को पवित्र करता है ॥३६॥
तयोः	उन दोनों		
महात्मनोः	महात्माओंके		
पादाः	चरण		
अवनिज्य	धोकर		

समर्हयामास स तौ विभूतिभि-
र्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ।
ताम्बूलदीपामृतभक्षणादिभिः
स्वगोत्रवित्तात्मसमर्पणेन च ॥३७॥

सम अर्हयामास स तौ विभूतिभिः महा अर्हं वस्त्र आभरण अनुलेपनैः ताम्बूल दीप अमृत भक्षण आदिभिः स्वगोत्र वित्त आत्म समर्पणेन च ॥३७॥

स तौ	उन (बलि)ने उन दोनों भाइयोंकी
विभूतिभिः	वैभवमयी
महा अर्हं	बहुमूल्य
वस्त्र आभरण	वस्त्र, आभूषण
अनुलेपनैः	अंगराग
ताम्बूल दीप	पान, दीपक
अमृत भक्षण	अमृतके समान भोजन
आदिभिः	आदि द्वारा
सम अर्हयामास	भली प्रकार पूजा की
च स्वगोत्र	तथा अपना परिवार
वित्त आत्म	धन एवं शरीर भी
समर्पणेन	समर्पण करके (पूजा की) ॥३७॥

स इन्द्रसेनो भगवत्पदाम्बुजं
बिभ्रन्मुहुः प्रेमविभिन्नया धिया ।
उवाच हानन्दजलाकुलेक्षणः
प्रहृष्टरोमा नृप गद्गदाक्षरम् ॥३८॥

स इन्द्रसेनः भगवत् पदाम्बुजं बिभ्रन् मुहुः प्रेम विभिन्नया धिया उवाच ह आनन्द जल आकुल ईक्षणः प्रहृष्टरोमा नृप गद्गद् अक्षरम् ॥३८॥

नृप	राजन् !
स इन्द्रेसनः	वे इन्द्रसेन (बलि)
भगवत्	भगवानके चरण-कमलोंको
मुहुः बिभ्रन्	बार-बार (गोदमें सिर पर) धारण करते हुए

प्रेम विभिन्नया	प्रेम विह्वल	**प्रहृष्टरोमा**	रोमाञ्चित होकर
धिया	चित्त	**गद्गद् अक्षरं**	गद् गद् वाणीसे
ह आनन्द जल	अहो आनन्दाश्रुसे	**उवाच**	बोले ॥३८॥
आकुल ईक्षणः	चंचल नेत्र		

॥ बलिरुवाच ॥

नमोऽनन्ताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे ।
सांख्ययोगविताना य ब्रह्मणे परमात्मने ॥३९॥

नमः अनन्ताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे सांख्य योग विताना य ब्रह्मणे परमात्मने ॥६९॥

बृहते अनन्ताय	महान् अनन्तको	**ब्रह्मणे**	परम ब्रह्म
नमः	नमस्कार !	**परमात्मने**	परमात्मा
वेधसे	जगन्निर्माता,	**कृष्णाय नमः**	श्रीकृष्णको नमस्कार ॥३९॥
सांख्य योग	सांख्य तथा योगका		
विताना य	विस्तार करने वाले		

दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापं चाप्यदुर्लभम् ।
रजस्तमःस्वभावानां यन्नः प्राप्तौ यदृच्छया ॥४०॥

दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापं च अपि दुर्लभं रजः तमः स्वभावानां यत् नः प्राप्तौ यदृच्छया ॥४०॥

हि भूतानां	क्योंकि प्राणियोंके लिए	**यत् नः**	जो हम
वां दर्शनं	आप दोनोंका दर्शन	**रजः तमः**	रजोगुणी, तमोगुणी
दुष्प्राप च	दुष्प्राप्य तथा	**स्वभावानां**	स्वभाववालोंको
दुर्लभं	दुर्लभ है	**यदृच्छया प्राप्तौ**	सौभाग्यवश प्राप्त हुआ ॥४०॥

दैत्यदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याध्रचारणाः ।
यक्षरक्षःपिशाचाश्च भूतप्रमथनायकाः ॥४१॥

दैत्य, दानव, गन्धर्वाः, सिद्ध, विद्याधर, चारणाः, यक्ष, रक्षः (राक्षस), **पिशाचाः च, भूत, प्रमथ, नायकाः** (विनायक) ॥४१॥*

विशुद्धसत्त्वधाम्न्यद्धा त्वयि शास्त्रशरीरिणि ।
नित्यं निबद्धवैरास्ते वयं चान्ये च तादृशाः ॥४२॥

विशुद्ध सत्त्व धाम्नि अद्धा त्वयि शास्त्र शरीरिणि नित्यं निबद्ध वैराः ते च वयं अन्ये च तादृशः ॥४२॥

विशुद्ध	विशुद्ध
सत्त्व धाम्नि	सत्त्व स्वरूप
त्वयि अद्धा	आप साक्षात्
शास्त्र	शास्त्रमय
शरीरिणी	श्रीविग्रहसे
ते नित्य	वे सदा
निबद्ध वैराः	बैर बाँधे हुए हैं
च वयं च	तथा हम लोग और
अन्ये	दूसरे भी
तादृशः	ऐसे ही हैं ॥४२॥

केचनोद्बद्धवैरेण भक्त्या केचन कामतः ।
न तथा सत्त्वसंरब्धा संनिकृष्टाः सुरादयः ॥४३॥

केचन उद्बद्ध वैरेण भक्त्या केचन कामतः न तथा सत्त्व संरब्धाः संनिकृष्टाः सुर आदयः ॥४३॥

केचन	कोई
उद्बद्ध वैरेण	दृढ़ शत्रुता बाँधकर
केचन भक्त्या	कोई भक्तिसे और
कामतः	(कोई) सकाम भाव से (आपका स्मरण करते हैं)
तथा	इस प्रकार
सन्निकृष्टाः	बहुत पास रहने वाले
सुर आदयः न	देवतादि नहीं कर पाते ॥४३॥

---

*ये केवल अपार्थिव जातियोंके नाम हैं ।

इदमित्थमिति प्रायस्तव योगेश्वरेश्वर ।
न विदन्त्यपि योगेशा योगमायां कुतो वयम् ॥४४॥

इदं इत्थं इति प्रायः तव योगेश्वर ईश्वर न विदन्ति अपि योगेशा योगमायां कुतः वयम् ॥४४॥

योगेश्वर ईश्वर	योगेश्वरोंके भी स्वामी !
तव योगमायाः	आपकी योगमायामें
इदं इत्थं इति	'यह ऐसा ही है इस प्रकार
योगेशा अपि	योगेश्वर लोग भी
न विदन्ति	नहीं जानते
वयं कुतः	फिर हम कैसे (जानेंगे) ॥४४॥

तन्नः प्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत्-
पादारविन्दधिषणान्यगृहान्धकूपात् ।
निष्क्रम्य विश्वशरणाङ्घ्र्युपलब्धवृत्तिः
शान्तो यथैक उत सर्वसखश्चरामि ॥४५॥

तत् नः प्रसीद निरपेक्ष विमृग्य युष्मत् पादारविन्द धिषणा अन्य गृह अन्धकूपात् निष्क्रम्य विश्वशरण अंघ्रि उपलब्ध वृत्तिः शान्तः यथा एक उत सर्वसखैः चरामि ॥४५॥

तत् नः प्रसीद	इसलिए मुझ पर कृपा कीजिए
निरपेक्ष	(जिससे) निरपेक्ष लोगोंके
विमृग्य युष्मत्	अन्वेषणीय आपके
पादारविन्द	चरण-कमलोंमें
धिषणा	बुद्धि लगे
अन्य	उससे पृथक
गृह अन्धकूपात्	घर रूपी अन्धे कुएँसे
निष्क्रम्य	निकल कर
विश्वशरण	जगतके आश्रय
अंघ्रि उपलब्ध	आपके चरणोंमें एका
वृत्तिः	वृत्ति पाकर
यथा शान्तः	जैसे शान्त
एक	अकेला
उत सर्वसखैः	अथवा सबके मित्र (महात्माओं)के साथ
चरामि	विचरण करूं ॥४५॥

शाध्यस्मानीशितव्येश निष्पापान् कुरु नः प्रभो ।
पुमान् यच्छ्रद्धयाऽऽतिष्ठंश्चोदनाया विमुच्यते ॥४६॥

शाधि अस्मान् ईशितव्य ईश निष्पापान् कुरु नः प्रभो पुमान् यत् श्रद्धया आतिष्ठन् चोदनाया विमुच्यते ॥४६॥

प्रभो	प्रभो !
अस्मान् शाधि	हम लोगोंको आज्ञा दीजिए
ईश ईशितव्य	स्वामी हम आज्ञा पाने योग्य हैं
नः निष्पापान्	हमें निष्पाप
कुरु	बनाइये
यत् चोदनाया	(क्योंकि) जिनकी आज्ञा पर
श्रद्धया आतिष्ठन्	श्रद्धापूर्वक स्थित होकर
पुमान् विमुच्यते	पुरुष मुक्त हो जात है ॥४६॥

॥ श्रीभगवानवाच ॥

आसन् मरीचेः षट् पुत्रा ऊर्णायां प्रथमेऽन्तरे ।
देवाः कं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम् ॥४७॥

आसन् मरीचेः षट् पुत्रा ऊर्णायां प्रथमे अन्तरे देवाः कं जहसुः वीक्ष्य सुतां यभितुं उद्यतम् ॥४७॥

प्रथमे अन्तरे	पहिले (स्वायम्भुव) मन्वन्तरमें
ऊर्णायां	ऊर्णा (नामक पत्नी) से
मरीचेः	मरीचि ऋषिके
षट् पुत्रा आसन्	छः पुत्र हुए थे ।
सुतां यभितुं	पुत्री (सरस्वती)से समागमको
उद्यतं वीक्ष्य	उद्यत देखकर
देवाः कं जहसुः	वे देवता ब्रह्मा पर हँसे ॥४७॥

तेनासुरीमगन् योनिमधुनावद्यकर्मणा ।
हिरण्यकशिपोर्जाता नीतास्ते योगमायया ॥४८॥

तेन आसुरीं अगन् योनिं अधुना अवद्य कर्मणा हिरण्यकशिपोः जाताः नीताः ते योगमायया ॥४८॥

तेन अवद्य	इस (हंस रूपी)	**जाताः अधुना**	उत्पन्न होकर इस समय
कर्मणा	अपराध कर्मसे		
आसुरीं योनिं	आसुरी योनिमें	**ते योगमायया**	वे योगमाया द्वारा
अगन्	जाकर	**नीताः**	ले जाये गये ॥४८॥
हिरण्यकशिपोः	हिरण्यकशिपुसे		

देवक्या उदरे जाता राजन् कंसविहिंसिताः ।
सा ताञ्छोचत्यात्मजान् स्वांस्त इमेऽध्यासतेऽन्तिके ॥४९॥

देवक्या उदरे जाता राजन् कंसविहिंसिताः सा तान् शोचति आत्मजान् स्वान् त इमे अध्यासते अन्तिके ॥४९॥

देवक्या उदरे	देवकीके पेटसे	**सा शोचति**	वह शोक कर रही है,
जाता	उत्पन्न हुए		
कंसविहिंसिता	कंस द्वारा मारे गये	**राजन् त इमे**	राजन् ! वही ये
तान् स्वान्	उन अपने	**अन्तिके**	तुम्हारे
आत्मजान्	पुत्रोंके लिए	**अध्यासते**	समीप हैं ॥४९॥

इत एतान् प्रणेष्यामो मातृशोकापनुत्तये ।
ततः शापाद् विनिर्मुक्ता लोकं यास्यन्ति विज्वराः ॥५०॥

इत एतान् प्रणेष्यामः मातृशोक अपनुत्तये ततः शापात् विनिर्मुक्ता लोकं यास्यन्ति विज्वराः ॥५०॥

मातृशोक	माता का शोक	**विनिर्मुक्ता**	छूट कर
अपनुत्तये	दूर करनेके लिए	**विज्वराः**	निश्चिन्त होकर
इत एतान्	यहांसे इनको	**लोकं यास्यन्ति**	अपने लोक चले जायेंगे ॥५०॥
प्रणेष्यामः	हम ले जायेंगे		
ततः शापात्	तब शापसे		

स्मरोद्गीथः परिष्वंगः पतंगः क्षुद्रभृद् घृणी ।
षाडमे मत्प्रसादेन पुनर्यास्यन्ति सद्गतिम् ॥५१॥

स्मरः उद्गीथः परिष्वङ्गः पतङ्गः क्षुद्रभृत् घृणी षट् इमे मत् प्रसादेन पुनः यास्यन्ति सद्गतिम् ॥५१॥

स्मरः उद्गीथः	स्मर, उद्गीथ	**मत् प्रसादेन**	मेरी कृपासे
परिष्वङ्गः	परिष्वंग	**इमे षट्**	ये छः
पतङ्गः	पतंग	**पुनः सद्गतिं**	फिर सद्गति
क्षुद्रभृत् घृणी	क्षुद्रभृत् और घृणी	**यास्यन्ति**	पावेंगे ॥५१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इत्युक्त्वा तान् समादाय इन्द्रसेनेन पूजितौ ।
पुनर्द्वारवतीमेत्य मातुः पुत्रानयच्छताम् ॥५२॥

इति उक्त्वा तान् समादाय इन्द्रसेनेन पूजितौ पुनः द्वारवतीं एत्य मातुः पुत्रान् अयच्छताम् ॥५२॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर	**पुनः द्वारवतीं**	फिर द्वारिका
तान् समादाय	उनको साथ लेकर	**एत्य**	आकर
इन्द्रसेनेन	इन्द्रसेन (बलि)	**मातुः पुत्रान्**	माताको उनके पुत्र
पूजितौ	द्वारा पूजित होकर	**अयच्छतां**	सौंप दिये ॥५२॥

तान् दृष्ट्वा बालकान् देवी पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ।
परिष्वज्याङ्कमारोप्य मूर्ध्न्यजिघ्रदभीक्ष्णशः ॥५३॥

तान् दृष्ट्वा बालकान् देवी पुत्रस्नेह स्नुत स्तनी परिष्वज्य अङ्कम् आरोप्य मूर्घ्नि अजिघ्रत् अभीक्ष्णशः ॥५३॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

देवी तान्	देवकीजीने उन
बालकान्	बालकोंको
दृष्ट्वा	देखकर
पुत्रस्नेह	पुत्रोंके स्नेहसे
स्नुतस्तनी	टपकते पयोधर
अङ्कम् आरोप्य	(उन्हें) गोदमें बैठा-कर
परिष्वज्य	आलिंगन करके
अभीक्ष्णशः	बार-बार
मूर्ध्नि अजिघ्रत्	(उनका) सिर सूंघने लगीं ॥५३॥

आपाययत् स्तनं प्रीता सुतस्पर्शपरिप्लुता ।
मोहिता माययाविष्णोर्ययया सृष्टिः प्रवर्तते ॥५४॥

अपाययत् स्तनं प्रीता सुतस्पर्श परिप्लुता मोहिता माययाविष्णोः ययया सृष्टिः प्रवर्तते ॥५४॥

ययया सृष्टिः	जिससे सृष्टि
प्रवर्तते	चलती है
विष्णोः माययाविष्णोः	उस भगवान विष्णु की मायासे
मोहिता	मोहित होकर
सुतस्पर्श	पुत्रोंके स्पर्श सुखमें
परिप्लुता	निमग्न होकर
प्रीता	प्रसन्न होकर (उन्हें)
स्तनं अपाययत्	स्तनपान कराया ॥५४॥

पीत्वामृतं पयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः ।
नारायणाङ्गसंस्पर्शप्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥५५॥

पीत्वा अमृतं पयः तस्याः पीतशेषं गदाभृतः नारायण अङ्ग संस्पर्श प्रतिलब्ध आत्मदर्शनाः ॥५५॥

गदाभृतः	गदाधर श्रीकृष्णके
पीतशेषं	पीनेसे बचे (प्रसाद रूप)
तस्याः अमृतं	उनके अमृतमय
पयः	दूधको
पीत्वा	पीकर (तथा)
नारायण अङ्ग	नारायण श्रीकृष्णके श्री विग्रहका
संस्पर्श	स्पर्श पानेसे (उन्हें)
आत्मदर्शनाः	आत्म साक्षात्कार
प्रतिलब्ध	प्राप्त हो गया ॥५५॥

ते नमस्कृत्य गोविन्दं देवकीं पितरं बलम् ।
मिषतां सर्वभूतानां ययुर्धाम दिवौकसाम् ॥५६॥

ते नमस्कृत्य गोविन्दं देवकीं पितरं बलं मिषतां सर्वभूतानां ययुः धाम दिवौकसाम् ॥५६॥

ते गोविन्दं	वे गोविन्द	**सर्वभूतानां**	सब प्राणियोंके
देवकीं पितरं	देवकी, पिता (वसु-	**मिषतां**	देखते हुए
	देव) एवं	**दिवौकसां**	देवताओंके
बलं नमस्कृत्य	बलरामजीको प्रणाम	**धाम ययुः**	लोक चले गये
	करके		॥५६॥

तं दृष्ट्वा देवकी देवी मृतागमननिर्गमम् ।
मेने सुविस्मिता मायां कृष्णस्य रचितां नृप ॥५७॥

तं दृष्ट्वा देवकी देवी मृत आगमन निर्गमं मेने सुविस्मिता मायां कृष्णस्य रचितां नृप ॥५७॥

नृप	राजन् !	**सुविस्मिता**	अत्यन्त चकिता
तं मृत आगमन	उन मरे (पुत्रों)का	**देवकी देवी**	देवी देवकीने
	आ जाना	**कृष्णस्य**	श्रीकृष्ण द्वारा
निर्गमं दृष्ट्वा	(फिर) चले जाना	**रचितां**	उत्पन्न की
	देखकर	**मायां मेने**	माया माना ॥५७॥

एवंविधान्यद्भुतानि कृष्णस्य परमात्मनः ।
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य सन्त्यनन्तानि भारत ॥५८॥

एवं विधानि अद्धुतानि कृष्णस्य परमात्मनः वीर्याणि अनन्त वीर्यस्य सन्ति अनन्तनि भारत ॥५८॥

भारत	परीक्षित !
अनन्त वीर्यस्य	अनन्त पराक्रम
परमात्मनः	परमात्मा
कृष्णस्य	श्रीकृष्णके
एवं विधानि	इस प्रकारके
अद्भुतानि	अद्भुत
अनन्तनि	अनन्त
वीर्याणि	पराक्रम
सन्ति	हैं ॥५८॥

॥ सूत उवाच ॥

य इदमनुशृणोति श्रावयेद् वा मुरारे-
श्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः ।
जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं
भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम ॥५९॥

यः इदं अनुशृणोति श्रावयेत् वा मुरारेः चरितं अमृतकीर्तेः वर्णितं व्यासपुत्रैः जगत् अघ भित अलं तत् भक्त सत्कर्णपूरं भगवति कृतचित्तः याति तत् क्षेमधाम ॥५९॥

यः इदं	जो इस
व्यासपुत्रैः	व्यासजीके पुत्र शुकदेवजी द्वारा
वर्णितं	वर्णन किये गये
जगत् अघ	संसारके पाप
भित् अलं	नाशमें समर्थ
तत् स्मत् भक्त	उनके श्रेष्ठ भक्तोंके
सत्कर्णपूर	कानोंको भरने वाले
मुरारेः चरितं	श्रीमुरारिके चरित को
अनुशृणोति	बार-बार सुनाता है
वा श्रावयेत्	अथवा सुनाता है
भगवति	भगवानमें
कृतचित्तः	चित्त लगनेसे
तत् क्षेमधाम	उनके कल्याणमय धामको
याति	जाता है ॥५९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे मृताग्रजानयनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

॥ राजोवाच ॥

ब्रह्मन् वेदितुमिच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः ।
यथोपयेमे विजयो या ममासीत् पितामही ॥ १ ॥

ब्रह्मन् वेदितुं इच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः यथा उपयेमे विजयः या मम आसीत् पितामही ॥१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**स्वसारं यथा**	बहिनको जैसे
या मम	जो मेरी	**विजयः उपयेमे**	अर्जुनने विवाहा
पितामही	दादी	**वेदितुं इच्छामः**	यह (मैं) जानना
आसीत्	थीं (उन)		चाहता हूँ ॥१॥
रामकृष्णयोः	बलराम-श्रीकृष्णको		

॥ श्रीशुक उवाच ॥

अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः ।
गतः प्रभासमश्रृणोन्मातुलेयीं स आत्मनः ॥ २ ॥

अर्जुनः तीर्थयात्रायां पर्यटन् अवनीं प्रभुः गतः प्रभासं अशृणोत् मातुलेयीं स आत्मनः ॥२॥

प्रभुः अर्जुनः	समर्थ अर्जुन	**स आत्मनः**	उन्होंने अपनी
तीर्थयात्रायां	तीर्थयात्रामें	**मातुलेयीं**	मामाकी पुत्रीके
अवनीं पर्यटन्	पृथ्वी पर घूमते हुए	**अशृणोत्**	विषयमें सुना ॥२॥
प्रभासं गतः	प्रभास पहुँचने पर		

दुर्योधनाय रामस्तां दास्यतीति न चापरे ।
तल्लिप्सुः स यतिर्भूत्वा त्रिदण्डी द्वारकामगात् ॥ ३ ॥

दुर्योधनाय रामः तां दास्यति इति न च अपरे तत् लिप्सुः स यतिः भूत्वा त्रिदण्डी द्वारिकां अगात् ॥३॥

रामः तां	बलरामजी उसे	**तत् लिप्सुः**	उसे पानेके लोभसे
दुर्योधनाय	दुर्योधनको	**त्रिदण्डी यतिः**	त्रिदण्डी संन्यासी
दास्यति	देंगे	**भूत्वा**	होकर*
अपरे न च	दूसरेको नहीं ही (देगें)	**स द्वारिकां**	वे द्वारिका
		अगात्	गये ॥३॥
इति	ऐसा (सुनकर)		

तत्र वै वार्षिकान् मासानवात्सीत् स्वार्थसाधकः ।
पौरैः सभाजितोऽभीक्ष्णं रामेणाजानता च सः ॥ ४ ॥

तत्र वै वार्षिकान् मासान् अवात्सीत् स्वार्थ साधकः पौरैः सभाजितः अभीक्ष्णं रामेण अजानता च सः ॥४॥

तत्र वै	वहाँ निश्चित रूपसे	**अजानता**	अनजान व्यक्तियों
स्वार्थ साधकः	अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिए	**पौरै, च**	नागरिकों तथा
		रामेण सः	बलरामजी द्वारा वे
वार्षिकान्	वर्षके	**अभीक्ष्णं**	बार-बार
मासान्	चार महीने	**सभाजितः**	सत्कृत हुए ॥४॥
अवात्सीत्	बसे रहे		

एकदा गृहमानीय आतिथ्येन निमन्त्र्य तम् ।
श्रद्धयोपहृतं भैक्ष्यं बलेन बुभुजे किल ॥ ५ ॥

---

*त्रिदण्डी संन्यासी क्योंकि शिखा-यज्ञोपवीत रखते हैं, अर्जुन इनके त्यागका पाप किये बिना सन्यासी बन सके ।

एकदा गृहं आनीय आतिथ्येन निमन्त्र्य तं श्रद्धया उपहृतं भैक्ष्यं बलेन बुभुजे किल ॥५॥

एकदा	एक बार
किल बलेन	अहो बलरामजी द्वारा
आतिथ्येन तं निमन्त्र्य	आतिथ्यके लिए उनको निमन्त्रित करके
गृहं आनीय	भवनमें लाकर
श्रद्धया उपहृतं	श्रद्धापूर्वक अर्पित करके
भैक्ष्यं बुभुजे	भोजनीय पदार्थ भोजन कराये ॥५॥

सोऽपश्यत्तत्र महतीं कन्यां वीरमनोहराम् ।
प्रीत्युत्फुल्लेक्षणस्तयां भावक्षुब्धं मनो दधे ॥ ६ ॥

सः अपश्यत् तत्र महतीं कन्यां वीर मनोहरां प्रीति उत्फुल्ल ईक्षणः तस्यां भावक्षुब्धं मनः दधे ॥६॥

सः तत्र	उन्होंने वहाँ
वीर मनोहरां	वीरोंका मन हरण करने-वाली
महतीं कन्यां	बड़ी (विवाह योग्य) कन्या
अपश्यत्	देखा
प्रीति उत्फुल्ल ईक्षणः	प्रसन्नतासे प्रफुल्ल नेत्र
भावक्षुब्धं तस्यां मनः दधे	भावसे क्षुब्ध होकर उसे पानेका संकल्प किया ॥६॥

सापि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयंगमम् ।
हसन्ती व्रीडितापाङ्गी तन्न्यस्तहृदयेक्षणा ॥ ७ ॥

सा अपि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयङ्गमं हसन्ती व्रीडिता अपाङ्गी तत् न्यस्त हृदय ईक्षणाः ॥७॥

सा अपि	वह भी
नारीणां	स्त्रियोंके
हृदयङ्गमं	हृदयस्पर्शीको
वीक्ष्य हसन्ती	देखकर हंसती हुई
व्रीडिता	लज्जासे
अपाङ्गी	कटाक्ष पूर्वक

तत् न्यस्त ईक्षणा उनमें दृष्टि लगाये | **चकमे** चाहने लगी ॥७॥
हृदय तं हृदयसे उनको

तां परं समनुध्यायन्नन्तरं प्रेप्सुरर्जुनः ।
न लेभे शं भ्रमच्चित्तः कामेनातिबलीयसा ॥ ८ ॥

तां परं सम अनुध्यायन् अन्तरं प्रेप्सुः अर्जुनः न लेभे शं भ्रमत् चित्तः कामेन अतिबलीयसा ॥८॥

अतिबलीयसा अत्यन्त बलवान
कामेन कामके द्वारा
भ्रमत् चित्तः क्षुब्ध चित्त
अर्जुनः तां परं अर्जुन उसीके परायण होकर

सम अनुध्यायन् बराबर (उसीका) चिन्तन करते हुए
अन्तरं प्रेप्सुः अवसर पानेकी इच्छासे
शं न लेभे शान्ति नहीं पा सके ॥८॥

महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गताम् ।
जहारानुमतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ॥ ९ ॥

महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गतां जहार अनुमतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ॥९॥

महत्यां बड़ी भारी
देवयात्रायां देवयात्राके समय
दुर्गनिर्गतां दुर्गसे निकली
रथस्थां रथ पर बैठी (सुभद्रा)का

पित्रोः च पिता तथा
कृष्णस्य श्रीकृष्णकी
अनुमतः अनुमतिसे
महारथः जहार महारथी अर्जुनने हरण कर लिया ॥९॥

रथस्थो धनुरादाय शूरांश्चारुन्धतो भटान् ।
विद्राव्य क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराडिव ॥१०॥

रथस्थः धनुः आदाय शूरान् च अरुन्धतः भटान् विद्राव्य क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराट् इव ॥१०॥

रथस्थः	रथ पर चढ़कर	**विद्राव्य**	भगाकर
धनुः आदाय	धनुष लेकर	**मृगराट् इव**	सिंहके समान
अरुन्धतः च	रोकते हुए तथा	**स्वभागं**	अपना भाग (ले गये) ॥१०॥
स्वानां शूरान्	अपने वीरोंको		
क्रोशतां भटान्	पुकारते सैनिकोंको		

तच्छ्रुत्वा क्षुभितो रामः पर्वणीव महार्णवः ।
गृहीतपादः कृष्णेन सुहृद्भिश्चान्वशाम्यत ॥११॥

तत् श्रुत्वा क्षुभितः रामः पर्वणि इव महार्णवः गृहीतपादः कृष्णेन सुहृत् भिः च अनु अशाम्यत ॥११॥

तत् श्रुत्वा	इसे सुनकर	**कृष्णेन च**	श्रीकृष्ण तथा
पर्वणि महार्णव	पर्वके समय महा-सागरके	**सुहृत् भिः**	सुहृदों द्वारा
इव रामः	समान बलरामजी	**गृहीतपादः**	चरण पकड़ लेने पर
क्षुभितः	क्षुब्ध हो गये; किन्तु	**अनु अशाम्यत**	पीछे शान्त हो गये ॥११॥

प्राहिणोत् पारिबर्हाणि वरवध्वोर्मुदा बलः ।
महाधनोपस्करेभरथाश्वनरयोषितः ॥१२॥

प्राहिणोत् पारिबर्हाणि वरवध्वोः मुदा बलः महाधन उपस्कर इभ रथ अश्व नर योषितः ॥१२॥

मुदा बलः	(फिर) आनन्दपूर्वक बलरामजीने	**इभ रथ अश्व**	हाथी, रथ, घोड़े,
वरवध्वोः	वर-वधूके लिए	**नर योषितः**	दास-दासियां
महाधन	बहुमूल्य	**पारिबर्हाणि**	दहेजमें
उपस्कर	सामग्री तथा	**प्राहिणोत्**	भेजा ॥१२॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

कृष्णस्यासीद् द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव इति श्रुतः ।
कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शान्तः कविरलम्पटः ॥१३॥

कृष्णस्य आसीत् द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव इति श्रुतः कृष्ण एकभक्त्या पूर्ण अर्थः शान्तः कविः अलम्पटः ॥१३॥

श्रुतदेव	श्रुतदेव	**पूर्ण अर्थः**	पूर्ण मनोरथ
इति श्रुतः	इस नामसे विख्यात	**शान्तः कविः**	शान्त, बुद्धिमान
द्विजश्रेष्ठः	ब्राह्मण प्रवर	**अलम्पटः**	सदाचारी
कृष्ण	श्रीकृष्णकी	**कृष्णस्य आसीत्**	श्रीकृष्णके ही थे
एकभक्त्या	अनन्य भक्तिसे		॥१३॥

स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमी ।
अनीहयाऽऽगताहार्यनिर्वर्तितनिजक्रियः ॥१४॥

स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृह आश्रमी अनीहया आगत आहार्य निर्वर्तित निजक्रियः ॥१४॥

अनीहया	बिना इच्छा किये	**विदेहेषु**	राजा विदेहके राज्य में
आगत आहार्य	(स्वत:) आयी भोजन सामग्रीसे	**मिथिलायां**	मिथिलामें
निजक्रियः	अपनी क्रियाएँ	**उवास**	निवास करते थे
निर्वर्तित	चलाते हुए		॥१४॥
स गृह आश्रमी	वे गृहस्थ		

---

*यह उवाच यहाँ क्यों आया कहना कठिन है। क्योंकि अभी तक शुकदेवजी ही बोल रहे थे। बीचमें कोई दूसरा नहीं बोला। ऐसा लगता है कि प्रसंग दूसरा होनेसे यहां अध्याय भी बदलता होगा।

यात्रामात्रं त्वहरहर्दैवादुपनमत्युत ।
नाधिकं तावता तुष्टः क्रियाश्चक्रे यथोचिताः ॥१५॥

यात्रामात्रं तु अहः अहः दैवात् उपनमति उत न अधिकं तावता तुष्टः क्रियाः चक्रे यथोचिताः ॥१५॥

दैवात्	प्रारब्धवश
अहः अहः	प्रतिदिन
यात्रामात्रं तु	जीवन-निर्वाह भर को ही
न अधिकं	अधिक नहीं
उपनमति	(सामग्री) प्राप्त हो जानेसे
उत तावता तुष्टः	फिर उतनेसे ही संतोष करके
यथोचिताः	यथोचित
क्रियाः चक्रे	(दैनिक) क्रिया करने लगते थे

॥१५॥

तथा तद्राष्ट्रपालोऽङ्ग बहुलाश्व इति श्रुतः ।
मैथिलो निरहम्मान उभावप्यच्युतप्रियौ ॥१६॥

तथा तत् राष्ट्रपाल अङ्ग बहुलाश्व इति श्रुतः मैथिलः निरहम्मान उभाः अपि अच्युत प्रियौ ॥१६॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !
तथा तत्	ऐसे ही उस
राष्ट्रपाल	राज्यके पालक
बहुलाश्व	बहुलाश्व
इति श्रुतः	इस नामसे विख्यात
निरहम्मान	निरभिमान
मैथिलः	मिथिला नरेश थे
उभाः अपि	दोनों ही
अच्युत प्रियौ	अच्युतको प्रिय थे

॥१६॥

तयोः प्रसन्नो भगवान् दारुकेणाहृतं रथम् ।
आरुह्य साकं मुनिभिर्विदेहान् प्रययौ प्रभुः ॥१७॥

तयोः प्रसन्नः भगवान् दारुकेण आहृतं रथं आरुह्य साकं मुनिभिः विदेहान् प्रययौ प्रभुः ॥१७॥

तयोः प्रसन्नः उन दोनों पर प्रसन्न होकर
प्रभुः भगवान् (उनके) स्वामी भगवानने
दारुकेण दारुकके द्वारा
आहृतं रथं समीप लाये रथ पर
मुनिभिः साकं मुनियोंके साथ
आरुह्य चढ़कर
विदेहान् प्रययौ विदेहको प्रस्थान किया ॥१७॥

नारदो वामदेवोऽत्रिः कृष्णो रामोऽसितोऽरुणिः ।
अहं बृहस्पतिः कण्वो मैत्रेयश्च्यवनादयः ॥१८॥

नारदः वामदेवः अत्रिः कृष्णः रामः असितः आरुणिः अहं बृहस्पतिः कण्वः मैत्रेयः च्यवन आदयः ॥१८॥

नारदः वामदेवः देवर्षि नारद, वामदेव
अत्रिः कृष्णः अत्रि, कृष्णद्वैपायन व्यास
रामः असितः परशुराम, असित
आरुणिः अहं आरुणि, मैं शुकदेव
बृहस्पतिः कण्वः बृहस्पति, कण्व
मैत्रेयः च्वयन मैत्रेय, च्यवन,
आदयः आदि ॥१८॥

तत्र तत्र तमायान्तं पौरा जानपदा नृप ।
उपतस्थुः सार्घ्यहस्ता ग्रहैः सूर्यमिवोदितम् ॥१९॥

तत्र तत्र तं आयान्तं पौरा जानपदा नृप उपतस्थुः स अर्घ्यहस्ता ग्रहैः सूर्यं इव उदितम् ॥१९॥

नृप राजन् !
ग्रहैः उदितं ग्रहोंके साथ उदय हुए
सूर्यं इव सूर्यके समान
तं आयान्तं उनके आने पर
तत्र तत्र पौरा वहां-वहां पुरवासी तथा
जानपदा जनदप निवासी
स अर्घ्यहस्ता हाथोंमें अर्घ्य लेकर
उपतस्थुः समीप आते थे ॥१९॥

आनर्तधन्वकुरुजाङ्गलकङ्कमत्स्य-
पाञ्चालकुन्तिमधुकेकयकोसलार्णाः ।
अन्ये च तन्मुखसरोजमुदारहास-
स्निग्धेक्षणं नृप पपुर्दृशिभिर्नृनार्यः ॥२०॥

आनर्त धन्व कुरु जाङ्गल कङ्क मत्स्य पाञ्चाल कुन्ति मधु केकय कोसल अर्णाः अन्ये च तत् मुख सरोजं उदार हास स्निग्ध ईक्षणं नृप पपुः दृशिभिः नृ नार्यः ॥२०॥

नृप	राजन् !	**च अन्ये**	तथा दूसरे भी
आनर्त धन्व	आनर्त, मरुधन्व	**नृ नार्यः**	पुरुष-स्त्री
कुरु जाङ्गल	कुरु, जाङ्गल	**उदार हास**	उन्मुक्त हास्य तथा
कङ्क मत्स्य	कङ्क, मत्स्य	**स्निग्ध ईक्षणं**	प्रेम भरी दृष्टि वाले
पाञ्चाल कुन्ति	पाञ्चाल, कुन्ति	**तत् मुख सरोजं**	उनके मुख-कमलको
मधु केकय	मधु, केकय	**दृशिभिः पपुः**	अपने नेत्रोंसे पीते थे ॥२०॥
कोसल अर्णाः	कोसल तथा अर्ण निवासी		

तेभ्यः स्ववीक्षणविनष्टतमिस्रदृग्भ्यः
क्षेमं त्रिलोकगुरुरर्थदृशं च यच्छन् ।
शृण्वन् दिगन्तधवलं स्वयशोऽशुभघ्नं
गीतं सुरैर्नृभिरगाच्छनकैर्विदेहान् ॥२१॥

तेभ्यः स्ववीक्षण विनष्ट तमिस्र दृक्भ्यः क्षेमं त्रिलोक गुरुः अर्थदृशं च यच्छन् शृण्वन् दिगन्त धवलं स्वयशः अशुभघ्नं गीतं सुरैः नृभिः अगात् शनकैः विदेहान् ॥२१॥

स्ववीक्षण	अपने दर्शनसे	**त्रिलोक गुरुः**	वे त्रिभुवन गुरु (श्रीकृष्ण)
विनष्ट तमिस्र	अज्ञान नष्ट हुए	**क्षेमं अर्थदृशं**	कल्याणमयी परमार्थ दृष्टि
दृक्भ्यः तेभ्यः	दृष्टि वाले उन लोगों को		

च यच्छन्	भी देते हुए
दिगन्त धवलं	सम्पूर्ण दिशाओंको उज्ज्वल करने वाले
अशुभघ्नं	अशुभ नाशक
सुरैः नृभिः	देवताओं तथा मनुष्यों द्वारा
गीतं स्वयशः	गाये जाते अपने सुयशको
शृण्वन्	सुनते हुए
शनकैः विदेहान्	धीरे-धीरे विदेह नगर
अगात्	पहुँचे ॥२१॥

तेऽच्युतं प्राप्तमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृप ।
अभीयुर्मुदितास्तस्मै गृहीतार्हणपाणयः ॥२२॥

ते अच्युतं प्राप्तं आकर्ण्य पौरा जानपदा नृप अभीयुः मुदिताः तस्मै गृहीत अर्हण पाणयः ॥२२॥

नृप	राजन् !
ते पौरा	उन नगर एवं
जानपदा	जनपदवासी लोगोंने
अच्युतं प्राप्तं	अच्युतको आया
आकर्ण्य	सुनकर
मुदिताः तस्मै	प्रसन्न होकर उनके लिए
पाणयः अर्हण	हाथोंमें पूजा-द्रव्य
गृहीत	लेकर
अभीयुः	अगवानी करने आये ॥२२॥

दृष्ट्वा त उत्तमश्लोकं प्रीत्युत्फुल्लाननाशयाः ।
कैर्धृताञ्जलिभिर्नेमुः श्रुतपूर्वांस्तथा मुनीन् ॥२३॥

दृष्ट्वा त उत्तमश्लोकं प्रीति उत्फुल्ल आनन आशयाः कैः धृत अञ्जलिभिः नेमुः श्रुतपूर्वान् तथा मुनीन् ॥२३॥

उत्तमश्लोकं	पवित्र कीर्ति भगवान का
दृष्ट्वा त	दर्शन करके उनके
आनन आशयाः	मुख तथा हृदय
प्रीति उत्फुल्ल	प्रेमसे खिल गये
कैः धृत	सिर पर
अञ्जलिभिः	हाथ जोड़कर लगाकर
नेमुः	नमस्कार किया

तथा श्रुतपूर्वान्	तथा जिनके विषयमें पहिले सुना था	**मुनीन्**	उन मुनियोंको (भी प्रणाम किया) ॥२३॥

स्वानुग्रहाय सम्प्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुम् ।
मैथिलः श्रुतदेवश्च पादयोः पेततुः प्रभो ॥२४॥

स्व अनुग्रहाय सम्प्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुं मैथिलः श्रुतदेवः च पादयोः पेततुः प्रभोः ॥२४॥

तं जगद्गुरुं	उन जगद्गुरु	**मैथिलः**	मिथिला नरेश
प्रभोः स्व	प्रभुको अपने पर	**श्रुतदेवः च**	श्रुतदेव भी
अनुग्रहाय	कृपा करनेके लिए	**पादयोः पेततुः**	(एक साथ उनके) चरणों पर गिरे ॥२४॥
सम्प्राप्तं	आया		
मन्वानौ	मानते हुए		

न्यमन्त्रयेतां दाशार्हमातिथ्येन सह द्विजैः ।
मैथिलः श्रुतदेवश्च युगपत् संहताञ्जली ॥२५॥

न्यमन्त्रयेतां दाशार्हं आतिथ्येन सह द्विजैः मैथिलः श्रुतदेवः च युगपत् संहत अञ्जली ॥२५॥

दाशार्हं	यादव श्रीकृष्णको	**आतिथ्येन**	आतिथ्यके लिए
सह द्विजैः	ब्राह्मणोंके साथ	**युगपत्**	एक साथ
मैथिलः	मिथिला नरेश	**न्यमन्त्रयेतां**	निमन्त्रण दिया ॥२५॥
च श्रुतदेवः	तथा श्रुतदेवने		
संहत अञ्जली	हाथ जोड़कर		

भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया ।
उभयोराविशद् गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः ॥२६॥

भगवान् तत् अभिप्रेत्य द्वयोः प्रिय चिकीर्षया उभयोः आविशत् गेहं उभाभ्यां तत् अलक्षितः ॥२६॥

भगवान्	भगवानने
तत् अभिप्रेत्य	उनका अभिप्राय जानकर
द्वयोः प्रिय	दोनोंका प्रिय
चिकीर्षया	करनेकी इच्छासे
उभयोः गेहं	दोनोंके घरोंमें
आविशत्	प्रवेश किया
तत् उभाभ्यां	यह दोनों द्वारा
अलक्षितः	अज्ञात रहा ॥२६॥

विशेष—भगवानने अपना, सब ऋषियोंका तथा रथ, अश्वादिके भी दो रूप कर दिये ।

श्रोतुमप्यसतां दूरान् जनकः स्वगृहागतान् ।
आनीतेष्वासनाग्र्येषु सुखासीनान् महामनाः ॥२७॥

श्रोतुं अपि असतां दूरान् जनकः स्वगृह आगतान् आनीतेषु आसन अग्र्येषु सुख आसीनान् महामनाः ॥२७॥

असतां	दुष्टोंको (जिनका नाम)
श्रोतुं अपि	सुनना भी
दूरान्	दूर (दुर्लभ) है (उन)
स्वगृह आगतान	अपने भवन आये
आनीतेषु	लाये हुए
आसन अग्र्येषु	श्रेष्ट आसनों पर
सुख आसीनान्	सुख-पूर्वक बैठे हुओं का
महामनाः	महामनस्वी
जनकः	जनकने ॥२७॥

प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्षहृदयास्राविलेक्षणः ।
नत्वा तदङ्घ्रीन् प्रक्षाल्य तदपो लोकपावनीः ॥२८॥

प्रवृद्धभक्त्या उद्हर्ष हृदय अस्र आविल ईक्षणः नत्वा तद्अङ्घ्रिन् प्रक्षाल्य तत् अपः लोकपावनीः ॥२८॥

प्रवृद्धभक्त्या	बढ़ी हुई भक्ति एवं	**तत् अङ्घ्रिन्**	उनके चरण
उद्हर्ष	हर्षोद्रेक युक्त	**प्रक्षाल्य**	धोकर
हृदय	हृदय होनेसे	**तत् लोकपावनी**	उस त्रिलोकीको
अस्त्र आविल	आंसूसे धुंधले पड़े		पवित्र करने वाले
ईक्षणः	नेत्र	**अपः**	जलको ॥२८॥
नत्वा	नमस्कार करके		

सकुटुम्बो वहन् मूर्ध्ना पूजयांचक्र ईश्वरान् ।
गन्धमाल्याम्बराकल्पधूपदीपार्घ्यगोवृषैः ॥२९॥

सकुटुम्बः वहन् मूर्ध्ना पूजयान् चक्र ईश्वरान् गन्ध माल्य अम्बर आकल्प धूप दीप अर्घ्य गोवृषैः ॥२९॥

सकुटुम्बः	कुटुम्बके साथ	**धूप दीप**	धूप-दीप
मूर्ध्ना वहन्	सिर पर चढ़ाया, फिर	**अर्घ्य गोवृषैः**	अर्घ्य, गौ तथा सांड से
गन्ध माल्य	चन्दन, माला	**ईश्वरान्**	उस समर्थोंका
अम्बर आकल्प	वस्त्र आभरण	**पूजयान् चक्र**	पूजन किया ॥२९॥

वाचा मधुरया प्रीणन्निदमाहान्नतर्पितान् ।
पादावङ्कगतौ विष्णोः संस्पृशञ्छनकैर्मुदा ॥३०॥

वाचा मधुरया प्रीणन् इदं आह अन्न तर्पितान् पादाः अङ्क गतौ विष्णोः संस्पृशन् शनकैः मुदा ॥३०॥

अन्न तर्पितान्	भोजनसे तृप्त किये हुए	**शनकैः संस्पृशन्**	धीरे-धीरे स्पर्श करते हुए
विष्णोः	श्रीकृष्णको	**मुदः**	आनन्दपूर्वक
अङ्क गतौ पादाः	गोदमें लिए चरणोंको	**मधुरया वाचा**	मधुरवाणीसे
		प्रीणन्	प्रसन्न करते हुए
		इदं आह	यह बोले ॥३०॥

॥ मैथिलोवाच ॥*

भवान् हि सर्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग् विभो ।
अथ नस्त्वत्पदाम्भोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥३१॥

भवान् हि सर्वभूतानां आत्मा साक्षी स्वदृक् विभो अथ नः त्वत् पदाम्भोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥३१॥

विभो	प्रभो !	**पदाम्भोजं**	चरण-कमलोंका
हि भवान्	क्योंकि आप	**स्मरतां नः**	स्मरण करने वाले हमें
सर्वभूतानां	समस्त प्राणियोंके		
आत्मा साक्षी	आत्मा, साक्षी एवं	**दर्शनं गतः**	(आपने) दर्शन दिया है ॥३१॥
स्वदृक्	स्वयं प्रकाश है,		
अथ त्वत्	अतः आपके		

स्ववचस्तदृतं कर्तुमस्मद्दृग्गोचरो भवान् ।
यदात्थैकान्तभक्तान् मे नानन्तः श्रीरजः प्रियः ॥३२॥

स्ववचः तत् ऋतं कर्तुं अस्मत् दृक् गोचरः भवान् यत् आत्थ एकान्त भक्तान् मे न अनन्तः श्रीः अजः प्रियः ॥३२॥

यत् आत्थ	जो (आपने) कहा है कि—	**तत् स्ववचः**	उस अपनी बातको
		ऋतं कर्तुं	सत्य करनेके लिए
एकान्त भक्तान्	अनन्य भक्तोंसे	**भवान् अस्मत्**	आप मेरी
मे अनन्तः	(अधिक) मुझे अनन्त	**दृक् गोचरः**	आंखोंके सामने आये हैं ॥३२॥
श्रीः अजः	लक्ष्मी या ब्रह्मा		
प्रियः न	प्रिय नहीं है,		

---

*अन्य प्रतियोंमें यहां 'राजोवाच' है ।

को नु त्वच्चरणाम्भोजमेवंविद् विसृजेत् पुमान् ।
निष्किंचनानां शान्तानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः ॥३३॥

कः नु त्वत् चरण अम्भोजं एवं वित् विसृजेत् पुमान् निष्किञ्चनानां शान्तानां मुनीनां यः त्वं आत्मदः ॥३३॥

यः त्वं	जो आप	**एवं वित्**	ऐसा जानने वाला
निष्किञ्चनानां	अकिञ्चन	**नु कः पुमान्**	भला कौन पुरुष
शान्तानां	शान्त	**त्वत् चरण**	आपके चरण-
मुनीनां	मुनियोंको	**अम्भोजं**	कमलको
आत्मदः	अपनेको भी दे देने वाले हैं	**विसृजेत्**	त्यागेगा ॥३३॥

योऽवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसरतामिह ।
यशो वितेने तच्छान्त्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥३४॥

यः अवतीर्य यदोः वंशे नृणां संसरतां इह यशः वितेने तत् शान्त्यै त्रैलोक्य वृजिन अपहम् ॥३४॥

इह संसरतां	इस संसारमें जन्म-मृत्यु चक्रमें भटकते	**अवतीर्य**	अवतार लेकर
नृणां	मनुष्योंकी	**यः त्रैलोक्य**	जिन्होंने त्रिलोकीके
तत् शान्त्यै	उस (भटकन)की समाप्तिके लिए	**वृजिन अपहं**	पापहारी
यदोः वंशे	यदुवंशमें	**यशः वितेने**	अपने सुयशका विस्तार किया ॥३४॥

नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
नारायणाय ऋषये सुशान्तं तप ईयुषे ॥३५॥

नमः तुभ्यं भगवते कृष्णाय अकुण्ठ मेधसे नारायणाय ऋषये सुशान्तं तप ईयुषे ॥३५॥

अकुण्ठ मेधसे	अप्रतिहत बुद्धि	**तुभ्यं भगवते**	आप भगवान
सुशान्तं ईयुषे	अत्यन्त शान्त होकर तप करने वाले	**कृष्णाय नमः**	श्रीकृष्णको नमस्कार ॥३५॥
ऋषये	ऋषि		
नारायणाय	नारायण रूप		

दिनानि कतिचिद् भूमन् गृहान् नो निवस द्विजैः ।
समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेः कुलम् ॥३६॥

दिनानि कति चित् भूमन् गृहान् नः निवस द्विजैः समेतः पादरजसा पुनीहि इदं निमेः कुलम् ॥३६॥

भूमन्	भूमन् !	**निवस**	निवास कीजिए,
द्विजैः समेतः	आये ब्राह्मणोंके साथ	**इदं निमेः कुलं**	इस निमिकुलको
		पादरजसा	अपनी चरण-रजसे
नः गृहान्	हमारे घरमें	**पुनीहि**	पवित्र कीजिए ॥३६॥
कति चित्	कुछ दिनों तक		
दिनानि	दिनों तक		

॥ श्रीशुक उवाच* ॥

इत्युपामन्त्रितो राज्ञा भगवाँल्लोकभावनः ।
उवास कुर्वन् कल्याणं मिथिलानरयोषिताम् ॥३७॥

इति उपामन्त्रितः राज्ञा भगवान् लोक भावनः उवास कुर्वन् कल्याणं मिथिला नर योषिताम् ॥३७॥

इति राज्ञा	इस प्रकार राजा बहुलाश्व द्वारा	**उपामन्त्रितः**	उपामन्त्रण देने पर
		लोक भावनः	लोक पालक

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भगवान्	भगवान	**कल्याणं कुर्वन्**	कल्याण करते हुए
मिथिला	मिथिलाके	**उवास**	बसे रहे ॥३७॥
नर योषितां	पुरुष-स्त्रियोंका		

श्रुतदेवोऽच्युतं प्राप्तं स्वगृहाञ्जनको यथा ।
नत्वा मुनीन् सुसंहृष्टो धुन्वन् वासो ननर्त ह ॥३८॥

श्रुतदेवः अच्युतं प्राप्तं स्वगृहान् जनकः यथा नत्वा मुनीन् सुसंहृष्टः धुन्वन् वासः ननर्त ह ॥३८॥

जनकः यथा	राजा जनकके समान ही	**मुनीन् नत्वा**	मुनियोंको प्रणाम करके
श्रुतदेवः	श्रुतदेव भी	**धुन्वन् वासः**	वस्त्र उड़ाते हुए
स्वगृहान्	अपने घरमें	**ननर्त ह**	नाचने ही लगा ॥३८॥
अच्युतं प्राप्तं	अच्युतके आने पर		

तृणपीठबृसीष्वेतानानीतेषूपवेश्य सः ।
स्वागतेनाभिनन्द्याङ्घ्रीन् सभार्योऽवनिजे मुदा ॥३९॥

तृण पीठ बृसीषु एतान् आनीतेषु उपवेश्य सः स्वागतेन अभिनन्द्य अंघ्रीन् सभार्यः अवनिजे मुदा ॥३९॥

आनीतेषु	लायी हुई	**अभिनन्द्य**	अभिनन्दन करके
तृण पीठ बृषीषु	कुशासन, पीढ़े, चटाई पर	**सभार्यः मुदा**	पत्नीके साथ प्रसन्न होकर
एतान् उपवेश्य	इन लोगोंको बैठाकर	**अंघ्रीन्**	उनके चरण
स्वागतेन	स्वागत (वाक्य)से	**अवनिजे**	धोये ॥३९॥

तदम्भसा महाभाग आत्मानं समृहान्वयम् ।
स्नापयांचक्र उद्धर्षो लब्धसर्वमनोरथः ॥४०॥

तत् अम्भसा महाभाग आत्मानं स गृह अन्वयं स्नापयान् चक्र उद्हर्षः लब्ध सर्व मनोरथः ॥४०॥

महाभाग	उस महाभागने	**स्नापयान् चक्र**	सींच दिया
उद्हर्षः	प्रवृद्ध हर्षसे	**सर्व मनोरथः**	(इससे उसे) सब मनोरथ
तत् अम्भसा	उस जलसे		
स गृह अन्वयं	घर-परिवार सहित	**लब्ध**	प्राप्त हो गये ॥४०॥
आत्मानं	अपनेको		

फलार्हणोशीरशिवामृताम्बुभि-
र्मृदा सुरभ्या तुलसीकुशाम्बुजैः ।
आराधयामास यथोपपन्नया
सपर्यया सत्त्वविवर्धनान्धसा ॥४१॥

फल अर्हण उशीर शिव अमृत अम्बुभिः मृदा सुरभ्या तुलसी कुश अम्बुजैः आराधयामास यथा उपपन्नया सपर्यया सत्त्व विवर्धन अन्धसा ॥४१॥

अर्हण फल	पूजाके लिए फल	**यथा उपपन्नया**	अनायास प्राप्त
उशीर शिव	खस पड़े कल्याणप्रद	**सपर्यया**	पूजा सामग्री एवं
अमृत अम्बुभिः	अमृतके समान जल	**सत्व विवर्धन**	सत्त्व गुण बढ़ाने वाले
सुरभ्या मृदा	सुगन्धित मिट्टी		
तुलसी कुश	तुलसी, कुश	**अन्धसा**	भोजन द्वारा
अम्बुजैः	कमल पुष्प तथा	**आराधयामास**	पूजा की ॥४१॥

स तर्कयामास कुतो ममान्वभूद्
गृहान्धकूपे पतितस्य संगमः ।
यः सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः
कृष्णेन चास्यात्मनिकेतभूसुरैः ॥४२॥

स तर्कयामास कुतः मम अन्वभूत् गृह अन्धकूपे पतितस्य सङ्गमः यः सर्वतीर्थ आस्पद पादरेणुभिः कृष्णेन च अस्य आत्म निकेत भूसुरैः ॥४२॥

स तर्कयामास	वे सोचने लगे—	**भूसुरै सङ्गमः**	ब्राह्मणोंसे मिलने का
यः सर्वतीर्थ	जो समस्त तीर्थोंके	**अन्धकूपे**	अन्धे कुएँके समान
आस्पद	आश्रय रूप	**गृह पतितस्य**	घरमें पड़े हुए
पादरेणुभिः	चरण-रज वाले	**मम कुतः**	मुझे कैसे
कृष्णेन च	श्रीकृष्णसे तथा	**अन्वभूत्**	अनुभूति हुई ॥४२॥
अस्य आत्म	उनके अपने		
निकेत	निवास रूप		

सूपविष्टान् कृतातिथ्याञ्छ्रुतदेव उपस्थितः ।
सभार्यस्वजनापत्य उवाचाङ्घ्र्यभिमर्शनः ॥४३॥

सु उपविष्ठान् कृत आतिथ्यान् श्रुतदेव उपस्थितः सभार्य स्वजन अपत्य उवाच अंघ्रि अभिमर्शनः ॥४३॥

सु उपविष्ठान्	सुख पूर्वक बैठे हुए	**अपत्यः**	पुत्रोंके साथ
कृत आतिथ्यान्	अतिथि-सत्कार कर दिये गयेके	**श्रुतदेव**	श्रुतदेवने
		अंघ्रि अभिर्शनः	चरण दबाते हुए
उपस्थितः	समीप पहुँच कर	**उवाच**	कहने लगे ॥४३॥
सभार्य स्वजन	पत्नी, स्वजन		

॥ श्रुतदेव उवाच ॥

नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः ।
यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया ॥४४॥

न अद्य नः दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः यर्हि इदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टः हि आत्म सत्तया ॥४४॥

परं परमपूरुषः	प्रकृतिसे परे परम पुरुष
अद्य नः	आज मुझे (आपका)
दर्शनं प्राप्तः न	दर्शन हुआ, ऐसा नहीं है
हि यर्हि	क्योंकि जब
शक्तिभिः	अपनी शक्तियों द्वारा
इदं सृष्ट्वा	इस जगतकी सृष्टि करके
आत्म सत्तया	अपनी सत्तासे
प्रविष्टः	(आप इसमें) प्रविष्ट हैं (तब सब रूपोंमें आपका दर्शन होता ही है) ॥४४॥

यथा शयानः पुरुषो मनसैवात्ममायया ।
सृष्ट्वा लोकं परं स्वाप्नमनुविश्यावभासते ॥४५॥

यथा शयानः पुरुषः मनसा एव आत्म मायया सृष्ट्वा लोकं परं स्वाप्नं अनुविश्य अवभासते ॥४५॥

यथा शयानः	जैसे सोया हुआ
पुरुषः	पुरुष
मनसा एव	मनसे ही
आत्म मायया	अपनी मायासे
स्वाप्नं लोकं	स्वप्नका यह लोक तथा
परं सृष्ट्वा	परलोक उत्पन्न करके
अनुविश्य	उसमें प्रवेश करके
अवभासते	प्रकाशित होता है ॥४५॥

शृण्वतां गदतां शश्वदर्चतां त्वाभिवन्दताम् ।
नृणां संवदतामन्तर्हृदि भास्यमलात्मनाम् ॥४६॥

शृण्वतां गदतां शश्वत् अर्चतां तु अभिवन्दतां नृणां संवदतां अन्तः हृदि भासि अमल आत्मनाम् ॥४६॥

शश्वत्	निरन्तर
शृण्वतां गदतां	(आपकी गुण-लीला) सुनते, बोलते
तु अर्चतां	तथा पूजा करते
अभिवन्दतां	वन्दना करते

संवदतां	परस्पर बात-चीत करते	**नृणां अन्तः हृदि**	मनुष्योंके हृदयके भीतर
अमल आत्मनां	निर्मल हृदय	**भासि**	(आप) प्रकाशित होते हैं ॥४६॥

हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम् ।
आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यन्त्युपेतगुणात्मनाम् ॥४७॥

हृदिस्थः अपि अति दूरस्थः कर्म विक्षिप्त चेतसां आत्मशक्तिभिः अग्राह्यः अपि अन्ति उपेतगुण आत्मनां

कर्म विक्षिप्त चेतसां	कर्मों लगनेसे चञ्चल चित्त वालोंके लिये	**आत्मनां**	चित्त वालोंके लिए
		आत्मशक्तिभिः	अपनी शक्तिसे
हृदिस्थः अपि	हृदयमें रहते हुए भी	**अग्राह्यः अपि**	अग्राह्य होने पर भी
अति दूरस्थः	(आप) बहुत दूर हैं	**अन्ति**	(आप) समीप हैं ॥४७॥
उपेतगुण	सद्गुण सम्पन्न बनाये		

नमोऽस्तु तेऽध्यात्मविदां परात्मने
अनात्मने स्वात्मविभक्तमृत्यवे ।
सकारणाकारणलिङ्गमीयुषे
स्वमायायासंवृतरुद्धदृष्टये ॥४८॥

नमः अस्तु ते अध्यात्म विदां पर आत्मने अनात्मने स्व आत्म विभक्त मृत्यवे सकारथ अकारण लिङ्गं ईयुषे स्वमायया असंवृत रुद्ध दृष्टये ॥४८॥

अध्यात्म विदां	अध्याम तत्त्वको जानने वालोंके लिए	**पर आत्मने**	अपने परम आत्म-तत्त्व रूपमें

स्व आत्म	अपनेको आत्मासे
विभक्त	पृथक (मानने) वालोंके लिए
मृत्यवे	मृत्यु रूप
सकारण	कारण वाले (महत्त्वादि)
अकारण लिङ्गं	तथा कारण रहित चिह्न मात्र (प्रकृति) के
इयुषे	शासक,
स्वमायया	अपनी मायासे
असंवृत	(स्वयं) अनाच्छादित
रुद्ध दृष्टये	(दूसरोंकी) दृष्टिको ढकने वाले
ते नमः अस्तु	आपको नमस्कार हो ॥४८॥

स त्वं शाधि स्वभृत्यान् नः किं देव करवाम हे ।
एतदन्तो नृणां क्लेशो यद् भवानक्षिगोचरः ॥४९॥

स त्वं शाधि स्वभृत्यान् नः किं देव करवामहे एतत् अन्तः नृणां क्लेशः यत् भवान् अक्षिगोचरः ॥४९॥

स देव त्वं	वह देव ! आप
नः स्वभृत्यान्	हम अपने सेवकोंको
शाधि	आज्ञा दीजिये
किं करवामहे	क्या (सेवा) करें ।
नृणां क्लेशः	मनुष्योंके क्लेशका
एतत् अन्तः	यहीं अन्त हो जाता है
यत् भवान्	जो आप
अक्षिगोचरः	नेत्रोंके सामने आ गये ॥४९॥

श्रीशुक उवाच ॥

तदुक्तमित्युपाकर्ण्य भगवान् प्रणतार्तिहा ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसंस्तमुवाच ह ॥५०॥

तत् उक्तं इति उपाकर्ण्य भगवान् प्रणत आर्तिहा गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसन् तं उवाच ह ॥५०॥

इति तत् उक्तं	इस प्रकार उनकी बात
उपाकर्ण्य	सुनकर
प्रणत आर्तिहा	शरणागत क्लेश नाशक
भगवान	भगवानने
पाणिना पाणिं	अपने हाथसे उनका हाथ
गृहीत्वा प्रहसन्	पकड़ कर हँसते हुए
तं ह उवाच	उनसे ही कहा ॥५०॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

ब्रह्मांस्तेऽनुग्रहार्थाय सम्प्राप्तान् विद्धयमून् मुनीन् ।
संचरन्ति मया लोकान् पुनन्तः पादरेणुभिः ॥५१॥

ब्रह्मन् ते अनुग्रह अर्थाय सम्प्राप्तान् विद्धि अमून् मुनीन् सञ्चरन्ति मया लोकान् पुनन्तः पादरेणुभिः ॥५१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
अमून् मुनीन्	इन मुनियोंको
ते अनुग्रह	तुम पर कृपा
अर्थाय	करनेके लिए
सम्प्राप्तान्	आये
विद्धि	जानो
पादरेणुभिः	अपनी चरण-रजसे
लोकान् पुनन्तः	लोकोंको पवित्र करते हुए
मया सञ्चरन्ति	मेरे साथ विचरण कर रहे हैं ॥५१॥

देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः ।
शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥५२॥

देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शन स्पर्शन अर्चनैः शनैः पुनन्ति कालेन तदपि अर्हत्तम ईक्षया ॥५२॥

देवाः क्षेत्राणि	देवता, पुण्य-क्षेत्र
तीर्थानि	तीर्थ
दर्शन स्पर्शन	दर्शन, स्पर्श
अर्चनै कालेन	पूजनसे बहुत समय में

शनैः पुनन्ति	धीरे-धीरे पवित्र करते हैं	**अर्हत्तम ईक्षया**	पूज्यतमकी दृष्टिसे आती है ॥५२॥
तशपि	वह भी (शक्ति उनमें किसी)		

ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान् सर्वेषां प्राणिनामिह ।
तपसा विद्यया तुष्टया किमु मत्कलया युतः ॥५३॥

ब्राह्मणः जन्मना श्रेयान् सर्वेषां प्राणिनां इह तपसा विद्यया तुष्टया किमु मत् कलया युतः ॥५३॥

इह सर्वेषां	इस लोकमें सभी	**तुष्टया मत्**	सन्तोष, मेरी
प्राणिनां	प्राणियोंमें	**कलया**	कला-भक्ति
ब्राह्मणः	ब्राह्मण	**युतः किमु**	युक्त हो तो कहना ही क्या ॥६३॥
जन्मना श्रेयान्	जन्मसे ही श्रेष्ठ है		
तपसा विद्यया	फिर तपस्या, विद्या		

न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम् ।
सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम् ॥५४॥

न ब्राह्मणात् मे दयितं रूपं एतत् चतुर्भुजं सर्ववेदमयः विप्रः सर्वदेव मयः हि अहम् ॥५४॥

ब्राह्मणात्	ब्राह्मणसे (अधिक)	**हि विप्रः**	क्योंकि ब्राह्मण
दयितं मे एतत्	प्रिय मुझे यह (अपना)	**सर्ववेदमयः**	सर्व वेदमय हैं और
चतुर्भुजं रूपं न	चतुर्भुज रूप नहीं है	**अहं सर्व देवमयः**	मैं सर्व देवमय हूँ ॥५४॥

दुष्प्रज्ञा अविदित्वैवमवजानन्त्यसूयवः ।
गुरुं मां विप्रमात्मानमर्चादाविज्यदृष्टयः ॥५५॥

दुष्प्रज्ञा अविदित्वा एवं अवजानन्ति असूयवः गुरुं मां विप्रं आत्मानं अर्चा आदाः इज्य दृष्टयः ॥५५॥

अर्चा आदाः	मूर्ति आदिमें	**एवं अविदित्वा**	ऐसा न जानकर
इज्य दृष्टयः	पूज्य दृष्टि रखने वाले	**मां आत्मानं**	मुझ आत्मा तथा
		गुरुं विप्रं	गुरु स्वरूप ब्राह्मण का
दुष्प्रज्ञा	दुर्बुद्धि लोग		
असूयवः	गुणोंमें दोष निकालने वाले	**अवजानन्ति**	अनादर करते हैं ॥५५॥

चराचरमिदं विश्वं भावा ये चास्य हेतवः ।
मद्रुपाणीति चेतस्याधत्ते विप्रो मदीक्षया ॥५६॥

चर अचरं इदं विश्वं भावा ये च अस्य हेतवः मत् रूपाणि इति चेत् अस्य आधत्ते विप्रः मत् ईक्षया ॥५६॥

मत् ईक्षया	मेरा साक्षात्कार करके	**अस्य हेतवः**	इस (जगत)के कारण हैं
विप्रः	ब्राह्मण	**मत् रूपाणि**	मेरे स्वरूप हैं
इदं चर अचरं	इस चराचर	**इति चेत आधत्ते**	ऐसी चित्तमें धारणा दृढ़ कर लेता है ॥५६॥
विश्वं	जगतको		
च ये भावा	तथा जो भाव		

तस्माद् ब्रह्मऋषीनेतान् ब्रह्मन् मच्छ्रद्धयार्चय ।
एवं चेदर्चितोऽस्म्यद्धा नान्यथा भूरिभूतिभिः ॥५७॥

तस्मात् ब्रह्म ऋषीन् एतान् ब्रह्मन् मत् श्रद्धया अर्चय एवं चेत् अर्चितः अस्मि अद्धा न अन्यथा भूरि भूतिभिः ॥५७॥

तस्मात्	इसलिए	**एतान्**	इन
		ब्रह्म ऋषीन्	ब्रह्मर्षियोंकी

मत् श्रद्धया मेरा स्वरूप समझकर
अर्चय पूजा करो
एवं चेत् यदि ऐसा करोगे तो
अद्धा मैं साक्षात्
अर्चितः अस्मि अर्चित होऊँगा
अन्यथा अन्यथा
भूरि भूतिभिः बहुत वैभवसे (पूजा करने पर)
न नहीं (पूजित होता) ॥५७॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

स इत्थं प्रभुणाऽऽदिष्टः सहकृष्णान् द्विजोत्तमान् ।
आराध्यैकात्मभावेन मैथिलश्चाप सद्गतिम् ॥५८॥

स इत्थं प्रभुणा आदिष्टः सह कृष्णान् द्विज उत्तमान् आराध्य एक आत्म भावेन मैथिलः च आप सद्गतिम् ॥५८॥

इत्थं प्रभुणा इस प्रकार स्वामीके द्वारा
आदिष्टः आदेश देने पर
सह कृष्णान् श्रीकृष्णके साथ
द्विज उत्तमान् उन विप्रवरोंकी
एक आत्म भावेन आत्मैक्य भावसे
आराध्य आराधना करके
स मैथिलः च वे तथा मिथिला नरेश भी
सद्गतिं आप सद्गति प्राप्त हुए ॥५८॥

एवं स्वभक्तयो राजन् भगवान् भक्तभक्तिमान् ।
उषित्वाऽऽदिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् ॥५९॥

एवं स्वभक्तयो राजन् भगवान् भक्तभक्तिमान् उषित्वा आदिश्य सन्मार्गं पुनः द्वारवतीं अगात् ॥५९॥

राजन् राजन् !
भक्तभक्तिमान् भक्तोंकी भक्ति करने वाले

भगवान्	भगवान	**सन्मार्गं**	सन्मार्गका
एवं स्वभक्तयोः	इस प्रकार अपने भक्तोंके यहाँ	**आदिश्य**	उपदेश करके
		पुनः द्वारवतीं	फिर द्वारिका
उषित्वा	रहकर*	**अगात्**	लौट आये ॥५९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे श्रुतदेवानुग्रहो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

---

*इस कथामें भगवान ऋषियोंके साथ दो रूप तो हुए ही, कालका भी उन्होंने नियन्त्रण किया। राजाके यहाँ कुछ दिन रहे और श्रुतदेवके यहाँ केवल एक दिन रहे; किन्तु दोनों समयको बराबर करके एक साथ लौटे।

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

॥ राजोवाच ॥*

ब्रह्मन् ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः ।
कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात् सदसतः परे ॥ १ ॥

ब्रह्मन् ब्रह्मणि अनिर्देश्य निर्गुणे गुणवृत्तयः कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात् सत् असतः परे ॥१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
सत् असतः परे	कारण-कार्यातीत
अनिर्देश्ये	जिसका संकेत भी नहीं हो सकता
साक्षात् निर्गुणे ब्रह्मणि	उस साक्षात् निर्गुण ब्रह्ममें
गुणवृत्तयः	गुणोंमें ही व्यवहार करनेवाली
श्रुतयः	श्रुतियाँ
कथं चरन्ति	कैसे प्रवृत्त होती हैं ॥१॥

तात्पर्य—श्रुतियोंका प्रतिपादन विषय तो गुणमय संसारके व्यवहार हैं तो वे निर्गुण ब्रह्माका कैसे प्रतिपादन करती हैं, क्योंकि निर्गुणका तो संकेत भी सम्भव नहीं। संकेत तो गुणोंके ही द्वारा होता है।

॥ श्रीशक उवाच ॥

बुद्धीन्द्रियमनः प्राणान् जनानामसृजत् प्रभुः ।
मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च ॥ २ ॥

---

*गीताप्रेसकी प्रतिमें यहाँ 'परीक्षिदुवाच' है और किन्हीं प्रतियोंमें 'विष्णुरात उवाच' है।

बुद्धि इन्द्रिय मनः प्राणान् जनानां असृजत् प्रभुः मात्रा अर्थं च भव अर्थं च आत्मने अकल्पनाय च ॥२॥

प्रभुः	सर्वसमर्थ परमात्माने
जनानां	जीवोंके लिए
मात्रा अर्थ	(रूप रसादि) तन्मात्राओंका योग करनेके लिए
भव अर्थ	संसार प्रवाह चलता रहे इसलिए
च आत्मने	तथा अपने स्वरूपकी
अकल्पनाय	धारणा बनाने (आत्मज्ञान)के लिए
बुद्धि इन्द्रिय	बुद्धि, इन्द्रियाँ
मनः प्राणान्	मन तथा प्राणोंकी
असृजत्	सृष्टि की ॥२॥

सैषा ह्युपनिषद् ब्राह्मी पूर्वेषां पूर्वजैर्धृता ।
श्रद्धया धारयेद् यस्तां क्षेमं गच्छेदकिंचनः ॥ ३ ॥

स एषा हि उपनिषत् ब्राह्मी पूर्वेषां पूर्वजैः धृता श्रद्धया धारयेत् यः तां क्षेमं गच्छेत् अकिञ्चनः ,।३॥

हि स एषा	क्योंकि वह यह
ब्राह्मी उपनिषत्	ब्रह्म प्रतिपादक उपनिषत्
पूर्वेषां पूर्वजैः	पूर्व पुरुषोंने भी अपने पूर्वजोंसे
धृता	धारण किया है
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक
यः तां धारयेत्	जो उसे धारण करता है
अकिञ्चनः	सब(बन्धनके कारण) त्यागकर
क्षेमं गच्छेत्	कल्याण प्राप्त करता है ॥३॥

तात्पर्य—उपनिषत् अनादि है। वह श्रवण-परम्परासे ही आ रहा ज्ञान है। इसमें तर्ककी गति नहीं है। श्रद्धासे इसे धारण करके परम-कल्याण होता है ।

अत्र ते वर्णयिष्यामि गाथां नारायणान्विताम् ।
नारदस्य च संवादमृषेर्नारायणस्य च ॥ ४ ॥

अत्र ते वर्णयिष्यामि गाथां नारायण अन्वितां नारदस्य च संवादं ऋषेः नारायणस्य च ॥४॥

अत्र ते इस विषयमें तुमसे
नारायण अन्वितां नारायणसे सम्बन्धित
नारदस्य च नारदजीका तथा
ऋषेः नारायणस्य ऋषि नारायणके
संवादं गाथां संवादकी कथा
वर्णयिष्यामि वर्णन करूँगा ॥४॥

एकदा नारदो लोकान् पर्यटन् भगवत्प्रियः ।
सनातनमृषिं द्रष्टुं ययौ नारायणाश्रमम् ॥ ५ ॥

एकदा नारदः लोकान् पर्यटन् भगवत् प्रियः सनातनं ऋषिं द्रष्टुं ययौ नारायण आश्रमम् ॥५॥

एकदा एकबार
भगवत् प्रियः भगवानके प्यारे
नारदः नारदजी
लोकान् पर्यटन् लोकोंमें घूमते हुए
सनातनं ऋषिं सनातन ऋषि (नारायण)का
द्रष्टुं दर्शन करनेके लिए
नारायण आश्रमं नारायण आश्रम (बदरीनाथ)
ययौ गये ॥५॥

यो वै भारतवर्षेऽस्मिन् क्षेमाय स्वस्तये नृणाम् ।
धर्मज्ञानशमोपेतमाकल्पादास्थितस्तपः ॥ ६ ॥

यः वै भारतवर्षे अस्मिन् क्षेमाय स्वस्तये नृणां धर्म ज्ञान शम उपेतं आकल्पात् आस्थितः तपः ॥६॥

यः वै जो निश्चय ही
नृणां क्षेमाय मनुष्योंके परम कल्याण तथा
स्वस्तये (लौकिक) कुशलके लिए
अस्मिन् भारतवर्षे इस भारतवर्षमें

धर्म ज्ञान	धर्म, ज्ञान एवं	**तपः आस्थितः**	तपस्या कर
शम उपेतं	मनके शमनयुक्त		रहे हैं ॥६॥
आकल्पात्	कल्प पर्यन्तके लिए		

तत्रोपविष्टमृषिभिः कलापग्रामवासिभिः ।
परीतं प्रणतोऽपृच्छदिदमेव कुरूद्वह ॥ ७ ॥

तत्र उपविष्टं ऋषिभिः कलाप ग्रामवासिभिः परीतं प्रणतः अपृच्छत् इदं एव कुरूद्वह ॥७॥

कुरूद्वह	कुरूकुल पालक परीक्षित !	**ऋषिभिः परीतं**	ऋषियोंसे घिरे
तत्र कलाप	वहाँ कलाप	**उपविष्टं**	बैठे हुए (नारायण)को
ग्रामवासिभिः	ग्रामवासी	**प्रणतः**	प्रणाम करके
		इदं एव अपृच्छत्	यही पूछा ॥७॥

तस्मै ह्यवोचद् भगवानृषीणां शृण्वतामिदम् ।
यो ब्रह्मवादः पूर्वेषां जनलोकनिवासिनाम् ॥ ८ ॥

तस्मै हि अवोचत् भगवान् ऋषीणां शृण्वतां इदं यः ब्रह्मवादः पूर्वेषां जनलोक निवासिनाम् ॥८॥

हि तस्मै	क्योंकि उन (नारदजी)से	**यः ब्रह्मवादः**	जो ब्रह्मचर्चा हुई थी
ऋषीणां शृण्वतां	ऋषियोंके सुनते हुए	**भगवान् इदं**	उसे भगवानने इस प्रकार
जनलोक	जनलोक	**अवोचत्**	सुनाया ॥८॥
निवासिनां	निवासी		
पूर्वेषां	पूर्व पुरुषोंमें		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

स्वायम्भुव ब्रह्मसत्रं जनलोकेऽभवत् पुरा ।
तत्रस्थानां मानसानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ९ ॥

स्वायम्भुव ब्रह्मसत्रं जनलोके अभवत् पुरा तत्रस्थानां मानसानां मुनीनां ऊर्ध्व रेतसाम् ॥९॥

स्वायम्भुव	ब्रह्म-पुत्र नारदजी !	**ऊर्ध्व रेतसां**	आजन्म ब्रह्मचारी
पुरा जनलोके	पहिले जनलोकमें	**मुनीनां**	ऋषियोंका
तत्रस्थानां	वहाँ रहने वाले	**ब्रह्मसत्रं अभवत्**	ब्रह्मसत्र हुआ था ॥९॥
मानसानां	मानसिक सृष्टिसे उत्पन्न		

श्वेद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं तदीश्वरम् ।
ब्रह्मवादः सुसंवृत्तः श्रुतयो यत्र शेरते ।
तत्र ह्यायमभूत् प्रश्नस्त्वं मां यमनुपृच्छसि ॥१०॥

श्वेतद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं तत् ईश्वरं ब्रह्मवादः सुसंवृत्तः श्रुतयः यत्र शेरते तत्र ह अयं अभूत् प्रश्नः त्वं मां यं अनुपृच्छसि ॥१०॥

त्वयि श्वेतद्वीपं	तुम्हारे श्वेतद्वीप	**शेरते**	सो जाती (मौन हो जाती) हैं
तत् ईश्वरं	उसके स्वामी (अनिरुद्ध मूर्ति)का	**तत्र ह**	वहाँ ही
द्रष्टुं गतवति	दर्शन करने जानेपर	**अयं प्रश्नः**	यह प्रश्न
सुसंवृत्तः	अत्यन्त सुन्दर ऐकान्तिक	**अभत्**	हुआ था
ब्रह्मवादः	ब्रह्म-चर्चा हुई थी	**यं त्वं मां**	जिसे तुम मुझसे
यत्र श्रुतयः	जिसके विषयमें श्रुतियाँ	**अनुपृच्छसि**	पूछ रहे हो ॥१०॥

तुल्यश्रुततपःशीलातुल्यस्वीयारिमध्यमाः ।
अपि चक्रुः प्रवचनमेकं शुश्रूषवोऽपरे ॥११॥

तुल्य श्रुत तपः शीलाः तुल्य स्वीय अरिमध्यमाः अपि चक्रुः प्रवचनं एकं शुश्रूषवः अपरे ॥११॥

श्रुत तपः	(वे सनकादि चारों भाई) विद्या, तप	**अपि**	रहनेपर भी
शील तुल्य	सदाचारमें समान हैं	**एकं प्रवचनं चक्रुः**	(उनमें-से) एक प्रवचन करने लगे
स्वीय अरि-	स्वजन, शत्रु तथा	**अपरे शुश्रूषवः**	दूसरे सुननेकी इच्छासे बैठ गये ॥११॥
मध्यमाः तुल्य	मध्यम (उदासीन) के प्रति समान		

॥ सनन्दन उवाच ॥

स्वसृष्टमिदमापीय शयानं सह शक्तिभिः ।
तदन्ते बोधयांचक्रुस्तल्लिङ्गैः श्रुतयः परम् ॥१२॥

स्वसृष्टं इदं आपीय शयानं सह शक्तिभिः तत् अन्ते बोधयान् चक्रुः तत् लिङ्गैः श्रुतयः परम् ॥१२॥

स्वसृष्टं	अपने बनाये हुए	**तत् अन्ते**	उस (प्रलयकाल)के अन्तमें
इदं शक्तिभिः सह	इस जगतको शक्तियोंके साथ	**तत् लिङ्गैः**	उनके लक्षण-वर्णन द्वारा
आपीय शयानं	पीकर (लील करके) सोते	**बोधयान् चक्रुः**	जगाने लगीं ॥१२॥
परम् श्रुतयः	परम पुरुषको श्रुतियाँ		

यथा शयानं सम्राजं वन्दिनस्तत्पराक्रमैः ।
प्रत्यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्बोधयन्त्यनुजीविनः ॥१३॥

यथा शयानं सम्राजं वन्दिनः तत् पराक्रमैः प्रत्यूषे अभ्येत्य सुश्लोकैः बोधयन्ति अनुजीविनः ॥१३॥

यथा शयानं	जैसे सोये हुए	**अनुजीविनः**	उसके अनुजीवी
सम्राजं	सम्राटको	**वन्दिनः**	बन्दी लोग

प्रत्यूषे अभ्येत्य	ब्रह्ममुहूर्तमें उसके पास जाकर	**सुश्लोकैः**	उसके उत्तम यशका गान करके
		बोधयन्ति	जगाते हैं ॥१३॥

॥ श्रुतय उचुः ॥

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां ।
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ।
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥१४॥

जय जय जहि अजां अजित दोष गृभीत गुणां त्वं असि यत् आत्मना सम अवरुद्ध समस्त भगः अग जगत् ओकसां अखिलशक्ति अवबोधक ते क्वचित् अजया आत्मना च चरतः अनुचरेत् निगमः ॥१४॥

जय	जय हो !	**त्वं असि**	आप ही हैं
अजित ते जय	अजित प्रभु आपकी जय हो !	**अग जगत्**	अचर-चर रूपमें
		ओकसां	रहनेवाले (समस्त जीवों) की
दोष	दोष (उत्पन्न करने के लिए)	**अखिलशक्ति**	समस्त शक्तियोंके
		अवबोधक ते	जगानेवाले आपमें
गृभीत गुणां	(सत्त्वादि) गुण ग्रहण करने वाली	**क्वचित् आत्मना**	कभी अपनी
		अजया च	(योग) मायाके साथ भी
अजां जहि	मायाको मार (नष्ट कर) दीजिए		
यत् आत्मना	क्योंकि अपने स्वरूपमें	**चरतः**	विहार करते समय (आपके)
समस्त भगः	सम्पूर्ण ऐश्वर्य	**निगमः**	श्रुति
सम अवरुद्ध	पूर्णतः समाहित किये	**अनुचरेत्**	पीछे चलती हैं ॥१४

तात्पर्य—मायामें जो सत्वादि गुण हैं, वे दोष ही उत्पन्न करते हैं, किन्तु समस्त ऐश्वर्य आपमें ही सन्निहित है, मायाको आप ही नष्ट कर

सकते हैं। चराचर वृष्टिमें जहाँ कहीं कोई शक्ति है, उसे जगानेवाले आप ही हैं। वैसे तो आपमें श्रुतियोंकी गति नहीं है, किन्तु जब आप अपनी योगमायाका आश्रय लेकर लीला-विहार करते हैं, तब श्रुति उनके वर्णन द्वारा आपका अनुगमन करती है।

बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्यवशेषतया
यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदि वाविकृतात्।
अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं
कथमयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम् ॥१५॥

बृहत् उपलब्धं एतत् अवयन्ति अवशेषतया यत उदय अस्तमयौ विकृतेः मृदि वा विकृतात् अतः ऋषयः दधुः त्वयि मनः वचन आचरितं कथं अयथा भवन्ति भुवि दत्त पदानि नृणाम् ॥१५॥

एतत् उपलब्धं	यह पाया जाने (दीखने) वाला
बृहत्	विराट् जगत्
अवशेषतया	(आपके ही) अन्तमें बच रहनेसे
अवयन्ति	(आपका ही स्वरूप) ज़ाना जाता है
यत	क्योंकि
विकृतेः	(मिट्टीके) विकारों (घड़े, सकोरे आदि) की
उदय अस्तमयौ	उत्पत्ति और विलीन होना
वा विकृतात्	अथवा विकार (घड़े आदि) रहने पर भी
मृदि	मिट्टी ही है
अतः ऋषयः	अतः ऋषिगण
मनः वचन	मन, वाणी
आचरितं	आचरण
त्वयि दधुः	आपमें ही लगाते हैं
नृणां भुवि दत्त	मनुष्यके पृथ्वीपर रखे
पदानि	पैर (चाहे चौकी आदिपर हों)
अयथा कथं भवन्ति	अन्यथा (पृथ्वीपर नहीं हैं) ऐसा कैसे हो सकता है ॥१५॥

तात्पर्य—जैसे मिट्टीसे बने घड़े आदिकी उत्पत्ति मिट्टीसे है, नष्ट होने पर भी मिट्टी हो जायँगे और घड़ा रहते भी मिट्टी हैं, वैसे ही यह

विराट् जगत सृष्टिसे पूर्व, सृष्टिकालमें भी और प्रलय होने पर आपमें ही स्थित आपका स्वरूप है। अतः ऋषि तथा वेदवाणी चाहे जिसका निरूपण चिन्तन या अर्चन करें, वह सब आपमें ही लगा है। मनुष्यका पैर पट्टे, तख्ते आदि किसीपर हो, पृथ्वीपर नहीं है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता।

इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमल-
क्षपणकथामृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः।
किमुत पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाः
परम भजन्ति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ॥१६॥

इति तव सूरयः त्रय अधिपते अखिल लोक मलक्षपण कथा अमृत अब्धिं अवगाह्य तपांसि जहुः किम् उत पुनः स्वधाम विधुत आशय काल गुणाः परम भजन्ति ये पदं अजस्र सुख अनुभवम् ॥१६॥

इति	ऐसा समझकर	**आशय**	कर्माशय (अन्तःकरण)
त्रय अधिपते	तीनों लोकों (तीनों गुणों)के स्वामी	**काल गुणाः**	काल-प्रभाव तथा त्रिगुणोंको
तव अखिल लोक	आपके समस्त लोकोंके	**विधुत**	निरस्त किये
मलक्षपण	पापहारी	**अजस्र सुख**	अखण्ड आनन्द
कथा अमृत अब्धिं	कथा सुधा सागरमें	**अनुभवं**	अनुभव स्वरूप
सूरयः अवगाह्य	बुद्धिमान लोग, डुबकी लगाकर	**परम पदं**	परम पुरुष आपके चरणोंका
तपांसि जहुः	अपना त्रिताप-संताप त्याग देते हैं।	**ये भजन्ति**	जो भजन करते हैं
उत स्वधाम	फिर अपने तेजसे ही	**पुनः किं**	(उनकी) फिर क्या बात ॥१६॥

दृतय इव श्वसन्त्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा
महदहमादयोऽण्डमसृजन् यदनुग्रहतः।
पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु यः
सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम् ॥१७॥

दृतय इव श्वसन्ति असुभृतः यदि ते अनुविधा महत् अहं आदयः अण्डं असृजन् यत् अनुग्रहतः पुरुषविधः अन्वयः अत्र चरमः अन्नमय आदिषु यः सत् असतः परं त्वं अथ यत् एषु अवशेष मृतम् ॥१७॥

यदि असुभृतः	यदि प्राणधारी
ते अनुविधा	आपका भजन नहीं करते तो
दृतय इव	लुहारकी धौंकनीके समान
श्वसन्ति	श्वास लेते हैं
महत् अहं	महत्तत्व, अहंकार
आदयः	आदिने
यत् अनुग्रहतः	जिसके अनुग्रहसे ही
अण्डं असृजन्	ब्रह्माण्डकी सृष्टि की है
अत्र अन्नमया आदिषु	इस (ब्रह्माण्डमें) अन्नमय आदि कोशोंमें
यः चरमः	जो अन्तिम (आनन्दमय कोश) है
पुरुषविधः	(आनन्दमय) पुरुषके समान
अन्वयः	उस (पुरुष)के अन्बित (व्याप्त) होनेसे है
अथ त्वं	फिर आप तो
सत् असतः परं	कारण कार्यसे परे हो
यत् अवशेष	(आपके) अतिरिक्त जो बचता है
मृतम्	(वह तो) विनाश-वान है ॥१७॥

तात्पर्य - जो लोग आपका भजन नहीं करते, वे तो लुहारकी धौंकनीके समान व्यर्थ श्वास ले रहे हैं। महत्तत्व, अहंकारादिसे यह ब्रह्माण्ड आपकी कृपा, आपके इसमें व्याप्त होनेसे ही बना है। यहाँ जो कुछ आनन्दमय कोशसे प्राप्त सुखानुभव है भी, वह इसलिए है कि आप आनन्दमय कोशमें व्याप्त हैं। कार्य-कारण रूप सम्पूर्ण जगत आपका स्वरूप है। आपसे भिन्न जो है, वह नाशवान है।

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः
परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ।
तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं
पुनरिह यत् समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे ॥१८॥

उदरं उपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः परिसरपद्धतिं हृदयं आरुणयः दहरं तत उदगात् अनन्त तव धाम शिरः परमं पुनः इह यत् सम एत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे ॥१८॥

य ऋषिवर्त्मसु	(उपासना करने वालोंमें) जो ऋषियोंके मार्गमें	**तत उदगात्**	वहाँसे ऊपर जाती (सुषुम्ना नाड़ी)
कूर्पदृशः	स्थूल दृष्टि हैं वे	**अनन्त**	अनन्त !
उदरं उपासते	नाभि(मणिपूर चक्र) में उपासना करते हैं	**तव परमं धाम**	आपके परमधाम
		शिरः	मस्तक (सहस्रार)को
आरुणयः	आरुणि ऋषिके अनुयायी	**यत् सम एत्य**	जहाँ पहुँचकर (जीव)
परिसरपद्धतिं	रक्ताभिसरण (नाड़ियों)के केन्द्र	**पुनः इह**	फिर इस संसारमें
दहरं	हृदयमें (उपासना करते हैं)	**कृतान्तमुखे**	कालके मुखमें
		न पतन्ति	नहीं गिरता ॥१८॥

तात्पर्य—(जो भजन नहीं करते उनका जीवन तो व्यर्थ है और जो भजन-साधन करते भी हैं) उनमें जो नाभि-चक्रमें उपासना करते हैं वे ऋषियोंके मार्गमें स्थूल दृष्टि हैं (वे भटक सकते हैं) सब नाड़ियोंके केन्द्र हृदय चक्रसे सिरके सहस्रार चक्र तक सुषुम्ना नाड़ी जाती है। इस मार्गसे सहस्रार पहुँचे पर मोक्ष हो जाता है।

स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया
तरतमतश्चकास्यनलवत् स्वकृतानुकृतिः।
अथ वितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं
विरजधियोऽन्वयन्त्यभिविपण्यव एकरसम् ॥१९॥

स्वकृत विचित्रयोनिषु विशन् इव हेतु तया तरतमतः चकास्यसि अनलवत् स्वकृत अनुकृतिः अथ वितथासु अमूषु अवितथं तव धाम समं विरजधियः अनु अवयन्ति अभि विपण्यव एकरसम् ॥१९॥

स्वकृत	अपनी ही रचित	**तरतमतः**	तारतम्यसे
विचित्रयोनिषु	अनेक प्रकारकी योनियोंमें	**चकास्यसि**	प्रकाशित होते हैं
हेतु तया	उनके उपादान होनेसे	**अथ वितथासु**	अतः इन व्यर्थ
विशन् इव	प्रविष्ट हुएसे लगते	**अमूषु**	आकृतियोंमें
अनलवत्	अग्निके समान (जैसी मोटी-पतली लकड़ी उसमें प्रगट अग्नि वैसा)	**तव धाम**	आपका तेज
		अवितथं समं	अव्यर्थ और समान है
स्वकृत	अपनी बनाई (उन योनियों)	**विरजधियः**	निर्मल बुद्धि
		अभि विपण्यव	(लोक) व्यापारसे मुक्त (संत)
अनुकृतिः	के समान आकृतिमें	**एकरसं**	(आपको सर्वत्र) एकरस
		अवयन्ति	जानते हैं ॥१९॥

तात्पर्य—ब्रह्मासे कीड़े तक असख्य योनियोंके आप ही कारण हैं, अतः उनमें प्रविष्ट न होकर भी प्रविष्ट जैसे लगते हैं। जैसे अग्नि जैसी लकड़ीमें होता है वैसा छोटा-बड़ा दीखता है, ऐसे ही इन योनियोंके उत्तम-मध्यमके तारतम्यसे आप वैसे ही प्रतीत होते हैं, किन्तु संसार-व्यापार मुक्त निर्मल बुद्धि महात्मा आपको एकरस जानते हैं।

स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरन्तरसंवरणं
तव पुरुषं वदन्त्यखिलशक्तिधृतोंऽशकृतम् ।
इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं
भवत उपासतेऽङ्घ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः ॥२०॥

स्वकृत पुरेषु अमीषु बहिः अन्तर संवरणं तव पुरुषं वदन्ति अखिल-शक्ति धृतः अंशकृतं इति नृगति विविक्य कवयः निगम आपवनं भवत उपासते अंघ्रि अभवं भुवि विश्वसिताः ॥२०॥

स्वकृत	अपने कर्मोंसे बने	**पुरुषं**	जीवको
अमीषु परेषु	इन शरीरोंमें	**अखिलशक्ति धृतः**	समस्त शक्तियोंके धारक
बहिः अन्तर	बाहर-भीतर		
संवरणं	व्याप्त रहनेवाले	**तव अंशकृतं**	आपके अंशसे निर्मित

वदन्ति	कहते हैं,
इति नृगतिं	इस प्रकारकी मनुष्यकी गतिका
विविच्य	विचार करके
कवयः	बुद्धिमान लोग
विश्वसितां	विश्वास करके
भुवि निगम आवपनं	संसारमें वेदका विस्तार करनेवाले
भवत अभवं	आपके मोक्षदायक
अंघ्रि उपासते	चरणोंकी उपासना करते हैं ॥२०॥

तात्पर्य—शरीर सब जीवके कर्मोंसे बने हैं और जीव निर्मित तथा आवरण युक्त नहीं है, किन्तु शरीरोंके बाहर-भीतर व्याप्त जीवको आपके अंशसे बना इसलिए कहते हैं, क्योंकि समस्त शक्तियोंके धारक आप ही हैं। इतनी ही मनुष्यकी पहुँच है। अतः संसारमें वेद-मर्यादा स्थापित करनेवाले आपके चरणोंमें विश्वास करके बुद्धिमान लोग उन्हींकी उपासना करते हैं।

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनो-
श्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ।
न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते
चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः ॥२१॥

दुःअवगम आत्मतत्व निगमाय तव आत्ततनोः चरित महा अमृत अब्धि परिवर्त परिश्रमणाः न परिलषन्ति केचित् अपवर्गं अपि ईश्वर ते चरण-सरोज हंसकुल संग विसृष्ट गृहाः ॥२१॥

आत्मतत्व	आत्मतत्वको
दुःअवगम	जानना बहुत कठिन है
निगमाय	(उसका) ज्ञान करानेके लिए
आत्ततनोः	अनेक अवतार धारण करनेवाले
तव चरित	आपके चरित रूपी
अमृत महा अब्धि	अमृत महासागरमें
परिवर्तः	तैरने (लगे रहने)का
परिश्रमणाः	परिश्रम करनेवाले
केचित्	कोई (भक्त)
अपवर्गं अपि	मोक्ष भी
न परिलषन्ति	नहीं पसन्द करते
ते चरणसरोज	(वे) आपके चरण-कमलोंके
हंसकुल संग	(प्रेमी) परमहंस समुदायके साथसे
विसृष्ट गृहाः	गृह-त्याग कर देते हैं ॥२१॥

त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियव-
च्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च ।
न बत रमन्त्यहो असदुपासनयाऽऽत्महनो
यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः ॥२२॥

त्वत् अनुपथं कुलायं इदं आत्मसुहृत् प्रियवत् चरति तथा उन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च न बत रमन्ति अहो असत् उपासनया आत्महनः यत् अनुशया भ्रमन्ति उरुभये कुशरीरभृतः ॥२२॥

इदं कुलायं	यह शरीर
त्वत् अनुपथं	आपके मार्गके पीछे चलनेपर
आत्मसुहृत्	अपने मित्र
प्रियवत् चरति	प्रियके समान व्यवहार करता है
तथा त्वयि च	तथा आप भी
उन्मुखे	इसके अभिमुख
हिते प्रिय	हितैषी, प्रिय
आत्मनि	आत्मा हैं
बत अहो	फिर भी आश्चर्य है कि
असत् उपासनया	असत् विषयोंकी उपासनामें लगनेसे
आत्महनः	आत्महत्या प्राय करनेवाले
न रमन्ति	(आपमें) नहीं लगते (उसमें लगते हैं)
यत् अनुशया	जिसके पीछे लगकर
कुशरीरभृतः	(कीट-पशु आदि) बुरे शरीर धारण करके
उरुभये	अत्यन्त भयपूर्ण (संसार)में
भ्रमन्ति	भटकते हैं ॥२२॥

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि य-
न्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ।
स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो
वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रि सरोजसुधाः ॥२३॥

निभृत मरुत् मनः अक्षदृढ़ योगयुजः हृदि यत् मुनयः उपासते तत् अरयः अपि ययुः स्मरणात् स्त्रियः उरग इन्द्रभोग भुजदण्ड विषक्तधियः वयं अपि ते समाः समदृशः अंघ्रि सरोज सुधाः ॥२३॥

निभृत	(आपकी प्राप्ति तो सरल है) एकान्तमें	**ततु ययुः**	उन्हीं (आपको) प्राप्त करते हैं ।
मरुत् मनः	प्राण, मन	**उरग इन्द्रभोग**	सर्पेन्द्रके शरीरके समान
अक्षदृढ़	इन्द्रियोंको स्थिर करके	**भुजदण्ड**	(मोटे लम्बे) आपके भुजदण्डोंमें
योगयुजः	योग करनेवाले	**विषक्तधियः**	आसक्त चित्त
मुनयः यत्	मुनिगण जिनकी	**स्त्रियः अपि**	स्त्रियां (गोपियां) भी
हृदि उपासते	हृदयमें उपासना करते हैं,	**वयं समाः**	हम श्रुतियोंके समान
अरयः अपि	शत्रु भी	**ते समदृशः**	आप समदर्शीके
स्मरणात्	(वैर भावसे) स्मरण करनेसे	**अंघ्रि सरोज**	चरण-कमलका
		सुधा	अमृत पाती हैं ॥२३॥

क इह नु वेद बतावरजन्मलयोऽग्रसरं
यत उदगादृषिर्यमनु देवगणा उभये ।
तर्हि न सन्न चासदुभयं न च कालजवः
किमपि न तत्र शास्त्रमवकृष्य शयीत यदा ॥२४॥

कः इह नु वेद बत अवरजन्मलयः अग्रसरं यत उदगात् ऋषिः यं अनु देवगणा उभये तर्हि न सत् न च असत् उभयं न च कालजवः किमपि न तत्र शास्त्रं अवकृष्य शयीत यदा ॥२४॥

अवरजन्मलयः	जिसकी जन्म-मृत्यु पीछे ही हो जाती है	**वेद**	उसे जान सके
		यत ऋषिः	जिससे परमर्षि ब्रह्मा
नु इह कः	भला इस संसारमें ऐसा कौन है जो	**उदगात्**	उत्पन्न हुए
		यं अनु	जिनके पीछे

उभये देवगणा	दोनों प्रकार (निवृत्ति एवं प्रवृत्ति परायण) देवगण हुए
यदा	और जब (आप)
शास्त्रं अवकृष्य	वेदको अपनेमें आकृष्ट करके
शयीत	सो जाते हैं तो
तर्हि न सत्	तब न कारण होता
न असत्	न कार्य
च न कालजवः	और न कालकी गति
तत्र किमपि न	वहाँ कुछ भी नहीं होता ॥२४॥

जनिमसतः सतो मृतिमुतात्मनि ये च भिदां
विपणमृतं स्मरन्त्युपदिशन्ति त आरुपितैः ।
त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता
त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे ॥२५॥

जनि असतः सतः मृति उत आत्मनि ये च भिदां विपणं ऋतं स्मरन्ति उपदिशन्ति त आरुपितैः त्रिगुणमयः पुमान् इति भिदा यत् अबोध कृता त्वयि न ततः परत्र स भवेत् अवबोध रसे ॥२५॥

असतः जनि	असत् (जगत) की उत्पत्ति होती है
सतः मृति	सत् (जीव) की मृत्यु (मुक्ति) होती है
उत आत्मनि भिदां	तथा आत्मामें भेद है (जीव अनेक हैं)
ये च स्मरन्ति	जो भी ऐसा सोचते तथा
उपदिशन्ति	उपदेश करते हैं
त आरुपितैः	वे आरोपित
विपणं ऋतं	व्यवहारिक सत्य कहवे हैं
पुमान् त्रिगुणमयः	जीव त्रिगुणमय है
इति भिदा	इसलिए (गुणोंके तारतम्यसे) उसमें भेद है
यत् अबोध कृता	क्योंकि यह तो अज्ञान जन्य है
त्वयि ततः परत्र	आप उस (अज्ञान) से सर्वथा परे
अवबोध रसे	ज्ञान स्वरूपमें
स न भवेत्	वह अज्ञान नहीं हो सकता है ॥२५॥

सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजात्
सदभिमृशन्त्यशेषमिदमात्मतयाऽऽत्मविदः ।
नहि विकृंति त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया
स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयावसितम् ॥२६॥

सत् इव मनः त्रिवृत् त्वयि विभाति असत् आमनुजात् सत् अभिमृशन्ति अशेषं इदं आत्मतया आत्मविदः न हि विकृंति त्यजन्ति कनकस्य तत् आत्मतया स्वकृतं अनुप्रविष्टं इदं आत्मतया अवसितम् ॥२६॥

आमनुजात्	मनुष्य (पुरुष) से लेकर
त्रिवृत्	त्रिगुणमय (सम्पूर्ण संसार)
असत्	असत् (होनेपर भी)
मनः सत् इव	मनके द्वारा सत्के समान
त्वयि विभाति	आपमें प्रतीत हो रहा है
आत्मविदः	आत्मतत्त्ववेत्ताजन
इदं अशेषं	इस सम्पूर्णको
आत्मतया	अपना स्वरूप होनेसे
सत् अभिमृशन्ति	सत्स्वरूपमें विचार करते हैं
हि कनकस्य	क्योंकि स्वर्णके
विकृंति	विकार (आभूषणों) को
तत् आत्मतया	उस (स्वर्णका) स्वरूप होनेसे
त्यजन्ति न	त्यागते नहीं हैं
स्वकृतं	(इसी प्रकार) अपने द्वारा निर्मित
इदं	इस जगतमें
अनुप्रविष्टं	सर्वत्र प्रविष्ट (आपको)
आत्मतया	आत्माका स्वरूप
अवसितं	(ज्ञानी) जानते हैं ॥२६॥

तव परि ये चरन्त्यखिलसत्त्वनिकेततया
त उत पदाऽऽक्रमन्त्यविगणय्य शिरो निर्ऋतेः ।
परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तां-
स्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनन्ति न ये विमुखाः ॥२७॥

तव परि ये चरन्ति अखिलसत्व निकेततया त उत पदा आक्रमन्ति अविगणय्य शिरः निर्ऋतेः परिवयसे पशून् इव गिरा बिबुधान् अपि तान् त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनन्ति न ये विमुखाः ॥२७॥

अखिलसत्त्व निकेततया	समस्त प्राणियोंके निवास (अधिष्ठान) रूपसे
ये तव	जो आपकी
परि चरन्ति	परिचर्या करते हैं
त उत निर्ऋतेः	वही तो मृत्युकी भी
अविगणय्य	अवमानना करके
शिरः पदा आक्रमन्ति	उसके सिरपर लात मारते हैं
पशून् इव	(अन्यथा) पशुओंकी भाँति
गिरा	अपनी वेदवाणीसे (आप)
बिबुधान् अपि	देवताओंको भी
परिवयसे	बाँधते हैं
ये विमुखाः	जो (आपसे) विमुख हैं
न	(वे) ऐसा नहीं कर सकते
खलु त्वयि	अहो आपसे
कृतसौहृदाः	मैत्री करने वाले
तान् अपि	उन्हें भी
पुनन्ति	पवित्र करते हैं

॥२७॥

त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधर-
स्तव बलिमुद्वहन्ति समदन्त्यजयानिमिषाः ।
वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजो
विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥२८॥

त्वं अकरणः स्वराट अखिलकारक शक्तिधरः तव बलिं उद्वहन्ति समदन्ति अजया अनिमिषाः वर्षभुजः अखिलक्षितिपतेः इव विश्वसृजः विदधति यत्र ये तु अधिकृता भवतः चकिताः ॥२८॥

त्वं अकरणः	आप इन्द्रियादि तथा अन्तःकरण रहित हो, किन्तु
अखिलकारक शक्तिधरः	समस्त उपकरणोंकी शक्ति धारण करते हो

वर्षभुजः जैसे एक वर्षके ठेकेदार (या सामन्तगण प्रजासे कर लेकर)
अखिलक्षितिपतेः सम्राट्को (कर देते हैं)
इव उनके समान
पे तु भवत; जो भी आपके द्वारा
अधिकृता अधिकार प्राप्त
यत्र विश्वसृजः जहाँ भी लोकपाल हैं
अनिमिषाः वे देवता
तव बलिं उद्वहन्ति आपको उपहार देकर
समदन्ति अपना भाग भोगते हैं
चकिताः चकित होकर
अजया माया प्रेरित
विदधति (आपके) विधानका पालन करते हैं

स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो
विहर उदीक्षया यदि परस्य विमुक्त ततः ।
न हि परमस्य कश्चिदपरो न परश्च भवेद्
वियत इवापदस्य तव शून्यतुलां दधतः ॥२९॥

स्थिरचरजातयः स्युः अजयोत्थ निमित्तयुजः विहर उत् ईक्षया यदि परस्यविमुक्त ततः न हि परमस्य कश्चित् अपरः न परः च भवेत् वियत इव अपदस्य तव शून्यतुलां दधतः ॥२९॥

यदि ईक्षया यदि अपना दृष्टिपात देकर
निमित्तयुजः (सृष्टिके) निमित्त बनकर (आप)
विहर विहार करते हैं (तब)
अजयोत्थ मायासे उत्पन्न
स्थिरचरजातयः सब स्थावर-जंगम जातियाँ
स्युः उत्पन्न होती हैं
उत् ततः हि अन्यथा फिर क्योंकि
परस्यविमुक्त आप (मायासे) परे नित्यमुक्त
अपदस्य स्थान (आश्रय) रहित
वियत इव आकाशके समान
शून्यतुलां शून्यकी समानता
दधतः तव धारण किये आप
परमस्य परमपुरुषका
न कश्चित् न कोई अपना
च न परः भवेत् तथा न पराया हो सकता ॥२९॥

तात्पर्य—आप यदि निमित्त बनकर मायाको देखें तो आपकी दृष्टिसे मायासे यह सब जड़-चेतन सृष्टि उत्पन्न होती है। आप नित्यमुक्त, मायासे परे आकाशके समान स्वाश्रय हैं। आपका कोई अपना-पराया नहीं है। अतः आपके लिए सृष्टि किसी निमित्तसे नहीं होती। यह तो आपका लीला विहार है।

अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगता-
स्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा।
अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्
सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया ॥३०॥

अपरिमिता ध्रुवाः तनुभृतः यदि सर्वगताः तर्हि न शास्यत इति नियमः ध्रुव न इतरथा अजनि च यत् मयं तत् अविमुच्य नियन्तृ भवेत् समं अनुजानतां यत् अमतं मत दुष्टतया ॥३०॥

अपरिमिता	असंख्य	**च अजनि**	और अजन्मा पुरुष
तनुभृतः	जीव	**यत् मयं**	जिस स्वरूपका है
यदि ध्रुवाः	यदि नित्य और	**तत् अविमुच्य**	उसे छोड़े बिना ही
सर्वगताः	सर्वव्यापक हों	**नियन्तृ भवेत्**	नियन्ता होता है
तर्हि न शास्यत	तब आप उनका नियन्त्रण	**समं**	उस एकरस तत्व (आपको)
न इति	नहीं कर सकते ऐसा	**अनुजानतां**	ठीक जानकर
ध्रुव नियमः	निश्चित नियम होगा	**यत् अमतं**	जो मत नहीं हैं
इतरथा न	इससे भिन्न स्थिति नहीं हो सकती	**मत दुष्टतया**	वे मत दूषित हैं ॥३०॥

तात्पर्य—यदि जीव असंख्य, नित्य, सर्वव्यापक हों तो उनका कोई नियन्ता नहीं हो सकता, इससे भिन्न नियम ही नहीं बन सकता और आप अजन्माको जो (सच्चिदानन्द) स्वरूप है, उसे त्यागे बिना ही आप नियन्ता

हैं। जीव तो त्रिगुणमय है। उन गुणोंको त्यागे बिना नियन्ता हो नहीं सकता। अतः जो एकरस समतत्वसे सहमत नहीं हैं, उनके सिद्धान्तमें ही दोष है।

न घटत उद्भवः प्रकृतिपूरुषयोरजयो-
रुभययुजा भवन्त्यसुभृतो जलबुद्बुदवत्।
त्वयि त इमे ततो विविधनामगुणैः परमे
सरित इवार्णवे मधुनि लिल्युरशेषरसाः ॥३१॥

न घटत उद्भवः प्रकृतिपूरुषयोः अजयोः उभययुजा भवन्ति असुभृतः जलबुद्बुदवत् त्वयि त इमे ततः विविध नाम गुणैः परमे सरित इव अर्णवे मधुनि लिल्युः अशेषरसाः ॥३१॥

अजयोः अजन्मा
प्रकृतिपूरुषयोः प्रकृति और पुरुष (दोनों) की
उद्भवः न घटेत उत्पत्ति नहीं हो सकती
उभययुजा दोनोंका संयोग होने पर
जलबुद्बुदवत् जलमें बुलबुलोंके समान
असुभृतः प्राणधारी जीव
भवन्ति उत्पन्न होते हैं
त इमे वे ये
विविध नाम गुणैः नाना नाम एवं गुणवाले
त्वयि ततः परमे आप सर्वव्यापक परम पुरुषमें
अर्णवे समुद्रमें
सरित इव नदियोंके समान
मधुनि शहदमें
अशेषरसाः समस्त रसोंके समान
लिल्युः लीन हो जाते हैं

॥३१॥

नृषु तव मायया भ्रममसीष्ववगत्य भृशं
त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम्।
कथमनुवर्ततां भवभयं तव यद् भ्रुकुटिः
सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम् ॥३२॥

नृषु तव मायया भ्रमं अमीषु अवगत्य भृशं त्वयि सुधियः अभवे दधति भावं अनुप्रभवं कथं अनुवर्ततां भवभयं तव यत् भ्रुकुटिः सृजति मुहुः त्रिणेमिः अभवत् शरणेषु भयम् ॥३२॥

अमीषु नृषु	इन मनुष्योंको	**कथं अनुवर्ततां**	कैसे आ सकता है
तव मायया	आपकी मायासे	**यत् तव**	क्योंकि आपका
भृशं भ्रम	बार-बार (जन्म-मरणमें) भटकते	**भ्रुकुटिः**	भ्रूभङ्ग रूप
अवगत्य	जानकर	**त्रिणेमिः**	(सदी, गर्मी, वर्षा रूप) तीन नाभि वाला-काल
सुधियः	बुद्धिमान पुरुष		
अभवे त्वयि	मोक्ष स्वरूप आपमें	**अभवत् शरणेषु**	जो आपकी शरण नहीं हैं उनके लिए ही
अनुप्रभवं	सदा बढ़ते रहने वाला		
भावं दधति	भक्ति-भाव धारण करते हैं	**मुहुः भयं**	बार-बार (जन्म-मरणका) भय
भवभयं	(उनके लिए) संसारका भय	**सृजति**	उत्पन्न करता है ॥३२॥

विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं
य इह यतन्ति यन्तुमतिलोलमुपायखिदः ।
व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं
वणिज इवाज सन्त्यकृतकर्णधरा जलधौ ॥३३॥

विजितहृषीक वायुभिः अदान्त मनः तुरगं य इह यतन्ति यन्तुं अति लोलं उपायखिदः व्यसनशत अन्विताः सम अवहाय गुरोः चरणं वणिज इव अज सन्ति अकृत कर्णधरा जलधौ ॥३३॥

अज	अजन्मा प्रभु !	**गुरोः चरणं**	गुरुदेवके चरणोंकी
वायुभिः	प्राणायाम द्वारा	**सम अवहाय**	पूरी उपेक्षा करके
विजितहृषीक	इन्द्रियोंको जीतकर	**अदान्त**	अनियन्त्रित
य इह	जो संसारमें	**अति लोलं**	अत्यन्त चंचल

मनः तुरगं	मनरूपी घोड़ेको
यन्तुं यतन्ति	नियन्त्रणका प्रयत्न करते हैं
व्यसनशत	सैकड़ों व्यसनोंसे
अन्विताः	युक्त होनेके कारण (वे)
उपायखिदः	उपायसे ही खिन्न (निराश) हो जाते हैं।
अकृत कर्णधरा	कर्णधार बनाये बिना
जलधौ	समुद्रमें
वणिज इव	व्यापारीके समान वे
सन्ति	हैं ॥३३॥

स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथै-
स्त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे ।
इति सदजानतां मिथुनतो रतये चरतां
सुखयति को न्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे ॥३४॥

स्वजन सुत आत्म दार धन धाम धरा सुरथैः त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे इति सत् अजानतां मिथुनतः रतये चरतां सुखयति कः नु इह स्व विहते स्व निरस्त भगे ॥३४॥

आत्मनि	आत्मस्वरूप
सर्वरसे	सर्वानन्द रूप
त्वयि श्रयत सति	आपका आश्रय लेनेपर
स्वजन सुत	आत्मीय, पुत्र
आत्म दार	शरीर, पत्नी
धन धाम	सम्पत्ति, भवन
धरा सुरथैः	भूमि, उत्तम वाहनोंसे
नृणां किं	मनुष्यको क्या प्रयोजन
इति सत् अजानतां	इस सत्यको न जानकर
मिथुनतः	स्त्री-पुरुषका जोड़ा बनाकर
रतये चरतां	सुखके लिए आचरण करनेवाले
स्व विहते	आत्म तत्वसे परांमुख
स्व भगे	अपने ऐश्वर्यसे
निरस्त	दूर हुएको
इह नु कः	इस लोकमें भला कौन
सुखयति	सुखी कर सकता है ॥३४॥

भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदा-
स्त उत भवत्पदाम्बुजहृदोऽघभिदङ्घ्रिजलाः ।
दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे
न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥३५॥

भुवि पुरुपुण्य तीर्थ सदनानि ऋषयः विमदाः त उत भवत् पदाम्बुज हृदः अघभित् अंघ्रि जलाः दधति सकृत् मनः त्वयि यः आत्मनि नित्यसुखे न पुनः उपासते अंघ्रि पुरुषसार हर आवसथान् ॥३५॥

विमदाः ऋषयः	मद रहित ऋषिगण	**मनः**	उनका मन
भुवि	पृथ्वी पर	**आत्मनि**	आत्मस्वरूप
पुरुपुण्य	अत्यन्त पवित्र	**नित्यसुखे**	नित्यानन्द रूप
सदनानि तीर्थ	निवास तीर्थ हैं	**त्वयि**	आपमें (लग जाता है, वे)
उत त	अहो उन		
भवत् पदाम्बुज	आपके चरण-कमल	**पुरुषसार**	पुरुषके सारको
हृदः	हृदयमें धारण करने वालोंका	**हर आवसथान्**	हरण करनेवाली घर-गृहस्थीकी
अघभित्	पापनाशक	**पुनः उपासते न**	फिर सेवा नहीं करते ॥३५॥
अंघ्रि जलाः	(चरणामृत)		
यः सकृत् दधति	जो एक बार भी धारण करते हैं		

सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं
व्यभिचरति क्व च क्व च मृषा न तथोभययुक् ।
व्यवहृतये विकल्प इषितोऽन्धपरम्परया
भ्रमयति भारती त उरुवृत्तिभिरुक्थजडान् ॥३६॥

सत इदं उत्थितं सत इति चेत् ननु तर्कहतं व्यभिचरति क्व च क्व च मृषा न तथा उभययुक् व्यवहृतये विकल्प इषितः अन्धपरम्परया भ्रमयति भारती त उरुवृत्तिभिः उक्थजडान् ॥३६॥

इदं सत	यह जगत् सत (परमात्मासे)
उत्थितं	उत्पन्न हुआ है
चेत् इति सत	यदि इसलिए (इसे) सत् कहो
ननु तर्कहतं	तो निश्चय (यह बात) युक्तिसे असिद्ध है क्योंकि
क्व च व्यभिचरित	कहीं तो दूसरे प्रकारकी होती है (जैसे दूधसे उत्पन्न दही दूध नहीं होता)
क्व च मृषा	कहीं झूठी-असत् होती है (जैसे रस्सी में दीखता सर्प)
तथा उभययुक्	इस प्रकार (व्यभिचरित होनेवाला तथा मिथ्या) दोनोंसे युक्त
न	(सत्य) नहीं होता।
विकल्प	यह (असत्को सत माननेकी) विशेष कल्पना
अन्धपरम्परया	अन्धी (विवेकहीन) परम्परासे
इषितः	मान ली गयी गयी है।
व्यवहृतये	व्यवहारके लिए (चली आ रही) है
उरुवृत्तिभिः	बहुत प्रकारकी वृत्तियों (कर्मपरक निर्देशों) से
भारती	वेद-वाणी भी
उक्थजडान्	कर्मकाण्डमें मूढ़ाग्रह रखनेवालोंको
भ्रमयति	भ्रान्त करती है ॥३६॥

तात्पर्य—यदि कहो कि सत्स्वरूप परमात्मासे उत्पन्न होनेके कारण संसार सत्य है तो यह बात युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि सत्य सदा एक-सा रहता है और संसारमें कहीं परिवर्तन होता है। दूध दही बन जाता है और कहीं मिथ्या दर्शन होता है। रस्सी सर्प दीखती है। लेकिन विवेकहीन अन्ध परम्परासे व्यवहार चलानेके लिए संसारको सत्यके रूपमें कल्पित किया जाता है। यदि कहो कि वेदमें भी कर्मके करने, न करनेका विधान है तो ऐसी सब श्रुतियाँ तत्वज्ञके लिए नहीं हैं। वे कर्माग्रह रखनेवालोंको ही इस भव-भ्रममें भटकाती हैं।

न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधना-
दनु मितमन्तरा त्वयि विभाति मृषैकरसे।

अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथै-
वितथमनोविलासमृतमित्यवयन्त्यबुधाः ॥३७॥

न यत् इदं अग्र आस न भविष्यत् अतः निधनात् अनु मित् अन्तरा त्वयि विभाति मृषा एकरसे अत उपमीयते द्रविण जाति विकल्प पथैः वितथ मनः विलासं ऋतं इति अवयन्ति अबुधाः ॥३७॥

इदं यत्	यह जगत क्योंकि
न अग्र आस	न (उत्पन्न होनेसे) पहिले था
न भविष्यत्	न आगे रहेगा
अतः निधनात्	अतः (इसके) नाशसे
अन्तरा अनु मित	(इसकी)मध्यावस्था का अनुमान हो जाता है
त्वयि एकरसे	आप एकरसमें
मृषा विभाति	मिथ्या रूपसे ही प्रतीत होता है ।
अतः द्रविण	अतः (मिट्टी, सोना आदि) द्रव्यों
जाति विकल्प	(घड़ा, कुण्डल आदि) जातियोंकी विशेष कल्पना
पथैः	मार्ग (उदाहरणों)से
उपमीयते	(इसकी श्रुतिमें) उपमा दी जाती है
वितथ मनः विलासं	इस व्यर्थके मनो विलासको
अबुधाः	अज्ञानी लोग
ऋतं इति	सत्य है ऐसा
अवयन्ति	समझते हैं ॥३७॥

स यदजया त्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन्
भजति सरूपतां तदनु मृत्युमपेतभगः ।
त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो
महसि महीयसेऽगुणितेऽष्टपरिमेयभगः ॥३८॥

स यत् अजया तु अजां अनुशयीत गुणान् च जुषन् भजति सरूपतां तत् अनु मृत्युं अपेतभगः त्वं उत जहासि तां अहिः इव त्वचं आत्तभगः महसि महीयसे अष्टगुणिते अपरिमेयभगः ॥३८॥

यत् स	क्योंकि यह वह (संसारको सत्य मानने वाला अज्ञानी)
अजया	मायाके द्वारा (मोहित)
अजां गुणान्	मायाके गुणोंका
जुषन्	सेवन करता
अनुशयीत	उन्हींमें सोता (निमग्न) रहता है
तत् सरूपतां	उस मायाके ही सारूप्यको
भजति	ग्रहण कर लेता है
अपेतभगः	अपने (आत्म) वैभवसे वंचित होकर
अनु मृत्युं	(उन भोगोंके) पीछे मरता है।
उत त्वं तां	फिर आप उसे
अहिःत्वचं इव	सांपकी केंचुलके समान
जहासि	त्याग देते हो।
अष्टगुणिते	आठों सिद्धियों युक्त
आत्तभगः	समस्त ऐश्वर्य ग्रहण किये
महसि महीयसे	(आप) महानोंसे भी महान
अपरिमेयभगः	असीमित ऐश्वर्य-शाली हैं ॥३८॥

यदि न समुद्धरन्ति यतयो हृदि कामजटा
दुरधिगमोऽसतां हृदि गतोऽस्मृतकण्ठमणिः।
असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगव-
न्ननपगतान्तकादनधिरूढपदाद् भवतः ॥३९॥

यदि न समुद्धरन्ति यतयः हृदि कामजटा दुरधिगमः असतां हृदि गतः अस्मृतकण्ठमणिः असुतृप योगिनां उभयतः अपि असुखं भगवन् अन अपगत अन्तकात् अनधिरूढ पदात् भवतः ॥३९॥

यदि यतयः	यदि साधक
हृदि काम जटा	हृदयमें-से कामनाओंकी जड़ें
न समुद्धरन्ति	नहीं उखाड़ फेंकतेतो
असतां	उन असन्तोंके लिए
अस्मृतकण्ठमणिः	विस्मृत कण्ठकी मणिके समान
हृदि गतः	(आप) हृदयमें (विराजमान) होने पर भी
दुरधिगमः	दुष्प्राप्य हैं।

भगवन्	भगवन् !
असुतृप	अपने प्राणोंको तृप्त करनेवाले (भोगरत)
योगिनां	योगियों (साधुओं) के लिए
अन्तकात्	मृत्युसे
अन अपगत	छुटकारा पाये बिना तथा
भवतः पदात्	आपके धाम
अनधिरूढ	पहुँचे बिना
उभयतः अपि	(इस लोक-परलोक) दोनों ओरसे
असुखं	दुःख ही है ॥३९॥

विशेष—क्योंकि इस लोकमें खुलकर भोग-सुख नहीं ले पाते। आशंकित रहते हैं और परलोक तो नष्ट हुआ ही है।

त्वदवगमो न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयो-
र्गुणविगुणान्वयांस्तर्हि देहभृतां च गिरः।
अनुयुगमन्वहं सगुण गीतपरम्परया
श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः ॥४०॥

त्वत् अवगमी न वेत्ति भवत् उत्थ शुभ अशुभयोः गुण विगुण अन्वयान् तर्हि देहभृतां च गिरः अनुयुगं अनु अहं सगुण गीत परम्परया श्रवण भृतः यतः त्वं अपवर्ग गतिः मनुजैः ॥४०॥

त्वत् अवगमी	आपके स्वरूपको जाननेवाला ज्ञानी
भवत् उत्थ	आप द्वारा प्रदत्त
शुभ अशुभयोः	पुण्य-पापके फल (सुख-दुःख)को
न वेत्ति	नहीं जानता (उनका अनुभव नहीं करता)
तर्हि	तब तो
देहभृतां	देहाभिमानियोंके लिए
गुण विगुण	गुण-दोष
अन्वयात्	सूचित करनेवाली
गिरः न	शास्त्रवाणी (उसके लिए)नहीं रह जाती
यतः त्वं	क्योंकि आप
मनुजैः	मनुष्योंके लिए
अपवर्ग गतिः	मोक्ष स्वरूप परम गति हो
अनुयुगं	प्रत्येक युगमें
सगुण	सगुण (अवतरित) हुए (आपके)

गीत परम्परया	परम्परासे प्राप्त चरितगानको	**श्रवण भृतः च**	श्रवण करनेवालोंके लिए भी (वह शास्त्र वाणी नहीं रह जाती) ॥४०॥
अनु अहं	प्रतिदिन		

द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया
त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः ।
ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छ्रुतय-
स्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥४१॥

द्युपतय एव ते न ययुः अन्तं अनन्ततया त्वं अपि यत् अन्तर अण्ड निचया ननु स आवरणाः ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यत् श्रुतयः त्वयि हि फलन्ति अतत् निरसनेन भवत् निधनाः ॥४१॥

अनन्ततया	अनन्त होनेके कारण	**वान्ति**	उड़ते रहते हैं (उसका पार कैसे पाया जा सकता है)
द्युपतय एव	स्वर्गाधिप इन्द्रादि तथा	**हि यत् श्रुतयः**	क्योंकि (हम) श्रुतियाँ भी (साक्षात् वर्णनमें असमर्थ होकर)
त्वं अपि	स्वयं आप भी		
ते अन्तं न ययुः	आपका पार नहीं पा सकते ।	**अतत्**	आपसे भिन्न अतथ्य का
यत् अन्तर	जिस (आय)के भीतर		
स आवरणाः	(अपने-से उत्तरोत्तर दस गुने बड़े सात) आवरणों सहित	**निरसनेन**	निषेध करती हुई
		निधनाः भवत्	अपना भी निषेध करके
अण्ड निचया	ब्रह्माण्ड समूह		
ननु	निश्चय	**त्वयि फलन्ति**	आपमें सफल हो जाती हैं ॥४१॥
ख वयसा सह	आकाशमें पक्षियोंके साथ		
रजांसि इव	धूलि कणोंके समान		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

इत्येतद् ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्यात्मानुशासनम् ।
सनन्दनमथानर्चुः सिद्धा ज्ञात्वाऽऽत्मनो गतिम् ॥४२॥

इति एतत् ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्य आत्म अनुशासनं सनन्दनं अथ आनर्चुः सिद्धाः ज्ञात्वा आत्मनः गतिम् ॥४२॥

इति एतत् इस प्रकार यह
आत्म अनुशासनं आत्मोपदेश
आश्रुत्य सुनकर
सिद्धाः ब्रह्मणः पुत्रा उन सिद्ध ब्रह्माके पुत्रोंने
आत्मनः गतिं आत्माका स्वरूप
ज्ञात्वा अथ जानकर
सनन्दनं आनर्चुः सनन्दनजीकी पूजा की ॥४२॥

इत्यशेषसमाम्नाय पुराणोपनिषद्रसः ।
समुद्धृतः पूर्वजातैर्व्योमयानैर्महात्मभिः ॥४३॥

इति अशेष समाम्नाय पुराण उपनिषत् रसः सम उद्धृतः पूर्वजातैः व्योमयानैः महात्मभिः ॥४३॥

इति पूर्वजातैः इस प्रकार उन सबसे पहिले उत्पन्न
व्योमयानैः आकाशगामी
महात्मभिः महात्माओं द्वारा
अशेष समाम्नाय सम्पूर्ण वेद-शास्त्रों
पुराण उपनिषत् पुराणों, उपनिषदों का
रसः रस (सार)
सम उद्धृतः भली प्रकार निकाला गया है ॥४३॥

त्वं चैतद् ब्रह्मदायाद श्रद्धयाऽऽत्मानुशासनम् ।
धारयंश्चर गां कामं कामानां भर्जनं नृणाम् ॥४४॥

त्वं च एतत् ब्रह्मदायाद श्रद्धया आत्म अनुशासनं धारयन् चर गां कामं कामानां भर्जनं नृणाम् ॥४४॥

ब्रह्मदायाद	ब्रह्माके पुत्र नारदजी !
त्वं च एतत्	तुम भी इस
नृणां कामानां	मनुष्योंकी कामनाओंको
भर्जनं	भस्म करनेवाले
आत्म अनुशासनं	आत्मोपदेशको
धारयन्	धारण करके
गां कामं चर	पृथ्वीपर यथेच्छ विचरण करो ॥४४॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एवं स ऋषिणाऽऽदिष्टं गृहीत्वा श्रद्धयाऽऽत्मवान् ।
पूर्णः श्रुतधरो राजन्नाह वीरव्रतो मुनिः ॥४५॥

एवं स ऋषिणा आदिष्टं गृहीत्वा श्रद्धया आत्मवान् पूर्णः श्रुतधरः राजन् आह वीरव्रतः मुनिः ॥४५॥

राजन्	राजन् !
एवं ऋषिणा	इस प्रकार नारायण ऋषि द्वारा
आदिष्टं	आदेश देने पर
स आत्मवान्	वे धैर्यशाली
वीरव्रतः	नैष्ठिक ब्रह्मचारी
श्रुतधरः	एक बार सुनकर स्मरण रखनेवाले
मुनिः	मुनि नारदने
श्रद्धया गृहीत्वा	श्रद्धापूर्वक उसे ग्रहण करके
पूर्णः आह	पूर्ण मनोरथ होकर कहा ॥४५॥

॥ नारद उवाच ॥

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायामलकीर्त्तये ।
यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीः कलाः ॥४६॥

नमः तस्मै भगवते कृष्णाय अमल कीर्तये यः धत्ते सर्वभूतानां अभवाय उशतीः कलाः ॥४६॥

यः सर्वभूतानां अभवाय	जो सब प्राणियोंके मोक्षके लिए
उशतीः कलाः धत्ते	कमनीय कलावतार धारण किये हैं

तस्मै अमल कीर्तये उन निर्मल कीर्ति **नमः** नमस्कार ॥४६॥
भगवते कृष्णाय भगवान श्रीकृष्णको

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

इत्याद्यमृषिमानम्य तच्छिष्यांश्च महात्मनः ।
ततोऽगादाश्रमं साक्षात् पितुर्द्वैपायनस्य मे ॥४७॥

इति आद्यं ऋषि आनम्य तत् शिष्यान् च महात्मनः ततः अगात् आश्रमं साक्षात् पितुः द्वैपायनस्य मे ॥४७॥

इति	ऐसा कहकर
आद्यं ऋषि	उन आदि ऋषि नारायणको
च तत् महात्मनः	तथा उन महात्माके
शिष्यान् आनम्य	शिष्योंको प्रणाम करके
ततः मे	फिर मेरे
साक्षात् पितुः द्वैपायनस्य	साक्षात् पिता श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजीके
आश्रमं अगात्	आश्रमपर आये ॥४७॥

सभाजितो भगवता कृतासनपरिग्रहः ।
तस्मै तद् वर्णयामास नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥४८॥

सभाजितः भगवता कृत आसन परिग्रहः तस्मै तत् वर्णयामास नारायण मुखात् श्रुतम् ॥४८॥

भगवता	भगवान व्यास द्वारा
सभाजितः	सत्कृत होकर
आसन परिग्रहः	**कृत** आसन स्वीकार करके
तस्मै तत्	उनसे वह
नारायण मुखात्	नारायण ऋषिके मुखसे
श्रुतं वर्णयामास	सुना वर्णन किया ॥४८॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इत्येतद् वर्णितं राजन् यन्नः प्रश्नः कृतस्त्वया ।
यथा ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणेऽपि मनश्चरेत् ॥४९॥

इति एतत् वर्णितं राजन् यत् नः प्रश्नः कृतः त्वया यथा ब्रह्मणि अनिर्देश्ये निर्गुणे अपि मनः चरेत् ॥४९॥

राजन्	राजन् !	**यथा अनिर्देश्ये**	जैसे अनिर्देश्य
यत् नः त्वया	जो हमसे तुमने	**निर्गुणे अपि**	निर्गुण होनेपर भी
प्रश्नः कृतः	प्रश्न किया था वह	**ब्रह्मणि**	ब्रह्ममें
इति एतत्	इस प्रकार यह	**मनः चरेत्**	मनका प्रवेश
वर्णितं	(मैंने) वर्णन किया		हो ॥४९॥

योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो
यः सृष्ट्वेदमनुप्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः ।
यं संपद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा
तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ॥५०॥

यः अस्य उत् प्रेक्षक आदि मध्य निधने यः अव्यक्त जीव ईश्वरः यः सृष्ट्वा इदं अनुप्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः यं संपद्य जहाति अजां अनुशयी सुप्तः कुलायं यथा तं कैवल्य निरस्त योनि अभयं ध्यायेत् अजस्रं हरिम् ॥५०॥

यः अस्य	जो इस जगतके	**अनुप्रविश्य**	फिर इसमें प्रवेश करके
आदि मध्य निधने	उत्पत्ति, पालन प्रलयके	**ऋषिणा**	ब्रह्माजी द्वारा
उत् प्रेक्षक	प्रेरक एवं द्रष्टा हैं,	**पुरः चक्रे**	सब शरीर बनाये तथा
यः अव्यक्त जीव	जो प्रकृति और जीवके	**ताः शास्ति**	उनका शासन करते हैं ।
ईश्वरः	स्वामी हैं,	**यं संपद्य**	जिनकी शरण लेकर
यः इदं सृष्ट्वा	जो इस जगतकी रचना करके		

अनुशयी	सुषुप्ति मग्न (अविद्याग्रस्त) जीव
अजां जहाति	मायाको त्याग देता है
यथा सुप्तः	जैसे सोया पुरुष
कुलायं	इस स्थूल शरीरको (विस्मृत रहता है)
तं कैवल्य	उन एकमात्र (अद्वितीय)
निरस्त योनिं	मायातीत
अभयं	अभय स्वरूप
हरिं ध्यायेत्	श्रीहरिका ध्यान करे ॥५८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
उत्तरार्धे नारदनारायणसंवादे वेदस्तुर्नाम
सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

अथ अष्टाशीतितमोऽध्यायः

। राजोवाच ॥

देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम् ।
प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥१॥

देव असुर मनुष्येषु ये भजन्ति अशिवं शिवं प्रायः ते धनिनः भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥१॥

देव असुर	देवता, असुर	**धनिनः भोजा**	धनी और भोग सम्पन्न हैं
मनुष्येषु	तथा मनुष्योंमें	**तु लक्ष्म्याः पतिं**	किन्तु लक्ष्मीपति
ये अशिवं शिवं	जो अमंगल रूप शिव का	**हरिं न**	श्रीहरिके (भजन करने वाले) नहीं ॥१॥
भजन्ति	भजन करते हैं		
प्रायः ते	प्रायः वे		

एतद् वेदितुमिच्छामः संदेहोऽत्र महान् हि नः ।
विरुद्धशीलयोः प्रभ्वोर्विरुद्धा भजतां गतिः ॥ २ ॥

एतत् वेदितुं इच्छामः सन्देहः अत्र महान् हि नः विरुद्ध शीलयोः प्रभ्वोः विरुद्धा भजतां गतिः ॥२॥

एतत् वेदितुं	इसे जानना	**प्रभ्वोः विरुद्ध**	स्वामियोंके विपरीत
इच्छामः	चाहता हूँ	**शीलयोः**	आचरण वाले होने पर
हि अत्र नः	क्योंकि इस विषयमें मुझे	**भजतां**	उनका भजन करने वालोंकी
महान् सन्देहः	बहुत बड़ा संशय है कि	**विरुद्धा गतिः**	उससे उल्टी दशा होती है ॥२॥

।। श्रीशुक उवाच ।।

शिवः शक्तियुतः शश्वत् त्रिलिङ्गो गुणसंवृतः ।
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ।। ३ ।।

शिवः शक्ति युतः शश्वत् त्रिलिङ्गः गुण संवृतः वैकारिकः तैजसः च तामसः च इति अहं त्रिधा ।।३।।

शिवः शश्वत्	शिवजी सदा
शक्ति युतः	(अर्ध नारीश्वर होने से) शक्ति युक्त ही रहते हैं,
गुण संवृतः	गुणोंसे युक्त
त्रिलिङ्गः	अहंकारके अधिष्ठाता हैं,
च अहं त्रिधा	और वह अहंकार तीन प्रकारका है
वैकारिकः	वैकारिक
तैजसः च	तैजस तथा
तामसः इति	तामस इस प्रकार ।।३।।

ततो विकारा अभवन् षोडशामीषु कंचन ।
उपधावन् विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम् ।। ४ ।।

ततः विकारा अभवन् षोडश अमीषु कञ्चन उपधावन् विभूतीनां सर्वासां अश्नुते गतिम् ।।४।।

ततः	उस (अवंकार)से
षोडश विकारा	सोलह (दस इन्द्रिय, पंच महाभूत, एक मन) विकार
अभवन्	उत्पन्न हुए
अमीषु कञ्चन	इनमेंसे किसी एकके
विभूतीनां	अधिदेवताकी
उपधावन्	उपासना करनेसे
सर्वासां गतिं	सबके पहुँच (ऐश्वर्य) को
अश्नुते	भोगता है ।।४।।

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः ।
स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन् निर्गुणो भवेत् ।। ५ ।।

हरिः हि निर्गुणः साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः स सर्व दृक् उपद्रष्टा तं भजन् निर्गुणः भवेत् ॥५॥

हि हरिः	क्योंकि श्रीहरि
साक्षात् निर्गुणः	साक्षात् निर्गुण,
प्रकृतेः परः	प्रकृतिसे परे
पुरुषः	परम पुरुष हैं
स सर्व दृक्	वे सर्वदर्शी हैं
उपद्रष्टा	तटस्थ द्रष्टा हैं (अतः)
तं भजन्	उनका भजन करने वाला
निर्गुणः भवेत्	निर्गुण ब्रह्ममें एकात्मता पाता है ॥५॥

निवृत्तेष्वश्वमेधेषु राजा युष्मत्पितामहः ।
शृण्वन् भगवतो धर्मानपृच्छदिदमच्युतम् ॥ ६ ॥

निवृत्तेषु अश्वमेधेषु राजा युष्मत् पितामहः शृण्वन् भगवतः धर्मान् अपृच्छत् इदं अच्युतम् ॥६॥

अश्वमेधेषु	अश्वमेधयज्ञ
निवृत्तेषु	पूर्ण हो जानेपर
अच्युतं	अच्युत श्रीकृष्णसे
भगवतः धर्मान्	भागवत धर्म
शृण्वन्	सुनते हुए
युष्मत् पितामहः	तुम्हारे पितामह
राजा इदं	राजा युधिष्ठिरने यही
अपृच्छत्	पूछा था ॥६॥

स आह भगवांस्तस्मै प्रीतः शुश्रूषवे प्रभुः ।
नृणां निःश्रेयसार्थाय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ ७ ॥

स आह भगवान् तस्मै प्रीतः शुश्रूवे प्रभुः नृणां निःश्रेयस अर्थाय यः अवतीर्णः यदो कुले ॥७॥

नृणां	मनुष्योंके
निःश्रेयस	परम कल्याणके
अर्थाय	लिए
यः यदोः कुले	जो यदुकुलमें
अवतीर्णः	अवतरित हुए थे
स प्रभुः भगवान्	उन समर्थ भगवानने

प्रीतः तस्मै	प्रसन्न होकर उन	(राजा युधिष्ठिर)
शुश्रुवे आह	सुननेकी इच्छावाले	से कहा ॥७॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः ।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखियम् ॥ ८ ॥

यस्य अहं अनुगृह्णामि हरिष्ये तत् धनं शनैः ततः अधनं त्यजन्ति अस्य स्वजना दुःख दुःखितम् ॥८॥

अहं यस्य	मैं जिस पर	**ततः दुःख**	तब इस दुःखसे
अनुगृह्णामि	अनुग्रह करता हूँ	**दुःखितं**	दुःखी
शनैः तत् धनं	धीरे-धीरे उसका धन	**अधनं**	निर्धनको
हरिष्ये	हरण कर लेता हूँ	**अस्य स्वजना**	इसके सम्बन्धी
		त्यजन्ति	त्याग देते हैं ॥८॥

स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद् धनेहया ।
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ॥ ९ ॥

स यदा वितथः उद्योगः निर्विण्णः स्यात् धन ईहया मत् परैः कृत मैत्रस्य करिष्ये मत् अनुग्रहम् ॥९॥

यदा स	जब वह	**मत् परैः**	मेरे परायण जनोंसे
उद्योगः वितथः	अपने प्रयत्नोंके व्यर्थ होने पर	**कृत मैत्रस्य**	मित्रता कर लेता है (तब)
धन ईहया	धनेच्छासे	**मत् अनुग्रहं**	(उस पर) मैं अपनी अपनी कृपा
निर्विण्णः स्यात्	उदासीन हो जाता है	**करिष्ये**	करता हूँ ॥९॥

तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम् ।
अतो मां सुदुराराध्यं हित्वान्यान् भजते जनः ॥१०॥

तत् ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सत् अनन्तकं अतः मां सुदुराराध्यं हित्वा अन्यान् भजते जनः ॥१०॥

तत् सूक्ष्मं	तब (उसे) सूक्ष्म
सत् चिन्मात्रं	सच्चिन्मय
अनन्तकं	अनन्त
परमं ब्रह्म	परम ब्रह्म (की प्राप्ति हो जाती है
अतः जनः	अतः लोग
सुदुराराध्यं	मेरी आराधना बहुत कठिन होनेसे
मां हित्वा	मुझे छोड़कर
अन्यान्	दूसरे (देवताओं)की
भजते	उपासना करते हैं ॥१०॥

ततस्त आशुयोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः ।
मत्ताः प्रमत्ता वरदान् विस्मरन्त्यवजानते ॥११॥

ततः त आशुतोषेभ्यः लब्ध राज्यश्रिय उद्धताः मत्ताः प्रमत्ता वरदान् विस्मरन्ति अवजानते ॥११॥

ततः त	फिर वे
आशुतोषेभ्यः	उन शीघ्र प्रसन्न होने वाले (देवतादि) से
राज्यश्रिय	राज्य, धनादि
लब्ध उद्धताः	पाकर उद्धत होकर
मत्ताः प्रमत्ता	मदमत्त, असावधान लोग
वरदान्	वरदान देने वालेको
विस्मरन्ति	भूल जाते हैं,
अवजानते	(उसीका) अपमान करते हैं ॥११॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

शापप्रसादयोरीशा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
सद्यःशापप्रसादोऽङ्ग शिवो ब्रह्मा न चाच्युतः ॥१२॥

शाप प्रसादयोः ईशा ब्रह्म विष्णु शिव आदयः सद्यः शाप प्रसादः अङ्ग शिवः ब्रह्मा न च अच्युतः ॥१२॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !
शाप प्रसादयोः	शाप और कृपामें
ईशा	समर्थ
ब्रह्म विष्णु	ब्रह्मा, विष्णु

शिव आदयः	शिव आदिमें	**शिवः ब्रह्मा**	शंकरजी या ब्रह्मा (करते हैं)
सद्यः शाप	शीघ्र शाप या		
प्रसादः	कृपा	**च अच्युतः न**	तथा अच्युत नहीं करते ॥१२॥

अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
वृकासुराय गिरिशो वरं दत्त्वाऽऽप संकटम् ॥१३॥

अत्र च उदाहरन्ति इमं इतिहासं पुरातनं वृकासुराय गिरिशः वरं दत्त्वा आप सङ्कटम् ॥१३॥

अत्र च	इस विषयमें भी	**गिरिशः**	शंकरजी
इमं पुरातनं	इस प्राचीन	**वृकासुराय**	वृकासुरको
इतिहासं	इतिहासका	**वरं दत्त्वा**	वरदान देकर
उदाहरन्ति	उदाहरण देते हैं (जिसमें)	**सङ्कटं आप**	संकटको प्राप्त हुए ॥१३॥

वृको नामासुरः पुत्रः शकुनेः पथि नारदम् ।
दृष्ट्वाऽऽशुतोषं पप्रच्छ देवेषु त्रिषु दुर्मतिः ॥१४॥

वृकः नाम असुरः पुत्रः शकुनेः पथि नारदं दृष्ट्वा आशुतोषं पप्रच्छ देवेषु त्रिषु दुर्मतिः ॥१४॥

शकुनेः पुत्रः	शकुनिके पुत्र	**त्रिषु देवेषु**	त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु शिव)में से
दुर्मतिः	दुर्बुद्धि		
वृकः नाम	वृक नामक	**आशुतोषं**	शीघ्र प्रसन्न होने वालेको
असुरः	असुरने		
पथि	मार्गमें जाते	**पप्रच्छ**	पूछा ॥१४॥
नारदं दृष्ट्वा	नारदजीको देखकर		

स आह देवं गिरिशमुपाधावाशु सिद्ध्यसि ।
योऽल्पाभ्यां गुणदोषाभ्यामाशु तुष्यति कुप्यति ॥१५॥

स आह देवं गिरिशं उपाधाव आशु सिद्धचसि यः अल्पाभ्यां गुण दोषाभ्यां आशु तुष्यति कुप्यति ॥१५॥

स आह	उन (नारदजी)ने कहा—
देवं गिरिशं	'महादेव शिवकी
उपाधाव	आराधना करो
आशु सिद्धचसि	(इससे) शीघ्र सिद्ध हो जाओगे
यः अल्पाभ्यां	जो थोड़ेसे ही
गुण दोषाभ्यां	गुण या दोषसे
आशु तुष्यति	शीघ्र सन्तुष्ट हो जाते या
कुप्यति	कुपित हो जाते हैं ॥१५॥

दशास्यबाणयोस्तुष्टः स्तुवतोर्वन्दिनोरिव ।
ऐश्वर्यमतुलं दत्त्वा तत आप सुसंकटम् ॥१६॥

दश आस्य बाणयोः तुष्टः स्तुवतोः बन्दिनः इव ऐश्वर्यं अतुलं दत्त्वा तत आप सुसङ्कटम् ॥१६॥

दश आस्य	दशानन तथा
बाणयोः	बाणासुरके
वन्दिनः इव	वन्दीजनोंकी भाँति
स्तुवतोः	स्तुति करने पर (उन्हें)
अतुलं ऐश्वर्यं	अतुलनीय ऐश्वर्य
दत्त्वा तत	देकर फिर उससे
सुसङ्कटम् आप	बड़े संकटमें पड़ गये थे ॥१६॥

इत्यादिष्टस्तमसुर उपाधावत् स्वगात्रतः ।
केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानोऽग्निमुखं हरम् ॥१७॥

इति आदिष्टः तं असुर उपाधावत् स्वगात्रतः केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानः अग्निमुखं हरम् ॥१७॥

इति आदिष्टः	ऐसा आदेश पाकर
केदार	केदारक्षेत्रमें
असुर तं	असुर उन
अग्निमुखं हरं	अग्निरूप मुख वाले शंकरजीकी
स्वगात्रतः	अपने शरीरके
आत्मक्रव्येण	अपने ही माँसका
जुह्वानः	हवन करते हुए
उपाधावत्	आराधना करने लगा ॥१७॥

देवोपलब्धिमप्राप्य निर्वेदात् सप्तमेऽहनि ।
शिरोऽवृश्चत् स्वधितिना तत्तीर्थक्लिन्नमूर्धजम् ॥१८॥

देव उपलब्धि अप्राप्य निर्वेदात् सप्तमे अहनि शिरः अवृश्चत् स्वधितिना तत् तीर्थ क्लिन्नमूर्धजम् ॥१८॥

सप्तमे अहनि	सातवें दिन	**क्लिन्नमूर्धजं**	भीगे बालों वाला
देव उपलब्धि	महादेवजीकी प्राप्ति	**शिरः**	(अपना) सिर
अप्राप्य	नहीं होनेसे	**स्वधितिना**	अपने कुल्हाडेसे
निर्वेदात्	दुःखके कारण	**अवृश्चत्**	काटने लगा ॥१८॥
तत् तीर्थ	उन (शंकरजी)के तीर्थ (केदार गंगा)से		

तदा महाकारुणिकः स धूजंटि-
र्यथा वयं चाग्निरिवोत्थितोऽनलात् ।
निगृह्य दोर्भ्यां भुजयोर्न्यवारयत्
तत्स्पर्शनाद् भूय उपस्कृताकृतिः ॥१९॥

तदा महाकारुणिकः स धूर्जटिः यथा वयं च अग्निः इव उत्थितः अनलात् निगृह्य दोर्भ्यां भुजयोः न्यवारयत् तत् स्पर्शनात् भूय उपस्कृत आकृतिः ॥१९॥

यथा वयं च	जैसा हम लोग भी (करते हैं कि आत्म-हत्या करने वालेको बचा लेते हैं)	**उत्थितः**	निकलकर
		दोर्भ्यां भुजयोः निगृह्य	अपने दोनों हाथोंसे उसकी भुजाएँ पकड़ कर
तदा महाकारुणिकः	उस समय अत्यन्त करुणामय	**न्यवारयत्**	रोक दिया
स धूर्जटिः	वे शंकरजी	**तत् स्पर्शनात्**	उनके स्पर्श करनेसे
अनलात्	अग्नि कुण्डसे	**भूय आकृतिः**	फिर उसका आकार
अग्निः इव	अग्निके समान	**उपस्कृत**	पूर्ववत् हो गया ॥१९॥

तमाह चाङ्गलमलं वृणीष्व मे
यथाभिकामं वितरामि ते वरम् ।
प्रीयेय तोयेन नृणां प्रपद्यता-
महो त्वयाऽऽत्मा भृशमर्द्यते वृथा ॥२०॥

तं आह च अङ्ग अलं अलं वृणीष्व मे यथा अभिकामं वितरामि ते वरं प्रीयेय तोयेन नृणां प्रपद्यतां अहो त्वया आत्मा अभृशं र्द्यते वृथा ॥२०॥

तं आह च	उससे बोले भी—
अङ्ग अलं अलं	प्रिय ! बस करो, बस करो
यथा अभिकामं	जैसी इच्छा हो
मे वरं वृणीष्व	मुझसे वरदान मांग लो
ते वरं वितरामि	तुमको वरदान दूंगा,
अहो प्रपद्यतां	अहो शरणागत
नृणां	मनुष्य पर
तोयेन प्रीयेय	(मैं) केवल जलसे प्रसन्न हो जाता हूँ
त्वया आत्मा	तुम्हारे द्वारा अपने शरीरको
भृशं वृथा	बार-बार व्यर्थ
अर्द्यते	पीड़ित किया जा रहा है ॥२०॥

देवं स वव्रे पापीयान् वरं भूतभयावहम् ।
यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियतामिति ॥२१॥

देवं स वव्रे पापीयान् वरं भूत भय आवहं यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियतां इति ॥२१॥

स पापीयान्	उस पापीने
सर्व भूत	सब प्राणियोंके लिए
भव आवहं	भयदायक
इति वरं	इस प्रकारका वर-दान
देवं वव्रे	महादेवजीसे मांगा—
यस्य यस्य	जिस जिसके
शीर्ष्णि करं धास्ये	सिर पर मैं हाथ रखूँ
स म्रियतां	वह मर जाय' ॥२१॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् रुद्रो दुर्मना इव भारत ।
ओमिति प्रहसंस्तस्मै ददेऽहेरमृतं यथा ॥२२॥

तत् श्रुत्वा भगवान् रुद्रः दुर्मना इव भारत ओम् इति प्रहसन् तस्मै ददे अहेः अमृतं यथा ॥२२॥

भारत	परीक्षित !	**यथा अहेः अमृतं**	जैसे सर्पको अमृत (दिया जाय)
तत् श्रुत्वा	यह सुनकर		
दुर्मना इव	अनमनेसे होकर	**प्रहसन्**	हँसते हुए
ओम् इति	'अच्छा' इस प्रकार कहकर	**तस्मै ददे**	उसे (वरदान) दे दिया ॥२२॥

इत्युक्तः सोऽसुरो नूनं गौरीहरणलालसः ।
स तद्वरपरीक्षार्थं शम्भोर्मूर्ध्नि किलासुरः ।
स्वहस्तं धातुमारेभे सोऽबिभ्यत् स्वकृताच्छिवः ॥२३॥

इति उक्तः सः असुरः नूनं गौरी हरण लालसः स तत् वर परीक्षा अर्थं शम्भोः मूर्ध्नि किल असुरः स्वहस्तं धातुं आरेभे सः अबिभ्यत् स्वकृतात् शिवः ॥२३॥

इति उक्तः	ऐसा कहने पर	**शम्भोः मूर्ध्नि**	शंकरजी के ही सिर पर
नूनं	निश्चय		
सः असुरः	वह असुर	**स्वहस्तं धातुं ओरभे**	अपना हाथ धरनेका (प्रयत्न) प्रारम्भ किया
गौरी हरण	पार्वतीजीका हरण करनेकी		
लालस	इच्छासे और	**सः शिवः**	वे भगवान शिव
असुरः किल	उस असुरके होनेसे	**स्वकृतात्**	अपने किये (दिये वरदान)से
स तत् वर	उसने उनके वरदान		
परीक्षा अर्थं	की परीक्षाके लिए	**अबिभ्यत्**	डर गये ॥२३॥

तेनोपसृष्टः संत्रस्तः पराधावन् सवेपथुः ।
यावदन्तं दिवो भूमेः काष्ठानामुदगादुदक् ॥२४॥

तेन उपसृष्टः सन्त्रस्तः पर आधावत् सवेपथुः यावत् अन्तं दिवः भूमेः काष्ठानां उदकात् उदक् ॥२४॥

तेन उपसृष्टः	उसके समीप आने के प्रयत्नसे	**भूमेः अन्तं**	पृथ्वीकी सीमा है
सन्त्रस्तः	डरकर	**उदकात् उदक्**	उत्तर से उत्तरकी
सवेपथुः	कांपते हुए	**काष्ठानां**	दिशामें
यावत् दिवः	जहाँ तक स्वर्ग एवं	**पर आधावत्**	दूर भागते गये ॥२४॥

अजानन्तः प्रतिविधिं तूष्णीमासन् सुरेश्वराः ।
ततो वैकुण्ठमगमद् भास्वरं तमसः परम् ॥२५॥

अजानन्तः प्रतिविधिं तूष्णीं आसन् सुर ईश्वराः ततः वैकुण्ठं अगमत् भास्वरं तमसः परम् ॥२५॥

प्रतिविधि	प्रतिकारका उपाय	**ततः तमसः परं**	तब तमोगुणसे परे
अजानन्तः	न जाननेसे	**भास्वरं वैकुण्ठं**	ज्योतिर्मय वैकुण्ठ
सुर ईश्वराः	देवताओंके नायक	**अगमत्**	पहुँचे ॥२५॥
तूष्णीं आसन्	चुप रहे		

यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमा गतिः ।
शान्तानां न्यस्तदण्डानां यतो नावर्तते गतः ॥२६॥

यत्र नारायणः साक्षात् न्यासिनां परमा गतिः शान्तानां न्यस्त दण्डानां यतः न आवर्तते गतः ॥२६॥

यत्र शान्तानां	जहाँ अत्यन्त शान्त	**साक्षात्**	साक्षात्
न्यस्त दण्डानां	सब प्राणियोंको दण्ड देना त्यागते हुए	**नारायणः**	नारायण (रहते हैं)
		यतः गतः	जहाँ पहुँचकर
न्यासिनां	संन्यासियोंके	**न आवर्तते**	(कोई संसारमें)
परमागतिः	परमाश्रय		नहीं लौटता ॥२६॥

तं तथाव्यसनं दृष्ट्वा भगवान् वृजिनार्दनः ।
दूरात् प्रत्युदियाद् भूत्वा वटुको योगमायया ॥२७॥

तं तथा व्यसनं दृष्ट्वा भगवान् वृजिन अर्दनः दूरात् प्रत्युत् इयात् भूत्वा वटुकः योगमायया ॥२७॥

तं तथा	उन (शंकरजी)का वैसा	**योगमायया**	अपनी योगमायासे
व्यसनं दृष्ट्वा	संकट देखकर	**वटुकः भूत्वा**	ब्रह्मचारी बनकर
वृजिन अर्दनः	संकट नाशक	**दूरात्**	दूरसे ही
भगवान्	भगवान	**प्रत्युत् इयात्**	सामने आ गये ॥२७॥

मेखलाजिनदण्डाक्षैस्तेजसाग्निरिव ज्वलन् ।
अभिवादयामास च तं कुशपाणिर्विनीतवत् ॥२८॥

मेखला अजिन दण्ड अक्षैः तेजसा अग्निः इव ज्वलन् अभिवादयामास च तं कुशपाणिः विनीतवत् ॥२८॥

मेखला अजिन	मेखला, मृगचर्म,	**अग्निः इव**	अग्निके समान (होने पर भी)
दण्ड अक्षैः	पलाश दण्ड, रुद्राक्ष माला युक्त	**विनीतवत्**	विनम्रकी भांति
कुशपाणिः	हाथमें कुश लिए	**तं**	उस (वृकासुर)को
तेजसा ज्वलन्	तेजसे प्रज्वलित	**अभिवादयामास च**	प्रणाम भी किया ॥२८॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

शाकुनेय भवान् व्यक्तं श्रान्तः किं दूरमागतः ।
क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्मायं सर्वकामधुक् ॥२९॥

शाकुनेय भवान् व्यक्तं श्रान्तः किं दूरं आगतः क्षणं विश्रम्यतां पुंसः आत्मा अयं सर्वकाम धुक् ॥२९॥

शाकुनेय शकुनि-नन्दनजी !
व्यक्तं स्पष्ट है कि
भवान् श्रान्तः आप थक गये हैं
किं दूरं आगतः क्या दूरसे आ रहे हैं ?
क्षणं विश्रम्यतां एक क्षण विश्राम कर लीजिए
अयं आत्मा यह शरीर
पुंसः सर्वकाम पुरुषको सब काम-नाएँ
धुक् देने वाला है ॥२९॥

यदि नः श्रवणायालं युष्मद्व्यवसितं विभो ।
भण्यतां प्रायशः पुम्भिर्धृतैः स्वार्थान् समीहते ॥३०॥

यदि नः श्रवणाय अलं युष्मत् व्यवसितं प्रभो भण्यतां प्रायशः पुम्भिः धृतैः स्वार्थान् समीहते ॥३०॥

प्रभो अलं प्रभो ! (आप) समर्थ हैं,
युष्मत् व्यवसितं आपका यह उद्योग
यदि नः यदि हमारे
श्रवणाय सुनने योग्य हो तो
भण्यतां बतलाइये
प्रायशः प्रायः (लोग)
पुम्भिः धृतैः अपने लोगोंको सौंप-कर
स्वार्थान् अपना प्रयोजन
समीहते पूर्ण कर लेना चाहते हैं ॥३०॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एवं भगवता पृष्टो वचसामृतवर्षिणा ।
गतक्लमोऽब्रवीत्तस्मै यथापूर्वमनुष्ठितम् ॥३१॥

एवं भगवता पृष्टः वचसा अमृत वर्षिणा गतक्लमः अब्रवीत् तस्मै यथा पूर्वं अनुष्ठितम् ॥३१॥

एवं इस प्रकार
अमृत वर्षिणा अमृतवर्षी
वचसा भगवता वाणी द्वारा भगवान के
पृष्टः पूछने पर

गतक्लमः	थकावट दूर हो जाने	**तस्मै अब्रवीत्**	उनसे बतला दिया
यथा पूर्वं	जैसा पहिले		॥३१॥
अनुष्ठितं	किया था		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

एवं चेत्तर्हि तद्वाक्यं न वयं श्रद्दधीमहि ।
यो दक्षशापात् पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥३२॥

एवं चेत् तर्हि तत् वाक्यं न वयं श्रद्दधीमहि यः दक्षशापात् पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥३२॥

एवं चेत्	यदि ऐसा है	**यः दक्षशापात्**	जो दक्षके शापसे
तर्हि तत् वाक्यं	तब तो उसकी बात पर	**पैशाच्यं प्राप्तः**	पिशाच भावको प्राप्त हो गया
वयं न श्रद्दधीमहि	हम विश्वास नहीं करते	**प्रेतपिशाचराट्**	प्रेत-पिशाचोंका राजा है ॥३२॥

यदि वस्तत्र विश्रम्भो दानवेन्द्र जगद्गुरौ ।
तर्ह्यङ्गाशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥३३॥

यदि वः तत्र विश्रम्भः दानवेन्द्र जगद्गुरौ तर्हि अङ्ग आशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥३३॥

दानवेन्द्र	दानवेन्द्र !	**तर्हि अङ्ग**	तो प्यारे !
यदि वः	यदि (फिर भी) आपका	**स्वशिरसि**	अपने सिर पर
जगद्गुरौ	जगद्गुरु (मानकर)	**हस्तं न्यस्य**	हाथ रखकर
तत्र विश्रम्भः	उस पर विश्वास हो	**आशु प्रतीयतां**	झटपट विश्वास कर लीजिये ॥३३॥

यद्यसत्यं वचः शम्भोः कथञ्चिद् दानवर्षभ ।
तदैनं जह्यसद्वाचं न यद् वक्तानृतं पुनः ॥३४॥

यदि असत्यं वचः शम्भोः कथञ्चित् दानव ऋषभ तत् एनं जहि असत् वाचं न यत् वक्ता अनृतं पुनः ॥३४॥

दानव ऋषभ	दानवश्रेष्ठ !	**तत् असत् वाचं**	तो झूठी बात कहने वाले
यदि कथञ्चित्	यदि किसी प्रकार	**एनं जहि**	इसको मार दीजिए
शम्भोः वचः	शिवकी बात	**यत् पुनः**	जिससे फिर कभी
असत्यं	झूठी (निकले तो)	**अनृतं न वक्ता**	झूठ न बोले ॥३४॥

॥ श्रीशुक उवाच* ॥

इत्थं भगवतश्चित्रैर्वचोभिः स सुपेशलैः ।
भिन्नधीर्विस्मृतः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिर्व्यधात् ॥३५॥

इत्थं भगवतः चित्रैः वचः भिः स सुपेशलैः भिन्नधीः विस्मृतः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिः व्यधात् ॥३५॥

इत्थं भगवतः	इस प्रकार भगवान द्वारा	**भिन्नधीः**	बुद्धि भ्रष्ट होकर
चित्रैः सुपेशलैः	विचित्र और बहुत मधुर	**स कुमतिः**	उस दुर्बुद्धिने
वचः भिः	वाणी द्वारा	**स्वहस्तं**	अपना हाथ
विस्मृतः	भूलकर (भुलावेमें आकर)	**शीर्ष्णि व्यधात्**	(अपने) सिर पर रख लिया ॥३५॥

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अथापतद् भिन्नशिरा वज्राहत इव क्षणात् ।
जयशब्दो नमःशब्दः साधुशब्दोऽभवद् दिवि ॥३६॥

अथ अपतत् भिन्नशिरा वज्र आहत इव क्षणात् जयशब्दः नमः शब्दः साधुशब्दः अभवत् दिवि ॥३६॥

अथ क्षणात्	तब उसी क्षण	**दिवि जयशब्दः**	स्वर्गमें जयध्वनि,
वज्र आहत इव	वज्रसे मारे गयेके समान	**नमः शब्दः**	नमस्कार ध्वनि एवं
		साधुशब्दः	साधुवाद ध्वनि
भिन्नसिरा	मस्तक फट जानेसे	**अभवत्**	होने लगी ॥३६॥
अपतत्	गिर पड़ा (इससे)		

मुमुचुः पुष्पवर्षाणि हते पापे वृकासुरे ।
देवर्षिपितृगन्धर्वा मोचितः संकटाच्छिवः ॥३७॥

मुमुचुः पुष्प वर्षाणि हते पापे वृकासुरे देव ऋषि पितृ गन्धर्वाः मोचितः सङ्कटात् शिवः ॥३७॥

पापे वृकासुरे	पापी वृकासुरके	**मुमुचुः**	करने लग और
हते	मर जाने पर	**शिवः सङ्कटात्**	शंकरजी संकटसे
देव ऋषि पितृ	देवता, ऋषि, पितर	**मोचितः**	मुक्त कर दिये गये ॥३७॥
गन्धर्वाः	गन्धर्व गण		
पुष्प वर्षाणि	पुष्पोंकी वर्षा		

मुक्तं गिरिशमभ्याह भगवान् पुरुषोत्तमः ।
अहो देव महादेव पापोऽयं स्वेन पाप्मना ॥३८॥

मुक्तं गिरिशं अभि आह भगवान् पुरुषोत्तमः अहो देव महादेव पापः अयं स्वेन पाप्मना ॥३८॥

मुक्तं गिरिशं	(भय) मुक्त शंकरजी से
भगवान्	भगवान्
पुरुषोत्तमः	पुरुषोत्तम
अभि आहं	समीप जाकर बोले —
अहो देव	'हे देव
महादेव	महादेव !
अयं पापः	यह पापी
स्वेन पाप्मना	अपने ही पापसे ॥३८॥

हतः को नु महत्स्वीश जन्तुर्वै कृतकिल्विषः ।
क्षेमी स्यात् किमु विश्वेशे कृतागस्को जगद्गुरौ ॥३९॥

हतः कः नु महत्सु ईश जन्तुः वै कृत किल्विषः क्षेमी स्यात् किमु बिश्व ईशे आगस् कृत जगद्गुरौ ॥३९॥

हतः	मारा गया
वै कः नु	निश्चित ही भला कौन
जन्तुः	प्राणी
ईश महत्सु	समर्थ महापुरुषका
कृत किल्विषः	अपराध करके
क्षेमी स्यात्	सकुशल रह सकता है
विश्व ईशे	फिर विश्वेश्वर
जगद्गुरौ	जगद्गुरु
आगस् कृत् किमु	अपराध करने वाल तो रह ही कैसे सकता है' ॥३९॥

य एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः
परस्य साक्षात् परमात्मनो हरेः ।
गिरित्रमोक्षं कथयेच्छृणोति वा
विमुच्यते संसृतिभिस्तथारिभिः ॥४०॥

यः एवं अव्याकृत शक्ति उदन्तः परस्य साक्षात् परमात्मनः हरेः गिरित्र मोक्षं कथयेत् शृणोति वा विमुच्यते संसृतिभिः तथा अरिभिः ॥४०॥

अव्याकृत शक्ति	अशिथिल शक्ति
उदन्वतः	समुद्र
परस्य	परम पुरुष
साक्षात्	साक्षात्
परमात्मनः	परमात्मा
हरेः एवं	श्रीहरि द्वारा इस प्रकार
गिरित्र मोक्षं	शंकरजीके छुटकारे को
यः कथयेत्	जो वर्णन करता है
वा शृणोति	अथवा सुनाता है (वह)
संसृतिभिः	जन्म-मरण चक्रसे
तथा अरिभिः	तथा शत्रुओंके भयसे
विमुच्यते	छूट जाता है ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुद्रमोक्षणं नामअष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

अथ एकोननवतितमोऽध्यायः

॥ श्रीशक उवाच ॥

सरस्वत्यास्तटे राजन्नृषयः सत्रमासत ।
वितर्कः समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान् ॥ १ ॥

सरस्वत्याः तटे राजन् ऋषयः सत्रं आसत वितर्कः सम अभूत् तेषां त्रिषु अधीशेषु कः महान् ॥१॥

राजन्	राजन् !	**अभूत्**	हो गया कि
सरस्वत्याः तटे	सरस्वती नदीके किनारे	**त्रिषु अधीशेषु**	(जगत्के) तीनों अधीश्वरोंमें
सत्रं आसत	यज्ञ करते हुए	**कः महान्**	कौन सबसे महान है ॥१॥
तेषां ऋषयः	उन ऋषियोंमें		
वितर्कः सम	परस्पर विवाद		

तस्य जिज्ञासया ते वै भृगुं ब्रह्मसुतं नृप ।
तज्ज्ञप्त्यै प्रेषयामासुः सोऽभ्यगाद् ब्रह्मणः सभाम् ॥२॥

तस्य जिज्ञासया ते वै भृगुं ब्रह्मसुतं नृप तत् ज्ञप्त्यै प्रेषयामासुः सः अभ्यगात् ब्रह्मणः सभाम् ॥२॥

नृप	राजन् !	**प्रेषयामासुः**	भेजा
वै ते	निश्चय उन्होंने	**सः ब्रह्मणः सभां**	वे ब्रह्माजीकी सभा में
तस्य जिज्ञासय	उन्हें जाननेकी इच्छासे	**अभ्यगात्**	(ब्रह्माजीके) सम्मुख गये ॥२॥
तत् ज्ञप्त्यैः	उनकी परीक्षाके लिए		
ब्रह्मसुतं भृगुं	ब्रह्माजीके पुत्र भृगु को		

न तस्मै प्रह्वणं स्तोत्रं चक्रे सत्त्वपरीक्षया ।
तस्मै चुक्रोध भगवान् प्रज्वलन् स्वेन तेजसा ॥ ३ ॥

न तस्मै प्रह्वणं स्त्रोत्रं चक्रे सत्त्वपरीक्षया तस्मै चुक्रोध भगवान् प्रज्वलन् स्वेन तेजसा ॥३॥

सत्त्वपरीक्षया	धैर्यकी परीक्षाके लिए	**स्वेन तेजसा**	अपने तेजसे
तस्मै प्रह्वणं	उन (ब्रह्माजी)को प्रणाम	**प्रज्वलन्**	प्रदीप्त होते भगवान
स्तोत्रं न चक्रे	या स्तुति (उन्होंने) नहीं की,	**तस्मै चुक्रोध**	उन पर कुपित हुए ॥३॥

स आत्मन्युत्थितं मन्युमात्मजायात्मना प्रभुः ।
अशीशमद् यथा वह्निं स्वयोन्या वारिणाऽऽत्मभूः ॥४॥

स आत्मनि उत्थितं मन्युं आत्मजाय आत्मना प्रभुः अशीशमद् यथा वह्निं स्वयोन्या वारिणा आत्मभूः ॥४॥

स आत्मभूः	उन स्वयम्भूने	**अशीशमद्**	शान्त कर दिया
आत्मजाय	पुत्र पर	**यथा स्वयोन्यां**	जैसे अपने उत्पत्ति स्थान (अरणि)में
आत्मनि उत्थितं	अपने चित्तमें उत्पन्न	**उत्थितं वह्निं**	उठी अग्निको
मन्युं आत्मना	क्रोधको अपनी बुद्धि से	**वारिणा**	जलसे (शान्त करते हैं) ॥४॥

ततः कैलासमगमत् स तं देवो महेश्वरः ।
परिरब्धुं समारेभे उत्थाय भ्रातरं मुदा ॥ ५ ॥

ततः कैलासं अगमत् स तं देवः महेश्वरः परिरब्धुं सम आरेभे उत्थाय भ्रातरं मुदा ॥५॥

ततः स कैलासं	वहाँसे वे कैलास
अगमत्	गये
देवः महेश्वरः	(वहाँ) देव महेश्वर
तं भ्रातरं मुदा	उन अपने भाईको हर्षसे
उत्थाय	उठकर
परिरब्धुं	आलिंगन करकेका
सम आरेभे	उपक्रम करने लगे ॥५॥

नेच्छत्त्वमस्युत्पथग इति देवश्चुकोप ह ।
शूलमुद्यम्य तं हन्तुमारेभे तिग्मलोचनः ॥ ६ ॥

न इच्छत् त्वं असि उत्पथगः इति देवः चुकोप ह शूलं उद्यम्य तं हन्तुं आरेभे तिग्म लोचनः ॥६॥

त्वं उत्पथगः	'तुम वेद मर्यादाका अतिक्रमण करके चलने वाले हो,
इति	ऐसा कहकर
न इच्छत्	(मिलना) नहीं चाहा
देवः ह चुकोप	(इससे) महादेवजी अत्यन्त कुपित हो
तिग्म लोचनः	प्रचण्ड नेत्र
शूलं उद्यम्य	त्रिशूल उठाकर
तं हन्तुं	उन्हें मारनेको
आरेभे	उद्यत हो गये ॥६॥

पतित्वा पादयोर्देवी सान्त्यामास तं गिरा ।
अथो जगाम वैकुण्ठं यत्र देवो नजार्दनः ॥ ७ ॥

पतित्वा पादयोः देवी सान्त्वयामास तं गिरा अथो जगाम वैकुण्ठं यत्र देवः जनार्दनः ॥७॥

पादयोः पतित्वा	चरणों पर गिरकर
देवी तं	देवी (सती)ने उनको
गिरा	अपनी वाणीसे
सान्त्वयामास	समझाया,
अथो	वहाँसे
वैकुण्ठं जगाम	वैकुण्ठ गये
यत्र देवः	जहाँके आराध्य देव
जनार्दनः	जनार्दन (माया-नाशक) हैं ॥७॥

शयानं श्रिय उत्सङ्गे पदा वक्षस्यताडयत् ।
तत उत्थाय भगवान् सह लक्ष्म्या सतां गतिः ॥ ८ ॥

शयानं श्रिय उत्सङ्गे पदा वक्षसि अताडयत् तत उत्थाय भगवान् सह लक्ष्म्या सतां गतिः ॥८॥

श्रिय उत्सङ्गे	लक्ष्मीकी गोदको तकिया बनाकर	**तत सतां गतिः**	इससे सन्तोंके परमाश्रय
शयानं	सोये हुए (भगवान) की	**भगवान्**	भगवान
वक्षसि पदा	छातीको पैरसे	**सह लक्ष्म्या**	लक्ष्मीके साथ
अताडयत्	मारा	**उत्थाय**	उठ गये ॥८॥

स्वतल्पादवरूह्याथ ननाम शिरसा मुनिम् ।
आह ते स्वागतं ब्रह्मन् निषीदात्रासने क्षणम् ।
अजानतामागतान् वः क्षन्तुमर्हथ नः प्रभो ॥ ९ ॥

स्वतल्पात् अवरूह्य अथ ननाम शिरसा मुनि आह ते स्वागतं ब्रह्मन् निषीद अत्र आसने क्षणं अजानतां आगतान् वः क्षन्तुं अर्हथ नः प्रभो ॥९॥

अथ स्वतल्पात्	फिर अपनी शैय्यासे	**ते स्वागतं**	आपका स्वागत है
अवरूह्य	उतरकर	**अत्र आसने**	यहां आसन पर
मुनि शिरसा	मुनिको सिर झुकाकर	**क्षणं निषीद**	एक क्षण विराजिये
ननाम	नमस्कार किया	**वः आगतान्**	आपका आगमन
आह	और बोले—	**अजानतां**	न जानने वाले
ब्रह्मन्	'ब्रह्मन् !	**नः क्षन्तुं अर्हथ**	हमको क्षमा करना चाहिए ॥९॥

अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने ।
इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन् स्वेन पाणिना ॥१०॥

अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने इति उक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन् स्वेन पाणिना ॥१०॥

तात महामुने	तात ! महामुने !	**विप्रचरणौ**	ब्राह्मणके दोनों चरण
ते चरणौ	आपके चरण	**स्वेन पाणिना**	अपने हाथोंसे
अतीव कोमलौ	अत्यन्त कोमल हैं	**मर्दयन्**	दबाने लगे ॥१०॥
इति उक्त्वा	ऐसा कहकर		

॥ श्रीभगवानुवाच ॥*

पुनीहि सहलोकं मां लोकपालांश्च मद्गतान् ।
पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥११॥

पुनीहि सह लोकं मां लोकपालान् च मद्गतान् पाद उदकेन भवतः तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥११॥

तीर्थानां	तीर्थोंको	**लोकान्**	लोकोंको
तीर्थकारिणा	तीर्थ बनाने वाले	**च लोकपालान्**	तथा लोकपालोंको
भवतः	आपके	**मां सह**	मेरे साथ
पाद उदकेन	चरणोदकसे	**पुनीहि**	पवित्र कीजिए ॥११॥
मद्गतान्	मेरे भीतर स्थित		

अद्याहं भगवल्लक्ष्म्या आसमेकान्तभाजनम् ।
वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्पादहतांहसः ॥१२॥

अद्य अहं भगवन् लक्ष्म्या आसं एकान्त भाजनं वत्स्यसि उरसि मे भूतिः भवत् पाद हत अहंसः ॥१२॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भवत् पाद	आपके चरणोंसे
हत अहंसः	(मेरे) पाप नष्ट हो गये
भगवन्	भगवन् !
अद्य अहं	आज मैं
लक्ष्म्या	लक्ष्मीका
एकान्त भाजनं	एकमात्र आश्रय
आसं	हो गया ।
मे उरसि	मेरे वक्ष पर
भूतिः वत्स्यसि	यह शोभा निवास करेगी ॥१२॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एवं ब्रुवाणे वैकुण्ठे भृगुस्तन्मन्द्रया गिरा ।
निर्वृतस्तर्पितस्तूष्णीं भक्त्युत्कण्ठोऽश्रुलोचनः ॥१३॥

एवं ब्रुवाणे वैकुण्ठे भृगुः तत् मन्द्रया गिरा निर्वृतः तर्पितः तूष्णीं भक्ति उत्कण्ड अश्रुलोचनः ॥१३॥

वैकुण्ठे एवं	भगवान् विष्णुके के इस प्रकार
बुवाणे	कहने पर
तत्	उनकी
मन्द्रया गिरा	गम्भीर वाणीसे
निर्वृतः	आनन्दित होकर
तर्पितः	तृप्त होकर
अश्रुलोचनः	नेत्रोंमें अश्रुभरे
भक्तिउत्कण्ठः	भक्तिसे भरे कण्ठ
तूष्णीं भृगुः	चुपचाप भृगुजी ॥१३॥

पुनश्च सत्रमाव्रज्य मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ।
स्वानुभूतमशेषेण राजन् भृगुरवर्णयत् ॥१४॥

पुनः च सत्रं आव्रज्य मुनीनां ब्रह्मवादिनां स्व अनुभूतं अशेषेण राजन् भृगुः अवर्णयत् ॥१४॥

पुनः च सत्रं	फिरसे यज्ञमें
आव्रज्य	लौटकर
ब्रह्मवादिनां	वेदवादी
मुनीनां	मुनियोंसे
स्व अनुभूतं	अपना अनुभव
अशेषेण	पूर्णरूपसे
राजन्	राजन् !
भृगुः अवर्णयत्	भृगुजीने वर्णन किया ॥१४॥

तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः ।
भूयांसं श्रद्दधुर्विष्णुं यतः शान्तिर्यतोऽभयम् ॥१५॥

तत् निशम्य अथ मुनयः विस्मिताः मुक्तसंशयाः भूयांसं श्रद्दधुः विष्णुं यतः शान्तिः यतः अभयम् ॥१५॥

अथ मुनयः	तब मुनिगण	**विष्णुं भूयांसं**	विष्णुको सबसे बड़ा
तत् निशम्य	उस (अनुभव)को सुनकर	**श्रद्दधुः**	मानने लगे,
विस्मिताः	चकित हो गये	**यतः शान्तिः**	जिससे शान्ति और
मुक्तसंशयाः	संशयसे छूट गये	**यतः अभयं**	जिनसे अभय उत्पन्न हैं ॥१५॥

धर्मः साक्षाद् यतो ज्ञानं वैराग्यं च तदन्वितम् ।
ऐश्वर्यं चाष्टधा यस्माद् यशश्चात्ममलापहम् ॥१६॥

धर्मः साक्षात् यतः ज्ञानं वैराग्यं च तत् अन्वितं ऐश्वर्यं च अष्टधा यस्मात् यशः च आत्ममल अपहम् ॥१६॥

यतः साक्षात्	जिनसे साक्षात्	**च आत्ममल**	और अपने चित्तके दोषोंको
धर्मः	धर्म	**अपहं**	दूर करने वाला
च तत् अन्वितं	तथा उससे युक्त	**यशः यस्मात्**	यश जिनसे प्राप्त होता है ॥१६॥
ज्ञानं वैराग्यं	ज्ञान-वैराग्य		
च अष्टधा ऐश्वर्यं	एवं (अणिमादि) आठो प्रकारका ऐश्वर्य		

मुनीनां न्यस्तदण्डानां शान्तानां समचेतसाम् ।
अकिंचनानां साधूनां यमाहुः परमां गतिम् ॥१७॥

मुनीनां न्यस्त दण्डानां शान्तानां समचेतसां अकिञ्चनानां साधूनां यं आहुः परमां गतिम् ॥१७॥

न्यस्त दण्डानां	सभीको दण्ड देना छोड़े हुए
शान्तानां	शान्त,
समचेतसां	समान चित्त
मुनीनां	मुनियोंके
अकिञ्चनानां	निष्किञ्चन (अपरिग्रही)
साधूनां	साधुओंके
यं परमांगतिं	जिनको परम आश्रय
आहुः	(शास्त्रोंमें) कहा गया है ॥१७॥

सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिर्ब्राह्मणास्त्विष्टदेवताः ।
भजन्त्यनाशिषः शान्ता यं वा निपुणबुद्धयः ॥१८॥

सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिः ब्राह्मणाः तु इष्ट देवताः भजन्ति अनाशिषः शान्ता यं वा निपुणबुद्धयः ॥१८॥

यस्य प्रिया मूर्ति	जिनका प्रिय स्वरूप
सत्त्वं	सत्त्व गुण है,
तु ब्राह्मणाः	तथा ब्राह्मण
इष्ट देवताः	(जिनके) इष्ट देव हैं
निपुणबुद्धयः	कुशल बुद्धि
वा अनाशिषः	अथवा निष्काम
शान्ता	शान्त लोग
यं भजन्ति	जिनका भजन करते हैं ॥१८॥

त्रिविधाकृतयस्तस्य राक्षसा असुराः सुराः ।
गुणिन्या मायया सृष्टाः सत्त्वं तत्तीर्थसाधनम् ॥१९॥

त्रिविधा कृतयः तस्य राक्षसा असुराः सुराः गुणिन्या मायया सृष्टाः सत्त्वं तत् तीर्थ साधनम् ॥१९॥

तस्य गुणिन्या	उनकी गुणमयी
मायया सृष्टाः	मायाके द्वारा बनायी हुई
त्रिविधा कृतयः	तीन प्रकारकी रचनाएँ हैं
राक्षासा	राक्षस,
असुराः	असुर और
सुराः	देवता
तत् तीर्थ	(इनमे) उन परम पावनकी
साधनं	प्राप्तिके साधन
सत्त्वं	सात्विक देवता हैं ॥१९॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

एवं सारस्वता विप्रा नृणां संशयनुत्तये ।
पुरुषस्य पदाम्भोजसेवया तद्गतिं गताः ॥२०॥

एवं सारस्वता विप्रा नृणां संशयनुत्तये पुरुषस्य पदाम्भोजसेवया तद्गतिं गताः ॥२०॥

एवं सारस्वता	इस प्रकार सरस्वती किनारेके	**पुरुषस्य**	(फिर वे) परम पुरुषके
विप्रा नृणां संशयनुत्तये	ब्राह्मणोंने मनुष्योंके संशयको नष्ट करने का (प्रयत्न किया)	**पदाम्भोज-सेवया**	चरण-कमलोंकी सेवासे
		तद्गतिं गताः	उनके स्वरूपको प्राप्त हुए ॥२०॥

॥ सूत उवाच ॥

इत्येतन्मुनितनयास्यपद्मगन्ध-
पीयूषं भवभयभित् परस्य पुंसः ।
सुश्लोकं श्रवणपुटैः पिबत्यभीक्ष्णं
पान्थोऽध्वभ्रमणपरिश्रमं जहाति ॥२१॥

इति एतत् मुनितनयस्य पद्मगन्ध पीयूषं भवभयभित् परस्य पुंसः सुश्लोकं श्रवणपुटैः पिबति अभीक्ष्णं पान्थः अध्वभ्रमण परिश्रमं जहाति ॥२१॥

भवभयभित्	भव भय नाशक	**इति एतत्**	इस प्रकारकी यह
परस्य पुंसः	परम पुरुषकी		

---

*यह उवाच सभी प्रतियोंमें है; किन्तु होना नहीं चाहिए; क्योंकि शुकदेवजी ही श्लोक १३ से बोल रहे हैं। बीचमें दूसरा कोई बोला नहीं है। प्रसंग भी बदलता नहीं है।

मुनितनयस्य	मुनि व्यास नन्दनकी (कही हुई)
सुश्लोकं	पवित्र कीर्ति रूपी
पद्मगन्ध	कमलकी सुगन्धि वाली
पीयूषं	सुधाका जो
श्रवणपुटैः	कान रूपी दोनोंसे
अभीक्ष्णं पिबति	निरन्तर पीता है (वह)
पान्थः	(संसार पथका) पथिक
अध्वश्रमण	इस मार्गमें भटकने की
परिश्रमं	थकावट
जहाति	छोड़ (मिटा) देता ॥२१॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥

एकदा द्वारवत्यां तु विप्रपत्न्याः कुमारकः ।
जातमात्रो भुवं स्पृष्ट्वा ममार किल भारत ॥२२॥

एकदा द्वारवत्यां तु विप्रपत्न्याः कुमारकः जातमात्रः भुवं स्पृष्ट्वा ममार किल भारत ॥२२॥

भारत	परीक्षित् !
एकदा तु	एक बार तो
द्वारवत्यां	द्वारिकामें
विप्रपत्न्याः	(एक) ब्राह्मण-पत्नी का
जातमात्रः	तत्कालका उत्पन्न
कुमारकः	शिशु
किल भुवं	अहो ! भूमिका
स्पृष्ट्वा	स्पर्श होते ही
ममार	मर गया ॥२२॥

विप्रो गृहीत्वा मृतकं राजद्वार्युपधाय सः ।
इदं प्रोवाच विलपन्नातुरो दीनमानसः ॥२३॥

विप्रः गृहीत्वा मृतकं राजद्वारि उपधाय सः इदं प्रोवाच विलपन् आतुरः दीनमानसः ॥२३॥

सः आतुरः	वह व्याकुल	**राजद्वारि**	राजद्वार पर
दीनमानसः	दुःखी चित्त	**उपधाय**	रखकर
विप्रः मृतकं	ब्राह्मण मरे (पुत्रको)	**विलपन्**	विलाप करते हुए
गृहीत्वा	लाकर	**इदं प्रोवाच**	यह चिल्लाता रहा ॥२३॥

ब्रह्मद्विषः शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः ।
क्षत्रबन्धोः कर्मदोषात् पञ्चत्वं मे गतोऽर्भकः ॥२४॥

ब्रह्मद्विषः शठधियः लुब्धस्य विषय आत्मनः क्षत्रबन्धोः कर्मदोषात् पञ्चत्वं मे गतः अर्भकः ॥२४॥

ब्रह्मद्विषः	'इन ब्राह्मण द्वेषी	**क्षत्रबन्धोः**	अधम क्षत्रिय राजा के
शठधियः	धूर्त	**कर्मदोषात्**	दूषित कर्मसे
लुब्धस्य	लोभी (कृपण)	**मे अर्भकः**	मेरा शिशु
विषय आत्मनः	विषय भोग परायण चित्त	**पञ्चत्वं गतः**	मरा है ॥२४॥

हिंसाविहारं नृपतिं दुःशीलमजितेन्द्रियम् ।
प्रजा भजन्त्यः सीदन्ति दरिद्रा नित्यदुःखिताः ॥२५॥

हिंसाविहारं नृपति दुःशीलं अजित इन्द्रियं प्रजा भजन्त्यः सीदन्ति दरिद्रा नित्य दुःखिताः ॥२५॥

हिंसाविहारं	हिंसाकी क्रीड़ा करने वाले	**प्रजा नित्य**	प्रजा सदा
दुःशीलं	कदाचारी	**दुःखिता**	दुःखी
अजित इन्द्रियं	अजित इन्द्रिय	**दरिद्रा सीदन्ति**	दरिद्र रहकर कष्ट भोगती है ॥२५॥
नृपति भजन्त्यः	राजाकी सेवा करने वाली		

एवं द्वितीयं विप्रर्षिस्तृतीयं त्वेवमेव च ।
विसृज्य स नृपद्वारि तां गाथां समगायत ॥२६॥

एवं द्वितीयं विप्रर्षिः तृतीयं तु एवं एव च विसृज्य स नृपद्वारि तां गाथां समगायत ॥२६॥

एवं द्वितीयं	इसी प्रकार दूसरे (शिशु)को	**स विप्रर्षि**	वह ब्रह्मर्षि
च तृतीयं तु	तथा तीसरेको भी	**तां गाथां**	वही बात
नृपद्वारि	राजाके द्वार पर	**समगायत**	बार-बार कहता रहा ॥२५॥
विसृज्य	छोड़कर		

तामर्जुन उपश्रुत्य कर्हिचित् केशवान्तिके ।
परेते नवमे बाले ब्राह्मणं समभाषत ॥२७॥

तां अर्जुनः उपश्रुत्य कर्हिचित् केशव अन्तिके परेते नवमे बाले ब्राह्मणं समभाषत ॥२७॥

कर्हिचित्	किसी समय		ब्राह्मणकी बात
नवमे बाले परेते	नौवें बालकके मरने पर		समीपसे सुनकर
		अर्जुनः ब्राह्मणं	अर्जुनने ब्राह्मणसे
केशव अन्तिके	श्रीकेशवके समीप	**समभाषत**	समीप जाकर कहा ॥२७॥
तां उपश्रुत्य	(बैठे हुए) उस		

किंस्विद् ब्रह्मंस्त्वन्निवासे इह नास्ति धनुर्धरः ।
राजन्यबन्धुरेते वै ब्राह्मणाः सत्र आसते ॥२८॥

किं स्वित् ब्रह्मन् त्वत् निवासे इह न अस्ति धनुर्धरः राजन्य बन्धुः एते वै ब्राह्मणाः सत्र आसते ॥२८॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	**किं त्वत् निवासे**	क्या आपके निवास स्थानमें

इह धनुर्धरः	यहां कोई धनुर्धर	**वै ब्राह्मणाः**	निश्चय ब्राह्मण होकर
न अस्ति स्वित्	नहीं है क्या ?		
एते राजन्य बन्धुः	ये क्षत्रिय लोग	**सत्रं आसते**	यज्ञ करने लगे हैं ? ॥२८॥

धनदारात्मजापृक्ता यत्र शोचन्ति ब्राह्मणाः ।
ते वै राजन्यवेषेण नटा जीवन्त्यसुम्भराः ॥२९॥

धनदार आत्मजा पृक्ता यत्र शोचन्ति ब्राह्मणाः ते वै राजन्यवेषेण नटा जीवन्ति असुम्भराः ॥२९॥

धनदार	सम्पत्ति, स्त्री	**राजन्यवेषेण**	(क्षत्रिय) राजाके वेशमें
आत्मजा पृक्ता	या पुत्रसे वियुक्त होकर	**असुम्भराः**	अपना प्राण (पेट) पालने वाले
यत्र ब्राह्मणाः	जहाँ ब्राह्मण		
शोचन्ति	शोक करते हैं	**नटा जीवन्ति**	नटोंके समान जीते हैं ॥२९॥
वै ते	निश्चय वहां के वे		

अहं प्रजा वां भगवन् रक्षिष्ये दीनयोरिह ।
अनिस्तीर्णप्रतिज्ञोऽग्निं प्रवेक्ष्ये हतकल्मषः ॥३०॥

अहं प्रजा वां भगवन् रक्षिष्ये दीनयोः इह अनिस्तीर्ण प्रतिज्ञः अग्निं प्रवेक्ष्ये हतकल्मषः ॥३०॥

भगवन्	भगवन् !	**अनिस्तीर्ण**	यदि पूरी न कर सका तो भी
दीनयोः वां	दुःखी आपकी		
प्रजा इह	सन्तानकी यहां	**हतकल्मषः**	निष्पाप होकर
अहं रक्षिष्ये	मैं रक्षा करूँगा	**अग्निं प्रवेक्ष्ये**	अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥३०॥
प्रतिज्ञः	(अपनी) प्रतिज्ञाको		

॥ ब्राह्मण उवाच ।

सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः ।
अनिरुद्धोऽप्रतिरथो न त्रातुं शक्नुवन्ति यत् ॥३१॥

सङ्कर्षणः वासुदेवः प्रद्युम्नः धन्विनां वरः अनिरुद्धः अप्रतिरथः न त्रातुं शक्नुवन्ति यत् ॥३१॥

सङ्कर्षणः	बलरामजी	**अनिरुद्धः**	अनिरुद्ध
वासुदेवः	श्रीकृष्ण,	**यत् त्रातुं**	जिसे बचानेमें
धन्विनां वरः	धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ	**शक्नुवन्ति न**	समर्थ नहीं हो रहे हैं ॥३१॥
प्रद्युम्नः	प्रद्युम्न		
अप्रतिरथः	अद्वितीय योद्धा		

तत् कथं नु भवान् कर्म दुष्करं जगदीश्वरैः ।
चिकीर्षसि त्वं बालिश्यात् तन्न श्रद्दध्महे वयम् ॥३२॥

तत् कथं नु भवान् कर्म दुष्करं जगदीश्वरैः चिकीर्षसि त्वं बालिश्यात् तत् न श्रद्दध्महे वयम् ॥३२॥

जगदीश्वरैः	इन जगदीश्वरोंके लिए भी	**त्वं चिकीर्षसि**	तुम करना चाहते हो
दुष्करं तत् कर्म	कठिन वह काम	**तत् वयं**	अतः हम (इस पर)
भवान् नु कथं	आप भला कैसे (करेंगे)	**न श्रद्दध्महे**	विश्वास नहीं करते ॥३२॥
बालिश्यात्	मूर्खतावश उसे		

॥ अर्जुन उवाच ।

नाहं सङ्कर्षणो ब्रह्मन् न कृष्णः कार्ष्णिरेव च ।
अहं वा अर्जुनो नाम गाण्डीवं यस्य वै धनुः ॥३३॥

न अहं सङ्कर्षणः ब्रह्मन् न कृष्णः कार्ष्णिः एव च अहं वा अर्जुनः नाम गाण्डीवं यस्य वै धनुः ॥३३॥

ब्रह्मन् ब्रह्मन् !
अहं न सङ्कर्षणः मैं न बलराम हूँ
न कृष्णः न श्रीकृष्ण
वा कार्ष्णिः एव च अथवा श्रीकृष्ण का पुत्र-पोत्र ही कोई
अहं वा मैं तो
अर्जुनः नाम अर्जुन नाम वाला हूँ
वै यस्य धनुः निश्चय जिसका धनुष
गाण्डीवं गाण्डीव है ॥३३॥

मावमंस्था मम ब्रह्मन् वीर्यं त्र्यम्बकतोषणम् ।
मृत्युं विजित्य प्रधने आनेष्ये ते प्रजां प्रभो ॥३४॥

मा अवमंस्था मम ब्रह्मन् वीर्यं त्र्यम्बक तोषणं मृत्युं विजित्य प्रधने आनेष्ये ते प्रजां प्रभो ॥३४॥

ब्रह्मन् प्रभो ब्रह्मन् ! प्रभो !
त्र्यम्बक तोषणं शंकरजीको सन्तुष्ट करने वाले
मम वीर्यं मेरे पराक्रमका
अवमंस्था या तिरस्कार मत कीजिए
प्रधने युद्धमें
मृत्युं विजित्य मृत्युको जीतकर
ते प्रजां आपकी सन्तान
आनेष्ये लौटा लाऊँगा ॥३४॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥*

एवं विश्वम्भितो विप्रः फाल्गुनेन परंतप ।
जगाम स्वगृहं प्रीतः पार्थवीर्यं निशामयन् ॥३५॥

एवं विश्वम्भितः विप्रः फाल्गुनेन परंतप जगाम स्वगृहं प्रीतः पार्थ-वीर्यं निशामयन् ॥३५॥

---

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

परंतप	शत्रुतापक परीक्षित	**निशामयन्**	(लोगोंसे) सुनता हुआ
एवं फाल्गुनेन	इस प्रकार अर्जुन द्वारा	**प्रीतः विप्रः**	प्रसन्न होकर ब्राह्मण
विश्रम्भितः	विश्वास दिलाने पर	**स्वगृहं जगाम**	अपने घर चला गया ॥३५॥
पार्थवीर्य	अर्जुनका पराक्रम		

प्रसूतिकाल आसन्ने भार्यायां द्विजसत्तमः ।
पाहि पाहि प्रजां मृत्योरित्याहार्जुनमातुरः ॥३६॥

प्रसूतिकाल आसन्ने भार्यायां द्विजसत्तमः पाहि पाहि प्रजां मृत्योः इति आह अर्जुनं आतुरः ॥३६॥

भार्यायां	अपनी पत्नीके	**इति अर्जुनं आह**	इस प्रकार अर्जुनसे बोला—
प्रसूतिकाल	प्रसवका समय	**पाहि मृत्योः**	'बचाइये ! मृत्युसे
आसन्ने	समीप आने पर	**प्रजां पाहि**	(मेरी) सन्तान
आतुरः	व्याकुल होकर		बचाइये ! ॥३७॥
द्विजसत्तमः	वह ब्राह्मण श्रेष्ठ		

स उपस्पृश्य शुच्यम्भो नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
दिव्यान्यस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गाण्डीवमाददे ॥३७॥

स उपस्पृश्य शुचि अम्भः नमस्कृत्य महेश्वरं दिव्यानि अस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गाण्डीवं आददे ॥३७॥

स शुचि अम्भः	उन (अर्जुन)ने पवित्र जलसे	**दिव्याणि अस्त्रानि**	दिव्यास्त्रोंका
उपस्पृश्य	आचमन करके	**संस्मृत्य**	स्मरण करके
महेश्वरं	महेश्वरको	**गाण्डीवं सज्यं**	गाण्डीव धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर
नमस्कृत्य	नमस्कार करके	**आददे**	हाथमें उठाया ॥३७॥

न्यरुणत् सूतिकागारं शरैर्नानास्त्रयोजितैः ।
तिर्यगूर्ध्वमधः पार्थश्चकार शरपञ्जरम् ॥३८॥

न्यरुणत् सूतिका आगारं शरैः नाना अस्त्र योजितैः तिर्यक् ऊर्ध्व अधः पार्थैः चक्कार शरपञ्जरम् ॥३८॥

सूतिका आगारं	प्रसूति गृहको
नाना अस्त्र	अनेक अस्त्रोंसे
योजितैः	युक्त
शरैः तिर्यक्	बाणोंसे आड़े,
ऊर्ध्वं अधः	ऊपर-नीचे
न्यरुणत्	रूंध दिया
पार्थैः	अर्जुनने (उस गृहको)
शरपञ्जरं	बाणोंका पिंजड़ा
चक्कार	बना दिया ॥३८॥

ततः कुमारः संजातो विप्रपत्न्या रुदन् मुहुः ।
सद्योऽदर्शनमापेदे सशरीरो विहायसा ॥३९॥

ततः कुमारः संजातः विप्रपत्न्या रुदन् मुहुः सद्यः अदर्शनं आपेदे सशरीरः विहायसा ॥३९॥

ततः विप्रपत्न्या	तब ब्राह्मणकी पत्नीको
कुमारः संजातः	बालक उत्पन्न हुआ
सद्यः मुहुः रुदन्	तुरन्त बार-बार रोते हुए
विहायसा	आकाशमें
सशरीरः	शरीरके साथ
अदर्शनं आपेदे	अदृश्याताको प्राप्त हो गया ॥३९॥

तदाऽऽहविप्रो विजयं विनिन्दन् कृष्णसन्निधौ ।
मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्दधे क्लीबकत्थनम् ॥४०॥

तदा आह विप्रः विजयं विनिन्दन कृष्ण सन्निधौ मौढ्यं पश्यत मे यः अहं श्रद्दधे क्लीबकथत्थनम् ॥४०॥

तदा कृष्ण	तब श्रीकृष्णके
सन्निधौ	समीप बैठे
विजयं विनिन्दन	अर्जुनकी निन्दा करते हुए
विप्रः आह	ब्राह्मण कहने लगा—
मे मौढ्यं पश्यत	'मेरी मूर्खता तो देखो,
यः अहं	जो मैंने

क्लीबकत्थनं	इस नपुंसककी बक-वाद पर	**श्रद्दधे**	विश्वास कर लिया ॥४०॥

न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः ।
यस्य शेकुः परित्रातुं कोऽन्यस्तदवितेश्वरः ॥४१॥

न प्रद्युम्नः न अनिरुद्धः न रामः न च केशवः यस्य शेकुः परित्रातुं कः अन्यः तत् अवित ईश्वरः ॥४१॥

यस्य परित्रातुं	जिसको बचानेमें	**शेकुः**	समर्थ हुए
न प्रद्युम्नः	न प्रद्युम्न,	**अन्यः कः**	दूसरा कौन
न अनिरुद्धः	न अनिरुद्ध	**तत् अवित**	उसकी रक्षामें
न रामः	न बलराम	**ईश्वरः**	समर्थ हो सकता है ॥४१॥
च न केशवः	और न श्रीकृष्ण ही		

धिगर्जुनं मृषावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः ।
दैवोपसृष्टं यो मौढ्यादानिनीषति दुर्मतिः ॥४२॥

धिक् अर्जुनं मृषावादं धिक् आत्मश्लाघिनः धनुः दैव उपसृष्टं यः मौढ्यात् आनिनीयषति दुर्मतिः ॥४२॥

मृषावादं	मिथ्यावादी	**यः दुर्मतिः**	जो दुर्बुद्धि
अर्जुनं धिक्	अर्जुनको धिक्कार है !	**मौढ्यात्**	मूर्खतावश
आत्मश्लाघिनः	अपने मुंह अपनी प्रशंसा करने वाले	**दैव उपसृष्टं**	प्रारब्ध द्वारा हटाये गयेको
धनुः धिक्	इसके धनुषको धिक्कार है	**आनिनीषति**	ले आना चाहता था ॥४२॥

एवं शपति विप्रर्षौ विद्यामास्थाय फाल्गुनः ।
ययौ संयमनीमाशु यत्रास्ते भगवान् यमः ॥४३॥

एवं शपति विप्रर्षौ विद्यां आस्थाय फाल्गुनः ययौ संयमनीं आशु यत्र आस्ते भगवान् यमः ॥४३॥

एवं विप्रर्षौ	इस प्रकार उन ब्रह्मर्षिके
शपति फाल्गुनः	गाली देते समय ही अर्जुन
विद्यां आस्थाय	योगविद्याका सहारा लेकर
यत्र भगवान्	यहाँ भगवान
यमः	यमराज
आस्ते संयमनीं	रहते हैं उस संयमनी पुरीमें
आशु ययौ	शीघ्र गये ॥४३॥

विप्रापत्यमचक्षाणस्तत ऐन्द्रीमगात् पुरीम् ।
आग्नेयीं नैर्ऋतीं सौम्यां वायव्यां वारुणीमथ ।
रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः ॥४४॥

विप्र अपत्यं अचक्षाणः तत ऐन्द्रीं अगात् पुरीं आग्नेयीं नैर्ऋतीं सौम्यां वायव्यां वारुणीं अथ रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यानि अन्यानि उदायुधः ॥४४॥

विप्र अपत्यं	ब्राह्मणके पुत्रको
तत्र अन्वक्षाणः	वहां न देखकर
ततः ऐन्द्रीं पुरीं	वहाँसे इन्द्रकी पुरी (स्वर्ग)
अगात्	गये ।
अथ उदायुधः	फिर अस्त्र उठाये
आग्नेयीं	अग्नि पुरी,
नैर्ऋतीं	निर्ऋतिकी पुरी
सौम्यां वायव्यां	चन्द्रलोक, वायुदेव
वारुणीं	और वरुणके लोक
रसातलं	पृथ्वीके नीचेके लोक
नाकपृष्ठं	स्वर्गके ऊपरके
अन्यानि	दूसरे
धिष्ण्यान्यानि	लोकोंमें गये ॥४४॥

ततोऽलब्धद्विजसुतो ह्यनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः ।
अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रत्युक्तः प्रतिषेधता ॥४५॥

ततः अलब्ध द्विजसुतः हि अनिस्तीर्ण प्रतिश्रुतः अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रति उक्तः प्रतिषेधता ॥४५॥

ततः द्विजसुतः	तब ब्राह्मणके पुत्र को	**अग्नि विविक्षुः**	अग्नि-प्रवेशकी इच्छा की
अलब्ध	न पाकर	**प्रतिषेधता**	तब रोकते हुए
हि प्रतिश्रुतः	क्योंकि प्रतिज्ञा	**कृष्णेन**	श्रीकृष्णने
अनिस्तीर्ण	पूरी नहीं कर सके,	**प्रति उक्तः**	उनसे कहा ॥४५॥

दर्शये द्विजसूनूंस्ते मावज्ञात्मानमात्मना ।
ये ते नः कीर्ति विमलां मनुष्याः स्थापयिष्यन्ति ॥४६॥

दर्शये द्विजसूनुं ते मा अवज्ञ आत्मानं आत्मना ये ते नः कीर्ति विमलां मनुष्याः स्थापयिष्यन्ति ॥४६॥

आत्मानं	अपने आप	**ये ते मनुष्याः**	यही मनुष्य लोग
आत्मना	अपना	**नः विमलां**	हम लोगोंकी
अवज्ञ मा	तिरस्कार मत करो	**कीर्ति**	निर्मल कीर्ति
ते द्विजसूनुं	तुम्हें ब्राह्मणके पुत्र	**स्थापयिष्यन्ति**	स्थापित करेंगे' ॥४६॥
दर्शये	दिखला देता हूँ		

इति संभाष्य भगवानर्जुनेन सहेश्वरः ।
दिव्यं स्वरथमास्थाय प्रतीचीं दिशमाविशत् ॥४७॥

इति सम्भाष्य भगवान् अर्जुनेन सह ईश्वरः दिव्यं स्वरथं आस्थाय प्रतीचीं दिशं आविशत् ॥४७॥

इति सम्भाष्य	ऐसा कहकर	**आस्थाय**	बैठकर
ईश्वरः भगवान्	सर्व समर्थ भगवान	**प्रतीचीं दिशं**	पश्चिम दिशामें
अर्जुनेन सह	अर्जुनके साथ	**आविशत्**	प्रविष्ट हुए ॥४७॥*
दिव्यं स्वरथं	अपने दिव्य रथ पर		

---

*'आविशत्' संकेत करता है कि यह यात्रा स्थूलसे सूक्ष्म जगत्में हो रही है ।

सप्त द्वीपान् सप्त सिन्धून् सप्तसप्तगिरीनथ ।
लोकालोकं तथातीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥४८॥

सप्त द्वीपान् सप्त सिन्धून् सप्त सप्त गिरीन् अथ लोकालोकं तथा अतीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥४८॥

सप्त द्वीपान्	सातों द्वीपों	**तथा लोकालोकं**	इसी प्रकार लोका लोक क्षेत्रको
सप्त सिन्धून्	सातो समुद्रों	**अतीत्य**	पार करके
अथ	और (उन द्वीपोंके)	**सुमहत्तमः**	अत्यन्त गहन अन्धकारमें
सप्त सप्त गिरीन्	सात-सात पर्वतों को*	**विवेश**	प्रविष्ट हुए ॥४८॥

तत्राश्वाः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाः ।
तमसि भ्रष्टगतयो बभूवुर्भरतर्षभ ॥४९॥

तत्र अश्वाः शैब्य सुग्रीव मेघपुष्प बलाहकाः तमसि भ्रष्टः गतयः बभूवुः भरत ऋषभ ॥४९॥

भरत ऋषभ	भरत श्रेष्ठ !	**मेघपुष्प**	मेघपुष्प और
तत्र तमसि	वहां अन्धकारमें	**बलाहकाः**	बलाहक
अश्वाः	(भगवानके रथके चारो) घोड़े	**भ्रष्ट गतयः**	(सीधे) चलनेसे भटक गये ॥४९॥
		बभुवुः	
शैव्य सुग्रीव	शैव्य, सुग्रीव,		

तान् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णो महायोगेश्वरेश्वरः ।
सहस्रादित्यसंकाशं स्वचक्रं प्राहिणोत् पुरः ॥५०॥

---

*पञ्चम स्कन्धमें अध्याय १६ से २० तक इन सातो द्वीपों, सातो समुद्रों, तथा द्वीपोंके सात-सात पर्वतों एवं लोकालोकका वर्णन है ।

तान् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः महायोगेश्वरः ईश्वरः सहस्र आदित्य संकाशं स्वचक्रं प्राहिणोत् पुरः ॥५०॥

तान् दृष्ट्वा	उस (घोड़ों)को देखकर	**सहस्र आदित्य**	सहस्र सूर्योंके
महायोगेश्वरः	महा योगेश्वरोंके भी	**संकाशं**	समान
ईश्वरः	स्वामी	**स्वचक्रं**	अपने चक्रको
भगवान् कृष्णः	भगवान श्रीकृष्णने	**पुरः प्राहिणोत्**	आगे चलनेको भेजा ॥५०॥

तमः सुघोरं गहनं कृतं महद्
विदारयद् भूरितरेण रोचिषा ।
मनोजवं निर्विविशे सुदर्शनं
गुणच्युतो रामशरो यथा चमूः ॥५१॥

तमः सुघोरं गहनं कृतं महत् विदारयत् भूरितरेण रोचिषा मनः जवं निर्विविशे सुदर्शनं गुणच्युतः रामशरः यथा चमूः ॥५२॥

महत् कृतं	भगवानके द्वारा उत्पन्न	**विदारयत्**	फाड़ते हुए
सुघोरं गहनं	उस अत्यन्त घने गम्भीर	**निर्विविशे**	(ऐसे) घुसता चला
तमः	अन्धकारको	**यथा गुणच्युतः**	जैसे प्रत्यञ्चासे छूटा
भूरितरेण	बहुत अधिक	**रामशरः**	भगवान रामका बाण
रोचिषा	तेजसे	**चमूः**	(शत्रु) सेनामें (ज़ाते थे) ॥५१॥
मनः जवं	मनके समान वेगवान		
सुदर्शनं	सुदर्शन चक्र		

द्वारेण चक्रानुपथेन तत्तमः-
परं परं ज्योतिरनन्तपारम् ।
समश्नुवानं प्रसमीक्ष्य फाल्गुनः
प्रताडिताक्षोऽपिदधेऽक्षिणी उभे ॥५२॥

द्वारेण चक्र अनुपथेन तत् तमः परं परं ज्योतिः अनन्त पारं समश्नुवानं प्रसमीक्ष्य फाल्गुनः प्रताडित अक्षः अपिदधे अक्षिणी उभे ॥५२॥

चक्र अनुपथेन	चक्रके पीछे बने मार्गके	**समश्नुवानं**	भली प्रकार जगमगाते
द्वारेण	द्वारसे	**प्रसमीक्ष्य**	देखकर
तत् तमः पारं	उस घोर अन्धकार को पार करके	**प्रताडित अक्षः**	चौंधियाये नेत्र
अनन्त पारं	अन्त पारावारा रहित	**फाल्गुनः**	अर्जुनने
परं ज्योतिः	परम प्रकाशको	**उभे अक्षिणी**	दोनों नेत्र
		अपिदधे	बन्द कर लिए ॥५२॥

ततः प्रविष्टः सलिलं नभस्वता
बलीयसैजद्बृहदूर्मिभूषणम् ।
तत्राद्भुतं वै भवनं द्युमत्तमं
भ्राजन्मणिस्तम्भसहस्रशोभितम् ॥५३॥

ततः प्रविष्टः सलिलं नभस्वता बलीयसा ऐजत् बृहत् ऊर्मि भूषणं तत्र अद्भुतं वै भवनं द्युमत्तमं भ्राजन् मणिस्तम्भसहस्र शोभितम् ॥५३॥

ततः बलीयसा	फिर प्रबल	**द्युमत्तमं**	अत्यन्त प्रकाशमय
नभस्वता ऐजत्	पवनसे उठायी गयी	**मणिस्तम्भ**	मणियोंके सहस्रों
बृहत् ऊर्मि	उत्ताल तरंगोंके	**सहस्र**	खम्भोंसे
भूषणं सलिलं	आभूषण वाले जलमें	**शोभितं भवनं**	शोभित भवन
प्रविष्टः	(रथने) प्रवेश किया	**भ्राजन्**	जगमगा रहा था ॥५३॥
तत्र वै अद्भुतं	वहां निश्चय अद्भुत		

तस्मिन् महाभीममनन्तमद्भुतं
सहस्रमूर्धन्यफणामणिद्युभिः ।

विभ्राजमानं द्विगुणोल्बणेक्षणं
सिताचलाभं शितिकण्ठजिह्वम् ॥५४॥

तस्मिन् महाभीम अनन्तं अद्भुतं सहस्रमूर्धन्य फणामणिद्युभिः विभ्राजमानं द्विगुण उल्बण ईक्षणं सित अचल आभं शितिकण्ठ जिह्वम् ॥५४॥

तस्मिन्	उस (भवन)में
महाभीम	अतिशय भयानक
अद्भुतं	आश्चर्य जनक
सहस्रमूर्धन्य	सहस्र सिरोंके
फणामणिद्युभिः	फणोंकी मणियोंकी कान्तिसे
विभ्राजमानं	चमकते हुए
द्विगुण	दो गुने
उल्बण ईक्षणं	उग्र नेत्र वाले
शितिकण्ठ	नीले गले एवं
जिह्वं	जीभ वाले
सित अचल	श्वेत पर्वतके
आभं	समान
अनन्तं	शेषजीको (देखा) ॥५४॥

ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं
महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम् ।
सान्द्राम्बुदाभं सुपिशङ्गवाससं
प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम् ॥५५॥

ददर्श तत् भोग सुख आसनं विभुं महा अनुभावं पुरुषोत्तम उत्तमं सान्द्र अम्बुद आभं सुपिशङ्ग वाससं प्रसन्नवक्त्रं रुचिर आयत ईक्षणम् ॥५४॥

तत् भोग	उन (शेषजी)के भोग पर
सुख आसनं	सुख पूर्वक विराजमान्
सान्द्र अम्बुद	सजल जलद
आभं	समान,
सुपिशङ्ग वाससं	उत्तम पीत वस्त्रधारी
प्रसन्नदक्त्रं	प्रसन्न मुख,

रुचिर आयत ईक्षणं	सुन्दर विशाल नेत्रों वाले	**पुरुषोत्तम उत्तमं**	पुरुष श्रेष्ठोंमें सर्व-श्रेष्ठ
महा अनुभावं	महान् प्रभावशाली	**विभुं ददर्श**	प्रभुको देखा ॥५५॥

महामणिव्रातकिरीटकुण्डल-
प्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम् ।
प्रलम्बचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं
श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालया वृतम् ॥५६॥

महामणिव्रात किरीटकुण्डल प्रभापरिक्षिप्त सहस्रकुन्तलं प्रलम्ब चारु अष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्स लक्ष्मं वनमालया वृतम् ॥५६॥

महामणिव्रात	महामणियोंसे जड़े	**सकौस्तुभं**	कौस्तुभ मणिके साथ
किरीटकुण्डल	मुकुट-कुण्डलोंकी	**श्रीवत्सलक्ष्मं**	श्रीवत्स लाञ्छन वाले,
प्रभापरिक्षिप्त	ज्योतिसे चमकते	**वनमालया वृतं**	वनमालाधारी ॥५६॥
सहस्रकुन्तलं	सहस्रों अलकों वाले		
प्रलम्ब चारु	लम्बे सुन्दर		
अष्टभुजं	आठ भुजाओं वाले,		

सुनन्दनन्दप्रमुखैः स्वपार्षदै-
श्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः ।
पुष्टचा श्रिया कीर्त्यजयाखिलर्द्धिभि-
र्निषेव्यमाणं परमेष्ठिनां पतिम् ॥५७॥

सुनन्द नन्द प्रमुखैः स्वपार्षदैः चक्र आदिभिः मूर्तिधरैः निज आयुधैः पुष्टचा श्रिया कीर्ति अजया अखिल ऋद्धिभिः निषेव्यमाणं परमेष्ठिनां पतिम् ॥५७॥

स्वपार्षदैः	अपने पार्षदों	**प्रमुखैः**	जिनमें प्रमुख हैं उनसे
सुनन्द नन्द	सुनन्द, नन्द	**मूर्तिधरैः**	मूर्तिधारी

चक्र आदिभिः	चक्र आदि	**ऋद्धिभिः**	ऋद्धियोंसे
निज आयुधैः	अपने आयुधोंसे	**निषेव्यमाणं**	सेवित होते
पुष्टचा श्रिया	पुष्टि, श्री,	**परमेष्ठिनां पतिं**	(उन) ब्रह्मादिकों
कीर्ति अजया	कीर्ति, माया एवं		के भी स्वामी ॥५७॥
अखिल	समस्त		

ववन्द आत्मानमनन्तमच्युतो
जिष्णुश्च तद्दर्शनजातसाध्वसः ।
तावाह भूमा परमेष्ठिनां प्रभु-
र्बद्धाञ्जली सस्मितमूर्जया गिरा ॥५८॥

ववन्द आत्मानं अनन्तं अच्युतः जिष्णुः च तत् दर्शन जात साध्वसः ताः आह भूमा परमेष्ठिनां प्रभुः बद्धाञ्जली सस्मितं ऊर्जया गिरा ॥५८॥

आत्मानं	उन अपने ही स्वरूप	**परमेष्ठिनां प्रभुः**	सृष्टि-कर्त्ताओंके
अनन्तं	भगवान अनन्तको		स्वामी
अच्युतः	अच्युतने तथा	**भूमा सस्मितं**	भूमा पुरुषने
तत् दर्शन	उनके दर्शनसे		मुस्कराते हुए
जात साध्वसः	हड़बड़ीमें पड़ गये	**ताः बद्धाञ्जली**	उन हाथ जोड़े खड़े
जिष्णुः च ववन्द	अर्जुनने भी प्रणाम		(दोनों)से
	किया ।	**ऊर्जया गिरा**	तेजस्वी वाणीसे
		आह	कहा ॥५८॥

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा
मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये ।
कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्
हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे ॥५९॥

द्विज आत्मजा मे युवयोः दिदृक्षुणा मया अपनीता भुवि धर्मगुप्तये कलाः अवतीर्णाः अवनेः भर असुरान् हत्वा इह भूयः त्वरयेतं अन्ति मे ॥५९॥

युवयोः दिदृक्षुणा	'तुम दोनोंको देखने की इच्छा वाले	**अवतीर्णाः**	अवतार धारण किये (तुम)
मे	मैंने	**अवनेः भर**	पृथ्वीके भार रूप
द्विज आत्मजा	ब्राह्मणके बालक	**असुरान् हत्वा**	असुरोंको मारकर
मया अपनीता	मेरे द्वारा मंगा लिये गये	**इह मे अन्ति**	यहाँ मेरे समीप
धर्मगुप्तये	धर्मकी रक्षाके लिए	**भूयः त्वरयेतं**	फिर लौटनेकी शीघ्रता करो ॥५९॥
भुवि कलाः	पृथ्वी पर मेरी कला के साथ		

पूर्णकामावपि युवां नरनारायणावृषी ।
धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम् ॥६०॥

पूर्णकामाः अपि युवां नर नारायणाः ऋषी धर्मं आचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम् ॥६०॥

युवां पूर्णकामाः	तुम दोनों पूर्ण काम	**अपि लोकसंग्रहं**	होकर भी लोक शिक्षाके लिए
नर नारायणाः	नर-नारायण	**धर्मं आचरतां**	धर्माचरण करो' ॥६०॥
ऋषि ऋषभौ	ऋषि सर्वश्रेष्ठ		

इत्यादिष्टौ भगवता तौ कृष्णौ परमेष्ठिना ।
ओमित्यानम्य भूमानमादाय द्विजदारकान् ॥६१॥

इति आदिष्टौ भगवता तौ कृष्णौ परमेष्ठिना ओम् इति आनम्य भूमानं आदाय द्विज दारकान् ॥६१॥

इति परमेष्ठिना	इस प्रकार परम प्रभु
भगवता	भगवानके द्वारा
आदिष्टौ	आदेश देने पर
तौ कृष्णौ	वे दोनों श्रीकृष्ण-अर्जुन
'ओम्' इति	'अच्छा' इस प्रकार स्वीकार करके
भूमानं आनम्य	भूमा पुरुषको प्रणाम करके
द्विज दारकान्	ब्राह्मणके शिशुओं को
आदाय	लेकर ॥६१॥

न्यवर्ततां स्वकं धाम सम्प्रहृष्टौ यथागतम् ।
विप्राय ददतुः पुत्रान् यथारूपं यथावयः ॥६२॥

न्यवर्ततां स्वकं धाम सम्प्रहृष्टौ यथा गतं विप्राय ददतुः पुत्रान् यथा रूपं यथा वयः ॥६२॥

सम्प्रहृष्टौ	अत्यन्त हर्षित होकर
यथा गतं	जैसे गये थे (वैसे)
स्वकं धाम	अपने स्थान पर
न्यवर्ततां	लौट आये
विप्राय	ब्राह्मणको
यथा रूपं	जैसे रूपके
यथा वयः	जिस आयुके (थे)
पुत्रान् ददतुः	(उसके) पुत्र दे दिये ॥६२॥

निशाम्य वैष्णवं धाम पार्थः परमविस्मितः ।
यत्किञ्चित् पौरुषं पुंसां मेने कृष्णानुकम्पितम् ॥६३॥

निशाम्य वैष्णवं धाम पार्थः परम विस्मितः यत् किञ्चित् पौरुषं पुंसां मेने कृष्ण अनुकम्पितम् ॥६३॥

वैष्णवं धाम	भगवान विष्णुका धाम
निशाम्य	देखकर
परम विस्मितः	अत्यन्त चकित
पार्थः	अर्जुनने
पुंसां	पुरुषका
यत् किञ्चित्	जो थोड़ा कुछ
पौरुषं	पुरुषार्थ है (उसे)
कृष्ण	श्रीकृष्णका
अनुकम्पितं	अनुग्रह
मेने	माना ॥६३॥

इतीदृशान्यनेकानि वीर्याणीह प्रदर्शयन् ।
बुभुजे निषयान् ग्राम्यानीजे चात्यूर्जितैर्मखैः ॥६४॥

इति ईदृशानि अनेकानि वीर्याणि इह प्रदर्शयन् बुभुजे विषयान् ग्राम्यान् ईजे च अति ऊर्जितैः मखैः ॥६४॥

इति ईदृशानि	इस प्रकार ऐसे ही	**बुभुजे च**	भोगे तथा
अनेकानि	अनेकों	**अति ऊर्जितैः**	अत्यन्त वैभव सम्पन्न
वीर्याणि	पराक्रम	**मखैः ईजे**	यज्ञोंसे यजन किया ॥६४॥
इह प्रदर्शयन्	इस लोकमें दिखलाते हुए		
ग्राम्यान् विषयान्	ऐन्द्रियक संबधी		

प्रववर्षाखिलान् कामान् प्रजासु ब्राह्मणादिषु ।
यथाकालं यथैवेन्द्रो भगवाञ्छ्रैष्ठ्यमास्थितः ॥६५॥

प्रववर्ष अखिलान् कामान् प्रजासु ब्राह्मण आदिषु यथाकालं यथा इव इन्द्रः भगवान् श्रैष्ठ्यं आस्थितः ॥६५॥

श्रैष्ठ्यं आस्थितः	महापुरुषोंके आदर्श पर स्थित होकर	**ब्राह्मण आदिषु**	ब्राह्मण आदि
		प्रजासु	प्रजाके लिए
भगवान्	भगवानने	**अखिलान्**	समस्त
यथाकालं	समयानुसार	**कामान्**	भोगोंकी
यथा इन्द्रः इव	जैसे इन्द्रके समान	**प्रववर्ष**	भरपूर वर्षा की

हत्वा नृपानधर्मिष्ठान् घातयित्वार्जुनादिभिः ।
अञ्जसा वर्तयामास धर्मं धर्मसुतादिभिः ॥६६॥

हत्वा नृपान् अधर्मिष्ठान् घातयित्वा अर्जुन आदिभिः अञ्जसा वर्तयामास धर्मं धर्मसुत आदिभिः ॥६६॥

अधर्मिष्ठान् अधर्मरत
नृपान् हत्वा राजाओंको मारकर तथा
अर्जुन आदिभिः अर्जुन आदि द्वारा
घातयित्वा मरवाकर
अञ्जसा अनायास
धर्मसुत धर्मपुत्र युधिष्ठिर
आदिभिः आदि द्वारा
धर्मं धर्मकी
वर्तयामास व्यवहारिक बना दिया ॥६६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विजकुमारानयनं नाम एकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

अथ नवतितमोऽध्यायः

॥ श्रीशुक उवाच ॥

सुखं स्वपुर्यां निवसन् द्वारकायां श्रियः पतिः ।
सर्वसंपत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवैः ॥ १ ॥

सुखं स्वपुर्यां निवसन् द्वारकायां श्रियः पतिः सर्वसम्पत् समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवैः ॥१॥

सर्वसम्पत्	सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे	**स्वपुर्यां**	अपनी पुरी
समृद्धायां	भरी पूरी,	**द्वारकायां**	द्वारिकामें
वृष्णिपुङ्गवैः	यादव-श्रेष्ठोंसे	**श्रियः पतिः**	भगवान् श्रीपति
जुष्टायां	युक्त	**सुखं निवसन्**	सुख पूर्वक रहते थे ॥१॥

स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्नवयौवनकान्तिभिः ।
कन्दुकादिभिर्हर्म्येषु क्रीडन्तीभिस्तडिद्द्युभिः ॥ २ ॥

स्त्रीभिः च उत्तमवेषाभिः नवयौवन कान्तिभिः कन्दुकादिभिः हर्म्येषु क्रीडन्तीभिः तडित् द्युभिः ॥२॥

उत्तमवेषाभिः	उत्तम वेश धारिणी	**हर्म्येषु**	भवनोंकी छतों पर
नवयौवन	नवीन तरुणाईकी	**कान्दुकादिभिः**	गेंद आदिसे
कान्तिभिः	कान्तिसे	**क्रीडन्तीभिः**	खेलती हुई
तडित् द्युभिः	आकाशमें बिजलीके समान	**स्त्रीभिः च**	स्त्रियोंसे भी (पुरी युक्त थी) ॥२॥

नित्यं संकुलमार्गायां मदच्युद्भिर्मतङ्गजैः ।
स्वलंकृतैर्भटैरश्वै रथैश्च कनकोज्ज्वलैः ॥ ३ ॥

नित्यं संकुलमार्गायां मदच्युत्भिः मतङ्गजैः स्वलङ्कृतैः भटैः अश्वैः रथैः च कनक उज्वलैः ॥३॥

मदच्युत्भिः	मद टपकाने वाले	**कनक उज्वलैः**	स्वर्ण जटित चमकते
मतङ्गजैः	हाथियोंसे	**रथैः नित्यं**	रथोंसे सदा
स्वलङ्कृतैः	भली प्रकार सजे	**संकुलमार्गायां**	मार्गोंमें भीड़ भरी-
भटैः अश्वैः	सैनिकों, घोड़ों तथा		(पुरी थी) ॥३॥

उद्यानोपवनाढ्यायां पुष्पितद्रुमराजिषु ।
निर्विशद्भृङ्गविहगैर्नादितायां समन्ततः ॥ ४ ॥

उद्यान उपवन आढ्यायां पुष्पित द्रुम राजिषु निर्विशत् भृङ्गविहगैः नादितायां समन्ततः ॥४॥

निर्विशत्	वहीं रहने वाले	**उद्यान उपवन**	पुष्प वाटिकाओं
भृङ्गविहगैः	भ्रमर एवं पक्षियों (के शब्द)से		तथा फलोंके बगीचों से
समन्ततः	सब ओर	**आढ्यायां**	समृद्ध (पुरी)में ॥४॥
नादितायां	गूंजते हुए		

रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकवल्लभः ।
तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गृहेषु महर्द्धिषु ॥ ५ ॥

रेमे षोडशसाहस्र पत्नीनां एक वल्लभः तावत् विचित्र रूपः असौ तत् गृहेषु महा ऋद्धिषु ॥५॥

षोडशसाहस्र	सोलह सहस्र	**एक वल्लभः**	अकेले प्रियतम
पत्नीनां	पत्नियोंके	**असौ**	ये (श्रीकृष्णचन्द्र)

तत्	उनके	**तावत् विचित्र**	उतने अनेक
महा ऋद्धिषु	अत्यन्त वैभव सम्पन्न	**रूपः**	रूपोंसे
गृहेषु	भवनोंमें	**रेमे**	विहार करते रहे ॥५॥

प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लारकुमुदाम्भोजरेणुभिः ।
वासितामलतोयेषु कूजद्द्विजकुलेषु च ॥ ६ ॥

प्रोत्फुल्ल उत्पल कह्लार कुमुद अम्भोज रेणुभिः वासिता अमल तोयेषु कूजत् द्विजकुलेषु च ॥६॥

प्रोत्फुल्ल	पूर्ण खिले	**रेणुभिः वासिता**	परागसे सुगन्धित
उत्पल कह्लार	श्वेत कमल, लाल-कमल	**अमल तोयेषु**	निर्मल जल वाले
कुमुद अम्भोज	कुमुदिनी, गुलाबी कमलोंके	**च द्विजकुलेषु**	तथा पक्षि समुदायके
		कूजत्	कलरवसे युक्त ॥६॥

विजहार विगाह्याम्भो ह्रदिनीषु महोदयः ।
कुचकुंकुमलिप्ताङ्गः परिरब्धश्च योषिताम् ॥ ७ ॥

विजहार विगाह्य अम्भः ह्रदिनीषु महा उदयः कुचकुंकुम लिप्त अङ्गः परिरब्धः च योषिताम् ॥७॥

ह्रदिनीषु	सरोवरोंमें	**कुचकुङ्कुम**	उनके स्तनों पर लगे कुंकुमसे
महा उदयः	अनन्त ऐश्वर्यशाली (श्रीकृष्ण)	**लिप्त अङ्गः**	लिप्त शरीर
योषितां	स्त्रियों द्वारा	**अम्भः विगाह्य**	जलमें प्रवेश करके
परिरब्धः च	आलिंगत होते हुए	**विजहार**	(जल) क्रीड़ा करते थे ॥७॥

उपगीयमानो गन्धर्वैर्मृदङ्गपणवानकान् ।
वादयद्भिर्मुदा वीणां सूतमागधवन्दिभिः ॥ ८ ॥

उपगीयमानः गन्धर्वैः मृदङ्ग पणव आनकान् वादयद्भिः मुदा वीणां सूतमागध वन्दिभिः ॥८॥

मुदा गन्धर्वैः	हर्षसे गन्धर्वों द्वारा	**सूतमागध**	सूत, मागध
मृदङ्ग पणव	मृदंग, तासे	**वन्दिभिः**	बन्दीजन
आनकान्	नगाड़े	**उपगीयमानः**	कीर्तिगान करते थे ॥८॥
वादयद्भिः	बजाये जाते थे तथा		

सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसन्तीभिः स्म रेचकैः ।
प्रतिषिञ्चन् विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ॥ ९ ॥

सिच्यमानः अच्युतः ताभिः हसन्तीभिः स्म रेचकैः प्रति सिञ्चन् विचिक्रीडे यक्षीभिः यक्षराट् इव ॥९॥

हसन्तीभिः	हँसती हुई	**अच्युतः**	अच्युत
ताभिः	उन (रानियों) द्वारा	**प्रति सिञ्चन**	उन्हें भी भिगाते हुए
रेचकैः	पिचकारियों द्वारा	**यक्षीभिः**	यक्षिणियोंके साथ
सिच्यमानः स्म	भिगाये जाते हुए	**यक्षराट् इव**	यक्षराजके समान
		विचिक्रीडे	क्रीड़ा करते थे ॥९॥

ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाः
सिञ्चन्त्य उद्धृतबृहत्कबरप्रसूनाः ।
कान्तं स्म रेचकजिहीरषयोपगुह्य
जातस्मरोत्सवलसद्वदना विरेजुः ॥१०॥

ताः क्लिन्नवस्त्र विवृत उरुकुचप्रदेशाः सिञ्चन्त्य उद्धृत बृहत् कबर प्रसूनाः कान्तं स्म रेचक जिहीरषया उपगुह्य जातस्मर उत्सव लसत् वदना विरेजुः ॥१०॥

क्लिन्नवस्त्र	भीगे वस्त्र होनेसे	**उरुकुचप्रदेशाः**	जांघों तथा स्तनोंके भाग

विवृत	झलकते हुए
ताः सिञ्चन्त्य	वे भिगाती हुई
बृहत् कबर	भारी जूड़ोंके
उद्धृत प्रसूनाः	खुलनेसे गिर गये पुष्पों वाली
रेचक जिहीरषया	पिचकारी छीननेके लिए
कान्तं स्म	प्रियतमको तो
उपगुह्य	आलिंगन करके
जातस्मर उत्सव	करमोल्लास उत्पन्न होनेसे
लसत् वदना	आभूषित (अरुण) मुखी
विरेजुः	अधिक शोभित हुई ॥१०॥

कृष्णस्तु तत्स्तनविषज्जितकुंकुमस्रक्
क्रीडाभिषङ्गधुतकुन्तलवृन्दबन्धः ।
सिञ्चन् मुहुर्युवतिभिः प्रतिषिच्यमानो
रेमे करेणुभिरिवेभपतिः परीतः ॥११॥

कृष्णः तु तत् स्तन विषज्जित कुंकुम स्रक् क्रीडा अभिषङ्ग धुत-कुन्तल वृन्दबन्धः सिञ्चन् मुहुः युवतिभिः प्रतिषिच्यमानः रेमे करेणुभिः इव इभपतिः परीतः ॥११॥

तत् स्तन	उन (रानियों)के स्तनोंमें लगी
कुंकुम विषज्जित	केशरसे लिप्त
स्रक् कृष्णः तु	वनमाला वाले श्रीकृष्ण तो
क्रीडा अभिषङ्ग	क्रीड़ामें तल्लीन
धुतकुन्तल	भीगी उन्मुक्त
वृन्दबन्धः	अलकावली युक्त
मुहुः युवतिभिः	बार-बार उन युवतियोंको
सिञ्चन्	भिगाते हुए
प्रतिषिच्यमानः	बदलेमें भिगाये जाते हुए
करेणुभिः	हथिनियोंके साथ
इभपतिः इव	गजराजके समान
रेभे	विहार करते थे ॥११॥

नटानां नर्तकीनां च गीतवाद्योपजीविनाम् ।
क्रीडालंकारवासांसि कृष्णोऽदात्तस्य च स्त्रियः ॥१२॥

नटानां नर्तकीनां च गीत वाद्य उपजीविनां क्रीडा अलङ्कार वासांसि कृष्णः अदात् तस्य च स्त्रियः ॥१२॥

गीत वाद्य उपजीविनां	गाने-बजानेसे जीविका चलाने वाले
नटानां च	नटों और
नर्तकीनां	नर्तकियोंको
कृष्णः च तस्य	श्रीकृष्ण तथा उनकी
स्त्रियः	रानियोंने
क्रीडा अलङ्कार	जलक्रीड़ाके समय पहिने आभूषण
वासांसि	तथा वस्त्र
अदात्	दे दिये ॥१२॥

कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापेक्षितस्मितैः ।
नर्मक्ष्वेलिपरिष्वङ्गैः स्त्रीणां किल हृता धियः ॥१३॥

कृष्णस्य एवं विहरतः गति आलाप ईक्षित स्मितैः नर्म क्ष्वेलि परिष्वङ्गैः स्त्रीणां किल हृता धियः ॥१३॥

एवं विहरतः	इस प्रकार विहार करते हुए
कृष्णस्य	श्रीकृष्णकी
गति आलाप	गति, बातचीत
ईक्षित स्मितैः	दृष्टिपात, मुसकान
नर्म क्ष्वेलि	व्यंग, परिहास
परिष्वङ्गैः	तथा आलिंगनसे
किल स्त्रीणां	अहो, स्त्रियोंकी
धियः हृता	बुद्धि चुरा ली गयी ॥१३॥

ऊचुर्मुकुन्दैकधियोऽगिर उन्मत्तवज्जडम् ।
चिन्तयन्त्योऽरविन्दाक्षं तानि मे गदतः शृणु ॥१४॥

उचुः मुकुन्द एक धियः अगिर उन्मत्त वत् जडं चिन्तयन्त्यः अरविन्दाक्षं तानि मे गदतः शृणु ॥१४॥

मुकुन्द एक धियः	एकमात्र मुकुन्द में लगी बुद्धि
अरविन्दाक्षं	कमल-नयनका
चिन्तयन्त्यः	चिन्तन करती हुई वे
जडं अगिरः	कभी जड़के समान मौन हो जातीं

उन्मत्तवत्	कभी पगलियोंके समान	**तानि गदतः मे शृणु**	उनकी कही बात मुझसे सुनो ॥१४॥
ऊचुः	बोलने लगतीं,		

॥ महिष्य ऊचुः ॥*

कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे
स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः ।
वयमिव सखि कच्चिद् गाढनिर्भिन्नचेता
नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥१५॥

कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे स्वपति जगति रात्र्यां ईश्वरः गुप्तबोधः वयं इव सखि कच्चित् गाढ़ निर्भिन्न चेता नलिननयन हास उदार लील ईक्षितेन ॥१५॥

कुररि	कुररी (चील) !	**ईश्वरः स्वपिति**	भगवान भी सो रहे हैं।
त्वं विलपसि	तुम विलाप कर रही हो ?	**कच्चित् सखि**	कहीं सखी !
वीतनिद्रा	(तुम्हें) नींद नहीं आती ?	**वयं इव**	हमारी भांति (तुम भी)
न शेषे	सोती नहीं हो ?	**नलिननयन**	कमल-लोचनके
रात्र्यां जगति	(इस) रातमें सारा संसार और	**हास उदार**	हास्योन्मुक्त
गुप्तबोधः	अपने ज्ञानको छिपा कर	**लील ईक्षितेन**	लीला विलोकनसे
		गाढ़ निर्भिन्न	अत्यन्त बिंधे
		चेता	हृदयवाली (तो नहीं हो) ॥१५॥

नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबन्धु-
स्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि ।

---

*महापुरुषोंने इस प्रकरणको 'भाव-वैचित्य' कहा है ।

दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां
किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥१६॥

नेत्रे निमीलयसि नक्तं अदृष्टबन्धुः त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि दास्यं गता वयं इव अच्युत पाद जुष्टां किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥१६॥

चक्रवाकि	चकवी !
अदृष्टबन्धुः	(क्या) अपने बन्धुको न देखकर
नक्तं नेत्रे	रातको नेत्र
निमीलयसि	बन्द कर रखे हैं ?
बत त्वं	अहो तू तो
करुणं रोरवीषि	अत्यन्त दुःखसे रो रही है,
वयं इव	हमारे समान
दास्यं गता	(उनकी) दासी हो गयी है ? और
वा किं	अथवा क्या
अच्युत	अच्युतके
पाद जुष्टां	चरणों पर चढ़ी
स्रजं कबरेण	मालाको जूड़ेमें
वोढुं स्पृहयसे	धारण करना चाहती है ॥१६॥

भो भोः सदा निष्टनसे उदन्व-
न्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः ।
किं वा मुकुन्दापहृतात्मलाञ्छनः
प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥१७॥

भो भोः सदा निष्टनसे उदन्वन् अलब्ध निद्रः अधिगतः प्रजागरः किं वा मुकुन्द अपहृत आत्म लाञ्छनः प्राप्तां दशां त्वं च गतः दुरत्ययाम् ॥१७॥

भो भोः उदन्वन्	हे, हे समुद्र !
सदा निष्टनसे	सदा गरजते रहते हो
अलब्ध निद्रः	नींद न आनेसे
प्रजागरः	जागते रहनेका (व्रत)
अधिगतः	अपना लिया है ?
वा किं	अथवा क्या

मुकुन्द अपहृत	मुकुन्द द्वारा छीने गये
आत्म लाञ्छनः	अपने (रंग, गाम्भीर्य आदि) चिह्नोंसे
त्वं च	तुम भी
दुरत्यया	जिसका कोई उपाय नहीं ऐसी
दशां प्राप्तां	दशाको पहुँच गये हो ॥१७॥

त्वं यक्ष्मणा बलवतासि गृहीत इन्दो
क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि ।
कच्चिन्मुकुन्दगदितानि यथा वयं त्वं
विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥१८॥

त्वं यक्ष्मणा बलवता असि गृहीत इन्दो क्षीणः तमः न निज दीधितिभिः क्षिणोषि कच्चित् मुकुन्द गदितानि यथा वयं त्वं विस्मृत्य भोः स्थगित गीः उपलक्ष्यसे नः ॥१८॥

भोः इन्दो त्वं	हे चन्द्रदेव ! तुम तो
बलवता असि	प्रबल हो
यक्ष्मणा गृहीत	राज्यक्ष्मासे ग्रस्त हो
क्षीणः तमः	अतः क्षीण अन्धकार को भी
निज दीधितिभिः	अपनी किरणोंसे
न क्षिणोषि	नहीं दूर कर पाते हो
कच्चित्	कहीं
यथा वयं	हमारे समान ही
मुकुन्द गदितानि	मुकुन्दकी बातोंको
विस्मृत्य	भूलकर
स्थगित गीः	बोलती बन्द हुए
नः उपलक्ष्यसे	हमें जान पड़ते हो ॥१८॥

किन्त्वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् ।
गोविन्दापाङ्गनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥१९॥

किं तु आचरितं अस्माभिः मलय अनिल ते अप्रियं गोविन्द अपाङ्ग निर्भिन्ने हृदि ईरयसि नः स्मरम् ॥१९॥

मलय अनिल	मलय-मारुत !
अस्माभिः	हम लोगों द्वारा
ते किं अप्रियं	तुम्हारा क्या अप्रिय
आचरितं तु	किया गया है जिससे

गोविन्द अपाङ्ग	गोविन्दके कटाक्षसे	**स्मरं ईरयसि**	कामोद्रेक कर रहे
निर्भिन्ने	विदीर्ण		हो ? ॥१९॥
नः हृदि	हमारे हृदयोंमें		

मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो यादवेन्द्रस्य नूनं
श्रीवत्साङ्कं वयमिव भवान् ध्यायति प्रेमबद्धः ।
अत्युत्कण्ठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराः
स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्मुः खर्दुस्तत्प्रसङ्गः ॥२०॥

मेघः श्रीमन् त्वं असि दयितः यादवेन्द्रस्य नूनं श्रीवत्स अङ्कम् वयं इव भवान् ध्यायति प्रेमबद्धः अति उत्कण्ठः शबलहृदयः अस्मत् विधः बाष्पधाराः स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुः दुःखदः तत् प्रसङ्गः ॥२०॥

श्रीमन् मेघः	श्रीमान् मेघ !	**अति उत्कण्ठः**	अत्यन्त उत्कण्ठासे
नूनं त्वं	निश्चय तुम	**शबलहृदयः**	परिपूर्ण हृदय
यादवेन्द्रस्य	यादवेन्द्रके	**स्मृत्वा स्मृत्वा**	उनका बार-बार
दयितः असि	प्रिय हो		स्मरण करके
वयं इव भवान्	हमारी ही भाँति	**अस्मत् विधः**	हमारी ही भाँति
	तुम भी	**बाष्पधाराः**	अश्रुधारा
प्रेमबद्धः	प्रेमसे बँधे हुए	**विसृजसि**	त्यागते हो
श्रीवत्स अङ्कम्	उन श्रीवत्स लाञ्छन	**तत् प्रसङ्गः**	(सचमुच) उनसे
	का		प्रीति करना ही
ध्यायति	ध्यान करते हो,	**दुःखदः**	दुःखदायी है ॥२०॥

प्रियरावपदानि भाषसे मृत-
सञ्जीविकयानया गिरा ।
करवाणि किमद्य ते प्रियं
वद मे वल्गितकण्ठ कोकिल ॥२१॥

प्रियराव पदानि भाषसे मृत सञ्जीविकया अनया गिरा करवाणि किं अद्य ते प्रियं वद मे वल्गितकण्ठ कोकिल ॥२१॥

वल्गितकण्ठ कोकिल	मधुर गले वाले कोकिल !
मृत सञ्जीविकया	मरे हुएको जिलाने वाली
अनया गिरा	अपनी इस वाणीसे
प्रियराव	प्रियतमके स्वरके
पदानि	पदोंको
भाषसे	बोल रहे हो,
वद यद्य ते	बोलो, आज तुम्हारा
किं प्रियं करवाणि	क्या प्रिय करें ॥२१॥

न चलसि न वदस्युदारबुद्धे
क्षितिधर चिन्तयसे महान्तमर्थम् ।
अपि बत वसुदेवनन्दनाङ्घ्रिं
वयमिव कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ॥२२॥

न चलसि न वदसि उदार बुद्धे क्षितिधर चिन्तयसे महान्तं अर्थं अपि बत वसुदेवनन्दन अंघ्रिं वयं इव कामयसे स्तनैः विधर्तुम् ॥२२॥

उदार बुद्धेः	उदार विचार
क्षितिधर	पर्वत !
न चलसि	न चलते हो,
न वदसि	न कुछ बोलते हो
महान्तं अर्थं	किसी बड़े प्रयोजन का
चिन्तयसे	विचार कर रहे हो ?
बत अपि	अहो, क्या (तुम भी)
वयं इव	हमारे समान
वसुदेवनन्दन	वसुदेव-नन्दनके
अंघ्रि	चरणोंको
स्तनैः विधर्तुं	अपने स्तनों (शिखर) पर रखना
कामयसे	चाहते हो ॥२२॥

शुष्यद्द्रुमदाः कर्शिता बत सिन्धुपत्न्यः
सम्प्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्तुः ।

यद्वद् वयं मधुपतेः प्रणयावलोक-
मप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्म ॥२३॥

शुष्यत् ह्रदाः कर्शिता बत सिन्धुपत्न्यः सम्प्रति अपास्त कमलश्रिय इष्टभर्तुः यद्वत् वयं मधुपतेः प्रणय अवलोकं अप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्म ॥२३॥

बत सिन्धुपत्न्यः	अहो समुद्रपत्नी नदियो !	**यद्वत्**	वैसे ही जैसे
सम्प्रति	इस समय	**इष्टभर्तुः**	प्रिय स्वामी
शुष्यत् ह्रदाः	ह्रदों (गहरे स्थानों) के सूख जानेसे	**मधुपतेः**	मथुरानाथकी
कमलश्रिय	कमलोंकी शोभा	**प्रणय अवलोकं**	प्रेमपूर्ण चितवन
अपास्त	नष्ट हो गयी (और	**अप्राप्य**	न पाकर
कर्शिता	(तुम) दुबली हो गयी हो,	**मुष्टहृदया**	हृदय खोकर
		वयं पुरुकर्शिताः	हम बहुत दुबली
		स्म	हो गयी हैं ॥२३॥

हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यङ्ग शौरेः कथां
दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा ।
किं वा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद् भाजामो वयं
क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥२४॥

हंस स्वागतं आस्यतां पिब पयः ब्रूहि अङ्ग शौरेः कथां दूतं त्वां नु विदाम कच्चित् अजितः स्वस्ति अस्ति उक्तं पुरा किं वा नः चल सौहृदः स्मरति तं कस्मात् भजामः वयं क्षौद्र आलापय कामदं श्रियं ऋते सेवा एक निष्ठा स्त्रियाम् ॥२४॥

हंस आस्यतां	हंस ! आओ,	**अङ्ग शौरेः कथां**	प्यारे, श्रीकृष्णका समाचार
स्वागतं	(तुम्हारा) स्वागत है,	**ब्रूहि**	बतलाओ !
पिब पयः	दूध पियो ।	**नु त्वां**	निश्चय तुमको

दूतं विदाम (हम) दूत जानती हैं,
पुरा उक्तं पहिले बतलादो,
कच्चित् अजितः (वहां) क्या अजित श्रीकृष्ण
स्वस्ति अस्त सकुशल तो हैं ?
वा किं चल सौहृदः अथवा क्या वे अस्थिर प्रेम (वाले)
नः स्मरति हमारा स्मरण करते हैं ?
वयं तं कस्मात् हम उनकी क्यों
भजामः सेवा करें ?
क्षौद्र उन क्षुद्रके दूत !
श्रियं ऋते लक्ष्मीको छोड़कर
सेवा एक निष्ठा एकमात्र सेवा-निष्ठ
कामदं स्त्रियां कामना पूर्ण करने वाली स्त्री
आलापय बतलाओ (हममें कोई नहीं है) ॥२४॥

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ।
क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिम् ॥२५॥

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वर ईश्वरे क्रियमाणेन माधव्यः लेभिरे परमां गतिम् ॥२५॥

माधव्यः श्रीकृष्ण पत्नियां
योगेश्वर ईश्वरे योगेश्वरोंके भी स्वामी
कृष्णे इतीदृशेन श्रीकृष्णमें इस प्रकार का
भावेन क्रियमाणेन भाव करती हुई
परमां गतिं परम गति
लेभिरे प्राप्त हो गयीं ॥२५॥

श्रुतमात्रोऽपि यः स्त्रीणां प्रसह्याकर्षते मनः ।
उरुगायोरुगीतो वा पश्यन्तीनां कुतः पुनः ॥२६॥

श्रुतमात्रः अपि यः स्त्रीणां प्रसह्य आकर्षते मनः उरुगायः उरुगीतः वा पश्यन्तीनां कुतः पुनः ॥२६॥

श्रुतमात्रः अपि सुनने मात्रसे
यः उरुगायः जो बहुतों द्वारा वर्णित

वा उरुगीतः	अथवा अनन्त कीर्ति	**पुनः पश्यन्तीनां**	फिर दर्शन करने वालियोंकी
स्त्रीणां मनः	स्त्रियोंके मनको		
प्रसह्य आकर्षते	बल पूर्वक खींच लेते हैं	**कुतः**	क्या चर्चा ॥२६॥

याः सम्पर्यचरन् प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः ।
जगद्गुरुं भर्तृबुद्धया तासां किं वर्ण्यते तपः ॥२७॥

याः सम्पर्यचरन प्रेम्णा पादसंवाहन आदिभिः जगद्गुरुं भर्तुं बुद्धया तासां किं वर्ण्यते तपः ॥२७॥

याः प्रेम्णा	जिन्होंने प्रेमपूर्वक	**सम्पर्यचरन्**	सेवा की
जगद्गुरुं	जगद्गुरु श्रीकृष्णकी	**तासां तपः**	उनके तपका
भर्तुं बुद्धया	अपना पति मानकर	**किं वर्ण्यते**	क्या वर्णन किया जा सकता है ॥२७॥
पादसंवाहन आदिभिः	चरण दबाने आदि द्वारा		

एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन् सतां गतिः ।
गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत् पदम् ॥२८॥

एवं वेद उदितं धर्मं अनुतिष्ठन् सतां गतिः गृहं धर्म अर्थ कामानां मुहुः च अदर्शयत् पदम् ॥२८॥

सतां गतिः	सन्तोंके परमाश्रय भगवान	**गृहं धर्म अर्थ च**	गृहस्थ धर्मको धर्म, अर्थ और
एवं वेद उदितं	इस प्रकार वेदोपदिष्ट	**कामानां पदं**	कामका आश्रय
धर्मं अनुतिष्ठत	धर्मानुष्ठान करते हुए	**मुहुः अदर्शयत**	बार-बार दिखलाया ॥२८॥

आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम् ।
आसन् षोडशसाहस्रं महिष्यश्च शताधिकम् ॥२९॥

आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनां आसन् षोडशसाहस्रं महिष्यः च शत अधिकम् ॥२९॥

गृहमेधिनां	गृहस्थोंके	**षोडशसाहस्रं**	सोलह सहस्र
परं धर्मं	श्रेष्ठ धर्मपर		(सोलह सहस्र एक
आस्थितस्य	स्थित		सौ)
कृष्णस्य च	श्रीकृष्णकी तो	**महिष्यः आसन्**	रानियां थीं ॥२९॥
शत अधिकं	सौ अधिक		

तासां स्त्रीरत्नभूतानामष्टौ याः प्रागुदाहृताः ।
रुक्मिणीप्रमुखा राजंस्तत्पुत्राश्चानुपूर्वशः ॥३०॥

तासां स्त्रीरत्न भूतानां अष्टौ याः प्राक् उदाहृताः रुक्मिणी प्रमुखा राजन् तत् पुत्राः च अनुपूर्वशः ॥३०॥

राजन्	राजन् !		बतलायी गयी
तासां	उनमें	**अष्टौ**	आठ थी
स्त्रीरत्न भूतानां	स्त्रियोंमें रत्न	**अनुपूर्वशः**	पूर्वापरके क्रमसे
	स्वरूपा	**तत् पुत्राः च**	उनके पुत्र भी
रुक्मिणी प्रमुखा	जिनमें रुक्मिणी		(बतलाये गये हैं)
	प्रधान थीं		॥३०॥
याः प्राक् उदाहृताः	जो पहिले		

एकैकस्यां दश दश कृष्णोऽजीजनदात्मजान् ।
यावत्य आत्मनो भार्या असोघगतिरीश्वरः ॥३१॥

एक एकस्यां दश दश कृष्णः अजीजनत् आत्मजान् यावत्य आत्मनः भार्या असोघगतिः ईश्वरः ॥३१॥

असोघगतिः	अव्यर्थ गति	**एक एकस्यां**	उनमें प्रत्येकसे
ईश्वरः कृष्णः	सर्वसमर्थ श्रीकृष्णने	**दश दश**	दस-दस
यावत्य आत्मनः	जितनी अपनी	**आत्मजान्**	पुत्र
भार्या	पत्नियां थी	**अजीजनत्**	उत्पन्न किये ॥३१॥

तेषामुद्दामवीर्याणामष्टादश महारथाः ।
आसन्नुदारयशसस्तेषां नमानि मे शृणु ॥३२॥

तेषां उद्दाम वीर्याणां अष्टादश महारथाः आसन् उदार यशसः तेषां नामानि मे शृणु ॥३२॥

उद्दाम वीर्याणां प्रचण्ड पराक्रम
तेषां अष्टादश उनमें अठारह
महारथाः आसन् महारथी थे
तेषां उन

उदार यशसः विपुल यशस्वियोंके
नामानि मे शृणु नाम मुझसे सुनो
॥३२॥

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान् भानुरेव च ।
साम्बो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥३३॥
पुष्करो वेदबाहुश्च श्रुतदेवः सुनन्दनः ।
चित्रबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च ॥३४॥

प्रद्युम्नः, च, अनिरुद्धः, च, दीप्तिमान, भानुः, एव च, साम्बः, मधुः, बृहद्भानुः, चित्रभानुः, वृकः, अरुणः, पुष्करः, वेदबाहुः, च, श्रुतदेवः, सुनन्दनः, चित्रबाहुः, विरूपः, च, कविः, न्यग्रोद्ध, एव च ॥३३-३४॥*

एतेषामपि राजेन्द्र तनुजानां मधुद्विषः ।
प्रद्युम्न आसीत् प्रथमः पितृवद् रुक्मिणीसुतः ॥३५॥

एतेषां अपि राजेन्द्र तनुजानां मधुद्विषः प्रद्युम्नः आसीत् प्रथमः पितृवत् रुक्मिणीसुतः ॥३५॥

---

*ये केवल नाम हैं। इसमें 'च' तथा 'एव च' को छोड़ दें। 'एव' का 'और' 'एव च' का अर्थ 'और भी' है।

राजेन्द्र महाराज !
एतेषां मधुद्विषः इन मधुसूदनके
तनुजानां अपि पुत्रोंमें भी
रुक्मिणीसुतः रुक्मिणीजीके पुत्र
प्रद्युम्नः प्रद्युम्न
पितृवत् पिताके समान
प्रथमः आसीत् सर्वश्रेष्ठ थे ॥३५॥

स रुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः ।
तस्मात् सुतोऽनिरुद्धोऽभून्नागायुतबलान्वितः ॥३६॥

स रुक्मिणः दुहितरं उपयेमे महारथः तस्मात् सुतः अनिरुद्धः अभूत् नाग अयुत बल अन्वितः ॥३६॥

स महारथः उन महारथीने
रुक्मिणः दुहितरं रुक्मीकी पुत्री
उपयेमे विवाह किया
तस्मात् सुतः उससे उनके पुत्र
नाग अयुत दस हजार हाथियों की
बल अन्वितः शक्ति युक्त
अनिरुद्धः अभूत अनिरुद्ध हुए ॥३६॥

स चापि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रो जगृहे ततः ।
वज्रस्तस्याभवद् यस्तु मौसलादवशेषितः ॥३७॥

स च अपि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रः जगृहे ततः वज्रः तस्या अभवत् यस्तु मौसलात् अवशेषितः ॥३७॥

स च उन्होंने भी
दौहित्रः अपि पुत्रीके पुत्र होने पर भी
रुक्मिणः पौत्रीं रुक्मीकी पौत्रीको
जगृहे स्वीकार किया
तस्या सुतः उसके (उनके) पुत्र
वज्रः अभवत् वज्रनाभ हुए
यस्तु जो तो
मौसलात् (ब्राह्मणोंके शापसे उत्पन्न) मूसलसे
अवशेषितः बच गये ॥३७॥

प्रतिबाहुरभूत्तस्मात् सुबाहुस्तस्य चात्मजः ।
सुबाहोः शान्तसेनोऽभूच्छतसेनस्तु तत्सुतः ॥३८॥

प्रतिबाहुः अभूत् तस्मात् सुबाहुः तस्य च आत्मजः सुबाहोः शान्तसेनः अभूत् शतसेनः तु तत् सुतः ॥३८॥

तस्मात् प्रतिबाहुः	उससे प्रति बाहु	**सुबाहोः**	सुबाहुके
अभूत्	हुए	**शान्तसेनः अभूत्**	हुए
च तस्य	और उनके	**तत् सूतः तु**	उनके पुत्र तो
आत्मजः	पुत्र	**शतसेनः**	शतसेन हुए ॥३८॥
सुबाहुः	सुबाहु,		

न ह्येतस्मिन् कुले जाता अधना अबहुप्रजाः ।
अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥३९॥

न हि एतस्मिन् कुले जाता अधना अबहुप्रजाः अल्पायुषः अल्पवीर्याः च अब्रह्मण्याः च जज्ञिरे ॥३९॥

हि एतस्मिन्	क्योंकि इस	**च अल्पवीर्याः**	एवं अल्प पराक्रम
कुले	कुलमें	**च अब्रह्मण्याः**	तथा जो ब्राह्मण
जाता अधना	उत्पन्न कोई निर्धन		भक्त न हों ऐसे
अबहुप्रजाः	अल्प सन्तति	**न जज्ञिरे**	नहीं उत्पन्न हुए
अल्पायुषः	अल्पायु		॥३९॥

यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम् ।
संख्या न शक्यते कर्तुमपि वर्षायुतैर्नृप ॥४०॥

यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणां संख्या न शक्यते कर्तुं अपि वष अयुतः नृप ॥४०॥

नृप	राजन् !	**वष अयुतैः अपि**	दस सहस्र वर्षोंमें भी
यदुवंशप्रसूतानां	यदुवंशमें उत्पन्न	**संख्या कर्तुं**	गणना करना
विख्यातकर्मणां	प्रसिद्ध कर्म करने वाले	**शक्यते न**	सम्भव नहीं है ॥४०॥
पुंसां	पुरुषोंकी		

तिस्रः कोटयः सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च ।
आसन् यदुकुलाचार्याः कुमाराणामिति श्रुतम् ॥४१॥

तिस्रः कोटयः सहस्राणां अष्टाशीति शतानि च आसन् यदुकुल आचार्याः कुमाराणां इति श्रुतम् ॥४१॥

इति श्रुतं	ऐसा सुना है कि	**तिस्रः कोटयः**	तीन करोड़
यदुकुल	यदुकुलके	**सहस्राणां अष्टाशीति**	अट्ठासी हजार
कुमाराणां	बालकोंके	**च शतानि**	सौ (अट्ठासी लाख)
आचार्याः	शिक्षक	**आसन्**	थे ॥४१॥

संख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनाम् ।
यत्रायुतानामयुतलक्षेणास्ते स आहुकः ॥४२॥

संख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनां यत्र अयुतानां अयुत लक्षेण आस्ते स आहुकः ॥४२॥

महात्मनां	महात्मा	**अयुतानां अयुत**	एक नील
यादवानां	यादवोंकी	**लक्षेण**	(एक पर तेरह बिन्दु)
संख्यानं	गणना	**आस्ते**	(सैनिक) रहते थे ॥४२॥
कः करिष्यति	कौन करेगा		
यत्र स आहुकः	जहाँ उन उग्रसेनजी के साथ		

देवासुराहवहता दैतेया ये सुदारुणाः ।
ते चोत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा दृप्ता बबाधिरे ॥४३॥

देव असुर आहवहता दैतेया ये सुदारुणाः ते च उत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा दृप्ता बबाधिरे ॥४३॥

ये सुदारुणाः	जो अत्यन्त भयानक	**उत्पन्ना दृप्ता**	उत्पन्न होकर घमंड में भरे
दैतेया	दैत्य		
देव असुर	देव-असुरोंके	**प्रजा बबाधिरे**	प्रजाको बाधा पहुँचाते थे ॥४३॥
आहवहता	युद्धमें मारे गये		
ते च मनुष्येषु	वही मनुष्योंमें		

तन्निग्रहाय हरिणा प्रोक्ता देवा यदोः कुले ।
अवतीर्णाः कुलशतं तेषामेकाधिकं नृप ॥४४॥

तत् निग्रहाय हरिणा प्रोक्ता देवाः यदोः कुले अवतीर्णाः प्रातं कुलशतं तेषां एक अधिकं नृप ॥४४॥

नृप	राजन् !	**अवतीर्णाः**	अवतरित हुए
तत् निग्रहाय	उनका दमन करनेके लिए	**तेषां एक अधिकं**	उनके एक अधिक
		कुलशतं	सौ (एक सौ एक)
हरिणा प्रोक्ता	श्रीहरिके कहने पर		कुल थे ॥४४॥
देवाः यदोः कुले	देवता यदुकुलमें		

तेषां प्रमाणं भगवान् प्रभुत्वेनाभवद्धरिः ।
ये चानुवर्तिनस्तस्य ववृधुः सर्वयादवाः ॥४५॥

तेषां प्रमाणं भगवान् प्रभुत्वेन अभवत् हरिः ये च अनुवर्तिनः तस्य ववृधुः सर्वयादवाः ॥४५॥

तेषां प्रमाणं	उनके आदर्श	**अनुवर्तिनः**	अनुयायी थे
प्रभुत्वेन	स्वामी होनेके कारण	**सर्वयादवाः**	वे सब यादव
हरिः अभवत्	श्रीहरि हुए	**ववृधुः**	बढ़े ॥४५॥
च ये तस्य	तथा जो उनके		

शय्यासनाटनालापक्रीडास्नानादिकर्मसु ।
न विदुः सन्तमात्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः ॥४६॥

शय्या आसन अटन आलाप क्रीडा स्नान आदि कर्मसु न विदुः सन्तं आत्मानं वृष्णयः कृष्ण चेतसः ॥४६॥

शय्या आसन	सोते-बैठते,	**कृष्ण चेतसः**	श्रीकृष्णमें लगे चित्त
अटन आलाप	घूमते, बातचीत करते	**वृष्णयः**	यादव
क्रीड़ा स्नान	खेल, स्नान	**आत्मानं न विदुः**	अपने शरीरको नहीं
आदि कर्मसु	आदि कर्म करते		जानते थे ॥४६॥
सन्तं	हुए भी		

तीर्थं चक्रे नृपोनं यदजनि यदुषु
स्वःसरित्पादशौचं
विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजितपरा
श्रीर्यदर्थेऽन्ययत्नः ।
यन्नामामङ्गलघ्नं श्रुतमथ गदितं
यत्कृतो गोत्रधर्मः
कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं
कालचक्रायुधस्य ॥४७॥

तीर्थं चक्रे नृप ऊनं यत् अजनि यदुषु स्वःसरित् पादशौचं विद्विट् स्निग्धाः स्वरूपं ययुः अजित परा श्रीः यत् अर्थे अन्य यत्नः यत् नाम अमङ्गलघ्नं श्रुतं अथ गदितं यत् कृतः गोत्र धर्मः कृष्णस्य एतत् न चित्रं क्षितिभर हरणं काल चक्र आयुधस्य ॥४७॥

नृप	राजन् !	**अजनि**	(स्वयं) उत्पन्न हो
पादशौचं	अपने चरणोदक		गये
स्वःसरित्	सुरसरि रूप	**विद्विट्**	द्वेषी तथा
तीर्थं	तीर्थको भी	**स्निग्धाः**	प्रेमी भी
ऊनं चक्रे	काम बना दिया	**स्वरूपं ययुः**	उनके स्वरूपको प्राप्त
यत् यदुषु	क्योंकि यदुवंशमें		हो गये
		यत् कृतः	जिनको पानेके लिए

अन्य यत्नः दूसरे लोग प्रयत्न करते हैं
श्रीः अजित परा वे लक्ष्मी जिन अजित भगवानकी परायणा हैं
यत् नाम जिनका नाम
श्रुतं अथ गदितं सुनने अथवा उच्चारण करने पर
अमङ्गलघ्नं अमंगलोंका नाशक है
यत् कृतः गोत्रधर्मः सभी गोत्रोंके धर्म जिनके बनाये हैं
एतत् यह
क्षितिभर हरणं भूभार हरण
कालचक्र आयुधस्य काल चक्र रूपी अस्त्रधारी
कृष्णस्य चित्रं न श्रीकृष्णके लिए आश्चर्यकी बात नहीं है ॥४७॥

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो
यदुवरपर्षत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन
व्रजपुरवनितानां वर्धयन् कामदेवम् ॥४८॥

जयति जन निवासः देवकीजन्मवादः यदुवरपर्षत् स्वैः दोर्भिः अस्यन् अधर्मं स्थिर चर वृजिनघ्नः सुस्मित श्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्धयन् कामदेवम् ॥४८॥

जन निवासः समस्त लोगोंमें रहने पर भी
देवकीजन्मवादः देवकीसे जन्म लेने वाले कहे जाते
यदुवरपर्षत् यादव श्रेष्ठ पार्षदों के साथ
स्वैः दोर्भिः अपनी भुजाओंसे
अधर्मं अस्यन् अधर्मको दूर हटाते हुए
स्थिर चर समस्त चराचरके
वृजिनघ्नः क्लेशोंको नष्ट करने वाले
सुस्मित श्रीमुखेन अपने मुस्कराते मुख की शोभासे
व्रजपुरवनितानां व्रज एवं नगरकी स्त्रियोंमें
कामदेवं वर्धयन् जयति कामदेवको बढ़ाते भगवानकी जय हो ॥४८॥

इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयाऽऽत्त-
लीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि ।
कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य
श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन् ॥४९॥

इत्थं परस्य निजवर्त्म रिरक्षया आत्तलीलातनोः तत् अनुरूप विडम्बनानि कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रूयात् अमुष्य पदयोः अनुवृत्ति इच्छन् ॥४९॥

इत्थं निजवर्त्म	इस प्रकार अपने (वेद) मार्गकी	**परस्य**	परम पुरुष
रिरक्षया	रक्षाकी इच्छासे	**यदूत्तमस्य**	यदूत्तमके
आत्तलीलातनोः	लीलासे शरीर धारण किये	**कर्मकषणानि**	कर्म-बन्धन काटने वाले
तत् अनुरूप	और उसके अनुरूप	**कर्माणि**	कर्मोंको
विडम्बनानि	लीला करते हुए	**अमुष्य पादयोः**	इनके चरणोंकी
		अनुवृत्ति इच्छन्	सेवा चाहते हुए
		श्रूयात्	श्रवण करे ॥४९॥

मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्द-
श्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति ।
तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं
ग्रामाद् वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ॥५०॥

मर्त्यः तया अनुसवं एधितया मुकुन्द श्रीमत् कथा श्रवण कीर्तन चिन्तन एति तत् धाम दुस्तर कृतान्त जव अपवर्ग ग्रामात् वनं क्षितिभुजः अपि ययुः यत् अर्थाः ॥५०॥

तया मुकुन्द	उस मुकुन्दकी	**श्रवण कीर्तन**	सुनने तथा कहनेसे
श्रीमत् कथा	श्रीमती कथाके	**एधितया**	प्रवृद्ध हुए
अनुसवं	प्रतिदिन	**चिन्तन**	चिन्तनसे

दुस्तर कृतान्त जव	दुष्पार कालके वेगसे	**यत् अर्थाः क्षितिभुजः अपि**	जिसे पाने के लिए राजा लोग भी
अपवर्ग तत् धाम एति	मोक्ष देने वाले उनके धाम पहुँचता है	**ग्रामात् वनं ययुः**	नगरसे वनमें गये ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्र्यां परमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे श्रीकृष्णचरितानुवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

॥ इति दशमस्कन्धोत्तरार्धः समाप्तः ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ एकादश स्कन्ध ॥

एकादश स्कन्ध

अनुक्रमणिका

कृ. सं.		पृ. सं.
१.	यदुवंशका ऋषियोंको शाप	
२.	वसुदेवजीके पास श्रीनारदजीका आना और उन्हें राजा जनक तथा नौ योगीश्वरोंका संवाद सुनाना ।	१६
३.	माया, मायासे पार होनेके उपाय तथा ब्रह्म और कर्मयोगका निरूपण	४०
४.	भगवानके अवतारोंका वर्णन	६५
५.	भक्तिहीन पुरुषोंकी गति और भगवानकी पूजा विधिका वर्णन	७९
६.	देवताओंकी भगवानसे स्वधाम सिधारनेके लिए प्रार्थना तथा यादवोंको प्रभास-क्षेत्र जानेकी तैयारी करते देखकर उद्धवका भगवानके पास आना ।	१०३
७.	अवधूतीपाख्यान - पृथ्वीसे लेकर कबूतर तक आठ गुरुओंकी कथा	१२७
८.	अवधूतोपाख्यान - अजगरसे लेकर पिंगलातक नौ गुरुओंकी कथा	१५७
९.	अवधूतोपाख्यान - कुर से लेकर भृंगी तक सात गुरुओंकी कथा	१७५
१०.	लौकिक तथा पारलौकिक भोगोंकी असारताका निरूपण	१९०
११.	बद्ध, मुक्त और भक्तजनोंके लक्षण	२०५
१२.	सत्संगकी महिमा और कर्म तथा कर्मत्यागकी विधि	२२६
१३.	हंसरूप में सनकादिकों दिये गये उपदेश का वर्णन	२३८
१४.	भक्तियोगकी महिमा तथा ध्यान विधिका वर्णन	२५७
१५.	भिन्न-भिन्न सिद्धियोंके नाम और लक्षण	२७७

१६. भगवानकी विभूतियोंका वर्णन २९२
१७. वर्णाश्रम-धर्म-निरूपण ३०९
१८. वानप्रस्थ और सन्यासीके धर्म ३३३
१९. भक्ति, ज्ञान और यम नियमादि साधनोंका वर्णन ३५३
२०. ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग ३७३
२१. गुण-दोष व्यवस्था का स्वरूप और रहस्य ३८९
२२. तत्त्वों की संख्या और पुरुष प्रकृति विवेक ४०८
२३. एक तितिक्षु ब्राह्मण का इतिहास ४३५
२४. सांख्ययोग ४७६
२५. तीनों गुणों की वृतियों का निरूपण
२६. पुरुरवाकी वैरोग्योक्ति ४९१
२७. क्रियायोगका वर्णन ५०५
२८. परमार्थ निरूपण ५२८
२९. भागवत धर्मोंका निरूपण और उद्धवजीका बदरिकाश्रमगमन ४४९
३०. यदुकुलका संहार ५७३
३१. श्रीभगवानका स्वधामगमन ५९५-६०७

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भागवतम् एकादशस्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

श्रीशुकउवाच–

कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ।
भुवोऽवतारयद् भारं जविष्ठं जनयन् कलिम् ॥ १ ॥

कृत्वादैत्यवधं कृष्णः सरामः यदुभिः वृतः भुवः अवतारयत् भारं जविष्ठं जनयन् कलिम् ॥ १ ॥

सरामः कृष्णः	- बलरामजीके साथ श्रीकृष्णने	**जविष्ठं**	- (कौरव-पाण्डवोंमें) प्रबल
यदुभिः वृतः	- यदुवंशियोंसे घिरे हुए	**कलिंजनयन्**	- कलह उत्पन्न करके
दैत्यवधं कृत्वा	- दैत्योंका वध करके	**भुवः भारं**	- पृथ्वीका भार
		अवतारयत्	- उतार दिया ॥ १ ॥

ये कोपिताः सुबहु पाण्डुसुताः
सपत्नैर्दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान् ।
कृत्वा निमित्तमितरेतरतः समेतान्
हत्वा नृपान् निरहरत् क्षितिभारमीशः ॥ २ ॥

ये कोपिताःसुबहु पाण्डुसुताः सपत्नैः दुर्द्यूत हेलन कचग्रहण आदिभिःतान् कृत्वा निमित्तं इतर इतरतः समेतान् हत्वा नृपान् निरहरत् क्षितिभारं ईशः ॥ २ ॥

ये पाण्डुसुताः - जो पाण्डव
सपत्नैः - शत्रुओं द्वारा
दुर्द्यूत - बुरे (छलपूर्ण) जुए
हेलन कचग्रहण - अपमानों तथा (द्रौपदीके) केश पकड़ने
आदिभिः - आदिद्वारा
सुबहुकोपिताः - अत्यधिक कुपित कर दिये गये थे
तान्- निमित्तंकृत्वा - उनको निमित्त बनाकर
इतर इतरतः - परस्पर एक दूसरे द्वारा
समेतान् - चारों ओरसे आये
नृपान् हत्वा - राजाओंको मरवाकर
ईशः- क्षितिभारं - भगवानने भूभार
निरहरत् - सर्वथा दूर कर दिया ॥ २ ॥

भूभारराजपृतना यदुभिर्निरस्य
गुप्तैः स्वबाहुभिरचिन्तयदप्रमेयः ।
मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं
यद् यादवं कुलमहो अविषह्यमास्ते ॥ ३ ॥

भूभार राजपृतना यदुभिः निरस्य गुप्तैः स्वबाहुभिः अचिन्तयत् अप्रमेयः मन्ये अवनेः ननु गतः अपिअगतं हि भारं यत् यादवकुलं अहो अविषह्यनं आस्ते ॥ ३ ॥

भूभार - पृथ्वीकी भाररूपा
राजपृतना - राजाओंकीसेनाको
स्वबाहुभिः गुप्तैः- अपनी भुजाओंसे सुरक्षित
यदुभिः निरस्य - यादवों द्वारा हटाकर
अप्रमेयः - प्रमाणातीत श्रीकृष्णने
अचिन्तयत् - सोचा
ननु अवनेः - निश्चय पृथ्वीका
भारंगतःअपि - भारचले जानेपर भी
अगतं मन्ये - बिना गया मानता हूं
हि यत्- अविषह्यं - क्योंकि जो (यह) अजेय
यादवकुलं - यादवकुल
अहो आस्ते - अहो (अभी) बना है ॥ ३ ॥

नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत्
कथञ्चिन्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम् ।
अन्तःकलिं यदुकुलस्य विधाय
वेणुस्तम्बस्य वन्हिमिव शान्तिमुपैमि धाम ॥ ४ ॥

न एव अन्यतः परिभवः अस्य भवेत् कथञ्चित् मत् संश्रयस्य विभवः न हनस्य नित्यं अन्तः कलिं यदुकुलस्य विधाय वेणु स्तम्बस्य वन्हि इव शान्तिं उपैमि धाम ॥ ४ ॥

अस्य अन्यतः	- इसकी किसी दूसरेसे	**यदुकुलस्य**	- (अतः) यदुकुलमें
कथञ्चित्	- किसी प्रकार	**अन्तः-**	- आन्तरिक कलह
परिभवः	- पराजय	**कलिं विधाय**	उत्पन्न करके
न भवेत्	- नहीं हो सकती	**वेणुस्तम्बस्य**	- बासोंके झुरमुटमें
मत्संश्रयस्य	- मेरे आश्रममें रहनेसे	**वन्हिं इव**	- अग्निके समान
विभवः	- वैभव	**शान्तिंधाम**	- शान्ति पूर्वक अपने धाम
न हनस्य नित्यं	- अप्रतिहत और स्थायी हो गया है	**उपैमि**	- जाऊँगा ॥ ४ ॥

एवं व्यवसितो राजन् सत्यसंकल्प ईश्वरः ।
शापव्याजेन विप्राणां संजह्रे स्वकुलं विभुः ॥ ५ ॥

एवं व्यवसितः राजन् सत्यसंकल्प ईश्वरः शाप व्याजेन विप्राणां सञ्जह्रे स्वकुलं विभुः ॥ ५ ॥

राजन्	- राजन्	**विप्राणां**	- ब्राह्मणोंके
एवं व्यवसितः	- इस प्रकार निश्चय करके	**शाप व्याजेन**	- शापके बहाने
सत्यसंकल्प	- उन सत्यसंकल्प	**स्वकुलं-**	- अपने कुलका संहार
ईश्वरः विभुः	- समर्थ स्वामीने	**सञ्जह्रे**	किया ॥ ५ ॥

स्व मूर्त्या लोकलावण्यनिर्मुक्त्या लोचनं नृणाम् ।
गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तं पदैस्तानीक्षतां क्रियाः ॥ ६ ॥

स्वमूर्त्या लोकलावण्य निर्मुक्तया लोचनं नृणां गीर्भिः ताः स्मरतां चित्तं पदैः तान् ईक्षतां क्रियाः ॥ ६ ॥

लोकलावण्य - त्रिभुवन सुन्दर
स्वमूर्त्या - अपनी मूर्तिसे
नृणांलोचनं - मनुष्योंके नेत्रोंको
निर्मुक्तया - सब ओरसे छुड़ा देने वाली
गीर्भिस्ताः - (अपनी) वाणीमें वही (प्रमुख) थे
स्मरतां चित्तं - स्मरण करने वालोंके चित्त
पदैः - (उनके) चरणोंमें (लग जाते थे)
तान् ईक्षतां - उनका दर्शन करके
क्रियाः - (सब) कार्य (भूल जाते थे) ॥ ६ ॥

आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यञ्जसा नु कौ ।
तमोऽनया तरिष्यन्तीत्यगात् स्वं पदमीश्वरः ॥ ७ ॥

आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य हि अञ्जसा न कौ तमः अनया तरिष्यन्ति इति अगात् स्वं पदं ईश्वरः ॥ ७ ॥

हि - क्योंकि
अनयातमः - इसके द्वारा (लोग) अज्ञानसे
तरिष्यन्ति - पार हो जायेंगे
इति - ऐसा सोचकर
कौ नु अञ्जसा - पृथ्वीपर अहो सरलतासे
सुश्लोकां - पवित्रकीर्तनीय
कीर्तिं आच्छिद्य - उत्पन्न करके (उसे)
वितत्य - विस्तृत करके
ईश्वरः स्वं पदं - वे सर्वेश्वर अपने धाम
अगात् - पधारे ॥ ७ ॥

राजोवाच–

ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्धोपसेविनाम् ।
विप्रशापः कथमभूद् वृष्णीनां कृष्णचेतसाम् ॥ ८ ॥

ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्ध उपसेविनां विप्र शापः कथं अभूत् वृष्णीनां कृष्णचेतसाम् ॥ ८ ॥

ब्रह्मण्यानां	- ब्राह्मणोंके भक्त,	**वृष्णीनां**	- यादवोंको
वदान्यानां	- उदार	**विप्रशापः**	- ब्राह्मणोंका शाप
नित्यं वृद्ध	- सदा वड़ोंकीसेवा	**कथं अभूत**	- कैसे प्राप्त हुआ
उपसेविनां	करने वाले		॥ ८ ॥
कृष्णचेतसां	- श्रीकृष्णमें आसक्त चित्त		

यन्निमित्तः स वै शापो यादृशो द्विजसत्तम ।
कथमेकात्मनां भेद एतत् सर्वं वदस्व मे ॥ ९ ॥

यत् निमित्तः स वै शापः यादृशः व द्विजसत्तम कथं एकात्मनां भेद एतत् सर्वं वदस्वमे ॥ ९ ॥

द्विजसत्तम	- विप्र प्रवर !	**एकात्मनां**	- एक चित्त (यादवों) में
स वै शापः	- वह निश्चित शाप	**भेद कथं**	- फूट कैसे पड़ गयी
यत् निमित्तः	- जिस कारण सेतु हुआ,	**एतत् सर्वं**	- यह सब
वा यादृशः	- अथवा जैसा था तथा	**नः वदस्व**	- मुझे बतलाइये ॥ ९ ॥

श्रीशुक उवाच–

बिभ्रद् वपुः सकलसुन्दरसन्निवेशं
कर्माचरन् भुवि सुमंगलमाप्तकामः ।
आस्थाय धाम रममाण उदारकीर्तिः
संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृत्यशेषः ॥ १० ॥

बिभ्रद् वपुः सकल सुन्दर सन्निवेशं कर्म आचरन् भुवि सुमंगलं आप्तकामः आस्थाय धाम रममाण उदारकीर्तिः संहर्तुं ऐच्छत कुलं स्थित कृत्यशेषः ॥ १० ॥

सकल सुन्दर	-	सम्पूर्ण सुन्दर (पदार्थोंके)	**उदारकीर्तिः**	-	प्रशस्त सुयशके साथ
सन्निवेशं	-	मानो योगसे बना हो ऐसा	**रममाणः**	-	विहार करते हुए
वपुः विभ्रत्	-	श्रीविग्रह धारणकरके	**स्थितकृत्य-शेषः**	-	अपने बचे हुए कर्तव्य को (पूरा करनेके लिए) स्थित
आप्तकामः	-	पूर्णकाम होते हुए भी	**कुलं संहर्तुं**	-	अपने कुलके उपसंहार की
भुवि सुमंगलं	-	पृथ्वीके लिए अत्यन्त मंगलमय	**ऐच्छत**	-	इच्छाकी ॥ १० ॥
कर्म आचरन्	-	कर्म करते हुए			

कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमंगलानि
गायज्जगत्कलिमलापहराणि कृत्वा ।
कालात्मना निवसता यदुदेवगेहे
पिण्डारकं समगमन् मुनयो निसृष्टाः ॥ ११ ॥

कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमंगलानि गायत् जगत् कलिमल अपहराणि कृत्वा काल आत्मना निवसता यदुदेव गेहे पिण्डारकं समअगमन् मुनयः निसृष्टाः ॥ ११ ॥

कलिमल	-	कलियुगके दोषोंको	**कालआत्मना**	-	काल स्वरूपसे
अपहराणि	-	दूर करने वाले	**निवसता**	-	बसते हुए
सुमङ्गलानि	-	अत्ययन्त मंगलमय	**निसृष्टाः**	-	उनके विदा करनेपर
कर्माणि	-	कर्मोंको	**मुनयः-पिण्डारकं**	-	मुनिगण पिण्डारक क्षेत्र
गायन् कृत्वा	-	लोग वर्णन करेंगे इसलिए करके	**समअगमन्**	-	एक साथ आ गये ॥ ११ ॥
यदुदेव गेहे	-	यादव महाराज उग्रसेन की राजधानीमें			

विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिराः ।
कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ॥१२॥

विश्वामित्रः, असितः कण्वः दुर्वासा, भृगुः, अंगिराः, कश्यपः, वामदेवः, अत्रिः, वशिष्ठः, नारद आदयः ॥ १२ ॥१

क्रीडन्तस्तानुपव्रज्य कुमारा यदुनन्दनाः ।
उपसंगृह्य पप्रच्छुरविनीता विनीतवत् ॥ १३ ॥

क्रीडन्तः तान् उपव्रज्य कुमारा यदुनन्दनाः उपसंग्रह्यन पप्रच्छुः अविनीता विनीतवत् ॥ १३ ॥

अविनीता	-	उद्दण्ड	**उपव्रज्य**	-	समीप जाकर
यदुनन्दनः-	-	यादव कुलके कुमार	**विनीतवत्**	-	कृत्रिम नम्रतासे
कुमारा			**उपसंग्रह्य**	-	प्रणाम करके
क्रीडन्तः तान्	-	खेल करते हुए उनके	**पप्रच्छुः**	-	पूछा ॥ १३ ॥

ते विषयित्वा स्त्रीवेषैः साम्बं जाम्बवतीसुतम् ।
एषा पृच्छति वो विप्रा अन्तर्वत्न्यसितेक्षणा ॥ १४ ॥

ते वेषयित्वा स्त्रीवेषैः साम्बं जाम्बवती सुतं एषा पृच्छति वः विप्राः अन्तर्वत्नि असित् ईक्षणा ॥ १४ ॥

ते जाम्बवती	-	उन्होंने जाम्बवतीके	**एषा असित्**	-	यह कजरारे नेत्रों वाली
सुतं		पुत्र	**ईक्षणा**		
साम्बं स्त्रीवेषैः	-	साम्बको स्त्रीवेशमें	**अन्तर्वत्नि**	-	गर्भवती
वेषयित्वा	-	सजाकर (कहा)	**विप्राः वः-**	-	ब्राह्मणो ! आप लोगोंसे
			पृच्छति		पूछती है ॥ १४ ॥

---

१. ये ऋषियोंके नाम हैं ।

प्रष्टुं विलज्जती साक्षात् प्रब्रूतामोघदर्शनाः ।
प्रसोष्यन्ती पुत्रकामा किंस्वित् सञ्जनयिष्यति ॥ १५ ॥

प्रष्टुं विलज्जती साक्षात् प्रब्रूत अमोघ दर्शनाः प्रसोष्यन्ती पुत्रकामा किं स्वित् सञ्जनयिष्यति ॥ १५ ॥

साक्षात् प्रष्टुं	-	स्वयं पूछनेमें	**अमोघ दर्शनाः**	-	अव्यर्थ दृष्टि वाले (आप)
विलज्जती	-	लज्जित हो रही है,	**प्रब्रूत**	-	बतलावें
प्रसोष्यन्ती	-	प्रसवमें	**किं स्वित्**	-	भला क्या
पुत्रकामा	-	पुत्र उत्पन्न करना चाहती है	**सञ्जन-यिष्यति**	-	उत्पन्न करेगी ? ॥ १५ ॥

एवं प्रलब्धा मुनयस्तानूचुः कुपिता नृप ।
जनयिष्यति वो मन्दा मुसलं कुलनाशनम् ॥ १६ ॥

एवं प्रलब्धा मुनयः तान् ऊचुः कुपिता नृप जनयिष्यति वः मन्दा मुसलं कुलनाशनम् ॥ १६ ॥

नृप	-	राजन्	**मन्दाः**	-	'मूर्खो
एवं प्रलब्धा	-	इस प्रकार ठगनेका प्रयत्न करनेपर	**वः कुल-नाशनं**	-	तुम्हारे कुलका नाश करने वाला
कुपिता मुनयः	-	कुपित मुनिगण	**मुसलं-जनयिष्यति**	-	मूसल उत्पन्न करेगी ॥ १६ ॥
तान् ऊचुः	-	उनसे बोले			

तच्छ्रुत्वा तेऽतिसन्त्रस्ता विमुच्य सहसोदरम् ।
साम्बस्य ददृशुस्तस्मिन् मुसलं खल्वयस्मयम् ॥ १७ ॥

तत् श्रुत्वा ते अति सन्त्रस्ता विमुच्य सहसा उदरं साम्बस्य ददृशुः तस्मिन् मुसलं खलु अयस् मयम् ॥ १७ ॥

तत् श्रुत्वा - उस (शाप) को सुनकर
ते अति- - वे बहुत भयभीत
सन्त्रस्ताः होकर
सहसा - अचानक
साम्बस्य उदरं- साम्बके पेट (पर बंधा वस्त्रादि)को
विमुच्य - खोलकर
खलु अयस्मयं - अरे लोहेसे बना
मुसलं ददृशुः - मूसल देखा ॥१७॥

किं कृतं मन्दभाग्यैर्नः किं वदिष्यन्ति नो जनाः ।
इति विह्वलिता गेहानादाय मुसलं ययुः ॥१८॥

किं कृतं मन्द भाग्यैः नः किं वदिष्यन्ति नः जनाः इति विह्वलिता गेहान् आदाय मुसलं ययुः ॥ १८ ॥

नः मन्दभाग्यैः - 'हम अभागोंने
किं कृतं - यह क्या किया
जनाः नः - लोग हमें
किं वदिष्यन्ति - क्या कहेंगे ?
इति विह्वलिता - इस प्रकार व्याकुल होकर
मुसलं आदाय - उस मूसलको लेकर
गेहान् ययुः - घर लौट गये ॥१८॥

तच्चोपनीय सदसि परिम्लानमुखश्रियः ।
राज्ञ आवेदयाञ्चक्रुः सर्वयादवसन्निधौ ॥ १९ ॥

तत् च उपनीय सदसि परिम्लानमुखश्रियः राज्ञ आवेदयान् चक्रुःसर्व यादव सन्निधौ ॥ १८ ॥

मुखश्रियः - मुखकी शोभा
परिम्लान - अत्यन्त फीकी हो गयी थी
तत् च - उस (मूसल)को भी
सर्व यादव - सब यदुवंशियोंकी
सन्निधौ उपस्थितिमें
सदसि उपनीय - सभामें लाकर
राज्ञ आवेदयान् - महाराज उग्रसेनसे निवेदन
चक्रुः - किया ॥ १९ ॥

श्रुत्वामोघं विप्रशापं दृष्ट्वा च मुसलं नृप ।
विस्मिता भयसन्त्रस्ता बभूवुर्द्वारकौकसः ॥ २० ॥

श्रुत्वा अमोघं विप्रशापं दृष्ट्वा च मुसलं नृप विस्मिता भय संत्रस्ता बभूवुः द्वारकौ कसः ॥ २० ॥

नृप	- राजन् !	**द्वारकौ कसः**	- द्वारिकावासी
अमोघं विप्रशापं	- अव्यर्थ ब्राह्मणोंका शाप	**विस्मिता**	- चकित एवं
श्रुत्वा च	- सुनकर तथा	**भय संत्रस्ता**	- भयसे अत्यन्त भयभीत
मुसलं दृष्ट्वा	- मूसलको देखकर	**बभूवुः**	- हो गये ॥ २० ॥

तच्चूर्णयित्वा मुसलं यदुराजः स आहुकः ।
समुद्रसलिले प्रास्यल्लोहं चास्यावशेषितम् ॥ २१ ॥

तत् चूर्णयित्वा मुसलं यदुराजः स आहुकः समुद्र सलिले प्रास्यत् लोहं च अस्य अवशेषितम् ॥ २१ ॥

स यदुराजः	- उन यादव महाराज	**अस्य अवशेषितं**	- उससे बचे हुए
आहुकः	उग्रसेनने	**लोहं च**	- लोहेका भी
तत् मुसलं	- उस मूसलको	**समुद्र सलिले**	- समुद्रके जलमें
चूर्णयित्वा	- चूर्ण बनवाकर	**प्रास्यत्**	- फिंकवा दिया ॥२१॥

कश्चिन्मत्स्योऽग्रसील्लोहं चूर्णानि तरलैस्ततः ।
उह्यमानानि वेलायां लग्नान्यासन् किलैरकाः ॥ २२ ॥

कश्चित् मत्स्यः अग्रसीत् लोहं चूर्णानि तरलैः ततः उह्यमानानि वेलायां लग्नानि आसन् किल एरकाः ॥ २२ ॥

कश्चित् मत्स्यः	- किसी मछलीने	**तरलैः उह्य मानानि**	- तरंगोंसे ढोया जाकर
लोहं अग्रसीत्	- उस लोहे (के टुकड़े) को निगल लिया	**किल एरकाः**	- अहो, एरका नामक घास
ततः चूर्णानि	- वहांसे वह (लौह) चूर्ण	**आसन्**	- हो गया ॥ २२ ॥

---

१. **यह तलवारके समान लम्बे तीन अंगुलके लगभग बचके समान पौधोंकी दलदली नम भूमिमें होने वाली घास है ।**

मत्स्यो गृहीतो मत्स्यघ्नैर्जालेनान्यैः सहार्णवे ।
तस्योदरगतं लोहं स शल्ये लुब्धकोऽकरोत् ॥ २३ ॥

मत्स्यः गृहीतः मत्स्यघ्नैः जालेन अन्यैः सह अर्णवे तस्य उदरगतं लोहं स शल्ये लुब्धकः अकरोत् ॥ २३ ॥

मत्स्यघ्नैः	- मछली मारनेवालों द्वारा	**गृहीतः**	- पकड़ी गयी,
जालेन अन्यैः-	- जालमें दूसरी	**तस्य उदरगतं**	- उसके पेटमें पहुँचे
सह	(मछलियों)के साथ	**लोहं लुब्धकः**	- उस लोहेको एक व्याधने
अर्णवेमत्स्यः	- समुद्रमें (वह) मछली	**स शल्ये**	- बाणकी नोक बना लिया
		अकरोत्	॥ २३ ॥

भगवाञ्ज्ञातसर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा ।
कर्तुं नैच्छद् विप्रशापं कालरूप्यन्वमोदत ॥ २४ ॥

भगवान् ज्ञात सर्व अर्थ ईश्वरः अपि तत् अन्यथा कर्तुं न इच्छत् विप्रशापं कालरूप अन्वमोदत ॥ २४ ॥

ज्ञात सर्व अर्थ	- इस सब विषयोंको जानकर भी	**न इच्छत्**	- ऐसी इच्छा नहींकी
भगवान्	- भगवानने	**कालरूप**	- कालरूपसे
तत् विप्रशापं	- उस ब्राह्मणके शापको	**अन्वमोदत**	- (उसका) अनुमोदन कर दिया ॥ २४ ॥
अन्यथा कर्तुं	- व्यर्थ कर देनेमें		
ईश्वरः अपि	- समर्थ होनेपर भी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

गोविन्दभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह ।
अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः ॥ १ ॥

गोविन्द भुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह अवात्सीत् नारदः अभीक्ष्णं कृष्ण उपासन लालसः ॥ १ ॥

कुरूद्वह	- कुरुकुल बालक परीक्षित !	**कृष्ण उपासन**	- श्रीकृष्णकी उपासना
गोविन्द	- गोविन्दकी	**लालसः**	- करनेकी इच्छासे
भुजगुप्तायां	- भुजाओंसे सुरक्षित	**नारदः अभीक्ष्णं**	- नारदजी बार बार
द्वारवत्यां	- द्वारिकापुरीमें	**अवात्सीत्**	- रहते ही थे ॥ १ ॥

को नु राजन्निन्द्रियवान् मुकुन्दचरणाम्बुजम् ।
न भजेत् सर्वतोमृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥ २ ॥

कः नु राजन् इन्द्रियवान् मुकुन्द चरणाम्बुजं न भजेत् सर्वतः मृत्युः उपास्यं अमर उत्तमैः ॥ २ ॥

राजन्	- राजन्	**उपास्यं**	- आराधनीय
नु कः-	- भला कौन इन्द्रिय	**मुकुन्द-**	- मुकुन्दके चरण कमलोंका
इन्द्रियावन्	पाने वाला	**चरणाम्बुजं**	
सर्वतः मृत्युः	- सव ओरसे मृत्युसे घिरा	**भजेत् न**	- भजन नहीं करेगा
अमर उत्तमैः	- (ब्रह्मादि) देव श्रेष्ठों द्वारा		॥ २ ॥

तमेकदा तु देवर्षिं वसुदेवो गृहागतम् ।
अर्चितं सुखमासीनमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

तं एकदा तु देवर्षिं वसुदेवः गृह आगतं अर्चितं सुखं आसीनं अभिवाद्य इदं अब्रवीत् ॥ ३ ॥

एकदा तु	- एक बार तो	**तं देवर्षिं**	- उन देवर्षिको
गृह आगतं	- घर आये	**अभिवाद्य**	- प्रणाम करके
अर्चितं	- पूजित	**वसुदेवः**	- वसुदेवजीने
सुखं आसीनं	- सुखपूर्वक बैठे	**इदं अब्रवीत्**	- यह कहा ॥ ३ ॥

वासुदेव उवाच–

भगवन् भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम् ।
कृपणानां यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम् ॥ ४ ॥

भगवन् भवतः यात्रा स्वस्तये सर्व देहिनां कृपणानां यथा पित्रोः उत्तम श्लोक वर्त्मनाम् ॥ ४ ॥

भगवन्	- भगवन्	**भवतः यात्रा**	- आपकी यात्रा
उत्तम श्लोक	- पवित्रकीर्ति	**सर्व कृपणानां**	- समस्त दुःखी
वर्त्मनां	- भगवानके मार्गमें चलने वाले	**देहिनां**	- प्राणियोंके
		स्वस्तये	- कल्याणके लिए (होती है) ॥ ४ ॥
यथा पित्रोः	- माता-पिताके समान		

भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च ।
सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम् ॥ ५ ॥

भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च सुखाय एव हि साधूनां त्वादृशां अच्युत आत्मनाम् ॥ ५ ॥

हि देव चरितं - क्योंकि देवताओंका व्यवहार
भूतानां - प्राणियोंके लिए
दुःखाय च - दुःखकाकारण तथा (कभी)
सुखाय च - सुखका भीकारण होता है;
त्वादृशां - किन्तु आपके समान
अच्युत- - भगवत्स्वरूप
आत्मनां
साधूनां - साधुओंका (व्यवहार)
सुखाय एव - सुखके लिए ही (होता है) ॥ ५ ॥

भजन्ति ये यथा देवान् देवा अपि तथैव तान् ।
छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः ॥ ६ ॥

भजन्ति ये यथा देवान् देवा अपि तथा एवतान् छाया इवकर्म सचिवाः साधवः दीनवत्सलाः ॥ ६ ॥

ये यथा देवान् - जो जैसे देवताओंका
भजन्ति - भजन करते हैं:
देवाः अपि - देवता भी
तान् तथा एव - उनको उसीके अनुसार (फल देते हैं)
छाया इव - (क्योंकि देवता) छायाके समान
कर्म सचिवाः - कर्मके मन्त्री (अधीन) हैं
साधवः - किन्तु साधुपुरुष
दीनवत्सलाः - दीनोंपर स्नेह करने वाले होते हैं ॥ ६ ॥

ब्रह्मंस्तथापि पृच्छामो धर्मान् भागवतांस्तव ।
याञ्छ्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यो मुच्यते सर्वतोभयात् ॥ ७ ॥

ब्रह्मन् तथा अपि पृच्छामः धर्मान् भागवतान् तव यान् श्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यः मुच्यते सर्वतः भयात् ॥ ७ ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन्
तथा अपि - ऐसा होनेपर भी
तव भागवतान्-धर्मान् - आपसे भागवत धर्म
पृच्छामः - पूछता हूँ
यान्- - जिनको श्रद्धापूर्वक
श्रद्धयाश्रुत्वा सुनकर
मर्त्यः सर्वतः - मनुष्य सब ओरसे
भयात् मुच्यते - भयसे छूट जाता है ॥ ७ ॥

अहं किल पुरानन्तं प्रजार्थो भुवि मुक्तिदम् ।
अपूजयं न मोक्षाय मोहितो देवमायया ॥ ८ ॥

अहं किल पुरा अनन्तं प्रजा अर्थः भुवि मुक्तिदं अपूजयम् न मोक्षाय मोहितः देवमायया ॥ ८ ॥

देवमायया	- भगवानकी मायासे	**भुवि प्रजा**	- पृथ्वीपर पुत्र प्राप्तिके
मोहितः अहं	- मोहित होकर मैंने	**अर्थं**	लिए
पुरा मुक्तिदं	- पहिले जन्ममें मोक्षदाता	**मोक्षाय न**	- मोक्षके लिए नहीं
किल अनन्तं	- अहो अनन्तपरमात्माकी	**अपूजयम्**	- पूजाकी ॥ ८ ॥

यथा विचित्रव्यसनाद् भवद्भिर्विश्वतोभयात् ।
मुच्येम ह्यञ्जसैवाद्धा तथा नः शाधि सुव्रत ॥ ९ ॥

यथा विचित्र व्यसनात् भवद्भिः विश्वतः भयात् मुच्येम हि अञ्जसा एव अद्धा तथा नः शाधि सुव्रत ॥ ९ ॥

सुव्रत	- उत्तम व्रतवाले नारदजी	**अञ्जसा एव**	- सरलतासे ही
यथा विचित्र	- जैसे नाना प्रकारके	**अद्धा मुच्येम**	- साक्षात् मुक्त हो जाऊँ
व्यसनात् हि	- कष्टोंसे तथा	**तथा नः**	- वैसी मुझे
विश्वतः भयात्	- सब ओरके भयसे	**शाधि**	- आज्ञाकीजिए ॥ ९ ॥
भवद्भिः	- आपके माध्यमसे		

श्रीशुक उवाच—

राजन्नेवं कृतप्रश्नो वसुदेवेन धीमता ।
प्रीतस्तमाह देवर्षिर्हरेः संस्मारितो गुणैः ॥ १० ॥

राजन् एवं कृत प्रश्नः वसुदेवेन धीमता प्रीतः तं आह देवर्षिः हरेः संस्मारितः गुणैः ॥ १० ॥

राजन् - राजन्
धीमता वसुदेवन - बुद्धिमान वसुदेवजी द्वारा
एवं कृतः प्रश्नः- इस प्रकार प्रश्न किये जानेपर
हरेः गुणैः - श्रीहरिके गुणोंका
संस्मारितः - स्मरण कराये जानेसे
प्रीतः देवर्षिः - प्रसन्न होकर देवर्षिने
तं आह - उनसे कहा ॥ १० ॥

नारद उवाच–

सम्यगेतद् व्यवसितं भवता सात्वतर्षभ ।
यत् पृच्छसे भागवतान् धर्मांस्त्वं विश्वभावनान् ॥ ११ ॥

सम्यक् एतत् व्यवसितं भवता सात्वत ऋषभ यत् पृच्छसे भागवतान् धर्मान् त्वं विश्व भावनान् ॥ ११ ॥

सात्वत ऋषभ - यादव श्रेष्ठ !
भवता एतत् - तुम्हारा यह
व्यवसितं - निश्चय
सम्यक् - उपयुक्त है
यत् त्वं - क्योंकि तुम
विश्व भावनान् - विश्व-पोषक
भागवतान् धर्मान् - भागवत धर्मको
पृच्छसे - पूछ रहे हो ॥ ११ ॥

श्रुतोऽनुपठितो ध्यात आदृतो वानुमोदितः ।
सद्यः पुनाति सद्धर्मो देवविश्वद्रुहोऽपि हि ॥ १२ ॥

श्रुतः अनुपठितः ध्यात आदृतः वा अनुमोदितः सद्यः पुनाति सद्धर्मः देव विश्व द्रुहः अपि हि ॥ १२ ॥

हि सद्धर्मः - क्योंकि यह सद्धर्म
श्रुतः अनुपठितः- सुननेसे, फिर पढ़नेसे,
ध्यात आदृतः - ध्यान करने, आदर करने
वा अनुमोदितः अथवा समर्थन करनेसे
देव विश्वद्रुहः- देवताओं सहित विश्वके द्रोही
अपि सद्यः - को भी तुरन्त
पुनाति - पवित्रकर देता है ॥१२॥

त्वया परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
स्मारितो भगवानद्य देवो नारायणो मम ॥ १३ ॥

त्वया परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः स्मारितः भगवान् अद्य देवः नारायणः मम ॥ १३ ॥

पुण्य श्रवण-	- जिनका (यश) सुनना	**नारायणः**	- नारायणका
कीर्तनः	और कहना पवित्र है	**अद्य त्वया**	- आज तुम्हारे द्वारा
परम कल्याणः	- उन परम कल्याण स्वरूप	**स्मारितः**	- स्मरण कराया गया
मम देवः	- मेरे इष्टदेव		॥ १३ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
आर्षभाणां च संवादं विदेहस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

अत्र अपि उदाहरन्ति इमं इतिहासं पुरातनं आर्षभाणां च संवादं विदेहस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

अत्र अपि	- इस विषयमें भी	**विदेहस्य**	- विदेहके
इमं पुरातनं	- इस प्राचीन	**संवादं**	- संवादका
आर्षभाणां	- ऋषभ पुत्रोंका	**उदाहरन्ति**	- उदाहरण दिया जाता है
च महात्मनः	- तथा महात्मा		॥ १४ ॥

प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायम्भुवस्य यः ।
तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिर्ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १५ ॥

प्रियव्रतः नाम सुतः मनोः स्वायम्भुवस्य यः तस्य अग्नीध्रः ततः नाभिः ऋषभः तत् सुतः स्मृतः ॥ १५ ॥

स्वयाम्भुवस्य	- स्वायम्भुव	**ततः नाभिः**	- उनसे नाभि,
मनोः यः	- मनुके जो	**तत् सुतः**	- उनके पुत्र
प्रियव्रतनाम-	- प्रियव्रत नामके पुत्र थे	**ऋषभः स्मृतः**	- ऋषभ कहे गये हैं
सुतः			॥ १५ ॥
तस्य अग्नीध्रः	- उनके अग्नीध्र,		

तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया ।
अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद् ब्रह्मपारगम् ॥ १६ ॥

तं आहुः वासुदेव अंशं मोक्षधर्म विवक्षया अवतीर्णं सुतशतं तस्य आसीत् ब्रह्मपारगम् ॥ १६ ॥

तं मोक्षधर्म	- उन्हें मोक्षधर्म	**तस्य ब्रह्म-**	- उनके वेदके पारदर्शी
विवक्षया	- बतलानेकी इच्छासे	**पारगं**	
वासदेव अंशं	- वासुदेवके अंशसे	**सुत शतं-**	- सौ पुत्र थे ॥ १६ ॥
अवतीर्णं आहुः	- अवतरित कहा गया है	**आसीत्**	

तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः ।
विख्यातं वर्षमेतद् यन्नाम्ना भारतमद्भुतम् ॥ १७ ॥

तेषां वै भरतः ज्येष्ठः नारायणपरायणः विख्यातं वर्षं एतत् यत् नाम्ना भारतं अद्भुतम् ॥ १७ ॥

तेषां ज्येष्ठः	- उनमें बड़े	**वै एतत्-**	- निश्चय यह अद्भुत
नारायणपरायणः	- नारायणपरायण	**अद्भुतं**	
भरतः	- भरत थे ।	**भारतं**	- (अजनाभ वर्ष) भारत नामसे
यत् नाम्ना	- जिनके नामसे	**विख्यातं**	- प्रसिद्ध हुआ ॥ १७ ॥

स भुक्तभोगां त्यक्त्वेमां निर्गतस्तपसा हरिम् ।
उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै जन्मभिस्त्रिभिः ॥ १८ ॥

स भुक्तभोगां त्यक्त्वा इमां निर्गतः तपसा हरिं उपासीनः तत् पदवीं लेभे वै जन्मभिः त्रिभिः ॥ १८ ॥

स इमां - उन्होंने इस (पृथ्वी)को
भुक्तभोगां - भोग भोगनेके पश्चात्
त्यक्त्वा - त्यागकर
तपसा निर्गतः - तपस्याके लिए निकलकर
हरिं उपासीनः - श्री हरिकी उपासना करते हुए
वै त्रिभिः जन्मभिः - निश्चय तीन जन्मोंमें
तत् पदवीं लेभे - उनका स्थान प्राप्त किया ॥ १८ ॥

तेषां नव नवद्वीपपतयोऽस्य समन्ततः ।
कर्मतन्त्रप्रणेतार एकाशीतिर्द्विजातयः ॥ १९ ॥

तेषां नव नवद्वीप पतयः अस्य समन्ततः कर्मतन्त्र प्रणेतार एक अशीतिः द्विजातयः ॥ १९ ॥

तेषां - उन (ऋषभ पुत्रों) में
नव - नौ
अस्य समन्ततः - इस (भारतवर्ष) के चारों ओरके
नवद्वीप पतयः - नौ द्वीपोंके स्वामी हुए,
एक अशीतिः - इक्यासी
कर्मतन्त्र-प्रणेतार - कर्मशास्त्रके प्रवर्तक
द्विजातयः - ब्राह्मण हो गये ॥१९॥

नवाभवन् महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः ।
श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदाः ॥ २० ॥

नव अभवन् महाभागा मुनयः हि अर्थ शंसिनः श्रमणा वातरशना आत्मविद्या विशारदाः ॥ २० ॥

नव महाभागा - नौ महाभाग
हि अर्थ शंसिनः - क्योंकि परमार्थ उपदेशक थे
आत्मविद्या - अध्यात्म विद्यामें
विशारदाः - निपुण
वातरशनाः - दिगम्बर
श्रमणा-अभवन् - सन्यासी हो गये ॥ २० ॥

कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥ २१ ॥

कविः, हरिः, अन्तरिक्षः, प्रबुद्धः, पिप्पलायनः, आविर्होत्रः, अथ द्रुमिलः, चमसः, करभाजनः१ ॥ २१ ॥

त एते भगवद्रूपं विश्वं सदसदात्मकम् ।
आत्मनोऽव्यतिरेकेण पश्यन्तो व्यचरन् महीम् ॥ २२ ॥

त एते भगवत् रूपं विश्वं सत् असत् आत्मकं आत्मनः व्यतिरेकेण पश्यन्तः व्यचरन्, महीम् ॥ २२ ॥

त एते	- वे इस	**आत्मनः-**	- आत्मासे अभिन्न
सत् असत्-	- कारण-कार्यरूप	**व्यतिरेकेण**	
आत्मकं		**पश्यन्तः**	- देखते हुए
भगवत्रूपं विश्वं	- भगवत्स्वरूप विश्वको	**महीं व्यचरन्**	- पृथ्वीपर विचरण करते थे ॥ २२ ॥

अव्याहतेष्टगतयः सुरसिद्धसाध्य-
गन्धर्वयक्षनरकिन्नरनागलोकान् ।
मुक्ताश्चरन्ति मुनिचारणभूतनाथ-
विद्याधरद्विजगवां भुवनानि कामम् ॥ २३ ॥

अव्याहत इष्ट गतयः सुर सिद्ध साध्य गन्धर्व यक्ष नर किन्नर नाग लोकान् मुक्ताः चरन्ति मुनि चारण भूतनाथ विद्याधर द्विज गवां भुवनानि कामं ॥ २३ ॥

---

१. ये नव योगेश्वरोंके नाम हैं ।

इष्टगतयः - जहां जाना चाहते थे
अव्याहत - उनकी गति रुकती नहीं थी,
कामं - अतः इच्छानुसार
सुरसिद्ध - देवता, सिद्ध,
साध्य गन्धर्व - साध्यगण, गन्धर्व,
यक्ष नर किन्नर - यक्ष, मनुष्य, किन्नर
नाग लोकान् - नाग लोकोंमें,
मुनि चारण - मुनि, चारण,
भूतनाथ - शंकरजीके,
विद्याधर - विद्याधर
द्विजगवां - ब्राह्मणों (ब्रह्मके) तथा गायोंके
भुवनानि - लोकोंमें
मुक्ताः चरन्ति - स्वच्छन्द घूमते थे ॥ २३ ॥

त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्यदृच्छया ।
वितायमानमृषिभिरजनाभे महात्मनः ॥ २४ ॥

त एकदा निमेः सत्रं उपजग्मुः यदृच्छया वितायमानं ऋषिभिः अजनाभे महात्मनः ॥ २४ ॥

अजनाभे - अजनाभ (भारत) वर्षमें
एकदा - एक बार
ऋषिभिः - ऋषियों द्वारा
वितायमानं - कराये जाते हुए
महात्मनः निमेः - महात्मा निमिके
सत्रं त - यज्ञमें वे
यदृच्छया - संयोगवश
उपजग्मुः - आगये ॥ २४ ॥

तान् दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान् महाभागवतान् नृपः ।
यजमानोऽग्नयो विप्राः सर्व एवोपतस्थिरे ॥ २५ ॥

तान् दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान् महाभागवतान् नृपः यजमानः अग्नयः विप्राः सर्व एव उपतस्थिरे ॥ २५ ॥

तान् सूर्य-संकाशान् - उन सूर्यके समान तेजस्वी
महाभागवतान् - महाभागवतोंको
दृष्ट्वा - देखकर
यजमानः नृपः - यजमान राजा निमि
अग्नयः - अग्नियां,
विप्राः सर्व एव - ब्राह्मण सभी
उपतस्थिरे - स्वागतमें खड़े हो गये ॥ २५ ॥

विदेहस्तानभिप्रेत्य नारायणपरायणान् ।
प्रीतः सम्पूजयाञ्चक्रे आसनस्थान् यथार्हतः ॥ २६ ॥

विदेहः तान् अभिप्रेत्य नारायणपरायणान् प्रीतः सम्पूजयान् चक्रे आसनस्थान् यथा अर्हतः ॥ २६ ॥

विदेहः - विदेहराज निमिने
तान् नारायण-परायणान् - उन्हें नारायणपरायण
अभिप्रेत्य - जानकर
आसनस्थान - आसनपर बैठे हुओंकी
यथा अर्हतः - पूजा विधिसे
प्रीतः - प्रसन्नतापूर्वक
सम्पूजयान् चक्रे - भली प्रकार पूजाकी ॥ २६ ॥

तान् रोचमानान् स्वरुचा ब्रह्मपुत्रोपमान् नव ।
पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रयावनतो नृपः ॥ २७ ॥

तान् रोचमानान् स्वरुचा ब्रह्मपुत्र उपमान् नव पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रय अवनतः नृपः ॥ २७ ॥

ब्रह्मपुत्र उपमान् - ब्रह्माके पुत्र (सनकादि)के समान
तान् स्वरुचा - उन अपने तेजसे
रोचमानान् नव - प्रकाशितनवोंसे
परमप्रीतः - अत्यन्त प्रसन्न होकर
प्रश्रय अवनतः - विनयसे झुककर
नृपः पप्रच्छ - राजा निमिने पूछा ॥ २७ ॥

विदेह उवाच—

मन्ये भगवतः साक्षात् पार्षदान् वो मधुद्विषः ।
विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरन्ति हि ॥ २८ ॥

मन्ये भगवतः साक्षात् पार्षदान् वः मधुद्विषः विष्णोः भूतानि लोकानां पावनाय चरन्ति हि ॥ २८ ॥

साक्षात् भगवतः - साक्षात् भगवान
मधुद्विषः - मधुसूदनका
वः पार्षदान् - आप लोगोंको पार्षद
मन्ये - मानता हूँ
हि विष्णोः- - क्योंकि भगवत्स्वरूप
भूतानि होकर
लोकानां - लोकोंको पवित्र करनेके
पावनाय लिए
चरन्ति - (आप) विचरण करते हैं ॥ २८ ॥

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः ।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥ २९ ॥

दुर्लभः मानुषः देहः देहिनां क्षण भंगुरः तत्र अपि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठ प्रिय दर्शनम् ॥ २९ ॥

देहिनां - प्राणियोंके लिए
मानुषः देहः - मनुष्य शरीर
दुर्लभः - पाना कठिन है
क्षण भंगुरः - (वह भी) एक क्षणमें नष्ट होने वाला है,
तत्र अपि - उसमें भी
वैकुण्ठ प्रिय - श्री हरिके प्रियजनोंका
दर्शनं - दर्शन होना
दुर्लभं मन्ये - दुर्लभ मानता हूं ॥ २९ ॥

अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः ।
संसारेऽस्मिन् क्षणार्धोऽपि सत्संगः शेवधिर्नृणाम् ॥ ३० ॥

अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामः भवतः अनघाः संसारे अस्मिन् क्षण अर्धः अपि सत्संगः शेवधिः नृणाम् ॥ ३० ॥

अनघाः - निष्पाप
अत आत्यन्तिकं - अतः आत्यन्तिक
क्षेमं भवतः - कल्याण आप लोगोंसे
पृच्छामः - पूछता हूं
अस्मिन् संसारे - इस संसारमें
क्षण अर्धः अपि - आधे क्षणका भी
सत्संगः - सत्संग
नृणां - मनुष्यको
शेवधिः - परम निधि है ॥ ३० ॥

धर्मान् भागवतान् ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमम् ।
यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यत्यात्मानमप्यजः ॥ ३१ ॥

धर्मान् भागवतान् ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमं यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यति आत्मानं अपि अजः ॥ ३१ ॥

यदि नः	-	यदि हम लोगोंके	**यैः प्रसन्नः**	-	जिससे प्रसन्न होकर
श्रुतये क्षमं	-	सुनने योग्य हो तो	**प्रपन्नाय**	-	शरणागतको
भागवतान्-	-	भागवत धर्म	**अजः-**	-	अजन्मा पुरुष
धर्मान्			**आत्मानं अपि**		अपनेको भी
ब्रूत	-	बतलाइये	**दास्यति**	-	दे देते हैं ॥ ३१ ॥

नारद उवाच—

एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेव महत्तमाः ।
प्रतिपूज्याब्रुवन् प्रीत्या ससदस्यर्त्विजं नृपम् ॥ ३२ ॥

एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेव महत्तमाः प्रति पूज्य अब्रुवन् प्रीत्या ससदस्य ऋत्विजं नृपम् ॥ ३२ ॥.

वसुदेव	-	वसुदेवजी	**ऋत्विजं नृपं**	-	ऋत्विकों और राजाकी
ते महत्तमाः	-	वे महापुरुष	**प्रतिपूज्य**	-	प्रशंसा करके
एवं निमिना	-	इस प्रकार राजा	**प्रीत्या**	-	प्रेमसे
पृष्टा		निमिके पूछनेपर	**अब्रुवन्**	-	बोले ॥ ३२ ॥
स सदस्य	-	सदस्योंके साथ			

कविरुवाच—

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य
पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम् ।

उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद्
विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥ ३३ ॥

मन्ये अकुतश्चित् अभयं अच्युतस्य पादाम्बुज उपासनं अत्र नित्यं उद्विग्न बुद्धेः असत् आत्मभावात् विश्व आत्मना यत्र निवर्तते भीः ॥ ३३ ॥

असत् - (देहादि) असत् पदार्थोंको
आत्मभावात् - अपना स्वरूप माननेके कारण
उद्विग्न बुद्धेः - अशान्त चित्त रहनेवाले
विश्व आत्मना - संसारमें आसक्त चित्त लोगोंका
भीःयत्र निवर्तते - भय भी जहां दूर हो जाता है
अकुतश्चित्-भयं - उस सर्वथा निर्भय स्वरूप
अच्युतस्य - अच्युतके
पादाम्बुज - चरण कमलोंकी
उपासनं - उपासनाको
अत्र नित्यं - इस संसारमें नित्य
मन्ये - मानता हूँ ॥ ३३ ॥

ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये ।
अञ्जः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान् हि तान् ॥ ३४ ॥

ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया हि आत्मलब्धये अञ्जः पुंसां अविदुषां विद्धि भागवतान् हि तान् ॥ ३४ ॥

अविदुषां पुंसां - अज्ञानी जनोंके लिए
भगवताये - भगवानने जो निश्चित
उपाया - उपाय
अञ्जःहि - सरलतापूर्वक ही
आत्मलब्धये - अपनी प्रप्तिके लिए
हि प्रोक्ता - क्योंकि (स्वयं) बतलाये हैं
तान् भागवतान्- उन्हें भागवत धर्म
विद्धि - समझो ॥ ३४ ॥

यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित ।
धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥ ३५ ॥

यान् आस्थाय नरः राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित् धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेत् पतेत् न इह ॥ ३५ ॥

राजन् यान्	- राजन् जिनका	**नेत्रे निमील्य**	- आंख बन्द करके भी
आस्थाय नरः	- अवलम्बन करके मनुष्य	**धावन् वा**	- दौड़ता हुआ भी
कर्हिचित्	- कभी भी	**इह न पतेत्**	- इस मार्गसे नहीं गिरता,
प्रमाद्येत न	- असावधान नहीं होता	**न स्खलेत्**	- न फिसलता ही है ॥ ३५ ॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्याऽऽत्मना वानुसृतस्वभावात् ।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥ ३६ ॥

कायेन वाचा मनसा इन्द्रियैः वा बुद्ध्या आत्मना वा अनुसृत स्वभावात् करोति यत् यत् सकलं परस्मै नारायणाय इति समर्पयेत् तत् ॥ ३६ ॥

कायेन वाचा	- शरीरसे, वाणीसे,	**यत् यत्-**	- जो जो
मनसा इन्द्रियैः	- मनसे, इन्द्रियोंसे,	**करोति**	करता है
बुद्ध्या वा	- बुद्धिसे अथवा	**परस्मै-**	- वहपरमपुरुष नारायणके
आत्मना वा	- अहंकारसे या	**नारायणाय**	लिए है
अनुसृत-	- जन्मान्तरसे चले आते	**इति तत्**	- ऐसा समझकर उसे
स्वभावात्	स्वभाववश	**समर्पयेत्**	- समर्पण कर दे ॥३६॥

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या-
दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं
भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥ ३७ ॥

भयं द्वितीय अभिनिवेशतः स्यात् ईशात् अपेतस्य विपर्ययः अस्मृतिः तत् माययातः बुध आभजेत् तं भक्त्या एक ईशं गुरुदेवता आत्मा ॥ ३७ ॥

ईशात् अपेतस्य	-	ईश्वरसे विमुखकी
तत् माययातः	-	उनकी मायासे
अस्मृतिः	-	(अपने स्वरूपकी) विस्मृति हो जाती है
विपर्ययः	-	तब उलटा भाव (देहादि)
द्वितीय-	-	अपनेसे पृथकको
अभिनिवेशतः		"मैं" माननेसे
भयं	-	(जरा-मृत्यु) आदिका भय होता है
गुरुदेवता-	-	(अतः) गुरुदेवको ही
आत्मा		आराध्य तथा परमात्मा मानकर
बुध	-	बुद्धिमान पुरुष
तं आभजेत्	-	उनकी सब प्रकारसेसेवा करे ॥ ३८ ॥

अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयो-
ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा ।
तत् कर्मसंकल्पविकल्पकं मनो
बुधो निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात् ॥ ३८ ॥

अविद्यमानः अपि अवभाति हि द्वयोः ध्यातुः धिया स्वप्न मनोरथौ यथा तत् कर्म संकल्प विकल्पकं मनः बुधः निरुन्ध्यात् अभयं ततः स्यात् ॥ ३८ ॥

यथा स्वप्न	-	जैसा स्वप्न या
मनोरथौ	-	मनोराज्यमें (होता है)
ध्यातुः धिया	-	चिन्तन करने वालेकी बुद्धिके कारण
अविद्यमानः-	-	उपस्थित न रहनेपर
अपि		भी
हि द्वयोः-	-	क्योंकि द्वैत प्रतीत
अवभाति		होता है
तत् कर्म	-	अतः उसकर्मके
संकल्प-	-	संकल्प-विकल्प
विकल्पकं		करने वाले
मनः बुधः	-	मनका बुद्धिमान पुरुष
निरुन्ध्यात्	-	निरोध करे
ततः-	-	तब वह निर्भय हो
अभयं स्यात्		जाता है ॥ ३८ ॥

शृण्वन् सुभद्राणि रथांगपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदसंगः ॥ ३९ ॥

शृण्वन् सुभद्राणि रथांगपाणेः जन्मानि कर्माणि च यानि लोके गीतानि नामानि तत् अर्थकानि गायन् विलज्जः विचरेत् असंगः ॥ ३९ ॥

रथांगपाणेः	- श्रीचक्रपाणि भगवानके	**लोके गीतानि**	- लोक-वर्णित
यानि च	- जो भी	**नामानि**	- नामोंको
सुभद्राणि	- परम कल्याणमय	**विलज्जः-**	- लज्जा छोड़कर गाते
जन्मानि कर्मानि	- अवतार-चरित हैं	**गायन्**	हुए
शृण्वन्	- (उन्हें) सुनते हुए	**असङ्गः-**	- आसक्ति रहित होकर
तत् अर्थकानि	- उनके सूचक	**विचरेत्**	विचरण करे ॥ ३९ ॥

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥ ४० ॥

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्याजात अनुरागः द्रुत चित्त उच्चैः हसति अथो रोदिति रौति गायति उन्मादवत् नृत्यति लोकबाह्यः ॥ ४० ॥

एवं स्वप्रिय	- इस प्रकार अपने प्रियतमके	**लोकबाह्यः**	- लोक व्यवहारसे अतीत होकर
नामकीर्त्या	- नामकीर्तनका	**उन्मादवत्**	- पागलके समान
व्रतः	- नियम ले लेनेसे	**उच्चैः हसति**	- कभी अट्टहास करता है,
जात अनुरागः	- प्रीति उत्पन्न हो जाती है,	**रोदति रौति**	- रोता है या (भगवानको) पुकारता है
द्रुत चित्त	- चित्त द्रवितहो जाता है	**गायति-**	- गाता है
		नृत्यति	- या नाचता है ॥ ४० ॥

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥ ४१ ॥

खं वायुं अग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशः द्रुम आदीन् सरित् समुद्रान् च हरेः शरीरं यत् किञ्च भूतं प्रणमेत् अनन्यः ॥ ४१ ॥

खं वायुं	-	आकाश, वायु,	**यत् किञ्च-**	-	जो कुछ भी दिखाना है
अग्निं सलिलं	-	अग्नि, जल,	**भूतं**		
महीं ज्योतीषिं	-	पृथ्वी, तारे,	**हरेः शरीरं**	-	उसे श्री हरिका अंग
सत्त्वानि	-	प्राणी,			जानकर
दिशः द्रुम आदीन्	-	दिशायें, वृक्षादि,	**अनन्यः-**	-	अनन्य भावसे प्रणाम
च सरित्-	-	तथा नदियों और	**प्रणमेत्**		करे ॥ ४१ ॥
समुद्रान् च		समुद्रको			

भक्तिः परेशानुभवो विरक्ति-
रन्यत्र चैष त्रिक एककालः ।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्यु-
स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ ४२ ॥

भक्तिः परेश अनुभवः विरक्तिः अन्यत्र च एष त्रिक एककालः प्रपद्यमानस्य यथा अश्नतः स्युः तुष्टिः पुष्टिः क्षुत् अपायः अनुघासम् ॥ ४२ ॥

यथा अश्नतः	-	जैसे भोजन करते समय	**परेश भक्तिः**	-	उनपरमात्मामें भक्ति,
अनुघासं	-	प्रत्येक ग्रासके साथ	**अनुभवः च**	-	(उनके तत्वका) **अनुभव**
तुष्टिः पुष्टिः	-	(मनका) सन्तोष			और
		(शरीरका) पोषण और	**अन्यत्र विरक्तिः**	-	दूसरी ओरसे वैराग्य
क्षुत् अपायःस्युः	-	क्षुधा निवृत्ति होती है	**एष त्रिक्**	-	ये तीनों
प्रपद्यमानस्य	-	(ऐसे ही) **शरणागत होनेपर**	**एककालः**	-	एक ही समय (साथ-साथ) होते हैं ॥ ४२ ॥

इत्यच्युताङ्घ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या
भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ।
भवन्ति वै भागवतस्य राजं-
स्ततःपरां शान्तिमुपैति साक्षात् ॥ ४३ ॥

इति अच्युत अङ्घ्रिं भजतः अनुवृत्त्या भक्तिः विरक्तिः भगवत् प्रबोधः भवन्ति वै भागवतस्य राजन् ततःपरां शान्तिं उपैति साक्षात् ॥ ४३ ॥

राजन् - राजन् !
इति अनुवृत्त्या - इसप्रकार प्रत्येक वृत्तिसे
अच्युत अङ्घ्रिं - अच्युत्के चरणोंका
भजतः - भजन करनेसे
भक्तिः विरक्तिः - भक्ति, वैराग्य एवं
भगवत् प्रबोधः - भागवत् तत्वका ज्ञान
भागवतस्य - भगवद् भक्तको
वै भवन्ति - निश्चय हो जाता है,
ततः साक्षात् - तब साक्षात्
परां शान्तिं - परम शान्ति
उपैति - प्राप्त करता है
॥ ४३ ॥

विदेह उवाच–१

अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृशो नृणाम् ।
यथा चरति यद् ब्रूते यैर्लिङ्गैर्भगवत्प्रियः ॥ ४४ ॥

अथ भागवतं ब्रूत यत् धर्मः यादृशः नृणां यथा चरति यत् ब्रूत यैः लिङ्गैः भगवत् प्रियः ॥ ४४ ॥

अथ भागवतं - अब भगवद् भक्तका
ब्रूत - (लक्षण) बतलाइये
भगवत् प्रियः - वह भगवानका प्रेमी
यत् धर्मः - जो धर्म मानता है
नृणां यादृशः - मनुष्योंमें जैसा होता है,
यथा चरति - जैसा आचरण करता है,
यत् ब्रूते - जो कहता (उपदेश करता) है,
यैः लिङ्गैः - जिन चिन्हों वाला होता है ॥ ४४ ॥

---

१. अन्य प्रतियोंमें यहां "राजोवाच" है ।

हरिरुवाच–

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥ ४५ ॥

सर्वभूतेषु यः पश्येत् भगवत् भावं आत्मनः भूतानि भगवति आत्मनि एष भागवत उत्तमः ॥ ४५ ॥

यः सर्वभूतेषु	- जो प्राणियोंमें	**भूतानि-**	- सब प्राणियोंको देखता
आत्मनः	- तथा आत्मामें	**पश्येत्**	है
भगवत् भावं	- भगवानका भाव (उपस्थिति)	**एष उत्तमः**	- यह श्रेष्ठ
		भागवत	- भगवद्भक्त है ॥४५॥
भगवति-	- तथा भगवान और		
आत्मनि	आत्मामें		

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च ।
प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥ ४६ ॥

ईश्वरे तत् अधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च प्रेम मैत्री कृपा उपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥ ४६ ॥

ईश्वरे प्रेम	- ईश्वरमें प्रेम	**द्विषत्सु**	- (भगवानसे) शत्रुता रखने वालोंकी
तत् अधीनेषु-	- उनके आधीन भक्तोंसे	**उपेक्षा यः-**	- उपेक्षा जो करता है
मैत्री	मित्रता,	**करोति**	
बालिशेषु	- अज्ञानियोंपर	**समध्यमः**	- वह मध्यम (भगवद्भक्त है) ॥ ४६ ॥
कृपा च	- कृपा तथा		

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते ।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥ ४७ ॥

अर्चायां एव हरये पूजां यः श्रद्धया ईहते न तत् भक्तेषु च अन्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥ ४७ ॥

यः श्रद्धया	- जो श्रद्धा पूर्वक	**तत् भक्तेषु**	- उनके भक्तोंकी
अचार्यां एव	- मूर्तिमें ही	**च अन्येषु न**	- तथा दूसरोंकी नहीं
हरये पूजां	- श्रीहरिकी पूजा	**सभक्तः**	- वह भक्त
इहते	- करता है	**प्राकृतः-**	- साधारण कहा गया है
		स्मृतः	॥ ४७ ॥

गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति ।
विष्णोर्मायामिदं पश्यन् स वै भागवतोत्तमः ॥ ४८ ॥

गृहीत्वा अपि इन्द्रियैः अर्थान् यः न द्वेष्टि न हृष्यति विष्णोः मायां इदं पश्यन् स वै भागवतो उत्तमः ॥ ४८ ॥

इन्द्रियैः अर्थान्	- इन्द्रियोंसे उनके विषयोंको	**इदं विष्णोः**	- इस जगतको भगवान विष्णुकी
गृहीत्वा अपि	- ग्रहण करके भी	**मायां पश्यन्**	- माया देखता है
यः न द्वेष्टि	- जो उनसे द्वेष नहीं करता,	**वै स उत्तमः**	- निश्चय वह श्रेष्ठ
		भागवतः	- भगवत् भक्त है ।
न हृष्यति	- न हर्षित ही होता,		॥ ४८ ॥

देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो
जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः ।
संसारधर्मैरविमुह्यमानः
स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥ ४९ ॥

देह इन्द्रिय प्राण मनः धियां यः जन्म अप्यय क्षुत् भय तर्ष कृच्छ्रैः संसार धर्मैः अविमुह्यमानः स्मृत्या हरेः भागवत प्रधानः ॥ ४९ ॥

देह इन्द्रिय - शरीर, इन्द्रिय,
प्राण मनः - प्राण, मन,
धियां - बुद्धिके
संसार धर्मैः - सांसारिक धर्म
जन्म अप्यय - जन्म-मरण,
क्षुत् भय तर्ष - भूख, भय, प्यास तथा
कृच्छ्रैः - कष्टोंसे
अविमुह्यमानः - मोहित न होकर
हरेः स्मृत्या - श्रीहरिका स्मरण करता रहता है
प्रधानः- - वह भगवद्भक्तोंमें
भागवत प्रधान है ॥ ४९ ॥

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः ।
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥ ५० ॥

नकाम कर्म बीजानां यस्य चेतसि सम्भवः वासुदेव एकनिलयः स वै भागवत उत्तमः ॥ ५० ॥

यस्य चेतसि - जिसके चित्तमें
काम कर्म - कामना और कर्मके
बीजानां - बीजों (संस्कारों)की
सम्भवः न - उत्पत्ति ही नहीं होती,
एक वासुदेव - एकमात्र वासुदेवमें ही
निलयः - निवास करता है
वै स उत्तमः - निश्चय वह उत्तम
भागवत - भगवद्भक्त है ॥५०॥

न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ।
सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥ ५१ ॥

न यस्य जन्म कर्मभ्यां न वर्ण आश्रम जातिभिः सज्जते अस्मिन् अहं भावः देहे वै स हरेः प्रियः ॥ ५१ ॥

न जन्म कर्माभ्यां - न जन्म या कर्मसे,
न वर्ण आश्रम - न वर्ण-आश्रम या
जातिभिः - जातिसे
यस्य अहं भावः - जिसका अपनापन
अस्मिन् देहे - इस शरीरसे
सज्जते - सटता (जुड़ता) है
वै सः हरेः- - निश्चय वह श्रीहरिको
प्रियः प्रिय है ॥ ५१ ॥

न यस्य स्वःपर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥ ५२ ॥

न यस्य स्वःपर इति वित्तेषु आत्मनि वा भिदा सर्वभूत समः शान्तः स वै भागवत उत्तमः ॥ ५२ ॥

वित्तेषु वा आत्मनि	- धनमें या शरीरमें	**सर्वभूत**	- सब प्राणियोंके प्रति
स्वःपर इति	- 'यह अपना है, यहपराया' इस प्रकार	**समः शान्तः**	- समान और शान्त है
यस्य भिदा न	- जिसकी भेद बुद्धि नहीं है,	**वै स उत्तमः**	- निश्चय वह उत्तम
		भागवत	- भगवद्भक्त है ॥५२॥

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ
स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।
न चलति भगवत्पदारविन्दा-
ल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्रयः ॥ ५३ ॥

त्रिभुवन विभव हेतवे अपि अकुण्ठ स्मृतिः अजित आत्म सुरादिभिः विमृग्यात् न चलति भगवत् पदारविन्दात् लव निमिषार्धं अपि यः स वैष्णव अग्रयः ॥ ५३ ॥

सुरादिभिः	- देवतादि द्वारा भी	**भगवत-**	- भगवानके चरण
अजित आत्म	- भगवत्स्वरूप चित्त	**पदार विन्दात्**	कमलोंसे
विमृग्यात्	- जो ढूँढ़ा जाता है,	**लव निमिष-**	- आधे निमेषके भी
त्रिभुवन विभव	- त्रैलोक्यका वैभव	**अर्धं**	अंशके लिए
हेतवे अपि	- पानेके लिए भी	**यः चलति न**	- जिसकी हटती नहीं
अकुण्ठ स्मृति	- कुण्ठित न होनेवाली (अरोक) स्मृति	**स वैष्णव अग्रयः**	- वह वैष्णवोंमें अग्रणी है ॥ ५३ ॥

भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशाखा-
नखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे ।
हृदि कथमुपसीदतां पुनः स
प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः ॥ ५४ ॥

भगवत उरु विक्रम अङ्घ्रि शाखा नखमणि चन्द्रिकया निरस्ततापे हृदि कथं उपसीदतां पुनः स प्रभवति चन्द्र इव उदिते अर्क तापः ॥ ५४ ॥

उरुविक्रम - अनन्तपराक्रम
भगवत अङ्घ्रि - भगवानके चरणोंकी
शाखा नखमणि - शाखा (अंगुलियों)के नख-मणियोंकी
चन्द्रिकया - ज्योतिसे
निरस्ततापे - नष्ट हुए त्रिताप वाले
हृदि स कथं - हृदयमें वह (जाप) कैसे
उपसीदतां - दुःख दे सकता है
चन्द्र उदिते - चन्द्रोदय होनेपर
अर्कतापः - सूर्यके तापके
प्रभवति इव - प्रभावके समान ॥५४॥

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षा-
द्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ।
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः
स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥ ५५ ॥

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षात् हरिः अवश अभिहितः अपि अघ ओघ नाशः प्रणयरशनया धृत अङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवत प्रधान उक्तः ॥५५॥

अवश - विवश होकर
अभिहतः अपि - नामोच्चारण करनेपर भी
अघओघनाशः - समस्त पाप-प्रवाहको नष्ट करने वाले
साक्षात् हरिः - साक्षात् श्रीहरि
प्रणय रशनया - प्रेम-रज्जुसे
धृत अङ्घ्रिपद्मः - बँधे चरणारविन्द
यस्य हृदयं - जिसके हृदयको
न विसृजति - नहीं छोड़ पाते
उक्तः - बतलाये हुओंमें
स भागवत - वह भगवद्भक्तोंमें
प्रधान भवति - प्रमुख होता है ॥५५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

विदेह उवाच–१

परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम् ।
मायां वेदितुमिच्छामो भगवन्तो ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥

परस्य विष्णोः ईशस्य मायिनां अपि मोहिनीं मायां वेदितुं इच्छामः भगवन्तः ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥

ईशस्य परस्य - सर्व समर्थ परमपुरुष
विष्णोः - विष्णु भगवानकी
मायिनां अपि - माया वियोंको भी
मोहिनीं मायां - मोहित करने वाली मायाको
वेदितुं इच्छामः - जानना चाहता हूँ
भगवन्तः - भगवन् आप लोग
नः ब्रुवन्तु - मुझे बतलाइये ॥ १ ॥

नानुतृप्ये जुषन् युष्मद्वचो हरिकथामृतम् ।
संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥ २ ॥

न अनुतृप्ये जुषन् युष्मत् वचः हरिकथा अमृतं संसारताप निस्तप्तः मर्त्यः तत् ताप भेषजम् ॥ २ ॥

संसारताप - संसारके तापसे
निस्तप्तः - अत्यन्त संतप्त
मर्त्यः तत् ताप - मनुष्यके लिए उस तापकी
भेषजं - औषधि रूप
हरिकथा- - श्रीहरिकी कथा रूप
अमृतं अमृतसे युक्त
युष्मत् वचः - आप लोगोंकी वाणीको
जुषन् न- - सेवन करते हुए
अनुतृप्ये तृप्त नहीं होता हूँ ॥ २ ॥

---

१. अन्य प्रतियोंमें यहां "राजोवाच" है ।

अन्तरिक्ष उवाच–

एभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूतैर्महाभुज ।
ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये ॥ ३ ॥

एभिः भूतानि भूत आत्मा महाभूतैः महाभुज ससर्ज उच्च अवचान् आद्यः स्वमात्रा आत्म प्रसिद्धये ॥ ३ ॥

महाभुज - वृहद्बाहु राजन्
आद्यः - अदि पुरुषने
एभिः महाभूतैः - इन पंच महाभूतोंसे
आत्म प्रसिद्धये - अपनी (मोक्षकी) पूर्ण सिद्धिके लिए
स्वमात्रा - अपनी शक्तिसे
उच्च अवचानि - बड़े छोटे
भूतानि ससर्ज - प्राणियोंकी सृष्टिकी ॥ ३ ॥

एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पञ्चधातुभिः ।
एकधा दशधाऽऽत्मानं विभजञ्जुषते गुणान् ॥ ४ ॥

एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पञ्चधातुभिः एकधा दशधा आत्मानं विभजन् जुषते गुणान् ॥ ४ ॥

एवं - इस प्रकार
पञ्च धातुभिः - पञ्चमहाभूतोंसे
सृष्टानि भूतानि - उत्पन्न प्राणियोंमें
प्रविष्टः - (अन्तर्यामी रूपसे) प्रवेश करके
एकधा - एक (मन)के रूपसे तथा
दशधा - दस (इन्द्रियों)के रूपमें
आत्मानं- - अपनेको ही
विभजन् बांटते हुए
गुणान् जुषते - गुणों (विषयों)का उपभोग करते हैं ॥ ४ ॥

गुणैर्गुणान् स भुञ्जान आत्मप्रद्योतितैः प्रभुः ।
मन्यमान इदं सृष्टमात्मानमिह सज्जते ॥ ५ ॥

गुणैः गुणान् स भुञ्जान आत्म प्रद्योतितैः प्रभुः मन्यमान इदं सृष्टं आत्मानं इह सज्जते ॥ ५ ॥

प्रभुः	- समर्थ होकर भी
आत्म प्रद्योतितैः	- अपने ही द्वारा प्रकाशित
स गुणैः	- वह (देहाभिमानी जीव) इन्द्रियों द्वारा
गुणान् भुञ्जान	- विषयोंका उपभोग करता हुआ१
इदं सृष्टं	- इस बनाये हुए (देहादि)को
आत्मानं-मन्यमान	- अपना स्वरूप मानकर
इह सज्जते	- इसमें आसक्त होजाता है ॥ ५ ॥

कर्माणि कर्मभिः कुर्वन् सनिमित्तानि देहभृत् ।
तत्तत्कर्मफलं गृह्णन् भ्रमतीह सुखेतरम् ॥ ६ ॥

कर्माणि कर्मभिः कुर्वन् सनिमित्तानि देहभृत् तत् तत् कर्मफलं गृह्णन् भ्रमति इह सुख इतरम् ॥ ६ ॥

देहभृत्	- देहधारी जीव
सनिमित्तानि	- प्रयोजनपूर्वक
कर्मभिः	- कर्मेन्द्रियोंसे
कर्माणि कुर्वन्	- कर्म करते हुए
तत् तत्-कर्मफलं	- उन-उन कर्मोंका फल
गृह्णन्	- पाता हुआ
इह सुख इतरं	- इस संसारमें सुख तथा दूसरे दुःखमें
भ्रमति	- घूमता रहता है ॥ ६ ॥

इत्थं कर्मगतीर्गच्छन् बह्वभद्रवहाः पुमान् ।
आभूतसम्प्लवात् सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः ॥ ७ ॥

इत्थं कर्मगतिः गच्छन् बहु अभद्रवहाः पुमान् आभूत सम्प्लवात् सर्ग प्रलयाः अश्नुते अवशः ॥ ७ ॥

---

१. जो इन्द्रिय जिस गुणसे बनी है उसी विषय रूप गुणको ग्रहण करती है । जैसे गन्ध तन्मात्रासे बनी नासिका गन्ध ही ग्रहण करती है ।

इत्थं बहु - इस प्रकार बहुत
अभद्रवहाः - अकाल्याणदायी
कर्मगतिः गच्छन् - कर्मके वेगमें पड़कर
पुमान् - पुरुष (जीव)
आभूत-सम्प्लवात् - महाभूतोंके प्रलयतक
सर्ग प्रलयाः - जन्म-मृत्यु
अवशः- - विवश होकर
अश्नुते भोगता है ॥ ७ ॥

धातूपप्लव आसन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकम् ।
अनादिनिधनःकालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥ ८ ॥

धातु उपप्लव आसन्ने व्यक्तं द्रव्य गुण आत्मकं अनादि निधनःकालः हि अव्यक्ताय अपकर्षति ॥ ८ ॥

धातु - पञ्चमहाभूतोंकी
उपप्लव आसन्ने - प्रलय समीप आनेपर
द्रव्य गुण-आत्मकं - द्रव्य एवं गुण स्वरूप
व्यक्तं - व्यक्त जगतको
अनादि निधनः - अनादि अनन्त
कालः - काल
अव्यक्ताय - प्रकृतिकी ओर
अपकर्षति - उलटा खींचता है ॥ ८ ॥

शतवर्षा ह्यनावृष्टिर्भविष्यत्युल्बणा भुवि ।
तत्कालोपचितोष्णार्को लोकांस्त्रीन् प्रतपिष्यति ॥ ९ ॥

शतवर्षा हि अनावृष्टिः भविष्यति उल्बणा भुवि तत्काल उपचित उष्ण अर्कः लोकान् त्रीन् प्रतपिष्यति ॥ ९ ॥

हि भुवि - क्योंकि तब पृथ्वीपर
शतवर्षा - सौ वर्ष तक
अति उल्बणा - बहुत भयानक
अनावृष्टिः - अवर्षण
भविष्यति - होगा,
तत्काल - उस (प्रलय)कालसे
उपचित - शक्तिप्राप्त
उष्ण अर्कः - प्रज्वलित सूर्य
त्रीन् लोकान् - तीनों लोकोंको
प्रतपिष्यति - अत्यन्त संतप्त करेंगे ॥ ९ ॥

पातालतलमारभ्य संकर्षणमुखानलः ।
दहन्नूर्ध्वशिखोविष्वग् वर्धते वायुनेरितः ॥ १० ॥

पाताल तलं आरभ्य संकर्षण मुख अनलः दहन् ऊर्ध्वशिखः विष्वग् वर्धते वायुना ईरितः ॥ १० ॥

संकर्षण	- भगवान शेषके	**पाताल तलं**	- पातालके निचले भागको
मुख अनलः	- मुखसे निकली अग्नि	**दहन्**	- जलाते हुए
उर्ध्वशिखः	- ऊपर उठती लपटोंसे	**विष्वग्-**	- चारों ओर बढ़ता
वायुना ईरितः	- वायुसे प्रेरित	**वर्धते**	है ॥ १० ॥

सांवर्तको मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः ।
धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयते सलिले विराट् ॥ ११ ॥

सांवर्तकः मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः धाराभिः हस्ति हस्ताभिः लीयते सलिले विराट् ॥ ११ ॥

सांवर्तकः-	- फिर सांवर्तक	**वर्षति स्म**	- बरसते ही रहते हैं
मेघगणाः	नामक मेघगण	**विराट्**	- तब यह विराट् विश्व
हस्ति हस्ताभिः	- हाथीकी सूंड़के समान	**सलिले लीयते**	- जलमें लीन हो
धाराभिः	- धाराओंसे		जाता है ॥ ११ ॥
शतं समाः	- सौ वर्षतक		

ततो विराजमुत्सृज्य वैराजः पुरुषो नृप ।
अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिन्धन इवानलः ॥ १२ ॥

ततः विराजं उत्सृज्य वैराजः पुरुषः नृप अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिन्धन इव अनलः ॥ १२ ॥

नृप - राजन् !
ततः निरिन्धन - तब ईंधन न रहनेपर
अनलः इव - अग्निके समान
वैराजः पुरुषः - विराट्के अभिमानी पुरुष ब्रह्मा
विराजं उत्सृज्य - विराट् रूप देहको छोड़कर
सूक्ष्मं अव्यक्तं - सूक्ष्म प्रकृतिमें
विशते - प्रवेश करते हैं ॥ १२ ॥

वायुना हृतगन्धा भूः सलिलत्वाय कल्पते ।
सलिलं तद्धृतरसं ज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥ १३ ॥

वायुना हृत गन्धा भूः सलिलत्वाय कल्पते सलिलं तत् धृतरसं ज्योतिष्टवाय उप कल्पते ॥ १३ ॥

वायुना - वायुके द्वारा
हृत गन्धा भूः - गन्धहरणकर लेनेसे पृथ्वी
सलिलत्वाय - जलरूपा
कल्पते - हो जाती है
तत् धृत रसं -उसी (वायु)से रस धारण कर लेनेसे
सलिलं - जल
ज्योतिष्ट्वाय - अग्निरूप
उपकल्पते - हो जाता है ॥ १३ ॥

हृतरूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते ।
हृतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसि लीयते ॥ १४ ॥

हृत रूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते हृत स्पर्शः अवकाशेन वायुः नभसि लीयते ॥ १४ ॥

तमसा तु - अन्धकार द्वारा तो
हृत रूपं - रूप तन्मात्राका हरण हो जानेसे
ज्योतिः वायौ - अग्नि वायुमें
प्रलीयते - विलीन हो जाता है ।
अवकाशेन - आकाश द्वारा
हृत स्पर्शः - स्पर्श तन्मात्राका हरण हो जानेपर
वायुः नभसि-लीयते - वायु आकाशमें लीन हो जाता है ॥ १४ ॥

कालात्मना हतगुणं नभ आत्मनि लीयते ।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सह वैकारिकैर्नृप ।
प्रविशन्ति ह्यहंकारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥ १५ ॥

काल आत्मना हत गुणं नभ आत्मनि लीयते इन्द्रियाणि मनः बुद्धिः सह वैकारिकैः नृप प्रविशन्ति हि अहंकारं स्वगुणैः अहं आत्मनि ॥ १५ ॥

काल आत्मना	-	स्वयंकाल द्वारा	**मनः बुद्धिः**	-	मन, बुद्धि,
हतगुणं	-	अपना गुण (शब्द) हरण हो जानेसे	**वैकारिकैः-**	-	वैकारिक अहंकारके
			सह		साथ
नभ आत्मनि	-	आकाश अहंकारमें	**आत्मनि स्वगुणैः**	-	अपने गुणोंके साथ
लीयते		लीन हो जाता है ।	**हि अहंकारं**	-	क्योंकि सात्त्विक अहंकारमें
नृप	-	राजन्	**प्रविशन्ति**	-	प्रवेश कर जाते हैं
इन्द्रियाणी	-	इन्द्रियां,			॥ १५ ॥

एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यन्तकारिणी ।
त्रिवर्णा वर्णितास्माभिः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १६ ॥

एषा माया भगवतः सर्ग स्थिति अन्तकारिणी त्रिवर्णा वर्णिता अस्मभिः किं भूयः श्रोतुं इच्छसि ॥ १६ ॥

एषा सर्ग-	-	सृष्टि, स्थिति,	**अस्माभिः**	-	हमारे द्वारा
स्थिति			**वर्णिता**	-	वर्णन किया गया
अन्तकारिणी	-	प्रलय करनेवाली	**भूयः किं**	-	फिर क्या
त्रिवर्णा	-	त्रिगुणात्मिका	**श्रोतुं इच्छसि**	-	सुनना चाहते हो
भगवतः माया	-	भगवानकी मायाका			॥ १६ ॥

विदेह उवाच–

यथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः ।
तरन्त्यञ्जः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम् ॥ १७ ॥

यथा एतां ऐश्वरीं मायां दुस्तरां अकृत आत्मभिः तरन्ति अञ्जः स्थूलधियः महर्ष इदं उच्यताम् ॥ १७ ॥

अकृत आत्मभिः	- अपने मनको वशमें न करने वालोंके लिए	**स्थूलधियः**	- स्थूल बुद्धि लोग
दुस्तरां	- जिसे पार करना बहुत कठिन है	**यथा अञ्जः-**	- जैसे सरलतासे पार
एतां ऐश्वरीं मायां	- इस ईश्वरी मायाको	**तरन्ति**	करते हैं
		महर्ष	- महर्षिगण
		इदं उच्यतां	- यह उपाय बतलाइये ॥ १७ ॥

प्रबुद्ध उवाच–

कर्माण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च ।
पश्येत् पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम् ॥ १८ ॥

कर्माणि आरभमाणानां दुःख हत्यै सुखाय च पश्येत् पाक विपर्यासं मिथुनी चारिणां नृणाम् ॥ १८ ॥

मिथुनी चारिणां	- जोड़ा बनाकर रहनेवाले	**कर्माणि**	- कर्मोंका
नृणां	- मनुष्योंके	**आरभमाणानां**	- प्रारम्भ करने· वालोंके
दुःख हत्यै	- दुःख नाश	**पाक विपर्यासं**	- (कर्मोंका) उलटा फल
च सुखाय	- तथा सुख प्राप्तिके लिए	**पश्येत्**	- देखे ॥ १८ ॥

नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना ।
गृहापत्याप्तपशुभिःका प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥ १९ ॥

नित्य · आर्तिदेन वित्तेन दुर्लभेन आत्ममृत्युना गृह अपत्य आप्त पशुभिःका प्रीतिः साद्यितैः चलैः ॥ १९ ॥

नित्य आर्तिदेन	- सदा रौंदने (दुःख देने) वाले	**आप्त-**	- गुरुजन तथा पशुओं
दुर्लभेन	- मिलनेमें कठिन	**पशुभिः**	द्वारा
आत्म मृत्युना	- अपनी मृत्युका ही रूप	**चलैः**	- जो चंचल (नाशवान हैं)
वित्तेन	- धनसे,	**साधितैः**	- (इनको) प्राप्त करके
गृह अपत्य	- घर, पुत्र,	**का प्रीतिः**	- क्या प्रसन्नता होगी
			॥ १९ ॥

एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम् ।
सतुल्यातिशयध्वंसं यथा मण्डलवर्तिनाम् ॥ २० ॥

एवं लोकं परं विद्यात् नश्वरं कर्म निर्मितम् सतुल्य अतिशय ध्वंसं यथा मण्डल वर्तिनाम् ॥ २० ॥

एवं कर्म निर्मितं-	इसी प्रकार (यहांके) कर्मोंसे बने	**वर्तिनां**	- शासकोंका होता है ।
		अतिशयं	- ऐश्वर्य
परं लोकं	- परलोक (स्वर्गादि)को	**सतुल्य**	- तुलनामें कम-ज्यादा तथा
नश्वरं	- नाशवान	**ध्वंसं**	- नाशवान
यथा मण्डल-	- जैसे एक-एक मण्डलोंके	**विद्यात्**	- जाने ॥ २० ॥

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥ २१ ॥

तस्मात् गुरं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमं शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मणि उपशम आश्रयम् ॥ २१ ॥

तस्मात्	- इसलिए	**च परे**	- तथापरमब्रह्ममें
उत्तमं श्रेय	- परम कल्याणके	**निष्णातं**	- कुशल
जिज्ञासुं	- जिज्ञासुको	**उपशम आश्रयं**	- शान्ति परायण
शाब्दे ब्रह्मणि	- (शब्द ब्रह्म) वेद शास्त्रमें	**गुरुं प्रपद्येत**	- गुरुकी शरण लेना चाहिए ॥ २१ ॥

तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः ।
अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्माऽऽत्मदो हरिः ॥ २२ ॥

तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेत् गुरुः आत्मदैवतः अमायया अनुवृत्त्या यैः तुष्येत् आत्मा आत्मदः हरिः ॥ २२ ॥

तत्र अमायया	- वहां निश्छल भावसे	**शिक्षेत्**	- शिक्षा ग्रहण करे
अनुवृत्त्या	- सेवासे	**यैः आत्मा-**	- जिससे अपने आपको दे
आत्मदैवतः	- अपने इष्टदेव	**आत्मदः**	देने वाले
गुरुः	- गुरुसे	**हरिः तुष्येत्**	- श्रीहरि सन्तुष्ट होते हैं ॥ २२ ॥
भागवतान् धर्मान्	- भागवत धर्मकी		

सर्वतो मनसोऽसंगमादौ संगं च साधुषु ।
दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥ २३ ॥

सर्वतः मनसः असंगं आदौ संगं च साधुषु दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेषु अद्धा यथा उचितम् ॥ २३ ॥

मनसः	- मनकी	**यथा उचितं**	- जैसा उचित हो (उसके अनुसार)
सर्वतः असंगं	- सब ओरसे अनासक्ति	**दयां मैत्रीं**	- दया, मित्रता,
च आदौ साधुषु	- तथा पहिले सत्पुरुषोंसे	**च प्रश्रयं**	- तथा नम्रताका व्यवहार करे ॥ २३ ॥
संग	- आसक्ति,		
अद्धा भूतेषु	- साक्षात् (मिलने वाले) प्राणियोंसे		

शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः ॥ २४ ॥

शौचं तपः तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायं आर्जवं ब्रह्मचर्यं अहिंसां च समत्वं द्वन्द्व संज्ञयोः ॥ २४ ॥

शौचं तपः	- पवित्रता, तप,	**अहिंसा च**	- अहिंसा तथा
तितिक्षां च मौनं	- तितीक्षा तथा मौन,	**द्वन्द्व संज्ञयोः**	- जो (सुख-दुःख, मान-अपमान आदि) द्वन्द्व कहलाते हैं
स्वाध्ययं	- स्वाध्याय,		
आर्जवं	- सरलता,		
ब्रह्मचर्यं	- ब्रह्मचर्य,	**समत्वं**	- उनमें समता ॥ २४ ॥

सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम् ।
विविक्तचीरवसनं सन्तोषं येन केनचित् ॥ २५ ॥

सर्वत्र आत्म ईश्वर अनु ईक्षां कैवल्यं अनिकेततां विविक्त चीरवसनं सन्तोषं येन केनचित् ॥ २५ ॥

सर्वत्र	- सब कहीं	**विविक्त**	- ...कान्त-सेवन,
आत्म	- (चेतन रूपसे) आत्माको (तथा)	**चीरवसनं**	- चीर वस्त्र पहिनना,
		येनकेनचित्	- जो कुछ मिल जाय उसीसे
ईश्वर	- (नियन्ता रूपसे) ईश्वरको		
अनु ईक्षां	- बराबर देखना,	**सन्तोषं**	- सन्तोष कर लेना ॥ २५ ॥
कैवल्यं	- अकेले रहना,		
अनिकेततां	- अपना घर बनाये बिना रहना,		

श्रद्धां भागवतेशास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि ।
मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि ॥ २६ ॥

श्रद्धां भागवते शास्त्रे अनिन्दाम् अन्यत्र च अपि हि मनः वाक् कर्मदण्डं च सत्यं शम दमाः अपि ॥ २६ ॥

हि अन्यत्र च	- क्योंकि दूसरोंकी	**कर्मदण्डं**	- शरीरका संयम,
अपि अनिन्दां	- भी निन्दा नहीं करनी है	**च सत्यं**	- तथा सत्य और
भागवते शास्त्रे	- भागवत शास्त्रमें	**शम दमौः अपि**	- शम (मनकी शान्ति) दम (इन्द्रिय संयम्) भी (पालन करे) ॥ २६ ॥
श्रद्धां	- श्रद्धा		
मनः वाक्	- मन, वाणी,		

श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः ।
जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ॥ २७ ॥

श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेः अद्भुत कर्मणः जन्म कर्म गुणानां च तत् अर्थे अखिल चेष्टितम् ॥ २७ ॥

अद्भुत कर्मणः - अद्भुत कर्मा
हरेः जन्म - श्रीहरिके अवतार,
कर्म च गुणानां - लीला तथा गुणोंका
श्रवणं कीर्तन - श्रवण, वर्णन
ध्यानं - चिन्तन
तत् अर्थे - उनके लिए ही
अखिल चेष्टितं - समस्त क्रिया करना
॥ २७ ॥

इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् ।
दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम् ॥ २८॥

इष्टं दत्तं तपः जप्तं वृत्तं यत् च आत्मनः प्रियं दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम् ॥ २८ ॥

इष्टं दत्तं - यज्ञ, दान,
तपः जप्तं - तप, जप,
यत् च - और जो भी
आत्मनः प्रियं - अपनेको प्रिय हैं वे
दारान् सुतान् - स्त्री, पुत्र,
गृहान् प्राणान् - घर, प्राणोंका
यत् परस्मै - जोपरम पुरुषको
निवेदनं - सौंप देना है ॥ २८ ॥

एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् ।
परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥ २९ ॥

एवं कृष्ण आत्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदं परिचर्यां च उभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥ २९ ॥

एवं कृष्ण - इसी प्रकार श्रीकृष्णको
आत्म नाथेषु - अपना स्वामी माननेवाले
मनुष्येषु च - मनुष्योंसे ही
सौहृदं - मित्रता रखना,
उभयत्र - (स्थावर-जंगम) दोनों प्रकारके प्राणियोंकी
च महत्सु - तथा महान्
साधुषु नृषु - साधु पुरुषोंकी
परिचर्यां - सेवा ॥ २९ ॥

परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः ।
मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः ॥ ३० ॥

परस्पर अनुकथनं पावनं भगवत् यशः मिथः रतिः मिथः तुष्टिः निवृत्तिः मिथ आत्मनः ॥ ३० ॥

पावनं	- पवित्र करने वाले	**मिथो रतिः**	- (इससे)परस्पर प्रीति,
भगवत् यशः	- भगवानके सुयशका	**मिथः तुष्टिः**	- परस्पर सन्तोष तथा
परस्पर-	- आपसमें बार बार	**मिथः आत्मनः**	- परस्पर आध्यात्मिक
अनुकथनं	वर्णन करना	**निवृत्तिः**	शान्ति प्राप्त करना ॥ ३० ॥

स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम् ।
भक्त्या सञ्जातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥ ३१ ॥

स्मरन्तः स्मारयन्तः च मिथः अघ ओघहरं हरिं भक्तया सञ्जातया भक्तया बिभ्रति उत्पुलकां तनुम् ॥ ३१ ॥

अघ ओघ	- पापोंकी बाढ़को	**भक्त्या**	- इस (साधनात्मिका) भक्तिसे
हरं हरिं	- नष्ट करने वाले श्रीहरिको	**सञ्जातया**	- उत्पन्न हुई
मिथः	- परस्पर	**भक्त्या**	- (प्रेमात्मिका) भक्ति द्वारा
स्मरन्तः च-	- स्मरण करते तथा	**उत्पुलकां तनुं**	- रोमाञ्चित शरीर
स्मारयन्तः	स्मरण कराते हुए	**विभ्रत**	- धारण करते हैं ॥ ३१ ॥

क्वचिद् रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचि-
द्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं
भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥ ३२ ॥

क्वचित् रुदन्ति अच्युत चिन्त्या क्वचित् हसन्ति नन्दन्ति वदन्ति अलौकिकाः नृत्यन्ति गायन्ति अनुशीलयन्ति अजं भवन्ति तूष्णीं परम एत्य निर्वृताः ॥ ३२ ॥

क्वचित्-	- कभी अच्युतको (पाने)	**नृत्यन्ति गायन्ति**	-नाचते हैं, गाते हैं,
अच्युत चिन्तया	की चिन्तासे	**अजं-**	- उन अजन्माको ढूंढ़ते
रुदन्ति	- रोते हैं,	**अनुशीलयन्ति**	हैं,
क्वचित् हसन्ति	- कभी हँसने लगते हैं,	**परं एत्य**	- उन परमपुरुषके पास पहुंचका अनुभव करके
नन्दन्ति	- आनन्दित होते हैं,	**निर्वृताः**	- शान्त होकर
अलौकिकाः-	- अलौकिक बातें कहते	**तूष्णीं भवन्ति**	- चुप हो जाते हैं ॥३२॥
वदन्ति	हैं		

इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया ।
नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम् ॥ ३३ ॥

इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्तया तत् उत्थया नारायणपरः मायां अञ्जः तरति दुस्तराम् ॥ ३३ ॥

इति भागवतान्	- इस प्रकार भागवत	**नारायणपरः**	- नारायण परायण
धर्मान्	धर्मोंको	**दुस्तरां मायां**	- दुष्पार मायाको
शिक्षन्	- सीखते हुए	**अञ्जः तरति**	- सरलतासे पार हो
तत् उत्थया	- उससे उत्पन्न		जाता है ॥ ३३ ॥
भक्तया	- भक्ति द्वारा		

विदेह उवाच—

नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणःपरमात्मनः ।
निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवित्तमाः ॥ ३४ ॥

नारायण अभिधानस्य ब्रह्मणःपरमात्मनः निष्ठां अर्हथ नः वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवित्तमाः ॥ ३४ ॥

हि यूयं	- क्योंकि आप लोग	**ब्रह्मणः-**	- परमब्रह्मपरमात्माका
ब्रह्मवित्तमाः	- ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं (आपको)	**परमात्मनः**	
		निष्ठां नः	- स्वरूप हमको
नारायण-	- नारायण नाम वाले	**वक्तुं अर्हथ**	- बतलाना चाहिए
अभिधानस्य			॥ ३४ ॥

पिप्पलायन उवाच–

स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य
यत् स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद् बहिश्च ।
देहेन्द्रियासुहृदयानि चरन्ति येन
सञ्जीवितानि तदवेहि परं नरेन्द्र ॥ ३५ ॥

स्थिति उद्भव प्रलय हेतुः अहेतुः अस्य यत् स्वप्न जागर सुषुप्तिषु सत् बहिः च देह इन्द्रिय असु हृदयाननि चरन्ति येन सञ्जीवितानि तत् अवेहि परं नरेन्द्र ॥ ३५ ॥

नरेन्द्र	- महाराज !	**देह इन्द्रिय**	- शरीर, इन्द्रियां,
अहेतुः	- जो (स्वयं) निष्कारण होकर	**असुहृदयानि**	- प्राण, अन्तःकरण
		येन-	- जिसके द्वारा जीवित
अस्य प्रलय-	- इस जगतकी प्रलय	**सञ्जीवितानि**	किये जाकर
स्थिति	स्थिति एवं	**चरन्ति**	- (अपना) काम करते हैं,
उद्भव हेतुः	- उत्पत्तिका कारण हैं,	**तत् परं-**	- उसे परमात्मा जानो
यत् स्वप्न-	- जो स्वप्न, जागरण	**अवेहि**	॥ ३५ ॥
जागर	तथा		
सुषुप्तिषु सत्	- सुषुप्तिमें रहता हुआ भी		
बहिः च	- (उनसे) बाहर भी है,		

नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा
प्राणेन्द्रियाणि च यथानलमर्चिषः स्वाः ।
शब्दोऽपि बोधकनिषेधतयाऽऽत्ममूल-
मर्थोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धिः ॥ ३६ ॥

न एतत् मनः विशति वाक् उत चक्षुः आत्मा प्राण इन्द्रियाणि च यथा अनल अर्चिषः स्वाः शब्दः अपि बोधक निषेधतया आत्ममूलं अर्थ उक्तं आह यत् ऋते न निषेध सिद्धिः ॥ ३६ ॥

एतत् मनः	- यह मन,	**आत्ममूलं**	- जो मूल रूपसे आत्मा
वाक् चक्षुः	- वाणी,नेत्र,	**अर्थ उक्तं-**	- (निषेधके) अर्थ रूपमें
आत्मा प्राण	- बुद्धि, प्राण,	**उवाह**	कहा जाता है
उत इन्द्रियाणि	- तथा इन्द्रियां,	**बोधक**	- उसका ज्ञान कराने वाला
यथा अनल	- जैसे अग्निमें		है (क्योंकि)
स्वाः अर्चिषः	- (उसकी) अपनी किरणें	**यत् ऋते**	- जिसके बिना (निषेध-
न विशति	- नहीं प्रवेश करतीं		करने वालेके बिना)
शब्दः अपि	- (श्रुतियोंके) शब्द भी	**निषेध सिद्धिः न**	-निषेधकी ही सिद्धि
निषेधतया	- निषेधरूपसे		नहीं होती ॥ ३६ ॥

सत्त्वं रजस्तम इति त्रिवृदेकमादौ
सूत्रं महानहमिति प्रवदन्ति जीवम् ।
ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरुशक्ति
ब्रह्मैव भाति सदसच्च तयोः परं यत् ॥ ३७ ॥

सत्त्वं रजः तम इति त्रिवृत एकं आदौ सूत्रं महान् अहं इति प्रवदन्ति जीवं ज्ञान क्रिया फल रूपतया उरुशक्ति ब्रह्म एव भाति सत् असत् च तयोः परं यत् ॥ ३७ ॥

आदौ एकं	-	आदिमें वह एक ही था,
सत्त्वं रजः तम	-	(फिर सृष्टिके लिए) सत्त्व, रज,
इति त्रिवृत	-	इस प्रकार त्रिगणमय (प्रकृति)
ज्ञानं महान्	-	ज्ञान प्रधान होनेसे महत्तत्त्व,
क्रिया सूत्रं	-	क्रिया प्रधान होनेसे सूत्रात्मा,
जीवं अहं	-	जीवकी उपाधिसे अहं
इति प्रवदन्ति	-	इस प्रकार (उसीको) कहते हैं
फलरूप तया	-	(इस सृष्टि) फलरूपमें
सत् असत्	-	कारण-कार्यरूपमें
च तयोः	-	तथा उससे जो
यत् परं		परे हैं,
उस शक्ति	-	अनन्त शक्ति
ब्रह्म एव	-	ब्रह्म ही प्रतीत हो रहा
भाति		है ॥ ३७ ॥

नात्मा जजान मरिष्यति नैधतेऽसौ
न क्षीयते सवनविद् व्यभिचारणां हि ।
सर्वत्र शाश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं
प्राणो यथेन्द्रियबलेन विकल्पितं सत् ॥ ३८ ॥

न आत्मा जजान न मरिष्यति न एधते असौ न क्षीयते सवनवित् व्यभिचारिणां हि सर्वत्र शाश्वत् अनपायि उपलब्धिमात्रं प्राणः यथा इन्द्रिय बलेन विकल्पितं सत् ॥ ३८ ॥

आत्मा न	-	आत्मा न उत्पन्न,
जजान		हुआ,
न मरिष्यति	-	न मरेगा,
असौ न एधेत	-	यह न बढ़ता है
न क्षीयते	-	न घटता है,
हि व्यभिचारिणां	-	क्योंकि परिवर्तन शील सबकी
सवन वित्	-	प्रत्येक दशाका साक्षी है,
सर्वत्र शाश्वत्	-	सब कहीं सदा
अनपायि	-	निर्विघ्न (एकरस)
उपलब्धिमात्रं	-	अनुभूति स्वरूप है,
यथा इन्द्रिय	-	जैसे इन्द्रियोंकी
बलेन		शक्तिसे
एकः सत् प्राणः	-	एक ही प्राण सत्ता
विकल्पितं	-	अनेक रूप लगती है ॥ ३८ ॥

अण्डेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु
प्राणो हि जीवमुपधावति तत्र तत्र ।
सन्ने यदिन्द्रियगणेऽहमि च प्रसुप्ते
कूटस्थ आशयमृते तदनुस्मृतिर्नः ॥ ३९ ॥

अण्डेषु पेशिषु तरुषु अविनिश्चितेषु प्राणः हि जीवं उपधावति तत्र-तत्र सन्ने यत् इन्द्रियगणे अहमिच प्रसुप्ते कूटस्थ आशयं ऋते तत् अनुस्मृतिः नः ॥ ३९ ॥

अण्डेषु	- अण्डजोंमें,	**इन्द्रियगणे-**	- इन्द्रियोंके (सुषुप्ति)में
पेशिषु	- मांसपेशियों वालोंमें,	**सन्ने**	निश्चेष्ट हो जानेपर,
तरुषु	- वृक्षादिमें	**अहमिच-**	- अहंकारके भी सो
अविनिश्चितेषु	- जिनकी उत्पत्तिका निश्चय नहीं१	**प्रसुप्ते**	जानेपर
		आशयंऋते	- अन्तःकरणको छोड़कर
हि प्राणः	- क्योंकि प्राण ही उनमें	**तत् कूटस्थ**	- वह कूटस्थ (आत्मा) रह
तत्र-तत्र	उन योनियोंमें		जाता है
जीवं उपधावति	- जीवके पीछे लगा रहता है,	**नः-**	- जिससे हमें पीछे (सुषुप्ति)
		अनुस्मृतिः	की स्मृति रहती है ॥ ३९ ॥

यर्ह्यब्जनाभचरणैषणयोरुभक्त्या
चेतोमलानि विधमेद् गुणकर्मजानि ।
तस्मिन् विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्त्वं
साक्षाद् यथामलदृशोः सवितृप्रकाशः ॥ ४० ॥

---

१. जैसे जूं खटमल आदि पहिले स्वेदसे उत्पन्न होते हैं और फिर अण्डा देते हैं । तितली कीड़ेके शरीरसे उत्पन्न होती है ।

यर्हि अब्जनाभ चरण एषणया उरु भक्त्या चेतः मलानि विधमेत् गुण कर्मजानि तस्मिन् विशुद्ध उपलभ्यत् आत्म तत्त्वं साक्षात् अथ अमल दृशः सवितृ प्रकाशः ॥ ४० ॥

यर्हि अब्जनाभ	- जब पद्मनाभ भगवानके	**तस्मिन्**	- (उसके) पूर्ण शुद्ध होनेपर
चरण उरु	- चरणों (की प्राप्ति)	**विशुद्ध**	उसमें
एषणया	की तीव्र इच्छासे	**साक्षात्**	- साक्षात् आत्मतत्त्वकी
भक्तया	- (उत्पन्न) भक्तिसे	**आत्मतत्त्वं**	
गुण कर्मजानि	- गुणों एवं कर्मोंके	**उपलभ्यत**	- प्राप्ति होती है
मलानि	- मैलको	**यथा अमलदृशः**	-जैसे निर्मलनेत्रोंसे
चेतः विधमेत्	- चित्त सम्पूर्ण दूर कर देता है तो	**सवित् प्रकाशः**	- सूर्यका प्रकाश ॥ ४० ॥

विदेह उवाच—१

कर्मयोगं वदत नः पुरुषो येन संस्कृतः ।
विधूयेहाशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विन्दते परम् ॥ ४१ ॥

कर्मयोगं वदत नः पुरुषः येन संस्कृतः विधूय इह आशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विन्दते परम् ॥ ४१ ॥

नः कर्म योगं	- मुझे कर्म योग	**कर्माणि आशु**	- कर्मोंको शीघ्र
वदत	बतलाइये	**विधूय**	- निवृत्त करके
येन संस्कृतः	- जिनसे शुद्ध हुआ	**परं नैष्कर्म्यं**	- परम निष्कर्मता (ज्ञान)
पुरुषः इह	- पुरुष इसी जीवनमें	**विन्दते**	- प्राप्त कर लेता है ॥ ४१ ॥

एवं प्रश्नमृषीन् पूर्वमपृच्छं पितुरन्तिके ।
नाब्रुवन् ब्रह्मणः पुत्रास्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ ४२ ॥

---

१. अन्य भ्रांतियोंमें यहाँ राजोवाच है ।

एवं प्रश्नं ऋषीन् पूर्वं अपृच्छं पितुः अन्तिके न आब्रुवन् ब्रह्मणः पुत्राः तत्र कारणं उच्यताम् ॥ ४२ ॥

एवं प्रश्नं	- इसी प्रकारका प्रश्न	**ब्रह्मणः पुत्राः**	- उन ब्रह्माजीके पुत्रों (सनकादि)ने
पितुः अन्तिके	- पिता (मनु)के समीप	**अब्रुवन् न**	- बतलाया नहीं
पूर्वं ऋषीन्	- पहिले ऋषियोंसे	**तत्रकारणं**	- इसका कारण
अपृच्छं	- मैंने पूछा था (किन्तु)	**उच्यतां**	- बतलाइये ॥ ४२ ॥

आविर्होत्र उवाच–

कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः ।
वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यन्ति सूरयः ॥ ४३ ॥

करर्म अकर्म विकर्म इति वेदवादः न लौकिकः वेदस्य ईश्वर आत्मत्वात् तत्र मुह्यन्ति सूरयः ॥ ४३ ॥

कर्म	- कर्तव्य कर्म,	**लौकिकः न**	- लौकिक नहीं है
अकर्म	- अकरणीय (निषिद्ध) कर्म,	**वेदस्य**	- वेदके
		ईश्वर-	- ईश्वर स्वरूप होनेके
विकर्म	- विशेष (अधिकारी)के कर्म	**आत्मत्वात्**	कारण
		तत्र सूरयः	- उस (वेद)में विद्वान भी
इति वेदवादः	- यह वेदका विषय है,	**मुह्यन्ति**	- मोहित (सन्देह ग्रस्त) हो जाते हैं ॥ ४३ ॥

परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् ।
कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥ ४४ ॥

परोक्षवादः वेदः अयं बालानां अनुशासनं कर्म मोक्षाय कर्माणि विधत्ते हि अगदं यथा ॥ ४४ ॥

हि अयं वेदः - क्योंकि यह वेद
परोक्षवादः - परोक्ष (कुछ छिपाकर) बोलने वाला है
बालानां - बच्चोंको
यथा अगदं - जैसे (मीठी कहकर) दवा (दी जाती है)
अनुशासनं - आज्ञा देता है,
कर्म मोक्षाय - कर्मोंसे छुटकारेके लिए
कर्माणि- - कर्मोंका विधान करता
विधत्ते है ॥ ४४ ॥

नाचरेद् यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः ।
विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥ ४५ ॥

न आचरेत् यः तु वेद उक्तं स्वयं अज्ञः अजितेन्द्रियः विकर्मणा हि अधर्मेण मृत्योः मृत्युं उपैति सः ॥ ४५ ॥

हियः स्वयं - क्योंकि जो स्वयं
अज्ञः अज्ञानी
अजितेन्द्रियः तु - इन्द्रियोंको नहीं जीतनेपर भी
वेद उक्तं - वेदकी आज्ञाका
आचरेत् न - पालन नहीं करता
सः विकर्मेण - वह (अधिकारी) विशेषके कर्म
अधर्मेण - या अधर्मके द्वारा
मृत्योः मृत्युं - मरकर यमराजके पास
उपैति - पहुँचता है ॥ ४५ ॥

वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसंगोऽर्पितमीश्वरे ।
नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥ ४६ ॥

वेद उक्तं एव कुर्वाणः निःसंगाः अर्पितं ईश्वरे नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचन अर्था फलश्रुतिः ॥ ४६ ॥

निःसंगः - आसक्ति रहित होकर,
ईश्वरे अर्पितं - ईश्वरार्पण करके
वेद उक्तं एव - वेदाज्ञाके अनुसार ही
कुर्वाणः - (कर्म) करते हुए
नैष्कर्म्यां - कर्मोंने निवृत्त होनेसे प्राप्त होने वाला
सिद्धिं लभते - सफलता (ज्ञान) प्राप्त करता है
फल श्रुतिः - उस (कर्म)की महिमा तो
रोचन अर्था - (उसमें) रुचि उत्पन्न करने को है ॥ ४६ ॥

य आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः ।
विधिनोपचरेद् देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम् ॥ ४७ ॥

यः आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुःपर आत्मनः विधिना उपचरेत् देवं तन्त्र उक्तेन चकेशवम् ॥ ४७ ॥

यः आशु	- जो शीघ्र	**तन्त्र उक्तेन**	- तन्त्रों (पाञ्चरात्र)में बतलाया
पर आत्मनः	- (अपने)परमात्म स्वरूपकी	**विधिना च**	- विधिसे ही
हृदयग्रन्थिं	- हृदकी गांठ (देहात्मबुद्धि)	**केशवं देवं**	- आराध्य देवकेशवकी
निर्जिहीर्षुः	- खोल देना चाहता हो (वह)	**उपचरेत्**	- पूजा करे ॥ ४७ ॥

लब्धानुग्रह आचार्यात् तेन सन्दर्शितागमः ।
महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयाऽऽत्मनः ॥ ४८ ॥

लब्ध अनुग्रह आचार्यात् तेन सन्दर्शित आगमः महापुरुषं अभ्यर्चेत् मूर्त्या अभिमतया आत्मनः ॥ ४७ ॥

आचार्यात्	- आचार्यसे	**अभिमतया**	- अभीष्ट
अनुग्रह लब्ध	- कृपा (दीक्षा) प्राप्त करके	**मूर्त्या**	- मूर्तिमें
तेन सन्दर्शित	- उनके द्वारा बतलायी	**महापुरुषं**	- भगवान पुरुषोत्तमकी
आगमः	- विधिसे	**अभ्यर्चेत्**	- भली प्रकार पूजा करे ॥ ४८ ॥
आत्मनः	- अपनी		

शुचिः सम्मुखमासीनः प्राण संयमनादिभिः ।
पिण्डं विशोध्य संन्यास कृतरक्षोऽर्चयेद्धरिम् ॥ ४९ ॥

शुचिः सम्मुख आसीनः प्राण संयम आदिभिः पिण्डं विशोध्य संन्यासकृत रक्षः अर्चयेत् हरिम् ॥ ४९ ॥

शुचिः सम्मुख	- पवित्र होकर सामने	**पिण्डं विशोध्य**	- शरीर-शुद्धि करके
आसीनः	बैठकर	**संन्यासः**	- अंग-कर न्यासादिसे
प्राण संयम	- प्राणायाम (आचमन)	**कृतरक्षः**	- रक्षा-सम्पन्न करके
आदिभिः	- आदिके द्वारा	**हरिं अर्चयेत्**	- श्रीहरिकी पूजा करे ॥ ४९ ॥

अर्चादौ हृदये चापि यथालब्धोपचारकैः ।
द्रव्यक्षित्यात्मलिंगानि निष्पाद्य प्रोक्ष्य चासनम् ॥ ५० ॥

अर्चा आदौ हृदये च अपि यथा लब्ध उपचारकैः द्रव्य क्षिति आत्मलिङ्गानि निष्पाद्य प्रोक्ष्य च आसनम् ॥ ५० ॥

अर्चा आदौ	- मूर्ति आदिमें	**द्रव्य क्षिति**	- (पहिले) पूजा पदार्थों तथा पृथ्वीको
च हृदये अपि	- तथा हृदयमें भी	**आत्म लिङ्गानि**	- अपने पूजा उपकरणोंको,
यथा लब्ध	- जो प्राप्त हो	**सम्पाद्य**	- स्वच्छ करके
उपचारकैः	- (उस) सामग्रीसे (पूजा करे)	**प्रोक्ष्य च-आसनं**	- धोकर तथा आसन देकर ॥ ५० ॥

पाद्यादीनुपकल्प्याथ सन्निधाप्य समाहितः ।
हृदादिभिः कृतन्यासो मूलमन्त्रेण चार्चयेत् ॥ ५१ ॥

पाद्य आदीन् उपकल्प्य अथ सन्निध आप्य समाहितः हृद आदिभिः कृतन्यासः मूलमन्त्रेण च अर्चयेत् ॥ ५१ ॥

पाद्य आदीन्	- (अर्घ्य) पाद्य आदि	**हृद आदिभिः**	- हृदय आदिमें
उपकल्प्य	- प्रस्तुत करके,	**कृतन्यासः**	- न्यास करके
सन्निध आप्य	- उन्हें समीप रखकर	**मूलमन्त्रेण च**	- (दीक्षामें प्राप्त) मूल मन्त्रसे ही
अथ समाहितः	- फिर एकाग्र होकर	**अर्चयेत्**	- पूजा करे ॥ ५१ ॥

सांगोपांगां सपार्षदां तां तां मूर्तिं स्वमन्त्रतः ।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥ ५२ ॥

साङ्ग उपांगां सपार्षदां तां तां मूर्तिं स्वमन्त्रतः पाद्य अर्घ्य आचमनीय आद्यैः स्नानवासः विभूषणैः ॥ ५२ ॥

तां तां मूर्तिं	- उन उन मूर्तियोंकी	**पाद्य अर्घ्य**	- पाद्य, अर्घ्य,
सांग	- (करपादादि) अंगों सहित	**आचमनीय**	- आचमन,
उपांगां	- (आयुधादि) उपांगोंकी,	**स्नानवासः**	- स्नान, वस्त्र,
सपार्षदां	- पार्षदोंके साथ	**विभूषणैः आद्यैः**	- आभूषण आदिसे
स्वमन्त्रतः	- उनके अपने मन्त्रोंसे		(पूजा करे) ॥ ५२ ॥

गन्धमाल्याक्षतस्रग्भिर्धूपदीपोपहारकैः ।
सांगं सम्पूज्य विधिवत् स्तवैः स्तुत्वा नमेद्धरिम् ॥ ५३ ॥

गन्ध माल्य अक्षत स्रग्भिः धूप दीप उपहारकैः सांगं सम्पूज्य विधिवत् स्तवैः स्तुत्वा नमेत् हरिम् ॥ ५३ ॥

गन्ध माल्य	- चन्दन, पुष्प,	**सांग विधिवत्**	- सम्पूर्ण अंगों सहित विधिपूर्वक
अक्षत स्रग्भिः	- अक्षत, माला,	**सम्पूज्य**	- भली प्रकार पूजा करके
धूप दीप	- धूप, दीप,	**स्तवैः स्तुत्वा**	- स्तोत्रोंसे स्तुति करके
उपहारकैः	- उपहार (नैवेद्य) द्वारा	**हरिं नमेत्**	- श्री हरिको प्रणाम करे ॥ ५३ ॥

आत्मानं तन्मयं ध्यायन् मूर्तिं सम्पूजयेद्धरेः ।
शेषामाधाय शिरसि स्वधाम्न्युद्वास्य सत्कृतम् ॥ ५४ ॥

आत्मानं तन्मयं ध्यायन् मूर्तिं सम्पूजययेत् हरेः शेषां आधाय शिरसि स्वाधाम्नि उद्वास्य सत्कृतम् ॥ ५४ ॥

आत्मानं - अपनेको
तन्मयं - भगवन्मय
ध्यायन् - ध्यान करते हुए
हरेः मूर्तिं - श्री हरिकी मूर्तिकी
सम्पूजयेत् - पूजा करनी चाहिए,
शेषां शिरसि - बचे (निर्माल्य) को मस्तकपर
आधाय - चढ़ाकर
सत्कृतं - सत्कारपूर्वक
स्वधाम्नि - अपने स्थानपर (मूर्तिको)
उद्वास्य - उठाकर स्थापित करे

॥ ५४ ॥

एवमग्न्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः ।
यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते हि सः ॥ ५५ ॥

एवं अग्नि अर्क तोय आदाः अतिथौ हृदये च यः यजति ईश्वरं आत्मानं अचिरात् मुच्यते हि सः ॥ ५५ ॥

हि यः एवं - क्योंकि जो इस प्रकार
अग्नि अर्क - अग्नि, सूर्य,
तोयादाः - जलादिमें,
अतिथौ च - अतिथि तथा
हृदये - हृदयमें
आत्मानं ईश्वरं - अपने स्वामी भगवानकी
यजति सः - पूजा करता है वह
अचिरात्- - शीघ्र मुक्त हो जाता है
मुच्यते ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

विदेहउवाच—

यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छन्दजन्मभिः ।
चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥

यानि यानि इह कर्माणि यैः यैः स्वच्छन्द जन्मभिः चक्रे करोति कर्ता वा हरिः तानि ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥

हरिः इह - श्री हरिने इस लोकमें
यैः यैः - जिन जिन
स्वच्छन्द - स्वेच्छा अवतारोंमें
जन्मभिः
यानि यानि - जो जो चरित
कर्माणि

चक्रे करोति - किये हैं, कर रहे हैं,
वा कर्ता - या आगे करेंगे,
तानि नः - उन्हें मुझे बतलाइये
ब्रुवन्तु ॥ १ ॥

द्रुमिल उवाच—

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ता-
ननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः ।
रजांसि भूमेर्गणयेत् कथञ्चित्
कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥ २ ॥

यः वा अनन्तास्य गुणान् अनन्तान् अनुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः रजांसि भूमेः गणयेत् कथञ्चित् कालेन न एव अखिल शक्तिधाम्नः ॥ २ ॥

यः वा	- जो कोई भी	**कथञ्चित्**	- किसी प्रकार
अनन्तस्य	- भगवान अनन्तके	**कालेन**	- दीर्घकालमें
अनन्तान् गुणान्	- अनन्त गुणोंको	**भूमेः रजांसि**	- पृथ्वीके धूलिकणोंको
अनुक्रमिष्यन्	- गिनना चाहता है,	**गणयेत्**	- (कोई) गिन भी ले, किन्तु
स तु बाल बुद्धिः	- वह तो बालक बुद्धि है,	**अखिल शक्ति धाम्नः**	- समस्त शक्तियोंके आश्रय भगवानके
		न एव	- (गुणोंकी गणना) नहीं हो सकती ॥ २ ॥

भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः
पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् ।
स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधान-
मवाप नारायण आदिदेवः ॥ ३ ॥

भूतैः यदा पञ्चभिः आत्म सृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् स्व अंशेन विष्टः पुरुष अभिधानं अवाप नारायण आदिदेवः ॥ ३ ॥

यदा आत्मसृष्टैः	- जब अपने ही बनाये	**आदिदेवः**	- आदिदेव
पञ्चभिः भूतैः	- पञ्च महाभूतोंसे	**नारायण**	- नारायण
विराजं पुरं	- विराट् (ब्रह्माण्ड) रूप पुर	**स्व अंशेन**	- अपने अंशसे प्रविष्ट हुए
विरचय्य तस्मिन्	- निर्मित करके उसमें	**विष्टः**	
		पुरुष अभिधानं	- (तब) पुरुष नामको
		अवाप	- प्राप्त हुए (उन्हें पुरुष कहा गया)

यत्काय एष भुवनत्रयसन्निवेशो
यस्येन्द्रियैस्तनुभृतामुभयेन्द्रियाणि ।
ज्ञानं स्वतः श्वसनतो बलमोज ईहा
सत्त्वादिभिः स्थितिलयोद्भव आदिकर्ता ॥ ४ ॥

यत् काय एष भुवन त्रय सन्निवेशः यस्य इन्द्रियैः तनुभृतां उभय इन्द्रियाणि ज्ञानं स्वतः श्वसनतः बलं ओज ईहा सत्त्व आदिभिः स्थिति लय उद्भव आदिकर्ता ॥ ४ ॥

यत्काय	-	जिनके शरीरमें	**श्वसनतः**	-	उनकी श्वांससे
एष भुवन त्रय	-	यह त्रिभुवन	**बलं ओज-**	-	शरीरबल, इन्द्रिय बल,
सन्निवेशः	-	स्थित हैं,	**ईहा**		तथा क्रिया शक्ति जगते
यस्य इन्द्रियाणि	-	जिनकी इन्द्रियोंसे			हैं
तनुभृतां	-	शरीर धारियोंकी	**सत्त्व-**	-	सत्त्वादि (गुणों) द्वारा वे
उभय इन्द्रियाणि	-	दोनों प्रकारकी	**आदिभिः**		ही
		(कर्मइन्द्रिय तथा ज्ञान)	**स्थिति लय**	-	स्थिति, प्रलय
		इन्द्रियां बनी हैं	**उद्भव-**	-	सृष्टिके आदिकर्ता हैं
ज्ञानं स्वतः	-	स्वयं उनके स्वरूपसे	**आदिकर्ता**		॥ ४ ॥
		ज्ञान होता है ।			

आदावभूच्छतधृती रजसास्य सर्गे
विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिर्द्विजधर्मसेतुः ।
रुद्रोऽप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य
इत्युद्भवस्थितिलयाः सततं प्रजासु ॥ ५ ॥

आदाः अभूत् शतधृती रजसा अस्य सर्गे विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिः द्विज धर्मसेतुः रुद्रः अप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य इति उभ्दव स्थिति लयाः सततं प्रजासु ॥ ५ ॥

अस्य सर्गे - इस संसारकी सृष्टिके लिए
आदाः रजसा - आरम्भमें रजोगुणके आश्रयसे
शतधृती अभूत् - ब्रह्मा हुए,
स्थितौ - स्थितिके लिए
द्विजधर्मसेतुः - ब्राह्मणों एवं धर्म मर्यादाकी रक्षाके लिए,
क्रतुपतिः विष्णुः - यज्ञपति विष्णु एवं
अप्ययाय - प्रलयके लिए
तमसा रुद्रः - तमोगुणके आश्रयसे रुद्र हुए
इति प्रजासु - इस प्रकार प्रजाकी
सततं उद्भव- बराबर सृष्टि,
स्थिति लयाः - स्थिति और प्रलय होती है ॥ ५ ॥

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां
नारायणो नर ऋषिप्रवरः प्रशान्तः ।
नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म
योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्यनिषेविताङ्घ्रिः ॥ ६ ॥

धर्मस्य दक्ष दुहितरि अजनिष्ट मूर्त्यां नारायणः नर ऋषि प्रवरः प्रशान्तः नैष्कर्म्य लक्षणं उवाच चचार कर्म यः अद्य अपि च आस्त ऋषिवर्य निषेवित अङ्घ्रि ॥ ६ ॥

धर्मस्य - धर्मकी (पत्नी)
दक्ष दुहितरि - दक्षपुत्री मूर्तिसे
मूर्त्यां
ऋषि प्रवरः - ऋषि श्रेष्ठ
प्रशान्तः - अत्यन्त शान्त
नारायणः - नारायण और
नरः अजनिष्ट - नर रूपमें उत्पन्न हुए
नैष्कर्म्य लक्षण - नैष्कर्म्य (मोक्ष) स्वरूप वाले
कर्म उवाच - कर्मका उपदेश किया तथा
यः अद्य अपि च - और जो अब तक भी
ऋषिवर्य - श्रेष्ठ ऋषियों द्वारा
निषेवित- - सेवित चरण
अङ्घ्रिः
चचार आस्त - (उसका) आचरण कर रहे हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रो विशंक्य मम धाम जिघृक्षतीति
कामं न्ययुङ्क्त सगणं स बदर्युपाख्यम् ।
गत्वाप्सरोगणवसन्तसुमन्दवातैः
स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ॥ ७ ॥

इन्द्रः विशङ्क्य मम धाम जिघृक्षति इति कामं न्ययुङ्क्त सगणं स बदरि उप आख्यं गत्वा अप्सरः गण वसन्त सुमन्द वातैः स्त्री प्रेक्षण इषुभिः अविध्यत् तत् महि अज्ञः ॥ ७ ॥

मम धाम	- मेरा पद	**अप्सरःगण**	- अप्सराओंके समूह,
जिघृक्षति	- छीनना चाहते हैं	**बसन्त**	- बसन्त ऋतु-मन्द पवनके
इति विशङ्क्य	- ऐसी आशंका करके	**सुमन्द वातैः**	साथ
इन्द्रः सगणं	- इन्द्रने गणोंके साथ	**गत्वा**	- जाकर
कामं न्ययुङ्क्त	- कामको (तपो भ्रष्ट करनेके लिए) नियुक्त किया,	**तत् महि अज्ञः**	- उनकी महिमासे अनजान
		स्त्री प्रेक्षण-	- स्त्रियोंके कटाक्ष
सबदरि उप-	- वह बदरीनाथ कहे	**इषुभिः**	वाणोंसे
आख्यं	जाने वाले धामके पास	**अविध्यत्**	- (उन्हें) मारने लगा ॥ ७ ॥

विज्ञाय शक्रकृतमक्रमादिदेवः
प्राह प्रहस्य गतविस्मय एजमानान् ।
मा भैष्ट भो मदन मारुत देववध्वो
गृह्णीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ॥ ८ ॥

विज्ञाय शक्रकृत मक्रं आदिदेवः प्राह प्रहस्य गत विस्मय एजमानान् मा भैष्ट भो मदन मारुत देववध्वः गृह्णीत नः बलिं अशून्यं इमं कुरुध्वम् ॥८॥

आदिदेवः - उन आदिदेवने
शक्रकृत - इन्द्रका किया हुआ
मक्रं विज्ञाय - पाखण्ड जानकर
गत विस्मय - बिना चकित हुए
एजमानान् - कांपते हुओंसे
प्राह - कहा

भो मदन मारुत - काम, पवन,
देववध्वः - देवांगनाओं
मा भैष्ट - डरो मत
नः बलिंगृह्णीत - हमारा उपहार ग्रहण करो,
इमं अशून्यं - इस आश्रमको सूना मत
कुरुध्वं - करो (जाओ मत)
॥ ८ ॥

इत्थं ब्रुवत्यभयदे नरदेव देवाः
सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः ।
नैतद् विभो त्वयि परेऽविकृते विचित्रं
स्वारामधीरनिकरानतपादपद्मे ॥ ९ ॥

इत्थं ब्रुवति अभयदे नरदेव देवाः सव्रीड नम्र शिरसः सघृणं तं ऊचुः न एतत् विभो त्वयि परे अविकृते विचित्रं स्व आराम धीः निकर आनत पादपद्मे ॥ ९ ॥

नरदेव - राजन्
इत्थं अभयदे - इस प्रकार अभय देने वाले
सघृणं - दयालु (भगवान)से
सव्रीड - लज्जासे
नम्र शिरसः - सिर झुकाये
देवाः तं ऊचुः - देवाता उनसे बोले
स्वारामधी - आत्माराम चित्त

निकर - लोगोंके द्वारा
नतपादपद्मे - नमस्कृत चरण कमल
विभो त्वयि - प्रभो ! आप
अविकृते - निर्विकार
परे एतत् - परम पुरुषके लिए यह
विचित्रं न - आश्चर्यकी बात नहीं है
॥ ९ ॥

त्वां सेवतां सुरकृता वहवोऽन्तरायाः
स्वौको विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते ।
नान्यस्य बर्हिषि बलीन् ददतः स्वभागान्
धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि ॥ १० ॥

त्वां सेवतां सुरकृता बहवः अन्तरायाः स्व ओकः विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते न अन्यस्य बर्हिषि बलीन् ददतः स्वभागान् धत्ते पदं त्वं अविता यदि विघ्न मूर्ध्नि ॥ १० ॥

स्व ओकः	- अपने निवासका	**बर्हिषि स्वभागान्**	- यज्ञोंमें अपने भागका
विलङ्घ्य	- उल्लंघन करके	**बलीन् ददतः**	- उपहार देने वाले
ते परमं पदं	- आपकेपरमपदको	**अन्यस्य न**	- दूसरोंको (विघ्न) नहीं करते,
ब्रजता	- जाने वाले		
त्वां सेवतां	- आपकीसेवा करने वालोंके लिये	**यदि त्वं-**	- पर यदि आप रक्षक हैं
		अविता	तो
बहवः-	- बहुतसे विघ्न	**विघ्न मूर्ध्नि**	- (आपके भक्त) विघ्नोंके सिरपर
अन्तरायाः			
सुरकृता	- देवता करते हैं; किन्तु	**पदं धत्ते**	- पैर रखते हैं (ठोकर मारते हैं) ॥ १० ॥

क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्व्यशैश्न्या-
नस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित् ।
क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गो-
र्मज्जन्ति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजन्ति ॥ ११ ॥

क्षुत् तृट् त्रिकाल गुण मारुत जैह्व्य शैश्न्यान् अस्मान् अपारजलधीन् अतितीर्यकेचित् क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गोः मज्जन्ति दुश्चर तपः च वृथा उत्सृजन्ति ॥ ११ ॥

केचित् - कोई लोग
क्षुत् तृट् - भूख-प्यास
त्रिकालगुण - तीनोंकालोंके गुण (सर्दी, गर्मी, वर्षा)
मारुत - प्राण वायु
जैह्व्य शैश्न्यान् - जीभ और उपस्थके विषय
जलधीन - समुद्रोंको
अस्मान् अपार - हम अपार
अतितीर्य - पार करके (इन्हें जीतकर)
विफलस्य - निष्फल
क्रोधस्यवशं - क्रोधके वश
यान्ति - हो जाते हैं (जैसे)
गोः पदे - गायके खुरसे बने गड्ढेमें
मज्जन्ति - डूब गये हों,
दुश्चर- - अत्यन्त कठिन तपस्या
तपः च को भी
वृथा उत्सृजन्ति - व्यर्थ त्यागते हैं ॥ ११ ॥

इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियोऽत्यद्भतदर्शनाः ।
दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीर्विभुः ॥ १२ ॥

इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियः अति अद्भुत दर्शनाः दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीः विभ्रः ॥ १२ ॥

इति तेषां - इस प्रकार उनके
प्रगृणतां - स्तुति करते हुए ही
विभुः - समर्थ भगवानने
अति अद्भुत - अत्यन्त अद्भुत
दर्शनाः लावण्यमयी
स्वर्चिताः - सुसज्जिता
शुश्रूषां कुर्वतीः - (भगवानकी)सेवा करती हुई
स्त्रियः- - स्त्रियां दिखलायीं
दर्शयामास ॥ १२ ॥

ते देवानुचरादृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिव रूपिणीः ।
गन्धेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः ॥ १३ ॥

ते देवा अनुचरा दृष्टवा स्त्रियः श्रीः इव रूपिणीः गन्धेन मुमुहुः तासां रूप औदार्य हतश्रियः ॥ १३ ॥

ते देव अनुचराः - वे देवताओंके अनुचर
रूपिणीः श्रीः इव - स्वरूप धारिणी लक्ष्मीके समान
स्त्रियः दृष्ट्वा - उन स्त्रियोंको देखकर
तासां रूप-औदार्य - उनके सौन्दर्यकी अधिकतासे
हतश्रियः - श्री हीन होकर
गन्धेन मुमुहुः - उनकी अंग-गन्धसे मूर्छित हो गये ॥ १३ ॥

तानाह देवदेवेशः प्रणतान् प्रहसन्निव ।
आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्गभूषणाम् ॥ १४ ॥

तान् आह देव देवेशः प्रणतान् प्रहसन् इव आसां एकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्ग भूषणाम् ॥ १४ ॥

तान् प्रणतान् - उन प्रणाम करते हुओं से
प्रहसन् इव - हँसते हुएसे
देव देवेशः आह - उन देवदेवेश्वरने कहा
आसां एकतमां - इनमेंसे किसी एक
सवर्णां - अपने वर्ण वाली (अप्सरा) का
स्वर्ग भूषणां - स्वर्गको सुशोभित करनेके लिए
वृङ्ध्वं - वरण (स्वीकार) कर लो ॥ १४ ॥

ओमित्यादेशमादाय नत्वा तं सुरवन्दिनः ।
उर्वशीमप्सरः श्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥ १५ ॥

ओम् इति आदेशं आदाय नत्वा तं सुरवन्दिनः उर्वशीं अप्सरः श्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥ १५ ॥

सुरवन्दिनः - वे देवताओंके बन्दीजन
ओम् इति - (अच्छा इस प्रकार
आदेशं आदाय - अनुमति लेकर
तं नत्वा - उनको प्रणाम करके
अप्सरः श्रेष्ठां - अप्सराओंमें श्रेष्ठ
उर्वशीं-पुरस्कृत्य - उर्वशीको आगे करके
दिवं ययुः - स्वर्ग गये ॥ १५ ॥

इन्द्रायानम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ।
ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्त्रास विस्मितः ॥ १६ ॥

इन्द्राय आनम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसां ऊचुः नारायण बलं शक्रः तत्त्रास विस्मितः ॥ १६ ॥

त्रिदिवौकसां - देवताओंके
शृण्वतां सदसि - सुनते हुए सभामें
इन्द्राय आनम्य - इन्द्रको प्रणाम करके
नारायण बलं - नारायणकी शक्तिका
ऊचुः - वर्णन किया
शक्रः तत्त्रास - इन्द्र उनके भयसे
विस्मितः - चकित रह गये
॥ १६ ॥

हंसस्वरूप्यवददच्युत आत्मयोगं
दत्तः कुमार ऋषभो भगवान् पिता नः ।
विष्णुः शिवाय जगतां कलयावतीर्ण
स्तेनाहृता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये ॥ १७ ॥

हंस स्वरूप अवदत् अच्युत आत्मयोगं दत्तः कुमार ऋषभः भगवान् पिता नः विष्णुः शिवाय जगतां कलया अवतीर्णः तेन आहृता मधुभिदा श्रुतयः हयास्ये ॥ १७ ॥

जगतां शिवाय - जगत्के कल्याणके लिए
कलया - अपनी कलासे अवतार
अवतीर्णः लेकर
अच्युत विष्णुः - अच्युत भगवान विष्णुने
हंस स्वरूप - हंसके रूपमें
दत्तः कुमार - दत्त आत्रेय, सनत् कुमारादि,
नः पिता- - हमारे पिता ऋषभ
ऋषभः देवने
आत्मयोगं - अध्यात्म योगका
अवदत् - उपदेश किया,
तेन मधुभिदा - उन्हीं मधुसूदनने
हयास्ये - हयग्रीव अवतार लेकर
श्रुतयः- - (दैत्य द्वारा हरणकी
आहृताः गयी) श्रुतियां लौटायीं
॥ १७ ॥

गुप्तोऽप्यये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये
क्रौडे हतो दितिज उद्धरताम्भसः क्ष्माम् ।
कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे
ग्राहात् प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम् ॥ १८ ॥

गुप्तः अप्यये मनुः इला औषधयः च मात्स्ये क्रौडे हतः दितिज उद्धरता अम्भसः क्ष्मां कौर्मे धृतः अद्रिः अमृत उन्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात् प्रपन्नं इभराजं अमुञ्चत् आर्तम् ॥ १८ ॥

मात्स्ये	-	मत्स्यावतारमें	**कौर्मे**	-	कच्छपावतारमें
अप्यये	-	प्रलयके समय	**अमृतमथने**	-	अमृत मन्थनके लिए
मनुः इला	-	मनु, पृथ्वी,	**स्वपृष्ठे**	-	अपनी पीठपर
च औषधयः	-	तथा औषधियोंकी	**अद्रिः धृतः**	-	मन्दराचलको धारण किया
गुप्ता	-	रक्षाकी,	**आर्तं प्रपन्नं**	-	व्याकुल शरणागत
क्रौडे अम्भसः	-	वाराहवतारमें प्रलय जलसे	**इभराजं**	-	गजराजको
क्ष्मां उद्धरतः	-	पृथ्वीका उद्धार करते समय	**ग्राहात्-**	-	ग्राहसे छुड़ाया
दितिजहतः	-	दितिपुत्र हिरण्यात्रको मारा,	**अमुञ्चत्**		॥ १८ ॥

संस्तुन्वतोऽब्धिपतिताञ्छ्रमणानृषींश्च
शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम् ।
देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा
जघ्नेऽसुरेन्द्रमभयाय सतां नृसिंहे ॥ १९ ॥

संस्तुन्वताः अब्धि पतितान् श्रमणान् ऋषीन् च शक्रं च वृत्रवधतः तमसि प्रविष्टम् देवस्त्रियः असुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्ने असुरेन्द्रं अभयाय सतां नृसिंहे ॥ १९ ॥

अब्धि पतितान्	- मानो समुद्रमें गिर गये हों	**असुरगृहे**	- असुरके घरमें
श्रमणान् ऋषीन्	- सन्यासी वालखिल्य ऋषियोंको१	**पिहिता अनाथा**	- वन्दिनी अनाथा
वृत्रवधतः	- वृत्रासुरको मारनेसे	**देवस्त्रियः**	- देवांगनाओंको (भगवानने बचाया)
तमसि प्रविष्टम्	- (ब्रह्म हत्याके भयसे) अन्धकारमें (सरोवर जलमें) छिपे	**सतां अभयाय**	- सत्पुरुषोंको निर्भय करनेके लिए
शक्रं च	- इन्द्रको भी,	**नृसिंहे**	- नृसिंहावतारमें
		असुरेन्द्रं जघ्ने	- दैत्यराज हिरण्य-कशिपुको मारा ॥ १९॥

देवासुरे युधि च दैत्यपतीन् सुरार्थे
हत्वान्तरेषु भुवनान्यदधात् कलाभिः ।
भूत्वाथ वामन इमामहरद् बलेः क्ष्मां
याच्ञाच्छलेन समदाददितेः सुतेभ्यः ॥ २० ॥

देव असुरे युधि च दैत्यपतीन् सुर अर्थे हत्वा अन्तरेषु भुवनानि अदधात् कलाभिः भूत्वा अथ वामन इमां अहरत् बलेः क्ष्मां याच्ञा छलेन सम अदात् अदितेः सुतेभ्यः ॥ २० ॥

देव असुरे-युधि च	- देवासुर संग्राममें भी	**अथ वामनं-भूत्वा**	- और वामन बनकर
सुर अर्थे	- देवताओंके लिए	**याच्ञा छलेन**	- मांगनेके बहानेसे
दैत्यपतीन् हत्वा	- दैत्य नायकोंको मारा,	**बलेः क्ष्मां**	- बलिकी पृथ्वीको
अन्तरेषु	- मन्वन्तरोंमें	**आहरत्**	- छीनकर
कलाभिः	- कलावतारसे	**अदितेः सुतेभ्यः**	- अदितिके पुत्रों (देवताओंको)
भुवनानि	- लोकोंकी	**सम अदात्**	- पूरी दे दी ॥ २० ॥
अदधात्	- रक्षाकी,		

---

१. कथा है कि बालखिल्य ऋषि महर्षि कश्यपके लिए समिधा लेने गये तो गायके खुरसे बने गड्ढेमें गिर गये । वह उनके लिए समुद्रके समान था । उससे उन्हें भगवानने निकाला ।

निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिःसप्तकृत्वो
रामस्तु हैहयकुलाप्ययभार्गवाग्निः ।
सोऽब्धिं बबन्ध दशवक्त्रमहन् सलङ्क
सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः ॥ २१ ॥

निःक्षत्रियां अकृत गां च त्रिः सप्तकृत्वः रामः तु है हयकुल अप्यय भार्गव अग्निः सः अब्धिं बबन्ध दशवक्त्रं अहन् सलंकं सीतापतिः जयति लोकं अलघ्न कीर्तिः ॥ २१ ॥

त्रिःसप्तकृत्वः	- तीन सात (इक्कीस) बार	**सः अब्धिं-**	- उन्हीं भगवानने समुद्र
गां निःक्षत्रियां	- पृथ्वी क्षत्रियहीन भी	**बबन्ध**	बांधा
अकृत	- बनाया,	**सलंकं**	- लंकाके साथ
रामःतु	- वे परशुराम तो	**दशवक्त्रं अहन्**	- दशाननको नष्ट किया
हैहयकुल	- हैहयवंशके लिए	**लोकमलघ्न**	- लोक पापनाशक
भार्गव	- भृगुवंशमें उत्पन्न	**कीर्तिः**	- सुयशवाले
अप्यय अग्निः	- प्रलयाग्नि ही थे,	**सीतापतिः-**	- सीतानाथ सर्वत्र विजयी
		जयति	हैं ॥ २१ ॥

भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा
जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि ।
वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हान्
शूद्रान् कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते ॥ २२ ॥

भूमेः भर अवतरणाय यदुषु अजन्मा जातः करिष्यति सुरैः अपि दुष्कराणि वादैः विमोहयति यक्षकृतः अतदर्हान् शूद्रान् कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यत् अन्ते ॥ २२ ॥

अजन्मा - वे अजन्मा
भूमेःभर - पृथ्वीके भारको
अवतरणाय - उतारनेके लिए
यदुषु जातः - यदुवंशमें उत्पन्न होकर
सुरैः अपि - देवताओंके लिए भी
दुष्कराणि - करनेमें अत्यन्त कठिन कार्य
करिष्यति - करेंगे
अतदर्हान् - अनधिकारी
यज्ञकृतः - यज्ञ करने वालोंको
वादैः विमोहयति - (बुद्धावतारमें) तर्कोंसे भ्रममें डालेंगे,
कलौ अन्ते - कलियुगके अन्तमें
शूद्रान् क्षितिभुजो - शुद्र राजाओंको
न्यहनिष्यत् - (कल्कि अवतारमें) मारेंगे ॥ २२ ॥

एवं विधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः ।
भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज ॥ २३ ॥

एवं विधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः भूरीणि भूरियशसः वर्णितानि महाभुज ॥ २३ ॥

महाभुज - महाबाहोः
भूरियशसः - अनन्तकीर्ति
जगत्पतेः - जगदीश्वरके
एवं विधानि - इस प्रकारके
भूरीणि जन्मानि -बहुतसे अवतार
च कर्माणि - तथा लीलायें
वर्णितानि - (ऋषियोंने) वर्णन किये हैं ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

विदेह उवाच–

भगवन्तं हरिं प्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः ।
तेषामशान्तकामानां का निष्ठा विजितात्मनाम् ॥ १ ॥

भगवन्तं हरिं प्रायः न भजन्ति आत्मवित्तमाः तेषां अशान्तकामानं का निष्ठा अविजित आत्मनां ॥ १ ॥

आत्म वित्तमा	- आत्म ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महापुरुषो	**अशान्त-कामानां**	- (जिनकी) कामनायें शान्त हुई नहीं,
भगवन्तं हरिं	- भगवान श्रीहरिका जो	**तेषां अविजित-**	- उन अजितेन्द्रिय
प्रायः न-भजन्ति	- प्रायः भजन नहीं करते,	**आत्मनां-का निष्ठा**	- लोगोंकी क्या गति होती है ॥ १ ॥

चमस उवाच–

मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह ।
चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥ २ ॥

मुख बाहु उरु पादेभ्यः पुरुषस्य आश्रमैः सह चत्वारः जज्ञिरे वर्णा गुणैः विप्र आदयः पृथक् ॥ २ ॥

पुरुषस्य	- परम पुरुषके	**चत्वारः वर्णा-**	- चारों वर्णोंके लोग
मुख बाहु	- मुख, भुजा	**आश्रमैः सह**	- (चारों) आश्रमोंके साथ
उरु पादेभ्यः	- जांघों और चरणोंसे	**गुणैः पृथक्**	- अपने-अपने पृथक्-पृथक् गुणोंसे युक्त
विप्र आदयः	- ब्राह्मण आदि	**जज्ञिरे**	- उत्पन्न हुए ॥ २ ॥

यः एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् ।
न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद् भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥ ३ ॥

यः एषां पुरुषं साक्षात् आत्मप्रभवं ईश्वरं न भजन्ति अवजानन्ति स्थानात् भ्रष्टाः पतन्ति अधः ॥ ३ ॥

यः आत्मप्रभवं	- जो अपने जन्मदाता,	**अवजानन्ति**	- उपेक्षा करते हैं
एषां ईश्वरं	- इनके स्वामीका	**स्थानात् भ्रष्टाः**	- वे स्थान भ्रष्ट होकर
भजन्ति न	- भजन नहीं करते,	**अधः पतन्ति**	- और नीचे गिरते हैं ॥ ३ ॥

दूरेहरिकथाःकेचिद् दूरेचाच्युतकीर्तनाः ।
स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशाम् ॥ ४ ॥

दूरे हरिकथाःकेचित् दूरे च अच्युत कीर्तनाः स्त्रियः शूद्र आदयः च एव ते अनुकम्प्या भवादृशाम् ॥ ४ ॥

केचित्	- कोई	**च अच्युत-**	- तथा भगवानका
स्त्रियः च	- स्त्रियां तथा	**कीर्तनाः**	- गुणगान करने वालोंसे भी
शूद्र आदयः	- शूद्र आदि भी		
एव		**दूरे**	- दूर पड़ गये हैं,
हरिकथाः	- भगवत्कथासे दूर पड़ गये हैं	**भवादृशां**	- आप जैसोंके
		ते अनुकम्प्या-	- वे दयाके पात्र हैं ॥४॥

विप्रो राजन्यवैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पदान्तिकम् ।
श्रौतेन जन्मनाथापि मुह्यन्त्याम्नायवादिनः ॥ ५ ॥

विप्रः राजन्य वैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पद अन्तिकं श्रौतेन जन्मना अथ अपि मुह्यन्ति आम्नाय वादिनः ॥ ५ ॥

विप्रः राजन्य - ब्राह्मण, क्षत्रिय
च वैश्यौ - तथा वैश्य
श्रौतेन जन्मना - वैदिकजन्म (यज्ञोपवीत आदि संस्कारों)से
हरेः पद- - श्रीहरिके चरणोंका
अन्तिकं सामीप्य
प्राप्ताः अथअपि - पाकर फिर भी
आम्नाय वादिनः - अर्थवादमें लगकर
मुह्यन्ति - भ्रममें पड़ जाते हैं ॥५॥

कर्मण्यकोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पण्डितमानिनः ।
वदन्ति चाटुकान् मूढा यया माध्व्या गिरोत्सुकाः ॥ ६ ॥

कर्मणि अकोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पण्डित मानिनः वदन्ति चाटुकान् मूढा यया माध्व्या गिरा उत्सुकाः ॥ ६ ॥

कर्मणि- - कर्म-रहस्यसे अनजान
अकोविदाः
स्तब्धा - अहंकारसे जकड़े
मूर्खाः - मूर्खःकिन्तु
पण्डित मानिनः - अपनेको पण्डित मानने वाले
यया - जिन
माध्व्या गिरा - मीठी बातोंके प्रति (अर्थवादसे)
उत्सुकाः - उत्सुक होकर
मूढा - वे मूर्ख
चाटुकान्- - चापलूसीकी बातें करते
वदन्ति हैं ॥ ६ ॥

रजसा घोरसंकल्पाः कामुका अहिमन्यवः ।
दाम्भिका मानिनः पापा विहसन्त्यच्युतप्रियान् ॥ ७ ॥

रजसा घोर संकल्पाः कामुका अहि मन्यवः दाम्भिका मानिनः पापा विहसन्ति अच्युत प्रियान् ॥ ७ ॥

रजसा - रजोगुणी होनेसे
घोरसंकल्पाः - उग्र संकल्पवाले,
कामुका - कामुक,
अहि मन्यवः - सर्पके समान क्रोधी,
दाम्भिका - पाखण्डी,
मानिनः पापा - अभिमानी, पापिष्ठ वे
अच्युत प्रियान् - अच्युतके प्रियभक्तोंकी
विहसन्ति - हँसी उड़ाते हैं ॥ ७ ॥

वदन्ति तेऽन्योन्यमुपासितस्त्रियो
गृहेषु मैथुन्यपरेषु चाशिषः ।
यजन्त्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं
वृत्त्यै परं घ्नन्ति पशूनतद्विदः ॥ ८ ॥

वदन्ति ते अन्यः अन्यं उपासित स्त्रियः गृहेषु मैथुन्य परेषु च आशिषः यजन्ति असृष्टान् अविधान् अदक्षिणं वृत्त्यै परं घ्नन्ति पशून् अतत् विदः ॥ ८ ॥

ते अतत् विदः	- वे अज्ञानी	**असृष्टान्**	- अन्नदान रहित,
उपासित स्त्रियः	- स्त्रियोंकी सेवा करने वाले	**अविधान्**	- विधिहीन
		अदक्षिणं-	- बिना दक्षिणा दिये यज्ञ
अन्यः अन्यं	- एक दूसरेसे	**यजन्ति**	करते हैं और
मैथुन्य सुखेषु	- स्त्री-सहवास सुखवाले	**वृत्त्यै परं**	- पेट भरनेके लिए
गृहेषु परेषु	- गार्हस्थ्य परायणताकी	**पशून् घ्नन्ति**	- पशुओंको मारते हैं
आशिषः च-	- अभिलाषाओंका ही		॥ ८ ॥
वदन्ति	वर्णन करते हैं		

श्रिया विभूत्याभिजनेन विद्यया
त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा ।
जातस्मयेनान्धधियः सहेश्वरान्
सतोऽवमन्यन्ति हरिप्रियान् खलाः ॥ ९ ॥

श्रिया विभूत्या अभिजनेन विद्यया त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा जात स्मयेन अन्धधियः सह ईश्वरान् सतः अवमन्यन्ति हरिप्रियान् खलाः ॥ ९ ॥

श्रिया विभूत्या - धन-वैभव,
अभिजनेन - कुलीनता,
विद्यया त्यागेन - विद्या, त्याग
रूपेण बलेन - सौन्दर्य, बल तथा
कर्मणा - कर्मसे
जात स्मयेन - उत्पन्न घमण्डसे
अन्धधियः - अन्ध बुद्धि
खलाः - वे दुष्ट
सह ईश्वरान् - ईश्वरके साथ
हरि प्रियान्- - श्रीहरिके प्रिय
सतः संतोंका
अवमन्यन्ति - अपमान करते हैं ॥९॥

सर्वेषु शश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं
यथा खमात्मानमभीष्टमीश्वरम् ।
वेदोपगीतं च न शृण्वतेऽबुधा
मनोरथानां प्रवदन्ति वार्तया ॥ १० ॥

सर्वेषु शश्वत् तनुभृत्सु अवस्थितं यथा खं आत्मानं अभीष्टं ईश्वरं वेद उपगीतं च न शृण्वते अबुधा मनोरथानां प्रवदन्ति वार्तया ॥ १० ॥

सर्वेषु तनुभृत्सु - सब शरीर धारियोंमें
यथा खं - जैसे आकाश है (वैसे)
शश्वत् अवस्थितं- निरन्तर स्थित
आत्मानं अभीष्टं- अपनेको भी प्रिय
ईश्वरं - ईश्वरका
वेद उपगीतं - वेदोंमें भी वर्णन
च होनेपर भी
शृण्वते न - सुनते नहीं
अबुधा - वे अज्ञानी
मनोरथानां च - अपनी अभिलाषाओंकी ही
वार्तया- - बातें करते रहते हैं
प्रवदन्ति ॥ १० ॥

लोके व्यवायामिषमद्यसेवा
नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना ।
व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञ-
सुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ ११ ॥

लोके व्यवाय आमिष मद्यसेवा नित्याः तु जन्तोः न हि तत्र चोदना व्यवस्थितिः तेषु विवाह यज्ञ सुराग्रहैः असु निवृत्तिः इष्टा ॥ ११ ॥

लोके व्यवाय - संसारमें मैथुन,
आमिष मद्य - मांस, शराबका
सेवा हि- - सेवन तो क्योंकि
नित्याः तु सदासे (अपने आप) चलता है
तत्र चोदना न - इसमें शास्त्राज्ञाकी आवश्यकता नहीं है
तेषु विवाह - उनकी विवाह,
यज्ञ सुराग्रहैः - यज्ञ तथा सौत्रामणि यज्ञमें
व्यवस्थितिः - व्यवस्थासे
असु निवृत्तिः - (शास्त्रको) प्राणियोंकी
इष्टा निवृत्ति अभीष्ट है ॥ ११ ॥

धनं च धर्मैकफलं यतो वै
ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशान्ति ।
गृहेषु युञ्जन्ति कलेवरस्य
मृत्युं न पश्यन्ति दुरन्तवीर्यम् ॥ १२ ॥

धनं च धर्मैकफलं यतो वै ज्ञानं सविज्ञानं अनुप्रशान्ति गृहेषु युञ्जन्ति कलेवरस्य दुरन्तवीर्यं मृत्युं न पश्यन्ति ॥ १२ ॥

च - तो (यहाँ चकार अर्थ तु है)
धर्मैकफलं - भगवत्प्रीति करने वाले धर्मके लिये है
यतः वै - धर्मसे ही निश्चय
ज्ञानम् - परमतत्वका ज्ञान
सविज्ञानम् - ज्ञानकी अपरोक्ष अनुभूति सिद्ध होती है
अनु - अनुभूतिके बाद
प्रशान्ति - अशना-पियासादिके न रहनेसे शान्ति अर्थात् मोक्ष होती है
गृहेषु - मनुष्य फिर भी धनका उपयोग काम योगमें
युञ्जन्ति - करते हैं
कलेवरस्य - देहकी
दुरन्तवीर्यं - कभी भी न टलने वाले
मृत्युं - मृत्युको
न - नहीं
पश्यन्ति - देखते हैं ॥ १२ ॥

यद् घ्राणभक्षो विहितः सुराया-
स्तथा पशोरालभनं न हिंसा ।
एवं व्यवायः प्रजया न रत्या
इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ॥ १३ ॥

यत् घ्राण भक्षः विहितः सुरायाः तथा पशोः आलभनं न हिंसा एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ॥ १३ ॥

यत् सुरायाः	- क्योंकि (सौत्रामणि यज्ञमें) शराबका	**एवं व्यवायः**	- इसी प्रकार मैथुनका
घ्राण भक्षः	- सूंघ लेनेका	**प्रजया**	- सन्तानोत्पादनके लिए (विधान) है
विहितः	- विधान है	**रत्या न**	- सुख भोगनेके लिए नहीं,
तथा पशोः	- इसी प्रकार (यज्ञ)में पशुके	**एवं विशुद्धं**	- इस प्रकारके अत्यन्त शुद्ध
आलभनं	- सम्पूर्ण शरीरके स्पर्शका (विधान) है	**स्वधर्म न-**	- अपने धर्मको नहीं जानते
हिंसा न	- मारनेका नहीं,	**विदुः**	॥ १३ ॥

ये त्वनेवं विदोऽसन्तः स्तब्धाः सदभिमानिनः ।
पशून् द्रुह्यन्ति विस्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते च तान् ॥ १४ ॥

ये तु अनेवं विदः असन्तः स्तब्धाः सत् अभिमानिनः पशून् द्रुह्यन्ति विस्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते च तान् ॥ १४ ॥

ये तु अनेवं-	- जो भी ऐसा न	**विस्रब्धाः**	- भ्रममें पड़े हुए
विदः	जानने वाले	**पशून् द्रुह्यन्ति**	- पशु-हिंसा करते हैं
असन्तः स्तब्धाः	- दुष्ट मूर्ख	**प्रेत्य ते च**	- मरनेपर वही (पशु)
सत् अभिमानिनः	- अपनेको श्रेष्ठ मानने वाले	**तान् खादन्ति**	- उन्हें खाते हैं ॥ १४ ॥

द्विषन्तःपरकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम् ।
मृतके सानुबन्धेऽस्मिन् बद्धस्नेहाः पतन्त्यधः ॥ १५ ॥

द्विषन्तःपरकायेषु स्व आत्मानं हरिं ईश्वरं मृतके स अनुबन्धे अस्मिन् बद्ध स्नेहाः पतन्ति अधः ॥ १५ ॥

अस्मिन् मृतके	- इस मुर्दे (शरीर) से	**स्वआत्मनं**	- अपने आत्मरूप तथा
स अनुबन्धे	- इसके सम्बन्धियोंके साथ	**ईश्वरं हरिं**	- स्वामी श्री· हरिसे
बद्ध स्नेहाः	- स्नेहकी गांठ बांधेपर	**द्विषन्तः**	- द्वेष करते हुए
परकायेषु	- दूसरे शरीरोंमें (स्थित)	**अधः पतन्ति**	- अधः पतित होते हैं ॥ १५ ॥

ये कैवल्यमसम्प्राप्ता ये चातीताश्च मूढताम् ।
त्रैवर्गिका ह्यक्षणिका आत्मानं घातयन्ति ते ॥ १६ ॥

ये कैवल्यं असम्प्राप्ता ये च अतीताः च मूढ़तां त्रैवर्गिका हिअक्षणिका आत्मानं घातयन्ति ते ॥ १६ ॥

ये कैवल्यं	- जो मोक्ष	**हि ते**	- क्योंकि वे
असम्प्राप्ता	- नहीं पासके हैं	**त्रैवर्गिका**	- अर्थ, धर्म,काममें ही
च ये मूढतां च	- तथा जो मूर्खतासे भी	**अक्षणिका**	- सदा लगे रहने वाले हैं
अतीताः	- पार हो चुके हैं (थोड़े समझदार हैं)	**आत्मानं**	- आत्म घात
		घातयन्ति	(जैसा ही) कर रहे हैं ॥ १६ ॥

एत आत्महनोऽशान्ता अज्ञाने ज्ञानमानिनः ।
सीदन्त्यकृतकृत्या वै कालध्वस्तमनोरथाः ॥ १७ ॥

एत आत्महनः अशान्ता अज्ञाने ज्ञानमानिनः सीदन्ति अकृतकृत्या वै कालध्वस्त मनोरथाः ॥ १७ ॥

अज्ञाने ज्ञान- - अज्ञानको ही ज्ञान
मानिनः मानने वाले
एत आत्महनः - ये आत्मघाती
अशान्ता - अशान्त (लोग)
वै कालध्वस्त - निश्चयकालके द्वारा नष्ट किये गये
मनोरथाः - अभिलाषा होनेसे
सीदन्ति - कष्ट पाते हैं ॥ १७ ॥

हित्वात्यायासरचिता गृहापत्यसुहच्छ्रियः ।
तमो विशन्त्यनिच्छन्तो वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १८ ॥

हित्वा अति आयास रचिता गृह अपत्य सुहृत् श्रियः तमः विशन्ति अनिच्छन्तः वासुदेवपराङ् मुखाः ॥ १८ ॥

वासुदेव - भगवान वासुदेवसे
पराङ्मुखाः - विमुख लोग
अति आयास- - बहुत परिश्रमसे बनाये
रचिता
गृह अपत्य - घर, पुत्र,
सुहृत् श्रियः - सम्बन्धी, धनको
अनिच्छन्तः - इच्छा न होनेपर भी
हित्वा - छोड़कर
तमः विशन्ति- नरक जाते हैं ॥ १८ ॥

विदेह उवाच– १

कस्मिन् काले स भगवान् किं वर्णःकीदृशो नृभिः ।
नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम् ॥ १९ ॥

कस्मिन्काले स भगवान् किं वर्णेः कीदृशः नृभिः नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तत् इह उच्यताम् ॥ १९ ॥

स भगवान् - वे भगवान्
कस्मिन् काले - किस युगमें,
किं वर्णः - किस रूपमें,
कीदृशः नृभिः - कैसे लोगों द्वारा
वा केन नाम्ना - या किस नामसे,
केन विधिना - किस विधिसे
पूज्यते - पूजित होते हैं
तत् इह उच्यतां - वह यहां बतलावें ॥ १९ ॥

करभाजन उवाच–

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिरित्येषु केशवः ।
नानावर्णाभिधाकारो नानैव विधिनेज्यते ॥ २० ॥

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिः इत्येषु केशवः नाना वर्ण अभिधा आकारः नाना एव विधिना इज्यते ॥ २० ॥

कृतं त्रेता	- सतयुग, त्रेता,	**अभिधा आकारः**	- नाम एवं रूपवाले
द्वापरं च	- द्वापर और	**केशवः**	- केशव
कलिः इत्येषु	- कलियुग, इनमें	**नाना विधिना**	- अनेक विधियोंसे ही
नाना वर्णः	- अनेक वर्ण,	**एव**	
		इज्यते	- पूजे जाते हैं ॥२०॥

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बरः ।
कृष्णाजिनोपवीताक्षान् बिभ्रद् दण्डकमण्डलू ॥ २१ ॥

कृते शुक्लः चतुर्बाहुः जटिलः वल्कल अम्बरः कृष्ण अजिनः उपवीत अक्षान् बिभ्रत् दण्ड कमण्डलू ॥ २१ ॥

कृते शुक्लः	- सतयुगमें श्वेत वर्ण,	**कृष्ण अजिनः**	- काले मृगका चर्म,
चतुर्बाहुः	- चतुर्भुज	**उपवीत अक्षान्**	- यज्ञोपवीत, रुद्राक्षकी माला,
जटिलः	- जटाधारी,	**दण्ड कमण्डलू**	- दण्ड-कमण्डलु
वल्कल अम्बरः	- वल्कल वस्त्र पहिने,	**विभ्रत्**	- धारण किये (भगवानका स्वरूप होता है) ॥२१॥

मनुष्यास्तु तदा शान्ताः निर्वैराः सुहृदः समाः ।
यजन्ति तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥ २२ ॥

मनुष्याः तु तदा शान्ताः निर्वैराः सुहृदः समाः यजन्ति तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥ २२ ॥

तदा मनुष्याः तु - उस समयके मनुष्यतो
शान्ताः निर्वैराः - शान्त, वैरहीन,
सुहृदः समाः - सबके हितैषी, समदर्शी (होते हैं)
देवं तपसा - (वे) भगवानकी तपस्या,
च शमेन - तथा मनकी शान्ति
च दमेन - इन्द्रिय-दमनसे
भजन्ति - आराधना करते हैं ॥२२॥

हंसः सुपर्णो वैकुण्ठो धर्मो योगेश्वरोऽमलः ।
ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तःपरमात्मेति गीयते ॥ २३ ॥

हंसः सुपर्णः वैकुण्ठः धर्मः योगेश्वरः अमलः ईश्वरः पुरुषः अव्यक्तःपरमात्मा इति गीयते ॥ २३ ॥

हंसः सुपर्णः - हंस, सुपर्ण,
वैकुण्ठः धर्मः - वैकुण्ठ, धर्म,
योगेश्वरः अमलः - योगेश्वर, अमल,
ईश्वरः पुरुषः - ईश्वर, पुरुष,
अव्यक्तः- परमात्मा - अव्यक्त,परमात्मा,
इति गीयते - इन (नामों)से (भगवानका) कीर्तन होता है ॥२३॥

त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः ।
हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः ॥ २४ ॥

त्रेतायां रक्त वर्णः असौ चतुर्बाहुः त्रिमेखलः हिरण्यकेशः त्रयी आत्मा स्रुक् स्रुवा आदि उपलक्षणः ॥ २४ ॥

त्रैतायां - त्रेता युगमें
असौ रक्तवर्णः - यह (भगवान) लाल-वर्णके
चतुर्बाहुः - चतुर्भुज
त्रिमेखलः - तीन मेखला धारी
हिरण्यकेशः - सुनहलेकेश
त्रयी आत्मा - यज्ञ स्वरूप
स्रुक् स्रुवा आदि - स्रुक, स्रुवा आदि
उपलक्षणः - धारण करते हैं ॥ २४ ॥

तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं हरिम् ।
यजन्ति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः ॥ २५ ॥

तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं हरिं यजन्ति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः ॥ २५ ॥

तदा धर्मिष्ठा	- उस समयके धर्मात्मा	**हरिं**	- श्री हरिकी
ब्रह्मवादिनः	- वेदवादी	**त्रय्या विद्या**	- त्रयी विद्या-यज्ञके द्वारा
मनुजा	- मनुष्य	**यजन्ति**	- आराधना करते हैं
सर्वदेवमयं	- सर्व देवस्वरूप		॥ २५ ॥

विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः ।
वृषाकपिर्जयन्तश्च उरुगाय इतीर्यते ॥ २६ ॥

विष्णुः यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः वृषा कपिः जयन्तः च उरुगाय इति ईर्यते ॥ २६ ॥

विष्णुः यज्ञः	- विष्णु, यज्ञ,	**वृषाकपिः जयन्तः**	- वृषा कपि, जयन्त
पृश्नि गर्भः	- पृश्नि गर्भ,	**च उरुगाय**	- तथा उरुगाय
सर्वदेव उरुक्रमः	- सर्वदेव, उरुक्रम,	**इति ईर्यते**	- इन (नामों)से (भगवानका)कीर्तन होता है ॥ २६ ॥

द्वापरे भगवाञ्छ्यामः पीतवासा निजायुधः ।
श्रीवत्सादिभिरअंकैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥ २७ ॥

द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निज आयुधः श्रीवत्स आदिभिः अंकैः च लक्षणैः उपलक्षितः ॥ २७ ॥

द्वापरे	- द्वापर युगमें	**श्रीवत्स अंकैः**	- श्री वत्स चिन्ह
भगवान् श्यामः	- भगवान श्याम वर्ण,	**आदिभिः-**	- आदि चिन्होंसे भी
पीतवासा	- पीताम्बर धारी,	**लक्षणैः च**	
निज आयुधः	- अपने (शंख, चक्र, गदा, पद्म) आयुध वाले,	**उपलक्षितः**	- युक्त होते हैं ॥ २७ ॥

तं तदा पुरुषं मर्त्या महाराजोपलक्षणम् ।
यजन्ति वेदतन्त्राभ्यां परं जिज्ञासवो नृप ॥ २८ ॥

तं तदा पुरुषं मर्त्या महाराज उपलक्षणं यजन्ति वेद तन्त्राभ्यां परं जिज्ञासवः नृप ॥ २८ ॥

नृप	- राजन् !	**उपलक्षणं**	- चिह्न (छत्र, चँवर) युक्त
तदा मर्त्या	- उस समयके मनुष्य	**पुरुषं**	- परम पुरुषकी
परं जिज्ञासवः	- परमतत्त्वको जाननेकी इच्छासे	**वेद तन्त्राभ्यां**	- वैदिक-तान्त्रिक विधिसे
		यजन्ति	- आराधना करते हैं ॥ २८ ॥
तं महाराज	- उन महाराजाके		

नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥ २९ ॥

नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥ २९ ॥

ते वासुदेवाय	- (यह प्रार्थना करते हैं) आप वासुदेवको	**तुभ्यं भगवते**	- आप भगवान
		प्रद्युम्नाय च	- प्रद्युम्न एवं
नमः च	- नमस्कार, तथा	**अनिरुद्धाय नमः**	- अनिरुद्धको नमस्कार ॥ २९ ॥
संकर्षणाय नमः	- संकर्षणको नमस्कार		

नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने ।
विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ३० ॥

नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूत आत्मने नमः ॥ ३० ॥

ऋषये नारायणाय	- ऋषि नारायण,	**विश्वाय**	- जगत्स्वरूप
महात्मने पुरुषाय	- महात्मा नर,	**सर्वभूत आत्मने**	- समस्त प्राणिस्वरूपको
विश्वेश्वराय	- जगदीश्वर,	**नमः**	- नमस्कार ॥ ३० ॥

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम् ।
नानातन्त्रविधानेन कलावपि यथा शृणु ॥ ३१ ॥

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगत् ईश्वरं नाना तन्त्र विधानेन कलाः अपि यथा शृणु ॥ ३१ ॥

इति द्वापर	- इस प्रकार द्वापर युगमें	**विधानेन-**	- विधियोंसे स्तुति करते
उर्वीश जगत्	- महाराज रूपमें	**स्तुवन्ति**	हैं
ईश्वरं	जगत्पतिकी	**यथा कलाः-**	- जैसे कलियुगमें
नाना तन्त्र	- अनेक तन्त्रोंकी	**अपि**	भी
		शृणु	- (आराधना करते हैं उसे) सुनो ॥ ३१ ॥

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् ।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥ ३२ ॥

कृष्णवर्णं त्विषा अकृष्णं सांग उपांग अस्त्र पार्षदं यज्ञैःसंकीर्तन प्रायैः यजन्ति हि सुमेधसः ॥ ३२ ॥

हि सुमेधसः	- क्योंकि जो उत्तम बुद्धिवाले हैं	**अस्त्र पार्षदं**	- अस्त्रों एवं पार्षदों युक्त भगवानकी
कृष्णवर्णं	- श्यामवर्ण	**संकीर्तन प्रायैः**	- संकीर्तन प्रधान
त्विषा अकृष्णं	- उज्ज्वलकान्ति	**यज्ञैः यजन्ति**	- यज्ञोंसे आराधना करते हैं ॥ ३२ ॥
सांग उपांग	- सम्पूर्णांग उपांग (सायुध)		

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ३३ ॥

ध्येयं सदा परिभवघ्नं अभीष्टदः अहं तीर्थ आस्पदं शिव विरिञ्चि नुतं शरण्यं भृत्य आर्तिहं प्रणतपाल भव अब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ३३ ॥

ध्येयं - (वे लोग प्रार्थना करते हैं) ध्यान करने योग्य
सदा परिभवघ्नं - नित्य सांसारिक पराजयोंके निवारक,
अभीष्टदः - अभीष्टदाता
तीर्थ आस्पदं - (गंगारूपी) तीर्थके आश्रय,
शिव विरिञ्चि नुतं - शंकर एवं ब्रह्मासे वन्दित,
शरण्यं - शरणदाता,
भृत्य आर्तिहं - सेवक-संकटनाशक,
प्रणतपाल - शरणागत-रक्षक
भव अब्धिपोतं - संसार सागरके जहाज
महापुरुष - हे महापुरुष
ते चरणारविन्दं - आपके चरण कमलोंकी
अहं वन्दे - हम वन्दना करते हैं ॥ ३३ ॥

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ३४ ॥

त्यक्त्वा सुदुस्त्यज सुर ईप्सित राज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यत् अगात् अरण्यं मायामृगं दयित ईप्सितं अन्वधावत् . वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ३४ ॥

धर्मिष्ठ - आप परम धर्मात्मा हैं
यत् - क्योंकि
आर्य वचसा - पिताकी आज्ञासे (आप)
सुरईप्सितं - देवताओंको भी अभीष्ठ
सुदुस्त्यज - अत्यन्त दुस्त्याज्य
राज्यलक्ष्मीं - राज्य वैभवका
त्यक्त्वा - त्याग करके
अरण्यं अगात् - वनमें चले गये (वहां)
दयित ईप्सित - प्रियाके चाहे हुए
माया मृगं - माया मृगके
अन्वधावत् - पीछे दौड़ पड़े
महापुरुष ते - महापुरुष आपके
चरणारविन्दं - चरण कमलोंकी
वन्दे - (हम) वन्दना करते हैं ॥ ३४ ॥

एवं युगानुरूपाभ्यां भगवान् युगवर्तिभिः ।
मनुजैरिज्यते राजन् श्रेयसामीश्वरो हरिः ॥ ३५ ॥

एवं युग अनुरूपाभ्यां भगवान् युगवर्तिभिः मनुजैः इज्यते राजन् श्रेयसां ईश्वरः हरिः ॥ ३५ ॥

राजन्	- राजन् !	**मनुजैः**	- मनुष्यों द्वारा
एवं युगवर्तिभिः	- इस प्रकार उन युगोंमें	**श्रेयसां ईश्वरः**	- सम्पूर्ण कल्याणोंके स्वामी
युग अनुरूपाभ्यां	- युगानुसार रहने वाले	**हरिः इज्यते**	- श्री हरि उपासित होते हैं ॥ ३५ ॥

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ।
यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥ ३६ ॥

कलिं सभाजयन्ति आर्या गुणज्ञाः सारभागिनः यत्र संकीर्तनेन एव सर्वः स्वार्थः अभिलभ्यते ॥ ३६ ॥

यत्र संकीर्तनेन	- जिस युगमें संकीर्तनसे	**अभिलभ्यते**	- सम्पूर्ण प्राप्ति हो जाती है
एव	ही	**गुणज्ञाः आर्या**	- (उसका) गुण जानने वाले श्रेष्ठ पुरुष
सर्वः स्वार्थः	- सब स्वार्थ (परमार्थ)की	**सारभागिनः**	- सारग्राही होनेसे
		कलिं-समाजयन्ति	- कलियुगका आदर करते हैं ॥ ३६ ॥

न ह्यतःपरमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह ।
यतो विन्देत परमां शान्तिं नश्यति संसृतिः ॥ ३७ ॥

न हि अतःपरमः लाभः देहिनां भ्राम्यतां इह यतः विन्देत परमां शान्तिं नश्यति संसृतिः ॥ ३७ ॥

इह भ्राम्यतां - इस संसारमें भटकते हुए
हि अतःपरमः - क्योंकि इससे बड़ा
लाभः देहिनां न - लाभ जीवके लिए नहीं है कि
यतःपरमां शान्ति - जिससेपरम शान्ति
विन्देत - प्राप्त हो और
संसृतिः-नश्यति - जन्म-मरण चक्र नष्ट हो जाय ॥ ३७ ॥

कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवम् ।
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥ ३८ ॥

कृत आदिषु प्रजा राजन् कलाः इच्छन्ति सम्भवं कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥ ३८ ॥

राजन् - राजन् !
कृत आदिषु प्रजा - सतयुग आदिकी प्रजा भी
कलाः सम्भवं - कलियुगमें उत्पन्न होना
इच्छन्ति - चाहते हैं
खलु कलौ - क्योंकि कलियुगमें
नारायण-परायणाः - नारायणपरायण (भक्त)
भविष्यन्ति - होंगे ॥ ३८ ॥

क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ।
ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ ३९ ॥

क्वचित् क्वचित् महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ ३९ ॥

महाराज - महाराज !
क्वचित् क्वचित् - (दूसरे स्थानोंमें) कहीं-कहीं
च द्रविडेषु - तथा द्रविड प्रान्तमें
भूरिशः - बहुत अधिक,
यत्र ताम्रपर्णी - जहां ताम्रपर्णी
नदी - नदी,
कृतमाला - कृतमाला,
पयस्विनी - पयस्विनी हैं ॥ ३९ ॥

कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ।
ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर ।
प्रायो भक्ता भगवति वासुदेवेऽमलाशयाः ॥ ४० ॥

कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुज ईश्वर प्रायः भक्ता भगवति वासुदेवे अमल आशयाः ॥ ४० ॥

मनुज ईश्वर - महाराज !
च महापुण्या - तथा अत्यन्त पवित्र
कावेरी - कावेरी
प्रतीची च - प्रतीची और महानदी
महा नदी हैं:
ये मनुजा - जो मनुष्य
तासां जलं - उनका जल पीते हैं
पिबन्ति
प्रायः अमल- - प्रायः निर्मल अन्तःकरण
आशयाः
भगवति - भगवान वासुदेवके
वासुदेवे
भक्ता - भक्त होंगे ॥ ४० ॥

देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां
न किंकरो नायमृणी च राजन् ।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ॥ ४१ ॥

देव ऋषि भूत आप्त नृणां पितॄणां न किंकरः न अयं ऋणी च राजन् सर्व आत्मना यः शरणं शरण्यं गतः मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ॥ ४१ ॥

राजन् - राजन् !
यः कर्तं - जो कर्तापनके अभिमानको
परिहृत्य - त्यागकर
सर्वआत्मना - सम्पूर्ण हृदयसे
शरण्यं - शरणदाता
मुकुन्दं शरणं - मुकुन्दकी शरण गया
गतः
अयं देव ऋषि - यह देवता, ऋषि,
भूत नृणां - प्राणी तथा मनुष्य (अतिथि)
पितॄणां - और पितरोंका
न किंकरः - न सेवक है
न ऋणी च - न ऋणी ही है ॥४१॥

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य
त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चिद्
धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥ ४२ ॥

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्त अन्य भावस्य हरिः परेशः विकर्म यत् च उत्पतितं कथञ्चित् धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥ ४२ ॥

त्यक्त अन्य भावस्य	- दूसरी सब भावनाओंको छोड़कर
स्वपादमूलं	- अपने चरणोंका
भजतः प्रियस्य	- भजन करनेवाले प्रिय भक्तको
कथञ्चित्	- किसी प्रकार
यत् विकर्म	- यदि किसी विशेष कर्मके उल्लंघनका दोष
उत्पतितं च	- लग भी जाय तो
परेशः हरिः	- परमेश्वर श्री हरि
हृदि-	- उसके हृदयमें भली
सन्निविष्टः	प्रकार विराजमान
सर्वं धुनोति	- सब (दोषों)को नष्ट कर देते हैं ॥ ४२ ॥

नारद उवाच–

धर्मान् भागवतानित्थं श्रुत्वाथ मिथिलेश्वरः ।
जायन्तेयान् मुनीन् प्रीतः सोपाध्यायो ह्यपूजयत् ॥ ४३ ॥

धर्मान् भागवतान् इत्थं श्रुत्वा अथ मिथिला ईश्वरः जायन्तेयान् मुनीन् प्रीतः स उपाध्यायः हि अपूजयात् ॥ ४३ ॥

हि मिथिला ईश्वरः	- क्योंकि वे मिथिला नरेश (ज्ञानी) थे
इत्थं	- इस प्रकार
भागवतान् धर्मान्	- भागवत धर्मको
श्रुत्वा प्रीतः अथ	- सुनकर प्रसन्न होकर फिर
स उपाध्यायः	- पुरोहितोंके साथ
जायन्तेयान्	- जयन्तीके पुत्र योगेश्वरोंकी
अपूजयत्	- पूजाकी ॥ ४३ ॥

ततोऽन्तर्दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः ।
राजा धर्मानुपातिष्ठन्नावाप परमां गतिम् ॥ ४४ ॥

ततः अन्तः दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः राजा धर्मान् उप आतिष्ठन् अवाप परमां गतिम् ॥ ४४ ॥

ततः सर्वलोकस्य	- फिर सब लोगोंके	**राजा धर्मान्**	- राजा निमि उन धर्मोंका
पश्यतः	- देखते हुए	**उप आतिष्ठन्**	- पालन करके
सिद्धाः अन्तः-	- वे सिद्ध अन्तर्ध्यान	**परमां गतिं**	- परमपद पा गये
दधिरे	हो गये	**अवाप**	॥ ४४ ॥

त्वमप्येतान् महाभाग धर्मान् भागवताञ्छुतान् ।
आस्थितः श्रद्धया युक्तो निःसंगो यास्यसे परम् ॥ ४५ ॥

त्वं अपि एतान् महाभाग धर्मान् भागवतान् श्रुतान् आस्थितः श्रद्धया युक्तः निःसंगः यास्यसे परम् ॥ ४५ ॥

महाभाग	- महाभाग !	**श्रद्धायुक्तः**	- श्रद्धा सहित
त्वं अपि एतान्	- तुम भी इन	**आस्थितः**	- स्थित होकर
श्रुतान्	- श्रुति	**निः संगः**	- आसक्तिहीन होकर
भागवतान् धर्मान्	- भागवत धर्मपर	**परं यास्यसे**	- परम पद जाओगे ॥ ४५ ॥

युवयोः खलु दम्पत्योर्यशसा पूरितं जगत् ।
पुत्रतामगमद् यद् वां भगवानीश्वरो हरिः ॥ ४६ ॥

युवयोः खलु दम्पत्योः यशसा पूरितं जगत् पुत्रतां अगमत् यत् वां भगवान् ईश्वरः हरिः ॥ ४६ ॥

खलु युवयोः - अहो आप दोनों
दम्पत्योः - दम्पतिके
यशसा जगत् - सुयशसे पूरा संसार
पूरितं - भर गया है,
यत् भगवान् - क्योंकि भगवान
ईश्वरः हरिः - सर्वेश्वर श्रीहरि
वां पुत्रताम् - आप दोनोंके पुत्र
अगमत् बने हैं ॥ ४६ ॥

दर्शनालिङ्गनालापैः शयनासनभोजनैः ।
आत्मा वां पावितः कृष्णे पुत्रस्नेहं प्रकुर्वतोः ॥ ४७ ॥

दर्शन आलिंगन आलापैः शयन आसन भोजनैः आत्मा वां पावितः कृष्णे पुत्र स्नेहं प्रकुर्वतोः ॥ ४७ ॥

कृष्णे पुत्रस्नेहं - श्रीकृष्णसे पुत्र स्नेह
प्रकुर्वतोः - पूर्णतः करते हुए (उनके)
दर्शन आलिंगन - दर्शन, आलिंगन,
शयन आसन - (एक साथ) सोने-बैठने,
भोजनैः - भोजन करनेसे
वां आत्मा- - आप दोनोंने
पावितः अपनेको पवित्र कर लिया है ॥ ४७ ॥

वैरेण यं नृपतयः शिशुपालपौण्ड्र-
शाल्वादयो गतिविलासविलोकनाद्यैः ।
ध्यायन्त आकृतधियः शयनासनादौ
तत्साम्यमापुरनुरक्तधियां पुनः किम् ॥ ४८ ॥

वैरेण यं नृपतयः शिशुपाल पौण्ड्र शाल्व आदयः गति विलास विलोकन आद्यैः ध्यायन्त आकृत धियः शयन आसन आदौ तत् साम्यं आपुः अनुरक्तधियां पुनः किम् ॥ ४८ ॥

शिशुपाल - शिशुपाल
पौण्ड्र शाल्व - पौण्ड्रक शाल्व
आदयः नृपतयः - आदि नरेश
वैरेण - वैर भावसे
गति विलास - चलनेके ढंग, चेष्टा
विलोकन आद्यैः - दृष्टिपात आदि
आकृति धियः - आकृतिमें लगी बुद्धिसे
यं शयन आसन - जिन्हें सोते-बैठते
आदौ ध्यायन्त - के समय चिन्तन करते हुए
तत् साम्यं- - जिनकी समता (सायुज्य)
आपुः पा गये
पुनः अनुरक्त - फिर (उनमें) आसक्त
धियां किम् - चित्तोंका क्या पूछना

॥ ४८ ॥

मापत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे ।
मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्ये परेऽव्यये ॥ ४९ ॥

सर्वात्मनि, ईश्वरे माया मनुष्यभावेन-गूढैश्वर्ये-परे-अन्वये-कृष्णे अपत्यबुद्धिं मा अकृथाः ॥ ४९ ॥

सर्वात्मनि - सब अवतारोंके आत्मा
ईश्वरे - जगत्के जन्मादिकर्ता
माया मनुष्य-भावेन - लीला करनेके लिये मनुष्यका रूप प्रकट करके
गूढैश्वर्ये - अपनाऐं ऐश्वर्ये छिपाने वाले
परे सर्वकारणातीत
अव्यये - अविनाशी
कृष्णे - सबको अपनी ओर आकर्षित कर आनन्द देने वाले कृष्णमें
अपत्य - पुत्र
बुद्धिं - ये मेरा ही पुत्र है
मा - ऐसा मत्
अकृथाः - समझो ॥ ४९ ॥

भूभारासुरराजन्यहन्तवे गुप्तये सताम् ।
अवतीर्णस्य निर्वृत्यै यशो लोके वितन्यते ॥ ५० ॥

भूभार असुर राजन्य हन्तवे गुप्तये सतां अवतीर्णस्य निर्वृत्यै यशः लोके वितन्यते ॥ ५० ॥

भूभार	- पृथ्वीके भाररूप	**अवतीर्णस्य**	- अवतार लेकर
असुर राजन्य	- असुर राजाओंको	**निर्वृत्यै**	- (जीवोंको) शान्ति देनेके लिए
हन्तवे	मारनेके लिए		
सतां गुप्तये	- सत्पुरुषोंकी रक्षाके लिए	**लोकेयशः**	- संसारमें अपना सुयश
		वितन्यते	फैला रहे हैं ॥५०॥

श्रीशुक उवाच–

एतच्छ्रुत्वा महाभागो वसुदेवोऽतिविस्मितः ।
देवकी च महाभागा जहतुर्मोहमात्मनः ॥ ५१ ॥

एतत् श्रुत्वा महाभागः वसुदेवः अति विस्मितः देवकी च महाभागा जहतुः मोहं आत्मनः ॥ ५१ ॥

एतत् श्रुत्वा	- यह सुनकर	**च महाभागा**	- तथा
अति विस्मितः	- अत्यन्त चकित	**देवकी**	महाभागा देवकीने
महाभागः	- महाभाग वसुदेवजीने	**आत्मनः मोहं**	- अपना मोह
वसुदेवः		**जहतुः**	- त्याग दिया ॥ ५१ ॥

इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद् यः समाहितः ।
स विधूयेह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥

इतिहासं इमं पुण्यं धारयेत् यः समाहितः स विधूय इह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥

यः समाहितः	- जो एकाग्रचित्त होकर	**स इह शमलं**	- वह इसी जीवनमें शोकादि
इमं पुण्यं	- इस पवित्र	**विधूय**	- दूर करके
इतिहासं	- इतिहासको	**ब्रह्म भूयाय**	- ब्रह्मस्वरूप हो जाता है
धारयेत्	- धारण करता है	**कल्पते**	॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

अथ ब्रह्माऽऽत्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात् ।
भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥

अथ ब्रह्मा आत्मजैः देवैः प्रजा ईशैः आवृतः अभ्यगात् भवः च भूत भव्य ईशः ययौ भूतगणैः वृतः ॥ १ ॥

अथ आत्मजैः	- फिर पुत्रों,	**च भूत-**	- तथा भूत-भविष्यके
दैवैः प्रजा ईशैः	- देवताओं, प्रजापतियोंसे	**भव्य ईशः**	स्वामी
आवृतः ब्रह्मा	- घिरे ब्रह्माजी	**भूतगणैः वृतः**	- भूतगणोंसे घिरे
अभ्यगात्	- आ पहुँचे	**भवः ययौः**	- शंकर जी आये ॥१॥

इन्द्रो मरुद्भिर्भगवानादित्या वसवोऽश्विनौ ।
ऋभवोऽङ्गिरसो रुद्रा विश्वे साध्याश्च देवताः ॥ २ ॥

इन्द्रः मरुत्भिः भगवान् आदित्या वसवः अश्विनौ ऋभवः अंगिरसः रुद्रा विश्वे साध्याः च देवताः ॥ २ ॥

मरुत्भिः	- मरुद्गणोंके साथ	**ऋभवः अंगिरसः**	- ऋभुगण, वृहस्पति,
भगवान् इन्द्रः	- भगवान् इन्द्र,	**रुद्रा विश्वे**	- एकादशरुद्र, विश्वेदेवा
आदित्याः	- द्वादश आदित्य	**च साध्याः-**	- तथा साध्य देवता
वसवः अश्विनौ	- आठो वसु, दोनों अश्विनी कुमार,	**देवताः**	॥ २ ॥

गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धचारणगुह्यकाः ।
ऋषयः पितरश्चैव सविद्याधरकिन्नराः ॥ ३ ॥

गन्धर्व अप्सरसः नागाः सिद्ध चारण गुह्यकाः ऋषयः पितरः च एव स विद्याधर किन्नराः ॥ ३ ॥

गन्धर्व- - गन्धर्व, अप्सरायें,
अप्सरसः
नागाः सिद्ध- - नाग, सिद्ध, चारण,
चारण
गुह्यकाः ऋषयः -यक्ष, ऋषिगण,
पितरः- -पितर, विद्याधरोंके साथ
सविद्याधर
किन्नराः एव च-किन्नर लोग भी ॥ ३ ॥

द्वारकामुपसंजग्मुः सर्वे कृष्णदिदृक्षवः ।
वपुषा येन भगवान् नरलोकमनोरमः ।
यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापहम् ॥ ४ ॥

द्वारकां उप संजग्मुः सर्वे कृष्ण दिदृक्षवः वपुषा येन भगवान् नरलोक मनोरमः यशः वितेने लोकेषु सर्व लोक मल अपहम् ॥ ४ ॥

सर्वलोक - समस्त लोकोंका
मल अपहं - पापनाशक
नरलोक मनोरमं - विश्व सुन्दर
येन वपुषा - जिस शरीरसे
लोकेषु यशः - सम्पूर्ण
वितेने लोकोंमें अपने सुयशका विस्तार किया था ।
कृष्ण दिदृ- - उस श्रीकृष्ण रूपके
क्षवः दर्शनकी इच्छासे
सर्वे द्वारकां - सब द्वारिकाके
उप संजग्मुः - समीप (गगनमें) आये ॥ ४ ॥

तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धिभिः ।
व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुदुतदर्शनम् ॥ ५ ॥

तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धिभिः व्यचक्षत अवितृप्त अक्षाः कृष्णं अद्भुदुत दर्शनम् ॥ ५ ॥

तस्यां महर्द्धिभिः - उस महान ऋद्धियोंसे
समृद्धायां - वैभव सम्पन्ना
विभ्राजमानायां - अत्यन्त सुशोभिता पुरीमें
अवितृप्त अक्षाः - अतृप्तनेत्रोंसे
अद्भुत दर्शनं - विचित्र लावण्ययुक्त
कृष्णं व्यचक्षत - श्रीकृष्णका दर्शन किया ॥ ५ ॥

स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयन्तो यदूत्तमम् ।
गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ ६ ॥

स्वर्ग उद्यान उपगैः माल्यैः छादयन्तः यदूत्तमं गीर्भिः चित्र पदार्थाभिः तुष्टुवुः जगदीश्वरम् ॥ ६ ॥

स्वर्ग उद्यान - स्वर्गके बगीचोंमें
उपगैः माल्यैः - उत्पन्न पुष्पोंसे
यदूत्तमं - यादव श्रेष्ठको
छादयन्तः - ढँकते हुए
चित्रपदार्थाभिः - विचित्र पद एवं अर्थ वाली
गीर्भिः - वाणीसे
जगदीश्वरं - उन जगदीश्वरकी
तुष्टुवुः - स्तुतिकी ॥ ६ ॥

देवा ऊचुः—

नताः स्म ते नाथ पदारविन्दं
बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः ।
यच्चिन्त्यतेऽन्तर्हृदि भावयुक्तै-
र्मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात् ॥ ७ ॥

नताः स्म ते नाथ पदारविन्दं बुद्धि इन्द्रियप्राण मनः वचोभिः यत् चिन्त्यते अन्तः हृदि भाव युक्तैः मुमुक्षुभिः कर्ममय उरुपाशात् ॥ ७ ॥

नाथ - स्वामी !
कर्ममय - कर्मरूपी
उरुपाशात् - विकट फन्दोंसे
मुमुक्षुभिः - छूटनेकी इच्छा वालों द्वारा
यत् अन्तः हृदि - जो हृदयके भीतर
भावयुक्तैः - भावपूर्वक
चिन्त्यते - ध्यान किये जाते हैं
ते पदारविन्दं - आपके उन चरण कमलोंमें
बुद्धि इन्द्रिय - बुद्धि, इन्द्रिय,
प्राण मनः वचोभिः - प्राण, मन, वाणीसे
नताः स्म - (हम) प्रणत हैं ॥ ७ ॥

त्वं मायया त्रिगुणयाऽऽत्मनि दुर्विभाव्यं
व्यक्तं सृजस्यवसि लुम्पसि तद्गुणस्थः ।
नैतैर्भवानजित कर्मभिरज्यते वै
यत् स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः ॥ ८ ॥

त्वं मायया त्रिगुणया आत्मनि दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजसि अवसि लुम्पसि तत् गुणस्थः न एतैः भवान् अजित कर्मभिः अज्यते वै यत् स्वे सुखे अव्यवहिते अभिरतः अनवद्यः ॥ ८ ॥

त्वं त्रिगुणया मायया - आपत्रिगुणमयी मायासे
आत्मनि - अपने आपमें ही
तद्गुणस्थः - उन गुणोंमें स्थित होकर
दुर्विभाव्यं व्यक्तं - अचिन्त्य व्यक्त जगत्को
सृजसि लुम्पसि - उत्पन्न करते, प्रलय करते हैं
एते कर्मभिः -पर इन कर्मोंसे
भवान् अजित -आप अपराजित
वै अज्यते न -निश्चय लिप्त नहीं होते
यत् अव्यवहिते -क्योंकि अखण्ड
स्वसुखे अभिरतः -आत्मानन्दमें निमग्न
अनवद्यः -निर्दोष हैं ॥ ८ ॥

शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां
विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः ।
सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्ध-
सच्छ्रद्धया श्रवणसम्भृतया यथा स्यात् ॥ ९ ॥

शुद्धिः नृणां न तु तथा इड्य दुःआशयानां विद्या श्रुत अध्ययन दान तपः क्रियाभिः सत्त्व आत्मनां ऋषभ ते यशसि प्रवृद्ध सत् श्रद्धया श्रवण सम्भृतया यथा स्यात् ॥ ९ ॥

ईड्य ऋषभ	-	स्तुति करने योग्योंमें सर्वश्रेष्ठ !
दुःआशयानां	-	मलिन अन्तःकरण
नृणां	-	मनुष्योंकी
विद्याश्रुत	-	उपासना, श्रवण,
अध्ययन	-	वेदाध्ययन
दान तपः	-	दान, तपस्या,
क्रियाभिः	-	तथा कर्मोंसे
तथा तुशुद्धिः-	-	वैसी शुद्धि तो नहीं
न		होती
यथा सत्त्व	-	जैसी सात्त्विक चित्त
आत्मनां		लोगोंकी
श्रवण सम्भृतया	-	कानोंमें पड़ते हुए
ते यशसि	-	आपके यशके द्वारा
प्रवृद्ध सत्	-	बढ़ी हुई सात्विक
श्रद्धया		श्रद्धासे
स्यात्	-	होती है ॥ ९ ॥

स्यान्नस्तवाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः
क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृदोह्यमानः ।
यः सात्वतैः समविभूतय आत्मवद्भि-
र्व्यूहेऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ॥ १० ॥

स्यात् नः ततव अङ्घ्रिः अशुभ आशय धूमकेतुः क्षेमाय यः मुनिभिः आर्द्रहृदि उह्यमानः यः सात्वतैः सम विभूतय आत्मवद्भिः व्यूहे अर्चितः सवनशः स्वः अतिक्रमाय ॥ १० ॥

अशुभ आशय - मलिन अन्तःकरणके लिए
धूमकेतुः - अग्निके समान
तव अङ्घ्रि - आपके चरण
नः क्षेमाय स्यात् - हमारे कल्याणकारी हों,
यः मुनिभिः - जो मननशील साधकों द्वारा
आर्द्रहृदि - द्रवित हृदयमें ढोये
उह्यमानः जाते हैं,
यः सात्वतैः - जो (पाञ्चरात्रो पासक) भक्तों द्वारा
सम विभूतय - समान ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए
सवनशः - प्रत्येक दिन (जिनका)
व्यूहे अर्चितः - चतुर्व्यूह (वासुदेव, संकर्षण,- प्रद्युम्न, अनिरुद्ध) रूपमें पूजा करते हैं
आत्मवद्भिः - जितेन्द्रिय पुरुषों द्वारा
स्वः- - स्वर्गका अतिक्रमण करके
अतिक्रमाय (ऊर्ध्वगतिके लिए जिनकी पूजा होती है) ॥१०॥

यश्चिन्त्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ
त्रय्या निरुक्तविधिनेश हविर्गृहीत्वा ।
अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां
जिज्ञासुभिःपरमभागवतैःपरीष्टः ॥ ११ ॥

यः चिन्त्यते प्रयतपाणिभिः अध्वर अग्नौ त्रय्या निरुक्त विधिना ईश हविः गृहीत्वा अध्यात्मयोग उत योगिभिः आत्ममायां जिज्ञासुभिःपरम भागवतैःपरीष्टः ॥ ११ ॥

ईश - स्वामी !
त्रय्या निरुक्त - वेदत्रयी द्वारा निर्दिष्ट
विधिना - विधिसे (याज्ञिक लोग)
प्रयत पाणिभिः - संयत हाथोंमें
हविः गृहीत्वा - हविष्य लेकर
यः अध्वर - जिनका यज्ञाग्निमें
अग्नौ
चिन्त्यते - चिन्तन करते हैं,
आत्ममायां - आपकी मायाके
जिज्ञासुभिः - जिज्ञासु
योगिभिः - योगियों द्वारा
अध्यात्मयोग - अध्यात्मयोगसे
उतपरम- - तथा श्रेष्ठ
भागवतैः भगवद्भक्तों द्वारा
परीष्टः - (जिन्हें) परम इष्ट माना जाता है ॥ ११ ॥

पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं
संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः ।
यः सुप्रणीतममुयार्हणमाददन्नो
भूयात् सदाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ॥ १२ ॥

पर्युष्टया तव विभो वनमालया इमं संस्पर्धिनी भगवती प्रति पत्निवत् श्रीः यः सुप्रणीतं अमुया अर्हणं आददत् नः भूयात् सदा अङ्घ्रि अशुभ आशय धूमकेतुः ॥ १२ ॥

विभो	- प्रभो !	**अमुया अर्हणं**	- इस (वासी वनमाला)का पूजन भी
तव इयं	- आपकी इस	**आददत्**	- स्वीकार करते हैं,
पर्युष्टया	- बासी	**नः सदा-**	- हमारे लिए सदा (उन
वनमालया	- वनमालासे	**अङ्घ्रि**	आपके) चरण
भगवती श्रीः	- भगवती लक्ष्मी	**आशय अशुभ**	- अन्तःकरणके मलके लिए
प्रतिपत्निवत्	- विरोधिनी सौतके समान	**धूमकेतुः**	- (भस्म करने वाले) अग्नि
संस्पर्धिनी	- स्पर्धा करती हैं; किन्तु	**भूयात्**	हों ॥ १२ ॥
यः सुप्रणीतं	- जो भावपूर्वक लायी		

केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको
यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेवचम्वोः ।
स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्
पादः पुनातु भगवन् भजतामघं नः ॥ १३ ॥

केतुः त्रिविक्रम युतः त्रिपतत् पताकः यः ते भय अभयकरः असुर देव चम्वोः स्वर्गाय साधुषु खलेषु इतराय भूमन् पादः पुनातु भगवन् भजतां अघं नः ॥ १२ ॥

त्रिविक्रम-युतः - (वामनावतारमें विराट् रूपसे) तीनों लोक नापते समय

केतुः - (जो आपका चरण) ध्वजा लगता था,

त्रिपतत् - (उससे) तीन धाराओंमें गिरती (गंगा)

पताकः - पताकायें लगती थीं

यः ते - जो आपके (चरण)

असुर चम्वोः - असुरसेनाके लिए

भयदेव-अभयकरः - भय तथा देवताओंको निर्भय करने वाले,

साधुषु स्वर्गाय - साधु पुरुषोंको ऊर्ध्व लोक

खलेषु-इतराय - दुष्टोंको दूसरे (अधोलोक देनेवाले हैं)

भूमन् भगवन् - सर्वव्यापक भगवान

पादः न-भजतां - (आपके वे) चरण हम भजन करने वालोंको

अघं पुनातु - पापोंसे पवित्र कर दें ॥ १३ ॥

नस्योतगाव इव यस्य वशे भवन्ति
ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः ।
कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोःपरस्य
शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥

नसि ओत गाव इव यस्य वशे भवन्ति ब्रह्मा आदयः तनुभृतः मिथुः अर्द्यमानाःकालस्य ते प्रकृति पुरुषयोःपरस्य शं नः तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥

ब्रह्मा आदयः - ब्रह्मा आदि

तनुभृतः - समस्त शरीर धारी

मिथुः अर्द्यमानाः - परस्पर ही टकराते हुए

नसिओत - नाककी रस्सीसे बँधे

गाव इव - बैलोंके समान

यस्य वशे-भवन्ति - जिसके वशमें हो जाते हैं

ते कालस्य - उन आपकाल रूप

प्रकृति पुरुषयोः - प्रकृति और पुरुष (जीव)से

परस्य-पुरुषोत्तमस्य - श्रेष्ठ पुरुषोत्तमके

चरणः नः - चरण हमें

शं तनोतु - शान्ति प्रदान करें ॥ १४ ॥

अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमाना-
मव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः ।
सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः
कालो गभीररय उत्तमपूरुषस्त्वम् ॥ १५ ॥

अस्य असि हेतुः उदय स्थिति संयमानां अव्यक्त जीव महतां अपि कालं आहुः सः अयं त्रिणाभिः अखिल अपचये प्रवृत्तःकालः गभीररय उत्तम पूरुषः त्वम् ॥ १५ ॥

अस्य उदय	- इस जगत्की उत्पत्ति,	**स अयं**	- वहये
स्थिति संयमानां	- स्थिति, संहारके	**त्रिणाभिः**	- (सर्दी, गर्मी, वर्षा) तीनके चक्रवाले
हेतुः असि	- (आप)कारण हैं,	**अखिल उपचये**	- सबको समेट लेने वाले
अव्यक्त जीव	- प्रकृति, पुरुष,	**गभीररय**	- गम्भीर वेग
महतां अपि	- महत्तत्त्वके भी	**कालः प्रवृत्तः**	- कालके रूपमें सक्रिय
कालं आहुः	- (नियन्त्रक) काल (आपको) शास्त्रने कहा है,	**त्वं उत्तम-पूरुषः**	- आप पुरुषोत्तम हैं ॥ १५ ॥

त्वत्तः पुमान् समधिगम्य यया स्ववीर्यं
धत्ते महान्तमिव गर्भममोघवीर्यः ।
सोऽयं तयानुगत आत्मन आण्डकोशं
हैमं ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम् ॥ १६ ॥

त्वत्तः पुमान् सम अधिगम्य यया स्ववीर्यं धत्ते महान्तं इव गर्भं अमोघवीर्यः सः अयं तया अनुगत आत्मन आण्डकोशं हैमं ससर्ज बहिः आवरणैः उपेतम् ॥ १६ ॥

त्वत्तः पुमान् - आपसे यह पुरुष
समधिगम्य - भली प्रकार एक होकर
अमोघवीर्यः - अमोघ वीर्य होकर
यया महान्तं - जिस मायामें
इव महत्तत्त्वरूप
गर्भं धत्ते - गर्भाधान करता है,
सः अयं - वही यह (महत्तत्त्व) रूप पुरुष
तया अनुगत - उस मायाके साथ होकर
बहिः आवरणैः - बाहरी (पंच महाभूत, अहंकार और मन इन सात) आवरणोंसे
उपेतं - युक्त
हैमं आण्डकोशं - स्वर्णिम ब्रह्माण्डकी
ससर्ज - रचना करता है ॥ १६ ॥

तत्तस्थुषश्च जगतश्च भवानधीशो
यन्माययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान् ।
अर्थाञ्जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो
येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म ॥ १७ ॥

तत् तस्थुषः च जगतः च भवान् अधीशः यत् मायया उत्थ गुण विक्रियय उपनीतान् अर्थान् जुषन् अपि हृषीकपते न लिप्तः ये अन्ये स्वतः परिहृतात् अपि बिभ्यति स्म ॥ १७ ॥

तत् हृषीकपते - अतः हृपीकेश
तस्थुषः च - स्थावरों तथा
जगतः च - जंगमोंके भी
भवान् अधीशः - आप स्वामी हैं,
मायया उत्थ - मायासे उत्पन्न
गुण विक्रियय - गुणोंके विकारोंसे
उपनीतान् - उपलब्ध कराये गये
अर्थान् जुषन् - भोगोंको भोगते हुए
अपि भी
न लिप्तः - उनसे लिप्त नहीं होते,
ये अन्ये - जो दूसरे हैं (वे)
स्वयं- - स्वयं उनका
परिहृतात् अपि त्याग करके भी
बिभ्यतिस्म - (उनसे आसक्तिके भयसे) डरते रहते हैं ॥ १७ ॥

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारि-
भ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः ।
पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणै
र्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्व्यः ॥ १८ ॥

स्माय अवलोक लव दर्शित भाव हारि भ्रूमण्डल प्रहित सौरत मन्त्र शौण्डैः पत्न्यः तु षोडश सहस्रं अनङ्गबाणैः यस्य इन्द्रियं विमथितुं करणैः न विभ्व्यः ॥ १८ ॥

स्माय अवलोक	- मुस्कान भरी तिरछी चितवनसे	**षोडश सहस्र**	- सोलह सहस्र
लव दर्शित	- किञ्चित् दिखालायी गयी	**पत्न्यः तु**	- पत्नियां तो
भाव हारि	- मनोहारिणी	**यस्य इन्द्रियं**	- जिनकी इन्द्रियोंका
भ्रूमण्डल प्रहित	- भौहोंके नचाने तथा	**विमथितुं**	- मन्थन करनेमें
सौरत मन्त्र	- सुरत आलापोंके	**करणैः**	- अपने साधनोंसे
शौण्डैः अनंग	- परिपुष्टकाम बाणोंसे	**विभ्व्यः न**	- सफल नहीं हुईं ॥ १८ ॥
बाणैः			

विभ्व्यस्तवामृत कथोदवहास्त्रिलोक्याः
पादावनेजसरितः शमलानि हन्तुम् ।
आनुश्रवं श्रुतिभिरङ्घ्रिजमङ्गसंगै-
स्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशन्ति ॥ १९ ॥

विभ्व्यः तव अमृत कथा उदवहाः त्रिलोक्याः पाद अवनेज सरितः शमलानि हन्तुं आनुश्रवं श्रुतिभिः अङ्घ्रिजं अंगसंगैः तीर्थद्वयं शुचिषदः त उपस्पृशन्ति ॥ १९ ॥

तव अमृत कथा - आपकी अमृतमयी कथा
उदवहाः - की नदी और
पाद अवनेज - चरण प्रक्षालनसे निकली
सरितः - सुरसरिता (दोनों)
त्रिलोक्याः- - तीनों लोकोंके पापोंको
शमलानि
हन्तुं विभ्व्यः - नाश करनेमें समर्थ हैं,
श्रुतिभिः - कानोंके द्वारा (कथाको)
आनुश्रवं - एक दूसरेसे सुनकर और
अङ्घ्रिजं - चरणोंसे निकली (गंगा)को
अंग संगैः - शरीरसे डुबकी लगाकर
तीर्थद्वयं - दोनों तीर्थोंका
उपस्पृशन्ति - (जो) सेवन करते हैं
त शुचिषदः - वे पवित्रतम हैं ॥ १९ ॥

बादरायणिरुवाच–

इत्यभिष्टूय विबुधैःसेशः शतधृतिर्हरिम्
अभ्यभाषत गोविन्दं प्रणम्याम्बरमाश्रितः ॥ २० ॥

इति अभिष्टूय विबुधैः स ईशः शतधृतिः हरिं अभ्य भाषत गोविन्दं प्रणम्य अम्बरं आश्रितः ॥ २० ॥

इति विबुधैः - इस प्रकार देवताओं तथा
सईशः - शंकर जीके साथ
हरिं गोविन्दं - श्री हरि गोविन्दकी
अभिष्टूय - स्तुति करके
प्रणम्य -प्रणाम करके
अम्बरं आश्रितः -आकाशमें स्थित होकर
अभ्य भाषत -अच्छी तरह बोले
॥ २० ॥

ब्रह्मोवाच–

भूमेर्भारावताराय पुरा विज्ञापितः प्रभो ।
त्वमस्माभिरशेषात्मंस्तत्तथैवोपपादितम् ॥ २१ ॥

भूमेः भार अवताराय पुरा विज्ञापितः प्रभो त्वं अस्माभिः अशेष आत्मन् तत् तथा एव उपपादितम् ॥ २१ ॥

अशेष आत्मन् - सर्वात्मा !
प्रभो - प्रभो
पुरा अस्माभिः - पहिले हम लोगों द्वारा
भूमेः भार - पृथ्वीका भार
अवताराय - उतारनेके लिए
विज्ञापितः - (आपसे) प्रार्थनाकी गई थी
तत् तथा एव - उसे वैसी ही
उपपादितं - (आपने) सम्पन्न कर दी ॥ २१ ॥

धर्मश्च स्थापितः सत्सु सत्यसन्धेषु वै त्वया ।
कीर्तिश्च दिक्षु विक्षिप्ता सर्वलोकमलापहा ॥ २२ ॥

धर्मः च स्थापितः सत्सु सत्यसन्धेषु वै त्वया कीर्तिः च दिक्षु विक्षिप्ता सर्वलोक मल अपहा ॥ २२ ॥

वै सत्य सन्धेषु - निश्चय सत्यपरायण
सत्सु च - सत्पुरुषोंके लिए ही
धर्मः स्थापितः - धर्मकी स्थापना कर दी,
सर्वलोक - सब लोकोंकी
मल अपहा - पाप नाशिनी
कीर्तिः च दिक्षु - (अपनी)कीर्ति भी दिशाओंमें
त्वया विक्षिप्ता - आपने फैला दी ॥२२॥

अवतीर्य यदोर्वंशे बिभ्रद् रूपमनुत्तमम् ।
कर्माण्युद्दामवृत्तानि हिताय जगतोऽकृथाः ॥ २३ ॥

अवतीर्य यदोः वंशे विभ्रत् रूपं अनुत्तमं कर्माणि उद्दामवृत्तानि हिताय जगतः अकृथाः ॥ २३ ॥

यदोः वंशे - यदुवंशमें
अवतीर्य - अवतार धारण करके
अनुत्तमं - जिससे श्रेष्ठ दूसरा नहीं है ऐसा
रूपं विभ्रत् - रूप धारण करके
जगतः हिताय - संसारके कल्याणके लिए
उद्दाम वृत्तानि - सीमातीत पराक्रम वाले
कर्माणि अकृथा- कर्म (आपने) किये ॥ २३ ॥

यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ ।
शृण्वन्तःकीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यञ्जसा तमः ॥ २४ ॥

यानि ते चरितानि ईश मनुष्याः साधवः कलौ शृण्वन्तःकीर्तयन्तः च तरिष्यन्ति अञ्जसा तमः ॥ २४ ॥

ईश	- स्वामी !	**शृण्वन्तः च**	- सुनेंगे और
यानि ते	- आपके जो चरित हैं	**कीर्तयन्तः च**	- वर्णन भी करेंगे (वे)
चरितानि	उनको	**अञ्जसा तमः**	- सरलतापूर्वक अज्ञानसे
कलौ साधवः	- कलियुगमें साधु पुरुष	**तरिष्यन्ति**	- पार हो जायंगे ॥२४॥
मनुष्याः			

यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम ।
शरच्छतं व्यतीताय पञ्चविंशाधिकं प्रभो ॥ २५ ॥

यदुवंशे अवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम शरत् शतं व्यतीताय पञ्चविंश अधिकं प्रभो ॥ २५ ॥

प्रभो पुरुषोत्तम	- प्रभो पुरुपोत्तम	**पञ्चविंश अधिकं**	- पच्चीस अधिक
यदुवंशे	- यदुवंशमें	**शतं शरत्**	- सौ वर्ष (एक सौ पच्चीस वर्ष)
भवतः-	- आपको अवतार लिए		
अवतीर्णस्य		**व्यतीताय**	- बीत गये ॥ २५ ॥

नाधुना तेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम् ।
कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम् ॥ २६ ॥

न आधुना ते अखिल आधार देवकार्य अवशेषितं कुलं च विप्र शापेन नष्टप्रायं अभूत् इदम् ॥ २६ ॥

अखिल आधार	- सर्वाधार !	**च इदं कुलं**	- और यह (यदु) कुल भी
ते अधुना	- आपके लिए अब	**विप्रशापेन**	- ब्राह्मणोंके शापसे
देवकार्य	- देवताओंका (कोई) काम	**नष्टप्रायं**	- प्रायः नष्ट
अवशेषितं न	- बचा नहीं है,	**अभूत्**	- हो चुका है ॥ २६ ॥

ततः स्वधामपरमं विशस्व यदि मन्यसे ।
सलोकाँल्लोकपालान् नः पाहि वैकुण्ठकिङ्करान् ॥ २७ ॥

ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे सलोकान् लोकपालान् नः पाहि वैकुण्ठ किंकरान् ॥ २७ ॥

ततः यदि-	- अतः यदि आपकी	**सलोकान्**	- लोकोंके साथ
मन्यसे	इच्छा हो	**नः वैकुण्ठ**	- हम वैकुण्ठके सेवक
स्वपरमं धाम	- अपने परम धाममें	**किंकरान्**	
विशस्व	- प्रवेश कीजिए	**लोकपालान्**	- लोकपालोंकी
		पाहि	- रक्षा कीजिए ॥ २७ ॥

श्रीभगवानुवाच–

अवधारितमेतन्मे यदात्थ विबुधेश्वर ।
कृतं वःकार्यमखिलं भूमेर्भारोऽवतारितः ॥ २८ ॥

अवधारितं एतत् मे यत् अत्थ विबुध ईश्वर कृतं वःकार्यं अखिलं भूमेः भारः अवतारितः ॥ २८ ॥

विबुध ईश्वर	- देवताओंके स्वामीः	**वः अखिलंकार्यं**	- आप लोगोंका सबकार्य
यत् अत्थ	- आप जो कहते हैं	**कृतं**	- कर दिया
एतत् मे	- यह मैंने	**भूमेः भारं**	- पृथ्वीका भार
अवधारितं	- सोच लिया है,	**अवतारितः**	- उतार दिया ॥ २८ ॥

तदिदं यादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् ।
लोकं जिघृक्षद् रुद्धं मे वेलयेव महार्णवः ॥ २९ ॥

तत् इदं यादवकुलं वीर्यशौर्य श्रिय उद्धतं लोकं जिघृक्षत् रुद्धं मे वेलया इव महा अर्णवः ॥ २९ ॥

तत् इदं	- सो यह	**लोकं-**	- लोकोंको ग्रस लेना चाहता
वीर्य शौर्य	- पराक्रम, शूरता,	**जिघृक्षति**	है,
श्रिय उद्धतं	- लक्ष्मीसे उद्धत	**महाअर्णवः**	- महासागरके
यादवकुलं	- यदुकुल	**वेला इव**	- किनारेके समान
		मे रुद्धं	- मैंने रोक रखा है ।।२९।।

यद्यसंहत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलम् ।
गन्तास्म्यनेन लोकोऽयमुद्वेलेन विनङ्क्ष्यति ।। ३० ।।

यदि असंहत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलं गन्ता अस्मि अनेन लोकः अयं उद्वेलेन विनङ्क्ष्यति ।। ३० ।।

यदि दृप्तानां	- यदि घमंडी	**गन्ताअस्मि**	- चला जाऊंगा तो
यदूनां विपुलं	- यादवोंके विशाल	**अयं लोकः**	- यह संसार
कुलं	कुलको	**उद्वेलेन**	- मर्यादाहीन होकर
असंहत्य	- नष्ट किये बिना	**विनङ्क्ष्यति**	- नष्ट हो जायेगा ।।३०।।

इदानीं नाश आरब्धः कुलस्य द्विजशापतः ।
यास्यामि भवनं ब्रह्मन्नेतदन्ते तवानघ ।। ३१ ।।

इदानीं नाश आरब्धः कुलस्य द्विज शापतः यास्यामि भवनं ब्रह्मन् एतत् अन्ते तव अनघ ।। ३१ ।।

अनघ ब्रह्मन्	- निष्पाप ब्रह्माजी !	**एतत् अन्ते**	- इसके समाप्त हो जानेपर
इदानीं-	- इस समय ब्राह्मणोंके	**तव भवनं**	- आपके धाम होकर
द्विजशापतः	शापसे	**यास्यामि**	- जाऊंगा ।। ३१ ।।
कुलस्य नाश	- इस कुलका नाश		
आरब्धः	- प्रारम्भ हो गया है		

श्रीशुक उवाच–

इत्युक्तो लोकनाथेन स्वयम्भूः प्रणिपत्य तम् ।
सह देवगणैर्देवः स्वधाम समपद्यत ॥ ३२ ॥

इति उक्तः लोकनाथेन स्वयम्भूः प्रणिपत्य तं सह देवगणैः देवः स्वधाम समपद्यत ॥ ३२ ॥

लोकनाथेन	- सर्व लोकेश्वरके	**स्वयम्भूः देवः**	- ब्रह्मदेवजी
इति उक्तः	- ऐसा कहनेपर	**देवगणैः सह**	- सुरगणोंके साथ
तं प्रणिपत्य	- उनको प्रणाम करके	**स्वधाम समपद्यत**	- अपने धाम पहुँच गये ॥ ३२ ॥

अथ तस्यां महोत्पातान् द्वारवत्यां समुत्थितान् ।
विलोक्य भगवानाह यदुवृद्धान् समागतान् ॥ ३३ ॥

अथ तस्यां महा उत्पातान् द्वारवत्यां समुत्थितान् विलोक्य भगवान् आह यदुवृद्धान् सम आगतान् ॥ ३३ ॥

अथ तस्यां द्वारवत्यां	- फिर उस द्वारिकापुरीमें	**विलोक्य सम-उपागतान्**	- देखकर अपने समीप आये
समुत्थितान्	- चारों ओर होते	**यदु वृद्धान्**	- यादववृद्धोंसे
महा उत्पातान्	- बड़े अपशकुनोंको	**भगवान् आह**	- भगवानने कहा ॥३३॥

श्रीभगवानुवाच–

एते वै सुमहोत्पाता व्युत्तिष्ठन्तीह सर्वतः ।
शापश्च नः कुलस्यासीद् ब्राह्मणेभ्यो दुरत्ययः ॥ ३४ ॥

एते वै सुमहा उत्पाता व्युत्तिष्ठन्ति इह सर्वतः शापः च नः कुलस्य आसीत् ब्राह्मणेभ्यः दुःअत्ययः ॥ ३४ ॥

वै इह एते - निश्चय यहां ये
सुमहा उत्पाता - अत्यन्त बड़े अपशकुन
सर्वतः- - चारों ओर हो रहे हैं
व्यतिष्ठन्ति

च नः कुलेभ्यः - और हमारे कुलको
दुः अत्ययः - दुष्पार
ब्राह्मणेभ्यः - ब्राह्मणोंसे
शापः आसीत् - शाप भी मिला है
॥ ३४॥

न वस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः ।
प्रभासं सुमहत्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव माचिरम् ॥ ३५ ॥

न वस्तव्यं इह अस्माभिः जिजीविषुभिः आर्यकाः प्रभासं सुमहत् पुण्यं यास्यामः अद्य एव मा चिरम् ॥ ३५ ॥

आर्यकाः - श्रेष्ठपुरुषोः
जिजीविषुभिः - जीनेकी इच्छा वाले
अस्माभिः - हम लोगोंको
इह न वस्तव्यं - यहां नहीं ठहरना चाहिए

अद्य एव - आज ही
सुमहत् पुण्यं - अत्यन्त पवित्र क्षेत्र
प्रभासं यास्यामः - हम प्रभास जायंगे
मा चिरम् - विलम्ब मतकीजिए
॥ ३५ ॥

यत्र स्नात्वा दक्षशापाद्गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् ।
विमुक्तः किल्बिषात् सद्यो भेजे भूयः कलोदयम् ॥ ३६ ॥

यत्र स्नात्वा दक्षशापात् गृहीतः यक्ष्मणा उडुराट् विमुक्तः किल्बिषात् सद्यः भेजे भूयः कला उदयम् ॥ ३६ ॥

दक्षशापात् - दक्षके शापसे
यक्ष्मणा गृहीतः - राजयक्ष्मासे ग्रस्त
उडुराट् यत्र - चन्द्रमाने जहां स्नान
स्नात्वा करके

सद्यः किल्बिषात् - तत्काल पापजन्य रोगसे
विमुक्तः भूयः - छूटकर फिर
कला उदयं भेजे - कलाओंका उदय प्राप्त किया ॥ ३६ ॥

वयं च तस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन् सुरान् ।
भोजयित्वोशिजो विप्रान् नानागुणवतान्धसा ॥ ३७ ॥

वयं च तस्मिन् आप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन् सुरान् भोजयित्वा उशिजः विप्रान् नाना गुणवता अन्धसा ॥ ३७ ॥

वयं च तस्मिन्	- हम लोग भी उस (प्रभास क्षेत्र) में	**नाना गुणवता**	- अनेक प्रकारके गुणवान
आप्लुत्य	- स्नान करके	**अन्धसा उशिजः**	- पकवानोंसे
पितॄन् सुरान्	- पितरों एवं देवताओंका	**विप्रान्**	श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको
तर्पयित्वा	- तर्पण करके	**भोजयित्वा**	- भोजन करावेंगे ॥ ३७ ॥

तेषु दानानि पात्रेषु श्रद्धयोप्त्वा महान्ति वै ।
वृजिनानि तरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम् ॥ ३८ ॥

तेषु दानानि पात्रेषु श्रद्धया उप्त्वा महान्ति वै वृजिनानि तरिष्यामः दानैः नौभिः इव अर्णवम् ॥ ३८ ॥

तेषु पात्रेषु	- उन सत्पात्रोंको	**वृजिनानि**	- संकटोंसे
श्रद्धया वै	- श्रद्धापूर्वक निश्चय दान	**दानैः**	- दान रूपी
दानानि		**नौभिः-**	- नौकासे समुद्रकी भाँति
उप्त्वा महान्ति	- करके महान्	**अर्णवं इव**	
		तरिष्यामः	- पार हो जायेंगे ॥ ३८ ॥

श्रीशुक उवाच–

एवं भगवताऽऽदिष्टा यादवाः कुलनन्दन ।
गन्तुं कृतधियस्तीर्थं स्यन्दनान् समयूयुजन् ॥ ३९ ॥

एवं भगवता आदिष्टा यादवाः कुलनन्दन गन्तुं कृतधियः तीर्थं स्यन्दानान् समयूयुजन् ॥ ३९ ॥

कुलनन्दन - कुलनन्दन परीक्षित !
एवं भगवता - इस प्रकार भगवान द्वारा
आदिष्टा- - आदेश पाकर यादव
यादवाः लोग
तीर्थं गन्तुं - (प्रभास) तीर्थ जानेका
कृतधियः - निश्चय करके
स्यन्दनान् - रथोंको
समयूयुजन् - भली प्रकार जोतने लगे ॥ ३९ ॥

तन्निरीक्ष्योद्धवो राजन् श्रुत्वा भगवतोदितम् ।
दृष्ट्वारिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णमनुव्रतः ॥ ४० ॥

तत् निरीक्ष्य उद्धवः राजन् श्रुत्वा भगवत उदितम् दृष्ट्वा अरिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णं अनुव्रतः ॥ ४० ॥

राजन् - राजन् !
नित्यं कृष्णं - श्रीकृष्णके नित्य
अनुव्रतः उद्धवः - अनुयायी उद्धव
तत् निरीक्ष्य - वह (यादवोंकी तैयारी) देखकर
भगवता उदितं - भगवानकी बात
श्रुत्वा - सुनकर
घोराणि- - घोर अपशकुनोंको
अरिष्टानि
दृष्ट्वा - देखकर ॥ ४० ॥

विविक्त उपसङ्गम्य जगतामीश्वरेश्वरम् ।
प्रणम्य शिरसा पादौ प्राञ्जलिस्तमभाषत ॥ ४१ ॥

विविक्त उपसंगम्य जगतां ईश्वर ईश्वरं प्रणम्य शिरसा पादौ प्राञ्जलिः तं अभाषत ॥ ४१ ॥

जगतां ईश्वर- - जगदीश्वरोंके भी
ईश्वरं स्वामी श्रीकृष्णके
विविक्त- - एकान्तमें समीप जाकर
उपसंगम्य
पादौ शिरसा - चरणोंपर सिर रखकर
प्रणम्य - प्रणाम करके
प्राञ्जलिः - हाथ जोड़कर
तं अभाषत - उनसे बोले ॥ ४१ ॥

उद्धव उवाच–

देवदेवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तन ।
संहृत्यैतत् कुलं नूनं लोकं सन्त्यक्ष्यते भवान् ।
विप्रशापं समर्थोऽपि प्रत्यहन्न यदीश्वरः ॥ ४२ ॥

देव देव ईश योगेश पुण्य श्रवणकीर्तन संहृत्य एतत् कुलं नूनं लोकं सन्त्यक्ष्यते भवान् विप्रशापं समर्थः अपि प्रत्यहन् न यत् ईश्वरः ॥ ४२ ॥

देवदेवईश - देव देवेश्वर !
योगेश - योगेश्वर !
पुण्य- - जिनकी लीला सुनकर
श्रवणकीर्तन और कीर्तन करके जीव पवित्र होता है
भवान् नूनं - वह आप निश्चय
एतत् कुलं- - इस कुलका संहार करके
संहृत्य
लोकं सन्त्यक्ष्यते - इस लोकका त्याग करेंगे
यत् ईश्वरः - क्योंकि आप ईश्वर हैं,
समर्थः अपि - समर्थ होते हुए भी
यत् विप्रशापं - क्योंकि ब्राह्मणोंके शापको
प्रत्यहन् न - मिटाया नहीं है
॥ ४२ ॥

नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणार्धमपिकेशव ।
त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ॥ ४३ ॥

न अहं तव अङ्घ्रि कमलं क्षण अर्धं अपि केशव त्यक्तुं सम उत्सहे नाथ स्वधाम नय मां अपि ॥ ४३ ॥

नाथकेशव - स्वामी केशव !
अहं तव - मैं आपके चरण
अङ्घ्रि कमलं कमलोंको
अर्धंक्षणं अपि - आधे क्षणके लिए भी
त्यक्तुं न सम- - छोड़नेका तनिक भी
उत्सहे उत्साह नहीं करता
मां अपि - (अतः) मुझे भी
स्वधाम नय - अपने धाम ले चलिये
॥ ४३ ॥

तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममंगलम् ।
कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः ॥ ४४ ॥

तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परम मंगलं कर्णपीयूषं आस्वाद्य त्यजति अन्य स्पृहां जनः ॥ ४४ ॥

कृष्ण - श्रीकृष्ण !
नृणांपरम- - मनुष्योंके लिए परम
मंगलं मंगलदायी
कर्ण पीयूष - कानोंके लिए अमृतके समान

तव विक्रीडितं - आपकी लीलाओंका
आस्वाद्य जनाः - स्वाद लेकर लोग
अन्य स्पृहां - दूसरी इच्छायें
त्यजति - त्याग देते हैं ॥ ४४ ॥

शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु ।
कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ॥ ४५ ॥

शय्या आसन अटन स्थान स्नान क्रीडा अशन आदिषु कथं त्वां प्रियं आत्मानं वयं भक्ताः त्यजे महि ॥ ४५ ॥

शय्या आसन - सोते-बैठते,
अटन स्थान - घूमते-खड़े,
स्नान क्रीड़ा - स्नान या खेलमें,
अशन आदिषु - भोजन आदिमें (साथ रहने वाले)

वयं भक्ताः - हम आपके भक्त
आत्मानं प्रियं - अपनेपरम प्रिय
त्वां कथं- - आपको कैसे
त्यजे महि छोड़ सकते हैं ॥ ४५ ॥

त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोऽलंकारचर्चिताः ।
उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥ ४६ ॥

त्वया उपभुक्त स्त्रक्गन्ध वासः अलंकार चर्चिताः उच्छिष्ट भोजिनः दासाः तव मायां जये महि ॥ ४६ ॥

त्वया उपभुक्त - आपकी उपभोगकी हुई
स्रक्गन्ध - माला, चन्दन,
वासः अलंकार - वस्त्र, आभूषणसे
चर्चिताः - अलंकृत
तव उच्छिष्ट भोजिनः - आपकां जूठा खाने वाले
दासाः - हमसेवक
मायां जये महि - मायाको जीत लेंगे ॥ ४६ ॥

वातरशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनः ।
ब्रह्माख्यं धाम ते यान्ति शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ ४७ ॥

वातरशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनः ब्रह्म आख्यं धाम ते यान्ति शान्ताः सन्यासिनः अमलाः ॥ ४७ ॥

यः वात रशना - जो दिगम्बर
श्रमणा ऋषयः - तपस्वी ऋषि,
ऊर्ध्व मन्थिनः - आजन्म ब्रह्मचारी,
शान्ताः अमलाः - शान्त, निर्मलचित्त,
सन्यासिनः - सर्वस्वत्यागी हैं (वे)
ते ब्रह्म आख्यं धामयान्ति - आपके ब्रह्म नामक धाम जाते हैं ॥ ४७ ॥

वयं त्विह महायोगिन् भ्रमन्तः कर्मवर्त्मसु ।
त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः ॥ ४८ ॥

वयं तु इह महायोगिन् भ्रमन्तः कर्म वर्त्मसु त्वत् वार्तया तरिष्यामः तावकैः दुस्तरं तमः ॥ ४८ ॥

महायोगिन् - महायोगिन् !
वयं तु इह - हम तो इस संसारमें
कर्म वर्त्मसु - कर्म मार्गमें
भ्रमन्तः - भटकते हुए
तावकैः त्वत् - आपके भक्तोंसे आपकी
वार्तया चर्चा करते हुए
दुस्तरं तमः - दुष्पार अज्ञानसे
तरिष्यामः - पार हो जायंगे ॥४८॥

स्मरन्तःकीर्तयन्तस्ते कृतानि गदितानि च ।
गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेलि यन्नृलोकविडम्बनम् ॥ ४९ ॥

स्मरन्तःकीर्तन्यतः ते कृतानि गदितानि च गति उत्स्मिते क्षणक्ष्वेलि यत् नृलोक विडम्बनम् ॥ ४९ ॥

ते गदितानि	- आपके उपदेश तथा	**क्षण क्ष्वेलि**	- सामयिक हास-परिहासको
यत् नृलोक	- जो मनुष्य लोकमें	**स्मरन्तः-**	- स्मरण एवं वर्णन करते
विडम्बनं कृतानि	- लीलायें (आपने) की हैं	**कीर्तयन्तः**	हुए (आपकी माया
च उत्स्मिते	- तथा मुस्कान		पार कर लेंगे) ॥४९॥

श्रीशुक उवाच–

एवं विज्ञापितो राजन् भगवान् देवकीसुतः ।
एकान्तिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत॥५०॥

एवं विज्ञापितः राजन् भगवान् देवकी सुतः एकान्तिनं प्रियं भृत्यं उद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥

राजन्	- राजन् !	**एकान्तिनं प्रियं**	- अनन्य प्यारे
एवं विज्ञापितः	- इस प्रकार प्रार्थना	**भृत्यं उद्धवं**	- सेवक उद्धवसे
	करनेपर	**समभाषत**	- कहा ॥ ५० ॥
भगवान् देवकी-	- भगवान देवकी-नन्दनने		
सुतः			

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

यदात्थ मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे ।
ब्रह्मा भवो लोकपालाः स्ववास मेऽभिकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥

यत् आत्थ मां महाभाग तत् चिकीर्षितं एव मे ब्रह्मा भवः लोकपालाः स्वः वास मे अभिकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥

महाभाग	- महाभाग उद्धव !	**ब्रह्मा भवः**	- ब्रह्मा, शिवजी तथा
यत् मां आत्थ	- जो मुझसे कह रहे हो	**लोकपालाः**	लोकपाल लोग
तत् मे	- वही मेरी करनेकी	**मे स्वः वासः**	- मेरा ऊपरी (अपने)
चिकीर्षितं	इच्छा है		लोकमें रहना
		अभिकाङ्क्षिणः	- चाहते हैं ॥ १ ॥

मया निष्पादितं ह्यत्र देवकार्यमशेषतः ।
यदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणार्थितः ॥ २ ॥

मया निष्पादितं हि अत्र देवकार्यं अशेषतः यत् अर्थं अवतीर्णः अहं अंशेन ब्रह्मणा अर्थितः ॥ २ ॥

हि ब्रह्मणा	- क्योंकि ब्रह्माकी प्रार्थनासे	**अत्र देवकार्यं**	- इस लोकमें वह
अर्थितः			देवताओंकाकाम
अहं अशेन	- मैं अपने अंश	**मया अशेषतः**	- मैंने सम्पूर्ण रूपसे
	(बलरामजी)के साथ	**निष्पादितं**	- पूरा कर दिया है
यत् अर्थं-	- जिस प्रयोजनके लिए		॥ २ ॥
अवतीर्णः	अवतरित हुआ था		

कुलं वै शापनिर्दग्धं नङ्क्ष्यत्यन्योन्यविग्रहात् ।
समुद्रः सप्तमेऽह्न्येतां पुरीं च प्लावयिष्यति ॥ ३ ॥

कुलं वै शाप निर्दग्धं नङ्क्ष्यति अन्यः अन्य विग्रहात् समुद्रः सप्तमे अह्नि एतां पुरीं च प्लावयिष्यति ॥ ३ ॥

वै शाप निर्दग्धं	- निश्चय शापसे जला हुआ	**सप्तमे अह्नि**	- आजसे सातवें दिन
कुलं अन्यः	- यदुकुल एक दूसरेके	**समुद्रः एतां**	- समुद्र
अन्य	साथ	**पुरीं च**	इस पुरीको भी
विग्रहात्	- युद्ध करके नष्ट हो	**प्लावयिष्यति**	- डुबा देगा ॥ ३ ॥
नङ्क्ष्यति	जायगा		

यर्ह्येवायं मया त्यक्तो लोकोऽयं नष्टमंगलः ।
भविष्यत्यचिरात् साधो कलिनापि निराकृतः ॥ ४ ॥

यर्हिएव अयं मया त्यक्तः लोकः अयं नष्ट मंगलः भविष्यति अचिरात् साधो कलिना अपि निराकृतः ॥ ४ ॥

साधो	- साधु उद्धव !	**अचिरात् अयं**	- तत्काल यह
यर्हिएव अयं	- जैसे ही यह लोक	**लोकः**	लोक
मया त्यक्तः	- मेरा द्वारा छोड़ा जायेगा	**कलिना अपि**	- कलियुग द्वारा भी
नष्ट मंगलः	- समस्त मंगल नष्ट हुआ	**निराकृतः**	- आक्रान्त
		भविष्यति	- हो जायेगा ॥ ४ ॥

न वस्तव्यं त्वयैवेह मया त्यक्ते महीतले ।
जनोऽधर्मरुचिर्भद्र भविष्यति कलौ युगे ॥ ५ ॥

न वस्तव्यं त्वया एव इह मया त्यक्ते महीतले जनः अधर्म रुचिः भद्र भविष्यति कलौयुगे ॥ ५ ॥

भद्र - कल्याणमय उद्धव !
मया महीतले - मेरे पृथ्वीको छोड़
त्यक्ते देनेपर
त्वया एव - तुमको भी
इह न वस्तव्यं - यहां नहीं रहना चाहिए
कलौयुगे - (क्योंकि) कलियुगमें
जनः रुचिः - लोगोंकी रुचि
अधर्म- - अधर्मकी हो जायेगी
भविष्यति ॥ ५ ॥

त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबन्धुषु ।
मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृग् विचरस्व गाम् ॥ ६ ॥

त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजन बन्धुषु मयि आवेश्य मनः सम्यक् समदृक् विचरस्व गाम् ॥ ६ ॥

त्वं तु - तुम तो
स्वजन बन्धुषु - आत्मीय सम्बन्धियोंका
सर्वं स्नेहं - सब स्नेह परित्याग
परित्यज्य करके
मयि सम्यक् - मुझमें भली प्रकार
मनः आवेश्य - चित्त प्रविष्ट करके
समदृक् - समदर्शी होकर
गां विचरस्व - पृथ्वीपर विचरण करो
॥ ६ ॥

यदिदं मनसा वाचा चक्षुभ्यां श्रवणादिभिः ।
नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥ ७ ॥

यत् इदं मनसा वाचा चक्षुभ्यां श्रवण आदिभिः नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि माया मनोमयम् ॥ ७ ॥

यत् इदं - यह जो जगत
मनसा वाचा - मनसे, वाणीसे,
चक्षुभ्यां - नेत्रोंसे
श्रवण आदिभिः - कर्णादि इन्द्रियोंसे
गृह्यमाणं च - ग्रहण होता है तथा
नश्वरं - नाशवान है उसे
मनोमयं - मनसे बनी
मायां विद्धि - माया समझो ॥ ७ ॥

पुंसोऽयुक्तस्य नानार्थो भ्रमः स गुणदोषभाक् ।
कर्माकर्मविकर्मेति गुणदोषधियो भिदा ॥ ८ ॥

पुंसः अयुक्तस्य नाना अर्थः भ्रमः स गुण दोष भाक् कर्म अकर्म विकर्म इति गुण दोष धियः भिदा ॥ ८ ॥

अयुक्तस्य पुंसः	- चंचल चित्त पुरुषको	**कर्म अकर्म**	- कर्तव्य, अकर्तव्य
नाना अर्थ भ्रमः	- पदार्थोंके अनेक होनेका भ्रम होता है,	**विकर्म इति**	- विशेष अधिकारीके कर्म यह
सगुण दोष भाक्	- वही गुण-दोषका भागी होता है,	**गुण दोष धियः**	- गुण-दोषमयी बुद्धिसे
		भिदा	- भेद होता है ॥ ८ ॥

तस्माद् युक्तेन्द्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत् ।
आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे ॥ ९ ॥

तस्मात् युक्त इन्द्रियग्रामः युक्तचित्त इदं जगत् आत्मन् ईक्षस्व विततं आत्मानं मयि अधीश्वरे ॥ ९ ॥

तस्मात्	- इसलिए	**आत्मन् विततं**	- अपने भीतर ही व्याप्त
युक्त इन्द्रियग्रामं	- इन्द्रिय समूहको संयमित करके	**ईक्षस्व**	- देखो और
		आत्मा नं मयि	- अपने आपको मुक्त
युक्त चित्तं	- एकाग्रचित्तसे	**अधीश्वरे**	- सर्वेश्वरमें (स्थित देखो)
इदं जगत्	- इस जगतको		॥ ९ ॥

ज्ञानविज्ञानसंयुक्त आत्मभूतः शरीरिणाम् ।
आत्मानुभवतुष्टात्मा नान्तरायैर्विहन्यसे ॥ १० ॥

ज्ञान विज्ञान संयुक्त आत्मभूतः शरीरिणां आत्म अनुभव तुष्ट आत्मा न अन्तरायैः विहन्यसे ॥ १० ॥

ज्ञान विज्ञान	- (शास्त्रीय) ज्ञान तथा (अनुभव रूप) विज्ञानसे	**तुष्ट आत्मा**	- सन्तुष्ट चित्त
		अन्तरायैः	- विघ्नोंसे
संयुक्त	- युक्त होकर	**विहन्यसे न**	- पीड़ित नहीं होगे
शरीरिणां	- समस्त देहधारियोंके		॥ १० ॥
आत्मभूतः	आत्म-स्वरूप होकर		

दोषबुद्ध्योभयातीतो निषेधान्न निवर्तते ।
गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथार्भकः ॥ ११ ॥

दोष बुद्ध्या उभय अतीतः निषेधात् न निवर्तते गुण बुद्ध्या च विहितं न करोति यथा अर्भकः ॥ ११ ॥

उभय अतीतः	- (गुण-दोष) दोनोंसे परे स्थित (ज्ञानी)	**च गुण बुद्ध्या**	- और गुण मानकर
दोष बुद्ध्या	- "यह दोष है" इस विचारसे	**विहितं न**	- (शास्त्र) विहित
निषेधात्	- (शास्त्र) निषिद्ध कर्मोंसे	**करोति**	कर्म नहीं करता
निवर्तते न	- निवृत्त नहीं होता	**यथा अर्भकः**	- जैसे बालक (स्वेच्छानुसार करता है) ॥ ११ ॥

सर्वभूतसुहृच्छान्तो ज्ञानविज्ञाननिश्चयः ।
पश्यन् मदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ॥ १२ ॥

सर्वभूत सुहृत् शान्तः ज्ञान विज्ञान निश्चयः पश्यन् मत् आत्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ॥ १२ ॥

सर्वभूत सुहृत्	- समस्त प्राणियोंका हितैषी,	**विश्वं मत्-आत्मकं**	- विश्वको मेरा स्वरूप
शान्तः	- शान्त	**पश्यन् वै**	- देखता हुआ निश्चय
ज्ञान विज्ञान	- ज्ञान और विज्ञानसे	**पुनः न**	- फिर (जन्म-मरणकी)
निश्चयः	दृढ़ निश्चय	**विपद्येत**	विपत्तिमें नहीं पड़ता ॥ १२ ॥

श्रीशुक उवाच–

इत्यादिष्टो भगवता महाभागवतो नृप ।
उद्धवः प्रणिपत्याह तत्त्वजिज्ञासुरच्युतम् ॥ १३ ॥

इति आदिष्टः भगवता महाभागवतः नृप उद्धवः प्रणिपत्य आह तत्त्व जिज्ञासुः अच्युतम् ॥ १३ ॥

नृप	- राजन् !	**उद्धवः-**	- उद्धवने दण्डवत् प्रणाम
भगवता इति	- भगवान द्वारा इसप्रकार	**प्रणिपत्य**	करके
आदिष्टः	- आदेश देनेपर	**तत्त्व**	- आत्मतत्त्वको
महाभागवतः	- परम भगवद् भक्त	**जिज्ञासुः**	- जाननेकी इच्छासे
		अच्युतं	- अच्युतसे कहा ॥ १३ ॥

उद्धव उवाच–

योगेश योगविन्यास योगात्मन् योगसम्भव ।
निःश्रेयसाय मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः ॥ १४ ॥

योगेश योग विन्यास योग आत्मन् योग सम्भव निःश्रेयसाय मे प्रोक्तः त्यागः सन्यास लक्षणः ॥ १४ ॥

योगेश	- योगेश्वर !	**मे निःश्रेयसाय**	- मेरेपरम कल्याणके लिए
योग-विन्यास	- योगके आद्य प्रवर्तक !	**सन्यास लक्षणं**	- सन्यास रूप
योग आत्मन्	- योग स्वरूप !	**त्यागः प्रोक्तः**	- त्यागका (आपने) उपदेश किया ॥ १४ ॥
योग सम्भव	- योगसे प्राप्त होने वाले प्रभु !		

त्यागोऽयं दुष्करो भूमन्कामानां विषयात्मभिः ।
सुतरां त्वयि सर्वात्मन्नभक्तैरिति मे मतिः ॥ १५ ॥

त्यागः अयं दुष्करः भूमन्कामानां विषय आत्मभिः सुतरां त्वयि सर्व आत्मन् अभक्तैः इति मे मतिः ॥ १५ ॥

भूमन् इति मे - भगवन् ! मैं ऐसा
मतिः समझता हूँ कि
अयं त्याग - यह त्याग
विषय आत्मनां - विषयोंमें लगे चित्त
कामानां - सकाम लोगोंके लिए
त्वयि सर्व आत्मन् - आप सर्वात्माके
अभक्तैः- - जो भक्त नहीं है उनके
सुतरां लिए तो और भी
दुष्करः - करना कठिन है
॥ १५ ॥

सोऽहं ममाहमिति मूढमतिर्विगाढ-
स्त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबन्धे ।
तत्त्वञ्जसा निगदितं भवता यथाहं
संसाधयामि भगवन्ननुशाधि भृत्यम् ॥ १६ ॥

सः अहं मम अहं इति मूढ मतिः विगाढ त्वत् मायया विरचित आत्मनि स अनुबन्धे तत्त्व अञ्जसा निगदितं भवता यथा अहं संसाधयामि भगवन् अनुशाधि भृत्यम् ॥ १६ ॥

स अहं - वह मैं
अहं मम इति - 'मैं, मेरा' इस प्रकारकी
त्वत् मायया - आपकी माया द्वारा
विरचित - बनाये
स अनुबन्धे आत्मनि - सम्बन्धियों सहित देहमें
विगाढ मतिः - अत्यत दृढ़ बुद्धि हो गया हूँ,
भवता निगदितं- - आप द्वारा उपदिष्ट
तत्त्वं यथा - तत्त्वको जैसे
अञ्जसा - सरलतासे, सिद्ध करलूँ
संसाधयामि (अपना लूँ वैसे)
भृत्यं अनुशाधि- - सेवकको समझाइये
॥ १६ ॥

सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन आत्मनोऽन्यं
वक्तारमीश विबुधेष्वपि नानुचक्षे ।
सर्वे विमोहितधियस्तव माययेमे
ब्रह्मादयस्तनुभृतो बहिरर्थभावाः॥ १७ ॥

सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन् आत्मनः अन्यं वक्तारं ईश विबुधेषु अपि न अनुचक्षे सर्वे विमोहित धियः तव मायया इमे ब्रह्मा आदयः तनुभृतः बहिः अर्थ भावाः ॥ १७ ॥

ईश ते आत्मन्	- स्वामी ! आप आत्म स्वरूप	**न अनुचक्षे**	- नहीं देखता हूँ
ते स्वदृश	- आप स्वयं प्रकाश	**इमे ब्रह्मा आदयः**	- ये ब्रह्मा आदि
आत्मनः अन्यं	- से भिन्न अपने लिए	**सर्वे तनुभृतः**	- सब देहधारी
सत्यस्य वक्तारं	- सत्यको समझाने वाला	**तव मायया**	- आपकी मायासे
विबुधेषु अपि	- देवताओंमें भी	**विमोहितधियः**	- अत्यन्त मोहित बुद्धि
		बहिः-	- बाहर पदार्थ मानने वाले
		अर्थभावाः	हैं ॥ १७ ॥

तस्माद् भवन्तमनवद्यमनन्तपारं
सर्वज्ञमीश्वरमकुण्ठविकुण्ठधिष्ण्यम् ।
निर्विण्णधीरहमुह वृजिनाभितप्तो
नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥

तस्मात् भवन्तं अनवद्यं अनन्तपारं सर्वज्ञं ईश्वरं अकुण्ठ विकुण्ठ धिष्ण्यं निर्विण्ण धीः अहं उह वृजिन अभितप्तः नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥

तस्मात् अहं	- इसलिए मैं	**सर्वज्ञ ईश्वरं**	- सर्वज्ञ, सर्व-समर्थ,
उहवृजिन	- निश्चित रूपसे इस (आवागमन) संकटसे	**अकुण्ठ**	- अप्रतिहत,
		विकुण्ठ धिष्ण्यं	- वैकुण्ठवासी
अभितप्तः	- अत्यन्त सन्तप्त	**नरसखं नारायणं**	- नरके सखा नारायणकी
निर्विण्णधीः	- विरक्त चित्त होकर	**शरणं प्रपद्ये**	- शरण लेता हूँ ॥ १८ ॥
भवन्तं अनवद्यं	- आप निर्दोष		
अनन्तपारं	- अपरिछिन्न,		

श्रीभगवानुवाच–

प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः ।
समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥ १९ ॥

प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्व विचक्षणाः सम उद्धरन्ति हि आत्मानं आत्मना एव अशुभ आशयात् ॥ १९ ॥

लोकतत्त्व - लोकके तत्त्वको जाननेमें
विचक्षणाः मनुजा - निपुण मनुष्य
हि प्रायेण - क्योंकि प्रायः
अशुभ आशयात् - मलिन अन्तःकरणसे
आत्मना एव - अपने आप ही
आत्मानं- - अपनेको पूर्णतः निकाल
समउद्धरन्ति लेते हैं ॥ १९ ॥

आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ।
यत् प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविन्दते ॥ २० ॥

आत्मनः गुरुः आत्म एव पुरुषस्य विशेषतः यत् प्रत्यक्ष अनुमानाभ्यां श्रेयः असाः अनुविन्दते ॥ २० ॥

पुरुषस्य - मनुष्यका
विशेषतः - विशेष रूपसे
आत्मनः गुरुः - अपना गुरु
आत्म एव - वह स्वयं है
यत् प्रत्यक्ष - क्योंकि प्रत्यक्ष और
अनुमानाभ्यां - अनुमानोंके द्वारा
असाः श्रेयः - यह कल्याण
अनुविन्दते - प्राप्त करता है ॥२०॥

पुरुषत्वे च मां धीराः सांख्ययोगविशारदाः ।
आविस्तरां प्रपश्यन्ति सर्वशक्त्युपबृंहितम् ॥ २१ ॥

पुरुषत्वे च मां धीराः सांख्य योग विशारदाः आविः तरां प्रपश्यन्ति सर्व शक्ति उपबृंहितम् ॥ २१ ॥

सांख्ययोग - सांख्य और योगमें
विशारदाः धीराः - निपुण धैर्यशाली लोग
सर्वशक्ति - (मन, इन्द्रियादि) सम्पूर्ण शक्तियोंसे
उपबृंहितं - समन्वित
मां च पुरुषत्वे - मुझे भी पुरुष रूपमें
आविस्तरां - (अपने भीतर) स्थित
प्रपश्यन्ति - साक्षात्कार कर लेते हैं ॥ २१ ॥

एकद्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथापदः ।
बह्व्यः सन्तिपुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया ॥ २२ ॥

एक द्वि त्रि चतुष्पादः बहुपादः तथा अपदः बह्व्यः सन्ति पुरः सृष्टाः तासां मे पौरुषी प्रिया ॥ २२ ॥

एक द्वित्रिचतुः - एक, दो, तीन, चार
पादः बहुपादः - पैरवाले, बहुत पैरवाले
तथा अपदः - तथा बिना पैर वाले
बह्व्यः पुरः - बहुत सी पुरियां (शरीर)
सृष्टाः - (मैंने) उत्पन्नकी हैं,
तासां मे - उनमें मुझे
पौरुषी प्रिया - पुरुष (शरीर) प्रिय है ॥ २२ ॥

अत्र मां मार्गयन्त्यद्धा युक्ता हेतुभिरीश्वरम् ।
गृह्यमाणैर्गुणैर्लिङ्गैरग्राह्यमनुमानतः ॥ २३ ॥

अत्र मां मार्गयन्ति अद्धा युक्ता हेतुभिः ईश्वरं गृह्यमाणैः गुणैः लिंगैः अग्राह्यं अनुमानतः ॥ २३ ॥

अत्र मां ईश्वरं - इस (शरीर) में मुझ ईश्वरको
गुणैः लिंगैः - गुणों तथा चिन्होंसे
अग्राह्यं - ग्रहण न होनेवाले किन्तु
अनुमानतः - अनुमानके द्वारा
गृह्यमाणं - ग्रहण होने वालेको
युक्ता हेतुभिः - संयत चित्त लोग कारणोंके द्वारा
अद्धा मार्गयन्ति - साक्षात् ढूँढ़ते हैं ॥ २३ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
अवधूतस्य संवादं यदोरमिततेजसः ॥ २४ ॥

यत्र अपि उदाहरन्ति इमं इतिहासं पुरातनं अवधूतस्य संवादं यदोः अमित तेजसः ॥ २४ ॥

अत्र अपि - इस विषयमें भी
इमं पुरातनं - यह प्राचीन
अवधूतस्य - अवधूतका तथा
अमित तेजसः - असीम तेजस्वी
यदोः संवादं - यदुका संवाद रूप
इतिहासं - इतिहासका
उदाहरन्ति - उदाहरण दिया जाता है ॥ २४ ॥

अवधूतं द्विजं कञ्चिच्चरन्तमकुतोभयम् ।
कविं निरीक्ष्यतरुणं यदुः पप्रच्छ धर्मवित् ॥ २५ ॥

अवधूतं द्विजं कञ्चित् चरन्तं अकुतः भयं कविं निरीक्ष्य तरुणं यदुः पप्रच्छ धर्मवित् ॥ २५ ॥

कञ्चित् अवधूतं - किसी अवधूत
तरुणं द्विजं - युवा ब्राह्मणको
अकुतः भयं - सब ओरसे निर्भय
चरन्तं कविं - घूमते बुद्धिमान
निरीक्ष्य - देखकर
धर्मवित् यदुः - धर्मज्ञ यदुने
पप्रच्छ - पूछा ॥ २५ ॥

यदुरुवाच—

कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन्नकर्तुः सुविशारदा ।
यामासाद्य भवाँल्लोकं विद्वांश्चरति बालवत् ॥ २६ ॥

कुतः बुद्धिः इयं ब्रह्मन् अकर्तुः सुविशारदा यां आसाद्य भवान् लोकं विद्वान् चरति बालवत् ॥ २६ ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन् !
अकर्तुः - कुछ न करने वाले (आपको)
इयं सुविशारदा - यह अत्यन्त निपुणा
बुद्धिः कुतः - बुद्धि कहांसे (मिल गयी)
भवान् यां आसाद्य - आप जिसे पाकर
लोकं विद्वान् - लोक रीतिको जानते हुए भी
बालवत् चरति - बालकके समान व्यवहार करते हैं ॥ २६ ॥

प्रायो धर्मार्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः ।
हेतुनैव समीहन्ते आयुषो यशसः श्रियः ॥ २७ ॥

प्रायः धर्म अर्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः हेतुना एव सम ईहन्ते आयुषः यशसः श्रियः ॥ २७ ॥

प्रायः मानवाः - प्रायः मनुष्य
धर्म अर्थकामेषु - धर्म, अर्थ, काममें
च विवित्सायां - तथा तत्त्वजिज्ञासामें
आयुषः यशसः - आयु, यश तथा
श्रियः हेतुना- - लक्ष्मी (पाने) के
एव- कारणसे ही
समईहन्ते - पूरी चेष्टा करते हैं ॥ २७ ॥

त्वं तु कल्पः कविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः ।
न कर्ता नेहसे किञ्चिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ २८ ॥

त्वं तु कल्पः कविः दक्षः सुभगः अमृत भाषणः न कर्ता न ईहसे किञ्चित् जड़ उन्मत्त पिशाचवत् ॥ २८ ॥

त्वं तु कल्पः - आप तो समर्थ,
कविः दक्षः - बुद्धिमान, निपुण,
सुभगः - सुन्दर,
अमृत भाषणः - मधुर भाषी हैं (फिर भी)
न कर्ता - न कुछ करते हैं
न किञ्चित्- - न कोई इच्छा करते हैं,
ईहसे
जड़ उन्मत्त - मूर्ख, पागल,
पिशाचवत् - प्रेताविष्टसे (रहते) हैं ॥ २८ ॥

जनेषु दह्यमानेषुकामलोभदवाग्निना ।
न तप्यसेऽग्निना मुक्तोगंगाम्भःस्थ इव द्विपः ॥ २९ ॥

जनेषु दह्यमानेषु काम लोभ दवाअग्निना न तप्यसे अग्निना मुक्तः गंगा अम्भःस्थ इव द्विपः ॥ २९ ॥

काम लोभ	- काम और लोभकी	**अग्निना मुक्तः**	- इस अग्निसे बचे हुए
दव अग्निना	- दावाग्निसे	**गंगा अम्भःस्थ**	- गंगा जलमें खड़े
जनेषु दह्यमानेषु	- लोगोंके जलते रहनेपर भी	**द्विपः इव**	- हाथीके समान
		तप्यसे न	- (आप) संतप्त नहीं होते हो ॥ २९ ॥

त्वं हि नः पृच्छतां ब्रह्मन्नात्मन्यानन्दकारणम् ।
ब्रूहि स्पर्शविहीनस्य भवतःकेवलात्मनः ॥ ३० ॥

त्वं हि नः पृच्छतां ब्रह्मन् आत्मनि आनन्दकारणं ब्रूहि स्पर्श विहीनस्य भवतःकेवल आत्मनः ॥ ३० ॥

हि त्वं स्पर्श विहीनस्य	- क्योंकि आप (ऐन्द्रिक भोगोंके) स्पर्शोंसे रहित	**आत्मनि आनन्द कारणं पृच्छतां**	- अपने चित्तमें आनन्दका कारण पूछने वाले
केवल आत्मनः	- अकेले ही अपनेआप हैं	**नः त्वं ब्रूहि**	- मुझे आप बतलाइये ॥ ३० ॥
ब्रह्मन् भक्तः	- ब्रह्मन् ! आपसे		

श्रीभगवानुवाच—

यदुनैवं महाभागो ब्रह्मण्येन सुमेधसा ।
पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रयावनतं द्विजः ॥ ३१ ॥

यदुना एवं महाभागः ब्रह्मण्येन सुमेधसा पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रय अवनतं द्विजः ॥ ३१ ॥

महाभागः - महाभाग
ब्रह्मण्येन - ब्राह्मणभक्त
सुमेधसा - उत्तमबुद्धि
प्रश्रय अवनतं - नम्रतासे झुके हुए
यदुना सभाजितः - यदु द्वारा सत्कार करके
एवं पृष्टः - इस प्रकार पूछे जानेपर
द्विजः प्राह - वे ब्राह्मण बोले

॥ ३१ ॥

ब्राह्मण उवाच–

सन्ति मे गुरवो राजन् बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः ।
यतो बुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह ताञ्छृणु ॥ ३२ ॥

सन्ति मे गुरवः राजन् बहवः बुद्धि उपाश्रिताः यतः बुद्धिं उप आदाय मुक्तः अटामि इह तान् शृणु ॥ ३२ ॥

राजन् - राजन् !
बुद्धि - (अपनी) बुद्धिका
उपाश्रिताः आश्रय लेकर
मे बहवः - (बनाये गये) मेरे बहुतसे
गुरवः सन्ति - गुरु हैं,
यतः बुद्धिं उप आदाय - जिनसे समझ लेकर
इह मुक्तः - इस संसारमें मुक्त
अटामि होकर घूमता हूँ
तान् शृणु - उनको सुनो ॥ ३२ ॥

पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः ।
कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतंगो मधुकृद्गजः ॥ ३३ ॥

पृथिवी वायुः आकाशं आपः अग्निः चन्द्रमा रविः कपोतः अजगरः सिन्धुः पतंगः मधुकृत् गजः ॥ ३३ ॥

पृथिवी वायुः - पृथ्वी, वायु,
आकाशं आपः - आकाश, जल,
अग्निः चन्द्रमा - अग्नि, चन्द्रमा,
रविः कपोतः - सूर्य,
अजगरः कबूतर, अजगर,
सिन्धुः पतंगः - समुद्र, पतिंगा,
मधुकृत् गजः - मधुमक्खी, हाथी ॥३३॥

मधुहा हरिणो मीनः पिंगला कुररोऽर्भकः ।
कुमारी शरकृत् सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥ ३४ ॥

मधुहा हरिणः मीनः पिंगला कुररः अर्भकः कुमारी शरकृत् सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥ ३४ ॥

मधुहा हरिणः - शहद निकालने वाला, हरिण,
मीनः पिंगला - मछली, पिंगला वेश्या,
कुररः अर्भकः - चील पक्षी, बालक,
कुमारी शरकृत् - कुमारी कन्या, बाण बनाने वाला,
सर्पः ऊर्णनाभिः - सर्प, मकड़ी,
सुपेश कृत् - रेशमका कीड़ा ॥३४॥

एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः ।
शिक्षा वृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः ॥ ३५ ॥

एते मे गुरवः राजन् चतुः विंशतिः आश्रिताः शिक्षा वृत्तिभिः एतेषां अन्वशिक्षं इह आत्मनः ॥ ३५ ॥

राजन् - राजन् !
एते चतुः विंशतिः - इन चौबीस
गुरवः मे आश्रितः - गुरुओंका मैंने आश्रय लिया है
एतेषां वृत्तिभिः - इनके व्यवहारकी
शिक्षा - शिक्षासे
इह आत्मनः - यहां अपनेको (मैंने)
अन्वशिक्षं - सिखलाया है ॥ ३५ ॥

यतो यदनुशिक्षामि यथा वा नाहुषात्मज ।
तत्तथा पुरुषव्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥ ३६ ॥

यतः यत् अनुशिक्षामि यथा वा नाहुष आत्मज तत् तथा पुरुष व्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥ ३६ ॥

नाहुष आत्मज - नहुष नन्दन ययातिके कुमार !
पुरुष व्याघ्र - पुरुष सिंह !
यत् यत् वा यथा - जिससे जो या जैसे
अनुशिक्षामि - शिक्षा लेता हूँ
तत् तथा ते - उसे वैसे तुमसे
कथयामि निबोध - बतलाता हूँ, सुनो ॥ ३६ ॥

भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः ।
तद् विद्वान् न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥ ३७ ॥

भूतैः आक्रम्यमाणः अपि धीरः दैववश अनुगैः तत् विद्वान् न चलेत् मार्गात् अनु अशिक्षं क्षितेः व्रतम् ॥ ३७ ॥

दैववश अनुगैः	- प्रारब्धके वश उसके अनुसार चलने वाले	**तत् विद्वान्**	- यह जानने वाला
भूतैः-	- प्राणियोंके द्वारा	**मार्गात् न-**	- (अपने) पथसे विचलित
आक्रम्यमाणः-	आक्रमण किये जानेपर	**चलेत्**	न हो
अपि	भी	**क्षितेः व्रतं**	- यह पृथ्वीका व्रत
		अन्वशिक्षं	- (उससे मैंने) सीखा है ॥ ३७ ॥

शश्वत्परार्थसर्वेहःपरार्थैकान्तसम्भवः ।
साधुः शिक्षेत भूभृत्तो नगशिष्यःपरात्मताम् ॥ ३८ ॥

शश्वत् पर अर्थ सर्व इहःपर अर्थै एकान्त सम्भवः साधुः शिक्षेत भूभृतः नग शिष्यःपर आत्मताम् ॥ ३८ ॥

शश्वत्	- निरन्तर	**नग शिष्यः**	- पर्वतोंसे शिक्षा लेने वाला
पर अर्थ सर्व-	- दूसरोंके लिये ही	**भूभृतः**	- पर्वतोंसे (यह)
इहः	समस्त चेष्टा करना,	**पर आत्मतां**	- दूसरेके लिए अपनेको रखना
एकान्त पर अर्थ	- एकमात्र दूसरोंके लिए ही	**साधु शिक्षेत्**	- भली भांति सीखे ॥ ३८ ॥
सम्भवः	- जीवन धारण करना		

प्राणवृत्त्यैव सन्तुष्येन्मुनिर्नैवेन्द्रियप्रियैः ।
ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः ॥ ३९ ॥

प्राण वृत्त्या एव सन्तुष्येत् मुनिः न एव इन्द्रिय प्रियैः ज्ञानं यथा न नश्येत न अवकीर्येत वाक् मनः ॥ ३९ ॥

मुनिः - मननशील साधक
प्राणवृत्या एव - प्राण धारण मात्रसे ही
सन्तुष्येत् - सन्तुष्ट रहे
इन्द्रिय प्रियैः - इन्द्रियोंके प्रिय (विषयों) में
न एव - नहीं ही (लगे)
यथा ज्ञानं ननश्येत - जिससे ज्ञान नष्ट न हो,
वाङ्मनः - वाणी और मनको
न अवकीर्येत - बिखेरे (संसार व्यवहारमें लगावे) नहीं ॥ ३९ ॥

विषयेष्वाविशन् योगी नानाधर्मेषु सर्वतः ।
गुणदोषव्यपेतात्मा न विषज्जेत वायुवत् ॥ ४० ॥

विषयेषु आविशन् योगी नाना धर्मेषु सर्वतः गुणदोष व्यपेत आत्मा न विषज्जेत वायुवत् ॥ ४० ॥

वायुवत् - वायुके समान
सर्वतः नाना- - सब कहीं अनेक प्रकारके
धर्मेषु धर्म (गुण) वाले
विषयेषु - विषयोंमें
आविशन् योगी - प्रवेश करता हुआ भी साधक
गुण-दोष - (उनके) गुण-दोषसे
व्यपेत आत्मा - चित्तको पृथक रखकर
विषज्जेत न - (उनमें) आसक्त न हो ॥ ४० ॥

पार्थिवेष्विह देहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः ।
गुणैर्न युज्यते योगी गन्धैर्वायुरिवात्मदृक् ॥ ४१ ॥

पार्थिवेषु इह देहेषु प्रविष्टः तत् गुण आश्रयः गुणैः न युज्यते योगी गन्धैः वायुः इव आत्मदृक् ॥ ४१ ॥

पार्थिवेषु - पृथ्वीके गुण वाले
गन्धैः - गन्धसे
वायुः इव - वायुके समान
आत्मदृक्योगी - आत्मदर्शी योगी
देहेषु प्रविष्टः - शरीरमें आकर
तत् गुण आश्रयः - उसके गुणोंका सहारा लेकर भी
गुणैः न-युज्यते - गुणोंसे युक्त नहीं होता ॥ ४१ ॥

अन्तर्हितश्च स्थिरजङ्गमेषु
ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन ।
व्याप्त्याव्यवच्छेदमसङ्गमात्मनो
मुनिर्नभस्त्वं विततस्य भावयेत् ॥ ४२ ॥

अन्तः हितः च स्थिर जंगमेषु ब्रह्म आत्म भावेन समन्वयेन व्याप्त्या अव्यवच्छेदं असंगं आत्मनः मुनिः नभस्त्वं विततस्य भावयेत् ॥ ४२ ॥

स्थिर जंगमेषु	- स्थावर-जंगम (सब प्राणियों) में
अन्तः च हितः	- भीतर और बाहर
ब्रह्म-	- ब्रह्मात्मैक्य भावसे
आत्म भावेन	
समन्वयेन	- सम्पूर्ण रूपसे सर्वत्र
व्याप्त्या	- व्याप्त होनेके कारण
मुनिः आत्मनः	- मननशील साधक आत्माको
अव्यवच्छेदं	- अखण्ड
असंगं	- संगहीन
नभस्त्वं विततं	- आकाशके समान व्यापक
भावयेत	- भावना करे ॥ ४२ ॥

तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः ।
न स्पृश्यते नभस्तद्वत् कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥ ४३ ॥

तेजः अबन् न मयैः भावैः मेघाद्यैः वायुना इरितैः न स्पृश्यते नभः तद्वत्कालसृष्टैः गुणैः पुमान् ॥ ४३ ॥

तेजः अबन्	- आगके जलनेसे
न मयैः भावैः	- जलके बरसनेसे,
मेघ आद्यैः	- बादल आदिसे,
वायुना ईरितैः	- वायुके चलनेसे
नभः न स्पृश्यते	- आकाश स्पर्शित नहीं होता,
कालसृष्टैः गुणैः	- कालके द्वारा उत्पन्न गुणोंसे
तद्वत् पुमान्	- उसी प्रकार आत्मा (अछूता रहता है) ॥ ४३॥

स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् ।
मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥

स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धः माधुर्यः तीर्थ भूः नृणां मुनिः पुनाति अपां मित्रं ईक्ष उपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥

प्रकृतितः अपां	- स्वभावसे ही जल (जैसे)	**मुनिः मित्रं**	- (ऐसे ही) मननशील साधक सौहार्द्र,
स्वच्छः स्निग्धः	- स्वच्छ, चिकना,	**ईक्ष उपस्पर्श**	- दर्शन, स्पर्श तथा
माधुर्यः	- मधुर तथा	**कीर्तनैः पुनाति**	- वर्णनसे पवित्र करता है ॥ ४४ ॥
नृणां तीर्थ भूः	- मनुष्योंको पवित्र करने वाला है		

तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः ।
सर्वभक्षोऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥ ४५ ॥

तेजस्वी तपसा दीप्तः दुर्धर्षः उदरभाजनः सर्वभक्षः अपि युक्त आत्मा न आदत्ते मलं अग्निवत् ॥ ४५ ॥

युक्त आत्मा	- संयत चित्त साधक	**सर्वभक्षः अपि**	- सब कुछ खा लेनेपर भी
तेजस्वी	- तेजस्वी,	**अग्निवत्**	- अग्निके समान
तपसा दीप्तः	- तपस्यासे प्रज्वलित,	**मलं न आदत्ते**	- (वस्तुओंके) दोष नहीं ग्रहण करता ॥ ४५ ॥
दुर्धर्षः	- दुर्धर्ष (जो दबाया न जासके)		
उदर भाजन	- केवल पेट रूपी पात्र वाला		

क्वचिच्छन्नः क्वचित् स्पष्ट उपास्यः श्रेय इच्छताम् ।
भुङ्क्ते सर्वत्र दातॄणां दहन् प्रागुत्तराशुभम् ॥ ४६ ॥

क्वचित् छन्नः क्वचित् स्पष्ट उपास्यः श्रेय इच्छतां मुङ्क्ते सर्वत्र दातॄणां दहन् प्राक् उत्तर अशुभम् ॥ ४६ ॥

क्वचित् छन्नः - (अग्निके ही समान) कहीं अप्रकट
क्वचित् स्पष्टः - और कहीं प्रकट रूपसे
उपास्यः श्रेय - सेवा करने वालेका कल्याण
इच्छतां - चाहता हुआ
दातृणां - दाताके
प्राक् उत्तर - पिछले और आगेके
अशुभं दहन् - पापोंको भस्म करता हुआ
भुङ्क्ते - भोजन करता है

॥ ४६ ॥

स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः ।
प्रविष्ट ईयते तत्तत्स्वरूपोऽग्निरिवैधसि ॥ ४७ ॥

स्वमायया सृष्टं इदं सत् असत् लक्षणं विभुः प्रविष्ट ईयते तत् तत् स्व रूपः अग्निः इव एधसि ॥ ४७ ॥

विभुः - सर्वव्यापकपरमात्मा
स्वमायया - अपनी मायासे
सृष्टं इदं - निर्मित इस
सत् असत्-लक्षणं - कारण-कार्य रूप संसारमें
एधसि अग्निः इव - ईंधनमें अग्निके समान
तत् तत् स्वरूपः - उन्हीं उन्हींके रूपमें
ईयते - चेष्टा करते हैं

॥ ४७ ॥

विसर्गाद्याः श्मशानान्ता भावा देहस्य नात्मनः ।
कलानामिव चन्द्रस्य कालेनाव्यक्तवर्त्मना ॥ ४८ ॥

विसर्ग आद्याः श्मशान अन्ता भावा देहस्य न आत्मनः कलानां इव चन्द्रस्यकालेन अव्यक्त वर्त्मना ॥ ४८ ॥

अव्यक्त वर्त्मना - अस्पष्ट गति
कालेन - कालके द्वारा
चन्द्रस्य-कलानां इव - चन्द्रमाकी कलाओंके समान
विसर्ग आद्याः - गर्भाधानसे लेकर
श्मशान अन्ता - श्मशानमें (मरनेपर) समाप्त होने वाली
भावा देहस्य - सब अवस्थायें शरीरकी होती हैं
आत्मनः न - आत्माकी नहीं

॥ ४८ ॥

कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ ।
नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथार्चिषाम् ॥ ४९ ॥

कालेन हि ओघ वेगेन भूतानां प्रभव अप्ययः नित्याः अपि न दृश्येते आत्मनः अग्नेः यथा अर्चिषाम् ॥ ४९ ॥

यथा अग्नेः	-	जैसे अग्निकी	**भूतानां**	-	प्राणियोंका
अर्चिषां	-	लपटें (निकलती-मिटती रहती हैं)	**प्रभव अप्ययः**	-	उत्पत्ति-विनाश
			नित्यः अपि	-	सदा होते रहनेपर भी
हि कालेन	-	क्योंकि कालके	**दृश्येते न**	-	दीखता नहीं है ॥ ४९ ॥
ओघ वेगेन	-	प्रवाहके वेगसे			

गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुञ्चति ।
न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा इव गोपतिः ॥ ५० ॥

गुणैः गुणान् उपादत्ते यथाकालं विमुञ्चति न तेषु युज्यते योगी गोभिः गा इव गोपतिः ॥ ५० ॥

गोपतिः	-	सूर्य	**गुणैः गुणान्**	-	इन्द्रियों द्वारा गुणों (विषयों)को
गोभिः गाइव	-	किरणोंसे जैसे पृथ्वीका (रस खींचते तथा)	**योगी उपादत्ते**	-	योगी ग्रहण करता है (और त्यागता है)
यथाकालं	-	समय आनेपर उसे	**तेषु युज्यते न**	-	पर उनसे आसक्त नहीं होता ॥ ५० ॥
विमुञ्चति		छोड़ते हैं			

बुध्यते स्वे न भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः ।
लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत् ॥ ५१ ॥

बुध्यते स्वे न भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः लक्ष्यते स्थूलमतिभिः आत्मा च अवस्थितो अर्कवत् ॥ ५१ ॥

स्थूलमतिभिः	- स्थूल बुद्धिवालों द्वारा
अर्कवत्-	- सूर्यके समान बाहर
अवस्थितो	स्थित
च स्वेन भेदेन	- होकर भी अपने भेद प्रतिविम्बके
व्यक्तिस्थ इव	- एक एक घटमें होनेके समान
तद्गतः	- उसीमें प्रविष्ट
लक्ष्यते	- दीखनेसे
आत्मा बुध्यते	- आत्मा (देहस्थ) जान पड़ता है ॥ ५१ ॥

नातिस्नेहः प्रसंगो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् ।
कुर्वन् विन्देत सन्तापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥

न अति स्नेहः प्रसंगः वा कर्तव्यः क्वअपि केनचित् कुर्वन् विन्देत सन्तापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥

क्वअपिकेनचित्	- कहीं किसीके भी साथ
अति स्नेहः वा	- बहुत प्रेम अथवा
प्रसंगः	- आसक्ति
न कर्तव्यः	- नहीं करना चाहिए
कुर्वन् दीनधीः	- करनेपर दीन बुद्धि
कपोत इव	- कबूतरके समान
सन्तापं विन्देत	- सन्ताप पाता है ॥ ५२ ॥

कपोतः कश्चनारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ।
कपोत्या भार्यया सार्धमुवास कतिचित् समाः ॥ ५३ ॥

कपोतः कश्चन अरण्ये कृत नीडः वनस्पतौ कपोत्या भार्यया सार्धं उवास कतिचित् समाः ॥ ५३ ॥

कश्चन कपोतः	- कोई कबूतर
भार्यया-	- पत्नी कबूतरीके साथ
कपोत्या सार्धं	
अरण्ये वनस्पतौ	- वनमें वृक्षपर
कृतनीडः	- घोंसला बनाकर
कतिचित् समाः	- कुछ वर्ष
उवास	- बसा रहा ॥ ५३ ॥

कपोतौ स्नेहगुणितहृदयौ गृहधर्मिणौ ।
दृष्टिं दृष्ट्याङ्गमंगेन बुद्धिं बुद्ध्या बबन्धतुः ॥ ५४ ॥

कपोतौ स्नेह गुणित हृदयौ गृहधर्मिणी दृष्टिं दृष्ट्या अंग अंगेन बुद्धिं बुद्ध्या बबन्धतुः ॥ ५४ ॥

स्नेह गुणित	- बढ़ते स्नेहसे	**दृष्ट्या दृष्टिं**	- दृष्टिसे (कबूतरकी) दृष्टि,
हृदयौ	- हृदय वाली	**अंगेन अंग**	- शरीरसे शरीर,
गृह धर्मिणी	- गृहस्थ धर्मवाली	**बुद्ध्या बुद्धिं**	- बुद्धिसे बुद्धिको
कपोतौ	- कबूतरीने	**बबन्धतुः**	- बाँध लिया ॥ ५४ ॥

शय्यासनाटनस्थानवार्ताक्रीडाश्सनादिकम् ।
मिथुनीभूय विस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ॥ ५५ ॥

शय्या आसन अटन स्थान वार्ता क्रीडा अशन आदिकं मिथुनी भूय विस्रब्धौ चेरतुः वनराजिषु ॥ ५५ ॥

शय्या आसन	- सोने-बैठने,	**मिथुनी भूय**	- दोनों एक साथ मिलकर
अटन स्थान	- घूमने-रुकने,	**विस्रब्धौ**	- (परस्पर) विश्वास करके
वार्ता क्रीडा	- बातचीत, खेलने	**वन राजिषु**	- जंगलोंमें
आदिषु	- आदिमें	**चेरतुः**	- घूमते थे ॥ ५५ ॥

यं यं वाञ्छति सा राजंस्तर्पयन्त्यनुकम्पिता ।
तं तं समनयत् कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेन्द्रियः ॥ ५६ ॥

यं यं वाञ्छति सा राजन् तर्पयन्ति अनुकम्पिता तं तं सम अनयत् कामं कृच्छ्रेण अपि अजित इन्द्रियः ॥ ५६ ॥

राजन्	- राजन् !	**कामं वाञ्छन्ति**	- भोगोंको चाहती थी
अनुकम्पिता	- कृपा पूर्ण होकर	**अजित इन्द्रियः**	- इन्द्रियोंको न जीतने वाला (वह)
तर्पयन्ति	- (पतिको) तृप्त करती हुई	**तं तं कृच्छ्रेण अपि**	- वह (भोग) कष्टसे भी
सा यं यं	- वह (कबूतरी) जिन-जिन	**सम अनयत्**	- पूरा ले आता था ॥ ५६ ॥

कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णतीकाल आगते ।
अण्डानि सुषुवे नीडे स्वपत्युः सन्निधौ सती ॥ ५७ ॥

कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णतीकाल आगते अण्डानि सुषुवे नीडे स्वपत्युः सन्निधौ सती ॥ ५७ ॥

सती कपोती - साध्वी कबूतरीने
प्रथमं गर्भं - पहिला गर्भ
गृह्णती - धारण करके
काल आगते - समय आनेपर
स्वपत्युः सन्निधौ -अपने पतिके समीप
नीडे अण्डानि - घोंसलेमें अण्डे
सुषुवे - उत्पन्न किये ॥ ५७ ॥

तेषुकाले व्यजायन्त रचितावयवा हरेः ।
शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिःकोमलाङ्गतनूरुहाः ॥ ५८ ॥

तेषुकाले व्यजायन्त रचित अवयवा हरेः शक्तिभिः दुर्विभाव्याभिःकोमल अंग तनूरुहाः ॥ ५८ ॥

हरेः- - श्री हरिकी अचिन्त्य
दुर्विभाव्याभिः
शक्तिभिः - शक्ति द्वारा
अवयवा रचिताः - अंगोंका निर्माण होजानेपर
तेषुकाले - उन (अण्डों)से समयपर
कोमल अंग - कोमल शरीर तथा
तनूरुहाः - रोओं वाले (शावक)
व्यजायन्त - उत्पन्न हुए ॥ ५८ ॥

प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ दम्पती पुत्रवत्सलौ ।
शृण्वन्तौ कूजितं तासां निर्वृतौ कलभाषितैः ॥ ५९ ॥

प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ दम्पती पुत्र वत्सलौ शृण्वन्तौ कूजितं तासां निर्वृत्तौ कल भाषितैः ॥ ५९ ॥

तासां कलभाषितैः - उनके मधुर स्वरसे
कूजितं शृण्वन्तौ - कूजनको सुनते हुए
निर्वृत्तौ दम्पती - आह्लादित दम्पति
पुत्र वत्सलौ - पुत्रोंपर वात्सल्य रखने वाले
प्रजाः पुपुषतुः - सन्तानोंका पोषण करते थे ॥ ५९ ॥

तासां पतत्त्रैः सुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्धचेष्टितैः ।
प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौ मुदमापतुः ॥ ६० ॥

तासां पतत्त्रैः सुस्पर्शैः कूजितैः मुग्ध चेष्टितैः प्रति उद्गमैः अदीनानां पितरौ मुदं आपतुः ॥ ६० ॥

तासां सुस्पर्शैः	- उनके सुखद स्पर्श वाले	**अदीनानां**	- बिना किसी दुःखके
पतत्त्रैः	- पंखोंसे,	**प्रति उद्गमैः**	- अपने पास (फुदक) आनेसे
कूजितैः	- बोलनेसे	**पितरौ**	- माता-पिता
मुग्ध चेष्टितैः	- भोली चेष्टाओंसे तथा	**मुदं आपतुः**	- आनन्द पाते थे ॥६०॥

स्नेहानुबद्धहृदयावन्योन्यं विष्णुमायया ।
विमोहितौ दीनधियौ शिशून पुपुषतुः प्रजाः ॥ ६१ ॥

स्नेह अनुबद्ध हृदयाः अन्यः अन्यं विष्णु मायया विमोहितौ दीनधियौ शिशुन् पुपुषतुः प्रजाः ॥ ६१ ॥

विष्णु मायया	- भगवान विष्णुकी मायासे	**स्नेह अनुबद्ध**	- स्नेहसे दृढ़ बँधे
विमौहितौ	- अत्यन्त मोहित	**हृदयाः**	- हृदय वाले
दीनधियौ	- व्यग्रचित्त	**प्रजाः शिशून्**	- अपनी सन्तान शिशुओंका
अन्यः अन्यं	- एक दूसरेसे	**पुपुषतुः**	- पोषण करते थे ॥६१॥

एकदा जग्मतुस्तासामन्नार्थं तौ कुटुम्बिनौ ।
परितःकानने तस्मिन्नर्थिनौया चेरतुश्चिरम् ॥ ६२ ॥

एकदा जग्मतुः तासां अन्न अर्थं तौ कुटुम्बिनौ परितःकानने तस्मिन् अर्थिनौ चेरतुः चिरम् ॥ ६२ ॥

एकदा तौ	- एक बार वे	**तस्मिन्कानने**	- उस वनमें
कुटुम्बिनौ	- परिवार वाले	**अर्थिनौ**	- चारेके लिए
तासां अन्न अर्थं	- उनके आहारके लिए	**चिरं परितः**	- देर तक चारों ओर
जग्मतुः	- गये और	**चेरतुः**	- घूमते रहे ॥ ६२ ॥

दृष्ट्वा ताँल्लुब्धकः कश्चिद् यदृच्छातो वनेचरः ।
जगृहे जालमातत्य चरतः स्वालयान्तिके ॥ ६३ ॥

दृष्ट्वा तान् लुब्धकः कश्चित् यदृच्छतः वनेचरः जगृहे जालं आतत्य चरतः स्व आलय अन्तिके ॥ ६३ ॥

यदृच्छतः	- संयोगवश	**अन्तिके चरन्तं**	-समीप घूमते
वनेचर कश्चित्	- वनमें घूमते हुए किसी	**दृष्ट्वा**	-देखकर
लुब्धकः	- बहेलिये ने	**जालं आतत्य**	-जाल फैलाकर
तान् स्व आलय	- उन (शावकों)को अपने निवासके	**जगृहे**	- पकड़ लिया ॥ ६३ ॥

कपोतश्च कपोती च प्रजापोषे सदोत्सुकौ ।
गतौ पोषणमादाय स्वनीडमुपजग्मतुः ॥ ६४ ॥

कपोतः च कपोती च प्रजापोषे सदा उत्सुकौ गतौ पोषणं आदाय स्वनीडं उपजग्मतुः ॥ ६४ ॥

प्रजापोषे	- सन्तानोंके पोषणके लिए	**गतौ पोषणं**	- चारा लेने गये थे
सदा उत्सुकौ	- सदा उत्सुक	**आदाय**	- लेकर
कपोतः च	- कबूतर और	**स्वनीडं**	- अपने घोंसलेके
कपोती च	- कबूतरी भी	**उपजग्मतुः**	- समीप लौट आये ॥६४॥

कपोती स्वात्मजान् वीक्ष्य बालाकाञ्जालसंवृतान् ।
तानभ्यधावत् क्रोशन्ती क्रोशतो भृशदुःखिता ॥ ६५ ॥

कपोती स्व आत्मजान् वीक्ष्य बालकान् जाल संवृतान् तान् अभ्यधावत् क्रोशन्ती क्रोशतः भृश दुःखिता ॥ ६५ ॥

कपोती	- कबूतरी	**क्रोशतः वीक्ष्य**	- चिल्लाते हुए देखकर
स्व आत्मजान्	- अपने पुत्र	**भृश दुःखिता**	- अत्यन्त दुःखी होकर
बालकान्	- शावकोंको	**क्रोशन्ती**	- चिल्लाई हुई
जाल संवृतान्	- जालमें पूरे फँसे	**तान्-**	- उनकी ओर दौड़ पड़ी
		अभ्यधावत्	॥ ६५ ॥

सासकृत् स्नेहगुणिता दीनचित्ताजमायया ।
स्वयं चाबध्यत शिचा बद्धान् पश्यन्त्यपस्मृतिः ॥ ६६ ॥

सा असकृत् स्नेह गुणिता दीन चित्ता अजमायया स्वयं च अबध्यत शिचा बद्धान् पश्यन् अपस्मृतिः ॥ ६६ ॥

असकृत् स्नेह	- निरन्तर स्नेहकी	**अपस्मृतिः**	- स्मृति भ्रष्ट होनेसे
गुणिता सा	- रस्सीसे बँधी वह	**बद्धान् पश्यन्**	- बँधे हुए (शावकों) को देखती हुई
अज मायया	- अजन्मा पुरुषकी मायासे	**स्वयं च**	- स्वयं भी
दीन चित्ता	- दुःखी चित्त	**शिचा अबध्यत**	- जालमें बँध गयी ॥ ६६ ॥

कपोतश्चात्मजान् बद्धानात्मनोऽप्यधिकान् प्रियान् ।
भार्यां चात्मसमां दीनो विललापातिदुःखितः ॥ ६७ ॥

कपोतः च आत्मजान् बद्धान् आत्मनः अपि अधिकान् प्रियान् भार्यां च आत्मसमां दीनः विललाप अति दुःखितः ॥ ६७ ॥

कपोतः च	- कबूतर भी	**प्रियां भार्यां च**	- प्यारी पत्नीको भी
आत्मनः अपि	- अपने शरीरसे भी	**बद्धान्**	- बँध जानेसे
अधिकान् प्रियान्	- अधिक प्रिय	**दीनः अति**	- दीन अत्यन्त दुःखी होकर
आत्मजान्	- अपने पुत्रोंको	**दुःखितः**	
च आत्म समां	- तथा अपने शरीरके समान	**विललाप**	- विलाप करने लगा ॥ ६७ ॥

अहो मे पश्यतापायमल्पपुण्यस्य दुर्मतेः ।
अतृप्तस्याकृतार्थस्य गृहस्त्रैवर्गिको हतः ॥ ६८ ॥

अहो मे पश्यत अपायं अल्प पुण्यस्य दुर्मतेः अतृप्तस्य आकृतार्थस्य गृहः त्रैवर्गिकः हतः ॥ ६८ ॥

अहो मे	- हाय ! मुझ अल्प-	**अकृतार्थस्य**	- आशायें पूरी हुए विना ही
अल्पपुण्यस्य	पुण्य	**त्रैवर्गिकः**	- अर्थ, धर्म,काम देने वाला
दुर्मतेः	- दुर्बुद्धि	**गृहः हतः**	- घर नप्ट हो गया ॥ ६८ ॥
अतृप्तस्य	- अतृप्तका		
अपायं पश्यत	- विनाश तो देखो कि		

अनुरूपानुकूला च यस्य मे पतिदेवता ।
शून्ये गृहे मां सन्त्यज्य पुत्रैः स्वर्याति साधुभिः ॥ ६९ ॥

अनुरूपा अनुकूला च यस्य मे पतिदेवता शून्ये गृहे मां सन्त्यज्य पुत्रैः स्वः याति साधुभिः ॥ ६९ ॥

अनुरूपा	- अपने अनुरूप	**मां शून्ये गृहे**	- मुझे सूने घरमें
च अनुकूला	- तथा अनुकूल रहने वाली	**परित्यज्य**	- छोड़कर
पति देवता	- पतिको देवता मानने वाली	**साधुभिः पुत्रैः**	- साधु पुत्रोंके साथ
यस्य मे	- जो मेरी (पत्नी)	**स्वः याति**	- स्वर्ग जा रही है ॥६९॥

सोऽहं शून्ये गृहे दीनो मृतदारो मृतप्रजः ।
जिजीविषे किमर्थं वा विधुरो दुःखजीवितः ॥ ७० ॥

सः अहं शून्ये गृहे दीनः मृतदारः मृत प्रजः जिजीविषे किं अर्थं वा विधुरः दुःख जीवितः ॥ ७० ॥

मृतदारः - पत्नीके मरनेपर
मृत प्रजः - सन्तानोंके मरनेपर
विधुरः दुःख - विधुर होकर दुःखसे
जीवितः जीनेके लिए

शून्ये गृहे - सूने घरमें
वा किं अर्थं - भला किस प्रयोजनसे
सः अहं दीनः - वह मैं दुःखिया
जिजीविषे - जीवित रहनेकी इच्छा करुंगा ॥ ७० ॥

तांस्तथैवावृताञ्छिग्भिर्मृत्युग्रस्तान् विचेष्टतः ।
स्वयं च कृपणः शिक्षु पश्यन्नप्यबुधोऽपतत् ॥ ७१ ॥

तान् तथा एव आवृतान् शिक्भिः मृत्युग्रस्तान् विचेष्टतः स्वयं च कृपणः शिक्षु पश्यन् अपि अबुधः अपतत् ॥ ७१ ॥

तान् तथा एव - उनको उस प्रकार ही
शिक्भिः - जालसे पूरे जकड़े हुए
आवृतान्
विचेष्टतः - तड़फड़ाते हुए
मृत्युग्रस्तान् - मौतसे ग्रस्त

पश्यन् अपि - देखते हुए भी
कृपणः अबुधः -वह दुःखी अज्ञानी
स्वयं च शिक्षु -अपने आप जालमें
अपतत् - गिर पड़ा ॥ ७१ ॥

तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः कपोतं गृहमेधिनम् ।
कपोतकान् कपोतीं च सिद्धार्थः प्रययौ गृहम् ॥ ७२ ॥

तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः कपोतं गृहेमेधिनं कपोतकान् कपोतीं च सिद्ध अर्थः प्रयया गृहम् ॥ ७२ ॥

क्रूरः लुब्धकः - निर्दय बहेलिया
तं गृहमेधिनं - उस गृहस्थ
कपोतं- - कबूतर, कबूतरके बच्चों
कपोतकान्
च कपोतीं लब्ध्वा - कबूतरीको पाकर
सिद्ध अर्थः - प्रयोजन पूरा हो जानेसे
गृहं प्रययौ - घर चला गया
॥ ७२ ॥

एवं कुटुम्ब्यशान्तात्मा द्वन्द्वारामः पतत्त्रिवत् ।
पुष्णन् कुटुम्बं कृपणः सानुबन्धोऽवसीदति ॥ ७३ ॥

एवं कुटुम्बि अशान्त आत्मा द्वन्द्व आरामः पतत्त्रिवत् पुष्णन् कुटुम्बं कृपणः स अनुबन्धः अवसीदति ॥ ७३ ॥

एवं अशान्त - इसी प्रकार अशान्त
आत्मा चित्त
द्वन्द्व आरामः - (सुख-दुःखवादि) द्वन्द्वोंमें सुख मानने वाला
कुटुम्बी- - कुटुम्बनान पक्षीकी भाँति
पतत्त्रिवत्
कृपणः - दीन होकर
कुटुम्बं पुष्णन् - अपने कुटुम्बका पोषण करता हुआ
स अनुबन्धः - सम्बन्धियोंके साथ
अवसीदति - कष्ट पाता रहता है
॥ ७३ ॥

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ।
गृहेषु खगवत् सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥ ७४ ॥

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारं अपावृतं गृहेषु खगवत् सक्तः तं आरूढ़च्युतं विदुः ॥ ७४ ॥

यः अपावृतं - जो खुले हुए
मुक्तिद्वारं - मोक्षके द्वार रूप
मानुषं लोकं - मनुष्य शरीर पाकर
प्राप्य
खगवत् - पक्षीकी भांति
गृहेषुसक्तः - घरमें आसक्त होता है
तं आरूढ़च्युतं - (शास्त्र) उसे 'आरूढ़च्युत'
विदुः - जानते हैं ॥ ७४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोध्यायः

ब्राह्मण उवाच–

सुखमैन्द्रियकं राजन् स्वर्गे नरक एव च ।
देहिनां यद् यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद् बुधः ॥ १ ॥

सुखं ऐन्द्रियकं राजन् स्वर्गे नरक एव च देहिनां यत् यथा दुःखं तस्मात् न इच्छेत तत् बुधः ॥ १ ॥

राजन्	- राजन् !	**स्वर्गे व नरक**	- स्वर्ग या नरकमें भी
देहिनां-	- प्राणियोंको जैसे जो	**एव च**	(मिलता है)
यथा-दुःखं	दुःख (स्वयं मिलता है)	**तस्मात् बुधः**	- इसलिए बुद्धिमान
ऐन्द्रियकं सुखं	- इन्द्रियों द्वारा होने वाला सुख	**तत् न इच्छेत**	- उसकी इच्छा न करे ॥ १ ॥

ग्रासं सुमृष्टं विरसं महान्तं स्तोकमेव वा ।
यदृच्छयैवापतितं ग्रसेदाजगरोऽक्रियः ॥ २ ॥

ग्रासं सुमृष्टं विरसं महान्तं स्तोकं एव वा यदृच्छयाएव आपतितं ग्रसेत् आजगरः अक्रियः ॥ २ ॥

यदृच्छया एव	- प्रारब्धवश अपने आप ही	**महान्तं स्तोकं एव**	- बहुत या थोड़ा ही
आपतितं	- स्वयं आगया		
सुमृष्टं ग्रासं	- बहुत उत्तम भोजन	**ग्रसेत्**	- खा ले
वा विरसं	- अथवा नीरस	**आजगरः**	- अजगरके समान
		अक्रियः	- निष्क्रिय रहे ॥ २ ॥

शयीताहानि भूरीणि निराहारोऽनुपक्रमः ।
यदि नोपनमेद् ग्रासो महाहिरिव दिष्टभुक् ॥ ३ ॥

शयीत अहानि भूरीणि निराहारः अन् उपक्रमः यदि न उपनमेत् ग्रासः महा अहिः इव दिष्ट भुक् ॥ ३ ॥

यदि ग्रासः - यदि भोजनं
उपनमेत् न - समीप (स्वयं) न आवे तो
महा अहिः इव - अजगरके समान
दिष्ट भुक् - (उसे) प्रारब्ध भोग मानकर

भूरीणि अहानि - बहुत दिनों तक
निराहारः - बिना कुछ खाये
अन् उपक्रमः - कोई प्रयत्न किये बिना
शयीत - सोता रहे ॥ ३ ॥

ओजःसहोबलयुतं बिभ्रद् देहमकर्मकम् ।
शयानो वीतनिद्रश्च नेहेतेन्द्रियवानपि ॥ ४ ॥

ओजः सहः बलयुतं बिभ्रत् देहं अकर्मकं शयानः वीतनिद्रः च न ईहेत इन्द्रियवान् अपि ॥ ४ ॥

ओजः सहः - मनोबल, इन्द्रिय बल,
बलयुतं देहं - शरीर बलयुक्त शरीर
बिभ्रत् - धारण किये तथा

इन्द्रियवान् अपि - सब इन्द्रियोंके सक्षम होनेपर भी
वीतनिद्रः च - बिना नींदके ही
अकर्मकं शयानः - निष्क्रिय पड़ा हुआ
ईहेत न - चेष्टा न करे ॥ ४ ॥

मुनिः प्रसन्नगम्भीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः ।
अनन्तपारो ह्यक्षोभ्यः स्तिमितोद इवार्णवः ॥ ५ ॥

मुनिः प्रसन्न गम्भीरः दुर्विगाह्यः दुरत्ययः अनन्तपारः हि अक्षोभ्यः स्तिमित उदइव अर्णवः ॥ ५ ॥

मुनिः अर्णवः - मनन शील साधक
इव समुद्रके समान
प्रसन्न गम्भीरः - निर्मल, गम्भीर,
दुर्विगाह्यः - (उसका भाव) अथाह
दुरत्ययः - दुष्पार
अनन्तपारः - असीम (होना चाहिए)
हि स्तिमित- - क्योंकि स्थिर जलके
उद समान
अक्षोभ्यः - (किसी कारण उसमें) क्षोभ उत्पन्न करना सम्भव नहीं होना चाहिए ॥ ५ ॥

समृद्धकामो हीनो वा नारायणपरो मुनिः ।
नोत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भिरिव सागरः ॥ ६ ॥

समृद्धिकामः हीनः वा नारायणपरः मुनिः न उत्सर्पेत न शुष्येत सरित्भिः इव सागरः ॥ ६ ॥

सरित्भिः - सरिताओं द्वारा
समृद्धिकामः - बढ़ना चाहता हो
वा हीनः - या उनसे रहित हो
सागरः इव - समुद्रके समान
नारायणपरः- - नारायणपरायण मुनि
मुनिः
न उत्सर्पेत - न हर्षोत्फुल बने,
न शुष्येत् - न (शोकसे) सूखे ॥६॥

दृष्टवा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः ।
प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतंगवत् ॥ ७ ॥

दृष्टवा स्त्रियं देवमायां तत् भावैः अजित इन्द्रियः प्रलोभितः पतति अन्धे तमसि अग्नौ पतंगवत् ॥ ७ ॥

देवमायां स्त्रियं - भगवानकी मायारूपा स्त्रीको
दृष्ट्वा अजित - देखकर इन्द्रियोंको
इन्द्रियः न जीतने वाला
तत् भावैः - उसके हाव-भावसे
प्रलोभितः - प्रलोभित होकर
अग्नौ पतंगवत् - अग्निमें पतिंगेके समान
अन्धे तमसि - घोर अन्धकार (अज्ञान)में
पतति - गिरता है ॥ ७ ॥

योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादि-

द्रव्येषु मायारचितेषु मूढः ।

प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या

पतंगवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥ ८ ॥

योषित् हिरण्य आभरण अम्बर आदिद्रव्येषु माया रचितेषु मूढ़ः प्रलोभित आत्मा हि उपभोग बुद्ध्या पतंगवत् नश्यति नष्ट दृष्टिः ॥ ८ ॥

योषित् हिरण्य - स्त्री, स्वर्ण,
आभरण अम्बर - आभूषण, वस्त्र,
आदि माया-रचितेषु - आदि माया-निर्मित
द्रव्येषु हि - द्रव्योंमें क्योंकि
उपभोग बुद्ध्या - उनका उपभोग करनेका विचार है,
मूढ़ः प्रलोभित आत्मा - मूर्खका चित्त प्रलुब्ध हो जाता है
नष्ट दृष्टिः - (अतः) अन्धा होकर
पतंगवत् नश्यति - पतिंगेके समान नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

स्तोकं स्तोकं ग्रसेद् ग्रासं देहो वर्तेत यावता ।

गृहानहिंसन्नातिष्ठेद् वृत्तिं माधुकरीं मुनिः ॥ ९ ॥

स्तोकं स्तोकं ग्रसेत् ग्रासं देहः वर्तेत यावता गृहात् अहिंसत् न अतिष्ठेत् वृत्तिं माधुकरीं मुनिः ॥ ९ ॥

मुनिः माधुकरीं वृत्तिं - मननशील साधक भौंरेके व्यवहारके समान
गृहात् अहिंसत् - गृहस्थोंको बिना कष्ट दिये
न अतिष्ठेत् - वहाँ ठहरे बिना
यावता देहः-वर्तेत - जितनेसे शरीरकार्यशील रहे
स्तोकं स्तोकं - थोड़ा-थोड़ा
ग्रासं ग्रसेत् - भोजन लेकर ग्रहण करे ॥ ९ ॥

अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः ।
सर्वतः सारमादधात् पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥ १० ॥

अणुभ्यः च महत्भ्यः च शास्त्रेभ्यः कुशलः नरः सर्वतः सारं आदधात् पुष्पेभ्यः इव षट् पदः ॥ १० ॥

पुष्पेभ्यः	- फूलोंसे	**महत्भ्यः च**	- बड़े भी
षट्पदः इव	- भ्रमरके समान	**शास्त्रेभ्यः**	- शास्त्रोंमेंसे
कुशलः नरः	- चतुर मनुष्य	**सर्वतः सारं**	- सब ओरसे उनका सार
अणुभ्यः च	- छोटे तथा	**आदधात्**	- ग्रहण करे ॥ १० ॥

सायन्तनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षितम् ।
पाणिपात्रोदरामत्रो मक्षिकेव न सङ्ग्रही ॥ ११ ॥

सायंतनं श्वः तनं वा न संगृह्णीत भिक्षितं पाणिपात्र उदर अमात्र मक्षिका इव न सङ्ग्रही ॥ ११ ॥

भिक्षितं	- भिक्षामें मिले पदार्थको	**पाणिपात्रः**	- हाथका बर्तन तथा
सायंतनं	- शामके लिए	**उदर अमात्र**	- पेटका मटका रखे
वाश्वः तनं	- अथवा कलके लिए	**मक्षिका इव**	- मधुमक्खीकी भंगति
संगृह्णीत न	- रखनेको न लेवे,	**संग्रहीत न**	- संग्रह करनेवाला न बने ॥ ११ ॥

सायन्तनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षुकः ।
मक्षिका इव सङ्गृह्णन् सह तेन विनश्यति ॥ १२ ॥

सायंतनं श्वः तनं वा न संगृह्णीत भिक्षुकः मक्षिका इव सङ्गृह्णन् सह तेन विनश्यति ॥ १२ ॥

भिक्षुकः	- भिक्षा जीवी (साधु) को	**मक्षिका इव**	- मधुमक्खीके समान
सायंतनं	- शामके लिए	**संगृह्णन्**	- संग्रह करनेपर
वा श्वः तनं	- अथवा कलके लिए	**तेन सह**	- उस (संग्रह)के साथ नष्ट
संगृह्णीत न	- संग्रह न करे	**विनश्यति**	हो जाता है ॥ १२ ॥

पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद् दारवीमपि ।
स्पृशन् करीव बध्येत करिण्या अंगसंगतः ॥ १३ ॥

पदा अपि युवतीं भिक्षुः न स्पृशेत् दारवीं अपि स्पृशन् करि इव बध्येत करिण्या अंग संगतः ॥ १३ ॥

भिक्षुः पदा	- सन्यासी पैरसे भी	**स्पृशन्**	- स्पर्श करनेपर
अपि		**करिण्य-**	- हथिनीके शरीर स्पर्शसे
दारवीं अपि	- लकड़ीकी बनी भी	**अंग-संगतः**	
युवतीं-	- युवा स्त्रीका स्पर्श न	**करि इव-**	- हाथीके समान बन्धनमें
स्पृशेत् न	करे,	**बध्येत**	पड़ जाता है ॥ १३ ॥

नाधिगच्छेत स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचिन्मृत्युमात्मनः ।
बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥ १४ ॥

न अधिगच्छेत स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचित् मृत्युं आत्मनः बल अधिकैः स हन्येत गजैः अन्यैःगजः यथा ॥ १४ ॥

प्राज्ञः	- विवेकी पुरुष	**सबल अधिकैः**	- (करनेपर) वह अधिक बलवान
आत्मनः मृत्युं	- अपनी मृत्युके समान	**गजैः अन्यैः गजः**	- हाथी द्वारा दूसरे हाथीके
स्त्रियं	- स्त्रीको	**यथा हन्येत**	- समान मारा जाता है ॥ १४ ॥
कर्हिचित् न	- कभी भी अधिकृतन		
अधिगच्छेत	करे		

न देयं नोपभोग्यं च लुब्धैर्यद् दुःखसञ्चितम् ।
भुङ्क्ते तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थवित्मधु ॥ १५ ॥

न देयं न उपभोग्यं च लुब्धैः यत् दुःख सञ्चितम् भुङ्क्ते तत् अपि तत् च अन्यः मधुहाइव अर्थवित् मधु ॥ १५ ॥

न देयं - न दानके लिए है
च न उपभोग्यं - और न अपने उपभोगके लिए है
यत् लुब्धैः - जो लोभी द्वारा
दुःख सञ्चितं - कष्टसे किया गया संग्रह है
तत् च अपि - उसे भी
तत् अर्थ - उस धनको जानने वाला
वित् अन्यः दूसराकोई
मधुहा मधु - शहद निकालने वाले
इव द्वारा शहदके समान
भुङ्क्ते - खा लेता है ॥ १५ ॥

सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां गृहाशिषः ।
मधुहेवाग्रतो भुङ्क्ते यतिर्वै गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥

सुदुःख उपार्जितैः वित्तैः आशासानां गृह आशिषः मधुहा इव अग्रतः भुङ्क्ते यतिः वै गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥

गृहमेधिनां - गृहस्थों द्वारा
सुदुःख- - बड़े कष्टसे कमाये
उपार्जितैः
वित्तैः गृह- - धन द्वारा घरकीकामनायें
आशिषः
आशासानां - पूरा करना चाहने वालोंके यहां
मधुहा इव - शहद निकालने वालेकी भाँति
वै यतिः - निश्चय साधु
अग्रतः भुङ्क्ते - पहिले भोजन करते हैं ॥ १६ ॥

ग्राम्यगीतं न शृणुयाद् यतिर्वनचरः क्वचित् ।
शिक्षेत हरिणाद् बद्धान्मृगयोर्गीतमोहितात् ॥ १७ ॥

ग्राम्यगीतं न शृणुयात् यतिः वनचरः क्वचित् शिक्षेत हरिणात् बद्धात् मृगयोः गीत मोहितात् ॥ १७ ॥

वनचरः यतिः - वनमें घूमने वाला सन्यासी
क्वचित् ग्राम्य - कभी भी वैषयिक
गीतं गायन
न शृणुयात् - नहीं सुने,
मृगयोः गीत - शिकारीके संगीतसे
मोहितात् - सम्मोहित होकर
बद्धात् हरिणात् - बन्धनमें पड़े हिरणसे
शिक्षेत - यह शिक्षा ग्रहण करे ॥ १७ ॥

नृत्यवादित्रगीतानि जुषन् ग्राम्याणि योषिताम् ।
आसां क्रीडनको वश्य ऋष्यशृंगो मृगीसुतः ॥ १८ ॥

नृत्यवादित्र गीतानि जुषन् ग्राम्याणि योषितां आसां क्रीडनकः वश्य ऋष्यशृंगः मृगीसुतः ॥ १८ ॥

ग्राम्याणि योषितां- विषयी स्त्रियोंके
नृत्यवादित्र - नृत्य, वाद्य,
गीता निजुषन् - गायनका रस लेनेसे
मृगीसुतः - हिरणीके पुत्र
ऋष्य शृंगः - ऋष्य शृंग
आसां क्रीडनकः -इनके खिलौनेके समान
वश्य - वशमें होगये ॥ १८ ॥

जिह्वयातिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः ।
मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥ १९ ॥

जिह्वया अति प्रमाथिन्या जनः रस विमोहितः मृत्युं ऋच्छति असत् बुद्धिः मीनः तु बडिशैः यथा ॥ १९ ॥

अतिप्रमाथिन्यां - अत्यन्त मथ देने वाली
जिह्वया - जीभके द्वारा
रस विमोहितः - स्वादके पीछे अत्यन्त मोहित
असत् बुद्धिः जनः - दुर्बुद्धि मनुष्य
यथा बडिशैः - जैसे बंसीमें लगे चारेसे
मीनः तु - मछलियां तो (मारी जाती हैं)
मृत्युं ऋच्छति - मृत्यु पाता है ॥ १९ ॥

इन्द्रियाणि जयन्त्याशु निराहारा मनीषिणः ।
वर्जयित्वा तु रसनं तन्निरन्नस्य वर्धते ॥ २० ॥

इन्द्रियाणि जयन्ति आशु निराहारा मनीषिणः वर्जयित्वा तु रसनं तत् निरन्नस्य वर्धते ॥ २० ॥

मनीषिणः - धीर पुरुष
निराहारा - भोजन त्याग कर
इन्द्रियाणि - इन्द्रियोंको
आशु जयन्ति - शीघ्र जीत लेते हैं
तु रसनं वर्जयित्वा - किन्तु जीभको छोड़कर
तत् निरन्नस्य - वह निराहार रहनेसे
वर्धते - बलवान होती है
॥ २० ॥

तावज्जितेन्द्रियो न स्याद् विजितान्येन्द्रियः पुमान् ।
न जयेद् रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥ २१ ॥

तावत् जितेन्द्रियः न स्यात् विजित अन्य इन्द्रियः पुमान् न जयेत् रसनं यावत् जितं सर्वं जिते रसे ॥ २१ ॥

रसनं यावत् - जीभको जब तक
जयेत् न - जीत न ले
तावत् पुमान् - तब तक पुरुष
विजित अन्य इन्द्रियः - दूसरी इन्द्रियोंको जीत लेनेपर भी
जितेन्द्रियः- न स्यात् - जितेन्द्रिय नहीं है
जितेरसे - रसनाको जीत लेनेपर
सर्वं जितं - सब (इन्द्रियां) जीत ली गयीं ॥ २१ ॥

पिंगला नाम वेश्याऽऽसीद् विदेहनगरे पुरा ।
तस्या मे शिक्षितं किञ्चिन्निबोध नृपनन्दन ॥ २२ ॥

पिंगला नाम वेश्या आसीत् विदेहनगरे पुरा तस्या मे शिक्षितं किञ्चित् निबोध नृपनन्दन ॥ २२ ॥

नपृनन्दन निबोध - राजकुमार सुनो !
पुरा विदेह-नगरे - पहिले विदेह पुरी मिथिलामें
पिंगला नाम - पिंगला नामकी
वेश्या आसीत् - वेश्या थी,
तस्या मे- किञ्चित् - उससे मैंने कुछ
शिक्षितं - सीखा ॥ २२ ॥

सा स्वैरिण्येकदा कान्तं संकेत उपनेष्यती ।
अभूत्काले बहिर्द्वारि बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ २३ ॥

सा स्वैरिणी एकदा कान्तं संकेत उपनेष्यती अभूत्काले बहिर्द्वारि विभ्रती रूपं उत्तमम् ॥ २३ ॥

एकदा सा - एक बार वह
स्वैरिणी स्वेच्छाचारिणी
कान्तं संकेत - प्रियको एकान्तमें
उपनेष्यती - ले जानेकी इच्छासे
उत्तमं रूपं - श्रेष्ठ रूप-शृंगार धारण
विभ्रती करके
बहिःद्वारि - दरवाजेके बाहर
काले अभूत् - देर तक खड़ी रही ॥ २३ ॥

मार्ग आगच्छतो वीक्ष्य पुरुषान् पुरुषर्षभ ।
ताञ्शुल्कदान् वित्तवतःकान्तान् मेनेऽर्थकामुका ॥ २४ ॥

मार्ग आगच्छतः वीक्ष्य पुरुषान् पुरुष ऋषभ तान् शुल्कदान् वित्तवतःकान्तान् मेने अर्थकामुका ॥ २४ ॥

पुरुष ऋषभ - पुरुष श्रेष्ठ !
अर्थकामुका - वह धन चाहने वाली
मार्ग आगच्छतः - उस मार्गसे आते हुए
पुरुषान् वीक्ष्य - पुरुषोंको देखकर
तान् वित्तवतः - उन्हें धनी
शुल्कदान् - (अपना) मूल्य देने वाला
कान्तान् मेने - प्रिय समझा ॥ २४ ॥

आगतेष्वपयातेषु सा सङ्केतोपजीविनी ।
अप्यन्यो वित्तवान्कोऽपि मामुपैष्यति भूरिदः ॥ २५ ॥

आगतेषु अपयातेषु सा सङ्केत उप जीवनी अपि अन्यः वित्तवान् कः अपि मां उप एष्यति भूरिदः ॥ २५ ॥

आगतेषु - आने वालेके
अपयातेषु - आगे चले जानेपर
सा सङ्केत उपजीवनी - वह संकेत-जीवनी (वेश्य)
अपि अन्यः - (सोचती थी) फिर दूसरा
कः अपि वित्तवान्-कोई भी धनी
भूरिदः मां - बहुत देने वाला मेरे
उप एष्यति - समीप आवेगा ॥ २५ ॥

एवं दुराशया ध्वस्तनिद्रा द्वार्यवलम्बती ।
निर्गच्छन्ती प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥ २६ ॥

एवं दुराशया ध्वस्त निद्रा द्वारि अवलम्बती निर्गच्छन्ती प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥ २६ ॥

एवं दुराशया - इस प्रकार दुराशासे
द्वारि अवलम्बती - द्वारपर खड़े
ध्वस्त निद्रा - निद्रा नष्ट हो गयी,
प्रविशती - कभी भीतर जाते,
निर्गच्छन्ती - फिर (बाहर) निकलते
निशीथं- - पूरी आधी रात हो
समपद्यत गयी ॥ २६ ॥

तस्या वित्ताशया शुष्यद्वक्त्राया दीनचेतसः ।
निर्वेदःपरमो जज्ञे चिन्ताहेतुः सुखावहः ॥ २७ ॥

तस्या वित्त आशया शुष्यत् वक्त्राया दीन चेतसः निर्वेदःपरमः जज्ञे चिन्ताहेतुः सुख आवहः ॥ २७ ॥

वित्त आशया - धनकी आशासे
शुष्यत् वक्त्राया - सूखते मुखवाली
दीन चेतसः - दुःखी चित्त
तस्या चिन्ता - उसे चिन्ताकेकारण
हेतुः
सुख आवहः - सुखदायक
परमः निर्वेदः - परम वैराग्य उत्पन्न
जज्ञे हुआ ॥ २७ ॥

तस्या निर्विण्णचित्ताया गीतं शृणु यथा मम ।
निर्वेद आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः ॥ २८ ॥

तस्या निर्विण्ण चित्ताया गीतं शृणु यथा मम निर्वेद आशा पाशानां पुरुषस्य यथा हि असिः ॥ २८ ॥

आशा पाशानां - आशाकी रस्सीमें जकड़े
यथा मम- - मेरे जैसे पुरुषोंके लिए
पुरुषस्य

हि निर्वेदअसिः - क्योंकि वैराग्य रूपी तलवारके संमान है
तस्या निर्विण्य - उस वैराग्ययुक्त
चित्ताया गीतं - चिन्ताका गीत सुनो
शृणु ॥ २८ ॥

न ह्यङ्गाजातनिर्वेदो देहबन्धं जिहासति ।
यथा विज्ञानरहितो मनुजो ममतां नृप ॥ २९ ॥

न हि अंग अजात निर्वेदः देह बन्धं जिहासति यथा विज्ञान रहितः मनुजः ममतां नृप ॥ २९ ॥

अंग नृप - प्रिय राजन्
हि अजात - क्योंकि वैराग्य उत्पन्न
निर्वेदः हुए बिना
देहबन्धं - शरीरकी आसक्ति

न जिहासति - नहीं छोड़ी जा पाती
यथा विज्ञान - जैसे तत्त्वज्ञान रहित
रहितः
मनुजः ममतां - मनुष्य ममत्व (नहीं छोड़ पाता) ॥ २९ ॥

पिंगलोवाच–

अहो मे मोहवितर्तिं पश्यताविजितात्मनः ।
या कान्तादसतःकामं कामये येन बालिशा ॥ ३० ॥

अहो मे मोह वितर्तिं पश्यत अविजित आत्मनः या कान्तात् असतःकामं कामये येन बालिशा ॥ ३० ॥

अहो मे अविजित - अहो मुझ
आत्मनः अजितेन्द्रियकी
मोह वितर्तिं- - मोहका विस्तार तो
पश्यत देखो

येन बलिशा - जिससे मूर्खा होकर
या असतः - जो दुष्ट
कान्तात्कामं - प्रियोंसे भोग
कामये - चाहती हूँ ॥ ३० ॥

सन्तं समीपे रमणं रतिप्रदं
वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय ।
अकामदं दुःखभयादिशोक-
मोहप्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा ॥ ३१ ॥

सन्तं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यं इमं विहाय अकामदं दुःख भय आदि शोक मोहप्रदं तुच्छं अहं भजे अज्ञा ॥ ३१ ॥

रतिप्रदं - सुखदाता,
नित्यं वित्त-प्रदं - नित्य धन के दाता
इमं रमणं - इन (भगवान रूपी) स्वामीको
समीपे सन्तं - अपने पास रहते
विहाय अहं अज्ञा - छोड़कर मैं मूर्खा
अकामदं - कामना न पूरी करने वाले
दुःख भय - दुःख, भय,
आदिशोक - चिन्ता, शोक,
मोह प्रदं - मोह देने वाले
तुच्छं भजे - तुच्छ लोगोंकी सेवा करती हूँ ॥ ३१ ॥

अहो मयाऽऽत्मा परितापितो वृथा
सांकेत्यवृत्त्यातिविगर्ह्यवार्तया ।
स्त्रैणान्नराद् यार्थतृषोऽनुशोच्यात्
क्रीतेन वित्तं रतिमात्मनेच्छती ॥ ३२ ॥

अहो मया आत्मा परितापितः वृथा सांकेत्य वृत्त्या अति विगर्ह्यवार्तया स्त्रैणात् नरात् या अर्थतृषः अनु शोच्यात् क्रीतेन वित्तं रतिं आत्मना इच्छती ॥ ३२ ॥

अहो अति विगर्ह्य - अहो अत्यन्त निन्दित
सांकेत्य वृत्त्या - वेश्या वृत्तिकी
वार्तया - आजीविका द्वारा
मया आत्मा - मैंने अपने चित्तको
वृथा परितापितः - व्यर्थ संतप्त किया
या अर्थतृषः - जो धनकी तृष्णासे
अनुशोच्यात् - बराबर चिन्ता करती हुई
स्त्रैणात् नरात् - स्त्री जित् पुरुषों द्वारा
क्रीतेन आत्मना - स्वयं खरीदी जाकर
रतिं वित्तं - रति तथा धन
इच्छती - चाहती थी ॥ ३२ ॥

यदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्य-
स्थूणं त्वचा रोमनखैः पिनद्धम् ।
क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्
विण्मूत्रपूर्णं मदुपैति कान्या ॥ ३३ ॥

यत् अस्थिभिः निर्मित वंश वंश्य स्थूणं त्वचा रोम नखैः पिनद्धं क्षरम् नवद्वारं अगारं एतत् विट् मूत्र पूर्णं मत् उपैतिका अन्या ॥ ३३ ॥

यत् अस्थिभिः - जो हड्डियोंके द्वारा
वंश - बाँसोंके
वंश्य स्थूणं - सीधे-तिरछे खम्भोंसे
निर्मित - बने
त्वचा रोम - चमड़ा, रोम
नखैः पिनद्धं - नखोंसे ढका हुआ,
क्षरत् नवद्वार - बहते हुए नौ द्वारों वाले,
विट् मूत्र पूर्णं - विष्ठा-मूत्रसे भरे
एतत् अगारं - इस घरको
मत् का अन्या - मुझे छोड़कर कौन दूसरी
उपैति - सेवन करेगी ॥ ३३ ॥

विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः ।
यान्यमिच्छन्त्यसत्यस्मादात्मदात् काममच्युतात् ॥ ३४ ॥

विदेहानां पुरे हि अस्मिन् अहं एक एव मूढ धीः या अन्यं इच्छन्ति असति अस्मात् आत्मदात् कामं अच्युतात् ॥ ३४ ॥

हि अस्मिन् - क्योंकि इस
विदेहानां पुरे - विदेहोंके नगरमें
एक एव - अकेली
मूढ धीः अहं - मूढ़ बुद्धिमें
असति - असाध्वी हूँ
या अस्मात् - जो इन
कामं आत्मदात्- इच्छा करते ही अपनेको दे देने वाले
अच्युतात् - अच्युतसे
अन्यं इच्छन्ति - भिन्नको चाहती हूँ ॥ ३४ ॥

सुहृत् प्रेष्ठतमो नाथ आत्मा चायं शरीरिणाम् ।
तं विक्रीयात्मनैवाहं रमेऽनेन यथा रमा ॥ ३५ ॥

सुहृत् प्रेष्ठतमः नाथ आत्मा च अयं शरीरिणां तं विक्रीय आत्मने एव अहं रमे अनेन यथा रमा ॥ ३५ ॥

अयं आत्मा च - यह आत्मा तो
शरीरिणां - शरीर धारियोंका
सुहृत् प्रेष्ठतमः - हितैषी,परमप्रिय
नाथ - स्वामी है
आत्मने एव - अपने शरीर द्वारा ही मैं
अहं
तं विक्रीय - उसे खरीदकर
रमा यथा - लक्ष्मीके समान
अनेन रमे - इसीके साथ रमण करुंगी ॥ ३५ ॥

कियत् प्रियं ते व्यभजन् कामा ये कामदा नराः ।
आद्यन्तवन्तो भार्याया देवा वा कालविद्रुताः ॥ ३६ ॥

कियत् प्रियं ते व्यभजन् कामा ये कामदा नराः आद्य अन्तवन्तः भार्याया देवा वा काल विद्रुताः ॥ ३६ ॥

आद्य अन्तवन्तः - आदि (जन्मने) अन्त (मरने) वाले
कामदा नराः - कामना पूरी करने वाले मनुष्य
ते - तेरी
वा काल विद्रुताः - अथवाकालसे सन्त्रस्त
देवा भार्याया - देवता अपनी पत्नियोंका
कियत् प्रियं - कितना प्रिय
व्यभजन् - दे सके हैं ॥ ३६ ॥

नूनं मे भगवान् प्रीतो विष्णुःकेनापि कर्मणा ।
निर्वेदोऽयं दुराशाया यन्मे जातः सुखावहः ॥ ३७ ॥

नूनं मे भगवान् प्रीतः विष्णुःकेन अपि कर्मणा निर्वेदः अयं दुराशा या यत् मे जातः सुख आवहः ॥ ३७ ॥

नूनंकेन अपि	- निश्चय किसी भी	**यत् दुराशाया**	- जो बुरी आशा वाली
कर्मणा मे	- कर्मसे मुझपर	**मे सुख आवहः**	- मुझे सुख देने वाला
भगवान विष्णुः	- भगवान् विष्णु प्रसन्न	**अयं निर्वेदः**	- यह वैराग्य
प्रीतः	हुए हैं	**जातः**	उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥

मैवं स्युर्मन्दभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः ।
येनानुबन्धं निर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति ॥ ३८ ॥

मा एवं स्युः मन्द भाग्यायाः क्लेशा निर्वेद हेतवः येन अनुबन्धं निर्हृत्य पुरुषः शमं ऋच्छति ॥ ३८ ॥

मन्द भाग्यायाः	- (मुझ) अभागिनीके लिए	**येन अनुबन्धं**	- जिससे सब सम्बन्ध
क्लेशा निर्वेद	- क्लेश उस वैराग्यके	**निर्हृत्य पुरुषः**	- सम्पूर्ण त्यागकर पुरुष
हेतवः	कारण	**शमं ऋच्छति**	- शान्ति पाता है
एवं मा स्युः	- इस प्रकार नहीं होने चाहिए		॥ ३८ ॥

तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्यसंगताः ।
त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तमधीश्वरम् ॥ ३९ ॥

तेन उपकृतं आदाय शिरसा ग्राम्य संगताः त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तं अधीश्वरम् ॥ ३९ ॥

तेन उपकृतं	- इसलिए उनके उपकारको	**दुराशाः त्यक्त्वा**	- दुराशा त्यागकर
शिरसा आदाय	- सिरसे स्वीकार करके	**तं अधीश्वरं**	- उन्हीं सर्वेश्वरकी
ग्राम्य संगताः	- विषय भोगकी आसक्ति रूपी	**शरणं व्रजामि**	- शरणमें जाऊँगी ॥ ३९ ॥

सन्तुष्टा श्रद्दधत्येतद्ययथालाभेन जीवती ।
विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेन वै ॥ ४० ॥

सन्तुष्टा श्रद्दधत् एतत् यथा लाभेन जीवती विहारामि अमुना एव अहं आत्मना रमणेन वै ॥ ४० ॥

यथा लाभेन	- प्रारब्धानुसार प्राप्तसे	**अमुना आत्मना**	- इन अपने
जीवती	जीवन निर्वाह करके	**वै रमणेन एव**	- निश्चित स्वामीसे ही
सन्तुष्टा	- सन्तुष्ट रहती	**विहरामि**	- विहार करूँगी ॥ ४० ॥
एतत् श्रद्दधत्	- इस (भगवत् कृपापर) श्रद्धा करके		

संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् ।
ग्रस्तं कालाहिनाऽऽत्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः ॥ ४१ ॥

संसार कूपे पतितं विषयैः मुषित ईक्षणं ग्रस्तं काल अहिना आत्मानं कः अन्यः त्रातुं अधीश्वरः ॥ ४१ ॥

संसार कूपे	- संसार रूपी कुयेंमें	**काल अहिना**	-काल रूपी सर्प द्वारा
पतितं	गिरे हुए,	**ग्रस्तं आत्मानं**	-पकड़े गये अपनेको
विषयैः	- विषय भोगों द्वारा	**त्रातुं कः अन्यः**	-बचानेमें कौन दूसरा
मुषित ईक्षणं	- दृष्टि चुराये (अन्धे बनाये)	**अधीश्वरः**	-समर्थ हैं ॥ ४१ ॥

आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाखिलात् ।
अप्रमत्त इदं पश्येद् ग्रस्तं कालहिना जगत् ॥ ४२ ॥

आत्मा एव हि आत्मनः गोप्ता निर्विद्येत यदा अखिलात् अप्रमत्त इदं पश्येत् ग्रस्तं काल अहिना जगत् ॥ ४२ ॥

हि यदा	- क्योंकि जब	**अप्रमत्त**	- (अतः) असावधान हुए बिना
अखिलात्	- सबसे	**इदं जगत्**	- इस संसारको
निर्विद्येत	- विरक्त हो जाता है	**काल अहिना**	- काल रूपी सर्प द्वारा
आत्मा एव	- स्वयं ही	**ग्रस्तं पश्येत्**	- पकड़ा देखे ॥ ४२ ॥
आत्मनः गोप्ता	- अपना रक्षक हो जाता है,		

ब्राह्मण उवाच—

एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कान्ततर्षजाम् ।
छित्त्वोपशममास्थाय श्य्यामुपविवेश सा ॥ ४३ ॥

एवं व्यवसित मतिः दुराशां कान्त तर्षजां छित्त्वा उपशमं आस्थाय शय्यां उपविवेश सा ॥ ४३ ॥

एवं व्यवसित-	- इस प्रकार बुद्धिसे	**उपशमं-**	- वैराग्यका आश्रय लेकर
मतिः	निश्चय करके	**आस्थाय**	
कान्त तर्षजां	- प्रियोंकी तृष्णासे उत्पन्न	**सा शय्यां**	- वह पलंगपर
दुराशां छित्त्वा	- दुराशा काटकर	**उपविवेश**	- सो गयी ॥ ४३ ॥

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ।
यथा सञ्छिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिंगला ॥ ४४ ॥

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखं यथा संछिद्य कान्त आशां सुखं सुस्वाप पिंगला ॥ ४४ ॥

हि आशा	- क्योंकि आशा	**यथाकान्त आशां**	- जैसे प्रियोंकी आशा
परमं दुःखं	- सबसे बड़ा दुःख है,	**संछिद्य पिंगला**	- काटकर पिंगला
नैराश्यं	- निराश रहना	**सुखं सुष्वाप**	- सुखपूर्वक सो गयी
परमं सुखं	- सबसे बड़ा सुख है,		॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच–

परिग्रहो हि दुःखाय यद् यत्प्रियतमं नृणाम् ।
अनन्तं सुखमाप्नोति तद् विद्वान् यस्त्वकिञ्चनः ॥ १ ॥

परिग्रहः हि दुःखाय यत् यत् प्रियतमं नृणां अनन्तं सुखं आप्नोति तत् विद्वान् यः तु अकिञ्चनः ॥ १ ॥

हि नृणां यत्- - क्योंकि मनुष्योंको जो
यत् जो
प्रियतमं परिग्रहः- अत्यन्त प्रिय है उसका संग्रह
दुःखाय - दुःखकाकारण होता है
तत् विद्वान् - इसे समझकर
यः तु- - जो कुछ भी नहीं रखता
अकिञ्चनः वह
अनन्तं सुखं - अनन्त (परमात्माका) सुख
आप्नोति - पाता है ॥ १ ॥

सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः ।
तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥ २ ॥

सामिषं कुररं जघ्नुः बलिनः ये निरामिषाः तत् आमिषं परित्यज्य स सुखं सम विन्दत ॥ २ ॥

सामिषं कुररं - मांस लिए चीलको
ये निरामिषाः - जो बिना मांस वाले (चील)
बलिनः जघ्नुः - बलवान थे, मारने लगे
तत् आमिषं - उस मांसको
परित्यज्य स - छोड़कर वह (चील)
सुखं समविन्दत- चैन पा गया ॥ २ ॥

न मे मानावमानौ स्तो न चिन्ता गेहपुत्रिणाम् ।
आत्मक्रीड आत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥ ३ ॥

न मे मानाः अवमानौ स्तो न चिन्ता गेह पुत्रिणां आत्मक्रीड आत्मरतिः विचरामि इह बालवत् ॥ ३ ॥

मे मानाः अवमानौ	- मुझे मान अपमानकी	**आत्मक्रीड**	- अपनेसे ही खेलता,
न स्तौ	- (चिन्ता) नहीं है	**आत्मरतिः**	- अपनेमें ही सुखी
गेह पुत्रिणां	- घर-पुत्रवालों जैसी	**बालवत् इह**	- बच्चोंके समान यहां
चिन्ता न	- चिन्ता नहीं है	**विचरामि**	- विचरण करता हूँ
			॥ ३ ॥

द्वौवेव चिन्तया मुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ ।
यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः ॥ ४ ॥

द्वौः एव चिन्तया मुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ यः विमुग्धः जडः बालः यः गुणेभ्यः परं गतः ॥ ४ ॥

द्वाः एव	- दो ही (प्रकारके पुरुष)	**यः विमुग्धः**	- जो ज्ञान रहित
चिन्तया मुक्तौ	चिन्तासे छूटे	**जडः बालः**	- मूर्ख बालक है (या)
परमानन्द	- परमानन्द निमग्न	**यः गुणेभ्यः**	- जो त्रिगुणोंसे
आप्लुतौ	(रहते हैं)	**परं गतः**	- पार पहुंच गया है
			॥ ४ ॥

क्वचित् कुमारी त्वात्मानं वृणानान् गृहमागतान् ।
स्वयं तानर्हयामास क्वापि यातेषु बन्धुषु ॥ ५ ॥

क्वचित् कुमारी तु आत्मानं वृणानान् गृहं आगतान् स्वयं तान् अर्हयामास क्वअपि यातेषु बन्धुषु ॥ ५ ॥

क्वअपि बन्धुषु	- कहीं भी सम्बन्धियोंके	**क्वचित् कुमारी तु**	- कोई कन्या तो
यातेषु	- चले जानेपर	**स्वयं तान्**	- स्वयं उनका
आत्मानं	- अपनेको वरण करने	**अर्हयामास**	- सत्कार करने लगी
वृणानान्	वालोंके		॥ ५ ॥
गृह आगतान्	- घर आनेपर		

तेषामभ्यवहारार्थं शालीन् रहसि पार्थिव ।
अवघ्नन्त्याः प्रकोष्ठस्थाश्चक्रुः शंखाः स्वनं महत् ॥ ६ ॥

तेषां अभ्यवहार अर्थं शालीन् रहसि पार्थिव अवघ्नन्त्याः प्रकोष्ठस्थाः चक्रुः शंखाः स्वनं महत् ॥ ६ ॥

पार्थिव - राजन् !
तेषां अभ्यवहार - उनको भोजन करानेके
अर्थं लिए
रहसि शालीन् - एकान्तमें धान
अवघ्नन्त्याः - कूटते समय
प्रकोष्ठस्थाः - कलाईमें पड़ी
शंखाः महत् - चूड़ियां बहुत
स्वनं चक्रुः - शब्द करने लगीं
॥ ६ ॥

सा तज्जुगुप्सितं मत्वा महती व्रीडिता ततः ।
बभञ्जैकैकशः शंखान् द्वौ द्वौ पाण्योरशेषयत् ॥ ७ ॥

सा तत् जुगुप्सितं मत्वा महती व्रीडिता ततः बभञ्ज एक एकशः शंखान् द्वौ द्वौ पाण्योः अशेषयत् ॥ ७ ॥

सा तत् - उसने उस (शब्द) को
जुगुप्सितं मत्वा - निन्दित समझकर
ततः महती- - तब बहुत लज्जित
व्रीडिता होकर
एक एकशः - एक-एक करके
शंखान् बभञ्ज - चूड़ियोंको तोड़ डाला,
पाण्योः द्वौ द्वौ - हाथोंमें दो दो
अशेषयत् - बची रहने दीं ॥ ७ ॥

उभयोरप्यभूद् घोषो ह्यवघ्नन्त्याः स्म शंखयोः ।
तत्राप्येकं निरभिददेकस्मान्नाभवद् ध्वनिः ॥ ८ ॥

उभयोः अपि अभूत् घोषः हि अवघ्नन्त्याः स्म शंखयोः तत्र अपि एकं निःअभिदत् एक स्मात् न अभवत् ध्वनिः ॥ ८ ॥

अवघ्नन्त्याः - कूटते समय
उभयोः - उन दोनों
शंखयोः अपि - चूड़ियोंसे भी
हि घोषः अभूत् - क्योंकि शब्द होने लगा
तत्र अपि एकं - उनमेंसे भी एक एकको
निः अभिदत् - तोड़ दिया
एक स्मात् - अकेली (चूड़ी)से
ध्वनिः न - शब्द नहीं हुआ
अभवत् ॥ ८ ॥

अन्वशिक्षमिमं तस्या उपदेशमरिन्दम ।
लोकाननुचरन्नेताँल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ ९ ॥

अनु अशिक्षं इमं तस्या उपदेशं अरिन्दम लोकान् अनुचरत एतान् लोकतत्त्व विवित्सया ॥ ९ ॥

अरिन्दम - शत्रुनाशक राजन् !
तस्या इमं - उसके (व्यवहारसे) यह
उपदेशं - यह उपदेश
अनुअशिक्षं - पीछे (मैंने) सीखा कि
लोकतत्त्व - लोगोंका तत्त्व
विवित्सया - जाननेकी इच्छासे
एतान् लोकान् - इन लोगोंमें
अनुचरत् - विचरण करते समय
॥ ९ ॥

वासे बहूनां कलहो भवेद् वार्ता द्वयोरपि ।
एक एव चरेत्तस्मात् कुमार्या इव कंकणः ॥ १० ॥

वासे बहूनां कलहः भवेत् वार्ता द्वयोः अपि एक एव चरेत् तस्मात् कुमार्या इव कंकणः ॥ १० ॥

बहूनांवासे - बहुतोंके साथ रहनेसे
कलहः - झगड़ा और
द्वयोः अपि - दो के होनेपर भी
वार्ता भवेत् - बातचीत होती है
तस्मात् - इसलिए
कुमार्या- - उस कन्याके कंगनके
कंकणः समान
एक एव - अकेला ही विचरण करे
चरेत् ॥ १० ॥

मन एकत्र संयुञ्ज्याज्जितश्वासो जितासनः ।
वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतन्द्रितः ॥ ११ ॥

मनः एकत्र संयुञ्ज्यात् जितश्वासः जित आसनः वैराग्य अभ्यास योगेन ध्रियमाणं अतन्द्रितः ॥ ११ ॥

जित आसनः	- आसनजय करके	**योगेन ध्रियमाणः**	- युक्त होकर बार-बार रोककर
जितश्वासः	- प्राणजय करके	**मनः एकत्र**	- मनको एक स्थानमें
अतन्द्रितः	- सावधान होकर	**संयुञ्ज्यात्**	- लगावे ॥ ११ ॥
वैराग्य अभ्यास	- वैराग्य-अभ्यास		

यस्मिन् मनो लब्धपदं यदेत-
च्छनैः शनैर्मुञ्चति कर्मरेणून् ।
सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च
विधूय निर्वाणमुपैत्यनिन्धनम् ॥ १२ ॥

यस्मिन् मनः लब्धपदं यत् एतत् शनैः शनैः मुञ्चति कर्म रेणून सत्त्वेन वृद्धेन रजः तमः च विधूय निर्वाणं उपैति अन इन्धनम् ॥ १२ ॥

यस्मिन् लब्धपदं	- जिसमें लगकर	**सत्त्वेन वृद्धेन**	- फिर सत्त्व गुण बढ़नेसे
यत् एतत् मनः	- क्योंकि यह मन	**रजः च तमः**	- रजोगुण और तमोगुणको
शनैः शनैः	- धीरे-धीरे	**विधूय**	- नष्ट करके
कर्म रेणून्	- कर्मोंका मैल	**अन इन्धनं**	- ईंधन न रहनेसे (स्वयं भी)
मुञ्चति	- छोड़ देता है	**निर्वाणं उपैति**	- बुझ जाता है ॥ १२ ॥

तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो
न वेद किञ्चिद् बहिरन्तरं वा ।
यथेषुकारो नृपतिं व्रजन्त-
मिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ॥ १३ ॥

तत एव आत्मनि अवरुद्ध चित्तः न वेद किञ्चित् बहिः अन्तरं वा यथा इषुकारः नृपतिं व्रजन्तं इषौ गत आत्मा न ददर्श पार्श्वे ॥ १३ ॥

आत्मनि अवरुद्ध	- आत्मामें निरुद्ध	**यथा इषौ गत**	- जैसे बाणमें चित्त वाला
चित्तः तत एव	- चित्त उसी समय	**आत्मा**	अवरुद्ध
किञ्चित् बहिः	- कुछ भी ।हर	**इषुकारः**	- बाण बनाने वाला
वा अन्तरं न	- अथवा भीतर नहीं	**पार्श्वे व्रजन्तं**	- बगलसे जाते
वेद	जानता	**नृपतिं न-**	- राजाको नहीं देख सका
		ददर्श	॥ १३ ॥

एकचार्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ।
अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ॥ १४ ॥

एक चारि अनिकेतः स्यात् अप्रमत्तः गुहाशयः अलक्ष्यमाण आचारैः मुनिः एकः अल्प भाषणः ॥ १४ ॥

मुनिः	- मननशील साधक	**आचारैः-**	- आचरणसे पहिचाना न
एक चारि	- अकेला घूमने वाला	**अलक्षमाण**	जाय
अनिकेतः स्यात्	- बिना घर बनाये रहे,	**एकः**	- अकेला रहे और कम
अप्रमतः	- सावधान रहे, गुफादिमें	**अल्पभाषणः**	बोले ॥ १४ ॥
गुहाशयः	सो रहे,		

गृहारम्भोऽतिदुःखाय विफलश्चाध्रुवात्मनः ।
सर्पःपरकृतं वेश्म प्रविशय सुखमेधते ॥ १५ ॥

गृह आरम्भः अति दुःखाय विफलः च अध्रुव आत्मनः सर्पःपरकृतं वेश्म प्रविश्य सुखं एधते ॥ १५ ॥

अध्रुव आत्मनः	- अनित्य शरीरके लिए	**परकृतं वेश्म**	- दूसरेके बनाये घरमें
गृह आरम्भः	- मकान बनाना	**प्रविश्य सर्पः**	- घुसकर सर्प
अति दुःखाय	- अत्यन्त दुखदायी	**सुखं एधते**	- सुखपूर्वक बढ़ता है
च विफलः	- तथा निष्फल है,		॥ १५ ॥

एको नारायणो देवः पूर्वसृष्टं स्वमायया ।
संहृत्य कालकलया कल्पान्त इदमीश्वरः ॥ १६ ॥

एकः नारायणः देवः पूर्व सृष्टं स्वमायया संहृत्य काल कलया कल्प अन्त इदं ईश्वरः ॥ १६ ॥

एकः नारायणः - अकेले भगवान
देवः नारायणने
स्वमायया - अपनी मायासे
पूर्व सृष्टं इदं - पहिले उत्पन्न किये जगतको
कल्प अन्त - कल्पान्त (प्रलया)के समय
काल कलया - अपनीकाल रूप कलासे
ईश्वरः संहृत्य - उन समर्थने समेट लिया
॥ १६ ॥

एक एवाद्वितीयोऽभूदात्माधारोऽखिलाश्रयः ।
कालेनात्मानुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिषु ।
सत्त्वादिष्वादिपुरुषः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ १७ ॥

एक एव अद्वितीयः अभूत् आत्म आधारः अखिल आश्रयःकालेन आत्म अनुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिषु सत्त्व आदिषु आदि पुरुषः प्रधान पुरुष ईश्वरः ॥ १७ ॥

प्रधान पुरुष - प्रकृति और पुरुष (नीव) के
ईश्वरः - स्वामी
अखिल आश्रयः - सर्वाधार
आदिपुरुषः - आदिपुरुष
कालेन सत्व - कालके द्वारा सत्त्व
आदिषु गुणादि
शक्तिषु - शक्तियोंके
साम्यं नीतासु - साम्यावस्थामें पहुँचा देनेपर
आत्म अनुभावेन - अपने प्रभावसे
आत्म आधारः - अपने ही आधारसे
एक एव - अकेले ही
अद्वितीयः- - अद्वितीय हो गये
अभूत् ॥ १७ ॥

परावराणां परम आस्ते कैवल्यसंज्ञितः ।
केवलानुभवानन्दसन्दोहो निरुपाधिकः ॥ १८ ॥

परअवराणां परम आस्ते कैवल्य संज्ञितःकेवल अनुभव आनन्द सन्दोहः निरुपाधिकः ॥ १८ ॥

परअवराणां	- कारण-कार्यसे	**केवल अनुभव**	- केवल ज्ञान एवं
परमः	- अतीत	**आनन्द सन्दोहः**	- आनन्दघन
कैवल्य संज्ञितः	- कैवल्य नाम वाले	**निरुपाधिकः**	- उपाधिरहित
		आस्ते	- रहते हैं ॥ १८ ॥

केवलात्मानुभावेन स्वमायां त्रिगुणात्मिकाम् ।
संक्षोभयन् सृजत्यादौ तया सूत्रमरिन्दम ॥ १९ ॥

केवल आत्म अनुभावेन स्वमायां त्रिगुण आत्मिकां संक्षोभयन् सृजति आदौ तया सूत्रं अरिन्दम ॥ १९ ॥

अरिन्दम	-शत्रु दमनकर्ता राजन् !	**स्वमायां**	- अपनी मायाको
आदौकेवल	-(सृष्टिके) प्रारम्भमें नहीं केवल पुरुष	**संक्षोभयन्**	- क्षुब्ध करते हुए
		तथा सूत्रं-	- उसके द्वारा सूत्रात्माको
आत्म अनुभावेन	-अपने प्रभावसे	**सृजति**	उत्पन्न करते हैं ॥ १९ ॥
त्रिगुण आत्मिकां	-त्रिगुण स्वरूपा		

तामाहुस्त्रिगुणव्यक्तिं सृजन्तीं विश्वतोमुखम् ।
यस्मिन् प्रोतमिदं विश्वं येन संसरते पुमान् ॥ २० ॥

तां आहुः त्रिगुण व्यक्तिं सृजन्तीं विश्वतः मुखं यस्मिन् प्रोतं इदं विश्वं येन संसरते पुमान् ॥ २० ॥

यस्मिन् इदं विश्वं	- जिसमें यह विश्व	**तां विश्वतः-**	- उस सब ओर
प्रोतं	- पिरोया है,	**मुखं**	
येन पुमान्	- जिसके द्वारा जीव	**सृजन्तीं**	- सृष्टि करती (माया) को
संसरते	- जन्म-मरण चक्रमें पड़ता है,	**त्रिगुण व्यक्तिं**	- त्रिगुणोंकी प्रकट अवस्था
		आहुः	- कहा जाता है ॥२०॥

यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णां सन्तत्य वक्त्रतः ।
तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः ॥ २१ ॥

यथा ऊर्णनाभिः हृदयात् ऊर्णां संतत्य वक्त्रतः तया विहृत्य भूयः तां ग्रसति एवं महेश्वरः ॥ २१ ॥

यथा उर्णनाभिः	- जैसे मकड़ी	**तया विहृत्य**	- उससे खेलकर
हृदयात् वक्त्रतः	- हृदयसे मुख द्वारा	**भूयः तां ग्रसति**	- फिर उसे निगल लेती है
ऊर्णां संतत्य	- जाला फैलाकर	**महेश्वरः एवं**	- परमेश्वर भी ऐसा ही करता है ॥ २१ ॥

यत्र यत्र मनो देही धारयेत् सकलं धिया ।
स्नेहाद् द्वेषाद् भयाद् वापि याति तत्तत्सरूपताम् ॥ २२ ॥

यत्र यत्र मनः देही धारयेत् सकलं धिया स्नेहात् द्वेषात् भयात् वा अपियाति तत् तत् सरूपताम् ॥ २२ ॥

देही सकलं धिया	- जीव सम्पूर्ण बुद्धिसे	**मनः धारयेत्**	- मनको लगाता है
स्नेहात् द्वेषात्	- स्नेहसे, द्वेपसे,	**तत् तत्-**	- उसी उसीका स्वरूप
वा भयात् अपि	- अथवा भयसे भी	**सरूपतां**	
यत्र-यत्र	- जहां-जहां	**याति**	- पा लेता है ॥ २२ ॥

कीटः पेशस्कृतं ध्यायन् कुड्यां तेन प्रवेशितः ।
याति तत्सात्मतां राजन् पूर्व रूपमसन्त्यजन् ॥ २३ ॥

कीटः पेशस्कृतं ध्यायन् कुड्यां तेन प्रवेशितः याति तत् सात्मतां राजन् पूर्व रूपं असन् त्यजन् ॥ २३ ॥

राजन् - राजन् !
कीटः तेन - क्रीड़ा उस (भृंगी) द्वारा
कुड्यां प्रवेशितः - मिट्टीके उसके घरमें बन्द किया
पेशस्कृतं - उस घर बनाने वाले (भृंगी) का
ध्यायन् - ध्यान करता हुआ
पूर्वरूपं- - अपने पहिले रूपका
असन् त्यजन् त्याग किये बिना ही
तत् सात्मतां - उस (भृंगी) का स्वरूप
याति - हो जाता है ॥ २३ ॥

एवं गुरुभ्य एतेभ्य एषा मे शिक्षिता मतिः ।
स्वात्मोपशिक्षितां बुद्धिं शृणु मे वदतः प्रभो ॥ २४ ॥

एवं गुरुभ्यः एतेभ्यः एषा मे शिक्षिता मतिः स्व आत्म पशिक्षितां बुद्धिं शृणु मे वदतः प्रभो ॥ २४ ॥

प्रभो - महाराज !
एवं एतेभ्यः - इस प्रकार इतने
गुरुभ्यः एषा - गुरुओंसे यह
मतिः मे- - बुद्धिमानी मैंने सीखी है,
शिक्षिता
स्व आत्म - अपने शरीरसे
उपशिक्षितां - सीखी हुई
बुद्धिं मे वदतः - चतुराई मैं बतला रहा हूँ
शृणु - सुनो ॥ २४ ॥

देहो गुरुर्मम विरक्तिर्विवेकहेतु-
र्बिभ्रत् स्म सत्त्वनिधनं सततार्त्युदर्कम् ।
तत्त्वान्यनेन विमृशामि यथा तथापि
पारक्यमित्यवसितो विचराम्यसंगः ॥ २५ ॥

देहः गुरुः मम विरक्ति विवेक हेतुः विभ्रत् स्म सत्त्व निधनं सतत अत्युः उदर्कम् तत्त्वानि अनेन विमृशामि यथा तथा अपि पारक्यं इति अवसितः विचरामि असंगः ॥ २५ ॥

विरक्ति विवेक - वैराग्य और विवेकका
हेतुः देहः - कारण होनेसे शरीर
मम गुरुः - मेरा गुरु है,
सत्त्व निधनं - रहना और मरना,
अत्युः उदर्कं - पतन और उत्थान
सतत विभ्रत् - बराबर धारण करता है
स्म
यथा अनेन - जैसे इसके द्वारा
तत्त्वानि- - तत्त्व-विचार
विमृशामि करता हूँ
तथा अपि - उसी प्रकार
पारक्यं इति - 'यहपराया है' इस प्रकार
अवसितः - निश्चय होनेसे
असंगः- - (इससे) अनासक्त होकर
विचरामि विचरण करता हूं ।।२५।।

जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्
पुंण्गाति यत्प्रियचिकीर्षया वितन्वन् ।
स्वान्ते सकृच्छ्रमवरुद्धधनः स देहः
सृष्ट्वास्य बीजमवसीदति वृक्षधर्मा ।। २६ ।।

जाया आत्मज अर्थ पशु भृत्य गृह आप्त वर्गान् पुण्गाति यत् प्रियचिकीर्षया वितन्वन् स्व अन्ते सकृच्छ्रं अवरुद्ध धनः स देहः सृष्ट्वा अस्य बीजं अवसीदति वृक्षधर्मा ।। २६ ।।

यत् प्रिय - जिस (शरीर)का प्रिय
चिकीर्षया - करंनेकी इच्छासे
जाया आत्मज - स्त्री, पुत्र,
अर्थ पशु भृत्य - धन, पशु,सेवक,
गृह आप्तवर्गान् - घर, श्रेष्ठ जनोंका
वितन्वन् - विस्तार करते हुए
सकृच्छ्रं - बड़े कष्टसे
अवरुद्ध धनः - धन इकट्ठा करंके
पुण्गाति - पोषण करता है
स्व अन्ते - अपने अन्तके समय
वृक्षधर्मा - वृक्षके समान धर्म वाला
अस्य बीजं - इस (जीव) के लिये
सृष्ट्वा (शरीरका) बीज उत्पन्न करके
स देहः- - वह देह दुःखका बीज
अवसीदति बीज बो जाता है ।।२६।।

जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्वच कर्मशक्ति-
र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥ २७ ॥

अपुम् कर्हि जिह्वा एकतः अपकर्षति तर्षा शिश्नः अन्यतः त्वक् उदरं श्रवणं घ्राणः अन्यतः चपलदृक क्वच कर्मशक्तिः बर्ह्व्यः सपत्न्यः इवे गेह पतिं लुनन्ति ॥ २७ ॥

अमुम्	-	देहाभिमानी जीवको
कर्हि	-	कभी
जिह्वा	-	जीभ
एकतः	-	एक ओर यानी रसकी ओर
अपकर्षति	-	खींचती है
नर्षा	-	पिपासा जलकी ओर
शिश्नः	-	उपस्थेन्द्रिय मैथुनकी तरफ
अन्यतः	-	दूसरी तरफ
त्वक्	-	स्पर्शकी ओर
उदरम्	-	पेट अन्नकी ओर
श्रवणं	-	श्रवणेन्द्रिय (कान) शब्दोंकी तरफ
घ्राणः	-	गन्ध सूंघनेकी ओर
अन्यतः	-	दूसरी तरफ
चपलदृक्	-	चंचल दृष्टि रूपके प्रति
क्वच	-	और कभी
कर्मशक्ति	-	कर्मेन्द्रिय अपने-अपने विषयकी ओर खींचती हैं
बर्ह्य	-	बहुत
सपत्न्य	-	स्त्रियोंकी
इव	-	तरह (जैसे एक ही स्वामीको स्त्रियां अपनी ओर खींचती हैं वैसे ही
गेह पतिम्	-	जीवको सारी इन्द्रियां
लुनन्ति	-	अपने-अपने विषयकी ओर खींचती हैं ॥ २७ ॥

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयाऽऽत्मशक्त्या
वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंशमत्स्यान् ।
तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय
ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ॥ २८ ॥

सृष्ट्वा पुराणि विविधानि अजया आत्म शक्तया वृक्षान् सरीसृप पशून् खग दंश मत्स्यान् तैः तैः अतुष्ट हृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मअवलोक धिषणं मुदं आप देवः ॥ २८ ॥

देवः-	- भगवानने अपनी शक्ति	**पुराणि सृष्ट्वा**	- पुर (शरीर) बनाकर
आत्मशक्तया		**तैः तैः अतुष्ट**	- उन उनसे असन्तुष्ट
अजया-	- माया द्वारा अनेक	**हृदयः**	चित्त
विविधानि	प्रकारके	**ब्रह्म अवलोक**	- ब्रह्म साक्षात्कारके
वृक्षान् सरीसृप	- वृक्ष, सरीसृप,	**धिषणं**	- स्थान
पशून् खग	- पशु, पक्षी,	**पुरुषं विधाय**	- मनुष्यको बनाकर
दंश मत्स्यान्	- डंसने वाले, मछलियाँ आदि	**मुदं आप**	- आनन्द प्राप्त किया ॥ २८ ॥

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥ २९ ॥

लब्ध्वा सदुर्लभं इदं बहु सम्भव अन्ते मानुष्यं अर्थ दम् अनित्यं अपि इह धीरः तूर्णं यतेत न पतेत् अनुमृत्यु यावत् निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥ २९ ॥

धीरः	- धीर पुरुष	**इह अनुमृत्यु**	- इस संसारमें मृत्युके पीछे
बहु सम्भव अन्ते	- बहुत जन्मोंके पश्चात्	**यावत् न-**	- जब तक (यह)
इदं सुदुर्लभं	- इस अत्यन्त दुर्लभ	**पतेत्**	गिर न जाय
अनित्यं अपि	- अनित्य होनेपर भी	**निःश्रेयसाय**	- परम कल्याणके लिए
अर्थ दं	- परमार्थ प्रदायक	**तूर्णं यतेत**	- शीघ्र प्रयत्न करे
मानुष्यं लब्ध्वा	- मनुष्य शरीर पाकर	**खलु विषयः**	- अरे विषय भोग तो
		सर्वतः स्यात्	- सब कहीं प्राप्त हो सकते हैं ॥ २९ ॥

एवं सञ्जातवैराग्यो विज्ञानालोक आत्मनि ।
विचरामि महीमेतां मुक्तसंगोऽनहङ्कृतिः ॥ ३० ॥

एवं सञ्जात वैराग्यः विज्ञान आलोक आत्मनि विचरामि महीं एतां मुक्त संगः अनहं कृतिः ॥ ३० ॥

आत्मनि	- अपने	**मुक्त संगः**	- आसक्ति त्यागकर
विज्ञान आलोक	- विज्ञानके प्रकाशसे	**अनहं कृतिः**	- अहंकार रहित होकर
एवं वैराग्यः	- इस प्रकार वैराग्य	**एतां महीं**	- इस पृथ्वीपर
सञ्जात	- उत्पन्न होनेसे	**विचरामि**	- विचरण करता हूँ ॥३०॥

न ह्येकस्माद् गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात् सुपुष्कलम् ।
ब्रह्मैतदद्वितीयं वै गीयते बहुधर्षिभिः ॥ ३१ ॥

न हि एकस्मात् गुरोः ज्ञानं सुस्थिरं स्यात् सुपुष्कलं ब्रह्म एतत् अद्वितीयं वै गीयते बहुधा ऋषिभिः ॥ ३१ ॥

हि एक स्मात्	- क्योंकि एक ही	**वै एतत ब्रह्म**	- निश्चय यह ब्रह्म
गुरोः ज्ञानं	- गुरुसे ज्ञान	**अद्वितीयं**	- अद्वितीय है पर
सुस्थिरं सुपुष्कलं	- सुस्थिर और बहुत व्यापक	**ऋषिभिः बहुधा**	- ऋषियों द्वारा अनेक प्रकारसे
न स्यात्	- नहीं होता	**गीयते**	- वर्णन किया जाता है ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच—

इत्युक्त्वा स यदुं विप्रस्तमामन्त्र्य गभीरधीः ।
वन्दितोऽभ्यर्थितो राज्ञा ययौ प्रीतो यथागतम् ॥ ३२ ॥

इति उक्त्वा स यदुं विप्रः तं आमन्त्र्य गभीर धीः वन्दितः अभ्यर्थितः राज्ञा ययौ प्रीतः यथा आगतम् ॥ ३२ ॥

स गभीर धीः - वह गम्भीर बुद्धि
विप्रः यदुं इति - ब्राह्मण यदुसे इतना
उक्त्वा कहकर
तं आमन्त्र्य - उनसे अनुमति लेकर
राज्ञा वन्दितः - उन राजा द्वारा प्रणमित एवं
अभ्यर्थितः - सत्कृत होकर
यथा आगतं - जैसे आया था
प्रीतः ययौः - प्रसन्न होकर चला गया ॥ ३२ ॥

अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः ।
सर्वसंगविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ॥ ३३ ॥

अवधूत वचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः सर्व संग विनिर्मुक्तः समचित्तः बभूव ह ॥ ३३ ॥

नः पूर्वेषां - हमारे पूर्वजोंके भी
स पूर्वजः - वे पूर्वज
अवधूत वचः- - अवधूतकी बात सुनकर
श्रुत्वा
सर्वसंग- - समस्त आसक्तियोंसे
विनिर्मुक्तः छूटकर
ह समचित्तः - दृढ़ समदर्शी
बभूव - होगये ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

मयोदितेषववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः ।
वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ॥ १ ॥

मया उदितेषु अवहितः स्व धर्मेषु मत् आश्रयः वर्ण आश्रम कुल आचारं अकाम आत्मा सम आचरेत् ॥ १ ॥

मत् आश्रयः	- मेरी शरण लेकर	**अवहितः**	- एकाग्र चित्त होकर
अकाम आत्मा	- निष्काम भावसे	**वर्ण आश्रम**	- वर्ण-आश्रम तथा
मया उदितेषु	- मेरे द्वारा उपदिष्ट	**कुल आचारं**	- कुलाचारका
स्वधर्मेषु	- अपने धर्मोंका	**समआचरेत्**	- भली प्रकार पालन करेगा ॥ १ ॥

अन्वीक्षेत विशुद्धात्मा देहिनां विषयात्मनाम् ।
गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्वारम्भविपर्ययम् ॥ २ ॥

अन्वीक्षेत विशुद्ध आत्मा देहिनां विषय आत्मनां गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्व आरम्भ विपर्ययम् ॥ २ ॥

विशुद्ध आत्मा	- शुद्ध चित्त पुरुष	**तत्त्व ध्यानेन**	- सत्य समझनेकेकारण
विषय आत्मनां	- विषयोंमें लगे चित्त	**सर्व आरम्भ**	- सभी प्रारम्भोंका
देहिनां गुणेषु	- शरीर धारियोंका विषयोंको	**विपर्ययं**	- उलटा फल
		अन्वीक्षेत	- देखे ॥ २ ॥

सुप्तस्य विषयालोको ध्यायतो वा मनोरथः ।
नानात्मकत्वाद् विफलस्तथा भेदात्मधीर्गुणैः ॥ ३ ॥

सुप्तस्य विषय आलोकः ध्यायतः वा मनोरथः नाना आत्मकत्वात् विफलः तथा भेद आत्म धीः गुणैः ॥ ३ ॥

सुप्तस्य वा - सोते समय अथवा
मनोरथः- - मनोरथोंका चिन्तन
ध्यायतः करते हुए
विषय आलोकः - अनेक विषय देखता है,
तथा गुणैः - ऐसे ही (जागते समय) इन्द्रियोंके द्वारा
भेद आत्मधीः - भेदमयी अपनी बुद्धि
नाना- - अनेक रूपा होनेसे
आत्मकत्वात्
विफलः - निष्फल होती है ॥३॥

निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ।
जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत् कर्मचोदनाम् ॥ ४ ॥

निवृत्तं कर्मसेवेत प्रवृत्तं मत्परः त्यजेत् जिज्ञासायां संप्रवृत्तः न आद्रियेत् कर्म चोदनाम् ॥ ४ ॥

मत्परः - मेरा परायण भक्त
निवृत्तं कर्मसेवेत - (संसारसे) छुड़ाने वाले कर्म करे
प्रवृत्तं त्यजेत् - लगाने वालोंको त्याग दे,
जिज्ञासायां - तत्त्व जिज्ञासाके
संप्रवृत्तः - ठीक जाग जानेपर
कर्म चोदनां - कर्म करनेकी (शास्त्रीय) प्रेरणाका भी
आद्रियेत् न - आदर न करे ॥ ४ ॥

यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान् मत्परः क्वचित् ।
मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम् ॥ ५ ॥

यमान् अभीक्ष्णंसेवेत नियमान् मत्परः क्वचित् मत् अभिज्ञं गुरुं शान्तं उपासीत मत् आत्मकम् ॥ ५ ॥

मत्परः - मेरापरायण भक्त
यमान् अभीक्ष्णं - (अहिंसा, सत्यादि) यमोंका बराबर
नियमान् - तथा (शौच, तपादि) नियमोंको
क्वचित्सेवेत - कभी कभीसेवन करे
मत् अभिज्ञं - मेरे स्वरूपको जानने वाले
शान्तं मत्- - शान्त, मेरे ही स्वरूप
आत्मकं
गुरुं उपासीत - गुरुकी उपासना करे ॥५॥

अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढ़सौहृदः ।
असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥ ६ ॥

अमानि अमत्सरः दक्षः निर्ममः दृढ़ सौहृदः असत्वरः अर्थ जिज्ञासुः अनसूयुः अमोघवाक् ॥ ६ ॥

अमानि-	- अभिमानहीन,	**असत्वरः**	- बिना जल्दबाजीका,
अमत्सरः	डाह रहितं	**अर्थ जिज्ञासुः**	- तत्त्व जिज्ञासायुक्त,
दक्षः निर्ममः	- कार्यकुशल, ममताहीन,	**अनसूयुः**	- गुणमें दोष न देखने वाला,
दृढ़ सौहृदः	- (गुरुसे) दृढ़ सौहार्द्र रखने वाला,	**अमोघवाक्**	- व्यर्थ न बोलने वाला (होना चाहिए) ॥ ६ ॥

जायापत्यगृहक्षेत्रस्वजनद्रविणादिषु ।
उदासीनः समं पश्यन् सर्वेष्वर्थमिवात्मनः ॥ ७ ॥

जाया अपत्य गृह क्षेत्र स्वजन द्रविण आदिषु उदासीनः समं पश्यन् सर्वेषु अर्थं इव आत्मनः ॥ ७ ॥

जाया अपत्य	- स्त्री-पुत्र,	**सर्वेषु अर्थं इव**	- सबमें विशेषता रहितकी भांति
गृह क्षेत्र	- घर, भूमि,	**समं आत्मनः-**	- समान आत्माको देखे
स्वजन द्रविण	- स्वजन, धन	**पश्यन्**	॥ ७ ॥
आदिषु उदासीनः	- आदिसे उदासीन होकर		

विलक्षणः स्थूलसूक्ष्माद् देहादात्मेक्षिता स्वदृक् ।
यथाग्निर्दारुणो दाह्याद् दाहकोऽन्यः प्रकाशकः ॥ ८ ॥

विलक्षणः स्थूल सूक्ष्मात् देहात् आत्म ईक्षिता स्वदृक् यथा अग्निः दारुणः दाह्यात् दाहकः अन्यः प्रकाशकः ॥ ८ ॥

स्थूल सूक्ष्मात् - स्थूल सूक्ष्म
देहात् - शरीरादिसे
आत्म विलक्षणः - आत्मा विलक्षण
ईक्षिता स्वदृक् - द्रष्टा और स्वयं प्रकाश है,
यथा अग्निः - जैसे अग्नि
दाह्यात् दारुणः - जलायी. जाने वाली लकड़ीसे
दाहकः- - जलाने वाला और
प्रकाशकः प्रकाशक
अन्यः - भिन्न है ॥ ८ ॥

निरोधोत्पत्त्यणुबृहन्नानात्वं तत्कृतान् गुणान् ।
अन्तःप्रविष्ट आधत्त एवं देहगुणान्परः ॥ ९ ॥

निरोधः उत्पत्ति अणु वृहत् नाना त्वं तत् कृतान् गुणान् अन्तः प्रविष्ट आधत्त एवं देहगुणान्परः ॥ ९ ॥

निरोधः उत्पत्ति - नाश-जन्म,
अणु वृहत् - छोटा-बड़ापना
नानात्वं - अनेक रूपता
तत् कृतान्-गुणान् - उस (लकड़ी)के बनाये गुणोंको
अन्तः प्रविष्ट - उसके भीतर प्रवेश करके
आधत्त - (अग्नि) धारण कर लेता है
एवंपरः - इसी प्रकार परमात्मा
देहगुणान् - शरीरके गुणोंको (धारण कर लेता है) ॥ ९ ॥

योऽसौ गुणैर्विरचितो देहोऽयं पुरुषस्य हि ।
संसारस्तन्निबन्धोऽयं पुंसो विद्याच्छिदात्मनः ॥ १० ॥

यः असौ गुणैः विरचितः देहः अयं पुरुषस्य हि संसारः तत् निबन्धः अयं पुंसः विद्याच्छित् आत्मनः ॥ १० ॥

हि यः असौ - क्योंकि जो यह
पुरुषस्य - पुरुषका
गुणैः विरचितः-देहः - गुणोंसे निर्मित शरीर है
तत् निबन्धः - उसीके साथ बँधा
अयं संसारः - यह संसार है (जो)
पुंसः आत्मनः - पुरुषकी आत्म
विद्याच्छित् - विद्यासे कटने वाला है ॥ १० ॥

तस्माज्जिज्ञासयाऽऽत्मानमात्मस्थं केवलं परम् ।
संगम्य निरसेदेतद्वस्तुबुद्धिं यथाक्रमम् ॥ ११ ॥

तस्मात् जिज्ञासया आत्मानं आत्मस्थं केवलं परं संगम्य निरसेत् एतत् वस्तु बुद्धिं यथा क्रमम् ॥ ११ ॥

तस्मात्	- इसलिए	**संगम्य**	- साक्षात्कार करके
जिज्ञासया	- जिज्ञासाके द्वारा	**यथाक्रमं**	- क्रमानुसार
आत्मस्थं	- अपने भीतर स्थित	**एतत् वस्तु**	- इस सत्यत्व
केवलं परं-	- अद्वितीयपरमात्माका	**बुद्धिं**	बुद्धिको
आत्मानं		**निरसेत्**	- मिटा देना चाहिए ॥११॥

आचार्योऽरणिराद्यः स्यादन्तेवास्युत्तरारणिः ।
तत्सन्धानं प्रवचनं विद्यासन्धिः सुखावहः ॥ १२ ॥

आचार्यः अरणिः आद्यः स्यात् अन्तेवासि उत्तर अरणिः तत् सन्धानं प्रवचनं विद्या सन्धिः सुख आवहः ॥ १२ ॥

आचार्यः आद्यः	- आचार्य आदि (नीचेकी)	**तत् सन्धानं**	- इनके मिलनसे
अरणिः स्यात्	- अरणि होते हैं,	**प्रवचनं**	- प्रवचन होता है,
अन्तेवासि	- ब्रह्मचारी	**सुख आवहः**	- सुखदायक
उत्तर अरणिः	- ऊपरकी अरणि है,	**विद्या सन्धिः**	- विद्या (इनकी) सन्धि है ॥ १२ ॥

वैशारदी सातिविशुद्धबुद्धि-
र्धुनोति मायां गुणसम्प्रसूताम् ।
गुणांश्च सन्दह्य यदात्ममेतत्
स्वयं च शाम्यत्यसमिद् यथाग्निः ॥ १३ ॥

वैशारदी सा अति विशुद्ध बुद्धिः धुनोति मायां गुण सम्प्रसूतां गुणान् च सन्दह्य यत् आत्मं एतत् स्वयं च शाम्यति असमित् यथा अग्निः ॥ १३ ॥

सा अति - वह (विद्यारूपा)
वैशारदी अत्यन्त निपुणा
विशुद्ध बुद्धिः - परमशुद्ध बुद्धि
गुण सम्प्रसूतां - गुणोंसे उत्पन्न हुई
मायां धुनोति - मायाको नष्ट कर देती है
गुणान् च सन्दह्य - गुणोंको भी भस्म करके
यत् एतत् - जब यह आत्मा
आत्मं ही (रह जाता है)
यथा असमित् - जैसे समिधा हीन
अग्निः अग्नि
स्वयं च शाम्यति - स्वयं ही बुझ जाती है ॥ १३ ॥

अथैषां कर्मकर्तृणां भोक्तृणां सुखदुःखयोः ।
नानात्वमथ नित्यत्वं लोककालागमात्मनाम् ॥ १४ ॥

अथ एषां कर्म कर्तृणां भोक्तृणां सुख दुःखयोः नानात्वं अथ नित्यत्वं लोक काल आगम आत्मनाम् ॥ १४ ॥

अथ एषां - यदि इन
कर्म कर्तृणां - कर्मोंके कर्ताओं तथा
सुख-दुःखयोः भोक्तृणां - सुख-दुःखके भोक्ताओंको,
लोककाल - देश, काल,
आगम आत्मनां - शास्त्र-विधिसे बनोंको
नानात्वं - अनेक स्वरूप
अथ नित्यत्वं - और नित्यरूप ॥१४॥

मन्यसे सर्वभावानां संस्था ह्यौत्पत्तिकी यथा ।
तत्तदाकृतिभेदेन जायते भिद्यते च धीः ॥ १५ ॥

मन्यसे सर्व भावानां संस्था हि औत्पत्तिकी यथा वतत् तत् आकृति भेदेन जायते भिद्यते च धीः ॥ १५ ॥

सर्वभावानां - सब पदार्थोंकी
यथा औत्पत्तिकी - जैसी जन्मजात
संस्था मन्यसे - स्थिति है, मानते हो तो
हि तत् तत् - क्योंकि उन उन
आकृति भेदेन - आकृतियोंके भेदसे (वैसी)
धीः जायते - बुद्धि उत्पन्न होती
च भिद्यते - तथा भिन्न-भिन्न बनती है ॥ १५ ॥

एवमप्यङ्ग सर्वेषां देहिनां देहयोगतः ।
कालावयवतः सन्ति भावा जन्मादयोऽसकृत् ॥ १६ ॥

एवं अपि अंग सर्वेषां देहिनां देहयोगतःकाल अवयवतः सन्ति भावा जन्म आदयः असकृत् ॥ १६ ॥

अंग - प्रिय उद्धव !
एवं अपि - ऐसा होनेपर भी
सर्वेषां देहिनां - सभी जीवोंका
देह योगतः - शरीरके संयोगसे
काल अवयवतः- कालके अंग (वर्षादि)से
जन्म आदयः - जन्म आदि अवस्थायें
भावा
असकृत् सन्ति - निरन्तर (बदलती) रहती हैं ॥ १६ ॥

अत्रापि कर्मणां कर्तुरस्वातन्त्र्यं च लक्ष्यते ।
भोक्तुश्चदुःखसुखयोःको न्वर्थो विवशं भजेत् ॥ १७ ॥

अत्र अपि कर्मणां कर्तुः अस्वातन्त्र्यं च लक्ष्यते भोक्तुः च दुःख सुखयोःकः नु अर्थः विषवशं भजेत् ॥ १७ ॥

अत्र अपि - इस (सिद्धान्त) में भी
कर्मणां कर्तुः - कर्मोंके कर्ताकी
च भोक्तुः - तथा भोक्ताकी
अस्वातन्त्र्यं च - पराधीनता ही
लक्ष्यते - दीखती है,
दुःख सुखयोः - फिर दुःख-सुखका
नु कः अर्थः - भला क्या प्रयोजन है ?
विवशं भजेत् - (वह तो उसे) विवश होकर भोगता है ॥१७॥

न देहिनां सुखं किञ्चिद् विद्यते विदुषामपि ।
तथा च दुःखं मूढानां वृथाहंकरणं परम् ॥ १८ ॥

न देहिनां सुखं किञ्चित् विद्यते विदुषां अपि तथा च दुःखं मूढानां वृथा अहंकरणं परम् ॥ १८ ॥

देहिनां - शरीरधारी
विदुषां अपि - विद्वान्को भी
किञ्चित् सुखं - कुछ भी सुख
न विद्यते - नहीं होता (देखा जाता है)
तथा च मूढानां- ऐसे ही मूर्खोंको
दुःखं - दुःख (होता नहीं पाया जाता)
अहंकरणं - (इसमें अपने कर्तृत्वका) अहंकार करना
परं वृथा - अत्यन्त व्यर्थ है ॥१८॥

यदि प्राप्तिं विघातं च जानन्ति सुखदुःखयोः ।
तेऽप्यद्धा न विदुर्योगं मृत्युर्न प्रभवेद् यथा ॥ १९ ॥

यदि प्राप्तिं विघातं च जानन्ति सुख दुःखयोः ते अपि अद्धा न विदुः योगं मृत्युः न प्रभवेत् यथा ॥ १९ ॥

यदि सुख दुःखयोः - यदि सुख-दुःखके
प्राप्ति च - मिलने और नष्ट
विघातं - करनेका
जानन्ति - (उपाय) जानते भी हों तो
ते अपि - वे भी
यथा मृत्युः - जैसे मृत्यु
प्रभवेत् न - प्रभाव न डाल सके
अद्धा योगं - (इसका) साक्षात् उपाय
न विदुः - नहीं जानते ॥ १९ ॥

को न्वर्थः सुखयत्येनं कामो वा मृत्युरन्तिके ।
आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव न तुष्टिदः ॥ २० ॥

कः नु अर्थः सुखयति एनं कामः वा मृत्युः अन्तिके आघातं नीयमानस्य वध्यस्य एव न तुष्टिदः ॥ २० ॥

वध्यस्य एव - मारे जाने वाले हीको
आघातं - मारे जानेके स्थानपर
नीयमानस्य - ले जाये जाते हुए
तुष्टिदः न - (जैसेकोई पदार्थ) सन्तोषदायी नहीं होता
नु कः अर्थः - भला कौन सा धन
वा कामः - अथवा भोग
मृत्युः अन्तिके- मृत्युके समीप (खड़े)
एनं सुखयति - इस (जीव) को सुखी करेगा ॥ २० ॥

श्रुतं च दृष्टवद् दुष्टं स्पर्धासूयात्ययव्ययैः ।
बह्वन्तरायकामत्वात् कृषिवच्चापि निष्फलम् ॥ २१ ॥

श्रुतं च दृष्टवत् दुष्टं स्पर्धा असूया अत्यय व्ययैः बहु अन्तराय काम त्वात् कृषिवत् च अपि निष्फलम् ॥ २१ ॥

स्पर्धा असूया - परस्परकी होड़, गुणोंमें दोष दृष्टि,
अत्यय व्ययैः - नाश और व्ययके कारण
श्रुतं च - सुना हुआ स्वर्ग भी
दृष्टवत् दुष्टं - देखे संसारके समान दोषयुक्त है
कामत्वात् - कामका विषय होनेसे
बहु अन्तराय - (उसमें) बहुतसे विघ्नोंसे
कृषिवत् च - खेतीके समान ही (उसका साधन)
निष्फलं अपि - निष्फल भी (हो सकता है) ॥ २१ ॥

अन्तरायैरविहतो यदि धर्मः स्वनुष्ठितः ।
तेनापि निर्जितं स्थानं यथा गच्छति तच्छृणु ॥ २२ ॥

अन्तरायैः अविहतः यदि धर्मः स्व अनुष्ठितः तेन अपि निर्जितं स्थानं यथा गच्छन्ति तत् शृणु ॥ २२ ॥

यदि स्व अनुष्ठितः - यदि अपना अनुष्ठान किया
धर्मः अन्तरायैः - धर्म विघ्नोंसे
अविहतः - नष्ट न हो जाय तो
तेन अपि - उससे भी
निर्जितं स्थानं - जीते (प्राप्त) स्थानपर
यथा गच्छन्ति - जैसे जाते हैं
तत् शृणु - उसे सुनो ॥ २२ ॥

इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः ।
भुञ्जीत देववत्तत्र भोगान् दिव्यान् निजार्जितान् ॥ २३ ॥

इष्ट्वा इह देवता यज्ञैः स्वः लोकं याति याज्ञिकः भुञ्जीत देववत् तत्र भोगान् दिव्यान् निज अर्जितान् ॥ २३ ॥

इह यज्ञैः - इस लोकमें यज्ञोंके द्वारा
देवता इष्ट्वा - देवताओंकी आराधना करके
याज्ञिकः - यज्ञकर्ता
स्वः लोकं याति - स्वर्ग लोक जाता है,
तत्र निज अर्जितान् - वहाँ अपने कमाये
दिव्यान् भोगान् - दिव्य भोगोंको
देववत् भुञ्जीत - देवताओंके समान भोगता है ॥ २३ ॥

स्वपुण्योपचिते शुभ्रे विमान उपगीयते ।
गन्धर्वैर्विहरन् मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् ॥ २४ ॥

स्वपुण्य उपचिते शुभ्रे विमान उपगीयते गन्धर्वैः विहरन् मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् ॥ २४ ॥

स्वपुण्य उपचिते - अपने पुण्योंसे बने
शुभ्रे विमान - उज्ज्वल विमानपर
गन्धर्वैः - गन्धर्वों द्वारा
उपगीयते - प्रशंसित होता
देवीनां हृद्य - देवियोंका मनमोहन
वेषधृक् - वेश धारण करके
मध्ये विहरन् - उनके बीच विहार करता है ॥ २४ ॥

स्त्रीभिःकामगयानेन किंकिणीजालमालिना ।
क्रीडन् न वेदात्मपातं सुराक्रीडेषु निर्वृतः ॥ २५ ॥

स्त्रीभिः कामग यानेन किंकिणी जाल मालिना क्रीडन् न वेद आत्मपातं सुरा आक्रीडेषु निर्वृतः ॥ २५ ॥

किंकिणी जाल - घंटियोंके जालकी
मालिना - माला वाले
कामग यानेन - इच्छानुसार चलने वाले विमानसे
सुर आक्रीडेषु - देवताओंकी विहार स्थलियोंमें
स्त्रीभिः- - स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा
क्रीडन् करता
निर्वृतः - आनन्दमग्न
आत्मपातं - (एक दिन) अपना गिराया जाना
न वेद - नहीं जानता ॥ २५ ॥

तावत् प्रमोदते स्वर्गे यावत् पुण्यं समाप्यते ।
क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन् कालचालितः ॥ २६ ॥

तावत् प्रमोदते स्वर्गे यावत् पुण्यं समाप्यते क्षीणपुण्यः पतति अर्वाक् अनिच्छन् काल चालितः ॥ २६ ॥

तावत् स्वर्गे	- तब तक स्वर्गमें	**क्षीण पुण्यः**	- पुण्य क्षय हो जानेपर
प्रमोदते	- आनन्द मनाता है	**अनिच्छन्**	- इच्छा न होनेपर भी
यावत् पुण्यं	- जब तक (उसके) पुण्य	**काल चालितः**	- कालके द्वारा हटाये जानेसे
समाप्यते	- समाप्त नहीं हो जाते	**अर्वाक् पतति**	- नीचे गिरता है ॥२६॥

यद्यधर्मरतः संगादसतां वाजितेन्द्रियः ।
कामात्मा कृपणो लुब्धः स्त्रैणो भूतविहिंसकः ॥ २७ ॥

यत् अधर्मरतः संगात् असतां वा अजित इन्द्रियःकाम आत्मा कृपणः लुब्धः स्त्रैणः भूत विहिंसकः ॥ २७ ॥

यत् असतां-संगात्	- क्योंकि दुष्टोंके संगसे	**अधर्मरतः**	- अधर्ममें लगकर
वा अजितेन्द्रियः	- अथवा इन्द्रियोंको न जीतनेके कारण	**कृपणः लुब्धः**	- कंजूस, लोभी,
काम आत्मा	- कामना वश चित्त	**स्त्रैणः**	- स्त्रीजित्
		भूत विहिंसकः	- प्राणियोंको मारने वाला (हो गया) ॥ २७ ॥

पशूनविधिनाऽऽलभ्य प्रेतभूतगणान् यजन् ।
नरकानवशो जन्तुर्गत्वा यात्युल्बणं तमः ॥ २८ ॥

पशून अविधिना आलभ्य प्रेत भूत गणान् यजन् नरकान् अवशः जन्तुः गत्वा याति उल्बणं तमः ॥ २८ ॥

अविधिना - विधि न होनेपर भी
पशून् आलभ्य - पशुओंकी बलि देकर
प्रेत भूतगणान् - प्रेत-भूतगणोंकी
यजन् - पूजा करके
जन्तुः अवशः - जीव विवश होकर
नरकान् गत्वा - नरकोंमें जाकर
उल्बणं तमः- - घोर अज्ञानमें
याति पड़ता है ॥ २८ ॥

कर्माणि दुःखोदर्काणि कुर्वन् देहेन तैः पुनः ।
देहमाभजते तत्र किं सुखं मर्त्यधर्मिणः ॥ २९ ॥

कर्माणि दुःख उदर्काणि कुर्वन् देहेन तैः पुनः देहम् आभजते तत्र किं सुखं मर्त्य धर्मिणः ॥ २९ ॥

पुनः तैः देहेन - फिर (स्वर्ग या नरकसे आकर) प्राप्त उन शरीरोंसे
दुःख उदर्काणि - दुःख उत्पन्न करने वाले
कर्माणि कुर्वन् - कर्मोंको करते हुए
देहम् आभजते - शरीर ही पाता रहता है
तत्र मर्त्यधर्मिणः - इस मार्गमें मरण धर्मा जीवको
किं सुखं - क्या सुख है ॥ २९ ॥

लोकानां लोकपालानां मद्भयं कल्पजीविनाम् ।
ब्रह्मणोऽपि भयं मत्तो द्विपरार्धपरायुषः ॥ ३० ॥

लोकानां लोकपालानां मत् भयं कल्प जीविनां ब्रह्मणः अपि भयं मत्तः द्विपरार्ध पर आयुषाम् ॥ ३० ॥

कल्प जीविनां - एक कल्प तक जीनें वाले
लोकानां - लोकोंको एवं
लोकपालानां- लोकपालोंको
मत् भयं - मुझ (कालरूप) से भय है
द्विपरार्ध - दो परार्ध की
पर आयुषां - लम्बी आयुवाले
ब्रह्मणः अपि - ब्रह्माको भी
मत् भयं - मुझसे भय है ॥ ३० ॥

गुणाः सृजन्ति कर्माणि गुणोऽनुसृजते गुणान् ।
जीवस्तु गुणसंयुक्तो भुङ्क्ते कर्मफलान्यसौ ॥ ३१ ॥

गुणाः सृजन्ति कर्माणि गुणः अनुसृजते गुणान् जीवः तु गुण संयुक्तः भुङ्क्ते कर्मफलानि असौ ॥ ३१ ॥

गुणाः कर्माणि	-	(सत्वादि) गुण कर्मोंको	**असौ गुण संयुक्तः**	-	यह गुणोंसे संयुक्त
सृजन्ति	-	उत्पन्न करते हैं			
गुणः गुणान्	-	गुण-गुणोंको ही	**जीवः तु**	-	जीव तो
अनुसृजते	-	एकके बाद एक उत्पन्न करते हैं,	**कर्मफलानि**	-	कर्मोंका फल
			भुङ्क्ते	-	भोगता है ॥ ३१ ॥

यावत् स्याद् गुणवैषम्यं तावन्नानात्वमात्मनः ।
नानात्वमात्मनो यावत् पारतन्त्र्यं तदैव हि ॥ ३२ ॥

यावत् स्यात् गुण वैषम्यं तावत् नाना त्वं आत्मनः नानात्वं आत्मनः यावत् पारतन्त्र्यं तत् एव हि ॥ ३२ ॥

यावत्	-	जबतक	**नानात्वं**	-	अनेक रूपता (भासती) है
गुण वैषम्यं स्यात्	-	गुणोंमें विषमता रहती है,	**हि यावत्**	-	क्योंकि जबतक
तावत् आत्मनः	-	तब तक आत्मामें	**आत्मनः नानात्वं**	-	आत्मामें अनेक रूपता है
			तत् एव पारतन्त्र्यं	-	तब तक परतन्त्रता है ॥ ३२ ॥

यावदस्यास्वतन्त्रत्वं तावदीश्वरतो भयम् ।
य एतत् समुपासीरंस्ते मुह्यन्ति शुचार्पिताः ॥ ३३ ॥

यावत् अस्य अस्वतन्त्रत्वं तावत् ईश्वरतः भयं यः एतत् सम उपासीरन् ते मुह्यन्ति शुच अर्पिताः ॥ ३३ ॥

यावत् अस्य	-	जब तक इसकी	**यः एतत्**	-	जो इस (भेद बुद्धि)को
अस्वतन्त्रत्वं	-	पराधीनता है	**सम उपासीरन्**	-	थोड़ी भी अपनाते हैं
तावत् ईश्वरतः	-	तब तक ईश्वरसे	**ते शुच अर्पिताः**	-	वे शोक ग्रस्त होकर
भयं		भय है,	**मुह्यन्ति**	-	मोहित होते हैं ॥३३॥

काल आत्माऽऽगमो लोकः स्वभावो धर्म एव च ।
इति मां बहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति ॥ ३४ ॥

काल आत्मा आगमः लोकः स्वभावः धर्म एव च इति मां बहुधा प्राहुः गुणव्यतिकरे सति ॥ ३४ ॥

गुणव्यतिकरे सति	- गुणोंमें विकार होनेपर	**च धर्म एव**	- तथा धर्म भी
काल आत्मा	- काल, आत्मा,	**इति मां**	- इस प्रकार मुझे
लोकः स्वभावः	- लोक, स्वभाव (प्रकृति)	**बहुधा प्राहुः**	- अनेक प्रकारसे कहा (वर्णन किया) जाता है ॥ ३४ ॥

उद्धव उवाच–

गुणेषु वर्तमानोऽपि देहजेष्वनपावृतः ।
गुणैर्न बद्ध्यते देही बद्ध्यते वा कथं बिभो ॥ ३५ ॥

गुणेषु वर्तमानः अपि देहजेषु अनपावृतः गुणैः न बद्ध्यते देही बद्ध्यते वा कथं विभो ॥ ३५ ॥

विभो	- प्रभो !	**देहीकथं**	- जीव कैसे
देहजेषु	- शरीरसे उत्पन्न होने वाले	**अनपावृतः**	- (उनसे) ढके बिना
गुणेषु	- (सुख-दुःखादि) गुणोंमें	**गुणैः न बद्ध्यते**	- गुणोंसे नहीं बँधता
वर्तमानः अपि	- रहता हुआ भी	**वा बद्ध्यते**	- अथवा बँध जाता है ? ॥ ३५ ॥

कथं वर्तेत विहरेत् कैर्वा ज्ञायेत लक्षणैः ।
किं भुञ्जीतोत विसृजेच्छयीतासीत याति वा ॥ ३६ ॥

कथं वर्तेत विहरेत् कैः वा ज्ञायेत लक्षणैः किं भुञ्जीत उत विसृजेत् शयीत आसीत याति वा ॥ ३६ ॥

कथं वर्तेत - कैसे व्यवहार करे ?
वा विहरेत् - अथवा (किनके साथ) रहे ?
कैः लक्षणैः - किन लक्षणोंसे जाना
ज्ञायेत जाय
किं भुञ्जीत - क्या खाय
उत विसृजेत् - या छोड़ दे ?
शयीत आसीत - सोये, बैठे,
वा याति - अथवा चलता रहे ? ॥ ३६ ॥

एतदच्युत मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर ।
नित्यमुक्तो नित्यबद्ध एक एवेति मे भ्रमः ॥ ३७ ॥

एतत् अच्युत मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर नित्यमुक्त नित्यबद्ध एक एव इति मे भ्रमः ॥ ३७ ॥

प्रश्न विदांवर - प्रश्नोंको समझने वालोंमें श्रेष्ठ !
अच्युत - अच्युतः
एतत् मे प्रश्नं - इन मेरे प्रश्नोंको
ब्रूहि - बतलाओ
एक एव - एकही
नित्यमुक्तः - नित्यमुक्त और
नित्यबद्ध - नित्य बद्ध है,
इति मे भ्रमः - यही मुझे सन्देह है ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

बद्धोमुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ।
गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम् ॥ १ ॥

बद्धः मुक्त इति व्याख्या गुणतः मे न वस्तुतः गुणस्य माया मूलत्वात् न मे मोक्षः न बन्धनम् ॥ १ ॥

बद्धः मुक्त	- बद्ध और मुक्त	**गुणस्य**	- गुणोंके
इति व्याख्या	- ऐसी व्याख्या	**माया मूलत्वात्**	- माया मूलक होनेसे
गुणतः	- गुणोंको लेकर (होती है)	**मे न मोक्षः**	- मेरा न मोक्ष है,
वस्तुतः मे न	- वस्तुतः मेरी नहीं है,	**न बन्धनं**	- न बन्धन ॥ १ ॥

शोकमोहौ सुखं दुःखं देहापत्तिश्च मायया ॥
स्वप्नो यथाऽऽत्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी ॥ २ ॥

शोक मोहौ सुखं दुःखं देह आपत्तिः च मायया स्वप्नः यथा आत्मनः ख्यातिः संसृतिः न तु वास्तवी ॥ २ ॥

यथा स्वप्नः	- जैसे स्वप्न	**देह आपत्तिः**	- शरीरकी प्राप्ति,
आत्मनः ख्यातिः	- बुद्धिका विवर्त है (ऐसे ही)	**च संसृतिः**	- तथा जन्म-मरण चक्र
		मायया तु	- मायासे ही है
शोक मोहौ	- शोक, मोह,	**वास्तवी न**	- वास्तविक नहीं है
सुखं दुःखं	- सुख, दुःख,		॥ २ ॥

विद्याविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम् ।
मोक्षबन्धकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥ ३ ॥

विद्या अविद्ये मम तनू विद्धि उद्धव शरीरिणां मोक्ष बन्धकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥ ३ ॥

उद्धव	-	उद्धव !	**मम तनू**	-	मेरे शरीर हैं (इनमें)
मे मायया	-	मेरी मायासे	**आद्ये मोक्ष**	-	पहिली (विद्या) मोक्ष (दूसरी)
विनिर्मिते	-	बनाये हुए	**बन्धकरी**	-	बन्धन देने वाली है ॥ ३ ॥
विद्या अविद्ये	-	विद्या और अविद्या रूप			

एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते ॥
बन्धोऽस्याविद्ययानादिर्विद्यया च तथेतरः ॥४॥

एकस्य एव मम अंशस्य जीवस्य एव महामते बन्धः अस्य अविद्यया अनादिः विद्यया च तथा इतरः ॥ ४ ॥

महामते	-	महाबुद्धिमान उद्धव !	**अनादिः- अविद्यया**	-	अनादि अविद्यासे
एकस्य एव	-	एक ही	**अस्य बन्धः**	-	इसका बन्धन है
मम अंशस्य	-	मेरे अंश	**च विद्यया तथा**	-	एवं विद्यासे इसी प्रकार
जीवस्य एव	-	जीवका ही	**इतरः**	-	दूसरा (मोक्ष होता है) ॥ ४ ॥

अथं बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते ।
विरुद्धधर्मिणोस्तात स्थितयोरेकधर्मिणि ॥ ५ ॥

अथ बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते विरुद्ध धर्मिणः तात स्थितयोः एक धर्मिणि ॥ ५ ॥

तात	-	प्रिय उद्धव !	**बद्धस्य मुक्तस्य**	-	बद्ध एवं मुक्तकी
एक धर्मिणि	-	एक ही धर्ममें	**अथ ते**	-	अब तुमसे
स्थितयोः	-	रहने वाले	**वैलक्षण्यं वदामि**	-	विलक्षणता बतलाता हूँ ॥ ५ ॥
विरुद्ध धर्मिणः	-	विरोधी धर्म वाले			

सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ
यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे ।
एकस्तयोः खादति पिप्पलान्न-
मन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥ ६ ॥

सुपर्णौ एतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छया एतौ कृतनीडौ च वृक्षे एकः तयोः खादति पिप्पल अन्नं अन्यः निरन्नः अपि बलेन भूयान् ॥ ६ ॥

एतौ	- ये दोनों (जीव-अन्तर्यामी ईश्वर)	**तयोः एकः**	- उनमेंसे एक (जीव)
सुपर्णौ सदृशौ	- समान पक्षी	**पिप्पल-**	- पीपलके फल खाता है
सखायौ	- मित्र हैं,	**अन्नं खादति**	(शरीरके कर्मफल भोगता है)
यदृच्छया एतौ	- संयोगवश ये दोनों	**अन्यः निरन्नः**	-- दूसरा (अन्तर्यामी)
वृक्षे च-	- वृक्ष (शरीर) में ही	**अपि**	निराहार होनेपर भी
कृतनीडौ	घोंसला बनाये हैं	**भूयान् बलेन**	- बहुत बलवान है ॥६॥

आत्मानमन्यं च स वेद विद्वा-
नपिप्पलादो न तु पिप्पलादः ।
योऽविद्यया युक् स तु नित्यबद्धो
विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥ ७ ॥

आत्मानं अन्यं च स वेद विद्वान् अपिप्पलादः न तु पिप्पलादः यः अविद्यया युक् स तु नित्यबद्धः विद्यामयः यः स तु नित्यमुक्तः ॥ ७ ॥

अपिप्पलादः - पीपलके फल न खाने वाला
विद्वान् आत्मानं - विद्वान अपनेको
च अन्यं वेद - और दूसरेको भी जानता है
तुपिप्पलादः न - किन्तु पीपलके फल खाने वाला नहीं जानता
यः अविद्यया - (इस प्रकार) जो
युक् अविद्याग्रस्त है
स तु नित्यबद्धः - वह तो नित्य बद्ध है,
यः विद्यामयः - जो विद्यामय है
स तु नित्यमुक्तः - वह तो नित्यमुक्त है ॥ ७ ॥

देहस्थोऽपि न देहस्थो विद्वान् स्वप्नाद् यथोत्थितः ।
अदेहस्थोऽपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग् यथा ॥ ८ ॥

देहस्थः अपि न देहस्थः विद्वान् स्वप्नात् यथा उत्थितः अदेहस्थः अपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृक् यथा ॥ ८ ॥

विद्वान् - ज्ञानी
यथा स्वप्नात् - जैसे स्वप्नसे
उत्थितः - जग गया हो,
देहस्थः अपि - शरीरमें रहते हुए भी
अदेहस्थः - शरीरमें नहीं रहता और
कुमतिः - दुर्बुद्धि (पुरुष)
यथा स्वप्न दृक् - जैसे स्वप्न देखता हो
अदेहस्थः अपि - शरीरमें न रहनेपर भी
देहस्थः - शरीरमें रहता है ॥ ८ ॥

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु गुणैरपि गुणेषु च ।
गृह्यमाणेष्वहंकुर्यान्न विद्वान् यस्त्वविक्रियः ॥ ९ ॥

इन्द्रियैः इन्द्रिय अर्थेषु गुणैः अपि गुणेषु च गृह्यमाणेषु अहं कुर्यात् न विद्वान् यः तु अविक्रियः ॥ ९ ॥

यः तु - जो तो निर्विकार
अविक्रियः
विद्वान् - ज्ञानी है (वह)
इन्द्रियैः - इन्द्रियों द्वारा
इन्द्रिय अर्थेषु - इन्द्रियोंके विषयोंको
च गुणैः - तथा गुणों द्वारा
गुणेषु गृह्यमाणेषु - गुणोंके ग्रहण होनेपर
अहं न कुर्यात् - (उनमें अपने कर्तापनका) अहंकार न करे ॥९॥

दैवाधीने शरीरेऽस्मिन् गुणभाव्येन कर्मणा ।
वर्तमानोऽबुधस्तत्र कर्तास्मीति निबद्ध्यते ॥ १० ॥

दैव आधीने शरीरे अस्मिन् गुण भाव्येन कर्मणा वर्तमानः अबुधः तत्र कर्ता अस्मि इति निबद्ध्यते ॥ १० ॥

अस्मिन् दैव- - इस दैवके वशमें रहने
आधीने वाले
शरीरे - शरीरमें
गुण भाव्येन - गुणोंके द्वारा होने वाले
कर्मणा - कर्मोंमें

तत्र वर्तमानः - वहां (केवल) रहता हुआ
अबुधः - अज्ञानी
कर्ता अस्मि - 'मैं करने वाला हूँ'
इति निबध्यते - इस (अहंकार)से वँध जाता है ॥ १० ॥

एवं विरक्तः शयने आसनाटनमज्जने ।
दर्शनस्पर्शनघ्राणभोजनश्रवणादिषु ॥ ११ ॥

एवं विरक्तः शयने आसन अटनमज्जने दर्शन स्पर्शन घ्राण भोजन श्रवण आदिषु ॥ ११ ॥

एवं शयने - इस प्रकार सोने,
आसन अटन - बैठने, घूमने,
मज्जने दर्शन - स्नान करने, देखने,

स्पर्शन घ्राण - छूने, सूंघने,
भोजन श्रवण - भोजन, सुनने
आदिषु विरक्तः - आदिसे उदासीन रहे ॥ ११ ॥

न तथा बद्ध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन् गुणान् ।
प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा खं सवितानिलः ॥ १२ ॥

न तथा बद्ध्यते विद्वान् तत्र तत्र अदयन् गुणान् प्रकृतिस्थः अपि असंसक्तः यथा खं सविता अनलः ॥ १२ ॥

प्रकृतिस्थः अपि - प्रकृतिमें स्थित होकर भी
तत्र तत्र गुणान् - उन उन स्थितियोंमें गुणोंका
अदयन् - उपभोग करके
यथा खं - जैसे आकाश
सविता अनलः - सूर्य और अग्नि
असंसक्तः - अनासक्त रहकर
विद्वान् तथा - ज्ञानी इनके समान ही
बद्ध्यते न - बन्धनमें नहीं पड़ता

॥ १२ ॥

वैशारद्येक्षयासंगशितया छिन्नसंशयः ।
प्रतिबुद्ध इव स्वप्नान्नानात्वाद् विनिवर्तते ॥ १३ ॥

वैशारद ईक्षया असंग शितया छिन्न संशयः प्रतिबद्ध इव स्वप्नात् नानात्वात् विनिवर्तते ॥ १३ ॥

असंग शितया - असंगतासे तीक्ष्ण हुई
वैशारद ईक्षया - निपुण निरीक्षण दृष्टिसे
छिन्न संशयः - सन्देहोंको काटकर
स्वप्नात् - स्वप्नसे
प्रतिबद्ध इव - जागे हुएके समान
नानात्वात् - अनेकतासे
विनिवर्तते - उपराम हो जाता है

॥ १३ ॥

यस्य स्युर्वीतसंकल्पाः प्राणेन्द्रियमनोधियाम् ।
वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोऽपि हि तद्गुणैः ॥ १४ ॥

यस्य स्युः वीत संकल्पाः प्राण इन्द्रिय मनः धियां वृत्तयः स विनिर्मुक्तः देहस्थः अपि हि तत् गुणैः ॥ १४ ॥

यस्य प्राण - जिसकी प्राण,
इन्द्रिय मनः - इन्द्रिय, मन,
धियां वृत्तयः - बुद्धिकी चेष्टायें
वीत संकल्पाः - संकल्प रहित होती हैं
स्युः
स देहस्थः अपि - वह शरीरमें रहता हुआ भी
तद्गुणैः - उसके गुणोंसे
विनिर्मुक्तः सर्वथा मुक्त है ॥ १४॥

यस्यात्मा हिंस्यते हिंस्त्रैर्येन किञ्चिद् यदृच्छया ।
अर्च्यते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ॥ १५ ॥

यस्य आत्मा न हिंस्यते हिंस्त्रैः येन किञ्चित् यदृच्छया अर्च्यते वा क्वचित् तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ॥ १५ ॥

यस्यबुधः	- जिस ज्ञानीका	**यदृच्छया**	- संयोगवश
आत्मा हिंस्त्रैः	- चित्त हिंसको (उत्पीडकों) द्वारा	**वा अर्च्यते**	- अथवा (उनके द्वारा) सत्कृत होनेपर
न हिंस्यते	- नहीं पीड़ित होता,	**व्यतिक्रियतेन**	- विकृत (हर्षित) नहीं होता ॥ १५ ॥

न स्तुवीत न निन्देत कुर्वतः साध्वसाधु वा ।
वदतो गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ्मुनिः ॥ १६ ॥

न स्तुवीत न निन्देत कुर्वतः साधु असाधु वा वदतः गुण दोषाभ्यां वर्जितः समदृक् मुनिः ॥ १६ ॥

साधु कुर्वतः	- अच्छाकाम करने वालेकी	**दोषाभ्यां**	- दोषोंके द्वारा
गुण वदतः	- गुण बतलाते हुए	**निन्देत न**	- निन्दा न करे
स्तुवीत न	- प्रशंसा न करे	**मुनिः वर्जितः**	- मुनि (दोनोंसे) रहित
वा असाधु	- अथवा बुरा (करने वालेकी)	**समदृक्**	- समदर्शी रहे ॥ १६ ॥

न कुर्यान्न वदेत् किञ्चिन्न ध्यायेत् साध्वसाधु वा ।
आत्मारामोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ॥ १७ ॥

न कुर्यात् न वदेत् किञ्चित् न ध्यायेत् साधु असाधु वा आत्मारामः अनया वृत्त्या विचरेत् जडवत् मुनिः ॥ १७ ॥

साधु वा असाधु - अच्छा या बुरा
किञ्चित् न - कुछ भी न
कुर्यात् न वदेत् - न करे, न बोले,
न ध्यायेत् - न सोचे,
आत्मारामः - आत्मामें ही रमण करने वाला
मुनिः- - मननशील इस वृत्तिसे
अनयावृत्त्या
जडवत्- - मूर्खके समान विचरण
विचरेत् करे ॥ १७ ॥

शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि ।
श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥ १८ ॥

शब्द ब्रह्मणि निष्णातः न निष्णायात् परे यदि श्रमः तस्य श्रमफलः हि अधेनुं इव रक्षतः ॥ १८ ॥

शब्द ब्रह्माणि - शब्दब्रह्म वेदमें
निष्णातः - निपुण होकर
यदि परे - यदि परमब्रह्ममें
निष्णायात् न - निपुण नहीं हुआ तो
हि अधेनुं - क्योंकि दूध न देने वाली
रक्षतः इव - (गाय) के पालनके समान
तस्य श्रमः - उसका परिश्रम
श्रमफलः - परिश्रम रूपी फल ही देता है ॥ १८ ॥

गां दुग्धदोहामसतीं च भार्यां
देहं पराधीनमसत्प्रजां च ।
वित्तं त्वतीर्थीकृतमंग वाचं
हीनां मया रक्षति दुःखदुःखी ॥ १९ ॥

गां दुग्धदोहां असतीं च भार्यां देहं पराधीनं असत् प्रजां च वित्तं तु अतीर्थी कृतं अंग वाचं हीनां मया रक्षति दुःख दुःखी ॥ १९ ॥

अंग	- प्रिय उद्धव !	**अतीर्थीकृतं**	- (दानसे) पवित्र न बनाये गये
दुग्ध दोहां गां	- दूधसे उतरी गाय,	**वित्तं तु**	- धनको भी
च असतीं भार्यां	- तथा कुलटा पत्नी,	**च मयाहीनां-**	- तथा मेरे वर्णनसे रहित
पराधीनं देहं	- पराधीन शरीर,	**वाचं**	वाणीको
असत् प्रजां	- दुष्ट सन्तान	**दुःख रक्षति**	- कष्ट उठाकर रक्षा करने वाला
		दुःखी	- दुःखी होता है ॥१९॥

यस्यां न मे पावनमंग कर्म
स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य ।
लीलावतारेप्सित जन्म वा स्याद्
वन्ध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः ॥ २० ॥

यस्यां न मे पावनं अंग कर्म स्थिति उद्भव प्राण निरोधं अस्य लीला अवतार ईप्सित जन्म वा स्यात् वन्ध्यां गिरं तां बिभृयात् न धीरः ॥ २० ॥

अंग	- प्रिय उद्धव !	**लीला अवतार**	- लीला पूर्वक अवतार
यस्यां मे	- जिसमें मेरे	**जन्म ईप्सित**	- लेकर अभीष्ट चरितकी
अस्य स्थिति	- इस विश्वकी स्थिति,	**न स्यात्**	- चर्चा न हो
उद्भव प्राण-	- उत्पत्तिं, जीवन-निरोध	**तां वन्ध्यां गिरं**	- उस वन्ध्या वाणीको
निरोधं	(प्रलय) के	**धीरः-**	- धीर पुरुष धारण
पावनं कर्म वा	- पवित्र कर्ता कर्म अथवा	**बिभृयात् न**	न करे ॥ २० ॥

एवं जिज्ञासयापोह्य नानात्वभ्रममात्मनि ।
उपारमेत विरजं मनो मय्यर्प्य सर्वगे ॥ २१ ॥

एवं जिज्ञासया अपोह्य नानात्व भ्रमं आत्मनि उपारमेत विरजं मनः मयि अर्प्य सर्वगे ॥ २१ ॥

एवं जिज्ञासया - इस प्रकार जिज्ञासा द्वारा
आत्मनि - आत्मामें
नानात्व भ्रमं - अनेक होनेका भ्रम
अपोह्य - दूर करके
विरजं मनः - निर्मल मन
मयि सर्वगे - मुझ सर्व व्यापकको
अर्प्य अर्पित करके
उपारमेत - उपराम हो जाय ॥२१॥

यद्यनीशो धारयितुं मनो ब्रह्मणि निश्चलम् ।
मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥ २२ ॥

यदि अनीशः धारयितुं मनः ब्रह्मणि निश्चलं मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥ २२ ॥

यदि ब्रह्मणि - यदि ब्रह्ममें
निश्चलं मनः - निश्चल मन
धारयतुं - लगानेमें
अनीशः - असमर्थ हो तो
सर्वाणि कर्माणि - सब कर्मोंको
मयि निरपेक्षः - मेरे लिए निरपेक्ष होकर
समाचर - भली प्रकार करो
॥ २२ ॥

श्रद्धालुर्मे कथाः शृण्वन् सुभद्रा लोकपावनीः ।
गायन्ननुस्मरन् कर्म जन्म चाभिनयन् मुहुः ॥ २३ ॥

श्रद्धालुः मे कथाः शृण्वन् सुभद्रा लोकपावनीः गायन् अनुस्मरन् कर्म जन्म च अभिनयन् मुहुः ॥ २३ ॥

मे सुभद्रा - मेरी मंगलमयी
लोकपावनीः - सब लोकोंको पवित्र करने वाली
कथाः श्रद्धालुः - कथाको श्रद्धापूर्वक
शृण्वन् गायन् - सुनते, वर्णन करते
अनुस्मरन् - बार-बार चिन्तन करते हुए
च जन्म कर्म - तथा अवतार लीलाका
मुहुः अभिनयन् - बार-बार अभिनय करके
॥ २३ ॥

मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन् मदपाश्रयः ।
लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ॥ २४ ॥

मत् अर्थे धर्मकाम अर्थान् आचरन् मत् अपाश्रयः लभते निश्चलां भक्तिं मयि उद्धव सनातने ॥ २४ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**मत् अपाश्रयः**	- मेरा आश्रय लेकर
मत् अर्थे	- मेरे लिए	**मयि सनातने**	- मुझ शाश्वत पुरुषमें
धर्मकाम	- धर्म, काम,	**निश्चलां भक्तिं**	- निश्चल भक्ति
अर्थान् आचरन्	- अर्थका पालन करता हुआ	**लभते**	- प्राप्त करता है ॥२४॥

सत्संगलब्धया भक्त्या मयि मां स उपासिता ।
स वै मे दर्शितं सद्भिरञ्जसा विन्दते पदम् ॥ २५ ॥

सत्संग लब्धया भक्त्या मयि मां स उपासिता स वै मे दर्शितं सद्भिः अञ्जसा विन्दते पदम् ॥ २५ ॥

सत्संग लब्धया	- सत्संगसे प्राप्त	**दर्शितं**	- दिखलाये मार्गसे
मयि भक्तत्या	- मुझमें भक्तिसे	**स मां उपासिता**	- वह मेरी उपासना करके
वै स सद्भिः	- निश्चय वह सत्पुरुषों द्वारा	**अञ्जसा मे पदं**	- सरलतासे मेरा पद
		विन्दते	- पाता है ॥ २५ ॥

उद्धव उवाच–

साधुस्तवोत्तमश्लोक मतःकीदृग्विधः प्रभो ।
भक्तिस्त्वय्युपयुज्येत कीदृशी सद्भिरादृता ॥ २६ ॥

साधुः तव उत्तम श्लोक मतःकीदृक् विधः प्रभो भक्तिः त्वयि उपयुज्येत कीदृशी सद्भिः आदृता ॥ २६ ॥

प्रभो	- प्रभो !	**सद्भिः आदृताः**	- सत्पुरुषों द्वारा आदरकी जाने वाली
उत्तम श्लोक	- पुण्यकीर्तिः	**कीदृशी भक्तिः**	- कैसी भक्ति
तव मतः	- आपके मतसे	**त्वयि उपयुज्येत**	- आपकीकी जाती है ॥ २६ ॥
साधुःकीदृक्	- साधु कैसे लक्षणोंके		
विधः	होते हैं ?		

एतन्मे पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत्प्रभो ।
प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥ २७ ॥

एतत् मे पुरुष अध्यक्ष लोक अध्यक्ष जगत् प्रभो प्रणताय अनुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥ २७ ॥

पुरुष अध्यक्ष - जीवोंके स्वामी !
लोक अध्यक्ष - सब लोकोंके स्वामी !
जगत् प्रभो - जगन्नाथ !
मे प्रणताय - मुझ विनम्र
अनुरक्ताय - अपने प्रेमी
च प्रपन्नाय - तथा शरणागतको
एतत् कथ्यतां - यह बतलाइये ॥२७॥

त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः ।
अवतीर्णोऽसि भगवन् स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥ २८ ॥

त्वं ब्रह्मपरमं व्योम पुरुषः प्रकृतेःपरः अवतीर्णः असि भगवन् स्व इच्छा उपात्त पृथक् वपुः ॥ २८ ॥

भगवन् - भगवन् !
त्वं प्रकृतेःपरः - आप प्रकृतिसे परे
परमं व्योम - चिदाकाशरूप
ब्रह्म पुरुषः - ब्रह्म, पुरुषोत्तम
स्व इच्छा - अपनी इच्छासे
पृथक् वपुः - पृथक शरीर धारण करके
उपात्त
अवतीर्णः असि - अवतरित हुए हैं
॥ २८ ॥

श्रीभगवानुवाच—

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् ।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥ २९ ॥

कृपालुः अकृत द्रोहः तितिक्षुः सर्व देहिनां सत्यसारः अनवद्य आत्मा समः सर्व उपकारकः ॥ २९ ॥

सर्व देहिनां - सब शरीर धारियोंके प्रति
कृपालुः - कृपा करने वाला,
अकृत द्रोहः - शत्रुता न करने वाला,
सत्यसारः - सत्यग्राही,
अनवद्य आत्मा - निर्दोष चित्त,
समः - समदर्शी
सर्व उपकारकः - सर्वोपकारी ॥ २९ ॥

कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः ।
अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥ ३० ॥

कामैः अहत धीः दान्तः मृदुः शुचिः अकिञ्चनः अनीहः मितभुक् शान्तः स्थिरः मत् शरणः मुनिः ॥ ३० ॥

कामैः अहत- - कामनाओंसे बिना चोट
धीः खायी बुद्धि वाला,
दान्तः - इन्द्रियजयी,
मृदुः शुचिः - कोमल स्वभाव, पवित्र,
अकिञ्चनः - अपरिग्रही,
अनीहः - कामनाहीन,
मितभुक् - थोड़ा खाने वाला,
शान्तः स्थिरः - शान्त-स्थिर स्वभाव,
मत् शरणः - मेरी शरणागत
मुनिः - मननशीला ॥ ३० ॥

अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः ।
अमानी मानदः कल्पो मैत्रःकारुणिकः कविः ॥ ३१ ॥

अप्रमत्तः गभीर आत्मा धृतिमान् जित षट् गुणः अमानी मानदः कल्पः मैत्रःकारुणिकः कविः ॥ ३१ ॥

अप्रमत्तः - सदा सावधान,
गभीर आत्मा - गम्भीर चित्त,
धृतिमान् - धैर्यशाली
जितषट् गुणः - ६ (मन तथा पाँच ज्ञानेन्द्रिय) के गुणोंको जीतने वाला
अमानी - (स्वयं) सम्मान न चाहने वाला,
मानदः - (दूसरोंको) सम्मान देने वाला,
कल्पः - (साधनमें) समर्थ,
मैत्रः - मित्रता पूर्ण,
कारुणिकः - दयालु,
कविः - विद्वान ॥ ३१ ॥

आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान् ।
धर्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान् मां भजेत स सत्तमः ॥ ३२ ॥

आज्ञाय एवं गुणान् दोषान् मया आदिष्टान् अपि स्वकान् धर्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान् मां भजेत स सत् तमः ॥ ३२ ॥

मया आदिष्टान्	- मेरे द्वारा उपदिष्ट	**यः सर्वान्**	- जो सब
अपि	होनेपर भी	**धर्मान् सन्त्यज्य**	- धर्मोंको छोड़कर
एवं स्वकान्	- इस प्रकारके अपने	**मां भजेत**	- मेरा भजन करता है
गुणान् दोषान्	- गुण और दोषोंको	**स सत् तमः**	- वह सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं
आज्ञाय	- जानकर		॥ ३२ ॥

ज्ञात्वाज्ञात्वाथ ये वै मां यावान् यश्चास्मि यादृशः ।
भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥ ३३ ॥

ज्ञात्वा अज्ञात्वा अथ ये वै मां यावान् यश्च अस्मि यादृशः भजन्ति अनन्य भावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥ ३३ ॥

यावान् यंश्च	- जितना और जो,	**अनन्य भावेन**	- अनन्य भावसे
यादृशः अस्मि	- जैसामें हूँ	**भजन्ति**	- भजन करते हैं,
मां वै ये	- मुझे निश्चय जो	**ते मे मताः**	- वे मेरे मतसे
ज्ञात्वा अज्ञात्वा	- जानकर अथवा बिना जाने ही	**भक्ततमाः**	- भक्तोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ३३ ॥

मल्लिङ्गमद्भक्तजनदर्शनस्पर्शनार्चनम् ।
परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् ॥ ३४ ॥

मत् लिंग मत् भक्त ज़न दर्शन स्पर्शन अर्चनं परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुण कर्म अनुकीर्तनम् ॥ ३४ ॥

मत् लिंग - मेरी मूर्ति एवं
मत् भक्तजन - मेरे भक्तोंका
दर्शन स्पर्शन - दर्शन, स्पर्श,
अर्चनं परिचर्या - पूजा-सेवा,
स्तुतिः प्रह्व - स्तुति, प्रणाम,
गुण कर्म - एवं (मेरे) गुणों तथा कर्मोंका
अनुकीर्तनं - बार-बार वर्णन करना ॥ ३४ ॥

मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव ।
सर्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम् ॥ ३५ ॥

मत् कथा श्रवणे श्रद्धा मत् अनुध्यानं उद्धव सर्वलाभ उपहरणं दास्येन आत्म निवेदनम् ॥ ३५ ॥

उद्धव - उद्धव !
मत् कथा श्रवणे - मेरी कथा सुननेमें
श्रद्धा - श्रद्धा,
मत् अनुध्यान - मेरा बार-बार चिन्तन,
सर्वलाभ - जो कुछ मिले वह सब
उपहरणं - मुझे अर्पित करना एवं
दास्येन - दास्य भावसे
आत्म निवेदनं - आत्म समर्पण कर देना ॥ ३५ ॥

मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम् ।
गीततााण्डववादित्रगोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः ॥ ३६ ॥

मत् जन्म कर्म कथनं मम पर्व अनुमोदनं गीत ताण्डव वादित्र गोष्ठीभिः मत् गृह उत्सवः ॥ ३६ ॥

मत् जन्म कर्म - मेरे प्राकट्य एवं चरितोंका
कथनं - वर्णन करना,
मत् पर्व-अनुमोदनं - मेरे पर्वोंपर आनन्द मनाना,
गीत ताण्डव वादित्र - गायन, नृत्य, वाद्यसे
गोष्ठीभिः - समाजों द्वारा
मद्गृह उत्सवः - मेरे मन्दिरमें उत्सव करे ॥ ३६ ॥

यात्रा बलिविधानं च सर्ववार्षिकपर्वसु ।
वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥ ३७ ॥

यात्रा बलि विधानं च सर्व वार्षिक पर्वसु वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीयव्रत धारणम् ॥ ३७ ॥

सर्व वार्षिक - सब वार्षिक
पर्वसु - त्योहारोंपर
यात्र च - यात्रा निकाले तथा
बलि विधानं - विधिपूर्वक उपहार (अर्पित करे)

वैदिकी तान्त्रिकी - वैदिक या (पांचरात्र) तन्त्रकी
दीक्षा - दीक्षा लेकर
मदीय व्रतधारणं - मेरे व्रतोंका पालन करे ॥ ३७ ॥

ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः ।
उद्यानोपवनाक्रीडपुरमन्दिरकर्मणि ॥ ३८ ॥

मम अर्चा स्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य च उद्यमः उद्यान उपवन आक्रीड पुर मन्दिर कर्मणि ॥ ३८ ॥

मम अर्चा - मेरी मूर्ति
स्थापने श्रद्धा - स्थापनामें श्रद्धा रखे
उद्यान उपवन - पुष्प वाटिका, फल बगीचा,

आक्रीड - खेलने-बैठनेके स्थान,
पुर मन्दिर कर्मणि - नगर और मन्दिरके काममें
स्वतः च - स्वयं तथा दूसरोंको
संहत्य जुटाकर
उद्यमः - परिश्रम करे ॥ ३८ ॥

सम्मार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्तनैः ।
गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद् यदमायया ॥ ३९ ॥

सम्मार्जन उपलेपाभ्यां सेक मण्डल वर्तनैः गृह शुश्रूषणं मह्यं दासवत् यत् अमायया ॥ ३९ ॥

अमायया - निष्कपट भावसे
दासवत् - सेवककी भाँति
मह्यं गृह - मेरे मन्दिरकी
संमार्जनं - स्वच्छन्द करने,
उपलेपाभ्यां - लीपने-पोतने,
सेक मण्डल - सींचने, मण्डलादि बनानेकी
वर्तनैः
यत् शुश्रूषणं - जो सेवा हो (वह करे)
॥ ३९ ॥

अमानित्वमदम्भित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम् ।
अपि दीपावलोकं मे नोपयुञ्ज्यान्निवेदितम् ॥ ४० ॥

अमानित्वं अदम्भित्वं कृतस्य अपरिकीर्तनं अपि दीप अवलोकं मे न उपयुञ्ज्यात् निवेदितम् ॥ ४० ॥

अमानित्वं - अभिमान न करे,
अदम्भित्वं - ढोंग न करे
कृतस्य - अपने किये (साधन एवं सत्कर्मका)
अपरिकीर्तनं - वर्णन न करे,
निवेदितं - (मुझको) समर्पित
दीप - दीपकके प्रकाशको भी
अवलोकं अपि
उपयुञ्ज्यात् न - अपने उपयोगमें न ले
॥ ४० ॥

यद् यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ।
तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्याय कल्पते ॥ ४१ ॥

यत् यत् इष्टतमं लोके यत् च अति प्रियं आत्मनः तत् तत् निवेदयेत् मह्यं तदा अनन्त्याय कल्पते ॥ ४१ ॥

लोके यत् यत् - संसारमें जो जो
इष्टतमं - अत्यन्त अभीष्ट हो
च यत् - और जो अपनेको
आत्मनः प्रियं प्रिय हो
तत् तत् मह्यं - वह वह मुझे
निवेदयेत् - निवेदन (अर्पण) करे,
तदा अनन्त्याय- तब वह अनन्त फल देने वाली
कल्पते - हो जाती है ॥ ४१ ॥

सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम् ।
भूरात्मा सर्वभूतानि भद्र पूजापदानि मे ॥ ४२ ॥

सूर्यः अग्निः ब्राह्मणः गावः वैष्णवः खं मरुत् जलं भूः आत्मा सर्वभूतानि भद्र पूजा पदानि मे ॥ ४२ ॥

सूर्यः अग्निः	- सूर्य, अग्नि,	**भूः आत्मा**	- पृथ्वी, अन्तःकरण,
ब्राह्मणः गावः	- ब्राह्मण, गायें,	**सर्वभूतानि**	- सभी प्राणी
वैष्णवः खं	- वैष्णव, आकाश,	**मे भद्र**	- मेरे मंगलमय
मरुत् जलं	- वायु, जल,	**पूजा पदानि**	- पूजन-स्थान हैं ॥४२॥

सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाग्नौ यजेत माम् ।
आतिथ्येन तु विप्राग्रे गोष्वंग यवसादिना ॥ ४३ ॥

सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषि अग्नौ यजेत मां आतिथ्येन तु विप्र अग्रे गोषु अंग यवस आदिना ॥ ४३ ॥

अंग	- प्रिय उद्धव !	**अग्रे विप्र तु**	- श्रेष्ठ ब्राह्मणका तो
सूर्ये तु	- सूर्यमें तो	**आतिथ्येन**	- अतिथि सत्कार करके,
त्रय्या विद्यया	- (ऋक्, यजुः, साम) वेदके मंत्रोंसे,	**गोषु यवस आदिना**	- गायोंको चारा आदि देकर
अग्नौ हविषि	- अग्निमें हविष्य (की आहुति) से	**मां यजेत**	- मेरी आराधना करे ॥ ४३ ॥

वैष्णवे बन्धुसत्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया ।
वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः ॥ ४४ ॥

वैष्णवे बन्धु सत्कृत्या हृदि खे ध्यान निष्ठया वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैः तोय पुरस्कृतैः ॥ ४४ ॥

वैष्णवे - वैष्णवमें
बन्धु सत्कृत्या - भाईके समान सत्कार करके,
हृदि खे - हृदयाकाशमें
ध्यान निष्ठया - निष्ठापूर्ण ध्यानके द्वारा
वायौ- - वायुमें उसे मुख्य प्राण
मुख्यधिया समझकर
तोये तोय - जलमें जल प्रधान
पुरस्कृतैः
द्रव्यैः - द्रव्योंसे (मेरी पूजा होती है) ॥ ४४ ॥

स्थण्डिले मन्त्रहृदयैर्भोगैरात्मानमात्मनि ।
क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम् ॥ ४५ ॥

स्थण्डिले मन्त्र हृदयैः भोगैः आत्मानं आत्मनि क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम् ॥ ४५ ॥

स्थण्डिले - वेदीमें
मन्त्र हृदयैः - मुख्य गुप्त (बीज) मन्त्रों द्वारा
आत्मनि - अन्तःकरणमें
आत्मानं भोगैः - अपनेको (उपयुक्त) भोग देकर,
सर्वभूतेषु - सब प्राणियोंमे
क्षेत्रज्ञं - क्षेत्रज्ञ रूपमें
समत्वेन - समानताके व्यवहारसे
मां यजेत - मेरी आराधना करे ॥ ४५ ॥

धिष्ण्येष्वेष्विति मद् रूपं शंखचक्रगदाम्बुजैः ।
युक्तं चतुर्भुजं शान्तं ध्यायन्नर्चेत् समाहितः ॥ ४६ ॥

धिष्ण्येषु एषु इति मत् रूपं शंख चक्र गदा अम्बुजैः युक्तं चतुर्भुजं शान्तं ध्यायन् अर्चेत् समाहितः ॥ ४६ ॥

एषु धिष्ण्येषु - इन सभी स्थानोंमें
इति शंख चक्र - इस प्रकार शंख, चक्र,
गदा अम्बुजैः - गदा, पद्म युक्त
युक्तं
चतुर्भुजं शान्तं - चतुर्भुज शान्त
रूपं ध्यायन् - रूपका ध्यान करते हुए
समाहितः- - एकाग्र होकर पूजन
अर्चेत् करे ॥ ४६ ॥

इष्टापूर्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः ।
लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया ॥ ४७ ॥

इष्ट आपूर्तेन मां एवं यः यजेत समाहितः लभते मयि सत् भक्तिं मत् स्मृतिः साधुसेवया ॥ ४७ ॥

यः एवं मां	- जो इस प्रकार मेरी	**मयि सत् भक्तिं**	- (वह) मुझमें उत्तम
इष्ट आपूर्तेन	- इष्ट (यज्ञादि) आपूर्ते (कुंआ, सरोवरादि बनवाकर इनके) द्वारा		भक्ति एवं
		साधुसेवया	- संतोंकी सेवासे
समाहितः यजेत	- एकाग्र चित्तसे आराधना करता है,	**मत् स्मृतिः**	- मेरा स्मरण पाता है
		लभते	॥ ४७ ॥

प्रायेण भक्तियोगेन सत्संगेन विनोद्धव ।
नोपायो विद्यते सम्यग्यड् प्रायणं हि सतामहम् ॥ ४८ ॥

प्रायेण भक्ति योगेन सत्संगेन विना उद्धव न उपायः विद्यते सम्यङ् प्रायणं हि सतां अहम् ॥ ४८ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**सम्यङ् उपायः**	- समीचीन उपाय
प्रायेण भक्ति योगेन	- प्रायः भक्तियोग एवं	**न विद्यते**	- नहीं है,
		हि अहं	- क्योंकि मैं
सत्संगेन विना	- सत्संगको छोड़कर	**प्रायणं सतां**	- प्रायः संतोंका हूँ ॥४८॥

अथैतत् परमं गुह्यं शृण्वतो यदुनन्दन ।
सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत् सखा ॥ ४९ ॥

अथ एतत् परमं गुह्यं शृण्वतः यदुनन्दन सुगोप्यं अपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत् सखा ॥ ४९ ॥

यदुनन्दन - यदुनन्दन उद्धव !
अथ एतत् - अब यह
परमं गुह्यं - श्रेष्ठ रहस्य
सुगोप्यं अपि - अत्यन्त छिपाने योग्य होनेपर भी
वक्ष्यामि - बतलाऊंगा (क्योंकि)
त्वं मे भृत्यः - तुम मेरे सेवक,
सुहृत् सखा - हितैषी, मित्र और
शृण्वतः - सुननेको उत्सुक हो ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥

न रोधयति मां योगः न सांख्यं धर्म एव च न स्वाध्यायः तपः त्यागः न इष्ट आपूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥

मां न योगः	- मुझे न योग,	**न इष्ट**	- न इष्ट (यज्ञादि)
न सांख्यं	- न ज्ञान,	**आपूर्तं**	- पूर्त (धर्मशाला-कूपादि) करना
च धर्म एव	- तथा धर्म ही,	**न दक्षिणा**	- (ब्राह्मणोंको) न दक्षिणा देना ही
न स्वाध्यायः	- न जप (या वेदाध्ययन)	**रोधयति**	- वशमें करती है ॥ १ ॥
तपः त्यागः	- तपस्या या त्याग,		

व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः ।
यथावरुन्धे सत्संग सर्वसंगापहो हि माम् ॥ २ ॥

व्रतानि यज्ञ छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः यथा अवरुन्धे सत्संगः सर्वसंग अपहः हि माम् ॥ २ ॥

हि सर्व संग	- क्योंकि (मैं) समस्त आसक्तियोंका	**तीर्थानि**	- तीर्थ
		नियमा यमः	- नियम, यम (मुझे वश नहीं करते)
अपहः	- नाशक हूँ,	**यथा सत्संगः**	- जैसा सत्संगसे
व्रतानि यज्ञ	- व्रत, यज्ञ,	**अवरुन्धे**	- वशमें होता हूँ ॥ २ ॥
छन्दान्सि	- वेद		

सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः ।
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥ ३ ॥

सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः गन्धर्व अप्सरसः नागाः सिद्धाः चारण गुह्यकाः ॥ ३ ॥

हि सत्संगेन	- क्योंकि सत्संगसे	**गन्धर्व अप्सरसः**	- गन्धर्व, अप्सरायें,
दैतेया यातुधाना	- दैत्य, राक्षस,	**नागाः सिद्धाः**	- नाग, सिद्ध,
मृगाः खगाः	- पशु, पक्षी,	**चारण गुह्यकाः**	- चारण, यक्ष ॥ ३ ॥
वैश्याः शूद्राः	- वैश्य, शूद्र,		

विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः ।
रजस्तमः प्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन् युगेऽनघ ॥ ४ ॥

विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियः अन्त्यजाः रजः तमः प्रकृतयः तस्मिन् तस्मिन् युगे अनघ ॥ ४ ॥

अनघ	- निष्पाप उद्धव !	**स्त्रियः अन्त्यजाः**	- शूद्र, अन्त्यज
विद्याधरा	- विद्याधर,	**रजः तमः**	- जो राजसी-तामसी
मनुष्येषु	- मनुष्योंमें भी	**प्रकृतयः**	स्वभाव थे
वैश्याः शूद्राः	- वैश्य, शूद्र,	**तस्मिन्-**	- उन उन युगोंमें
		तस्मिन् युगे	॥ ४ ॥

बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः ।
वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः ॥ ५ ॥

बहवः मत् पदं प्राप्ताः त्वाष्ट्रकायाधव आदयः वृषपर्वा बलिः बाणः मयः च अथ विभीषणः ॥ ५ ॥

बहवः	- बहुतसे	**वृषपर्वा**	- वृषपर्वा १.
मत् पदं प्राप्ताः	- मेरे स्थान चले गये (जैसे)	**बलिः च बाणः**	- बलि और बाणासुर,
त्वाष्ट्रकायाधव	- वृत्रासुर, कचायाधू-	**अथ मयः**	- और मय, विभीषण
	नन्दन प्रह्लाद,	**विभीषणः**	
		आदयः	- आदि ॥ ५ ॥

१. इनकी कथायें महाभारतमें है ।

सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः ।
व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे ॥ ६ ॥

सुग्रीवः हनुमान् ऋक्षः गजः गृध्रः वणिक् पथः व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यः यज्ञपत्न्यः तथा अपरे ॥ ६ ॥

सुग्रीवः हनुमान् - सुग्रीव, हनुमान,
ऋक्षः गजः - ऋक्षराज जाम्बवन्त, गजेन्द्र,
गृध्रः वणिक्पथः - गीधराज जटायु, तुलाधार वैश्यः १
व्याधः कुब्जा - धर्म व्याध१, कुब्जा,
व्रजे गोप्यः - व्रजमें गोपियां,
यज्ञ पत्न्यः - यज्ञ पत्नियां
तथा अपरे - तथा दूसरे भी ॥ ६ ॥

ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः ।
अव्रतातप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः ॥ ७ ॥

ते न अधीत श्रुतिगणा न उपासित महत्तमाः अव्रता अतप्त तपसः सत्संगात् मां उपागताः ॥ ७ ॥

ते श्रुतिगणा - उन्होंने वेद मन्त्रोंका
अधीत न - अध्ययन नहीं किया था,
महत्तमाः - महात्माओंकी
उपासित न - उपासना नहींकी थी,
अव्रता - व्रतहीन थे,
तपसः अतप्त - तपस्या नहींकी थी (पर)
सत्संगात् - मुझ सत्में आसक्ति होनेसे
मां उपागताः - मेरे समीप पहुँच गये ॥ ७ ॥

केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः ।
येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा ॥ ८ ॥

---

१. क्योंकि 'महात्माओंकी उपासना नहींकी थी' यह कह दिया गया, अतः 'सत्संग'का अर्थ यहाँ सत्पुरुषोंका संग नहीं हो सकता । सत्परमात्मामें संग-आसक्ति ही यहां अर्थ समीचीन हो सकता है ।

केवलेन हि भावेन गोप्यः गावः नगा मृगाः ये अन्ये मूढधियः नागाः सिद्धाः मां इयुः अञ्जसा ॥ ८ ॥

हि केवलेन	- क्योंकि केवल	**ये अन्ये**	- जो दूसरे
भावेन	- भावना से ही	**मूढधियः**	- मूढ़ बुद्धि
गोप्यः गावः	- गोपियां, गायें,	**नागाः**	- (कालिय आदि) सर्प थे
नगा मृगाः	- पर्वत, हिरणादि पशु,	**सिद्धाः**	- सिद्ध होकर
		अञ्जसा मां-ईयुः	- सरलतासे मुझे प्राप्त हो गये ॥ ८ ॥

यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः ।
व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद् यत्नवानपि ॥ ९ ॥

यं न योगेन सांख्येन दानव्रत तपः अध्वरैः व्याख्या स्वाध्याय संन्यासैः प्राप्नुयात् यत्नवान् अपि ॥ ९ ॥

योगेन सांख्येन	- योग, ज्ञान,	**सन्यासैः**	- सन्यासके द्वारा
दानव्रत तपः	- दान, व्रत, तपस्या,	**यत्नवान् अपि**	- प्रयत्न (साधन) करने पर भी,
अध्वरैः	- यज्ञ,	**यं न प्राप्नुयात्**	- जिसे नहीं पा सकता ॥ ९ ॥
व्याख्या-स्वाध्याय	- शास्त्र व्याख्या, जप		

रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते
श्वाफल्किना मय्यनुरक्तचित्ताः ।
विगाढभावेन न मे वियोग-
तीव्राधयोऽन्यं ददृशुः सुखाय ॥ १० ॥

रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते श्वाफल्किना मयि अनुरक्त चित्ताः विगाढ़ भावेन न मे वियोग तीव्र आधयः अन्यं ददृशुः सुखाय ॥ १० ॥

श्वाफ़ल्किना - श्वफल्क-नन्दन अक्रूर द्वारा
रामेण सार्धं - बलरामजीके साथ मुझे
मथुरां प्रणीते - मथुरा ले जाये जानेपर
मयि अनुरक्त - मुझमें आसक्त चित्त
चित्ताः (गोपियोंने)
विगाढ भावेन - प्रगाढ़ भावके कारण
मे वियोग - मेरे वियोगकी
तीव्र आधयः - तीव्र चिन्तासे
अन्यं सुखाय - दूसरा कुछ सुखदायक
न ददृशुः - नहीं देखा ॥ १० ॥

तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता
मयैव वृन्दावनगोचरेण ।
क्षणार्धवत्ताः पुनरंग तासां
हीना मया कल्पसमा बभूवुः ॥ ११ ॥

ताः ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयि एव वृन्दावन गोचरेण क्षण अर्धवत् ताः पुनः अंग तासां हीना मया कल्पसमा बभूवुः ॥ ११ ॥

अंग - प्रिय उद्धव !
वृन्दावन गोचरेण - वृन्दावन रहते हुए
मयि एव - मुझ ही
प्रेष्ठतमेन - परम प्रियतमके साथ
क्षण अर्धवत् - आधे क्षणके समान
ताः ताः क्षपाः - वे वे रात्रियां
ताः पुनः - उनके लिए फिर
मया हीना - मुझसे रहित होनेपर
कल्पसमा - एक कल्पके समान
बभूवुः - होगयीं ॥ ११ ॥

ता नाविदन् मय्यनुषंगबद्ध-
धियः स्वमात्मानमदस्तथेदम ।
यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये
नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे ॥ १२ ॥

ता न अविदन् मयि अनुषङ्बद्ध धियः स्वं आत्मानं अदः तथा इदं यथा समाधौ मुनयः अब्धि तोये नद्यः प्रविष्टा इव नाम रूपे ॥ १२ ॥

यथा समाधौ - जैसे समाधिमें
मुनयः - मुनिगण
अब्धितोये - समुद्रके जलमें
नाम रूपे - नाम-रूपके साथ
प्रविष्टा नद्यः - प्रविष्ट हुई नदियोंके
इव समान
मयि अनुषंग - मेरी आसक्तिसे
बद्ध धियः - बँधे चित्तवाली
ता स्वं- - वे (गोपियाँ) अपने
आत्मानं शरीरको,
अदः तथा इदं - सम्बन्धियोंको तथा इस संसारको
अविदन् न - जानती नहीं थीं ।।१२।।

मत्कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽबलाः ।
ब्रह्म मां परमं प्रापुः संगाच्छतसहस्रशः ।। १३ ।।

मत्कामा रमणं जारं अस्वरूप विदः अबलाः ब्रह्म मां परमं प्रापुः संगात् शत सहस्रशः ।। १३ ।।

अस्वरूप विदः - (उनमें बहुत-सी) मेरे स्वरूपको न जानने वाली
अबलाः - स्त्रियां
रमणं जारं - बिहार करने वाला पर पुरुष (मानकर)
मत्कामा - मुझे चाहने वाली
शत सहस्रशः - सैकड़ों-सहस्रों
संगात् मां - आसक्तिसे मुझ
परमं ब्रह्मप्रापुः - परम ब्रह्मको प्राप्त हो गयी ।। १३ ।।

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ।। १४ ।।

तस्मात् त्वं उद्धव उत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनां प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतं एव च ।। १४ ।।

उद्धव - उद्धव !
तस्मात् त्वं - इसलिए तुम
चोदनां प्रति चोदनां - विधि-निषेध,
प्रवृत्तं च - प्रवृत्ति और
निवृत्तं च - निवृत्तिको भी,
श्रोतव्यं - जो सुनने योग्य है
च श्रुतं एव - और जो सुना भी है
उत्सृज्य - (सबको) त्याग दो ।।१४।।

मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् ।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ॥ १५ ॥

मां एकं एव शरणं आत्मानं सर्व देहिनां याहि सर्वात्म भावेन मया स्या हि अकुतः भयः ॥ १५ ॥

सर्व देहिनां	- समस्त शरीर धारियोंके	**एकं मां एव**	- अकेले मेरी ही
आत्मानं	- आत्मा	**शरणं याहि**	- शरण हो जाओ,
सर्व आत्म	- सर्वात्मभावसे	**हि मया**	- क्योंकि मेरे द्वारा
भावेन		**अकुतः भयः-**	- सर्वथा निर्भय हो जाओगे
		स्या	॥ १५ ॥

उद्धव उवाच–

संशयः शृण्वतो वाचं तव योगेश्वरेश्वर ।
न निवर्तत आत्मस्थो येन भ्राम्यति मे मनः ॥ १६ ॥

संशयः शृण्वतः वाचं तव योग ईश्वर ईश्वर न निवर्तत आत्मस्थः येन भ्राम्यति मे मनः ॥ १६ ॥

योग ईश्वर	- योगेश्वरोंके भी स्वामी !	**आत्मस्थं संशयः**	- मेरी बुद्धिमें स्थित संशय
ईश्वर		**निवर्तत न**	- दूर नहीं होता है,
तव वाचं-	- आपकी बात सुनते हुए	**येन मे मनः**	- जिससे मेरा मन
शृण्वतः		**भ्राम्यति**	- भटक रहा है ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच–

स एष जीवो विवरप्रसूतिः
प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः ।
मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं
मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः ॥ १७ ॥

स एष जीवः विवर प्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः मनः मयं सूक्ष्मं उपेत्य रूपं मात्रा स्वरः वर्ण इति स्थविष्ठः ॥ १७ ॥

स एष जीवः - वही ये (परमात्मा) ओंकार रूप
विवर प्रसूतिः - परावाणी रूपसे (मूलाधार) छिद्रसे उत्पन्न होकर
प्राणेन घोषेण - प्राण वायुके नादके साथ
गुहां प्रविष्टः - हृदय गुफामें आकर
मनः मयं - मनोमय
सूक्ष्मं रूपं - सूक्ष्म (पश्यन्ती) रूप
उपेत्य - धारण करके
मात्रा - अर्धमात्रा (मध्यमा) होकर फिर
स्वरः वर्ण - स्वर और व्यञ्जन (रूपमें)
इति स्थविष्ठः - इस प्रकार स्थूल (वैखरी वाणी) होते हैं ॥१७॥

यथानलः खेऽनिलबन्धुरूष्मा
बलेन दारुण्यधिमथ्यमानः ।
अणुः प्रजातो हविषा समिध्यते
तथैव मे व्यक्तिरियं हि वाणी ॥ १८ ॥

यथा अनलः खे अनिल बन्धुः ऊष्मा बलेन दारुणि अधिमध्यमानः अणुः प्रजातः हविषा सम इध्यते तथा एव मे व्यक्तिः इयं हि वाणी ॥ १८ ॥

यथा अनलः - जैसे अग्नि
खे उष्मा - आकाशमें उष्णताके रूपमें रहता है,
अनिल बन्धुः - वायुकी सहायतासे
दारुणि - काष्ठमें
अधिमथ्यमानः - मन्थन करनेपर
अणुः प्रजातः - चिनगारीके रूपमें उत्पन्न होकर
हविषा सम-इध्यते - हविष्यसे पूरा बढ़ जाता है
हि तथा - क्योंकि ऐसे ही
इयं वाणी - यह वाणी
मे व्यक्तिः - मेरा प्राकट्य है ॥१८॥

एवं गदिः कर्म गतिर्विसर्गो
घ्राणो रसो दृक् स्पर्शः श्रुतिश्च ।
संकल्पविज्ञानमथाभिमानः
सूत्रं रजःसत्त्वतमोविकारः ॥ १९ ॥

एवं गदिः कर्म गतिः विसर्गः घ्राणः रसः दृक् स्पर्शः श्रुतिः च संकल्प विज्ञानं अथ अभिमानः सूत्रं रजः सत्त्व तमः विकारः ॥ १९ ॥

एवं गदिः - इसी प्रकार बोलना,
कर्म गतिः - काम करना, चलना,
विसर्गः - मल-मूत्र त्याग
घ्राणः रसः - सूंघना, रसलेना,
दृक् स्पर्शः - देखना, छूना,
च श्रुतिः - तथा सुनना,
संकल्प विज्ञानं - संकल्प करना, बुद्धि,
अथ अभिमानः - और अहंकार,
सूत्रं रजः - महत्तत्त्व, रजोगुण,
सत्त्व तमः - सत्त्वगुण, तमोगुणके
विकारः - (सब) विकार (मेरे ही स्वरूप हैं) ॥ १९ ॥

अयं हि जीवस्त्रिवृदब्जयोनि-
रव्यक्त एको वयसा स आद्यः ।
विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेव भाति
बीजानि योनिं प्रतिपद्य यद्वत् ॥ २० ॥

अयं हि जीवः त्रिवृत् अब्जयोनिः अव्यक्त एकः वयसा स आद्यः विश्लिष्ट शक्तिः बहुधा एव भाति बीजानि योनिं प्रतिपद्य यत् वत् ॥ २० ॥

हि अयं जीवः - क्योंकि यह जीव
त्रिवृत्- - त्रिगुणमय ब्रह्मा है,
अब्जयोनिः
अव्यक्त एकः - अव्यक्त, एक और
वयसा स आद्यः - आयुमें वह सबका कारण है,
योनिं प्रतिपद्य - नाना योनियोंमें जानेपर
बीजानि यत् - बीज जैसे उसी आकारके
वत् हो जाते हैं वैसे ही (यह)
विश्लिष्ट - अनेक शक्तियोंसे युक्त
शक्तिः होकर
बहुधा एव - नाना प्रकारका ही
भाति - प्रतीत होता है ॥२०॥

यस्मिन्निदं प्रोतमशेषमोतं
पटो यथा तन्तुवितानसंस्थः ।
य एष संसारतरुः पुराणः
कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते ॥ २१ ॥

यस्मिन् इदं प्रोतं अशेषं ओतं पटः यथा तन्तु वितान संस्थः य एष संसार तरुः पुराणः कर्म आत्मकः पुष्प फले प्रसूते ॥ २१ ॥

यथा पटः	- जैसे वस्त्र	**य एष संसार तरुः**	- और जो यह संसार वृक्ष
तन्तु वितान संस्थः	- सूतके विस्तारमें स्थित	**कर्म आत्मकः**	- कर्म मय
ओतं प्रोतं	- ओत प्रोत है,	**पुराणः**	- अनादि
यस्मिन् इदं	- जिसमें यह संसार	**पुष्पफले**	- पुष्प (भोग) और फल (मोक्ष)
अशेषं	- सम्पूर्ण रूपसे (स्थित है)	**प्रसूते**	- उत्पन्न करता है ॥२१॥

द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः
पञ्चस्कन्धः पञ्चरसप्रसूतिः ।
दशैकशाखो द्विसुपर्णनीड-
स्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कं प्रविष्टः ॥ २२ ॥

द्वे अस्य बीजे शतमूलः त्रिनालः पञ्च स्कन्धः पञ्चरस प्रसूतिः दश एक शाखः द्वि सुपर्ण नीडः त्रिवलक्लः द्विफलः अर्कं प्रविष्टः ॥ २२ ॥

अस्य द्वे-बीजे	- इसके दो (पाप-पुण्य) बीज हैं,	**दश एक शाखः**	- ग्यारह (दस इन्द्रिय और मन) डालें हैं
शत मूलः	- सैकड़ों (वासनायें) जड़ें हैं,	**द्विसुपर्ण**	- दो (जीव-ईश्वर) पक्षियोंके
त्रिनालः	- तीन (गुण) तने हैं,	**नीडः**	- घोंसले वाला है,
पञ्च स्कन्धः	- पांच (महाभूत) प्रधान शाखा हैं	**त्रिवल्कलः**	- तीन (वात, कफ, पित्त) छालों वाला

पञ्चरस	- पांच (शब्द स्पर्शादि विषय) रस	**द्विफलः**	- दो (सुख-दुःख) फल वाला
प्रसूतिः	- उत्पन्न करता है,	**अर्क प्रविष्टः**	- सूर्य लोक तक फैला है ॥ २२ ॥

अदन्ति चैकं फलमस्य गृध्रा ।
ग्रामेचरा एकमरण्यवासाः ।
हंसा य एकं बहुरूपमिज्यै-
र्मायामयं वेद स वेद वेदम् ॥ २३ ॥

अदन्ति च एकं फलं अस्य गृध्रा ग्रामेचरा एकं अरण्य वासाः हंसा य एकं बहुरूपं इज्यैः मायामयं वेद स वेद वेदम् ॥ २३ ॥

एकं गृध्रा	- कोई गीध (लोभी)	**हंसा**	- हंस (विवेकी) हैं,
ग्रामेचरा	- गांवोंमें रहते हुए	**य एकं बहु**	- जो एकसे अनेक रूप
अस्यफलं	- इसका फल (सुख-दुःख)	**रूपं**	(संसार) को
अदन्ति	- खाते (भोगते) हैं,	**इज्यैः**	- आराधनासे मायामय
च एकं-	- और कोई वनवासी	**मायामयं वेद**	को जानते हैं
अरण्य वासाः	(विरक्त)	**स वेदं वेद**	- वे वेदको ठीक जानते हैं ॥ २३ ॥

एवं गुरूपासनयैकभक्त्या
विद्याकुठारेण शितेन धीरः ।
विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः
सम्पद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥ २४ ॥

एवं गुरु उपासनया एक भक्तया विद्याकुठारेण शितेन धीरः विवृश्च्य जीव आशयं अप्रमत्तः सम्पद्य च आत्मानं अथ त्यज अस्त्रम् ॥ २४ ॥

एवं - इस प्रकार
गुरु उपासनया - गुरुकी उपासनासे एवं
एक भक्तया - अनन्य भक्तिसे
शितेन विद्या- - तीक्ष्ण ज्ञानके
कुठारेण कुल्हाड़ेसे
अप्रमत्तः धीरः - सावधान धैर्यशाली
जीव आशयं - जीव भावको
विवृश्च्य - काटकर
च आत्मनं- - तथा आत्म
सम्पद्य प्राप्ति करके
अथ अस्त्रं - फिर अस्त्र (विद्या)को भी
त्यज - त्याग दो ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः ।
सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात् सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥ १ ॥

सत्त्वं रजः तम इति गुणा बुद्धेः न च आत्मनः सत्त्वेन अन्यतमौ हन्यात् सत्त्वं सत्वेन च एव हि ॥ ११ ॥

हि सत्त्वं रजः	- क्योंकि सत्त्व, रज,	**अन्यतमौ**	- दूसरों (रजोगुण-तमोगुण) को
तम इति	तम ये	**हन्यात्**	- नष्ट कर दे
गुणाः आत्मनः	- गुण आत्माके	**सत्त्वं-सत्त्वेन**	- सत्त्व गुणको सत्त्वगुणसे
न च बुद्धेः	- नहीं हैं, बुद्धिके हैं	**च एव**	ही (दबावे) ॥ १ ॥
सत्त्वेन	- सत्त्वगुणके द्वारा		

सत्त्वाद् धर्मो भवेद् वृद्धात् पुंसो मद्भक्तिलक्षणः ।
सात्त्विकोपासया सत्त्वं ततो धर्मः प्रवर्तते ॥ २ ॥

सत्त्वात् धर्मः भवेत् वृद्धात् पुंसः मद्भक्ति लक्षणः-सात्त्विक उपासया सत्त्वं ततः धर्मः प्रवर्तते ॥ २ ॥

सात्त्विक	- सात्त्विक वस्तुओंके	**ततः धर्मः**	- तब धर्ममें प्रवृत्ति होती
उपासया	सेवनसे	**प्रवर्तते**	है,
पुंसः सत्त्वं	- पुरुषमें सत्त्वगुण	**सत्त्वात् वृद्धात्**	-सत्त्वगुण बढ़ जानेपर
	आता है,	**मद्भक्ति लक्षणः**	-मेरी भक्ति रूपी
		धर्मः भवेत्	- धर्म होता है ॥ २ ॥

धर्मो रजस्तमो हन्यात् सत्त्ववृद्धिरनुत्तमः ।
आशु नश्यति तन्मूलो ह्यधर्म उभये हते ॥ ३ ॥

धर्मः रजः तमः हन्यात् सत्त्ववृद्धिः अनुत्तम आशु नश्यति तत् मूलः हि अधर्म उभये हते ॥ ३ ॥

सत्त्व वृद्धिः	- सत्त्वगुणको बढ़ाने वाला	**उभये हते**	- उन दोनोंके नष्ट हो जानेपर
धर्मः अनुत्तमः	- धर्म सर्वश्रेष्ठ है,		
हि रजः तमः हन्यात्	- क्योंकि वह रजोगुण-तमोगुणको नष्ट कर देता है	**तत् मूलः**	- वही जिसकी जड़ हैं वह
		अधर्म	अधर्म
		आशु नश्यति	- शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

आगमोऽपः प्रजा देशःकालः कर्म च जन्म च ।
ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥ ४ ॥

आगमः अपः प्रजा देशःकालः कर्म च जन्म च ध्यानं मन्त्रः अथ संस्कारः दश एते गुण हेतवः ॥ ४ ॥

आगमः अपः	- शास्त्र, जल,	**अथ मन्त्रः संस्कारः**	- तथा मन्त्र एवं संस्कार
प्रजा देशःकालः	- प्रजा, देश, काल,		
कर्म च जन्म च	- कर्म और जन्म भी,	**एते दश गुण हेतवः**	- ये दस गुणकेकारण होते हैं ॥ ४ ॥

तत्तत् सात्त्विकमेवैषां यद् यद् वृद्धाः प्रचक्षते ।
निन्दन्ति तामसं तत्तद् राजसं तदुपेक्षितम् ॥ ५ ॥

तत् तत् सात्त्विकं एव एषां यत् यत् वृद्धाः प्रचक्षते निन्दन्ति तामसं तत् तत् राजसं तत् उपेक्षितम् ॥ ५ ॥

एतेषां तत् तत्	- इन (दस) में से वे	**तत् तत् तामसं**	- वे वे तामस हैं
सात्त्विकं	- सात्त्विक हैं,	**निन्दन्ति**	- (जिनकी वे) निन्दा करते हैं,
वृद्धाः यत् यत्	- बड़े बूढ़े लोग जिन जिनकी	**तत् उपेक्षितं**	- उनके द्वारा जो उपेक्षित हैं
प्रचक्षते	- प्रशंसा करते हैं,	**राजसं**	- (वे) राजस हैं ॥५॥

सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान् सत्त्वविवृद्धये ।
ततो धर्मस्ततो ज्ञानं यावत् स्मृतिरपोहनम् ॥ ६ ॥

सात्विकान् एव सेवेत पुमान् सत्त्व विवृद्धये ततः धर्मः ततः ज्ञानं यावत् स्मृतिः अपोहनम् ॥ ६ ॥

पुमान्	- पुरुष	**ततः धर्मः**	- उससे धर्म (में प्रवृत्ति) होती है,
सत्त्व विवृद्धये	- सत्त्वगुणकी वृद्धिके लिए	**ततः स्मृतिः**	- उससे संस्कारात्मक चित्तको
सात्त्विकान्-	- सात्त्विक (शस्त्रादि) का	**अपोहनं यावत्**	- नष्ट कर देने तकका
एव	ही	**ज्ञानं**	- ज्ञान होता है ॥ ६ ॥
सेवेत	- सेवन करे		

वेणुसंघर्षजो वह्निर्दग्ध्वा शाम्यति तद्वनम् ।
एवं गुणव्यत्ययजो देहः शाम्यति तत्क्रियः ॥ ७ ॥

वेणु सङ्घर्षजः वह्निः दग्ध्वा शाम्यति तत् वनं एवं गुण व्यत्ययजः देहः शाम्यति तत् क्रियः ॥ ७ ॥

वेणु सङ्घर्षजः	- (जैसे) बांसोंकी रगड़से उत्पन्न	**एवं गुण-**	- इसी प्रकार गुण-वैषम्यसे
		व्यत्ययजः	उत्पन्न
वह्निः तत् वनं	- अग्नि उस वनको	**देहः तत्-**	- सूक्ष्म शरीर अपनी क्रिया
दग्ध्वा शाम्यति	- जलाकर बुझ जाता है	**क्रियः**	पूरी करके
		शाम्यति	- समाप्त हो जाता है ॥ ७ ॥

उद्धव उवाच–

विदन्ति मर्त्याः प्रायेण विषयान् पदमापदाम् ।
तथापि भुञ्जते कृष्ण तत् कथं श्वखराजवत् ॥ ८ ॥

विन्दन्ति मर्त्याः प्रायेण विषयान् पदं आपदां तथा अपि भुञ्जते कृष्ण तत् कथं श्वखर अजवत् ॥ ८ ॥

कृष्ण - श्रीकृष्ण !
प्रायेण मर्त्याः - प्रायः मनुष्य
विषयान् - विषय-भोगोंको
आपदां पदं - विपत्तियोंका स्थान
विन्दन्ति - जानते हैं
तत् कथं - फिर कैसे
श्व खर - कुत्ते, गधे, बकरेके
अजवत् समान
भुञ्जते - (उनको) भोगते हैं ? ॥८॥

श्रीभगवानुवाच–

अहमित्यन्यथाबुद्धिः प्रमत्तस्य यथा हृदि ।
उत्सर्पति रजो घोरं ततो वैकारिकं मनः ॥ ९ ॥

अहं इति अन्यथा बुद्धिः प्रमत्तस्य यथा हृदि उत्सर्पति रजः घोरं ततः वैकारिकं मनः ॥ ९ ॥

यथा प्रमत्तस्य - जैसे असावधान (जीव) के
हृदि अहं इति - हृदयमें (शरीरके प्रति) 'मैं ये हूँ' इस प्रकारकी
अन्यथा बुद्धिः - मिथ्या बुद्धि (होती है) ऐसे ही
घोरं रजः - घोर रजोगुण
उत्सर्पति - (उसमें) आ जाता है,
ततः मनः - उससे मन
वैकारिकं - विकारवान हो जाता है ॥ ९ ॥

रजोयुक्तस्य मनसः संकल्पः सविकल्पकः ।
ततःकामो गुणध्यानाद् दुःसहः स्याद्धिदुर्मतेः ॥ १० ॥

रजः युक्तस्य मनसः संकल्पः सविकल्पकः ततःकामः गुणध्यानात् दुःसहः स्यात् हि दुर्मतेः ॥ १० ॥

हि दुर्मतेः - क्योंकि (वह) दुर्बुद्धि (हो गया) है
रजः युक्तस्य - रजोगुण युक्त हुए
मनसः - मनमें
सविकल्पकः - विकल्पोंके साथ
संकल्पः - संकल्प उठते हैं
ततः- - उनसे गुणोंका चिन्तन
गुणध्यानात् करनेके कारण
दुःसहः - दुःसह
कामः स्यात् - कामनायें होती हैं ॥१०॥

करोतिकामवशगः कर्माण्यविजितेन्द्रियः ।
दुःखोदर्काणि सम्पश्यन् रजोवेगविमोहितः ॥ ११ ॥

करोतिकाम वशगः कर्माणि अविजित इन्द्रियः दुःख उदर्काणि सम्पश्यन् रजः वेग विमोहितः ॥ ११ ॥

कामवशगः	- कामनाओंके वशमें होकर	**कर्माणि-**	- कर्मोंको देखते हुए भी
अविजित-	- इन्द्रियजयी न होनेसे	**सम्पश्यन्**	
इन्द्रियः		**रजः वेग**	- रजोगुणके वेगसे
दुःख-	- दुःख उत्पन्न करने वाले	**विमोहितः-**	- अत्यन्त बेसुध
उदर्काणि		**करोति**	- होकर करता है ॥११॥

रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान् विक्षिप्तधीः पुनः ।
अतन्द्रितो मनो युञ्जन् दोषदृष्टिर्न सज्जते ॥ १२ ॥

रजः तमोभ्यां यत् अपि विद्वान् विक्षिप्त धीः पुनः अतन्द्रितः मनः युञ्जन् दोषदृष्टिः न सज्जते ॥ १२ ॥

यत् अपि	- यद्यपि	**पुनः अतन्द्रितः**	- पर फिर सावधान होकर
रजः तमोभ्यां	- रजोगुण-तमोगुणसे	**मनः युञ्जन्**	- मनको रोककर
विद्वान्	- विवेकी (पुरुष) की भी	**दोषदृष्टिः**	- (भोगोंमें) दोष देखनेके कारण
धीः विक्षिप्त	- बुद्धि चंचल होती है	**सज्जते न**	- (उनमें) आसक्त नहीं होता ॥ १२ ॥

अप्रमत्तोऽनुयुञ्जीत मनो मय्यर्पयञ्छनैः ।
अनिर्विण्णो यथाकालं जितश्वासो जितासनः ॥ १३ ॥

अप्रमत्तः अनु युञ्जीत मनः मयि अर्पयन् शनैः अनिर्विण्णः यथाकालं जितश्वासः जित आसनः ॥ १३ ॥

अनिर्विण्णः - बिना ऊबे हुए
अप्रमत्तः - सावधान होकर
मयि अर्पयन् - मुझे समर्पित करते हुए
यथाकालं - समयानुसार
जितआसनः - आसनजय करके
जितश्वासः - श्वास जय करके
शनैः मनः - धीरे-धीरे मनको
अनुयुञ्जीत - बार-बार एकाग्र करे
॥ १३ ॥

एतावान् योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः ।
सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यते यथा ॥ १४ ॥

एतावान् योग आदिष्टः मत् शिष्यैः सनक आदिभिः सर्वतः मनः आकृष्य मयि अद्धा आवेश्यते यथा ॥ १४ ॥

यथा सर्वतः - जैसे सब ओरसे
आकृष्यमनः - खींचकर मनको
अद्धा मयि - साक्षात् मुझमें
आवेश्यते - प्रवेश कराया जाय
मत् शिष्यैः - मेरे शिष्य
सनकादिभिः - सनकादिकोंको
आदिष्टः - उपदेश किया हुआ
एतावान् योग - इतना ही योग है
॥ १४ ॥

उद्धव उवाच–

यदा त्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव ।
योगमादिष्टवानेतद् रूपमिच्छामि वेदितुम् ॥ १५ ॥

यदा त्वं सनक आदिभ्यः येन रूपेण केशव योगं आदिष्टवान् एतत् रूपं इच्छामि वेदितुम् ॥ १५ ॥

केशव - केशव !
त्वं यदा - आपने जब
येन रूपेण - जिस रूपसे
सनक आदिभ्यः - सनकादिसे
एतत् योगं - इस योगका
आदिष्टवान् - उपदेश किया था
रूपं वेदितुं - उस रूपको जानना
इच्छामि - चाहता हूँ ॥ १५ ॥

श्रीभगवानुवाच–

पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः ।
पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकान्तिकीं गतिम् ।। १६ ।।

पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनक आदयः पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्य ऐकान्तिकीं गतिम् ।। १६ ।।

हिरण्यगर्भस्य - ब्रह्माजीके
मानसाः पुत्रा - मानस पुत्र
सनक आदयः - सनक आदिने
योगस्य सूक्ष्मां - योगकी सूक्ष्म
ऐकान्तिकीं गतिं - अन्तिम स्थितिको
पितरं पप्रच्छुः - पितासे पूछा ।। १६ ।।

सनकादय ऊचुः–

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो ।
कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः ।। १७ ।।

गुणेषु आविशते चेतः गुणाः चेतसि च प्रभो कथं अन्यः अन्य संत्यागः मुमुक्षुः अति तितीर्षोः ।। १७ ।।

प्रभो - प्रभो !
चेतः गुणेषु - चित्त गुणोंमें
आविशते - प्रविष्ट होता है,
च गुणाः चेतसि - तथा गुण चित्तमें,
अतितितीर्षोः - अतः इनको पार करनेकी इच्छा वाला
मुमुक्षुः - मोक्ष इच्छुक
अन्यः अन्यं - एकसे दूसरेको
कथं संत्यागः - किस प्रकार छुड़ावे ।। १७ ।।

श्रीभगवानुवाच–

एवं पृष्टो महादेवः स्वयं भूर्भूतभावनः ।
ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः ।। १८ ।।

एवं पृष्टः महादेवः स्वयंभूः भूतभावनः ध्यायमानः प्रश्न बीजं न अभ्यपद्यत कर्म धीः ॥ १८ ॥

भूतभावनः	- प्राणियोंके स्रष्टा	**ध्यायमानः**	- सोचते हुए
महादेवः	- देवश्रेष्ठ	**कर्मधीः**	- कर्मोंमें बुद्धि लगी होनेसे
स्वयंभूः	- ब्रह्माजी	**प्रश्न बीजं**	- प्रश्नका मूलकारण
एवंपृष्टः	- ऐसा पूछे जानेपर	**न अभ्यपद्यत**	- नहीं जान सके ॥ १८ ॥

स मामचिन्तयद् देवः प्रश्नपारतितीर्षया ।
तस्याहं हंसरूपेण सकाशमगमं तदा ॥ १९ ॥

स मां अचिन्तयत् देवः प्रश्न पार तितीर्षया तस्य अहं हंस रूपेण सकाशं अगमं तदा ॥ १९ ॥

स देवः	- उन देवने	**तदा हंस रूपेण**	- उस समय हंस रूपसे
प्रश्न पार	- प्रश्नसे पार	**अहं सकाशं**	- मैं उनके समीप
तितीर्षया	- होजानेकी इच्छासे	**अगमं**	- गया ॥ १९ ॥
मां अचिन्तयत्	- मेरा ध्यान किया		

दृष्ट्वा मां त उपव्रज्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् ।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुःको भवानिति ॥ २० ॥

दृष्ट्वँा मां त उपव्रज्य कृत्वा पाद अभिवन्दनं ब्रह्माणं अग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः कः भवान् इति ॥ २० ॥

मां दृष्ट्वा	- मुझे देखकर	**पाद-**	- चरण-वन्दना
ब्रह्माणं	- ब्रह्माजीको	**अभिवन्दनं-कृत्त्वा**	करके
अग्रतः कृत्वा	- आगे करके	**इति पप्रच्छुः**	- यह पूछा-
त उपव्रज्य	- उन्होंने समीप आकर	**भवान् कः**	- 'आप कौन हैं ?' ॥ ३० ॥

इत्यहं मुनिभिः पृष्टस्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा ।
यदवोचमहं तेभ्यस्तदुद्धव निबोध मे ॥ २१ ॥

इति अहं मुनिभिः पृष्टः तत्त्व जिज्ञासुभिः तदा यत् अवोचं अहं तेभ्यः तत् उद्धव निबोध मे ॥ २१ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**इति पृष्टः**	- ऐसा पूछे जानेपर
तदा तत्त्व-	- उस समय तत्त्व	**अहं तेभ्यः**	- मैंने उनसे
जिज्ञासुभिः	ज्ञानकी इच्छावाले	**यत् अवोचं**	- जो कहा
मुनिभिः अहं	- मुनियों द्वारा मुझसे	**तत् मे निबोध**	- वह मुझसे सुनो ॥ २१ ॥

वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः प्रश्न ईदृशः ।
कथं घटेत वो विप्रा वक्तुर्वा मे क आश्रयः ॥ २२ ॥

वस्तुनः यत् अनानात्वं आत्मनः प्रश्न ईदृशः कथं घटेत वः विप्रा वक्तुः वा मे कः आश्रयः ॥ २२ ॥

विप्रा	- ब्राह्मणो !	**ईदृशः प्रश्न**	- इस प्रकार पूछना
यत् वस्तुनः	- क्योंकि पदार्थ	**कथं घटेत**	- कैसे बन सकता है,
अनानात्वं	- अनेक रूप नहीं हैं,	**वा मे वक्तुः**	- अथवा मुझ बोलने
वः आत्मनः	- तुम लोगोंका आत्माके		वालेका ही
	विषयमें	**क आश्रयः**	- क्या आधार होगा ?
			॥ २२ ॥

पञ्चात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः ।
को भवानिति वः प्रश्नो वाचारम्भो ह्यनर्थकः ॥ २३ ॥

पञ्च आत्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः कः भवान् इति वः प्रश्नः वाचा आरम्भः हि अनर्थकः ॥ २३ ॥

पञ्च आत्मकेषु - पञ्चभूत स्वरूप
हि वस्तुतः - क्योंकि वस्तुतः
भूतेषु समानेषु - प्राणी समान ही हैं
कः भवान् - 'आपकौन हैं ?'
इति वः प्रश्नः - इस प्रकारका तुम्हारा प्रश्न
वाचारम्भः - वाणीका उच्चारण मात्र,
अनर्थकः - व्यर्थ है ॥ २३ ॥

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः ।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा ॥ २४ ॥

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यते अन्यैः अपि इन्द्रियैः अहं एव न मत्तः अन्यत् इति बुध्यध्वं अञ्जसा ॥ २४ ॥

मनसा वचसा - मन, वाणी,
दृष्ट्या अन्यैः - दृष्टि तथा दूसरी भी
अपि
इन्द्रियैः - इन्द्रियोंसे
गृह्यते - (जो) ग्रहण होता है,
अहं एव - (वह) मैं ही हूँ
मत्तः अन्यत् न - मुझसे भिन्न कुछ नहीं है
इति अञ्जसा - यह सरलतासे
बुध्यध्वं - समझ लो ॥ २४ ॥

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः ।
जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥ २५ ॥

गुणेषु आविशते चेतः गुणाः चेतसि च प्रजाः जीवस्य देह उभयं गुणाः चेतः मत् आत्मनः ॥ २५ ॥

प्रजाः - पुत्रो !
गुणेषु चेतः - गुणोंमें चित्त
आविशते - प्रवेश करता है,
च चेतसि गुणाः - और चित्तमें गुण,
मत् आत्मनः - मेरे स्वरूप
जीवस्य - जीवके
गुणाः चेतः - गुण और चित्त
उभयं देह - दोनों शरीर हैं ॥२५॥

गुणेषु चाविशच्चित्तमभीक्ष्णं गुणसेवया ।
गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत् ॥ २६ ॥

गुणेषु च आविशत् चित्तं अभीक्ष्णं गुणसेवया गुणाः च चित्त प्रभवा मत् रूप उभयं त्यजेत् ॥ २६ ॥

अभीक्ष्णं	- निरन्तर	**च गुणाः**	- और गुण
गुणसेवया	- गुणोंका सेवन करनेसे	**चित्त प्रभवा**	- चित्तसे उत्पन्न होते हैं,
चित्तं गुणेषु च	- चित्त गुणोंमें ही	**मत् रूप**	- अतः मेरा स्वरूप (होकर)
आविशत्	- प्रवेश करता है	**उभयं त्यजेत्**	- दोनोंको त्याग दे ॥ २६ ॥

जाग्रत् स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः ।
तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः ॥ २७ ॥

जाग्रत् स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतः बुद्धि वृत्तयः तासां विलक्षणः जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः ॥ २७ ॥

जाग्रत् स्वप्नः	- जाग्रत, स्वप्न,	**तासां जीवः**	- उनसे जीव
च सुषुप्तं	- तथा सुषुप्ति	**विलक्षणः**	- भिन्न प्रकारका
गुणतः बुद्धि	- गुणोंसे होने वाली बुद्धिकी	**साक्षित्वेन**	- (उनका) साक्षी रूपमें
वृत्तयः	- अवस्थायें हैं	**विनिश्चितः**	- निश्चय किया गया है ॥ २७ ॥

यर्हि संसृतिबन्धोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः ।
मयि तुर्ये स्थितो जह्यात् त्यागस्तद् गुणचेतसाम् ॥ २८ ॥

यर्हि संसृति बन्धः अयं आत्मनः गुण वृत्तिदः मयि तुर्ये स्थितः जह्यात् त्यागः तत् गुण चेतसाम् ॥ २८ ॥

यः हि	- निश्चय ही जो	**मयि तुर्ये**	- मुझ तुरीयतत्त्वमें
आत्मनः	जीवका	**स्थितः जह्यात्**	- स्थित होकर (इसे) नष्ट करदे
अयं संसृतिबन्धः	- यह संसार चक्रका बन्धन	**तत् गुण चेतसां**	- यही गुणों और चित्तका
गुण वृत्तिदः	- गुणोंकी वृत्तियोंका दिया है,	**त्यागः**	- त्याग करना है ॥ २८ ॥

अहंकारकृतं बन्धमात्मनोऽर्थविपर्ययम् ।
विद्वान् निर्विद्य संसारचिन्तां तुर्ये स्थितस्त्यजेत् ॥ २९ ॥

अहंकारकृतं बन्धं आत्मनः अर्थ विपर्ययं विद्वान् निर्विद्य संसार चिन्तां तुर्ये स्थितः त्यजेत् ॥ २९ ॥

आत्मानः अर्थ	- आत्माके स्वरूपसे	**संसार चिन्तां**	- संसारकी चिन्तासे
विपर्ययं	- उलटी अवस्था	**निर्विद्य**	- उदासीन होकर
बन्धं अहंकार	- बन्धन अहंकारसे	**तुर्ये स्थितः**	- तुरीय तत्त्वमें स्थित होकर
कृतं	उत्पन्न है,	**त्यजेत्**	- (इस अहंकारको) त्याग दे ॥ २९ ॥
विद्वान्	- विवेकी पुरुष		

यावन्नानार्थधीः पुंसो न निवर्तेत युक्तिभिः ।
जागर्त्यपि स्वपन्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥ ३० ॥

यावत् नाना अर्थ धीः पुंसः न निवर्तेत युक्तिभिः जागर्ति अपि स्वपन् अज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥ ३० ॥

यावत् पुंसः	- जब तक पुरुषकी	**अज्ञः जागर्ति**	- वह अज्ञानी जागता हुआ
नाना अर्थधीः	- पदार्थोंमें अनेकत्व बुद्धि	**अपि**	भी
युक्तिभिः	- युक्तियों द्वारा	**स्वपन्**	- सोया है,
निवर्तेत न	- दूर नहीं हो जाती	**यथा स्वप्ने**	- जैसे स्वप्नमें
		जागरणं	- जागता हो ॥ ३० ॥

असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा ।
गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा ॥ ३१ ॥

असत् त्वात् आत्मनः अन्येषां भावानां तत् कृता भिदा गतयः हेतवः च अस्य मृषा स्वप्न दृशः यथा ॥ ३१ ॥

यथा स्वप्न-दृशः - जैसे स्वप्नके दृश्य हों
आत्मनः अन्येषां भावानां - आत्मासे पृथक दूसरे पदार्थोंके
असत् त्वात् - असत् होनेके कारण
तत् कृता भिदा - उनके द्वारा उत्पन्न भेद,
गतयः च हेतवः - स्थितियां तथा उनके कारण,
अस्य मृषा - इस संसारके सब मिथ्या हैं ॥ ३१ ॥

यो जागरे बहिरनुक्षणधर्मिणोऽर्थान्
भुङ्क्ते समस्तकरणैर्हृदि तत्सदृक्षान् ।
स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः
स्मृत्यन्वयात्त्रिगुणवृत्तिदृगिन्द्रियेशः ॥ ३२ ॥

यः जागरे बहिः अनुक्षण धर्मिणः अर्थान् भुङ्क्ते समस्त करणैः हृदि तत् सदृक्षान् स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः स्मृति अन्वयात् त्रिगुण वृत्ति दृक् इन्द्रिय ईशः ॥ ३२ ॥

यः धर्मिणः - जो (सब धंर्मोका) आश्रय
जागरे - जाग्रत अवस्थामें
अनुक्षण - प्रत्येक समय
समस्त करणैः - सब इन्द्रियोंसे
बहिः अर्थान् - बाहरी विपयोंका
भुङ्क्ते - उपभोग करता है,
स्वप्ने - स्वप्नमें
तत् सदृक्षान् - उन्हींके समान (विषयोंका)
हृदि - हृदयमें (उपभोग करता है)
सुषुप्त - सुपुप्तिमें
उपसंहरते - (उन सब वृत्तियोंको) समेट लेता है
स एकः - वह एक ही
त्रिगुण वृत्ति - तीनों गुणोंकी वृत्तियोंसे
दृक् इन्द्रिय - दृष्टि आदि इन्द्रियोंका
ईशः - स्वामी
स्मृति - स्मरण (संस्कार)के अनुसार
अन्वयात् - (तीनों अवस्थाओंमें) जाता है ॥ ३२ ॥

एवं विमृश्य गुणतो मनसस्त्र्यवस्था
मन्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः ।
संछिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्ण-
ज्ञानासिना भजत माखिलसंशयाधिम् ॥ ३३ ॥

एवं विमृश्य गुणतः मनसः त्र्यवस्था मत् मायया मयि कृता इति निश्चित अर्थाः संछिद्य हार्दं अनुमान सत् उक्ति तीक्ष्ण ज्ञान असिना भजत मा अखिल संशय आधिम् ॥ ३३ ॥

एवं गुणतः	-	इस प्रकार गुणोंके द्वारा (होने वाली)	**अनुमान**	-	अनुमान तथा
मनसः	-	मनकी	**सत् उक्ति-**	-	सत्पुरुषोंके वचनसे
त्र्यवस्था	-	तीनों (जाग्रतादि) अवस्थायें	**तीक्ष्ण**		तीक्ष्ण हुई
			ज्ञान असिना	-	ज्ञान रूपी तलवारसे
मत् माया	-	मेरी मायासे	**हार्दं आधिं**	-	हृदयकी चिन्ता रूपी
मयिकृता	-	मेरे द्वारा निर्मित हैं	**अखिल संशय**	-	सम्पूर्ण संशयोंको
इति विमृश्य	-	ऐसा विचार करके	**संछिद्य**	-	काटकर
निश्चित अर्थाः	-	परमार्थ तत्त्वका निश्चय करके	**मा भजत**	-	मेरा भजन करो ॥ १३ ॥

ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं
दृष्टं विनष्टमतिलोलमलातचक्रम् ।
विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया
स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः ॥ ३४ ॥

ईक्षेत विभ्रमं इदं मनसः विलासं दृष्टं विनष्टं अति लोलं अलात चक्रं विज्ञानं एकं उरुधा एव विभाति माया स्वप्नः त्रिधा गुण विसर्ग कृतः विकल्पः ॥ ३४ ॥

इदं दृष्टं - इस दीखने वाले,
विनष्टं - नाशवान
अलात चक्रं - लुकाठियोंके (घुमानेसे बने) चक्रके समान
अतिलोलं - अत्यन्त चञ्चल
इदं दृष्टं विभ्रमं - इस दीखने वाले विश्व प्रपञ्चको
मनसः विलासं - मनका खेल
ईक्षेत - देखे,
गुण विसर्ग - गुणोंके द्वारा उत्पन्न किया
स्वप्नः त्रिधा - स्वप्नके समान तीन प्रकारका
विकल्पः कृतः - विकल्प करके
एकं विज्ञानं - एक ज्ञानको ही
माया उरुधा- एव - माया अनेक रूपमें ही
विभाति - प्रतीत कराती है
॥ ३४ ॥

दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्ण-
स्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवो निरीहः ।
संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्ध्या
त्यक्तं भ्रमाय न भवेत् स्मृतिरानिपातात् ॥ ३५ ॥

दृष्टिं ततः प्रति निवर्त्य निवृत्त तृष्णः तूष्णीं भवेत् निज सुख अनुभवः निरीहः संदृश्यते क्व च यत् इदं अवस्तु बुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत् स्मृतिः आनिपातात् ॥ ३५ ॥

ततः दृष्टिं - उस (प्रपञ्च) से दृष्टि
प्रति निवर्त्य - हटाकर
निवृत्त तृष्णः - तृष्णाओंका त्याग करके
निज सुख अनुभवः - आत्मानन्दके अनुभवसे
निरीहः - इच्छाहीन होकर
तूष्णीं भवेत् - चुप (शान्त) होजाय,
यत् इदं - जो यह संसार
क्व च- - कभी-कभी (आहरादिके
संदृश्यते समय) दीख जाता है
अवस्तु बुद्ध्या - अतथ्य समझकर
त्यक्तं - छोड़ा हुआ होनेसे
भ्रमाय न भवेत् - भ्रमका कारण नहीं होता
स्मृतिः - (किन्तु इसका) स्मरण
आनिपातात् - मरने तक रहता है
॥ ३५ ॥

देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा
सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत् स्वरूपम् ।
दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं
वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः ॥ ३६ ॥

देहं च नश्वरं अवस्थितं उत्थितं वा सिद्धः न पश्यति यतः अध्यगमत् स्वरूपं दैवात् अपेतं उत दैववशात् उपेतं वासः यथा परिकृतं मदिरा मद अन्धः ॥ ३६ ॥

यथा मदिरा	- जैसे शराबके नशेसे	**नश्वरं देहं च**	- नश्वर शरीरको भी
मद अन्धः	अन्धा	**अवस्थितं**	- बैठ हुए
परिकृतं वासः	- पहिने वस्त्रको (नहीं जानता)	**वा उत्थितं**	- या खड़े हुए,
		दैवात् अपेतं	- दैववश चले (मर) गये
सिद्धः	- (वैसे ही) सिद्ध पुरुष	**उत दैववशात्**	- अथवा भाग्यवश
यतः स्वरूपं	- क्योंकि स्वरूप उपलब्धि	**उपेतं न**	- संमीप बने नहीं देखता
अध्यगमत्	कर चुका है	**पश्यति**	॥ ३६ ॥

देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्
स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः ।
तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः
स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३७ ॥

देहः अपि दैव वशगः खलु कर्म यावत् स्व आरम्भकं प्रति समईक्षत एव स असुः तं सप्रपचं अधिरूढ समाधि योगः स्वाप्नं पुनः न भजते प्रतिबुद्ध वस्तुः ॥ ३७ ॥

दैव वशगः - प्रारब्धके आधीन रहने वाला
देहः अपि - शरीर भी
खलु यावत् - अहो जब तक
स्व आरम्भकं - अपनेको जन्म देने वाला
कर्म - कर्म (प्रारब्ध) है
स असुः - सप्राण रहते
सम ईक्षत एव - बराबर दीखता ही रहेगा,
समाधियोगः - एकाग्रता रूपी योगमें
अधिरूढ़ - पूर्ण स्थित
सप्रपचं तं - संसारके साथ उस (देह)
स्वाप्नं - स्वप्नके समानको
प्रतिबुद्ध - जागा हुआ (ज्ञानी)
पुनः वस्तुः - फिर सत्यरूपसे
न भजते - नहींसेवन करता ॥ ३७ ॥

मयैतदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत् सांख्ययोगयोः ।
जानीत माऽऽगतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया ॥ ३८ ॥

मया एतत् उक्तं वः विप्रा गुह्यं यत् सांख्य योगयोः जानीत मा आगतं यज्ञं युष्मत् धर्म विवक्षया ॥ ३८ ॥

विप्रा - ब्राह्मणो !
मया एतत् - मैंने यह
यत् सांख्य-योगयोः - जो सांख्य और योगको
गुह्यं वः उक्तं - रहस्य है तुम लोगोंसे कहा
युष्मत् - तुम लोगोंको
धर्म विवक्षया - परम धर्मका उपदेश करनेकी इच्छासे
आगतं यज्ञं - आया हुआ यज्ञ पुरुष
मा जानीत - मुझे समझो ॥ ३८ ॥

अहं योगस्य सांख्यस्य सत्यस्यर्तस्य तेजसः ।
परायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियःकीर्तेर्दमस्य च ॥ ३९ ॥

अहं योगस्य सांख्यस्य सत्यस्य ऋतस्य तेजसःपरायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियःकीर्तेः दमस्य च ॥ ३९ ॥

द्विज श्रेष्ठाः - विप्रवरो !
योगस्य- - योग, सांख्य,
सांख्यस्य
सत्यस्य ऋतस्य - सत्य, ऋत, (मधुरवाणी)
तेजसः श्रियः - तेज, लक्ष्मी,
कीर्तेः च दमस्य - कीर्ति तथा इन्द्रिय दमनका
अहंपरायणं - मैं ही आश्रय हूँ ॥ ३९ ॥

मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम् ।
सुहृदं प्रियमात्मानं साम्यासंगादयोऽगुणाः ॥ ४० ॥

मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकं सुहृदं प्रियं आत्मानं साम्य असंग आदयः गुणाः ॥ ४० ॥

साम्य असंग - समता, असंगता
आदयः गुणाः - आदि गुण एवं
सर्वे गुणाः - (दूसरे भी) सब गुण
मां निर्गुणं - मुझ निर्गुण,
निरपेक्षकं - निरपेक्ष,
सुहृदं प्रियं - सर्व हितैषी, प्रिय
आत्मानं- - आत्माकासेवन करते हैं
भजन्ति ॥ ४० ॥

इति मे छिन्नसन्देहा मुनयः सनकादयः ।
सभाजयित्वा परया भक्त्यागृणत संस्तवैः ॥ ४१ ॥

इति मेत छिन्न सन्देहा मुनयः सनकादयः सभाजयित्वा परया भक्त्या गृणत संस्तवैः ॥ ४१ ॥

इति ते मुनयः - इस प्रकार वे मुनि
सनकादयः - सनकादि
छिन्न सन्देहा - सन्देह नष्ट हो जानेपर
परया भक्त्या - परम भक्तिसे
सभाजयित्वा - सत्कार करके
संस्तवैः - स्तोत्रों द्वारा
गृणत - स्तुति करने लगे ॥ ४१ ॥

तैरहं पूजितः सम्यक् संस्तुतः परमर्षिभिः ।
प्रत्येयाय स्वकं धाम पश्यतः परमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥

तैः अहं पूजितः सम्यक् संस्तुतःपरमर्षिभिः प्रति इयाय स्वकं धाम पश्यतःपरमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥

तैःपरमर्षिभिः - उनपरमर्षियों द्वारा
परमेष्ठिनः- - ब्रह्माजीके देखते हुए
पश्यतः
सम्यक् पूजितः - भली प्रकार पूजित एवं
संस्तुतः - स्तुत होकर
स्वकं धाम - अपने धाम
प्रति इयाय - को लौट गया
॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

उद्धव उवाच–

वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः ।
तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥ १ ॥

वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः तेषां विकल्प प्राधान्यं उत अहो एक मुख्यता ॥ १ ॥

कृष्ण	- श्रीकृष्ण !	**विकल्प-**	- विकल्पसे (कभी कोई,
ब्रह्मवादिनः	- वेदवादी लोग	**प्राधान्यं**	कभी कोई) प्रधानता
बहूनि श्रेयांसि	- बहुतसे कल्याण मार्ग		होती है
वदन्ति तेषां	- बतलाते हैं, उनमें	**उत अहो**	- अथवा तो
		एक मुख्यता	- एककी प्रधानता होती है ॥ १ ॥

भवतोदाहृतः स्वामिन् भक्तियोगोऽनपेक्षितः ।
निरस्य सर्वतः संग येन त्वय्याविशेन्मनः ॥ २ ॥

भवता उदाहृतः स्वामिन् भक्तियोगः अनपेक्षितः निरस्य सर्वतः संग येन त्वयि आविशेत् मनः ॥ २ ॥

स्वामिन्	- स्वामी !	**येन सर्वतः**	- जिसके द्वारा सब ओरसे
भवता-	- आपने भक्तियोगको	**संग निरस्य**	- आसक्ति त्यागकर
भक्तियोगः		**मनः त्वयि**	- मन आपमें
अनपेक्षितः	- (दूसरे साधनोंसे) निरपेक्ष	**आविशेत्**	- प्रवेश करे ॥ २ ॥
उदाहृतः	- बतलाया,		

श्रीभगवानुवाच–

कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता ।
मयाऽऽदौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥ ३ ॥

कालेन नष्टा प्रलये वाणी अयं वेद संज्ञिता मया आदौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मः यस्यां मत् आत्मकः ॥ ३ ॥

कालेन	- कालके द्वारा	**यस्यां मत्**	- जिसमें मेरा स्वरूप
प्रलये	- प्रलयके समान	**आत्मकः**	
अयं वेद-	- यह वेद नामक	**धर्मः**	- धर्म था
संज्ञिता		**मया आदौ**	- मैंने (सृष्टिके प्रारम्भमें)
वाणी नष्टा	- वाणी नष्ट हो गयी थी		पहिले
		ब्रह्मणे प्रोक्ता	- ब्रह्माको (उसका) उपदेश किया ॥ ३ ॥

तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा ।
ततो भृग्वादयोऽगृह्न् सप्त ब्रह्ममहर्षयः ॥ ४ ॥

तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा ततः भृगुआदयः अगृह्णन् सप्तब्रह्म महर्षयः ॥ ४ ॥

तेन च	- उन्होंने ही	**ततः भृगु-**	- उन (मनु) से भृगु आदि
पूर्वजाय	- पहिले उत्पन्न	**आदयः**	
पुत्राय मनवे	- अपने पुत्र स्वायम्भुव मनुको	**सप्त-**	- सात ब्रह्माके पुत्र
		ब्रह्ममहर्षयः	महर्षियोंने
सा प्रोक्ता	- उसका उपदेश किया	**अगृह्णन्**	- ग्रहण किया ॥ ४ ॥

तेभ्यः पितृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानवगुह्यकाः ।
मनुष्याः सिद्धगन्धर्वाः सविद्याधरचारणाः ॥ ५ ॥

तेभ्यः पितृभ्यः तत् पुत्रा देव दानव गुह्यकाः मनुष्याः सिद्ध गन्धर्वाः सविद्याधर चारणः ॥ ५ ॥

तेभ्यः पितृभ्यः	- उन पितरोंसे	**मनुष्याः सिद्ध**	- मनुष्य, सिद्ध,
तत् पुत्रा	- उनके पुत्र	**गन्धर्वाः**	- गन्धर्व,
देव दानव	- देवता, दानव,	**स विद्याधर**	- विद्याधरोंके साथ
गुह्यकाः	- यक्ष,	**चारणाः**	- चारणोंने ॥ ५ ॥

किंदेवाः किन्नरा नागा रक्षः किम्पुरुषादयः ।
बह्वयस्तेषां प्रकृतयो रजःसत्त्वतमोभुवः ॥ ६ ॥

किंदेवाः किन्नरा नागा रक्षः किम्पुरुषादयः बह्वयः तेषां प्रकृतयः रजः सत्त्व तमः भुवः ॥ ६ ॥

किंदेवाः किन्नरा	- किं देव[1] किन्नर,	**रजः सत्त्वतमः**	- रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुण
नागा रक्षः	- नाग, राक्षस,	**भुवः तेषां प्रकृतयः**	- स्थानरूपा उनकी प्रकृति
किम्पुरुष आदयः	- किम्पुरुष आदिने (पाया)	**बह्वयः**	- अनेक प्रकारकी हैं ॥ ६ ॥

याभिर्भूतानि भिद्यन्ते भूतानां मतयस्तथा ।
यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्त्रवन्ति हि ॥ ७ ॥

याभिः भूतानि भिद्यन्ते भूतानां मतयः तथा यथा प्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्त्रवन्ति हि ॥ ७ ॥

---

१. पृथ्वीके अतिरिक्त दिव्य सूक्ष्म लोक शाकादि द्वीपोंके निवास ।

याभिः भूतानि - जिन प्राणियोंके द्वारा
भूतानां मतयः - प्राणियों की बुद्धिमें
भिद्यन्ते - भेद पड़ जाता है ।
हि यथा प्रकृति - क्योंकि जैसा स्वभाव है
तथा चित्रावाचः - वैसी अनेक प्रकारकी वाणी
स्रवन्ति - (उनसे) निकलती है ॥ ७ ॥

एवं प्रकृतिवैचित्र्याद् भिद्यन्ते मतयो नृणाम् ।
पारम्पर्येण केषाञ्चित् पाखण्डमतयोऽपरे ॥ ८ ॥

एवं प्रकृति वैचित्र्यात् भिद्यन्ते मतयः नृणां पारम्पर्येणकेषान् चित् पाखण्ड मतयः अपरे ॥ ८ ॥

एवं नृणां प्रकृति वैचित्र्यात् - इस प्रकार मनुष्योंकी स्वभाव भेदसे
मतयः भिद्यन्ते - बुद्धिमें भेद हो जाता है,
केषान् चित् किन्हींमें (यह भेद)
पारम्पर्येण - परम्परासे आता है,
अपरे - और दूसरे
पाखण्ड-मतयः - पाखण्डी बुद्धिके होते हैं ॥ ८ ॥

मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ ।
श्रेयो वदन्त्यनेकान्तं यथाकर्म यथारुचि ॥ ९ ॥

मत् माया मोहित धियः पुरुषाः पुरुष ऋषभ श्रेयः वदन्ति अनेक अन्तं यथा कर्म यथा रुचि ॥ ९ ॥

पुरुष ऋषभ - पुरुष श्रेष्ठ !
मत् माया - मेरी मायासे
मोहित धियः - मोहित बुद्धि
पुरुषाः - मनुष्य
यथा कर्म - अपने कर्मके अनुसार और
यथा रुचि - रुचिके अनुसार
अनेक अन्तं - अनेक प्रकारसे समाप्त होने वाले
श्रेयः वदन्ति - कल्याण मार्ग बतलाते हैं ॥ ९ ॥

धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम् ।
अन्ये वदन्ति स्वार्थं वा ऐश्वर्य त्यागभोजनम् ॥ १० ॥

धर्म एके यशः च अन्येकामं सत्यं दमं शमं अन्ये वदन्ति स्वार्थं वा ऐश्वर्यं त्याग भोजनम् ॥ १० ॥

एके धर्मं - कोई धर्म,
च अन्ये यशः - तथा दूसरे यश,
कामं सत्यं दमं - काम, सत्य, दम,
शमं वा ऐश्वर्यं - शम या ऐश्वर्यको,
अन्ये भोजनं - दूसरे भोजन छोड़
त्याग देनेको
वदन्ति - (कल्याण मार्ग) कहते हैं ॥ १० ॥

केचिद् यज्ञतपोदानं व्रतानि नियमान् यमान् ।
आद्यन्तवन्त एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः ।
दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानन्दाः शुचार्पिताः ॥ ११ ॥

केचित् यज्ञ तपः दानं व्रतानि नियमान् यमान् आदि अन्तवत् एव एषां लोकाः कर्म विनिर्मिताः दुःख उदर्काः तमः निष्ठाः क्षुद्र आनन्दाः शुचा अर्पिताः ॥ ११ ॥

केचित् - कोई लोग
यज्ञ तपः दानं - यज्ञ, तप, दान,
व्रतानि - व्रत
नियमान् - नियम
यमान् - यमोंको (कल्याण मार्ग कहते हैं)
एवैषां - इन सबसे
कर्म विनिर्मिताः - कर्म फलसे बने
लोकाः - लोक
आदि अन्तवत् - आदि-अन्त वाले,
दुःख उदर्काः - (अन्तमें) दुःख उत्पन्न करने वाले,
तमः निष्ठाः - अज्ञानमयी गति दाता,
क्षुद्र आनन्दाः - तुच्छ आनन्द वाले एवं
शुचा अर्पिताः - शोकसे भरे हैं ॥ ११ ॥

मय्यर्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः ।
मयाऽऽत्मना सुखं यत्तत् कुतः स्याद् विषयात्मनाम् ॥ १२ ॥

मयि अर्पित आत्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः मया आत्मना सुखं यत् तत् कुतः स्यात् विषय आत्मनाम् ॥ १२ ॥

सभ्य	- शिष्ट उद्धव !	**मया आत्मना**	- मुझ आत्म स्वरूपसे
मयि अर्पित आत्मनः	- मुझमें चित्त लगाकर	**यत् सुखं**	- जो सुख प्राप्त होता है,
सर्वतः-	- सब ओरसे अपेक्षा	**तत् विषय आत्मनां**	- वह विषय भोगोंमें चित्त लगाने वालेको
निरपेक्षस्य	रहित हो गये	**कुतः स्यात्**	- कहाँसे होगा ॥ १२ ॥

अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः ।
मया सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १३ ॥

अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः मया सन्तुष्ट मनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १३ ॥

अकिञ्चनस्य	- अपरिग्रही,	**मया सन्तुष्ट**	- मुझमें ही चित्त लगाकर
दान्तस्य	- इन्द्रियजयी,	**मनसः**	सन्तुष्टके लिए
शान्तस्य	- मनोजयी,	**सर्वाः दिशः**	- सब दिशायें
समचेतसः	- समदर्शी,	**सुखमया**	- सुखमय हैं ॥ १३ ॥

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥ १४ ॥

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्र धिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसा आधिपत्यं न योगसिद्धिः अपुनः भवं वा मयि अर्पित आत्मा इच्छति मत् विना अन्यत् ॥ १४ ॥

मयि अर्पित आत्मा - मुझमें समर्पित चित्त
मत् विना - मेरे अतिरिक्त
पारमेष्ठ्यं न - ब्रह्माका पद नहीं,
महेन्द्र-धिष्ण्यं न - इन्द्रका सिंहासन नहीं,
सार्वभौमं न - पृथ्वीका सम्राट् पद नहीं,
रसा - रसातलादिका स्वामित्व
आधिपत्यं न नहीं
योग सिद्धिः - योगकी सिद्धियां
वा अपुनः भवं - अथका मोक्ष भी,
न इच्छति - नहीं चाहता ॥ १४ ॥

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः ।
न च संकर्षणो न श्रीनैवात्मा च यथा भवान् ॥ १५ ॥

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिः न शंकरः न च संकर्षणः न श्री न एव आत्मा यथा भवान् ॥ १५ ॥

तथा मे प्रियतम - वैसे मेरे अत्यन्त प्रिय
न आत्मयोनिः - न ब्रह्माजी हैं,
न शंकरः - न शंकर जी,
न संकर्षणः - न बलरामजी,
न श्री - न लक्ष्मी
च न आत्मा - और न अपना
एव यह शरीर ही,
यथा भवान् - जैसे (प्रिय) तुम हो ॥ १५ ॥

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥ १६ ॥

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनं अनुव्रजामि अहं नित्यं पूयेय इति अङ्घ्रि रेणुभिः ॥ १६ ॥

निरपेक्षं - जिसेकोई अपेक्षा नहीं उस
मुनिं शान्तं - मननशील, शान्त,
निर्वैरं - शत्रुता रहित
समदर्शिनं - समदर्शीके
नित्य अहं - सदा मैं
अङ्घ्रि रेणुभिः - (उसकी) पदधूलिसे
पूयेय इति - पवित्र होऊँ इस भावसे
अनुव्रजामि - पीछे चलता हूँ ॥ १६ ॥

निष्किञ्चना मय्यनुरक्तचेतसः
शान्ता महान्तोऽखिलजीववत्सलाः ।
कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत्
तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥ १७ ॥

निष्किञ्चना मयि अनुरक्त चेतसः शान्ता महान्तः अखिल जीव वत्सलाःकामैः अन आलब्ध धियः जुषन्ति यत् तत् नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥ १७ ॥

निष्किञ्चना	- अपरिग्रही,	**कामैः**	- वासनाओंसे
मयि	- मुझमें	**अनआलब्ध धियः**	- अनाक्रान्त चित्त
अनुरक्त चेतसः	- आसक्त चित्त,	**यत् जुषन्ति**	- जो (सुख) पाते हैं
शान्ता	- शान्त,	**तत् नैरपेक्ष्यं**	- वह निरपेक्षताका
महान्तः	- उदार हृदय,	**सुखं मम**	- सुख मेरा स्वरूप है,
अखिल जीव	- समस्त प्राणियोंपर	**न विदुः**	- (दूसरे उसे) नहीं
वत्सलाः	- वात्सल्य रखने वाले,		जानते ॥ १७ ॥

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः ।
प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥ १८ ॥

बाध्यमानः अपि मत् भक्तः विषयैः अजित इन्द्रियः प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैः न अभि भूयते ॥ १८ ॥

अजित इन्द्रियः	- जो अभी जितेन्द्रिय नहीं है	**प्रायः प्रगल्भया**	- प्रायः प्रगल्भ (पुष्ट)
मत् भक्तः	- वह मेरा भक्त	**भक्त्या**	- भक्तिके सहारे
विषयैः	- (रस-स्पर्शादि) विषयों द्वारा	**विषयैः**	- विषयोंसे
		अभिभूयते न	- पराजित नहीं होता ॥ १८ ॥
बाध्यमानः अपि	- पीड़ित होनेपर भी		

यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥

यथा अग्निः सुसमृद्ध अर्चिः करोति एधांसि भस्मसात् तथा मत् विषया भक्तिः उद्धव एनांसि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**तथा मत् विषया**	- वैसे ही मेरे सम्बन्धकी
यथा सुसमृद्ध	- जैसे अच्छी प्रकार बढ़ी	**भक्तिः**	- भक्ति
अर्चिः अग्निः	- लपटों वाला अग्नि	**कृत्स्नशः एनांसि**	- सम्पूर्ण पापोंको
एधांसि	- ईंधनको,	**भस्मसात् करोति**	- भस्म कर देती है ॥ १९ ॥

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ २० ॥

न साधयति मां योगः न सांख्यं धर्म उद्धव न स्वाध्यायः तपः त्यागः यथा भक्तिः मम ऊर्जिता ॥ २० ॥

उद्धव	- उद्धव !	**तपः त्यागः**	- तपस्या और त्याग
योगः न	- योग नहीं,	**मां न साधयति**	- मुझे प्राप्त नहीं कराते
सांख्यं धर्म न	- सांख्य धर्म नहीं,	**यथा ऊर्जिता**	- जैसी तेजस्विनी
स्वाध्यायः	- वेदाध्ययन,	**मम भक्तिः**	- मेरी भक्ति ॥ २० ॥

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम् ।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ॥ २१ ॥

भक्त्या अहं एकया ग्राह्यः श्रद्धया आत्मा प्रियः सतां भक्तिः पुनाति मत् निष्ठा श्वपाकान् अपि सम्भवात् ॥ २१ ॥

सतां प्रियः	- सत्पुरुषोंका प्रिय
आत्मा अहं	- आत्मा मैं
श्रद्धया एकया	- श्रद्धा पूर्वक अनन्य
भक्त्या ग्राह्यः	- भक्ति द्वारा पकड़में आने योग्य हूँ ।
मत् निष्ठा	- मुझमें निष्ठा युक्त
भक्तिः	- भक्ति
सम्भवात्	- जन्मसे ही
श्वपाकान् अपि	- चाण्डालोंको भी
पुनाति	- पवित्र कर देती है ॥ २१ ॥

धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥ २२ ॥

धर्मः सत्य दया उपेतः विद्या वा तपसा अन्विता मत् भक्त्या अपेतं आत्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥ २२ ॥

हि मत् भक्त्या	- क्योंकि मेरी भक्तिसे
अपेतं आत्मानं	- रहित चित्तको
सत्य दया	- सत्य एवं दया
उपेतः धर्मः	- युक्त धर्म एवं
तपसा अन्विता	- तपस्या युक्त
विद्या सम्यक्	- विद्या भली प्रकार
न प्रपुनाति	- नहीं पवित्र करती ॥ २२ ॥

कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना ।
विनाऽऽनन्दाश्रुकलया शुध्येद् भक्त्या विनाऽऽशयः ॥ २३ ॥

कथं विना रोम हर्षं द्रवता चेतसा विना विना आनन्द अश्रु कलया शुध्येत् भक्त्या विना आशयः ॥ २३ ॥

विना रोमहर्षं	- बिना रोमाञ्च हुए,
विना चेतसा द्रवता	- बिना चित्तके द्रवित हुए,
विना आनन्द-अश्रु कलया	- बिना आनन्द अश्रु आये,
विना भक्त्या	- बिना भक्तिके
आशयः	- अन्तःकरण
कथं शुध्येत्	- कैसे शुद्ध हो सकता है ॥ २३ ॥

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥ २४ ॥

वाक् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदति अभीक्ष्णं हसति क्वचित् च विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मत् भक्ति युक्तः भुवनं पुनाति ॥ २४ ॥

यस्य चित्तं	- जिसका चित्त	**विलज्ज**	- लज्जाहीन होकर
द्रवते	- द्रवित होता है,	**उद्गायति**	- उच्चस्वरसे गाता है,
वाक् गद्गदा	- वाणी गद्गद होजाती है,	**च नृत्यते**	- और नाचता है,
		मत् भक्ति-	- (ऐसा) मेरी भक्ति वाला
अभीक्ष्णं रुदति	- बराबर रोता है,	**युक्तः**	
च क्वचित्	- तथा कभी	**भुवनं पुनाति**	- पूरे संसारको पवित्र करता है ॥ २४ ॥
हसति	- हँसता है,		

यथाग्निना हेम मलं जहाति
ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम् ।
आत्मा च कर्मानुशयं विधूय
मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम् ॥ २५ ॥

यथा अग्निना हेम मलं जहाति ध्यातं पुनः स्वं भजते च रूपं आत्मा च कर्म अनुशयं विधूय मत् भक्तियोगेन भजति अथो माम् ॥ २५ ॥

यथा अग्निना	- जैसे अग्नि द्वारा	**आत्मा च**	- (ऐसे ही) अन्तःकरण भी
ध्यातं हेम	- तपाये जानेपर सोना		

मलं जहाति - मैल छोड़ देता है,
च पुनः- - और फिर अपना
स्वं रूपं स्वरूप
भजते - प्राप्त कर लेता है,
मत्भक्तियोगेन - मेरे भक्तियोगसे
कर्म अनुशयं - कर्मके साथ रहने वाले दोषको
विधूय - नष्ट करके
अथो मां- - फिर मुझे प्राप्तकर लेता
भजति है ॥ २५ ॥

यथा यथाऽऽत्मा परिमृज्यतेऽसौ
मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः ।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं
चक्षुर्यथैवाञ्जनसम्प्रयुक्तम् ॥ २६ ॥

यथा यथा आत्मा परिमृज्यते असौ मत् पुण्य गाथा श्रवण अभिधानैः तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुः यथा एव अञ्जन सम्प्रयुक्तम् ॥ २६ ॥

यथा यथा असौ - जैसे-जैसे यह
आत्मा मत् - चित्त मेरी
पुण्यगाथा - पवित्र कथा
श्रवण अभिधानैः - सुनने-कहनेसे
परिमृज्यते - परिमार्जित होता है
तथा तथा - वैसे वैसे
सूक्ष्मं वस्तु - सूक्ष्म तत्त्वको
पश्यति - देखने (जानने) लगता है,
यथा एव अञ्जनं- जैसे अञ्जनका
सम्प्रयुक्तं - ठीक उपयोग करनेसे
चक्षुः - नेत्र ॥ २६ ॥

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥ २७ ॥

विषयान्ध्यायतः चित्तं विषयेषु विषज्जते मां अनुस्मरतः चित्तं मयि एव प्रविलीयते ॥ २७ ॥

विषयान् - (शब्दादि) विषयोंका
ध्यायतः - चिन्तन करनेसे
चित्तं विषयेषु - चित्त विषयोंमें
विषज्जते - आसक्त होजाता है और
मां अनुस्मरतः - मेरा बार-बार स्मरण करनेसे
चित्तं मयि एव - चित्त मुझमें ही
प्रविलीयते - विलीन हो जाता है
॥ २७ ॥

तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथम् ।
हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम् ॥ २८ ॥

तस्मात् असत् अभिध्यानं यथा स्वप्न मनोरथं हित्वा मयि सम आधत्स्व मनः मत्भाव भावितम् ॥ २८ ॥

तस्मात् - इसलिए
यथा स्वप्न - जैसे स्वप्न या
मनोरथं - मनोराज्य हो वैसे
असत् - असत् संसारके चिन्तनको
अभिध्यानं
हित्वा - त्यागकर
मत् भावभावितं - मेरी भावनासे भावित
मनः मयि - मनको मुझमें
सम आधत्स्व - पूर्णतः लगा दो
॥ २८ ॥

स्त्रीणां स्त्रीसंगिनां संगं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् ।
क्षेमे विविक्त आसीनश्चिन्तयेन्मामतन्द्रितः ॥ २९ ॥

स्त्रीणां स्त्री संगिनां संग त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् क्षेमे विविक्त आसीनः चिन्तयेत् मां अतिन्द्रितः ॥ २९ ॥

आत्मवान् - धैर्यशाली साधक,
स्त्रीणां - स्त्रियोंकी एवं
स्त्री संगिनां - स्त्रियासक्त लोगोंका
संग दूरतः - साथ दूरसे ही छोड़कर
त्यक्त्वा
क्षेमे - निरुपद्रव
विविक्त आसीनः - एकान्त स्थानमें बैठकर
अतन्द्रितः - सावधान होकर
मां चिन्तयेत् - मेरा चिन्तन करे
॥ २९ ॥

न तथास्य भवेत् क्लेशो बन्धश्चान्यप्रसंगतः ।
योषित्संगाद् यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः ॥ ३० ॥

न तथा अस्य भवेत् क्लेशः बन्धः च अन्य प्रसंगतः योषित् संगात् यथा पुंसः यथा तत् संगि संगतः ॥ ३० ॥

अस्य पुंसः	- इस पुरुषको	**न भवेत्**	- नहीं होता
अन्य प्रसंगतः	- दूसरोंके साथसे	**यथा**	- जैसा
तथा क्लेशः	- उस प्रकार क्लेश और	**योषित् संगात्**	- स्त्रीके साथसे
बन्धः च	- बन्धन भी	**यथा तत् संगि**	- एवं जैसा उसमें आसक्तोंके
		संगतः	- साथसे (होता है) ॥ ३० ॥

उद्धव उवाच–

यथा त्वामरविन्दाक्ष यादृशं वा यदात्मकम् ।
ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥

यथा त्वां अरविन्द अक्ष यादृशं वा यत् आत्मकं ध्यायेत् मुमुक्षुः एतत् मे ध्यानं त्वं वक्तु अर्हसि ॥ ३१ ॥

अरविन्द अक्ष	- कमलनयन !	**ध्यायेत्**	- ध्यान करे
मुमुक्षुः	- मुक्ति चाहने वाला	**एतत् ध्यानं**	- यह ध्यान
यथा वा यादृशं	- जैसे या जिस रूपमें	**मे त्वं**	- मुझ आपको
यत् आत्मकं त्वां	- जिस रूपवाले आपका	**वक्तुं अर्हसि**	- बतलाना चाहिए ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच–

सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम् ।
हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः ॥ ३२ ॥

सम आसन आसीनः समकायः यथा सुखं हस्ताः उत्संग आधाय स्वनासा अग्र कृत ईक्षणः ॥ ३२ ॥

सम आसन - बराबर आसनपर	**हस्ताः उत्संग** - दोनों हाथोंको गोदमें
यथा सुखं - (जिस आसनसे) सुख पूर्वक (बैठ सके)	**आधाय** - रखकर
आसीनः - बैठकर	**स्वनासा अग्र** - अपनी नाकके अगले भाग (भ्रूमध्यमें)
समकायः - शरीर सीधा रखे,	**कृत ईक्षणः** - दृष्टि रखे (शाम्भणी मुद्रा रखे) ॥ ३२ ॥

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः ।
विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः ॥ ३३ ॥

प्राणस्य शोधयेत् मार्गं पूर कुम्भकरेचकैः विपर्ययेण अपि शनैः अभ्यसेत् निर्जित इन्द्रियः ॥ ३३ ॥

पूर कुम्भकरेचकैः - पूरक, कुम्भक, रेचक	**प्राणस्य मार्गं** - प्राणवायुके मार्गको
विपर्ययेण - इससे उलटे (रोचक, कुम्भक, पूरक) क्रम	**शोधयेत्** - शुद्धकर
अपि शनैः - से भी धीरे-धीरे[1]	**निर्जित इन्द्रियः** - इन्द्रियोंको जीतकर
	अभ्यसेत् - यह अभ्यास करे ॥ ३३ ॥

हृद्यविच्छिन्नमोङ्कारं घण्टानादं बिसोर्णवत् ।
प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत् स्वरम् ॥ ३४ ॥

हृदि अविच्छिन्नं ओंकारं घण्टानादं बिस उर्णवत् प्राणेन उदीर्य तत्र अथ पुनः संवेशयेत् स्वरम् ॥ ३४ ॥

---

१. (पहिले पूरक, अन्तर कुम्भक, रेचकका क्रम और फिर रोचक, बाह्य कुम्भक, पूरकका क्रम है ।)

हृदि - हृदयमें
घण्टानादं - घंटे (पर चोट पड़नेके बादके) स्वरके समान
विस उर्णवत् - (पर मन्द पड़ता नहीं) कमल तन्तुके समान (एक रस और सूक्ष्म)
प्राणेन उदीर्य - (मुखसे नहीं) प्राण वायुसे उच्चारण करके
पुनः स्वरं - (एक बार समाप्त होने पर) फिर स्वरको
संवेशयेत् - प्रविष्ट करे (फिरसे 'ओ'से उच्चारण करे) ॥ ३४ ॥

एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत् ।
दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग् जितानिलः ॥ ३५ ॥

एवं प्रणव संयुक्तं प्राणं एव सम अभ्यसेत् दशकृत्वः त्रिषवणं मासात् अर्वाक् जित अनिलः ॥ ३५ ॥

एवं - इस प्रकार
प्रणव संयुक्तं - प्रणवके साथ
प्राणं एव - प्राण (प्राणसे दीर्घ प्रणवोच्चारणका) ही
सम अभ्यसेत् - अच्छी प्रकार अभ्यास करे
त्रिषवणं - तीनो (प्रातः मध्याह्न, सायं) समय
दशकृत्वः - दस दस बार करे
मासात्- - (दूसरे) एक महीनेसे
अर्वाक् पहिले१.
जित अनिलः - प्राण वायुजीत लिया जाता है ॥ ३५ ॥

हृत्पुण्डरीकमन्तः स्थमूर्ध्वनालमधोमुखम् ।
ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३६ ॥

हृत् पुण्डरीकं अन्तः स्थं ऊर्ध्वनालं अधः मुखं ध्यात्वा ऊर्ध्वमुखं उन्निद्रं अष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३६ ॥

---

१. (इसका तात्पर्य है कि ध्यानके समय श्वांस रुकनेसे होने वाली घबराहट नहीं होती ।)

अन्तःस्थं - (ध्यान करे कि) भीतर स्थित
हृत् पुण्डरीक - हृदय कमल
ऊर्ध्वनालं - ऊपर गयी नालमें
अधः मुखं - नीचे मुख किये (लटका) है
ध्यात्वा - (उसे) ध्यान करो कि
ऊर्ध्व मुखं - ऊपर मुख करके
उन्निद्रं - खिल गया,
अष्टपत्रं - (उसमें) आठ दल और
सकर्णिकं - (बीचमें) कर्णिका भी है ॥ ३६ ॥

कर्णिकायां न्यसेत् सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम् ।
वह्निमध्ये स्मरेद् रूपं ममैतद् ध्यानमंगलम् ॥ ३७ ॥

कर्णिकायां न्यसेत् सूर्य सोम अग्नीन् उत्तर उत्तरं वह्नि मध्ये स्मरेत् रूपं मम एतत् ध्यान मंगलम् ॥ ३७ ॥

उत्तर उत्तरं - एकके ऊपर एकके क्रमसे
कर्णिकायां - कर्णिकापर
सूर्य सोम अग्नीन् - सूर्य, चन्द्रमा, अग्निका
न्यसेत् - न्यास (चिन्तन) करे
वह्नि मध्ये - फिर अग्निके बीचमें
एतत् ध्यान-मंगलं - यह ध्यानसे ही मंगलकारी
मम रूपं - मेरे स्वरूपका
स्मरेत् - चिन्तन करे ॥ ३७ ॥

समं प्रशान्तं सुमुखं दीर्घचारुचतुर्भुजम् ।
सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ ३८ ॥

समं प्रशान्तं सुमुखं दीर्घ चारु चतुर्भुजं सुचारु सुन्दर ग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ ३८ ॥

समं दीर्घ चारु - समान, लम्बी, सुन्दर
चतुर्भुजं - चार भुजाओं वाला,
सुचारु सुन्दर ग्रीवं - अत्यन्त मनोहर सुन्दर गला,
सुकपोलं - सुन्दर कपोल युक्त
शुचिस्मितं - पवित्र मुस्कान वाला
प्रशान्तं सुमुखं - अत्यन्त शान्त सुन्दर मुख ॥ ३८ ॥

समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम् ।
हेमाम्बरं घनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम् ॥ ३९ ॥

समान कर्ण विन्यस्त स्फुरन् मकर कुण्डलं हेमाम्बरं घनश्यामं श्रीवत्स श्रीनिकेतनम् ॥ ३९ ॥

समान कर्ण	- (परस्पर) बराबरके कानोंमें	**हेम अम्बरं**	- स्वर्णके समान वस्त्र हैं,
विन्यस्त	- पहिने हुए	**घनश्यामं**	- मेघके समान श्याम वर्ण,
मकरकुण्डलं	- मकराकृति कुण्डल	**श्रीनिकेतनं**	- लक्ष्मीका निवास
स्फुरन्	- चमक रहे हैं,	**श्रीवत्स**	- श्रीवत्स चिन्ह है ॥ ३९ ॥

शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ।
नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभप्रभया युतम् ॥ ४० ॥

शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला विभूषितं नूपुरैः विलसत् पादं कौस्तुभ प्रभया युतम् ॥ ४० ॥

शंख चक्र	- शंख, चक्र,	**पादं नूपुरैः**	- चरण नूपुरोंसे
गदा पद्म	- गदा, पद्म;	**विलसत्**	- सुशोभित हैं,
वनमाला	- वनमालासे	**कौस्तुभ प्रभया**	- कौस्तुभ मणिकीकान्तिसे
विभूषितं	- अलंकृत है,	**युतं**	- मण्डित हैं ॥ ४० ॥

द्युमत्किरीटकटककटिसूत्राङ्दायुतम् ।
सर्वांगसुन्दरं हृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ।
सुकुमारमभिध्यायेत् सर्वाङ्गेषु मनो दधत् ॥ ४१ ॥

द्युमत् किरीट कटक कटिसूत्र अंगद आयुतं सर्व अंग सुन्दरं हृद्यं प्रसाद सुमुख ईक्षणं सुकुमारं अभिध्यायेत् सर्व अंगेषु मनः दधत् ॥ ४१ ॥

द्युमत् - चमकते हुए
किरीट कटक - मुकुट, कंकण
कटिसूत्र - काञ्ची,
अंगद आयुतं - अंगदोंसे भूषित,
सर्व अंग सुन्दरं - सभी अंग सुन्दर
हृद्यं - हृदयहारी,
प्रसाद सुमुख - कृपा परिपूर्ण
ईक्षणं - दृष्टि हैं,
सुकुमारं - सुकुमार हैं,
सर्व अंगेषु - सभी अंगोंमें
मनः दधत् - मन लगाते हुए (इस)
अभिध्यायेत् - सम्पूर्ण रूपका ध्यान करे
॥ ४१ ॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः ।
बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ॥ ४२ ॥

इन्द्रियाणि इन्द्रिय अर्थेभ्यः मनसा आकृष्य तत् मनः बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेत् मयि सर्वतः ॥ ४२ ॥

इन्द्रिय अर्थेभ्यः - इन्द्रियोंके विषयोंसे
इन्द्रियाणि - इन्द्रियोंको
मनसा आकृष्य - मनके द्वारा हटाकर
तत् मनः - उस मनसे
धीरः - धीर पुरुष
बुद्ध्या सारथिना -बुद्धि रूपी सारथी द्वारा
सर्वतः मयि - सब ओरसे मुझमें
प्रणयेत् - लगा दे ॥ ४२ ॥

तत् सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ।
नान्यानि चिन्तयेद् भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम् ॥ ४३ ॥

तत् सर्व व्यापकं चित्तं आकृष्य एकत्र धारयेत् न अन्यानि चिन्तयेत् भूयः सुस्मितं भावयेत् मुखम् ॥ ४३ ॥

तत् सर्व-व्यापकं - उस सब अंगोंमें लगे
चित्तं आकृष्य - चित्तको खींचकर
एकत्र धारयेत् - एक ही (अंग) में लगा दे
भूयः अन्यानि - फिर दूसरे (अंगों)का
चिन्तयेत् न - चिन्तन न करें,
सुस्मितं मुखं - (केवल) सुन्दर मुस्कान युक्त मुखकी
भावयेत् - भावना करे ॥ ४३ ॥

तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ।
तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ ४४ ॥

तत्र लब्धपदं चित्तं आकृष्यव्योम्नि धारयेत् तत् च त्यक्त्वा मत् आरोहः न किञ्चित् अपि चिन्तयेत् ॥ ४४ ॥

तत्र लब्धपदं	- वहां (मुख) में स्थिरता प्राप्तकर लेनेपर	**तत् च त्यक्त्वा**	-फिर उसे भी छोड़कर
चित्तं आकृष्य	- चित्तको खींचकर	**मत् आरोहः**	- मुझमें पहुंचकर
व्योम्नि धारयेत्	- आकाशमें लगा दे,	**किञ्चित् अपि**	- कुछ भी
		न चिन्तयेत्	- न सोचे ॥ ४४ ॥

एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि ।
विचष्टे मयि सर्वात्मन् ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ॥ ४५ ॥

एवं समाहित मतिः मां एव आत्मानं आत्मनि विचष्टे मयि सर्व आत्मन् ज्योतिः ज्योतिषि संयुतम् ॥ ४५ ॥

एवं समाहित	- इस प्रकार एकाग्र	**आत्मानं**	- अपने आत्मरूपमें
मतिः मां एव	- बुद्धि मुझको ही	**ज्योतिषि संयुतं**	- ज्योतिमें मिल गयी
आत्मनि	- अपनेमें	**ज्योतिः विचष्टे**	- ज्योति देखता है
सर्वात्मन्	- सर्वात्माको		॥ ४५ ॥

ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः ।
संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः ॥ ४६ ॥

ध्यानेन इत्थं सुतीव्रेण युञ्जतः योगिनः मनः संयास्यति आशु निर्वाणं द्रव्य ज्ञान क्रिया भ्रमः ॥ ४६ ॥

इत्थं सुतीव्रेण	- इस प्रकार अत्यन्त तीव्र	**द्रव्य ज्ञान-**	- पदार्थ, ज्ञान एवं
ध्यानेन	- ध्यानके द्वारा	**क्रिया**	क्रिया
मनः युञ्जतः	- मनका संयम करते हुए	**भ्रमः**	- (के पार्थक्य)का भ्रम
योगिनः	- योगीका	**आशु निर्वाणं**	- शीघ्र समाप्त
		संयास्यति	- हो जाता है ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ।
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥ १ ॥

जित इन्द्रियस्य युक्तस्य जित श्वासस्य योगिनः मयि धारयतः चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥ १ ॥

जित इन्द्रियस्य	- इन्द्रियजयी	**मयिचेत**	- मुझमें चित्त
युक्तस्य	- संयतचित्त,	**धारयतः**	- लगाते समय
जितश्वासस्य	- प्राणजयी	**सिद्धयः**	- सिद्धियां
योगिनः	- योगीके	**उपतिष्ठन्ति**	- समीप आती हैं ॥ १ ॥

उद्धव उवाच–

कया धारणया कास्वित् कथंस्वित् सिद्धिरच्युत ।
कति वा सिद्धयो ब्रूहि योगिनां सिद्धिदो भवान् ॥ २ ॥

कया धारणया कास्वित् कथंस्वित् सिद्धिः अच्युत कति वा सिद्धयः ब्रूहि योगिनां सिद्धिदः भवान् ॥ २ ॥

अच्युत	- अच्युत !	**वा कति**	- अथवा कितनी
कया धारणया	- किस धारणासे	**सिद्धयः**	सिद्धियां हैं
कास्वित्	- कौन-सी	**ब्रूहि**	- बतलाइये (क्योंकि)
सिद्धिः कथं	- सिद्धि कैसे होती है?	**भवान्**	- आप
स्वित्		**योगिनां-**	- योगियोंको सिद्धि देने
		सिद्धिदः	वाले हैं ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच–

सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता धारणा योगपारगैः ।
तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुणहेतवः ॥ ३ ॥

सिद्धयः अष्टादश प्रोक्ता धारणायोग पारगैः तासां अष्टौ मत् प्रधाना दश एव गुणहेतवः ॥ ३ ॥

धारणा योग	- धारणा योगके	**तासां अष्टौ**	- उनमेंसे आठ
पारगैः	- पारगमियोंने	**मत् प्रधाना**	- प्रधान रूपसे मुझमें (रहती हैं)
अष्टादश	- अठारह	**दश एव**	- दस तो
सिद्धयः प्रोक्ता	- सिद्धियां बतलायी हैं,	**गुण हेतवः**	- सत्त्व गुणकेकारणसे होती हैं ॥ ३ ॥

अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः ।
प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥ ४ ॥

अणिमा महिमा मूर्तेः लघिमा प्राप्तिः इन्द्रियैः प्राकाम्यं श्रुत दृष्टेषु शक्ति प्रेरणं ईशिता ॥ ४ ॥

मूर्तिः अणिमा	- शरीरका छोटा हो जाना,	**श्रुत दृष्टेषु**	- पारलौकिक, लौकिक (पदार्थों)का
महिमा	- बड़ा हो जाना,	**प्राकाम्यं**	- इच्छानुसार मिलना,
लघिमा	- हल्का हो जाना,	**शक्तिः प्रेरणं**	- (अपनी शक्ति अन्यमें) संचारित करना
इन्द्रियैः प्राप्तिः	- इन्द्रियोंका (सिद्ध उनकी शक्तिकी) प्राप्ति,	**ईशिता**	- ईशिता है ॥ ४ ॥

गुणेष्वसंगो वशिता यत्कामस्तदवस्यति ।
एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः ॥ ५ ॥

गुणेषु असंगः वशिता यत्कामः तत् अवस्यति एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टाः औत्पत्तिका मताः ॥ ५ ॥

सौम्य - सौम्य उद्धव !
गुणेषु असंगः - (सत्त्वादि) गुणोंमें आसक्त न होना
वशिता - वशिता है,
यत्कामः - जोकामना हो
तत् अवस्यति - उसकी सीमा तक पहुँच जाना
एता अष्टाः-सिद्धयः - ये आठ सिद्धियां
मे मता - मेरे मतसे
औत्पत्तिका - जन्मजात होती हैं (साधनसे नहीं मिलतीं) ॥ ५ ॥

अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन् दूरश्रवणदर्शनम् ।
मनोजवःकामरूपंपरकायप्रवेशनम् ॥ ६ ॥

अन् ऊर्मिमत्त्वं देहे अस्मिन् दूर श्रवण दर्शनं मनोजवःकामरूपंपरकाय प्रवेशनम् ॥ ६ ॥

अस्मिन् देहे - इसी (स्थूल) शरीरमें
अन् ऊर्मिमत्त्वं - (घटना-बढ़ना, झुर्री पड़ना आदि) लहरें न उठना,
दूर श्रवण दर्शनं - दूरकी बात सुन या देख लेना,
मनोजवः - मनके साथ देहसे वहां पहुंच जाना,
कामरूपं - इच्छानुसार रूप बना लेना,
परकाय-प्रवेशनं - दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना ॥ ६ ॥

स्वच्छन्दमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम् ।
यथासंकल्पसंसिद्धिराज्ञाप्रतिहतागतिः ॥ ७ ॥

स्वच्छन्दमृत्युः देवानां सह क्रीडा अनुदर्शनं यथा संकल्प संसिद्धिः आज्ञा अप्रतिहता गतिः ॥ ७ ॥

स्वच्छन्द मृत्युः - इच्छानुसार मरना,
देवानां सह - देवताओंके साथ
क्रीडा अनुदर्शनं - उनका विहार बराबर देखना,
यथा संकल्प - जैसा संकल्प हो
संसिद्धिः - उसका पूरा हो जाना,
अप्रतिहता - जिसे रोका न जा सके ऐसी
आज्ञा गतिः - आज्ञा देनेकी तथा जानेकी शक्ति ॥ ७ ॥

त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ।
अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भोऽपराजयः ॥ ८ ॥

त्रिकालज्ञत्वं अद्वन्द्वं परचित्त आदि अभिज्ञता अग्नि अर्क अम्बु विष आदीनां प्रतिष्टम्भः अपराजयः ॥ ८ ॥

त्रिकालज्ञत्वं - (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालोंकी बात जान लेना,
अद्वन्द्वं - (सुख-दुःख, राग-द्वेषादि) द्वन्द्वोंके वश न होना
परचित्त आदि - दूसरेके चित्त आदिकी बात
अभिज्ञता - जान लेना,
अग्नि अर्क अम्बु - अग्नि, सूर्य, जल,
विष आदीनां - विष आदिको
प्रतिष्टम्भः - रोक देना,
अपराजयः - पराजित न होना ।

एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता योगधारणसिद्धयः ।
यया धारणया या स्याद् यथा वा स्यान्निबोध मे ॥ ९ ॥

एताः च उद्देशतः प्रोक्ता योग धारण सिद्धयः यया धारणया या स्यात् यथा वा स्यात् निबोधमे ॥ ९ ॥

उद्देशतः च - उद्देश पूर्वक ही
योग धारण - योग धारणासे (होने वाला)
एताः सिद्धयः - इतनी सिद्धियां
प्रोक्ता - (शास्त्रोंमें) कही गयी हैं,
यया धारणया - जिस धारणासे
वा यथा या स्यात् - अथवा जैसे जो होती हैं
मे निबोध - मुझसे सुनो ॥ ९ ॥

भूतसूक्ष्मात्मनि मयि तन्मात्रं धारयेन्मनः ।
अणिमानमवाप्नोति तन्मात्रोपासको मम ॥ १० ॥

भूत सूक्ष्म आत्मनि मयि तन्मात्रं धारयेत् मनः अणिमानं अवाप्नोति तन्मात्र उपासकः मम ॥ १० ॥

भूत सूक्ष्म	- पञ्चभूतोंके सूक्ष्म रूप	**मम तन्मात्र**	- मेरे तन्मात्रा रूपका
तन्मात्रं	- तन्मात्रा रूप	**उपासकः**	उपासक
मयि आत्मनि	- मेरे शरीरमें	**अणिमानं**	- अणिमा सिद्धि
मनः धारयेत्	- मन लगाकर	**अवाप्नोति**	- प्राप्त कर लेता है ॥ १० ॥

महत्यात्मन्मयि परे यथासंस्थं मनो दधत् ।
महिमानमवाप्नोति भूतानां च पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥

महति आत्मन् मयि परे यथा संस्थं मनः दधत् महिमानं अवाप्नोति भूतानां च पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥

महति आत्मन्	- महाभूत स्वरूप	**भूतानां च**	- महाभूतोंका तो
मयि परे	- मुझपरमात्मामें	**पृथक् पृथक्**	- अलग अलग
यथा संस्थं	- उनके स्वरूपोंके अनुसार	**महिमानं**	- प्रभाव
मनः दधत्	- मन लगाकर	**अवाप्नोति**	- प्राप्त कर लेता है ॥ ११ ॥

परमाणुमये चित्तं भूतानां मयि रञ्जयन् ।
कालसूक्ष्मार्थतां योगी लघिमानमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥

परमाणु मये चित्तं भूतानां मयि रञ्जयन् कालसूक्ष्म अर्थतां योगी लघिमानं अवाप्नुयात् ॥ १२ ॥

भूतानां	- चार (वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) भूतोंके	**कालसूक्ष्म-**	- सूक्ष्म परमाणु काल
परमाणु मये	- परमाणु स्वरूप	**अर्थतां**	स्वरूप तत्त्व
मयि चित्तं	- मुझमें ही चित्तको	**योगीलघिमानं**	- योगी लघिमा सिद्धी
रञ्जयन्	- तदाकार करके	**अवाप्नुयात्**	- पाता है ॥ १२ ॥

धारयन् मय्यहंतत्त्वे मनो वैकारिकेऽखिलम् ।
सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं प्राप्तिं प्राग्नोति मन्मनाः ॥ १३ ॥

धारयन् मयि अहं तत्त्वे मनः वैकारिके अखिलम् सर्व इन्द्रियाणां आत्मतत्त्वं प्राप्तिं प्राग्नोति मत् मनाः ॥ १३ ॥

मयि वैकारिके	- मुझ वैकारिक (सात्त्विक)	**धारयन्**	- लगाकर
अहंतत्त्वे	- अहंकार तत्त्वमें	**सर्व इन्द्रियाणां**	- सब इन्द्रियोंकी
मत् मनाः	- मेरी भावना करके	**आत्मत्वं प्राप्तिं**	- स्वरूपता प्राप्ति सिद्धि
अखिलं मनः	- सम्पूर्ण चित्त	**प्राग्नोति**	- पाता है ॥ १३ ॥

महत्यात्मनि यः सूत्रे धारयेन्मयि मानसम् ।
प्राकाम्यं पारमेष्ठ्यं मे विन्दतेऽव्यक्तजन्मनः ॥ १४ ॥

महति आत्मनि यः सूत्रे धारयेत् मयि मानसं प्राकाम्यं पारमेष्ठ्यं मे विन्दते अव्यक्त जन्मनः ॥ १४ ॥

यः महति आत्मनि	- जो महत्तत्त्व स्वरूप	**अव्यक्त जन्मनः**	- अव्यक्त जन्मा
मयि सूत्रे	- मुझ सूत्रात्मामें	**मे पारमेष्ठ्यं**	- मेरा परम ऐश्वर्यमय
मानसंधारयेत्	- मन लगाता है (वह)	**प्राकाम्यं विन्दते**	- 'प्राकाम्य' सिद्धि पांता है ॥ १४ ॥

विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत् कालविग्रहे ।
स ईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ॥ १५ ॥

विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत् कालविग्रहे स ईशित्वं अवाप्नोति क्षेत्र क्षेत्रज्ञ चोदनाम् ॥ १५ ॥

त्र्यधीश्वरे	- त्रिगुणमयी मायाके स्वामी	**क्षेत्र क्षेत्रज्ञ**	- प्रकृति-पुरुषको
कालविग्रहे	- कालस्वरूप	**चोदनां**	- प्रेरित करने वाली
विष्णौ	- विष्णुमें	**स ईशित्वं**	- वह ईशित्व सिद्धि
चित्तं धारयेत्	- चित्त लगानेसे	**अवाप्नोति**	- पा जाता है ॥ १५ ॥

नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते ।
मनो मय्यादधत् योगी मद्धर्मा वशितामियात् ॥ १६ ॥

नारायणे तुरीय आख्ये भगवत् शब्द शब्दिते मनः मयि अदधत् योगी मत् धर्मा वशितां इयात् ॥ १६ ॥

भगवत् शब्द	- भगवान नामसे	**योगी मनः**	- योगी मनको
शब्दिते	- कहे जाने वाले	**अदधत्**	- लगाकर
तुरीय आख्ये	- तुरीयतत्त्व नामक	**मत् धर्मा**	- मेरी समान धर्मा
नारायणे मयि	- नारायण मुझमें	**वशितां इयात्**	- वशिता सिद्धि पाता है ॥ १६ ॥

निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन् विशदं मनः ।
परमानन्दमाप्नोति यत्र कामोऽवसीयते ॥ १७ ॥

निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन् विशदं मनःपरम आनन्दं आप्नोति यत्रकामः अवसीयते ॥ १७ ॥

विशदं मनः - निर्मल चित्त
मयि निर्गुणे - मुझ निर्गुण
ब्रह्मणि धारयन् - ब्रह्ममें लगानेसे
परम आनन्दं - परमानन्द
आप्नोति - पाता है
यत्र - जिसे
कामः अवसीयते - कामावसायिता सिद्धि कहते हैं ॥ १७ ॥

श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि ।
धारयञ्छ्वेततां याति षड्ऊर्मिरहितो नरः ॥ १८ ॥

श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि धारयन् श्वेततां याति षट् ऊर्मि रहितः नरः ॥ १८ ॥

शुद्धे धर्म मये - शुद्ध धर्मस्वरूप
श्वेत द्वीपपतौ - श्वेतद्वीपके स्वामीमें
नरः चित्तं - मनुष्य चित्तको
धारयन् - लगानेसे
षट् ऊमि - ६ ऊर्मियों (भूख-प्यास, शोक-मोह, जरा-मृत्यु)से
रहितः - रहित होकर
श्वेततां याति - शुद्ध स्वरूप पाता है ॥ १८ ॥

मय्याकाशात्मनि प्राणे मनसा घोषमुद्वहन् ।
तत्रोपलब्धा भूतानां हंसो वाचः शृणोत्यसौ ॥ १९ ॥

मयि आकाश आत्मनि प्राणे मनसा घोषं उद्वहन् तत्र उपलब्धा भूतानां हंसः वाचः शृणोति असौ ॥ १९ ॥

मयि - मुझ
आकाश- - आकाश स्वरूपमें
आत्मनि
प्राणे मनसा - मनके द्वारा प्राणमें (होनेवाला)
हंसः वाचः - हंसः वाणीका (सोऽहं)
घोषं उद्वहन् - शब्द सुनते हुए
तत्र उपलब्धा - वहां प्राप्त होने वाला
भूतानां असौ - प्राणियोंका (शब्द) यह
शृणोति - सुनता है (यह दूरश्रवण सिद्धि है) ॥ १९ ॥

चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारमपि चक्षुषि ।
मां तत्र मनसा ध्यायन् विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक् ॥ २० ॥

चक्षुः त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारं अपि चक्षुषि मां तत्र मनसा ध्यायन् विश्वं पश्यति सूक्ष्म दृक् ॥ २० ॥

चक्षुः त्वष्टरि - नेत्रोंको सूर्यसे
संयोज्य - संयुक्त करके[1] और
त्वष्टारं अपि - सूर्यको भीनेत्रोंसे,
तत्र मां मनसा - वहां मुझे मनसे
ध्यायन् - चिन्तन करता हुआ
सूक्ष्मदृक् - सूक्ष्मदर्शी होकर
विश्वं पश्यति - सम्पूर्ण विश्वको देखता है
॥ २० ॥

मनो मयि सुसंयोज्य देहं तदनु वायुना ।
मद्धारणानुभावेन तत्रात्मा यत्र वै मनः ॥ २१ ॥

मनः मयि सुसंयोज्य देहं तत् अनु वायुना मत् धारणा अनुभावेन तत्र आत्मा यत्र वै मनः ॥ २१ ॥

मनः मयि - मनको मुझमें
तत् अनु - उसके पीछे
देहं वायुना - सूक्ष्म शरीरको प्राण वायुसे
सुसंयोज्य - भली प्रकार मिला देनेसे
मत् धारणा - मेरी धारणा (भावना)के
अनुभावेन - प्रभावसे
वै यत्र मनः - निश्चय जहां मन जायगा
तत्र आत्मा - वहीं सशरीर पहुँच जायेगा
(यह मनोजव सिद्धि है)
॥ २१ ॥

यदा मन उपादाय यद् यद् रूपं बुभूषति ।
तत्तद् भवेन्मनोरूपं मद्योगबलमाश्रयः ॥ २२ ॥

---

१. सूर्यपर खुलेनेत्र लगाने (त्राटक करने)से मनुष्य अन्धा हो जाता है, यह बात ध्यानमें रखना चाहिए । अतः थोड़ी देरको भी ऐसा नहीं करना चाहिए । यहां सूर्यको भी नेत्रसे युक्त करना कहा गया है । यह भावना योगकी विशेष क्रिया है ।

यदा मन उपादाय यत् यत् रूपं बुभूषति तत् तत् भवेत् मनः रूपं मत् योगबलं आश्रयः ॥ २२ ॥

मत् योगबलं - मेरा और योगशक्तिका
आश्रयः - सहारा लेकर
यदा मन-उपादाय - जब मनको साथ लेकर
यत् यत् रूपं - जो जो रूप
बुभूषति - होना चाहता है
तत् तत् - वह वह
मनः रूपं - मनके अनुसार रूपका
भवेत् - हो जाता है (यहकामरूप सिद्धि है) ॥ २२ ॥

परकायं विशन् सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत् ।
पिण्डं हित्वा विशेत् प्राणो वायुभूतः षडङ्घ्रिवत् ॥ २३ ॥

परकायं विशन् सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत् पिण्डं हित्वा विशेत् प्राणः वायुभूतः षड्ङ्घ्रि वत् ॥ २३ ॥

सिद्ध - सिद्धि सम्मन पुरुप
परकाय विशन् - दूसरेके शरीरमें प्रवेश करनेके लिए
आत्मानं - अपनेको
तत्र भावयेत् - वहीं भावना करे (इससे)
षडङ्घ्रिवत् - (एकसे दूसरे फूलपर जाते) भौंरेके समान
प्राणः पिण्डं हित्वा - प्राण यह शरीर छोड़कर
वायुभूतः - वायुरूप होकर
विशेत् - (उसमें) प्रवेश कर जाता है ॥ २३ ॥

पाष्ण्यार्ऽऽपीड्य गुदं प्राणं हृदुरः कण्ठमूर्धसु ।
आरोप्य ब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्म नीत्वोत्सृजेत्तनुम् ॥ २४ ॥

पाष्ण्यार्ा आपीड्य गुदं प्राणं हृत् उरः कण्ठ मूर्धसु आरोप्य ब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्म नीत्वा उत्सृजेत् तनुम् ॥ २४ ॥

गुदं पाष्ण्र्या - गुदाको एड़ीसे दबाकर
आपीड्य
प्राणं हृत् उरः - प्राणको हृदय, छाती,
कण्ठ मूर्धसु - कण्ठ और मस्तकमें
आरोप्य - (क्रमशः) ले जाकर,
ब्रह्मरन्ध्रेण - ब्रह्मरन्ध्रसे
ब्रह्मनीत्वा - ब्रह्मलीन करके
तनुं उत्सृजेत् - शरीर छोड़ दे ॥ २४ ॥

विहरिष्यन् सुराक्रीडे मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् ।
विमानेनोपतिष्ठन्ति सत्त्ववृत्तीः सुरस्त्रियः ॥ २५ ॥

विहरिष्यन् सुर आक्रीडे मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् विमानेन उपतिष्ठन्ति सत्त्ववृत्तिः सुरः स्त्रियः ॥ २५ ॥

सुरआक्रीडे - देव विहार स्थलोंमें
विहरिष्यन् - विहार करनेकी इच्छा हो तो
मत्स्थं सत्त्वं - मेरे सत्त्वगुण रूपकी
विभावयेत् - दृढ़ भावना करे (इससे)
सत्त्ववृत्तीः - सत्त्वगुणकी वृत्ति रूपा
सुरस्त्रियः - देवांगनायें
विमानेन - विमानपर बैठकर
उपतिष्ठन्ति - उसके समीप आ जाती हैं ॥ २५ ॥

यथा संकल्पयेद् बुद्ध्या यदा वा मत्परः पुमान् ।
मयि सत्ये मनो युञ्जंस्तथा तत् समुपाश्नुते ॥ २६ ॥

यथा संकल्पयेत् बुद्ध्या यदा वा मत्परः पुमान् मयि सत्ये मनः युञ्ज़न् तथा तत् सम उप अश्नुते ॥ २६ ॥

मत्परः पुमान् - मेरेपरायण पुरुष
मयि सत्ये - मुझ सत्य स्वरूपमें
मनः युञ्जन् - मन लगाकर
बुद्ध्या यथा - बुद्धिसे जैसा
वा यदा - अथवा जब
संकल्पयेत् - संकल्प करता है
तथा तत् - उसी प्रकार उसका
सम उपअश्नुते - पूरा उपभोग करता है ॥ २६ ॥

यो वै मद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुः पुमान् ।
कुताश्चिन्न विहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ॥ २७ ॥

यः वै मत् भावं आपन्न ईशितुः वशितुः पुमान् कुतः चित् न विहन्येत तस्य च आज्ञा यथा मम ।। २७ ।।

ईशितुः वशितुः	- ईशित्व और वशित्वक	**तस्य च आज्ञा**	- उसकी भी आज्ञा
पुमान्	- स्वामी	**मम यथा**	- मेरी (आज्ञा) के समान
मत भावं	- मेरे भावसे	**कुतः चित्**	- कहीं भी
यः वै आपन्न	- जो निश्चित् युक्त हो जाता है	**विहन्येत न**	- टाली नहीं जाती ।। २७ ।।

मद्भक्त्या शुद्धसत्त्वस्य योगिनो धारणाविदः ।
तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ।। २८ ।।

मत् भक्त्या शुद्ध सत्त्वस्य योगिनः धारणाविदः तस्य त्रैकालिकी बुद्धिः जन्म मृत्यु उपबृंहिता ।। २८ ।।

मत् भक्त्या	- मेरी भक्तिसे	**जन्म मृत्यु**	- जन्म-मृत्यु
शुद्ध सत्त्वस्य	- शुद्ध अन्तःकरण,	**उपबृंहिता**	- सहित
धारणाविदः	- धारणा-विधि जानने वाले	**त्रैकालिकी**	- तीनोंकालोंको जानने वाली (हो जाती है) ।। २८ ।।
तस्य योगिनः	- उस योगीकी बुद्धि		
बुद्धिः			

अग्न्यादिभिर्न हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः ।
मद्योगश्रान्तचित्तस्य यादसामुदकं यथा ।। २९ ।।

अग्नि आदिभिः न हन्येत मुनेः योगमयं वपुः मत् योग श्रान्त चित्तस्य यादसां उदकं यथा ।। २८ ।।

यथा उदकं	- जैसे पानीसे	**श्रान्त चित्तस्य**	- (करके) शिथिल चित्त
यादसां	- जल जीवोंकी (मृत्यु नहीं होती)	**मुनेः योगमयं वपुः**	- मुनिका योगमय शरीर
मत् योग	- मेरे सम्बन्धका योग	**अग्नि आदिभिः**	- अग्नि आदिसे
		हन्येत न	- नष्ट नहीं होता ।।२९।।

मद्विभूतीरभिध्यायन् श्रीवत्सास्त्रविभूषिताः ।
ध्वजातपत्रव्यजनैः स भवेदपराजितः ॥ ३० ॥

मत् विभूतिः अभिध्यायन् श्रीवत्स अस्त्र विभूषिताः ध्वज आतपत्र व्यजनैः स भवेत् अपराजितः ॥ ३० ॥

श्रीवत्स अस्त्र - श्रीवत्स चिन्ह, अस्त्र चक्र,
ध्वज आतपत्र - ध्वजा, छत्र,
व्यजनैः - पंखोंसे
विभूषिताः - सुशोभित
मत् विभूतिः - मेरे वैभवमय रूपका
अभिध्यायन् - (जो) बराबर ध्यान करता है
स अपराजितः - वह अपराजित
भवेत् - हो जाता है ॥ ३० ॥

उपासकस्य मामेवं योगधारणया मुनेः ।
सिद्धयः पूर्वकथिता उपतिष्ठन्त्यशेषतः ॥ ३१ ॥

उपासकस्य मां एवं योग धारणया मुनेः सिद्धयः पूर्व कथिता उपतिष्ठन्ति अशेषतः ॥ ३१ ॥

योग धारणया - योगकी धारणा सहित
मां एवं - मेरी इस प्रकार
उपासकस्य उपासना करने वाले
मुनेः - मननशील साधकके पास
पूर्व कथिता - पहिले बतलायी हुई
अशेषतः सिद्धयः - समस्त सिद्धियां
उपतिष्ठन्ति - उपस्थित हो जाती हैं ॥ ३१ ॥

जितेन्द्रियस्य दान्तस्य जितश्वासात्मनो मुनेः ।
मद्धारणां धारयतःका सा सिद्धिः सुदुर्लभा ॥ ३२ ॥

जित इन्द्रियस्य दान्तस्य जितश्वास आत्मनः मुनेः मत् धारणां धारयतःका सा सिद्धिः सुदुर्लभा ॥ ३२ ॥

का सा सिद्धिः - ऐसी कौनसी सिद्धि है जो
जित इन्द्रियस्य - इन्द्रियजयी,
दान्तस्य - इन्द्रिय दमनकर्ता,
आत्मनः - अपनी
जितश्वास - श्वासपर अधिकार किये
मत् धारणां - मेरी भावना
धारयतः मुनेः - करने वाले मननशीलको
सुदुर्लभा - अत्यन्त दुर्लभ हो ॥ ३२ ॥

अन्तरायान् वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम् ।
मया सम्पद्यमानस्यकालक्षपणहेतवः ॥ ३३ ॥

अन्तरायान् वदन्ति एता युञ्जतः योगं उत्तमं मया सम्पद्यमानस्यकालक्षपण हेतवः ॥ ३३ ॥

उत्तमं योगं - श्रेष्ठ योग
युञ्जतः - करने वालेके
मया सम्पद्य मानस्य - मेरी प्राप्ति करनेमें
कालक्षपण - (व्यर्थ) समय नष्ट करनेका
हेतवः - कारण होनेसे
एता - इन (सिद्धियों) को
अन्तरायान् - (शास्त्र) विघ्न
वदन्ति - कहते हैं ॥ ३३ ॥

जन्मौषधितपोमन्त्रैर्यावतीरिह सिद्धयः ।
योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत् ॥ ३४ ॥

जन्म औषधितपः मन्त्रैः यावतीः इह सिद्धयः योगेन आप्नोति ताः सर्वा न अन्यैः योग गतिं व्रजेत् ॥ ३४ ॥

इह जन्म - इस संसारमें जन्म,
औषधि तपः - औषधि, तपस्या,
मन्त्रैः यावतीः - मन्त्रसे जितनी
सिद्धयः - सिद्धियां होती हैं
ताः सर्वा - वे सब
योगेन आप्नोति - योगसे पा लिया जाता है
योग गतिं - (किन्तु) योगकीपरम स्थितको
अन्यैः न व्रजेत् - दूसरे साधनोंसे नहीं पहुंच सकता ॥३४॥

सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः ।
अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३५ ॥

सर्वासां अपि सिद्धीनां हेतुः पतिः अहं प्रभुः अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३५ ॥

सर्वासां - सभी ही
सिद्धीनां - सिद्धियोंका
अहं हेतुः पतिः - मैं कारण और स्वामी हूं,
अहं योगस्य - मैं योगका,
सांख्यस्य - सांख्यका,
ब्रह्मवादिनः - वेदवादियोंके
धर्मस्य प्रभुः - धर्मका स्वामी हूँ ॥ ३५ ॥

अहमात्माऽऽन्तरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् ।
यथा भूतानि भूतेषु बहिरन्तः स्वयं तथा ॥ ३६ ॥

अहं आत्मा अन्तरः बाह्यः अनावृतः सर्वदेहिनां यथा भूतानि भूतेषु बहिः अन्तः स्वयं तथा ॥ ३६ ॥

यथा भूतेषु - जैसे प्राणियोंके
बहिः अन्तः - बाहर भीतर
भूतानि - पञ्चमहाभूत हैं,
तथा - उसी प्रकार
सर्व देहिनां - सभी शरीर धारियोंका
आत्मा स्वयं - आत्मा स्वयं मैं
अहं
अन्तरः बाह्यः - (उनके) भीतर-बाहर
अनावृतः - आवरण रहित हूं ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे पञ्चशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

उद्धव उवाच–

त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यन्तमपावृतम् ।
सर्वेषामपि भावानां त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥ १ ॥

त्वं ब्रह्म परमं साक्षात् अनादि अन्तं अपावृतं सर्वेषां अपि भावानां त्राण स्थिति अप्यय उद्भवः ॥ १ ॥

त्वं सर्वेषां	- आप सभी	**अनादि अन्तं**	- अनादि, अनन्त,
भावानां अपि	- प्राणि-पदार्थों के भी	अपावृतं	- निरावरण
त्राण स्थिति	- जीवन बचानेकी स्थिति,	**साक्षात्**	- सा त्
अप्यय उद्भवः	- प्रलय-उत्पत्तिके कारण	**परमं ब्रह्म**	- परम ब्रह्म हैं ॥ १ ॥

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः ।
उपासते त्वां भगवन् याथातथ्येन ब्राह्मणाः ॥ २ ॥

उच्च अवचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयं अकृत आत्मभिः उपासते त्वां भगवन् याथातथ्येन ब्राह्मणाः ॥ २ ॥

भगवन्	- भगवन् !	**दुर्ज्ञेयं**	- जानना बहुत कठिन
उच्च अवचेषु	- बड़े-छोटे	**त्वां याथातथ्येन**	- आपकी यथार्थ रूपसे
भूतेषु	- प्राणियोंमें (स्थित आपको)	**ब्राह्मणाः**	- ब्रह्मज्ञानी
		उपासते	- उपासना करते हैं ॥ २ ॥
अकृत आत्मभिः	- अजितेन्द्रियों द्वारा		

येषु येषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः ।
उपासीनाः प्रपद्यन्ते संसिद्धिं तद् वदस्व मे ॥ ३ ॥

येषु येषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः उपासीनाः प्रपद्यन्ते संसिद्धिं तत् वदस्व मे ॥ ३ ॥

येषु येषु	- जिन जिन	**संसिद्धिं**	- सम्यक् सफलता
भावेषु च	- रूपोंमेंही	**प्रपद्यन्ते**	- प्राप्त करते हैं
परमर्षयः	- परमर्षि लोग	**तत् मे वदस्व**	- वह मुझे बतलाइये
भक्त्या उपसीनाः	- भक्तिपूर्वक उपासना करके		॥ ३ ॥

गूढश्चरसि भूतात्मा भूतानां भूतभावन ।
न त्वां पश्यन्ति भूतानि पश्यन्तं मोहितानि ते ॥ ४ ॥

गूढः चरसि भूत आत्मा भूतानां भूत भावन न त्वां पश्यन्ति भूतानि पश्यन्तं मोहितानि ते ॥ ४ ॥

भूतात्मा	- प्राणियोंके आत्मा,	**ते मोहितानि**	- आपके द्वारा सम्मोहित
भूत भावन	- प्राणियोंके रक्षक (आप)	**भूतानि**	- प्राणि
भूतानां	- प्राणियोंमें	**त्वां पश्यन्तं**	- आपको देखते हुए भी
गूढः चरसि	- छिपकर रहते हैं,	**न पश्यन्ति**	- नहीं देख पाते ॥ ४ ॥

याः काश्च भूमौ दिवि वै रसायां
विभूतयो दिक्षु महाविभूते ।
ता मह्यमाख्याह्यनुभावितास्ते
नमामि ते तीर्थपदाङ्घ्रिपद्मम् ॥ ५ ॥

याः काः च भूमौ दिवि वै रसायां विभूतयः दिक्षु महाविभूते ता मह्यं आख्याहि अनुभावितः ते नमामि ते तीर्थपद अङ्घ्रि पद्मम् ॥ ५ ॥

महाविभूते	- परमैश्वर्य शाली प्रभु !	**विभूतयः**	- विभूतियां हैं
वै भूमौ	- निश्चित रूपसे पृथ्वीपर,	**ता मह्यं**	- उन्हें मुझे
दिवि रसायां	- स्वर्ग तथा पातालमें,	**आख्याहि**	- बतलाइये,
दिक्षु	- दिशाओंमें,	**तीर्थपद**	- तीर्थ (गंगा) के मूल स्थान
याः काः च	- जो कोई भी	**ते अङ्घ्रि पद्मं**	- आपके चरण कमलोंमें
ते अनुभावितः	- आपके प्रभावसे युक्त	**नमामि**	- (मैं) नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच–

एवमेतदहं पृष्टः प्रश्नं प्रश्नविदां वर ।
युयुत्सुना विनशने सपत्नैरर्जुनेन वै ॥ ६ ॥

एवं एतत् अहं पृष्टः प्रश्नं प्रश्नविदां वर युयुत्सुना विनशने सपत्नैः अर्जुनेन वै ॥ ६ ॥

प्रश्नविदांवर	- प्रश्न करना जानने वालोंमें श्रेष्ठ उद्धव	**अर्जुनेन**	- अर्जुन द्वारा
विनशने	- कुरुक्षेत्रमें	**एवं एतत् वै**	- इसी प्रकार यही निश्चित
सपत्नैः	- शत्रुओंसे	**प्रश्नं अहं**	- प्रश्न मुझसे
युयुत्सना	- युद्धेच्छुक	**पृष्टः**	- पूछा गया ॥ ६ ॥

ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्यहेतुकम् ।
ततो निवृत्तो हन्ताहं हतोऽयमिति लौकिकः ॥ ७ ॥

ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यं अधर्मं राज्य हेतुकं ततः निवृत्तः हन्तां अहं हतः अयं इति लौकिकः ॥ ७ ॥

अहं हन्ता	- "मैं मारने वाला हूँ,	**ज्ञातिवधं**	- जातिके लोगोंको मारना
अयं हतः	- ये मरेंगे'	**गर्ह्यं अधर्मं**	- निन्दनीय अधर्म
इति लौकिकः	- इस (सामान्य) लोक धारणासे	**ज्ञात्वा ततः**	- जानकर उससे
राज्य हेतुकं	- राज्यके लिए	**निवृत्तः**	- उदासीन होते (अर्जुन ने पूछा था) ॥ ७ ॥

स तदा पुरुषव्याघ्रो युक्त्या मे प्रतिबोधितः ।
अभ्यभाषत मामेवं यथा त्वं रणमूर्धनि ॥ ८ ॥

स तदा पुरुषव्याघ्रः युक्त्या मे प्रतिबोधितः अभ्यभाषत मां एवं यथा त्वं रण मूर्धनि ॥ ८ ॥

स पुरुष व्याघ्रः - वह पुरुष सिंह
तदा रण मूर्धनि - उस समय युद्धारम्भमें
युक्त्या मे - युक्तियों द्वारा मेरे
प्रतिबोधितः - समझाये जानेपर
एवं यथा त्वं - इसी प्रकार जैसे तुम (पूछ रहे हो)
अभ्यभाषत - मुझसे पूछा था ॥ ८ ॥

अहमात्मोद्धवामीषां भूतानां सुहृदीश्वरः ।
अहं सर्वाणि भूतानि तेषां स्थित्युद्भवाप्ययः ॥ ९ ॥

अहं आत्मा उद्धव अमीषां भूतानां सुहृत् ईश्वरः अहं सर्वाणि भूतानि तेषां स्थिति उद्धव अप्ययः ॥ ९ ॥

उद्धव - उद्धव !
अमीषां भूतानां - इन प्राणियोंका
अहं आत्मा - मैं आत्मा,
सुहृत ईश्वरः - हितैषी, स्वामी हूँ ।
अहं सर्वाणि भूतानि - मैं ही सब प्राणि-पदार्थ हूँ,
तेषां स्थिति - उनकी स्थिति
उद्भव अप्ययः - उत्पत्ति और प्रलय भी हूँ ॥ ९ ॥

अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम् ।
गुणानां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥ १० ॥

अहं गतिः गतिमतां कालः कलयतां अहं गुणानां च अपि अहं साम्यं गुणिनि औत्पत्तिकः गुणः ॥ १० ॥

गतिमतां - गतिशीलोंमें
अहं गतिः - मैं गति हूँ,
कलयतां कालः - वशमें करने वालोंमें काल,
गुणानां च - गुणोंमें भी
अहं साम्यः - मैं (उनकी) साम्यावस्था एवं
गुणिनि - गुणवानोंमें
औत्पत्तिकः - जन्मजात (स्वाभाविक)
गुणः - गुण हूँ ॥ १० ॥

गुणिनामप्यहं सूत्रं महतां च महानहम् ।
सूक्ष्माणामप्यहं जीवो दुर्जयानामहं मनः ॥ ११ ॥

गुणिनां अपि अहं सूत्रं महतां च महान् अहं सूक्ष्माणां अपि अहं जीवः दुर्जयानां अहं मनः ॥ ११ ॥

गुणिनां अपि	- गुणवानोंमें भी	**सूक्ष्माणां**	- सूक्ष्म (पदार्थों) में
अहं सूत्रं	- मैं सूत्रात्मा हूँ,	**अहं जीवः**	- मैं जीव हूँ,
च महतां	- तथा महानोंमें	**दुर्जयानां**	- जिनको जीतना कठिन है उनमें
अहं महान्	- मैं महत्तत्त्व हूँ,	**अहं मनः**	- मैं मन हूँ ॥ ११ ॥

हिरण्यगर्भो वेदानां मन्त्राणां प्रणवस्त्रिवृत् ।
अक्षराणामकारोऽस्मि पदानिच्छन्दसामहम् ॥ १२ ॥

हिरण्यगर्भः वेदानां मन्त्राणां प्रणवः त्रिवृत् अक्षराणां अकारः अस्मि पदानि छन्दसां अहम् ॥ १२ ॥

वेदानां	- वेदोंमें (उन्हें प्रकट करने वाला)	**अक्षराणां**	- अक्षरोंमें
हिरण्यगर्भः	- ब्रह्मा (या सूर्य) हूँ,	**अकारः अस्मि**	- अकार हूँ,
मन्त्राणां	- मन्त्रोंमें	**छन्दसां**	- छन्दोंमें
त्रिवृत् प्रणवः	- तीन मात्राओं वाला प्रणव हूँ,	**अहं पदानि**	- मैं त्रिपदा गायत्री हूँ ॥ १२ ॥

इन्द्रोऽहं सर्वदेवानां वसूनामस्मि हव्यवाट् ।
आदित्यानामहं विष्णू रुद्राणां नीललोहितः ॥ १३ ॥

इन्द्रः अहं सर्व देवानां वसूनां अस्मि हव्यवाट् आदित्यानां अहं विष्णू रुद्राणां नील लोहितः ॥ १३ ॥

सर्व देवानां	- सब देवताओंमें	**आदित्यानां**	- अदितिके (बारह) पुत्रोंमें
अहं इन्द्रः	- मैं इन्द्र हूँ,	**अहं विष्णुः**	- मैं विष्णु (वामन) हूँ,
वसूनां	- (आठ) वसुओंमें	**रुद्राणां**	- (एकादश) रुद्रोंमें
हव्यवाट् अस्मि	- अग्नि हूँ,	**नीललोहितः**	- नील लोहित (नामक-रुद्र) हूँ ॥ १३ ॥

ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं राजर्षीणामहं मनुः ।
देवर्षीणां नारदोऽहं हविर्धान्यस्मि धेनुषु ॥ १४ ॥

ब्रह्मर्षीणां भृगुः अहं राजर्षीणां अहं मनुः देवर्षीणां नारदः अहं हविर्धानि अस्मि धेनुषु ॥ १४ ॥

ब्रह्मर्षीणां	- ब्रह्मर्षियोंमें	**अहं नारदः**	- मैं नारद तथा
अहं भृगुः	- मैं भृगु हूँ,	**धेनुषु**	- गायोंमें
राजर्षीणां	- देवर्षियोंमें	**हविर्धानि अस्मि**	- कामधेनु हूँ ॥ १४ ॥

सिद्धेश्वराणां कपिलः सुपर्णोऽहं पतत्त्रिणाम् ।
प्रजापतीनां दक्षोऽहं पितॄणामहमर्यमा ॥ १५ ॥

सिद्ध ईश्वराणां कपिलः सुपर्णः अहं पतत्त्रिणां प्रजा पतीनां दक्षः अहं पितॄणां अहं अर्यमा ॥ १५ ॥

सिद्ध ईश्वराणां	- सिद्धोंके स्वामियोंमें	**प्रजापतीनां**	- प्रजापतियोंमें
कपिलः	- कपिल,	**अहं दक्षः**	- मैं दक्ष,
पतत्त्रिणां	- पक्षियोंमें,	**पितॄणां**	- पितरोंमें
अहं सुपर्णः	- मैं गरुड़	**अहं अर्यमा**	- मैं अर्यमा हूँ ॥ १५ ॥

मां विद्ध्युद्धव दैत्यानां प्रह्लादमसुरेश्वरम् ।
सोमं नक्षत्रौषधीनां धनेशं यक्षरक्षसाम् ॥ १६ ॥

मां विद्धि उद्धव दैत्यानां प्रह्लादं असुर ईश्वरं सोमं नक्षत्र औषधीनां धनेशं यक्ष रक्षसाम् ॥ १६ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**नक्षत्र औषधीनां**	- नक्षत्रों एवं औषधियोंमें
दैत्यानां मां	- दैत्योंमें मुझे	**सोमं**	- चन्द्रमा
असुर ईश्वरं	- असुरराज	**यक्ष रक्षसां**	- यक्ष-राक्षसोंमें
प्रह्लादं विद्धि	- प्रह्लाद जानो,	**धनेशं**	- कुबेर हूँ ॥ १६ ॥

ऐरावतं गजेन्द्राणां यादसां वरुणं प्रभुम् ।
तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम् ॥ १७ ॥

ऐरावतं गजेन्द्राणां यादसां वरुणं प्रभुं तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम् ॥ १७ ॥

गजेन्द्राणां	- गजराजोंमें	**तपतां द्युमतां**	- तपने वाले कान्तिमानोंमें
ऐरावतं	- ऐरावत,	**सूर्यं**	- सूर्य,
यादसां प्रभुं	- जलचरोंमें उनके स्वामी	**च मनुष्याणां**	- तथा मनुष्योंमें
वरुणं	- वरुण	**भूपतिं**	- राजा हूँ ॥ १७ ॥

उच्चैःश्रवास्तुरङ्गाणां धातूनामस्मि काञ्चनम् ।
यमः संयमतां चाहं सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ १८ ॥

उच्चैः श्रवाः तुरंगाणां धातूनां अस्मि काञ्चनं यमः संयमतां च अहं सर्पाणां अस्मि वासुकिः ॥ १८ ॥

तुरंगानां	- घोड़ोंमें	**संयमतां च**	- शासन करने वालोंमें तो
उच्चैः श्रवा	- उच्चैः श्रवा,	**यमः अस्मि**	- यमराज हूँ,
धातूनां	- धातुओंमें	**च सर्पाणां**	- तथा सर्पोंमें
काञ्चनः अस्मि	- सोना हूँ,	**वासुकिः अस्मि**	- वासुकी हूँ ॥ १८ ॥

नागेन्द्राणामनन्तोऽहं मृगेन्द्रः शृङ्गिदंष्ट्रिणाम् ।
आश्रमाणामहं तुर्यो वर्णानां प्रथमोऽनघ ॥ १९ ॥

नाग इन्द्राणां अनन्तः अहं मृगेन्द्रः शृंग दंष्ट्रिणां आश्रमाणां अहं तुर्यः वर्णानां प्रथमः अनघ ॥ १९ ॥

अनघ - निष्पाप उद्धव !
नाग इन्द्राणां - नागराजोंमें
अहं अनन्तः - मैं शेष हूँ,
शृंग दंष्ट्रि णां - सींग और दाढ़ वालोंमें
मृगेन्द्रः - सिंह,
आश्रमाणां - आश्रमोंमें
अहं तुर्यः - मैं तुरीय सन्यास आश्रम एवं
वर्णानां - वर्णोंमें
प्रथमः - प्रथम ब्राह्मण हूँ ॥ १९ ॥

तीर्थानां स्त्रोतसां गंगा समुद्रः सरसामहम् ।
आयुधानां धनुरहं त्रिपुरघ्नो धनुष्मताम् ॥ २० ॥

तीर्थानां स्त्रोतसां गंगा समुद्रः सरसां अहं आयुधानां धनुः अहं त्रिपुरघ्नः धनुष्मताम् ॥ २० ॥

स्त्रोतसां तीर्थानां - प्रवाहरूप तीर्थोंमें
गंगा - गंगा,
सरसां - सरोवरोंमें
समुद्रः अस्मि - समुद्र हूँ
आयुधानां - हथियारोंमें
अहं धनुः - मैं धनुष एवं
धनुष्मतां - धनुर्धारियोंमें
त्रिपुरघ्नः - त्रिपुरारि हूँ ॥ २० ॥

धिष्ण्यानामस्म्यहं मेरुर्गहनानां हिमालयः ।
वनस्पतीनामश्वत्थ औषधीनामहं यवः ॥ २१ ॥

धिष्ण्यानां अस्मि अहं मेरुः गहनानां हिमालयः वनस्पतीनां अश्वत्थ औषधीनां अहं यवः ॥ २१ ॥

धिष्ण्यानां - निवास स्थानोंमें
अहं मेरु अस्मि - मैं सुमेरु पर्वत हूँ,
गहनानां - कठिन स्थानोंमें
हिमालयः - हिमालय,
वनस्पतीनां - वनस्पतियोंमें
अश्वत्थः - पीपल,
औषधीनां - औषधियोंमें
अहं यवः - मैं जौ हूँ ॥ २१ ॥

पुरोधसां वसिष्ठोऽहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः ।
स्कन्दोऽहं सर्वसेनान्यामग्रण्यां भगवानजः ॥ २२ ॥

पुरोधसां वशिष्ठः अहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः स्कन्दः अहं सर्व सेनान्यां अग्रण्यां भगवान् अजः ॥ २२ ॥

पुरोधसां	- पुरोहितोंमें	**सर्व सेनान्यां**	- सब सेनापतियोंमें
अहं वशिष्ठः	- मैं वशिष्ठ,	**अहं स्कन्दः**	- मैं कुमार कार्तिक,
ब्रह्मिष्ठानां	- वेदज्ञोंमें	**अग्रण्यां**	- सन्मार्ग प्रवर्तकोंमें
बृहस्पतिः	- बृहस्पति,	**भगवान् अजः**	- भगवान् ब्रह्मा हूँ ॥२२॥

यज्ञानां ब्रह्मयज्ञोऽहं व्रतानामविहिंसनम् ।
वाय्वग्न्यर्काम्बुवागात्मा शुचीनामप्यहं शुचिः ॥ २३ ॥

यज्ञानां ब्रह्मयज्ञः अहं व्रतानां अविहिंसनं वायु अग्नि अर्क अम्बु वाक् आत्मा शुचीनां अपि अहं शुचिः ॥ २३ ॥

यज्ञानां	- (पंच) महायज्ञोंमें	**शुचीनां अपि**	- पवित्र करने वालोंमें भी
अहं ब्रह्मयज्ञः	- मैं ब्रह्मयज्ञ (वेदोंका स्वाध्याय),	**शुचिः वायु**	- नित्य शुद्ध वायु,
		अग्नि अर्क	- अग्नि, सूर्य,
व्रतानां	- व्रतोंमें	**अम्बु वाक्**	- जल, वाणी,
अविहिंसनं	- अहिंसा,	**आत्मा**	- आत्मा हूँ ॥ २३ ॥

योगानामात्मसंरोधो मन्त्रोऽस्मि विजिगीषताम् ।
आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्यातिवादिनाम् ॥ २४ ॥

योगानां आत्म संरोधः मन्त्रः अस्मि विजिगीषतां आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्याति वादिनाम् ॥ २४ ॥

योगानां	- (आठ प्रकारके) योगोंमें	**कौशलानां**	- कुशलतामें
आत्म संरोधः	- मनोनिरोध,	**आन्वीक्षिकी**	- विवेक कौशल,
विजिगीषतां	- जीतने की इच्छावालोंमें	**ख्याति वादिनां**	- ख्याति वादियोंमें१
मन्त्रः	- नीतिबल,	**विकल्पः**	- विकल्प हूँ ॥ २४ ॥

---

१. 'इसकी ऐसी प्रसिद्धि है' इस आधार पर तत्त्व निर्णय करने वालोंमें 'यह इस कारण या इस कारण भी सम्भव है-इस प्रकार का विकल्प-एक प्रकारका 'अनेकान्तवाद' ।

स्त्रीणां तु शतरूपाहं पुंसां स्वायम्भुवो मनुः ।
नारायणो मुनीनां च कुमारो ब्रह्मचारिणाम् ॥ २५ ॥

स्त्रीणां तु शतरूपा अहं पुंसां स्वायम्भुवः मनुः नारायणः मुनीनां च कुमारः ब्रह्मचारिणाम् ॥ २५ ॥

स्त्रीणां तु	- स्त्रियोंमें तो	**मुनीनां नारायणः**	- मुनियोंमें नारायण,
अहं शतरूपा	- मैं शतरूपा,	**च ब्रह्मचारिणां**	- तथा ब्रह्मचारियोंमें
पुंसां	- पुरुषोंमें	**कुमारः**	- सनक आदि कुमार हूँ
स्वायंभुवः मनुः	- स्वायाम्भू मनु,		॥ २५ ॥

धर्माणामस्मि संन्यासः क्षेमाणामबहिर्मतिः ।
गुह्यानां सूनृतं मौनं मिथुनानामजस्त्वहम् ॥ २६ ॥

धर्माणां अस्मि सन्यासः क्षेमाणां अबहिः मतिः गुह्यानां सूनृतं मौनं मिथुनानां अजः तु अहम् ॥ २६ ॥

धर्माणां	- धर्मोंमें	**गुह्यानां**	- गोपनीयतामें
सन्यासः अस्मि	- सन्यास हूँ,	**सूनृतं मौनं**	- मधुर वाणी तथा मौन,
क्षेमाणां	- कल्याण के साधनोंमें	**मिथुनानां**	- जोड़ेसे रहने वालोंमें
अबहिः मतिः	- बुद्धिका बहिर्मुख न होना,	**अजः तु अहं**	- (एक ही देह से स्त्री-पुरुष उत्पन्न करने वाले) ब्रह्मा मैं हूँ ॥ २६ ॥

संवत्सरोऽस्म्यनिमिषामृतूनां मधुमाधवौ ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणां तथाभिजित् ॥ २७ ॥

संवत्सरः अस्मि अनिमिषां ऋतूनां मधु माधवौ मासानां मार्गशीर्षः अहं नक्षत्राणां तथा अभिजित् ॥ २७ ॥

अनिमिषां	- पलक न झपकाने वालोंमें	**मासानां अहं**	- महीनोंमें मैं
संवत्सरः अस्मि	- संवत्सर हूँ,	**मार्गशीर्षः**	- मार्गशीर्ष
ऋतूनां	- ऋतुंओंमें	**तथा नक्षत्राणां**	- इसी प्रकार नक्षत्रोंमें
मधु माधवौ	- चैत्र-वैशाख रूप वसंत,	**अभिजित्**	- अभिजित हूँ ॥ २७ ॥

अहं युगानां च कृतं धीराणां देवलोऽसितः ।
द्वैपायनोऽस्मि व्यासानां कवीनां काव्य आत्मवान् ॥ २८ ॥

अहं युगानां च कृतं धीराणां देवलः असितः द्वैपायनः अस्मि व्यासानां कवीनां काव्यः आत्मवान् ॥ २८ ॥

युगानां च	- युगोंमें भी	**व्यासानां**	- वेदोंका विभाजन करने वालोंमें
अहं कृतं	- मैं सतयुग,		
धीराणां	- धैर्यशालियोंमें	**द्वैपायनः**	- श्रीकृष्ण द्वैपायन,
देवलः असितः	- देवल और असित,	**कवीनां**	- कवियोंमें
		आत्मवान्	- मनस्वी शुक्राचार्य हूँ
		काव्यः	॥ २८ ॥

वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम् ।
किंपुरुषाणां हनुमान् विद्याध्राणां सुदर्शनः ॥ २९ ॥

वासुदेवः भगवतां त्वं तु भागवतेषु अहं किम्पुरुषाणां हनुमान् विद्याध्राणां सुदर्शनः ॥ २९ ॥

भगवतां	- भगवानों (दिव्येश्वर्य शालियों) में	**किम्पुरुषाणां**	- किम्पुरुषोंमें
		हनुमान्	- हनुमान,
अहं वासुदेवः	- मैं वासुदेव,	**विद्याध्राणां**	- विद्याधरोंमें
भागवतेषु	- भगवद्भक्तोंमें	**सुदर्शनः**	- सुदर्शन हूँ ॥ २९ ॥
त्वं तु	- तुम्ही,		

रत्नानां पद्मरागोऽस्मि पद्मकोशः सुपेशसाम् ।
कुशोऽस्मि दर्भजातीनां गव्यमाज्यं हविष्वहम् ॥ ३० ॥

रत्नानां पद्मरागः अस्मि पद्मकोशः सुपेशसां कुशः अस्मि दर्भजातीनां गव्यं आज्यं हविःषु अहम् ॥ ३० ॥

रत्नानां	- रत्नोंमें	**दर्भजातीनां**	- दर्भ (मूंज कासादि) जातियोंमें
पद्मरागः अस्मि	- कमलके रंगका (माणिक) हूँ,	**कुशः अस्मि**	- कुश हूँ,
सुपेशसां	- सुन्दर आकारवालोंमें	**हविःषु अहं**	- हविष्योंमें मैं
पद्मकोशः	- कमलकोश,	**गव्यं आज्यं**	- गोधृत हूँ ॥ ३० ॥

व्यवसायिनामहं लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः ।
तितिक्षास्मि तितिक्षूणां सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३१ ॥

व्यवसायिनां अहं लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः तितिक्षा अस्मि तितिक्षूणां सत्त्वं सत्त्ववतां अहम् ॥ ३१ ॥

अहं व्यवसायिनां	- मैं व्यापारियोंकी	**तितिक्षूणां**	- तितीक्षा करने वालोंकी
लक्ष्मीः	- लक्ष्मी,	**तितिक्षा**	- सहनशीलता एवं
कितवानां	- कपटियोंका	**सत्त्ववतां**	- सात्त्विक लोगोंका
छलग्रहः	- जुआ खेलना,	**सत्त्वं अहं-अस्मि**	- सत्त्वगुण मैं हूँ ॥ ३१ ॥

ओजः सहो बलवतां कर्माहं विद्धि सात्त्वताम् ।
सात्त्वतां नवमूर्तीनामादिमूर्तिरहं परा ॥ ३२ ॥

ओजः सहः बलवतां कर्म अहं विद्धि सात्त्वतां सात्त्वतां नवमूर्तीनां आदिमूर्तिः अहं परा ॥ ३२ ॥

बलवतां - बलवानोंमें
ओजः सहः - उत्साह और पराक्रम,
सात्त्वतां - भगवद्भक्तोंमें
अहं कर्म - मैं निष्काम कर्म,
सात्त्वतां - पाञ्चरात्रो पासकोंकी
नवमूर्तीनां - नौ (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, बाराह, नृसिंह और ब्रह्मा) पूज्य मूर्तियोंमें
अहं परा - मैं सर्वश्रेष्ठ
आदिमूर्तिः - पहिली मूर्ति वासुदेव हूँ ॥ ३२ ॥

विश्वावसुः पूर्वचित्तिर्गन्धर्वाप्सरसामहम् ।
भूधराणामहं स्थैर्यं गन्धमात्रमहं भुवः ॥ ३३ ॥

विश्वावसुः पूर्वचित्तिः गन्धर्व अप्सरसां अहं भूधराणां अहं स्थैर्यं गन्धमात्रं अहं भुवः ॥ ३३ ॥

गन्धर्व - गन्धर्वोंमें
विश्वावसुः - विश्वावसु,
अप्सरसां अहं - अप्सराओंमें मैं
पूर्वचित्तिः - पूर्वचित्ती,
भूधराणां - पर्वतोंमें
अहं स्थैर्यं - मैं स्थिरता,
अहं भुवः - मैं पृथ्वीमें
गन्धमात्रं - गन्ध तन्मात्रा हूँ ॥ ३३ ॥

अपां रसश्च परमस्तेजिष्ठानां विभावसुः ।
प्रभा सूर्येन्दुताराणां शब्दोऽहं नभसः परः ॥ ३४ ॥

अपां रसः च परमः तेजिष्ठानां विभावसुः प्रभा सूर्य इन्दु ताराणां शब्दः अहं नभसः परः ॥ ३४ ॥

अपां रसः - जलमें रस,
च तेजिष्ठानां - तथा तेजस्वियोंमें
परमः विभावसुः - श्रेष्ठ अग्नि,
सूर्य इन्दु-ताराणां - सूर्य, चन्द्र, तारागणोंमें
प्रभा - प्रभा और
नभसः - आकाशमें
अहं परः शब्दः - परा ध्वनि हूँ ॥ ३४ ॥

ब्रह्मण्यानां बलिरहं वीराणामहमर्जुनः ।
भूतानां स्थितिरुत्पत्तिरहं वै प्रतिसङ्क्रमः ॥ ३५ ॥

ब्रह्मण्यानां बलिः अहं वीराणां अहं अर्जुनः भूतानां स्थितिः उत्पत्तिः अहं वै प्रतिसंक्रमः ॥ ३५ ॥

ब्रह्मण्यानां - ब्राह्मण भक्तोंमें
अहं बलिः - मैं दैत्यराज बलि,
वीराणां - वीरोंमें
अहं अर्जुनः - मैं अर्जुन हूँ
भूतानां वै - प्राणियोंकी निश्चित रूपसे
अहं स्थितिः - मैं ही स्थिति,
उत्पत्तिः - उत्पत्ति और
प्रतिसङ्क्रमः - प्रलय हूँ ॥ ३५ ॥

गत्युक्त्युत्सर्गोपादानमानन्दस्पर्शलक्षणम् ।
आस्वादश्रुत्यवघ्राणमहं सर्वेन्द्रियेन्द्रियम् ॥ ३६ ॥

गति उक्ति उत्सर्ग उपादानं आनन्द स्पर्श लक्षणं आस्वाद श्रुति अवघ्राणं अहं सर्व इन्द्रिय इन्द्रियम् ॥ ३६ ॥

गति उक्ति- - चलना, बोलना
उत्सर्ग मलत्याग,
उपादानं - पकड़नेकी शक्ति
आनन्द - रति-सुख
स्पर्श आस्वाद - स्पर्श, स्वाद लेना,
श्रुति अवघ्राण - सुनना, सूंघना,
लक्षण - स्वरूप
सर्वइन्द्रिय - सभी इन्द्रियोंका
इन्द्रियं अहं - इन्द्रियत्व (गुण) मैं हूँ ॥ ३६ ॥

पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिरहं महान् ।
विकारः पुरुषोऽव्यक्तं रजः सत्त्वं तमः परम् ॥ ३७ ॥

पृथिवी वायुः आकाश आपः ज्योतिः अहं महान् विकारः पुरुषः अव्यक्तं रजः सत्त्वं तमः परम् ॥ ३७ ॥

पृथिवी वायुः - पृथ्वी, वायु,
आकाश आपः - आकाश, जल,
ज्योतिः अहं - अग्नि, अहंकार,
महान् विकारः - महत्तत्त्व, पञ्च महाभूत
पुरुषः अव्यक्तं - जीव, प्रकृति,
रजः सत्त्वं - रजोगुण, सत्त्वगुण,
तमः परं - तमोगुण और परमात्मा (मैं हूँ) ॥ ३७ ॥

अहमेतत्प्रसंख्यानं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयः ।
मयेश्वरेण जीवेन गुणेन गुणिना विना ।
सर्वात्मनापि सर्वेण न भावो विद्यते क्वचित् ॥ ३८ ॥

अहं एतत् प्रसंख्यानं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयः मयि ईश्वरेण जीवेन गुणेन गुणिना विना सर्व आत्मना अपि सर्वेण न भावः विद्यते क्वचित् ॥ ३८ ॥

एतत् प्रसंख्यानं - इन तत्त्वोंकी गणना,
ज्ञानं - (उस गणना से हुआ) ज्ञान,
तत्त्वविनिश्चयः - (उस ज्ञानसे) तत्त्वपूर्ण निश्चय
अहं - मैं ही हूँ ।
मयि ईश्वरेण - मुझ ईश्वर,
जीवेन गुणिना - जीव, गुणवान्,
गुणेन - गुण एवं
सर्व आत्मना - सबके आत्मरूप भी
सर्वेण विना - सर्व स्वरूपको छोड़कर
क्वचित् भावः - कहीं कोई पदार्थ
न विद्यते - नहीं है ॥ ३८ ॥

संख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया ।
न तथा मे विभूतीनां सृजतोऽण्डानि कोटिशः ॥ ३९ ॥

संख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया न यथा मे विभूतीनां सृजतः अण्डानि कोटिशः ॥ ३९ ॥

मया संख्यानं - मेरे द्वारा गणना
क्रियते - करने पर
यथा कालेन - जैसे दीर्घ कालमें
परमाणूनां - परमाणुओंकी (गणना हो जायेगी)
कोटिशः - पर करोड़ों
अण्डानि सृजतः - ब्रह्माण्ड उत्पन्न करती
मे विभूतीनां न - मेरी विभूतियों की (गणना) नहीं हो सकेगी ॥ ३९ ॥

तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्यागः सौभगं भगः ।
वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र स मेंऽशकः ॥ ४० ॥

तेजः श्रीः कीर्तिः ऐश्वर्यं ह्रीः त्यागः सौभगं भगः वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र समे अंशकः ॥ ४० ॥

यत्र तत्र	- जहाँ जहाँ	**सौभगं भगः**	- सौन्दर्य, सौभाग्य,
तेजः श्रीः	- तेजस्विता, लक्ष्मी,	**वीर्यं तितीक्षा**	- पराक्रम, तितीक्षा,
कीर्तिः ऐश्वर्यं	- यश, प्रभुत्व,	**विज्ञानं स**	- विज्ञानादि हैं, वह
ह्रीः त्यागः	- लज्जा, त्याग,	**मे अंशकः**	- मेरा अंश है ॥ ४० ॥

एतास्ते कीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेण विभूतयः ।
मनोविकारा एवैते यथा वाचाभिधीयते ॥ ४१ ॥

एताः ते कीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेण विभूतयः मनः विकारा एव एते यथा वाचा अभिधीयते ॥ ४१ ॥

एताः सर्वाः	- ये सब	**एते मनः-**	- ये मन की कल्पनायें
विभूतयः	- विभूतियां	**विकारा एव**	ही हैं
ते कीर्तिताः	- (जो) तुमसे बतलायी	**यथा वाचा**	- जैसा कहना चाहें,
		अभिधीयते	- कही जाती हैं ॥ ४१ ॥

वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान् यच्छेन्द्रियाणि च ।
आत्मानमात्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वने ॥ ४२ ॥

वाचं यच्छ मनः यच्छ प्राणान् यच्छ इन्द्रियाणि च आत्मानं आत्मना यच्छ न भूयः कल्पसे अध्वने ॥ ४२ ॥

वाचं यच्छ	- वाणीको रोको,	**आत्मना**	- अपनी बुद्धिसे
मनः यच्छ	- मनको रोको,	**आत्मानं यच्छ**	- चित्तको नियन्त्रित करो,
प्राणान् च	- प्राण और	**भूयः अध्वने**	- (इससे) फिर संसार-मार्गमें
इन्द्रियाणि यच्छ	- इन्द्रियोंको रोको,	**न कल्पसे**	- नहीं पड़ोगे ॥ ४२ ॥

यो वै वाङ्मनसी सम्यगसंयच्छन् धिया यतिः ।
तस्य व्रतं तपो दानं स्रवत्यामघटाम्बुवत् ॥ ४३ ॥

यः वै वाक् मनसी सम्यक् असंयच्छन् धिया यतिः तस्य व्रतं तपः दानं स्रवति आमघट अम्बुवत् ॥ ४३ ॥

यः यतिः वै	-	जो यत्नशील निश्चय	**तस्यव्रतं**	-	उसके व्रत,
धिया वाक्	-	बुद्धिसे वाणी और	**तपः दानं**	-	तप एवं दान (का फल)
मनसी		मनका	**आमघट**	-	कच्चे घड़ेके
सम्यक्	-	भली प्रकार	**अम्बुवत्**	-	जलके समान
असंयच्छन्	-	नियन्त्रण नहीं करता,	**स्रवति**	-	बह जाते हैं ॥ ४३ ॥

तस्मान्मनोवचः प्राणान् नियच्छेन्मत्परायणः ।
मभ्दक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥

तस्मात् मनः वचः प्राणान् नियच्छेत् मत् परायणः मत् भक्तियुक्तया बुद्धया ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥

तस्मात्	-	इसलिए	**बुद्ध्या मनः**	-	बुद्धि से मन,
मत् परायणः	-	मेरा आश्रित होकर	**वचः**		वाणी और
मत् भक्ति-	-	मेरी भक्तियुक्त	**प्राणान्-**	-	प्राणोंका नियन्त्रण करे,
युक्तया			**नियच्छेत्**		
			ततः	-	तब (सब कर्तव्य) सम्पूर्ण
			परिसमाप्यते		समाप्त हो जाते हैं ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

उद्धव उवाच–

यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ।
वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥ १ ॥

यः त्वया अभिहितः पूर्वं धर्मः त्वत् भक्ति लक्षणः वर्ण आश्रम आचारवतां सर्वेषां द्विपदां अपि ॥ १ ॥

वर्ण आश्रम	- वर्ण आश्रमका	**पूर्वं यः त्वया**	- पहिले जो आपने
आचारवतां	- आचार मानने वाले	**त्वत् भक्ति-**	- अपनी भक्ति रूपी
सर्वेषां	- सभी	**लक्षणः**	
द्विपदां अपि	- दो पैर वालों (मनुष्यों) के लिए ही	**धर्मः अभिहितः**	- धर्मोपदेश किया है ॥ १ ॥

यथानुष्ठीयमानेन त्वयि भक्तिर्नृणां भवेत् ।
स्वधर्मेणारविन्दाक्ष तत् समाख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

यथा अनुष्ठीय मानेन त्वयि भक्तिः नृणां भवेत् स्वधर्मेण अरविन्द अक्ष तत् सम आख्यातुं अर्हसि ॥ २ ॥

अरविन्द अक्ष	- कमललोचन !	**भक्तिः भवेत्**	- भक्ति हो
यथा स्वधर्मेण	- जैसे अपने धर्मका	**तत्-**	- उसे भली प्रकार बतलाना
अनुष्ठीय मानेन	- आचरण करनेसे	**समआख्यातुं**	
नृणां त्वयि	- मनुष्योंकी आपमें	**अर्हसि**	- चाहिए ॥ २ ॥

पुरा किल महाबाहो धर्मं परमकं प्रभो ।
यत्तेन हंसरूपेण ब्रह्मणेऽभ्यात्थ माधव ॥ ३ ॥

पुरा किल महाबाहो धर्मं परमकं प्रभो यत् तेन हंसरूपेण ब्रह्मणे अभ्यात्थ माधव ॥ ३ ॥

प्रभो महाबाहो - प्रभो ! महाबाहो !
माधव - माधव !
किल पुरा - अहो पहिले,
तेन हंसरूपेण - उस हंसरूपसे
परमकं धर्मं - उत्तम धर्मका
ब्रह्मणे - ब्रह्माको
अभ्यात्थ - उपदेश किया था ॥३॥

स इदानीं सुमहता कालेनामित्रकर्शन ।
न प्रायो भविता मर्त्यलोके प्रागनुशासितः ॥ ४ ॥

स इदानीं सुमहता कालेन अमित्रकर्शन न प्रायः भविता मर्त्यलोके प्राक् अनुशासितः ॥ ४ ॥

अमित्र कर्शन - शत्रुनाशन !
स प्राक्-अनुशासितः - वह पहिले उपदेश किया (धर्म)
सुमहता कालेन - अत्यन्त दीर्घकाल (वीतजाने) से
इदानीं प्रायः - इस समय प्रायः
मर्त्यलोके - मनुष्य लोकमें
न भविता - नहीं रह गया है ॥ ४ ॥

वक्ता कर्ताविता नान्यो धर्मस्याच्युत ते भुवि ।
सभायामपि वैरिञ्च्यां यत्र मूर्तिधराः कलाः ॥ ५ ॥

वक्ता कर्ता अविता न अन्यः धर्मस्य अच्युत ते भुवि सभायां अपि वैरिञ्चयां यत्र मूर्तिधराः कलाः ॥ ५ ॥

अच्युत - अच्युत !
ते धर्मस्य - आपके धर्मका
वक्ता कर्ता - वक्ता, आचरणकर्ता एवं
अविता - रक्षक
भुवि - पृथ्वी पर तथा
वैरिञ्च्यां - ब्रह्माकी
सभायां अपि - सभामें भी
यत्र मूर्तिधराः - जहां मूर्तिमान
कलाः - वेद रहते हैं
अन्यः न - (आपके अतिरिक्त) दूसरा नहीं है ॥ ५ ॥

कर्त्राविता प्रवक्त्रा च भवता मधुसूदन ।
त्यक्ते महीतले देव विनष्टं कः प्रवक्ष्यति ॥ ६ ॥

कर्ता अविता प्रवक्ता च भवता मधुसूदन त्यक्ते महीतले देव विनष्टं कः प्रवक्ष्यति ॥ ६ ॥

देव मधुसूदन	- देव ! मधुसूदन !	**महीतले**	- पृथ्वीको
कर्त्रा अविता	- प्रवर्तक, रक्षक,	**त्यक्ते**	- छोड़ देनेपर
च प्रवक्त्रा	- तथा उपदेष्टा	**विनष्टं**	- नष्ट हुए (धर्म) का
भवता	- आपके	**कः प्रवक्ष्यति**	- कौन उपदेश करेगा ॥ ६ ॥

तत्त्वं नः सर्वधर्मज्ञ धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ।
यथा यस्य विधीयेत तथा वर्णय मे प्रभो ॥ ७ ॥

तत् त्वं नः सर्व धर्मज्ञ धर्मः त्वत् भक्ति लक्षणः यथा यस्य विधीयेत तथा वर्णय मे प्रभो ॥ ७ ॥

सर्व धर्मज्ञ	- सब धर्मोंके ज्ञाता	**यथा यस्य**	- जैसा जिसके लिये
प्रभो	- प्रभो !	**विधीयेत**	- विधान किया जाता है
तत् त्वत् भक्ति	- अतः अपनी भक्ति	**तथा त्वं**	- उस प्रकार आप
लक्षणः धर्मः	- स्वरूप धर्म	**नः वर्णय**	- मुझसे वर्णन कीजिए ॥ ७ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्थं स्वभृत्यमुख्येन पृष्टः स भगवान् हरिः ।
प्रीतः क्षेमाय मर्त्यानां धर्मानाह सनातनान् ॥ ८ ॥

इत्थं स्वभृत्य मुख्येन पृष्टः स भगवान् हरिः प्रीतः क्षेमाय मर्त्यानां धर्मान् आह सनातनान् ॥ ८ ॥

इत्थं	- इस प्रकार	**हरिः प्रीतः**	- श्री हरि प्रसन्न होकर
स्वभृत्य मुख्येन	- अपने प्रधान सेवक द्वारा	**मर्त्यानां क्षेमाय**	- मनुष्योंके कल्याणके लिए
		सनातनान्	- शाश्वत
पृष्टः	- पूछे जानेपर	**धर्मान् आह**	- धर्मोंका उपदेश करने लगे ॥ ८ ॥
स भगवान्	- वे भगवान्		

श्रीभगवानुवाच–

धर्म्य एष तव प्रश्नो नैःश्रेयसकरो नृणाम् ।
वर्णाश्रमाचारवतां तमुद्धव निबोध मे ॥ ९ ॥

धर्म्य एष तव प्रश्नः नैः श्रेयसकरः नृणां वर्ण आश्रम आचारवतां तं उद्धव निबोध मे ॥ ९ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**नृणां**	- मनुष्योंका
एष तव प्रश्नः	- यह तुम्हारा प्रश्न	**नैः श्रेयसकरः**	- परम कल्याण करने वाला है
धर्म्य	- धर्ममय,	**आचारवतां**	- आचारका पालन करने वाले
वर्ण आश्रम	- वर्ण-आश्रमके वाले	**तं मे निबोध**	- उसे मुझसे सुनो ॥ ९ ॥

आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः ।
कृतकृत्याः प्रजा जात्या तस्मात् कृतयुगं विदुः ॥ १० ॥

आदौ कृतयुगे वर्णः नृणां हंस इति स्मृतः कृतकृत्याः प्रजा जात्या तस्मात् कृतयुगं विदुः ॥ १० ॥

आदौ कृतयुगे	- पहिले सतयुगमें	**प्रजा जात्या**	- प्रजा जन्मसे ही
नृणां वर्णः	- मनुष्योंका वर्ण	**कृतकृत्याः**	- कृतकृत्य होती थी,
हंस इति स्मृतः	- 'हंस' ऐसा कहा जाता था,	**तस्मात्**	- इसलिए उसे
		कृतयुगं विदुः	- कृतयुग जाना जाता है ॥ १० ॥

वेदः प्रणव एवाग्रे धर्मोऽहं वृषरूपधृक् ।
उपासते तपोनिष्ठा हंसं मां मुक्तकिल्बिषाः ॥ ११ ॥

वेदः प्रणव एव अग्रे धर्मः अहं वृषरूप धृक् उपासते तपः निष्ठा हंसं मां मुक्त किल्बिषाः ॥ ११ ॥

अग्रे वेदः	- उस पहिले समय वेद	**धर्मः**	- धर्म था
प्रणव एव	- केवल प्रणव था	**तपः निष्ठा**	- तपोनिरत
अहं वृषरूप	- मैं वृषभरूप धारी	**मुक्त किल्बिषा**	- निष्पाप लोग
धृक्		**मां हंसं-**	- मुझ हंसरूप की उपासना
		उपासते	करते थे ॥ ११ ॥

त्रेतामुखे महाभाग प्राणान्मे हृदयात्त्रयी ।
विद्या प्रादुरभूत्तस्या अहमासं त्रिवृन्मखः ॥ १२ ॥

त्रेता मुखे महाभाग प्राणात् मे हृदयात् त्रयी विद्या प्रादुः अभूत् तस्या अहं आसं त्रिवृत् मखः ॥ १२ ॥

महाभाग	- महाभाग उद्धव !	**प्रादुः अभूत्**	- प्रकट हुई
त्रेतामुखे	- त्रेता युगके प्रारम्भमें	**तस्या अहं**	- उसमें मैं
मे हृदयात्	- मेरे हृदयसे	**त्रिवृत् मखः**	- तीन प्रकारका (लौकिक,
प्राणात्	- श्वांस द्वारा		पारलौकिक एवं
त्रयी विद्या	- (कर्म, उपासना, ज्ञान		मोक्षदाता) यज्ञ
	रूपा) त्रयी विद्या	**आसं**	- होगया ॥ १२ ॥

नोट - अनेक टीकाकारों ने त्रयी विद्या का अर्थ- ऋक्, यजुः, सामवेद विद्या र त्रिवृत मखः का अर्थ-होता, उद्गाता,, अर्ध्वयु के कर्म रूप) किया है, किन्तु इस अर्थ में दो दोष हैं १-अथर्ववेद पीछे का सिद्ध हो जाता है, जैसा पाश्चात्य विद्वान मानते हैं । २-यज्ञमें तीन नहीं, चार ब्राह्मण होते हैं और उनमें अध्वर्यु तो अथर्व वेदी होता है । ब्रह्मा बनाये बिना तो यज्ञ होता ही नहीं ।

विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजाः ।
वैराजात् पुरुषाज्जाता य आत्माचारलक्षणाः ॥ १३ ॥

विप्र क्षत्रिय विट् शूद्रा मुख बाहु उरु पादजाः वैराजात् पुरुषात् जाता य आत्म आचार लक्षणाः ॥ १३ ॥

य आत्म-आचार	- जो अपने आचारके	**वैराजात् पुरुषात्**	- विराट् पुरुषके
लक्षणाः	- लक्षण वाले थे वे	**मुख बाहु**	- (क्रमशः) मुख, बाहु,
विप्र क्षत्रिय	- ब्राह्मण, क्षत्रिय,	**उरु पादजाः**	- जांघों तथा पैरसे उत्पन्न होने वाले
विट् शूद्रा	- वैश्य, शूद्र	**जाता**	- उत्पन्न हो गये ॥ १३ ॥

गृहाश्रमो जघनतो ब्रह्मचर्यं हृदो मम ।
वक्षःस्थानाद वने वासो न्यासः शीर्षणि संस्थितः ॥ १४ ॥

गृहाश्रमः जघनतः ब्रह्मचर्यं हृदः मम वक्षः स्थानात् वने वासः न्यासः शीर्षणि संस्थितः ॥ १४ ॥

मम जघनतः	- मेरी जांघोंपर	**वक्षः स्थानात्**	- वक्ष स्थलके स्थानपर
गृहाश्रमः	- गृहास्थाश्रमकी,	**वने वासः**	- वान प्रस्थाश्रमकी और
हृदः ब्रह्मचर्यं	- हृदयमें ब्रह्मचर्याश्रमकी	**शीर्षणि**	- मस्तकपर
		न्यासः संस्थितः	- सन्यास आश्रमकी स्थिति है ॥ १४ ॥

वर्णानामाश्रमाणां च जन्मभूम्यनुसारिणीः ।
आसन् प्रकृतयो नृणां नीचैर्नीचोत्तमोत्तमाः ॥ १५ ॥

वर्णानां आश्रमाणां च जन्मभूमि अनुसारिणीः आसन् प्रकृतयः नृणां नीचैः नीच उत्तम उत्तमाः ॥ १५ ॥

नृणां - मनुष्योंके
वर्णानां च - वर्णोंकी तथा
आश्रमाणां - आश्रमोंका
प्रकृतयः - स्वभाव
जन्मभूमि - (उनकी) जन्मस्थलीके
अनुसारिणी - अनुसार
नीचैः नीच - नीचेके (अंगोंसे उत्पन्न) की नीच
उत्तम उत्तमाः - ऊपरके (अंगोंसे उत्पन्न) की उत्तम
आसन् - होगयी ॥ १५ ॥

शमो दमस्तपः शौचं सन्तोषः क्षान्तिरार्जवम् ।
मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १६ ॥

शमः दमः तपः शौचं सन्तोषः क्षान्तिः आर्जवं मत् भक्तिः दया सत्यं ब्रह्म प्रकृतयः तु इमाः ॥ १६ ॥

शमः दमः - मनकी शान्ति, इन्द्रिय दमन,
तपः शौचं - तपस्या, पवित्रता,
सन्तोषः क्षान्तिः - सन्तोष, क्षमा,
आर्जवं - सरलता,
मत् भक्तिः - मेरी भक्ति
दया सत्यं च - दया और सत्य,
इमाः तु - ये तो
ब्रह्म प्रकृतयः - ब्राह्मणके स्वाभाविक गुण हैं ॥ १६ ॥

तेजो बलं धृतिः शौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यमः ।
स्थैर्यं ब्रह्मण्यतैश्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १७ ॥

तेजः बलं धृतिः शौर्यं तितिक्षा औदार्यं उद्यमः स्थैर्यं ब्रह्मण्यता ऐश्वर्यं क्षत्र प्रकृतयः तु इमाः ॥ १७ ॥

तेजः बलं - तेजस्विता, बल,
धृतिः शौर्यं - धैर्य, शूरता,
तितिक्षा - कष्ट सहिष्णुता,
औदार्यं उद्यमः - उदारता, उद्योग,
स्थैर्यं - स्थिरता,
ब्रह्मण्यता - ब्राह्मण भक्ति,
ऐश्वर्यं - प्रभुत्व,
इमाः तु - ये तो
क्षत्र प्रकृतयः - क्षत्रिय के स्वाभाविक धर्म हैं ॥ १७ ॥

आस्तिक्यं दाननिष्ठा च अदम्भो ब्रह्मसेवनम् ।
अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्यप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १८ ॥

आस्तिक्यं दाननिष्ठा च अदम्भः ब्रह्मसेवनं अतुष्टिः अर्थ उपचयैः वैश्य प्रकृतयः तु इमाः ॥ १८ ॥

आस्तिक्यं	- आस्तिकता,	**अर्थ उपचयैः**	- धन-संग्रहसे
च दाननिष्ठा	- तथा दान करनेमें निष्ठा,	**अतुष्टिः**	- सन्तुष्ट न होना
अदम्भः	- पाखण्ड न करना,	**इमाः तु**	- ये तो
ब्रह्मसेवनं	- ब्राह्मणोंकी सेवा,	**वैश्य प्रकृतयः**	- वैश्य के स्वाभाविक गुण हैं ॥ १८ ॥

शुश्रूषणं द्विजगवां देवानां चाप्यमायया ।
तत्र लब्धेन सन्तोषः शूद्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १९ ॥

शुश्रूषणं द्विज गवां देवानां च अपि अमायया तत्र लब्धेन सन्तोषः शूद्र प्रकृतयः तु इमाः ॥ १९ ॥

अमायया	- निश्छल भावसे	**तत्र लब्धेन**	- उससे जो प्राप्त हो जाय उससे
द्विज गवां	- द्विजातियों, गायों,	**सन्तोषः**	- सन्तुष्ट रहना,
च देवानां	- तथा देवताओंकी	**इमाः तु**	- ये तो
शुश्रूषणं	- सेवा करना,	**शूद्र प्रकृतयः**	- शूद्रके स्वाभाविक गुण हैं ॥ १९ ॥

अशौचमनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः ।
कामः क्रोधश्च तर्षश्च स्वभावोऽन्तेवसायिनाम् ॥ २० ॥

अशौचं अनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः कामः क्रोधः च तर्षः च स्वभावः अन्ते अवसायिनाम् ॥ २० ॥

अशौचं - अपवित्र रहना,
अनृतं स्तेयं - झूठ बोलना, चोरी करना,
नास्तिक्यं - नास्तिकता,
शुष्क विग्रहः - सूखी (बे मतलब) लड़ाई करना,
च कामः क्रोधः - तथा काम, क्रोध,
च तर्षः - एवं तृष्णा
अन्ते अवसायिनां - अन्त्यजोंका
स्वभावः - स्वभाव होता है ॥ २० ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥ २१ ॥

अहिंसा सत्यं अस्तेयं अकाम क्रोध लोभता भूतप्रिय हित ईहा च धर्मः अयं सार्ववर्णिकः ॥ २१ ॥

अहिंसा सत्यं - अहिंसा, सत्य,
अकाम क्रोध-लोभता - काम, क्रोध, लोभन करना,
च भूत प्रिय -तथा प्राणियोंके प्रिय एवं
हित ईहा -भले की चेष्टा,
अयं सार्ववर्णिकः -यह सब वर्णोंका **धर्मः** -धर्म है ॥ २१ ॥

द्वितीयं प्राप्यानुपूर्व्याज्जन्मोपनयनं द्विजः ।
वसन् गुरुकुले दान्तो ब्रह्माधीयीत चाहुतः ॥ २२ ॥

द्वितीयं प्राप्य आनुपूर्व्यात् जन्म उपनयनं द्विजः वसन् गुरुकुले दान्तः ब्रह्म अधीयीत च आहुतः ॥ २२ ॥

- (गर्भाधान) जातकर्मादिके
आनुपूर्व्यात् - क्रमसे
उपनयनम् - यज्ञोपवीत संस्कार द्वारा
द्विजः - द्विजाति (का बालक)
द्वितीयं जन्मप्राप्य- दूसरा जन्म पाकर
दान्तः - इन्द्रियों का दमन करके
च आहुतः - तथा अग्निहोत्र करते हुए
गुरुकुले वसन् - गुरु गृहमें रहता हुआ
ब्रह्मअधीयीत - वेदाध्ययन करे ॥ २२ ॥

मेखलाजिनदण्डाक्षब्रह्मसूत्रकमण्डलून् ।
जटिलोऽधौतदद्वासोऽरक्तपीठः कुशान् दधत् ॥ २३ ॥

मेखला अजिन दण्ड अक्षब्रह्मसूत्र कमण्डलून् जटिलः अधौतदत् वासः अरक्तपीठः कुशान् दधत् ॥ २३ ॥

मेखला अजिन	- मेखला, मृगचर्म,	**जटिलः**	-जटा रखे,
दण्ड अक्ष	- दण्ड, रुद्राक्ष माला,	**अधौतदत् वासः**	-दांत और वस्त्र न धोये,
ब्रह्मसूत्र	- यज्ञोपवीत,	**अरक्त पीठः**	-रंगीन आसन न रखे,
कमण्डलून्	- कमण्डलु रखे,	**कुशान् दधत्**	-कुश धारण करे ॥ २३ ॥

स्नानभोजनहोमेषु जपोच्चारे च वाग्यतः ।
न च्छिन्द्यान्नखरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि ॥ २४ ॥

स्नान भोजन होमेषु जप उच्चारे च वाक्यतः न छिन्द्यात् नख रोमाणि कक्ष उपस्थ गतान् अपि ॥ २४ ॥

स्नान भोजन	- स्नान, भोजन,	**कक्ष उपस्थ-**	- कक्ष तथा उपस्थ पर
होमेषु	- हवन करते समय	**गतान् अपि**	आगे भी
च जप उच्चारे	- तथा जप करते समय	**रोमाणि**	- रोमोंको
वाक् यतः	- वाणीको रोके रखे	**न छिन्द्यात्**	- नहीं काटे ॥ २४ ॥
नख	- नखों तथा		

रेतो नावकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतधरः स्वयम् ।
अवकीर्णेऽवगाह्याप्सु यतासुस्त्रिपदीं जपेत् ॥ २५ ॥

रेतः न अवकिरेत् जातु ब्रह्मवतधरः स्वयं अवकीर्णे अवगाह्य अप्सु यत असुः त्रिपदीं जपेत् ॥ २५ ॥

ब्रह्मव्रतधरः - ब्रह्मचर्य व्रत लेने वाला
जातु स्वयं - कभी स्वयं (जानकर)
रेतः न- - वीर्यपात न करे
अवकिरेत् - (अनजान में वीर्य) पतन होने पर
अप्सु अवगाह्य - जलमें डुबकी लगाकर
यत असुः - प्राण रोककर (कुम्भक करके)
त्रिपदीं जपेत् - गायत्री जप करे ॥ २५ ॥

अग्न्यर्काचार्यगोविप्रगुरुवृद्धसुराञ्शुचिः ।
समाहित उपासीत सन्ध्ये च यतवाग् जपन् ॥ २६ ॥

अग्नि अर्क आचार्य गो विप्र गुरुवृद्ध सुरान् शुचिः समाहित उपासीत सन्ध्ये च यत वाक् जपन् ॥ २६ ॥

अग्नि अर्क - अग्नि, सूर्य,
आचार्य - आचार्य,
गो विप्र - गौ, ब्राह्मण,
गुरु वृद्ध - गुरु, वृद्ध एवं
सुरान् शुचिः - देवताओं की पवित्र होकर
समाहित - एकाग्र चित्त से सेवा करे
उपासीत
च सन्ध्ये - तथा प्रातः सायं सन्ध्या समय
यत वाक्- - मौन होकर जप करे
जपन् ॥ २६ ॥

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत् सर्वदेवमयो गुरुः ॥ २७ ॥

आचार्यं मां विजानीयात् न अवमन्येत कर्हिचित् न मर्त्यबुद्ध्या असूयेत् सर्वदेवमयः गुरुः ॥ २७ ॥

आचार्यं - आचार्यको
मां विजानीयात् - मेरा स्वरूप समझे,
कर्हिचित् - कभी भी (उनकी)
अवमन्येत न - उपेक्षा न करे,
मर्त्यबुद्ध्या - (उन्हें) मनुष्य मानकर
असूयेत् न - (उनके) गुणोंमें दोष न निकाले,
गुरुः- - (क्योंकि) गुरु सर्वदेव
सर्वदेवमयः स्वरूप हैं ॥ २७ ॥

सायं प्रातरुपानीय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत् ।
यच्चान्यदप्यनुज्ञातमुपयुञ्जीत संयतः ॥ २८ ॥

सायं प्रातः उप आनीय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत् यत् च अन्यत् अपि अनुज्ञातं उपयुञ्जीत संयतः ॥ २८ ॥

सायं प्रातः	- शाम-सुबह	**अनुज्ञातं**	- (उनकी) आज्ञा मिलने पर
भैक्ष्यं उपआनीय	- भिक्षा लाकर	**संयतः**	- संयमपूर्वक
तस्मै निवेदयेत्	- उनको निवेदन करदे,	**उपयुञ्जीत**	- उपयोग करे ॥ २८ ॥
च यत् अन्यत्	- तथा जो और कुछ हो		

शुश्रूषमाण आचार्यं सदोपासीत् नीचवत् ।
यानशय्यासनस्थानैर्नातिदूरे कृताञ्जलिः ॥ २९ ॥

शुश्रूषमाण आचार्यं सदा उप आसीत् नीचवत् यान शय्या आसन स्थानैः न अतिदूरे कृत अञ्जलिः ॥ २९ ॥

आचार्यं	- आचार्यकी	**न अति दूरे**	- बहुत दूर न रहे,
शुश्रूषमाण	- सेवा करते समय	**कृत अञ्जलिः**	- हाथ जोड़े
यान शय्या	- (उनकी) सवारी, शय्या,	**नीचवत्**	- नीचके समान
आसन स्थानैः	- आसन आदि स्थानसे	**सदा उप आसीत्**	- सदा समीप रहे ॥ २९ ॥

एवंवृत्तो गुरुकुले वसेद् भोगविवर्जितः ।
विद्या समाप्यते यावद् बिभ्रद् व्रतमखण्डितम् ॥ ३० ॥

एवं वृत्तः गुरुकुले वसेत् भोग विवर्जितः विद्या समाप्यते यावत् विभ्रत् व्रतं अखण्डितम् ॥ ३० ॥

यावत् - जब तक
विद्या समाप्यते - विद्याध्ययन समाप्त हो
अखण्डितं व्रतं - अखण्डित ब्रह्मचर्य व्रत
विभ्रत् - धारण करके
भोग विवर्जितः - भोग रहित
एवं वृत्तः - इस प्रकारके आचरण से
गुरुकुले वसेत् - गुरुगृहमें निवास करे
॥ ३० ॥

यद्यसौ छन्दसां लोकमारोक्ष्यन् ब्रह्मविष्टपम् ।
गुरवे विन्यसेद् देहं स्वाध्यायार्थं बृहद्व्रतः ॥ ३१ ॥

यदि असौ छन्दसां लोकं आरोक्ष्यन् ब्रह्मविष्टपं गुरवे विन्यसेत् देहं स्वाध्याय अर्थं वृहत् व्रतः ॥ ३१ ॥

यदि छन्दसां - यदि मूर्तिमान वेदोंके
लोकं लोक
ब्रह्म विष्टपं - ब्रह्मलोक
असौ आरोक्ष्यन् - यह आरूढ़ होना चाहे तो
स्वाध्याय अर्थं - वेदाध्ययन के लिए
वृहत् व्रतः - नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत लेकर
गुरवे देहं - गुरुको शरीर (पूरा जीवन)
न्यसेत् - अर्पित कर दे ॥ ३१ ॥

अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेषु मां परम् ।
अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः ॥ ३२ ॥

अग्नौ गुराः आत्मनि च सर्वभूतेषु मां परं अपृथक् धीः उपासीत ब्रह्मवर्चस्वि अकल्मषः ॥ ३२ ॥

ब्रह्मवर्चस्वि - ब्रह्मतेजसे सम्पन्न ब्रह्मचारी
अकल्मषः - निष्पाप होकर
अपृथक्धीः - अभेद बुद्धिसे
अग्नौः गुराः - अग्नि, गुरु,
आत्मनि - अपने
च सर्व भूतेषु - तथा प्राणियोंमें
मां परं - मुझ परमात्माकी
उपासीत - उपासना करे ॥ ३२ ॥

स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्शसंलापक्ष्वेलनादिकम् ।
प्राणिनो मिथुनीभूतानगृहस्थोऽग्रतस्त्यजेत् ॥ ३३ ॥

स्त्रीणां निरीक्षण स्पर्श संलाप क्ष्वेलन आदिकं प्राणिनः मिथुनी भूतान् अगृहस्थः अग्रतः त्यजेत् ॥ ३३ ॥

अगृहस्थः - जो गृहस्थ नहीं है वह
स्त्रीणां निरीक्षण - स्त्रियोंको देखना,
स्पर्श संलाप - छूना, बातचीत करना
क्ष्वेलन आदिकं - परिहास करना आदि
मिथुनी भूतान् - जोड़ा खाते
प्राणिनः - प्राणियोंको
अग्रतः त्यजेत् - आगे पड़ने पर भी छोड़ दे (त्यागकर हट जाय) तथा ॥ ३३ ॥

शौचमाचमनं स्नानं सन्ध्योपासनमार्जवम् ।
तीर्थसेवा जपोऽस्पृश्याभक्ष्यासंभाष्यवर्जनम् ॥ ३४ ॥

शौचं आचमनं स्नानं सन्ध्या उपासनं आर्जवं तीर्थ सेवा जपः अस्पृश्या अभक्ष्य असंभाष्य वर्जनम् ॥ २४ ॥

शौचं आचमनं - पवित्रता, स्नान,
सन्ध्या उपासनं - सन्ध्योपासन,
आर्जवं तीर्थसेवा - सरलता, तीर्थ सेवन,
जपः - जप (करना चाहिए)
अस्पृश्या - जिन्हें स्पर्श नहीं करना उन्हें छूना,
अभक्ष्य - न खाने योग्य को खाना,
असंभाष्य - जिससे नहीं बोलना चाहिए उससे बोलना
वर्जनं - त्याग देना चाहिए ॥ ३४ ॥

सर्वाश्रमप्रयुक्तोऽयं नियमः कुलनन्दन ।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायसंयमः ॥ ३५ ॥

सर्व आश्रम प्रयुक्तः अयं नियमः कुलनन्दन मत् भावः सर्वभूतेषु मनः वाक् काय संयमः ॥ ३५ ॥

कुलनन्दन - कुलनन्दन उद्धव !
सर्वभूतेषु - सब प्राणियोंमें
मत् भावः - मेरी भावना,
मनः वाक् - मन, वाणी एवं
काय संयमः - शरीर को संयममें रखना
अयं नियमः - यह नियम
सर्व आश्रम - सभी आश्रमोंमें
प्रयुक्तः - उपयोग किया जाता है
॥ ३५ ॥

एवं बृहद्व्रतधरो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् ।
मद्भक्तस्तीव्रतपसा दग्धकर्माशयोऽमलः ॥ ३६ ॥

एवं वृहत् व्रतधरः ब्राह्मणः अग्निः इव ज्वलन् मत् भक्तः तीव्र तपसा दग्ध कर्म अमलः आशयः ॥ ३६ ॥

एवं वृहत्- - इस प्रकार ब्रह्मचर्य
व्रतधरः व्रतधारी
अग्निः इव- - अग्निके समान तेजस्वी
ज्वलन्
मत् भक्तः - मेरा भक्त ब्राह्मण
ब्राह्मणः
तीव्र तपसा - तीव्र तपस्यासे
आशयः - अन्तःकरणके
कर्मअमलः - कर्म जन्य दोषको
दग्ध - भस्म कर देता है
॥ ३६ ॥

अथानन्तरमावेक्ष्यन् यथा जिज्ञासितागमः ।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा स्नायाद् गुर्वनुमोदितः ॥ ३७ ॥

अथ अनन्तरं आवेक्ष्यन् यथा जिज्ञासित आगमः गुरवे दक्षिणां दत्त्वा स्नायात् गुरु अनुमोदितः ॥ ३७ ॥

अथ अनन्तरं - यदि इसके बादके आश्रममें
आवेक्ष्यन् - प्रवेश करनेकी इच्छा हो तो
यथा आगमः - यथा शक्ति शास्त्रको
जिज्ञासित - जानकर
गुरवे - गुरुको
दक्षिणां दत्त्वा - दक्षिणा देकर
गुरु अनुमोदितः - गुरुकी अनुमति लेकर
स्नायात् - (समार्वतन) स्नान करे
॥ ३७ ॥

गृहं वनं वोपविशेत् प्रव्रजेद् वा द्विजोत्तमः ।
आश्रमादाश्रमं गच्छेन्नान्यथा मत्परश्चरेत् ॥ ३८ ॥

गृहं वनं वा उपविशेत् प्रव्रजेत् वा द्विज उत्तमः आश्रमात् आश्रमं गच्छेत् न अन्यथा मत् परः चरेत् ॥ ३८ ॥

द्विज उत्तमः	- द्विजातियोंमें श्रेष्ठ (ब्राह्मण)	**आश्रमात्**	- (दूसरे वर्णका) एक आश्रमसे
गृह वा वनं	- गृहस्थाश्रम अथवा वानप्रस्थाश्रममें	**आश्रमं गच्छेत्**	- दूसरे आश्रममें जाय
उपविशेत्	- प्रवेश करे	**मत् परः**	- मेरा परायण (भक्त)
वा प्रव्रजेत्	- अथवा सन्यासी होजाय	**अन्यथा न-**	- (इसके) विपरीत
		चरेत्	आचरण न करे ॥ ३८ ॥

गृहार्थी सदृशीं भार्यामुद्वहेदजुगुप्सिताम् ।
यवीयसीं तु वयसा तां सवर्णामनुक्रमात् ॥ ३९ ॥

गृह अर्थी सदृशीं भार्यां उद्वहेत् अजुगुप्सितां यवीयसीं तु वयसा तां सवर्णां अनुक्रमात् ॥ ३९ ॥

गृहं अर्थी	- गृहस्थाश्रमका इच्छुक	**यवीयसीं**	- अपने से छोटी,
सदृशीं	- (रूप, गुण, धनादिमें) अपने समान,	**तां सवर्णां**	- उस अपने वर्णवाली या
अजुगुप्सितां	- अनिन्दिता,	**अनुक्रमात्**	- क्रमपूर्वक (अपने से छोटे वर्णकी)
तु वयसा	- तथा आयुमें	**भार्यां उद्वहेत्**	- पत्नीसे विवाह करे ॥ ३९ ॥

इज्याध्ययनदानानि सर्वेषां च द्विजन्मनाम् ।
प्रतिग्रहोऽध्यापनं च ब्राह्मणस्यैव याजनम् ॥ ४० ॥

इज्याअध्ययन दानानि सर्वेषां च द्विजन्मनां प्रतिग्रहः अध्यापनं च ब्राह्मणस्य एव याजनम् ॥ ४० ॥

सर्वेषां - सभी
द्विजन्मनां च - द्विजातियोंके लिए
इज्या अध्ययन - यज्ञ करना, वेदाध्ययन,
दानानि - दान देना (कर्तव्य) हैं,
प्रतिग्रहः - दान लेना,
अध्यापनं - पढ़ाना
च याजनं - तथा यज्ञ करना,
ब्राह्मणस्य एव - ब्राह्मणके लिए ही (कर्तव्य) हैं ॥ ४० ॥

प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम् ।
अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषदृक् तयोः ॥ ४१ ॥

प्रतिग्रहं मन्यमानः तपः तेजः यशः नुदं अन्याभ्यां एव जीवेत शिलैः वा दोषदृक् तयोः ॥ ४१ ॥

प्रतिग्रहं - दान लेनेको
तपः तेज - तपस्या, तेज,
यशः नुदं - यशको नोचने (क्षीण करने) वाला
मन्यमानः - मानकर
अन्याभ्यां एव - दूसरी (पढ़ाना, यज्ञ कराना) से ही
वा तयोः - अथवा उन दोनोंमें भी
दोषदृक् - दोष देखकर
शिलैः - खेत कटने के वाद गिरे दानोंसे
जीवेत - जीविका चलावे ॥ ४१ ॥

ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ।
कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानन्तसुखाय च ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणस्य हि देहः अयं क्षुद्र कामाय न इष्यते कृच्छ्राय तपसे च इह प्रेत्य अनन्त सुखाय च ॥ ४२ ॥

हि ब्राह्मणस्य	- क्योंकि ब्राह्मणका
अयं देहः	- यह शरीर
क्षुद्र कामाय न	- तुच्छ कामना पूर्ति के लिए नहीं है
इह	- इस लोकमें
कृच्छ्रय तपसे	- कष्ट उठाकर तपस्या करनेके लिए
च प्रेत्य	- तथा मरणोपरान्त
अनन्त सुखाय	- अनन्त सुख (मोक्ष) पानेके लिए
इष्यते	- उचित है ॥ ४२ ॥

शिलोच्छवृत्त्या परितुष्टचित्तो
धर्मं महान्तं विरजं जुषाणः ।
मय्यर्पितात्मा गृह एव तिष्ठ-
न्नातिप्रसक्तः समुपैति शान्तिम् ॥ ४३ ॥

शिल उच्छवृत्त्या परितुष्ट चित्तः धर्मं महान्तं विरजं जुषाणः मयि अर्पित आत्मा गृह एव तिष्ठन् न अति प्रसक्तः सम उपैति शान्तिम् ॥ ४३ ॥

शिल	- खेत कटनेपर गिरे दानों
उच्छ	- अन्न बाजारमें बाजार उठने पर गिरे दानोंकी
वृत्त्या	- आजीविकासे
परितुष्ट-	- सर्वथा सन्तुष्ट चित्त
चित्तः	रहकर
विरजं महान्तं	- निर्मल महान
धर्मं जुषाणः	- धर्मका सेवन करते हुए
मयि अर्पित आत्मा	- मुझमें चित्त समर्पित करके
गृह एव	- गृहस्थ धर्ममें ही
तिष्ठन्	- रहते हुए
अति प्रसक्तः न	- अत्यन्त आसक्त न होकर
शान्तिं सम-	- पूर्ण शान्ति पा लेता
उपैति	है ॥ ४३ ॥

समुद्धरन्ति ये विप्रं सीदन्तं मत्परायणम् ।
तानुद्धरिष्ये नचिरादापद्भ्यो नौरिवार्णवात् ॥ ४४ ॥

सम उद्धरन्ति ये विप्रं सीदन्तं मत् परायणं तान् उद्धरिष्ये न चिरात् आपाद्भ्यः नौः इव अर्णवात् ॥ ४४ ॥

ये मत् परायणं - जो मेरे आश्रित
सीदन्तं विप्रं - कष्ट पाते ब्राह्मणको
सम उद्धरन्ति - (कष्टसे) बचा लेते हैं
तान् नचिरात् - उनको अविलम्ब
आपत्भ्यः - विपत्तिसे
अर्णवात् - समुद्रसे
नौः इव - नौकाके समान
उद्धरिष्ये - मैं बचाऊँगा ॥ ४४ ॥

सर्वाः समुद्धरेद् राजा पितेव व्यसनात् प्रजाः ।
आत्मानमात्मना धीरो यथा गजपतिर्गजान् ॥ ४५ ॥

सर्वाः समुद्धरेत् राजा पिता इव व्यसनात् प्रजाः आत्मानं आत्मना धीरः यथा गजपतिः गजान् ॥ ४५ ॥

धीरः राजा - धैर्यशाली राजा
व्यसनात् - विपत्तिसे
पिता इव - पिताके समान
सर्वाः प्रजाः - सम्पूर्ण प्रजाको तथा
आत्मानं - अपनेको
आत्मना - अपने ही द्वारा
समुद्धरेत् - पूर्णतः बचावे
यथा गजान् - जैसे हाथियोंको
गजपतिः - गजराज (बचाता है)
॥ ४५ ॥

एवंविधो नरपतिर्विमानेनार्कवर्चसा ।
विधूयेहाशुभं कृत्स्नमिन्द्रेण सह मोदते ॥ ४६ ॥

एवं विधः नरपतिः विमानेन अर्क वर्चसा विधूय इह अशुभं कृत्स्नं इन्द्रेण सह मोदते ॥ ४६ ॥

एवं विधः- - इस प्रकारका राजा
नरपतिः
इह कृत्स्नं - इसी जीवनमें सम्पूर्ण
अशुभं विधूय - पापोंका नाश करके
अर्कवर्चसा - सूर्यके समान कान्तिमान
विमानेन - विमानमें (बैठकर)
इन्द्रेण सह - इन्द्रके साथ
मोदते - आनन्द करता है
॥ ४६ ॥

सीदन् विप्रो वणिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदं तरेत् ।
खड्गेन वाऽऽपदाक्रान्तो न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥ ४७ ॥

सीदन् विप्रः वणिक् वृत्त्या पण्यैः एव आपदं तरेत् खड्गेन वा आपदा क्रान्तः न श्व वृत्त्या कथञ्चन ॥ ४७ ॥

सीदन् विप्रः	- कष्ट पाता हुआ ब्राह्मण	**आक्रान्तः**	- दबाये जानेपर
वणिक् वृत्त्या	- वैश्य वृत्तिसे	**खड्गेन**	- तलवारसे (जीविका चलावे)
पण्यैः एव	- व्यापार करके ही	**कथञ्चन**	- कभी भी
आपदं तरेत्	- विपत्ति को पार करे	**श्ववृत्त्या न**	- कुत्ते की वृत्ति (नीच सेवा) न करे ॥ ४७ ॥
वा आपदा	- अथवा आपत्तिसे		

वैश्यवृत्त्या तु राजन्यो जीवेन्मृगयया ऽऽपदि ।
चरेद् वा विप्ररूपेण न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥ ४८ ॥

वैश्य वृत्त्या तु राजन्यः जीवेत् मृगयया आपदि चरेत् वा विप्ररूपेण न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥ ४८ ॥

राजन्यः	- क्षत्रिय	**वा विप्ररूपेण**	- अथवा ब्राह्मणके रूपमें
आपदि	- आपत्तिमें	**चरेत्**	- (यज्ञादि कराकर) व्यवहार करे,
वैश्यवृत्त्या तु	- वैश्यकी वृत्तिसे या	**कञ्चन**	- कभी भी
मृगयया	- आखेट से	**श्ववृत्त्या न**	- कुत्ते की वृत्ति न करे ॥ ४८ ॥
जीवेत्	- जीवन-निर्वाह करे		

शूद्रवृत्तिं भजेद् वैश्यः शूद्रः कारुकटक्रियाम् ।
कृच्छ्रान्मुक्तो न गर्ह्येण वृत्तिं लिप्सेत कर्मणा ॥ ४९ ॥

शूद्र वृत्तिं भजेत् वैश्यः शूद्रः कारुकट क्रियां कृच्छ्रात् मुक्तः न गर्ह्येण वृत्तिं लिप्सेत कर्मणा ॥ ४९ ॥

वैश्यः - वैश्य (आपत्तिमें)
शूद्रवृत्तिं - शूद्रकी सेवावृत्ति
भजेत् - अपना ले (और)
शूद्रः - शूद्र
कारुकटक्रियां - चटाई बुनने का काम करले
कृच्छ्रान् मुक्तः - किन्तु संकट से छूट जानेपर
गर्ह्येण कर्मणा - निन्दनीय कामसे
वृत्तिं न-लिप्सेत - जीविका चलानेका लोभ न करे ॥ ४९ ॥

वेदाध्यायस्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम् ।
देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत् ॥ ५० ॥

वेद अध्याय स्वधा स्वाहा अन्नादिः यथा उदयं देवर्षि पितृ भूतानि मत् रूपाणि अनु अहं यजेत् ॥ ५० ॥

वेद अध्याय - (आपत्तिकालमें भी) वेदोंका स्वाध्याय
स्वधा स्वाहा - पितृ-देवपूजन
यथा उदयं - सामर्थ्यके अनुसार
अन्नादिः - अन्न-दानादि (करता हुआ)
मत् रूपाणि - मेरे स्वरूप
पितृ भूतानि - पितरों एवं प्राणियोंका
अनु अहं - प्रत्येक दिन
यजेत् - सत्कार करे ॥ ५० ॥

यदृच्छयोपपन्नेन शुक्लेनोपार्जितेन वा ।
धनेनापीडयन् भृत्यान् न्यायेनैवाहरेत् क्रतून् ॥ ५१ ॥

यदृच्छया उपपन्नेन शुक्लेन उपार्जितेन वा धनेन अपीडयन् भृत्यान् न्याये न एव आहरेत् क्रतून् ॥ ५१ ॥

यदृच्छया-उपपन्नेन - संयोग वश स्वतः-प्राप्त
वा न्यायेन एव - अथवा न्यायपूर्वक ही
शुक्लेन - धर्मतः कमाये गये
उपार्जितेन (धन) से
भृत्यान् - सेवकोंको
अपीडयन् - बिना कष्ट दिये
क्रतून् आहरेत् - यज्ञ (धार्मिक-आयोजनादि) करे ॥ ५१ ॥

कुटुम्बेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत् कुटुम्ब्यपि ।
विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ ५२ ॥

कुटुम्बेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत् कुटुम्बि अपि विपश्चित् नश्वरं पश्येत् अदृष्टं अपि दृष्टवत् ॥ ५२ ॥

विपश्चित्	- विवेकवान पुरुष	**दृष्टवत्**	- देखे (लौकिक) पदार्थोंके समान
कुटुम्बेषु	- परिवारमें	**अदृष्टं अपि**	- अनदेखे (स्वर्गादि) को भी
सज्जेत न	- आसक्त न हो,	**नश्वरं पश्येत्**	- विनाशवान देखे ॥ ५२ ॥
कुटुम्बि अपि	- परिवार वाला होकर भी		
प्रमाद्येत् न	- असावधान न हो,		

पुत्रदाराप्तबन्धूनां संगमः पान्थसंगमः ।
अनुदेहं वियन्त्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा ॥ ५३ ॥

पुत्र दारा आप्त बन्धूनां संगमः पान्थ संगमः अनुदेहं वियन्ति एते स्वप्नः निद्रा अनुगः यथा ॥ ५३ ॥

पुत्र दारा	- पुत्र, स्त्री,	**यथा निद्रा**	- जैसे नींदके
आप्त बन्धूनां	- गुरुजन तथा सम्बन्धियोंका	**अनुगः स्वप्नः**	- पीछे चलने वाला स्वप्न हो
संगमः	- मिलना	**अनुदेहं**	- शरीरके पीछे (साथ)
पान्थ संगमः	- यात्रामें सहयात्रियोंके मिलनेके समान है	**एते वियन्ति**	- ये सब विलीन हो जाते हैं ॥ ५३ ॥

इत्थं परिमृशन्मुक्तो गृहेष्वतिथिवद् वसन् ।
न गृहैरनुबध्येत निर्ममो निरहंकृतः ॥ ५४ ॥

इत्थं परिमृशन् मुक्तः गृहेषु अतिथिवत् वसन् न गृहैः अनुबध्येत निर्ममः निरहंकृतः ॥ ५४ ॥

इत्थं परिमृशन् - इस प्रकार विचार करके
निर्ममः - ममताहीन
निरहंकृतः - अहंकार रहित होकर
मुक्तः - (आसक्तिसे) छूटकर
अतिथिवत् - अतिथिके समान
गृहेषु वसन् - घरमें रहता हुआ भी
गृहैः - घरके
अनुबध्येत न - बन्धनमें नहीं पड़ता ॥ ५४ ॥

कर्मभिर्गृहमेधीयैरिष्ट्वा मामेव भक्तिमान् ।
तिष्ठेद् वनं वोपविशेत् प्रजावान् वा परिव्रजेत् ॥ ५५ ॥

कर्मभिः गृहमेधीयैः इष्ट्वा मां एव भक्तिमान् तिष्ठेत् वनं वा उपविशेत् प्रजावान् वा परिव्रजेत् ॥ ५५ ॥

गृहमेधीयैः - गृहस्थ धर्मोचित
कर्मभिः - कर्मोंसे
भक्तिमान् - भक्तिमान पुरुष
मां एव इष्ट्वा - मेरा ही पूजन करता हुआ
तिष्ठेत् - (उसी आश्रममें) रहे,
वा वनं- - अथवा वानप्रस्थ
उपविशेत् हो जाय
वा प्रजावान् - अथवा पुत्र हो गया हो तो
परिव्रजेत् - सन्यास ले ले ॥ ५५ ॥

यस्त्वासक्तमतिर्गेहे पुत्रवित्तैषणातुरः ।
स्त्रैणः कृपणधीर्मूढो ममाहमिति बध्यते ॥ ५६ ॥

यः तु आसक्त मतिः गेहे पुत्र वित्त ईषणा आतुरः स्त्रैणः कृपणधीः मूढ़ः मम अहं इति बध्यते ॥ ५६ ॥

यः तु मूढः - जो भी मूर्ख
कृपण धीः - निर्बल चित्त
गेहे आसक्त-मतिः - घरमें आसक्त बुद्धि
पुत्र वित्त ईषणा - पुत्रेषणा और वित्तेषणा से
आतुरः - व्याकुल होकर
स्त्रैणः - स्त्रीजित् है
मम अहं - 'यह मेरे हैं' 'यह मैं हूँ'
इति बध्यते - इस भाव से बन्धन में पड़ जाता है ॥ ५६ ॥

अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बालात्मजाऽऽत्मजाः ।
अनाथा मामृते दीनाः कथं जीवन्ति दुःखिताः ॥ ५७ ॥

अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बाला आत्मजा आत्मजाः अनाथा मां ऋते दीनाः कथं जीवन्ति दुःखिताः ॥ ५७ ॥

अहो मे	- हाय मेरे	**मां ऋते**	- मेरे बिना
पितरौ वृद्धौ	- माता-पिता वूढ़े हो गये हैं,	**दीनाः अनाथा**	- बिचारे अनाथ
		दुःखिताः	- दुःखी हो जायेंगे,
भार्या बाला	- पत्नी अभी कम आयुकी है,	**कथं जीवन्ति**	- कैसे जीवित रहेंगे ॥ ५७ ॥
आत्मजाः-आत्मजा	- पुत्र छोटे हैं,		

एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम् ।
अतृप्तस्ताननुध्यायन् मृतोऽन्धं विशते तमः ॥ ५८ ॥

एवं गृह आशया क्षिप्त हृदयः मूढ धीः अयं अतृप्तः तान् अनुध्यायन् मृतः अन्धं विशते तमः ॥ ५८ ॥

एवं गृह-आशया	- इस प्रकार गृहासक्त	**तान्-अनुध्यायन्**	- उन्हीं (परिवार वालों) का बराबर चिन्तन करना
क्षिप्त हृदयः	- चंचल चित्त	**मृतः**	- मरकर
अयं मूढ धीः	- यह मूर्ख बुद्धि	**अन्धं तमः**	- घोर नरकमें
अतृप्तः	- अतृप्त ही रहता	**विशते**	- प्रवेश करता है ॥ ५८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा ।
वन एव वसेच्छान्तस्तृतीयं भागमायुषः ॥ १ ॥

वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सह एव वा वन एव वसेत् शान्तः तृतीयं भागं आयुषः ॥ १ ॥

वनं विविक्षुः - वानप्रस्थाश्रममें जानेकी इच्छा हो तो
भार्यां - पत्नीको
पुत्रेषु न्यस्य - पुत्रोंको सौंपकर
वा सह एव - अथवा (उसके) साथ ही
आयुषः - आयुके तीसरे भागमें
वन एव शान्तः - वन में ही शान्त होकर
वसेत् - निवास करे ॥ १ ॥

कन्दमूलफलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत् ।
वसीत वल्कलं वासस्तृणपर्णाजिनानि च ॥ २ ॥

कन्दमूल फलैः वन्यैः मेध्यैः वृत्तिं प्रकल्पयेत् वसीत वल्कलं वासः तृणपर्ण अजिनानि च ॥ २ ॥

वन्यैः कन्द - वनमें उत्पन्न कन्द,
मूल फलैः - मूल तथा फलोंसे
मेध्यैः वृत्तिं - पवित्र आजीविका
प्रकल्पयेत् - करे,
वल्कलं तृण-पर्ण - वल्कल, तिनके (चटाई) पत्ते
च अजिनानि - तथा मृगचर्मादिके
वासः वसीत - वस्त्र पहिने ॥ २ ॥

केशरोमनखश्मश्रुमलानि बिभृयाद् दतः ।
न धावेदप्सु मज्जेत त्रिकालं स्थण्डिलेशयः ॥ ३ ॥

केश रोम नख श्मश्रुमलानि बिभृयात् दतः न धावेत् अप्सु मज्जेत त्रिकालं स्थण्डिलेशयः ॥ ३ ॥

केश रोमनख - केश, रोयें, नख
श्मश्रु - दाढ़ी-मूंछ
दतः मलानि - दांत का मैल
विभृयात् - धारण किये रहे,
धावेत् न - दातौन न करे,
त्रिकालं - तीनों (सुबह, दोपहर, शाम) समय
अप्सु मज्जेत - जलमें डुबकी लगावे,
स्थण्डिलेशयः - वेदी पर ही सोये ॥३॥

ग्रीष्मे तप्येत पञ्चाग्नीन् वर्षास्वासारषाड् जले ।
आकण्ठमग्नः शिशिरे एवंवृत्तस्तपश्चरेत् ॥ ४ ॥

ग्रीष्मे तप्येत पञ्च अग्नीन् वर्षासु आसारषाड् जले आकण्ठ मग्नः शिशिरे एवं वृत्तः तपः चरेत् ॥ ४ ॥

ग्रीष्मे - गर्मीकी ऋतुमें
पञ्च- - पंचाग्नि (चारों ओर अग्नि
अग्नीन् और ऊपर सूर्य) से
तप्येत - सन्तप्त होवे,
वर्षासु आसारषाड् - वर्षाकी बौछारमें रहे,
शिशिरे - शिशिर (शीत) ऋतुमें
जले आकण्ठ - (पूरे दिन) गले तक
मग्नः जलमें डूबा रहे,
एवं वृत्तः - ऐसा आचरण करते हुए
तपः चरेत् - तपस्या करे ॥ ४ ॥

अग्निपक्वं समश्नीयात् कालपक्वमथापि वा ।
उलूखलाश्मकुट्टो वा दन्तोलूखल एव वा ॥ ५ ॥

अग्निपक्वं समश्नीयात् कालपक्वं अथ अपि वा ऊलूखल अश्मकुट्टः वा दन्त अलूखल एव वा ॥ ५ ॥

अग्निपक्वं - आगसे पकाया (भूना),
अथ वा काल-- - अथवा समयसे स्वतः
पक्वं अपि पके को भी,
उलूखल वा - ऊखल अथवा
अश्मकुट्टः - पत्थरसे कूटेको
वा दन्त - दांतोंके ऊखलसे ही
उलूखल एव (चबाकर)
समश्नीयात् - भली प्रकार खा ले ॥ ५ ॥

स्वयं संचिनुयात् सर्वमात्मनो वृत्तिकारणम् ।
देशकालबलाभिज्ञो नाददीतान्यदाऽऽहृतम् ॥ ६ ॥

स्वयं संचिनुयात् सर्वं आत्मनः वृत्ति कारणं देश काल बल अभिज्ञः न अददीत् अन्यत् आहृतम् ॥ ६ ॥

आत्मनः	- अपनी	**स्वयं संचिनुयात्**	- स्वयं संग्रह करे,
वृत्ति कारणं	- आजीविकाके पदार्थ	**अन्यत् आहृतं**	- दूसरोंके लाये (पदार्थों) को
देश काल	- देश-काल,		
बल अभिज्ञः	- शक्तिको जानने वाला,	**न अददीत्**	- न खावे ॥ ६ ॥

वन्यैश्चरुपुरोडाशैर्निर्वपेत् कालचोदितान् ।
न तु श्रौतेन पशुना मां यजेत वनाश्रमी ॥ ७ ॥

वन्यैः चरु पुरोडाशैः निर्वपेत् कालचोदितान् न तु श्रौतेन पशुना मां यजेत वनाश्रमी ॥ ७ ॥

कालचोदितान्	- समयानुसार	**निर्वपेत्**	- प्रस्तुत करे
वन्यैः	- वनमें उत्पन्न (नीवारादि) से	**वनाश्रमी तु**	- वानप्रस्थाश्रमी तो
		श्रौतेन पशुना	- वेद विहित पशु यज्ञोंसे
चरु पुरोडाशैः	- चरु (हविष्य) पुरोदाश (देव नैवेद्य)	**मां न यजेत**	- मेरी पूजा न करे ॥ ७ ॥

अग्निहोत्रं च दर्शश्च पूर्णमासश्च पूर्ववत् ।
चातुर्मास्यानि च मुनेराम्नातानि च नैगमैः ॥ ८ ॥

अग्निहोत्रं च दर्शः च पूर्णमासः च पूर्ववत् चातुर्मास्यानि च मुनेः आम्नातानि च नैगमैः ॥ ८ ॥

नैगमैः च - वेदवादियोंने तो
पूर्ववत् च - पहिले (गृहस्थाश्रम) के समान ही
मुनेः च - वानप्रस्थाश्रमीके लिए भी
अग्निहोत्रं - (दैनिक) अग्निहोत्र,
दर्शः - अमावस्याके कर्म
च पूर्णमासः - तथा पूर्णिमाके कर्म
च चातुर्मास्यानि - एवं चातुर्मास्यव्रतका
आम्नातानि - विधान किया है ॥८॥

एवं चीर्णेन तपसा मुनिर्धमनिसन्ततः ।
मां तपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैति माम् ॥ ९ ॥

एवं चीर्णेन तपसा मुनिः धमनि संततः मां तपः मयं आराध्य ऋषि लोकात् उपैति माम् ॥ ९ ॥

एवं चीर्णेन-तपसा - इस प्रकार तपस्या करके
धमनि संततः - नसोंसे व्याप्त शरीर
मुनिः - वानप्रस्थी
तपः मयं मां - तपस्या रूप मेरी
आराध्य - आराधना करके
ऋषि लोकात् - ऋषियोंके लोक (महर्लोक एवं जनलोक) जाकर
मां उपैति - (वहांसे) मेरे समीप आजाता है ॥ ९ ॥

यस्त्वेतत् कृच्छ्रतश्चीर्णं तपो निःश्रेयसं महत् ।
कामायाल्पीयसे युञ्ज्याद् बालिशः कोऽपरस्ततः ॥ १० ॥

यः तु एतत् कृच्छ्रतः चीर्णं तपः निःश्रेयसं महत् कामाय अल्पीयसे युञ्ज्यात् बालिशः कः अपरः ततः ॥ १० ॥

यः एतत् - जो इस
कृच्छ्रतः चीर्णं - बड़े कष्टसे किये
महत् निःश्रेयसं - महान् कल्याणमय
तपः अल्पीयसे - तपको छुद्र
कामाय - कामनाओं (कीपूर्ति) में
युञ्ज्यात् - उपयोग करे
ततः अपरः - उससे बड़ा
कः बालिशः - कौन मूर्ख होगा ॥ १० ॥

यदासौ नियमेऽकल्पो जरया जातवेपथुः ।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य मच्चित्तोऽग्निं समाविशेत् ॥ ११ ॥

यदा असौ नियमे अकल्पः जरया जात वेपथुः आत्मनि अग्नीन् सम आरोप्य मत् चित्तः अग्निं सम आविशेत् ॥ ११ ॥

यदा असौ	- जब यह (वानप्रस्थी)	**आत्मनि**	- अपनेमें (भावनासे)
नियमे	- (अपने) नियम पालनमें	**अग्नीन्**	- यज्ञाग्नियोंका
अकल्पः	- असमर्थ होजाय,	**सम आरोप्य**	- भली प्रकार आरोपण (न्यास करके)
जरया	- और बुढ़ापेसे	**मत् चित्तः**	- मुझमें चित्त लगाकर
जात वेपथुः	- (उसके) अंग काँपने लगें तो	**अग्निं-**	- अग्निमें प्रवेश कर
		समाविशेत्	जाय ॥ ११ ॥

यदा कर्मविपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु ।
विरागो जायते सम्यङ् न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः ॥ १२ ॥

यदा कर्म विपाकेषु लोकेषु निरय आत्मसु विरागः जायते सम्यक् न्यस्त अग्निः प्रव्रजेत् ततः ॥ १२ ॥

यदा कर्म-	- जब कर्म के फलसे	**सम्यक् विरागः**	- भली प्रकार वैराग्य
विपाकेषु	मिलने वाले	**जायते**	- होजाय तो
निरय आत्मसु	- नरक स्वरूप	**न्यस्त अग्निः**	- अग्निका त्याग करके
लोकेषु	- (स्वर्गादि) लोकोंके प्रति	**ततः प्रव्रजेत्**	- उस (वानप्रस्थाश्रम) से सन्यास ले ले ॥ १२ ॥

इष्ट्वा यथोपदेशं मां दत्त्वा सर्वस्वमृत्विजे ।
अग्नीन् स्वप्राण आवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ १३ ॥

इष्ट्वा यथा उपदेशं मां दत्त्वा सर्वस्वं ऋत्विजे अग्नीन् स्वप्राण आवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ १३ ॥

यथा उपदेशं	- वैदिक विधानके अनुसार	**अग्नीन्**	- अग्नियोंको
मां इष्ट्वा	- (सर्वश्राद्ध एवं प्राजापत्य यज्ञसे) मेरा यजन करके	**स्वप्राण**	- अपने प्राणोंमें
		आवेश्य	- लीन करके
सर्वस्वं	- (अपना) सर्वस्व	**निरपेक्षः**	- अपेक्षाहीन होकर
ऋत्विजे दत्त्वा	- ऋत्विक को देकर	**परिव्रजेत्**	- स्वच्छन्द घूमे ॥ १३ ॥

विप्रस्य वै संन्यसतो देवा दारादिरूपिणः ।
विघ्नान् कुर्वन्त्ययं ह्यस्मानाक्रम्य समियात् परम् ॥ १४ ॥

विप्रस्य वै सन्यसतः देवा दारा आदि रूपिणः विघ्नान् कुर्वन्ति अयं हि अस्मान् आक्रम्य सम ईयात् परम् ॥ १४ ॥

वै विप्रस्य	- निश्चित रूपसे ब्राह्मणके	**विघ्नान् कुर्वन्ति**	- विघ्न डालते हैं
सन्यसतः	- सन्यास लेते समय	**हि अस्मान्**	- क्योंकि (सोचते हैं) हम लोगोंका
दारा आदि-रूपिणः	- स्त्री आदिके स्वरूपमें	**आक्रम्य अयं**	- अतिक्रमण करके यह
देवा	- देवता	**परं सम ईयात्**	- परमात्माके पास पहुँच जायगा ॥ १४ ॥

बिभृयाच्चेन्मुनिर्वासः कौपीनाच्छादनं परम् ।
त्यक्तं न दण्डपात्राभ्यामन्यत् किञ्चिदनापदि ॥ १५ ॥

बिभृयात् चेत् मुनिः वासः कौपीन आच्छादनं परं त्यक्तं न दण्ड पात्राभ्यां अन्यत् किञ्चित् अनापदि ॥ १५ ॥

चेत् मुनिः	- यदि वह सन्यासी	**अनापदि**	- आपत्तिकाल के बिना
वासः बिभृयात्	- वस्त्र धारण करे तो	**दण्ड पात्राभ्यां**	- दण्ड और जलपात्रको
कौपीन	- कौपीन और	**त्यक्तं**	- छोड़कर
आच्छादनं परं	- उसे ढकने वाला वस्त्रमात्र रखे,	**अन्यत्-किञ्चित्न**	- दूसरा कुछ न रखे ॥ १५ ॥

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।
सत्यपूतां वदेद् वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ १६ ॥

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं पिबेत् जलं सत्यपूतां वदेत् वाचं मनः पूतं समआचरेत् ॥ १६ ॥

दृष्टिपूतं	- दृष्टिसे पवित्र करके (देखकर)	**सत्यपूतां**	- सत्यसे पवित्र
पादं न्यसेत्	- पैर रखे,	**वाचं वदेत्**	- वाणी बोले,
वस्त्रपूतं	- वस्त्रसे पवित्र करके (छानकर)	**मनः पूतं**	- पवित्र मनसे
जलं पिबेत्	- जल पिये,	**सम आचरेत्**	- ठीक आचरण करे ॥ १६ ॥

मौनानीहानिलायामा दण्डा वाग्देहचेतसाम् ।
न ह्येते यस्य सन्त्यग वेणुभिर्न भवेद् यतिः ॥ १७ ॥

मौन अनीह अनिल आयामा दण्डा वाक्देह चेतसां न यस्य हिएते सन्ति अंग वेणुभिः न भवेत् यतिः ॥ १७ ॥

अंग	- प्रिय उद्धव !	**हि एते दण्डा**	- क्योंकि ये दण्ड हैं
वाक् मौन	- वाणी के लिए मौन,	**यस्य न सन्ति**	- जिसके पास ये नहीं हैं
देह अनीह	- शरीरसे निश्चेष्टता,	**वेणुभिः**	- (वह) बांसके (दण्ड) द्वारा
चेतसां	- चित्तके लिए	**यतिः न-**	- सन्यासी नहीं होजाता
अनिल आयामा	- प्राणायाम रूप	**भवेत्**	॥ १७ ॥

भिक्षां चतुर्षु वर्णेषु विगर्ह्यान् वर्जयंश्चरेत् ।
सप्तागारानसंक्लृप्तांस्तुष्येल्लब्धेन तावता ॥ १८ ॥

भिक्षां चतुःषु वर्णेषु विगर्ह्यान् वर्जयन् चरेत् सप्त आगारान् असंक्लृप्तान् तुष्येत् लब्धेन तावता ॥ १८ ॥

विगर्ह्यान् - निन्दितोंको
वर्जयन् - छोड़कर
चतुःषु वर्णेषु - चारों ही वर्णोंके
असंक्लृपतान् - परस्पर न सटे
सप्त आगारान् - सात घरोंसे
भिक्षां चरेत् - भिक्षा मांगे,
तावता लब्धेन - इतने में ही प्राप्तसे
तुष्येत् - सन्तोष करले ॥ १८ ॥

बहिर्जलाशयं गत्वा तत्रोपस्पृश्य वाग्यतः ।
विभज्य पावितं शेषं भुञ्जीताशेषमाहृतम् ॥ १९ ॥

बहिः जलाशयं गत्वा तत्र उपस्पृश्य वाक् यतः विभज्य पावितं शेषं भुञ्जीत अशेषं आहृतम् ॥ १९ ॥

बहिः - (बस्तीके) बाहर
जलाशयं गत्वा - जलाशयके पास जाकर
तत्र उपस्पृश्य - वहाँ आचमन करके
विभज्य - (दूसरे प्राणियोंको) बांटनेसे
पावित शेषं - पवित्र किये गये शेषको
आहृतम् - आदरपूर्वक
अशेषं - बिना कुछ बचाये पूरा
भुञ्जीत - खा ले ॥ १९ ॥

एकश्चरेन्महीमेतां निःसंगः संयतेन्द्रियः ।
आत्मक्रीड आत्मरत आत्मवान् समदर्शनः ॥ २० ॥

एकः चरेत् महीं एतां निः संगः संयत इन्द्रियः आत्मक्रीड आत्मरत आत्मवान् समदर्शनः ॥ २० ॥

निः संगः - अनासक्त रहकर
संयत इन्द्रियः - इन्द्रियोंको वशमें करके
आत्मक्रीड - अपनेमें ही मस्त,
आत्मरतः - आत्मानन्दमें मग्न
आत्मवान् - धैर्यशाली और
समदर्शनः - समदर्शी रहकर
एतां महीं - इस पृथ्वीपर
एकः चरेत् - अकेला विचरण करे
॥ २० ॥

विविक्तक्षेमशरणो मद्भावविमलाशयः ।
आत्मानं चिन्तयेदेकमभेदेन मया मुनिः ॥ २१ ॥

विविक्त क्षेम शरणः मत् भाव विमल आशयः आत्मानं चिन्तयेत् एकं अभेदेन मया मुनिः ॥ २१ ॥

मुनिः विविक्त	- सन्यासी एकान्त	**आत्मानं मया**	- अपनेको मुझसे
क्षेम शरणः	- निरुपद्रव स्थानमें रहे	**अभेदेन एकं**	- अभिन्नतापूर्वक एक
मत् भाव	- मेरी भावनासे	**चिन्तयेत्**	- चिन्तन करे ॥ २१ ॥
विमल आशयः	- निर्मल अन्तःकरण		

अन्वीक्षेतात्मनो बन्धं मोक्षं च ज्ञाननिष्ठया ।
बन्ध इन्द्रियविक्षेपो मोक्ष एषां च संयमः ॥ २२ ॥

अनु ईक्षेत् आत्मनः बन्धं मोक्षं च ज्ञान निष्ठया बन्ध इन्द्रिय विक्षेपः मोक्ष एषां च संयमः ॥ २२ ॥

ज्ञान निष्ठया	- ज्ञान निष्ठासे	**इन्द्रिय**	- इन्द्रियोंकी चंचलता
आत्मनः बन्धं	- अपने बन्धन	**विक्षेपः बन्ध**	बन्धन है,
च मोक्षं	- तथा मुक्तिको	**च एषां-**	- तथा इनको नियन्त्रित
अनु ईक्षेत	- बराबर देखे	**संयमः**	रखना
		मोक्ष	- मुक्ति है ॥ २२ ॥

तस्मान्नियम्य षड्वर्गं मद्भावेन चरेन्मुनिः ।
विरक्तः क्षुल्लकामेभ्यो लब्ध्वाऽऽत्मनि सुखं महत् ॥ २३ ॥

तस्मात् नियम्य षट्वर्गं मत्भावेन चरेत् मुनिः विरक्तः क्षुल्ल कामेभ्यः लब्ध्वा आत्मनि सुखं महत् ॥ २३ ॥

तस्मात्	- इसलिए	**महत् आत्मनि-**	- महान आत्मानन्दको
मत् भावेन	- मेरी भक्तिसे	**सुखं**	
षट्वर्गं नियम्य	- छहो (पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन) का नियन्त्रण करके	**लब्धवा**	- प्राप्त करके
		क्षुल्लकामेभ्यः	- तुच्छ कामनाओंसे
		विरक्तः मुनिः	- विरक्त होकर सन्यासी
		चरेत्	- विचरण करे ॥ २३ ॥

पुरग्रामव्रजान् सार्थान् भिक्षार्थं प्रविशंश्चरेत् ।
पुण्यदेशसरिच्छैलवनाश्रमवतीं महीम् ॥ २४ ॥

पुर ग्राम व्रजान् सार्थान् भिक्षा अर्थं प्रविशन् चरेत् पुण्य देश सरित् शैल वन आश्रमवतीं महीम् ॥ २४ ॥

भिक्षा अर्थं - भिक्षाके लिए
पुर ग्राम - नगर, गाँव,
व्रजान् सार्थान् - गोपालकोंके झोंपड़ों, यात्री व्यापारियोंके समूहमें
प्रविशन् - प्रवेश करता हुआ,
पुण्यदेश - तीर्थ-प्रदेशकी
सरित् शैल - नदी, पर्वत,
वन आश्रमवतीं - वन, आश्रम वाली
महीं चरेत् - भूमिमें विचरण करे ॥ २४ ॥

वानप्रस्थाश्रमपदेष्वभीक्ष्णं भैक्ष्यमाचरेत् ।
संसिध्यत्याश्वसंमोहः शुद्धसत्त्वः शिलान्धसा ॥ २५ ॥

वानप्रस्थ आश्रम पदेषु अभीक्ष्णं भैक्ष्यं आचरेत् संसिध्यति आशु संमोहः शुद्ध सत्त्वः शिल अन्धसः ॥ २५ ॥

वानप्रस्थ - वानप्रस्थ
आश्रम पदेषु - आश्रमियोंके स्थानसे
अभीक्ष्णं भैक्ष्यं - बार बार भिक्षा
आचरेत् - ग्रहण करे
शुद्ध सत्त्वः - (क्योंकि) शुद्धान्तःकरण (लोगों) के
शिल अन्धसा - कण-कण चुनकर लायी भिक्षासे
आशु संमोहः - शीघ्र देहासक्ति
सं सिद्धयति - शुद्ध होकर सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २५ ॥

नैतद् वस्तुतया पश्येद् दृश्यमानं विनश्यति ।
असक्तचित्तो विरमेदिहामुत्र चिकीर्षितात् ॥ २६ ॥

न एतत् वस्तुतया पश्येत् दृश्यमानं विनश्यति असक्त चित्तः विरमेत् इह अमुत्र चिकीर्षितात् ॥ २६ ॥

एतत् विनश्यति - इस नाशवान्
दृश्यमानं - दीखते जगतको
वस्तुतया - वास्तविक
न पश्येत् - न देखे,
असक्त चित्तः - (इससे) अनासक्त चित्त
इह अमुत्र - इस लोक-परलोकके
चिकीर्षितात् - कर्तव्योंसे
विरमेत् - उपराम हो जाय
॥ २६ ॥

यदेतदात्मनि जगन्मनोवाक्प्राणसंहतम् ।
सर्वं मायेति तर्केण स्वस्थस्त्यक्त्वा न तत् स्मरेत् ॥ २७ ॥

यत् ऐतत् आत्मनि जगत् मनः वाक् प्राण संहतं सर्वं माया इति तर्केण स्वस्थः त्यक्त्वा न तत् स्मरेत् ॥ २७ ॥

यत् एतत् - क्योंकि यह
मनः वाक् - मन, वाणी
प्राण संहतं - प्राण का घनीभाव रूप
जगत् आत्मनि - विश्व आत्मामें ही है,
सर्वं माया -यह सब मायासे
स्वस्थः इति -अपने में ही है, इस प्रकारके
तर्केण त्यक्त्वा -तर्कसे (इसे त्यागकर)
तत् न स्मरेत् -उसका स्मरण न करे
॥ २७ ॥

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वानपेक्षकः ।
सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥ २८ ॥

ज्ञाननिष्ठः विरक्तः वा मद्भक्तः वा अनपेक्षकः सलिङ्गान् आश्रमान् त्यक्त्वा चरेत् अविधि गोचरः ॥ २७ ॥

ज्ञाननिष्ठः विरक्तः - ज्ञाननिष्ठ विरक्त हो
वा अनपेक्षकः - अथवा निरपेक्ष
मद्भक्तः वा - मेरा भक्त ही हो,
सलिङ्गान् - चिन्होंके साथ
आश्रमान् त्यक्त्वा - आश्रमोंका त्याग करके
अविधि गोचरः - किसी विधि से पहिचानमें न आकर
चरेत् - विचरण करे ॥ २८ ॥

बुधो बालकवत् क्रीडेत् कुशलो जडवच्चरेत् ।
वदेदुन्मत्तवद् विद्वान् गोचर्यां नैगमश्चरेत् ॥ २९ ॥

बुधः बालकवत् क्रीडेत् कुशलः जडवत् चरेत् वदेत् उन्मत्तवत् विद्वान् गोचर्यां नैगमः चरेत् ॥ २९ ॥

बुधः बालकवत्	- बुद्धिमान होकर भी बालक के समान	**विद्वान्**	- विद्वान होकर भी
क्रीडेत्	- खेलता रहे,	**उन्मत्तवत्**	- पागलके समान
कुशलः	- निपुण होकर भी	**वदेत्**	- बोले,
जडवत्	- मूर्खके समान	**नैगमः**	- वेदज्ञ होकर भी
चरेत्	- विचरण करे,	**गोचर्यां चरेत्**	- पशुके समान विचरणकरे करे ॥ २९ ॥

वेदवादरतो न स्यान्न पाखण्डी न हैतुकः ।
शुष्कवादविवादे न कञ्चित् पक्षं समाश्रयेत् ॥ ३० ॥

वेदवादरतः न स्यात् न पाखण्डी न हैतुकः शुष्कवाद विवादे न कञ्चित् पक्षं सम आश्रयेत् ॥ ३० ॥

वेदवाद	- वैदिक कर्मकाण्ड (की व्याख्या) में	**शुष्कवाद-विवादे**	- सूखे (व्यर्थ) वाद-विवादमें
रतः न स्यात्	- न लगे	**कञ्चित् पक्षं**	- कोई पक्ष
पाखण्डी न	- पाखण्ड न करे,	**आश्रयेत् न**	- ग्रहण न करे ॥ ३० ॥
न हैतुकः	- न तर्क-वितर्क करे,		

विशेष - यह आश्रमातीत अवधूत का वर्णन है । सन्यासी ही अवधूत नहीं होता । किसी वर्ण, किसी आश्रम का कोई व्यक्ति अवधूत हो सकता है; किन्तु उसे गेरुआ आदि आश्रम के चिन्ह नहीं रखने चाहिए । उसे ज्ञान निष्ठासे जब पूर्ण वैराग्य प्राप्त हो जाय या भगवद्भक्ति के द्वारा वह शरीर संसार तथा परलोक से भी निरपेक्ष हो जाय तो अवधूत हो सकता है । वह कैसे रहे, यह आगे बतलाते हैं ।

नोद्विजेत जनाद् धीरो जनं चोद्वेजयेन्न तु ।
अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ।
देहमुद्दिश्य पशुवद् वैरं कुर्यान्न केनचित् ॥ ३१ ॥

न उद्विजेत् जनात् धीरः जनं च उद्वेजयत् न तु अतिवादान् तितिक्षेत न अवमन्येत कञ्चन देहं उद्दिश्य पशुवत् वैरं कुर्यात् न केनचित् ॥ ३१ ॥

धीरः	- धैर्यशाली होकर	**कञ्चन**	- किसीका
जनात्	- लोगोंसे	**न अवमन्येत**	- अपमान न करे,
उद्विजेत् न	- उद्विग्न न हो	**देहं उद्दिश्य**	- शरीरको लक्ष्य बनाकर
तु जनं च	- तथा लोगोंको भी	**पशुवत्**	- पशुके समान
उद्वेजयत् न	- उद्विन न करे,	**केनचित्**	- किसीसे भी
अतिवादान्	- निन्दा को	**वैरं न कुर्यात्**	- शत्रुता न करे
तितिक्षेत	- सहन करले,		॥ ३१ ॥

एक एव परो ह्यात्मा भूतेष्वात्मन्यवस्थितः ।
यथेन्दुरुदपात्रेषु भूतान्येकात्मकानि च ॥ ३२ ॥

एक एव परः हि आत्मा भूतेषु आत्मनि अवस्थितः यथा इन्दुः उद पात्रेषु भूतानि एक आत्मकानि च ॥ ३२ ॥

हि एक-	- क्योंकि एक	**एक एव**	- एक ही
आत्मकानि	(पांच भौतिक) स्वरूप	**परः आत्मा**	- परमात्मा
भूतानि	- सब प्राणी हैं,	**अवस्थितः**	- स्थित है
भूतेषु आत्मनि	- उन प्राणियोंके अन्तःकरणमें	**यथा उदपात्रेषु**	- जैसे (अनेक) जलपात्रोंमें
		इन्दुः	- (एक ही) चन्द्र (प्रतिबिम्बित) है ॥३२॥

अलब्ध्वा न विषीदेत काले कालेऽशनं क्वचित् ।
लब्ध्वा न हृष्येद् धृतिमानुभयं दैवतन्त्रितम् ॥ ३३ ॥

अलब्ध्वा न विषीदेत काले काले अशनं क्वचित् लब्ध्वा न हृष्येत् धृतिमान् उभयं दैवतन्त्रितम् ॥ ३३ ॥

धृतिमान्	- धैर्यशाली होकर	**विषीदेत न**	- दुःखी न हो और
क्वचित्	- कभी	**लब्ध्वा हृष्येत् न**	- पाकर हर्षित न हो
काले काले	- समय समय पर	**उभयं**	- (मिलना, न मिलना) दोनों
अशनं अलब्ध्वा	- आहार न पाकर	**दैवतन्त्रितं**	- प्रारब्धाधीन हैं ॥ ३३ ॥

आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम् ।
तत्त्वं विमृश्यते तेन तद् विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४ ॥

आहार अर्थं सम ईहेत युक्तं तत् प्राण धारणं तत्त्वं विमृश्यते तेन तत् विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४ ॥

आहार अर्थं	- भोजन के लिए	**तेन तत्त्वं**	- उस (जीवन) से तत्त्व का
सम ईहेत	- उचित चेष्टा करे,	**विमृश्यते**	- विचार होता है
तत् प्राण धारणं	- उसके द्वारा प्राण रखना	**तत् विज्ञाय**	- उस (तत्त्व) को जानकर
युक्तं	- उचित है	**विमुच्यते**	- मुक्त हो जाता है ॥ ३४ ॥

यदृच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम् ।
तथा वासस्तथा शय्यां प्राप्तं प्राप्तं भजेन्मुनिः ॥ ३५ ॥

यदृच्छया उपपन्न अन्नं अद्यात् श्रेष्ठं उत अपरं तथा वासः तथा शय्यां प्राप्तं प्राप्तं भजेत् मुनिः ॥ ३५ ॥

मुनिः	- अवधूत	**प्राप्तं प्राप्तं**	- समय समयपर प्राप्त
यदृच्छया	- प्रारब्धवश	**तथा वासः**	- इसी प्रकार वस्त्र,
श्रेष्ठं उत अपरं	- श्रेष्ठ या दूसरे (निकृष्ट) प्रकार	**तथा शय्यां**	- इसी प्रकार पलंका का भी
उपपन्न अन्नं	- प्राप्त आहार	**भजेत्**	- सेवन कर ले ॥ ३५ ॥

शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत् ।
अन्यांश्च नियमाञ्ज्ञानी यथाहं लीलयेश्वरः ॥ ३६ ॥

शौचं आचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत् अन्यान् च नियमान् ज्ञानी यथा अहं लीलया ईश्वरः ॥ ३६ ॥

चोदनया तु	- शास्त्रकी आज्ञा मानकर तो	**ज्ञानी न चरेत्**	-ज्ञानी पालन न करे,
शौचं आचमनं	- शौचाचार, आचमन्,	**यथा अहं ईश्वरः**	-जैसे मैं सर्व समर्थ
स्नानं च	- स्नान तथा	**लीलया**	-लीलापूर्वक (करता हूँ, वैसे लीला पूर्वक) करे ॥ ३६ ॥
अन्यान् नियमान्	- दूसरे नियमोंका		

न हि तस्य विकल्पाख्या या च मद्वीक्षया हता ।
आदेहान्तात् क्वचित् ख्यातिस्ततः सम्पद्यते मया ॥ ३७ ॥

न हि तस्य विकल्प आख्या या च मत् वीक्षया हता आ देहान्तात् क्वचित् ख्यातिः ततः सम्पद्यते मया ॥ ३७ ॥

हि या	- क्योंकि जो	**क्वचित्**	- कभी
विकल्प आख्या	- भेदकी प्रतीति	**आ देहान्तात्**	- शरीरान्त पर्यन्त
तस्य मत्	- उस (ज्ञानी) की मेरे	**ख्यातिः**	- (भेद) प्रतीति होती है तो
वीक्षया	साक्षात्कार से	**ततः मया**	- फिर (शरीरान्त पश्यत्) मुझमें
हता च	- नष्ट ही हो गई है	**सम्पद्यते**	- मिल जाता है ॥ ३७ ॥

दुःखोदर्केषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान् ।
अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुं मुनिमुपाव्रजेत् ॥ ३८ ॥

दुःख उदर्केषु कामेषु जात निर्वेद आत्मवान् अजिज्ञासित मत धर्मः गुरुं मुनिं उप आव्रजेत् ॥ ३८ ॥

आत्मवान्	- जितेन्द्रिय पुरुष	**मत् धर्मः**	- मेरी प्राप्ति के साधन
दुःख उदर्केषु	- दुःख उत्पन्न करने वाले	**अजिज्ञासित**	- न जानता हो तो
कामेषु	- भोगोंसे	**मुनिं गुरुं**	- मननशील गुरुके
जात निर्वेद	- वैराग्य हो जानेपर	**उपाव्रजेत्**	- समीप जाय ॥ ३८ ॥

तावत् परिचरेद् भक्तः श्रद्धाविाननसूयकः ।
यावद् ब्रह्म विजानीयान्मामेव गुरुमादृतः ॥ ३९ ॥

तावत् परिचरेत् भक्तः श्रद्धावान् अनसूयकः यावत् ब्रह्म विजानीयात् मां एव गुरु आदृतः ॥ ३९ ॥

तावत् श्रद्धावान्	- तब तक श्रद्धापूर्वक	**परिचरेत्**	- सेवा करे
भक्तः	- भक्ति सहित	**यावत् मां एव**	- जब तक मुझे ही
अनसूयकः	- गुणोंमें दोष न देखता हुआ	**ब्रह्म गुरु**	- ब्रह्म तथा गुरु
		विजानीयात्	- जान ले ॥ ३९ ॥
आदृतः	- आदरपूर्वक		

यस्त्वसंयतषड्वर्गः प्रचण्डेन्द्रियसारथिः ।
ज्ञानवैराग्यरहितस्त्रिदण्डमुपजीवति ॥ ४० ॥

यः तु असंयत षट् वर्गः प्रचण्ड इन्द्रिय सारथिः ज्ञान वैराग्य रहितः त्रिदण्डं उपजीवति ॥ ४० ॥

यः तु	- जो भी	**ज्ञान वैराग्य-**	- ज्ञान-वैराग्यसे हीन
षट् वर्गः	- ६ वर्ग (पांच ज्ञानेन्द्रिय एवं मन) को	**रहितः**	
		त्रिदण्डं	- त्रिदण्डी होकर
असंयत	- वशमें किये बिना	**उपजीवति**	- जीविका चलाता है ॥ ४० ॥
प्रचण्ड इन्द्रिय	- प्रबल इन्द्रियों एवं		
सारथिः	- उनके सारथि मन वाला		

सुरानात्मानमात्मस्थं निह्नुते मां च धर्महा ।
अविपक्वकषायोऽस्मादमुष्माच्च विहीयते ॥ ४१ ॥

सुरान् आत्मानं आत्मस्थं निह्नुते मां च धर्महा अविपक्व कषायः अस्मात् अमुष्मात् च विहीयते ॥ ४१ ॥

धर्महा	- वह धर्म घातक	**अविपक्व**	- अक्षीण
सुरान् आत्मानं	- देवताओंको, अपने आपको	**कषायः**	- वासना होनेसे
		अस्मात्	- इस लोक
आत्मस्थं मां च	- अपने भीतर स्थित मुझे भी	**च अमुष्मात्**	- तथा परलोकसे भी
		विहीयते	- भ्रष्ट हो जाता है
निह्नुते	- ठगता है		॥ ४१ ॥

भिक्षोर्धर्मः शमोऽहिंसा तप ईक्षा वनौकसः ।
गृहिणो भूतरक्षेज्या द्विजस्याचार्यसेवनम् ॥ ४२ ॥

भिक्षोः धर्मः शमः अहिंसा तप ईक्षा वनौकसः गृहिणः भूतरक्ष इज्या द्विजस्य आचार्य सेवनम् ॥ ४२ ॥

भिक्षोः शमः	- सन्यासीका शम और	**गृहिणः**	- गृहस्थका
अहिंसा	अहिंसा,	**भूतरक्ष इज्या**	- प्राणिरक्षा एवं यज्ञ,
वनौकसः	- वानप्रस्थका	**द्विजस्य**	- द्विजाति मात्रका
तप ईक्षा	- तप एवं तत्त्व चिन्तन,	**आचार्य सेवनं**	- आचार्यकी सेवा
		धर्मः	- (प्रधान) धर्म है
			॥ ४२ ॥

ब्रह्मचर्यं तपः शौचं सन्तोषो भूतसौहृदम् ।
गृहस्थस्याप्यृतौ गन्तुः सर्वेषां मदुपासनम् ॥ ४३ ॥

ब्रह्मचर्यं तपः शौचं सन्तोषः भूत सौहृदं गृहस्थस्य अपि ऋतौ गन्तुः सर्वेषां मत् उपासनम् ॥ ४३ ॥

सर्वेषां - सबके लिए
ब्रह्मचर्यं - ब्रह्मचर्य-पालन,
तपः शौचं - तपस्या, पवित्रता,
सन्तोषः - सन्तोष,
भूत सौहृदं - प्राणियों की हितैषिता एवं
मत् उपासनं - मेरी उपासना (धर्म है)
गृहस्थस्य अपि - गृहस्थके लिए भी
ऋतौ गन्तुः - ऋतु गमन (के अतिरिक्त ये धर्म हैं) ॥ ४३ ॥

इति मां यः स्वधर्मेण भजन् नित्यमनन्यभाक् ।
सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्तिं विन्दते दृढाम् ॥ ४४ ॥

इति मां यः स्वधर्मेण भजन् नित्यं अनन्य भाक् सर्वभूतेषु मत् भावः मत् भक्तिं विन्दते दृढ़ाम् ॥ ४४ ॥

इति यः - इस प्रकार जो
स्वधर्मेण - अपने धर्मका पालन करता हुआ
अनन्य भाक् - अनन्य भावसे
मां भजन् - मेरा भजन करता है तथा
सर्वभूतेषु - सब प्राणियोंमें
मत् भावो - मेरी भावना करता हुआ
दृढ़ां मत् भक्तिं - मेरी दृढ़ भक्ति
विन्दते - पाता है ॥ ४४ ॥

भक्त्योद्धवानपायिन्या सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सर्वोत्पत्त्यप्ययं ब्रह्म कारणं मोपयाति सः ॥ ४५ ॥

भक्त्या उद्धव अनपायिन्या सर्वलोक महेश्वरं सर्व उत्पत्ति अप्ययं ब्रह्म कारणं मा उपयाति सः ॥ ४५ ॥

उद्धव - उद्धव !
अनपायिन्या - अखण्ड
भक्त्या सः - भक्ति द्वारा वह
सर्वलोक - समस्त लोकोंके
महेश्वरं - महेश्वर
सर्वलोक - सम्पूर्ण लोकोंकी
उत्पत्ति अप्ययं - सृष्टि-प्रलयके
कारणं मा ब्रह्म - कारण मुझ ब्रह्मके
उपयाति - समीप जाता है ॥ ४५ ॥

इति स्वधर्मनिर्णिक्तसत्त्वो निर्ज्ञातमद्गतिः ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो नचिरात् समुपैति माम् ॥ ४६ ॥

इति स्वधर्म निर्णिक्त सत्त्वः निर्ज्ञात मत् गतिः ज्ञान विज्ञान सम्पन्नः न चिरात् सम उपैति माम् ॥ ४६ ॥

इति स्वधर्म	- इस प्रकार अपने धर्मके द्वारा	**ज्ञान विज्ञान**	- ज्ञान-विज्ञानसे
निर्णिक्त सत्त्वः	- अन्तःकरण शुद्ध करके	**सम्पन्नः**	- सम्पन्न होकर
मत् गतिः	- मेरा स्वरूप	**न चिरात्**	- अविलम्ब
निर्ज्ञात	- ठीक ठीक जानकर	**मां सम उपैति**	- मेरे समीप पहुंच जाता है ॥ ४६ ॥

वर्णाश्रमवतां धर्म एष आचारलक्षणः ।
स एव मद्भक्तियुतो निःश्रेयसकरः परः ॥ ४७ ॥

वर्ण आश्रम वतां धर्म एष आचार लक्षणः स एव मत् भक्ति युतः निः श्रेयसकरः परः ॥ ४७ ॥

वर्ण आश्रमवतां	- वर्णाश्रम मानने वालोंका	**स एव**	- वही
एष धर्म	- यह धर्म	**मत् भक्तियुतः**	- मेरी भक्ति सहित होनेपर
आचार लक्षणः	- आचरणात्मक है,	**परः निःश्रेयस करः**	- परम कल्याणकारी होता है ॥ ४७ ॥

एतत्तेऽभिहितं साधो भवान् पृच्छति यच्च माम् ।
यथा स्वधर्मसंयुक्तो भक्तो मां समियात् परम् ॥ ४८ ॥

एतत् ते अभिहितं साधो भवान् पृच्छति यत् च मां यथा स्वधर्म संयुक्तः भक्तः मां सम इयात् परम् ॥ ४८ ॥

साधो - साधु उद्धव !
यथा स्वधर्म - जैसे अपने धर्मका
संयुक्तः भक्तः - पालन करता भक्त
मां परं - मुझ परमात्माको
सम इयात् - ठीक ठीक पा लेता है,
एतत् - वह यह
यत् च भवान् - जो कि तुम
मां पृच्छति - मुझसे पूछते हो
ते अभिहितं - तुमसे बतला दिया

॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

यो विद्याश्रुतसम्पन्न आत्मवान् नानुमानिकः ।
मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥ १ ॥

यः विद्या श्रुत सम्पन्न आत्मवान् न अनुमानिकः माया मात्रं इदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥ १ ॥

यः विद्या	- जो शास्त्र ज्ञान एवं	**इदं माया मात्रं**	- इस दृश्य प्रपञ्चको केवल माया
श्रुत सम्पन्न	- श्रवण, (मननादि) से सम्पन्न	**ज्ञात्वा**	- जानकर
आत्मवान्	- आत्मज्ञान युक्त है,	**ज्ञानं च**	- ज्ञानको भी
न अनुमानिकः	- (केवल) अनुमान करने वाला (परोक्षज्ञानी) नहीं है,	**मयि संन्यसेत्**	- मुझमें लीन करदे ॥ १ ॥

ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः स्वार्थो हेतुश्च संमतः ।
स्वर्गश्चैवापवर्गश्च नान्योऽर्थो मदृते प्रियः ॥ २ ॥

ज्ञानिनः तु अहं एव इष्टः स्वार्थः हेतुः च संमतः स्वर्गः च एव अपवर्गः च न अन्यः अर्थः मत ऋते प्रियः ॥ २ ॥

ज्ञानिनः तु	- ज्ञानियोंका भी	**स्वर्गः च अपवर्गः**	- स्वर्ग या मोक्ष
स्वार्थः हेतुः च	- स्वार्थ और उसका साधन	**मत् ऋते**	- मुझे छोड़कर
संमतः	- परमप्रिय	**अन्यः अर्थः**	- कोई तत्त्व
अहं एव इष्टः	- मैं ही अभीष्ट हूँ ।	**प्रियः न**	- उसे प्रिय नहीं है ॥ २ ॥

ज्ञानविज्ञानसंसिद्धाः पदं श्रेष्ठं विदुर्मम ।
ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ बिभर्ति माम् ॥ ३ ॥

ज्ञान विज्ञान संसिद्धाः पदं श्रेष्ठं विदुः मम ज्ञानी प्रियतमः अतः मे ज्ञानेन असौ बिभर्ति माम् ॥ ३ ॥

ज्ञान विज्ञान	- ज्ञान-विज्ञानसे	**अतः मे ज्ञानी**	- अतः मुझे ज्ञानी
संसिद्धाः	- युक्त सिद्ध पुरुष	**प्रियतमः**	- अत्यन्त प्रिय है,
मे श्रेष्ठं पदं	- मेरे वास्तविक स्वरूपको	**असौ ज्ञानेन**	- यह ज्ञानके द्वारा
विदुः	- जानते हैं,	**मां बिभर्ति**	- मुझे धारण करता है ॥ ३ ॥

तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्राणीतराणि च ।
नालं कुर्वन्ति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता ॥ ४ ॥

तपः तीर्थं जपः दानं पवित्राणि इतराणि च न अलं कुर्वन्ति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता ॥ ४ ॥

या ज्ञान कलया	- जो ज्ञान के लेश मात्रसे	**जपः दानं**	- जप, दान
सिद्धिं कृता	- अन्तःकरण की शुद्धि होती है	**इतराणि-**	- तथा दूसरे
तां तपः तीर्थं	- उसे तपस्या, तीर्थ,	**पवित्राणि**	पवित्रताके साधन
		अलं न-	- पूरा नहीं कर सकते
		कुर्वन्ति	॥ ४ ॥

तस्माज्ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो भज मां भक्तिभावितः ॥ ५ ॥

तस्मात् ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्व आत्मानं उद्धव ज्ञान विज्ञान सम्पन्नः भज मां भक्ति भावितः ॥ ५ ॥

उद्धव - उद्धव !
तस्मात् - इसलिए
ज्ञानेन सहितं - ज्ञानके साथ
स्व आत्मानं - अपने आत्मतत्त्वको
ज्ञात्वा जानकर
ज्ञान विज्ञान - ज्ञान-विज्ञानसे
सम्पन्नः - सम्पन्न होकर
भक्ति भावितः - भक्तिपूर्वक
मां भज - मेरा भजन करो ॥ ५ ॥

ज्ञानविज्ञानयज्ञेन मामिष्टवाऽऽत्मानमात्मनि ।
सर्वयज्ञपतिं मां वै संसिद्धिं मुनयोऽगमन् ॥ ६ ॥

ज्ञान विज्ञान यज्ञेन मां इष्ट्वा आत्मानं आत्मनि सर्व यज्ञपतिं मां वै संसिद्धिं मुनयः अगमन् ॥ ६ ॥

ज्ञान-विज्ञान - ज्ञान-विज्ञान रूपी
यज्ञेन मां - यज्ञ द्वारा मुझ
सर्व यज्ञपतिं - सर्व यज्ञेश्वर
आत्मानं- - आत्माको अपने में ही
आत्मनि
इष्ट्वा - आराधित करके
वै मां संसिद्धिं - निश्चय परम सिद्धि रूप मुझे
मुनयः अगमन् - मुनिगण प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

त्वय्युद्धवाश्रयति यस्त्रिविधो विकारो
मायान्तराऽऽपतति नाद्यपवर्गयोर्यत् ।
जन्मादयोऽस्य यदमी तव तस्य किं स्यु-
राद्यन्तयोर्यदसतोऽस्ति तदेव मध्ये ॥ ७ ॥

त्वयि उद्धव आश्रयति यः त्रिविधः विकारः माया अन्तरा आपतति न अद्य अपवर्गयोः यत् जन्म आदयः अस्य यत् अमी तव तस्य किं स्युः आदि अन्तयोः यत् असतः अस्ति तत् एव मध्ये ॥ ७ ॥

उद्धव	- उद्धव !
यः त्रिविधः	- जो तीन प्रकार के (आध्यात्मिक आधिदैविक, आधिभौतिक)
विकारः	- विकार हैं,
त्वयि आश्रयति	- तुम्हारे आश्रयसे हैं,
अन्तरा माया	- बीचमें मायाके कारण
आपतति	- आजाते हैं,
यत् अद्य	- जिससे अभी मोक्ष
अपवर्गयोः न	नहीं (लगता) है,
जन्म आदयः	- जन्म आदि
अस्य	- इस (देह) के
यत् अमी	- कारण ये होते हैं
तस्य तव	- उनसे तुम्हारा
किं स्युः	- क्या सम्बन्ध है,
आदि अन्तयोः	- आदि और अन्तमें
यत् असतः	- जो (देह) असत् है,
तत् एव मध्ये	- वही बीच में भी (असत्) है ॥ ६ ॥

उद्धव उवाच–

ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथैत-
द्वैराग्यविज्ञानयुतं पुराणम् ।
आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते
त्वद्भक्तियोगं च महद्विमृग्यम् ॥ ८ ॥

ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथा एतत् वैराग्य विज्ञान युतं पुराणं आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्वत् भक्ति योगं च महत् विमृग्यम् ॥ ७ ॥

विश्वेश्वर	- विश्वेश्वर !
विश्वमूर्ते	- विश्वमूर्ति !
यथा एतत्	- जैसे यह
वैराग्य-	- वैराग्य, ज्ञान युक्त
विज्ञानयुतं	
पुराणं विशुद्धं-	- सनातन शुद्ध ज्ञान
ज्ञानं	
विपुलं	-सुदृढ़ हो
च महत्-	-तथा महात्माओं द्वारा
विमृग्यं	भी अन्वेषणीय
त्वत् भक्तियोगं	-आपका भक्तियोग (प्राप्त हो)
आख्याहि	-(वह उपाय) बतलाइये ॥ ८ ॥

तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे
संतप्यमानस्य भवाध्वनीश ।
पश्यामि नान्यच्छरणं तवाङ्घ्रि-
द्वन्द्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ॥ ९ ॥

तापत्रयेण अभिहितस्य घोरे संतप्य मानस्य भव अध्वनि ईश पश्यामि न अन्यत् शरणं तव अङ्घ्रि द्वन्द्व आतपत्रात् अमृत अभिवर्षात् ॥ ९ ॥

ईश	- स्वामी !	**तव अङ्घ्रि-**	- आपके युगलचरण
भव अध्वनि	- संसारके मार्गमें	**द्वन्द्व**	रूपी
घोरे तापत्रयेण	- प्रचण्ड त्रिताप	**अमृत अभिवर्षात्**	- सर्वत्र अमृतवर्षी
अभिहितस्य	- कहे जाने वाले (संकट) से	**आतपत्रात्**	- छत्रको
संतप्य मानस्य	- जलते हुए के लिए	**अन्यत्**	- छोड़कर दूसरा
		शरणं न पश्यामि	- आश्रय नहीं देखता हूँ ॥ ९ ॥

दष्टं जनं संपतितं बिलेऽस्मिन्
कालाहिना क्षुद्रसुखोरुतर्षम् ।
समुद्धरैनं कृपयाऽऽपवर्ग्यै-
र्वचोभिरासिञ्च महानुभाव ॥ १० ॥

दष्टं जनं संपतितं बिले अस्मिन् काल अहिना क्षुद्र सुख उरु तर्षं समुद्धर एनं कृपया अपवृग्यैः वचोभिः आसिञ्च महानुभाव ॥ १० ॥

महानुभाव	- महान् प्रभावशाली प्रभु !	**उरुतर्षं**	- अत्यन्त प्यासे
अस्मिन् बिले	- इस (संसार रूपी) कुएं में	**एनं जनं**	- इस (अपने) सेवकका
		कृपया	- कृपापूर्वक
सम्पतितं	- गिरे हुए,	**समुद्धर**	- उद्धार कीजिए
काल अहिना	- काल रूपी सर्पसे	**अपवर्ग्यैः**	- मोक्षदायी वाणीसे
दष्टं	- डँसे हुए	**वचःभिः**	
छुद्र सुख	- तुच्छ सुखों की (इच्छा रूपी)	**आसिञ्च**	- (इसे) भरपूर स्नान कराइये ॥ १० ॥

श्रीभगवानुवाच–

इत्थमेतत् पुरा राजा भीष्मं धर्मभृतां वरम् ।
अजातशत्रुः पप्रच्छ सर्वेषां नोऽनुशृण्वताम् ॥ ११ ॥

इत्थं एतत् पुरा राजा भीष्मं धर्मभृतां वरं अजातशत्रुः पप्रच्छ सर्वेषां नः अनुशृण्वताम् ॥ ११ ॥

इत्थं एतत्	- इसी प्रकार यह	**अजातशत्रुः**	- युधिष्ठिरने
पुरा	- पहिले	**नः सर्वेषां**	- हम सब लोगोंके
धर्म भृतांवरं	- धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ	**अनुशृण्वतां**	- बराबर सुनते हुए
भीष्मं राजा	- भीष्मसे राजा	**पप्रच्छ**	- पूछा था ॥ ११ ॥

निवृत्ते भारते युद्धे सुहृन्निधनविह्वलः ।
श्रुत्वा धर्मान् बहून् पश्चान्मोक्षधर्मानपृच्छत ॥ १२ ॥

निवृत्ते भारते युद्धे सुहृत् निधन विह्वलः श्रुत्वा धर्मान् बहून् पश्चात् मोक्षधर्मान् अपृच्छत ॥ १२ ॥

भारते युद्धे - महाभारत युद्धके
निवृत्ते - समाप्त हो जानेपर
सुहृत् निधन - सम्बन्धियोंके मारे जानेसे
विह्वलः - व्याकुल (युधिष्ठिर) ने
बहून् धर्मान् - बहुत धर्मोंको
श्रुत्वा पश्चात् - सुनकर पीछे
मोक्ष धर्मान् - मोक्षके साधन
अपृच्छत - पूछे ॥ १२ ॥

तानहं तेऽभिधास्यामि देवव्रतमुखाच्छ्रुतान् ।
ज्ञानवैराग्यविज्ञानश्रद्धाभक्त्युपबृंहितान् ॥ १३ ॥

तान् अहं ते अभिधास्यामि देवव्रत मुखात् श्रुतान् ज्ञान वैराग्य विज्ञान श्रद्धा भक्ति उपबृंहितान् ॥ १३ ॥

देवव्रत - भीष्मके
मुखात् श्रुतान् - मुखसे सुने
ज्ञान वैराग्य - ज्ञान, वैराग्य,
विज्ञान श्रद्धा - विज्ञान, श्रद्धा,
भक्ति- - भक्ति समन्वित
उपबृंहितान्
तान् अहं - उन (साधनों) को मैं
ते अभिधास्यामि - तुमसे कहूंगा ॥१३॥

नवैकादश पञ्च त्रीन् भावान् भूतेषु येन वै ।
ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम् ॥ १४ ॥

नव एकादश पञ्च त्रीन् भावान् भूतेषु येन वै ईक्षेत अथ एकं अपि एषु तत् ज्ञानं मम निश्चितम् ॥ १४ ॥

वै भूतेषु - निश्चित रूपसे प्राणियोंमें
नव - नौ (प्रकृति, पुरुष, महतत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा)
एकादश - (दस इन्द्रियां और मन) ग्यारह,
पञ्चत्रीन् - पंचमहाभूत, तीन गुण (इन अठ्ठाइस)
भावान् - तत्त्वोंको
अथ एकं अपि - फिर एक (आत्मा) को भी
ईक्षेत - देखता है
तत् निश्चितं - वह निश्चित रूपसे
मम ज्ञानं - मेरा ज्ञान है
॥ १४ ॥

एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत् ।
स्थित्युत्पत्त्यप्ययान् पश्येद् भावानां त्रिगुणात्मनाम् ॥ १५ ॥

एतत् एव हि विज्ञानं न तथा एकेन येन यत् स्थिति उत्पति अप्ययान् पश्येत् भावानां त्रिगुण आत्मनां ॥ १५ ॥

हि एतत् एव	- क्योंकि इतना ही	**येन एकेन**	- जिस एक के द्वारा
विज्ञानं	- विज्ञान है कि	**यत् स्थिति**	- जिससे ही स्थिति,
त्रिगुण आत्मनां	- त्रिगुणमय	**उत्पत्ति-**	- सृष्टि, प्रलय होती है
भावानां	- तत्त्वोंको	**अप्ययान्**	
तथा न	- उस प्रकार (पृथक पृथक) नहीं,	**पश्येत्**	- (उसे) देखे ॥ १५ ॥

आदावन्ते च मध्ये च सृज्यात् सृज्यं यदन्वियात् ।
पुनस्तत्प्रतिसंक्रामे यच्छिष्येत तदेव सत् ॥ १६ ॥

आदाः अन्ते च मध्ये च सृज्यात् सृज्यं यत् अन्वियात् पुनः तत् प्रति संक्रामे यत् शिष्येत तत् एव सत् ॥ १६ ॥

सृज्यात्	- सृष्टि हुओंके	**पुनः तत्**	- फिर उनको
आदाः अन्ते च	- आदि-अन्तमें तथा	**प्रति संक्रामे**	- उलटा समेट लेने पर (प्रलय होनेपर)
मध्ये च	- बीचमें भी	**यत् शिष्येत**	- जो बच रहता है
यत् सृज्यं	- जो सृष्टिका उपादान	**तत् एव सत्**	- वही सत् है ॥ १६ ॥
अन्वियात्	- व्याप्त रहता है,		

श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम् ।
प्रमाणेष्वनवस्थानाद् विकल्पात् स विरज्यते ॥ १७ ॥

श्रुतिः प्रत्यक्षं ऐतिह्यं अनुमानं चतुष्टयं प्रमाणेषु अनवस्थानात् विकल्पात् स विरज्यते ॥ १७ ॥

श्रुतिः प्रत्यक्षं - श्रुति, प्रत्यक्ष,
ऐतिह्यं - इतिहास (महात्माओंके अनुभव)
अनुमानं - तथा अनुमान
चतुष्टयं प्रमाणेषु - इन चारों प्रमाणोंसे
अनवस्थानात् - एक स्थितिमें न रहनेके कारण
विकल्पात् - इस विविध रूप जगतसे
स विरज्यते - वह (विवेकी) विरक्त हो जाता है ॥ १७ ॥

कर्मणां परिणामित्वादाविरिञ्चादमंगलम् ।
विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ १८ ॥

कर्मणां परिणामित्वात् आविरिञ्चात् अमंगलं विपश्चित् नश्वरं पश्येत् अदृष्टं अपि दृष्टवत् ॥ १८ ॥

विपश्चित् - विवेकी पुरुप
कर्मणां - कर्मोंके
परिणामित्वात् - फलसे प्राप्त होनेके कारण
आविरिञ्चात् - ब्रह्मलोक पर्यन्त
अदृष्टं अपि - अनदेखे लोकोंको भी
दृष्टवत् - देखे (संसार) की भांति
अमंगलं - अशुभ एवं
नश्वरं पश्येत् - विनाशवान देखे ॥ १८ ॥

भक्तियोगः पुरैवोक्तः प्रीयमाणाय तेऽनघ ।
पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥ १९ ॥

भक्ति योगः पुरा एव उक्तः प्रीयमाणाय ते अनघ पुनः च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥ १९ ॥

अनघ - निष्पाप उद्धव !
भक्तियोगः - भक्ति योग
पुरा एव उक्तः - पहिले ही कह चुका हूँ,
ते प्रीयमाणाय - (किन्तु) तुम्हारी बहुत प्रीति होनेसे
मद्भक्तेः - मेरी भक्तिके
परं कारणं - श्रेष्ठ साधन
पुनः च - फिरसे
कथयिष्यामि - वर्णन करूँगा ॥ १९ ॥

श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् ।
परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥ २० ॥

श्रद्धा अमृत कथायां मे शश्वत् मत् अनुकीर्तनं परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥ २० ॥

मत् अमृत कथायां	- मेरी अमृतमयी कथामें	**च पूजायां**	- तथा पूजामें
श्रद्धा !	- श्रद्धा हो,	**परिनिष्ठा**	- दृढ़ निष्ठा हो
शश्वत् मे	- सदा मेरा	**स्तुतिभिः**	- स्त्रोत्रों द्वारा
अनुकीर्तनं	- बार-बार कीर्तन करे,	**मम स्तवनं**	- मेरी स्तुति करे ॥ २० ॥

आदरः परिचर्यायां सर्वांगैरभिवन्दनम् ।
मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥ २१ ॥

आदरः परिचर्यायां सर्व अंगैः अभिवन्दनं मत् भक्त पूजा अभि अधिका सर्वभूतेषु मत् मतिः ॥ २१ ॥

परिचर्यायां	- (मन्दिरकी) सेवामें	**मत् भक्त**	- मेरे भक्तकी
आदरः	- आदर भाव,	**पूजा अभि-**	- पूजा और अधिक करना
सर्वाङ्गै	- सब अंगोंसे (दण्डवत)	**अधिका**	
अभिवन्दनं	- प्रणान करना,	**सर्व भूतेषु**	- सब प्राणियोंमें
		मत् मतिः	- मेरी भावना करना ॥ २१ ॥

मदर्थेष्वंगचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् ।
मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम् ॥ २२ ॥

मत् अर्थेषु अंग चेष्टा च वचसा मत् गुण ईरणं मयि अर्पणं च मनसः सर्व काम विवर्जनम् ॥ २२ ॥

अंग चेष्टा	- शरीरकी चेष्टा	**च मनसः**	- और मनको
मत् अर्थेषु	- मेरे लिए ही करे,	**मयि अर्पणं**	- मुझे अर्पित करदे,
च वचसा	- तथा वाणीसे	**सर्व कर्म**	- सब कामनायें
मत् गुण ईरणं	- मेरे गुणोंका वर्णन करे,	**विवर्जनं**	- त्याग दे ॥ २२ ॥

मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च ।
इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद् व्रतं तपः ॥ २३ ॥

मत अर्थे अर्थ परित्यागः भोगस्य च सुखस्य च इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मत् अर्थं यत् व्रतं तपः ॥ २३ ॥

मत् अर्थे	- मेरे लिए	**यत् इष्टं**	- जो यज्ञ,
अर्थ च भोगस्य	- धन तथा भोगका	**दत्तं हुतं**	- दान, हवन,
च सुखस्य	- एवं सुखका	**जप्तं व्रतं तपः**	- जप, व्रत, तप करे
परित्यागः	- परित्याग करे,	**मत् अर्थं**	- मेरे लिए करे ॥२३॥

एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम् ।
मयि सञ्जायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते ॥ २४ ॥

एवं धर्मैः मनुष्याणां उद्धव आत्म निवेदिनां मयि सञ्जायते भक्तिः कः अन्यः अर्थः अस्य अवशिष्यते ॥ २४ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**मयि भक्तिः**	- मुझमें भक्ति
एवं धर्मैः	- इस प्रकारके धर्म वाले	**सञ्जायते**	- उत्पन्न हो जाती है,
आत्म निवेदिनां	- आत्म समर्पण करने वाले	**कः अन्यः अर्थः**	- फिर कौनसा दूसरा पुरुषार्थ
मनुष्याणां	- मनुष्योंमें	**अवशिष्यते**	- बचा रहता है ? ॥ २४ ॥

यदात्मन्यर्पितं चित्तं शान्तं सत्त्वोपबृंहितम् ।
धर्मं ज्ञानं सवैराग्यमैश्वर्यं चाभिपद्यते ॥ २५ ॥

यदा आत्मनि अर्पितं चित्तं शान्तं सत्त्व उपबृंहित धर्म ज्ञान स वैराग्यं ऐश्वर्यं च अभिपद्यते ॥ २५ ॥

यदा आत्मनि	- जब आत्मामें
अर्पितं चित्तं	- लगाया चित्त
शान्तं	- शान्त तथा
सत्त्व उपबृंहितं	- सत्त्वगुण सम्पन्न हो जाता है
स वैराग्यं	- (तब) वैराग्यके साथ
धर्मं ज्ञानं च	- धर्म, ज्ञान तथा
ऐश्वर्यं	- ऐश्वर्य
अभिपद्यते	- स्वयं आ जाते हैं ॥ २५ ॥

यदर्पितं तद् विकल्पे इन्द्रियैः परिधावति ।
रजस्वलं चासन्निष्ठं चित्तं विद्धि विपर्ययम् ॥ २६ ॥

यत् अर्पितं तत् विकल्पे इन्द्रियैः परिधावति रजस्वलं च असत् निष्ठं चित्तं विद्धि विपर्ययम् ॥ २६ ॥

विकल्पे	- इस विविध कल्पनाओं से भरे (संसार) में
यत् अर्पितं	- जो लगायी हुई
इन्द्रियैः	- इन्द्रियोंके कारण
रजस्वलं-	- रजोगुणी होकर
चित्तं च	चित्त भी
परिधावति	- उसी ओर दौड़ता है
तत् असत्-	- उसे असत् में लगा
निष्ठं	
विपर्ययं विद्धि	- उलटी वृत्तिका समझो ॥ २६ ॥

धर्मो मद्भक्तिकृत् प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम् ।
गुणेष्वसंगो वैराग्यमैश्वर्यं चाणिमादयः ॥ २७ ॥

धर्मः मत् भक्तिकृत् प्रोक्तः ज्ञानं च एक आत्म्यदर्शनं गुणेषु असंगः वैराग्यं ऐश्वर्यं च अणिमा आदयः ॥ २७ ॥

मत् भक्तिकृत् - जो मेरी भक्ति उत्पन्न करे,
धर्मः - (वह) धर्म,
च एक-आत्मदर्शनं - तथा आत्माको एक ही देखना
ज्ञानं - ज्ञान,
गुणेषु असंगः - गुणोंमें अनासक्ति
वैराग्यं - वैराग्य
च अणिमा आदयः - एवं अणिमा आदि सिद्धियां
ऐश्वर्यं प्रोक्तः - ऐश्वर्य कही गयी हैं ॥ २७ ॥

उद्धव उवाच–

यमः कतिविधः प्रोक्तो नियमो वारिकर्शन ।
कः शमः को दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिः प्रभो ॥ २८ ॥

यमः कतिविधः प्रोक्तः नियमः वा अरिकर्शन कः शमः कः दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिः प्रभो ॥ २८ ॥

प्रभो अरिकर्शन - प्रभो ! शत्रुनाशक
कृष्ण - श्रीकृष्ण !
यमः वा नियमः - यम तथा नियम
कति विधः - कितने प्रकारके
प्रोक्तः - कहे गये हैं ?
कः शमः - शम क्या है ?
कः दमः - दम क्या है ?
तितिक्षा - तितीक्षा एवं
धृतिः का - धृति क्या है ? ॥ २८ ॥

किं दानं किं तपः शौर्यं किं सत्यमृतमुच्यते ।
कस्त्यागः किं धनं चेष्टं को यज्ञः का च दक्षिणा ॥ २९ ॥

किं दानं किं तपः शौर्यं किं सत्यं ऋतं उच्यते कः त्यागः किं धनं च इष्टं कः यज्ञः का च दक्षिणा ॥ २९ ॥

किं दानं - दान क्या ?
किं तपः - तप क्या है ?
शौर्यं किं - शौर्य क्या है ?
सत्यं ऋतं-उच्यते - (किसे) सत्य और ऋत कहा जाता है ?
कः त्यागः - त्याग क्या है ?
च इष्टं धनं - और अभीष्ट धन
कः क्या है ?
कः यज्ञः - यज्ञ क्या है
च का दक्षिणा - एवं दक्षिणा क्या है ? ॥ २९ ॥

पुंसः किंस्विद् बलं श्रीमन् भगो लाभश्च केशव ।
का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखमेव च ॥ ३० ॥

पुंसः किं स्वित् बलं श्रीमन् भगः लाभः च केशव का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखं एव च ॥ ३० ॥

श्रीमन् केशव	- श्रीमान केशव !	**विद्या परा ह्रीः**	- विद्या एवं उत्तम-लज्जा
पुंसः बलं	- पुरुषका बल,	**का**	- क्या है ?
भगः च लाभः	- ऐश्वर्य और लाभ	**का श्रीः**	- लक्ष्मी क्या है ?
किं स्वित्	- क्या हैं ?	**सुखं च दुःखं एव किं**	- सुख और दुःख भी क्या हैं ? ॥ ३० ॥

कः पण्डितः कश्च मूर्खः कः पन्था उत्पथश्च कः ।
कः स्वर्गो नरकः कः स्वित् को बन्धुरुत किं गृहम् ॥ ३१ ॥

कः पण्डितः कः च मूर्खः कः पन्था उत्पथः च कः कः स्वर्गः नरकः कः स्वित् कः बन्धुः उत किं गृहम् ॥ ३१ ॥

कः पण्डितः	- पण्डित कौन है ?	**कः स्वर्गः**	- स्वर्ग क्या है ?
च कः मूर्खः	- और कौन मूर्ख है ?	**कः नरकः स्वित्**	- एवं नरक क्या है ?
कः पन्था	- मार्ग क्या है ?	**कः बन्धुः**	- बन्धु कौन है ?
च उत्पथः कः	- तथा कुमार्ग क्या है ?	**उत किं गृहं**	- तथा घर क्या है ? ॥ ३१ ॥

क आढ्यः को दरिद्रो वा कृपणः कः कः ईश्वरः ।
एतान् प्रश्नान् मम ब्रूहि विपरीतांश्च सत्पते ॥ ३२ ॥

कः आढ्यः कः दरिद्रः वा कृपणः कः कः ईश्वरः एतान् प्रश्नान् मम ब्रूहि विपरीतान् च सत्पते ॥ ३२ ॥

सत्पते	- भक्तोंके स्वामी !	**मम एतान्**	- मेरे इन प्रश्नोंको
कः आढ्यः	- धनवान कौन है ?	**प्रश्नान्**	
वा कः दरिद्रः	- अथवा दरिद्र कौन है?	**च विपरीतान्**	- तथा इनकी विरोधी
कृपणः कः	- कृपण कौन है ?		बातोंको
कः ईश्वरः	- समर्थ कौन है ?	**ब्रूहि**	- बतलाइये ॥ ३२ ॥

श्रीभगवानुवाच–

अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो ह्रीरसञ्चयः ।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम् ॥ ३३ ॥

अहिंसा सत्यं अस्तेयं असंगः ह्रीः असञ्चयः आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमा अभयम् ॥ ३३ ॥

अहिंसा सत्यं	- अहिंसा, सत्य	**आस्तिक्यं**	- आस्तिकता,
अस्तेयं असंगः	- चोरी न करना, अनासक्ति,	**ब्रह्मचर्यं**	- ब्रह्मचर्य,
		मौनं स्थैर्यं	- मौन, स्थिरता,
ह्रीः असञ्चयः	- लज्जा, अपरिग्रह	**क्षमा च अभयं**	- क्षमा तथा निर्भयता ॥ ३३ ॥

शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम् ।
तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ॥ ३४ ॥

शौचं जपः तपः होमः श्रद्धा आतिथ्यं मत् अर्चनं तीर्थ अटनं पर अर्थ ईहा तुष्टिः आचार्य सेवनम् ॥ ३४ ॥

शौचं जपः - पवित्रता, जप,
तपः होमः - तप, हवन,
श्रद्धा - श्रद्धा, अतिथि सत्कार
आतिथ्यं
मत् अर्चनं - मेरी पूजा,
तीर्थ अटनं - तीर्थ यात्रा,
परअर्थ ईहा - परोपकार का प्रयत्न,
तुष्टिः - सन्तोष
आचार्य - गुरु बनाना,१
सेवनं - (गुरु-संतकी) सेवा करना
॥ ३४ ॥

एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः ।
पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि ॥ ३५ ॥

एते यमाः स नियमाः उभयोः द्वादश स्मृताः पुंसां उपासिताः तात यथा कामं दुहन्ति हि ॥ ३५ ॥

तात - प्रिय उद्धव !
एते यमाः - ये यम
स नियमाः - नियमोंके साथ
उभयोः - दोनों
द्वादश स्मृताः - बारह बारह कहे गये हैं
हि पुंसां- - क्योंकि ये पुरुष द्वारा
उपासिताः पालन किये जाने पर
यथा कामं - (उसकी) जैसी कामना हो
दुहन्ति - (उसे) पूरा करते हैं
॥ ३५ ॥

शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रियसंयमः ।
तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः ॥ ३६ ॥

शमः मत् निष्ठता बुद्धिः दम इन्द्रिय संयमः तितिक्षा दुःख संमर्षः जिह्वा उपस्थ जयः धृतिः ॥ ३६ ॥

---

१ 'आचार्य सेवनं' को एक मानने पर जैसा कि अनेक टीकाकारोंने माना है, नियम ११ ही रह जाते हैं । कुछ टीकाकारों ने "शौच" आन्तरिक शौच को बाह्य अभ्यन्तर दो माना है; किन्तु शेष यम-नियमों से भिन्न तो कुछ है ही नहीं ।

मत् निष्ठता- बुद्धिः - बुद्धि मेरी परायणा हो
शमः - शम है,
इन्द्रिय संयमः - इन्द्रियोंका नियन्त्रण करना
दम - दम है,
दुःख संमर्षः - दुःखको सह लेना
तितिक्षा - तितीक्षा है,
जिह्वा- उपस्थजयः - जीभ और उपस्थको जीत लेना
धृतिः - धृति है ॥ ३६ ॥

दण्डन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ।
स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥ ३७ ॥

दण्डन्यासः परं दानं कामः त्यागः तपः स्मृतं स्वभाव विजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥ ३७ ॥

दण्डन्यासः - (सब को ही) दण्ड देना छोड़ देना
परं दानं - उत्तम दान है,
कामः त्यागः - कामनाओं का त्याग
तपः स्मृतं - तपस्या कहा गया है,
स्वभाव विजयः - अपने स्वभावको जीत लेना
शौर्यं - शूरता है,
च समदर्शनं - तथा (सर्वत्र) समदृष्टि
सत्यं - सत्य है ॥ ३७ ॥

ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता ।
कर्मस्वसंगमः शौचं त्यागः संन्यास उच्यते ॥ ३८ ॥

ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता कर्मसु असंगमः शौचं त्यागः सन्यास उच्यते ॥ ३८ ॥

च सूनृता वाणी - तथा सुमधुर वाणी
कविभिः ऋतं - विद्वानों द्वारा ऋत
परिकीर्तिता - सर्वत्र कही गयी है,
कर्मसु असंगमः - कर्मोंमें अनासक्ति
शौचं - शौच है,
सन्यास - सन्यासको
त्यागः उच्यते - त्याग कहा जाता है ॥ ३८ ॥

धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः ।
दक्षिणा ज्ञानसन्देशः प्राणायामः परं बलम् ॥ ३९ ॥

धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञः अहं भगवत् तमः दक्षिणा ज्ञान सन्देशः प्राणायामः परं बलम् ॥ ३९ ॥

नृणां इष्टं धनं	- मनुष्योंका अभीष्ट धन	**ज्ञान सन्देशः**	- ज्ञानोपदेश
धर्म	- धर्म है,	**दक्षिणा**	- दक्षिणा है,
अहं भगवत्	- मैं परमेश्वर	**प्राणायामः**	- प्राणायाम
तमः		**परंबलं**	- श्रेष्ठ बल है ॥ ३९ ॥
यज्ञः	- यज्ञ हूँ,		

भगो म ऐश्वरो भावो लाभो मद्भक्तिरुत्तमः ।
विद्याऽऽत्मनि भिदाबाधो जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ॥ ४० ॥

भगः म ऐश्वरः भावः लाभः मत् भक्तिः उत्तमः विद्या आत्मनि भिदा बाधः जुगुप्सा ह्रीः अकर्मसु ॥ ४० ॥

म ऐश्वरः भावः	- मेरे ऐश्वर्यकी स्थिति	**बाधः विद्या**	- बाध हो जाना विद्या है,
भगः	- भग है,	**अकर्मसु**	- पाप करनेमें
मत् भक्तिः	- मेरी भक्ति	**जुगुप्सा ह्रीः**	- घृणा होना लज्जा है
उत्तमः लाभः	- उत्तम लाभ है,		॥ ४० ॥
आत्मनि भिदा	- आत्मामें भेद-प्रतीतिका		

श्रीर्गुणा नैरपेक्ष्याद्याः सुखं दुःखसुखात्ययः ।
दुःखं कामसुखापेक्षा पण्डितो बन्धमोक्षवित् ॥ ४१ ॥

श्रीः गुणा नैरपेक्ष्य आद्याः सुखं दुःख सुख अत्ययः दुःखं काम सुख अपेक्षा पण्डितः बन्ध मोक्षवित् ॥ ४१ ॥

नैरपेक्ष्य आद्याः - निरपेक्षता आदि
गुणा श्रीः - गुण लक्ष्मी हैं,
दुःख सुख - दुःख-सुख से
अत्ययः सुखं - अतीत हो जाना सुख है,
काम सुख-अपेक्षा - भोग सुखकी चाह
दुःखं - दुःख है,
बन्ध मोक्षवित् - बन्धन और मुक्तिको जानने वाला
पण्डितः - पण्डित है ॥ ४१ ॥

मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः पन्था मन्निगमः स्मृतः ।
उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः ॥ ४२ ॥

मूर्खः देह आदि अहं बुद्धिः पन्था मत् निगमः स्मृतः उत्पथः चित्त विक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुण उदयः ॥ ४२ ॥

देह आदि - शरीर आदिको
अहं बुद्धिः - 'मैं' मानने वाला
मूर्खः - मूर्ख है
मत् निगमः - मेरा प्रतिपादन करने वाला शास्त्र
पन्था स्मृतः - मार्ग कहा गया है,
चित्त विक्षेपः - चित्तकी चंचलता
उत्पथः - कुमार्ग है,
सत्त्वगुण उदयः - सत्त्वगुणकी अभिवृद्धि
स्वर्गः - स्वर्ग है ॥ ४२ ॥

नरकस्तमउन्नाहो बन्धुर्गुरुरहं सखे ।
गृहं शरीरं मानुष्यं गुणाढ्यो ह्याढ्य उच्यते ॥ ४३ ॥

नरकः तम उन्नाहः बन्धुः गुरुः अहं सखे गृहं शरीरं मानुष्यं गुण आढ्यः हि आढ्य उच्यते ॥ ४३ ॥

सखे - मित्र उद्धव !
तम उन्नाहः - तमोगुणकी अभिवृद्धि
नरकः - नरक है,
बन्धुः गुरुः - सम्बन्धी गुरु है (और वह)
अहं - मैं हूँ,
मानुष्यं शरीरं - मनुष्य शरीर
गृहं - घर है,
गुण आढ्यः - जो गुणोंसे धनी है, वही
हि आढ्य - क्योंकि धनवान कहा
उच्यते जाता है ॥ ४३ ॥

दरिद्रो यस्त्वसन्तुष्टः कृपणो योऽजितेन्द्रियः ।
गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसंगो विपर्ययः ॥ ४४ ॥

दरिद्रः यः तु असन्तुष्टः कृपणः यः अजित इन्द्रियः गुणेषु असक्त धीः ईशः गुणसंगः विपर्ययः ॥ ४४ ॥

यः तु-	- जो भी असन्तुष्ट है
असन्तुष्टः	
दरिद्रः	- दरिद्र है,
यः अजित-	- जो इन्द्रियजयी नहीं है
इन्द्रियः	
कृपणः	- कृपण है,
गुणेषु	- गुणोंमें
असक्तधीः	- अनासक्त चित्त समर्थ है,
ईशः	
गुणसंगः	- गुणोंमें आसक्ति होनेसे
विपर्ययः	- उल्टी स्थिति (पराधीनता) होती है ॥ ४४ ॥

एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः ।
किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः ।
गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ॥ ४५ ॥

एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुण दोषयोः गुण दोष दृशेः दोषः गुणः तु उभय वर्जितः ॥ ४५ ॥

उद्धव	- उद्धव !
एत ते सर्वे	- यह तुम्हारे सब
प्रश्नाः	प्रश्नोंका
साधु निरूपिताः-	भली प्रकार विवेचन कर दिया गया
गुण दोषयोः	- गुण-दोषके
बहुना लक्षणं	- बहुतसे लक्षण
वर्णितेन किं	- वर्णनसे क्या लाभ
गुण दोष	- 'यह गुण है, यह दोष है'
दृशेः दोषः	- यह देखना ही दोष है,
गुणः तु	- (वास्तविक) गुण तो
उभय-	- (गुण-दोष) दोनों को
वर्जितः	त्याग देना है ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

उद्धव उवाच–

विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते ॥
अवेक्षतेऽरविन्दाक्ष गुणं दोषं च कर्मणाम् ॥ १ ॥

विधिः च प्रतिषेधः च निगमः हि ईश्वरस्य ते अवेक्षते अरविन्दाक्ष गुणं दोषं च कर्मणाम् ॥ १ ॥

अरविन्दाक्ष - कमल लोचन !
ते ईश्वरस्य - आप सर्वसमर्थ
निगमः च - वेदस्वरूप द्वारा ही
कर्मणां च - कर्मोंका भी
गुण-दोषं - गुण-दोषके अनुसार
विधिः च - विधान तथा
प्रतिषेधः च - निषेध भी
अवेक्षते - देखा जाता है ॥ १ ॥

वर्णाश्रमविकल्पं च प्रतिलोमानुलोमजम् ।
द्रव्यदेशवयःकालान् स्वर्गं नरकमेव च ॥ २ ॥

वर्ण आश्रम विकल्पं च प्रतिलोम अनुलोमजं द्रव्य देश वयः कालान् स्वर्गं नरकं एव च ॥ २ ॥

वर्ण आश्रम - वर्ण-आश्रम
च प्रतिलोम - बड़े वर्णकी स्त्रीसे छोटे वर्णके पुरुष द्वारा
अनुलोमजं - या बड़े वर्णके पुरुष द्वारा छोटे वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न लोगोंकी एवं
द्रव्य देश वयः - पदार्थ, स्थान, आयु,
कालान् - समयके अनुसार
च स्वर्गं - तथा स्वर्ग,
नरकं एव - नरककी भी
विकल्पं - अनेक प्रकारकी कल्पना ॥ २ ॥

गुणदोषभिदादृष्टिमन्तरेण वचस्तव ॥
निःश्रेयसं कथं नृणां निषेधविधिलक्षणम् ॥ ३ ॥

गुण दोष भिदा दृष्टिं अन्तरेण वचः तव निःश्रेयसं कथं नृणां निषेध विधि लक्षणम् ॥ ३ ॥

निषेध विधि - निषेध-विधि
लक्षणं - सूचक
गुणदोष भिदा - गुण-दोषका भेद करने वाली
दृष्टिं तव वचः - दृष्टि आपकी वाणीके अनुसार
अन्तरेण - त्याग देनेपर
नृणां निःश्रेयसं - मनुष्योंका परम कल्याण
कथं - कैसे होगा ? ॥ ३ ॥

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुस्तवेश्वर ॥
श्रेयस्त्वनुपलब्धेऽर्थे साध्यसाधनयोरपि ॥ ४ ॥

पितृ देव मनुष्याणां वेदः चक्षुः तव ईश्वर श्रेयः तु अनुपलब्धे अर्थे साध्य साधनयोः अपि ॥ ४ ॥

ईश्वर - स्वामी !
अनुपलब्धे - इन्द्रियोंसे अगोचर
अर्थे - तत्त्व,
श्रेयः तु - श्रेयके तो
साध्य- - साध्य (निर्णय) तथा
साधनयोः अपि - साधनमें भी
पितृ देव - पितर, देवता,
मनुष्याणां - मनुष्योंके लिए
तव वेदः चक्षुः - आपका वेद स्वरूप ही दृष्टि है ॥ ४ ॥

गुणदोषभिदादृष्टिर्निगमात्ते न हि स्वतः ॥
निगमेनापवादश्च भिदाया इति ह भ्रमः ॥ ५ ॥

गुण दोष भिदा दृष्टिः निगमात् ते न हि स्वतः निगमेन अपवादः च भिदाया इति ह भ्रमः ॥ ५ ॥

हि ते निगमात् - क्योंकि उस आप वेद स्वरूपसे ही
गुण दोष - गुण-दोषका
भिदा दृष्टिः - भेद करने वाली दृष्टि होती है
स्वतः न - स्वयं नहीं होती,
भिदाया- - भेदका निषेध भी
अपवादः च
निगमेन - आपकी वाणीसे ही होरहा है
इति ह भ्रमः - यह निश्चित भ्रमकी बात है ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच—

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥ ६ ॥

योगाः त्रयः मया प्रोक्ता नृणां श्रेयः विधित्सया ज्ञानं कर्म च भक्तिः च न उपायः अन्यः अस्ति कुत्रचित् ॥ ६ ॥

नृणां श्रेयः - मनुष्योंके कल्याणका
विधित्सया - विधान करनेकी इच्छासे
मया त्रयः - मेरे द्वारा तीन योग
योगाः
प्रोक्ता - कहे गये हैं,
ज्ञानं च कर्म - ज्ञान और कर्म
च भक्तिः - एवं भक्ति,
अन्यः उपायः - इनसे भिन्न (कोई) उपाय
कुत्रचित् न - कहीं भी नहीं है
अस्ति ॥ ६ ॥

निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु ।
तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥ ७ ॥

निर्विण्णानां ज्ञान योगः न्यासिनां इह कर्मसु तेषु अनिर्विण्ण चित्तानां कर्मयोगः तु कामिनाम् ॥ ७ ॥

इह कर्मसु - इस लोकमें कर्मोंका
न्यासिनां - (स्वरूपतः) त्याग करने वाले
निर्विण्णानां - विरक्तोंके लिए
ज्ञानयोगः - ज्ञान योग है,
तेषु - उन (कर्मों) से
अनिर्विण्ण-चित्तानां - जिनका चित्त विरक्त नहीं हुआ है
कामिनां तु - उन भोगेच्छु लोगों के लिए तो
कर्मयोगः - कर्मयोग है ॥ ७ ॥

यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् ।
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥ ८ ॥

यदृच्छया मत् कथा आदौ जात श्रद्धः तु यः पुमान् न निर्विण्णः न अति सक्तः भक्ति योगः अस्य सिद्धिदः ॥ ८ ॥

यदृच्छया - संयोगवश	**न निर्विण्णः** - पर (वह) न विरक्त है,
मत् कथा आदौ - मेरी कथा आदिमें	**न अतिसक्तः** - न बहुत आसक्त है,
यः पुमान् - जिस पुरुषकी	**भक्तियोगः** - भक्तियोग
जात श्रद्धः - श्रद्धा उत्पन्न होगयी है,	**अस्य सिद्धिदः** - इसे सफलता देने वाला है ॥ ८ ॥

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥ ९ ॥

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता मत् कथा श्रवण आदौ वा श्रद्धा यावत् न जायते ॥ ९ ॥

यावता - जब तक	**यावत् श्रद्धा** - जब तक श्रद्धा
निर्विद्येत न - विरक्त न होजाय	**न जायते** - न उत्पन्न होजाय
वा मत् कथा - अथवा मेरी कथा	**तावत्** - तब तक
श्रवण आदौ - सुनने आदि में	**कर्माणि कुर्वीत** - कर्मोंको करे ॥ ९ ॥

स्वधर्मस्थो यजन् यज्ञैरनाशीःकाम उद्धव ।
न याति स्वर्गनरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत् ॥ १० ॥

स्वधर्मस्थः यजन् यज्ञैः अनाशीः काम उद्धव न याति स्वर्ग नरकौ यदि अन्यत् न समआचरेत् ॥ १० ॥

उद्धव - उद्धव !	**यदि अन्यत्** - यदि दूसरा (निषिद्ध कर्म)
स्वधर्मस्थः - अपने (वर्णाश्रम) धर्ममें स्थित होकर	**न समाचरेत्** - नहीं करता तो
अनाशीः काम - निष्काम भावसे	**स्वर्ग नरकौ** - स्वर्ग या नरक
यज्ञैः यजन् - यज्ञ करता हुआ	**न याति** - नहीं जाता ॥ १० ॥

अस्मिँल्लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः ।
ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया ॥ ११ ॥

अस्मिन् लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थः अनघः शुचिः ज्ञानं विशुद्धं आप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया ॥ ११ ॥

अस्मिन् लोके	- इसी लोकमें	**यदृच्छया**	- अनायास
वर्तमानः	- रहते हुए ही	**विशुद्धं ज्ञानं**	- शुद्ध ज्ञान
स्वधर्मस्थः	- अपने धर्ममें स्थित	**वा मद्भक्तिं**	- अथवा मेरी भक्ति
अनघः शुचिः	- निष्पाप पवित्र व्यक्ति	**आप्नोति**	- प्राप्त कर लेता है ॥ ११ ॥

स्वर्गिणोऽप्येतमिच्छन्ति लोकं निरयिणस्तथा ।
साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयं तदसाधकम् ॥ १२ ॥

स्वर्गिणः अपि एतं इच्छन्ति लोकं निरयिणः तथा साधकं ज्ञान भक्तिभ्यां उभयं तत् असाधकम् ॥ १२ ॥

तत् असाधकं	- उस साधनके अयोग्य	**एतं ज्ञान**	- इस ज्ञान एवं
उभयं	- दोनों	**भक्तिभ्यां**	- भक्तिके द्वारा
स्वर्गिणः	- स्वर्गवासी भी	**साधकं लोकं**	- साधनके योग्य लोकको
तथा निरयिणः	- तथा नरवासी	**इच्छन्ति**	- चाहते हैं ॥ १२ ॥

न नरः स्वर्गतिं काङ्क्षेन्नारकीं वा विचक्षणः ।
नेमं लोकं च काङ्क्षेत देहावेशात् प्रमाद्यति ॥ १३ ॥

न नरः स्वः गतिं काङ्क्षेत् नारकीं वा विचक्षणः न इमं लोकं च काङ्क्षेत देह आवेशात् प्रमाद्यति ॥ १३ ॥

विचक्षणः नरः - बुद्धिमान पुरुष	**इमं लोकं च** - यह लोक (मनुष्य देह) भी
स्वःगतिं - स्वर्ग जानेकी	**न काङ्क्षेत** - न चाहे (क्योंकि)
वा न नारकीं - और न नरक जानेकी	**देह आवेशात्** - देहाभिमान होजानेसे
काङ्क्षेत् - आकांक्षा करे	**प्रमाद्यति** - प्रमाद करता है ॥१३॥

एतद् विद्वान् पुरा मृत्योरभवाय घटेत सः ।
अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यमप्यर्थसिद्धिदम् ॥ १४ ॥

एतत् विद्वान् पुरा मृत्योः अभवाय घटेत सः अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यं अपि अर्थ सिद्धिदम् ॥ १४ ॥

एतत् विद्वान् - यह जानकर	**अर्थ सिद्धिदं** - परमार्थ सिद्धि देने वाला
सः अप्रमत्त - वह सावधान होकर	**ज्ञात्वा** - जानकर
इदं मर्त्यं अपि - इस देहको विनाशवान होनेपर भी	**मृत्योः पुरा** - मरनेसे पहिले ही
	अभवाय घटेत - मोक्षके लिए प्रयत्न करे ॥ १४ ॥

छिद्यमानं यमैरेतैः कृतनीडं वनस्पतिम् ।
खगः स्वकेतमुत्सृज्य क्षेमं याति ह्यलम्पटः ॥ १५ ॥

छिद्यमानं यमैः एतैः कृतनीडं वनस्पतिम् खगः स्वकेतं उत्सृज्य क्षेमं याति हि अलम्पटः ॥ १५ ॥

कृत नीडंः - जिस पर घोंसला बनाया है	**हि अलम्पटः** - क्योंकि आसक्त नहीं है
एतैः वनस्पतौ - इस (शरीर) वृक्षको	**खगः स्वकेतं** - (आत्मा) पक्षी अपनाघर (देह)
यमैः छिद्यमानं - यमराज द्वारा काटे जानेपर	**उत्सृज्य** - त्यागकर
	क्षेमं याति - सकुशल चला जाता है ॥ १५ ॥

अहोरात्रैश्छिद्यमानं बुद्ध्वाऽऽयुर्भयवेपथुः ।
मुक्तसंगः परं बुद्ध्वा निरीह उपशाम्यति ॥ १६ ॥

अहः रात्रैः छिद्यमानं बुद्ध्वा आयुः भयवेपथुः मुक्तसंगः परंबुद्ध्वा निरीह उपशाम्यति ॥ १६ ॥

अहः रात्रैः	-	दिन-रात द्वारा	**मुक्तः संगः**	-	आसक्ति त्यागकर
छिद्यमानं	-	काटी जाती	**परं बुद्ध्वा**	-	परमात्माको जानकर
आयुः बुद्ध्वा	-	आयु जानकर	**निरीह**	-	निरपेक्ष होकर
भयवेपथुः	-	भयसे कांपता हुआ,	**उपशाम्यति**	-	शान्त हो जाता है ॥ १६ ॥

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥ १७ ॥

नृदेहं आद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारं मया अनुकूलेन नभस्वता ईरितं पुमान् भव अब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥ १७ ॥

सुकल्पं प्लवं	-	सुदृढ़ नौका रूप	**मया**	-	मेरे द्वारा
सुदुर्लभं	-	अत्यन्त दुर्लभ	**अनुकूलेन**	-	अनुकूल
नृदेहं आद्यं	-	मनुष्य शरीर पहिले ही	**नभस्वता**	-	वायु द्वारा
सुलभं	-	सुलभ होगया,	**ईरितं**	-	प्रेरित होनेपर भी
गुरु कर्णधारं	-	गुरु इसके कर्णधार हैं	**पुमान्**	-	(जो) पुरुष
			भव अब्धिं	-	संसार सागरको
			तरेत् न	-	पार न कर जाय
			स आत्महा	-	वह आत्मघाती है ॥ १७ ॥

यदाऽऽरम्भेषु निर्विण्णो विरक्तः संयतेन्द्रियः ।
अभ्यासेनात्मनो योगी धारयेदचलं मनः ॥ १८ ॥

यदा आरम्भेषु निर्विण्णः विरक्तः संयत इन्द्रियः अभ्यासेन आत्मनः योगी धारयेत् अचलं मनः ॥ १८ ॥

यदा आरम्भेषु - जब कर्मारम्भसे
निर्विण्णः - खिन्न होकर
विरक्तः - वैराग्यवान होजाय,
संयत इन्द्रियः - (तब) इन्द्रिय संयम (प्रत्याहार) करके
योगी आत्मनः - योगी अपने मनको
मनः
अचलं धारयेत् - स्थिर करे ॥ १८ ॥

धार्यमाणं मनो यर्हि भ्राम्यदाश्वनवस्थितम् ।
अतन्द्रितोऽनुरोधेन मार्गेणात्मवशं नयेत् ॥ १९ ॥

धार्यमाणं मनः यर्हि भ्राम्यत् आशु अनवस्थितं अतन्द्रितः अनुरोधेन मार्गेण आत्मवशं नयेत् ॥ १९ ॥

यर्हि धार्यमाणं - जब स्थिर करते समय
अनवस्थितम् - चञ्चल मन
मनः
भ्राम्यत् - भटकने लगे तब
आशु अतन्द्रितः - शीघ्र सावधान होकर
अनुरोधेन मार्गेण - समझानेके उपायसे
आत्मवशं - अपने वशमें
नयेत् - ले आवे ॥ १९ ॥

मनोगतिं न विसृजेज्जितप्राणो जितेन्द्रियः ।
सत्त्वसम्पन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ॥ २० ॥

मनः गतिं न विसृजेत् जितप्राणः जित इन्द्रियः सत्त्व सम्पन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ॥ २० ॥

जितप्राणः - प्राण वायुको जीतकर
जित इन्द्रियः - इन्द्रियोंको जीतकर
मनः गतिं - मनको घूमनेके लिए
न विसृजेत् - नहीं छोड़े,
सत्त्व सम्पन्नया - सत्त्वगुण युक्ता
बुद्ध्या मन - बुद्धिसे मनको
आत्मवशं - अपने वशमें
नयेत् - ले आवे ॥ २० ॥

एष वै परमो योगो मनसः संग्रहः स्मृतः ।
हृदयज्ञत्वमन्विच्छन् दम्यस्येवार्वतो मुहुः ॥ २१ ॥

एष वै परमः योगः मनसः संग्रहः स्मृतः हृदयज्ञत्वं अनु इच्छन् दम्यस्य इव अर्वतः मुहुः ॥ २१ ॥

दम्यस्य - नियन्त्रण किये जाने वाले
अर्वतः इव - घोड़ेकी भांति
हृदयज्ञत्वं - अपना भाव जानने वाला
अनुइच्छन् - बनानेकी इच्छासे
मुहुः मनसः सङ्ग्रहः - बार बार मन वशमें लाना
वै एष - निश्चय यही
परमः योगः - श्रेष्ठ योग कहा गया है
स्मृतः ॥ २१ ॥

सांख्येन सर्वभावानां प्रतिलोमानुलोमतः ।
भवाप्ययावनुध्यायेन्मनो यावत् प्रसीदति ॥ २२ ॥

सांख्येन सर्व भावानां प्रतिलोम अनुलोमतः भव अप्ययाः अनुध्यायेत् मनः यावत् प्रसीदति ॥ २२ ॥

सांख्येन - सांख्य शास्त्रके अनुसार
भव सर्व भावानां - संसारके सब तत्त्वोंका
प्रतिलोम - प्रलयक्रम तथा
अनुलोमतः - सृष्टि क्रमसे
अप्ययाः - प्रलयादिका
अनुध्यायेत् - बार-बार चिन्तन करे
यावत् मनः - जब तक मन
प्रसीदति - निर्मल हो जाय
॥ २२ ॥

निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः ।
मनस्त्यजति दौरात्म्यं चिन्तितस्यानुचिन्तया ॥ २३ ॥

निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्य उक्तवेदिनः मनः त्यजति दौरात्म्यं चिन्तितस्य अनुचिन्तया ॥ २३ ॥

निर्विण्णस्य - (संसारसे) खिन्न,
विरक्तस्य - वैराग्यवान्,
उक्तवेदिनः - (गुरुके) उपदेशको समझने वाले
चिन्तितस्य - मनन किये (तत्त्व) का
अनुचिन्तया - बार-बार मनन करनेसे
पुरुषस्य मनः - पुरुषका मन
दौरात्म्यं - दुष्टता (चंचलता)
त्यजति - त्याग देता है ॥ २३ ॥

यमादिभिर्योगपथैरान्वीक्षिक्या च विद्यया ।
ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्मरेन्मनः ॥ २४ ॥

यम आदिभिः योगपथैः आन्वीक्षिक्या च विद्यया मम आचार्य उपासनाभिः वा न अन्यैः योग्यं स्मरेत् मनः ॥ २४ ॥

यम आदिभिः - यम आदि
योगपथैः - योग मार्गसे,
च आन्वीक्षिक्या - तथा (वस्तुका) सूक्ष्म निरीक्षण करने वाली
विद्यया - अध्यात्म विद्यासे
वा मम - अथवा मेरी एवं
आचार्य उपासनाभिः - गुरुकी उपासनासे
योग्यं अन्यैः - उपयुक्त दूसरा
मनः न स्मरेत् - मनके लिए (उपाय) नहीं सोचा जाता ॥ २४ ॥

यदि कुर्यात् प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितम् ।
योगेनैव दहेदंहो नान्यत्तत्र कदाचन ॥ २५ ॥

यदि कुर्यात् प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितं योगेन एव दहेत् अंहः न अन्यत् तत्र कदाचन ॥ २५ ॥

यदि योगी - यदि योगी
प्रमादेन - असावधानीके कारण
विगर्हितं - निन्दित
कर्म कुर्यात् - कर ले तो
योगेन एव - योगके द्वारा ही
अंहः दहेत् - (उस) पापको भस्म करदे,
तत्र कदाचन - उसके लिए कभी भी
अन्यत् न - दूसरा (प्रायश्चित) नहीं है ॥ २५ ॥

स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ।
कर्मणां जात्यशुद्धानामनेन नियमः कृतः ।
गुणदोषविधानेन संगानां त्याजनेच्छया ॥ २६ ॥

स्वे स्वे अधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः कर्मणां जाति अशुद्धानां अनेन नियमः कृतः गुण दोष विधानेन संगानां त्याजन इच्छया ॥ २६ ॥

स्वे स्वे- - अपने अपने
अधिकारे अधिकारमें
या निष्ठा - जो निष्ठा है,
स गुणः - वही गुण
परिकीर्तितः - कही गयी है,
जाति अशुद्धानां - स्वभावतः अशुद्ध
कर्मणां - कर्मोंके सम्बन्धमें
अनेन - इसीसे
त्याजन इच्छया- उनको छुड़ानेकी इच्छासे
गुण दोष - गुण-दोषका विधान करके
विधानेन
नियमः कृतः - (शास्त्रने उनपर) नियन्त्रण किया है ॥ २६ ॥

जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु ।
वेद दुःखात्मकान् कामान् परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥ २७ ॥

जातश्रद्धः मत् कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु वेद दुःख आत्मकान् कामान् परित्यागे अपि अनीश्वरः ॥ २७ ॥

मत् कथासु - मेरी कथामें
जात श्रद्धः - श्रद्धा उत्पन्न होगयी है,
सर्व कर्मसु - सब कर्मोंसे
निर्विण्णः - खिन्न होगया है,
कामान् - भोगोंको
दुःख - दुःख स्वरूप जानता है,
आत्मकान् वेद
परित्यागे अपि - किन्तु (उनको) छोड़नेमें भी
अनीश्वरः - असमर्थ है ॥ २७ ॥

ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः ।
जुषमाणश्च तान् कामान् दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥ २८ ॥

ततः भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुः दृढ़ निश्चयः जुषमाणः च तान् कामान् दुःख उदर्कान् च गर्हयन् ॥ २८ ॥

ततः श्रद्धालुः - तब श्रद्धा करके
दृढ़ निश्चयः - दृढ़ निश्चयपूर्वक
प्रीतः मां भजेत - प्रसन्नतापूर्वक मेरा भजन करे
च तान् - तथा उन
दुःख उदर्कान् - दुःखदायक
कामान् - भोगोंको
जुषमाणः च - भोगता हुआ भी
गर्हयन् - (उनकी) निन्दा करता रहे ॥ २८ ॥

प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो मासकृन्मुनेः ।
कामा हृदय्या नश्यन्ति सर्वे मयि हृदि स्थिते ॥ २९ ॥

प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतः मा असकृत् मुनेः कामा हृदय्या नश्यन्ति सर्वे मयि हृदि स्थिते ॥ २९ ॥

मुनेः - मननशील साधकके
प्रोक्तेन - बतलाये हुए
भक्तियोगेन - भक्तियोग द्वारा
असकृत् - निरन्तर
माभजतः - मेरा भजन करनेसे
मयि हृदिस्थिते - मेरे हृदयमें विराजनेसे
हृदय्या - हृदयमें स्थित
सर्वे कामा - सब कामनायें
नश्यन्ति - नष्ट हो जाती हैं ॥ २९ ॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि ॥ ३० ॥

भिद्यते हृदय ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्व संशयाः क्षीयन्ते च अस्य कर्माणि मयि दृष्टे अखिल आत्मनि ॥ ३० ॥

मयि अखिल आत्मनि	- मुझ सर्वात्माका	**भिद्यते**	- टूट जाती है,
दृष्टे	- साक्षात्कार होनेपर	**सर्व संशयाः**	- सब सन्देह
अस्य हृदय ग्रन्थिः	- इसकी हृदय ग्रन्थि	**छिद्यन्ते**	- कट जाते हैं,
		कर्माणि च	- कर्म भी
		क्षीयन्ते	- नष्ट हो जाते हैं ॥३०॥

तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥ ३१ ॥

तस्मात् मत् भक्ति युक्तस्य योगिनः वै मत् आत्मनः न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयः भवेत् इह ॥ ३१ ॥

तस्मात्	- इसलिए	**न ज्ञानं**	- न ज्ञानकी,
मत्-	- मेरी भक्ति करने वाले	**च न वैराग्यं**	- तथा न वैराग्य की (आवश्यकता है)
भक्तियुक्तस्य			
मत् वै आत्मनः	- मुझमें निश्चित चित्त लगानेके लिए	**इह प्रायः**	- इसी जीवनमें प्रायः
		श्रेयः भवेत्	- (उसका) कल्याण हो जाता है ॥ ३१ ॥

यत् कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् ।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥ ३२ ॥

यत् कर्मभिः यत् तपसा ज्ञान वैराग्यतः च यत् योगेन दान धर्मेण श्रेयः भिः इतरैः अपि ॥ ३२ ॥

यत् कर्मभिः - जो सत्कर्मोंसे,
यत् तपसा - जो तपस्यासे,
च यत् - तथा जा
ज्ञान वैराग्यतः - ज्ञान, वैराग्यसे,
दान धर्मेण - दान या धर्मसे
इतरैः अपि - दूसरे भी
श्रेयः भिः - कल्याणके साधनोंसे
॥ ३२ ॥

सर्वं मदभक्तियोगेन मदभक्तो लभतेऽरञ्जसा ।
स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथञ्चिद् यदि वाञ्छति ॥ ३३ ॥

सर्वं मत् भक्ति योगेन मत् भक्त लभते अञ्जसा सर्वं स्वर्ग अपवर्गं मत् धाम कथंचित् यदि वाञ्छति ॥ ३३ ॥

मत् भक्त - मेरा भक्त
यदि कथञ्चित् - यदि किसी प्रकार
वाञ्छति - चाहता है तो
मत् भक्ति योगेन - मेरी भक्तिके द्वारा ही
अञ्जसा सर्वं - सरलतासे सब
स्वर्ग अपवर्गं - स्वर्ग, मोक्ष या
मत् धाम लभते - मेरा धाम प्राप्त कर लेता है ॥ ३३ ॥

न किञ्चित् साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम ।
वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥ ३४ ॥

न किञ्चित् साधवः धीरा भक्ता हि एकान्तिनः मम वाञ्छन्ति अपि मया दत्तं कैवल्यं अपुनर्भवम् ॥ ३४ ॥

साधवः धीरा - साधु धैर्यशाली
हि मम-एकान्तिनः - क्योंकि मेरे अनन्य
भक्ता - भक्त
मया दत्तं अपि - मेरे देनेपर भी
कैवल्यं अपुनर्भवं - कैवल्य मोक्ष आदि
किञ्चित् न - कुछ भी नहीं
वाञ्छन्ति - चाहते ॥ ३४ ॥

नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम् ।
तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥ ३५ ॥

नैरपेक्ष्यं परं प्राहुः निःश्रेयसं अनल्पकं तस्मात् निराशिषः भक्तिः निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥ ३५ ॥

अनल्पकं	- महान्	**तस्मात्**	- इसलिए
परं निःश्रेयसं	- परम कल्याण	**निरपेक्षस्य**	- निरपेक्षको
नैरपेक्ष्यं प्राहुः	- निरपेक्षताको ही कहते हैं,	**मे निराशिषः**	- मेरी निष्काम
		भक्तिः भवेत्	- भक्ति प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥

न मय्येकान्तभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः ।
साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥ ३६ ॥

न मयि एकान्त भक्तानां गुण दोष उद्भवा गुणाः साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परं उपेयुषाम् ॥ ३६ ॥

मयि एकान्त-भक्तानां	- मेरे अनन्य भक्त,	**साधूनां**	- महात्माओंको
		गुण-दोष उद्भवा	- गुण-दोषसे उत्पन्न
समचित्तानां	- समदर्शी		
बुद्धेः परं	- बुद्धिसे अतीत	**गुणाः न**	- गुण (पाप-पुण्य) नहीं होते ॥ ३६ ॥
उपेयुषां	- अवस्थाको प्राप्त		

एवमेतान् मयाऽऽदिष्टाननुतिष्ठन्ति मे पथः ।
क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद् ब्रह्म परमं विदुः ॥ ३७ ॥

एवं एतान् मया आदिष्टान् अनुतिष्ठन्ति मे पथः क्षेमं विन्दन्ति मत् स्थानं यत् ब्रह्म परमं विदुः ॥ ३७ ॥

एवं मया- - इस प्रकार मेरे द्वारा
आदिष्टान् उपदिष्ट
एतान् मे पथः - इस मेरे मार्ग पर
अनुतिष्ठन्ति - जो बराबर चलते हैं वे
यत् ब्रह्म- - जिसे परमब्रह्म जाना
परमं विदुः गया है
मत् क्षेमं स्थानं - उस मेरे कल्याणमय पदको
विन्दन्ति - प्राप्त करते हैं

॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथैकविंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

य एतान् मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् ।
क्षुद्रान् कामांश्चलैः प्राणैर्जुषन्तः संसरन्ति ते ॥ १ ॥

य एतान् मत् पथः हित्वा भक्ति ज्ञान क्रिया आत्मकान् क्षुद्रान् कामान् चलैः प्राणैः जुषन्तः संसरन्ति ते ॥ १ ॥

य एतान् - जो इन	**हित्वा क्षुद्रान्-** - त्यागकर तुच्छ भोग
मत् पथः - मेरी प्राप्तिके मार्ग,	**कामान्**
भक्ति ज्ञान - भक्ति योग, ज्ञान योग,	**चलैः प्राणैः** - चंचल इन्द्रियों द्वारा
क्रिया आत्मकान् - कर्म योग स्वरूपको	**जुषन्तः** - भोगते रहते हैं
	ते संसरन्ति - वे जन्म-मृत्युके चक्रमें पड़े रहते हैं ॥ १ ॥

स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ।
विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥ २ ॥

स्वे स्वे अधिकारे या निष्ठा सगुणः परिकीर्तितः विपर्ययः तु दोषः स्यात् उभयोः एष निश्चयः ॥ २ ॥

स्वे स्वे - अपने अपने	**विपर्ययः तु** - इसके विपरीत
अधिकारे - अधिकारके अनुसार (धर्ममें)	(अनधिकार) चेष्टा तो
	दोषः स्यात् - दोष है,
या निष्ठा - जो दृढ़ आस्था है	**उभयोः** - दोनोंके सम्बन्धमें
स गुणः - वही गुण	**एष निश्चयः** - निर्णयका यही आधार है ॥ २ ॥
परिकीर्तितः - कही गयी है,	

शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु ।
द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ ॥ ३ ॥

शुद्धि अशुद्धि विधीयेते समानेषु अपि वस्तुषु द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुण दोषौ शुभ अशुभौ ॥ ३ ॥

द्रव्यस्य - पदार्थका
विचिकित्सार्थं - सूक्ष्म-निरीक्षण करनेकी इच्छासे
वस्तुषु - पदार्थोंके
समानेषु अपि - एक समान होनेपर भी
शुद्धि अशुद्धि - (उनमें) शुद्ध-अशुद्ध,
गुण दोषौ - गुण-दोष तथा
शुभ अशुभौ - शुभ-अशुभका
विधीयेते - विधान होता है ॥३॥

धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चानघ ।
दर्शितोऽयं मयाऽऽचारो धर्ममुद्वहतां धुरम् ॥ ४ ॥

धर्म अर्थं व्यवहार अर्थं यात्रा अर्थं इति च अनघ दर्शितः अयं मया आचारः धर्मं उद्वहतां धुरम् ॥ ४ ॥

अनघ - निष्पाप उद्धव !
धर्मधुरं - धर्मका भार
उद्वहतां - ढोने वाले (कर्म जड़ों) के
धर्म अर्थं - धर्माचरणके लिए,
व्यवहार अर्थं - व्यवहारको (ठीक) चलानेके लिए
यात्रा अर्थं च - (लोगोंके) जीवन-निर्वाहके लिए भी
इति अयं - इस प्रकारका यह
आचारः - आचरण-व्यवस्था
मया दर्शितः - मेरे (मनुआदि रूप) द्वारा दिखलायी गयी है ॥ ४ ॥

भूम्यम्ब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पञ्च धातवः ।
आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः ॥ ५ ॥

भूमि अम्बु अग्नि अनिल आकाशा भूतानां पञ्च धातवः आब्रह्म स्थावरादीनां शारीरा आत्म संयुताः ॥ ५ ॥

आब्रह्म - ब्रह्मासे लेकर
स्थावरादीनां - स्थावर वृक्षादि तक
भूतानां - प्राणियोंके
शारीरा - शरीरोंमें
भूमि अम्बु - पृथ्वी, जल,
अग्नि अनिल - अग्नि, वायु,
आकाशा - आकाश
पञ्च धातवः - ये पञ्च तत्त्व ही हैं,
आत्म संयुताः - आत्मा (सबका) एक ही है ॥ ५ ॥

वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि ।
धातुषूद्धव कल्प्यन्ते एतेषां स्वार्थसिद्धये ॥ ६ ॥

वेदेन नाम रूपाणि विषमाणि समेषु अपि धातुषु उद्धव कल्प्यन्ते एतेषां स्वार्थ सिद्धये ॥ ६ ॥

उद्धव - उद्धव !
धातुषु - तत्त्वोंके
समेषु अपि - समान होनेपर भी
एतेषां - इनके
स्वार्थ सिद्धये - पुरुषार्थोंकी सिद्धिके लिए
वेदेन - वेदके द्वारा
विषमाणि - विषमता युक्त
नाम रूपाणि - नाम- रूप
कल्प्यन्ते - कल्पित किये जाते हैं ॥ ६ ॥

देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम ।
गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम् ॥ ७ ॥

देश काल आदि भावानां वस्तूनां मम सत्तम गुण-दोषौ विधीयेते नियम अर्थं हि कर्मणाम् ॥ ७ ॥

सत्तम - साधु श्रेष्ठ उद्धव !
हि कर्मणां - क्योंकि कर्मोंके
नियम अर्थं - नियन्त्रण के लिए
मम - मेरा किया ही
देशकाल - स्थान, समय
आदि भावानां - आदि तत्त्वों एवं
वस्तूनां - पदार्थों सम्बन्धी
गुण दोषौ - गुण-दोषका
विधीयेते - विधान किया गया है ॥ ७ ॥

अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत् ।
कृष्णसारोऽप्यसौवीरकीकटासंस्कृतेरिणम् ॥ ८ ॥

अकृष्णसारः देशानां अब्रह्मण्यः अशुचिः भवेत् कृष्णसारः अपि सौ वीर कीकट असंस्कृत ईरिणम् ॥ ८ ॥

देशानां	- देशोंमें	**सौ वीर कीकट**	- सौ वीर, कीकट एवं
अकृष्णसारः	- जहां कालेमृग न हों या	**असंस्कृत**	- संस्कारहीन
अब्रह्मण्यः	- ब्राह्मण भक्त न हों तथा	**ईरिणं**	- ऊसर आदि
कृष्ण सारः	- काले मृग होनेपर भी	**अशुचिः भवेत्**	- अपवित्र होते हैं
अपि			॥ ८ ॥

कर्मण्यो गुणवान् कालो द्रव्यतः स्वत एव वा ।
यतो निवर्तते कर्म स दोषोऽकर्मकः स्मृतः ॥ ९ ॥

कर्मण्यः गुणवान् कालः द्रव्यतः स्वतः एव वा यतः निवर्तते कर्म स दोषः अकर्मकः स्मृतः ॥ ९ ॥

कर्मण्यः-	- जिसमें कर्म हो सके	**यतः कर्म**	- जिसमें कर्म
कालः	वह समय	**निवर्तते**	- बन्द हो जाता है
गुणवान्	- गुण वाला (श्रेष्ठ) है	**स अकर्मकः**	- वह कर्मके अयोग्य (समय)
द्रव्यतः वा	- सामग्रीके कारण अथवा	**दोषः स्मृतः**	- दूषित कहा गया है
स्वतः एव	- स्वयं (समयके कारण) ही		॥ ९ ॥

द्रव्यस्य शुद्ध्यशुद्धी च द्रव्येण वचनेन च ।
संस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाथवा ॥ १० ॥

द्रव्यस्य शुद्धि अशुद्धि च द्रव्येण वचनेन च संस्कारेण अथ कालेन महति अल्पतया अथवा ॥ १० ॥

द्रव्यस्य	- पदार्थोंकी	**संस्कारेण**	- संस्कार करनेसे,
शुद्धि अशुद्धीच	- शुद्धी और अशुद्धि भी	**अथ कालेन**	- तथा समय पाकर
द्रव्येण	- पदार्थोंका,	**अथवा**	- अथवा
च वचनेन	- तथा शास्त्र-निर्देशसे,	**महति-**	- महान और छोटे होनेसे
		अल्पतया	होती है ॥ १० ॥

विशेष - जैसे मिट्टी जलादि से पदार्थ शुद्ध होते हैं । शास्त्र का वचन होने से गोबर-गोमूत्र शुद्ध तथा प्याज-लशुन अपवित्र हैं । धोने-मांजनेके संस्कार से शुद्धि होती है । समय पाकर अशुद्ध स्थान स्वतः शुद्ध हो जाते हैं । थोड़े जल में जूठा गिरे तो अशुद्ध हो गया; किन्तु नदी-सरोवर उससे अशुद्ध नहीं होते ।

शक्त्याशक्त्याथवा बुद्ध्या समृद्ध्या च यदात्मने ।
अघं कुर्वन्ति हि यथा देशावस्थानुसारतः ॥ ११ ॥

शक्त्या अशक्त्या अथवा बुद्ध्या समृद्ध्या च यत् आत्मने अघं कुर्वन्ति हि यथा देश अवस्था अनुसारतः ॥ ११ ॥

आत्मने	- अपनी	**हि यथा देश**	- क्योंकि जैसे देश
शक्त्या-	- शक्ति या दुर्बलताके	**अवस्था**	- परिस्थितिके
अशक्त्या	कारण	**अनुसारतः**	- अनुसार
अथवा बुद्ध्या	- अथवा समझ एंवं	**अघं कुर्वन्ति**	- दोष माना जाता है
समृद्ध्या च	- सम्पत्तिके भी		॥ ११ ॥

धान्यदार्वस्थितन्तूनां रसतैजसचर्मणाम् ।
कालवाय्वग्निमृत्तोयैः पार्थिवानां युतायुतैः ॥ १२ ॥

धान्य दारु अस्थि तन्तूनां रस तैजस चर्मणां देश अवस्था अनुसारतः कालवायु अग्नि मृत् तोयैः पार्थिवानां युत अयुतैः ॥ १२ ॥

धान्य दारु - अन्न, काष्ठ,
अस्थि तन्तूनां - हाथी दांतादि तथा सूतसे बने (वस्त्रादि)
रस - नमकादिरस
तैजस - धी पारादि तैजस
चर्मणां - चमड़े से बने या
पार्थिवानां - मिट्टी से बने बर्तन आदि
देश अवस्था - देश तथा परिस्थितिके
अनुसारतः - अनुसार
कालवायु - समय, वायु,
अग्नि मृत् - अग्नि, मिट्टी,
तोयैः - जलसे
युत अयुतैः - (इनको) एकाधिक मिलाकर या बिना मिलाये (एक एक से ही शुद्धि होती है) ॥ १२ ॥

अमेध्यलिप्तं यद् येन गन्धं लेपं व्यपोहति ।
भजते प्रकृतिं तस्य तच्छौचं तावदिष्यते ॥ १३ ॥

अमेध्य लिप्तं यत् येन गन्धं लेपं व्यपोहति भजते प्रकृतिं तस्य तत् शौचं तावत् इष्यते ॥ १३ ॥

यत् अमेध्य लिप्तं - जो अपवित्रतासे लगा पदार्थ
येन लेपं - जिसे लगानेसे
गन्धं व्यपोहति - वह गन्ध त्याग दे और
प्रकृतिं भजते - (अपनी) स्वाभाविक दशामें आजाय,
तावत् तस्य - उस समय उसके लिये
तत् शौचं-इष्यते - वह पवित्रता करणीय है ॥ १३ ॥

स्नानदानतपोऽवस्थावीर्यसंस्कारकर्मभिः ।
मत्स्मृत्या चात्मनः शौचं शुद्धः कर्माचरेद् द्विजः ॥ १४ ॥

स्नान दान तपः अवस्था वीर्य संस्कार कर्मभिः मत् स्मृत्या च आत्मनः शौचं शुद्धः कर्म आचरेत् द्विजः ॥ १४ ॥

स्नान दान - स्नान, दान,
तपः अवस्था - तपस्या, आयु,
वीर्य संस्कार - सामर्थ्य, संस्कार एवं
कर्मभिः - कर्मोंसे,
च मत् स्मृत्या - तथा मेरे स्मरणसे
आत्मनः शौचं - चित्तकी शुद्धि करके
द्विजः शुद्धः कर्म - द्वि जाति शुद्ध कर्म ही
आचरेत् - करे ॥ १४ ॥

मन्त्रस्य च परिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्पणम् ।
धर्मः सम्पद्यते षड्भिरधर्मस्तु विपर्ययः ॥ १५ ॥

मन्त्रस्य च परिज्ञानं कर्म शुद्धिः मत् अर्पणं धर्मः सम्पद्यते षड्भिः अधर्मः तु विपर्ययः ॥ १५ ॥

मन्त्रस्य च - मन्त्रकी (शुद्धि) भी
परिज्ञानं - उसके ठीक ज्ञानसे एवं
कर्मशुद्धिः - कर्मकी शुद्धि
मत् अर्पणं - (उसे) मुझे अर्पित कर देनेसे होती है
षड्भिः - छ (देश, काल, पदार्थ, कर्ता, मन्त्र और कर्म) से
धर्मः सम्पद्यते - धर्म सम्पन्न होता है,
विपर्ययः तु - उससे उलटा तो
अधर्मः - अधर्म है ॥ १५ ॥

क्वचिद् गुणोऽपि दोषः स्याद् दोषोऽपि विधिना गुणः ।
गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेव बाधते ॥ १६ ॥

क्वचित् गुणः अपि दोषः स्यात् दोषः अपि विधिना गुणः गुण दोष अर्थ नियमः तत् भिदां एव बाधते ॥ १६ ॥

विधिना - शास्त्र विधि होनेसे१
क्वचित्- - कहीं गुण भी
गुणः अपि
दोषः - दोष और
दोषः अपि - दोष भी
गुणः स्यात् - गुण हो जाता है,
गुण दोष अर्थ - गुण-दोष सम्बन्धी
नियमः - नियम
तत् भिदां एव - उन्हें जानने वालोंके लिए ही हैं,
बाधते - (एक रूप न होने से) कल्पित हैं ॥ १६ ॥

---

१ गायत्री जप गुण होने पर भी शूद्र एवं सन्यासी के लिए दोष है । सन्ध्या वन्दनका त्याग द्विजातिके लिए दोष है पर सन्यासीके लिये विहित है ।

समानकर्माचरणं पतितानां न पातकम् ।
औत्पत्तिको गुणः संगो न शयानः पतत्यधः ॥ १७ ॥

समान कर्म आचरणं पतितानां न पातकं औत्पत्तिकः गुणः संगः न शयानः पतति अधः ॥ १७ ॥

पतितानां	- पतित लोगोंके लिए	**संगः**	- आसक्ति (उनका)
समान कर्म	- (पतितके) समान कर्म	**औत्पत्तिकः गुणः**	- जन्म जात गुण है,
आचरणं	- करना	**अधः शयानः**	- (जैसे जो) नीचे सो रहा है वह
पातकं न	- पाप नहीं है,	**पतति न**	- गिरता नहीं है ॥१७॥

यतो यतो निवर्तेत विमुच्येत ततस्ततः ।
एष धर्मो नृणां क्षेमः शोकमोहभयापहः ॥ १८ ॥

यतः यतः निवर्तेत विमुच्येत ततः ततः एष धर्मः नृणां क्षेमः शोक मोह भय अपहः ॥ १८ ॥

यतः यतः	- जिन जिन (व्यक्ति, वस्तु, क्रिया) से	**नृणां एष**	- मनुष्योंके लिए यह
निवर्तेत	- उपरत हो जाता है	**धर्मः**	- (वैराग्य रूप) धर्म
ततः ततः	- उन उन (के बन्धन) से	**शोक मोह**	- शोक, मोह एवं
विमुच्येत	- छूट जाता है,	**भय अपहः**	- भयको दूर करने वाला है ॥ १८ ॥

विषयेषु गुणाध्यासात् पुंसः संगस्ततो भवेत् ।
संगात्तत्र भवेत् कामः कामादेव कलिर्नृणाम् ॥ १९ ॥

विषयेषु गुण अध्यासात् पुंसः संगः ततः भवेत् संगात् तत्र भवेत् कामः कामात् एव कलिः नृणाम् ॥ १९ ॥

विषयेषु - विषयोंमें
गुण अध्यासात् - गुण समझ लेनेपर
पुंसः ततः - पुरुष की उनसे
संगः भवेत् - आसक्ति हो जाती है,
तत्र संगात् - उनमें आसक्ति होनेसे
कामः भवेत् - (उनको पानेकी) कामना होती है,
कामात् एव - कामनासे ही
नृणां कलिः - मनुष्योंमें झगड़ा होता है ॥ १९ ॥

कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्तते ।
तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥ २० ॥

कलेः दुर्विषहः क्रोधः तमः तं अनुवर्तते तमसा ग्रस्यते पुंसः चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥ २० ॥

कलेः - झगड़ेसे
दुर्विषहः क्रोधः - असह्य क्रोध आता है
तं अनु तमः - उससे पीछे ही तमोगुण
वर्तते - रहता है,
तमसा पुंसः - उस तमोगुण द्वारा पुरुषकी
व्यापिनी चेतना - व्यापक चेतना
द्रुतं ग्रस्यते - शीघ्र ग्रस्त कर ली जाती है ॥ २० ॥

तया विरहितः साधो जन्तुः शून्याय कल्पते ।
ततोऽस्य स्वार्थविभ्रंशो मूर्च्छितस्य मृतस्य च ॥ २१ ॥

तया विरहितः साधो जन्तुः शून्याय कल्पते ततः अस्य स्वार्थ विभ्रंशः मूर्छितस्य मृतस्य च ॥ २१ ॥

साधो - साधु उद्धव !
तया विरहितः - उस (चेतना) से रहित
जन्तुः शून्याय - जीव शून्यके समान
कल्पते - हो जाता है
ततः अस्य - तब इस
मूर्छितस्य - मूर्छितके समान,
च मृतस्य - तथा मरेके समानका
स्वार्थ विभ्रंशः - पुरुषार्थ नष्ट हो जाता है ॥ २१ ॥

विषयाभिनिवेशेन नात्मानं वेद नापरम् ।
वृक्षजीविकया जीवन् व्यर्थं भस्त्रेव यः श्वसन् ॥ २२ ॥

विषय अभिनिवेशेन न आत्मानं वेद न अपरं वृक्ष जीविकया जीवन् व्यर्थं भस्त्रा इव यः श्वसन् ॥ २२ ॥

विषय - विषयोंमें
अभिनिवेशेन - (चित्तके) प्रगाढ़ लग जानेसे
न आत्मानं वेद - न अपनेको जानता,
न अपरं - न दूसरेको,
यः श्वसन् - जो श्वास लेता है (वहतो)
भस्त्रा इव - (लुहारकी) धौंकनीके समान
व्यर्थं - व्यर्थ है
वृक्ष जीविकया - (वह) वृक्षके समान जड़तासे
जीवन् - जीरहा है ॥ २२ ॥

फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचनं परम् ।
श्रेयोविवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम् ॥ २३ ॥

फल श्रुतिः इयं नृणां न श्रेयः रोचनं परं श्रेयः विविक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्य रोचनम् ॥ २३ ॥

इयं फल-श्रुतिः - यह (स्वर्गादि) फल बतलाने वाली
नृणां श्रेयः न - मनुष्योंका कल्याण नहीं बतलाती
परं रोचनं - केवल रुचि उत्पादक है,
श्रेयः विवक्षया - (उन्हें) कल्याणकारी प्रवृत्ति बतलानेकी इच्छासे
प्रोक्तं - कही गयी है,
यथा भैषज्य - जैसे औषधिको
रोचनं - रुचिकर (कहा जाता है) ॥ २३ ॥

उत्पत्त्यैव हि कामेषु प्राणेषु स्वजनेषु च ।
आसक्तमनसो मर्त्या आत्मनोऽनर्थहेतुषु ॥ २४ ॥

उत्पत्त्या एव हि कामेषु प्राणेषु स्वजनेषु च आसक्त मनसः मर्त्या आत्मनः अनर्थ हेतुषु ॥ २४ ॥

हि आत्मनः	-	क्योंकि अपने लिए	**मर्त्याः**	-	मनुष्य
अनर्थ हेतुषु	-	अनर्थके कारण	**उत्पत्या एव**	-	जन्मसे ही
कामेषु प्राणेषु	-	भोगों, इन्द्रियों	**आसक्त मनसः**	-	आसक्त चित्त हैं
च स्वजनेषु	-	तथा स्वजनोंमें			॥ २४ ॥

न तानविदुषः स्वार्थं भ्राम्यतो वृजिनाध्वनि ।
कथं युञ्ज्यात् पुनस्तेषु तांस्तमो विशतो बुधः ॥ २५ ॥

न तान् अविदुषः स्वार्थं भ्राम्यतः वृजिन अध्वनि कथं युञ्ज्यात् पुनः तेषु तान् तमः विशतः बुधः ॥ २५ ॥

स्वार्थं अविदुषः	-	अपने स्वार्थको न जानने वाले	**तमः विशतः**	-	नरकमें गिरते हुए
वृजिन अध्वनि	-	क्लेशोंके मार्गमें	**तान् पुनः तेषु**	-	उन्हें फिर उन्हीं (विषयों) में
भ्राम्यतः	-	भटकते हुए	**बुधः कथं**	-	(कोई) बुद्धिमान कैसे
तान्	-	उन्हें (वहीं) न लगावे,	**युञ्ज्यात्**	-	लगावेगा ॥ २५ ॥

एवं व्यवसितं केचिदविज्ञाय कुबुद्धयः ।
फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदन्ति हि ॥ २६ ॥

एवं व्यवसितं केचित् अविज्ञाय कुबुद्धयः फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदन्ति हि ॥ २६ ॥

हि केचित् कुबुद्धयः	-	क्योंकि कुछ दुर्बुद्धि लोग	**एवं व्यवसितं**	-	इस प्रकारके प्रयत्न वाली
कुसुमितां	-	पुष्पिता (देखनेमें सुन्दर)	**अविज्ञाय**	-	नहीं जानते; किन्तु
फलश्रुतिं	-	(स्वर्गादि) फल बतलाने वाली श्रुतिको	**वेदज्ञा**	-	वेदका तत्त्व जानने वाले
			न वदन्ति	-	उन्हें नहीं कहते ॥ २६ ॥

कामिनः कृपणा लुब्धाः पुष्पेषु फलबुद्धयः ।
अग्निमुग्धा धूमतान्ताः स्वं लोकं न विदन्ति ते ॥ २७ ॥

कामिनः कृपणाः लुब्धाः पुष्पेषु फलबुद्धयः अग्नि मुग्धा धूमतान्ताः स्वं लोकं न विदन्ति ते ॥ २७ ॥

ते कामिनः	- वे कामनाग्रस्त,	**अग्नि मुग्धा**	- अग्नि (यज्ञ) से ही प्राप्य फलोंपर मुग्ध
कृपणा लुब्धाः	- दीन, लोभी,	**धूमतान्ताः**	- अन्तमें धूम्र (पितृयान) मार्गसे ही जाने वाले
पुष्पेषु	- (स्वर्गादि) पुष्पोंको ही	**स्वं लोकं**	- अपने निजधामको
फलबुद्धयः	- (परम) फल समझने वाले	**न विदन्ति**	- नहीं जानते ॥ २७ ॥

न ते मामंग जानन्ति हृदिस्थं य इदं यतः ।
उक्थशस्त्रा ह्यसुतृपो यथा नीहारचक्षुषः ॥ २८ ॥

न ते मां अंग जानन्ति हृदिस्थं य इदं यतः उक्थ शस्त्रा हि असुतृपः यथा नीहार चक्षुषः ॥ २८ ॥

अंग	- प्रिय उद्धव	**उक्थ शस्त्रा**	- कर्मकाण्ड की ही साधना वाले
यथा	- जैसे	**य इदं यतः**	- यह संसार जो और जिससे है
नीहार चक्षुषः	- धुंधले नेत्र वाले हों	**हृदिस्थं मां**	- उस हृदयमें स्थित मुझे
हि ते	- क्योंकि वे	**न जानन्ति**	- नहीं जानते ॥ २८ ॥
असुतृपः	- प्राणोंको ही तृप्त करने वाले		

ते मे ममविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः ।
हिंसायां यदि रागः स्याद् यज्ञ एव न चोदना ॥ २९ ॥

ते मे मतं अविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः हिंसायां यदि रागः स्यात् यज्ञ एव न चोदना ॥ २९ ॥

यदि हिंसायां - यदि हिंसामें (उसके फल मांस भक्षणमें)
रागः स्यात् - आसक्ति ही हो तो
यज्ञ एव - यज्ञमें ही करे,
चोदना - (यह परिसंख्या विधि हिंसा सीमित करनेके लिए है हिंसा की) प्रेरणा नहीं है,
ते विषयात्मकाः - वे भोगासक्त चित्त
परोक्षं मेमतं - (इस) छिपे हुए मेरे मतको
अविज्ञाय - नहीं जानते ॥ २९ ॥

हिंसाविहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया ।
यजन्ते देवता यज्ञैः पितृभूतपतीन् खलाः ॥ ३० ॥

हिंसा विहारा हि आलब्धैः पशुभिः स्व सुख इच्छया यजन्ते देवता यज्ञैः पितृ भूतपतीन् खलाः ॥ ३० ॥

हि हिंसा-विहारा - क्योंकि वे हिंसाका खेल खेलने वाले हैं
खलाः - दुष्ट हैं,
स्व सुख इच्छया - अपने सुखकी इच्छासे
पशुभिः आलब्धैः - पशु-बलिके द्वारा
यज्ञैः - यज्ञ करके
पितृ भूतपतीन् - पितृ, भूतेश्वरादि
देवता यजन्ते - देवताओंकी पूजा करते हैं ॥ ३० ॥

स्वप्नोपमममुं लोकमसन्तं श्रवणप्रियम् ।
आशिषो हृदि संकल्प्य त्यजन्त्यर्थान् यथा वणिक् ॥ ३१ ॥

स्वप्न उपमं अमुं लोकं असन्तं श्रवण प्रियं आशिषः हृदि संकल्प्य त्यजन्ति अर्थान् यथा वणिक् ॥ ३१ ॥

स्वप्न उपमं - स्वप्नके समान
असन्तं - असत्
श्रवण प्रियं - सुननेमें ही प्रिय
अमुंलोकं - इन (स्वर्गादि) लोकोंकी
हृदि आशिषः - हृदयमें अभिलाषा
संकल्प्य - करके
यथा वणिक् - व्यापारीके समान (लाभकी आशासे)
अर्थान्-त्यजन्ति - धनका त्याग करते हैं ॥ ३१ ॥

रजःसत्त्वतमोनिष्ठा रजःसत्त्वतमोजुषः ।
उपासत इन्द्रमुख्यान् देवादीन् न तथैव माम् ॥ ३२ ॥

रजः सत्त्व तमः निष्ठा रजः सत्त्व तमः जुषः उपासत इन्द्र मुख्यान् देव आदीन् न तथा एव माम् ॥ ३२ ॥

रजः सत्त्व - रजोगुणी, सत्त्वगुणी,
तमः निष्ठा - तमोगुणी निष्ठा वाले
रजः सत्त्व - रजोगुण, सत्त्वगुण,
तमः जुषः - तमोगुण युक्त
इन्द्र मुख्यान् - इन्द्र जिनमें मुख्य हैं उन
देव आदीन् - देवतादिकी (उपासना करते हैं)
तथा इव माम् न-वैसी भी मेरी नहीं
उपासत - उपासना करते ॥३२॥

इष्ट्वेह देवता यज्ञैर्गत्वा रंस्यामहे दिवि ।
तस्यान्त इह भूयास्म महाशाला महाकुलाः ॥ ३३ ॥

इष्ट्वा इह देवता यज्ञैः गत्वा रंस्या महे दिवि तस्य अन्त भूय अस्म महाशाला महाकुलाः ॥ ३३ ॥

इह यज्ञैः - (वे सोचते हैं) इस संसारमें यज्ञों द्वारा
देवता इष्ट्वा - देवताओंका यजन करके
दिविगत्वा - स्वर्ग जाकर
रंस्या महे - हम आनन्द करेंगे और
तस्य अन्त - उसके अन्तमें
भूय महाशाला - फिर विशाल भवन एवं
महाकुलाः - विशाल परिवार वाले
अस्म - होंगे ॥ ३३ ॥

एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्तमनसां नृणाम् ।
मानिनां चातिस्तब्धानां मद्वार्तापि न रोचते ।। ३४ ।।

एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्त मनसां नृणां मानिनां च अति स्तब्धानां मत् वार्ता अपि न रोचते ।। ३४ ।।

एवं पुष्पितया	- इस प्रकारकी पुष्पिता (लुभावनी)	**अति स्तब्धानां**	- अत्यन्त जड़
वाचा व्याक्षिप्त	- वाणीमें अत्यन्त लगे	**नृणां**	- मनुष्योंको
मनसां मानिनां	- मन वाले अभिमानी	**मत् वार्ता अपि**	- मेरी चर्चा भी
		न रोचते	- नहीं सुहाती ।।३४।।

वेदा ब्रह्मात्मविषयास्त्रिकाण्डविषया इमे ।
परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ।। ३५ ।।

वेदा ब्रह्म आत्म विषयाः त्रिकाण्ड विषया इमे परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ।। ३५ ।।

इमे त्रिकाण्ड	- ये त्रिकाण्ड (कर्म, ज्ञान, उपासना)	**ऋषयः**	- ऋषिगण
विषया वेदा	- विषयक वेद	**परोक्षवादा**	- परोक्ष भाषी होते हैं
ब्रह्मआत्म	- ब्रह्म एवं आत्मा	**च मम**	- तथा मुझे भी
विषयाः	- विषयक हैं,	**परोक्षं प्रियं**	- परोक्ष (बोलना) प्रिय है ।। ३५ ।।

शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयम् ।
अनन्तपारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ।। ३६ ।।

शब्द ब्रह्म सुदुर्बोधं प्राण इन्द्रिय मनः मयं अनन्त पारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ।। ३६ ।।

शब्दब्रह्म	- वेद	**समुद्रवत्**	- समुद्रके समान
सुदुर्बोधं	- समझनेमें बहुत कठिन,	**अनन्तपारं**	- अनन्तपार
प्राण इन्द्रिय	- प्राण (मध्यमा) इन्द्रिय (वैखरी)	**दुर्विगाह्यं**	- अथाह हैं ॥ ३६ ॥
मनः मयं	- मनः (परा-पश्यन्ती) स्वरूप		

मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणानन्तशक्तिना ।
भूतेषु घोष रूपेण बिसेषूर्णेव लक्ष्यते ॥ ३७ ॥

मया उपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणा अनन्त शक्तिना भूतेषु घोष रूपेण बिसेषु ऊर्णा इव लक्ष्यते ॥ ३७ ॥

मया अनन्त शक्तिना	- मुझ अनन्त शक्ति	**भूतेषु**	- प्राणियोंमें
भूम्ना ब्रह्मणा	- सर्व व्यापक ब्रह्म द्वारा	**घोष रूपेण**	- अनाहत नादके रूपमें
उपबृंहितं	- (वेद) अभिवृद्ध हैं,	**बिसेषु ऊर्णा इव**	- कमल नालमें तन्तुके समान
		लक्ष्यते	- सूक्ष्म रूपमें) लक्षित होते हैं ॥ ३७ ॥

यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमते मुखात् ।
आकाशाद् घोषवान् प्राणो मनसा स्पर्शरूपिणा ॥ ३८ ॥

यथा ऊर्णनाभिः हृदयात् ऊर्णां उद्वमते मुखात् आकाशात् घोषवान् प्राणः मनसा स्पर्श रूपिणा ॥ ३८ ॥

यथा उर्णनाभिः	- जैसे मकड़ी	**घोषवान् प्राणः**	- (ऐसे ही) अनाहत नाद युक्त प्राण
हृदयात्	- अपने पेटसे	**आकाशात्**	- आकाशसे
मुखात्	- मुख द्वारा	**स्पर्श रूपिणा**	- अक्षरात्मक रूप लेता है ॥ ३८ ॥
ऊर्णा उद्वमते	- जाला बाहर निकालती है,		

छन्दोमयोऽमृतमयः सहस्रपदवीं प्रभुः ।
ओंकाराद् व्यञ्जितस्पर्शस्वरोष्मान्तः स्थभूषिताम् ॥ ३९ ॥

छन्दः मयः अमृतमयः सहस्र पदवीं प्रभुः ओंकारात् व्यञ्जित स्पर्श स्वर ऊष्मा अन्तःस्थ भूषिताम् ॥ ३९ ॥

छन्दः मयः - वेदमय,
अमृतमयः - अमृतमय,
सहस्र पदवीं - सहस्रशीर्षा कहे जाने वाले
प्रभुः - वे समर्थ
ओंकारात् - ओंकारसे
व्यञ्जित - प्रकट हुए
स्पर्श - स्पर्श ('क' से 'म' तक २५ अक्षर)
स्वर - स्वर ('अ' से 'औ' तक)
ऊष्मा - ऊष्मा (श, ष. स, ह)
अन्तःस्थ - अन्तस्थ (य, र, ल, व) से
भूषितां - भूषित हैं ॥ ३९ ॥

विचित्रभाषावितितां छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः ।
अनन्तपारां बृहतीं सृजत्याक्षिपते स्वयम् ॥ ४० ॥

विचित्र भाषा वितितां छन्दोभिः चतुः उत्तरैः अनन्त पारां बृहतीं सृजति आक्षिपते स्वयम् ॥ ४० ॥

चतुः उत्तरैः - उत्तरोत्तर चार चार (अक्षर बढ़ने वाले)
छन्दोभिः - छन्दोंसे
विचित्र भाषा - विचित्र भाषामें
वितितां - विस्तृत हुआ
अनन्त पारां - अनन्त अपार (वेद राशिको)
स्वयं सृजति - स्वयं प्रकट करते
आक्षिपते - तथा (लोकोंमें) प्रचारित करते हैं ॥ ४० ॥

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च ।
त्रिष्टुब्जगत्यतिच्छन्दो ह्यत्यष्ट्यतिजगद् विराट् ॥ ४१ ॥

गायत्रि उष्णिक् अनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिः एव च त्रिष्टुप् जगति अतिच्छन्दः हि अत्यष्टि अति जगत् विराट् ॥ ४१ ॥

हि - क्योंकि (वेद राशिके वे छन्द) हैं
गायत्रि - गायत्री,
उष्णिक् - उष्णिक्,
अनुष्टुप् च - अनुष्टुप तथा
बृहती पङ्क्तिः - वृहती, पङ्क्ति भी,
एव
च त्रिष्टुप् - त्रिष्टुप्,
जगति - जगती,
अतिच्छन्दः - अतिच्छन्द,
अत्यष्टि - अत्यष्टि,
अतिजगत् - अति जगती और
विराट् - विराट् ॥ ४१ ॥

किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत् ।
इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद् वेद कश्चन ॥ ४२ ॥

किं विधत्ते किं आचष्टे किं अनूद्य विकल्पयेत् इति अस्य हृदयं लोके न अन्यः मत् वेद कश्चन ॥ ४२ ॥

किं विधत्ते - (यह वेदवाणी) क्या विधान करती है,
किं आचष्टे - किनका वर्णन करती है,
किं अनूद्य - किन (प्रतीतियोंका) अनुवाद करके
विकल्पयेत् - (अनेकों) विकल्प करती है
इति अस्या - इस प्रकार
हृदयं इसका मर्म
लोके मत् - संसारमें मुझे
अन्यः छोड़कर दूसरा
कश्चन न वेद - कोई नहीं जानता ॥ ४२ ॥

मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम् ।
एतावान् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम् ।
मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिद्ध्य प्रसीदति ॥ ४३ ॥

मां विधत्ते अभिधत्ते मां विकल्प्य अपोह्यते तु अहं एतावान् सर्ववेद अर्थः शब्द आस्थाय मां भिदां माया मात्रं अनूद्य अन्ते प्रतिषिद्ध्य प्रसीदति ॥ ४३ ॥

मां विधत्ते - (श्रुति) मेरा ही विधान करती है,
मां अभिधत्ते - मेरा ही वर्णन करती है,
तु अहं - मुझमें ही तो
विकल्प्य - अनेक विकल्प करके
अपोह्यते - उनका निषेध कर देती है
सर्व वेद अर्थः - सब वेदोंका तात्पर्य
एतावान् - इतना ही है कि
शब्द आस्थाय - शब्दका आश्रय लेकर
मायामात्रं - समस्त मायिक
भिदां अनूद्य - भेदोंका अनुवाद करके
अन्ते प्रतिषिद्ध्य - अन्तमें उनका निषेध करके
मां प्रसीदति - मुझे (प्रतिपादित करके) प्रसन्न होती हैं
॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

उद्धव उवाच–

कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो ।
नवैकादश पञ्च त्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥ १ ॥

कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातानि ऋषिभिः प्रभो नव एकादश पञ्च त्रीणि आत्थ त्वं इह शुश्रुम ॥ १ ॥

विश्वेश प्रभो	- जगदीश्वर ! प्रभो !	**इह त्वं**	- यहां आपने (उन्नीसवें अध्यायमें)
ऋषिभिः	- ऋषियों द्वारा	**नव एकादश**	- नौ, ग्यारह,
कति तत्त्वानि	- कितने तत्त्वोंकी	**पञ्च त्रीणि**	- पांच और तीन
संख्यातानि	- गणना की गयी है ?	**आत्थ शुश्रुम**	- (कुल अट्ठाइस) बतलाये, वह (मैंने) सुना ॥ १ ॥

केचित् षड्विंशतिं प्राहुरपरे पञ्चविंशतिम् ।
सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ॥ २ ॥

केचित् षट्विंशतिं प्राहुः अपरे पञ्चविंशतिं सप्त एके नव षट् केचित् चत्वारि एकादश अपरे ॥ २ ॥

केचित्	- कोई	**एके सप्तनव**	- कोई सात, नौ या
षट् विंशतिं	- छब्बीस,	**षट्**	छः,
अपरे पंचविंशतिं	- दूसरे पच्चीस,	**केचित् चत्वारि**	- कोई चार,
		अपरे एकादश	- दूसरे ग्यारह बतलाते
		प्राहुः	हैं ॥ ३ ॥

केचित् सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश ।
एतावत्त्वं हि संख्यानामृषयो यद्विवक्षया ।
गायन्ति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

केचित् सप्तदश प्राहुः षोडश एके त्रयोदश एतावत्त्वं हि संख्यानं ऋषयः यत् विवक्षया गायन्ति पृथक् आयुष्मन् इदं नः वक्तुं अर्हसि ॥ ३ ॥

आयुष्मन्	- आयुष्मन् !	**पृथक्**	- अलग-अलग
केचित् सप्तदश	- कोई सत्रह,	**एतावत्त्वं**	- इतनी ही
एके षोडश	- कोई सोलह या	**संख्यानं गायन्ति**	- संख्या है यह कहते हैं,
त्रयोदश प्राहुः	- तेरह बतलाते हैं,	**इदं नः**	- (अतः) यह मुझसे (आपको)
हि यत्-	- क्योंकि जो वर्णन		
विवक्षया	करनेकी इच्छा वाले	**वक्तुं अर्हसि**	- बतलाना चाहिए ॥ ३ ॥
ऋषयः	- ऋषि हैं,		

श्रीभगवानुवाच–

युक्तं च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा ।
मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ॥ ४ ॥

युक्तं च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा मायां मदीयां उद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ॥ ४ ॥

यथा ब्राह्मणा	- जैसा ब्राह्मणगण	**मदीयां मायां**	- मेरी मायाको
भाषन्ते	- कहते हैं	**उद्गृह्य**	- स्वीकार करके
सर्वत्र	- सब कहीं	**वदतां**	- बोलने वालोंके लिए
युक्तं च सन्ति	- (वह) उपयुक्त ही है,	**नु किं दुर्घटं**	- भला क्या असम्भव है ॥ ४ ॥

नैतदेवं यथाऽऽत्थ त्वं यदहं वच्मि तत्तथा ।
एवं विवदतां हेतुं शक्तयो मे दुरत्ययाः ॥ ५ ॥

न एतत् एवं यथा आत्थ त्वं यत् अहं वच्मि तत् तथा एवं विवदतां हेतुं शक्तयः मे दुरत्ययाः ॥ ५ ॥

यथा त्वं आत्थ	- जैसा तुमने कहा	**एवं विवदतां**	- इस प्रकार विवाद करनेका
एतत् एवं न	- यह ऐसा नहीं है,	**हेतुं**	- कारण
यत् अहं वच्मि	- जैसा मैं कहता हूँ	**मे दुरत्ययाः**	- मेरी दुष्पार
तत् तथा	- वह वैसा है,	**शक्तयः**	- शक्तियां हैं ॥ ५ ॥

यासां व्यतिकरादासीद् विकल्पो वदतां पदम् ।
प्राप्ते शमदमेऽप्येति वादस्तमनु शाम्यति ॥ ६ ॥

यासां व्यतिकरात् आसीत् विकल्पः वदतां पदं प्राप्ते शमदमे अपि एति वादः तं अनु शाम्यति ॥ ६ ॥

यासां	- जिन (शक्तियों) के	**शमदमे प्राप्ते**	- शम-दम प्राप्त होजानेपर
व्यतिकरात्	विकारसे	**एति**	- (यह संसार) लौट सा
वदतां पदं	- बोलने वालोंका आश्रय		जाता है
विकल्पः आसीत्	- यह अनेक रूप (संसार) है	**तं अनु**	- उसके पीछे (होने वाला)
		वादः शाम्यति	- विवाद शान्त हो जाता है ॥ ६ ॥

परस्परानुप्रवेशात् तत्त्वानां पुरुषर्षभ ।
पौर्वापर्यप्रसंख्यानां यथा वक्तुर्विवक्षितम् ॥ ७ ॥

परस्पर अनुप्रवेशात् तत्त्वानां पुरुष ऋषभ पौर्व अपर्य प्रसंख्यानां यथा वक्तुः विवक्षितम् ॥ ७ ॥

पुरुष ऋषभ	- पुरुष श्रेष्ठ !	**पौर्व अपर्य**	- इनमें (कौन) पहिले (कारण) और (कौन) पीछेका (कार्य) है
तत्त्वानां	- तत्त्वोंके	**वक्तुः विवक्षितं**	- वक्ताकी बोलनेकी इच्छाके
परस्पर	- परस्पर	**यथा**	- अनुसार (होता) है ॥७॥
अनुप्रवेशात्	- एक दूसरेमें प्रविष्ट रहनेका कारण		

एकस्मिन्नपि दृश्यन्ते प्रविष्टानीतराणि च ।
पूर्वस्मिन् वा परस्मिन् वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः ॥ ८ ॥

एकस्मिन् अपि दृश्यन्ते प्रविष्टान् इतराणि च पूर्वस्मिन् वा परस्मिन् वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः ॥ ८ ॥

पूर्वस्मिन् वा	- (अपनेसे) पहिलेमें या	**तत्त्वानि**	- तत्त्व
परस्मिन्	- पिछले ही	**एकस्मिन् अपि**	- एकमें भी
तत्त्वे वा	- तत्त्वमें ही	**प्रविष्टानि**	- प्रवेश किये
सर्वशः इतराणि	- सभी दूसरे	**दृश्यन्ते**	- दीख पड़ते हैं ॥ ८ ॥

पौर्वापर्यमतोऽमीषां प्रसंख्यानमभीप्सताम् ।
यथा विविक्तं यद्वक्त्रं गृह्णीमो युक्तिसम्भवात् ॥ ९ ॥

पौर्व अपर्यं अतः अमीषां प्रसंख्यानं अभीप्सतां यथा विविक्तं यत् वक्त्रं गृह्णीमः युक्ति सम्भवात् ॥ ९ ॥

अतः अमीषां	- अतः इनका	**यत् वक्त्रं**	- जिसके मुखसे (हुआ) है
पौर्व अपर्यं	- कारण-कार्य भाव	**युक्ति सम्भवात्**	- युक्तिसे सम्भव होनेके कारण
यथा विविक्तं	- जैसा विभाजन करके	**गृह्णीमः**	- (हम) स्वीकार करते हैं ॥ ९ ॥

अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम् ।
स्वतो न सम्भवादन्यस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत् ॥ १० ॥

अनादि अविद्या युक्तस्य पुरुषस्य आत्मवेदनं स्वतः न सम्भवात् अन्यः तत्त्वज्ञः ज्ञानदः भवेत् ॥ १० ॥

अनादि अविद्या - अनादि अविद्यासे
युक्तस्य पुरुषस्य - युक्त पुरुषको
आत्मवेदनं - आत्मज्ञान
स्वतः न- - स्वतः होना सम्भव न
सम्भवात् होनेसे
अन्यः ज्ञानदः - दूसरा ज्ञानदाता
तत्त्वज्ञः भवेत् - तत्त्वेज्ञ होता है (इस प्रकार २४ तत्त्व, पुरुष तथा ज्ञानदाता ईश्वर २६ तत्त्व हैं, यह एक मत है) ॥ १० ॥

पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि ।
तदन्यकल्पनापार्था ज्ञानं च प्रकृतेर्गुणः ॥ ११ ॥

पुरुष ईश्वरयोः अत्र न वैलक्षण्यं अणु अपि तत् अन्य कल्पना अपार्था ज्ञानं च प्रकृतेः गुणः ॥ ११ ॥

अत्र - इस (छब्बीस तत्त्व मानने वाले) मतमें
पुरुष ईश्वरयोः - पुरुष और ईश्वरमें
अणु अपि - तनिक भी
वैलक्षण्यं न - विलक्षणता (अन्तर) नहीं है
ज्ञानं च - और ज्ञान भी
प्रकृतेः गुणः - (सत्त्वात्मिका) प्रकृतिका गुण है
तत् अन्यत् - अतः (पुरुष-ईश्वरमें) भेदकी
कल्पना- - कल्पना अवास्तविक है
अपार्था (इस प्रकार २५ तत्त्व रहते हैं) ॥ ११ ॥

प्रकृतिर्गुणसाम्यं वै प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ।
सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥ १२ ॥

प्रकृतिः गुण साम्यं वै प्रकृतेः न आत्मनः गुणाः सत्त्वं रजः तम इति स्थिति उत्पत्ति अन्त हेतवः ॥ १२ ॥

गुण साम्यं - (तीनों) गुणोंकी-साम्यावस्था
वै प्रकृतिः - निश्चय ही प्रकृति है,
प्रकृतेः गुणाः - प्रकृतिके गुण हैं,
आत्मनः न - आत्माके नहीं हैं
सत्त्वं रजः - सत्त्वगुण, रजोगुण,
तम इति - तमोगुण ये (तीनों गुण)
स्थिति उत्पत्ति - (सृष्टिकी) स्थिति, उत्पत्ति,
अन्त हेतवः - प्रलयके कारण हैं ॥ १२ ॥

सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते ।
गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च ॥ १३ ॥

सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमः अज्ञानं इह उच्यते गुण व्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रं एव च ॥ १३ ॥

इह - इस प्रसंगमें
सत्त्वं ज्ञानं - सत्त्वगुण ही ज्ञान,
रजः कर्म - रजोगुण ही कर्म
तमः अज्ञानं - तमोगुण ही अज्ञान,
गुण व्यतिकरः - गुणोंमें वैषम्य उत्पन्न करने वाला (ईश्वर) ही
कालः - काल
सूत्रं एव च - महत्तत्त्व ही
स्वभावः- - स्वभाव कहा जाता है
उच्यते ॥ १३ ॥

पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमहंकारो नभोऽनिलः ।
ज्योतिरापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव ॥ १४ ॥

पुरुषः प्रकृतिः व्यक्तं अहंकारः नभः अनिलः ज्योतिः आपः क्षितिः इति तत्त्वानि युक्तानि मे नव ॥ १४ ॥

पुरुषः प्रकृतिः - पुरुष, प्रकृति,
व्यक्तं - महत्तत्त्व,
अहंकारः - अहंकार,
नभः अनिलः - आकाश, वायु,
ज्योतिः आपः - अग्नि, जल,
क्षितिः इति - पृथ्वी, ये
नव तत्त्वानि - नौ तत्त्व
मे युक्तानि - मैंने (पहिले) गिना दिये हैं ॥ १४ ॥

श्रोत्रं त्वग्दर्शनं घ्राणो जिह्वेति ज्ञानशक्तयः ।
वाक्पाण्युपस्थपाय्वङ्घ्रिकर्माण्यङ्गोभयं मनः ॥ १५ ॥

श्रोत्रं त्वक् दर्शनं घ्राणः जिह्वा इति ज्ञान शक्तयः वाक् पाणि उपस्थ अङ्घ्रि पायु कर्माणि अंग उभयं मनः ॥ १५ ॥

अंग	- प्रिय उद्धवः	**वाक् पाणि**	- वाणी, हाथ,
श्रोत्रं त्वक्	- कान, त्वचा,	**पायु उपस्थ**	- गुदा, उपस्थ,
जिह्वा इति	- रसना ये	**अङ्घ्रि कर्माणि**	- पैर कर्मेन्द्रिय हैं,
ज्ञान शक्तयः	- ज्ञान शक्ति (ज्ञानेन्द्रियां) हैं	**मनः उभयं**	- मन उभयात्मक है ॥ १५ ॥

शब्दः स्पर्शो रसो गन्धो रूपं चेत्यर्थजातयः ।
गत्युक्त्युत्सर्गशिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः ॥ १६ ॥

शब्दः स्पर्शः रसः गन्धः रूपं च इति अर्थ जातयः गति उक्ति उत्सर्ग शिल्पानि कर्म आयतन सिद्धयः ॥ १६ ॥

शब्दः स्पर्शः	- शब्द, स्पर्श,	**गति उत्सर्ग**	- गति, मलत्याग एवं
रसः गन्धः	- रस, गन्ध	**शिल्पानि**	कर्म
च रूपं इति	- तथा रूप ये	**कर्म आयतन**	- कर्मेन्द्रियोंकी
जातयः अर्थ	- (पंच) ज्ञानेन्द्रियों के (पाँच) विषय,	**सिद्धयः**	- सिद्धियां (क्रियायें) हैं ॥ १६ ॥

सर्गादौ प्रकृतिर्ह्यस्य कार्यकारणरूपिणी ।
सत्त्वादिभिर्गुणैर्धत्ते पुरुषोऽव्यक्त ईक्षते ॥ १७ ॥

सर्ग आदौ प्रकृतिः हि अस्य कार्य कारणरूपिणी सत्त्व आदिभिः गुणैः धत्ते पुरुषः अव्यक्त ईक्षते ॥ १७ ॥

हि सर्ग आदौ - क्योंकि सृष्टिके प्रारम्भमें
कार्यकारण - कार्य और कारण
रूपिणी - (दोनोंका) स्वरूप
अस्य प्रकृतिः - इस (परमात्मा) की प्रकृति
सत्त्व आदिभिः - सत्त्व आदि
गुणैः - गुणोंके द्वारा
धत्ते - (स्थिति, उत्पत्ति, प्रलय) धारण करती है
अव्यक्त पुरुषः - अव्यक्त पुरुष
ईक्षते - (प्रकृति तथा उसकी क्रियाका) साक्षी रहता है ॥ १७ ॥

व्यक्तादयो विकुर्वाणा धातवः पुरुषेक्षया ।
लब्धवीर्याः सृजन्त्यण्डं संहताः प्रकृतेर्बलात् ॥ १८ ॥

व्यक्त आदयः विकुर्वाणा धातवः पुरुष ईक्षया लब्ध वीर्याः सृजन्ति अण्डं संहताः प्रकृतेः बलात् ॥ १८ ॥

पुरुष ईक्षया - पुरुषकी दृष्टिसे
लब्धवीर्याः - शक्ति प्राप्त करके
व्यक्त आदयः - महत्तत्त्वादि
धातवः - धातुयें (मूल तत्त्व)
संहताः - परस्पर मिलकर
प्रकृतेः बलात् - प्रकृतिकी शक्तिसे
विकुर्वाणा - परिवर्तित होते हुए
अण्डं सृजन्ति - ब्रह्माण्ड उत्पन्न करते हैं ॥ १८ ॥

सप्तैव धातव इति तत्रार्थाः पञ्च खादयः ।
ज्ञानमात्मोभयाधारस्ततो देहेन्द्रियासवः ॥ १९ ॥

सप्त एव धातव इति तत्र अर्थाः पञ्च ख आदयः ज्ञानं आत्मा उभय आधारः ततः देह इन्द्रिय आसवः ॥ १९ ॥

धातव	- तत्त्व
सप्त एव इति	- सात ही हैं ऐसा (जो लोग मानते हैं)
तत्र	- उनके मतमें
ख आदय	- आकाशादि
पञ्च	- पांच (महाभूत)
आत्मा	- जीव तथा
उभय आधारः	- (जीव तथा पंचमहाभूत) दोनों का आधार
ज्ञानं	- ज्ञान (स्वरूप परमात्मा) है,
ततः देह-इन्द्रिय	- फिर इन्हींसे शरीर, इन्द्रियां
असवः	- प्राण (उत्पन्न होते) हैं ॥ १९ ॥

षडित्यत्रापि भूतानि पञ्च षष्ठः परः पुमान् ।
तैर्युक्त आत्मसम्भूतैः सृष्ट्वेदं समुपाविशत् ॥ २० ॥

षट् इति अत्र अपि भूतानि पञ्च षष्ठः परः पुमान् तैः युक्त आत्म सम्भूतैः सृष्ट्वा इदं सम उपाविशत् ॥ २० ॥

षट् इति	- (तत्त्व) छः हैं ऐसा (जो मानते हैं)
अत्र अपि	- इस (मत) में भी
पञ्च भूतानि	- पंच महाभूत और
षष्ठः परः-पुमान्	- छठवाँ परम पुरुष है,
आत्म सम्भूतैः	- अपने से ही उत्पन्न
तैः युक्त	- उन (पंच भूतों) से युक्त होकर
इदं सृष्ट्वा	- इस जगतकी सृष्टि करके
सम उपाविशत्	- (वह परमात्मा) एक साथ सबमें प्रविष्ट होगया ॥ २० ॥

चत्वार्येवेति तत्रापि तेज आपोऽन्नमात्मनः ।
जातानि तैरिदं जातं जन्मावयविनः खलु ॥ २१ ॥

चत्वारि एव इति तत्र अपि तेजः आपः अन्नं आत्मनः जातानि तैः इदं जातं जन्म अवयविनः खलु ॥ २१ ॥

चत्वारि एव - (मूल तत्त्व) चार ही हैं
तत्र अपि - ऐसे (मत) में भी
तेजः आपः - अग्नि, जल,
अन्नं आत्मनः - पृथ्वी आत्मासे (उत्पन्न) हैं
तैः अवयविनः - उन्हीं मूल शरीरों (तत्त्वों) से
जातानि खलु - उत्पन्न हुओं से ही
इदं जातं - यह (सृष्टि) उत्पन्न हुई ॥ २१ ॥

संख्याने सप्तदशके भूतमात्रेन्द्रियाणि च ।
पञ्च पञ्चैकमनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥ २२ ॥

संख्याने सप्तदशके भूत मात्र इन्द्रियाणि च पञ्च पञ्च एक मनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥ २२ ॥

सप्तदशके - सत्रह (तत्त्व मानकर)
संख्याने - गणना करनेपर
पञ्च पञ्च - पांच पांच
भूत मात्र - महाभूत, तन्मात्रायें,
च इन्द्रियाणि - तथा ज्ञानेन्द्रियां,
एक मनसा - एक मन और
सप्तदशः - सत्रहवां
आत्मा स्मृतः - आत्मा कहा गया है ॥ २२ ॥

तद्वत् षोडशसंख्याने आत्मैव मन उच्यते ।
भूतेन्द्रियाणि पञ्चैव मन आत्मा त्रयोदश ॥ २३ ॥

तत् वत् षोडश संख्याने आत्मा एव मन उच्यते भूत इन्द्रियाणि पञ्च एव मन आत्मा त्रयोदश ॥ २३ ॥

तत् वत् - इसी प्रकार
षोडश संख्याने - (तत्त्वोंकी) गणना सोलह करनेपर
आत्मा एव - आत्माको ही
मन उच्यते - मन कहा जाता है,
त्रयोदश - (तत्त्वोंकी संख्या) तेरह (मानने वाले)
भूत इन्द्रियाणि - महाभूत, ज्ञानेन्द्रियां,
पञ्च एव - पांच पांच ही (मानते) हैं
मन आत्मा - मन, आत्मा (जीव और परमात्मा) मानते हैं ॥ २३ ॥

एकादशत्व आत्मासौ महाभूतेन्द्रियाणि च ।
अष्टौ प्रकृतयश्चैव पुरुषश्च नवेत्यथ ॥ २४ ॥

एकादशत्व आत्मा असौ महाभूत इन्द्रियाणि च अष्टौ प्रकृतयः च एव पुरुषः च नव इति अथ ॥ २४ ॥

एकादशत्व	-	(तत्त्वोंकी संख्या) ग्यारह (मानने वाले)	**अथ नव इति**	-	और नौ (तत्त्व) ऐसा (मानने वाले)
महाभूत	-	(पांच) महाभूत	**अष्टौ प्रकृतयः**	-	आठ (पंच महाभूत, मन, बुद्धि, अहंकार) प्रकृतियां
च इन्द्रियाणि	-	तथा (पांच) ज्ञानेन्द्रियां एवं			
असौ आत्मा	-	(एक) यह आत्मा (मानते हैं)	**च पुरुषः-एव च**	-	...ा (एक) पुरुषको भी (मानते हैं) ॥२४॥

इति नानाप्रसंख्यानं तत्त्वानामृषिभिः कृतम् ।
सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद् विदुषां किमशोभनम् ॥ २५ ॥

इति नाना प्रसंख्यानं तत्त्वानां ऋषिभिः कृतं सर्वं न्याय्यं युक्तिमत् त्वात् विदुषां किं अशोभनम् ॥ २५ ॥

इति ऋषिभिः	-	इस प्रकार ऋषियों द्वारा	**युक्तिमत् त्वात्**	-	युक्ति युक्त होनेके कारण
नाना प्रसंख्यानं	-	अनेक प्रकारकी तत्त्व गणना	**सर्वं न्याय्यं**	-	सब उचित है,
कृतं	-	की गयी है,	**विदुषां**	-	विद्वानोंके लिए
			किं अशोभनं	-	क्या अनुचित है ॥ २५ ॥

उद्धव उवाच–

प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ यद्यप्यात्मविलक्षणौ ।
अन्योन्यापाश्रयात्कृष्ण दृश्यते न भिदा तयोः ॥ २६ ॥

प्रकृतिः पुरुषः च उभौ यद्यपि आत्म विलक्षणौ अन्य अन्य अपाश्रयात् कृष्ण दृश्यते न भिदा तयोः ॥ २६ ॥

कृष्ण	- श्रीकृष्ण !	**अन्य अन्य**	- (किन्तु) एक दूसरेका
प्रकृतिः च	- प्रकृति तथा	**अपाश्रयात्**	- आश्रय लेनेके कारण
पुरुषः उभौ	- पुरुष दोनों	**तयोः भिदा**	- उनमें भेद
यद्यपि	- यद्यपि	**न दृश्यते**	- नहीं दीखता ॥ २६ ॥
आत्म विलक्षणौ	- स्वरूपसे सर्वथा भिन्न हैं		

प्रकृतौ लक्ष्यते ह्यात्मा प्रकृतिश्च तथाऽऽत्मनि ।
एवं मे पुण्डरीकाक्ष महान्तं संशयं हृदि ।
छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ वचोभिर्नयनैपुणैः ॥ २७ ॥

प्रकृतौ लक्ष्यते हि आत्मा प्रकृतिः च तथा आत्मनि एवं मे पुण्डरीकाक्ष महान्तं संशयं हृदि छेत्तुं अर्हसि सर्वज्ञ वचोभिः नय नैपुणैः ॥ २७ ॥

पुण्डरीकाक्ष	- कमलनयन !	**महान्तं संशयं**	- महान् संशय है
हि प्रकृतौ	- क्योंकि प्रकृतिमें भी	**सर्वज्ञ**	- सर्वज्ञ !
आत्मा लक्ष्यते	- आत्मा जान पड़ता है	**नय नैपुणैः**	- नीति-निपुण
च तथा	- और ऐसे ही	**वचोभिः**	- वाणीसे
आत्मनि प्रकृतिः	- आत्मामें प्रकृति (जान पड़ती है)	**छेत्तुं अर्हसि**	- (आपको इसे) काट देना चाहिए ॥ २७ ॥
एवं मे हृदि	- इस प्रकारका मेरे हृदयमें		

त्वत्तो ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषस्तेऽत्र शक्तितः ।
त्वमेव ह्यात्ममायाया गतिं वेत्थ न चापरः ॥ २८ ॥

त्वत्तः ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषः ते अत्र शक्तितः त्वं एव हि आत्म मायाया गतिं वेत्थ न च अपरः ॥ २८ ॥

हि त्वत्तः - क्योंकि आपसे ही
जीवानां ज्ञानं - जीवोंको ज्ञान प्राप्त होता है और
अत्र ते- - यहां संसारमें तुम्हारी
शक्तितः ही शक्ति (माया) द्वारा
प्रमोषः - हरण कर लिया जाता है,
हि आत्म- - क्योंकि अपनी मायाकी
मायाया
गतिं त्वं एव - गति आपही
वेत्थ - जानते हैं
अपरः न च - दूसरा कोई नहीं (जानता) २८ ॥

श्रीभगवानुवाच–

प्रकृतिः पुरुषश्चेति विकल्पः पुरुषर्षभ ।
एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः ॥ २९ ॥

प्रकृतिः पुरुषः च इति विकल्पः पुरुष ऋषभ एष वैकारिकः सर्गः गुण व्यतिकर आत्मकः ॥ २९ ॥

पुरुष ऋषभ - पुरुष श्रेष्ठ !
प्रकृतिः च - प्रकृति और
पुरुषः पुरुष
इति विकल्पः - यह भेद कल्पनासे है,
एष सर्गः - यह सृष्टि
गुण व्यतिकर - गुणोंके विकार
आत्मकः - स्वरूप (उत्पन्न होनेसे)
वैकारिकः - विकारमयी (परिवर्तनशीला) है ॥ २९ ॥

ममांग माया गुणमय्यनेकधा
विकल्पबुद्धीश्च गुणैर्विधत्ते ।
वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेक-
मथाधिदैवमधिभूतमन्यत् ॥ ३० ॥

मम अंग माया गुणमयि अनेकधा विकल्प बुद्धीः च गुणैः विधत्ते वैकारिकः त्रिविधः अध्यात्मं एकं अथ अधिदैवं अधिभूतं अन्यत् ॥ ३० ॥

अंग	- प्रिय उद्धव !
मम गुणमयि	- मेरी गुणमयी
माया अनेकधा	- माया अनेक प्रकारकी
विकल्प-	- कल्पना युक्त बुद्धि भी
बुद्धीः च	
गुणैः विधत्ते	- गुणोंके आश्रयसे धारण करती है
वैकारिकः	- यह विकारवान् सृष्टि
त्रिविधः	- तीन प्रकारकी है
एकं-	- एक (प्रथम) आध्यात्मिक,
अध्यात्मं	
अथ अधिदैवं	- फिर आधिदैविक
अन्यत्-	- तीसरी आधिभौतिक
अधिभूतं	॥ ३० ॥

विशेष - सृष्टि-निर्माण प्रक्रिया आपके निर्माणके समान ही है । कुछ निर्माण करना हो तो पहिले उसका रूप मनमें आता है । यह अध्यात्म हुआ । फिर आपकी इन्द्रियां सक्रिय होती हैं । यह अधिदैव हुआ । अन्तमें वह मानसिक रूप बाहर बनता है । यह आधिभौतिक रूप है ।

दृग् रूपमार्कं वपुरत्र रन्ध्रे
परस्परं सिध्यति यः स्वतः खे ।
आत्मा यदेषामपरो य आद्यः
स्वयानुभूत्याखिलसिद्धसिद्धिः ।
एवं त्वगादि श्रवणादि चक्षु-
र्जिह्वादि नासादि च चित्तयुक्तम् ॥ ३१ ॥

दृक् रूपं अर्कं वपुः अत्र रन्ध्रे परस्परं सिध्यति यः स्वतः खे आत्मा यत् ऐषां अपरः य आद्यः स्वया अनुभूत्या अखिल सिद्ध सिद्धिः एवं त्वक् आदि श्रवण आदि चक्षुः जिह्वा आदि नासा आदि च चित्त युक्तम् ॥ ३१ ॥

अत्र वपुः रन्ध्रे - (जैसे) यहां शरीरके नेत्र छिद्राकाश (गोलक) में
दृक् - नेत्रेन्द्रिय (अध्यात्म) है
रूपं - रूप (अधिभूत है)
अर्कं - (नेत्र स्थित) सूर्य (का अंश अधिदेव है)
परस्परं सिध्यति - परस्पर सिद्ध सफल होते हैं
यत् येषां अपरः - क्योंकि जो इनसे पृथक
आद्यः आत्मा - सर्वकारण कारण आत्मा है
अखिल सिद्धिः - सबको सिद्ध (प्रमाणित) करने वाला
स्वया अनुभूत्या - अपने अनुभवसे ही
सिद्ध - सिद्ध है,
एवं त्वक्- - इसी प्रकार त्वचा
आदि (वायु) आदि,
श्रवण - कान (आकाश) आदि,
चक्षुः - नेत्र
च नासादि - तथा नासिका (पृथ्वी) आदिकी
चित्त युक्तं - चित्त सहित (स्थिति) है ॥ ३१ ॥

योऽसौ गुणक्षोभकृतो विकारः
प्रधानमूलान्महतः प्रसूतः ।
अहं त्रिवृन्मोहविकल्पहेतु-
र्वैकारिकस्तामस ऐन्द्रियश्च ॥ ३२ ॥

यः असौ गुण क्षोभ कृतः विकारः प्रधान मूलात् महतः प्रसूतः अहं त्रिवृत् मोह विकल्प हेतुः वैकारिकः तामस ऐन्द्रियः च ॥ ३२ ॥

प्रधान मूलात् - प्रकृति रूपी जड़से
महतः प्रसूतः - महत्तत्त्व से उत्पन्न
यः असौ - जो यह
गुण क्षोभ कृतः - गुणोंके क्षोभसे उत्पन्न
विकारः अहं - विकार रूप अहंकार है
त्रिवृत् - त्रिविध है,
वैकारिकः - वैकारिक,
तामस च - तामस तथा
ऐन्द्रियः - (ऐन्द्रियक) राजस (यही)
मोह विकल्प हेतुः - अज्ञान और विविधताका कारण है ॥ ३२ ॥

आत्मा परिज्ञानमयो विवादो
ह्यस्तीति नास्तीति भिदार्थनिष्ठः ।
व्यर्थोऽपि नैवोपरमेत पुंसां
मत्तः परावृत्तधियां स्वलोकात् ॥ ३३ ॥

आत्मा परिज्ञानमयः विवादः हि अस्ति इति न अस्ति इति भिदा अर्थ निष्ठः व्यर्थः अपि न एव उपरमेत पुंसां मत्तः पर आवृत्तधियां स्वलोकात् ॥ ३३ ॥

आत्मा	- आत्मा	**व्यर्थः अपि**	- (यह विवाद) व्यर्थ होनेपर भी
परिज्ञानमयः	- शुद्ध ज्ञान स्वरूप है	**मत्तः स्वलोकात्**	- मुझ निजधाम स्वरूपसे
हि अस्ति इति	- क्योंकि 'है' इस प्रकार और	**पर आवृत्त धियां**	- पराङ्मुख चित्त
न अस्ति इति	- 'नहीं है' इस प्रकारका	**पुंसां न एव**	- पुरुषोंका नहीं ही
विवादः	- विवाद	**उपरमेत**	- छूट पाता है ॥३३॥
भिदा अर्थ	- भेदं दृष्टि मूलक है,		
निष्ठः			

उद्धव उवाच–

त्वत्तः परावृत्तधियः स्वकृतैः कर्मभिः प्रभो ।
उच्चावचान् यथा देहान् गृह्णन्ति विसृजन्ति च ॥ ३४ ॥

त्वत्तः पर आवृत्त धियः स्व कृतैः कर्मभिः प्रभो उच्च अवचान् यथा देहान् गृह्णन्ति विसृजन्ति च ॥ ३४ ॥

प्रभो	- प्रभा !	**उच्च अवचान**	- श्रेष्ठ-कनिष्ठ
तत्त्वः पर आवृत्त	- आपसे विमुख	**देहान् यथा**	- शरीरोंको जैसे ग्रहण करते
धियः	- चित्त (जीव)	**गृह्णन्ति**	
स्वकृतैः कर्मभिः	- अपने किये कर्मोंसे	**च विसृजन्ति**	- तथा छोड़ते हैं ॥ ३४ ॥

तन्ममाख्याहि गोविन्द दुर्विभाव्यमनात्मभिः ।
न ह्येतत् प्रायशो लोके विद्वांसः सन्ति वञ्चिताः ॥ ३५ ॥

तत् मम आख्याहि गोविन्द दुर्विभाव्यं अनात्मभिः न हि एतत् प्रायशः लोके विद्वान् सः सन्ति वञ्चिताः ॥ ३५ ॥

गोविन्द - गोविन्द !
अनात्मभिः - आत्मज्ञान रहित लोगोंके लिए
दुर्विभाव्यं - अचिन्त्य
तत् मम - यह विषय मुझे
आख्याहि - बतलाइये
हि लोके - क्योंकि संसारमें
विद्वान् सः - विद्वान भी
प्रायशः - प्रायः (इससे)
वञ्चिताः सन्ति - वञ्चित हैं ॥ ३५ ॥

श्रीभगवानुवाच—

मनः कर्ममयं नृणामिन्द्रियैः पञ्चभिर्युतम् ।
लोकाल्लोकं प्रयात्यन्य आत्मा तदनुवर्तते ॥ ३६ ॥

मनः कर्ममयं नृणां इन्द्रियैः पञ्चभिः युतं लोकात् लोकं प्रयाति अन्य आत्मा तत् अनुवर्तते ॥ ३६ ॥

नृणां मनः - मनुष्योंका मन
कर्ममयं - कर्म (संस्कार) स्वरूप है,
पञ्चभिः - (यही) पांच
इन्द्रियैः युतं - (ज्ञान) इन्द्रियों सहित
लोकात् लोकं - एक लोकसे दूसरे लोक
प्रयाति - जाता है,
आत्मा अन्य - आत्मा (इससे) भिन्न है पर
तत् अनुवर्तते - उस (मन) के अनुसार व्यवहार करता है ॥ ३६ ॥

ध्यायन्मनोऽनुविषयान् दृष्टान् वानुश्रुतानथ ।
उद्यत् सीदत् कर्मतन्त्रं स्मृतिस्तदनु शाम्यति ॥ ३७ ॥

ध्यायन् मनः अनु विषयान् दृष्टान् वा अनुश्रुतान् अथ उद्यत् सीदत् कर्मतन्त्रं स्मृतिः तत् अनु शाम्यति ॥ ३७ ॥

दृष्टान् वा	- देखे हुए अथवा	**सीदत्**	- दुःखी होता है,
अनुश्रुतान् अथ	- बार-बार सुने हुए ही	**कर्मतन्त्रं**	- मन कर्म पराधीन है
विषयान्	- विषयोंका	**तत् अनु**	- पर उसके (नये उत्साह
अनुध्यायन्	- बार-बार चिन्तन करता हुआ		या दुःखके) पीछे
		स्मृतिः	- (पिछली) स्मृति
मनः उद्यत्	- मन (उनके आनेको) प्रस्तुत होता था	**शाम्यति**	- भूल जाती है ॥३७॥

विषयाभिनिवेशेन नात्मानं यत् स्मरेत् पुनः ।
जन्तोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः ॥ ३८ ॥

विषय अभिनिवेशेन न आत्मानं यत् स्मरेत् पुनः जन्तोः वै कस्यचित् हेतोः मृत्युः अत्यन्त विस्मृतिः ॥ ३८ ॥

विषय	- शरीरको	**पुनः आत्मानं**	- फिर अपने (पिछले) शरीरको
अभिनिवेशेन	- मैं माननेके कारण	**न स्मरेत्**	- नहीं स्मरण कर पाता
वै कस्यचित्	- निश्चय किसी भी	**अत्यन्त-**	- यह (शरीरकी) अत्यन्त
हेतोः	कारणसे	**विस्मृतिः**	विस्मृति
यत् जन्तोः	- क्योंकि जीव	**मृत्युः**	- मृत्यु है ॥ ३८ ॥

जन्म त्वात्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद ।
विषयस्वीकृतिं प्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथः ॥ ३९ ॥

जन्म तु आत्मतया पुंसः सर्व भावेन भूरिद विषय स्वीकृतिं प्राहुः यथा स्वप्न मनोरथः ॥ ३९ ॥

भूरिद	- महादानी उद्धव !	**जन्म प्राहुः**	- (उसका) जन्म कहा गया है
पुंसः आत्मतया	- पुरुषका अपने रूपमें	**यथा स्वप्न**	- जैसे स्वप्न या
सर्व भावेन	- सम्पूर्ण रूपसे	**मनोरथः**	- मनोराज्य में (होता है) ॥ ३९ ॥
विषय-	- शरीरको स्वीकार कर		
स्वीकृतिं तु	लेना तो		

स्वप्नं मनोरथं चेत्थं प्राक्तनं न स्मरत्यसौ ।
तत्र पूर्वमिवात्मानमपूर्वं चानुपश्यति ॥ ४० ॥

स्वप्नं मनोरथं च इत्थं प्राक्तनं न स्मरति असौ तत्र पूर्वं इव आत्मानं अपूर्वं च अनुपश्यति ॥ ४० ॥

प्राक्तनं	- पहिलेके	**तत्र पूर्व-**	- उनमें भी पहिले
स्वप्नं च	- स्वप्न तथा	**आत्मानं**	(से' विद्यमान) अपनेको
मनोरथं	- मनोराज्यको भी	**अपूर्वं च**	- नया ही
असौ न स्मरति	- यह स्मरण नहीं करता	**अनुपश्यति**	- बार-बार देखता है ॥ ४० ॥

इन्द्रियायनसृष्ट्येदं त्रैविध्यं भाति वस्तुनि ।
बहिरन्तर्भिदाहेतुर्जनोऽसज्जनकृद् यथा ॥ ४१ ॥

इन्द्रिय अयन सृष्टि इदं त्रैविध्यं भाति वस्तुनि बहिः अन्तः भिदा हेतुः जनः असज्जन कृत् यथा ॥ ४१ ॥

इदं इन्द्रिय	- यह इन्द्रियोंकी आश्रय	**त्रैविध्यं**	- तीन प्रकार
अयन	रूपा		(उत्तम, मध्यम) की
वस्तुनि	- वस्तु तथ्य (आत्मा) में	**भाति**	- प्रतीत हो रही है,
बहिः अन्तः	- बाह्य-आन्तरिक भेदके	**यथा-**	- जैसे दुष्टका पिता
भिदा		**असज्जनकृत्**	
हेतुः	- कारणसे	**जनः**	- लोगों द्वारा (भेद दर्शी माना जाता है) ॥४१॥

नित्यदा ह्यंग भूतानि भवन्ति न भवन्ति च ।
कालेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्न दृश्यते ॥ ४२ ॥

नित्यदा हि अंग भूतानि भवन्ति न भवन्ति च कालेन अलक्ष्य वेगेन सूक्ष्मत्वात् तत् न दृश्यते ॥ ४२ ॥

अंग	- प्रिय उद्धव !	**च न भवन्ति**	- तथा मरते रहते हैं
भूतानि	- प्राणी	**हि सूक्ष्म त्वात्**	- क्योंकि अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे
अलक्ष्य वेगेन	- अलक्ष्यगति	**तत् न दृश्यते**	- वह (जन्म-मरण) दीखता नहीं है ॥ ४२ ॥
कालेन	- कालके द्वारा		
नित्यदा भवन्ति	- सदा ही उत्पन्न होते		

यथार्चिषां स्त्रोतसां च फलानां वा वनस्पतेः ।
तथैव सर्वभूतानां वयोऽवस्थादयः कृताः ॥ ४३ ॥

यथा अर्चिषां स्त्रोतसां च फलानां वा वनस्पतेः तथा एव सर्व भूतानां वयः अवस्था आदयः कृताः ॥ ४३ ॥

यथा अर्चिषां	- जैसे (दीप) ज्योति,	**तथा एव**	- ऐसी ही
च स्त्रोतसां	- तथा नदी-प्रवाहका	**सर्वभूतानां**	- सब प्राणियोंकी
वा वनस्पतेः	- अथवा वृक्षोंके	**वयः अवस्था**	- आयु, अवस्था
फलानां	- फलोंकी	**आदयः कृताः**	- आदि बनी हैं ॥ ४३ ॥

सोऽयं दीपोऽर्चिषां यद्वत्स्त्रोतसां तदिदं जलम् ।
सोऽयं पुमानिति नृणां मृषा गीर्धीर्मृषायुषाम् ॥ ४४ ॥

सः अयं दीपः अर्चिषां यत् वत् स्त्रोतसां तत् इदं जलं सः अयं पुमान् इति नृणां मृषा गीः धीः मृषा आयुषाम् ॥ ४४ ॥

यत्	- जैसे कि
अर्चिषां	- ज्योतिके सम्बन्धमें
सः अयं दीपः	- 'वह यही दीपक हैं'
स्त्रोतसां	- (नदीके) स्त्रोतका
तत् इदं जलं	- 'वह यही जल है'
वत् सः अयं	- इसी प्रकार वह यही
पुमान्	- पुरुष है
मृषा आयुषां	- मिथ्या आयु (विताने) वालोंकी
मृषागीः धीः	- झूठी बात एवं सोचना है ॥ ४४ ॥

मा स्वस्य कर्मबीजेन जायते सोऽप्ययं पुमान् ।
म्रियते वामरो भ्रान्त्या यथाग्निर्दारुसंयुतः ॥ ४५ ॥

मा स्वस्य कर्म बीजेन जायते सः अपि अयं पुमान् म्रियते वा अमरः भ्रान्त्या यथा अग्निः दारु संयुतः ॥ ४५ ॥

यथा दारु संयुतः	- जैसे काष्ठमें लगी
अग्निः	- अग्नि (के समान)
अयं पुमान् अपि	- यह पुरुष भी
भ्रान्त्या	- (अपने) भ्रमके कारण
स्वस्य कर्म-बीजेन	- अपने कर्मरूपी बीजसे
सः मा जायते	- वह न उत्पन्न होता,
वा म्रियते	- अथवा मरता
अमरः	- (यह तो) अमर है ॥ ४५ ॥

निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम् ।
वयोमध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥ ४६ ॥

निषेकः गर्भ जन्मानि बाल्य कौमार यौवनं वयः मध्यं जरा मृत्युः इति अवस्थाः तनोः नव ॥ ४६ ॥

निषेक गर्भ	- गर्भाधान, गर्भ,
जन्मानि बाल्य	- जन्म, शैशव,
कौमार यौवनं	- कुमार, युवा,
वयः मध्यं	- तारुण्य,
जरा मृत्युः	- बुढ़ापा और मृत्यु
इति तनोः	- इस प्रकार शरीरकी
नव अवस्थाः	- नौ अवस्थायें होती हैं ॥ ४६ ॥

एता मनोरथमयीर्ह्यन्यस्योच्चावचास्तनूः ।
गुणसंगादुपादत्ते क्वचित् कश्चिज्जहाति च ॥ ४७ ॥

एता मनोरथमयी हि अन्यस्य उच्च अवचाः तनूः गुण संगात् उपादत्ते क्वचित् कश्चित् जहाति च ॥ ४७ ॥

हि एता	- क्योंकि ये (अवस्थायें)	**गुण-संगात्**	- गुणोंमें आसक्ति होनेसे
मनोरथमयी	- मनोराज्य रूपा	**उपादत्ते**	- (इन्हें) ग्रहण कर लेता है,
उच्च अवचाः	- श्रेष्ठ-कनिष्ठ	**क्वचित्-**	- कभी कोई
अन्यस्य तनूः	- अपनेसे पृथक शरीरकी हैं	**कश्चित्**	(ज्ञान होनेपर)
		जहाति च	- छोड़ भी देता है ॥४७॥

आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ ।
न भवाप्ययवस्तूनामभिज्ञो द्वयलक्षणः ॥ ४८ ॥

आत्मनः पितृ पुत्राभ्यां अनुमेयौ भव अप्ययौ न भव अप्यय वस्तूनां अभिज्ञः द्वय लक्षणः ॥ ४८ ॥

पितृ पुत्राभ्यां	- पिता और पुत्रके द्वारा	**भव अप्यय**	- उत्पत्ति और मृत्यु
आत्मनः	- अपने	**वस्तूनां न**	- तत्त्वोंका नहीं होता
अप्ययौ भव	- मृत्यु और जन्मका	**द्वय लक्षणः**	- (वह तत्त्व-आत्मा) दोनोंके स्वरूपका
अनुमेयौ	- अनुमान कर लेना चाहिए,	**अभिज्ञः**	- जानने वाला है ॥४८॥

तरोर्बीजविपाकाभ्यां यो विद्वाञ्जन्मसंयमौ ।
तरोर्विलक्षणो द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ॥ ४९ ॥

तरोः बीज विपाकाभ्यां यः विद्वान् जन्म संयमौ तरोः विलक्षणः द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ॥ ४९ ॥

तरोः बीज - (गेंहू आदि) वृक्षके उगने तथा
विपाकाभ्यां - पकनेसे
जन्म संयमौ - (उनका) जन्म-मृत्यु
यः विद्वान् - जो जानता है
द्रष्टा तरोः - वह देखने वाला वृक्षसे
विलक्षणः - पृथक है
एवं तनोः- - ऐसे ही शरीरको
द्रष्टा देखने वाला
पृथक् - (शरीरसे) पृथक है

॥ ४९ ॥

प्रकृतेरेवमात्मानमविविच्याबुधः पुमान् ।
तत्त्वेन स्पर्शसम्मूढः संसारं प्रतिपद्यते ॥ ५० ॥

प्रकृतेः एवं आत्मानं अविविच्य अबुधः पुमान् तत्त्वेन स्पर्श सम्मूढः संसारं प्रतिपद्यते ॥ ५० ॥

एवं प्रकृतेः - इस प्रकार प्रकृतिसे
आत्मानं - आत्माका
अविविच्य - विवेक न करके
अबुधः पुमान् - अज्ञानी पुरुष
स्पर्श सम्मूढः - विषयोंमें लगकर अत्यन्त मूढ़ होकर
संसारं - जन्म-मृत्यु चक्रमें
प्रतिपद्यते - पड़ जाते हैं ॥ ५० ॥

सत्त्वसंगादृषीन् देवान् रजसासुरमानुषान् ।
तमसा भूततिर्यक्त्वं भ्रामितो याति कर्मभिः ॥ ५१ ॥

सत्त्व संगात् ऋषीन् देवान् रजसा असुर मानुषान् तमसा भूत तिर्यक्त्वं भ्रामितः याति कर्मभिः ॥ ५१ ॥

कर्मभिः भ्रामितः - अपने कर्मोंके द्वारा भ्रमित किया जाता,
सत्त्व संगात् - सात्विक आसक्ति होनेसे
ऋषीन् देवान् - ऋषि या देवता,
रजसा असुर - राजसिक से असुर या
मानुषान् - मनुष्य
तमसा भूत - तामसिक से भूत-प्रेत या
तिर्यक्त्वं - पशु-पक्षी योनियोंमें
याति - जाता है ॥ ५१ ॥

नृत्यतो गायतः पश्यन् यथैवानुकरोति तान् ।
एवं बुद्धिगुणान् पश्यन्ननीहोऽप्यनुकार्यते ॥ ५२ ॥

नृत्यतः गायतः पश्यन् यथा एव अनुकरोति तान् एवं बुद्धि गुणान् पश्यन् न अनीहः अपि अनुकार्यते ॥ ५२ ॥

नृत्यतः गायतः	- नाचते-गाते (लोगों) को	**एवं बुद्धि**	- इसी प्रकार बुद्धिके
पश्यन् यथा	- देखकर (मनुष्य) वैसा ही	**गुणान्**	गुणोंको
		पश्यन्	- देखता हुआ
तान् अनुकरोति	- उनका अनुकरण करने लगता है,	**अनीहः अपि**	- (स्वयं) निष्क्रिय होनेपर भी
		अनुकार्यते	- अनुकरण करनेको बाध्य हो जाता है ॥ ५२ ॥

यथाम्भसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव ।
चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते भ्रमतीव भूः ॥ ५३ ॥

यथा अम्भसा प्रचलता तरवः अपि चला इव चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते भ्रमति इव भूः ॥ ५३ ॥

यथा अम्भसा	- जैसे जलके	**चक्षुषा-**	- नेत्रोंको घुमानेसे
प्रचलता	- हिलनेपर	**भ्राम्यमाणेन**	
तरवः अपि	- (उसमें प्रतिबिम्बित) वृक्ष भी	**भूः भ्रमति इव**	- पृथ्वी घूमती सी
		दृश्यते	- दीखती है ॥ ५३ ॥
चला इव	- हिलते से लगते हैं,		

यथा मनोरथधियो विषयानुभवो मृषा ।
स्वप्नदृष्टाश्च दाशार्ह तथा संसार आत्मनः ॥ ५४ ॥

यथा मनोरथ धियः विषय अनुभवः मृषा स्वप्न दृष्टाः च दाशार्ह तथा संसार आत्मनः ॥ ५४ ॥

दाशार्ह - यादव श्रेष्ठ !
यथा मनोरथ - जैसे मनोराज्यमें
धियः अनुभवः - बुद्धिसे अनुभव किये
विषयः - विषय (पदार्थ)
च स्वप्न दृष्टाः - और स्वप्नमें देखे (पदार्थ)
मृषा - झूठे होते हैं
तथा आत्मनः - वैसे ही आत्मामें
संसार - संसार (असत्) है ॥ ५४ ॥

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ ५५ ॥

अर्थे हि अविद्यमाने अपि संसृतिः न निवर्तते ध्यायतः विषयान् अस्य स्वप्ने अनर्थ आगमः यथा ॥ ५५ ॥

यथा स्वने - जैसे स्वप्नमें
अनर्थ आगमः - कष्ट आते हैं,
अस्य विषयान् - इस (पुरुष) के विषयोंका
ध्यायतः - चिन्तन करनेसे
अर्थे हि - पदार्थोंके तो
अविद्यमाने अपि - उपस्थित न रहनेपर भी
संसृतिः - जन्म-मरण
न निवर्तते - नहीं छूटता ॥ ५५ ॥

तस्मादुद्धव मा भुङ्क्ष्व विषयानसदिन्द्रियैः ।
आत्माग्रहणनिर्भातं पश्य वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ ५६ ॥

तस्मात् उद्धव मा भुङ्क्ष्व विषयान् असत् इन्द्रियैः आत्मा अग्रहण निर्भातं पश्य वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ ५६ ॥

उद्धव - उद्धव !
असत् इन्द्रियैः - दुष्ट इन्द्रियों द्वारा
तस्मात् - इसलिए
विषयान् मा-भुङ्क्ष्व - विषयोंका भोग मतकरो,
वैकल्पिकं - अनेक रूपवाले
भ्रमं - भ्रम (संसार) को
आत्मा अग्रहण - आत्माके अज्ञानसे
निर्भातं पश्य - प्रतीत होता देखो ॥ ५६ ॥

क्षिप्तोऽवमानितोऽसद्भिः प्रलब्धोऽसूयितोऽथवा ।
ताडितः सन्निबद्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः ॥ ५७ ॥

क्षिप्तः अवमानितः असद्भिः प्रलब्धः असूयितः अथवा ताडितः सन्निबद्धः वा वृत्त्या वा परिहापितः ॥ ५७ ॥

असद्भिः - दुष्टों द्वारा
क्षिप्तः- - आक्षेप करने,
अवमानितः अपमानित होने,
प्रलब्धः - ठगे जाने,
अथवा असूयितः- अथवा गुणमें दोष निकाले जाने,
ताडितः - पीटे जाने,
वा सन्निबद्धः - अथवा जकड़कर बांधे जाने
वा वृत्त्या - या आजीविकासे
परिहापितः - वञ्चित किये जानेपर ॥ ५७ ॥

निष्ठितो मूत्रितो वाज्ञैर्बहुधैवं प्रकम्पितः ।
श्रेयस्कामः कृच्छ्रगत आत्मनाऽऽत्मानमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥

निष्ठितः मूत्रितः वा अज्ञैः बहुधा एवं प्रकम्पितः श्रेयः कामः कृच्छ्रगत आत्मना आत्मानं उद्धरेत् ॥ ५८ ॥

अज्ञैः - अज्ञानी लोगों द्वारा
निष्ठितः - थूके जाने
वा मूत्रितः - या मूत्र कर दिये जानेपर
एवं बहुधा - इस प्रकार अनेक रूपोंसे
प्रकम्पितः - चञ्चल करनेका प्रयत्न करनेपर
श्रेयः कामः - अपना कल्याण चाहने वाला
कृच्छ्रगत - संकटमें पड़नेपर
आत्मना - अपनी बुद्धिके द्वारा
आत्मानं- - अपना उद्धार करे
उद्धरेत् ॥ ५८ ॥

उद्धव उवाच–

यथैवमनुबुध्येयं वद नो वदतां वर ।
सुदुःसहमिमं मन्ये आत्मन्यसदतिक्रमम् ॥ ५९ ॥

यथा एवं अनुबुधि अयं वद नः वदतां वर सुदुःसहं इमं मन्ये आत्मनि असत् अतिक्रमम् ॥ ५९ ॥

वदतां वर - उपदेशकोंमें सर्वश्रेष्ठ !
यथा एवं - जिससे इस प्रकार
इयं अनुबुधि - इस बात को ट समझ सकूं
नः वद - मुझे बतलाइये,
असत् आत्मनि - दुष्टों द्वारा अपना
इमं अतिक्रमं - यह अपमान
सुदुःसहं - सहनेमें अत्यन्त कठिन
मन्ये - मानता हूँ ॥ ५९ ॥

विदुषामपि विश्वात्मन् प्रकृतिर्हि बलीयसी ।
ऋते त्वद्धर्मनिरतान् शान्तांस्ते चरणालयान् ॥ ६० ॥

विदुषां अपि विश्वात्मन् प्रकृतिः हिबलीयसी ऋते त्वत् धर्म निरतान् शान्तान् ते चरण आलयान् ॥ ६० ॥

विश्वात्मन् - विश्वस्वरूप प्रभो !
त्वत् धर्म- - आपके धर्म (भक्ति)
निरतान् में लगे
ते चरण - आपके चरणोंमें
आलयान् - घर बनाये (निवास करने वाले)
शान्तान् ऋते - शान्त पुरुषोंको छोड़कर
विदुषां अपि - विद्वानोंके लिए भी (दुःसह मानता हूं)
हि प्रकृतिः - क्योंकि स्वभाव
बलीयसी - बलवान होता है ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

श्री शुक उवाच–१

स एवमाशंसित उद्धवेन
भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः ।
सभाजयन् भृत्यवचो मुकुन्द-
स्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥ १ ॥

स एवं आशंसित उद्धवेन भागवत मुख्येन दाशार्ह मुख्यः सभाजयन् भृत्यवचः मुकुन्दः तं आबभाषे श्रवणीय वीर्यः ॥ १ ॥

एवं भागवत	- इस प्रकार प्रधान	**श्रवणीय वीर्यः**	- जिनका पराक्रम ही
मुख्येन	भगवद्भक्त		सुनने योग्य है
उद्धवेन	- उद्धव द्वारा	**मुकन्दः**	- मुकुन्दने
आशंसित	- पूछे जाने पर	**भृत्यवचः**	- अपने सेवककी वाणीकी
स दाशार्ह-	- वे यादव शिरोमणि	**सभाजयन्**	- प्रशंसा करते हुए
मुख्यः		**तं आबभाषे**	- उनसे कहा ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच–

बार्हस्पत्य स वै नात्र साधुर्वै दुर्जनेरितैः ।
दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः ॥ २ ॥

बार्हस्पत्य स वै न अत्र साधुः वै दुर्जन इरितैः दुरुक्तैः भिन्नं आत्मानं यः समाधातुं ईश्वरः ॥ २ ॥

---

१. गीताप्रेसकी प्रतिमें यहाँ 'बादरायणिरुवाच' है ।

वार्हस्पत्य - देवगुरु वृहस्पतिके शिष्य उद्धव !
वै अत्र - निश्चय इस संसारमें
स साधुः वै न - वे सत्पुरुप निश्चय नहीं मिल
यः दुर्जन - जो दुष्टोंकी ी
इरितैः - दुरुक्तैः कटूक्तियोंसे
भिन्नं आत्मानं - बिंधे चित्तको
समाधातुं - सम्हालनेमें
ईश्वरः - समर्थ हों ॥ २ ॥

न तथा तप्यते विद्धः पुमान् बाणैः सुमर्मगैः ।
यथा तुदन्ति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः ॥ ३ ॥

न तथा तप्यते विद्धः पुमान् बाण ु मगैः यथ दन्ति मर्मस्था हि असतां परुष ईषवः ॥ ३ ॥

हि पुमान् - क्योंकि पुरुप
सुमर्मगैः - अत्यन्त मर्म स्थानोंपर पहुँचने वाले
बाणैः विद्धः - वाणोंसे बींधे जाने पर
तथा न तप्यते - वैसा सन्तप्त नहीं होता
यथा मर्मस्था - जैसी हृदयमें स्थित
असतां - दुष्टोंकी
परुष ईषवः - तीक्ष्ण बाण रूपी वाणी
तुदन्ति - काटती रहती है ॥ ३ ॥

कथयन्ति महत्पुण्यमितिहासमिहोद्धव ।
तमहं वर्णयिष्यामि निबोध सुसमाहितः ॥ ४ ॥

कथयन्ति महत् पुण्यं इतिहासं इह उद्धव तं अहं वर्णयिष्यामि निबोध सुसमाहितः ॥ ४ ॥

उद्धव - उद्धव !
इह महत् पुण्यं - इस विषयमें महान् पवित्र
इतिहासं - इतिहास
कथयन्ति - कहा जाता है
अहं तं - मैं उसका
वर्णयिष्यामि - वर्णन करूँगा
सुसमाहितः - अत्यन्त एकाग्र होकर
निबोध - सुनो ॥ ४ ॥

केनचिद् भिक्षुणा गीतं परिभूतेन दुर्जनैः ।
स्मरता धृतियुक्तेन विपाकं निजकर्मणाम् ॥ ५ ॥

केनचित् भिक्षुणा गीतं परि भूतेन दुर्जनैः स्मरता धृति युक्तेन विपाकं निज कर्मणाम् ॥ ५ ॥

दुर्जनैः	- दुर्जनों द्वारा	**विपाकं स्मरता**	- फल स्मरण करते हुए
परिभूतेन	- सब ओर से सताये जानेपर	**धृति युक्तेन**	- धैर्य सहित
निज कर्मणां	- अपने कर्मोंका	**केनचित्**	- किसी
		भिक्षुणा गीतं	- भिक्षुक द्वारा (यह) गाया गया है ॥ ५ ॥

अवन्तिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रिया ।
वार्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः ॥ ६ ॥

अवन्तिषु द्विजः कश्चित् आसीत् आढ्यतमः श्रिया वार्तावृत्तिः कदर्यः तु कामी लुब्धः अतिकोपनः ॥ ६ ॥

अवन्तिषु	- उज्जैन में	**तु कदर्यः**	- किन्तु कृपण,
वार्तावृत्तिः	- व्यापारसे जीविका चलाने वाला	**कामी लुब्धः**	- कामुक, लोभी,
श्रिया-	- धनसे अत्यन्त धनवान,	**अतिकोपनः**	- अत्यन्त क्रोधी
आढ्यतमः		**कश्चित् द्विजः**	- कोई ब्राह्मण
		आसीत्	- रहता था ॥ ६ ॥

ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः ।
शून्यावसथ आत्मापि काले कामैरनर्चितः ॥ ७ ॥

ज्ञातयः अतिथयः तस्य वाङ्मात्रेण अपि न अर्चिताः शून्य आवसथ आत्मा अपि काले कामैः अनर्चितः ॥ ७ ॥

तस्य ज्ञातयः - उसके जाति भाई,
अतिथयः - एवं अतिथि
वाङ्मात्रेण अपि - वाणी मात्रसे भी
अनर्चितः - सत्कृत नहीं हुए
शून्य आवसथ - (अतः) सुनसान घरमें रहते हुए
काले आत्मा- अपि - समयपर शरीर भी
कामैः अनर्चितः - भोगों द्वारा सत्कृत नहीं हुआ ॥ ६ ॥

दुःशीलस्य कदर्यस्य द्विष्यन्ते पुत्रबान्धवाः ।
दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन् प्रियम् ॥ ८ ॥

दुःशीलस्य कदर्यस्य द्विष्यन्ते पुत्र बान्धवाः दारा दुहितरः भृत्या विषण्णा न आचरन् प्रियम् ॥ ८ ॥

दुःशीलस्य - बुरे स्वभाव तथा
कदर्यस्य - कृपण होनेसे
पुत्र बान्धवाः - पुत्र, सम्बन्धी,
दारा दुहितरः - पत्नी, पुत्रियां.
भृत्या विषण्णा - सेवक खिन्न रहते थे,
द्विष्यन्ते - द्वेष करते थे,
प्रियं न आचरन् - (उसका) प्रिय नहीं करते थे ॥ ८ ॥

तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभयलोकतः ।
धर्मकामविहीनस्य चुक्रुधुः पञ्चभागिनः ॥ ९ ॥

तस्य एवं यक्ष वित्तस्य च्युतस्य उभय लोकतः धर्म काम विहीनस्य चुक्रुधुः पञ्च भागिनः ॥ ९ ॥

एवं तस्य - इस प्रकार उस
यक्ष वित्तस्य - यक्षके समान धनकी रखवाली करने वाले,
उभयलोकतः - दोनों लोकोंसे
च्युतस्य - गिरे हुए
धर्म काम - धर्म तथा भोग
विहीनस्य - रहितके
पञ्च भागिनः - पांचों भागीदार (पञ्च महायज्ञके देवता)
चुक्रुधुः - कुपित होगये ॥ ९ ॥

तदवध्यानविस्रस्तपुण्यस्कन्धस्य भूरिद ।
अर्थोऽप्यगच्छन्निधनं बह्वायासपरिश्रमः ॥ १० ॥

तत् अवध्यान विस्रस्त पुण्य स्कन्धस्य भूरिद अर्थः अपि अगच्छत् निधनं बहु आयास परिश्रमः ॥ १० ॥

भूरिद - उदारदानी उद्धव !
तत् अवध्यान - उन (देवताओं) के तिरस्कारसे
विस्रस्त - नष्ट हुए
पुण्य स्कन्धस्य - पुण्यरूपी आधारके कारण
बहु आयास - बहुत प्रयत्न और
परिश्रमः - परिश्रमका
अर्थः अपि - धन भी
निधनं अगच्छत् - नष्ट होगया ॥ १० ॥

ज्ञातयो जगृहुः किञ्चिद् किञ्चिद् दस्यव उद्धव ।
दैवतः कालतः किञ्चिद् ब्रह्मबन्धोर्नृपार्थिवात् ॥ ११ ॥

ज्ञातयः जगृहुः किञ्चित् किञ्चित् दस्यव उद्धव दैवतः कालतः किञ्चित् ब्रह्मबन्धोः नृपार्थिवात् ॥ ११ ॥

उद्धव - उद्धव !
ब्रह्मबन्धोः - उस अधम ब्राह्मणका
ज्ञातयः - जातिवालोंने
किञ्चित् जगृहुः - कुछ (धन) छीन लिया,
किञ्चित् दस्यव - कुछ चोर-डाकुओंने,
किञ्चित् - कुछ
दैवतः कालतः - भाग्यवश समयके फेरसे (नष्ट हो गया)
नृपार्थिवात् - जागीरदार तथा राजाने (दण्ड आदिमें ले लिया ।) ॥ ११ ॥

स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः ।
उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिन्तामाप दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥

स एवं द्रविणे नष्टे धर्म काम विवर्जितः उपेक्षितः च स्वजनैः चिन्तां आप दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥

स धर्म काम - वह धर्म और भोगसे
विवर्जितः - रहित,
च स्वजनैः - तथा स्वजनों द्वारा
उपेक्षितः - उपेक्षित (तो था ही)
एवं द्रविणे - इस प्रकार धनके भी
नष्टे नष्ट हो जानेपर
दुरत्ययां - दुष्पार
चिन्तां आप - चिन्ताको प्राप्त हुआ
॥ १२ ॥

तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः ।
खिद्यतो बाष्पकण्ठस्य निर्वेदः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥

तस्य एवं ध्यायतः दीर्घं नष्टरायः तपस्विनः खिद्यतः वाष्पकण्ठस्य निर्वेदः सुमहान् अभूत् ॥ १३ ॥

नष्टरायः - धन नाश होनेसे
तपस्विनः - तपस्वी होगये
तस्य एवं - उसके इस प्रकार
दीर्घं ध्यायतः - लम्बे समय तक चिन्ता करते हुए
खिद्यतः - दुःखी होकर
वाष्प कण्ठस्य - आंसू भरे गले वालेको
सुमहान् - अत्यन्त तीव्र
निर्वेदः अभूत - वैराग्य होगया
॥ १३ ॥

स चाहेदमहो कष्टं वृथाऽऽत्मा मेऽनुतापितः ।
न धर्माय न कामाय यस्यार्थायास ईदृशः ॥ १४ ॥

स च आह इदं अहो कष्टं वृथाआत्मा मे अनुतापितः न धर्माय न कामाय यस्य अर्थ आयास ईदृशः ॥ १४ ॥

स इदं आह च - वह यह बोला भी
अहो कष्टं - बड़े खेद की बात है
मे आत्मा - मैंने शरीरको
वृथा अनुतापितः - व्यर्थ संतप्त किया
न धर्माय - न धर्मके लिए
न कामाय - न भोगके लिए
यस्य अर्थ - जिसका धनके लिए
ईदृशः आयास - ऐसा उद्योग था ॥१४॥

प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन ।
इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥ १५ ॥

प्रायेण अर्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन इह च आत्म उपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥ १५ ॥

प्रायेण	- प्रायः	**इह च**	- इस लोकमें तो
कदर्याणां	- कृपण पुरुषोंका	**आत्म-**	- अपनेको संतप्त करनेका
अर्थाः कदाचन	- धन कभी भी	**उपतापाय**	
सुखाय न	- सुखका कारण नहीं होता	**च मृतस्य**	- तथा मरनेपर
		नरकाय	- नरक जानेका कारण होता है ॥ १५ ॥

यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः ।
लोभः स्वल्पोऽपि तान् हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम् ॥ १६ ॥

यशः यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः लोभः स्वल्पः अपि तान् हन्ति श्वित्रः रूपं इव ईप्सितम् ॥ १६ ॥

ईप्सितं रूपं	- अभीष्ट सौन्दर्यको भी	**शुद्धं यशः**	- शुद्ध यशको तथा
श्वित्रः इव	- कुष्ठ रोगके समान	**गुणिनां ये गुणाः**	- गुणवानोंमें जो गुण
स्वल्पः अपि-	- थोड़ा सा भी लोभ	**श्लाघ्या तान्**	- प्रशंसनीय हैं उनको
लोभः		**हन्ति**	- नष्ट कर देता है ॥ १६ ॥
यशस्विनां	- यशस्वियोंके		

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये ।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम् ॥ १७ ॥

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये नाश उपभोग आयासः त्रासः चिन्ता भ्रमः नृणाम् ॥ १७ ॥

नृणां अर्थस्य - पुरुषोंको धनके
साधने सिद्धे - कमानेमें, मिलनेपर
उत्कर्षे रक्षणे - बढ़ाने और रक्षा करनेमें,
व्यये नाश - खर्च होने या नष्ट हो जानेमें
उपभोग - तथा उपभोग करनेमें
आयासः त्रासः - परिश्रम, भय,
चिन्ता भ्रमः - चिन्ता तथा भ्रम होता है ॥ १७ ॥

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयोमदः ।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥ १८ ॥

स्तेयं हिंसा अनृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयः मदः भेदः वैरं अविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥ १८ ॥

स्तेयं हिंसा - चोरी, हिंसा,
अनृतं दम्भः - झूठ, पाखण्ड,
कामः क्रोधः - काम, क्रोध,
स्मयः मदः - गर्व, अहंकार,
भेदः वैरं - भेद बुद्धि, वैर,
अविश्वासः - अविश्वास,
संस्पर्धा - स्पर्धा
च व्यसनानि - तथा लम्पटता, जुआ, शराब ॥ १८ ॥

एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥ १९ ॥

एते पञ्चदश अनर्था हि अर्थ मूला मता नृणां तस्मात् अनर्थं अर्थ आख्यं श्रेयः अर्थी दूरतः त्यजेत् ॥ १९ ॥

हि नृणां - क्योंकि मनुष्योंमें
एते पञ्चदश - ये पन्द्रह
अनर्था - अनर्थ
अर्थ मूला - धनकी जड़से पनपते हैं
तस्मात् - इसलिए
श्रेयः अर्थी - अपना कल्याण चाहने वाला
अर्थ आख्यं - अर्थ कहे जाने वाले
अनर्थं - इस अनर्थको
दूरतः त्यजेत् - दूर से ही त्याग दे ॥ १९ ॥

भिद्यन्ते भ्रातरो दारा पितरः सुहृदस्तथा ।
एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः ॥ २० ॥

भिद्यन्ते भ्रातरः दारा पितरः सुहृदः तथा एका स्निग्धा काकिणिना सद्यः सर्वे अरयः कृताः ॥ २० ॥

भ्रातरः दाराः - भाई, पत्नियां,
पितरः - माता-पिता,
तथा सुहृदः - तथा हितैषी
स्निग्धा - जो (परस्पर) प्रेम करते थे
एकाकाकिणिना - एक कौड़ीके कारण
सर्वे भिद्यन्ते - सब में भेद उत्पन्न हो जाते हैं और
सद्यः अरयः - तुरन्त शत्रु बना दिये
कृताः - जाते हैं ॥ २० ॥

अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः ।
त्यजन्त्याशु स्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम् ॥ २१ ॥

अर्थेन अल्पीयसा हि एते संरब्धाः दीप्त मन्यवः त्यजन्ति आशु स्पृधः घ्नन्ति सहसा उत्सृज्य सौहृदम् ॥ २१ ॥

हि अल्पीयसा - क्योंकि थोड़े से
अर्थेन एते - धनके लिए ये
सहसा सौहृदं - अचानक हितैषिता
उत्सृज्य - त्यागकर
संरब्धा - क्षुब्ध होकर
दीप्त मन्यवः - क्रोध में भरकर
स्पृधः - स्पर्धा करते हुए
आशु त्यजन्ति - झट (सम्बन्ध) त्याग देते हैं
घ्नन्ति - और मार डालते हैं ॥ २१ ॥

लब्ध्वा जन्मामरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद् द्विजाग्र्यताम् ।
तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नन्ति यान्त्यशुभां गतिम् ॥ २२ ॥

लब्ध्वा जन्म अमर प्रार्थ्यं मानुष्यं तत् द्विज अग्रयतां तत् अनआदृत्य ये स्वार्थं घ्नन्ति यान्ति अशुभां गतिम् ॥ २२ ॥

अमर प्रार्थ्यं - देवता भी जिसे पाना चाहते हैं
मानुष्यं जन्म - वह मनुष्य जन्म
तत् द्विज- - उसमें भी द्विजातियोंमें
अग्र्यतां श्रेष्ठतम (ब्राह्मणत्व)
लब्ध्वा - पाकर
तत् अन- - उसका अनादर करके
आदृत्य
ये स्वार्थ- - जो अपने वास्तविक
घ्नन्ति स्वार्थका नाश करते हैं
अशुभां गतिं - अशुभ (पापमयी) गति
यान्ति - जाते हैं ॥ २२ ॥

स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान् ।
द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि ॥ २३ ॥

स्वर्ग अपवर्गयोः द्वारं प्राप्य लोकं इमं पुमान् द्रविणे कः अनु षज्जेत मर्त्यः अनर्थस्य धामनि ॥ २३ ॥

स्वर्ग अपवर्गयोः - स्वर्ग तथा मोक्षका
द्वारं इमं लोकं - द्वार यह (मनुष्य) लोक
प्राप्य कः मर्त्यः - पाकर कौन मरण धर्मा
पुमान् - पुरुष
अनर्थस्य - अनर्थोंके
धामनि द्रविणे - धाम धनमें
अनुषज्जेत - आसक्त होगा ॥ २३ ॥

देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन् बन्धूंश्च भागिनः ।
असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः ॥ २४ ॥

देव ऋषि पितृ भूतानि ज्ञातीन् बन्धूंः च भागिनः असंविभज्य च आत्मानं यक्षवित्तः पतति अधः ॥ २४ ॥

देव ऋषि - देवता, ऋषि,
पितृ भूतानि - पितर, प्राणिवर्ग,
ज्ञातीन् बन्धूंः - जातिके बन्धु-बान्धव,
च भागिनः - तथा दूसरे भाग पाने वाले,
च आत्मानं - एवं अपने शरीरको भी
असंविभज्य - बिना बांटे
यक्ष वित्तः - यक्षकी भांति धनकी रक्षा करने वाला
अधः पतति - अधोगति पाता है ॥ २४ ॥

व्यर्थयार्थेहया वित्तं प्रमत्तस्य वयो बलम् ।
कुशला येन सिध्यन्ति जरठः किं नु साधये ॥ २५ ॥

व्यर्थ या अर्थ ईहया वित्तं प्रमत्तस्य वयः बलं कुशला येन सिध्यन्ति जरठः किं नु साधये ॥ २५ ॥

वित्तं प्रमत्तस्य	- धनके लिए प्रमादी बनकर	**कुशला**	- विचारवान लोग
वयः बलं	- आयु और बल	**येन सिध्यन्ति**	- जिन साधनोंसे सफल होते हैं
अर्थ ईहया	- धन पाने की चेष्टामें	**जरठः नु किं**	- (मैं) बूढ़ा भला कौन-सा
व्यर्थ या	- (मैंने) व्यर्थकर दिया,	**साधये**	- साधन करूँगा ॥२५॥

कस्मात् संक्लिश्यते विद्वान् व्यर्थयार्थेहयासकृत् ।
कस्यचिन्मायया नूनं लोकोऽयं सुविमोहितः ॥ २६ ॥

कस्मात् संक्लिश्यते विद्वान् व्यर्थ या अर्थ ईहया असकृत् कस्यचित् मायया नूनं लोकः अयं सुविमोहितः ॥ २६ ॥

व्यर्थया	- व्यर्थकी	**नूनं कस्यचित्**	- निश्चय किसीकी
अर्थ ईहया	- धन (कमाने) की चेष्टामें	**मायया**	- मायासे
विद्वान् कस्मात्	- विद्वान किसलिए	**अयं लोकः**	- यह संसार
संक्लिश्यते	- क्लेश उठाते हैं ?	**सुविमोहितः**	- अत्यन्त मोहित है ॥ २६ ॥

किं धनैर्धनदैर्वा किं कामैर्वा कामदैरुत ।
मृत्युना ग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोत जन्मदैः ॥ २७ ॥

किं धनैः धनदैः वा किं कामैः वा कामदैः उत मृत्यना ग्रस्यमानस्य कर्मभिः वा उत जन्मदैः ॥ २७ ॥

धनैः वा - धन अथवा
धनदैः किं - धन देने वालोंसे (इसे) क्या लाभ,
कामैः वा - भोग अथवा
भोग दैः किं - भोग देने वाले (देवताओं) से क्या लाभ ?
उत वा - अथवा
मृत्युना-ग्रस्य मानस्य - मृत्यु द्वारा निगले जाने वाले
जन्मदैः - जन्म देने वाले
कर्मभिः - कर्मोंसे ही (क्या लाभ ?) ॥२७॥

नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः ।
येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः ॥ २८ ॥

नूनं मे भगवान् तुष्टः सर्व देवमयः हरिः येन नीतः दशां एतां निर्वेदं आत्मनः प्लवः ॥ २८ ॥

नूनं सर्वदेवमयः - निश्चय सर्व देव स्वरूप
हरिः मे - श्री हरि मुझपर
तुष्टः - सन्तुष्ट हैं
येन एतां-दशां - जिन्होंने (मुझे) इस दशामें
नीतः - पहुँचाया (क्योंकि)
निर्वेदः - वैराग्य
आत्मनः प्लवः - अपने लिए नौका है ॥ २९ ॥

सोऽहं कालावशेषेण शोषयिष्येऽङ्गमात्मनः ।
अप्रमत्तोऽखिलस्वार्थे यदि स्यात् सिद्ध आत्मनि ॥ २९ ॥

सः अहं काल अवशेषेण शोषयिष्ये अंगं आत्मनः अप्रमत्तः अखिल स्वार्थे यदि स्यात् सिद्ध आत्मनि ॥ २९ ॥

सः अहं - वह मैं
काल अवशेषेण - बचे हुए समयमें
अंगं आत्मनः - अपने प्रिय शरीरको
अखिल स्वार्थे - सम्पूर्ण वास्तविक स्वार्थकी ओरसे
अप्रमत्तः - सावधान रहकर
शोषयिष्ये - सुखा डालूँगा
यदि आत्मनि - कदाचित अन्तःकरण
सिद्ध स्यात् - शुद्ध ही हो जाय ॥ २९ ॥

तत्र मामनुमोदेरन् देवास्त्रिभुवनेश्वरः ।
मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वांगः समसाधयत् ॥ ३० ॥

तत्र मां अनुमोदेरन् देवाः त्रिभुवन ईश्वराः मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वांगः समसाधयत् ॥ ३० ॥

त्रिभुवन ईश्वरः - त्रिभुवनके स्वामी
देवाः तत्र मां - देवता इस विषयमें मेरा
अनुमोदेरन् - अनुमोदन करें
खट्वांगः - राजा खट्वांगने
मुहूर्तेन - एक मुहूर्त (दोघड़ी) में ही
ब्रह्मलोकं - भगवद्धाम्
सम साधयत् - भली प्रकार प्राप्त कर लिया था ॥ ३० ॥

श्रीभगवानुवाच–

इत्यभिप्रेत्य मनसा ह्यावन्त्यो द्विजसत्तमः ।
उन्मुच्य हृदयग्रन्थीन् शान्तो भिक्षुरभून्मुनिः ॥ ३१ ॥

इति अभिप्रेत्य मनसा हि आवन्त्यः द्विजसत्तमः उन्मुच्य हृदय ग्रन्थीन् शान्तः भिक्षुः अभूत् मुनिः ॥ ३१ ॥

आवन्त्यः - वह उज्जैनके
द्विज सत्तमः - श्रेष्ठ ब्राह्मणने
हि मनसा - क्योंकि मनमें
इति अभिप्रेत्य - ऐसा निश्चय कर लिया
हृदयग्रन्थीन् - हृदयकी (काम, क्रोध, लोभकी
उन्मुच्य - तोड़कर
शान्तः मुनिः - शान्त, मननशील
भिक्षुः अभूत् - सन्यासी होगया ॥३१॥

स चचार महीमेतां संयतात्मेन्द्रियानिलः ।
भिक्षार्थं नगरग्रामानसंगोऽलक्षितोऽविशत् ॥ ३२ ॥

स चचार महीं एतां संयत आत्मा इन्द्रिय अनिलः भिक्षा अर्थं नगर ग्रामान् असंगः अलक्षितः अविशत् ॥ ३२ ॥

स एतां महीं	- वह इस पृथ्वी पर	**असंगः**	- आसक्तिहीन
आत्मा	- चित्त,	**अलक्षितः**	- बिना पहिचानके
इन्द्रिय अनिलः	- इन्द्रिय तथा प्राणोंको	**नगर ग्रामान्**	- नगर या गांवोंमें
संयत	- नियन्त्रित करके	**भिक्षा अर्थं**	- भिक्षाके लिए
चचार	- विचरण करने लगा,	**अविशत्**	- प्रवेश करता था ॥३२॥

तं वै प्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः ।
दृष्ट्वा पर्यभवन् भद्र बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥ ३३ ॥

तं वै प्रवयसं भिक्षुं अवधूतं असज्जनाः दृष्ट्वा पर्यभवन् भद्र बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥ ३३ ॥

भद्र	- कल्याणमय उद्धव !	**बह्वीभिः**	- बहुतसी
वै तं प्रवयसं	- निश्चय उस बहुत बूढ़े	**परिभूतिभिः**	- अपमानित करनेकी क्रियाओंसे
अवधूतं भिक्षुं	- अवधूत भिक्षुकको	**पर्यभवन्**	- सब ओरसे तंग करते थे ॥ ३३ ॥
दृष्ट्वा-	- देखकर दुष्ट लोग		
असज्जनाः			

केचित्त्रिवेणुं जगृहुरेके पात्रं कमण्डलुम् ।
पीठं चैकेऽक्षसूत्रं च कन्थां चीराणि केचन ॥ ३४ ॥

केचित् त्रिवेणुं जगृहुः एके पात्रं कमण्डलुं पीठं च एके अक्षसूत्रं च कन्थां चीराणि केचन ॥ ३४ ॥

केचित् त्रिवेणुं - कोई त्रिदण्ड,
एके कमण्डलुं- - कोई कमण्डलु
पात्रं भिक्षापात्र,
एके पीठं च - कोई आसन तथा
अक्षसूत्रं - रुद्राक्षकी माला,
केचन कन्थां - कोई गुदड़ी
चचीराणि - एवं लंगोटी
जगृहुः - छीन लेते थे ॥ ३४ ॥

प्रदाय च पुनस्तानि दर्शितान्याददुर्मुनेः ।
अन्नं च भैक्ष्यसम्पन्नं भुञ्जानस्य सरित्तटे ॥ ३५ ॥

प्रदाय च पुनः तानि दर्शितानि आददुः मुनेः अन्नं च भैक्ष्य सम्पन्नं भुञ्जानस्य सरित् तटे ॥ ३५ ॥

प्रदाय च - (कोई वस्तु) देकर तथा
दर्शितानि - (कोई) दिखलाकर
तानि पुनः - उनको फिर
आददुः - छीन लेते थे,
भैक्ष्य सम्पन्नं - भिक्षामें प्राप्त हुए
अन्नं च - भोजनको भी
मुनेः सरित् तटे - मुनिके नदी किनारे
भुञ्जानस्य - भोजन करते समय
॥ ३५ ॥

मूत्रयन्ति च पापिष्ठाः ष्ठीवन्त्यस्य च मूर्धनि ।
यतवाचं वाचयन्ति ताडयन्ति न वक्ति चेत् ॥ ३६ ॥

मुत्रयन्ति च पापिष्ठाः ष्ठीवन्ति अस्य च मूर्धनि यतवाचं वाचयन्ति ताडयन्ति न वक्ति चेत् ॥ ३६ ॥

पापिष्ठाः - वे पापी
अस्य मूर्धनि च - इस (भिक्षु) के सिरपर भी
मूत्रयन्ति - मूत्रय त्याग करते थे एवं
च ष्ठीवन्ति - थूकते थे,
यतवाचं - (भोजन के समय) मौन होजाने पर
वाचयन्ति - बोलवाते थे
चेत् न वक्ति - यदि नहीं बोलता था तो
ताडयन्ति - पीटते थे ॥ ३६ ॥

तर्जयन्त्यपरे वाग्भिः स्तेनोऽयमिति वादिनः ।
बध्नन्ति रज्ज्वा तं केचिद् बध्यतां बध्यतामिति ॥ ३७ ॥

तर्जयन्ति अपरे वाग्भिः स्तेनः अयं इति वादिनः बध्नन्ति रज्ज्वा तं केचित् बध्यतां बध्यतां इति ॥ ३७ ॥

अपरे - दूसरे
अयं स्तेनः - 'यह चोर है'
इति वादिनः - ऐसा कहने वाले
वाग्भिः - वाणीसे
तर्जयन्ति - डांटते थे,
केचित् तं - कोई उसे
बध्यतां बध्यतां - 'बांधो, बांधलो'
इति रज्ज्वा - ऐसा कहकर रस्सीसे
बध्नन्ति - बाँधते थे ॥ ३७ ॥

क्षिपन्त्येकेऽवजानन्त एष धर्मध्वजः शठः ।
क्षीणवित्त इमां वृत्तिमग्रहीत् स्वजनोज्झितः ॥ ३८ ॥

क्षिपन्ति एके अवजानन्त एष धर्मध्वजः शठः क्षीणवित्त इमां वृत्तिं अग्रहीत् स्वजन उज्झितः ॥ ३८ ॥

एके अवजानन्त - कोई तिरस्कार करके
क्षिपन्ति - आक्षेप करते
एष शठः - 'यह दुष्ट
धर्मध्वजः - पाखण्डी है,
क्षीणवित्त - धन नष्ट होनेपर
स्वजन उज्झितः - सम्बन्धियोंके त्याग देनेपर
इमां वृत्तिं - यह वृत्ति (इसने)
अग्रहीत् - ग्रहण करली है ॥३८॥

अहो एष महासारो धृतिमान् गिरिराडिव ।
मौनेन साधयत्यर्थं बकवद् दृढनिश्चयः ॥ ३९ ॥

अहो एष महासारः धृतिमान् गिरिराट् इव मौनेन साधयति अर्थं बकवत् दृढ़ निश्चयः ॥ ३९ ॥

अहो एष - 'अहो ! यह
महासारः - बड़े साहस वाला
गिरिराट् इव - पर्वतराज के समान
धृतिमान् - धैर्यशाली है,
बकवत् - बगुलेके समान
दृढ़ निश्चयः - दृढ़ निश्चय करके
मौनेन - मौनके द्वारा
अर्थं साधयति - अपन्त स्वार्थ सिद्ध करता है ॥ ३९ ॥

इत्येके विहसन्त्येनमेके दुर्वातयन्ति च ।
तं बबन्धुर्निरुरुधुर्यथा क्रीडनकं द्विजम् ॥ ४० ॥

इति एके विहसन्ति एनं एके दुर्वात यन्ति च तं बबन्धुः निरुरुधुः यथा क्रीडनकं द्विजम् ॥ ४० ॥

इति एके - ऐसा कहकर कोई
एनं विहसन्ति - इसकी हंसी उड़ाते थे,
च एके - तथा कोई
दुर्वातयन्ति - (इसपर) अपानवायु छोड़ते थे,
तं द्विजं - ब्राह्मणको
यथा क्रीडनकं - जैसे वह खिलौना हो
बबन्धुः - बांध लेते थे एवं
निरुरुधुः - (घरों में) बन्द कर देते थे ॥ ४० ॥

एवं स भौतिकं दुःखं दैविकं दैहिकं च यत् ।
भोक्तव्यमात्मनो दिष्टं प्राप्तं प्राप्तमबुध्यत ॥ ४१ ॥

एवं स भौतिकं दुःखं दैविकं दैहिकं च यत् भोक्तव्यं आत्मनः दिष्टं प्राप्तं प्राप्तं अबुध्यत ॥ ४१ ॥

एवं भौतिकं - इस प्रकार आधिभौतिक,
दैविकं - आधिदैविक
च दैहिकं - तथा शारीरिक (आध्यात्मिक)
दुःखं प्राप्तं प्राप्तं - दुःखोंके बार-बार आनेपर
स आत्मनः- - वह अपने प्रारब्धका
दिष्टं - (अनिवार्य) भोग
भोक्तव्यं - समझता था ॥ ४१ ॥
अबुध्यत

परिभूत इमां गाथामगायत नराधमैः ।
पातयद्भिः स्वधर्मस्थो धृतिमास्थाय सात्त्विकीम् ॥ ४२ ॥

परिभूत इमां गाथां अगायत नर अधमैः पातयद्भिः स्वधर्मस्थः धृतिं आस्थाय सात्त्विकीम् ॥ ४२ ॥

नर अधमैः - अधम मनुष्यों द्वारा
परिभूत - सताये जाकर
पातयद्भिः - (अपने धर्मसे) गिराये जानेका प्रयत्न करनेपर भी
स्वधर्मस्थः - अपने धर्मपर स्थित रहकर
सात्त्विकी 'धृतिं' -सात्विक धृतिका
आस्थाय - आश्रय लेकर
इमां गाथां - (उसने) यह गाथा
अगायत - गायी ॥ ४२ ॥

द्विज उवाच–

नायं जनो मे सुखदुःखहेतु-
र्न देवताऽऽत्मा ग्रहकर्मकालाः ।
मनः परं कारणमामनन्ति
संसारचक्रं परिवर्तयेद् यत् ॥ ४३ ॥

न अयं जनः मे सुख दुःख हेतुः न देवता आत्मा ग्रह कर्म कालाः मनः परं कारणं आमनन्ति संसार चक्रं परिवर्तयेत् यत् ॥ ४३ ॥

मे सुख दुःख- - मेरे सुख-दुःखका
हेतुः कारण
न अयं जनः - न ये लोग हैं,
न देवता आत्मा - न देवता, शरीर,
ग्रह कर्म कालाः - ग्रह, कर्म या समय,
मनः परं- - मनको ही अन्तिम
कारणं कारण
आमनन्ति - शास्त्र कहते हैं
यत् संसारचक्रं - जिससे जन्म-मरण रूपी चक्र
परिवर्तयेत् - घूम रहा है ॥ ४२ ॥

मनो गुणान् वै सृजते बलीय-
स्ततश्च कर्माणि विलक्षणानि ।
शुक्लानि कृष्णान्यथ लोहितानि
तेभ्यः सवर्णाः सृतयो भवन्ति ॥ ४४ ॥

मनः गुणान् वै सृजते बलीयः ततः च कर्माणि विलक्षणानि शुक्लानि कृष्णानि अथ लोहितानि तेभ्यः सवर्णाः सृतयः भवन्ति ॥ ४४ ॥

वैबलीयः - निश्चय बलवान्
मनः गुणान् - मन गुणोंको
सृजते - उत्पन्न करता है,
ततः च - उनसे फिर
विलक्षणानि - अनेक प्रकारके
शुल्कानि - सात्विक,
कृष्णानि - तामसिक
अथ लोहितानि - एवं राजसिक
कर्माणि - कर्म होते हैं
तेभ्यः सवर्णाः - उनके द्वारा उनके ही समान
सृतयः भवन्ति - (जीवकी) गतियां होती हैं ॥ ४४ ॥

अनीह आत्मा मनसा समीहता
हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे ।
मनः स्वलिंगं परिगृह्य कामान्
जुषन् निबद्धो गुणसंगतोऽसौ ॥ ४५ ॥

अनीह आत्मा मनसा सम ईहता हिरण्मयः मत् सख उद्विचष्टे मनः स्वलिंगं परिगृह्य कामान् जुषन् निबद्धः गुण संगतः असौ ॥ ४५ ॥

मत् सख - मुझ जीवका सखा
आत्मा अनीह - आत्मा निष्क्रिय
हिरण्मयः - प्रकाश स्वरूप
उद्विचष्टे - तटस्थ द्रष्टा है
समईहता मनसा - समस्त चेष्टायें मनकी हैं,
मनः स्वलिंगं - मनके द्वारा अपने चिन्ह (चेतन आदि)
परिगृह्य - ग्रहण करके
कामान् जुषन् - भोगोंको भोगता हुआ
असौ गुण-संगतः - यह गुणोंमें आसक्त होकर
निबद्धः - बन्धनमें पड़ा है ॥४५॥

दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च
श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि ।
सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः
परो हि योगो मनसः समाधिः ॥ ४६ ॥

दानं स्वधर्मः नियमः यमः च श्रुतं च कर्माणि च सत् व्रतानि सर्वे मनः निग्रह लक्षण अन्ताः परः हि योगः मनसः समाधिः ॥ ४६ ॥

दानं स्वधर्मः - दान, अपने धर्मका पालन,
नियमः च यमः - नियम और यम,
श्रुतं च - वेदाध्ययन तथा
कर्माणि - सत्कर्म
च सत् व्रतानि - एवं उत्तम व्रतादि
सर्वे - सभी
मनः निग्रह - मनको एकाग्र करनेके
लक्षण अन्ताः - अन्तिम परिणाम वाले हैं
हि परः योगः - क्योंकि परम योग
मनसः समाधिः - मनका निरुद्ध होजाना ही है ॥ ४६ ॥

समाहितं यस्य मनः प्रशान्तं
दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम् ।
असंयतं यस्य मनो विनश्यद्
दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः ॥ ४७ ॥

समाहितं यस्य मनः प्रशान्त दान आदिभिः किं वद तस्य कृत्यं असंयतं यस्य मनः विनश्यत् दान आदिभिः चेत् अपरं किं एभिः ॥ ४७ ॥

यस्य मनः - जिसका मन
समाहितं - एकाग्र एवं
प्रशान्तं - पूर्ण शान्त है,
दान आदिभिः - दान आदिसे
तस्य कृत्यं - उसको करना
किं वद - क्या है, बतलाओ,
यस्य असंयतं - जिसका चंचल या
मनः विनश्यत् - मन (आलस्यसे) लय हो रहा है
अपरं दान आदिभिः - दूसरे दान आदि
चेत् एभिः किं - हैं तो इनसे (उसे) क्या (लाभ) हुआ ॥ ४७ ॥

मनोवशेऽन्ये ह्यभवन् स्म देवा
मनश्च नान्यस्य वशं समेति ।
भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान्
युञ्ज्याद् वशे तं स हि देवदेवः ॥ ४८ ॥

मनः वशे अन्ये हि अभवन् स्म देवा मनः च न अन्यस्म वशं सम एति भीष्मः हि देवः सहसः सहीयान् युञ्ज्यात् वशे तं स हि देव देवः ॥ ४८ ॥

हि अन्ये देवा - क्योंकि दूसरी इन्द्रियां
मनः वशे - मनके वशमें
अभवन् स्म - होती हैं,
च मनः - और मन
अन्यस्य वशं - दूसरी (इन्द्रियों) के वशमें
सम न एति - पूर्णतः कभी नहीं आता
हि देवः भीष्मः - क्योंकि यह (मन) देवता भयंकर
सहसः सहीयान् - बलवानों से भी बलवान है
हितं वशे - क्योंकि उसे जो वशमें
युञ्ज्यात् - करले
स देव देवः - वह इन्द्रियोंका स्वामी है ॥ ४८ ॥

तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेग-
मरुन्तुदं तन्न विजित्य केचित् ।
कुर्वन्त्यसद्विग्रहमत्र मर्त्यै-
र्मित्राण्युदासीनरिपून् विमूढाः ॥ ४९ ॥

तं दुर्जयं शत्रुं असह्य वेगं अरुन्तुदं तत् न विजित्य केचित् कुर्वन्ति असत् विग्रहं अत्र मर्त्यैः मित्राणि उदासीन रिपून् विमूढाः ॥ ४९ ॥

तं दुर्जयं - उस (मनरूपी) जीतनेमें कठिन,
असह्य वेगं - असह्य गति वाले,
अरुन्तुदं - बेधते रहने वाले
तत् शत्रुं - उस शत्रुको
न विजित्य - बिना जीते
केचित् विमूढाः - कुछ अत्यन्त मूर्ख लोग
अत्र मर्त्यैः - यहां मनुष्योंसे
असत् विग्रहं - झूठ-मूठका झगड़ा करके
मित्राणि - मित्र,
उदासीन - उदासीन
रिपून् कुर्वन्ति - शत्रु बनाते हैं ॥४९॥

देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा
ममाहमित्यन्धधियो मनुष्याः ।
एषोऽहमन्योऽयमिति भ्रमेण
दुरन्तपारे तमसि भ्रमन्ति ॥ ५० ॥

देहं मनः मात्रं इमं गृहीत्वा मम अहं इति अन्ध धियः मनुष्याः एषः अहं अन्यः अयं इति भ्रमेण दुरन्तपारे तमसि भ्रमन्ति ॥ ५० ॥

मनः मात्रं - मनः कल्पित
इमं देहं - इस शरीरको
गृहीत्वा - पकड़कर
मम अहं इति - ममता अहंताके कारण
अन्धधियः - अन्धी बुद्धि वाले
मनुष्याः - मनुष्य
एषः अहं - 'यह (देह) मैं हूँ,
अयं अन्यः - यह (देह) दूसरा है'
इति भ्रमेण - इस प्रकारके भ्रमके कारण
दुरन्त पारे - जिसका पार पाना कठिन है उस
तमसि भ्रमन्ति - अज्ञानमें भटक रहे हैं ॥ ५० ॥

जनस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्
किमात्मनश्चात्र ह भौमयोस्तत् ।
जिह्वां क्विचत् संदशति स्वदद्भि-
स्तद्वेदनायां कतमाय कुप्येत् ॥ ५१ ॥

जनस्तु हेतुः सुख दुःखयोः चेत् किं आत्मनः च अत्र ह भौमयोः तत् जिह्वां क्वचित् संदशति स्व दद्भिः तत् वेदनायां कतमाय कुप्येत् ॥ ५१ ॥

चेत् जनस्तु - यदि लोग ही	**क्वचित् स्व** - कभी अपने दांतोंसे
सुख दुःखयोः हेतुः-सुख-दुःखके कारण हों	**दद्भिः**
अत्रह - इसमें तो	**जिह्वां-** - जीभ कट जाती है तो
आत्मनः किं - आत्माकी क्या हानि है ?	**संदशति**
	तत् वेदनायां - उसकी पीड़ाके लिए
तत् - वे (पीड़ा) देने और पाने वाला दोनों	**कुप्येत्-** - क्रोध किसपर करे
	कतमाय ॥ ५१ ॥
भौमयोः - पार्थिव हैं,	

दुःखस्य हेतुर्यदि देवतास्तु
किमात्मनस्तत्र विकारयोस्तत् ।
यदंगमंगेन निहन्यते क्वचित्
क्रुध्येत कस्मै पुरुषः स्वदेहे ॥ ५२ ॥

दुःखस्य हेतुः यदि देवता अस्तु किं आत्मनः तत्र विकारयोः तत् यत् अंग अंगेन निहन्यते क्वचित् क्रध्येत कस्मै पुरुषः स्वदेहे ॥ ५२ ॥

दुःखस्य हेतुः - दुःखके कारण
यदि देवता- - यदि देवता हों तो
अस्तु
तत्र आत्मनः- - उसमें आत्माकी क्या
किं हानि है
तत् विकारयोः - (शरीरकी इन्द्रियां भी) उन्हीं (देवताओं) की अंश हैं,
यदि क्वचित् - यदि कभी
अंगेन अंग - एक अंगसे दूसरे अंगको
निहन्यते - चोट लग जाय तो
पुरुषः स्वदेहे - पुरुष अपने शरीरमें
कस्मै क्रुध्येत - किस पर क्रोध करे
॥ ५२ ॥

आत्मा यदि स्यात् सुखदुःखहेतुः
किमन्यतस्तत्र निजस्वभावः ।
न ह्यात्मनोऽन्यत् यदि तन्मृषा स्यात्
क्रुध्येत कस्मान्न सुखं न दुःखम् ॥ ५३ ॥

आत्मा यदि स्यात् सुख दुःख हेतुः किं अन्यतः तत्र निजस्वभावः न हि आत्मनः अन्यत् यदि तत् मृषा स्यात् क्रुध्येत कस्मात् न सुखं न दुःखम्
॥ ५३ ॥

यदि सुख- - यदि सुख-दुःखका
दुःख हेतुः कारण
आत्मा स्यात् - आत्मा हो तो
अन्यतः किं - दूसरेसे क्या प्रयोजन,
तत्र निज- - वहां तो अपना ही
स्वभावः स्वभाव है,
हि आत्मनः - क्योंकि आत्मासे
अन्यत् न - भिन्न कुछ नहीं है,
यदि तत् - यदि हो तो वह मिथ्या
मृषा स्यात् होगा
क्रुध्येत कस्मात् -अतः कुपित क्यों हो
न सुखं न - न सुख है, न दुःख
दुःखम् ॥ ५३ ॥

ग्रहा निमित्तं सुखदुःखयोश्चेत्
किमात्मनोऽजस्य जनस्य ते वै ।
ग्रहैर्ग्रहस्यैव वदन्ति पीडां
क्रुध्येत कस्मै पुरुषस्ततोऽन्यः ॥ ५४ ॥

ग्रहा निमित्तं सुख दुःखयोः चेत् किं आत्मनः अजस्य जनस्य ते वै ग्रहैः ग्रहस्य एव वदन्ति पीडां क्रुध्येत कस्मै पुरुषः ततः अन्यः ॥ ५४ ॥

चेत् सुख-दुःखयोः - यदि सुख-दुःखके
निमित्तं ग्रहा - कारण ग्रह हों तो
अजस्य- - अजन्मा आत्माकी
आत्मनः किं क्या हानि
ते ग्रहैः वै - उन ग्रहों द्वारा निश्चित
जनस्य ग्रहस्य - उत्पन्न ग्रहों को ही
पीड़ा वदन्ति - पीड़ा होती बतलाते हैं
ततः अन्यः पुरुषः - उनसे भिन्न पुरुष
कस्मै क्रुध्येत - किस पर क्रोध करे
॥ ५४ ॥

कर्मास्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्
किमात्मनस्तद्धि जडाजडत्वे ।
देहस्त्वचित् पुरुषोऽयं सुपर्णः
क्रुध्येत कस्मै न हि कर्ममूलम् ॥ ५५ ॥

कर्माः तु हेतुः सुख दुःखयोः चेत् किं आत्मनः तत् हि जडा जडत्वे देहः तु अचित् पुरुषः अयं सुपर्णः क्रुध्येत कस्मै न हि कर्ममूलम् ॥ ५५ ॥

चेत् सुख दुःखयोः हेतुः	- यदि सुख-दुःखके कारण	**देहः तु-अचित् जडत्वे**	- शरीर भी चेतना रहित है - जड़ता को ही (पीड़ा) होती है
कर्माः तु	- कर्म ही हों तो	**अयं पुरुषः**	- यह पुरुष तो
आत्मनः किं	- आत्माकी क्या हानि	**सुपर्णः**	- (उसमें) पक्षी रूपसे रहता है,
हि तत् जडा	- क्योंकि (वे) कर्म जड़ है,	**न हि-कर्ममूलं**	- क्योंकि यह कर्म मूलक नहीं है
		कस्मै क्रुध्येत	- किसपर क्रोध करे ॥ ५५ ॥

कालस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्
किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ ।
नाग्नेर्हि तापो न हिमस्य तत् स्यात्
क्रुध्येत कस्मै न परस्य द्वन्द्वम् ॥ ५६ ॥

कालस्तु हेतुः सुख दुःखयोः चेत् किं आत्मनः तत्र तत् आत्मकः असौ न अग्नेः हि तापं न हिमस्य तत् स्यात् क्रुध्येत कस्मै न परस्य द्वन्द्वम् ॥ ५६ ॥

चेत् सुख-दुःखयोः हेतुः	- यदि सुख-दुःखका कारण	**हि अग्नेः-तापं न**	- क्योंकि अग्निको गर्मी नहीं लगती
कालः स्तु	- काल हों तो	**न हिमस्य**	- न बरफको
तत्र आत्मनः किं	- तो उसमें आत्माकी क्या हानि	**तत् स्यात्**	- वह (सर्दी) होती,
असौ तत्-आत्मकः	- यह (आत्मा) उस (काल) का स्वरूप है	**कस्मै क्रुध्येत**	- किसपर क्रोध करे
		द्वन्द्वं-परस्य न	- द्वन्द्व (सुख-दुःखादि) दूसरेके दिये नहीं हैं ॥ ५६ ॥

न केनचित् क्वापि कथञ्चनास्य
द्वन्द्वोपरागः परतः परस्य ।
यथाहमः संसृति रूपिणः स्या-
देवं प्रबुद्धो न बिभेति भूतैः ॥ ५७ ॥

न केनचित् क्वापि कथञ्चन अस्य द्वन्द्व उपरागः परतः परस्य यथा अहमः संसृति रूपिणः स्यात् एवं प्रबुद्धः न बिभेति भूतैः ॥ ५७ ॥

परतः परस्य - प्रकृति से भी परे
अस्य - इस (आत्मा) की
केनचित् - किसीके भी द्वारा
क्वापि - कभी भी
कथञ्चन - किसी भी प्रकार
द्वन्द्व उपरागः - द्वन्द्वोंका लेप नहीं होसकता
यथा अहमः - जैसे अहंकार
संसृति रूपिणः - आवागमन स्वरूप है,
स्यात् -
एवं प्रबुद्धः - इस प्रकार ज्ञान सम्पन्न होकर
भूतैः न बिभेति - प्राणियोंसे नहीं डरता ॥ ५७ ॥

एतां स आस्थाय परात्मनिष्ठा-
मध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः ।
अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं
तमो मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैव ॥ ५८ ॥

एतां स आस्थाय पर आत्मनिष्ठां अध्यासितां पूर्वतमैः महर्षिभिः अहं तरिष्यामि दुरन्त पारं तमः मुकुन्द अङ्घ्रि निषेवया एव ॥ ५८ ॥

पूर्वतमैः - सबसे पहिले हुए
महर्षिभिः - महर्षियों द्वारा
अध्यासितां - आश्रय ली गयी
स एतां - उस इस प्रकारकी
पर आत्म निष्ठां - श्रेष्ठ आत्मनिष्ठा पर
आस्थाय - स्थित होकर
मुकुन्द अङ्घ्रि - मुकुन्दके चरणोंकी
निषेवया एव - प्रगाढ़ सेवा से ही
अहं दुरन्तपारं - मैं दुष्पार
तमः तरिष्यामि - अज्ञान पार कर जाऊँगा ॥ ५८ ॥

श्रीभगवानुवाच–

निर्विद्य नष्टद्रविणो गतकल्मः
प्रव्रज्य गां पर्यटमान इत्थम् ।
निराकृतोऽसद्भिरपि स्वधर्मा-
दकम्पितोऽमूं मुनिराह गाथाम् ॥ ५९ ॥

निर्विद्य नष्ट द्रविणः गतकल्मः प्रवज्य गां पर्यटमान इत्थं निराकृतः असद्भिः अपि स्वधर्मात् अकम्पितः अमूं मुनिः आह गाथाम् ॥ ५९ ॥

नष्ट द्रविणः	- धन नष्ट हो जानेपर	**निराकृतः अपि**	- सताये जानेपर भी
निर्विद्य	- विरक्त होकर	**स्वधर्मात्**	- अपने धर्मसे
गतकल्मः	- क्लेशोंसे छूटकर	**अकम्पितः**	- विचलित हुए बिना (उस)
प्रवज्य	- सन्यास लेकर	**मुनिः इत्थं**	- मुनिने इस प्रकार
गां पर्यटमान	- पृथ्वीपर घूमता हुआ	**अमूं गाथां**	- यह गाथा
असद्भिः	- दुष्टों द्वारा	**आह**	- कही ॥ ५९ ॥

सुखदुःखप्रदो नान्यः पुरुषस्यात्मविभ्रमः ।
मित्रोदासीनरिपवः संसारस्तमसः कृतः ॥ ६० ॥

सुख दुःखप्रदः न अन्यः पुरुषस्य आत्म विभ्रमः मित्र उदासीन रिपवः संसारः तमसः कृतः ॥ ६० ॥

पुरुषस्य	- पुरुषको	**मित्र उदासीन**	- मित्र, उदासीन,
सुख दुःखप्रदः	- सुख-दुःख देने वाला	**रिपवः**	- शत्रु रूपी
अन्यः न	- (कोई) दूसरा नहीं है,	**संसारः**	- यह संसार
आत्म विभ्रमः	- (यह) उसका अपना भ्रम है,	**तमसः कृतः**	- अज्ञान जनित है ॥ ६० ॥

तस्मात् सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया ।
मय्यावेशितया युक्त एतावान् योगसंग्रहः ॥ ६१ ॥

तस्मात् सर्वात्मना तात निगृहाण मनः धिया मयि आवेशितया युक्त एतावान् योग संग्रहः ॥ ६१ ॥

तात	- प्रिय उद्धव !	**धिया युक्त**	- बुद्धिसे युक्त होकर
तस्मात्	- इसलिए	**मनः निगृहाण**	- मनका निरोध करो,
सर्वात्मना	- सम्पूर्ण चित्तसे	**एतावान्**	- इतना ही
मयि आवेशितया	- मुझमें लगी	**योग संग्रहः**	- योगका सार है ॥ ६१ ॥

य एतां भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः ।
धारयञ्छ्रावयञ्छृण्वन् द्वन्द्वैर्नैवाभिभूयते ॥ ६२ ॥

यः एतां भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः धारयन् श्रावयन शृण्वन् द्वन्द्वैः न एव अभिभूयते ॥ ६२ ॥

यः एतां	- जो इस	**श्रावयन्**	- सुनाता है,
भिक्षुणा गीतां	- भिक्षु को गायी	**शृण्वन्**	- सुनता है (वह)
ब्रह्मनिष्ठां	- ब्रह्मनिष्ठाको	**द्वन्द्वैः**	- (सुख-दुःखादि) द्वन्द्वोंसे
समाहितः	- एकाग्र होकर	**न एव**	- नहीं ही
धारयन्	- धारण करता है,	**अभिभूयते**	- दबाया जाता ॥ ६२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चतम् ।
यद् विज्ञाय पुमान् सद्यो जह्याद् वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ १ ॥

अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैः विनिश्चितं यत् विज्ञाय पुमान् सद्यः जह्यात् वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ १ ॥

अथ पूर्वैः	- अब पहिलेके (महर्षियों द्वारा)	**पुमान् यत् विज्ञाय**	- पुरुष जिसे जानकर
विनिश्चितं	- निश्चित किया हुआ	**वैकल्पिकं**	- विविध कल्पना रूप
सांख्यं ते	- सांख्य योग तुमको	**भ्रमं सद्यः**	- भ्रम तत्काल
संप्रवक्ष्यामि	- सुनाता हूँ,	**जह्यात्**	- त्याग देता है ॥ १ ॥

आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ एकमेवाविकल्पितम् ।
यदा विवेकनिपुणा आदौ कृतयुगेऽयुगे ॥ २ ॥

आसीत् ज्ञानं अथो हि अर्थ एकं एव विकल्पितं यदा विवेक निपुणा आदौ कृतयुगे अयुगे ॥ २ ॥

आदौ कृत-	- प्रथम कल्पके प्रथम	**हि ज्ञानं**	- क्योंकि ज्ञान
युगे अयुगे	सतयुगमें	**अथो अर्थ**	- और उसका अर्थ (तात्पर्य)
यदा विवेक	- जब बहुत विवेक	**एकं एव**	- एक (अभिन्न ब्रह्म)
निपुणा	प्रवीण लोग थे	**विकल्पितं**	- सम्पूर्ण कल्पित (दृश्य) रूपमें
		आसीत्	- था ॥ २ ॥

तन्मायाफल रूपेण केवलं निर्विकल्पितम् ।
वाङ्मनोऽगोचरं सत्यं द्विधा समभवद् बृहत् ॥ ३ ॥

तत् माया फल रूपेण केवलं निर्विकल्पितं वाङ्मनः अगोचरं सत्यं द्विधा समभवत् बृहत् ॥ ३ ॥

निर्विकल्पितं - निर्विकल्प,
वाङ्मनः- अगोचरं - वाणी-मनसे अगोचर,
फल रूपेण - अन्तिम परिणाम रूप
केवलं - वह (ब्रह्म) अद्वितीय,
सत्यं - सत्य है,
तत् माया - उसकी मायासे
बृहत् द्विधा - वह ब्रह्म ही दो रूप (द्रष्टा-दृश्य)
समभवत् - होगया ॥ ३ ॥

तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका ।
ज्ञानं त्वन्यतमो भावः पुरुषः सोऽभिधीयते ॥ ४ ॥

तयोः एकतरः हि अर्थः प्रकृतिः स उभय आत्मिका ज्ञानं तु अन्यतमः भावः पुरुषः सः अभिधीयते ॥ ४ ॥

हि तयोः - क्योंकि उन दोनों में से
एकतरः अर्थः - एक पदार्थ
प्रकृतिः - प्रकृति है
स उभय - वह दो (कार्य-कारण)
आत्मिका - स्वरूपा है,
अन्यतमः- भावः तु - दूसरा पदार्थ तो
ज्ञानं - ज्ञान (स्वरूप) है,
सः पुरुषः - वह पुरुष
अभिधीयते - कहा जाता है ॥ ४ ॥

तमो रजः सत्त्वमिति प्रकृतेरभवन् गुणाः ।
मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेन च ॥ ५ ॥

तमः रजः सत्त्वं इति प्रकृतेः अभवन् गुणाः मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुष अनुमतेन च ॥ ५ ॥

पुरुष- - जीवोंकी (कर्मराशि) के
अनुमतेन च अनुसार ही
मया - मेरे द्वारा
प्रक्षोभ्यमाणायाः - क्षुब्ध किये जानेपर
प्रकृतेः - प्रकृतिके
तमः रजः- - तमोगुण, रजोगुण, सत्त्व
सत्त्वं गुण
इति गुणाः - इस प्रकार तीन गुण
अभवन् - होगये ॥ ५ ॥

तेभ्यः समभवत् सूत्रं महान् सूत्रेण संयुतः ।
ततो विकुर्वतो जातोऽहंकारो यो विमोहनः ॥ ६ ॥

तेभ्यः समभवत् सूत्रं महान् सूत्रेण संयुतः ततः विकुर्वतः जातः अहंकारः यः विमोहनः ॥ ६ ॥

तेभ्यः - उन (गुणों) से
सूत्रं - (क्रिया शक्ति प्रधान) सूत्र और
सूत्रेण संयुतः - सूत्रके साथ मिला
महान् - (ज्ञान शक्ति प्रधान) महत्तत्त्व
ततः विकुर्वतः - उसके विकारी होनेपर
समभवत् - उत्पन्न हुआ,
अहंकारः जातः - अहंकार उत्पन्न हुआ
यः विमोहनः - जो बहुत मोहमें डालने वाला है ॥ ६ ॥

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत् ।
तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः ॥ ७ ॥

वैकारिकः तैजसः च तामसः च इति अहं त्रिवृत् तन्मात्र इन्द्रिय मनसां कारणं चित् अचित् मयः ॥ ७ ॥

अहं वैकारिकः - अहंकार वैकारिक (सात्त्विक)
च तैजसः - तथा तैजस (राजस)
च तामसः - एवं तामस
इति त्रिवृत् - इस प्रकार त्रिविध है,
तन्मात्र इन्द्रिय - वह तन्मात्राओं, इन्द्रियों,
मनसांः कारणं - मनका कारण
चित् अचित्- - चेतन-जड़
मयः उभयात्मक है ॥ ७ ॥

अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिन्द्रियाणि च ।
तैजसाद् देवता आसन्नेकादश च वैकृतात् ॥ ८ ॥

अर्थः तन्मात्रिकात् जज्ञे तामसात् इन्द्रियाणि च तैजसात् देवता आसन् एकादश च वैकृतात् ॥ ८ ॥

तामसात्	- तामस अहंकारसे (उत्पन्न)	**इन्द्रियाणि**	- इन्द्रियां उत्पन्न हुई,
तन्मात्रिकात्	- (स्पर्शादि) तन्मात्राओंसे	**च वैकृतात्**	- एवं सात्विक अहंकारसे
अर्थः	- पदार्थ (पंच महाभूत)	**एकादश**	- ग्यारह (दस इन्द्रियों एवं मनके)
च तैजसात्	- तथा राजस अहंकारसे	**देवता आसन्**	- देवता हुए ॥ ९ ॥

मया सञ्चोदिता भावाः सर्वे संहत्यकारिणः ।
अण्डमुत्पादयामासुर्ममायतनमुत्तमम् ॥ ९ ॥

मया सञ्चोदिता भावाः सर्वे संहत्य कारिणः अण्डं उत्पादयामासुः मम आयतनं उत्तमम् ॥ ९ ॥

मया	- मेरे द्वारा	**मम उत्तमं**	- मेरा श्रेष्ठ
सञ्चोदिता	- प्रेरित होकर	**आयतनं**	- निवास
सर्वे भावाः	- सब तत्त्वोंने	**अण्डं-**	- ब्रह्माण्ड उत्पन्न किया
संहत्य कारिणः	- एक साथ मिलकर क्रियाशील होकर	**उत्पादयामासु**	॥ ९ ॥

तस्मिन्नहं समभवमण्डे सलिलसंस्थितौ ।
मम नाभ्यामभूत् पद्मं विश्वाख्यं तत्र चात्मभूः ॥ १० ॥

तस्मिन् अहं समभवं अण्डे सलिल संस्थितौ मम नाभ्यां अभूत् पद्मं विश्व आख्यं तत्र च आत्म भूः ॥ १० ॥

तस्मिन् अण्डे	- उस ब्रह्माण्ड के	**मम नाभ्यां**	- मेरी नाभिसे
सलिल संस्थितौ	- जलमें स्थिर हो जानेपर	**विश्व आख्यं**	- विश्व नामक
अहं समभवं	- मैं (उसमें) प्रकट हुआ,	**पद्मं अभूत्**	- कमल उत्पन्न हुआ,
		तत्र च	- उसी से तो
		आत्मभूः	- स्वयं भू ब्रह्मा हुए ॥ १० ॥

सोऽसृजत्तपसा युक्तो रजसा मदनुग्रहात् ।
लोकान् सपालान् विश्वात्मा भूर्भुवः स्वरिति त्रिधा ॥ ११ ॥

सः असृजत् तपसा युक्तः रजसा मत् अनुग्रहात् लोकान् सपालान् विश्वात्मा भूः भुवः स्वः इति त्रिधा ॥ ११ ॥

सः विश्वात्मा - उन विश्वस्वरूपने
मत् अनुग्रहात् - मेरे अनुग्रहसे
स पालान् - लोकपालोंके साथ
भूः भुवः स्वः - भूः, भुवः, स्वः
इति त्रिधा - इस प्रकार तीनों
लोकान् लोकोंको
तपसा युक्तः - तपस्या करके
रजसा - रजोगुणसे
असृजत् - बनाया ॥ ११ ॥

देवानामोक आसीत् स्वर्भूतानां च भुवः पदम् ।
मर्त्यादीनां च भूर्लोकः सिद्धानां त्रितयात् परम् ॥ १२ ॥

देवानां ओक आसीत् स्वः भूतानां च भुवः पदं मर्त्य आदीनां भूः लोकः सिद्धानां त्रितयात् परं ॥ १२ ॥

देवानां ओक - देवताओंका निवास
स्वः आसीत् - स्वः लोक (स्वर्ग) है,
च भूतानां - तथा भूत-प्रेतोंका
पदं भुवः - स्थान भुवर्लोक है,
मर्त्य आदीनां - मनुष्यादिका
भूः लोकः - यह पृथ्वी लोक और
सिद्धानां - सिद्धोंका (स्थान)
त्रितयात् - इस तीनों लोकोंसे
परं - ऊपर (तपः, महः, जनः आदि) हैं ॥ १२ ॥

अधोऽसुराणां नागानां भूमेरोकोऽसृजत् प्रभुः ।
त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥ १३ ॥

अधः असुराणां नागानां भूमेः ओकः असृजत् प्रभुः त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुण आत्मनाम् ॥ १३ ॥

भूमेः अधः - पृथ्वीके नीचे,
असुराणां नागानां - असुरों और नागोंका
ओकः प्रभुः - निवास उन समर्थने
असृजत् - बनाया
त्रिलोक्यां - इन तीनों लोकोंमें
त्रिगुण आत्मनाम् - त्रिगुणमय
कर्मणां गतयः - कर्म करन वालोंकी गतियां होती हैं ॥१३॥

योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः ।
महर्जनस्तपः सत्यं भक्तियोगस्य मद्गतिः ॥ १४ ॥

योगस्य तपसः च एव न्यासस्य गतयः अमलाः महः जनः तपः सत्यं भक्ति योगस्य मत् गतिः ॥ १४ ॥

योगस्य - योगकी,
तपसः च एव - तपस्या की भी,
न्यासस्य - सन्यासकी
अमलाः गतयः - निर्मल गतियां
महः जनः - महर्लोक, जनलोक,
तपः सत्यं - तपो लोक, सत्य (ब्रह्म) लोकमें होती हैं
भक्ति योगस्य - भक्ति योगकी
मत् गतिः - गति मेरे पास होती है ॥ १४ ॥

मया कालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत् ।
गुणप्रवाह एतस्मिन्नुन्मज्जति निमज्जति ॥ १५ ॥

मया काल आत्मना धात्रा कर्मयुक्तं इदं जगत् गुण प्रवाह एतस्मिन् उन्मज्जति निमज्जति ॥ १५ ॥

इदं जगत् - यह संसार
कर्मयुक्तं - कर्ममय है,
मया काल आत्मना - मुझ काल स्वरूप द्वारा
धात्रा - निर्मित-पोषित है,
एतस्मिन् - इस
गुण प्रवाह - गुणोंके प्रवाहमें
उन्मज्जति - उतराता
निमज्जति - डूबता है ॥ १५ ॥

अणुर्बृहत् कृशः स्थूलो यो यो भावः प्रसिध्यति ।
सर्वोऽप्युभयसंयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १६ ॥

अणुः वृहत् कृशः स्थूलः यः यः भावः प्रसिध्यति सर्वो अपि उभय संयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १६ ॥

अणुः बृहत् - छोटे बड़े
कृशः स्थूलः - पतले-मोटे
यः यः भावः - जो जो पदार्थ
प्रसिध्यति - प्रकट होते हैं
सर्वो अपि - सभी
प्रकृत्या च - प्रकृति एवं पुरुष
पुरुषेण
उभय संयुक्तः - दोनोंसे युक्त ही हैं
॥ १६ ॥

यस्तु यस्यादिरन्तश्च स वै मध्यं च तस्य सन् ।
विकारो व्यवहारार्थो यथा तैजसपार्थिवाः ॥ १७ ॥

यः तु यस्य आदिः अन्तः च स वै मध्यं च तस्य सन् विकारः व्यवहार अर्थः यथा तैजस पार्थिवाः ॥ १७ ॥

यथा तैजस - जैसे सोनेके (आभूषणादि)
पार्थिवाः - मिट्टीके (घड़े, सकोरे आदि) का
विकारः - परिवर्तित रूप (आभूषण, घटादि)
व्यवहार अर्थः - व्यवहारके लिए है
यः तु यस्य - जो भी जिसका
आदिः च अन्तः - प्रारम्भ और अन्त है
वैतस्य - निश्चय उसका
मध्यं च - मध्यका (स्व रूप) भी
तस्य सन् - वही है ॥ १७ ॥

यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरुतेऽपरम् ।
आदिरन्तो यदा यस्य तत् सत्यमभिधीयते ॥ १८ ॥

यत् उपादाय पूर्वः तु भावः विकुरुते अपरं आदिः अन्तः यदा यस्य तत् सत्यं अभिधीयते ॥ १८ ॥

पूर्वः तु	- पूर्ववर्ती (कारण) भी	**यदा यस्य**	- जब जिसका
यत् भावं	- जिस तत्त्व को ग्रहण	**आदिः अन्तः**	- जो आरम्भ एवं अन्तिम
उपादाय	करके		(तत्त्व) है
अपरं	- दूसरे (कार्य) रूपमें	**तत् सत्यं**	- वही सत्य
विकुरुते	- परिवर्तित होते हैं,	**अभिधीयते**	- कहा जाता है ॥१८॥

प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ।
सतोऽभिव्यञ्जकः कालो ब्रह्म तत्त्रितयं त्वहम् ॥ १९ ॥

प्रकृतिः हि अस्य उपादानं आधारः पुरुषः परः सतः अभिव्यञ्जकः कालः ब्रह्मः तत् त्रितयं तु अहम् ॥ १९ ॥

हि अस्य	- क्योंकि इस संसारकी	**सतः-**	- इसको प्रकट करने वाला
उपादानं	- उपादान (मूल सामग्री)	**अभिव्यञ्जकः**	
प्रकृतिः	- प्रकृति है,	**कालः**	- काल है
परः पुरुषः	- परमात्मा	**तत् त्रितयं**	- यह तीनों
आधारः	- अधिष्ठान है,	**ब्रह्म तु अहं**	- ब्रह्म है जो मैं हूँ ॥१९॥

सर्गः प्रवर्तते तावत् पौर्वापर्येण नित्यशः ।
महान् गुणविसर्गार्थः स्थित्यन्तो यावदीक्षणम् ॥ २० ॥

सर्गः प्रवर्तते तावत् पौर्व अपर्येण नित्यशः महान् गुण विसर्ग अर्थः स्थिति अन्तः यावत् ईक्षणम् ॥ २० ॥

यावत् ईक्षणं	- जब तक (परमात्माकी) ईक्षण शक्ति है,	**महान्**	- महत्तत्त्व से
स्थिति अन्तः	- स्थिति कालके अन्त तक	**गुण-विसर्ग-**	- गुणोंके विस्तारके लिये
तावत्	- तब तक	**अर्थः**	
पौर्व अपर्येण	- पहिले (कारण) पिछले (कार्य) की परम्परासे	**सर्गः प्रवर्तते**	- सृष्टि बनी रहती है ॥ २० ॥
नित्यशः	- सदा ही		

विराण्मयाऽऽसाद्यमानो लोककल्पविकल्पकः ।
पञ्चत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ॥ २१ ॥

विराट्मया आसाद्य मानः लोक कल्प विकल्पकः पञ्चत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ॥ २१ ॥

लोक विकल्पकः - लोकोंकी विविध कल्पनाओंका
कल्प विराट् - आधार विराट्
मया - मेरे द्वारा (अपनेमें)
आसाद्यमानः मिला लेनेका संकल्प करनेपर
भुवनैः सह - सब लोकोंके साथ
विशेषाय - विभाजनके योग्य
पञ्चत्वाय - विनाशको
कल्पते - प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

अन्ने प्रलीयते मर्त्यमन्नं धानासु लीयते ।
धाना भूमौ प्रलीयन्ते भूमिर्गन्धे प्रलीयते ॥ २२ ॥

अन्नं प्रलीयते मर्त्यं अन्नं धानासु लीयते धाना भूमौ प्रलीयन्ते भूमिः गन्धे प्रलीयते ॥ २२ ॥

मर्त्यं - मरणधर्मा सब प्राणी
अन्नं प्रलीयते - अन्नमें लीन हो जाते हैं१
अन्नं धानासु - अन्न धान्यमें
प्रलीयते - लीन हो जाते हैं२
धाना भूमौ - धान्य भूमिमें
प्रलीयन्ते - विलीन हो जाते हैं३
भूमिः गन्धे - पृथ्वी गन्ध तन्मात्रामें
प्रलीयते - लीन हो जाती है४
॥ २२ ॥

---

१. आहार न मिलने से मर जाते हैं ।
२. अन्न केवल बोया बीज में बच रहता है ।
३. बोये बीज भूमि में ही नष्ट हो जाते हैं, उगते नहीं ।
४. पृथ्वी का स्थूल रूप नष्ट होकर केवल गन्ध रह जाती है ।

अप्सु प्रलीयते गनेध आपश्च स्वगुणे रसे ।
लीयते ज्योतिषि रसो ज्योती रूपे प्रलीयते ॥ २३ ॥

अप्सु प्रलीयते गन्ध आपः च स्वगुणे रसे लीयते ज्योतिषि रसः ज्योतीः रूपे प्रलीयते ॥ २३ ॥

गन्धः अप्सु	- गन्ध जलमें	**लीयते**	- लीन होता है,
प्रलीयते	- लीन होती है,	**रसः ज्योतिषि**	- रस अग्निमें
आपः च	- जल भी	**ज्योती रूपे**	- अग्नि रूप तन्मात्रामें
स्वगुणे रसे	- अपनी तन्मात्रा रसमें	**प्रलीयते**	- विलीन हो जाता है ॥ २३ ॥

रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सोऽपि चाम्बरे ।
अम्बरं शब्दतन्मात्र इन्द्रियाणि स्वयोनिषु ॥ २४ ॥

रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सः अपि च अम्बरे अम्बरं शब्द तन्मात्र इन्द्रियाणि स्वयोनिषु ॥ २४ ॥

रूपं वायौ	- रूप वायुमें,	**अम्बरं**	- आकाश
स च स्पर्शे	- वह भी स्पर्श तन्मात्रामें,	**शब्द तन्मात्र**	- शब्द तन्मात्रामें एवं
सः अपि च	- वह (स्पर्श) भी	**इन्द्रियाणि**	- इन्द्रियां
अम्बरे	- आकाशमें,	**स्वयोनिषु**	- अपने कारण (राजस अहंकारमें)
		लीयते	- लीन होजाती हैं ॥२४॥

योनिर्वैकारिके सौम्य लीयते मनसीश्वरे ।
शब्दो भूतादिमप्येति भूतादिर्महति प्रभुः ॥ २५ ॥

योनिः वैकारिके सौम्य लीयते मनसि ईश्वरे शब्दः भूतादिं अपि एति भूतादिः महति प्रभुः ॥ २५ ॥

सौम्य - साधु उद्धव !
योनिः - राजस अहंकार
ईश्वरे - अपने नियन्ता
वैकारिके मनसि - सात्त्विक अहंकार रूप मनमें,
शब्दः अपि - शब्द तन्मात्रा भी
भूतादिं एति - पंच भूतोंके कारण तामस अहंकार में मिलता है,
भूतादिः - तामस अहंकार
प्रभुः महति - अपने कारण महत्तत्त्वमें
लीयते - लीन हो जाता है ॥२५॥

स लीयते महान् स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः ।
तेऽव्यक्ते संप्रलीयन्ते तत् काले लीयतेऽव्यये ॥ २६ ॥

स लीयते महान् स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः ते अव्यक्ते सम्प्रलीयन्ते तत् काले लीयते अव्यये ॥ २६ ॥

स गुणवत्तमः - वह श्रेष्ठ गुणों वाला
महान् - महत्तत्त्व
स्वेषु गुणेषु - अपने (सत्त्वादि) गुणोंमें
लीयते - लीन होता है,
ते अव्यक्ते - वे (गुण) प्रकृतिमें
सम्प्रलीयन्ते - विलीन हो जाते हैं,
तत् अव्यये - वह (प्रकृति) अविनाशी
काले लीयते - कालमें लीन होती है ॥ २६ ॥

कालो मायामये जीवे जीव आत्मनि मय्यजे ।
आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः ॥ २७ ॥

कालः मायामये जीवे जीव आत्मनि मयि अजे आत्मा केवल आत्मस्थः विकल्प अपाय लक्षणः ॥ २७ ॥

कालः - काल
मायामये जीवे - मायामय जीवमें,
जीव मयि अजे - जीव मुझ अजन्मा
आत्मनि - आत्मामें (लीन होता है)
विकल्प अपाय - विविधताके अभावका
लक्षणः आत्मा - स्वरूप आत्मा
केवल आत्मस्थः - अकेला अपनेमें स्थित रहता है ॥ २७ ॥

एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः ।
मनसो हृदि तिष्ठेत व्योम्नीवार्कोदये तमः ॥ २८ ॥

एवं अन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः मनसः हृदि तिष्ठेत व्योम्नि इव अर्क उदये तमः ॥ २८ ॥

व्योम्निइव	- आकाशमें जैसे	**अन्वीक्षमाणस्य**	- बराबर देखने वालेके
अर्क उदये	- सूर्योदय होजाने पर	**हृदि कथं**	- चित्तमें कैसे
तमः	- अन्धकार (नहीं रह सकता)	**वैकल्पिको भ्रमः**	- विविधताका भ्रम
		तिष्ठेत	- ठहर सकता है ॥ २८ ॥
एवं मनसः	- इस प्रकार बुद्धि द्वारा		

एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रन्थिभेदनः ।
प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृशा मया ॥ २९ ॥

एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशय ग्रन्थि भेदनः प्रतिलोम अनुलोमाभ्यां पर अवर दृशा मया ॥ २९ ॥

पर अवर	- कारण-कार्यके	**एष सांख्य विधिः**	- यह सांख्यकी प्रक्रिया
दृशा मया	- जानने वाले मेरे द्वारा		
संशय ग्रन्थि	- संशय रूपी ग्रन्थिको	**प्रतिलोम**	- सृष्टिसे प्रलयक्रम तथा
भेदनः	- काट देने वाली	**अनुलोमाभ्यां**	- प्रलयसे सृष्टिक्रम द्वारा
		प्रोक्तः	- कही गयी ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

गुणानामसमिश्राणां पुमान् येन यथा भवेत् ।
तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसतः ॥ १ ॥

गुणानां असमिश्राणां पुमान् येन यथा भवेत् तत् मे पुरुष वर्य इदं उपधारय शंसतः ॥ १ ॥

पुरुषवर्य	- पुरुष श्रेष्ठ !	**भवेत्**	- होता है,
येन असमिश्राणां	- जिस बिना मिले	**तत् मे शंसतः**	- उसे मेरे बतलानेसे
गुणानां	- (अपने विशेष) गुणसे	**उपधारय**	- श्रवण करो ॥ १ ॥
पुमान् यथा	- पुरुष जैसा		

शमो दमस्तितिक्षेक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः ।
तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा ह्रीर्दयादिः स्वनिर्वृतिः ॥ २ ॥

शमः दमः तितिक्षा ईक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः तुष्टिः त्यागः अस्पृहा श्रद्धा ह्रीः दया आदिः स्वनिर्वृतिः ॥ २ ॥

शमः दमः	- मनकी शान्ति, इन्द्रिय दमन,	**त्यागः अस्पृहा**	- त्याग, भोगोंसे अनिच्छा
तितिक्षा ईक्षा	- तितीक्षा, विवेक,	**श्रद्धा ह्रीः**	- श्रद्धा, लज्जा,
तपः सत्यं दया	- तप, सत्य, दया,	**दया आदिः**	- दान आदि,
स्मृतिः तुष्टिः	- स्मृति, सन्तोष,	**स्वनिर्वृतिः**	- आत्मरति ॥ २ ॥

काम ईहा मदस्तृष्णा स्तम्भ आशीर्भिदा सुखम् ।
मदोत्साहो यशः प्रीतिर्हास्यं वीर्यं बलोद्यमः ॥ ३ ॥

काम ईहा मदः तृष्णा स्तम्भ आशीः भिदा सुखं मद उत्साहः यशः प्रीतिः हास्यं वीर्यं बल उद्यमः ॥ ३ ॥

काम ईहा - कामना, प्रयत्न,
मदः तृष्णा - घमंड, तृष्णा,
स्तम्भ आशीः - अकड़, (धनादिका) आशीर्वाद चाहना,
भिदा सुखं - भेद बुद्धि, विषय सुख भोगना,
मद उत्साहः - गर्व, (लौकिक कर्ममें) उत्साह,
यशः प्रीतिः - अपने यशसे प्रेम,
हास्यं वीर्यं - हास्य, पराक्रम,
बल उद्यमः - हठपूर्वक उद्योग करना ॥ ३ ॥

क्रोधो लोभोऽनृतं हिंसा याच्ञा दम्भः कल्मः कलिः ।
शोकमोहौ विषादार्ती निद्राऽऽशा भीरनुद्यमः ॥ ४ ॥

क्रोधः लोभः अनृतं हिंसा याच्ञा दम्भः कल्मः कलिः शोक मोहौ विषाद आर्ती निद्रा आशा भीः अनुद्यमः ॥ ४ ॥

क्रोधः लोभः - क्रोध, लोभ,
अनृतं हिंसा - झूठ, हिंसा,
याच्ञा दम्भः - मांगनेकी वृत्ति, पाखण्ड,
कल्मः कलिः - श्रम, कलह,
शोक मोहौ - शोक, मोह,
विषादआर्ती - विषाद, दीनता,
निद्रा आशा - निद्रा, आशा
भीः अनुद्यमः - भय, उत्साहहीनता ॥ ४ ॥

सत्त्वस्य रजसश्चैतास्तमसश्चानुपूर्वशः ।
वृत्तयो वर्णितप्रायाः सन्निपातमथो शृणु ॥ ५ ॥

सत्त्वस्य रजसः च एताः तमसः च अनुपूर्वशः वृत्तयः वर्णित प्रायाः सन्निपातं अथो शृणु ॥ ५ ॥

अनुपूर्वशः - पहिलेके क्रमानुसार
सत्त्वस्य - (श्लोकमें) सत्त्वगुणकी
च रजसः - तथा (श्लोक ३में) रजोगुणकी
च तमसः - एवं (श्लोक ४में) तमोगुणकी
एताः वृत्तयः - ये वृत्तियां
प्रायाः वर्णित - प्रायः वर्णन करदी गयीं
अथो सन्निपातं - अब (इनके) मेलसे होने वाली
शृणु - (वृत्तियोंको) सुनो ॥ ५ ॥

सन्निपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धव या मतिः ।
व्यवहारः सन्निपातो मनोमात्रेन्द्रियासुभिः ॥ ६ ॥

सन्निपातः तु अहं इति मम इति उद्धव या मतिः व्यवहारः सन्निपातः मनः मात्र इन्द्रिय असुभिः ॥ ६ ॥

उद्धव - उद्धव !
अहं इति - (यह मैं हूँ) इस प्रकारकी और
मम इति - (यह मेरा है) इस प्रकारकी
या मतिः - जो बुद्धि है
सन्निपातः तु - गुणोंका मिश्रण ही है,
मनः मात्र - मन, तन्मात्राओं,
इन्द्रिय असुभिः - इन्द्रियों तथा प्राणोंसे
व्यवहारः - (होने वाला) व्यवहार
सन्निपातः - गुणोंका मिश्रण है ॥ ६ ॥

धर्मे चार्थे च कामे च यदासौ परिनिष्ठितः ।
गुणानां सन्निकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः ॥ ७ ॥

धर्मे अर्थे च कामे च यदा, असौ परिनिष्ठितः गुणानां सन्निकर्षः अयं श्रद्धा रति धन आवहः ॥ ७ ॥

यदा असौ - जब यह पुरुष
धर्मे च - धर्म तथा
अर्थे च - धनमें तथा
कामे - भोगमें
परिनिष्ठितः - पूर्णतः लगता है
श्रद्धा - (सत्त्वगुणसे) श्रद्धा
रति - (रजोगुणसे) रति
धन आवहः - (तमोगुणसे) धनदायिनी
अयं गुणानां - ये (वृत्तियां) गुणोंकी
सन्निकर्षः - मिश्रण हैं ॥ ७ ॥

प्रवृत्तिलक्षणे निष्ठा पुमान् यर्हि गृहाश्रमे ।
स्वधर्मे चानुतिष्ठेत गुणानां समितिर्हि सा ॥ ८ ॥

प्रवृत्ति लक्षणे निष्ठा पुमान् यर्हि गृह आश्रमे स्वधर्मे च अनुतिष्ठेत गुणानां समितिः हि सा ॥ ८ ॥

यर्हि पुमान्	- जब पुरुष	**निष्ठा**	- स्थिरतापूर्वक
गृह आश्रमे	- गृह आश्रममें	**अनुतिष्ठेत**	- लगा रहता है
प्रवृत्ति लक्षणे	- प्रवृत्ति मूलक	**हि सा**	- क्योंकि वह भी
स्वधर्मे च	- अपने धर्ममें ही	**गुणानां समितिः**	- गुणोंका मिश्रण है ॥८॥

पुरुषं सत्त्वसंयुक्तमनुमीयाच्छमादिभिः ।
कामादिभी रजोयुक्तं क्रोधाद्यैस्तमसा युतम् ॥ ९ ॥

पुरुषं सत्त्व संयुक्तं अनुमीयात् शम आदिभिः काम आदिभीः रजः युक्तं क्रोध आद्यैः तमसा युतम् ॥ ९ ॥

शम आदिभिः	- शम आदि (गुणोंसे	**रजः युक्तः**	- रजोगुण युक्त तथा
पुरुषं सत्त्व-	- पुरुषको सत्त्व गुण	**क्रोध आद्यैः**	- क्रोधादिसे
संयुक्तं	युक्त,	**तमसा युतं**	- तमोगुण युक्त
काम आदिभिः	- कामादिसे	**अनुमीयात्**	- अनुमान करले ॥ ९ ॥

यदा भजति मां भक्त्या निरपेक्षः स्वकर्मभिः ।
तं सत्त्वप्रकृतिं विद्यात् पुरुषं स्त्रियमेव वा ॥ १० ॥

यदा भजति मां भक्त्या निरपेक्षः स्व कर्मभिः तं सत्त्व प्रकृतिं विद्यात् पुरुषं स्त्रियं एव वा ॥ १० ॥

पुरुषं वा-	- पुरुष हो अथवा स्त्री	**भक्त्या**	- भक्तिपूर्वक
स्त्रियं एव	ही हो	**मां भजति**	- मेरा भजन करता है तो
यदा स्वकर्मभिः	- जब अपने कर्मों द्वारा	**तं सत्त्व प्रकृतिं**	- उसे सात्त्विक **प्रकृतिका**
निरपेक्षः	- बिना किसी अपेक्षाके	**विद्यात्**	- समझे ॥ १० ॥

यदा आशिष आशास्य मां भजेत स्वकर्मभिः ।
तं रजःप्रकृतिं विद्याद्धिंसामाशास्य तामसम् ॥ ११ ॥

यदा आशिष आशास्य मां भजेत स्वकर्मभिः तं रजः प्रकृतिं विद्यात् हिंसां आशास्य तामसम् ॥ ११ ॥

यदा स्वकर्मभिः	- जब अपने कर्मों द्वारा	**तं रजः-**	- उसे रजो गुणी स्वभाव
आशिष	- अभिलाषा	**प्रकृतिं**	और
आशास्य	(पूर्ण करनेकी) इच्छा लेकर	**हिंसां-**	- (किसीको) कष्ट देनेकी
		आशास्य	इच्छा करके (भजन करने वालेको)
मां भजेत	- मेरा भजन करता है	**तामसं**	- तमोगुणी
		विद्यात्	- समझे ॥ ११ ॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणा जीवस्य नैव मे ।
चित्तजा यैस्तु भूतानां सज्जमानो निबध्यते ॥ १२ ॥

सत्त्वं रजः तम इति गुणा जीवस्य न एव मे चित्तजा यैः तु भूतानां सज्जमानः निबध्यते ॥ १२ ॥

सत्त्वं रजः	- सत्व, रज	**यैः तु भूतानां**	- जिनके द्वारा प्राणि-पदार्थोंसे
तम इति गुणा	- तम ये गुण	**सज्जमानः**	- आसक्त होकर
जीवस्य चित्तजाः	- जीवके चित्तसे उत्पन्न होते हैं,	**निबध्यते**	- बन्धनमें पड़ जाता है ॥ १२ ॥
मे न एव	- मेरे नहीं ही हैं,		

यदेतरौ जयेत् सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवम् ।
तदा सुखेन युज्येत धर्मज्ञानादिभिः पुमान् ॥ १३ ॥

यदा इतरौ जयेत् सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवं तदा सुखेन युज्येत धर्म ज्ञान आदिभिः पुमान् ॥ १३ ॥

यदा भास्वरं - जब प्रकाशमय
विशदं शिवं - निर्मल, शान्त
सत्त्वं - सत्त्वगुण
इतरौ जयेत् - दूसरे (रजः तमस) को जीत लेता है
तदा पुमान् - उस समय पुरुष,
सुखेन - सुख तथा
धर्मज्ञान - धर्म, ज्ञान
आदिभिः- - आदिसे युक्त हो जाता
युज्येत है ॥ १३ ॥

यदा तमोत्तमः सत्त्वं रजः संगं भिदा चलम् ।
तदा दुःखेन युज्येत कर्मणा यशसा श्रिया ॥ १४ ॥

यदा जयेत् तमः सत्त्वं रजः संगं भिदा चलं तदा दुःखेन युज्येत कर्मणा यशसा श्रिया ॥ १४ ॥

यदा संगं - जब आसक्ति एवं
भिदा चलं - भेद बुद्धि वाला चंचल
रजः - रजोगुण
तमः सत्त्वं - तमोगुण और सत्त्वगुणको
जयेत् - जीत लेता है
तदा दुःखेन - तब दुःख,
कर्मणा यशसा - कर्म, यश और
श्रिया युज्येत - धनसे (पुरुष) युक्त होता है ॥ १४ ॥

यदा जयेद् रजः सत्त्वं तमो मूढं लयं जडम् ।
युज्येत शोकमोहाभ्यां निद्रया हिंसयाऽऽशया ॥ १५ ॥

यदा जयेद् रजः सत्त्वं तमः मूढं लयं जडं युज्येत शोक मोहाभ्यां निद्रया हिंसया आशया ॥ १५ ॥

यदा मूढं - जब अज्ञानरूप,
लयं जडं - लय तथा जड़ता स्वरूप
तमः रजः सत्त्वं - तमोगुण रजोगुण एवं सत्त्वगुणको
जयेद् - जीत लेता है (तब)
शोक मोहाभ्यां - (पुरुष) शोक, मोह,
निद्रया हिंसया - निद्रा, हिंसा,
आशया युज्येत - कोरी आशासे युक्त हो जाता है ॥ १५ ॥

तदा चित्तं प्रसीदेत इन्द्रियाणां च निर्वृतिः ।
देहेऽभयं मनोऽसंगं तत्सत्त्वं विद्धि मत्पदम् ॥ १६ ॥

तदा चित्तं प्रसीदेत इन्द्रियाणां च निर्वृतिः देहे अभयं मनः असंगं तत् सत्त्वं विद्धि मत् पदम् ॥ १६ ॥

तदा चित्तं	- जब चित्त	**देहे अभयं**	- शरीर निर्भय (स्वस्थ)
प्रसीदेत	- प्रसन्न हो,		हो,
च इन्द्रियाणां	- तथा इन्द्रियोंमें	**मनः असंगं**	- मन अनासक्त हो
निर्वृतिः	- शान्तिहो,	**तत् मत् पदं**	- उसे मेरा (निवास) स्थान
		सत्त्वं विद्धि	- सत्त्वगुण समझो ॥१६॥

विकुर्वन् क्रियया चाधीरनिर्वृत्तिश्च चेतसाम् ।
गात्रास्वास्थ्यं मनो भ्रान्तं रज एतैर्निशामय ॥ १७ ॥

विकुर्वन् क्रियया च अधीः अनिर्वृत्तिः च चेतसां गात्र अस्वास्थ्यं मनः भ्रान्तं रज एतैः निशामय ॥ १७ ॥

क्रियया विकुर्वन्	- काम करते करते	**गात्र-**	- शरीर अस्वस्थ हो,
अधीः	- बुद्धि काम न दे,	**अस्वास्थ्यं**	
	- तथा इन्द्रियोंमें	**मनः भ्रान्तं**	- मन भटकता हो
च चेतसां	- एवं चित्तमें	**एतैः रंज**	- इन (लक्षणों) से रजोगुण
अनिर्वृतिः	- अशान्ति हो,	**निशामय**	- देखो ॥ १७ ॥

सीदच्चित्तं विलीयेत चेतसो ग्रहणेऽक्षमम् ।
मनो नष्टं तमो ग्लानिस्तमस्तदुपधारय ॥ १८ ॥

सीदत् चित्तं विलीयेत चेतसः ग्रहणे अक्षमं मनः नष्टं तमः ग्लानिः तमः तत् उपधारय ॥ १८ ॥

चेतसः - (शब्दादि) चेतनाको
ग्रहणे अक्षमं - ठीक-ठीक ग्रहण करनेमें असमर्थ
सीदत् चित्तं - खिन्न होकर चित्त
विलीयेत - लय होने लगे,
मनः नष्टं - मन सूना प्राय होजाय,
तमः ग्लानिः - अज्ञान और विषाद हो तो
तत् तमः - उसे तमोगुण
उपधारय - समझ लो ॥ १८ ॥

एधमा. गुणे सत्त्वे देवानां बलमेधते ।
असुराणां च रजसि तमस्युद्धव रक्षसाम् ॥ १९ ॥

एधमाने गुणे सत्त्वे देवानां बलं एधते असुराणां च रजसि तमसि उद्धव रक्षसाम् ॥ १९ ॥

उद्धव - उद्धव (समष्टिमें)
सत्त्वे गुणे - सत्त्वगुणके
एधमाने - बढ़नेपर
देवानां बलं - देवताओंका बल
एधते - बढ़ता है,
रजसि - रजोगुणके (बढ़नेपर)
असुराणां - असुरोंका
च तमसि - तथा तमोगुणके (बढ़नेपर)
रक्षसाम् - राक्षसों का (बल बढ़ता है) ॥ १९ ॥

सत्त्वाज्जागरणं विद्याद् रजसा स्वप्नमादिशेत् ।
प्रस्वापं तमसा जन्तोस्तुरीयं त्रिषु सन्ततम् ॥ २० ॥

सत्त्वात् जागरणं विद्यात् रजसा स्वप्नं आदिशेत् प्रस्वापं तमसा जन्तोः तुरीयं त्रिषु सन्ततम् ॥ २० ॥

सत्त्वात् जन्तोः - सत्त्वगुणसे (व्यष्टि) प्राणीमें
जागरणं विद्यात् - जागृतावस्था समझे,
रजसा स्वप्नं - रजोगुणसे स्वप्नावस्थाका
आदिशेत् - निर्देश करे,
तमसा प्रस्वापं - तमोगुणसे सुषुप्ति और
तुरीयं त्रिषु - तुरीय स्थिति तीनों अवस्थाओंमें
सन्ततं - व्याप्त रहती है ॥ २० ॥

उपर्युपरि गच्छन्ति सत्त्वेन ब्राह्मणा जनाः ।
तमसाधोऽध आमुख्याद् रजसान्तरचारिणः ॥ २१ ॥

उपरि उपरि गच्छन्ति सत्त्वेन ब्राह्मणा जनाः तमसा अधः अध आमुख्यात् रजसा अन्तर चारिणः ॥ २१ ॥

ब्राह्मणा जनाः	-	वेदज्ञ लोग	**तमसा-**	-	तमोगुणसे वृक्ष-
सत्त्वेन	-	सत्त्वगुण द्वारा	**आमुख्यात्**		पाषाणादि पर्यन्त
उपरि उपरि	-	उत्तरोत्तर ऊपरके लोकोंमें	**अधः अध**	-	क्रमशः नीचे और
			रजसा	-	रजोगुणसे
गच्छन्ति	-	जाते हैं,	**अन्तर चारिणः**	-	बीचमें रहने वाले (होते हैं) ॥ २१ ॥

सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यान्ति नरलोकं रजोलयाः ।
तमोलयास्तु निरयं यान्ति मामेव निर्गुणाः ॥ २२ ॥

सत्त्वे प्रलीनाः स्वः यान्ति नरलोकं रजः लयाः तमः लयाः तु निरयं यान्ति मां एव निर्गुणाः ॥ २२ ॥

सत्त्वे प्रलीनाः	-	सत्त्वगुणकी वृद्धिके समय मरने वाले	**तमः लयाः-**	-	तमोगुणकी वृद्धिके समय
			तु		मरने वाले तो
स्वः यान्ति	-	स्वर्ग जाते हैं	**निरयं**	-	नरक और
रजः लयाः	-	रजोगुणकी वृद्धिके समय मरने वाले	**निर्गुणाः**	-	गुणातीत पुरुष
			मां एव यान्ति	-	मुझे ही पाते हैं ॥ ३२ ॥
नरलोकं	-	मनुष्यलोकमें,			

मदर्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत् ।
राजसं फलसंकल्पं हिंसाप्रायादि तामसम् ॥ २३ ॥

मत् अर्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत् राजसं फल संकल्पं हिंसाप्राय आदि तामसम् ॥ २३ ॥

मत् अर्पणं	- मुझे अर्पित हो
वा निष्फलं	- अथवा निष्कामहो
तत् निजकर्म	- वह अपना कर्तव्य कर्म
सात्त्विकं	- सात्विक है,
फल संकल्पं	- फल पानेका संकल्प करके किया गया
राजसं	- राजस है,
हिंसा प्राय आदि	- हिंसा प्रधानादि
तामसं	- तामस (कर्म) हैं ॥ २३ ॥

कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकं च यत् ।
प्राकृतं तामसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥ २४ ॥

कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं रजः वैकल्पिकं च यत् प्राकृतं तामसं ज्ञानं मत् निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥ २४ ॥

कैवल्यं ज्ञानं	- केवल (शुद्ध) आत्मज्ञान
सात्त्विकं	- सात्त्विक है,
च यत्-	- और जो भेदों का
वैकल्पिकं	ज्ञान है
रजः	- राजसिक है,
प्राकृतं ज्ञानं	- शरीरको आत्मा माननेका ज्ञान
तामसं	- तामसिक है,
मत् निष्ठं	- मेरे स्वरूपका (ज्ञान)
निर्गुणं स्मृतं	- निर्गुण कहा गया है ॥ २४ ॥

वनं तु सात्त्विको वासो ग्रामो राजस उच्यते ।
तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥ २५ ॥

वनं तु सात्त्विकः वासः ग्रामो राजस उच्यते तामसं द्यूत सदनं मत् निकेतं तु निर्गुणम् ॥ २५ ॥

वनं वासः तु	- वनमें रहना तो
सात्त्विकः	- सात्त्विक है,
ग्रामो राजस-	- गाँव (बस्ती) में राजस
उच्यते	कहा जाता है
द्यूत सदनं	- जुआघरमें (रहना)
तामसं	- तामस है
मत् निकेतं तु	- मेरे मन्दिरमें रहना तो
निर्गुणं	- निर्गुण है ॥ २५ ॥

सात्त्विकः कारकोऽसंगी रागान्धो राजसः स्मृतः ।
तामसः स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणो मदपाश्रयः ॥ २६ ॥

सात्त्विकः कारकः असंगी राग अन्धः राजसः स्मृतः तामसः स्मृति विभ्रष्टः निर्गुणः मत् अपाश्रयः ॥ २६ ॥

असंगी-कारकः	- अनासक्त भावसे कर्तव्य पालन करने वाला,	**स्मृति विभ्रष्टः**	- स्मृति-भ्रष्ट (विवेकहीन)
सात्त्विकः	- सात्त्विक है,	**तामसः**	- तमोगुणी है
राग अन्धः	- आसक्ति से अन्धा (होकर कर्म करने वाला)	**मत् अपाश्रयः**	- मेरा आश्रय लेकर (कर्म करने वाला)
राजसः स्मृतः	- राजस कहा गया है,	**निर्गुणः**	- निर्गुण (कर्ता) है ॥ २६ ॥

सात्त्विक्याधात्मिकी श्रद्धा कर्म श्रद्धा तु राजसी ।
तामस्यधर्मे या श्रद्धा मत्सेवायां तु निर्गुणा ॥ २७ ॥

सात्त्विकि आध्यात्मिकी श्रद्धा कर्म श्रद्धा तु राजसी तामसि अधर्मे या श्रद्धा मत् सेवायां तु निर्गुणा ॥ २७ ॥

आध्यात्मिकी श्रद्धा सात्त्विकि	- अध्यात्मज्ञान पर श्रद्धा सात्त्विकी है,	**या श्रद्धा-अधर्मे**	- जो श्रद्धा अधर्म में है
कर्म श्रद्धा तु	- (अपने) कर्मपर श्रद्धा तो	**तामसि**	- वह तामसिक है,
राजसी	- राजसिक है,	**मत् सेवायां तु**	- मेरी सेवामें (श्रद्धा) तो
		निर्गुणा	- निर्गुण है ॥ २७ ॥

पथ्यं पूतमनायस्तमाहार्यं सात्त्विकं स्मृतम् ।
राजसं चेन्द्रियप्रेष्ठं तासमं चार्तिदाशुचि ॥ २८ ॥

पथ्यं पूतं अनायः तं आहार्यं सात्त्विकं स्मृतं राजसं च इन्द्रिय प्रेष्ठं तामसं च आर्तिदा अशुचि ॥ २८ ॥

पथ्यं पूतं - आरोग्यदायक, पवित्र,
अनायासः - बिना परिश्रम प्राप्त
आहार्यं - भोजन
सात्त्विकं स्मृतं - सात्त्विक कहा गया है,
इन्द्रिय- - इन्द्रिय (जीभ) को
प्रेष्ठं च प्रिय लगने वाला
राजसं - राजस है,
आर्तिदा- - दुखदायक और अपवित्र
अशुचि (भोजन)
तासमं - तामसिक है ॥ २८ ॥

सात्त्विकं सुखमात्मोत्थं विषयोत्थं तु राजसम् ।
तामसं मोहदैन्योत्थं निर्गुणं मदापाश्रयम् ॥ २९ ॥

सात्त्विकं सुखं आत्म उत्थं विषय उत्थं तु राजसं तामसं मोह दैन्य उत्थं निर्गुणं मत् अपाश्रयम् ॥ २९ ॥

आत्म उत्थं - अपने भीतरसे उत्पन्न
सुखं सात्त्विकं - सुख सात्त्विक है,
विषय उत्थं तु - विषयोंके द्वारा उत्पन्न तो
राजसं - राजसिक है,
मोह दैन्य उत्थं - अज्ञान या दीनतासे उत्पन्न (सुख)
तामसं - तामसिक है,
मत् अपाश्रयं - मेरे आश्रयसे (होने वाला सुख)
निर्गुणं - निर्गुण है ॥ २९ ॥

द्रव्यं देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः ।
श्रद्धावस्थाऽऽकृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि ॥ ३० ॥

द्रव्यं देशः फलं कालः ज्ञानं कर्म च कारकः श्रद्धा अवस्था आकृतिः निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि ॥ ३० ॥

हि द्रव्यः देशः - क्योंकि पदार्थ, स्थान,
फलं कालः - परिणाम, समय,
ज्ञानं कर्म - ज्ञान, कर्म,
कारकः श्रद्धा - कर्ता, श्रद्धा,
अवस्था आकृतिः - स्थिति, रूप,
च निष्ठा - तथा निष्ठा
सर्व एव त्रैगुण्यः - सभी त्रिगुणात्मक हैं ॥ ३० ॥

सर्वे गुणमया भावाः पुरुषाव्यक्तधिष्ठिताः ।
दृष्टं श्रुतमनुध्यातं बुद्ध्या वा पुरुषर्षभ ॥ ३१ ॥

सर्वे गुणमया भावाः पुरुष अव्यक्त अधिष्ठिताः दृष्टं श्रुतं अनुध्यातं बुद्धया वा पुरुष ऋषभ ॥ ३१ ॥

पुरुष ऋषभ	- पुरुष श्रेष्ठ !	**सर्वे भावा**	- सब तत्त्व
दृष्टं श्रुतं	- देखे, सुने	**पुरुष अव्यक्त**	- पुरुष-प्रकृतिके
वा बुद्धया	- अथवा बुद्धिसे	**अधिष्ठिताः**	- आश्रित
अनुध्यातं	- सोचे गये	**गुणमया**	- त्रिगुणमय हैं ॥ ३१ ॥

एताः संसृतयः पुंसो गुणकर्मनिबन्धनाः ।
येनेमे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः ।
भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते ॥ ३२ ॥

एताः संसृतयः पुंसः गुण कर्म निबन्धनाः येन इमे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः भक्तियोगेन मत् निष्ठः मत् भावाय प्रपद्यते ॥ ३२ ॥

सौम्य	- साधु उद्धव !	**भक्तियोगेन**	- भक्ति योग द्वारा
पुंसः एताः	- पुरुष की यह सब	**येन इमे-**	- जिसने ये चित्तसे
संसृतयः	- गतियां	**चित्तजाः**	उत्पन्न होने वाले
गुण कर्म	- त्रिगुणमय कर्मोंके साथ	**गुणा निर्जिताः**	- गुणोंको जीत लिया
निबन्धनाः	- बँधी हैं (कर्मानुसार होती हैं)	**मत् भावाय**	- वह मेरे स्वरूपको
		प्रपद्यते	- प्राप्त कर लेता है ॥ ३२ ॥
मत् निष्ठः	- मुझमें निष्ठापूर्वक		

तस्माद् देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसम्भवम् ।
गुणसंग विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः ॥ ३३ ॥

तस्मात् देहं इमं लब्ध्वा ज्ञान विज्ञान सम्भवं गुण संग विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः ॥ ३३ ॥

तस्मात् - इसलिए
ज्ञान-विज्ञान - ज्ञान-विज्ञान
सम्भवं - उत्पन्न करने वाले
इमं देहं - इस (मनुष्य) शरीरको
लब्ध्वा - प्राप्त करके
गुण संग - गुणों (विषयों) की आसक्ति
विनिर्धूय - सर्वथा मिटाकर
विचक्षणाः - विवेक युक्त होकर
मां भजन्तु - मेरा भजन करो
॥ ३३ ॥

निःसंगो मां भजेद् विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रियः ।
रजस्तमश्चाभिजयेत् सत्त्वसंसेवया मुनिः ॥ ३४ ॥

निः संगः मां भजेत् विद्वान् अप्रमत्तः जित इन्द्रियः रजः तमः च अभिजयेत् सत्त्व सं सेवया मुनिः ॥ ३४ ॥

मुनिः - मननशील साधक
सत्त्व संसेवया - सत्त्वगुणको पूर्ण अपनाकर
रजः च तमः - रजोगुण और तमोगुणको
अभिजयेत् - सर्वथा जीतले,
निः संगः - अनासक्त होकर
जित इन्द्रियः - इन्द्रियोंको जीतकर
अप्रमत्तः - सावधानी पूर्वक
विद्वान् - मेरा ज्ञान प्राप्त करके
मां भजेत् - मेरा भजन करे ॥ ३४ ॥

सत्त्वं चाभिजयेद् युक्तो नैरपेक्ष्येण शान्तधीः ।
सम्पद्यते गुणैर्मुक्तो जीवो जीवं विहाय माम् ॥ ३५ ॥

सत्त्वं च अभिजयेत् युक्तः नैरपेक्ष्येण शान्तधीः सम्पद्यते गुणैः मुक्तः जीवः जीवं विहाय माम् ॥ ३५ ॥

युक्तः - (योगादि) साधन करके
शान्तधीः - शान्त चित्त होकर
नैरपेक्ष्येण - निरपेक्षता द्वारा
सत्त्वं च - सत्त्वगुणको भी
अभिजयेत् - सम्पूर्ण जीत ले,
गुणैः मुक्तः - (तब) गुणोंसे मुक्त
जीवः जीवं - जीव लिंग शरीरको
विहाय - त्यागकर
मां सम्पद्यते - मुझे पूर्ण रूपसे प्राप्त कर लेता है ॥ ३५ ॥

जीवो जीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसम्भवैः ।
मयैव ब्रह्मणा पूर्णो न बहिर्नान्तरश्चरेत् ॥ ३६ ॥

जीवः जीव विनिर्मुक्तः गुणैः च आशय सम्भवैः मयि एव ब्रह्मणा पूर्णः न बहिः न अन्तरः चरेत् ॥ ३६ ॥

जीव विनिर्मुक्तः	- लिंग शरीरसे छूटा	**मयि ब्रह्मणा एव**	- मुझ ब्रह्मसे ही
च आशय-	- तथा अन्तःकरणसे	**पूर्णः**	- पूर्ण (एक) हुआ
सम्भवैः	उत्पन्न होने वाले	**न बहिः**	- न बाहर
गुणैः	- गुणोंसे (छूटा)	**न अन्तरः**	- न भीतर
जीवः	- जीव	**चरेत्**	- जाता (उसका कहीं आवागमन नहीं होता) ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ।
आनन्दं परमात्मानमात्मस्थं समुपैति माम् ॥ १ ॥

मत् लक्षणं इमं कायं लब्ध्वा मत् धर्म आस्थितः आनन्दं परम आत्मानं आत्मस्थं सम उपैति माम् ॥ १ ॥

मत् लक्षणं	- मुझे प्राप्त कराने वाले	**आत्मस्थं**	- अपनेमें ही स्थित
इमं कायं	- इस (मनुष्य) शरीरको	**आनन्दं**	- आनन्द स्वरूप
लब्ध्वा	- पाकर	**परमात्मानं**	- परमात्मा
मत् धर्म	- मेरे धर्म (भक्ति) पर	**मां समुपैति**	- मुझे सम्पूर्ण प्राप्त कर लेता है ॥ १ ॥
आस्थितः	- स्थित होकर		

गुणमय्या जीवयोन्या विमुक्तो ज्ञाननिष्ठया ।
गुणेषु मायामात्रेषु दृश्यमानैष्ववस्तुतः ।
वर्तमानोऽपि न पुमान् युज्यतेऽवस्तुभिर्गुणैः ॥ २ ॥

गुणमय्या जीवयोन्या विमुक्तः ज्ञान निष्ठया गुणेषु माया मात्रेषु दृश्य मानेषु अवस्तुतः वर्तमानः अपि न पुमान् युज्यते अवस्तुभिः गुणैः ॥ २ ॥

गुण मय्या	- त्रिगुणमय	**दृश्यमानेषु**	- दीखने वाले (जगत) में
जीवयोन्या	- लिंग शरीरसे	**वर्तमानः अपि**	- व्यवहार करता हुआ भी
ज्ञान निष्ठया	- ज्ञान निष्ठा द्वारा	**पुमान्**	- पुरुष
विमुक्तः	- मुक्त होकर	**अवस्तुभिः**	- अवास्तविक (प्रतीतिमात्र)
अवस्तुतः	- वास्तविक न होनेपर भी	**गुणैः न-**	- गुणोंसे युक्त नहीं होता
माया मात्रेषु	- माया मात्र	**युज्यते**	॥ २ ॥

संग न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित् ।
तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगान्धवत् ॥ ३ ॥

संग न कुर्यात् असतां शिश्न उदरतृपां क्वचित् तस्य अनुगतः तमसि अन्धे पतति अन्ध अनुगत अन्धवत् ॥ ३ ॥

शिश्न उदरतृपां - (फिर भी) उपस्थं एवं पेटको तृप्त करने वाले
असतां - दुष्टोंका
क्वचित् संग - कभी संग
न कुर्यात् - न करे
तस्य अनुगतः - उनके पीछे चलनेपर
अन्ध अनुगत - अन्धेके पीछे चलने वाले
अन्धवत् - अन्धेके समान
अन्धे तमसि - घोर नरकमें
पतति - गिरता है ॥ ३ ॥

ऐलः सम्राडिमां गाथामगायत बृहच्छ्रवाः ।
उर्वशीविरहान्मुह्यन् निर्विण्णः शोकसंयमे ॥ ४ ॥

ऐलः सम्राट् इमां गाथां अगायत बृहत् श्रवाः उर्वशी विरहात् मुह्यन् निर्विण्णः शोकसंयमे ॥ ४ ॥

बृहत् श्रवाः - अपार यशस्वी
सम्राट् ऐलः - सम्राट् इला नन्दन पुरुरवाने
उर्वशी विरहात् - उर्वशीके वियोगमें
मुह्यन् - बेसुध होकर (फिर)
शोकसंयमे - शोक मिटने पर
निर्विण्णः - वैराग्यवान होकर
अगायत - गाया ॥ ४ ॥

त्यक्त्वाऽऽत्मानं व्रजन्तीं तां नग्न उन्मत्तवन्नृपः ।
विलपन्नन्वगाज्जाये घोरे तिष्ठेति विक्लवः ॥ ५ ॥

त्यक्त्वा आत्मानं व्रजन्तीं तां नग्न उन्मत्तवत् नृपः विलपन् अन्वगात् जाये घोरे तिष्ठ इति विक्लवः ॥ ५ ॥

आत्मानं त्यक्त्वा - अपना त्याग करके
तां व्रजन्तीं - उस जाती हुई (उर्वशी) के पीछे
नृपः नग्न - वह राजा नंगा
उन्मत्तवत् - पागलके समान
विक्लवः - व्याकुल होकर
घोरे जाये-तिष्ठ - 'निष्ठुर प्रिये ठरह !'
इति विलपन् - इस प्रकार विलाप करते
अन्वगात् - पीछे दौड़ा ॥ ५ ॥

कामानतृप्तोऽनुजुषन् क्षुल्लकान् वर्षयामिनीः ।
न वेद यान्तीर्नायान्तीरुर्वश्याकृष्टचेतनः ॥ ६ ॥

कामान् अतृप्तः अनुजुषन् क्षुल्लकान् वर्षयामिनीः न वेद यान्तीः न आयान्तीः उर्वश्या आकृष्ट चेतनः ॥ ६ ॥

उर्वश्या आकृष्ट - उर्वशी द्वारा आकर्षित
चेतनः - चेतना वह
क्षुल्लकान् - क्षुद्र
कामान्-अनुजुषन् - भोगोंको बराबर भोगते हुए
अतृप्तः - तृप्त हुए बिना ही
वर्षयामिनीः - वर्षोंकी रात्रियोंको
आयान्तीः - आते और
यान्तीः - बीत जाते
वेद न - जान नहीं सका ॥ ६ ॥

ऐल उवाच–

अहो मे मोहविस्तारः कामकश्मलचेतसः ।
देव्या गृहीतकण्ठस्य नायुः खण्डा इमे स्मृताः ॥ ७ ॥

अहो मे मोह विस्तारः काम कश्मल चेतसः देव्या गृहीत कण्ठस्य न आयुः खण्डा इमे स्मृताः ॥ ७ ॥

अहो मे - हाय ! मेरे
मोह विस्तारः - अज्ञानका विस्तार (प्राबल्य)
काम कश्मल - कामसे कलुषित
चेतसः - चित्त होनेसे
देव्यागृहीत - देवी (उर्वशी) द्वारा पकड़े गये
कण्ठस्य - कण्ठ होनेसे
इमे आयुः खण्डा - ये आयुके भाग
स्मृताः न - स्मरण ही नहीं आये ॥ ७ ॥

नाहं वेदाभिनिर्मुक्तः सूर्यो वाभ्युदितोऽमुया ।
मुषितो वर्षपूगानां बताहानि गतान्युत ॥ ८ ॥

न अहं वेद अभि निर्मुक्तः सूर्यः वा अभ्युदितः अमुया मुषितः वर्षपूगानां बत अहानि गतानि उत ॥ ८ ॥

अमुया मुषितः - इस (उर्वशी) द्वारा (चित्त) चुरा लेनेसे
अहं सूर्यः - मैं सूर्यको
अभि निर्मुक्तः वा - अस्तहो ते अथवा
अभ्युदितः - उदय होते
न वेद - नहीं जान सका
वर्ष पूगानां - अनेकों वर्षोंके
अहानि बत - दिन अरे
उत गतानि - व्यर्थ बीत गये ॥ ८ ॥

अहो मे आत्मसम्मोहो येनात्मा योषितां कृतः ।
क्रीडामृगश्चक्रवर्ती नरदेवशिखामणिः ॥ ९ ॥

अहो मे आत्म सम्मोहः येन आत्मा योषितां कृतः क्रीडामृगः चक्रवर्ती नरदेव शिखामणिः ॥ ९ ॥

अहो मे - हाय, मेरे
आत्म सम्मोहः - अपने चित्तकी मूढ़ता
येन चक्रवर्ती - जिसके कारण चक्रवर्ती
नरदेव- - राजन्य शिरोमणि
शिखामणिः
आत्मा - अपनेको
योषितां - स्त्रीके
क्रीडामृगः- - खेलनेका (पालतू) मृग
कृतः बना दिया ॥ ९ ॥

सपरिच्छदमात्मानं हित्वा तृणमिवेश्वरम् ।
यान्तीं स्त्रियं चान्वगमं नग्न उन्मत्तवद् रुदन् ॥ १० ॥

सपरिच्छदं आत्मानं हित्वा तृणं इव ईश्वरं यान्तीं स्त्रियं च अनु अगमं नग्न उन्मत्तवत् रुदन् ॥ १० ॥

सपरिच्छदं - समस्त सामग्रीके साथ
ईश्वरं आत्मानं - सम्राट् अपनेको
तृणं इव हित्वा - तिनकेकी भांति त्यागकर
यान्तीं स्त्रियं च - जाती हुई स्त्रीके भी
नग्न उन्मत्तवत् - नंगा, पागलकी भांति
रुदन् - रोते हुए
अनुअगमं - (मैं) पीछे दौड़ता गया ॥ १० ॥

कुतस्तस्यानुभावः स्यात् तेज ईशत्वमेव वा ।
योऽन्वगच्छं स्त्रियं यान्तीं खरवत् पादताडितः ॥ ११ ॥

कुतः तस्य अनुभावः स्यात् तेज ईशत्वं एव वा यः अनु अगच्छम् स्त्रियं यान्तीं खरवत् पादताडितः ॥ ११ ॥

तस्य अनुभावः - उसका प्रभाव,
तेज वा - तेज अथवा
ईशत्वं एव - शासन क्षमता ही
कुतः स्यात् - कहांसे रहेगी
यः यान्तीं- - जो जाती हुई स्त्रीसे
स्त्रियं
खरवत् - गधेके समान
पाद ताडितः - लात मारे जानेपर भी
अनु अगच्छत् - पीछे दौड़ता गया ॥ ११ ॥

किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा ।
किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥ १२ ॥

किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिः यस्य मनः हृतम् ॥ १२ ॥

यस्यमनः - जिसका मन
स्त्रीभिः हृतं - स्त्री द्वारा चुरा लिया गया
किं विद्यया - (उसकी) विद्यासे क्या लाभ,
तपसा किं - तपस्यासे क्या लाभ,
त्यागेन वा - त्यागसे अथवा
श्रुतेन किं - वेदाध्ययनसे क्या लाभ,
विविक्तेन - एकान्तमें रहने या
मौनेन किं - मौन रहनेसे क्या लाभ ॥ १२ ॥

स्वार्थस्याकोविदं धिङ् मां मूर्खं पण्डितमानिनम् ।
योऽहमीश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः ॥ १३ ॥

स्वार्थस्य अकोविदं धिक् मां मूर्खं पण्डित मानिनं यः अहं ईश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिः गोखरवत् जितः ॥ १३ ॥

स्वार्थस्य - (अपने वास्तविक) स्वार्थको
अकोविदं - न जानने वाले
पण्डित मानिनं - अपनेको विद्वान मानने वाले
मां मूर्खं धिक् - मुझ मूर्खको धिक्कार
यः अहं - जो मैं
ईश्वरतां प्राप्य - शासक होकर
गोखरवत् - बैल या गधेके समान
स्त्रीभिः जितः - स्त्री द्वारा जीत लिया गया ॥ १३ ॥

सेवतो वर्षपूगान् मे उर्वश्या अधरासवम् ।
न तृप्यत्यात्मभूः कामो वह्निराहुतिभिर्यथा ॥ १४ ॥

सेवतः वर्षपूगान् मे उर्वश्या अधर आसवं न तृप्यति आत्मभूः कामः वह्निः आहुतिभिः यथा ॥ १४ ॥

वर्षपूगान् - अनेक वर्षों तक
उर्वश्या - उर्वशीके
अधर आसवं - अधर-आसवका
सेवतः - सेवन करनेपर भी
मे आत्मभूः - मेरे चित्तसे उत्पन्न
कामः न-तृप्यति - काम नहीं तृप्त होता
यथा आहुतिभिः - जैसे आहुतियोंसे
वह्निः - अग्नि (नहीं तृप्त होता) ॥ १४ ॥

पुंश्चल्यापहृतं चित्तं को न्वन्यो मोचितुं प्रभुः ।
आत्मारामेश्वरमृते भगवन्तमधोक्षजम् ॥ १५ ॥

पुंश्चल्याः अपहृतं चित्तं कः नु अन्यः मोचितुं प्रभुः आत्माराम ईश्वरं ऋते भगवन्तं अधोक्षजम् ॥ १५ ॥

पुंश्चल्याः - कुलटा द्वारा
अपहृतं चित्तं - चुराये चित्तको
आत्माराम ईश्वरं - आत्मारामोंके स्वामी
भगवन्तं - भगवान
अधोक्षजं - हृषीकेश
ऋते नु कः - छोड़कर भला कौन
अन्यः मोचितुं - दूसरा छुड़ानेमें
प्रभुः - समर्थ है ॥ १५ ॥

बोधितस्यापि देव्या मे सूक्तवाक्येन दुर्मतेः ।
मनोगतो महामोहो नापयात्यजितात्मनः ॥ १६ ॥

बोधितस्य अपि देव्या मे सूक्त वाक्येन दुर्मतेः मनः गतः महामोहः न अपयाति अजित आत्मनः ॥ १६ ॥

देव्या - देवी उर्वशीके
सूक्तवाक्येन - वैदिक सूक्तके वाक्यों द्वारा
बोधितस्य अपि - समझानेपर भी
अजित आत्मनः - इन्द्रियां वशमें न होनेसे
मे दुर्मतेः - मुझ दुर्बुद्धिके
मनः गतः - मनमें समाया
महामोहः - महान अज्ञान
अपयाति न - दूर नहीं होता है ॥ १६ ॥

किमेतया नोऽपकृतं रज्ज्वा वा सर्पचेतसः ।
रज्जुस्वरूपाविदुषो योऽहं यदजितेन्द्रियः ॥ १७ ॥

किं एतया नः अपकृतं रज्ज्वा वा सर्प चेतसः रज्जु स्वरूप अविदुषः यः अहं यत् अजितेन्द्रियः ॥ १७ ॥

यत् यः अहं - क्योंकि जो मैं
अजित इन्द्रियः - इन्द्रियोंके वशमें हूँ
रज्जुस्वरूप - रस्सीके स्वरूपको
अविदुषः - न जानने वाले
सर्प चेतसः - सर्प मानने वाले
नः - हमारा
एतया वा रज्ज्वा - इस भला रस्सीने
किं अपकृतं - क्या बुराई की है ॥ १७ ॥

क्वायं मलीमसः कायो दौर्गन्ध्याद्यात्मकोऽशुचिः ।
क्व गुणाः सौमनस्याद्या ह्यध्यासोऽविद्यया कृतः ॥ १८ ॥

क्व अयं मलीमसः कायः दौर्गन्ध्य आदि आत्मकः अशुचिः क्व गुणाः सौमनस्य आद्या हि अध्यासः अविद्यया कृतः ॥ १८ ॥

क्व अयं - कहां तो यह
मलीमसः - मैला-कुचैला
दौर्गन्ध्य आदि - दुर्गन्धि आदिका
आत्मकः - स्वरूप
अशुचिः कायः - अपवित्र शरीर और
क्व सौमनस्य - कहां सुकुमारता
आद्या गुणाः - आदि गुण,
हि अध्यासः - क्योंकि यह असुन्दरमें सुन्दरका आरोप
अविद्यया कृतः - अविद्या से किया गया है ॥ १८ ॥

पित्रोः किं स्वं नु भार्यायाः स्वामिनोऽग्नेः श्वगृध्रयोः ।
किमात्मनः किं सुहृदामिति यो नावसीयते ॥ १९ ॥

पित्रोः किं स्वं नु भार्यायाः स्वामिनः अग्नेः श्वगृध्रयोः किं आत्मनः किं सुहृदां इति यः न अवसीयते ॥ १९ ॥

किं पित्रोः - (यह शरीर) माता-पिताका
स्वं नु - स्वत्व है अथवा
भार्यायाः - पत्नीका है,
स्वामिनः - स्वामीका है,
अग्नेः श्व - अग्नि, कुत्ते या
गृध्रयोः - गीधोंका है,
किं आत्मनः - क्या अपना है,
किं सुहृदां - क्या सम्बन्धियों का है
इति यः - इस प्रकार जिसके विषयमें
अवसीयते न - निश्चय नहीं हो पाता ॥ १९ ॥

तस्मिन् कलेवरेऽमेध्ये तुच्छनिष्ठे विषज्जते ।
अहो सुभद्रं सुनसं सुस्मितं च मुखं स्त्रियः ॥ २० ॥

तस्मिन् कलेवरे अमेध्ये तुच्छ निष्ठे विषज्जते अहो सुभद्रं सुनसं सुस्मितं च मुखं स्त्रियः ॥ २० ॥

तस्मिन् अमेध्ये - क्षुद्र परिणाम वाले
तुच्छ निष्ठे - क्षुद्र परिणाम वाले
कलेवरे - शरीरमें
विषज्जते - आसक्त होकर (लोग कहते हैं)
अहो स्त्रियः मुखं - 'अहो, इस स्त्रीका मुख
सुभद्रं सुनसं - अत्यन्त सुन्दर, अच्छी नाक वाला
च सुस्मितं - तथा सुन्दर मुस्कान वाला है ॥ २० ॥

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ ।
विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम् ॥ २१ ॥

त्वक् मांस रुधिर स्नायु मेदोमज्जा अस्थि संहतौ विट् मूत्र पूये रमतां कृमीणां कियत् अन्तरम् ॥ २१ ॥

त्वक् मांस - चमड़ा, मांस,
रुधिर स्नायु - रक्त, नसें
मेदो मज्जा - चर्बी, मज्जा,
अस्थि संहतौ - हड्डियोंके गट्ठर
विट् मूत्र - विष्टा, मूत्र,
पूये रमतां - पीब से विहार करने वालोंमें
कृमीणां - कीड़ोंसे
कियत् अन्तरं - कितना अन्तर है ॥ २१ ॥

अथापि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित् ।
विषयेन्द्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा ॥ २२ ॥

अथ अपि न उप सज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु च अर्थवित् विषय इन्द्रिय संयोगात् मनः क्षुभ्यति न अन्यथा ॥ २२ ॥

अथ अर्थवित् - अतः अपनी भलाई समझने वालेका
स्त्रीषु च - स्त्रियोंसे तथा
स्त्रैणेषु अपि - स्त्रीजितोंसे भी
उप सज्जेत न - आसक्त नहीं होना चाहिए
मनः विषय - मन विषयोंका
इन्द्रिय संयोगात् - इन्द्रियोंसे संयोग होनेपर
क्षुभ्यति - विकृत होता है
अन्यथा न च - अन्यथा नहीं ही होता ॥ २२ ॥

अदृष्टादश्रुताद् भावान्न भाव उपजायते ।
असम्प्रयुञ्जतः प्राणान् शाम्यति स्तिमितं मनः ॥ २३ ॥

अदृष्टात् अश्रुतात् भावात् न भाव उपजायते असम्प्रयुञ्जतः प्राणान् शाम्यति स्तिमितं मनः ॥ २३ ॥

अदृष्टात्	- अनदेखी	**प्राणान्**	- इन्द्रियोंका
अश्रुतात्	- अनसुनी	**असम्प्रयुञ्जतः**	- उपयोग न करनेपर
भावात् भाव	- वस्तुसे कोई भावना	**स्तिमितं मनः**	- निश्चल होकर मन
न उपजायते	- नहीं उत्पन्न होती,	**शाम्यति**	- शान्त होजाता है ॥२३॥

तस्मात् संगो न कर्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु चेन्द्रियैः ।
विदुषां चाप्यविश्रब्धः षड्वर्गः किमु मादृशाम् ॥ २४ ॥

तस्मात् संगः न कर्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु च इन्द्रियैः विदुषां च अपि अविश्रब्धः षट्वर्गः किं नु मादृशाम् ॥ २४ ॥

तस्मात्	- इसलिए	**षट्वर्गः**	- षट्वर्ग (काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर)
स्त्रीषु	- स्त्रियोंसे और		
स्त्रैणेषु	- स्त्री लम्पटोंसे	**विदुषां च अपि**	- विद्वानोंके लिए भी
इन्द्रियैः	- इन्द्रियों द्वारा	**अविश्रब्धः**	- अविश्वसनीय हैं
संगः न कर्तव्यः	- साथ नहीं करना चाहिए	**उत मादृशां**	- फिर मेरे जैसोंकी
		किं	- क्या चर्चा ॥ २४ ॥

श्रीभगवानुवाच—

एवं प्रगायन् नृपदेवदेवः
स उर्वशीलोकमथो विहाय ।
आत्मानमात्मन्यवगम्य मां वै
उपारमज्ज्ञानविधूतमोहः॥ २५ ॥

एवं प्रगायन् नृपदेवः देवः स उर्वशी लोकं अथो विहाय आत्मानं आत्मनि अवगम्य मां वै उप अरमत् ज्ञान विधूत मोहः ॥ २५ ॥

स नृपदेवः देवः - वे राजराजेश्वर
एवं प्रगायन् - इस प्रकार गाते हुए
अथो उर्वशी- - फिर उर्वशी (गन्धर्व)
लोकं लोकको
विहाय - त्यागकर
ज्ञान विधूत- - ज्ञान द्वारा अज्ञानका
मोहः नाश करके
वै मां - निश्चय मुझमें
उप अरमत् - मिल गये ॥ २५ ॥

ततो दुःसंगमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् ।
सन्त एतस्य च्छिन्दन्ति मनोव्यासंगमुक्तिभिः ॥ २६ ॥

ततः दुःसंगं उत्सृज्य सत् सु सज्जेत बुद्धिमान् सन्तः एतस्य छिन्दन्ति मनः व्यासंगं उक्तिभिः ॥ २६ ॥

ततः बुद्धिमान् - इसलिए बुद्धिमान पुरुष
दुःसंगं उत्सृज्य - कुसंग त्यागकर
सत्सु सज्जेत - सत् पुरुषों से आसक्ति करे
सन्तः एतस्य - सन्त इसके
मनः व्यासंगं - मनकी आसक्ति
उक्तिभिः - अपने वचनोंसे
छिन्दन्ति - काट देंगे ॥ २६ ॥

सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः ।
निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥ २७ ॥

सन्तः अनपेक्षा मत् चित्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥ २७ ॥

अनपेक्षा - (जो) अपेक्षा रहित,
मत् चित्ताः - मुझमें चित्त लगाये,
प्रशान्ताः - अत्यन्त शान्त,
समदर्शिनः - समदर्शी,
निर्ममा - ममता रहित,
निरहंकारा - अहंकारहीन,
निर्द्वन्द्वा - (सुख-दुखादि) द्वन्द्वोंसे रहित
निष्परिग्रहाः - संग्रह रहित हैं
सन्तः - (वे) सन्त हैं ॥ २७ ॥

तेषु नित्यं महाभाग महाभागेषु मत्कथाः ।
सम्भवन्ति हिता नृणां जुषतां प्रपुनन्त्यघम् ॥ २८ ॥

तेषु नित्यं महाभाग महाभागेषु मत् कथाः सम्भवन्ति हिता नृणां जुषतां प्रपुनन्ति अधम् ॥ २८ ॥

महाभाग - महाभाग उद्धव !
तेषु महाभागेषु - उन महाभागोंमें
नृणां हिता - मनुष्योंकी कल्याणकारिणी
मत्कथाः - मेरी कथा
नित्यं- - सदा होती रहती है
सम्भवन्ति
जुषतां अद्यम् - वह सेवन करने वालोंको पापसे
प्रपुनन्ति - पवित्र कर देती है ॥ २८ ॥

ता ये शृण्वन्ति गायन्ति ह्यनुमोदन्ति चादृताः ।
मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विन्दन्ति ते मयि ॥ २९ ॥

ता ये शृण्वन्ति गायन्ति हि अनुमोदन्ति च आदृताः मत् पराः श्रद्दधानाः च भक्तिं विन्दन्ति ते मयि ॥ २९ ॥

ता ये- - उस (कथा) को जो
शृण्वन्ति सुनते हैं,
गायन्ति - गाते हैं,
च आदृताः - और आदरपूर्वक
अनुमोदन्ति - उसका अनुमोदन करते हैं
हि मत्परा - क्योंकि वे मेरे परायण हैं
च श्रद्दधानः - तथा श्रद्धालु हैं,
ते मयि - वे मेरी
भक्तिं विन्दन्ति - भक्ति प्राप्त करते हैं ॥ २९ ॥

भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते ।
मय्यनन्तगुणे ब्रह्मण्यानन्दानुभवात्मनि ॥ ३० ॥

भक्तिं लब्धवतः साधोः किं अन्यत् अवशिष्यते मयि अनन्त गुणे ब्रह्मणि आनन्द अनुभव आत्मनि ॥ ३० ॥

साधोः - साधु उद्धव !
मयि अनन्त- - मुझ अनन्त गुण
गुणे
आनन्द अनुभव - आनन्दानुभव
ब्रह्मणि आत्मनि - ब्रह्म स्वरूपमें
भक्तिं लब्धवतः - भक्ति प्राप्त कर लेनेपर
अन्यत् किं - दूसरा क्या
अवशिष्यते - बच रहता है ॥३०॥

यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम् ।
शीतं भयं तमोऽप्येति साधून् संसेवतस्तथा ॥ ३१ ॥

यथा उपश्रय माणस्य भगवन्तं विभावसुं शीतं भयं तमः अप्येति साधून् संसेवतः तथा ॥ ३१ ॥

यथा भगवन्तं - जैसे भगवान
विभावसुं - अग्निके
उपश्रय माणस्य - समीप बैठने वालोंकी
शीतं भयं तमः - सर्दी, भय, अन्धकार
अप्येति - दूर होजाता है,
तथा साधून् - ऐसे ही संतोंकी
संसेवतः - सेवा करने वालोंका भी
॥ ३१ ॥

निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् ।
सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥ ३२ ॥

निमज्ज्य उन्मज्जतां घोरे भव अब्धौ परम अयनं सन्तः ब्रह्मविदः शान्ता नौः दृढ़ एव अप्सु मज्जताम् ॥ ३२ ॥

घोरे भव अब्धौ - घोर संसार-सागरमें
निमज्ज्य उन्मज्जतां - डूबते-उतराते (लोगोंके लिए)
ब्रह्मविदः - ब्रह्मज्ञानी
शान्ता सन्तः - शान्त सन्त
अप्सुमज्जतां - जलमें डूबतोंके लिए
दृढ़ नौः इव - दृढ़नौका के समान
परम अयनं - श्रेष्ठ आश्राय हैं
॥ ३२ ॥

अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम् ।
धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग् बिभ्यतोऽरणम् ॥ ३३ ॥

अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं तु अहं धर्मः वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तः अर्वाक् बिभ्यतः अरणम् ॥ ३३ ॥

हि प्राणिनां	- क्योंकि (जैसे) प्राणियोंका	**प्रेत्य नृणां**	- मरनेपर मनुष्यका
प्राण अन्नं	- जीवन आहार है,	**वित्तं धर्मः**	- धन धर्म है (ऐसे ही)
अहं तु	- मैं तो	**अर्वाक् बिभ्यतः**	- पतनसे डरने वालोंके
आर्तानां शरणं	- व्याकुलोंका आश्रय हूँ,	**सन्तः अरणं**	- सन्त रक्षक हैं ॥३३॥

सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः ।
देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च ॥ ३४ ॥

सन्तः दिशन्ति चक्षूंषि बहिः अर्कः समुत्थितः देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्मा अहं एव च ॥ ३४ ॥

बहिः अर्कः	- बाहर सूर्यके	**देवता बान्धवाः**	- देवता, सम्बन्धी
समुत्थितः	- उदय होनेके समान	**सन्तः**	- (सचमुच) सन्त हैं,
सन्तः चक्षूंषि	- सन्त (अन्तः) नेत्र	**च सन्त**	- और सन्त
दिशन्ति	- प्रदान करते हैं	**अहं आत्मा-**	- मेरे स्वरूप ही हैं
		एव	॥ ३४ ॥

वैतसेनस्ततोऽप्येवमुर्वश्या लोकनिःस्पृहः ।
मुक्तसंगो महीमेतामात्मारामश्चचार ह ॥ ३५ ॥

वैतसेनः ततः अपि एवं उर्वश्या लोक निस्पृहः मुक्त संगः महीं एतां आत्मारामः चचार ह ॥ ३५ ॥

ततः उर्वश्या-	- उस उर्वशीके लोकसे	**मुक्तसंगः**	- आसक्ति त्यागकर
लोक		**आत्मारामः**	- आत्ममें ही रमण करते हुए
अपि एवं	- भी इस प्रकार	**एतां महीं**	- इस पृथ्वीपर
निस्पृहः	- निस्पृह होकर	**चचार ह**	- विचरण करने लगे
वैतसेनः	- इला-नन्दन पुरुरवा		॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

उद्धव उवाच–

क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो ।
यस्मात्त्वां ये यथार्चन्ति सात्वताः सात्वतर्षभ ॥ १ ॥

क्रियायोगं सम आचक्ष्व भवत् आराधनं प्रभो यस्मात् त्वां ये यथा अर्चन्ति सात्वताः सात्वत ऋषभ ॥ १ ॥

सात्वत ऋषभ	- यदुवंश शिरोमणि !	**अर्चन्ति**	- पूजा करते हैं
प्रभो	- प्रभो !	**क्रिया योगं**	- उस क्रिया योग (पूजा पद्धतिको)
यस्मात्	- जिससे	**सम आचक्ष्व**	- भली भांति बतलाइये ॥ १ ॥
ये सात्वताः	- जो भक्त		
त्वां यथा	- आपकी जैसे		

एतद् वदन्ति मुनयो मुहुर्निःश्रेयसं नृणाम् ॥
नारदो भगवान् व्यास आचार्योऽअंगिरसः सुतः ॥ २ ॥

एतत् वदन्ति मुनयः मुहुः निःश्रेयसं नृणां नारदः भगवान् व्यास आचार्यः अंगिरसः सुतः ॥ २ ॥

नारदः	- देवर्षि नारद,	**मुनयः**	- आदिमुनि
भगवान् व्यास	- भगवान व्यास	**एतत् मुहुः**	- इस (क्रिया योग) को बार-बार
आचार्यः	- मेरे गुरु	**नृणां निःश्रेयसं**	- मनुष्योंके लिए परम कल्याणकारी
अंगिरसः सुतः	- वृहस्पतिजी	**वदन्ति**	- कहते हैं ॥ २ ॥

निःसृतं ते मूखाम्भोजाद् यदाह भगवानजः ।
पुत्रेभ्यो भृगुमुख्येभ्यो देव्यै च भगवान् भवः ॥ ३ ॥

निःसृतं ते मुखाम्भोजात् यत् आह भगवान् अजः पुत्रेभ्यः भृगुमुख्येभ्यः देव्यै च भगवान् भवः ॥ ३ ॥

ते मुखाम्भोजात् - आपके मुख कमलसे
निः सृतं यत् - निकलने पर जिसे
भगवान् अजः - भगवान ब्रह्माने
पुत्रेभ्यः - (अपने) पुत्रोंको
भृगुमुख्येभ्यः - जिनमें भृगुजी मुख्य हैं
च भगवान्- - भगवान शिवने
भवः
देव्यै आह - देवी उमाको सुनाया ॥ ३ ॥

एतद् वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च सम्मतम् ।
श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद ॥ ४ ॥

एतत् वै सर्व वर्णानां आश्रमाणां च सम्मतं श्रेयसां उत्तमं मन्ये स्त्री शूद्राणां च मानद ॥ ४ ॥

मानद - आप तो दूसरोंको सम्मान देने वाले हैं
वै एतत् - निश्चय ही इस (क्रियायोग) को
सर्व वर्णानां - सभी वर्णों
च आश्रमाणां - तथा आश्रमों
च स्त्री शूद्राणां - एवं स्त्री-शूद्रोंके लिए भी
सम्मतं - अधिकार वाला
श्रेयसां उत्तमं - कल्याणकारी साधनोंमें श्रेष्ठ
मन्ये - (मैं) मानता हूँ ॥ ४ ॥

एतत् कमलपत्राक्ष कर्मबन्धविमोचनम् ।
भक्ताय चानुरक्ताय ब्रूहि विश्वेश्वरेश्वर ॥ ५ ॥

एतत् कमल पत्राक्ष कर्म बन्ध विमोचनं भक्ताय च अनुरक्ताय ब्रूहि विश्वेश्वर ईश्वर ॥ ५ ॥

विश्वेश्वर ईश्वर - लोकपालोंके भी स्वामी !
कमल पत्राक्ष - पद्म पत्र लोचन !
एतत् कर्मबन्ध - यह कर्मबन्धनसे
विमोचनं - सर्वथा मुक्त कर देने वाला (साधन)
अनुरक्ताय - अपने प्रेमी (मुक्त)
भक्ताय च - भक्तको भी
ब्रूहि - बतलाइये ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच–

न ह्यन्तोऽनन्तपारस्य कर्मकाण्डस्य चोद्धव ।
संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ६ ॥

न हि अन्तः अनन्त पारस्य कर्मकाण्डस्य च उद्धव संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावत् अनुपूर्वशः ॥ ६ ॥

उद्धव - उद्धव !
हि अनन्तपारस्य - क्योंकि अनन्तपार
कर्मकाण्डस्य - कर्मकाण्डका
अन्तः न - अन्त नहीं है (अतः)
संक्षिप्तं - संक्षेपमें
अनुपूर्वशः - पूर्वापर के क्रमानुसार
वर्णयिष्यामि - वर्णन करूँगा ॥ ६ ॥

वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः ।
त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेत् ॥ ७ ॥

वैदिकः तान्त्रिकः मिश्र इति मे त्रिविधः मखः त्रयाणां ईप्सितेन एव विधिना मां समर्चयेत् ॥ ७ ॥

वैदिकः- - वैदिक, तान्त्रिक और
तान्त्रिकः
मिश्र इति - मिला जुला इस प्रकार
मे मखः - मेरा यज्ञ (पूजा)
त्रिविधः - तीन प्रकारका है,
त्रयाणां - तीनोंमें से
ईप्सितेन - (अपनी) अभीष्ट
विधिना एव - विधिसे ही
मां समर्चयेत् - मेरी पूजा करे ॥ ७ ॥

यदा स्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः ।
यथा यजेत मां भक्त्या श्रद्धया तन्निबोध मे ॥ ८ ॥

यदा स्व निगमेन उक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः यथा यजेत मां भक्त्या श्रद्धया तत् निबोध मे ॥ ८ ॥

यदा स्व-	- जब अपनी वैदिक	**यथा मां**	- जैसे मेरी
निगमेन	शाखा	**श्रद्धया भक्त्या**	- श्रद्धा भक्तिपूर्वक
उक्तं	- विधिसे	**यजेत तत्**	- पूजा करे उसे
पूरुषः द्विजत्वं	- पुरुषको यज्ञोपवीत संस्कार	**मे निबोध**	- मुझसे सुनो ॥ ८ ॥
प्राप्य	- प्राप्त हो जाय (तब)		

अचार्यां स्थण्डिलेऽग्नौ वा सूर्ये वाप्सु हृदि द्विजे ।
द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत् स्वगुरुं माममायया ॥ ९ ॥

अर्चायां स्थण्डिले अग्नौ वा सूर्ये वा अप्सु हृदि द्विजे द्रव्येण भक्तियुक्तः अर्चेत् स्वगुरुं मां अमायया ॥ ९ ॥

भक्तियुक्तः	- भक्तिपूर्वक	**अग्नौ वा सूर्ये**	- अग्निमें या सूर्यमें,
अमायया	- निष्कपट भावसे	**अप्सु हृदि**	- जलमें, हृदयमें,
स्वगुरुं मां	- अपने गुरु स्वरूप मेरी	**वा द्विजे**	- अथवा ब्राह्मणमें
अर्चायां	- मूर्तिमें,	**द्रव्येण अर्चेत्**	- सामग्रियोंसे पूजा करे ॥ ९ ॥
स्थण्डिले वा	- वेदीपर या		

पूर्वं स्नानं प्रकुर्वीत धौतदन्तोऽङ्गशुद्धये ।
उभयैरपि च स्नानं मन्त्रैर्मृद्ग्रहणादिना ॥ १० ॥

पूर्वं स्नानं प्रकुर्वीत धौत दन्तः अंग शुद्धये उभयैः अपि च स्नानं मन्त्रैः मृत् ग्रहण आदिना ॥ १० ॥

धौत दन्तः - दन्त धावन (दातौन) करके
अंग शुद्धये - शरीरकी शुद्धिके लिए
पूर्वं स्नानं - पहिले स्नान
प्रकुर्वीत - करले (फिर)
मृत् गहण आदिना च - मिट्टी आदि लगाकर भी
उभयैः अपि - (वैदिक तान्त्रिक) दोनों प्रकारके ही
मन्त्रैः - मन्त्रों द्वारा
स्नानं - स्नान करले ॥ १० ॥

सन्ध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदेनाचोदितानि मे ।
पूजां तैः कल्पयेत् सम्यक्संकल्पः कर्मपावनीम् ॥ ११ ॥

सन्ध्या उपास्त्य आदि कर्माणि वेदेन चोदितानि मे पूजां तैः कल्पयेत् सम्यक् संकल्पः कर्म पावनीम् ॥ ११ ॥

वेदेन चोदितानि - वैदिक आदेशके अनुसार
सन्ध्या उपास्त्य आदि - सन्ध्योपासना आदि
कर्माणि - कर्म करके
कर्मपावनीं - कर्मोंसे पवित्र करने वाली
मे पूजां - मेरी पूजा
सम्यक् संकल्पः - दृढ़ संकल्पपूर्वक
तैः कल्पयेत् - उन (विधियों) से करे ॥ ११ ॥

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ॥ १२ ॥

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती मनोमयी मणिमयी प्रतिमा अष्टविधा स्मृता ॥ १२ ॥

प्रतिमा - मूर्ति
अष्टविधा स्मृता - आठ प्रकारकी कही गयी है
शैली दारुमयी - पत्थरकी, काष्ठकी,
लौही लेप्या - लोहे आदि (धातु) की,
लेख्या च - चित्र बालुकामयी,
सैकती
मनोमयी च - मनोमयी तथा मणिमयी
मणिमयी ॥ १२ ॥

चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमन्दिरम् ।
उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥ १३ ॥

चला अचला इति द्विविधा प्रतिष्ठा जीव मन्दिरम् उद्वासा आवाहने न स्तः स्थिरायां उद्धव अर्चने ॥ १३ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**स्थिरायां**	- अचल प्रतिष्ठा वाली (मूर्ति) के
चला च अचला	- चल और अचल	**अर्चने**	- पूजनमें
द्विविधा	- दो प्रकारकी	**आवाहने**	- आवाहन
जीव प्रतिष्ठा	- प्राण-प्रतिष्ठा	**उद्वासाः**	- उद्वासन (विसर्जन)
मन्दिरं	- मन्दिरमें (की जानी चाहिए)	**स्तः न**	- उसका नहीं होता ॥ १३ ॥

अस्थिरायां विकल्पः स्यात् स्थण्डिलेतु भवेद् द्वयम् ।
स्नपनं त्वविलेप्यायामन्यत्र परिमार्जनम् ॥ १४ ॥

अस्थिरायां विकल्पः स्यात् स्थण्डिले तु भवेत् द्वयं स्नपनं तु अविलेप्यायां अन्यत्र परिमार्जनम् ॥ १४ ॥

अस्थिरायां	- चल प्रतिमाके सम्बन्धमें	**स्नपनं तु**	- स्नान तो
विकल्पः स्यात्	- विकल्प है (प्राण-प्रतिष्ठा हुई हो तो आवाहन-विसर्जन न करे, न हुई हो तो करे)	**अविलेप्यायां**	- जो चित्रांक न रूपा नहीं है उसका होगा
		अन्यत्र	- जहां स्नान नहीं होगा
स्थण्डिले तु	- वेदी पर तो	**परिमार्जनं**	- केवल पोंछकर स्वच्छ करना चाहिए ॥ १४ ॥
द्वयं भवेत्	- दोनों (आवाहन-विसर्जन) होंगे,		

द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः ।
भक्तस्य च यथालब्धैर्हृदि भावेन चैव हि ॥ १५ ॥

द्रव्यैः प्रसिद्धैः मत् यागः प्रतिमादिषु अमायिनः भक्तस्य च यथा लब्धैः हृदि भावेन च एव हि ॥ १५ ॥

प्रतिमादिषु	- मूर्ति आदिमें	**च हृदि**	- एवं हृदयमें
अमायिनः	- निष्कपट भावसे	**भावेन एव**	- भावनासे ही
प्रसिद्धैः द्रव्यैः	- प्रसिद्ध पदार्थोंसे	**मत् यागः**	- मेरी पूजा होती है
च भक्तस्य हि	- तथा भक्त को तो		॥ १५ ॥
यथा लब्धैः	- जो उपलब्ध (पदार्थ) हों (उन्हींसे)		

स्नानालंकरणं प्रेष्ठमर्चायामेव तूद्धव ।
स्थण्डिले तत्त्वविन्यासो वह्नावाज्यप्लुतं हविः ॥ १६ ॥

स्नान अलंकरणं प्रेष्ठं अर्चायां एव तु उद्धव स्थण्डिले तत्त्व विन्यासः वह्नाः आज्यप्लुतं हविः ॥ १६ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**स्थण्डिले**	- वेदीपर
एव तु	- ऐसे तो	**तत्त्व विन्यासः**	- तत्त्वोंका ठीक-ठीक न्यास,
अर्चायां	- मूर्तिको	**वह्नाः**	- अग्निमें
स्नान	- स्नान,	**आज्यप्लुतं-**	- घी मिश्रित हवन सामग्री
प्रेष्ठं अलंकरणं	- प्रिय आभूषणादिसे सजाना,	**हविः**	(से पूजा करे) ॥१६॥

सूर्ये चाभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभिः ।
श्रद्धयोपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि ॥ १७ ॥

सूर्ये च अभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिल आदिभिः श्रद्धया उप आहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वारि अपि ॥ १७ ॥

सूर्ये च	- सूर्यमें (उपासना के लिए) तो	**श्रद्धया-भक्तेन**	- श्रद्धापूर्वक भक्त द्वारा
अभ्यर्हणं	- अर्घ्य एवं उपस्थान	**उप आहृतं**	- अर्पित किया गया
सलिले	- जलमें	**वारि अपि**	- जल भी
प्रेष्ठं सलिल	- प्रिय जल (दूध) आदिसे (पूजा होती है)	**मम प्रेष्ठं**	- मुझे परमप्रिय है ॥१७॥

भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ।
गन्धो धूपः सुमनसो दीपोऽन्नाद्यं च किं पुनः ॥ १८ ॥

भूरि अपि अभक्त उपहृतं न मे तोषाय कल्पते गन्धः धूपः सुमनसः दीपः अन्न आद्यं च किं पुनः ॥ १८ ॥

गन्धः धूपः	- चन्दन, धूप,	**अभक्त उपहृतं**	- (किन्तु) भक्ति हीन द्वारा अर्पित
सुमनसः	- पुष्प,	**भूरि अपि**	- बहुत सामग्री भी
दीपः अन्न-आद्यं	- दीप, नैवेद्य आदि	**मे तोषाय**	- मुझे सन्तुष्ट
किं पुनः	- (अर्पण) से फिर क्या कहना	**न कल्पते**	- नहीं कर पाती ॥१८॥

शुचिः सम्भृतसम्भारः प्राग्दर्भैः कल्पितासनः ।
आसीनः प्रागुदग् वार्चेदर्चायामथ सम्मुखः ॥ १९ ॥

शुचिः सम्भृत सम्भारः प्राक्दर्भैः कल्पित आसनः आसीनः प्राक् उदक् वा अर्चेत् अर्चायां अथ सम्मुखः ॥ १९ ॥

शुचिः	- पवित्र होकर	**प्राक् वा उदक्**	-पूर्व या उत्तरमुख होकर
सम्भृत सम्भारः	- सब सामग्री जुटाकर	**अथ अर्चायां**	- यदि (अ़चल) मूर्तिकी पूजा करनी हो तो
प्राक्दर्भैः	- पूर्वकी ओर नोक करके बिछाये कुशोंसे	**सम्मुखः-**	- उसके सामने बैठे
कल्पित आसनः	- आसन बनाकर	**आसीनः**	॥ १९ ॥

कृतन्यासः कृतन्यासां मदर्चां पाणिना मृजेत् ।
कलशं प्रोक्षणीयं च यथावदुपसाधयेत् ॥ २० ॥

कृतन्यासः कृतन्यासां मत् अर्चां पाणिना मृजेत् कलशं च प्रोक्षणीयं च यथावत् उप साधयेत् ॥ २० ॥

कृतन्यासः - (अपना) अंगन्यास, करन्यास करके
कृतन्यासां - (प्रतिमामें) मन्त्र न्यास करे
मत् अर्चां - मेरी मूर्तिको
पाणिना मृजेत् - हाथसे पोंछ दे,
च कलशं च - तथा कलश और
प्रोक्षणीयं - प्रोक्षणीपात्रको
यथावत् - विधिपूर्वक
उप साध्रयेत् - स्थापित करे ॥ २० ॥

तदद्भिर्देवयजनं द्रव्याण्यात्मानमेव च ।
प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैश्च साधयेत् ॥ २१ ॥

तत् अद्भिः देवयजनं द्रव्याणि आत्मानं एव च प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीणि अद्भिः तैः तैः द्रव्यैः च साधयेत् ॥ २१ ॥

तत् अद्भिः - तब जलसे
देव यजनं - देव-पूजन स्थानका,
द्रव्याणि - सामग्रीका,
च आत्मानं एव - तथा अपना भी
प्रोक्ष्य - प्रोक्षण करके
त्रीणि पात्राणि - तीन पात्रोंको
अद्भिः - जलसे और
तैः तैः - उन उन (अर्घ्य, पाद्य, आचमन) के
द्रव्यैः च - पदार्थ भी डालकर
साधयेत् - (मन्त्रोंसे) अभिमन्त्रित करले ॥ २१ ॥

पाद्यार्घ्याचमनीयार्थं त्रीणि पात्राणि दैशिकः ।
हृदा शीर्ष्णाथ शिखया गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत् ॥ २२ ॥

पाद्य अर्घ्य आचमनीय अर्थं त्रीणि पात्राणि दैशिकः हृदा शीर्ष्णाथ अथ शिखया गायत्र्या च अभिमन्त्रयेत् ॥ २२ ॥

१.पाद्य अर्घ्य - पाद्य, अर्घ्य,
आचमनीय अर्थं - आचमनके लिए
त्रीणि पात्राणि - (जो) तीन पात्र (रखे हैं)
दैशिकः - उनको करने वाला (क्रमशः)
हृदा शीर्ष्णाथ - (अंगन्यासके) हृदय, सिर
अथ शिखया - और शिखाके (मन्त्रोंसे)
च गायत्र्या - तथा (तीनोंको फिर) गायत्री मन्त्रसे
अभिमन्त्रयेत् - अभिमन्त्रित करे ॥ २२ ॥

पिण्डे वाय्वग्निसंशुद्धे हृत्पद्मस्थां परां मम ।
अण्वीं जीवकलां ध्यायेन्नादान्ते सिद्धभावितामृ ॥ २३ ॥

पिण्डे वायु अग्नि संशुद्धे हृत् पद्मस्थां परां मम अण्वीं जीवकलां ध्यायेन् नाद अन्ते सिद्ध भावितामृ ॥ २३ ॥

पिण्डे वायु - शरीरको प्राणायाम एवं
अग्नि - अग्नि धारणासे (पापमोचन द्वारा)
संशुद्धे - शुद्ध करके
सिद्ध - सिद्धों द्वारा
नाद अन्ते - (प्रणवके तीनों अक्षरोंके बाद) नादके अन्तमें
भावितां - भावनाकी जाने वाली
मम परां - मेरी परा
अण्वीं - अत्यन्त सूक्ष्म जीव
जीवकलां - कलाका
ध्यायेन् - ध्यान करे ॥ २३ ॥

तयाऽऽत्मभूतया पिण्डे व्याप्ते सम्पूज्य तन्मयः ।
आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्तांगं मां प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥

---

१. **पाद्यमें - सावें के दाने, दूब, कमल, विष्णु कान्ता, चन्दन, तुलसी**
अर्घ्यमें - चन्दन, पुष्प, अक्षत, जौ, कुश, तिल, सरसो, दूर्वा
आचमनमें - जायफल, लौंग, इलायची डालना चाहिए ।

तया आत्मभूतया पिण्डे व्याप्ते सम्पूज्य तत् मयः आवाह्य अर्चा आदिषु स्थाप्य न्यस्त अंगं मां प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥

तया- - उसके अपना स्वरूप
आत्मभूतया होकर
पिण्डे व्याप्ते - पूरे शरीरमें व्याप्त हो जानेपर
तत् मयः - उससे एकाकार होकर
सम्पूज्य - (भावनासे उसका) पूजन करके
अर्चा आदिषु - (यदि आवाहन करना हो तो) मूर्ति आदिमें
मां आवाह्य - मेरा आवाहन करके
न्यस्त अंगं - (वहां) अंगन्यास करके
प्रपूजयेत् - विधिवत् पूजा करे ॥ २४ ॥

पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचारान् प्रकल्पयेत् ।
धर्मादिभिश्च नवभिः कल्पयित्वाऽऽसनं मम ॥ २५ ॥

पाद्य उपस्पर्श अर्हण आदीन् उपचारान् प्रकल्पयेत् धर्म आदिभिः च नवभिः कल्पयित्वा आसनं मम ॥ २५ ॥

धर्म आदिभिः - धर्म आदि
नवभिः - नौ के द्वारा१
मम आसनं - मेरे आसनकी
कल्पयित्वा - भावना करके ॥ २५ ॥

पद्ममष्टदलं तत्र कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ।
उभाभ्यां वेदतन्त्राभ्यां मह्यं तूभयसिद्धये ॥ २६ ॥

पद्मं अष्टदलं तत्र कर्णिका केसर उज्ज्वलं उभाभ्यां वेद तन्त्राभ्यां मह्यं तु उभय सिद्धये ॥ २६ ॥

---

१. धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य ये चार सिंहासन के पाये हैं, अधर्म, अज्ञान, राग, अनैश्वर्य ये चारों ओरके डंडे हैं ।
सत्त्व, रज, तम ये गुण पीछे की पटरी हैं । विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञान, क्रिया, योग, प्रह्वि, सत्या, ईशाना, अनुग्रहा ये उसे सम्हाले हैं ।

तत्र कर्णिका	- उसपर कर्णिका एवं	**उभय सिद्धये**	- दोनों (भोग और मोक्ष) की प्राप्तिके लिए
केसर उज्ज्वलं	- केसर सहित चमकते	**उभाभ्यां**	- दोनों विधियों
अष्टदलं पद्मं	- अष्टदल कमलपर	**वेद तन्त्रभ्यां**	- वैदिक और तान्त्रिकसे
		मह्यं	- मेरी पूजा करे ॥ २६ ॥

सुदर्शनं पाञ्चजन्यं गदासीषुधनुर्हलान् ।
मुसलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत् ॥ २७ ॥

सुदर्शनं पाञ्चजन्यं गदा असि इषु धनुः हलान् मुसलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं च अनुपूजयेत् ॥ २७ ॥

सुदर्शनं	- सुदर्शन चक्र,	**मुसलं**	- मूसल (इन आठ आयुधोंकी)
पाञ्चजन्यं	- पाञ्चजन्य शंख,	**च कौस्तुभं**	- तथा कौस्तुभ मणि,
गदा	- कौमोदकी गदा,	**मालां श्रीवत्सं**	- वनमाला एवं श्रीवत्स चिह्नकी
असि, इषु	- खड्ग, बाण,		
धनुः हलान्	- धनुष, हल	**अनुपूजयेत्**	- पीछे पूजा करे ॥२७॥

नन्दं सुनन्दं गरुडं प्रचण्डं चण्डमेव च ।
महाबलं बलं चैव कुमुदं कुमुदेक्षणम् ॥ २८ ॥

नन्दं, सुनन्दं, गरुड़ं, प्रचण्डं, चण्डं एव च महाबलं, बलं च एव कुमुदं, कुमुदेक्षणम् ॥ २८ ॥[1]

दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून् सुरान् ।
स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान् पूजयेत् प्रोक्षणादिभिः ॥ २९ ॥

---

१. 'एव च' 'च एव' का अर्थ ये भी है । भगवानके ८ पार्षदों के नाम हैं जो आठो दिशाओं में रहते हैं तथा गरुड़ सामने रहते हैं ।

दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून् सुरान् स्वे स्वे स्थाने तु अभिमुखान् पूजयेत् प्रोक्षण आदिभिः ॥ २९ ॥

दुर्गां विनायकं - दुर्गा जी, गणेश,
व्यासं - व्यास जी,
विष्वक्सेनं - विष्वकसेन की (चारों कोणोंमें)
गुरून् - (बायीं ओर) गुरुकी
सुरान् - (आठों दिशाओंमें उनके इन्द्रादि) दिक्पालों की
स्वे स्वे- - जो अपने अपने
स्थाने तु स्थानमें ही
अभिमुखान् - (भगवानकी ओर मुख किये (स्थापना करके)
प्रोक्षण- - प्रोक्षण आदि (सभी
आदिभिः उपचारों) द्वारा
पूजयेत् - पूजा करे ॥ २९ ॥

चन्दनोशीरकर्पूरकुंकुमागुरुवासितैः ।
सलिलैः स्नापयेन्मन्त्रैर्नित्यदा विभवे सति ॥ ३० ॥

चन्दन उशीर कर्पूर कुंकुम अगुरुवासितैः सलिलैः स्नापयेत् मन्त्रैः नित्यदा विभवे सति ॥ ३० ॥

विभवे सति - यदि वैभव हो तो
नित्यदा - सदा ही
चन्दन उशीर - चन्दन, खस,
कर्पूर कुंकुम - कपूर, केशर,
अगुरुवासितैः - अगरुसे सुगन्धित किये
सलिलैः मन्त्रैः - जलसे मन्त्रों द्वारा
स्नापयेत् - स्नान करावे ॥ ३० ॥

स्वर्णधर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया ।
पौरुषेणापि सूक्तेन सामभी राजनादिभिः ॥ ३१ ॥

स्वर्ण धर्म अनुवाकेन महापुरुष विद्यया पौरुषेण अपि सूक्तेन सामभी राजन आदिभिः ॥ ३१ ॥

स्वर्ण धर्म - 'सुवर्ण धर्म' आदि
अनुवाकेन - स्वर्ण धर्मानुवाक् से
महापुरुष- - महापुरुष विद्या
विद्यया (रुद्री) से,
पौरुषेण सूक्तेन - पुरुष सूक्त से भी,
अपि
राजन आदिभिः - राजन आदि
सामभी - सामगायन द्वारा (स्नान करावे) ॥ ३१ ॥

वस्त्रोपवीताभरणपत्रस्रग्गन्धलेपनैः ।
अलंकुर्वीत सप्रेम मद्भक्तो मां यथोचितम् ॥ ३२ ॥

वस्त्र उपवीत आभरण पत्र स्रक् गन्ध लेपनैः अलङ्कुर्वीत सप्रेम मत् भक्तः मां यथा उचितम् ॥ ३२ ॥

मत् भक्तः - मेरा भक्त
सप्रेम - प्रेम सहित
यथा उचितं - (देश, काल, मूर्तिके अनुसार) जैसा उचित हो
वस्त्र उपवीत - वस्त्र, यज्ञोपवीत,
आभरण - आभूषण,
पत्र स्रक् - तुलसीदल, माला,
गन्ध लेपनैः - चन्दन लगाने द्वारा
मां अलङ्-कुर्वीत - मेरा शृंगार करे ॥ ३२ ॥

पाद्यमाचमनीयं च गन्धं सुमनसोऽक्षतान् ।
धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मे श्रद्धयार्चकः ॥ ३३ ॥

पाद्यं आचमनीयं च गन्धं सुमनसः अक्षतान् धूप दीप उपहार्याणि विदद्यात् मे श्रद्धया अर्चकः ॥ ३३ ॥

अर्चकः श्रद्धया - पूजा करने वाला श्रद्धापूर्वक
मे पाद्यं - मुझे पाद्य,
आचमनीयं - आचमन,
गन्धं अक्षतान् - चन्दन, अक्षत्,
सुमनसः - पुष्प
धूप दीप - धूप, दीपक,
च उपहार्याणि - तथा नैवेद्यादि.
दद्यात् - अर्पित करे ॥ ३३ ॥

गुडपायससर्पींषि शष्कुल्यापूपमोदकान् ।
संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत् ॥ ३४ ॥

गुड पायस सर्पींषि शुष्कुल्या अपूप मोदकान् संयाव दधि सूपान् च नैवेद्यं सति कल्पयेत् ॥ ३४ ॥

सति - सम्भव हो तो
गुड सर्पीषि-पायस - गुड़-घी मिली खीर,
शुष्कुल्या - पूड़ी,
अपूप मोदकान् - मालपुआ, लड्डू,
संयाव दधि - हलुआ, दही,
च सूपान् - तथा (कई प्रकारकी) दालें,
नैवेद्यं - नैवद्यके लिए
कल्पयेत् - बनावे ॥ ३४ ॥

अभ्यंगोन्मर्दनादर्शदन्तधावाभिषेचनम् ।
अन्नाद्यगीतनृत्यादि पर्वणि स्युरुतान्वहम् ॥ ३५ ॥

अभ्यंग उन्मर्दन आदर्श दन्तधाव अभिषेचनं अन्न आदि गीत नृत्य आदि पर्वणि स्युः उत अनु अहम् ॥ ३५ ॥

दन्तधाव - दातौन कराना,
अभ्यंग - उबटन लगाना,
उन्मर्दन - शरीर दबाना,
अभिषेचनं - (पंचामृत आदिसे) स्नान कराना
आदर्श - दर्पण दिखलाना,
अन्न आदि - (विशेष) पकवान आदि अर्पण
गीत नृत्य-आदि - गायन, नृत्य आदि
पर्वणि स्युः - पर्वों पर हों
उत अनु अहं - अथवा (शक्ति हो तो) प्रतिदिन करे ॥ ३५ ॥

विधिना विहिते कुण्डे मेखलागर्तवेदिभिः ।
अग्निमाधाय परितः समूहेत् पाणिनोदितम् ॥ ३६ ॥

विधिना विहिते कुण्डे मेखला गर्त वेदिभिः अग्निं आधाय परितः समूहेत् पाणिना उदितम् ॥ ३६ ॥

मेखला गर्त - मेखला, गर्त,
वेदिभिः - वेदियोंसे युक्त
विधिना विहिते - विधानपूर्वक बने
कुण्डे - कुण्डमें
अग्निं आधाय - अग्नि स्थापना करके
उदितं पाणिना - निर्दिष्ट विधिसे हाथसे
परितः समूहेत् - परिसमूहन करे ॥ ३६ ॥

परिस्तीर्याथ पर्युक्षेदन्वाधाय यथाविधि ।
प्रोक्षण्याऽऽसाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्याग्नौ भावयेत माम् ॥ ३७ ॥

परिस्तीर्य अथपर्युक्षेत् अन्वाधाय यथा विधि प्रोक्षण्या आसाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्य अग्नौ भावयेत माम् ॥ ३७ ॥

परिस्तीर्य - कुशास्तरण (कुश कण्डिका) करके
पर्युक्षेत् - पर्युक्षण करे,
अन्वाधाय - (समिधाओंका) अन्वाधान करे
यथा विधि - विधिके अनुसार
प्रोक्षण्या आसाद्य - प्रोक्षणी स्थापित करके
द्रव्याणि प्रोक्ष्य - सामग्री का प्रोक्षण करके१
अग्नौ मां - अग्निमें मेरी
भावयेत - भावना करे ॥ ३७ ॥

तप्तजाम्बूनदप्रख्यं शंखचक्रगदाम्बुजैः ।
लसच्चतुर्भुजं शान्तं पद्मकिञ्जल्कवाससम् ॥ ३८ ॥

तप्त जाम्बूनद प्रख्यं शंख चक्र गदा अम्बुजैः लसत् चतुर्भुजं शान्तं पद्मकिञ्जल्क वाससम् ॥ ३८ ॥

तदा जाम्बूनद - तपाये स्वर्णके
प्रख्यं - समान वर्ण
शंख चक्र - शंख, चक्र,
गदा अम्बुजैः - गदा, पद्मसे
लसत् चतुर्भुजं - सुशोभित चतुर्भुज
पद्मकिञ्जल्क - पद्मपरागके समान
वाससं शान्तं - पीताम्बर, शान्त ॥ ३८ ॥

स्फुरत्किरीटकटककटिसूत्रवरांगदम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ३९ ॥

---

१. यहां कर्मकाण्ड के पारिभाषिक शब्द हैं और क्रियायें हैं वैदिक कर्मकाण्डके विद्वान इन्हें जानते हैं । किसी कर्मकाण्ड के विद्वान या 'हवन-पद्धति' ग्रन्थसे इन्हें जानना चाहिए ।

स्फुरत् किरीट कटक कटि सूत्र वर अंगदम् श्री वत्स वक्षसं भ्राजत् कौस्तुभं वन मालिनम् ॥ ३९ ॥

स्फुरत् - चमकते
किरीट कटक - मुकुट, कंकण,
कटिसूत्र - करधनी,
वर अंगदम् - उत्तम अंगदसे
भ्राजत् - सुशोभित
श्रीवत्सवक्षसं - वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह
कौस्तुभं - कौस्तुभमणि एवं
वनमालि नं - वनमाला धारी ॥ ३९ ॥

ध्यायन्नभ्यर्च्य दारूणि हविषाभिघृतानि च ।
प्रास्याज्यभागावाधारौ दत्त्वा चोज्यप्लुतं हविः ॥ ४० ॥

ध्यायन् अभ्यर्च्य दारूणि हविषाभि घृतानि च प्रास्य आज्यभागाः आधारौ दत्त्वा च आज्यप्लुतं हविः ॥ ४० ॥

ध्यायन् - (इस मूर्तिका) ध्यान करके
अभ्यर्च्य - पूजन करे,
दारूणि - सूखी समिधाओंको
धृतेन प्रास्य - घी में डुबाकर देकर
आज्यभागाः - आज्यभाग एवं
आधारौ - आधार नामक दो दो आहुतियां
हविषाभि च घृतानि - हविष्य तथा घी से (आहुतिदे)
च आज्यप्लुतं - फिर घी से भीगी
हविः दत्त्वा - हविष्य से आहुति दे ॥ ४० ॥

जुहुयान्मूलमन्त्रेण षोडशर्चावदानतः ।
धर्मादिभ्यो यथान्यायं मन्त्रैः स्विष्टकृतं बुधः ॥ ४१ ॥

जुहुयात् मूल मन्त्रेण षोडश अर्चा अवदानतः धर्म आदिभ्यः यथा न्यायं मन्त्रैः स्विष्ट कृतं बुधः ॥ ४१ ॥

मूल मन्त्रेण - अपने इष्ट मन्त्रसे,
अर्चा अवदानतः - मूर्तिके प्रशस्त मन्त्रसे,
षोड्श - (पुरुष सूक्तके) सोलह मन्त्रोंसे
जुहुयात् - हवन करे
बुधः - बुद्धिमान पुरुष
धर्म आदिभ्यः - धर्म आदि देवताओं के लिए भी
यथा न्यायं - विधिपूर्वक
मन्त्रैः - (उनके) मन्त्रों से (हवन करे)
स्विष्टकृतं - स्विष्टकृत आहुति भी दे ॥ ४१ ॥

अभ्यर्च्याथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत् ।
मूलमन्त्रं जपेद् ब्रह्म स्मरन्नारायणात्मकम् ॥ ४२ ॥

अभ्यर्च्य अथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यः बलिं हरेत् मूल मन्त्रं जपेत् ब्रह्म स्मरन् नारायण आत्मकम् ॥ ४२ ॥

अथ अभ्यर्च्य - फिर पूजा करके
नमस्कृत्य - नमस्कार करके
पार्षदेभ्यः - पार्षदोंको
बलिं हरेत् - (हवन कर्मांग) बलि (भेंट) दे
नारायण आत्मकं - नारायण स्वरूप
ब्रह्म स्मरन् - परम ब्रह्मका स्मरण करते हुए
मूल मन्त्रं - इष्ट मन्त्रका
जपेत् - जप करे ॥ ४२ ॥

दत्त्वाऽऽचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् ।
मुखवासं सुरभिमत् ताम्बूलाद्यमथार्हयेत् ॥ ४३ ॥

दत्त्वा आचमनं उच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् मुखवासं सुरभिमत् ताम्बूल आद्यं अथ अर्हयेत् ॥ ४३ ॥

आचमनं दत्त्वा - (भगवानको) आचमन देकर
उच्छेषं - उनका प्रसाद
बिष्वक्सेनाय - विष्वकसेनको
कल्पयेत् - अर्पित करे
अथ मुखवासं - फिर (भगवानको) मुखवास के लिए
सुरभिमत् - सुगन्धित
ताम्बूलआद्यं - ताम्बूल आदिसे
अर्हयेत् - पूजित करे ॥ ४३ ॥

उपगायन् गृणन् नृत्यन् कर्माण्यभिनयन् मम ।
मत्कथाः श्रावयञ्छृण्वन् मुहूर्तं क्षणिको भवेत् ॥ ४४ ॥

उपगायन् गृणन् नृत्यन् कर्माणि अभिनयन् मम मत् कथाः श्रावयन् शृण्वन् मुहूर्तं क्षणिकः भवेत् ॥ ४४ ॥

उपगायन् - मेरी समीप गाते,
गृणन् - स्तुति करते,
नृत्यन् - नाचते,
मम कर्माणि - मेरी लीलाओंका
अभिनयन् - अभिनय करते,
मत् कथाः - मेरी कथा
श्रावयन् - सुनाते या
शृण्वन् - सुनते
मुहूर्तं - कई मुहूर्त
क्षणिकः भवेत् - क्षणके समान हो जाते हैं ॥ ४५ ॥

स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि ।
स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वन्देत दण्डवत् ॥ ४५ ॥

स्तवैः उच्च अवचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैः अपि स्तुत्वा प्रसीद भगवन्न इति वन्देत दण्डवत् ॥ ४५ ॥

उच्च अवचैः - बड़े-छोटे,
पौराणैः स्तोत्रैः - पुराणोंके स्तोत्रोंसे
प्राकृतैः अपि - साधारण लोगों द्वारा भी बनायी
स्तवैः - स्तुतियोंसे
स्तुत्वा - स्तवन करके
भगवन् प्रसीद - 'भगवन् ! आप प्रसन्न हों'
इति - ऐसा कहकर
दण्डवत् वन्देत - दण्डवत् प्रणाम करे ॥ ४५ ॥

शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ।
प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥ ४६ ॥

शिरः मत् पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परं प्रपन्नं पाहि मां ईश भीतं मृत्यु ग्रह अर्णवात् ॥ ४६ ॥

शिरः मत् - सिर मेरे
पादयोः कृत्वा - चरणपर रखकर
च बाहुभ्यां - तथा हाथोंसे
परस्परं - आपसमें (दाहिनेसे दाहिना, बायेंसे बायां चरण पकड़कर कहे)
ईश - 'स्वामी !
मृत्युग्रह - मृत्यु रूपी ग्राह युक्त
अर्णवात् - (संसार) सागरसे
भीतं प्रपन्नं - डरकर शरण आये
मां पाहि - मेरी रक्षा कीजिए ॥ ४६ ॥

इति शेषां मया दत्तां शिरस्याधाय सादरम् ।
उद्वासयेच्चेदुद्वास्यं ज्योतिर्ज्योतिषि तत् पुनः ॥ ४७ ॥

इति शेषां मया दत्तां शिरसि आधाय सादरं उद्वासयेत् चेत् उद्वास्यं ज्योतिः ज्योतिषि तत् पुनः ॥ ४७ ॥

इति - ऐसा कहकर
मया दत्तां - मुझे अर्पित
शेषां - मालादि
सादरं - आदरपूर्वक
शिरसि आधाय - सिर पर चढ़ाकर
चेत् उद्वास्यं - यदि विसर्जन करना हो तो
तत् ज्योतिः - उस (प्रतिमाकी) ज्योतिका
ज्योतिषि - (भावना द्वारा अपनी हृदय ज्योतिमें
पुनः उद्वासयेत् - विसर्जन कर दे ॥४७॥

अर्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत् ।
सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्माहमवस्थितः ॥ ४८ ॥

अर्चा आदिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र च आर्चयेत् सर्वभूतेषु आत्मनि च सर्व आत्मा अहं अवस्थितः ॥ ४८ ॥

अर्चा आदिषु - मूर्ति आदिमें
यदा यत्र श्रद्धा - जब जहां श्रद्धा हो,
मां तत्र - मेरी वहीं
आर्चयेत् - पूजा करे,
सर्वभूतेषु - सब प्राणियोंमें
च आत्मनि - तथा अपने हृदयमें
अहं सर्व आत्मा - मैं सबके आत्मारूपसे
अवस्थितः - स्थित हूँ ॥ ४८ ॥

एवं क्रियायोगपथैः पुमान् वैदिकतान्त्रिकैः ।
अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विन्दत्यभीप्सिताम् ॥ ४९ ॥

एवं क्रिया योग पथैः पुमान् वैदिक तान्त्रिकैः अर्चन् उभयतः सिद्धिं मत्तः विन्दन्ति अभीप्सिताम् ॥ ४९ ॥

एवं वैदिक-तान्त्रिकैः - इस प्रकार वैदिक और तान्त्रिक
क्रिया योग पथैः - क्रिया योग के मार्गसे
अर्चन् पुमान् - पूजन करता हुआ पुरुष
मत्तः उभयतः - मुझसे दोनों (मोक्ष और भोग) प्रकारकी
अभीप्सितां-सिद्धिं - अभीष्ट सफलता
विन्दन्ति - प्राप्त करते हैं ॥४९॥

मदर्चां सम्प्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद् दृढम् ।
पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाश्रितान् ॥ ५० ॥

मत् अर्चां सम्प्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेत् दृढम् पुष्प उद्यानानि रम्याणि पूजायात्रा उत्सव आश्रितान् ॥ ५० ॥

मत् अर्चां - मेरी मूर्तिकी
सम्प्रतिष्ठाप्य - भली प्रकार प्रतिष्ठा करके
दृढं मन्दिरं - सुदृढ़ मन्दिर
कारयेत् - बनवाये,
पूजा यात्रा - पूजा, यात्रा,
उत्सव आश्रितान् - उत्सवोंका सहारा रूप
रम्याणि - मनोहर
पुष्प उद्यानानि - पुष्प वाटिकायें (लगवायें) ॥ ५० ॥

पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम् ।
क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात् ॥ ५१ ॥

पूजा आदीनां प्रवाह अर्थं महापर्वसु अथ अनु अहं क्षेत्र आपण पुर ग्रामान् दत्त्वा मत् सार्ष्टितां इयात् ॥ ५१ ॥

महापर्वसु - बड़े पर्वोंपर
अथ अनु अहं - तथा प्रत्येक दिनकी
पूजा आदीनां - पूजा आदिका
प्रवाह अर्थं - क्रम चलता रहे इसलिए
क्षेत्र आपण - (मन्दिरको) खेत, बाजार
पुर ग्रामान् - नगर या गाँव
दत्त्वा - दान करके
मत् सार्ष्टितां - मेरे समान ऐश्वर्य
इयात् - पाता है ॥ ५१ ॥

प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम् ।
पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ॥ ५२ ॥

प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयं पूजा आदिना ब्रह्मलोकं त्रिभिः मत् साम्यतां इयात् ॥ ५२ ॥

प्रतिष्ठया - (मूर्तिकी) प्रतिष्ठा करनेसे
सार्वभौमं - सम्राट् पद,
सद्मना - मन्दिर बनानेसे
भुवनत्रयं - त्रिलोकीका राज्य,
पूजा आदिना - पूजा आदिकी (व्यवस्था) करनेसे
ब्रह्मलोकं - ब्रह्मलोक तथा
त्रिभिः - तीनों करनेसे
मत् साम्यतां - मेरी समानता
इयात् - प्राप्त करता है ॥५२॥

मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति ।
भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत माम् ॥ ५३ ॥

मां एव नैरपेक्ष्येण भक्ति योगेन विन्दति भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत् माम् ॥ ५३ ॥

नैरपेक्ष्येण - बिना किसी अपेक्षाके
यः एवं - जो इस प्रकार
मां पूजयेत - मेरी पूजा करता है
स भक्तियोगं - वह भक्ति पाता है और
लभते
भक्तियोगेन - उस भक्तिसे
मां विन्दति - मुझे प्राप्त कर लेता है ॥ ५३ ॥

यः स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुरविप्रयोः ।
वृत्तिं स जायते विड्भुग् वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ५४ ॥

यः स्वदत्तां परैः दत्तां हरेत सुर विप्रयोः वृत्तिं स जायते विट् भुक् वर्षाणां अयुत अयुतम् ॥ ५४ ॥

यः स्व दत्तां	- जो अपनी दी हुई या	**स अयुत अयुतं**	-वह करोड़ों
परैः दत्तां	- दूसरे की दी हुई	**वर्षाणां**	- वर्षों तक
सुर विप्रयोः	- देवता या ब्राह्मणकी	**विट् भुक्**	- निष्ठा भोजी कीड़ा होकर
वृत्तिं हरेत्	- आजीविका छीन लेता है	**जायते**	पैदा होता है ॥ ५४ ॥

कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च ।
कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत् फलम् ॥ ५५ ॥

कर्तुः च सारथेः हेतुः अनुमोदितुः एव च कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयः भूयसि तत् फलम् ॥ ५५ ॥

कर्मणां	- ऐसे कर्मोंके	**प्रेत्य भागिनः**	- मरकर हिस्सेदार होते हैं एवं
कर्तुः च सारथेः	- कर्ता तथा सहायक,	**भूयः**	- फिर अधिक हाथ होनेपर
हेतुः	- कारण बनने वाले,	**तत् फलं**	- उसका फल भी
च अनुमोदितुः	- तथा समर्थन करने	**भूयसि**	- अधिक होता है ॥५५॥
एव	वाले भी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अथ अष्टाविंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच—

परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत ।
विश्वमेकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १ ॥

पर स्वभाव कर्माणि न प्रशंसेत् न गर्हयेत् विश्वं एकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १ ॥

प्रकृत्या	- प्रकृति	**पर स्वभाव**	- दूसरे के स्वभाव एवं
च पुरुषेण	- तथा पुरुष द्वारा (व्याप्त)	**कर्माणि**	- कर्मोंकी
विश्वं एक आत्मकं	- विश्वको एक स्वरूप	**न प्रशंसेत्**	- न प्रशंसा करे एवं
पश्यन्	- देखता हुआ (सभी में वही प्रकृति एवं पुरुष है यह समझकर)	**न गर्हयेत्**	- न निन्दा करे ॥ १ ॥

परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निन्दति ।
स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्यभिनिवेशतः ॥ २ ॥

पर स्वभाव कर्माणि यः प्रशंसति निन्दति स आशु भ्रश्यते स्वार्थात् असत्य अभिनिवेशतः ॥ २ ॥

यः परस्वभाव	- जो दूसरोंके स्वभाव एवं	**स असत्य**	- वह मिथ्यातत्त्वमें
कर्माणि	- कर्मोंकी	**अभिनिवेशतः**	- सत्यत्वबुद्धि होनेसे
प्रशंसति-	- प्रशंसा या निन्दा	**आशु स्वार्थात्**	- शीघ्र अपने वास्तविक स्वार्थसे
निन्दति	करता है	**भ्रश्यते**	- च्युत हो जाता है ॥२॥

तैजसे निद्रयाऽऽपन्ने पिण्डस्थो नष्टचेतनः ।
मायां प्राप्नोति मृत्युं वा तद्वन्नानार्थदृक् पुमान् ॥ ३ ॥

तैजसे निद्रया आपन्ने पिण्डस्थाः नष्ट चेतनः मायां प्राप्नोति मृत्युं वा तद् वत् नाना अर्थ दृक् पुमान् ॥ ३ ॥

तैजसे - राजस अहंकार (ेः कार्य इन्द्रियों) को
निद्रया आपन्ने - निद्रा आजाने पर
पिण्डस्थः - शरीरमें स्थित जीवकी
नष्ट चेतनः - चेतना लुप्त हो जाती है
मायां प्राप्नोति - (तब वह) मायिक दृश्य (स्वप्न) देखने लगता है,
वा मृत्युं - अथवा मर सा जाता (सुषुप्त हो जाता) है
तद्वत् - इसी प्रकार
नाना अर्थ दृक् - पदार्थोंमें अनेकत्त्व बुद्धि वाला
पुमान् - पुरुष (मिथ्या दर्शन या अज्ञानमें उलझ जाता है) ॥ ३ ॥

किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत् ।
वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥ ४ ॥

किं भद्रं किं अभद्रं वा द्वैतस्य अवस्तुनः कियत् वाचा उदितं तत् अनृतं मनसाध्यातं एव च ॥ ४ ॥

अवस्तुनः - मिथ्या (असत्)
द्वैतस्य कियत् - द्वैतकी महत्ता क्या,
किं भद्रं - (उसमें) भला क्या
वा किं अभद्रं - अथवा बुरा क्या,
वाचा उदितं - जो कुछ वाणीसे कहा जाता है
वा मनसा-ध्यातं - अथवा मनसे सोचा जाता है
तत् अनृतं - वह सब मिथ्या है ॥४॥

छायाप्रत्याह्वयाभासा ह्यसन्तोऽप्यर्थकारिणः ।
एवं देहादयो भावा यच्छन्त्या मृत्युतो भयम् ॥ ५ ॥

छाया प्रत्याह्वया आभासा हि असन्तः अपि अर्थ कारिणः एवं देह आदयः भावा यच्छन्ति अमृत्युतः भयम् ॥ ५ ॥

छाया - छाया
प्रत्याह्वया - प्रतिध्वनि
आभासा - प्रतिबिम्ब
हि असन्तः - क्योंकि सत्ताहीन
अपि होनेपर भी
अर्थ कारिणः - (अनेक) कार्य करने वाले होते हैं
एवं देह आदयः - इसी प्रकार शरीरादि
भावा - पदार्थ
अमृत्युतः - (आत्माकी) मृत्यु न होनेपर भी
भयं यच्छन्ति - उसे भय प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥

आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः ।
त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः ॥ ६ ॥

आत्मा एव तत् इदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः त्रायते त्राति विश्व आत्मा ह्रियते हरति ईश्वरः ॥ ६ ॥

आत्मा एव - आत्मा ही
इदं विश्वं तत् - इस विश्वमें व्याप्त है,
प्रभुः - समर्थ विश्व रूप
सृज्यते सृजति - बनता, बनाता है,
ईश्वरः - वह सर्वेश्वर
त्रायते त्राति - रक्षित होता और रक्षा करता है
ह्रियते हरति - संहृति होता एवं संहार करता है ॥ ६ ॥

तस्मान्न ह्यात्मनोऽन्यस्मादन्यो भावो निरूपितः ।
निरूपितेयं त्रिविधा निर्मूला भातिरात्मनि ।
इदं गुणमयं विद्धि त्रिविधं मायया कृतम् ॥ ७ ॥

तस्मात् न हि आत्मनः अन्यस्मात् अन्यः भावः निरूपितः निरूपिता इयं त्रिविधा निर्मूला भातिः आत्मनि इदं गुणमयं विद्धि त्रिविधं मायया कृतम् ॥ ७ ॥

तस्मात् हि - इसलिए क्योंकि
आत्मनः अन्यः - आत्मासे पृथक
अन्यस्मात् - दूसरे किसीसे पदार्थकी
भावः स्थिति
नि रूपितः न - श्रुति में वर्णित नहीं है
इयं त्रिविधा - यह तीन (अध्यात्म, आधिदैव, अधिभूत) रूप
निरूपिता - जो वर्णित है,
निमूर्ला - बिना जड़ (आधार) के
आत्मनि भाति - आत्मामें प्रतीत हो रही है
इदं त्रिविधं - इन तीनों रूपों को
गुणमयं - त्रिगुणमय एवं
माययाकृतं - माया-निर्मित
विद्धि - समझो ॥ ७ ॥

एतद् विद्वान् मदुदितं ज्ञानविज्ञाननैपुणम् ।
न निन्दति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत् ॥ ८ ॥

एतत् विद्वान् मत् उदितं ज्ञान विज्ञान नैपुणं न निन्दति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत् ॥ ८ ॥

एतत् मत-उदितं - इस मेरे द्वारा वर्णित
ज्ञान-विज्ञान - ज्ञान-विज्ञानकी
नैपुणं विद्वान् - कुशलताको जानकर
न निन्दति - न किसीकी निन्दा करता
च न स्तौति - और न प्रशंसा करता
सूर्यवत् - सूर्यके समान (तटस्थ भावसे)
लोके चरति - संसारमें विचरण करता है ॥ ८ ॥

प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा ।
आद्यन्तवदसज्ज्ञात्वा निःसंगो विचरेदिह ॥ ९ ॥

प्रत्यक्षेण अनुमानेन निगमेन आत्मसंविदा आद्य अन्तवत् असत् ज्ञात्वा निःसंगः विचरेत् इह ॥ ९ ॥

प्रत्यक्षेण - प्रत्यक्ष,
अनुमानेन - अनुमान,
निगमेन - शास्त्र तथा
आत्मसंविदा - अपने अनुभवसे
आदि अन्तवत् - (संसारको) आदि-अन्त वाला
असत् ज्ञात्वा - असत् जानकर
निःसंगः - अनासक्त होकर
इह विचरेत् - यहां विचरण करे ॥९॥

उद्धव उवाच–

नैवात्मनो न देहस्य संसृतिर्द्रष्टृदृश्ययोः ।
अनात्मस्वदृशोरीश कस्य स्यादुपलभ्यते ॥ १० ॥

न एव आत्मनः न देहस्य संसृतिः द्रष्ट दृश्ययोः अनात्मसु असदृशः ईश कस्य स्यात् उपलभ्यते ॥ १० ॥

ईश - स्वामी !
द्रष्टृ आत्मनः - द्रष्टा आत्मा एवं
दृश्ययोः देहस्य - दृश्य शरीरका
संसृतिः न एव - आवागमन नहीं ही होता,
अनात्मसु - (फिर) अनात्मा
असदृशः - (आत्मासे) असमान
कस्यस्यात् - किसका होता है ?
उपलभ्यते - यह होता पाया तो जाता है ॥ १० ॥

आत्माव्ययोऽगुणः शुद्धः स्वयंज्योतिरनावृतः ।
अग्निवद्दारुवदचिद्देहः कस्येह संसृतिः ॥ ११ ॥

आत्मा अव्ययः अगुणः शुद्धः स्वयं ज्योतिः अनावृतः अग्निवत् दारुवत् अचित् देहः कस्य इह संसृतिः ॥ ११ ॥

आत्मा अव्ययः - आत्मा अविनाशी,
अगुणः शुद्धः - निर्गुण, शुद्ध,
स्वयं ज्योतिः - स्वयं प्रकाश,
अनावृतः - निरावरण है और
देहः- - शरीर अग्निके समान
अग्निवत् या
दारुवत् - काष्ठके समान
अचित् - जड़ है,
इह संसृतिः - अतः इस लोकमें आवागमन
कस्य - किसका होता है ॥११॥

श्रीभगवानुवाच–

यावद् देहेन्द्रियप्राणैरात्मनः सन्निकर्षणम् ।
संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ॥ १२ ॥

यावत् देह इन्द्रिय प्राणैः आत्मनः सन्निकर्षणं संसारः फलवान् तावत् अपार्थः अपि अविवेकिनः ॥ १२ ॥

यावत्	- जब तक	**तावत्**	- तब तक
देह इन्द्रिय	- शरीर, इन्द्रियों तथा	**अपार्थः अपि**	- अवास्तविक होनेपर भी
प्राणैः आत्मनः	- प्राणोंके साथ आत्माकी	**अविवेकिनः**	- विवेकहीन के लिए
सन्निकर्षणं	- अत्यन्त निकटता है,	**संसारः**	- संसार
		फलवान्	- (सुख-दुःख रूप) फल देनेवाला है ॥ १२ ॥

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ १३ ॥

अर्थे हि अविद्यमाने अपि संसृतिः न निवर्तते ध्यायतः विषयान् अस्य स्वप्ने अनर्थ आगमः यथा ॥ १३ ॥

हि अर्थे	- क्योंकि पदार्थोंके	**अस्य विषयान्**	- इस मनुष्यके विषयोंका
अविद्यमाने अपि	- न रहनेपर भी	**ध्यायतः**	- चिन्तन करते रहनेपर
यथा स्वप्ने	- जैसे स्वप्नमें	**संसृतिः**	- आवागमन
अनर्थ आगमः	- अनर्थ (कष्ट) आते हैं	**निवर्तते न**	- छूटता नहीं है ॥१३॥

यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ।
स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ १४ ॥

यथा हि अप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापः बहु अनर्थभृत् स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ १४ ॥

हि यथा	- क्योंकि जैसे	**स एव**	- वही (निद्रा)
अप्रतिबुद्धस्य	- जो जागा नहीं है उसके लिए	**प्रतिबुद्धस्य**	- जाग गये को
		वै मोहाय	- निश्चय भ्रम
प्रस्वापः	- निद्रा	**न कल्पते**	- नहीं उत्पन्न करती ॥ १४ ॥
बहु अनर्थभृत्	- बहुत कष्ट देने वाली है,		

शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ।
अहंकारस्य दृश्यन्ते जन्म मृत्युश्च नात्मनः ॥ १५ ॥

शोकहर्ष भय क्रोध लोभ मोह स्पृहा आदयः अहंकारस्य दृश्यन्ते जन्म-मृत्युः च न आत्मनः ॥ १५ ॥

शोक हर्ष	- शोक, हर्ष,	**च जन्म मृत्युः**	- तथा जन्म और मृत्यु
भय क्रोध	- भय, क्रोध,	**अहंकारस्य**	- अहंकारके ही देखे
लोभ मोह	- लोभ, मोह,	**दृश्यन्ते**	जाते हैं
स्पृहा आदयः	- स्पर्धादिक,	**आत्मनः न**	- आत्माके नहीं ॥ १५ ॥

देहेन्द्रियप्राणमनोऽभिमानो
जीवोऽन्तरात्मा गुणकर्ममूर्तिः ।
सूत्रं महानित्युरुधेव गीतः
संसार आधावति कालतन्त्रः ॥ १६ ॥

देह इन्द्रिय प्राण मनः अभिमानः जीवः अन्तरात्मा गुणकर्म मूर्तिः सूत्रं महान् इति उरुधा एव गीतः संसार आधावति कालातन्त्रः ॥ १६ ॥

देह इन्द्रिय	- शरीर, इन्द्रियां,	**सूत्रं महान्**	- सूत्रात्मा या महातत्त्व
प्राण मनः	- प्राण, मन,	**इति उरुधा-**	- इस प्रकार अनेक
अभिमानः	- अहंकार,	**गीतः**	रूपोंमें वर्णित
अन्तरात्मा	- बुद्धि,	**संसार**	- संसार
जीवः	- जीव (लिंग शरीर) जो	**कालतन्त्रः**	- कालके पराधीन
गुण कर्म मूर्तिः	- गुण और कर्म स्वरूप	**आधावति**	- सब ओर दौड़ रहा (गतिशील) है ॥ १६ ॥

अमूलमेतद् बहुरूपरूपितं
मनोवचःप्राणशरीरकर्म ।
ज्ञानासिनोपासनया शितेन-
च्छित्त्वा मुनिर्गां विचरत्यतृष्णः ॥ १७ ॥

अमूलं एतत् बहु रूप रूपितं मनः वचः प्राण शरीर कर्म ज्ञान असिना उपासनया शितेन छित्त्वा मुनिः गां विचरति अतृष्णः ॥ १७ ॥

बहुरूप रूपितं	- अनेक रूपोंमें वर्णित	**उपासनया**	- उपासनाके द्वारा
एतत् अमूलं	- यह (संसार) बिना जड़का (निराधार)	**शितेन**	- तीक्ष्ण की गयी
		ज्ञान असिना	- ज्ञान रूपी तलवारसे
मनः वचः प्राण	- मन, वाणी, प्राण,	**छित्त्वा मुनिः**	- काटकर मननशील पुरुष
शरीर कर्म	- एवं शरीरके कर्मों (से बने) रूप इसे	**अतृष्णः**	- तृष्णा रहित होकर
		गां विचरति	- पृथ्वीपर विचरण करता है ॥ १७ ॥

ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च
प्रत्यक्षमैतिह्यमथानुमानम् ।
आद्यन्तयोरस्य यदेव केवलं
कालश्च हेतुश्च तदेव मध्ये ॥ १८ ॥

ज्ञानं विवेकः निगमः तपः च प्रत्यक्षं ऐतिह्यं अथ अनुमानं आदि अन्तयोः अस्य यत् एव केवलं कालः च हेतुः च तत् एव मध्ये ॥ १८ ॥

विवेकः ज्ञानं - (आत्मा-अनात्माका) विवेक ज्ञान है,
निगमः तपः - श्रुतिका श्रवण, तपस्या,
च प्रत्यक्षं- - तथा प्रत्यक्ष,
ऐतिह्यं ऐतिहासिकता,
अथ अनुमानं - एवं अनुमान (प्रमाण) से (यह जानना कि)
अस्य - इस संसारके
आदि अन्तयोः - आदि-अन्तमें
यत् केवलं एव - जो अकेला ही रह जाता है,
तत् एव मध्ये - वही बीच में भी है
च कालः - तथा वही काल
च हेतुः - एवं (इसका) कारण भी है ॥ १८ ॥

यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्
पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ।
तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं
नानापदेशैरहमस्य तद्वत् ॥ १९ ॥

यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात् पश्चात् च सर्वस्य हिरण्मयस्य तत् एव मध्ये व्यवहार्यमाणं नाना अपदेशैः अहं अस्य तत् वत् ॥ १९ ॥

यथा स्वकृतं - जैसे अपनेसे बने
सर्वस्य च - सभी
हिरण्मयस्य - स्वर्णमय (आभूषणों) के
पुरस्तात् - पहिले
च पश्चात् - और पीछे
हिरण्यं - सोना रहता है,
मध्ये - बीचमें
व्यवहार्यमाणं - (आभूषण रूपसे) व्यवहारमें लिए जाते समय भी
तत् एव - वही (सोना) रहता है,
तत् वत् - उसीकी भाँति
नाना अपदेशैः - अनेक नाम-रूप में
अस्य अहं - इस संसारमें मैं हूँ ॥ १९ ॥

विज्ञानमेतत्त्रियवस्थमंग
गुणत्रयं कारणकार्यकर्तृ ।

समन्वयेन व्यतिरेकतश्च
येनैव तुर्येण तदेव सत्यम् ॥ २० ॥

विज्ञानं एतत् त्रियवस्थं अंग गुणत्रयं कारण कार्य कर्तृ समन्वयेन व्यतिरेकतः च येन एव तुर्येण तत् एव सत्यम् ॥ २० ॥

अंग	- प्रिय उद्धव !	**विज्ञानं**	- सब ज्ञान ही है
एतत्	- यह	**समन्वयेन**	- कारणसे कार्यके क्रमसे
त्रियवस्थं	- ये तीनों (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) अवस्थायें,	**च व्यतिरेकतः**	- तथा कार्यसे कारणके क्रमसे (विचार करनेपर)
गुणत्रयं	- तीनों गुण,	**येन तुर्येण एव**	- जिस तुरीयतत्त्वसे ही हैं
कारण कार्य-कर्तृ	- कारण, कार्य, कर्ता,	**तत् एव सत्यं**	- वही सत्य है ॥१९॥

न यत् पुरस्तादुत यन्न पश्चान्मध्ये
च तन्न व्यपदेशमात्रम् ।
भूतं प्रसिद्धं च परेण यद् यत्
तदेव तत् स्यादिति मे मनीषा ॥ २१ ॥

न यत् पुरस्तात् उत यत् न पश्चात् मध्ये च तत् न व्यपदेशमात्रं भूतं प्रसिद्धं च परेण यत् यत् तत् एव तत् स्यात् इति मे मनीषा ॥ २१ ॥

यत पुरस्तात् न	- जो (सृष्टिसे) पहिले नहीं था	**व्यपदेशमात्रं**	- नाम मात्र ही है
उत यत्	- तथा जो	**यत् परेण**	- जिस कारणसे उत्पन्न
पश्चात् न	- (प्रलयके पश्चात् नहीं रहेगा	**प्रसिद्धं**	होता है
मध्ये च	- बीचमें भी	**तत् एव**	- वही (कारण रूप
तत् न स्यात्	- वह नहीं है	**तत् स्यात्**	- वह (पदार्थ होता है,
यत् भूतं	- जो पदार्थ	**इति मे मनीषा**	- ऐसा मेरा निश्चित मत है ॥ २१ ॥

अविद्यमानोऽप्यवभासते यो
वैकारिको राजससर्ग एषः ।
ब्रह्म स्वयंज्योतिरतो विभाति
ब्रह्मेन्द्रियार्थात्मविकारचित्रम् ॥ २२ ॥

अविद्यमानः अपि अवभासते यः वैकारिकः राजस सर्ग एषः ब्रह्म स्वयं ज्योतिः अतः विभाति ब्रह्म इन्द्रिय अर्थ आत्म विकार चित्रम् ॥ २२ ॥

अविद्यमानः - न होनेपर भी	**ब्रह्म** - ब्रह्म ही है,
अपि	**अतः चित्रं** - अतः अनेक रूप
यः एषः- - जो यह विकारमयी	**इन्द्रिय अर्थ** - इन्द्रियों, पदार्थों
वैकारिकः	**आत्मविकार** - अपने विकारोंके रूपमें
राजससर्ग - रजोगुणी सृष्टि	**स्वयं ज्योतिः** - स्वयं प्रकाश
अवभासते - दीख रही है	**ब्रह्म विभाति** - ब्रह्म ही प्रतीत हो रहा है ॥ २२ ॥

एवं स्फुटं ब्रह्मविवेकहेतुभिः
परापवादेन विशारदेन ।
छित्त्वाऽऽत्मसंदेहमुपारमेत
स्वानन्दतुष्टोऽखिलकामुकेभ्यः ॥ २३ ॥

एवं स्फुटं ब्रह्म विवेक हेतुभिः पर अपवादेन विशारदेन छित्त्वा आत्म सन्देहं उपारमेत स्व आनन्द तुष्टः अखिल कामुकेभ्यः ॥ २३ ॥

एवं स्फुटं - इस प्रकार स्पष्ट	**आत्मसन्देहं** - अपना संशय
हेतुभिः - कारणों द्वारा	**छित्त्वा** - काटकर
ब्रह्म विवेक - ब्रह्म-विचार में,	**स्व-** - आत्मानन्दसे सन्तुष्ट
विशारदेन - निपुण व्यक्ति	**आनन्दतुष्टः** होकर
पर अपवादेन - आत्मतिरिक्त पदार्थोंका अपवाद करके	**अखिल** - समस्त
	कामुकेभ्यः - कामनाओंसे
	उपारमेत - उपराम हो जाय ॥२३॥

नात्मा वपुः पार्थिवमिन्द्रियाणि
देवा ह्यसुर्वायुजलं हुताशः ।
मनोऽन्नमात्रं धिषणा च सत्त्व-
महंकृतिः खं क्षितिरर्थसाम्यम् ॥ २४ ॥

न आत्मा वपुः पार्थिवं इन्द्रियाणि देवा हि असुः वायु जलं हुताशः मनः अन्नमात्रं धिषणा च सत्त्वं अहङ्कृतिः खं क्षितिः अर्थ साम्यम् ॥ २४ ॥

आत्मा पार्थिवं	- आत्मा पृथ्वीके तत्त्वोंसे	**अन्नमात्रं**	- अन्नमात्र (अन्नसे पोषित)
वपुः	बना देह,	**मनः धिषणा**	- मन, बुद्धि,
इन्द्रियाणि	- इन्द्रियां,	**सत्त्वं अहङ्कृतिः**	-चित्त, अहंकार
देवा असुः	- देवता, प्राण,	**खं क्षितिः**	- आकाश, पृथ्वी
वायु जलं	- वायु, जल,	**च अर्थ साम्यं**	- तथा गुणोंकी साम्यावस्था
हुताशः	- अग्नि या	**हि न**	- क्योंकि नहीं है ॥२४॥

समाहितैः कः करणैर्गुणात्मभि-
र्गुणो भवेन्मत्सुविविक्तधाम्नः ।
विक्षिप्यमाणैरुत किं नु दूषणं
घनैरुपेतैर्विगतै रवेः किम् ॥ २५ ॥

समाहितैः कः करणैः गुण आत्मभिः गुणः भवेत् मत् सुविविक्त धाम्नः विक्षिप्यमाणैः उत किं नु दूषणं घनैः उपेतैः विगतै खेः किम् ॥ २५ ॥

गुण आत्मभिः	- त्रिगुण स्वरूप	**उत विक्षिप्य**	- अथवा चंचल होनेपर
करणैः	- इन्द्रियोंके	**माणैः**	
समाहितैः	- एकाग्र होनेसे	**नु किं दूषणं**	- भला क्या हानि है,
मत् धाम्नः	- मेरे स्वरूपमें	**घनैः उपेतैः**	- मेघोंके आनेसे या
सुविविक्त	- अनन्य निष्ठासे लगे (महापुरुष)	**विगतै**	- चले जानेसे
		खेः किं	- सूर्यका (हानि-लाभ) क्या है ॥ २५ ॥
कः गुणः भवेत्	- क्या लाभ होगा,		

यथा नभो वाय्वनलाम्बुभूगुणै-
र्गतागतैर्वर्तुगुणैर्न सज्जते ।
तथाक्षरं सत्त्वरजस्तमोमलै-
रहंमतेः संसृतिहेतुभिः परम् ॥ २६ ॥

यथा नभः वायु अनल अम्बु भू गुणैः गत आगतैः ऋतु गुणैः न सज्जते तथा अक्षरं सत्त्व रजः तमः मलैः अहंमतेः संसृति हेतुभिः परम् ॥ २६ ॥

यथा नभः	- जैसे आकाश	**तथा अक्षरं**	- वैसे ही अविनाशी (आत्मा)
वायु अनल	- वायु, अग्नि,	**सत्त्व रजः-**	- सत्त्व, रजस, तमसके
अम्बु भू	- जल, पृथ्वीके	**तमः**	
गुणैः	- गुणोंसे एवं	**मलैः**	- दोषों तथा
गत आगतैः	- जाने-आने वाली	**संसृति हेतुभिः**	- आवागमनके कारण
ऋतु गुणैः	- ऋतुओंके गुणोंसे	**अहंमतेः परं**	- अहंकारसे परे है ॥२६॥
न सज्जते	- संसक्त नहीं होता,		

तथापि संगः परिवर्जनीयो
गुणेषु मायारचितेषु तावत् ।
मद्भक्तियोगेन दृढेन यावद्
रजो निरस्येत मनः कषायः ॥ २७ ॥

तथा अपि संगः परिवर्जनीयः गुणेषु माया रजितेषु तावत् मत् भक्ति योगेन दृढेन यावत् रजः निरस्येत मनः कषायः ॥ २७ ॥

तथा अपि	- ऐसा होनेपर भी	**यावत् दृढेन**	- जब तक सुदृढ़
तावत्	- तब तक	**मत् भक्ति-**	- मेरी भक्तिके द्वारा
माया रचितेषु	- माया द्वारा निर्मित	**योगेन**	
गुणेषु	- विषयोंकी	**मनः रजः**	- मनका रजोगुण रूपी
संगः-	- आसक्ति सर्वथा त्याज्य	**कषायः**	दोष
परिवर्जनीयः	है,	**निरस्येत**	- सर्वथा दूर न होजाय ॥ २७ ॥

यथाऽऽमयोऽसाधुचिकित्सितो नृणां
पुनः पुनः संतुदति प्ररोहन् ।
एवं मनोऽपक्वकषायकर्म
कुयोगिनं विध्यति सर्वसंगम् ॥ २८ ॥

यथा आमयः असाधु चिकित्सितः नृणां पुनः पुनः संतुदति प्ररोहन् एवं मनः अपक्व कषाय कर्म कुयोगिनं विध्यति सर्व संगम् ॥ २८ ॥

यथा असाधु-	- जैसे भली प्रकार	**एवं कर्म**	- इसी प्रकार कर्मके
चिकित्सितः	चिकित्सा न किया गया	**कषाय अपक्व**	- दोष (संस्कार) मिटे बिना
आमयः	- रोग	**मनः कुयोगिनं**	- मन अधूरे योगीको
पुनः पुनः	- बार बार	**सर्वसंगं**	- सभी आसक्तियोंसे
प्ररोहन्	- अपने उभाड़ोंसे	**विध्यति**	- बींध देता (योग भ्रष्ट
नृणां संतुदति	- मनुष्योंको पीड़ा देता है		कर देता) है ॥ २८ ॥

कुयोगिनो ये विहितान्तरायै-
र्मनुष्यभूतैस्त्रिदशोपसृष्टैः ।
ते प्राक्तनाभ्यासबलेन भूयो
युञ्जन्ति योगं न तु कर्मतन्त्रम् ॥ २९ ॥

कुयोगिनः ये विहता अन्तरायैः मनुष्यभूतैः त्रिदश उपसृष्टैः ते प्राक्तन अभ्यास बलेन भूयः युञ्जन्ति योगं न तु कर्म तन्त्रम् ॥ २९ ॥

त्रिदश उपसृष्टैः	- देवताओं द्वारा प्रेरित	**ते भूयः**	- वे फिर
मनुष्य भूतैः	- मनुष्यों द्वारा किये गये	**प्राक्तन अभ्यास**	- पुराने अभ्यासकी
अन्तरायैः	- विघ्नोंसे	**बलेन**	- शक्तिसे
ये कुयोगिनः	- जो अधूरे योगी	**योगं युञ्जन्ति**	- योग करते हैं
विहता	- पीड़ित (योग भ्रष्ट) हो जाते हैं	**तु कर्म तन्त्रं न**	- किन्तु कर्म-परवश नहीं होते ॥ २९ ॥

करोति कर्म क्रियते च जन्तुः
केनाप्यसौ चोदित आनिपातात् ।
न तत्र विद्वान् प्रकृतौ स्थितोऽपि
निवृत्ततृष्णः स्वसुखानुभूत्या ॥ ३० ॥

करोति कर्म क्रियते च जन्तुः केन अपि असौ चोदित आ निपातात् न तत्र विद्वान् प्रकृतौ स्थितः अपि निवृत्ततृष्णः स्वसुख अनुभूत्या ॥ ३० ॥

असौ जन्तुः	- यह जीव	**तत्र प्रकृतौ**	- वहां प्रकृतिमें
केन अपि	- किसी (अज्ञात शक्ति) की ही	**स्थितः अपि**	- स्थित होनेपर भी
		विद्वान्	- ज्ञानी पुरुष
चोदित	- प्रेरणासे	**स्वसुख-**	- आत्मसुख अनुभवसे
आनिपातात्	- मृत्युपर्यन्त	**अनुभूत्या**	
करोति कर्म	- कर्तव्य कर्म	**निवृत्त तृष्णः**	- तृष्णका परित्याग कर चुका है ॥ ३० ॥
क्रियते च	- करता ही है		

तिष्ठन्तमासीनमुत व्रजन्तं
शयानमुक्षन्तमदन्तमन्नम् ।
स्वभावमन्यत् किमपीहमान-
मात्मानमात्मस्थमतिर्न वेद ॥ ३१ ॥

तिष्ठन्तं आसीनं उत व्रजन्तं शयानं उक्षन्तं अदन्तं अन्नं स्वभावं अन्यत् किमपि ईहमानं आत्मानं आत्मस्थ मतिः न वेद ॥ ३१ ॥

आत्मस्थ मतिः	- आत्मामें स्थित बुद्धि पुरुष	**उक्षन्तं**	- मल-मूत्र त्यागते,
		अन्नं अदन्तं	- भोजन करते,
आत्मानं-	- शरीरके खड़े होने,	**स्वभावं अन्यत्**	- आत्मभावसे पृथक
तिष्ठन्तं		**किमपि ईहमानं**	- कोई भी चेष्टा करते
आसीनं उत	- बैठने अथवा	**न वेद**	- नहीं जान पाता ॥ ३१ ॥
व्रजन्तं शयानं	- चलने, सोने,		

यदि स्म पश्यत्यसदिन्द्रियार्थं
नानानुमानेन विरुद्धमन्यत् ।
न मन्यते वस्तुतया मनीषी
स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ॥ ३२ ॥

यदि स्म पश्यत् असत् इन्द्रिय अर्थं नाना अनुमानेन विरुद्धं अन्यत् न मन्यते वस्तुतया मनीषी स्वाप्नं यथा उत्थाय तिरोदधानम् ॥ ३२ ॥

यदि इन्द्रिय- - यदि इन्द्रियोंके
अर्थं विषयोंको
पश्यत् स्म - देखता भी है तो
मनीषी - ज्ञानी पुरुष
नाना अनुमानेन - अनेक युक्तियोंसे
विरुद्धं - विरुद्ध होनेके कारण
अन्यत् - अपनेसे पृथक
वस्तुतया - वास्तविक सत्ता वाला
न मन्यते - नहीं मानता
यथा उत्थाय - जैसे जागकर
तिरोदधानं - लुप्त हुई
स्वाप्नं - स्वप्नके पदार्थोंको (कोई सत्य और अपनेसे पृथक नहीं मानता) ॥ ३२ ॥

पूर्वं गृहीतं गुणकर्मचित्र-
मज्ञानमात्मन्यविविक्तमंग ।
निवर्तते तत् पुनरीक्षयैव
न गृह्यते नापि विसृज्य आत्मा ॥ ३३ ॥

पूर्वं गृहीतं गुण कर्म चित्रं अज्ञानं आत्मनि अविविक्तं अंग निवर्तते तत् पुनः ईक्षया एव न गृह्यते न अपि विसृज्य आत्मा ॥ ३३ ॥

अंग - प्रिय उद्धव !
चित्रं गुण कर्म - नाना प्रकारके विषय और कर्म
पूर्वं आत्मनि - (ज्ञानसे) पहिले आत्मासे
अविविक्तं - अभिन्न रूपमें
गृहीतं - ग्रहण किये जाते थे
तत् पुनः - फिर वे
ईक्षया एव - (विवेक) दृष्टिसे ही
निवर्तते - निवृत्त होजाते हैं,
आत्मा अपि - आत्मा भी
न गृह्यते - न (वृत्तिसे) ग्रहण किया जाता
न विसृज्य - न त्यागा जा सकता ॥ ३३ ॥

यथा हि भानोरुदयो नृचक्षुषां
तमो निहन्यान्न तु सद् विधत्ते ।
एवं समीक्षा निपुणा सती मे
हन्यात्तमिस्त्रं पुरुषस्य बुद्धेः ॥ ३४ ॥

यथा हि भानोः उदयः नृ चक्षुषां तमः निहन्यात् न तु सत् विधत्ते एवं समीक्षा निपुणा सती मे हन्यात् तमिस्त्रं पुरुषस्य बुद्धेः ॥ ३४ ॥

हि यथा	- क्योंकि जैसे	**एवं मे निपुणा**	- इसी प्रकारकी मेरे सम्बन्धकी कुशल
भानोः उदयः	- सूर्योदय होना	**सती समीक्षा**	- उत्तम विवेचना
नृ चक्षुषां	- मनुष्योंके नेत्रोंका	**पुरुषस्य बुद्धेः**	- पुरुषकी बुद्धिका
तमः निहन्यात्	- अन्धकार नाश करता है	**तमिस्त्रं हन्यात्**	- अज्ञान नाश करती है
तु सत् न	- किन्तु किसी सत्ताका		॥ ३४ ॥
विधत्ते	निर्माण नहीं करता		

एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो
महानुभूतिः सकलानुभूतिः ।
एकोऽद्वितीयो वचसां विरामे
येनेषिता वागसवश्चरन्ति ॥ ३५ ॥

एष स्वयं ज्योतिः अजः अप्रमेयः महा अनुभूतिः सकल अनुभूतिः एकः अद्वितीयः वचसां विरामे येन ईषिता वाक् असवः चरन्ति ॥ ३५ ॥

एष स्वयं-	- यह (आत्मा) स्वयं	**एकः अद्वितीयः**	- एक, अद्वितीय,
ज्योतिः	प्रकाश,	**वचसां विरामे**	- वर्णनातीत है,
अजः अप्रमेयः	- अजन्मा, प्रमाणातीत,	**येन ईषिता**	- जिसके द्वारा प्रेरित
महा अनुभूतिः	- महान् अनुभव रूप	**वाक् असवः**	- वाणी और प्राण
सकल अनुभूतिः	- समस्त अनुभवोंका स्वरूप,	**चरन्ति**	- (सक्रिय होते) चलते हैं ॥ ३५ ॥

एतावानात्मसंमोहो यद् विकल्पस्तु केवले ।
आत्मन्नृत्ते स्वमात्मानमवलम्बो न यस्य हि ॥ ३६ ॥

एतावान आत्म सम्मोहः यत् विकल्पः तु केवले आत्मन् ऋते स्व आत्मानं अवलम्बः न यस्य हि ॥ ३६ ॥

आत्मन् ऋते	- अपनेको छोड़कर	**केवले**	- उस अद्वितीयमें
हि यस्य	- क्योंकि जिसका	**यत् विकल्पः**	- जो विविधता (देखना) है
स्व आत्मानं	- अपने आपका	**एतावान**	- इतना ही
अवलम्बः न	- (दूसरा) आश्रय नहीं है	**आत्म सम्मोहः**	- आत्माका अज्ञान है ॥ ३६ ॥

यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पञ्चवर्णमबाधितम् ।
व्यर्थेनाप्यर्थवादोऽयं द्वयं पण्डितमानिनाम् ॥ ३७ ॥

यत् नाम आकृतिभिः ग्राह्यं पञ्चवर्णं अबाधितं व्यर्थेन अपि अर्थवादः अयं द्वयं पण्डित मानिनाम् ॥ ३७ ॥

पञ्चवर्णं	- पांच (शब्दादि) विषयोंके रूपमें	**पण्डित मानिनां**	- अपनेको पंडित मानने वालोंकी
यत् नाम	- जो नाम एवं	**अयं द्वयं**	- यह दोनों (इन्द्रियां और विषय)
आकृतिभिः	- आकृति (रूप) के द्वारा	**अपि व्यर्थेन**	- भी व्यर्थ
ग्राह्यं	- ग्रहण होने वाले (जगत) को	**अर्थवादः**	- निराधार प्रतिपादन है ॥ ३७ ॥
अबाधितं	- अबाधित (सत्य) कहते हैं,		

योगिनोऽपक्वयोगस्य युञ्जतः काय उत्थितैः ।
उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितो विधिः ॥ ३८ ॥

योगिनः अपक्व योगस्य युञ्जतः काय उत्थितैः उपसर्गैः विहन्येत तत्र अयं विहितः विधिः ॥ ३८ ॥

युञ्जतः	- योग साधन करते हुए	**उपसर्गैः**	- रोगादिसे
अपक्वयोगस्य	- अधूरी योग साधना वाले	**विहन्येत**	- (साधना) बाधित होती है
योगिनः	- योगीके	**तत्र अयं विधिः**	-वहां इस उपायका
काय उत्थितैः	- शरीरमें उत्पन्न	**विहितः**	- विधान है ॥ ३८ ॥

योगधारणया कांश्चिदासनैर्धारणान्वितैः ।
तपोमन्त्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान् विनिर्दहेत् ॥ ३९ ॥

योग धारणया कांश्चित् आसनैः धारणा अन्वितैः तपः मन्त्र औषधैः कांश्चित् उपसर्गान् विनिर्दहेत् ॥ ३९ ॥

कांश्चित्	- कुछ को	**कांश्चित्**	- कुछ
योगधारणया	- योगकी धारणा (संकल्प) से या	**उपसर्गान्**	- रोगोंको
धारणा अन्वितैः	- धारणा युक्त	**तपः मन्त्र**	- तपस्या, मन्त्र या
आसनैः	- योगासनोंसे,	**औषधैः**	- औषधिसे
		विनिर्दहेत्	- सम्पूर्ण भस्म करदे ॥ ३९ ॥

कांश्चिन्ममानुध्यानेन नामसंकीर्तनादिभिः ।
योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदाञ्छनैः ॥ ४० ॥

कांश्चित् मम अनुध्यानेन नाम संकीर्तन आदिभिः योगेश्वर अनुवृत्त्या वा हन्यात् अशुभदान् शनैः ॥ ४० ॥

कांश्चित्	- कुछ	**आदिभिः**	- आदि द्वारा
अशुभदान्	- पीड़ादायक रोगोंको	**वा योगेश्वर**	- अथवा योगेश्वरोंके
मम अनुध्यानेन	- बार-बार मेरा ध्यान करके	**अनुवृत्त्या**	- समान आचरण बनाकर
नाम संकीर्तन	- नाम संकीर्तन	**शनैः हन्यात्**	- धीरे धीरे नष्ट करदे ॥ ४० ॥

केचिद् देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरम् ।
विधाय विविधोपायैरथ युञ्जन्ति सिद्धये ॥ ४१ ॥

केचित् देहं इमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरं विधाय विविध उपायैः अथ युञ्जन्ति सिद्धये ॥ ४१ ॥

केचित् धीराः	- कुछ धैर्यशाली पुरुष	**वयसि स्थिरं**	- स्थिर आयुका
विविध उपायैः	- अनेक प्रकारके उपायोंसे	**विधाय अथ**	- बनाकर फिर
इमं देहं	- इस शरीरको	**सिद्धये-**	- सिद्धिके लिए योग
सुकल्पं	- पर्याप्त समर्थ और	**युञ्जन्ति**	करते हैं ॥ ४१ ॥

न हि तत् कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः ।
अन्तवत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः ॥ ४२ ॥

न हि तत् कुशल आदृत्यं तत् आयासः हि अपार्थकः अन्तवत् त्वात् शरीरस्य फलस्य इव वनस्पतेः ॥ ४२ ॥

हि तत्	- क्योंकि वह	**फलस्य इव**	- फलकी भांति
कुशल	- चतुर व्यक्तिके लिए	**शरीरस्य**	- शरीरके
आदृत्यं न	- आदर करने योग्य (मार्ग) नहीं है	**अन्तवत् त्वात्**	- विनाशशील होनेके कारण
वनस्पतेः	- वृक्षके	**हि तत् आयासः**	- क्योंकि वह प्रयास
		अपार्थकः	- व्यर्थ है ॥ ४२ ॥

योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत् कल्पतामियात् ।
तच्छ्रद्दध्यान्न मतिमान् योगमुत्सृज्य मत्परः ॥ ४३ ॥

योगं निषेवतः नित्यं कायः चेत् कल्पतां इयात् तत् श्रद्धध्यात् न मतिमान् योगं उत्सृज्य मत् परः ॥ ४३ ॥

नित्यं योगं - सदा योगका
निषेवतः - भली प्रकार सेवन (साधन) करनेसे
चेत् कायः - यदि शरीर
कल्पतां इयात् - कल्पपर्यन्त स्थायी हो भी जाय तो
मतिमान् - बुद्धिमान् पुरुष
तत्- - उसपर श्रद्धा न करे
श्रध्यात् न
योगं उत्सृज्य - योगका त्याग करके
मत् परः - मेरे परायण होजाय
॥ ४३ ॥

योगचर्यामिमां योगी विचरन् मदपाश्रयः ।
नान्तरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः ॥ ४४ ॥

योगचर्यां इमां योगी विचरन् मत् अपाश्रयः न अन्तरायैः विहन्येत निस्पृहः स्वसुख अनुभूः ॥ ४४ ॥

मत् अपाश्रयः - मेरा आश्रय लेकर
इमां योगचर्यां - इस योगाचरणको
विचरन् योगी - करते हुए योगी
अन्तरायैः - विघ्नोंने
विहन्येत न - भ्रष्ट नहीं होता
स्वसुख - आत्मसुखका
अनुभूः - अनुभव करता है
॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

उद्धव उवाच–

सुदुश्चरामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः ।
यथाञ्जसा पुमान् सिद्ध्येत् तन्मे ब्रूह्यञ्जसाच्युत ॥ १ ॥

सदुश्चरां इमां मन्ये योगचर्यां अनात्मनः यथा अञ्जसा पुमान् सिद्ध्येत् तत् मे ब्रूहि अञ्जसा अच्युत ॥ १ ॥

अच्युत - अच्युत !
अनात्मनः - जिनका मन वशमें नहीं है
इमां योगचर्यां - यह योगाचरण
सदुश्चरां - (उनके लिए) अत्यन्त कठिन
मन्ये - मानता हूं
पुमान् यथा - पुरुष जैसे
अञ्जसा - सरलतासे सफल होजाय
सिद्ध्येत्
मे तत्- - मुझे वह सरल साधना
अञ्जसा
ब्रूहि - बतलाइये ॥ १ ॥

प्रायशः पुण्डरीकाक्ष युञ्जन्तो योगिनो मनः ।
विषीदन्त्यसमाधानान्मनोनिग्रहकर्शिताः ॥ २ ॥

प्रायशः पुण्डरीकाक्ष युञ्जन्तः योगिनः मनः विषीदन्ति असमाधानात् मनोनिग्रह कर्शिताः ॥ २ ॥

पुण्डरीकाक्ष - कमलनयन !
प्रायशः योगिनः - प्रायः योगी लोग
मनः युञ्जन्तः - मनको एकाग्र करते समय
असमाधानात् - उसके एकाग्र न होनेसे
मनोनिग्रह - मनको एकाग्र करनेके
कर्शिताः - (प्रयत्नसे) थककर
विषीदन्ति - दुःखी होजाते हैं ॥२॥

अथात आनन्ददुघं पदाम्बुजं
हंसाः श्रयेरन्नरविन्दलोचन ।
सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभि-
स्त्वन्माययामी विहता न मानिनः ॥ ३ ॥

अथ अत आनन्ददुघं पदाम्बुजं हंसाः श्रयेरन् अरविन्द लोचन सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिः त्वत् मायया अमी विहता न मानिनः ॥ ३ ॥

विश्वेश्वर - विश्वेश्वर !
अरविन्द लोचन - कमलनयन !
अत हंसाः - अतः विवेकी पुरुष
आनन्ददुघं - परमानन्द दाता
पदाम्बुजं - आपके चरण कमलोंका
श्रयेरन् - आश्रय लेते हैं
नु योग- - भला योग और कर्मसे
कर्मभिः
अथ सुखं - यह कहीं सुखद है; किन्तु
त्वत् मायया - आपकी मायासे
विहता अमी - प्रताड़ित ये
मानिनः न - अभिमानी (आपके चरणोंका आश्रय) नहीं लेते ॥ ३ ॥

किं चित्रमच्युत तवैतदशेषबन्धो
दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् ।
योऽरोचयत् सह मृगैः स्वयमीश्वराणां
श्रीमत्किरीटतटपीडितपादपीठः ॥ ४ ॥

किं चित्रं अच्युत तव एतत् अशेष बन्धो दासेषु अनन्य शरणेषु यत् आत्म सात्त्वं यः अरोचयत् सह मृगैः स्वयं ईश्वराणां श्रीमत् किरीट तट पीडित पादपीठः ॥ ४ ॥

अशेषबन्धो - सर्वसुहृद
अच्युत - अच्युत !
यत् अनन्य - जो अनन्य
शरणेषु - शरणागत
दासेषु - सेवक (भक्त) को
आत्मसात्त्वं - (आपका) अपने समान बना लेना है
एतत् तव किं चित्रं - यह आपके लिए क्या आश्चर्य है
ईश्वराणां - (ब्रह्मादि) संसारके स्वामियोंके
श्रीमत् - शोभा सम्पन्न मुकुटकी
किरीट तट नोक से
यः पाद पीठः - जिनका पादपीठ
पीडित - वन्दित होता था
स्वयं मृगैः सह - (रामावतारमें) वे स्वयं वानरोंके साथ
अरोचयत् - (मित्रता करके) शोभित हुए ॥ ४० ॥

तं त्वाखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां
सर्वार्थदं स्वकृतविद् विसृजेत को नु ।
को वा भजेत् किमपि विस्मृतयेऽनु भूत्यै
किं वा भवेन्न तव पादरजोजुषां नः ॥ ५ ॥

तं तु अखिलात्म दयित ईश्वरं आश्रितानां सर्व अर्थदं स्वकृतवित् विसृजेत कः नु कः वा भजेत् किं अपि विस्मृतये अनु भूत्यै किं वा भवेत् न तव पादरजः जुषां नः ॥ ५ ॥

तं अखिलात्म दयित - उस सबके परमप्रिय
ईश्वरं तु - स्वामी
सर्व अर्थदं - समस्त पुरुषार्थदाताको
तु नु कः - तो भला कौन
स्वकृतवित् - अपनी (अल्प) कर्मशक्ति जानने वाला
विसृजेत् - त्याग सकता है,
वा कः किं अपि - अथवा कोई किन्हीं भी
अनुभूत्यै - भोगोंका बार-बार
विस्मृतये - (आत्म) विस्मृतिके लिए
भजेत् - सेवन करेगा
तव पाद रजः - आपकी चरणरजका
जुषां नः - सेवन करने वाले हम लोगोंका
वा किं न भवेत् - अथवा क्या (मंगल) नहीं होगा ॥ ५ ॥

नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश
ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरन्तः ।
योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्व-
न्नाचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ॥ ६ ॥

न एव उपयन्ति अपचितिं कवयः तव ईश ब्रह्म आयुषा अपि कृतं ऋद्ध मुदः स्मरन्तः यः अन्तः बहिः तनुभृतां अशुभं विधुन्वन् आचार्य चैत्य वपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ॥ ६ ॥

यः तनुभृतां	- जो शरीरधारियोंके	**कृतं अपचितिं**	- किये उपकारोंका बदला
अन्तः	- अन्तःकरणमें	**कवयः**	- बुद्धिमान
चैत्य	- अन्तर्यामी और	**ब्रह्म आयुषा**	- ब्रह्माजीकी आयुमें भी
बहिः आचार्य	- बाहर गुरु	**अपि**	
वपुषा	- रूपसे	**न एव उपयन्ति**	-नहीं ही चुका सकते
स्वगतिं	- अपना स्वरूप	**ऋद्धमुदः**	- अतः बढ़ते आनन्दके साथ
व्यनक्ति	- प्रकट कर देते हैं	**स्मरन्तः**	- (उनका) स्मरण करते रहते हैं ॥ ६ ॥
ईश तव	- स्वामी ! उस आपके		

श्रीशुक उवाच–

इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा
पृष्टो जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः ।
गृहीतमूर्तित्रय ईश्वरेश्वरो
जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ॥ ७ ॥

इति उद्धवेन अति अनुरक्त चेतसा पृष्टः जगत् क्रीडनकः स्वशक्तिभिः गृहीत मूर्तित्रय ईश्वर ईश्वरः जगाद सप्रेम मनोहर स्मितः ॥ ७ ॥

अति अनुरक्त - अत्यन्त आसक्त
चेतसा उद्धवेन - चित्त उद्धव द्वारा
इति पृष्टः - ऐसा पूछने पर
स्वशक्तिभिः - अपनी शक्तियों द्वारा
मूर्तित्रय - तीन मूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, शिव)
गृहीत - ग्रहण करके
जगत्- - जगत रूपी खिलौनेसे
क्रीडनकः खेलने वाले
ईश्वर ईश्वरः - लोकपालोंके भी स्वामी
सप्रेम - प्रेमके साथ
मनोहर स्मितः - मनोहर मुस्कान सहित
जगाद - बोले ॥ ७ ॥

श्रीभगवानुवाच–

हन्त ते कथयिष्यामि मम धर्मान् सुमंगलान् ।
याञ्छ्रद्धयाऽऽचरन् मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम् ॥ ८ ॥

हन्त ते कथयिष्यामि मम धर्मान् सुमंगलान् यान् श्रद्धया आचरन् मर्त्यः मृत्युं जयति दुर्जयम् ॥ ८ ॥

हन्त - प्रिय उद्धव !
ते सुमंगलान् - तुमसे श्रेष्ठ मंगलमय
मम धर्मान् - अपने धर्मोंका
कथयिष्यामि - वर्णन करूँगा
मर्त्यः - मरणधर्मा मनुष्य
श्रद्धया यान् - श्रद्धापूर्वक जिनका
आचरन् - पालन करके
दुर्जयं मृत्युं - जीतनेमें अत्यन्त कठिन मृत्युको
जयति - जीत लेता है ॥ ८ ॥

कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् ।
मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥ ९ ॥

कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि मत् अर्थं शनकैः स्मरन् मयि अर्पितमनः चित्तः मत् धर्म आत्म मनः रतिः ॥ ९ ॥

मयि मनः चित्तः - मुझे मन तथा चित्त
अर्पित - अर्पित करके
शनकैः स्मरन् - धीरे-धीरे स्मरण करता हुआ
मत् अर्थं - मेरे लिए
सर्वाणि कर्माणि - सब कर्म
कुर्यात् - करे,
मत् धर्म - मेरे धर्म (भक्ति)में
आत्ममनः- - अपने मनकी प्रीति हो
रतिः ॥ ९ ॥

देशान् पुण्यानाश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् ।
देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ॥ १० ॥

देशान् पुण्यान् आश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् देव असुर मनुष्येषु मद्भक्त आचरितानि च ॥ १० ॥

मत् भक्तैः - मेरे भक्त
साधुभिः श्रितान् - साधुजनों द्वारा आश्रित
पुण्यान् देशान् - पवित्र स्थानोंका
आश्रयेत - आश्रय ले (वहां रहे)
च देव असुर - एवं देवता, असुर,
मनुष्येषु - मनुष्योंमें
मत् भक्त - मेरे भक्तोंके
आचरितानि - आचरणोंका (पालनकरे) ॥ १० ॥

पृथक् सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् ।
कारयेद् गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥ ११ ॥

पृथक् सत्रेण वा मह्यं पर्व यात्रा महोत्सवान् कारयेत् गीत नृत्य आद्यैः महाराज विभूतिभिः ॥ ११ ॥

पर्व यात्रा - पर्वोंपर यात्रा
महोत्सवान् - महोत्सव आदि
सत्रेण - सबके साथ मिलकर
वा पृथक् - अथवा अलग
गीत नृत्य- - गायन, नृत्य आदि
आद्यैः
महाराज - महाराजोंके वैभवोंके
विभूतिभिः समान
कारयेत् - करवाये ॥ ११ ॥

मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम् ।
ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥ १२ ॥

मां एव सर्वभूतेषु बहिः अन्तः अपावृतं ईक्षेत आत्मनि च आत्मानं यथा खं अमल आशयः ॥ १२ ॥

अमल आशयः	- निर्मल चित्त भक्तः	**बहिः अन्तः**	- बाहर-भीतर
यथा खं	- आकाशके समान	**च आत्मनि**	- तथा अपनेमें
मां एव आत्मानं	- मुझ आत्माको ही	**अपावृतं**	- आवरण सहित
सर्वभूतेषु	- सब प्राणियोंके	**ईक्षेत**	- देखे ॥ १२ ॥

इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते ।
सभाजयन् मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः ॥ १३ ॥

इति सर्वाणि भूतानि मत् भावेन महाद्युते सभाजयन् मन्यमानः ज्ञानं केवलं आश्रितः ॥ १३ ॥

महाद्युते	- महामति उद्धव !	**आश्रितः**	- आश्रय लेकर
इति	- इस प्रकार	**सर्वाणि भूतानि**	- सब प्राणियोंको
केवलं ज्ञानं	- केवल ज्ञान दृष्टिका	**मत् भावेन**	- मेरा रूप मानकर
		सभाजयन्	- आदर करता है ॥१३॥

ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके ।
अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः ॥ १४ ॥

ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्ये अर्के स्फुलिंगके अक्रूरे क्रूरके च एव समदृक् पण्डितः मतः ॥ १४ ॥

ब्राह्मणे पुल्कसे	- ब्राह्मण एवं कसाईमें,	**च अक्रूरे**	- तथा शान्त और
स्तेने ब्रह्मण्ये	- चोर तथा ब्राह्मणभक्तमें,	**क्रूरके एव**	क्रूरमें भी
अर्के स्फुलिंगके	- सूर्य और चिनगारीमें,	**समदृक्**	- (जो) समदर्शी हैं
		मतः पण्डितः	- मेरे मतसे वह तत्त्वज्ञ है ॥ १४ ॥

नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात् ।
स्पर्धासूयातिरस्काराः साहंकारा वियन्ति हि ॥ १५ ॥

नरेषु अभीक्ष्णं मत् भावं पुंसः भावयतः अचिरात् स्पर्धा असूया तिरस्काराः स अहंकारा वियन्ति हि ॥ १५ ॥

हि नरेषु	- क्योंकि मनुष्योंमें	**स्पर्धा असूया**	- स्पर्धा, गुणमें दोष बुद्धि,
अभीक्ष्णं	- निरन्तर	**तिरस्काराः**	- (दूसरोंका) तिरस्कार
मत्भावं भावयतः	- मेरी भावना करनेवाले	**स अहंकारा**	- अहंकारके साथ
पुंसः	- पुरुषके	**वियन्ति**	- विलीन होजाते हैं ॥ १५ ॥

विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम् ।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् ॥ १६ ॥

विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीं प्रणमेत् दण्डवत् भूमाः आश्वः चाण्डाल गोखरम् ॥ १६ ॥

स्मयमानान्	- मुस्कराते हुए	**आश्वः**	- कुत्तेसे लेकर
स्वान दृशं	- अपने लोगोंके देखने	**चाण्डाल गोखरं**	- चाण्डाल, गौ, गधे तक (सबको)
च दैहिकीं व्रीडां	- तथा शारीरिक लज्जा	**भूमाः दण्डवत्**	- पृथ्वीपर दण्डवत
विसृज्य	- त्यागकर	**प्रणमेत्**	- प्रणाम करे ॥ १६ ॥

यावत् सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ।
तावदेवमुपासीत वाङ्मनः कायवृत्तिभिः ॥ १७ ॥

यावत् सर्वेषु भूतेषु मत् भावः न उपजायते तावत् एवं उपासीत वाङ्मनः कायवृत्तिभिः ॥ १७ ॥

सर्वेषु भूतेषु - समस्त प्राणियोंमें
यावत् मत् भावः - जब तक मेरा भाव
न उपजायते - न उत्पन्न होजाय
तावत् - तभी तक
एवं वाङ्मनः - इस प्रकार वाणी, मन,
कायवृत्तिभिः - तथा शरीरके आचरणसे
उपासीत - उपासना करे ॥ १७ ॥

सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययाऽऽत्ममनीषया ।
परिपश्यन्नुपरमेत् सर्वतो मुक्तसंशयः ॥ १८ ॥

तस्य सर्वम् ब्रह्मात्मकं आत्म मनीषया विद्यया परिपश्यन् सर्वतः मुक्त संशयः उपरमेत ॥ १८ ॥

सर्वम् - सब कुछ
ब्रह्मात्मकम् - ब्रह्म ही ब्रह्म हो जाता है
आत्म - अपनी
मनीषया - सर्वत्र परमेश्वर दृष्टि से
विद्यया - ब्रह्म साक्षात्कार होनेसे
परि - चारौं तरफ
पश्यन् - ब्रह्म स्वरूप देखता हुआ
सर्वतः - सर्व प्रकारसे सारे
मुक्तः - नष्ट
संशयः - संदेह-संशयः हो जाते हैं और
उपरमेत - संसार दृष्टि से निवृत्त हो जाता है ॥ १८ ॥

अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम ।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥ १९ ॥

अयं हि सर्व कल्पानां सध्रीचीनः मतः मम मत् भावः सर्वभूतेषु मनः वाक् काय वृत्तिभिः ॥ १९ ॥

सर्वभूतेषु - समस्त प्राणियोंमें
मनः वाक् - मन, वाणी एवं
कायवृत्तिभिः - शरीरके व्यवहार द्वारा
मत् भावः - मेरी भावना करना
हि मम मतः - क्योंकि मेरे मतसे
सर्वकल्पानां - समस्त साधनोंमें
अयं सध्रीचीनः - यह समीचीन (श्रेष्ठ) है ॥ १९ ॥

न ह्यङ्गोपक्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि ।
मया व्यवसितः सम्यङ्निर्गुणत्वादनाशिषः ॥ २० ॥

न हि अंग उपक्रमे ध्वंसः मत् धर्मस्य उद्धव अणु अपि मया व्यवसितः समयक् निर्गुणत्वात् अनाशिषः ॥ २० ॥

अंग उद्धव - प्रिय उद्धव !
मत् धर्मस्य - (इस) मेरे (भागवत) धर्मका
उपक्रमे - प्रारम्भ कर देनेपर
अणु अपि - कण मात्र भी
ध्वंसः न - नाश नहीं होता
हि मया - क्योंकि मैने ऐसा निश्चय
व्यवसितः कर दिया है
अनाशिषः - निश्काम होनेसे
निर्गुण त्वात् - इसके निर्गुण होनेसे भी (इसका क्षय नहीं होता) ॥ २० ॥

यो यो मयि परे धर्मः कल्प्यते निष्फलाय चेत् ।
तदायासो निरर्थः स्याद् भयादेरिव सत्तम ॥ २१ ॥

यः यः मयि परे धर्मः कल्प्यते निष्फलाय चेत् तत् आयासः निरर्थः स्यात् भय आदेः इव सत्तम ॥ २१ ॥

सत्तम - साधु श्रेष्ठ उद्धव !
यः यः - जो जो
निष्फलाय - जो कुछ फल न देने वाले (कभी)
चेत् मयि परे - यदि मुझ परमतत्त्वके
कल्प्यते - लिये किये गये हैं तो
भय आदेः इव - (मुझमें लगे) भय आदिके समान
निरर्थः धर्मः - वे निरर्थक कर्म धर्म हो
स्यात् जाते हैं ॥ २१ ॥

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम् ।
यत् सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम् ॥ २२ ॥

एषा बुद्धिमतां बुद्धिः मनीषा च मनीषिणां यत् सत्यं अनृतेन इह मर्त्येन आप्नोति मां अमृतम् ॥ २२ ॥

बुद्धिमतां बुद्धिः - बुद्धिमानोंकी बुद्धिमत्ता
च मनीषिणां - तथा विवेकियोंकी
मनीषा एषा - विवेक शक्ति सही है
यत् इह - जो इस
अनृतेन - असत्
मर्त्येन - मरणधर्मा (शरीर) से
मां सत्यं - मुझ सत्यस्वरूप
अमृतं - अविनाशीको
आप्नोति - प्राप्त करले ॥ २२ ॥

एष तेऽभिहितः कृत्स्नो ब्रह्मवादस्य सङ्ग्रहः ।
समासव्यासविधिना देवानामपि दुर्गमः ॥ २३ ॥

एष ते अभिहितः कृत्स्नः ब्रह्मवादस्य संग्रहः समास व्यास विधिना देवानां अपि दुर्गमः ॥ २३ ॥

एष देवानां - यह देवताओंके लिए
अपि भी
दुर्गमः - दुर्लभ
कृत्स्नः- - सम्पूर्ण ब्रह्मविद्याका
ब्रह्मवादस्य
संग्रहः ते - रहस्य तुमसे
समास व्यास - संक्षेप-विस्तार
विधिना - विधिसे
अभिहितः - वर्णनकर दिया
॥ २३ ॥

अभीक्ष्णशस्ते गदितं ज्ञानं विस्पष्टयुक्तिमत् ।
एतद् विज्ञाय मुच्येत पुरुषो नष्टसंशयः ॥ २४ ॥

अभीक्ष्णशः ते गदितं ज्ञानं विस्पष्ट युक्तिमत् एतत् विज्ञाय मुच्येत पुरुषः नष्ट संशयः ॥ २४ ॥

ते - तुमसे
युक्तिमत् - युक्तिपूर्वक
विस्पष्ट - अत्यन्त स्पष्ट
ज्ञानं अभीक्ष्णशः - ज्ञान बार-बार
गदितं - कहा है,
एतत् विज्ञाय - इसे जानकर
नष्ट संशयः - सन्देह नष्ट होजानेसे
पुरुषः मुच्येत - पुरुष मुक्त होजाता है
॥ २४ ॥

सुविवित्तं तव प्रश्नं मयैतदपि धारयेत् ।
सनातनं ब्रह्मगुह्यं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २५ ॥

सुविवित्तं तव प्रश्नं मया एतत् अपि धारयेत् सनातनं ब्रह्मगुह्यं परं ब्रह्म अधिगच्छति ॥ २५ ॥

तव प्रश्नं	- तुम्हारे प्रश्नोंको एवं	**सुविवित्तं**	- अत्यन्त विवेक पूर्वक
मया अपि	- मेरे भी	**धारयेत्**	- (जो) धारण करेगा
एतत् सनातनं	- इस शाश्वत्	**परं ब्रह्म**	- (वह) परमब्रह्मको
ब्रह्मगुह्यं	- ब्रह्म-रहस्यको	**अधिगच्छति**	- प्राप्त कर लेगा ॥२५॥

य एतन्मम भक्तेषु सम्प्रदद्यात् सुपुष्कलम् ।
तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमात्मना ॥ २६ ॥

य एतत् मम भक्तेषु सम्प्रदद्यात् सुपुष्कलं तस्य अहं ब्रह्म दायस्य ददामि आत्मानं आत्मना ॥ २६ ॥

मम भक्तेषु	- मेरे भक्तोंको	**तस्य ब्रह्म दायस्य**	- उस ज्ञानदाताको
यः एतत्	- जो इसको	**अहं आत्मना**	- मैं अपने आप
सुपुष्कलं	- अच्छे विस्तार सहित	**आत्मानं ददामि**	- अपनेको दे दूँगा ॥ २६ ॥
सम्प्रदद्यात्	- समझाकर प्रदान करेगा		

य एतत् समधीयीत पवित्रं परमं शुचि ।
स पूयेताहरहर्मां ज्ञानदीपेन दर्शयन् ॥ २७ ॥

य एतत् सम् अधीयीत पवित्रं परमं शुचि स पूयेत अहः अहः मां ज्ञान दीपेन दर्शयन् ॥ २७ ॥

य एतत्	- जो इस	**स अहः अहः**	- वह प्रत्येक दिन
परमं पवित्रं	- परम पवित्र	**ज्ञान दीपेन**	- ज्ञान दीपक द्वारा
शुचि	- निर्मल (संवाद) का	**मां दर्शयन्**	- (दूसरोंको) मुझे दिखलाता हुआ
सम् अधीयीत	- भली प्रकार अध्ययन करेगा	**पूयेत**	- पवित्र होजायगा ॥ २७ ॥

य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः ।
मयि भक्तिं परां कुर्वन् कर्मभिर्न स बध्यते ॥ २८ ॥

यः एतत् श्रद्धया नित्यं अव्यग्रः शृणुयात् नरः मयि भक्तिं परां कुर्वन् कर्मभिः न स बध्यते ॥ २८ ॥

यः नरः	- जो मनुष्य	**मयि परां भक्तिं**	- मेरी परा भक्ति
श्रद्धया अव्यग्रः	- श्रद्धापूर्वक एकाग्रचित्तसे	**कुर्वन् स**	- करके वह
एतत् नित्यं	- इसे प्रतिदिन	**कर्मभिः**	- कर्मोंसे
शृणुयात्	- सुनेगा,	**न बध्यते**	- नहीं बँधेगा ॥२८॥

अप्युद्धव त्वया ब्रह्म सखे समवधारितम् ।
अपि ते विगतो मोहः शोकश्चासौ मनोभवः ॥ २९ ॥

अपि उद्धव त्वया ब्रह्म सखे सम अवधारितं अपि ते विगतः मोहः शोकः च असौ मनः भवः ॥ २९ ॥

सखे उद्धव	- मित्र उद्धव !	**अपि असौ**	- क्या यह
अपि त्वया	- क्या तुमने	**मनः भवः**	- मनसे उत्पन्न होनेवाला
ब्रह्म	- (इस) ब्रह्मज्ञानको	**ते मोहः च शोकः**	- तुम्हारे मोह और शोक
सम अवधारितं	- भली भांति समझ लिया	**विगतः**	- दूर होगया ? ॥ २९ ॥

नैतत्त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च ।
अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥ ३० ॥

न एतत् त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च अशुश्रूषोः अभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥ ३० ॥

त्वया एतत्	- तुमको यह (ज्ञान)	**अशुश्रूषोः**	- सेवा न करनेवालेको
दाम्भिकाय	- पाखण्डीको,	**अभक्ताय**	- जो भक्त न हो उसे
नास्तिकाय	- नास्तिकको,	**च दुर्विनीताय**	- तथा उद्धत व्यक्तिको
शठाय	- दुष्टको,	**न दीयतां**	- मत देना ॥ ३० ॥

एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च ।
साधवे शुचये ब्रूयाद् भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥ ३१ ॥

एतैः दोषैः विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च साधवे शुचये ब्रूयात् भक्तिः स्यात् शूद्रयोषिताम् ॥ ३१ ॥

एतैः दोषैः	- इन दोषोंसे	**शुचये साधवे**	- पवित्र सत्पुरुषको
विहीनाय	- रहित	**च भक्तिः-**	- और यदि भक्त
ब्रह्मण्याय	- ब्राह्मणभक्त,	**स्यात्**	युक्त हों तो
प्रियाय	- अपने प्रिय	**शूद्र योषितां**	- शूद्रों और स्त्रियोंको भी
		ब्रूयात्	- बतलावे ॥ ३१ ॥

नैतद् विज्ञाय जिज्ञासोर्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।
पीत्वा पीयूषममृतं पातव्यं नवशिष्यते ॥ ३२ ॥

न एतत विज्ञाय जिज्ञासोः ज्ञातव्यं अवशिष्यते पीत्वा पीयूषं अमृतं पातव्यं न अवशिष्यते ॥ ३२ ॥

जिज्ञासोः	- जिज्ञासुके लिए	**पीयूषं पीत्वा**	- (जैसे) अमृत पीकर
एतत् विज्ञाय	- यह जान लेनेपर	**अमृतं**	- अमर हो जानेपर
ज्ञातव्यं	- जानने योग्य कुछ	**पातव्यं**	- पीने योग्य कुछ
न अवशिष्यते	- नहीं बच रहता	**न अवशिष्यते**	- नहीं बच रहता ॥३२॥

ज्ञाने कर्मणि योगे च वार्तायां दण्डधारणे ।
यावानर्थो नृणां तात तावांस्तेऽहं चतुर्विधः ॥ ३३ ॥

ज्ञाने कर्मणि योगे च वार्तायां दण्डधारणे यावान् अर्थः नृणां तात तावान् ते अहं चतुर्विधः ॥ ३३ ॥

तात	- प्रिय उद्धव	**दण्डधारणे**	- दण्डधारण (रूप-राज्य-काम)
नृणां ज्ञाने	- मनुष्यके लिए ज्ञान (मोक्ष)	**यावान् अर्थः**	- जितने पुरुषार्थ हैं
कर्मणि	- कर्म (धर्म)	**ते तावान्**	- तुम्हारे लिए वे सब
च योगे	- तथा योग (मोक्ष साधन)	**चतुर्विधः**	- चारों प्रकारके (पुरुषार्थ)
वार्तायां	- व्यापार (अर्थ)	**अहं**	- मैं ही हूँ ॥ ३३ ॥

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा
निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो
मयाऽऽत्मभूयाय च कल्पते वै ॥ ३४ ॥

मर्त्यः यदा त्यक्त समस्त कर्मा निवेदित आत्मा विचिकीर्षितः मे तदा अमृतत्त्वं प्रतिपद्यमानः मया आत्मभूयाय च कल्पते वै ॥ ३४ ॥

यदा मर्त्यः	- जब मनुष्य	**अमृतत्त्वं**	- (वह) अमृतत्त्व
त्यक्त समस्त-	- सब कर्मोंका त्याग	**मया-**	- मेरे द्वारा प्राप्त
कर्मा	करके	**प्रतिपद्यमानः**	कराया जाकर
निवेदित आत्मा	- आत्म समर्पण कर देता है	**वै आत्म-**	- निश्चय (मेरा)
तदा मे	- तब मेरी	**भूयाय च**	आत्मस्वरूप
विचिकीर्षितः	- विशेष इच्छासे ही (कर्म) करने वाला हो जाता है ।	**कल्पते**	- हो जाता है ॥ ३४ ॥

श्रीशुक उवाच—

स एवमादर्शितयोगमार्ग-
स्तदोत्तमश्लोकवचो निशम्य ।
बद्धाञ्जलिः प्रीत्युपरुद्धकण्ठो
न किञ्चिदूचेऽश्रुपरिप्लुताक्षः ॥ ३५ ॥

स एवं आदर्शित योगमार्गः तत् उत्तम श्लोक वचः निशम्य बद्ध अञ्जलिः प्रीति उपरुद्ध कण्ठः न किञ्चित् ऊचे अश्रुपरिप्लुत अक्षः ॥ ३५ ॥

एवं योगमार्गः	- इस प्रकार अपने मिलनेका मार्ग	**स बद्ध-अञ्जलिः**	- वे हाथ जोड़े (उद्धव)
आदर्शित	- दिखलाकर	**प्रीति उपरुद्ध-**	प्रेमके कारण गला भर जानेसे
उत्तमश्लोक	- पुण्यकीर्ति भगवानकी	**किञ्चित् न ऊचे**	- कुछ बोल नहीं सके,
तत् वचः-निशम्य	- उस बातको सुनकर	**अक्षः**	- नेत्र
		अश्रु परिप्लुत	-आंसू से भर गये ॥ ३५ ॥

विष्टभ्य चित्तं प्रणयावघूर्णं
धैर्येण राजन् बहुमन्यमानः ।
कृताञ्जलिः प्राह यदुप्रवीरं
शीर्ष्णा स्पृशंस्तच्चरणारविन्दम् ॥ ३६ ॥

विष्टभ्य चित्तं प्रणय अवधूर्णं धैर्येण राजन् बहु मन्यमानः कृत अञ्जलिः प्राह यदुप्रवीरं शीर्ष्णा स्पृशन् तत् चरण अरविन्दम् ॥ ३६ ॥

राजन् - राजन् !
प्रणय अवधूर्णं - प्रेम विह्वल
चित्तं धैर्येण - चित्तको धैर्यपूर्वक
विष्टभ्य - स्थिर करके
बहुमन्यमानः - (अपनेको) अत्यन्त सौभाग्यशाली समझकर
शीर्ष्णा - मस्तकसे
तत् चरण-अरविन्दं - उनके चरणकमलका
स्पृशन् - स्पर्श करके
कृत अञ्जलिः - हाथ जोड़कर
यदुप्रवीरं - उन यादव श्रेष्ठसे
प्राह - बोले ॥ ३६ ॥

उद्धव उवाच–

विद्रावितो मोहमहान्धकारो
य आश्रितो मे तव सन्निधानात् ।
विभावसोः किं नु समीपगस्य
शीतं तमो भीः प्रभवन्त्यजाद्य ॥ ३७ ॥

विद्रावितः मोह महा अन्धकारः यः आश्रितः मे तव सन्निधानात् विभावसोः किं नु समीपगस्य शीतं तमः भीः प्रभवन्ति अजाद्य ॥ ३७ ॥

यः मोह महा-अन्धकारः - जो मोहरूपी घोर अन्धकार
मे आश्रितः - मुझमें स्थित था
तव सन्निधानात् - आपके सामीप्यसे
विद्रावितः - (वह) दूर भगा दिया गया,
नु किं-विभावसोः - भला क्या अग्निके
समीपगस्य - समीप जाने वालेको
शीतं तमः भीः - सर्दी, अन्धकार, भय,
अजाद्य - माया आदि
प्रभवन्ति - उत्पन्न होसकते हैं ॥ ३७ ॥

प्रत्यर्पितो मे भवतानुकम्पिना
भृत्याय विज्ञानमयः प्रदीपः ।

हित्वा कृतज्ञस्तव पादमूलं
कोऽन्यत् समीयाच्छरणं त्वदीयम् ॥ ३८ ॥

प्रत्यर्पितः मे भवता अनुकम्पिना भृत्याय विज्ञान मयः प्रदीपः हित्वा कृतज्ञः तव पादमूलं कः अन्यत् समीयात् शरणं त्वदीयम् ॥ ३८ ॥

अनुकम्पिना - अनुग्रहमय
भवता - आपने
मे भृत्याय - मुझ सेवकको
विज्ञानमयः - विज्ञानस्वरूप
प्रदीपः - प्रदीप
प्रत्यर्पितः - प्रदान किया,
कः कृतज्ञः - कौन कृतज्ञ
तव पादमूलं - आपके चरणोंको
हित्वा त्वदीयं - त्यागकर आपका जन
अन्यत् शरणं - दूसरेकी शरणमें
समीयात् - कभी जायगा ॥ ३८ ॥

वृक्णश्च मे सुदृढ़ः स्नेहपाशो
दाशार्हवृष्ण्यन्धकसात्वतेषु ।
प्रसारितः सृष्टिविवृद्धये त्वया
स्वमायया ह्यात्मसुबोधहेतिना ॥ ३९ ॥

वृक्णः च मे सुदृढ़ः स्नेहपाशः दाशार्ह वृष्णि अन्धक सात्वतेषु प्रसारितः सृष्टि विवृद्धये त्वया स्वमायया हि आत्म सुबोध हेतिना ॥ ३९ ॥

हि त्वया - क्योंकि आपने ही
सृष्टि विवृद्धये - सृष्टिकी वृद्धिके लिए
स्वमायया - अपनी मायासे
प्रसारितः - जिसे फैलाया था वह
दाशार्ह वृष्णि - दाशार्ह, वृष्णि,
अन्धक - अन्धक, सात्वत वंशी
सात्वतेषु लोगोंमें
मे सुदृढ़ः - मेरा अत्यन्त दृढ़
स्नेह पाशः - स्नेहका बन्धन
आत्म सुबोध - आत्माके उत्तम ज्ञानरूपी
हेतिना - कुल्हाड़ेसे
वृक्णः च - (आपने) काट भी दिया ॥ ३९ ॥

नमोऽस्तु ते महायोगिन् प्रपन्नमनुशाधि माम् ।
यथा त्वच्चरणाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी ॥ ४० ॥

नमः अस्तु ते महायोगिन् प्रपन्नं अनुशाधि मां यथा त्वत् चरणाम्भोजे रतिः स्यात् अनपायिनी ॥ ४० ॥

महायोगिन्	- महायोगिन्	**यथा त्वत्**	- जिससे आपके
ते नमः अस्तु	- आपको नमस्कार हो,	**चरणाम्भोजे**	- चरण कमलोंमें
मां प्रपन्नं	- (अब मुझ) शरणागतको	**अनपायिनी**	- अनन्य
अनुशाधि	- (ऐसी) आज्ञा दीजिए	**रतिः स्यात्**	- प्रीति हो ॥ ४० ॥

श्रीभगवानुवाच–

गच्छोद्धव मयाऽऽदिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम् ।
तत्र मत्पादतीर्थोदे स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ॥ ४१ ॥

गच्छ उद्धव मया आदिष्टः बदरि आख्यं मम आश्रमं तत्र मत् पादतीर्थ उदे स्नान उपस्पर्शनैः शुचिः ॥ ४१ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**तत्र मत्पाद**	- वहाँ मेरे चरणोंके
मया आदिष्टः	- मेरे आदेशसे	**तीर्थ उदे**	- पवित्र जल (अलकनन्दा)के
बदरि आख्यं	- बदरीनाथ नामक	**स्नान उपस्पर्शनैः**	- स्नान, आचमनसे
मम आश्रमं	- मेरे आश्रममें	**शुचिः**	- पवित्र हो जाओगे ॥ ४१ ॥
गच्छ	- चले जाओ,		

ईक्षयालकनन्दाया विधूताशेषकल्मषः ।
वसानो वल्कलान्यङ्ग वन्यभुक् सुखनिःस्पृहः ॥ ४२ ॥

ईक्षया अलकनन्दाया विधूत अशेष कल्मषः वसानः वल्कलानि अंग वन्यभुक् सुख निस्पृहः ॥ ४२ ॥

अंग - प्रिय उद्धव !
अलकनन्दाया - अलकनन्दाके
ईक्षया - दर्शनसे ही
अशेष कल्मषः - समस्त पाप
विधूत - नष्ट हो जायंगे,
वल्कलानि - वल्कल
वसानः - पहिनकर
वन्यभुक् - वनमें उत्पन्न कंदफलादि खाकर
सुख निस्पृहः - सुखेच्छा रहित होजाओ ॥ ४२ ॥

तितिक्षुर्द्वन्द्वमात्राणां सुशीलः संयतेन्द्रियः ।
शान्तः समाहितधिया ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ ४३ ॥

तितिक्षुः द्वन्द्वमात्राणां सुशीलः संयत इन्द्रियः शान्तः समाहित धिया ज्ञान विज्ञान संयुतः ॥ ४३ ॥

द्वन्द्व मात्राणां - (सर्दी-गर्मी आदि) द्वन्द्व तन्मात्राओंको
तितिक्षुः - सहन करने वाले,
सुशीलः - उत्तम चरित वाले,
संयत इन्द्रियः - इन्द्रिय-संयम युक्त,
शान्तः - शान्त,
समाहितधियाः - एकाग्र बुद्धिसे
ज्ञान-विज्ञान - ज्ञान-विज्ञानसे
संयुतः - युक्त होकर ॥ ४३ ॥

मत्तोऽनुशिक्षितं यत्ते विविक्तमनुभावयन् ।
मय्यावेशितवाक्चित्तो मद्धर्मनिरतो भव ।
अतिव्रज्य गतीस्तिस्त्रो मामेष्यसि ततः परम् ॥ ४४ ॥

मत्तः अनुशिक्षितं यत् ते विविक्तं अनुभावयन् मयि आवेशित वाक् चित्तः मत् धर्म निरतः भव अतिव्रज्य गतीः तिस्रः मां एष्यसि ततः परम् ॥ ४४ ॥

यत् ते - जो तुमने
मत्तः अनुशिक्षितं - मुझसे शिक्षा पायी है
विविक्तं - एकान्तमें
अनुभावयन् - उसकी बार-बार भावना करके
वाक्चित्तः - वाणी और चित्त
मयि आवेशित - मुझमें लगाकर
मत् धर्म - मेरे (भागवत) धर्ममें
निरतः भव - तल्लीन होजाओ (इससे)
तिस्रः गतीः - त्रिगुणोंकी गतियोंको
अतिव्रज्य - पार करके
ततः परं - उनसे परे
मां एष्यसि - मुझमें आजाओगे ॥ ४४ ॥

श्रीशुक उवाच–

स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः
प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः ।
शिरो निधायाशुकलाभिरार्द्रधी-
र्न्यषिञ्चदद्वन्द्वपरोऽप्यपक्रमे ॥ ४५ ॥

सः एवं उक्तः हरिमेधसः उद्धवः प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः शिरः निधाय अश्रुकलाभिः आर्द्रधीः न्यषिञ्चत् अद्वन्द्व परः अपि अपक्रमे ॥ ४५ ॥

एवं हरि- - इस प्रकार अपने
मेधसः ज्ञानसे भवहारी हरि द्वारा
उक्तः सः - कहे जानेपर
उद्धवः वे उद्धव
अद्वन्द्व - द्वन्द्वातीत हो जानेपर
परः अपि भी
अपक्रमे - जाते समय
तं प्रदक्षिणं - उनकी प्रदक्षिणा
परिसृत्य - करके
पादयोः - चरणोंपर
शिरः निधाय - मस्तक रखकर
आर्द्रधीः - द्रवित चित्त
अश्रुकला - आंसुओंसे (उन्हें)
न्यषिञ्चत् - अच्छी प्रकार भिगा दिया ॥ ४५ ॥

सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो
न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः ।
कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके
बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः ॥ ४६ ॥

सुदुस्त्यज स्नेह वियोग कातरः न शक्नुवन् तं परिहातुं आतुरः कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृ पादुके विभ्रत् नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः ॥ ४६ ॥

सुदुस्त्यज स्नेह	- जिनका स्नेह त्यागना बहुत कठिन है	**पुनः पुनः**	- बार-बार
वियोग कातरः	- उनके वियोग (की कल्पना) से व्याकुल	**कृच्छ्रं ययौ**	- मूर्छित हुए
तं परिहातुं	- उनको छोड़नेमें विह्वल	**मूर्धनिभर्तृ-**	- फिर सिरपर स्वामीकी
आतुरः	होकर	**पादुके**	पादुकाओंको
शक्नुवन् न	- समर्थ न होनेसे	**निधाय**	- रखकर
		नमस्कृत्य ययौ	- प्रणाम करके गये ॥ ४६ ॥

ततस्तमन्तर्हृदि संनिवेश्य
गतो महाभागवतो विशालाम् ।
यथोपदिष्टां जगदेकबन्धुना
तपः समास्थाय हरेरगाद् गतिम् ॥ ४७ ॥

ततः तं अन्तः हृदि सं निवेश्य गतः महाभागवतः विशालां यथा उपदिष्टां जगत् एक बन्धुनातपः सम आस्थाय हरेः अगात् गतिम् ॥ ४७ ॥

ततः तं - फिर उनको
अन्तः हृदि - हृदयके भीतर
संनिवेश्य - भली प्रकार प्रविष्ट करके
महाभागवतः - महाभागवत उद्धव जी
विशालां गतः - विशालापुरी (बदरीनाथ) गये
जगत् एक बन्धुना - जगत्के एक मात्र बन्धु श्रीकृष्णने
यथा उपदिष्टं - जैसा उपदेश किया था
तपः- - वैसे भली प्रकार
समआस्थाय तपस्या करके
हरेः गतिं - श्रीहरिके स्वरूपको
अगात् - प्राप्त होगये ॥ ४८ ॥

य एतदानन्दसमुद्रसम्भृतं
ज्ञानामृतं भागवताय भाषितम् ।
कृष्णेन योगेश्वरसेविताङ्घ्रिणा
सच्छ्रद्धयाऽऽसेव्य जगद् विमुच्यते ॥ ४८ ॥

यः एतत् आनन्द समुद्र सम्भृतं ज्ञान अमृतं भागवताय भाषितं कृष्णेन योगेश्वर सेवित अंङ्घ्रिणा सत् श्रद्धया आसेव्य जगत् विमुच्यते ॥ ४८ ॥

योगेश्वर सेवित - योगेश्वरों द्वारा सेवित
अङ्घ्रिणा - चरण
श्रीकृष्णेन - श्रीकृष्ण द्वारा
भागवताय - भगवद्भक्त उद्धवको
भाषितं - उपदेश किये गये
एतत् आनन्द समुद्र सम्भृतं - समुद्रसे परिपूर्ण
ज्ञानामृतं - ज्ञान-रूपी अमृतको
यः सत् श्रद्धया - जो उत्तम श्रद्धासे
आसेव्य - सेवन करता है (वह)
जगत् विमुच्यते - संसारसे मुक्त होजाता है ॥ ४९ ॥

भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं
निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद् वेदसारम् ।
अमृतमुदधितश्चापायद् भृत्यवर्गान्
पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥ ४९ ॥

भव भयं अपहन्तुं ज्ञान विज्ञान सारं निगमकृत् उपजह्रे भृङ्गवत् वेद सारं अमृतं उदधितः च अपायत् भृत्य वर्गान् पुरुष ऋषभं आद्ये कृष्ण संज्ञं नतः अस्मि ॥ ४९ ॥

निगमकृत् - वेदोंके प्रकाशकने
भृङ्गवत् - भ्रमरके समान
ज्ञान विज्ञान सारं - ज्ञान-विज्ञानका सार रूप
वेदसारं - वेदोंका सारांश
भव भय - संसारके भयको
अपहन्तुं - नाश करनेके लिए
उपजह्रे - एकत्र किया है
च उदधितः - तथा क्षीरसागरसे
अमृतं - अमृत (निकालकर)
भृत्य वर्गान् - सेवक वर्गको
अपायत् - पिलाया
कृष्ण संज्ञं - उन श्रीकृष्णनामक
आद्यं पुरुष-ऋषभं - आदि पुरुषोत्तमको
नतः अस्मि - (मैं) नमस्कार करता हूँ ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

राजोवाच–

ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् ।
द्वारवत्यां किमकरोद् भगवान् भूतभावनः ॥ १ ॥

ततः महाभागवत उद्धवे निर्गते वनं द्वारवत्यां किं अकरोत् भगवान् भूतभावनः ॥ १ ॥

ततः- - तब महाभागवत
महाभागवत
उद्धवे वनं - उद्धवके वनमें
निर्गते - निकल जानेपर
भूत भावनः - भूतभावन
भगवान् - भगवानने
द्वारवत्यां - द्वारिकापुरीमें
किं अकरोत् - क्या किया ॥ १ ॥

ब्रह्मशापोपसंसृष्टे स्वकुले यादवर्षभः ।
प्रेयसीं सर्वनेत्राणां तनुं स कथमत्यजत् ॥ २ ॥

ब्रह्मशाप उपसंसृष्टे स्वकुले यादव ऋषभः प्रेयसीं सर्व नेत्राणां तनुं स कथं अत्यजत् ॥ २ ॥

यादव ऋषभः - उन यादव श्रेष्ठने
स्वकुले - अपने कुलको
ब्रह्मशाप - ब्राह्मणोंका शाप
उपसंसृष्टे - प्राप्त होनेपर
सर्वनेत्राणां - सभीके नेत्रोंके लिए
प्रेयसीं तनुं - अत्यन्त प्रिय अपना श्री विग्रह
स कथं- - उन्होंने कैसे त्यागा
अत्यजत् ॥ २ ॥

प्रत्याक्रष्टुं नयनमबला यत्र लग्नं न शेकुः
कर्णाविष्टं न सरति ततो यत् सतामात्मलग्नम् ।

यच्छ्रीर्वाचां जनयति रतिं किं नु मानं कवीनां
दृष्ट्वा जिष्णोर्युधि रथगतं यच्च तत्साम्यमीयुः ॥ ३ ॥

प्रति आक्रष्टुं नयनं अबला यत्र लग्नं न शेकुः कर्ण आविष्टं न सरति ततः यत् सतां आत्म लग्नं यत् श्रीः वाचां जनयति रतिं किं नु मानं कवीनां दृष्ट्वा जिष्णुः युधि रथगतं यत् च तत् साम्यं ईयुः ॥ ३ ॥

यत्र लग्नं	- जिस (श्री विग्रह) में लगे	**यत् कवीनां**	- जो (सुयश) कवियों की
नयनं अबला	- नेत्रोंको स्त्रियां	**वाचां श्रीः**	- वाणीकी शोभा
प्रति आक्रष्टुं	- वहांसे हटा लेनेमें	**जनयति**	- उत्पन्न करता है
शेकुः न	- समर्थ नहीं होती थीं,	**नु रतिं**	- भला (उससे अधिक) प्रिय और
यत् सतां	- जिनका (सुयश) सत्पुरुषोंके	**मानं किं**	- सम्मानीय क्या होगा
कर्ण आविष्टं	- कानमें पहुंचनेपर	**यत् युधि**	- जिसे (महाभारत) युद्धमें
आत्म लग्नं	- (उनमें) लगा चित्त	**जिष्णुः रथगतं**	- अर्जुनके रथपर बैठा
ततः	वहांसे	**यत् च दृष्ट्वा**	- जिसका तो दर्शन ही करके (मरने पर)
न सरति	- नहीं हटता,	**तत् साम्यं-ईयुः**	- उनके समयत्वको पहुंच गये ॥ ३ ॥

ऋषिरुवाच–

दिवि भुव्यन्तरिक्षे च महोत्पातान् समुत्थितान् ।
दृष्ट्वाऽऽसीनान् सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदूनिदम् ॥ ४ ॥

दिवि भुवि अन्तरिक्षे च महा उत्पातान् सम उत्थितान् दृष्ट्वा आसीनान् सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदून् इदम् ॥ ४ ॥

दिवि भुवि	- आकाश, पृथ्वी,	**दृष्ट्वा कृष्णः**	- देखकर श्रीकृष्णने
च अन्तरिक्षे	- तथा अन्तरिक्षमें	**सुधर्मायां-आसीनान्**	- सुधर्मा सभामें बैठे
महा उत्पातान्	- बड़े अपशकुन	**यदून् इदं प्राह**	- यदुवंशियोंसे यह कहा ॥ ४ ॥
समुत्थितान्	- होते		

एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः ।
मुहूर्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुङ्गवाः ॥ ५ ॥

एते घोरा महाउत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः मुहूर्त्तं अपि न स्थेयं अत्र नः यदुपुङ्गवाः ॥ ५ ॥

यदुपुङ्गवाः	- यादव श्रेष्ठो !	**द्वारवत्यां**	- द्वारिकापुरीमें (होरहे हैं)
यमकेतवः	- यमराजके झंडेके समान	**अत्र नः**	- यहां हम लोगोंको
एते घोरा	- ये भयानक	**मुहूर्तं अपि**	- एक मुहूर्त भी
महा उत्पाता	- बड़े अपशकुन	**न स्थेयं**	- नहीं ठहरना चाहिए ॥ ५ ॥

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शंखोद्धारं व्रजन्त्वितः ।
वयं प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक् सरस्वती ॥ ६ ॥

स्त्रियः बालाः च वृद्धाः च शंखोद्धारं व्रजन्तु इतः वयं प्रभासं यास्यामः यत्र प्रत्यक् सरस्वती ॥ ६ ॥

स्त्रियः-	- स्त्रियां, बालक और	**यास्यामः**	- जायंगे
बालाः च		**यव प्रत्यक्**	- जहां पश्चिम वाहिनी
वृद्धाः च इतः	- वृद्ध भी यहांसे	**सरस्वती**	सरस्वती है ॥ ६ ॥
शंखोद्धारं-	- शंखोद्धार क्षेत्र चले		
व्रजन्तु	जायं,		
वयं प्रभासं	- हम लोग प्रभास क्षेत्र		

तत्राभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः ।
देवताः पूजयिष्यामः स्नपनालेपनार्हणैः ॥ ७ ॥

---

१. अन्य प्रतियों में यहां ऋषिरुवाच है ।

तत्र अभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः देवताः पूजयिष्यामः स्नपन आलेपन अर्हणैः ॥ ७ ॥

तत्र अभिषिच्य - वहां स्नान करके
शुचयः उपोष्य - पवित्र होकर, उपवास करके
सुसमाहिताः - अत्यन्त एकाग्र चित्तसे
स्नपन आलेपन -स्नान, चन्दनादि
अर्हणैः - पूजा द्रव्योंसे
देवताः - देवताओंका
पूजयिष्यामः - (हम लोग) पूजन करेंगे
॥ ७ ॥

ब्राह्मणांस्तु महाभागान् कृतस्वस्त्ययना वयम् ।
गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः ॥ ८ ॥

ब्राह्मणान् तु महाभागान् कृतस्वस्त्ययना वयं गो भू हिरण्य वासोभिः गज अश्व रथ वेश्मभिः ॥ ८ ॥

वयं- - हम लोग स्वस्ति
स्वस्त्ययना कृत पाठ कराके
गो भू हिरण्य - गौ, भूमि, स्वर्ण,
वासः भिः - वस्त्र,
गज अश्व रथ - हाथी, घोड़े, रथ,
वेश्मभिः - एवं घर (दान) द्वारा
महाभागन् - महाभाग्यवान
ब्राह्मणान् - ब्राह्मणोंका (पूजन करेंगे)
॥ ८ ॥

विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मंगलायनमुत्तमम् ।
देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥ ९ ॥

विधिः एष हि अरिष्टघ्नः मंगल अयनं उत्तमं देव द्विज गवां पूजा भूतेषु परमः भवः ॥ ९ ॥

हि एष विधिः - क्योंकि यह विधान
अरिष्टघ्नः - अमंगल नाशक
मंगलायनमुत्तमम - श्रेष्ठ मंगलोंका निवासहै,
देव द्विज - देवता, ब्राह्मण एवं
गवां पूजा - गायोंका पूजन
भूतेषु परमः - प्राणियोंके लिए परम
भवः अभ्युदयदायी है
॥ ९ ॥

इति सर्वे समाकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः ।
तथेति नौभिरुत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥ १० ॥

इति सर्वे सम आकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः तथा इति नौभिः उत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥ १० ॥

सर्वे यदुवृद्धा - सब यादव वृद्ध
इति मधुद्विषः - इस प्रकार भगवान मधुसूदन (की बात)
समआकर्ण्य - ध्यानसे सुनकर
तथा इति - 'ठीक है, ऐसा कहकर
नौभिः उत्तीर्य - नौकाओंसे (समुद्र) पार उतरकर
रथैः प्रभासं - रथोंपर बैठकर प्रभासको
प्रययू - चल पड़े ॥ १० ॥

तस्मिन् भगवताऽऽदिष्टं यदुदेवेन यादवाः ।
चक्रुः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् ॥ ११ ॥

तस्मिन् भगवता आदिष्टं यदु देवेन यादवाः चक्रुः परमया भक्त्या सर्व श्रेय उपबृंहितम् ॥ ११ ॥

तस्मिन् - उस क्षेत्रमें
यदुदेवेन - यादवोंके आराध्यदेव
भगवता-आदिष्टं - भगवानके आदेशसे
परमया भक्त्या - परम भक्ति सहित
यादवाः - यदुवंशियोंने
सर्वश्रेय - सम्पूर्ण मंगल
उपबृंहितं चक्रुः - युक्तकर्म किये ॥ ११ ॥

ततस्तस्मिन् महापानं पपुर्मैरेयकं मधु ।
दिष्टविभ्रंशितधियो यद्द्रवैर्भ्रश्यते मतिः ॥ १२ ॥

ततः तस्मिन् महापानं पपुः मैरेयकं मधु दिष्ट विभ्रंशित धियः यत् द्रवैः भ्रश्यते मतिः ॥ १२ ॥

ततः तस्मिन् - फिर उस क्षेत्रमें
दिष्ट- - भाग्यवश बुद्धि भ्रष्ट
विभ्रंशितधियः हो जाने से
यत् द्रवैः - जिस द्रव पदार्थसे
मतिः भ्रश्यते - बुद्धि नष्ट हो जाती है वह
मैरेयकं मधु - महुएसे बनी सुराको
महापानं पपुः - बहुत अधिक पिया ॥ १२ ॥

महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम् ।
कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥

महापान अभिमत्तानां वीराणां दृप्त चेतसां कृष्ण माया विमूढानां सङ्घर्षः सुमहान् अभूत् ॥ १३ ॥

महापान - मदिरापानसे
अभिमत्तानां - उन्मत्त हुए
कृष्णमाया - श्रीकृष्णकी मायासे
विमूढानां - अत्यन्त मोहाच्छन्न
दृप्तचेतसां - उद्धतचित्त
वीराणां - वीरोंमें
सुमहान् - अत्यन्त भारी
सङ्घर्षः अभूत् - लड़ाई हुई ॥ १३ ॥

युयुधुः क्रोधसंरब्धा वेलायामाततायिनः ।
धनुर्भिरसिभिर्भल्लैर्गदाभिस्तोमरर्ष्टिभिः ॥ १४ ॥

युयुधुः क्रोध संरब्धा वेलायां आततायिनः धनुर्भिः असिभिः भल्लैः गदाभिः तोमर ऋष्टिभिः ॥ १४ ॥

क्रोध संरब्धा - क्रोधसे अत्यन्त उत्तेजित होकर
वेलायां - समुद्र किनारे
आततायिनः - वे (परस्पर) आक्रमणकारी
धनुर्भिः असिभिः - धनुष, तलवार,
भल्लैः गदाभिः - भाले, गदा,
तोमर ऋष्टिभिः - तोमर तथा ऋष्टिसे
युयुधुः - युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥

पतत्पताकै रथकुञ्जरादिभिः
खरोष्ट्रगोभिर्महिषैर्नरैरपि ।
मिथः समेत्याश्वतरैः सुदुर्मदा
न्यहञ्छरैर्ददिभिरिव द्विपा वने ॥ १५ ॥

पतत् पताकैः रथ कुञ्जर आदिभिः खर उष्ट्र गोभिः महिषैः नरैः अपि मिथः सम एत्य अश्वतरैः सुदुर्मदा न्यहन् शरैः दत्भिः इव द्विपा वने ॥ १५ ॥

पतत् पताकैः	- (उनके) झंडे उड़ रहे थे,	**सुदुर्मदा**	- अत्यन्त घमण्डमें भरे
रथ कुञ्जर	- रथ, हाथी	**वने दत्भिः**	- वनमें दांतोंसे
आदिभिः	- आदि द्वारा या	**द्विपा इव**	- हाथियोंके समान
खर उष्ट्रगोभिः	- गधे, ऊंट, बैल,	**मिथः सम एत्य**	- परस्पर समीप आकर
अश्वतरैः	- खच्चरों	**शरैः न्यहन्**	- वाणोंसे मारने लगे ॥ १५ ॥
महिषैः नरैः	- भैंसे, मनुष्योंपर भी		
अपि	(चढ़कर)		

प्रद्युम्नसाम्बौ युधिरूढमत्सरा-
वक्रूरभोजावनिरुद्धसात्यकी ।
सुभद्रसङ्ग्रामजितौ सुदारुणौ
गदौ सुमित्रासुरथौ समीयतुः ॥ १६ ॥

प्रद्युम्न साम्बौ युधिरूढ़ मत्सरौ अक्रूर भोजाः अनिरुद्ध सात्यकी सुभद्र सङ्ग्राम जितौ सुदारुणौ गदौ सुमित्रः सुरथौ समीयतुः ॥ १६ ॥

युधिरूढ़ मत्सरौ	- युद्धमें मात्सर्य मग्न होकर
सुदारुणौ	- अत्यन्त भयानक योधा
प्रद्युम्न साम्बौ	- प्रद्युम्न साम्बसे,
अक्रूर भोजाः	- अक्रूर भोजसे,
अनिरुद्ध सात्यकी	- अनिरुद्ध सात्यकिसे
सुभद्र सङ्ग्रामजितौ	- सुभद्र संग्रामजित्से
गदौ	- (श्रीकृष्णके भाई) गद (उसीनामके उनके पुत्र) गदसे
सुमित्रः सुरथौ	- सुमित्र सुरथसे
समईयतुः	- भिड़ गये ॥ १६ ॥

अन्ये च ये वै निशठोल्मुकादयः
सहस्रजिच्छतजिद्भानुमुख्याः ।
अन्योन्यमासाद्य मदान्धकारिता
जघ्नुर्मुकुन्देन विमोहिता भृशम् ॥ १७ ॥

अन्ये च ये वै निशठ उल्मुक आदयः सहस्रजित् शतजित् भानु मुख्याः अन्यः अन्यं आसाद्य मदान्धकारिता जघ्नुः मुकुन्देन विमोहिता भृशम् ॥ १७ ॥

च ये अन्ये	- तथा जो दूसरे भी
निशठ उल्मुक	- निशठ, उल्मुक,
सहस्रजित्	- सहस्रजित्
शतजित् भानु	- शतजित् भानु
आदयः मुख्याः	- आदि प्रमुख थे,
मदान्धकारिता	- मदान्ध होकर
वै मुकुन्देन	- निश्चय मुकुन्द द्वारा
विमोहिता	अत्यन्त मोहित होकर
अन्यः अन्यं	- एक दूसरेके समीप
आसाद्य	पहुंचकर
भृशं जघ्नुः	- बार-बार प्रहार करने लगे ॥ १७ ॥

दाशार्हवृष्ण्यन्धकभोजसात्वता
मध्वर्बुदा माथुरशूरसेनाः ।
विसर्जनाः कुकुराः कुन्तयश्च
मिथस्ततस्तेऽथ विसृज्य सौहृदम् ॥ १८ ॥

दाशार्ह वृष्णि अन्धक भोज सात्वता मधु अर्बुदा माथुर शूरसेनाः विसर्जनाः कुकुराः कुन्तयः च मिथः ततः ते अथ विसृज्य सौहृदम् ॥ १८ ॥

दाशार्ह वृष्णि - दाशार्ह, वृष्णि,	**कुकुराः च** - कुकुर तथा
अन्धक भोज - अन्धक, भोज,	**कुन्तयः** - कुन्ति आदि वंशके लोग
सात्वता मधु - सात्वत, मधु,	**ततः ते मिथः** - वहां वे परस्पर (रहते थे)
अर्बुदा माथुर - अर्बुद, माथुर,	**अथ सौहृदं** - अब सौहार्द्र
शूरसेनाः- - शूरसेन, विसर्जन,	**विसृज्य** - त्यागकर (लड़ने लगे)
विसर्जनाः	॥ १८ ॥

पुत्रा अयुध्यन् पितृभिर्भ्रातृभिश्च
स्वस्त्रीयदौहित्रपितृव्यमातुलैः ।
मित्राणि मित्रैः सुहृदः सुहृद्भि-
र्ज्ञातींस्त्वहञ्ज्ञातय एव मूढाः ॥ १९ ॥

पुत्रा पितृभिः भ्रातृभिः च स्वस्त्रीय दौहित्र पितृव्य मातुलैः मित्राणि मित्रैः सुहृदः सुहृद्भिः ज्ञातीन् तु अहन् ज्ञातय एव मूढाः ॥ १९ ॥

पुत्रा पितृभिः - पुत्र पितासे	**मित्राणि मित्रैः** - मित्र मित्रोंसे,
च भ्रातृभिः - तथा भाइयोंसे,	**सुहृदः सुहृद्भिः** - सम्बन्धी सम्बन्धियोंसे
स्वस्त्रीय दौहित्र - भानजेसे, नातीसे,	**अयुध्यन्** - युद्ध करने लगे,
पितृव्य मातुलैः - चाचासे, मामासे,	**मूढाः ज्ञातय** - मूर्खतावश जाति वाले
	एव तु ही तो
	ज्ञातीन अहन् - जातिवालोंको मारते थे
	॥ १९ ॥

शरेषु क्षीयमाणेषु भज्यमानेषु धन्वसु ।
शस्त्रेषु क्षीयमाणेषु मुष्टिभिर्जह्नुरेरकाः ॥ २० ॥

शरेषु क्षीय माणेषु भज्यमानेषु धन्वसु शस्त्रेषु क्षीयमाणेषु मुष्टिभिः जह्नुः एरकाः ॥ २० ॥

शरेषु क्षीयमाणेषु- वाणोंके घट जानेपर
धन्वसु भज्य - धनुषोंके टूट जानेपर
शस्त्रेषु क्षीय- - शस्त्रोंके समाप्त
माणेषु होजानेपर
मुष्टिभिः - मुट्ठियोंसे
एरकाः आजह्नुः - एरका घास उखाड़ने लगे ॥ २० ॥

ता वज्रकल्पा ह्यभवन् परिघा मुष्टिना भृताः ।
जघ्नुर्द्विषस्तैः कृष्णेन वार्यमाणास्तु तं च ते ॥ २१ ॥

ता वज्रकल्पा हि अभवन् परिघा मुष्टिना भृताः जघ्नुः द्विषः तैः कृष्णेन वार्यमाणाः तु तं च ते ॥ २१ ॥

मुष्टिना भृताः - मुट्ठीमें भरी हुई
हि ता - क्योंकि वह (एरका घास)
वज्रकल्पा परिघा - वज्रके समान डण्डा
अभवन् - होगयी,
तैः द्विषः- - उससे शत्रुको मारने लगे
जघ्नुः
कृष्णेन - श्रीकृष्णके मना करनेपर
वार्यमाणाः
ते तं च - वे उन्हें भी (मारने लगे) ॥ २१ ॥

प्रत्यनीकं मन्यमाना बलभद्रं च मोहिताः ।
हन्तुं कृतधियो राजन्नापन्ना आततायिनः ॥ २२ ॥

प्रत्यनीकं मन्यमाना बलभद्रं च मोहिताः हन्तुं कृतधियः राजन् आपन्ना आततायिनः ॥ २२ ॥

मोहिताः - मोंह ग्रस्त होनेसे
बलभद्रं च - बलरामजीको भी
प्रत्यनीकं - विपक्षी
मन्यमाना - मानकर
हन्तुं कृतधियः - मार देनेका निश्चय करके
आततायिनः - वे आततायी
आपन्ना - (उनपर) टूट पड़े ॥ २२ ॥

अथ तावपि सङ्क्रुद्धावुद्यम्य कुरुनन्दन ।
एरकामुष्टिपरिघौ चरन्तौ जघ्नतुर्युधि ॥ २३ ॥

अथ ताः अपि संक्रुद्धाः उद्यम्य कुरुनन्दन एकरका मुष्टि परिधौ चरन्तौ जघ्नतुः युधि ॥ २३ ॥

कुरुनन्दन - परीक्षित !
अथताः - फिरवे दोनों भाई
अपि संक्रुद्धाः - भी कुपित होकर
एरका मुष्टि - एरका घासकी मुट्ठी रूपी
परिधौ उद्यम्य - डण्डे उठाकर
युधि चरन्तौ - युद्ध करते हुए
जघ्नतुः - मारने लगे ॥ २३ ॥

ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् ।
स्पर्धाक्रोधः क्षयं निन्ये वैणवोऽग्निर्यथा वनम् ॥ २४ ॥

ब्रह्मशाप उपसृष्टानां कृष्णमाया आवृत आत्मनां स्पर्धा क्रोधः क्षयं निन्ये वैणवः अग्निः यथा वनम् ॥ २४ ॥

ब्रह्मशाप - ब्राह्मणोंका शाप
उपसृष्टानां - जिनके समीप आ गया था,
कृष्णमाया - श्रीकृष्णकी मायासे
आवृत आत्मनां - ७ की बुद्धि वाले (यादवों) का
यथा वैणवः - जैसे बांसोंकी रगड़से
अग्निः उत्पन्न अग्नि
वनं - वनको (जला दे)
स्पर्धा क्रोधः - स्पर्धा और क्रोध ने
क्षयं निन्ये - विनाश कर दिया ॥ २४ ॥

एवं नष्टेषु सर्वेषु कुलेषु स्वेषु केशवः ।
अवतारितो भुवो भार इति मेनेऽवशेषितः ॥ २५ ॥

एवं नष्टेषु सर्वेषु कुलेषु स्वेषु केशवः अवतारितः भुवः भार इति मेने अवशेषितः ॥ २५ ॥

एवं स्वेषु - इस प्रकार अपने
सर्वेषु कुलेषु - सम्पूर्ण कुलके
नष्टेषु केशवः - नष्ट होजानेपर केशवने
अवशेषितः - बचा हुआ
भुवः भार - पृथ्वीका भार
अवतारितः - उतार दिया
इति मेने - ऐसा माना ॥ २५ ॥

रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् ।
तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ २६ ॥

रामः समुद्रवेलायां योगं आस्थाय पौरुषं तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्य आत्मानं आत्मनि ॥ २६ ॥

रामः समुद्र- - बलरामजीने समुद्र
वेलायां किनारे
पौरुषं योगं - परमात्मासे एकत्वका
आस्थाय - आश्रय लेकर
आत्मानं आत्मनि - अपनेको आत्मामें
संयोज्य - मिलाकर
मानुष्यं लोकं - मनुष्य लोक
तत्याज - त्याग दिया ॥ २६ ॥

रामनिर्याणमालोक्य भगवान् देवकीसुतः ।
निषसाद धरोपस्थे तूष्णीमासाद्य पिप्पलम् ॥ २७ ॥

राम निर्याणं आलोक्य भगवान् देवकी सुतः निषसाद धरा उपस्थे तूष्णीं आसाद्य पिप्पलम् ॥ २७ ॥

राम निर्याणं - बलरामजीका परमपद गमन
आलोक्य - देखकर
भगवान् - भगवान
देवकी सुतः - देवकी-नन्दन
पिप्पलं आसाद्य - पीपलके वृक्षके नीचे पहुँचकर
धरा उपस्थे - पृथ्वीके ऊपर
तूष्णीं निषसाद - मौन होकर बैठ गये ॥ २७ ॥

बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया ।
दिशो वितिमिराः कुर्वन् विधूम इव पावकः ॥ २८ ॥

विभ्रत् चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया दिशः वितिमिराः कुर्वन् विधूम इव पावकः ॥ २८ ॥

चतुर्भुजं रूपं	- चतुर्भुज रूप
विभ्रत्	- धारण किये
विधूम-	- धूम्र हीन अग्निके
पावकः इव	समान
भ्राजिष्णु	- प्रकाशमय
स्वया प्रभया	- अपनी कान्तिसे
दिशः वितिमिराः	- दिशाओंको अन्धकारहीन
कुर्वन्	- कर रहे थे ॥ २८ ॥

श्रीवत्सांकं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् ।
कौशेयाम्बरयुग्मेन परिवीतं सुमंगलम् ॥ २९ ॥

श्रीवत्सांकं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसं कौशेय अम्बर युग्मेन परिवीतं सुमंगलम् ॥ २९ ॥

श्रीवत्स अंकं	- श्रीवत्स चिह्न युक्त,
घनश्यामं	- मेघके समान श्यामवर्ण,
सुमंगलं	- अत्यन्त मंगलमय
तप्त हाटक	- तपाये स्वर्णके समान
वर्चसं	- कान्तिवाले
युग्मेन	- दो रेशमी वस्त्र
कौशेय अम्बर	
परिवीतं	- पहिने हुए ॥ २९ ॥

सुन्दरस्मितवक्त्राब्जं नीलकुन्तलमण्डितम् ।
पुण्डरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३० ॥

सुन्दर स्मित वक्त्र अब्जं नील कुन्तल मण्डितं पुण्डरीक अभिराम अक्षं स्फुरन् मकरकुण्डलम् ॥ ३० ॥

नील कुन्तल	- काली अलकोंसे
मण्डितं	- अलंकृत
सुन्दर स्मित	- सुन्दर मुस्कान युक्त
वक्त्र अब्जं	- कमलमुख,
पुण्डरीक	- कमलके समान
अभिराम अक्षं	- मनोरम नेत्र
स्फुरन्-	- चमकते मकराकृति
मकर कुण्डलं	कुण्डल ॥ ३० ॥

कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकिरीटकटकांगदैः ।
हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ॥ ३१ ॥

कटिसूत्र ब्रह्मसूत्र किरीट कटक अंगदैः हार नूपुर मुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ॥ ३१ ॥

कटिसूत्र - करधनी,
ब्रह्मसूत्र - यज्ञोपवीत,
किरीट कटक - मुकुट, कंकण,
अंगदैः - अंगद,
हार, नूपुर - हार, नूपुर
मुद्राभिः - अंगूठियों तथा
कौस्तुभेन - कौस्तुभ मणि द्वारा
विराजितं - अत्यन्त सुशोभित ॥ ३१ ॥

वनमालापरीतांग मूर्तिमद्भिःर्निजायुधैः ।
कृत्वोरौ दक्षिणे पादमासीनं पंकजारुणम् ॥ ३२ ॥

वनमाला परीत अंग मूर्तिमद्भिः निज आयुधैः कृत्वा उरौ दक्षिणे पादं आसीन् पंकज अरुणम् ॥ ३२ ॥

वनमाला - वनमालासे युक्त
अंग - श्रीअंग
मूर्तिमद्भिः - मूर्तिमान
निजआयुधैः - अपने आयुधोंसे
परीत - घिरे हुए
दक्षिणे उरौ - दाहिनी जंघापर
पंकज अरुणं - कमलके समान लाल
पादं कृत्वा - (वाम) चरण रखकर
आसीनं - बैठे हुए थे ॥ ३२ ॥

मुसलावशेषायः खण्डकृतेषुर्लुब्धको जरा ।
मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशंकया ॥ ३३ ॥

मुसल अवशेष अयः खण्ड कृत इषुः लुब्धकः जरा मृगस्य आकारं तत् चरणं विव्याध मृग शंकया ॥ ३३ ॥

मुसल अवशेष - मूसलसे बचा भाग
अयः खण्ड- - लोहेका टुकड़ा बाण
इषुःकृत (की नोक) बनाने वाले
लुब्धकः जरा - व्याध जराने
तत् मृगस्य - उसके मृग (मुख)
आकारं - के आकार वाले
चरणं - चरणको
मृग शंकया - मृग समझकर
विव्याध - बींध दिया ॥ ३३ ॥

चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृतकिल्बिषः ।
भीतः पपात शिरसा पादयोरसुरद्विषः ॥ ३४ ॥

चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृत किल्बिषः भीतः पपात शिरसा पादयोः असुर द्विषः ॥ ३४ ॥

तं पुरुषं - उसे पुरुष और
चतुर्भुजं दृष्ट्वा - चतुर्भुज देखकर
स कृत किल्विषः - वह अपराध करने वाला
भीतः असुर - डरकर उन असुर
द्विषः द्वेषीके
पादयोः शिरसा - चरणोंपर सिर रखकर
पपात - गिर पड़ा ॥ ३४ ॥

अजानता कृतमिदं पापेन मधुसूदन ।
क्षन्तुमर्हसि पापस्य उत्तमश्लोक मेऽनघ ॥ ३५ ॥

अजानता कृतं इदं पापेन मधुसूदन क्षन्तुं अर्हसि पापस्य उत्तम श्लोक मे अनघ ॥ ३५ ॥

मधुसूदन - मधुसूदन !
अनघ - निष्पाप
उत्तमश्लोक - पुण्यकीर्ति !
मे पापेन - मुझ पापीने
अजानता - अनजानमें
इदं कृतं - यह किया है
पापस्य - इस पापीको (आपको)
क्षन्तुं अर्हसि - क्षमा कर देना चाहिए ॥ ३५ ॥

यस्यानुस्मरणं नृणामज्ञानध्वान्तनाशनम् ।
वदन्ति तस्य ते विष्णो मयासाधु कृतं प्रभो ॥ ३६ ॥

यस्य अनुस्मरणं नृणां अज्ञान ध्वान्त नाशनं वदन्ति तस्य ते विष्णो मया असाधु कृतं प्रभो ॥ ३६ ॥

विष्णो प्रभो	- सर्वव्यापक स्वामी !	**नाशनं वदन्ति**	- नाशक (महात्मा लोग) कहते हैं
यस्य अनुस्मरणं	- जिनका बराबर स्मरण	**तस्य ते मया**	- उस आपका मैंने
नृणां अज्ञान-ध्वान्त	- मनुष्योंके अज्ञानान्धकारका	**असाधु कृतं**	- अनिष्ट कर दिया ॥ ३६ ॥

तन्माऽऽशु जहि वैकुण्ठ पाप्मानं मृगलुब्धकम् ।
यथा पुनरहं त्वेवं न कुर्यां सदतिक्रमम् ॥ ३७ ॥

तत् मा आशु जहि वैकुण्ठ पाप्मानं मृग लुब्धकं यथा पुनः अहं तु एवं न कुर्यां सत् अतिक्रमम् ॥ ३७ ॥

वैकुण्ठ	- वैकुण्ठनाथ !	**यथा अहं पुनः**	- जिससे मैं फिर
तत् मा	- अतः मुझ	**एवं तु**	- इस प्रकार तो
मृग लुब्धकं	- मृगोंको मारने वाले	**सत् अतिक्रमं**	- महापुरुषोंका अपराध
पाप्मानं	- पापीको		
आशु जहि	- शीघ्र मार दीजिये	**न कुर्यां**	- नहीं कर सकूं ॥ ३७ ॥

यस्यात्मयोगरचितं न विदुर्विरिञ्चो
रुद्रादयोऽस्य तनयाः पतयो गिरां ये ।
त्वन्माययाऽपिहितदृष्टय एतदञ्जः
किं तस्य ते वयमसद्गतयो गृणीमः ॥ ३८ ॥

यस्य आत्मयोग रचितं न विदुः विरिञ्चः रुद्र आदयः अस्य तनयाः पतयः गिरां ये त्वत् मायया पिहित दृष्टय एतत् अञ्जः किं तस्य ते वयं असत् गतयः गृणीमः ॥ ३८ ॥

यस्य आत्म - जिनकी अपनी
योग रचितं - योगमायाका विलास
त्वत् मायया- - आपकी मायासे
पिहित आच्छादित
दृष्टय ये - दृष्टि जो
गिरां पतयः - विद्याओंके स्वामी
एतत् विरिञ्चः - ये ब्रह्माजी और
अस्य तनयाः - इनके पुत्र
रुद्र आदयः - रुद्र आदि
अञ्जः न विदुः - सरलतासे नहीं जानपाते
तस्य ते वयं - उस आपकी हम
असत् गतयः - पापयोनिके लोग
किं गृणीमः - क्या स्तुति कर सकते हैं ॥ ३८ ॥

श्रीभगवानुवाच—

मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे ।
याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥ ३९ ॥

मा भैः जरे त्वं उत्तिष्ठ काम एष कृतः हि मे याहि त्वं मत् अनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥ ३९ ॥

जरे त्वं मा भैः - जरा ! तुम डरो मत,
उत्तिष्ठ - उठो !
हि एष मे - क्योंकि यह मेरा
कामकृतः - चाहा हुआ (तुमने) किया है (अतः)
मत् अनुज्ञातः - मेरी आज्ञासे
सुकृतिनां पदं - पुण्यात्माओंके स्थान
त्वं याहि - तुम जाओ ॥ ३९ ॥

श्रीशुक उवाच—१

इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छाशरीरिणा ।
त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥ ४० ॥

इति आदिष्टः भगवता कृष्णेन इच्छा शरीरिणा त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥ ४० ॥

---

१. यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इच्छा शरीरिणा - स्वेच्छानुसार शरीर धारी
भगवता कृष्णेन - भगवान श्रीकृष्णके
इति आदिष्टः - ऐसा आदेश देनेपर
तंत्रिः परिक्रम्य - उनकी तीन बार परिक्रमा करके
नत्वा विमानेन - नमस्कार करके विमानमें चढ़कर
दिवं ययौ - स्वर्ग चला गया
॥ ४० ॥

दारुकः कृष्णपदवीमन्विच्छन्नधिगम्य ताम् ।
वायुं तुलसिकामोदमाघ्रायाभिमुखं ययौ ॥ ४१ ॥

दारुकः कृष्ण पदवीं अन्विच्छन् न अधिगम्य तां वायुं तुलसिका आमोदं आघ्राय अधिमुखं ययौ ॥ ४१ ॥

दारुकः - दारुक
न अधिगम्य - (उन्हें) न पाकर
कृष्ण पदवीं - श्रीकृष्णका स्थान
अन्विच्छन् - अन्वेषण करता हुआ
तां तुलसिका - उस तुलसीकी
आमोदं वायुं - सुगन्धिवाली वायुको
आघ्राय - सूंघकर
अभिमुखं ययौ - उसके सामने गया
॥ ४१ ॥

तं तत्र तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं
ह्यश्वत्थमूले कृतकेतनं पतिम् ।
स्नेहप्लुतात्मा निपपात पादयो
रथादवप्लुत्य सबाष्पलोचनः ॥ ४२ ॥

तं तत्र तिग्मद्युतभिः आयुधैः वृतं हि अश्वत्थ मूले कृत केतनं पतिं स्नेह प्लुतआत्मा निपपात पादयो रथात् अवप्लुत्य स वाष्प लोचनः ॥ ४२ ॥

तत्र अश्वत्थमूले - वहां पीपलकी जड़के पास
कृत केतनं - आवास बनाये (बैठे)
तिग्मद्युभिः - तीक्ष्ण कान्ति वाले
आयुधैः वृतं - आयुधोंसे घिरे
तं पतिं - उन अपने स्वामीके
पादयो - चरणोंपर
हि स्नेह - क्योंकि स्नेहमें चित्त
प्लुत आत्मा निमग्न था
बाष्प लोचनः - अश्रु भरे नेत्र
स रथात् - वह रथसे
अवप्लुत्य - कूदकर
निपपात - गिर पड़ा ॥ ४२ ॥

अपश्यतस्त्वच्चरणाम्बुजं प्रभो
दृष्टिः प्रणष्टा तमसि प्रविष्टा ।
दिशो न जाने न लभे च शान्तिं
यथा निशायामुडुपे प्रणष्टे ॥ ४३ ॥

अपश्यतः त्वत् चरणाम्बुजं प्रभो दृष्टिः प्रणष्टा तमसि प्रविष्टा दिशः न जाने न लभे च शान्तिं यथा निशायां उडुपे प्रणष्टे ॥ ४३ ॥

प्रभो - (बोला) स्वामी !
यथा निशायां - जैसे रात्रिमें
उडुपे प्रणष्टे - चन्द्रमाके अस्त हो जानेपर (यात्रीकी दशा होती है)
त्वत् चरणाम्बुजं - आपके चरण कमलोंको
अपश्यतः - न देखकर (मेरी)
दृष्टिः प्रणष्टा - दृष्टि नष्ट होगयी,
तमसि प्रविष्टा - अन्धकारमें चली गयी,
दिशः न जाने - दिशाओंको नहीं जानता हूं
शान्तिं च न लभे - शान्ति भी नहीं पाता हूँ ॥ ४३ ॥

इति ब्रुवति सूते वै रथो गरुडलाञ्छनः ।
खमुत्पपात राजेन्द्र साश्वध्वज उदीक्षतः ॥ ४४ ॥

इति ब्रुवति सूते वै रथः गरुड लाञ्छनः खं उत्पपात राजेन्द्र स अश्व ध्वज उदीक्षतः ॥ ४४ ॥

राजेन्द्र - महाराज !
इति सूते ब्रुवति - इस प्रकार सारथीके कहते समय
वै उदीक्षतः - उसके निश्चित रूपसे देखते हुए
गरुड लाञ्छनः - गरुड़ चिह्न युक्त
ध्वज ध्वजा वाला
रथ स अश्व - रथ घोड़ोंके साथ
खं उत्पपात - आकाशमें उड़ गया
॥ ४४ ॥

तमन्वगच्छन् दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च ।
तेनातिविस्मितात्मानं सूतमाह जनार्दनः ॥ ४५ ॥

तं अनुअगच्छन् दिव्यानि विष्णु प्रहरणानि च तेन अति विस्मित आत्मानं सूतं आह जनार्दनः ॥ ४५ ॥

दिव्यानि - दिव्य
विष्णु- - भगवान विष्णुके
प्रहरणानि च आयुध भी
तं अनुअगच्छन् - उस (रथ) के पीछे चले गये
तेन अति- - उससे अत्यन्त चकित
विस्मित
आत्मानं सूतं - चित्त सारथीसे
जनार्दनः आह - जनार्दनने कहा
॥ ४५ ॥

गच्छ द्वारवतीं सूत ज्ञातीनां निधनं मिथः ।
संकर्षणस्य निर्याणं बन्धुभ्यो ब्रूहि मद्दशाम् ॥ ४६ ॥

गच्छ द्वारवतीं सूत ज्ञातीनां निधनं मिथः संकर्षणस्य निर्याणं बन्धुभ्यः ब्रूहि मत् दशाम् ॥ ४६ ॥

सूत - 'सारथी !
द्वारवतीं गच्छ - द्वारिका जाओ ! (वहां)
बन्धुभ्यः - सम्बन्धियोंसे
ज्ञातीनां मिथः - जाति वालोंका परस्पर
निधनं - मारा जाना
संकर्षणस्य - बलरामजीका
निर्याणं - परमपद गमन और
मत् दशां ब्रूहि - मेरी दशा बतलाओ
॥ ४६ ॥

द्वारकायां च न स्थेयं भवद्भिश्च स्वबन्धुभिः ।
मया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ ४७ ॥

द्वारकायां च न स्थेयं भवद्भिः च स्व बन्धुभिः मया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ ४७ ॥

स्व बन्धुभिः	- अपने सम्बन्धियों सहित	**मया त्यक्तां**	- मेरी छोड़ी
भवद्भिः च	- तुम लोगोंको भी	**यदुपुरीं**	- यादवपुरीको
द्वारकायां	- द्वारिकापुरीमें	**समुद्रः-**	- समुद्र डुबा देगा
न च स्थेयं	- नहीं ही ठहरना चाहिए	**प्लावयिष्यति**	॥ ४७ ॥

स्वं स्वं परिग्रहं सर्वे आदाय पितरौ च नः ।
अर्जुनेनाविताः सर्व इन्द्रप्रस्थं गमिष्यथ ॥ ४८ ॥

स्वं स्वं परिग्रहं सर्वे आदाय पितरौ च नः अर्जुनेन अविताः सर्व इन्द्रप्रस्थं गमिष्यथ ॥ ४८ ॥

स्वं स्वं परिग्रहं	- अपना अपना परिवार	**अर्जुनेन अविताः**	- अर्जुन द्वारा रक्षित होकर
च नः पितरौ	- तथा हमारे माता-पिताको	**सर्व इन्द्रप्रस्थं**	- सब इन्द्रप्रस्थ
आदाय सर्वे	- लेकर सब लोग	**गमिष्यथ**	- चले जाना ॥ ४८ ॥

त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः ।
मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज ॥ ४९ ॥

त्वं तु मत् धर्मं आस्थाय ज्ञान निष्ठ उपेक्षकः मत् माया रचनां एतां विज्ञाय उपशमं व्रज ॥ ४९ ॥

त्वं तु - तुम तो
मत् धर्मं - मेरे (भागवत) धर्मपर
आस्थाय - स्थित होकर
उपेक्षकः - (सबकी) उपेक्षा करके
ज्ञान निष्ठ - ज्ञान निष्ठासे
एतां - इस संसारको
मत् माया - मेरी मायाकी
रचनां विज्ञाय - सृष्टि जानकर
उपशमं व्रज - शान्त हो जाओ
॥ ४९ ॥

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः ।
तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ॥ ५० ॥

इति उक्तः तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः तत् पादौ शीर्ष्ण्य उपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ॥ ५० ॥

इति उक्तः - ऐसा कहे जानेपर
तं परिक्रम्य - उनकी परिक्रमा करके
पुनः पुनः - बार-बार
नमस्कृत्य - प्रणाम करके
तत् पादौ - उनके चरणोंपर
शीर्ष्ण्य उपाधाय - मस्तक रखकर
दुर्मनाः - दुःखी चित्त
पुरीं प्रययौ - द्वारिकापुरीको चल पड़ा
॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे त्रिविंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

अथ तत्रागमद् ब्रह्मा भवान्या च समं भवः ।
महेन्द्रप्रमुखा देवा मुनयः सप्रजेश्वराः ॥ १ ॥

अथ तत्र अगमत् ब्रह्मा भवान्या च समं भवः महेन्द्र प्रमुखा देवा मुनयः स प्रजेश्वराः ॥ १ ॥

अथ तत्र ब्रह्मा - फिर वहां ब्रह्माजी
च भवान्या समं - तथा पार्वतीके साथ
भवः - शंकरजी
महेन्द्र प्रमुखा- - इन्द्र जिनमें मुख्य हैं
देवा वे देवता
सप्रजेश्वराः - प्रजापतियोंके साथ
मुनयः अगमत् - मुनिगण आये ॥ १ ॥

पितरः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ।
चारणाः यक्षरक्षांसि किन्नराप्सरसो द्विजाः ॥ २ ॥

पितरः सिद्ध गन्धर्वा विद्याधर महा उरगाः चारणाः यक्ष रक्षांसि किन्नर अप्सरसः द्विजाः ॥ २ ॥

पितरः सिद्ध - पितृगण, सिद्धगण,
गन्धर्वा - गन्धर्व,
विद्याधर - विद्याधर,
महा उरगाः - बड़े-बड़े नाग,
चारणाः यक्ष - चारण, यक्ष,
रक्षांसि किन्नर - राक्षस, किन्नर,
अप्सरसः द्विजाः - अप्सरायें, ब्राह्मण ॥ २ ॥

द्रष्टुकामा भगवतो निर्याणं परमोत्सुकाः ।
गायन्तश्च गृणन्तश्च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥ ३ ॥

द्रष्टुकामा भगवतः निर्याणं परम उत्सुकाः गायन्तः च गृणन्त च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥ ३ ॥

परम उत्सुकाः	- अत्यन्त उत्सुक होकर	**शौरेः जन्म**	- श्रीकृष्णके अवतार
भगवतः निर्याणं	- भगवानके परमपद गमनको	**च कर्म च**	- तथा कर्मोंको भी
		गायन्तः च	- गाते हुए एवं
द्रष्टुकामा	- देखनेकी इच्छासे (आये)	**गृणन्तः च**	- वर्णन करते हुए (आये) ॥ ३ ॥

ववृषुः पुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः ।
कुर्वन्तः संकुलं राजन् भक्त्या परमया युताः ॥ ४ ॥

ववृषुः पुष्प वर्षाणि विमान अवलिभिः नभः कुर्वन्तः संकुलं राजन् भक्त्या परमया युताः ॥ ४ ॥

राजन्	- राजन्	**कुर्वन्त**	- करते हुए
विमान-	- विमानोंके झुण्डोंसे	**परमया भक्त्या**	- परम भक्ति
अवलिभिः		**युतः पुष्पवर्षाणि**	- युक्त पुष्पोंकी वर्षा
नभः संकुलं	- आकाशको भीड़ भरा	**ववृषुः**	- करने लगे ॥ ४ ॥

भगवान् पितामहं वीक्ष्य विभूतीरात्मनो विभुः ।
संयोज्यात्मनि चात्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत् ॥ ५ ॥

भगवान् पितामहं वीक्ष्य विभूतीः आत्मनः विभुः संयोज्य आत्मनि च आत्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत् ॥ ५ ॥

विभुः भगवान्	- सर्व व्यापक भगवानने	**वीक्ष्य आत्मनः**	- देखकर अपनेको
पितामहं	- ब्रह्माजी एवं	**आत्मानं संयोज्य**	- आत्म स्वरूपमें मिलाकर
आत्मनः	- अपनी विभूतियों	**पद्मनेत्रे**	- कमललोचन
विभूतीः	(देवताओं) के	**न्यमीलयत्**	- बन्द कर लिये ॥ ५ ॥

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमंगलम् ।
योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत् स्वकम् ॥ ६ ॥

लोक अभिरामां स्वतनुं धारणा ध्यान मंगलं योगधारणया आग्नेय्या अदग्ध्वा धाम आविशत् स्वकम् ॥ ६ ॥

लोक अभिरामां	- त्रिभुवन सुन्दर	**योग आग्नेय्या**	- योगकी आग्नेयी
धारणा ध्यान	- धारणा और ध्यानका	**धारणया**	- धारणासे
मंगलं	- मंगलमय आधार	**अदग्ध्वा**	- बिना जलाये ही
स्वतनुं	- अपने श्री विग्रहको	**स्वकं धाम**	- अपने धाममें
		आविशत्	- प्रविष्ट होगये ॥ ६ ॥

दिवि दुन्दुभयो नेदुः पेतुः सुमनसश्च खात् ।
सत्यं धर्मो धृतिर्भूमेः कीर्तिः श्रीश्चानु तं ययुः ॥ ७ ॥

दिवि दुन्दुभयः नेदुः पेतुः सुमनसः च खात् सत्यं धर्मः धृतिः भूमेः कीर्तिः श्रीः च अनुतं ययुः ॥ ७ ॥

दुन्दुभयो	- दुन्दुभियां	**भूमेः सत्यं**	- पृथ्वीसे सत्य,
दिविः	- स्वर्गमें बजने लगीं	**धर्मः धृतिः**	- धर्म, धृति,
च खात्	- तथा आकाशसे	**कीर्तिः च श्रीः**	- कीर्ति एवं लक्ष्मी
सुमनसः पेतुः	- पुष्पवर्षा होने लगी,	**तं अनु ययुः**	- उनके पीछे चली गयीं ॥ ७ ॥

देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशन्तं स्वधामनि ।
अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥ ८ ॥

देव आदयः ब्रह्म मुख्या न विशन्तं स्व धामनि अविज्ञात गतिं कृष्णं ददृशुः च अति विस्मिताः ॥ ८ ॥

अविज्ञात गतिं	- जिनकी गति जानी नहीं जाती	**देव आदयः**	- देवता आदि
कृष्णं स्वधामनि	- उन श्रीकृष्णके अपने धाममें	**ब्रह्ममुख्या**	- जिनमें ब्रह्माजी प्रमुख थे
विशन्तं	- प्रवेश करते हुए	**ददृशुः च न**	- देख भी नहीं सके
		अति विस्मिताः	- (इससे) अत्यन्त चकित हुए ॥ ८ ॥

सौदामन्या यथाऽऽकाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलम् ।
गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥ ९ ॥

सौदामन्या यथा आकाशे यान्त्या हित्वा अभ्र मंडलम् गतिः न लक्ष्यते मर्त्यैः तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥ ९ ॥

यथा अभ्रमण्डलं - जैसे मेघ मण्डलको
हित्वा आकाशे - त्यागकर आकाशमें
यान्त्या सौदामन्या - जाती बिजलीकी

गतिः मर्त्यैः - गति मनुष्यों द्वारा
लक्ष्यते न - पहिचानी नहीं जाती
तथा दैवतैः - उसी प्रकार देवताओं द्वारा
कृष्णस्य - श्रीकृष्णकी (गति जानी नहीं गयी) ॥ ९ ॥

ब्रह्मरुद्रादयस्ते तु दृष्ट्वा योगगतिं हरेः ।
विस्मितास्तां प्रशंसन्तः स्वं स्वं लोकं ययुस्तदा ॥ १० ॥

ब्रह्म रुद्र आदयः ते तु दृष्ट्वा योग गतिं हरेः विस्मिताः तां प्रशंसन्तः स्वं स्वं लोकं ययुः तदा ॥ १० ॥

ते ब्रह्म रुद्र - वे ब्रह्मा शिव
आदयः तु - आदि तो
हरेः योगगतिं - श्री हरिकी योगशक्ति
दृष्ट्वा विस्मिताः - देखकर चकित होकर

तां प्रशंसन्तः - उसकी प्रशंसा करते हुए
तदा स्वं स्वं - आनन्दपूर्वक अपने अपने
लोकं ययुः - लोक चले गये ॥ १० ॥

राजन् परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा
मायाविडम्बनमवेहि यथा नटस्य ।
सृष्ट्वाऽऽत्मनेदमनुविश्य विहृत्य चान्ते
संहृत्य चात्ममहिमोपरतः स आस्ते ॥ ११ ॥

राजन् परस्य तनु भृत् जनन अपि ईहा माया विडम्बनं अवेहि यथा नटस्य सृष्ट्वा आत्मना इदं अनु विश्य विहृत्य च अन्ते संहृत्य च आत्म महिमा उपरतः स आस्ते ॥ ११ ॥

राजन् - राजन् !
परस्य तनुभृत् - परम पुरुषका शरीर धारी होकर
जनन - उत्पन्न होनेकी
ईहा अपि - लीला भी
यथा नटस्य - जैसे नटकी होती है
माया विडम्बनं - मायाका खेल
अवेहि - समझो,
आत्मना इदं - अपने आपसे इस जगतकी
सृष्ट्वा अनु- - सृष्टि करके (इसमें) फिर
विश्य प्रवेश करके
विहृत्य च - खेलकर भी
अन्ते संहृत्य - अन्तमें संहार करके
आत्म महिमा - अपनी महिमामें
स उपरतः - वे उपराम होकर
आस्ते - स्थित हो जाते हैं

॥११॥

मर्तेयन यो गुरुसुतं यमलोकनीतं
त्वां चानयच्छरणदः परमास्त्रदग्धम् ।
जिग्येऽन्तकान्तकमपीशमसावनीशः
किं स्वावने स्वरनयन्मृगयुं सदेहम् ॥ १२ ॥

मर्त्येन यः गुरु सुतं यमलोक नीतं त्वां च आनयत् शरणदः परम अस्त्र दग्धं जिग्ये अन्तकान्तकम् अपि ईशं असाः अवनीशः किं स्व अवने स्वः अनयन् मृगयुं सदेहम् ॥ १२ ॥

यः शरणदः	- जो शरणदाता
गुरु सुतं	- गुरु-पुत्रको
मर्त्येन	- मनुष्य शरीरसे
यमलोक नीतं	- यमलोकसे ले आये,
परम अस्त्र-	- सर्वश्रेष्ठ अस्त्र
दग्धं	(ब्रह्मास्त्र) से जले
त्वां च-	- तुम्हें भी ले आये
अनयत्	(बचाया)
अनन्तकं अपि	- महाकाल
ईशं असाः	- शिवको भी इन
अवनि ईशः	- भूदेवीके स्वामीने
जिग्ये	- (युद्धमें) जीत लिया,
किं	- और क्या कहें,
स्व अवने	- अपनेपर प्रहार करने वाले
मृगयुं सदेहं	- व्याधको सशरीर
स्वः अनयन्	- स्वर्ग भेज दिया ॥१२॥

तथाप्यशेषस्थितिसम्भवाप्यये-
ष्वनन्यहेतुर्यदशेषशक्तिधृक् ।
नैच्छत् प्रणेतुं वपुरत्र शेषितं
मर्तेयन किं स्वस्थगतिं प्रदर्शयन् ॥ १३ ॥

तथा अपि अशेष स्थिति सम्भव अप्ययेषु अनन्य हेतुः यत् अशेष शक्तिं धृक् न इच्छत् प्रणेतुं वपुः अत्र शेषितं मर्त्येन किं स्वस्थ गतिं प्रदर्शयन् ॥ १३ ॥

यत् अशेष	- क्योंकि समस्त
शक्ति धृक्	- शक्तियोंके धारणकर्ता हैं
अशेष	- सम्पूर्ण जगत्की
स्थिति सम्भव	- स्थिति, सृष्टि,
अप्ययेषु	- प्रलयके
अनन्यहेतुः	- एकमात्र कारण हैं
तथा अपि	- ऐसा होनेपर भी
अत्र वपुः	- इस लोकमें शरीरको
शेषितं	- बचा रखना
न इच्छत्	- नहीं चाहा
मर्त्येन	- मनुष्य शरीरकी
स्वस्थ गतिं	- (सदा) स्वस्थ दशा (में यहां बनाये रखना)
प्रदर्शयन् किं	- दिखलानेसे क्या लाभ ॥ १३ ॥

विशेष - अतः भगवान सशरीर अपने धाम पधारे ।

यः एतां प्रातरुत्थाय कृष्णस्य पदवीं पराम् ।
प्रयतः कीर्तयेद् भक्त्या तामेवाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १४ ॥

यः एतां प्रातः उत्थाय कृष्णस्य पदवीं परां प्रयतः कीर्तयेत् भक्त्या तां एव आप्नोति अनुत्तमाम् ॥ १४ ॥

यः प्रातः- - जो प्रातः काल उठकर उत्थाय
एतां कृष्णस्य - इस श्रीकृष्णके
परां पदवीं - परमपद गमनको
भक्त्या प्रयतः- भक्ति सहित एकाग्र होकर
कीर्तयेत् - कीर्तन करेगा
तां अनुत्तमां - उस सर्वोत्तम पदको
एव आप्नोति - ही पावेगा ॥ १४ ॥

दारुको द्वारकामेत्य वसुदेवोग्रसेनयोः ।
पतित्वा चरणावस्त्रैर्न्यषिञ्चत् कृष्णविच्युतः ॥ १५ ॥

दारुकः द्वारकां एत्य वसुदेव उग्रसेनयोः पतित्वा चरणौ अस्त्रैः न्यषिञ्चत् कृष्णविच्युतः ॥ १५ ॥

कृष्ण विच्युतः - श्रीकृष्णसे वियुक्त
दारुकः - दारुकने
द्वारकां एत्य - द्वारिका आकर
वसुदेव - वसुदेव एवं
उग्रसेनयोः - उग्रसेनके
चरणौः पतित्वा - चरणोंपर गिरकर
अस्त्रैः- - उन्हें आंसुओंसे भिगा
न्यषिञ्चत् दिया ॥ १५ ॥

कथयामास निधनं वृष्णीनां कृत्स्नशो नृप ।
तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदया जनाः शोकविमूर्च्छिताः ॥ १६ ॥

कथयामास निधनं वृष्णीनां कृत्स्नशः नृप तत् श्रुत्वा उद्विग्न हृदया जनाः शोक विमूर्च्छिताः ॥ १६ ॥

कृत्स्नशः वृष्णीनां - समस्त यदुवंशियोंका
निधनं - मारा जाना बतलाया
कथयामास
तत् श्रुत्वा - उसे सुनकर
उद्विग्न हृदया - व्याकुल चित्त
जनाः शोक - लोग शोकसे
विमूर्च्छिताः - मूर्छित होगये ॥ १६ ॥

तत्र स्म त्वरिता जग्मुः कृष्णविश्लेषविह्वलाः ।
व्यसवः शेरते यत्र ज्ञातयो घ्नन्त आननम् ॥ १७ ॥

तत्र स्म त्वरिता जग्मुः कृष्ण विश्लेष विह्वलाः व्यसवः शेरते यत्र ज्ञातयः घ्नन्त आननम् ॥ १७ ॥

कृष्ण विश्लेष - श्रीकृष्णके वियोगसे
विह्वलाः - व्याकुल जातिके लोग
ज्ञातयः
आननं घ्नन्त - अपना सिर पीटते हुए
यत्र व्यसवः - जहां निष्प्राण लोग
शेरते पड़े थे
तत्र त्वरिता - वहां शीघ्रता पूर्वक
जग्मुः स्म - पहुँच गये ॥ १७ ॥

देवकी रोहिणी चैव वसुदेवस्तथा सुतौ ।
कृष्णरामावपश्यन्तः शोकार्ता विजहुः स्मृतिम् ॥ १८ ॥

देवकी रोहिणी च एव वसुदेवः तथा सुतौ कृष्णरामौ अपश्यन्तः शोक आर्ताः विजहुः स्मृतिम् ॥ १८ ॥

देवकी च-
रोहिणी - देवकी एवं रोहिणी
तथा वसुदेव-
एव - तथा वसुदेवजी भी
सुतौ कृष्णरामौ - अपने दोनों पुत्र श्रीकृष्ण-बलरामको
अपश्यन्तः - न देखकर
शोक आर्ताः - शोकसे व्याकुल होकर
स्मृतिं विजहुः - संज्ञा छोड़ चुके (मूर्छित होगये) ॥ १८ ॥

प्राणांश्च विजहुस्तत्र भगवद्विरहातुराः ।
उपगुह्य पतींस्तात चितामारुरुहुः स्त्रियः ॥ १९ ॥

प्राणान् च विजहुः तत्र भगवत् विरह आतुराः उपगुह्य पतीन् तात चितां आरुरुहुः स्त्रियः ॥ १९ ॥

तात - प्रिय परीक्षित्
भगवत् विरह - भगवानके वियोगसे
आतुराः - व्याकुल होकर
तत्र प्राणान् च - वहीं प्राण भी
विजहुः - त्याग दिये
स्त्रियः पतीन् - (दूसरी) स्त्रियां (अपने) पतियोंका
उपगुह्य - आलिंगन करके
चिंता आरुरुहुः - चिताओंपर चढ़ गयीं ॥ १९ ॥

रामपत्न्यश्च तद्देहमुपगुह्याग्निमाविशन् ।
वसुदेवपत्न्यस्तद्गात्रं प्रद्युम्नादीन् हरेः स्नुषाः ।
कृष्णपत्न्योऽविशन्नाग्निं रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः ॥ २० ॥

रामपत्न्यः च तत् देहं उपगुह्य अग्निं आविशन् वसुदेवपत्न्यः तत् गात्रं प्रद्युम्न आदीन् हरेः स्नुषाः कृष्णपत्न्यः अविशन् अग्निं रुक्मिणि आद्याः तत् आत्मिकाः ॥ २० ॥

रामपत्न्यः च - बलरामजीकी पत्नियां भी
तत् देहं - उनके शरीरको तथा
वसुदेवपत्न्यः - वसुदेवजीकी (शेष) पत्नियां
तत् गात्रं - उनके शरीरका एवं
हरेः स्नुषाः - श्रीकृष्णकी पुत्र वधुएँ
प्रद्युम्न आदीन् - प्रद्युम्न आदिका
उपगुह्य - आलिंगन करके
अग्निं- अविशन् - अग्निमें प्रवेश कर गयीं
रुक्मिणि आद्याः - रुक्मिणी आदि
तत् आत्मिकाः - उन्हींमें चित्त लगाये
कृष्णपत्न्यः - श्रीकृष्णकी पटरानियां
अग्निं आविशन् - (श्रीकृष्णका शरीर न होनेसे) अग्निमें प्रवेश कर गयीं ॥ २० ॥

अर्जुनः प्रेयसः सख्युः कृष्णस्य विरहातुरः ।
आत्मानं सान्त्वयामास कृष्णगीतैः सदुक्तिभिः ॥ २१ ॥

अर्जुनः प्रेयसः सख्युः कृष्णस्य विरह आतुरः आत्मानं सान्त्वयामास कृष्णगीतैः सत् उक्तिभिः ॥ २१ ॥

प्रेयसः सख्युः - प्रियतम सखा
कृष्णस्य - श्रीकृष्णके
विरह आतुरः - वियोगसे व्याकुल
अर्जुनः - अर्जुनने
कृष्णगीतैः - श्रीकृष्ण द्वारा वर्णित
सत् उक्तिभिः - उत्तम उक्तियोंसे
आत्मानं - अपनेको
सान्त्वयामास - सान्त्वना दी ॥ २१ ॥

बन्धूनां नष्टगोत्राणामर्जुनः साम्परायिकम् ।
हतानां कारयामास यथावदनुपूर्वशः, ॥ २२ ॥

बन्धूनां नष्ट गोत्राणां अर्जुनः साम्परायिकं हतानां कारयामास यथावत् अनुपूर्वशः ॥ २२ ॥

हतानां बन्धूनां - मारे गये सम्बन्धियोंमें
नष्ट गोत्राणां - जिनके कुलमें कोई नहीं था उनका
यथावत् - विधिपूर्वक
अनुपूर्वशः - पूर्वापरके क्रमानुसार
अर्जुनः - अर्जुनने
साम्परायिकं - मरणोत्तर क्रिया
कारयामास - करवायी ॥ २२ ॥

द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत् क्षणात् ।
वर्जयित्वा महाराज श्रीमद्भगवदालयम् ॥ २३ ॥

द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रः अप्लावयत् क्षणात् वर्जयित्वा महाराज श्रीमत् भगवत आलयम् ॥ २३ ॥

महाराज - महाराज !
हरिणा त्यक्तां - श्रीहरि द्वारा त्यागी हुई
द्वारकां - द्वारिकापुरीको
श्रीमत् भगवत् - श्रीमान भगवानके
आलयं- - भवनको
वर्जयित्वा छोड़कर
समुद्रः क्षणात् - समुद्रने क्षणभरमें
अप्लावयत् - सब ओरसे डुबा दिया ॥ २३ ॥

नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान् मधुसूदनः ।
स्मृत्याशेषाशुभहरं सर्वमंगलमंगलम् ॥ २४ ॥

नित्यं सन्निहितः तत्र भगवान् मधुसूदनः स्मृत्या अशेष अशुभ हरं सर्वमंगल मंगलम् ॥ २४ ॥

स्मृत्या	-	स्मरण करनेसे	**भगवान्**	-	भगवान
अशेष अशुभहरं	-	सम्पूर्ण पापोंके नाशक	**मधुसूदनः**	-	मधुसूदन
सर्वमंगल	-	समस्त मंगलोंको	**तत्र नित्यं**	-	वहां नित्य
मंगलं	-	मंगल बनाने वाले	**सन्निहितः**	-	उपस्थित रहते हैं ॥ २४ ॥

स्त्रीबालवृद्धानादाय हतशेषान् धनञ्जयः ।
इन्द्रप्रस्थं समावेश्य वज्रं तत्राभ्यषेचयत् ॥ २५ ॥

स्त्रीबाल वृद्धान् आदाय हत शेषान् धनञ्जयः इन्द्रप्रस्थं सम आवेश्य वज्रं तत्र अभ्यषेचयत् ॥ २५ ॥

हत शेषान्	-	मरनेसे बचे हुए	**इन्द्रप्रस्थं**	-	(वर्तमान दिल्ली) इन्द्रप्रस्थमें
स्त्री बाल-	-	स्त्रियों, बालकों,	**सम आवेश्य**	-	भली प्रकार बसाकर
वृद्धान्		वृद्धोंको	**तत्र वज्रं**	-	वहां (अनिरुद्धके पुत्र) वज्रका
आदाय	-	साथ लेकर	**अभ्यषेचयत्**	-	राज्याभिषेक कर दिया ॥ २५ ॥
धनञ्जयः	-	अर्जुनने			

श्रुत्वा सुहृद्वधं राजन्नर्जुनात्ते पितामहाः ।
त्वां तु वंशधरं कृत्वा जग्मुः सर्वे महापथम् ॥ २६ ॥

श्रुत्वा सुहृत् वधं राजन् अर्जुनात् ते पितामहाः त्वां तु वंशधरं कृत्वा जग्मुः सर्वे महापथम् ॥ २६ ॥

राजन्	- राजन् !	**त्वां तु वंशधरं**	- तुमको तो वंश-चलाने
सुहृत् वधं-	- सम्बन्धियोंका मारा	**अर्जुनात्**	- अर्जुनसे
श्रुत्वा	जाना सुनकर	**कृत्वा**	- बनाकर
ते पितामहाः	- तुम्हारे पितामह लोग	**सर्वे महापथं**	- सब महापथ (हिमालय)
		जग्मुः	- चले गये ॥ २६ ॥

य एतद् देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च ।
कीर्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥

यः एतत् देव देवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च कीर्तयेत् श्रद्धया मर्त्यः सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥

देव देवस्य	- देवदेवेश्वरके	**यः मर्त्यः**	- जो मनुष्य
एतत्	- इस	**श्रद्धया-**	- श्रद्धापूर्वक वर्णन
विष्णोः कर्माणि	- श्रीहरिके कर्मों	**कीर्तयेत्**	करता है
च जन्म	- तथा अवतारका	**सर्व पापैः**	- (वह) सब पापोंसे
		प्रमुच्यते	- सर्वथा छूट जाता है ॥ २७ ॥

इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतार-
वीर्याणि बालचरितानि च शन्तमानि ।
अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन् मनुष्यो
भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत ॥ २८ ॥

इत्थं हरेः भगवतः रुचिर अवतार वीर्याणि बाल चरितानि च शन्तमानि अन्यत्र च इह च श्रुतानि गृणन् मनुष्यः भक्तिं परां परमहंस गतौ लभेत ॥ २८ ॥

इत्थं भगवतः - इस प्रकार भागवत्
हरेः - श्रीहरिके
इह च - यहां तथा
अन्यत्र च- - अन्यत्र भी कहीं सुने
श्रुतानि
रुचिर अवतार - मनोहर अवतार
वीर्याणि - पराक्रम
च शन्तमानि - एवं शान्तिदायक
बाल चरितानि - बाल-चरितोंको
गृणन् - वर्णन करता
मनुष्यः - मनुष्य
परां भक्तिं - परा भक्ति और
परमहंस गतौ - परमहंसोंका पद
लभेत - प्राप्त कर लेता है
॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

॥ इत्येकादशः स्कन्धः समाप्तः ॥

॥ द्वादश स्कन्ध ॥

द्वादश स्कन्ध

अनुक्रमणिका

कृ. सं.		पृ. सं.
१.	कलियुगके राजवंशोंका वर्णन	५
२.	कलियुगके धर्म	२३
३.	राज्य, युगधर्म और कलियुगके दोषोंसे बचनेका उपाय नाम संकीर्तन	४१
४.	चार प्रकारके प्रलय	६३
५.	श्रीशुकदेवजीका अन्तिम उपदेश	८२
६.	परीक्षितकी परमगति, जनमेजयका सर्वसत्र और वेदोंके शाखाभेद	८८
७.	अथर्ववेदकी शाखाएँ और पुराणोंके लक्षण	१२४
८.	मार्कण्डेयजीकी तपस्या और वर प्राप्ति	१३५
९.	मार्कण्डेयजीका माया दर्शन	१५८
१०.	मार्कण्डेयजीको भगवान शंकरका वरदान	१७४
११.	भगवानके अंग उपांग और आयुधोंका रहस्य तथा विभिन्न सूर्यगणोंका वर्णन	१९२
१२.	श्रीमद्भागवतकी संक्षिप्त विषय-सूची	२९४
१३.	विभिन्न पुराणोंकी श्लोक संख्या और श्रीमद्भागवतकी महिमा	२४४

माहात्म्य

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य [१] २५६

श्रीभगवान द्वारा ब्रह्माजीको उपदिष्ट,
स्कन्दपुराण, विष्णुखण्ड मार्गशीर्ष, माहात्म्य अ-१६

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य [२] २६६

(स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड)

१. परीक्षित और वज्रनाभका समागम, शाण्डिल्य मुनिके मुखसे
भगवानकी लीलाके रहस्य और व्रजभूमिके महत्त्वका वर्णन २६७

२. यमुना और श्रीकृष्ण पत्नियोंका संवाद, कीर्तनोत्सवमें
उद्धवजीका प्रकट होना २८५

३. श्रीमद्भागवतकी परम्परा और उनका माहात्म्य
भागवत श्रवणसे श्रोताओंको भगवद्धामकी प्राप्ति ३००

४. श्रीमद्भागवतका स्वरूप, प्रमाण, श्रोता, वक्ताके लक्षण,
श्रवण विधि और माहात्म्य. ३३०

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य [३] ३५०

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड)

१. देवर्षि नारदकी भक्तिसे भेंट ३५१

२. भक्तिका दुःख दूर करनेके लिये नारदजीका उद्योग ३८३

३. भक्तिके कष्टकी निवृत्ति ४१४

४. गोकर्णोपाख्यान प्रारम्भ ४४५

५. धुन्धुकारीको प्रेतयोनिकी प्राप्ति और उससे उद्धार ४७८

६. सप्ताहयज्ञकी विधि ५१३-५५५

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भागवतम् द्वादशस्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच-

स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे ।
कस्य वंशोऽभवत् पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने ॥ १ ॥

स्वधाम अनुगते कृष्णे यदुवंश विभूषणे कस्य वंशः अभवत् पृथ्व्यां एतत् आचक्ष्व मे मुने ॥ १ ॥

मुने	- मुनिवर !	**पृथ्व्यां**	- पृथ्वीपर
यदुवंश विभूषणे	- यदुवंश विभूषण	**कस्य वंशः-**	- किस वंशका राज्य हुआ
कृष्णे स्वधाम	- श्रीकृष्णके अपने धाम	**अभवत्**	
अनुगते	- चले जानेके पश्चात्	**एतत् मे**	- यह मुझे
		आचक्ष्व	- बतलाइये ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच-

योऽन्त्यः पुरञ्जयो नाम भाव्यो बार्हद्रथो नृपः ।
तस्यामात्यस्तु शुनको हत्वा स्वामिनमात्मजम् ॥ २ ॥

यः अन्त्यः पुरञ्जयः नाम भाव्यः बार्हद्रथः नृपः तस्य आमात्यः तु शुनकः हत्वा स्वामिनं आत्मजम् ॥ २ ॥

यः बार्हद्रथः	-	जो वृहद्रथके (वंशमें)
अन्त्यः	-	अन्तिम
पुरञ्जयः नाम	-	पुरञ्जय (रिपुञ्जय) नामक
नृपः भाव्यः	-	राजा होगा
तस्य आमात्यः	-	उसका मन्त्री
शुनकः तु	-	शुनक तो
स्वामिनं हत्वा	-	अपने स्वामीको मारकर
आत्मजं	-	अपने पुत्र ॥ २ ॥

प्रद्योतसंज्ञं राजानं कर्ता यत् पालकः सुतः ।
विशाखयूपस्तत्पुत्रो भविता राजकस्ततः ॥ ३ ॥

प्रद्योत संज्ञं राजानं कर्ता यत् पालकः सुतः विशाखयूपः तत् पुत्रः भविता राजकः ततः ॥ ३ ॥

प्रद्योतसंज्ञं	-	प्रद्योत नामकको
राजानं कर्ता	-	राजा बनावेगा
यत् सुतः-	-	जिसका पुत्र पालक
पालकः		होगा,
तत् पुत्रः-	-	उसका पुत्र विशाखयूप,
विशाखयूपः		
ततः राजकः	-	उससे राजक होगा
भविता		॥ ३ ॥

नन्दिवर्धनस्तत्पुत्रः पञ्च प्रद्योतना इमे ।
अष्टात्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यन्ति पृथिवीं नृपाः ॥ ४ ॥

नन्दिवर्धनः तत् पुत्रः पञ्च प्रद्योतना इमे अष्टत्रिंश उत्तरशतं भोक्ष्यन्ति पृथिवीं नृपाः ॥ ४ ॥

तत् पुत्रः	-	उसका पुत्र
नन्दिवर्धनः	-	नन्दिवर्धन
इमे पञ्च	-	ये पांच
प्रद्योतना नृपाः	-	प्रद्योतवंशीराजा
अष्टत्रिंश	-	अड़तीस
उत्तरशतं	-	ऊपर सौ (एक सौ अड़तीस वर्ष)
पृथिवीं भोक्ष्यन्ति	-	पृथ्वीका उपभोग करेंगे ॥ ४ ॥

शिशुनागस्ततो भाव्यः काकवर्णस्तु तत्सुतः ।
क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ॥ ५ ॥

शिशुनागः ततः भाव्यः काकवर्णः तु तत् सुतः क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ॥ ५ ॥

ततः शिशुनागः	- फिर शिशुनाग राजा	**तस्य सुतः**	- उसका पुत्र क्षेमधर्मा
भाव्यः	होगा	**क्षेमधर्मा**	
तत् सुतः तु	- उसका पुत्र तो	**क्षेमधर्मजः**	- क्षेमधर्माका पुत्र
काकवर्णः	- काकवर्ण,	**क्षेत्रज्ञः**	- क्षेत्रज्ञ होगा ॥ ५ ॥

विधिसारः सुतस्तस्याजातशत्रुर्भविष्यति ।
दर्भकस्तत्सुतो भावी दर्भकस्याजयः स्मृतः ॥ ६ ॥

विधि सारः सुतः तस्य अजातशत्रुः भविष्यति दर्भकः तत् सुतः भावी दर्भकस्य अजयः स्मृतः ॥ ५ ॥

सुतः विधिसारः	- उसका पुत्र विधिसार	**दर्भकः भावी**	- दर्भक होगा,
तस्य अजातशत्रुः	- उसके अजातशत्रु	**दर्भकस्य**	- दर्भकका पुत्र
भविष्यति	- होगा,	**अजयः स्मृतः**	- अजय कहा गया है ॥ ६ ॥
तत् सुतः	- उसका पुत्र		

नन्दिवर्धन आजेयो महानन्दिः सुतस्ततः ।
शिशुनागा दशैवैते षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ ७ ॥

नन्दिवर्धनः आजेयः महानन्दिः सुतः ततः शिशुनागा दश एव एते षष्टिउत्तर शतत्रयम् ॥ ७ ॥

आजेयः	- अजय का पुत्र	**एते दश एव**	- ये दशा ही
नन्दिवर्धनः	- नन्दिवर्धन,	**शिशुनागाः**	- शिशुनाग वंशी
ततः सुतः	- उसका पुत्र	**षष्टि उत्तर**	- साठ अधिक
महानन्दिः	- महानन्दी होगा	**शतत्रयं**	- तीन सौ (तीन सौ साठ) ॥ ७ ॥

समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कुरुश्रेष्ठ कलौ नृपाः ।
महानन्दिसुतो राजन् शूद्रीगर्भोद्भवो बली ॥ ८ ॥

समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कुरुश्रेष्ठ कलौ नृपाः महानन्दिसुतः राजन् शूद्री गर्भ उद्भवः बली ॥ ८ ॥

कुरुश्रेष्ठ राजन्	-	कुरुश्रेष्ठ राजन् !	**शूद्रीगर्भ-**	-	शूद्राके गर्भसे
समा कलौनृपा	-	वर्षतक कलियुगके ये राजा	**उद्भवः**		उत्पन्न
			महानन्दिसुतः	-	महानन्दीका पुत्र
पृथिवीं भोक्ष्यन्ति	-	पृथ्वींका उपभोग करेंगे,	**बली**	-	बलवान होगा ॥ ८ ॥

महापद्मपतिः कश्चिन्नन्दः क्षत्रविनाशकृत् ।
ततो नृपा भविष्यन्ति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिकाः ॥ ९ ॥

महापद्मपतिः कश्चित् नन्दः क्षत्र विनाशकृत् ततः नृपा भविष्यन्ति शूद्र प्रायाः तु अधार्मिकाः ॥ ९ ॥

महापद्मपतिः	-	'महापद्म' का स्वामी होनेसे	**ततः नृपा**	-	उसके पश्चात् राजा
			शूद्र प्रायाः	-	प्रायः शूद्र
कश्चित् नन्दः	-	वह कोई नन्दवंशी	**तु अधार्मिकाः**	-	तथा धर्महीन
क्षत्र विनाशकृत्	-	क्षत्रियोंके नाशका कारण होगा	**भविष्यन्ति**	-	होंगे ॥ ९ ॥

स एकच्छत्रां पृथिवीमनुल्लङ्घितशासनः ।
शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः ॥ १० ॥

स एकच्छत्रां पृथिवीं अनुल्लङ्घित शासनः शासिष्यति महापद्मः द्वितीय इव भार्गवः ॥ १० ॥

द्वितीय भार्गवः इव - दूसरे परशुरामके समान

स महापद्मः - वह महापद्म

एकच्छत्रां पृथिवीं - पृथ्वीका एक छत्र

अनुल्लङ्घित शासनः - किसीके भी द्वारा आज्ञाका उल्लंघन न होते हुए

शासिष्यति - शासन करेगा ॥ १० ॥

तस्य चाष्टौ भविष्यन्ति सुमाल्यप्रमुखाः सुताः ।
य इमां भोक्ष्यन्ति महीं राजानः स्म शतं समाः ॥ ११ ॥

तस्य च अष्टौ भविष्यन्ति सुमालि प्रमुखाः सुताः य इमां भोक्ष्यन्ति महीं राजानः स्म शतं समाः ॥ ११ ॥

तस्य च अष्टौ - उसके तो आठ

सुताः भविष्यन्ति - पुत्र होंगे

सुमालि प्रमुखाः - सुमाली उनमें मुख्य होगा

य राजानः - जो राजा होकर

इमां महीं - इस पृथ्वीको

शतं समाः - सौ वर्ष तक

भोक्ष्यन्ति स्म - भोगेंगे ॥ ११ ॥

नव नन्दान् द्विजः कश्चित् प्रपन्नानुद्धरिष्यति ।
तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यन्ति वै कलौ ॥ १२ ॥

अथ नन्दान् द्विजः कश्चित् प्रपन्नान् उद्धरिष्यति तेषां अभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यन्ति वै कलौ ॥ १२ ॥

अथकश्चित् द्विजः - फिर कोई ब्राह्मण (चाणक्य)

प्रपन्नान् - अत्यन्त सम्पन्न एवं प्रसिद्ध

नन्दान् - (महापद्म एवं उसके आठों पुत्रों) नन्दोंको

उद्धरिष्यति - उखाड़ (नष्टकर) देगा

वै तेषां अभावे - निश्चय उनके न रहनेपर

कलौ जगतीं - कलियुगमें जगतका

मौर्या भोक्ष्यन्ति - मौर्य लोग उपभोग करेंगे ॥ १२ ॥

स एव चन्द्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति ।
तत्सुतो वारिसारस्तु ततश्चाशोकवर्धनः ॥ १३ ॥

स एव चन्द्रगुप्तं वै द्विजः राज्ये अभिषेक्ष्यति तत् सुतः वारिसारः तु ततः च अशोक वर्धनः ॥ १३ ॥

वै एव सः	-	निश्चय वही ब्राह्मण	**तत् सुतः तु**	-	उसका पुत्रतो
द्विजः		(चाणक्य)	**वारिसारः**	-	वारिसार (विम्बसार)
चन्द्रगुप्तं	-	चन्द्रगुप्तका	**च ततः**	-	फिर उसके
राज्ये-	-	राज्याभिषेक करेगा	**अशोकवर्धनः**	-	अशोक वर्धन होगा
अभिषेक्ष्यति					॥ १३ ॥

सुयशा भविता तस्य संगतः सुयशः सुतः ।
शालिशूकस्ततस्तस्य सोमशर्मा भविष्यति ॥ १४ ॥

सुयशा भविता तस्य संगतः सुयशः सुतः शालिशकः ततः तस्य सोमशर्मा भविष्यति ॥ १४ ॥

तस्य सुयशा-	-	उसके सुयशा होगा,	**शालिशूकः**	-	उसका शालिशूक
भविता			**तस्य सोमशर्मा**	-	उसका पुत्र सोमशर्मा
सुयशः सुतः	-	सुयशाका पुत्र	**भविष्यति**	-	होगा ॥ १४ ॥
संगतः ततः	-	संगत फिर			

शतधन्वा ततस्तस्य भविता तद् बृहद्रथः ।
मौर्या ह्येते दश नृपाः सप्तत्रिंशच्छतोत्तरम् ।
समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कलौ कुरुकुलोद्वह ॥ १५ ॥

शतधन्वा ततः तस्य भविता तत् बृहद्रथः मौर्या हि एते दशनृपाः सप्त समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कलौ कुरुकुल उद्वह त्रिंशत् शत उत्तरम् ॥ १५ ॥

ततः तस्य	- फिर उसका शतधन्वा	**समा कलौ**	- वर्षों तक कलियुगमें
तत् वृहद्रथः-	- उससे वृहद्रथ होगा	**पृथिवीं भोक्ष्यन्ति**	-पृथ्वीका उपभोग करेंगे
भविता		**कुरुकुल उद्वह**	- कुरुकुल पालक
हि एते दश	- क्योंकि ये दस		परीक्षितः
मौर्या नृपाः	- मौर्य राजा	**उत्तरं शतं**	- अधिक सौ (एक सौ
सप्त त्रिंशत्	- सैंतीस		सैंतीस) ॥ १५ ॥

हत्वा बृहद्रथं मौर्यं तस्य सेनापतिः कलौ ।
पुष्यमित्रस्तु शुङ्गाह्वः स्वयं राज्यं करिष्यति ।
अग्निमित्रस्ततस्तस्मात् सुज्येष्ठोऽथ भविष्यति ॥ १६ ॥

हत्वा बृहद्रथं मौर्यं तस्य सेनापतिः कलौ पुष्यमित्रः तु शुङ्ग आह्वः स्वयं राज्यं करिष्यति अग्निमित्रः ततः तस्मात् सुज्येष्ठः अथ भविष्यति ॥१६॥

मौर्यं बृहद्रथं	- फिर मौर्य वृहद्रथ्को	**स्वयं राज्यं**	- स्वयं राज्य
हत्वा	मारकर	**करिष्यति**	- करेगा
कलौ तस्य-	- कलियुगमें उसका	**ततः अग्निमित्रः**	- उससे अग्नि मित्र
सेनापतिः	सेनापति	**अथ तस्मान्**	- फिर उससे
शुङ्गा आह्वः	- शुंग उपाधिवाला	**सुज्येष्ठः-**	- सुज्येष्ठ होगा ॥१६॥
पुष्यमित्रः	- पुष्यमित्र	**भविष्यति**	

वसुमित्रो भद्रकश्च पुलिन्दो भविता ततः ।
ततो घोषः सुतस्तस्माद् वज्रमित्रो भविष्यति ॥ १७ ॥

वसुमित्रः भद्रकः च पुलिन्दः भविता ततः ततः घोषः सुतः तस्मात् वज्रमित्रः भविष्यति ॥ १७ ॥

वसुमित्रः	- (उससे) वसुमित्र,	**ततः घोषः**	- उससे घोष
ततः च	- फिर उससे	**तस्मात् सुतः**	- उसका पुत्र
भद्रकः	- भद्रक	**वज्रमित्रः-**	- वज्रमित्र होगा ॥ १७ ॥
भविता पुलिन्दः	- उससे होगा पुलिन्द	**भविष्यति**	

ततो भागवतस्तस्माद् देवभूतिरिति श्रुतः ।
शुङ्गा दशैते भोक्ष्यन्ति भूमिं वर्षशताधिकम् ॥ १८ ॥

ततः भागवतः तस्मात् देवभूतिः इति श्रुतः शुङ्गा दश एते भोक्ष्यन्ति भूमिं वर्षशत अधिकम् ॥ १८ ॥

ततः भागवतः	- उससे भागवत,	**एते दश शुङ्गा**	- ये दस शुंगवंशी
तस्मात् देवभूतिः	- आसे देवभूति होगा	**शत अधिकं**	- सौ से अधिक (एक सौ बारह वर्ष)
इति श्रुतः	- ऐसा सुना है,	**भूमिं भोक्ष्यन्ति**	- पृथ्वीका उपभोग करेंगे ॥ १८ ॥

ततः कण्वानियं भूमिर्यास्यत्यल्पगुणान् नृप ।
शुंगं हत्वा देवभूतिं कण्वोऽमात्यस्तु कामिनम् ॥ १९ ॥

ततः कण्वान् इयं भूमिः यास्यति अल्पगुणान् नृप शुंगं हत्वा देवभूतिं कण्वः अमात्यः तु कामिनम् ॥ १९ ॥

ततः इयं भूमिः	- फिर यह पृथ्वी	**कामिनंशुंगं**	- कामुक शुंग
अल्पगुणान्	- (पहिलेसे) कम गुणवाले	**देवभूतिं हत्वा**	- देवभूतिको मारकर
कण्वान्	- कण्ववंशी लोगोंके	**अमात्यः-**	- उसका मन्त्री कण्व
यास्यति	- (हाथमें) चली जायेगी,	**कण्वः तु**	तो ॥ १९ ॥

स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवो महामतिः ।
तस्य पुत्रस्तु भूमित्रस्तस्य नारायणः सुतः ।
नारायणस्य भविता सुशर्मा नाम विश्रुतः ॥ २० ॥

स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवः महामतिः तस्य पुत्रः तु भूमित्रः तस्य नारायणः सुतः नारायणस्य भविता सुशर्मा नाम विश्रुतः ॥ २० ॥

महामतिः - महान् बुद्धिमान
वसुदेवः - वसुदेव
स्वयं राज्यं- - स्वयं साज्य करेगा,
करिष्यते
तस्य पुत्रः तु - उसका पुत्र तो
भूमित्रः - भूमित्र
तस्य सुतः - उसका पुत्र
नारायणः - नारायण
नारायणस्य - नारायणका
विश्रुतः- - प्रसिद्ध सुशर्मा नामका
सुशर्मानाम
भविता - (पुत्र) होगा ॥ २० ॥

काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति वर्षाणां च कलौ युगे ॥ २१ ॥

काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंशत् च पञ्च च शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति वर्षाणां च कलौयुगे ॥ २१ ॥

इमे काण्वायना - ये कण्ववंशी
चत्वारिंशत् च - चालीस और
पञ्च च - पांच एवं
शतानित्रीणि - तीन सौ
(तीन सौ पैंतालिस)
वर्षाणां च - वर्षों तक
कलौयुगे - कलियुगमें
भूमिं भोक्ष्यन्ति - भूमिका उपभोग करेंगे
॥ २१ ॥

हत्वा काण्वं सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषलो बली ।
गां भोक्ष्यत्यन्ध्रजातीयः कञ्चित् कालमसत्तमः ॥ २२ ॥

हत्वा काण्वं सुशर्माणं तत् भृत्यः वृषलः बली गां भोक्ष्यति अन्ध्रजातीयः कञ्चित् कालं असत्तमः ॥ २२ ॥

काण्वं सुशर्माणं - काण्व सुशर्माको
हत्वा तत् बली - मारकर उसका बलवान
अन्ध्रजातीयः - अन्ध्रजातीय
वृषलः असत्तमः - शूद्र, अत्यन्त दुष्ट
भृत्यः- - सेवक कुछ समयतक
कञ्चित् कालं
गां भोक्ष्यति - पृथ्वीका उपभोग करेगा ॥ २२ ॥

कृष्णनामाथ तद्भ्राता भविता पृथिवीपतिः ।
श्रीशान्तकर्णस्तत्पुत्रः पौर्णमासस्तु तत्सुतः ॥ २३ ॥

कृष्ण नाम अथ तत् भ्राता भविता पृथिवी पतिः श्रीशान्तकर्णः तत् पुत्रः पौर्णमासः तु तत् सुतः ॥ २३ ॥

अथ तत्- - फिर उसका कृष्णनामक
कृष्णनाम
भ्राता पृथिवी- - भाई पृथ्वी पति
पतिः
भविता - होगा,
तत् पुत्रः तु - उसका पुत्र तो
श्रीशान्तकर्णः - श्रीशान्तकर्ण,
तत् सुतः तु - उसका पुत्र तो
पौर्णमासः - पौर्णमास होगा ॥ २३ ॥

लम्बोदरस्तु तत्पुत्रस्तस्माच्चिबिलको नृपः ।
मेघस्वातिश्चिबिलकादटमानस्तु तस्य च ॥ २४ ॥

लम्बोदरः तु तत् पुत्रः तस्मात् चिबिलकः नृपः मेघस्वातिः चिबिलकात् अटमानः तु तस्य च ॥ २५ ॥

तत् पुत्रः तु - उसका पुत्र तो
लम्बोदरः - लम्बोदर,
तस्मात् नृपः - उससे राजा
चिबिलकः - चिबिलक,
चिबिलकात् - चिबिलकसे
मेघस्वातिः - मेघस्वाति,
तस्य तु - उसका फिर
अटमानः - अटमान ॥ २४ ॥

अनिष्टकर्मा हालेयस्तलकस्तस्य चात्मजः ।
पुरीषभीरुस्तत्पुत्रस्ततो राजा सुनन्दनः ॥ २५ ॥

अनिष्टकर्मा हालेयः तलकः तस्य च आत्मजः पुरीषभीरुः तत् पुत्रः ततः राजा सुनन्दनः ॥ २५ ॥

अनिष्टकर्मा	-	अनिष्टकर्मा	**तत् पुत्रः**	-	उसका पुत्र
च तस्य आत्मजः	-	और उसका पुत्र	**पुरीष भीरुः**	-	पुरीष भीरु
हालेयः		हालेय	**ततः राजा**	-	उससे राजा सुनन्दन
			सुनन्दनः		॥ २५ ॥

चकोरो बहवो यत्र शिवस्वातिररिन्दमः ।
तस्यापि गोमतीपुत्रः पुरीमान् भविता ततः ॥ २६ ॥

चकोरः बहवः यत्र शिवस्वातिः अरिन्दमः तस्य अपि गोमतीपुत्रः पुरीमान् भविता ततः ॥ २६ ॥

चकोरः	-	(सुनन्दनका पुत्र) चकोर	**तस्य अपि**	-	उसका भी (पुत्र)
बहवः	-	उसके 'बहु' नामक (आठ पुत्र होंगे)	**गोमती पुत्रः**	-	गोमतीपुत्र,
			ततः पुरीमान्	-	उससे पुरीमान्
यत्र अरिन्दमः	-	जिनमें शत्रुदमनकर्ता	**भविता**	-	होगा ॥ २६ ॥
शिवस्वातिः	-	शिवस्वाति होगा,			

मेदः शिराः शिवस्कन्दो यज्ञश्रीस्तत्सुतस्ततः ।
विजयस्तत्सुतो भाव्यश्चन्द्रविज्ञः सलोमधिः ॥ २७ ॥

मेदः शिरा शिवस्कन्दः यज्ञश्रीः तत् सुतः ततः विजयः तत् सुतः भाव्यः चन्द्रविज्ञः सलोमधिः ॥ २७ ॥

तत् मेदशिरा	-	उसका मेदशिरा,	**तत् विजयः**	-	उसका विजयः
सुतः शिवस्कन्दः	-	उसका पुत्र शिवस्कन्द,	**सुतः भाव्यः**	-	उसके दो पुत्र होंगे
ततः यज्ञश्रीः	-	उसका यज्ञश्री,	**सलोमधिः**	-	लोमधीके साथ
			चन्द्रविज्ञः	-	चन्द्र विज्ञ ॥ २७ ॥

एते त्रिंशन्नृपतयश्चत्वार्यब्दशतानि च ।
षट्पञ्चाशच्च पृथिवीं भोक्ष्यन्ति कुरुनन्दन ॥ २८ ॥

एते त्रिंशत् नृपतयः चत्वारि अब्द शतानि च षट् पञ्चाशत् च पृथिवीं भोक्ष्यन्ति कुरुनन्दन ॥ २८ ॥

कुरुनन्दन	- परीक्षित !	**षट्पञ्चाशत्**	- छप्पन (चार सौ छप्पन)
एते त्रिशंत-	- ये तीस राजा	**अब्दपृथिवीं**	- वर्ष पृथ्वीका
नृपतयः		**भोक्ष्यन्ति**	- उपभोग करेंगे ॥ २८ ॥
चत्वारिशतानि च	- चार सौ और		

सप्ताभीरा आवभृत्या दश गर्दभिनो नृपाः ।
कंकाः षोडश भूपाला भविष्यन्त्यतिलोलुपाः ॥ २९ ॥

सप्त आभीरा आवभृत्या दशगर्दभिनः नृपाः कंका षोडश भूपाला भविष्यन्ति अति लोलुपाः ॥ २९ ॥

आवभृत्या	- फिर अवन्तीके	**अति लोलुपाः**	- अत्यन्त लालची
सप्त आभीरा	- सात अहीर,	**षोडश कंकाः**	- सोलह कंक
दस गर्दभिनः	- दस गर्दभी,	**भूपाला-**	- राजा होंगे
नृपाः	- राजा होंगे (फिर)	**भविष्यन्ति**	॥ २९ ॥

ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश तुरुष्ककाः ।
भूयो दश गुरुण्डाश्च मौना एकादशैव तु ॥ ३० ॥

ततः अष्टौ यवना भाव्या चतुर्दश तुरुष्ककाः भूयः दश गुरुण्डाः च मौना एकादश एव तु ॥ ३० ॥

ततः अष्टौ	- फिर आठ	**भूयः दश-**	- फिर दस गुरुण्ड
यवना भाव्या	- यवन (राजा) होंगे,	**गुरुण्डाः**	
चतुर्दश-	- चौदह तुर्क	**च मौनाः तु**	- और मौन तो
तुरुष्ककाः		**एकादश एव**	- ग्यारह ही (राजा होंगे) ॥ ३० ॥

एते भोक्ष्यन्ति पृथिवीं दशवर्षशतानि च ।
नवाधिकां च नवतिं मौना एकादश क्षितिम् ॥ ३१ ॥

एते भोक्ष्यन्ति पृथिवीं दशवर्षशतानि च नव अधिकां च नवतिं मौना एकादश क्षितिम् ॥ ३१ ॥

एते पृथिवीं - ये (मौनों के अतिरिक्त) पृथ्वीका
भोक्ष्यन्ति - उपभोग करेंगे
दशवर्षशतानि - दस सौ वर्ष
च नव- - नौ अधिक नब्बे (एक
अधिकां नवतिं हाज निन्यानवे वर्ष)
एकादश मौना - ग्यारह मौन
क्षितिं - पृथ्वीका ॥ ३१ ॥

भोक्ष्यन्त्यब्दशतान्यङ्ग त्रीणि तैः संस्थिते ततः ।
किलिकिलायां नृपतयो भूतनन्दोऽथ वङ्गिरिः ॥ ३२ ॥

भोक्ष्यन्ति अब्द शतानि अंग त्रीणि तैः संस्थिते ततः किलकिलायां नृपतयः भूत नन्दः अथ वङ्गिरिः ॥ ३२ ॥

अंग - प्रिय परीक्षित
त्रीणि शतानि- - तीन सौ वर्ष
अब्द
भोक्ष्यन्ति - उपभोग करेंगे,
तैः संस्थिते - उनके समाप्त होजानेपर
ततः- - तब किलकिला
किलकिलायां नगरीमें
भूतनन्दः - भूतनन्द (राजा होगा)
अथवङ्गिरिः - फिर उसका वंगिरि
॥ ३२ ॥

शिशुनन्दिश्च तद्भ्राता यशोनन्दिः प्रवीरकः ।
इत्येते वै वर्षशतं भविष्यन्त्यधिकानि षट् ॥ ३३ ॥

शिशुनन्दिः च तत् भ्राता यशोनन्दिः प्रवीरकः इति एते वै वर्षशतं भविष्यन्ति अधिकानि षट् ॥ ३३ ॥

तत् भ्राता - उसका भाई
शिशुनन्दिः - शिशुनन्दि
यशोनन्दिः - यशोनन्दि
च प्रवीरकः - और प्रवीरक
इति एते - इस प्रकार ये
वै षट्- - निश्चय छ अधिक
अधिकानि
शतं वर्ष - सौ (एक सौ छ) वर्ष
भविष्यन्ति - (राजा) होंगे ।। ३३ ।।

तेषां त्रयोदश सुता भवितारश्च बाह्लिकाः ।
पुष्यमित्रोऽथ राजन्यो दुर्मित्रोऽस्य तथैव च ।। ३४ ।।

तेषां त्रयोदश सुता भवितारः च बाह्लिकाः पुष्यमित्रः अथ राजन्यः दुर्मित्रः अस्य तथा एव च ।। ३४ ।।

तेषां त्रयोदश - उनके तेरह
बाह्लिकाः सुता - बाह्लीक कहलाने वाले पुत्र
च भवितारः - भी (राजा) होंगे
अथ राजन्यः - फिर क्षत्रिय
पुष्यमित्रः - पुष्यमित्र
च अस्य- - एवं इसके उसी प्रकारके
तथा एव पुत्र
दुर्मित्रः - दुर्मित्र का (राज्य होगा) ।। ३४ ।।

एककाला इमे भूपाः सप्तान्ध्राः सप्त-कोसलाः ।
विदूरपतयो भाव्या निषधास्तत एव हि ।। ३५ ।।

एक काला इमे भूपाः सप्त अन्ध्राः सप्तकोसलाः विदूरपतयः भाव्या निषधाः तत एव हि ।। ३५ ।।

इमे भूपाः - ये (बाह्लीक) राजा
एक काला - एक ही समयमें
सप्त अन्ध्राः - सात आन्ध्र प्रदेशके,
सप्त कोसलाः - सात कोसल प्रदेशके
विदूर पतयः - कुछ विदूर भूमिके और
हि तत् एव - क्योंकि इसी प्रकार कुछ
निषधाः - निषध प्रदेशके
भाव्या - स्वामी होंगे ।। ३५ ।।

मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जिः पुरञ्जयः ।
करिष्यत्यपरो वर्णान् पुलिन्दयदुमद्रकान् ॥ ३६ ॥

मागधानां तु भविता विश्व स्फूर्जिः पुरञ्जयः करिष्यति अपरः वर्णान् पुलिन्द यदु मद्रकान् ॥ ३६ ॥

मागधानां तु	- मगध देशीय (राजा) तो	**वर्णान्**	- (यह उच्च) वर्णोंको
विश्व स्फूर्जिः	- विश्व स्फूर्जि	**अपरः**	- दूसरा ही
पुरञ्जयः	- (द्वितीय) पुरञ्जय होगा	**पुलिन्द यदुमुद्रकान्**	- पुलिन्द, यदु, मद्रक
		करिष्यति	- बनावेगा ॥ ३६ ॥

प्रजाश्चाब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः ।
वीर्यवान् क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्यां स वै पुरि ।
अनुगंगामाप्रयागं गुप्तां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥ ३७ ॥

प्रजाः च ब्रह्म भूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः वीर्यवान् क्षत्रं उत्साद्य पद्मवत्यां स वै पुरि अनुगंगां आप्रयागं गुप्तां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥ ३७ ॥

ब्रह्म भूयिष्ठाः	- ब्राह्मण प्रधान तथा	**प्रजाः च-स्थापयिष्यति**	- (शूद्र) प्रजा भी बसावेगा
वीर्यवान् क्षत्रं	- बलवान क्षत्रियोंको	**अनुगंगां**	- गंगाद्वार (हरिद्वार) से लेकर
उत्साद्य	- उजाड़कर	**आप्रयागं**	- प्रयागतक की
स दुर्मतिः	- यह दुर्बुद्धि	**गुप्तां मेदिनीं**	- सुरक्षित पृथ्वीका
वै पद्मवत्यां-पुरि	- निश्चय पद्मवतीपुरी में	**भोक्ष्यति**	- उपभोग करेगा ॥ ३७ ॥

सौराष्ट्रावन्त्याभीराश्च शूरा अर्बुदमालवाः ।
व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्रप्राया जनाधिपाः ॥ ३८ ॥

सौराष्ट्राः आवन्त्याः आभीराः च शूरा अर्बुद मालवाः व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्रप्राया जन अधिपाः ॥ ३८ ॥

सौराष्ट्राः	-	सौराष्ट्र	**जनअधिपाः**	-	राजा लोग
आवन्त्याः	-	अवन्तिका,	**शूद्र प्राया**	-	शूद्र पाय
आभीराः	-	आभीर,	**व्रात्या द्विजा**	-	व्रात्य (संस्कारहीन) द्विजाति
शूराः	-	शौरसेन,			
अर्बुद	-	अर्बुद (आबू)	**भविष्यन्ति**	-	होंगे ॥ ३८ ॥
मालवाः	-	मालवाके			

सिन्धोस्तटं चन्द्रभागां कौन्तीं काश्मीरमण्डलम् ।
भोक्ष्यन्ति शूद्रा व्रात्याद्या म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चसः ॥ ३९ ॥

सिन्धोः तटं चन्द्रभागां कौन्तीं काश्मीर मण्डलं भोक्ष्यन्ति शूद्रा व्रात्या आद्या म्लेच्छाः च अब्रह्मवर्चसः ॥ ३९ ॥

सिन्धो तटं	-	सिन्धुके किनारे,	**अब्रह्मवर्चसः**	-	ब्रह्मतेजहीन
चन्द्रभागां	-	चन्द्रभागा (के तटवर्ती प्रदेश)	**शूद्रा व्रात्य- आद्या**	-	शूद्र, व्रात्य आदि,
कौन्तीं	-	कौन्ती प्रदेश और	**च म्लेच्छा**	-	और म्लेच्छ
कश्मीर मण्डलं	-	कश्मीर मण्डलको	**भोक्ष्यन्ति**	-	भोगेंगे ॥ ३९ ॥

तुल्यकाला इमे राजन् म्लेच्छप्रायाश्च भूभृतः ।
एतेऽधर्मानृतपराः फल्गुदास्तीव्रमन्यवः ॥ ४० ॥

तुल्यकाला इमे राजन् म्लेच्छ प्रायाः च भूभृत एते अधर्म अनृतपराः फल्गुदाः तीव्र मन्यवः ॥ ४० ॥

राजन्	-	राजन् !	**अनृतपराः**	-	असत्य परायणा
इमे तुल्यकाला	-	ये एक ही समयके	**फल्गुदाः**	-	अल्पदानी
च म्लेच्छ प्रायाः	-	एवं म्लेच्छ प्राय	**तीव्र मन्यवः**	-	तीक्ष्ण क्रोधी
एते अधर्म	-	ये अधर्म और	**भूभृतः**	-	पृथ्वीपति लोग ॥ ४० ॥

स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च परदारधनादृताः ।
उदितास्तमितप्राया अल्पसत्त्वाल्पकायुषः ॥ ४१ ॥

स्त्रीबाल गो द्विजघ्नाः च परदार धन आदृताः उदिताः स्तिमित प्राया अल्पसत्त्व अल्प आयुषः ॥ ४१ ॥

स्त्री बाल गो	- स्त्री, बालक, गौ	**उदिताः**	- उत्कर्षके साथ ही
च द्विजघ्नाः	- तथा ब्राह्मणोंको मारने वाले,	**स्तिमित प्राया**	- अस्त प्राय होने वाले,
परदार	- परायी स्त्री एवं	**अल्पसत्त्व**	- अल्प शक्ति एवं
धन आदृताः	- धनको लेनेको उत्सुक,	**अल्प आयुषः**	- अल्पायु वाले होंगे ॥ ४१ ॥

असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसाऽऽवृताः ।
प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः ॥ ४२ ॥

असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसा आवृताः प्रजाः ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्य रूपिणः ॥ ४२ ॥

असंस्कृताः	- संस्कारहीन,	**ते राजन्य-**	- वे राजारूपी
क्रियाहीना	- कर्तव्यपालन रहित,	**रूपिणः**	
रजसा तमसा	- रजोगुण एवं तमोगुणसे	**म्लेच्छा**	- म्लेच्छ
आवृताः	- ढके (अन्धे बने)	**प्रजाः-**	- प्रजाको ही खायेंगे
		भक्षयिष्यन्ति	॥ ४२ ॥

तन्नाथास्ते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः ।
अन्योन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यन्ति पीडिताः ॥ ४३ ॥

तत् नाथाः ते जनपदाः तत् शील आचार वादिनः अन्य अन्यतः राजभिः च क्षयं यास्यन्ति पीडिताः ॥ ४३ ॥

तत् नाथाः - जिनके ऐसे स्वामी हैं
ते जनपदाः - उन बस्तियोंके लोग
तत् शील-आचार - उन्हींके आचरण, व्यवहार
वादिनः - तथा भाषणको करने वाले,
अन्य अन्यतः - एक दूसरे द्वारा
च राजभिः - तथा राजा द्वारा
पीडिताः - उत्पीडित होकर
क्षयं यास्यन्ति - नष्ट हो जायेंगे

॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ।
कालेन बलिना राजन् नङ्क्षयत्यायुर्बलं स्मृतिः ॥ १ ॥

ततः च अनुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया कालेन बलिना राजन् नङ्क्षन्ति आयुः बलं स्मृतिः ॥ १ ॥

राजन् - राजन् !
ततः च - फिर तो
अनुदिनं - दिनों दिन
बलिना - बलवान
कालेन - कालके द्वारा
धर्म सत्यं - धर्म, सत्य,
शचं क्षमा - पवित्रता, क्षमा,
दया आयुः - दया, आयु
बलं स्मृतिः - बल और स्मरण शक्ति
नङ्क्षन्ति - नष्ट होती जायेगी॥ १ ॥

वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः ।
धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥ २ ॥

वित्तं एव कलौ नृणां जन्म आचार गुण उदयः धर्म न्याय व्यवस्थायां कारणं बलं एव हि ॥ २ ॥

कलौ नृणां - कलियुगके मनुष्योंके लिए
हि बलं एव - क्योंकि बल ही
धर्म न्याय - धर्म और न्यायकी
व्यवस्थायां - व्यवस्थाका
कारणं - कारण होगा (अतः)
जन्म - (उच्चकुलमें) जन्म,
आचार - सदाचार आदि
गुण उदयः - गुणोंका उत्कर्ष
वित्तं एव - धन ही (माना जायेगा)
॥ २ ॥

दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके ।
स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥ ३ ॥

दाम्पत्ये अभिरुचिः हेतुः माया एव व्यावहारिके स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिः विप्रत्वे सूत्रं एव हि ॥ ३ ॥

हि स्त्रीत्वे च	-	क्योंकि स्त्रीत्व और	**व्यावहारिके**	-	व्यवहार कुशलता
पुंस्त्वे	-	पुरुषत्व	**माया एव**	-	छल-कपट ही
रतिः	-	मैथुन शक्ति (ही मानी जायेगी)			(माना जायेगा)
			विप्रत्वे	-	ब्राह्मण होनेका (प्रमाण)
दाम्पत्ये	-	पति-पत्नी बननेमें	**हि सूत्रं एव**	-	क्योंकि यज्ञोपवीत ही
अभिरुचिः	-	परस्परकी रुचि ही			होगा ॥ ३ ॥
हेतुः	-	कारण होगी (कुल-शील नहीं देखा जायेगा)			

लिंगमेवाश्रमख्यातावन्योन्यापत्तिकारणम् ।
अवृत्त्या न्यायदौर्बल्यं पाण्डित्ये चापलं वचः ॥ ४ ॥

लिंगं एव आश्रम ख्याताः अन्यः अन्य आपत्ति कारणं अवृत्त्या न्याय दौर्बल्यं पाण्डित्ये चापलं वचः ॥ ४ ॥

लिंगं एव	-	(वस्त्र, दण्ड आदि) चिन्ह ही	**अवृत्त्या**	-	घूस न देना
आश्रमाख्याताः	-	आश्रम कहे जायेंगे,	**न्याय दौर्बल्यं**	-	न्यायकी दुर्वलता (न्याय न होनेका कारण) होगी
अन्यः अन्य	-	(एक आश्रमसे) दूसरेकी	**पाण्डित्ये**	-	और पाण्डित्य (विद्वत्ता)
आपत्ति कारणं	-	चले जानेका कारण (चिन्ह परिवर्तन ही) होगा,	**चापलं वचः**	-	वाणीकी चपलता (ही रह जायेगी) ॥ ४ ॥

अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु ।
स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ॥ ५ ॥

अनाढ्यता एव असाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु स्वीकार एव च उद्वाहे स्नानं एव प्रसाधनम् ॥ ५ ॥

अनाढ्यता एव	- गरीब होना ही,	**स्वीकार एव**	- स्वीकार कर लेना ही
असाधुत्वे	- असज्जन (असभ्य) होना हो जायगा,	**उद्वाहे**	- (बिना संस्कारके) विवाह होजायेगा
साधुत्वे	- साधु होनेका लक्षण	**च स्नानं एव**	- तथा स्नान करनेसे ही
तु दम्भ एव	- तो पाखण्ड ही होगा,	**प्रसाधनं**	- शृंगार हुआ (माना जायेगा) ॥ ५ ॥

दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्यं केशधारणम् ।
उदरम्भरता स्वार्थः सत्यत्वे धार्ष्ट्यमेव हि ॥ ६ ॥

दूरे वारि अयनं तीर्थे लावण्यं केश धारणं उदरम्भरता स्वार्थः सत्यत्वे धार्ष्ट्यं एव हि ॥ ६ ॥

दूरे वारि अयनं	- दूरका जलाशय	**उदरम्भरता**	- अपना पेट भर लेना
तीर्थे	- तीर्थ माना जायगा,	**स्वार्थः**	- सब पुरुषार्थ हो जायेगा,
केश धारणं	- बड़े वाल रखना	**धार्ष्ट्यं एव हि**	- धृष्टता पूर्वक बोलना ही
लावण्यं	- सौन्दर्य (समझा जायेगा)	**सत्यत्वे**	- सत्य माना जाने लगेगा ॥ ६ ॥

दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोऽर्थे धर्मसेवनम् ।
एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमण्डले ॥ ७ ॥

दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशः अर्थे धर्मसेवनं एवं प्रजाभिः दुष्टाभिः आकीर्णे क्षितिमण्डले ॥ ७ ॥

कुटुम्ब भरणं	- अपने कुटुम्बका पालन	**एवं दुष्टाभिः**	- इस प्रकारकी दुष्ट
दाक्ष्यं	- दक्षता माना जायेगा,	**प्रजाभिः**	- प्रजासे
यशः अर्थे	- यशके लिए	**क्षितिमण्डले**	- समस्त भूमण्डल
धर्म सेवनं	- धर्माचरण होगा,	**आकीर्णे**	- व्याप्त होजानेपर ॥७॥

ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः ।
प्रजा हि लुब्धै राजन्यैर्निर्घृणैर्दस्युधर्मभिः ॥ ८ ॥

ब्रह्म विट् क्षत्र शूद्राणां यः बली भविता नृपः प्रजाहि लुब्धै राजन्यैः निर्घृणैः दस्यु धर्मभिः ॥ ८ ॥

ब्रह्म विट्	- ब्राह्मण, वैश्य,	**हि लुब्धै**	- क्योंकि लोभी
क्षत्र शूद्राणां	- क्षत्रिय, शूद्रोंमें	**निर्घृणैः**	- निर्दय
यः बली	- जो बलवान होगा	**दस्यु धर्मभिः**	- डाकुओंका धर्म (लूटना) पालन करने वाले
नृपः भविता	- वह राजा बन जायेगा	**राजन्यैः**	- राजाओं द्वारा प्रजाके लोग ॥ ८ ॥

आच्छिन्नदारद्रविणा यास्यन्ति गिरिकाननम् ।
शाकमूलामिषक्षौद्रफलपुष्पाष्टिभोजनाः ॥ ९ ॥

आच्छिन्न दारद्रविणा यास्यन्ति गिरि काननं शाक मूल आमिष क्षौद्र फल पुष्प अष्टि भोजनाः ॥ ९ ॥

दार द्रविणा	- स्त्री और धन	**शाक मूल**	- पत्ते, जड़ें,
आच्छिन्न	- छीन लिए जानेसे	**आमिष क्षौद्र**	- मांस, मधु,
गिरिकाननं	- पर्वत एवं वनोंमें	**फल पुष्प**	- फल, फूल,
यास्यन्ति	- चले जायेंगे	**अष्टि भोजनाः**	- गुठलियां खाकर पेट भरेंगे ॥ ९ ॥

अनावृष्ट्या विनङ्क्ष्यन्ति दुर्भिक्षकरपीडिताः ।
शीतवातातपप्रावृड्हिमैरन्योन्यतः प्रजाः ॥ १० ॥

अनावृष्ट्या विनङ्क्ष्यन्ति दुर्भिक्ष कर पीडिताः शीत वात आतप प्रावृट् हिमैः अन्यः अन्यतः प्रजाः ॥ १० ॥

अनावृष्ट्या	- वर्षा न होनेसे	**आतप प्रावृट्**	- लू, वर्षा,
दुर्भिक्ष	- अकालके द्वारा,	**हिमैः**	- बरफ (ओले) तथा
कर	- (सरकारी) कर,	**अन्यः अन्यतः**	- परस्पर एक दूसरेसे
शीत वात	- सर्दी, आँधी,	**पीडिताः प्रजाः**	- उत्पीडित प्रजा
		विनङ्क्ष्यन्ति	- नष्ट होजायेगी ॥ १० ॥

क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव सन्तप्स्यन्ते च चिन्तया ।
त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥ ११ ॥

क्षुत् तृट्भ्यां व्याधिभिः च एव सन्तपस्यन्ते च चिन्तयात्रिंशत् विंशति वर्षाणि परमआयुः कलौ नृणाम् ॥ ११ ॥

क्षुत् तृट्भ्यां	- भूख-प्याससे	**कलौ नृणां**	- कलियुगमें मनुष्योंकी
व्याधिभिः	- बीमारियोंसे	**परम आयुः**	- दीर्घायुकी सीमा
च चिन्तया	- तथा चिन्तासे	**त्रिंशत् विंशति**	- तीस या बीस
सन्तप्स्यन्ते	- सन्तप्त होते रहेंगे	**वर्षाणि**	- वर्ष रह जायेगी ॥ ११ ॥

क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलिदोषतः ।
वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥ १२ ॥

क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलि दोषतः वर्ण-आश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥ १२ ॥

कलि दोषतः - कलियुगके दोषसे
देहिनां देहेषु - शरीर धारियोंके शरीर
क्षीयमाणेषु - क्षीण (छोटे-दुर्बल) होजानेपर,
नृणां वेदपथे - मनुष्योंके वैदिक मार्ग एवं
वर्ण आश्रमवतां - वर्ण-आश्रम मानने वालोंके
धर्मे नष्टे - धर्मके नष्ट हो जानेपर ॥ १२ ॥

पाखण्डप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ।
चौर्यानृतवृथाहिंसानानावृत्तिषु वै नृषु ॥ १३ ॥

पाखण्ड प्रचुरे धर्मे दस्यु प्रायेषु राजसु चौर्य अनृत वृथाहिंसा नानावृत्तिषु वै नृषु ॥ १३ ॥

धर्मे - धर्ममें
पाखण्ड प्रचुरे - पाखण्ड बहुलता होजानेपर,
राजसु - राजाओंके
दस्यु प्रायेषु - प्रायः डाकू जैसे होजानेपर
वै नृषु - निश्चय मनुष्योंके
चौर्य अनृत - चोरी, झूठ,
वृथा हिंसा - व्यर्थ प्राणिवध जैसी
नाना वृत्तिषु - अनेक प्रकारकी आजीविका अपना लेनेपर ॥ १३ ॥

शूद्रप्रायेषु वर्णेषुच्छागप्रायासु धेनुषु ।
गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौनप्रायेषु बन्धुषु ॥ १४ ॥

शूद्र प्रायेषु वर्णेषु छागप्रायासु धेनुषु गृहप्रायेषु आश्रमेषु यौन प्रायेषु बन्धुषु ॥ १४ ॥

वर्णेषु - सभी (चारों) वर्णोंके
शूद्र प्रायेषु - शूद्र प्राय होजानेपर,
धेनुषु - गायोंके
छाग प्रायासु - बकरियों जैसी (छोटी, अल्पदूध वाली) होजानेपर
आश्रमेषु - सभी (चारों) आश्रमोंके
गृह प्रायेषु - गृहस्थः प्रायः हो जानेपर
यौन प्रायेषु - वैवाहिक सम्बन्ध वालोंके ही
बन्धुषु - सम्बन्धी रह जानेपर ॥ १४ ॥

अणुप्रायास्वोषधीषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु ।
विद्युत्प्रायेषु मेघेषु शून्यप्रायेषु सद्मसु ॥ १५ ॥

अणुप्रायेषु औषधिषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु विद्युत् प्रायेषु मेघेषु शून्य प्रायेषु सद्मसु ॥ १५ ॥

औषधिषु	-	(धान, गेंहू आदि) औषधियोंके	**मेघेषु**	-	बादलोंमें
अणु प्रायेषु	-	बहुत छोटे होजानेपर,	**विद्युत् प्रायेषु**	-	(वर्षाहीन) बिजली चमकना
स्थास्नुषु	-	स्थावरों (वृक्षों) में	**सद्मसु**	-	घरोंके
शमी प्रायेषु	-	शमीप्राय (कंटीले) रह जानेपर	**शून्य प्रायेषु**	-	प्रायः सूने होजानेपर ॥ १५ ॥

इत्थं कलौ गतप्राये जने तु खरधर्मिणि ।
धर्मत्राणाय सत्त्वेन भगवानवतरिष्यति ॥ १६ ॥

इत्थं कलौ गतप्राये जने तु खर धर्मिणि धर्म त्राणाय सत्त्वेन भगवान् अवतरिष्यति ॥ १६ ॥

इत्थं कलौ	-	इस प्रकार कलियुग (के अन्त) में	**धर्म त्राणाय**	-	धर्मकी रक्षाके लिए
जने तु	-	लोगोंके तो	**सत्त्वेन**	-	सत्त्वगुणका आश्रम लेकर
खर धर्मिणि	-	गधोंके समान धर्मी	**भगवान्**	-	भगवान
प्राये गते	-	प्राय होजानेपर	**अवतरिष्यति**	-	अवतार लेंगे ॥ १६ ॥

चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः ।
धर्मत्राणाय साधूनां जन्म कर्मापनुत्तये ॥ १७ ॥

चर अचर गुरुः विष्णुः ईश्वरस्य अखिल आत्मनः धर्मत्राणाय साधूनां जन्म कर्म अपनुत्तये ॥ १७ ॥

चर अचर - (समस्त) जंगम-स्थावर (जगत) के
गुरुः - परम शिक्षक
अखिल आत्मनः - सर्वस्वरूप
ईश्वरस्य - सबके स्वामी
विष्णोः जन्म - श्रीहरिका अवतार
साधूनां - सत्पुरुषोंके
धर्मत्राणाय - धर्मकी रक्षाके लिए एवं
कर्म अपनुत्तये - (उनका) कर्म-बन्धन नष्ट करनेके लिए होता है ॥ १७ ॥

सम्भलग्राममुखस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥ १८ ॥

सम्भल ग्राम मुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुः भविष्यति ॥ १८ ॥

सम्भलग्राम - सम्भलपुरके
मुख्यस्य - प्रमुख
महात्मनः - महात्मा
ब्राह्मणस्य - ब्राह्मण
विष्णुयशसः - विष्णुयशके
भवने - घरमें
कल्किः - (भगवान) कल्कि
प्रादुः भविष्यति- प्रकट होंगे ॥ १८ ॥

अश्वमाशुगमारुह्य देवदत्तं जगत्पतिः ।
असिनासाधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वितः ॥ १९ ॥

अश्वं आशुगं आरुह्य देवदत्तं जगत् पतिः असिना असाधु दमनं अष्ट ऐश्वर्य गुण अन्वितः ॥ १९ ॥

अष्ट ऐश्वर्य - (अणिमादि) आठों ऐश्वर्य
गुण अन्विता - (सिद्धियोंके) गुणोंसे युक्त
जगत्पतिः - वे जगदीश्वर
देवदत्तं - देवताओंके दिये
आशुगं - तीव्रगामी
अश्वं आरुह्य - घोड़ेपर चढ़कर
असिना - तलवार द्वारा (मारकर)
असाधु दमनं - दुष्टोंका दमन करेंगे ॥ १९ ॥[1]

---

१. **कल्कि अवतारकी पूरी कथा "कल्कि अवतार या कलियुगका अन्त" में दी गयी है ।**

विचरन्नाशुना क्षोण्यां हयेनाप्रतिमद्युतिः ।
नृपलिङ्गच्छदो दस्यून् कोटिशो निहनिष्यति ॥ २० ॥

विचरन् आशुना क्षोणीं हयेन अप्रतिमद्युतिः नृपलिंङ्गच्छदः दस्यून् कोटिशः निहनिष्यति ॥ २० ॥

अप्रतिम द्युतिः - अतुलनीय कान्ति वे
आशुना हयेन - तीव्रगामी अश्वद्वारा
क्षोणीं विचरन् - पृथ्वीपर घूमते हुए
कोटिशः - करोड़ों
नृपलिंङ्गच्छदः - राजाओंके चिन्हधारी (मुकुटादि)
दस्यून् - डाकुओंको
निहनिष्यति - मार देंगे ॥ २० ॥

अथ तेषां भविष्यन्ति मनांसि विशदानि वै ।
वासुदेवाङ्गरागातिपुण्यगन्धानिलस्पृशाम् ।
पौरजानपदानां वै हतेष्वखिलदस्युषु ॥ २१ ॥

अथ तेषां भविष्यन्ति मनांसि विशदानि वै वासुदेव अंगराग अतिपुण्य गन्ध अनिलस्पृशां पौर जानपदानां वै हतेषु अखिल दस्युषु ॥ २१ ॥

अखिलदस्युषु - समस्त डाकुओंके
वै हतेषु - निश्चित रूपसे मार दिये जानेपर
वासुदेव - भगवान् वासुदेव (कल्किके)
अंगराग - अंगरागकी
अति पुण्यगन्ध - अत्यन्त पवित्र गन्ध वाली
अनिल स्पृशां - वायुको छूने वाले
अथ तेषां - फिर उन
पौर जानपदानां - नगर एवं जनपदोंके निवासियोंके
मनांसि - चित्त
वै विशदानि - निश्चित निर्मल
भविष्यन्ति - हो जायेंगे ॥ २१ ॥

तेषां प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठः सम्भविष्यति ।
वासुदेवे भगवति सत्त्वमूर्तौ हृदि स्थिते ॥ २२ ॥

तेषां प्रजा विसर्गः च स्थविष्ठः सम्भविष्यति वासुदेवे भगवति सत्त्वमूर्तौ हृदि स्थिते ॥ २२ ॥

सत्त्वमूर्तौ	-	सत्त्वगुण स्वरूप	**तेषां प्रजा**	-	उनकी सन्तान
भगवति	-	भगवान्	**विसर्गः च**	-	परस्पर भी
वासुदेवे	-	वासुदेव (कल्कि) के	**स्थविष्ठः**	-	(बड़े आकारकी) हष्ट-पुष्ट
हृदिस्थिते	-	हृदयमें स्थित होनेपर	**सम्भविष्यति**	-	उत्पन्न होगी ॥ २२ ॥

यदावतीर्णो भगवान् कल्किधर्मपतिर्हरिः ।
कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्त्विकी ॥ २३ ॥

यदा अवतीर्णः भगवान् कल्किः धर्मपतिः हरिः कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिः च सात्त्विकी ॥ २३ ॥

धर्मपतिः	-	धर्मके स्वामी	**तदा कृतं**	-	तब सतयुग
हरिः	-	श्रीहरि	**भविष्यति**	-	होजायेगा
भगवान्	-	भगवान	**च सात्त्विकी**	-	तथा सत्त्वगुणी
यदा कल्किः	-	जब कल्कि रूपमें	**प्रजासूतिः**	-	प्रजा उत्पन्न होगी ॥ २३ ॥
अवतीर्णः	-	अवतार लेंगे			

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती ।
एकराशौ समेष्यन्ति तदा भवति तत् कृतम् ॥ २४ ॥

यदा चन्द्रः च सूर्यः च तथा तिष्य बृहस्पतीः एक राशौ सम एष्यन्ति तदा भवति तत् कृतम् ॥ २४ ॥

यदा चन्द्रः च	-	जब चन्द्रमा और	**एक राशौ**	-	एक ही राशि (कर्क) पर
सूर्यः च	-	सूर्य भी	**सम एष्यन्ति**	-	एक साथ आवेंगे
तथा तिष्य	-	तथा पुष्य नक्षत्रके	**तदा तत्**	-	तब वह
बृहस्पतीः	-	बृहस्पति	**कृतं भवति**	-	सतयुग होगा ॥ २४ ॥

येऽतीता वर्तमाना ये भविष्यन्ति च पार्थिवाः ।
ते त उद्देशतः प्रोक्ता वंशीयाः सोमसूर्ययोः ॥ २५ ॥

ये अतीता वर्तमाना मे भविष्यन्ति च पार्थिवाः ते त उद्देशतः प्रोक्ता वंशीयाः सोम सूर्ययोः ॥ २५ ॥

ये सोम सूर्ययोः - जो चन्द्र और सूर्य
वंशीयाः - वंशोंमें उत्पन्न
पार्थिवाः - राजा
अतीता - होगये
ये वर्तमानाः - जो इस समय हैं,
च भविष्यन्ति - तथा जो आगे होंगे
ते त - उनका तुमसे
उद्देशतः - संक्षिप्त
प्रोक्ता - वर्णन कर दिया ॥२५॥

आरभ्य भवतो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम् ।
एतद् वर्षसहस्त्रं तु शतं पञ्चदशोत्तरम् ॥ २६ ॥

आरभ्य भवतः जन्म यावत् नन्द अभिषेचनं एतत् वर्ष सहस्त्रं तु शतं पञ्चदश उत्तरम् ॥ २६ ॥

भवतः जन्म - (परीक्षित !) तुम्हारे जन्मसे
आरभ्य - आरम्भकरके
यावत् - जबतक
नन्दअभिषेचनं - नन्दका राज्याभिषेक होगा
एतत् तु - इसमें तो
पञ्चदश उत्तरं -पन्द्रह अधिक
शतं सहस्त्रं - एकसौ सहस्त्र (एक हजार एक सौ पन्द्रह)
वर्ष - वर्ष लगेंगे ॥ २६ ॥

सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि ।
तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत् समं निशि ॥ २७ ॥

सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि तयोः तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत् समं निशि ॥ २७ ॥

निशि	- रात्रिमें	**तयोः तु मध्ये**	- उन दोनोंके मध्यमें
सप्तर्षीणां तु	- सप्तर्षियोंके उदय होते	**यत् समं**	- जो उनके साथ ही
उदितौ	समय	**नक्षत्रं दृश्येते**	- नक्षत्र दीखता है
यौ पूर्वौ दृश्यते	- (उनमेंसे) जो दो पहिले दीखते हैं		॥ २७ ॥

तेनैत ऋषयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम् ।
ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः ॥ २८ ॥

तेन एत ऋषयः युक्ताः तिष्ठन्ति अब्दशतं वैः ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना च आश्रिता मघाः ॥ २८ ॥

तेन एत	- उसके साथ ही	**ते द्विजाः**	- जो ब्राह्मण (सप्तर्षि)
युक्ताः	- संयुक्त होकर	**त्वदीये काले**	- तुम्हारे जन्मके समय
ऋषयः	- सप्तर्षि	**च अधुना**	- और इस समय (वे)
वै अब्दशतं	- निश्चित सौ वर्षतक	**मघा-**	- मघा नक्षत्रमें स्थित
तिष्ठन्ति	- रहते हैं,	**आश्रिता**	हैं ॥ २८ ॥

विष्णोर्भगवतो भानुः कृष्णाख्योऽसौ दिवं गतः ।
तदाविशत् कलिर्लोकं पापे यद् रमते जनः ॥ २९ ॥

विष्णोः भगवतः भानुः कृष्ण आख्यः असौ दिवं गतः तदा आविशत् कलिः लोकं पापे यत् रमते जनः ॥ २९ ॥

कृष्ण आख्यः	- श्रीकृष्ण नामक	**तदा लोकं**	- उसी समय संसारमें
असौ विष्णोः	- ये सर्वव्यापक	**कलिः आविशत्**	- कलियुगने प्रवेश किया
भगवतः भानुः	- भगवान सूर्य	**यत् जनः**	- जिसके कारण लोग
दिवंगतः	- (जब) अपने धाम गये	**पापे रमते**	- पाप करनेमें सुख मानते हैं ॥ २९ ॥

यावत् स पादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्ते रमापतिः ।
तावत् कलिर्वै पृथिवीं पराक्रान्तुं न चाशकत् ॥ ३० ॥

यावत् स पादपद्माभ्यां स्पृशन् आस्ते रमापतिः तावत् कलिः वै पृथिवीं पर आक्रान्तुं न च अशकत् ॥ ३० ॥

यावत् स	- जब तक वे	**तावत् वै**	- तब तक निश्चय
रमापतिः	- रमापति	**कलि**	- कलियुग
पादपद्माभ्यां	- अपने चरण कमलोंसे	**पृथिवीं**	- पृथ्वी
स्पृशन् आस्ते	- (इसका) स्पर्श करते थे	**पर आक्रान्तुं**	- पर पैर रखनेमें
		अशकत्न च	- समर्थ नहीं ही हुआ ॥ ३० ॥

यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि ।
तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥ ३१ ॥

यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि तदा प्रवृत्तः तु कलिः द्वादश अब्दशत आत्मकः ॥ ३१ ॥

यदा सप्त	- जब सातों	**तदा तु**	- उस समय तो
देवर्षयः	- देवर्षिगण	**द्वादशशत**	- (देवताओंके) बारहसौ
मघासुहि	- मघा नक्षत्र पर ही	**अब्द आत्मकः**	- वर्ष वाला (मनुष्योंके (चार लाख बत्तीस हजार वर्ष) का
विचरन्ति	- विचरण करते हैं	**कलिः प्रवृत्तः**	- कलियुग प्रारम्भ हुआ ॥ ३१ ॥

यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्वाषाढां महर्षयः ।
तदा नन्दात् प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ३२ ॥

यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्वाषाढां महर्षयः तदा नन्दात् प्रभृति एष कलिः वृद्धिं गमिष्यति ॥ ३२ ॥

यदा महर्षयः	-	जब सप्तर्षि
मघाभ्यो	-	मघा नक्षत्रसे
पूर्वाषाढां	-	पूर्वाषाढा नक्षत्रमें
गमिष्यन्ति	-	जायेंगे
तदा नन्दात्	-	उस समय नन्दके
प्रभृति		राज्यसे
एष कलिः	-	यह कलियुग
वृद्धिं गमिष्यति	-	बढ़ने लगेगा ॥३२॥

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ।
प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥ ३३ ॥

यस्मिन् कृष्णः दिनं यातः तस्मिन् एव तत् अहनि प्रतिपन्नं कलियुगं इति प्राहुः पुराविदः ॥ ३३ ॥

पुराविदः	-	पुरातत्त्ववेत्ता
इति प्राहुः	-	ऐसा कहते हैं कि
यस्मिन्	-	जिस समय
कृष्णः	-	श्रीकृष्ण
दिवं यातः	-	दिव्यधाम गये
तस्मिन् अहनि	-	उसी दिन
तत एव	-	उसी समयसे
कलियुगं	-	कलियुगका
प्रतिपन्नं	-	प्रारम्भ होगया ॥ ३३ ॥

दिव्याब्दानां सहस्त्रान्ते चतुर्थे तु पुनः कृतम् ।
भविष्यति यदा नृणां मन आत्मप्रकाशकम् ॥ ३४ ॥

दिव्य अब्दानां सहस्र अन्ते चतुर्थे तु पुनः कृतं भविष्यति यदा नृणां मन आत्मप्रकाशकम् ॥ ३४ ॥

दिव्य सहस्र	-	देवताओंके सहस्र
अब्दानां अन्ते	-	वर्षोंके अन्तमें
चतुर्थे तु	-	(कलियुगके) चतुर्थ चरणमें तो
पुनः कृतं	-	फिर सतयुग
भविष्यति	-	हो जायेगा
यदा नृणां	-	जब मनुष्योंका
मन आत्म	-	मन आत्माको
प्रकाशकं	-	जानने वाला होगा ॥ ३४ ॥

इत्येष मानवो वंशो यथा संख्यायते भुवि ।
तथा विट्शूद्रविप्राणां तास्ता ज्ञेया युगे युगे ।। ३५ ।।

इति एष मानवः वंशः यथा संख्यायते भुवि तथा विट्शूद्र विप्राणां ताः ता ज्ञेया युगे युगे ।। ३५ ।।

इति एष	- इस प्रकार यह	**तथा ताः ता**	- वैसे ही उन उन
यथा मानवः वंशः	- जैसे मनुके वंशकी	**युगे युगे**	- युगोंमें
भुवि संख्यायते	- पृथ्वीपर गणना होती है	**विट् शूद्र**	- वैश्य, शूद्र,
		विप्राणां	- ब्राह्मणोंका (वंश)
		ज्ञेया	- जान लेना चाहिए ।। ३५ ।।

एतेषां नामलिंगानां पुरुषाणां महात्मनाम् ।
कथामात्रावशिष्टानां कीर्तिरेव स्थिता भुवि ।। ३६ ।।

एतेषां नाम लिंगानां पुरुषाणां महात्मनां कथा मात्र अवशिष्टानां कीर्तिः एव स्थिता भुवि ।। ३६ ।।

एतेषां	- इन	**पुरुषाणां**	- पुरुषोंकी
नाम लिंगानां	- नामसे ही पहिचाने जाने वाले	**भुवि**	- पृथ्वीपर
		कीर्तिः एव	- कीर्ति ही
कथामात्र	- कथा मात्र	**स्थिता**	- रह गयी है ।। ३६ ।।
अवशिष्टानां	- बचे हुए		
महात्मनां	- महात्मा		

देवापिः शन्तनोर्भ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः ।
कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ ।। ३७ ।।

देवापिः शन्तनोः भ्राता मरुः च इक्ष्वाकु वंशजः कलाप ग्राम आसाते महायोग बल अन्वितौ ।। ३७ ।।

शन्तनोः भ्राता	-	शन्तनुके बड़े भाई	**महायोग**	-	महायोग
देवापिः च	-	देवापि तथा	**बल अन्वितौ**	-	बल से युक्त
इक्ष्वाकु वंशजः	-	इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न	**कलाप ग्राम**	-	कलाप ग्राममें१
मरुः	-	मरु	**आसाते**	-	रहते हैं ॥ ३७ ॥

ताविहैत्य कलेरन्ते वासुदेवानुशिक्षितौ ।
वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत् प्रथयिष्यतः ॥ ३८ ॥

तौ इह एत्य कलेः अन्ते वासुदेव अनुशिक्षितौ वर्णआश्रम युतं धर्मं पूर्ववत् प्रथयिष्यतः ॥ ३८ ॥

कलेः अन्ते	-	कलियुगका अन्त होनेपर	**पूर्ववत्**	-	पहिलेके समान
तौ इह एत्य	-	वे दोनों यहां आकर	**वर्ण आश्रम युतं**	-	वर्ण-आश्रमयुक्त
वासुदेव	-	भगवान वासुदेव (कल्कि) की	**धर्मं**	-	धर्मका
अनुशिक्षितौ	-	आज्ञाके अनुसार	**प्रथयिष्यतः**	-	विस्तार करेंगे ॥ ३८ ॥

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
अनेन क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्तते ॥ ३९ ॥

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिः च इति चतुः युगं अनेन क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्तते ॥ ३९ ॥

कृतं त्रेता	-	सतयुग, त्रेता,	**अनेक क्रम योगेन**	-	इसी क्रमके अनुसार
द्वापरं च	-	द्वापर तथा	**भुवि प्राणिषु**	-	पृथ्वीपर प्राणियोंमें
कलिः च	-	कलियुग भी	**वर्तते**	-	सक्रिय रहते हैं ॥३९॥
इति चतुः युगं	-	इस प्रकार चारों युग			

---

१. हिमालय में कहीं बदरीनाथसे आगे यह सामान्य मनुष्यके लिए अदृश्य सिद्ध पुरुषोंका निवास स्थान है । अनेक महात्माओंने 'ज्ञानगंज' जैसे कुछ नामोंसे इसका उल्लेख किया है ।

राजन्नेते मया प्रोक्ता नरदेवास्तथापरे ।
भूमौ ममत्वं कृत्वान्ते हित्वेमां निधनं गताः ॥ ४० ॥

राजन् एते मया प्रोक्ता नरदेवाः तथा अपरे भूमौ ममत्वं कृत्वा अन्ते हित्वा इमां निधनं गताः ॥ ४० ॥

राजन् - राजन् !
मया प्रोक्ता - मेरे द्वारा वर्णित
एते नरदेवाः - ये राजा लोग
तथा अपरे - तथा दूसरे भी
भूमौ ममत्वं - पृथ्वीसे ममता करके
कृत्वा
अन्ते इमां - अन्तमें इसे छोड़कर
त्यक्त्वा
निधनंगताः - मर गये ॥ ४० ॥

कृमिविड्भस्मसंज्ञान्ते राजनाम्नोऽपि यस्य च ।
भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ ४१ ॥

कृमि विट् भस्म संज्ञा अन्ते राज नाम्नः अपि यस्य च भूत ध्रुक् तत् कृते स्वार्थं किं वेद निरयः यतः ॥ ४१ ॥

यस्य च - जिस (शरीर) की तो
राज नाम्नः अपि - राजा नाम होनेपर भी
अन्ते - अन्तमें
कृमि - (सड़नेपर) कीड़ा
विट् - (पशु-पक्षी खालें तो) विष्ठा या
भस्म - (जला देनेपर) भस्म
संज्ञा - नाम होगा
तत् कृते - उसके लिए
भूत् ध्रुक् - प्राणियोंसे द्रोह करके
यतः निरयः - जिससे नरक होता है
किं स्वार्थं - क्या कोई (अपना
वेद नावास्तविक) स्वार्थ जानता है ? ॥ ४१ ॥

कथं सेयमखण्डा भूः पूर्वैर्मे पुरुषैर्धृता ।
मत्पुत्रस्य च पौत्रस्य मत्पूर्वा वंशजस्य वा ॥ ४२ ॥

कथं स इयं अखण्डा भूः पूर्वैः मे पुरुषैः धृता मत् पुत्रस्य च पौत्रस्य मत् पूर्वा वंशजस्य वा ॥ ४२ ॥

मे पूर्वैः	-	(वे सोचते हैं) "मेरे पूर्वज
पुरुषैः धृता	-	पुरुषों द्वारा पालिता
इयं अखण्डा	-	यह अखण्ड भूमण्डल
भूः		
कथं स	-	कैसे वही (सम्पूर्ण)
मत्	-	मेरा हो जाय,
पुत्रस्य च	-	(मेरे) पुत्रका तथा
पौत्रस्य	-	पौत्रका
वा मत् पूर्व	-	अथावा मेरे आने वाले
वंशजस्य	-	वंशजोंका (बना रहे)

॥ ४२ ॥

तेजोऽबन्नमयं कायं गृहीत्वाऽऽत्मतयाबुधाः ।
महीं ममतया चोभौ हित्वान्तेऽदर्शनं गताः ॥ ४३ ॥

तेजः अप् अन्नमयं कायं गृहीत्वा आत्मतया अबुधाः महीं ममतया च उभौ हित्वा अन्ते अदर्शनं गताः ॥ ४३ ॥

अबुधाः	-	ये अज्ञानी
तेजः अप्	-	अग्नि, जल तथा
अन्नमयं	-	अन्नमय
कायं	-	शरीरको
आत्मतया	-	आत्माके रूपमें एवं
महीं ममतया	-	पृथ्वीको ममता (मेरीके) रूपमें
गृहीत्वा	-	ग्रहण (मान) करके
च उभौ हित्वा	-	तथा दोनोंको त्यागकर
अदर्शनंगता	-	अदृश्य होगये ॥४३॥

ये ये भूपतयो राजन् भुञ्जन्ति भुवमोजसा ।
कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च ॥ ४४ ॥

ये ये भूपतयः राजन् भुञ्जन्ति भुवम् ओजसा कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च ॥ ४४ ॥

राजन्	-	राजन् !
ये ये भूपतयः	-	जो जो राजा लोग
ओजसा	-	अपने बलसे
भुवम् भुञ्जन्ति	-	पृथ्वीका उपभोग करते थे
ते सर्वे	-	वे सब
कालेन	-	कालके द्वारा
कथासु च	-	कथाओंमें तो
कथा मात्राः	-	कहानीमात्र
कृताः	-	बना दिये गये ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे द्वितियोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

दृष्ट्वाऽऽत्मनि जये व्यग्रान् नृपान् हसति भूरियम् ।
अहो मा विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥ १ ॥

दृष्ट्वा आत्मनिजये व्यग्रान् नृपान् हसति भूः इयं अहो मा विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥ १ ॥

आत्मजये	- अपनेको जीतनेके लिए	**अहो मृत्योः**	- 'अहो, मृत्युके
व्यग्रान्	- उतावले	**क्रीडनकाः**	- खिलौने
नृपान् दृष्ट्वा	- राजाओंको देखकर	**नृपाः मा**	- राजा मुझे
इयं भूः	- यह पृथ्वी	**विजिगीषन्ति**	- जीतना चाहते हैं ॥ १ ॥
हसति	- हँसती है		

काम एष नरेन्द्राणां मोघः स्याद् विदुषामपि ।
येन फेनोपमे पिण्डे येऽतिविश्रम्भिता नृपाः ॥ २ ॥

काम एष नरेद्राणां मोघः स्यात् विदुषां अपि येन फेन उपमे पिण्डे ये अति विश्रम्भिता नृपाः ॥ २ ॥

विदुषां अपि	- विद्वान होनेपर भी	**येन नृपाः**	- जिसके कारण राजा लोग
नरेन्द्राणां	- राजाओंकी	**फेन उपमे**	- फेनके समान (नश्वर)
एष काम	- यह कामना	**पिण्डे**	- शरीरपर
मोघः स्यात्	- व्यर्थ है	**अति-**	- बहुत अधिक विश्वास
		विश्रम्भिता	कर लेते हैं ॥ २ ॥

पूर्वं निर्जित्य षड्वर्गं जेष्यामो राजमन्त्रिणः ।
ततः सचिवपौराप्तकरीन्द्रानस्य कण्टकान् ॥ ३ ॥

पूर्वं निर्जित्य षट् वर्गं जेष्यामः राजमन्त्रिणः ततः सचिव पौर आप्तान् करीन्द्रान् अस्य कण्टकान् ॥ ३ ॥

पूर्वं	- (वे सोचते हैं) पहिले	**ततः सचिव**	- फिर सचिवों,
षट्वर्गं	- मन सहित पांचों ज्ञानेन्द्रियोंको	**पौर आप्तान्**	- नगरके मुखियों,
निर्जित्य	- जीतकर फिर	**करीन्द्रान्**	- महागजों तथा
राजमन्त्रिणः	- (अपने शत्रु) राजाओंके मन्त्रियोंको	**अस्य-**	- इस (विजय) के
		कण्टकान्	कण्टकों (बाँधकों) को
		जेष्यामः	- जीत लेंगे ॥ ३ ॥

एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलाम् ।
इत्याशाबद्धहृदया न पश्यन्त्यन्तिकेऽन्तकम् ॥ ४ ॥

एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागर मेखलां इति आशा बद्ध हृदया न पश्यन्ति अन्तिके अन्तकम् ॥ ४ ॥

एवं क्रमेण	- इस प्रकार क्रमशः	**इति आशा**	- ऐसी आशा
सागर मेखलां	- समुद्रसे घिरी (सम्पूर्ण)	**बद्ध हृदया**	- हृदयमें बाँधकर
पृथ्वीं जेष्यामः	- पृथ्वी जीत लेंगे	**अन्तिके अन्तकं**	- समीप खड़े कालको
		न पश्यन्ति	- नहीं देखते ॥ ४ ॥

समुद्रावरणां जित्वा मां विशन्त्यब्धिमोजसा ।
कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥ ५ ॥

समुद्र आवरणां जित्वा मां विशन्ति अब्धिं ओजसा कियत् आत्मजयस्य एतत् मुक्तिः आत्मजये फलम् ॥ ५ ॥

समुद्र आवरणां - समुद्रसे घिरी
मां जित्वा - (एक द्वीप रूपी) मुझे जीतकर
ओजसा - उत्साहपूर्वक
अब्धिं विशन्ति - (दूसरे द्वीपके लिए) समुद्रमें प्रवेश करते हैं
एतत् - यह सब
आत्मजयस्य - चित्तके जीतनेके (सम्मुख)
कियत् - कितना (तुच्छ) है (क्योंकि)
आत्मजये - चित्तको जीतनेका
फलं मुक्तिः - फल मोक्ष है ॥ ५ ॥

यां विसृज्यैव मनवस्तत्सुताश्च कुरूद्वह ।
गता यथागतं युद्धे तां मां जेष्यन्त्यबुद्धयः ॥ ६ ॥

यां विसृज्य एव मनवः तत् सुताः च कुरूद्वह गता यथा आगतं युद्धे तां मां जेष्यन्ति अबुद्धयः ॥ ६ ॥

कुरूद्वह - कुरुकुलपालक परीक्षित !
यां विसृज्य एव - जिसको छोड़कर ही
मनवः च - मनुगण तथा
तत् सुताः - उनके पुत्र
यथा आगतं - जैसे आये थे
गता - (वैसे ही) चले गये
तां मां - उस मुझे
अबुद्धयः - ये अज्ञानी
युद्धे जेष्यन्ति - युद्धमें जीतना चाहते हैं ॥ ६ ॥

मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातृणां चापि विग्रहः ।
जायते ह्यसतां राज्ये ममताबद्धचेतसाम् ॥ ७ ॥

मत् कृते पितृ पुत्राणां भ्रातृणां च अपि विग्रहः जायते हि असतां राज्ये ममताबद्ध चेतसाम् ॥ ७ ॥

हि असतां- - क्योंकि दुष्ट हैं,
राज्ये उनके राज्यमें
ममताबद्ध - ममत्वसे बँधे
चेतसां - चित्तवाले
पितृ पुत्राणां - पिता-पुत्रमें,
च भ्रातृणां अपि - तथा भाइयोंमें भी
मत् कृते - मेरे लिए
विग्रहः जायते - लड़ाई होती है ॥७॥

ममैवेयं मही कृत्स्ना न ते मूढेति वादिनः ।
स्पर्धमाना मिथो घ्नन्ति म्रियन्ते मत्कृते नृपाः ॥ ८ ॥

मम एव इयं मही कृत्स्ना न ते मूढ इति वादिनः स्पर्धमाना मिथः घ्नन्ति म्रियन्ते मत् कृते नृपाः ॥ ८ ॥

मत् कृते	- मेरे लिए	**इति वादिनः**	- ऐसा कहते हुए
नृपाः	- राजा लोग	**स्पर्धमाना**	- स्पर्धा करते हुए
इयं कृत्स्ना	- 'यह सम्पूर्ण	**मिथः घ्नन्ति**	- एक दूसरेको मारते हैं
महीमम	- पृथ्वी मेरी है,	**म्रियन्ते**	- और मरते हैं ॥ ८ ॥
मूढतेन	- मूर्ख, तेरी नहीं है'		

पृथुः पुरूरवा गाधिर्नहुषो भरतोऽर्जुनः ।
मान्धाता सगरो रामः खट्वाङ्गो धुन्धुहा रघुः ॥ ९ ॥

पृथुः पुरूरवा, गाधिः, नहुषः, भरतः, अर्जुनः सहस्त्रजिन्ति मान्धाता, सगरः, रामः खट्वांगः धुन्धुहा रघुः ॥ ९ ॥

तृणबिन्दुर्ययातिश्च शर्यातिः शन्तनुर्गयः ।
भगीरथः कुवलयाश्वः ककुत्स्थो नैषधो नृगः ॥ १० ॥

तृणबिन्दुः, ययातिः च, शर्यातिः, शन्तनुः, गयः, भगीरथः, कुवयलाश्वः, ककुत्स्थः, नैषधः (नल) नृगः ॥ १० ॥

हिरण्यकशिपुर्वृत्रो रावणो लोकरावणः ।
नमुचिः शम्बरो भौमो हिरण्याक्षोऽथ तारकः ॥ ११ ॥

हिरण्यकशिपुः, वृत्रः रावणः लोकरावणः (लोगोंको रुलाने वाला) नमुचिः, शम्बरः, भौमः (भौमासुर) हिरण्याक्षः, अथ (और) तारकः (तारकासुर) ॥ ११ ॥१

---

१. ये सब केवल नाम हैं । जहाँ आवश्यक है, कोष्ठक में स्पष्टीकरण है ।

अन्ये च बहवो दैत्या राजानो ये महेश्वराः ।
सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितोऽजिताः ॥ १२ ॥

अन्ये च बहवः दैत्या राजानः ये महा ईश्वराः सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितः अजिताः ॥ १२ ॥

अन्ये च	- दूसरे भी	**सर्वे सर्वविदः**	- वे सब सर्व विद्या पारंगत,
बहवः	- बहुतसे	**शूराः**	- शूर
दैत्या राजानः	- दैत्य एवं राजा लोग	**सर्वे सर्वजितः**	- वे सभी सबको जीतने
ये महा ईश्वराः	- जो बहुत अधिक समर्थ थे		वाले तथा
		अजिताः	- स्वयं अजेय थे ॥१२॥

ममतां मय्यवर्तन्त कृत्वोच्चैर्मर्त्यधर्मिणः ।
कथावशेषाः कालेन ह्यकृतार्थाः कृता विभो ॥ १३ ॥

ममतां मयि अवर्तन्त कृत्वा उच्चैः मर्त्य धर्मिणः कथा अवशेषाः कालेन हि अकृत अर्थाः कृता विभो ॥ १३ ॥

विभो	- प्रभो !	**अकृतअर्थाः**	- लालसा पूरी हुए बिना ही
मयि उच्चैः	- मुझसे प्रगाढ	**कालेन**	- कालके द्वारा
ममतां	- ममत्त्वका	**कथा-**	- कथा मात्र बचे रहने
अवर्तन्त कृत्वा	- व्यवहार करते हुए	**अवशेषाः**	वाला
हि मर्त्य-	- क्योंकि मरण धर्मा थे	**कृता**	- बना दिये गये ॥ १३ ॥
धर्मिणः			

कथा इमास्ते कथिता महीयसां
विताय लोकेषु यशः परेयुषाम् ।
विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो
वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम् ॥ १४ ॥

कथा इमाः ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषां विज्ञान वैराग्य विवक्षया विभो वचः विभूतीः न तु पारमार्थ्यम् ॥ १४ ॥

विभो	- महाराज !	**यशः विताय**	- यशका विस्तार करके
ते इमाः	- तुमसे यह	**परे युषां**	- परलोक चले जाने वालोंकी
महीयसां	- महान् पुरुषों का	**कथा कथिता**	- कथा कही है
विज्ञान वैराग्य	- विज्ञान और वैराग्यका	**वचः विभूतीः**	- (यह सब) वाणीका वैभव है
विवक्षया	- उपदेश करनेके लिए	**पारमार्थ्यं तु न**	- (इसमें) परमार्थ तत्त्वतो नहीं है ॥ १४ ॥
लोकेषु	- लोकमें		

यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः

संगीयतेऽभीक्ष्णममङ्गलघ्नः ।

तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं

कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ॥ १५ ॥

यः तु उत्तमश्लोक गुण अनुवादः संगीयते अभीक्ष्णं अमंगलघ्नः तं एव नित्यं शृणुयात् अभीक्ष्णं कृष्णे अमलां भक्तिं अभीप्समानः ॥ १५ ॥

यः तु	- (किन्तु) इसमें जो तो	**कृष्णे**	- श्रीकृष्णमें निर्मल भक्ति
अमंगलघ्नः	- अमंगलोंका नाशक	**अमलां भक्तिं**	
उत्तम श्लोक	- पुण्यकीर्ति भगवानके	**अभीप्समानं**	- लालसा रखते हुए
गुण अनुवादः	- गुणोंका वर्णन	**तं एव नित्यं**	- उसीको सदा
अभीक्ष्णं	- बार-बार	**अभीक्ष्णं**	- बार-बार
संगीयते	- गाया गया है,	**शृणुयात्**	- श्रवण करे ॥ १५ ॥

राजोवाच-

केनोपायेन भगवन् कलेर्दोषान् कलौ जनाः ।
विधमिष्यन्त्युपचितांस्तन्मे ब्रूहि यथा मुने ॥ १६ ॥

केन उपायेन भगवन् कलेः दोषान् कलौ जनाः विधमिष्यन्ति उपचितान् तत् मे ब्रूहि यथा मुने ॥ १६ ॥

भगवन् - भगवन् !
मुने - मुनिवर !
कलौ जनाः - कलियुगके लोग
उपचितान् - राशि राशि
कलेः दोषान् - कलियुगके दोषोंको
केन उपायेन - किस उपायसे
यथा - जैसे
विधमिष्यन्ति - पूर्ण भस्म करेंगे
तत् मे ब्रूहि - वह मुझे बतलाइये ॥१६॥

युगानि युगधर्मांश्च मानं प्रलयकल्पयोः ।
कालस्येश्वररूपस्य गतिं विष्णोर्महात्मनः ॥ १७ ॥

युगानि युग धर्मान् च मानं प्रलय कल्पयोः कालस्य ईश्वर रूपस्य गतिं विष्णोः महात्मनः ॥ १७ ॥

युगानि - युगोंका स्वरूप,
च युग धर्मान् - तथा उन युगोंके धर्म,
प्रलय - प्रलयके समय
कल्पयोः - कल्पकी
मानं - स्थिति,
महात्मनः - महात्मा
विष्णोः - सर्वव्यापक
ईश्वररूपस्य - सर्व समर्थ स्वरूप
कालस्य गतिं - कालका रूप (बतलाइये) ॥ १७ ॥

श्रीशुक उवाच-

कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः ।
सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप ॥ १८ ॥

कृते प्रवर्तते धर्मः चतुष्पात् तत् जनैः धृतः सत्यं दया तपः दानं इति पादा विभोः नृप ॥ १८ ॥

नृप	- राजन् !	**चतुष्पात्**	- चारों चरणोंसे
कृते	- सतयुगमें	**प्रवर्तते**	- प्रवृत्त होता है,
तत् जनैः	- उस समय लोगों द्वारा	**सत्यं दया**	- सत्य, दया,
धृतः	- धारण किया हुआ	**तपः दानं**	- तपस्या और दान
विभोः धर्मः	- भगवत् स्वरूप धर्म	**इति पादाः**	- ये (उनके) पैर हैं ॥१८॥

सन्तुष्टाः करुणा मैत्राः शान्ता दान्तास्तितिक्षवः ।
आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः ॥ १९ ॥

सन्तुष्टाः करुणा मैत्राः शान्ता दान्ताः तितिक्षवः आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः ॥ १९ ॥

जनाः	- (उस समयके) लोग	**दान्ताः**	- इन्द्रिभजयी
सन्तुष्टाः	- सन्तोषी	**तितिक्षवः**	- तितिक्षु
करुणा	- दयालु,	**आत्मारामाः**	- आत्मामें ही रमण करनेवाले
मैत्राः	- (सबके) मित्र,	**समदृशः**	- समदर्शी
शान्ता	- शान्त,	**प्रायशः-**	- सन्यासी प्राय हो
		श्रमणा	रहे हैं ॥ १९ ॥

त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः ।
अधर्मपादैरनृतहिंसासन्तोषविग्रहैः ॥ २० ॥

त्रेतायां धर्म पादानां तुर्य अंशः हीयते शनैः अधर्मपादैः अनृत हिंसा असन्तोष विग्रहैः ॥ २० ॥

त्रेतायां - त्रेतायुगमें
अधर्मपादैः - अधर्मके चरण
अनृत - झूठ,
हिंसा - हिंसा,
असन्तोष - असन्तोष तथा
विग्रहैः - झगड़े द्वारा
धर्मपादानां - धर्मके चरणोंका
तुर्म अशः - चतुर्थांश
शनैः हीयते - धीरे-धीरे क्षीण होता है ॥ २० ॥

तदा क्रियातपोनिष्ठा नातिहिंस्रा न लम्पटाः ।
त्रैवर्गिकास्त्रयीवृद्धा वर्णा ब्रह्मोत्तरा नृप ॥ २१ ॥

तदा क्रिया तपः निष्ठा न अति हिंस्रा न लम्पटाः त्रैवर्गिकाः त्रयी वृद्धा वर्णा ब्रह्म उत्तरा नृप ॥ २१ ॥

नृप - राजन् !
तदा ब्रह्म- - उस समय ब्राह्मण
उत्तरा प्रधान
वर्णाः - वर्ण वाले लोग
क्रिया तपः - कर्मकाण्ड तथा तपस्यामें
निष्ठा - आस्थावान
न अति- - न बहुत हिंसक और
हिंसा
न लम्पटाः - न व्यभिचारी,
त्रैवर्गिकाः - त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम) परायण
त्रयीवृद्धा - वेदोंके विद्वान होते हैं ॥ २१ ॥

तपः सत्यदयादानेष्वर्धं ह्रसति द्वापरे ।
हिंसातुष्ट्यनृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्मलक्षणैः ॥ २२ ॥

तपः सत्य दया दानेषु अर्धं ह्रसति द्वापरे हिंसा अतुष्टि अनृत द्वेषैः धर्मस्य अधर्म लक्षणैः ॥ २२ ॥

द्वापरे	- द्वापरयुगमें
हिंसा अतुष्टि	- हिंसा, असन्तोष,
अनृत	- झूठ,
द्वैषैः	- द्वेष
अधर्म लक्षणैः	- अधर्मके चिन्होंसे
धर्मस्य	- धर्मके
तपः सत्यं	- तपस्या, सत्य,
दया दानेषु	- दया, दानमेंसे
अर्धं ह्रसति	- आधा भाग क्षीण होजाता है ॥ २२ ॥

यशस्विनो महाशालाः स्वाध्यायाध्ययने रताः ।
आढ्याः कुटुम्बिनो हृष्टा वर्णाः क्षत्रद्विजोत्तराः ॥ २३ ॥

यशस्विनः महाशालाः स्वाध्याय अध्ययने रताः आढ्याः कुटुम्बिनः हृष्टाः वर्णाः क्षत्र द्विज उत्तराः ॥ २३ ॥

यशस्विनः	- यशस्वी,
महाशालाः	- कर्मकाण्डी,
स्वाध्याय	- वेदोंके पढने
अध्ययने	- तथा (गंभीर) अध्ययनमें
रताः	- लगे रहने वाले,
आढ्याः	- धनवान,
कुटुम्बिनः	- बड़े परिवार वाले
हृष्टाः	- प्रसन्नचित्त
क्षत्र द्विज	- क्षत्रिय-ब्राह्मण
उत्तराः	- प्रधानता वाले
वर्णाः	- वर्णोंके होते हैं ॥२३॥

कलौ तु धर्महेतूनां तुर्यांशोऽधर्महेतुभिः ।
एधमानैः क्षीयमाणो ह्यन्ते सोऽपि विनङ्क्ष्यति ॥ २४ ॥

कलौ तु धर्म हेतूनां तूर्य अंशः अधर्म हेतुभिः एधमानैः क्षीयमाणः हि अन्ते सः अपि विनङ्क्ष्यति ॥ २४ ॥

कलौ तु	- कलियुगमें तो
हि अधर्म	- क्योंकि अधर्मके
हेतुभिः एधमानैः	- कारण बढ़ते जाते हैं
धर्म हेतूनां	- धर्मके कारणोंका
तूर्य अंशः	-(प्रारम्भमें) चतुर्थांश
क्षीयमाणः	-क्षीण होने लगे
अन्ते सः अपि	-और अन्तमें वह भी
विनङ्क्ष्यति	-नष्ट हो जायगा ॥२४॥

तस्मिँल्लुब्धा दुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः ।
दुर्भगा भूरितर्षाश्च शूद्रदाशोत्तराः प्रजाः ॥ २५ ॥

तस्मिन् लुब्धा दुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः दुर्भगा भूरितर्षाः च शूद्र दास उत्तराः प्रजाः ॥ २५ ॥

तस्मिन् - उस (कलि) युगमें
लुब्धा - लोभी,
दुराचारा - दुराचारी,
निर्दयाः - निर्दय,
शुष्कवैरिणः - अकारण शत्रुता करने वाले,
दुर्भगा - भाग्यहीन
च भूरितर्षाः - तथा अत्यन्त तृष्णा वाले
शूद्र दास- - शूद्र एवं केवट
उत्तराः आदिकी प्रधानता वाला
प्रजाः - प्रजा होगी ॥ २५ ॥

सत्त्वं रजस्तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः ।
कालसञ्चोदितास्ते वै परिवर्तन्त आत्मनि ॥ २६ ॥

सत्त्वं रजः तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः काल सञ्चोदिताः ते वै परिवर्तन्त आत्मनि ॥ २६ ॥

सत्त्वं रजः - सत्त्व, रज और
तम इति - तम ये
गुणाः पुरुषे - गुण पुरुषमें
दृश्यन्ते - दीखते हैं,
ते वै - वे निश्चय
कालसञ्चोदिताः - कालकी प्रेरणासे
आत्मनि - चित्तमें
परिवर्तन्त - बदलते रहते हैं ॥२६॥

प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणि च ।
तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद् रुचिः ॥ २७ ॥

प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनः बुद्धिः इन्द्रियाणि च तदा कृतयुगं विद्यात् ज्ञाने तपसि यत् रुचिः ॥ २७ ॥

मनः बुद्धि	- मन, बुद्धि	**तदा कृतयुगं**	- उस समय सतयुग
च इन्द्रियाणि	- तथा इन्द्रियां	**विद्यात्**	- समझना चाहिए
यदा सत्त्वे	- जब सत्त्वगुणमें	**यत् ज्ञाने**	- जिससे ज्ञान एवं
प्रभवन्ति	- स्थित होकर व्यवहार करती है	**तपसि रुचिः**	- तपस्यामें रुचि होती है ॥ २७ ॥

यदा धर्मार्थकामेषु भक्तिर्भवति देहिनाम् ।
तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन् ॥ २८ ॥

यदा धर्म अर्थ कामेषु भक्तिः भवति देहिनां तदा त्रेता रजोवृत्तिः इति जानीहि बुद्धिमन् ॥ २८ ॥

बुद्धिमन्	- बुद्धिमान परीक्षित !	**तदा रजोवृत्तिः**	- तब रजोगुणकी वृत्ति
यदा देहिनां	- जब शरीर धारियोंकी	**त्रेता इति**	- त्रेता युग है ऐसा
धर्म अर्थ कामेषु	- धर्म, अर्थ, काममें	**जानीहि**	- समझो ॥ २८ ॥
भक्तिः भवति	- प्रीति हो		

यदा लोभस्त्वसन्तोषो मानो दम्भोऽथ मत्सरः ।
कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद् रजस्तमः ॥ २९ ॥

यदा लोभः तु असन्तोषः मानः दम्भः अथ मत्सरः कर्मणां च अपि काम्यानां द्वापरं तत् रजः तमः ॥ २९ ॥

यदा तु	- जब तो	**च काम्यानां**	- और सकाम
लोभः	- लोभ,	**कर्मणां अपि**	- कर्मोंकी भी (इच्छा बढ़े)
असन्तोषः	- असन्तोष,	**तत् रजः-**	- वह रजोगुण-तमोगुण
मानः दम्भः	- अभिमान, दम्भ,	**तमः**	मिश्रित
अथ मत्सरः	- तथा मात्सर्य	**द्वापरं**	- द्वापर युग है ॥ २९ ॥

यदा मायानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनम् ।
शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः ॥ ३० ॥

यदा माया अनृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनं शोकः मोहः भयं दैन्यं स कलिः तामसः स्मृतः ॥ ३० ॥

यदा माया	-	जब कपट,	**शोकः मोहः**	-	शोक, मोह,
अनृतं	-	झूठ	**भयं दैन्यं**	-	भय, दीनता (चित्तमें आवें)
तन्द्रा निद्रा	-	तन्द्रा-निद्रा,	**स कलिः**	-	वह कलियुग
हिंसा विषादनं	-	हिंसा, विषाद,	**तामसः स्मृतः**	-	तमोगुणी कहा गया है ॥ ३० ॥

यस्मात् क्षुद्रदृशो मर्त्याः क्षुद्रभाग्या महाशनाः ।
कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः ॥ ३१ ॥

यस्मात् क्षुद्रदृशः मर्त्याः क्षुद्रभाग्या महा अशनाः कामिनः वित्तहीनाः च स्वैरिण्यः च स्त्रियः असतीः ॥ ३१ ॥

यस्मात्	-	जिस (कलियुग) के कारण	**कामिनः**	-	कामुक
मर्त्याः क्षुद्रदशः	-	मनुष्य तुच्छदर्शी	**च वित्तहीनाः**	-	तथा धनहीन
क्षुद्रभाग्याः	-	अल्प भाग्य,	**च स्त्रियाः**	-	एवं स्त्रियां
महाअशनाः	-	बहुत खाने वाले,	**स्वैरिण्यः**	-	स्वेच्छाचारिणी
			असतीः	-	कुलटा (हो जाती हैं) ॥ ३१ ॥

दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाखण्डदूषिताः ।
राजानश्च प्रजाभक्षाः शिश्नोदरपरा द्विजाः ॥ ३२ ॥

दस्यु उत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाखण्ड दूषिताः राजानः च प्रजाभक्षाः शिश्न उदरपरा द्विजाः ॥ ३२ ॥

जनपदा	-	बस्तियोंमें
दस्यु उत्कृष्टा	-	डाकुओंकी प्रधानता होती है,
वेदाः	-	वेद
पाखण्ड दूषिताः	-	पाखण्डियों द्वारा दूषित हो जाते हैं
च राजानः	-	तथा राजा लोग
प्रजा भक्षा	-	प्रजाका भक्षण (रक्त शोषक) हो जाते हैं
द्विजाः	-	ब्राह्मण
शिश्न उदर	-	उपस्थ और पेट
परा	-	परायण (कामुक और खब्बू) हो जाते हैं ॥ ३२ ॥

अव्रता वटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुम्बिनः ।
तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनोऽत्यर्थलोलुपाः ॥ ३३ ॥

अव्रता वटवः अशौचा भिक्षवः च कुटुम्बिनः तपस्विनः ग्रामवासा न्यासिनः अति अर्थ लोलुपाः ॥ ३३ ॥

वटवः	-	ब्रह्मचारी लोग
अव्रता	-	ब्रह्मचर्य व्रतहीन
अशौचा	-	अपवित्र रहने वाले,
च कुटुम्बिनः	-	तथा कुटुम्बवान गृहस्थ
भिक्षवः	-	भिक्षा मांगने वाले,
तपस्विनः	-	तपस्वी वानप्रस्थ
ग्रामवासाः	-	बस्तियोंमें रहने वाले एवं
न्यासिनः	-	सन्यासी
अति अर्थ	-	अत्यन्त धन-लोलुप
लोलुपाः		होजाते हैं ॥ ३३ ॥

ह्रस्वकाया महाहारा भूर्यपत्या गतह्रियः ।
शश्वत्कटुकभाषिण्य श्चौर्यमायोरुसाहसाः ॥ ३४ ॥

ह्रस्वकाया महाहारा भूरि अपत्या गत ह्रियः शश्वत् कटुक भाषिण्यः चौर्य माया उरु साहसाः ॥ ३४ ॥

ह्रस्व काया - (लोग) छोटे शरीरके (नाटे)
महाहारा - बहु भोजी,
भूरि अपत्या - बहु-सन्तति,
गत ह्रियः - निर्लज्ज,
शश्वत् - बराबर
कटुक भाषिण्यः - कटुभाषी,
चौर्य माया - चोर, कपटी,
उरु साहसाः - बहुत साहसी (होजाते हैं) ॥३४॥

पणयिष्यन्ति वै क्षुद्राः किराटाः कूटकारिणः ।
अनापद्यपि मंस्यन्ते वार्तां साधुजुगुप्सिताम् ॥ ३५ ॥

पणयिष्यन्ति वै क्षुद्राः किराटाः कूट कारिणः अनापदि अपि मंस्यन्ते वार्तां साधु जुगुप्सिताम् ॥ ३५ ॥

वै क्षुद्राः - निश्चय तुच्छ लोग
कूट कारिणः - छलपूर्ण व्यवहार करने वाले
किराटाः - कौड़ी-कौड़ीसे चिपकने वाले
पणयिष्यन्ति - व्यापार करेंगे,
अनापदि अपि - आपत्तिकाल न होनेपर भी
साधु जुगुप्सितां - सत्पुरुषों द्वारा निन्दित
वार्तां मंस्यन्ते - आजीविका स्वीकार करेंगे ॥ ३५ ॥

पतिं त्यक्ष्यन्ति निर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् ।
भृत्यं विपन्नं पतयः कौलं गाश्चापयस्विनीः ॥ ३६ ॥

पतिं त्यक्ष्यन्ति निर्द्रव्यं भृत्या अपि अखिल उत्तमं भृत्यं विपन्नं पतयः कौलं गाः च अपयस्विनीः ॥ ३६ ॥

अखिल उत्तमं - सब प्रकारसे श्रेष्ठ
अपि - होनेपर भी
निर्द्रव्यं पतिं - धनहीन स्वामीको
भृत्या - सेवक,
विपन्नं उत्तमं - विपत्तिमें पड़े श्रेष्ठ
भृत्यं पतयः - सेवकको स्वामी तथा
अपयस्विनीः - दूधन देने वाली (बूढ़ी)
कौलं गाः - अपने घरकी गायको
त्यक्ष्यन्ति - (लोग) त्याग देंगे ॥ ३६ ॥

पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन् हित्वा सौरतसौहृदाः ।
ननान्दृश्यालसंवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः ॥ ३७ ॥

पितृ भ्रातृ सुहृत् ज्ञातीन् हित्वा सौरत सौहृदाः ननान्दृ श्याल संवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः ॥ ३६ ॥

कलौ नराः	-	कलियुगके पुरुष	**हित्वा**	-	त्यागकर,
सौरत सौहृदाः	-	कामवासनाकी तृप्तिके लिये मैत्री करने वाले	**दीनाः**	-	विचारे होकर
			स्त्रैणाः	-	स्त्री जित (होनेसे)
पितृ भ्रातृ	-	पिता-भाई,	**ननान्दृ**	-	सालियों और
सुहृत् ज्ञातीन्	-	हितैषी, जाति वालोंको	**श्याल संवादा**	-	सालोंसे सलाह लेगें ॥ ३७ ॥

शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपोवेषोपजीविनः ।
धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥ ३८ ॥

शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपः वेष उपजीविनः धर्मं वक्ष्यन्ति अधर्मज्ञा अधिरुह्य उत्तम आसनम् ॥ ३८ ॥

तपः वेष	-	तपस्वीके वेषसे	**अधर्मज्ञा**	-	धर्मको न जानने वाले
उपजीविनः	-	आजीविका करने वाले	**उत्तम आसनं**	-	श्रेष्ठ (वक्ताके) आसनपर
शूद्राः	-	शूद्र लोग	**अधिरुह्य**	-	बैठकर
प्रतिग्रहीष्यन्ति	-	दान लेंगे,	**धर्मं वक्ष्यन्ति**	-	धर्मोपदेश करेंगे ॥३८॥

नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरकर्शिताः ।
निरन्ने भूतले राजन्ननावृष्टिभयातुराः ॥ ३९ ॥

नित्यं उद्विग्न मनसः दुर्भिक्ष कर कर्शिताः निः अन्ने भूतले राजन् अनावृष्टि भय आतुराः ॥ ३९ ॥

राजन्	-	राजन् !	**अनावृष्टि**	-	अवर्षण (केकारण)
दुर्भिक्ष	-	अकाल तथा	**निः अन्ने**	-	आहारहीन पृथ्वीपर
कर कर्शिताः	-	करसे उत्पीडिता (प्रजा)	**भूतले**		
नित्यं उद्विग्न	-	सदा उद्विग्न चित्त,	**भय आतुराः**	-	भय व्याकुल ॥ ३९ ॥
मनसः					

वासोऽन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः ।
हीनाः पिशाचसन्दर्शा भविष्यन्ति कलौ प्रजाः ॥ ४० ॥

वासः अन्न पान शयनव्यवाय स्नान भूषणैः हीनाः पिशाच सन्दर्शा भविष्यन्ति कलौ प्रजाः ॥ ४० ॥

कलौ प्रजाः	-	कलियुगकी प्रजा	**हीनाः**	-	रहित होकर
वासः अन्न	-	वस्त्र, आहार,	**पिशाच सन्दर्शा**	-	पिशाचोंके समान दीखने वाली
पान शयन	-	पीनेको जल, सोनेको स्थान,	**भविष्यन्ति**	-	होजायगी ॥ ४० ॥
स्नानभूषणैः	-	स्नान तथा आभूषणोंसे			

कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः ।
त्यक्ष्यन्ति च प्रियान् प्राणान् हनिष्यन्ति स्वकानपि ॥ ४१ ॥

कलौ काकिणिके अपि अर्थे विगृह्य त्यक्त सौहृदाः त्यक्ष्यन्ति च प्रियान् प्राणान् हनिष्यन्ति स्वकान् अपि ॥ ४१ ॥

कलौ	-	कलियुगमें	**प्रियान्**	-	प्रिय
काकिणिके	-	कौड़ीमान	**प्राणान् च**	-	प्राणोंको भी
अर्थे अपि	-	धनके लिए भी	**त्यक्ष्यन्ति**	-	त्याग देंगे और
त्यक्त सौहृदाः	-	परस्परकी हितैषिता त्यागकर	**स्वकान् अपि**	-	अपने लोगोंको भी
विगृह्य	-	झगड़ा करके	**हनिष्यन्ति**	-	मार देंगे ॥ ४१ ॥

न रक्षिष्यन्ति मनुजाः स्थविरौ पितरावपि ।
पुत्रान् स वार्थकुशलान् क्षुद्राः शिश्नोदरम्भराः ॥ ४२ ॥

न रक्षिष्यन्ति मनुजाः स्थविरौ पितराः अपि पुत्रान् सर्व अर्थ कुशलान् क्षुद्राः शिश्न उदरम्भराः ॥ ४२ ॥

शिश्न	- उपस्थ एवं	**सर्व अर्थ**	- सब कामोंमें
उदरम्भराः	- पेटको ही तृप्त करनेवाले	**कुशलान्**	- निपुण
		पुत्रान्	- पुत्रोंकी
क्षुद्राः मनुजाः	- क्षुद्र मनुष्य	**रक्षिष्यन्ति न**	- रक्षा नहीं करेंगे ॥४२॥
स्थविरौ अपि	- वृद्ध होजानेपर भी		
पितराः	- माता-पिताकी एवं		

कलौ न राजञ्जगतां परं गुरुं
त्रिलोकनाथानतपादपंकजम् ।
प्रायेण मर्त्या भगवन्तमच्युतं
यक्ष्यन्ति पाखण्डविभिन्नचेतसः ॥ ४३ ॥

कलौ न राजन् जगतां परं गुरुं त्रिलोकनाथ आनत पादपंकजं प्रायेण मर्त्या भगवन्तं अच्युतं यक्ष्यन्ति पाखण्ड विभिन्न चेतसः ॥ ४३ ॥

राजन्	- राजन् !	**भगवन्तं**	- भगवान
कलौ	- कलियुगमें	**अच्युतं**	- अच्युतके
पाखण्ड	- पाखण्डसे	**पादपंकजं**	- चरण-कमलोंमें
विभिन्न चेतसः	- भ्रान्त बुद्धि	**आनत**	- विनम्र होकर
प्रायेण मर्त्या	- प्रायः मनुष्य	**यक्ष्यन्ति न**	- (उनकी) उपासना नहीं करेंगे ॥ ४३ ॥
जगतां परं गुरुं	- सम्पूर्ण जगतके परमगुरु,		
त्रिलोकनाथ	- त्रिलोकीनाथ		

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः
पतन् स्खलन् वा विवशो गृणन् पुमान् ।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं
प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥ ४४ ॥

यत् नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन् स्खलन् वा विवशः गृणन् पुमान् विमुक्त कर्म अर्गल उत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥४४॥

म्रियमाण	- मरते समय	**कर्म अर्गल**	- कर्मकी शृंखलासे
आतुरः	- व्याकुल होकर	**विमुक्त**	- छूटकर
वा विवशः	- अथवा विवश होकर	**उत्तमां गतिं**	- उत्तम गति
पतन्	- गिरते समय,	**प्राप्नोति**	- प्राप्त कर लेता है ।
स्खलन्	- फिसलते समय	**कलौ जनाः**	- कलियुगी मनुष्य
यत् नामधेयं	- जिनका नाम	**तं यक्ष्यन्ति न**	- उनकी उपासना नहीं
गृणन् पुमान्	- उच्चारणकरके पुरुष		करेंगे ॥ ४४ ॥

पुंसां कलिकृतान् दोषान् द्रव्यदेशात्मसम्भवान् ।
सर्वान् हरति चित्तस्थो भगवान् पुरुषोत्तमः ॥ ४५ ॥

पुंसां कलिकृतान् दोषान् द्रव्य देश आत्म सम्भवान् सर्वान् हरति चित्तस्थः भगवान् पुरुषोत्तमः ॥ ४५ ॥

द्रव्य देश	- पदार्थ, स्थान एवं	**चित्तस्थः**	- चित्तमें स्थित
आत्म सम्भवान्	- चित्तसे उत्पन्न	**भगवान्**	- भगवान
कलिकृतान्	- कलियुगके प्रभावसे हुए	**पुरुषोत्तमः**	- पुरुषोत्तम
सर्वान् दोषान्	- सब दोषोंको	**हरति**	- हरण कर लेते हैं ॥४५॥

श्रुतः संकीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोऽपि वा ।
नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थो जन्मायुताशुभम् ॥ ४६ ॥

श्रुतः संकीर्तितः ध्यातः पूजितः च आदृतः अपि वा नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थः जन्म अयुत अशुभम् ॥ ४६ ॥

श्रुतः - श्रवण करनेपर,
संकीर्तितः - संकीर्तन करनेपर,
ध्यातः च - ध्यान करने पर तथा
पूजितः - पूजा करनेपर
वा आदृतः - अथवा आदर करनेपर
अपि भी
हृतस्थः - हृदयमें स्थित
भगवान् भगवान
जन्म अयुत - सहस्त्रों जन्मोंके
नृणां अशुभं - मनुष्यके पापोंको
धुनोति - नष्ट कर देते हैं ॥४६॥

यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वणं हन्ति धातुजम् ।
एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशयम् ॥ ४७ ॥

यथा हेम्नि स्थितः वह्निः दुर्वणं हन्ति धातुजं एवं आत्मगतः विष्णुः योगिनां अशुभ आशयम् ॥ ४७ ॥

यथा हेम्नि - जैसे स्वर्णमें
स्थितः वह्निः - स्थित होकर अग्नि
धातुजं - (दूसरी मिली) धातुसे उत्पन्न
दुर्वणं - मलिनताको
हन्ति - नष्ट कर देता है
एवं आत्मगतः - इसी प्रकार हृदयमें आनेपर
विष्णुः - श्रीहरि
योगिनां - साधकोंके
आशयं - अन्तःकरणके
अशुभ - पापोंको (नष्ट कर देते हैं) ॥ ४७ ॥

विद्यातपः प्राणनिरोधमैत्री-
तीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः ।
नात्यन्तशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा
यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ॥ ४८ ॥

विद्या तपः प्राण निरोध मैत्री तीर्थ अभिषेकव्रत दान जप्यैः न अत्यन्त शुद्धिं लभते अन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवति अनन्ते ॥ ४८ ॥

विद्या तपः	- विद्या, तपस्या,	**अन्तरात्मा**	- अन्तःकरणकी
प्राणनिरोध	- प्राणायाम,	**अत्यन्त शुद्धिं**	- आत्यन्तिक शुद्धि
मैत्री	- सब प्राणियोंसे मित्रता,	**न लभते**	- नहीं प्राप्त करता
तीर्थ अभिषेक	- तीर्थ-स्नान,	**यथा भगवति**	- जैसे भगवान
व्रत दान जप्यैः	- व्रत, दान, जपादिसे	**अनन्ते हृदिस्थे**	- अनन्तके हृदयमें स्थित होनेपर ॥ ४८ ॥

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशवम् ।
म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो या सि परां गतिम् ॥ ४९ ॥

तस्मात् सर्व आत्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशवं म्रियमाणः हि अवहितः ततः यासि परां गतिम् ॥ ४९ ॥

राजन्	- राजन् !	**हि म्रियमाणः**	- क्योंकि मरते समय भी
तस्मात्	- इसलिए	**अवहितः**	- (उनमें) एकाग्र होकर
सर्व आत्मना	- सम्पूर्ण मनसे	**ततः परां-**	- फिर परम गति
केशवं	- केशवको	**गतिं**	
हृदिस्थंकुरु	- हृदयमें स्थित करो	**यासि**	- जाओगे ॥ ४९ ॥

म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान् परमेश्वरः ।
आत्मभावं नयत्यंग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ॥ ५० ॥

म्रियमाणैः अभिध्येयः भगवान् परमेश्वरः आत्मभावं नयति अंग सर्व आत्मा सर्व संश्रयः ॥ ५० ॥

अंग	- प्रिय परीक्षित !	**परमेश्वरः**	- परमेश्वरका
म्रियमाणैः	- मरनेवालेको	**अभिध्येयः**	- ही ध्यान करना चाहिए
सर्व आत्मा	- सर्व स्वरूप,	**आत्म भावं**	- (इससे वे) अपने स्वरूपमें
सर्व संश्रयः	- सबके आश्रय	**नयति**	- पहुँचा देते (लीन कर लेते) हैं ॥ ५० ॥
भगवान्	- भगवान		

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥ ५१ ॥

कलेः दोषनिधे राजन् अस्ति हि एकः महान् गुणः कीर्तनात् एव कृष्णस्य मुक्त संगः परं व्रजेत् ॥ ५१ ॥

राजन्	- राजन !	**अस्ति**	- है कि
दोषनिधे	- दोषनिधान	**कृष्णस्य**	- श्रीकृष्णका
कलेः एकः	- कलियुगमें एक	**कीर्तनात् एव**	- कीर्तन करनेसे ही
हि महान् गुणः	- क्योंकि महान् गुण	**मुक्त संगः**	- आसक्तियोंसे छूटकर
		परं व्रजेत्	- परम पद चला जाता है ॥ ५१ ॥

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥ ५२ ॥

कृते यत् ध्यायतः विष्णुं त्रेतायां यजतः मखैः द्वापरे परिचर्यायां कलौ तत् हरि कीर्तनात् ॥ ५२ ॥

कृते	- सतयुगमें	**द्वापरे**	- द्वापर युगमें
विष्णुं ध्यायतः	- भगवान् विष्णुका ध्यान करनेसे,	**परिचर्यायां**	- (मूर्तिकी) सेवा-पूजा करनेसे
		यत् तत्	- जो (फल होता है) वह
त्रेतायां	- त्रेतायुगमें	**कलौ**	- कलियुगमें
मखैः यजतः	- यज्ञों द्वारा आराधन करनेसे	**हरि-**	- श्रीहरिके कीर्तनसे
		कीर्तनात्	(होता है) ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्धावधिर्नृप ।
कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ १ ॥

कालः ते परमाणु आदिः द्विपरार्ध अवधिः नृप कथितः युगमानं च शृणु कल्पलयाः अपि ॥ १ ॥

नृप	- राजन् !	**च युगमानं**	- तथा युगोंका मान
ते	- तुमसे	**कथितः**	- बतला चुका (अब)
परमाणु आदिः	- परमाणुसे आरम्भ करके	**कल्प**	- कल्पकी स्थिति और
		लयाः अपि	- प्रलय भी
द्विपरार्ध अवधिः	- दो परार्ध तककी सीमा वाला	**शृणु**	- सुनो ॥ १ ॥
कालः	- काल		

चतुर्युगसहस्त्रं च ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।
स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशांपते ॥ २ ॥

चतुर्युग सहस्रं तु ब्रह्मणः दिनं उच्यते स कल्पः यत्र मनवः चतुर्दश विशांपते ॥ २ ॥

विशांपते	- प्रजानाथ !	**उच्यते**	- कहा जाता है,
चतुर्युग	- चारों युगोंकी	**सकल्पः**	- उसीका नाम कल्प है
सहस्रंतु	- एक सहस्री तो	**यत्र चतुर्दश**	- जिसमें चौदह
ब्रह्मणः दिनं	- ब्रह्माका एक दिन	**मनवः**	- मनु (मन्वन्तर) होते हैं ॥ २ ॥

तदन्ते प्रलयस्तावान् ब्राह्मी रात्रिरुदाहृता ।
त्रयो लोका इमे तत्र कल्पन्ते प्रलयाय हि ॥ ३ ॥

तत् अन्ते प्रलयः तावान् ब्राह्मी रात्रिः उदाहृता त्रयः लोका इमे तत्र कल्पन्ते प्रलयाय हि ॥ ३ ॥

तत् अन्ते	- उस (कल्प) के अन्तमें	**हि इमे**	- क्योंकि ये
प्रलयः	- प्रलय होनेपर	**त्रयः लोका**	- तीनों लोकोंकी
तावान्	- उतनी ही बड़ी	**प्रलयाय**	- प्रलय
ब्राह्मी रात्रिः	- ब्रह्माकी रात	**कल्पन्ते**	- होजाती है ॥ ३ ॥
उदाहृता	- बतलायी गयी है,		

एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक् ।
शेतेऽनन्तासनो विश्वमात्मसात्कृत्य चात्मभूः ॥ ४ ॥

एष नैमित्तकः प्रोक्तः प्रलयः यत्र विश्वसृक् शेते अनन्त आसनः विश्वं आत्मसात् कृत्य च आत्मभूः ॥ ४ ॥

एष नैमित्तकः	- यह नैमित्तिक	**आत्मसात् कृत्य**	- अपनेमें लीन करके
प्रलयः प्रोक्तः	- प्रलय कही गयी है	**च अनन्त-**	- तथा शेषशाषी
यत्र आत्मभूः	- जिसमें स्वयं भू ब्रह्माजी	**आसनः**	
विश्वं	- विश्वको	**विश्वसृक्**	- विश्वस्रष्टा भगवान
		शेते	- सोते हैं ॥ ४ ॥

द्विपरार्धे त्वतिक्रान्ते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
तदा प्रकृतयः सप्त कल्पन्ते प्रलयाय वै ॥ ५ ॥

द्विपरार्धे तु अतिक्रान्ते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः तदा प्रकृतयः सप्त कल्पन्ते प्रलयाय वै ॥ ५ ॥

परमेष्ठिनः - परमेष्ठी
ब्रह्मणः - ब्रह्माजीके
द्विपरार्धे - दो परार्ध (उनके दिनके अनुसार सौ वर्ष)
अतिक्रान्ते तु - जब बीत जाते हैं तो
तदा सप्त - तब सातों (महत्तत्त्व, अहंकार, पाँचों तन्मात्रा)
प्रकृतयः - प्रकृतियोंकी
वै प्रलयाय - निश्चित प्रलय
कल्पन्ते - होजाती है ॥ ५ ॥

एष प्राकृतिको राजन् प्रलयो यत्र लीयते ।
आण्डकोशस्तु संघातो विघात उपसादिते ॥ ६ ॥

एष प्राकृतिकः राजन् प्रलयः यत्र लीयते आण्डकोशः तु संघातः विघात उपसादिते ॥ ६ ॥

राजन् - राजन !
एष प्राकृतिकः - यह प्राकृतिक
प्रलयः - प्रलय है
यत्र - जिसमें
विघात- - विघटनका समय
उपसादिते आनेपर
संघातः - यह संघीभूत
आण्डकोशः तु - ब्रह्माण्ड तो
लीयते - लीन होजाता है ॥६॥

पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन् न वर्षति ।
तदा निरन्ने ह्यन्योन्यं भक्षमाणाः क्षुधार्दिताः ॥ ७ ॥

पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन् न वर्षति तदा निरन्ने हि अन्यः अन्यं भक्षमाणाः क्षुधा अर्दिताः ॥ ७ ॥

राजन् - राजन्
भूमौ पर्जन्यः - पृथ्वीपर मेघ
शत वर्षाणि - सौ वर्षतक
वर्षति न - वर्षा नहीं करते,
तदा हि - उस समय क्योंकि
क्षुधा अर्दिताः - भूखसे बहुत पीड़ित होते हैं
निरन्ने - आहार न होनेसे
अन्यः अन्यं - एक दूसरेको
भक्षमाणाः - खाने लगते हैं ॥ ७ ॥

क्षयं यास्यन्ति शनकैः कालेनोपद्रुताः प्रजाः ।
सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवर्तको रविः ॥ ८ ॥

क्षयं यास्यन्ति शनकैः कालेन उपद्रुताः प्रजाः सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवर्तकः रविः ॥ ८ ॥

कालेन - कालके द्वारा
उपद्रुताः - उपद्रवग्रस्त
प्रजाः शनकैः - प्रजा धीरे-धीरे
क्षयं यास्यन्ति - नष्ट होजाती है
सांवर्तकः रविः - प्रलयकालीन सूर्य
सामुद्रं दैहिकं - समुद्रका, शरीरोंका,
भौमं रसं - पृथ्वीका रस ॥ ८ ॥

रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुञ्चति ।
ततः संवर्तको वह्निः संकर्षणमुखोत्थितः ॥ ९ ॥

रश्मिभिः पिबते धोरैः सर्वं न एव विमुञ्चति ततः संवर्तकः वह्निः संकर्षण मुख उत्थितः ॥ ९ ॥

घोरैः रश्मिभिः - (अपनी) दारुण किरणोंसे
सर्वं पिबते - सब पी लेता है,
विमुञ्चति - उसे छोड़ता
न एव - नहीं ही है
ततः संकर्षण - फिर शेषजीके
मुख उत्थितः - मुखोंसे प्रगट
संवर्तकः वह्नि - प्रलयाग्नि ॥ ९ ॥

दहत्यनिलवेगोत्थः शून्यान् भूविवरानथ ।
उपर्यधः समन्ताच्च शिखाभिर्वह्निसूर्ययोः ॥ १० ॥

दहति अनिल वेग उत्थः शून्यान् भूविवरान् अथ उपरिआधः समन्तात् च शिखाभिः वह्नि सूर्ययोः ॥ १० ॥

अनिल वेग - वायुके वेगसे
उत्थः - बढ़कर
अथ शून्यान् - फिर सूने
भूविवरान् - पृथ्वीके भीतरके लोकोंको
दहति - जला देता है ।
वह्नि सूर्ययोः - अग्नि और सूर्यकी
शिखाभिः - लपटोंसे
उपरि अधः - ऊपर नीचे
च समन्तात् - तथा चारों ओरसे ॥१०॥

दह्यमानं विभात्यण्डं दग्धगोमयपिण्डवत् ।
ततः प्रचण्डपवनो वर्षाणामधिकं शतम् ॥ ११ ॥

दह्यमानं विभाति अण्डं दग्ध गोमय पिण्डवत् ततः प्रचण्डः पवनः वर्षाणां अधिकं शतम् ॥ ११ ॥

दह्यमानं	- जलाया जाता हुआ	**ततः प्रचण्डः**	- फिर प्रचण्ड
दग्ध	- जले हुए	**पवनः**	- आंधी
गोमय	- गोबरके	**वर्षाणां शतं**	- सैंकड़ों वर्षोंसे
पिण्डवत्	- पिण्ड (उपले) के समान	**अधिकं**	- अधिक ही ॥ ११ ॥
अण्डं विभाति	- ब्रह्माण्ड लगता है,		

परः सांवर्तको वाति धूम्रं खं रजसाऽऽवृतम् ।
ततो मेघकुलान्यङ्ग चित्रवर्णान्यनेकशः ॥ १२ ॥

परः सांवर्तकः वाति धूम्रं खं रजसा आवृतं ततः मेघ कुलानि अंग चित्रवर्णानि अनेकशः ॥ १२ ॥

परः सांवर्तकः	- परम प्रलयकालीन	**अंग ततः**	- प्रिय परीक्षित ! फिर
वाति	- चलती रहती है,	**अनेकशः**	- अनेकों प्रकारके
खं रजसा	- आकाश धूलिसे	**चित्र वर्णानि**	- अनेकों रंगोंके
आवृतम्	- ढककर	**मेघ कुलानि**	- मेघोंके समूह ॥ १२ ॥
धूम्रः	- धूमिल होजाता है,		

शतं वर्षाणि वर्षन्ति नदन्ति रभसस्वनैः ।
तत एकोदकं विश्वं ब्रह्माण्डविवरान्तरम् ॥ १३ ॥

शतं वर्षाणि वर्षन्ति नदन्ति रभसस्वनैः तत एक उदकं विश्वं ब्रह्माण्ड विवर अन्तरम् ॥ १३ ॥

शतं वर्षाणि - सौ वर्ष तक
वर्षन्ति - बरसते हैं,
रभसस्वनैः - तीव्र स्वरसे
नदन्ति - गर्जना करते हैं

तत ब्रह्माण्ड - फिर ब्रह्माण्डके
विवर अन्तरम्:- बीचके भागका
विश्वं - सम्पूर्ण विश्व
एक उदकं - एक जलमय (होजाता है) ॥ १३ ॥

तदा भूमेर्गन्धगुणं ग्रसन्त्याप उदप्लवे ।
ग्रस्तगन्धा तु पृथिवी प्रलयत्वाय कल्पते ॥ १४ ॥

तदा भूमेः गन्धगुणं ग्रसन्ति आप उदप्लवे ग्रस्त गन्धा तु पृथिवी प्रलयत्वाय कल्पते ॥ १४ ॥

तदा उदप्लवे - तब जल प्रलय होजानेपर
भूमेः गुणं गन्ध - भूमिके गुण गन्धको
आप ग्रसन्ति - जल निगल लेता है

ग्रस्त गन्धा - गन्ध निगली जानेपर
पृथिवी तु - पृथिवीकी तो
प्रलयत्वाय - प्रलयावस्था
कल्पते - होजाती है ॥ १४ ॥

अपां रसमथो तेजस्ता लीयन्तेऽथ नीरसाः ।
ग्रसते तेजसो रूपं वायुस्तद्रहितं तदा ॥ १५ ॥

अपां रसं अथो तेजः ता लीयन्ते नीरसाः ग्रसते तेजसः रूपं वायुः तत् रहितं तदा ॥ १५ ॥

अथो तेजः - फिर अग्नि
अपां रसः - जलका रस (ग्रहण कर लेता है)
ता नीरसाः - वह (जल) रस रहित होजाता है

तेजसः रूपं - अग्निका रूप
वायुः ग्रसते - वायु निगल लेता है
तदा तत्-रहितं - तब उस (रूप) से अग्नि रहित होजाता है ॥१५॥

लीयते चानिले तेजो वायोः खं ग्रसते गुणम् ।
स वै विशति खं राजंस्ततश्च नभसो गुणम् ॥ १६ ॥

लीयते च अनिले तेजः वायोः खं ग्रसते गुणं स वै विशति खं राजन् ततः च नभसः गुणम् ॥ १६ ॥

राजन् - राजन् !
तेजः च - अग्नि भी
अनिले लीयते - अग्निमें लीन होजाता है,
वायोः गुणम् - वायुके गुण (स्पर्श) को
खं ग्रसते - आकाश निगल लेता है,
वै स खं - निश्चय वह (वायु) आकाशमें (मिल जाता है)
ततः च - फिर तो
नभसः गुणं - आकाशके गुण ॥१६॥

शब्दं ग्रसति भूतादिर्नभस्तमनुलीयते ।
तैजसश्चेन्द्रियाण्यङ्ग देवान् वैकारिको गुणैः ॥ १७ ॥

शब्दं ग्रसति भूतादिः नभः तं अनुलीयते तैजसः च इन्द्रियाणि अंग देवान् वैकारिकः गुणैः ॥ १७ ॥

शब्दं भूतादिः - शब्दको अहंकार
ग्रसति - निगलता है,
तं अनु - उसके पीछे
नभः लीयते - आकाशलीन होजाता है
अंग - प्रिय परीक्षित !
इन्द्रियाणि च - इन्द्रियोंको भी
तैजसः - तैजस (राजस) अहंकार
देवान् - (इन्द्रियोंके अधि) देवताओंका
गुणैः - (उनके) गुणोंके साथ
वैकारिकः - वैकारिक (सात्त्विक) अहंकार (लीन करता है) ॥ १७ ॥

महान् ग्रसत्यहंकारं गुणाः सत्त्वादयश्च तम् ।
ग्रसतेऽव्याकृतं राजन् गुणान् कालेन चोदितम् ॥ १८ ॥

महान् ग्रसति अहंकारं गुणाः सत्त्व आदयः च तं ग्रसते अव्याकृतं राजन् गुणान् कालेन चोदितम् ॥ १८ ॥

राजन्	-	राजन् !
अहंकारं	-	अहंकारको
महान् ग्रसति	-	महत्तत्त्व निगल लेता है,
च तं	-	तथा उसको
सत्त्व आदयः	-	सत्त्व आदि
गुणाः	-	गुण (ग्रस लेते हैं)
कालेन चोदितम्	-	कालकी प्रेरणासे
अव्याकृतं	-	प्रकृति
गुणान् ग्रसते	-	गुणोंको निगल लेती है ॥ १८ ॥

न तस्य कालावयवैः परिणामादयो गुणाः ।
अनाद्यनन्तमव्यक्तं नित्यं कारणमव्ययम् ॥ १९ ॥

न तस्य काल अवयवैः परिणाम आदयः गुणाः अनादि अनन्तम् अव्यक्तं नित्यं कारणं अव्ययम् ॥ १९ ॥

काल अवयवैः	-	कलके अंग (दिन, मासादि) में
तस्य	-	उस (प्रकृति) में
परिणाम आदयः	-	परिणाम आदि
गुणाः न	-	गुण नहीं होते,
अनादि अनन्त	-	वह अनादि, अनन्त,
अव्यक्तं	-	अव्यक्त,
नित्यं	-	नित्य,
अव्ययं	-	अविनाशी
कारणं	-	मूल कारण है ॥१९॥

न यत्र वाचो न मनो न सत्त्वं
तमो रजो वा महदादयोऽमी ।
न प्राणबुद्धीन्द्रियदेवता वा
न सन्निवेशः खलु लोककल्पः ॥ २० ॥

न यत्र वाचः न मनः न सत्त्वं तमः रजः वा महत् आदयः अमी न प्राण बुद्धि इन्द्रिय देवता वा न सन्निवेशः खलु लोककल्पः ॥ २० ॥

यत्र वाचः न - जहां वाणीका प्रवेश नहीं है,
न मनः - न मन,
न सत्त्वं- - न सत्त्व, तम, रजोगुण,
तमः रजः
वा अमी - अथवा ये
महत् आदयः - महत्तत्त्वादि,
प्राण बुद्धि - प्राण, बुद्धि,
वा इन्द्रिय- - अथवा इन्द्रियोंके देवता
देवता न नहीं हैं,
खलु- - अरे लोकोंकी कल्पना
लोककल्पः
सन्निवेशः न - तथा उनकी स्थिति नहीं है ॥ २० ॥

न स्वप्नजाग्रन्न च तत् सुषुप्तं
न खं जलं भूरनिलोऽग्निरर्कः ।
संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्यं
तन्मूलभूतं पदमामनन्ति ॥ २१ ॥

न स्वप्न जाग्रत् न च तत् सुषुप्तं न खं जलं भूः अनिलः अग्नि अर्कः संसुप्तवत् शून्यवत् अप्रतर्क्यं तत् मूलभूतं पदं आमनन्ति ॥ २१ ॥

तत् - वह
स्वप्न - स्वप्न
जाग्रत च - जाग्रत तथा
सुषुप्तं न - सुषुप्त नहीं है,
खं जलं - आकाश, जल,
भूः अनिलः - पृथ्वी, वायु,
अग्नि अर्कः न - अग्नि, सूर्य नहीं है,
तत् मूल- - उस सबकी मूलभूत
भूतं
पदं - स्थितिको -
संसुप्तवत् - सोयेके समान,
शून्यवत् - शून्यके समान,
अप्रतर्क्यं - अचिन्त्य
आमनन्ति - श्रुति कहती है ॥२१॥

लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषाव्यक्तयोर्यदा ।
शक्तयः सम्प्रलीयन्ते विवशाः कालविद्रुताः ॥ २२ ॥

लयः प्राकृतिकः हि एष पुरुष अव्यक्तयोः यदा शक्तयः सम्प्रलीयन्ते विवशाः काल विद्रुताः ॥ २२ ॥

काल विद्रुताः	- कालके दौड़ानेसे	**शक्तयः**	- शक्तियां
यदा	- जब	**सम्प्रलीयन्ते**	- अत्यन्त लीन होजाती हैं
पुरुष-	- पुरुष और प्रकृतिकी	**हि एष**	- क्योंकि यह
अव्यक्तयोः		**प्राकृतिकः**	- प्राकृतिक
		लयः	- प्रलय है ॥ २२ ॥

बुद्धीन्द्रियार्थरूपेण ज्ञानं भाति तदाश्रयम् ।
दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यन्तवदवस्तु यत् ॥ २३ ॥

बुद्धि इन्द्रिय अर्थ रूपेण ज्ञानं भाति तत् आश्रयं दृश्यत्व अव्यतिरेकाभ्यां आदि अन्त वत् अवस्तु यत् ॥ २३ ॥

बुद्धि इन्द्रिय	- बुद्धि, इन्द्रिय	**दृश्यत्व**	- उनके दृश्य होनेसे,
अर्थ रूपेण	- एवं उन (इन्द्रियों) के विषयोंके रूपमें	**अव्यतिरेकाभ्यां**	- (ज्ञानसे) पृथक न होनेके कारण,
तत् आश्रयं	- उनका आश्रय (अधिष्ठान)	**यत् आदि-अन्तवत्**	- जो आदि-अन्त वाला है
ज्ञानं भाति	- ज्ञान ही भासित (प्रतीत) होरहा है	**अवस्तु**	- सत्ताहीन है ॥ २३ ॥

दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग् भवेत् ।
एवं धीः खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात् ॥ २४ ॥

दीपः चक्षुः च रूपं च ज्योतिषः न पृथक् भवेत् एवं धीः खानि मात्राः न स्युः अन्यतम् आदृतात् ॥ २४ ॥

दीपः	- दीपक,	**एवं धीः**	- इसी प्रकार बुद्धि,
चक्षुः च	- नेत्र तथा	**खानि**	- इन्द्रियां,
रूपं च	- रूप भी	**मात्राः**	- (रूप, रसादि) तन्मात्रामें
ज्योतिषः	- ज्योतिषसे	**आदृतात्**	- सम्मान्य अधिष्ठानसे
पृथक् न भवेत्	- पृथक नहीं हो सकते,	**अन्यतम्**	पृथक
		न स्युः	- नहीं हो सकते ॥२४॥

बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति चोच्यते ।
मायामात्रमिदं राजन् नानात्वं प्रत्यगात्मनि ॥ २५ ॥

बुद्धेः जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिः इति च उच्यते मायामात्रं इदं राजन् नानात्वं प्रत्यक् आत्मनि ॥ २५ ॥

राजन्	- राजन् !	**उच्यते**	- कही जाती हैं
बुद्धेः जागरणं	- बुद्धि की जाग्रत,	**इदं नानात्वं**	- यह अनेकता
स्वप्नः च	- स्वप्न और	**मायामात्रं**	- केवल माया है
सुषुप्तिः इति	- सुषुप्ति में (तीन अवस्थायें)		॥ २५ ॥

यथा जलधरा व्योम्नि भवन्ति न भवन्ति च ।
ब्रह्मणीदं तथा विश्वमवयव्युदयाप्ययात् ॥ २६ ॥

यथा जलधरा व्योम्नि भवन्ति न भवन्ति च ब्रह्मणि इदं तथा विश्वं अवयवि उदय अप्ययात् ॥ २६ ॥

यथा जलधरा	- जैसे मेघ	**अवयवि**	- अपने अंगों का अंगी
व्योम्नि भवन्ति	- आकाशमें (कभी) होते हैं	**विश्वं**	- विश्व
		उदय	- उत्पत्ति एवं
च न भवन्ति	- और (कभी) नहीं होते	**अप्ययात्**	- विनाशवान है
तथा इदं	- वैसे ही यह	**ब्रह्मणि**	- ब्रह्ममें है ॥ २६ ॥

सत्यं ह्यवयवः प्रोक्तः सर्वावयविनामिह ।
विनार्थेन प्रतीयेरन् पटस्येवाङ्ग तन्तवः ॥ २७ ॥

सत्यं हि अवयवः प्रोक्तः सर्व अवयविनां इह विना अर्थेन प्रतीयेरन् पटस्य इव अंग तन्तवः ॥ २७ ॥

अंग - प्रिय परीक्षित !
हि सत्यं - क्योंकि सत्य
सर्व अवयविनां - सभी अवयव वालोंका
इह - इस संसार में
अवयवः - अवयव (अंग) ही
प्रोक्तः - कहे जाते हैं
पटस्य - वस्त्रके
तन्तवः - सूतके समान
विना अर्थेन - बिना पदार्थ हुए ही (जैसे सूत के अतिरिक्त वस्त्र कोई पदार्थ नहीं है)
प्रतीयेरन् - प्रतीत हो रहे हैं ॥२७॥

यत् सामान्यविशेषाभ्यामुपलभ्येत स भ्रमः ।
अन्योन्यापाश्रयात् सर्वमाद्यन्तवदवस्तु यत् ॥ २८ ॥

यत् सामान्य विशेषाभ्यां उपलभ्येत स भ्रमः अन्यः अन्य अपाश्रयात् सर्वं आदि अन्तवत् अवस्तु यत् ॥ २८ ॥

यत् सामान्य - जो सामान्य (कारण) रूपमें
विशेषाभ्यां - एवं विशेष (कार्य) रूपमें
उपलभ्येत - प्राप्त होता है,
स भ्रमः - वह भ्रम (प्रतीति) है,
अन्यः अन्य - (क्योंकि दोनों) एक दूसरेके
अपाश्रयात् - आश्रित होनेसे,
आदिअन्तवत् - आदि-अन्तवाले होनेसे भी
सर्वं यत् - सभी (पदार्थ) क्योंकि
अवस्तु - सत्ताहीन हैं ॥ २८ ॥

विकारः ख्यायमानोऽपि प्रत्यगात्मानमन्तरा ।
न निरूप्योऽस्त्यणुरपि स्याच्चेच्चित्सम आत्मवत् ॥ २९ ॥

विकारः ख्यायमानः अपि प्रत्यक् आत्मानं अन्तरा न निरूप्यः अस्ति अणुः अपि स्यात् चेत् चित् समआत्मवत् ॥ २९ ॥

विकारः - (यह प्रपञ्चरूप) विकार
ख्यायमानः अपि - वर्णित होनेपर भी
प्रत्यक् आत्मानं - अपने अन्तरात्मासे
अन्तरा - पृथक्
अणुः अपितु - किञ्चित् भी तो
निरूप्यः न - निरूपण करने योग्य नहीं है
स्यात् चेत् - यदि (यह निरूपणीय) हो तो
आत्मवत् - आत्माके समान
समचित् - उसके बराबरका चेतन होगा (पर ऐसा है नहीं) ॥ २९ ॥

न हि सत्यस्य नानात्वमविद्वान् यदि मन्यते ।
नानात्वं छिद्रयोर्यद्वज्ज्योतिषोर्वातयोरिव ॥ ३० ॥

न हि सतस्य नानात्वं अविद्वान् यदि मन्यते नानात्वं छिद्रयोः यद्वत् ज्योतिषोः वातयोः इव ॥ ३० ॥

हि सत्यस्य - क्योंकि (परमार्थ) सत्यमें
नानात्वं न - अनेकता नहीं है
अविद्वान् - अज्ञानी व्यक्ति
यदि मन्यते - यदि (अनेकता) मानता है तो
नानात्वं - यह अनेकता
छिद्रयोः - घटाकाश और महाकाश,
ज्योतिषोः - सूर्य बिम्ब तथा उसके प्रतिबिम्ब
वातयोः - (शरीरके भीतर और बाहरकी) वायुके
इव - समान
यद्वत् - (ये भेद) जैसे हैं वैसी (कल्पित) होगी ॥३०॥

यथा हिरण्यं बहुधा समीयते
नृभिः क्रियाभिर्व्यवहारवर्त्मसु ।
एवं वचोभिर्भगवानधोक्षजो
व्याख्यायते लौकिकवैदिकैर्जनैः ॥ ३१ ॥

यथा हिरण्यं बहुधा समीयते नृभिः क्रियाभिः व्यवहार वर्त्मसु एवं वचोभिः भगवान् अधोक्षजः व्याख्यायते लौकिक वैदिकैः जनैः ॥ २१ ॥

यथा - जैसे
व्यवहार - व्यवहारके
वर्त्मसु - मार्गमें
नृभिः - मनुष्यों द्वारा
क्रियाभिः - क्रियाके द्वारा
हिरण्यं - स्वर्णको
बहुधा - अनेक प्रकारका
समीयते - सम्पूर्ण रूप (आभूषणोंका) दिया जाता है
एवं लौकिक - इसी प्रकार साधारण तथा
वैदिकैः जनैः - वेदोंके विद्वानों द्वारा
वचो भिः - वाणी द्वारा
भगवान- - इन्द्रियातीत
अधोक्षजः भगवानकी
व्याख्यायते - (अनेकरूपोंमें) व्याख्याकी जाती है ॥ ३१ ॥

यथा घनोऽर्कप्रभवोऽर्कदर्शितो
ह्यर्कांशभूतस्य च चक्षुषस्तमः ।
एवं त्वहं ब्रह्मगुणस्तदीक्षितो
ब्रह्मांशकस्यात्मन आत्मबन्धनः ॥ ३२ ॥

यथा घनः अर्क प्रभवः अर्कदर्शितः हि अर्कअंश भूतस्य च चक्षुषः तमः एवं तु अहं ब्रह्मगुणः तत् ईक्षितः ब्रह्म अंशकस्य आत्मन आत्मबन्धनः ॥ ३२ ॥

यथा अर्क- - जैसे सूर्यसे उत्पन्न
प्रभवः होने वाले,
अर्कदर्शितः - सूर्यके प्रकाशमें दीखने वाले,
हि अर्क- अंशभूतस्य - क्योंकि सूर्यके ही अंश
घनः - मेघ
च चक्षुषः - फिर भी नेत्रोंके लिए
तमः - अन्धकार (उत्पन्न कर देते) हैं
एवं तु अहं - इसी प्रकार तो अहंकार
ब्रह्मगुणः - ब्रह्मका गुण (उत्पन्न)
तत् ईक्षितः - उसीसे प्रकाशित
ब्रह्म- - ब्रह्मके अंश जीवके लिए
अंशकस्य
आत्मन - स्वयं ही
आत्मबन्धनः - आत्मका बन्धन (बनता है) ॥ ३२ ॥

घनो यदार्कप्रभवो विदीर्यते
चक्षुः स्वरूपं रविमीक्षते तदा ।
यदा ह्यहंकार उपाधिरात्मनो
जिज्ञासया नश्यति तर्ह्यनुस्मरेत् ॥ ३३ ॥

घनः यदा अर्क प्रभवः विदीर्यते चक्षुः स्वरूपं रविं ईक्षते तदा यदा हि अहंकार उपाधिः आत्मनः जिज्ञासया नश्यति तर्हि अनुस्मरेत् ॥ ३३ ॥

अर्क प्रभवः	-	सूर्यसे उत्पन्न
घनः यदा	-	मेघ जब
विदीर्यते	-	फट जाते हैं
तदाचक्षुः	-	तब नेत्र
स्वरूपं रवि	-	अपने स्वरूप सूर्यको
ईक्षते	-	देख पाते हैं,
यदा आत्मनः	-	जब आत्माकी
उपाधिः अहंकार	-	उपाधि अहंकार
हि जिज्ञासया	-	क्योंकि तत्त्व जिज्ञासासे ही
नश्यति	-	नाश होती है
तर्हि	-	तभी
अनुस्मरेत्	-	(अपने स्वरूपका) ठीक स्मरण (ज्ञान) होता है ॥ ३३ ॥

यदैवमेतेन विवेकहेतिना
मायामयाहंकरणात्मबन्धनम् ।
छित्त्वाच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठते
तमाहुरात्यन्तिकमङ्ग सम्प्लवम् ॥ ३४ ॥

तत् एवं एतेन विवेक हेतिना मायामय अहंकरण आत्मबन्धनं छित्त्वा अच्युत आत्म अनुभवः अवतिष्ठते तं आहुः आत्यन्तिकम् अंग सम्प्लवम् ॥ ३४ ॥

अंग - प्रिय परीक्षित
तत् एवं - अतः इस प्रकार
विवेक हेतिना - विवेक रूपी कुल्हाड़ेसे
आत्मबन्धनं - अपना बन्धनरूप
मायामय - मायामय
अहंकरण - अहंकारको
छित्त्वा - काटकर
अच्युत आत्म - भगवत् स्वरूप आत्माके
अनुभवः - अनुभवमें
अवतिष्ठतः - स्थित होजाना
तं आत्यन्तिकम् -उसे आत्यन्तिक
सम्प्लवम् आहुः- प्रलय कहते हैं ॥३४॥

नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परंतप ।
उत्पत्तिप्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥ ३५ ॥

नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मआदीनां परंतप उत्पत्ति प्रलयाः एके सूक्ष्मज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥ ३५ ॥

परन्तप - शत्रुतापक परीक्षित !
एके सूक्ष्मज्ञाः - कोई सूक्ष्मदर्शी
ब्रह्मणा आदीनां - ब्रह्मा आदि
सर्वभूतानां - सभी प्राणियोंकी
उत्पत्ति - उत्पत्ति और
प्रलयाः - प्रलय
नित्यदा - सदा होती रहती है (यह)
सम्प्रचक्षते - भली प्रकार बतलाते हैं ॥ ३५ ॥

कालस्त्रोतोजवेनाशु ह्रियमाणस्य नित्यदा ।
परिणामिनामवस्थास्ता जन्मप्रलयहेतवः ॥ ३६ ॥

कालस्रोत जवेन आशु ह्रियमाणस्य नित्यदा परिणामिनां अवस्थाः ता जन्मप्रलय हेतवः ॥ ३६ ॥

परिणामिनां - परिवर्तनशील (पदार्थों) की
कालस्त्रोत - काल-प्रवाहके
जवेन - वेगसे
आशु-ह्रियमाणस्य - शीघ्रतासे खींचे जातोंका
ता अवस्थाः - वहस्थितियां
नित्यदा - सदा ही
जन्म-प्रलय - उत्पत्ति-प्रलयकी
हेतवः - कारण हैं ॥ ३६ ॥

अनाद्यन्तवतानेन कालेनेश्वरमूर्तिना ।
अवस्था नैव दृश्यन्ते वियति ज्योतिषामिव ॥ ३७ ॥

अनादि अन्तवत् अनेन कालेन ईश्वरमूर्तिना अवस्था न एव दृश्यन्ते वियति ज्योतिषां इव ॥ ३७ ॥

ईश्वरमूर्तिना	- भगवत्स्वरूप	**अवस्था**	- (बदलने वाली) स्थितियां
अनादि	- अनादि	**वियति**	- आकाशमें (चलते)
अन्तवत्	- (परमोक्षसे) अन्त होनेवाले	**ज्योतिषां**	- तारों (की गति) के समान
अनेन कालेन	- इस कालके द्वारा	**न एव-दृश्यन्ते**	- नहीं ही दीखती हैं ॥ ३७ ॥

नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः ।
आत्यन्तिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी ॥ ३८ ॥

नित्यः नैमित्तिकः च एव तथा प्राकृतिकः लयः आत्यन्तिकः च कथितः कालस्य गतिः ईदृशी ॥ ३८ ॥

नित्यः	- नित्य	**च आत्यन्तिकः**	- और आत्यन्तिक
नैमित्तिकः एव	- नैमित्तिक भी,	**लयः कथितः**	- प्रलयका वर्णन किया
च प्राकृतिकः	- एवं प्राकृतिक	**कालस्य**	- कालकी
		ईदृशी गतिः	- ऐसी ही गति है ॥३८॥

एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातु-
र्नारायणस्याखिलसत्त्वधाम्नः ।
लीलाकथास्ते कथिताः समासतः
कात्स्न्र्येन नाजोऽप्यभिधातुमीशः ॥ ३९ ॥

एताः कुरुश्रेष्ठ जगत् विधातुः नाराणस्य अखिल सत्त्वधाम्नः लीला कथाः ते कथिता समासतः कात्स्न्र्येन न अजः अपि अभिधातुं ईशः ॥ ३९ ॥

कुरुश्रेष्ठ - कुरुश्रेष्ठ !
अखिल- - समस्त प्राणियोंके
सत्त्वधाम्नः आश्रय
जगत् विधातुः - विश्वविधाता
नारायणस्य - भगवान नारायणकी
एताः- - इन लीला कथाओंको
लीलाकथाः
ते समासतः - तुमसे संक्षिप्त रूपसे
कथिताः - वर्णनकी
कात्स्न्र्येन - सम्पूर्णरूपसे
अभिधातुं - वर्णन करनेमें
अजः अपि - ब्रजी भी
ईशः न - समर्थ नहीं हं ॥ ३९ ॥

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य ॥ ४० ॥

संसारसिन्धुं अति दुस्तरं उत्तितीर्षोः न अन्यःप्लवः भगवतः पुरुषोत्तमस्य लीलाकथारस निषेवणं अन्तेरण पुंसः भवेत् विविध दुःख अर्दितस्य ॥ ४० ॥

विविध दुःखदव - अनेक प्रकारके दुःखोंसे
अर्दितस्य - रौंदे गये
अति दुस्तरं - अत्यन्त दुष्पार
संसारसिन्धुं - संसार-सागरके
उत्तितीर्षोः - पारकर जानेके इच्छुक
पुंसोः - पुरुषके लिए
भगवतः - भगवान
पुरुषोत्तमस्य - पुरुषोत्तमकी
लीला कथा - लीलाओंकी कथाके
रस निषेवण - रसको भली प्रकार सेवनको
अन्तरेण - छोड़कर
अन्यःप्लवः - दूसरी नौका
न भवेत् - नहीं हो सकती ॥४०॥

पुराणसंहितामेतामृषिर्नारायणोऽव्ययः ।
नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः ॥ ४१ ॥

पुराण संहितां एतां ऋषिः नारायणः अव्ययः नारदाय पुरा प्राह कृष्ण द्वैपायनाय सः ॥ ४१ ॥

एतां - इस
पुराण संहितां - संहिताको
पुरा - पहिले
अव्ययः - अविनाशी
नारायणः ऋषिः - नारायण ऋषिने
नारदाय प्राह - नारदजीको सुनाया था
सः कृष्ण- - उन्होंने श्रीकृष्ण द्वैपायन
द्वैपायनाय व्यासजीको सुनाया
॥ ४१ ॥

स वै मह्यं महाराज भगवान् बादरायणः ।
इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेदसम्मिताम् ॥ ४२ ॥

स वै मह्यं महाराज भगवान् बादरायणः इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेद सम्मिताम् ॥ ४२ ॥

महाराज - महाराज
स भगवान् - उन भगवान
बादरायणः - बादरायण ने
वै मह्यं प्रीतः - निश्चय मुझपर प्रसन्न होकर
इमां वेदसम्मितां- इस वेद सम्मत
भागवतीं - भागवती
संहितां - संहिता को (सुनाया)
॥ ४२ ॥

एतां वक्ष्यत्यसौ सूत ऋषिभ्यो नैमिषालये ।
दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ सम्पृष्टः शौनकादिभिः ॥ ४३ ॥

एतां वक्ष्यति असौ सूत ऋषिभ्यः नैमिष आलये दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ सम्पृष्टः शौनक आदिभिः ॥ ४३ ॥

कुरुश्रेष्ठ - कुरुश्रेष्ठ !
नैमिष आलये - नैमिषारण्यमें रहने वाले
दीर्घसत्रे - दीर्घकालीन यज्ञमें
शौनक आदिभिः- शौनक आदि
ऋषिभ्यः - ऋषियों द्वारा
सम्पृष्टः - पूछे जानेपर
असौ सूतः - ये सूत
एतां वक्ष्यति - इस (संहिता) का प्रवचन करेंगे ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान् हरिः ।
यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः ॥ १ ॥

अत्र अनुवर्ण्यते अभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान् हरिः यस्य प्रसादजः ब्रह्मा रुद्रः क्रोध समुद्भवः ॥ १ ॥

अत्र अभीक्ष्णम्	- इस (संहिता) में निरन्तर	**अनुवर्ण्यते**	- बार-बार वर्णन किया गया है
विश्वात्मा	- विश्वस्वरूप	**यस्य**	- जिनकी
भगवान् हरिः	- भगवान श्रीहरिका	**प्रसादजः ब्रह्मा**	- कृपासे ब्रह्मा उत्पन्न हुए
		क्रोध-समुद्भवः रुद्रः	- और क्रोधसे रुद्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥

त्वं तु राजन् मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि ।
न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि ॥ २ ॥

त्वं तु राजन् मरिष्य इति पशुबुद्धिं इमां जहि न जातः प्राक् भूतः अद्य देहवत् त्वं न नङ्क्ष्यसि ॥ २ ॥

राजन्	- राजन् !	**जहि**	- नष्ट करदो,
त्वं तु	- तुम तो	**त्वं प्राक् भूतः**	- त्वं पहिले हुए थे,
मरिष्य इति	- 'मरुँगा' इस प्रकारकी	**अद्य जातः**	- या अब उत्पन्न हुए हो
इमां पशुबुद्धिं	- इस पशुके जैसी बुद्धिको	**न**	- ऐसा नहीं है
		देहवत्	- शरीरके समान
		नङ्क्ष्यसि न	- नष्ट नहीं होंगे ॥ २ ॥

न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्रपौत्रादिरूपवान् ।
बीजाङ्कुरवद् देहादेर्व्यतिरिक्तो यथानलः ॥ ३ ॥

न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्र पौत्रादि रूपवान् बीज अंकुरवत् देहादेः व्यतिरिक्तः यथा अनलः ॥ ३ ॥

त्वं भूत्वा - तुम उत्पन्न होकर
पुत्र पौत्रादि - पुत्र पौत्रादि
रूपवान् - रूपवाले
बीज - बीजसे
अंकुरवत् - अंकुरके समान
न भविष्यसि - नहीं होओगे,
यथा अनलः - जैसे अग्नि (काष्ठ से पृथक है)
देहादेः - शरीरादि से (तुम)
व्यतिरिक्तः - पृथक हो ॥ ३ ॥

स्वप्ने यथा शिरश्छेदं पञ्चत्वाद्यात्मनः स्वयम् ।
यस्मात् पश्यति देहस्य तत आत्मा ह्यजोऽमरः ॥ ४ ॥

स्वप्ने यथा शिरः छेदं पञ्चत्व आदि आत्मनः स्वयं यस्मात् पश्यति देहस्य तत आत्महि अजः अमरः ॥ ४ ॥

यस्मात् हि - क्योंकि जैसे
स्वप्ने - स्वप्नमें
स्वयं आत्मनः - स्वयं अपना
शिरः छेदं - सिर काटा जाना,
पञ्चत्व आदि - मर जाना आदि
देहस्य पश्यति - शरीरका देखता है
तत आत्मा - अतः व्यापक आत्मा
अजः अमरः - अजन्मा, अमर है ॥ ४ ॥

घटे भिन्ने यथाऽऽकाश आकाशः स्याद् यथा पुरा ।
एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म सम्पद्यते पुनः ॥ ५ ॥

घटे भिन्ने यथा आकाश आकाशः स्यात् यथा पुरा एवं देहेमृते जीव ब्रह्म सम्पद्यते पुनः ॥ ५ ॥

घटे भिन्ने	- घड़े के फूट जानेपर	**एवं देहेमृते**	- ऐसे ही शरीरके मरने पर
यथा आकाशः	- जैसे घटाकाश	**जीवः**	- जीव
यथापुरा	- पहिले जैसा था वैसा	**पुनः ब्रह्म**	- फिर ब्रह्मके (रूपमें)
आकाशः स्यात्	- आकाश ही रहता है	**सम्पद्यते**	- स्थित होजाता है ॥५॥

मनः सृजति वै देहान् गुणान् कर्माणि चात्मनः ।
तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः ॥ ६ ॥

मनः सृजति वै देहान् गुणान् कर्माणि च आत्मनः तत् मनः सृजते माया ततः जीवस्य संसृतिः ॥ ६ ॥

वै मनः	- निश्चय मन ही	**सृजति**	- सृष्टि करता है,
आत्मनः	- आत्माके लिए	**तत् मनः**	- उस मनकी
देहान्	- शरीर	**सृजते माया**	- सृष्टि माया करती है
गुणान्	- विषय और	**ततः जीवस्य**	- उसी (माया) से जीवका
कर्माणि	- कर्मोंकी	**संसृतिः**	- आवागमन है ॥ ६ ॥

स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्निसंयोगो यावदीयते ।
ततो दीपस्य दीपत्वमेवं देहकृतो भवः ।
रजःसत्त्वतमोवृत्त्या जायतेऽथ विनश्यति ॥ ७ ॥

स्नेह अधिष्ठान वर्ति अग्नि संयोगः यावत् ईयते ततः दीपस्य दीपत्वं एवं देहकृतः भवः रजः सत्त्व तमः वृत्या जायते अथ विनश्यति ॥ ७ ॥

स्नेह	- तेल	**दीपत्वं**	- दीपकत्व है
अधिष्ठान	- उसका आधार (दीपक)	**एवं भवः**	- इसी प्रकार संसार
वर्ति अग्नि	- बत्ती और अग्निका	**देहकृतः**	- शरीरसे उत्पन्न है,
यावत् संयोगः	- जब तक संयोग	**रजः सत्त्व**	- रजोगुण, सत्त्वगुण,
ईयते	- बनाये रखा जाता है,	**तमः वृत्त्या**	- तमोगुण की वृत्तियोंसे
ततः दीपस्य	- उसीसे दीपकका	**जायते**	- उत्पन्न होता है,
		अथ विनश्यति	-फिर नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

न तत्रात्मा स्वयंज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः ।
आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनन्तोपमस्ततः ॥ ८ ॥

न तत्र आत्मा स्वयं ज्योतिः यः व्यक्त अव्यक्तयोः परः आकाश इव च आधारः ध्रुवः अनन्त उपमः ततः ॥ ८ ॥

तत्र	- उस (संसार) में	**आकाश इव**	- आकाशके समान
आत्मा न	- आत्मा (सीमित) नहीं है	**आधारः**	- सबका आधार
यः स्वयं-ज्योतिः	- जो स्वयं प्रकाश,	**ध्रुवः**	- अटल
व्यक्त-अव्यक्तयोः	- कार्य-कारणसे	**अनन्त उपमः**	- अनन्तके समान
परः	- अतीत,	**च ततः**	- तथा सर्वव्यापक है ॥ ८ ॥

एवमात्मानमात्मस्थमात्मनैवामृश प्रभो ।
बुद्ध्यानुमानगर्भिण्या वासुदेवानुचिन्तया ॥ ९ ॥

एवं आत्मानं आत्मस्थं आत्मना एव अमृश प्रभो बुद्ध्या अनुमान गर्भिण्या वासुदेव अनुचिन्तया ॥ ९ ॥

एवं	- इस प्रकार	**बुद्ध्या**	- बुद्धिके द्वारा
वासुदेव	- भगवान वासुदेव	**आत्मना एव**	- स्वयं ही
अनुचिन्तया	- बराबर चिन्तन करने वाला	**आत्मस्थं**	- अपने (रूपमें) ही स्थित
अनुमानगर्भिण्या	- अनुमान (विवेक) रखने वाला	**आत्मानं**	- आत्मतत्त्वका
		अमृश	- विचार करो ॥ ९ ॥

चोदितो विप्रवाक्येन न त्वां धक्ष्यति तक्षकः ।
मृत्यवो नोपधक्ष्यन्ति मृत्यूनां मृत्युमीश्वरम् ॥ १० ॥

चोदितः विप्रवाक्येन न त्वां धक्ष्यति तक्षकः मृत्यवः न उपधक्ष्यन्ति मृत्यूनां मृत्युं ईश्वरम् ॥ १० ॥

मृत्यूनां मृत्युं - (तुम) मृत्युओंकी मृत्यु
ईश्वरम् - ईश्वरको
विप्रवाक्येन - ब्राह्मणके वाक्यसे
चोदितः - प्रेरित
तक्षकः - तक्षकनाग
त्वां न धक्ष्यति -तुम्हें नहीं भस्म करेगा
मृत्यवः - मृत्युके सब कारण
उपधक्ष्यन्ति न - समीप नहीं फटकेंगे ॥ १० ॥

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् ।
एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥ ११ ॥

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्म अहं परमं पदं एवं समईक्षन आत्मानं आत्मनि आधाय निष्कले ॥ ११ ॥

निष्कले - कलाहीन
आत्मनि - आत्मामें
आधाय - सम्पूर्ण स्थित करके
परंधाम - परम प्रकाशक
अहं ब्रह्म - मैं ब्रह्म हूँ,
परमं पदं - परमाश्रय
आत्मानं - अपनेको
एवं समईक्षन् - इस प्रकार सम्पूर्ण देखते हुए ॥ ११ ॥

दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः ।
न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः ॥ १२ ॥

दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विष आननैः न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथक् आत्मनः ॥ १२ ॥

विष आननैः - विषैले मुखको
लेलिहानं - चाटता हुआ
पादैः दशन्तं - पैर में डँसते हुए
तक्षकं - तक्षकको
च शरीरं - तथा (अपने) शरीरको
च विश्वं - एवं संसारका
आत्मनः पृथक् - आत्मासे पृथक
न द्रक्ष्यसि - नहीं देखोगे ॥ १२ ॥

एतत्ते कथितं तात यथाऽऽत्मा पृष्टवान् नृप ।
हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १३ ॥

एतत् ते कथितं तात यथा आत्मा पृष्टवान् नृप हरेः विश्वात्मनः चेष्टां किं भूयः श्रोतुं इच्छसि ॥ १३ ॥

तात नृप	- प्रिय राजन् !	**विश्वात्मनः**	- विश्वात्मा
यथा आत्मा	- जैसा आत्मस्वरूप	**हरेः चेष्टां**	- श्रीहरिकी लीला
पृष्टवान्	- पूछा था	**ते कथितं**	- तुमको सुना दी
एतत्	- यह	**किं भूयः**	- क्या फिर (कुछ)
		श्रोतुं इच्छसि	- सुनना चाहते हो ॥१३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे ब्रह्मोपदेशो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

सूत उवाच-

एतन्निशम्य मुनिनाभिहितं परीक्षिद्
व्यासात्मजेन निखिलात्मदृशा समेन ।
तत्पादमूलमुपसृत्य नतेन मूर्ध्ना
बद्धाञ्जलिस्तमिदमाह स विष्णुरातः ॥ १ ॥

एतत् निशम्य मुनिना अभिहितं परीक्षित् व्यास आत्मजेन निखिल आत्मदृशा समेन तत् पादमूलं उपसृत्य नतेन मूर्ध्ना बद्ध अञ्जलिः तं इदं आह स विष्णुरातः ॥ १ ॥

निखिल	- समस्त जगतको	**स विष्णुरातः**	- वे विष्णुरात
आत्मदृशा	- आत्माके रूपमें-देखनेवाले	**परीक्षित्**	- परीक्षित
		तत् पादमूलं	- उनके चरणोंके
समेन	- समदर्शी	**उपसृत्य**	- समीप जाकर
व्यास आत्मजेन	- व्यासनन्दन	**नतेन मूर्ध्ना**	- सिर झुकाकर
मुनिना	- मुनि शुकदेवजी द्वारा	**बद्ध अञ्जलिः**	- हाथ जोड़कर
अभिहितं	- कही गयी	**तं इदं आह**	- उनसे यह बोले ॥ १ ॥
एतत् निशम्य	- यह बात सुनकर		

राजोवाच-

सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना ।
श्रावितो यच्च मे साक्षादनादिनिधनो हरिः ॥ २ ॥

सिद्धः अस्मि अनुगृहीतः अस्मि भवता करुण आत्मना श्रावितः यत् च मे साक्षात् अनादि निधनः हरिः ॥ २ ॥

भवता - आप
करुण आत्मना - कृपा स्वरूप द्वारा
यत् च मे - क्योंकि मुझे
अनादि निधनः - अनादि अविनाशी
साक्षात् हरिः - साक्षात् श्रीहरिको
श्रावितः - सुनाया है
अनुगृहीतः - मैं अनुगृहीत
अस्मि - हुआ
सिद्धः अस्मि - सिद्ध (कृतकृत्य) होगया ॥ २ ॥

नात्यद्भुतमहं मन्ये महतामच्युतात्मनाम् ।
अज्ञेषु तापतप्तेषु भूतेषु यदनुग्रहः ॥ ३ ॥

न अति अद्भुतं अहं मन्ये महतां अच्युत आत्मनां अज्ञेषु तापतप्तेषु भूतेषु यत् अनुग्रहः ॥ ३ ॥

अज्ञेषु - अज्ञानी
तापतप्तेषु - त्रिताप संतप्त
भूतेषु - (मेरे जैसे) प्राणियोंपर
यत् अनुग्रहः - जो अनुग्रह है (वह)
अच्युत आत्मनां - भगवत् स्वरूप
महतां - (आप) महापुरुषके लिए
अति अद्भुतं - अत्यन्त आश्चर्यजनक
अहं न मन्ये - मैं नहीं मानता ॥ ३ ॥

पुराणसंहितामेतामश्रौष्म भवतो वयम् ।
यस्यां खलूत्तमश्लोको भगवाननुवर्ण्यते ॥ ४ ॥

पुराण संहितां एतां अश्रौष्म भवतः वयं यस्यां खलु उत्तम श्लोकः भगवान् अनुवर्ण्यते ॥ ४ ॥

खलु यस्यां - अहो जिसमें
उत्तम श्लोकः - पुण्यकीर्ति
भगवान् - भगवानका
अनुवर्ण्यते - बराबर वर्णन होता है
एतां- - इस पुराण संहिताको
पुराण संहितां
भवतः - आपसे
वयं अश्रौष्म - हमने सुना ॥ ४ ॥

भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम् ।
प्रविष्टो ब्रह्म निर्वाणमभयं दर्शितं त्वया ॥ ५ ॥

भगवन् तक्षक आदिभ्यः मृत्युभ्यः न बिभेमि अहं प्रविष्टः ब्रह्म निर्वाणं अभयं दर्शितं त्वया ॥ ५ ॥

भगवन् त्वया - भगवन् आपने
अभयं - अभयपदका
दर्शितं - साक्षात्कार करा दिया (अतः)
ब्रह्म निर्वाणं - शान्तिस्वरूप ब्रह्ममें
प्रविष्टः - प्रवेश करलेनेसे
तक्षक आदिभ्यः - तक्षक आदिसे
मृत्युभ्यः - (होने वाली) मृत्युसे
अहं न बिभेमि - मैं डरता नहीं हूँ ॥ ५ ॥

अनुजानीहि मां ब्रह्मन् वाचं यच्छाम्यधोक्षजे ।
मुक्तकामाशयं चेतः प्रवेश्य विसृजाम्यसून् ॥ ६ ॥

अनुजानीहि मां ब्रह्मन् वाचं यच्छामि अधोक्षजे मुक्तकाम आशयं चेतः प्रवेश्य विसृजामि असून् ॥ ६ ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन् !
मां अनुजानीहि - मुझे आज्ञा दीजिए कि
वाचं यच्छामि - वाणीको रोकलूँ
मुक्त काम - कामनाओंसे मुक्त
आशयं - अन्तःकरणको करके
चेतः अधोक्षजे - चित्तको अन्तर्यामी (परमात्मा) में
प्रवेश्य - लगाकर
असून् विसृजामि - प्राण त्याग दूँ ॥ ६ ॥

अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञान विज्ञान निष्ठया ।
भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ॥ ७ ॥

अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञान विज्ञान निष्ठया भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ॥ ७ ॥

ज्ञान विज्ञान - ज्ञान-विज्ञान
निष्ठया - निष्ठासे
मे अज्ञानं च - मेरा अज्ञान भी
निरस्तं - दूर होगया
भवता - आपने
परं क्षेमं - परम कल्याणमय
भगवतः पदं - भगवानके स्वरूपका
दर्शितं - साक्षात्कार करा दिया ॥ ७ ॥

सूत उवाच-

इत्युक्तस्तमनुज्ञाप्य भगवान् बादरायणिः ।
जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः ॥ ८ ॥

इति उक्तः तं अनुज्ञाप्य भगवान् बादरायणिः जगाम भिक्षुभिः साकं नर देवेन पूजितः ॥ ८ ॥

इति उक्तः - ऐसा कहने पर
नर देवेन - राजा द्वारा
पूजितः - सत्कृत होकर
तं अनुज्ञाप्य - उनसे अनुमति लेकर
भगवान् - भगवान
बादरायणिः - व्यास-नन्दन
भिक्षुभिः साकं - त्यागी महात्माओंके साथ
जगाम - (वहांसे) चले गये ॥८॥

परीक्षिदपि राजर्षिरात्मन्यात्मानमात्मना ।
समाधाय परं दध्यावस्पन्दासुर्यथा तरुः ॥ ९ ॥

परीक्षित् अपि राजर्षिः आत्मनि आत्मानं आत्मना समाधाय परं दध्याः अस्पन्द असुः यथा तरुः ॥ ९० ॥

राजर्षिः - राजर्षि
परीक्षित् अपि - परीक्षित भी
आत्मानं - अपनेको
आत्मना - बुद्धि द्वारा
आत्मनि - आत्मामें
समाधाय - भली प्रकार लगाकर
यथा तरुः - जैसे वृक्ष हो
अस्पन्द असुः - प्राण सञ्चार रहित
परं दध्याः - परमात्माका ध्यान करने लगे ॥ ९ ॥

प्राक्कूले बर्हिष्यासीनो गंगाकूल उदङ्मुखः ।
ब्रह्मभूतो महायोगी निःसंगश्छिन्नसंशयः ॥ १० ॥

प्राक्कूले बर्हिषि आसीनः गंगाकूल उदङ्मुखः ब्रह्मभूतः महायोगी निःसंगः छिन्न संशयः ॥ १० ॥

गंगाकूल - गंगा किनारे
प्राक्कूले - पूर्वकी ओर नोक करके बिछे
बर्हिषि - कुशोंपर
उदङ्मुखः - उत्तरकी ओर मुख करके
आसीनः - बैठे हुए
महायोगी - महायोगी परीक्षित्
ब्रह्मभूतः - ब्रह्मस्वरूप होकर
निःसंगः - आसक्तिहीन होगये थे,
छिन्न संशयः - (उनके सब) सन्देह कट गये थे ॥ १० ॥

तक्षकः प्रहितो विप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना ।
हन्तुकामो नृपं गच्छन् ददर्श पथि कश्यपम् ॥ ११ ॥

तक्षकः प्रहितः विप्राः क्रुद्धेन द्विज सूनुना हन्तुकामः नृपं गच्छन् ददर्श पथि कश्यपम् ॥ ११ ॥

विप्राः - शौनकादि विप्रश्रेष्ठ !
क्रुद्धेन - कुपित
द्विजसूनुना - ब्राह्मण पुत्र द्वारा
प्रहितः - भेजा हुआ
तक्षकः - तक्षक नागने
नृपं हन्तुकामः - राजाको मारनेकी इच्छासे
गच्छन् - जाते हुए
पथि - मार्गमें
कश्यपं ददर्श - कश्यपको देखा ॥११॥

तं तर्पयित्वा द्रविणैर्निवर्त्य विषहारिणम् ।
द्विजरूपप्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशन्नृपम् ॥ १२ ॥

तं तर्पयित्वा द्रविणैः निर्वर्त्य विषहारिणं द्विजरूप प्रतिच्छन्नः कामरूपः दशन् नृपम् ॥ १२ ॥

तं विषहारिणं - उस विष दूर करने वालेको
द्रविणैः - धन देकर
तर्पयित्वा - तृप्त करके
निर्वर्त्य - लौटाकर
द्विजरूप - ब्राह्मणके वेशमें
प्रतिच्छन्नः - छिपा हुआ
कामरूपः - इच्छानुसार रूपधारी
नृपम् दशन् - पैरमें डंस लिया ॥१२॥

ब्रह्मभूतस्य राजर्षेर्देहोऽहिगरलाग्निना ।
बभूव भस्मसात् सद्यः पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥ १३ ॥

ब्रह्मभूतस्य राजर्षेः देहः अहि गरल अग्निना बभूव भस्मसात् सद्यः पश्यतां सर्व देहिनाम् ॥ १३ ॥

ब्रह्म भूतस्य - ब्रह्ममें एकाकार हुए
राजर्षेः देहः - राजर्षि परीक्षितका शरीर
सर्वदेहिनां - सभी देहधारियोंके
पश्यतां - देखते हुए
अहि गरल - सर्प विषरूपी
अग्निना - अग्निसे
सद्यः - तत्काल
भस्मसात् बभूव - भस्म हो गया ॥१३॥

हाहाकारो महानासीद् भुवि खे दिक्षु सर्वतः ।
विस्मिता ह्यभवन् सर्वे देवासुरनरादयः ॥ १४ ॥

हाहाकारः महान् आसीत् भुवि खे दिक्षु सर्वतः विस्मिता हि अभवन् सर्वे देव असुर नर आदयः ॥ १४ ॥

भुवि खे - पृथ्वीपर, आकाशमें,
सर्वतः दिक्षु - सब दिशाओंमें
महान्- - महान् हाहाकार
हाहाकारः
आसीत् - होने लगा,
हि सर्वे - क्योंकि सब
देव असुर - देवता, असुर,
नर आदयः - मनुष्यादि
विस्मिता- - चकित होगये थे
अभवन् ॥ १४ ॥

देवदुन्दुभयो नेदुर्गन्धर्वाप्सरसो जगुः ।
ववृषुः पुष्पवर्षाणि विबुधाः साधुवादिनः ॥ १५ ॥

देव दुन्दुभयः नेदुः गन्धर्व अप्सरसः जगुः ववृषुः पुष्प वर्षाणि विबुधाः साधुवादिनः ॥ १५ ॥

देव दुन्दुभयः	- देवताओंकी दुन्दुभियां	**साधुवादिनः**	- प्रशंसा करने वाले
नेदुः	- बजने लगीं	**विबुधाः**	- देवता
गन्धर्व	- गन्धर्व और	**पुष्पवर्षाणि**	- पुष्पोंकी राशि राशि
अप्सरसः जगुः	- अप्सरा में (कीर्ति) गाने लगी	**ववृषुः**	- वर्षा करने लगे ॥१५॥

जनमेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षकभक्षितम् ।
यथा जुहाव संक्रुद्धो नागान् सत्रे सह द्विजैः ॥ १६ ॥

जनमेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षक भक्षितं यथा जुहाव संक्रुद्धः नागान् सत्रे सह द्विजैः ॥ १६ ॥

जनमेजयः	- जनमेजयने	**सह द्विजैः**	- ब्राह्मणोंके साथ
स्वपितरं	- अपने पिताको	**यथा सत्रे**	- विधिपूर्वक यज्ञमें
तक्षक भक्षितं	- तक्षक द्वारा काटा गया	**नागान् जुहाव**	- सर्पोंकी आहुति देने लगे ॥ १६ ॥
श्रुत्वा संक्रुद्धः	- सुनकर कुपित होकर		

सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ दह्यमानान् महोरगान् ।
दृष्ट्वेन्द्रं भयसंविग्नस्तक्षकः शरणं ययौ ॥ १७ ॥

सर्प सत्रे समिद्ध अग्नौ दह्यमानान् महा उरगान् दृष्ट्वा इन्द्रं भय संविग्नः तक्षकः शरणं ययौ ॥ १७ ॥

सर्प सत्रे	- (उस) नागयज्ञमें	**दृष्ट्वा**	- देखकर
समिद्ध अग्नौ	- प्रज्वलित अग्निमें	**भय संविग्नः**	- भयसे विह्वल
महा उरगान्	- बड़े-बड़े सर्पोंको	**तक्षकः**	- तक्षक
दह्यमानान्	- जलते हुए	**इन्द्रं शरणं ययौ**	- इन्द्रकी शरणमें गया ॥ १७ ॥

अपश्यंस्तक्षकं तत्र राजा पारीक्षितो द्विजान् ।
उवाच तक्षकः कस्मान्न दह्येतोरगाधमः ॥ १८ ॥

अपश्यन् तक्षकं तत्र राजा पारीक्षितः द्विजान् उवाच तक्षकः कस्मात् न दह्येत उरग अधमः ॥ १८ ॥

तत्र तक्षकं	- वहां (यज्ञ) में तक्षकको	**उरग अधमः**	- सर्पाधम
अपश्यन्	- न देखकर	**तक्षकः**	- तक्षक
पारीक्षितः राजा	- परीक्षित नन्दन राजाने	**कस्मात् न**	- क्यों नहीं
द्विजान् उवाच	- ब्राह्मणोंसे कहा	**दह्येत**	- भस्म होरहा है ॥१८॥

तं गोपायति राजेन्द्र शक्रः शरणमागतम् ।
तेन संस्तम्भितः सर्पस्तस्मान्नाग्नौ पतत्यसौ ॥ १९ ॥

तं गोपायति राजेन्द्र शक्रः शरणं आगतं तेन संस्तम्भितः सर्पः तस्मात न अग्नौ पतति असौ ॥ १९ ॥

राजेन्द्र	- (ब्राह्मणोंने कहा) राजेन्द्र !	**तेन संस्तम्भितः**	- उनके द्वारा रोका हुआ
शरणं आगतं	- शरणमें आये हुए	**असौ सर्पः**	- यह सर्प
तं शक्रः	- उसकी इन्द्र	**तस्मात्**	- इसीलिए
गोपायति	- रक्षा कर रहे हैं,	**अग्नौ न पतति**	- अग्निमें नहीं गिरता है ॥ १९ ॥

पारीक्षित इति श्रुत्वा प्राहर्त्विज उदारधीः ।
सहेन्द्रस्तक्षको विप्रा नाग्नौ किमिति पात्यते ॥ २० ॥

पारीक्षित इति श्रुत्वा प्राह ऋत्विज उदारधीः सह इन्द्रः तक्षकः विप्रा न अग्नौ किं इति पात्यते ॥ २० ॥

इति श्रुत्वा	- ऐसा सुनकर	**विप्रा**	- ब्राह्मणो !
उदारधीः	- विशाल बुद्धि	**तक्षकः**	- तक्षकको
पारीक्षित	- परीक्षित नन्दन जनमेजय	**किं इति**	- क्या बाधा है कि
ऋत्विज प्राह	- ऋत्विजोंसे बोले	**अग्नौ न-**	- अग्निमें नहीं गिरा देते हैं
		पात्यते	॥ २० ॥

तच्छ्रुत्वाऽऽजुहुवुर्विप्राः सहेन्द्रं तक्षकं मखे ।
तक्षकाशु पतस्वेह सहेन्द्रेण मरुत्वता ॥ २१ ॥

तत् श्रुत्वा आजुहुवुः विप्राः सह इदं तक्षकं मखे तक्षक आशु पतस्व इह सह इन्द्रेण मरुत्वता ॥ २१ ॥

तत् श्रुत्वा	- वह (बात) सुनकर	**तक्षक**	- 'तक्षक !
विप्राः मखे	- ब्राह्मणोंने यज्ञमें	**मरुत्वता**	- मरुदगणोंके साथी
सह इन्द्रं	- इन्द्रके साथ	**इन्द्रेण सह**	- इन्द्रके साथ
तक्षकं	- तक्षकका	**इह आशु**	- यहां (अग्नि कुण्डमें) शीघ्र
आजुहुवुः	- आवाहन किया	**पतस्व**	- गिरो !' ॥ २१ ॥

इति ब्रह्मोदिताक्षेपैः स्थानादिन्द्रः प्रचालितः ।
बभूवुः सम्भ्रान्तमतिः सविमानः सतक्षकः ॥ २२ ॥

इति ब्रह्म उदितः आक्षेपैः स्थानात् इन्द्रः प्रचालितः बभूवुः सम्भ्रान्त मतिः सविमानः सतक्षकः ॥ २२ ॥

इति ब्रह्म	- इस प्रकार ब्राह्मणोंके	**प्रचालितः**	- विचलित होगये,
आक्षेपैः	- आकर्षण मन्त्रके	**स विमानः**	- विमानके साथ
उदितैः	- उच्चारण करनेपर	**स तक्षकः**	- तक्षकके साथ
इन्द्रः स्थानात्	- इन्द्र अपने स्थान स्वर्ग से	**सम्भ्रान्त मतिः**	- घबड़ायी बुद्धि वाले
		बभूवुः	- होगये ॥ २२ ॥

तं पतन्तं विमानेन सहतक्षकमम्बरात् ।
विलोक्याङ्गिरसः प्राह राजानं तं वृहस्पतिः ॥ २३ ॥

तं पतन्तं विमानेन सह तक्षकं अम्बरात् विलोक्य आंगिरसः प्राह राजानं तं वृहस्पतिः ॥ २३ ॥

आंगिरसः	-	अंगिरा-नन्दन	**अम्बरात्**	-	आकाशसे
वृहस्पतिः	-	वृहस्पतिने	**पतन्तं विलोक्य**	-	गिरते देखकर
सहतक्षकं:	-	तक्षकके साथ	**तं राजानं**	-	उन राजा (जनमेजय) से
विमानेन तं	-	विमानमें बैठे उन (इन्द्र) को	**प्राह**	-	कहा ॥ २३ ॥

वृहस्पति उवाच-

नैष त्वया मनुष्येन्द्र वधमर्हति सर्पराट् ।
अनेन पीतममृतमथ वा अजरामरः ॥ २४ ॥

न एष त्वया मनुष्येन्द्र वधं अर्हति सर्पराट् अनेन पीतं अमृतं अथ वा अजर अमरः ॥ २४ ॥

मनुष्येन्द्र	-	नरेन्द्र !	**अनेन अमृतं**	-	इसने अमृत
एष सर्पराट्	-	यह सर्पराज	**पीतं**	-	पीलिया है
त्वया वधं	-	आपके द्वारा मार देने	**अथ अजर**	-	अतः अजर
न अर्हति	-	योग्य नहीं है,	**वा अमरः**	-	या अमर होचुका है ॥ २४ ॥

जीवितं मरणं जन्तोर्गतिः स्वेनैव कर्मणा ।
राजंस्ततोऽन्यो नान्यस्य प्रदाता सुखदुःखयोः ॥ २५ ॥

जीवितं मरणं जन्तोः गतिः स्वेन एव कर्मणा राजन् ततः अन्यः न अन्यस्य प्रदाता सुख दुःखयोः ॥ २५ ॥

यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

राजन्	- राजन् !	**कर्मणा**	- कर्मानुसार होती है
जन्तोः	- प्राणीका	**ततः अन्यः**	- अतः (कोई) दूसरा
जीवितं मरणं	- जीवन मरण तथा	**अन्यस्य**	- (किसी) दूसरेको
गतिः	- (मरणोत्तर) गति	**सुख दुःखयोः**	- सुख-दुःखका
स्वेन एव	- अपने ही	**प्रदाता न**	- देने वाला नहीं है ॥२५॥

सर्पचौराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड्व्याध्यादिभिर्नृप ।
पञ्चत्वमृच्छते जन्तुर्भुङ्क्त आरब्धकर्म तत् ॥ २६ ॥

सर्प चौर अग्नि विद्युत्भ्यः क्षुत् तट् व्याधि आदिभिः नृपः पञ्चत्वं ऋच्छते जन्तुः भुङ्क्त आरब्धकर्म तत् ॥ २६ ॥

जन्तुः	- प्राणी	**व्याधि आदिभिः**	- रोग आदिसे
सर्प चौर	- सर्प, चोर,	**पञ्चत्वं ऋच्छते**	- मरण पाता है
अग्नि विद्युत्भ्यः	- अग्नि, बिजली,	**तत् आरब्ध-**	- वह अपना प्रारब्ध
क्षुत् तृट्	- भूख, प्यास,	**कर्म**	कर्म ही
		भुङ्क्त	- भोगता है ॥ २६ ॥

तस्मात् सत्रमिदं राजन् संस्थीयेताभिचारिकम् ।
सर्पां अनागसो दग्धा जनैर्दिष्टं हि भुज्यते ॥ २७ ॥

तस्मात् सत्रं इदं राजन् संस्थीयेत अभिचारिकं सर्पां अनागसः दग्धा जनैः दिष्टं हि भुज्यते ॥ २७ ॥

राजन्	- राजन् !	**अनागसः**	- निरपराध
तस्मात्	- इसलिए	**सर्पां दग्धा**	- सर्प जल गये
इदं अभिचारिकं	- यह अभिचार	**हि जनैः**	- क्योंकि मनुष्य
सत्रं संस्थीयेत	- यज्ञ रोक दिया जाय	**दिष्टं भुज्यते**	- अपना प्रारब्ध ही भोगता है ॥ २७ ॥

सूत उवाच-

इत्युक्तः स तथेत्याह महर्षेर्मानयन् वचः ।
सर्पसत्रादुपरतः पूजयामास वाक्पतिम् ॥ २८ ॥

इति उक्तः स तथा इति आह महर्षेः मानयन् वचः सर्प सत्रात् उपरतः पूजयामास वाक् पतिम् ॥ ३८ ॥

इति उक्तः	-	ऐसा कहने पर	**आह**	-	कहा और
महर्षेः वचः	-	महर्षिकी बातको	**सर्प सत्रात्**	-	सर्पयज्ञसे
मानयन्	-	मानते हुए	**उपरतः**	-	उपराम होकर
स तथा इति	-	उन्होंने 'ऐसा ही हो' इस प्रकार	**वाक्पतिं**	-	वृहस्पतिजीका
			पूजयामास	-	सत्कार किया ॥ २८ ॥

सैषा विष्णोर्महामायाबाध्ययालक्षणा यया ।
मुह्यन्त्यस्यैवात्मभूता भूतेषु गुणवृत्तिभिः ॥ २९ ॥

स एषा विष्णोः महामाया बाध्यया लक्षणा यया मुह्यन्ति अस्य एव आत्मभूता भूतेषु गुण वृत्तिभिः ॥ २९ ॥

स एषा	-	वह यह	**आत्मभूता**	-	आत्मज्ञानी भी
बाध्यया लक्षणा	-	अनिर्वचनीय लक्षण	**भूतेषु**	-	प्राणियोंमें
विष्णोः महामाया	-	भगवान् विष्णुकी महामाया है	**गुण वृत्तिभिः**	-	गुणोंकी वृत्ति (क्रोधादि) द्वारा
यया अस्य एव	-	जिसके द्वारा इसीके विषयमें	**मुह्यन्ति**	-	मोहित होजाते हैं ॥ २९ ॥

न यत्र दम्भीत्यभया विराजिता
मायाऽऽत्मवादेऽसकृदात्मवादिभिः ।

न यद्विवादो विविधस्तदाश्रयो ।

मनश्च संकल्पविकल्पवृत्ति यत् ॥ ३० ॥

न यत्र दम्भि इति अभया विराजिता माया आत्मवादे असकृत् आत्मवादिभिः न यत् विवादः विविधः तत् आश्रयः मनः च संकल्प विकल्प वृत्ति यत् ॥ ३० ॥

दम्भि इति	- 'यह कपटी है' इस प्रकार	**तत् आश्रयः**	- उस (आत्मा)के सम्बन्धका
अभया-	- निर्भय रूपसे रहने	**यत् विविधः**	- जो अनेक प्रकारका
विराजिता	वाली - माया	**असकृत्**	- निरन्तर
यत्र आत्मवादेन	- जिस आत्मा-परमात्माकी चर्चामें	**विवादः यत् न**	- विवाद जिससे नहीं होता
न	- नहीं रहती	**संकल्प**	- संकल्प
आत्मवादिभिः	- अध्यात्मवादियों द्वारा	**विकल्प वृत्तिमत्**	- विकल्प वृत्तिवाला
		मनः च यत्	- मन भी जहां (नहीं पहुँचता) ॥३०॥

न यत्र सृज्यं सृजतोभयोः परं

श्रेयश्च जीवस्त्रिभिरन्वितस्त्वहम् ।

तदेतदुत्सादितबाध्यबाधकं

निषिध्य चोर्मीन् विरमेत् स्वयं मुनिः ॥ ३१ ॥

न यत्र सृज्यं सृजतः उभयोः परं श्रेयः च जीवः त्रिभिः अन्वितः तु अहं तत् एतत् उत्सादित बाध्य बाधकं निषिध्य च उर्मीन् विरमेत् स्वयं मुनिः ॥ ३१ ॥

यत्र - जिसमें
सृज्यं - बननेवाली वस्तु (पदार्थ
सृजतः - उसको बनानेके साधन, (इन्द्रियां)
उभयोः परं - (इन) दोनोंसे परे
च श्रेयः - तथा श्रेष्ठ
जीवः - जीव
त्रिभिः - त्रिविध (राजस, तामस, वैकारिक)
अहं- - अहंकारके साथ तो
अन्वितः तु
न - नहीं है
बाध्य - बाधित होने वाले और
बाधकं - बाधित करने वाले भावको
उत्सादित - उन्मूलित करके (स्थित)
तत् एतत् - उस व्यापक (परमात्मा) में
स्वयं उर्मीन् - स्वयं (मनकी) लहरोंका
निषिध्य - निषेध करके ही
मुनिः - मननशीलं व्यक्ति
विरमेत् - उपराम होजाय ॥३१॥

परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्
यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ।
विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा
हृदोपगुह्यावसितं समाहितैः ॥ ३२ ॥

परं पदं वैष्णवं आमनन्ति तत् यत् न इति न इति अतत् उत्सिसृक्षवः विसृज्य दौरात्म्यं अनन्य सौहृदा हृद उपगह्य अवसितं समाहितैः ॥ ३२ ॥

अतत् - अतथ्यका
उत्सिसृक्षवः - त्याग करनेकी इच्छा वाले (मुमुक्ष)
यत् न- - जिसे 'यह नहीं',
इति न इति यह नहीं (इस वृत्तिसे)
दौरात्म्यं - अनात्म पदार्थको
विसृज्य - त्यागकर
अनन्य सौहृदा - अनन्य सौहार्द्र (भक्ति)
हृद उपगुह्य - हृदयमें आलिंगन करके (उपलब्ध करके)
समाहितैः - अत्यन्त एकाग्र होकर
अवसितं - (उसीमें) लीन होजाते हैं
तत् वैष्णवं - वह भगवान विष्णुका
परं पदं - परमधाम
आमनन्ति - (श्रुति में) कहा गया है ॥ ३२ ॥

त एतदधिगच्छन्ति विष्णोर्यत् परमं पदम् ।
अहं ममेति दौर्जन्यं न येषां देहगेहजम् ॥ ३३ ॥

त एतत् अधिगच्छन्ति विष्णोः यत् परमं पदं अहं मम इति दौर्जन्यं न येषां देह गेहजम् ॥ ३३ ॥

यत् विष्णोः	-	जो भगवान विष्णुका	**येषां देह-**	-	जिनमें शरीर और
परमं पदं	-	परमपद है	**गेहजं**		घरसे उत्पन्न
त एतत्	-	उसे वे लोग	**अहं मम-**	-	'यह मैं हूँ, यह मेरा है,
अधिगच्छन्ति	-	प्राप्त करते हैं	**इति**		इस प्रकारकी
			दौर्जन्यं न	-	दुर्जनता नहीं है ॥३३॥

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ।
न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ३४ ॥

अतिवादान् तितिक्षेत न अवमन्येत कञ्चन न च इमं देहं आश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ३४ ॥

अतिवादान्	-	कठोर वाणी	**च इमं देहं**	-	तथा इस शरीरको
तितिक्षेत	-	सहन करले,	**आश्रित्य**	-	आधार बनाकर
कञ्चन	-	किसीका भी	**केनचित्**	-	किसीसे भी
अवमन्येत न	-	अपमान न करे,	**वैरं न कुर्वीत**	-	शत्रुता न करे ॥३४॥

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
यत्पादाम्बुरुहध्यानात् संहितामध्यगामिमाम् ॥ ३५ ॥

नमः भगवते तस्मै कृष्णाय अकुण्ठ मेधसे यत् पाद अम्बुरुह ध्यानात् संहितां अध्यगां इमाम् ॥ ३५ ॥

अकुण्ठ मेधसे - अकुण्ठित प्रज्ञा वाले
तस्मै भगवते - उन भगवान
कृष्णाय नमः - श्रीकृष्णको नमस्कार
यत् पाद-अम्बुरुह - जिनके चरण कमलके
ध्यानात् - ध्यानसे
इमां संहितां - इस (श्रीमद्भागवत) संहिताको
अध्यगां - (मैंने) अध्ययन किया ॥ ३५ ॥९

शौनक उवाच-

पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः ।
वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत् सौम्याभिधेहि नः ॥ ३६ ॥

पैल आदिभिः व्यास शिष्यैः वेदाचार्यैः महात्मभिः वेदाः च कतिधा व्यस्ता एतत् सौम्य अभिधेहि नः ॥ ३६ ॥

सौम्य - सौम्य सूतजी !
व्यास शिष्यैः - व्यासजीके शिष्य
पैल आदिभिः - पैल आदि
वेदाचार्यैः - वेदाचार्य
महात्मभिः - महात्माओं द्वारा
वेदाः कतिधा च- वेदोंका कितना तो
व्यस्ता - विभाजन (सम्पादन) किया गया,
एतत् नः - यह हमें
अभि धेहि - सुनाइये ॥ ३६ ॥

सूत उवाच-

समाहितात्मनो ब्रह्मन् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
हृद्याकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद् विभाव्यते ॥ ३७ ॥

---

१. (यह अध्याय यहां स्वाभाविक रूपसे समाप्त हुआ लगता है । आगेजो शौनकजी का प्रश्न है उसका विवरण वेद शाखादि अगले अध्याय के अन्त तक है । अतः वह सम्पूर्ण भाग एक ही अध्याय ७ में होना चाहिए ।)

समाहित आत्मनः ब्रह्मन् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः हृदि आकाशात् अभूत् नादः वृत्ति रोधात् विभाव्यते ॥ ३७ ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्मन् !	**हृदिआकाशात्**	- हृदयाकाशमें
समाहित आत्मनः	- एकाग्रचित्त	**नादः अभूत्**	- नाद उत्पन्न हुआ,
परमेष्ठिनः	- सृष्टिकर्ता	**वृत्तिरोधात्**	- मनोवृत्तियोंको रोक लेनेसे
ब्रह्मणः	- ब्रह्माजीके	**विभाव्यते**	- (उस अनहद नादका) अनुभव किया जाता है ॥ ३७ ॥

यदुपासनया ब्रह्मन् योगिनो मलमात्मनः ।
द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यान्त्यपुनर्भवम् ॥ ३८ ॥

यत् उपासनया ब्रह्मन् योगिनः मल आत्मनः द्रव्य क्रिया कारक आख्यं धूत्वा यान्ति अपुनर्भवम् ॥ ३८ ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्मन् !	**आख्यं**	- नामक
यत् उपासनया	- जिसकी उपासनासे	**आत्मनः मलं**	- अन्तःकरणकी मलिनता
योगिनः	- योगी लोग	**धूत्वा**	- नष्ट करके
द्रव्य	- द्रव्य (अधिभूत) पदार्थ,	**अपुनर्भवं**	- मोक्ष
क्रिया	- क्रिया (अधिदैव) कर्म,	**यान्ति**	- प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३८ ॥
कारक	- कर्ता (अध्यात्म)		

ततोऽभूत्त्रिवृदोंकारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट् ।
यत्तल्लिंगं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ३९ ॥

ततः अभूत् त्रिवृत् ओंकारः यः अव्यक्त प्रभवः स्वराट् यत् तत् लिंगं भगवतः ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ३९ ॥

ततः - उस (अनहदनाद) से
अव्यक्त प्रभवः - अव्यक्त (प्रकृति) को उत्पन्न करने वाला
त्रिवृत् - तीन अक्षर (अ,उ,म) युक्त
स्वराट् स्वयं प्रकाश युक्त
ओंकारः - ओंकार
अभूत् - उत्पन्न हुआ,
यत् तत् - जो उस
परमात्मनः - परमात्मा
ब्रह्मणः - ब्रह्म
भगवतः लिंगं - भगवानका चिन्ह है ॥ ३९ ॥

शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक् ।
येन वाग् व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः ॥ ४० ॥

शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्य दृक् येनवाक् व्यज्यते यस्य व्यक्तिः आकाश आत्मनः ॥ ४० ॥

सुप्त श्रोत्रे - श्रवणेन्द्रिय शक्ति सुप्त होजानेपर
च शून्य दृक् - तथा नेत्रादि इन्द्रियोंके सूना (विहीन हो जानेपर)
य इमं स्फोटं - जो इस नादको
शृणोति - सुनता है,
येन वाक् - जिसके द्वारा (श्रुतिरूपा) वाणी
व्यज्यते - प्रकट होती है
यस्य आत्मनः - जिसके स्वरूप (व्यापकता) का
व्यक्तिः- - प्राकट्य आकाश है
आकाश ॥ ४० ॥

स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद् वाचकः परमात्मनः ।
स सर्वमन्त्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम् ॥ ४१ ॥

स्वधाम्नः ब्रह्मणः साक्षात् वाचकः परमात्मनः स सर्वमन्त्र उपनिषत् वेदबीजं सनातनम् ॥ ४१ ॥

स्वधाम्नः	-	स्वयं प्रकाश	**उपनिषत्**	-	उपनिषदों एवं
साक्षात् ब्रह्मणः	-	साक्षात् ब्रह्मका	**वेद**	-	वेदका
स वाचकः	-	वह (ओंकार) वाचक,	**सनातनं बीजं**	-	शाश्वत बीज है ॥४१॥
सर्वमन्त्र	-	सबमन्त्रों,			

तस्य ह्यासंस्त्रयो वर्णा अकाराद्या भृगूद्वह ।
धार्यन्ते यैस्त्रयो भावा गुणनामार्थवृत्तयः ॥ ४२ ॥

तस्य हि आसन् त्रयः वर्णा अकार आद्या भृगु उद्वह धार्यन्ते यैः त्रयः भावा गुणानां अर्थ वृत्तयः ॥ ४२ ॥

भृगु उद्वह	-	भृगुवंश भूषण शौनकजी !	**गुणानां**	-	(सत्तवादि) गुणोंको, (ऋक् साम, यजुः) नामोंको,
हि तस्य	-	क्योंकि उस (ओंकार)के	**अर्थ**	-	(तीनों) पदार्थ (लोकों) को
त्रयः वर्णा	-	तीन (अ, उ, म) अक्षर	**वृत्तयः**	-	(जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) वृत्तियोंको
आसन्	-	हैं,	**धार्यन्ते**	-	धारण किया जाता है ॥ ४२ ॥
यैः त्रयः-	-	जिनके द्वारा त्रयात्मक			
भावा		भावों			

ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजद् भगवानजः ।
अन्तः स्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥ ४३ ॥

ततः अक्षर समाम्नायं असृजत् भगवान् अजः अन्तःस्थ ऊष्म स्वर स्पर्श ह्रस्व दीर्घ आदि लक्षणम् ॥ ४३ ॥

ततः	-	फिर उससे	**स्पर्श**	-	स्पर्श (क से म तक)
भगवान् अजः	-	भगवान ब्रह्माने	**ह्रस्व दीर्घ**	-	ह्रस्व एवं दीर्घ
अन्तःस्थ	-	अन्तस्थ (य,र,ल,व)	**लक्षणं**	-	लक्षण वाले
ऊष्म	-	ऊष्म (श,ष,स,ह)	**अक्षर समाम्नायं**	-	अक्षर समूहकी
स्वर	-	स्वर (अ सै औ तक)	**असृजत्**	-	रचनाकी ॥ ४३ ॥

तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः ।
सव्याहृतिकान् सोंकारांश्चातुर्होत्रविवक्षया ॥ ४४ ॥

तेन असौ चतुरः वेदान् चतुर्भिः वदनैः विभुः स व्याहृतिकान् स ओंकारान् चातुर्होत्र विवक्षया ॥ ४४ ॥

असौ - इन (ब्रह्माजी) ने
तेन - उन (अक्षरों) से
विभुः - उन समर्थने
चतुर्भिः वदनैः - अपने चारों मुखोंसे
चातुर्होत्र - चातुर्होत्र (होता, अध्वर्यु, उदासा एवं ब्रह्माके कर्म)
विवक्षया - बतलानेकी इच्छासे
स व्याहृतिकान् - (भूः भुवः स्वः) व्याहतियोंके साथ एवं
स ओंकारान् - ओंकारके साथ
चतुरः वेदान् - चारों वेदोंको ॥ ४४ ॥

पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन् ब्रह्मकोविदान् ।
ते तु धर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः समादिशन् ॥ ४५ ॥

पुत्रान् अध्यापयत् तान् तु ब्रह्मर्षीन् ब्रह्मकोविदान् ते तु धर्म उपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः सम आदिशन् ॥ ४५ ॥

ब्रह्मर्षीन् - ब्रह्मर्षि
ब्रह्मकोविदान् - ब्रह्मज्ञान निपुण
तान् पुत्रान् तु - उन अपने पुत्रोंको तो
अध्यापयत् - पढ़ाया
ते धर्म-उपदेष्टारः तु - उन धर्मोपदेशकने तो
स्वपुत्रेभ्यः - अपने पुत्रोंको
सम आदिशन् - भली प्रकार अध्ययन कराया ॥ ४५ ॥

ते परम्परया प्राप्तास्तत्तच्छिष्यैर्धृतव्रतैः ।
चतुर्युगेष्वथ व्यस्ता द्वापरादौ महर्षिभिः ॥ ४६ ॥

ते परम्परया प्राप्ताः तत् तत् शिष्यैः धृतव्रतैः चतुर्युगेषु अथ व्यस्ता द्वापर आदौ महर्षिभिः ॥ ४६ ॥

ते परम्परया - वे (वेद) परम्परासे
तत् तत् - उन उनके
धृतव्रतैः - व्रतधारी (ब्रह्मचारी)
शिष्यैः प्राप्ताः - शिष्योंने प्राप्त किया
अथ चतुर्युगेषु - फिर चारों युगोंमें
द्वापरआदौ - द्वापरके अन्तमें
महर्षिभिः - महर्षियों द्वारा
व्यस्ता - (उनका) विभाजन हुआ
॥ ४६ ॥१

क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वान् दुर्मेधान् वीक्ष्य कालतः ।
वेदान् ब्रह्मर्षयो व्यस्यन् हृदिस्थाच्युतचोदिताः ॥ ४७ ॥

क्षीण आयुषः क्षीणसत्त्वान् दुर्मेधान् वीक्ष्य कालतः वेदान् ब्रह्मर्षयः व्यस्यन् हृदिस्थ- अच्युत चोदिताः ॥ ४७ ॥

कालतः - समयके प्रभावसे
क्षीण आयुषः - अल्पायु,
क्षीण सत्त्वान् - अल्प शक्ति
दुर्मेधान् - अल्पबुद्धि
वीक्ष्य - (मनुष्योंको) देखकर
अच्युत चोदितः - भगवानकी प्रेरणासे
ब्रह्मर्षयः - ब्रह्मर्षियोंने
हृदिस्थ - हृदयमें स्थित
वेदान् व्यस्यन् - वेदोंका विभाजन किया
॥ ४७ ॥

अस्मिन्नप्यन्तरे ब्रह्मन् भगवाँल्लोकभावनः ।
ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये ॥ ४८ ॥

अस्मिन् अपि अन्तरे ब्रह्मन् भगवान् लोकभावनः ब्रह्म ईश आद्यैः लोकपालैः याचितः धर्मगुप्तये ॥ ४८ ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन् !
अस्मिन् - इस मन्वन्तरमें भी
अन्तरे अपि
लोकभावनः - लोकरक्षक
भगवान् - भगवान
धर्मगुप्तये - धर्मकी रक्षाके लिए
ब्रह्म ईश आद्यैः - ब्रह्मा, शिव आदि
लोकपालैः - लोकपालोंके
याचितः - प्रार्थना करनेपर ॥४८॥

---

१. वेदोंके विभाजनका अर्थ उनके टुक्ड़े करना नहीं है । इसका अर्थ है कि यज्ञके ऋत्विक आदि चारों कर्ताओंके उपयोगमें आने वाले मन्त्रोंका पृथक्-पृथक् संकलन ।

पराशरात् सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः ।
अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥ ४९ ॥

पराशरात् सत्यवत्यां अंश अंश कलया विभुः अवतीर्णः महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥ ४९ ॥

महाभाग	- महाभाग !	**सत्यवत्यां**	- सत्यवतीमें
अंश अंशकलया	- अंशांश कलासे	**अवतीर्णः**	- अवतार लेकर
विभुः	- वे सर्वव्यापक	**वेदं चतुर्विधं**	- वेदको चारप्रकारका
पराशरात्	- पराशरजीसे	**चक्रे**	- बनाया ॥ ४९ ॥

ऋगथर्वयजुःसाम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः ।
चतस्त्रः संहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगणा इव ॥ ५० ॥

ऋक् अथर्व यजुः साम्नां राशीन् उद्धृत्य वर्गशः चतस्त्रः संहिताः चक्रे मन्त्रैः मणिगणा इव ॥ ५० ॥

मणिगणा इव	- मणियोंके (वर्गीकरणके) समान	**ऋक् अथर्व**	- ऋक् अथर्व,
		यजुः साम्नां	- यजु, सामकी
वर्गशः	- वर्गोंके अनुसार	**चतस्त्रः संहिताः**	- चार संहितायें
राशीन्	- मन्त्रोंकी राशि	**चक्रे**	- बनादी ॥ ५० ॥
मन्त्रैः उद्धृत्य	- मन्त्रोंका संग्रह करके		

तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः ।
एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विभुः ॥ ५१ ॥

तासां स चतुरः शिष्यान् उप आहूय महामतिः एक एकां संहितां ब्रह्मन् एक एकस्मै ददौ विभुः ॥ ५१ ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्मन् !	**उपआहूय**	- समीप बुलाकर
स महामतिः	- उन महाबुद्धिमान	**एक एकस्मै**	- एक एकको
विभुः	- समर्थने	**तासां**	- उनमेंसे
चतुरः शिष्यान्	- चार शिष्योंको	**एक एकां**	- एक एक
		संहितां ददौ	- संहिता प्रदानकी ।।५१।।

पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह ।
वैशम्पायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ।। ५२ ।।

पैलाय संहितां आद्यां बह्वृच आख्यां उवाच ह वैशम्पायन संज्ञाय निगद आख्यं यजुः गणम् ।। ५२ ।।

पैलाय	- पैलको	**संज्ञाय**	- नामवाले (शिष्य) को
बह्वृच आख्यां	- बह्वृच नामकी (ऋग्वेदीय)	**निगद आख्यं**	- निगद नामक
		यजुः गणं	- यजुर्वेदीय संहिता
आद्यां संहितां	- पहिली संहिता एवं	**उवाच ह**	- अध्ययन करायी ।।५२।।
वैशम्पायन	- वैशम्पायन		

साम्नां जैमिनये प्राह तथा छन्दोगसंहिताम् ।
अथर्वांगिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे ।। ५३ ।।

साम्नां जैमिनये प्राह तथा छन्दोग संहितां अथर्व आंगिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे ।। ५३ ।।

साम्नां	- सामवेदकी	**अथर्व**	- अथर्व वेदीय संहिता
छन्दोग संहितां	- 'छन्दोग संहिता'	**स्वशिष्याय**	- अपने शिष्य
तथा जैमिनये	- इसी प्रकार जैमिनीको एवं	**सुमन्तवे प्राह**	- सुमन्तुको सुनायी ।।५३।।
आंगिरसीं नाम	- 'आंगिरसी' नामकी		

पैलः स्वसंहितामूचे इन्द्रप्रमितये मुनिः ।
बाष्कलाय च सोऽप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ।। ५४ ।।

पैलः स्व संहितां ऊचे इन्द्र प्रमितये मुनिः बाष्कलाय च सः अपि आह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥ ५४ ॥

स्वसंहितां	-	अपनी संहिताको (दो भाग करके)	**ऊचे**	-	सुनाया,
पैलः मुनिः	-	पैल मुनिने	**सः अपि**	-	उन (बाष्कल) ने भी
इन्द्रप्रमितये	-	इन्द्र प्रमितिको	**स्वकां संहितां**	-	अपनी संहिता
च बाष्कलाय	-	तथा बाष्कलको	**शिष्येभ्यः**	-	शिष्योंको
			आह	-	सुनायी ॥ ५४ ॥

चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव ।
पराशरायाग्निमित्रे इन्द्रप्रमितिरात्मवान् ॥ ५५ ॥

चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव पराशराय अग्नि मित्रे इन्द्र प्रमितिः आत्मवान् ॥ ५५ ॥

भार्गव	-	भृगुवंशी शौनकजी !	**पराशराय**	-	पराशर एवं
चतुर्धा व्यस्य	-	चार भागमें विभाजन करके१	**अग्निमित्रे**	-	अग्निमित्रको (पढ़या)
			आत्मवान्	-	इन्द्रिजयी
बोध्याय	-	बोध्य,	**इन्द्रप्रमितिः**	-	इन्द्रप्रमितिने ॥ ५५ ॥
याज्ञवल्क्याय	-	याज्ञवल्क्य,			

अध्यापयत् संहितां स्वां माण्डूकेयमृषिं कविम् ।
तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ॥ ५६ ॥

अध्यापयत् संहितां स्वां माण्डूकेयं ऋषिं कविं तस्य शिष्यः देवमित्रः सौभरि आदिभ्य ऊचिवान् ॥ ५६ ॥

---

१. ऋषियोंका यह विभाजन शाखा कहा जाता है । यह किसी संहिता का अंश या खण्ड नहीं होता । पूरी संहिता प्रत्येक शाखा है । शाखा का अर्थ सम्पादन क्रमका भेद है । जैसे कोई छन्दक्रमसे और कोई देवता क्रमसे है ।

स्वां सहितां	- अपनी संहिता	**तस्य शिष्यः**	- उनके शिष्य
कविं	- बुद्धिमान	**देवमित्रः**	- देवमित्रने
माण्डूकेयं ऋषिं	- माण्डूकेय ऋषिको	**सौभरि आदिभ्य**	- सौभरि आदिको
अध्यापयत्	- अध्ययन कराया ।	**ऊचिवान्**	- सुनाया ॥ ५६ ॥

शाकल्यस्तत्सुतः स्वां तु पञ्चधा व्यस्य संहिताम् ।
वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात् ॥ ५७ ॥

शाकल्यः तत् सुतः स्वां तु पञ्चधा व्यस्य संहितां वात्स्य मुद्गल शालीय गोखल्य शिशिरेषु अधात् ॥ ५७ ॥

तत् सुतः	- उन (माण्डूकेय) के पुत्र	**वात्स्य मुद्गल**	- वात्स, मुद्गल,
शाकल्यः	- शाकल्यने	**शालीय**	- शालीय,
स्वां संहितां	- अपनी संहिताका	**गोखल्य**	- गोखलि,
पञ्चधा व्यस्य	- पांच रूपोंमें विभाजन करके	**शिशिरेषु**	- शिशिरको
		अधात्	- अध्ययन कराया ॥५७॥

जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम् ।
बलाकपैजवैतालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ॥ ५८ ॥

जातूकर्ण्यः च तत् शिष्यः सनिरुक्तां स्व संहितां बलाक पैज वैताल विरजेभ्यः ददौ मुनिः ॥ ५८ ॥

तत् च शिष्यः	- उन (शाकल्य) के ही शिष्य	**स्व संहितां**	- अपनी संहिताको
		बलाक पैज	- बलाक, पैज,
जातूकर्ण्यः मुनिः	- जातूकर्ण्य मुनिने	**वैताल विरजेभ्यः**	- बैताल, विरजको
सनिरुक्तां	- निरक्तके साथ	**ददौ**	- प्रदानकी ॥ ५८ ॥

वाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो वालखिल्याख्यसंहिताम् ।
चक्रे वालायनिर्भज्यः कासारश्चैव तां दधुः ॥ ५९ ॥

वाष्कलिः प्रति शाखाभ्यः वालखिल्य आख्य संहितां चक्रे वालायनिः भज्यः कासारः च एव तां दधुः ॥ ५९ ॥

वाष्कलिः	- वाष्कलके पुत्र वाष्कलिने	**संहितां चक्रे**	- संहिता निर्मितकी,
प्रति शाखाभ्यः	- प्रत्येक शाखाओंमेंसे	**वालयनिः**	- वालयनि,
वालखिल्य-आख्य	- बालखिल्य नामक	**भज्यः**	- भज्य और
		कासारः	- कासारने
		तां दधुः	- उसे धारण किया ॥५९॥

बह्वृचाः संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः ।
श्रुत्वैतच्छन्दसां व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६० ॥

बह्वृचाः संहिता हि एता एभिः ब्रह्मर्षिभिः धृताः श्रुत्वा एतत् छन्दसां व्यासं सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥ ६० ॥

हि एता	- क्योंकि इतनी	**एतत् छन्दसां**	- इस वेदोंके
बह्वृचाः संहिता	- (ऋग्वेदीय) बह्वृच संहितायें	**व्यासं श्रुत्वा**	- विस्तारको सुनकर
		सर्वपापैः	- (मनुष्य) सब पापोंसे
एभिः ब्रह्मर्षिभिः	- इन ब्रह्मर्षियों द्वारा	**प्रमुच्यते**	- छूट जाता है ॥ ६० ॥
धृताः	- धारणकी गयी हैं,		

वैशम्पायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवन् ।
यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांहःक्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥ ६१ ॥

वैशम्पायन शिष्या वै चरकाध्वर्यवः अभवन् यत् चेरुः ब्रह्महत्या अहंः क्षपणं स्वगुरोः व्रतम् ॥ ६१ ॥

वैशम्पायन	- वैशम्पायनके	**स्वगुरोः**	- अपने गुरुदेवके
वै शिष्या	- निश्चित शिष्य	**ब्रह्महत्या**	- ब्रह्महत्याके
चरकाध्वर्यवः	- चरकाध्वर्यु	**अहंः क्षपणं**	- पापका प्रायश्चितका
अभवन्	- थे	**व्रतं यत् चेरुः**	- व्रत जिन्होंने किया ॥ ६१ ॥

याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवन् कियत् ।
चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ॥ ६२ ॥

याज्ञवल्क्यः च तत् शिष्यः आह अहो भगवन् कियत् चरितेन अल्पसाराणां चरिष्ये अहं स्फुदश्चरम् ॥ ६२ ॥

याज्ञवल्क्यः - याज्ञवल्क्य भी
तत् शिष्य - उन (वैशम्पायन) के शिष्य थे
आह - (वे) बोले
अहो भगवन् - अहो भगवन् !
अल्प साराणां - अल्प शक्ति
चरितेन - (इन लोगोंके) करनेसे
कियत् - क्या (लाभ) होने वाला है,
अहं- - मैं (आपके लिये)
सुदुश्चरं अत्यन्त कठिन
चरिष्ये - (प्रायश्चित) करुँगा ॥६२॥

इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया ।
विप्रावमन्त्रा शिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति ॥ ६३ ॥

इति उक्तः गुरुः अपि आह कुपितः याहि अलं त्वया विप्राः अवमन्त्रा शिष्येण मत् अधीतं त्यज आशु इति ॥ ६३ ॥

इति उक्तः - ऐसा कहने पर
कुपितः - कुपित होकर
गुरुः अपि - गुरु ने भी
इति आह - यह कहा
त्वया - तुम
विप्राः- - ब्राह्मणोंके अपमान
अवमन्त्रा करने वाले
शिष्येण अलं - शिष्यसे भरपाया,
याहि - (यहांसे) चले जाओ,
मत् अधीतं - मुझसे पढ़ा हुआ
आशुत्यज - शीघ्र त्याग दो' ॥६३॥

देवरातसुतः सोऽपिच्छर्दित्वा यजुषां गणम् ।
ततो गतोऽथ मुनयो ददृशुस्तान् यजुर्गणान् ॥ ६४ ॥

देवरात सुतः सः अपि छर्दित्वा यजुषां गणं ततः गतः अथ मुनयः ददृशुः तान् यजुर्गणान् ॥ ६४ ॥

सः देवरात-	- उन देवरातके पुत्र	**ततः गतः**	- वहांसे चले गये,
सुतः	याज्ञवल्क्य	**अथ मुनयः**	- फिर मुनियोंने
अपि	- भी	**तान् यजुर्गणान्**	- उन यजुर्वेदके मन्त्रोंको
यजुषां गणं	- यजुर्वेदके मन्त्रोंको	**ददृशुः**	- देखा ॥ ६४ ॥
छर्दित्वा	- वमन करके		

यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतयाऽऽददुः ।
तैत्तिरीया इति यजुःशाखा आसन् सुपेशलाः ॥ ६५ ॥

यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तत् लोलुपतया आददुः तैत्तरीया इति यजुः शाखा आसन् सुपेशलाः ॥ ६५ ॥

तत् लोलुपतया	- उस (यजुर्वेद) के लालची होनेसे	**इति यजुः**	- इस प्रकार यजुर्वेदकी
तित्तिरा भूत्वा	- तीतरपक्षी होकर	**सुपेशलाः**	- अत्यन्त सुन्दर
यजूंषि	- यजुर्वेदके मन्त्रोंको	**तैत्तरीया**	- तैंत्तरीय
आददुः	- (उन्होंने) ग्रहण कर लिया	**शाखा आसन्**	- शाखायें हो गयी हैं ॥ ६५ ॥१

---

१. अभी तक के ज्ञात विज्ञान के अनुसार पढ़े हुए को वमन करनेका कोई उपाय नहीं है । पढ़ा हुआ सिरके विशेष भागपर चोट लगनेसे भूल जा सकता है; किन्तु याज्ञवल्क्यजीके साथ ऐसा कुछ हुआ । यह वर्णनसे नहीं लगता और चोट से विस्मृति भले हो जाय वह विस्मृत ज्ञान दूसरेको नहीं मिला करता ।

एक आधुनिक ढंगकी कल्पना करें कि याज्ञवल्क्यने सब लिख लिया था और उसे फेंककर चले गये तो उसे उठानेके लिए मुनियोंकी तीतर बननेकी आवश्यकता नहीं थी ।

वैदिक साहित्य में भी ऐसी यह अकेली घटना है और याज्ञवल्क्य योगीके रूपमें बहुत प्रसिद्ध हैं । सूर्यका स्तम्भनतो उन्होंने उसी समय किया । अतः अध्ययनको स्थूल रूप देकर वमन कर देनेकी यह घटना उनकी योगशक्ति मानना अधिक उचित है ।

याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मन् छन्दांस्यधिगवेषयन् ।
गुरोरविद्यमानानि सूपतस्थेऽर्कमीश्वरम् ॥ ६६ ॥

याज्ञवल्क्यः ततः ब्रह्मन् छन्दांसि अधिगवेषयन् गुरोः अविद्यमानानि स उपतस्थे अर्कं ईश्वरम् ॥ ६६ ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्मन !	**छन्दांसि**	- यजुर्वेदको
ततः-	- फिर याज्ञवल्क्य	**अधिगवेषयन्**	- अन्वेषण करते हुए
याज्ञवल्क्यः		**ईश्वरं अर्कं**	- सर्वसमर्थ सूर्यकी१
गुरोः-	- गुरुके पास भी जो	**उपतस्थे**	- स्तुति करने लगे
अविद्यमानानि	(श्रुतियां) नहीं थीं (उन)		॥ ६६ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच-

ॐनमो भगवते आदित्यायाखिलजगतामात्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तम्ब-पर्यन्तानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवोपाधिनाव्यव-धीयमानो भवानेक एव क्षणलवनिमेषावयवोपचित-संवत्सरगणेनापामादानविसर्गाभ्यामिमां लोकयात्रा मनुवहति ॥ ६७ ॥

---

१. श्री करपात्री जी महाराज ने मुझसे एक बार कहा- 'समस्त श्रुति सूर्यमण्डल में है ।' श्रुति नित्य हैं । किसीके भी द्वारा निर्मित न होनेसे अपौरुषेय हैं । अतः सूर्यकी किरणोंकी कम्पन-ध्वनिमें उनकी स्थिति है । उन किरणोंमें चित्त एकाग्र करके उस ध्वनिका श्रवण सम्भव है । याज्ञवल्क्यके शुक्ल यजुर्वेद पानेकी प्रक्रिया कुछ ऐसी ही होनी चाहिए ।

ॐ नमः भगवते आदित्याय अखिल जगतां आत्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विध भूत निकायानां ब्रह्म आदि स्तम्ब पर्यन्तानां अन्तः हृदयेषु बहिः अपि च आकाश इव उपाधिना अव्यवधीयमानः भवान् एक एव क्षण लव निमेष अवयव उपचित संवत्सर गणेन अपां आदान विसर्गाभ्यां इमां लोकयात्रां अनुवहति ॥ ६७ ॥

ॐ भगवते	- ओंकार स्वरूप भगवान	**आकाश इव**	- आकाशके समान
आदित्याय	- सूर्यको	**उपाधिना**	- (शरीर आदि) उपाधियोंस
नमः	- नमस्कार,	**अव्यवधीयमानः**	- असंग रहते हुए
अखिल जगतां	- सम्पूर्ण जगतके	**भवान् एक एव**	- आप अद्वितीय ही हैं
आत्मस्वरूपेण	- आत्मास्वरूपसे	**क्षण लव**	- क्षण, लव,
चतुर्विध	- चारों प्रकार (उद्भिज, स्वेदज, अण्डज, जरायुज) के	**निमेष**	- निमेष
		अवयव उपचित	- अंगोंसे बने
		संवत्सर गणेन	- वर्षोंमें
ब्रह्मादि	- ब्रह्मासे लेकर	**अपां आदान**	- जल-ग्रहण तथा
स्तम्ब पर्यन्तानां	- तिनके तक	**विसर्गाभ्यां**	- त्याग (वर्षा) के द्वारा
भूत निकायानां	- प्राणि समुदायके	**इमां लोकयात्रां**	- इन लोकोंकी जीवनचर्या
अन्तः हृदयेषु	- हृदयके भीतर	**अनुवहति**	- (आप) बराबर चलाते हैं ॥ ६७ ॥
च काल स्वरूपेण	- तथा कालरूपसे		
बहिः अपि	- बाहर भी		

यदु ह वाव विबुधर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवन-
महरहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखिलदुरितवृजिनबीजाव-
भर्जन भगवतः समभिधीमहि तपनमण्डलम् ॥ ६८ ॥

यत् उह वाव विबुध ऋषभ सवितः अस्त तपति अनुसवनं अहः अहः आम्नाय विधिना उपतिष्ठमानानां अखिल दुरित वृजिन बीज अवभर्जन भगवतः समभिधीमहि तपन मण्डलम् ॥ ६८ ॥

यत् उह वाव - जो निश्चित रूपसे ही
विबुध ऋषभ - देव श्रेष्ठ
सवितः - सूर्यके
अस्त तपति - अस्त होते तथा उदय होते समय
अहः अहः - प्रत्येक दिन
अनुसवनं - प्रत्येक सन्ध्याके समय
आम्नाय विधिना - वैदिक विधिसे
उपतिष्ठ-मानानां - उपस्थान करने वालोंके
अखिल - समस्त
दुरित वृजिन - पापों एवं कष्टोंके
बीज अवभर्जन - बीजोंको भस्म करने वाले हैं
भगवतः - (उन) भगवानके
तपन मण्डलं - सूर्य मण्डलका
समभिधीमहि - (हम) भली प्रकार ध्यान करते हैं ॥ ६८ ॥

य इह वाव स्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मनइन्द्रिया-सुगणाननात्मनः स्वयमात्मान्तर्यामी प्रचोदयति ॥ ६९ ॥

यः इह वाव स्थिर चर निकराणां निज निकेतनानां मन इन्द्रिय असुगणान् अनात्मनः स्वयं आत्म अन्तर्यामी प्रचोदयति ॥ ६९ ॥

यः इह वाव - जो इस संसारमें निश्चय
निज निकेतनानां - अपने निवास स्वरूप
मन इन्द्रिय - मन, इन्द्रिय
असुगणान् - प्राण समूह
अनात्मनः - आत्मासे भिन्न तत्त्वोंमें
स्वयं आत्म-अन्तर्यामी - स्वयं अन्तर्यामी होकर
प्रचोदयति - (उन्हें) उन्हें प्रेरित करते हैं ॥ ६९ ॥

य एवेमं लोकमतिकरालवदनान्धकारसंज्ञाजगरग्रहगिलितं मृतकमिव विचेतनमवलोक्यानुकम्पया परमकारुणिक ईक्षयैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने प्रवर्तयत्यवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति ॥७०॥

यः एव इमं लोकं अति करालवदन अन्धकार संज्ञ अजगर ग्रह गिलितं मृतकं इव विचेतनं अवलोक्य अनुकम्पया परम कारुणिक ईक्षया एवं उत्थाप्य अहः अहः अनुसवनं श्रेयसि स्वधर्म आख्य आत्म अवस्थाने प्रवर्तयति अवनि पतिः इव असाधूनां भयं उदीरयन् अटति ॥ ७० ॥

अति कराल - अत्यन्त भयानक
वदन - मुख
अन्धकार संज्ञ - अन्धकार नामक
अजगर ग्रह - अजगर रूपी ग्राहसे
गिलितं - निगले हुए
इमं लोकं - इस संसारको
एव मृतकं इव - इस प्रकार मरेके समान
विचेतनं - संज्ञाशून्य
अवलोक्य - देखकर
यः परम-कारुणिक - जो परम दयालु
अनुकम्पया - कृपा पूर्वक
ईक्षया एव - दृष्टिमात्रसे
उत्थाप्य - उठाकर
अहः अहः - प्रतिदिन
अनुसवनं - प्रत्येक समयके
श्रेयसि - कल्याणके साधन
स्वधर्म आख्य - स्वधर्म नामक
आत्म अवस्थाने - अपने उपस्थानकी ओर लगनेमें
प्रवर्तयति - लगाते हुए
अवनिपतिः इव - भूपतिके समान
असाधूनां - दुष्टोंको
भयं उदीरयन् - भयभीत करते हुए
अटति - विचरण करते हैं ॥७०॥

परित आशापालैस्तत्र तत्र कमल कोशाञ्जलिभिरुपहृतार्हणः ॥ ७१ ॥

परित आशापालैः तत्र तत्र कमलकोश अञ्जलिभिः उपहृत अर्हणः ॥ ७१ ॥

परित - सब ओरके
आशापालैः - दिक्पालों द्वारा
तत्र-तत्र - उन-उनके स्थानोंमें
कमलकोश - कमल कलीके समान
अञ्जलिभिः - अञ्जलियोंसे (आपको)
अर्हणः - पूजा
उपहृत - दी जाती है ॥ ७१ ॥

अथ ह भगवंस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरुभि-र्वन्दितमहमयातयामयजुःकाम उपसरामीति ॥ ७२ ॥

अथ ह भगवन् तव चरण नलिन युगलं त्रिभुवन गुरुभिः वन्दितं अहं अयातयाम यजुः काम उपसराम इति ॥ ७२ ॥

अथ - अब तो
भगवन् - भगवन !
त्रिभुवन गुरुभिः - त्रिभुवनके गुरु (जैसे- महात्माओं) द्वारा
वन्दितं - वन्दित
तव - आपके
चरण नलिन-युगलं - चरण कमल युगलकी
उपसराम - शरणमें
अहं - मैं
अयातयाम - सर्वथा एक प्रहरभी (पृथ्वीपर) न बीते
यजुः काम - यजुर्वेदके मन्त्र पानेकी कामनासे आया हूँ
इति - इतनी ही प्रार्थना है ॥ ७२ ॥

सूत उवाच-

एवं स्तुतः स भगवान् वाजिरूपधरो हरिः ।
यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात् प्रसादितः ॥ ७३ ॥

एवं स्तुतः स भगवान् वाजिरूप धरः हरिः यजूंषि अयात यामानि मुनये अदात् प्रसादितः ॥ ७३ ॥

एवं स्तुतः - इस प्रकार स्तुति करनेपर
स भगवान्-हरिः - वे भगवान सूर्य
प्रसादितः - प्रसन्न होकर
वाजिरूप धरः - अश्वका रूप धारण करके
अयात यामानि - जिनको पृथ्वीपर एक दिन भी नहीं बीता था ।
यजूंषि - (ऐसे) यजुर्वेदके मन्त्र
मुनये - मुनि (याज्ञवल्क्य)को
अदात् - दिये ॥ ७३ ॥

यजुर्भिरकरोच्छाखा दशपञ्च शतैर्विभुः ।
जगृहुर्वाजसन्यस्ताः काण्वमाध्यन्दिनादयः ॥ ७४ ॥

यजुभिः अकरोत् शाखा दशपञ्च शतैः विभुः जगृहुः वाजसन्यस्ताः काण्व माध्यन्दिन आदयः ॥ ७४ ॥

विभुः - समर्थ (याज्ञवल्क्य) ने
शतैः यजुभिः - (उन) सैकड़ों यजुर्वेदके मन्त्रोंसे
दशपञ्च - पन्द्रह
शाखा अकरोत् - शाखायें बनायीं
वाजसन्यस्ताः - (उन) वाजसनेय (शाखाओं) को
काण्व - काण्व
माध्यन्दिन - माध्यन्दिन
आदयः जगृहुः - आदिने ग्रहण किया ॥ ७४ ॥

जैमिनेः सामगस्यासीत् सुमन्तुस्तनयो मुनिः ।
सुन्वांस्तु तत्सुतस्ताभ्यामेकैकां प्राह संहिताम् ॥ ७५ ॥

जैमिनेः सामगस्य आसीत् सुमन्तुः तनयः मुनिः सुन्वान् तु तत् सुतः ताभ्यां एक एकां प्राह संहिताम् ॥ ७५ ॥

सामगस्य - सामवेद जाननेवाले
जैमिनेः - जैमिनिके
तनयः - पुत्र
सुमन्तुः मुनिः - सुमन्तु मुनि
तु तत् सुतः - और उनके पुत्र
सुन्वान् आसीत् - सुन्वान् थे
ताभ्यां - उन (दोनों) को (जैमिनीने)
एक एकां - एक एक
संहितां प्राह - संहिता पढ़ायी ॥७५॥

सुकर्मा चापि तच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान् ।
सहस्त्रसंहिताभेदं चक्रे साम्नां ततो द्विजः ॥ ७६ ॥

सुकर्मा च अपि तत् शिष्यः सामवेद तरोः महान् सहस्त्र संहिता भेदं चक्रे साम्नां ततः द्विजाः ॥ ७६ ॥

द्विजाः - विप्रो !
महान् - महान
सुकर्मा अपि - सुकर्मा भी
तत् शिष्यः - उन्हीं (जैमिनी) के शिष्य थे
सामवेद - (उन्होंने) सामवेद
तरोः - रूपी वृक्षकी
सहस्त्र-संहिता भेदं - संहिताके सहस्त्र भेद
चक्रे - किये
ततः - उनसे
साम्नां - सामगान (सीखा) ॥७६॥

हिरण्यनाभः कौसल्यः पौष्यञ्जिश्च सुकर्मणः ।
शिष्यौ जगृहतुश्चान्य आवन्त्यो ब्रह्मवित्तमः ॥ ७७ ॥

हिरण्यनाभः कौसल्यः पौष्यञ्जिः च सुकर्मणः शिष्यौ जगृहतुः च अन्य आवन्त्यः ब्रह्मवित्तमः ॥ ७७ ॥

सुकर्मणः - सुकर्माके
शिष्यौ - शिष्य
कौसल्यः - कोसल निवासी
हिरण्यनाभः - हिरण्यनाभ
पौष्यञ्जिः - पौष्यञ्जि,
च अन्य - तथा दूसरे
ब्रह्मवित्तमः - ब्रह्म वेत्ताओंमें श्रेष्ठ
आवन्त्यः - आवन्त्य थे (उन्होंने,
जगृहतुः - (वेद शाखाओंको) ग्रहण किया ॥ ७७ ॥

उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन् पञ्चशतानि वै ।
पौष्यञ्ज्यावन्त्ययोश्चापि तांश्च प्राच्यान् प्रचक्षते ॥ ७८ ॥

उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन् पञ्चशतानि वै पौष्यञ्ज्य आवन्त्ययोः च अपि तान् च प्राच्यान् प्रचक्षते ॥ ७८ ॥

पौष्यञ्ज्य - पौष्यंजिके
च आवन्त्ययोः - तथा आवन्त्य
अपि - के भी
वै पञ्चशतानि - निश्चय पांचसौ
शिष्या - शिष्य
आसन् - थे (वे)
उदीच्याः - (उत्तर दिशावासी होनेसे)
सामगाः - 'उदीची सामवेदी' थे,
तान् च - उनको ही
प्राच्यान् - 'प्राच्य सामवेदी
प्रचक्षते - कहा जाता है ॥७८॥

लौगाक्षिर्मांगलिः कुल्यः कुसीदः कुक्षिरेव च ।
पौष्यञ्जिशिष्या जगृहुः संहितास्ते शतं शतम् ॥ ७९ ॥

लौगाक्षिः मांगलिः कुल्यः कुसीदः कुक्षिः एव च पौष्यञ्जि शिष्या जगृहुः संहिताः ते शतं शतम् ॥ ७९ ॥

पौष्यञ्जि - पौष्यञ्जिके
शिष्या - शिष्य
लौगाक्षिः - लौगाक्षि,
मांगलिः - मांगलि,
कुल्यः कुसीदः - कुल्य, कुसीद,
च कुक्षिः एव - तथा कुक्षि भी थे
ते शतं शतं - उन्होंने सौ सौ
संहिताः - संहितायें
जगृहुः - ग्रहणकीं ॥ ७९ ॥

कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशतिसंहिताः ।
शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवन्त्य आत्मवान् ॥ ८० ॥

कृतः हिरण्यनाभस्य चतुः विंशति संहिताः शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवन्त्य आत्मवान् ॥ ८० ॥

हिरण्यनाभस्य - हिरण्यनाभके
शिष्यकृतः - शिष्यकृतने
स्वशिष्येभ्यः - अपने शिष्योंको
चतुः विंशति - चौबीस
संहिताः - संहितायें
ऊचे - पढ़ायी
शेषा - शेष (संहितायें)
आत्मवान् - संयमी
आवन्त्य - आवन्त्य (ने अपने शिष्योंको पढ़ायीं)
॥ ८० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे वेदशाखाप्रणयनं षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

सूत उवाच-

अथर्ववित् सुमन्तुश्च शिष्यमध्यापयत् स्वकाम् ।
संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् ॥ १ ॥

अथर्ववित् सुमन्तुः च शिष्यं अध्यापयत् स्वकां संहितां सः अपि पथ्याय वेद दर्शाय च उक्तवान् ॥ १ ॥

अथर्ववित्	- अथर्ववेदके ज्ञाता	**सः अपि**	- उस (शिष्य) ने भी
सुमन्तुः च	- सुमन्तुने भी	**पथ्याय**	- पथ्यको
शिष्यं	- अपने शिष्य (कबन्ध) को	**च वेददर्शाय**	- तथा वेद दर्शको
स्वकां संहितां	- अपनी संहिता	**उक्तवान**	- सुनाया (पढ़ाया) ॥१॥
अध्यापयत्	- पढ़ायी		

शौक्लायनिर्ब्रह्मबलिर्मोदोषः पिप्पलायनिः ।
वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु ॥ २ ॥

शौक्लायनिः ब्रह्मबलिः मोदोषः पिप्पलायनिः वेददर्शस्य शिष्याः ते पथ्य शिष्यान् अथो शृणु ॥ २ ॥

वेददर्शस्य	- वेददर्शके	**मोदोषः**	- मोदोष
शिष्याः ते	- शिष्यवे	**पिप्पलायनिः**	- पिप्पलायनि हैं ।
शौक्लायनिः	- शौक्लायनि,	**अथ पथ्य**	- अब पथ्यके शिष्योंको
ब्रह्मबलिः	- ब्रह्मबलि,	**शिष्यान्**	
		शृणु	- सुनो ॥ २ ॥

कुमुदः शुनको ब्रह्मन् जाजलिश्चाप्यथर्ववित् ।
बभ्रुः शिष्योऽथाङ्गिरसः सैन्धवायन एव च ।
अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्याद्यास्तथापरे ॥ ३ ॥

कुमुदः शुनकः ब्रह्मन् जाजलिः च अपि अथर्ववित् बभ्रुः शिष्यः अथ अंगिरसः सैन्धवायन एव च अधीयेतां संहिते द्वे सावर्णि आद्याः तथा अपरे ॥ ३ ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्मन् !	**अथ बभ्रुः च**	- थे बभ्रु और
कुमुदः	- कुमुद,	**सैन्धवायन एव**	- सैन्धवायन भी,
शुनकः	- शुनक	**द्वे संहिते**	- (इन्होंने) दो दो संहिताओंका
च जाजलिः अपि	- तथा जाजलि भी	**अधीयेतां**	- अध्ययन किया ।
अंगिरसः	- अंगिरा गोत्रोत्पन्न	**तथा अपरे**	- और दूसरे
अथर्ववित्	- अथर्ववेदके ज्ञाता (शुनक) के	**सावर्णि आद्या**	- सावणि आदि ॥ ३ ॥
शिष्यः	- शिष्य		

नक्षत्रकल्पः शान्तिश्च कश्यपाङ्गिरसादयः ।
एते आथर्वणाचार्याः शृणु पौराणिकान् मुने ॥ ४ ॥

नक्षत्रकल्पः शान्तिः च कश्यप अंगिरस आदयः एते आथर्वणा आचार्याः शृणु पौराणिकान् मुने ॥ ४ ॥

नक्षत्रकल्पः	- नक्षत्रकल्प,	**आथर्वणा**	- अथर्व वेदके
शान्तिः	- शान्ति,	**आचार्याः**	- आचार्य (हुए हैं)
कश्यप	- कश्यप	**मुने**	- मुनि शौनकजी
न अंगिरस	- तथा अंगिरस	**पौराणिकान्**	- (अब) पौराणिकोंको
आदयः एते	- आदिये	**शृणु**	- सुनो ॥ ४ ॥

त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः ।
वैशम्पायनहारीतौ षड् वै पौराणिका इमे ॥ ५ ॥

त्रय्यारुणिः कश्यपः च सावर्णिः अकृतव्रणः वैशम्पायन हारीतौ षट् वै पौराणिका इमे ॥ ५ ॥

त्रय्यारुणिः - त्रय्यारुणि,
कश्यपः - कश्यप,
सावर्णिः - सावर्णि,
अकृतव्रणः - अकृतव्रण,
वैशम्पायन - वैशम्पायन,
च हारीतौ - और हारीत
वै इमे षट् - निश्चय ये
पौराणिका - पुराणाचार्य हैं ॥ ५ ॥

अधीयन्त व्यासशिष्यात् संहितां मत्पितुर्मुखात् ।
एकैकामहमे तेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम् ॥ ६ ॥

अधीयन्त व्यासशिष्यात् संहितां मत् पितुः मुखात् एक एकां अहं एतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम् ॥ ६ ॥

व्यास शिष्यात् - व्यासजीके शिष्य
मत् पितुः - मेरे पिता (रोमहर्षण)के
मुखात् - मुखसे
अधीयन्त - (इन्होंने) अध्ययन किया,
एतेषां - इन लोगोंको
शिष्यः अहं - शिष्य होकर मैंने
एक एकां - एकसे एक (के क्रमसे)
सर्वाः - सब (छहो)
समध्यगाम् - भली प्रकार अध्ययन किया ॥ ६ ॥

कश्यपोऽहं च सावर्णी रामशिष्योऽकृतव्रणः ।
अधीमहि व्यासशिष्याच्चतस्त्रो मूलसंहिताः ॥ ७ ॥

कश्यपः अहं च सावर्णी रामशिष्यः अकृतव्रणः अधीमहि व्यासशिष्यात् चतस्रः मूलसंहिताः ॥ ७ ॥

कश्यपः - कश्यप,
सावर्णी - सावर्णि,
रामशिष्यः - परशुरामजीके शिष्य
अकृतव्रणः - अकृतव्रण
च अहं - तथा मैं (उग्रश्रवा) ने
व्यासशिष्यात् - व्यासजीके शिष्य (रोमहर्षण) से
चतस्रः - (और भी) चार
मूल संहिताः - मूल (पुराण) संहितायें
अधीमहि - अध्ययनकी ॥ ७ ॥

पुराणलक्षणं ब्रह्मन् ब्रह्मर्षिभिर्निरूपितम् ।
शृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः ॥ ८ ॥

पुराण लक्षणं ब्रह्मन् ब्रह्मर्षिभिः निरूपितं शृणुष्व बुद्धिं आश्रित्य वेदशास्त्र अनुसारतः ॥ ८ ॥

ब्रह्मन्	- ब्रह्मन् !	**निरूपितं**	- बतलाये गये
वेदशास्त्र	- वेद तथा शास्त्रोंके	**पुराण लक्षणं**	- पुराणोंके लक्षण
अनुसारतः	- अनुसार	**बुद्धिं आश्रित्य**	- बुद्धिका सहारा लेकर
ब्रह्मर्षिभिः	- ब्रह्मर्षियों द्वारा	**शृणुष्व**	- सुनिये ॥ ८ ॥

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च ।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः ॥ ९ ॥

सर्गः अस्य अथ विसर्गः च वृत्ती रक्षा अन्तराणि च वंशः वंश अनुचरितं संस्था हेतुः अपाश्रयः ॥ ९ ॥

सर्गः	-सर्ग (मूल तत्त्वोंकी सृष्टि)	**वंशः**	- (मनुओंका) वंश,
अथ विसर्गः	-तथा विसर्ग (नाना प्रकारकी सृष्टि)	**वंश अनुचरितं**	- वंशानुचरित
		संस्था	- संस्था (प्रलय)
च वृत्ती	-एवं वृत्ति (उनका व्यवहार)	**हेतुः**	- (इन सबका कारण) हेतु,
रक्षा	-रक्षा (उनका रक्षण)	**अपाश्रयः**	- (सर्वाश्रय तत्त्व) अपाश्रय ॥ ९ ॥
अन्तराणि	-मन्वन्तरः		

दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः ।
केचित् पञ्चविधं ब्रह्मन् महदल्पव्यवस्थया ॥ १० ॥

दशभिः लक्षणैः युक्तं पुराणं तत् विदः विदुः केचित् पञ्चविधं ब्रह्मन् महत् अल्प व्यवस्थया ॥ १० ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन् !
तत् विदः - उस (पुराण शास्त्र) को जाननेवाले
दशभिः - (इन) दस
लक्षणैः - लक्षणोंसे
युक्तं पुराणं - युक्तको पुराण
विदुः - जानते हैं,
केचित् - कुछ लोग
पञ्चविधं - पांच लक्षण वाला (कहते हैं)
महत् - महापुराण,
अल्प - छोटा (पुराण)
व्यवस्थया - (होनेसे दोनों बातोंकी) संगति है ॥ ११ ॥

अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः ।
भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते ॥ ११ ॥

अव्याकृत गुणक्षोभात् महतः त्रिवृतः अहमः भूत मात्र इन्द्रिय अर्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते ॥ ११ ॥

अव्याकृत - मूलप्रकृतिमें
गुणक्षोभात् - (लीन) गुणोंके क्षुब्ध होनेसे
महतः - महत्तत्त्व,
त्रिवृतः अहमः - त्रिविध अहंकार,
भूत मात्र - पञ्चभूत, तन्मात्रायें,
इन्द्रिय - इन्द्रियां
अर्थानां - एवं उनके विषयोंकी
सम्भवः - उत्पत्ति
सर्ग उच्यते - सर्ग कही जाती है ॥ ११ ॥

पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः ।
विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद् बीजं चराचरम् ॥ १२ ॥

पुरुष अनुगृहीतानां एतेषां वासनामयः विसर्गः अयं समाहारः बीजात् बीजं चर अचरम् ॥ १२ ॥

पुरुष - परमपुरुषका
अनुगृहीतानां - अनुग्रह पानेवाले
एतेषां - इन तत्त्वोंका
अयं वासनामयः - यह वासनामय
समाहारः - सम्पूर्ण (सृष्टि) विस्तार
बीजात् बीजं - एक बीज से दूसरे बीजकी (उत्पत्ति क्रमसे)
चर अचरं - (सम्पूर्ण) चराचर सृष्टि
विसर्गः - विसर्ग (कहलाती) है ॥ १२ ॥

वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च ।
कृता स्वेन नृणां तत्र कामच्चोदनयापि वा ॥ १३ ॥

वृत्तिः भूतानि भूतानां चराणां अचराणि च कृता स्वेन नृणां तत्र कामात् चोदनया अपि वा ॥ १३ ॥

नृणां स्वेन - मनुष्योंने स्वयं ही
कामात् कामनाके अनुसार
वा तत्र - अथवा इस विषयमें
चोदनया अपि - शास्त्रकी प्रेरणा होनेसे भी
चराणां- - चलने वाले
भूतानां प्राणियोंके लिए
अचराणि च - न चलने वाले ही (स्थावर)
भूतानि - पदार्थोंको
वृत्तिः कृता - आजीविका बनाया ॥ १३ ॥

रक्षाच्युतावतारेहा विश्वस्यानु युगे युगे ।
तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यन्ते यैस्त्रयीद्विषः ॥ १४ ॥

रक्षा अच्युत अवतार ईहा विश्वस्य अनु युगे युगे तिर्यक् मर्त्य ऋषि देवेषु हन्यन्ते यैः त्रयी द्विषः ॥ १४ ॥

अनु युगे युगे - प्रत्येक युगमें
तिर्यक् - पशु-पक्षी,
मर्त्य ऋषि - मनुष्य, ऋषि,
देवेषु - देवताओंमें
अच्युत - अच्युतको
अवतार ईहा - अवतार लीला
यैः - जिसके द्वारा
त्रयी द्विषः - वेद द्रोही
हन्यन्ते - मारे जाते हैं
रक्षा - रक्षा कही जाती है ॥ १४ ॥

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः ।
ऋषयोऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥ १५ ॥

मन्वन्तरं मनुः देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः ऋषयः अंश अवतारः च हरेः षट् विधं उच्यते ॥ १५ ॥

मनुः देवा	-	मनु, देवता,	**च हरेः अंश**	-	तथा श्री हरिके
मनु पुत्राः	-	मनुके पुत्र,	**अवतारः**		अंशावतार
सुरेश्वरः	-	इन्द्र,	**षट्विधं**	-	इन्हीं ६ वर्गको
ऋषयः	-	सप्तर्षि,	**मन्वन्तरं**	-	मन्वन्तर
			उच्यते	-	कहा जाता है,

राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः ।
वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये ॥ १६ ॥

राज्ञां ब्रह्म प्रसूतानां वंशः त्रैकालिकः अन्वयः वंश अनुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराः च ये ॥ १६ ॥

ब्रह्म प्रसूतानां	-	ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए	**वंशः**	-	वंश तथा
राज्ञां	-	राजाओंके	**तेषां ये**	-	उनके जो
अन्वयः	-	वंशमें उत्पन्न हुए (राजाओं) का	**वंशधराः**	-	वंश चलाते हुए उनका भी
			वृत्तं	-	चरित
त्रैकालिकः	-	(भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालोंके	**वंशानुचरितं**	-	वंशानुचरित (कहलाता) है ॥ १६ ॥

नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः ।
संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धास्य स्वभावतः ॥ १७ ॥

नैमित्तिकः प्राकृतिकः नित्य आत्यन्तिकः लयः संस्था इति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धा अस्य स्वभावतः ॥ १७ ॥

अस्य स्वभावतः - इस (प्रलय) के स्वभावानुसार
कविभिः - विद्वानों द्वारा
चतुर्धा प्रोक्ता - चार प्रकारकी कही गयी
नैमित्तिकः - नैमित्तिक,
प्राकृतिकः - प्राकृतिक,
नित्य - नित्य एवं
आत्यन्तिकः - आत्यन्तिक प्रलय
लयः
संस्था इति - संस्था ऐसा (कहा गया) है ॥ १७ ॥

हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः ।
यं चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे ॥ १८ ॥

हेतुः जीवः अस्य सर्ग आदेः अविद्या कर्म कारकः यं च अनुशयिनं प्राहुः अव्याकृतं उत अपरे ॥ १८ ॥

हेतुः जीवः - हेतु जीवको कहा गया है,
अस्य अविद्या - इसीकी अविद्या,
कर्म कारकः - कर्म, कर्तापनसे
सर्ग आदेः - जन्मादि होता है
यं च - जिस (जीव) को ही
अनुशयिनं - (चेतन की दृष्टिसे प्रकृतिमें) सोने वाला
उत अपरे - तथा दूसरे
अव्याकृतं - (जड़की दृष्टिसे) अव्याकृत
प्राहुः - कहते हैं ॥ १८ ॥

व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
मायामयेषु तद् ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ॥ १९ ॥

व्यतिरेक अन्वयः यस्य जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिषु मायामयेषु तद् ब्रह्म जीववृत्तिषुः अपाश्रयः ॥ १९ ।

मायामयेषु - मायामय स्थितिमें
जाग्रत् - जाग्रत,
स्वप्न - स्वप्न,
सुषुप्तिषु - सुषुप्ति रूपमें
व्यतिरेक - उलटे क्रमसे (जाग्रतसे सुषुप्ति)
अन्वयः - सीधे क्रम (सुषुप्तिसे जाग्रत)
जीववृत्तिषुः - जीवके रूपमें व्यवहार है
यस्य - जिसकी (अवस्थायें) हैं
तत् ब्रह्म - वह (तुरीयतत्त्व) ब्रह्म
अपाश्रयः - अपाश्रय है ॥ १९ ॥

पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु ।
बीजादिपञ्चतान्तासु ह्यवस्थासु युतायुतम् ॥ २० ॥

पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन् मात्रं रूप नामसु बीज आदि पञ्चता अन्तासु हि अवस्थासु युत अयुतम् ॥ २० ॥

यथा	- जैसे	**पञ्चता**	- मृत्यु
रूप नामसु	- रूप नाम वाले	**अन्तासु**	- पर्यन्त
पदार्थेषु	- पदार्थोंमें	**अवस्थासु**	- अवस्थाओंमें
सन् मात्रं	- सत्ता मात्र	**हि**	- क्योंकि
द्रव्यं	- द्रव्य है (ऐसे ही)	**युत**	- (उनसे) संयुक्त और
बीज आदि	- बीजसे प्रारम्भ होकर	**अयुतं**	- पृथक भी (रहता है, आत्मा उन अवस्थाओंसे पृथक) है ॥ २० ॥

विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं स्वयम् ।
योगेन वा तदाऽऽत्मानं वेदेहाया निवर्तते ॥ २१ ॥

विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्ति त्रयं स्वयं योगेन वा तदा आत्मानं वेद ईहाया निवर्तते ॥ २१ ॥

यदा	- जब	**हित्वा**	- त्यागकर
चित्तं	- चित्त	**विरमेत**	- उपराम होजाता है
स्वयं	- स्वयं (अपने विवेकसे)	**तदा**	- तब
वा योगेन	- अथवा योगाभ्याससे	**आत्मानं वेद**	- आत्माको जान लेता है
वृत्ति त्रयं	- तीनों (रजोगुण, तमोगुण, सत्त्वगुणकी) वृत्तियोंको	**ईहाया**	- (तथा) प्रवृत्तियोंसे
		निवर्तते	- निवृत्त होजाता है॥२१॥

एवंलक्षणलक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः ।
मुनयोऽष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महान्ति च ॥ २२ ॥

एवं लक्षण लक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः मुनयः अष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महान्ति च ॥ २२ ॥

पुराविदः - प्राचीन तत्त्वोंको जानने वाले
मुनयः - मुनियोंने
एवं - इस प्रकारके
लक्षण - लक्षणोंसे
लक्ष्याणि - पहिचाने जानेवाले
क्षुल्लकानि - छोटे
च महान्ति - तथा बड़े
अष्टादश - अठारह
पुराणानि - पुराण
प्राहुः - बतलाये हैं ॥ २२ ॥

ब्राह्मं पाद्यं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं सगारुडम् ।
नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसंज्ञितम् ॥ २३ ॥

ब्राह्मं पाद्यं वैष्णवं च शैवं लैंगं स गारुडं नारदीयं भागवतं आग्नेयं स्कान्द संज्ञितम् ॥ २३ ॥

संज्ञितं - उनके नाम हैं
ब्राह्मं - ब्रह्मपुराण,
पाद्मं - पद्मपुराण,
च शैवं - तथा शिव पुराण
लैंगं - लिंग पुराण
स गारुडं - गुरड़ पुराण सहित
नारदीयं - नारद पुराण,
भागवतं - भागवत पुराण,
आग्नेयं - अग्नि पुराण
स्कान्द - स्कन्द पुराण ॥ २३ ॥

भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम् ।
वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट् ॥ २४ ॥

भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं स वामनं वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्याम् इति त्रिषट् ॥ २४ ॥

भविष्यं - भविष्य पुराण,
ब्रह्मवैवर्तं - ब्रह्मवैवर्त पुराण,
मार्कण्डेयं - मार्कण्डेय पुराण
स वामनं - वामन पुराण सहित
वाराहं - वाराह पुराण
मात्स्यं - मत्स्य पुराण
कौर्मं - कूर्म पुराण
च ब्रह्माण्डाख्याम् - तथा ब्रह्माण्ड पुराण
इति - इस प्रकार
त्रिषट् - (ये) अठारह पुराण हैं ॥ २४ ॥

ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः ।
शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजोविवर्धनम् ॥ २५॥

ब्रह्मन् इदं सम आख्यातं शाखा प्रणयनं मुनेः शिष्य शिष्य प्रशिष्यानां ब्रह्मतेजः विवर्धनम् ॥ २५ ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन् !
इदं - यह
मुनेः - महामुनि व्यासजीके
शिष्य - शिष्यः (उनके)
शिष्य - शिष्य (उनके भी)
प्रशिष्यानां - शिष्योंकी परम्परा द्वारा
शाखा - (वेदोंकी) शाखाका
प्रणयनं - निर्माण
सम आख्यातं - भली प्रकार वर्णन किया
ब्रह्मतेजः - (श्रवण करनेवालेके) ब्रह्मतेजको
विवर्धनम् - (यह) बढ़ानेवाला है ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

शौनक उवाच-

सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतां वर ।
तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥ १ ॥

सूत जीव चिरं साधो वद नः वदतां वर तमसि अपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥ १ ॥

साधो सूत - साधु सूत !
चिरं जीव - चिरजीवी होओ !
वदतां वर - (तुम) वक्ताओंमें श्रेष्ठ हो,
नः वद - हम लोगोंको सुनाओ,

अपारे तमसि - (संसारके) घोर अन्धकारमें
भ्रमतां नृणां - भटकते मनुष्योंको
त्वं पारदर्शनः - तुम पारहोनेका (मार्ग) दिखलाने वाले हो ॥१॥

आहुश्चिरायुषमृषिं मृकण्डतनयं जनाः ।
यः कल्पान्ते उर्वरितो येन ग्रस्तमिदं जगत् ॥ २ ॥

आहुः चिर आयुषं ऋषिं मृकण्डतनयं जनाः यः कल्प अन्ते उर्वरितः येन ग्रस्तं इदं जगत् ॥ २ ॥

जनाः - लोग
ऋषिं मृकण्ड- - मृकण्ड-नन्दन ऋषि
तनंय मार्कण्डेयको
चिर आयुष - दीर्घायु
आहुः - कहते हैं,

येन इदं- - जिसने इस पूरे
जगत् संसारको
ग्रस्तं - निगल लिया था
कल्पान्त - (उस) कल्पके अन्त (की प्रलय) से
यः उर्वरितः - जो बच गये थे ॥ २ ॥

स वा अस्मत्कुलोत्पन्नः कल्पेऽस्मिन् भार्गवर्षभः ।
नैवाधुनापि भूतानां सम्प्लवः कोऽपि जायते ॥ ३ ॥

स वा अस्मत् कुल उत्पन्नः कल्पे अस्मिन् भार्गव ऋषभः न एव अधुना अपि भूतानां सम्प्लवः कः अपि जायते ॥ ३ ॥

वा स - किन्तु वे
भार्गव ऋषभः - भार्गव श्रेष्ठ
अस्मत् कुल - हमारे ही कुलमें
उत्पन्नः - उत्पन्न हुए हैं और
अधुना अपि - (इस कल्पमें) अब तक भी
भूतानां - प्राणियोंकी
कः अपि - कोई भी
सम्प्लवः - प्रलय
न एव जायते - नहीं ही हुई है ॥ ३ ॥

एक एवार्णवे भ्राम्यन् ददर्श पुरुषं किल ।
वटपत्रपुटे तोकं शयानं त्वेकमद्भुतम् ॥ ४ ॥

एक एव अर्णवे भ्राम्यन् ददर्श पुरुषं किल वटपत्र पुटे तोकं शयानं तु एकं अद्भुतम् ॥ ४ ॥

एक एव अर्णवे - (सम्पूर्ण पृथ्वी) एक ही समुद्रमें डूब गयी थी उसमें
भ्राम्यन् - भटकते हुए
किल वटपत्र पुटे - अहो वटके पत्तेके दोनेमें
शयानं - सोते हुए
एकं अद्भुतं - एक अद्भुत
पुरुषं ददर्श - पुरुषको देखा ॥ ४ ॥

एष नः संशयो भूयान् सूत कौतूहलं यतः ।
तं नश्छिन्धि महायोगिन् पुराणेष्वपि सम्मतः ॥ ५ ॥

एष नः संशयः भूयान् सूत कौतूहलं यतः तं नः छिन्धि महायोगिन् पुराणेषु अपि सम्मतः ॥ ५ ॥

सूत - सूतजी !
महायोगिन् - आप महायोगी हैं,
पुराणेषु अपि - पौराणिकोंमें भी
सम्मतः - आदरणीय हैं
नः एष - हमको यह
भूयान् संशयः - बड़ा भारी सन्देह है
यतः कौतूहलं - जिससे सुननेकी उत्कण्ठा है
तं नः छिन्धि - उस हमारे (सन्देहको) काट दीजिये ॥ ५ ॥

सूत उवाच-

प्रश्नस्त्वया महर्षेऽयं कृतो लोकभ्रमापहः ।
नारायणकथा यत्र गीता कलिमलापहा ॥ ६ ॥

प्रश्नः त्वया महर्षेः अयं कृतः लोकभ्रम अपहः नारायण कथा यत्र गीता कलि मल अपहा ॥ ६ ॥

महर्षेः - महर्षि !
त्वया - आपने
लोकभ्रम - लोगोंका भ्रम
अपहः - दूर करने वाला
अयं प्रश्नः - यह प्रश्न
कृतः - किया है,
यत्र - जिसमें
कलिमल - कलियुगके दोषोंको
अपहा - दूर करनेवाली
नारायण - नारायणकी
कथा गीता - कथा वर्णित है ॥ ६ ॥

प्राप्तद्विजातिसंस्कारो मार्कण्डेयः पितुः क्रमात् ।
छन्दांस्यधीत्य धर्मेण तपःस्वाध्यायसंयुतः ॥ ७ ॥

प्राप्त द्विजाति संस्कारः मार्कण्डेयः पितुः क्रमात् छन्दांसि अधीत्य धर्मेण तपः स्वाध्याय संयुतः ॥ ७ ॥

पितुः	- पिता द्वारा	**धर्मेण**	- धर्मपूर्वक
क्रमात्	- क्रमशः	**छन्दांसि**	- वेदोंका
द्विजाति संस्कारः	- द्विजोंके सब संस्कार	**अधीत्य**	- अध्ययन करके
प्राप्त	- हो जानेपर	**तपः स्वाध्याय**	- तपस्या, वेदाध्ययन
मार्कण्डेयः	- मार्कण्डेयजी	**संयुतः**	- युक्त होगये ॥ ७ ॥

बृहद्व्रतधरः शान्तो जटिलो वल्कलाम्बरः ।
बिभ्रत् कमण्डलुं दण्डमुपवीतं समेखलम् ॥ ८ ॥

बृहत् व्रतधरः शान्तः जटिलः वल्कल अम्बरः बिभ्रत् कमण्डलुं दण्डं उपवीतं समेखलम् ॥ ८ ॥

बृहत् व्रत	- नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत	**दण्डं**	- दण्ड,
धरः शान्तः	- धारण करके शान्त	**समेखलं**	- मेखलाके साथ
जटिलः	- जटाधारी,	**उपवीतं**	- यज्ञोपवीत
वल्कल अम्बरः	- वल्कल वस्त्र पहिनते,	**बिभ्रत्**	- धारण करते थे ॥ ८ ॥
कमण्डलुं	- कमण्डलु,		

कृष्णाजिनं साक्षसूत्रं कुशांश्च नियमर्द्धये ।
अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मस्वर्चयन् सन्ध्ययोर्हरिम् ॥ ९ ॥

कृष्ण अजिनं स अक्षसूत्रं कुशान् च नियम अर्द्धये अग्नि अर्क गुरु विप्र आत्मसु अर्चयन् सन्ध्ययोः हरिम् ॥ ९ ॥

नियम अर्द्धये	- नियमकी पूर्तिके लिये	**सन्ध्ययोः**	- दोनों सन्ध्याओंमें
कृष्ण अजिनं	- काला मृगचर्म,	**अग्नि अर्क**	- अग्नि, सूर्य,
स अक्षसूत्रं	- रुद्राक्षकी मालाके साथ	**गुरु विप्र**	- गुरु ब्राह्मण तथा
कुशान् च	- कुशोंको भी (रखते थे)	**आत्मसु**	- हृदयमें
		हरिं अर्चयन्	- श्रीहरिकी (मानसिक) पूजा करते थे ॥ ९ ॥

सायं प्रातः स गुरवे भैक्ष्यमाहृत्य वाग्यतः ।
बुभुजे गुर्वनुज्ञातः सकृन्नो चेदुपोषितः ॥ १० ॥

सायं प्रातः च गुरवे भैक्ष्यं आहृत्य वाक्यतः बुभुजे गुरुः अनुज्ञातः सकृत् नो चेत् उपोषितः ॥ १० ॥

सायं च प्रातः	- शामको और सवेरे	**वाक्यतः**	- वाणी संयम करके (मौन होकर)
गुरवे	- गुरुके लिए	**बुभुजे**	- भोजन करते थे
भैक्ष्यं आहृत्य	- भिक्षा लाकर	**नो चेत्**	- यदि (गुरु) अनुमति नहीं देते थे
गुरुः अनुज्ञातः	- यदि गुरु अनुमति देते थे तो	**उपोषितः**	- उपवास करते थे ॥१०॥
सकृत्	- एक बार		

एवं तपःस्वाध्यायपरो वर्षाणामयुतायुतम् ।
आराधयन् हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ॥ ११ ॥

एवं तपः स्वाध्याय परः वर्षाणां अयुत अयुतं आराधयन् हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ॥ ११ ॥

एवं तपः	- इस प्रकार तपस्या	**हृषीकेशं**	- भगवान् हृषीकेशकी
स्वाध्याय	- वेदाध्ययन	**आराधयन्**	- आराधना करते हुए
परः	- परायण होकर	**सुदुर्जयं**	- जिसे जीतना अत्यन्त कठिन है
अयुत अयुतं	- करोड़ों	**मृत्युं जिग्ये**	- उस मृत्युको जीत लिया ॥ ११ ॥
वर्षाणां	- वर्षों तक		

ब्रह्मा भृगुर्भवो दक्षो ब्रह्मपुत्राश्च ये परे ।
नृदेवपितृभूतानि तेनासन्नतिविस्मिताः ॥ १२ ॥

ब्रह्मा भृगुः भवः दक्षः ब्रह्मपुत्राः च ये परे नृ देव पितृ भूतानि तेन आसन् अतिविस्मिताः ॥ १२ ॥

तेन - इससे
ब्रह्मा भृगुः - ब्रह्मा, भृगु,
भवः दक्षः - शंकरजी, दक्ष,
च ये परे - तथा जो दूसरे
ब्रह्मपुत्राः - ब्रह्माजीके पुत्र
नृ देव - मनुष्य, देवता,
पितृ भूतानि - पितर (दूसरे) प्राणी
अतिविस्मिताः - अत्यन्त चकित
आसन् - होगये ॥ १२ ॥

इत्थं बृहद्व्रतधरस्तपःस्वाध्यायसंयमैः ।
दध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशान्तरात्मना ॥ १३ ॥

इत्थं बृहत् व्रत धरः तपः स्वाध्याय संयमैः दध्याः अधोक्षजं योगी ध्वस्त क्लेश अन्तरात्मना ॥ १३ ॥

इत्थं - इस प्रकार
बृहत् व्रत - आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत
धरः - धारण करके
योगी - योगी (मार्कण्डेय)
तपः स्वाध्याय - तपस्या, वेदाध्ययन तथा
संयमैः - इन्द्रिय-संयम द्वारा
अन्तरात्मना - अन्तःकरणके
ध्वस्तक्लेश - (अविद्यादि) क्लेशोंको१ नष्ट करें
अधोक्षजं - भगवान हृषीकेशका
दध्याः - ध्यान करने लगे ॥१३॥

तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं महायोगेन योगिनः ।
व्यतीयाय महान् कालो मन्वन्तरषडात्मकः ॥ १४ ॥

तस्य एवं युञ्जतः चित्तं महायोगेन योगिनः व्यतीयाय महान् कालः मन्वन्तर षट् आत्मकः ॥ १४ ॥

तस्य योगिनः - उन योगीके
महायोगेन - महायोगके द्वारा
एवं चित्तं - इस प्रकार चित्तको
युञ्जतः - (भगवानमें) लगाते हुए
षट् मन्वन्तर - छ मन्वन्तर
आत्मकः - स्वरूप
महान् कालः - दीर्घ समय
व्यतीयाय - बीत गया ॥ १४ ॥

---

१. अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश ये पांच क्लेश हैं ।

एतत् पुरन्दरो ज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन् किलान्तरे ।
तपोविशंकितो ब्रह्मन्नारेभे तद्विघातनम् ॥ १५ ॥

एतत् पुरंदरः ज्ञात्वा सप्तमे अस्मिन् किल अन्तरे तपः विशंकितः ब्रह्मन् आरेभे तत् विघातनम् ॥ १५ ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन् !
किल अस्मिन् - अहो, इस
सप्तमे अन्तरे - सातवें मन्वन्तरमें
पुरन्दरः - पुरन्दर इन्द्रने
एतत् ज्ञात्वा - इसे जानकर
तपः- - (उनकी) तपस्यासे
विशंकितः बहुत शंकित होकर
तत् विघातनं - उसे नष्ट करनेकी चेष्टा
आरेभे - आरम्भकी ॥ १५ ॥

गन्धर्वाप्सरसः कामं वसन्तमलयानिलौ ।
मुनये प्रेषयामास रजस्तोकमदौ तथा ॥ १६ ॥

गन्धर्व अप्सरसः कामं वसन्त मलय अनिलौ मुनये प्रेषयामास रजः तोक मदौ तथा ॥ १६ ॥

मुनये - मुनिके यहां
गन्धर्व - गन्धर्वों
अप्सरसः - अप्सरायें,
कामं - कामदेव,
वसन्त - वसन्त
मलय अनिलौ - मलयपवन
रजः - रजोगुण (लोभ)
तथा तोकमदौ - तथा थोड़ा मद भी
प्रेषयामास - भेजा ॥ १६ ॥

ते वै तदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः पार्श्व उत्तरे ।
पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्राख्या च शिला विभो ॥ १७ ॥

ते वै तत् आश्रमं जग्मुः हिम अद्रेः पार्श्व उत्तरे पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्र आख्या च शिला विभो ॥ १७ ॥

विभो	- प्रभो !	**उत्तरे पार्श्व**	- उत्तरी किनारे पर है
वै ते	- निश्चय वे सब	**यत्र पुष्पभद्रा**	- जहाँ पुष्पभद्रा नदी
तत् आश्रमं	- उस आश्रमपर	**नदी**	
जग्मुः	- गये	**चित्र आख्या**	- और चित्रानामकी
हिम अद्रेः	- (जो) हिमालय पर्वतके	**शिला**	- शिला है ॥ १७ ॥

तदाश्रमपदं पुण्यं पुण्यद्रुमलताञ्चितम् ।
पुण्यद्विजकुलाकीर्णं पुण्यामलजलाशयम् ॥ १८ ॥

तत् आश्रम पदं पुण्यं पुण्य द्रुम लता अञ्चितं पुण्य द्विज कुल आकीर्णं पुण्य अमल जलाशयम् ॥ १८ ॥

पुण्यद्रुम	- पवित्र वृक्ष	**पुण्य अमल**	- पवित्र निर्मल
लता अञ्चितं	- लताओंसे शोभित,	**जलाशयं**	- जलाशय वाला
पुण्य द्विजकुल	- पवित्र पक्षि समूहसे	**तत् आश्रमपदं**	- वह आश्रम स्थान
आकीर्णं	- भरा हुआ,	**पुण्यं**	- पवित्र था ॥ १८ ॥

मत्तभ्रमरसंगीतं मत्तकोकिलकूजितम् ।
मत्तबर्हिनटाटोपं मत्तद्विजकुलाकुलम् ॥ १९ ॥

मत्त भ्रमर संगीतं मत्त कोकिल कूजितं मत्त बर्हि नट आटोपं मत्त द्विजकुल आकुलम् ॥ १९ ॥

मत्त भ्रमर	- वहां मतवाले होकर भ्रमर	**मत्तबर्हि**	- मतवाले मयूर
संगीतं	- गाते (गुंजार करते) थे,	**नट आटोपं**	- पंख फैलाकर नाचते थे,
मत्त कोकिल	- आनन्दमत्त कोकिल	**मत्त द्विजकुल**	- आनन्दमत्त पक्षिसमूहसे
कूजितं	- कुहकती थीं,	**आकुलं**	- भरा था ॥ १९ ॥

वायुः प्रविष्ट आदाय हिमनिर्झरशीकरान् ।
सुमनोभिः परिष्वक्तो ववावुत्तम्भयन् स्मरम् ॥ २० ॥

वायुः प्रविष्ट आदाय हिम निर्झर शीकरान् सुमनोभिः परिष्वक्तः ववौ उत्तम्भयन् स्मरम् ॥ २० ॥

हिम निर्झर - शीतल करनेकी
शीकरान् - फुहारोंको
आदाय - साथ लेकर
सुमनोभिः - पुष्पोंको
परिष्वक्तः - स्पर्श करता
वायुः - वायु
स्मरं - कामको
उत्तम्भयन् - उद्दीप्त करना
प्रविष्ट ववौ - प्रवेश करके बहने लगी
॥ २० ॥

उद्यच्चन्द्रनिशावक्त्रः प्रवालस्तबकालिभिः ।
गोपद्रुमलताजालैस्तत्रासीत् कुसुमाकरः ॥ २१ ॥

उद्यत् चन्द्र निशा वक्त्रः प्रवाल स्तबका अलिभिः गोपद्रुम लताजालैः तत्र आसीत् कुसुमाकरः ॥ २१ ॥

निशावक्त्रः - रात्रि-मुख (सन्ध्याका समय)
उद्यत् चन्द्र - चन्द्रोदय हुआ,
प्रवाल स्तबक - नये किसलय, पुष्पगुच्छ
लता जालैः - लताओंके जालसे
गोपद्रुम - (लिपटे) छिपे वृक्ष,
अलिभिः - (गुंजार करते) भ्रमरोंसे
तत्र कुसुमाकरः - वहाँ वसन्त ऋतु
आसीत् - होरही थी ॥ २१ ॥

अन्वीयमानो गन्धर्वैर्गीतवादित्रयूथकैः ।
अदृश्यतात्तचापेषुः स्वःस्त्रीयूथपतिः स्मरः ॥ २२ ॥

अनु ईयमानः गन्धर्वैः गीत वादित्र यूथकैः अदृश्यत आत्तचाप इषुः स्वः स्त्री यूथपतिः स्मरः ॥ २२ ॥

गीत वादित्र - गाते-बजाते
गन्धर्वैः यूथकैः - गन्धर्वोंके समुदाय
अनु ईयमानः - जिसके पीछे चल रहे थे
स्वः स्त्री - (वह) स्वर्गीय स्त्रियों (अप्सराओं)
यूथपतिः - के दलका स्वामी
स्मरः - कामदेव
आत्तचाप इषुः - धनुष-बाण लिए
अदृश्यत - दिखलायी पड़ा ॥२२॥

हुत्वाग्निं समुपासीनं ददृशुः शक्रकिंकराः ।
मीलिताक्षं दुराधर्षं मूर्तिमन्तमिवानलम् ॥ २३ ॥

हुत्वा अग्निं सम उपासीनं ददृशुः शक्र किंकराः मीलित अक्षं दुराधर्षं मूर्तिमन्तं इव अनलम् ॥ २३ ॥

शक्र किंकराः - इन्द्रके सेवकोंने
हुत्वा अग्निं - (सायंकालीन) अग्निहोत्र करके
सम उपासीनं - (अग्निके) समीप ही बैठे
मीलित अक्षं - नेत्र बन्द किये
मूर्तिमन्तं - मूर्तिमान
अनलं इव - अग्निके समान
दुराधर्षं - जिन्हें पराजित करना बहुत कठिन है (उन)
ददृशुः - (मार्कण्डेय को) देखा ॥ २३ ॥

ननृतुस्तस्य पुरतः स्त्रियोऽथो गायका जगुः ।
मृदङ्गवीणापणवैर्वाद्यं चक्रुर्मनोरमम् ॥ २४ ॥

न नृतुः तस्य पुरतः स्त्रियः अथ गायका जगुः मृदंग वीणा पावैः वाद्यं चक्रुः मनोरम् ॥ २४ ॥

अथ तस्य - फिर उनके
पुरतः - सामने
स्त्रियः - स्त्रियां (अप्सरायें)
ननृतुः - नाचने लगीं,
गायका जगुः - गायक (गन्धर्व) गाने लगे,
मृदंग वीणा - मृदंग, वीणा,
पणवैः - नगाड़ोंसे
मनोरमं वाद्यं - मनोहर वाद्य
चक्रुः - बजाने लगे ॥ २४ ॥

सन्दधेऽस्त्रं स्वधनुषि कामः पञ्चमुखं तदा ।
मधुर्मनो रजस्तोक इन्द्रभृत्या व्यकम्पयन् ॥ २५ ॥

संदधे अस्त्रं स्वधनुषि कामः पञ्चमुखं तदा मधुः मनः रजः तोक इन्द्रभृत्या व्यकम्पयन् ॥ २५ ॥

तदा कामः - उस समय कामदेवने लोभरूपी
स्वधनुषि - अपने धनुषपर
पञ्चमुखं - पांच मुखवाला१
अस्त्रं संदधे - बाण चढ़ाया,
मधुः रजः तोक - वसन्त, रजोगुण,
इन्द्रभृत्या - इन्द्रके सेवकोंने
मनः - (अनके) मनको
व्यकम्पयन् विचलित करनेका प्रयत्न किया ॥ २५ ॥

क्रीडन्त्याः पुञ्जिकस्थल्याः कन्दुकैः स्तनगौरवात् ।
भृशमुद्विग्नमध्यायाः केशविस्त्रंसितस्त्रजः ॥ २६ ॥

क्रीडन्त्याः पुञ्जिकस्थल्याः कन्दुकैः स्तन गौरवात् भृशं उद्विग्न मध्यायाः केश विस्त्रंसित स्त्रजः ॥ २६ ॥

कन्दुकैः - गेंदसे
क्रीडन्त्याः - खेलती हुई
पुञ्जिकस्थल्याः - पुञ्जिकस्थली अप्सराके
स्तन गौरवात् - स्तनोंके भारसे
मध्यायाः - कटि
भृशं उद्विग्न - बार-बार लचकती थी और
केश स्त्रजः - बालोंमें लगी मालायें
विस्त्रंसितः - गिरती जाती थीं ॥२६॥

इतस्ततो भ्रमद्दृष्टेश्चलन्त्या अनुकन्दुकम् ।
वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं त्रुटितमेखलम् ॥ २७ ॥

इतः ततः भ्रमत् दृष्टेः चलन्त्या अनुकन्दुकं वायुः जहार तत् वासः सूक्ष्मं त्रुटित मेखलम् ॥ २७ ॥

अनु कन्दुकं - गेंदके पीछे
चलन्त्या - चलती हुईकी
इतः ततः - इधर-उधर
दृष्टेः भ्रमत् - दृष्टि घूम रही थी,
त्रुटित मेखलं- (तभी) करधनी टूट जानेसे
वायुः तत् - वायुने उसकी
सूक्ष्मं वासः - झीनी साड़ी
जहार - खींच ली ॥ २७ ॥

---

१. शोषण, दीपन, सम्मोहन, तापन और उन्मादन ये कामवणके मुख हैं ।

विससर्ज तदा बाणं मत्वा तं स्वजितं स्मरः ।
सर्वं तत्राभवन्मोघमनीशस्य यथोद्यमः ॥ २८ ॥

विससर्ज तदा बाणं मत्वा तं स्वजितं स्मरः सर्वं तत्र अभवन् मोघं अनीशस्य यथा उद्यमः ॥ २८ ॥

तदा स्वजितं - तब अपने द्वारा जीत लिया गया
मत्वा स्मरः - मानकर कामदेवने
बाणं विससर्ज - बाण छोड़ (किन्तु)
तत्र सर्वं - वहां सब (प्रयत्न)
यथा अनीशस्य - जैसे असमर्थके
उद्यमः - उद्योग (होते हैं)
मोघं अभवन् - व्यर्थ होगये ॥ २८ ॥

त इत्थमपकुर्वन्तो मुनेस्तत्तेजसा मुने ।
दह्यमाना निववृतुः प्रबोध्याहिमिवार्भकाः ॥ २९ ॥

त इत्थं अप कुर्वन्तः मुनेः तत् तेजसा मुने दह्यमाना निववृतुः प्रबोध्य अहिं इव अर्भकाः ॥ २९ ॥

मुने - मुनि शौनकजी !
इत्थं त - इस प्रकार वे
अपकुर्वन्तः - बुराई करनेकी चेष्टा करते हुए
तत् मुनेः - उन (मार्कण्डेय) मुनिके
तेजसा दह्यमाना - तेजसे जलते हुए
अहिं प्रबोध्य - (सोते) सर्पको जगाकर
अर्भकाः इव - बालकोंके समान
निववृतुः - लौट गये ॥ २९ ॥

इतीन्द्रानुचरैर्ब्रह्मन् धर्षितोऽपि महामुनिः ।
यन्नागादहमो भावं न तच्चित्रं महत्सु हि ॥ ३० ॥

इति इन्द्र अनुचरैः ब्रह्मन् धर्षितः अपि महामुनिः यत् न अगात् अहमः भावं न तत् चित्रं महत्सु हि ॥ ३० ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन् !
इति इन्द्र- - इस प्रकार इन्द्रके
अनुचरैः सेवकों द्वारा
धर्षितः अपि - पराजित करनेका
प्रयत्न करनेपर भी
महामुनिः - महामुनि (मार्कण्डेय)को
अहमः भावं - अहंकारका भाव
यत् न अगात् - जो नहीं आया
हि तत् - क्योंकि वह
महत्सु - महापुरुषोंके लिए
चित्रं न - आश्चर्यकी बात नहीं है
॥ ३० ॥

दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान् स्वराट् ।
श्रुत्वानुभावं ब्रह्मर्षेर्विस्मयं समगात् परम् ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान् स्वराट् श्रुत्वा अनुभावं ब्रह्मर्षेः विस्मयं सम अगात् परम् ॥ ३१ ॥

भगवान् - ऐश्वर्यशाली
स्वराट् - देवराज (इन्द्र) ने
सगणं कामं - गणोंके साथ कामदेवको
निस्तेजसं - तेजहीन
दृष्ट्वा - देखकर
ब्रह्मर्षेः - ब्रह्मर्षि (मार्कण्डेय) का
अनुभावं - प्रभाव
श्रुत्वा - सुनकर
परम विस्मयं - अत्यन्त आश्चर्यको
सम अगात् - प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥

तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं तपःस्वाध्यायसंयमैः ।
अनुग्रहायाविरासीन्नरनारायणो हरिः ॥ ३२ ॥

तस्य एवं युञ्जतः चित्तं तपः स्वाध्याय संयमैः अनुग्रहाय आविः आसीत् नर नारायणः हरिः ॥ ३२ ॥

तपः स्वाध्याय - तपस्या, वेदाध्ययन,
संयमैः - संयमके द्वारा
एवं चित्तं - इस प्रकार चित्तको
(भगवानमें)
युञ्जतः - लगाते हुए
तस्य अनुग्रहाय - उन पर कृपा
करनेके लिए
नर नारायणः - नर-नारायण रूपी
हरिः आविः - श्रीहरि प्रकट हुए
आसीत् ॥३२॥

तौ शुक्लकृष्णौ नवकञ्जलोचनौ

चतुर्भुजौ रौरववल्कलाम्बरौ ।

पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत्

कमण्डलुं दण्डमृजुं च वैणवम् ॥ ३३ ॥

तौ शुक्ल कृष्णौ नव कञ्जलोचनौ चतुर्भुजौ रौरव वल्कल अम्बरौ पवित्र पाणी उपवीतकं त्रिवृत् कमण्डलुं दण्डं ऋजुं च वैणवम् ॥ ३३ ॥

तौ शुल्क-	-	वे दोनों गौर-श्याम	**वल्कल अम्बरौ**	-	वल्कल वस्त्रधारी
कृष्णौ		वर्ण,	**पवित्र पाणी**	-	हाथोंमें कुश लिये,
नव कञ्ज-	-	नये खिले कमलके	**त्रिवृत् उपवीतकं**	-	तीन-तीन सूतके
लोचनौ		समान नेत्रों वाले,			यज्ञोपवीत पहिने
चतुर्भुजौ	-	चतुर्भुज,	**कमण्डलुं**	-	कमण्डलु,
रौरव	-	रुरु (चित्तल)	**च ऋजुं**	-	तथा सीधे
		मृगका चर्म तथा	**वैणवं दण्डं**	-	बांसका दण्ड
					(लिये थे) ॥ ३३ ॥

पद्माक्षमालामुत जन्तुमार्जनं

वेदं च साक्षात्तप एव रूपिणौ ।

तपत्तडिद्वर्णपिशङ्गरोचिषा

प्रांशू दधानौ विबुधर्षभार्चितौ ॥ ३४ ॥

पद्माक्ष मालां उत जन्तु मार्जनं वेदं च साक्षात् तप एव रूपिणौ तप त् तडित् वर्ण पिशंग रोचिषा प्रांशू दधानौ विबुध ऋषभ अर्चितौ ॥ ३४ ॥

विबुध ऋषभ - (ब्रह्मादि) देवश्रेष्ठोंके भी
अर्चितौ - पूज्य
प्राशूं - उच्चकाम
पद्माक्षमालां - कमल गट्टेकी माला,
उत जन्तु- - तथा जीवोंको हटानेकी
मार्जनं (वस्त्रकी) कूंची,
च वेदं - तथा वेदके लिए,
तपत् तडित् - चमकती बिजलीके
वर्ण रंगकी
पिशंग रोचिषा - पीली कान्ति
दधानौ - धारण किये
साक्षात् - साक्षात्
रूपिणौ- - मूर्तिमान तप ही थे
तप एव ॥ ३४ ॥

ते वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी ।
दृष्ट्वोत्थायादरेणोच्चैर्ननामाङ्गेन दण्डवत् ॥ ३५ ॥

ते वै भगवतो रूपे नर नारायणाः ऋषी दृष्ट्वा उत्थाय आदरेण उच्चैः ननाम अंगेन दण्डवत् ॥ ३५ ॥

वै ते - निश्चय वे
भगवतो रूपे - भगवानके स्वरूप
ऋषी नर- - ऋषि नर-नारायणको
नारायणाः
दृष्ट्वा - देखकर
आदरेण उत्थाय - आदरपूर्वक उठकर
उच्चैः अंगेन - उत्तामांग (सिर) से
दण्डवत् ननाम - दण्डवत् प्रणाम किया
॥ ३५ ॥

स तत्सन्दर्शनानन्दनिर्वृतात्मेन्द्रियाशयः ।
हृष्टरोमाश्रुपूर्णाक्षो न सेहे तावुदीक्षितुम् ॥ ३६ ॥

स तत् संदर्शन् आनन्द निर्वृत आत्म इन्द्रिय आशयः हृष्ट रोमा अश्रुपूर्ण अक्षः न सेहे तौ उदीक्षितुम् ॥ ३६ ॥

तत् संदर्शन् - उनके दर्शनके
आनन्द - आनन्दसे
आत्म इन्द्रिय - अपनी इन्द्रियों तथा
आशयः - अन्तःकरणके
निर्वृत - शान्त होजानेसे
हृष्ट रोमा - रोमाञ्च होगया
अश्रुपूर्ण अक्षः - नेत्रोंमें अश्रु भर जानेसे
स तौ - वे (मार्कण्डेय) उन दोनों (नर-नारायण) का
उदीक्षितुं - दर्शन करना
से हे न - सह नहीं सके ॥३६॥

उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व औत्सुक्यादाश्लिषन्निव ।
नमो नम इतीशानौ बभाषे गद्गदाक्षरः ॥ ३७ ॥

उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व औत्सुक्यात् आश्लिषन् इव नमो नम इति ईशानौ बभाषे गद्गद् अक्षरः ॥ ३७ ॥

उत्थाय	- उठकर	**गद्गद् अक्षरः**	- गद्गद् वाणीसे (केवल) ये अक्षर
प्राञ्जलिः	- हाथ जोड़कर	**ईशानौ**	- उन सर्वेशोंसे
प्रह्व	- झुककर	**नमो नमः**	- 'नमस्कार; नमस्कार'
औत्सुक्यात्	- उत्सुकतावश	**इति बभाषे**	- इतना ही बोले ॥३७॥
आश्लिषन्	- जैसे आलिंगन कर लेंगे		

तयोरासनमादाय पादयोरवनिज्य च ।
अर्हणेनानुलेपेन धूपमाल्यैरपूजयत् ॥ ३८ ॥

तयोः आसनं आदाय पादयोः अवनिज्य च अर्हणेन अनुलेपेन धूपमाल्यैः अपूजयत् ॥ ३८ ॥

तयोः	- उन दोनोंको	**अर्हणेन**	- पूजा-सामग्री
आसनं आदाय	- आसन देकर	**अनुलेपेन**	- चन्दन लगाना,
च पादयोः	- तथा चरणोंको	**धूप माल्यैः**	- धूप, मालासे
अवनिज्य	- धोकर	**अपूजयत्**	- पूजाकी ॥ ३८ ॥

सुखमासनमासीनौ प्रसादाभिमुखौ मुनी ।
पुनरानम्य पादाभ्यां गरिष्ठाविदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥

सुखं आसनं आसीनौ प्रसाद अभिमुखं मुनी पुनः आनम्य पादाभ्यां गरिष्ठाः इदं अब्रवीत् ॥ ३९ ॥

आसनं	- आसनपर	**पादाभ्यां**	- चरणोंमें
सुखं आसीनौ	- सुखपूर्वक बैठे,	**पुनः आनम्य**	- फिर प्रणाम करके
प्रसाद अभिमुखं	- कृपापूर्वक अपनी ओर देखते	**मुनी**	- मुनि (मार्कण्डेय) ने
गरिष्ठाः	- उन महत्तमोंके	**इदं अब्रवीत्**	- यह कहा ॥ ३९ ॥

मार्कण्डेय उवाच-

किं वर्णये तव विभो यदुदीरितोऽसुः
संस्पन्दते तमनु वाङ्मनइन्द्रियाणि ।
स्पन्दन्ति वै तनुभृतामजशर्वयोश्च
स्वस्याप्यथापि भजतामसि भावबन्धुः ॥ ४० ॥

किं वर्णये तव विभो यत् उदीरितः असुः संस्पन्दते तं अनु वाङ् मन इन्द्रियाणि स्पन्दन्ति वै तनुभृतां अजशर्वयोः च स्वस्य अपि अथ अपि भजतां असि भावबन्धुः ॥ ४० ॥

विभो - प्रभो !
तव किं - आपकी (महिमा) का क्या
वर्णये - वर्णन करूँ,
यत् उदीरितः - जिनकी प्रेरणासे ही
तनुभृतां - समस्त देहधारियोंमें,
अज शर्वयोः - ब्रमा तथा शंकरजीमें
च स्वस्य अपि - तथा मुझमें भी
असुः संस्पन्दते - प्राण-सञ्चार होरहा है
वै तं अनुवाङ् - निश्चय उन (प्राणों) के पीछे ही
मन इन्द्रियाणि - मन एवं इन्द्रियां
स्पन्दन्ति - सचेष्ट होती हैं,
अथ अपि - फिर भी
भजतां - भजन करने वालोंके
भाव बन्धुः - (आप) भावके बन्धनमें
असि - हैं ॥ ४० ॥

मूर्ती इमे भगवतो भगवंस्त्रिलोक्याः
क्षेमाय तापविरमाय च मृत्युजित्यै ।
नाना बिभर्ष्यवितुमन्यतनूर्यथेदं
सृष्ट्वा पुनर्ग्रसासि सर्वमिवोर्णनाभिः ॥ ४१ ॥

मूर्ती इमे भगवतः भगवन् त्रिलोक्याः क्षेमाय ताप विरमाय च मृत्यु जित्यै नाना विभर्षि अवितुं अन्यतनूः यथा इदं सृष्ट्वा पुनः ग्रससि सर्वं इव ऊर्णनाभिः ॥ ४१ ॥

भगवन् - भगवन् !
त्रिलोक्याः - त्रिभुवनके
क्षेमाय - कल्याणके लिए
यथा अवितुं - एवं जैसे रक्षाकेलिए
नाना अन्यतनूः - अनेक दूसरे (अवतार) शरीर
विभर्षि - धारण करते हैं
इमे भगवतः- - यह भगवन् आपकी
मूर्ती मूर्ति
ताप विरमाय - (प्राणियोंके) त्रितापनाश
च मृत्यु- - तथा मृत्युपर विजयके
जित्यै लिए (धारण किया) है,
ऊर्णनाभिः इव - मकड़ीके समान
इदं सृष्ट्वा - (आप) इस जगतकी सृष्टि करके
पुनः सर्वं - फिर सबको
ग्रससि - निगल लेते हैं ॥४१॥

तस्यावितुः स्थिरचरेशितुरङ्घ्रिमूलं
यत्स्थं न कर्मगुणकालरुजः स्पृशन्ति ।
यद् वै स्तुवन्ति निनमन्ति यजन्त्यभीक्ष्णं
ध्यायन्ति वेदहृदया मुनयस्तदाप्त्यै ॥ ४२ ॥

तस्य अवितुः स्थिर चर ईशितुः अङ्घ्रिमूलं यत् स्थं न कर्म गुण काल रुजः स्पृशयन्ति यत् वै स्तुवन्ति निनमन्ति यजन्ति अभीक्ष्णं ध्यायन्ति वेदहृदया मुनयः तत् आप्त्यै ॥ ४२ ॥

तस्य स्थिर चर - उन स्थावर-जंगम सबके
अवितुः ईशितुः - रक्षक एवं शासक
अङ्घ्रि मूलं - चरणोंमें (प्रणाम)
यत् स्थं - जिनमें स्थित होनेपर
कर्मगुण - कर्म, गुण,
काल रुजः - और समय जनित रोग (कष्ट)
न स्पृशन्ति - नहीं छूते,
तत् आप्त्यै - उनकी प्राप्तिके लिये
वेद हृदया - वेदोंके मर्मज्ञ
मुनयः - मुनिगण
वै यत् - निश्चय जिनकी
अभीक्ष्णं - निरन्तर
स्तुवन्ति - स्तुति,
निनमन्ति - नमस्कार
यजन्ति - आराधना और
ध्यायन्ति - ध्यान करते हैं ॥४२॥

नान्यं तवाङ्घ्र्युपनयादपवर्गमूर्तेः
क्षेमं जनस्य परितोभिय ईश विद्मः ।
ब्रह्मा बिभेत्यलमतो द्विपरार्धधिष्ण्यः
कालस्य ते किमुत तत्कृतभौतिकानाम् ॥ ४३ ॥

न अन्यं तव अङ्घ्रि उपनयात् अपवर्ग मूर्तेः क्षेमं जनस्य परितः भिय ईश विद्मः ब्रह्मा विभेति अलं अतः द्विपरार्ध धिष्ण्यः कालस्य ते किं उत तत् कृत् भौतिकानाम् ॥ ४३ ॥

ईश	- स्वामी !	**विभेति**	- डरते हैं,
जनस्य परितः	- लोगोंके चारों ओर	**तत् कृत्**	- उनके बनाये
भिय	- भय है,	**भौतिकानां**	- पांच भौतिक शरीर वालोंका
द्विपरार्ध	- दो परार्धकी	**उत किं**	- फिर क्या चर्चा
धिष्ण्यः	- आयुवाले	**अपवर्ग मूर्तेः**	- मोक्षस्वरूप
ब्रह्मा	- ब्रह्मा	**तव अङ्घ्रि**	- आपके चरणोंकी
ते कालस्य	- आप कालस्वरूपसे	**उपनयात्**	- शरणमें आनेको
अतः अलं	- अतः बहुत	**अन्यं: क्षेमं**	- अतिरिक्त कल्याण
		न विद्मः	- नहीं जानता ॥ ४३ ॥

तद् वै भजाम्यृतधियस्तव पादमूलं
हित्वेदमात्मच्छदि चात्मगुरोः परस्य ।
देहाद्यपार्थमसदन्त्यमभिज्ञमात्रं
विन्देत ते तर्हि सर्वमनीषितार्थम् ॥ ४४ ॥

तत् वै भजामि ऋतधियः तव पाद मूलं हित्वा इदं आत्मच्छदि च आत्मगुरोः परस्य देहादि अपार्थं असत् अन्त्यं अभिज्ञमात्रं विन्देत ते तर्हि सर्वं मनीषित अर्थम् ॥ ४४ ॥

आत्मगुरोः - जीवोंके परमगुरु,
ऋतधियः - सत्यज्ञान स्वरूप,
परस्य - परमपुरुष !
आत्मच्छदि - आत्मस्वरूपको ढकने वाले
इदं देह आदि - इस शरीर आदि
अपार्थं - निष्फल,
असत् - अतथ्य,
अन्त्यं - नाशवान
अभिज्ञमात्रं - प्रतीतिमात्र (पदार्थों) को
हित्वा - त्यागकर
तत् - इसलिए
वै तत्- - निश्चय आपके
पादमूलं चरणोंका
भजामि - भजन करता हूं,
ते विन्देत - वे (चरण) प्राप्त हो जाते हैं
तर्हि सर्व - तब सभी
मनीषित - बुद्धिसे सुविचारित
अर्थं - पुरुषार्थ (सिद्ध हो जाते हैं) ॥ ४४ ॥

सत्त्वं रजस्तम इतीश तवात्मबन्धो
मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य ।
लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशान्त्यै
नान्ये नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम् ॥ ४५ ॥

सत्त्वं रजः तम इति ईश तव आत्म बन्धो मायामयाः स्थिति लय उदय हेतवः अस्य लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशान्त्यै न अन्ये नृणां व्यसन मोह भियः च याभ्याम् ॥ ४५ ॥

आत्मबन्धो - जीवोंके परम बन्धु !
ईश - एवं शासक !
यदपि - यद्यपि
सत्त्वं रजः - सत्त्व रज,
तम इति - तमोगुणकी इस प्रकार
अस्य स्थिति - इस (जगत) की स्थिति,
तव - (ब्रह्मा, विष्णु, शिव,) रूप आपके ही हैं
नृणां प्रशान्त्यै - किन्तु मनुष्योंको शान्ति प्राप्तिके लिए
सत्त्वमयी - (आपकी) सत्त्वगुणमयी मूर्ति हैं

लय उदय - प्रलय, उत्पत्तिके
हेतवः - कारण
मायामयाः - मायामय
लीलाधृता - लीलापूर्वक धारण किये
अन्या न - दूसरी नहीं
याभ्यां - जिनसे
व्यसन मोह - दुःख, मोह
च भियः - और भय होता है ॥ ४५ ॥

तस्मात्तवेह भगवन्नथ तावकानां
शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजन्ति ।
यत् सात्वताः पुरुषरूपमुशन्ति सत्त्वं
लोको यतोऽभयमुतात्मसुखं न चान्यत् ॥ ४६ ॥

तस्मात् तव इह भगवन् अथ तावकानां शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजन्ति यत् सात्वताः पुरुषरूपं उशन्ति सत्त्वं लोकः यतः अभयं उत आत्मसुखं न च अन्यत् ॥ ४६ ॥

भगवन् - भगवन् !
तस्मात् - इसलिए
कुशला - बुद्धिमान लोग
इह तव - इस लोकमें आपकी
अथ तावकानां - तथा आपके भक्तोंकी
स्व दयितां - अपनी प्रिय
शुक्लां तनुं - शुद्ध (नर-नारायण) मूर्तिकी
भजन्ति - उपासना करते हैं
यत् सात्त्वताः - क्योंकि पाञ्चरात्रके अनुयायी
सत्त्वं - विशुद्ध सत्त्वको ही
पुरुष रूपं - परमपुरुषका स्वरूप
उशन्ति - मानते हैं,
यतः अभयं - जिससे भयहीन
लोकः - (वैकुण्ठ) लोक
उत आत्मसुखं - तथा आत्मानन्दपूर्ण है
अन्यत् न - (वे) दूसरे (रजोगुण-तमोगुण) को (आपकी मूर्ति) नहीं मानते ॥ ४६ ॥

तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने
विश्वाय विश्वगुरवे परदेवतायै ।

नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय
हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय ॥ ४७ ॥

तस्मै नमः भगवते पुरुषाय भूम्ने विश्वाय विश्व गुरवे परदेवतायै नारायणाय ऋषये च नर उत्तमाय हंसाय संयत गिरे निगम ईश्वराय ॥ ४७ ॥

तस्मै भगवते	-	उन भगवान	**संयत गिरे**	-	वाणीके नियन्ता
भूम्ने पुरुषाय	-	सर्व व्यापक परमपुरुष,	**निगम ईश्वराय**	-	वेदोंके परम प्रति पाद्य
विश्वाय	-	विश्वरूप,	**नारायणाय-**	-	ऋषि नारायण
विश्वगुरवे	-	विश्वगुरु,	**ऋषये**		
परदेवतायै	-	परमाराध्य	**च नर उत्तमाय**	-	नरोत्तम नर को
हंसाय	-	शुद्ध स्वरूप	**नमः**	-	नमस्कार ॥ ४७ ॥

यं वै न वेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः
सन्तं स्वखेष्वसुषु हृद्यपि दृक्पथेषु ।
तन्माययाऽऽवृतमतिः स उ एव साक्षा-
दाद्यस्तवाखिलगुरोरुपसाद्य वेदम् ॥ ४८ ॥

यं वै न वेद वितथ अक्ष पथैः भ्रमत् धीः सन्तं स्व खेषु असुषु हृदि अपि दृक् पथेषु तत् मायया आवृत मतिः स उ एव साक्षात् आद्यः तव अखिल गुरोः उपसाद्य वेदम् ॥ ४८ ॥

अखिल गुरोः	-	सबके ही परम गुरु !	**वितथ**	-	व्यर्थ
तत् मायया	-	जिसकी मायासे	**अक्ष पथैः**	-	इन्द्रियोंके द्वारा
आवृत मतिः	-	बुद्धि ढक जानेसे	**भ्रमत् धीः**	-	चंचल बुद्धि (लोग)
स्व खेषु	-	अपनी इन्द्रियोंमें,	**वै यं न वेद**	-	निश्चय जिन्हें नहीं जानते
असुषु	-	प्राणोंमें,	**वेदं उपसाद्य**	-	किन्तु वेदका आश्रय
हृदि अपि	-	हृदयमें भी एवं			लेकर

दृक् पथेषु - नेत्रोंके सामने भी
सन्तं - विद्यमान रहते
आद्यः तव - आदि पुरुष आपका
स उ एव - निश्चय वही
साक्षात् - साक्षात्कार होजाता है ॥ ४८ ॥

यद्दर्शनं निगम आत्मरहःप्रकाशं
मुह्यन्ति यत्र कवयोऽजपरा यतन्तः ।
तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं
वन्दे महापुरुषमात्मनिगूढबोधम् ॥ ४९ ॥

यत् दर्शनं निगम आत्मरहः प्रकाशं मुह्यन्ति यत्र कवयः अज अपरा यतन्तः तं सर्ववाद विषय अप्रतिरूप शीलं वन्दे महापुरुषं आत्म निगूढ बोधम् ॥ ४९ ॥

यत् दर्शनं - जिनका दर्शन
निगम आत्मरहः - वेदोंका अपना रहस्य
प्रकाशं - प्रकाशित कर देनेवाला है
यत्र - जिन (वेदों) के विषयमें
अज अपरा - ब्रह्मदि दूसरे
कवयः - बुद्धिमान
यतन्तः - प्रयत्न करके भी
मुह्यन्ति - मोह (भ्रम) में पड़ जाते हैं
तं सर्ववाद - उन सब मतोंके
विषय - सिद्धान्तोंके ही
अप्रतिरूप - अनुकूल
शीलं - स्वभाव वाले
आत्म निगूढ़ - अपनेमें अत्यन्तगूढ़
बोधं - ज्ञानस्वरूप
तं महापुरुषं - उन पुरुषोत्तमकी
वन्दे - मैं वन्दना करता हूँ ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

सूत उवाच-

संस्तुतो भगवानित्थं मार्कण्डेयेन धीमता ।
नारायणो नरसखः प्रीत आह भृगूद्वहम् ॥ १ ॥

संस्तुतः भगवान् इत्थं मार्कण्डेयेन धीमता नारायणः नरसखः प्रीत आह भृगुउद्वहम् ॥ १ ॥

धीमता	-	बुद्धिमान	**नारायणः**	-	नारायणने
मार्कण्डेयेन	-	मार्कण्डेय द्वारा	**प्रीतः**	-	प्रसन्न होकर
इत्थं संस्तुतः	-	इस प्रकार स्तुति करनेपर	**भृगु उद्वहं**	-	भृगुवंश भूषणसे
			आह	-	कहा ॥ १ ॥
नरसखः	-	नरके सखा			
भगवान्	-	भगवान			

श्रीभगवानुवाच-

भो भो ब्रह्मर्षिवर्यासि सिद्ध आत्मसमाधिना ।
मयि भक्त्यानपायिन्या तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २ ॥

भो भो ब्रह्मर्षि वर्य असि सिद्ध आत्म समाधिना मयि भक्त्या अनपायिन्या तपः स्वाध्याय संयमैः ॥ २ ॥

भो भो	-	हे हे	**मयि अनपायिन्या**	-	मुझमें अनन्य
ब्रह्मर्षिवर्य	-	ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ !	**भक्त्या**	-	भक्तिसे
आत्म समाधिना	-	चित्तकी एकाग्रता	**सिद्ध असि**	-	सिद्ध होगये हो ॥ २ ॥
तपः स्वाध्याय	-	तपस्या, वेदाध्यायन,			
संयमैः	-	संयम एवं			

वयं ते परितुष्टाः स्म त्वद्बृहद्व्रतचर्यया ।
वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरदेशादभीप्सितम् ॥ ३ ॥

वयं ते परितुष्टाः स्म त्वत् बृहत्व्रत चर्यया वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरद ईशात् अभीप्सितम् ॥ ३ ॥

त्वत्	- तुम्हारे	**वरद् ईशात्**	- वरदान देनेमें समर्थ (हम) से
बृहत्व्रत	- आजीवन ब्रह्मचर्य	**अभीप्सितं**	- अभीष्ट
चर्यया	- पालनसे	**वरं प्रतीच्छ**	- वरदान मांग लो
ते वयं	- तुमपर हम दोनों	**ते भद्रं**	- तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३ ॥
परितुष्टाः स्म	- परम सन्तुष्ट हैं		

मार्कण्डेय उवाच-

जितं ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत ।
वरेणैतावतालं नो यद् भवान् समदृश्यत ॥ ४ ॥

जितं ते देव देवेश प्रपन्न आर्तिहर अच्युत वरेण एतावत अलं नः यत् भवान् समदृश्यत ॥ ४ ॥

देव देवेश	- देव देवेश्वर !	**वरेण अलं**	- वरदान पर्याप्त है
प्रपन्न आर्तिहर	- शरणागतक्रेश-नाशक	**यत् भवान्**	- जो आपने
अच्युत	- अच्युत !	**समदृश्यत्**	- दर्शन दिया ॥ ४ ॥
ते जितं	- आपकी जय हो !		
नः एतावत	- हमारे लिए इतना ही		

गृहीत्वाजादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम् ।
मनसा योगपक्वेन स भवान् मेऽक्षगोचरः ॥ ५ ॥

अन्य प्रतियों में यहाँ ऋषिरुवाच है

गृहीत्वा अज आदयः यस्य श्रीमत् पादाब्ज दर्शनं मनसा योग पक्वेन स भवान् मे अक्षि गोचरः ॥ ५ ॥

अज आदयः	- ब्रह्मा आदि	**पादाब्ज**	- चरण कमलोंका
योग पक्वेन	- योगसे शुद्ध हुए	**दर्शनं गृहीत्वा**	- दर्शन पाते हैं,
मनसा	- मनसे	**स भवान्**	- वह आप
यस्य श्रीमत्	- जिनके परमसुन्दर	**मे अक्षि गोचरः**	- मेरे नेत्रोंके सामने हैं ॥ ५ ॥

अथाप्यम्बुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे ।
द्रक्ष्ये मायां यया लोकः संपालो वेद सद्भिदाम् ॥ ६ ॥

अथ अपि अम्बुज पत्र अक्ष पुण्यश्लोक शिखामणे द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालः वेद सद्भिदाम् ॥ ६ ॥

अथ अपि	- फिर भी	**लोकः**	- इन लोकों रूप
अम्बुज पत्र अक्ष	- कमलदल लोचन !	**सत् भिदां**	- (एक) सत् वस्तु में ये भेद
पुण्य श्लोक	- पवित्र कीर्ति वालोंके		
शिखामणे	- शिरोमणि !	**वेद**	- जानते हैं
यया सपालः	- जिसके द्वारा लोकपालोंके साथ	**मायां द्रक्ष्ये**	- (वह आपकी) माया देखना चाहता हूँ ॥६॥

सूत उवाच-

इतीडितोऽर्चितः काममृषिणा भगवान् मुने ।
तथेति स स्मयन् प्रागाद् बदर्याश्रममीश्वरः ॥ ७ ॥

इति ईडितः अर्चितः कामं ऋषिणा भगवान् मुने तथा इति स स्मयन् प्रागात् बदरि आश्रमं ईश्वरः ॥ ७ ॥

मुने - मुनिवर शौनकजी !
ऋषिणा - ऋषि (मार्कण्डेय) द्वारा
इति ईडितः - इस प्रकार स्तुत होकर
अर्चितः - तथा पूजित होकर
भगवान् - भगवानने
स्मयन् - मुस्कराते हुए
तथा इति - ऐसा ही हो (कहकर)
स ईश्वरः - वे समर्थ
वदरि आश्रमं - (अपने) बदरीनाथ आश्रम
प्रागात् - चले गये ॥ ७ ॥

तमेव चिन्तयन्नर्थमृषिः स्वाश्रम एव सः ।
वसन्नग्न्यर्कसोमाम्बुभूवायुवियदात्मसु ॥ ८ ॥

तं एव चिन्तयन् अर्थं ऋषिः स्व आश्रम एव सः वसन् अग्नि अर्क सोम अम्बु भू वायु वियत् आत्मसु ॥ ८ ॥

तं एव अर्थं - उसी प्रयोजनको
चिन्तयन् - सोचते हुए
सः ऋषिः - वे (मार्कण्डेय) ऋषि
स्व आश्रम एव - अपने आश्रममें ही
वसन् - रहते हुए
अग्नि अर्क - अग्नि, सूर्य,
सोम अम्बु - चन्द्र, जल,
भू वायु - पृथ्वी, वायु,
वियत्- - आकाश तथा हृदयमें
आत्मसु ॥ ८ ॥

ध्यायन् सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैरपूजयत् ।
क्वचित् पूजां विसस्मार प्रेमप्रसरसम्प्लुतः ॥ ९ ॥

ध्यायन् सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैः अपूजयत् क्वचित् पूजां विसस्मार प्रेमप्रसर सम्प्लुतः ॥ ९ ॥

च सर्वत्र - तथा सर्वत्र
हरिं ध्यायन् - श्रीहरि का ध्यान करते हुए
भावद्रव्यैः - भावनामय द्रव्योंसे (मानसिक)
अपूजयत् - पूजा करते थे,
क्वचित् - कभी
प्रेमप्रसर - प्रेम-प्रवाहमें
सम्प्लुतः - निमग्न होकर
पूजां विसस्मार - पूजा भूल भी जाते थे ॥ ९ ॥

तस्यैकदा भृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटे मुनेः ।
उपासीनस्य सन्ध्यायां ब्रह्मन् वायुरभून्महान् ॥ १० ॥

तस्य एकदा भृगु श्रेष्ठ पुष्पभद्रा तटे मुनेः उपासीनस्थ सन्ध्यायां ब्रह्मन् वायुः अभूत् महान् ॥ १० ॥

भृगुश्रेष्ठ	-	भृगुकुलमें श्रेष्ठ	**सन्ध्यायां**	-	सन्धया समय
ब्रह्मन्	-	ब्रह्मन् !	**उपासीनस्य**	-	उपासना करते समय
एकदा	-	एक बार	**महान्**	-	बड़ी भारी
तस्य मुनेः	-	उन मुनिवरके	**वायुः अभूत्**	-	आंधी उठी ॥ १० ॥
पुष्पभद्रा तटे	-	पुष्पभद्रा नदी किनारे			

तं चण्डशब्दं समुदीरयन्तं
बलाहका अन्वभवन् करालाः ।
अक्षस्थविष्ठा मुमुचुस्तडिद्भिः
स्वनन्त उच्चैरभिवर्षधाराः ॥ ११ ॥

तं चण्डशब्दं सम उदीरयन्तं बलाहका अनु अभवन् करालाः अक्ष स्थविष्ठा मुमुचुः तडिद्भिः स्वनन्त उच्चैः अभिवर्ष धाराः ॥ ११ ॥

तं चण्डशब्दं	-	उस प्रचण्ड शब्द	**तडिद्भिः**	-	बिजलीके
सम उदीरयन्तं	-	करती हुई (आंधी) के	**उच्चैः स्वनन्त**	-	उच्च स्वरसे कड़कते हुए
अनुकरालाः	-	पीछे भयानक	**अक्षस्थविष्ठा**	-	रथके धुरेके समान मोटी
बलाहका	-	मेघ	**वर्षधाराः**	-	वर्षाकी धारायें
अभवन्	-	छा गये	**मुमुचुः**	-	गिराने लगे ॥ ११ ॥

ततो व्यदृश्यन्त चतुःसमुद्राः
समन्ततः क्ष्मातलमाग्रसन्तः ।

समीरवेगोर्मिभिरुग्रनक्र-

महाभयावर्तगभीरघोषाः ॥ १२ ॥

ततः व्यदृश्यन्त चतुः समुद्राः समन्ततः क्ष्मा तलं आग्रसन्तः समीरवेग ऊर्मिभिः उग्रनक्र महाभय आवर्त गभीर घोषाः ॥ १२ ॥

ततः चतुः समुद्राः	- फिर चारों समुद्र	**गभीर घोषाः**	- गम्भीर नादसे
समीरवेग	- वायुवेगसे	**समन्ततः**	- चारों ओरसे
ऊर्मिभिः	- उत्ताल तरंगोंसे	**क्ष्मा तलं**	- भूतलको
उग्रनक्र	- उछलते मगरमच्छों एवं	**आग्रसन्तः**	- सम्पूर्ण निगलते हुए
महाभय	- अत्यन्त भयानक	**व्यदृश्यन्त**	- दिखलायी पड़े ॥१२॥
आवर्त	- भँवरोंके		

अन्तर्बहिश्चाद्भिरतिद्युभिः खरैः

शतह्रदाभीरुपतापितं जगत् ।

चतुर्विधं वीक्ष्य सहात्मना मुनि-

र्जलाप्लुतां क्ष्मां विमनाः समत्रसत् ॥ १३ ॥

अन्तः बहिः च अद्भिः अतिद्युभिः खरैः शतह्रदाभिः उपतापितं जगत् चतुर्विधं वीक्ष्य सह आत्मना मुनिः जल आप्लुतां क्ष्मां विमनाः सम अत्रसत् ॥ १३ ॥

अद्भिः	- जलके द्वारा	**जगत्**	- जगत (के प्राणियों) को
अन्तः च बहिः	- भीतर और बाहर	**सह आत्मना**	- अपने साथ
अति खरैः	- अत्यन्त तीक्ष्ण (आंधी) से	**उपतापितं**	- संतप्त किये जाते तथा
द्युभिः	- स्वर्गके भी	**क्ष्मां जल-आप्लुतां**	- पृथ्वीको जलमें डूबी
शतह्रदाभिः	- जल-प्रलयमें (डूब जानेपर)	**वीक्ष्य मुनिः**	- देखकर मुनि
		विमनाः	- उदास होगये तथा

चतुर्विधं	- चारों प्रकार (स्वेदज, अण्डज, पिण्डज, जरायुज) के	**समन्त्रसत्**	- अत्यन्त भयभीत होगये ॥ १३ ॥

तस्यैवमुद्वीक्षत ऊर्मिभीषणः
प्रभञ्जनाघूर्णितवार्महार्णवः ।
आपूर्यमाणो वर्षद्भिरम्बुदैः
क्ष्मामप्यधाद् द्वीपवर्षाद्रिभिः समम् ॥ १४ ॥

तस्य एवं उद्वीक्षत ऊर्मि भीषणः प्रभञ्जन आघूर्णित वारि महार्णवः आपूर्यमाणः वर्षद्भिः अम्बुदैः क्ष्मां अप्यधात् द्वीपवर्ष अद्रिभिः समम् ॥१४॥

एवं तस्य	- इस प्रकार उनके	**वर्षद्भिः**	- (निरन्तर) वर्षासे
उद्वीक्षत	- देखते-देखते	**आपूर्यमाणः**	- चारों ओरसे भरा जाता
ऊर्मि भीषणः	- भयानक लहरों वाला	**महार्णवः**	- महासमुद्रने
प्रभञ्जन	- अन्धड़से	**द्वीपवर्ष**	- द्वीप, वर्ष,
आघूर्णित वारि	- घूमते जलवाला	**अद्रिभिः समं**	- पर्वतोंके साथ
अम्बुदैः	- बादलोंकी	**क्ष्मां अप्यधात्**	- पृथ्वीको डुबा दिया ॥ १४ ॥

सक्ष्मान्तरिक्षं सदिवं सभागणं
त्रैलोक्यमासीत् सह दिग्भिराप्लुतम् ।
स एक एवोर्वरितो महामुनि-
र्बभ्राम विक्षिप्य जटा जडान्धवत् ॥ १५ ॥

सक्ष्मा अन्तरिक्षं सदिवं सभागणं त्रैलोक्यं आसीत् सह दिक्भिः आप्लुतं स एक एव उर्वरितः महामुनिः बभ्राम विक्षिप्य जटा जड अन्धवत् ॥ १५ ॥

सक्ष्मा - पृथ्वीके साथ
अन्तरिक्षं - अन्तरिक्ष,
स दिवं - स्वर्गके साथ
स भागणं - नक्षत्रोंके साथ
सह दिक्भिः - दिशाओंके साथ
त्रैलोक्यं - तीनो लोक
आप्लुतं आसीत् - डूब गये थे,
स एक एव - वे अकेले ही
उर्वरितः - बचे हुए
महामुनिः - महामुनि
जटा विक्षिप्य - जटा फैलाये
जड अन्धवत् - मूर्ख अन्धेके समान
बभ्राम - भटकने लगे ॥ १५ ॥

क्षुत्तृट्परीतो मकरैस्तिमिङ्गलै-
रुपद्रुतो वीचिनभस्वता हतः ।
तमस्यपारे पतितो भ्रमन् दिशो
न वेद खं गां च परिश्रमेषितः ॥ १६ ॥

क्षुत् तट् परीतः मकरैः तिमिङ्गलैः उपद्रुतः वीचि नभस्वता हतः तमसि अपारे पतितः भ्रमन् दिशः न वेद खं गां च परिश्रम ईषितः ॥ १६ ॥

क्षुत् तट् - भूख-प्याससे
परीतः - घिरे (व्याकुल)
मकरैः - मगरमच्छों एवं
तिमिङ्गलैः - तिमिंगलोंके
उपद्रुतः - उपद्रवोंसे ग्रस्त,
वीचि नभस्वता - लहरों तथा वायुके
हतः - थपेड़े खाते
अपारे तमसि - अपार अन्धकारमें
पतितः - गिरकर
परिश्रम ईषितः - थकावटसे मूर्छित प्राय
भ्रमन् - भटकते हुए
दिशः खं - दिशायें, आकाश,
च गां - तथा पृथ्वीको
न वेद - नहीं जानते थे ॥१६॥

क्वचिद् गतो महावर्ते तरलैस्ताडितः क्वचित् ।
यादोभिर्भक्ष्यते क्वापि स्वयमन्योन्यघातिभिः ॥ १७ ॥

क्वचित् गतः महा आवर्ते तरलैः ताडितः क्वचित् यादोभिः भक्ष्यते क्वापि स्वयं अन्यः अन्य घातिभिः ॥ १७ ॥

क्वचित्	- कभी
महा आवर्ते	- बड़े भँवरमें
गतः	- पड़ जाते,
क्वचित्	- कभी
तरलैः ताडितः	- लहरोंके थपेड़े लगते,
क्वापि	- कभी
स्वयं अन्यः अन्य	- स्वयं एक दूसरेको
घातिभिः	- मारने वाले
यादोभिः	- जलजीवों द्वारा
भक्ष्यते	- काटे खाये जाते

॥ १७ ॥

क्वचिच्छोकं क्वचिन्मोहं क्वचिद् दुःखं सुखं भयम् ।
क्वचिन्मृत्युमवाप्नोति व्याध्यादिभिरुतार्दितः ॥ १८ ॥

क्वचित् शोकं क्वचित् मोहं क्वचित् दुःखं सुखं भयं क्वचित् मृत्युं अवाप्नोति व्याधि आदिभिः उत आर्दितः ॥ १८ ॥

क्वचित् शोकं	- कभी शोक,
क्वचित् मोहं	- कभी मोह,
क्वचित् दुःखं	- कभी दुःख,
सुखं भयं	- सुख या भय,
क्विचत्	- कभी
व्याधि आदिभिः	- रोग आदिसे
आर्दितः उत	- पीड़ित होकर अथवा
मृत्युं अवाप्नोति	- मृत्यु प्राप्त करते थे

॥ १८ ॥

अयुतायुतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च ।
व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन् विष्णुमायावृतात्मनः ॥ १९ ॥

अयुत अयुत वर्षाणां सहस्राणि शतानि च व्यतीयुः भ्रमतः तस्मिन् विष्णु माया आवृत आत्मनः ॥ १९ ॥

विष्णु माया	- भगवान विष्णुकी मायासे
आवृत आत्मनः	- आच्छादित चित्त
तस्मिन् भ्रमतः	- उस (प्रलयसिन्धु) में भागते
शतानि	- सैकड़ों,
सहस्राणि	- सहस्रों
च अयुत अयुत	- एवं लाखों करोड़ों
वर्षाणां व्यतीयुः	- वर्ष बीत गये ॥१९॥

स कदाचिद् भ्रमंस्तस्मिन् पृथिव्याः ककुदि द्विजः ।
न्यग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लवशोभितम् ॥ २० ॥

स कदाचित् भ्रमन् तस्मिन् पृथिव्याः ककुदि द्विजः न्यग्रोध पोतं ददृशो फल पल्लव शोभितम् ॥ २० ॥

तस्मिन् भ्रमन् - उस (जल) में भटकते हुए
कदाचित् - किसी समय
स द्विजः - उन विप्रवरने
पृथिव्याः ककुदि - पृथ्वीके टीलेपर
फल पल्लव - फल तथा पत्तोंसे
शोभितं - सुशोभित
न्यग्रोध पोतं - बटका छोटा वृक्ष
ददृशे - देखा ॥ २० ॥

प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम् ।
शयानं पर्णपुटके ग्रसन्तं प्रभया तमः ॥ २१ ॥

प्राक् उत्तरस्यां शाखायां तस्य अपि ददृशे शिशुं शयानं पर्णपुटके ग्रसन्तं प्रभया तमः ॥ २१ ॥

तस्य अपि - उसके भी
प्राक् उत्तरस्यां - पूर्वोत्तर (ईशान कोण) की
शाखायां - डालीपर
पर्णपुटके - पत्तोंके दोनेमें
शयानं - सोते हुए
प्रभया तमः - अपनी कान्तिसे अन्धकारके
ग्रसन्तं - नष्ट करते
शिशुं ददृशे - एक शिशुको देखा ॥ २१ ॥

महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपंकजम् ।
कम्बुग्रीवं महोरस्कं सुनासं सुन्दरभ्रुवम् ॥ २२ ॥

महामरकत श्यामं श्रीमत् वदनपंकजं कम्बु ग्रीवं महा उरस्कं सुना सं सुन्दरभ्रुवम् ॥ २२ ॥

महामरकत - महामरकत मणिके समान
श्यामं - श्यामवर्ण,
श्रीमत् - अत्यन्त शोभाशाली
वदन पंकजं - कमलमुख,
कम्बु ग्रीवं - शंखके समान गला,
महा उरस्कं - विशाल वक्षस्थल,
सुनासं - सुन्दर नासिका एवं
सुन्दर भ्रुवं - सुन्दर भौंहों वाला
॥ २२ ॥

श्वासैजदलकाभातं कम्बुश्रीकर्णदाडिमम् ।
विद्रुमाधरभासेषच्छोणायितसुधास्मितम् ॥ २३ ॥

श्वास एजत् अलक आभातं कम्बु श्री कर्ण दाडिमं विद्रुम अधर भास ईषत् शोणायित सुधा स्मितम् ॥ २३ ॥

श्वास एजत् - श्वास से हिलती
अलक आभातं - अलकोंसे सुशोभित्
कम्बु श्री कर्ण - शंखके समान (घुमावदार) कर्णोंकी शोभा
दाडिमं - अनारके (लाल) पुष्पों युक्त,
विद्रुम - मूंगेकेसमान
अधर भास - ओष्ठोंकी कान्तिसे
सुधास्मितं - अमृतमयी मुस्कान
ईषत् - किञ्चित्
शोणायित - अरुणिम होरही थी
॥ २३ ॥

पद्मगर्भारुणापांग हृद्यहासावलोकनम् ।
श्वासैजद्वलिसंविग्ननिम्ननाभिदलोदरम् ॥ २४ ॥

पद्मगर्भ अरुण अपांग हृद्य हास अवलोकनं श्वास एजत् वलि संविग्न निम्न नाभि दल उदरम् ॥ २४ ॥

पद्मगर्भ - कमल पुष्पके भीतरी भागके समान
अरुण अपांग - रतनारे नेत्र कोण,
हृद्य - हृदयहारी
हास अवलोकनं - हँसी युक्त दृष्टि,
निम्ननाभि - गहरी नाभियुक्त
बलि संविग्न - त्रिबली अंकित
दल उदरं - पत्तेके समान पतला पेट
श्वांस एजत् - श्वांससे हिलता था
॥ २४ ॥

चार्वङ्गुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणाम्बुजम् ।
मुखे निधाय विप्रेन्द्रो धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः ॥ २५ ॥

चारु अंगुलिभ्यां पाणिभ्यां उन्नीय चरणाम्बुजं मुखे निधाय विप्रेन्द्रः धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः ॥ २५ ॥

चारु अंगुलिभ्यां	- सुन्दर अंगुलियों वाले	**मुखे निधाय**	- मुखसे लगाकर
पाणिभ्यां	- दोनों हाथोंसे	**धयन्तं वीक्ष्य**	- चूसते देखकर
चरणाम्बुजं	- चरण कमलको	**विप्रेन्द्रः**	- ब्राह्मण श्रेष्ठ (मार्कण्डेय)
उन्नीय	- ऊपर लाकर	**विस्मितः**	- चकित रह गये ॥२५॥

तद्दर्शनाद् वीतपरिश्रमो मुदा
प्रोत्फुल्लहृत्पद्मविलोचनाम्बुजः ।
प्रहृष्टरोमाद्भुतभावशंकितः
प्रष्टुं पुरस्तं प्रससार बालकम् ॥ २६ ॥

तत् दर्शनात् वीत परिश्रमः मुदा प्रोत्फुल्ल हृत् पद्म विलोचन अम्बुजः प्रहृष्ट रोमा अद्भुतभाव शंकितः प्रष्टुं पुरः तं प्रससार बालकम् ॥ २६ ॥

तत् दर्शनात्	- उनके दर्शनसे	**प्रहृष्ट रोमा**	- रोमाञ्च होगया,
वीत परिश्रमः	- थकावट मिट गयी	**अद्भुत भाव**	- इस अद्भुत भावसे
मुदा हृत् पद्म	- आनन्दसे हृदय कमल एवं	**शंकितः**	- आशंकित होकर
		तं बालकं-	- उस बालकसे
विलोचन अम्बुजः	- नयन सरोज	**प्रष्टुं**	पूछनेके लिए
प्रोत्फुल्ल	- पूरे खिल गये,	**पुरः प्रससार**	- सामने सरक आये ॥ २६ ॥

तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः
सोऽन्तःशरीरं मशको यथाविशत् ।

तत्राप्यदो न्यस्तमचष्ट कृतस्नशो
यथा पुरामुह्यदतीव विस्मितः ॥ २७ ॥

तावत् शिशोः वै श्वसितेन भार्गवः सः अन्तः शरीरं मशकः यथा आविशत् तत्र अपि अदः न्यस्तं अचष्ट कृत्स्नशः यथा पुरा मुह्यत अतीव विस्मितः ॥ २७ ॥

तावत् भार्गवः	- इतनेमें तो मार्कण्डेयजी	**यथा पुरा**	- जैसा (प्रलयसे) पहिले था
वै शिशोः	- निश्चय शिशुकी	**कृत्स्नशः**	- सम्पूर्ण
श्वसितेन	- श्वाससे (खिंचकर)	**अदः न्यस्तं**	- संसार व्यवस्थित
मशकः यथा	- मच्छरके समान	**अचष्ट**	- देखकर
अन्तः शरीरं	- शरीरके भीतर	**अतीव विस्मितः**	- अत्यन्त चकित होकर
आविशत्	- घुस गये,	**मु ह्य त्**	- मोह (भ्रम) में पड़ गये
तत्र अपि सः	- वहां भी उन्होंने		॥ २७ ॥

खं रोदसी भगणानद्रिसागरान्
द्वीपान् सवर्षान् ककुभः सुरासुरान् ।
वनानि देशान् सरितः पुराकरान्
खेटान् व्रजानाश्रमवर्णवृत्तयः ॥ २८ ॥

खं रोदसी भगणान् अद्रि सागरान् द्वीपान् स वर्षान् ककुभः सुर असुरान् वनानि देशान् सरितः पुर आकरान् खेटान् व्रजान् आश्रम वर्ण वृत्तयः ॥२८॥

खं रोदसी	- आकाश, अन्तरिक्ष,	**वनानि देशान्**	- वन, प्रदेश,
भगणान्	- नक्षत्र मण्डल,	**सरितः**	- नदियां,
अद्रि सागरान्	- पर्वत, समुद्र,	**पुर आकरान्**	- नगर, खदानें,
स वर्षान्	- वर्षोंके साथ	**खेटान् व्रजान्**	- गांव, गोपोंकी बस्तियां,
द्वीपान्	- द्वीपों,	**आश्रम वर्ण**	- वर्ण-आश्रम तथा
ककुभः	- दिशायें,	**वृत्तयः**	- उनकी आजीविका (देखी)
सुर असुरान्	- देवता, असुर,		॥ २८ ॥

महान्ति भूतान्यथ भौतिकान्यसौ
कालं च नानायुगकल्पकल्पनम् ।
यत् किञ्चिदन्यद् व्यवहारकारणं
ददर्श विश्वं सदिवावभासितम् ॥ २९ ॥

महान्ति भूतानि अथ भौतिकानि असौ कालं च नाना युग कल्प कल्पनं यत् किञ्चित् अन्यत् व्यवहार कारणं ददर्श विश्वं सत् इव अवभासितम् ॥ २९ ॥

महान्ति भूतानि	- पञ्च महाभूत,	**अन्यत्**	- दूसरा
अथ भौतिकानि	- तथा उनसे उत्पन्न पदार्थ,	**व्यवहार कारणं**	- व्यवहारका हेतु है
च नाना युग	- और अनेक युगों एवं	**सत् इव**	- सत्की भांति
कल्प कल्पनं	- कल्पोंकी कल्पना वाला	**अवभासितं**	- प्रतीत होता
कालं	- समय,	**विश्वं**	- (सम्पूर्ण) विश्व
यत् किञ्चित्	- जो कुछ भी	**असौ ददर्श**	- इन्होंने देखा ॥ २९ ॥

हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं
निजाश्रमं तत्र ऋषीनपश्यत् ।
विश्वं विपश्यञ्छ्वसिताच्छिशोर्वै
बहिर्निरस्तो न्यपतल्लयाब्धौ ॥ ३० ॥

हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं निज आश्रमं तत्र ऋषीन् अपश्यत् विश्वं विपश्यन् श्वसितात् शिशोः वै बहिः निरस्तः न्यपतत् लय अब्धौ ॥ ३० ॥

हिमालयं	- हिमालय पर्वतको	**विश्वं विपश्यन्**	- (इस प्रकार) विश्वको देखते हुए
च तां पुष्पवहां	- तथा उस पुष्पभद्रा	**वै शिशोः**	- निश्चय उस शिशुके
नदीं	- नदीको,	**श्वसितात्**	- श्वांस छोड़नेसे
निज आश्रमं	- अपने आश्रमको	**बहिः निरस्तः**	- बाहर निकाले जाकर
तत्र ऋषीन्	- वहाँ ऋषियोंको भी	**लय अब्धौ**	- प्रलय समुद्रमें
अपश्यत्	- देखा,	**न्यपतत्**	- गिर पड़े ॥ ३० ॥

तस्मिन् पृथिव्याः ककुदि प्ररूढं
वटं च तत्पर्णपुटे शयानम् ।
तोकं च तत्प्रेमसुधास्मितेन
निरीक्षितोऽपाङ्गनिरीक्षणेन ॥ ३१ ॥

तस्मिन् पृथिव्याः ककुदि प्ररूढ़ं वटं च तत् पर्णपुटे शयानं तो कं च तत् प्रेम सुधास्मितेन निरीक्षितः अपांग निरीक्षणे ॥ ३१ ॥

तस्मिन्	- उस (प्रलय सागर) में	**तो कं च**	- शिशुको एवं
पृथिव्याः ककुदि	- पृथ्वीके टीलेपर	**तत् प्रेम**	- उसकी प्रेमभरी
प्ररूढं वटं	- उगे हुए वट वृक्षको	**सुधास्मितेन**	- अमृतमयी मुस्कान सहित
च तत् पर्णपुटे	- तथा उसके पत्तेके दोनेमें	**अपांग-निरीक्षणे**	- तिरछी चितवनसे
शयानं	- सोते	**निरीक्षितः**	- देखे जारहे थे ॥ ३१ ॥

अथ तं बालकं वीक्ष्य नेत्राभ्यां धिष्ठितं हृदि ।
अभ्ययादतिसंक्लिष्टः परिष्वक्तुमधोक्षजम् ॥ ३२ ॥

अथ तं बालकं वीक्ष्य नेत्राभ्यां धिष्ठितं हृदि अभ्ययात् अति संक्लिष्टः परिष्वक्तुं अधोक्षजम् ॥ ३२ ॥

अथ हृदि	- फिर	**अति संक्लिष्टः**	- बड़े कष्टसे
धिष्ठितं	- विराजमान	**अधोक्षजं**	- उन इन्द्रियातीतका
तं बालकं	- उस बालकको	**परिष्वक्तुं**	- आलिंगन करनेके लिए
नेत्राभ्यां वीक्ष्य	- नेत्रोंसे (सम्मुख) देखकर	**अभ्ययात्**	- आगे बढ़े ॥ ३२ ॥

तावत् स भगवान् साक्षाद् योगाधीशो गुहाशयः ।
अन्तर्दध ऋषेः सद्यो यथेहानीशनिर्मिता ॥ ३३ ॥

तावत् स भगवान् साक्षात् योग अधीशः गुहाशयः अन्तः दध ऋषेः सद्यः यथा ईहा अनीश निर्मिता ॥ ३३ ॥

तावत् - इतनेमें ही
स साक्षात् - वे साक्षात्
योग अधीशः - योगोंके स्वामी
गुहाशयः - (सबकी) हृदयगुफा में रहने वाले
भगवान् - भगवान्
यथा अनीश- - जैसे असमर्थकी चेष्टा
निर्मिता
ऋषेः - ऋषि (मार्कण्डेय)के सामनेसे
सद्यः अन्तः- - तत्काल अन्तर्ध्यान
दध होगये ॥ ३३ ॥

तमन्वथ वटो ब्रह्मन् सलिलं लोकसम्प्लवः ।
तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत् स्थितः ॥ ३४ ॥

तं अन्वथ वटः ब्रह्मन् सलिलं लोक सम्प्लवः तिरोधायि क्षणात् अस्य स्व आश्रमे पूर्ववत् स्थितः ॥ ३४ ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्म् न !
वटः तं अन्वथ - वट वृक्ष भी उनके पीछे चला गया
लोक सम्प्लवः - लोकोंका प्रलय करने वाला
सलिलं - जल भी
अस्य क्षणात् - इनके लिए क्षणभरमें
तिरोधायि - अदृश्य होगया,
पूर्ववत् - (वे) पहिलेकी भांति
स्व आश्रमे - अपने आश्रममें
स्थितः - बैठे थे ॥ ३४ ॥

श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे
मायादर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

सूत उवाच-

स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् ।
वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ ॥ १ ॥

स एवं अनुभूय इदं नारायण विनिर्मितं वैभवं योगमायायाः तं एव शरणं ययौ ॥ १ ॥

स एवं	-	वे (मार्कण्डेयजी) इस प्रकार	**इदं वैभवं**	-	यह वैभव
नारायण	-	नारायण द्वारा	**अनुभूय**	-	अनुभव करके
विनिर्मितं	-	रचित	**तं एव**	-	उन्हींकी
योगमायायाः	-	योगमायाका	**शरणं ययौ**	-	शरणमें गये ॥ १ ॥

मार्कण्डेय उवाच-

प्रपन्नोऽस्म्यङ्घ्रिमूलं ते प्रपन्नाभयदं हरे ।
यन्माययापि विबुधा मुह्यन्ति ज्ञानकाशया ॥ २ ॥

प्रपन्नः अस्मि अङ्घ्रि मूलं ते प्रपन्न अभयदं हरे यत् माययाअपि विबुधा मुह्यन्ति ज्ञानक आशया ॥ २ ॥

ज्ञानक आशया	-	ज्ञानके समान (सत्य) प्रतीत	**प्रपन्न अभयदं**	-	शरणागतको अभय देनेवाले
यत् माययाअ	-	जिनकी मायासे	**हरे**	-	श्रीहरि !
विबुधा अपि	-	देवता भी	**ते अङ्घ्रि मूलं**	-	आपके चरणोंकी
मुह्यन्ति	-	मोहित होजाते हैं	**प्रपन्नः अस्मि**	-	शरणमें हूं ॥ २ ॥

सूत उवाच-

तमेवं निभृतात्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् ।
रुद्राण्या भगवान् रुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ॥ ३ ॥

तं एवं निभृत आत्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् रुद्राण्या भगवान् रुद्रः ददर्श स्वगणैः वृतः ॥ ३ ॥

रुद्राण्या - भवानीके साथ
स्वगणैः वृतः - अपने गणोंसे घिरे हुए
भगवान् रुद्रः - भगवान् शिवने
वृषेण - वृषभपर बैठकर
दिवि पर्यटन् - आकाश मार्गसे विचरण करते हुए
तं एवं - उन (मार्कण्डेयजी) को इस प्रकार
निभृत आत्मानं - एकाग्रचित्त
ददर्श - देखा ॥ ३ ॥

अथोमा तमृषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत ।
पश्येमं भगवन् विप्रं निभृतात्मेन्द्रियाशयम् ॥ ४ ॥

अथ उमा तं ऋषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत पश्य इमं भगवन् विप्रं निभृत आत्म इन्द्रिय आशयम् ॥ ४ ॥

तं ऋषिं वीक्ष्य - उन ऋषिको देखकर
अथ उमा - तब भगवती उमाने
गिरिशं - शंकरजीसे
सम भाषत - सप्रेम कहा-
भगवन् - 'भगवन् !
आत्म इन्द्रिय - अपनी इन्द्रियों और
आशयं - चित्तको
निभृत - एकाग्र किये
इमं विप्रं - इन विप्रवरको
पश्य - देखिये ॥ ४ ॥

निभृतोदङ्मषव्रातं वातापाये यथार्णवम् ।
कुर्वस्य तपसः साक्षात् संसिद्धिं सिद्धिदो भवान् ॥ ५ ॥

निभृत उद झष व्रातं वात अपाये यथा अर्णवं कुरु अस्य तपसः साक्षात् संसिद्धिं सिद्धिदः भवान् ॥ ५ ॥

वात अपाये - अन्धड़ चले जानेपर
निभृत उदझष - जल तथा मत्स्योंके शान्त होजानेपर
यथा अर्णवं - जैसे समुद्रहो
अस्य तपसः - इनकी तपस्याकी
साक्षात् संसिद्धिं - प्रत्यक्ष पूर्ण सिद्धि
कुरु - कर दीजिए (क्योंकि)
भवान् - आप
सिद्धिदः - सिद्धि दाता हैं ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच-

नैवेच्छत्याशिषः क्वापि ब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत ।
भक्तिं परां भगवति लब्धवान् पुरुषोऽव्यये ॥ ६ ॥

न एव इच्छति आशिषः क्वअपि ब्रह्मर्षिः मोक्षं अपि उत भक्तिं परां भगवति लब्धवान् पुरुषो अव्यये ॥ ६ ॥

अव्यये पुरुषो - अविनाशी परमपुरुषमें
परां भक्तिं - पराभक्ति
लब्धवान् - प्राप्त करलेनेसे
ब्रह्मर्षि : - (ये) ब्रह्मर्षि
क्वअपि आशिषः - कोई भी आशीर्वाद
उत मोक्षं अपि - तथा मोक्ष भी
न एव इच्छति - नहीं ही चाहते हैं ॥ ६ ॥

अथापि संवदिष्यामो भवान्येतेन साधुना ।
अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः ॥ ७ ॥

अथ अपि संवदिष्यामः भवानि एतेन साधुना अयं हि परमः लाभः नृणां साधु समागमः ॥ ७ ॥

भवानि - भवानी !
अथ अपि - फिर भी
एतेन साधुना - इन सत्पुरुषसे
संवदिष्यामः - बातचीत करेंगे,
हि नृणां - क्योंकि मनुष्यके लिए
साधु समागमः - सत्पुरुषसे मिलना
परमः लाभः - परम लाभ है ॥ ७ ॥

सूत उवाच-

इत्युक्त्वा तमुपेयाय भगवान् स सतां गतिः ।
ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम् ॥ ८ ॥

इति उक्त्वा तं उपेयाय भगवान् स सतां गतिः ईशानः सर्व विद्यानां ईश्वरः सर्व देहिनाम् ॥ ८ ॥

इति उक्त्वा	- ऐसा कहकर	**सर्व देहिनां**	- सम्पूर्ण शरीरधारियोंके
स सतां गतिः	- वे संतोंके परमाश्रय,	**ईश्वरः**	- परम प्रेरक
सर्व विद्यानां	- समस्त विद्याओंके	**भगवान्**	- भगवान शिव
ईशानः	- प्रवर्तक	**तं उपेयाय**	- उनके समीप आये ॥८॥

तयोरागमनं साक्षादीशयोर्जगदात्मनोः ।
न वेद रुद्धधीवृत्तिरात्मानं विश्वमेव च ॥ ९ ॥

तयोः आगमनं साक्षात् ईशयोः जगत् आत्मनोः न वेद रुद्धधी वृत्तिः आत्मानं विश्वं एव च ॥ ९ ॥

धीवृत्तिः	- बुद्धिकी वृत्तियोंके	**जगत् आत्मनोः**	- जगत्के आत्मा
रुद्ध	- रोक देनेसे	**ईशयोः**	- तथा स्वामी उमा महेश्वरका
आत्मानं	- अपने आपके		
च विश्वं एव	- तथा विश्वको भी (भूल जानेसे)	**आगमनं**	- आगमन
		न वेद	- नहीं जान सके ॥९॥
तयोः साक्षात्	- उन साक्षात्		

भगवांस्तदभिज्ञाय गिरीशो योगमायया ।
आविशत्तद्गुहाकाशं वायुश्छिद्रमिवेश्वरः ॥ १० ॥

अन्य प्रतियों में यहां भगवानुवाच है ।

भगवान् तत् अभिज्ञाय गिरीशः योगमायया आविशत् तत् गुहाआकाशं वायुः छिद्रं इव ईश्वरः ॥ १० ॥

तत् अभिज्ञाय - यह स्थिति समझकर
ईश्वरः - सर्व-समर्थ
भगवान् गिरीशः - भगवान् शंकरने
योगमायया - योगशक्तिसे
छिद्रं वायुः इव - शून्य स्थानमें वायुकी भांति
तत् गुहा-आकाशं - उनके हृदयाकाशमें
आविशत् - प्रवेश किया ॥ १० ॥

आत्मन्यपि शिवं प्राप्तं तडित्पिङ्गजटाधरम् ।
त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुमुद्यन्तमिव भास्करम् ॥ ११ ॥

आत्मनि अपि शिवं प्राप्तं तडित् पिंङ्ग जटाधरं त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुं उद्यन्तं इव भास्करम् ॥ ११ ॥

आत्मनि अपि - अन्तःकरणमें भी
तडित् पिङ्ग - विद्युतके समान पीली
जटाधरं - जटायें धारण किये
त्र्यक्षं - त्रिनयन,
दशभुजं - दस भुजावाले
प्रांशुं - सुदीर्घ देह
उद्यन्तं - उगते हुए
भास्करं इव - सूर्यके समान
शिवं प्राप्तं - शंकरजीको प्रगट हुआ ॥ ११ ॥

व्याघ्रचर्माम्बरधरं शूलखट्वाङ्गचर्मभिः ।
अक्षमालाडमरुककपालासिधनुः सह ॥ १२ ॥

व्याघ्र चर्म अम्बर धरं शूल खट्वाङ्ग चर्मभिः अक्षमाला डमरु कपाल असि धनुः सह ॥ १२ ॥

व्याघ्र चर्म - बाघके चर्मका
अम्बरधरं - वस्त्र पहिने,
शूल खट्वाङ्ग - शूल, चारपाईका पाया,
चर्मभिः - ढाल,
अक्षमाला - रुद्राक्षकी माला
डमरू कपाल - डमरू, खप्पर,
असि धनुः सह - तलवार, धनुष साथ ॥ १२ ॥

बिभ्राणं सहसा भातं विचक्ष्य हृदि विस्मितः ।
किमिदं कुत एवेति समाधेर्विरतो मुनिः ॥ १३ ॥

बिभ्राणं सहसा भातं विचक्ष्य हृदि विस्मितः किं इदं कुत एव इति समाधेः विरतः मुनिः ॥ १३ ॥

बिभ्राणं	- धारण किये	**किं इदं**	- 'यह क्या हुआ ?
सहसा हृदि	- अचानक हृदयमें	**कुत एव**	- कहांसे आये ?'
भातं विचक्ष्य	- प्रत्यक्ष हुए देखकर	**इति समाधेः**	- ऐसा सोचते समाधिसे
विस्मितः मुनिः	- चकित मुनि (सोचने लगे)	**विरतः**	- निवृत्त होगये ॥ १३ ॥

नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं सोमयाऽऽगतम् ।
रुद्रं त्रिलोकैकगुरुं ननाम शिरसा मुनिः ॥ १४ ॥

नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं स उमया आगतं रुद्रं त्रिलोक एक गुरुं ननाम शिरसा मुनिः ॥ १४ ॥

नेत्रे उन्मील्य	- नेत्र खोलकर	**रुद्रं आगतं**	- भगवान शिवको आया
सगणं	- गणोंके साथ	**ददृशे**	- देखा,
स उमया	- भगवती उमाके साथ	**मुनिः शिरसा**	- मुनिने मस्तक झुकाकर
त्रिलोक-	- त्रिलोकीके एक	**ननाम**	- (उन्हें) प्रणाम किया
एक गुरुं	मात्र गुरु		॥ १४ ॥

तस्मै सपर्यां व्यदधात् सगणाय सहोमया ।
स्वागतासनपाद्यार्घ्यगन्धस्रग्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥

तस्मै सपर्यां व्यदधात् सगणाय सह उमया स्वागत आसन पाद्य अर्घ्य गन्ध स्रक्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥

स्वागत - स्वागत,
आसन - आसन,
पाद्य अर्घ्य - पाद्य, अर्घ्य,
गन्ध स्रक् - चन्दन, माला,
धूप दीपकैः - धूप, दीपकसे
सगणाय - गणोंके साथ,
सह उमया - भगवती उमाके साथ
तस्मै सपर्यां - उनकी पूजा
व्यदधात् - सम्पन्नकी ॥ १५ ॥

आह चात्मानुभावेन पूर्णकामस्य ते विभो ।
करवाम किमीशान येनेदं निर्वृतं जगत् ॥ १६ ॥

आह च आत्म अनुभावेन पूर्ण कामस्य ते विभो करवाम किं ईशान येन इदं निर्वृतं जगत् ॥ १६ ॥

आह च - बोले भी
विभो ईशान - 'सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान,
येन इदं जगत् - जिनसे यह संसार
निर्वृतं - सुख-शान्ति पाता है (उन)
आत्म अनुभावेन - अपने प्रभावसे ही
पूर्णकामस्य - पूर्णकाम
ते किं करवाम - आपकी क्या सेवा करूँ ? ॥ १६ ॥

नमः शिवाय शान्ताय सत्त्वाय प्रमृडाय च ।
रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे ॥ १७ ॥

नमः शिवाय शान्ताय सत्त्वाय प्रमृडाय च रजः जुषे अपि अघोराय नमः तुभ्यं तमः जुषे ॥ १७ ॥

सत्त्वाय शान्ताय - सत्त्वगुणमय शान्त स्वरूप
शिवाय नमः - सदाशिवको नमस्कार,
च रजः- - तथा रजोगुणसे भी
जुषे अपि युक्त
प्रमृडाय - सर्वप्रवर्तक रूपको,
तमः जुषे - तमोगुणसे युक्त
अघोराय अपि - अघोर स्वरूप भी
तुभ्यं नमः - आपको नमस्कार ॥ १७ ॥

सूत उवाच-

एवं स्तुतः स भगवानादिदेवः सतां गतिः ।
परितुष्टः प्रसन्नात्मा प्रहसंस्तमभाषत ॥ १८ ॥

एवं स्तुतः स भगवान् आदिदेवः सतां गतिः परितुष्टः प्रसन्न आत्मा प्रहसन् तं अभाषत ॥ १८ ॥

एवं स्तुतः - इस प्रकार स्तुति करनेपर
स आदिदेवः - वे आदिदेव
सतां गतिः - संतोंके परमाश्रय
भगवान् - भगवान
परितुष्टः - परम सन्तुष्ट होकर
प्रसन्न आत्मा - प्रसन्न चित्त
प्रहसन् - हँसते हुए
तं अभाषत - उनसे बोले ॥ १८ ।

श्रीभगवानुवाच-

वरं वृणीष्व नः कामं वरदेशा वयं त्रयः ।
अमोघं दर्शनं येषां मर्त्यो यद् विन्दतेऽमृतम् ॥ १९ ॥

वरं वृणीष्व नः कामं वरद ईशा वयं त्रयः अमोघं दर्शनं येषां मर्त्यः यत् विन्दते अमृतम् ॥ १९ ॥

नः कामं - हमसे इच्छानुसार
वरं वृषीष्व - वरदान मांग लो,
वयं त्रयः - हम तीनों (ब्रह्मा, विष्णु, मैं)
वरद ईशा - वरदान देनेमें समर्थ हैं ।
येषां दर्शनं - जिनका दर्शन
अमोघं - व्यर्थ नहीं होता,
यत् मर्त्यः - जिनसे मरणधर्मा प्राणी
अमृतं विन्दते - अमृततत्त्व पा लेता है ॥ १९ ॥

ब्राह्मणाः साधवः शान्ता निःसंगा भूतवत्सलाः ।
एकान्तभक्ता अस्मासु निर्वैराः समदर्शिनः ॥ २० ॥

ब्राह्मणाः साधवः शान्ता निःसंगा भूत वत्सलाः एकान्त भक्ता अस्मासु निर्वैराः समदर्शिनः ॥ २० ॥

अन्य प्रतियों में यहां 'श्रीभगवानुवाच' है और कुछ में 'श्रीमहादेव उवाच' है ।

ब्राह्मणाः साधवः	-	ब्राह्मण (स्वभावसे) साधु,	**अस्मासु**	-	हम लोगोंके
शान्ता	-	शान्त,	**एकान्त भक्ता**	-	अनन्य भक्त
निःसंगा	-	आसक्तिहीन,	**निर्वैराः**	-	शत्रुताहीन
भूतवत्सलाः	-	प्राणियोंसे स्नेह करनेवाले	**समदर्शिनः**	-	समदर्शी होते हैं ॥२०॥

सलोका लोकपालास्तान् वन्दन्त्यर्चन्त्युपासते ।
अहं च भगवान् ब्रह्मा स्वयं च हरिरीश्वरः ॥ २१ ॥

स लोका लोकपालाः तान् वन्दन्ति अर्चन्ति उपासते अहं च भगवान् ब्रह्मा स्वयं च हरिः ईश्वरः ॥ २१ ॥

स लोका	-	सब लोकोंके साथ	**च स्वयं**	-	और स्वयं
लोकपालाः	-	लोकपाल गण,	**ईश्वरः हरिः**	-	सर्वेश्वर श्रीहरि
च अहं	-	तथा मैं,	**तान् वन्दन्ति**	-	उनकी वन्दना करते हैं,
भगवान् ब्रह्मा	-	भगवान् ब्रह्मा	**अर्चन्ति**	-	पूजा करते हैं,
			उपासते	-	(उनके) समीप रहते हैं ॥ २१ ॥

न ते मय्यच्युतेऽजे च भिदामण्वपि चक्षते ।
नात्मनश्च जनस्यापि तद् युष्मान् वयमीमहि ॥ २२ ॥

न ते मयि अच्युते अजे च भिदां अणु अपि चक्षते न आत्मनः च जनस्य अपि तत् युष्मान् वयं ईमहि ॥ २२ ॥

मयि अच्युते	-	मुझमें, श्रीहरिमें,	**ते आत्मनः च**	-	तुममें अपनेमें तथा
च अजे	-	तथा ब्रह्माजीमें	**जनस्य अपि**	-	लोगोंमें भी
अणु अपि	-	तनिक भी	**न चक्षते**	-	(भेद) नहीं दीखता
भिदां न	-	भेद नहीं है	**तत् युष्मान्**	-	इसलिए तुम महात्माओंकी
			वयं ईमहि	-	हम स्तुति करते हैं ॥ २२ ॥

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ॥ २३ ॥

न हि अप् मयानि तीर्थानि न देवाः चेतन उज्झिताः ते पुनन्ति उरुकालेन यूयं दर्शन मात्रतः ॥ २३ ॥

हि अप् मयानि	- क्योंकि जलमय ही	**ते उरु-**	- वे (सेवा करनेपर)
तीर्थानि न	- तीर्थ नहीं हैं,	**कालेन**	बहुत दिनोंमें
चेतन उज्झिताः	- चेतनाहीन (मूर्तियां) ही	**पुनन्ति**	- पवित्र करते हैं,
देवाः न	- देवता नहीं हैं,	**यूयं**	- पर आप लोग
		दर्शन मात्रतः	- दर्शनमात्रसे (पवित्र कर देते हो) ॥ २३ ॥

ब्राह्मणेभ्यो नमस्यामो येऽस्मद्रूपं त्रयीमयम् ।
बिभ्रत्यात्मसमाधानतपः स्वाध्यायसंयमैः ॥ २४ ॥

ब्राह्मणेभ्यः नमस्यामः ये अस्मत् रूपं त्रयीमयं बिभ्रति आत्म समाधान तपः स्वाध्याय संयमैः ॥ २४ ॥

आत्म-	- चित्तकी एकाग्रता,	**अस्मत् रूपं**	- हमारे रूपको
समाधान		**बिभ्रति**	- धारण करते हैं (उन)
तपः स्वाध्याय	- तपस्या, वेदाध्ययन,	**ब्राह्मणेभ्यः**	- ब्राह्मणोंको
संयमैः	- संयमके द्वारा	**नमस्यामः**	- हम नमस्कार करते हैं ॥ २४ ॥
ये त्रयीमयं	- जो वेदमय		

श्रवणाद् दर्शनाद् वापि महापातकिनोऽपि वः ।
शुध्येरन्नन्त्यजाश्चापि किमु सम्भाषणादिभिः ॥ २५ ॥

श्रवणात् दर्शनात् वा अपि महापातकिनः अपि वः शुध्येरन् अन्त्यजाः च अपि किमु सम्भाषण आदिभिः ॥ २५ ॥

वः श्रवणात् - आपके चरित-श्रवणसे,
वा दर्शनात्- - अथवा दर्शनसे भी
अपि
महापातकिनः - महापापी
च अन्त्यजाः- - तथा अन्त्यज भी
अपि
शुध्येरन् - शुद्ध होजाते हैं,
सम्भाषण - बातचीत करने
आदिभिः- - आदिसे तो कहना
किमु ही क्या ॥ २५ ॥

सूत उवाच-

इति चन्द्रललामस्य धर्मगुह्योपबृंहितम् ।
वचोऽमृतायनमृषिर्नातृप्यत् कर्णयोः पिबन् ॥ २६ ॥

इति चन्द्र ललामस्य धर्म गुह्य उपबृंहितं वचः अमृत अयनं ऋषिः न अतृप्यत् कर्णयोः पिबन् ॥ २६ ॥

चन्द्रललामस्य - शशिभूषण भगवानके
इति - इस प्रकारके
धर्मगुह्य - धर्मके रहस्यसे
उपबृंहितं - परिपूर्ण
अमृत अयनं - अमृत भरे
वचः - वचन
कर्णयोः पिबन् - कानोंसे पीते हुए
ऋषिः - ऋषि (मार्कण्डेय)
न अतृप्यत् - नहीं तृप्त होते थे
॥ २६ ॥

स चिरं मायया विष्णोर्भ्रामितः कर्शितो भृशम् ।
शिववागमृतध्वस्तक्लेशपुञ्जस्तमब्रवीत् ॥ २७ ॥

स चिरं मायया विष्णोः भ्रामितः कर्शितः भृशं शिववाक् अमृत ध्वस्त क्लेश पुञ्जः तं अब्रवीत् ॥ २७ ॥

विष्णोः मायया - भगवान विष्णुकी माया द्वारा
स चिरं - वे देरतक
भ्रामितः - भटकाये गये
भृशं कर्शितः - बहुत थक गये थे
शिव वाक् - शंकरजीकी वाणी रूपी
अमृत - अमृतसे
क्लेश पुञ्जः - क्लेश समूह
ध्वस्त - नष्ट होगये
तं अब्रवीत् - उन (शंकरजी) से बोले
॥ २७ ॥

मार्कण्डेय उवाच -

अहो ईश्वरलीलेयं दुर्विभाव्या शरीरिणाम् ।
यन्नमन्तीशितव्यानि स्तुवन्ति जगदीश्वराः ॥ २८ ॥

अहो ईश्वर लीला इयं दुर्विभाव्या शरीरिणां यत् नमन्ति ईशितव्यानि स्तुवन्ति जगदीश्वराः ॥ २८ ॥

अहो	- अहो !	**यत् जगदीश्वराः**	- जो जगत्के स्वामी
इयं ईश्वर लीला	- यह सर्वशक्तिमानकी लीला	**ईशितव्यानि**	- शासन करने योग्य (मेरे जैसों) की
शरीरिणां	- प्राणियोंके लिए	**नमन्ति स्तुवन्ति**	- वन्दना एवं स्तुति
दुर्विभाव्या	- समझसे परे है,		करते हैं ॥ २८ ॥

धर्मं ग्राहयितुं प्रायः प्रवक्तारश्च देहिनाम् ।
आचरन्त्यनुमोदन्ते क्रियमाणं स्तुवन्ति च ॥ २९ ॥

धर्मं ग्राहयितुं प्रायः प्रवक्तारः च देहिनां आचरन्ति अनुमोदन्ते क्रियमाणं स्तुवन्ति च ॥ २९ ॥

देहिनां	- शरीरधारियोंको	**आचरन्ति**	- (वैसा) आचरण करते हैं,
धर्मं ग्राहयितुं	- धर्मका ग्रहण करानेके लिए	**अनुमोदन्ते**	- अनुमोदन करते हैं,
प्रायः-	- प्रायः (उसके)	**च क्रियमाणं**	- तथा करनेपर
प्रवक्तारः च	उपदेशक भी -	**स्तुवन्ति**	- प्रशंसा करते हैं ॥ २९ ॥

नैतावता भगवतः स्वमायामयवृत्तिभिः ।
न दुष्येतानुभावस्तैर्मायिनः कुहकं यथा ॥ ३० ॥

अन्य प्रतियों में यहां ऋषिरुवाच है ।

न एतावता भगवतः स्वमायामय वृत्तिभिः न दुष्येत अनुभावः तैः मायिनः कुहकं यथा ॥ ३० ॥

स्वमायामय - अपनी मायामयी
वृत्तिभिः - वृत्तियोंके द्वारा
एतावता - इतने (स्तुति आदि) से ही
तैः- - (आपका) वह प्रभाव
अनुभावः
दुष्येत न - दूषित नहीं होता
यथा मायिनः - जैसे जादूगरका (प्रभाव)
कुहकं - जादूके खेलोंसे (घटता नहीं) ॥ ३० ॥

सृष्ट्वेदं मनसा विश्वमात्मनानुप्रविश्य यः ।
गुणैः कुर्वद्भिराभाति कर्तेव स्वप्नदृग् यथा ॥ ३१ ॥

सृष्ट्वा इदं मनसा विश्वं आत्मना अनु प्रविश्य यः गुणैः कुर्वद्भिः आभाति कर्ता इव स्वप्नदृक् यथा ॥ ३१ ॥

यथा स्वप्नदृक् - जैसे स्वप्न देखनेवाला हो
यः आत्मना - जो अपने
मनसा - मनसे
इदं विश्वं सृष्ट्वा - इस जगतकी सृष्टि करके
अनुप्रविश्य - फिर इसमें प्रवेश करके
गुणैः कुर्वद्भिः - गुणोंके द्वारा किये जाते (कर्मोंका)
कर्ता इव - कर्ताके समान
आभाति - प्रतीत होता है ॥ ३१ ॥

तस्मै नमो भगवते त्रिगुणाय गुणात्मने ।
केवलायाद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये ॥ ३२ ॥

तस्मै नमः भगवते त्रिगुणाय गुण आत्मने केवलाय अद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये ॥ ३२ ॥

तस्मै त्रिगुणाय - उन त्रिगुण स्वरूप (होनेपर भी)
गुण आत्मने - गुणोंके आत्मा (गुणातीत)
केवलाय - केवल
अद्वितीयाय - अद्वितीय
गुरवे - परमगुरु
ब्रह्ममूर्तये - ब्रह्मस्वरूप
भगवते नमः - भगवानको नमस्कार ॥ ३२ ॥

कं वृणे नु परं भूमन् वरं त्वद् वरदर्शनात् ।
यद्दर्शनात् पूर्णकामः सत्यकामः पुमान् भवेत् ॥ ३३ ॥

कं वृणे नु परं भूमन् वरं त्वत् वर दर्शनात् यत् दर्शनात् पूर्णकामः सत्यकामः पुमान् भवेत् ॥ ३३ ॥

त्वत् वरदर्शनात् - आपके श्रेष्ठ दर्शनसे
नु परं - भला उत्तम क्या है
वरं वृणे - जिसे वरदानमें मांगूं,
भूमन् - सर्वव्यापक प्रभु !
यत् दर्शनात् - जिस (आपके) दर्शनसे
पुमान् - पुरुष
पूर्णकामः - पूर्णकाम और
सत्यकामः - सत्यसंकल्प
भवेत् - होजाता है ॥ ३३ ॥

वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात् कामाभिवर्षणात् ।
भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥ ३४ ॥

वरं एकं वृणे अथ अपि पूर्णात् कामअभिवर्षणात् भगवति अच्युतां भक्तिं तत् परेषु तथा त्वयि ॥ ३४ ॥

अथ अपि - फिर भी
पूर्णात् - (आप) परिपूर्ण
काम- - (भक्तोंके) अभीष्टकी
अभिवर्षणात् वर्षा करने वालेसे
एकं वरं वृणे - एक वरदान मांगता हूं
भगवति अच्युतां - भगवान अच्युतमें,
तत् परेषु - उनके परायण (भक्तों) में,
तथा त्वयि - तथा आपमें
भक्तिं - भक्ति हो ॥ ३४ ॥

सूत उवाच-

इत्यर्चितोऽभिष्टुतश्च मुनिना सूक्तया गिरा ।
तमाह भगवाञ्छर्वः शर्वया चाभिनन्दितः ॥ ३५ ॥

इति अर्चितः अभिष्टुतः च मुनिना सूक्तया गिरा तं आह भगवान् शर्वः शर्वया च अभिनन्दितः ॥ ३५ ॥

इति मुनिना	- इस प्रकार मुनि द्वारा	**भगवान् शर्वः**	- भगवान शंकर
सूक्तया गिरा	- वैदिक सूक्तरूप वाणीसे	**तं आह**	- उनसे बोले
अर्चितः च	- सत्कृत एवं	**च शर्वया**	- तथा भवानी ने भी (उसका)
अभिष्टुतः	- स्तवन किये जानेपर	**अनुमोदितः**	- अनुमोदन किया ॥३५॥

कामो महर्षे सर्वोऽयं भक्तिमांस्त्वमधोक्षजे ।
आकल्पान्ताद् यशः पुण्यमजरामरता तथा ॥ ३६ ॥

श्रीरुद्र उवाच-

कामः महर्षे सर्वः अयं भक्तिमान् त्वं अधोक्षजे आकल्पान्तात् यशः पुण्यं अजर अमरता तथा ॥ ३६ ॥

महर्षे	- महर्षि !	**आकल्पान्तात्**	- कल्पपर्यन्त
अयं सर्वः कामः	- (तुम्हारी) यह सब कामनायें (पूर्ण हों)	**पुण्यं यशः**	- (तुम्हारा) पवित्र यश रहे,
त्वं अधोक्षजे	- तुम भगवान् हृषीकेशमें	**तथा अजर**	- तथा जराहीन
भक्तिमान्	- भक्तिमान हो ओ !	**अमरता**	- अमरत्व प्राप्त हो ॥ ३६ ॥

यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन् विज्ञानं च विरक्तिमत् ।
ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात् पुराणाचार्यतास्तु ते ॥ ३७ ॥

ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन् विज्ञानं च विरक्तिमत् ब्रह्मवर्चस्विनः भूयात् पुराण आचार्यता अस्तु ते ॥ ३७ ॥

ब्रह्मन्	-	ब्रह्मन् !	**विज्ञानं**	-	तत्त्वज्ञान,
त्रैकालिकं ज्ञानं	-	तीनों (भूत, भविष्य, वर्तमान) का ज्ञान,	**ब्रह्मवर्चस्विनः**	-	ब्रह्मतेज सम्पन्नता तथा
			ते पुराण-	-	तुमको पुराणोंका
विरक्तिमत्	-	वैराग्ययुक्त	**आचार्यता**		आचार्यत्व
			अस्तु	-	प्राप्त हो ॥ ३७ ॥

सूत उवाच-

एवं वरान् स मुनये दत्त्वागात्त्र्यक्ष ईश्वरः ।
देव्यै तत्कर्म कथयन्ननुभूतं पुरामुना ॥ ३८ ॥

एवं वरान् स मुनये दत्त्वा अगात् त्र्यक्ष ईश्वरः देव्यै तत् कर्म कथयन् अनुभूतं पुरा अमुना ॥ ३८ ॥

मुनये	-	(मार्कण्डेय) मुनिको	**पुरा अमुना**	-	पहिले इन्होंने
एवं वरान्	-	इस प्रकारके वरदान	**अनुभूतं**	-	जो अनुभव किया था
दत्त्वा	-	देकर	**तत् कर्म**	-	वह (प्रलयादि) कर्म
त्र्यक्षईश्वरः	-	त्रिलोचन भगवान शिव	**देव्यै कथयन्**	-	देवी (उमा) से वर्णन करते
			अगात्	-	चले गये ॥ ३८ ॥

सोऽप्यवाप्तमहायोगमहिमा भार्गवोत्तमः ।
विचरत्यधुनाप्यद्धा हरावेकान्ततां गतः ॥ ३९ ॥

सः अपि अवाप्त महायोग महिमा भार्गव उत्तमः विचरति अधुना अपि अद्धा हराः एकान्ततां गतः ॥ ३९ ॥

सः भार्गव-	- वे भार्गवश्रेष्ठ	**अधुना अपि**	- इस समय भी
उत्तमः		**हराः-**	- हरिहरके अनन्य प्रेमी
अपि	- (मार्कण्डेय) भी	**एकान्ततां**	होकर
महायोग महिमा	- महायोगका प्रभाव	**गतः**	
अवाप्त	- प्राप्त करके	**अद्धा विचरति**	- साक्षात् विचरण करते हैं ॥ ३९ ॥

अनुवर्णितमेतत्ते मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
अनुभूतं भगवतो मायावैभवमद्भुतम् ॥ ४० ॥

अनुवर्णितं एतत् ते मार्कण्डेयस्य धीमतः अनुभूतं भगवतः माया वैभवं अद्भुतम् ॥ ४० ॥

एतत्	- यह	**अनुभूतं**	- अनुभव किया गया
धीमतः	- बुद्धिमान	**भगवतः**	- भगवानकी
मार्कण्डेयस्य	- मार्कण्डेयजी द्वारा	**माया अद्भुतं**	- मायाका अद्भुत
		वैभवं	- वैभव
		ते अनुवर्णितं	- आपसे वर्णन किया ॥ ४० ॥

एतत् केचित् अविद्वान् सः माया संसृतिं आत्मनः ।
अनाद्यावर्तितं नृणां कादाचित्कं प्रचक्षते ॥ ४१ ॥

एतत् केचित् अविद्वान् सः माया संसृतिं आत्मनः अनादि वर्तितं नृणां कादाचित्कं प्रचक्षते ॥ ४१ ॥

केचित्-	- कोई अज्ञानी लोग	**कादाचित्कं**	- कभी होने वाली
अविद्वान् सः		**संसृतिं**	- सृष्टिको
आत्मनः	- अपने (मार्कण्डेय) के लिए ही	**नृणां**	- मनुष्योंकी
		अनादि वर्तितं	- अनादिकालसे होने वाली
माया	- मायाकी	**प्रचक्षते**	- (प्रलय) कहते हैं ॥ ४१ ॥

य एवमेतद् भृगुवर्य वर्णितं
रथाङ्गपाणेरनुभावभावितम् ।
संश्रावयेत् संशृणुयादु तावुभौ
तयोर्न कर्माशयसंसृतिर्भवेत् ॥ ४२ ॥

य एवं एतत् भृगुवर्य वर्णितं रथाङ्गपाणेः अनुभाव भावितं संश्रावयेत् संशृणुयात् ताः उभौ तयोः न कर्माशय संसृतिः भवेत् ॥ ४२ ॥

य एतत्	- जो इस	**संश्रावयेत्**	- सुनाता है (और जो)
रथाङ्गपाणेः	- भगवान चक्रपाणिके	**संशृणुयात्**	- श्रवण करता है
अनुभाव	- प्रभावसे	**ताः उभौ**	- यह दोनों (करने वाले)
भावितं	- प्रभावित	**तयोः**	- उन दोनों की
भृगुवर्य	- भृगुश्रेष्ठ (मार्कण्डेय)का	**कर्माशय-**	- कर्म वासनाके कारण
वर्णितं	- वर्णन किया (चरित)	**संसृतिः**	होने वाली जन्म-मरण रूपी गति
		न भवेत्	- नहीं होती ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः

शौनक उवाच-

अथेममर्थं पृच्छामो भवन्तं बहुवित्तमम ।
समस्ततन्त्रराद्धान्ते भवान् भागवततत्त्ववित् ॥ १ ॥

अथ इमं अर्थं पृच्छामः भवन्तं बहुवित् तमं समस्त तन्त्र राद्ध अन्ते भवान् भागवततत्त्ववित् ॥ १ ॥

बहुवित् तमं - बहुज्ञोंमें श्रेष्ठ
भवन्तं - आपसे
अथ इमं अर्थं - अब यह प्रयोजनकी
पृच्छामः - पूछता हूँ

समस्त तन्त्र - जो सब तन्त्र
राद्धअन्ते - सिद्धान्तोंका अन्तिम मत है,
भवान् - आप
भागवत - भागवत (धर्म) के
तत्त्ववित् - तत्त्ववेत्ता हैं ॥ १ ॥

तान्त्रिकाः परिचर्यायां केवलस्य श्रियः पतेः ।
अंगोपाङ्गायुधाकल्पं कल्पयन्ति यथा च यैः ॥ २ ॥

तान्त्रिकाः परिचर्यायां केवलस्य श्रियः पतेः अंग उपाङ्ग आयुधाकल्पं कल्पयन्ति यथा च यैः ॥ २ ॥

तान्त्रिकाः - (पाञ्चरात्रागमकी) विधि जानने वाले
केवलस्य - कैवल्यस्वरूप
श्रियःपतेः - भगवान श्रीपतिकी
परिचर्यायां - पूजा-सेवामें

यथा च यैः - जैसे और जिन तत्त्वोंसे
अंग-उपाङ्ग - (उनके) अंग-उपाङग,
आयुध - अस्त्र-शस्त्र,
आकल्पं - वस्त्राभरण
कल्पयन्ति - कल्पित करते हैं ॥२॥

तन्नो वर्णय भद्रं ते क्रियायोगं बुभुत्सताम् ।
येन क्रियानैपुणेन मर्त्यो यायादमर्त्यताम् ॥ ३ ॥

तत् नः वर्णय भद्रं ते क्रियायोगं बुभुत्सतां येन क्रिया नैपुणेन मर्त्यः यायात् अमर्त्यताम् ॥ ३ ॥

क्रिया योगं	- (हम) क्रियायोग	**येन क्रिया**	- जिस क्रियाकी
बुभुत्सतां	- जाननेकी इच्छावालोंसे	**नैपुणेन**	- निपुणतासे
तत् नः वर्णय	- वह हमसे वर्णन कीजिए,	**मर्त्यः**	- मरणधर्मा मनुष्य
		अमर्त्यतां	- अमरत्वको
ते भद्रं	- आपका कल्याण हो,	**यायात्**	- पहुंच जाता है ॥ ३ ॥

सूत उवाच-

नमस्कृत्य गुरून् वक्ष्ये विभूतीर्वैष्णवीरपि ।
याः प्रोक्ता वेदतन्त्राभ्यामाचार्यैः पद्मजादिभिः ॥ ४ ॥

नमस्कृत्य गुरून् वक्ष्ये विभूतीः वैष्णवीः अपि याः प्रोक्ता वेद तन्त्राभ्यां आचार्यैः पद्मज आदिभिः ॥ ४ ॥

गुरून् नमस्कृत्य	- गुरुओंको नमस्कार करके	**याः आचार्यैः**	- जिसे आचार्य
		पद्मज आदिभिः	- ब्रह्मा आदि द्वारा
वैष्णवीः विभूतीः	- भगवान् विष्णुका वैभव	**वेद तन्त्राभ्यां**	- वेद एवं (पाञ्चरात्र) तन्त्रों द्वारा
अपि वक्ष्ये	- भी कहूंगा,	**प्रोक्ता**	- वर्णन किया गया है ॥ ४ ॥

मायाद्यैर्नवभिस्तत्त्वैः स विकारमयो विराट् ।
निर्मितो दृश्यते यत्र सचित्के भुवनत्रयम् ॥ ५ ॥

मायाँ आद्यैः नवभिः तत्त्वैः स विकारमयः विराट् निर्मितः दृश्यते यत्र सचित्के भुवनत्रयम् ॥ ५ ॥

यत्र सचित्के - जिस चेतन स्वरूपमें
भुवनत्रयं - यह त्रिलोकी रूप
माया आद्यैः - माया आदि
नवभिः - नव (प्रकृति, सूत्रात्मा, महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा)
तत्त्वैः - तत्त्वों द्वारा
स विकारमयः - विकारों (मन, दस इन्द्रिय, पंच महाभूत इन सोलह) से युक्त
निर्मितः - बना हुआ
विराट् दृश्यते - विराट् दीख पड़ता है ॥ ५ ॥

एतद् वै पौरुषं रूपं भूः पादौ द्यौः शिरो नभः ।
नाभिः सूर्योऽक्षिणी नासे वायुः कर्णौदिशः प्रभोः ॥ ६ ॥

एतत् वै पौरुषं रूपं भूः पादौ द्यौः शिरः नभः नाभिः सूर्यः अक्षिणी नासे वायुः कर्णौ दिशः प्रभोः ॥ ६ ॥

प्रभोः - प्रभो !
वै एतत् - निश्चित यह
पौरुषं रूपं - पुरुषका रूप है,
भूः पादौ - (जिसकी) पृथ्वीचरण,
द्यौः शिरः - द्युलोक (स्वर्ग) सिर,
नभः नाभिः - आकाश नाभि,
सूर्यः अक्षिणी - सूर्य नेत्र
वायुः नासे - वायु नासिका और
दिशः कर्णौ - दिशायें कान हैं ॥ ६ ॥

प्रजापतिः प्रजननमपानो मृत्युरीशितुः ।
तद्बाहवो लोकपाला मनश्चन्द्रो भ्रुवौ यमः ॥ ७ ॥

प्रजापतिः प्रजननं अपानः मृत्युः ईशितुः तत् बाहवः लोकपाला मनः चन्द्रः भ्रुवौ यमः ॥ ७ ॥

प्रजापतिः - प्रजापति
प्रजननं - लिंग,
मृत्युः अपानः - मृत्यु गुदा,
तत् ईशितुः - उन सर्वेश्वरकी
लोकपाला - लोकपाल
बाहवः - भुजायें
चन्द्रः मनः - चन्द्रमामन,
यमः भ्रुवौ - यमराज भौंह हैं ॥ ७ ॥

लज्जोत्तरोऽधरो लोभो दन्ता ज्योत्स्ना स्मयो भ्रमः ।
रोमाणि भूरुहा भूम्नो मेघाः पुरुषमूर्धजाः ॥ ८ ॥

लज्जा उत्तरः अधरः लोभः दन्ता ज्योत्स्ना स्मयः भ्रमः रोमाणि भूरुहा भूम्नः मेघाः पुरुष मूर्धजाः ॥ ८ ॥

भूम्नः पुरुष - उन सर्व व्यापक पुरुषका
लज्जा उत्तरः - लज्जा ऊपरका ओष्ठ,
लोभः अधरः - लोभ नीचेका ओष्ठ
ज्योत्स्ना दन्ता - चन्द्रिका दांत,
भ्रमः स्मयः - भ्रान्ति मुस्कान,
भूरुहा रोमाणि - वृक्ष रोम एवं
मेघाः मूर्धजाः - मेघ केश हैं ॥ ८ ॥

यावानयं वै पुरुषो यावत्या संस्थया मितः ।
तावानसावपि महापुरुषो लोकसंस्थया ॥ ९ ॥

यावान् अयं वै पुरुषः यावत्या संस्थया मितः तावान् असाः अपि महापुरुषः लोकसंस्थया ॥ ९ ॥

वै अयं पुरुषः - निश्चय यह व्यक्ति पुरुष
यावत्या संस्थया - जितने परिमाणसे
मितः - मापा गया (सात बित्तेका)
यावान् - जितना बड़ा है,
असाः - यह
महापुरुषः अपि - विराट् पुरुष भी
लोक संस्थया - सब लोकोंके सहित
तावान् - (अपने सात बित्तेका) उतना ही बड़ा है ॥९॥

कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः ।
तत्प्रभा व्यापिनी साक्षात् श्रीवत्समुरसा विभुः ॥ १० ॥

कौस्तुभ व्यपदेशेन स्व आत्म ज्योतिः बिभर्ति अजः तत् प्रभा व्यापिनी साक्षात् श्रीवत्सं उरसा विभुः ॥ १० ॥

अजः विभुः - वे अजन्मा सर्वव्यापक
कौस्तुभ व्यपदेशेन - कौस्तुभमणिके बहाने
स्व आत्मज्योतिः - (जीव चैतन्य रूप) अपनी आत्मज्योतिको
बिभर्ति - धारण करते हैं
तत् व्यापिनी प्रभा - उसकी सर्वव्यापक प्रभा
उरसा साक्षात् - उनके वक्षस्थल पर प्रत्यक्ष
श्रीवत्स - श्रीवत्स चिन्ह है ॥१०॥

स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत् ।
वासश्छन्दोमयं पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत् स्वरम् ॥ ११ ॥

स्वमायां वनमाला आख्यां नाना गुणमयीं दधत् वासः छन्दः मयं पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत् स्वरम् ॥ ११ ॥

नानागुणमयीं - अनेक गुणरूपा
स्वमायां - अपनी मायाको
वनमाला आख्यां - वनमाला नामसे,
छन्दःमयं - वेदमय
पीतंवासः - पीताम्बर,
त्रिवृत्स्वरं - तीन मात्रावाले स्वर (ओंकार) को
ब्रह्मसूत्रं - यज्ञोपवीत रूपमें
दधृत् - धारण करते हैं ॥११॥

बिभर्ति सांख्यं योगं च देवो मकरकुण्डले ।
मौलिं पदं पारमेष्ठयं सर्वलोकाभयंकरम् ॥ १२ ॥

बिभर्ति सांख्यं योगं च देवः मकर कुण्डले मौलिं पदं पारमेष्ठयं सर्वलोक अभयंकरम् ॥ १२ ॥

देवः - देवाधिदेव
सांख्यं च योगं - सांख्य तथा योगको
मकर कुण्डले - मकराकृति कुण्डलके रूपमें
सर्व लोक - एवं सब लोकोंको
अभयंकरं - अभय करने वाले
पारमेष्ठयं पदं - ब्रह्मलोकको
मौलिं बिभर्ति - मुकुटके रूपमें धारण करते हैं ॥ १२ ॥

अव्याकृतमनन्ताख्यमासनं यदधिष्ठितः ।
धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्ममिहोच्यते ॥ १३ ॥

अव्याकृतं अनन्त आख्यं आसनं यत् अधिष्ठितः धर्मज्ञान आदिभिः युक्तं सत्त्वं पद्मं इह उच्यते ॥ १३ ॥

अनन्त आख्यं	- अनन्त (शेष) नामक	**धर्मज्ञान**	- धर्म, ज्ञान
यत् आसनं	- जिस आसन (शय्या) पर	**आदिभिः युक्तं**	- आदिसे युक्त
अधिष्ठितः	- विराजमान हैं (वह)	**सत्त्वं**	- सत्वगुण
अव्याकृतं	- मूल प्रकृति है,	**इहपद्मं**	- यहां पद्म
		उच्यते	- कहा जाता है ॥१३॥

ओजः सहोबलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत् ।
अपां तत्त्वं दरवरं तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् ॥ १४ ॥

ओजः सहः बलयुतं मुख्य तत्त्वं गदां दधत् अपां तत्त्वं दरवरं तेजः तत्त्वं सुदर्शनम् ॥ १४ ॥

ओजः	- मनोबल	**अपां तत्त्वं**	- जलतत्त्वको
सहः	- इन्द्रियबल	**दरवरं**	- श्रेष्ठ (पांच जन्य) शंखके रूपमें
बल युतं	- देहबलसे युक्त		
मुख्यतत्त्वं	- प्रमुख तत्त्व (प्राणशक्ति) को	**तेजः तत्त्वं**	- अग्नितत्त्वको
		सुदर्शनं	- सुदर्शन चक्रके रूपमें
गदां	- गदाके रूपमें,	**दधत्**	- धारण करते हैं ॥१४॥

नभोनिभं नभस्तत्त्वमसिं चर्म तमोमयम् ।
कालरूपं धनुः शार्गं तथा कर्ममयेषुधिम् ॥ १५ ॥

नभः निभं नभः तत्त्वं असिं चर्म तमः मयं कालरूपं धनुः शार्गं तथा कर्ममय इषुधिं ॥ १५ ॥

नभः तत्त्वं	- आकाश तत्त्वको	**कालरूपं**	- कालस्वरूप
नभः मयं	- तमोगुण रूप	**शार्गं धनुः**	- शारंग धनुष
असिं चर्म	- तलवार-ढाल,	**तथा कर्ममयं**	- कर्म स्वरूप
		इषुधिं	- तरकश (धारण किये हैं)

॥ १५ ॥

इन्द्रियाणि शरानाहुराकूतीरस्य स्यन्दनम् ।
तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्ति मुद्रयार्थक्रियात्मताम् ॥ १६ ॥

इन्द्रियाणि शरान् आहुः आकूतिः अस्य स्यन्दनं तन्मात्राणि अस्य अभिव्यक्तिं मुद्रया अर्थ क्रिया आत्मताम् ॥ १६ ॥

इन्द्रियाणि	- इन्द्रियोंको	**तन्मात्राणि**	- (शब्द, स्पर्शादि) तन्मात्रायें
अस्य शरान्	- इन (विराट्) के बाण	**अस्य-**	- इस (रथ) के प्रकट
आहुः	- कहा गया है,	**अभिव्यक्तिं**	(बाहरी) भाग हैं,
आकूतिः	- क्रियाशील मन	**मुद्रया**	- (वर, अभय आदि) मुद्रायें
अस्य स्यन्दनं	- इनका रथ है,	**क्रिया अर्थतां**	- क्रियाशीलता हैं ॥१६॥

मण्डलं देवयजनं दीक्षा संस्कार आत्मनः ।
परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षयः ॥ १७ ॥

मण्डलं देवयजनं दीक्षा संस्कार आत्मनः परिचर्या भगवत आत्मनः दुरितक्षयः ॥ १७ ॥

देव मण्डलं	- सूर्य एवं अग्नि देवका मंडल	**आत्मनः**	- अपने
यजनं	- पूजाका स्थान,	**दुरित क्षयः**	- पापोंको नष्ट कर देना
आत्मनः संस्कार-	- अन्तःकरणकी शुद्धि	**भगवत**	- भगवानकी
दीक्षा	- मन्त्रदीक्षा तथा	**परिचर्या**	- सेवा है ॥ १७ ॥

भगवान् भगशब्दार्थं लीलाकमलमुद्वहन् ।
धर्मं यशश्च भगवांश्चामरव्यजनेऽभजत् ॥ १८ ॥

भगवान् भगशब्द अर्थं लीला कमलं उद्वहन् धर्मं यशः च भगवान् चामर व्यजने अभजत् ॥ १८ ॥

भगवान्	-	भगवान	**भगवान्**	-	एवं भगवान होनेसे
भग शब्द अर्थ	-	भग शब्दका अर्थ (सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य)	**धर्मं च यशः**	-	धर्म और यशको
			चामर व्यजने	-	चामर और व्यजनके रूपमें
लीला कमलं	-	लीला कमलके रूपमें	**अभजत्**	-	सेवन करते हैं ॥ १८ ॥
उद्वहन्	-	धारण करते हैं ।			

आतपत्रं तु वैकुण्ठं द्विजा धामाकुतोभयम् ।
त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरुषम् ॥ १९ ॥

आतपत्रं तु वैकुण्ठं द्विजा धाम अकुतोभयं त्रिवृत् वेदः सुपर्ण आख्यः यज्ञं वहति पूरुषम् ॥ १९ ॥

द्विजा	-	विप्रवरो !	**त्रिवृत् वेदः**	-	वेदत्रयी का
अकुतो भयं	-	सर्वथा निर्भय	**सुपर्ण आख्यः**	-	गरुड़ नाम है
वैकुण्ठं धामतु	-	वैकुण्ठ धाम ही	**यज्ञं पूरुषं**	-	जो यज्ञपुरुषको
आतपत्रं	-	छत्र है,	**वहति**	-	वहन करते हैं ॥१९॥

अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनो हरेः ।
विष्वक्सेनस्तन्त्रमूर्तिर्विदितः पार्षदाधिपः ।
नन्दादयोऽष्टौ द्वाःस्थाश्च तेऽणिमाद्या हरेर्गुणाः ॥ २० ॥

अनपायनी भगवती श्रीः साक्षात् आत्मनः हरेः विष्वक्सेनः तन्त्र मूर्तिः विदितः पार्षद अधिपः नन्द आदयः अष्टौ दाःस्थाः च ते अणिमा आद्या हरेः गुणाः ॥ २० ॥

अनपायनी - कभी वियुक्त न होने वाली
भगवती श्रीः - भगवती लक्ष्मी
हरेः साक्षात् - श्रीहरिकी साक्षात्
आत्मनः - आत्मा हैं,
तन्त्रमूर्तिः - तन्त्र स्वरूप
विष्वक्सेनः - विष्वक् सेन
पार्षद अधिपः - पार्षदोंके प्रधान
विदितः - प्रसिद्ध हैं
नन्द आदयः - नन्द आदि
अष्टौद्वाःस्थाः च -जो आठ द्वारपाल हैं
ते अणिमा-आद्या - वे अणिमा आदि
हरेः गुणाः - श्रीहरिके (आठ) गुण हैं ॥ २० ॥

वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् ।
अनिरुद्ध इति ब्रह्मन् मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते ॥ २१ ॥

वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयं अनिरुद्ध इति ब्रह्मन् मूर्ति व्यूहः अभिधीयते ॥ २१ ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन् !
स्वयं पुरुषः - स्वयं परम पुरुष
वासुदेवः - वासुदेव,
संकर्षणः - संकर्षण,
प्रद्युम्नः - प्रद्युम्न,
अनिरुद्ध - अनिरुद्ध
इति मूर्ति व्यूहः - इस प्रकार चतुर्व्यूह रूप
अभिधीयते - कहे जाते हैं ॥ २१ ॥

स विश्वस्तैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः ।
अर्थेन्द्रियाशयज्ञानैर्भगवान् परिभाव्यते ॥ २२ ॥

स विश्वः तैजसः प्राज्ञः तुरीय इति वृत्तिभिः अर्थ इन्द्रिय आशय ज्ञानैः भगवान् परिभाव्यते ॥ २२ ॥

स भगवान् - वे भगवान्
विश्वः - (जाग्रत अवस्थाके अभिमानी) विश्व
तैजसः - (स्वप्नावस्थाभिमानी) तैजस
प्राज्ञः - (सुषुप्ति अभिमानी) प्राज्ञ
तुरीय - (तीनोंमें व्याप्त) तुरीय
इति वृत्तिभिः - इस प्रकार वृत्तियोंके द्वारा
अर्थ इन्द्रिय - विषय, इन्द्रिय तथा
ज्ञानैः - उनके ज्ञानसे
परिभाव्यते - सब स्थितियोंमें रहते हैं ॥ २२ ॥

अंगोपाङ्गायुधाकल्पैर्भगवांस्तच्चतुष्टयम् ।
बिभर्ति स्म चतुर्मूर्तिर्भगवान् हरिरीश्वरः ॥ २३ ॥

अंग उपांङ्ग आयुध आकल्पैः भगवान् तत् चतुष्टयं बिभर्ति स्म चतुः मूर्तिः भगवान् हरिः ईश्वरः ॥ २३ ॥

ईश्वरः - सर्व-समर्थ
भगवान् हरिः - भगवान् श्रीहरि
अंग-उपांङ्ग - अंग-उपांग,
आयुध - आयुध
आकल्पैः - आभूषणों सहित
तत् चतुष्टयं - वह चतुर्व्यूह
चतुः मूर्तिः - चारों स्वरूप
भगवान् - भगवान ही
बिभर्ति स्म - धारण करते हैं ॥२३॥

द्विजऋषभ स एष ब्रह्मयोनिः स्वयंदृक्
स्वमहिमपरिपूर्णो मायया च स्वयैतत् ।
सृजति हरति पातीत्याख्ययानावृताक्षो
विवृत इव निरुक्तस्तत्परैरात्मलभ्यः ॥ २४ ॥

द्विज ऋषभ स एष ब्रह्म योनिः स्वयं दृक् स्व महिम परिपूर्णः मायया च स्वया एतत् सृजति हरति पाति इति आख्यया अनावृत अक्षः विवृत इव निरुक्तः तत् परैः आत्मलभ्यः ॥ २४ ॥

द्विज ऋषभ - विप्रवर !
एष ब्रह्मयोनिः - ये भगवान वेदोंके मूल कारण,
स्वयं दृक् - स्वयं प्रकाश,
स्वमहिम - अपनी महिमासे ही
परिपूर्णः - परिपूर्ण,
च स्वया मायया - तथा अपनी माया द्वारा
एतत् - इस विश्वकी
सृजति - सृष्टि,
पाति, हरति - रक्षा तथा हरण (प्रलय) करते
इति आख्यया - इन नामों (तथा कर्मों) से
अनावृत अक्षः - उनकी दृष्टि (ज्ञान) ढकता नहीं,
विवृत इव - (यद्यपि) भिन्नके समान
निरुक्तः - (शास्त्रों) में वर्णित हैं
तत् परैः - (किन्तु) जो उनके परायण हैं
आत्मलभ्यः - (उन्हें) आत्मारूपसे प्राप्त होनेवाले हैं ॥ २४ ॥

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रु-
ग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविन्द गोपवनिताव्रजभृत्यगीत-
तीर्थश्रवः श्रवणमंगल पाहि भृत्यान् ॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्णि ऋषभ अवनि ध्रुक् राजन्यवंश दहनात् अपवर्ग वीर्य गोविन्द गोपवनिता व्रजभृत्यगीत तीर्थश्रवः श्रवण मंगल पाहि भृत्यान् ॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण - श्रीकृष्ण,
कृष्णसख - अर्जुनके सखा,
वृष्णिऋषभ - यादव श्रेष्ठ,
अवनि ध्रुक् - पृथ्वीके द्रोही
राजन्य वंश - राजकुलोंको
गोपवनिता - गोप-स्त्रियों,
व्रज भृत्य - व्रजवासियों तथा (नारदादि) सेवकों (भक्तों) द्वारा
गीत - (सुयश) गाये जाने वाले,
तीर्थश्रवः - पुण्यकीर्ति,

दहनात् - भस्म करने वाले,
अपवर्ग वीर्य - मोक्षदायक पराक्रम (शक्ति) वाले,
गोविन्द - गोविन्द,
श्रवण मंगल - (जिनकी नाम, लीला) सुननेसे ही मंगल होता है,
भृत्यान् - (हम) सेवकोंकी
पाहि - रक्षा कीजिए ॥ २५ ॥

य इदं कल्य उत्थाय महापुरुषलक्षणम् ।
तच्चितः प्रयतो जप्त्वा ब्रह्म वेद गुहाशयम् ॥ २६ ॥

यः इदं कल्य उत्थाय महापुरुष लक्षणं तत् चित्तः प्रयतः जप्त्वा ब्रह्मवेद गुहाशयम् ॥ २६ ॥

य इदं - जो इस
महापुरुष लक्षणं - पुरुषोत्तमके लक्षणोंका
तत् चित्तः - उनमें चित्त लगाकर
प्रयतः - एकाग्र होकर
कल्य उत्थाय - प्रातःकाल उठकर
जप्त्वा - जप (पाठ) करेगा (वह)
गुहाशयं - हृदयमें रहने वाले
ब्रह्मवेद - ब्रह्मको जान लेगा ॥ २६ ॥

शौनक उवाच-

शुको यदाह भगवान् विष्णुराताय शृण्वते ।
सौरो गणो मासि मासि नाना वसति सप्तकः ॥ २७ ॥

शुकः यत् आह भगवान् विष्णुराताय शृण्वते सौरो गणो मासि मासि नाना वसति सप्तकः ॥ २७ ॥

शृण्वते - सुनने वाले
विष्णु राताय - परीक्षितसे
भगवान् शुकः - भगवान शुकदेवजीने
यत् मासि मासि - जो प्रत्येक महीनेमें
वसति सप्तकः - रहने वाले सात-सातके
सौरो - सूर्यके
नाना गणो - अनेक गणोंका
आह - वर्णन किया ॥ २७ ॥

तेषां नामानि कर्माणि संयुक्तानामधीश्वरैः ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां व्यूहं सूर्यात्मनो हरेः ॥ २८ ॥

तेषां नामानि कर्माणि संयुक्तानां अधीश्वरैः ब्रूहि नः श्रद्दधानानां व्यूहं सूर्यः आत्मनः हरेः ॥ २८ ॥

अधीश्वरैः - अधीश्वरोंके
संयुक्तानां - साथ रहने वाले
तेषां नामानि - उनके नाम एवं
कर्माणि - कर्म
नः श्रद्दधानानां - हम श्रद्धा करने वालोंको
ब्रूहि - बतलाइये (क्योंकि)
सूर्यः व्यूहं - सूर्यका व्यूह
हरेः आत्मनः - श्रीहरिका स्वरूप है
॥ २८ ॥

सूत उवाच-

अनाद्यविद्यया विष्णोरात्मनः सर्वदेहिनाम् ।
निर्मितो लोकतन्त्रोऽयं लोकेषु परिवर्तते ॥ २९ ॥

अनादि अविद्यया विष्णोः आत्मनः सर्व देहिनां निर्मितः लोकतन्त्रः अयं लोकेषु परिवर्तते ॥ २९ ॥

सर्व देहिनां - समस्त प्राणियोंके
आत्मनः विष्णोः - आत्मा भगवान विष्णुके
अनादि- - अनादि अविद्या
अविद्यया (अज्ञान) से
निर्मितः - बना हुआ
अयं लोकतन्त्रः - लोक व्यवहार (प्रवर्तक) यह (सूर्य मण्डल)
लोकेषु - लोकोंमें
परिवर्तते - घूमता रहता है ॥२९॥

एक एव हि लोकानां सूर्य आत्माऽऽदिकृद्धरिः ।
सर्ववेदक्रियामूलमृषिभिर्बहुधोदितः ॥ ३० ॥

एक एव हि लोकानां सूर्य आत्मा आदि कृत् हरिः सर्ववेद क्रियामूलं ऋषिभिः बहुधा उदितः ॥ ३० ॥

हि लोकानां - क्योंकि लोकोंके
आत्मा आदिकृत् - शरीरादि निर्माता
सर्ववेद - सब वैदिक
क्रियामूलं - क्रियाओंके मूल
सूर्य हरिः - सूर्य नारायण
एक एव - एक ही हैं, पर
ऋषिभिः - ऋषियों द्वारा
बहुधा - अनेक रूपोंमें (उनका)
उदितः - वर्णन किया गया है
॥ ३० ॥

कालो देशः क्रिया कर्ता करणं कार्यमागमः ।
द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन् नवधोक्तोऽजया हरिः ॥ ३१ ॥

कालः देशः क्रिया कर्ता करणं कार्यं आगमः द्रव्यं फलं इति ब्रह्मन् नवधा उक्तः अजया हरिः ॥ ३१ ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन् !
कालः देशः - समय, स्थान,
क्रिया कर्ता - क्रिया, उसे करने वाला,
करणं कार्यं - क्रियाके साधन (स्रुवादि), कर्म यज्ञादि
आगमः - विधि-मन्त्र,
द्रव्यं फलं - पदार्थ और (उसका) फल
इति नवधा - इस प्रकार नौ रूपोंमें
अजया - मायाके कारण ही
हरिः उक्तः - श्रीहरि वर्णित होते हैं
॥ ३१ ॥

मध्वादिषु द्वादशसु भगवान् कालरूपधृक् ।
लोकतन्त्राय चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥ ३२ ॥

मधु आदिषु द्वादशसु भगवान् कालरूप धृक् लोकतन्त्राय चरति पृथक् द्वादशभिः गणैः ॥ ३२ ॥

कालरूप धृक् - कालरूप धारी
भगवान् - भगवान (सूर्य)
मधु आदिषु - चैत्र आदि
द्वादशसु - बारह महीनोंमें
लोकतन्त्राय - लोक व्यवहार चलानेके लिए
पृथक् - भिन्न-भिन्न
द्वादशभिः गणैः - अपने बारह गणोंके साथ
चरति - विचरण करते हैं
॥३२॥

धाता कृतस्थली हेतिर्वासुकी रथकृन्मुने ।
पुलस्त्यस्तुम्बुरुरिति मधुमासं नयन्त्यमी ॥ ३३ ॥

धाता कृतस्थली हेतिः वासुकी रथकृत् मुने पुलस्त्यः तुम्बुरुः इति मधुमासं नयन्ति अमी ॥ ३३ ॥

मुने	-	मुनि शौनक जी	**पुलस्त्यः**	-	पुलस्त्य (ऋषि)
धाता	-	धाता (नामक सूर्य)	**तुम्बुरुः**	-	तुम्बुरु (गन्धर्व)
कृतस्थली	-	कृतस्थली (अप्सरा)	**इति**	-	इस प्रकार
हेतिः	-	हेति (राक्षस)	**अमी मधुमासं**	-	ये चैत्रमॉस (का कार्य)
वासुकी	-	वासुकी (नाग)	**नयन्ति**	-	बिताते हैं ॥ ३३ ॥
रथकृत्	-	रथकृत (यक्ष)			

अर्यमा पुलहोऽथौजाः प्रहेतिः पुञ्जिकस्थली ।
नारदः कच्छनीरश्च नयन्त्येते स्म माधवम् ॥ ३४ ॥

अर्यमा पुलहः अथौजाः प्रहेतिः पुञ्जिकस्थली नारदः कच्छनीरः च नयन्ति एते स्म माधवम् ॥ ३४ ॥

अर्यमा	-	अर्यमा (सूर्य)	**नारदः**	-	नारद (गन्धर्व)
पुलहः	-	पुलह (ऋषि)	**च कच्छनीरः**	-	तथा कच्छनीर (नाग)
अथौजाः	-	अथौजा (यक्ष)	**एते स्म**	-	इतने ये
प्रहेतिः	-	प्रहेति (राक्षस)	**माधवं**	-	वैशाख मास
पुञ्जिकस्थली	-	पुञ्जिक स्थली (अप्सरा)	**नयन्ति**	-	व्यतीत करते हैं ॥३४॥

मित्रोऽत्रिः पौरुषेयोऽथ तक्षको मेनका हहाः ।
रथस्वन इति ह्येते शुक्रमासं नयन्त्यमी ॥ ३५ ॥

मित्रः अत्रिः पौरुषेयः अथ तक्षकः मेनका हहाः रथस्वन इति हि एते शुक्रमासं नयन्ति अमी ॥ ३५ ॥

मित्रः - मित्र (सूर्य)
अत्रिः - अत्रि (ऋषि)
पौरुषेयः - पौरुषेय (राक्षस)
अथ तक्षकः - और तक्षक (नाग)
मेनका - मेनका (अप्सरा)
हहाः - हहा (गन्धर्व)
रथस्वन - रथस्वन (यक्ष)
इति हि एते - इस प्रकार ही ये
अमी शुक्रमासं - सब ज्येष्ठ मास
नयन्ति - व्यतीत करते हैं
॥ ३५ ॥

वसिष्ठो वरुणो रम्भा सह जन्यस्तथा हुहूः ।
शुक्रश्चित्रस्वनश्चैव शुचिमासं नयन्त्यमी ॥ ३६ ॥

वसिष्ठः वरुणः रम्भा सहजन्यः तथा हुहूः शुक्रः चित्रस्वनः च एव शुचिमासं नयन्ति अमी ॥ ३६ ॥

वरुणः - वरुण (सूर्य)
वसिष्ठः - वसिष्ठ (ऋषि)
रम्भा - रम्भा (अप्सरा)
सहजन्यः - सहजन्य (यक्ष)
तथा हुहूः - तथा हुहू (गन्धर्व)
शुक्रः च - शुक्र (नाग) और
चित्रस्वनः एव - चित्रस्वन (राक्षस) भी
शुचिमासं - आषाढ़ महीना
अमी नयन्ति - ये बिताते हैं ॥ ३६ ॥

इन्द्रो विश्वावसुः श्रोता एलापत्रस्तथाङ्गिराः ।
प्रम्लोचा राक्षसो वर्यो नभोमासं नयन्त्यमी ॥ ३७ ॥

इन्द्रः विश्वावसुः श्रोता एलापत्रः तथा अंगिराः प्रम्लोचा राक्षसः वर्यः नभः मासं नयन्ति अमी ॥ ३७ ॥

इन्द्रः - इन्द्र (सूर्य)
विश्वावसुः - विश्वावसु (गन्धर्व)
श्रोता - श्रोता (यक्ष)
एलापत्रः - एलापत्र (नाग)
तथा अंगिराः - तथा अंगिरा (ऋषि)
प्रम्लोचा - प्रम्लोचा (अप्सरा)
वर्यः राक्षसः - वर्य राक्षस
अमी नभः मासं - ये श्रावण मास
नयन्ति - व्यतीत करते हैं
॥ ३७ ॥

विवस्वानुग्रसेनश्च व्याघ्र आसारणो भृगुः ।
अनुम्लोचा शंखपालो नभस्याख्यं नयन्त्यमी ॥ ३८ ॥

विवस्वान् उग्रसेनः च व्याघ्र आसारणः भृगुः अनुम्लोचा शंखपालः नभस्य आख्यं नयन्ति अमी ॥ ३८ ॥

विवस्वान्	- विवस्वान् (सूर्य)	**अनुम्लोचा**	- अनुम्लोच (अप्सरा)
उग्रसेनः	- उग्रसेन (गन्धर्व)	**शंखपालः**	- शंखपाल नाग
च व्याघ्र	- तथा व्याघ्र (राक्षस)	**नभस्य आख्यं**	- भाद्र नामक मास
आसारणः	- आसारण (यक्ष)	**अमी नयन्ति**	- ये व्यतीत करते हैं ॥ ३८ ॥
भृगुः	- भृगु (ऋषि)		

पूषा धनञ्जयो वातः सुषेणः सुरुचिस्तथा ।
घृताची गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥ ३९ ॥

पूषा धनञ्जयः वातः सुषेणः सुरुचिः तथा घृताची गौतमः च इति तपः मासं नयन्ति अमी ॥ ३९ ॥

पूषा	- पूषा (सूर्य)	**तथा घृताची**	- एवं घृताची (अप्सरा)
धनञ्जयः	- धनंजय (नाग)	**च गौतमः**	- तथा गौतम (ऋषि)
वातः	- वात (राक्षस)	**इति अमी**	- इस प्रकार ये
सुषेणः	- सुषेण (गन्धर्व)	**तपः मासं**	- माघमास
सुरुचिः	- सुरुचि (यक्ष)	**नयन्ति**	- बिताते हैं ॥ ३९ ॥

क्रतुर्वर्चा भरद्वाजः पर्जन्यः सेनजित्तथा ।
विश्व ऐरावतश्चैव तपस्याख्यं नयन्त्यमी ॥ ४० ॥

क्रतुः वर्चा भरद्वाजः पर्जन्यः सेनजित् तथा विश्व ऐरावतः च एव तपस्य आख्यं नयन्ति अमी ॥ ४० ॥

पर्जन्यः - पर्जन्य (सूर्य)
क्रतुः - क्रतु (यक्ष)
वर्चा - वर्चा (राक्षस)
भरद्वाजः - भरद्वाज (ऋषि)
तथा सेनजित् - और सेनजित् (अप्सरा)
विश्व - विश्व (गन्धर्व)
च ऐरावतः एव -तथा ऐरावत (नाग) भी
अमी- - ये फाल्गुन नामक मास
तपस्य आख्यं
नयन्ति - व्यतीत करते हैं ।।४०।।

अथांशुः कश्यपस्तार्क्ष्य ऋतसेनस्तथोर्वशी ।
विद्युच्छत्रुर्महाशंखः सहोमासं नयन्त्यमी ।। ४१ ।।

अथ अंशुः कश्यपः तार्क्ष्य ऋतसेनः तथा उर्वशी विद्युत्शत्रुः महाशंखः सहः मासं नयन्ति अमी ।। ४१ ।।

अथ सहः मासं - फिर मार्गशीर्ष मासको
अंशुः - अंशु (सूर्य)
कश्यपः - कश्यप (ऋषि)
तार्क्ष्य - तार्क्ष्य (यक्ष)
ऋत सेनः - ऋतसेन (गन्धर्व)
तथा उर्वशी - तथा उर्वशी (अप्सरा)
विद्युत्शत्रुः - विद्युतशत्रु (राक्षस)
महाशंखः - महाशंख (नाग)
अमी नयन्ति - ये बिताते हैं ।। ४१ ।।

भगः स्फूर्जोऽरिष्टनेमिरूर्ण आयुश्च पञ्चमः ।
कर्कोटकः पूर्वचित्तिः पुष्यमासं नयन्त्यमी ।। ४२ ।।

भगः स्फूर्जः अरिष्टनेमिः ऊर्ण आयुः च पञ्चमः कर्कोटकः पूर्वचित्तिः पुष्यमासं नयन्ति अमी ।। ४२ ।।

भगः - भग (सूर्य)
स्फूर्जः - स्फूर्ज (राक्षस)
अरिष्टनेमिः - अरिष्टनेमि (गन्धर्व)
ऊर्ण - ऊर्ण (यक्ष)
च पञ्चमः - तथा पांचवें
आयुः - आयु (ऋषि)
कर्कोटकः - कर्कोटक (नाग)
पूर्वचित्तिः - पूर्वचित्ति (अप्सरा)
अमी पुष्यमासं - ये पौषमास
नयन्ति - बिताते हैं ।। ४२ ।।

त्वष्टा ऋचीकतनयः कम्बलश्च तिलोत्तमा ।
ब्रह्मापेतोऽथ शतजिद् धृतराष्ट्र इषम्भराः ॥ ४३ ॥

त्वष्टा ऋचीकतनयः कम्बलः च तिलोत्तमा ब्रह्मापेतो अथ शतजित् धृतराष्ट्र इषम्भराः ॥ ४३ ॥

त्वष्टा	- त्वष्टा (सूर्य)	**अथ ब्रह्मापेतो**	- एवं ब्रह्मापेत (राक्षस)
ऋचीकतनयः	- ऋचीक-नन्दनजमदग्नि (ऋषि)	**शतजित्**	- शतजित् (यक्ष)
		धृतराष्ट्र	- धृतराष्ट्र (गन्धर्व)
कम्बलः	- कम्बल (नाग)	**इषंभराः**	- आश्विनके कार्यकाल वाले हैं ॥ ४३ ॥
च तिलोत्तमा	- तथा तिलोत्तमा (अप्सरा)		

विष्णुरश्वतरो रम्भा सूर्यवर्चाश्च सत्यजित् ।
विश्वामित्रो मखापेत ऊर्जमासं नयन्त्यमी ॥ ४४ ॥

विष्णुः अश्वतरः रम्भा सूर्यवर्चाः च सत्यजित् विश्वामित्रः मखापेत ऊर्ज मासं नयन्ति अमी ॥ ४४ ॥

विष्णुः	- विष्णु (सूर्य)	**विश्वामित्रः**	- विश्वामित्र (ऋषि)
अश्वतरः	- अश्वतर (नाग)	**मखापेत**	- मखापेत (राक्षस)
रम्भा	- रम्भा (अप्सरा)	**अमी ऊर्जमासं**	- ये कार्तिकमास
सूर्यवर्चाः	- सूर्यवर्चा (गन्धर्व)	**नयन्ति**	- व्यतीत करते हैं ॥ ४४ ॥
च सत्यजित्	- तथा सत्यजित् (यक्ष)		

एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः ।
स्मरतां सन्ध्ययोर्नृणां हरन्त्यंहो दिने दिने ॥ ४५ ॥

एता भगवतः विष्णोः आदित्यस्य विभूतयः स्मरतां सन्ध्ययोः नृणां हरन्ति अंहः दिने दिने ॥ ४५ ॥

भगवतः विष्णोः - भगवान विष्णु रूपी
आदित्यस्य - सूर्यकी
एता विभूतयः - ये विभूतियां
दिने दिने - प्रत्येक दिन
सन्ध्ययोः - दोनों सन्ध्याओंके समय
स्मरतां नृणां - स्मरण करने वाले मनुष्योंका
अंहः हरन्ति - पाप हरण करती हैं ॥ ४५ ॥

द्वादशस्वपि मासेषु देवोऽसौ षड्भिरस्य वै ।
चरन् समन्तात्तनुते परत्रेह च सन्मतिम् ॥ ४६ ॥

द्वादशः सु अपि मासेषु देवः असौ षट्भिः अस्य वै चरन् समन्तात् तनुते परत्र इह च सन् मतिम् ॥ ४६ ॥

असौ देवः - ये देव सूर्यनारायण
वै अस्य - निश्चय इन
षट्भिः - छः (गणों) के साथ
द्वादशः सु - बारहों
मासेषु अपि - महीनोंमें ही
समन्तात् चरन् - चारों ओर घूमते हुए
परत्र च इह - परलोक तथा इसलोकमें
सन्मतिं - सद्बुद्धिका
तनुते - विस्तार करते हैं ॥४६॥

सामर्ग्यजुर्भिस्तल्लिङ्गैर्ऋषयः संस्तुवन्त्यमुम् ।
गन्धर्वास्तं प्रगायन्ति नृत्यन्त्यप्सरसोऽग्रतः ॥ ४७ ॥

सामऋक् यजुर्भिः तत् लिङ्गैः ऋषयः संस्तुवन्ति अमुं गन्धर्वाः तं प्रगायन्ति नृत्यन्ति अप्सरसः अग्रतः ॥ ४७ ॥

सामऋक् - सामवेद, ऋग्वेद,
यजुर्भिः - यजुर्वेदके
तत् लिङ्गैः - उन सूर्य-सम्बन्धी (मन्त्रों) से
ऋषयः अमुं - ऋषि लोग इनकी
संस्तुवन्ति - स्तुति करते हैं,
गन्धर्वाः - गन्धर्व लोग
तं प्रगायन्ति - उनका (यश) गाते हैं,
अप्सरसः - अप्सरायें
अग्रतः नृत्यन्ति -(उनके) आगे नाचती हैं ॥ ४७ ॥

उन्नह्यन्ति रथं नागा ग्रामण्यो रथयोजकाः ।
चोदयन्ति रथं पृष्ठे नैर्ऋता बलशालिनः ॥ ४८ ॥

उन्नह्यन्ति रथं नागा ग्रामण्यः रथयोजकाः चोदयन्ति रथं पृष्ठे नैऋता बलशालिनः ॥ ४८ ॥

नागा रथं	- नाग रथको	**बलशालिनः**	- बलवान
उन्नह्यन्ति	- कसे रहते हैं,	**नैऋता**	- राक्षस
ग्रामण्यः	- यक्ष	**पृष्ठे रथं**	- पीछेसे रथको
रथ योजकाः	- रथको सजाते हैं,	**चोदयन्ति**	- ढकेलते रहते हैं ॥४८॥

बालखिल्याः सहस्त्राणि षष्टिर्ब्रह्मर्षयोऽमलाः ।
पुरतोऽभिमुखं यान्ति स्तुवन्ति स्तुतिभिर्विभुम् ॥ ४९ ॥

बालखिल्याः सहस्त्राणि षष्टिः ब्रह्मर्षयः अमलाः पुरतः अभिमुखं यान्ति स्तुवन्ति स्तुतिभिः विभुम् ॥ ४९ ॥

षष्टिः सहस्त्राणि	- साठ सहस्त्र	**विभुं**	- प्रभु (सूर्य) की
अमलाः	- निर्मल	**स्तुतिभिः-**	- स्तोत्रोंसे स्तुति करते
बालखिल्याः	- बालखिल्य	**स्तुवन्ति**	
ब्रह्मर्षयः	- ब्रह्मर्षिगण	**अभिमुखं**	- उनकी ओर मुख किये
		पुरतःयान्ति	- आगे-आगे चलते हैं ॥ ४९ ॥

एवं ह्यनादिनिधनो भगवान् हरिरीश्वरः ।
कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः ॥ ५० ॥

एवं हि अनादि निधनः भगवान् हरिः ईश्वरः कल्पे कल्पे स्वं आत्मानं व्यूह्य लोकान् अवति अजः ॥ ५० ॥

एवं हि - इसी प्रकार
अनादि निधनः - अनादि-अनन्त
ईश्वरः भगवान् - सर्व-समर्थ भगवान
अजः हरिः - अजन्मा श्रीहरि
कल्पे-कल्पे - प्रत्येक कल्पमें
स्वं आत्मानं - अपने स्वरूप (सूर्य) को
व्यूह्य - व्यूहयुक्त करके
लोकान्-अवति - लोकोंकी रक्षा करते हैं ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे आदित्यव्यूहविवरणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

सूत उवाच-

नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ॥
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान् वक्ष्ये सनातनान् ॥ १ ॥

नमः धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ब्राह्मणेभ्यः नमःकृत्य धर्मान् वक्ष्ये सनातनान् ॥ १ ॥

महते धर्माय - महान् (भागवत) धर्मको
नमः - नमस्कार,
वेधसे कृष्णाय - विश्वविधाता श्रीकृष्णको
नमः - नमस्कार,
ब्राह्मणेभ्यः - ब्राह्मणोंको
नमस्कृत्य - नमस्कार करके
सनातनान् - शाश्वत
धर्मान् - (भागवतके) धर्म (स्वरूप) का
वक्ष्ये - (संक्षिप्त) वर्णन करुँगा
॥ १ ॥

एतद् वः कथितं विप्रा विष्णोश्चरितमद्भुतम् ।
भवद्भिर्यदहं पृष्टो नराणां पुरुषोचितम् ॥ २ ॥

एतत् वः कथितं विप्रा विष्णोः चरितं अद्भुतं भवत्भिः यत् अहं पृष्टः नराणां पुरुष उचितम् ॥ २ ॥

विप्रा - ब्राह्मणो !
यत् अहं - जो मैं
वः पृष्टः - आप लोगों द्वारा पूछा गया था
नराणां - मनुष्योंके लिए
पुरुष उचितं - उचित पुरुषार्थ रूप
अद्भुतं - अद्भुत
विष्णोः चरितं - भगवान् विष्णुका चरित
एतत् कथितं - यह (मैंने) वर्णन किया
॥ २ ॥

अत्र संकीर्तितः साक्षात् सर्वपापहरो हरिः ।
नारायणो हृषीकेशो भगवान् सात्वतां पतिः ॥ ३ ॥

अत्र संकीर्तितः साक्षात् सर्वपाप हरः हरिः नारायणः हृषीकेशः भगवान् सात्वतां पतिः ॥ ३ ॥

अत्र	-	इस (श्रीमद्भागवत) में	**हृषीकेशः**	-	अन्तर्यामी
सर्वपापहरः	-	सर्व पापहारी	**सात्वतां पतिः**	-	भक्तोंके स्वामी
साक्षात् हरिः	-	साक्षात् श्रीहरि	**भगवान्**	-	भगवानका
नारायणः	-	(परात्पर) नारायण	**संकीर्तितः**	-	संकीर्तन हुआ है ॥३॥

अत्र ब्रह्म परं गुह्यं जगतः प्रभवाप्ययम् ।
ज्ञानं च तदुपाख्यानं प्रोक्तं विज्ञानसंयुतम् ॥ ४ ॥

अत्र ब्रह्म परं गुह्यं जगतः प्रभव अप्यम् ज्ञानं च तत् उपाख्यानं प्रोक्तं विज्ञान संयुतम् ॥ ४ ॥

अत्र	-	इस (पुराण) में	**ब्रह्म**	-	ब्रह्म
परम् गुह्यं	-	परम रहस्यमय	**तत् उपाख्यानं**	-	एवं उसका उदाहरणात्मक
जगतः प्रभव	-	विश्वकी उत्पत्ति,	**ज्ञानं विज्ञान संयुतं**	-	ज्ञान विज्ञानके साथ
अप्ययं	-	प्रलयके कारण	**च प्रोक्तं**	-	ही वर्णित हुआ है ॥ ४ ॥

भक्तियोगः समाख्यातो वैराग्यं च तदाश्रयम् ।
पारीक्षितमुपाख्यानं नारदाख्यानमेव च ॥ ५ ॥

भक्तियोगः सम आख्यात वैराग्यं च तत् आश्रयं पारीक्षितं उपाख्यानं नारद आख्यानं एव च ॥ ५ ॥

भक्तियोगः	-	भक्तियोग
च तत् आश्रयं	-	तथा उसी (भक्ति) पर आश्रित
वैराग्यं	-	वैराग्यका
सम आख्यातः	-	भली प्रकार वर्णन हुआ है,
पारीक्षितं	-	परीक्षितकी
उपाख्यानं	-	कथा
च नारद	-	तथा नारदजीकी
आख्यानं एव	-	कथा भी है ॥ ५ ॥

प्रायोपवेशो राजर्षेर्विप्रशापात् परीक्षितः ।
शुकस्य ब्रह्मर्षभस्य संवादश्च परीक्षितः ॥ ६ ॥

प्रायोपवेशः राजर्षेः विप्रशापात् परीक्षितः शुकस्य ब्रह्म ऋषभस्य संवादः च परीक्षितः ॥ ६ ॥

विप्रशापात्	-	ब्राह्मणके शापसे
राजर्षेः	-	राजर्षि
परीक्षितः	-	परीक्षितका
प्रायोपवेशः	-	आमरण अनशन,
च ब्रह्म ऋषभस्य	-	तथा ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ
शुकस्य	-	शुकदेवजीका
परीक्षितः	-	परीक्षितके साथ
संवादः	-	संवाद ॥ ६ ॥

योगधारणयोत्क्रान्तिः संवादो नारदाजयोः ।
अवतारानुगीतं च सर्गः प्राधानिकोऽग्रतः ॥ ७ ॥

योग धारणया उत्क्रान्तिः संवादः नारद अजयोः अवतार अनुगीतं च सर्गः प्राधानिकः अग्रतः ॥ ७ ॥

योग धारणया	-	योगकी धारणासे
उत्क्रान्तिः	-	(शरीरसे) ऊपर निकल जाना,
नारद अजयोः	-	नारद एवं ब्रह्माजीका
संवादः	-	संवाद,
अवतार-	-	अवतरोंका संक्षिप्त
अनुगीतं		वर्णन
च अग्रतः	-	तथा सबसे पहिले
प्राधानिकः	-	प्रधान प्राकृतिक तत्त्वोंकी
सर्गः	-	सृष्टि ॥ ७ ॥

विदुरोद्धवसंवादः क्षत्तृमैत्रेययोस्ततः ।
पुराणसंहिताप्रश्नो महापुरुषसंस्थितिः ॥ ८ ॥

विदुर उद्धव संवादः क्षत्तृमैत्रेययोः ततः पुराण संहिता प्रश्नः महापुरुष संस्थितिः ॥ ८ ॥

विदुर उद्धव	- विदुर एवं उद्धजीका	**पुराण संहिता**	- पुराण संहिता सम्बन्धी
ततः क्षत्तृ	- फिर विदुर तथा	**प्रश्नः**	- प्रश्न,
मैत्रेययोः	- मैत्रेयजीका	**महापुरुष**	- परम पुरुषकी
संवादः	- संवाद,	**संस्थितिः**	- प्रलयमें स्थिति ॥ ८ ॥

ततः प्राकृतिकः सर्गः सप्त वैकृतिकाश्च ये ।
ततो ब्रह्माण्डसम्भूतिर्वैराजः पुरुषो यतः ॥ ९ ॥

ततः प्राकृतिकः सर्गः सप्त वैकृतिकाः च ये ततः ब्रह्माण्ड सम्भूतिः वैराजः पुरुषः यतः ॥ ९ ॥

ततः प्राकृतिकः	- फिर प्राकृतिक	**ततः ब्रह्माण्ड**	- फिर ब्रह्माण्डकी
ये सप्त-	- जो सात प्रकृति-विकृति	**सम्भूतिः**	- उत्पत्ति
वैकृतिकाः	(महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा) हैं	**यतः वैराजः**	- जिससे विराट् पुरुष
सर्गः	- (उनकी) उत्पत्ति,	**पुरुषः**	हुआ ॥ ९ ॥

कालस्य स्थूलसूक्ष्मस्य गतिः पद्मसमुद्भवः ।
भुव उद्धरणेऽम्भोधेर्हिरण्याक्षवधो यथा ॥ १० ॥

कालस्य स्थूल सूक्ष्मस्य गतिः पद्मसमुद्भवः भुव उद्धरणे अम्भोधेः हिरण्याक्ष वधः यथा ॥ १० ॥

स्थूल सूक्ष्मस्य	- स्थूल और सूक्ष्म	**भुव उद्धरणे**	- पृथ्वीका उद्धार,
कालस्य गतिः	- कालका स्वरूप,	**यथा**	- (फिर) जैसे
पद्मसमुद्भवः	- लोकपद्मकी उत्पत्ति,	**हिरण्याक्ष वधः**	- हिरण्याक्षका वध
अम्भोधेः	- (प्रलय) समुद्रसे		हुआ ॥ १० ॥

ऊर्ध्वतिर्यगवाक्सर्गो रुद्रसर्गस्तथैव च ।
अर्धनारीनरस्याथ यतः स्वायम्भुवो मनुः ॥ ११ ॥

ऊर्ध्व तिर्यक् अवाक् सर्गः रुद्रसर्गः तथा एव च अर्धनारी नरस्य अथ यतः स्वायम्भुवः मनुः ॥ ११ ॥

ऊर्ध्व	-	ऊर्ध्व (ऊपरके लोकोंके देवताओं) की	**तथा एव**	-	इसी प्रकार
तिर्यक्	-	बीच (पृथ्वीके प्राणियों) की	**रुद्रसर्गः च**	-	(एकादश) रुद्रोंकी उत्पत्ति भी,
अवाक्	-	नीचे (रसतलादिके प्राणियों) की१	**अथ अर्ध नारीनरस्य**	-	फिर (ब्रह्माजीके) उस अर्धनारी नर (रूप) का (वर्णन)
सर्गः	-	उत्पत्ति,	**यतः**	-	जिससे स्वायम्भुव मनु
			स्वायम्भुवः मनुः		हुए ॥ ११ ॥

शतरूपा च या स्त्रीणामाद्या प्रकृतिरुत्तमा ।
सन्तानो धर्मपत्नीनां कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ १२ ॥

शतरूपा च या स्त्रीणां आद्या प्रकृतिः उत्तमा सन्तानः धर्म पत्नीनां कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ १२ ॥

च उत्तमा-प्रकृतिः	-	तथा उत्तम स्वभावा	**कर्दमस्य**	-	कर्दमका (चरित),
स्त्रीणां आद्या	-	स्त्रियोंमें सर्वप्रथमा	**धर्म पत्नीनां**	-	धर्मकी पत्नियोंकी
शतरूपा	-	शतरूपा (की उत्पत्ति),	**सन्तानः**	-	सन्तानोंका (वर्णन) ॥ १२ ॥
प्रजापतेः	-	प्रजापति			

---

१. ऊर्ध्व स्रोत (वृक्षादि) तिर्यक् स्रोत (पशु-पक्षी) अवाक् (अधः) स्रोत (मनुष्य-देवतादि) यह अर्थ भी है ।

अवतारो भगवतः कपिलस्य महात्मनः ।
देवहूत्याश्च संवादः कपिलेन च धीमता ॥ १३ ॥

अवतारः भगवतः कपिलस्य महात्मनः देवहूत्याः च संवादः कपिलेन च धीमता ॥ १३ ॥

महात्मनः	-	महात्मा	**च धीमता**	-	तथा परम बुद्धिमान
भगवतः	-	भगवान	**कपिलेन**	-	कपिलजीके साथ
कपिलस्य	-	कपिलका	**देवहूत्याः**	-	माता देवहूतिजी का
अवतारः	-	अवतार	**संवादः च**	-	संवाद भी ॥ १३ ॥

नवब्रह्मसमुत्पत्तिर्दक्षयज्ञविनाशनम् ।
ध्रुवस्य चरितं पश्चात्पृथोः प्राचीनबर्हिषः ॥ १४ ॥

नव ब्रह्म समुत्पत्तिः दक्षयज्ञ विनाशनं ध्रुवस्य चरितं पश्चात् पृथोः प्राचीन बर्हिषः ॥ १४ ॥

नव ब्रह्म	-	(मरीचि आदि) नौ ब्रह्मर्षियोंकी	**पश्चात्**	-	फिर पीछे
समुत्पत्तिः	-	एक साथ उत्पत्ति,	**ध्रुवस्य पृथोः**	-	ध्रुवका, पृथुका और
दक्षयज्ञ	-	दक्षके यज्ञका	**प्राचीन बर्हिषः**	-	प्राचीन बर्हिका
विनाशनं	-	नाश किया जाना,	**चरितं**	-	चरित ॥ १४ ॥

नारदस्य च संवादस्ततः प्रैयव्रतं द्विजाः ।
नाभेस्ततोऽनु चरितमृषभस्य भरतस्य च ॥ १५ ॥

नारदस्य च संवादः ततः प्रैयव्रतं द्विजाः नाभेः ततः अनुचरितं ऋषभस्य भरतस्य च ॥ १५ ॥

द्विजाः	-	विप्रो !	**ततः नाभेः**	-	फिर नाभिका
नारदस्य च	-	नारदजीका तथा	**ऋषभस्य**	-	ऋषभदेवजीका
प्रैयव्रतं	-	प्रियव्रतका	**च भरतस्य**	-	तथा भरतका
संवादः	-	संवाद	**अनुचरितं**	-	चरित वर्णन है ॥१५॥

द्वीपवर्षसमुद्राणां गिरिनद्युपवर्णनम् ।
ज्योतिश्चक्रस्य संस्थानं पातालनरकस्थितिः ॥ १६ ॥

द्वीपवर्ष समुद्राणां गिरिनदि उपवर्णनं ज्योतिः चक्रस्य संस्थानं पाताल नरक स्थितिः ॥ १६ ॥

द्वीपवर्ष - द्वीप, वर्ष,
समुद्राणां - समुद्रों,
गिरिनदि - पर्वतों, नदियोंका
उपवर्णनं - संक्षिप्त वर्णन है
ज्योतिः चक्रस्य- ग्रह-नक्षत्र मण्डलकी
संस्थानं - स्थिति,
पाताल - पातालादि लोकों तथा
नरक स्थितिः - नरकोंकी स्थिति ॥१६॥

दक्षजन्म प्रचेतोभ्यस्तत्पुत्रीणां च सन्ततिः ।
यतो देवासुरनरास्तिर्यङ्नगखगादयः ॥ १७ ॥

दक्षजन्म प्रचेतोभ्यः तत् पुत्रीणां च सन्ततिः यतः देव असुर नराः तिर्यक् नग खग आदयः ॥ १७ ॥

प्रचेतोभ्यः - प्रचेताओंसे
दक्षजन्म - दक्षका जन्म
च तत् पुत्रीणां - तथा उनकी पुत्रियोंकी
सन्ततिः - सन्तानोंका (वर्णन)
यतः देव-असुर - जिनसे देवता, असुर,
नराः तिर्यक् - मनुष्य, पशु
नग खग - पर्वत, पक्षी
आदयः - आदि हुए ॥ १७ ॥

त्वाष्ट्रस्य जन्म निधनं पुत्रयोश्च दितेर्द्विजाः ।
दैत्येश्वरस्य चरितं प्रह्लादस्य महात्मनः ॥ १८ ॥

त्वाष्ट्रस्य जन्म निधनं पुत्रयोः च दितेः द्विजाः दैत्येश्वरस्य चरितं प्रह्लादस्य महात्मनः ॥ १८ ॥

द्विजाः	- विप्रो !	**दैत्येश्वरस्य**	- दैत्यराज हिरण्यकशिपु और
त्वाष्ट्रस्य	- वृत्रासुरकी	**महात्मनः**	- महात्मा
जन्म निधनं	- उत्पत्ति और मृत्यु,	**प्रह्लादस्य**	- प्रह्लादका
च दितेः	- तथा दितिके	**चरितं**	- चरित ॥ १८ ॥
पुत्रयोः	- दोनों पुत्रोंकी (मृत्यु)		

मन्वन्तरानुकथनं गजेन्द्रस्य विमोक्षणम् ।
मन्वन्तरावताराश्च विष्णोर्हयशिरादयः ॥ १९ ॥

मन्वन्तर अनुकथनं गजेन्द्रस्य विमोक्षणं मन्वन्तर अवतारः च विष्णोः हयशिर आदयः ॥ १९ ॥

मन्वन्तर	- मन्वन्तरोंका	**च मन्वन्तर**	- तथा मन्वन्तरोंके
अनुकथनं	- संक्षिप्त वर्णन	**विष्णोः**	- भगवान विष्णुके
गजेन्द्रस्य	- (जिनमें) गजेन्द्रका	**हयशिर**	- हयशीर्ष१
विमोक्षणं	- (ग्राहसे) छुड़ाया जाना	**आदयः**	- आदि
		अवतारा:	- अवतार ॥ १९ ॥

कौर्मं धान्वन्तरं मात्स्यं वामनं च जगत्पतेः ।
क्षीरोदमथनं तद्वदमृतार्थे दिवौकसाम् ॥ २० ॥

कौर्मं धान्वन्तरं मात्स्यं वामनं च जगत्पतेः क्षीरोदमथनं तत् वत् अमृत अर्थे दिवौकसां ॥ २० ॥

च जगत्पतेः	- तथा जगदीश्वरका	**तत् वत्**	- इसी प्रकार
कौर्मं धान्वन्तरं	- कूर्मावतार, धन्वन्तरि अवतार,	**दिवौकसां**	- देवताओंका
		अमृत अर्थे	- अमृतके लिए
वामनं	- वामनावतार	**क्षीरोद**	- क्षीरसागरका
च मात्स्यं	- तथा मत्स्यावतार (वर्णित) हैं	**मथनं**	- मन्थन (करना) ॥२०॥

---

१. भगवानकी प्राप्त प्रतियां एवं ढाकाओंमें हयशीर्ष अवतारका यह वर्णन नहीं है जो गजेन्द्र मोक्षके बाद होना चाहिए ।

देवासुरमहायुद्धं राजवंशानुकीर्तनम् ।
इक्ष्वाकुजन्म तद्वंशः सुद्युम्नस्य महात्मनः ॥ २१ ॥

देव असुर महायुद्धं राजवंश अनुकीर्तनं इक्ष्वाकु जन्म तत् वंशः सुद्युम्नस्य महात्मनः ॥ २१ ॥

देव असुर	-	देवता तथा असुरोंका	**इक्ष्वाकुजन्म**	-	इक्ष्वाकुका जन्म,
महायुद्धं	-	महायुद्ध,	**तत् वंशः**	-	उनका वंश,
राजवंश	-	राजाओंके वंशका	**महात्मनः**	-	महात्मा
अनुकीर्तनं	-	संक्षिप्त वर्णन,	**सुद्युम्नस्य**	-	सुद्युम्नका (वर्णन) ॥ २१ ॥

इलोपाख्यानमत्रोक्तं तारोपाख्यानमेव च ।
सूर्यवंशानुकथनं शाशादाद्या नृगादयः ॥ २२ ॥

इला उपाख्यानं अत्र उक्तं तारा उपाख्यानं एव च सूर्यवंश अनुकथनं शशाद आद्या नृग आदयः ॥ २२ ॥

अत्र	-	इस प्रसंगमें	**सूर्यवंश**	-	सूर्यवंशका
इला उपाख्यानं	-	इलाका उपाख्यान	**अनुकथनं**	-	संक्षिप्त वर्णन हुआ
च तारा-उपाख्यानं	-	ताराका उपाख्यान	**शशाद आद्या**	-	(जिसमें) शशाद आदि एवं
एव उक्तं	-	भी कहा गया,	**नृग आदयः**	-	नृग आदि हुए ॥२२॥

सौकन्यं चाथ शर्यातेः ककुत्स्थस्य च धीमतः ।
खट्वाङ्गस्य च मान्धातुः सौभरेः सगरस्य च ॥ २३ ॥

सौकन्यं च अथ शर्यातेः ककुत्स्थस्य च धीमतः खट्वाङ्गस्य च मान्धातुः सौभरेः सगरस्य च ॥ २३ ॥

अथ सौकन्यं - फिर सुकन्या चरित,
च शर्यातेः - तथा शर्यातिका,
च धीमतः - एवं बुद्धिमान
ककुत्स्थस्य - ककुत्स्थका,
खट्वांगस्य - खट्वांगका,
मान्धातुः - मान्धाताका
च सौभरेः - और सौभरिका
च सगरस्य - एवं सगरका (चरित) है ॥ २३ ॥

रामस्य कोसलेन्द्रस्य चरितं किल्बिषापहम् ।
निमेरङ्गपरित्यागो जनकानां च सम्भवः ॥ २४ ॥

रामस्य कोसलेन्द्रस्य चरितं किल्विष अपहं निमेः अंग परित्यागः जनकानां च सम्भवः ॥ २४ ॥

किल्बिष अपहं - पापहारी
कोसलेन्द्रस्य - कोसलेन्द्र
रामस्य चरितं - श्रीरामका चरित,
निमेः - निमिका
अंग परित्यागः - शरीर-त्याग,
च जनकानां - तथा जनकवंशियोंकी
सम्भवः - उत्पत्ति ॥ २४ ॥

रामस्य भार्गवेन्द्रस्य निःक्षत्रकरणं भुवः ।
ऐलस्य सोमवंशस्य ययातेर्नहुषस्य च ॥ २५ ॥

रामस्य भार्गवेन्द्रस्य निःक्षत्र करणं भुवः ऐलस्य सोमवंशस्य ययातेः नहुषस्य च ॥ २५ ॥

भार्गवेन्द्रस्य - भृगुवंश शिरोमणि
रामस्य - परशुरामजीका
भुवः - पृथ्वीको
निःक्षत्र करणं - क्षत्रियहीन बनाना
सोमवंशस्य - चन्द्रवंशके
ऐलस्य - इला-नन्दन पुरूरवाकी,
ययातेः - ययातिकी
च नहुषस्य - तथा नहुषकी (कथा) है ॥ २५ ॥

दौष्यन्तेर्भरतस्यापि शन्तनोस्तत्सुतस्य च ।
ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशोऽनुकीर्तितः ॥ २६ ॥

दौष्यन्तेः भरतस्य अपि शंतनोः तत् सुतस्य च ययातेः ज्येष्ठ पुत्रस्य यदोः वंशः अनुकीर्तितः ॥ २६ ॥

दौष्यन्तेः	- दुष्यन्तके पुत्र	**ययातेः**	- ययातिके,
भरतस्य अपि	- भरतका भी,	**ज्येष्ठ पुत्रस्य**	- बड़े पुत्र
शंतनोः	- शंतनुका,	**यदोः वंशः**	- यदुके वंशका
च तत् सुतस्य	- तथा उनके पुत्र भीष्मका,	**अनुकीर्तितः**	- संक्षिप्त वर्णन किया गया ॥ २६ ॥

यत्रावतीर्णो भगवान् कृष्णाख्यो जगदीश्वरः ।
वसुदेवगृहे जन्म ततो वृद्धिश्च गोकुले ॥ २७ ॥

यत्र अवतीर्णः भगवान् कृष्ण आख्यः जगदीश्वरः वसुदेव गृहे जन्म ततः वृद्धिः च गोकुले ॥ २७ ॥

यत्र	- जिस वंशमें	**वसुदेव**	- वसुदेवजीके
जगदीश्वरः	- जगदीश्वर	**गृहेजन्म**	- घर (पत्नीसे) जन्म लेना
कृष्ण आख्यः	- श्रीकृष्णनामसे	**ततः गोकुले**	- फिर गोकुलमें
अवतीर्णः	- अवतरित हुए,	**वृद्धिः च**	- (उनका) बढ़ना भी ॥ २७ ॥

तस्य कर्माण्यपाराणि कीर्तितान्यसुरद्विषः ।
पूतनासुपयः पानं शकटोच्चाटनं शिशोः ॥ २८ ॥

तस्य कर्माणि अपाराणि कीर्तितानि असुरद्विषः पूतना असु पयः पानं शकट उच्चाटनं शिशोः ॥ २८ ॥

तस्य असुर-द्विषः	- उन असुर द्रोहीके	**पूतना**	- पूतनाका
अपाराणि	- अपार	**असु पयः पानं**	- प्राणोंके साथ दूध पीना,
कर्माणि	- कर्मोंका	**शिशोः**	- शिशुका ही
कीर्तितानि	- वर्णन हुआ है,	**शकट-उच्चाटनं**	- छकड़ा उलट देना ॥ २८ ॥

तृणावर्तस्य निष्पेषस्तथैव बकवत्सयोः ।
धेनुकस्य सहभ्रातुः प्रलम्बस्य च संक्षयः ॥ २९ ॥

तृणावर्तस्य निष्पेषः तथा एव बकवत्सयोः धेनुकस्य सहभ्रातुः प्रलम्बस्य च संक्षयः ॥ २९ ॥

तृणावर्तस्य - तृणावर्तको
निष्पेषः - पीस डालना,
तथा एव - इसी प्रकार
बकवत्सयोः - बकासुर, वृत्सासुर,
सह भ्रातुः - भाइयोंके साथ
धेनुकस्य च - धेनुकासुरका भी
संक्षयः - विनाश ॥ २९ ॥
प्रलम्बस्य

गोपानां च परित्राणं दावाग्नेः परिसर्पतः ।
दमनं कालियस्याहेर्महाहेर्नन्दमोक्षणम् ॥ ३० ॥

गोपानां च परित्राणं दावाग्नेः परिसर्पतः दमनं कालियस्य अहेः महा अहेः नन्दमोक्षणम् ॥ ३० ॥

परिसर्पतः - चारों ओरसे बढ़ते आते
दावाग्नेः - दावाग्निसे
गोपानां च - गोपोंकी तो
परित्राणं - रक्षा करना
कालियस्य अहेः - कालियनागका
दमनं - दमन करना,
महा अहेः - अजगरसे
नन्द मोक्षणं - नन्दजीको छुड़ाना ॥ ३० ॥

व्रतचर्या तु कन्यानां यत्र तुष्टोऽच्युतो व्रतैः ।
प्रसादो यज्ञपत्नीभ्यो विप्राणां चानुतापनम् ॥ ३१ ॥

व्रतचर्या तु कन्यानां यत्र तुष्टः अच्युतः व्रतैः प्रसादः यज्ञपत्नीभ्यः विप्राणां च अनुतापनम् ॥ ३१ ॥

कन्यानां तु - (व्रजकी) कन्याओंका तो
व्रतचर्या - व्रत करना
यत्र व्रतैः - जिस व्रतसे
अच्युतः तुष्टः - अच्युत सन्तुष्ट हुए,
यज्ञपत्नीभ्यः - यज्ञ-पत्नियोंपर
प्रसादः - कृपा करना
च विप्राणां - तथा ब्राह्मणोंका
अनुतापनं - पश्चाताप करना ॥३१॥

गोवर्धनोद्धारणं च शक्रस्य सुरभेरथ ।
यज्ञाभिषेकं कृष्णस्य स्त्रीभिः क्रीडा च रात्रिषु ॥ ३२ ॥

गोवर्धनः उद्धारणं च शक्रस्य सुरभेः अथ यज्ञाभिषेकं कृष्णस्य स्त्रीभिः क्रीडा च रात्रिषु ॥ ३२ ॥

गोवर्धनः - गोवर्धन पर्वतको
उद्धारणं - उठा लेना,
अथ शक्रस्य - फिर इन्द्रका
च सुरभेः - तथा कामधेनुका
कृष्णस्य - श्रीकृष्णका
यज्ञाभिषेकं - यज्ञाभिषेक,
रात्रिषु - रात्रियोंमें
स्त्रीभिः क्रीडा - स्त्रियोंके साथ रासक्रीड़ा ॥ ३२ ॥

शंखचूडस्य दुर्बुद्धेर्वधोऽरिष्टस्य केशिनः ।
अक्रूरागमनं पश्चात् प्रस्थानं रामकृष्णयोः ॥ ३३ ॥

शंख चूडस्य दुर्बुद्धेः वधः अरिष्टस्य केशिनः अक्रूर आगमनं पश्चात् प्रस्थानं रामकृष्णयोः ॥ ३३ ॥

दुर्बुद्धेः - दुर्मति
शंख-चूड़स्य - शंखचूड़ यक्ष,
अरिष्टस्य - अरिष्टासुर
केशिनः वधः - एवं केशीको मारना,
पश्चात् - फिर
अक्रूर आगमनं - अक्रूरका आना,
रामकृष्णयोः - बलराम तथा श्रीकृष्णका
प्रस्थानं - प्रस्थान करना ॥ ३३ ॥

व्रजस्त्रीणां विलापश्च मथुरालोकनं ततः ।
गजमुष्टिकचाणूरकंसादीनां च यो वधः ॥ ३४ ॥

व्रजस्त्रीणां विलापः च मथुरा लोकनं ततः गज मुष्टिक चाणूर कंस आदीनां च यः वधः ॥ ३४ ॥

व्रज स्त्रीणां च - व्रजकी स्त्रियोंका तो
विलापः - विलाप करना,
ततः मथुरा - फिर मथुराको
लोकनं - देखना,
गज मुष्टिक - (कुवलया पीड़) हाथी, मुष्टिक,
चाणूर कंस - चाणूर, कंस
आदीनां च - आदिकोंका भी
यः वधः - जो वध किया ॥ ३४ ॥

मृतस्यानयनं सूनोः पुनः सान्दीपनेर्गुरोः ।
मथुरायां निवसता यदुचक्रस्य यत्प्रियम् ।
कृतमुद्धवरामाभ्यां युतेन हरिणा द्विजाः ॥ ३५ ॥

मृतस्य आनयनं सूनोः पुनः सांदीपनेः गुरोः मथुरायां निवसता यदु चक्रस्य यत् प्रियं कृतं उद्धव रामाभ्यां युतेन हरिणा द्विजाः ॥ ३५ ॥

द्विजाः - ब्राह्मणों !
सांदीपनेः गुरोः - सांदीपनि गुरुके
मृतस्य सूनोः - मरे हुए पुत्रको
पुनः आनयनं - फिर लौटा लाना,
मथुरायां - मथुरामें
निवसता - रहते हुए
यदुचक्रस्य - यादव लोगोंका
यत् प्रियं - जो प्रिय
उद्धव रामाभ्यां - उद्धव तथा बलरामको
युतेन - साथ लेकर
हरिणा - श्रीहरिने किया ॥३५॥

जरासन्धसमानीतसैन्यस्य बहुशो वधः ।
घातनं यवनेन्द्रस्य कुशस्थल्या निवेशनम् ॥ ३६ ॥

जरासन्ध सम आनीत सैन्यस्य बहुशः वधः घातनं यवनेन्द्रस्य कुशस्थल्या निवेशनम् ॥ ३६ ॥

जरासन्ध - जरासन्ध द्वारा
सम आनीत - साथ लायी
बहुशः - अनेक बारकी
सैन्यस्य वधः - सेनाओंका वध करना,
यवनेन्द्रस्य - यवनराज (कालयवन) को
घातनं - मरवा देना,
कुशस्थल्या - द्वारिकापुरीको
निवेशनं - बसा देना ॥ ३६ ॥

आदानं पारिजातस्य सुधर्मायाः सुरालयात् ।
रुक्मिण्या हरणं युद्धे प्रमथ्य द्विषतो हरेः ॥ ३७ ॥

आदानं पारिजातस्य सुधर्मायाः सुर आलयात् रुक्मिण्या हरणं युद्धे प्रमथ्य द्विषतः हरेः ॥ ३७ ॥

सुर आलयात् - देवताओंके भवन (स्वर्ग) से
पारिजातस्य - कल्पवृक्ष तथा
सुधर्मायाः - सुधर्मा सभाको
आदानं - ले आना,
युद्धे द्विषतः - युद्धमें शत्रुओंको
प्रमथ्य - मथ (रौंद) कर
हरेः - श्रीहरिका
रुक्मिण्या - रुक्मिणीको
हरणं - हरण करना ॥ ३७ ॥

हरस्य जृम्भणं युद्धे बाणस्य भुजकृन्तनम् ।
प्राग्ज्योतिषपतिं हत्वा कन्यानां हरणं च यत् ॥ ३८ ॥

हरस्य जृम्भणं युद्धे बाणस्य भुज कृन्तनं प्राक्ज्योतिष पतिं हत्वा कन्यानां हरणं च यत् ॥ ३८ ॥

युद्धे हरस्य - युद्धमें शंकरजीको
जृम्भणं - जम्हाई लेता बनना,
बाणस्य - बाणासुरकी
भुजकृन्तनं - भुजायें काटना,
प्राक्ज्योतिष - प्राक् ज्योतिषपुरके
पतिं - स्वामी (भौमासुर) को
हत्वा - मारकर
कन्यानां - कन्याओंका
च यत् हरणं - तो जो ले आना है ॥ ३८ ॥

चैद्यपौण्ड्रकशाल्वानां दन्तवक्त्रस्य दुर्मतेः ।
शम्बरो द्विविदः पीठो मुरः पञ्चजनादयः ॥ ३९ ॥

चैद्य पौण्ड्रक शाल्वानां दन्तवक्त्रस्य दुर्मतेः शम्बरः द्विविदः पीठः मुरः पञ्चजन आदयः ॥ ३९ ॥

चैद्य पौण्ड्रक	-	शिशुपाल, पौण्ड्रक,	**शम्बरः**	-	शम्बरासुर,
शाल्वानां	-	शाल्व,	**द्विविदः**	-	वानर द्विविद,
दुर्मतेः	-	दुर्बुद्धि	**पीठः मुरः**	-	पीठ, मुर,
दन्तवक्त्रस्य	-	दन्तवक्त्र,	**पञ्चजन**	-	शंखासुर
			आदयः	-	आदि ॥ ३९ ॥

माहात्म्यं च वधस्तेषां वाराणस्याश्च दाहनम् ।
भारावतरणं भूमेर्निमित्तीकृत्य पाण्डवान् ॥ ४० ॥

माहात्म्यं च वधः तेषां वाराणस्याः च दाहनं भार अवतरणं भूमेः निमित्ती कृत्य पाण्डवान् ॥ ४० ॥

तेषां माहात्म्यं	-	इन सबकी महिमा	**पाण्डवान्**	-	पाण्डवोंको
च वधः	-	तथा वध,	**निमित्तीकृत्य**	-	निमित्त बनाकर
च वाराणस्याः	-	और वाराणसीका	**भूमेः**	-	पृथ्वीका
दाहनं	-	जलाया जाना,	**भार अवतरणं**	-	भार उतारना ॥४०॥

विप्रशापापदेशेन संहारः स्वकुलस्य च ।
उद्धवस्य च संवादो वासुदेवस्य चाद्भुतः ॥ ४१ ॥

विप्रशाप अपदेशेन संहारः स्वकुलस्य च उद्धवस्य च संवादः वासुदेवस्य च अद्भुतः ॥ ४१ ॥

विप्रशाप	-	ब्राह्मणोंके शापके	**उद्धवस्य च**	-	उद्धवका तथा
अपदेशेन	-	बहानेसे	**वासुदेवस्य**	-	वासुदेवका
स्वकुलस्य च	-	अपने कुलका भी	**अद्भुतः**	-	अद्भुत
संहारः	-	संहार,	**संवादः**	-	संवाद ॥ ४१ ॥

यत्रात्मविद्या ह्यखिला प्रोक्ता धर्मविनिर्णयः ।
ततो मर्त्यपरित्याग आत्मयोगानुभावतः ॥ ४२ ॥

यत्र आत्म विद्या हि अखिला प्रोक्ता धर्म विनिर्णयः ततः मर्त्य परित्याग आत्मयोग अनुभावतः ॥ ४२ ॥

यत्र-	-	जिसमें सम्पूर्ण ही	**प्रोक्ता**	-	कहा गया है,
अखिला हि			**ततः**	-	फिर
आत्मविद्या	-	अध्यात्म ज्ञान तथा	**आत्मयोग**	-	अपने योगके
धर्म विनिर्णयः	-	धर्मका ठीक निर्णय	**अनुभावतः**	-	प्रभावसे
			मर्त्य परित्याग	-	मनुष्य लोक त्याग देना ॥ ४२ ॥

युगलक्षणवृत्तिश्च कलौ नृणामुप्लवः ।
चतुर्विधश्च प्रलय उत्पत्तिस्त्रिविधा तथा ॥ ४३ ॥

युग लक्षण वृत्तिः च कलौ नृणां उप्लवः चतुर्विधः च प्रलयः उत्पत्तिः त्रिविधा तथा ॥ ४३ ॥

युग लक्षण	-	युगोंके लक्षण	**च चतुर्विधः**	-	और चार प्रकारकी
च वृत्तिः	-	तथा व्यवहार,	**प्रलयः तथा**	-	प्रलय तथा
कलौ नृणां	-	कलियुगके मनुष्योंकी	**त्रिविधा**	-	तीन प्रकारकी
उप्लवः	-	विपरीत स्थिति,	**उत्पत्तिः**	-	उत्पत्ति ॥ ४३ ॥

देहत्यागश्च राजर्षेर्विष्णुरातस्य धीमतः ।
शाखाप्रणयनमृषेर्मार्कण्डेयस्य सत्कथा ।
महापुरुषविन्यासः सूर्यस्य जगदात्मनः ॥ ४४ ॥

देहत्यागः च राजर्षेः विष्णुरातस्य धीमतः शाखा प्रणयनं ऋषेः मार्कण्डेयस्य सत् कथा महापुरुष विन्यासः सूर्यस्य जगत् आत्मनः ॥ ४४ ॥

धीमतः	- बुद्धिमान्	**मार्कण्डेयस्य**	- मार्कण्डेय जी की
राजर्षेः	- राजर्षि	**सत् कथा**	- श्रेष्ठ कथा,
विष्णुरातस्य	- परीक्षितका	**महापुरुष**	- विराट् पुरुषकी तथा
देहत्यागः	- शरीर-त्याग,	**जगत् आत्मनः**	- विश्वात्मा
च ऋषेः	- तथा ऋषियों द्वारा	**सूर्यस्य**	- सूर्यकी
शाखा प्रणयनं	- वेद शाखाओंका निर्माण,	**विन्यासः**	- विशेष स्थिति ॥४४॥

इति चोक्तं द्विजश्रेष्ठा यत्पृष्टोऽहमिहास्मि वः ।
लीलावतारकर्माणि कीर्तितानीह सर्वशः ॥ ४५ ॥

इति च उक्तं द्विज श्रेष्ठा यत् पृष्टः अहं इह अस्मि वः लीला अवतार कर्माणि कीर्तितानि इह सर्वशः ॥ ४५ ॥

द्विज श्रेष्ठा	- विप्रवरो !	**इह सर्वशः**	- इस (पुराण) में सभी
वः इह यत्	- आप लोगोंने यहां जो	**लीला अवतार**	- (भगवानके) लीला अवतारोंके
पृष्टः	- पूछा था	**कर्माणि**	- कर्मोंका
इति च	- इस प्रकार	**कीर्तितानि**	- वर्णन हुआ है ॥४५॥
अहं उक्तं अस्मि	- मैंने कह दिया है,		

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन् ।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥ ४६ ॥

पतितः स्खलितः च आर्तः क्षुत्त्वा वा विवशः ब्रुवन् हरये नम इति उच्चैः मुच्यते सर्वपातकात् पुमान् न अर्हति यातनाम् ॥ ४६ ॥

पतितः - गिरते हुए,
स्खलितः - फिसलते हुए
च आर्तः - तथा पीड़ित होकर
वा क्षुत्त्वा - अथवा छींकते समय
विवशः - (किसी प्रकार) विवश होकर
उच्चैः - उच्च स्वरसे
हरये नम - हरये नमः
इति ब्रुवन् - यह बोलने पर
पुमान् - पुरुष
यातनां - नरकयोगके
अर्हति न - योग्य नहीं रहता ॥४६॥

संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमवातिवातः ॥ ४७ ॥

संकीर्त्यमानः भगवान् अनन्तः श्रुत अनुभावः व्यसनं हि पुंसां प्रविश्य चित्तं विधुनोति अशेषं यथा तमः अर्कः अभ्रं इव अतिवातः ॥ ४७ ॥

भगवान् - भगवान
अनन्तः - अनन्त (श्रीहरि)
संकीर्त्यमानः - (अपने नाम गुणादिका) कीर्तन करनेपर
श्रुत अनुभावः - (या अपनी) महिमा श्रवण करनेपर
पुंसां चित्तं - (भक्त) पुरुषके हृदयमें
प्रविश्य - प्रवेश करके
हि अशेषं - क्योंकि सम्पूर्ण
व्यसनं - दुःखोंको (ऐसे)
विधुनोति - नष्ट कर देते हैं
यथा अर्कः - जैसे सूर्य
तमः - अन्धकारको,
अभ्रं - या मेघको
अतिवातः इव - या मेघको आंधीके समान ॥ ४७ ॥

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद् भगवानधोक्षजः ।
तदेव सत्यं तदुहैव मंगलं
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥ ४८ ॥

मृषा गिरः ता हि असती असत् कथा न कथ्यते यत् भगवान् अधः अक्षजः तत् एव सत्यं तत् उह एव मंगलं तत् एव पुण्यं भगवत् गुण उदयम् ॥४८॥

ता गिरः	- वह वाणी	**भगवत्**	- भगवानके
मृषा हि	- है झूठी क्योंकि	**गुण उदयं**	- गुणोंका वर्णन (जिसमें है)
असत् कथा	- असत् (संसार) की चर्चा	**तत् एव सत्यं**	- वही (वाणी) सत्य है
असती	- निरर्थक है,	**तत् उह एव**	- वह निश्चय ही
यत् भगवान्	- जिसमें भगवान	**मंगलं**	- मंगलकारिणी है
अधः अक्षजः	- इन्द्रियातीत (हृषीकेश) का	**तत् एव पुण्यं**	- वही पवित्र है ॥ ४८ ॥
कथ्यते न	- वर्णन नहीं है,		

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥ ४९ ॥

तत् एव रम्यं रुचिरं नवं नवं तत् एव शश्वत् मनसः महा उत्सवं तत् एव शोक अर्णव शोषणं नृणां यत् उत्तमश्लोक यशः अनुगीयते ॥ ४९ ॥

तत् एव	- वही (वाणी)	**तत् एवं नृणां**	- वही मनुष्योंके
रम्यं	- रमणीय	**शोक अर्णव**	- शोक-सिन्धुको
नवं नवं रुचिरं	- नित्य नूतन मनोहर	**शोषणं**	- सुखा देने वाली है
तत् एव	- वही	**यत् उत्तमश्लोक**	- जिसमें पवित्र कीर्ति
शश्वत्	- सदा	**यशः**	- (भगवान) का यश
मनसः महा-उत्सवं	- मनको परमानन्ददायी	**अनुगीयते**	- बार-बार वर्णन किया जाता है ॥ ४९ ॥

न तद् वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद् ध्वाङ्क्षतीर्थं न तु हंससेवितं
यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥ ५० ॥

न तत् वचः चित्रपदं हरेः यशः जगत् पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् तत् ध्वाङ्क्ष तीर्थं न तु हंस सेवितं यत्र अच्युतः तत्र हि साधवः अमलाः ॥ ५० ॥

जगत् पवित्रं	-	संसारको पवित्र करनेवाला	**ध्वाङ्क्ष तीर्थं**	-	कौओंका तीर्थ है,
हरेः यशः	-	श्रीहरिका सुयश	**तत् हंस**	-	वह हंसोंसे
कर्हिचित्	-	कभी भी	**सेवितं न तु**	-	सेवित नहीं ही है,
प्रगृणीत	-	उत्कर्षसे वर्णित	**हि यत्र**	-	क्योंकि जहां
न तत् वचः	-	नहीं हुआ वह वाणी	**अच्युतः**	-	अच्युत हैं
चित्रपदं	-	विचित्र पदों वाली होनेपर भी	**तत्र अमलाः**	-	वहीं निर्मल
			साधवः	-	साधुजन रहते हैं ॥५०॥

स वाग्विसर्गो जनताघसंप्लवो
यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि य-
च्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ ५१ ॥

स वाक् विसर्गः जनता अघ संप्लवः यस्मिन् प्रतिश्लोकं अबद्ध वति अपि नामानि अनन्तस्य यशः अंकितानि यत् शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ ५१ ॥

यस्मिन्	-	जिसमें	**जनता**	-	लोगोंके
प्रतिश्लोकं	-	प्रत्येक श्लोकमें	**अघ सम्प्लवः**	-	पापोंकी प्रलय (नाश)
अबद्धवति अपि	-	अव्यवस्थित होनेपर भी			कर देना है

अनन्तस्य - भगवान अनन्तके
यशः अंकितानि - यशके सूचक
नामानि - नाम हैं
स वाक्- - उस वाणीको बोलना
विसर्गः
यत् साधवः - क्योंकि सत्पुरुष
शृण्वन्ति - (उसे) सुनते,
गायन्ति - गाते,
गृणन्ति - वर्णन करते हैं ॥५१॥

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे
न ह्यर्पितं कर्म यदप्यनुत्तमम् ॥ ५२ ॥

नैष्कर्म्यं अपि अच्युत भाव वर्जितं न शोभते ज्ञानं अलं निरञ्जनं कुतः पुनः शश्वत् अभद्रं ईश्वरे न हि अर्पितं कर्म यदपि अनुत्तमम् ॥ ५२ ॥

अच्युत भाव - भगवान अच्युतकी भक्तिसे
वर्जितं - रहित
नैष्कर्म्यं - मोक्षदाता
निरञ्जनं - निर्मल
ज्ञानं अपि - ज्ञान भी
अलं न शोभते - भरपूर शोभा नहीं देता
पुनः शश्वत्-अभद्रं - फिर सदा अमंगल रूप
यदपि अनुत्तमं - भले बहुत उत्तम हो,
ईश्वरे अर्पितं - ईश्वरको समर्पित
न हि कर्म - नहीं किये गये कर्मकी
कुतः - क्या चर्चा (वह कैसे शोभित होगा) ॥५२॥

यशःश्रियामेव परिश्रमः परो
वर्णाश्रमाचारतपःश्रुतादिषु ।
अविस्मृतिः श्रीधरपादपद्मयो-
र्गुणानुवादश्रवणादिभिर्हरेः ॥ ५३ ॥

यशः श्रियां एव परिश्रमः परः वर्ण आश्रम आचार तपः श्रुत आदिषु अविस्मृतिः श्रीधर पादपद्मयोः गुण अनुवाद श्रवण आदिभिः हरेः ॥ ५३ ॥

वर्ण आश्रम	-	वर्ण-आश्रमके	**हरेः गुण**	-	(किन्तु) श्रीहरिके गुणोंका
आचार	-	आचरोंका पालन,	**अनुवाद श्रवण**	-	वर्णन, श्रवण
तपः श्रुतआदिषु	-	तपस्या, वेदध्ययन आदिमें	**आदिभिः**	-	आदिसे
			श्रीधर	-	भगवान् लक्ष्मी निवासके
परिश्रमः	-	परिश्रम करना	**पादपद्मयोः**	-	चरण कमलोंकी
यशः श्रियां	-	यश और धन	**अविस्मृतिः**	-	विस्मृति नहीं होती
एव परः	-	हीके परायण (देने वाले) हैं,			॥ ५३ ॥

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च ।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं
ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥ ५४ ॥

अविस्मृतिः कृष्ण पदारविन्दयोः क्षिणोति अभद्राणि शमं तनोति च सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्म भक्तिं ज्ञानं च विज्ञान विराग युक्तम् ॥ ५४ ॥

कृष्ण	-	श्रीकृष्णके	**सत्त्वस्य शुद्धिं**	-	अन्तःकरणकी शुद्धि,
पदारविन्दयोः	-	चरणारविन्दोंकी	**परमात्म भक्तिं**	-	परमात्माकी भक्ति,
अविस्मृतिः	-	विस्मृति न होना (अविचल)	**च विज्ञान**	-	एवं विज्ञान,
			विरागयुक्तं	-	वैराग्य युक्त
अभद्राणि	-	अमंगलों (पापों) को	**ज्ञानं तनोति**	-	ज्ञानका विस्तार करती है
क्षिणोति	-	नष्ट कर देती है			॥ ५४ ॥
च शमं	-	तथा शान्ति,			

यूयं द्विजाग्र्या बत भूरिभागा
यच्छश्वदात्मन्यखिलात्मभूतम् ।
नारायणं देवमदेवमीश-
मजस्त्रभावा भजताविवेश्य ॥ ५५ ॥

यूयं द्विज अग्र्या बत भूरिभागा यत् शश्वत् आत्मनि अखिल आत्मभूतं नारायणं देवं अदेवं ईशं अजस्र भावा भजत आविवेश्य ॥ ५५ ॥

द्विज अग्र्या	- विप्रवरो !	**अखिल**	- सबके
बत यूयं	- अहो, आप लोग	**आत्मभूतं**	- आत्मस्वरूप
भूरिभागा	- बड़ भागी हैं	**देवं नारायणं**	- सर्वाराध्य नारायणमें
यत्	- क्योंकि	**आत्मनि आविवेश्य**	- चित्त प्रविष्ट करके
अदेवं ईशं	- जिनका कोई देवता (प्रकाशक एवं आराध्य) नहीं उन सर्वेश्वर	**शश्वत्**	- निरन्तर
		अजस्रभावा	- अखण्डभावसे
		भजत	- भजन करते हैं ।५५।

अहं च संस्मारित आत्मतत्त्वं
श्रुतं पुरा मे परमर्षिवक्त्रात् ।
प्रायोपवेशे नृपतेः परीक्षितः
सदस्यृषीणां महतां च शृण्वताम् ॥ ५६ ॥

अहं च संस्मारित आत्मतत्त्वं श्रुतं पुरा मे परमर्षि वक्त्रात् प्रायोपवेशे नृपतेः परीक्षितः सदसियृऋषीणां महतां च शृण्वताम् ॥ ५६ ॥

नृपतेः	- राजा	**शृण्वतां**	- सुनते हुए
परीक्षितः	- परीक्षितके	**परमर्षि-**	- परमर्षि शुकदेवजीके
प्रायोपवेशे	- आमरण अनशनके समय	**वक्त्रात्**	मुखसे
ऋषीणां सदसि	- ऋषियोंकी सभामें	**पुरा मे**	- पहिले मेरे
महतां च	- उन महात्माओंके भी	**श्रुतं आत्मतत्त्वं**	- सुने हुए आत्मतत्त्वको
		अहं च	- मुझे भी (आप लोगोंने)
		संस्मारित	- स्मरण करा दिया ।।५६।।

एतद्वः कथितं विप्राः कथनीयोरुकर्मणः ।
माहात्म्यं वासुदेवस्य सर्वाशुभविनाशनम् ॥ ५७ ॥

एतत् वः कथितं विप्राः कथनीय उरुकर्मणः माहात्म्यं वासुदेवस्य सर्व अशुभ विनाशनम् ॥ ५७ ॥

विप्राः	- ब्राह्मणों !	**उरुकर्मणः**	- अनन्त कर्मा
एतत्	- यह	**वासुदेवस्य**	- भगवान वासुदेवकी
सर्व अशुभ	- समस्त अशुभ (संकारों) को	**माहात्म्यं**	- महिमा
विनाशनं	- विनाश करने वाली	**वः कथितं**	- आप लोगोंसे कही
कथनीय	- वर्णन करने योग्य	॥ ५७ ॥	

य एवं श्रावयेन्नित्यं यामक्षणमनन्यधीः ।
श्रद्धावान् योऽनुशृणुयात् पुनात्यात्मानमेव सः ॥ ५८ ॥

य एवं श्रावयेत् नित्यं याम क्षणं अनन्यधीः श्रद्धावान् यः अनुशृणुयात् पुनाति आत्मानं एव सः ॥ ५८ ॥

य एवं	- जो इस प्रकार	**नित्यं श्रावयेत्**	- प्रतिदिन सुनाता है
श्रद्धावान्	- श्रद्धालु होकर	**यः अनुशृणुयात्**	- और जो बार-बार सुनता है
यामक्षणं	- एक प्रहर या एक क्षण भी	**सः आत्मानं एव**	- वह अपने को ही
अनन्यधीः	- एकाग्र बुद्धिसे	**पुनाति**	- पवित्र करता है ॥५८॥

द्वादश्यामेकादश्यां वा शृण्वन्नायुष्यवान् भवेत् ।
पठत्यनश्नन् प्रयतस्ततो भवत्यपातकी ॥ ५९ ॥

द्वादश्यां एकादश्यां वा शृणुयात् आयुष्वान् भवेत् पठति अनश्नन् प्रयतः ततः भवति अपातकी ॥ ५९ ॥

द्वादश्यां	- द्वादशीको	**अनश्नन्**	- बिना कुछ खाये
वा एकादश्यां	- अथवा एकादशीको	**प्रयतः**	- एकाग्र होकर
शृणुयात्	- श्रवण करके	**पठति**	- जो पाठ करता है
आयुष्वान	- दीर्घायुवाला	**ततः अपातकी**	- फिर (वह) निष्पाप
भवेत्	- होजाता है,	**भवति**	- हो जाता है ॥ ५९ ॥

पुष्करे मथुरायां च द्वारवत्यां यतात्मवान् ।
उपोष्य संहितामेतां पठित्वा मुच्यते भयात् ॥ ६० ॥

पुष्करे मथुरायां च द्वारवत्यां यत् आत्मवान् उपोष्य संहितां एतां पठित्वा मुच्यते भयात् ॥ ६० ॥

पुष्करे	- पुष्कर क्षेत्रमें,	**उपोष्य**	- उपवास करके
मथुरायां	- मथुरामें,	**एतां संहितां**	- इस (भागवत) संहिताका
च द्वारवत्यां	- तथा द्वारिकामें	**पठित्वा**	- पाठ करके
यत् आत्मवान्	- इन्द्रिय संयमपूर्वक	**भयात्**	- (मनुष्य) सब भयोंसे
		मुच्यते	- छूट जाता है ॥ ६० ॥

देवता मुनयः सिद्धाः पितरो मनवो नृपाः ।
यच्छन्ति कामान् गृणतः शृण्वतो यस्य कीर्तनात् ॥ ६१ ॥

देवता मुनयः सिद्धाः पितरः मनवः नृपाः यच्छन्ति कामान् गृणतः शृण्वतः यस्य कीर्तनात् ॥ ६१ ॥

यस्य	- जिस (भागवत) के	**सिद्धाः पितरः**	- सिद्ध, पितृगण,
कीर्तनात्	- कीर्तन करनेसे,	**मनवः नृपाः**	- मनु और राजा लोग
गृणतः	- पाठ करनेसे,	**कामान्**	- अभिलाषायें
शृण्वतः	- श्रवण करनेसे	**यच्छन्ति**	- प्रदान करते हैं ॥६१॥
देवता मुनयः	- देवता, मुनिगण,		

ऋचो यजूंषि सामानि द्विजोऽधीत्यानुविन्दते ।
मधुकुल्या घृतकुल्याः पयः कुल्याश्च तत्फलम् ॥ ६२ ॥

ऋचः यजूंषि सामानि द्विजः अधीत्य अनुविन्दते मधुकुल्या घृतकुल्याः पयः कुल्याः च तत् फलम् ॥ ६२ ॥

ऋचः - ऋग्वेद,
यजूंषि - यजुर्वेद
सामानि - सामवेदका
अधीत्य द्विजः - अध्ययन करके ब्राह्मण
मधुकुल्या - मधुकुल्या,
घृतकुल्या - घृतकुल्या,
पयः कुल्याः - पयः कुल्या (मधु, घी एवं दूधकी नदियां परलोकमें)
विन्दते - प्राप्त करता है,
तत् फलं - वह फल (भागवतसे पाता है ।) ॥ ६२ ॥

पुराणसंहितामेतामधीत्य प्रयतो द्विजः ।
प्रोक्तं भगवता यत्तु तत्पदं परमं व्रजेत् ॥ ६३ ॥

पुराण संहितां एतां अधीत्य प्रयतः द्विजः प्रोक्तं भगवता यत् तु तत् पदं परमं व्रजेत् ॥ ६३ ॥

द्विजः - ब्राह्मण
एतां - इस (भागवत)
पुराण संहितां - पुराण संहिताका
प्रयतः - संयमपूर्वक
अधीत्य - अध्ययन करके
यत् तु भगवता - जिसका तो भगवानने
प्रोक्तं - वर्णन किया है,
तत् परमं पदं - उस परमपदको
व्रजेत् - जाता है ॥ ६३ ॥

विप्रोऽधीत्याप्नुयात् प्रज्ञां राजन्योदधिमेखलाम् ।
वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुद्ध्येत पातकात् ॥ ६ ॥

विप्रः अधीत्य आप्नुयात् प्रज्ञां राजन्यः उदधि मेखलां वैश्यः निधि पतित्वं च शूद्रः शुद्ध्येत् पातकात् ॥ ६४ ॥

विप्रः अधीत्य - ब्राह्मण (इसका) अध्ययन करके
प्रज्ञां - निर्मल प्रतिभा,
राजन्यः - क्षत्रिय
उदधि मेखलां - समुद्रसे घिरा भूमण्डल,
वैश्यः - वैश्य
निधि पतित्वं - कुबेरका पद
आप्नुयात् - प्राप्त करता है और
शूद्रः - शूद्र
पातकात् - पापोंसे
शुद्ध्येत् - शुद्ध होजाता है ॥६४॥

कलिमलसंहतिकालनोऽखिलेशो
हरिरितरत्र न गीयते ह्यभीक्ष्णम् ।
इह तु पुनर्भगवानशेषमूर्तिः
परिपठितोऽनुपदं कथाप्रसंगैः ॥ ६५ ॥

कलिमल संहति कालनः अखिलेशः हरिः इतर अत्र न गीयते हि अभीक्ष्णं इह तु पुनः भगवान् अशेष मूर्तिः परिपठितः अनुपदं कथा प्रसंगैः ॥ ६५ ॥

कलिमल - कलियुगके दोषोंकी
संहति - राशिको
कालनः - नाश करनेवाले
अखिलेशः - सर्वेश्वर
हरिः - श्रीहरि
अत्र इतर - इस (भागवत) से भिन्न कहीं
हि अभीक्ष्णं - क्योंकि निरन्तर
न गीयते - नहीं वर्णित होते,
इह तु - यहां (इस पुराणमें) तो
अशेष मूर्तिः - सर्वस्वरूप
भगवान् - भगवान
कथा प्रसंगैः - कथा-प्रसंगों द्वारा
अनुपदं - प्रत्येक पदमें
पुनः- - बार-बार वर्णित हुए हैं
परिपठितः ॥ ६५ ॥

तमहमजमनन्तमात्मतत्त्वं
जगदुदयस्थितिसंयमात्मशक्तिम् ।
द्युपतिभिरजशक्रशंकराद्यै
र्दुरवसितस्तवमच्युतं नतोऽस्मि ॥ ६६ ॥

तं अहं अजं अनन्तं आत्मतत्त्वं जगत् उदय स्थिति संयम आत्मशक्तिं द्युपतिभिः अज शक्र शंकराद्यैः दुरवसित स्तवं अच्युतं नतः अस्मि ॥ ६६ ॥

अजं	- अजन्मा,	**अज शक्र-**	- ब्रह्मा, इन्द्र, शिव आदि
अनन्तं	- अनन्त,	**शंकर आद्यैः**	
आत्मतत्त्वं	- आत्मतत्त्व,	**द्युपतिभिः**	- स्वर्गाधिपतियों द्वारा भी
जगत्	- विश्वकी	**स्तवं**	- (जिनकी) स्तुति
उदय स्थिति-	- सृष्टि, स्थिति, प्रलयकी	**दुरवसित**	- ठीक नहीं होपाती
संयम		**तं अच्युतं**	- उन अच्युतको
आत्म शक्ति	- अपनी शक्तियों युक्त,	**अहं नतः-**	- मैं नमस्कार करता हूँ
		अस्मि	॥ ६६ ॥

उपचितनवशक्तिभिः स्व आत्म-
न्युपरचितस्थिरजंगमालयाय ।
भगवत उपलब्धिमात्रधाम्ने
सुरऋषभाय नमः सनातनाय ॥ ६७ ॥

उपचित नव शक्तिभिः स्व आत्मनि उपरचित स्थिर जंगम आलयाय भगवत उपलब्धिमात्र धाम्ने सुर ऋषभाय नमः सनातनाय ॥ ६७ ॥

नव शक्तिभिः	- (प्रकृति आदि) नव शक्तियों द्वारा	**उपरचित**	- निर्मित सा करके (स्वयं)
		उपलब्धिमात्र	- अनुभवमात्र
आत्मनि	- अपने भीतर	**धाम्ने**	- स्वरूपवाले
स्थिर जंगम	- स्थावर-जंगम	**सुर ऋषभाय**	- देव श्रेष्ठ
आलयाय	- निवास (जगत)	**सनातनाय**	- अविनाशी पुरुषको
उपचित	- कल्पित रूपसे	**नमः**	- नमस्कार ॥ ६७ ॥

स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावो-
ऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं
तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ॥ ६८ ॥

स्वसुख निभृत चेताः तत् व्युदस्त अन्यभावः अपि अजित रुचिर लीला आकृष्ट सारः तदीयं व्यतनुत कृपया यः तत्त्वदीपं पुराणं तं अखिल वृजिनघ्नं व्यास सूनुं नतः अस्मि ॥ ६८ ॥

स्वसुख	- आत्मानन्दमें	**कृपया यः**	- फिर कृपापूर्वक जिन्होंने
निभृतचेताः	- निमग्न चित्त	**तत्त्वदीपं**	- तत्त्वके प्रकाशक
तत् अन्यभावः	- होनेसे अन्य (भेद) का भाव	**पुराणं**	- इस (भागवत) पुराणका
		व्यतनुत	- विस्तार किया
व्युदस्त	- निरस्त हो भाव जाने	**तं अखिल**	- उन समस्त
अपि	- पर भी	**वृजिनघ्नं**	- पाप-नाशक
अजित	- भगवान अजितकी	**व्याससूनुं**	- व्यास-नन्दन शुकदेवजीको
रुचिर लीला	- मनोहर लीलाओंसे	**नतः अस्मि**	- नमस्कार करता हूँ ॥ ६८ ॥
तदीयं	- उनका		
आकृष्ट सारः	- अन्तःकरण आकर्षित होगया		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे द्वादशस्कन्धार्थनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

सूत उवाच-

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥

यं ब्रह्मा वरुण इन्द्र रुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः वेदैः साङ्ग पदक्रम उपनिषदैः गायन्ति यं सामगाः ध्यान अवस्थित तत् गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः यस्य अन्तं न विदुः सुर असुर गणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥

ब्रह्मा वरुण	- ब्रह्मा, वरुण,
इन्द्र रुद्र	- इन्द्र, रुद्र,
मरुतः	- मरुद्गण
दिव्यैः स्तवैः	- दिव्य स्तोत्रोंसे
यं स्तुन्वन्ति	- जिनकी स्तुति करते हैं,
सामगाः	- सामगान करने वाले (ऋषि)
साङ्गवेदैः	- वेदके अंगों,
पदक्रम	- पद, क्रम,
उपनिषदैः	- उपनिषदों द्वारा
यं गायन्ति	- जिनका गान करते हैं
योगिनः	- योगी लोग
ध्यान अवस्थित	- ध्यानमें स्थित
तत् गतेन-मनसा	उनमें लगे चित्तसे
यं ध्यायन्ति	- जिनका ध्यान करते हैं
सुर असुर गणा	- देवता तथा असुर लोग
यस्य अन्तं	- जिनकी महिमाका अन्त
न विदुः	- नहीं जानते
तस्मै देवाय नमः	- उन परमाराध्यको नमस्कार ॥ १ ॥

पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयना-
न्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पान्तु वः ।

यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद् वेलानिभेनाम्भसां
यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति ॥ २ ॥

पृष्ठे भ्राम्यत् अमन्द मन्दर गिरि ग्रावाग्र कण्डूयनात् निद्रालोः कमठ आकृतेः भगवतः श्वास अनिलाः पान्तु वः यत् संस्कार कला अनुवर्तनवशात् वेला निभेन अम्भसां यात आयातं अतन्द्रितं जलनिधेः न अद्य अपि विश्राम्यति ॥ २ ॥

अमन्द - बिना शिथिल हुए
मन्दर गिरि - मन्दराचलके
पृष्ठे भ्राम्यत् - पीठपर घूमनेसे
ग्रावाग्र - पीठके अगले भागके
कण्डूयनात् - खुजलाये जानेसे
निद्रालोः - ऊँघते हुए
कमठ आकृतेः - कच्छप रूप धारी
भगवतः - भगवानकी
श्वासानिलाः - (वह) श्वास वायु
वः पान्तु - आप सबकी रक्षा करे

यत् संस्कार- जिसके अंशमात्र
कला संस्कारका
अनुवर्तन - अनुकरण
वशात् - करनेके कारण
वेला निभेन - तटके समीप तक
अम्भसां - जलके
यात आयातं - जाने-आनेमें
अतन्द्रितं - अविराम लगा
जलनिधेः - समुद्र
अद्य अपि - अब तक भी
विश्राम्यति न - विश्राम नहीं करता ॥२॥

पुराणसंख्यासम्भूतिमस्य वाच्यप्रयोजने ।
दानं दानस्य माहात्म्यं पाठादेश्च निबोधत ॥ ३ ॥

पुराण संख्या सम्भूतिं अस्य वाच्य प्रयोजने दानं दानस्य माहात्म्यं पाठादेः च निबोधत ॥ ३ ॥

पुराण संख्या - पुराणोंकी (श्लोक) संख्या,
सम्भूतिं - उनका जोड़
अस्य - इस (भागवत)के
वाच्य प्रयोजने - पढ़नेका प्रयोजन,
दानं - (इसके) दानकी विधि
दानस्य - दानकी तथा
पाठादेः च - पाठ करने मात्रकी
माहात्म्यं - महिमा
निबोधत - सुनिये ॥ ३ ॥

ब्राह्मं दशसहस्त्राणि पाद्मं पञ्चोनषष्टि च ।
श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम् ॥ ४ ॥

ब्राह्मं दश सहस्त्राणि पाद्मं पञ्च अनषष्टि च श्री वैष्णवं त्रयः विंशति चतुः विंशति शैवकम् ॥ ४ ॥

ब्राह्मं	- ब्रह्मपुराण	**श्री वैष्णवं**	- श्री विष्णु पुराण
दश सहस्त्राणि	- दस सहस्त्र श्लोकका है	**त्रयः विंशति**	- तेईस सहस्त्र श्लोकका
पाद्मं	- पद्मपुराण	**च शैवकं**	- तथा शिवपुराण
पञ्च अन	- पांचकम	**चतुर्विंशति**	- चौबीस सहस्त्र श्लोकों का
षष्टि	- साठ (पचपन हजार) का,		है ॥ ४ ॥

दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पञ्चविंशतिः ।
मार्कण्डं नव वाह्नं च दशपञ्च चतुःशतम् ॥ ५ ॥

दश अष्टी श्रीभागवतं नारदं पञ्च विंशतिः मार्कण्डं नव वाह्नं च दशपञ्च चतुः शतम् ॥ ५ ॥

श्री भागवतं	- श्रीमद्भागवत	**मार्कण्डं**	- मार्कण्डेय पुराण
दश अष्टौ	- अठारह सहस्त्र श्लोकका	**नव**	- नौ सहस्त्र श्लोकका
नारदं	- नारदीय पुराण	**च वाह्नं**	- तथा अग्नि पुराण
पञ्चविंशतिः	- पच्चीस सहस्त्र श्लोकका	**दशपञ्च**	- पन्द्रह सहस्त्र
		चतुः शतं	- चार सौ श्लोकोंका है ॥ ५ ॥

चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा पञ्चशतानि च ।
दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्तं लिङ्गमेकादशैव तु ॥ ६ ॥

चतुर्दश भविष्यं स्यात् तथा पञ्च शतानि च दश अष्टौ ब्रह्म वैवर्तं लिंगं एकादश एव तु ॥ ६ ॥

भविष्यं - भविष्य पुराण
चतुर्दश - चौदह सहस्र
तथा च - और
पञ्चशतानि - पांच सौ श्लोकोंका,
ब्रह्मवैवर्तं - ब्रह्मवैवर्त पुराण
दश अष्टौ - अठारह सहस्र श्लोकका,
लिङ्ग तु - लिंग पुराण तो
एकादश एव - ग्यारह सहस्र ही श्लोकोंका है ॥ ६ ॥

चतुर्विंशति वाराहमेकाशीतिसहस्त्रकम् ।
स्कान्दं शतं तथा चैकं वामनं दश कीर्तितम् ॥ ७ ॥

चतुर्विंशति वाराहं एकाशीति सहस्त्रकं स्कान्दं शतं तथा च एकं वामनं दश कीर्तितम् ॥ ७ ॥

वाराहं - वाराह पुराण
चतुर्विंशति - चौबीस सहस्र श्लोकका
स्कान्दं - स्कन्दपुराण
एक अशीति - इक्यासी
सहस्त्रकं - सहस्र
शतं - सौ श्लोकों की है,
वामनं - वामन पुराण
दश कीर्तितं - दस सहस्र श्लोकोंका कहा गया है ॥ ७ ॥

कौर्मं सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तत्तु चतुर्दश ।
एकोनविंशत्सौपर्णं ब्रह्माण्डं द्वादशैव तु ॥ ८ ॥

कौर्मं सप्तदश आख्यातं मात्स्यं तत् तु चतुर्दश एक अनविंशत् सौपर्णं ब्रह्माण्डं द्वादश एव तु ॥ ८ ॥

कौर्मं - कूर्म पुराण
सप्तदश- - सत्रह हजार
आख्यातं श्लोकोंका प्रसिद्ध है,
तत् मात्स्यं तु - वह मत्स्यपुराण तो
चतुर्दश - चौदह सहस्र श्लोकोंका,
सौपर्णं - गरुड़पुराण
एक अन- - उन्नीस सहस्र श्लोकोंका
विंशत्
ब्रह्माण्डं तु - ब्रह्माण्ड पुराण तो
द्वादश एव - बारह सहस्र श्लोकोंका ही है ॥ ८ ॥

एवं पुराणसन्दोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः ।
तत्राष्टादशसाहस्त्रं श्रीभागवतमिष्यते ॥ ९ ॥

एवं पुराण संदोहः चतुःलक्ष उदाहृतः तत्र अष्टादश साहस्त्रं श्री भागवतं इष्यते ॥ ९ ॥

एवं पुराण	-	इस प्रकार पुराणोंकी	**तत्र**	-	उसमें
संदोहः	-	निचोड़ (टोटल) श्लोक संख्या	**अष्टादश**	-	अठारह
			साहस्त्रं	-	सहस्त्र श्लोकोंका
चतुः लक्ष	-	चार लाख	**श्रीभागवतं**	-	श्रीमद्भागवत
उदाहृतः	-	कही गयी है,	**इष्यते**	-	कहा जा चुका है ॥९॥

इदं भगवता पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपंकजे ।
स्थिताय भवभीताय कारुण्यात सम्प्रकाशितम ॥ १० ॥

इदं भगवता पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपंकजे स्थिताय भव भीताय कारुण्यात् सम्प्रकाशितम् ॥ १० ॥

इदं भगवता	-	इस भागवतको	**भव भीताय**	-	संसारसे भयभीत
पूर्वं	-	पहिले	**ब्रह्मणे**	-	ब्रह्माजीको (नारायण) ने
नाभिपंकजे	-	अपने नाभिकमलपर	**सम्प्रकाशितं**	-	प्रकाशित (प्रदान) किया ॥ १० ॥
स्थिताय	-	बैठे हुए			

आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम् ।
हरिलीलाकथाव्रातामृतानन्दितसत्सुरम् ॥ ११ ॥

आदि मध्य अवसानेषु वैराग्य आख्यान संयुतं हरिलीला कथा व्रात अमृत आनन्दित सत् सुरम् ॥ ११ ॥

आदि मध्य - आरम्भ, मध्य तथा
अवसानेषु - अन्तमें
वैराग्य आख्यान- वैराग्यप्रद कथाओंसे
संयुतं - युक्त
सत् सुरं - संतों एवं देवताओंको
अमृत- - अमृतके समान
आनन्दित आनन्ददायी
हरिलीला - श्रीहरिकी लीला
कथा व्रात - कथाओंसे सुशोभित है ॥ ११ ॥

सर्ववेदान्तसारं यद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥ १२ ॥

सर्व वेदान्त सारं यत् ब्रह्म आत्म एकत्व लक्षणं वस्तु अद्वितीयं तत् निष्ठं कैवल्य एक प्रयोजनम् ॥ १२ ॥

सर्व वेदान्त - सब वेदान्तोंका
सारं यत् - सार जो
ब्रह्म आत्म - ब्रह्म और आत्माकी
एकत्व लक्षणं - एकता स्वरूप
अद्वितीयं वस्तु - अद्वितीय तत्त्व है
तत् निष्ठं - उसका प्रतिपादन करने वाला (यह ग्रन्थ) है
कैवल्य एक - (इसका) एकमात्र कैवल्य (मोक्ष)
प्रयोजनं - प्रयोजन है ॥ १२ ॥

प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम् ।
ददाति यो भागवतं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥

प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंह समन्वितं ददाति यः भागवतं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥

प्रौष्ठपद्यां - भाद्रपद मासकी
पौर्णमास्यां - पूर्णिमाको
हेमसिंह - स्वर्णके बने सिंहके
समन्वितं - साथ
यः भागवतं - जो भागवतका
ददाति - दान करता है
स परमां गतिं- वह परमपद
याति - पहुँचता है ॥ १३ ॥

राजन्ते तावदन्यानि पुराणानि सतां गणे ।
यावन्न दृश्यते साक्षाच्छ्रीमद्भागवतं परम् ॥ १४ ॥

राजन्ते तावत् अन्यानि पुराणानि सतां गणे यावत् न दृश्यते साक्षात् श्रीमद्भागवतं परम् ॥ १४ ॥

सतां गणे - सत्पुरुषंके समूहमें
तावत् अन्यानि - तबतक दूसरे
पुराणानि - पुराण
राजन्ते - शोभित् होते हैं
यावत् परं - जब तक सर्वश्रेष्ठ
श्रीमद्भागवतं - श्रीमद्भागवत
न दृश्यते - नहीं दीखता ॥ १४ ॥

सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवतमिष्यते ।
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥ १५ ॥

सर्व वेदान्त सारं हि श्रीभागवतं इष्यते तत् रस अमृत तृप्तस्य न अन्यत्र स्यात् रतिः क्वचित् ॥ १५ ॥

हि सर्ववेदान्त - क्योंकि सम्पूर्ण वेदान्तका
सारं श्रीभागवतं - सार श्रीमद्भागवतमें
इष्यते - कहा गया है (अतः)
तत् रस अमृत - उसके रसरूप अमृतसे
तृप्तस्य - तृप्त हुए की
क्वचित् - कभी भी
अन्यत्र रतिः - और कहीं प्रीति नहीं
न स्यात् होती ॥ १५ ॥

निम्नगानां यथा गंगा देवानामच्युतो यथा ।
वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा ॥ १६ ॥

निम्नगानां यथा गंगा देवानां अच्युतः यथा वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानां इदं तथा ॥ १६ ॥

निम्नगानां - नदियोंमें
यथा गंगा - जैसे गंगाजी,
देवानां यथा - देवताओंमें जैसे
अच्युतः - अच्युत,
वैष्णवानां - विष्णुभक्तोंमें
यथा शम्भुः - जैसे शंकरजी (सर्वश्रेष्ठ हैं)
पुराणानां - पुराणोंमें
तथा इदं - वैसे यह (सर्वश्रेष्ठ) है ॥ १६ ॥

क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा ।
तथा पुराणव्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः ॥ १७ ॥

क्षेत्राणां च एव सर्वेषां यथा काशी हि अनुत्तमा तथा पुराण व्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः ॥ १७ ॥

द्विजाः - विप्रवरो !
हि सर्वेषां एव - क्योंकि जैसे सभी ही
क्षेत्राणां च - तीर्थोंमें ही
काशी अनुत्तमा - काशी सर्वोत्तम है,
तथा पुराण - वैसे ही पुराण समूहमें
व्रातानां
श्रीमद्भागवतं - श्रीमद्भागवत (सर्वोत्तम) है ॥ १७ ॥

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ।
तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं
तच्छृण्वन् विपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥ १८ ॥

श्रीमद्भागवतं पुराणं अमलं यत् वैष्णवानां प्रियं यस्मिन् पारमहंस्यं एकं अमलं ज्ञानं परं गीयते तत्र ज्ञान विराग भक्ति सहितं नैष्कर्म्यं आविष्कृतं तत् शृण्वन् विपठन् विचारण परः भक्त्या विमुच्येत् नरः ॥ १८ ॥

यत् वैष्णवानां - जो भगवद्भक्तोंका
प्रियं - प्रिय है (वह)
श्रीमद्भागवतं - श्रीमद्भागवत
पुराणं अमलं - पुराण निर्मल है,
यस्मिन् - जिसमें
पारमहंस्यं - (जीवन्मुक्त) परमहंसोंके
एकं अमलं - एकमात्र निर्मल
परं ज्ञानं - सर्वश्रेष्ठ ज्ञानका
गीयते - वर्णन है,
तत्र ज्ञान - उसमें ज्ञान,
विराग भक्ति - वैराग्य, भक्तिसे
सहितं - युक्त
नैष्कर्म्यं - (मोक्ष) निष्कर्मावस्था को
आविष्कृतं - प्रकट किया गया है,
तत् शृण्वन् - अतः उसको सुनकर,
विपठन् - विशेष अध्ययन एवं
विचारण परः - मनन परायण
नरः - मनुष्य
भक्त्या - भक्तिके द्वारा
विमुच्येत् - मुक्त होजाता है ॥१८॥

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ।
योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्रातायकारुण्यत-
स्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि ॥ १९ ॥

कस्मै येन विभासितः अयं अतुलः ज्ञानप्रदीपः पुरा तत् रुपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तत् रूपिणा योगीन्द्राय तत् आत्मनाथ भगवद् रताय कारुण्यतः तत् शुद्धं विमलं विशोकं अमृतं सत्यं परं धीमहि ॥ १९ ॥

अयं अतुलः - यह अतुलनीय
ज्ञान प्रदीपः - ज्ञान रूपी दीपकसे
पुरा येन - पहिले जिन्होंने
कस्मै विभासितः - ब्रह्माजीको प्रकाशित किया
तत् रूपेण च - फिर उसी (ब्रह्मा) रूपसे ही
तत् योगीन्द्राय - उस (व्यास) रूपसे योगीन्द्र शुकदेवजीको,
आत्मनाथ - फिर जिनके वही स्वामी थे उन (शुकदेवजी) ने
कारुण्यतः - करुणावश
भगवद् रताय - विष्णुरात परीक्षितको दिया
तत् शुद्धं - उन परमशुद्ध,

मुनये नारदाय - मुनि (देवर्षि) नारदको,
तत् रूपिणा - फिर उसी (नारद) रूपसे
कृष्णाय - कृष्णद्वैपायन व्यासजीको
विमलं विशोकं - निर्मल, शोकहीन,
अमृतं - अमृत स्वरूप
परं सत्यं - परम सत्यका
धीमहि - हम ध्यान करते हैं ॥ १९ ॥

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे ।
य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे ॥ २० ॥

नमः तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे ॥ २० ॥

तस्मै साक्षिणे - उन सर्वसाक्षी
भगवते - भगवान
वासुदेवाय - वासुदेवको
नमः - नमस्कार
यः मुमुक्षवे - जिन्होंने मोक्षकी इच्छा वाले
कस्मै इदं - ब्रह्माजीको इस (पुराण) का
व्याचचक्षे - उपदेश किया ॥ २० ॥

योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे ।
संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत् ॥ २१ ॥

योगीन्द्राय नमः तस्मै शुकाय ब्रह्म रूपिणे संसारसर्प दष्टं यः विष्णुरातं अमूमुचत् ॥ २१ ॥

ब्रह्मरूपिणे - ब्रह्मस्वरूप
तस्मै योगीन्द्राय - उन योगीन्द्र
शुकाय नमः - शुकदेवजीको नमस्कार
यः संसार - जिन्होंने संसार रूपी
सर्पदष्टं सर्पसे डंसे गये
विष्णुरातं - परीक्षितको
अमूमुचत् - मुक्त कर दिया ॥२१॥

भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते ।
तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो ॥ २२ ॥

भवे भवे यथा भक्तिः पादयोः तव जायते तथा कुरुष्व देवेश नाथः त्वं नः यतः प्रभो ॥ २२ ॥

देवेश प्रभो - देवेश्वर स्वामी !
यतः त्वं - क्योंकि आप
नः नाथः - हमारे स्वामी हैं,
यथा तव- - जैस आपके चरणोंमें
पादयोः

भवे भवे - जन्म-जन्ममें
भक्तिः जायते - भक्ति उत्पन्न होती रहे,
तथा कुरुष्व - वैसी (कृपा) कीजिए
॥ २२ ॥

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥ २३ ॥

नाम संकीर्तनं यस्य सर्व पाप प्रणाशनं प्रणामः दुःख शमनः तं नमामि हरिं परम् ॥ २३ ॥

यस्य - जिनका
नाम संकीर्तनं - नाम-संकीर्तन
सर्व पाप - समस्त पापोंका
प्रणाशनं - नष्ट करने वाला है

दुःख शमनः - (उन) दुःखोंके नाशक को
प्रणामः - हम प्रणाम करते हैं,
तं परं - उन परमपुरुष
हरिं नमामि - श्रीहरिको हम नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्त्र्यां पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ इति द्वादशः स्कन्धः सम्पूर्णः ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ माहात्म्य ॥

माहात्म्योंके सम्बन्धमें

तेन इयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः

(माहात्म्य ३-३-६२)

श्रीमद्भागवत श्रीहरिकी प्रत्यक्ष वाणी रूप मूर्ति है ।

पहिला माहात्म्य- श्रीमद्भागवत ग्रन्थको घरमें रखने तथा ग्रन्थकी पूजा, सम्मान-सत्कारका माहात्म्य है ।

यह कल्याणके भागवतांकके प्रारम्भमें कहा गया है ।

दूसरा माहात्म्य- अद्भुत है (यह श्रीमद्भागवतके पाठ, श्रवण आदिका माहात्म्य है ।

इसमें कहा गया है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेशको भी भागवतके आश्रयसे ही अपनी श्रेष्ठतम शक्ति प्राप्त हुई)

गीताप्रेसकी प्रतिमें यह अन्त (बारहों स्कन्धके बाद) में दिया है ।

तीसरा माहात्म्य- समाजमें यही सबसे अधिक प्रचलित है, किन्तु मुख्य रूपसे यह श्रीमद्भागवतके सप्ताह-श्रवणका माहात्म्य है)

गीताप्रेसकी प्रतिमें यह प्रारम्भमें दिया गया है । प्रायः अन्य प्रकाशकोंकी प्रतियोंके प्रारम्भमें भी यही माहात्म्य है ।

इस प्रकार तीनों माहात्म्योंकी अपनी-अपनी विशेषता है ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

[1]

[श्रीभगवान द्वारा ब्रह्माजीको उपदिष्ट]

स्कन्दपुराण, विष्णुखण्ड मार्गशीर्ष,
माहात्म्य अ-१६

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

श्रीभगवानुवाच-

श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं लोक विश्रुतम् ।
शृणुयात् श्रद्धया युक्तः मम सन्तोष कारकम् ॥ १ ॥

श्रीमद्भागवतं नामपुराणं लोक विश्रुतं शृणुयात् श्रद्धया युक्तः मम सन्तोष कारकम् ॥ १ ॥

मम सन्तोष	- मुझे सन्तुष्ट	**नाम पुराणं**	- नामक पुराण
कारकं	- करने वाला	**श्रद्धया युक्तः**	- श्रद्धा सहित
लोक विश्रुतं	- लोक प्रसिद्ध	**शृणुयात्**	- श्रवण करे ॥ १ ॥
श्रीमद्भागवतं	- श्रीमद्भागवत		

नित्यं भागवतं यः तु पुराणं पठते नरः ।
प्रति अक्षरं भवेत् तस्य कपिला दानजं फलम् ॥ २ ॥

नित्यं भागवतं यः तु पुराणं पठते नरः प्रति अक्षरं भवेत् तस्य कपिला दानजं फलं ॥ २ ॥

यः नरः तु	- जो मनुष्य तो	**तस्य प्रति-**	- उसे प्रत्येक अक्षरके
नित्यं	- प्रतिदिन	**अक्षरं**	साथ
भागवतं पुराणं	- श्रीभागवत पुराणका	**कपिला दानजं**	- कपिला गौ के दानसे होने वाला
पठेत्	- पाठ करता है,	**फलं भवेत्**	- फल होता है ॥ २ ॥

श्लोक अर्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवत उद्भवम् ।
पठते शृणुयात् यः तु गोसहस्र फलं लभेत् ॥ ३ ॥

श्लोक अर्धं श्लोक पादं वा नित्यं भागवत उद्भवम् पठते शृणुयात् यः तु गो सहस्र फलं लभेत ॥ ३ ॥

भागवत उद्भवं	- भागवतसे उत्पन्न (याद किया)	**पठते**	- पढ़ता है या
श्लोक अर्धं	- आधा श्लोक	**शृणुयात्**	- सुनता है,
वा श्लोक पादं	- अथवा चौथाई श्लोक	**गो सहस्र**	- सहस्र गोदानका
यः तु नित्यं	- जो तो प्रतिदिन	**फलं लभेत्**	- फल पाता है ॥ ३ ॥

यः पठेत् प्रयतः नित्यं श्लोकं भागवतं सुत ।
अष्टादश पुराणानां फलं आप्नोति मानवः ॥ ४ ॥

यः पठेत् प्रयतः नित्यं श्लोकं भागवतं सुत अष्टादश पुराणानां फलं आप्नोति मानवः ॥ ४ ॥

सुत	- पुत्र !	**अष्टादश**	- अठारहों
यः प्रयतः नित्यं		**पुराणानां**	- पुराणोंके (पाठका)
भागवतं श्लोकं	- भागवतके श्लोकका	**फलं आप्नोति**	- फल पाता है ॥ ४ ॥
पठेत्	- पाठ करता है		
मानवः	- (वह) मनुष्य		

नित्यं मम कथा यत्र तत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः ।
कलि बाह्याः नराः ते वै ये अर्चयन्ति सदा मम ॥ ५ ॥

नित्यं मम कथा यत्र तत्र तिष्ठान्ति वैष्णवाः कलि बाह्याः नराः ते वै ये अर्चयन्ति सदा मम ॥ ५ ॥

यत्र नित्यं	- जहां प्रतिदिन	**वै ते नराः**	- निश्चय वे मनुष्य
मम कथा	- मेरी कथा होती है,	**ये मम-**	- जो मेरी पूजा करते हैं
वैष्णवाः	- वैष्णव (भक्त)	**अर्चयन्ति**	
तत्र तिष्ठन्ति	- वहीं रहते हैं,	**कलि बाह्याः**	- कलियुगके (शासनसे) बाहर हैं ॥ ५ ॥

वैष्णवानां तु शास्त्राणि ये अर्चयन्ति गृहे नराः ।
सर्वपाप विनिर्मुक्ता भवन्ति सुखन्दिताः ॥ ६ ॥

वैष्णवानां तु शास्त्राणि ये अर्चयन्ति गृहे नराः सर्वपाप विनिर्मुक्ता भवन्ति सुख वन्दिताः ॥

गृहे ये नराः	- अपने घरमें जो मनुष्य	**सर्व पाप**	- (वे) सब पापोंसे
वैष्णवानां	- वैष्णव	**विनिर्मुक्ता**	- छूटकर
शास्त्राणि तु	- शास्त्रोंका तो	**सुखन्दिताः**	- देव वन्दित
अर्चयन्ति	- पूजन करते हैं	**भवन्ति**	- होजाते हैं ॥ ६ ॥

ये अर्चयन्ति गृहे नित्यं शास्त्रं भागवतं कलौ ।
आस्फोटयन्ति वलान्ति तेषां प्रीतः भवामि अहम् ॥ ७ ॥

ये अर्चयन्ति गृहे नित्यं शास्त्रं भागवतं कलौ आस्फोटयन्ति वलान्ति तेषा अहं प्रीतः भवामि ॥ ७ ॥

ये गृहे	- जो अपने घरमें	**वलान्ति**	- कूदते हैं,
नित्यं भागवतं	- प्रतिदिन भागवत	**तेषां अहं**	- उनपर मैं
शास्त्रं अर्चयन्ति	- शास्त्रकी पूजा करते हैं	**प्रीतः भवामि**	- प्रसन्न होता हूँ ॥ ७ ॥
कलौ-	- (वे) कलियुगको ताल		
आस्फोटयन्ति	ठोंकते		

यावत् दिनानि हे पुत्र शास्त्रं भागवतं गृहे ।
तावत् पिबन्ति पितरः क्षीरं सर्पि मधु उदकम् ॥ ८ ॥

यावत् दिनानि हे पुत्र शास्त्रं भागवतं गृहे तावत् पिबन्ति पितरः क्षीरं सर्पि मधु उदकं ॥ ८ ॥

हे पुत्र	- हे पुत्र !	**पितरः**	- (उसके) पितर
यावत् दिनानि	- जितने दिन तक	**क्षीरं सर्पि**	- दूध, घी,
गृहे भागवतं-	- (जिसके) घरमें भागवत	**मधु उदकं**	- मीठा जल
शास्त्रं	शास्त्र (रहता है)	**पिबन्ति**	- पीते हैं ॥ ८ ॥
तावत् दिनानि	- उतने दिन तक		

यच्छन्ति वैष्णवे भक्तया शास्त्रं भागवतं हि ये ।
कल्पकोटि सहस्राणि मम लोके वसन्ति ते ॥ ९ ॥

यच्छन्ति वैष्णवे भक्तया शास्त्रं भागवतं ये हि ते कोटि सहस्त्राणि कल्प मम लोके वसन्ति ॥ ९ ॥

ये हि वैष्णवे	- जो लोग वैष्णवको	**ते कोटि**	- वे करोड़ों
भक्तया	- भक्तिपूर्वक	**सहस्राणि कल्प**	- हजारों कल्पों तक
भागवतं शास्त्रं	- भागवतशास्त्रका	**मम लोके-**	- मेरे लोकमें निवास
यच्छन्ति	- दान करते हैं	**वसन्ति**	करते हैं ॥ ९ ॥

ये अर्चयन्ति सदा गेहे शास्त्रं भागवतं नराः ।
प्रीणिताः तैः च विबुधा यावत् आभूत संप्लवम् ॥ १० ॥

ये अर्चयन्ति सदा गेहे शास्त्रं भागवतं नराः तैः च आभूत संप्लवं यावत् विबुधा प्रीणिताः ॥ १० ॥

ये नराः	- जो मनुष्य	**तैः च**	- उन्होंने तो
गेहे सदा	- अपने घरमें प्रतिदिन	**आभूत संप्लवं**	- तत्त्वोंकी महाप्रलय
भागवतं शास्त्रं	- भागवत शास्त्रकी	**यावत्**	- तकके लिए
अर्चयन्ति	- पूजा करते हैं	**विबुधा प्रीणिताः**	- देवताओंको तृप्त कर दिया ॥ १० ॥

श्लोक अर्धं श्लोक पादं वा वरं वरं भागवतं गृहे ।
शतशः अथ सहस्रैः च किं अन्यैः शास्त्र संगृहैः ॥ ११ ॥

श्लोक अर्धं श्नोक पादं वा वरं वरं भागवतं गृहे शतशः अथ सहस्रैः च किं अन्यैः शास्त्र संगृहैः ॥ ११ ॥

गृहे	- अपने घरमें	**वरं**	- (रहना) श्रेष्ठ है,
भागवतं	- भागवतका	**अन्यैः शतशः**	- दूसरे सैकड़ों
श्लोक अर्धं	- आधा श्लोक	**अथ च सहस्रैः**	- अथवा तो सहस्त्रों
वा श्लोक पादं	- अथवा चौथाई श्लोक	**शास्त्र संग्रहैः**	- शास्त्रोंके संग्रहसे क्या
		किं	लाभ ॥ ११ ॥

न यत्र तिष्ठते शास्त्रं गृहे भागवतं कलौ ।
न तस्य पुरावृत्तिः याम्य पाशात् कदाचन ॥ १२ ॥

न यत्र तिष्ठते शास्त्रं गृहे भागवतं कलौ न तस्य पुरावृत्तिः याम्य पाशात् कदाचन ॥ १२ ॥

कलौ यत्र गृहे	- कलियुगमें जहां घरमें	**तस्य कदाचन**	- उसका कभी भी
भागवतं शास्त्रं	- भागवत शास्त्र	**याम्य पाशात्**	- यमराजके फन्दोंसे
न तिष्ठते	- नहीं रहता है	**पुरावृत्तिः न**	- छुटकारा नहीं होता ॥ १२ ॥

कथं स वैष्णवः ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ ।
गृहे न तिष्ठते यस्य श्वपचात् अधिकः हि सः ॥ १३ ॥

कथं स वैष्णवः ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ गृहे न तिष्ठते यस्य श्वपचात् अधिकः हि सः ॥ १३ ॥

यस्य गृहे	- जिसके घरमें	**कथं ज्ञेयः**	- कैसे जाना जाय
कलौ भागवतं-	- कलियुगमें भागवत	**हि सः**	- क्योंकि वह तो
शास्त्रं	शास्त्र	**श्वपचात्**	- चाण्डालसे भी
न तिष्ठते	- नहीं रहता	**अधिकः**	- अधिक है ॥ १३ ॥
स वैष्णवः	- वह वैष्णव		

सर्वस्वेन अपि लोकेशः कर्तव्यः शास्त्र संग्रहः ।
वैष्णवः तु सदा भक्तया तुष्टि अर्थं मम पुत्रक ॥ १४ ॥

सर्वस्वेन अपि लोकेशः कर्तव्यः शास्त्रः संग्रहः वैष्णवः तु सदा भक्तया तुष्टि अर्थं मम पुत्रक ॥ १४ ॥

पुत्रक लोकेशः	- प्यारे पुत्र लोकेश ब्रह्मा !	**सर्वस्वेन अपि**	- सर्वस्व लगाकर भी
वैष्णवः तु	- वैष्णवको तो	**शास्त्र संग्रहः**	- (भागवत) शास्त्रका संग्रह
भक्तया	- भक्तिपूर्वक	**कर्तव्यः**	- करना चाहिए ॥ १४ ॥
मम तुष्टि अर्थं	- मुझे सन्तुष्ट करनेके लिए		

यत्र यत्र भवेत् पुण्यं शास्त्रं भागवतं कलौ ।
तत्र तत्र सदा एव अहं भवामि त्रिदशैः सह ॥ १५ ॥

यत्र यत्र भवेत् पुण्यं शास्त्रं भागवतं कलौ तत्र तत्र सदा एव अहं भवामि त्रिदशैः सह ॥ १५ ॥

कलौ यत्र यत्र	- कलियुगमें जहां-जहां	**सदा एव तत्र**	- सदा ही वहां वहां
पुण्यं भागवत-शास्त्रं	- पवित्र भागवत शास्त्र	**त्रिदशैः सह**	- देवताओंके साथ
भवेत्	- होता है,	**अहं भवामि**	- मैं रहता हूँ ॥ १५ ॥

तत्र सर्वाणि तीर्थानि नदी नद सरांसि च ।
यज्ञाः सप्तपुरी नित्यं पुण्याः सर्वे शिलोच्चयः ॥ १६ ॥

तत्र सर्वाणि तीर्थानि नदी नद सरांसि च । यज्ञाः सप्तपुरी नित्यं पुण्याः सर्वे शिलोच्चयः ॥ १६ ॥

सर्वाणि तीर्थानि	- सभी तीर्थ	**सर्वे पुण्याः**	- सब पवित्र
नदी नद च	- नदियां, नद तथा	**शिलोच्चयः**	- पर्वत
सरांसि	- सरोवर,	**तत्र नित्यं**	- वहां सदा रहते हैं ॥ १६ ॥
यज्ञाः सप्तपुरी	- यज्ञ, सातों पुरियां,		

श्रोतव्यं मम शास्त्रं हि यशः धर्म जय अर्थिना ।
पाप क्षय अर्थं लोकेश मोक्ष अर्थं धर्म बुद्धिना ॥ १७ ॥

श्रोतव्यं मम शास्त्रं हि यशः धर्म जय अर्थिना पाप क्षय अर्थं लोकेश मोक्ष अर्थं धर्म बुद्धिना ॥ १७ ॥

लोकेश	- लोकेश ब्रह्मा !	**मोक्ष अर्थं**	- तथा मोक्षके लिए
हि यशः धर्म	- क्योंकि यश, धर्म	**धर्म बुद्धिना**	- धर्म समझकर भी
जय अर्थिना	- विजय चाहनेवालोंको,	**मम शास्त्रं**	- मेरे शास्त्र (भागवत) का
पाप क्षय अर्थं	- पाप-नाशके लिए,	**श्रोतव्यं**	- श्रवण करना चाहिए ॥ १७ ॥

श्रीमद्भागवतं पुण्यं आयुः आरोग्य पुष्टिदम् ।
पठनात् श्रवणात् वा अपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १८ ॥

श्रीमद्भागवतं पुण्यं आयुः आरोग्य पुष्टिदम् पठनात् श्रवणात् वा अपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १८ ॥

आयुः आरोग्य	-	दीर्घायु, आरोग्य,	**वा श्रवणात्**	-	अथवा श्रवण करनेसे भी
पुष्टिदं	-	पुष्टिदाता	**अपि**		
पुण्यं श्रीमद्भागवतं	-	पवित्र श्रीमद्भागवतके	**सर्व पापैः**	-	सब पापोंसे
			प्रमुच्यते	-	(मनुष्य) सर्वथा छूट जाता है ॥ १८ ॥
पठनात्	-	पाठ करनेसे			

न शृण्वन्ति न हृष्यन्ति श्रीमद्भागवतं परम् ।
सत्यं सत्यं हि लोकेश तेषां स्वामी सदा यमः ॥ १९ ॥

न शृण्वन्ति न हृष्यन्ति श्रीमद्भागवतं परम् सत्यं सत्यं हि लोकेश तेषां स्वामी सदा यमः ॥ १९ ॥

लोकेश	-	लोकेश ब्रह्मा !	**हि सत्यं सत्यं**	-	क्योंकि (यह बात) परम सत्य है कि
परं श्रीमद्भागवतं	-	सर्वोत्तम श्रीमद्भागवतको	**तेषां सदा**	-	उनका सर्वदाको
शृण्वन्ति न	-	(जो) सुनते नहीं (सुनकर भी जो)	**स्वामी यमः**	-	स्वामी यमराज हैं ॥ १९ ॥
हृष्यन्ति न	-	प्रसन्न नहीं होते			

न गच्छन्ति यदा मर्त्यः श्रोतुं भागवतं सुत ।
एकादश्यां विशेषेण न अस्ति पाप अपरः ततः ॥ २० ॥

न गच्छन्ति यदा मर्त्यः श्रोतुं भागवतं सुत एकादश्यां विशेषेण न अस्ति पाप अपरः ततः ॥ २० ॥

सुत	-	पुत्र !	**एकादश्यां**	-	एकादशीको
यदा मर्त्यः	-	जब मनुष्य	**न गच्छन्ति**	-	नहीं जाते तो
भागवतं श्रोतुं	-	भागवत सुननेके लिए	**ततः अपरः**	-	उससे (बड़ा) दूसरा
विशेषेण	-	विशेष रूपसे	**पाप न अस्ति**	-	पाप नहीं है ॥ २० ॥

श्लोकं भागवतं च अपि श्लोक अर्धं पादं एव वा ।
लिखितं तिष्ठते यस्य गृहे तस्य वसामि अहम् ॥ २१ ॥

श्लोकं भागवतं च अपि श्लोक अर्धं पादं एव वा लिखितं तिष्ठते यस्य गृहे तस्य वसामि अहम् ॥ २१ ॥

यस्य गृहे	- जिसके घरमें	**वा पादं एव**	- अथवा चौथाई (श्लोक) ही
भागवतं श्लोकं	- भागवतका एक श्लोक	**लिखितं तिष्ठते**	- लिखा हुआ रहता है
च अर्ध अपि	- या आधा (श्लोक) भी	**तस्य अहं-वसामि**	- उसके घर मैं निवास करता हूँ ॥२१॥

सर्व आश्रम अभिगमनं सर्व तीर्थ अवगाहनम् ।
न तथा पावनं नृणां श्रीमद्भागवतं यथा ॥ २२ ॥

सर्व आश्रम अभिगमनं सर्व तीर्थ अवगाहनम् न तथा पावनं नृणां श्रीमद्भागवतं यथा ॥ २२ ॥

नृणां पावनं	- मनुष्यको पवित्र करनेवाला	**अभिगमनं**	- यात्रा कर लेना एवं
यथा श्रीमद्भागवतं	- जैसा श्रीमद्भागवत है,	**सर्व तीर्थ**	- सब तीर्थोंमें
तथा सर्व आश्रम	- वैसा सब क्षेत्रोंकी	**अवगाहनं न**	- स्नान कर लेना नहीं है ॥ २२ ॥

यत्र यत्र चतुर्वक्त्र श्रीमद्भागवतं भवेत् ।
गच्छामि तत्र तत्र अहं गौः यथा सुत वत्सला ॥ २३ ॥

यत्र यत्र चतुर्वक्त्र श्रीमद्भागवतं भवेत् गच्छामि तत्र तत्र अहं गौः यथा सुत वत्सला ॥ २३ ॥

चतुर्वक्त्र	- चतुरानन ब्रह्मा !	**तत्र तत्र अहं**	- वहां वहां मैं
यत्र यत्र	- जहां-जहां	**यथा सुत-**	- जैसे पुत्रवत्सला गाय
श्रीमद्भागवतं	- श्रीमद्भागवत	**वत्सला गौः**	होती है
भवेत्	- होती है	**गच्छामि**	- जाता हूँ ॥ २३ ॥

मत् कथा वाचकं नित्यं मत् कथा श्रवणे रतम् ।
मत् कथा प्रीत मनसः न अहं त्यक्षामि तं नरम् ॥ २४ ॥

मत् कथा वाचकं नित्यं मत् कथा श्रवणे रतम् मत् कथा प्रीत मनसः न अहं त्यक्षामि तं नरम् ॥ २४ ॥

नित्यं मत् कथा	- प्रतिदिन मेरी कथा	**प्रीतमनसः**	- चित्त प्रसन्न होता है
वाचकं	- पढ़ता है,	**तं नरं अहं**	- उस मनुष्यको मैं
मत् कथा	- मेरी कथा	**नत्यक्षामि**	- नहीं छोड़ूँगा ॥ २४ ॥
श्रवणेरतं	- सुननेमें लगा रहता है,		
मत् कथा	- मेरी कथासे (जिसका)		

श्रीमद्भागवतं पुण्यं दृष्ट्वा न उत्तिष्ठते हि यः ।
सांवत्सरं तस्य पुण्यं विलयं याति पुत्रक ॥ २५ ॥

श्रीमद्भागवतं पुण्यं दृष्ट्वा न उत्तिष्ठते हि यः सांवत्सरं तस्य पुण्यं विलयं याति पुत्रक ॥ २५ ॥

पुत्रक	- प्रियपुत्र !	**न उत्तिष्ठते**	- नहीं उठता है
पुण्यं श्रीमद्भागवतं	- पवित्र श्रीमद्भागवतको	**तस्य सांवत्सरं**	- उसके एक वर्षमें किये
		पुण्यं विलयं	- पुण्य नष्ट होजाते हैं
दृष्टवा हि यः	- देखकर भी जो	**याति**	॥ २५ ॥

श्रीमद्भागवतं दृष्ट्वा प्रत्युत्थान अभिवादनैः ।
सम्मानयेत् तं दृष्ट्वा भवेत् प्रीतिः मम अतुला ॥ २६ ॥

श्रीमद्भागवतं दृष्ट्वा प्रत्युत्थान अभिवादनैः सम्मानयेत् तं दृष्ट्वा भवेत् प्रीतिः मम अतुला ॥ २६ ॥

श्रीमद्भागवतं-दृष्ट्वा	- श्रीमद्भागवतको देखकर	**सम्मानयेत्**	- सम्मान करता है,
		तं दृष्ट्वा मम	- उसे देखकर मुझे
प्रत्युत्थान	- (जो) उठकर खड़े होने,	**अतुला प्रीतिः**	- अतुलनीय प्रसन्नता
अभिवादनैः	- प्रणाम करनेसे (उनका)	**भवेत्**	- होती है ॥ २६ ॥

दृष्ट्वा भागवतं दूरात् प्रक्रमेत् सम्मुखं हि यः ।
पदे पदे अश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति असंशयम् ॥ २७ ॥

दृष्ट्वा भागवतं दूरात् प्रक्रमेत् सम्मुखं हि यः पदे पदे अश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति असंशयम् ॥ २७ ॥

भागवतं	- भागवतको	**असंशयं**	- निःसन्देह (वह)
दूरात् दृष्ट्वा हि	- दूरसे देखकर ही	**पदे पदे**	- प्रत्येक पद पर
यः सम्मुखं	- जो उनके सामने	**अश्वमेधस्य**	- अश्वमेध यज्ञ करनेका
प्रक्रमेत	- जाता है	**फलं प्राप्नोति**	- फल पाता है ॥ २७ ॥

उत्थाय प्रणमेत् यः वै श्रीमद्भागवतं नरः ।
धन पुत्रान् तथा दारान् भक्तिं च प्रददामि अहम् ॥ २८ ॥

उत्थाय प्रणमेत् यः वै श्रीमद्भागवतं नरः धन पुत्रान् तथा दारान् भक्तिं च प्रददामि अहम् ॥ २८ ॥

यः नरः	- जो मनुष्य	**अहं धन पुत्रान्**	- मैं धन, पुत्र
श्रीमद्भागवतं	- श्रीमद्भागवतको	**तथा दारान्**	- तथा पत्नियां
उत्थाय प्रणमेत्	- उठकर प्रणाम करता है (उसे)	**भक्तिं च-**	- और भक्ति भी देता हूँ ॥ २८ ॥
		प्रददामि	

महाराज उपचारैः तु श्रीमद्भागवतं सुत ।
शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या तेषां वश्यः भवामि अहम् ॥ २९ ॥

महाराज उपचारैः तु श्रीमद्भागवतं सुत शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या तेषां वश्यः भवामि अहम् ॥ २९ ॥

सुत	- पुत्र !	**भक्त्या शृण्वन्ति**	- भक्तिपूर्वक श्रवण करते हैं
ये नराः	- जो मनुष्य	**अहं तेषां वश्यः**	- मैं उनके वशमें
महाराज उपचारैः	- महाराजोपचार विधिसे (पूजा करके)	**भवामि**	- होजाता हूँ ॥ २९ ॥
श्रीमद्भागवतं	- श्रीमद्भागवतका		

मम उत्सवेषु सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम् !
शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या मम प्रीत्यै च सुव्रत ॥ ३० ॥

मम उत्सवेषु सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम् शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या मम प्रीत्यै च सुव्रत ॥ ३० ॥

सुव्रत	- उत्तम व्रत वाले ब्रह्मा !	**परं-**	- सर्वश्रेष्ठ
मम सर्वेषु	- मेरे सभी	**श्रीमद्भागवतं**	श्रीमद्भागवतका
उत्सवेषु	- उत्सवोंमें	**मम प्रीत्यै च**	- मेरी प्रसन्नताके लिए ही
ये नरा भक्त्या	- जो मनुष्य भक्तिपूर्वक	**शृण्वन्ति**	- श्रवण करते हैं ॥३०॥

वस्त्र अलंकरणैः पुष्पैः धूपदीप उपहारकैः ।
वशीकृतः हि अहं तैः च सत् स्त्रिया सत् पतिः यथा ॥ ३१ ॥

वस्त्र अलंकरणैः पुष्पैः धूपदीप उपहारकैः वशीकृतः हि अहं तैः च सत् स्त्रिया सत् पतिः यथा ॥ ३१ ॥

वस्त्र अलंकरणैः-	वस्त्र, आभूषण	**हि तैः च अहं**	- क्योंकि उनके द्वारा तो मैं
पुष्पैः धूपदीप	- पुष्प, धूप, दीप	**यथा सत् पतिः**	- जैसे उत्तम पतिको
उपहारकैः	- उपहारोंसे (पूजा करते हैं)	**सत् स्त्रिया**	- सती स्त्री (वश कर लेती है)
		वशीकृतः	- वशमें कर लिया गया हूं ॥ ३१ ॥

समाप्तमिदं श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम्
हरिः ॐ तत्सत्

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

[2]

स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड

अथ प्रथमोऽध्यायः

व्यास उवाच-

श्रीसच्चिदानन्दघनस्वरूपिणे
कृष्णाय चानन्तसुखाभिवर्षिणे ।
विश्वोद्भवस्थाननिरोधहेतवे
नुमो वयं भक्तिरसाप्तयेऽनिशम् ॥ १ ॥

श्रीसच्चित् आनन्दघन स्वरूपिणे कृष्णाय च अनन्त सुख अभिवर्षिणे विश्व उद्भवस्थान निरोध हेतवे नुमः वयं भक्ति रस आप्तये अनिशम् ॥ १ ॥

सत्	-	सत्ता,	**हेतवे**	-	कारण
चित्	-	ज्ञान,	**श्रीकृष्णाय**	-	श्रीकृष्णको
आनन्द	-	आनन्दके	**भक्तिरस**	-	भक्तिरूपी रसकी
घन स्वरूपिणे	-	पुञ्जी भूत स्वरूप,	**आप्तये**	-	प्राप्तिके लिये
अनन्त सुख	-	अनन्त सुखोंकी	**वयं अनिशं**	-	हम रात-दिन
अभिवर्षिणे	-	वर्षा करनेवाले	**नुमः**	-	नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥
च विश्व उद्भव	-	तथा विश्वकी सृष्टि			
स्थान निरोध	-	स्थिति, प्रलयके			

नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ।
कथामृतरसास्वादकुशला ऋषयोऽब्रुवन् ॥ २ ॥

नैमिषे सूतं आसीनं अभिवाद्य महामतिं कथा अमृत रस आस्वाद कुशला ऋषयः अब्रुवन् ॥ २ ॥

नैमिषे	-	नैमिषारण्यमें	**कथा अमृत**	-	कथारूपी अमृतके
महामतिं	-	परमबुद्धिमान	**रस आस्वाद**	-	रसका स्वाद लेनेमें
आसीनं सूतं	-	बैठे सूतको	**कुशला ऋषयः**	-	निपुण ऋषि लोग
अभिवाद्य	-	प्रणाम करके	**अब्रुवन्**	-	बोले ॥ २ ॥

ऋषय ऊचुः-

वज्रं श्रीमाथुरे देशे स्वपौत्रं हस्तिनापुरे ।
अभिषिच्य गते राज्ञि तौ कथं किं च चक्रतुः ॥ ३ ॥

वज्रं श्रीमाथुरे देशे स्वपौत्रं हस्तिनापुरे अभिषिच्य गते राज्ञि तौ कथं किं च चक्रतुः ॥ ३ ॥

श्रीमाथुरे देशे	-	श्रीमथुराप्रदेशमें	**अभिषिच्य**	-	राज्याभिषेक करके
वज्रं	-	वज्रनाभका	**राज्ञिगते**	-	राजा युधिष्ठिरके
हस्तिनापुरे	-	एवं हस्तिनापुरमें			(महाप्रस्थान) चले जानेपर
स्वपौत्रं	-	अपने पौत्र (परीक्षित) का	**तौ कथं**	-	उन दोनोंने कैसे
			च किं	-	और क्या
			चक्रतुः	-	किया ॥ ३ ॥

सूत उवाच-

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ ४ ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं च एव नर उत्तमं देवीं सरस्वतीं व्यासं ततः जयं उदीरयेत् ॥ ४ ॥

नारायणं	-	भगवान् नारायणको,	**च व्यासं**	-	तथा भगवान व्यासको
नर उत्तमं	-	पुरुषोंमें श्रेष्ठ	**नमः कृत्य**	-	नमस्कार करके
नरं एव	-	नरको भी,	**ततः जयं**		तब जय ध्वनि
देवीं सरस्वतीं	-	देवी सरस्वतीको,			(या इतिहास-पुराण)
			उदीरयेत्	-	उच्चारण करे ॥ ४ ॥

महापथं गते राज्ञि परीक्षित् पृथिवीपतिः ।
जगाम मथुरां विप्रा वज्रनाभदिदृक्षया ॥ ५ ॥

महापथं गते राज्ञि परीक्षित् पृथिवी पतिः जगाम मथुरां विप्रा वज्रनाभ दिदृक्षया ॥ ५ ॥

विप्रा	- विप्रवरो !	**परीक्षित्**	- परीक्षित
राज्ञि	- महाराज युधिष्ठिरके	**वज्रनाभ**	- वज्रनाभको
महापथं गते	- महाप्रस्थान कर जानेपर	**दिदृक्षया**	- देखनेके लिए
पृथिवीपतिः	- (सम्पूर्ण) पृथ्वीके स्वामी (सम्राट)	**मथुरां जगाम**	- मथुरा गये ॥ ५ ॥

पितृव्यमागतं ज्ञात्वा वज्रः प्रेमपरिप्लुतः ।
अभिगम्याभिवाद्याथ निनाय निजमन्दिरम् ॥ ६ ॥

पितृव्यं आगतं ज्ञात्वा वज्रः प्रेमपरिप्लुतः अभिगम्य अभिवाद्य अथ निनाय निज मन्दिरम् ॥ ६ ॥

वज्रः	- वज्रनाभ	**अभिगम्य**	- उनके पास जाकर
पितृव्यं	- (अपने) चाचा (परीक्षित) को	**अभिवाद्य**	- प्रणाम करके
आगतं ज्ञात्वा	- आया जानकर	**अथ निज मन्दिरं**	- फिर अपने भवन
		निनाय	- ले आये ॥ ६ ॥

परिष्वज्य स तं वीरः कृष्णैकगतमानसः ।
रोहिण्याद्या हरेः पत्नीर्ववन्दायतनागतः ॥ ७ ॥

परिष्वज्य स तं वीरः कृष्ण एक गत मानसः रोहिणि आद्या हरेः पत्नी र्ववन्द आयतन आगतः ॥ ७ ॥

स कृष्ण एक	- वे एकमात्र श्रीकृष्णमें	**आयतन**	- भवनमें
गत मानसः	- चित्त लगाये	**आगतः**	- आकर
वीरः तं	- वीर (परीक्षित) ने	**हरेः पत्नी**	- श्रीकृष्णकी पत्नी
	उन (वज्रनाभ) का	**रोहिणी आद्या**	- रोहिणी आदिकी१
परिष्वज्य	- आलिंगन करके	**ववन्द**	- वन्दनाकी ॥ ७ ॥

ताभिः संमानितोऽत्यर्थं परीक्षित् पृथिवीपतिः ।
विश्रान्तः सुखमासीनो वज्रनाभमुवाच ह ॥ ८ ॥

ताभिः सम्मानितः अति अर्थं परीक्षित् पृथिवी पतिः विश्रान्तः सुखं आसीनः वज्रनाभं उवाच ह ॥ ८ ॥

पृथिवीपतिः	- सम्राट्	**विश्रान्तः**	- विश्राम करके
परीक्षित्	- परीक्षित्	**सुखं आसीनः**	- सुख-पूर्वक बैठकर
ताभिः	- उन सबके द्वारा	**वज्रनाभं**	- वज्रनाभसे
अति अर्थं	- बहुत अधिक	**उवाच ह**	- निश्चयपूर्वक बोले ॥८॥
सम्मानितः	- सम्मानित होकर		

परीक्षदुवाच-

तात त्वत्पितृभिर्नूनमस्मत्पितृपितामहाः ।
उद्धृता भूरिदुःखौघादहं च परिरक्षितः ॥ ९ ॥

तात त्वत् पितृभिः नूनं अस्मत् पितृ पितामहाः उद्धृता भूरि दुःख ओघात् अहं च परिरक्षितः ॥ ९ ॥

---

१. श्रीकृष्णकी मुख्य पटरानियों ने तो प्रभासमें देहत्याग कर दिया था । सोलह सहस्र एक सौ रानियोंमें रोहिणी जी प्रमुख थीं । वे और कुछ दूसरी भी मथुरा आ सकी थीं ।

तात नूनं - प्रियवत्स ! निश्चय
त्वत् पितृभिः - तुम्हारे पितर (परदादा भगवान) के द्वारा
अस्मत् - हमारे
पितामहाः - पितामह लोग
भूरि दुःख - बहुत बड़ी दुःखकी
ओघात् उद्धृता - बाढ़से बचाये गये
अहं च - और में भी
परिरक्षितः - सब प्रकार रक्षा किया गया ॥ ९ ॥

न पारयाम्यहं तात साधु कृत्वोपकारतः ।
त्वामतः प्रार्थयाम्यङ्ग सुखं राज्येऽनुयुज्यताम् ॥ १० ॥

न पारयामि अहं तात साधु कृत्वा उपकारतः त्वां अतः प्रार्थयामि अंग सुखं राज्ये अनुयुज्यताम् ॥ १० ॥

अंग तात - प्रिय वत्स !
उपकारतः - (उन) उपकारोंसे
साधुकृत्वा - (कोई) भला करके
अहं-पारयामि न - मैं पार नहीं पा सकता,
अतः त्वां - इसलिए तुमसे
प्रार्थयामि - प्रार्थना करता हूँ,
सुखं राज्ये - सुखपूर्वक राज्य करनेमें
अनुयुज्यतां - बराबर लगे रहे ॥ १० ॥

कोशसैन्यादिजा चिन्ता तथारिदमनादिजा ।
मनागपि न कार्या ते सुसेव्याः किन्तु मातरः ॥ ११ ॥

कोश सैन्य आदिजा चिन्ता तथा अरि दमन आदिजा मनाक् अपि न कार्या ते सुसेव्याः किन्तु मातरः ॥ ११ ॥

कोश सैन्य - धन-सेना
आदिजा - आदिसे उत्पन्न होने वाली
तथा अरिदमन - तथा शत्रु-दमन
आदिजा - आदिकी
चिन्ता ते - चिन्ता तुमको
मनाक् अपि - तनिक भी
न कार्या - नहीं करनी चाहिए,
किन्तु मातरः - किन्तु मातायें
सुसेव्याः - भली प्रकार सेवाके योग्य हैं ॥ ११ ॥

निवेद्य मयि कर्तव्यं सर्वाधिपरिवर्जनम् ।
श्रुत्वैतत् परमप्रीतो वज्रस्तं प्रत्युवाच ह ॥ १२ ॥

निवेद्य मयि कर्तव्यं सर्व आधि परिवर्जनं श्रुत्वा एतत् परमप्रीतः वज्रः तं प्रति उवाच ह ॥ १२ ॥

सर्व आधि	- सब चिन्तायें	**एतत् श्रुत्वा**	- यह सुनकर
मयि निवेद्य	- मुझे सूचित करके	**परमप्रीतः**	- अत्यन्त प्रसन्न होकर
परिवर्जनं	- उनसे रहित	**वज्रः तं प्रति**	- वज्रनाभ उनसे
कर्तव्यं	- हो जाना चाहिए !	**उवाच ह**	- स्थिर स्वरमें बोले ॥१२॥

वज्रनाभ उवाच-

राजन्नुचितमेतत्ते यदस्मासु प्रभाषते ।
त्वत्पित्रोपकृतश्चाहं धनुर्विद्याप्रदानतः ॥ १३ ॥

राजन् उचितं एतत् ते यत् अस्मासु प्रभाषते त्वत् पित्रः उपकृतः च अहं धनुर्विद्या प्रदानतः ॥ १३ ॥

राजन्	- राजन् !	**प्रदानतः**	- देनेके द्वारा
यत् अस्मासु	- जो (आप) हम लोगोंसे	**अहं च**	- मैं भी
प्रभाषते	- कह रहे हैं (वह)	**त्वत् पित्रः**	- आपके पिता (अभिमन्यु) का
एतत् ते	- यह आपके लिये		
उचितं	- उचित है (किन्तु)	**उपकृतः**	- उपकृत हूँ ॥ १३ ॥
धनुर्विद्या	- धनुर्विद्या		

तस्मान्नाल्पापि मे चिन्ता क्षात्रं दृढमुपेयुषः ।
किन्त्वेका परमा चिन्ता तत्र किञ्चिद् विचार्यताम् ॥ १४ ॥

तस्मात् न अल्प अपि मे चिन्ता क्षात्रं दृढं उपेयुषः किन्तु एका परमा चिन्ता तत्र किञ्चित् विचार्यताम् ॥ १४ ॥

तस्मात्	- इसलिए	**किन्तु एका**	- किन्तु एक
दृढं क्षात्रं	- दृढ़ क्षत्रियधर्मका	**परमा चिन्ता**	- बड़ी भारी चिन्ता है,
उपेयुषः मे	- आश्रय लेने वाले मुझे	**तत्र किञ्चित्**	- उसके विषयमें कुछ
अल्प अपि	- तनिक भी	**विचार्यताम्**	- विचार कीजिए ॥१४॥
चिन्ता न	- चिन्ता नहीं है,		

माथुरे त्वभिषिक्तोऽपि स्थितोऽहं निर्जने वने ।
क्व गता वै प्रजात्रत्या यत्र राज्यं प्ररोचते ॥ १५ ॥

माथुरे तु अभिषिक्तः अपि स्थितः अहं निर्जने वने क्व गता वै प्रजा अत्रत्या यत्र राज्यं प्ररोचते ॥ १५ ॥

अहं माथुरे तु	- मैं मथुराके राज्यपर तो	**वै क्व गता**	- निश्चित रूपसे कहां चली गयी
अभिषिक्तः अपि	- अभिषिक्त होनेपर भी	**यत्र राज्यं**	- जहां (जिस) पर राज्य करना
निर्जने वने	- निर्जन वनमें	**प्ररोचते**	- अच्छा लगता है ॥१५॥
स्थितः	- रहता हूँ		
अत्रत्या प्रजा	- यहां रहने वाली प्रजा		

सूत उवाच-

इत्युक्तो विष्णुरातस्तु नन्दादीनां पुरोहितम् ।
शाण्डिल्यमाजुहावाशु वज्रसन्देहनुत्तये ॥ १६ ॥

इति उक्तः विष्णुरातः तु नन्द आदीनां पुरोहितं शाण्डिल्यंआजुहाव आशु वज्र सन्देह नुत्तये ॥ १६ ॥

इति उक्तः	- ऐसा कहे जानेपर	**नन्द आदीनां**	- नन्द आदिके
विष्णुरातः तु	- परीक्षित ने तो	**पुरोहितं**	- पुरोहित
वज्र सन्देह	- वज्रनाभके सन्देहको	**शाण्डिल्यं**	- महर्षि शाण्डिल्यको
नुत्तये	- दूर करनेके लिए	**आशु आजुहाव**	-शीघ्र बुलवाया ॥१६॥

यह उवाच गीताप्रेसकी प्रतिमें नहीं है ।

अथोटजं विहायाशु शाण्डिल्यः समुपागतः ।
पूजितो वज्रनाभेन निषसादासनोत्तमे ॥ १७ ॥

अथ उटजं विहाय आशु शाण्डिल्यः सम उपआगतः पूजितः वज्रनाभेन निषसाद आसन उत्तमे ॥ १७ ॥

अथ शाण्डिल्यः	- फिर शाण्डिल्य जी	**वज्रनाभेन**	- वज्रनाभ द्वारा
आशु उटजं	- शीघ्र (अपनी) कुटिया	**पूजितः**	- सत्कृत होकर
विहाय	- छोड़कर	**उत्तमे आसन**	- श्रेष्ठ आसनपर
सम उप-आगतः	- उनके समीप आये,	**निषसाद**	- बैठ गये ॥ १७ ॥

उपोद्घातं विष्णुरातश्चकाराशु ततस्त्वसौ ।
उवाच परमप्रीतस्तावुभौ परिसान्त्वयन् ॥ १८ ॥

उपोद्घातं विष्णुरातः चकार आशु ततः तु असौ उवाच परमप्रीतः तौः उभौ परिसान्त्वयन् ॥ १८ ॥

विष्णुरातः	- परीक्षितने	**परमप्रीतः**	- अत्यन्त प्रसन्न होकर
आशु-उपोद्घातं	- शीघ्र (विचारणीय विषयका) प्रारम्भ किया	**तौः उभौ**	- उन दोनोंको
		परिसान्त्वयन्	- समझाते हुए
ततः तु असौ	- तब तो ये (महर्षि)	**उवाच**	- बोले ॥ १८ ॥

शाण्डिल्य उवाच-

शृणुतं दत्तचित्तौ मे रहस्यं व्रजभूमिजम् ।
व्रजनं व्याप्तिरित्युक्त्या व्यापनाद् व्रज उच्यते ॥ १९ ॥

शृणुतं दत्त चित्तौ मे रहस्यं व्रजभूमिजं व्रजनं व्याप्तिः इति युक्तया व्यापनात् व्रज उच्यते ॥ १९ ॥

दत्त चित्तौ - मन लगाकर
मे व्रज भूमिजं - मुझसे व्रजभूमिका
रहस्यं शृणुतं - रहस्य सुनो,
व्रजनं व्याप्तिः - व्रजन् धातुका अर्थ व्याप्त होना है
इति युक्तया - इस युक्तिसे
व्यापनात् - व्यापक होनेसे (इसे)
व्रज उच्यते - व्रज कहा जाता है
॥ १९ ॥

गुणातीतं परं ब्रह्म व्यापकं व्रज उच्यते ।
सदानन्दं परं ज्योतिर्मुक्तानां पदमव्ययम् ॥ २० ॥

गुण अतीतं परं ब्रह्म व्यापकं व्रज उच्यते सदानन्दं परं ज्योतिः मुक्तानां पदं अव्ययम् ॥ २० ॥

मुक्तानां - मुक्त पुरुषोंका
अव्ययं पदं - अविनाशी आश्रय
परं ज्योतिः - परम प्रकाशक
सदानन्दं - नित्य आनन्दमय
गुण अतीतं - त्रिगुणोंसे परे
व्यापकं परं ब्रह्म - व्यापक परं ब्रह्मही
व्रज उच्यते - व्रज कहा जाता है
॥ २० ॥

तस्मिन् नन्दात्मजः कृष्णः सदानन्दाङ्गविग्रहः ।
आत्मारामश्चाप्तकामः प्रेमाक्तैरनुभूयते ॥ २१ ॥

तस्मिन् नन्द आत्मजः कृष्णः सदा आनन्द अंग विग्रहः आत्मारामः च आप्तकामः प्रेम अक्तैः अनुभूयते ॥ २१ ॥

तस्मिन् - उस (परमब्रह्म) में
सदा आनन्द - नित्य आनन्द (घन)
अंग विग्रहः - साकार स्वरूप
नन्दात्मजः - नन्दनन्दन
कृष्णः - श्रीकृष्ण
प्रेम अक्तैः - प्रेमासक्त भक्तों द्वारा
अनुभूयते - अनुभव किये जाते हैं
॥ २१ ॥

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ ।
आत्मारामतया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः ॥ २२ ॥

आत्मा तु राधिका तस्य तया एव रमणात् असौ आत्माराम तया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढ वेदिभिः ॥ २२ ॥

तस्य आत्मा तु	- उनकी आत्मा तो	**गूढ वेदिभिः**	- रहस्यज्ञ
राधिका	- श्रीराधा हैं	**प्राज्ञैः असौ**	- ज्ञानियों द्वारा ये
तया एव-	- उनके साथ ही	**आत्माराम तया**	- आत्मारामके रूपमें
रमणात्	रमण करनेसे	**प्रोच्यते**	- कहे जाते हैं ॥२२॥

कामास्तु वाञ्छितास्तस्य गावो गोपाश्च गोपिकाः ।
नित्याः सर्वे विहाराद्या आप्तकामस्ततस्त्वयम् ॥ २३ ॥

कामाः तु वाञ्छिताः तस्य गावः गोपाः च गोपिकाः नित्याः सर्वे विहार आद्या आप्तकामः ततः तु अयम् ॥ २३ ॥

तस्य कामाः तु	- उन (श्रीकृष्ण) की कामनायें तो	**सर्वे विहार-**	- (इनकी साथकी)
		आद्या	सब क्रीड़ा आदि
वाञ्छिताः	- (उनकी) अभीष्ट	**नित्याः ततः तु**	- नित्य है, इसलिए तो
गावः गोपाः	- गायें, गोप	**अयं आप्तकामः**	- ये आप्तकाम हैं
च गोपिकाः	- तथा गोपियां हैं		॥ २३ ॥

रहस्यं त्विदमेतस्य प्रकृतेः परमुच्यते ।
प्रकृत्या खेलतस्तस्य लीलान्यैरनुभूयते ॥ २४ ॥

रहस्यं तु इदं एतस्य प्रकृतेः परं उच्यते प्रकृत्या खेलतः तस्य लीला अन्यैः अनुभूयते ॥ २४ ॥

एतस्य	- इन (श्रीकृष्ण) का	**तस्य प्रकृत्या**	- उनके प्रकृतिके साथ
इदं रहस्यं तु	- यह रहस्य तो	**खेलतः अन्यैः**	- क्रीड़ा करते समय
प्रकृतेः परं	- प्रकृतिसे परे		दूसरी ही
उच्यते	- कहा जाता है,	**लीला-**	- लीला अनुभवमें आती
		अनुभूयते	है ॥ २४ ॥

सर्गस्थित्यप्यया यत्र रजःसत्त्वतमोगुणैः ।
लीलैवं द्विविधा तस्य वास्तवी व्यावहारिकी ॥ २५ ॥

सर्ग स्थिति अप्यया यत्र रजः सत्त्व तमः गुणैः लीला एवं द्विविधा तस्य वास्तवी व्यावहारिकी ॥ २५ ॥

यत्र	- जिस (लीला) में	**एवं तस्य-लीला**	- इस प्रकार उनकी लीला
रजः सत्त्व	- रजोगुण, सत्त्वगुण,	**द्विविधा**	- दो प्रकारकी
तमः गुणैः	- तमोगुण द्वारा	**वास्तवी**	- वास्तविक और
सर्ग स्थिति	- सृष्टि, स्थिति,	**व्यावहारिकी**	- व्यावहारिक है ॥२५॥
अप्यया	- प्रलय होती हैं		

वास्तवी तत्स्वसंवेद्या जीवानां व्यावहारिकी ।
आद्यां विना द्वितीया न द्वितीया नाद्यगा क्वचित् ॥ २६ ॥

वास्तवी तत्त्व संवेद्या जीवानां व्यावहारिकी आद्यां विना द्वितीया न द्वितीया न आद्यगा क्वचित् ॥ २६ ॥

वास्तवी	- वास्तविक (लीला)	**आद्यां विना**	- पहिली (वास्तविक) के बिना
तत्त्व संवेद्या	- जो तत्त्वरूप हैं उनके ही जाननेकी है,	**द्वितीया न**	- दूसरी (व्यावहारिक लीला) नहीं हो सकती,
जीवानां	- जीवोंके लिए	**द्वितीया-आद्यगा**	- दूसरी (व्यावहारिक लीला) पहिलीमें पहुँचने वाली
व्यावहारिकी	- व्यावहारिक लीला है	**क्वचित् न**	- कभी नहीं होती ॥२६॥

युवयोर्गोचरेयं तु तल्लीला व्यावहारिकी ।
यत्र भूरादयो लोका भुवि माथुरमण्डलम् ॥ २७ ॥

युवयोः गोचरा इयं तु तत् लीला व्यावहारिकी यत्र भूः आदयः लोका भुवि माथुर मण्डलम् ॥ २७ ॥

युवयोः गोचरा	- तुम लोगोंके देखनेमें आयी	**यत्र भूः-**	- जिसमें भूलोक आदि
इयं लीला तु	- यह लीला तो	**आदयः लोका**	और
व्यावहारिकी	- व्यावहारिकी थी,	**भुवि माथुर-**	- पृथ्वीपर मथुरा मंडल है
		मण्डलं	॥ २७ ॥

अत्रैव व्रजभूमिः सा यत्र तत्त्वं सुगोपितम् ।
भासते प्रेमपूर्णानां कदाचिदपि सर्वतः ॥ २८ ॥

अत्र एव व्रजभूमिः सा यत्र तत्त्वं सुगोपितं भासते प्रेम पूर्णानां कदाचित् अपि सर्वतः ॥ २८ ॥

अत्र एव	- यहीं	**तत्त्वं-**	- तत्त्व प्रेमपूर्ण भक्तोंको
सा व्रजभूमिः	- वह व्रजभूमि है	**प्रेमपूर्णानां**	
यत्र सुगोपितं	- जहां अत्यन्त रहस्यमय	**कदाचित् अपि**	- कदाचित तो
		सर्वतः भासते	- सब कहीं प्रकाशित होने लगता है ॥२८॥

कदाचिद् द्वापरस्यान्ते रहोलीलाधिकारिणः ।
समवेता यदात्र स्युर्यथेदानीं तदा हरिः ॥ २९ ॥

कदाचित् द्वापरस्य अन्ते रहः लीला अधिकारिणः समवेता यदा अत्र स्युः यथा इदानीं तदा हरिः ॥ २९ ॥

कदाचित्	- किसी समय	**यदा अत्र**	- जब यहां (पृथ्वीपर)
द्वापरस्य अन्ते	- द्वापरयुगके अन्तमें	**समवेतास्युः**	- एकत्र होजाते हैं
रहः लीला	- एकान्त लीला (दर्शन) के	**यथा इदानीं**	- जैसे इस बार (हुये थे)
अधिकारिणः	- अधिकारी लोग	**तदा हरिः**	- तब श्रीहरि ॥ २९ ॥

स्वैः सहावतरेत् स्वेषु समावेशार्थमीप्सिताः ।
तदा देवादयोऽप्यन्येऽवतरन्ति समन्ततः ॥ ३० ॥

स्वैः सह अवतरेत् स्वेषु सम आवेश अर्थं ईप्सिताः तदा देव आदयः अपि अन्ये अवतरन्ति समन्ततः ॥ ३० ॥

स्वैः सह	- अपने निज जनोंके साथ	**तदा देव-**	- उस समय देवतादि
स्वेषु सम	- अपने भक्तोंके पूर्ण	**आदयः**	
ईप्सिताः	- अभीष्ट	**अन्ये अपि**	- दूसरे भी
आवेश अर्थं	- (लीला) प्रवेशके लिए	**समन्ततः**	- चारों ओर
अवतरेत्	- अवतार लेते हैं	**अवतरन्ति**	- अवतार लेते हैं ॥३०॥

सर्वेषां वाञ्छितं कृत्वा हरिरन्तर्हितोऽभवत् ।
तेनात्र त्रिविधा लोकाः स्थिताः पूर्वं न संशयः ॥ ३१ ॥

सर्वेषां वाञ्छितं कृत्वा हरिः अन्तर्हितः अभवत् तेन अत्र त्रिविधा लोकाः स्थिताः पूर्वं न संशयः ॥ ३१ ॥

सर्वेषां वाञ्छितं	- सभीका अभीष्ट	**तेनात्र**	- इसलिए यहां
कृत्वा हरिः	- (पूर्ण) करके श्रीहरि	**न संशयः**	- निःसन्देह
अन्तर्हितः	- अन्तर्ध्यान	**त्रिविधा लोकाः**	- तीनों प्रकार (देव, दैत्य, मानव) लोक
अभवत्	- होगये,	**पूर्वं स्थिताः**	- पहिलेकी भांति होगये ॥ ३१ ॥

नित्यास्तल्लिप्सवश्चैव देवाद्याश्चेति भेदतः ।
देवाद्यास्तेषु कृष्णेन द्वारिकां प्रापिताः पुरा ॥ ३२ ॥

नित्याः तत् लिप्सवः च एव देव आद्याः च इति भेदतः देव आद्याः तेषु कृष्णेन द्वारिकां प्रापिताः पुरा ॥ ३२ ॥

नित्याः	- नित्य (परिकर)	**इति भेदतः**	-इस प्रकारके भेदमें
तत् लिप्सवः	- उस (नित्य परिकर)	**तेषु देव आद्याः**	-उनमेंसे देवतादि
	के होनेको लालायित,	**पुरा कृष्णेन**	-पहिले ही श्रीकृष्ण द्वारा
च देव-	- तथा देवतादि भी	**द्वारिकां-**	-द्वारिका पहुँचा दिये
आद्याः एव		**प्रापिताः**	गये थे ॥ ३२ ॥

पुनर्मौसलमार्गेण स्वाधिकारेषु चापिताः ।
तल्लिप्सूंश्च सदा कृष्णः प्रेमानन्दैकरूपिणः ॥ ३३ ॥

पुनः मौसल मार्गेण स्व अधिकारेषु च आपिताः तत् लिप्सून् च सदा कृष्णः प्रेम आनन्द एक रूपिणः ॥ ३३ ॥

पुनः मौसल-	- फिर मूसलके मार्गसे,	**च तत्-**	- तथा उनको प्राप्त
मार्गेण		**लिप्सून्**	करनेको लालायितोंको
स्व अधिकारेषु	- उनको उनके	**कृष्णः सदा**	- श्रीकृष्णने नित्य
	अधिकारोंपर	**प्रेम आनन्द**	- प्रेम आनन्द
च आपिताः	- ही पहुँचा दिया,	**एक रूपिणः**	- मात्र स्वरूप वाला ॥३३॥

विधाय स्वीयनित्येषु समावेशितवांस्तदा ।
नित्याः सर्वेऽप्ययोग्येषु दर्शनाभावतां गताः ॥ ३४ ॥

विधाय स्वीय नित्येषु सम आवेशितवान् तदा नित्याः सर्वे अपि अयोग्येषु दर्शन अभावतां गताः ॥ ३४ ॥

विधाय	- बनाकर	**सर्वे नित्याः-**	- सब नित्य
स्वीय नित्येषु	- अपने नित्य-	**अपि**	(परिकर) भी
	(परिकरों) में	**अयोग्येषु**	- अनाधिकारियोंके लिए
तदा सम-	- उस समय पूर्णरूपसे	**दर्शन-**	- दर्शनाभाव (अदृश्य)
आवेशितवान्	प्रविष्टकर लिया	**अभावतां गताः**	होगये ॥ ३४ ॥

व्यावहारिकलीलास्थास्तत्र यन्नाधिकारिणः ।
पश्यन्त्यत्रागतास्तस्मान्निर्जनत्वं समन्ततः ॥ ३५ ॥

व्यावहारिक लीला स्थाः तत्र यत् न अधिकारिणः पश्यन्ति अत्र आगताः तस्मात् निर्जनत्वं समन्ततः ॥ ३५ ॥

तत्र यत्	- उस (वास्तविक लीला दर्शन) के जो	**अत्र आगताः**	- यहां आकर
अधिकारिणः न	- अधिकारी नहीं हैं (वे)	**पश्यन्ति तस्मात्**	- देखते हैं इसलिए
व्यावहारिक	- व्यावहारिक	**समन्ततः**	- चारों ओर
लीला स्थाः	- लीलामें स्थित लोग	**निर्जनत्वं**	- निर्जनपना है ॥३५॥

तस्माच्चिन्ता न ते कार्या वज्रनाभ मदाज्ञया ।
वासयात्र बहून् ग्रामान् संसिद्धिस्ते भविष्यति ॥ ३६ ॥

तस्मात् चिन्ता न ते कार्या वज्रनाभ मत् आज्ञया वासयात्र बहून् ग्रामान् संसिद्धिः ते भविष्यति ॥ ३६ ॥

वज्रनाभ	- वज्रनाभ !	**बहून् ग्रामान्**	- बहुतसे गाँव
तस्मात् ते	- इसलिए तुम्हें	**अत्र वासय**	- यहाँ बसाओ,
चिन्ता न कार्या	- चिन्ता नहीं करनी चाहिए,	**ते संसिद्धिः**	- तुम्हें पूरी सफलता
		भविष्यति	- प्राप्त होगी ॥ ३६ ॥
मत् आज्ञया	- मेरी आज्ञासे		

कृष्णलीलानुसारेण कृत्वा नामानि सर्वतः ।
त्वया वासयता ग्रामान् संसेव्या भूरियं परा ॥ ३७ ॥

कृष्णलीला अनुसारेण कृत्वा नामानि सर्वतः त्वया वासयता ग्रामान् संसेव्या भूः इयं परा ॥ ३७ ॥

सर्वतः	- सब ओर	**ग्रामान् वासयता**	- गाँव बसाते हुए
कृष्ण लीला	- श्रीकृष्णकी लालाके	**त्वया इयं**	- तुम्हारे द्वारा यह
अनुसारेण	- अनुसार	**परा भूः-**	- परमात्म भूमि भली प्रकार
नामानिकृत्वा	- नाम रखकर	**संसेव्या**	सेवनीय है ॥ ३७ ॥

गोवर्द्धने दीर्घपुरे मथुरायां महावने ।
नन्दिग्रामे बृहत्सानौ कार्या राज्यस्थितिस्त्वया ॥ ३८ ॥

गोवर्द्धने दीर्घपुरे मथुरायां महावने नन्दिग्रामें बृहत्सानौ कार्या राज्यास्थितिस्त्वया ॥ ३८ ॥

गोवर्द्धने	- गोवर्द्धनमें	**बृहत्सानौ**	- बरसाना में
दीर्घपुरे	- दीर्घपुर (डीगमें)	**त्वया**	- तुमको
मथुरायां	- मथुरामें	**राज्यस्थितिः**	- सेनाकी छावनियां
महावने	- महावनमें	**कार्या**	- बनानी चाहिये ॥ ३८ ॥
नन्दिग्रामे	- नन्दग्राममें		

नद्यद्रिद्रोणिकुण्डादिकुञ्जान् संसेवतस्तव ।
राज्ये प्रजाः सुसम्पन्नास्त्वं च प्रीतो भविष्यसि ॥ ३९ ॥

नदि अद्रिद्रोणि कुण्ड आदि कुञ्जान् संसेवतः तव राज्ये प्रजाः सुसम्पन्नाः त्वं च प्रीतः भविष्यसि ॥ ३९ ॥

नदि अद्रि	- नदी, पर्वत,	**सुसम्पन्नाः**	- अच्छी प्रकार समृद्ध
द्रोणि कुण्ड-	- तलहटी, कुण्ड आदि	**च त्वं प्रीतः**	- तथा तुम प्रसन्न
आदि	तथा	**भविष्यसि**	- हो जाओगे ॥ ३९ ॥
कुञ्जान् संसेवतः	- कुञ्जोंकी सेवा करते हुये		
तव राज्ये प्रजाः	- तुम्हारे राज्यकी प्रजा		

सच्चिदानन्दभूरेषा त्वया सेव्या प्रयत्नतः ।
तव कृष्णस्थलान्यत्र स्फुरन्तु मदनुग्रहात् ॥ ४० ॥

सच्चिदानन्द भूः एषा त्वया सेव्या प्रयत्नतः तव कृष्ण स्थलानि अत्र स्फुरन्तु मत् अनुग्रहात् ॥ ४० ॥

सच्चिदानन्द	- सच्चिदानन्द रूपा	**मत् अनुग्रहात्**	- मेरी कृपासे
एषा भूः	- यह भूमि	**अत्र कृष्ण-**	- यहाँ की श्रीकृष्ण-लीला
त्वया प्रयत्नतः	- तुम्हारे द्वारा प्रयत्नपूर्वक	**स्थलानि**	भूमियां
सेव्या	- सेवनीय है	**तव स्फुरन्तु**	- तुम्हें स्फुरित (ज्ञात) हों ॥ ४० ॥

वज्र संसेवनादस्य उद्धवस्त्वां मिलिष्यति ।
ततो रहस्यमेतस्मात् प्राप्स्यसि त्वं समातृकः ॥ ४१ ॥

वज्र संसेवनात् अस्य उद्धवः त्वां मिलिष्यति ततः रहस्यं एतस्मात् प्राप्स्यसि त्वं समातृकः ॥ ४१ ॥

वज्र	- वज्रनाभ !	**ततः एतस्मात्**	- तब इनसे
अस्यः	- इस (भूमि) की भली	**समातृकः त्वं**	- माताओंके साथ तुम
संसेवनात्	प्रकार सेवा करनेसे	**रहस्यं**	- (यह) रहस्य
त्वां उद्धवः	- तुमको उद्धवजी	**प्राप्स्यसि**	- प्राप्त करोगे ॥४१॥
मिलिष्यति	- मिलेंगे,		

सूत उवाच-

एवमुक्त्वा तु शाण्डिल्यो गतः कृष्णमनुस्मरन् ।
विष्णुरातोऽथ वज्रश्च परां प्रीतिमवापतुः ॥ ४२ ॥

एवं उक्त्वा तु शाण्डिल्यः गतः कृष्णं अनुस्मरन् विष्णुरातः अथ वज्रः च परां प्रीतिं अवापतुः ॥ ४२ ॥

एवं उक्त्वा	- ऐसा कहकर	**विष्णुरातः**	- परीक्षित
शाण्डिल्यः तु	- शाण्डिल्य जी तो	**अथ वज्रः च**	- तथा वज्रनाभ भी
कृष्णं अनुस्मरन्	- श्रीकृष्णका बार-बार स्मरण करते हुए	**परां प्रीतिं**	- परम प्रसन्नताको
		अवापतुः	- प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥
गतः	- चले गये,		

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये शाण्डिल्योपदिष्टव्रजभूमिमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः-

शाण्डिल्ये तौ समादिश्य परावृत्ते स्वमाश्रमम् ।
किं कथं चक्रतुस्तौ तु राजानौ सूत तद् वद ।। १ ।।

शाण्डिल्ये तौ सम आदिश्य परावृत्ते स्वं आश्रमं किं कथं चक्रतुः तौ तु राजानौ सूत तत् वद ।। १ ।।

सूत	- सूत जी !	**स्व आश्रमं**	- अपने आश्रम
तौ सम आदिश्य	- उन दोनोंको भली प्रकार आदेश देकर	**परावृत्ते**	- लौट जाने पर
		तौ राजानौ	- उन दोनों राजाओंने
शाण्डिल्ये	- महर्षि शाण्डिल्यके	**किं कथं-**	- क्या कैसे किया
		चक्रतुः	
		तत् वद	- वह बतलाइये ।। १ ।।

सूत उवाच-

ततस्तु विष्णुरातेन श्रेणीमुख्याः सहस्रशः ।
इन्द्रप्रस्थात् समानाय्य मथुरास्थानमापिताः ।। २ ।।

ततः तु विष्णुरातेन श्रेणी मुख्याः सहस्रशः इन्द्रप्रस्थात् सम आनाय्य मथुरास्थानं आपिताः ।। २ ।।

ततः तु	- इसके पश्चात् तो	**इन्द्रप्रस्थात्**	- इन्द्रप्रस्थसे
विष्णुरातेन	- परीक्षित द्वारा	**सम आनाय्य**	- भली प्रकार बुलवाकर
सहस्रशः	- सहस्रों	**मथुरा स्थानं**	- मथुरामें (उन्हें) स्थान
श्रेणी मुख्याः	- वर्ग प्रमुख	**आपिताः**	- दिया ।। २ ।।

माथुरान् ब्राह्मणांस्तत्र वानरांश्च पुरातनान् ।
विज्ञाय माननीयत्वं तेषु स्थापितवान् स्वराट् ॥ ३ ॥

माथुरान् ब्राह्मणान् तत्र वानरान् च पुरातनान् विज्ञाय माननीयत्वं तेषु स्थापितवान् स्वराट् ॥ ३ ॥

तत्र माथुरान्	- वहां माथुर	**तेषु माननीयत्वं**	- उनका सम्मान्य स्वरूप
ब्राह्मणान्	- ब्राह्मणोंको	**विज्ञाय**	- जानकर
च पुरातनान्	- तथा प्राचीन परम्पराके	**स्वराट्**	- सम्राट् (परीक्षित) ने
वानरान्	- वानरोंको	**स्थापितवान्**	- बसाया ॥ ३ ॥

वज्रस्तु तत्सहायेन शाण्डिल्यस्यायनुग्रहात् ।
गोविन्दगोपगोपीनां लीलास्थानान्यनुक्रमात् ॥ ४ ॥

वज्रः तु तत् सहायेन शाण्डिल्यस्य अपि अनुग्रहात् गोविन्द गोप गोपीनां लीला स्थानानि अनुक्रमात् ॥ ४ ॥

वज्रः तु	-	वज्रनाभने भी	**अनुग्रहात्**	-	कृपासे
तत् सहायेन	-	उन (परीक्षित) की सहायतासे तथा	**अनुक्रमात्**	-	क्रमशः
			गोविन्द गोप	-	गोविन्द, गोप
शाण्डिल्यस्य-अपि	-	महर्षि शाण्डिल्यकी भी	**गोपीनां**	-	गोपियोंके
			लीला स्थानानि	-	लीला-स्थानोंको ॥४॥

विज्ञायाभिधयाऽऽस्थाप्य ग्रामानावासयद् बहून् ।
कुण्डकूपादिपूर्तेन शिवादिस्थापनेन च ॥ ५ ॥

विज्ञाय अभिधया स्थाप्य ग्रामान् आवासयत् बहून् कुण्ड कूप आदि पूर्तेन शिव आदि स्थापनेन च ॥ ५ ॥

विज्ञाय	- जानकर	**च शिव आदि**	- तथा शिव आदि
अभिधया स्थाप्य	- (उनके) नामोंसे स्थापना करके		(देवताओं) की
		स्थापनेन	- स्थापना करते हुए
कुण्ड कूप आदि	- कुण्ड, कूप आदि	**बहून् ग्रामान्**	- बहुतसे गाँव
पूर्तेन	- पूर्तकर्म करते हुए	**आवासयत्**	- बसाये ॥ ५ ॥

गोविन्दहरिदेवादिस्वरूपारोपणेन च ।
कृष्णैकभक्तिं स्वे राज्ये ततान च मुमोद ह ॥ ६ ॥

गोविन्द हरिदेव आदि स्वरूप आरोपणेन च कृष्ण एक भक्तिं स्वे राज्ये ततान च मुमोद ह ॥ ६ ॥

गोविन्द हरिदेव	- गोविन्द, हरिदेव	**स्वेराज्ये**	- अपने राज्यमें
आदि स्वरूप	- आदि श्रीविग्रहोंकी	**कृष्ण एक-**	- श्रीकृष्णकी अनन्य
आरोपणेन	- स्थापना द्वारा	**भक्तिं च**	भक्तिका ही
		ततान मुमो-	- विस्तार करके बहुत
		द ह	प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥

प्रजास्तु मुदितास्तस्य कृष्णकीर्तनतत्पराः ।
परमानन्दसम्पन्ना राज्यं तस्यैव तुष्टुवुः ॥ ७ ॥

प्रजाः तु मुदिताः तस्य कृष्ण कीर्तन तत्पराः परम आनन्द सम्पन्ना राज्यं तस्य एव तुष्टुवुः ॥ ७ ॥

तस्य प्रजाः तु	- उनकी प्रजा तो	**कृष्ण कीर्तन-**	- श्रीकृष्ण-कीर्तन
परम आनन्द	- परमानन्द	**तत्पराः**	परायणा
सम्पन्ना मुदिताः	- प्राप्त प्रसन्न	**तस्य एव राज्यं**	- उन राजाकी ही
		तुष्टुवुः	- प्रशंसा करती थी ॥७॥

एकदा कृष्णपत्न्यस्तु श्रीकृष्णविरहातुराः ।
कालिन्दीं मुदितां वीक्ष्य पप्रच्छुर्गतमत्सराः ॥ ८ ॥

एकदा कृष्ण पत्न्यः तु श्रीकृष्ण विरह आतुराः कालिन्दीं मुदितां वीक्ष्य पप्रच्छुः गत मत्सराः ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण	- श्रीकृष्णके
विरह आतुराः	- वियोगमें व्याकुल
कृष्णपत्न्यः तु	- श्रीकृष्णकी पत्नियोंने तो
एकदा कालिन्दीं	- एक बार कालिन्दीजी (यमुना) को
मुदितां वीक्ष्य	- आनन्दिता देखकर
गत मत्सराः	- डाह रहित होकर
पप्रच्छुः	- पूछा ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णपत्न्यः ऊचुः-

यथा वयं कृष्णपत्न्यस्तथा त्वमपि शोभने ।
वयं विरहदुःखार्तास्त्वं न कालिन्दि तद् वद ॥ ९ ॥

यथा वयं कृष्णपत्न्यः तथा त्वं अपि शोभने वयं विरह दुःख आर्ताः त्वं न कालिन्दि तत् वद ॥ ९ ॥

शोभने कालिन्दि	- सुन्दरी, कल्याणी !
यथा वयं	- जैसे हम सब
कृष्णपत्न्यः	- श्रीकृष्णकी पत्नियां हैं,
तथा त्वं अपि	- वैसे ही तुम भी (हो, किन्तु)
वयं विरह-	- हम सब वियोगके
दुःख	दुःखसे
आर्ताः	- व्याकुला हैं,
त्वं न तत्-	- पर तुम नहीं हो, इसका
वद	(कारण) बतलाओ ॥९॥

सूत उवाच-

तच्छ्रुत्वा स्मयमाना सा कालिन्दी वाक्यमब्रवीत् ।
सापत्न्यं वीक्ष्य तत्तासां करुणापरमानसा ॥ १० ॥

तत् श्रुत्वा स्मयमाना सा कालिन्दी वाक्यं अब्रवीत् सापत्न्यं वीक्ष्य तत् तासां करुणापर मानसा ॥ १० ॥

यह उवाच गीताप्रेस की प्रतिमें नहीं है ।

तत् तासां - वह उनका
सापत्न्यं वीक्ष्य - सौत होनेका भाव देखकर
तत् श्रुत्वा - (उनकी) वह बात सुनकर
करुणापर-मानसा - दया-द्रवित चित्ता
सा कालिन्दी - वे कालिन्दी जी
वाक्यं अब्रवीत् - सार्थक वचन बोलीं ॥ १० ॥

कालिन्द्युवाच-

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका ।
तस्या दास्यप्रभावेण विरहोऽस्मान् न संस्पृशेत् ॥ ११ ॥

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवं आत्मा अस्ति राधिका तस्या दास्य प्रभावेण विरहः अस्मान् न संस्पृशेत् ॥ ११ ॥

आत्मारामस्य - आत्माराम
कृष्णस्य ध्रुवं - श्रीकृष्णकी निश्चित ही
आत्मा-राधिका अस्ति - आत्मा श्रीराधा हैं,
तस्या - उनकी ही
दास्य प्रभावेण - दासी पनेके प्रभावसे
विरहः अस्मान् - वियोग हम लोगोंको
न संस्पृशेत् - पीड़ा नहीं देता ॥११॥

तस्या एवांशविस्ताराः सर्वाः श्रीकृष्णनायिकाः ।
नित्यसम्भोग एवास्ति तस्याः साम्मुख्ययोगतः ॥ १२ ॥

तस्या एव अंश विस्ताराः सर्वाः श्रीकृष्णनायिकाः नित्य सम्भोग एव अस्ति तस्याः साम्मुख्य योगतः ॥ १२ ॥

सर्वाः श्रीकृष्णं - सब श्रीकृष्णकी
नायिकाः - नायिकायें (प्रेयसियां)
तस्या एव - उन (श्रीराधा) के ही
अंश विस्ताराः - अंशोंकी विस्ताररूपा हैं,
तस्याः साम्मुख्य - उन (श्रीराधा) की प्रधानताके
योगतः - योगसे
नित्य सम्भोग - नित्य सम्भोग
एव अस्ति - ही (प्राप्त) है ॥१२॥

स एव सा स सैवास्ति वंशी तत्प्रेमरूपिका ।
श्रीकृष्णनखचन्द्रालिसंगाच्चन्द्रावली स्मृता ॥ १३ ॥

स एव सा स सा एव अस्ति वंशी तत् प्रेम रूपिका श्रीकृष्ण नखचन्द्रालि संगात् चन्द्रावली स्मृता ॥ १३ ॥

स एव सा	- वे (श्रीकृष्ण) ही वह (श्रीराधा) हैं,	**प्रेम रूपिका**	- प्रेम स्वरूपिणी हैं,
सा स एव-	- (श्रीराधा) ही वह	**श्रीकृष्ण नख-**	- श्रीकृष्णके (चरण)
अस्ति	(श्रीकृष्ण) हैं,	**चन्द्रालि**	नखके
वंशी तत्	- वंशी उनकी	**संगात्**	- (चन्द्रिका रूपमें) साथ होनेसे
		चन्द्रावली-	- चन्द्रावली कही गयी हैं
		स्मृता	॥ १३ ॥

रूपान्तरमगृह्णाना तयोः सेवातिलालसा ।
रुक्मिण्यादिसमावेशो मयात्रैव विलोकितः ॥ १४ ॥

रूपान्तरं अगृह्णाना तयोः सेवा अति लालसा रुक्मिणी आदि समावेशः मया अत्र एव विलोकितः ॥ १४ ॥

तयोः सेवा	- उन (चन्द्रावली) की सेवामें	**अगृह्णाना**	- ग्रहण कर लिया है,
अति लालसा	- अत्यन्त लालसा होनेसे (उन्होंने)	**रक्मिणी आदि**	- रुक्मिणी आदिका
		समावेशः	- भली प्रकार निवास
रूप अन्तरं	- दूसरा (सखी) रूप	**मया अत्र एव**	- मैंने यहीं
		विलोकितः	- देखा है ॥ १४ ॥

युष्माकमपि कृष्णेन विरहो नैव सर्वतः ।
किन्तु एवं न जानीथ तस्माद् व्याकुलतामिताः ॥ १५ ॥

युष्माकं अपि कृष्णेन विरहः न एव सर्वतः किन्तु एवं न जानीथ तस्मात् व्याकुलतां इताः ॥ १५ ॥

युष्माकं अपि - तुम लोगोंका भी
कृष्णेन विरहः - श्रीकृष्णसे वियोग
सर्वतः न एव - सब ओरसे नहीं ही है,
किन्तु एवं - किन्तु (तुम लोग) इस प्रकार
न जानीथ - नहीं जानती हो
तस्मात् - इसलिए
व्याकुलतां- - व्याकुलताको प्राप्त हो
इताः ॥ १५ ॥

एवमेवात्र गोपीनामक्रूरावसरे पुरा ।
विरहाभास एवासीदुद्धवेन समाहितः ॥ १६ ॥

एवं एव अत्र गोपीनां अक्रूर अवसरे पुरा विरह आभास एव आसीत् उद्धवेन समाहितः ॥ १६ ॥

एवं एव अत्र - इसी प्रकार यहां (व्रजमें)
पुराअक्रूर - पहिले अक्रूर (यहांसे जाने) के
अवसरे - अवसर पर
गोपीनां - गोपियोंको
विरह- - विरह की प्रतीतिमात्र
आभास एव
आसीत् - थी (फिर)
उद्धवेन - उद्धवने (उसकी)
समाहितः - शान्ति कर दी ॥१६॥

तेनैव भवतीनां चेद् भवेदत्र समागमः ।
तर्हि नित्यं स्वकान्तेन विहारमपि लप्स्यथ ॥ १७ ॥

तेन एव भवतीनां चेत् भवेत् अत्र समागमः तर्हि नित्यं स्व कान्तेन विहारं अपि लप्स्यथ ॥ १७ ॥

चेत् भवतीनां - यदि आप लोगोंका
अत्र तेन एव - यहां उन (उद्धवजी) से ही
समागमः भवेत् - मिलना होजाय
तर्हि स्वकान्तेन - तब अपने प्रियतमके साथ
नित्यं विहारं अपि - नित्य विहार भी
लप्स्यथ - प्राप्त कर लेंगी ॥१६॥

सूत उवाच-

एवमुक्तास्तु ताः पत्न्यः प्रसन्नां पुनरब्रुवन् ।
उद्धवालोकनेनात्मप्रेष्ठसंगमलालसाः ॥ १८ ॥

एवं उक्ताः तु ताः पत्न्यः प्रसन्नां पुनः अब्रुवन् उद्धव आलोकनेन आत्म प्रेष्ठ संगम लालसाः ॥ १८ ॥

एवं उक्ताः तु - इस प्रकार कहे जानेपर तो
ताः पत्न्यः - वे श्रीकृष्ण-पत्नियां
उद्धव-आलोकनेन - उद्धवजीके दर्शनसे
प्रेष्ठ संगम - प्रियतमको मिलनकी
लालसाः प्रसन्नां - लालसा से प्रसन्न होकर
पुनः अब्रुवन् - फिर बोलीं ॥ १८ ॥

श्रीकृष्णपत्न्य ऊचुः-

धन्यासि सखि कान्तेन यस्या नैवास्ति विच्युतिः ।
यतस्ते स्वार्थसंसिद्धिस्तस्या दास्यो बभूविम ॥ १९ ॥

धन्या असि सखि कान्तेन यस्या न एव अस्ति विच्युतिः यतः ते स्वार्थ संसिद्धिः तस्या दास्यः बभूव इम ॥ १९ ॥

सखि धन्या-असि - सखी ! तुम धन्य हो,
यस्या कान्तेन - जिसका प्रियतमसे
विच्युतिः न-एव अस्ति - वियोग नहीं ही है,
यतः ते स्वार्थ - जिससे तुम्हारा प्रयोजन
संसिद्धिः - सिद्ध होता है,
तस्या दास्यः - उसी की दासियां
इम बभूव - ये हम सब होना चाहती हैं ॥ १९ ॥

परन्तूद्धवलाभे स्यादस्मत्सर्वार्थसाधनम् ।
तथा वदस्व कालिन्दि तल्लाभोऽपि यथा भवेत् ॥ २० ॥

परन्तु उद्धव लाभे स्यात् अस्मत् सर्व अर्थ साधनं तथा वदस्व कालिन्दि तत् लाभः अपि यथा भवेत् ॥ २० ॥

परन्तु - परन्तु
उद्धव लाभे - उद्धवजीके मिलनेसे
अस्मत्- - हम लोगोंका सब
सर्व अर्थ प्रयोजन
साधनं स्यात् - सम्पन्न होगा,
कालिन्दि -कालिन्दी !
तथा वदस्व -वह (उपाय) बतलाओ
यथा तत् लाभः -जिससे उनसे मिलना
अपि भवेत् -भी हो जया ॥ २० ॥

सूत उवाच-

एवमुक्ता तु कालिन्दी प्रत्युवाचाथ तास्तथा ।
स्मरन्ती कृष्णचन्द्रस्य कलाः षोडशरूपिणीः ॥ २१ ॥

एवं उक्ता तु कालिन्दी प्रति उवाच अथ ताः तथा स्मरन्ती कृष्णचन्द्रस्य कलाः षोडश रूपिणीः ॥ २१ ॥

एवं उक्ता तु - ऐसा कहे जानेपर तो
कालिन्दी - कालिन्दी
कृष्णचन्द्रस्य - श्रीकृष्णचन्द्रकी
रूपिणीः - मूर्तिमती
षोडश कलाः - सोलहों कलाओंका
स्मरन्ती - स्मरण करते हुए
अथ ताः प्रति - फिर उन सबसे
तथा उवाच - वह (उपाय) बतलाते बोलीं ॥ २१ ॥

कालिन्द्युवाच-

साधनभूमिर्बदरी व्रजता कृष्णेन मन्त्रिणे प्रोक्ता ।
तत्रास्ते स तु साक्षात्तद्वयुनं ग्राहयँल्लोकान् ॥ २२ ॥

साधन भूमिः बदरीव्रजता कृष्णेन मन्त्रिणे प्रोक्ता तत्र आस्ते स तु साक्षात् तत् वयुनं ग्राहयन् लोकान् ॥ २२ ॥

यह उवाच गीताप्रेस की प्रतिमें नहीं है ।

कृष्णेन व्रजता - श्रीकृष्णने (स्वधाम) जाते समय
मन्त्रिणे - मन्त्री (उद्धव) को
साधन भूमिः - साधना स्थली
बदरी प्रोक्ता - बदरीनाथ (जाने) को कहा था,
स तु - वे (उद्धव) तो
तत् वयुनं - उन (श्रीकृष्ण) का ज्ञान
लोकान् ग्राहयन् -लोगोंको सिखलाते हुए
तत्र साक्षात् - वहां साक्षात् हैं
आस्ते ॥ २२ ॥

फलभूमिर्व्रजभूमिर्दत्ता तस्मै पुरैव सरहस्यम् ।
फलमिह तिरोहितं सत्तदिहेदानीं स उद्धवोऽलक्ष्यः ॥ २३ ॥

फल भूमिः व्रजभूमिः दत्ता तस्मै पुरा एव सरहस्यं फलं इह तिरोहितं सत् तत् इह इदानीं स उद्धवः अलक्ष्यः ॥ २३ ॥

फल भूमिः - फलभूमि
व्रजभूमिः - व्रजभूमि
तस्मै पुरा एव - उन (उद्धव) को पहिले ही
स रहस्यं - रहस्यके साथ
दत्तं - दे दी थी,
इह फलं - यहां फल (रूप श्रीकृष्ण) के
तिरोहितं - अदृश्य होनेपर
तत् इदानीं - अतः इस समय
स उद्धवः - वे उद्धव जी भी
अलक्ष्यः - अदृश्य हैं ॥ २३ ॥

गोवर्द्धनगिरिनिकटे सखीस्थले तद्रजःकामः ।
तत्रत्याङ्कुरवल्लीरूपेणास्ते स उद्धवो नूनम् ॥ २४ ॥

गोवर्द्धन गिरि निकटे सखी स्थले तत् रजः कामः तत्रत्य अंकुर वल्ली रूपेण आस्ते स उद्धवः नूनम् ॥ २४ ॥

गोवर्द्धन - गोवर्धन
गिरि निकटे - पर्वतके समीप
सखी स्थले - सखियोंकी (क्रीड़ा) भूमिमें
तत् रजः कामः - उन (सखियों) की (चरण) रज पानेकी इच्छासे
तत्रत्य वल्ली - वहांकी लताओंके
अंकुर रूपेण - अंकुरके रूपमें
नूनं स - निश्चय वे
उद्धवः आस्ते - उद्धव जी स्थित हैं ॥ २४ ॥

आत्मोत्सवरूपत्वं हरिणा तस्मै समर्पितं नियतम् ।
तस्मात्तत्र स्थित्वा कुसुमसरः परिसरे सवज्राभिः ॥ २५ ॥

आत्म उत्सव रूपत्वं हरिणा तस्मै समर्पितं नियतं तस्मात् तत्र स्थित्वा कुसुमसरः परिसरे स वज्राभिः ॥ २५ ॥

हरिणा तस्मै - श्रीहरिने उनको
नियतं - निश्चित रूपसे
आत्म उत्सव-रूपत्वं - अपना उत्सव स्वरूप
समर्पितं - दे दिया है
तस्मात् तत्र - इसलिए वहां
कुसुमसरः - कुसुम सरोवरके
परिसरे - समीप ही
स वज्राभिः - वज्रनाभके साथ
स्थित्वा - रहकर ॥ २५ ॥

वीणावेणुमृदङ्गैः कीर्तनकाव्यादिसरससङ्गीतैः ।
उत्सव आरब्धव्यो हरिरतलोकान् समानाय्य ॥ २६ ॥

वीणा वेणु मृदंगैः कीर्तन काव्य आदि सरस संगीतैः उत्सव आरब्धव्यः हरिरत लोकान् सम आनाय्य ॥ २६ ॥

वीणा वेणु - वीणा, वंशी,
मृदंगैः - मृदंग (वादन) के साथ
हरिरत लोकान् - श्रीहरिमें लगे (भक्त) लोगोंको
सम आनाय्य - चारों ओरसे बुलवाकर
कीर्तन काव्य - कीर्तन, काव्य
आदिसरस - आदि रसमय
संगीतैः - संगीत द्वारा
उत्सव - उत्सव
आरब्धव्यः - प्रारम्भ करना चाहिए ॥ २६ ॥

तत्रोद्धवावलोको भविता नियतं महोत्सवे वितते ।
यौष्माकीणामभिमतसिद्धिं सविता स एव सवितानाम् ।। २७ ।।

तत्र उद्धव अवलोकः भविता नियतं महोत्सवे वितते यौष्माकीणां अभिमत सिद्धिं सविता स एव सवितानाम् ।। २७ ।।

तत्र महोत्सवे	-	वहां महोत्सवका	**सवितानां**	-	उस महायज्ञमें
वितते नियतं	-	विस्तार होनेसे निश्चित रूपसे	**यौष्माकीणां**	-	तुम लोगोंको
			स अभिमत-	-	अभीष्ट सिद्धि
उद्धव अवलोकः	-	उद्धवजीका दर्शन	**सिद्धिं**		
भविता	-	होगा,	**सविता एव**	-	प्राप्त होगी ही ।।२७।।

सूत उवाच-

इति श्रुत्वा प्रसन्नास्ताः कालिन्दीमभिवन्द्य तत् ।
कथयामासुरागत्य वज्रं प्रति परीक्षितम् ।। २८ ।।

इति श्रुत्वा प्रसन्नाः ताः कालिन्दीं अभिवन्द्य तत् कथयामासुः आगत्य वज्रं प्रति परीक्षितम् ।। २८ ।।

इति श्रुत्वा	-	इस प्रकार सुनकर	**आगत्य**	-	(भवन) आकर
प्रसन्नाः	-	प्रसन्न होकर	**ताः तत्**	-	उन्होंने वह
कालिन्दीं	-	कालिन्दीको	**वज्रं परीक्षितं**	-	वज्रनाभ और परीक्षित
अभिवन्द्य	-	प्रणाम करके	**प्रति कथयामासुः**	-	से कहा ।। २८ ।।

विष्णुरातस्तु तच्छ्रुत्वा प्रसन्नस्तद्युतस्तदा ।
तत्रैवागत्य तत् सर्वं कारयामास सत्वरम् ।। २९ ।।

विष्णुरातः तु तत् श्रुत्वा प्रसन्नः तत् युतः तदा तत्र एव आगत्य तत् सर्वं कारयामास सत्वरम् ।। २९ ।।

विष्णुरातः तु - परीक्षित ने भी
तत् श्रुत्वा - वह बात सुनकर
तदा प्रसन्नः - उस समय प्रसन्न होकर
सत्वरं - शीघ्र
तत् युतः - उनके साथ
तत्र एव - वहीं (कुसुम सरोवरके
आगत्य पास) आकर
तत् सर्वं - वह सब (कीर्तनादि)
कारयामास - करवाया ॥ २९ ॥

गोवर्द्धनाददूरेण वृन्दारण्ये सखीस्थले ।
प्रवृत्तः कुसुमाम्भोधौ कृष्णसंकीर्तनोत्सवः ॥ ३० ॥

गोवर्द्धनात् अदूरेण वृन्दारण्ये सखी स्थले प्रवृत्तः कुसुम अम्भोधौ कृष्ण संकीर्तन उत्सवः ॥ ३० ॥

गोवर्द्धनात् - गोवर्धन पर्वतके
अदूरेण - समीप ही
वृन्दारण्ये - वृन्दावनमें
सखी स्थले - सखियोंके (क्रीड़ा) स्थानमें
कुसुम अम्भोधौ - कुसुम सरोवरपर
कृष्ण संकीर्तन - श्रीकृष्ण-संकीर्तनरूप
उत्सवः प्रवृत्तः - उत्सव होने लगा
॥ ३० ॥

वृषभानुसुताकान्तविहारे कीर्तनश्रिया ।
साक्षादिव समावृत्ते सर्वेऽनन्यदृशोऽभवन् ॥ ३१ ॥

वृषभानुसुता कान्त विहारे कीर्तन श्रिया साक्षात् इव सम आवृत्ते सर्वे अनन्य दृशः अभवन् ॥ ३१ ॥

वृषभानुसुता - श्रीवृषभानु-नन्दिनीके
कान्त विहारे - प्रियतमके विहार स्थानमें
कीर्तन श्रिया - कीर्तनकी शोभासे
साक्षात् इव - साक्षात् (श्रीकृष्ण) के समान
सम आवृत्ते - सब ओर छा जानेसे
सर्वे- - सब कुछ और न देखने
अनन्यदृशः वाले (तन्मय)
अभवन् - होगये ॥ ३१ ॥

ततः पश्यत्सु सर्वेषु तृणगुल्मलताचयात् ।
आजगामोद्धवः स्रग्वी श्यामः पीताम्बरावृतः ॥ ३२ ॥

ततः पश्यत्सु सर्वेषु तृण गुल्म लता च यात् आजगामउद्धवः स्रग्वी श्यामः पीताम्बर आवृतः ॥ ३२ ॥

ततः सर्वेषु - फिर सबके
पश्यत्सु - देखते हुए
तृण गुल्म - घास, झाड़ियों,
लता च यात् - लताओंके झुरमुटसे
स्रग्वी श्यामः - वनमालाधारी, श्यामवर्ण,
पीताम्बर- - पीताम्बर लपेटे
आवृतः
उद्धवः आजगाम- उद्धव जी चले आये
॥ ३२ ॥

गुञ्जामालाधरो गायन् वल्लवीवल्लभं मुहुः ।
तदागमनतो रेजे भृशं संकीर्तनोत्सवः ॥ ३३ ॥

गुञ्जामालाधरः गायन् वल्लवी वल्लभं मुहुः तत् आगमनतः रेजे भृशं संकीर्तन उत्सवः ॥ ३३ ॥

गुञ्जामालाधरः - गुञ्जाओंकी माला पहिने
वल्लवी वल्लभं - गोपी बल्लभका
मुहुः गायन् - बार-बार गान करते हुए
तत् आगमनतः - उन (उद्धव) के आगमनसे
संकीर्तन उत्सवः - संकीर्तन-उत्सव
भृशं रेजे - बहुत सुशोभित हुआ
॥ ३३ ॥

चन्द्रिकागमतो यद्वत् स्फाटिकाट्टालभूमणिः ।
अथ सर्वे सुखाम्भोधौ मग्नाः सर्वं विसस्मरुः ॥ ३४ ॥

चन्द्रिका आगमनतः यद्वत् स्फाटिक अट्टाल भू मणिः अथ सर्वे सुख अम्भोधौ मग्नाः सर्वं विसस्मरुः ॥ ३४ ॥

यद्वत् - जैसे
स्फाटिक मणिः - स्फटिक मणिकी
अट्टाल भू - अटारीकी भूमि
चन्द्रिका - चाँदनी
आगमनतः - आनेसे (शोभित होती है)
अथ सर्वे - फिर तो सब लोग
सुख अम्भोधौ - आनन्द-समुद्रमें
मग्नाः सर्वं - डूबकर सब कुछ
विसस्मरुः - भूल गये ॥ ३४ ॥

क्षणेनागतविज्ञाना दृष्ट्वा श्रीकृष्णरूपिणम् ।
उद्धवं पूजयाञ्चक्रुः प्रतिलब्धमनोरथाः ॥ ३५ ॥

क्षणेन आगत विज्ञाना दृष्ट्वा श्रीकृष्ण रूपिणं उद्धवं पूजयान् चक्रुः प्रतिलब्ध मनोरथाः ॥ ३५ ॥

क्षणेन	- एक क्षणमें	**श्रीकृष्ण रूपिणं**	- श्रीकृष्णके समान रूपवाले
आगत विज्ञाना	- विशेष चेतना आनेपर	**उद्धवं दृष्ट्वा**	- उद्धवजीको देखकर
मनोरथाः	- अपनी अभिलाषा	**पूजयान् चक्रुः**	- (उनकी) पूजा करने लगे ॥ ३५ ॥
प्रतिलब्ध	- प्राप्त किये (वे लोग)		

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये गोवर्धनपर्वतसमीपे परीक्षिदादीनामुद्धवदर्शनंवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

सूत उवाच-

अथोद्धवस्तु तान् दृष्ट्वा कृष्णकीर्तनतत्परान् ।
सत्कृत्याथ परिष्वज्य परीक्षितमुवाच ह ॥ १ ॥

अथ उद्धवः तु तान् दृष्ट्वा कृष्ण कीर्तन तत् परान् सत्कृत्या अथ परिष्वज्य परीक्षितं उवाच ह ॥ १ ॥

अथ उद्धवः तु	- फिर उद्धवजी तो	**सत्कृत्या**	- सत्कार पाकर
तान्	- उनको	**अथ परिष्वज्य**	- फिर आलिंगन करके
कृष्णकीर्तन	- श्रीकृष्णके कीर्तनमें	**परीक्षितं**	- परीक्षितसे
तत् परान् दृष्ट्वा	- तत्पर देखकर	**उवाच ह**	- निश्चयपूर्वक बोले ॥१॥

उद्धव उवाच-

धन्योऽसि राजन् कृष्णैकभक्त्या पूर्णोऽसि नित्यदा ।
यस्त्वं निमग्नचित्तोऽसि कृष्णसंकीर्तनोत्सवे ॥ २ ॥

धन्यः असि राजन् कृष्ण एक भक्त्या पूर्णः असि नित्यदा यः त्वं निमग्न चित्तः असि कृष्ण संकीर्तन उत्सवे ॥ २ ॥

राजन्	- राजन् !	**यः त्वं**	- जो तुम
धन्यः असि	- (तुम) धन्य हो,	**कृष्ण संकीर्तन**	- श्रीकृष्ण-संकीर्तन
कृष्ण एक-	- श्रीकृष्णकी अनन्य	**उत्सवे**	- उत्सवमें
भक्त्या	भक्तिसे	**निमग्न चित्तः-**	- निमग्न चित्तहो
नित्यदा-	- सदा पूर्ण हो,	**असि**	॥ २ ॥
पूर्णः असि			

कृष्णपत्नीषु वज्रे च दिष्ट्या प्रीतिः प्रवर्तिता ।
तवोचितमिदं तात कृष्णदत्तांगवैभव ॥ ३ ॥

कृष्ण पत्नीषु वज्रे च दिष्ट्या प्रीतिः प्रवर्तिता तव उचितं इदं तात कृष्ण दत्त अंग वैभव ॥ ३ ॥

दिष्ट्या	- सौभाग्यकी बात है कि	**कृष्णदत्त**	- श्रीकृष्णके दिये
कृष्णपत्नीषु	- श्रीकृष्णकी पत्नियोंसे	**अंग वैभव-**	- शरीर वैभव वाले
च वज्रे	- तथा वज्रनाभसे	**तव**	तुम्हारे लिए
प्रीतिः प्रवर्तिता	- प्रेम करते हो,	**तात इदं-**	- तात ! यह उचित ही
		उचितं	है ॥ ३ ॥

द्वारकास्थेषु सर्वेषु धन्या एते न संशयः ।
येषां व्रजनिवासाय पार्थमादिष्टवान् प्रभुः ॥ ४ ॥

द्वारकास्थेषु सर्वेषु धन्या एते न संशयः येषां व्रजनिवासाय पार्थं आदिष्टवान् प्रभुः ॥ ४ ॥

सर्वेषु	- सब	**प्रभुः येषां**	- सर्व-समर्थ (श्रीकृष्ण) ने जिनको
द्वारकास्थेषु	- द्वारिका वासियोंमें	**व्रज निवासाय**	- व्रजमें बसानेके लिए
एते धन्या	- ये धन्य हैं	**पार्थं आदिष्टवान्**	- अर्जुनको आदेश दिया था ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णस्य मनश्चन्द्रो राधास्यप्रभयान्वितः ।
तद्विहारवनं गोभिर्मण्डयन् रोचते सदा ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णस्य मनः चन्द्रः राधा अस्य प्रभया अन्वितः तत् विहार वनं गोभिः मण्डयन् रोचते सदा ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णस्य	-	श्रीकृष्णका	**अस्य प्रभया**	-	उन (श्रीराधा) की
मनः चन्द्रः राधा	-	मनरूपी चन्द्रमा श्रीराधा हैं,	**अन्वितः**		**कान्ति**
			गोभिः मण्डयन्	-	किरणोंसे भूषित
तत् विहारवनं	-	उनका विहार-वन	**सदा रोचते**	-	सदा रुचिकर रहता है ॥ ५ ॥

कृष्णचन्द्रः सदा पूर्णस्तस्य षोडश याः कलाः ।
चित्सहस्रप्रभाभिन्ना अत्रास्ते तत्स्वरूपता ॥ ६ ॥

कृष्णचन्द्रः सदा पूर्णः तस्य षोडश याः कलाः चित् सहस्र प्रभा भिन्ना अत्र आस्ते तत् स्वरूपता ॥ ६ ॥

कृष्ण चन्द्रः	-	श्रीकृष्णरूपी चन्द्र	**चित् सहस्र**	-	चिन्मय (जीवरूप) सहस्रों
सदा पूर्णः	-	सदापूर्ण रहते हैं,	**प्रभा भिन्ना**	-	रश्मियोंके रूपमें पृथक हुई हैं
तस्य याः	-	उनकी जो	**अत्र तत्**	-	यहां उनकी
षोडशकलाः	-	सोलह कलायें हैं (वे)	**स्वरूपता**	-	साकारता है (यहां वे
			आस्ते		मूर्तिमान गोपीरूपा हैं) ॥ ६ ॥

एवं वज्रस्तु राजेन्द्र प्रपन्नभयभञ्जकः ।
श्रीकृष्णदक्षिणे पादे स्थानमेतस्य वर्तते ॥ ७ ॥

एवं वज्रः तु राजेन्द्र प्रपन्न भय भञ्जकः श्रीकृष्ण दक्षिणे पादे स्थानं एतस्य वर्तते ॥ ७ ॥

राजेन्द्र	-	राजेन्द्र !	**एतस्य स्थानं**	-	इनका स्थान
एवं वज्रः तु	-	इसी प्रकार (वज्र रूपमें) वज्रनाभ	**श्रीकृष्ण-**	-	श्रीकृष्णके दाहिने चरणमें
			दक्षिणे पादे		
प्रपन्न	-	शरणागत	**वर्तते**	-	स्थित है ॥ ७ ॥
भय भञ्जकः	-	भय-नाशक हैं,			

अवतारेऽत्र कृष्णेन योगमायातिभाविताः ।
तद्बलेनात्मविस्मृत्या सीदन्त्येते न संशयः ॥ ८ ॥

अवतारे अत्र कृष्णेन योगमाया अति भाविताः तत् बलेन आत्म विस्मृत्या सीदन्ति एते न संशयः ॥ ८ ॥

अत्र अवतारे	-	यहां अवतार लेनेपर	**एते आत्म**	-	ये सब अपनेको भूल
कृष्णेन	-	श्रीकृष्ण द्वारा	**विस्मृत्या**		जानेसे
योगमाया	-	योगमायासे	**सीदन्ति**	-	कष्ट पा रहे हैं
अति भाविताः	-	अत्यन्त प्रभावित किये जानेसे	**न संशयः**	-	(इसमें) सन्देह नहीं ॥८॥

ऋते कृष्णप्रकाशं तु स्वात्मबोधो न कस्यचित् ।
तत्प्रकाशस्तु जीवानां मायया पिहितः सदा ॥ ९ ॥

ऋते कृष्ण प्रकाशं तु स्व आत्मबोधः न कस्यचित् तत् प्रकाशः तु जीवानां मायया पिहितः सदा ॥ ९ ॥

कृष्ण प्रकाशं	-	श्रीकृष्णके प्रकाश (दर्शन) के	**जीवानां तु**	-	जीवोंके लिए तो
ऋते तु- कस्यचित्	-	बिना तो किसीको भी	**तत् प्रकाशः**	-	वह श्रीकृष्णका प्रकाश
स्व-	-	अपने स्वरूपका	**सदा**		(साक्षात्कार) सदा
आत्मबोधः न		ज्ञान नहीं होता,	**मायया पिहितः**	-	मायासे ढका रहता है ॥ ९ ॥

अष्टाविंशे द्वापरान्ते स्वयमेव यदा हरिः ।
उत्सारयेन्निजां मायां तत्प्रकाशो भवेत्तदा ॥ १० ॥

अष्टाविंशे द्वापर अन्ते स्वयं एव यदा हरिः उत्सारयेत् निजां मायां तत् प्रकाशः तदा भवेत् ॥ १० ॥

अष्टाविंशे - अट्ठाइसवें
द्वापर अन्ते - द्वापरयुगके अन्तमें
यदा हरिः - जब श्रीहरि
निजां मायां - अपनी मायाको
स्वयं उत्सारयेत् - स्वयं उठा लेते हैं,
तदा तत् - तब उनका प्रकाश
प्रकाशः (साक्षात्कार)
भवेत् - होता है ॥ १० ॥

स तु कालो व्यतिक्रान्तस्तेनेदमपरं शृणु ।
अन्यदा तत्प्रकाशस्तु श्रीमद्भागवताद् भवेत् ॥ ११॥

स तु कालः व्यतिक्रान्तः तेन इदं अपरं शृणु अन्यदा तत् प्रकाशः तु श्रीमद्भागवतात् भवेत् ॥ ११ ॥

स कालः तु - वह समय तो
व्यतिक्रान्तः - व्यतीत होगया
तेन इदं अपरं - इसलिए यह दूसरा (उपाय)
शृणु - सुनो !
अन्यदा - दूसरा (उपाय) है
तत् प्रकाशः तु - उन (श्रीकृष्ण) का प्रकाश तो
श्रीमद्भागवतात् - श्रीमद्भागवतसे
भवेत् - होता है ॥ ११ ॥

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं यत्र भागवतैर्यदा ।
कीर्त्यते श्रूयते चापि श्रीकृष्णस्तत्र निश्चितम् ॥ १२ ॥

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं यत्र भागवतैः यदा कीर्त्यते श्रूयते च अपि श्रीकृष्णः तत्र निश्चितम् ॥ १२ ॥

यत्र यदा - जहां जब
भागवतैः - भगवद्भक्तों द्वारा
श्रीमद्भागवतं- - श्रीमद्भागवत शास्त्रका
शास्त्रं
कीर्त्यते - कीर्तन (कथा)
च श्रूयते अपि - तथा श्रवण भी (होता है)
श्रीकृष्णः तत्र - श्रीकृष्ण वहां
निश्चितं - निश्चित रूपसे (रहते हैं)
॥ १२ ॥

श्रीमद्भागवतं यत्र श्लोकं श्लोकार्द्धमेव च ।
तत्रापि भगवान् कृष्णो वल्लवीभिर्विराजते ॥ १३ ॥

श्रीमद्भागवतं यत्र श्लोकं श्लोकार्धं एव च तत्र अपि भगवान् कृष्णः वल्लवीभिः विराजते ॥ १३ ॥

यत्र-	- जहां श्रीमद्भागवतका	**तत्र अपि**	- वहां भी
श्रीमद्भागवतं		**भगवान् कृष्णः**	- भगवान् श्रीकृष्ण
श्लोकं च	- एक श्लोक या	**वल्लवीभिः-**	- गोपियोंके साथ
श्लोकार्धं एव	- आधा श्लोक भी (होता है)	**विराजते**	विराजमान रहते हैं ॥ १३ ॥

भारते मानवं जन्म प्राप्य भागवतं न यैः ।
श्रुतं पापपराधीनैरात्मघातस्तु तैः कृतः ॥ १४ ॥

भारते मानवं जन्म प्राप्य भागवतं न यैः श्रुतं पाप पराधीनैः आत्मघातः तु तैः कृतः ॥ १४ ॥

भारते	- भारतवर्षमें	**भागवतं न**	- श्रीमद्भागवत नहीं सुना
मानवं जन्म	- मनुष्य जन्म	**श्रुतं**	
प्राप्य	- पाकर	**तैः तु**	- उन्होंने (जैसे)
यैः पाप-	- जिन पापके पराधीनोंने	**आत्मघातः-**	- आत्महत्या कर ली
पराधीनैः		**कृतः**	॥ १४ ॥

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं नित्यं यैः परिसेवितम् ।
पितुर्मातुश्च भार्यायाः कुलपङ्क्तिः सुतारिता ॥ १५ ॥

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं नित्यं यैः परिसेवितं पितुः मातुः च भार्यायाः कुल पंक्तिः सुतारिता ॥ १५ ॥

यैः नित्यं	- जिन्होंने सदा	**पितुः मातुः**	- पिता-माता
श्रीमद्भागवतं-	- श्रीमद्भागवत शास्त्रका	**च भार्यायाः**	- तथा पत्नीके
शास्त्रं		**कुल पंक्तिः**	- कुलोंकी पंक्तिका
परिसेवितं	- भली प्रकार सेवन किया (उन्होंने)	**सुतारिता**	- उत्तम उद्धार कर दिया ॥ १५ ॥

विद्याप्रकाशो विप्राणां राज्ञां शत्रुजयो विशाम् ।
धनं स्वास्थ्यं च शूद्राणां श्रीमद्भागवताद् भवेत् ।। १६ ।।

विद्या प्रकाशः विप्राणां राज्ञां शत्रुजयः विशां धनं स्वास्थ्यं च शूद्राणां श्रीमद्भागवतात् भवेत् ।। १६ ।।

श्रीमद्भागवतात्	- श्रीमद्भागवतसे	**विशां धनं**	- वैश्योंको धन,
विप्राणां	- ब्राह्मणोंको	**च शूद्राणां**	- तथा शूद्रोंको
विद्या प्रकाशः	- विद्याका प्रकाश,	**स्वास्थ्यं भवेत्**	- (उत्तम) स्वास्थ्य (प्राप्त)
राज्ञां शत्रुजयः	- राजाओंकी शत्रुपर विजय,		होता है ।। १६ ।।

योषितामपरेषां च सर्ववाञ्छितपूरणम् ।
अतो भागवतं नित्यं को न सेवेत भाग्यवान ।। १७ ।।

योषितां अपरेषां च सर्व वाञ्छित पूरणं अतः भागवतं नित्यं कः न सेवेत भाग्यवान् ।। १७ ।।

योषितां च	- स्त्रियोंका तथा	**अतः कः भाग्यवान्**	- अतः कौन भाग्यवान
अपरेषां सर्व	- दूसरोंका सब	**भागवतं**	- भागवतका
वाञ्छित पूरणं	- अभीष्ट पूरा करने वाला है,	**सेवेत न**	- सेवन नहीं करेगा ।।१७।।

अनेकजन्मसंसिद्धः श्रीमद्भागवतं लभेत् ।
प्रकाशो भगवद्भक्तेरुद्भवस्तत्र जायते ।। १८ ।।

अनेक जन्म संसिद्धः श्रीमद्भागवतं लभेत् प्रकाशः भगवद्भक्तेः उद्भवः तत्र जायते ।। १८ ।।

अनेक जन्म - अनेक जन्मोंमें
संसिद्धः - सिद्ध (प्रायः) होजानेपर
श्रीमद्भागवतं - श्रीमद्भागवत
लभेत् - पाता है,
तत्र भगवद्भक्तेः - (क्योंकि) उससे भगवद्भक्ति रूपी
प्रकाशः उद्भवः - प्रकाशकी उत्पत्ति
जायते - होती है ॥ १८ ॥

सांख्यायनप्रसादाप्तं श्रीमद्भागवतं पुरा ।
बृहस्पतिर्दत्तवान् मे तेनाहं कृष्णवल्लभः ॥ १९ ॥

सांख्यायन प्रसाद आप्तं श्रीमद्भागवतं पुरा बृहस्पतिः दत्तवान् मे तेन अहं कृष्ण वल्लभः ॥ १९ ॥

सांख्यायन - महर्षि सांख्यायनकी
प्रसाद आप्तं - कृपासे प्राप्त
पुरा- - पहिले श्रीमद्भागवतको
श्रीमद्भागवतं
बृहस्पतिः - देवगुरु वृहस्पतिने
मे दत्तवान् - मुझे दिया,
तेन अहं - उससे मैं
कृष्ण वल्लभः - श्रीकृष्णका प्रिय होगया ॥ १९ ॥

आख्यायिकां च तेनोक्तां विष्णुरात निबोध ताम् ।
ज्ञायते सम्प्रदायोऽपि यत्र भागवतश्रुतेः ॥ २० ॥

आख्यायिकां च तेन उक्तां विष्णुरात निबोध तां ज्ञायते सम्प्रदायः अपि यत्र भागवत श्रुतेः ॥ २० ॥

विष्णुरात - परीक्षित !
तेन उक्तां - उनके द्वारा कही हुई
आख्यायिकां च - आख्यायिका भी है
तां निबोध - उसे सुनो,
यत्र भागवत श्रुतेः - जिसमें भागवत सुननेका
सम्प्रदायः अपि - सम्प्रदाय (परम्परा) भी
ज्ञायते - जानी जाती है ॥२०॥

बृहस्पतिरुवाच-

ईक्षाञ्चक्रे यदा कृष्णो मायापुरुषरूपधृक् ।
ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चापि रजः सत्त्वतमोगुणैः ॥ २१ ॥

ईक्षान् चक्रे यदा कृष्णः माया पुरुष रूप धृक् ब्रह्मा, विष्णुः शिवः च अपि रजः सत्त्व तमः गुणैः ॥ २१ ॥

यदा कृष्णः - जब श्रीकृष्णने
पुरुषरूप धृक् - पुरुषरूप धारण करके
माया ईक्षान्- - मायाको देखा तब
चक्रे
रजः ब्रह्मा - रजोगुणसे ब्रह्मा
सत्त्व विष्णुः - सत्त्वगुणसे विष्णु
च तमः गुणैः - तथा तमोगुणसे
शिवः अपि - शिव भी ॥ २१ ॥

पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरधिकारांस्तदादिशत् ।
उत्पत्तौ पालने चैव संहारे प्रक्रमेण तान् ॥ २२ ॥

पुरुषाः त्रय उत्तस्थुः अधिकारान् तदा आदिशत् उत्पत्तौ पालने च एव संहारे प्रक्रमेण तान् ॥ २२ ॥

तदा त्रय- - तब तीनों (ये) पुरुष
पुरुषाः
उत्तस्थुः - (उस मायासे) प्रकट होगये,
तदा तान् - तब उनको
प्रक्रमेण - क्रमानुसार
उत्पत्तौ पालने - सृष्टि, पालन,
च संहारे एव - तथा प्रलयके भी
अधिकारान् - अधिकार
आदिशत् - बतलाये ॥ २२ ॥

ब्रह्मा तु नाभिकमलादुत्पन्नस्तं व्यजिज्ञपत् ।
ब्रह्मा तु नाभि कमलात् उत्पन्नः व्यजिज्ञपत् ।

नाभिकमलात् - नाभिकमलसे
उत्पन्नः ब्रह्मा - उत्पन्न ब्रह्माजीने
तं व्यजिज्ञपत् - उनको सूचित किया

ब्रह्मोवाच-

नारायणादिपुरुष परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥
नारायण आदि पुरुष परमात्मन् नमः अस्तु ते ॥ २३ ॥

आदिपुरुष - आदिपुरुष
परमात्मन् - परमात्मा
नारायण - नारायण !
ते नमः अस्तु - आपको नमस्कार हो
॥ २३ ॥

त्वया सर्गे नियुक्तोऽस्मि पापीयान् मां रजोगुणः ।
त्वत्स्मृतौ नैव बाधेत तथैव कृपया प्रभो ॥ २४ ॥

त्वया सर्गे नियुक्तः अस्मि पापीयान् मां रजोगुणः त्वत् स्मृतौ न एव बाधेत तथा एव कृपया प्रभो ॥ २४ ॥

प्रभो	- स्वामी !	**रजोगुणः**	- रजोगुण
त्वया सर्गे	- आपके द्वारा सृष्टि करनेमें	**त्वत् स्मृतौ**	- आपका स्मरण करनेमें
नियुक्तः अस्मि	- नियुक्त हुआ हूं,	**न एव बाधेत**	- नहीं ही बाधा दे
मां पापीयान्	- मुझे पाप-प्रवृत्ति वाला	**तथा एव-कृपया**	- ऐसी ही कृपा कीजिए ॥ २४ ॥

बृहस्पतिरुवाच-

यदा तु भगवांस्तस्मै श्रीमद्भागवतं पुरा ।
उपदिश्याब्रवीद् ब्रह्मन् सेवस्वैनत् स्वसिद्धये ॥ २५ ॥

यदा तु भगवान् तस्मै श्रीमद्भागवतं पुरा उपदिश्य अब्रवीत् ब्रह्मन् सेवस्व ऐनत् स्वसिद्धये ॥ २५ ॥

यदा तु तस्मै	- जब तो उनको	**उपदिश्य**	- उपदेश करके
भगवान्	- भगवानने	**अब्रवीत् ब्रह्मन्**	- कहा- 'ब्रह्मन् !
पुरा-श्रीमद्भागवतं	- पहिले श्रीमद्भागवतका	**स्वसिद्धये**	- अपनी (इच्छा) पूर्तिके लिए
		ऐनत् सेवस्व	- इसका सेवन कीजिए ॥ २५ ॥

ब्रह्मा तु परमप्रीतस्तेन कृष्णाप्तयेऽनिशम् ।
सप्तावरणभङ्गाय सप्ताहं समवर्तयत् ॥ २६ ॥

ब्रह्मा तु परमप्रीतः तेन कृष्ण आप्तये अनिशं सप्त आवरण भङ्गाय सप्ताहं समवर्तयत् ॥ २६ ॥

ब्रह्मा तु	- ब्रह्माजी तो
परमप्रीतः	- अत्यन्त प्रसन्न होकर
अनिशं	- अहर्निश
कृष्ण आप्तये	- श्रीकृष्णकी प्राप्ति तथा
सप्त आवरण	- सात (मायादि) आवरणोंको
भङ्गाय	- भंग करनेके लिए
सप्ताहं	- (भागवत) सप्ताह
समवर्तयत्	- भली प्रकार करने लगे ॥ २६ ॥

श्रीभागवतसप्ताहसेवनाप्तमनोरथः ।
सृष्टिं वितनुते नित्यं ससप्ताहः पुनः पुनः ॥ २७ ॥

श्रीभागवत सप्ताह सेवन आप्त मनोरथः सृष्टिं वितनुते नित्यं स सप्ताहः पुनः पुनः ॥ २७ ॥

श्रीभागवत	- श्रीमद्भागवतके
सप्ताहसेवन	- सप्ताह विधि सेवनसे
आप्त मनोरथः	- (उनके) मनोरथ प्राप्त होगये,
स सप्ताहः	- सप्ताह करते हुए वे
नित्यं पुनः-	- सदा बार-बार
पुनः	
सृष्टिं वितनुते	- सृष्टि-विस्तार करते हैं ॥ २७ ॥

विष्णुरप्यर्थयामास पुमांसं स्वार्थसिद्धये ।
प्रजानां पालने पुंसा यदनेनापि कल्पितः ॥ २८ ॥

विष्णुः अपि अर्थयामास पुमांसं स्व अर्थ सिद्धये प्रजानां पालने पुंसा यत् अनेन अपिकल्पितः ॥ २८ ॥

यत् पुंसा	- क्योंकि परमपुरुषने
अनेन अपि	- इनको भी
प्रजानां पालने	- प्रजाके पालनमें
कल्पितः	- नियुक्त किया था (अतः)
विष्णुः अपि	- विष्णु ने भी
स्व अर्थ सिद्धये	- अपनी प्रयोजन सिद्धिके लिए
पुमांसं	- परम पुरुषसे
अर्थयामास	- प्रार्थनाकी ॥ २८ ॥

विष्णुरुवाच-

प्रजानां पालनं देव करिष्यामि यथोचितम् ।
प्रवृत्त्या च निवृत्त्या च कर्मज्ञानप्रयोजनात् ॥ २९ ॥

प्रजानां पालनं देव करिष्यामि यथा उचितं प्रवृत्त्या च निवृत्त्या च कर्म **ज्ञान प्रयोजनात् ॥ २९ ॥**

देव	- देव !	**निवृत्त्या**	- निवृत्तिके द्वारा
कर्म प्रयोजनात्	- कर्मके प्रयोजनसे	**यथा उचितं**	- जैसे उचित होगा वैसे
प्रवृत्त्या	- प्रवृत्तिके द्वारा	**प्रजानां**	- प्रजाका
च ज्ञान	- तथा ज्ञानके लिए	**पालनं करिष्यामि**	-पालन करूँगा ॥२९॥

यदा यदैव कालेन धर्मग्लानिर्भविष्यति ।
धर्मं संस्थापयिष्यामि ह्यवतारैस्तदा तदा ॥ ३० ॥

यदा यदा एव कालेन धर्म ग्लानिः भविष्यति धर्मं संस्थापयिष्यामि हि अवतारैः तदा तदा ॥ ३० ॥

कालेन	- कालके प्रभावसे	**तदा तदा**	- तब तब
यदा यदा	- जब-जब	**अवतारैः**	- अवतारोंके द्वारा
धर्म ग्लानिः	- धर्मकी दुर्बलता	**धर्मं**	- धर्मकी
हि भविष्यति	- क्योंकि हो जायगी,	**संस्थापयिष्यामि**	- ठीक स्थापना करुँगा ॥ ३० ॥

भोगार्थिभ्यस्तु यज्ञादिफलं दास्यामि निश्चितम् ।
मोक्षार्थिभ्यो विरक्तेभ्यो मुक्तिं पञ्चविधां तथा ॥ ३१ ॥

भोग अर्थिभ्यः तु यज्ञ आदि फलं दास्यामि निश्चितं मोक्ष अर्थिभ्यः विरक्तेभ्यः मुक्तिं पञ्च विधां तथा ॥ ३१ ॥

भोग- - भोग चाहने वालोंका
अर्थिभ्यः तु जो
यज्ञ आदि- - (उनके) यज्ञ आदिका
निश्चितं निश्चित
फलं - फल तथा
विरक्तेभ्यः - (भोगोंसे) विरक्त
मोक्ष अर्थिभ्यः - मोक्ष चाहने वालोंको
पञ्चविधां - पांच प्रकारकी (सालोंका, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि, सायुज्य)
मुक्तिं दास्यामि - मुक्ति दूंगा ॥ ३१ ॥

येऽपि मोक्षं न वाञ्छन्ति तान् कथं पालयाम्यहम् ।
आत्मानं च श्रियं चापि पालयामि कथं वद ॥ ३२ ॥

ये अपि मोक्षं न वाञ्छन्ति तान् कथं पालयामि अहं आत्मानं च श्रियं च अपि पालयामि कथं वद ॥ ३२ ॥

ये मोक्षं अपि - जो मोक्ष भी
न वाञ्छन्ति - नहीं चाहते
तान् कथं - उनका कैसे
पालयामि - पालन करूँ
च आत्मानं - तथा अपना
च श्रियं अपि - और लक्ष्मीजी का भी
कथं पालयामि - कैसे पालन करूँ
वद - (यह) बतलाइय ॥३२॥

वृहस्पतिरुवाच-१

तस्मा अपि पुमानाद्यः श्रीभागवतमादिशत् ।
उवाच च पठस्वैनत्तव सर्वार्थसिद्धये ॥ ३३ ॥

तस्मा अपि पुमान् आद्यः श्रीभागवतं आदिशत् उवाच च पठस्व ऐनत् तव सर्व अर्थ सिद्धये ॥ ३३ ॥

तस्मा अपि - उनको भी
पुमान् आद्यः - आदि पुरुष (नारायण) ने
श्रीभागवतं - श्रीमद्भागवतका
आदिशत् - उपदेश किया,
च उवाच - तथा बोले
तव सर्व - तुम अपने सब
अर्थ सिद्धये - प्रयोजनकी सिद्धिके लिए
ऐनत् पठस्व - इसको पढ़ो (पाठ करो) ॥ ३३ ॥

यह उवाच गीताप्रेस की प्रतिमें नहीं है ।

ततो विष्णुः प्रसन्नात्मा परमार्थकपालने ।
समर्थोऽभूच्छ्रिया मासि मासि भागवतं स्मरन् ॥ ३४ ॥

ततः विष्णुः प्रसन्न आत्मा परमार्थक पालने समर्थः अभूत् श्रिया मासि मासि भागवतं स्मरन् ॥ ३४ ॥

ततः विष्णुः	- इससे विष्णु भगवान	**भागवतं स्मरन्**	- भागवतका चिन्तन करते हुए
प्रसन्न आत्मा	- प्रसन्न चित्त होगये,	**परमार्थक पालने**	- परमार्थके पालनमें
मासिमासि श्रिया	- महीने महीने (के क्रमसे) लक्ष्मीके साथ	**समर्थः अभूत्**	- समर्थ होगये ॥ ३४ ॥

यदा विष्णुः स्वयं वक्ता लक्ष्मीश्च श्रवणे रता ।
तदा भागवतश्रावो मासेनैव पुनः पुनः ॥ ३५ ॥

यदा विष्णुः स्वयं वक्ता लक्ष्मीः च श्रवणे रता तदा भागवत श्रावः मासेन एव पुनः पुनः ॥ ३५ ॥

यदा स्वयं-	- जब स्वयं विष्णु	**तदा मासेन-**	- तब एक महीनेके
विष्णुः	भगवान	**एव**	क्रमसे ही
वक्ता च	- वक्ता होते हैं और	**पुनः पुनः**	- बार-बार
लक्ष्मीः श्रवणे-	- लक्ष्मीजी श्रवण करने	**भागवत श्रावः**	- भागवतका श्रवण होता
रता	लगती हैं		है ॥ ३५ ॥

यदा लक्ष्मीः स्वयं वक्त्री विष्णुश्च श्रवणे रतः ।
मासद्वयं रसास्वादस्तदातीव सुशोभते ॥ ३६ ॥

यदा लक्ष्मीः स्वयं वक्त्री विष्णुः च श्रवणे रतः मास द्वयं रस आस्वादः तदा अतीव सुशोभते ॥ ३६ ॥

यदा स्वयं	- जब स्वयं	**तदा मास द्वयं**	- तब दो महीने तक
लक्ष्मीः वक्त्री	- लक्ष्मीजी बोलने वाली होती हैं	**अतीव रस-आस्वादः**	- अत्यधिक रसास्वादन
विष्णुः	- तथा भगवान विष्णु	**सुशोभते**	- सुशोभित होता है ॥ ३६ ॥
श्रवणे रतः	श्रवण करने लगते हैं		

अधिकारे स्थितो विष्णुर्लक्ष्मीर्निश्चिन्तमानसा ।
तेन भागवतास्वादस्तस्या भूरि प्रकाशते ॥ ३७ ॥

अधिकारे स्थितः विष्णुः लक्ष्मीः निश्चिन्त मानसा तेन भागवत आस्वादः तस्या भूरि प्रकाशते ॥ ३७ ॥

विष्णुः	- भगवान विष्णु	**तेन भागवत**	- इसलिए भागवतका
अधिकारे स्थितः	- अधिकार के पदपर स्थित हैं (परन्तु)	**आस्वादतस्या**	- रसास्वादन उनको
		भूरि प्रकाशते	- अधिक प्रगट होता है ॥ ३७ ॥
लक्ष्मीः	- लक्ष्मीजी		
निश्चिन्त मानसाः	- निश्चिन्त चित्त हैं,		

अथ रुद्रोऽपि तं देवं संहाराधिकृतः पुरा ।
पुमांसं प्रार्थयामास स्वसामर्थ्यविवृद्धये ॥ ३८ ॥

अथ रुद्रः अपि तं देवं संहार अधिकृतः पुरा पुमांसं प्रार्थयामास स्व सामर्थ्य विवृद्धये ॥ ३८ ॥

पुरा संहार	- पहिले संहारके लिए	**विवृद्धये**	- बढ़ानेके लिए
अधिकृतः	- अधिकार प्राप्त	**तं देवं पुमांसं**	- उन देव परमपुरुषसे
अथ रुद्रः अपि	- फिर रुद्र ने भी	**प्रार्थयामास**	- प्रार्थनाकी ॥ ३८ ॥
स्व सामर्थ्यं	- अपनी शक्ति		

रुद्र उवाच-

नित्ये नैमित्तिके चैव संहारे प्राकृते तथा ।
शक्तयो मम विद्यन्ते देवदेव मम प्रभो ॥ ३९ ॥

नित्ये नैमित्तिके च एव संहारे प्राकृते तथा शक्तयः मम विद्यन्ते देव देव मम प्रभो ॥ ३९ ॥

मम प्रभो - मेरे स्वामी !
देव देव - देवाधिदेव !
नित्ये नैमित्तिके - नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय,
च प्राकृते संहारे - तथा प्राकृतिक प्रलयकी
तथा मम - ठीक ठीक मेरी
शक्तयः विद्यन्ते - शक्तियाँ हैं ॥ ३९ ॥

आत्यन्तिके तु संहारे मम शक्तिर्न विद्यते ।
महद्दुःखं ममैतत्तु तेन त्वां प्रार्थयाम्यहम् ॥ ४० ॥

आत्यन्तिके तु संहारे मम शक्तिः न विद्यते महत् दुःखं मम एतत् तु तेन त्वां प्रार्थयामि अहम् ॥ ४० ॥

तु आत्यन्तिके - किन्तु आत्यन्तिक
संहारे - प्रलय (मोक्ष) में
मम शक्तिः - मुझमें शक्ति
न विद्यते - नहीं है,
मम एतत् - मुझे यह
महत् दुःखं - महान दुःख है,
तेन त्वां - इसलिए आपसे
अहं प्रार्थयामि - मैं प्रार्थना करता हूँ ॥ ४० ॥

बृहस्पतिरुवाच-

श्रीमद्भागवतं तस्मा अपि नारायणो ददौ ।
स तु संसेवनादस्य जिग्ये चापि तमोगुणम् ॥ ४१ ॥

श्रीमद्भागवतं तस्मा अपि नारायणः ददौ स तु संसेवनात् अस्य जिज्ञे च अपि तमोगुणम् ॥ ४१ ॥

तस्मा अपि	- उनको भी
नारायणः	- श्री नारायणने
श्रीमद्भागवतं	- श्रीमद्भागवत
ददौ	- प्रदान किया
स तु अस्य	- उन्होंने तो इस (भागवत) के
सं सेवनात्	- निरन्तर सेवनसे
तमोगुणं अपि	- तमोगुणको भी
जिज्ञे च	- जीत ही लिया ॥४१॥

कथा भागवती तेन सेविता वर्षमात्रतः ।
लये त्वात्यन्तिके तेनावाप शक्तिं सदाशिवः ॥ ४२ ॥

कथा भागवती तेन सेविता वर्षमात्रतः लये तु आत्यन्तिके तेन अवाप शक्तिं सदाशिवः ॥ ४२ ॥

तेन वर्षमात्रतः	- उन्होंने एक वर्षके क्रमसे
भागवती कथा	- भागवतकी कथाका
सेविता	- सेवन किया
तेन सदाशिवः	- उससे सदाशिवने
आत्यन्तिके	- आत्यन्तिक
लये तु	- प्रलय (मोक्ष) की भी
शक्तिं अवाप	- शक्ति प्राप्त कर ली ॥ ४२ ॥

उद्धव उवाच-

श्रीभागवतमाहात्म्य इमामाख्यायिकां गुरोः ।
श्रुत्वा भागवतं लब्ध्वा मुमुदेऽहं प्रणम्य तम् ॥ ४३ ॥

श्रीभागवत माहात्म्य इमां आख्यायिकां गुरोः श्रुत्वा भागवतं लब्ध्वा मुमुदे अहं प्रणम्य तम् ॥ ४३ ॥

श्रीभागवत	- श्रीमद्भागवतके
माहात्म्य	- माहात्म्यकी
इमां आख्यायिकां	- यह आख्यायिका
गुरोः श्रुत्वा	- गुरुदेव (वृहस्पति) से सुनकर और
भागवतं लब्ध्वा	- भागवत प्राप्त करके
तं प्रणम्य	- उनको प्रणाम करके
अहं मुमुदे	- मैं आनन्दित हुआ ॥ ४३ ॥

ततस्तु वैष्णवीं रीतिं गृहीत्वा मासमात्रतः ।
श्रीमद्भागवतास्वादो मया सम्यङ्निषेवितः ॥ ४४ ॥

ततः तु वैष्णवीं रीतिं गृहीत्वा मास मात्रतः श्रीमद्भागवत आस्वादः मया सम्यक् निषेवितः ॥ ४४ ॥

ततः तु - तब से ही
वैष्णवीं रीतिं - वैष्णव-पद्धति
गृहीत्वा - ग्रहण करके
मया मासमात्रतः - मैंने एक महीनेके क्रमसे
श्रीमद्भागवत - श्रीमद्भागवतका
आस्वादः सम्यक् - रस भली प्रकार
निषेवितः - सेवन किया ॥४४॥

तावतैव बभूवाहं कृष्णस्य दयितः सखा ।
कृष्णेनाथ नियुक्तोऽहं व्रजे स्वप्रेयसीगणे ॥ ४५ ॥

तावत् एव बभूव अहं कृष्णस्य दयितः सखा कृष्णेन अथ नियुक्तः अहं व्रजे स्वप्रेयसी गणे ॥ ४५ ॥

तावत् एव - तब से ही
अहं कृष्णस्य - मैं श्रीकृष्णका
दयितः सखा - प्रिय सखा
बभूव एव - हो ही गया,
अथ कृष्णेन - फिर श्रीकृष्ण द्वारा
स्वप्रेयसी गणे - अपनी प्रेमिका वर्ग (गोपियों) के पास
व्रजे अहं- - व्रज (जाने) को मैं
नियुक्तः नियुक्त हुआ ॥ ४५ ॥

विरहार्त्तासु गोपीषु स्वयं नित्यविहारिणा ।
श्रीभागवतसन्देशो मन्मुखेन प्रयोजितः ॥ ४६ ॥

विरह आर्त्तासु गोपीषु स्वयं नित्य विहारिणा श्रीभागवत सन्देशः मत् मुखेन प्रयोजितः ॥ ४६ ॥

विरह आर्त्तासु - वियोग व्याकुला
गोपीषु - गोपियोंको
स्वयं नित्य - स्वयं नित्य
विहारिणा - विहार करने वाले (श्रीकृष्ण) ने
मत् मुखेन - मेरे मुखसे
श्रीभागवत - श्रीभागवतका
सन्देशः प्रयोजितः - सन्देश दिया ॥ ४६ ॥

तं यथामति लब्ध्वा ता आसन् विरहवर्जिताः ।
नाज्ञासिषं रहस्यं तच्चमत्कारस्तु लोकितः ॥ ४७ ॥

तं यथा मति लब्ध्वा ता आसन् विरह वर्जिताः न अज्ञासिषं रहस्यं तत् चमत्कारः तु लोकितः ॥ ४७ ॥

तं यथा मति - उस (सन्देश) को बुद्धिके अनुसार
लब्ध्वा ता - प्राप्त करके वे (गोपियां)
विरह वर्जिताः - वियोग रहिता
आसन् - होगयीं,
तत् रहस्यं - इसका रहस्य (मैं)
न अज्ञासिषं - नहीं जान सका
तु चमत्कारः - किन्तु (भागवतका) चमत्कार
लोकितः - प्रत्यक्ष देखा ॥ ४७ ॥

स्ववासं प्रार्थ्य कृष्णं च ब्रह्माद्येषु गतेषु मे ।
श्रीमद्भागवते कृष्णस्तद्रहस्यं स्वयं ददौ ॥ ४८ ॥

स्वः वासं प्रार्थ्य कृष्णं च ब्रह्मा आद्येषु गतेषु मे श्रीमद्भागवते कृष्णः तत् रहस्यं स्वयं ददौ ॥ ४८ ॥

ब्रह्मा आद्येषु - ब्रह्मा आदिके
कृष्णं च - श्रीकृष्णसे
स्वः वासं प्रार्थ्य - स्वधाम निवासकी प्रार्थना करके
गतेषु - चले जानेपर
कृष्णः स्वयं - श्रीकृष्णने स्वयं
तत्- - वह श्रीमद्भागवतका
श्रीमद्भागवते
रहस्यं मे ददौ - रहस्य मुझे दिया ॥ ४८ ॥

पुरतोऽश्वत्थमूलस्य चकार मयि तद् दृढम् ।
तेनात्र व्रजवल्लीषु वसामि बदरीं गतः ॥ ४९ ॥

पुरतः अश्वत्थ मूलस्य चकार मयि तत् दृढं तेन अत्र व्रजवल्लीषु वसामि बदरीं गतः ॥ ४९ ॥

अश्वत्थ - पीपलकी
मूलस्य पुरतः - जड़के आगे (बैठे हुए)
तत् मयि दृढं - उसे मुझमें दृढ़
चकार - किया
तेन बदरीं - उसी (के प्रभाव) से
गतः बदरीनाथ जाकर भी
अत्र व्रज- - यहां व्रजकी लताओंमें
वल्लीषु
वसामि - निवास करता हूँ ॥४९॥

तस्मान्नारदकुण्डेऽत्र तिष्ठामि स्वेच्छया सदा ।
कृष्णप्रकाशो भक्तानां श्रीमद्भागवताद् भवेत् ॥ ५० ॥

तस्मात् नारद कुण्डे अत्र तिष्ठामि स्व इच्छया सदा कृष्ण प्रकाशः भक्तानां श्रीमद्भागवतात् भवेत् ॥ ५० ॥

तस्मात् अत्र - इसलिए यहां
नारद कुण्डे - नारद कुण्डके समीप
स्व इच्छया - अपनी इच्छासे
सदा तिष्ठामि - सदा रहता हूँ,
भक्तानां - भक्तोंको
कृष्ण प्रकाशः - श्रीकृष्णका प्रकाश (साक्षात्कार)
श्रीमद्भागवतात् - श्रीमद्भागवतसे
भवेत् - होता है ॥ ५० ॥

तदेषामपि कार्यार्थं श्रीमद्भागवतं त्वहम् ।
प्रवक्ष्यामि सहायोऽत्र त्वयैवानुष्ठितो भवेत् ॥ ५१ ॥

तत् एषां अपि कार्य अर्थं श्रीमद्भागवतं तु अहं प्रवक्ष्यामि सहायः अत्र त्वया एव अनुष्ठितः भवेत् ॥ ५१ ॥

तत् एषां अपि - अतः इन लोगोंका भी
कार्य अर्थं - काम बनानेके लिए
अहं तु - मैं तो
श्रीमद्भागवतं - श्रीमद्भागवतका
प्रवक्ष्यामि - प्रवचन करूँगा,
अत्र त्वया एव - इसमें तुमको ही
सहायः- - सहायता (की व्यवस्था)
अनुष्ठितः करनी
भवेत् - चाहिए ॥ ५१ ॥

सूत उवाच-

विष्णुरातस्तु श्रुत्वा तदुद्धवं प्रणतोऽब्रवीत् ।

विष्णुरातः तु श्रुत्वा तत् उद्धवं प्रणतः अब्रवीत् ।

तत् श्रुत्वा तु - उसे सुनकर तो
विष्णुरातः - परीक्षितने
प्रणतः - प्रणाम करके
उद्धवं अब्रवीत् - उद्धवजीसे कहा ।

परीक्षिदुवाच-

हरिदास त्वया कार्यं श्रीभागवतकीर्तनम् ॥ ५२ ॥

हरिदास त्वया कार्यं श्रीभागवत कीर्तनम् ॥ ५२ ॥

हरिदास - हरिदास उद्धव जी !
त्वया - आपको
श्रीभागवत - श्रीभागवतका
कीर्तनं कार्यं - कीर्तन (प्रवचन) करना चाहिए ॥ ५२ ॥

आज्ञाप्योऽहं यथा कार्यः सहायोऽत्र मया तथा ।

आज्ञाप्यः अहं यथा कार्यः सहायः अत्र मया तथा ।

यथा मया - जैसे मेरे द्वारा
अत्र सहायः - इस काममें सहायता
कार्यः तथा - करनी हो वैसी
अहं - मुझे भी
आज्ञाप्यः - आज्ञा देनी चाहिए ।

सूत उवाच-

श्रुत्वैतदुद्धवो वाक्यमुवाच प्रीतमानसः ॥ ५३ ॥

श्रुत्वा एतत् उद्धवः वाक्यं उवाच प्रीतमानसः ॥ ५३ ॥

एतत् श्रुत्वा - यह सुनकर
प्रीत मानसः - प्रसन्नचित्त
उद्धवः - उद्धव जी
वाक्यं उवाच - (प्रयोजनकी) बात बोले ॥ ५३ ॥

उद्धव उवाच-

श्रीकृष्णेन परित्यक्ते भूतले बलवान् कलिः ।
करिष्यति परं विघ्नं सत्कार्ये समुपस्थिते ॥ ५४ ॥

श्रीकृष्णेन परित्यक्ते भूतले बलवान् कलिः करिष्यति परं विघ्नं सत् कार्ये सम उपस्थिते ॥ ५४ ॥

श्रीकृष्णेन - श्रीकृष्णके
भूतले परित्यक्ते - पृथ्वीतल छोड़ देनेपर
सत् कार्ये - उत्तम कार्यके
सम उपस्थिते - आरम्भ किये जानेपर
बलवान् कलिः - बलवान कलियुग
परं विघ्नं - बहुत बड़े विघ्न
करिष्यति - करेगा ॥ ५४ ॥

तस्माद् दिग्विजयं याहि कलिनिग्रहमाचर ।
अहं तु मासमात्रेण वैष्णवीं रीतिमास्थितः ॥ ५५ ॥

तस्मात् दिग्विजयं याहि कलि निग्रहं आचर अहं तु मास मात्रेण वैष्णवीं रीतिं आस्थितः ॥ ५५ ॥

तस्मात् - इसलिए
दिग्विजयं याहि - दिग्विजय करने जाओ,
कलि निग्रहं - कलियुगका नियन्त्रण
आचर - करो,
अहं तु - मैं तो
वैष्णवीं रीतिं - वैष्णवोंकी पद्धतिका
आस्थितः - अवलम्बन करके
मासमात्रेण - एक महीनेमें ही ॥५५॥

श्रीमद्भागवतास्वादं प्रचार्य त्वत्सहायतः ।
एतान् सम्प्रापयिष्यामि नित्यधाम्नि मधुद्विषः ॥ ५६ ॥

श्रीमद्भागवत आस्वादं प्रचार्य त्वत् सहायतः एतान् सम्प्रापयिष्यामि नित्य धाम्नि मधुद्विषः ॥ ५६ ॥

त्वत् सहायतः - तुम्हारी सहायतासे
श्रीमद्भागवत - श्रीमद्भागवत
आस्वादं प्रचार्य - रसका प्रचार करके
एतान् मधुद्विषः- इनको मधुसूदनके
नित्य धाम्नि - नित्य धाममें
सम्प्रापयिष्यामि - ठीक-ठीक पहुँचा दूँगा ॥ ५६ ॥

सूत उवाच-

श्रुत्वैवं तद्वचो राजा मुदितश्चिन्तयाऽऽतुरः ।
तदा विज्ञापयामास स्वाभिप्रायं तमुद्धवम् ॥ ५७ ॥

श्रुत्वा एवं तत् वचः राजा मुदितः चिन्तया आतुरः तदा विज्ञापयामास स्व अभिप्रायं तं उद्धवम् ॥ ५७ ॥

एवं तत् वचः - इस प्रकार उनकी बात
श्रुत्वा राजा - सुनकर राजा परीक्षित
मुदितः - प्रसन्न हुए तथा
चिन्तया आतुरः - चिन्तासे व्याकुल होकर
तदा तं उद्धवं - उन उद्धवजीसे
स्व अभिप्रायं - अपना अभिप्राय
विज्ञापयामास - सूचित किया ॥ ५७ ॥

परीक्षिदुवाच-

कलिं तु निग्रहीष्यामि तात ते वचसि स्थितः ।
श्रीभ्रागवतसम्प्राप्तिः कथं मम भविष्यति ॥ ५८ ॥

कलिं तु निग्रहीष्यामि तात ते वचसि स्थितः श्रीभागवत सम्प्राप्तिः कथं मम भविष्यति ॥ ५८ ॥

तात - तात !
वचसि स्थितः - आपकी आज्ञामें स्थित होकर
कलिं तु - कलियुगका तो
निग्रहीष्यामि - नियन्त्रण करूँगा (पर)
श्रीभागवत - श्रीमद्भागवतकी
सम्प्राप्तिः - ठीक प्राप्ति
मम कथं - मुझे कैसे
भविष्यति - होगी ॥ ५८ ॥

अहं तु समनुग्राह्यस्तव पादतले श्रितः ।

अहं तु सम अनुग्राह्यः तव पादतले श्रितः ।

तव पादतले - आपके चरण-तलवोंका
श्रितः अहं च - आश्रित मैं भी
सम अनुग्राह्यः - पूर्ण अनुग्रहके योग्य हूँ

सूत उवाच-

श्रुत्वैतद् वचनं भूयोऽप्युद्धवस्तमुवाच ह ॥ ५९ ॥

श्रुत्वा एतत् वचनं भूयः अपि उद्धवः तं उवाच ह ॥ ५९ ॥

एतत् वचनं - यह बात
श्रुत्वा तं - सुनकर उनसे
उद्धवः भूयः - उद्धवने फिरसे
उवाच ह - निश्चित रूपसे कहा ॥ ५९ ॥

उद्धव उवाच-

राजंश्चिन्ता तु ते कापि नैव कार्या कथञ्चन ।
तवैव भगवच्छास्त्रे यतो मुख्याधिकारिता ॥ ६० ॥

राजन् चिन्ता तु ते कापि न एव कार्या कथञ्चन तव एव भगवत् शास्त्रे यतः मुख्य अधिकारिता ॥ ६० ॥

राजन् - राजन् !
ते तु कापि - तुमको तो कोई भी
चिन्ता कथञ्चन - चिन्ता किसी प्रकार
न एव कार्या - नहीं ही करनी चाहिए
यतः तव एव - क्योंकि तुम्हारा ही
भगवत् शास्त्रे - भागवत शास्त्रमें
मुख्य अधिकारिता - मुख्य अधिकार है ॥ ६० ॥

एतावत्कालपर्यन्तं प्रायो भागवतश्रुतेः ।
वार्तामपि न जानन्ति मनुष्याः कर्मतत्पराः ॥ ६१ ॥

एतावत् कालपर्यन्तं प्रायः भागवत श्रुतेः वार्तां अपि न जानन्ति मनुष्याः कर्मतत्पराः ॥ ६१ ॥

एतावत् - इतने
कालपर्यन्तं - समयतक
कर्मतत्पराः - कर्मपरायण
मनुष्याः - मनुष्य लोग
भागवत श्रुतेः - भागवत रूपी श्रुतिकी
वार्तां अपि - चर्चा भी
न जानन्ति - नहीं जानते ॥ ६१ ॥

त्वत्प्रसादेन बहवो मनुष्याः भारताजिरे ।
श्रीमद्भागवतप्राप्तौ सुखं प्राप्स्यन्ति शाश्वतम् ॥ ६२ ॥

त्वत् प्रसादेन बहवः मनुष्याः भारत अजिरे श्रीमद्भागवत प्राप्तौ सुखं प्राप्स्यन्ति शाश्वतम् ॥ ६२ ॥

भारत अजिरे - भारतवर्षके आंगनमें
त्वत् प्रसादेन - तुम्हारी कृपासे
बहवः मनुष्याः - बहुतसे मनुष्य
श्रीमद्भागवत - श्रीमद्भागवत
प्राप्तौ शाश्वतं - प्राप्ति द्वारा नित्य
सुखं प्राप्स्यन्ति - सुख प्राप्त करेंगे ॥ ६२ ॥

नन्दनन्दनरूपस्तु श्रीशुको भगवानृषिः ।
श्रीमद्भागवतं तुभ्यं श्रावयिष्यत्यसंशयम् ॥ ६३ ॥

नन्दनन्दन रूपः तु श्रीशुकः भगवान् ऋषिः श्रीमद्भागवतं तुभ्यं श्रावयिष्यति असंशयम् ॥ ६३ ॥

असंशयं - निस्सन्देह
भगवान् - भगवान्
ऋषिः श्रीशुकः - ऋषि श्रीशुकदेवजी
नन्दनन्दन - नन्दनन्दनके
रूपः तु - स्वरूप ही हैं (वे)
तुभ्यं - तुमको
श्रीमद्भागवतं - श्रीमद्भागवत
श्रावयिष्यति - श्रवण करावेंगे ॥६३॥

तेन प्राप्स्यसि राजंस्त्वं नित्यं धाम व्रजेशितुः ।
श्रीभागवतसञ्चारस्ततो भुवि भविष्यति ॥ ६४ ॥

तेन प्राप्स्यसि राजन् त्वं नित्यं धाम व्रज ईशितुः श्रीमद्भागवत सञ्चारः ततः भुवि भविष्यति ॥ ६४ ॥

राजन् त्वं - राजन् ! तुम
तेन व्रज ईशितुः - उससे व्रजेश्वरका
नित्यं धाम - नित्य धाम
प्राप्स्यसि - प्राप्त करोगे,
ततः भुवि - उसी (तुम्हारे श्रवण) से पृथ्वीपर
श्रीमद्भागवत - श्रीमद्भागवतका
सञ्चारः - प्रचलन
भविष्यति - होगा ॥ ६४ ॥

तस्मात्त्वं गच्छ राजेन्द्र कलिनिग्रहमाचर ।

तस्मात् त्वं गच्छ राजेन्द्र कलि निग्रहं आचर ।

राजेन्द्र - महाराज !
तस्मात् त्वं - इसलिए तुम
गच्छ कलि - जाओ, कलियुगका
निग्रहं आचर - नियन्त्रण करो ।

सूत उवाच-

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य गतो राजा दिशां जये ॥ ६५ ॥

इति उक्तः तं परिक्रम्य गतः राजा दिशां जये ॥ ६५ ॥

इति उक्तः - ऐसा कहे जानेपर
तं परिक्रम्य - उनकी परिक्रमा करके
दिशां जये - दिग्विजय करने
राजा गतः - राजा परीक्षित चले गये ॥ ६५ ॥

वज्रस्तु निजराज्येशं प्रतिबाहुं विधाय च ।
तत्रैव मातृभिः साकं तस्थौ भागवताशया ॥ ६६ ॥

वज्रः तु निज राज्य ईशं प्रतिबाहुं विधाय च तत्र एव मातृभिः साकं तस्थौ भागवत आशया ॥ ६६ ॥

वज्रः तु	- वज्रनाभ तो	**सः मातृभिः**	- वे माताओंके साथ
निज राज्य ईशं	- अपने राज्यका स्वामी	**साकं**	
प्रतिबाहुं विधाय	- (अपने पुत्र) प्रतिबाहुको बनाकर	**भागवत-आशया**	- भागवत (श्रवण) के विचार से
		तत्र एव तस्थौ	- वहीं ठहर गये ॥६६॥

अथ वृन्दावने मासं गोवर्धनसमीपतः ।
श्रीमद्भागवतास्वादस्तूद्धवेन प्रवर्तितः ॥ ६७ ॥

अथ वृन्दावने मासं गोवर्धन समीपतः श्रीमद्भागवत आस्वादः तु उद्धवेन प्रवर्तितः ॥ ६७ ॥

अथ वृन्दावने	- फिर वृन्दावनमें	**श्रीमद्भागवत**	- श्रीमद्भागवतका
गोवर्धन समीपतः	- गोवर्धनके समीप१	**आस्वादः**	- रसास्वादन
उद्धवेन	- उद्धवजी द्वारा	**प्रवर्तितः**	- कराया गया ॥ ६७ ॥

तस्मिन्नास्वाद्यमाने तु सच्चिदानन्दरूपिणी ।
प्रचकाशे हरेर्लीला सर्वतः कृष्ण एव च ॥ ६८ ॥

तस्मिन् आस्वाद्यमाने तु सच्चिदानन्द रूपिणी प्रचकाशे हरेः लीला सर्वतः कृष्ण एव च ॥ ६८ ॥

तस्मिन्	- उस स्थान पर	**रूपिणी**	- स्वरूपा
आस्वाद्यमाने	- (भागवतका) रसास्वादन करते समय	**हरेः लीला**	- श्रीहरिकी लीला
		च कृष्ण एव	- तथा श्रीकृष्ण भी
तु सच्चिदानन्द	- तो सच्चिदानन्द	**सर्वतः-**	- सब ओर पूर्ण प्रत्यक्ष
		प्रचकाशे	होगये ॥ ६८ ॥

---

१. पहले यमुनाजी का प्रवाह गोवर्धन, नन्दगाँव, बरसाना के समीप था। यमुनाकी धाराके हटते जाने से वृन्दावन वर्तमान स्थान तक आ गया ।

आत्मानं च तदन्तःस्थं सर्वेऽपि ददृशुस्तदा ।
वज्रस्तु दक्षिणे दृष्ट्वा कृष्णपादसरोरुहे ॥ ६९ ॥

आत्मानं च तत् अन्तःस्थं सर्वे अपि ददृशुः तदा वज्रः तु दक्षिणे दृष्ट्वा कृष्णपाद सरोरुहे ॥ ६९ ॥

तदा सर्वे अपि	- उस समय सबने ही	**वज्रः तु**	- वज्रनाभने तो
आत्मानं च	- अपनेको भी	**दक्षिणे कृष्ण**	- श्रीकृष्णके दाहिने
तत् अन्तःस्थं	- उस (लीला) के भीतर ही	**पाद सरोरुहे**	- चरण कमलमें
ददृशुः	- देखा,	**दृष्ट्वा**	- देखकर ॥ ६९ ॥

स्वात्मानं कृष्णवैधुर्यान्मुक्तस्तद्भुव्यशोभत ।
ताश्च तन्मातरः कृष्णे रासरात्रिप्रकाशिनि ॥ ७० ॥

स्व आत्मानं कृष्ण वैधुर्यात् मुक्तः तत् भुवि अशोभत ताः च तत् मातरः कृष्णे रास रात्रि प्रकाशिनि ॥ ७० ॥

स्व आत्मानं	- अपने आपको	**अशोभत**	- शोभित होने लगे,
कृष्ण वैधुर्यात्	- श्रीकृष्णके वियोगसे	**च ताः-**	- तथा वे उनकी मातायें
मुक्तः	- छूटकर	**तत् मातरः**	
तत् भुवि	- उसी (दिव्य लीला) भूमिमें	**कृष्णे रास**	- श्रीकृष्णकी रासलीलाकी
		रात्रि-	- रात्रियोंको प्रकाशित
		प्रकाशिनि	करने वाली ॥ ७० ॥

चन्द्रे कलाप्रभारूपमात्मानं वीक्ष्य विस्मिताः ।
स्वप्रेष्ठविरहव्याधिविमुक्ताः स्वपदं ययुः ॥ ७१ ॥

चन्द्रे कला प्रभा रूपं आत्मानं वीक्ष्य विस्मिताः स्वप्रेष्ठ विरह व्याधि विमुक्ताः स्वपदं ययुः ॥ ७१ ॥

चन्द्रे कला	- चन्द्रमाकी कलाकी	**स्व प्रेष्ठ विरह**	- अपने प्रियतमके वियोगकी
प्रभारूपं	- प्रभाके रूपमें	**व्याधि विमुक्ताः**	- व्याधिसे छूटकर
आत्मानं वीक्ष्य	- अपनेको देखकर	**स्वपदं ययुः**	- अपने (नित्य) धाम चली गयीं ॥ ७१ ॥
विस्मिताः	- चकित होगयीं		

येऽन्ये च तत्र ते सर्वे नित्यलीलान्तरं गताः ।
व्यावहारिकलोकेभ्यः सद्योऽदर्शनमागताः ॥ ७२ ॥

ये अन्ये च तत्र ते सर्वे नित्यलीला अन्तरं गताः व्यावहारिक लोकेभ्यः सद्यः अदर्शनं आगताः ॥ ७२ ॥

तत्र ये अन्ये च	- वहाँ जो दूसरे भी थे	**व्यावहारिक**	- व्यावहारिक
ते सर्वे	- वे सब	**लोकेभ्यः सद्यः**	- लीलामें से तत्काल
नित्य लीला	- नित्यलीलाके	**अदर्शनं**	- अदृश्य
अन्तरं गताः	- भीतर पहुँच गये (अतः)	**आगताः**	- होगये ॥ ७२ ॥

गोवर्धननिकुञ्जेषु गोषु वृन्दावनादिषु ।
नित्यं कृष्णेन मोदन्ते दृश्यन्ते प्रेमतत्परैः ॥ ७३ ॥

गोवर्धन निकुञ्जेषु गोषु वृन्दावन आदिषु नित्यं कृष्णेन मोदन्ते दृश्यन्ते प्रेम तत्परैः ॥ ७३ ॥

गोवर्धन	- गोवर्धन पर्वतके	**नित्यं कृष्णेन**	- सदा श्रीकृष्णके साथ
निकुञ्जेषु	- निकुञ्जोंमें	**मोदन्ते**	- आनन्द करते हैं तथा
गोषु	- गायोंमें,	**प्रेम तत्परैः**	- प्रेम-परायणों (भक्तों) द्वारा
वृन्दावन आदिषु	- वृन्दावन आदिमें	**दृश्यन्ते**	- देखे जाते हैं ॥७३॥१

---

१. गीताप्रेसकी प्रतिमें इसके आगे 'सूत उवाच' है । किन्तु श्लोक ६५ के उत्तरार्धसे 'सूत उवाच' ही चल रहा है, अतः यहां फिर उसे देने का कोई औचित्य नहीं है ।

सूत उवाच-

य एतां भगवत्प्राप्तिं शृणुयाच्चापि कीर्तयेत् ।
तस्य वै भगवत्प्राप्तिर्दुःखहानिश्च जायते ॥ ७४ ॥

य एतां भगवत् प्राप्तिं शृणुयात् च अपि कीर्तयेत् तस्य वै भगवत् प्राप्तिः दुःख हानिः च जायते ॥ ७४ ॥

य एतां	- जो इन लोगोंका	**वै तस्य**	- निश्चय उसको
भगवत् प्राप्तिं	- भगवानको प्राप्त करना	**भगवत् प्राप्तिः**	- भगवानकी प्राप्ति
शृणुयात्	- सुनता है	**च दुःख हानिः**	- तथा दुःखोंका नाश
च कीर्तयेत् अपि	- तथा (उसका) वर्णन भी करता है	**जायते**	- होता है ॥ ७४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे परीक्षिदुद्धवसंवादे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः-

साधु सूत चिरं जीव चिरमेवं प्रशाधि नः ।
श्रीभागवतमाहात्म्यमपूर्वं त्वन्मुखाच्छ्रुतम् ॥ १ ॥

साधु सूत चिरं जीव चिरं एवं प्रशाधि नः श्रीभागवत माहात्म्यं अपूर्वं त्वत् मुखात् श्रुतम् ॥ १ ॥

सूत साधु - सूत ! तुम सत्यपुरुष हो,
चिरञ्जीव - दीर्घायु होओ,
एवं चिरं - इसी प्रकार बहुत समय तक
नः प्रशाधि - हमें समझाते रहो,
त्वत् मुखात् - तुम्हारे मुखसे
श्रीभागवत - श्रीमद्भागवतका
अपूर्वं माहात्म्यं - अपूर्व माहात्म्य
श्रुतं - (हमने) सुना ॥ १ ॥

तत्स्वरूपं प्रमाणं च विधिं च श्रवणे वद ।
तद्वक्तुर्लक्षणं सूत श्रोतुश्चापि वदाधुना ॥ २ ॥

तत् स्वरूपं प्रमाणं च विधिं च श्रवणे वद तत् वक्तुः लक्षणं सूत श्रोतुः च अपि वद अधुना ॥ २ ॥

सूत अधुना - सूत जी ! इस समय
तत् स्वरूपं - उस (भागवत) का स्वरूप
च प्रमाणं - तथा प्रमाण (विस्तार)
च श्रवणे विधिं - एवं सुननेकी विधि
वद - बतलाओ,
तत् वक्तुः - उसके वक्ता
च श्रोतुः अपि - और श्रोताका भी
लक्षणं वद - लक्षण बतलाओ ॥२॥

सूत उवाच-

श्रीमद्भागवतस्याथ श्रीमद्भगवतः सदा ।
स्वरूपमेकमेवास्ति सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ ३ ॥

श्रीमद्भागवतस्य अथ श्रीमद्भगवतः सदा स्वरूपं एकं एव अस्ति सच्चिदानन्द लक्षणम् ॥ ३ ॥

श्रीमद्भागवतस्य	- श्रीमद्भागवतका	**सच्चिदानन्दन**	- सच्चिदानन्द
अथ-	- और श्रीमान्	**लक्षणं अस्ति**	- रूप है ॥ ३ ॥
श्रीमद्भगवतः	भगवानका		
स्वरूपं सदा एकं एव	- स्वरूप सदा एक ही		

श्रीकृष्णासक्तभक्तानां तन्माधुर्यप्रकाशकम् ।
समुज्जृम्भति यद्वाक्यं विद्धि भागवतं हि तत् ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण आसक्त भक्तानां तत् माधुर्य प्रकाशकं सम उज्जृम्भति यत् वाक्यं विद्धि भागवतं हि तत् ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण आसक्त	- श्रीकृष्णमें आसक्त	**हि यत् वाक्यं**	- क्योंकि जो वाक्य है
भक्तानां	- भक्तोंके लिए	**तत् भागवतं**	- उसे भागवत
तत् माधुर्य	- उन (श्रीकृष्ण) की मधुरताको	**विद्धि**	- समझो ॥ ४ ॥[1]
प्रकाशकं	- प्रकट करने वाला		

ज्ञानविज्ञानभक्त्यङ्गचतुष्टयपरं वचः ।
मायामर्दनदक्षं च विद्धि भागवतं च तत् ॥ ५ ॥

ज्ञान-विज्ञान भक्ति अंग चतुष्टय परं वचः माया मर्दन दक्षं च विद्धि भागवतं च तत् ॥ ५ ॥

---

१. भगवत् प्रीति प्रेरकं वाक्यं भागवतं यह परिभाषा सम्पूर्ण भगवच्चरित एवं भक्ति साहित्यके लिए व्यापक है ।

ज्ञान विज्ञान - ज्ञान, विज्ञान
भक्ति अंग - भक्ति और उसके अंग वैराग्य
चतुष्टय - इन चारोंकी
परं वचः - परायण जो वाणी
माया मर्दन - माया मिटानेमें
दक्षं च - निपुण भी हो
तत् च - उसे भी
भागवतं विद्धि - भागवत समझो ॥५॥

प्रमाणं तस्य को वेद ह्यनन्तस्याक्षरात्मनः ।
ब्रह्मणे हरिणा तद्दिक् चतुःश्लोक्या प्रदर्शित ॥ ६ ॥

प्रमाणं तस्य कः वेद हि अनन्तस्य अक्षर आत्मनः ब्रह्मणे हरिणा तत् दिक् चतुः श्लोक्या प्रदर्शितः ॥ ६ ॥

हि अक्षर-आत्मनः - क्योंकि अविनाशी स्वरूप है
तस्य अनन्तस्य - उस (भागवत) के अनन्त
प्रमाणं कः वेद - प्रमाण (विस्तार) को कौन जान सकता है
हरिणा ब्रह्मणे - श्रीहरिने ब्रह्माको
तत् दिक् - उनके दिग्दर्शन मात्रके लिए
चतुःश्लोक्या - चतुःश्लोकीको
प्रदर्शितः - दिखलाया था ॥ ६ ॥

तदानन्त्यावगाहेन स्वेप्सितावहनक्षमाः ।
त एव सन्ति भो विप्रा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ७ ॥

तदा अनन्त अवगाहेन स्व ईप्सित वहन क्षमाः त एव सन्ति भो विप्रा ब्रह्म विष्णु शिव आदयः ॥ ७ ॥

भो विप्रा - हे विप्रवरो !
तदा अनन्त - तब से अनन्त
अवगाहेन - डुबकी लगाकर
स्व ईप्सित - अपना अभीष्ट
वहन क्षमाः - प्राप्त कर लेनेमें समर्थ
त एव ब्रह्म - वही ब्रह्मा,
विष्णु शिव - विष्णु, शिव
आदयः सन्ति - आदि हैं ॥ ७ ॥

मितबुद्ध्यादिवृत्तीनां मनुष्याणां हिताय च ।
परीक्षिच्छुकसंवादो योऽसौ व्यासेन कीर्तितः ॥ ८ ॥

मित बुद्धि आदि वृत्तीनां मनुष्याणां हिताय च परीक्षित शुक संवादः यः असौ व्यासेन कीर्तितः ॥ ८ ॥

मित बुद्धि	- सीमित बुद्धि	**यः असौ**	- जो यह
आदि वृत्तीनां	- आदि वृत्तियों वाले	**परीक्षित शुक**	- परीक्षित एवं शुकदेवजीका
मनुष्याणां	- मनुष्योंकी	**संवादः**	- संवाद
हिताय च	- भलाईके लिए ही	**व्यासेन-**	- व्यासजी द्वारा वर्णित है
		कीर्तितः	॥ ८ ॥

ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो योऽसौ भागवताभिधः ।
कलिग्राहगृहीतानां स एव परमाश्रयः ॥ ९ ॥

ग्रन्थः अष्टादश साहस्रः यः असौ भागवत अभिधः कलिग्राह गृहीतानां स एव परम आश्रयः ॥ ९ ॥

यः असौ	- जो यह	**कलि ग्राह**	- कलियुग रूपी मगरसे
भागवत अभिधः	- भागवत नामक	**गृहीतानां**	- पकड़े गये लोगोंके लिए
अष्टदश	- अठारह	**स एव**	- वही
साहस्रः ग्रन्थः	- सहस्र (श्लोकों) का ग्रन्थ है,	**परम आश्रयः**	- उत्तम शरण है ॥ ९ ॥

श्रोतारोऽथ निरूप्यन्ते श्रीमद्विष्णुकथाश्रयाः ।
प्रवरा अवराश्चेति श्रोतारो द्विविधा मताः ॥ १० ॥

श्रोतारः अथ निरूप्यन्ते श्रीमत् विष्णु कथा आश्रयाः प्रवरा अवराः च इति श्रोतारः द्विविधा मताः ॥ १० ॥

अथ श्रीमत्	- अब श्रीमान्
विष्णु कथा	- श्रीहरिकी कथाका
आश्रयाः श्रोतारः	- आश्रय लेने वाले श्रोताओंका
निरूप्यन्ते	- निरूपण (वर्णन) किया जाता है
मताः द्विविधा	-मेरे मतसे दो प्रकारके
प्रवरा च अवराः	-श्रेष्ठ और कनिष्ठ
इति श्रोतारः	-इस प्रकार श्रोता होते हैं ॥ १० ॥

प्रवराश्चातको हंसः शुको मीनादयस्तथा ।
अवरा वृकभूरुण्डवृषोष्ट्राद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ११ ॥

प्रवराः चातकः हंसः शुकः मीन आदयः तथा अवरा वृक भूरुण्ड वृष उष्ट्र, आद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ११ ॥

प्रवराः	- श्रेष्ठ
चातकः हंसः	- चातक, हंस
शुकः मीन	- शुक, मछली
आदयः तथा	- आदि हैं; तथा
अवरा वृक	- कनिष्ठ भेड़िये,
भूरुण्ड	- भूरुण्ड
वृष उष्ट्र आद्याः	- बैल, ऊँट आदि
प्रकीर्तिताः	- कहे गये हैं ॥ ११ ॥

अखिलोपेक्षया यस्तु कृष्णशास्त्रश्रुतौ व्रती ।
स चातको यथाम्भोदमुक्ते पाथसि चातकः ॥ १२ ॥

अखिल उपेक्षया यः तु कृष्णशास्त्र श्रुतौ व्रती स चातकः यथा अम्भोद मुक्ते पाथसि चातकः ॥ १२ ॥

यः तु	- जो तो
अखिल उपेक्षया	- और सबकी उपेक्षापूर्वक
कृष्णशास्त्र	- श्रीकृष्ण-सम्बन्धी शास्त्रको ही
श्रुतौव्रती	- सुननेका नियम रखने वाला है
स चातकः	- वह चातक है
यथा- अम्भोद मुक्ते	- जैसे समुद्रको त्यागकर
चातकः पाथसि	- चातक मेघ (जल) का (व्रती है) ॥ १२ ॥

हंसः स्यात् सारमादत्ते यः श्रोता विविधाच्छ्रुतात् ।
दुग्धेनैक्यं गतात्तोयाद् यथा हंसोऽमलं पयः ॥ १३ ॥

हंसः स्यात् सारं आदत्ते यः श्रोता विविधात् श्रुतात् दुग्धेन ऐक्यं गतात् तोयात् यथा हंसः अमलं पयः ॥ १३ ॥

यः श्रोता	- जो श्रोता	**यथा हंसः**	- जैसे हंस
विविधात्	- अनेक प्रकारके	**दुग्धेन**	- दूधसे
श्रुतात्	श्रवणमें से	**ऐक्यं-**	- एक हुए जलमेंसे
सारं आदत्ते	- सार ग्रहण कर लेता है	**गतात् तोयात्**	
		अमलं पयः	- निर्मल दूध (ग्रहण कर लेता है) ॥ १३ ॥
हंसः स्यात्	- (वह) हंस है		

शुकः सुष्ठु मितं वक्ति व्यासं श्रोतृंश्च हर्षयन् ।
सुपाठितः शुको यद्वच्छिक्षकं पार्श्वगानपि ॥ १४ ॥

शुकः सुष्ठु मितं वक्ति व्यासं श्रोतॄन् च हर्षयन् सुपाठितः शुकः यद्वत् शिक्षकं पार्श्वगान् अपि ॥ १४ ॥

यद्वत्	- जिस प्रकार	**शुकः**	- शुक (श्रोता)
सुपाठितः शुकः	- अच्छी प्रकार पढ़ाया हुआ तोता	**व्यासं च-**	- व्यास तथा (दूसरे)
		श्रोतॄन्	श्रोताओंको
शिक्षकं	- (अपने) शिक्षक एवं	**हर्षयन्**	- प्रसन्न करता हुआ
पार्श्वगान् अपि	- समीपस्थोंको भी (प्रसन्न करता है)	**सुष्ठु मितं-**	- सुन्दर थोड़ेमें
		वक्ति	(श्रवणका सार) बोलता है ॥ १४ ॥

शब्दं नानिमिषो जातु करोत्यास्वादयन् रसम् ।
श्रोता स्निग्धो भवेन्मीनो मीनः क्षीरनिधौ यथा ॥ १५ ॥

शब्दं न अनिमिषः जातु करोति आस्वादयन् रसं श्रोता स्निग्धः भवेत् मीनः मीनः क्षीरनिधौ यथा ॥ १५ ॥

जातु शब्दं - कभी कोई शब्द
न करोति - नहीं करता,
अनिमिषः - निर्निमेष
रसं आस्वादयन् - रसास्वादन करने वाला
स्निग्धः श्रोता - प्रेमपूर्ण श्रोता
मीनः भवेत् - मछली होता (कहलाता) है
यथा क्षीरनिधौ - जैसे क्षीरसागरकी
मीनः - मछलियां होती हैं ॥ १५ ॥

यस्तुदन् रसिकाञ्छ्रोतॄन् विरौत्यज्ञो वृको हि सः ।
वेणुस्वनरसासक्तान् वृकोऽरण्ये मृगान् यथा ॥ १६ ॥

यः तुदन् रसिकान् श्रोतॄन् विरौति अज्ञः वृकः हि सः वेणुस्वन रस आसक्तान् वृकः अरण्ये मृगान् यथा ॥ १६ ॥

यथा अरण्ये - जैसे वनमें
वेणुस्वन - वंशी ध्वनिके
रस आसक्तान् - रसमें आसक्त
मृगान् वृकः - हिरणोंको भेड़िया (डरा देता है वैसे)
हि अज्ञः - क्योंकि अज्ञानी होनेसे
रसिकान् - रस लेने वाले
श्रोतॄन् तुदन् - श्रोताओंके कष्ट देता हुआ
विरौति - (बीचमें) चिल्ला उठता है
सः वृकः - वह (श्रोता) भेड़िया है ॥ १६ ॥

भूरुण्डः शिक्षयेदन्याञ्छ्रुत्वा न स्वयमाचरेत् ।
यथा हिमवतः शृंगे भूरुण्डाख्यो विहंगमः ॥ १७ ॥

भूरुण्डः शिक्षयेत् अन्यान् श्रुत्वा न स्वयं आचरेत् यथा हिमवतः शृंगे भूरुण्ड आख्यः विहंगमः ॥ १७ ॥

भूरुण्डः - भूरुण्ड (श्रोता)
श्रुत्वा अन्यान् - सुनकर दूसरोंको
शिक्षयेत् - सिखलाता है
स्वयं न- - पर स्वयं आचरण
आचरेत् नहीं करता
यथा हिमवतः- - जैसे हिमालयके
शृंगे शिखरोंपर
भूरुण्ड आख्यः - भूरुण्ड नामक१
विहंगमः - पक्षी होता है ॥ १७ ॥

सर्वं श्रुतमुपादत्ते सारासारान्धधीर्वृषः ।
स्वादुद्राक्षां खलिं चापि निर्विशेषं यथा वृषः ॥ १८ ॥

सर्वं श्रुतं उपादत्ते सार असार अन्धधीः वृषः स्वादु द्राक्षां खलिं च अपि निर्विशेषं यथा वृषः ॥ १८ ॥

यथा वृषः - जैसे वैल
स्वादु द्राक्षां - स्वादिष्ट दाख (मुनक्का)
च खलिं अपि - तथा खलीमें भी
निर्विशेषं - कोई विशेषता नहीं रखता (ऐसे ही)
सार असार - सारवान तथा सारहीन (के सम्बन्धमें)
अन्धधीः - अन्धी (विवेकहीन) बुद्धि जो
सर्वं श्रुतं - सब श्रवण किये को
उपादत्ते - ग्रहण कर लेता है,
वृषः - वह बैल (श्रोता) है ॥ १८ ॥

स उष्ट्रो मधुरं मुञ्चन् विपरीते रमेत यः ।
यथा निम्बं चरत्युष्ट्रो हित्वाम्रमपि तद्युतम् ॥ १९ ॥

स उष्ट्रः मधुरं मुञ्चन् विपरीते रमेत यः यथा निम्बं चरेत् उष्ट्रः हित्वा आम्रं अपि तत् युतम् ॥ १९ ॥

---

१. उल्लूकी एक विशेष जाति जो सुने शब्द दुहराता है । यह जाति अनेक बार मैदानोंमें भी पायी जाती है ।

यः मधुरं मुञ्चन् - जो मधुर (अंश) का छोड़कर
विपरीते - विपरीत (रौद्र, वीभत्सादि) भावोंमें
रमेत - आनन्द लेता है
स उष्ट्रः - वह (श्रोता) ऊँट है
यथा उष्ट्रः - जैसे ऊँट
तत् युतं - उस (आम्रफल) से युक्त
आम्रं अपि - आमको भी
हित्वा निम्बं - त्यागकर नीम चरता है
चरेत् ॥ १९ ॥

अन्येऽपि बहवो भेदा द्वयोर्भृङ्गखरादयः ।
विज्ञेयास्तत्तदाचारैस्तत्तत्प्रकृतिसम्भवैः ॥ २० ॥

अन्ये अपि बहवः भेदा द्वयोः भृंग खर आदयः विज्ञेयाः तत् तत् आचारैः तत् तत् प्रकृति सम्भवैः ॥ २० ॥

द्वयोः - दोनों (वरिष्ठ-कनिष्ठ श्रोताओं) के
अन्ये अपि - दूसरे भी
भृंग खर- - भ्रमर-गर्दभ आदि
आदयः
बहवः भेदा - बहुतसे भेद हैं
तत् तत्- - उन उन के स्वभावसे
प्रकृति
सम्भवैः - उत्पन्न होने वाले
तत् तत्- - उन उन आचरणोंसे
आचारैः
विज्ञेयाः - जान लेने योग्य हैं ॥२०॥

यः स्थित्वाभिमुखं प्रणम्य विधिवत्त्यक्तान्यवादो हरे-
र्लीलाः श्रोतुमभीप्सतेऽतिनिपुणो नम्रोऽथ क्लृप्ताञ्जलिः ।

शिष्यो विश्वसितोऽनुचिन्तनपरः प्रश्नेऽनुरक्तः शुचि-
र्नित्यं कृष्णजनप्रियो निगदितः श्रोता स वै वक्तृभिः ॥ २१ ॥

यः स्थित्वा अभिमुखं प्रणम्य विधिवत् त्यक्त अन्यवादः हरेः लीलाः श्रोतुं अभीप्सते अति निपुणः नम्रः अथ क्लृप्त अञ्जलिः शिष्यः विश्वसितः अनुचिन्तन परः प्रश्ने अनुरक्तः शुचिः नित्यं कृष्णजन प्रियः निगदितः श्रोता स वै वक्तृभिः ॥ २१ ॥

यः अतिनिपुणः - जो बहुत कुशल,
नम्रः - विनीत,
विश्वसितः - विश्वास करने वाला,
अनुचिन्तनपरः - बार बार (श्रवणका) चिन्तन करनेमें लगा
प्रश्ने अनुरक्तः - प्रश्न करनेमें प्रीति रखने वाला
शुचिः नित्यं - पवित्र, सदा
कृष्णजन प्रियः - श्रीकृष्ण भक्तोंका प्रिय,
शिष्यः - (अपना) शिष्य,
हरेः लीलाः - श्रीहरिके चरित
श्रोतुं अभीप्सते - सुननेको उत्कण्ठित
अभिमुखं-स्थित्वा - सम्मुख स्थित होकर
विधिवत् प्रणम्य - विधिपूर्वक प्रणाम करके
त्यक्त अन्यवादः - दूसरी चर्चा छोड़कर
अथक्लृप्त-अञ्जलिः - फिर हाथ जोड़े है,
वक्तृभिः - वक्ताओं द्वारा
वै स श्रोता - निश्चय वह (उत्तम) श्रोता
निगदितः - कहा गया है ॥२१॥

भगवन्मतिरनपेक्षः सुहृदो दीनेषु सानुकम्पो यः ।
बहुधा बोधनचतुरो वक्ता सम्मानितो मुनिभिः ॥ २२ ॥

भगवत् मतिः अनपेक्षः सुहृदः दीनेषु स अनुकम्पयः बहुधा बोधन चतुरः वक्ता संमानितः मुनिभिः ॥ २२ ॥

यः भगवत्-मतिः - जिसकी (सबमें) भगवतबुद्धि है,
अनपेक्षः - (किसीसे कुछ) नहीं चाहता,
सुहृदः - सबका हितैषी,
दीनेषु - दीनोंपर
स अनुकम्पः यः - कृपा करनेवाला,
बहुधा - अनेक प्रकारसे
बोधन चतुरः - समझानेमें निपुण है,
मुनिभिः-सम्मानितः - मुनियों द्वारा सम्मानित
वक्ता - (वह उत्तम) वक्ता है ॥ २२ ॥

अथ भारतभूस्थाने श्रीभागवतसेवने ।
विधिं शृणुत भो विप्रा येन स्यात् सुखसन्ततिः ॥ २३ ॥

अथ भारत भू स्थाने श्रीभागवतसेवने विधिं शृणुत भो विप्रा येन स्यात् सुख सन्ततिः ॥ २३ ॥

भो विप्रा	- हे विप्रवरो !	**विधिं शृणुत**	- विधि सुनो
अथ भारत	- अब भारतवर्षकी१	**येन सुख**	- जिससे सुख और सन्तान
भूस्थाने	- धरापर	**सन्ततिः**	
श्रीभागवत सेवने	- श्रीमद्भागवतके सेवनकी	**स्यात्**	- होती है ॥ २३ ॥

राजसं सात्त्विकं चापि तामसं निर्गुणं तथा ।
चतुर्विधं तु विज्ञेयं श्रीभागवतसेवनम् ॥ २४ ॥

राजसं सात्त्विकं च अपि तामसं निर्गुणं तथा चतुर्विधं तु विज्ञेयं श्रीभागवत सेवनम् ॥ २४ ॥

श्रीभागवत	- श्रीमद्भागवतका	**तथा निर्गुणं-**	- तथा निर्गुण भी
सेवनं	- सेवन	**अपि**	
राजसं सात्त्विकं	- राजस, सात्विक,	**चतुर्विधं तु**	- चारों प्रकारका ही
च तामसं	- और तामस	**विज्ञेयं**	जानना चाहिए ॥२४॥

सप्ताहं यज्ञवद् यत्तु सश्रमं सत्वरं मुदा ।
सेवितं राजसं तत्तु बहुपूजादिशोभनम् ॥ २५ ॥

सप्ताहं यज्ञवत् यत् तु सश्रमं सत्वरं मुदा सेवितं राजसं तत् तु बहुपूजा आदि शोभनम् ॥ २५ ॥

यत् तु यज्ञवत्	- जो कि यज्ञके समान	**सत्वरं**	- उतावलीके साथ
बहुपूजा आदि	- बहुत पूजा आदिसे	**मुदा सप्ताहं**	- आनन्दपूर्वक सप्ताह
शोभनं	- सुशोभित		क्रमसे
सश्रमं	- परिश्रम तथा	**सेवितं तत् तु**	- सेवन है, वह तो
	आदरपूर्वक	**राजसं**	- राजसिक है ॥ २५ ॥

---

१. वर्तमान समस्त पृथ्वी भारत है, यह पंचम स्कन्धमें सूचित किया गया है ।

मासेन ऋतुना वापि श्रवणं स्वादसंयुतम् ।
सात्त्विकं यदनायासं समस्तानन्दवर्धनम् ॥ २६ ॥

मासेन ऋतुना वा अपि श्रवणं स्वाद संयुतं सात्त्विकं यत् अनायासं समस्त आनन्द वर्धनम् ॥ २६ ॥

मासेन वा - महीने भरमें अथवा
ऋतुना अपि - एक ऋतु (दो महीने) में भी
स्वाद संयुतं - रसास्वाद लेते हुए
अनायासं - बिना (विशेष) परिश्रमके
समस्त - सबके
आनन्दवर्धनं - आनन्दको बढ़ाने वाला
यत् श्रवणं - जो श्रवण है
सात्त्विकं - वह सात्त्विक है ॥२६॥

तामसं यत्तु वर्षेण सालसं श्रद्धया युतम् ।
विस्मृतिस्मृतिसंयुक्तं सेवनं तच्च सौख्यदम् ॥ २७ ॥

तामसं यत् तु वर्षेण स आलसं श्रद्धया युतं विस्मृति स्मृति संयुक्तं सेवनं तत् च सौख्यदम् ॥ २७ ॥

यत् वर्षेण - जो वर्षभरमें
स आलसं - आलस्यके साथ
तु श्रद्धया युतं - किन्तु श्रद्धाके साथ
विस्मृति - (कुछ) विस्मरण
स्मृति संयुक्तं - (कुछ) स्मरण सहित
सेवनं तामसं - सेवन तामस है,
तत् च - वह भी
सौख्यदं - सुखदायी होता है ॥ २७ ॥

वर्षमासदिनानां तु विमुच्य नियमाग्रहम् ।
सर्वदा प्रेमभक्त्यैव सेवनं निर्गुणं मतम् ॥ २८ ॥

वर्ष मास दिनानां तु विमुच्य नियम आग्रहं सर्वदा प्रेम भक्त्या एव सेवनं निर्गुणं मतम् ॥ २८ ॥

वर्ष मास - वर्ष, महीने,
तु दिनानां - तथा दिनोंके
नियम आग्रहं - नियमोंके आग्रहको
विमुच्य - त्यागकर
सर्वदा - सदा
प्रेम भक्त्या- - प्रेमपूर्वक भक्तिसे ही
एव
सेवनं निर्गुणं- - सेवन निर्गुण माना
मतं गया है ॥ २८ ॥

पारीक्षितेऽपि संवादे निर्गुणं तत् प्रकीर्तितम् ।
तत्र सप्तदिनाख्यानं तदायुर्दिनसंख्यया ॥ २९ ॥

पारीक्षिते अपि संवादे निर्गुणं तत् प्रकीर्तितं तत्र सप्तदिन आख्यानं तत् आयुः दिन संख्यया ॥ २९ ॥

पारीक्षिते - परीक्षितके
संवादे अपि - संवादमें भी
तत् निर्गुणं - उसे निर्गुण
प्रकीर्तितं - कहा गया है,
तत्र सप्तदिन - उसमें सात दिनका
आख्यानं - वर्णन तो
तत् आयुः दिन - उनकी आयुके दिनोंकी
संख्यया - संख्याके कारण है
॥ २९ ॥

अन्यत्र त्रिगुणं चापि निर्गुणं च यथेच्छया ।
यथा कथञ्चित् कर्तव्यं सेवनं भगवच्छ्रुतेः ॥ ३० ॥

अन्यत्र त्रिगुणं च अपि निर्गुणं च यथा इच्छया यथा कथञ्चित् कर्तव्य सेवनं भगवत् श्रुतेः ॥ ३० ॥

अन्यत्र - और कहीं भी
त्रिगुणं च - त्रिगुण अथवा
निर्गुणं च अपि - निर्गुण रीतिसे भी
यथा इच्छया - जैसी इच्छा हो
यथा कथञ्चित् - चाहे जिस प्रकार भी
भगवत् श्रुतेः - इस भागवतरूपा श्रुतिका
सेवनं कर्तव्यं - सेवन करना चाहिए
॥ ३० ॥

ये श्रीकृष्णविहारैकभजनास्वादलोलुपाः ।
मुक्तावपि निराकांङ्क्षास्तेषां भागवतं धनम् ॥ ३१ ॥

ये श्रीकृष्ण विहार एक भजन आस्वाद लोलुपाः मुक्ताः अपि निः आकाङ्क्षाः तेषां भागवतं धनम् ॥ ३१ ॥

एक श्रीकृष्ण	- एक मात्र श्रीकृष्णकी	**निः आकाङ्क्षाः**	- निष्काम
विहार भजन	- क्रीड़ा-चिन्तनके	**मुक्ताः अपि**	- मुक्त पुरुष भी हैं
आस्वाद	- स्वाद लेनेके	**तेषां धनं**	- उनकी सम्पत्ति
ये लोलुपाः	- जो लालची	**भागवतं**	- श्रीमद्भागवत है ॥३१॥

येऽपि संसारसन्तापनिर्विण्णा मोक्षकाङ्क्षिणः ।
तेषां भवौषधं चैतत् कलौ सेव्यं प्रयत्नतः ॥ ३२ ॥

ये अपि संसार संताप निर्विण्णा मोक्षकाङ्क्षिणः तेषां भव औषधं च एतत् कलौ सेव्यं प्रयत्नतः ॥ ३२ ॥

ये संसार	- जो संसारके	**तेषां भव-**	- उनके लिए संसार-
संताप निर्विण्णा	- संतापसे खिन्न	**औषधं**	रोगकी दवा है,
मोक्षकाङ्क्षिणः-	- मोक्ष चाहने वाले	**प्रयत्नतः**	- (अतः उन्हें) प्रयत्नपूर्वक
अपि	(मुमुक्षु) भी हैं	**सेव्यं**	- (इसका) सेवन करना
कलौ एतत् च	- कलियुगमें यह (भागवत) तो		चाहिए ॥ ३२ ॥

ये चापि विषयारामाः सांसारिकसुखस्पृहाः ।
तेषां तु कर्ममार्गेण या सिद्धिः साधुना कलौ ॥ ३३ ॥

ये च अपि विषय आरामाः सांसारिक सुख स्पृहाः तेषां तु कर्म मार्गेण या सिद्धिः स अधुना कलौ ॥ ३३ ॥

ये विषय-	- जो भोगोंमें आनन्द	**तेषां तु**	- उनको तो
आरामाः	मनाने वाले	**कर्म मार्गेण**	- कर्म करनेके मार्गसे
च सांसारिक	- तथा सांसारिक	**या सिद्धिः**	- जो सफलता होती है
सुख स्पृहाः अपि	- सुख चाहने वाले भी हैं	**स अधुना-**	- वह इस समय
		कलौ	कलियुगमें ॥ ३३ ॥

सामर्थ्यधनविज्ञानाभावादत्यन्तदुर्लभा ।
तस्मात्तैरपि संसेव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ ३४ ॥

सामर्थ्य धन विज्ञान अभावात् अत्यन्त दुर्लभा तस्मात् तैः अपि संसेव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ ३४ ॥

सामर्थ्य धन	- शक्ति, सम्पत्ति,	**तस्मात् तैः-**	- इसलिए उन लोगोंको भी
विज्ञान अभावात्	- विशेष ज्ञानका अभाव होनेसे	**अपि**	
		श्रीमद्भागवती	- श्रीमद्भागवतकी
अत्यन्त दुर्लभा	- अत्यन्त दुर्लभ है,	**कथा संसेव्या**	- कथाका भली प्रकार सेवन करना चाहिए ॥ ३४ ॥

धनं पुत्रांस्तथा दारान् वाहनादि यशो गृहान् ।
असापत्न्यं च राज्यं च दद्याद् भागवती कथा ॥ ३५ ॥

धनं पुत्रान् तथा दारान् वाहन आदि यशः गृहान् असापत्न्यं च राज्यं च दद्यात् भागवती कथा ॥ ३५ ॥

भागवती कथा	- श्रीमद्भागवतकी कथा	**यशः गृहान्**	- यश, भवन,
धनं पुत्रान्	- धन, पुत्र,	**च असापत्न्यं**	- तथा शत्रुरहित
तथा दारान्	- तथा पत्नियां,	**राज्यं च**	- राज्य भी
वाहन आदि	- वाहन आदि,	**दद्यात्**	- देती है ॥ ३५ ॥

इह लोके वरान् भुक्त्वा भोगान् वै मनसेप्सितान् ।
श्रीभागवतसंगेन यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ॥ ३६ ॥

इह लोके वरान् भुक्त्वा भोगान् वै मनसि ईप्सितान् श्रीभागवत संगेन याति अन्ते श्रीहरेः पदम् ॥ ३६ ॥

इह लोके - इस लोकमें
मनसि ईप्सितान् - मनमाने
वरान् भोगान् - श्रेष्ठ भोगोंको
श्रीभागवत- - श्रीमद्भागवतकी
संगेन आसक्तिसे
वै भुक्त्वा - निश्चित भोगकर
अन्ते श्रीहरेः - अन्तमें श्रीहरिके
पदं याति - धाम जाता है ॥ ३६ ॥

यत्र भागवती वार्ता ये च तच्छ्रवणे रताः ।
तेषां संसेवनं कुर्याद् देहेन च धनेन च ॥ ३७ ॥

यत्र भागवती वार्ता ये च तत् श्रवणे रताः तेषां संसेवनं कुर्यात् देहेन च धनेन च ॥ ३७ ॥

यत्र भागवती- - जहां भागवतकी
वार्ता कथा होती है
च ये तत् - तथा जो उसको
श्रवणे रताः - श्रवण करनेमें लगे हैं,
तेषां देहेन - उनकी देहसे
च धनेन च - और धन से भी
संसेवनं कुर्यात् - अच्छी सेवा करे
॥ ३७ ॥

तदनुग्रहतोऽस्यापि श्रीभागवतसेवनम् ।
श्रीकृष्णव्यतिरिक्तं यत्तत् सर्वं धनसंज्ञितम् ॥ ३८ ॥

तत् अनुग्रहतः अस्य अपि श्रीभागवत सेवनं श्रीकृष्ण व्यतिरिक्तं यत् तत् सर्वं धन संज्ञितम् ॥ ३८ ॥

तत् अनुग्रहतः - उनके अनुग्रह
अस्य अपि - से भी
श्री भागवत - श्रीमद्भागवतका
सेवनं - सेवन होता है ।
यत् श्रीकृष्ण - जो श्रीकृष्णसे
व्यतिरिक्तं - भिन्न है
तत् सर्वं - वह सब
धन संज्ञितं - धन कहा जाता है
॥ ३८ ॥

कृष्णार्थीति धनार्थीति श्रोता वक्ता द्विधा मतः ।
यथा वक्ता तथा श्रोता तत्र सौख्यं विवर्धते ॥ ३९ ॥

कृष्ण अर्थी इति धन अर्थी इति श्रोता द्विधाः मतः यथा वक्ता तथा श्रोता तत्र सौख्यं विवर्धते ॥ ३९ ॥

कृष्ण अर्थी-	- श्रीकृष्णको चाहने
इति	वाले इस प्रकार
धन अर्थी	- तथा धनको चाहने वाले
इति द्विधाः	- इस प्रकार दो प्रकारके
श्रोता मतः	- श्रोता माने गये हैं,
यथा वक्ता	- जैसा वक्ता हो
तथा श्रोता	- वैसा ही श्रोता हो
तत्र सौख्यं	- वहां आनन्द
विवर्धते	- बढ़ता है ॥ ३९ ॥

उभयोर्वैपरीत्ये तु रसाभासे फलच्युतिः ।
किन्तु कृष्णार्थिनां सिद्धिर्विलम्बेनापि जायते ॥ ४० ॥

उभयोः वैपरीत्ये तु रस आभासे फलच्युतिः किन्तु कृष्ण अर्थिनां सिद्धिः विलम्बेन अपि जायते ॥ ४० ॥

उभयोः	- (श्रोता-वक्ता) दोनोंके
वैपरीत्ये तु	- विपरीत होनेपर तो
रस आभासे	- रसाभास होनेसे
फलच्युतिः	- फल नष्ट हो जाता है ।
किन्तु कृष्ण	- किन्तु श्रींकृष्णको चाहने
अर्थिनां	वालोंकी
सिद्धिः	- सफलता
विलम्बेन	- विलम्बसे
अपि जायते	- भी होती है ॥ ४० ॥

धनार्थिनस्तु संसिद्धिर्विधिसम्पूर्णतावशात् ।
कृष्णार्थिनोऽगुणस्यापि प्रेमैव विधिरुत्तमः ॥ ४१ ॥

धन अर्थिनः तु संसिद्धिः विधि सम्पूर्णता वशात् कृष्ण अर्थिनः अगुणस्य अपि प्रेम एव विधि उत्तमः ॥ ४१ ॥

धन अर्थिनः	- धन चाहने वालोंकी
संसिद्धिः तु	- पूर्ण सफलता तो
विधि सम्पूर्णता	- विधिके पूरे पालनके
वशात्	- वशमें है,
कृष्ण अर्थिनः	- श्रीकृष्णको चाहने वालों
अगुणस्य-	- और निर्गुण सेवन करने
अपि	वालोंकी भी
प्रेम एव	- प्रेम ही
उत्तमः विधि	- श्रेष्ठ विधि है ॥ ४१ ॥

आसमाप्ति सकामेन कर्तव्यो हि विधिः स्वयम् ।
स्नातो नित्यक्रियां कृत्वा प्राश्य पादोदकं हरेः ॥ ४२ ॥

आसमाप्ति सकामेन कर्तव्यः हि विधिः स्वयं स्नातः नित्यक्रियां कृत्वा प्राश्य पाद उदकं हरेः ॥ ४२ ॥

हि सकामेन	- क्योंकि जो सकाम है (उसे)	**स्नातः**	- स्नान करके
आ समाप्ति	- समाप्ति तक	**नित्य क्रियां कृत्वा**	- नित्यकर्म (सन्ध्यादि) करके
स्वयं विधिः	- स्वयं विधि (का पालन)	**हरेः पाद उदकं**	-श्रीहरिके चरणामृतसे
कर्तव्यः	- करना चाहिए,	**प्राश्य**	- आचमन करके ॥४२॥

पुस्तकं च गुरुं चैव पूजयित्वोपचारतः ।
ब्रूयाद् वा शृणुयाद् वापि श्रीमद्भागवतं मुदा ॥ ४३ ॥

पुस्तकं च गुरुं च एव पूजयित्वा उपचारतः ब्रूयात् वा शृणुयात् वा अपि श्रीमद्भागवतं मुदा ॥ ४३ ॥

पुस्तकं च	- ग्रन्थकी और	**श्रीमद्भागवतं**	- श्रीमद्भागवतका
गुरुं च एव	- गुरुकी भी	**मुदा ब्रूयात् वा**	- आनन्दपूर्वक पाठ करे अथवा
उपचारतः	- सामग्रीके द्वारा	**शृणुयात् वा अपि**	- श्रवण ही करे ॥४३॥
पूजयित्वा	- पूजा करके		

पयसा वा हविष्येण मौनं भोजनमाचरेत् ।
ब्रह्मचर्यमधः सुप्तिं क्रोधलोभादिवर्जनम् ॥ ४४ ॥

पयसा वा हविष्येण मौनं भोजनं आचरेत् ब्रह्मचर्यं अधः सुप्तिं क्रोधलोभ आदि वर्जनम् ॥ ४४ ॥

पयसा वा	- दूधका अथवा	**ब्रह्मचर्यं**	- ब्रह्मचर्य पालन करे,
हविष्येण	- हविष्यान्नका	**अधः सुप्तिं**	- नीचे (भूमिपर) सोये,
मौनं भोजनं	- मौन होकर भोजन	**क्रोध लोभ**	- क्रोध, लोभ
आचरेत्	- करे,	**आदि वर्जनं**	- आदिका त्याग करदे
			॥ ४४ ॥

कथान्ते कीर्तनं नित्यं समाप्तौ जागरं चरेत् ।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु दक्षिणाभिः प्रतोषयेत् ॥ ४५ ॥

कथा अन्ते कीर्तनं नित्यं समाप्तौ जागरं चरेत् ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु दक्षिणाभिः प्रतोषयेत् ॥ ४५ ॥

नित्यं कथा-	- प्रतिदिन कथा समाप्त	**ब्राह्मणान्**	- ब्राह्मणोंको
अन्ते	होनेपर	**भोजयित्वा**	- भोजन कराके
कीर्तनं	- कीर्तन करे,	**दक्षिणाभिः**	- दक्षिणाके द्वारा
समाप्तौ	- (कथा) समाप्त होनेपर	**प्रतोषयेत्**	- (उन्हें) सन्तुष्ट करे
जागरं चरेत्	- (रात्रि) जागरण करे,		॥ ४५ ॥

गुरवे वस्त्रभूषादि दत्वा गां च समर्पयेत् ।
एवं कृते विधाने तु लभते वाञ्छितं फलम् ॥ ४६ ॥

गुरवे वस्त्रभूषा आदि दत्वा गां च समर्पयेत् एवं कृते विधाने तु लभते वाञ्छितं फलम् ॥ ४६ ॥

गुरवे	- गुरुको	**एवं विधाने**	- इस प्रकारका विधान
वस्त्रभूषा	- वस्त्र-आभूषण	**कृते तु**	- करनेपर तो
आदिदत्वा	- आदि देकर	**वाञ्छितं फलं**	- अभीष्ट फल
गां च	- गाय भी	**लभते**	- प्राप्त करता है ॥४६॥
समर्पयेत्	- समर्पित करे		

दारागारसुतान् राज्यं धनादि च यदीप्सितम् ।
परन्तु शोभते नात्र सकामत्वं विडम्बनम् ॥ ४७ ॥

दारा आगार सुतान् राज्यं धन आदि च यत् ईप्सितं परन्तु शोभते न अत्र सकामत्वं विडम्बनम् ॥ ४७ ॥

दारा आगार	- स्त्री, भवन,	**परन्तु अत्र**	- लेकिन यहां (श्रीमद्भागवत-सेवनमें)
सुतान् राज्यं	- पुत्र, राज्य,	**सकामत्वं**	- सकामपना
च धन आदि	- तथा धन आदि	**शोभते न**	- शोभा नहीं देता,
यत् ईप्सितं	- जो अभीष्ट हो (पाता है)	**विडम्बनं**	- (यह) विडम्बना ही है ॥ ४७ ॥

कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत् प्रेमानन्दफलप्रदम् ।
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ ४८ ॥

कृष्ण प्राप्तिकरं शश्वत् प्रेम आनन्द फलप्रदं श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ ४८ ॥

शश्वत्	- सदाके लिए	**श्रीमद्भागवतं**	- श्रीमद्भागवत
कृष्ण प्राप्ति-	- श्रीकृष्णकी प्राप्ति	**शास्त्रं कलौ**	- शास्त्र कलियुगमें
करं	करानेवाला	**कीरेण भाषितं**	- शुकदेवजी ने कहा है ॥ ४८ ॥
प्रेम आनन्द	- प्रेम एवं आनन्दरूपी		
फल प्रदं	- फल देने वाला		

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भागवतश्रोतृवक्तृलक्षणश्रवणविधिनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

समाप्तमिदं श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम्

हरिः ॐ तत्सत्

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

[3]

पद्मपुराण, उत्तरखण्ड

श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे ।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ॥ १ ॥

सच्चिदानन्दरूपाय विश्व उत्पत्ति आदि हेतवे तापत्रय विनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ॥ १ ॥

सच्चिदानन्द	- सच्चिदानन्द	**तापत्रय-**	- त्रितापोंके नाशक
रूपाय	- स्वरूप,	**विनाशाय**	
विश्व	- विश्वकी	**श्रीकृष्णाय**	- श्रीकृष्णको
उत्पत्ति	- उत्पत्तिके	**वयं नुमः**	- हम सब नमस्कार करते
आदि हेतवे	- आदि कारण,		हैं ॥ १ ॥

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ २ ॥

यं प्रव्रजन्तं अन उपेतं अपेत कृत्यं द्वैपायनः विरह कातर आजुहाव पुत्र इति तन्मय तया तरवः अभिनेदुः तं सर्वभूत हृदयं मुनिं आनतः अस्मि ॥ २ ॥

अन उपेतं	- यज्ञोपवीत संस्कार हुए बिना	**तन्मय तया**	- (शुकदेवजीके) तन्मय होनेके कारण
अपेत कृत्यं	- दूसरे संस्कारोंका अवसर आये बिना	**तरवः-**	- (उनकी ओरसे) वृक्षोंने
यं प्रव्रजन्तं	- जिनके सन्यास लेकर जाते समय	**अभिनेदुः**	प्रत्युत्तर दिया
		तं सर्वभूत-	- उन सब प्राणियोंके
		हृदयं	हृदयरूप

विरह कातर - वियोग व्याकुल
द्वैपायनः - भगवान श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजी
पुत्र इति-आजुहाव - 'हे पुत्र ! इस प्रकार पुकारने लगे,
मुनिं - मुनि शुकदेवजीको (मैं)
आनतः अस्मि - नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ।
कथामृतरसास्वादकुशलः शौनकोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥

नैमिषे सूतं आसीनं अभिवाद्य महामतिं कथा अमृत रस आस्वाद कुशलः शौनकः अब्रवीत् ॥ ३ ॥

नैमिषे - नैमिषारण्यमें
महामतिं - परम बुद्धिमान
आसीनं सूतं - बैठे हुए सूतजीको
अभिवाद्य - प्रणाम करके
कथा अमृतरस - कथारूपी अमृतरसके
आस्वाद कुशलः - आस्वादनमें निपुण
शौनकः अब्रवीत् - शौनकजी बोले ॥ ३ ॥

शौनक उवाच-

अज्ञानध्वान्तविध्वंसकोटिसूर्यसमप्रभ ।
सूताख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम् ॥ ४ ॥

अज्ञान ध्वान्त विध्वंस कोटि सूर्य समप्रभ सूत आख्याहि कथा सारं मम कर्ण रसायनम् ॥ ४ ॥

अज्ञानध्वान्त - अज्ञानान्धकारको
विध्वन्स - नष्ट करनेमें
कोटिसूर्य - करोड़ों सूर्योंके
समप्रभ सूत - समान कान्तिमान सूतजी !
मम कर्ण - मेरे कानोंके लिए
रसायनं - रसायनके समान
कथा सारं - साररूप कथा
आख्याहि - कहिये ॥ ४ ॥

भक्तिज्ञानविरागाप्तो विवेको वर्धते महान् ।
मायामोहनिरासश्च वैष्णवैः क्रियते कथम् ॥ ५ ॥

भक्तिज्ञान विराग आप्तः विवेकः वर्धते महान् माया मोह निरासः च वैष्णवैः क्रियते कथम् ॥ ५ ॥

भक्तिज्ञान	- भक्ति तथा ज्ञान तथा	**वर्धते**	- (जैसे) बढ़ता है
आप्तः विवेकः	- श्रेष्ठ विवेकसे (होने वाला)	**च वैष्णवैः**	- तथा वैष्णव लोग
		माया मोह-	- माया एवं मोह को
महान् विराग	- महान वैराग्य	**निरासः**	- निरस्त (दूर)
		कथं क्रियते	- कैसे करते हैं ॥ ५ ॥

इह घोरे कलौ प्रायो जीवश्चासुरतां गतः ।
क्लेशाक्रान्तस्य तस्यैव शोधने किं परायणम् ॥ ६ ॥

इह घोरे कलौ प्रायः जीवः च असुरतां गतः क्लेश आक्रान्तस्य तस्य एव शोधने किं परायणम् ॥ ६ ॥

इह घोरे कलौ	- इस भयानक कलियुगमें	**क्लेश-**	- क्लेशसे उत्पीड़ितोंको
प्रायः जीवः च	- प्रायः जीव तो	**आक्रान्तस्य**	
असुरतां गतः	- असुरभावको प्राप्त होगये हैं	**शोधने**	- शुद्ध करनेके लिए
		किं परायणं	- क्या श्रेष्ठ आश्रय है ॥ ६ ॥
तस्य एव	- उन्हीं		

श्रेयसां यद्भवेच्छ्रेयः पावनानां च पावनम् ।
कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत्साधनं तद्वदाधुना ॥ ७ ॥

श्रेयसां यत् भवेत् श्रेयः पावनानां च पावनं कृष्ण प्राप्तिकरं शश्वत् साधनं तत् वद अधुना ॥ ७ ॥

श्रेयसां	- कल्याण करनेवालोंमें भी	**शश्वत्-**	- शाश्वत श्रीकृष्णकी
यत् श्रेयः	- जो (श्रेष्ठ) कल्याणकारी,	**कृष्ण प्राप्ति**	प्राप्ति
पावनानां च	- पवित्र करने वालोंमें भी	**करं भवेत् तत्**	- कराने वाला हो वह
पावनं	- परम पावन	**साधनं-**	- साधन इस समय
		अधुना वद	बतलाइये ॥ ७ ॥

चिन्तामणिर्लोकसुखं सुरद्रुः स्वर्गसम्पदम् ।
प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुण्ठं योगिदुर्लभम् ॥ ८ ॥

चिन्तामणिः लोकसुखं सुरद्रुः स्वर्ग सम्पदं प्रयच्छति गुरुः प्रीतः वैकुण्ठं योगि दुर्लभम् ॥ ८ ॥

चिन्तामणिः	- चिन्तामणि	**प्रीतः गुरुः**	- प्रसन्न होकर गुरु
लोक सुखं	- लौकिक सुख और	**योगि दुर्लभम्-**	योंगियोंको भी
सुरद्रुः	- कल्पवृक्ष		कठिनाईसे मिलने वाला
स्वर्ग सम्पदं	- स्वर्गीय सम्पत्ति	**वैकुण्ठं-**	- वैकुण्ठ दे देता
	(दे सकता है, किन्तु)	**प्रयच्छति**	है ॥ ८ ॥

सूत उवाच-

प्रीतिः शौनक चित्ते ते ह्यतो वच्मि विचार्य च ।
सर्वसिद्धान्तनिष्पन्नं संसारभयनाशनम् ॥ ९ ॥

प्रीतिः शौनक चित्ते ते हि अतः वच्मि विचार्य च सर्व सिद्धान्त निष्पन्नं संसारभय नाशनम् ॥ ९ ॥

शौनक	- शौनक जी !	**सर्व सिद्धान्त**	- सब सिद्धान्तोंसे
हि ते चित्ते-	- क्योंकि तुम्हारे	**निष्पन्नं**	- सिद्ध हुए
प्रीतिः	चित्तमें प्रेम है,	**संसार भय**	- संसारके भयके
अतः विचार्य च	- अतः विचार करके ही	**नाशनं वच्मि**	- नाशक (साधन) को
			कहता हूँ ॥ ९ ॥

भक्त्योघवर्धनं यच्च कृष्णसंतोषहेतुकम् ।
तदहं तेऽभिधास्यामि सावधानतया शृणु ॥ १० ॥

भक्ति ओघ वर्धनं यत् च कृष्ण संतोष हेतुकं तत् अहं ते अभिधास्यामि सावधानतया शृणु ॥ १० ॥

यत् भक्ति ओघ	- जो भक्ति-प्रवाहको	**तत् ते अहं**	- वह तुमसे मैं
वर्धनं च	- बढ़ाने वाला तथा	**अभिधास्यामि**	- वर्णन करूँगा
कृष्ण सन्तोष	- श्रीकृष्णको सन्तुष्ट करनेका	**सावधान तया शृणु**	- सावधान होकर सुनो ॥ १० ॥
हेतुकं	- कारण है,		

कालव्यालमुखग्रासत्रासनिर्णाशहेतवे ।
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ ११ ॥

काल व्याल मुख ग्रास त्रास निर्णाश हेतवे श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ ११ ॥

काल व्याल	- कालरूपी सर्पके	**श्रीमद्भागवतं**	- श्रीमद्भागवत
मुख ग्रास त्रास	- मुखमें जानेके भयको	**शास्त्रं कलौ**	- शास्त्र कलियुगमें
निर्णाश हेतवे	- नष्ट करनेके लिए	**कीरेण भाषितं**	- शुकदेवजीने कहा है ॥ ११ ॥

एतस्मादपरं किञ्चिन्मनःशुद्ध्यै न विद्यते ।
जन्मान्तरे भवेत्पुण्यं तदा भागवतं लभेत् ॥ १२ ॥

एतस्मात् अपरं किञ्चित् मनः शुद्ध्यै न विद्यते जन्म अन्तरे भवेत् पुण्यं तदा भागवतं लभेत् ॥ १२ ॥

मनः शुद्ध्यै	- मनकी शुद्धिके लिए	**जन्म अन्तरे**	- जन्मान्तरका
एतस्मात् अपरं	- इससे श्रेष्ठ दूसरा	**पुण्यं भवेत्**	- पुण्योदय होता है
किञ्चित्	- कुछ भी (साधन)	**तदा भागवतं**	- तब भागवत
न विद्यते	- नहीं है	**लभेत्**	- प्राप्त होता है ॥१२॥

परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते शुके ।
सुधाकुम्भं गृहीत्वैव देवास्तत्र समागमन् ॥ १३ ॥

परीक्षिते कथा वक्तुं सभायां संस्थिते शुके सुधा कुम्भं गृहीत्वा एव देवाः तत्र समागमन् ॥ १३ ॥

परीक्षिते - परीक्षितके लिए
कथा वक्तुं - कथा कहनेके लिए
सभायां शुके - (ऋषियोंकी) सभामें शुकदेवजीके
संस्थिते - ठीक बैठ जानेपर
सुधा कुम्भं - अमृतघट
गृहीत्वा एव - लेकर ही
तत्र देवाः - वहां देवता
सम आगमन् - समीप आये ॥ १३ ॥

शुकं नत्वावदन् सर्वे स्वकार्यकुशलाः सुराः ।
कथासुधां प्रयच्छस्व गृहीत्वैव सुधामिमाम् ॥ १४ ॥

शुकं नत्वा वदन् सर्वे स्वकार्य कुशलाः सुराः कथासुधां प्रयच्छस्व गृहीत्वा एव सुधां इमाम् ॥ १४ ॥

स्वकार्य - अपना काम बनानेमें
कुशलाः सर्वे - निपुण सब
सुराः शुकं- - देवता शुकदेवजीको
नत्वा नमस्कार करके
वदन् - बोले
इमां सुधां - इस अमृतको
गृहीत्वा एव - लेकर ही
कथा सुधां - कथारूपी अमृत
प्रयच्छस्व - (हमें) दीजिए ॥ १४ ॥

एवं विनिमये जाते सुधा राज्ञा प्रपीयताम् ।
प्रपास्यामो वयं सर्वे श्रीमद्भागवतामृतम् ॥ १५ ॥

एवं विनिमये जाते सुधा राज्ञा प्रपीयतां प्रपास्यामः वयं सर्वे श्रीमद्भागवत अमृतम् ॥ १५ ॥

एवं विनिमये-	- इस प्रकार विनिमय	**प्रपीयतां**	- छककर पीलें
जाते	(अदला बदली)	**वयं सर्वे**	- और हम सब
	होजानेपर	**श्रीमद् भागवत**	- श्रीमद्भागवतरूपी
राज्ञा सुधा	- राजा अमृत	**अमृतं प्रपास्यामः**	- अमृत पीयेंगे ।।१५।।

क्व सुधा क्व कथा लोके क्व काचः क्व मणिर्महान् ।
ब्रह्मरातो विचार्यैवं तदा देवाञ्जहास ह ।। १६ ।।

क्व सुधा क्व कथा लोके क्व काचः क्व मणिः महान् ब्रह्मरातः विचार्य एवं तदा देवान् जहास ह ।। १६ ।।

लोके क्व सुधा	- संसारमें कहां अमृत और	**ब्रह्मरातः**	- शुकदेवजीने
		एवं विचार्य	- इस प्रकार सोचकर
क्व कथा	- कहाँ (भागवत) कथा,	**तदा ह देवान्**	- उस समय निश्चित ही देवताओंकी
क्व काचः	- कहां तो कांच तथा		
क्व महान्-मणिः	- कहाँ महामणि,	**जहास**	- हंसी उड़ा दी ।।१६।।

अभक्तांस्तांश्च विज्ञाय न ददौ स कथामृतम् ।
श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभा ।। १७ ।।

अभक्तान् तान् च विज्ञाय न ददौ स कथा अमृतं श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणां अपि दुर्लभा ।। १७ ।।

च तान्	- तथा उनको	**न ददौ**	- नहीं दिया
अभक्तान्	- भक्तिहीन	**श्रीमद्भागवती**	- श्रीमद्भागवतकी
विज्ञाय स	- जानकर उन्होंने	**वार्ता सुराणां-**	- कथा देवताओंको भी
कथा अमृतं	- कथारूपी अमृत	**अपि**	
		दुर्लभा	- दुर्लभ है ।। १७ ।।

राज्ञो मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धातापि विस्मितः ।
सत्यलोके तुलां बद्ध्वातोलयत्साधनान्यजः ।। १८ ।।

राज्ञः मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धाता अपि विस्मितः सत्य लोके तुलां बद्ध्वा तोलयत् साधनानि अजः ॥ १८ ॥

तथा राज्ञः मोक्षं - उस प्रकार राजाकी मुक्ति
वीक्ष्य धाता- - देखकर ब्रह्माजी भी
अपि
पुरा विस्मितः - पहिले चकित होगये,
अजः सत्यलोके - उन अजन्माने ब्रह्मलोकमें
तुलां बद्ध्वा - तराजू बाँधकर
साधनानि - सब साधनोंको
तोलयत् - तौला ॥ १८ ॥

लघून्यन्यानि जातानि गौरवेण इदं महत् ।
तदा ऋषिगणाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः ॥ १९ ॥

लघूनि अन्यानि जातानि गौरवेण इदं महत् तदा ऋषिगणाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः ॥ १९ ॥

इदं महत्- - इस (भागवत) के
गौरवेण महान गौरव (भार) के सामने
अन्यानि - दूसरे (साधन)
लघूनि- - छोटे (हल्के)
न जातानि पड़ गये,
तदा सर्वे - उस समय सब
ऋषिगणाः - ऋषि लोग
परमं विस्मयं - अत्यन्त आश्चर्यसे चकित
ययुः होगये ॥ १९ ॥

मेनिरे भगवद्रूपं शास्त्रं भागवतं कलौ ।
पठनाच्छ्रवणात्सद्यो वैकुण्ठफलदायकम् ॥ २० ॥

मेनिरे भगवत् रूपं शास्त्रं भागवतं कलौ पठनात् श्रवणात् सद्यः वैकुण्ठ फल दायकम् ॥ २० ॥

कलौ - कलियुगमें
पठनात् - पाठ करने या
श्रवणात् - सुननेसे
सद्यः वैकुण्ठ - तत्काल वैकुण्ठ
फलदायकं - रूप फल देने वाले
भागवतं शास्त्रं - भागवत शास्त्रको
भगवत् रूपं - भगवानका स्वरूप
मेनिरे - मान लिया ॥ २० ॥

सप्ताहेन श्रुतं चैतत्सर्वथा मुक्तिदायकम् ।
सनकाद्यैः पुरा प्रोक्तं नारदाय दयापरैः ॥ २१ ॥

सप्ताहेन श्रुतं च एतत् सर्वथा मुक्तिदायकं सनक आद्यैः पुरा प्रोक्तं नारदाय दयापरैः ॥ २१ ॥

च एतत्	- यदि इस (भागवत) को	**दया परैः**	- दया परायण
सप्ताहेन श्रुतं	- सप्ताहक्रमसे सुना जायतो	**सनक आद्यैः**	- सनकादिने
		पुरा नारदाय	- पहिले नारदजीको
सर्वथा-	- निश्चित ही मुक्ति	**प्रोक्तं**	- सुनाया था ॥ २१ ॥
मुक्तिदायकं	देनेवाला होता है,		

यद्यपि ब्रह्मसम्बन्धाच्छ्रुतमेतत्सुरर्षिणा ।
सप्ताहश्रवणविधिः कुमारैस्तस्य भाषितः ॥ २२ ॥

यद्यपि ब्रह्म सम्बन्धात् श्रुतं एतत् सुरर्षिणा सप्ताह श्रवण विधिः कुमारैः तस्य भाषितः ॥ २२ ॥

यद्यपि सुरर्षिणा	- यद्यपि देवर्षिने	**सप्ताह श्रवण**	- सप्ताह रूपसे श्रवणकी
ब्रह्म सम्बन्धात्	- ब्रह्माजीके द्वारा	**विधिः तस्य**	- विधि उनको
एतत् श्रुतं	- इस (भागवत) को सुना था किन्तु	**कुमारैः-**	- (सनकादि) कुमारोंने
		भाषितः	बतलायी ॥ २२ ॥

शौनक उवाच-

लोकविग्रहमुक्तस्य नारदस्यास्थिरस्य च ।
विधिश्रवे कुतः प्रीतिः संयोगः कुत्र तैः सह ॥ २३ ॥

लोक विग्रह मुक्तस्य नारदस्य अस्थिरस्य च विधि श्रवे कुतः प्रीतिः संयोगः कुत्र तैः सह ॥ २३ ॥

लोक विग्रह	- सांसारिक प्रपञ्चसे	**विधि श्रवे**	- विधि सुननेमें
मुक्तस्य च	- मुक्त तथा	**प्रीतिः कुतः**	- प्रीति कैसे होगयी ?
अस्थिरस्य	- स्थिर न रहने वाले	**तैः सह**	- उन (कुमारों) के साथ
नारदस्य	- नारदजी की	**संयोगः क्व**	- मिलना कहां हुआ ?
			॥ २३ ॥

सूत उवाच-

अत्र ते कीर्तयिष्यामि भक्तियुक्तं कथानकम् ।
शुकेन मम यत्प्रोक्तं रहः शिष्यं विचार्य च ॥ २४ ॥

अत्र ते कीर्तयिष्यामि भक्ति युक्तं कथानकं शुकेन मम यत् प्रोक्तं रहः शिष्यं विचार्य च ॥ २४ ॥

शुकेन मम	- शुकदेवजीने मुझे	**कथानकं**	- कथा
शिष्यं विचार्य च	- शिष्य समझकर ही	**अत्र प्रोक्तं**	- इस सम्बन्धमें कही
रहः यत्-	- एकान्तमें जो भक्तियुक्त	**ते-**	- (वह) तुमको सुनाऊँगा
भक्तियुक्तं		**कीर्तयिष्यामि**	॥ २४ ॥

एकदा हि विशालायां चत्वारः ऋषयोऽमलाः ।
सत्संगार्थं समायाता ददृशुस्तत्र नारदम् ॥ २५ ॥

एकदा हि विशालायां चत्वारः ऋषयः अमलाः सत्संग अर्थं सम आयाता ददृशुः तत्र नारदम् ॥ २५ ॥

चत्वारः अमलाः	- चारों निर्मल	**सत्संग अर्थं**	- सत्संगके लिए
ऋषयः हि	- ऋषि क्योंकि	**सम आयाता**	- एक साथ आये तो
एकदा-	- एक बार बदरीनाथमें	**तत्र नारदं**	- (उन्होंने) वहां नारदजीको
विशालायां		**ददृशुः**	- देखा ॥ २५ ॥

कुमारा ऊचुः-

कथं ब्रह्मन्दीनमुखः कुतश्चिन्तातुरो भवान् ।
त्वरितं गम्यते कुत्र कुतश्चागमनं तव ॥ २६ ॥

कथं ब्रह्मन् दीनमुखः कुतः चिन्ता आतुरः भवान् त्वरितं गम्यते कुत्र कुतः च आगमनं तव ॥ २६ ॥

ब्रह्मन्	-	ब्रह्मन् !	**त्वरितं कुत्र**	-	शीघ्रतासे कहां
दीनमुखः कथं	-	(आपका) मुख उदास कैसे है ?	**गम्यते च**	-	जा रहे हैं ? तथा
			तव आगमनं-	-	तुम्हारा आगमन
भवान् कुतः	-	आप क्यों	**कुतः**		कहांसे हो रहा है ? ॥ २६ ॥
चिन्ता आतुरः	-	चिन्ता-व्याकुल हैं ?			

इदानीं शून्यचित्तोऽसि गतवित्तो यथा जनः ।
तवेदं मुक्तसंगस्य नोचितं वद कारणम् ॥ २७ ॥

इदानीं शून्य चित्तः असि गत वित्तः यथा जनः तव इदं मुक्त संगस्य न उचितं वद कारणम् ॥ २७ ॥

गत वित्तः जनः	-	धन चले गये मनुष्यके	**तव-**	-	तुम आसक्ति मुक्तके
यथा इदानीं	-	समान इस समय	**मुक्तसंगस्य**		लिए
शून्य चित्तः-	-	शून्य (स्तब्ध) चित्त	**इदं उचितं न**	-	यह उचित नहीं है,
असि		होरहे हो,	**कारणं वद**	-	(अतः इसका) कारण बतलाओ ॥ २७ ॥

नारद उवाच-

अहं तु पृथिवीं यातो ज्ञात्वा सर्वोत्तमामिति ।
पुष्करं च प्रयागं च काशीं गोदावरीं तथा ॥ २८ ॥

अहं तु पृथिवीं यातः ज्ञात्वा सर्व उत्तमां इति पुष्करं च प्रयागं च काशीं गोदावरीं तथा ॥ २८ ॥

सर्व उत्तमाम् - सब (लोकों) में उत्तम है
इति ज्ञात्वा - ऐसा जानकर
अहं तु - मैं तो
पृथिवीं यातः - पृथ्वीपर आया,
पुष्करं च - पुष्कर क्षेत्र तथा
प्रयागं च - प्रयाग और
काशीं तथा - काशी तथा
गोदावरीं - गोदावरी (नासिक)

॥ २८ ॥

हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरंगं सेतुबन्धनम् ।
एवमादिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः ॥ २९ ॥

हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरंगं सेतुबन्धनं एवं आदिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतः ततः ॥ २९ ॥

हरिक्षेत्रं - हरिद्वार (या हरिहर क्षेत्र)
कुरुक्षेत्रं - कुरुक्षेत्र,
श्रीरंगं - श्रीरंग,
सेतुबन्धनं - सेतुबन्ध (धनुष्कोटि)
आदिषु तीर्थेषु - आदि तीर्थोंमें
एवं इतः ततः - इसी प्रकार इधर से उधर
भ्रममाण - भटकते हुए ॥ २९ ॥

नापश्यं कुत्रचिच्छर्म मनःसंतोषकारकम् ।
कलिनाधर्ममित्रेण धरेयं बाधिताधुना ॥ ३० ॥

न अपश्यं कुत्रचित् शर्म मनः संतोष कारकं कलिना अधर्म मित्रेण धरा इयं बाधिता अधुना ॥ ३० ॥

मनः- - मनको सन्तुष्ट
संतोषकारकं करनेवाली
शर्म कुत्रचित् - शान्ति कहीं भी
न अपश्यं - नहीं देख सका,
इयं धरा - यह पृथ्वी
अधुना - इस समय
अधर्म मित्रेण - अधर्मके मित्र
कलिना बाधिता - कलियुग द्वारा पीड़ित है ॥ ३० ॥

सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते ।
उदरम्भरिणो जीवा वराकाः कूटभाषिणः ॥ ३१ ॥

सत्यं न अस्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते उदरम्भरिणः जीवा वराकाः कूट भाषिणः ॥ ३१ ॥

सत्यं न अस्ति	- (कहीं) सत्य नहीं है,	**वराकाः जीवा**	- बेचारे जीव
तपः शौचं	- तपस्या, पवित्रता,	**उदरम्भरिणः**	- पेट भरनेमें लगे
दया दानं	- दया और दान	**कूट भाषिणः**	- झूठ बोलने वाले हैं
न विद्यते	- भी नहीं हैं,		॥ ३१ ॥

मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ।
पाखण्डनिरताः सन्तो विरक्ताः सपरिग्रहाः ॥ ३२ ॥

मन्दाः सुमन्दमतयः मन्दभाग्या हि उपद्रुताः पाखण्डनिरताः सन्तः विरक्ताः सपरिग्रहाः ॥ ३२ ॥

मन्दाः	- आलसी,	**सन्तः पाखण्ड**	- संत (कहे जाने वाले) पाखण्डमें
सुमन्द मतयः	- अत्यन्त अल्पबुद्धि,	**निरताः**	- लगे हैं,
मन्दभाग्या	- भाग्यहीन,	**विरक्ताः**	- विरक्त (कहलाने वाले)
उपद्रुताः हि	- उपद्रवग्रस्त हैं; क्योंकि	**सपरिग्रहाः**	- स्त्री (धनादि) युक्त हैं ॥ ३२ ॥

तरुणीप्रभुता गेहे श्यालको बुद्धिदायकः ।
कन्याविक्रयिणो लोभाद्दम्पतीनां च कल्कनम् ॥ ३३ ॥

तरुणी प्रभुता गेहे श्यालकः बुद्धिदायकः कन्या विक्रयिणः लोभात् दम्पतीनां च कल्कनम् ॥ ३३ ॥

गेहे तरुणी- - घरोंमें युवा स्त्रियोंका
प्रभुता प्रभुत्व है,
बुद्धिदायकः - सलाह देने वाले
श्यालकः - साले हैं,
लोभात् - (लोग) लोभवश
कन्या विक्रयिणः - कन्या बेचते हैं,
च दम्पतीनां - तथा पति-पत्नीमें
कल्कनं - झगड़ा होता रहता है
॥ ३३ ॥

आश्रमा यवनै रुद्धास्तीर्थानि सरितस्तथा ।
देवतायतनान्यत्र दुष्टैर्नष्टानि भूरिशः ॥ ३४ ॥

आश्रमा यवनै रुद्धाः तीर्थानि सरितः तथा देवता आयतनानि अन्यत्र दुष्टैः नष्टानि भूरिशः ॥ ३४ ॥

आश्रमा तीर्थानि - आश्रमों, तीर्थों
तथा सरितः - तथा (पवित्र) सरिताओंपर
यवनै रुद्धाः - यवनोंने रोक लगा दी है,
अन्यत्र भूरिशः - दूसरे स्थानोंके बहुतसे
देवता आयतनानि - देवमन्दिरोंको
दुष्टैः नष्टानि - दुष्टोंने नष्ट कर दिया है ॥ ३४ ॥

न योगी नैव सिद्धो वा न ज्ञानी सत्क्रियो नरः ।
कलिदावानलेनाद्य साधनं भस्मतां गतम् ॥ ३५ ॥

न योगी न एव सिद्धः वा न ज्ञानी सत् क्रियः नरः कलि दावानलेन अद्य साधनं भस्मतां गतम् ॥ ३५ ॥

न योगी - न योगी हैं,
सिद्धः न- - सिद्ध नहीं ही हैं,
एव वा अथवा
ज्ञानी सत्- - ज्ञानी या सत् कर्म
क्रियः करने वाला
नरः न - मनुष्य नहीं है,
अद्यकलि - इस समय कलियुग रूपी
दावानलेन - दावाग्निसे
साधनं - सब साधन
भस्मतां गतं - भस्म होगये हैं
॥ ३५ ॥

अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजातयः ।
कामिन्यः केशशूलिन्यः सम्भवन्ति कलाविह ।। ३६ ।।

अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजातयः कामिन्यः केशशूलिन्यः सम्भवन्ति कलाः इह ।। ३६ ।।१

जनपदाः	- ग्रामीण लोग	**कामिन्यः**	- स्त्रियां
अट्टशूला	- अन्न बेचने वाले,	**केश शूलिन्यः**	- योनि-विक्रयिणी (वेश्यायें)
द्विजातयः	- ब्राह्मण	**इह कलाः**	- इस कलियुगमें
शिवशूला	- वेद-विक्रय करने वाले,	**सम्भवन्ति**	- उत्पन्न होती हैं ।।३६।।

एवं पश्यन् कलेर्दोषान् पर्यटन्नवनीमहम् ।
यामुनं तटमापन्नो यत्र लीला हरेरभूत् ।। ३७ ।।

एवं पश्यन् कलेः दोषान् पर्यटन् अवनीं अहं यामुनं तटं आपन्नः यत्र लीला हरेः अभूत् ।। ३७ ।।

एवं कलेः-	- इस प्रकार कलियुगके	**यत्र हरेः-**	- जहां श्रीहरिकी लीला
दोषान्	दोषोंको	**लीला**	
पश्यन् अवनीं	- देखते हुए पृथ्वीपर	**अभूत्**	- हुई थी (उस)
पर्यटन् अहं	- घूमते हुए मैं	**यामुनं तटं**	- यमुना किनारे
		आपन्नः	- पहुँच गया ।। ३७ ।।

तत्राश्चर्यं मया दृष्टं श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ।
एका तु तरुणी तत्र निषण्णा खिन्नमानसा ।। ३८ ।।

विशेष - यह सीधा अर्थ बिना विशेष परिभाषाके भी सम्भव है कि जनपदोंकी सामान्य जनता अट्ट-बड़ी इमारतोंकी विरोधी, ब्राह्मण मूल्य तै करके शास्त्रीय कर्म करने वाले तथा स्त्रियां केश कटवाने वाली कलियुगमें हो जायंगी ।

१. **अट्टं अन्नं शिवो वेदः शूलो विक्रय उच्यते ।**
केशो ..... तत्त्वदर्शिभिः

तत्र आश्चर्यं मया दृष्टं श्रूयतां तत् मुनीश्वराः एका तु तरुणी तत्र निषण्णा खिन्न मानसा ॥ ३८ ॥

मुनीश्वराः - मुनीश्वरो !
तत्र मया - वहां मैंने
आश्चर्यं दृष्टं - (एक) आश्चर्य देखा
तत् श्रूयतां - उसे सुनिये,
तत्र तु एका - वहां तो एक
खिन्न मानसा - खिन्न चित्ता
तरुणी निषण्णा - तरुणी बैठी थी ॥ ३८ ॥

वृद्धौ द्वौ पतितौ पार्श्वे निःश्वसन्तावचेतनौ ।
शुश्रूषन्ती प्रबोधन्ती रुदती च तयोः पुरः ॥ ३९ ॥

वृद्धौ द्वौ पतितौ पार्श्वे निःश्वसन्ताः अचेतनौ शुश्रूषन्ती प्रबोधन्ती रुदती च तयोः पुरः ॥ ३९ ॥

पार्श्वे द्वौ वृद्धौ - (उसके) बगलमें दो वृद्ध पुरुष
निःश्वसन्ताः - दीर्घश्वांस लेते
अचेतनौ - मूर्छित
पतितौ - पड़े थे
तयोः शुश्रूषन्ती- उनकी सेवा करती,
प्रबोधन्ती - जगाती
च पुरः रुदती - तथा (वह उनके) सामने रोती थी ॥ ३९ ॥

दशदिक्षु निरीक्षन्ती रक्षितारं निजं वपुः ।
वीज्यमाना शतस्त्रीभिर्बोध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ४० ॥

दशदिक्षु निरीक्षन्ती रक्षितारं निजं वपुः वीज्यमाना शतस्त्रीभिः बोध्यमाना मुहुः मुहुः ॥ ४० ॥

शतस्त्रीभिः - सैकड़ों स्त्रियों द्वारा
वीज्यमाना - पंखा झली जाती,
मुहुः मुहुः - बार बार
बोध्यमाना - समझायी जाती (वह)
निजं वपुः- - अपने शरीरके रक्षकको
रक्षितारं
दश दिक्षु - दसों दिशाओंमें
निरीक्षन्ती - देख रही थी ॥ ४० ॥

दृष्ट्वा दूराद्गतः सोऽहं कौतुकेन तदन्तिकम् ।
मां दृष्ट्वा चोत्थिता बाला विह्वला चाब्रवीद्वचः ॥ ४१ ॥

दृष्ट्वा दूरात् गतः सः अहं कौतुकेन तत् अन्तिकं मां दृष्ट्वा उत्थिता बाला विह्वला च अब्रवीत् वचः ॥ ४१ ॥

सः अहं	- वह मैं	**बाला उत्थिता**	- वह स्त्री खड़ी होगयी
दूरात् दृष्ट्वा	- दूरसे देखकर	**च विह्वला**	- तथा व्याकुल होकर
तत् अन्तिकं	- उसके समीप	**वचः अब्रवीत्**	- यह बात बोली
गतः मां दृष्ट्वा	- गया, मुझे देखकर		॥ ४१ ॥

बालोवाच-

भोः भोः साधो क्षणं तिष्ठ मच्चिन्तामपि नाशय ।
दर्शनं तव लोकस्य सर्वथाघहरं परम् ॥ ४२ ॥

भोः भोः साधो क्षणं तिष्ठ मत् चिन्तां अपि नाशय दर्शनं तव लोकस्य सर्वथा अघं हरं परम् ॥ ४२ ॥

भोः भोः साधो	- हे हे महात्माजी !	**तव दर्शनं**	- आपका दर्शन
क्षणं तिष्ठ	- एक क्षण ठहरिये,	**लोकस्य**	- लोगोंके
मत् चिन्तां अपि	- मेरी चिन्ता भी	**परं अघ**	- महापापोंको
नाशय	- नष्ट कीजिए !	**सर्वथा हरं**	- सर्वथा नष्ट करने वाला है ॥ ४२ ॥

बहुधा तव वाक्येन दुःखशान्तिर्भविष्यति ।
यदा भाग्यं भवेद्भूरि भवतो दर्शनं तदा ॥ ४३ ॥

बहुधा तव वाक्येन दुःख शान्तिः भविष्यति यदा भाग्यं भवेत् भूरि भवतः दर्शनं तदा ॥ ४३ ॥

तव वाक्येन	- आपके वचनोंसे	**यदा भूरि भाग्यं**	-जब बहुत सौभाग्य
दुःख शान्तिः	- (मेरे) दुःखकी शान्ति	**भवेत् तदा**	- होता है तब
बहुधा भविष्यति	- बहुत कुछ होजायगी,	**भवतः दर्शनं**	- आपका दर्शन होता है ॥ ४३ ॥

नारद उवाच-

कासि त्वं काविमौ चेमा नार्यः काः पद्मलोचनाः ।
वद देवि सविस्तारं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ ४४ ॥

का असि त्वं काः इमौ च इमा नार्यः काः पद्मलोचनाः वद देवि सविस्तारं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ ४४ ॥

देवि त्वं- - देवि! तुम कौन हो ?
काअसि
काः इमौ - ये दोनों कौन हैं ?
च इमा - तथा ये
पद्मलोचनाः - कमलनयनी

नार्यः काः - स्त्रियां कौन हैं ?
स्वस्य दुःखस्य - अपने दुःखका
कारणं - कारण
सविस्तारं वद - विस्तारके साथ बतलाओ
॥ ४४ ॥

बालोवाच-

अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ ।
ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ ॥ ४५ ॥

अहं भक्तिः इति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ ज्ञान वैराग्य नामानौ काल योगेन जर्जरौ ॥ ४५ ॥

अहं भक्तिः - मैं भक्ति
इति ख्याता - इस नामसे प्रसिद्ध हूँ,
इमौ ज्ञान- - ये ज्ञान-वैराग्य
वैराग्य

नामानौ - नाम वाले
मे मतौ तनयौ - मेरे प्रिय पुत्र
काल योगेन - समयके संयोगसे
जर्जरौ - जर्जर होगये हैं ॥४५॥

गंगाद्याः सरितश्चेमा मत्सेवार्थं समागताः ।
तथापि न च मे श्रेयः सेविताया: सुरैरपि ॥ ४६ ॥

गंगा आद्याःसरितः च इमा मत् सेवा अर्थं सम आगताः तथा अपि न च मे श्रेयः सेविताया: सुरैः अपि ॥ ४६ ॥

इमा गंगा-आद्याः - ये गंगा आदि
सरितः च - नदियां भी
मत् सेवा अर्थं - मेरी सेवाके लिए
सम आगताः - एक साथ आयी हैं
तथा अपि - ऐसा होनेपर भी
सुरैः सेविताया: - देवताओं द्वारा सेविता
अपि मे श्रेयः - होनेपर भी मेरा कल्याण
न च - नहीं ही है ॥ ४६ ॥

इदानीं शृणु मद्वार्तां सचित्तस्त्वं तपोधन ।
वार्ता मे विततापास्ति तां श्रुत्वा सुखमावह ॥ ४७ ॥

इदानीं शृणु मत् वार्तां सचित्तः त्वं तपोधन वार्ता मे विततता अपि अस्ति तां श्रुत्वा सुखं आवह ॥ ४७ ॥

तपोधन - तपोधन !
त्वं सचित्तः - तुम शुद्ध (एकाग्र) चित्तसे
इदानीं मत्-वार्तां - इस समय मेरी कथा
शृणु - सुनो,
मे वार्ता - मेरी कथा
विततता-अपि अस्ति - फैली हुई भी (प्रसिद्ध) है,
तां श्रुत्वा - उसे सुनकर
सुखं आवह - (मुझे) सुख प्रदान करें ॥ ४७ ॥

उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता ।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ॥ ४८ ॥

उत्पन्ना द्रविडे स अहं वृद्धिं कर्णाटके गता क्वचित् क्वचित् महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ॥ ४८ ॥

स अहं - वह मैं
द्रविडे उत्पन्ना - द्रविड़में उत्पन्न हुई,
कर्णाटके - कर्णाटकमें
वृद्धिं गता - बढ़ी,
क्वचित् क्वचित् - कहीं कहीं
महाराष्ट्रे - महाराष्ट्रमें रही,
गुर्जरे जीर्णतां गता - गुजरातमें वृद्धा होगयी ॥ ४८ ॥

तत्र घोरकलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डितांगका ।
दुर्बलाहं चिरं याता पुत्राभ्यां सह मन्दताम् ।। ४९ ।।

तत्र घोर कलेः योगात् पाखण्डैः खण्डित अंगका दुर्बला अहं चिरं याता पुत्राभ्यां सह मन्दताम् ।। ४९ ।।

तत्र घोर कलेः	- वहां घोर कलियुगके	**अहं चिरं**	- मैं बहुत दिनोंमें
योगात् पाखण्डैः	- प्रभावसे पाखण्डियों द्वारा	**दुर्बला पुत्राभ्यां**	- दुर्बल तथा पुत्रोंके
		सह मन्दतां-	- साथ निस्तेज होगयी
खण्डित अंगका	- अंग-भंगकी गयी	**याता**	।। ४९ ।।

वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी ।
जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम् ।। ५० ।।

वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीना एव सुरूपिणी जाता अहं युवती सम्यक् प्रेष्ठ रूपा तु साम्प्रतम् ।। ५० ।।

पुनः वृन्दावनं-	- फिर वृन्दावन आकर	**प्रेष्ठ रूपा**	- प्रेम करने योग्य रूपवाली
प्राप्य		**सम्यक्-**	- पूर्ण युवती भी
साम्प्रतं	- इस समय	**युवती तु**	
नवीना एव	- नयी की भांति	**अहं जाता**	- मैं होगयी हूँ ।। ५० ।।
सुरूपिणी	- सुन्दर रूपवाली		

इमौ तु शयितावत्र सुतौ मे क्लिश्यतः श्रमात् ।
इदं स्थानं परित्यज्य विदेशं गम्यते मया ।। ५१ ।।

इमौ तु शयिताः अत्र सुतौ मे क्लिश्यतः श्रमात् इदं स्थानं परित्यज्य विदेशं गम्यते मया ।। ५१ ।।

इमौ अत्र तु - ये यहां तो
शयिताः मे सुतौ - पड़े हुए मेरे दोनों पुत्र
श्रमात्- - थके होनेसे कष्ट
क्लिश्यतः पारहे हैं (अतः)
इदं स्थानं - इस स्थानको
परित्यज्य - त्यागकर
मया विदेशं- - मैं विदेश जाना चाहती हूँ
गम्यते ॥ ५१ ॥

जरठत्वं समायातौ तेन दुःखेन दुःखिता ।
साहं तु तरुणी कस्मात्सुतौ वृद्धाविमौ कुतः ॥ ५२ ॥

जरठत्वं सम आयातौ तेन दुःखेन दुःखिता स अहं तु तरुणी कस्मात् सुतौ वृद्धाः इमौ कुतः ॥ ५२ ॥

जरठत्वं - (इनको) बुढ़ापा
सम आयातौ - एक साथ आगया
तेन दुःखेन - इस दुःखसे
दुःखिता - दुःखी हूँ
स अहं तु - वह मैं तो
कस्मात् तरुणी - किस कारण तरुणी हूँ और
इमौ सुतौ - ये दोनों (मेरे) पुत्र
कुतः वृद्धाः - कैसे बूढ़े होगये ॥५२॥

त्रयाणां सहचारित्वाद्वैपरीत्यं कुतः स्थितम् ।
घटते जरठा माता तरुणौ तनयाविति ॥ ५३ ॥

त्रयाणां सह चारित्वात् वैपरीत्यं कुतः स्थितं घटते जरठा माता तरुणौ तनयाः इति ॥ ५३ ॥

त्रयाणां - तीनोंके
सह चारित्वात् - एक साथ रहनेपर भी
वैपरीत्यं - यह विपरीतता
कुतः स्थितं - कहांसे आगयी ?
जरठा माता - वृद्धा माता और
तरुणौ तनयाः - तरुण पुत्र
इति घटते - ऐसा तो होता है ॥ ५३ ॥

अतः शोचामि चात्मानं विस्मयाविष्टमानसा ।
वद योगनिधे धीमन् कारणं चात्र किं भवेत् ॥ ५४ ॥

अतः शोचामि च आत्मानं विस्मय आविष्ट मानसा वद योगनिधे धीमन् कारणं च अत्र किं भवेत् ॥ ५४ ॥

धीमन्	- धीमन् (बुद्धिमान)	**मानसा शोचामि**	- चित्तसे चिन्ता करती हूँ
योगनिधे	- योगनिधे !	**अत्र किं कारणं**	- इसमें क्या कारण
अतः आत्मानं च	- अतः अपने लिए भी	**भवेत् वद**	- होगा, बतलाइये
विस्मय आविष्ट	- विस्मय भरे		॥ ५४ ॥

नारद उवाच-

ज्ञानेनात्मनि पश्यामि सर्वमेतत्तवानघे ।
न विषादस्त्वया कार्यो हरिः शं ते करिष्यति ॥ ५५ ॥

ज्ञानेन आत्मनि पश्यामि सर्वं एतत् तव अनघे न विषादः त्वया कार्यः हरिः ते शं करिष्यति ॥ ५५ ॥

अनघे	- निष्पापे !	**त्वया विषादः**	- तुमको खेद
तव एतत् सर्वं	- तुम्हारा यह सब (दुःखका कारण)	**न कार्यः**	- नहीं करना चाहिए
		हरिः ते शं	- श्रीहरि तुम्हारा कल्याण
आत्मनि ज्ञानेन	- चित्तमें ज्ञानके द्वारा	**करिष्यति**	- करेंगे ॥ ५५ ॥
पश्यामि	- देखता हूँ		

सूत उवाच-

क्षणमात्रेण तज्ज्ञात्वा वाक्यमूचे मुनीश्वरः ॥ ५६ ॥

क्षण मात्रेण तत् ज्ञात्वा वाक्यं ऊचे मुनीश्वरः ॥ ५६ ॥

तत् क्षण मात्रेण	- उसे एक क्षणमें ही	**मुनीश्वरः**	- मुनीश्वरने
ज्ञात्वा	- जानकर	**वाक्यं ऊचे**	- यह बात कहा ॥५६॥

नारद उवाच-

शृणुष्वावहिता बाले युगोऽयं दारुणः कलिः ।
तेन लुप्तः सदाचारो योगमार्गस्तपांसि च ॥ ५७ ॥

शृणुष्व अवहिता बाले युगः अयं दारुणः कलिः तेन लुप्तः सदाचारः योगमार्गः तपांसि च ॥ ५७ ॥

बाले	- बाले !	**कलिः युगः**	- कलियुग है,
अवहिता	- ध्यान देकर	**तेन सदाचारः**	- उसने सदाचार,
शृणुष्व	- सुनो,	**योगमार्गः**	- योगके साधन
अयं दारुणः	- यह भयानक	**च तपांसि-**	- तथा तपस्या का लोप
		लुप्तः	कर दिया है ॥ ५७ ॥

जना अघासुरायन्ते शाठ्यदुष्कर्मकारिणः ।
इह सन्तो विषीदन्ति प्रहृष्यन्ति ह्यसाधवः ।
धत्ते धैर्यं तु यो धीमान् स धीरः पण्डितोऽथवा ॥ ५८ ॥

जना अघासुरायन्ते शाठ्य दुष्कर्मकारिणः इह सन्तः विषीदन्ति प्रहृष्यन्ति हि असाधवः धत्ते धैर्यं तु यः धीमान् स धीरः पण्डितः अथवा ॥ ५८ ॥

शाठ्य दुष्कर्म	- शठता और दुष्कर्म	**इह सन्तः**	- इस युगमें सत्पुरुष
कारिणः जना	- करने वाले लोग	**विषीदन्ति**	- दुःखी रहते हैं,
अघासुरायन्तें	- अघासुर बन रहे हैं,	**यः तु धैर्यं-**	- जो कोई धैर्य
हि असाधवः	- क्योंकि दुष्ट लोग	**धत्ते**	धारण करता है,
प्रहृष्यन्ति	- बहुत हर्षित होते हैं	**स धीरः**	- वह धैर्यशाली
		अथवा पण्डितः	- अथवा विवेकवान है ॥ ५८ ॥

अस्पृश्यानवलोक्येयं शेषभारकरी धरा ।
वर्षे वर्षे क्रमाज्जाता मंगलं नापि दृश्यते ॥ ५९ ॥

अस्पृश्य अनवलोक्या इयं शेष भार करी धरा वर्षे वर्षे क्रमात् जाता मंगलं न अपि दृश्यते ॥ ५९ ॥

इयं धरा	- यह पृथ्वी	**शेष भार करी**	- शेषनागके लिए भार रूपा
वर्षे वर्षे	- प्रति वर्ष	**जाता**	- होगयी है,
क्रमात् अस्पृश्य	- क्रमशः न छूने योग्य,	**मंगलं अपि**	- (इसका) कल्याण भी
अनवलोक्या	- न देखने योग्य	**न दृश्यते**	- नहीं दीखता ॥ ५९ ॥

न त्वामपि सुतैः साकं कोऽपि पश्यति साम्प्रतम् ।
उपेक्षितानुरागान्धैर्जर्जरत्वेन संस्थिता ॥ ६० ॥

न त्वां अपि सुतैः साकं कः अपि पश्यति साम्प्रतं उपेक्षिता अनुराग अन्धैः जर्जरत्वेन संस्थिता ॥ ६० ॥

साम्प्रतं त्वां-अपि	- इस समय तुमको भी	**अनुराग अन्धैः**	- विषयानुराग से अन्ध हुओं द्वारा
सुतैः साकं	- पुत्रोंके साथ	**उपेक्षिता**	- उपेक्षित होकर
कः अपि न-पश्यति	- कोई भी नहीं देखता,	**जर्जरत्वेन**	- जर्जर (अत्यन्त क्षीण) रूपमें
		संस्थिता	- बची हो ॥ ६० ॥

वृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा ।
धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ॥ ६१ ॥

वृन्दावनस्य संयोगात् पुनः त्वं तरुणी नवा धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिः नृत्यति यत्र च ॥ ६१ ॥

वृन्दावनस्य - वृन्दावनके
संयोगात् - संयोगसे
त्वं पुनः- - तुम फिर नवयुवती
नवा तरुणी होगयी हो,
तेन वृन्दावनं - इससे वृन्दावन
धन्यं यत्र - धन्य है, जहां
भक्तिः च- - भक्ति भी नाचती है
नृत्यति ॥ ६१ ॥

अत्रेमौ ग्राहकाभावान्न जरामपि मुञ्चतः ।
किञ्चिदात्मसुखेनेह प्रसुप्तिर्मन्यतेऽनयोः ॥ ६२ ॥

अत्र इमौ ग्राहक अभावात् न जरां अपि मुञ्चतः किञ्चित् आत्म सुखेन इह प्रसुप्तिः मन्यते अनयोः ॥ ६२ ॥

अत्र ग्राहक - यहाँ ग्राहक
अभावात् - न होनेसे
इमौ जरां अपि - इन दोनोंको बुढ़ापा भी
न मुञ्चतः - नहीं छोड़ता है,
इह किञ्चित् - यहां कुछ
आत्म सुखेन - आत्मानन्द होनेसे
अनयोः प्रसुप्तिः - इन दोनोंकी सुषुप्तावस्था
मन्यते - मानी जाती है ॥६२॥

भक्तिरुवाच-

कथं परीक्षिता राज्ञा स्थापितो ह्यशुचिः कलिः ।
प्रवृत्ते तु कलौ सर्वसारः कुत्र गतो महान् ॥ ६३ ॥

कथं परीक्षिता राज्ञा स्थापितः हि अशुचिः कलिः प्रवृत्ते तु कलौ सर्वसारः कुत्र गतः महान् ॥ ६३ ॥

हि अशुचिः- - क्योंकि कलियुग
कलिः अपवित्र है
राज्ञा परीक्षिता - राजा परीक्षितने
कथं स्थापितः - कैसे (इसे) बसाया,
कलौ प्रवृत्ते तु - कलियुगकी प्रवृत्ति होनेपर तो
सर्व महान् - सब उत्तम (कार्यों) का
सारः कुत्र गतः - सार कहां चला गया ॥ ६३ ॥

करुणापरेण हरिणाप्यधर्मः कथमीक्ष्यते ।
इमं मे संशयं छिन्धि त्वद्वाचा सुखितास्म्यहम् ॥ ६४ ॥

करुणा परेण हरिणा अपि अधर्मः कथं ईक्ष्यते इमं मे संशयं छिन्धि त्वत् वाचा सुखिता अस्मि अहम् ॥ ६४ ॥

करुणा परेण	-	दया परायण	**इमं मे संशयं**	-	यह मेरा सन्देह
हरिणा अपि	-	श्रीहरि द्वारा भी	**छिन्धि**	-	काट दो,
अधर्मः कथं	-	अधर्म कैसे	**त्वत् वाचा**	-	आपकी बातसे
ईक्ष्यते	-	देखा जाता है,	**अहं सुखिता-**	-	मैं सुखी हुई हूँ
			अस्मि		॥ ६४ ॥

नारद उवाच-

यदि पृष्टस्त्वया बाले प्रेमतः श्रवणं कुरु ।
सर्वं वक्ष्यामि ते भद्रे कश्मलं ते गमिष्यति ॥ ६५ ॥

यदि पृष्टः त्वया बाले प्रेमतः श्रवणं कुरु सर्वं वक्ष्यामि ते भद्रे कश्मलं ते गमिष्यति ॥ ६५ ॥

यदि बाले	-	यदि वाले !	**भद्रे ते सर्वं**	-	कल्याणी ! तुमसे सब
त्वया पृष्टः	-	तुमने पूछा ही है तो	**वक्ष्यामि**	-	कहूंगा (इससे)
प्रेमतः श्रवणं-	-	प्रेमपूर्वक श्रवण करो,	**ते कश्मलं**	-	तुम्हारा दुःख
कुरु			**गमिष्यति**	-	चला जायेगा ॥ ६५ ॥

यदा मुकुन्दो भगवान् क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतः ।
तद्दिनात्कलिरायातः सर्वसाधनबाधकः ॥ ६६ ॥

यदा मुकुन्दः भगवान् क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतः तत् दिनात् कलिः आयातः सर्व साधन बाधकः ॥ ६६ ॥

यदा भगवान्	-	जब भगवान	**तत् दिनात्**	-	उसी दिनसे
मुकुन्दः क्ष्मां-	-	मुकुन्द पृथ्वीको छोड़कर	**सर्व साधन**	-	सब साधनोंमें
त्यक्त्वा			**बाधकः कलिः**	-	बाधा डालने वाला कलियुग
स्वपदं गतः	-	अपने धाम चले गये,	**आयातः**	-	आगया ॥ ६६ ॥

दृष्टो दिग्विजये राज्ञा दीनवच्छरणं गतः ।
न मया मारणीयोऽयं सारंग इव सारभुक् ॥ ६७ ॥

दृष्टः दिग्विजये राज्ञा दीनवत् शरणं गतः न मया मारणीयः अयं सारंग इव सारभुक् ॥ ६७ ॥

दिग्विजये राज्ञा	- दिग्विजयके समय राजा परीक्षितने	**सारंग इव**	- भ्रमरके समान
दीनवत्	- दीनके समान	**सारभुक्**	- सारग्राही (राजाने सोचा)
शरणं गतः	- शरणमें आया	**अयं मया**	- 'यह मेरे द्वारा
दृष्टः	- (इसे) देखा,	**मारणीयः न**	- मार देने योग्य नहीं है ॥ ६७ ॥

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात् ॥ ६८ ॥

यत् फलं न अस्ति तपसा न योगेन न समाधिना तत् फलं लभते सम्यक् कलौ केशव कीर्तनात् ॥ ६८ ॥

यत् फलं-	- जो फल तपस्यासे	**तत् फलं-**	- वह फल पूर्ण
तपसा न	नहीं,	**सम्यक्**	रूपसे
न योगेन	- योगसे नहीं,	**कलौ केशव-**	- कलियुगमें केशवके
समाधिना न-	- समाधिसे भी नहीं	**कीर्तनात्**	कीर्तनसे
अस्ति	होता	**लभते**	- (लोग) पाते हैं ॥६८॥

एकाकारं कलिं दृष्ट्वा सारवत्सारनीरसम् ।
विष्णुरातः स्थापितवान् कलिजानां सुखाय च ॥ ६९ ॥

एक आकारं कलिं दृष्ट्वा सारवत् सार नीरसं विष्णुरातः स्थापितवान् कलिजानां सुखाय च ॥ ६९ ॥

सार नीरसं - सारहीन होनेपर भी
एक आकारं - एक गुणके कारण
कलिं सारवत् - कलियुगको सारवान
दृष्ट्वा- विष्णुरातः - देखकर परीक्षितने
कलिजानां - कलियुगमें उत्पन्न होने वालोंके
सुखाय च- स्थापितवान् - सुखके लिए ही बसाया ॥ ६९ ॥

कुकर्माचरणात्सारः सर्वतो निर्गतोऽधुना ।
पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनास्तुषा यथा ॥ ७० ॥

कुकर्म आचरणात् सारः सर्वतः निर्गतः अधुना पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनाः तुषा यथा ॥ ७० ॥

अधुना - इस समय
कुकर्म- आचरणात् - कुकर्म करनेसे
सर्वतः सारः - सब कहींसे सारतत्त्व
निर्गतः - निकल गया है,
भूमौ पदार्थाः - पृथ्वीपर पदार्थ
बीजहीनाः - बीज रहित
तुषा यथा - भूसे के समान
संस्थिता - बच गये हैं ॥ ७० ॥

विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने ।
कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः ॥ ७१ ॥

विप्रैः भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने कारिता कणलोभेन कथा सारः ततः गतः ॥ ७१ ॥

भागवती वार्ता - भागवतकी कथा
विप्रैः गेहे गेहे - ब्राह्मणों द्वारा घर-घरमें
जने जने - चाहे जिस व्यक्तिके यहां
कण लोभेन-कारिता - कण (थोड़े) के लोभसे की जाती है
ततः कथासारः - इससे कथाका सार
गतः - चला गया ॥ ७१ ॥

अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः ।
तेऽपि तिष्ठिन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥ ७२ ॥

अति उग्र भूरि कर्माणः नास्तिका रौरवा जनाः ते अपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारः ततः गतः ॥ ७२ ॥

अति उग्र	- अत्यन्त घोर	**जनाः ते अपि**	- लोग हैं, वे भी
भूरि कर्माणः	- बहुतसे कर्म करने वाले जो	**तीर्थेषु तिष्ठन्ति**	- तीर्थोंमें रहते हैं
		ततः तीर्थ-	- इससे तीर्थोंकी शक्ति
नास्तिका रौरवा	- नास्तिक नारकी	**सारः गतः**	चली गयी ॥ ७२ ॥

कामक्रोधमहालोभतृष्णाव्याकुलचेतसः ।
तेऽपि तिष्ठिन्ति तपसि तपःसारस्ततो गतः ॥ ७३ ॥

काम क्रोध महालोभ तृष्णा व्याकुल चेतसः ते अपि तिष्ठन्ति तपसि तपः सारः ततः गतः ॥ ७३ ॥

काम क्रोध	- काम, क्रोध,	**ते अपि-**	- वे भी तपस्या करते हैं
महालोभ	- महालोभसे (जो)	**तपसि तिष्ठन्ति**	
तृष्णा	- इच्छा	**तपः सारः**	- तपस्याका सार (तेज)
व्याकुल चेतसः	- व्याकुल चित्त हैं	**ततः गतः**	- इससे चला गया ॥७३॥

मनसश्चाजयाल्लोभाद्दम्भात्पाखण्डसंश्रयात् ।
शास्त्रानभ्यसनाच्चैव ध्यानयोगफलं गतम् ॥ ७४ ॥

मनसः च अजयात् लोभात् दम्भात् पाखण्डसंश्रयात् शास्त्रान् अभ्यसनात् च एव ध्यानयोग फलं गतम् ॥ ७४ ॥

मनसः च	- मनके तो
अजयात्	- न जीतनेसे,
लोभात्	- लोभ करनेसे,
दम्भात्	- दम्भ करनेसे,
पाखण्डसंश्रयात्	- पाखण्डका आश्रय लेनेसे,
च शास्त्रान्	- तथा शास्त्रोंका
अभ्यसनात्-	- अन्भयास न करनेसे भी
एव	
ध्यान योगफलं	- ध्यान योगका फल
गतं	- नष्ट होगया ।। ७४ ।।

पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव ।
पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने ।। ७५ ।।

पण्डिताः तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव पुत्रस्य उत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्ति साधने ।। ७५ ।।

पण्डिताः तु	- विद्वान लोग तो
कलत्रेण	- पत्नीके साथ
महिषा इव-	- भैंसोंके समान रमण
रमन्ते	करते हैं
पुत्रस्य उत्पादने	-(वे) पुत्रोत्पत्ति करनेमें
दक्षा	- निपुण हैं (किन्तु)
मुक्ति साधने	- मोक्षका साधन करनेमें
अदक्षा	- निपुण नहीं हैं ।।७५।।

न हि वैष्णवता कुत्र सम्प्रदायपुरःसरा ।
एवं प्रलयतां प्राप्तो वस्तुसारः स्थले स्थले ।। ७६ ।।

न हि वैष्णवता कुत्र सम्प्रदाय पुरः सरा एवं प्रलयतां प्राप्तः वस्तु सारः स्थले स्थले ।। ७६ ।।

सम्प्रदाय	- सम्प्रदायसे
पुरः सरा	- परम्परा प्राप्त
हि वैष्णवता	- क्योंकि वैष्णवपना
कुत्र न	- कहीं नहीं है,
एवं वस्तुसारः	- इस प्रकार वस्तुओं का सार तत्त्व
स्थले स्थले	- स्थान स्थान पर
प्रलयतां प्राप्तः	- नष्ट होगया है ।।७६।।

अयं तु युगधर्मो हि वर्तते कस्य दूषणम् ।
अतस्तु पुण्डरीकाक्षः सहते निकटे स्थितः ।। ७७ ।।

अयं तु युग धर्मः हि वर्तते कस्य दूषणं अतः तु पुण्डरीकाक्षः सहते निकटे स्थितः ॥ ७७ ॥

हि अयं	- क्योंकि यह	**अतः तु-**	- अतः कमलनयन
युग धर्मः	- इस युगका धर्म ही	**पुण्डरीकाक्षः**	(भगवान) भी
वर्तते	- प्रवृत्त है (इसमें)	**निकटे स्थितः**	- समीप रहनेपर भी
कस्य दूषणं	- दोष किसका है,	**सहते**	- (इसे) सहन करते हैं ॥ ७७ ॥

सूत उवाच-

इति तद्वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गता ।
भक्तिरूचे वचो भूयः श्रूयतां तच्च शौनक ॥ ७८ ॥

इति तत् वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गता भक्तिः ऊचे वचः भूयः श्रूयतां तत् च शौनक ॥ ७८ ॥

शौनक	- शौनक जी !	**भक्तिः भूयः**	- भक्तिने फिर
इति तत् वचनं	- इस प्रकार उनकी बात	**वचः ऊचे**	- यह बात कही
श्रुत्वा परमं	- सुनकर परम	**तत् च श्रूयतां**	- उसे भी सुनिये ॥७८॥
विस्मयं गता	- आश्चर्यमें पड़कर		

भक्तिरुवाच-

सुरर्षे त्वं हि धन्योऽसि मद्भाग्येन समागतः ।
साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ ७९ ॥

सुरर्षे त्वं हि धन्यः असि मत् भाग्येन समआगतः साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ ७९ ॥

सुरर्षे - देवर्षि !
हि त्वं - निश्चय आप
धन्यः असि - धन्य हैं,
मत् भाग्येन - मेरे सौभाग्यसे
सम आगतः - (यहां मेरे) समीप आये हैं,
लोके साधूनां- - संसारमें सत्पुरुषोंका
दर्शनं दर्शन
सर्व परं - सब परम
सिद्धिकरं - सफलता देने वाला है
॥ ७९ ॥

जयति जगति मायां यस्य कायाधवस्ते
वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य ।
ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं
सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि ॥ ८० ॥

जयति जगति मायां यस्य कायाधवः ते वचन रचनं एकं केवलं च आकलय्य ध्रुवपदं अपि यातः यत् कृपातः ध्रुवः अयं सकल कुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नताः अस्मि ॥ ८० ॥

यस्य ते केवलं - जिस आपकी केवल
एकं वचन रचनं - एक वाक्य रचना (उपदेश) को
आकलय्य च - श्रवण करके ही
कायाधवः - कयाधू-नन्दन प्रह्लादने
जगति मायां- - संसारकी मायाको
जयति जीत लिया
अयं ध्रुवः अपि - और ये ध्रुव भी
यत् कृपातः - जिनकी कृपासे
ध्रुवपदं यातः - ध्रुवलोक पहुँच गये (उन)
सकल- - समस्त सौभाग्य-भाजन
कुशल पात्रं
ब्रह्मपुत्रं - ब्रह्माजीके पुत्र (आप) को
नताः अस्मि - नमस्कार करती हूँ
॥ ८० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भक्तिनारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

नारद उवाच-

वृथा खेदयसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम् ।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजं स्मर दुःखं गमिष्यति ॥ १ ॥

वृथा खेदयसे बाले अहो चिन्ता आतुरा कथं श्रीकृष्ण चरणाम्भोजं स्मर दुःखं गमिष्यति ॥ १ ॥

अहो बाले	- अहो बाले !	**श्रीकृष्ण-**	- श्रीकृष्णके चरणकमलोंका
चिन्ता आतुरा	- चिन्तासे व्याकुल होकर	**चरणाम्भोजं**	
कथं वृथा-	- क्यों व्यर्थ खेद कर	**स्मर दुःखं-**	- स्मरण करो (इससे तुम्हारा)
खेदयसे	रही हो,	**गमिष्यति**	दुःख चला जायेगा ॥१॥

द्रौपदी च परित्राता येन कौरवकश्मलात् ।
पालिता गोपसुन्दर्यः स कृष्णः क्वापि नो गतः ॥ २ ॥

द्रौपदी च परित्राता येन कौरव कश्मलात् पालिता गोप सुन्दर्यः स कृष्णः क्व अपि नो गतः ॥ २ ॥

येन कौरव	- जिन्होंने कौरवोंके	**गोपसुन्दर्यः**	- गोपोंकी सुन्दरियोंका
कश्मलात्	- उत्पीड़नसे	**पालिता**	- पालन किया
द्रौपदी	- द्रौपदीकी	**स कृष्णः-**	- वे श्रीकृष्ण कहीं भी
परित्राता च	- रक्षाकी तथा	**क्व अपि**	
		गतः नो	- गये नहीं हैं ॥ २ ॥

त्वं तु भक्तिः प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका ।
त्वयाऽऽहूतस्तु भगवान् याति नीचगृहेष्वपि ॥ ३ ॥

त्वं तु भक्तिः प्रिया तस्य सततं प्राणतः अधिका त्वया आहूतः तु भगवान् याति नीच गृहेषु अपि ॥ ३ ॥

भक्तिः त्वं तु	- भक्ति देवी ! तुम तो	**त्वया-**	- तुम्हारे पुकारनेपर तो
तस्य सततं	- उनकी निरन्तर	**आहूतः तु**	
प्राणतः अधिका	- प्राणोंसे भी अधिक	**भगवान्**	- भगवान
प्रिया	- प्रियतमा हो,	**नीच गृहेषु अपि**	- नीचोंके घर भी
		याति	- चले जाते हैं ॥ ३ ॥

सत्यादित्रियुगे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ ।
कलौ तु केवला भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ॥ ४ ॥

सत्य आदि त्रियुगे बोध वैराग्यौ मुक्ति साधकौ कलौ तु केवला भक्तिः ब्रह्मसायुज्य कारिणी ॥ ४ ॥

सत्य आदि-	- सतयुग आदि तीन	**कलौ तु-**	- कलियुगमें तो केवल
त्रियुगे	युगोंमें	**केवला भक्तिः**	भक्ति ही
बोध वैराग्यौ	- ज्ञान-वैराग्य	**ब्रह्म सायुज्य**	- ब्रह्म से सायुज्य (एकात्मता)
मुक्ति साधकौ	- मुक्ति दिलाने वाले थे,	**कारिणी**	- कराने वाली है ॥ ४ ॥

इति निश्चित्य चिद्रूपः सद्रूपां त्वां ससर्ज ह ।
परमानन्दचिन्मूर्तिः सुन्दरीं कृष्णवल्लभाम् ॥ ५ ॥

इति निश्चित्य चिद्रूपः सत् रूपां त्वां ससर्ज ह परमानन्द चित् मूर्तिः सुन्दरीं कृष्णवल्लभाम् ॥ ५ ॥

इति निश्चित्य	- ऐसा निश्चय करके	**त्वां सत् रूपां**	- तुम सत्स्वरूपा
परमानन्द-	- परमानन्द, ज्ञान स्वरूप	**चित् मूर्तिः**	- अपने ज्ञान स्वरूपसे
चित् रूपः	(भगवान) ने	**कृष्ण वल्लभां**	- श्रीकृष्ण प्रिया
		सुन्दरीं-	- सुन्दरीको उत्पन्न ही
		ससर्ज ह	किया है ॥ ५ ॥

बद्ध्वाञ्जलिं त्वया पृष्टं किं करोमीति चैकदा ।
त्वां तदाऽऽज्ञापयत्कृष्णो मद्भक्तान् पोषयेति च ॥ ६ ॥

बद्ध्वा अञ्जलिं त्वया पृष्टं किं करोमि इति च एकदा त्वां तदा आज्ञापयत् कृष्णः मद्भक्तान् पोषय इति च ॥ ६ ॥

एकदा च त्वया	- एक बार तो तुमने	**कृष्णः-**	- श्रीकृष्णने आज्ञा दी
बद्ध्वा अञ्जलिं	- हाथ जोड़कर	**आज्ञापयत्**	
इति पृष्टं	- यह पूछा	**मद्भक्तान्**	- 'मेरे भक्तोंका
किं करोमि	- 'क्या (सेवा) करूँ ?'	**पोषय**	- पोषण करो' ॥ ६ ॥
तदा त्वां-	- उस समय तुमको		
इति च	ऐसी ही		

अंगीकृतं त्वया तद्वै प्रसन्नोऽभूद्धरिस्तदा ।
मुक्तिं दासीं ददौ तुभ्यं ज्ञानवैराग्यकाविमौ ॥ ७ ॥

अंगीकृतं त्वया तत् वै प्रसन्नः अभूत् हरिः तदा मुक्तिं दासीं ददौ तुभ्यं ज्ञान वैराग्यकाः इमौ ॥ ७ ॥

त्वया तत् वै	- तुमने उसको निश्चयपूर्वक	**प्रसन्नः अभूत्**	- प्रसन्न होगये,
अंगीकृतं	- स्वीकार कर लिया	**तुभ्यं मुक्तिं-**	- तुम्हारे लिए मुक्तिको
तदा हरिः	- तब श्रीहरि (तुमपर)	**दासीं**	दासी रूपमें
		इमौ ज्ञान-	- और ये ज्ञान-वैराग्य
		वैराग्यकाः	
		ददौ	- दिये ॥ ७ ॥

पोषणं स्वेन रूपेण वैकुण्ठे त्वं करोषि च ।
भूमौ भक्तविपोषाय छायारूपं त्वया कृतम् ॥ ८ ॥

पोषणं स्वेन रूपेण वैकुण्ठे त्वं करोषि च भूमौ भक्त विपोषाय छायारूपं त्वया कृतम् ॥ ८ ॥

त्वं स्वेन रूपेण - तुम अपने (वास्तविक) रूपसे
वैकुण्ठे पोषणं- - वैकुण्ठमें (भक्तोंका)
करोषि पोषण करती हो एवं
भूमौ भक्त - पृथ्वीपर भक्तोंका विशेष
विपोषाय पोषण करनेके लिए
त्वया छाया- - तुमने (यह अपना)
रूपं छाया रूप
कृतं - बनाया है ॥ ८ ॥

मुक्तिं ज्ञानं विरक्तिं च सह कृत्वा गता भुवि ।
कृतादिद्वापरस्यान्तं महानन्देन संस्थिता ॥ ९ ॥

मुक्तिं ज्ञानं विरक्तिं च सह कृत्वा गता भुवि कृत आदि द्वापरस्य अन्तं महा आनन्देन संस्थिता ॥ ९ ॥

मुक्तिं ज्ञानं - मुक्ति, ज्ञान,
च विरक्तिं - तथा वैराग्यको
सहकृत्वा - साथ लेकर
भुवि गता - पृथ्वीपर आकर
कृत आदि - सतयुगके प्रारम्भसे
द्वापरस्य अन्तं - द्वापर युगके अन्ततक
महाआनन्देन- - अत्यन्त आनन्दपूर्वक
संस्थिता बनी रहीं ॥ ९ ॥

कलौ मुक्तिः क्षयं प्राप्ता पाखण्डामयपीडिता ।
त्वदाज्ञया गता शीघ्रं वैकुण्ठं पुनरेव सा ॥ १० ॥

कलौ मुक्तिः क्षयं प्राप्ता पाखण्ड आमय पीडिता त्वत् आज्ञया गता शीघ्रं वैकुण्ठं पुनः एव सा ॥ १० ॥

कलौ मुक्तिः - कलियुगमें मुक्ति
पाखण्ड आमय - पाखण्डरूपी रोगसे
पीडिता क्षयं- - पीड़ित होकर क्षीण
प्राप्ता होने लगी तो
त्वत् आज्ञया - तुम्हारी आज्ञासे
सा पुनः- - वह फिर शीघ्र ही
शीघ्रं एव
वैकुण्ठं गता - वैकुण्ठ चली गयी ॥ १० ॥

स्मृता त्वयापि चात्रैव मुक्तिरायाति याति च ।
पुत्रीकृत्य त्वयेमौ च पार्श्वे स्वस्यैव रक्षितौ ॥ ११ ॥

स्मृता त्वया अपि च अत्र एव मुक्तिः आयाति याति च पुत्रीकृत्य त्वया इमौ च पार्श्वे स्वस्य एव रक्षितौ ॥ ११ ॥

त्वया स्मृता-	- तुम्हारे स्मरण	**त्वया इमौ**	- तुमने इन दोनों
अपि	करनेपर भी		(ज्ञान-वैराग्य) को
मुक्तिः अत्र-	- मुक्ति यहीं (संसारमें)	**पुत्री कृत्य च**	- पुत्र बनाकर ही
एव च	ही	**स्वस्य एव**	- अपने ही
आयाति च	- आती है तथा	**पार्श्वे च रक्षितौ-**	समीप ही रख लिया
याति	- चली जाती है,		॥ ११ ॥

उपेक्षातः कलौ मन्दौ वृद्धौ जातौ सुतौ तव ।
तथापि चिन्तां मुञ्च त्वमुपायं चिन्तयाम्यहम् ॥ १२ ॥

उपेक्षातः कलौ मन्दौ वृद्धौ जातौ सुतौ तव तथा अपि चिन्तां मुञ्च त्वं उपायं चिन्तयामि अहम् ॥ १२ ॥

कलौ उपेक्षातः	- कलियुगमें उपेक्षा होनेसे	**तथा अपि त्वं**	- फिर भी तुम
तव सुतौ	- तुम्हारे पुत्र	**चिन्तां मुञ्च**	- चिन्ता त्याग दो,
मन्दौ वृद्धौ-	- शिथिल और वृद्ध	**अहं उपायं**	- मैं उपाय
जातौ	होगये हैं,	**चिन्तयामि**	- सोचता हूँ ॥ १२ ॥

कलिना सदृशः कोऽपि युगो नास्ति वरानने ।
तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने ॥ १३ ॥

कलिना सदृशः कः अपि युगः न अस्ति वरानने तस्मिन् त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने ॥ १३ ॥

वरानने	- सुमुखी !	**तस्मिन् त्वां**	- उसमें तुम्हारी
कलिना सदृशः	- कलियुगके समान	**गेहे गेहे**	- प्रत्येक घरमें,
कः अपि युगः	- कोई भी युग	**जने जने**	- प्रत्येक मनुष्यमें
न अस्ति	- नहीं है,	**स्थापयिष्यामि**	- स्थापना करूँगा ॥१३॥

अन्यधर्मांस्तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान् ।
तदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वां न प्रवर्तये ॥ १४ ॥

अन्य धर्मान् तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महा उत्सवान् तदा न अहं हरेः दासः लोके त्वां न प्रवर्तये ॥ १४ ॥

अन्य धर्मान्	- दूसरे सब धर्मोंकी	**त्वां लोके**	- तुम्हें संसारमें
तिरस्कृत्य	- उपेक्षा करके	**प्रवर्तये न तदा**	- प्रवर्तित न कर दूँ तो
महा उत्सवान्	- बड़े उत्सवोंको	**अहं हरेः-**	- मैं श्रीहरिका
पुरस्कृत्य	- आगे करके (महोत्सवोंके साथ)	**दासः न**	दास नहीं ॥ १४ ॥

त्वदन्विताश्च ये जीवा भविष्यन्ति कलाविह ।
पापिनोऽपि गमिष्यन्ति निर्भयं कृष्णमन्दिरम् ॥ १५ ॥

त्वत् अन्विताः च ये जीवा भविष्यन्ति कलाः इह पापिनः अपि गमिष्यन्ति निर्भयं कृष्ण मन्दिरम् ॥ १५ ॥

ये पापिनः अपि	- जो पापी भी	**भविष्यन्ति**	- हो जायंगे (वे)
जीवा इह-	- जीव इस कलियुगमें	**निर्भयं-**	- निर्भय होकर श्रीकृष्णके
कलाः		**कृष्ण मन्दिरं**	निजधाममें
त्वत् अन्विताः	- तुम्हारे अनुगामी	**गमिष्यन्ति**	- जायेंगे ॥ १५ ॥

येषां चित्ते वसेद्भक्तिः सर्वदा प्रेमरूपिणी ।
न ते पश्यन्ति कीनाशं स्वप्नेऽप्यमलमूर्तयः ॥ १६ ॥

येषां चित्ते वसेत् भक्तिः सर्वदा प्रेम रूपिणी न ते पश्यन्ति की नाशं स्वप्ने अपि अमल मूर्तयः ॥ १६ ॥

येषां चित्ते - जिनके चित्तमें
प्रेम रूपिणी- - प्रेम स्वरूपा भक्ति
भक्तिः
सर्वदा वसेत् - सदा निवास करती है

ते अमल मूर्तयः - वे निर्मल स्वरूप (पुरुष)
स्वप्ने अपि - स्वप्नमें भी
कीनाशं न- - यमराजको नहीं देखते
पश्यन्ति ॥ १६ ॥

न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वासुरोऽपि वा ।
भक्तियुक्तमनस्कानां स्पर्शने न प्रभुर्भवेत् ॥ १७ ॥

न प्रेतः न पिशाचः वा राक्षसः वा असुरः अपि वा भक्तियुक्त मनस्कानां स्पर्शने न प्रभुः भवेत् ॥ १७ ॥

न प्रेतः - न प्रेत
वा न पिशाचः - अथवा न पिशाच,
वा राक्षसः - अथवा राक्षस
वा असुरः अपि - अथवा असुर (दैत्य, दानव) भी

भक्ति युक्त - भक्ति युक्त
मनस्कानां - मन वालोंको
स्पर्शने - स्पर्श करनेमें
प्रभुः न- - समर्थ नहीं हो सकता
भवेत् ॥ १७ ॥

न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा ।
हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः ॥ १८ ॥

न तपोभिः न वेदैः च न ज्ञानेन न अपि कर्मणा हरिः हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः ॥ १८ ॥

न तपोभिः - न तपस्यासे,
च न वेदैः - तथा न वेदाध्ययनसे,
न ज्ञानेन - न ज्ञानसे
कर्मणा अपि न - और कर्म से भी नहीं,

हि हरिः- - क्योंकि श्रीहरि
भक्त्या भक्तिसे ही
साध्यते तत्र - वश में होते हैं, इसमें
गोपिकाः प्रमाणं - गोपियां प्रमाण हैं
॥ १८ ॥

नृणां जन्मसहस्रेण भक्तौ प्रीतिर्हि जायते ।
कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः ॥ १९ ॥

नृणां जन्म सहस्रेण भक्तौ प्रीतिः हि जायते कलौ भक्तिः कलौ भक्तिः भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः ॥ १९ ॥

सहस्रेण-	- सहस्रों मनुष्य जन्मके	**कलौ भक्तिः**	- कलियुगमें भक्ति
नृणां जन्म	पश्चात्		(ही साधन है)
हि भक्तौ प्रीतिः	- क्योंकि भक्तिसे प्रेम	**भक्त्या कृष्णः**	- भक्तिके द्वारा श्रीकृष्ण
जायते	- उत्पन्न होता है,	**पुरः स्थितः**	- सम्मुख खड़े दीखते हैं
कलौ भक्तिः	- कलियुगमें भक्ति		॥ १९ ॥
	(ही करो)		

भक्तिद्रोहकरा ये च ते सीदन्ति जगत्त्रये ।
दुर्वासा दुःखमापन्नः पुरा भक्तविनिन्दकः ॥ २० ॥

भक्ति द्रोह करा ये च ते सीदन्ति जगत् त्रये दुर्वासा दुःखं आपन्नः पुरा भक्त विनिन्दकः ॥ २० ॥

ये च भक्ति-	- जो भी भक्तिसे	**पुरा भक्त**	- पहिले भक्तकी निन्दा
द्रोह करा	शत्रुता करने वाले हैं	**विनिन्दकः**	करने वाले
ते जगत् त्रये	- वे तीनों लोकोंमें	**दुर्वासा दुःखं**	- दुःख (विपत्ति) में पड़
सीदन्ति	- कष्ट पाते हैं,	**आपन्नः**	गये थे ॥ २० ॥

अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः ।
अलं ज्ञानकथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥ २१ ॥

अलं व्रतैः अलं तीर्थैः अलं योगैः अलं मखैः अलं ज्ञानकथा आलापैः भक्तिः एक एव मुक्तिदा ॥ २१ ॥

अलं व्रतैः - व्रत करनेसे बस,
अलं तीर्थैः - तीर्थयात्रा करनेसे भी काम नहीं,
अलं योगैः - योग साधनका प्रयोजन नहीं,
अलं मखैः - यज्ञ करनेकी आवश्यकता नहीं,
ज्ञान कथा-आलापैः - ज्ञान कथाकी चर्चासे
अलं - बस,
एक एव भक्तिः - अकेली ही भक्ति
मुक्तिदा - मुक्ति देने वाली है ॥ २१ ॥

सूत उवाच-

इति नारदनिर्णीतं स्वमाहात्म्यं निशम्य सा ।
सर्वांगपुष्टिसंयुक्ता नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥

इति नारद निर्णीतं स्व माहात्म्यं निशम्य सा सर्व अंग पुष्टि संयुक्ता नारदं वाक्यं अब्रवीत् ॥ २२ ॥

इति सा - इस प्रकार वह (भक्ति)
नारद निर्णीतं - नारदजी द्वारा निर्णय किये
स्व माहात्म्यं - अपने माहात्म्यको
निशम्य - सुनकर
सर्व अंग - सब अंगोंसे
पुष्टि संयुक्ता - पुष्ट होकर
नारदं - नारदजीसे
वाक्यं अब्रवीत् - यह बात बोली ॥ २२ ॥

भक्तिरुवाच-

अहो नारद धन्योऽसि प्रीतिस्ते मयि निश्चला ।
न कदाचिद्विमुञ्चामि चित्ते स्थास्यामि सर्वदा ॥ २३ ॥

अहो नारद धन्यः असि प्रीतिः ते मयि निश्चला न कदाचित् विमुञ्चामि चित्ते स्थास्यामि सर्वदा ॥ २३ ॥

अहो नारद	- अहो, नारद जी !	**कदाचित्**	- (तुम्हें) कभी
धन्यः असि	- तुम धन्य हो,	**न विमुञ्चामि**	- नहीं छोड़ूंगी,
ते मयि	- तुम्हारी मुझमें	**सर्वदा चित्ते**	- सदा (तुम्हारे) चित्तमें
निश्चला प्रीतिः	- निश्चल प्रीति है,	**स्थास्यामि**	- स्थिर रहूंगी ॥ २३ ॥

कृपालुना त्वया साधो मद्बाधा ध्वंसिता क्षणात् ।
पुत्रयोश्चेतना नास्ति ततो बोधय बोधय ॥ २४ ॥

कृपालुना त्वया साधो मत् बाधा ध्वन्सिता क्षणात् पुत्रयोः चेतना न अस्ति ततः बोधय बोधय ॥ २४ ॥

साधो त्वया	- साधो, आप	**पुत्रयोः**	- (किन्तु मेरे) पुत्रोंको
कृपालुना	- कृपालुने	**चेतना न-**	- चेतना नहीं है,
मत् बाधा	- मेरी पीड़ा	**अस्ति**	
क्षणात् ध्वन्सिता	- एक क्षणमें नष्ट कर दी,	**ततः बोधय**	- अतः (इनको) जगाइये,
		बोधय	- जगाइये ॥ २४ ॥

सूत उवाच-

तस्या वचः समाकर्ण्य कारुण्यं नारदो गतः ।
तयोर्बोधनमारेभे कराग्रेण विमर्दयन् ॥ २५ ॥

तस्या वचः सम आकर्ण्य कारुण्यं नारदः गतः तयोः बोधनं आरेभे कर अग्रेण विमर्दयन् ॥ २५ ॥

तस्या वचः	- उस (भक्ति) की बात	**कर अग्रेण-**	- हाथके अगले भागसे
सम आकर्ण्य	- भली प्रकार सुनकर	**विमर्दयन्**	झकझोरते हुए
नारदः	- नारद जी	**तयोः बोधनं**	- उनको जगाना
कारुण्यं गतः	- करुणाको प्राप्त होकर (दया करके)	**आरेभे**	- प्रारम्भ किया ॥ २५ ॥

मुखं संयोज्य कर्णान्ते शब्दमुच्चैः समुच्चरन् ।
ज्ञान प्रबुध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुध्यताम् ॥ २६ ॥

मुखं संयोज्य कर्ण अन्ते शब्दं उच्चैः सम उच्चरन् ज्ञान प्रबुध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुध्यताम् ॥ २६ ॥

कर्ण अन्ते - कानके पास
मुखं संयोज्य - मुख लगाकर
उच्चैः शब्दं - उच्च ध्वनिसे
सम उच्चरन् - भली प्रकार बोलते हुए कहा
ज्ञान शीघ्रं - 'हे ज्ञान ! शीघ्र
प्रबुध्यतां - जाग जाओ,
रे वैराग्य - अरे वैराग्य,
प्रबुध्यतां - जाग जाओ ॥ २६ ॥

वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्मुहुर्मुहुः ।
बोध्यमानौ तदा तेन कथंचिच्चोत्थितौ बलात् ॥ २७ ॥

वेद वेदान्त घोषैः च गीतापाठैः मुहुः मुहुः बोध्यमानौ तदा तेन कथञ्चित् च उत्थितौ बलात् ॥ २७ ॥

तदा तेन - फिर उन (नारदजी) के द्वारा
वेद वेदान्त-घोषैः - वेदों एवं वेदान्त (उपनिषदों) का घोष करनेपर,
च मुहुः मुहुः - तथा बार-बार
गीता पाठैः - गीताका पाठ करनेपर
कथञ्चित् च - किसी प्रकारतो
बलात् उत्थितौ - बलपूर्वक उठे ॥२७॥

नेत्रैरनवलोकन्तौ जृम्भन्तौ सालसावुभौ ।
बकवत्पलितौ प्रायः शुष्ककाष्ठसमांगकौ ॥ २८ ॥

नेत्रैः अनवलोकन्तौ जृम्भन्तौ सालसाः उभौ बकवत् पलितौ प्रायः शुष्क काष्ठ सम अंगकौ ॥ २८ ॥

नेत्रैः-	- नेत्र खोलकर नहीं	**बकवत् पलितौ**	- बगुलेके समान
अनवलोकन्तौ	देखने वाले,		पके केश,
जृम्भन्तौ	- जम्हाई लेते	**प्रायः शुष्क-**	- प्रायः सूखे काष्ठके
उभौ सालसाः	- दोनों आलसपूर्ण	**काष्ठ**	समान
		सम अंगकौ	- अंग वाले थे ॥२८॥

क्षुत्क्षामौ तौ निरीक्ष्यैव पुनः स्वापपरायणौ ।
ऋषिश्चिन्तापरो जातः किं विधेयं मयेति च ॥ २९ ॥

क्षुत् क्षामौ तौ निरीक्ष्य एव पुनः स्वाप परायणौ ऋषिः चिन्तापरः जातः किं विधेयं मया इति च ॥ २९ ॥

तौ क्षुत् क्षामौ	- उन दोनोंको भूखसे दुर्बल होनेसे	**ऋषिः इति च**	- ऋषि इस प्रकार
पुनः स्वाप परायणौ	- फिर निद्रा परायण	**परः चिन्ता-**	- अत्यन्त चिन्तित
निरीक्ष्य एव	- देखकर ही	**जातः**	होगये कि
		मया किं-	- मुझे क्या करना चाहिए
		विधेयं	॥ २९ ॥

अहो निद्रा कथं याति वृद्धत्वं च महत्तरम् ।
चिन्तयन्निति गोविन्दं स्मारयामास भार्गव ॥ ३० ॥

अहो निद्रा कथं याति वृद्धत्वं च महत्तरं चिन्तयन् इति गोविन्दं स्मारयामास भार्गव ॥ ३० ॥

भार्गव	- शौनक जी !	**च महत्तरं**	- तथा अत्यधिक
इति चिन्तयन्	- यह चिन्ता करते हुए कि	**वृद्धत्वं कथं-**	- बुढ़ापा कैसे जायगा,
		याति	
अहो निद्रा	- अहो (इनकी) निद्रा	**गोविन्दं-**	- गोविन्दका स्मरण करने
		स्मारयामास	लगे ॥ ३० ॥

व्योमवाणी तदैवाभून्मा ऋषे खिद्यतामिति ।
उद्यमः सफलस्तेऽयं भविष्यति न संशयः ॥ ३१ ॥

व्योमवाणी तत् एव अभूत् मा ऋषे खिद्यतां इति उद्यमः सफलः ते अयं भविष्यति न संशयः ॥ ३१ ॥

तत् एव इति	- उसी समय इस प्रकार	**न संशयः**	- (इसमें) सन्देह नहीं कि
व्योमवाणी-	- आकाशवाणी हुई	**ते अयं उद्यमः**	- तुम्हारा यह उद्योग
अभूत्		**सफलः-**	- सफल होगा ॥ ३१ ॥
ऋषे मा-	- 'देवर्षि ! खेद मत	**भविष्यति**	
खिद्यतां	करो,		

एतदर्थं तु सत्कर्म सुरर्षे त्वं समाचर ।
तत्ते कर्माभिधास्यन्ति साधवः साधुभूषणाः ॥ ३२ ॥

एतत् अर्थं तु सत् कर्म सुरर्षे त्वं सम आचर तत् ते कर्म अभिधास्यन्ति साधवः साधु भूषणाः ॥ ३२ ॥

सुरर्षे	- देवर्षि !	**तत् कर्म ते**	- वह कर्म तुम्हें
एतत् अर्थं तु	- इसके लिए तो	**साधु भूषणाः**	- साधुओंके आभूषण
त्वं सत्कर्म	- तुम सत् कर्म	**साधवः**	रूप साधुलोग
सम आचर	- भली प्रकार करो,	**अभिधास्यन्ति**	- बतलावेंगे ॥ ३२ ॥

सत्कर्मणि कृते तस्मिन् सनिद्रा वृद्धतानयोः ।
गमिष्यति क्षणाद्भक्तिः सर्वतः प्रसरिष्यति ॥ ३३ ॥

सत् कर्मणि कृते तस्मिन् सत् निद्रा वृद्धता अनयोः गमिष्यति क्षणात् भक्तिः सर्वतः प्रसरिष्यति ॥ ३३ ॥

तस्मिन् सत्-कर्मणि	-	उस सत् कर्मको	**क्षणात्**	-	एक क्षणमें
कृते अनयोः	-	करनेपर इन दोनोंकी	**गमिष्यति**		चला जायगा एवं
सत् निद्रा-वृद्धता	-	सात्विक निद्रा और बुढ़ापा	**सर्वतः भक्तिः प्रसरिष्यति**	-	सब ओर भक्ति फैल जायगी ॥ ३३ ॥

इत्याकाशवचः स्पष्टं तत्सर्वैरपि विश्रुतम् ।
नारदो विस्मयं लेभे नेदं ज्ञातमिति ब्रुवन् ॥ ३४ ॥

इति आकाश वचः स्पष्टं तत् सर्वैः अपि विश्रुतं नारदः विस्मयं लेभे न इदं ज्ञातं इति ब्रुवन् ॥ ३४ ॥

इति स्पष्टं	-	इस प्रकार स्पष्ट	**इदं न ज्ञातं**	-	'इसे नहीं समझ सका'
आकाशवचः	-	आकाशवाणी	**इति ब्रुवन्-नारदः**	-	ऐसा कहते हुए नारदजी
तत् सर्वैः अपि	-	उन सबने भी	**विस्मयं लेभे**	-	आश्चर्य पागये (चकित होगये) ॥३४॥
विश्रुतं	-	विशेष रूपसे सुनी,			

नारद उवाच-

अनयाऽऽकाशवाण्यापि गोप्यत्वेन निरूपितम् ।
किं वा तत्साधनं कार्यं येन कार्यं भवेत्तयोः ॥ ३५ ॥

अनया आकाश वाण्या अपि गोप्यत्वेन निरूपितं किं वा तत् साधनं कार्यं येन कार्यं भवेत् तयोः ॥ ३५ ॥

अनया आकाश-वाण्या	-	इस आकाशवाणी	**वा तत् कार्यं साधनं किं**	-	अथवा वह कार्य साधन क्या है,
अपि गोप्यत्वेन	-	ने भी छिपे ढंगसे	**येन तत्**	-	जिससे उन (भक्ति आदि) का
निरूपितं	-	निरूपण किया,	**कार्यं भवेत्**	-	काम हो ॥ ३५ ॥

क्व भविष्यन्ति सन्तस्ते कथं दास्यन्ति साधनम् ।
मयात्र किं प्रकर्तव्यं यदुक्तं व्योमभाषया ॥ ३६ ॥

क्व भविष्यन्ति सन्तः ते कथं दास्यन्ति साधनं मया अत्र किं प्रकर्तव्यं यत् उक्तं व्योम भाषया ॥ ३६ ॥

ते सन्तः	- वे सन्त	**यत् व्योम-**	- जो आकाशवाणी ने कहा
क्व भविष्यन्ति	- कहां होंगे ?	**भाषया उक्तं**	
कथं साधनं-	- कैसे साधन प्रदान	**मया अत्र**	- वह मुझे इस विषयमें
दास्यन्ति	करेंगे ?	**किं प्रकर्तव्यं**	- क्या विशेष करना चाहिए ? ॥ ३६ ॥

सूत उवाच-

तत्र द्वावपि संस्थाप्य निर्गतो नारदो मुनिः ।
तीर्थं तीर्थं विनिष्क्रम्य पृच्छन्मार्गे मुनीश्वरान् ॥ ३७ ॥

तत्र द्वाः अपि संस्थाप्य निर्गतः नारदः मुनिः तीर्थं तीर्थं विनिष्क्रम्य पृच्छन् मार्गे मुनीश्वरान् ॥ ३७ ॥

द्वाः अपि	- (ज्ञान-वैराग्य) दोनोंको ही	**तीर्थं तीर्थं**	- अनेक तीर्थोंमें
तत्र संस्थाप्य	- वहीं छोड़कर	**विनिष्क्रम्य**	- जाते हुए
नारदः मुनि	- नारद मुनि	**मार्गे मुनीश्वरान्**	- मार्गमें मुनीश्वरोंसे
निर्गतः	- (वहांसे) निकल पड़े,	**पृच्छन्**	- पूछते जाते थे ॥३७॥

वृत्तान्तः श्रूयते सर्वैः किंचिन्निश्चित्य नोच्यते ।
असाध्यं केचन प्रोचुर्दुर्ज्ञेयमिति चापरे ।
मूकीभूतास्तथान्ये तु कियन्तस्तु पलायिताः ॥ ३८ ॥

वृत्तान्तः श्रूयते सर्वैः किञ्चित् निश्चित्य न उच्यते असाध्यं केचन प्रोचुः दुर्ज्ञेयं इति च अपरे मूकीभूताः तथा अन्ये तु कियन्तः तु पलायिताः ॥ ३८ ॥

सर्वैः	- सब लोग	**च अपरे**	- तथा दूसरोंने
वृत्तान्तः श्रूयते	- वृत्तान्त सुन लेते थे,	**दुर्ज्ञेयं इति**	- 'इसे जानना कठिन है' ऐसा (कहा)
किञ्चित्-	- (किन्तु) कुछ		
निश्चित्य	निश्चय करके	**तथा अन्ये तु-**	तथा दूसरे तो
न उच्यते	- नहीं कहते थे,	**मूकीभूताः**	- चुप रह गये,
केचन-	- किन्हींने असाध्य कहा,	**कियन्तः तु**	- कुछ लोग तो
असाध्यं प्रोचुः		**पलायिताः**	- भाग गये ॥ ३८ ॥

हाहाकारो महानासीत्त्रैलोक्ये विस्मयावहः ।
वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्विबोधितम् ॥ ३९ ॥

हाहाकारः महान् आसीत् त्रैलोक्ये विस्मय आवहः वेद वेदान्त घोषैः च गीतापाठैः विबोधितम् ॥ ३९ ॥

त्रैलोक्ये	- तीनों लोकोंमें	**वेद वेदान्त-**	- 'वेद-वेदान्तके घोषसे
विस्मय आवहः	- आश्चर्यजनक	**घोषैः**	
महान् हाहाकारः	- महान हाहाकार	**च गीता पाठैः**	- तथा गीताके पाठसे
आसीत्	- हुआ कि	**विबोधितं**	- जगाये जानेपर ॥३९॥

भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ।
उपायो नापरोऽस्तीति कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः ॥ ४० ॥

भक्ति ज्ञान विरागाणां न उदतिष्ठत् त्रिकं यदा उपायः न अपरः अस्ति इति कर्णे कर्णे जपन् जनाः ॥ ४० ॥

भक्ति ज्ञान- - भक्ति, ज्ञान, वैराग्यकी
विरागाणां
त्रिकं यदा - त्रयी जब
न उदतिष्ठत् - नहीं उठ सकी तो
अपरः उपायः - दूसरा उपाय
न अस्ति इति - नहीं है' इस प्रकार
जनाः कर्ण- - लोग एक दूसरेके
कर्णे कानोंमें
जपन् - फुसफुसाने लगे ॥४०॥

योगिना नारदेनापि स्वयं न ज्ञायते तु यत् ।
तत्कथं शक्यते वक्तुमितरैरिह मानुषैः ॥ ४१ ॥

योगिना नारदेन अपि स्वयं न ज्ञायते तु यत् तत् कथं शक्यते वक्तुं इतरैः इह मानुषैः ॥ ४१ ॥

यत् स्वयं - जो (विषय) स्वयं
योगिना- - योगी नारदजीको भी
नारदेन अपि
न ज्ञायते - नहीं ज्ञात होसका
तु तत् इह - भला उसको इस लोक के
इतरैः मानुषैः - दूसरे मनुष्यके द्वारा
वक्तुं कथं- - बतलाना कैसे सम्भव है
शक्यते ॥ ४१ ॥

एवमृषिगणैः पृष्टैर्निर्णीयोक्तं दुरासदम् ॥ ४२ ॥

एवं ऋषिगणैः पृष्टैः निर्णीय उक्तं दुरासदम् ॥ ४२ ॥

एवं ऋषिगणैः - इस प्रकार ऋषिगणोंसे
पृष्टैः - पूछनेपर
निर्णीय उक्तं - (उन्होंने अपना) निर्णय कहा
दुरासदम् - 'यह दुस्साध्य है ।' ॥ ४२ ॥

ततश्चिन्तातुरः सोऽथ बदरीवनमागतः ।
तपश्चरामि चात्रेति तदर्थं कृतनिश्चयः ॥ ४३ ॥

ततः चिन्ता आतुरः सः अथ बदरीवनं आगतः तपः चरामि च अत्र इति तत् अर्थं कृत निश्चयः ॥ ४३ ॥

ततः चिन्ता- - तब चिन्तासे
आतुरः व्याकुल होकर
सः अथ - वे फिर
तत् अर्थं - 'उसके लिए
अत्र तपः- - यहां तपस्या
चरामि ही करूँगा ।'
इति निश्चयःकृत - ऐसा निश्चय करके
बदरीवनं आगतः - बदरीनाथ आये ।।४३।।

तावद्ददर्श पुरतः सनकादीन्मुनीश्वरान् ।
कोटिसूर्यसमाभासानुवाच मुनिसत्तमः ।। ४४ ।।

तावत् ददर्श पुरतः सनक आदीन् मुनीश्वरान् कोटिसूर्य सम आभासान् उवाच मुनि सत्तमः ।। ४४ ।।

तावत् पुरतः - इतनेमें सामने ही
कोटि सूर्य सम - करोड़ों सूर्योंके समान
आभासान् - तेजस्वी
सनक आदीन् - सनकादि
मुनीश्वरान् - मुनीश्वरोंको
ददर्श - देखकर
मुनि सत्तमः- - मुनि प्रवर (नारदजी)
उवाच बोले ।। ४४ ।।

नारद उवाच-

इदानीं भूरिभाग्येन भवद्भिः संगमोऽभवत् ।
कुमारा ब्रुवतां शीघ्रं कृपां कृत्वा ममोपरि ।। ४५ ।।

इदानीं भूरिभाग्येन भवद्भिः संगमः अभवत् कुमारा ब्रुवतां शीघ्रं कृपां कृत्वा मम उपरि ।। ४५ ।।

इदानीं - इस समय
भूरिभाग्येन - बड़े भाग्यसे
भवद्भिः - आप लोगोंसे
संगमः अभवत् - मिलना हुआ है,
मम उपरि - मेरे ऊपर
कृपां कृत्वा - कृपा करके
कुमारा शीघ्रं - कुमारो ! शीघ्र
ब्रुवतां - बतलाओ ।। ४५ ।।

भवन्तो योगिनः सर्वे बुद्धिमन्तो बहुश्रुताः ।
पञ्चहायनसंयुक्ताः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ।। ४६ ।।

भवन्तः योगिनः सर्वे बुद्धिमन्तः बहुश्रुताः पञ्च हायन संयुक्ताः पूर्वेषां अपि पूर्वजाः ॥ ४६ ॥

भवन्तः सर्वे	- आप सब	**पञ्च हायन**	- पांच वर्षकी (आयुके)
योगिनः-	- योगी, बुद्धिमान,	**संयुक्ताः**	- रहनेपर भी
बुद्धिमन्तः		**पूर्वेषां अपि**	- पहिले (अत्रि अंगिरादि)
बहुश्रुताः	- बहुत शास्त्रोंके ज्ञाता,		लोगोंके भी
		पूर्वजाः	- पूर्वज हैं ॥ ४६ ॥

सदा वैकुण्ठनिलया हरिकीर्तनतत्पराः ।
लीलामृतरसोन्मत्ताः कथामात्रैकजीविनः ॥ ४७ ॥

सदा वैकुण्ठ निलया हरि कीर्तन तत्पराः लीला अमृत रस उन्मत्ताः कथामात्र एक जीविनः ॥ ४७ ॥

सदा वैकुण्ठ	- सदा वैकुण्ठधाममें	**लीला अमृत**	- (भगवत्) लीला रूपी
निलया	रहने वाले,		अमृत
हरि कीर्तन	- श्रीहरिके कीर्तनमें	**रस उन्मत्ताः**	- रससे उन्मत्त,
तत्पराः	- तत्पर,	**एक कथामात्र**	- केवल कथामात्रसे
		जीविनः	- जीवन धारण करने वाले
			हैं ॥ ४७ ॥

हरिः शरणमेवं हि नित्यं येषां मुखे वचः ।
अतः कालसमादिष्टा जरा युष्मान्न बाधते ॥ ४८ ॥

हरिः शरणं एवं हि नित्यं येषां मुखे वचः अतः काल सम आदिष्टा जरा युष्मान् न बाधते ॥ ४८ ॥

हि येषां मुखे	- क्योंकि जिनके मुखमें	**अतः काल-**	- अतः कालके द्वारा पूर्ण
हरिः शरणं एवं	- 'हरिः शरणं'	**सम आदिष्टा**	आदेश प्राप्त
	इस प्रकारकी	**जरा युष्मान्**	- बुढ़ापा आप लोगोंको
वचः	- वाणी रहती है,	**बाधते न**	- पीड़ा नहीं देता ॥४८॥

येषां भ्रूभंगमात्रेण द्वारपालौ हरेः पुरा ।
भूमौ निपतितौ सद्यो यत्कृपातः पुरं गतौ ॥ ४९ ॥

येषां भ्रूभंग मात्रेण द्वारपालौ हरेः पुरा भूमौ निपतितौ सद्यः यत् कृपातः पुरं गतौ ॥ ४९ ॥

येषां भ्रूभंग	- जिनके भौंहे टेढ़ी	**सद्यः भूमौ-**	- तत्काल पृथ्वीपर गिरा
मात्रेण	करलेने मात्रसे	**निपतितौ**	दिये गये
पुरा हरेः-	- पहिले श्रीहरिके	**यत् कृपातः**	- और जिनकी कृपासे
द्वारपालौ	द्वारपाल (जय-विजय)	**पुरं गतौ**	- फिर वैकुण्ठ धाम पहुँच गये ॥ ४९ ॥

अहो भाग्यस्य योगेन दर्शनं भवतामिह ।
अनुग्रहस्तु कर्तव्यो मयि दीने दयापरैः ॥ ५० ॥

अहो भाग्यस्य योगेन दर्शनं भवतां इह अनुग्रहः तु कर्तव्यः मयि दीने दयापरैः ॥ ५० ॥

अहो भाग्यस्य-	- अहो, भाग्ययोगसे	**मयि दीने**	- मुझ दीनपर
योगेन		**दया परैः तु**	- (आप) दया
इह भवतां-	- यहां आप लोगोंका		परायणोंको तो
दर्शनं	दर्शन होगया,	**अनुग्रहः कर्तव्यः**	- अनुग्रह करना चाहिए ॥ ५० ॥

अशरीरगिरोक्तं यत्तत्किं साधनमुच्यताम् ।
अनुष्ठेयं कथं तावत्प्रब्रुवन्तु सविस्तरम् ॥ ५१ ॥

अशरीर गिरा उक्तं यत् तत् किं साधनं उच्यतां अनुष्ठेयं कथं तावत् प्रब्रुवन्तु सविस्तरम् ॥ ५१ ॥

अशरीर गिरा - बिना शरीरकी वाणीने
यत् उक्तं तत् - जो बतलाया वह
किं साधनं- - क्या साधन है
उच्यतां (यह) बतलाइये
तावत् कथं- - फिर उसका कैसे
अनुष्ठेयं अनुष्ठान करना चाहिए
सविस्तरं - (यह) विस्तारके साथ
प्रब्रुवन्तु - भली प्रकार बतलाइये
॥ ५१ ॥

भक्तिज्ञानविरागाणां सुखमुत्पद्यते कथम् ।
स्थापनं सर्ववर्णेषु प्रेमपूर्वं प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

भक्ति ज्ञान विरागाणां सुखं उत्पद्यते कथं स्थापनं सर्व वर्णेषु प्रेमपूर्वं प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

भक्तिज्ञान-विरागाणां - भक्ति ज्ञान वैराग्यको
सुखं उत्पद्यते - सुख उत्पन्न हो तथा
सर्व वर्णेषु - सब वर्णोंमें
प्रयत्नतः - प्रयत्नपूर्वक
प्रेमपूर्वं - प्रेम सहित
कथं स्थापनं - कैसे (उनकी) स्थापना हो
॥ ५२ ॥

कुमारा ऊचुः-

मा चिन्तां कुरु देवर्षे हर्षं चित्ते समावह ।
उपायः सुखसाध्योऽत्र वर्तते पूर्व एव हि ॥ ५३ ॥

मा चिन्तां कुरु देवर्षे हर्षं चित्ते सम आवह उपायः सुख साध्यः अत्र वर्तते पूर्व एव हि ॥ ५३ ॥

देवर्षे - देवर्षि !
चिन्तां मा कुरु - चिन्ता मत करो,
चित्ते हर्षं - चित्तमें हर्ष
सम आवह - भली प्रकार धारण करो,
हि अत्र - क्योंकि इस विषयमें
सुख साध्यः- - सुख पूर्वक सिद्ध होने
उपायः वाला उपाय
पूर्व एव वर्तते - पहिले से ही वर्तमान है
॥ ५३ ॥

अहो नारद धन्योऽसि विरक्तानां शिरोमणिः ।
सदा श्रीकृष्णदासानामग्रणीर्योगभास्करः ॥ ५४ ॥

अहो नारद धन्यः असि विरक्तानां शिरोमणिः सदा श्रीकृष्ण दासानां अग्रणीः योगभास्करः ॥ ५४ ॥

अहो विरक्तानां	- अहो विरक्तोंके	**सदा अग्रणीः**	- सदा प्रमुख,
शिरोमणिः	- शिरोमणि,	**योग भास्करः**	- योगके सूर्य,
श्रीकृष्ण दासानां	- श्रीकृष्णके दासोंके	**नारद धन्यः-**	- नारदजी (तुम) धन्य हो
		असि	॥ ५४ ॥

त्वयि चित्रं न मन्तव्यं भक्त्यर्थमनुवर्तिनि ।
घटते कृष्णदासस्य भक्तेः संस्थापना सदा ॥ ५५ ॥

त्वयि चित्रं न मन्तव्यं भक्ति अर्थं अनुवर्तिनि घटते कृष्ण दासस्य भक्तेः संस्थापना सदा ॥ ५५ ॥

भक्ति अर्थं	- भक्तिके लिए	**कृष्ण दासस्य**	- श्रीकृष्णके भक्तोंका
अनुवर्तिनि	- उसके पीछे उद्योग करना	**भक्तेः संस्थापना**	- भक्तिकी सम्यक स्थापना करना
त्वयि चित्रं	- आपके लिए आश्चर्यकी बात	**सदा घटते**	- सदा उचित है ॥ ५५ ॥
न मन्तव्यं	- नहीं मानना चाहिए		

ऋषिभिर्बहवो लोके पन्थानः प्रकटीकृताः ।
श्रमसाध्याश्च ते सर्वे प्रायः स्वर्गफलप्रदाः ॥ ५६ ॥

ऋषिभिः बहवः लोके पन्थानः प्रकटीकृताः श्रमसाध्याः च ते सर्वे प्रायः स्वर्ग फल प्रदाः ॥ ५६ ॥

ऋषिभिः लोके	- ऋषियों द्वारा संसारमें	**ते सर्वे**	- वे सभी
बहवः पन्थानः	- वहुतसे पन्थ (साधन-सम्प्रदाय)	**श्रमसाध्याः**	- श्रमसाध्य हैं,
		च प्रायः	- तथा प्रायः
प्रकटीकृताः	- प्रकट किये गये हैं,	**स्वर्ग फल प्रदाः**	- स्वर्गरूप फल देने वाले हैं ॥ ५६ ॥

वैकुण्ठसाधकः पन्थाः स तु गोप्यो हि वर्तते ।
तस्योपदेष्टा पुरुषः प्रायो भाग्येन लभ्यते ॥ ५७ ॥

वैकुण्ठ साधकः पन्थाः स तु गोप्यः हि वर्तते तस्य उपदेष्टा पुरुषः प्रायः भाग्येन लभ्यते ॥ ५७ ॥

वैकुण्ठ साधकः	- वैकुण्ठ प्राप्त कराने वाला	**तस्य उपदेष्टा**	- उसका उपदेश करने वाला
पन्थाः	- जो मार्ग है,	**पुरुषः प्रायः**	- पुरुष प्रायः
हि स तु	- क्योंकि वह तो	**भाग्येन लभ्यते**	- भाग्यसे मिलता है ॥ ५७ ॥
गोप्यः वर्तते	- छिपा हुआ है		

सत्कर्म तव निर्दिष्टं व्योमवाचा तु यत्पुरा ।
तदुच्यते शृणुष्वाद्य स्थिरचित्तः प्रसन्नधीः ॥ ५८ ॥

सत् कर्म तव निर्दिष्टं व्योमवाचा तु यत् पुरा तत् उच्यते शृणुष्व अद्यस्थिर चित्तः प्रसन्न धीः ॥ ५८ ॥

पुरा व्योमवाचा	- पहिले आकाशवाणीने	**अद्यस्थिर चित्तः**	- इस समय चित्त स्थिर करके
तव यत् सत्कर्म	- तुमको जो सत्कर्म		
निर्दिष्टं	- सूचित किया था	**प्रसन्नधीः**	- प्रसन्न बुद्धिसे
तत् उच्यते	- उसे कहा जारहा है	**शृणुष्व**	- सुनो ॥ ५८ ॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च ते तु कर्मविसूचकाः ॥ ५९ ॥

द्रव्ययज्ञाः तपः यज्ञा योगयज्ञाः तथा अपरे स्वाध्याय ज्ञान यज्ञाः च ते तु कर्म विसूचकाः ॥ ५९ ॥

द्रव्य यज्ञाः	- द्रव्योंसे होने वाले यज्ञ,	**स्वाध्याय**	- वेदाध्ययन
तपः यज्ञा	- तपस्या रूप यज्ञ,	**च ज्ञान यज्ञाः**	- और ज्ञान यज्ञ
योग यज्ञाः	- योगरूप यज्ञ,	**ते तु कर्म-**	- वे तो कर्मके विशेष
तथा अपरे	- तथा दूसरे	**विसूचकाः**	सूचक हैं ॥ ५९ ॥

सत्कर्मसूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः ।
श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः ॥ ६० ॥

सत् कर्म सूचकः नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतः बुधैः श्रीमद्भागवत आलापः स तु गीतः शुक आदिभिः ॥ ६० ॥

नूनं सत्कर्म	- निश्चय सत्कर्मका.	**स तु शुक-**	- वह तो शुकदेवजी
सूचकः	- सूचक	**आदिभिः**	आदि द्वारा
बुधैः ज्ञानयज्ञः	- बुद्धिमानोंने ज्ञानयज्ञ	**गीतः**	- वर्णित
स्मृतः	- माना है	**श्रीमद्भागवत**	- श्रीमद्भागवतकी
		आलापः	- कथा है ॥ ६० ॥

भक्तिज्ञानविरागाणां तद्घोषेण बलं महत् ।
व्रजिष्यति द्वयोः कष्टं सुखं भक्तेर्भविष्यति ॥ ६१ ॥

भक्तिज्ञान विरागाणां तत् घोषेण बलं महत् व्रजिष्यति द्वयोः कष्टं सुखं भक्तेः भविष्यति ॥ ६१ ॥

तत् घोषेण	- उस (भागवत) की ध्वनिसे	**द्वयोः कष्टं**	- दोनों (ज्ञान-वैराग्य) का कष्ट
भक्तिज्ञान	- भक्ति, ज्ञान और	**व्रजिष्यति**	- चला जायगा,
विरागाणां	- वैराग्यको	**भक्तेः सुखं**	- भक्तिको सुख
महत् बलं	- महान् बल मिलेगा,	**भविष्यति**	- होगा ॥ ६१ ॥

प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्रीमद्भागवतध्वनेः ।
कलेर्दोषा इमे सर्वे सिंहशब्दाद् वृका इव ॥ ६२ ॥

प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्रीमद्भागवत ध्वनेः कलेः दोषा इमे सर्वे सिंह शब्दात् वृका इव ॥ ६२ ॥

कलेः इमे	- कलियुगके ये	**सिंह शब्दात्**	- सिंहकी गर्जनासे
सर्वे दोषा	- सब दोष	**वृका इव**	- भेड़ियोंके समान
श्रीमद्भागवत	- श्रीमद्भागवतकी	**हि प्रलयं**	- क्योंकि नष्ट
ध्वनेः	- ध्वनिसे	**गमिष्यन्ति**	- हो जायँगे ॥ ६२ ॥

ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता भक्तिः प्रेमरसावहा ।
प्रतिगेहं प्रतिजनं ततः क्रीडां करिष्यति ॥ ६३ ॥

ज्ञान वैराग्य संयुक्ता भक्तिः प्रेमरस आवहा प्रति गेहं प्रति जनं ततः क्रीडां करिष्यति ॥ ६३ ॥

ततः ज्ञान-वैराग्य	- तब ज्ञान-वैराग्यके	**भक्तिः प्रतिगेहं**	- भक्ति प्रत्येक घरमें,
संयुक्ता	- साथ	**प्रति जनं**	- प्रत्येक व्यक्तिमें
प्रेमरस आवहा	- प्रेमरस प्रवाहिनी	**क्रीडां करिष्यति**	- क्रीड़ा करेगी ॥६३॥

नारद उवाच-

वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैः प्रबोधितम् ।
भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ॥ ६४ ॥

वेद वेदान्त घोषैः च गीतापाठैः प्रबोधितं भक्तिज्ञान विरागाणां न उदतिष्ठत् त्रिकं यदा ॥ ६४ ॥

वेद वेदान्त - वेद-वेदान्तके
घोषैः च - घोषसे तथा
गीता पाठैः - गीताके पाठसे
प्रबोधितं - जगाये जानेपर
यदा भक्तिज्ञान - जब भक्ति, ज्ञान,
विरागाणां त्रिकं - वैराग्यकी त्रयी
न उदतिष्ठत् - नहीं उठी ॥ ६४ ॥

श्रीमदभागवतालापात्तत्कथं बोधमेष्यति ।
तत्कथासु तु वेदार्थः श्लोके श्लोके पदे पदे ॥ ६५ ॥

श्रीमद्भागवत आलापात् तत् कथं बोधं एष्यति तत् कथासु तु वेद अर्थः श्लोके श्लोके पदे पदे ॥ ६५ ॥

तत्- - तब श्रीमद्भागवतके
श्रीमद्भागवत
आलापात् - प्रवचनसे
कथं बोधं- - कैसे संज्ञा (होश)
एष्यति में आवेगी,
तत्- - उसकी कथामें भी तो
कथासु तु
श्लोके श्लोके - प्रत्येक शब्द और
पदे पदे - प्रत्येक पदमें
वेद अर्थः - वेदका ही तात्पर्य है
॥ ६५ ॥

छिन्दन्तु संशयं ह्येनं भवन्तोऽमोघदर्शनाः ।
विलम्बो नात्र कर्तव्यः शरणागतवत्सलाः ॥ ६६ ॥

छिन्दन्तु संशयं हि एनं भवन्तः अमोघ दर्शनाः विलम्बः न अत्र कर्तव्यः शरणागत वत्सलाः ॥ ६६ ॥

भवन्तः अमोघ- - आप लोगोंका दर्शन
दर्शनाः व्यर्थ नहीं जाता
शरणागत - शरणमें आयेपर
वत्सलाः - (आप लोग) स्नेह
करने वाले हैं
हि संशयं - क्योंकि सन्देह है
एनं छिन्दन्तु - इसे काट दीजिए
अत्र विलम्बः - इस विषयमें देर
न कर्तव्यः - नहीं करनी चाहिए
॥ ६६ ॥

कुमारा ऊचुः-

वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा ।
अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता फलाकृतिः ।। ६७ ।।

वेद उपनिषदां सारात जाता भागवती कथा अति उत्तमा ततः भाति पृथक् भूता फल आकृतिः ।। ६७ ।।

वेद उपनिषदां	- वेदों और उपनिषदोंके	**भागवती कथा**	- भागवत की कथा
सारात् जाता	- सारसे उत्पन्न	**ततः अति-**	- इसलिए अत्यन्त उत्तम
पृथक् भूता	- उनसे पृथक हुई	**उत्तमा**	
फल आकृतिः	- फल के समान	**भाति**	- शोभित है ।। ६७ ।।

आमूलाग्रं रसस्तिष्ठन्नास्ते न स्वाद्यते यथा ।
स भूयः संपृथग्भूतः फले विश्वमनोहरः ।। ६८ ।।

आमूल अग्रं रसः तिष्ठन् आस्ते न स्वाद्यते यथा स भूयः सम्पृथक् भूतः फले विश्व मनोहरः ।। ६८ ।।

आमूल अग्रं	-जड़से लेकर अगले (चोटी) भाग तक	**भूयः स**	- फिर वही (रस)
		सम्पृथक् भूतः	- भली प्रकार पृथक् होकर
रसः तिष्ठन् आस्ते	-(वृक्षमें) रस रहनेपर भी	**फले विश्व-**	- फल रूपमें विश्वको
यथा न स्वाद्यते	-जैसे स्वाद नहीं देता	**मनोहरः**	मनोहर होता है ।।६८।।

यथा दुग्धे स्थितं सर्पिर्न स्वादायोपकल्पते ।
पृथग्भूतं हि तद्गव्यं देवानां रसवर्धनम् ।। ६९ ।।

यथा दुग्धे स्थितं सर्पिः न स्वादाय उपकल्पते पृथक् भूतं हि तत् गव्यं देवानां रस वर्धनम् ।। ६९ ।।

यथा दुग्धे	-	जैसे दूधमें	**हि तत् गव्यं-**	-	क्योंकि वही घी
स्थितं सर्पिः	-	रहता हुआ भी घी	**पृथक् भूतं**		पृथक होकर
स्वादाय	-	स्वाद लेनेमें	**देवानां**	-	देवताओंका भी
न उपकल्पते	-	नहीं आता	**रसवर्धनं**	-	स्वाद बढ़ाने वाला होजाता है ॥ ६९ ॥

इक्षूणामपि मध्यान्तं शर्करा व्याप्य तिष्ठति ।
पृथग्भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ॥ ७० ॥

इक्षूणां अपि मध्य अन्तं शर्करा व्याप्य तिष्ठति पृथक् भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ॥ ७० ॥

इक्षूणां अपि	-	गन्ने में भी	**च सा पृथक्-**	-	लेकिन वह पृथक
मध्य अन्तं	-	बीचसे अन्ततक	**भूता मिष्टा**		होनेपर मीठी है,
शर्करा व्याप्य-	-	शक्कर व्यापक	**तथा भागवती-**	-	ऐसी ही भागवतकी
तिष्ठति		रहती है,	**कथा**		कथा है ॥ ७० ॥

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ॥ ७१ ॥

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म सम्मितं भक्तिज्ञान विरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ॥ ७१ ॥

इदं ब्रह्म सम्मितं	-	यह वेदोंके समान	**विरागाणां**	-	वैराग्यकी
भागवतं नाम	-	भागवत नामक	**स्थापनाय**	-	स्थापनाके लिए ही
पुराणं	-	पुराण	**प्रकाशितं**	-	प्रकट किया गया है ॥ ७१ ॥
भक्तिज्ञान	-	भक्ति, ज्ञान,			

वेदान्तवेदसुस्नाते गीताया अपि कर्तरि ।
परितापवति व्यासे मुह्यत्यज्ञानसागरे ॥ ७२ ॥

वेद वेदान्त सुस्नाते गीताया अपि कर्तरि परितापवति व्यासे मुह्यति अज्ञान सागरे ।। ७२ ।।

वेद वेदान्त - वेद, वेदान्तमें
सुस्नाते - भली प्रकार निमग्न,
गीताया अपि- - गीताके भी निर्माता
कर्तरि
अज्ञान सागरे - अज्ञान-समुद्रमें
मुह्यति - मूर्छित होते,
परितापवति - परितप्त होते
व्यासे - व्यासजीको ।। ७२ ।।

तदा त्वया पुरा प्रोक्तं चतुःश्लोकसमन्वितम् ।
तदीयश्रवणात्सद्यो निर्बाधो बादरायणः ।। ७३ ।।

तदा त्वया पुरा प्रोक्तं चतुःश्लोक समन्वितं तदीय श्रवणात् सद्यः निर्बाधः बादरायणः ।। ७३ ।।

त्वया तदा - तुमने उस समय
पुरा चतुःश्लोक - पहिले चतुःश्लोकी
समन्वितं - युक्त (भागवत)
प्रोक्तं - सुनायी,
तदीय- - उसके श्रवणसे तत्काल
श्रवणात् सद्यः
बादरायणः- - व्यासजी बाधा हीन
निर्बाधः (होगये) ।। ७३ ।।

तत्र ते विस्मयः केन यतः प्रश्नकरो भवान् ।
श्रीमद्भागवतं श्राव्यं शोकदुःखविनाशनम् ।। ७४ ।।

तत्र ते विस्मयः केन यतः प्रश्नकरः भवान् श्रीमद्भागवतं श्राव्यं शोक दुःख विनाशनम् ।। ७४ ।।

ते तत्र - तुम्हें उस (भागवत) के विषयमें
विस्मयः केन - आश्चर्य क्यों हुआ,
यतः भवान्- - जिससे तुम पूछने लगे,
प्रश्नकरः
शोक दुःख - शोक, दुःखको
विनाशनं - सर्वथा नष्ट करने वाला
श्रीमद्भागवतं - श्रीमद्भागवत
श्राव्यं - सुनाना चाहिए ।।७४।।

नारद उवाच-

यद्दर्शनं च विनिहन्त्यशुभानि
सद्यः श्रेयस्तनोति भवदुःखदवार्दितानाम् ।
निःशेषशेषमुखगीतकथैकपानाः
प्रेमप्रकाशकृतये शरणं गतोऽस्मि ॥ ७५ ॥

यत् दर्शनं च विनिहन्ति अशुभानि सद्यः श्रेयः तनोति भवदुःखदव अर्दितानां निःशेष शेषमुख गीत कथा एक पानाः प्रेम प्रकाशकृतये शरणं गतः अस्मि ॥ ७५ ॥

भव दुःख	- संसारके दुःख	**शेष मुख गीत**	- भगवान शेषके मुखसे वर्णित
दव अर्दितानां	- दावानलसे रौंदे हुए लोगोंके	**एक कथा-**	- एकमात्र कथाका ही
अशुभानि	- पापोंको	**पानाः**	पान करने वाले (आप लोगों) की
यत् दर्शनं च	- जिनका दर्शन ही	**प्रेम प्रकाश**	- प्रेम (भक्ति) को प्रकाशित
निःशेष-	- सम्पूर्ण नष्ट कर	**कृतये**	- करनेके लिए (मैं)
विनिहन्ति	देता है और	**शरणं गतः-**	- शरणमें आया हूँ
सद्यः श्रेयः-	- तत्काल कल्याणका	**अस्मि**	॥ ७५ ॥
तनोति	विस्तार करता है,		

भाग्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन सत्संगमं च लभते पुरुषो यदा वै ।
अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥७६॥

भाग्य उदयेन बहुजन्म सम अर्जितेन सत्संगमं च लभते पुरुषः यदा वै अज्ञान हेतु कृत मोह मद अन्धकार नाशं विधाय हि तदा उदयते विवेकः ॥ ७६ ॥

बहुजन्म - अनेक जन्मोंके
सम अर्जितेन - भली प्रकार उपार्जित (पुण्योंसे)
भाग्य उदयेन - भाग्योदय होनेपर ही
यदा हि पुरुषः - जब कि पुरुष
सत् संगमं - संत-समागम
लभते तदा वै - प्राप्त करता है, उसी समय
अज्ञान हेतु- अज्ञानके कारणसे
कृत उत्पन्न
मोह महा- - मोह रूपी घोर
अन्धकार अन्धकारका
नाशं विधाय - नाश करके
विवेकः उदयते - विवेक (रूप सूर्य) उदय होता है ॥ ७६ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये कुमारनारदसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः
॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

नारद उवाच-

ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम् ।
भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनार्थं प्रयत्नतः ॥ १ ॥

ज्ञान यज्ञं करिष्यामि शुक शास्त्र कथा उज्ज्वलं भक्ति ज्ञान विरागाणां स्थापन अर्थं प्रयत्नतः ॥ १ ॥

भक्तिज्ञान	- भक्ति, ज्ञान,	**शुक शास्त्र-**	- शुकदेवजी के शास्त्रकी
विरागाणां	- वैराग्य की	**कथा**	कथासे
स्थापन अर्थं	- स्थापनाके लिए	**उज्ज्वलं ज्ञानयज्ञं**	- उज्ज्वल ज्ञानयज्ञ
प्रयत्नतः	- प्रयत्न पूर्वक	**करिष्यामि**	- करूँगा ॥ १ ॥

कुत्र कार्यो मया यज्ञः स्थलं तद्वाच्यतामिह ।
महिमा शुकशास्त्रस्य वक्तव्यो वेदपारगैः ॥ २ ॥

कुत्र कार्यो मया यज्ञः स्थलं तत् वाच्यतां इह महिमा शुकशास्त्रस्य वक्तव्यः वेदपारगैः ॥ २ ॥

वेद पारगैः	- वेदोंके पारंगत आप लोगों को	**तत् स्थलं इह**	- वह स्थान यहीं
मया कुत्र	- मुझे कहां	**वाच्यतां**	- बतला दीजिए तथा
यज्ञः कार्यो	- यज्ञ करना चाहिए	**शुकशास्त्रस्य**	- शुकदेवजीके शास्त्रका
		महिमा वक्तव्यः	- माहात्म्य बतलाना चाहिए ॥ २ ॥

कियद्भिर्दिवसैः श्राव्या श्रीमद्भागवती कथा ।
को विधिस्तत्र कर्तव्यो ममेदं ब्रुवतामितः ॥ ३ ॥

कियत्भिः दिवसैः श्राव्या श्रीमद्भागवती कथा कः विधिः तत्र कर्तव्यः मम इदं ब्रुवतां इतः ॥ ३ ॥

श्रीमद्भागवती - श्रीमद्भागवतकी
कथा कियत्भिः - कथा कितने
दिवसैः श्राव्या - दिनोंमें सुनानी चाहिए ?
मम तत्र - मुझे उसमें
कः विधिः- - क्या विधि करनी चाहिए
कर्तव्यः
इतः इदं ब्रुवतां - इस प्रकार यह
बतलाइये ।। ३ ।।

कुमारा ऊचुः-

शृणु नारद वक्ष्यामो विनम्राय विवेकिने ।
गंगाद्वारसमीपे तु तटमानन्दनामकम् ।। ४ ।।

शृणु नारद वक्ष्यामः विनम्राय विवेकिने गंगाद्वार समीपे तु तटं आनन्द नामकम् ।। ४ ।।

नारद - नारदजी
विनम्राय - तुम विनम्र और
विवेकिने - विवेकवानको
वक्ष्यामः शृणु - बतलाते हैं, सुनो,
गंगाद्वार- - गंगाद्वार (हरिद्वार) के
समीपे तु समीप ही
आनन्द- - आनन्द नामक तट है
नामकं तटं ।। ४ ।।

नानाऋषिगणैर्जुष्टं देवसिद्धनिषेवितम् ।
नानातरुलताकीर्णं नवकोमलवालुकम् ।। ५ ।।

नाना ऋषिगणैः जुष्टं देवसिद्ध निषेवितं नानातरुलताकीर्णं नव कोमल वालुकम् ।। ५ ।।

देव सिद्ध - देवता और सिद्धोंसे
निषेवितं - भली प्रकार सेवन
किया गया,
नाना ऋषिगणैः - अनेक ऋषि-समूहोंसे
जुष्टं - युक्त,
नाना तरुलता - अनेक वृक्ष-लताओंसे
आकीर्णं - भरा हुआ
नव कोमल- - नवीन कोमल बालुका
वालुकं वाला ।। ५ ।।

रम्यमेकान्तदेशस्थं हेमपद्मसुसौरभम् ।
यत्समीपस्थजीवानां वैरं चेतसि न स्थितम् ॥ ६ ॥

रम्यं एकान्त देशस्थं हेमपद्म सुसौरभं यत् समीपस्थ जीवानां वैरं चेतसि न स्थितम् ॥ ६ ॥

रम्यं	- रमणीक,	**यत् समीपस्थ**	- जिसके समीप रहने वाले
एकान्त देशस्थं	- एकान्त प्रदेशमें स्थित	**जीवानां चेतसि**	- जीवोंके चित्तमें (परस्पर)
हेमपद्म	- स्वर्ण कमलकी	**वैरं न स्थितं**	- शत्रुता नहीं है ॥ ६ ॥
सुसौरभं	- उत्तम सुगन्धि युक्त है,		

ज्ञानयज्ञस्त्वया तत्र कर्तव्यो ह्यप्रयत्नतः ।
अपूर्वरसरूपा च कथा तत्र भविष्यति ॥ ७ ॥

ज्ञानयज्ञः त्वया तत्र कर्तव्यः हि अप्रयत्नतः अपूर्व रसरूपा च कथा तत्र भविष्यति ॥ ७ ॥

त्वया तत्र	- तुमको वहां	**कर्तव्यः**	- करना चाहिए
अप्रयत्नतः हि	- बिना (विशेष) प्रयत्नके ही	**च तत्र कथा**	- क्योंकि वहां कथा
		अपूर्व रसरूप	- अपूर्व रस स्वरूप
ज्ञानयज्ञः	- ज्ञानयज्ञ	**भविष्यति**	- होगी ॥ ७ ॥

पुरःस्थं निर्बलं चैव जराजीर्णकलेवरम् ।
तद्द्वयं च पुरस्कृत्य भक्तिस्तत्रागमिष्यति ॥ ८ ॥

पुरःस्थं निर्बलं च एव जराजीर्ण कलेवरं तत् द्वयं च पुरस्कृत्य भक्तिः तत्र आगमिष्यति ॥ ८ ॥

भक्तिः च	- भक्ति भी	**तत् द्वयं च**	- उन दोनों (ज्ञान-वैराग्य) को
पुरःस्थं निर्बलं	- अपने सामने निर्बल	**पुरस्कृत्य**	- आगे करके
च जराजीर्ण	- तथा बुढ़ापेसे जीर्ण (क्षीण)	**तत्र आगमिष्यति**	- वहां आ जायगी ॥ ८ ॥
कलेवरं एव	- शरीर वाले ही		

यत्र भागवती वार्ता तत्र भक्त्यादिकं व्रजेत् ।
कथाशब्दं समाकर्ण्य तत्त्रिकं तरुणायते ॥ ९ ॥

यत्र भागवती वार्ता तत्र भक्ति आदिकं व्रजेत् कथा शब्दं सम आकर्ण्य तत् त्रिकं तरुणायते ॥ ९ ॥

यत्र भागवती-	- जहां भागवतकी	**कथा शब्दं**	- कथाकी ध्वनि
वार्ता	कथा होती है	**समआकर्ण्य**	- भली प्रकार सुनकर
तत्र भक्ति-	- वहाँ भक्ति आदि	**तत् त्रिकं**	- वे तीनों
आदिकं		**तरुणायते**	- तरुण होजाते हैं ॥ ९ ॥
व्रजेत्	- आ जाते हैं,		

सूत उवाच-

एवमुक्त्वा कुमारास्ते नारदेन समं ततः ।
गंगातटं समाजग्मुः कथापानाय सत्वराः ॥ १० ॥

एवं उक्त्वा कुमाराः ते नारदेन समं ततः गंगातटं सम आजग्मुः कथा पानाय सत्वराः ॥ १० ॥

एवं उक्त्वा	- इस प्रकार कहकर	**सत्वराः ततः**	- शीघ्रतापूर्वक वहांसे
ते कुमाराः	- वे (सनकादि) कुमार	**गंगा तटं**	- गंगा-किनारेके
नारदेन समं	- नारदजीके साथ	**सम आजग्मुः**	- समीप आगये ॥ १० ॥
कथा पानाय	- कथामृत पीनेके लिए		

यदा यातास्तटं ते तु तदा कोलाहलोऽप्यभूत् ।
भूर्लोके देवलोके च ब्रह्मलोके तथैव च ॥ ११ ॥

यदा याताः तटं ते तु तदा कोलाहलः अपि अभूत् भूः लोके देवलोके च ब्रह्मलोके तथा एव च ॥ ११ ॥

ते तु यदा	- वे लोग तो जब	**तथा एव-**	- इसी प्रकार
तटं याताः	- गंगा किनारे आये,	**ब्रह्मलोके च**	ब्रह्मलोकमें भी
तदा भूः लोके	- उस समय भूलोकमें,	**कोलाहलः अपि**	- कोलाहल भी
च देवलोके	- तथा देवलोकमें	**अभूत्**	- होने लगा ॥ ११ ॥

श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलम्पटाः ।
धावन्तोऽप्याययुः सर्वे प्रथमं ये च वैष्णवाः ॥ १२ ॥

श्रीभागवत पीयूष पानाय रस लम्पटाः धावन्तः अपि आययुः सर्वे प्रथमं ये च वैष्णवाः ॥ १२ ॥

श्रीभागवत	- श्रीमद्भागवतके	**वैष्णवाः**	- वैष्णव थे वे
पीयूष पानाय	- अमृतको पीनेके लिए	**सर्वे प्रथमं**	- सब पहिले ही
ये च रस-	- जो भी रसलोलुप	**धावन्तः अपि**	- दौड़ते हुए भी
लम्पटाः		**आययुः**	- आगये ॥ १२ ॥

भृगुर्वसिष्ठश्च्यवनश्च गौतमो
मेधातिथिर्देवलदेवरातौ ।
रामस्तथा गाधिसुतश्च शाकलो
मृकण्डुपुत्रात्रिजपिप्पलादाः ॥ १३ ॥

भृगुः, वसिष्ठः, च्यवनः, च गौतमः, मेधातिथिः, देवलः, देवरातः, रामः तथा (परशुराम) गाधिसुतः (विश्वामित्र) च शाकलः मृकण्डुपुत्र (मार्कण्डेय) अत्रिज (दत्तात्रेय) पिप्पलादाः ॥ १३ ॥१

---

१. ये केवल नाम हैं । जहां अर्थ आवश्यक है- कोष्ठक में दिया है ।

योगेश्वरौ व्यासपराशरौ च छायाशुको जाजलिजह्नुमुख्याः ।
सर्वेऽप्यमी मुनिगणाः सहपुत्रशिष्याः स्वस्त्रीभिराययुरतिप्रणयेन युक्ताः ॥ १४ ॥

योगेश्वरौ व्यास पराशरौ च छायाशुकः जाजलि जह्नुमुख्याः सर्वे अपि अमी मुनिगणाः सहपुत्र शिष्याः स्वस्त्रीभिः आययुः अति प्रणयेन युक्ताः ॥ १४ ॥

योगेश्वरौ	-	दोनों योगेश्वर (पुत्र-पिता)	**अमी मुनिगणाः**	-	ये मुनिगण
व्यास च पराशरौ	-	व्यास तथा पराशर,	**अति प्रणयेन-**	-	अत्यन्त प्रेमपूर्वक
छायाशुकः	-	छाया शुक,	**युक्ताः**		पराशरौ
जाजलि जह्नु	-	जाजलि जह्नु	**सह पुत्र-**	-	अपने पुत्र एवं
मुख्याः सर्वे अपि	-	प्रमुख सभी	**शिष्याः**		शिष्योंके साथ
			स्वस्त्रीभिः	-	अपनी पत्नियों सहित
			आययुः	-	आगये ॥ १४ ॥

वेदान्तानि च वेदाश्च मन्त्रास्तन्त्राः समूर्तयः ।
दशसप्तपुराणानि षट्शास्त्राणि तथाऽऽययुः ॥ १५ ॥

वेदान्तानि च वेदाः च मन्त्राः तन्त्राः समूर्तयः दशसप्त पुराणानि षट् शास्त्राणि तथा आययुः ॥ १५ ॥

समूर्तयः	-	मूर्तिमान होकर	**दशसप्त-**	-	(भागवतके अतिरिक्त)
वेदान्तानि	-	उपनिषत्	**पुराणानि**		सत्रहों पुराण
च वेदाः	-	तथा वेद,	**तथा षट्-**	-	तथा छहो दर्शनशास्त्र
च मन्त्राः तन्त्राः	-	एवं मन्त्र-तन्त्र,	**शास्त्राणि**		
			आययुः	-	आये ॥ १५ ॥

गंगाद्याः सरितस्तत्र पुष्करादिसरांसि च ।
क्षेत्राणि च दिशः सर्वा दण्डकादि वनानि च ॥ १६ ॥

गंगाद्याः सरितः तत्र पुष्करादि सरांसि च क्षेत्राणि च दिशः सर्वा दण्डक आदि वनानि च ॥ १६ ॥

तत्र	- वहां	**च क्षेत्राणि**	- तथा (कुरु) क्षेत्रादि तीर्थ,
गंगाद्याः	- गंगा आदि	**च सर्वा दिशः**	- तथा सब दिशायें (दिक्पाल)
सरितः	- नदियां	**दण्डक आदि**	- दडुक आदि
पुष्करादि सरांसि	- पुष्कर आदि सरोवर	**वनानि च**	- वन (देवता) भी आये ॥ १६ ॥

नगादयो ययुस्तत्र देवगन्धर्वदानवाः ।
गुरुत्वात्तत्र नायातान्भृगुः सम्बोध्य चानयत् ॥ १७ ॥

नग आदयः ययुः तत्र देव गन्धर्व दानवाः गुरुत्वात् तत्र न आयातान् भृगुः सम्बोध्य च आनयत् ॥ १७ ॥

तत्र नग-आदयः	- वहां पर्वत आदि,	**गुरुत्वात्**	- अपने गौरवके कारण
देव गन्धर्व	- देवता, गन्धर्व,	**न आयातान्**	- नहीं आये लोगोंको
दानवाः ययुः	- दानव आये,	**भृगुः- सम्बोध्य च**	- महर्षि भृगु समझाकर भी
		आनयत्	- ले आये ॥ १७ ॥

दीक्षिता नारदेनाथ दत्तमासनमुत्तमम् ।
कुमारा वन्दिताः सर्वैर्निषेदुः कृष्णतत्पराः ॥ १८ ॥

दीक्षिता नारदेन अथ दत्तं आसनं उत्तमं कुमारा वन्दिताः सर्वैः निषेदुः कृष्ण तत्पराः ॥ १८ ॥

अथ दीक्षिता	- फिर दीक्षा ग्रहण किये	**सर्वैः वन्दिताः**	- सबके द्वारा वन्दित होकर
नारदेन	- नारदजी द्वारा	**कृष्ण तत्पराः**	- श्रीकृष्ण परायण
दत्तं उत्तमं-आसनं	- दिये उत्तम आसनपर	**कुमारा निषेदुः**	- (सनकादि) कुमार बैठे ॥ १८ ॥

वैष्णवाश्च विरक्ताश्च न्यासिनो ब्रह्मचारिणः ।
मुखभागे स्थितास्ते च तदग्रे नारदः स्थितः ॥ १९ ॥

वैष्णवाः च विरक्ताः च न्यासिनः ब्रह्मचारिणः मुखभागे स्थिताः ते च तत् अग्रे नारदः स्थितः ॥ १९ ॥

वैष्णवाः च - वैष्णव तथा
विरक्ताः च - विरक्त और
न्यासिनः- - सन्यासी, ब्रह्मचारी
ब्रह्मचारिणः
ते च मुखभागे-- ये सभी प्रमुख
स्थिताः भागमें बैठे
तत् अग्रे - उनके आगे (मुख्य श्रोता)
नारदः स्थितः - नारदजी बैठे ॥ १९ ॥

एक भागे ऋषिगणास्तदन्यत्र दिवौकसः ।
वेदोपनिषदोऽन्यत्र तीर्थान्यत्र स्त्रियोऽन्यतः ॥ २० ॥

एक भागे ऋषिगणाः तत् अन्यत्र दिवौकसः वेद उपनिषदः अन्यत्र तीर्थानि अन्यत्र स्त्रियः अन्यतः ॥ २० ॥

एक भागे- - एक भागमें ऋषिगण,
ऋषि गणाः
तत् अन्यत्र- - उनसे भिन्न भागमें
दिवौकसः देवता,
वेद उपनिषदः- - वेद-उपनिषदादि
अन्यत्र एक ओर
तीर्थानि अन्यत्र - तीर्थ पृथक
स्त्रियः अन्यतः - तथा स्त्रियां भिन्न भागमें (बैठीं) ॥२०॥

जयशब्दो नमःशब्दः शंखशब्दस्तथैव च ।
चूर्णलाजाप्रसूनानां निक्षेपः सुमहानभूत् ॥ २१ ॥

जयशब्दः नमः शब्दः शंखशब्दः तथा एव च चूर्ण लाजा प्रसूनानां निक्षेपः सुमहान् अभूत् ॥ २१ ॥

जयशब्दः - जय जयकार
नमः शब्दः - नमस्कार ध्वनि
तथा एव च - इस प्रकार ही
शंखशब्दः - शंख ध्वनि हुई,
चूर्ण - अबीरादि चूर्ण,
लाजा प्रसूनानां - लाजा तथा पुष्पोंकी
सुमहान् निक्षेपः - बहुत बड़ी वर्षा
अभूत् - हुई ॥ २१ ॥

विमानानि समारुह्य कियन्तो देवनायकाः ।
कल्पवृक्षप्रसूनैस्तान् सर्वांस्तत्र समाकिरन् ॥ २२ ॥

विमानानि समारुह्य कियन्तः देवनायकाः कल्पवृक्ष प्रसूनैः तान् सर्वान् तत्र सम आकिरन् ॥ २२ ॥

कियन्तः - कितने ही
देवनायकाः - देवनायक लोग
विमानानि - विमानोंपर
समारुह्य - ठीक बैठकर
कल्पवृक्ष प्रसूनैः - कल्पवृक्षके पुष्पोंकी
तत्र तान् सर्वान् - वहां उन सब पर
सम आकिरन् - चारों ओर वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥१

सूत उवाच-

एवं तेष्वेकचित्तेषु श्रीमद्भागवतस्य च ।
माहात्म्यमूचिरे स्पष्टं नारदाय महात्मने ॥ २३ ॥

एवं तेषु एक चित्तेषु श्रीमद्भागवतस्य च माहात्म्यं ऊचिरे स्पष्टं नारदाय महात्मने ॥ २३ ॥

एवं तेषु - इस प्रकार (पूजा होजानेपर) उनके
एक चित्तेषु - एकाग्र चित्त होजानेपर
महात्मने- - महात्मा नारदसे
नारदाय
श्रीमद्भागवतस्य - श्रीमद्भागवतका
स्पष्टं- - स्पष्ट माहात्म्य भी
माहात्म्यं च
ऊचिरे - वर्णन करने लगे ॥२३॥

---

१. गीताप्रेसकी प्रतिमें इसके आगे 'सूत उवाच' है; किन्तु श्लोक १० से 'सूत उवाच' ही चल रहा है, अतः यहां वह अनावश्यक है ।

कुमारा ऊचुः-

अथ ते वर्ण्यतेऽस्माभिर्महिमा शुकशास्त्रजः ।
यस्य श्रवणमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता ॥ २४ ॥

अथ ते वर्ण्यते अस्माभिः महिमा शुकशास्त्रजः यस्य श्रवण मात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता ॥ २४ ॥

अथ अस्माभिः	- अब हम लोगों द्वारा	**यस्य श्रवण-**	- जिसको सुनने मात्रसे
शुक शास्त्रजः	- शुकदेवजीके शास्त्रकी	**मात्रेण**	
महिमा ते	- महिमा तुमसे	**मुक्तिः**	- मुक्ति
वर्ण्यते	- वर्णनकी जा रही है,	**करतले स्थिता**	- हाथमें आजाती है ॥ २४ ॥

सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा ।
यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत् ॥ २५ ॥

सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा यस्याः श्रवण मात्रेण हरिः चित्तं समाश्रयेत् ॥ २५ ॥

सदा सेव्या	- सदा सेवनीय है,	**यस्याः श्रवण-**	- जिसके श्रवण मात्रसे
श्रीमद्भागवती-	- श्रीमद्भागवतकी कथा	**मात्रेण**	
कथा		**हरिः चित्तं**	- श्रीहरि चित्तमें
सदा सेव्या	- सदा सेवनीय है,	**सम आश्रयेत्**	- भली प्रकार आश्रय ले लेते हैं ॥ २५ ॥

ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्त्रो द्वादशस्कन्धसम्मितः ।
परीक्षिच्छुकसंवादः शृणु भागवतं च तत् ॥ २६ ॥

ग्रन्थः अष्टादश साहस्रः द्वादश स्कन्ध सम्मितः परीक्षित शुक सम्वादः शृणु भागवतं च तत् ॥ २६ ॥

द्वादश स्कन्ध	- बारह स्कन्धोंमें	**परीक्षित-**	- परीक्षित एवं शुकदेवजीके
सम्मितः	- बँटा हुआ,	**शुक सम्वादः**	सम्वाद रूपका
अष्टादश साहस्रः	- अठारह सहस्र श्लोकोंका,	**ग्रन्थः-**	- ग्रन्थ ही भागवत है,
		भागवतं च	
		तत् शृणु	- उसे श्रवण करो ॥२६॥

तावत्संसारचक्रेऽस्मिन् भ्रमतेऽज्ञानतः पुमान् ।
यावत्कर्णगता नास्ति शुकशास्त्रकथा क्षणम् ॥ २७ ॥

तावत् संसार चक्रे अस्मिन् भ्रमते अज्ञानतः पुमान् यावत् कर्णगता न अस्ति शुक शास्त्र कथा क्षणम् ॥ २७ ॥

पुमान् तावत्	- पुरुष तब तक	**यावत् क्षणं**	- जब तक क्षण भरके लिए भी
अज्ञानतः	- अज्ञानवश	**शुक शास्त्र-**	- शुकदेवजीके शास्त्रकी
अस्मिन् संसारचक्रे	- इस संसार-चक्रमें	**कथा**	कथा
भ्रमते	- भटकता है	**कर्णगता-**	- कानमें गयी नहीं है
		न अस्ति	॥ २७ ॥

किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः ।
एकं भागवतं शास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति ॥ २८ ॥

किं श्रुतैः बहुभिः शास्त्रैः पुराणैः च भ्रम आवहैः एकं भागवतं शास्त्रं मुक्ति दानेन गर्जति ॥ २८ ॥

भ्रम आवहैः	- भ्रममें डालने वाले	**एकं भागवतं-**	- अकेला भागवत
बहुभिः शास्त्रैः	- बहुतसे शास्त्रोंके	**शास्त्रं**	शास्त्र
च पुराणैः	- तथा पुराणोंके	**मुक्ति दानेन**	- मुक्ति देनेके लिए
श्रुतैः किं	- श्रवणसे क्या लाभ,	**गर्जति**	- गर्जना कर रहा है ॥ २८ ॥

कथा भागवतस्यापि नित्यं भवति यद्गृहे ।
तद्गृहं तीर्थरूपं हि वसतां पापनाशनम् ॥ २९ ॥

कथा भागवतस्य अपि नित्यं भवति यत् गृहे तत् गृहं तीर्थ रूपं हि वसतां पाप नाशनम् ॥ २९ ॥

यत् गृहे	- जिस घरमें	**तत गृहं**	- वह घर
भागवतस्य	- भागवतकी	**वसतां-**	- निवास करने वालोंका
कथा नित्यं अपि-	- कथा नित्य भी	**पापनाशनं**	पापनाशक
भवति	होती है	**तीर्थ रूपं हि**	- तीर्थ स्वरूप ही है ॥ २९ ॥

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
शुकशास्त्रकथायाश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ३० ॥

अश्वमेध सहस्राणि वाजपेय शतानि च शुकशास्त्र कथायाः च कलां न अर्हन्ति षोडशीम् ॥ ३० ॥

सहस्राणि-	- सहस्रों अश्वमेधयज्ञ	**शुकशास्त्र**	- शुकदेवजीके शास्त्रकी
अश्वमेध		**कथायाः च**	- कथाकी तो
च शतानि	- तथा सैकड़ों	**षोडशीं कलां**	- सोलहों कलाकी (समता)
वाजपेय	- वाजपेय यज्ञ	**न अर्हन्ति**	- नहीं पा सकते ॥३०॥

तावत्पापानि देहेऽस्मिन्निवसन्ति तपोधनाः ।
यावन्न श्रूयते सम्यक् श्रीमद्भागवतं नरैः ॥ ३१ ॥

तावत् पापानि देहे अस्मिन् निवसन्ति तपोधनाः यावत् न श्रूयते सम्यक् श्रीमद्भागवतं नरैः ॥ ३१ ॥

तपोधनाः - तपस्याके धनवाली (तपस्वियों)
नरैः यावत् - मनुष्यों द्वारा जब तक
श्रीमद्भागवतं - श्रीमद्भागवतको
सम्यक् न- - विधिपूर्वक श्रवण नहीं
श्रूयते किया जाता
तावत्- - तब तक इस शरीरमें
अस्मिन् देहे
पापानि- - पाप निवास करते हैं
निवसन्ति ॥ ३१ ॥

न गंगा न गया काशी पुष्करं न प्रयागकम् ।
शुकशास्त्रकथायाश्च फलेन समतां नयेत् ॥ ३२ ॥

न गंगा न गया काशी पुष्करं न प्रयागकं शुकशास्त्र कथायाः च फलेन समतां नयेत् ॥ ३२ ॥

शुकशास्त्र - शुकदेवजीके शास्त्रकी
कथायाः - कथाके
फलेन - फलसे
न गंगा न गया - न गंगा, न गया,
काशी पुष्करं - काशी, पुष्कर क्षेत्र,
प्रयागकं च - प्रयाग भी
समतां न- - समता नहीं पा सकते
नयेत् ॥ ३२ ॥

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ।
पठस्व स्वमुखेनैव यदीच्छसि परां गतिम् ॥ ३३ ॥

श्लोक अर्धं श्लोक पादं वा नित्यं भागवत उद्भवं पठस्व स्वमुखेन एव यदि इच्छसि परां गतिम् ॥ ३३ ॥

यदि परां गतिं - यदि परमगति
इच्छसि - चाहते हो तो
भागवत उद्भवं - भागवतसे निकला
श्लोक अर्धं - आधा श्लोक
वा श्लोक- - अथवा चौथायी
पादं श्लोक ही
स्व मुखेन एव - अपने मुखसे ही
नित्यं पठस्व - नित्य पढ़ो ॥ ३३ ॥

वेदादिर्वेदमाता च पौरुषं सूक्तमेव च ।
त्रयी भागवतं चैव द्वादशाक्षर एव च ॥ ३४ ॥

वेद आदिः वेदमाता च पौरुषं सूक्तं एव च त्रयी भागवतं च एव द्वादशाक्षर एव च ॥ ३४ ॥

वेद आदिः	-	वेदकी आदि (प्रणव)	**त्रयी भागवतं**	-	त्रिकाण्डात्मक वेद, भागवत
च वेदमाता	-	तथा वेदमाता (गायत्री)	**एव च-**	-	भी तथा द्वादशाक्षर
च पौरुषं-	-	एवं पुरुष सूक्त भी,	**द्वादशाक्षर**		
सूक्तं एव			**एव च**	-	विद्या (मन्त्र) ॥ ३४ ॥

द्वादशात्मा प्रयागश्च कालः संवत्सरात्मकः ।
ब्राह्मणाश्चाग्निहोत्रं च सुरभिर्द्वादशी तथा ॥ ३५ ॥

द्वादश आत्मा प्रयागः च कालः सम्वत्सर आत्मकः ब्राह्मणाः च अग्निहोत्रंः च सुरभिः द्वादशी तथा ॥ ३५ ॥

द्वादश आत्मा	-	द्वादश स्वरूप सूर्य,	**च ब्राह्मणाः**	-	एवं ब्राह्मण,
च प्रयागः	-	तथा प्रयागराज,	**अग्निहोत्रं**	-	अग्निहोत्र,
सम्वत्सर-	-	सम्वत्सर स्वरूप	**च सुरभिः**	-	और गायें
आत्मकः			**तथा द्वादशी**	-	तथा द्वादशी तिथि ॥ ३५ ॥
कालः	-	काल,			

तुलसी च वसन्तश्च पुरुषोत्तम एव च ।
एतेषां तत्त्वतः प्राज्ञैर्न पृथग्भाव इष्यते ॥ ३६ ॥

तुलसी च वसन्तः च पुरुषोत्तम एव च एतेषां तत्त्वतः प्राज्ञैः न पृथक् भाव इष्यते ॥ ३६ ॥

च तुलसी	-	और तुलसी,	**प्राज्ञैः एतेषां**	-	ज्ञानी लोग इनमें
च वसन्तः	-	तथा वसन्त ऋतु	**पृथक् भाव**	-	पृथकताका भाव
च पुरुषोत्तम-	-	एवं भगवान	**न इष्यते**	-	नहीं मानते ॥ ३६ ॥
एव		पुरुषोंत्तममें भी			

यश्च भागवतं शास्त्रं वाचयेदर्थतोऽनिशम् ।
जन्मकोटिकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः ॥ ३७ ॥

यः च भागवतं शास्त्रं वाचयेत् अर्थतः अनिशं जन्म कोटिकृतं पापं नश्यते न अत्र संशयः ॥ ३७ ॥

यः च	- जो भी पुरुष	**कोटिजन्म**	- (उसके) करोड़ों जन्मोंके
भागवतं शास्त्रं	- भागवत शास्त्रका	**कृतं पापं-**	- किये पाप नष्ट
अर्थतः अनिशं	- अर्थ सहित अहर्निश	**नश्यते**	होजाते हैं
वाचयेत्	- पाठ करता है	**अत्र-**	- इसमें सन्देह नहीं ॥ ३७ ॥
		संशयः न	

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा पठेद्भागवतं च यः ।
नित्यं पुण्यमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ ३८ ॥

श्लोक अर्धं श्लोकपादं वा पठेत् भागवतं च यः नित्यं पुण्यं अवाप्नोति राजसूय अश्वमेधयोः ॥ ३८ ॥

यः भागवतं	- जो भागवतका	**राजसूय**	- राजसूय यज्ञ एवं
श्लोक अर्धं	- आधा श्लोक	**अश्वमेधयोः**	- अश्वमेध यज्ञका
वा श्लोकपादं	- अथवा चौथाई श्लोक	**पुण्यं-**	- पुण्य प्राप्त करता है
नित्यं पठेत्	- प्रतिदिन पढ़ता है (वह)	**अवाप्नोति**	॥ ३८ ॥

उक्तं भागवतं नित्यं कृतं च हरिचिन्तनम् ।
तुलसीपोषणं चैव धेनूनां सेवनं समम् ॥ ३९ ॥

उक्तं भागवतं नित्यं कृतं च हरि चिन्तनं तुलसी पोषणं च एव धेनूनां सेवनं समम् ॥ ३९ ॥

नित्यं-	- प्रतिदिन भागवत	**च तुलसी-**	- और तुलसी का
भागवतं उक्तं	पाठ करना,	**पोषणं एव**	पोषण भी,
च हरि-	- एवं श्रीहरिका	**धेनूनां सेवनं**	- गायोंकी सेवा करना,
चिन्तनं कृतं	चिन्तन करना,	**समं**	- ये समान हैं ॥ ३९ ॥

अन्तकाले तु येनैव श्रूयते शुकशास्त्रवाक् ।
प्रीत्या तस्यैव वैकुण्ठं गोविन्दोऽपि प्रयच्छति ॥ ४० ॥

अन्त काले तु येन एव श्रूयते शुक शास्त्र वाक् प्रीत्या तस्य एव वैकुण्ठं गोविन्दः अपि प्रयच्छति ॥ ४० ॥

येन एव	- जिसके द्वारा भी	**प्रीत्या-**	- प्रसन्न होकर उसीको
अन्तकाले तु	- मरते समयमें तो	**तस्य एव**	
शुक शास्त्र-	- शुकदेवजीके शास्त्रकी	**गोविन्दः अपि**	- गोविन्द भी
वाक्	वाणी	**वैकुण्ठं-**	- वैकुण्ठ प्रदान
श्रूयते	- सुनी जाती है	**प्रयच्छति**	करते हैं ॥ ४० ॥

हेमसिंहयुतं चैतद्वैष्णवाय ददाति च ।
कृष्णेन सह सायुज्यं स पुमाँल्लभते ध्रुवम् ॥ ४१ ॥

हेमसिंह युतं च एतत् वैष्णवाय ददाति च कृष्णेन सह सायुज्यं स पुमान् लभते ध्रुवम् ॥ ४१ ॥

हेमसिंह युतं च	- स्वर्णके बने सिंहके साथ ही	**स पुमान्**	- वह पुरुष
		कृष्णेन सह	- श्रीकृष्णके साथ
एतत्	- इस (पुराण) को	**ध्रुवं-**	- निश्चित सायुज्य पाता है
वैष्णवाय	- वैष्णव को	**सायुज्यं लभते**	॥ ४१ ॥
ददाति च	- देकर तो		

आजन्ममात्रमपि येन शठेन किंचिच्चित्तं विधाय शुकशास्त्रकथा न पीता ।
चाण्डालवच्च खरवद् बत तेन नीतं मिथ्या स्वजन्म जननीजनिदुःखभाजा ॥ ४२ ॥

आजन्म मात्रं अपि येन शठेन किञ्चित् चित्तं विधाय शुकशास्त्र कथा न पीता चाण्डालवत् च खरवत् बत तेन नीतं मिथ्या स्वजन्म जननी जनि दुःखभाजा ॥ ४२ ॥

आजन्म मात्रं- - जीवन पर्यन्त भी
अपि
येन शठेन - जिस शठने
किञ्चित् - तनिक
चित्तं विधाय - मन करके
शुक शास्त्र- - शुकदेवजीके शास्त्रकी
कथा कथाका
पीता न - पान नहीं किया
तेन- - उसने चाण्डालके समान
चाण्डालवत्
च खरवत् - तथा गधेके समान
स्वजन्म - अपना जन्म
मिथ्या नीतं - झूठे (व्यर्थ) व्यतीत किया,
जननी जनि - (उसे) जन्म देकर माता
दुःख भाजा - दुःख भागी ही हुई
॥ ४३ ॥

जीवच्छवो निगदितः स तु पापकर्मा येन श्रुतं शुककथावचनं न किंचित् ।
धिक् तं नरं पशुसमं भुवि भाररूपमेवं वदन्ति दिवि देवसमाजमुख्याः ॥ ४३ ॥

जीवत् शवः निगदितः स तु पापकर्मा येन श्रुतं शुककथा वचनं न किञ्चित् धिक् तं नरं पशु समं भुविभार रूपं एवं वदन्ति दिवि देव समाज मुख्याः ॥ ४३ ॥

स पापकर्मा तु - वह पाप करने वाला तो
जीवत् शवः - जीवित मुर्दा
निगदितः - कहा गया है
येन शुककथा - जिसने शुकदेवजीकी कथाके
वचनं किञ्चित् - वचनोंको कुछ भी
न श्रुतं - नहीं सुना,
भुवि भार रूपं - 'पृथ्वीपर भार स्वरूप
तं नरं धिक् - उस मनुष्यको धिक्कार है'
एवं दिवि - इस प्रकार स्वर्गमें
देव समाज- - देव समाजके प्रमुख
मुख्याः
वदन्ति - कहते हैं ॥ ४३ ॥

दुर्लभैव कथा लोके श्रीमद्भागवतोद्भवा ।
कोटिजन्मसमुत्थेन पुण्येनैव तु लभ्यते ॥ ४४ ॥

दुर्लभा एव कथा लोके श्रीमद्भागवत उद्भवा कोटि जन्म समुत्थेन पुण्येन एव तु लभ्यते ॥ ४४ ॥

श्रीमद्भागवत	- श्रीमद्भागवतसे	**कोटि जन्म**	- करोड़ों जन्मोंके
उद्भवा कथा	- उत्पन्न होने वाली कथा	**पुण्येन एव**	- पुण्योंके
लोके दुर्लभा-	- संसारमें दुर्लभ ही है,	**समुत्थेन तु**	- उदय होनेपर ही
एव		**लभ्यते**	- प्राप्त होती है ॥४४॥

तेन योगनिधे धीमन् श्रोतव्या सा प्रयत्नतः ।
दिनानां नियमो नास्ति सर्वदा श्रवणं मतम् ॥ ४५ ॥

तेन योग निधे धीमन श्रोतव्या सा प्रयत्नतः दिनानां नियमः न अस्ति सर्वदा श्रवणं मतम् ॥ ४५ ॥

तेन धीमन्	- इससे बुद्धिमान !	**दिनानां नियमः**	- दिनोंका (कोई) नियम (बन्धन)
योगनिधे	- योगनिधि नारदजी !	**न अस्ति**	- नहीं है
सा प्रयत्नतः	- वह प्रयत्नपूर्वक	**सर्वदा श्रवणं**	- सर्वदा श्रवण करना
श्रोतव्या	- सुनने योग्य है,	**मतं**	- उचित माना गया है ॥ ४५ ॥

सत्येन ब्रह्मचर्येण सर्वदा श्रवणं मतम् ।
अशक्यत्वात्कलौ बोध्यो विशेषोऽत्रशुकाज्ञया ॥ ४६ ॥

सत्येन ब्रह्मचर्येण सर्वदा श्रवणं मतं अशक्यत्वात् कलौ बोध्यः विशेषः अत्र शुक आज्ञया ॥ ४६ ॥

सत्येन	- सत्य बोलते हुए,
ब्रह्मचर्येण	- ब्रह्मचर्य पालन करते
सर्वदा श्रवणं	- सर्वदा श्रवण करना
मतं	- उचित है
कलौ-	- कलियुगमें यह सम्भव
अशक्यत्वात्	होनेसे
अत्र शुक-	- इस विषयमें शुकदेवजीकी
आज्ञया	आज्ञासे
बोध्यः विशेषः	- (श्रवण करानेकी) विशेष विधि है ॥ ४६ ॥

मनोवृत्तिजयश्चैव नियमाचरणं तथा ।
दीक्षां कर्तुमशक्यत्वात्सप्ताहश्रवणं मतम् ॥ ४७ ॥

मनः वृत्ति जयः च एव नियम आचरणं तथा दीक्षां कर्तुं अशक्यत्वात् सप्ताह श्रवणं मतम् ॥ ४७ ॥

मनः वृत्ति	- मनकी वृत्तियोंको
जयः एव	- जीतनेकी ही
तथा नियम-	- तथा नियमोंके
आचरणं	पालनकी
च दीक्षा कर्तुं	- भी दीक्षा (नियम) लेना
अशक्यत्वात्	- (दीर्घकाल तक) सम्भव न होनेसे
सप्ताह श्रवणं	- सप्ताह (भरमें) श्रवण करना
मतं	- उचित है ॥ ४७ ॥

श्रद्धातः श्रवणे नित्यं माघे तावद्धि यत्फलम् ।
तत्फलं शुकदेवेन सप्ताहश्रवणे कृतम् ॥ ४८ ॥

श्रद्धातः श्रवणे नित्यं माघे तावत् हि यत् फलं तत् फलं शुक देवेन सप्ताह श्रवणे कृतम् ॥ ४८ ॥

हि श्रद्धातः-	- क्योंकि श्रद्धापूर्वक
नित्यं	सर्वदा
तावत् माघे	- अथवा माघमासमें
श्रवणे यत् फलं	- श्रवण करनेका जो फल है
शुक देवेन	- शुकदेवजीने
तत् फलं	- वह फल
सप्ताह श्रवणे	- सप्ताह-श्रवणका
कृतम्	- (निश्चित) कर दिया है ॥ ४८ ॥

मनसश्चाजयाद्रोगात्पुंसां चैवायुषः क्षयात् ।
कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणं मतम् ॥ ४९ ॥

मनसः च अजयात् रोगात् पुंसां च एव आयुषः क्षयात् कलेः दोष बहुत्वात् च सप्ताह श्रवणं मतम् ॥ ४९ ॥

मनसः अजयात्	- मनजीता न जानेसे	**च कलेः-**	- एवं कलियुगमें दोषोंकी
च रोगात्	- तथा रोगोंके कारण,	**दोष बहुत्वात्**	बहुतायत
च पुंसां आयुषः	- और मनुष्योंकी आयु	**सप्ताह श्रवणं**	- सप्ताह-श्रवण
क्षयात् एव	- क्षीण होनेसे भी	**मतं**	- उचित है ॥ ४९ ॥

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
अनायासेन तत्सर्वं सप्ताहश्रवणे लभेत् ॥ ५० ॥

यत् फलं न अस्ति तपसा न योगेन समाधिना अनायासेन तत् सर्वं सप्ताह श्रवणे लभेत् ॥ ५० ॥

यत् फलं-	- जो फल तपस्याका	**अनायासेन**	- बिना परिश्रमके ही
तपसा न	नहीं,	**तत् सर्वं**	- वह सब
योगेन समाधिना	- योग या समाधिका	**सप्ताह-**	- सप्ताह-श्रवणसे (मनुष्य)
न अस्ति	- नहीं है	**श्रवणे लभेत्**	पा लेता है ॥ ५० ॥

यज्ञाद्गर्जति सप्ताहः सप्ताहो गर्जति व्रतात् ।
तपसो गर्जति प्रोच्चैस्तीर्थान्नित्यं हि गर्जति ॥ ५१ ॥

यज्ञात् गर्जति सप्ताहः सप्ताहः गर्जति व्रतात् तपसः गर्जति प्रोच्चैः तीर्थात् नित्यं हि गर्जति ॥ ५१ ॥

सप्ताहः	- सप्ताह (श्रवण)	**तपसः प्रोच्चैः**	- तपस्यासे उच्च स्वरमें
यज्ञात् गर्जति	- यज्ञसे गर्जना करता (बढ़कर) है	**गर्जति**	- गर्जना करता है,
		हि तीर्थात्-	- क्योंकि तीर्थोंसे तो सदा
सप्ताहः व्रतात्	- सप्ताह व्रतोंसे	**नित्यं**	
गर्जति	- गर्जना करता है,	**गर्जति**	- गर्जना करता है ॥५१॥

योगाद् गर्जति सप्ताहो ध्यानाज्ज्ञानाच्च गर्जति ।
किं ब्रूमो गर्जनं तस्य रे रे गर्जति गर्जति ॥ ५२ ॥

योगात् गर्जति सप्ताहः ध्यानात् ज्ञानात् च गर्जति किं ब्रूमः गर्जनं तस्य रे रे गर्जति गर्जति ॥ ५२ ॥

सप्ताहः - सप्ताह (श्रवण)
योगात् गर्जति - योगको ललकारता है,
ध्यानात् च- - ध्यान तथा ज्ञानको
ज्ञानात्
गर्जति - ललकारता है
रे रे तस्य- - अरे, अरे, उसके
गर्जनं ललकारनेका
किं ब्रूमः - क्या वर्णन करें,
गर्जति गर्जति - (वह) सब (साधनों) को ललकारता है ॥ ५२ ॥

शौनक उवाच-

साश्चर्यमेतत्कथितं कथानकं
ज्ञानादिधर्मान् विगणय्य साम्प्रतम् ।
निःश्रेयसे भागवतं पुराणं
जातं कुतो योगविदादिसूचकम् ॥ ५३ ॥

स आश्चर्यं एतत् कथितं कथानकं ज्ञान आदि धर्मान् विगणय्य साम्प्रतं निःश्रेयसे भागवतं पुराणं जातं कुतः योगवित् आदि सूचकम् ॥ ५३ ॥

एतत् स- - यह आश्चर्य युक्त
आश्चर्यं
कथानकं कथितं - कथानक (आपने) कहा
योगवित् आदि - योगवेत्ता (ब्रह्मा) के आदि कारण (नारायण) का
सूचकं - सूचक (निर्देशक),
साम्प्रतं - इस समय
ज्ञान आदि- - ज्ञान आदि धर्मोंकी
धर्मान्
विगणय्य - अवहेलना करने वाला
भागवतं पुराणं - यह श्रीमद्भागवत पुराण
कुतः जातं - कहांसे उत्पन्न हुआ ॥ ५३ ॥

सूत उवाच-

यदा कृष्णो धरां त्यक्त्वा स्वपदं गन्तुमुद्यतः ।
एकादशं परिश्रुत्याप्युद्धवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥

यदा कृष्णः धरां त्यक्त्वा स्वपदं गन्तुं उद्यतः एकादशं परिश्रुत्य अपि उद्धवः वाक्यं अब्रवीत् ॥ ५४ ॥

यदा कृष्णः	- जब श्री कृष्ण	**एकादशं**	- एकादश स्कन्धका (उपदेश)
धरां त्यक्त्वा	- पृथ्वीको त्यागकर	**परिश्रुत्य अपि**	- पूरा सुनकर भी
स्वपदं गन्तुं	- अपने धाम जाने को	**उद्धवः-**	- उद्धव यह बात बोले
उद्यतः	- उद्यत हुए (तब)	**वाक्यं अब्रवीत्**	॥ ५४ ॥

उद्धव उवाच-

त्वं तु यास्यसि गोविन्द भक्तकार्यं विधाय च ।
मच्चित्ते महती चिन्ता तां श्रुत्वा सुखमावह ॥ ५५ ॥

त्वं तु यास्यसि गोविन्द भक्त कार्यं विधाय च मत् चित्ते महती चिन्ता तां श्रुत्वा सुखं आवह ॥ ५५ ॥

गोविन्द	- गोविन्द !	**मत् चित्ते**	- मेरे चित्तमें
त्वं तु भक्तकार्यं	- आप तो भक्तोंका काम	**महती चिन्ता**	- महान चिन्ता है
विधाय च	- सम्पन्न करके ही	**तां श्रुत्वा**	- उसे सुनकर (मुझे)
यास्यसि	- चले जाओगे, पर	**सुखं आवह**	- सुखी कीजिए ॥ ५५ ॥

आगतोऽयं कलिर्घोरो भविष्यन्ति पुनः खलाः ।
तत्संगेनैव सन्तोऽपि गमिष्यन्त्युग्रतां यदा ॥ ५६ ॥

आगतः अयं कलिः घोरः भविष्यन्ति पुनः खलाः तत् संगेन एव सन्तः अपि गमिष्यन्ति उग्रतां यदा ॥ ५६ ॥

अयं घोरः- - यह भयानक कलियुग	**तत् संगेन एव** - उनके साथ से ही
कलिः	**यदा सन्तः अपि** - जब सत्पुरुष भी
आगतः - आगया है,	**उग्रतां गमिष्यन्ति** - उग्र (स्वभाव) को
पुनः खलाः- - फिर दुष्ट उत्पन्न होंगे,	प्राप्त हो जायंगे
भविष्यन्ति	॥ ५६ ॥

तदा भारवती भूमिर्गोरूपेयं कमाश्रयेत् ।
अन्यो न दृश्यते त्राता त्वत्तः कमललोचन ॥ ५७ ॥

तदा भारवती भूमिः गोरूपा इयं कं आश्रयेत् अन्यः न दृश्यते त्राता त्वत्तः कमललोचन ॥ ५७ ॥

तदा इयं गोरूपा - तब यह गौरूप धारिणी	**कमल लोचन** - कमल लोचन !
भूमिः भारवती - भूमि भारवाली होनेपर	**त्वत्तः अन्यः** - आपसे भिन्न
कं आश्रयेत् - किसका आश्रय लेगी,	**त्राता न-** - (दूसरा) रक्षक दिखायी
	दृश्यते नहीं पड़ता ॥ ५७ ॥

अतः सत्सु दयां कृत्वा भक्तवत्सल मा व्रज ।
भक्तार्थं सगुणो जातो निराकारोऽपि चिन्मयः ॥ ५८ ॥

अतः सत्सु दयां कृत्वा भक्तवत्सल मा व्रज भक्त अर्थं सगुणः जातः निराकारः अपि चिन्मयः ॥ ५८ ॥

भक्त वत्सल - भक्तवत्सल !	**भक्त अर्थं** - भक्तोंके लिए ही
अतः सत्सु - अतएव सत्पुरुषोंपर	(तो आप)
दयां कृत्वा - दया करके	**निराकारः** - निराकार
मा व्रज - मत जाओ,	**चिन्मयः अपि** - ज्ञानस्वरूप होनेपर भी
	सगुणः जातः - सगुण होगये हैं ॥५८॥

त्वद्वियोगेन ते भक्ताः कथं स्थास्यन्ति भूतले ।
निर्गुणोपासने कष्टमतः किंचिद्विचारय ॥ ५९ ॥

त्वत् वियोगेन ते भक्ताः कथं स्थास्यन्ति भूतले निर्गुण उपासने कष्टं अतः किञ्चित् विचारय ॥ ५९ ॥

त्वत् वियोगेन	- आपके वियोगमें	**कष्टं**	- (बहुत) कष्ट है,
ते भक्ताः भूतले	- आपके भक्त पृथ्वीपर	**अतः किञ्चित्**	- अतः कुछ तो
कथं स्थास्यन्ति	- कैसे ठहरेंगे,	**विचारय**	- विचार कीजिए ॥५९॥
निर्गुण उपासने	- (आपके) निर्गुण स्वरूपकी उपासनामें		

सूत उवाच-

इत्युद्धववचः श्रुत्वा प्रभासेऽचिन्तयद्धरिः ।
भक्तावलम्बनार्थाय किं विधेयं मयेति च ॥ ६० ॥

इति उद्धव वचः श्रुत्वा प्रभासे अचिन्तयत् हरिः भक्त अवलम्बन अर्थाय किं विधेयं मया इति च ॥ ६० ॥

इति उद्धव	- इस प्रकार उद्धवकी	**भक्त अवलम्बन**	- 'भक्तोंके सहारेके
वचः श्रुत्वा	- बात सुनकर	**अर्थाय मया**	- लिए मुझे
प्रभासे हरिः	- प्रभासमें श्रीहरिने	**किं विधेयं**	- क्या करना चाहिए'
इति च-	- इस प्रकारसे ही सोचा		॥ ६० ॥
अचिन्तयत्			

स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात् ।
तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम् ॥ ६१ ॥

स्वकीयं यत् भवेत् तेजः तत् च भागवते अदधात् तिरोधाय प्रविष्टः अयं श्रीमद्भागवत अर्णवम् ॥ ६१ ॥

यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

यत् स्वकीयं - जो अपना
तेजः भवेत् - तेज था
तत् च भागवते - उसे तो भागवतमें
अदधात् - स्थापित कर दिया ।
तिरोधाय अयं - (इस प्रकार) तिरोहित होकर ये (भगवान)
श्रीमद्भागवत - श्रीभागवत रूपी
अर्णवं प्रविष्टः - समुद्रमें प्रविष्ट हैं ॥ ६१ ॥

तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः ।
सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी ॥ ६२ ॥

तेन इयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः सेवनात् श्रवणात् पाठात् दर्शनात् पापनाशिनी ॥ ६२ ॥

तेन इयं - इसलिए यह (भागवत)
सेवनात् - सेवा करनेसे,
श्रवणात् - श्रवण करनेसे,
पाठात् - पाठ करनेसे,
दर्शनात् - दर्शन करनेसे
पापनाशिनी - पाप नष्ट करने वाली
हरेः- - श्रीहरिकी वाणीमय मूर्ति
वाङ्मयी मूर्तिः
प्रत्यक्षा वर्तते - प्रत्यक्ष विद्यमान है ॥ ६२ ॥

सप्ताहश्रवणं तेन सर्वेभ्योऽप्यधिकं कृतम् ।
साधनानि तिरस्कृत्य कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥ ६३ ॥

सप्ताह श्रवणं तेन सर्वेभ्यः अपि अधिकं कृतं साधनानि तिरस्कृत्य कलौ धर्मः अयं ईरितः ॥ ६३ ॥

तेन सप्ताह-श्रवणं - इसी से सप्ताह श्रवण
साधनानि - (दूसरे) साधनोंकी
तिरस्कृत्य - उपेक्षा करके
सर्वेभ्यः अपि - सबसे ही
अधिकं कृतं - अधिक किया गया है
अयं कलौ धर्मः - यह कलियुगका धर्म
ईरितः - कहा गया है ॥ ६३ ॥

दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यपापप्रक्षालनाय च ।
कामक्रोधजयार्थं हि कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥ ६४ ॥

दुःख दारिद्र्य दौर्भाग्य पाप प्रक्षालनाय च काम क्रोध जय अर्थं हि कलौ धर्मः अयं ईरितः ॥ ६४ ॥

दुःख दारिद्र्य	- दुःख, दरिद्रता,	**जय अर्थं हि**	- जीतनेके लिए भी
दौर्भाग्य च	- दुर्भाग्य	**अयं कलौ-**	- इसे कलियुगमें धर्म
पाप प्रक्षालनाय	- पापोंको धो देनेके लिए	**धर्मः**	
च काम क्रोध	- तथा काम, क्रोधको	**ईरितः**	- कहा गया है ॥ ६४ ॥

अन्यथा वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्त्यजा ।
कथं त्याज्या भवेत्पुम्भिः सप्ताहोऽतः प्रकीर्तितः ॥ ६५ ॥

अन्यथा वैष्णवी माया देवैः अपि सुदुस्त्यजा कथं त्याज्या भवेत् पुम्भिः सप्ताहः अतः प्रकीर्तितः ॥ ६५ ॥

अन्यथा देवैः-	- अन्यथा देवताओंके	**पुम्भिः**	- मनुष्यके लिए
अपि	द्वारा भी	**कथं-**	- कैसे त्यागने योग्य होगी
सुदुस्त्यजा	- त्यागनेमें अत्यन्त कठिन	**त्याज्या भवेत्**	
वैष्णवी माया	- भगवान विष्णुकी माया	**अतः सप्ताहः**	- इसलिए सप्ताह
		प्रकीर्तितः	- श्रेष्ठ कहा गया है ॥ ६५ ॥[1]

सूत उवाच-

एवं नगाहश्रवणोरुधर्मे प्रकाश्यमाने ऋषिभिः सभायाम् ।
आश्चर्यमेकं समभूत्तदानीं तदुच्यते संशृणु शौनक त्वम् ॥ ६६ ॥

एवं नगाह श्रवणः उरुधर्मे प्रकाश्यमाने ऋषिभिः सभायां आश्चर्यं एकं सम् अभूत् तदानीं तत् उच्यते संशृणु शौनक त्वम् ॥ ६६ ॥[2]

---

१. नग - कुलपर्वत सात माने जाते हैं, अतः नग - सप्त ।

२. गीताप्रेस की प्रतिमें इसके आगे सूत उवाच है; किन्तु श्लोक ६० से 'सूत उवाच' ही चल रहा है, अतः यहाँ अनावश्यक है ।

एवं नग- - इस प्रकार सप्ताह श्रवण
आह श्रवणः
उरुधर्मे - रूप महान धर्मको
ऋषिभिः - ब्रह्मर्षि शुकदेवजी द्वारा
प्रकाश्यमाने - प्रगट किये जानेके
तदानीं - उस समय ही
सभायां एकं - सभामें एक
आश्चर्यं- - आश्चर्य सबके
समभूत् सामने हुआ
तत् उच्यते - वह कहा जारहा है
शौनक त्वम् - शौनक जी ! तुम
संशृणु - (उसे) सावधान होकर
सुनो ॥ ६६ ॥

भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा प्रेमैकरूपा सहसाऽऽविरासीत् ।
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती ॥ ६७ ॥

भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा प्रेम एक रूपा सहसा आविः आसीत् श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे नाथ इति नामानि मुहुः वदन्ती ॥ ६७ ॥

तौ तरुणौ - उन (ज्ञान-वैराग्य) तरुण
सुतौ गृहीत्वा - पुत्रोंको साथ लेकर
प्रेम एक रूपा - एक मात्र प्रेम स्वरूपा
भक्तिः - भक्ति
श्रीकृष्ण गोविन्द - श्रीकृष्ण, गोविन्द,
हरे मुरारे - हरे, मुरारे,
नाथ - नाथ,
इति नामानि - इस प्रकारके भगवन्नामोंको
मुहुः वदन्ती - बार-बार बोलती हुई
सहसा- - अचानक प्रकट होगयी
आविः आसीत् ॥ ६७ ॥

तां चागतां भागवतार्थभूषां सुचारुवेषां ददृशुः सदस्याः ।
कथं प्रविष्टा कथमागतेयं मध्ये मुनीनामिति तर्कयन्तः ॥ ६८ ॥

तां च आगतां भागवत अर्थ भूषां सुचारु वेषां ददृशुः सदस्याः कथं प्रविष्टा कथं आगता इयं मध्ये मुनीनां इति तर्क यन्तः ॥ ६८ ॥

तां च - उसको तो
भागवत- - भागवतके अर्थका
अर्थ भूषां आभूषण पहिने
सुचारुवेषां - अत्यन्त सुन्दरवेश वालीको
आगतां - आयी हुई
सदस्याः ददृशुः - सदस्योंने देखा,
मुनीनां मध्ये - (तब) मुनियोंके बीचमें
इति तर्क यन्तः - इस प्रकार तर्क होने लगा
इयं कथं- - 'यह कैसे प्रविष्ट
प्रविष्टा हुई ?
कथं आगता - कैसे आगयी ?' ॥६८॥

ऊचुः कुमारा वचनं तदानीं कथार्थतो निष्पतिताधुनेयम् ।
एवं गिरः सा ससुता निशम्य सनत्कुमारं निजगाद नम्रा ॥ ६९ ॥

ऊचुः कुमारा वचनं तदानीं कथा अर्थतः निष्पतिता अधुना इयं एवं गिरः सा ससुता निशम्य सनत्कुमारं निजगाद नम्रा ॥ ६९ ॥

तदानीं - उस समय
कुमारा - (सनकादि) कुमारोंने
वचनं ऊचुः - यह बात कही
इयं अधुना - 'यह इस समय
कथा अर्थतः - कथाके अर्थसे
निष्पतिता - निकली है'
सा ससुता - वह पुत्रोंके साथ
एवं गिरः- - इस प्रकारकी वाणी सुनकर
निशम्य
नम्रा - नम्रतापूर्वक
सनत्कुमारं - सनत्कुमारसे
निजगाद - बोली ॥ ६९ ॥

भक्तिरुवाच-

भवद्भिरद्यैव कृतास्मि पुष्टा कलिप्रणष्टापि कथारसेन ।
क्वाहं तु तिष्ठाम्यधुना ब्रुवन्तु ब्राह्मा इदं तां गिरमूचिरे ते ॥ ७० ॥

भवत्भिः अद्य एव कृत अस्मि पुष्टा कलि प्रणष्टा अपि कथा रसेन क्वाहं तु तिष्ठामि अधुना ब्रुवन्तु ब्राह्मा इदं' तां गिरं ऊचिरे ते ॥ ७० ॥

कलि- - कलियुग द्वारा
प्रणष्टा अपि - नष्टकी हुई होनेपर भी
अद्य एव - अभी-अभी
भवत्भिः - आप लोगों द्वारा
कथा रसेन - कथाके रससे
पुष्टा कृत- - पुष्टकी गयी हूँ,
अस्मि

ब्राह्मा - विप्रवरो !
अधुना अहं तु - इस समय मैं तो
क्व तिष्ठामि - कहां बैठूँ
इदं ब्रुवन्तु - यह बतलाइये ।

सूत उवाच

ते तां - वे (सनकादिकुमार) उससे
गिरं ऊचिरे - यह बात बोले ॥७०॥

कुमारा ऊचुः-

भक्तेषु गोविन्दसरूपकर्त्री प्रेमैकधर्त्री भवरोगहन्त्री ।
सा त्वं च तिष्ठस्व सुधैर्यसंश्रया निरन्तरं वैष्णवमानसानि ॥ ७१ ॥

भक्तेषु गोविन्द सरूप कर्त्री प्रेम एक धर्त्री भवरोगहन्त्री सा त्वं च तिष्ठस्व सुधैर्य संश्रया निरन्तरं वैष्णव मानसानि ॥ ७१ ॥

भक्तेषु - भक्तोंको
गोविन्द- - गोविन्द स्वरूप
सरूपकर्त्री करने वाली,
प्रेम एक धर्त्री - एक मात्र प्रेम
धारण करने वाली,
भव रोग हन्त्री - संसार रूपी रोगको
नष्ट करने वाली

सा त्वं च - वह तुम भी
सुधैर्य संश्रया - उत्तम धैर्य के ठीक
आश्रय
वैष्णव मानसानि - भगवद्भक्तोंके चित्तमें
निरन्तरं- - निरन्तर बैठी रहो
तिष्ठस्व ॥ ७१ ॥

ततोऽपि दोषाः कलिजा इमे त्वां द्रष्टुं न शक्ताः प्रभवोऽपि लोके ।
एवं तदाज्ञावसरेऽपि भक्तिस्तदा निषण्णा हरिदासचित्ते ॥ ७२ ॥

ततः अपि दोषाः कलिजा इमे त्वां द्रष्टुं न शक्ताः प्रभवः अपि लोके ।

ततः इमे - इससे ये
कलिजा दोषाः - कलियुगसे उत्पन्न दोष
अपि लोके - भी संसारमें
प्रभवः अपि - समर्थ होनेपर भी
त्वां द्रष्टुं - तुम्हें देखनेमें
शक्ताः न - समर्थ नहीं होंगे,

सूत उवाच-

एवं तत् आज्ञा अवसरे अपि भक्तिः तदा निषण्णा हरिदास चित्ते ॥ ७२ ॥

एवं तत् आज्ञा - इस प्रकार उनकी आज्ञा
अवसरे - मिलनेके समय ही
भक्तिः- - भक्ति भी उसी समय
अपि तदा
हरिदास चित्ते - भगवद्भक्तोंके चित्तमें
निषण्णा - बैठ गयी ॥ ७२ ॥

सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या
निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका ।
हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय
प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ॥ ७३ ॥

सकल भुवन मध्ये निर्धनाः ते अपि धन्या निवसति हृदि येषां श्रीहरेः भक्तिः एकाहरिः अपि निजलोकं सर्वथातः विहाय प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रः उपनद्धः ॥ ७३ ॥

सकल भुवन-मध्ये - समस्त लोकोंके बीचमें
ते निर्धनाः अपि - वे निर्धन होनेपर भी
धन्या - धन्य हैं,
येषां हृदि - जिनके हृदयमें
श्री हरेः- - श्रीहरिकी अनन्य भक्ति
एका भक्तिः
निवसति - निवास करती है,
हरिः अपि - श्रीहरि भी
निजलोकं - अपने धामको
सर्वथातः- - सर्वथा ही त्यागकर
विहाय
भक्ति सूत्रः- - भक्तिके धागेसे बँधे हुए
उपनद्धः
तेषां हृदि - उनके हृदयमें
प्रविशति - प्रवेश करते हैं ॥७३॥

ब्रूमोऽद्य ते किमधिकं महिमानमेवं
ब्रह्मात्मकस्य भुवि भागवताभिधस्य ।
यत्संश्रयान्निगदिते लभते सुवक्ता
श्रोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्मैः ॥ ७४ ॥

ब्रूमः अद्य ते किं अधिकं महिमानं एवं ब्रह्म आत्मकस्य भुवि भागवत अभिधस्य यत् संश्रयात् निगदिते लभते सुवक्ता श्रोता अपि कृष्ण समतां अलं अन्य धर्मैः ॥ ७४ ॥

भुवि भागवत	- पृथ्वीपर भागवत	**यत् संश्रयात्**	- जिसका आश्रय लेकर
अभिधस्य	- नामवाले	**निगदिते**	- प्रवचन करनेपर
ब्रह्म आत्मकस्य	- ब्रह्मस्वरूपकी	**सुवक्ता**	- उत्तमवक्ता
ते अद्य किं	- तुमसे आज क्या	**श्रोता अपि**	- तथा श्रोता भी
अधिकं महिमानं	- अधिक माहात्म्य	**कृष्ण समतां**	- श्रीकृष्णका समत्व
एवं ब्रूमः	- वर्णन करें	**लभते**	- प्राप्त कर लेता है,
		अन्य धर्मैः-	- (अतः) अन्य धर्मोंसे बस
		अलं	॥ ७४ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भक्तिकष्टनिवर्तनं
नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

सूत उवाच-

अथ वैष्णवचित्तेषु दृष्ट्वा भक्तिमलौकिकीम् ।
निजलोकं परित्यज्य भगवान् भक्तवत्सलः ॥ १ ॥

अथ वैष्णव चित्तेषु दृष्ट्वा भक्तिं अलौकिकीं निजलोकं परित्यज्य भगवान् भक्त वत्सलः ॥ १ ॥

अथ वैष्णव- - तब भक्तोंके चित्तोंमें
चित्तेषु
अलौकिकीं - अलौकिक
भक्तिं दृष्ट्वा - भक्ति देखकर
भक्त वत्सलः- भक्त वत्सल
भगवान् - भगवान
निजलोकं - अपने लोकको
परित्यज्य - त्यागकर ॥ १ ॥

वनमाली घनश्यामः पीतवासा मनोहरः ।
काञ्चीकलापरुचिरोल्लसन्मुकुटकुण्डलः ॥ २ ॥

वनमाली घनश्यामः पीतवासा मनोहरः काञ्ची कलाप रुचिरः लसत् मुकुट कुण्डलः ॥ २ ॥

वनमाली - वनमालाधारी,
घनश्यामः - मेघके समान श्याम वर्ण,
पीतवासा - पीताम्बरधारी,
मनोहरः - चितचोर,
रुचिरः - सुन्दर
काञ्ची कलाप - करधनी पहिने,
मुकुट कुण्डलः - मुकुट-कुण्डलसे
लसत् - सुशोभित ॥ २ ॥

त्रिभंगललितश्चारुकौस्तुभेन विराजितः ।
कोटिमन्मथलावण्यो हरिचन्दनचर्चितः ॥ ३ ॥

त्रिभंग ललितः चारु कौस्तुभेन विराजितः कोटि मन्मथ लावण्यः हरिचन्दन चर्चितः ॥ ३ ॥

चारु त्रिभंग- - सुन्दर त्रिभंग-मनोहर,
ललितः
कौस्तुभेन - कौस्तुभ मणि द्वारा
विराजितः - विशेष शोभित

कोटि मन्मथ - करोड़ों कामदेवके समान
लावण्यः - सौन्दर्यशाली
हरिचन्दन- - श्वेत चन्दनके द्वारा चर्चित
चर्चितः ॥ ३ ॥

परमानन्दचिन्मूर्तिर्मधुरो मुरलीधरः ।
आविवेश स्वभक्तानां हृदयान्यमलानि च ॥ ४ ॥

परमानन्द चित्मूर्तिः मधुरः मुरलीधरः आविवेश स्वभक्तानां हृदयानि अमलानि च ॥ ४ ॥

परमानन्द - परमानन्द
चित् मूर्तिः - ज्ञान स्वरूप
मधुरः - अत्यन्त मधुर
मुरलीधरः - मुरलीधर

स्वभक्तानां - अपने भक्तोंके
अमलानि हृदयानि - निर्मल हृदयोंमें
आविवेश च - प्रविष्ट होगये ॥४॥

वैकुण्ठवासिनो ये च वैष्णवा उद्धवादयः ।
तत्कथाश्रवणार्थं ते गूढरूपेण संस्थिताः ॥ ५ ॥

वैकुण्ठ वासिनः ये च वैष्णवा उद्धव आदयः तत् कथा श्रवण अर्थं ते गूढ़ रूपेण संस्थिताः ॥ ५ ॥

वैकुण्ठ वासिनः - वैकुण्ठ निवासी
ये उद्धव- - जो उद्धव आदि
आदयः
वैष्णवा च - भगवद्भक्त थे

तत् कथा - उस कथाके
श्रवण अर्थं - सुननेके लिए
ते गूढ़ रूपेण - वे गुप्त रूपसे
संस्थिताः - बैठे थे ॥ ५ ॥

तदा जयजयारावो रसपुष्टिरलौकिकी ।
चूर्णप्रसूनवृष्टिश्च मुहुः शंखरवोऽप्यभूत् ॥ ६ ॥

तदा जय जय आरावः रसपुष्टिः अलौकिकी चूर्ण प्रसून वृष्टिः च मुहुः शंख रवः अपि अभूत् ॥ ६ ॥

तदा जय- - उस समय जय
जय आरावः जयकारका नाद,
अलौकिकी - अलौकिक
रसपुष्टिः - रसकी पुष्टि,
चूर्ण प्रसून - (अबीरादि) चूर्णों तथा पुष्पोंकी
वृष्टिः च - वर्षा एवं
मुहुः शंख रवः - बार-बार शंखनाद
अपि अभूत् - भी हुआ ॥ ६ ॥

तत्सभासंस्थितानां च देहगेहात्मविस्मृतिः ।
दृष्ट्वा च तन्मयावस्थां नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥

तत् सभा संस्थितानां च देह गेह आत्म विस्मृतिः दृष्ट्वा च तन्मया अवस्थां नारदः वाक्यं अब्रवीत् ॥ ७ ॥

तत् सभा - उस सभामें
संस्थितानां च - उपस्थित लोगोंकी
आत्म देह गेह - अपने शरीर और घरकी
विस्मृतिः - विस्मृति होगयी
तन्मया अवस्थां- (उनकी) तन्मय अवस्था
दृष्ट्वा च- - देखकर ही नारद जी
नारदः
वाक्यं अब्रवीत् - यह बात बोले ॥ ७ ॥

नारद उवाच-

अलौकिकोऽयं महिमा मुनीश्वराः सप्ताहजन्योऽद्य विलोकितो मया ।
मूढाः शठा ये पशुपक्षिणोऽत्र सर्वेऽपि निष्पापतमा भवन्ति ॥ ८ ॥

अलौकिकः अयं महिमा मुनीश्वराः सप्ताह जन्यः अद्य विलोकितः मया मूढाः शठा ये पशु पक्षिणः अत्र सर्वे अपि निष्पापतमा भवन्ति ॥ ८ ॥

मुनीश्वराः - मुनीश्वरो !
अद्य मया - आज मैंने
सप्ताह जन्यः - सप्ताहसे उत्पन्न
ये मूढाः शठा - जो अज्ञानी, दुष्ट,
पशु पक्षिणः- - पशु-पक्षी यहां हैं
अत्र

यह उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

अयं अलौकिकः	- यह अलौकिक	**सर्वे अपि**	- सभी ही
महिमा-	- महिमा देखी,	**निष्पापतमा**	- अत्यन्त निष्पाप
विलोकितः		**भवन्ति**	- होगये ॥ ८ ॥

अतो नृलोके ननु नास्ति किंचिच्चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रम् ।
अघौघविध्वंसकरं तथैव कथासमानं भुवि नास्ति चान्यत् ॥ ९ ॥

अतः नृ लोके ननु न अस्ति किञ्चित् चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रं अघ ओघ विध्वंस करं तथा एव कथा समानं भुवि न अस्ति च अन्यत् ॥ ९ ॥

अतः नृलोके	- अतः मनुष्यलोक में	**अघ ओघ**	- पापकी बाढ़को
चित्तस्य शोधाय	- चित्तको शुद्ध करनेके लिए	**विध्वंसकरं**	- सम्पूर्ण नष्ट करने वाला
		कथा समानं	- कथाके समान
कलौ किञ्चित्	- कलियुगमें कुछ भी	**भुवि किञ्चित्**	- पृथ्वीपर कुछ भी
पवित्रं न अस्ति	- पुण्य कर्म नहीं है,	**न अस्ति**	- नहीं है ॥ ९ ॥
तथा एव	- इसी प्रकार		

के के विशुद्ध्यन्ति वदन्तु मह्यं सप्ताहयज्ञेन कथामयेन ।
कृपालुभिर्लोकहितं विचार्य प्रकाशितः कोऽपि नवीनमार्गः ॥ १० ॥

के के विशुद्ध्यन्ति वदन्तु मह्यं सप्ताह यज्ञेन कथामयेन कृपालुभिः लोकहितं विचार्य प्रवर्तितः कः अपि नवीन मार्गः ॥ १० ॥

कथा मयेन	- कथा स्वरूप	**कृपालुभिः**	- (आप) कपालुओं द्वारा
सप्ताह यज्ञेन	- इस सप्ताह यज्ञके द्वारा	**लोकहितं-**	- लोक-कल्याणका
के के-	- कौन-कौन शुद्ध	**विचार्य**	विचार करके
विशुद्ध्यन्ति	होजाते हैं	**कः अपि**	- (यह) कौन सा
मह्यं वदन्तु	- (यह) मुझे बतलाइये,	**नवीन मार्गः**	- नया पथ
		प्रवर्तितः	- चलाया है ॥ १० ॥

कुमारा ऊचुः-

ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः ।
क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ ११ ॥

ये मानवाः पापकृतः तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः क्रोध अग्नि दग्धाः कुटिलाः च कामिनः सप्ताह यज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ ११ ॥

ये मानवाः तु	- जो मनुष्य तो	**कुटिलाः च**	- कुटिल और
सर्वदा पापकृतः	- नित्य पाप करनेवाले,	**कामिनः**	- कामुक हैं,
सदा-	- सदा दुराचारमें लगे	**कलौ ते**	- कलियुगमें वे
दुराचाररता	रहने वाले,	**सप्ताह यज्ञेन**	- सप्ताहरूप यज्ञसे
विमार्गगाः	- कुमार्गपर चलने वाले,	**पुनन्ति**	- पवित्र होजाते हैं
क्रोध अग्नि-	- क्रोधाग्निमें जलते		॥ ११ ॥
दग्धाः	रहने वाले		

सत्येन हीनाः पितृमातृदूषकास्तृष्णाकुलाश्चाश्रमधर्मवर्जिताः ।
ये दाम्भिका मत्सरिणोऽपि हिंसकाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १२ ॥

सत्येन हीनाः पितृमातृ दूषकाः तृष्णा आकुलाः च आश्रम धर्म वर्जिताः ये दाम्भिका मत्सरिणः अपि हिंसकाः सप्ताह यज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १२ ॥

सत्येन हीनाः	- सत्यसे रहित,	**दाम्भिका**	- घमण्ड करनेवाले
पितृमातृ दूषकाः	- पिता-माताकी निन्दा करने वाले,	**मत्सरिणः**	- डाह करने वाले तथा
		हिंसकाः अपि	- हिंसक (हत्यारे) भी हैं,
तृष्णा आकुलाः	- तृष्णासे व्याकुल	**कलौ ते**	- कलियुगमें वे
आश्रम धर्म	- वर्ण-आश्रमधर्म से	**सप्ताह यज्ञेन**	- सप्ताह यज्ञ द्वारा
वर्जिताः	- रहित,	**पुनन्ति**	- शुद्ध होजाते हैं ॥१२॥

पञ्चोग्रपापाश्छलछद्मकारिणः क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ये ।
ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १३ ॥

पञ्च उग्रपापाः छल छद्म कारिणः क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाः च ये ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचार कारिणः सप्ताह यज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १३ ॥

पञ्च उग्रपापाः	- पांचों उग्रपाप (मद्यपान, ब्रह्महत्या, स्वर्ण चोरी, गुरु स्त्रीगमन और विश्वासघात)
छल छद्म कारिणः	- तथा छल-कपट करने वाले,
क्रूराः पिशाचा इव	- क्रूर, पिशाचोंके समान
ये निर्दयाः च	- जो निर्दय भी हैं,
ब्रह्मस्व पुष्टा	- ब्राह्मणके धनसे पुष्ट हुए,
व्यभिचार-कारिणः	- व्यभिचार करने वाले
ते कलौ	- वे भी कलियुगमें
सप्ताह यज्ञेन	- सप्ताह यज्ञसे
पुनन्ति	- पवित्र होजाते हैं ॥१३॥

कायेन वाचा मनसापि पातकं नित्यं प्रकुर्वन्ति शठा हठेन ये ।
परस्वपुष्टा मलिना दुराशयाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १४ ॥

कायेन वाचा मनसा अपि पातकं नित्यं प्रकुर्वन्ति शठा हठेन ये परस्व पुष्टा मलिना दुराशयाः सप्ताह यज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १४ ॥

ये शठा	- जो दुष्ट पुरुष
कायेन वाचा	- शरीर, वाणी,
मनसा अपि	- मनसे भी
नित्यं हठेन	- सदा हठपूर्वक
पातकं प्रकुर्वन्ति	- पाप ही करते रहते हैं,
परस्व पुष्टा	- दूसरेके स्वत्वसे मोटे हुए
मलिना-दुराशयाः	- मलिन दुष्ट चित्तवाले हैं
कलौ ते	- कलियुगमें वे
सप्ताह यज्ञेन	- सप्ताह यज्ञसे
पुनन्ति	- पवित्र होजाते हैं ॥१४॥

अत्र ते कीर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते ॥ १५ ॥

अत्र ते कीर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनं यस्य श्रवण मात्रेण पापहानिः प्रजायते ॥ १५ ॥

अत्र ते - इस विषयमें तुमसे
पुरातनं इतिहासं - पुराने इतिहासका
कीर्तयिष्यामि - वर्णन करूँगा,
यस्य श्रवण-मात्रेण - जिसको सुनने मात्रसे
पाप हानिः - पापनाश
प्रजायते - होजाता है ॥ १५ ॥

तुंगभद्रातटे पूर्वमभूत्पत्तनमुत्तमम् ।
यत्र वर्णाः स्वधर्मेण सत्यसत्कर्मतत्पराः ॥ १६ ॥

तुंगभद्रा तटे पूर्वं अभूत् पत्तनं उत्तमं यत्र वर्णाः स्वधर्मेण सत्य सत् कर्म तत्पराः ॥ १६ ॥

तुंगभद्रा तटे - तुंगभद्रा नदीके किनारे
पूर्वं उत्तमं - पहिले एक श्रेष्ठ
पत्तनं अभूत् - नगर था,
यत्र वर्णाः - जहांके वर्णाश्रमके लोग
स्वधर्मेण - अपने धर्मपालन द्वारा
सत्य सत् कर्म-तत्पराः - सत्य और सत् कर्ममें लगे रहते थे ॥ १६ ॥

आत्मदेवः पुरे तस्मिन् सर्ववेदविशारदः ।
श्रौतस्मार्तेषु निष्णातो द्वितीय इव भास्करः ॥ १७ ॥

आत्मदेवः पुरे तस्मिन् सर्व वेद विशारदः श्रौत स्मार्तेषु निष्णातः द्वितीय इव भास्करः ॥ १७ ॥

तस्मिन पुरे - उस नगरमें
सर्व वेद-विशारदः - सब वेदोंके विद्वान
श्रौत स्मार्तेषु - वैदिक एवं स्मृतियोंके कर्ममें
निष्णातः - प्रवीण
द्वितीय-भास्करः इव - दूसरे सूर्यके समान
आत्मदेवः - आत्मदेव (रहते थे) ॥ १७ ॥

भिक्षुको वित्तवाँल्लोके तत्प्रिया धुन्धुली स्मृता ।
स्ववाक्यस्थापिका नित्यं सुन्दरी सुकुलोद्भवा ॥ १८ ॥

भिक्षुकः वित्तवान् लोके तत् प्रिया धुन्धुली स्मृता स्ववाक्य स्थापिका नित्यं सुन्दरी सुकुल उद्भवा ॥ १८ ॥

लोके वित्तवान्	- संसारमें धनीपर	**सुकुल उद्भवा**	- अच्छे कुलमें उत्पन्न
भिक्षुकः	- भिक्षा जीवी थे,	**नित्यं स्ववाक्य**	- सदा अपनी बात
तत् प्रिया	- उनकी पत्नी	**स्थापिका**	- रखने वाली
सुन्दरी	- सुन्दरी	**धुन्धुली स्मृता**	- धुन्धुली नामकी थी ॥ १८ ॥

लोकवार्तारता क्रूरा प्रायशो बहुजल्पिका ।
शूरा च गृहकृत्येषु कृपणा कलहप्रिया ॥ १९ ॥

लोक वार्तारता क्रूरा प्रायशः बहुजल्पिका शूरा च गृहकृत्येषु कृपणा कलह प्रिया ॥ १९ ॥

लोक वार्तारता	- लोगोंकी चर्चामें लगी रहने वाली	**च गृहकृत्येषु**	- तथा घरेलू काममें
क्रूरा	- क्रूर स्वभावकी,	**शूरा कृपणा**	- वीर, कृपण,
प्रायशः-	- प्रायः बहुत बोलने	**कलहप्रिया**	- झगड़ेसे प्रीति रखने वाली थी ॥ १९ ॥
बहुजल्पिका	वाली,		

एवं निवसतोः प्रेम्णा दम्पत्योः रममाणयोः ।
अर्थाः कामास्तयोरासन्न सुखाय गृहादिकम् ॥ २० ॥

एवं निवसतोः प्रेम्णा दम्पत्योः रममाणयोः अर्थाः कामाः तयोः आसन् न सुखाय गृह आदिकम् ॥ २० ॥

एवं प्रेम्णा	- इस प्रकार प्रेमपूर्वक	**अर्थाः कामाः**	- धन, भोग,
रममाणयोः	- रमण करते हुए	**गृह आदिकं**	- घर आदि
निवसतोः	- निवास करते हुए	**सुखाय न-**	- सुखदायक नहीं थे
तयोः दम्पत्योः	- उस दम्पत्तिको	**आसन्**	॥ २० ॥

पश्चाद्धर्माः समारब्धास्ताभ्यां संतानहेतवे ।
गोभूहिरण्यवासांसि दीनेभ्यो यच्छतः सदा ॥ २१ ॥

पश्चात् धर्माः सम आरब्धाः ताभ्यां सन्तान हेतवे गो भू हिरण्य वासांसि दीनेभ्यः यच्छतः सदा ॥ २१ ॥

दीनेभ्यः	- दीनोंको	**ताभ्यां**	- उनके द्वारा
सदा गो भू	- सदा गौ, भूमि,	**सन्तान हेतवे**	- सन्तान (प्राप्ति) के लिए
हिरण्य वासंसि	- स्वर्ण, वस्त्र	**पश्चात् धर्माः**	- पीछे धर्म
यच्छतः	- देते हुए	**समारब्धाः**	- भली प्रकार प्रारम्भ किया गया ॥ २१ ॥

धनार्धं धर्ममार्गेण ताभ्यां नीतं तथापि च ।
न पुत्रो नापि वा पुत्री ततश्चिन्तातुरो भृशम् ॥ २२ ॥

धन अर्धं धर्म मार्गेण ताभ्यां नीतं तथा अपि च न पुत्रः न अपि वा पुत्री ततः चिन्ता आतुरः भृशम् ॥ २२ ॥

ताभ्यां धन अर्धं	- उन लोगोंने अपना आधा धन	**न पुत्रः**	- न पुत्र हुआ
धर्म मार्गेण-	- धर्मके मार्गमें लगा	**न अपि पुत्री**	- न पुत्री ही हुई
नीतं	दिया	**ततः भृशं**	- तब अत्यन्त
तथा अपि च	- ऐसा करनेपर भी	**चिन्ता आतुरः**	- चिन्तासे व्याकुल होगये ॥ २२ ॥

एकदा स द्विजो दुःखाद् गृहं त्यक्त्वा वनं गतः ।
मध्यान्हे तृषितो जातस्तडागं समुपेयिवान् ॥ २३ ॥

एकदा स द्विजः दुःखात् गृहं त्यक्त्वा वनं गतः मध्यान्हे तृषितः जातः तडागं सम उपेयिवान् ॥ २३ ॥

एकदा स द्विजः - एक बार वह ब्राह्मण
दुःखात् - दुःखके कारण
गृहं त्यक्त्वा - घर छोड़कर
वनं गतः - वनमें चले गये,
मध्यान्हे - (वहां) दोपहरमें
तृषितः जातः - प्यासे होकर
तडागं - सरोवरके
सम उपेयिवान् - समीप पहुँचे ॥ २३ ॥

पीत्वा जलं निषण्णस्तु प्रजादुःखेन कर्शितः ।
मुहूर्तादपि तत्रैव संन्यासी कश्चिदागतः ॥ २४ ॥

पीत्वा जलं निषण्णःतु प्रजा दुःखेन कर्शितः मुहूर्तात् अपि तत्र एव सन्यासी कश्चित् आगतः ॥ २४ ॥

पीत्वा जलं - जल पीकर
प्रजा दुःखेन - पुत्र (न होने) के दुःखसे
कर्शितः - दुबले हुए
निषण्णः तु - बैठे हुए थे तो
मुहूर्तात् अपि - एक मुहूर्तमें ही
तत्र एव- - वहीं कोई
कश्चित्
सन्यासी आगतः - सन्यासी आगये ॥ २४ ॥

दृष्ट्वा पीतजलं तं तु विप्रो यातस्तदन्तिकम् ।
नत्वा च पादयोस्तस्य निःश्वसन् संस्थितः पुरः ॥ २५ ॥

दृष्ट्वा पीतजलं तं तु विप्रः यातः तत् अन्तिकं नत्वा च पादयोः तस्य निःश्वसन् संस्थितः पुरः ॥ २५ ॥

तं तु पीतजलं - उनको तो जल पिये
दृष्ट्वा विप्रः - देखकर ब्राह्मण
तत् अन्तिकं - उनके समीप
यातः तस्य- - जाकर उनके चरणोंमें
पादयोः
नत्वा निःश्वसन् - प्रणाम करके लम्बी श्वांस लेता
पुरः संस्थितः - (उनके) आगे खड़ा होगया ॥ २५ ॥

यतिरुवाच-

कथं रोदिषि विप्र त्वं का ते चिन्ता बलीयसी ।
वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ।। २६ ।।

कथं रोदसि विप्र त्वं का ते चिन्ता बलीयसी वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ।। २६ ।।

विप्रत्वं	- ब्राह्मण ! तुम	**स्वस्य दुःखस्य**	- अपने दुःखका
कथं रोदसि	- कैसे रो रहे हो ?	**कारणं मह्यं**	- कारण मुझसे
ते का बलीयसी	- तुमको कौनसी बलवान	**सत्वरं वद**	- शीघ्र बतलाओ ।।२६।।
चिन्ता	- चिन्ता है ?		

ब्राह्मण उवाच-

किं ब्रवीमि ऋषे दुःखं पूर्वपापेन संचितम् ।
मदीयाः पूर्वजास्तोयं कवोष्णमुपभुञ्जते ।। २७ ।।

किं ब्रवीमि ऋषे दुःखं पूर्व पापेन संचितं मदीयाः पूर्वजाः तोयं कवोष्णं उप भुञ्जते ।। २७ ।।

ऋषे दुःखं	- ऋषि ! (मैं अपना) दुःख	**कवोष्णं**	- (निःश्वाससे) कुछ गरम१
किं ब्रवीमि	- क्या बतलाऊँ	**तोयं-**	- जल पीते हैं ।। २७ ।।
मदीयाः पूर्वजाः	- मेरे पितर लोग	**उपभुञ्जते**	

मद्दत्तं नैव गृह्णन्ति प्रीत्या देवा द्विजातयः ।
प्रजादुःखेन शून्योऽहं प्राणांस्त्यक्तुमिहागतः ।। २८ ।।

मत् दत्तं न एव गृह्णन्ति प्रीत्या देवा द्विजातयः प्रजा दुःखेन शून्यः अहं प्राणान् त्यक्तुं इह आगतः ।। २८ ।।

---

१. मेरे सन्तान न होनेसे आगे जलाञ्जलि नहीं मिलेगी, यह सोचकर निःश्वास लेते हैं ।

देवा द्विजातयः	- देवता और ब्राह्मण	**प्रजा दुःखेन**	- सन्तान (हीनता) के दुःखसे
मत् दत्तं	- मेरा दिया (पूजा-दान)	**अहं शून्यः**	- मैं शून्य होगया हूँ,
प्रीत्या न एव	- प्रेमपूर्वक नहीं ही	**इह प्राणान्-त्यक्तुं**	- यहां प्राण-त्याग करने
गृह्णन्ति	- ग्रहण करते	**आगतः**	- आया हूँ ॥ २८ ॥

धिग्जीवितं प्रजाहीनं धिग्गृहं च प्रजां विना ।
धिग्धनं चानपत्यस्य धिक्कुलं संततिं विना ॥ २९ ॥

धिक् जीवितं प्रजाहीनं धिक् गृहं च प्रजां विना धिक् धनं च अनपत्यस्यं धिक् कुलं संततिं विना ॥ २९ ॥

प्रजाहीनं	- पुत्र रहित	**अनपत्यस्य**	- सन्तानहीनके
जीवितं धिक्	- जीवनको धिक्कार,	**धनं च धिक्**	- धनको भी धिक्कार
प्रजां विना	- पुत्रके बिना	**सन्ततिं विना**	- सन्तानके बिना
गृहं च धिक्	- घरको भी धिक्कार,	**कुलं धिक्**	- कुलको धिक्कार ॥२९॥

पाल्यते या मया धेनुः सा वन्ध्या सर्वथा भवेत् ।
यो मया रोपितो वृक्षः सोऽपि वन्ध्यत्वमाश्रयेत् ॥ ३० ॥

पाल्यते या मया धेनुः सा वन्ध्या सर्वथा भवेत् यः मया रोपितः वृक्षः सः अपि वन्ध्यत्वं आश्रयेत् ॥ ३० ॥

या मया	- जो मेरे द्वारा	**यः मया**	- जो मेरे द्वारा
धेनुः पाल्यते	- गाय पाली जाती है	**वृक्षः रोपितः**	- वृक्ष लगाया जाता है,
सा सर्वथा	- वह सर्वथा	**सः अपि-**	- वह भी वन्ध्यापनको
वन्ध्या भवेत्	- बांझ होजाती है.	**वन्ध्यत्वं**	
		आश्रयेत्	- अपना लेता है ॥३०॥

यत्फलं मद्गृहायातं तच्च शीघ्रं विनश्यति ।
निर्भाग्यस्यानपत्यस्य किमतो जीवितेन मे ॥ ३१ ॥

यत् फलं मत् गृह आयातं तत् च शीघ्रं विनश्यति निर्भाग्यस्य अनपत्यस्य किं अतः जीवितेन मे ॥ ३१ ॥

मत् गृह	- मेरे घर	**अतः निर्भाग्यस्य**	- अतः अभागे
यत् फलं-	- जो फल आजाता है,	**अनपत्यस्य**	- सन्तानहीन
आयातं		**मे जीवितेन किं**	- मेरे जीवनसे क्या
तत् च शीघ्रं	- वह भी शीघ्र		लाभ ॥ ३१ ॥
विनश्यति	- नष्ट होजाता है,		

सूत उवाच-

इत्युक्त्वा स रुरोदोच्चैस्तत्पार्श्वं दुःखपीडितः ।
तदा तस्य यतेश्चित्ते करुणाभूद्गरीयसी ॥ ३२ ॥

इति उक्त्वा स रुरोद उच्चैः तत् पार्श्वं दुःख पीडितः तदा तस्य यतेः चित्ते करुणा अभूत् गरीयसी ॥ ३२ ॥

इति उक्त्वा स	- ऐसा कहकर वह	**तदा तस्य यतेः**	- तब उस सन्यासीके
तत् पार्श्वं	- उन (सन्यासी) की बगलमें	**चित्ते गरीयसी**	- चित्तमें महान्
		करुणा अभूत्	- दया उत्पन्न हुई
उच्चैः रुरोद	- उच्च स्वरसे रोने लगा,		॥ ३२ ॥

तद्भालाक्षरमालां च वाचयामास योगवान् ।
सर्वं ज्ञात्वा यतिः पश्चाद्विप्रमूचे सविस्तरम् ॥ ३३ ॥

तत् भाल अक्षर मालां च वाचयामास योगवान् सर्वं ज्ञात्वा यतिः पश्चात् विप्रं ऊचे सविस्तरम् ॥ ३३ ॥

---

१. यह उवाच गीता प्रेसमें नहीं है ।

योगवान्	- योगसम्पन्न (उन यति) ने	**सर्वं ज्ञात्वा**	- सब कुछ जानकर
तत् भाल	- उसके ललाटकी	**यतिः पश्चात्**	- उस सन्यासीने फिर
अक्षर मालां च	- अक्षर माला (भाग्यलेख) को भी	**सविस्तरं**	- विस्तार पूर्वक
वाचयामास	- पढ़ा (इस प्रकार)	**विप्रं ऊचे**	- ब्राह्मणसे कहा ॥ ३३ ॥

यतिरुवाच-

मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं बलिष्ठा कर्मणो गतिः ।
विवेकं तु समासाद्य त्यज संसारवासनाम् ॥ ३४ ॥

मुञ्च अज्ञानं प्रजा रूपं बलिष्ठा कर्मणः गतिः विवेकं तु सम आसाद्य त्यज संसार वासनाम् ॥ ३४ ॥

प्रजा रूपं	- सन्तान (इच्छा) स्वरूप	**विवेकं तु**	- विवेकको तो
अज्ञानं मुञ्च	- अज्ञानको छोड़ दो,	**सम आसाद्य**	- भली प्रकार अपनाकर
कर्मणः गतिः	- कर्मोंकी गति	**संसार**	- संसारकी
बलिष्ठा	- बलवान है,	**वासनां त्यज**	- वासना त्याग दो ॥३४॥

शृणु विप्र मया तेऽद्य प्रारब्धं तु विलोकितम् ।
सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च ॥ ३५ ॥

शृणु विप्र मया ते अद्य प्रारब्धं तु विलोकितं सप्तजन्म अवधि तव पुत्रः न एव न एव च ॥ ३५ ॥

विप्र शृणु	- ब्राह्मण सुनो !	**सप्त जन्म अवधि**	- सात जन्मों तक
अद्य मया	- इस समय मैंने	**तव पुत्रः**	- तुम्हारे पुत्र
ते प्रारब्धं तु	- तुम्हारे प्रारब्धको भी	**न एव च न एव**	- नहीं ही है, नहीं ही है ॥३५॥
विलोकितं	- देख लिया है,		

संततेः सगरो दुःखमवापांगः पुरा तथा ।
रे मुञ्चाद्य कुटुम्बाशां संन्यासे सर्वथा सुखम् ।। ३६ ।।

संततेः सगरः दुःखं अवाप अंगः पुरा तथा रे मुञ्च अद्य कुटुम्ब आशां सन्यासे सर्वथा सुखम् ।। ३६ ।।

संततेः सगरः - पुत्रसे राजा सगरने
तथा अंगः पुरा - तथा राजा अंगने पहिले
दुःखं अवाप - दुःख पाया है,
रे अद्य-कुटुम्ब - अरे, आज कुटुम्बी होनेकी
आशां - आशा
मुञ्च - त्याग दे,
सन्यासे - सन्यासी होनेमें
सर्वथा सुखं - सर्वथा सुख है ।।३६।।

ब्राह्मण उवाच-

विवेकेन भवेत्किं मे पुत्रं देहि बलादपि ।
नो चेत्त्यजाम्यहं प्राणांस्त्वदग्रे शोकमूर्छितः ।। ३७ ।।

विवेकेन भवेत् किं मे पुत्रं देहि बलात् अपि नो चेत् त्यजामि अहं प्राणान् त्वत् अग्रे शोक मूर्छितः ।। ३७ ।।

विवेकेन - विवेकसे
मे किं भवेत् - मुझे क्या (लाभ) होगा,
बलात् अपि - बलपूर्वक भी
पुत्रं देहि - पुत्र दीजिए
नो चेत् त्वत् - नहीं तो आपके
अग्रे आगे ही
शोक मूर्छितः - शोकसे मूर्छित होकर
प्राणान् त्यजामि -प्राण छोड़ दूँगा ।।३७।।

पुत्रादिसुखहीनोऽयं संन्यासः शुष्क एव हि ।
गृहस्थः सरसो लोके पुत्रपौत्रसमन्वितः ।। ३८ ।।

पुत्र आदि सुख हीनः अयं सन्यासः शुष्क एव हि गृहस्थः सरसः लोके पुत्र पौत्र समन्वितः ।। ३८ ।।

हि पुत्र आदि	- क्योंकि पुत्र आदिके	**पुत्र पौत्र-**	- पुत्र-पौत्रोंसे युक्त
सुख हीनः	- सुखसे रहित	**समन्वितः**	
अयं सन्यासः	- यह सन्यास	**लोके गृहस्थः**	- संसारमें गृहस्थ धर्म
शुष्क एव	- शुष्क ही है,	**सरसः**	- सरस है ॥ ३८ ॥

सूत उवाच-१

इति विप्राग्रहं दृष्ट्वा प्राब्रवीत्स तपोधनः ।
चित्रकेतुर्गतः कष्टं विधिलेखविमार्जनात् ॥ ३९ ॥

इति विप्र आग्रहं दृष्ट्वा प्राब्रवीत् स तपोधनः ।

इति विप्र-	- इस प्रकार ब्राह्मणका	**तपोधनः**	- तपोधनने
आग्रहं	आग्रह	**प्राब्रवीत्**	- कहा ।
दृष्ट्वा स	- देखकर उन		

यातिरुवाच-२

चित्रकेतुः गतः कष्टं विधि लेख विमार्जनात् ॥ ३९ ॥

विधि लेख	- विधाताका लिखा	**चित्रकेतुः**	- राजा चित्रकेतु
विमार्जनात्	- विशेष रूपसे मिटानेसे	**कष्टं गतः**	- संकटमें पड़ा था ॥३९॥

न यास्यसि सुखं पुत्राद्यथा दैवहतोद्यमः ।
अतो हठेन युक्तोऽसि ह्यर्थिनं किं वदाम्यहम् ॥ ४० ॥

न यास्यसि सुखं पुत्रात् यथा दैवहत उद्यमः अतः हठेन युक्तः असि हि अर्थिनं किं वदामि अहम् ॥ ४० ॥

१-२. यह उवाच गीता प्रेसमें नहीं है ।

यथा दैवहत - जैसे भाग्यके मारेका
उद्यमः - उद्योग होता है,
पुत्रात् सुखं - पुत्रके द्वारा सुख
न यास्यसि - (तुम) नहीं पाओगे,
अतः हठेन - फिर भी हठ
युक्तः असि - युक्त हो
अर्थिनं - अपना प्रयोजन ही चाहने वालेसे
अहं किं वदामि - मैं क्या कहूँ ॥४०॥

सूत उवाच-१

तस्याग्रहं समालोक्य फलमेकं स दत्तवान् ।
इदं भक्षय पत्नया त्वं ततः पुत्रो भविष्यति ॥ ४१ ॥

तस्य आग्रहं सम आलोक्य फलं एकं स दत्तवान् ।

तस्य सम-आग्रहं - उसका दृढ़ आग्रह
आलोक्य - देखकर
स एकं फलं - उन्होंने एक फल
दत्तवान् - दिया ।

यतिरुवाच-२

इदं भक्षय पत्न्या त्वं ततः पुत्रः भविष्यति ॥ ४१ ॥

त्वं इदं - तुम इसको
पत्न्या भक्षय - पत्नीको खिला दो,
ततः पुत्रः - इससे पुत्र
भविष्यति - होगा ॥ ४१ ॥

सत्यं शौचं दया दानमेकभक्तं तु भोजनम् ।
वर्षावधि स्त्रिया कार्यं तेन पुत्रोऽतिनिर्मलः ॥ ४२ ॥

सत्यं शौचं दया दानं एक भक्तं तु भोजनं वर्ष अवधि स्त्रिया कार्यं तेन पुत्रः अति निर्मलः ॥ ४२ ॥

१-२. यह उवाच गीता प्रेसमें नहीं है ।

सत्यं शौचं - सच बोलना, पवित्र रहना,
दया दानं - दया और दान करना,
भोजनं तु - भोजन तो
एक भक्तं - एक ही बार करना,
वर्ष अवधि - एक वर्ष तक
स्त्रिया कार्यं - स्त्रीको करना चाहिए,
तेन पुत्रः - इससे पुत्र
अति निर्मलः - अत्यन्त निर्मल होगा
॥ ४२ ॥

सूत उवाच-

एवमुक्त्वा ययौ योगी विप्रस्तु गृहमागतः ।
पत्न्याः पाणौ फलं दत्त्वा स्वयं यातस्तु कुत्रचित् ॥ ४३ ॥

एवं उक्त्वा ययौ योगी विप्रः तु गृहं आगतः पत्न्याः पाणौ फलं दत्त्वा स्वयं यातः तु कुत्रचित् ॥ ४३ ॥

एवं उक्त्वा - इस प्रकार कहकर
योगी ययौ - (वे) योगी चले गये,
विप्रः तु - ब्राह्मणने तो
गृहं आगतः - घर आकर
पत्न्याः पाणौ - पत्नीके हाथमें
फलं दत्त्वा स्वयं - फल देकर स्वयं
तु कुत्रचित्- - तो कहीं चला गया
यातः ॥ ४३ ॥

तरुणी कुटिला तस्य सख्यग्रे च रुरोद ह ।
अहो चिन्ता ममोत्पन्ना फलं चाहं न भक्षये ॥ ४४ ॥

तरुणी कुटिला तस्य सखि अग्रे च रुरोद ह अहो चिन्ता मम उत्पन्ना फलं च अहं न भक्षये ॥ ४४ ॥

तस्य तरुणी- - उसकी पत्नी
कुटिला कुटिल थी
च सखि अग्रे - वह सखीके सामने
रुरोद ह - रोने ही लगी
अहो मम - 'अहो, मुझे
चिन्ता उत्पन्ना - चिन्ता उत्पन्न होगयी,
अहं फलं च - मैं फल भी
न भक्षये - नहीं खाऊँगी ॥ ४४ ॥

ये उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

फलभक्षेण गर्भः स्याद्गर्भेणोदरवृद्धिता ।
स्वल्पभक्षं ततोऽशक्तिर्गृहकार्यं कथं भवेत् ॥ ४५ ॥

फल भक्षेण गर्भः स्यात् गर्भेण उदर वृद्धिता स्वल्प भक्षं ततः अशक्तिः गृहकार्यं कथं भवेत् ॥ ४५ ॥

फल भक्षेण	-	फल खानेसे	**ततः स्वल्पभक्षं**	-	उससे कम खाया जानेसे
गर्भः स्यात्	-	गर्भ हो जायगा,	**अशक्तिः**	-	दुर्बलता आजायगी,
गर्भेण	-	गर्भसे	**गृहकार्यं**	-	तब घरका काम
उदरवृद्धिता	-	पेट बढ़ेगा,	**कथं भवेत्**	-	कैसे होगा ॥ ४५ ॥

दैवाद्घाटी व्रजेद्ग्रामे पलायेद्गर्भिणी कथम् ।
शुकवन्निवसेद्गर्भस्तं कुक्षेः कथमुत्सृजेत् ॥ ४६ ॥

दैवात् घाटी व्रजेत् ग्रामे पलायेत् गर्भिणी कथं शुकवत् निवसेत् गर्भः तं कुक्षे कथं उत्सृजेत् ॥ ४६ ॥

दैवात् ग्रामे	-	संयोगवश गांवमें	**गर्भः कुक्षे**	-	गर्भ कोखमें
घाटी व्रजेत्	-	डाकू आ जायं तो	**शुकवत्**	-	शुकदेवकी भांति
गर्भिणी कथं	-	गर्भवती कैसे	**निवसेत्**	-	(दीर्घकालतक) निवास करने लगे तो
पलायेत्	-	भागे,	**तं कथं-उत्सृजेत्**	-	उसे कैसे बाहर निकाले ॥ ४६ ॥

तिर्यक्चेदागतो गर्भस्तदा मे मरणं भवेत् ।
प्रसूतौ दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सहे ॥ ४७ ॥

तिर्यक् चेत् आगतः गर्भः तदा मे मरणं भवेत् प्रसूतौ दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सहे ॥ ४७ ॥

चेत् गर्भः	- यदि गर्भ	**प्रसूतौ**	- प्रसव होनेमें
तिर्यक् आगतः	- तिरछा होगया	**दारुणं दुःखं**	- भयानक कष्ट होता है
तदामे मरणं-	- तब तो मेरी मृत्युही	**सुकुमारी**	- (मैं) सुकुमारी हूँ,
भवेत्	हो जायगी,	**कथं सहे**	- कैसे सहूंगी ॥ ४७ ॥

मन्दायां मयि सर्वस्वं ननान्दा संहरेत्तदा ।
सत्यशौचादिनियमो दुराराध्यः स दृश्यते ॥ ४८ ॥

मन्दायां मयि सर्वस्वं ननान्दा संहरेत् तदा सत्य शौच आदि नियमः दुराराध्यः स दृश्यते ॥ ४८ ॥

मयि मन्दायां	- मैं दुर्बल पड़ जाऊँगी	**सत्य शौच-**	- सच बोलना, पवित्रता
तदा ननान्दा	- तब ननद	**आदि**	आदि
सर्वस्वं	- (मेरा) सब कुछ	**स नियमः**	- वे नियम भी
संहरेत्	- समेट ले जायगी,	**दुराराध्यः**	- करनेमें बहुत कठिन
		दृश्यते	- दीखते हैं ॥ ४८ ॥

लालने पालने दुःखं प्रसूतायाश्च वर्तते ।
वन्ध्या वा विधवा नारी सुखिनी चेति मे मतिः ॥ ४९ ॥

लालने पालने दुःखं प्रसूतायाः च वर्तते वन्ध्या वा विधवा नारी सुखिनी च इति मे मतिः ॥ ४९ ॥

प्रसूतायाः च	- प्रसूताको ही	**वन्ध्या वा विधवा**	- बन्ध्या अथवा विधवा
लालने पालने	- (शिशुके) लालन-पालनका	**नारी सुखिनी**	- स्त्री सुखी है,
दुःखं वर्तते	- दुःख होता है,	**इति मे मतिः**	- ऐसा मैं समझती हूँ' ॥ ४९ ॥

एवं कुतर्कयोगेन तत्फलं नैव भक्षितम् ।
पत्या पृष्टं फलं भुक्तं भुक्तं चेति तयेरितम् ॥ ५० ॥

एवं कुतर्क योगेन तत् फलं न एव भक्षितं पत्या पृष्टं फलं भुक्तं भुक्तं च इति तया ईरितम् ॥ ५० ॥

एवं कुर्तक-	- इस प्रकार कुतर्कके	**पत्या पृष्टं**	- पतिने पूछा-
योगेन	संयोगसे	**फलं भुक्तं**	- 'फल खा लिया ?'
तत् फलं	- उस फलको (उसने)	**भुक्तं च**	- 'खा ही लिया'
न एव भक्षितं	- नहीं ही खाया,	**इति तया-**	- ऐसा उसने कह दिया
		ईरितं	॥ ५० ॥

एकदा भगिनी तस्यास्तद्गृहं स्वेच्छयाऽऽगता ।
तदग्रे कथितं सर्वं चिन्तेयं महती हि मे ॥ ५१ ॥

एकदा भगिनी तस्याः तत् गृहं स्वेच्छया आगता तत् अग्रे कथितं सर्वं चिन्ता इयं महती हि मे ॥ ५१ ॥

एकदा तस्याः	- एक बार उसकी	**तस्य अग्रे**	- उसके आगे
भगिनी	- बहिन	**सर्वं कथितं**	- सब बतलाकर (बोली)
स्वेच्छया	- अपनी इच्छासे	**हि इयं मे**	- 'क्योंकि यह मुझे
तत् गृहं-	- उसके घर आगयी,	**महती चिन्ता**	- बड़ी भारी चिन्ता है
आगता			॥ ५१ ॥

दुर्बला तेन दुःखेन ह्यनुजे करवाणि किम् ।
साब्रवीन्मम गर्भोऽस्ति तं दास्यामि प्रसूतितः ॥ ५२ ॥

दुर्बला तेन दुःखेन हि अनुजे करवाणि किं सा ब्रवीत् मम गर्भः अस्ति तं दास्यामि प्रसूतितः ॥ ५२ ॥

अनुजे	- छोटी बहिन !	**सा ब्रवीत्**	- वह बोली
तेन दुःखेन हि	- उस दुःखसे ही	**मम गर्भः अस्ति**	- 'मेरे गर्भ है,
दुर्बला	- (मैं) दुबली होगयी हूँ	**प्रसूतितः**	- प्रसव होनेपर
किं करवाणि	- क्या (उपाय) करूँ ?'	**तं दास्यामि**	- उसे दे दूंगी ॥५२॥

तावत्कालं सगर्भेव गुप्ता तिष्ठ गृहे सुखम् ।
वित्तं त्वं मत्पतेर्यच्छ स ते दास्यति बालकम् ॥ ५३ ॥

तावत् कालं सगर्भा इव गुप्ता तिष्ठ गृहे सुखं वित्तं त्वं मत् पतेः यच्छ स ते दास्यति बालकम् ॥ ५३ ॥

तावत् कालं	- उतने समयतक	**मत् पतेः**	- मेरे पतिको
सगर्भा इव	- गर्भवतीके समान	**त्वं वित्तं यच्छ**	- तुम धन दे दो,
गुप्ता गृहे	- छिपकर घरमें	**स ते बालकं**	- वह तुम्हें बालक
सुखं तिष्ठ	- सुखपूर्वक रहो,	**दास्यति**	- दे देगा ॥ ५३ ॥

षाण्मासिको मृतो बाल इति लोको वदिष्यति ।
तं बालं पोषयिष्यामि नित्यमागत्य ते गृहे ॥ ५४ ॥

षाण्मासिकः मृतः बाल इति लोकः वदिष्यति तं बालं पोषयिष्यामि नित्यं आगत्य ते गृहे ॥ ५४ ॥

षाण्मासिकः	- छः महीनेका होकर	**नित्यं ते गृहे**	- प्रतिदिन तुम्हारे घर
बाल मृतः	- (इसका) बालक मर गया	**आगत्य**	- आकर
लोकः इति	- लोग ऐसा	**तं बालं**	- उस बालकका (मैं)
वदिष्यति	- कहेंगे,	**पोषयिष्यामि**	- पोषण करूँगी ॥ ५४ ॥

फलमर्पय धेन्वै त्वं परीक्षार्थं तु साम्प्रतम् ।
तत्तदाचरितं सर्वं तथैव स्त्रीस्वभावतः ॥ ५५ ॥

फलं अर्पय धेन्वै त्वं परीक्षा अर्थं तु साम्प्रतं तत् तत् आचरितं सर्वं तथा एव स्त्री स्वभावतः ॥ ५५ ॥

साम्प्रतं त्वं तु	- इस समय तुम तो	**स्त्री स्वभावतः**	- स्त्री स्वभावके कारण
परीक्षा अर्थं	- परीक्षाके लिए	**तत् तत् सर्वं**	- वह वह सब
धेन्वै फलं-	- गौ को (वह)	**तथा एव-**	- (उसने) वैसा ही किया
अर्पय	फल दे दो ।'	**आचरितं**	॥ ५५ ॥

अथ कालेन सा नारी प्रसूता बालकं तदा ।
आनीय जनको बालं रहस्ये धुन्धुलीं ददौ ।। ५६ ।।

अथ कालेन सा नारी प्रसूता बालकं तदा आनीय जनकः बालं रहस्ये धुन्धुलीं ददौ ।। ५६ ।।

अथ कालेन	- फिर समय पर	**बालं आनीय**	- बालकको लाकर
सा नारी बालकं	- उस स्त्रीने बालकको	**रहस्ये**	- एकान्तमें
प्रसूता	- जन्म दिया,	**धुन्धुलीं ददौ**	- धुन्धुली को दे दिया
तदा जनकः	- तब उसके पिताने		।। ५६ ।।

तया च कथितं भर्त्रे प्रसूतः सुखमर्भकः ।
लोकस्य सुखमुत्पन्नमात्मदेवप्रजोदयात् ।। ५७ ।।

तया च कथितं भर्त्रे प्रसूतं सुखं अर्भकः लोकस्य सुखं उत्पन्नं आत्मदेव प्रजा उदयात् ।। ५७ ।।

तया च	- उस (धुन्धुली) ने भी	**आत्मदेव**	- आत्मदेवके
भर्त्रे कथितं	- पतिसे कह दिया	**प्रजा उदयात्**	- पुत्र उत्पन्न होनेसे
अर्भकः-	- बालक सुखपूर्वक	**लोकस्य**	- लोगोंको
सुखं प्रसूतं	उत्पन्न होगया,	**सुखं उत्पन्नं**	- आनन्द हुआ ।। ५७ ।।

ददौ दानं द्विजातिभ्यो जातकर्म विधाय च ।
गीतवादित्रघोषोऽभूत्तद्द्वारे मंगलं बहु ।। ५८ ।।

ददौ दानं द्विजातिभ्यः जातकर्म विधाय च गीत वादित्र घोषः अभूत् तत् द्वारे मंगलं बहु ।। ५८ ।।

जातकर्म	- जातकर्म	**तत् द्वारे**	- उनके द्वारपर
विधाय च	- करके ही	**बहु मंगलं**	- बहुत मंगलमय
द्वि जातिभ्यः	- ब्राह्मणोंको	**गीत वादित्र**	- गाने-बजानेकी
दानं ददौ	- दान दिया,	**घोषः अभूत्**	- ध्वनि हुई ।। ५८ ।।

भर्तुरग्रेऽब्रवीद्वाक्यं स्तन्यं नास्ति कुचे मम ।
अन्यस्तन्येन निर्दुग्धा कथं पुष्णामि बालकम् ।। ५९ ।।

भर्तुः अग्रे अब्रवीत् वाक्यं स्तन्यं न अस्ति कुचे मम अन्य स्तन्येन निर्दुग्धा कथं पुष्णामि बालकम् ।। ५९ ।।

भर्तुः अग्रे	- (धुन्धुलीने) पतिके सामने	**निर्दुग्धा**	- दूधहीन (मैं)
वाक्यं अब्रवीत्	- यह बात कही	**अन्य स्तन्येन**	- दूसरे (गाय आदि) के दूधसे
मम कुचे	- 'मेरी छातीमें	**बालकं कथं**	- बालक कैसे
स्तन्यं न-अस्ति	- दूध नहीं है,	**पुष्णामि**	- पोषण करूँगी ।। ५९ ।।

मत्स्वसुश्च प्रसूताया मृतो बालस्तु वर्तते ।
तामाकार्य गृहे रक्ष सा तेऽर्भं पोषयिष्यति ।। ६० ।।

मत् स्वसुः च प्रसूताया मृतः बालः तु वर्तते तां आकार्य गृहे रक्ष सा ते अर्भं पोषयिष्यति ।। ६० ।।

मत् स्वसुः च	- मेरी बहिनको तो	**तां आकार्य**	- उसे बुलाकर
प्रसूताया	- प्रसव होनेपर	**गृहे रक्ष**	- घरमें रखिये,
बालः मृतः-वर्तते	- बालक मर गया है,	**सा ते अर्भं**	- वह आपके बालक का
		पोषयिष्यति	- पोषण करेगी ।। ६० ।।

पतिना तत्कृतं सर्वं पुत्ररक्षणहेतवे ।
पुत्रस्य धुन्धुकारीति नाम मात्रा प्रतिष्ठितम् ।। ६१ ।।

पतिना तत् कृतं सर्वं पुत्र रक्षण हेतवे पुत्रस्य धुन्धुकारी इति नाम मात्रा प्रतिष्ठितम् ।। ६१ ।।

पुत्र रक्षण	- पुत्रकी रक्षाके	**पुत्रस्य**	- पुत्रका
हेतवे पतिना	- लिए पतिने	**धुन्धुकारी**	- धुन्धुकारी
तत् सर्वं कृतं	- वह सब किया,	**इति नाम**	- यह नाम
		मात्रा प्रतिष्ठितं	- माताने रखा ।। ६१ ।।

त्रिमासे निर्गते चाथ सा धेनुः सुषुवेऽर्भकम् ।
सर्वांगसुन्दरं दिव्यं निर्मलं कनकप्रभम् ॥ ६२ ॥

त्रिमासे निर्गते च अथ सा धेनुः सुषुवे अर्भकं सर्वांग सुन्दरं दिव्यं निर्मलं कनक प्रभम् ॥ ६२ ॥

अथ त्रिमासे	- फिर तीन महीना	**दिव्यं निर्मलं**	- दिव्य, निर्मल,
निर्गते च	- निकल जानेपर तो	**कनक प्रभं**	- स्वर्णके समान कान्तिवाले
सा धेनुः	- उस गायने	**अर्भकं सुषुवे**	- बालकको जन्म दिया
सर्वांग सुन्दरं	- सर्वांग सुन्दर		॥ ६२ ॥

दृष्ट्वा प्रसन्नो विप्रस्तु संस्कारान् स्वयमादधे ।
मत्वाऽऽश्चर्यं जनाः सर्वे दिदृक्षार्थं समागताः ॥ ६३ ॥

दृष्ट्वा प्रसन्नः विप्रः तु संस्कारान् स्वयं आदधे मत्त्वा आश्चर्यं जनाः सर्वे दिदृक्षा अर्थं सम आगताः ॥ ६३ ॥

दृष्ट्वा विप्रः तु	- (उसे) देखकर ब्राह्मणतो	**आश्चर्यं मत्त्वा**	- इसे आश्चर्य मानकर
प्रसन्नः	- प्रसन्न होगया,	**सर्वे जनाः**	- सब लोग
संस्कारान्	- (उसके जातकर्मादि) संस्कार	**दिदृक्षा अर्थं**	- देखनेके लिए
		समागताः	- सब ओरसे आये
स्वयं आदधे	- स्वयं करने लगा,		॥ ६३ ॥

भाग्योदयोऽधुना जात आत्मदेवस्य पश्यत ।
धेन्वा बालः प्रसूतस्तु देवरूपीति कौतुकम् ॥ ६४ ॥

भाग्य उदयः अधुना जातः आत्मदेवस्य पश्यत धेन्वा बालः प्रसूतः तु देवरूपी इति कौतुकम् ॥ ६४ ॥

पश्यत	- (कहने लगे) 'देखो,	**इति कौतुकं**	- यह आश्चर्य है कि
आत्म देवस्य	- आत्मदेवका	**धेन्वा प्रसूतः**	- गायसे उत्पन्न हुआ
अधुना	- इस समय	**बालः तु**	- बालक तो
भाग्यउदयः-	- भाग्योदय हुआ है,	**देवरूपी**	- देवताओंके समान रूपवान
जातः			है' ॥ ६४ ॥

न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापि विधियोगतः ।
गोकर्णं तं सुतं दृष्ट्वा गोकर्णं नाम चाकरोत् ॥ ६५ ॥

न ज्ञातं तत् रहस्यं तु केन अपि विधि योगतः गोकर्णं तं सुतं दृष्ट्वा गोकर्णं नाम च अकरोत् ॥ ६५ ॥

विधि योगतः	- संयोगवश	**तं सुतं-**	- उस पुत्रको गायके समान
तत् रहस्यं तु	- उसका रहस्य तो	**गोकर्णं दृष्ट्वा**	कानों वाला देखकर
केन अपि न-	- किसीने भी नहीं जाना,	**गोकर्णं नाम च**	- गोकर्ण नाम ही
ज्ञातं		**अकरोत्**	- रख दिया ॥ ६५ ॥

कियत्कालेन तौ जातौ तरुणौ तनयावुभौ ।
गोकर्णः पण्डितो ज्ञानी धुन्धकारी महाखलः ॥ ६६ ॥

कियत् कालेन तौ जातौ तरुणौ तनयाः उभौ गोकर्णः पण्डितः ज्ञानी धुन्धुकारी महाखलः ॥ ६६ ॥

कियत् कालेन	- कुछ समयमें	**गोकर्णः**	- गोकर्ण
तौ उभौ तनयाः	- वे दोनों (पुत्र)	**ज्ञानी पण्डितः**	- ज्ञानी विद्वान हुए,
तरुणौ जातौ	- तरुण हुए (उनमें)	**धुन्धुकारी**	- और धुन्धुकारी
		महाखलः	- भारी दुष्ट हुआ ॥६६॥

स्नानशौचक्रियाहीनो दुर्भक्षी क्रोधवर्धितः ।
दुष्परिग्रहकर्ता च शवहस्तेन भोजनम् ॥ ६७ ॥

स्नान शौच क्रिया हीनः दुर्भक्षी क्रोध वर्धितः दुष्परिग्रह कर्ता च शव हस्तेन भोजनम् ॥ ६७ ॥

स्नान शौच	- स्नान तथा पवित्रताकी	**च दुष्परिग्रह**	- तथा बुरी वस्तुयें संग्रह
क्रियाहीनः	- क्रियाओंसे रहित,	**कर्ता**	करने वाला,
दुर्भक्षी	- बुरे पदार्थ खाने वाला,	**शव हस्तेन**	- मुर्देके हाथसे (छुलाया)
क्रोध वर्धितः	- बहुत बढ़े क्रोध वाला,	**भोजनं**	- भोजन (भी) कर लेने वाला था ॥ ६७ ॥

चौरः सर्वजनद्वेषी परवेश्मप्रदीपकः ।
लालनायार्भकान्धृत्वा सद्यः कूपे न्यपातयत् ॥ ६८ ॥

चौरः सर्वजन द्वेषी परवेश्म प्रदीपकः लालनाय अर्भकान् धृत्वा सद्यः कूपे न्यपातयत् ॥ ६९ ॥

चौरः	- चोर था,	**अर्भकान्**	- शिशुओंको
सर्वजन द्वेषी	- सभी लोगोंसे द्वेष रखने वाला,	**लालनायधृत्वा**	- दुलार करनेके लिए उठाकर
परवेश्म	- दूसरेके घरको	**सद्यः कूपे**	- तुरन्त कुएंमें
प्रदीपकः	- जला देने वाला था,	**न्यपातयत्**	- गिरा देता था ॥ ६८ ॥

हिंसकः शस्त्रधारी च दीनान्धानां प्रपीडकः ।
चाण्डालाभिरतो नित्यं पाशहस्तः श्वसंगतः ॥ ६९ ॥

हिंसकः शस्त्रधारी च दीन अन्धानां प्रपीडकः चाण्डाल अभिरतः नित्यं पाशहस्तः श्वसंगतः ॥ ६९ ॥

हिंसकः	- हत्यारा,	**नित्यं श्वसंगतः**	- सदा कुत्तोंके साथ
च शस्त्रधारी	- तथा शस्त्र रखनेवाला,	**पाशहस्तः**	- हाथमें फन्दा लिए
दीन अन्धानां	- दीन-दुखियों तथा अन्धोंको	**चाण्डाल-**	- चाण्डालोंसे प्रीति
प्रपीडकः	- उत्पीड़ित करने वाला	**अभिरतः**	रखता था ॥ ६९ ॥

तेन वेश्याकुसंगेन पित्र्यं वित्तं तु नाशितम् ।
एकदा पितरौ ताड्य पात्राणि स्वयमाहरत् ॥ ७० ॥

तेन वेश्या कुसंगेन पित्र्यं वित्तं तु नाशितम् एकदा पितरौ ताड्य पात्राणि स्वयं आहरत् ॥ ७० ॥

तेन वेश्या-	- उसने वेश्याओंकी	**एकदा पितरौ-**	- एक बार माता-पिताको
कुसंगेन	बुरी आसक्तिमें पड़कर	**ताड्य**	पीटकर
पित्र्यं वित्तं तु	- पिताका धन तो	**स्वयं पात्राणि**	- स्वयं (घरके) बर्तन
नाशितं	- नष्ट कर दिया,	**आहरत्**	- छीन लिए ॥ ७० ॥

तत्पिता कृपणः प्रोच्चैर्धनहीनो रुरोद ह ।
वन्ध्यत्वं तु समीचीनं कुपुत्रो दुःखदायकः ॥ ७१ ॥

तत् पिता कृपणः प्रोच्चैः धनहीनः रुरोद ह वन्ध्यत्वं तु समीचीनं कुपुत्रः दुःखदायकः ॥ ७१ ॥

तत् पिता	- उसका पिता	**वन्ध्यत्वं तु**	- '(इसकी माँका) बन्ध्या रहना तो
धनहीनः	- निर्धन होकर	**समीचीनः**	- उपयुक्त था,
कृपणः प्रोच्चैः	- दुःखी होकर उच्चस्वरसे	**कुपुत्रः-**	- कुपुत्र दुःख देने वाला
रुरोद ह	- विलाप ही करने लगा	**दुःखदायकः**	हुआ ॥ ७१ ॥

क्व तिष्ठामि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहयेत् ।
प्राणांस्त्यजामि दुःखेन हा कष्टं मम संस्थितम् ॥ ७२ ॥

क्व तिष्ठामि क्व गच्छामि कः मे दुःखं व्यपोहयेत् प्राणान् त्यजामि दुःखेन हा कष्टं मम संस्थितम् ॥ ७२ ॥

क्व तिष्ठामि	-	कहां रहूँ,	**दुःखेन-**	-	इस दुःखसे
क्व गच्छामि	-	कहां चला जाऊँ,	**प्राणान् त्यजामि**		प्राण-त्याग दूंगा,
मे दुःखं	-	मेरे दुःखको	**हा मम कष्टं**	-	हाय, मुझपर (भारी)
कः व्यपोहयेत्	-	कौन दूर करेगा,			कष्ट
			संस्थितं	-	आगया' ॥ ७२ ॥

तदानीं तु समागत्य गोकर्णो ज्ञानसंयुतः ।
बोधयामास जनकं वैराग्यं परिदर्शयन् ॥ ७३ ॥

तदानीं तु सम आगत्य गोकर्णः ज्ञान संयुतः बोधयामास जनकं वैराग्यं परिदर्शयन् ॥ ७३ ॥

तदानीं तु	-	उस समय तो	**वैराग्यं परिदर्शयन्**	-	वैराग्यका
ज्ञान संयुतः	-	ज्ञानवान			दिग्दर्शन कराते हुए
गोकर्णः	-	गोकर्ण	**जनकं बोधयामास**	-	पिताको समझाने
समआगत्य	-	समीप आकर			लगे ॥ ७३ ॥

गोकर्ण उवाच-१

असारः खलु संसारो दुःखरूपी विमोहकः ।
सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवाञ्ज्वलतेऽनिशम् ॥ ७४ ॥

असारः खलु संसारः दुःखरूपी विमोहकः सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवान् ज्वलते अनिशम् ॥ ७४ ॥

खलु संसारः	-	अरे, संसार	**सुतः कस्य**	-	पुत्र किसके ?
असारः	-	सारहीन है,	**धनं कस्य**	-	धन किसका ?
दुःखरूपी	-	दुःख स्वरूप और	**स्नेहवान्**	-	(यह तो) स्नेह करने वाला
विमोहकः	-	मोहमें डालने वाला है,	**अनिशं-**	-	रात-दिन जलता रहता
			ज्वलते		है ॥ ७४ ॥

१. ये उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

न चेन्द्रस्य सुखं किंचिन्न सुखं चक्रवर्तिनः ।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ॥ ७५ ॥

न च इन्द्रस्य सुखं किञ्चित् न सुखं चक्रवर्तिनः सुखं अस्ति विरक्तस्य मुनेः एकान्त जीविनः ॥ ७५ ॥

इन्द्रस्य च	- इन्द्रको भी	**सुखं**	- सुख है,
किञ्चित्-	- थोड़ा भी सुख नहीं है,	**विरक्तस्य**	- विरक्त
सुखं न		**एकान्त जीविनः**	- एकान्तमें जीवन-
न चक्रवर्तिनः	- न चक्रवर्ती सम्राट्को		निर्वाह करने वाले
		मुनेः सुखं अस्ति	- मुनिको ही सुख है[1]
			॥ ७५ ॥

मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं मोहतो नरके गतिः ।
निपतिष्यति देहोऽयं सर्वं त्यक्त्वा वनं व्रज ॥ ७६ ॥

मुञ्च अज्ञानं प्रजारूपं मोहतः नरके गतिः निपतिष्यति देहः अयं सर्वं त्यक्त्वा वनं व्रज ॥ ७६ ॥

प्रजारूपं	- पुत्र रूप	**निपतिष्यति**	- गिरेगा ही (अतः)
अज्ञानं मुञ्च	- अज्ञान त्यागिये,	**सर्वं त्यक्त्वा**	- सब कुछ त्यागकर
मोहतः नरके-	- मोह करनेसे नरक	**वनं व्रज**	- वनमें चले जाइये
गतिः	जाना होगा,		॥ ७६ ॥
अयं देहः	- यह (आपका) शरीर (तो अब)		

सूत उवाच-१

तद्वाक्यं तु समाकर्ण्य गन्तुकामः पिताब्रवीत् ।
किं कर्तव्यं वने तात तत्त्वं वद सविस्तरम् ॥ ७७ ॥

---

१. ये उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

तत् वाक्यं तु सम आकर्ण्य गन्तुकामः पिता अब्रवीत् किं कर्तव्यं वने तात तत् त्वं वद स विस्तरम् ॥ ७७ ॥

तत् वाक्यं तु	- उनकी बातको तो	**तात**	- पुत्र !
सम आकर्ण्य	- भली प्रकार सुनकर	**वने किं कर्तव्यं**	- वनमें क्या करना चाहिए
गन्तुकामः	- जानेकी इच्छा करके		
पिता अब्रवीत्	- पिताने कहा-	**तत् त्वं**	- वह तुम
		स विस्तरं वद	- विस्तारके साथ बतलाओ ॥ ७७ ॥

सूत उवाच-१

अन्धकूपे स्नेहपाशे बद्धः पङ्गुरहं शठः ।
कर्मणा पतितो नूनं मामुद्धर दयानिधे ॥ ७८ ॥

अन्धकूपे स्नेहपाशे बद्धः पंगुः अहं शठः कर्मणा पतितः नूनं मां उद्धर दयानिधे ॥ ७८ ॥

दयानिधे	- दयानिधान !	**पंगुः शठः**	- पंगु और शठ
अन्धकूपे	- (मोहके) अन्धे कुंएमें	**नूनं कर्मणा**	- निश्चय कर्मसे ही
स्नेहपाशे	- स्नेहके फन्देसे	**पतितः**	- गिरा हूँ,
बद्धः अहं	- बँधा हुआ मैं	**मां उद्धर**	- मेरा उद्धार करो ॥७८॥

गोकर्ण उवाच-

देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च ।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभंगनिष्ठं वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥ ७९ ॥

देहे अस्थि मांस रुधिरे अभिमतिं त्यज त्वं जाया सुत आदिषु सदा ममतां विमुञ्च पश्य अनिशं जगत् इदं क्षण भंग निष्ठं वैराग्य राग रसिकः भव भक्ति निष्ठः ॥ ७९ ॥

---

१. ये उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

अस्थि मांस - हड्डी, मांस,
रुधिरे देहे - रक्तके शरीरको
त्वं अभिमतिं- - आप अपना स्वरूप
त्यज मानना छोड़िये,
जाया सुत- - स्त्री-पुत्र आदिको
आदिषु
ममतां सदा- - अपना मानना सदाको
विमुञ्च त्याग दीजिए,
इदं जगत् - इस संसारको
क्षण भंग- - एक क्षणमें नष्ट
निष्ठं होने वाला
अनिशं पश्य - अहर्निश देखिये
वैराग्य- - वैराग्यमें प्रीतिके
राग रसिकः रसिक एवं
भक्ति निष्ठः- - भक्तिमें निष्ठा रखने वाले
भव हो जाइये ॥ ७९ ॥

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्
सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम् ।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा
सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम् ॥ ८० ॥

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोक धर्मान् सेवस्व साधु पुरुषान् जहि काम तृष्णां अन्यस्य दोष गुण चिन्तनं आशु मुक्त्वा सेवा कथा रसं अहो नितरां पिब त्वम् ॥ ८० ॥

सततं - निरन्तर
धर्मं भजस्व - (भक्तिरूप) धर्मका सेवन कीजिए,
लोक धर्मान् - लौकिक धर्मों (कर्तव्यों) को
त्यज - त्याग दीजिये,
साधु पुरुषान् - सत्पुरुषोंका
सेवस्व - सेवन (सत्संग) कीजिए,
काम तृष्णां- - कामकी तृष्णाको नष्ट
जहि कर दीजिए
अन्यस्य दोष - दूसरेके दोषों-गुणोंका
गुण
चिन्तनं- - चिन्तन करना शीघ्र
आशु मुक्त्वा त्यागकर
सेवा कथारसं - भगवत्-सेवा तथा (भगवत्) कथाके रसको
त्वं नितरां- - आप भली प्रकार पान
पिब करें ॥ ८१ ॥

सूत उवाच-१

एवं सुतोक्तिवशतोऽपि गृहं
विहाय यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः ।
युक्तो हरेरनुदिनं परिचर्ययासौ
श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात् ॥ ८१ ॥

एवं सुत उक्ति वशगः अपि गृहं विहाय यातः वनं स्थिरमतिः गत षष्टि वर्षः युक्तः हरेः अनुदिनं परिचर्यया असौ श्रीकृष्णं आप नियतं दशमस्य पाठात् ॥ ८१ ॥

एवं सुत उक्ति	- इस प्रकार पुत्रके वचनसे	**हरेः युक्तः**	- श्रीहरिमें लगकर
वशगः अपि	- प्रभावित होकर भी	**परिचर्यया**	- उनकी सेवा-पूजा तथा
गतषष्टि वर्षः	- साठ वर्षकी आयु बीतजानेपर	**अनुदिनं नियतं**	- प्रतिदिन नियमित रूपसे
गृहं विहाय	- घर छोड़कर	**दशमस्य पाठात्**	- दशमस्कन्धका पाठ करनेसे
स्थिर मतिः	- स्थिर बुद्धिसे	**असौ श्रीकृष्णं-**	- इसने श्रीकृष्णको
वनं यातः	- वनमें जाकर	**आप**	प्राप्त कर लिया ॥ ८१ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये
विप्रमोक्षो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

१. ये उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

सूत उवाच-

पितर्युपरते तेन जननी ताडिता भृशम् ।
क्व वित्तं तिष्ठति ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत् ॥ १ ॥

पितरि उपरते तेन जननी ताडिता भृशं क्व वित्तं तिष्ठते ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत् ॥ १ ॥

पितरि उपरते - पिताके विरक्त होकर चले जानेपर
तेन - उस (धुन्धुकारी) ने
जननी भृशं - माताको बहुत
ताडिता - पीटा (और बोला)
ब्रूहि वित्तं - 'बतला धन
क्व तिष्ठते - कहां है,
न चेत् - यदि नहीं (बतलाती) तो
लत्तया - जलती लकड़ीसे
हनिष्ये - मारूँगा' ॥ १ ॥

इति तद्वाक्यसंत्रासाज्जनन्या पुत्रदुःखतः ।
कूपे पातः कृतो रात्रौ तेन सा निधनं गता ॥ २ ॥

इति तत् वाक्य संत्रासात् जनन्या पुत्र दुःखतः कूपे पातः कृतः रात्र्यां तेन सा निधनं गता ॥ २ ॥

इति तत् वाक्य - इस प्रकार उसकी बातके
सन्त्रासात् - भयसे
पुत्र दुःखतः - पुत्रसे दुःखी होकर
जनन्या - माता
रात्र्यां कूपे - रात्रिमें कुएं में
पातः कृतः - कूद पड़ी
तेन सा - इससे वह
निधनं गता - मर गयी ॥ २ ॥

गोकर्णस्तीर्थयात्रार्थं निर्गतो योगसंस्थितः ।
न दुःखं न सुखं तस्य न वैरी नापि बान्धवः ॥ ३ ॥

गोकर्णः तीर्थयात्रा अर्थं निर्गतः योग संस्थितः न दुःखं न सुखं तस्य न वैरी न अपि बान्धवः ॥ ३ ॥

योग संस्थितः	- योगमें पूर्ण स्थित	**तस्य न सुखं**	- उनके लिए न सुख था,
गोकर्णः	- गोकर्ण	**न दुःखं**	- न दुःख,
तीर्थयात्रा अर्थं	- तीर्थयात्रा करनेके लिए	**न वैरी**	- न (कोई) शत्रु था,
निर्गतः	- निकल गये,	**न बान्धवः-**	- न सम्बन्धी ही था
		अपि	॥ ३ ॥

धुन्धुकारी गृहेऽतिष्ठत्पञ्चपण्यवधूवृतः ।
अत्युग्रकर्मकर्ता च तत्पोषणविमूढधीः ॥ ४ ॥

धुन्धुकारी गृहे तिष्ठत् पञ्च पण्यवधूवृतः अति उग्र कर्म कर्ता च तत् पोषण विमूढधीः ॥ ४ ॥

पञ्च पण्यवधू	- पांच बाजारू वेश्याओंसे	**अति उग्रकर्म**	- अत्यन्त उग्रकर्म
वृतः धुन्धुकारी	- घिरा धुन्धुकारी	**कर्ता च**	- करते हुए ही
तत् पोषण	- उनके पोषणमें	**गृहे तिष्ठत्**	- घरमें रहने लगा ॥४ ।
विमूढधीः	- अत्यन्त मूर्ख वुद्धि होकर		

एकदा कुलटास्तास्तु भूषणान्यभिलिप्सवः ।
तदर्थं निर्गतो गेहात्कामान्धो मृत्युमस्मरन् ॥ ५ ॥

एकदा कुलटाः ताः तु भूषणानि अभिलिप्सवः तत् अर्थं निर्गतः गेहात् काम अन्धः मृत्यु अस्मरन् ॥ ५ ॥

एकदा तु	- एक बार तो	**तत् अर्थं**	- उसके लिए
ताः कुलटाः	- उन व्यभिचारिणियोंने	**काम अन्धः**	- (वह) कामसे अन्धा हुआ
भूषणानि	- आभूषणोंकी	**मृत्युं अस्मरन्**	- मृत्युको भूलकर
अभिलिप्सवः	- तीव्र अभिलाषा प्रगटकी,	**गेहात् निर्गतः**	- घरसे निकल गया ॥५॥

यतस्ततश्च संहृत्य वित्तं वेश्म पुनर्गतः ।
ताभ्योऽयच्छत्सुवस्त्राणि भूषणानि कियन्ति च ॥ ६ ॥

यतः ततः च संहृत्य वित्तं वेश्म पुनः गतः ताभ्यः अयच्छत् सुवस्त्राणि भूषणानि कियन्ति च ॥ ६ ॥

यतः ततः च - इधर उधरसे
वित्तं संहृत्य - धन चुराकर
पुनः वेश्मं गतः - फिर घर आगया,
ताभ्यः सुवस्त्राणि - उन (स्त्रियों) को उत्तम वस्त्र
च कियन्ति - तथा कितने ही
भूषणानि अयच्छत् - आभूषण दिये ॥६॥

बहुवित्तचयं दृष्ट्वा रात्रौ नार्यो व्यचारयन् ।
चौर्यं करोत्यसौ नित्यमतो राजा ग्रहीष्यति ॥ ७ ॥

बहु वित्तचयं दृष्ट्वा रात्रौ नार्यः व्यचारयन् चौर्यं करोति असौ नित्यं अतः राजा ग्रहीष्यति ॥ ७ ॥

बहु वित्त चयं - बहुत धनराशि
दृष्ट्वा नार्यः - देखकर (उन) स्त्रियोंने
रात्रौ व्यचारयन् - रात्रिमें (परस्पर) विचार किया
असौ नित्यं - 'यह प्रतिदिन
चौर्यं करोति - चोरी करता है,
अतः राजा - अतः (एक दिन) राजा
ग्रहीष्यति - पकड़ेगा ॥ ७ ॥

वित्तं हृत्वा पुनश्चैनं मारयिष्यति निश्चितम् ।
अतोऽर्थगुप्तये गूढमस्माभिः किं न हन्यते ॥ ८ ॥

वित्तं हृत्वा पुनः च एनं मारयिष्यति निश्चितं अतः अर्थ गुप्तये गूढ़ं अस्माभिः किं न हन्यते ॥ ८ ॥

वित्तं हृत्वा - धन छीनकर
पुनः एनं च - फिर इसको भी
निश्चितं- - निश्चित ही है
मारयिष्यति कि मार देगा,
अतः अर्थ- - अतः धनकी रक्षाके लिए
गुप्तये
अस्माभिः - हम लोगों द्वारा
गूढ़ं किं- - गुप्तरूपसे क्यों न मार
न हन्यते दिया जाय ॥ ८ ॥

निहत्यैनं गृहीत्वार्थं यास्यामो यत्र कुत्रचित् ।
इति ता निश्चयं कृत्वा सुप्तं सम्बद्ध्य रश्मिभिः ॥ ९ ॥

निहत्य एनं गृहीत्वा अर्थं यास्यामः यत्र कुत्रचित् इति ता निश्चयं कृत्वा सुप्तं सम्बद्ध्य रश्मिभिः ॥ ९ ॥

एनं निहत्य	- इसको मारकर	**ता इति**	- उन्होंने इस प्रकार
अर्थं गृहीत्वा	- धन लेकर	**निश्चयं कृत्वा**	- निश्चय करके
यत्र कुत्रचित्	- चाहे जहां कहीं	**सुप्तं रश्मिभिः**	- (उस) सोतेको रस्सियोंसे
यास्यामः	- (हम) चली जायेंगी'	**सम्बद्ध्य**	- जकड़कर बाँधकर ॥९॥

पाशं कण्ठे निधायास्य तन्मृत्युमुपचक्रमुः ।
त्वरितं न ममारासौ चिन्तायुक्तास्तदाभवन् ॥ १० ॥

पाशं कण्ठे निधाय अस्य तत् मृत्युं उपचक्रमुः त्वरितं न ममार असौ चिन्ता युक्ताः तदा अभवन् ॥ १० ॥

अस्य कण्ठे	- इसके गलेमें	**असौ त्वरितं**	- यह शीघ्र
पाशं निधाय	- फन्दा डालकर	**न ममार**	- नहीं मरा
तत् मृत्युं	- उसको मारनेका	**तदा चिन्ता युक्ताः**	- तब चिन्तायुक्त (चिन्तित)
उपचक्रमुः	- उपक्रम करने लगीं (किन्तु)	**अभवन्**	- होगयीं ॥ १० ॥

तप्ताङ्गारसमूहांश्च तन्मुखे हि विचिक्षिपुः ।
अग्निज्वालातिदुःखेन व्याकुलो निधनं गतः ॥ ११ ॥

तप्त अंगार समूहान् च तत् मुखे हि विचिक्षिपुः अग्निज्वाला अति दुःखेन व्याकुलः निधनं गतः ॥ ११ ॥

तप्त अंगार - जलते अंगारके
समूहान् च - समूह ही
तत् मुखे हि - उसके मुखपर ही
विचिक्षिपुः - सब कहीं डाल दिया
अग्निज्वाला - आगकी लपटोंकी
अति दुःखेन - अत्यन्त पीड़ासे
व्याकुलः - व्याकुल होकर
निधनं गतः - मर गया ॥ ११ ॥

तं देहं मुमुचुर्गर्ते प्रायः साहसिकाः स्त्रियः ।
न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापीदं तथैव च ॥ १२ ॥

तं देहं मुमुचुः गर्ते प्रायः साहसिकाः स्त्रियः न ज्ञातं तत् रहस्यं तु केन अपि इदं तथा एव च ॥ १२ ॥

तं देहं - उस (मृत) शरीरको
गर्ते मुमुचुः - गड्ढेमें डाल दिया
स्त्रियः प्रायः - स्त्रियां प्रायः
साहसिकाः - दुस्साहसी होती हैं,
तथा एव च - (जैसे उसका जन्म-रहस्य) उसी प्रकारही
तत् रहस्यं तु - उसका (मरण) रहस्य भी
इंद केन अपि - यह किसी ने भी
न ज्ञातं - नहीं जाना ॥ १२ ॥

लोकैः पृष्टा वदन्ति स्म दूरं यातः प्रियो हि नः ।
आगमिष्यति वर्षेऽस्मिन् वित्तलोभविकर्षितः ॥ १३ ॥

लोकैः पृष्टा वदन्ति स्म दूरं यातः प्रियः हि नः आगमिष्यति वर्षे अस्मिन् वित्त लोभ विकर्षितः ॥ १३ ॥

लोकै पृष्टा - लोगोंके पूछनेपर
वदन्ति स्म - कहती थीं-
वित्तलोभ - 'धनके लोभसे
विकर्षितः - अत्यन्त आकर्षित
नः प्रियः - हमारे प्रियतम
हि दूरं यातः - क्योंकि दूर चले गये हैं
अस्मिन् वर्षे - इसी वर्ष
आगमिष्यति - आजायंगे' ॥ १३ ॥

स्त्रीणां नैव तु विश्वासं दुष्टानां कारयेद्बुधः ।
विश्वासे यः स्थितो मूढः स दुःखैः परिभूयते ॥ १४ ॥

स्त्रीणां न एव तु विश्वासः दुष्टानां कारयेत् बुधः विश्वासे यः स्थितः मूढः स दुःखैः परिभूयते ॥ १४ ॥

बुधः दुष्टानां	- बुद्धिमान पुरुष दृष्टा	**यः मूढः**	- जो मूर्ख
स्त्रीणां तु	- स्त्रियोंका तो	**विश्वासे स्थितः**	- (उनके) विश्वासपर रहता है
विश्वासः न एव	- विश्वास नहीं ही		
कारयेत्	- करे,	**स दुःखैः-**	- वह दुःखों द्वारा दबा
		परिभूयते	लिया जाता है ॥१४॥

सुधामयं वचो यासां कामिनां रसवर्धनम् ।
हृदयं क्षुरधाराभं प्रियः को नाम योषिताम् ॥ १५ ॥

सुधामयं वचः यासां कामिनां रसवर्धनं हृदयं क्षुर धारा आभं प्रियः कः नाम योषिताम् ॥ १५ ॥

कामिनां	- कामुक पुरुषोंका	**हृदयं**	- (परन्तु) हृदय
रसवर्धनं	- रस बढ़ाने वाली	**क्षुरधारा आभं**	- छुरेकी धारके समान (तीक्ष्ण होता) है
यासां वचः	- जिनकी वाणी		
सुधामयं	- अमृतमयी होती है	**योषितां**	- (दुष्टा) स्त्रियोंका
		कः नाम प्रियः	- भला कौन प्यारा है ॥ १५ ॥

संहृत्य वित्तं ता याताः कुलटा बहुभर्तृकाः ।
धुन्धुकारी बभूवाथ महान् प्रेतः कुकर्मतः ॥ १६ ॥

संहृत्य वित्तं ता याताः कुलटा बहु भर्तृकाः धुन्धुकारी बभूव अथ महान् प्रेतः स्वकर्मतः ॥ १६ ॥

बहु भर्तृकाः	- बहुत पतियों वाली	**अथ धुन्धुकारी**	- फिर धुन्धुकारी
ताः कुलटा	- वे कुलटायें	**स्वकर्मतः**	- अपने कर्मोंसे
वित्तं सहृत्य-	- धन समेटकर	**महान् प्रेतः**	- घोर प्रेत
याताः	चली गयीं,	**बभूव**	- हुआ ॥ १५ ॥

वात्यारूपधरो नित्यं धावन्दशदिशोऽन्तरम् ।
शीतातपपरिक्लिष्टो निराहारः पिपासितः ॥ १७ ॥

वात्यारूप धरः नित्यं धावन् दश दिशः अन्तरं शीत आतप परिक्लिष्टः निराहारः पिपासितः ॥ १७ ॥

दश दिशः-	- दसो दिशाओंके बीचमें	**निराहारः**	- उपवासा,
अन्तरं		**पिपासितः**	- प्यासा,
वात्यारूप धरः	- बबण्डरका रूप रखकर	**परिक्लिष्टः**	- चारों ओर क्लेश पाता
नित्यं धावन्	- सदा दौड़ता रहता था,		था ॥ १७ ॥

न लेभे शरणं क्वापि हा दैवेति मुहुर्वदन् ।
कियत्कालेन गोकर्णो मृतं लोकादबुध्यत ॥ १८ ॥

न लेभे शरणं क्व अपि हा दैव इति मुहुः वदन् कियत् कालेन गोकर्णः मृतं लोकात् अबुध्यत ॥ १८ ॥

हा दैव इति	- 'हा दैव !' इस प्रकार	**कियत् कालेन**	- कुछ समयमें
मुहुः वदन्	- बार-बार कहता हुआ	**गोकर्णः लोकात्**	- गोकर्णने लोगों द्वारा
क्व अपि शरणं	- कहीं भी ठहरनेका स्थान	**मृतं अबुध्यत**	- (उसे) मर गया जान लिया ॥ १८ ॥
न लेभे	- नहीं पा सका,		

अनाथं तं विदित्वैव गयाश्राद्धमचीकरत् ।
यस्मिंस्तीर्थे तु संयाति तत्र श्राद्धमवर्तयत् ॥ १९ ॥

अनाथं तं विदित्वा एव गया श्राद्धं अचीकरत् यस्मिन् तीर्थे तु संयाति तत्र श्राद्धं अवर्तयत् ॥ १९ ॥

तं अनाथं एव - उसको अनाथ ही
विदित्वा - जानकर
गया श्राद्धं - गयामें (उसके लिए) श्राद्ध
अचीकरत् - किया,
यस्मिन् तीर्थे तु - जिस तीर्थमें भी
संयाति - पहुँचते थे
तत्र श्राद्धं - वहां श्राद्ध
अवर्तयत् - करते थे ॥ १९ ॥

एवं भ्रमन् स गोकर्णः स्वपुरं समुपेयिवान् ।
रात्रौ गृहांगणे स्वप्तुमागतोऽलक्षितः परैः ॥ २० ॥

एवं भ्रमन् स गोकर्णः स्वपुरं सम उपेयिवान् रात्रौ गृह अंगणे स्वप्तुं आगतः अलक्षितः परैः ॥ २० ॥

स गोकर्णः - वे गोकर्ण
एवं भ्रमन् - इस प्रकार घूमते हुए
स्वपुरं - अपने नगरके
सम उपेयिवान् - समीप आगये
रात्रौ परैः- - रातमें दूसरों द्वारा
अलक्षितः न देखे जाकर
गृह अंगणे- - (अपने) घरके आंगनमें
स्वप्तुं सोने
आगतः - आगये ॥ २० ॥

तत्र सुप्तं स विज्ञाय धुन्धुकारी स्वबान्धवम् ।
निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ॥ २१ ॥

तत्र सुप्तं स विज्ञाय धुन्धुकारी स्वबान्धवं निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ॥ २१ ॥

स धुन्धुकारी - उस धुन्धुकारीने
तत्र स्व बान्धवं - वहां अपने भाईको
सुप्तं विज्ञाय - सोता जानकर
निशीथे - आधी रातको
महा रौद्रतरं - अत्यन्त भयानकतम
वपुः दर्शयामास - शरीर दिखलाया ॥२१॥

सकृन्मेषः सकृद्धस्ती सकृच्च महिषोऽभवत् ।
सकृदिन्द्रः सकृच्चाग्निः पुनश्च पुरुषोऽभवत् ॥ २२ ॥

सकृत् मेषः सकृत् हस्ती सकृत् च महिषः अभवत् सकृत् इन्द्रः सकृत् च अग्निः पुनः च पुरुषः अभवत् ॥ २२ ॥

सकृत् मेषः	- कभी भेड़ा,	**सकृत इन्द्रः**	- कभी इन्द्र,
सकृत् हस्ती	- कभी हाथी,	**सकृत् अग्निः**	- कभी अग्नि,
च सकृत महिषः	- और कभी भैंसा	**च पुनः पुरुषः**	- तथा फिर पुरुष
अभवत्	- होगया,	**अभवत्**	- होगया ॥ २२ ॥

वैपरीत्यमिदं दृष्ट्वा गोकर्णो धैर्यसंयुतः ।
अयं दुर्गतिकः कोऽपि निश्चित्याथ तमब्रवीत् ॥ २३ ॥

वैपरीत्यं इदं दृष्ट्वा गोकर्णः धैर्य संयुतः अयं दुर्गतिकः कः अपि निश्चित्य अथ तं अब्रवीत् ॥ २३ ॥

इदं वैपरीत्य	- यह विपरीतता	**निश्चित्य**	- निश्चय करके कि
दृष्ट्वा धैर्य-	- देखकर धैर्यपूर्वक	**अयं कः अपि**	- यह कोई भी
संयुतः		**दुर्गतिकः**	- दुर्गति प्राप्त जीव है
गोकर्णः	- गोकर्णने	**अथ तं अब्रवीत्**	- फिर उससे बोले ॥२३॥

गोकर्ण उवाच-

कस्त्वमुग्रतरो रात्रौ कुतो यातो दशामिमाम् ।
किं वा प्रेतः पिशाचो वा राक्षसोऽसीति शंस नः ॥ २४ ॥

कः त्वं उग्रतरः रात्रौ कुतः यातः दशां इमां किं वा प्रेतः पिशाचः वा राक्षसः असि इति शंस नः ॥ २४ ॥

रात्रौ उग्रतरः	- रात्रिमें अत्यन्त भयानक	**किं प्रेतः-**	- क्या प्रेत अथवा पिशाच
त्वं कः	- तुम कौन हो ?	**वा पिशाचः**	
इमां दशां-	- इस अवस्थाको	**वा राक्षसः असि**	- या राक्षस हो,
कुतः यातः	कैसे पहुँचे ?	**इति नः शंस**	- यह हमें बलताओ ॥ २४ ॥

सूत उवाच-

एवं पृष्टस्तदा तेन रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ।
अशक्तो वचनोच्चारे संज्ञामात्रं चकार ह ॥ २५ ॥

एवं पृष्टः तदा तेन रुरोद उच्चैः पुनः पुनः अशक्तः वचन उच्चारे संज्ञामात्रं चकार ह ॥ २५ ॥

एवं तेन पृष्टः - इस प्रकार उनके द्वारा पूछनेपर
तदा उच्चैः - उस समय (वह) उच्चस्वरसे
पुनः पुनः रुरोद - बार-बार रोने लगा,
वचन उच्चारे - शब्दोच्चारणमें
अशक्तः - असमर्थ होनेके कारण
संज्ञामात्रं ह - संकेतमात्र ही
चकार - किया ॥ २५ ॥

ततोऽञ्जलौ जलं कृत्वा गोकर्णस्तमुदैरयत् ।
तत्सेकहतपापोऽसौ प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २६ ॥

ततः अञ्जलौ जलं कृत्वा गोकर्णः तं उदैरयत् तत् से कहत पापः असौ प्रवक्तुं उपचक्रमे ॥ २६ ॥

ततः अञ्जलौ - तब अञ्जलिमें
जलं कृत्वा - जल लेकर
गोकर्णः तं - गोकर्णने उसे
उदैरयत् - (मन्त्र पढ़कर) सींचा,
तत् से -उनके सींचनेसे
कहत पापः असौ -पाप नष्ट होनेसे इसने
प्रवक्तुं उपचक्रमे -बोलना प्रारम्भ किया ॥ २६ ॥

प्रेत उवाच-

अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुन्धुकारीति नामतः ।
स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया ॥ २७ ॥

अहं भ्राता त्वदीयः अस्मि धुन्धुकारी इति नामतः स्वकीयेन एव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया ॥ २७ ॥

धुन्धुकारी - धुन्धुकारी
इति नामतः - इस नामवाला
अहं त्वदीयः - मैं आपका
भ्राता अस्मि - भाई हूँ,
स्वकीयेन एव दोषेण - अपने ही दोषसे
मया ब्रह्मत्वं नाशितं - मैंने (अपना) ब्राह्मणत्व नष्ट कर दिया ॥२७॥

कर्मणो नास्ति संख्या मे महाज्ञाने विवर्तिनः ।
लोकानां हिंसकः सोऽहं स्त्रीभिर्दुःखेन मारितः ॥ २८ ॥

कर्मणो न अस्ति संख्या मे महा अज्ञाने विवर्तिनः लोकानां हिंसकः सः अहं स्त्रीभिः दुःखेन मारितः ॥ २८ ॥

महा अज्ञाने - घोर अज्ञानमें
विवर्तिनः - चक्कर काटने वाले
मे कर्मणो - मेरे दुष्कर्मोंकी
संख्या न अस्ति - संख्या नहीं है
सः अहं- - वह मैं लोगोंका
लोकानां हिंसकः हत्यारा
स्त्रीभिः दुःखेन - स्त्रियों द्वारा बहुत दुःख देकर
मारितः - मारा गया ॥ २८ ॥

अतः प्रेतत्वमापन्नो दुर्दशां च वहाम्यहम् ।
वाताहारेण जीवामि दैवाधीनफलोदयात् ॥ २९ ॥

अतः प्रेतत्वं आपन्नः दुर्दशां च वहामि अहं वात आहारेण जीवामि दैव आधीन फल उदयात् ॥ २९ ॥

दैव आधीन - दैववश
फल उदयात् - (अपने कर्मोंका) फलोदय होनेसे
अतः प्रेतत्वं- - अब प्रेतत्वको
आपन्नः प्राप्त हुआ हूँ,
च दुर्दशां - तथा दुर्दशा
अहं वहामि - मैं ढो रहा हूँ (दुर्दशामें पड़ा हूँ)
वात आहारेण - केवल वायु आहारसे (श्वांस लेकर)
जीवामि - जीवित हूँ ॥ २९ ॥

अहो बन्धो कृपासिन्धो भ्रातर्मामाशु मोचय ।
गोकर्णो वचनं श्रुत्वा तस्मै वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ३० ॥

अहो बन्धो कृपासिन्धो भ्रातः मां आशु मोचय ।

अहो कृपासिन्धो	- हे कृपासिन्धु !	**मां आशुमोचय**	- मुझे शीघ्र (प्रेतयोनिसे)
बन्धो भ्रातः	- सम्बन्धी, भाई !		मुक्त करो ।

सूत उवाच-१

गोकर्णः वचनं श्रुत्वा तस्मै वाक्यं अथ अब्रवीत् ॥ ३० ॥

वचनं श्रुत्वा	- (उसकी) बात सुनकर	**तस्मै वाक्यं**	- उससे यह बात
अथ गोकर्णः	- फिर गोकर्ण ने	**अब्रवीत्**	- कहा ॥ ३० ॥

गोकर्ण उवाच-

त्वदर्थं तु गयापिण्डो मया दत्तो विधानतः ।
तत्कथं नैव मुक्तोऽसि ममाश्चर्यमिदं महत् ॥ ३१ ॥

त्वत् अर्थं तु गया पिण्डं मया दत्तः विधानतः तत् कथं न एव मुक्तः असि मम आश्चर्यं इदं महत् ॥ ३१ ॥

त्वत् अर्थं तु	- तुम्हारे लिए तो	**तत् कथं न एव**	- उससे कैसे नहीं ही
मया विधानतः	- मैंने विधिपूर्वक	**मुक्तः असि**	- मुक्त होगये
गया पिण्डं दत्तः	- गयामें पिण्डदान किया,	**मम इदं महत्**	- मुझे यह महान
		आश्चर्यं	- आश्चर्य है ॥३१॥

गयाश्राद्धान्न मुक्तिश्चेदुपायो नापरस्त्विह ।
किं विधेयं मया प्रेत तत्त्वं वद सविस्तरम् ॥ ३२ ॥

---

१. ये उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

गया श्राद्धात् न मुक्तिः चेत् उपायः न अपरः तु इह किं विधेयं मया प्रेत तत् त्वं वद स विस्तरम् ॥ ३२ ॥

गया श्राद्धात्	- गयामें श्राद्ध करनेसे	**मया किं विधेयं**	- मुझे क्या करना चाहिए
चेत् मुक्तिः न	- यदि मुक्त नहीं हुए हो तो	**प्रेत तत् त्वं**	- प्रेत ! उसे तुम
इह तु अपरः	- इस लोकमें तो दूसरा	**सविस्तरं वद**	- विस्तारपूर्वक बतलाओ ॥ ३२ ॥
उपायः न	- उपाय नहीं है		

प्रेत उवाच-

गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति ।
उपायमपरं कंचित्त्वं विचारय साम्प्रतम् ॥ ३३ ॥

गया श्राद्ध शतेन अपि मुक्तिः मे न भविष्यति उपायं अपरं कंचित् त्वं विचारय साम्प्रतम् ॥ ३३ ॥

शतेन गया-श्राद्ध अपि	- सौ गया श्राद्धसे भी	**साम्प्रतं त्वं**	- इस समय तुम
मे मुक्तिः	- मेरी मुक्ति	**कंचित् अपरं**	- कोई दूसरा
न भविष्यति	- नहीं होगी१	**उपायं विचारय**	- उपाय सोचो ॥ ३३ ॥

सूत उवाच-२

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गोकर्णो विस्मयं गतः ।
शतश्राद्धैर्न मुक्तिश्चेदसाध्यं मोचनं तव ॥ ३४ ॥

---

१. इससे गयाकी महिमा कम नहीं हुई और न प्रेतकी बात ही असत्य है । गोकर्ण तो आत्मदे के क्षेत्रज पुत्र हैं; किन्तु धुन्धुकारी न उनका क्षेत्रज पुत्र था, न औरस, अतः गोकर्णके किये श्राद्धका फल उसे मिलना ही नहीं है ।

२. ये उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

इति तत् वाक्यं आकर्ण्य गोकर्णः विस्मयं गतः ।

इति तत् वाक्यं - इस प्रकार उसकी बात
आकर्ण्य - सुनकर
गोकर्णः - गोकर्ण
विस्मयं गतः - चकित होकर (बोले)

गोकर्ण उवाच-१

शत श्राद्धैः न मुक्तिः चेत् असाध्यं मोचनं तव ॥ ३४ ॥

चेत् शत श्राद्धैः - यदि सौ श्राद्धोंसे भी
मुक्तिः न - (तुम्हारी) मुक्ति नहीं होगी तो
तव मोचनं - तुम्हें मुक्त करना
असाध्यं - असाध्य है ॥ ३४ ॥

इदानीं तु निजं स्थानमातिष्ठ प्रेत निर्भयः ।
त्वन्मुक्तिसाधकं किंचिदाचरिष्ये विचार्य च ॥ ३५ ॥

इदानीं तु निजं स्थानं आतिष्ठ प्रेत निर्भयः त्वत् मुक्ति साधकं किञ्चित् आचरिष्ये विचार्य च ॥ ३५ ॥

इदानीं तु प्रेत - इस समय तो प्रेत !
निर्भयः निजं-स्थानं - निर्भय होकर अपने स्थानपर
आतिष्ठ - बने रहो,
त्वत् मुक्ति साधकं - तुम्हें मुक्त करने वाला
विचार्य च - विचार करके ही
किञ्चित् आचरिष्ये - कुछ करूँगा ॥३५॥

सूत उवाच-२

धुन्धुकारी निजस्थानं तेनादिष्टस्ततो गतः ।
गोकर्णश्चिन्तयामास तां रात्रिं न तदध्यगात् ॥ ३६ ॥

धुन्धुकारी निजस्थानं तेन आदिष्टः ततः गतः गोकर्णः चिन्तयामास तां रात्रिं न तत् अध्यगात् ॥ ३६ ॥

१-२. ये उवाच अन्य प्रतियों में नहीं है ।

तेन आदिष्टः	- उनके द्वारा आदेश पाकर	**गोकर्णः**	- गोकर्ण
धुन्धुकारी	- धुन्धुकारी	**चिन्तयामास**	- सोचने लगे (किन्तु)
ततः निज	- तब अपने	**तां रात्रिं तत्**	- उस रातमें वह (उपाय)
स्थानं गतः	- स्थानपर गया,	**न अध्यगात्**	- नहीं प्राप्त हुआ ॥३६॥

प्रातस्तमागतं दृष्ट्वा लोकाः प्रीत्या समागताः ।
तत्सर्वं कथितं तेन यज्जातं च यथा निशि ॥ ३७ ॥

प्रातः तं आगतं दृष्ट्वा लोकाः प्रीत्या समागताः तत् सर्वं कथितं तेन यत् जातं च यथा निशि ॥ ३७ ॥

प्रातः तं आगतं	- सवेरे उनको आया	**तेन तत् सर्वं**	- उन्होंने वह सब
दृष्ट्वा लोकाः	- देखकर लोग	**यत् यथा-**	- जो जैसे रातमें हुआ था
प्रीत्या समागताः	- प्रसन्न होकर (उनके) समीप आये,	**निशिजातं**	
		कथितं	- कहा ॥ ३७ ॥

विद्वांसो योगनिष्ठाश्च ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः ।
तन्मुक्तिं नैव तेऽपश्यन् पश्यन्तः शास्त्रसंचयान् ॥ ३८ ॥

विद्वान् सः योगनिष्ठाः च ज्ञानिनः ब्रह्मवादिनः तत् मुक्तिं न एव ते अपश्यन् पश्यन्तः शास्त्र संचयान् ॥ ३८ ॥

विद्वान् सः योगनिष्ठाः	- विद्वान्, योगनिष्ठ	**ते शास्त्र संचयान्**	- वे शास्त्र समूह
च ज्ञानिनः ब्रह्मवादिनः	- तथा ज्ञानी, वेदवादी	**पश्यन्तः तत् मुक्तिं**	- देखते हुए उस (प्रेत) की मुक्ति (का उपाय)
		न एव अपश्यन्	- नहीं ही देख सके ॥ ३८ ॥

ततः सर्वैः सूर्यवाक्यं तन्मुक्तौ स्थापितं परम् ।
गोकर्णः स्तम्भनं चक्रे सूर्यवेगस्य वै तदा ॥ ३९ ॥

ततः सर्वैः सूर्य वाक्यं तत् मुक्तौ स्थापितं परं गोकर्णः स्तम्भनं चक्रे सूर्य वेगस्य वै तदा ॥ ३९ ॥

ततः सर्वैः	- तब सबने	**परं स्थापितं**	- श्रेष्ठ निश्चय किया,
तत् मुक्तौ	- उस (प्रेत) की मुक्तिके लिए	**तदा गोकर्णः**	- तब गोकर्णने
		वै सूर्य वेगस्य	- निश्चय सूर्यकी गतिका
सूर्य वाक्यं	- सूर्य नारायणकी आज्ञा लेना	**स्तम्भनं चक्रे**	- स्तम्भन किया (रोका) ॥ ३९ ॥

तुभ्यं नमो जगत्साक्षिन् ब्रूहि मे मुक्तिहेतुकम् ।
तच्छ्रुत्वा दूरतः सूर्यः स्फुटमित्यभ्यभाषत ॥ ४० ॥

तुभ्यं नमः जगत् साक्षिन् ब्रूहि मे मुक्ति हेतुकं तत् श्रुत्वा दूरतः सूर्यः स्फुटं इति अभ्य भाषत ॥ ४० ॥

जगत् साक्षिन्	- (बोले) 'जगतके साक्षी	**तत् श्रुत्वा**	- यह सुनकर
तुभ्यं नमः	- आपको नमस्कार !	**दूरतः सूर्यः**	- दूरसे ही सूर्यने
मुक्ति हेतुकं	- (प्रेतकी) मुक्तिका उपाय	**इति स्फुटं**	- यह स्पष्ट
मे ब्रूहि	- मुझे बतलाइये !'	**अभ्य भाषत**	- उनसे कहा ॥ ४० ॥

श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु ।
इति सूर्यवचः सर्वैर्धर्मरूपं तु विश्रुतम् ॥ ४१ ॥

श्रीमद्भागवतात् मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु इति सूर्य वचः सर्वैः धर्मरूपं तु विश्रुतम् ॥ ४१ ॥

श्रीमद्भागवतात्	- 'श्रीमद्भागवतसे	**इति धर्मरूपं**	- इस प्रकार धर्म स्वरूप
मुक्तिः	- (उसकी) मुक्ति होगी,	**सूर्य वचः**	- सूर्यकी वाणी
सप्ताहं वाचनं-	- सप्ताह-वाचन करो !'	**सर्वैः तु विश्रुतं**	- सबने ही भली प्रकार सुनी ॥ ४१ ॥
कुरु			

सर्वेऽब्रुवन् प्रयत्नेन कर्तव्यं सुकरं त्विदम् ।
गोकर्णो निश्चयं कृत्वा वाचनार्थं प्रवर्तितः ॥ ४२ ॥

सर्वे अब्रुवन् प्रयत्नेन कर्तव्यं सुकरं तु इदं गोकर्णः निश्चयं कृत्वा वाचन अर्थं प्रवर्तितः ॥ ४२ ॥

सर्वे अब्रुवन् - सभी लोग बोले-
इदं तु सुकरं - 'यह तो करना सरल है,
प्रयत्नेन कर्तव्यं - प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए ।'
गोकर्णः - गोकर्ण
निश्चयं कृत्वा - निश्चय करने
वाचन अर्थं - (सप्ताह) वाचनके लिए
प्रवर्तितः - प्रवृत्त हुए ॥ ४२ ॥

तत्र संश्रवणार्थाय देशग्रामाज्जना ययुः ।
पङ्ग्वन्धवृद्धमन्दाश्च तेऽपि पापक्षयाय वै ॥ ४३ ॥

तत्र संश्रवण अर्थाय देशग्रामात् जनाः ययुः पंगु अन्ध वृद्ध मन्दाः च ते अपि पाप क्षयाय वै ॥ ४३ ॥

तत्र संश्रवण- - वहाँ श्रवण
अर्थाय करनेके लिए
देशग्रामात् - प्रदेशोंके ग्रामोंसे
जनाः च - लोग तथा
पंगु अन्धवृद्ध - पंगु, अन्धे, वृद्ध,
मन्दाः ते अपि - दुर्बल थे वे भी
वै पाप क्षयाय - निश्चय पाप-नाश करने
ययुः - आये ॥ ४३ ॥

समाजस्तु महाञ्जातो देवविस्मयकारकः ।
यदैवासनमास्थाय गोकर्णोऽकथयत्कथाम् ॥ ४४ ॥

समाजः तु महान् जातः देव विस्मय कारकः यदा एव आसनं आस्थाय गोकर्णः अकथयत् कथाम् ॥ ४४ ॥

देव विस्मय-	- देवताओंको आश्चर्यमें	**एव यदा**	- निश्चय जब
कारकः	डालने वाला	**आसनं आस्थाय**	- (व्यास) आसनपर
महान् समाजः	- महान् समाज		बैठकर
तु जातः	- तो एकत्र होगया,	**गोकर्णः कथां**	- गोकर्ण कथा
		अकथयत्	- करने लगे ॥ ४४ ॥

स प्रेतोऽपि तदाऽऽयातः स्थानं पश्यन्नितस्ततः ।
सप्तग्रन्थियुतं तत्रापश्यत्कीचकमुच्छ्रितम् ॥ ४५ ॥

स प्रेतः अपि तदा आयातः स्थानं पश्यत् इतः ततः सप्तग्रन्थि युतं तत्र पश्यत् कीचकं उत्थितम् ॥ ४५ ॥

तदा स-	- उस समय वह प्रेत भी	**स्थानं पश्यत्**	- (अपने बैठनेका) स्थान
प्रेतः अपि			देखने लगा
आयातः	- आकर	**तत्र सप्तग्रन्थियुतं**	- वहाँ सात गाँठ युक्त
इतः ततः	- उधर उधर	**उत्थितं कीचकं**	- खड़ा बांस
		पश्यत्	- (उसने) देखकर
			॥ ४५ ॥

तन्मूलच्छिद्रमाविश्य श्रवणार्थं स्थितो ह्यसौ ।
वातरूपी स्थिति कर्तुमशक्तो वंशमाविशत् ॥ ४६ ॥

तत् मूल छिद्रं आविश्य श्रवण अर्थं स्थितः हि असौ वात रूपी स्थितिं कर्तुं अशक्तः वंशं आविशत् ॥ ४६ ॥

हि वात रूपी	- क्योंकि वायुरूप था,	**तत् मूल छिद्रं**	- उसकी जड़के छिद्रमें
स्थितिं कर्तुं	- (अपनेको) स्थिर करनेमें	**आविश्य**	- प्रवेश करके
अशक्तः	- असमर्थ होकर	**श्रवण अर्थं**	- श्रवण करनेके लिए
वंशं आविशत्	- (उस) बांसमें प्रवेश	**असौ स्थितः**	- यह बैठ गया ॥४६॥
	कर गया,		

वैष्णवं ब्राह्मणं मुख्यं श्रोतारं परिकल्प्य सः ।
प्रथमस्कन्धतः स्पष्टमाख्यानं धेनुजोऽकरोत् ॥ ४७ ॥

वैष्णवं ब्राह्मणं मुख्यं श्रोतारं परिकल्प्य सः प्रथमः स्कन्धतः स्पष्टं आख्यानं धेनुजः अकरोत् ॥ ४७ ॥

सः धेनुजः - वह गोकर्णजी
वैष्णवं ब्राह्मणं - वैष्णव ब्राह्मणको
मुख्यं श्रोतारं - मुख्य श्रोता
परिकल्प्य - बनाकर
प्रथमःस्कन्धतः - प्रथम स्कन्धसे
स्पष्टं आख्यानं - स्पष्ट प्रवचन
अकरोत् - करने लगे ॥ ४७ ॥

दिनान्ते रक्षिता गाथा तदा चित्रं बभूव ह ।
वंशैकग्रन्थिभेदोऽभूत्सशब्दं पश्यतां सताम् ॥ ४८ ॥

दिन अन्ते रक्षिता गाथा तदा चित्रं बभूव ह वंश एक ग्रन्थि भेदः अभूत् स शब्दः पश्यतां सताम् ॥ ४८ ॥

दिन अन्ते - सायंकाल
गाथा रक्षिता - कथाको विश्राम दिया गया
तदा चित्रं- - उस समय निश्चय
बभूव ह आश्चर्य हुआ
सतां पश्यतां - सभासदोंके देखते हुए
स शब्दः - शब्दके साथ
वंश एक ग्रन्थि - (उस) बांसकी एक गांठ
भेदः अभूत् - फट गयी ॥ ४८ ॥

द्वितीयेऽह्नि तथा सायं द्वितीयग्रन्थिभेदनम् ।
तृतीयेऽह्नि तथा सायं तृतीयग्रन्थिभेदनम् ॥ ४९ ॥

द्वितीय अह्नि तथा सायं द्वितीय ग्रन्थि भेदनं तृतीये अह्नि तथा सायं तृतीय ग्रन्थि भेदनम् ॥ ४९ ॥

तथा द्वितीये अह्नि - इसी प्रकार दूसरे दिन
सायं द्वितीय ग्रन्थि - सायंकाल दूसरी गांठ
भेदनं - फटी और
तथा तृतीय अह्नि - इसी प्रकार तीसरे दिन
सायं तृतीय ग्रन्थि - सायंकाल तीसरी गांठ
भेदनं - फटी ।। ४९ ।।

एवं सप्तदिनैश्चैव सप्तग्रन्थिविभेदनम् ।
कृत्वा स द्वादशस्कन्धश्रवणात्प्रेततां जहौ ।। ५० ।।

एवं सप्त दिनैः च एव सप्त ग्रन्थि विभेदनं कृत्वा स द्वादश स्कन्ध श्रवणात् प्रेततां जहौ ।। ५० ।।

एवं सप्त दिनैः - इसी प्रकार सातों दिनों
च एव- - में ही सातों गाठोंको
सप्त ग्रन्थि
विभेदनं कृत्वा - फाड़कर
द्वादश स्कन्ध - बारहों स्कन्धोंका
श्रवणात् स - श्रवण करनेसे उसने
प्रेततां जहौ - प्रेतत्व नष्ट कर दिया
।। ५० ।।

दिव्यरूपधरो जातस्तुलसीदाममण्डितः ।
पीतवासा घनश्यामो मुकुटी कुण्डलान्वितः ।। ५१ ।।

दिव्य रूप धरः जातः तुलसीदाम मण्डितः पीतवासा घनश्यामः मुकुटी कुण्डल अन्वितः ।। ५१ ।।

दिव्यरूप धरः - दिव्यरूप धारी
तुलसीदाम मण्डितः - तुलसीकी मालाओंसे विभूषित
पीतवासा - पीताम्बर धारी
घनश्यामः - मेघके समान श्यामवर्ण
मुकुटी - मुकुटधारी
कुण्डल- - कुण्डलयुक्त होगया
अन्वितः जातः ।। ५१ ।।

ननाम भ्रातरं सद्यो गोकर्णमिति चाब्रवीत् ।
त्वयाहं मोचितो बन्धो कृपया प्रेतकश्मलात् ।। ५२ ।।

ननाम भ्रातरं सद्यः गोकर्ण इति च अब्रवीत् त्वया अहं मोचितः बन्धो कृपया प्रेत कश्मलात् ।। ५२ ।।

सद्यः भ्रातरं	- तुरन्त भाई	**बन्धो त्वया**	- 'भाईः तुम्हारी
गोकर्णं ननाम	- गोकर्णको नमस्कार करके	**कृपया अहं**	- कृपासे मैं
		प्रेत कश्मलात्	- प्रेतत्वके कष्टसे
इति च अब्रवीत्	- इस प्रकार बोला भी	**मोचितः**	- 'मुक्त कर दिया गया ॥ ५२ ॥

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी ।
सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः ॥ ५३ ॥

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीड़ा विनाशिनी सप्ताहः अपि तथा धन्यः कृष्णलोक फलप्रदः ॥ ५३ ॥

प्रेत पीड़ा	- प्रेत-पीड़ा	**तथा कृष्णलोक**	- इसी प्रकार श्रीकृष्णका धामरूप
विनाशिनी	- सर्वथा नष्ट करनेवाली	**फल प्रदः**	- फल देने वाला
भागवती वार्ता	- भागवतकी कथा	**सप्ताहः-**	- सप्ताह भी धन्य है
धन्या	- धन्य है,	**अपि धन्यः**	॥ ५३ ॥

कम्पन्ते सर्वपापानि सप्ताहश्रवणे स्थिते ।
अस्माकं प्रलयं सद्यः कथा चेयं करिष्यति ॥ ५४ ॥

कम्पन्ते सर्व पापानि सप्ताह श्रवणं स्थिते अस्माकं प्रलयं सद्यः कथा च इयं करिष्यति ॥ ५४ ॥

सप्ताह श्रवणे	- सप्ताह-श्रवण करने	**इयं कथा च**	- यह कथा तो
स्थिते	- बैठनेपर	**सद्यः अस्माकं**	- तुरन्त हम (प्रेत) लोगोंका
सर्व पापानि	- सब पाप		
कम्पन्ते	- थर्रा उठते हैं,	**प्रलयं-**	- प्रलय (विनाश) कर
		करिष्यति	देगी ॥ ५४ ॥

आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनः कर्मभिः कृतम् ।
श्रवणं विदहेत्पापं पावकः समिधो यथा ॥ ५५ ॥

आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाक् मनः कर्मभिः कृतं श्रवणं विदहेत् पापं पावकः समिधः यथा ॥ ५५ ॥

वाक् मनः	- वाणी, मन,	**श्रवणं-**	- (भागवत) श्रवण (वैसे)
कर्मभिः कृतं	- कर्मसे किया हुआ	**विदहेत्**	पूरा भस्म कर देता है
आर्द्रं	- गीला (तत्काल किया)	**यथा पावकः**	- जैसे अग्नि
शुष्कं	- सूखा (पुराना किया)	**समिधः**	- समिधाओं (सूखी लकड़ियों)
लघु स्थूलं पापं	- छोटे-बड़े पापोंको		को ॥ ५५ ॥

अस्मिन् वै भारते वर्षे सूरिभिर्देवसंसदि ।
अकथाश्राविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥ ५६ ॥

अस्मिन् वै भारते वर्षे सूरिभिः देव संसदि अकथा श्राविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥ ५६ ॥

देव संसदि	- देवताओंकी सभामें	**अस्मिन् भारतेवर्षे**	- इस भारत वर्षमें
सूरिभिः	- विद्वानों द्वारा	**जन्म वै निष्फलं**	- जन्म लेना निश्चय
अकथा श्राविणां	- कथा-श्रवण न		निष्फल
	करनेवालोंका	**कीर्तितं**	- कहा जाता है ॥५६॥

किं मोहतो रक्षितेन सुपुष्टेन बलीयसा ।
अध्रुवेण शरीरेण शुकशास्त्रकथां विना ॥ ५७ ॥

किं मोहतः रक्षितेन सुपुष्टेन बलीयसा अध्रुवेण शरीरेण शुकशास्त्र कथां विना ॥ ५७ ॥

शुक शास्त्र	- शुकदेवजीके शास्त्रकी	**बलीयसा**	- बलवान
कथां विना	- कथाके विना	**अध्रुवेण**	- विनाशवान
मोहतः रक्षितेन	- मोहसे रक्षा किये गये,	**शरीरेण किं**	- शरीरसे क्या लाभ
सुपुष्टेन	- खूब हृष्ट-पुष्ट		॥ ५७ ॥

अस्थिस्तम्भं स्नायुबद्धं मांसशोणितलेपितम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पात्रं मूत्रपुरीषयोः ॥ ५८ ॥

अस्थि स्तम्भं स्नायुबद्धं मांस शोणित लेपितं चर्म अवनद्धं दुर्गन्धं पात्रं मूत्र पुरीषयोः ॥ ५८ ॥

अस्थिस्तम्भं	- हड्डियोंके खम्भों वाला,	**चर्म अवनद्धं**	- चमड़ा मढ़ा
स्नायुबद्धं	- नसोंसे बँधा,	**मूत्र पुरीषयोः**	- मूत्र-मल का
मांस शोणित-	- मांस-रक्तसे लीपा हुआ,	**दुर्गन्धं पात्रं**	- (यह) दुर्गन्धित पात्र
लेपितं			॥ ५८ ॥

जराशोकविपाकार्तं रोगमन्दिरमातुरम् ।
दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं सदोषं क्षणभंगुरम् ॥ ५९ ॥

जरा शोक विपाक आर्तं रोग मन्दिरं आतुरं दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं सदोषं क्षण भंगुरम् ॥ ५९ ॥

जरा शोक	- बुढ़ापा एवं शोकसे	**दुष्पूरं**	- जिसे भर देना कठिन है,
विपाकं आर्तं	- परिणाममें दुःखदायी,	**दुर्धरं**	- जिसे धारण किये रहना
रोग मन्दिरं	- रोगोंका मन्दिर (निवास)		कठिन है,
आतुरं दुष्टं	- व्याकुल, दुष्ट,	**सदोषं क्षण**	- दोषयुक्त तथा क्षण भरमें
		भंगुर	नष्ट होजाने वाला ॥ ५९ ॥

कृमिविड्भस्मसंज्ञान्तं शरीरमिति वर्णितम् ।
अस्थिरेण स्थिरं कर्म कुतोऽयं साधयेन्न हि ॥ ६० ॥

कृमि विट् भस्म संज्ञा अन्तं शरीरं इति वर्णितं अस्थिरेण स्थिरं कर्म कुतः अयं साधयेत् न हि ॥ ६० ॥

अन्तं	- अन्तमें	**अध्रुवेण**	- (इस) विनाशवानसे
कृमि विट्	- कीड़े-विष्ठा या	**ध्रुवं कर्म**	- अविनाशी कर्म
भस्म संज्ञा	- भस्म नाम पाने वालेको	**अयं कुतः**	- यह (मनुष्य) क्यों
शरीरं इति	- शरीर है, ऐसा	**न हि साधयेत्**	- नहीं सिद्ध कर लेता
वर्णितं	- वर्णन किया गया है,		॥ ६० ॥

यत्प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति ।
तदीयरससम्पुष्टे काये का नाम नित्यता ॥ ६१ ॥

यत् प्रातः संस्कृतं च अन्नं सायं तत् च विनश्यति तदीय रस सम्पुष्टे काये का नाम नित्यता ॥ ६१ ॥

यत् अन्नं	- जो अन्न	**विनश्यति**	- बिगड़ जायगा
प्रातः च संस्कृतं	- सवेरे ही संस्कारित किया (पकाया) है	**तदीय रस**	- उसीके रससे
		सम्पुष्टे काये	- पुष्ट हुए शरीरमें
तत् च सायं	- वही शामको	**का नाम-नित्यता**	- भला नित्यता (स्थिरत्व) कैसा ॥ ६१ ॥

सप्ताहश्रवणाल्लोके प्राप्यते निकटे हरिः ।
अतो दोषनिवृत्त्यर्थमेतदेव हि साधनम् ॥ ६२ ॥

सप्ताह श्रवणात् लोके प्राप्यते निकटे हरिः अतः दोष निवृत्ति अर्थं एतत् एव हि साधनम् ॥ ६२ ॥

सप्ताह श्रवणात्	- सप्ताह श्रवण करनेसे	**अतः दोष**	- अतः (मनके) दोषोंको
हि हरिः	- क्योंकि श्रीहरि	**जय अर्थं**	- जीतनेके लिए
निकटे प्राप्यते	- समीप मिल जाते हैं,	**एतत् एव-साधनं**	- यही साधन है ॥६२॥

बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जन्तुषु ।
जायन्ते मरणायैव कथाश्रवणवर्जिताः ॥ ६३ ॥

बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जन्तुषु जायन्ते मरणाय एव कथा श्रवण वर्जिताः ॥ ६३ ॥

कथा श्रवण	-	कथा-श्रवणसे	**जन्तुषु-**	-	प्राणियोंमें मच्छरोंके समान
वर्जिताः	-	रहित लोग	**मशका इव**		
तोयेषु बुद्-	-	जलमें बुलबुलेके समान,	**मरणाय एव**	-	मरनेके लिए ही
बुदा इव			**जायन्ते**	-	उत्पन्न होते हैं ॥६३॥

जडस्य शुष्कवंशस्य यत्र ग्रन्थिविभेदनम् ।
चित्रं किमु तदा चित्तग्रन्थिभेदः कथाश्रवात् ॥ ६४ ॥

जडस्य शुष्क वंशस्य यत्र ग्रन्थि विभेदनं चित्रं किमु तदा चित्त ग्रन्थि, भेदः कथा श्रवात् ॥ ६४ ॥

कथा श्रवात्	-	कथा-श्रवणसे	**तदा चित्त ग्रन्थि**	-	तब चित्तकी (कामादि) ग्रन्थियोंका
यत्र जडस्य	-	जहां जड़	**भेदः किमु चित्रं**	-	फट जाना क्या आश्चर्यकी बात है ॥ ६४ ॥
शुष्क वंशस्य	-	सूखे बांसकी			
ग्रन्थि विभेदनं	-	गांठें फट गयीं			

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि सप्ताश्रवणे कृते ॥ ६५ ॥

भिद्यते हृदय ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्व संशयाः क्षीयन्ते च अस्य कर्माणि सप्ताह श्रवणे कृते ॥ ६५ ॥

सप्ताह-	-	सप्ताह-श्रवण करनेपर	**सर्व संशयाः**	-	सब सन्देह
श्रवणे कृते			**छिद्यन्ते**	-	कट जाते हैं,
हृदय ग्रन्थिः	-	हृदयकी गांठें	**अस्य-**	-	इस (श्रवणकर्ता) के
भिद्यते	-	फट जाती हैं,	**कर्माणि च**		कर्म भी
			क्षीयन्ते	-	क्षीण होजाते हैं ॥६५॥

संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसि ।
कथातीर्थे स्थिते चित्ते मुक्तिरेव बुधैः स्मृता ॥ ६६ ॥

संसार कर्दम आलेप प्रक्षालन पटीयसि कथा तीर्थे स्थिते चित्ते मुक्तिः एव बुधैः स्मृता ॥ ६६ ॥

संसार कर्दम	- संसाररूपी कीचड़के	**कथा तीर्थे**	- कथारूपी तीर्थमें
आलेप	- लेपको	**चित्ते स्थिते**	- चित्तके लगनेसे
प्रक्षालन-	- धो देनेमें निपुणा	**बुधैः स्मृता**	- बुद्धिमानोंने कहा है कि
पटीयसि		**मुक्तिः एव**	- मुक्ति होती ही है ॥६६॥

एवं ब्रुवति वै तस्मिन् विमानमागमत्तदा ।
वैकुण्ठवासिभिर्युक्तं प्रस्फुरद्दीप्तिमण्डलम् ॥ ६७ ॥

एवं ब्रुवति वै तस्मिन् विमानं आगमत् तदा वैकुण्ठ वासिभिः युक्तं प्रस्फुरत् दीप्ति मण्डलम् ॥ ६७ ॥

तस्मिन्	- उस सभामें (उसके)	**प्रस्फुरत् दीप्ति**	- प्रभा मण्डलसे
एवं ब्रुवति वै	- इस प्रकार कहते हुए ही	**मण्डलं**	चमकता हुआ
		वैकुण्ठ वासिभिः	- वैकुण्ठवासियोंसे
तदा	- उस समय	**युक्तं विमानं**	- युक्त विमान
		आगमत्	- आगया ॥ ६७ ॥

सर्वेषां पश्यतां भेजे विमानं धुन्धुलीसुतः ।
विमाने वैष्णवान् वीक्ष्य गोकर्णो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६८ ॥

सर्वेषां पश्यतां भेजे विमानं धुन्धुली सुतः विमाने वैष्णवान् वीक्ष्य गोकर्णः वाक्यं अब्रवीत् ॥ ६८ ॥

सर्वेषां पश्यतां	- सबके देखते हुए	**वैष्णवान्**	- विष्णु भक्तोंको
धुन्धुली सुतः	- धुन्धुकारी	**वीक्ष्य गोकर्णः**	- देखकर गोकर्ण
विमानं भेजे	- विमानमें बैठ गया,	**वाक्यं अब्रवीत्**	- यह बात बोले ॥ ६८ ॥
विमाने	- विमानमें		

गोकर्ण उवाच-

अत्रैव बहवः सन्ति श्रोतारो मम निर्मलाः ।
आनीतानि विमानानि न तेषां युगपत्कुतः ॥ ६९ ॥

अत्र एव बहवः सन्ति श्रोतारः मम निर्मलाः आनीतानि विमानानि न तेषां युगपत् कुतः ॥ ६९ ॥

अत्र एव बहवः	- यहीं बहुतसे	**तेषां युगपत्**	- उनके लिए एक साथ
मम निर्मलाः	- मेरे निष्पाप	**विमानानि**	- बहुतसे विमान
श्रोतारः सन्ति	- श्रोता हैं,		(आप लोग)
		कुतः न-	- क्यों नहीं ले आये
		आनीतानि	॥ ६९ ॥

श्रवणं समभागेन सर्वेषामिह दृश्यते ।
फलभेदः कुतो जातः प्रब्रुवन्तु हरिप्रियाः ॥ ७० ॥

श्रवणं सम भागेन सर्वेषां इह दृश्यते फलभेदः कुतः जातः प्रब्रुवन्तु हरि प्रियाः ॥ ७० ॥

इह समभागेन	- यहां समानरूपसे	**कुतः जातः**	- कहांसे होगया
सर्वेषां श्रवणं	- सबका श्रवण करना	**हरि प्रियाः**	- श्रीहरिके प्यारे भक्तो !
दृश्यते	- देखा जाता है,	**प्रब्रुवन्तु**	- यह (हमें) बतलाओ
फलभेदः	- (उसके) फलमें भेद		॥ ७० ॥

हरिदासा ऊचुः-

श्रवणस्य विभेदेन फलभेदोऽत्र संस्थितः ।
श्रवणं तु कृतं सर्वैर्न तथा मननं कृतम् ।
फलभेदस्ततो जातो भजनादपि मानद ॥ ७१ ॥

श्रवणस्य विभेदेन फल भेदः अत्र संस्थितः श्रवणं तु कृतं सर्वैः न तथा मननं कृतं फलभेदः ततः जातः भजनात् अपि मानद ॥ ७१ ॥

मानद	- (हमें) सम्मान देने वाले !	**कृतं तथा**	- किया किन्तु उसी प्रकार
श्रवणस्य-विभेदेन	- श्रवणमें भेद होनेसे	**मननं न कृतं**	- मनन नहीं किया,
फल भेदः	- फलमें भेद	**भजनात् अपि**	- भजनके (भेदसे) भी
अत्र संस्थितः	- यहां होगया है,	**ततः फल भेदः**	- फिर फलमें भेद
सर्वैः श्रवणं तु	- सबने श्रवण तो	**जातः**	- होगया है ॥ ७१ ॥

सप्तरात्रमुपोष्यैव प्रेतेन श्रवणं कृतम् ।
मननादि तथा तेन स्थिरचित्ते कृतं भृशम् ॥ ७२ ॥

सप्तरात्रं उपोष्य एव प्रेतेन श्रवणं कृतं मनन आदि तथा तेन स्थिर चित्ते कृतं भृशम् ॥ ७२ ॥

प्रेतेन सप्तरात्रं	- प्रेत ने सात (दिन) रात	**मनन आदि**	- मनन आदि
उपोष्य एव	- उपवास करके ही	**स्थिर चित्ते**	- स्थिर चित्तसे
श्रवणं कृतं	- श्रवण किया है,	**भृशं कृतं**	- बार-बार किया है ॥ ७२ ॥
तथा तेन	- इसी प्रकार उसने		

अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् ।
संदिग्धो हि हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः ॥ ७३ ॥

अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतं सन्दिग्धः हि हतः मन्त्रः व्यग्र चित्तो हतः जपः ॥ ७३ ॥

अदृढं ज्ञानं हतं	- जो ज्ञान दृढ़ नहीं है वह नष्ट हो जाता है	**हि सन्दिग्धः**	- क्योंकि सन्देह होनेपर
च प्रमादेन	- तथा असावधानीसे	**मन्त्रः हतः**	- मन्त्र-शक्ति नष्ट होजाती है
श्रुतं हतं	- श्रवण नष्ट होता है,	**व्यग्रचित्तो**	- व्यग्र चित्तसे किया
		जपः हतः	- जपका फल नष्ट होजाता है ॥ ७३ ॥

अवैष्णवो हतो देशो हतं श्राद्धमपात्रकम् ।
हतमश्रोत्रिये दानमनाचारं हतं कुलम् ॥ ७४ ॥

अवैष्णवः हतः देशः हतं श्राद्धं अपात्रकं हतं अश्रोत्रिये दानं अनाचारं हतं कुलम् ॥ ७४ ॥

अवैष्णवः - विष्णुभक्त रहित
देशः हतः - प्रदेश नष्टप्राय है,
अपात्रकं - जो पात्र नहीं है उसको
श्राद्धं हतं - श्राद्धका (भोजन कराना) निष्फल है
अनाचारं - अनाचारसे
कुलं हतं - कुल नष्ट होजाता है ॥ ७४ ॥

विश्वासो गुरुवाक्येषु स्वस्मिन्दीनत्वभावना ।
मनोदोषजयश्चैव कथायां निश्चला मतिः ॥ ७५ ॥

विश्वासः गुरुवाक्येषु स्वस्मिन् दीनत्व भावना मनः दोष जयः च एव कथायां निश्चला मतिः ॥ ७५ ॥

विश्वासः गुरु-वाक्येषु - गुरुके वचनोंमें विश्वास,
स्वस्मिन् - अपनेमें
दीनत्व भावना - दीनताकी बुद्धि,
मनः दोष-जयः एव - मनके दोषोंको जीत ही लेना
च कथायां - तथा कथामें
निश्चला मतिः - स्थिर बुद्धि ॥ ७५ ॥

एवमादि कृतं चेत्स्यात्तदा वै श्रवणे फलम् ।
पुनः श्रवान्ते सर्वेषां वैकुण्ठे वसतिर्ध्रुवम् ॥ ७६ ॥

एवं आदि कृतं चेत् स्यात् तदा वै श्रवणे फलं पुनः श्रवान्ते सर्वेषां वैकुण्ठे वसति ध्रुवम् ॥ ७६ ॥

चेत् एवं- - यदि इस प्रकारके
आदि नियमोंका
कृतं स्यात् - पालन किया गया हो
तदा वै - तब निश्चय
श्रवणे फलं - श्रवणका फल होता है ।
पुनः श्रवान्ते - (इस प्रकार) फिर श्रवण करनेके पश्चात्
ध्रुवं सर्वेषां - निश्चय सबको
वैकुण्ठे वसति - वैकुण्ठ-निवास प्राप्त होगा ॥ ७६ ॥

कुमारा ऊचुः-१

गोकर्ण तव गोविन्दो गोलोकं दास्यति स्वयम् ।
एवमुक्त्वा ययुः सर्वे वैकुण्ठं हरिकीर्तनाः ॥ ७७ ॥

गोकर्ण तव गोविन्दः गोलोकं दास्यति स्वयम् ।

गोकर्ण तव - गोकर्ण जी ! आपको
स्वयं गोविन्दः - स्वयं गोविन्द
गोलोकं: दास्यति-गोलोक प्रदान करेंगे ।

कुमारा ऊचुः-

एवं उक्त्वा ययुः सर्वे वैकुण्ठं हरि कीर्तनाः ॥ ७७ ॥

एवं उक्त्वा - इस प्रकार कहकर
सर्वे हरि- - वे सब हरिका सुयश
कीर्तनाः गाने वाले
वैकुण्ठं ययुः - वैकुण्ठ चले गये ॥ ७७ ॥

श्रावणे मासि गोकर्णः कथामूचे तथा पुनः ।
सप्तरात्रवतीं भूयः श्रवणं तैः कृतं पुनः ॥ ७८ ॥

श्रावणे मासि गोकर्णः कथां ऊचे तदा पुनः सप्तरात्रवतीं भूयः श्रवणं: तैः कृतं पुनः ॥ ७८ ॥

---

१. यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तदा पुनः - तब फिरसे
गोकर्णः- - गोकर्णने श्रावणमासमें
श्रावणे मासि
भूयः- - दुबारा सप्ताह
सप्तरात्रवतीं विधि वाली
कथां ऊचे - कथा कही,
तैः पुनः - तथा उन लोगोंने फिर
श्रवणं कृतं - श्रवण किया ॥ ७८ ॥

कथासमाप्तौ यज्जातं श्रूयतां तच्च नारद ॥ ७९ ॥

कथा समाप्तौ यत् जातं श्रूयतां तत् च नारद ॥ ७९ ॥

नारद - नारदजी !
कथा समाप्तौ - कथा समाप्त होनेपर
यत् जातं - जो हुआ
तत् च श्रूयतां - उसे भी सुनो ॥ ७९ ॥

विमानैः सह भक्तैश्च हरिराविर्बभूव ह ।
जयशब्दा नमःशब्दास्तत्रासन् बहवस्तदा ॥ ८० ॥

विमानैः सह भक्तैः च हरिः आविर्बभूव ह जयशब्दा नमः शब्दाः तत्र आसन् बहवः तदा ॥ ८० ॥

विमानैः सह - विमानोंके साथ,
च भक्तैः हरिः - तथा भक्तों सहित श्रीहरि
आविर्बभूव ह - प्रकट ही होगये
तदा तत्र - तब वहाँ बहुत अधिक
जय शब्दा - जयकार ध्वनि
नमः शब्दाः - नमस्कार ध्वनि
बहवः आसन् - बार-बार होने लगी ॥ ८० ॥

पाञ्चजन्यध्वनिं चक्रे हर्षात्तत्र स्वयं हरिः ।
गोकर्णं तु समालिङ्ग्याकरोत्स्वसदृशं हरिः ॥ ८१ ॥

पाञ्चजन्य ध्वनिं चक्रे हर्षात् तत्र स्वयं हरिः गोकर्णं तु सम आलिङ्ग्य अकरोत् स्व सदृशं हरिः ॥ ८१ ॥

स्वयं हरिः - स्वयं श्रीहरिने प्रसन्न
हर्षात् होकर
तत्र - वहां स्वयं
पाञ्चजन्य - पाञ्चजन्य शंखका
ध्वनिंचक्रे - घोष किया
तु गोकर्णं - तथा गोकर्णका
सम आलिङ्ग्य -गाढ़ आलिंगन करके
हरिः स्वसदृशं - श्रीहरिने (उन्हें) अपने समान
अकरोत् - बना लिया ॥ ८१ ॥

श्रोतॄनन्यान् घनश्यामान् पीतकौशेयवाससः ।
किरीटिनः कुण्डलिनस्तथा चक्रे हरिः क्षणात् ॥ ८२ ॥

श्रोतॄन् अन्यान् घनश्यामान् पीतकौशेय वाससः किरीटिनः कुण्डलिनः तथा चक्रे हरिः क्षणात् ॥ ८२ ॥

तथा हरिः- - तथा श्रीहरिने क्षण
क्षणात् भरमें ही
अन्यान् श्रोतॄन् - दूसरे श्रोताओंको
घनश्यामान् - मेघश्याम वर्ण
पीत कौशेय-वाससः - पीले रेशमी वस्त्रधारी
किरीटिनः - मुकुट पहिने
कुण्डलिनः चक्रे - कुण्डल पहिने बना दिया ॥ ८२ ॥

तदग्रामे ये स्थिता जीवा आश्वचाण्डालजातयः ।
विमाने स्थापितास्तेऽपि गोकर्णकृपया तदा ॥ ८३ ॥

तत् ग्रामे ये स्थिता जीवा आश्व चाण्डाल जातयः विमाने स्थापिताः ते अपि गोकर्ण कृपया तदा ॥ ८३ ॥

तत् ग्रामे - उस गांवमें
आश्व चाण्डाल - कुत्तेसे लेकर चाण्डाल
जातयः ये - आदि जातियोंके जो
जीवास्थिता - जीव थे
ते अपि तदा - वे भी उस समय
गोकर्ण कृपया - गोकर्णकी कृपासे
विमाने स्थापिताः - विमानोंमें चढ़ा लिये गये ॥ ८३ ॥

प्रेषिता हरिलोके ते यत्र गच्छन्ति योगिनः ।
गोकर्णेन स गोपालो गोलोकं गोपवल्लभम् ।
कथाश्रवणतः प्रीतो निर्ययौ भक्तवत्सलः ॥ ८४ ॥

गोकर्णेन स गोपालः गोलोकं गोपवल्लभं कथा श्रवणतः प्रीतः निर्ययौ भक्तवत्सलः ॥ ८४ ॥

गोपवल्लभः	- गोपोंके प्रियतम	**गोकर्णेन**	- गोकर्णके साथ
भक्तवत्सलः	- भक्तवत्सल	**गोलोकं निर्ययौ**	- गोलोक (जाने) के लिए निकल पड़े
स गोपालः	- वे गोपाल		॥ ८४ ॥
कथा श्रवणतः	- कथा-श्रवणसे प्रसन्न		
प्रीतः	होकर		

अयोध्यावासिनः पूर्वं यथा रामेण संगताः ।
तथा कृष्णेन ते नीता गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥ ८५ ॥

अयोध्या वासिनः पूर्वं यथा रामेण संगताः तथा कृष्णेन ते नीताः गोलोकं योगि दुर्लभम् ॥ ८५ ॥

यथा पूर्वं	- जैसे पहिले (त्रे तान्तमें)	**तथा ते-**	- इसी प्रकार वे लोग
अयोध्या वासिनः	- अयोध्यावासी	**कृष्णेन**	श्रीकृष्ण द्वारा
रामेण संगताः	- श्रीरामके साथ (साकेत) गए थे	**योगि दुर्लभं**	- योगियोंको भी दुर्लभ
		गोलोकं नीताः	- गोलोक ले जाये गये ॥ ८५ ॥

यत्र सूर्यस्य सोमस्य सिद्धानां न गतिः कदा ।
तं लोकं हि गतास्ते तु श्रीमद्भागवतश्रवात् ॥ ८६ ॥

यत्र सूर्यस्य सोमस्य सिद्धानां न गतिः कदा तं लोकं हि गताः ते तु श्रीमद्भागवत श्रवात् ॥ ८६ ॥

यत्र कदा	- जहां कभी	**श्रीमद्भागवत**	- श्रीमद्भागवतके
सूर्यस्य सोमस्य	- सूर्यकी, चन्द्रमाकी,	**श्रवात् हि**	- श्रवणसे ही
सिद्धानां-	- एवं सिद्धोंकी पहुँच	**ते तु तं-**	- वे तो उस (गो) लोक
गतिः न	नहीं है,	**लोकं गताः**	पहुँच गये ॥ ८६ ॥

ब्रूमोऽत्र ते किं फलवृन्दमुज्ज्वलं सप्ताहयज्ञेन कथासु संचितम् ।
कर्णेन गोकर्णकथाक्षरो यैः पीतश्च ते गर्भगता न भूयः ॥ ८७ ॥

ब्रूमः अत्र ते किं फलवृन्दं उज्ज्वलं सप्ताहयज्ञेन कथा सु संचितं कर्णेन गोकर्ण कथा अक्षरः यैः पीतः च ते गर्भगता न भूयः ॥ ८७ ॥

अत्र ते	- यहां तुमसे	**गोकर्ण-**	- गोकर्णकी कथाका एक
सप्ताह यज्ञेन	- सप्ताह यज्ञरूप	**कथा अक्षरः**	अक्षर भी
कथासु संचितं	- कथासे एकत्र होने वाले	**यैः कर्णेन-**	- जिन्होंने (अपने)
उज्ज्वलं फलवृन्दं	- उज्ज्वल फल राशिका	**पीतः**	कानोंसे पिया
किं ब्रूमः	- क्या वर्णन करे,	**ते भूयः**	- वे फिर
		गर्भगता न	- गर्भमें नहीं आये ॥८७॥

वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसंचितैः ।
योगैश्च संयान्ति न तां गतिं वै सप्ताहगाथाश्रवणेन यान्ति याम् ॥ ८८ ॥

वात अम्बु पर्ण अशन देह शोषणैः तपोभिः उग्रैः चिरकाल संचितैः योगैः च संयान्ति न तां गतिं वै सप्ताह गाथा श्रवणेन यान्ति याम् ॥८८॥

वात अम्बु पर्ण	- वायु, जल या पत्ते	**च योगैः तां**	- तथा योगसे उस
अशन देह-	- खाकर शरीर	**गतिं वै**	गतिको निश्चय
शोषणैः	सुखानेवाली	**न संयान्ति**	- ठीक नहीं जा पाते
चिरकाल-	- दीर्घकाल तक	**सप्ताह गाथा**	- सप्ताह कथा
संचितैः	एकत्रकी गयी	**श्रवणेन**	- श्रवण करनेसे जिस (गति)
उग्रैः तपोभिः	- उग्र तपस्यासे	**यां यान्ति**	को जाते हैं ॥ ८८ ॥

इतिहासमिमं पुण्यं शाण्डिल्योऽपि मुनीश्वरः ।
पठते चित्रकूटस्थो ब्रह्मानन्दपरिप्लुतः ॥ ८९ ॥

इतिहासं इमं पुण्यं शाण्डिल्यः अपि मुनीश्वरः पठते चित्रकूटस्थः ब्रह्मानन्द परिप्लुतः ॥ ८९ ॥

चित्रकूटस्थः - चित्रकूटमें स्थित
मुनीश्वरः - मुनीश्वर
शाण्डिल्यः अपि - शाण्डिल्य भी
ब्रह्मानन्द- - ब्रह्मानन्दमें निमग्न होकर
परिप्लुतः
इमं पुण्यं - इस पवित्र
इतिहासं पठते - इतिहासका पाठ करते हैं ॥ ८९ ॥

आख्यानमेतत्परमं पवित्रं श्रुतं सकृद्वै विदहेदघौघम् ।
श्राद्धे प्रयुक्तं पितृतृप्तिमावहेन्नित्यं सुपाठादपुनर्भवं च ॥ ९० ॥

आख्यानं एतत् परमं पवित्रं श्रुतं सकृत् वै विदहेद् अघ औघं श्राद्धे प्रयुक्तं पितृ तृप्तिं आवहेत् नित्यं सुपाठात् अपुनर्भवं च ॥ ९० ॥

एतत् परम पवित्रं - इस परम पवित्र
आख्यानं - आख्यानका
सकृत् श्रुतं - एक बारका श्रवण
अघ औघं - पापकी बाढ़को
वै विदहेत् - निश्चय भस्म कर देता है ।
श्राद्धे प्रयुक्तं - श्राद्धमें (इसका) प्रयोग करनेपर
पितृ तृप्तिं - पितरोंको तृप्ति
आवहेत् - देता है,
च नित्यं- - तथा नित्य भली प्रकार
सुपाठात् (मन लगाकर) पाठ करनेसे
अपुनर्भवं - मोक्ष देता है ॥ ९० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये गोकर्णमोक्षवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

कुमारा ऊचुः-

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामः सप्ताहश्रवणे विधिम् ।
सहायैर्वसुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिः स्मृतः ॥ १ ॥

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामः सप्ताह श्रवणे विधिं सहायैः वसुभिः च एव प्रायः साध्यः विधिः स्मृतः ॥ १ ॥

अथ ते	- अब तुमसे	**सहायैः च-**	- सहायकों तथ धनसे
सप्ताह श्रवणे	- सप्ताह श्रवणकी	**वसुभिः**	
विधिं-	- विधि पूर्णरूपसे	**एव विधिः**	- ही (यह) विधि
सम्प्रवक्ष्यामः	कहते हैं,	**साध्यः स्मृतः**	- करना शक्य कही गयी है ॥ १ ॥

दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छ्य यत्नतः ।
विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयेत् ॥ २ ॥

दैवज्ञं तु सम आहूय मुहूर्तं पृच्छ्य यत्नतः विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयेत् ॥ २ ॥

दैवज्ञं तु	- ज्योतिषीको तो	**विवाहे यादृशं**	- एक विवाह में जिस प्रकार (जितना)
सम आहूय	- सम्मानपूर्वक बुलाकर	**वित्तं तादृशं**	- धन (लगता हो) उस प्रकार (उतना)
यत्नतः	- प्रयत्नपूर्वक	**परिकल्पयेत्**	- प्रबन्ध कर ले ॥ २ ॥
मुहूर्तं पृच्छ्य	- मुहूर्त पूछकर		

नभस्य आश्विनोर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभाः ।
एते मासाः कथारम्भे श्रोतृणां मोक्षसूचकाः ॥ ३ ॥

नभस्य आश्विन अर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिः नभाः एते मासाः कथा आरम्भे श्रोतृणां मोक्ष सूचकाः ॥ ३ ॥

कथा आरम्भे - कथा प्रारम्भ करनेके लिए
नभस्य आश्विन - भाद्रपद, आश्विन,
अर्जौ मार्गशीर्षः - कार्तिक, मार्गशीर्ष,
शुचिः च नभाः- आषाढ़ और श्रावण
एते मासाः - इतने महीने
श्रोतृणां मोक्ष - श्रोताओंके लिए मोक्ष-
सूचकाः सूचक हैं ॥ ३ ॥

मासानां विप्र हेयानि तानि त्याज्यानि सर्वथा ।
सहायाश्चेतरे तत्र कर्तव्याः सोद्यमाश्च ये ॥ ४ ॥

मासानां विप्र हेयानि तानि त्याज्यानि सर्वथा सहायाः च इतरे तत्र कर्तव्याः स उद्यमाः च ये ॥ ४ ॥

विप्र - नारद जी !
मासानां हेयानि - (इन) महीनोंमें भी निन्दित समय (भद्रा, व्यतीपातादि)
तानि सर्वथा - उनको सर्वथा
त्याज्यानि - त्याग देना चाहिए,
तत्र ये स उद्यमाः - वहां जो उद्योगी
इतरे च - दूसरे भी हों (उनको)
सहायाः च कर्तव्याः- सहायकर्ता बना लेना चाहिए ॥४॥

देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रेष्या प्रयत्नतः ।
भविष्यति कथा चात्र आगन्तव्यं कुटुम्बिभिः ॥ ५ ॥

देशे देशे तथा स इयं वार्ता प्रेष्या प्रयत्नतः भविष्यति कथा च अत्र आगन्तव्यं कुटुम्बिभिः ॥ ५ ॥

तथा प्रयत्नतः - फिर प्रयत्नपूर्वक
देशे देशे - स्थान स्थानपर
स इयं- - वह यह समाचार
वार्ता प्रेष्या भेजना चाहिए
अत्र कथा - 'यहां कथा
भविष्यति - होगी,
कुटुम्बिभिः - सकुटुम्ब (आप सबको)
अत्र- - यहां आना ही चाहिए
आगन्तव्यं च ॥ ५ ॥

दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः ।
स्त्रियः शूद्रादयो ये च तेषां बोधो यतो भवेत् ॥ ६ ॥

दूरे हरि कथाः केचित् दूरे च अच्युत कीर्तनाः स्त्रियः शूद्र आदयः ये च तेषां बोधः यतः भवेत् ॥ ६ ॥

केचित्	- कोई कोई	**च हरि**	- तथा भगवत्कीर्तन करने
ये स्त्रियः-	- जो स्त्री शूद्र आदि	**कीर्तनाः दूरे**	वालोंसे दूर पड़ गये हैं
शूद्र आदयः		**तेषां च बोधः**	- उनको भी पता
हरि कथाः दूरे	- हरिकथासे दूर पड़ गये हैं,	**यतः भवेत्**	- जिससे हो जाय (ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए) ॥ ६ ॥

देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः ।
तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम् ॥ ७ ॥

देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तन उत्सुकाः तेषु एव पत्रं प्रेष्यं च तत् लेखनं इति ईरितम् ॥ ७ ॥

देशे देशे	- स्थान स्थानपर	**तेषु एव पत्रं**	- उनको इस प्रकारका पत्र
ये कीर्तन-	- जो कीर्तन करनेको	**प्रेष्यं च**	- भेजना ही चाहिए
उत्सुकाः	उत्सुक	**तत् लेखनं**	- उसे लिखनेकी विधि
विरक्ता वैष्णवाः	- विरक्त वैष्णव हैं	**इति ईरितं**	- इस प्रकार बतलायी गयी है ॥ ७ ॥

सतां समाजो भविता सप्तरात्रं सुदुर्लभः ।
अपूर्वरसरूपैव कथा चात्र भविष्यति ॥ ८ ॥

सतां समाजः भविता सप्तरात्रं सुदुर्लभः अपूर्व रसरूपा एव कथा च अत्र भविष्यति ॥ ८ ॥

अत्र सुदुर्लभः	- 'यहां अत्यन्त दुर्लभ	**च अपूर्व**	- तथा अपूर्व
सतां समाजः	- सत्पुरुषोंका समागम	**रसरूपा एव**	- रसरूपा ही
सप्तरात्रं भविता	- सात-दिन तक होगा	**कथा भविष्यति**	- कथा होगी ॥ ८ ॥

श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलम्पटाः ।
भवन्तश्च तथा शीघ्रमायात प्रेमतत्पराः ॥ ९ ॥

श्री भागवत पीयूष पानाय रस लम्पटाः भवन्तः च तथा शीघ्रं आयात प्रेम तत्पराः ॥ ९ ॥

श्रीभागवत	- श्रीमद्भागवत	**प्रेम तत्पराः तथा**	- प्रेम परायण
पीयूष पानाय	- अमृत पीनेके लिए	**भवन्तः च**	- और आप भी
रस लम्पटाः	- रस लोलुप	**शीघ्रं आयात**	- शीघ्र आइये ॥९॥

नावकाशः कदाचिच्चेदिनमात्रं तथापि तु ।
सर्वथाऽऽगमनं कार्यं क्षणोऽत्रैव सुदुर्लभः ॥ १० ॥

न अवकाशः कदाचित् चेत् दिनमात्रं तथा अपि तु सर्वथा आगमनं कार्यं क्षणः अत्र एव सुदुर्लभः ॥ १० ॥

कदाचित्	- कदाचित्	**दिन मात्रं**	- एक दिनके लिए ही
अवकाशः-	- अवकाश न हो	**आगमनं कार्यं**	- पधारना ही चाहिए
न चेत्		**अत्र एव क्षणः**	- यहां का तो एक क्षण भी
तथा अपि तु	- ऐसा होनेपर भी तो	**सुदुर्लभः**	- अत्यन्त दुर्लभ है' ॥ १० ॥

एवमाकारणं तेषां कर्तव्यं विनयेन च ।
आगन्तुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत् ॥ ११ ॥

एवं आकारणं तेषां कर्तव्यं विनयेन च आगन्तुकानां सर्वेषां वासः स्थानानि कल्पयेत् ॥ ११ ॥

एवं तेषां	- इस प्रकार उनको	**सर्वेषां-आगन्तुकानां**	- सभी आने वालोंके लिए
विनयेन च	- विनयपूर्वक ही	**वासः स्थानानि**	- निवासके स्थानोंकी
आकारणं	- बुलाना चाहिए,	**कल्पयेत्**	- व्यवस्था करें ॥ ११ ॥

तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवणं मतम् ।
विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत्कथास्थलम् ।। १२ ।।

तीर्थे वा अपि वने वा अपि गृहे वा श्रवणं मतं विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत् कथा स्थलम् ।। १२ ।।

तीर्थे वा अपि	- तीर्थमें ही,	**यत्र विशाला-**	- जहां विस्तृत भूमि हो
वा वने अपि	- अथवा वनमें ही,	**वसुधा**	
वा गृहे-	- अथवा घरमें श्रवण	**तत् कथा स्थलं**	- उसे कथा-स्थान
श्रवणं मतं	करना उचित है,	**कर्तव्यं**	- बनाना चाहिए ।।१२।।

शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम् ।
गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ।। १३ ।।

शोधनं मार्जनं भूमेः लेपनं धातु मण्डनं गृह उपस्करं उद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ।। १३ ।।

गृह उपस्करं	- घरेलू सामग्री	**मार्जनं**	- छिड़काव करे,
उद्धृत्य	- उठाकर	**लेपनं**	- लीपे और
गृहकोणे	- घरके कोनेमें	**धातु मण्डनं**	- (खड़िया, गेरू आदि)
निवेशयेत्	- रख दे,		धातुओंसे (मण्डल बनाकर)
भूमेः शोधनं	- भूमिको स्वच्छ करे,		सजाये ।। १३ ।।

अर्वाक्पञ्चाहतो यत्नादास्तीर्णानि प्रमेलयेत् ।
कर्तव्यो मण्डपः प्रोच्चैः कदलीखण्डमण्डितः ।। १४ ।।

अर्वाक् पञ्च अहतः यत्नात् आस्तीर्णानि प्रमेलयेत् कर्तव्यः मण्डपः प्रोच्चैः कदली खण्ड मण्डितः ।। १४ ।।

पञ्च अहतः - पांच दिन
अर्वाक् - पहिले ही
यत्नात् - प्रत्यनपूर्वक
आस्तीर्णानि - बिछानेके वस्त्र (दरी आदि)
प्रमेलयेत् - जुटाले,
कदलीखण्ड-मण्डितः - केलेके खम्भोंसे सुशोभित
प्रोच्चैः मण्डपः - खूब ऊंचा मण्डप
कर्तव्यः - बनना चाहिए ॥ १४ ॥

फलपुष्पदलैर्विष्वग्वितानेन विराजितः ।
चतुर्दिक्षु ध्वजारोपो बहुसम्पद्विराजितः ॥ १५ ॥

फल पुष्प दलैः विष्वक् वितानेन विराजितः चतुः दिक्षु ध्वजा आरोपः बहु सम्पत् विराजितः ॥ १५ ॥

फल पुष्प दलैः - (उस मण्डपको) फल, पुष्प, पल्लव,
वितानेन - चँदोवेसे
विष्वक्-विराजितः - चारों ओरसे सजावे,
चतुः दिक्षु - चारों दिशाओंमें
ध्वजारोपः - ध्वजा लगावे,
बहु सम्पत्-विराजितः - बहुत सम्पत्ति से सज्जित करे ॥ १५ ॥

ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च कल्पनीयाः सविस्तरम् ।
तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य च ॥ १६ ॥

ऊर्ध्वं सप्त एव लोकाः च कल्पनीयाः सविस्तरं तेषु विप्रा विरक्ताः च स्थापनीयाः प्रबोध्य च ॥ १६ ॥

ऊर्ध्वं सप्त एव - (कुछ) ऊंचाईपर सात ही
लोकाः च - लोकोंका ही
सविस्तरं-कल्पनीयाः - विस्तारपूर्वक निर्माण करना चाहिए
तेषु प्रबोध्य च - उनमें बुला करके ही
विप्रा च-विरक्ताः - ब्राह्मणों ओर विरक्तोंको
स्थापनीयाः - बैठाना चाहिए ॥१६॥

पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम् ।
वक्तुश्चापि तदा दिव्यमासनं परिकल्पयेत् ॥ १७ ॥

पूर्वं तेषाम् आसनानि कर्तव्यानि यथा उत्तरं वक्तुः च अपि तदा दिव्यं आसनं परिकल्पयेत् ॥ १७ ॥

पूर्वं तेषाम् - पहिले उनके लिए
यथा उत्तरं - उनकी श्रेष्ठताके अनुसार
आसनानि - आसनोंकी (व्यवस्था)
कर्तव्यानि - करनी चाहिए,
तदा वक्तुः- - फिर वक्ताके लिए भी
च अपि
दिव्यं आसनं - दिव्य (सुन्दर) सिंहासनकी
परिकल्पयेत् - व्यवस्था करे ॥ १७ ॥

उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तदा ।
प्राङ्मुखश्चेद्भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तदा ॥ १८ ॥

उदङ्मुखः भवेत् वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखः तदा प्राङ्मुखः चेत् भवेत् वक्ता श्रोता च उदङ्मुखः तदा ॥ १८ ॥

वक्ता उदङ्मुखः - वक्ता उत्तरमुख
भवेत् - (बैठा) हो
तदा वै श्रोता - तब निश्चय श्रोता
प्राङ्मुखः - पूर्वमुख बैठे,
चेत् वक्ता - यदि वक्ता
प्राङ्मुखः - पूर्वमुख
भवेत् तदा - हो तब
श्रोता उदङ्मुखः - श्रोता उत्तरमुख बैठे ॥ १८ ॥

अथवा पूर्वदिग्ज्ञेया पूज्यपूजकमध्यतः ।
श्रोतृणामागमे प्रोक्ता देशकालादिकोविदैः ॥ १९ ॥

अथवा पूर्व दिक् ज्ञेया पूज्य पूजक मध्यतः श्रोतृणां आगमे प्रोक्ता देशकाल आदि कोविदैः ॥ १९ ॥

अथवा पूज्य - अथवा पूज्य और
पूजक मध्यतः - पूजकके मध्य (दोनोंको)
पूर्व दिक् ज्ञेया- पूर्वमुख (बैठना उचित) जानना चाहिए,
देशकाल आदि - देशकाल आदिके
कोविदैः - जानकारों ने
श्रोतृणां आगमे - श्रोताके लिए यही विधि
प्रोक्ता कही है ॥ १९ ॥

विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशुद्धिकृत् ।
दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिःस्पृहः ॥ २० ॥

विरक्तः वैष्णवः विप्रः वेदशास्त्र विशुद्धिकृत् दृष्टान्त कुशलः धीरः वक्ता कार्यः अति निस्पृहः ॥ २० ॥

वेद शास्त्र - वेद-शास्त्रोंके
विशुद्धिकृत् - शुद्ध होनेका समर्थक,
दृष्टान्त कुशलः - दृष्टान्त देनेमें कुशल,
विरक्तः वैष्णवः - विरक्त, वैष्णव,
विप्रः - ब्राह्मण,
अति निस्पृहः - अत्यन्त निस्पृह
वक्ता कार्यः - वक्ता बनाना चाहिए ॥ २० ॥

अनेकधर्मविभ्रान्ताः स्त्रैणाः पाखण्डवादिनः ।
शुकशास्त्रकथोच्चारे त्याज्यास्ते यदि पण्डिताः ॥ २१ ॥

अनेक धर्म विभ्रान्ताः स्त्रैणाः पाखण्ड वादिनः शुकशास्त्र कथा उच्चारे त्याज्याः ते यदि पण्डिताः ॥ २१ ॥

अनेक धर्म - अनेक धर्मों (के सिद्धान्तों) में
विभ्रान्ताः - भटकने वाले
स्त्रैणाः - स्त्री लम्पट
पाखण्डवादिनः - पाखण्डकी बातें करने वाले
यदि पण्डिताः - यदि विद्वान भी हो तो
शुकशास्त्र - शुकदेवजीके शास्त्र (भागवत) की
कथा उच्चारे - कथा कहनेके लिए
ते त्याज्याः - वे त्याग देने योग्य हैं ॥ २१ ॥

वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः ।
पण्डितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः ॥ २२ ॥

वक्तुः पार्श्वे सहाय अर्थम् अन्यः स्थाप्यः तथा विधः पण्डितः संशयच्छेत्ता लोक बोधन तत्परः ॥ २२ ॥

वक्तुः पार्श्वे - वक्ताके समीप
तथा विधिः - उसी प्रकारका
संशयच्छेत्ता - संशय काट देने वाला
लोकबोधन - लोगोंको समझानेमें
तत्परः पण्डितः- तत्पर विद्वान
सहाय अर्थं - (वक्ताकी) सहायताके लिए
स्थाप्यः - बैठाना चाहिए ॥२२॥

वक्त्रा क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनादर्वाग्व्रताप्तये ।
अरुणोदयेऽसौ निर्वर्त्य शौचं स्नानं समाचरेत् ॥ २३ ॥

वक्त्रा क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनात् अर्वाक् व्रत आप्तये अरुणोदये असौ निर्वर्त्य शौचं स्नानं सम आचरेत् ॥ २३ ॥

दिनात् अर्वाक् - एक दिन (कथा प्रारम्भसे) पहिले
व्रत आप्तये - व्रत ग्रहणके लिए
वक्त्रा क्षौरं - वक्ताको क्षौर
प्रकर्तव्यं - करा लेना चाहिए,
असौ अरुणोदये - यह अरुणोदयके समय
शौचं निर्वर्त्य - शौचसे निवृत्त होकर
स्नानं सम- - भली प्रकार स्नान करे
आचरेत् ॥ २३ ॥

नित्यं संक्षेपतः कृत्वा संध्याद्यं स्वं प्रयत्नतः ।
कथाविघ्नविघाताय गणनाथं प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥

नित्यं संक्षेपतः कृत्वा सन्ध्या आद्यं स्वं प्रयत्नतः कथा विघ्न विघाताय गणनाथं प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥

नित्यं प्रयत्नतः - प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक
स्वं सन्ध्या आद्यं - अपना सन्ध्या आदि कर्म
संक्षेपतः कृत्वा - संक्षिप्त रूपसे करके
कथा विघ्न - कथाके विघ्नोंके
विघाताय - विनाशके लिए
गणनाथं - गणेशजी की
प्रपूजयेत् - विधिपूर्वक पूजा करे ॥ २४ ॥

पितॄन् संतर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरैत् ।
मण्डलं च प्रकर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा ॥ २५ ॥

पितॄन् संतर्प्य शुद्धि अर्थं प्रायश्चित्तं समआचरेत् मण्डलं च प्रकर्तव्यं तत्र स्थाप्यः हरिः तथा ॥ २५ ॥

पितॄन् संतर्प्य	- पितरोंका तर्पण करके	**मण्डलं च**	- मण्डल भी
शुद्धि अर्थं	- (पूर्व पापोंकी) शुद्धिके लिए	**प्रकर्तव्यं**	- बनाना चाहिए
		तथा तत्र	- उस समय उसमें
प्रायश्चित्तं	- प्रायश्चितका	**हरिः स्थाप्यः**	- श्रीहरिकी स्थापना करनी चाहिए ॥ २५ ॥
सम आचरेत्	- सम्यक् आचरण करे,		

कृष्णमुद्दिश्य मन्त्रेण चरेत्पूजाविधिं क्रमात् ।
प्रदक्षिणनमस्कारान् पूजान्ते स्तुतिमाचरेत् ॥ २६ ॥

कृष्णं उद्दिश्य मन्त्रेण चरेत् पूजा विधिं क्रमात् प्रदक्षिण नमस्कारान् पूजा अन्ते स्तुतिं आचरेत् ॥ २६ ॥

कृष्णं उद्दिश्य	- श्रीकृष्णको लक्ष्य बनाकर	**पूजा अन्ते**	- पूजाके अन्तमें
मन्त्रेण	- मन्त्रपूर्वक	**प्रदक्षिण**	- प्रदक्षिणा
क्रमात् विधिं	- क्रमशः विधिपूर्वक	**नमस्कारान्**	- प्रणाम करके
पूजा चरेत्	- पूजा करे,	**स्तुतिं आचरेत्**	- यह स्तुति करे ॥२६॥

संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे ।
कर्ममोहगृहीतांगं मामुद्धर भवार्णवात् ॥ २७ ॥

संसार सागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे कर्ममोह गृहीत अंगं मां उद्धर भव अर्णवात् ॥ २७ ॥

करुणानिधे	- 'करुणासिन्धु !	**गृहीत अंगं**	- जकड़े शरीर वाले
संसार सागरे--	- संसार रूपी समुद्रमें	**भव अर्णवात्**	- संसार सागरसे
मग्नं	डूबे	**मां मां उद्धर**	- (प्रभु) मेरा, मेरा उद्धार कीजिए ॥ २७ ॥
कर्म मोह	- कर्मके मोहसे		

श्रीमद्भागवतस्यापि ततः पूजा प्रयत्नतः ।
कर्तव्या विधिना प्रीत्या धूपदीपसमन्विता ॥ २८ ॥

श्रीमद्भागवतस्य अपि ततः पूजा प्रयत्नतः कर्तव्या विधिना प्रीत्या धूप दीप समन्विता ॥ २८ ॥

ततः प्रीत्या - फिर प्रेमपूर्वक
प्रयत्नतः - प्रयत्नके साथ
श्रीमद्भागवतस्य - श्रीमद्भागवतकी
अपि धूप दीप - भी धूप-दीप
समन्विता - सहित
पूजा विधिना - पूजा विधिपूर्वक
कर्तव्या - करनी चाहिए ॥ २८ ॥

ततस्तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारं समाचरेत् ।
स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या केवलं तदा ॥ २९ ॥

ततः तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारं सम आचरेत् स्तुतिः प्रसन्न चित्तेन कर्तव्या केवलं तदा ॥ २९ ॥

ततः तु - फिर तो
श्रीफलं धृत्वा - (ग्रन्थके आगे) नारियल रखकर
नमस्कारं - नमस्कार
सम आचरेत् - सम्यक् रूपसे (साष्टांग) करे ।
तदा प्रसन्नचित्तेन - फिर प्रसन्नचित्तसे
केवलं - केवल
स्तुतिः कर्तव्या - स्तुति करनी चाहिए ॥ २९ ॥

श्रीमद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि ।
स्वीकृतोऽसि मया नाथ मुक्त्यर्थं भवसागरे ॥ ३० ॥

श्रीमद्भागवत आख्यः अयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि स्वीकृतः असि मया नाथ मुक्ति अर्थं भव सागरे ॥ ३० ॥

:ाथ	- स्वामी !	**प्रत्यक्षः-**	- प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण रूपमें ही
श्रीमद्भागवत	- श्रीमद्भागवत	**कृष्ण एव**	
आख्यः अयं	- नामक इस ग्रन्थको	**भव सागरे**	- संसार सागरसे
हि मया	- क्योंकि मैंने	**मुक्ति अर्थं**	- मुक्तिके लिए
		स्वीकृतः असि	- स्वीकार किया है
			॥ ३० ॥

मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया ।
निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव ॥ ३१ ॥

मनोरथः मदीयः अयं सफलः सर्वथा त्वया निर्विघ्नेन एव कर्तव्यः दासः अहं तव केशव ॥ ३१ ॥

केशव	- केशव !	**त्वया-**	- बिना किसी विघ्नके
अहं तव दासः	- मैं आपका दास हूं,	**निर्विघ्नेन एव**	ही,
अयं मदीयः	- यह मेरा	**सफलः कर्तव्यः**	- सफल करना चाहिए
मनोरथः	- मनोरथ		॥ ३१ ॥

एवं दीनवचः प्रोच्य वक्तारं चाथ पूजयेत् ।
सम्भूष्य वस्त्रभूषाभिः पूजान्ते तं च संस्तवेत् ॥ ३२ ॥

एवं दीनवचः प्रोच्य वक्तारं च अथ पूजयेत् सम्भूष्य वस्त्र भूषाभिः पूजा अन्ते तं च संस्तवेत् ॥ ३२ ॥

एवं दीन वचः	- इस प्रकार दीनवाणी	**वस्त्र भूषाभिः**	- वस्त्र-आभूषणसे
प्रोच्य	- स्पष्ट स्वरमें कहकर	**सम्भूष्य**	- भली प्रकार भूषित करके
अथ वक्तारं	- फिर वक्ताको भी	**पूजयेत्**	- (उसकी) पूजा करे,
		पूजा अन्ते	- पूजाके अन्तमें
		तं च	- उसकी भी
		संस्तवेत्	- (इस प्रकार) स्तुति करे
			॥ ३२ ॥

शुकरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ॥ ३३ ॥

शुकरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्र विशारद एतत् कथा प्रकाशेन मत् अज्ञानं विनाशय ॥ ३३ ॥

शुकरूप	- 'श्रीशुकदेवजीके स्वरूप	**एतत् कथा**	- इस कथाके
प्रबोधज्ञ	- समझानेमें कुशल	**प्रकाशेन**	- प्रकाश द्वारा
सर्वशास्त्र	- सब शास्त्रोंके	**मत् अज्ञानं**	- मेरे अज्ञानका
विशारद	- पारंगत !	**विनाशय**	- सम्पूर्ण नाश कीजिए' ॥ ३३ ॥

तदग्रे नियमः पश्चात्कर्तव्यः श्रेयसे मुदा ।
सप्तरात्रं यथाशक्त्या धारणीयः स एव हि ॥ ३४ ॥

तत् अग्रे नियमः पश्चात् कर्तव्यः श्रेयसे मुदा सप्तरात्रं यथा शक्त्या धारणीयः स एव हि ॥ ३४ ॥

पश्चात्	- (इसके) पश्चात्	**श्रेयसे कर्तव्यः**	- कल्याणके लिए (घोषणा) करनी चाहिए
तत् अग्रे	- उन (वक्ता) के सामने	**हि स एव**	- क्योंकि उन्हीं को
यथा शक्त्या	- (अपनी) शक्तिके अनुसार	**सप्तरात्रं**	- सात दिनों तक
मुदा नियमः	- प्रसन्नतापूर्वक नियम (पारमन) की	**धारणीयः**	- धारण (पालन) करना चाहिए ॥ ३४ ॥

वरणं पञ्चविप्राणां कथाभङ्गनिवृत्तये ।
कर्तव्यं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३५ ॥

वरणं पञ्च विप्राणां कथा भंग निवृत्तये कर्तव्यं तैः हरेः जाप्यं द्वादशाक्षर विद्यया ॥ ३५ ॥

कथा भंग	-	कथामें विघ्नोंकी	**तैः हरेः**	-	उन (ब्राह्मणों) को
निवृत्तये	-	निवृत्तिके लिए			श्रीहरिके
पञ्च विप्राणां	-	पांच ब्राह्मणोंका	**द्वादशाक्षर-**	-	द्वादशाक्षर मन्त्रका
वरणं कर्तव्यं	-	वरण करना चाहिए ।	**विद्यया**		
			जाप्यं	-	जप करना चाहिए
					॥ ३५ ॥

ब्राह्मणान् वैष्णवांश्चान्यांस्तथा कीर्तनकारिणः ।
नत्वा सम्पूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमाविशेत् ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणान् वैष्णवान् च अन्यान् तथा कीर्तनकारिणः नत्वा सम्पूज्य दत्त आज्ञः स्वयं आसनं आविशेत् ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणान्	-	ब्राह्मणोंको,	**नत्वा सम्पूज्य**	-	नमस्कार करके,
वैष्णवान्	-	वैष्णवोंको,			सत्कृत करके
च अन्यान्	-	एवं दूसरे लोगोंको	**दत्त आज्ञः**	-	उनके आज्ञा देनेपर
तथा कीर्तन-	-	तथा कीर्तन करने	**स्वयं आसनं**	-	अपने आसनपर
कारिणः		वालोंको	**आविशेत्**	-	बैठे ॥ ३६ ॥

लोकवित्तधनागारपुत्रचिन्तां व्युदस्य च ।
कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत्फलमुत्तमम् ॥ ३७ ॥

लोक वित्त धन आगार पुत्र चिन्तां व्युदस्य च कथा चित्तः शुद्ध मतिः स लभेत् फलं उत्तमम् ॥ ३७ ॥

लोक वित्त	-	संसार, सम्पत्ति,	**कथा चित्तः**	-	कथामें चित्त लगाये
धन आगार	-	धन, भवन	**शुद्ध मतिः**	-	शुद्ध बुद्धि है,
च पुत्र चिन्तां	-	तथा पुत्रोंकी चिन्ता	**स उत्तमं फलं**	-	वह उत्तम फल
व्युदस्य	-	त्यागकर	**लभेत्**	-	पाता है ॥ ३७ ॥

आसूर्योदयमारभ्य सार्धत्रिप्रहरान्तकम् ।
वाचनीया कथा सम्यग्धीरकण्ठं सुधीमता ॥ ३८ ॥

आसूर्योदयं आरभ्य सार्ध त्रिप्रहर अन्तकं वाचनीया कथा सम्यक् धीरकण्ठं सुधीमता ॥ ३८ ॥

सुधीमता	- अच्छी बुद्धि वाले (वक्ता) को	**धीरकण्ठं**	- मध्यम स्वरसे
आसूर्योदयं आरभ्य	- सूर्योदयसे लेकर	**सम्यक्**	- भली प्रकार
सार्ध त्रिप्रहर	- साढ़े तीन प्रहर	**कथा वाचनीया**	- कथा-वाचन करना चाहिए ॥ ३८ ॥
अन्तकं	- तक		

कथाविरामः कर्तव्यो मध्याह्ने घटिकाद्वयम् ।
तत्कथामनु कार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैस्तदा ॥ ३९ ॥

कथा विरामः कर्तव्यः मध्य अह्ने घटिका द्वयं तत् कथां अनु कार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैः तदा ॥ ३९ ॥

मध्यअह्ने	- दोपहरमें	**वै तदा**	- निश्चय उस समय
द्वयं घटिका	- दो घड़ी	**वैष्णवैः**	- वैष्णवोंको
कथा विरामः	- कथाका विश्राम	**तत् कथां अनु**	- उस (दिनकी) कथाके अनुसार
कर्तव्यः	- करना चाहिए,	**कीर्तनं कार्यं**	- कीर्तन करना चाहिए ॥ ३९ ॥

मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः ।
हविष्यान्नेन कर्तव्यो ह्येकवारं कथार्थिना ॥ ४० ॥

मल मूत्र जय अर्थं हि लघु आहारः सुख आवहः हविष्य अन्नेन कर्तव्यः हि एक वारं कथा अर्थिना ॥ ४० ॥

मल मूत्र - मल-मूत्र (का वेग)
जय अर्थं हि - जीतनेके लिए क्योंकि
लघु आहारः - हल्का आहार
सुख आवहः - सुखदायक होता है,
कथा अर्थिना - कथा सुनाने वालेको
एकवारं हि - एक ही समय
हविष्य अन्नेन - हविष्य (हवन योग्य) अन्नका
कर्तव्यः - (भोजन) करना चाहिए ॥ ४० ॥

उपोष्य सप्तरात्रं वै शक्तिश्चेच्छृणुयात्तदा ।
घृतपानं पयःपानं कृत्वा वै शृणुयात्सुखम् ॥ ४१ ॥

उपोष्य सप्तरात्रं वै शक्तिः चेत् शृणुयात् तदा घृतपानं पयः पानं कृत्वा वै शृणुयात् सुखम् ॥ ४१ ॥

चेत् शक्तिः - यदि शक्ति हो
वै तदा - निश्चय तब
सप्तरात्रं - सात दिन तक
उपोष्य शृणुयात् - उपवास करके श्रवण करे,
घृतपानं - घी पीकर
पयः पानं - दूध पीकर
सुखं वै - सुखपूर्वक ही
शृणुयात् - श्रवण करे ॥ ४१ ॥

फलाहारेण वा भाव्यमेकभुक्तेन वा पुनः ।
सुखसाध्यं भवेद्यत्तु कर्तव्यं श्रवणाय तत् ॥ ४२ ॥

फल आहारेण वा भाव्यं एक भुक्तेन वा पुनः सुख साध्यं भवेत् यत् तु कर्तव्यं श्रवणाय तत् ॥ ४२ ॥

वा फल-आहारेण - अथवा फल खाकर,
वा पुनः - अथवा फिर
एक भुक्तेन - एक बार अन्न खाकर
भाव्यं - रहे,
यत् तु - जो भी
सुख साध्यं-भवेत् - सुखसे चलने योग्य हो
श्रवणाय - (कथा) श्रवणके लिए
तत् कर्तव्यं - वही करना चाहिए ॥ ४२ ॥

भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारकम् ।
नोपवासो वरः प्रोक्तः कथाविघ्नकरो यदि ।। ४३ ।।

भोजनं तु वरं मन्ये कथा श्रवण कारकं न उपवासः वरः प्रोक्तः कथा विघ्न करः यदि ।। ४३ ।।

कथा श्रवण	- कथा श्रवण	**यदि कथा**	- यदि कथा (श्रवण) में
कारकं भोजनं तु	- कराने वाले भोजनको तो	**विघ्न करः**	- विघ्न डालने वाला हो तो
		उपवासः	- उपवास
वरं मन्ये	- (मैं) श्रेष्ठ मानता हूं,	**वरः न प्रोक्तः**	- श्रेष्ठ नहीं कहा गया है ।। ४३ ।।

सप्ताहव्रतिनां पुंसां नियमाञ्छृणु नारद ।
विष्णुदीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे ।। ४४ ।।

सप्ताह व्रतिनां पुंसां नियमान् शृणु नारद विष्णुदीक्षा विहीनानां न अधिकारः कथाश्रवे ।। ४४ ।।

नारद	- नारद जी !	**विष्णु दीक्षा**	- विष्णु भक्तिकी दीक्षासे
सप्ताह व्रतिनां	- सप्ताह (श्रवण) का व्रत लेने वाले	**विहीनानां**	- रहित लोगोंको
		कथा श्रवे	- कथा-श्रवणका
पुंसां नियमान्	- पुरुषोंके (पालनीय) नियमोंको	**अधिकारः न**	- अधिकार नहीं है ।। ४४ ।।
शृणु	- सुनो,		

ब्रह्मचर्यमधःसुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम् ।
कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती ।। ४५ ।।

ब्रह्मचर्यं अधः सुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनं कथा समाप्तौ भुक्तिं च कुर्यात् नित्यं कथाव्रती ।। ४५ ।।

कथाव्रती - कथा-श्रवणका व्रत लेने वाला
ब्रह्मचर्यं - ब्रह्मचर्य पालन करे,
अधः सुप्तिः - नीचे (पृथ्वीपर) सोये,
च पत्रावल्यां - तथा पत्तलमें
भोजनं - भोजन करे,
च कथा समाप्तौ - और कथा समाप्त होनेपर
नित्यं भुक्तिं - प्रतिदिन भोजन
कुर्यात् - करे ॥ ४५ ॥

द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव च ।
भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ ४६ ॥

द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठ अन्नं तथा एव च भावदुष्टं पर्युषितं जह्यात् नित्यं कथाव्रती ॥ ४६ ॥

द्विदलं मधु - दाल, शहद,
च तैलं - तथा तेल,
तथा एव - इसी प्रकार
गरिष्ठ अन्नं - गरिष्ठ भोजन,
भावदुष्टं - भावसे दूषित,
पर्युषितं - बासी भोजन
कथाव्रती - कथा-श्रवणका व्रत करने वाला
नित्यं जह्यात् - सदा छोड़ दे ॥ ४६ ॥

कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च ।
दम्भं मोहं तथा द्वेषं दूरयेच्च कथाव्रती ॥ ४७ ॥

कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभं एव च दम्भं मोहं तथा द्वेषं दूरयेत् च कथाव्रती ॥ ४७ ॥

कथा व्रती - कथा-श्रवणका व्रती
कामं क्रोधं - काम, क्रोध,
मदं मानं - मद, अभिमान,
मत्सरं च - डाह तथा
लोभं दम्भं एव च - लोभ और घमण्डको भी,
मोहं तथा द्वेषं - मोह तथा द्वेषको
दूरयेत् - दूर ही करता रहे ॥ ४७ ॥

वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा ।
स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेद्यः कथाव्रती ॥ ४८ ॥

वेद वैष्णव विप्राणां गुरु गो व्रतिनां तथा स्त्री राज महतां निन्दां वर्जयेत्
यः कथाव्रती ॥ ४८ ॥

यः कथाव्रती	- जो कथा-श्रवणव्रती है वह
वेद वैष्णव	- वेद, वैष्णव,
विप्राणां	- ब्राह्मणोंकी,
गुरु गो व्रतिनां	- गुरु, गौ, व्रत करने वालों,
स्त्री राज	- स्त्रियों, राजा
तथा महतां	- तथा महापुरुषोंकी
निन्दां वर्जयेत्	- निन्दा (करना-सुनना) वर्जित रखे ॥ ४८ ॥

रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतितव्रात्यकैस्तदा ।
द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेद्यः कथाव्रती ॥ ४९ ॥

रजस्वला अन्त्यज म्लेच्छ पतित व्रात्यकैः तदा द्विजद्विड् वेद बाह्यैः च न वदेत् यः कथाव्रती ॥ ४९ ॥

यः कथाव्रती	- जो कथा श्रवणका व्रती है वह
रजस्वला	- रजस्वला स्त्री,
अन्त्यज म्लेच्छ	- अन्त्यज, विधर्मी,
पतित	- पतित
व्रात्यकैः	- व्रात्यों[1]
द्विजद्विड्	- ब्राह्मण-द्वेषियों
च वेद बाह्यैः	- तथा वेदको न मानने वालोंसे
तदा न वदेत्	- उस (व्रतके दिनों) में बात न करे ॥ ४९ ॥

सत्यं शौचं दयां मौनमार्जवं विनयं तथा ।
उदारमानसं तद्वदेवं कुर्यात्कथाव्रती ॥ ५० ॥

सत्यं शौचं दया मौनं आर्जवं विनयं तथा उदार मानसं तद्वत् एवं कुर्यात् कथाव्रती ॥ ५० ॥

---

१. द्विजातिका पुरुष लगातार तीन दिन गायत्री जप न करे तो उसे व्रात्य माना जाता है । वह बिना प्रायश्चित्त शूद्र तुल्य होता है ।

कथाव्रती - कथा श्रवणका व्रती
सत्यं शौचं - सत्य भाषण, पवित्रता,
दया मौनं - दया, मौन,
आर्जवं - सरलता,
विनयं - विनम्रता
तथा तद्वत् - तथा इसी प्रकार
उदार मानसं - उदार चित्तता,
एवं कुर्यात् - इस प्रकार (आचरण) करे ॥ ५० ॥

दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान् ।
अनपत्यो मोक्षकामः शृणुयाच्च कथामिमाम् ॥ ५१ ॥

दरिद्रः च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान् अनपत्यः मोक्षकामः शृणुयात् च कथां इमाम् ॥ ५१ ॥

दरिद्रः च- - दरिद्र और क्षय
क्षयी रोगी रोगका रोगी,
निर्भाग्यः - भाग्यहीन,
पापकर्मवान् - (किसी) पापका कर्ता,
अनपत्यः - पुत्रहीन
च मोक्षकामः - तथा मुमुक्षु
इमां कथां - इस कथाको
शृणुयात् - श्रवण करे ॥ ५१ ॥

अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका ।
स्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृत अर्भका स्रवत् गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

या नारी - जो स्त्री
अपुष्पा - (असमय ही) रजस्वला नहीं होती,
च काकवन्ध्या - या एक सन्तान होकर फिर सन्तान होना रुक गया हो,
च वन्ध्या - या वन्ध्या है,
या मृत अर्भका - जिसके बच्चे होकर मर जाते हैं,
च स्रवत् गर्भा - या जिसका गर्भपात होजाता है
तया प्रयत्नतः - उसे प्रयत्नपूर्वक
श्राव्या - सुनाना चाहिए ॥५२॥

एतेषु विधिना श्रावे तदक्षयतरं भवेत् ।
अत्युत्तमा कथा दिव्या कोटियज्ञफलप्रदा ॥ ५३ ॥

एतेषु विधिना श्रावे तत् अक्षयतरं भवेत् अति उत्तमा कथा दिव्या कोटि यज्ञ फल प्रदा ॥ ५३ ॥

अति उत्तमा	- यह अत्यन्त उत्तम	**एतेषु**	- इन सबको
दिव्या कथां	- दिव्य कथा	**विधिना श्रावे**	- विधिपूर्वक सुननेसे
कोटि यज्ञ	- करोड़ों यज्ञोंका	**तत् अक्षयतरं**	- वह सर्वथा अक्षय
फल प्रदा	- फल देने वाली है (वह)	**भवेत्**	- होजाती है ॥ ५३ ॥

एवं कृत्वा व्रतविधिमुद्यापनमथाचरेत् ।
जन्माष्टमीव्रतमिव कर्तव्यं फलकाङ्क्षिभिः ॥ ५४ ॥

एवं कृत्वा व्रत विधिं उद्यापनं अथ आचरेत् जन्माष्टमी व्रतं इव कर्तव्यं फलकाङ्क्षिभिः ॥ ५४ ॥

एवं व्रत विधिं	- इस प्रकार व्रतकी विधि	**जन्माष्टमी**	- जन्माष्टमी
कृत्वा अथ	- सम्पन्न करके फिर	**व्रतं इव**	- व्रतकी भांति
उद्यापनं आचरेत्	- उद्यापन करे,	**कर्तव्यं**	- (उद्यापन) करना चाहिए
फल काङ्क्षिभिः	- फल चाहने वालेको		॥ ५४ ॥

अकिंचनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनाग्रहः
श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः ॥ ५५ ॥

अकिञ्चनेषु भक्तेषु प्रायः न उद्यापन आग्रहः श्रवणेन एव पूताः ते निष्कामा वैष्णवा यतः ॥ ५५ ॥

अकिञ्चनेषु	- अकिञ्चन	**ते श्रवणेन एव**	- वे श्रवण करने मात्रसे
भक्तेषु	- भक्तोंके लिए	**पूताः**	- पवित्र होगये,
प्रायः उद्यापन	- प्रायः उद्यापनका	**यतः वैष्णवा**	- क्योंकि भगवद्भक्त
आग्रहः न	- आग्रह नहीं है,	**निष्कामा**	- निष्काम होते हैं ॥५५॥

एवं नगाहयज्ञेऽस्मिन् समाप्ते श्रोतृभिस्तदा ।
पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्यातिभक्तितः ॥ ५६ ॥

एवं नगाह यज्ञे अस्मिन् समाप्ते श्रोतृभिः तदा पुस्तकस्य च वक्तुः च पूजा कार्या अति भक्तितः ॥ ५६ ॥

एवं अस्मिन् - इस प्रकार इस
नगाह यज्ञे - सप्ताह यज्ञके
समाप्ते - सम्पूर्ण होनेपर
तदा श्रोतृभिः - उस समय श्रोताओं द्वारा
पुस्तकस्य - ग्रन्थकी
च वक्तुः च - तथा वक्ताकी भी
अति भक्तितः - अत्यन्त भक्तिपूर्वक
पूजा कार्या - पूजा करनी चाहिए ॥ ५६ ॥

प्रसादतुलसीमाला श्रोतृभ्यश्चाथ दीयताम् ।
मृदंगताललललितं कर्तव्यं कीर्तनं ततः ॥ ५७ ॥

प्रसाद तुलसी माला श्रोतृभ्यः च अथ दीयतां मृदंग ताल ललितं कर्तव्यं कीर्तनं ततः ॥ ५७ ॥

अथ- - फिर श्रोताओंको भी
श्रोतृभ्यः च
प्रसाद तुलसी - प्रसाद, तुलसी,
माला दीयतां - माला प्रदान करो,
ततः मृदंग - फिर मृदंग
ताल ललितं - ताली वजाकर ललित
कीर्तनं कर्तव्यं - कीर्तन करना चाहिए ॥ ५७ ॥

जयशब्दं नमः शब्दं शंखशब्दं च कारयेत् ।
विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयताम् ॥ ५८ ॥

जय शब्दं नमः शब्दं शंख शब्दं च कारयेत् विप्रेभ्यः याचकेभ्यः च वित्तं अन्नं च दीयताम् ॥ ५८ ॥

जय शब्दं - जयकारकी ध्वनि,
नमः शब्दं - नमस्कारकी ध्वनि
च शंख शब्दं - तथा शंख ध्वनि
कारयेत् - करवायें,
विप्रेभ्यः - ब्राह्मणोंको
च याचकेभ्यः - तथा भिक्षुकोंको
वित्तं अन्नं च - धन, अन्न (भोजन) भी
दीयतां - प्रदान करो ॥ ५८ ॥

विरक्तश्चेद्भवेच्छ्रोता गीता वाच्या परेऽहनि ।
गृहस्थश्चेत्तदा होमः कर्तव्यः कर्मशान्तये ॥ ५९ ॥

विरक्तः चेत् भवेत् श्रोता गीता वाच्या परे अहनि गृहस्थः चेत् तदा होमः कर्तव्यः कर्म शान्तये ॥ ५९ ॥

चेत् श्रोता - यदि श्रोता
विरक्तः भवेत् - विरक्त हो तो
परे अहनि - दूसरे दिन
गीता वाच्या - गीताका पाठ करना चाहिए,
चेत् गृहस्थः - यदि गृहस्थ हो
तदा कर्म शान्तये - (तब) कर्मकी शान्तिके लिए
होमः कर्तव्यः - हवन करना चाहिए ॥ ५९ ॥

प्रतिश्लोकं तु जुहुयाद्विधिना दशमस्य च ।
पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम् ॥ ६० ॥

प्रति श्लोकं तु जुहुयात् विधिना दशमस्य च पायसं मधु सर्पिः च तिल अन्नादिक संयुतम् ॥ ६० ॥

दशमस्य च - दशम स्कन्धके ही
प्रति श्लोकं तु - प्रत्येक श्लोकके साथ तो
विधिना - विधिपूर्वक
मधु सर्पिः - मधु, घृत,
च तिलअन्न - तथा तिल, अन्न (चावल, जौ)
आदिक संयुतं - आदि सहित
पायसं - खीरका
जुहुयात् - हवन करे ॥ ६० ॥

अथवा हवनं कुर्याद्गायत्र्या सुसमाहितः ।
तन्मयत्वात्पुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ॥ ६१ ॥

अथवा हवनं कुर्यात् गायत्र्या सुसमाहितः तत् मय त्वात् पुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ॥ ६१ ॥

अथवा - अथवा
सुसमाहितः - अत्यन्त एकाग्रचित्तसे
तत्त्वतः च - तत्त्वसे तो
परमस्य- - इस महापुराणके
पुराणस्य
तत् मय त्वात्- तत् (गायत्री) मय होनेके कारण
गायत्र्या - गायत्री मन्त्र द्वारा
हवनं कुर्यात् - हवन करे ॥ ६१ ॥

होमाशक्तौ बुधो हौम्यं दद्यात्तत्फलसिद्धये ।
नानाच्छिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिकतानयोः ॥ ६२ ॥

होम अशक्तौ बुधः हौम्यं दद्यात् तत् फल सिद्धये नाना छिद्र निरोध अर्थं न्यूनता अधिकता अनयोः ॥ ६२ ॥

होम अशक्तौ - हवन करनेमें असमर्थ होनेपर
तत् फल- - उस (हवन) के फलकी
सिद्धये सिद्धि प्राप्तिके लिये
हौम्यं - हवन-सामग्री
दद्यात् - दान करदे,
नाना छिद्र - अनेक प्रकारकी त्रुटियोंको
निरोध अर्थं - बन्द (दूर) करनेके लिए तथा
अनयोः - इस (श्रवणादि) में
न्यूनता - कमी अथवा
अधिकता - अधिकता ॥ ६२ ॥

दोषयोः प्रशमार्थं च पठेन्नामसहस्रकम् ।
तेन स्यात्सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं यतः ॥ ६३ ॥

दोषयोः प्रशम अर्थं च पठेत् नाम सहस्रकं तेन स्यात् सफलं सर्वं न अस्ति अस्मात् अधिकं यतः ॥ ६३ ॥

दोषयोः - दोषोंकी
प्रशम अर्थं - शान्तिके लिए
नाम सहस्रकं च - (विष्णु) सहस्र नामका भी
पठेत् - पाठ करे,
तेन सर्वं - उससे सब (कर्म)
सफलं स्यात् - सफल होजाते हैं,
यतः अस्मात् - क्योंकि इस (सहस्रनाम पाठ) से
अधिकं न-अस्ति - अधिक कुछ नहीं है ॥ ६३ ॥

द्वादश ब्राह्मणान् पश्चाद्भोजयेन्मधुपायसैः ।
दद्यात्सुवर्णं धेनुं च व्रतपूर्णत्वहेतवे ॥ ६४ ॥

द्वादश ब्राह्मणान् पश्चात् भोजयेत् मधु पायसैः दद्यात् सुवर्णं धेनुं च व्रतपूर्णत्व हेतवे ॥ ६४ ॥

व्रत पूर्णत्व - व्रतकी पूर्णता
हेतवे - के लिए
द्वादश ब्राह्मणान् - बारह ब्राह्मणोंको
पश्चात् - अन्तमें
मधु पायसैः - शहद पड़ी खीरसे
भोजयेत् - भोजन करावे,
सुवर्णं च - उन्हें स्वर्ण तथा
धेनुं दद्यात् - गाय दान करे ॥ ६४ ॥

शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च ।
तत्रास्य पुस्तकं स्थाप्यं लिखितं ललिताक्षरम् ॥ ६५ ॥

शक्तौ पलत्रय मितं स्वर्ण सिंहं विधाय च तत्र अस्य पुस्तकं स्थाप्यं लिखितं ललित अक्षरम् ॥ ६५ ॥

शक्तौ - सामर्थ्य हो तो
पलत्रय मितं - तीन तोले परिमाणका
स्वर्ण सिंहं - स्वर्णका सिंह
विधाय च - बनवा करके ही
तत्र ललित-अक्षरं - उसपर सुन्दर अक्षरोंमें
लिखितं - लिखी हुई
अस्य पुस्तकं - यह (श्रीमद् भागवत) पुस्तक
स्थाप्यं - रखना चाहिए ॥ ६५ ॥

सम्पूज्यावाहनाद्यैस्तदुपचारैः सदक्षिणम् ।
वस्त्रभूषणगन्धाद्यैः पूजिताय यतात्मने ॥ ६६ ॥

सम्पूज्य वाहन आद्यैः तत् उपचारैः स दक्षिणं वस्त्र भूषण गन्ध आद्यैः पूजिताय यत आत्मने ॥ ६६ ॥

तत् उपचारैः - पूजन सामग्रीसे
वाहन आद्यैः - वाहन आदिकी
सम्पूज्य - पूजा करके
स दक्षिणं - दक्षिणाके साथ
वस्त्र भूषण - वस्त्र, आभूषण,
गन्ध आद्यैः - चन्दनादिसे
पूजिताय - पूजित
यत आत्मने - संयतचित्त ॥ ६६ ॥

आचार्याय सुधीर्दत्त्वा मुक्तः स्याद्भवबन्धनैः ।
एवं कृते विधाने च सर्वपापनिवारणे ॥ ६७ ॥

आचार्याय सुधीः दत्त्वा मुक्तः स्यात् भव बन्धनैः एवं कृते विधाने च सर्वपाप निवारणे ॥ ६७ ॥

आचार्याय - आचार्यको
दत्त्वा सुधीः - देकर उत्तम बुद्धि (पुरुष)
भव बन्धनैः - संसारके बन्धनोंसे
मुक्तः स्यात् - मुक्त होजाता है,
च एवं विधाने - तथा इस प्रकारका विधान
कृते सर्वपाप - करनेपर सब पापोंका
निवारणे - निवारण होजाता है ॥ ६७ ॥

फलदं स्यात्पुराणं तु श्रीमद्भागवतं शुभम् ।
धर्मकामार्थमोक्षाणां साधनं स्यान्न संशयः ॥ ६८ ॥

फलदं स्यात् पुराणं तु श्रीमद्भागवतं शुभं धर्म अर्थ काम मोक्षाणां साधनं स्यात् न संशयः ॥ ६८ ॥

श्रीमद्भागवतं - श्रीमद्भागवत
शुभं पुराणं तु - शुभ पुराण तो
फलदं स्यात् - फल देने वाला होता है,
न संशयः - (इसमें) सन्देह नहीं कि यह
धर्म अर्थ - धर्म, अर्थ,
काम मोक्षाणां - काम, मोक्ष (चारों पुरुषार्थों) का
साधनं - साधन है ॥ ६८ ॥१

कुमारा ऊचुः-

इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।
श्रीमद्भागवतेनैव भुक्तिमुक्ति करे स्थिते ॥ ६९ ॥

इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुं इच्छसि श्रीमद्भागवतेन एव भुक्ति मुक्ति करे स्थिते ॥ ६९ ॥

इति ते - इस प्रकार तुमसे
सर्वं कथितं - सब कह दिया,
भूयः किं - फिर क्या
श्रोतुं इच्छसि - सुनना चाहते हो ?
श्रीमद् - श्रीमद्
भागवतेन एव - भागवतसे ही
भुक्ति मुक्ति - भोग और मोक्ष
करे स्थिता - हाथमें आजाते हैं ॥६९॥

सूत उवाच-

इत्युक्त्वा ते महात्मानः प्रोचुर्भागवतीं कथाम् ।
सर्वपापहरां पुण्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ॥ ७० ॥

इति उक्त्वा ते महात्मानः प्रोचुः भागवतीं कथां सर्व पापहरां पुण्यां भुक्ति मुक्ति प्रदायिनीम् ॥ ७० ॥

---

१. इसके आगे प्रायः अन्य प्रतियोंमें 'कुमारा ऊचुः' है; किन्तु वह अनावश्यक है; क्योंकि अध्यायके प्रारम्भसे 'कुमारा ऊचुः' ही चल रहा है ।

इति उक्त्वा	- ऐसा कहकर	**भुक्ति मुक्ति**	- भोग और मोक्ष
ते महात्मानः	- उन महात्माओंने	**प्रदायिनीं**	- देने वाली
सर्वपाप हरां	- समस्त पाप हारिणी	**भागवतीं कथां**	- श्रीमद्भागवतकी कथाका
पुण्यां	- पवित्र	**प्रोचुः**	- प्रवचन किया ॥ ७० ॥

शृण्वतां सर्वभूतानां सप्ताहं नियतात्मनाम् ।
यथाविधि ततो देवं तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७१ ॥

शृण्वतां सर्व भूतानां सप्ताहं नियत आत्मनां यथा विधि ततः देवं तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७१ ॥

नियत आत्मनां	- एकाग्र चित्तसे	**ततः देवं**	- फिर (अन्तमें) भगवान
यथा विधि	- विधिपूर्वक	**पुरुषोत्तमं**	- पुरुषोत्तमकी
सर्व भूतानां	- (वहां) सभी प्राणियोंके	**तुष्टुवुः**	- स्तुति की ॥ ७१ ॥
सप्ताहं शृण्वतां	- सप्ताह श्रवण करनेपर		

तदन्ते ज्ञानवैराग्यभक्तीनां पुष्टता परा ।
तारुण्यं परमं चाभूत्सर्वभूतमनोहरम् ॥ ७२ ॥

तत् अन्ते ज्ञान वैराग्य भक्तीनां पुष्टता परा तारुण्यं परमं च अभूत् सर्व भूत मनोहरम् ॥ ७२ ॥

तत् अन्ते	- उस (कथा) के अन्तमें	**च सर्वभूत**	- तथा सब प्राणियोंके लिए
ज्ञान वैराग्य	- ज्ञान, वैराग्य,	**मनोहरं**	- मनोहर
भक्तीनां	- भक्तिको	**परमं तारुण्यं**	- परम तारुण्य
परा पुष्टता	- परम पुष्टता	**अभूत्**	- प्राप्त हुआ ॥ ७२ ॥

नारदश्च कृतार्थोऽभूत्सिद्धे स्वीये मनोरथे ।
पुलकीकृतसर्वांगः परमानन्दसम्भृतः ॥ ७३ ॥

नारदः च कृतर्थः अभूत् सिद्धे स्वीये मनोरथे पुलकीकृत सर्व अंगः परम आनन्द सम्भृतः ॥ ७३ ॥

स्वीये मनोरथे	- अपने मनोरथके	**सर्व अंगः**	- सम्पूर्ण शरीरसे
सिद्धे	- सिद्ध होजानेपर	**पुलकीकृत**	- पुलकायमान
परम आनन्द	- परम आनन्द	**नारदः च**	- नारदजी भी
सम्भृतः	- परिपूर्ण प्राप्त	**कृतर्थः अभूत्**	- कृतार्थ होगये ॥७३॥

एवं कथां समाकर्ण्य नारदो भगवत्प्रियः ।
प्रेमगद्गदया वाचा तानुवाच कृताञ्जलिः ॥ ७४ ॥

एवं कथां सम आकर्ण्य नारदः भगवत् प्रियः प्रेम गद् गदया वाचा तान् उवाच कृत अञ्जलिः ॥ ७४ ॥

एवं कथां	- इस प्रकारकी कथाको	**कृत अञ्जलिः**	- हाथ जोड़कर
सम आकर्ण्य	- भली भांति सुनकर	**प्रेम गद्-**	- प्रेमसे गद्गद् हुई वाणीसे
भगवत् प्रियः	- भगवानके प्यारे	**गदया वाचा**	
नारदः	- नारद जी	**तान् उवाच**	- उन (सनत्कुमारादि) से बोले ॥ ७४ ॥

नारद उवाच-

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिः करुणापरैः ।
अद्य मे भगवाँल्लब्धः सर्वपापहरो हरिः ॥ ७५ ॥

धन्यः अस्मि अनुगृहीतः अस्मि भवद्भिः करुणापरैः अद्य मे भगवान् लब्धः सर्वपाप हरः हरिः ॥ ७५ ॥

करुणा परैः	- दयाशील	**सर्व पाप हरः**	- सर्वपाप हारी
भवद्भिः	- आप लोगों द्वारा	**भगवान् हरिः**	- भगवान् श्रीहरिः
अनुगृहीतः अस्मि	- अनुगृहीत हुआ हूं,	**अद्य मे**	- आज मैंने
धन्यः अस्मि	- (अतः) मैं धन्य हूं'	**लब्धः**	- प्राप्त किया ॥ ७५ ॥

श्रवणं सर्वधर्मेभ्यो वरं मन्ये तपोधनाः ।
वैकुण्ठस्थो यतः कृष्णः श्रवणाद्यस्य लभ्यते ॥ ७६ ॥

श्रवणं सर्व धर्मेभ्यः वरं मन्ये तपोधनाः वैकुण्ठस्थः यतः कृष्णः श्रवणात् अस्य लभ्यते ॥ ७६ ॥

तपोधनाः - तपोधनो !
सर्व धर्मेभ्यः - सब धर्मोंसे
श्रवणं वरं मन्ये - श्रवणको मैं श्रेष्ठ मानता हूं
यतः अस्य - क्योंकि इस (भागवत) के
श्रवणात् - श्रवण करनेसे
वैकुण्ठस्थः - वैकुण्ठमें रहने वाले
कृष्णः लभ्यते - श्रीकृष्ण प्राप्त होजाते हैं ॥ ७६ ॥

सूत उवाच-

एवं ब्रुवति वै तत्र नारदे वैष्णवोत्तमे ।
परिभ्रमन् समायातः शुको योगेश्वरस्तदा ॥ ७७ ॥

एवं ब्रुवति वै तत्र नारदे वैष्णव उत्तमे परिभ्रमन् सम आयातः शुकः योगेश्वरः तदा ॥ ७७ ॥

वैष्णव उत्तमे - भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ
नारदे - नारदजीके
एवं ब्रुवति वै - इस प्रकार कहते समय ही
तदा परिभ्रमन् - उस समय घूमते हुए
योगेश्वरः शुकः - योगेश्वर शुकदेवजी
सम आयातः - समीप आगये ॥७७॥

तत्राययौ षोडशवार्षिकस्तदा व्यासात्मजो ज्ञानमहाब्धिचन्द्रमाः ।
कथावसाने निजलाभपूर्णः प्रेम्णा पठन् भागवतं शनैः शनैः ॥ ७८ ॥

तत्र आययौ षोडश वार्षिकः तदा व्यास आत्मजः ज्ञान महा अब्धि चन्द्रमाः कथा अवसाने निजलाभ पूर्णः प्रेम्णा पठन् भागवतं शनैः शनैः ॥ ७८ ॥

कथा अवसाने - कथाकी समाप्तिपर
तदा तत्र - उस समय वहाँ
निजलाभ पूर्णः - आत्मलाभसे परिपूर्ण
षोडश वार्षिकः - सोलह वर्षकी अवस्था वाले
ज्ञान महा-अब्धि - ज्ञानरूपी महासमुद्रसे
चन्द्रमाः - उत्पन्न चन्द्रमाके समान
व्यास आत्मजः - श्रीव्यास-नन्दन शुकदेवजी
प्रेम्णा-शनैः शनैः - प्रेमपूर्वक धीरे धीरे
भागवतं पठन् - भागवतका पाठ करते हुए
आययौ - आगये ॥ ७८ ॥

दृष्ट्वा सदस्याः परमोरुतेजसं सद्यः समुत्थाय ददुर्महासनम् ।
प्रीत्या सुरर्षिस्तमपूजयत्सुखं स्थितोऽवदत्संशृणुतामलां गिरम् ॥ ७९ ॥

दृष्ट्वा सदस्याः परम उरु तेजसं सद्यः सम उत्थाय ददुः महा आसनं प्रीत्या सुरर्षिः तं अपूजयत् सुखं स्थितः अवदत् संशृणुत अमलां गिरम् ॥ ७९ ॥

परम उरु तेजसं - उन अत्यधिक परम तेजस्वीको
दृष्ट्वा - देखकर
सदस्याः - सब सभासदोंने
सद्यः सम उत्थाय - तत्काल एक साथ उठकर
महा आसनं - सर्वोच्च आसन
ददुः - दिया,
सुरर्षिः - देवर्षि नारदने
प्रीत्या तं - प्रेमपूर्वक उनकी
अपूजयत् - पूजाकी
सुखं स्थितः - सुखपूर्वक बैठकर (वे)
अवदत् - बोले,
अमलां गिरं - ('मेरी) निर्मल वाणी
संश्रुणुत - (आप सब) श्रवण करो ॥ ७९ ॥

श्रीशुक उवाच-

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ८० ॥

निगम कल्पतरोः गलितं फलं शुक मुखात् अमृतद्रव संयुतं पिबत भागवतं रसं आलयं मुहुः अहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ ८० ॥

अहो भुवि-भावुकाः - अहो, पृथ्वीके भावुक
रसिका - रसिको !
निगम कल्पतरोः - वेदरूपी कल्पवृक्षके
गलितं फलं - (स्वयं) टपके फल,
शुक मुखात् - शुकका मुख लगनेसे
अमृत द्रव-संयुतं - अमृतरस युक्त हुए
भागवतं रसं - श्रीमद्भागवतके रसको
आलयं - मरण पर्यन्त
मुहुः पिबत - बार-बार पियो ॥ ८० ॥

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं
वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो
हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥८१॥

धर्मः प्रोज्झित कैतवः अत्र परमः निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवं अत्र वस्तु शिवदं ताप त्रय उन्मूलनं श्रीमद्भागवते महामुनि कृते किं वा परैः ईश्वरः सद्यः हृदि अवरुध्यते अत्र कृतिभिः शुश्रूषिभिः तत् क्षणात् ॥ ८१ ॥

निर्मत्सराणां - डाह रहित
सतां - सत्पुरुषोंके लिए
अत्र प्रोज्झित-कैतवः - इस (भागवत) में कपट रहित
परमः धर्मः - परम धर्म है,
अत्र तापत्रय उन्मूलनं - इसमें तीनों तापोंको जड़से उखाड़ देने वाली,
शिवदं - कल्याणदायिनी
वास्तवं वेद्यं वस्तु - वस्तुतः जानने योग्य तत्त्व है,
वा किं परैः - अथवा क्या दूसरी
कृतिभिः - किसी रचनासे
ईश्वरः सद्यः - ईश्वर तत्काल
हृदि अवरुध्यते - हृदयमें स्थिर होता है?
महामुनि कृते - महामुनि व्यासजीकी रचना
अत्र-श्रीमद्भागवते - इस श्रीमद्भागवतकी
शुश्रूषिभिः - सेवा करनें वालों द्वारा
तत् क्षणात् - उसी क्षण (ईश्वर हृदयमें स्थिर होजाता है ।)
॥ ८१ ॥

श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं यद्वैष्णवानां-

धनं यस्मिन् पारमहंस्यमेवममलं ज्ञानं परं गीयते ।

यत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं-

तच्छृण्वन् प्रपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः॥८२॥

श्रीमद्भागवतं पुराण तिलकं यत् वैष्णवानां धनं यस्मिन् पारमहंस्यं एवं अमलं ज्ञानं परं गीयते यत्र ज्ञान विराग भक्ति सहितं नैष्कर्म्यं आविष्कृतं तत् शृण्वन् प्रपठन् विचारण परः भक्त्या विमुच्येत् नरः ॥ ८२ ॥

पुराण तिलकं	- पुराणोंका तिलक स्वरूप	**यत्र ज्ञान**	- जिसमें ज्ञान,
श्रीमद्भागवतं	- श्रीमद्भागवत	**विराग भक्ति**	- वैराग्य, भक्तिके
यत् वैष्णवानां	- जो भगवद्भक्तोंका	**सहितं**	- सहित
धनं	- धन है,	**नैष्कर्म्यं**	- मोक्षको
यस्मिन्	- जिसमें	**आविष्कृतं**	- प्रगट किया गया है,
पारमहंस्यं एवं	- परमहंसोंके ही	**तत् शृण्वन्**	- उस (भागवत) को सुनने
अमलं परं ज्ञानं	- निर्मल श्रेष्ठ ज्ञानका	**प्रपठन्**	- बार बार पाठ करने,
गीयते	- वर्णन है,	**विचारण परः**	- विचार करनेमें लगा
		नरः भक्त्या	- मनुष्य भक्तिके द्वारा
		विमुच्येत्	- मुक्त होजाता है ॥८२॥

स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुण्ठे नास्त्ययं रसः ।

अतः पिबन्तु सद्भाग्या मा मा मुञ्चत कर्हिचित् ॥ ८३ ॥

स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुण्ठे न अस्ति अयं रसः अतः पिबन्तु सद्भाग्या मा मा मुञ्चत कर्हिचित् ॥ ८३ ॥

स्वर्गे सत्ये - स्वर्ग, ब्रह्मलोक,
कैलासे च - कैलास तथा
वैकुण्ठे - वैकुण्ठमें
अयं रसः - यह रस
न अस्ति - नहीं है,
अतः- - अतः सौभाग्यशालियों !
सद्भाग्या
पिबन्तु - (इसको) पीओ,
कर्हिचित् मा - कभी नहीं;
मा मुञ्चत - नहीं ही त्यागो ॥८३॥

सूत उवाच-

एवं ब्रुवाणे सति बादरायणौ मध्ये सभायां हरिराविरासीत् ।
प्रह्लादबल्युद्धवफाल्गुनादिभिर्वृतः सुरर्षिस्तमपूजयच्च तान् ॥ ८४ ॥

एवं ब्रुवाणे सति बादरायणौ मध्ये सभायां हरिः आविः आसीत् प्रह्लाद बलि उद्धव फाल्गुन आदिभिः वृतः सुरर्षिः तं पूजयत् च तान् ॥ ८४ ॥

बादरायणौ - शुकदेवजीके
एवं ब्रुवाणे सति - इस प्रकार कहते ही
सभायां मध्ये - उस सभाके बीचमें
प्रह्लाद बलि - प्रह्लाद, बलि,
उद्धव फाल्गुन - उद्धव, अर्जुन
आदिभिः वृतः - आदिसे घिरे
हरिः आविः- - श्रीहरि प्रगट होगये,
आसीत्
सुरर्षिः तं - देवर्षि नारदने उन (श्रीहरि) की
च तान् - तथा (साथ आये) उन लोगोंकी
पूजयत् - पूजाकी ॥ ८४ ॥

दृष्ट्वा प्रसन्नं महदासने हरिं ते चक्रिरे कीर्तनमग्रतस्तदा ।
भवो भवान्या कमलासनस्तु तत्रागमत्कीर्तनदर्शनाय ॥ ८५ ॥

दृष्ट्वा प्रसन्नं महत् आसने हरिं ते चक्रिरे कीर्तनं अग्रतः तदा भवः भवान्या कमलासनः तु तत्र आगमत् कीर्तन दर्शनाय ॥ ८५ ॥

महत् आसने - उच्च सिंहासनपर (वैठे)
तदा हरिं - उस समय श्रीहरिको
प्रसन्नं दृष्ट्वा - प्रसन्न देखकर
ते अग्रतः - वे लोग (उनके) आगे
कीर्तनं चक्रिरे - कीर्तन करने लगे,
भवः भवान्या - शिव-पार्वती
तु कमलासनः - तथा ब्रह्माजी
कीर्तन दर्शनाय - कीर्तन देखने
तत्र आगमत् - वहां आये ॥ ८५ ॥

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत् ।
इन्द्रोऽवादीन्मृदंग जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा
यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥ ८६ ॥

प्रह्लादः तालधारी तरलगति तया च उद्धवः कांस्यधारी वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्ता अर्जुनः अभूत् इन्द्रः अवादीत् मृदंग जय जय सुकराः कीर्तने ते कुमारा यत्र अग्रे भाववक्ता सरस रचनया व्यासपुत्रः बभूव ॥ ८६ ॥

कीर्तने	- उस कीर्तनमें	**इन्द्रः मृदंग**	- इन्द्र मृदंग
तरल गति तया	- चञ्चल गति होनेसे	**अवादीत्**	- बजाने लगे,
प्रह्लादः	- प्रह्लादने करताल	**ते कुमारा**	- वे सनकादि कुमार
तालधारी	लिया,	**जय जय-**	- (बीच-बीचमें) सुगम होनेसे
च उद्धवः	- तथा उद्धवने	**सुकराः**	जय जयकार करने लगे,
कांस्यधारी	- झांझ उठाया,	**यत्र अग्रे**	- जिनमें सबसे आगे
सुरर्षिः	- देवर्षि नारद वीणा	**सरस रचनया**	- सरस रचनाके कारण
वीणाधारी	लिये थे,	**व्यास पुत्रः**	- श्रीव्यास-नन्दन शुकदेवजी
स्वर कुशलतया	- स्वरोंमें निपुण होनेसे	**भाव वक्ता**	- भाव बतलाने वाले
अर्जुनः	- अर्जुन	**बभूव**	- होगये ॥ ८६ ॥
रागकर्ता अभूत्	- राग अलापने वाले होगये,		

ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र भक्त्यादिकानां नटवत्सुतेजसाम् ।
अलौकिकं कीर्तनमेतदीक्ष्य हरिः प्रसन्नोऽपि वचोऽब्रवीत्तत् ॥ ८७ ॥

ननर्त मध्ये त्रिकं एव तत्र भक्ति आदिकानां नटवत् सुतेजसां अलौकिकं कीर्तनं एतत् ईक्ष्य हरिः प्रसन्नः अपि वचः अब्रवीत् तत् ॥ ८७ ॥

तत्र सुतेजसां	- वहां परम तेजस्वी	**एतत् अलौकिकं**	- इस अलौकिक
भक्ति आदिकानां	- भक्ति आदिकी	**कीर्तनं ईक्ष्य**	- कीर्तनको देखकर
त्रिकं एव	- तिकड़ी ही	**प्रसन्नः अपि**	- प्रसन्न होते हुए भी
नटवत्	- नटोंके समान	**हरिः तत्**	- हरिने यह
मध्ये ननर्त	- बीचमें नाचने लगी,	**वचः अब्रवीत्**	- बात कही ॥ ८७ ॥

मत्तो वरं भाववृताद्वृणुध्वं प्रीतः कथाकीर्तनतोऽस्मि साम्प्रतम् ।
श्रुत्वेति तद्वाक्यमतिप्रसन्नाः प्रेमार्द्रचित्ता हरिमूचिरे ते ॥ ८८ ॥

मत्तः वरः भाववृतात् वृणीध्वं प्रीतः कथा कीर्तनतः अस्मि साम्प्रतं श्रुत्वा इति तत् वाक्यं अति प्रसन्नाः प्रेम आर्द्र चित्ता हरिं ऊचिरे ते ॥ ८८ ॥

साम्प्रतं	- 'इस समय	**इति तत्**	- इस प्रकार उन
कथा कीर्तनतः	- इस कथा-कीर्तनसे		(श्री हरि) के
प्रीतः अस्मि	- (मैं) प्रसन्न हूँ,	**वाक्यं श्रुत्वा**	- वचन सुनकर
भाव वृतात्	- भावसे वश किये गये	**अति प्रसन्नाः**	- अत्यन्त प्रसन्न
मत्तः	- मुझसे	**प्रेम आर्द्र चित्ता**	- प्रेमसे द्रवित चित्त
वरः वृणीध्वं	- वरदान मांग लो'	**ते हरिं ऊचिरे**	- वे श्रीहरिसे बोले ॥ ८८ ॥

नगाहगाथासु च सर्वभक्तैरेभिस्त्वया भाव्यमिति प्रयत्नात् ।
मनोरथोऽयं परिपूरणीयस्तथेति चोक्त्वान्तरधीयताच्युतः ॥ ८९ ॥

नगाह गाथासु च सर्व भक्तैः एभिः त्वया भाव्यं इति प्रयत्नात् मनोरथः अयं परिपूरणीयः तथा इति च उक्त्वा अन्तः अधीयत अच्युतः ॥ ८९ ॥

नगाह गाथासु	- सप्ताह कथामें	**परिपूरणीयः**	- (आपको) परिपूर्ण करनी चाहिए
एभिः सर्वभक्तैः	- इन सब भक्तोंके साथ	**'तथा' इति च**	- अच्छा ऐसा ही
त्वया भाव्यं	- आपको पधारना चाहिए,	**उक्त्वा अच्युतः**	- कहकर श्रीहरि
इति	- इस प्रकारकी	**अन्तः अधीयत**	- अन्तर्ध्यान होगये ॥ ८९ ॥
अयं मनोरथः	- यह अभिलाषा		
प्रयत्नात्	- प्रयत्नपूर्वक		

ततोऽनमत्तच्चरणेषु नारदस्तथा शुकादीनपि तापसांश्च ।
अथ प्रहृष्टाः परिनष्टमोहाः सर्वे ययुः पीतकथामृतास्ते ॥ ९० ॥

ततः अनमत् तत् चरणेषु नारदः तथा शुक आदीन् अपि तापसान् च अथ प्रहृष्टाः परिनष्ट मोहाः सर्वे ययुः पीत कथा अमृताः ते ॥ ९० ॥

ततः नारदः	- तब नारदजीने	**अथ प्रहृष्टाः**	- फिर अत्यन्त प्रसन्न हुए,
तत् चरणेषु	- उन (भगवत् पार्षदों) के चरणोंमें	**परिनष्ट मोहाः**	- सम्पूर्ण रूपसे मोह नष्ट हुए,
तथा शुकआदीन	- तथा शुकदेवजी आदि	**ते पीत-**	- वे कथा रूपी अमृतको
तापसान् च	- तपस्वियोंको भी	**कथा अमृताः**	पीने वाले
अनमत्	- प्रणाम किया,	**सर्वे ययुः**	- सब लोग चले गये ॥ ९० ॥

भक्तिः सुताभ्यां सह रक्षिता सा शास्त्रे स्वकीयेऽपि तदा शुकेन ।
अतो हरिर्भागवतस्य सेवनाच्चित्तं समायाति हि वैष्णवानाम् ॥ ९१ ॥

भक्तिः सुताभ्यां सह रक्षिता सा शास्त्रे स्वकीये अपि तदा शुकेन अतः हरिः भागवतस्य सेवनात् चित्तं सम आयाति हि वैष्णवानाम् ॥ ९१ ॥

हि तदा	- क्योंकि उस समय	**सा भक्तिः**	- वह भक्ति
शुकेन	- शुकदेवजी द्वारा	**रक्षिता**	- रक्षित कर दी गयी,
स्वकीये	- अपने	**अतः भागवतस्य**	- अतः भागवतका
शास्त्रे अपि	- शास्त्रमें ही	**सेवनात्**	- सेवन करनेसे
सुताभ्यां सह	- पुत्रों (ज्ञान-वैराग्य) के साथ	**हरिः वैष्णवानां**	- श्रीहरि भक्तोंके
		चित्तं सम-	- चित्तमें पूर्णतः आजाते
		आयाति	हैं ॥ ९१ ॥

दारिद्र्यदुःखज्वरदाहितानां मायापिशाचीपरिमर्दितानाम् ।
संसारसिन्धौ परिपातितानां क्षेमाय वै भागवतं प्रगर्जति ॥ ९२ ॥

दारिद्र्य दुःख ज्वर दाहितानां माया पिशाची परि मर्दितानां संसार सिन्धौ परिपातितानां क्षेमाय वै भागवतं प्रगर्जति ॥ ९२ ॥

दारिद्र्य दुःख	- दरिद्रताके दुःख रूपी	**संसार सिन्धौ**	- संसार-सागरमें
ज्वर दाहितानां	- ज्वरसे जलाये जाते,	**परिपातितानां**	- सब ओरसे फेंके गये लोगोंके
माया पिशाची	- माया रूपी पिशाचिनी द्वारा	**वै क्षेमाय**	- निश्चित कल्याणके लिए
परि मर्दितानां	- चारों ओरसे रौंदे जाते,	**भागवतं**	- श्रीमद्भागवत
		प्रगर्जति	- सिंहनाद कर रहा है ॥ ९२ ॥

शौनक उवाच-

शुकेनोक्तं कदा राज्ञे गोकर्णेन कदा पुनः ।
सुरर्षये कदा ब्राह्मैश्छिन्धि मे संशयं त्विमम् ॥ ९३ ॥

शुकेन उक्तं कदा राज्ञे गोकर्णेन कदा पुनः सुरर्षये कदा ब्राह्मैः छिन्धि मे संशयं तु इमम् ॥ ९३ ॥

कदा शुकेन	- कब शुकदेवजी ने	**ब्राह्मैः**	- ब्रह्माजी के पुत्रों (सनकादि) ने
राज्ञे	- राजा परीक्षितको	**उक्तं**	- (भागवत) कहा
पुनः कदा	- फिर कब	**मे इमम् संशयं**	- मेरा यह सन्देह
गोकर्णेन	- गोकर्णने तथा	**छिन्धि**	- काट दीजिए ॥ ९३ ॥
कदा सुरर्षये	- कब देवर्षि नारदको		

सूत उवाच-

आकृष्णनिर्गमात्त्रिंशद्वर्षाधिकगते कलौ ।
नवमीतो नभस्ये च कथारम्भं शुकोऽकरोत् ॥ ९४ ॥

आकृष्ण निर्गमात् त्रिंशत् वर्ष अधि गते कलौ नवमीतः नभस्ये च कथा आरम्भं शुकः अकरोत् ॥ ९४ ॥

आकृष्ण-	- श्रीकृष्णके (इस लोकसे)	**नभस्ये**	- भाद्रपद (शुक्ल)
निर्गमात्	निकल जानेसे लेकर	**नवमीतः**	- नवमीसे
त्रिंशत् वर्ष	- तीस वर्ष	**शुकः**	- शुकदेवजीने
कलौ अधिगते	- कलियुगके अधिकारके (होनेपर)	**कथा आरम्भं**	- कथाका प्रारम्भ
		अकरोत्	- किया ॥ ९४ ॥

परीक्षिच्छ्रवणान्ते च कलौ वर्षशतद्वये ।
शुद्धे शुचौ नवम्यां च धेनुजोऽकथयत्कथाम् ॥ ९५ ॥

परीक्षित श्रवण अन्ते च कलौ वर्ष शतद्वये शुद्धे शुचौ नवम्यां च धेनुजः अकथयत् कथाम् ॥ ९५ ॥

परीक्षित	राजा परीक्षितके	**शुचौ शुद्धे**	- आषाढ़ शुक्ल
श्रवण अन्ते	- श्रवणके पश्चात	**नवम्यां च**	- नवमीसे ही
कलौ वर्ष-	- कलियुगके और दौ सौ	**धेनुजः**	- गोकर्णने
शतद्वये च	वर्ष (बीत जानेपर)	**कथां अकथयत्**	- कथा कहना प्रारम्भ किया ॥ ९५ ॥

तस्मादपि कलौ प्राप्ते त्रिंशद्वर्षगते सति ।
ऊचुरूर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः ॥ ९६ ॥

तस्मात् अपि कलौ प्राप्ते त्रिंशत् वर्ष गते सति ऊचुः ऊर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः ॥ ९६ ॥

कलौ प्राप्ते	- कलियुग आनेके	**ऊर्जे सितेपक्षे**	- कार्तिक शुक्ल पक्षकी
तस्मात् अपि	- उससे भी	**नवम्यां**	- नवमीसे
त्रिंशत् वर्ष	- तीस वर्ष	**ब्रह्मणः सुताः**	- ब्रह्माजीके पुत्रों (सनकादि) ने
गते सति	- बीत जानेपर	**ऊचुः**	- (कथा) कहा ॥ ९६ ॥

इत्येतत्ते समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ।
कलौ भागवती वार्ता भवरोगविनाशिनी ॥ ९७ ॥

इति एतत् ते सम आख्यातं यत् पृष्टः अहं त्वया अनघ कलौ भागवती वार्ता भवरोग विनाशिनी ॥ ९७ ॥

अनघ	- निष्पाप शौनक जी !	**कलौ**	- कलियुगमें
यत् त्वया	- जो तुम्हारे द्वारा	**भागवती वार्ता**	- भागवतकी कथा
अहं पृष्टः	- मुझसे पूछा गया था वह	**भवरोग**	- संसार रूपी रोगको
इति एतत् ते	- इस प्रकार यह सब	**विनाशिनी**	- विनष्ट करने वाली है
सम आख्यातं	- भली प्रकार बतला दिया,		॥ ९७ ॥

कृष्णप्रियं सकलकल्मषनाशनं च मुक्त्येकहेतुमिह भक्तिविलासकारि ।
सन्तः कथानकमिदं पिबतादरेण लोके हि तीर्थपरिशीलनसेवया किम् ॥ ९८ ॥

कृष्णप्रियं सकल कल्मष नाशनं च मुक्ति एक हेतुं इह भक्ति विलास कारि सन्तः कथानकं इदं पिबत आदरेण लोके हि तीर्थ परिशीलन सेवया किम् ॥ ९८ ॥

सन्तः	- सन्तों !	**इदं कथानकं**	- इस कथानकका
कृष्णप्रियं	- श्रीकृष्णको प्रिय,	**आदरेण पिबत**	- आदरपूर्वक पान करो
सकल कल्मष	- सम्पूर्ण पापोंको	**हि लोके**	- क्योंकि संसारमें
नाशनं	- नष्ट करने वाले	**तीर्थ परिशीलन**	- तीर्थ ढूंढ़ने या
मुक्ति एक हेतुं	- मुक्तिका एकमात्र कारण	**सेवया किं**	- उनके सेवनसे क्या
च इह	- तथा इस लोकमें		लाभ ॥ ९८ ॥
भक्ति विलास-कारि	- भक्ति-विलास देने वाले		

स्वपुरुषमपि वीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर भगवत्कथासु मत्तान् प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ ९९ ॥

स्व पुरुषं अपि वीक्ष्य पाश हस्तं वदति यमः किल तस्य कर्ण मूले परिहर भगवत् कथासु मत्तान् प्रभुः अहं अन्य नृणां न वैष्णवानाम् ॥ ९९ ॥

स्व पुरुषं अपि - अपने दूतोंको भी
पाशहस्तं वीक्ष्य - हाथमें फन्दा लिये देखकर
किल यमः - अहो यमराज
तस्य कर्णमूले - उसके कानोंके पास (मुख ले जाकर)
वदति - कहते हैं
भगवत् कथासु - 'भगवानकी कथामें
मत्तान् - (आनन्द) मत्त लोगोंको
परिहर - छोड़ दो,
अहं अन्य नृणां - मैं दूसरे मनुष्योंका
प्रभुः - स्वामी हूँ,
वैष्णवानां न - भगवद्भक्तोंका नहीं ॥ ९९ ॥

असारे संसारे विषयविषसंगाकुलधियः क्षणार्धं
क्षेमार्थं पिबत शुकगाथातुलसुधाम् ।
किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे
परीक्षित्साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्युक्तिकथने ॥ १०० ॥

असारे संसारे विषय विष संग आकुल धियः क्षण अर्धं क्षेम अर्थं पिबत शुक गाथा अतुल सुधां किं अर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सित कथे परीक्षित् साक्षी यत् श्रवण गत मुक्ति उक्ति कथने ॥ १०० ॥

असारे संसारे - तथ्यहीन संसारमें
विषय विष - विषयरूपी विषोंकी
संग आकुल - आसक्तिसे व्याकुल
धियः भो - बुद्धि लोगों हे !
क्षेम अर्थं - (अपने) कल्याणके लिए
क्षण अर्धं - आधे क्षणको
शुकगाथा - शुकदेवजीकी कथारूपी
अतुल सुधां - अतुलनीय सुधाको
पिबत - पियो,
व्यर्थं किं अर्थं - व्यर्थ किसलिए
कुत्सितपथे - निन्दित मार्ग
कुपथे व्रजत - कुमार्गसे जारहे हो
उक्ति कथने - (शुकदेवजीके) वर्णनकी युक्तिओंके
श्रवणगत - कानमें पड़नेसे ही
यत् मुक्ति - क्योंकि मुक्ति होजाती हैं (इसमें)
परीक्षित् साक्षी - परीक्षित् साक्षी हैं ॥ १०० ॥

रसप्रवाहसंस्थेन श्रीशुकेनेरिता कथा ।
कण्ठे सम्बध्यते येन स वैकुण्ठप्रभुर्भवेत् ॥ १०१ ॥

रस प्रवाह संस्थेन श्रीशुकेन ईरिता कथा कण्ठे सम्बध्यते येन स वैकुण्ठ प्रभुः भवेत् ॥ १०१ ॥

रस प्रवाह	- प्रेमरसकी धारामें	**येन कण्ठे-**	- जो गलेमें बाँध लेता
संस्थेन	- स्थित होकर	**सम्बध्यते**	(कण्ठस्थ कर लेता) है
श्रीशुकेन	- श्रीशुकदेवजी द्वारा	**स वैकुण्ठ-**	- वह वैकुण्ठका स्वामी
ईरिता कथा	- कही गयी इस कथाको	**प्रभुः**	
		भवेत्	- होजाता है ॥ १०१ ॥

इति च परमगुह्यं सर्वसिद्धान्तसिद्धं सपदि निगदितं ते शास्त्रपुञ्जं विलोक्य ।
जगति शुककथातो निर्मलं नास्ति किञ्चित् पिब परसुखहेतोर्द्वादशस्कन्धसारम् ॥ १०२ ॥

इति च परम गुह्यं सर्व सिद्धान्त सिद्धं सपदि निगदितं ते शास्त्र पुञ्जं विलोक्य जगति शुककथातः निर्मलं न अस्ति किञ्चित् पिब पर सुख हेतोः द्वादशस्कन्ध सारम् ॥ १०२ ॥

इति	- इस प्रकार	**शुककथातः**	- शुकदेवजी द्वारा वर्णित कथासे
शास्त्र पुञ्जं	- शास्त्र समूहको	**जगति निर्मलं**	- संसारमें पवित्र
विलोक्य	- देखकर	**किञ्चित्-**	- और कुछ नहीं है
परम गुह्यं	- परम रहस्यमय	**न अस्ति**	(अतः)
च सर्व सिद्धान्त	- तथा सभी सिद्धान्तोंके द्वारा	**पर सुख**	- परमानन्दकी
सिद्धं	- सिद्ध	**हेतोः**	- प्राप्तिके लिए
ते सपदि	- तुमको (जो) अभी अभी	**सारं**	- रसरूप
निगदितं	- सुनाया है (उस)	**द्वादशस्कन्ध**	- (इस) बारह स्कन्धके ग्रन्थका
		पिब	- पान करो ॥ १०२ ॥

एतां यो नियततया शृणोति भक्त्या यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे ।
तौ सम्यग्विधिकरणात्फलं लभेते याथार्थ्यान्न हि भुवने किमप्यसाध्यम् ॥ १०३ ॥

एतां यः नियततया शृणोति भक्त्या यः च एनां कथयति शुद्ध वैष्णव अग्रे तौ सम्यक् विधि करणात् फलं लभेते याथार्थ्यात् न हि भुवने किमपि असाध्यम् ॥ १०३ ॥

यः एतां	- जो इस (श्रीमद्भागवत) को	**कथयति**	- कहता (सुनाता) है
भक्त्या	- भक्तिपूर्वक	**तौ सम्यक्**	- वे दोनों भली प्रकार
नियततया	- नियमित रूपसे	**विधि करणात्**	- विधि सम्पन्न करनेका
शृणोति	- सुनता है	**याथार्थ्यात्**	- वास्तविक
च यः एनां	- और जो इसको	**फलं लभेते**	- फल प्राप्त करते हैं
शुद्ध	- शुद्ध (चित्त)	**भुवने किमपि**	- (उनके लिए) त्रिभुवनमें कुछ भी
वैष्णव अग्रे	- भगवद्भक्तके सामने	**असाध्यं नहि**	- असाध्य नहीं रहता ॥ १०३ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ माहात्म्य सम्पूर्ण ॥

आरती श्रीमद्भागवत महापुराण

आरति अतिपावन पुरान की ।
धर्म, भक्ति, विज्ञान - खान की ॥
महापुरान भागवत निरमल ।
शुक - मुख - विगलित निगम - कलप - फल ॥
परमानन्द - सुधा - रसमय कल ।
लीला - रति - रस रसनिधान की ॥ १ ॥ आरति०

कलि - मलि - मथनि त्रिताप - निवारिनि ।
जन्म - मृत्युमय भव - भय - हारिनि ॥
सेवत सतत सकल सुखकारिनि ।
सुमहौषधि हरि - चरित - गान की ॥ २ ॥ आरति०

विषय - विलास - विमोह - विनासिनि ।
विमल विराग विवेक - विकाशिनि ॥
भगवतत्त्व - रहस्य - प्रकाशिनि ।
परम ज्योति परमात्म - ज्ञान की ॥ ३ ॥ आरति०

परमहंस - मुनि - मन - उल्लासिनि ।
रसिक - हृदय रस - रास - विलासिनि ॥
भुक्ति, मुक्ति, रति प्रेम - सुदासिनि ।
कथा अकिञ्चनप्रिय सुजान की ॥ ४ ॥ आरति०

●●●